वैदिक कोश

पं. चन्द्रशेखर उपाध्याय
एवं
श्री अनिल कुमार उपाध्याय

वैदिक कोश

भाग १

पं० चन्द्रशेखर उपाध्याय
एवं
श्री अनिल कुमार उपाध्याय
I.A.S.

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक

११ ए/यू. ए. जवाहर नगर,
दिल्ली-११० ००७

THIS PUBLICATION HAS BEEN BROUGHT OUT WITH THE FINANCIAL ASSISTANCE FROM RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN, NEW DELHI.

NAG PUBLISHERS

(i) 11A/U.A. (Post Office Building), Jawahar Nagar, Delhi 110 007.

(ii) Sanskrit Bhawan, 12,15, Sanskrit Nagar, Plot No. 3, Sector 14, Rohini, New Delhi - 110 085

(iii) Jalalpur Mafi, Chunar, Dist. Mirzapur, U. P.

© **Author**

ISBN 81-7081-292-5

FIRST EDITION : 1995

Price : Rs. 442.00 (3 vol. Set)

PRINTED IN INDIA

Published by Surendra Pratap for Nag Publishers, 11A/U.A., Jawahar Nagar, Delhi-110007 and printed at G. Print Process, 308/2, Shahzada Bagh, Dayabasti, Delhi-110035.

Laser Typesetting By:
Compu-Media-The D.T.P. People,
43, Bunglow Road, Kamla Nagar, Delhi-110 007
Phone : 2911869

जन्म कुण्डली

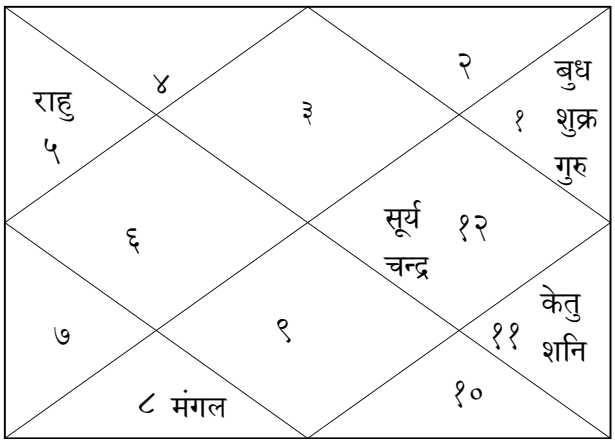

पं चन्द्रशेखर उपाध्याय

जन्म - ११ जनवरी १९०६, ग्राम पैगा, जिला-भोजपुर (बिहार)

निधन - १२ जुलाई १९७६

शिक्षा - एम.ए. साहित्याचार्य, विशारद

कार्यकाल - १९३२ से १९६१ तक बिहार शिक्षा सेवा में कार्यरत । १९६१ से १९६८ तक जनता उच्च विद्यालय, तेनुअज, नटवार, (जिला-रोहतास) के प्रधानाचार्य । ।

साहित्यिक सेवा - पं चन्द्रशेखर उपाध्याय की प्रारंभ से ही हिन्दी एवं संस्कृत साहित्य में गहरी अभिरुचि थी । पूर्णकालिक सरकारी सेवा के साथ साथ साहित्य का गहन अध्ययन एवं कई ग्रन्थों का सृजन चलता रहा । इनकी प्रारम्भिक प्रकाशित पुस्तकें हैं- १. बाल रचना विकास तथा २. प्रतिवेश पाठ की पाठन प्रणाली । इनके अलावे इनके सामयिक निबन्ध तथा फुटकर कविताएं तत्कालीन विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे ।

'वैदिक शब्दकोष' जो लगभग दो हजार पृष्ठों का विशाल ग्रन्थ है, इनके सम्पूर्ण सक्रिय जीवन के परिश्रम की परिणति है । एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'भास नाटकचक्र ' , जो भास के सम्पूर्ण नाटकों का अनुवाद है, प्रकाशनाधीन है ।

श्री अनिल कुमार उपाध्याय ने जिन्होंने इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है, बिहार कैडर के भारतीय प्रशासनिक सेवा के पदाधिकारी हैं । ये अभी बिहार सरकार में सचिव, ऊर्जा विभाग के पद पर कार्यरत हैं । ये पं. चन्द्रशेखर उपाध्याय के पौत्र हैं ।

श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय, भरद्वाज गोत्र, श्री कृष्ण कुमार उपाध्याय के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलानन्द उपाध्याय तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पञ्चरत्नी देवी की चतुर्थ सन्तान (तृतीय पुत्र)
पैगा ग्राम (आरा से ८ कि.मी. उत्तर) २५°३६ उत्तर, ८४°४२ पूर्व
५-४-१९०५, १०३० बजे, बुधवार, विक्रम संवत् १९६२, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा ३१-२४-२५ तक
सूर्योदय ५-४१-५६, सूर्यास्त १८-६-२२, चित्रापक्षीय अयनांश २२-३१-५६
रेवती २१-८-४९ तक, तृतीय चरण में जन्म से राशिनाम-चन्द्रशेखर
ऐन्द्र योग १०-३८-१८ तक, उसके बाद वैधृति योग। विष्टि करण १८-९-४४ तक
रेवती नक्षत्र का भभोग ६७-३१-३७, भयात ४०-५५-१२, बुध की भोग्य दशा ६-८-११
लग्न २-११-३५-११, दशम भाव १०-२९-२०-३, (ग्रहों की राशि, गति, षड्बल)
सूर्य ११-२२-१२-४३, ५९-४, १.६१। चन्द्र ११-२४-४४-४७, ११-४९-४९, १.६१।
मंगल ७-२-३२-३२, १-४५ (वक्री), १.६१। बुध ०-११-११-१७, ५४-११, ०.९३।
गुरु ०-१३-४२-५५, १३-५१, १.०२। शुक्र ०-२२-९-२३, २-१६, ०.७८।
शनि १०-६-४२-५२, ५-४७, १.४५। राहु ४-१४-५६-२३, ३-११, केतु १०-१४-५६-२३
महादशा-बुध ५-४-१९०५ से १६-१२-१९११ तक, केतु १६-१२-१८ तक, शुक्र १६-१२-३८ तक
सूर्य १६-१२-४४ तक, चन्द्र १६-१२-५४ तक, मंगल १६-१२-१९६१ तक, राहु १६-१२-७९ तक।
विवाह १९२३ सितम्बर, जगतारिणी देवी (जन्म २०-९-१९०५) के साथ (शुक्र में चन्द्र दशा)
१९२५ में बी.ए. (हिन्दी सम्मान)-(शुक्र में मंगल दशा)
शुक्र में राहु दशा (१५-२-२६ से १५-२-२९)- १९२६ में राज्य सिविल सर्विस परीक्षा में द्वितीय, पर स्वाधीनता संग्रामी परिवार का होने के कारण नौकरी नहीं, प्रथम पुत्री की मृत्यु १९२७ में शिक्षा निदेशक श्री काजिमी द्वारा विद्यालय अवर निरीक्षक के रूप में नियुक्त (जुलाई), २७ सितम्बर को ज्येष्ठ पुत्र श्री सर्वानन्द का जन्म
शुक्र में गुरु दशा (१६-१०-३१ तक) १९३०-३१ में कई शोध पत्र प्रकशित, १ पुत्री का जन्म/मृत्यु।
शुक्र में शनि दशा (१६-१२-३४ तक)-ज्येष्ठ पुत्री बासन्ती का जन्म, पिता की मृत्यु।
शुक्र में बुध दशा (१६-१०-३७ तक) - पुत्र परमानन्द का जन्म, २ वर्ष की आयु में मृत्यु। बिहार-उत्कल संस्कृत परिषद् के परीक्षक पद से इस्तीफा, कलकत्ता से साहित्याचार्य।
सूर्य में सूर्य दशा (१६-१२-३८ से ४-४-३९)-शान्ति का जन्म, आरा में परिवार, सम्बन्धी वर्ग का पालन। एक तमिल संन्यासी के आदेश से वैदिक कोष का लेखन आरम्भ। १४ वर्ष बाद ज्योतिष ज्ञाता पुत्र के जन्म का आशीर्वाद। सूर्य में शनि दशा (४-१०-४२ तक) पुत्री का जन्म/मृत्यु।
चन्द्र में राहु (१६-५-४६ से १६-११-४७) मृत पुत्र का जन्म।
चन्द्र में शनि (१६-३-४९ से १६-१०-५०)-पुत्री का जन्म तथा मृत्यु।
चन्द्र में केतु (१६/३ से १६/१०-५२)-कनिष्ठ पुत्र अरुण का जन्म, आशीर्वाद के ६० वर्ष बाद १९९८ में सिद्धान्त दर्पण की व्याख्या। राहु महादशा के आरम्भ में रिटायर (जनवरी १९६१) ईर्ष्या के कारण वैदिक कोष के कई अंशों की चोरी, तथा कई प्रकाशकों द्वारा प्रकाशन बन्द। जुलाई, १९६२ से जनवरी, १९६८ तक जनता उच्च विद्यालय, तेनुअज (दिनारा), रोहतास में प्रधानाध्यापक। राहु में शुक्र दशा (४-७-७३ से ४-७-७६) में कलाई की हड्डी में सामान्य फ्रैक्चर, डाइबिटीज, अस्पताल में अधिक सेलाइन चढ़ाने के कारण किडनी खराब, छोड़ने पर ठीक। सूर्य दशा के आरम्भ में १२ जुलाई को निधन।

भूमिका

वेद भारतीय तत्त्वज्ञान का आधारग्रन्थ है । इस तत्त्वज्ञान का दर्शन साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने किया । वस्तुतः यह अध्यात्मशास्त्र के तत्त्वों से सुसम्पन्न विशाल, विमल शब्दराशि है । इसी की व्याख्या और विश्लेषण के लिये अनेक शास्त्रों का उदय हुआ । यह भारत की एक ऐसी अमूल्य निधि है, जिस पर इस देश की संस्कृति और सभ्यता तथा आचार-विचार अवलम्बित हैं ।

समस्त पुराण, स्मृति और अन्य शास्त्र भी वेद की गरिमा के गुणगान और उसका आधार लेकर प्रवृत्त हुए हैं । शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि धन-धान्य से परिपूर्ण पृथिवी का दान करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल वेद के अध्ययन से भी प्राप्त होता है । वेद का अध्येता मानव शाश्वत अक्षय्य लोक को प्राप्त करता है-

"यावन्तं ह वै इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददत् लोकं जयति- त्रिभिस्तावन्तं जयति, भूयांसं च अक्षय्यं च य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते, तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" । (शत० ब्रा० ११ ।५ ।६ ।१)

उपनिषद्वाक्यों में एक स्थान पर कहा गया है-

"सर्वा वै देवता वेदविदि ब्राह्मणे प्रतिष्ठिताः" ।

यह समस्त ज्ञान वस्तुतः मानव मात्र के कल्याण के लिए प्रवृत्त हुआ है । मानवमात्र का यह स्वभाव है कि वह सुख प्राप्त करना चाहता है और हठात् दुःख के प्राप्त होने पर भी उसके परिहार का प्रयत्न करता है । वह सदा से सुख की प्राप्ति एवं दुःख की निवृत्ति के उपायों के ज्ञान के लिए सचेष्ट है । सुख किसी के प्रयत्न का साक्षात् विषय नहीं है अपितु वह फल है । इस फल के उद्देश्य से ही प्रयत्न किये जाते हैं । मानव सुख के मुख्य साधनों की जिज्ञासा के लिए आतुर रहता है । ये सुख के साधन केवल प्रत्यक्षदृष्ट ही नहीं हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष में दिखने वाले साधनों के रहते हुए भी बहुतों को सुख की अनुभूति नहीं देखी जाती । धनिक हो या गरीब, राजा हो या रंक, सभी सुख की खोज में भटकते देखे जाते हैं । सुख के साधनों में बाह्य उपकरणों की प्राप्ति भी सापेक्ष है । किन्हीं को ये साधन अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं, किन्हीं को प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं होते । उनका कोई न कोई नियामक होता है । उसके विषय में तार्किकों का तर्क भी मौन है, फिर उपमान की तो बात ही क्या ? बचा शब्द, शब्दों में लौकिक शब्द केवल लौकिक ज्ञान को विषय बनाता है, न कि अलौकिक को । अतः अलौकिक उपाय के प्रदर्शन अर्थात् ज्ञान के लिए अलौकिक शब्द का ही आश्रय लेना होगा और वह शब्द है 'वेद' । इसीलिये कहा गया है-

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

आचार्य भगवान् श्रीशङ्कर ने भी कहा है-

"सर्वोऽप्ययं वेदः प्रत्यक्षानुमानाभ्यामनवगतेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपायप्रकाशनपरः, सर्वपुरुषाणां निसर्गत एव तत्प्राप्तिपरिहारयोरिष्टत्वात्" । इति ।

इसका सार यह है कि प्रत्यक्ष और अनुमान से जिस उपाय को नहीं जाना जा सकता, उसको वेद के माध्यम से जाना जा सकता है । यही वेद की वेदता है ।

भारतीय संस्कृति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-ये चार पुरुषार्थ स्वीकार करती है । इन चार पुरुषार्थों के मध्य मोक्ष ही चरम पुरुषार्थ है, क्योंकि वह आत्यन्तिक सुखस्वरूप है, अतएव नित्य है । अवशिष्ट तीनों पुरुषार्थ नश्वर होने पर भी पुरुष की कामना के विषय होने के कारण वे पुरुषार्थ माने जाते हैं । ये पुरुषार्थ अनित्य सुखरूप एवं अनित्य साधन होने के कारण अनित्य हैं । वेद दोनों के ही उपायों का प्रदर्शन करता है । ऐहिक और पारलौकिक सुख का साधन धर्म है तथा मोक्षरूप नित्य सुख का साधन तत्त्वज्ञान है । दोनों ही केवल वेद मात्र से समधिगम्य हैं । जैसे धर्म की वेदैक समधिगम्यता-

"वेदो धर्ममूलम्" (गौ०ध०सू०)
"उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्" (बौ० ध० सू०)
"श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः" (वा.ध.)
"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" (मनु०)
"चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः (जै. सू.)

इत्यादि अनेक स्मृति-वचनों से सिद्ध है। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान भी वेद से ही सम्भव है। भगवान् शङ्कर ने अपने ब्रह्मसूत्र-शाङ्कर भाष्य में कहा है-

"योऽसावुपनिषत्स्वेवाधिगतः पुरुषोऽसंसारी ब्रह्म"।

पुनः वहीं पर कहा है कि आत्मा तो 'अहंप्रत्यय' का विषय भी होता है। ऐसी स्थिति में आत्मा भी उपनिषद् से ही गम्य है। अत एव **"तत्तु समन्वयात्"** इस सूत्र तथा इसके भाष्य के माध्यम से-

"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्, एकमेवाद्वितीयम्"। (छा०)
"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्"। (ऐतः)
"तदेतद् ब्रह्मापूर्वमपरमनन्तमिदमबाह्यम्" "अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः"। (बृह०)
"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्"। (मुण्डक.)

इत्यादि समस्त वेदवाक्यों का तात्पर्य अद्वैत ब्रह्म में ही प्रतिपादित किया गया है। ब्रह्म ही तत्त्व पदार्थ है, क्योंकि वही यथार्थ है। **"तत्त्वं ब्रह्मणि याथार्थ्ये"** इस कोशवाक्य के अनुसार तत्त्व नाम ब्रह्म का है। ब्रह्म के ज्ञान से ही मोक्षरूप परम पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है। **"तमेव विदित्वा....."** इत्यादि श्रुति में एवकार से मोक्ष के अन्य साधनों का निषेध किया गया है। अतएव **"आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः"** इस वेदवाक्य में वेंदान्त श्रवण को आचार्यों ने विधि माना है और यह स्वीकार किया है कि सुखसाधन का ज्ञान वेद से ही सम्भव है। अतः वेद की उपादेयता निर्विवाद सिद्ध है।

भारतीय आचार्यों ने ईश्वर के विरोध को तो सहन कर लिया, किन्तु वेद का आंशिक विरोध भी उनके लिये सह्य नहीं हुआ। आस्तिकता और नास्तिकता का मूल वेद को ही स्वीकार किया गया। ईश्वर को मानें या न मानें। किन्तु जिन्होंने वेदों का प्रामाण्य स्वीकार किया, उनको आस्तिक और जिन्होंने वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं किया, उनको नास्तिक कहा गया। आचार्य पाणिनि के अनुसार आस्तिक और नास्तिक शब्द की सिद्धि **"अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः"** इस सूत्र से होती है, जिसका अर्थ है- जो परलोक, अर्थात् जन्मान्तर को मानता है, वह आस्तिक है और जो परलोक एवं जन्मान्तर को नहीं मानता, वह नास्तिक है। परलोक, अर्थात् जन्मान्तर का निर्णय भी वेद के ही अधीन है। अतएव भगवान् शङ्कराचार्य ने कहा है-

"न चासति जन्मान्तरसम्बन्धात्मास्तित्वविज्ञाने जन्मान्तरेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारेच्छा स्यात्, स्वभाववादिदर्शनात्। तस्माज्जन्मान्तरसम्बन्ध्यात्मास्तित्वे जन्मान्तरेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपायविशेषे च शास्त्रं प्रवर्तते। (ब्र०सू०भा०)

नाचिकेतोपाख्यान में कहा है-

"येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके"।

मनुष्य की मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा रहता है या नहीं रहता? यह प्रश्न उपस्थापित कर उसका उत्तर देती हुई श्रुति कहती है-

"अस्तीत्येवोपलब्धव्यः"।

अर्थात् यह जीवात्मा मृत्यु के अनन्तर भी 'अस्ति' (है) इसी प्रकार ज्ञातव्य है। इसी प्रसङ्ग में कहा गया है।

"यथा च मरणं प्राप्य"।

इस रूप में प्रारम्भ कर—

"योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्" ।

इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने कर्म एवं ज्ञान के अनुसार शरीर धारण करने हेतु कुछ भिन्न योनि को प्राप्त करते हैं और कुछ स्थाणु भाव को प्राप्त हो जाते हैं । इस प्रकार स्पष्ट रूप में भिन्न-भिन्न योनियों में जन्मान्तर का ही निरूपण है ।

भारतीय संस्कृति का मूल आधार भी वेद ही है । संस्कारों से विहीन प्राणी मनुष्य नहीं कहा जा सकता, संस्कारों से युक्त होने पर ही वह मनुष्य कहा जाता है । अड़तालीस या सोलह संस्कारों का विधान वेद करता है । संस्कारों से युक्त प्राणी विवेकपूर्वक कार्य करता है । विवेकहीन मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है । माता, पिता तथा आचार्य के प्रति सम्मादर भाव की शिक्षा वेद द्वारा ही प्राप्त होती है । भारत भूमि के निवासी अपठित व्यक्ति के द्वारा किया गया व्यवहार भी शिष्टानुमोदित होने पर वेदोपदिष्ट ही माना जाता है, क्योंकि वेदवाक्य उपलब्ध न होने परं शिष्टाचार ही प्रमाण माना जाता है । जैसा कि कहा गया है-

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।। (गीता)
"धर्मज्ञसमयः प्रमाणम्, तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्" । (वा.ध.)

इसी प्रकार आपस्तम्बधर्म सूत्र भी कहता है—

"नहि धर्माधर्मौ चरत आवां स्व इति न देवगन्धर्वाः, न पितर इत्याचक्षतेऽयं धर्मोऽयमधर्म इति, यं त्वार्याः क्रियमाणं प्रशंसन्ति स धर्मो यं गर्हन्ते सोऽधर्मः" । इति । (आ०ध०सू०)

वेद स्वयं कहता है-

"अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः युक्ता अयुक्ता अलक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन्, तथा तत्र वर्तेथाः" इति ।

जिस प्रकार परमेश्वर सर्वत्र समान है, उसी प्रकार उनका वैदिक धर्म भी साक्षात् या परम्परया प्राणिमात्र का परम उपकारी है । वेद की यह महती विशेषता है कि वह मानवमात्र के हित का उपदेश देता है । **"सत्यं वद," "धर्मं चर", स्वाध्यायान्मा प्रमद" "मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, आचार्यदेवो भव"** इत्यादि उपदेश किसी के लिए भी हानिकारक नहीं हैं, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का हो, **"सत्यं वद"** आदि आचार सबके लिए आदरणीय तथा हितकर हैं ।

भाषा की दृष्टि से भी वेद परमेश्वर के समान सर्वसाधारण है । विश्व के विभिन्न धर्म-ग्रन्थ भिन्न-भिन्न देशों की भाषाओं में हैं, किन्तु 'वेद' संस्कृत-भाषा में निबद्ध है । संस्कृत-भाषा किसी देशविशेष या प्रदेशविशेष या सम्प्रदायविशेष की भाषा न होकर 'देवभाषा' है । 'देवभाषा' सभी के लिये समान है । कुछ लोग इसे आर्यों की भाषा कहते हैं, किन्तु यह कथन सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि आर्य लोग तो मनुष्य ही थे और यह भाषा मनुष्यों की न होकर 'देवभाषा' है । इसीलिए वाल्मीकि रामायण में -

"अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ।।
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति" ।।

इत्यादि हनुमान् जी के वाक्यों द्वारा संस्कृत-भाषा तथा मानुषी भाषा (सामान्य जन की अन्य भाषा) का स्पष्ट अन्तर दिखाया गया है । अतः देवभाषा में निबद्ध वेद की अलौकिकता स्पष्ट ही है । वैदिक संस्कृत अत्यन्त उच्च कोटि की है । देवभाषा संस्कृत को लोकोपयोगी बनाने के लिए महर्षि पाणिनि ने सूत्ररूप में कुछ नियमों की रचना की, परन्तु वैदिक संस्कृत में उन नियमों का प्रयोग सम्भव न होने के कारण भगवान् पाणिनि ने वेद के अनुसार ही वैदिक व्याकरण की भी

रचना की । अतः संस्कृत-भाषा में भी वैदिक संस्कृत का अपना एक प्रमुख स्थान है । इस प्रकार भाषा की दृष्टि से वेद का सर्वोच्च स्थान है ।

वेद का मानव जीवन से इतना दृढ़ सम्बन्ध है कि जन्म से मृत्युपर्यन्त सभी स्थितियों में वह मानवजीवन का साथ देता है । वेद मानव को सही मार्ग पर चलने का उपदेश देता है । वेद ईश्वर की आज्ञा है । **"श्रुतिस्मृतिर्ममैवाज्ञे"** इत्यादि वाक्यों से ईश्वर ने वेद को अपनी आज्ञा कहा है । इसीलिए वह शास्त्र कहा जाता है । भगवान् भाष्यकार ने कहा है-

"महतः ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म, न हीदृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति, यथोक्तमृग्वेदादिशास्त्रम्" । इत्यादि ।

उक्त भाष्य-वाक्य की व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र कहते हैं-

"चातुर्वर्ण्यस्य चातुराश्रम्यस्य च यथायथं निषेकादिश्मशानान्तासु ब्राह्ममुहूर्तोपक्रमप्रदोषपरिसमापनीयासु नित्यनैमित्तिककाम्यकर्मपद्धतिषु च ब्रह्मत्वे च शिष्याणां शासनात् शास्त्रमृग्वेदादि" ।

अतएव तैत्तिरीय श्रुति में स्पष्ट कहा गया है ।

"एष आदेशः, एष उपदेशः, एषा वेदोपनिषत्, एतदनुशासनम्" इत्यादि ।

वेद को परम उपादेय मानकर शास्त्रकारों ने वेदाध्ययन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । आदित्य द्वारा उपदिष्ट "शुक्लयजुर्वेद" के मुख्य अध्येता, मन्त्रद्रष्टा, ब्रह्मर्षि , योगी याज्ञवल्क्य ने मुक्तकण्ठ से वेद को कल्याणकारक कहा है-

"यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥
मधुना पयसा चैव स देवाँस्तर्पयेद् द्विजः ।
पितॄन्मधुघृताभ्यां च ऋचोऽधीते हि योऽन्वहम् ॥
यजूंषि शक्तितोऽधीते योऽन्वहं स घृतामृतैः ।
प्रीणाति देवानाज्येन मधुना च पितॄंस्तथा ॥
स तु सोमघृतैर्देवांस्तर्पयेद् योऽन्वहं पठेत् ।
सामानि तृप्तिं कुर्याच्च पितॄणां मधुसर्पिषा ॥
मेदसा तर्पयेद्देवानथर्वाङ्गिरसः पठन् ।
पितॄंश्च मधुसर्पिर्भ्यामन्वहं शक्तितो द्विजः" ॥ (याज्ञ०स्मृ० २ ।४०-४४)

भगवान् मनु ने भी वेद की प्रशंसा में कहा है-

"वेदमेव सदाभ्यसेत्तपस्तप्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ (मनु. २ ।१६६)
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ (तदेव-२-१६८)
वेदप्रदानाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
न ह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥ तदेव-२ ।१७१)
चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ॥ तदेव-१२-९७)
वेदशास्त्रार्थत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते" ॥ तदेव-१२ ।१०२,
"श्रेयःसाधनता ह्येषां नित्यं वेदात्प्रतीयते" । (श्लो०वा)

"सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥ (विष्णुपुराण- ५ ।६२)

वेद ही समस्त संस्कृतवाङ्मय का आधारभूत है । **"वेदो ज्ञानराशिः"** यह कथन पूर्णतः तथ्य है । समस्त भारतीय ग्रन्थों में प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ही है । परवर्ती सभी धर्मग्रन्थों तथा समस्त शास्त्रों का उत्पत्ति-स्थान भी वेद ही है । भारत के सभी शास्त्र एवं समग्र कलाएँ तो वेदमूलक हैं ही, साथ ही प्राचीन काल से परम्पराप्राप्त सामाजिक व्यवस्था का मूल भी वेद ही है ।

वेद का स्वरूप

वेद के स्वरूप पर दृष्टिपात करने पर वेद का विपुल स्वरूप, विराट् कलेवर सामने आता है । वेद-शब्द की उत्पत्ति 'विद् ' धातु से होती है । महर्षि पाणिनि के अनुसार विद् धातु अनेक अर्थों में वर्णित है- 'विद् ज्ञाने, विद् विचारणे, विद्लृ लाभे, विद् सत्तायाम् ' (ज्ञान, विचारण, सत्ता एवं लाभ) । इसमें यदि ज्ञान तथा विचारण को एक ही माना जाय, तो भी ज्ञान, सत्ता और लाभ ये तीन अर्थ विद् धातु के होते ही हैं । करणादि अर्थ में विहित घञ्प्रत्यान्त वेद शब्द के ज्ञान, ज्ञान का साधन, ज्ञान का अधिकरण, सत्ता, सत्ता का साधन, सत्ता का अधिकरण एवं स्थिति, स्थिति का साधन, स्थिति का अधिकरण आदि अनेक अर्थ होने पर भी ज्ञान एवं ज्ञान का साधनरूप अर्थ ही प्रसिद्ध हैं । तदनुसार वेद समस्त ज्ञान-विज्ञानों का आकर है । ज्ञान के साधनादि का निरूपक होने पर भी मुख्य रूप से वेदशब्द ज्ञानराशि के वाचक शब्दसमुदायरूप ग्रन्थविशेषों में ही प्रयुक्त होता है ।

वेद का कलेवर अत्यन्त विशाल है, क्योंकि वैदिक परिधि के अन्तर्गत चार वेद, चार उपवेद, वेदों की सहस्रों शाखाएँ, ब्राह्मणभाग, तत्तत् श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, अङ्ग एवं उपाङ्ग इत्यादि सभी समाविष्ट हैं ।

ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्व-ये चार वेद प्रसिद्ध हैं । इनमें भी **"त्रयो वेदा अजायन्त" "त्रयी सांख्यं योगः"** इत्यादि उक्तियों के अनुसार प्राचीनकाल में ऋग्, यजुः साम-यह वेदत्रयी ही प्रसिद्ध थी, किन्तु भगवान् वेदव्यास ने कुछ भाग अलग कर उसे 'अथर्व' संज्ञा दे दी तथा वेदों का चतुर्धा विभाग कर अपने सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन तथा पैल्वल नामक शिष्यों को क्रमशः अथर्व, साम, यजुः और ऋग्वेद का उपदेश दिया । इनमें यजुर्वेद के आचार्य वैशम्पायन के प्रमुख शिष्य याज्ञवल्क्य थे, किन्तु किसी कारणविशेष से वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्य से रुष्ट हो गये और उनसे अपने द्वारा प्रदत्त विद्या लौटाने को कहा । गुरु के आदेशानुसार याज्ञवल्क्य ने अधीत वान्तसंहिता नामक यजुर्वेदविद्या का वमन कर दिया । अन्य शिष्यों ने तित्तिर (तित्तिर) पक्षी का रूप धारण कर उक्त संहिता को आत्मसात् कर लिया । तित्तिर के रूप से गृहीत होने से वह तैत्तिरीय-संहिता कही गई । पश्चात् याज्ञवल्क्य ने भगवान् आदित्य की उपासना कर नवीन यजुर्वेद संहिता प्राप्त कर ली । इनमें वैशम्पायन के द्वारा पूर्व उपदिष्ट विद्या मन्त्र तथा ब्राह्मण भाग- दोनों मिश्रित होने से 'कृष्णयजुर्वेद' नाम से एवं याज्ञवल्क्य के प्रति आदित्य द्वारा उपदिष्ट विद्या यज्ञानुष्ठानादि विनियोज्य मन्त्रों का सङ्कलन होने से 'शुक्लयजुर्वेद' नाम से प्रसिद्ध है । इस प्रकार यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय, दो धाराएँ प्रसिद्ध हुईं ।

वैदिक शाखाओं के विषय में अनेक मतभेद हैं तथा उन शाखाओं के अवान्तर भेदविस्तार भी विवादग्रस्त ही हैं, अतः हमें उस विवाद में न पकड़कर शाखाओं की संख्या के विषय में व्याकरण महाभाष्य के प्रणेता भगवान् पतञ्जलि के वाक्य को ही उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है -

"एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः ।
एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाथर्वणो वेदः" । (पस्पशा०)

इस वाक्य के अनुसार यजुर्वेद की एक सौ एक, सामवेद की एक हजार, ऋग्वेद की इक्कीस और अथर्ववेद की नौ शाखाएँ हैं ।

यहां यह अवश्य ज्ञातव्य है कि शाखाशब्द अवयवविशेष का वाचक नहीं है जैसे रामायण के छः काण्ड हैं या महाभारत

के १८ पर्व हैं। ये काण्ड तथा पर्व उनके अवयव हैं, क्योंकि एक काण्ड दूसरे काण्ड से एवं एक पर्व दूसरे पर्व से सम्बद्ध है, अतएव उन सभी काण्डों के समुदाय का नाम 'रामायण' तथा पर्वों के समुदाय का नाम 'महाभारत' है और वे एक-एक ग्रन्थ हैं, परन्तु वेद की ये शाखाएं परस्पर सापेक्ष तथा सम्बद्ध नहीं है, अपितु सभी स्वतन्त्र हैं। अत: जिस वेद की जितनी शाखाएं हैं, सब का समुदाय एक नहीं है, अपितु प्रत्येक शाखा ही उस वेद के नाम से व्यवहृत होती है और उस एक शाखा के अध्ययन से भी वेदाध्ययन का विधान पूर्ण मान लिया जाता है। अतएव पतञ्जलि मुनि के उक्त वाक्य के अनुसार शाखाओं की संख्या के उपलब्ध न होने पर भी सभी वेदों की जो अत्यन्त अल्पीयसी संख्या प्राप्त होती है, उसमें किसी एक शाखा का अध्ययन भी **"स्वाध्यायोऽध्येतव्य:"** **"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म: षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च"** इत्यादि विधिवाक्यों का विषय हो जाता है, किन्तु दुर्भाग्य से अथवा युग के प्रभाव से उपर्युक्त संख्याक तत्तद्वेदीय शाखाओं में भी अधिकतर शाखाएं विलुप्त प्राय हो गई हैं। प्रत्येक वेद की कतिपय शाखा ही आजकल उपलब्ध है। जैसे शुक्ल एवं कृष्ण उभय प्रकार के यजुर्वेद की एक सौ एक शाखाओं में से केवल पांच शाखाएं ही उपलब्ध हैं। शुक्लयजुर्वेद की — काण्व और माध्यन्दिनी तथा कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय, कठ एवं मैत्रायणी। सामवेद की एक हजार शाखाओं में कौथुमी, जैमिनीया और राणायनीया शाखाएं ही उपलब्ध हैं। ऋग्वेद की इक्कीस शाखा में से दो ही शाखाएं प्राप्त होती हैं-एक वाष्कला और दूसरी शाकला। इसी प्रकार अथर्ववेद की नौ शाखाओं में पिप्पलाद एवं शौनक दो शाखाएं ही उपलब्ध होती हैं।

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" (आप. श्रौ.सू. २४।१।३१) इस आपस्तम्ब श्रौतसूत्र के अनुसार मन्त्रब्राह्मणात्मक शब्दराशिविशेष का नाम वेद है। वेद के मन्त्रभाग को संहिता भाग कहते हैं। दूसरे का नाम ब्राह्मणभाग है। उपर्युक्त वेद के लक्षण में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही समावेश है।

पूर्वमीमांसा के अनुसार मन्त्र उसे कहते हैं जिसमें द्रव्य, देवता और क्रिया-कलाप आदि का वर्णन हो और ब्राह्मण उसे कहते हैं जो उन मन्त्रों का यथोचित विनियोग और प्रयोग बतलाते हुए स्वरूप का परिचय कराता है। अतएव मन्त्रभाग के साथ ब्राह्मणभाग प्राय: अनिवार्य रूपेण रहता है। जैसे शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं के ब्राह्मण भी पृथक् हैं, जिनका नाम 'शतपथ' रूप से प्रसिद्ध है। कृष्णयजुर्वेदीय शाखाओं में भी ब्राह्मण लगा हुआ है। यह अवश्य है कि उनमें मन्त्र और ब्राह्मण भागों को पृथक् पृथक् नहीं किया गया है। संहिता में ही पहले कुछ मन्त्र देकर उसी प्रपाठक में ब्राह्मण भी कहे गये हैं। किसी-किसी प्रपाठक या काण्ड में दोनों भाग एक साथ ही वर्णित हैं और कहीं-कहीं भिन्न रूप से। यद्यपि तैत्तिरीय शाखा में मन्त्र और ब्राह्मण भाग पृथक् पृथक् कहे गये हैं, तथापि अनेक मन्त्र ब्राह्मण भाग में और अनेक ब्राह्मण मन्त्रभाग में पाये जाते हैं। मैत्रायणीसंहिता और कठसंहिता में केवल मन्त्रभाग ही मिलता है, ब्राह्मण भाग उपलब्ध नहीं होता। इसी प्रकार अन्य वैदिक शाखाओं की भी स्थिति है।

सभी वेदों में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, तथा ज्ञानकाण्ड-तीन काण्ड होते हैं। कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्ड में यज्ञादि कर्म-कलाप तथा बाह्य देवार्चनादि का विधान कहा गया है और अन्तिम ज्ञानकाण्ड में तत्त्वज्ञान, अर्थात् आत्मा के यथार्थ स्वरूप का वर्णन मिलता है। जैसे सम्प्रति उपलब्ध यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखा (संहिता) के ४० अध्यायों में ३९ अध्याय कर्मकाण्ड एवं उपासनाकाण्ड हैं तथा अन्तिम अर्थात् ४० वां अध्याय ज्ञानकाण्ड है। इस ज्ञानकाण्ड के वेद का अन्तिम भाग होने से इसका ही वेदान्त शब्द से व्यवहार किया जाता है। आत्मविद्या का प्रतिपादक होने से उसे उपनिषद् नाम से व्यवहृत करते हैं वही "ईशावास्योपनिषद्" कहा जाता है। यद्यपि कहीं-कहीं उपनिषद् रूप ज्ञानकाण्ड के मध्य भी प्राणादि उपासनाओं का विधान उपलब्ध होता है, किन्तु वह प्रासङ्गिक होता है। उसका भी अन्तिम परम तात्पर्य आत्मतत्त्व के विवेचन में ही है। अत: प्राधान्येन ज्ञान का ही वर्णन होने से वह ज्ञानकाण्ड ही माना जाता है।

"अपौरुषेयं वाक्यं वेद:" (अपौरुषेय वाक्य ही वेद है) इस प्रकार भी वेद का लक्षण प्राप्त होता है। वेद के अपौरुषेयत्व के विषय में न केवल भारतीय तार्किक, दार्शनिक ही, अपितु पाश्चात्य विद्वान् भी इसे प्रतिपन्न हैं। इस विषय पर आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि वेदों की रचना ईसा पूर्व ४००० वर्ष की है। मन्त्र और ब्राह्मण रूप से दो भागों में विभक्त इस वेदराशि- जिसे आर्यों के धर्मग्रन्थों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है- की रचना आर्यावर्त्तनिवासी बहुत विषयों के ज्ञाता प्राचीन

महाज्ञानी किसी महर्षि की है। इनमें पहले मन्त्रभाग की रचना हुई है, तत्पश्चात् ब्राह्मण भाग की। सर्वप्रथम 'ऋग्वेद' की रचना की गयी, अतएव वह संसार के वाङ्मय में सबसे प्राचीन 'ऋग्वेद' है। 'यजुर्वेद' आदि अन्य वेद तो बाद के हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का उक्त मत भ्रमपूर्ण एवं कपोलकल्पित होने से अप्रामाणिक है, अतएव भारतीय दार्शनिकों की दृष्टि में उसका कोई स्थान नहीं है। यदि किसी प्राचीन महर्षि के द्वारा वेदों की रचना होती, तो यह सम्भव ही नहीं था कि वेदों के रचयिता का संस्मरण न होता। जैसे अतिप्राचीन 'वैशेषिकसूत्र' आदि ग्रन्थों के रचयिता का स्मरण आज भी निर्विवाद रूप में जागृत है। यदि वेद पौरुषेय होता, तो सामान्य जन को भले ही उसके रचयिता का स्मरण न होता, किन्तु अतिप्राचीन सर्वज्ञकल्प भगवान् बादरायण व्यास, उनके शिष्य भगवान् जैमिनि, योग आदि दर्शनों के आचार्य पतञ्जलि, मीमांसा के आचार्य काशकृत्स्न-जिनका अतिप्राचीनरूप से महाभाष्यादि ग्रन्थों में महर्षि पतञ्जलि, पाणिनि तथा कात्यायन आदि ने उल्लेख किया है- को तो अवश्य ही वेद के रचयिता का स्मरण होता और इनमें से किसी एक ने तो वेदों को महर्षि-प्रणीत माना होता। इनमें से किसी ने भी वेदों को पौरुषेय नहीं माना है।

महर्षि जैमिनि ने **"उक्तं तु शब्दपूर्वकम्"** इत्यादि सूत्रों के द्वारा वेद के पौरुषेयत्व का खण्डन करते हुए कहा है कि साम्प्रतिक वेदाध्यायी नियमतः गुरुमुख से ही वेदाध्ययन करते देखे जाते हैं एवं उनके गुरु ने भी अपने गुरु के मुख से अध्ययन किया है, न कि पुस्तक आदि का अवलोकन कर स्वयं ही। सदैव इसी प्रकार की अध्ययनपरम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। इसे ही अनुमानाकार में भट्टपाद ने 'श्लोकवार्तिक' में कहा है।

"वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम्।
वेदाध्ययनसामान्यदधुनाध्ययनं यथा" ॥ (श्लो० वा० ३६६)

अर्थात् सभी वेदाध्ययन गुरुकृत वेदाध्ययनपूर्वक ही होता है, वेदाध्ययन होने से, जैसा कि आधुनिक वेदाध्ययन। शाबर भाष्यकार भी स्पष्ट कहते हैं-

"एतस्मात्कारणादवगच्छामो न कृत्वा सम्बन्धं व्यवहारार्थं केनचिद् वेदाः प्रणीता इति, यद्यपि च विस्मरणमुपपद्येत तथापि न प्रमाणमन्तरेण सम्बद्धारं प्रतिपद्येमहि। यथा विद्यमानस्यापि अनुपलम्भनं भवतीति नैतावता विना प्रमाणेन शशविषाणं प्रतिपद्यामहे"। (शा. भा. १ ।१ ।५)

(इस कारण से हमें यह ज्ञात होता है कि सम्बन्धकृत व्यवहार के लिए किसी ने वेदों का प्रणयन नहीं किया। यद्यपि कर्ता का विस्मरण हो सकता है, तथापि प्रमाण के बिना निबद्धा (कर्ता) को हम नहीं मान सकते। जैसे विद्यमान की भी अनुपलब्धि होती है। किन्तु इस प्रकार प्रकट प्रमाण के विना शशशृङ्ग को हम स्वीकार नहीं कर सकते।)

इसी प्रकार 'शास्त्रदीपिका' में पार्थसारथि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है-

"येऽपि पौरुषेयतां मन्यन्ते, तेऽपि नैव परम्परया तत्र कर्तृविशेषस्मरणं शक्नुवन्ति वदितुम्, सामान्यतोदृष्टेन कर्तारमनुमाय स्वाभिमतं कर्तारं तत्र निक्षिपन्ति। केचिदीश्वरम्, अन्ये हिरण्यगर्भम्, अपरे प्रजापतिम्। न चायं नानाविधो विवादः परम्परया कर्तरि मन्वादिवत् स्मर्यमाणे कथञ्चिदिव कल्पते। न हि मानवे, भारते, शाक्यग्रन्थे वा कर्तृविशेषं प्रति कश्चिद् विवदते। तस्मात् स्मर्तव्यत्वे सति अस्मरणाद् दृश्यादर्शनबाधितं सामान्यतो दृष्टं न शक्नोति कर्तारमवसादितुम्"। (शा.दी. १ ।१ ।८)

(अर्थात् जो लोग वेदों को पौरुषेय मानते हैं, वे भी 'परम्परा द्वारा वेद में अमुक कर्ता का हमें स्मरण होता है" ऐसा नहीं कहते, किन्तु सामान्यतः दर्शन (देखने) से कर्ता का अनुमान कर मनमाने कर्ता को वेद पर लादते हैं। कोई ईश्वर को, कोई हिरण्यगर्भ को और कोई प्रजापति को वेदकर्ता मान लेते हैं। यह विविध प्रकार का विवाद परम्परा द्वारा मनु आदि के समान स्मर्यमाण किसी कर्ता के सम्बन्ध को किसी प्रकार भी ठहरा नहीं सकता। मनुस्मृति, महाभारत अथवा किसी बौद्धग्रन्थ के कर्ता के विषय में कोई भी विवाद नहीं करता। अतः स्मरणीय होने पर भी स्मरण न होने से दृश्य के अदर्शन से बाधित सामान्यतोदृष्ट किसी कर्ता को अवगत (अवधारित) कराने में समर्थ नहीं हो सकता)।

इससे सिद्ध है कि वेद का निर्माता कोई नहीं है, अनादिकाल से वेदाध्ययन की परम्परा चली आ रही है। अतः वेद 'अपौरुषेय' ही है।

यद्यपि न्यायवैशैषिक आदि भारतीय दर्शनकार भी वेद को ईश्वर से उपदिष्ट मानकर वेद में पौरुषेयत्व को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, तथापि उत्तरमीमांसा के पर्यालोचना से एक मध्य मार्ग भी सामने आता है, जिससे मीमांसा एवं न्याय दोनों शास्त्रों का सामञ्जस्य भी बना रह सकता है और वेद का अपौरुषेयत्व भी।

वह मार्ग यह है कि वेद परमेश्वर के द्वारा उपदिष्ट अवश्य है, किन्तु रचित नहीं है। रचना उसे कहते हैं जो प्रमाणान्तर से अर्थ को उपलब्ध कर पूर्व उच्चारणादि से निरपेक्ष उपदेश दिया जाय या कहा जाय। अतएव चित्सुखाचार्य ने कहा है-

"श्रुतीनामीश्वराज्जन्म केवलं श्रुतिषु श्रुतम्।
मानान्तरोपलब्धेऽर्थे रचना तु न मीयते" ॥ (चि. १)

अभिप्राय यह है कि सजातीय उच्चारण-अनपेक्ष उच्चारण का विषय होना पौरुषेयत्व है और सजातीय उच्चारण-सापेक्ष उच्चारण का विषय होना ही अपौरुषेयत्व है। सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्मा के प्रति या महर्षियों के प्रति वेद का उपदेश परमेश्वर ने पूर्वकल्पीय वेद का स्मरण कर तत्सापेक्ष ही किया है। अतः वह अपौरुषेय है।

"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि यज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत" ॥

"त्रयो वेदा अजायन्त" "ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्" " इदं सर्वमसृजत् ऋचो यजूंषि सामानि"। इत्यादि श्रुतिवाक्यों से वेद के ईश्वरोपदिष्ट होने में किसी को भी विप्रतिपत्ति नहीं हैं। मीमांसा के आचार्य श्री भट्टपाद ने भी स्वयं-

"यत्नतः प्रतिषेध्या नः पुरुषाणां स्वतन्त्रता"।

(हम मीमांसक वेद के उपदेश में पुरुष अर्थात् परमेश्वर की स्वतन्त्रता का प्रयत्नपूर्वक निषेध करते हैं)।

इत्यादि कहते हुए आनुमानिक ईश्वर को न मानने पर भी वैदिक ईश्वर को पुरुष-शब्द से स्वीकार कर वेद के उपदेश में उसके स्वातन्त्र्य का ही निषेध किया है। अतएव भट्टपादोक्त **"विशुद्धज्ञानदेहाय"** इत्यादि मङ्गल भी यथाश्रुत ही सङ्गत हो जाता है।

आप्तोक्ततया वेद के प्रामाण्य के स्वीकर्ता न्यायादि दर्शन के आचार्यों को भी उक्त मार्ग के मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है, क्योंकि उक्त रूप से भी वेद के ईश्वरोक्त होने से उसके प्रामाण्य की लेशमात्र भी क्षति नहीं है। अतएव-

"सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः।
अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः ॥
युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान्महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयंभुवा" ॥

इत्यादि पुराणवचनों की सङ्गति हो जाती है।

उपर्युक्त सभी वेद अर्थतः अत्यन्त दुरधिगम्य हैं। वेदों के तात्पर्य का ज्ञान करना अत्यन्त कठिन कार्य है। अत एव-

"कश्छन्दसां योगमावेद धीरः" (वेदों के तात्पर्य का ज्ञान कौन धीमान् कर सकता है ?)
"विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।
इतिहासपुराणैश्च कृतोऽयं निश्चयः पुरा" ॥ (स्क० पु. रेवा., १ ।२१)
"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरेदिति" ॥ (महाभारत)

इत्यादि वाक्य वेदार्थ के दुरधिगम होने का संकेत करते हैं। वेदों के दुरधिगमत्व का एक प्रमुख कारण यह भी है कि वेदों में प्रयुक्त पद एवं वाक्य लौकिक संस्कृत भाषा में प्रयुक्त एवं व्यवहार में प्रचलित पदों तथा वाक्यों की अपेक्षा विलक्षण तथा नूतन हैं और जब तक तद् घटक पद-पदार्थ का ज्ञान न हो, तब तक तत्प्रतिपाद्य पदार्थ का ज्ञान भी होना सम्भव नहीं है। न केवल वेदार्थ के विषय में ही यह नियम है, अपितु सभी वाङ्मय में यह साधारण नियम है कि पद-पदार्थ ज्ञान के बिना वाक्यार्थ ज्ञान नहीं हो सकता तथा पद-पदार्थ का ज्ञान शक्तिग्रह के बिना नहीं हो सकता। अतएव पदार्थ-ज्ञान के लिए पद-पदार्थ के सम्बन्ध रूप शक्तिग्रह को अत्यावश्यक मानकर आचार्यों ने-

"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः"॥

इस पद्य में शक्तिग्रहों का संग्रह किया है। इन शक्तिग्राहकों में एक प्रमुख शक्तिग्राहक 'कोश' है, जो कि अत्यन्त आवश्यक है। अनेक रूढ़ एवं व्याकरणादि से अव्युत्पन्न शब्द उपलब्ध होते हैं, जिनका शक्तिग्रह व्याकरणादि से सम्भव नहीं है। वहां एकमात्र कोश ही शक्तिग्राहक होता है और उससे तत्तत्पदों से तत्तत्पदार्थ का ज्ञान हो पाता है। अतएव वेदार्थज्ञान के लिए भी कोश अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि-

"कोषोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययोः"। (अमर०)
"कोशोऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके।
जातिकोशेऽर्थसंघाते पेश्यां शब्दादिसङ्ग्रहे"॥ (मेदिनी)

इत्यादि कोशवचनों के आधार पर कोश या कोष शब्द अनेकार्थक है, तथापि प्रकृत में कुश् या कुष् धातु से घञ्प्रत्यय से निष्पन्न कोश या कोष शब्द का **'कुश्यन्ते संश्लिष्यन्ते संगृह्यन्ते शब्दपर्यायाः शब्दा वा यत्र यस्मिन् ग्रन्थे'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दपर्यायज्ञापक ग्रन्थविशेष में प्रयोग किया गया है।

वेदार्थ ज्ञान में सहायता के उद्देश्य से वैदिक शब्दों के संग्रह हेतु पं. श्रीचन्द्रशेखर उपाध्याय रचित "वैदिक कोश" अपने आप में नूतन एवं सफल प्रयास है। यद्यपि सर्वथा निर्दोष एवं परिपूर्ण कहना ईश्वर के अतिरिक्त सृष्टि-प्रक्रिया में सम्भव नहीं है। तथापि इस दिशा में अन्य विद्वानों के द्वारा किये गये ग्रन्थात्मक प्रयासों में इनका यह प्रयास कुछ विशेषताओं से परिपूर्ण है। चिन्तामणि शर्मा काशीकर द्वारा सम्पादित "श्रौतकोश", जिसमें अतिरात्र, उक्थ्य, वाजसनेय आदि शब्दों का विस्तार से विवरण दिया गया है। लाहौर के विश्वबन्धु शास्त्री द्वारा सम्पादित "वैदिक शब्दार्थ पारिजात" एवं "वैदिकपदानुक्रमकोष," जो अनेक भागों में प्रकाशित हैं, आदि कोशों में तत्तत् स्थलों के प्रायः अङ्कमात्र ही दिये गये हैं। इनमें संस्कृत-माध्यम से ही उल्लेख किया गया है, हिन्दी में नहीं, किन्तु प्रकृत कोश में मन्त्रों के उद्धरण आवश्यकतानुसार पूर्णांश में दिये गये हैं। इस कोश की पद्धति से अध्येता को मूल उद्धरण स्पष्ट दृष्टिगत हो जाते हैं।

हिन्दी में वेद के प्रायः सभी पदों का पारम्परिक अर्थ प्रस्तुत करने वाला यह प्रथम ग्रन्थ है। मैक्डानल एवं कीथ की वैदिक इण्डेक्स तथा तदनुगामी डा. सूर्यकान्त के वैदिक कोष में मात्र नामों (संज्ञाओं) तथा विशिष्ट विषयों का ही वर्णन है। संज्ञा, क्रिया, निपात आदि सभी पदों की प्रकृति-प्रत्ययात्मक व्युत्पत्ति यथासाध्य इस कोश में प्रदर्शित की गयी है। मन्त्रों के उद्धृत अंश का अनेकत्र हिन्दी में अर्थ भी दिया गया है, जिससे पद की प्रसङ्गगत अर्थसङ्गति स्पष्ट हो जाती है। पदों के एकाधिक अर्थ होने पर सभी अर्थों को सप्रमाण उद्धृत किया गया है। आर्यसमाज के अभिमत अर्थ को भी पृथक् दिखाया गया है।

कतिपय पदों में मैक्डानल एवं कीथ के इण्डेक्स तथा डा. सूर्यकान्त के कोश से बहुत ही अधिक सामग्री इस कोश में दी गई है, यथा पृष्ठ-७६ में 'अनुमतिः' शब्द में १४ उद्धरणाङ्क इस कोश में दिये गये हैं। जबकि डा. सूर्यकान्त के कोश में मात्र ४ ही उद्धरण दिये गये हैं। इसी प्रकार हंसराज "वैदिक श्रौतकोश" में मात्र ब्राह्मण-ग्रन्थों के मूल उद्धरणों पर विशेष बल दिया गया है। जबकि इस कोश में विद्वान् लेखक ने संहिता और ब्राह्मण दोनों के उद्धरणों का उल्लेख किया है। इस प्रकार नानाविध विशेषताओं से युक्त यह "वैदिक कोश" सभी वेदार्थ-जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त उपादेय है।

ज्ञान या उसके सम्बन्ध में कोई प्रयत्न अन्तिम नहीं होता । उसका एक प्रवहमान धारा के रूप में आदर है । एक सोपान दूसरे सोपान की ओर प्रवृत्त करता है । प्रस्तुत प्रयास भी कोश के क्षेत्र में इसी प्रकार का अग्रिम, अतएव सफल प्रयास है । इसके लेखक परम श्रद्धाभाजन **पण्डित श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय** बिहार की वैदुष्य-परम्परा के एक प्रतिनिधि विद्वान् थे, जिन्होंने बिना किसी साधन-सम्पदा के केवल अपनी तपस्या के आधार पर इस विशाल ज्ञान-भाण्डागार को प्रस्तुत किया । अनेक विश्वविद्यालयों में शोधसहायकों की सहायता से प्रवर्तित परियोजनाएँ भी इतना मौलिक योगदान नहीं कर पातीं हैं, जो पूज्य पण्डित उपाध्याय जी ने किया है । यह केवल उनकी वेदों में विद्यमान आस्था और उसी के प्रतिफल के रूप में प्राप्त शक्ति का प्रत्यक्ष फल है । एक शिक्षक और प्रधानाचार्य के रूप में बाल-रचना-विकास, भास के सम्पूर्ण नाटकों के अनुवाद से लेकर वेद जैसी गम्भीर ज्ञानराशि पर उनकी लेखनी ने जो चमत्कार पूर्ण प्रस्तुति की है, उसके उपलक्ष्य में मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धा और सम्मान अर्पित करता हूं तथा उनकी स्मृति में नमन करता हूं । वास्तव में इसी प्रकार के विद्वानों के बल पर हमारी प्राचीन विद्याएं और शास्त्र जीवित रहे हैं तथा विकसित हुए हैं । वे उस त्यागमूर्ति आचार्यों की परम्परा के इस शताब्दी में एक वन्दनीय महापुरुष थे ।

यह शब्दकोश श्री चन्द्रशेखर जी के सुपुत्र **श्री सर्वानन्द उपाध्याय, श्री अरुण कुमार उपाध्याय** एवं पौत्र **श्री अनिल कुमार उपाध्याय** तथा परिवार के अन्य सदस्यों की भूमिकाओं का मूर्तरूप है । इसे एक प्रकार से तीन पीढ़ी का अमृत कहा जाय तो कोई विशेष अतिशयोक्ति नहीं होगी । सम्पत्ति से भी बढ़कर इसकी सुरक्षा और संभाल योग्य पुत्र और पौत्र ही कर सकते हैं ।

इसके सम्पादक श्री उपाध्याय जी के पौत्र **श्री अनिल कुमार उपाध्याय** ने ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण से मुक्त होने का जो अभिनन्दनीय प्रयास किया है, वह आने वाली सन्ततियों के लिए भी प्रेरणा का विषय रहेगा । श्री अनिल जी ने अपने यौवन का महत्वपूर्ण भाग सत्ता के सुख-साम्राज्य की परवाह न करते हुए इस साधना में व्यतीत किया और इस रूप में इस ग्रन्थ की प्रस्तुति की । यह प्रमाण है उनकी ऊर्जा का । वे बिहार सरकार के ऊर्जा-सचिव हैं । एक कुशल आई.ए.एस. के रूप में राज्य और केन्द्र सरकार के अनेक पदों को वे सुशोभित कर चुके हैं; लेकिन इस ग्रन्थ की प्रस्तुति में उनकी जिस दैवी ऊर्जा के दर्शन होते हैं, वह अपने आप में एक उत्तम निदर्शन है । मैं उनको इस प्रयास की सफलता के लिए बधाई देता हूं और इसके प्रकाशक वैदिक और संस्कृत वाङ्मय के अनन्य सेवक आयु, **श्री सुरेन्द्र तथा नरेन्द्र** को अपने आशीर्वाद प्रदान करता हूं ।

मण्डन मिश्र
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

वाराणसी
अक्षय-तृतीया,
वि.सं. २०५३
(२०.४.१९९६ ई.)

प्राक्कथन

वैदिक साहित्य के अध्ययन एवं अन्वेषण के क्रम में प्रस्तुत विशद 'वैदिक शब्दकोष' एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। लगभग दो हजार पृष्ठों के इस ग्रन्थ के आकार प्रकार एवं सामग्री की दुरूहता से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि इस ग्रन्थ के लेखन में कितना परिश्रम हुआ होगा। इस के लेखक मेरे पितामह (स्व.)पं. चन्द्रशेखर उपाध्याय (१९०६-१९७६) बिहार सरकार के शिक्षा विभाग में कार्यरत थे। सरकारी सेवा यदि उनके लिए जीविका थी तो संस्कृत की सेवा स्वधर्म और तपस्या। पूर्णकालिक सरकारी सेवा के साथ वे संस्कृत और हिन्दी साहित्य के गहन अध्ययन एवं रचनाकर्म में जुड़े रहे। इसी प्रयास की सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है यह 'वैदिक शब्दकोष' जो पं. उपाध्याय के सम्पूर्ण सक्रिय जीवन के परिश्रम की परिणति है।

वेद न सिर्फ भारतीय वरन् सम्पूर्ण विश्व संस्कृति तथा साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ के रूप में समादृत हैं। भारतीय आर्ष परम्परा वेदों को अपौरुषेय, नित्य और शाश्वत मानती है। प्राचीन मन्त्रद्रष्टा ऋषियों को यह ज्ञान उद्भूत हुआ। भारतीय संस्कृति और धर्म के ये मूल स्रोत तथा सर्वोच्च प्रमाण के रूप मेंप्रतिष्ठित हैं। इसलिए वेदों के अध्ययन का अत्यधिक महत्व है। पाश्चात्य विद्वान् भी, जिन्होंने वेदों के ऐतिहासिक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन की परम्परा स्थापित की, वेदों की प्राचीनता एवं मानव इतिहास को समझने के लिए इसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं। फलतः प्राचीन काल से निरन्तर वेदों के अध्ययन की अटूट परम्परा बनी हुई है।

भारत में यह विशाल वैदिक साहित्य हजारों वर्षों तक गुरु से शिष्य को मौखिक शिक्षा से हस्तान्तरण की परम्परा के माध्यम से सुरक्षित रहा। कालान्तर में कई मन्त्रों के अर्थ या उनमें प्रयुक्त शब्दों के अर्थ विस्मरित होने लगे थे। अतः शब्दों के अर्थ को संकलित करने की आवश्यकता महसूस की गई। इस उद्देश्य से ऋषियों ने निघण्टुओं की रचना की जिनमें कठिन वैदिक शब्दों को संकलित किया गया। निघण्टु कई थे। इस परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ यास्क का निघण्टु तथा निरुक्त है, जो अभी भी उपलब्ध है। इसका रचनाकाल ईसा पूर्व छठी शताब्दी बताया जाता है। निरुक्त में वैदिक शब्दों के संकलन, उनकी व्युत्पत्ति तथा अर्थ दिए गए हैं, साथ ही मन्त्रों के सन्दर्भ भी दिए गए हैं। निरुक्त की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि ६ वेदांगों में, जिनका अध्ययन वेदों को समझने के लिए आवश्यक समझा जाता है, इसकी गणना होती है।

इसके बाद वैदिक साहित्य के अध्ययन की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ सायणाचार्य की टीका है (१४ वीं सदी)। सायण ने भी यास्कीय निरुक्त को महत्त्वपूर्ण आधार माना है। १९ वीं सदी में जब पाश्चात्य विद्वानों ने बड़े पैमाने पर अपनी पद्धति से वेदों का अध्ययन, अनुवाद, व्याख्या और प्रकाशन प्रारंभ किया तो उन्होंने वेदों के अगाध समुद्र में दिशा निर्देश के लिए सायण को सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकाश स्तम्भ माना। इस दौर में पुनः शब्दों और उनके अर्थ संकलित करने की एक धारा चली। इस दिशा में ग्रॉसमैन का Vedic Vocabulary और बाटलिंक तथा रॉथ का Sanskrit Dictionary महत्त्वपूर्ण प्रयत्न थे। लेकिन इन ग्रन्थों में वैदिक शब्दों की सम्पूर्ण सूची नहीं थी। मैक्समूलर ने जिनका वैदिक अध्ययन में अप्रतिम योगदान है सभी वैदिक शब्दों का संकलन प्रारम्भ किया था लेकिन उन्होंने यह कार्य अति दुष्कर मानकर छोड़ दिया था, और कहा कि यह कार्य संभवतः अगली सदी में किसी विद्वान् द्वारा सम्पन्न हो पायेगा।

तदनन्तर वैदिक अध्ययन में विभिन्न प्रकार के कोषों के संकलन हुए हैं। इनमें ब्लूमफील्ड का Vedic Concordence सबसे महत्त्वपूर्ण कृति है, जो वैदिक मन्त्रों की उनके संदर्भ के साथ अकारादि क्रम में सूची है। मैकडॉनल और कीथ का Vedic Index of Names and Subjects भी एक मूल्यवान ग्रन्थ है। १९२६ में डी.ए.वी कालेज लाहौर द्वारा प्रकाशित और हंसराज कृत 'वैदिक कोष' भी इसी परम्परा की कृति है। परन्तु यह ग्रन्थ उस समय तक प्रकाशित मात्र १५ ब्राह्मण ग्रन्थों पर आधारित

है । विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, द्वारा प्रकाशित तथा विश्वबंधु कृत 'वैदिक पदानुक्रम कोष' में पदों की सूची तथा संदर्भ है, परन्तु अर्थ नहीं दिए गए हैं । उल्लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त भी कई कोष ग्रन्थ हैं ।

इस प्रकार संस्कृत तथा विशेषकर वैदिक साहित्य के अनुसन्धान में कोष एवं शब्दकोष ग्रन्थ लिखने की प्राचीन काल से परम्परा रही है । हर कोष ने अपने समय की किसी कमी को पूरा किया है और वैदिक अध्ययन की दिशा में एक योगदान दिया है । प्रस्तुत शब्दकोष की विशिष्टता है कि इसमें वैदिक शब्दों की सूची अत्यन्त विशाल है, तथा शब्दों के अर्थ के साथ उन मन्त्रों को उद्धृत किया गया है जिनमें वे प्रयुक्त हुए हैं । मन्त्रों का स्थान निर्देश संहिता के अतिरिक्त ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् आदि अन्य वैदिक ग्रन्थों का भी दिया गया है । इससे इस ग्रन्थ की उपादेयता बढ़ गई है और हमें विश्वास है कि यह कोष ग्रन्थों की परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्थापित होगा ।

इतने विशद् ग्रन्थ का प्रकाशन कई लोगों के अथक प्रयास एवं सर्वोपरि ईश्वरीय कृपा से ही सम्भव हो सकता था । पं. उपाध्याय ने अपने जीवन काल में भी इसके प्रकाशन के अथक प्रयत्न किए । उनके निधन के १९ वर्ष बाद ही यह कार्य संपन्न हो सका, इसी से स्पष्ट है कि यह कितना दुरूह था । जब हमलोग इसके प्रकाशन की आशा छोड़ चुके थे, तब यह दैवी संयोग ही था कि मैं अपने दिल्ली में पदस्थापन की अवधि (१९९०-१९९५) में नाग प्रकाशन के श्री नरेन्द्र जी के सम्पर्क में आया जिन्होंने इसके प्रकाशन में अभिरुचि दिखलाई । इस महान् कार्य के लिए वे साधुवाद के पात्र हैं । यह कार्य अत्यन्त व्ययसाध है, और बिना आर्थिक अनुदान के यह संभव नहीं था । हम मानव संसाधन मन्त्रालय, भारत सरकार के आभारी हैं, जिनके अनुदान से इसका प्रकाशन संभव हो सका ।

इतने वर्षों तक इस ग्रन्थ की विशाल पाण्डुलिपि को संभालकर रखने में पंडित उपाध्याय के पुत्र श्री सर्वानन्द उपाध्याय (मेरे पिता) तथा श्री अरुण कुमार उपाध्याय, एवं उनके भतीजे श्री सतीशचन्द्र उपाध्याय की सतर्कता, लगन और समर्पण अविस्मरणीय है । सौभाग्यवश पाण्डुलिपि लगभग पूर्णतः अक्षुण्ण थी और अन्ततः इसके प्रकाशन की देखरेख का दायित्व मेरे कन्धों पर आया ।

पूरी पाण्डुलिपि को ध्यान से पढ़ना, मन्त्रों की शुद्धता की मूल पाठ से जांच करना, उनका संदर्भ अंकित करना और प्रूफ ठीक करना यह सब कार्य अत्यन्त श्रमसाध्य था । संस्कृत हमारी संस्कृति की वाहिनी है । सरकारी नौकरी में रहते हुए मुझे इस रूप में संस्कृत की सेवा करने का अवसर मिला यह मेरे लिए एक सौभाग्य की बात है । इसमें मेरी पत्नी रेणु ने जो संस्कृत में एम.ए हैं, और मेरे पितामह का इन पर विषेष स्नेह था, अमूल्य सहयोग दिया ।

इस प्रकार यह ग्रन्थ वेद के जिज्ञासुओं और अध्येताओं के समक्ष अब प्रस्तुत है । यह संभव है कि इसमें कुछ त्रुटियां या अपूर्णता रह गई हो । पूर्णता की चेष्टा में कई वर्ष और लग सकते थे और प्रकाशन भी अनिश्चित हो जाता । इसलिए हमने यह श्रेयस्कर समझा कि उपलब्ध पाण्डुलिपि को यथासंभव परिमार्जित और संशोधित कर प्रकाशित कराया जाय । वैदिक अध्ययन अनन्त काल तक चलता रहेगा । भविष्य में विद्वानों के सहयोग से इस ग्रन्थ के और परिवर्द्धित तथा परिमार्जित संस्करण निकलें यह सम्भव है । हमें विश्वास है कि यह कोष अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ ग्रन्थ प्रमाणित होगा । इसी विश्वास के साथ हम इस ग्रन्थ को संस्कृत परिवार को समर्पित करते हैं ।

अनिल कुमार उपाध्याय

संकेत सूची

अ.	अथर्ववेद संहिता
आप.गृ.सू.	आपस्तम्भ गृह्य सूत्र
आप.ध.सू.	आपस्तम्भ धर्म सूत्र
आप.मं.पा.	आपस्तम्भ मंत्र पाठ
आप.श्रौ.सू.	आपस्तम्भ श्रौत सूत्र
आश्व.श्रौ.सू.	आश्वलायन श्रौत सूत्र
आ.सं.	आरण्यक संहिता
ईश.उप.	ईश उपनिषद्
ऐ.आ.	ऐतरेय आरण्यक
ऐ.ब्रा.	ऐतरेय ब्राह्मण
ऋ.	ऋग्वेद संहिता
ऋ.खि.	ऋग्वेद खिलसूक्त
कठ. उप.	कठोपनिषद्
का.श्रौ.सू.	कात्यायन श्रौत सूत्र
का.सं.	काठक संहिता
का.सं.(अश्व)	काठक संहिता (अश्वमेध ग्रंथ)
कौ.सू.	कौशिक सूत्र
कौ.ब्रा.	कौषीतकि ब्राह्मण
कौ.ब्रा.उप.	कौसीतकि ब्राह्मण उपनिषद्
गो.ब्रा.	गोपथ ब्राह्मण
गो.गृ.सू.	गोभिल गृह्य सूत्र
गौ.ध.शा.	गौतम धर्म शास्त्र
जा.उप.	जाबाल उपनिषद्
जै.उप. ब्रा.	जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण
जै.ब्रा.	जैमिनीय ब्राह्मण
तै.आ.	तैत्तिरीय आरण्यक
तै.आ.(आंध्र)	तैत्तिरीय आरण्यक (आंध्र)
तै.उप.	तैत्तिरीय उपनिषद्
तै.ब्रा.	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तै.सं.	तैत्तिरीय संहिता
ना.ध.शा.	नारद धर्म शास्त्र
नील. उप.	नीलरुद्र उपनिषद्
नृसिंह पू.ता.उप.	नृसिंह पूर्व तापनी उपनिषद्
नृसिंह उ.ता.उप.	नृसिंह उत्तर तापनी उपनिषद्
पंच.ब्रा.	पंचविंश ब्राह्मण
पा.गृ.सू.	पारस्कर गृह्य सूत्र
प्रश्न.उप.	प्रश्न उपनिषद्
पा.	पाणिनि (अष्टाध्यायी)
बौ.ध.शा.	बौधायन धर्म शास्त्र
ब्रह्म उप.	ब्रह्म उपनिषद्
ब्र.आ.उप	बृहदारण्यक उपनिषद्
गीता	भगवद्गीता
महा.ना.उप.	महानारायण उपनिषद्
मा.ध.शा.	मानव धर्म शास्त्र
मा.श्रौ.सू.	मानव श्रौत सूत्र
मुण्डक उप.	मुण्डक उपनिषद्
मै.सं.	मैत्रायणी संहिता
वाज.सं.	वाजसनेयि संहिता
वाज.सं. (का.)	वाजसनेयि संहिता (काण्व)
वै.सू.	वैतान सूत्र
श.ब्रा.	शतपथ ब्राह्मण
शां.श्रौ.सू.	शांखयन श्रौत सूत्र
शां.गृ.सू.	शांखयन गृह्य सूत्र
ष.ब्रा.	षड्विंश ब्राह्मण
साम	सामवेद
साम.मं.ब्रा.	साम मंत्र ब्राह्मण
साम.वि.ब्रा.	साम विधान ब्राह्मण
ज.दे.श.	जयदेव शर्मा
दया	दयानन्द
पा.	पाणिनि
या	यास्क

वैदिक कोश

अ

अकनिष्ठासः – (१) मरुद्गण जो परस्पर एक दूसरे से कनिष्ठ नहीं है (२) मनुष्य (३) शिष्यगण ।
'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते'
ऋ. ५.६०.५

अकम् – न कम् = अकम् । क का अर्थ सुख है । सुख का अभाव दुःख है ।
'नि वा अमुं लोकं जग्मुषे किञ्चनाकम्'
(इस लोक को जानने वाले के लिए कोई दुःख नहीं है ।)

अकल्प – अन्येभ्यः अधिकः–सबसे श्रेष्ठ, इन्द्र परमेश्वर
'अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसा'
ऋ. १.१०२.६

अकव – (१) अकुत्सित (२) उत्तम
'दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा'
ऋ. ३.५४.१६
(३) अनिन्दनीय
'युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्र'
ऋ. ६.६०.३ मै.सं. ४.१३.७; २०८.२, का.सं. ४.१५ तै.ब्रा. ३.६.८.१.

अकवचः – कवच के बिना सैनिक
'यश्च कवची यश्चाकवचः'
अ. ११.१०.२२

अकवा – (१) अनिन्दनीय , उत्तम (२) अनल्प सामर्थ्य (४) कभी कुत्सित बात न करने वाले ।
'प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः'
ऋ. ५.५८.५, मै.सं ४.१४.१८; २४७.१४, तै.ब्रा. २.८.५.७

अकवारिः – (१) अविद्यमान शत्रु, जिसका कोई शत्रु न हो ।
'अकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्'
ऋ. ३.४७.५; ६.१९.११, वा.सं. ७.३६, तै.स. १.४.१७.१ मै.सं. १.३.२१; ३७.१३, का. सं. ४.८, श.ब्रा. ४.३.३.१४ तै.ब्रा. २.८.३.४
(२) अकव + अरी । कभी कुत्सित मार्ग में न जाने देने वाले ।
'अकवारी चेतति वाजिनीवती'
ऋ. ७.९६.३

अकविः – अविद्वान्
'अयं कविरकविषु प्रचेता'
ऋ. ७.४.४

अक्खलीकृत्य – विनम्र होकर ।
'अक्खलीकृत्या पितरं न पुत्रः'
ऋ. ७.१०३.३

अक्त –(१) प्रकाशित (२) पूर्ण (३) व्याप्त (४) युक्त
'ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः
ऋ. ४.३.१०

अक्तु – (१)प्रकाश
'शिरिणायां चिदक्तुना महोभिः'
ऋ. २.१०.३
(२) अंजति मृत्युं नयति इति । मृत्यु कारक अस्त्र ।
'यो मर्त्यः शिशीते अत्युक्तिभिः'
ऋ. १.३६.३
(३) रात्रि
'वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः पश्यञ्जन्मानि सूर्य ।'
ऋ. १.५०.७; अ १३.२.२२; २०.४७.१९; नि. १२.२३.
(सूर्य दिनों के साथ रात्रियों को उत्पन्न करता हुआ तथा सभी जीवों को देखता हुआ या अनुग्रह करता हुआ जाता है)
'विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ'
ऋ ७.३९.२ वा.सं ३३.४४, नि. ५.२८
(४) सब पदार्थों को प्रकट करने वाला तेजस्तत्त्व
'अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत्'
ऋ. २.१९.३

अक्नोपन – अक्नू , अग्नू , अग्नि – क्नुयी (शब्द करना या उन्द करना) + युक् (णि) + ति = अक्नोपन ।

य का लोप और गुण हुआ है । क्नोपयति । न क्नोपयति = अक्नोपन (स्नेह नहीं करता है) विशेष प्रकार से रुक्ष होने वाला ।
अथवा, अ + क्नुयी + क्विन् = अग्न् , अग्नि सभी चीजों को भस्म कर देता है ।
क्नोपन शब्द का स्पष्ट अर्थ कोपनाना है । गाय का कोपनाना आज भी प्रसिद्ध है ।

अक्र – आङ् + क्रम् + उ = अक्र । आङ् का अ । दूसरों से इस पर आक्रमण किया जाता है या दूसरों पर यह आक्रमण करता है ।
(१) प्राकार –दुर्ग (२) दुर्ग–दयानन्द ।
'अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनाम्'
ऋ. ३.१.१२ नि. ६.१७
वेदों में प्राकार या दुर्ग के अर्थ में ही यह शब्द प्रयुक्त हुआ है । इन दिनों प्रचलित अखाड़ा या अखारा इसी 'अक्र' का बिगड़ा रूप प्रतीत होता है ।
(३) अन्यैः आक्रान्तः–दया. ।
जो बाधक कारणों या पीड़ाओं से क्रान्त न हो ।
'इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यत्'
ऋ. १.१४३.७ तै. ब्रा. १.२.१.१३ आप श्रौ.सू. ५.६.३
तेज या वीर्य रक्षा से तेजस्वी होता हुआ शिष्य बाधक कारणों या पीड़ाओं से क्रान्त न हो कर ज्ञान प्राप्ति के अवसरों में चमके ।
(४) ऊपर उठा हुआ सूर्य ।
'उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः'
ऋ.४.६.३

अक्रत – अकृषत, करते हैं, बोलते हैं ।
'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२ नि. ४.१०

अक्रविहस्ता – (१) अहिंसक एवं अकृपण, (२) दयालु, दानशील हाथ वाले (३) मित्रावरुण, (४) राजा और अमात्य (५) स्त्री पुरुष
'अकविहस्ता सुकृते परस्पा ।'
ऋ. ५.६२.६

अक्रव्यादग्निः– (१) क्रव्याद् अग्नि से भिन्न आहवनीय अग्नि और गृह्याग्नि (२) इन अग्नियों के समान पवित्र कार्य करने वाला और लोगों का घर बसाने वाला राजा ।
'यो मे द्वेष्टि तमद्धि अग्ने अक्रव्यात्'

अक्ष– अश् (व्याप्त्यर्थक) । एक कितव दूसरे कितव के प्रति अक्ष से ही धन फेंकता है । अतः यह अक्ष कहलाया । अथवा 'अश्नुवत एनान् या अभ्यश्नुवत एभिः' जुआ खेलने वाले इन अक्षों को व्याप्त करते हैं । अर्थ–(१) जुआ खेलने का पाशा (२) यान का अञ्जन करने वाला धुरा (३) अक्षर भी अक्ष के समान व्यञ्जनों को धारण करता है (४) अञ्ज (गत्यर्थक) + स = अक्ष (५) संस्कृत कोषों में अक्ष इन्द्रियवाची भी है । (६) क्रीड़ा शील कर्मेन्द्रिय चर पुरुष ।
आधुनिक अर्थ (१) धुरी लोहे की छड़ या लकड़ी जो किसी वृत्ताकार चीज के बीच पिरोयी रहती है और जिस पर वह गोल वस्तु घूमती है (२) गाड़ी (३) पहिया (४) तराजू की डांड़ी (५) पृथ्वी के भीतरी केन्द्र से होती हुई दोनों ध्रुवों पर निकलती हुई एक कल्पित रेखा (६) द्यूत पाश (७) रुद्राक्ष माला बनाने का एक प्रकार का बीज (८) १६ माशे के बराबर तौल जिसे कर्ष भी कहते हैं (९) विभीतक नामक एक पौधा, (१०) एक प्रकार का सर्प, (११) गरुड़ (१२) आत्मा, (१३) ज्ञान, (१४)कानूनी कार्रवाई, (१५) जन्मान्ध, (१६) समुद्री नमक (२०) विभीतक नामक फल बहेरा ।
'पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च'
अ. ७.१०९.२

अक्षकामा – (१) इन्द्रियों की कामना रूप ।
'अक्षकामा मनोमुहः'
अ. २.२.५

अक्षण्वत् – अक्षि + मतुप् = अक्षण्वत् । 'छन्दस्यपि दृश्यते' पा ७.१.७६ से मतुप् में नुट् का आगम बहुवचनों में 'अक्षण्वन्तः' ।
चक्षिङ् धातु के क् का लोप, ष् का क् और स् का ष होता है । चक्षिङ् का ख्याञ् आदेश होता है (बाहुलकात् चक्षिङः ख्याञ्) । पृषोदर आदि शब्दों के समान च का लोप होकर अक्षि शब्द बनता है । अर्थ–आंखवाला । ब्राह्मण ग्रन्थों में आंख के लिए 'तस्मा देते व्यक्त तरा' आया है । उणादि कोष में अशुङ् (व्याप्ति) से अक्षि बना समझा गया है ।
'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः'
ऋ. १०.७१.७; नि.१.९
(आंख या कान वाले चित्र)

(२) द्रष्टा, ज्ञानी ।
'पश्यदक्षण्वान्न नं वि चेतदन्धः'

अक्षण्वान् – ज्ञानी
'पश्यदक्षण्वान्न विचेतदन्धः'
ऋ. १.१६४.१६ अ. ९.९.१५ तै.आ. १.११.४ नि. ५.१; १४.२०

अक्षत्र – निर्बल, चेतनाहीन ।
'केनेदमन्यन्नक्षत्रम्'
अ. १०.२.२२

अक्षद्रुग्ध – इन्द्रियों के लोभ के कारण प्रजाओं में नाना प्रकार के द्रोह उत्पन्न करने वाला
'अक्षद्रुग्धो राजन्यः'
अ. ५.१८.२

अक्षपराजय – इन्द्रियनाशक रोग
'अथो अक्षपराजयम्'
अ. ४.१७.७

अक्षर – (१) जिसका नाश न हो । नञ् + क्षि + उ = उरञ् = अक्षर (२) अक्ष एव अक्षरम् (३) अक्ष + रञ् (४) नञ् + क्षर + अच्
'ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति'
ऋ. १.१६४.४२ तै.ब्रा. २.४.६.१२ नि ११.४१
(उस माध्यमिक वाक् गौरी से जल गिरता है, वह जल विश्व को जिलाता है) ।
(२) ओम् वाच्य ब्रह्म
'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः'
ऋ.१.१६४.३९ अ. ९.१०.१८ गो. ब्रा. १.१.२२ तै. ब्रा. ३. १०.९.४ तै. आ. २.११.१ श्वे. उप. ४.८. नृसिहं पूर्व ता. उप. ४ .२, नि. १३.१०
(३) ओम् शब्द वाच्य ब्रह्म अक्षर है–शाकपूणि
(४) सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्
'एतद् ह्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् । एतदेवा क्षर ज्ञात्वा यो पदिच्छति तस्य तत्'
(४) आदित्य – शाकपूणि का पुत्र ।
(५) ओंकार रूप परमात्मा ।
'अक्षरेण प्रतिमिमीते अर्कम्'
अ. १८.३.४०
'अक्षरेण प्रति मिम एताम्'
ऋ. १०.१३.३

अक्षरपंक्तिः – (१) अक्षर ब्रह्म का ज्ञान (२) अखण्ड ब्रह्मचर्य की परिपक्वता (३)यहलोक
'अक्षरपंक्तिश्छन्दः'
वाज. सं. १५.४ तै.सं ४.३.१२.३ मै.सं २.८.७; १११.१५. का.सं. १७.६ श.ब्रा. ८.५.२.४

अक्षरा – (१) मेघोदकों से युक्त (२) न नाश होने वाली नदी (३) सदा सुखी प्रजा
'सहस्रपाथा अक्षरा समेति'
ऋ. ७.१.१४ तै.ब्रा. २.५.३.३

अक्षराज – (१) पाशों को खेलने वालों में राजा (२) इन्द्रियों का स्वामी जीव ।
'अक्षराजाय कितवम्'
वाज. सं ३०.१८, तै. ब्रा. ३.४.१.१६

अक्षवृत्त – जुआखोरी में होने वाला पाप ।
'यदक्षवृत्तमनुदत्तं न एतत्'
अ. ६.११८.२ मै.सं ४.१४.१७; २४५.१३, तै.आ. २.४.१

अक्षणयाध्रुक – टेढ़ेमेढ़े तरीके से अप्रत्यक्ष रूप से विरोध करने वाला ।

अक्षणयावा – आंख के इशारे से आगे बढ़ने वाला
'आक्षणयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः'
ऋ. ८.७.३५

अक्ष्य – आंखों का हितकारक
'पर्वतस्यास्यक्ष्यम्'
अ. ४.९.१

अकाय– स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों से रहित
'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्'
वाज. स. ४०.८

अकामकर्शनः – (१) सत् संकल्प को कृश नहीं करने वाला यथोचित्त विवेकी परमेश्वर ।
'शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः'
ऋ. १.५३.२ अ. २०.२१.२
(हे परमेश्वर; तू शिक्षा देने वाला नायक आचार्य के समान आदि गुरु है । तू काम अर्थात् सत् संकल्पों को कृशन करने वाला यथोचित विवेकी है ।
(२) कामना या आशा का विधान न करने वाला

अक्षाः– अश् धातु के लिङ् का रूप 'अक्षीष्ट' की जगह या 'क्षर' (संचलनार्थक धातु) के 'अक्षरीत' की जगह या 'क्षि,' (निवास करना), के अक्षैषीत् की जगह में प्रयुक्त वैदिक प्रयोग ।
(१) व्याप्त हुआ चला या निवास किया अर्थ

है । निघण्टु में 'सोमो अक्षाः' ऐसा प्रयोग है ।
'अनूपे गोमान् गोभि रक्षाः'
ऋ. ९.१०७.९; साम. २.३४८; नि. ५.३.
जलप्राय देश में गोस्वामी गायों के साथ निवास करता है -शाकपूणि ।
यह अश् (व्यापना) के लुङ् के प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है परन्तु लट् (वर्तमान) में प्रयुक्त हुआ है। अर्थ है (२) पार पाता है । (३) व्याप्त होता है । (४) द्यावा पृथ्वी ।
'नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः'
ऋ. १०.८९.६ नि. ५.३
जिस परमात्मा या इन्द्र की महिमा न अन्तरिक्ष पाते न पर्वत उसकी महिमा पाते अर्थात् शांत आत्मा पाता ।

अकितवः - छल कपट से रहित पुरुष
'ईर्षताया अकितवम्'
वाज. सं. ३०.८

अक्रिः-नञ् + कृ + इक् = अक्रिः । अर्थात् अकर्त्ता क्रिया में अकुशल पुरुष ।
'नू चिन्नु मर्ते अक्रौ'
ऋ. १.१२०.२

अक्षि - (१) आंख । 'अक्षण्वत्' (२) सर्वव्यापक, (३) सर्वाधिष्ठता (४) सर्वद्रष्टा
'प्रतिपाणायाक्षये'
अ. १९.५२.३

अक्षित- (१) अक्षीण, (२) न सूखने वाला,
'अक्षितं जनपानम्'
(न सूखने वाला कूप) (३) यक्ष्मा जिसने अभी पूर्ण रूप से जड़ न पकड़ी हो ।
'तदक्षितस्य भेषजम्'
अ. ७.७६.४
(४) कभी क्षीण न होने वाला ।
'अक्षितास्त उपसदोऽक्षिता सन्तु राशयः'
अ.६.१४२.३
'विश्वायुर्धेह्यक्षितम्'
ऋ. १.९.७; अ. २०.७१.१३.
(५) क्षयरहित अन्न, शालि आदि धान्य
'कुयवं च मेऽक्षितं च मे'
वाज.सं. १८.१०; मै.सं. २.११.४; १४२.१ का.सं. १८.९

अक्षिता - (१) अनुपक्षीण जो क्षीण न हुई हो
'धात दधातु दाशुषे प्राची जीवा तु मक्षिनाम्'
ऋ. ७.१७.२ आश्व. श्रौ.सू. ६.१४.१६ शां. श्रौ.सू. ९.२८.३ आश्व.गृ.सू. १.१४.३.शां.गृ.सू. १.२२.७, नि. ११.११
(धाता हवि देने वालों को प्रवृद्ध या पूर्वकाल के समान अक्षुण जीविका दे) ।
(२) अक्षीण सम्पत्ति के रूप में विराजमान गोमाता ।
'अक्षितामुप जीवति ।'
अ. १८.४.३२

अक्षितावसु - (१) अक्षय धन से सम्पन्न पुरुष (२) इन्द्र (३) परमेश्वर ।
'विभूतिमक्षिता वसुम्'
ऋ. ८.४९.६

अक्षिति - (१) नाश न होना
'समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि'
वाज. स. ६.२८; श.ब्रा. ३.९.३.२७
(२) कभी क्षय न होने वाली सम्पत्ति ।
'अक्षितिं भूयसीम्'
अ. १८.४.३७
(३) कभी क्षीण न होन वाली सूर्य की रश्मियां
'यथा देवा अंशुमाप्यायन्ति यमक्षितिमंक्षिताः पिवन्ति'
नि. ५.११
(सूर्य की रश्मियां क्षीण नहीं होतीं और वे ही चन्द्रमा में भी प्रवेश करती हैं)। (४) पृथ्वी से अतिरिक्त वायु, अग्नि , आकाश, जल, आत्मा और मन आदि पदार्थ, (५)आत्मा आकाश काल आदि पदार्थों का नित्यभाव (६) द्यौलोक में गगनचारी सूर्यादि प्रकाशमान लोक ।
'अक्षितिश्च क्षितिश्च या'
अ. ११.७.२५

अक्षितोतिः - (१) अक्षय रक्षा-सामर्थ्यवाला (२) जिसका ज्ञान क्षीण न हो (३) जिसकी रक्षा शक्ति क्षीण न हो ।
'द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः'
ऋ. ६.२४.१
(४) अक्षय रक्षा करने वाला रक्षक पुरुष
'जनीयन्तो जजिदामक्षितोतिम्'
ऋ. ४.१७.१६
'सत्राजितोधनसा अक्षितोतयः'

ऋ. ८.३.१५ अ. २०.१०.१; २०.५९.१ साम. १.२५१, २.७१२, मै.सं. १.३.३९; ४६,६ आप. श्रौ.सू. १३.२१.३
'अक्षितोतिः सनेदिमम्'
ऋ. १.५.९ अ. २०.६९.७

अक्षिपत् - (१) अक्षि + पत् + क्विप्। आंखों का झेंपना, पलक मारना।
'नहि मे अक्षिपच्चना'
ऋ. १०.११९.६

अक्षिभू - (१) आखों का देखा प्रमाण, प्रत्यक्ष प्रमाण।
'सत्यस्याक्षिभुवो यथा'
अ. २०.१३६.४ वाज. सं. २३.२९, शां श्रौ. सू. १२.२४.२.१

अक्षिलली - अपनी ही इन्द्रियों में लीन पुरुष
'अक्षिलली पुच्छिलीयते।'
अ. २०.१३४.६

अकुत्र- अन्यत्र कहीं नहीं।
'माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवोगुः'
ऋ. १.१२०.८
(हमारे घरों से गौएं अन्यत्र कहीं न जांय।

अकुध्रग् - तुच्छ, निर्बल
'माकुध्रगिन्द्र शूर वस्वी'
ऋ. १०.२२.१२

अकुप्यन् - क्रोध न करने वाला।
'अकुप्यन्तः कुपायकुः'
अ. २०.१३०.८

अकुमार - जो कुमार नहीं हो (२) पंचविंशतिवर्षातीतः - दया. (३) कुमार दशा अर्थात् बाल्यभाव को त्यागा हुआ (४) जो कुत्सित काम क्रोधादि से त्रस्त नहीं।

अक्षु - फन्दा।
'इन्द्रश्चाक्षुजालाभ्याम्'
अ. ८.८.१८.

अक्षत् - (१) भोजन द्वारा भूखादि मिट जाना।
'अन्नं च मेऽक्षुच्च मे'
वाज. सं. १८.१० तै. सं.४.७.४.२ का.सं.१८.९

अक्षुः - सब तत्त्वों का द्रष्टा विद्वान्।
'जूर्णो वामक्षुरंहसोयजत्रा'
ऋ. १.१८०.५

अक्षुध्य - भूख से पीडित न होने वाला।
'अक्षुध्या अतृष्या स्त'
अ. ७.९०.४

अक्षुम् - जाल जिसे मकान में लगाया जाता है।
'अक्षुमोपशं विततम्'
अ. ९.३.८

अकूपार - अकुत्सित महान् मार्ग का पार करने वाला-आदित्य (२) महापार विस्तीर्णपार समुद्र (३) न कूपं ऋच्छति (जो कूप के पास न जाए) कच्छप, कछवा। कच्छप तालाब आदि में ही रहता है। मुखरूपी सम्पुट में जो अपनी रक्षा करे वह कच्छप या मुख सम्पुट से जल पीये। खम् आकाशं छादयति इति खच्छन्द-खच्छ-कच्छः- अथवा कूपं ऋच्छति इति कूपारः। न कूपारः अकूपारः। जो कूपार न हो वह अकूपार अर्थात् कच्छप है। कूप + ऋ + अण = कूपार (४) कम् उदकम् तेन छादयते (उससे जल आच्छादित होता है) अथवा
'केन जलेन छाद्यते स कच्छः अनूपदेशः
अथ कच्छः स्यादनूपे तुन्नकद्रुमे नौकांगे
पुंसि वारायां चीरिकायाञ्च योषिति।'
- मेदिनी कोश
(५) प्रभूत धन वाला (६) जिसका पार अकुत्सित है (७) अकुपरण = प्रभूत। पृ + घञ् = पार। अकुत्सित पारः पालनम् पूर्ण वा यस्य स अकुपारः। अकुपार एव अकूपारः।
(जिसका पालन अकुत्सित हो वह अकुपार या अकूपार है।
'विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने।'
ऋ. ५.३९.२ साम. २.५२३.नि ४.१८
(हम तेरे उस प्रभूत धन के दान का अंश प्राप्त करें।)
आधुनिक अर्थ -(१) समुद्र, (२) सूर्य, (३) बड़ा कछुआ जिसकी पीठ पर पृथ्वी टिकी मानी जाती है (४) पत्थर, चट्टान (८) जिसका परिणाम बुरा न हो (९) समुद्रवत् अपार।

अकृत्तरुक् - अकृत्ता रुक् यस्य। कभी नष्ट न होने वाली कान्तिवाला।
'अकृत्तरुक् त्वया युजा वयम्'
ऋ. १०.८४.४, अ. ४.३१.४

अकृन्तन् - काता। कृन्त् (सूत कातना) का लङ् प्रथम पुरुष बहुवचन का रुप।

'ग्नास्त्वा कृन्तन्'
मै.सं. १.९.४; १३४.८ का.सं. ९.९, पंच.ब्रा. १.८.९, ला.श्रौ.सू. २.८.२३, आप. श्रौ.सू. १४.२२.४, नि. ३.२१ ।
हे वस्त्र, स्त्रियों ने सूत रुप में तुझे काता) ।

अकृष्टपच्य – बिना हल जोते उत्पन्न होने वाला अन्न ।
'अकृष्टपच्याश्च मे'
वाज. सं. १८.१४

अकृष्ण – शुद्ध निष्पाप शुल्क वस्त्रधारी ।
'ब्रह्माकृष्णश्च नोऽवतु'
वाज. स. २३.१३

अकृण्वत – अर्थ-किया । 'अकुर्वत' का वैदिक प्रयोग ।
'अकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि ५.२५
(जिन्होंने यहां दुस्तर श्रवणीय कर्म किये ।)

अकृणोत् – अजनपत्, अकरोत् (उत्पन्न किया या किया)
'श्वात्रमग्निश्कृणोज्जातवेदाः'
ऋ. १०.८८.४; नि. ५.३.

अकृत – (१) नहीं किया गया, (२) असंस्कृत, (३) सजावट से हीन, (४) टूटा, (५) ढहा (६) ढिमलाया, (७) उत्तम कर्मफल से रहित ।
'मा नो अकृते पुरुहूत योनौ
इन्द्र क्षुध्यद्भ्यः वय आसुतिं दाः'
ऋ. १.१०४.७
हे परमेश्वर, मुझे टूटे फूटे घर में न रख या उत्तम कर्म फल से रहित पशु आदि योनि में मुझे मत डाल।

अकृधु – कृधु का अर्थ ह्रस्व या लघु । कृती + कु = कृतु = कृधु (त का ध) यह बड़े में से काटा गया है अतः कृधु कहलाया ।
'निकृतमिव मन्त्र भवति ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्'
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३, नि. ६.३
(जो पुत्र दीर्घायु, अजर और बलवान हो)
अकृधु से अस्कृधु सुट् के आगम से हो गया है । पृषोदरादि शब्दों के समान इसकी व्युत्पत्ति सिद्ध हुई है ।

अकृष्टपच्य – जो अन्न बिना खेती किए होता है।
'अकृष्टपच्ये अशने धान्ये यः'
अ. ५.२९.७

अकृषीवला – (१) कृषीबल से रहित वनस्थवृत्ति (२) कष्टों के आवरण से रहित- वनस्थवृत्ति
'बह्वन्नामकृषीवलाम्'
ऋ. १०.१४६.६ तै. ब्रा. २.५.५.७

अकेतु – ज्ञान रहित ।
'केतुं कृण्वन्नकेतवे'
ऋ.१.६.३ अ. २०.२६.६ वाज.सं. २९.३७ तै.सं. ७.४.२०.१, मै.सं. ३.१६.३; १८५.८ तै.ब्रा. ३.९.४.३
(ज्ञान रहित को अज्ञान देने वाला)

अक्षेत्रवित् – (१) क्षेत्र या मार्ग को न जानने वाला (२) क्षेत्र आदि कृषि विद्या को न जानने वाला (३) देह या प्रकृति को नहीं जानने वाला ।
'अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं हृधप्राद्'
अ. १०.३२.७
(४) जो क्षेत्रमिति का ज्ञान न रखता हो ।
'अक्षेत्रविद् यथा मुग्ध'
ऋ. ५.४०.५

अक्तोः – (१) अतिथिः (२) रात्रि का अतिथि चन्द्रमा । (३) चन्द्रमावत् आह्लादक परमेश्वर ।
'होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम्'
ऋ. १०.९२.१

अखर्व – (१)बहुत अधिक (२) गर्व रहित, विनय से युक्त ।
'मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसम्'
ऋ. ७.३२.१३ अ. २०.५९.४

अखेद्रयामः – (१) अटूट वेगवाला, (२) निरन्तर गाने वाला ।
'यातेमखिन्द्रयामभिः'
ऋ. १.३८.११

अगन – भविष्यान्
'तां वहन्त्वगत स्यानु पन्थाम्'
अ. १४.२.७४

अगद – नीरोग
'अथ त्वमगदश्चर'
अ. ४.१७.८

अगन् – गया, अगमत् का वैदिक रूप है ।
'कमगन् जनयोपनः'
ऋ. १०.८६.२२, अ. २०.१२६.२२, नि. १३.३
(वह संसार का मोहने वाला कहां गया)

अगव्यूतिक्षेत्र – (१) बिना मार्ग का क्षेत्र, (२) निवास भूमि (३) देह रूप क्षेत्र जिसमें आ जाने पर जीव को जन्म मरण बाधा से छूटने का मार्ग नहीं मिलता ।
'अगव्यूतिक्षेत्रमागमन्म देवाः।'
ऋ. ६.४७.२०

अगस्त्यः – (१) ये धर्मात् अन्यत्र न गच्छन्ति ते अगस्तयः (जो धर्म से अन्यत्र नहीं जाते वे अगस्ति कहे जाते हैं)। तेषु साधुः अगस्त्यः । ऐसा करने में जो सिद्ध है वह अगस्त्य है (२) एक ऋषि का नाम (३) धर्मात्मा–दया, (४) सूर्य–दया. । अगस् +अस्त = अगस्तः । सूर्य अनेक दोषों को दूर करता है।
' तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठाऽगस्त्यो यत्त्वा विश आजभार'
ऋ. ७.३३.१०.
सायण ने अगस्त्य को इन्द्र या वसिष्ठ का पुत्र माना है । जयदेव शर्मा न इसका अर्थ वासकतम जल किया है। (५) अग + स्त्य । वृक्षादि स्थावर पदार्थों को उखाड़ देने वाला वायु (६) वायुवत् बलशा स्त्री (७) अभेद्य अन्धकार को दूर करने वाला ज्ञान प्रकाश (८) अगस्ति का अर्थ, विज्ञान है, अतः अगस्त्य का अर्थ 'विज्ञाने साधुः,' विज्ञान में कुशल हुआ ।
'किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे'
ऋ. १.१७०.३
(९) अगान् वृक्षान् अस्यति इति अगस्ति । पर्वतादि को भी उखाड़ देने में समर्थ ।
'कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढ़ो अगस्त्यः'
अ. १८.३.१५
(१०) त्रातव्य व्यवहार में साधु (दया) (११) ज्ञान देने में कुशल पुरुष (१२) वेदोक्त कर्म
'अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना'
ऋ. १.११७.११
ज्ञान में कुशल पुरुष तथा वेदाक्त कर्म के आश्रय में रह कर वेद और ब्रह्मचर्य द्वारा बढ़ते हुए, अथवा, सूर्य के आश्रय पर जल से और ज्ञानी पुरुष के आश्रय पर ब्रह्मज्ञान से बढ़ते हुए ।
(१३) स्थावर, (१४) पर्वत,(१५) वृक्ष
'यथोत कृत्व्य धने अशुं गोष्वगस्त्यम्'
ऋ. ८.५.२६

अगस्तिः – अग +ति (सुट्) = अगस्ति (१) ज्ञातव्य (२) पाप नाशक धर्मोपदेशक आचार्य (३) अगस्ति नामक ऋषि ।
'यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिम्'
अ. ४.२९.३

अग्नयः – अग्निवत् ज्ञान के प्रकाश में प्रकाशमान विद्वान् ।
'समग्नयो विदुरन्यो अन्यम्'
ऋ. १२.३.५०

अग्नायी – (१) अग्नि की पत्नी स्वाहा ।
'इहेन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये अग्नायीं सोम पीतये'
ऋ. १.२२.१२ नि. ९.३४
'इन्द्राण्यग्नाय्यश्वनीराट्'
ऋ. ५.४६.८ मै.सं. ४.१३.१०,२३१.१० तै.ब्रा. ३.५.१२.१, नि. १२.४६
(२) अग्नि या सेनापति की स्त्री (३) अग्रणी पुरुष की स्त्री ।

अग्नाविष्णू – (१) अग्नि और विष्णु (२) राजा और मन्त्री (३) राजा और सेनापति (४) यजमान और पुरोहित, (५) अग्नि और सूर्य ।
'अग्ना विष्णू महि तद् वां महित्वम्'
अ. ७.२९.१ तै. सं. १.८.२२.१, मैं. सं. ४.११.२:, १६५.१६, का. सं. ४.१६, शां. श्रौ. सू. २.४.३

अग्न्याधेय – अग्नि आधान योग्य यज्ञ कर्म ।
'अग्न्याधेयथोदीक्षां'
अ. ११.७.८

अग्न – आगे वाला, श्रेष्ठ ।
'अग्रमग्रमिद् भजते वसूनाम्'
ऋ. १.१२३.४
जो वस्तु व्यक्त हो आंखों के आगे हो वह अग्न है । आगे इसी का अपभ्रंश है ।

अग्रणीति – अग्रनीति, सर्वश्रेष्ठ नीति (२) युद्ध में आगे बढ़ती हुई सेना ।
'प्रवायवः पान्ति अग्रणीतिम्'
ऋ. २.११.१४

अग्नम् – (१) सबसे मुख्य तत्त्व मन ।
'ततो अग्रमजायत'
ऋ. १०.१३५.६
(२) श्रीर्वै राष्ट्रस्य अग्रम् श्रियमेव एनां गमयति
(३) मुख्य पद

'अग्रं वृक्षस्य रोहतः'
वाज.सं. २३.२४.तै.सं. ७.४.१९.३, मै.सं. ३.१३.१; १६८.५ का.सं. (आश्व) ४.८. श.ब्रा. (मा.) १३.२.९.७; ५.२.५ तै.ब्रा. ३.९.७.४

अग्रभरणा – (१) समुद्र जिसमें कुछ पकड़ा नहीं जा सकता (२) मोक्ष की स्थिति जिसमें आत्मा कर्म के बन्धन में नहीं रह जाता ।

अगाम – (१) आ गये हैं, (२) प्राप्त किया है, (३) भटक गए हैं ।
'इममध्वानं यमगाम दूरात्'
ऋ. १.३१.१६ ला.श्रौ सू. ३.२.७
(अग्निहोत्रादि रूपी तेरी सेवा को छोड़ जो हम दूरदेशी मार्ग पर भटक गए हैं– सा. । इस संसार मार्ग को जिसे हमने आप से दूर हो कर प्राप्त किया है –(दया.) ।

अगिरोकस् – (१) जिस वाणी में स्थान न मिले (२) जिसके बल पराक्रम का वर्णन न किया जाए ।

अग्निः – (१) अग्रणी भवति (यज्ञ में अग्नि अगुवा बनते हैं । अग्र + नी + क्विप् = अग्नी (रेफ और अ का लोप) मनुष्योपकारी कार्यों में अग्नि अग्रेसर है ।
(२) अङ्ग + नी = अग्नी । सभी वस्तुओं को अग्नि अपने अंक में मिला लेता है । आत्मसात् कर लेता है। अतः अग्नि कहलाया (अङ्ग नयति सन्त ममानः)
(३) विद्युत् (४) सूर्य, ।
'आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः'
ऋ. १.१६४.११ अ. ९.९.१३
(५) परमेश्वर (६) विद्वान् (७) सेनानी –(दया.) स्वामी जी ने 'अग्रणी' व्युत्पत्ति से ये अर्थ निकाले हैं । (८) अग्नि सभी देवताओं का वाचक है (अग्निः सर्वाः देवताः) जैसे इन्द्र, मित्र, वरुण, गरुत्मान् मातरिश्वा –(९) 'अग्निर्वैदेवानां सेनानी' में अग्नि को देवों का सेनानी माना गया है । (१०) 'यदिन्द्रश्च' आदि वचनों में अग्नि को राजा कहा गया है । अग्रणी से अग्नी एवं अग्नि हो गया है जो वस्तुतः परमेश्वर का वाचक है । – (दया.)
(११) स्थौला हठीवि (निरुक्तकार) के मत से अग्नि रुक्ष या शुष्क करने वाले हैं । 'न क्नोपयति न स्नेहयति इति अग्निः' क्नुपी धातु स्नेहार्थक है ।)
(१२) शाकपूणि के मत से अग्नि उणादि कोष में गत्यर्थक 'अगि +नि' से बना है । अग्नि गतिशील है । पदार्थों का व्यञ्जक है और दाहक है । इसी प्रकार परमेश्वर भी है । अग्नि शब्द इण्, अञ्ज, दह, या णीञ् धातुओं से भी सिद्ध होता है । इण् से अ, अञ्ज या दह से ग, और णीञ् से नी लेकर 'अग्नी' बनता है । अयन +अञ्जन +नी = अजनी =अग्नि ।
'अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।'
ऋ. १.१.१
(१३) वानप्रस्थ को भी अग्नि कहते हैं ।
'मूरा अमूर न वयं चिकित्वो
महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से'
ऋ. १०.४.४, नि. ६.८
हम मूढ़ विद्यार्थी जगत पिता की महिमा नहीं जानते । हे अगूढ़ मित्र वनस्थ आप उसका महत्व जानते हैं । (१४) अग्नि तीन हैं– (१) गार्हपत्य (वनस्पति), (२)दक्षिणाग्नि (शमित) और (३) आहवनीय (देव अग्नि) । विवाह काल में जिस अग्नि में यज्ञ किया जाता है उसी को गृहस्थ अपने घर ला कर सदा प्रदीप्त रखता, बुझने नहीं देता और उसी अग्नि को प्रदीप्त कर भोजन बनाता है । दक्षिणाग्नि से यज्ञ काल में ऋत्विज आदिकों को दक्षिणा रूप में खाद्य पदार्थ देने के लिए तैयार किए जाते हैं । आहुति के लिए स्थायी पाक भी इसी से बनता है । इसका दूसरा नाम 'अन्वाहार्यपचन' है । यज्ञ में देवपूजा संगतिकरण और दान के तीन आवश्यक विधान हैं । बिना दक्षिणा के यज्ञ अपूर्ण रहता है । जिसमें अग्निहोत्र आदि .यज्ञ किये जाते हैं, वह आहवनीय है । पूर्वकाल में अग्नि की रक्षा आवश्यक थी । इन दिनों वह बात नहीं रही ।
(१५) शत्रु हन्ता राजा –(दया.) ।
'अयाते अग्ने समिधा विधेम
प्रतिस्तोमं शस्यमानं गृभाय'
ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५;१७४.७, कां.सं. ६.११; नि. ३.१२

सायण ने यहां अग्नि अर्थ ही किया है । आप की इस छलरहित नीति से हम जिन जिन प्रशंसनीय कार्यों को करें उन्हे आप स्वीकार करें । गर्भ सम्बन्धी रोग दूर करने वाला अग्नि नामक एक औषधि ।

'अग्निष्टं ब्रह्मणा सह'

ऋ. १०.१६२.२; अ. २०.९६.१२

(१६) गर्भ ।

'प्रजननं वा अग्निः'

वै.सू. १.३.१.४

गर्भ में वीर्य-सेचन अग्नि में चरु डालने के समान ही है।

'यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ'

अ. १२.३.७, ६.१२२.३

(१७) योषा

योषा वाव गोतमाग्निः । तस्या उपस्थ एव समित् । यत् उपमन्त्रयते स धूमः । यज् अन्तः करोति त अङ्गाराः । अभिनन्दाः विस्फुतिगां तस्मिन् एतस्मिन् नग्नो देवो रेतो जुह्वति । तस्य आहुतेः गर्भ सम्पद्यते । छा-४.८

(स्त्री अग्नि है, कामांग काष्ठ, परस्पर प्रेम धूम, भोग ज्वाला, सुख विस्फुलिगं, वीर्यदान आहुति है)

(१८) अग्नि तत्त्व, सूर्यताप, अग्निबीज, आग्नेय पदार्थयुक्त ब्रायोनिया आदि जैसी ओषधि । अग्निकः चित्रक । अग्निजः अग्निजारः । अग्निगर्भा तेजस्विनी । अग्निगर्भः सूर्यकान्तः । अग्निजिह्वा कलिकारी । अग्निज्वाला घातकी महाराष्ट्रीया अग्निदमनी । अग्निधनेनानिम्बः। अग्निभाषा ज्योतिष्मती । अग्नि मन्थः। अग्निबल्लभः राजा सर्वकश्च अग्निवीर्यं सुवर्णम् । अग्नि सम्भवः कसुम्भम् । अग्निसहायः परावक्ता अग्निसारो रसाञ्जनम् अग्निः चित्रकः भल्लकः सुवर्णञ्च इत्येते पदार्थाः वातदोष शमन्तः भवन्ति ।

'अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितः'

ऋ. ७.५०.२

अग्निजिह्वः – अग्निज्वाला के समान ज्ञान प्रकाश करने वाली वाणी बोलने वाला ।

'ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुः'

ऋ. ६.२१.११

अग्निजिह्वा – आग की लपटों वाली ।

'अग्निजिह्वा धूमशिखा'

अ. ११.९.१९

अग्निजिह्वाः – मरुतों का विशेषण (१) विद्वानों को प्रमुख प्रवक्ता रखने वाले, (२) विद्युत् रूप जिह्वा से युक्त (३) अग्नि की लपटों की ज्वाला से युक्त (४) देवताओं की संज्ञा वे अग्नि जिह्वा वाले हैं ।

'अग्निजिह्वा मनवः'

ऋ. १.८९.७; वाज.सं. २५.२०.

(५) समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली उपेदशप्रदवाणी से युक्त ।

ऋदूदराः श्रृणवन्नग्निजिह्वाः'

ऋ. ३.५४.१०

अग्निजिह्व – जिह्वा का अग्रभाग

'सरस्वत्या अग्रजिह्वाया'

वाज. स. २५.१ मै. सं. ३.१५.१:, १७७.८

अग्नित् – (१) अग्नि को प्रकाशित करने वाला (२) अपने समान अन्य विद्वान् और तेजस्वी को उत्पन्न करने वाला (३) अग्नियों को प्रज्वलित एवं उनसे यज्ञ करने वाला (४)अग्नि ।

'तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः'

ऋ. २.१.२; १०.९१.१०

अग्नितपाः – अग्नि के समान प्रकाशमान ।

'बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः'

ऋ. १०.६८.६; अ. २०.१६.६,

अग्नितपः – (१) अग्नि अथवा आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्यादि द्वारा तपस्या करने वाला (२) शत्रु को तपाने वाला ।

'अग्नितपो यथासथ'

ऋ. ५.६१.४

अग्नितेजाः – अग्नि के समान तेजस्वी ।

'संशितोऽग्नितेजाः'

अ. १०.५.२५

अग्निदग्धः – (१) आग में जलकर मरा हुआ, (२) अग्नि के समान तीव्र ताप से स्वयं जाज्वल्य मान (३) अग्नि द्वारा अपने अज्ञान एवं पापादि को भस्म करने वाला (४) अग्नि होत्र करने वाला नरेश ।

'ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धाः'

ऋ. १०.१५.१४ अ. १८.२.३५, तै.ब्रा. ३.१.१.७;

आश्व श्रौ.सू. २.१९.२२

अग्निधः – अग्नि को धारण करने वाला ।
'अग्निधं वा घृतदक्षं दमूनसम्'
ऋ. १०.४१.३

अग्निधान् – अग्निशाला (२) अग्नि का स्थान (३) ईश्वरोपासना (४) देवपूजा
'आष्ट्रीपदं कुणुते अग्निधान'
ऋ. १०.१६५.३ अ. ६.२७.३.
'वासयातः पर्यग्निधानात्'
अ. १२.३.३५

अग्निमिन्ध – (१) यज्ञ के सात ऋत्विजों में एक आग्नीध्र नामक ऋत्विज् (२) अग्रणी नायकों को या विद्वान् ब्राह्मणों को मान, दान आदर से सदा उत्साहित और उत्तेजित करने वाला (३) राजा को विशेष ज्ञान से उज्ज्वल करने वाला
'होता अध्वर्यु रावया अग्निमिन्धः'
ऋ. १.१६२.५ वाज सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२, मै.सं. ३.१६.१; १८२.६ का.सं. (अश्व.) ६.४.

अग्निनेत्र – राज सभा में आगे विराजने वाला अग्निवत् नायक पुरुष ।
'अग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरः सद्भ्यः'
वाज.सं. ९.३५., श.ब्रा. ५.२.४.५

अग्निमूढ – (१) अग्रणी सेनापति के स्वभाव से मोहित (२) मार्गभ्रष्ट ।
'तेषां वो अग्नि मूढानाम्'
अ. ६.६७.२, साम. २.१२२१

अग्नि ज्योतिः – भौतिक अग्नि परमात्मा ज्योति का प्रतिनिधि है ।
'अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः'
साम. २.११८१, वाजसं सं. ३.९, मैं.सं. १.६.१०: १०२. ११; १.८.१: ११५.२; १.८.५: १२१.१; २.७.१६: ९९.४ का.सं. ४०.६ ऐ.ब्रा. २.३१.४; ३२.१; ३७.१७; ५.३१.४, कौ.ब्रा. २.८; १४.१, जै.ब्रा. १.४. ष.ब्रा. १.४.९, श.ब्रा. २.३.१.३०, ३२,३६, तै.ब्रा. २.१.९.२ तै.आ. ४.१०.५; ५.८.१० आश्व श्रौ. सू. २.३.१६;५.९.११, शां.श्रौ.सू. २.९. १, ७.९.२, ला. श्रौ.सू १.८.१४; आप श्रौ. सू. ६.१०.८; १५.१२.८, १६.२३.१०,

अग्निरूपः – (१) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष
'अभिप्रयन्तु नरो अग्निरूपाः'
ऋ. १०.८४.१; नि. १०.३०
(२) अग्नि के तुल्य योद्धा (३) कवचधारी

अग्निष्वात्त – (१) जिसने यज्ञ या सोमपान नहीं किया है । (२) अग्नि या अग्रणी रूप से स्वीकृत (३) ज्ञानी, विद्वान् , आचार्य आदि पदों का भोग करने वाला (४) अग्निवत् तेजस्वी राजा द्वारा स्वीकृति (५) उत्तम पदों पर प्राप्त (६) पितरों का एक विशेषण (७), सूर्यरूप अग्नि से उत्तम रूप से परिपक्व (८) ज्ञानी पुरुषद्वारा परीक्षित (९) जठाराग्नि द्वारा सुपाचित ।
'अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत'
ऋ. १०.१५.११, अ. १८.३.४४ तै. सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४. १०.६: १५७:१०, का. सं. २१.१०, आश्व श्रौ.सू. २.१९.२२ वाज. स. १९.४९
'शतरुद्रियाणामग्निष्वादत्तानाम्'
वाज.सं. २१.४३.
(१०) जिसने अग्नि विद्युत आदि का विज्ञान प्राप्त किया हो (११) तापदायक तेजों से सम्पन्न ।
'ये वा अयज्वानो गृहमेधिनः ते पितरो अग्निष्वात्ताः'
तै. ब्रा. १९.९.६

अग्निवासाः– बाहर भीतर सर्वत्र अग्नि से आच्छादित पृथ्वी ।
'अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञः'
अ. १२.१.२१, गो.ब्रा. १.२.९ कौ.सू. १३७.३०

अग्निशाल – अग्नि के लिए गृह ।
'हविर्धानमग्निशालम्'
अ. ९.३.७

अग्निश्रियः – विद्युत् की विशेष शोभा को धारण करने वाले मरुत ।
'अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टयः'
ऋ. ३.२६.५ तै. ब्रा. २.७.१२

अग्निषोमीय – अग्नि और सोम विभाग का ।
'द्विरूपा अग्निषोमीया'
वाज सं. २४.८, मै. सं. ३.१३.९: १७०.६

अग्निषोमीय पशुः – पशु जो यज्ञ यूप मे बांधा जाता है ।
'य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते'
अ. ९.६.६

अग्नीषोमौ – (१) जलों का अग्निस्वरूप अंश उद् जन है जो स्वयं ज्वलनशील है और जो तेजाब बनाने में सहायक है और दूसरा स्वरूप सोम

है जो ओष उत्पन्न करता है । और ज्वलन में सहायक है वह ओषधियों में ओष उत्पन्न करने से सोम है (२) अग्नि और सोम ।
'अग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत् ताः'
अ. ३.१३.५, तै.सं. ५.६.१.३ मै.सं. २.१३.१:१५३.१ का.सं. ३५.३,३९.२

अग्निष्टोम – (१) अग्नि, (२) सूर्य (३) संवत्सर (४) प्रतिष्ठा प्राप्ति ।
'स वा एषोऽग्निरेव यदग्निष्टोमः तं यदस्तुवंस्तस्मादग्निस्तोमः'
ऐ.ब्रा. ३..४३
'यो ह वा एष सूर्यस्तपति एषोऽग्निष्टोमः एष साहूः'
गो.ब्रा. ३.४.१०
'अग्निष्टोमो वै संवत्सरः'
ऐ.ब्रा. ४.१५
'अग्निष्टामन वै देवा इमं भूलोकमजयन् प्रतिष्ठा वा अग्निष्टोमः'
श.ब्रा. ३.३.३.२
'साग्निष्टोममतिद्रव'
अ. १०.९.८

अग्रिमा – श्रेष्ठ, सर्वप्रथम उत्तम वाणी
'समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा'
ऋ. ५.४४.९

अग्रिय – (१) अग्रे गमनम् (आगे जाना) । तृतीयैकवचन में 'आ' जोड़कर अग्रिया बना । अर्थ है आगे जाने से । (२) अग्रे सम्पादिनः, अग्रे सम्पादन इति (आगे सम्पादन करने वाले) (३) अग्र +घ = अग्रिय । अग्रिय +जस् =अग्रियः – सर्वेश्रेष्ठ
'अभूत विश्वे अग्रियोतवाजाः'
ऋ. ४.३४.३, नि. ६.१६.
(हे अन्नो या ऋभुवो, आप अग्रगामी बनें) – हे ब्रह्मचारियो, तुम सब अग्रगति से ज्ञानी बनो, शीघ्र ज्ञान सम्पादक श्रेष्ठ एवं बलवान् बनो –(दया.)

अग्रियः – अग्र +ह =अत्युत्तम ।
'अयं ते स्तोमो अग्रियः'
ऋ. १.१६.७

अग्नीध्र – (१) अग्नि रखने का स्थान चूल्हा, (२) विनीत (३) प्रति अंग से झुकने वाले शिष्य को धारण करने वाला आचार्य (४) श्रौत यज्ञ का एक ऋत्विक् ।
'पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तुष्णुहि'
ऋ. २.३६.४ अ.२०.६७.५

अग्नीपर्जन्या – अग्नि और मेघ ।
'अग्नीपर्जन्याववतं धियं मे
ऋ. ६.५२.१६
हे अग्नि और पर्जन्य, तुम दोनों मेरे यज्ञ रूपी कर्म की रक्षा करो, पर्यन्य (मेघ) अन्न उत्पन्न करता है और विधान करता है ।

अग्नीषोमा – (१) तेज और चन्द्र (२) अध्यापक और परीक्षक (३) वारणारव्य वायु और विद्युत् (४) आचार्य और विद्वान् ।
'अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशद् हविष्कृतिम्
ऋ. १.९३.३ मै.सं. ४.१४.१८ २४८.६ तै.ब्रा. २.८.७.१० शां श्रौ.सू. ५.१९.१४ कौ.सू ५.१

अगुरिः – (१) दुस्साध्य, नहीं चलने योग्य – (२) गम्य, प्राप्य ।
'दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः
ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५
(यह मार्ग दूरी पर है और बहुत चलने वालों के लिए भी दुस्साध्य है । – पराङ्मुख चलने वालों से ही गम्य या प्राप्य है ।

अग्रु – सर्वाग्रणी (२) आजन्म ब्रह्मचारी अविवाहित ।
'ये अग्रवः शशमानाः परेयुः'
अ. १८.२.४७
(३) अग्रणी, नायक ।
'वेत्युग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः'
ऋ. ५.४४.७
(४) आगे बढ़ने वाला ।
'जनीयन्तोन्वग्रवः'
ऋ. ७.९६.४ साम. २.८१०. आश्व श्रौ.सू. ३.८.१

अग्रू – (१) आगे आई हुई ।
'दश स्वसारः अग्रुवः समीचीः'
ऋ. ३.२९.१३ का.सं. ३८.१३. तै. ब्रा. १.२.१.१९ आप श्रौ. सू. ५.११.६
(२) नदी, नाड़ी ।
'सप्तस्वसारो अग्रुवः'
ऋ. १.१९१.१४
(३) प्रबल वेग से जाने वाली नदी ।

(४) विवाह के अवसर पर आगे चलने वाली स्त्री ।
'प्रायुवो नभन्वो न वक्वा'
ऋ. ४.१९.७
(५) अग्रगामी ।
(६) कन्या ।
'अस्या इच्छन्नयुवै'
अ. ६.६०.१
'तमयुवः केशिनीः सं हि रेभिरे'
ऋ. १.१४०.८

अगृभीतशोचि : – (१) न स्पर्श करने योग्य ज्वाला वाला अग्नि (२) अपरिचित या प्रत्यक्ष चक्षुओं से नहीं देखने योग्य तेजवाला प्रभु (३) असह्य ज्वाला वाला अग्नि (४) असह्य तेजस्वी ।
'चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्'
ऋ. ८.२३.१ सोम १.१०३

अगृभीत – किसी इन्द्रिय से कभी न ग्रहण करने योग्य (२) चक्षु आदि साधनों से अग्राह्य (३) अविज्ञेय ।
'अयं कृत्तुरगृभीतो'
ऋ. ८.७९.१, तै.ब्रा. २.४.७.६ आश्व.श्रौ.सू. २.१८.१५
'एता नयामे अगृभीतशोचिषः'
ऋ. ५.५४.५

अगृभ्णत् – अगृह्णन् –ग्रहण किया ।
'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत्
ऋ. ६.८.४ नि. ७.२६, कौ.ब्रा. २१.३

अग्नेर्घासः – अग्नि को अपने भीतर धारण करने वाली औषधि ।
'अग्नेर्घासो अपांगर्भः'
अ. ८.७.८

अग्नेस्तनूः – अग्नि का स्वरूप, योग्य पुरुष
'अग्नेस्त नूरसि विष्णवे त्वा'
वाज.सं. ५.१., मै.सं. १.२.६:१६.३;३.७.९: ८८.८, का.सं. २.८, श.ब्रा. ३.४.१.९,

अग्नेः पूर्वेभ्रातरः – अग्निरूप आत्मा को धारण करने वाले पूर्व के विद्वान् जन ।
'अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतम्'
ऋ. १०.५१.६

अग्न्येध – अग्नि को अधिक प्रदीप्त करने वाली ।
'प्रभायाअग्न्येधम्'
वाज. सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८

अग्रे – आगे (२) सृष्टि के पूर्व ।
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'
ऋ. १०.१२१.१, अ. ४.२.७, वाज.सं. १३.४, २३.१, २५.१०, वाज सं. (का.) २९.३३, तै.सं. ४.१.८.३, २.८.२, ५.५.१.२. मै.सं. २.७.१५: ९६.१३, २.१३.२३: १६८.५; ३.१२ १६:१६५.१ का.सं. १६.१५, २०.५, ४०.१, का.सं.(अश्व) ५.११, पंच ब्रा. ९.९.१२, श.ब्रा. ७.४.१.१९, १३.५.२.२३, आश्व.श्रौ.सू.२.१७. १५, ३.८.१ आप श्रौ. सू. १४.२९.१, १६.७.८, २१.४, २२.३, १७.७. १, २०.२.२, १९.१२, नि. १०.२३
(सृष्टि के पूर्व परमात्मा से हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ)

अग्रेगः – सब के आगे जलने वाला आत्मा, नायक ।
'अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते'
ऋ. ९.८६.४५ साम २.९६६

अग्रेगाः – सब से आगे चलने वाला
'वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः'
वाज सं. २७.३१, का.सं. १०.१२. तै.ब्रा. २.४.७.६, आश्व श्रौ.सू. २.१२.५, ५.१०.४, शां. श्रौ. सू. ७.१०.९

अग्रेगुवः – अन्तरिक्ष मे व्यापक जल ।
'देवीरापो अग्रेगुवः'
वाज.सं. १.१२, वाज. सं. (का) १.४.२, श. ब्रा. १.१. ३.७

अग्रेपुवः – वातावारण को पवित्र करने वाले जल ।
'देवीरापो अग्रेगुवः अग्रेपुवः'
वाज. सं. १.१२

अग्रेवधः – आगे आए शत्रुओं को मारने वाला ।
'नमो अग्रेवधाय च'
वाज. सं. १६.४०, तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७: १२६.३, का. सं. १७.१५

अगोता – भूमि और इन्द्रियों मे बल का न होना ।
'मागोतायै सहसस्पुत्र
मा निदेऽपद्वेषांस्या कृधि'
ऋ. ३.१६.५
(८) इन्द्रियों के भीतर शिथिलता प्राप्त कराने वाला रोग ।
'अगोतामनपत्यताम्'

अ. ४.१७.६

अगोपाः – (१) बिना ग्वाले की गौ (२) अपने से अन्य किसी की रक्षा के लिए अपेक्षा न करने वाला रोग ।

अगोरुध – (१) वाणी पर रोक न डालने वाला ।
'अगोरुधाय गविषे'
ऋ. ८.२४.२०, अ. २०.६५.२, आश्व गृ.सू. १.१.४.
(२) अपनी ज्ञान किरणों को न रोक रखने वाला, ज्ञान किरणों का प्रसार करने वाला (३) गौ और भूमियों पर स्वत्व नहीं रखने वाला (४) लोगों की भूमि आदि न छीनने वाला दानशील राजा

अगोह्य – (१) अग्राह्य पुरुष, (२) अग्राह्य पदार्थ ।
'अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे
ददद्येदमृभवो नानु गच्छथ'
ऋ. १.१६१.११, नि. ११.१६
(घर में जब जाकर रहो या सोवो तब अग्राह्य पुरुष या अग्राह्य पदार्थ के इस दुश्चरित्र का अनुगमन मत करो)
(२) नहीं छिपने योग्य, (३) प्रकट, (४) उज्ज्वल (५) अमृत स्वरूप आत्मतत्त्व ।
'आगोह्यं यच्छृवयन्त ऐतन'
ऋ. १.११०.३
(कभी न छिपने योग्य सूर्य- प्रकाशवत् आत्म तत्त्व या परम ज्ञान प्रदान करो जिसे स्वयं गुरुमुखों द्वारा श्रवण करने की इच्छा करते हुए आगे बढ़ो)
(६) अगुहनीय, आदित्य (७) सबके लिए गोचर कभी छिप कर नहीं रहने वाला
'सत्राजिदगोह्यः'
ऋ. २०.६४.१ ऋ. ८.९८.४, साम १.९३, २.५९७

अगौः – मूकजन ।
'उक्थञ्चन शस्यमानम्
अगोररिरा चिकेत ।'
ऋ. ८.२.१४

अघ – पाप (१) राक्षस । आगत्य हन्तारः (आकर हनन करने वाले)। आङ् + हन् +उ= अघ (अन्येष्वपि दृश्यते पा. ३.२.१०१) पृषोदरादिवत् आस का ह्रस्व और ह का घ ।
'इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघम्
तपुर्यस्तु चरुरग्निवां इव ।'
ऋ. ७.१०४.२, नि. ६.११
(हे इन्द्र और सोम, पाप की प्रशंसा करने वाले तथा पाप करने के निमित्त उद्यत राक्षस को आप दोनों साथ हो कर हटावें)
'अप नः शोशुचदघम्'
ऋ. १.९७.१-८, अ. ४.३३.१-८, वाज.सं. ३५.६,२१, तै. आ. ६.१० .१, ११.१, शां. श्रौ. सू. ४.२.९, आप श्रौ सू. १४.२२.१,२, आश्व गृ.सू. ४.६.१८, शां.गृ.सू. ४.१७.५ कौ.सू. ९.२, पा. गृ.सू. ३.१०.११,याज्ञ. धर्म. ३.३
(३) संचालित करता है ।
'सहस्रं महिषाँ अघः'
ऋ. ८.१२.८

अघद्विष्टा – पाप से द्वेष करने वाली । पापी का विरोध करने वाली ।
'अघद्विष्टा देवजाता'
अ. २.७.१

अघन्तपुः – हिंसा रहित स्वयं नष्ट न होने और शत्रु को नाश करने वाला शत्रु-सन्तापक उपाय या शस्त्र ।
'रक्षोयुजे तपुरघं दधात'
ऋ. ६.६२.८

अघमारः – (१) दुष्टों को पाप अपराध के कारण मारने वाला (२) पाप रुप निमित्त से मारने वाला अघमार देवता ।
'यमो मृत्युरघमारः'
अ. ६.९३.१

अघयजनम् – अघ अर्थात् पाप को दूर करने वाला ।
'तस्य सर्वस्यांहसो अघयजनमसि'
मै.सं. १.१०.२ : १४२.३ (उन सभी पापों को तू दूर करने वाला है)

अघल – अघ या कष्ट को लाने वाला ।
'मृत्योर्ये अघला दूताः'
अ. ८.८.१०

अघरुद – (१) पापों के कारण रोने वाली स्त्री ।
'परो यन्त्व अघरुदो विकेश्यः'
अ. ११.२.११
(२) बुरी तरह से रोने वाला बन्धुजन ।
'मा त्वाघरुदो रुदन्'
अ. ८.१.१९

अघविष – (१) पाप रूपी विष से पूर्ण (२) पाप पूर्ण नीच व्यक्ति ।

अघविषा - (१) पाप से पूर्ण हत्याकारी सेना
'त्रायध्वं नो अघविषाभ्यो वधात्'
अ. ६.९३.३
(२) पाप रूपी विष से भरी ।
'आविष्टिताघविषा'
अ. ५.१८.३

अघशंस् - अघ +शंस् +क्विप् । पाप की प्रशंसा करने वाला ।

अघहारः - (१) सब से प्रबल आघातकारी पुरुष ।
'द्रात्वेषामघहारो विविद्धः'
अ. ६.६६.१
(२) पापी ।
'मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र'
साम २.१२१४

अघ्नत् - अहिंसक ।
'अघ्नते विष्णवे वयम्'
ऋ. ८.२५.१२

अघ्न्य - कभी नाश न होने वाला आत्मा ।
'प्रशंसा गोष्वघ्न्यं क्रीडं यच्छर्धो मारुतम्
जम्भे रसस्य वावृधे'
ऋ. १.३७.५
(२) विनाश न होने वाला रथ (३) विनाश न करने योग्य शरीर रूपी रथ (४) अविनाशी आकाशरूपी रथ ।
'न्यघ्नस्य मूर्धनि
चक्रं रथस्य येमथुः।
परिद्यामन्यदीयते'
ऋ. १.३०.१९
तुम दोनों विनाश न होने वाले दृढ़ रथ के सिर पर अग्र भाग पर एक और चक्र लगाओ जिससे यह आकाश में भी चला जाये ।
रक्षा योग्य देहरुपी रथ के शिरोभाग में अन्य इन्द्रियों से भिन्न क्रिया करने वाले मनरूप साधन को नियमित करते हो । इस महान् आकाश से सिर पर एक सूर्य रुप चक्र लगा है जौ आकाश में घूमता है ।

अघा - मघा नक्षत्र ।
'अघासु हन्यन्ते गावः'
ऋ. १०.८५.१३
मघा नक्षत्रों में सूर्य की किरण मारी जाती हैं, अर्थात् मन्द हो जाती हैं ।

अघाद् - अघ या अत्याचारों को खा जाने वाली ।
'अघादघविषा भव'
अ. १२.५.५९

अघायन् - (२) पापचारी ।
'विश्वस्मात् सीमघायत उरुष्य'
ऋ. ४.२.६
(२) अघ इव आचरति इति अघायति । पापाचरण - दया .(३) परोपकारी - सा. ।
'उरुष्याणो अघायतः समस्यात्'
ऋ. ५.२४.३ वाज.सं. ३.२६, मै. सं. १.५.३:६९.१३ का.सं. ७.१, श. ब्रा. २.३.४.३१, आप श्रौ.सू. ६.१७.८, नि.५.२३

अघायु - (१) हत्या करने का इच्छुक ।
'परेणाघायुरर्षतु'
अ. ४.३.२, १९.४७.७.
'नि मर्त्यादघायोः'
ऋ. १.२७.३, साम २.९८६

अघाश्व - (१) घोड़े के समान ऊपर उछल कर आक्रमण करने वाला सर्प ।
'अघाश्वस्येदं भेषजम्'
अ. १०.४.१०
(२) एक वैदिक राजा (३) कभी न मरने वाला अश्व का स्वामी ९४) अमृत चेतन जीव
'यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वम्
अघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति'
ऋ. १.११६.६
हे शीघ्रगामी रथों के संचालन करने में कुशल शिल्पियो, तुम दोनों अघाश्व नामक राजा को श्वेत चमकता हुआ या अतिवेगशाली मार्ग-साधन देते ही वह सदा कल्याण कारक हो । अथवा, हे प्राण और अपान, तुम दोनों अमृत चेतन जीव को श्वेत अश्व या व्यापक अनादि आनन्दमय ब्रह्म का साक्षात्कार कराते हो ।

अघ्न्या - न मारने योग्य (१) रक्षा करने योग्य गौ ।
'पतिं वो अघ्न्यानाम्'
ऋ. ८.६९.२, साम २.८६२, ऐ. आ. १.३.५.४, ५.१.६.५
(२) अहन्तव्या (नहीं मारने योग्य) या अघघ्नी (अघ, पाप या दुर्भिक्ष नष्ट करने वाली) । अ +हन् +यत् +ङीष् =अघ्न्या । अथवा अघ +हन्

+यत् +टाप् =अघ्न्या । अर्थ है (३) गौ, (४) वाक् (५) मेघ महाभारत में भी लिखा है ।
'अघ्न्येति गवां नाम क एतां हन्तुमर्हति
वस्तुतः गौ सनातन से अघ्न्या है ।
सूयवसादे भगवती हि भूया
अधा वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं
पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ।'
ऋ. १.१६४.४०, अ.७.७३.११, ९.१०.२०. का श्रौ.सू. २५.१.१९. आप. श्रौ.सू. ९.५.४, नि.११.४४ (६) गौ के समान कभी न जोड़ने योग्य स्त्री
'प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोकम्
अ. १८.३.४
'एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि'
अ. ६.७०.३

अघ्न्यानांपतिः - (१) कभी न नाश होने वाली पंचभूतों की सूक्ष्म तन्मात्राओं का भी पालक परमात्मा, (२) गौओं का पति-साँढ़ ।
'पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानाम्'
अ. ९.४.२,४, तै.सं. ३.३.९.२ मै.सं. २.५.१०:६१.१६; ४.२.१०:३३.१७ का.सं. १३.९, विष्णुस्मृति ८६.१३

अघोर - सौम्य, प्रसन्न
'अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण'
अ. ७.६०.१, १४.२.१२, का. सं. ३८.१३,आप श्रौ. सू. १६.१६.४, आप मं. पा. १.७.१०

अनघ्न्यौ - एक दूसरे को पीडित न करते हुए वर वधू ।
'अघ्न्यौ शूनमारताम्'
ऋ. ३.३३.१३

अङ्कस् - अञ्चितं कुटिलं स्थानम् (कुटिल स्थान अञ्चित है) अञ्च् +असुन् =अङ्कम् (सर्व धातुभ्योऽसुन्-उणादि-च् का क्). अथवा, अकि +असुन् =अङ्कस् । अर्थ-मार्ग का टेढ़ा मेढ़ा घुमाव । (२) चिह्न ।
'पथामङ्कास्यन्वापनीफणत्'
ऋ. ४.४०.४, वाज सं. ९.१४, तै. सं. १.७.८.३,- मै. सं . १.११.२:१६३.३, का. सं. १३.१४, श. ब्रा. ५.१.५.१९, नि. २. २८
(मार्गों में टेढे मेढ़े घुमावों को पारकर जाता है) ।

अङ्क - रोग का चिह्न, लक्षण
'अङ्कान् समङ्कान् हविषा विधेम'
अ. १.१२.२

अङ्काः - मार्ग मे स्थान स्थान पर अङ्कित मार्ग (२) बाह्य पदार्थों के भीतर ज्ञान ग्रहण करने की इन्द्रियाँ ।
'ऊष्मण्यापिधाना चरूणाम
अङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यवश्वम्'
ऋ. १.१६२.१३ वाज.सं. २५.३६, तै.सं. ४.६.९.१३ मै.सं. ३.१६.१ : १८३.५ कां. सं. (अश्व) ६.४

अङ्काङ्क - (१) आपः, (२) गणितविद्या
'अङ्काङ्कं छन्दः'
वाज सं. १५.५, तै.सं. ४.३.१२.३, मै.सं. २.८.७: ११२.४, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.६

अङ्की - टेढ़ा अंकुशाकार बांस या लग्गी लिए हुआ मनुष्य, (२) ज्ञानवान् आत्मा ।
'वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव
धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु'
ऋ. ३.४५.४

अंकुश - (१) शासन (२) इन्द्र का हस्त ।
'यस्तेऽकुशो वसुदानः'
अ. ६, ८२.३
'अञ्च्' या आङ् +कुच से निपातन द्वारा सिद्ध । आकुचित झुका हुआ)।

अङ्कुप - (१) प्रजा की कुटिल कूटनीति (२) कुटिलाचार (३) आप ।
'अङ्कुपं छन्दः'
वाज. सं. १५.४, तै सं. ४.३.१२.२, मै. सं. २.८.७: ११.१४, का सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.४

अङ्कुशी - अंकुश वाला (२) वशीकरण साधनों से सम्पन्न ।
'अक्षास इदं कुशिनो नितोदिनः'
ऋ. १०.३४.७

अङ्कून् - चिह्न या अपने आदर्श ध्वजा के अनुकूल श्रेष्ठ पुरुष ।
'यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरम्'
ऋ. ६.१५.१७

अङ्ग - लोक में गतिकर्मक 'अंग +अच् =अंग' वेद में गति कर्मक 'अञ्च्' या अंक से अंग बना है । वेद में इस का अर्थ 'क्षिप्त' होता है और लोक में अच्छा, सचमुच आदि स्वीकृति सूचक

अव्यय (२) 'ही' अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। जैसे त्वमङ्ग वित्से (तू ही जानता है)।
'कदा नः शुश्रुवद् गिर इन्द्रो अङ्ग'
ऋ. १.८४.८, अ. २०.६३.५, साम. २.६९३, नि ५.१७
(३) सर्वमित्र ।
'क्षिप्रञ्च पुनरर्थे च संगमासूययोस्त था
हर्षे सम्बोधने चैव ह्यंग शब्द प्रयुज्यते ।'
(४) संज्ञा होने पर इसका अर्थ शरीर है (५) नाटक की पंच संधियों मे एक (६)छः का परिचायक (७) वर्तमान भागलपुर के आस पास के देश का प्राचीन नाम ।
'वैध्येन समारभ्य भुवने शान्तगं शिवे'
'तावदंगाभिधो देशो यात्रायां नहि दुष्यति'
(८) प्रजाजन - (दया.) ।
(९) निर्बल शरीर वाला (१०) अंगदेश वासी ।
'अंगेभ्यो मगधेभ्यः'
अ. ५.२२.१४
(११) शरीर ।
'गृहाणाङ्गनन्यप्वे परेहि'
ऋ. १०.१०३.१२, अ. ३.२.५, साम. २.१२११ , वाज.स. १७.४४, नि. ९.३३

अङ्गज्वर - अंगों में ज्वर संताप उत्पन्न करने वाला ।
'अङ्गभेदमङ्गज्वरम्'
अ. ९.८.५

अङ्गभेद - (१) शरीर में होने वाली पीड़ा ।
'अंगभेदो अंगज्वरः'
अ. ५.३०.९
(२) अंगों के फूटने की तीव्रवेदना वाला रोग ।
'अंगभेदो विसल्पकः'
अ. १९.४४.२

अंगल - अंग +र (मतुप अर्थ में) =अंगल । र् का ल् । इस शब्द का लोक में प्रयोग नहीं दीख पड़ता । अ के स्थान में म कर देने से मंगल बनता है । अर्थ है- अंगों के साथ हो सुख देने वाला जैसे दधि, अक्षत और मधु आदि ।

अंग्य - अंग या पावों से चलने वाला जीव
'ये अंस्या ये अङ्ग्याः'
ऋ. १.१९१.७

अंग्यविसल्पक - सारे अंग में फैला विसर्पक रोग
'यो अङ्ग्यो योः कर्ण्यो यो अक्ष्योर्विसल्पकः'
अ: ६.१२७.३

अङ्गर - अङ्गाराः (अङ्कानाः अञ्चनाः) जहां पर अङ्गार रखे जाते हैं वहां चिह्न पड़ जाते हैं। इसी से अङ्क से 'अङ्कार' या 'अङ्गार' बना । अकि +आरण = अङ्गार
'अङ्गिरस्वनमहिव्रत'
ऋ. १.४५.३, नि. ३.१७

अङ्गानि - (१) पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय,
(२) मंत्र के अंग । जैसे -
सहाया-साधनोपायाविभागो देश कालयोः।
'विनिपातप्रतीकारे मंत्रः पञ्चांग इष्यते'
(३) राष्ट्र के सात अंग
'स्वाम्यमात्यसुहृत् कोश राष्ट्रदुर्गबला निच ।'
-नीतिशास्त्र
(४) योग के अष्टाङ्ग- यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि
'अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विना'
वाज.सं. १९.९३, का. सं. ३८.३, तै. ब्रा. २.६.४.६

अङ्गिरस - (१) जो अंगारो में हुआ वह अंगिरस या अंगिराः है। अंगार + असुन् (२) तपस्वी (३) अग्निप्रधान -(दया.) । दे. 'अङ्गार anglo शब्द का अङ्गिरस से सम्बन्ध विचारणीय है । अंगिरसों का वर्णन निम्न ऋचा में विचारे -
'ऋतं शंसन्त ऋतु दीध्याना
दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः
विप्रं पदमङ्गिरसो दधानाः
यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ।'
ऋ. १०.६७.२
(सत्य की प्रशंसा करने वाले , धर्म मार्ग का ध्यान करने वाले, तेजस्वी, ज्ञानी मनुष्यो के वीर पुत्र विप्रपद को धारण करते हुए मोक्ष की इच्छा करते हैं (४) तेजस्वी-(दया) (५) प्राणों को वश मे करने वाला संन्यासी, (६) प्राण, (बृहदारण्यक में अङ्गिरस् शब्द का निर्वचन अंगानां रसः- अर्थात् प्राण किया गया है (७) प्राणप्रिय ब्रह्मचारी -(दया.) ।
'अंगिरसो नः पितरो नवग्वा
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः'
ऋ. १०.१४.६,अ. १८.१.५८, वाज.सं. १९.५०, तै. सं. २.६.१२.६ कौ.सू. ८१.३६, नि. ११.१९
(८) देह में रस रूप में विद्यमान प्राण ।

'गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः'
ऋ. ४.१६.८, अ. २०.७७.८
(९) अंगारों के समान दीप्तमान किरण –(दया).
(१०) विद्वान् ऋषि (११) तेजस्वी सूर्य आदि लोक ।
'भिनद् वलमङ्गिरोभिर्गृणानः'
ऋ. २.१५.८, मै.सं. ४.१४.५.: २२२.१४

अंगिरस्तमः – (१) प्राणों में मुख्यप्राण आत्मा ।
'तुश्यं ता अंगिरस्तम
विश्वाः सुक्षितयः पृथक्'
ऋ. ८.४३.१८
(२) सबसे अधिक ज्ञानी, तेजस्वी और जीवनी शक्ति से युक्त अग्नि–सूर्य ।
'सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूत्'
ऋ. १.१००.४
(३) सर्वोत्तमपुरुषों मे सर्वश्रेष्ठ (४) अग्नि ।
'अथा ते अङ्गिरस्तम
अग्ने वेधस्तम प्रियम्
वोचेम ब्रह्म सानसि,।'
ऋ. १.७५.२
(४) जीवात प्राणात् अन्यमनुष्यात् अव्यन्तोत्कृष्टः (जीव, प्राण तथा अन्य मनुष्यो से अत्यन्त उत्कृष्ट) –दया.
(५)अग्नि, आदित्य, प्राण, आत्मा आदि सबसे उत्कृष्ट अधिक तेजस्वी ।
'त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तमः'
ऋ. १.३१.२

अंगिरस्तमाः – (१) प्राणों से भी सर्वश्रेष्ठ (२) प्राणवत् अतिप्रियतमा (३) ज्ञानवती विदुषी (४) प्रकाशवती उषा (५) प्रभात बेला ।
'अंगिरस्तमा पथ्या अजीगः'
ऋ. ६.७५.१

अंगिरस्वत् – (१) प्राण के समान (२) अंगिरा के सामान ।
'अंगिरस्वत् महिव्रत
प्रस्कण्वस्य श्रुधीहवम्'
ऋ. १.४५.३, नि. ३.१७
(३) जलते हुए अंगारों के समान तेजस्वी ।
(४)तेजस्वी विद्वानों या वीरों के स्वामी ।
'तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्'
ऋ. ३.३१.१९

अंगिरस्वन्ता – (१) उत्तम विद्वानों या देह के बलवान् प्राणो से युक्त स्त्री पुरुष (२) अश्विद्वय ।
'अंगिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता'
ऋ. ८.३५.१४

अंगिरसःसूनवः – (१) अङ्गिरस के पुत्र (२) वानप्रस्थाश्रम के पुत्र संन्यासी ।
'ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्ने परि जज्ञिरे'
ऋ. १०.६२.५, नि. ११.१७
(वे ऋषि अंगिरस के पुत्र हैं और वे अग्नि के पुत्र हैं । – सा.
वे ऋषि वानप्रस्थाश्रम के पुत्र होते हैं अतः वे संन्यासी रूप में उत्पन्न होते हैं ।

अंगिरादेवः – प्रकाशमान सूर्य
'कात्लेऽयमङ्गिरा देवः'
अ. १९.५४.५

अङ्गीण– अंग वाला

अङ्गुलिः– (स्त्री) (१) अग्रगामिनी, अग्रगालिन, अग्रकारिणी, अग्रसारिणी या अङ्कना । जिस वस्तु पर अंगुलि पड़ जाती है उस पर अङ्क (चिह्न) पड़ जाता है ।
(२) अकि + ल्युट् + टाप् (करण अर्थ में) = अङ्कना, (३) अञ्चि + ल्युट् + टाप् = अङ्कना (जिससे पूजा की जाए) उदक को यह सदा आगे गलाती है । इस अर्थ में भी अङ्गुलि शब्द हुआ (अग्र + गम् + डुलि = अंगुलि) , अथवा (५) अग्र + कृ + डुलि = अंगुलि, (६) अग्र + सृ + डुलि = अंगुलि, (७) अकि (लक्षण अर्थ में) + डुलि = अंगुलि, (८) अंच् + डुलि = अंगुलि, (९) अंजू (मालिश करना) + डुलि = अंगुलि, (१०) अगि (गत्यर्थक) + डुलि = अंगुलि
दे. 'अवनि' जिसमें अंगुलि के अनेक पर्याय दिए गए हैं जैसे–अवनि, कक्ष्या, अभीशु, धूः

अङ्गूष – आङ् + घुष् + घञ् (कर्म वाच्य में) अङ्गूष । पृषोदेशदिवत् घोष का गूष । अर्थ (१) आघोष के योग्य स्तोम (स्तुति) (२) वाण जिसके छुटने पर घोष होता है ।
लोक में इसका अर्थ है–
नेवले के समान एक जन्तु को घड़ियाल का अण्डा खा जाता है ।

'एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तः'
ऋ. १.१०५.१९, का.सं. १२.१४, नि. ५.११

अङ्गो - अग +उ, सम्बोधन में प्रयुक्त अव्यय ।
'अङ्गो न्वर्यमन्नस्या'
अ. ६.६०.२

अंजसी - (१) प्रसिद्ध -(दया.) (२) नाना उत्तम गुणों से युक्त प्रजा । (३) अन्न समृद्धिसे भरी प्रजा ।
'अंजसी कुलिशी वीरपत्नी'
ऋ. १.१०४.४

अंशः - (१) प्रेरक मुख्य प्राज्ञापक (२) अग्नि या परमेश्वर ।
'त्वमंशोविदथे देव भाजयुः'
ऋ. २.१.४
(३) व्यापक सामर्थ्य और ऐश्वर्य ।
'उदिन्वस्यरिच्यते अंशो धनं न जिग्युषः'
ऋ. ७.३२.१२, अ. २०.५९.३, गो. ब्रा. २.४.३, आश्व श्रौ. सू. ५.१६.२, शां. श्रौ. सू. ७.२४.३, १२.४.२२, १८.८.१०, वै.सू. ३३.२४
(४) अंश, सब कर्मों और वृत्तियों का प्रजा में विभाजक ।
(५) अदिति का पुत्र ।
'तस्याः अंशश्च भगश्च जायेताम्'
तै.आ. १.१.९.२
'अंशो भगो वरुणो मित्रः'
अ. ६.४.२
(६) (१) अंश् (व्याप्त्यर्थक) +क्त =अष्ट (२) अश् +अच् =अंशः । अष्टमात्रः शं भवति (शरीर में व्याप्त होते ही कल्याण कारक होता है) । (३) शम् +अशुङ् +उ = अंशु (४) अंश् +अश् +उ = अंशश् + उ = अंशु । अंश की व्युत्पत्ति भी अंशु के समान ही है।
'श्रृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नः
तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः'
ऋ. २.२७.१, वाज.सं. ३४.५४, का. सं. ११.१२, नि. १२.३६

अर्थ - (१) द्युस्थानीय देवताओं में एक । वर्तमान अर्थ-भाग, हिस्सा, विषुवत् रेखा का एक अंश ।

अंशु - (१) अंश् (व्याप्त्यर्थक) +क्त = अष्ट । अष्टमात्रः शं भवति (शरीर में व्याप्त होते ही कल्याण कारक होता है) । शम् + अशुङ् +उ =अंशुः ।
'ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निसतेऽशुं'
'दुहन्तो अध्यासते गवि ।'
ऋ. १०.९४.९
(१) सोम रस, (२) किरण, (३) चन्द्रमा
'यथा देवा अंशु माप्यायन्ति'
नि. ५.११
रस सोम में व्याप्त रहता है । और उसे पत्थर से निकाला जाता है। अतः अंशु कहलाया । essence शब्द की अंशु से समानता विचारणीय है ।
'सोमस्येवांशुं प्रतिजागराहम्'
ऋ. १०.१४९.५, निः १०.३३

अंशुमती - (१) परस्पर विभाग या फूट वाली प्रजा, (२) अन्न वाली भूमि, (३) सूक्ष्म प्राणों से युक्त लिंगमय देह, (४) कर देने वाली प्रजा, (५) बहुत कोयलों वाली ओषधि ।
'अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखाः'
अ. ८.७.४
'अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठत्'
ऋ. ८.९६.१३, अ. २०.१३७.७, साम १.३२३. का. सं. २८.४, ऐ. ब्रा. ६.३६.१२, गो ब्रा. २.६.१६ तै. आ. १.६.३, आश्व श्रौ. सू. ८.३.३३, वै.सू. ३२.३३

अंसः- कंधा ।
'अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम्'
ऋ. १.३२.५, मै.सं. ४.१२.३: १८५.९, तै.ब्रा. २.५.४.३

अंसत्र - (१) कन्धो की रक्षा करने वाला कवच, (२) कवचवत् रक्षक इन्द्र ।
'अंसत्रं सोम्यानाम्'
ऋ. ८.१७.१४ साम १.२७५
अंहस् +त्रा +क =असत्र । वर्ण व्यापत्ति से हवा स हो गया । अर्थ (१) धनुष, (२) कवच। अंहस् (दुरति या दुष्कृत) से त्राण करने वाला ।
'अंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम्'
ऋ. १०.१०१.७ नि. ५.२६

अंसत्रकोशः - (१) अंहस् +त्रा +क = अंसत्र । धनुष ही जहां कोश अर्थात् जल भरने का डोल हो । कोश का अर्थ अंग रक्षक है । (२) कोशस्थानीय

धनुष या कवच आदि ही जहां कोश हो ।

अंस्य - कन्धों के बल सरकने वाला जीव ।
'ये अंस्या ये अंग्याः'
ऋ. १.१९१.७

अस्वगता - अपने गृह या सम्पत्ति से हाथ धो बैठना ।

अंह -प्राप्त करने योग्य ।
'अग्निरुक्थेष्वंहसु'
अ. ६.३५.२

अंहतिः - हन् +अति =अंहति ।
'हन्ते रहं च' उणादि ४.६२ से हन का अंह हुआ है ।
अंहतिः त्यागरोगयोः - हैमः
अर्थ -(१) रोग, बीमारी चिन्ताक्लेश ।
'स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिः'
ऋ. १.९४.२, नि. ४.२५ (इस यजमान को रोग नहीं खाता)

अंहस् - हन् धातु का 'हन्तेरहं च' से अंह आदेश । अर्थ (१) त्याग, (२) रोग । (३) पाप जो मार डालता है ।

अंहसस्पतिः - (१) मलमास, (२) अधिकमास,
'उपयामगृहीतोऽसि अंहसस्पतये त्वा'
वाज.सं. ७.३०

अंहस्वान् - अंहस् +वतुप् =अंहस्वत् ।
'अंहस्' हन् धातु से बना है । अर्थ है- पाप करने वाला, पापी ।
अंहुः-(१) प्राप्त (२) कर ।
'अंहो राजन् वरिवः पूरवे कः'
ऋ. १.६३.७
प्राप्तव्य राष्ट्र और प्रजाओं के पालन तथा परिचरण के लिए (३) पाप, (४) पापी
'मित्रों अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।'
ऋ. ५.६५.४

अंहुभेदी - (१) पाप को भेदः करने वाली (२) स्वच्छ (३) दुष्टों से रहित प्रजा ।
'यदस्या अहुं भेद्या'
अ. २०.१३६.१, वाज.सं. २३.२८. गो.ब्रा. २.६.१५, श.ब्रा. १३.५.२.७. आश्व श्रौ.सू. ८.३.२८ शां.श्रौ.सू. १२. २४.२.२.२., १६.४.३ वै.सू. ३२.३१, ला.श्रौ.सू. ९.१०.५
(४) पाप का नाश करे वाली प्रजा या पृथ्वी ।

अंहुर - 'अंहुरोऽहंस्वान्, अहरणम् इत्यदि अस्य भवति' । (अंहुर का अर्थ अंहस्वान् अर्थात् पापी है । अहंस् +र =अंहुर
'सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः'
'तासामेकामिदभ्यंहुरोगात्'
ऋ. १०.५.६, अ. ५.१.६, नि. ६.२७
ऋषियों ने सात मर्यादाएं बतायी है । उनमें से एक का भी उल्लंघन करने वाली पापी है ।

अंहुस् - हन् धातु से ही 'हन्ते रंह च' से अंहस् बना है । अर्थ (१) पाप, (२) रोग

अंहूरण - (न) पापरूपी कूप । (२) अघ (३)संकट, (४) पाप
'पुरा त्वांहूरणाद्भुवे'
अ. ६.९९.१

अंहूरणा - दुःख और विपत्ति डालने की इच्छा ।
'यो अस्मभ्यमंहूरणा चिकित्सात्'
अ. ९.२.३
(२) आने वाले प्राणियों से रण और रमण क्रीड़ा आदि करने योग्य भूमि (३) पापमयी तमोमयी प्रकृति ।
'उर्वी सती भूमिरंहूरणा भूत्'
ऋ. ६.४७.२०

अंहोमुच् - (१) पापों या कष्टों से छुड़ाने वाला ।
'अंहोमुचे प्रभरे मनीषाम्'
अ. १९.४२.३, तै.सं. १.६.१२.३, मै. सं. ४.१२.३:१८२.१३ का सं .८.१६

अंहोयुः - पापों को दूर करने वाला ।
'अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि'
ऋ. ५.१५.३

अच - धारण करना ।
'यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि'
अ. १४.१.३८

अचक्रा - स्वयं कोई कार्य न करने वाला ।
'अचक्रया स्वधया वर्तमानम्'
ऋ. १०.२७.१९

अचका स्वधा - (१) चक्र रहित आकाश में थमे रहने की पक्षियों की क्रिया (२) अन्य कारण सामग्री से रहित स्वसत्ता को धारण करने वाली चित् शक्ति (३) चक्राकार व्यूह के बिना सेना ।
'अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णः'
ऋ. ४.२६.४

अचक्रुष् – अपराध न करने वाला, निपराधी ।
'न त्वामचक्रुषे वयम्'
अ. ५.१४.९

अचक्रे – स्वतः कार्य करने में असमर्थ द्यावा पृथ्वी का विशेषण (२) चक्र रहित रथ के समान स्थिर (३) शिथिल ।
'अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे'
'द्यावाक्षामा मदतामिइन्द्र कर्मन्'
ऋ. १.१२१.११
(हे इन्द्र, आकाश और पृथ्वी दोनों विशाल बलवती और स्थिर स्वतः कार्य करने में असमर्थ होते हुए भी सूर्य के प्रकाश रूपी कार्य में प्रसन्न और गुप्त हो जाते हैं) ।

अचथः – दूर करो, प्राप्त करो, ग्रहण करो ।
'वृक्षं सं च वि चाचथः'
ऋ. ५.७८.६

अचरन् – (१) स्थिर सूर्य (२) स्थिर आत्मा ।
'षड् भारान् एको अचरन् बिभर्ति'
ऋ. ३.५६.२

अचरन्ती – अचरन्त्यौ (विचलित न होती हुई (१) द्यावापृथिवी (२) मातापिता ।
ऋ. १.१८५.२, मै.सं. ४.४१४.७: २२४.११, तै.ब्रा. २.८.४.८

अचरमाः – (१) अनन्त मरुद्गण (२) चक्र व्यूह बनाकर रहने वाले जिनमें कोई भी अन्तिम या अरक्षित प्रतीत न हो ।
'अरा इवेदचरमा अहेव'
ऋ. ५.५८.५, मै.सं. ४.१४.१८:२४७.१४, ऐ.ब्रा. ७.९.८, तै.ब्रा. २.८.५.७, आश्वश्रौ.सू. २.१७.१५, ३.७.१२

अच्छ – (१) सामने ।
'आसम्राणासः शवसानमच्छ'
ऋ. ६.३७.३, नि. १०.३
(२) अच्छा ।
'उप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ'
ऋ. ६.६७.२
(३) तरफ, ओर ।
'प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्'
ऋ. २.१९.३

अच्छा – (१) सुन्दर, (२) सामने ।
'प्र वोच्छा जुजुषाणासो अस्थुः'
ऋ. ४.३४.३, नि. ६.१६
(३) पाने के लिए (आप्तुम्) शाकपूणि ।
(४) अपि (भी) (–दया)
'प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा'
ऋ. ३.३३.५, नि. २.२५
(५) लक्ष्य कर ।
'श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्'
ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४

अच्छागिर – सुभाषित वचन –(दया.) (२) लक्ष्य कर (३) उत्तम ।
'तां त्वाच्छावदामसि'
अ. ७.३८.३

अच्छान् – अचच्छदत् । छद् (छाना) धातु का रूप । अर्थ छाता है । वश में करना है ।
'विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्'
ऋ. १०.३४.१, नि. ९.८

अच्छायः – (१) छाया अन्धकार या मृत्यु से रहित (२) तेजोमय अमृत परमेश्वर ।
'बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा'
ऋ. १०.२७.१४

अचारुक – अरमणीय, कष्टदायी
'योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य'
अ. २०.३४.१२

अचिकित्वान् – ज्ञानी शिष्य
'अचिकित्वान् चिकितुषश्चिदत्र'
ऋ. १.१६४.६

अचित – अपुष्ट, निर्बल (२) मूर्ख, ज्ञानरहित ।
'सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष
ऋ. १०.८७.१२, अ. ८.३.२१
'न वां निण्यान्यचिते अभूवन्'
ऋ. ७.६१.४
(३) नहीं चेतने वाला

अचित्त – (१) अचिन्तनीय ब्रह्म (२) चेतनता रहित अन्न ।
'अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः'
ऋ. १.१५२.५
(३) चित्त रहित, (४) आज्ञा पर चित्त न देने वाला (प्राप्त दरिद्रा वस्थः –दया.)
'तपो वसो चिकितानो अचित्तान्'
ऋ. ३.१८.२ का.सं. ३५.१४

अचित्तं द्वेषः – चित्त रहित निर्दयता या अज्ञान–युक्त

द्वेष
'अचित्तं यावय द्वेषः'
ऋ. ६.४६.१२

अचित्ति – अज्ञानी, हृदयहीन
'अत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने'
वाज सं. २९.६, तै.सं. ४.१.७.३, मै.सं. २.१२.५: १४९.४, का. सं. १८.१६
(२) असञ्चित धन (३) पाप से प्राप्त धन, (४) अचेतन, जड़ ।
'चित्तिमचित्तिं चिनवद् विविद्वान्'
ऋ. ४.२.११, तै. सं. ५.५.४.४, का. सं. ४०.५
(५) आत्मिक अज्ञान (६) प्रजास्थ अज्ञान ।
'अत्यचित्तीरति द्विषः'
अ. २.६.५.
(७) चेतना या ज्ञान का अभाव (८) मोह ।
'सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः'
ऋ. ७.८६.६

अचित्ती – (१) ज्ञान रहित , (२) चेतना रहित ।
'अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने'
ऋ. ४.५४.३, तै.सं. ४.१.११.१, मै.सं. ४.१०.३: १४९.१६

अचिष्टुः – पूजनीय ।
'अपाकोऽचिष्टुर्यशसेपुरूणि'
वाज. सं. २०.४४, मै.सं. ३.११.१: १४०.१२, का. सं. ३८.६, तै. ब्रा. २.६.८.४.

अच्छिद्य माना – (१) अविच्छिन्न, नहीं टूटने वाली, सुई के विशेषण के रुप में प्रयुक्त ।
'सीव्यत्वपः सुच्याच्छिद्यमानया'
ऋ. २.३२.४, अ. ७.४८.१, तै. सं. ३.३.११.५, मै.सं. ४.१२.६: १९५.१ , का. सं. १३.१६, साम मं. ब्रा. १.५.३, आप. मं. पा. २.११.१० नि. ११.३१
(२) बिना विच्छेद के टूटे बिना, अटूट (३) नहीं घटने वाली ।
'अच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते'
अ.८.२.१

अच्छिन्नतन्तु – विच्छेदरहित, (२) अमर, अविनाशी, (३) व्यापक यज्ञरूप प्राणमय आत्मा (४) कभी न टूटने वाला सन्तान रूप प्राकृतिक तन्तु ।
'अच्छिन्नं तन्तुमनु संतरेम'
अ. ६.१२२.१, तै. आ. २.६.१

अच्छिन्नपत्रा – जिसके बाजू छिन्न भिन्न न हुए हों, (२) रथ आदि के टूटे बिना ।
'अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम्'
ऋ. १.२२.११
(३) पत्र पुष्प से लदी लता
'अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनुवीक्षस्व'
वाज.सं. १३.३०, मै.सं. २.७.१६: १००.५, श.ब्रा. ७.५.१.८

अच्छिद्र – छिद्र या दोष से रहित ।
'युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः'
ऋ. १.१५२.१, मै.सं. ४.१४.१०: २३१.७, तै.ब्रा. २.८.६.६

अञ्जन् – अञ्ज् +शतृ =अञ्जन्
पहुंचाता हुआ, पहुंचाने वाला, अग्नि का विशेषण ।
'समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनाम्'
वाज.सं. २९.१, तै.सं . ५.१.११.१, मै.सं. ३.१६.२: १८३.१२ का.सं. (आश्व) ६.२ श.ब्रा. १३.२.२.१४, तै.ब्रा. ३.९.४.८, आप.श्रौ.सू. २०.१७.३ नि. ३.२०
अंग्रेजी का engine शब्द अञ्ज् धातु से बना प्रतीत होता है।

अञ्जनि – (१) सिक्त या मृष्ट करते हैं– (२) प्रकाशित करते हैं । – दया. ।
'अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः'
'वनस्पते मधुना दैव्येन'
ऋ. ३.८.२१. मै.सं. ४.१३.१: १९९.२, का.सं. १५.१२, तै.ब्रा. ३.६.१.१ ऐ.ब्रा. २.२.१.कौ.ब्रा. १०.२, आश्व श्रौ .सू. ३.१.८ नि. ८.१८

अञ्जस् – तत्त्व ज्ञान प्रकाश ।
'यो अञ्जसानुशासति'
ऋ. ६.५४.१

अञ्जसी – ज्ञान को प्रकाशित करने वाली वाणी ।
'उत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम्'
ऋ. १०.३२.७

अञ्जान – चमकता हुआ अग्नि (२) प्रिय रूप प्रकट करता हुआ ।
'अञ्जानो अजरैरभि'
ऋ. २.८.४

अञ्जना – प्रकट, व्यक्त करती हुई ।

'अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि'
ऋ. ४.४८.९ वाज. स. १७.९७, का सं. ४०.७, आप श्रौ. सू. १७.१८.७

अञ्जि – (१) रूप, (२) पोशाक, (३) चिह्न ।
'समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते'
ऋ. ८.२०.११
(४) दीप्तियुक्तचिह्न (५) गमन ।
'समानमञ्जि अञ्जते शुभेकम्'
ऋ. ७.५७.३
(६) वीर्य, (७) विद्या और न्याय का प्रकाश (८) शुक्लवर्ण
'समञ्जि चारया वृषन्'
वाज. सं. २३.२१.

अञ्जिन् – (१) जिससे पदार्थ के प्राण व्यक्त हो (२) प्रकाशित आभूषण (मैक्समूलर ।)
'ये पृषतीभिर्त्रटष्टिभिः'
'साकं वाशीभिरञ्जिभिः'
ऋ. १.३७.२
(३) नाना विद्याओं को प्रकाशित करने वाला विद्वान् ।
अञ्जिन् का प्रथमा एक वचन में रूप अर्थ–गतिशील
'ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिः'
ऋ. १.३६.१३, वाज.सं. ११.४२ साम. १.५७, तै.सं. ४.१४.२, मै.सं. २.७४, ७.८१४, का.सं. १५.१२, १६.४, श.ब्रा. ६.४.३.१०, तै.ब्रा. ३.६.१.२, महा.ना.उप. २०.६

अञ्जू – (१) व्यक्ति (२) लक्षण (३) कान्ति (४) गति ।

अच्छेक्ति – अच्छी उक्ति
'मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनाम्'
ऋ. १.६१.३ अ. २०.३५.३

अच्युतच्युत् – (१) न चूकने वाले स्थिर, दृढ़ (२) शत्रुओं को भी उखाड़ देने वाला ।
'अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठः'
अ. ५.२०.१२
(२) दृढ़ से दृढ़ पदार्थों, दुर्गों और शत्रुगण को भी गिरा देने वाला– राजा ।
(३) इन्द्र ।
'यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.९.अ २०.३४.९
(४) समस्त पदार्थों, को कालबल से विनाश करने वाला (५) दृढ़तम राज्यो को भी उखाड़ने में समर्थ राजा ।

अच्युतानि – (१) न गिरने वाले जल, (२) अच्युत, दृढ़, न क्षीण होने वाले, जमकर लड़ने वाले बलवान् शत्रु सैन्य (३) गतिरहित जड़ पञ्च भूत, (४) प्रकृति के परमाणु
'त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतानि'
ऋ. ३.३०.४

अचेतन, अचेतानः – (१) जिसे बुद्धि न हो, (२) अविद्वान् ।
'अचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः'
ऋ. ७.४.७, नि. ३.२

अचेताः – (१) चेतना रहित, (२) अज्ञानी ।

अचोदाः – अचोदस् (१) अन्यो से शासित या प्रेरित न होने वाला (२) स्वतन्त्र (३) विचरणशील,।
'अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः'
ऋ. ९.७९.१, साम. १.५५५

अज – गमनार्थक अज् धातु से अच् प्रत्यय लगाकर अज बना । अर्थ (१) नित्यगमनशील । नित्य चलने वाला अश्व है । इसीसे वह 'अजाश्व' कहलाता है । अज +ल्युट् =अजन (२) आदित्य जैसे 'अज एकपात्' (३) क्रियाशील –दया. । वेद में अज धातु फेंकना अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है (४) सूर्य की किरणें जो क्षिप्त प्रक्षिप्त होती हैं ।
लौकिक अर्थ–(१) ब्रह्मा, (२) अजन्मा, (३) भेड़ा (४) मेष राशि, (५) एक प्रकार का अन्न (६) चन्द्रमा का देव का नाम, (७) अश्व, (८) बकरा । अजगर सर्प जो बकरे को निगल जाता है ।
(अज +गृ +अच्)
'अस्या ऊ षुण उप सातये भुवः'
'अहेडमानो ररिवाँ अजाश्व ।'
ऋ. १.१३८.४, नि. ४.२५
(५) निरन्तर, (६) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला सैनिक ।
'अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च'
ऋ. ७.१८.१९
(७) गतिमान या सबको गति देने वाला–सूर्य ।
(८) अजन्मा परमेश्वर

'अजो न क्षां दाधार पृथिवीम्'
ऋ. १.६७.५
(९) ब्रह्म (१०) बकरा (११) अजवायन (१२) अजमोदा नामक ओषधि, (१३) अस्त्र शस्त्र फेंकने वाला वीर सैनिक ।
'अजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैः भेषजं मधु'
वाज. सं. २१.२९, मै.सं. ३.११.२: १४१.२ तै. ब्रा. २.६.११.१
'अजःपुरो नीयते नाभिरस्य'
ऋ. १.१६३.१२, वाज.सं. २९.२३, तै.सं. ४.६.७.५, का.सं. (अश्व) ६.३

अजएकपात् – (१) एक चरण वाला अज (२) अस्त भाव की अवस्था मे आदित्य । गत्यर्थक अज धातु है । अतः अज द्विपद भी है । ब्रह्मा का एक चरण है । जैसे अग्नि पादः, वायुः पादः, आदित्य पाद, दिशः पादः । इसी प्रकार अज भी एक पाद है ।
(२) एक अंश से (पादेन) रक्षा करता है । (पाति) इस अर्थ में भी अज एकपात् होता है ।
(३) अथवा ईश्वर एक अंश से (ज्योति रूप आत्मा) संसार की रक्षा करता है, अतः वह अज एकपात् है । (४) इसी प्रकार सोते समय प्राणात्मा द्वारा अन्न को पचाने वाला अज भी एकपात् है । (५) एक पाद या अंश से पीता है । इस अर्थ में भी 'एकपात' है । (६) सूर्य संसार का जल सुखाते हैं । इसलिए वे अज 'एकपात्' हुए । (७) ईश्वर का अंश-जीव के रूप में विराजमान होकर 'अज एकपात' है । (८) ब्रह्मन् (९) आदित्य ।
'एकंपादं नोत्खिदति'
'सलिलात् हंस उच्चरन्'
अ. ११.४.२१
'सचेत् तवमुद्धरेत् अङ्ग'
'न मृत्युः नामृतं भवेत्'
आदित्य अर्थात् हंस सलिल से (सन्मात्र ब्रह्म में लीन जगत से) जीवभूत एक पाद को ऊपर नही उठाता । अगर वह कहीं अचानक उठा दे तो न मृत्यु हो न अमृत ।
'एकांशेन स्थितं जगत्' –गीता
(९) आदित्य के १२ प्रकारों में एक 'अज एकपात' भी है । वह अस्त भागवगत आदित्य है ।

अजकाव – अजक अर्थात् भेंड़ बकरियों के समान छोटे जन्तुओं को खा जाने वाला – अजगर आदि ।
'अजकावं दुर्दृशीकं तिरोदधे'
ऋ. ७.५०.१
(२) आत्माओं के समूह का रक्षक परब्रह्म

अजगन् – अजगः (गया) । गम् (जाना) के लङ् में शप् काश्लु और द्वित्व आदि होकर 'सि' का लोप, 'म' का 'न' होकर अजगन् बना ।
'यन्मातृरजगन्नपः'
ऋ. ३.१.२, साय. १.५३, नि. ४.१४,

अजगर – (१) अज +गृ +अच् =अजगर बकरे को निगल जाने वाला ।
'बलायाजगरो वसूनां'
वाज.सं. २४.३८, तै.सं. ५.५.१४.१, मै.सं. ३.१४.१९: १७६.१०, का.सं. (अश्व).७.४
(२) अज अर्थात् सूर्य को निगल जाने वाला मेघ (३) अजगर के समान स्थूल
'उत्सा अजगरा उत'
अ. ४.१५.७,९

अजनि – (१) वेग से गमन करने वाला वायु, (२) अज आदि पशुओं या तीव्र वेग से जाने वाले रथो को चलाने वाला (३) न जनी हुई अखण्डित ब्रह्माचारिणी
'अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यः'
ऋ. १.१३४.४

अजग्धपाप्मा – जिसका पाप नष्ट नहीं हुआ है ।
'सर्वो वा एषोऽजग्धपाप्मा यस्यान्नं नाश्नन्ति'
अ. ९.६.२६

अजपञ्चौदन – प्रजापित के स्वरूप का वर्णन (२) मरे बकरे के मांस और भात का भोजन ।

अजपाल – बकरी का पालक ।
'तेजसे अजपालम्'
वाज. सं. ३०.११. तै. ब्रा. ३.४.१.९

अजमायुः – अजन्मा आत्मा और परमेश्वर के विषय में प्रवचन करने वाला (२) अजवत् बोलने वाला मेढ़क ।
'गोमायुरेकोः अजमायुरेकः
ऋ. ७.१०३.६

अजर – (१) कभी जीर्ण न होने वाला काल ।
'त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वम्'

ऋ १.१६४.२, अ.९.९.२, १३.३.१८,तै. आ. ३.११.९, नि. ४.२७
(एक चक्र वाला आदित्य तीन ऋतुओं से युक्त अजर एवं किसी के आश्रित नहीं रहने वाले काल का निर्माण करता है ।)
(२) स्वच्छ, विशुद्ध, पवित्र ।
'हविष्मान्तमजरं स्वर्विदि'
ऋ. १०.८८.१, ऐ.ब्रा. ५.८.११, कौ.ब्रा. २३.३, नि. ७.२५
(३) अंगुलि । अंगुली सदा नवीन रहती है ।
'दशाभीशुम्यो अर्चताजरेभ्यः'
ऋ. १०.९४.७, नि. ३.९
(४) अजरण धर्मा – जो वृद्ध न हो । जिसे जरा न व्यापे (५) संवत्सर ।
'ता मे जराय्वजरं मरायु'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५

अजराः अग्नयः – (१) अजन्मा परमेश्वर में रमण करने हरि ज्ञानी पुरुष (२) परमेश्वर मे अपने को समर्पित करने वाले, (३) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले नायक में रमण करने वाले वीर
"भक्तमभक्तमवो व्यन्तः'
'अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः'
ऋ. १.१२७.५

अजरयू – (द्वि.व.) जरादिदोषरहित स्त्रीपुरुष (२) अश्विद्वये (३) शत्रुओं के जीवन और बल की हानि करते हुए ।
'वि पर्वतां अजरयू अयातम्'
ऋ. १.११६.२०

अजबभ्रु – अन्नों या बकरी आदि क्षुद्र पशुओं का पोषक सिलाची लाक्षा औषधि ।
'अजबभ्रु पितातव ।'
ऋ. ५.५.८

अजवस – वेगरहित ।
'अजवसोः जविनीभिः विवृश्चन्'
ऋ. २.१५.६

अजश्रृंगी – (१) आत्मशक्ति, (२) काकड़ासींगी, अजश्रृंगी नामक ओषधि जिससे जल में फैलने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं।
अजश्रृंगी वानहरा, कास, श्वास, राजयक्ष्मा, वमन, तृष्णा, अरुचि, अतिसार चक्षुर्दोष हृदयरोग, अर्श, शोष, अतिकुष्ट आदि का नाश करती है । इसके जलाने से तीक्ष्ण गंध होता है । और मच्छड़ आदि भाग जाते हैं ।

अजस्रम् – (अ) (१) सदा, सर्वदा ।
'तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रम्'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै.सं. २.७.९:८६.६, का.सं. १६.९, श. ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २.११.२१

अजस्त – (१) अहिंसित, (२) अविनाशी स्वरूप आत्मा
'प्रजापतिर्वै नृमणाः अग्निरजस्रः'
श.ब्रा. ६.७.८४.४
'इहैव त्वमजस्र एध्यग्ने'
अ. ७.७८.१

अज्म – अज (चलना) धातु से अजति । (१) गन्तव्य मार्ग (अज्यते असौ–इस पर चला जाता है ।) (२) स्वर्ग– पथ–दुर्ग (३) अन्तरिक्ष मार्ग
'यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः'
ऋ. १.१६३.१०, वाज.सं. २९.२१, तै.सं. ४.६.७.४, का.सं. (अश्व)६.३, नि. ४.१३. पंच.ब्रा. १.७.६, तै.आ. ३.१०.४, आप.श्रौ. सू. १४.१२.१
'समानमज्मं पर्येति जागृविः'
ऋ. ३.२.१२
(३) जल, (४) बलयुक्त अस्त्र ।
'ये पातयन्ते अज्मभिः'
ऋ. ८.४६.१८
(५) प्राप्त करने योग्य ।
'चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम्'
ऋ. ६.४.४, तै. सं. १.३.१४.७
(५)अजनि, आजि–निरुक्त । अजानी गच्छन्ति यं मार्गम् –दया. (६) अज्मं संग्रामम् –महीधर (७) उथल पुथल कर देने वाला प्रयाण (८) वायु का झोंका (९) प्रापक क्षेपक आदि अस्त्र ।
'येषामज्मेषु पृथ्वी'
ऋ. १.३७.८

अज्यमाना – (१) वृषभ आदि द्वारा कामना की गई या निषिक्त की हुई गौ (२) ब्रह्मवीज से युक्त होती हुई प्रकृति ।
'स्तरीर्यत् सूत सद्यो अज्यमाना'
ऋ। १०.३१.१०

अज्र – (१) गमनशील (२) कम्पायमान
'गिरींरज्रान् रेजमानां अधारयत्'

ऋ. १०.४४.८, अ. २०.९४.८
(३) आश्रमी, (४) घूमने फिरने वाला, 'घासे अज्राणाम्' (घास में घूमने फिरने वालों का) (४) ब्रह्माण्ड जिससे संसार की उत्पत्ति हुई (५) अण्डा (६) शिव का एक नाम, (७) पक्षी, (८) मछली, (९) साँप (१०) ब्रह्मा (११) वेगवान्
'गिरींरज्रां अपः स्वर्वृषत्वना'
ऋ. ८.१५.२, अ २०.६१.५, ६२.९
(११) जगति प्रक्षिप्तः (जगत् में फेंकी गयी किरण) -(दया.) (१२) ज्ञान-साधनों का अनुष्ठान (१३) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला बलवान् पुरुष ।
'आ सूर्यो बृहतःस्तिष्ठदज्रान्'
ऋ. ४.१.१७
(१४) न पराजित होने योग्य शत्रुसैन्य या शत्रुनगर ।
'अज्रे जिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनम्'
ऋ. ८.२७.१८

अजा - अजौ (बकरे) (२) बकरा बकरी के समान सदा एकत्र रहने वाले-स्त्री पुरुष (३) अश्विद्वय (४) हानि पहुंचाने वाले शत्रु को उखाड़ फेंकने वाली सेना के समान, (५) दो आत्माओं के समान परस्पर उपास्य उपासक रूप से एक दूसरे के ऊपर प्रेमयुक्त ।
'अजेव यमा वरमा सचेथे'
ऋ. २.३९.२

अजातशत्रु - (१) इन्द्र, (२) शत्रुरहित, (३) अप्रति द्वन्दी ।
'अजातशत्रुमजरा स्वर्वती'
ऋ. ५.३४.१

अजानिः- (१) बिना पत्नी का पुरुष ।
'पतिमुत जायामजानये'
अ. ६.६०.१

अजामि - (१) जामि का अर्थ स्वसा है । जामिः स्वसृकुलस्त्रियाँ (अमर-कोष) अतः अजामि का अर्थ 'जामि के साथ न करने वाला कार्य'
(२) असमान जातीय के अर्थ में 'जामि' शब्द आया है । (३) मैथुनादि कर्म ।
'आघाता गच्छानुत्तरा युगानि
यत्र जामयः कृणवन् अजामि
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यम्
इच्छस्व सुभगे पतिं मत्'
ऋ. १०.१०.१०, अ. १८.१.११, नि. ४.२०
ऐसे युग आगे आयेंगे जब भगिनी या स्वकुल की स्त्रियां भी अपने भाईयों या परिवार वालों के साथ मैथुनादि कार्य (अजामि) करेंगी । हे बहन ! मेरे सिवा किसी अन्य योग्य पुरुष का वरण कर और मैथुन के निमत्त अपने बाहुओं को तकिया बना ।
(३) शत्रु ।
'अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरत्'
ऋ. ७.८२.६
(३) अबन्धुः, पराया ।
'स नो अजामींरुत वा विजामीन्'
ऋ. १०.६९.१२
(४) दोष रहित ।
'यमीर्यमस्य बिभृयादजामि'
ऋ. १०.१०.९, अ. १८.१.१०

अजायमानः - स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ ।
'अजायमानो बहुधा विजायते'
वाज. सं. ३१.१९, तै. आ. ३.१३.१

अजाश्व - (१) पशुओं से समृद्ध (२) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला (३) भेड बकरियों और अश्वों का स्वामी (४) पूषा जिसका अश्व गमन शील है । (५) क्रियाशील इन्द्रियों वाला ।
'अहेडमानो ररिवां अजाश्व'
ऋ. १.१३८.४ नि. ४.२५,
'आजाश्वः पशुमा वाजपस्त्यः'
ऋ. ६.५८.२, मै.सं. ४.१४.१६: २४४.२, तै.ब्रा. २.८.५.४

अज्ञातकेतः - अज्ञात कुलशील (२) अज्ञात स्थान में रहने वाला (३) ज्ञानशून्य ।
'अज्ञातकेता वृजिना अभूवन'
ऋ. ५.३.११

अज्यानि - हानि रहित समृद्धि
'तेषामज्यानिं यतमो वहाति'
अ. ६.५५.१

अज्ञातयक्ष्म - (१) अलक्षित कीट रोग ।
'परा तमज्ञातं यक्ष्ममधराञ्चं सुवामसि'
अ. ६.१२७.३
(२) अप्रकटा वस्था वाला यक्ष्मा रोग ।
'अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्'

ऋ. १०.१६१.१, अ. ३.११.१,२०.९६.६

अञ्जानः - द्विव्यगुणों को प्रकट करता हुआ । अञ्ज +शानच् =अञ्जान

'अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते'

ऋ. ३.१०.४

अजागार - अजा +आगार =अजागार । प्रकृति का आगार अर्थात् आश्रयभूत आत्मा। 'अजगर' भी पाठ है जिसका अर्थ (१) सर्प या (२) अभोक्ता आत्मा है।

'अजागार केविका'

अ. २०.१२९.१७

अजिगात्- गया ।

'अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्'

ऋ. १.३३.१३, मै.सं. ४.१४.१३: २३७.१३, तै.ब्रा. २.८.४.४

(इस इन्द्र का वज्र शत्रुओं का लक्ष्य कर गया)

अजिन - (१) खाल, चमड़ा ।

'एषुनह्य वृषाजिनम्'

अ. ६.६७.३

(२) मृगछाला, (३) अजेय राष्ट्र ।

'दूर्शेभिरजिनैरुत'

अ. ४.७.६

अजिन संधः - (१) चर्म के पदार्थों को सीने जोड़ने वाला कारीगर (२) अजेय राष्ट्रों को भी चर्मो के समान परस्पर सन्धिकराने में समर्थ ।

'ऋभुभ्योऽजिन संधम् ।'

वाज सं. ३०.१५, तै. ब्रा. ३.४.१.१३

अजिर - गति देने वाला (२) गमन करने वाला यन्त्र या पशु, (३ अजीर्ण बालक, नवयुवक, (४) अक्षतवीर्य (५) अखण्ड व्रत-पालक शिष्य

'वायू रथे अजिरा धुरिवोढवे वहिष्ठ धुरिवोढवे

ऋ. १.१३४.३

अश्वों के प्रेरक शकट को दूर देश में ले जाने के लिए गति देने वाले या गमन करने वाले पशुओं या यन्त्रों को अजिरस रथ के धुरे में लगाता है । अथवा, ज्ञानवान् नवयुवक ब्रह्मचारी शिष्यो को (अजिरा) संसार भर ढोने के लिए ज्ञानशक्ति धारण करने के कार्य में सन्मार्ग में नियुक्त करता है ।

(६) निरन्तर अथक चलने वाला ।

'नम आशवे चाजिराय च ।'

वाज. सं. १६.३१, तै.सं. ४.५.५.२, मै.सं. २.९.५: १२४.१४, का.सं. १७.१४

(६) (अ.) अति शीघ्रता से ।

'खादामून खदिराजिरम्'

अ. ८.८.३

(८) वेग से जाने वाला (९) शरीर की दुर्बलता से रहित ।

'बाधते तमो अजिरो न वोढा'

ऋ. ६.६४.३

अजिर शोचिः - (१) नहीं नाश होने वाली दीप्ति से युक्त., (२) अग्निवत् अविनाशी कान्ति वाला (३) अप्रकाश स्वरूप आत्मा ।

'गिरा वाजिरशोचिषम्'

ऋ. ८.१९.१३

अजिरशोचीः - (१) अविनश्वर, (२) तेजस्वी

'जीरा अजिरशोचिषः'

ऋ. ९.६६.२५, २.६६०

अजिराधिराजौ - अजिर और अधिराजा अर्थात् शत्रु का प्रतिस्पर्धी राजा और उससे भी अधिक बल शाली मध्यस्थ राजा, (२) मित्र राजा और पार्ष्णिग्रह ।

'अजिराधिराजौ श्येनौ'

अ. ७.७०.३

अञ्जिव - प्रकटकामी ।

'अस्याः कमलमञ्जिवम् ।'

अ. ८.६.९

अजीगः - (१) प्राप्त होता है । (२) निकट जाता है ।

'शुचिर्वांस्तोमो भुरणावजीगः'

ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१

(२) अगारीः (गिलसि)-निगलता है। वर्तमान अर्थ में गृ (निगलना) का लुङ् में प्रयोग ।

'आदिद् ग्रसिष्ठ ओषधरजीगः'

१.१६३.७, वाज.सं. २९.१८, तै.सं. ४.६.७.३, नि. ६.८

अजीता - वह सभा जो कभी जीती न गई हो ।

'इन्द्राण्येतु प्रथमाजीता'

अ. १.२७.४

अजीतिः - (१) कभी पराजित न होने वाली (२) शत्रु को विजयी न होने देने वाला ।

'अजीतयेऽहतये पवस्व'

ऋ. ९.९६.४

अजीजनत् – जन् (उत्पन्न करना) के लुङ् का रूप। उत्पन्न किया।
'अजीजनत् शक्ति भी रोदसिप्राम्'
ऋ. १०.८८.१०, नि. ७.२८

अजीवन – आजीविका, (२) जीवन रहित।
'योऽत्रासदजीवनः'
अ. १८.२.३०

अजुरः – अविनाशशील (२) सदाबलयुक्त (३) जरा रहित।
'अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरम्'
ऋ. ८.१.२, अ. २०.८५.२, साम. २.७११

अजुर्यः – (१) जरारहित, (२) बलवान्, (३) जवान्।
'अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रवः।'
ऋ. १०.९४.१२
'वृणीतेश्रुष्टिम् राजेवाजुर्यम्'
ऋ. १.६७.१
(२) अविनाशी (३) नित्य।
'विश्वा अजुर्ये दयसे विमायाः'
ऋ. ६.२२.९, अ. २०.३७.९
'नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्'
ऋ. १.१४६.४

अजुर्या उक्षणादेवाः– (१) अविनाशी, जल्दि से सेचन करने में समर्थ कान्तिमान् सूर्य की किरणें (२) अजर बरसाने वाले देवगण कभी जीर्ण न होने वाले सुख का सेचन और देह को धारण करने वाले कान्तिमय कामना शील प्राण।
'प्राञ्चो मदन्ति उक्षणो अजुर्या'
देवानमनुहि व्रतागुः।'
ऋ. ३.७.७

अजुवत – सेवन किया, आस्वादित किया।
'उत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम्'
ऋ. २.३७.४

अजुष्टिः – कमी, अभाव (२) असेवन। नञ्+जुष्+क्तिन्।
'एवा चन तं यशसामजुष्टिः'
ऋ. ६.३.२
(३) अप्रीतिकर कार्य (४) अप्रीति कारक।
'दृढस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ'
ऋ. १.६३.४

अज्येष्ठासः – मरुद्गण जो परस्पर एक दूसरे से बड़े नहीं हैं (२) मनुष्य (३) शिष्यगण।
'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते'
ऋ. ५.६०.५

अजोठय – (१) सेवा या प्रीति करने के अयोग्य।
'मा वो मृगे न यवसे जरिता भूदाजोष्यः'
ऋ. १.३८.५

अजोहवीत् – आह्वयत् (पुकारा)। हुं। (पुकारना) का लुङ् में वैदिक रूप।
'अजोहवीदश्विना वर्तिका वाम् अस्नः'
ऋ. १.११७.१६, नि. ५.२१
हे अश्विनीकुमारो, आप दोनों को उषा ने प्रकारा सूर्य के मुख से तुम दोनों ने उषा को छुड़ाया सायण ने 'वर्तिका' का अर्थ चटक नामक पक्षी और यास्क ने 'उषा' किया है। स्वामी दयानन्द ने भी उषा ही अर्थ किया है।

अञ्जते – व्यक्त करती है। अर्थ
'पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते'
ऋ. १.९२.१, साम. २.११०५, नि. १२.७

अञ्जन् – (१) चलता हुआ, (२) प्रकाशित करता हुआ (३) व्याप्त रहता हुआ।
'स इमा विश्वा भुवनानि अञ्जत्'
अ. १९.५३.२

अञ्जनाभ्यञ्जन – अञ्जन +अभ्यञ्जन – आंजन और उबटन।
'यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्ति'
अ. ९.६.११

अञ्जस् – (१) तेज (२) प्रकट होना,।
'पथो देवत्रा ञ्जसेव यानान्'
ऋ. १०.७३.७
(३) प्रकाशमान ज्ञान।
'काणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि '
ऋ. १.१३२.२
(४) व्यक्त।

अञ्जसा – (१) शीघ्रता से (२) शीघ्र
'अञ्जसा शासता रजः'
ऋ. १.१३९.४

अञ्जि – (१) रूप
'अञ्ज्यक्तङे समनगा इव व्राः'
ऋ. १.१२४.८
(२) मधुरस्वभाव, (३) कान्तिमान (४) प्रसिद्ध

गुणवान् (५) गुणों को प्रकट करने वाला पदक
'वक्षः सुरुक्मा रभासासो अञ्जयः'
ऋ. १.१६६.१०
(६) व्यक्त आभूषण (कान्तियुक्त शस्त्र)
'श्रिये मर्यासो अञ्जीरकृण्वत'
ऋ. १०.७७.२

अञ्जी – (१) नाना विषयों का ज्ञान कराने में समर्थ इन्द्रियशक्ति (२) ज्ञान प्रकाशित करने का कार्य (३)आग्भूषण, (४) दिव्यशस्त्रास्त्र ।
'अञ्जिषु प्रिया उत'
अ. २०.६७.४

अञ्जोयान – (१) अतिवेगवान, (२) शीघ्र गमन साधन, (३) प्रकाशमय ज्ञानमय ।
'यो वहात्यञ्जोयानैः'
अ. १८.२.५३

अण्व (१) विद्वान् पुरुष, (२) स्तुति वचन ।
'गोषामण्वेषु सश्चिम'
ऋ. ९.१६.२

अणीक – (१)सेना, (२) बल (३) ज्ञानोपदेश (४) मुख या (५) वचन ।
'रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि'
ऋ. १.७९.५, साम २.९१२. वाज. सं. १५.३६, तै. सं ४.४.४.५, मैं. सं. २.१३.८:, १५७.१२, का. सं: ३९.१५

अणीयस् – अणु +ईयस् =अणीयस् । अणु अल्पतम पदार्थ है। उससे भी अल्पतर अणीयस् है ।
'यस्मान् नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्'
तै. आ. १०.१०.३, महा. उप. १०.४, नि. २.३

अणीयस्क– (१) अणु से भी छोटा, (२) ब्रह्म ।
'बालादेकमणीयस्कम्'
अ. १०.८.२५

अण्वी – (१) प्रकाशावयव, (२) किरण, (३) अंगुलि, (४) कारण का भाग (५) प्राण धारिणी, (६) सूक्ष्मरूप धारिणी इन्द्रिय ।
'तमीमण्वीः समर्य आ'
'गृभ्णन्ति योषणो दश'
ऋ. ९.१.७
(७) सूक्ष्म योग क्रिया ।
'अण्वीभिस्तना पूतासः'
ऋ. १.३.४, अ. २०.८४.१, साम २.४९६, वाज.सं. २०.८७.

अणु– छोटा चावल
'अणवश्च मे श्यामाकाश्च मे'
वाज.सं. १८.१२

अततंसतम् – आभूषणादि से अलंकृत करते हो
"युवंवायत् निरततंसतम्'
ऋ. १.१२०.७
(आप दोनों जो हमें आभूषणादि से अलङ्कृत करते हो ।

अतथा– प्रतिकूल, अन्यथाभाव ।
'मघवन् मातथा इव'
ऋ. १.८२.१, साम १.४१६

अतन्द्र– आलस्य रहित पुरुष ।
"यन्ति प्रमादमतन्द्राः'
ऋ. ८.२.१८, अ. २०.१८.३, साम. २.७१
'अतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट्'
ऋ. १. ७२.७

अतन्वत– ताना, सूतों को ताना (कपड़ा बुनने के समय)
'अपसो अतन्वत'
मै.सं. १.९.४,१३४.९, का.सं. ९.९. पंच.ब्रा. १.८.९ नि. ३.२१.
हे वस्त्र, कुविन्द के छोटे छोटे लड़कों ने बुनने के समय तुझे ताना ।

अतप्ततनूः– (१) जिसका शरीर तपस्या से तप्तन हो, (२) ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण, योगाभ्यास तथा सत्संगादि तपश्चर्या से तप्त नहीं किया हो
'अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते'
ऋ. ९.८३.१, साम. १.५६५, २.२३५, तै.आ. १. ११.१., पंच ब्रा. १.२.८, आप.श्रौ.सू. १२.१२.१३.

अतमान– अत + शानच् = अतमान व्यापने वाला
'अरीरमदतमानं चिदेतोः'
ऋ. २.३८.२.
(२) जाता हुआ ।
'न यं वयन्ति समरे अतमानाः'
ऋ. ६.९.२

अतमेरू – (१) सदा बलवान्, (२) ग्लानि रहित ।
अतमेरु र्यज्ञोऽतमेरुर्यजयमानस्य प्रजाभूयात्'
वाज.सं. १.२३, श.ब्रा. १.२.२.१७.

अतवसः– वह रथ जिसमें कोई गति देने वाला न हो ।
'अनवसो अनभीशू रजस्तूः'

ऋ. ६.६६.७

अतव्यान् – (१) अशक्त, निर्बल, अल्प शक्ति वाला । अ + तवस से बना है, तव्यान, का अर्थ शक्ति शाली है ।

'तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्'

ऋ. ७.१००..५, साम २.९७६, तै. सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१: १४४.७, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.

(२) क्षुद्र, (३) अमहान्,

अतस्, अतसा – (१) अनुपक्षीण काष्ठ (२) अमृत –दया. अ + तसु (उपक्षय अर्थ में) + अच् = अतस् + शि (वेद में शि प्रत्यय का लोप होता है) अतसा (जिसका उपक्षय न हो ।

'सोमो विश्वान्यतसा वनानि
नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः'

ऋ. १०.८९.५, तै.सं. २.२.१२.३, तै.आ. १०.१.९., नि. ५.१२. (सोम सभी अनुपक्षीण जलों या वनस्पतियों को बढ़ाते हैं या प्रचुर रस धारण करते हैं । वैसे ही इन्द्र या राजा सभी सांसारिक ऐश्वंर्यों को धारण करें) (३) व्यापक आकाश पृथिवी आदि तत्व ।

(४) अमृततत्व की प्राप्ति –(दया.)

'अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वान्'

ऋ. १.१६९.३

जैसे आशुगामी देदीप्यमान् अग्नि अनुपक्षीण काष्ठ की ओर जाता है –यास्क

'हे विद्वन् आप अमृत त्वप्राप्ति के लिये (अतसे) अग्नि की तरह अत्यन्त शुचि या तेजस्वी हो, –(दया.)

(४) वृक्ष ।

'नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम्'

ऋ. ४.४.४, वाज.सं. १३.१२, तै.सं. १.२.१४.२; मै.सं. २.७.१५: ९७.१४, का.सं. १६.१५.

(६) सूखा काठ, (७) निरन्तर आक्रमण करने वाला ।

'अग्निः शोचिष्मान् अतसानि उष्णन्'

ऋ. २.४.७

(८) तीसी का पौधा (९) निरन्तर गमन करने में समर्थ, (१०) आक्रमण करने में तैयार ।

'प्रनीलपृष्ठो अतसस्य धासेः'

ऋ. ३.७.३

(११) आकाश

'अग्नि श्चित् हि ष्मात से शुशुक्वान्'

ऋ. १.१६९.३

अतस्कर– चोर डाकू से रहित मार्ग ।

'अनमित्रमतस्करम्'

अ. १२.१.४७

अतसाय्य– (१) निरन्तर परोपकार में वर्तमान, (२) आश्रय करने योग्य, (३) निरन्तर सहायक

'सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्'

ऋ. २.१९.४

अतसाय्या– अत + साय्य + टाप् = अतसाय्या (असुक् का आगम) –(दया.) निरन्तर सुखों की प्राप्ति कराने वाली ।

'ऊतिर्वाजे षु अतसाय्या भूत्'

ऋ. १.६३.६

(संग्राम में अथवा ऐश्वर्य और अन्तादि प्राप्त करने के अवसरों में तेरा प्रजारक्षण कार्य बराबर चलता रहे और सुखों को प्राप्त कराने वाला हो ।

अतसी– (१) एक देह से दूसरी देह में विचरने वाला जीव ।

'कन्नव्यो अतसीनां'

'तुरो गृणीत मर्त्य'

ऋ. ८.३.१३, अ. २०.५०,१ ऐ.ब्रा. ६.२१.१, कौ.ब्रा. २४.५, गो. ब्रा. २.६.३, आश्व. श्रौ.सू. ७.४.६, वै.सू. २७.१३, ३५. १२.

(२) वेग से गति करने वाली शक्ति ।

अत्क– (१) रूप, (२) कवच ।

'वव्रिमत्कं न मुञ्चथः'

ऋ. ५.७४.५

(३) – व्यापक ।

'य आस्वत्क आशये'

ऋ. ८.४१.७

(४) अत्तुम् ग्रर्ह-खाने के योग्य ।

(५) जल ।

(६) उत्तम रूप ।

'स्वयमत्कैः परिदीयन्ति यह्वीः'

ऋ. २.२४.१४

अत्तवे– भोग करने योग्य ।

'नैतदत्तवे'

अ. १४.१.२९

अत्नत – अतन्विषत । तनु (विस्तार करना) के उपधा का लोपकर (बहुलं छन्दासि) 'अन्नत'

बना है । अर्थ है विस्तार किया है ।
'यामर्थावा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत'
ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४
(जिस कार्य को अथवा, मानवपिता मनु और दध्यङ् ने किया,)

अत्य– (१) सब से अधिक उत्तम ।
'अत्यं हविः सचते सच्च धातु'
ऋ. ५.४४.३
(२) सतत गमनशील (३) अश्व के समान भ्रमण शील विद्वान् परिव्राजक (४) गतिशील अश्व (५) इन्द्रिय ।
'ससानात्यान् उत सूर्यं ससान'
ऋ. ३.३४.९, अ. २०.११.९

अत्यर्ध– महासमृद्ध अत्यर्ध र्च पंदस्वतः
अ. २०.१३१.१९

अत्यविः– अति + अवि = अत्यवि , पृथ्वी या सूर्य से अधिक तेजस्वी
'सहस्रधारो अत्यविः'
ऋ. ९.१३.१, साम. २.५३७

अत्ता – (१) अन्न खाने वाला, (२) अतिथि ।
'अत्तारः सन्तु अक्षिताः
अ. ६.१४२.३

अत्या– वेगवाने दो घोड़े (२) सदा गतिशील प्राण और अपान वायु ।
'अत्या वृधस्नू रोहिता धृतस्नू'
ऋ. ४.२.३

अत्याः– (१) व्यापन शील मेघ, (२) व्यापनशील गतिशील विषयों में रमण करने वाले संकल्प विकल्प
'तिस्रो मही रूपदास्तस्थु रत्याः'
ऋ. ३.५६.२

अत्याः– (१) अत (सातत्य गमन के अर्थ में) + यत् = अत्य (अध्न्यादयश्च – उणादि ४–१०८) । (१) सूर्य के घोड़े (२) निरन्तर गतिशील सूर्य की किरणें– (दया.)
'सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः'
ऋ. १.१६३.१०, वाज.सं. २९.२१, तै.सं. ४.६.७.४, का.सं. (अश्व.) ६.३, नि. ४.१३.

अत्याप्ति – आशा से अधिक फलपाना, ।
'अत्याप्ति रुच्छिष्टे भूतिः'
अ. ११.७.२२

अत्याय– अति + आय, (१) सबको अतिक्रमण कर विराजमान प्रभु, (२) अतिक्रमण
'प्रजाह तिस्रो अत्यायमीयुः'
ऋ. ८.१०१.१४, श.ब्रा. २.५.१.४, .ऐ.आ. २.१.१.४,५,

अत्र – (१) निरन्तर गति शील, (२) भक्षक अत्ति इति अत्रिः अत्रश्च (३) राक्षस, (४) यज्ञ, ।
'अपादमत्रं महतावधेन'
ऋ. ४.३२.८
(५) अदस् शब्द से त्र प्रत्ययकर अत्र बना है, अर्थ है यहां (६) अद् (भक्षण करना) + त्र अत्र (७) राक्षस, (८) भक्षक ।
'या न उणेषे अत्रैः'
ऋ. १.१२९.८
भक्षकों या राक्षसों के द्वारा जो शक्ति छोड़ी जाय वह नष्ट हो जाय...।
(१०) अद् + त्र = अत्र खाने योग्य पदार्थ ।
'अत्राणि अस्मै पड्भिः संभरन्ति'
ऋ. १०. ७९.२

अत्र– (१) अतन्ति इति आततायिनः तान् गच्छति यः स = शत्रु – (दया.)
(१) आततायियों पर आक्रमण करने वाला शत्रु (२) प्रजाजनों का खा जाने वाला शत्रुपुरुष
'स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः'
ऋ. १.१२९.८

अत्रा – अदस् शब्द से बना, अव्यय । अर्थ – (१) यहां पर
'अत्रा सखायः सख्यानि जानते'
ऋ. १०.७१.२, नि. ४.१०
(२) नाना खाद्य पदार्थ ।
'आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्राः'
अ. १०.१०.२१
(३) भोजन करने वाले प्राणी ।
'अत्रा उदरम्'
अ. ९.७.१६

अत्राह – ऐसे ही स्थान पर
'अत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण'
'परमं पदमवभाति भूरि'
ऋ. १.१५४.६, वाज.सं. ६.३,
(ऐसे ही स्थान में अतिस्तुत्य या सब को गति देने वाले विष्णु का परम प्रसिद्ध स्थान अत्यन्त

सुन्दर लगता है ।)
'अत्राह गोरमन्वत'
ऋ. १.८४.१५, अ. २०.४१.३, साम. १.१४७, २.२६५. मै.सं. २.१३.६: १५४.११ का.सं. ३९.१२. तै.ब्रा. १.५.८.१, आश्व श्रौ.सू. ९.८.३, बौ.का.शा. ३.८.८, नि. २.६;४.२५

अति – उपसर्ग । अभि पूजित अर्थ में ।

अतिक्रामत् – अतिक्रमण करता हुआ ।
'अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि'
'शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम'
अ. १२.२.२८, नि. ६.१२.

अतिकुल्व– अति कुल्व वाला ।
'अति कुल्वं चाति लोमशम्'
वाज.सं. ३०.२२, वाज.सं. (का) ३४.२२

अतिक्रुष्ट – अत्यन्त राग से आलाप करना
'अतिक्रुष्टाय मागधम्'
वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

अतिकृश– अतिदुर्बल
'अतिस्थूलं चातिकृशम्'
वाज.सं. ३०.२२, वाज.सं. (का.) ३४.२२

अतिकृष्ण– अत्यन्त काला ।
'अतिशुक्लं चातिकृष्णम्'
वाज.सं. ३०.२२, वाज.सं. (का) ३४.२२

अतिघ्न्य– सबको अतिक्रमण कर सबसे ऊंचा होकर वर्तमान उच्छिष्ट ब्रह्म
'वृषा भूम्यामतिघ्न्यः'
अ. ११.७.१६

अतिच्छन्दस्– वेदों में प्रयुक्त सात छन्दो के सिवा सात अतिछन्द भी हैं । ये हैं अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, अष्टि, अत्यष्टि, धृति और अतिधृति । इन छन्दो में धृति, अष्टि, शक्वरी और जगती से ४ अक्षर अधिक होता है । अन्यों से सामर्थ्य में अधिक ।
'अतिछन्दा इन्द्रियं बृहत्'
वाज.सं. २१.२२, मै.सं. ३.११.११, १५८.१९, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.४.

अतिजीव– अन्य सामान्य जीवों की दशा में अपने ज्ञानबल से पारकर लेने वाला जीवात्मा ।
'अमम्रिः भवामृतोऽजीवः'
अ. ८.२.२६

अतितत्र – दबाना
'नैनं पाप्माति तत्रति'
अ. १९.३६.२

अतित्वरी– अत्यधिक पति संग करने वाली, अति कामिनी स्त्री ।
'इदा वत्सरायाती त्वरीम्'
वाज.सं. ३०.१५

अतितार्या– पार करने योग्य ।
'या नाष्ट्रा अतितार्या'.
अ. ८.२.२७

अतिथि– (१) अतिथिवत् पूजा योग्य ।
(२) सर्वत्र शरीर में शक्ति रूप व्यापक या निरन्तर गतिशील –आत्मा (आत्मा' के लिए अतिथि आदि नाम उपनिषदों में भी आया है)
'जुष्टो दमूना अतिथि दुरोणे'
ऋ. ५.४.५, .अ. ७.७३,९, मै.सं. ४.११.१: १५९.३, का.सं. २.१५. तै.ब्रा. २.४.१.१ नि. ४.५.
'हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषत् अतिथि दुरोणसद्'
ऋ. ४.४०.५, वाज.सं. १०.२४, १२.१४, तै.सं. १.८.१५.२, ४.२.१.५, मै.सं. २.६.१२:७१.१४, ३.२.१:१६.१,४.४.६:५७.३, का.सं. १५. ८,१६.८, ऐ.ब्रा. ४.२०.५, श.ब्रा. ५.४.३.२२, ६.७.३.११, तै. आ. १०.१०.२,५०.१ महा उ. ९.३, १७.८, कठ. २.५.२, नि. १४.२९
(३) अत (सातत्य गमन अर्थ में) + इथिन् = अतिथि । अतिथि (४) अध्वनीन (५) सायं और प्रातः उद्बोधनशील ,(६) अभ्यागत,
'गृहान् अभिलक्ष्य अतितः गतः भवति सोऽतिथिः।' अथवा
(७) नास्ति तिथिः यस्य' (जिसके आने के लिए अपने तिथि निश्चित न हो) ।
(८) अथवा पूर्णमासी आदि तिथियों में जो परकुल में यजमान गृह में जाता हो । पुरोहित ।

अतिथिग्व– (१) अतिथि –पूज्य पुरुषों के प्रति गौ, भूमि आदि प्रदान करने वाला यजमान ।
'अतिथिग्वस्य वर्तनी'
अ. २०.२१.८
(२) अतिथि + गम् + ड्व = अतिथि ग्व अर्थ, अतिथियों का गमन (३) अतिथि या पूज्य पुरुषों के गमन करने योग्य उत्तम पुरुष ।
'अरन्धयोऽतिथिग्वायशम्बरम्'

ऋ. १.५१.६

अतिथिगुः– अतिथि या अतिथिवत् परमेश्वर के प्रति उत्तम स्तुति वाणी का प्रयोग करने वाला
'य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयः'
ऋ. ८..५३.२

अतिथिनी– (१) अतिथि यज्ञ आदि के वर्णन से युक्त वेदवाणी, (२) अतिथि के समान पूज्य नरों को प्राप्त होने वाली वेदवाणी, (३) आत्मा या परमेश्वर तक पहुंचाने वाली
'साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा'
ऋ. १०.६८.३, अ. २०.१६.३

अतिथिपति – अतिथियों का सम्मान करने वाला गृहपति – Host मेजबान ।
'यद्वा अतिथिपति रतिथीन् प्रतिपश्यति'
अ. ९.६.३

अतिदीर्घ– बहुत अधिक लम्बा ।
'अतिदीर्घ चाति ह्रस्वमन् च'
वाज.सं. ३०.२२, वाज.स. (का.) ३४.२२.

अतिदीवा – (१) द्यूत का अत्यन्त व्यसनी (२) अति देदीप्त ।
'उत प्रहा मति दीवा जयति'
ऋ. १०.४२.९, अ. ७.५०.६, अ. २०. ८९.९
(३) अत्यन्त अधिक मेधावी (४) क्रिया वान् (५) व्यवहारवान् (६) आनन्दी

अतिद्रुत – अत्यन्त वेग से आक्रमण करने वाला ।
'प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः'
अ. ६.५१.१, वाज.सं. १०.३१, १९.३, वाज.सं. (का.). २१.३, तै.सं. १.८.२१.१, मै.सं. २.३.८: ३६.१ का.सं. १२.९. श.ब्रा. ५.५.४.२२,१२. ७.३.९, तै.ब्रा. २.६.१.२, आप.श्रौ. सू. १९.१.१९. ६.१२

अतिधक्– (१) हमें छोड़ अन्य को न दें (२) हमें देने के वाद जो शेष बचे उसे दूसरे को दे ।
'शिक्षा स्तोतृभ्यो मातिधग्भगो नो'
ऋ. २.११.२१, नि. १.७
'हे इन्द्र, आप हमें छोड़ अन्य को न दें ।

अतिनुत्त – अतिनुद् + क्त । पराजित,
'अतिनुत्तो नाव्या एतु ग्रोत्याः'
अ. ८.७.१५

अतिनेनीयमानः– (१) पुनः पुनः अभीष्ट सिद्धि की ओर पहुंचाने वाला ।
(२) इन्द्र या परमात्मा का विशेषण । ईश्वर ग्रोताओं को परस्पर व्यवहार से अभीष्ट सिद्धि की ओर पहंचाता है । वह स्वयं कुछ न कुछ कर दूसरे को करने के लिए प्रेरित करता है ।
'अन्यमन्यमति नेनीयमानः'
ऋ. ६.४७.१६

अतिपर्षत्– पार करे ।
'स नः पर्षत् अतिदुर्गाणिविश्वा'
ऋ. १.९९.१, अ. ७.६३.१, तै.आ. १०.२१, महा. उ. ६.२ नि. १४. ३३

अतिपश्यसि– अन्धेरे से निकल कर देखता है ।
'रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यसि'
ऋ. १.९४.७

अतिपारयः– सब संकटों से पार करने वाला ।
'भवासुपारो अतिपारयो नः'
ऋ. ६.४७.७

अतियाजः – अत्यन्त दान, यज्ञ, उत्तम सत्संग, मान पूजा ।
'निहीयताम् अति याजस्य यष्टा'
ऋ. ६.५२.१

अतिमतिः– बड़ी बुद्धि, ज्ञान, (२) शमन वल ।
'नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्'
ऋ. १. १२९.५

अतिरात्र – (१) एक प्रकार का यज्ञ ।
'यावदतिरात्रेणेष्ट्वा'
अ. ९.६.४१
(२) अतिरात्र सोम यज्ञ की रात्रि ।
'ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमेः'
ऋ. ७.१०३.७

अतिरात्रयज्ञ – एक यज्ञ ।
'भूतपूर्वो अतिरात्रो भविष्य दुत्तरः
पृथिवी पूर्वोऽतिरात्रो द्यौसत्ताः
अग्निः पूर्वोऽतिरात्रः आ
दित्य उत्तरः । प्राणः पूर्वोऽ
तिरात्र । उदान् उत्तरः'
तै आ. १०.४.१
'चक्षुषी अति रात्रौ'
तै.आ. १०. ४.२
'प्रतिष्ठा वा अतिरात्रः
श.ब्रा ५.५.३.५
'सातिरात्रमतिद्रव'
अ. १०.९.९

(भूत, भविष्यत, पृथिवी और द्यौ, अग्नि और सूर्य, प्राण और उदान, ये दो दो जोड़े अतिरात्र हैं। जैसे देह में आंखें है वैसे राष्ट्र के निरीक्षक लोग अतिरात्र के रूप हैं। राज्य की प्रतिष्ठा अतिरात्र हैं)।

अतिरुक् – (१) अत्यन्त दीप्ति वाला, जानु (२) रुचि कारक अन्न।
'अग्निमतिरुग्भ्यां पूषणम्'
वाज.सं. २५.३, मै.सं. ३.१४.३: १७८.१०.

अतिरेजन्ते – प्रकाशित होते हैं।

अतिरोचसे – अत्यन् दीप्त दीख पड़ता है, अत्यन्त रोचता है।
'दूरे चित् सन्तडिदिवातिरोचसे'
ऋ. १.९४.७, नि. ३.११
(हे अग्नि, तू दूर रहता हुआ भी विद्युत की तरह निकट ही अत्यन्त दीप्त दीख पड़ता है।)

अतिव्याधिः – बड़ी व्यथा का कारण।
'वृषाकपे रति व्यथिः'
ऋ. १०.८६.२, अ. २०.१२९.२

अतिविद्ध– जांघ में होने वाला एक रोग जिस में तीव्र वेदना चलती है। पिप्पली इस रोग की दवा है।
'उतातिविद्ध भेषजी'
अ. ६.१०९. १

अतिविद्धभेषजी– गहरी पीड़ा की उत्तम ओषधि –पीपल।
'पीप्पली क्षिप्त भेषजी'
'उताति विद्ध भेषजी'
अ. ६.१०९.१

अतिविध –– अतिक्रमण।
'यद् बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू'
ऋ. ५.६२.९, मै.सं. ४.१४.१०: २३१.१४, कौ.ब्रा. १८.१३, तै.ब्रा. २.८.६.७, आश्व.श्रौ.सू. २.१४.११, ३.८.१.

अतिव्याधी – अति वेग और बल से शत्रु को परास्त करने वाला।
'अतिव्याधी महारथः'
वाज.सं. २२. २२

अतिलोमश – बहुत अधिक लोम वाला।
'अतिकुल्वं चाति लोमशम् च'
वाज.सं. ३०.२२, वाज.सं. (का.) ३४.२२

अतिशर्वर– (१) शर्वर (रात्रि का पूर्व भाग) के बीत जाने पर।
'रात्रीणा मतिशर्वरे'
अ. ४.५.४
(२) महाप्रलय काल।
'अह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु'
अ. ७.८०.४,

अतिषक्ता – अति + सच् + क्त + टाप्। युक्त, सहित
'यज्ञायुधैराज्ये नाति षक्ता'
अ. १२.३.२३

अतिशिशीते – बहुत अधिक सताता है।

अतिशुक्ल – अत्यन्त शुक्ल
'अतिशुक्लं चातिकृष्णम्'
वाज.सं. ३०.२२. वाज.सं. (का.) ३४.२२

अतिष्कद्वरी – अति अधिक रजःस्राव करने वाली स्त्री।
'इद्वत्सरायातिष्कद्वरीम्'
वाज.सं. ३०.१५

अतिष्ठन् – 'स्था' धातु का लट् (वर्त्तमान) के अर्थ में लङ् (भूत) का प्रयोग।
'देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२
(देवताओं के निर्माण के समय सबसे पहले ये माध्यमिक देव गण (मेघ या वायु) निर्मित्त हुए)।

अतिष्ठन्ती – स्थिर न रहने वाली, स्थिति रहित। जल का विशेषण।
'अतिष्ठन्तीनाम् अनिवेशनानाम्
काष्ठाना मध्ये निहितं शरीररम्
वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो
दीर्घन्तम आशयदिन्द्रशत्रुः'
ऋ. १.३२.१०, नि. २.१६
ऐतिहासिकों का अर्थ – त्वष्टा के पुत्र वृत्र का शरीर जल में मग्न हो अज्ञेय रूप से बह रहा है (वृत्रस्य निण्यं शरीरम् आपो विचरन्ति)। वह शरीर जल राशि में फेंका हुआ है। वह जल स्थिर न रहने वाला है। वह वृत्र (इन्द्र शत्रुः) मानों महानिन्द्रा में सोया हुआ है।
निरुक्त कारों का अर्थ – मेघ के पेट में स्थिर न रहने वाले तथा कहीं पर नहीं ठहरने वाले जलों के मध्य मेघ रूपी धाता ने स्थापित किया है।

वे जल मेघ के नीचे आने वाले मार्ग को मानो जानते हैं यह मेघ भी अपने पेट में चलते हुए जल प्रवाह को रोकने की इच्छा से मानो अपना शरीर बढ़ाकर चारों ओर घोर अन्धकार विस्तारित करता है ।

अतिष्ठावान् – (१) अत्यन्तस्थिर, निश्चल, (२) सबसे बढ़कर युद्ध में निर्भय, (३) टिकाऊ और प्रतिष्ठादायी, (४) हाथी (५) सूर्य जो अति तेजस्वी हैं ।

'अतिष्ठावान् बभूव हि'

अ। ३.२२.६

अतिस्कद् , अतिष्कद् – बाधाओं और कष्टों से पार ले चलने में समर्थ ।

'आदित्यासो अतिष्कदे'

ऋ. ८.६७.१९

अतिसरा – शीघ्रगामिनी सेना ।

'अतिधावतातिसराः'

अ. ५.८.४

अतिस्थूल – अत्यन्त मोटा ।

''अतिस्थूलं चातिकृशम् च'

वाज.सं. ३०.२२, वाज.सं. (का.) ३४.२२

अतिसृष्ट– अच्छी प्रकार से सृष्ट– बनाया गया .

'अतिसृष्टो अपां वृषभः'

अ. १६.१.१, कौ.सू. ९.९.

अतिह्रस्व – बहुत छोटा, बौना । दे. 'अतिदीर्घ'

अत्ति – अद् (खाना) + ति (लट्), खाता है ।

'यदत्युपजिह्विका'

ऋ. ८.१०२.२१, वाज.स. ११.७४, तै.सं. ४.१.१०.१, मै.सं. २.७.७ , ८३.९. का.सं. १६.७, श.ब्रा. ६.६, ३.६, मा.श्रौ.सू. ६.१.३ , नि. ३.२०. (जिसे पिप्पिलिका खा जाती है)

अत्रि – 'अद्' (खाना) धातु से बना है । एक वैदिक ऋषि ।

'प्रियमेधवत् अत्रिवत् जातवेदो विरुपवत्'

ऋ. १.४५.३, नि. ३.१७

व्युत्पत्ति – (१) अत्रैव तृतीय मृच्छत इत्युचुः तस्मात् अत्रिः (पहले के उत्पन्न महर्षियों ने जिस ऋषि के उद्देश्य से यह कहा कि इन्ही अंगारों से (अत्रैव)(तृतीय ऋषि को ढूंढो (अत्यन्त) वह ऋषि अत्रि कहलाये ।

'अत्र तृतीय मप्यस्तीव्युक्ता पूर्वेमहर्षिण अन्विच्छन्तोऽलभन्ताग्नौ तमत्रि प्रथितौजसम्'

(२) 'न त्रय एव अत्र (यहां तीन ही नहीं हैं ।) इस प्रकार के अनु व्याहार से अत्रिनाम पड़ा ।

(३) न त्रयः = अत्रि । जिनमें तीन तापों से एक भी नहीं वह अत्रि है । (४) पहले संकल्प से ही सृष्टि हुई (सं कल्पात् सृष्टिः) ।

'उत्सर्गात् नारदो यज्ञे दक्षोंऽगुष्ठात् स्वयम्भुवः

'इसी. प्रकार

'अर्चिषुः भृगुर्बभूव'

(अर्चियों से भृगु हुए) भृगुः भृज्य मानः ।

अंगारेषु अंगिराः अंगारों से अंगिरा उत्पन्न हुए । भृगु और अंगिरा के बाद तीसरे ऋषि अत्रि अंगारों से ही हुए ।

(२) पृथ्वी के भीतर की अग्नि जो भूकम्प के समय निकलती है (३) खाने वाला, (४) सबको खाने वाला अग्नि ।

'ऋजीषे अत्रिमश्विना वनीतम्'

स्वामी दयानन्द अत्रि का अर्थ अग्नि और सायण अत्रिऋषि कहते हैं ।

'अन्निन्यथुः सर्वगणां स्वस्ति'

ऋ. १.११६.८, नि. ६.३६

सायण 'सर्वगणम् अत्रिम्' ऐसा अन्वय कर गण के साथ अत्रि ऋषि को अश्विनी कुमारों ने अग्नि से बचाया ऐसा अर्थ करते हैं ।

स्वामी दयानन्द सर्वगणं स्वस्ति अन्वय मान यह अर्थ करते हैं कि सूर्य और पृथ्वी ने भूमि के नीचे पड़े बीजों को जानकर समस्त प्रजावर्ग का कल्याण किया ।

अत्रिन् – लूटपाट कर खाने वाला दुष्ट पुरुष ।

'विश्वं समत्रिणं दहं'

ऋ. १.३६.१४,२०, का. सं. १५.१२, मै.सं. ४.१३.१: १९९.९, ऐ. ब्रा. २.२.१९, षड् ब्रा. ३.१, तै.ब्रा. ३.६.१.२.

'लूट पाट कर खाने वाले सभी दुष्टों को अच्छी प्रकार भस्म कर' ।

अत्रिवत् – हिंसक मांसभक्षी जीव के समान ।

'अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि'

अ. २.३२.३, ५.२३.१०

अतुरा– (१) विमृश्यकारी, सोच समझ कर कार्य करने वाला, (२) मन्द आलसी जो शीघ्रता न कर सके ।

'तुदाणामतुराणां विशामवर्जुषीणाम्'
अ. ७.५०.२

अतूतुजिः(१) अहिंसक प्रजा, (२) कर न देने वाला शत्रु ।
'अतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत्'
ऋ. ७.२८.३

अतूर्त- (१) कभी नष्ट या ताड़ित न होने वाला
'अतूर्तं तुम्र्यावृधम्'
ऋ. ८.९९.७, अ. २०.१०५.३, साम. १.२८३,
(२) अतूर्ण, अचपल, अत्वरमाण, (३) गम्भीर प्रकृति वाला, (४) स्थिर बुद्धि ।
नञ् + तुर्वी + क्त = अतूर्त । 'तत् लोपः' से 'र्वी' का लोप । 'हलि च' से 'उ' का ऋ हो कर 'अतूर्त' बना
'अतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः'
ऋ. १.१२६.१, नि. ९.१०.
'अहिंसित अचपल या अत्वरमाण जिस राजा ने मेरे लिए सहस्र सोमयज्ञों को सम्पूर्ण धन दान द्वारा यश की इच्छा से सम्पन्न किया । जिस गम्भीर स्थिर बुद्धि राजा ने प्रशंसा की इच्छा रखते हुए मेरे जैसे ब्रह्मचारियों के लिए हजारों शिक्षणालयों का निर्माण किया है । -(दया.)
(५) अगम्य ।
'अतूर्ते बद्धम् सविता समुद्रम्'
ऋ. १०.१४९.१, नि. १०.३२.
(सविता ने अगम्य एवं अहिंसित अन्तरिक्ष में लगे मेघ को प्रवाहित किया ।)

अतूर्तदक्षा - न नष्ट होने वाले स्थायी बल से युक्त अक्षिद्वय या (२) पतिपत्नी ।
'अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू'
ऋ. ८.२६.१

अतूर्तपन्थस् - (१) अत्वरमाण पन्थाः आदित्य जो प्रतिक्षण नियतगति से चलते हैं, (२) जो जल्द मार्ग वाला नहीं है ।
'अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा
'सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु'
ऋ. १०.६५.५, नि. ११.२३.
आदित्य भी सदा नियमपूर्वक पंथ वाले (अतूर्तपन्थाः) बहुत बड़े रथ वाले (पुरुरथः) अन्धकारों को नाश करने वाले (अर्यमा) एवं सात किरणों (सप्तहोता) विषमरूप जन्मो में प्रवृत्त रहते हैं । अर्थात् दक्षिणायन-उत्तरायण के कारण प्रतिदिन विषम स्वरूप वाला उदय होता हुआ किरणों से युक्त है ।

अत्यूर्मिः - अति + ऊर्मि । अति उत्साहित, (२) अति ऊर्मियों सोम ।
'अत्यूर्मि र्मत्सरो मदः'
ऋ. ९.१७.३

अतृदिल - अ + तृदिल । छिन्न भिन्न न होने वाला ।
'तृदिला अतृदिलासो अद्रयः'
ऋ. १०.९४.११

अतृपः - तृप्त नहीं होने वाला ।
'प्रतीत्येन कृधुना तृपासः'
ऋ. ४.५.१४

अतृष्णजः- निःस्पृह निर्मोही
'सुपविसो अतृषिता अतृष्णजः'
ऋ. १०.९४.११

अतृष्य- (१) जो कभी प्यासा न रहे, (२) सदा तृप्त ।
'अक्षुध्या अतृष्या स्त'
अ. ७.९०.४

अतृष्यन्ती - तृष्णा या लोलुपता से धन का लोभ न करती हुई स्त्री ।
'अतृष्यन्तीः अपसो यन्ति अच्छाः'
ऋ. १.७१.३
(तृष्णा वश धन का लोभ न करती हुई अच्छी प्रकार उत्तम कर्मों और फलों को प्राप्त हो ।)

अतृषित - तृष्णा लोभ से रहित ।
'सुपीविसो अतृषिता अतृष्णाजः'
ऋ. १०.९४.११

अतृष्णुवान् - (१) तृप्त न होने वाला, (२) अति विषय विलासी ।
'अतृष्णवन्तं वियतमबुध्यम्'
ऋ. ४.१९.३

अत्क - (१) वस्त्र (२) कवच ।
'वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं'
ऋ. ६.२९.३.

अथ - और, इसीलिए ।
'अथा देवा दधिरे हव्यवाहम्'
ऋ. ७.११.४,१०.५२.३, नि. ६.३५
इसीलिए देवताओं ने अग्नि रखा या आर्यजन अग्नि रखते हैं ।

अथर्य - (१) स्वयं कभी पीडित न होने वाला ।

'उषर्बुधमथर्यो न दन्तम्'
ऋ. ४.६.८

अथर्यु.- (१) अतनवान्, गमनवान् (२) अग्नि । अत (गमनार्थक) +युस् =अथर्युः अत का अथर् आदेश ।
'दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम्'
ऋ.७.१.१, साम. १.७२,.२.७२३, का. सं. ३४.१९, ३९.१५ आप श्रौ. सू. १४.१६.१, नि. ५.१०
दूर दीखने वाले अर्थात् प्रकाशमान (दूरेदृशम्), गृहपालक या गृहस्थों के लिए आवश्यक (गृहपतिम्) सतत गमनशील अग्निदेव को (अथर्युम्) (३) जो पीड़ा कष्ट न दे- अग्नि

अथर्वन्- अथर्वन्ती इति अथर्वाण-दुर्ग । थर्व धातु का अर्थ चलना है । (थर्वति चरतिकर्मा, न थर्वति =अथर्वन् अर्थात् जिसका गमन कर्म न हो)। न थर्वना स्थिर प्रकृति वाला
-वानप्रस्थी
हिन्दी में अथई उसे कहते हैं, जो चल फिर न सके । (२) अथर्व नामक भृगु वंश वाले (३) अंगिरा के वंश वाले भी अथर्वन् कहलाते हैं। (४) पिता गृहस्थाश्रम और अंगिरस् संन्यासी का द्योतक माना गया है। (५) आदित्य । वह सदा स्थिर रहता है।
'अंगिरसो नः पितरो नवग्वा'
'अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।'
ऋ. १०.१४.६, अ. १८.१.५८, वाज सं. १९.५०, तै. सं. २.६.१२.६, कौ . सू. ८१.३६, नि.११.१९
अंगिरा नामक अथर्वण तथा भृगु नामक अथर्वण हमारे पितर हैं । वे नूतन के समान प्रीति जनक या नई नई गति वाले, सोमपान करने के योग्य या सोमरस पीने वाले हैं ।
(दूसरा अर्थ) जो हमारे प्राण प्रिय ब्रह्मचारी (अंगिरसः) प्रशस्तकर्मा या मक्खन के समान शुभकर्मों वाले पितर (नवग्वाः) स्थिर मति वान प्रस्थी (अथार्वाण) और योगैश्वर्य सम्पादक तपस्वी जन हैं ।
'(सोम्यास भृगवः)'
(६) प्रजापति (७) अथर्व वेद ।

अथर्वणः - शिर - प्रजापति का बाण या शिर ।
'तद् वा अथर्वणः शिरः'
अ. १०.२.२७
(१) अंहिसक रक्षक प्रजापति ।

अथर्ववत् - के तुल्य
'अथर्ववत् ज्योतिषाय दैव्येन'
ऋ. १०.८७.१२, अ ८.३.२१
(२) अथर्ववेद में लिखे प्रमाण के अनुसार (२) अहिंसक ईश्वरोपासक विद्वान् के सामन
'इममु त्यमथर्ववदग्निम्'
ऋ. ६.१५.१७'

अथर्व्य - अविनाशी ।
'याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यम्'
ऋ. १.११२.१०

अथर्वा - (१) वायु, (२) अहिंसक प्रजापालक विद्वान् (३) अहिंसा व्रतधारी योगी (४) एक ऋषि का नाम ।
'त्वामग्ने पुष्करा दधि अथर्वा निरमन्थत'
ऋ. ६.१६.१३, साम. १.९, वाज. सं. ११.३२, १५.२२,
'यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत'
ऋ. १.८०.१६
(५) चिकित्सक विद्वान् ।
'अथर्वम्यो ऽवतोकान्'
वाज. सं. ३०. १५. तै. ब्रा. ३.४.१.११
(६)अथर्ववेद का ज्ञाता सबका कल्याण करने वाला पुरोहित ।
'अथर्वा पूर्णं चमसं यम्'
अ. १८.३.५४
(७) अहिंसक राजा ।
'यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते'
ऋ. १.८३.५, अ. २०.२५.५

अथा - इसलिए ।
'अथा सोमस्य प्रयती युवभ्याम्'
ऋ. १.१०९.२, तै. सं. १.१.१४.१, नि. ६.९

अथापि - जब ।
'प्रष्टोऽथापि अभूभुवः'
अ. २०.१३६.७,८

अथो - इस प्रकार ।
'अथो श्वा अस्थूरिणो भवन्'
अ. २०.१३०.१९

अद् - भोजन करना, अंग्रेजी का Eat

अदत् - (१) खा जाने वाला घड़ियाल आदि जीव ।
'मा दत्वते दशते मादते नो'

ऋ. १.१८९.५,

अदत्रय – खाने योग्य पदार्थ ।

'अदत्रया दयते वायार्णि'

ऋ. ५.४९.३

अददन्त – अधारयन्त (धारण किया) । 'दद्' धातु दानार्थक है । वेद में धारण करने से अर्थ में भी प्रयुक्त है ।

'द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन
विश्वेदेवाः पुष्करे त्वाददन्त'

ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४

विश्व देवों ने दैव सम्बन्धी वेद राशि से (दैव्येन ब्रह्मणाः) यह स्तुति करते हुए कि वह वीर्य भूमि न गिरे तुझे बासी जल रखे जाने वाले कलश में (पुष्करे) रखा (अददन्त)–सा. ।

जलरूप में परिणत तुझ को (द्रप्सं स्कन्नं त्वा) देवजनों के अन्न के निमित्त से (दैव्येन ब्राह्मणा) अर्थात् अन्न उत्पन्न करने के लिए सूर्य किरणें (विश्वेदेवाः) अन्तरिक्ष में (पुष्करे) धारण करती हैं (अददन्त)–(दया) ।

अददुष् – नहीं देने वाला ।

'वशाददुषे विषं दुहे'

अ. १२.४.३९

अदभ्र – (१) अनल्प गुणवान् (२) अधिक बलशाली (३) अहिंसनीय जन ।

'देवा अदभ्रमाशवः'

ऋ. ८.४७.६

अदब्ध – अनुपहिंसित, अतः आश्चर्यजनक ।

'अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि'

ऋ. १.२४.१०, ३.५४.१८, तै. आ. १.११.२

(सूर्य के आश्चर्यजनक कर्म हैं)

(२) अतिरस्कृत (३) अबाधित, (४) वध और पीड़ा आदि को जो प्राप्त न हो –अग्नि , (५) परमेश्वर

'अदब्धः सुपुर एता भवा नः'

ऋ. १.७६.२, आप. श्रौ. सू. २४.१२.१०

(हे परमेश्वर, कभी तिरस्कार, वध या पीड़ा न प्राप्त करके हमारे आगे आगे नायक के समान अग्रणी पथप्रदर्शक बनकर रहो)

अदब्धधीतिः – जिसका अध्ययन, पठन पाठन नष्ट न हो – पूर्ण शिक्षित ।

'अर्यमणं भगमदब्धधीतीन्'

ऋ. ६.५१.३

अदब्धव्रतप्रमतिः – (१) अपने कर्तव्य, कर्मों और उत्तम शील, आचार के नाश न होने से उत्तम बुद्धि और ज्ञान से युक्त सदाचारी, उत्तम मनन शील (२) अग्नि ।

'अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः'

ऋ. २.९.१, वाज. सं. ११.३६, तै.सं. ३.५.११.२, ४.१.३.३, मै.सं. २.७.३ः ७७.१४ का.सं. १६.३, ऐ.ब्रा. १.२८.३४, श.ब्रा . ६.४.२.७

अदब्धायुः – अनष्टजीवन (२) अग्नि का विशेषण ।

'अग्नेऽदब्धायोशीतम पाहि मा दिद्योः'

वाज. सं. २.२०, श. ब्रा. १.९.२.२०

अदब्ध – नञ् +दभ् +क्त =अदब्ध । अर्थ (१) अप्रतिहत (२) कष्ट रहित – (दया)

'अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः'

ऋ. १.८९.१, वाज. सं. २५.१४., का. सं. २६.११.

अदब्धचक्षुः – अविनाशी चक्षुवाला (२) सूर्य ।

'अदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव'

अ. १३.२.४४

अदब्धा – (१) नाश न करने योग्य–रक्षणीय, (२) जो तोड़ने योग्य न हो, (३) सुशील स्त्री ।

'वव्राजा सीमनदतीरदब्धा'

ऋ. ३.१.६

अदर्दः – भृशं विदारितवान् (अदृणाः) दृ (विदारणार्थक) का यङ्लुङन्तरूप है ।

'अदर्दरुत्समसृजो वि खानि'

ऋ. ५.३२.१, साम. १.३१५, नि. १०.९

हे इन्द्र, तुने मेघ को बार–बार विदीर्ण किया और मेघ में जल निकलने का स्थान बनाया (खानि व्यसृजः) ।

अदस् – वह (That) जो सामने न हो । यह, यहां, प्रसिद्ध ।

'इममस्तु सन्निकृष्टं समीपवर्ती चैतदोरूपम्'
'आसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्'

जलों से विध्यत् की उत्पत्ति जलों से भी होती है । (२) समुद्र या वर्षा के जलों में बड़वा रूप में भी अग्नि की उत्पत्ति होती है ।

'वमद्भ्यः त्वमश्मनस्परि'

ऋ.२.१.१, वाज सं. ११.२७, तै सं. ४.१.२.५, मै. सं. २.७.२ः ७६.१०, का. सं. १६.२, तै. आ. (आं)

१०.१६, नि. ६.१
(हे अग्नि या विद्युत्, तू जलों से या पाषाण के आघात से उत्पन्न होता है)।

अब्द्यः परि – समुद्र से बाहर या पार।
'निष्टौग्र्यमूहथुरब्द्यस्परि'
ऋ. १०.३९.४
(हे अश्विद्वय, तुम दोनों ने तुग्र के पुत्र भुज्यु को समुद्र से निकाला)
हे राजा तथा राजपुरुषों ! तुम दोनों वैश्य वर्ण को व्यापार करने के लिए समुद्र के पार पहुंचाओ
'(अब्द्यः परि निरूहथुः)
अद्भ्यः परिप्रजातास्थ'
तै.स. १.१.८.१, तै ब्रा. ३.२.८.२

अद्म – अत्तुम् अर्हम् कर्मफलम्। अर्थ-कर्मफल
'आ स्वम् अद्म युवमानो अजरः'
ऋ. १.५८.२
(अपने भोग्य कर्मफल को प्राप्त करता हुआ जरा-रहित आत्मा)

अद्मन् – अद्यते भक्ष्यत इति अदमन् (जो खाया जाता है-अन्न)। अद् (भोजन करना) +मनिन् (कर्म ववाच्य में) = अदमन्।
'अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती'
'शश्वत् तमागात् पुनरेयुषीणा'
ऋ. १.१२४.४, नि. ४.१६
(उषा) गृहाधिकार में नियुक्त गृह स्वामिनी की तरह (अदमसन् न) सोते हुओं को जगाती है (ससतः बोधयन्ती) तथा नित्य घास चरकर फिर आने वाली गौ आदि के लिए (पुनरेयुषीणा) बार बार आने वाली है। (शश्वत्तमा)

अद्मसत् – (१) समस्त भोगने योग्य कर्मफलों पर अधिष्ठाता रूप से विराजने वाला जीव (२) भोजनों मे विराजने वाला स्वादप्रद अग्नि
'वद्मा हि सूनो अस्यदमसद्वा'
ऋ. ६.४.४, तै. सं. १.३.१४.७
अद् +मनिन् = अदमन्। अद्य +षण् + क्विप् = अद्मसत् (३) गृहस्वामिनी गृहाधिकारे नियुक्तास्त्री अद्मसादिनी या अद्म सानिनी। (४) जो अन्न के लिए प्रयत्नशील हो-इधर उधर जाये (तत् प्रति कर्तव्य तथा सीदति गच्छति इति अदमसत्)। अदमन् +सद् (णिच्)+ क्विप् =अद्मसन्।
सायण के मत से अद्म का अर्थ अन्न है। अतः अद्मसद् का अर्थ गृहसाधिका या अन्नसाधिका हुआ। गृहस्वामिनी सबसे अधिक चिन्ता करने वाली होती है। सबेरे उठकर सभी को जगाती तथा आवश्यक कर्मों में प्रवृत्त करती। इसकी उषा से तुलना की गयी है।
(५) अन्नसाधिका। अद्म का अर्थ गृह नहीं है, अतः 'गृहस्वामिनी' अर्थ कुछ आचार्यों को मान्य नही है।
(६) अन्नदाता (७) मनुष्य।
'नि पर्वता अद्मसदो न सेदुः'
ऋ. ६.३०.३
(पर्वतों को मनुष्यों की तरह स्थिर कर दिया)

अद्मसद्य – (१) कालाग्नि रूप से अन्नवत् रखने योग्य, (२) समस्त विश्व में अधिष्ठातृवत् विराजना तथा व्यापना, (३) चरु का ग्रहण करना (४) अन्न का भोजन।
'अद्मसद्याय हिन्विरे'
ऋ. ८.४३.१९

अद्य – (१) अस्मिन् द्यवि (आज के दिन)। अहन् का नाम 'द्यु है। दिन चमकता है। (द्योतते)। द्युत् +उ =द्यौ (दि उत् का लोप) अद्य शब्द 'अस्मिन् द्यवि' से निपातन से सिद्ध हुआ है। (२) भोजसूत्र 'द्युगभ्यां डीः' से दयु +डो = द्यो (उ का लोप), अथवा द्यु + उ = दयु (टि लोप के बाद) अथवा द्युत् +डुन् = द्यु। 'अहन्' अर्थ में द्यौ के स्थान में द्यु का भी पाठ मिलता है। जैसे-
'द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मान्'
ऋ. १.११२.२५, वाज. सं. ३४.३०, ऐ. ब्रा. १.२१.१८, कौ. ब्रा. ८.६, तै. आ. ४.४२.३
(२) खाद्य पदार्थ, भोज्य, खाने योग्य।
'होतुश्चित् पूर्वे हविरद्यमाशत'
ऋ. १०.९४.२, नि. ७.७
(होता के पहले भोज्य हवि को खाओ)।
'पुनः-
'अद्या मुरीय यदि यातु धानो अस्मि'
ऋ. ७.१०४.१५, अ ८.४.१५, नि. ७.३
'आग्ने वह हविरद्याय देवान्'
ऋ. ७.११.५
(वसिष्ठ सौदास कहते हैं। यदि मैं राक्षस होऊं

तो आज ही मर जाऊं)
एक बार शिकार करते समय सौदास ने एक राक्षस को मार डाला । उस राक्षस के भाई ने रसोइए का भेष बना सौदास के यज्ञ में मनुष्य का मांस रांध दिया । योगबल से वसिष्ठ को यह छल मालूम हो गया और उन्होने सौदास (पैजवन) को शाप दे दिया कि तू राक्षस हो जा । सौदास ने भी वसिष्ठ को राक्षस हो जाने का शाप दे दिया । इसी पर वसिष्ठ ने ऐसा कहा है ।

अद्वयाविन् – (१) न विद्यते द्वितीयो यस्मिन् (दया) (२) मां बाप दोनों से भी गुणों में अधिक पुत्र (३) द्यौ और पृथिवी दोनों से सामर्थ्य में अधिक–सूर्य ।
'स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि'
'पुत्रस्य पाथः पदम द्वयाविनः'
ऋ. १.१५९.३
(हे माता पिताओ, द्यावापृथिवी, आप दोनों स्थावर और जंगम दोनों में सामर्थ्य से अधिक सूर्य के समान (अद्वयाविनः) अथवा माता पिता दोनों से भी अधिक अकेले पुत्र के स्थान का मार्ग का पालन करो)।
(३) दो भावों में नहीं रहने वाला सरल स्वभाव।
(४) अद्वितीय परमेश्वर ।
'मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनम्'
ऋ. ३.२.१५

अद्रुतैनसः – (१) अपराध रहित निष्पाप जन (२) मरुत् ।
'शर्धास्यद्रुतैनसाम्'
ऋ. ५.८७.७

अद्रयः – आदरयोग्य ।
'तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने'
ऋ. १०.९४.१३

अद्वयाः – (१) दो के भेद से रहित, (२) अनन्य, अद्वितीय ।
'सखा सुशेवो अद्वयाः'
ऋ. १.१८७.३, का. सं. ४०.८, ऐ. आ. ४.९,
(३) बाहर भीतर दोनों में दो भाव न रखने वाली माता या अदिति (४) अखण्डराज शक्ति ।
'अदितिर्नो दिवा पशुम् अदितिर्नक्त मद्वयाः'
ऋ. ८.१८.६

अद्वयावीः – (१) भीतर बाहर दो भाव न करने वाला, (२) निष्कपट
'सो अद्वयावी हवते व उक्थैः'
ऋ. ७.५६.१८
(३) द्वन्द्वभाव न रखने वाला (४) निष्पक्ष व्यवहार वाला ।
'नि याथो अद्वयाविनम्'
ऋ. ५.७५.५

अद्वयुः – (१) दो भाव न रखने वाल (२) कपटहीन, (३) निश्च्छल ।
'उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः'
ऋ. ८.१८.१५

अदानम् – (१) अद्यमानम् (खाया जाता हुआ) । (२) कर न देने वाला (३) दान न देने वाला ।
'वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानम्'
ऋ. ४.१९.९, नि. ३.२०

अदान्य – दान दक्षिणा देने के अयोग्य
'अदान्यान् सोमपान् मन्यामानः'
अ. २.३५.३

अदाभ्य – अहिंसनीय ।
'ऋणकातिमदाभ्यम्'
ऋ. ८.६१.१२

अदाभ्या – (१) अप्रतिहत गति वाले –अश्विनीद्वय का विशेषण ।
'वर्तिर्यातमदाभ्या'
ऋ. ५.७५.७, नि. ३.२०.
(हे अप्रतिहत गति वाले अश्विद्वय, तुम दोनों परिवर्तित होकर आओ ।)
(२) कभी परस्पर हिंसा प्रतिहिंसा न करते हुए आचार्य और शिष्य ।
'या सानुनि पर्वतानामदाभ्या'
ऋ. १.१५५.१

अदामा – (१) अदानशील (२) बन्धन रहित, उच्छृंखल ।
'मा त्वादामान आदभन् मघोनः'
ऋ. ६.४४.१२
(३) बन्धन में नहीं बांधने वाला ।
'दामन्वन्तो अदामानः सुदामन्'
ऋ. ६.२४.४

अदारसृत् – स्त्रियों का मानभंग न करने वाला ।
'अदारसृद् भवतु देव सोम'

अ. १.२०.१, तै. ब्रा. ३.७.५.१२, आप. श्रौ. सू. २.२०.६

अदाशुः – अदान शील, लोभी (२) शत्रु रूप दुष्ट ।
'चोदपवृद्धो हरिवो अदाशून्'
ऋ. १.१७४.६

अदाशुष् – दान न देने वाला ।
'अर्यो वेदो अदाशुषाम् तेषां नो वेद आ भर'
ऋ. १.८१.९, अ. २०.५६.६

अदाशुरिः – अदानशील ।
'यस्ते रेवाँ अदाशुरिः'
ऋ. ८.४५.१५
'यश्च रेवां अदाशुरिः'
अ. २०.१२८.४, शां. श्रौ. सू. १२.२०.२.४

अदाशूः – अदाता कंजूस ।
'यः शश्वतो अदाशुसो गयस्य'
ऋ. ७.१९.१, अ. २०.३६.१

अदाशूष्टरः – अति अधिक कृपण ।
'अदाशूष्टरस्य वेदः'
ऋ. ८.८१.७

अद्धा – प्रत्यक्ष, (२) सचमुच ।
'सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान्'
ऋ. १.५२.१३
(सचमुच तेरे समान कोई नहीं हैं)।
(३) यथार्थ तत्त्व
'पुनर्यतो न किरद्धा तु वेद'
ऋ. १०.१११.७
(४) निश्चय पूर्वक,
'अद्धा देव महां असि'
ऋ. ८.१०१.११, अ.२०.५८.३
(४) साक्षात्, सत्य, यथार्थ ।
'को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्'
ऋ. ३.५४.५, १०.१२९.६, मै.सं. ४.१२.१:, १७८.१६, तै.ब्रा. २.८.९.५

अद्धाति – तत्त्वज्ञानी वैज्ञानिक पुरुष ।
'यामद्धातय इद्विदुः'
अ. ११.८.७

अद्याचित् – (१) आज तक ।
'तदद्या चित्त उक्थिनः'
ऋ. ८.१५.६, अ. २०.६१.३, सामं. २.२३२
(२) आज भी ।
अद्या चिन्नू चित् तदपो नदीनाम्'
'ऋ. ६.३०.३, नि. ४.१७
(हे इन्द्र, आज भी और पहले भी नदियों का जल बहाना ही तेरा काम रहा)।

अदित्सत् – दूसरों को ठगने या हिंसा न करने वाला।
'यो नो दिप्सददिप्सतः'
अ. ४.३६.२

अदित्सन् – न देना चाहने वाला पुरुष ।
'अदित्सन्तं चिदाघृणे'
ऋ. ६.५३.३

अदिति – (१) अदीना देवमाता, ऐतिहासिक (२)सन्धि वेला (३) आदित्य की माता ।
'दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते'
ऋ. १०.६४.५, नि. ११.२३
(हे अदिति या सन्धिवेला तू आदित्य के जन्मरूपी व्रत में या उदय का अस्त होने के समय (४) द्यौ, (५) अन्तरिक्ष, (६) विश्वदेव (७) पंचजनाः (८) आतस्तनी संन्ध्या, (९) आधे भाग से दिन और आधे भाग से रात को व्याप्त करने वाली (१०) अदीना, अखण्डनीया, अदुर्गता अभीता अनुपक्षीण –सा. (११) सकल प्रपञ्चधारण से भी खिन्न न होने वाली (सकल प्रपञ्च धारणेष्वदीना न खिद्यते–देवराज)
व्युत्पत्ति – (१) दीङ् (क्षयार्थक धातु) +क्तिन् (कर्त्ता अर्थ में) =दिति, नञ् + दीङ् +क्तिन् = अदिति । दीं का 'दि' हो जाता है । (२ अवखण्डनार्थक) +क्तिन् = दिति (गो का इत्व), न दिति = अदितिः । परमात्मा अक्षय और अखण्डित है ।
'अदिति र्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदिति र्माता स पिता स पुत्रः
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।'
ऋ. १.८९.१०, अ.७.६.१, वाज. सं. २५.२३, मै. सं. ४.१४.४: २२१.१, ऐ.ब्रा. ३.३१.९, तैआ. १.१३.२, आश्व. श्रौ सू ३.८.१, ५.१८.१८, जै. उप. ब्रा. १.४१.४, नि १.१५,४.२३
यह अदिति (पृथ्वी देवमाता) द्यौ है, अन्तरिक्ष है, सभी जीवों को उत्पन्न करने वाली माता है। सर्वपालक पिता है, वही पुत्र भी है। विश्व देव अदिति हैं । पञ्चजन-अर्थात्, ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद अथवा स्वा. दयानन्द के अनुसार गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस, अथवा ब्राह्मण ग्रन्थो के अनुसार देव, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा सर्प तथा पितर भी अदिति ही है। जो कुछ उत्पन्न हुआ है या होने वाला है सब अदिति ही है। इस प्रकार अदिति सकल जगतात्मक है।

(१२) द्यौ, अन्तरिक्ष माता पिता, पुत्र, विश्वेदेव, पञ्चजन्य, जात और जनित्व-ये सभी नाम अदिति परमेश्वर के हैं (दया.)। वह भूत काल में विद्वान् रहने के कारण जात और भविष्य मे एक रस रहने से जनित्व है।

(१३) 'हिरण्यमुषसो' ऋचा में 'चक्षाथे अदितिं दितिं च आया है। वहां मित्रावरुण को उदित हो पृथ्वी और द्युलोक दोनों को देखने वाला कह गया है। आर्यसमाजी विद्वान् मित्र को मन्त्री और वरुण को राजा समझ रथारूढ़ राजा और मंत्री द्वारा आत्म पक्ष (अदितिं) और प्रजा पक्ष (दिति) को सम्यक् देखभाल करने की कल्पना करते हैं।

(१४) अन्तरिक्ष आदि सभी अदीन हैं। द्युलोक और अन्तरिक्ष शीघ्र नाशवान् न होने से अदिति हैं। माता, पिता, पुत्र, सब विद्वान् लोग और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र निषाद सभी अदीन हैं। भूत और भविष्यत् काल भी अपने अपने महत्व से अदीन ही हैं।

(१५) इसी अदिति से उत्पन्न आदित्य हैं।

(१६) अदीनता- दे आदित्य,

'अनागसो अदितये स्याम'

ऋ. १.२४.१५, अ. ७.३४.१, ८३.३, १८.४.६९, आ. सं. १.४. वाज. सं. १२.१२, तै.सं. १.५.११.४, ४.२.१.४, मै. सं. १.२.१८, २८.९, ४.१४.१७, २४६.६,का. सं. ३.८. १६.८, १९.११, २१.१३, श. ब्रा.६.७.८, साम. मं. ब्रा. १.७.१०

'दक्षाद्वदितिः परिः'

ऋ. १०.७२.४

(अदिति से दक्ष हुआ और दक्ष से अदिति)

(१७) पृथिवी, (१८) आदित्य (१९) मुख्य प्राण, (२०) वायु, (२१) अन्न-ग्राहिणी शक्ति।

'अदितिःपान्तु मरुतः'

अ. ६.३.१

(२२) अखण्ड छुरे की धार।

'अदितिः श्मश्रु वपतु'

अ. ६.६८.२,

(छुरे की धार वाल काटे)

(२३) न नाश होने वाला, (२४) न दान देने योग्य, (२५) रत्न, (२६) भूमि, (२७) साझ का धन, अखण्डनीय अविभाज्य धन।

'दितिं च रास्व अदितिमुरुष्य'

ऋ. ४.२.११, तै.सं. ५.५.४.४, का सं. ४०.५

अदितित्व - अखण्डनीयता, अखण्ड बने रहना।

'अनागास्त्वे अदितित्वे तुरासः'

ऋ. ७.५.१.१, तै.सं. २.१.११.६ मै. सं. ४.१४.१४, २३८.१३

अदितेःअनीकम् - सूर्य का मुख उषा, (२) माता पिता दोनों का मुख पुत्र।

'माता देवानाम् अदिते-अनीकम्'

ऋ. १.११३.१९

अदितेःऋतम् - (१) अखण्ड परमेश्वर का सत्य ज्ञान मय स्वरूप, (२) अतिथि, माता पिता या सूर्य का तेज पद

'श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते'

ऋ. ९.६९.३

अदितेः पुत्रः - (१) भग नामक अन्धकार को जीतने वाले प्रातः कालीन आदित्य के विशेषण के रूप में प्रयुक्त, (२) अदिति का पुत्र। 'अदिति' का अर्थ देखें।

'प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम'

'वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता'

ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज. सं. ३४.३५, तै. ब्रा. २.८.९.७, आप. मं. पा. १.१४.२, नि. १२.१४. (हम अन्धकार को जीतने वाले उग्र भग को पुकारते हैं जो भग अदिति का पुत्र है और समस्त जगत् का अपने अनुग्रह से पालन करने वाला है।)

अदितेः पुत्रासः - (१) अदिति के पुत्र (२) भूमि के पुत्र, (३) बहुतों की रक्षा करने वाले भूमिमाता के तेजस्वी पुरुष

'ते हि पुत्रासो अदितेःविदुर्द्वेषासि योतवे'

ऋ. ८.१८.५, वाज. सं. ३.३३. मै. सं. १.५.४, ७०.११,श. ब्रा. २.३.४.३७,आप. श्रौ. सू. ६.१७.१०

अद्रिः - (१) पर्वत, (२) मेघ,।

'वि जयुषा ययथुः सान्वेद्रः'
ऋ. १.११७.१६
व्युत्पत्ति – (१) आङ् +दृ (विदारण) +क्रि = आदि (आङ् के आ और क्रि के क का लोप, (२) 'आदृणाति अतेन' या (इस से विदीर्ण करता है) अथवा 'आदारयति' अनेन इति अद्रिः। अर्थ– (१) वज्र (२) विदीर्ण करने का साधन, (३) सोम क्योंकि ग्रावा नामक पत्थर से सोम विदारा जाता है ।
(४) अथवा अद् (भोजन करना) +क्रि = अद्रि। अद्रि प्राणियों की हिंसा करना है । इन्हे खाता या मारता है अथवा इससे मारा जाता है । (५) अदरणीय (अ +दृ +क्रि =अद्रि) –दृढ़ । जैसे 'अद्रयः पर्वता' का अर्थ है– दृढ़ पर्वत। स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ आदरणीय भी किया है।
'यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः'
'श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः'
ऋ. १०.९४.१, नि. ९.९
(जब दृढ़ पर्वत और शीघ्र करने वाले आप ग्रावा एक साथ इन्द्र के लिए श्रवणीय घोष करते हैं।)या हे आदरणीय तेजस्वी (अद्रयः पर्वता) तथा एकत्र हो शीघ्र कार्य करने वाले प्रजा जनो (साकं आशवः)यदि तुम राजा के लिए प्रशस्त वचनों वाले शब्द को धारण करोगे अर्थात् प्रशस्त वाणी का उच्चारण करोगे (इन्द्राय श्लोकं घोषं भरथ) तब तुम ऐश्वर्य सम्पन्न होगे अथवा समृद्ध राजा के राष्ट्र में रहोगे (सोमिनः) ।

अद्रिजूतः – मेघ में या पर्वतादि विषम स्थलों में भी वेग से जाने वाला–रथ (२) विमान (३) अग्नि–यान (४) अविदीर्ण–स्थिर, अविनाशी परमेश्वर की तरफ वेग से जाने वाला आत्मा ।
'रथोह वामृतजा अद्रिजूतः'
ऋ. ३.५८.८

अद्रिजा – न विदीर्ण होने वाले बल से सम्पन्न (२) प्रर्वत पर उत्पन्न ।
'गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्'
वाज. सं. १०.२४

अद्रिदुग्ध – पर्वत या मेघ से प्रपूरित (२) पत्थरों से चलाया सोमरस ।
'तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाः'
ऋ. १.५४.९
(३)मेघ से परिपूर्ण, (४) उदार गुरुजनों से ज्ञान से परिपूर्ण शिष्य, (५) पत्थरों से चुलाया सोमरस ।
'तिरोरोम पवते अद्रि दुग्धः
ऋ. ९.९७.११, साम. २.३७०
(६) मेघों या पर्वतों से प्राप्त मधुर रस को धारण करने वाला ।
'तुभ्यं खाता अवता अद्रि दुग्धाः'
ऋ. ४.५०.३, अ. २०.८८.३

अद्रिभित् – (१) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य (२) शस्त्रयुक्त सैन्यो को भी भेदने से समर्थ (३) पर्वतों का भेदन करने वाला इन्द्र (४) मेघों का आवरण दूर करने वाला वायु (५) अद्रि अर्थात् दीर्ण होने वाले जन्म मरण के बन्धन या अज्ञान का नाशक ।
'यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा'
ऋ. ६.६३.१, अ. २०.९०.१, वै. सू. ३३.२१

अद्रिमाता – (१) मेघ का उत्पादक, (२) ज्ञानवाद उदार पुरुषों को उत्पन्न करने वाला (३) जिसे अद्रि ही उत्पन्न करता है सोम रस ।
'स्वर्वित् कोशं दिवो अद्रिमातरम्'
ऋ. ९.८६.३

अद्रिवन् – अद्रि +मतु । (१) अद्रि अर्थात् वज्रवाला इन्द्र । सम्बोधन में 'मतुवंसो स सम्बुद्धौ छन्द'से' से न् का स् और विसर्ग ।
'यदन्द्रि चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः।'
ऋ. ५.३९.१, साम. १.३४५, २.५२२, पंच. ब्रा. १४.६.४, आश्व.श्रौ.सू. ७.८.३, शां. श्रौ. सू. ११.११.१५, १८.१८.८, नि. ४.४
(हे इन्द्र, जो तेरा पूजनीय या विचित्र धन है और जो धन तेरे द्वारा देने योग्य है)
(२) अविनाशी शक्तिशाली वज्रधारी इन्द्र ।
'महेचन त्वामद्रिवः'
'परा शुल्काय देयाम्'
ऋ. ८.१.५, साम. १.२९१, शां.श्रौ.सू. १८.९.२, १०.२
(३) शस्त्र और पर्वत युक्त राज्य का स्वामी ।
'इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवः'
ऋ. १.८०.७, साम १.४१२.

अद्रिवर्हाः – मेघों के आच्छादनों से युक्त सूर्य ।
'पीयूसं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः'

ऋ. १०.६३.३

अद्रिवाः – (१) सोमरस, (२) सर्वोत्पादक, (३) आदरणीय , (४) अक्षय बलवान् (५) परमात्मा, (६) आदर करने वाले भक्तों के स्वामी ।
'रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः'
ऋ. ९.५३.१, साम. २.१०६४

अद्रिबुध्नः – अन्न के खाने वाले देह या प्राण पर आश्रित ।
'अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नः'
ऋ. १०.१०८.७

अद्रि-संहत –पर्वत के समान दृढ़ शरीर वाला, (२) सोम ।
'द्विर्यं पञ्च स्वयशसं स्वसारो अद्रिसंहतम्'
ऋ. ९.९८.६, साम. २.६८

अद्रिसानु – (१) पर्वत शिखर, (२) पवर्त शिखर के समान दृढ़ आधार शिला पर आरूढ़ कन्या ।
'इदा हि त उषो अद्रिसानो'
ऋ. ६.६५.५

अद्रिसुत – (१) पर्वत पर उत्पन्न उद्भिद् आदि –(दया.) (२)शिला-खण्ड से चलाया सोमरस ।
'इमे सुता अद्रिसुतास उद्भिदः
ऋ. १.१३९.६

अद्विषेण्य – (१) कभी द्वेष नहीं करने वाला, (२) द्वेष न करने योग्य, (३) सबका प्रिय ।
'मयोभुरद्विषेण्यः सखा'
ऋ. १.१८७.३, का. सं. ४०.८

अदीधेत् – अन्वध्यायत् । अर्थ है – ध्यान किया, अनुकूल चिन्तन किया अर्थात् पूर्ण किया।
'यद्देवापिः शंतनवे पुरोहितः'
'हो त्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२
वर्षा की कामना से कही गई ऋचा जब अर्ष्टिसेन शन्तनु राजा के पुरोहित देवापि ने होता कर्म के लिए व्यस्त होकर कृपा करता हुआ ऐसा ध्यान किया कि वृष्टि हो । अन्य अर्थ– जब वर्ष कामेष्टि यज्ञ के लिए वरण किए हुए सत्संगी विद्वान् ने राष्ट्र के लिए शान्ति की इच्छा रखने वाले राजा पुरोहित होकर कृपादृष्टि से यज्ञ को पूर्ण किया ।

अद्री – मेघ या पर्वतवत् स्त्री पुरुष, (२) सोम रस चुलाने के लिए दो शिला खण्ड ।
'युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः'
ऋ. ७.४२.१

अदुग्धा – नहीं दुही हुई गौ ।
'अदुग्धा इव धेनवः'
ऋ. ७.३२.२२, अ.२०.१२१.१, साम. १.२३३, वाज.सं. २७.३५, तै.सं. २.४.१४.२, मै.सं. २.१३.९, १५८.१४, का.सं. ३९.१२, आप. श्रौ.सू. १७.८.४, १९.२२.१६,

अदुच्छुनः – प्रजा को दुःख न देने वाला ।
'मदो राजन्नदुच्छुनः'
ऋ. ९.६१.१७, साम २.२४०

अदुष्कृता – दुष्टा चरण से रहित वरवधू
'मादुष्कृतौ व्यनेसा अघ्न्यौ शूनमारताम् ।'
ऋ. ३.३३.१३, अ. १४.२.१६

अद्भुत – (१) अभूत – जो न हुआ हो। जो कदाचित्क हो अर्थात् शायद ही कभी हो जाय ।
(२) किस का होगा । मेरा या दूसरे का, इस प्रकार की भावना होने पर अद्भुत समझा जाता है । यागात् स्वर्गो भवति (यज्ञ से स्वर्ग होता है) इसमें वही अभूत की भावना है जिसे हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते इसलिए वह अद्भुत हुआ । नञ् +भू +क्त =अभूत । त् का आगम और ऊ का उ होकर अद्भुत बना ।
(३) महत् । निघंटु में अद्भुत शब्द 'महत्' वाची पठित है । महान् पदार्थ सम्यक् प्रकार से धारण किया जाता है ।
सम् +भृ +हुतन = सम्भुत = अद्भुत
'न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद् वेद यदद्भुतम्'
ऋ. १.१७०.१, नि. १.६
(इन्द्र कहते हैं– आज का हवि मेरा नहीं है और कल का हवि तो मेरा है ही नहीं, यह सब होनहार बात कोन ऐसा है जो जानता है)
(२) आश्चर्य जनक, विचित्र ।
'मित्रो न भूत अद्भुतस्य रथीः'
ऋ. १.७७.३
(वह आश्चर्यजनक युद्ध करने वाले सैन्य बल का महारथी अथवा आश्चर्य प्रद ऐश्वर्य का लेने वाला हो ।)

अद्भुतक्रतू – आश्चर्यजनक बुद्धि और कर्म से सम्पन्न मित्रावरुण (२) स्त्री पुरुष ।

'मा कस्याद्भुत क्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः'
ऋ. ५.७०.४, शां. श्रौ. सू. १२.२.१४

अद्भुतैनाः – पाप-रहित, निरपराधी ।
'आदित्या अद्भुतैनसः'
ऋ. ८.६७.७

अद्यु – प्रकाश-रहित सान्धकार ।
'अद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः'
ऋ. ७.३४.१२

अद्रुह् – अ +द्रुह् +क्विप् =अद्रुह् । द्रोह-रहित ।
'उत मन्ये पितुरद्रुहो मनः'
ऋ. १.१५९.२

अद्रुहः – परस्पर द्रोह न करने वाले, एक दूसरे के उपकारक, (२) तीव्रगामी वायु आदि तत्त्व ।
'ये महो रजसो विदुः'
'विश्वे देवासो अद्रुहः।'
ऋ. १.१९.३

अद्रुहा – द्रोह से रहित ।
द्यावापृथिवी का विशेषण ।
'आ वामुपस्थमद्रुहा'
ऋ. २.४१.२१, मै.सं. ३.८.७: १०५.७, कौ,ब्रा. ४, नि. ९.३७
हे हविर्धान द्यावापृथिवी, तुम दोनों द्रोहरहित हो ।

अद्रुह्वाणः– कभी द्रोह न करने वाला ।
'ता वां सम्यग् अद्रुह्वाणा'
ऋ. ५.७०.२, साम २.३३६

अद्रून – बिना जला भुना ।
'द्रूना अद्रूना अरसा अभूवन्'
अ. २.३१.३

अद्यूत्य – (१) द्यूतात् आगतम् । द्यूते भवं वा द्यूत्यम् , न +द्यूत्यम् = अद्यूत्यम् – द्यूत आदि छलयुक्त कार्य या शर्त से रहित कार्य (२) प्रकाश रहित स्थान ।
'अद्यूत्येऽवसे निह्वये वाम्'
ऋ. १.११२.२४, वाज सं. ३४.२९
(प्रकाश रहित अन्धकारमय मार्ग में या द्यूत आदि छल कपट से व्यवहार से रहित धर्म मार्ग में गमन करने के लिए आप दोनों को मैं बुलाता हूं ।)

अद्रूक्ष्ण – अ +द्रक्ष्ण । जो रूखा, कठोर या क्लेशकारी न हो ।
'संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते'
अ. ८.२.१६

अद्रृप्तः – दर्परहित । (अ +दृप् +क्त) ।
'वेधा अद्रृप्तो अग्निर्विजानन्'
ऋ. १.६९.३

अद्रृप्तक्रतुः – ज्ञान और कर्म पर भी गर्व न करने वाला (२) बुद्धि में मोहित न होने वाला (३) कर्म करने पर गर्वरहित ।
'अद्रृप्त क्रतुरवातः'
ऋ. ८.७९.७
"अद्रृप्तक्रतु मरतिं युवत्योः'
ऋ. ६.४९.२

अद्रृपित – (१) मोह और अहंकार से रहित ।
'आश्रृण्वते अद्रृपिताय मन्म'
ऋ. ४.३.३
(२) अन्यो को क्लेश न पहुँचाने वाला ।
'अदब्धेभिरद्रृपितेभिरिष्टे ।'
ऋ. १.१४३.८

अद्रृप्यत् – गर्व-रहित ।
'अद्रृप्यता मनसा रेवदाशाथे'
ऋ. १.१५१.८

अद्रृष्टहा – (१) नहीं दीखने वाले कीटों का नाशक-सूर्य-ताप, (२) अप्रत्यक्ष परलोक में भी गति करने वाला ।
'विश्वद्रृष्टो अद्रृष्टहा'
ऋ. १.१९१.८,९, अ.५.२३.६, ६.५२.१

अद्रृंहत् – द्रृंह् (दृढ़ करना) का लङ् (भूत) में रूप । दृढ़ किया, स्थापित किया ।
'अस्कम्भने संविता द्यामद्रृंहत्'
ऋ. १०.१४९.१, नि. १०.३२

अदेव – (१) नहीं देने वाला, (२) जो विद्या और धन पाकर दान न दे (३) कर आदि न देने वाला, (४) अव्यवहारज्ञ (५) देव या राजा को न स्वीकार करने वाला (६) अराजक (७) नीच
' न नमो वधः अदेवस्य पीयोः'
ऋ. १.१७४.८, २.१९.७
(८) प्रकाश या ज्ञान से रहित शरीर
'अदेवाद् देवः प्रचता गुहायत्'
ऋ. १०.१२४.२

अदेवृघ्नी – देवर का विनाश न करने हारी
'अदेवृघ्नी अपतिघ्नीहैधि'

अ. १४.२.१८

अदेवमनः – उत्तमभाव से रहित अशुद्ध मन ।
'अदेवेन मनसा यो रिषण्यति'
ऋ. २.२३.१२, का.सं. ४.१६

अदेवयुः – (१) इन्द्रियों को वश में नहीं रखने वाला, (२) यज्ञादि एवं देवोपासना न करने वाला, (३) विद्वानों एवं शुभगुणों का समादर न करने वाला

अदेवीःमायाः – (१) अदेवन शील आसुरीमाया, राक्षसी माया ।
'प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः'
ऋ. ५.२.९,अ. ८.३.२४, तै.सं. १.२.१४.७, का.सं. २.१५
अति आसुरी मायावों को अभिभूत करता है (सा.) । तेजस्वी पुरुष दुष्टमार्ग में ले जाने वाली आसुरी मायाओं को अभिभूत करता है –(दया) ।

अद्रेःश्लोकः – मेघ के समान ज्ञान वर्षा करने वाले वेद की वाणी ।
'दस्राविमं श्रणुतं श्लोकमद्रेः'
ऋ. १.११८.३, ३.५८.३

अद्वेषः विष्णुः – द्वेष रहित व्यापक बलवान् एवं पर्वतों और देश के प्रकोटों का स्वामी ।
'अद्वेषोविष्णुः वातऋभुक्षाः'
ऋ.१.१८६.१०

अदोमदः – (१) परलोक में सुख प्रद।
'अदोमदमन्नमद्धि प्रसूतः'
अ. ६.६३.१
(२) खाने में सुख कारी एवं मधुर
'अबलासावदोमधौ'
अ. ८.२.१८

अद्रोघः – (१) द्रोह-रहित ।
'ये अद्रोघमनुष्वधम् ।'
ऋ. ५.५२.१
'अद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने'
ऋ. ३.१४.६, का. सं. ६.१०
(२) किसी से भी द्रोह या द्वेष बुद्धि न रखने वाला परमेश्वर ।
'अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वम्'
ऋ. ३.२२.९

अद्रोघवाच् – (१) जिसकी आज्ञा अनुल्लंघनीय हो- (२) हितकर वेदवाणी को देने वाला ।
'अद्रोघवाचम् मतिभिः शविष्ठम्'
ऋ. ६.५.१, २२.२, अ. २०.३६.२
(३) सदा द्रोहरहित प्रेम की वाणी से स्मरण करने योग्य (४) प्रेममयी वाणी का उपदेष्टा ।
'अद्रोघवाचम् सुशेवम्'
अ. ६.१.२, आश्व. श्रौ. सू. ८.१.१८

अध – और ।
'अध जिह्वा पापतीति प्रवृष्णः'
ऋ. ६.६.५
(और प्रवर्षिता अग्नि की ज्वाला लकडियों पर बार बार जाती है।
'अध यदेषां सुदिने न शरुः'
ऋ. १.१८६.९

अधन्वा – माया की दूध रहित गौ ।
'अधेन्वा चरति माययैष'
'वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्'
ऋ. १०.७१.५, नि. १.२०
(जो बिना समझे बुझे वाणी पढ़ता या सुनता है उसे उससे कोई फूल या फल नहीं मिलता । वह अध्ययन निष्फल होता है । वह माया की गौ है जो दूध नहीं देती ।)

अधमः – नीचेवाला ।
'अवाधमं वि मध्यमं श्रथाय'
ऋ. १.२४.१५, अ. ७.८३.३, १८.४.६९, आ.सं. १.४, वाज सं. १२.१२, तै.सं. १.५.११.३, ४.२.१.३, मै.सं. १.२.१८: २८.८, ४.१४.१७: २४६.५, का.सं. ३.८.१६.८, श.ब्रा. ६.७.३.८, साम मं.ब्रा. १.७.१०

अधमन्तमः – अधम अर्थात् नीचे का अन्धकारमय नरकलोक ।
'नोयन्त्यधमंतमः'
अ. ८.२.२४

अधमपाश – तिर्यक् आदि योनि में ले जाने वाला कर्मजाल ।
'अधमं पाशमुत्तमम्'
अ. २.८.१, ३.७.४

अधरः – (१) नीचे स्तर का मनुष्य ।
'यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट'
ऋ. ३.४३.२१, अ. ७.३१.१, मै. सं. १.२.१५: २६.३, का. सं. ३०.८,९,
(२) नीच की ओर-ओष्ठ ।
'उपायाममधरेणौष्ठेन'

वाज सं. २५.२, तै सं. ५.७.१२.१, मै. सं. ३.१५.२, १७८.३, का. सं. (अश्व) १३.२
(३) अधः +ऋ (गमन करना) +अच् =अधार = अधर जो नीचे की ओर जाय
(४) अथवा, न धावति इति अधः (जो ऊपर की ओर न जाय) नञ् + धाव् +डसन् =अधः
(५) अधर का अर्थ नीचे वाला भी है ।
'स उत्तरस्मान् अधरं समुद्रम्'
'अपो दिव्या असृजत् वर्ष्या अभि'
ऋ. १०.९८.५, नि. २.११
(देवापि ने ऊपर के समुद्र से नीचे के पार्थिव समुद्र में दिव्य जल सभी जीवों के ऊपर बरसाया ।)

अधरकण्ठ – कण्ठ का अधर भाग ।
'तेदनीमधर कण्ठेन'
वाज. सं. २५.२, मै.सं. ३.१५.२, १७८.५

अधरगुहा – शरीर का अधोभाग, (२) गर्भाशय, (३) नीचला खोह ।
'यो दासं वर्णम् अधरं गुहाकः'
ऋ. २.१२.४, अ. २०.३४.४, कौ. ब्रा. २.१.४, २२.४

अधरंतमः – मृत्युरूपी निकृष्ट अन्धकार ।
'यो अस्मां अभिदासति अधरं गमया तमः'
ऋ. १०.१५२.४, साम. २.१२१८, अ. १.२१.२, वाज. सं. ८.४४, १८. ७०, तै. सं. १.६.१२.४, मै. सं. ४.१२.३: १८३.१३, श. ब्रा. ४ .६.४.४,शां. श्रौ. सू. ४.२१.२, १७.१२.४ आप. श्रौ. सू. २०.२०.७
(हे इन्द्र, जो हमें नष्ट करना चाहता है उसे मृत्युरूपी निकृष्ट अन्धकार में पहुंचा ।)

अधरःसमुद्रः – नीचे वाल पार्थिव समुद्र ।
'स उत्तरस्मादधरं समुद्रम्'
ऋ. १०.९८.५, नि. २.११

अधरहनुः – नीचे का जबड़ा ।
'पृथिव्यधरहणुः'
अ. ९.७.२

अधरा – निकृष्ट कोटि की ।
'शत्रूयतामधरा वेदनाकः'
ऋ. १.७.१४

अधराक् – अधर +अञ्च +क्विप् =अधराञ्च । नीचे गिरने वाला (२) पतनशील पतित
'तदाहुरधरागिति'
अ. २०.१२८.२, शां.श्रौ. सू. १२.२०.२.३

अधराङ् – नीचे की ओर गिरा हुआ ।
'तेऽअधराञ्चः प्रपमवन्ताम्
अ. ३.६.७, ९.२.१२
'त्वं सिन्धूंरवा सृजोऽधराचः'
ऋ. १०.१३३.२, अ. २०.९५.३, साम. २.११५२
(२) नीचे की ओर दबा हुआ ।
'अधराञ्चं सुवामसि'
अ. ६.१२७.३.

अधराञ्च् – नीचे की ओर गति वाला ।
'अधराञ्चं परासुव'
अ. १९.३९.१०

अधराच्य – (१) नीचे की ओर सरकने वाला पिष, (२) निम्न बल वाला विष ।
'अथेदमधराच्यम् ।'
अ. ४.७.२

अधराची – नीचे मार्ग में लगी, नीच प्रवृत्ति वाली स्त्री (२) यातुधानी, राक्षसी ।
'यातुधान्योऽधराचीः परासुव'
वाज सं. १६.५

अधराचीन – नीचे ।
'अधराचीनम् अकृणोत् अपामयः'
ऋ. २.१७.५

अधरात् – दक्षिण से ।
'आश्विना यातमधरात् उदक्तात्'
ऋ. ७.७२.४, ७३.५

अधरावेदना – निकृष्ट कोटि की वेदना ।

अधवन्त – (१)चलते हैं या चलने लगे (२) पहुंचावे–
'आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः'
ऋ. ७.१८.१५
(मेघ असुर इन्द्र से दीर्ण हो विलीन प्राय जल की तरह विनम्र हो नीचे चलने लगे)
(दुष्टों केहिंसक क्षत्रिय राजद्रोहियों को फेंके जल की तरह नीचे पहुंचावे)

अधः – नञ् +धाव् +उसुन् = अध्: । जो ऊपर की ओर न धावे अर्थात् नीचे की ओर ।

अधःक्षरना – (१) मेघ से नीचे गिरती हुई जलधारा (२) नीचे के अंगों से स्रवित अर्थात् ।
'ऋतुधर्मवाली नवयुवती ।'
'श्रृण्वन्त्यापो अधःक्षरन्ती'
ऋ. ७.३४.२

अधःपदः – अधीन ।

अधस्पदः – (१) नीचे का स्थान ।
'अधस्पदं द्विषतस्पादयामि'
अ. ११.१.१२,२१
(२) चरण-सेवी,अधीन ।
'लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम्'
अ. ५.८.८

अध्यक्ष – साक्षी परमेश्वर ।
'अध्यक्षो वाजी मम काम उग्रः'
अ. ९.२.७

अध्यालोहकर्ण – समस्त लोह के बने साधनों वाली ।
'शुष्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णाः'
वाज. सं. २४.४

अध्व – मार्ग ।

अध्वन् – (१) मार्ग, (२) अन्तरिक्ष ।
'धूमारेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते'
ऋ. ६.५०.५
जीवन मार्ग के परिशुद्ध होने पर बड़े बड़े शत्रु सैन्य भय से कापंने लगते हैं । -(द.)
हे मरुतो, अन्तरिक्ष में तुम्हारे विस्तृत होने पर बहुत जीव कांपने लगते हैं ।-(सा.)

अध्वनो विमध्य – सूर्य के मार्ग का मध्य, वसन्त संपात । वसन्त संपात तक सूर्य आधा मार्ग में संक्रमण कर चुकता है ।
'जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम्'
ऋ. १०.१७९.२, अ. ७.७२.२

अध्वर – ध्वर् +घ = ध्वर । ध्वर्यन्ते वध्यन्ते अस्मिन् (जिसमें पशु मारे जाय वह ध्वर है)
नञ् +ध्वर = अध्वर (जहां पशु न मारा जायं) अर्थ-यज्ञ । यज्ञ हिंसा रहित हो सकता है । द्वेष पूर्वक हिंसा ही श्रुति में हिंसा मानी गयी है । कुछ विद्वान् इस शब्द को निपास सिद्ध समझते हैं ।
(२) जिस यज्ञ में राक्षसों द्वारा वध न हो उसे भी अध्वर कहते हैं।
(३) अध्वर शब्द का प्रयोग यज्ञ को हिंसा सहित और हिंसा रहित वनाना है । देखें ।
'तनून पात् पत ऋतस्य यानान्'
'मध्वा समञ्चन् स्वदया सुजिह्व'
'मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्'
'देवत्रा च कृणु ह्यध्वरं नः ।'
ऋ. १०.११०.२, अ ५.१२.२, वाज सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३.३: २०१.१०, का.सं.१६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६
(हे अग्ने, यज्ञ के इन फल प्राप्ति कारक हविरूपी मार्गों को (ऋतस्य यानान् पथः) मधुर रस से मिलाते हुए स्वादिष्ट बना (स्वदया) हे सुजिह्व या सुन्दर ज्वाला वाला, हमारी अभिप्रेत चीजों को (मन्मानि) अपने कर्मों या बुद्धि से समृद्ध करता हुआ हमारे इस राक्षसों द्वारा अहिंसित अध्वर को देवताओं की ओर प्रवृत्त कर।)
(२) नष्ट न होना, जीवन का बने रहना ।
'यमे अध्वरो अधि मे निविष्टः'
ऋ. १८.२.३२.

अध्वरश्रीः – यज्ञ का महान् अविनाशी परमेश्वर का आश्रय लेकर रहने वाला ।
'उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः'
ऋ. १०.७८.७

अध्वरस्य केतुः – अविनाशी महान् यज्ञ कर प्रवर्तक और ज्ञापक-सूर्य ।
'ऊर्ध्वं कृण्वन्तु अधरस्य केतुम्'
ऋ. ३.८.८

अध्वर्यन्ता – (द्वि. व.) अश्विद्वय या स्त्री पुरुष का विशेषण । अर्थ यज्ञ की इच्छा करते हुए ।
'अध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपारम्'
ऋ. १.१८१.१

अध्वर्यु – अ +ध्वर् +घ = अध्वर। अध्वर +यु =अध्वर्यु। अर्थ-हिंसा रहित यज्ञ करने वाला, (२) अहिंसा का उपासक प्रजा जन – (दया)

अध्वर्यू – (द्वि.व.) हिंसा एवं आत्मविनाश न चाहने वाले, अविनाशी दोनों आत्मा, (२) यज्ञ शील स्त्री पुरुष ।
'वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयः'
ऋ. २.१६.५

अध्वराणां नेता – यज्ञों का नेता अग्नि, (२) न नष्ट होने वाले तत्वो का संचालक ।
'प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम्'
ऋ. १०.४६.४

अध्वराणांसम्राट् – यज्ञों का सम्राट स्वरूप अग्नि, (२) परमेश्वर ।
'सम्राजन्तमध्वराणाम्'

ऋ. १.२७.१
(अहिंसामय यज्ञों के सम्राट् स्वरूप अग्नि को)

अध्वस्मन् – (१) अविनाशी आकाश मार्ग, (२) भय संकट से शून्य
'अध्वस्मभिः पथिभिः भ्राजदृष्टयः'
ऋ. २.३४.५
(३) अपतनशील गुण स्वभाव ओर कर्म वाला –(दया.)
(४) अविनश्वर, तेज ।
(५) अक्षय, अमोघवीर्य ।
'अध्वस्मभिः विश्वहादीदिवांसम्'
ऋ. २.३५.१४
(६) नञ् + ध्वस् +मनिन् = अध्वस्मन् । अर्थ–कभी नीचे न गिरने वाला (७) नाश न होने देने वाला (८) राष्ट्र और धर्म को नष्ट नहीं होने देने वाला ।
'अध्वस्मानो दिविष्टषु'
ऋ. १.१३९.४
आकाश मार्ग विहार करने के अवसरों में (दिविष्टिसु) जिस प्रकार कभी नीचे न गिरने वाले (अध्वस्मानो), सावधानी से उड़ने वाले अथवा, राष्ट्र और धर्म को नाशन होने देने वाले (अध्वस्मानो), कामना योग्य व्यवहारों के प्राप्ति मार्ग (दिविष्टषु)

अध्वरीयत् – (१) हिंसा रहित यज्ञ करने वाला ऋत्विक् , (२) जीवन यज्ञ का सम्पादक प्राण
'जामयो अध्वरीयताम्'
ऋ. १.२३.१६, अ १.४.१, ऐ ब्रा. २.२०.२०
(३) अविनश्वर राज्य पालनादि की कामना करने वाला
'वेषि ह्यध्वरीयताम्'
ऋ. ४.९.५; ६.२.१०
(४) अहिंसित जीवन को चाहने वाला जीव ।

अधा – (१) और ।
'अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य'
ऋ. ४.१०.२, साम. २.११२८, वाज. सं. १५.४५, तै. सं. ४.४.४.७, मै. सं. २.१३.८:, १५७.१७, का. सं. २०.१४, आश्व श्रौ. सू. २.८.१४
(२) (क्रि. वि.) साथ हिलमिलकर
'अधा जिव्री विदथमावदाथः'
ऋ. १०.८५.२७
तुम दोनों पतिपत्नी साथ हिलमिलकर (अधा)वृद्ध हो (जिव्री) यज्ञ में मन्त्रों का उच्चारण करो (विदथम् आवदाथः)
पुनः 'और' अर्थ में ।
'अधा स वीरैः दशाभिः वियूयाः'
ऋ. ७.१०४.१५, अ. ८.४.१५, नि. ७.३
(३) (सं.) नाड़ी
'अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावा ।'
ऋ. १०.६१.२०
(४) 'अधः' के विसर्ग का वेद मे 'आ' हो जाता है । अर्थ है–हेतु, कारण । निरुक्त में इसे हेत्वर्थक शब्द माना गया है ।
'अधा चिदोकःपुनरित् स एत्या'
ऋ. ७.४.८; नि. ३.३.
क्योंकि (अधा) वह तो फिर भी (पुनरित्) उसी पिता के घर पर चला जाता है । (ओकश्चित्)
(५)नीचे ।
'अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थे'
ऋ. १०.९५.१४; श. ब्रा. ११.५.१.८
(मरकर भूमि के ऊपर अर्थात् नीचे सोवे (अधा शयीत)।

अधाचन – तभी ।
'अधा चन श्रद् दधति त्विषीमते'
ऋ. १.५५.५

अधाचित् – इस प्रकार ।
'अधाचिदिन्द्र मे सचा'
ऋ. ८.९२.२९, अ. २०.६०.२, साम. २.१७५

अधायि – अध्यायि, ध्यातवान् । अर्थ संकल्प विकल्प किया, सोचा ।
'उपप्रागात् सुमन्मे ऽधायि मन्म'
ऋ. १.१६२.७, वाज. सं. २५.३०, तै. सं. ४.६.८.३, मै. सं. ३. १६.१:१८२.४ ;का. सं. (अश्व) ६.४, नि. ६.२२
अश्वमेध यज्ञ में पठित ।
मेरे पास मनमाना धन आवे (मन्म उप प्रागात्) ऐसी इच्छा मेरे मन में स्वयमेव हुई है (मेसुमन् अधायि)

अध्वा – बड़ा मार्ग । 'पन्थाः' पगडंडी या उपमार्ग का द्योतक है ।
'वेत्था हि वेधो अध्वनः'.
'पथाश्च देवाजसा'

ऋ. ६.१६.३, साम. २.८२६, ऐ. ब्रा. ७.८.३, श. ब्रा. १२.४.४.१, आश्व श्रौ. सू. ३.१०.१२

अधि – (उप.) (१) ऊपर, (२) स्वामी, (४) समीप।
'तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ती'
ऋ. १.१.१६४.४२ अ. ९.१०.२१, १३.१.४२, शां. सू. १८.२२.७ नि. ११.४१
उस गौरी वाक् या विद्युत् के समीप से (तस्या अधि) मेघ बरसते हैं। (समुद्रा अधिविक्षारन्ती)

अधिकल्पी – अधिक कल्पना शील, चतुर मास्तिष्क वाला।
'द्वारापरायाधिकल्पिनम्'
वाज.सं. ३०.१८

अधिक्षिम् – अधि +क्षित्। अध्यक्ष होकर रहने वाला।
'इन्द्राग्नी अधिक्षितः'
ऋ. ८.४०.३

अधिगर्त्य – घर में रखा हुआ अन्न आदि पदार्थ।
'सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य'
ऋ. ५.६२.७

अधिगव – पृथ्वी से प्राप्त पदार्थ।
'एतद् वा उ स्वादीयो यदधिगवम्'
अ. ९.६.३९

अधिजात – और भी अधिक गुणवान्, वीर्यवान् और पराक्रमी रूप से प्रकट।
'त्वमिन्द्रबलादधि सहसो जात ओजसः'
ऋ. १०.१५३.२, अ. २०.९३.५, साम. १.१२०, नि. ७.२

अधितस्थुः – अभिसन्तिष्ठन्ते – (उपरि तस्थुः)। संख्या का आधार स्थिति तथा मृत्यु है। (संस्था धारे स्थितौ मृतौ)। अर्थ है– आश्रित जीव क्लिष्ट होते हैं। अथवा जीव आश्रय लेते हैं।
'सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधितस्थुः'
ऋ. १.१६४.२, अ. ९.९.२, १३.३.१८, तै.आ. ३.११.८, नि. ४.२७.
(एक चक्र आदित्य में सात किरणें रहती हैं। यही एक आदित्य सात नामों से चलते हैं। यही तीन नाभियों ऋतुओं से युक्त संवत्सर सदा नवीन चाहता है जिसमें आश्रित हो ये तीनों भुवन विराजमान हैं)

अधदधाने – उषा और रात्रि का विशेषण धारण करती हुई।
'अधिश्रियं शुक्रपिशं दधाने'
ऋ. १०.११०.६, अ. ५.१२.६, वाज. सं. २९.३१, मै. सं. ४.१३.३, २०२.६, का. सं. १६.२०, तै. ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.११.
(शुक्लरूपिणी शोभा को धारण करती हुई उषा और रात्रि।

अधिदेवन – जुआ खेलने का स्थान जुआडियों का अड्डा, द्यूत क्रीड़ा क्षेत्र।
'यथाक्षा अधिदेवने'
अ. ६.७०.१

अधिधन्वन् – (१) धनुषि अधि (धनुष में) या धनुष का अधिकारी।
'योषेव शिङ्क्ते वितताधिधन्वन्'
'ज्या इयं समने पारयन्ती'
ऋ. ६.७५.३, वाज. सं. २९.४०, तै. सं. ४.६.६.१, मै.सं. ३.१६.३. १८५.१५ का. सं. (अश्व) ६.१, नि. ९.१८
(यह ज्या जो धनुष पर चढ़ाई हुई है, और युद्ध में धनुर्धारी को जिताने वाली है, वह जैसे पानी की तरह कान में कुछ रहस्यमय संदेश अव्यक्त शब्दो में कहती है)
(२) धनुष पर चढ़ाया हुआ।
'नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु'
ऋ. १०.१३३.१–३, ४–६, अ. २०.९५.२.४, साम. २.११५१–११५३, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४: १८९.९; तै.ब्रा. २.५.८.२

अधिधीयमाना – अधिकार में रखी जाती हुई।
'पाप्माधिधीयमाना'
अ. १२.५.३०,

अधिध्वन् – उच्च ध्वनि वाली वाणी।
'वनादधिध्वनो गिरः'
अ. २०-१२७.१४

अधिनिर्णिजः – अति शुद्ध।
'यः श्वेतां अधिनिर्णिजः'
ऋ. ८.४१.१०

अधिनीयमानः – अभिमानियों पर आकर।
'यदस्य मन्युरधिनीयमानः श्रृणाति'
ऋ. १०.८९.६
(जो इस इन्द्र या परमात्मा का मन्यु अभिमानियों

परा आकर (अधिनीयमानः) शान्त होता है (श्रृणाति) ।

अधियः – स्वामी ।
'अस्माकं मन्यो अधिपा भवेह.'
ऋ. १०.८४.५, अ. ४.३१.५
हे मन्यु. तू हमारे नामअन्दर अधिपति है ।

अधिप्रवृद्धः – (१) ४८ वर्ष का ब्रह्मचारी –(दया.) (२) प्रकृष्ट बुद्धि से युक्त । (३) उत्तम गुण युक्त (४) भोगने योग्य उत्तम पदार्थों को देने वाला (५) बहुत ऐश्वर्य देने वाला
'मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध'
ऋ. १.३३.३

अधियाः – सर्वोपरिपालक , (२) परमेश्वर (३) वरुण ।
'स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धः'
ऋ. ७.८८.२

अधिपूरुष – विराट् ब्रह्माण्ड के ऊपर अधिष्टाता रूप से विराजमान ब्रह्माण्ड को पूर्ण करने वाला व्यापक परमेश्वर ।
'विराजो अधिपूरुषः'
ऋ. १०.९०.५, अ. १९.६.९, आ.सं. ४.७, वाज.सं. ३१.५, तै आ. ३.१२. २

अधिमन्थन – (१) मन्थन दण्ड के ऊपर रखने का काष्ठ, (२) स्त्री के हृदय को मथन कर देने वाले भावों पर अधिकार करने वाला (३) प्राण, (४) शत्रु-मन्थन कारी सैन्य ।

अधिमुष्कौ – अण्डकोशों के ऊपर स्थित दो नाडियो जिनमें वीर्य रहता है ।
'ते ते भिनद्मि शम्ययामुष्या अधि मुष्कयोः'
अ. ६.१३८.४

अधिरन्तु – रस्सी या हथकड़ी लगाए हुए ।
'यमस्य लोके अधिरज्जुरायत्'
अ. ६.११८.२, मै.सं. ४.१४.१७: २४५. १४, तै. आ. २.४.१

अधिराज – महाराज, राजाओं का राजा
'अधिराजो राजसु राजयातै'
अ. ६.९८.१,

अधिरुक्मा – शरीर पर नाना रुचिर आभूषणों को धारण करने वाली ।
'अधिरुक्मा वि नीयते'
ऋ. ८.४६.३३

अधिरोचन – (१) प्रकाशित होना, (२) ज्ञान प्रकाश और व्यवहार का उत्तम रुचिकर तेजस्वी कार्य
'नाम तृतीयमधिरोचने दिवः'
ऋ. १.१५५.३, ९.७५.२, साम. २.५९
(पुत्र सूर्य के समान प्रकाशित होने में पिता के निकृष्ट, उत्तम, सर्वोच्च और सबसे उत्तम यश को भी धारण करता है ।)

अधिवक्ता – (१) अधिक बोलने वाला, (२) अधिकारी वक्ता, (३) विद्याओं को साक्षात् देखने वाला ।
'विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नोअस्तु
अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।'
ऋ. १.१००.१९, १०२.११, मै.सं. ४.१२.४: १८७.५ का.सं. १२.१४
(विद्याओं को साक्षात् देखने वाला और ऐश्वर्यवान् इन्द्र, विद्वान् , आचार्य या सभाध्यक्ष सदा अध्यक्ष होकर उपदेश करने और आदेश देने वाला हो। हम लोग सब प्रकार से कुटिल विचारों और चेष्टाओं से रहित होकर (अपरिह्वृताः) सौम्य भाव से उत्तम अन्न ऐश्वर्य आदि अपने आचार्य प्रदान करें।)

अधिवस्या – अधिक या उत्तम वस्त्र धारण करने वाली ।
'अधिवस्त्रा वधूरिव'
ऋ. ८.२६.१३

अधिवाकः – (१) अध्यक्ष रूप से आज्ञा या निर्णय वचन कहने वाला अध्यक्ष ।
'अधिवाकाय हवन्ते'
ऋ. ८.१६.५
(२)अनुकूल कहा गया ज्ञान (३) पक्षपात से कहा गया वचन (४) पक्षपात पूर्वक कहने वाला दूत ।
'नमस्ते अधिवाकाय'
अ. ६.१३.२

अधिवास – घोड़े के शरीर पर दिया अधीवासु जाने वाला चादर (२) ऊपर पहनने का लम्बा गाऊन ।
'अधीवासं या हिरण्यान्यस्मै'
ऋ. १.१६२.१६,वाज.सं. २५.३९, तै. सं. ४.६.९.२, मै. सं. ३.१६.१: १८३.६, का. सं. (अश्व) ६.५ ।

अधिविकर्त्तन – (२) कन्या में पाए जाने वाले तीन

दोषों में एकमर्म भेदी वचन कहना ।
'अथो अधिविकर्तनम्'
ऋ. १०.८५.३५, अ. १४.१.२८, आप. मं. पा. १.१७.१०
(१) रजस्वला होने के समय शरीर का चीरना ।

अधिषवणे – (१) सोमरस चुलाने वाले शिलाफलक, (२) कुंटे हुए सोम या अन्न को रखने का पात्र (३) राज्य के उत्पादक राजा और प्रजा, (४) पुत्रोत्पादक माता पिता ।
'अधिषवणे च मे'
वाज. सं. १८.२१

अधिष्ठ – अधिष्ठान ।

अधिष्ठान – (१) आश्रय ।
'किं स्विदासीदधिष्ठानम् आरम्भणम्'
ऋ. १०.८१.२, वाज. सं. १७.१८, तै.सं. ४.६.२.४, मै.सं. २.१०.२: १३३.६ का.सं. १८.२
(२) स्थान ।
'विलोहितो अधिष्ठानात्'
अ. १२.४.४

अध्रिगावः – किरणों को नहीं धारण करने वाले प्रकाश रहित प्राणवायु ।
'ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव'
ऋ. १.६४.३

अध्रिगुः – (१) बिना रोक टोक के जाने वाला ।
'न देवो नाध्रिगुर्जनः'
ऋ. ८.९३.११
(२) सत्य गति वाला
'गिर्वणस्तमो अध्रिगुः'
ऋ. ६.४५.२०
(३) अत्यधिक भूमि का स्वामी ।
(४) अधिक गति वाला (५) अधिक ज्ञानी आत्मा, (६) सर्व संचालक ।
'येना दशग्वमध्रिगुम'
ऋ. ८.१२.२, अ. २०.६३.८
(७) गो अर्थात् वेदवाणी , (८) इन्द्रियगण या पृथ्वी पर अधिकार रखने वाला विद्वान् या राजा (९) अग्नि (१०) गौ, पृथ्वी, सूर्यादि का शासक परमेश्वर ।
'तुभ्यं श्चोतन्ति अध्रिगो शचीवः'
ऋ. ३.२१.४, मै.सं. ४.१३.५: २०४.१४, का. सं. १६.२१, ऐ. ब्रा . २.१२.१४, तै. ब्रा. ३.६.७.२, नि.५.११
(११) अस्थिर चंचल इन्द्रियों से युक्त ।
'याता रथेभिरध्रिगुः'
ऋ. ८.७०.१, अ. २०.९२.१६, १०५.४, साम. १.२७३, २.२८३
(१२) सर्वव्यापक ।
'ऋचीषमायध्रिगव ओहम्'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१
(१३) अधृतगमन, (१४) सतत गमन स्वभाववाला (१५) अग्नि का विशेषण (१६) कहीं कहीं इन्द्र का विशेषण होकर इन्द्रवाचक भी है ।
(१७) वेद मंत्र या जो मन्त्र भूमि या गौ के सम्बन्ध का हो ।
'गवि अधिककृत अध्रिगुः'
(१८) शासक राजा (गवि भूमौअधिकृतः अध्रिगुः राजा)
'अध्रिगो शमीध्वं सुशमि शमीध्वम्'
मै.सं. ४.१३.४: २०४.३, का. सं. १६.२१, ऐ. ब्रा. २.७.११, तै. ब्रा. ३.६.६.४, आश्व श्रौ. सू. ३.३.१, ५.१७.१० कौ. सू. ६९ .६, नि. ५.११
(अध्रिगु के लिए सुशमि का प्रयोग कर शान्ति स्थापित करने की आज्ञा दी गई है।)
(१९) अथक परिश्रमी –(दया.) ।
हे कर्मवीर, अथक परिश्रमी विद्वान् गुणग्राही मनुष्य तुझे स्निग्ध घृतादि पदार्थ देते हैं । –(दया.)

अध्रिजः – अदृष्य, असह्य ,
'इति चिन्मन्यु मध्रिजः'
ऋ. ५.७.१०

अधीतम् – (१) निरूपित सा. । (२) अच्छी प्रकार विचार किया हुआ ।
'अन्यस्यं चित्तमभि संचरेण्यम्'
'उताधीतं वि नश्यति'
ऋ. १.१७०.१, नि. १.१६
(मेरे निमित्त निरूपित हवि दूसरे द्वारा आत्मसात् कर लिया जायगा ।)

अधीति – (१) अध्ययन, (२) अधीन ।
'नूते पूर्व स्यावसो अधीतौ'
ऋ. २.४.८
(३) नानागति (४) योनि अवस्था ।

'अधीती रध्यगादयम्'
अ. २.९.३

अधीरा – धैर्य से हीन ।
'धीरमधीरा धयति श्वसन्तम्'
ऋ. १.१७९.४
(कामाविष्ट लोपामुद्रा अधीरा हो धीर किन्तु श्वास लेत हुए अगस्त्य के पास जाती है ।)
(२) अधि +इरा = अधीरा । अत्यन्त कामना से युक्त, (३) अति उत्तम भूमि या क्षेत्र ।

अधीवास – (१) ऊपर का वस्त्र (२) वर्दी, (३) घोड़े का चादर । (४)चादर–(दया.) (५) आच्छादक घास, लता, वृक्षादि (६) अधिष्ठाता या अध्यक्ष रूप से रहने वाला (७) वस्त्रवत् पालन पोषण करने योग्य ऐश्वर्य ।
'अधीवासं परिमातूरिहन्नह'
ऋ. १.१४०.९
(८) उत्तरीय पट (९) अधिशासक राजा (१०) नायक ।
'अधीवासं रोदसी वावसाने'
ऋ. १०.५.४
'यदश्वाय वास उपस्तृणन्ति'
'अधीवासं या हिरण्यान्यस्मै'
ऋ. १.१६२.१६, वाज.सं. २५.३९, तै. सं. ४.६.९.२, मै.सं. ३.१६.१: १८३.६ का. सं. (अश्व) ६.५

अधुक्षत् – झाड़ दिया, (२) झकझोर दिया, धुनदिया ।
'अश्वमिवाधुक्षत् धुनिमन्तरिक्षम्'
'अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्'
ऋ. १०.१४९.१, नि. १०.३२
(धूल धूसरित घोड़े को जैसे सईस झाड़ता है उसी प्रकार सविता ने अगम्य, अहिंसित एवं कम्पायमान अन्तरिक्ष में वायवीय अन्तरिक्ष में वायवीय पासों से बद्ध मेघ को धुनकर प्रवाहित बड मेघ को धुनकर प्रवाहित किया ।)

अधृष्ट – विनीत, अपराजित (२) कभी न धर्षण किया जाने अच्युतपद ।
'भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः'
ऋ. ६.६६.१०, मै.सं. ४.१४.११: २३३.१

अधेनु – (१) दूध न देने वाली बन्ध्या गौ, (२) ऐश्वर्य या भोग्य पदार्थों को न देने वाली पृथ्वी ।
'अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ताम्'
'अपिन्वतं शयवे अश्विनां गाम्'
ऋ. १.११७.२०
(हे विद्वान् और प्रमुख स्त्री पुरुषों या अश्विद्वय। या अधिकारी जनों, या दुष्ट पुरुषों के नाशक (दस्रा) आप दोनों सोने वाले या राज कार्य में प्रमाद करने वाले आलसी राजा के लिए (शयवे) दूध न देने वाली गौ के समान ऐश्वर्य या भोग्य पदार्थों को न देने वाली विस्तृत या हिंसाशील राजद्रोहिणी विपरीत हुई पृथिवी राष्ट्र भूमि या सेना को (विषक्ताम् नाना ऐश्वर्यों से सम्पन्न करो (अपिन्वतम् ।)

अधोअक्षाः – (१) नीचे आंखें किए हुई स्त्री, (२) नीचे को प्राप्त होती हुई इन्द्रियों से युक्त –(दया.)
'अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः'
ऋ. ३.३३.९

अधोरामः – जिस समय पूर्व की किरणें आकाश में छिटकने लगती हैं, उस समय नीचे अन्धकार ही रहता है ।
'अधस्तात् तदा तमो भवति'
काल और देवता के गणों में समानता रहने से पशु भी सावित्र ही कहा जाता है।
अर्थ – (१) सूर्योदय का समय बतलाने वाला पशु विशेष–सावित्र, कुक्कुट, ताम्रचूड़ (२) जिसके नीचे भागों में शुक्ल वर्ण का वस्त्र हो ।
'अधोरामौ सावित्रौ'
वाज.सं. २९.५९, तै.सं. ५.५.२४.१, का.सं. (अश्व) ८.३
(३) नीचे (४) श्वेत वस्त्र वाले ।
'अश्विनौ अधोरामौ बाह्वोः'
वाज. सं. २४.१, मै.सं. ३.१३.२: १६८.११

अधृषतः – पराजित न होने वाला
'त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो
हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः'
ऋ. १०.८४.१, तै.ब्रा. २.४.१.१०, नि. १०.३०
हे वायु, तेरे साथ एक पथ पर चढ़ शत्रुओं को पराजित करते हुए हर्षित एवं पराजित न होने वाले ।

अधृष्टा – किसी से धृष्ट या दबाए नहीं जाने वाला ।
'कदूमहीरधृष्टा अस्य तविषीः'
ऋ. ८.६६.१०

(कब इन्द्र केवल महान् और अधृष्ट है ?)
'शक्रो पाचमधृष्टायः'
अ. २०.४९.२

अनस् – (अनिति) । अन् (प्राणने) +असुन् = अनस् (१) (वायु) जिससे सांस ली जाती है, अनिति का अर्थ है 'प्राणिति' अर्थात् बहता है सांस लेता है । प्र +अन् से 'प्राण' शब्द बना है ।(२) अनस् का अर्थ शकट भी है जिसमें मुनियों का चीवर (वल्कलादि) आनद्ध होता है ।
'शकटं शाकिनी गावः'
नि. ६.५
(३) मेघ । इससे भी प्राणी जीते हैं ।
'अपोषा अनसः सरत्
संपिष्टादह बिभ्युषी
नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा'
ऋ. ४.३०.१०, नि. ११.४७
(नव बरसने वाला मध्यम वायु सर्वतः (सीम्) मेघ को हटा देता है (नि शिश्निथत् तब वायु से छिन्न भिन्न मेघ से संपिष्टात्) डरती हुई उषा वायु से दूर हट जाती है ।

अन् – जीवन ।
'परिह् वृतेदना जनो'
ऋ. ८.४७.६

अनक्तन – व्यक्त करो, (२) प्रकाशित करो ।
'रोदसी अनक्तन'
(द्यौ और पृथिवी को व्यक्त करो),

अनक्षः – नञ् +अक्ष । (१) बिना आंख का, (२) अविवेकी, (३) अनालोचक, (४) ज्ञानान्ध ।
'अपानक्षासोबधिरा अहासत'
ऋ. ९.७३.६
(५) अव्यापक, (६) अपेक्षाकृत स्थूल ।
'यस्यानक्षा दुहिता जात्वास'
ऋ. १०.२७.११ वै. सू. ३८.६

अनग्न – नग्न न रहकर केशों से ढका हुआ ।
'अनग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये'
अ. १२.३.५१
(और जो अनन्य पशु हैं)

अनग्ना – नञ् ।नग्ना = अनग्ना । (१) वस्त्र आभूषण और रक्षादि से आच्छादित प्रजा (२) लज्जाशील स्त्री ।
'दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः'
ऋ. ३.१.६

अनग्निदग्ध – (१) जो पितर आग में जलकर नहीं मरा हो, (२) जो अग्नि, यज्ञ, गुरु, आचार्यादि द्वारा कर्मों को भस्म नहीं कर पाया है । (३) अग्निहोत्र नहीं करने वाला संन्यासी ।
'ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धाः'
ऋ. १०.१५.१४, अ. १८.२.३५, तै.ब्रा. ३.१.१.७, आश्व श्रौ. सू . २.१९.२२

अनड्वान् – (१) ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ को धारण करने वाला, (२) विश्वरूपी शकट को उठाने वाला परमेश्वर ।
'अनड्वान् दाधार पृथिवीमुतद्याम्'
अ. ४.११.१
(३) बैल, (४) प्राण
'अनड्वाहमुप बर्हणम्'
अ. ९.५.२९

अनड्वान्गौः – (१) शकट चलाने वाला बैल, (२) राष्ट्र शकट को उठाने वाला वीर पुरुष ।
'अनड्वान् गौर्वयोदधुः'
वाज. सं. २१.१८, मै.सं. ३.११.११: १५८.११, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.३

अनग्नित्रा – (१) विपत्तियों या अप्रकट ज्वर को रखने वाले, (२) जो नायक या विद्वान् पुरुषों से सुरक्षित न हो, (३) दुष्ट पुरुष ।
'अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः'
ऋ. १.१८९.३ मै.सं. ४.१४.३; २१८.१९, तै.ब्रा. २.८.२.४

अनत् – प्राण देता हुआ, (२) चेतन रूप आत्मा, (३) परमेश्वर ।
'अनच्छये तुरगातुजीवम्'
ऋ. १.१६४.३०, अ ९.१०.८

अनग्निष्वात्त – नञ् +अग्निष्वात्त ।
(१) जो अग्रणी अर्थात् मुख्य पर स्थित नहीं है, (२) जो राजा की ओर से नहीं चुना गया है
'ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता'
वाज.सं. १९.६०, तै. ब्रा. २.६.१६.१, आप. श्रौ.सू. ८.१५.१७

अनतिव्याध्य – अवेध्य ।
'वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम्'
अ. ९.२.१६

अनदती – (१) अ +नदती । नहीं गर्जने वाली, (२) नञ् + अदती = अनदती । भोग न करने वाली , (३) अन +दती =अनदती । छोटे छोटे दांतों वाली स्त्री ।
'वव्राजा सीमनदतीरदब्धा'
ऋ. ३.१.६

अनन्त – (१) नञ् +अन्त =अनन्त, जिसका अन्त नहीं है, निःसीम ।
'अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः'
ऋ. १.११५.५, अ.२०.१२३.२, वाज.सं. ३३.३८, मै.सं. ४.१४.४: २२०.१०, तै.ब्रा. २.८.७.२
(इस सूर्य या परमेश्वर का देदीप्यमान चिन्मय सामर्थ्य भी अनन्त निःसीम है।)
(२) जिस वाद विवाद की मर्यादा न हो ।
'अनन्ताय मूकम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३

अनन्तवध – (१) असंख्य किरण, (२) असंख्य शस्त्र या वीर (३) अनन्त प्रकार की ताड़ना आदि उपाय ।
'कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वन्
शुष्णमनन्तैः परवासि वधैः ।'
ऋ. १.१२१.९
हे इन्द्र या सेनापति, जल वृष्टि के लिए जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी का जल सुखा देने वाले ताप को धारण करता हुआ असंख्य किरणों से प्रकाशित होता है, उसी प्रकार तू असंख्य शस्त्रों और वीर भटों के साथ (अननौः वधैः) प्रयाणकर ।
अथवा, वेदपाठी शिष्यों के हित के लिए बल धारण करता हुआ अनन्त प्रकार के ताड़ना आदि उपायों से प्राप्त होता है।

अनन्त शुष्माः – अनन्त बल वाले मरुत्, रुद्र या सैनिक ।
'अनन्त शुष्माः वृष खादयो नरः'
ऋ. १.६४.१०

अनपच्युत – नञ् +अप +च्यु +क्त = अनपच्युत । ध्रुव, अविनाशी ।
'सनोजा अनपच्युतः'
ऋ. १०.२६.८

अनपत्यम् – सन्तानों के अयोग्य पापादि कर्म ।
'युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः'
ऋ. ३.५४.१८

अनपत्य – नञ् +अपत्य = अनपत्य, सन्तान रहित
'अनपत्यमल्प पशुम्'
अ. १२.४.२५

अनपत्यता – बन्ध्यात्व, नपुंसकत्व ।
'अगोतामनपत्यताम्'
अ.४.१७.६

अनपत्यवान् – सन्तान रहित
'हित्वा द्वेषांसि अनपत्यवन्तः
अ. १८.२.४७

अनपव्ययन् – (१) नाश न करता हुआ , दूर न जाता हुआ ।
'क्षिणन्ति शत्रूँ नपव्ययन्तः'
ऋ. ६.७५.७, वाज.सं. २९.४४, तै.सं. ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३.१८६.६, का.सं. (अश्व) ६.१
(३) अपव्यय न करता हुआ स्वामी का अपव्यय न करता हुआ (४) स्वयं कुमार्ग मे दूर न भागता हुआ (५) सेनापति के अधीन रह कर स्वंय नष्ट न होता हुआ हुआ ।

अनपवाचना – न +अप + वाचना । ऐसी वेदना जिसमें मुंह से गाली या क्रोध के शब्द भी न निकले ।
'आर्तिश्चानपवाचना,'
अ. ८.८.९

अनपवृज्य – (१) जो वर्जन करने योग्य न हो, (२) कभी परित्याग न करने योग्य, (३) निन्द्य पदार्थों या आचरणों से रहित ।
'अनपवृज्यां अध्वनो मिमाने'
ऋ. १.१४६.३

अनपस्फुर – (१) न बिदकने वाली गौ (२) उत्पथ में न जाने वाली ।
'सुदुघा अनपस्फुरः
ऋ. ८.६९:१०, अ. २०.९२.७

अनपस्फुरन्ती – बिना भड़के बिना डोले डाले, बिना छटपट किए , सरल, नहीं भड़कने वाला, निर्भय ।
'ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती'
अ. १२.१.४५
'विश्वाहा सन्त्वनपस्फुरन्तीः'
अ. १८.४.३४, तै. आ. ६.७.१

अनपस्फुरा – (१) न मारने योग्य धेनु, गौ (२)कभी

नाश न होने वाली वेद वाणी, (३) भूमि ।
'सृजध्वमनपस्फुराम्'
ऋ. ६.४८.११

अनप्नस् – (१) नञ् + अप्न +जस् = अनप्नस् । बिना रूप और नाम के । अप्नस् का अर्थ रूप और नाम है । हिन्दी का अपना और अंग्रेजी का own इस शब्द से समता रखता है ।
'अभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः'
ऋ. २.२३.९, नि. ३.११.
(उन्हे तू अरूप कर चारों ओर से नष्ट कर ।)
(२) उत्तम कर्म और उत्तम रूप से रहित दुष्ट प्रजा–सेना ।

अनंगुरिः – बिना अंगुलि का बच्चा ।
'पञ्चपादादनंङ्गुरेः'
अ. ८.६.२२

अनपावृत् – न +अपावृत् । सब के समीप वर्तमान परमेश्वर, जो किसी से दूर न हो ।
'समानमस्मा अनपावृदर्च'
ऋ. १०.८९.३

अनभ्यक्त – नञ् +अभिं +अञ्च + क्त = अनभ्यक्त । शरीर पर तैल आदि न लगाए हुआ । (२) अस्वस्थ ।
'योनाक्ताक्षो अनभ्यक्तः'
अ. २०.१२८.६, गो.ब्रा. २.६.१२, शा.श्रौ.सू. १२.२१.२.१

अनभिद्रुहा – परस्पर द्रोह न करने वाले–गुरु शिष्य, राजा रानी, राजा सचिव, स्त्री पुरुष ।
'राजानावनभिद्रुहा'
ऋ. २.४१.५, साम. २.२६१

अनभिम्लातवर्ण – अक्षीण तेज वाला ।
'सो अपां नपादनभिम्लातवर्णः'
ऋ. २.३५.१३, का.सं. ३५.३

अनभिशस्ति – नञ् +अभिशस्ति =अनभिशस्ति । नाशरहित । अभिशस्ति नाश या दुःख के अर्थ में लिया गया है ।

अनभ्रिः – नञ् +अभ्रि =अनभ्रि । बिना कुदाली के ।
'अनभ्रयः खनमानाः'
अ. १९.२.३

अनभीशुः – नञ् +अभीशुः =अनभीशु । बिना रास या लगाम का घोड़ा या (२) सूर्य (३) अंगुलि आदि अंगों में रहित आत्मा ।
'अनवसो अनभीशू रजस्तूः'
ऋ. ६.६६.७

अनमित्र – (१) नञ् +अमित्र =अनमित्र । शत्रु का अभाव
'अनमित्रञ्च मे ।'
वाज. सं. १८.६, तै.सं. ४.७.३.२, मै.सं. २.११.३: १४१.१२, का.सं. १८.९.
(२) शत्रुओं से रहित मार्ग ।
'अनमित्रमतस्करम्'
अ. १२.१.४७

अनमीवः – नञ् +अमीव =अनमीव। रोग रहित।
'अनमीवस्य शुष्मिणः'
ऋ. ३.१६.३, वाज.सं. ११.८३, तै.सं. ४.२.३.१, का.सं. १६.१०,१९.१२, मै.सं. २.१०.१, १३२.५, पंच ब्रा. १.८.७, श.ब्रा. ६.६.४.७, तै.ब्रा. ३.११.४.१, आश्व.गृ.सू. १.१६.५. आप मं. पा २.१५.१५,

अनमुच्या द्रुह् – कभी न छूटने वाला कलह ।
'अनागमिष्यतो वरानवित्तेः
संकल्पा नमुच्याद्रुहःपाशान्'
अ. १६.६.१०

अनपेता – नञ् +अप +इ +क्त +टाप् =अनपेता । अलग न होने वाली ।
'यत्रधारा अनपेता'
वाज.सं. १८.६५, तै.सं. ५.७.७.३, श.ब्रा. ९.५.१.५०

अनर्मा – अव्यथित ।
'अव देवानां बृहतामनर्मणाम्'
अ. ७.१.१

अनर्वन् – नञ् +ऋ +वनि =अनर्वन् । अप्रत्यृतम् अन्यस्मिन् (जो दूसरे के आश्रित न हो)। ऋ+वन् से अर्वन् निपातन से बना है । अर्व का अर्थ है जो दूसरे से सम्बन्ध या पराश्रित हो । 'अरब' शब्द की समानता अर्व से है । अनर्व का स्पष्ट अर्थ स्वतन्त्र है। आर्यों के लिए अनर्व विशेषण रुचिकर प्रतीत होता है ।
'त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वम् ।'
ऋ. १.१६४.२, अ.९.९.२, १३.३.१८, तै.आ. ३.११.९, नि. ४.२७

(एक चक्रवाला अदित्य तीन ऋतुओं रूपी नाभि से युक्त अजर एवं किसी के आश्रित न रहने वाले (अनर्वम्) कालचक्र का निर्माण करता है।)
(२) नञ् +अर्व + कनिन =अनर्व । इन्द्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त । इन दिनों 'अर्वन्' का अर्थ घोड़ा है ।
अहिंसक -(दया.)
'अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वम्
बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः'
ऋ. १.१९०.१, नि. ६.२३
सर्वस्वतन्त्र बरसाने वाले, सुन्दर स्तुति या जीभ वाले नित्य नवीन बृहस्पित को अर्चनीय स्तोत्रों से बढ़ाता रह । उस स्वाश्रय श्रेष्ठ, प्रशंसित या आनन्द मधुर वाणी वाले स्तुत्य वेदज्ञ का अन्नादि से पोषण कर । (दया.)

अनर्वा - (१) अश्व आदि की अपेक्षा न करने वाला -स्वयंगामी रथ, (२) निरपेक्ष, (३) स्वयं जगत् का संचालक (४) अहिंसक वृहस्पति ।
'बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम'
ऋ. ७.९७.५, का.सं. १७.१८
(४) अग्नि या विद्युत् के बल से चलने वाला बिना अश्व का रथ । मोटर कार वगैरहः 'अनर्वा' है ।
'यस्मै त्वमायजसे स साधति अनर्वा
क्षेति दधते सुवीर्यम्'
ऋ. १.९४.२
(तू जिसे थोड़ा सा भी बिना और ज्ञान ऐश्वर्य प्रदान करता है, वह चलने फिरने वाला बिना सहायता के भी सब कार्य सिद्ध करता है, और सुवीर्य धारण करता है।)

अनर्वरातिः - यस्याः रातिः अर्शा अश्लीला नास्ति सः (जिसका दान अश्लील नहीं होता है ।) नञ् +अर्श +रा (देना) +क्तिन् =अनर्शरातिं । अर्थ-जिसका दान सुन्दर हो । इन्द्र का विशेषण । 'अर्श' का अर्थ अश्लील या पापयुक्त है । नञ् +श्रिञ् (सेवा करना) +अ = अर्श (इ का लोप) अर्थ-दान पुण्य-दान देने वाला (दया.) । परमेश्वर ।
'अनर्शरातिं वसुदामुपस्तुहि'
ऋ. ८.९९.४, अ. २०.५८.२, नि. ६.२३
सुन्दर दान देने वाले, धन देने वाले इन्द्र के समीप जाकर स्तुति करें-

अनर्शनिः - अहिंसति बल का नेता ।
'यः सृबिन्दमनर्शनिम्'
ऋ. ८.३२.२

अनर्वावाज - (१) बिना अश्व का वेगवान् रथ, (२) दोष रहित ऐश्वर्य और ज्ञान, (३) हिंसक सेना रहित संग्राम ।
'स नो वाजमनर्वाणम्'
ऋ. २.६.५

अनर्विश् - अनस् (गाड़ी) +विश् +क्विप् =अनर्विश् । अर्थ - गाड़ी का प्रवेश करना ।
'अनर्विशे पश्विषे तुराय'
ऋ. १.१२१.७
(नगर में गाड़ी के प्रवेश करने के लिये (अनर्विशे) पशुओं के चाहने वाले के लिए (पश्विषे) और वेग से यानादि ले जाने के लिए । (तुराय) ।

अनवग्लायत् - नञ् +अव +ग्लायत् =अनवग्लायत् । मन में किसी प्रकार ग्लानि न करता हुआ ।
'अनवग्लायतां सदा'
अ. ४.४.७, ६.१०१.३

अनवः - (१) एक वैदिक राजवंश , (२) प्राणी जीव के योग्य शरीर, (३) मनुष्य
'निगव्यो अनवो द्रुह्यवश्च'
ऋ. ७.१८.१४

अनवद्यरूपा - नञ् +अवद्यरूपा । अदूषित स्वरूप वाली ।
'स्पार्हाःसुवर्णा अनवद्यरूपाः'
ऋ. १०.६८.३, अ. २०.१६.३

अनवद्य - निष्कलंक, पापरहित ।

अनवद्या - कलंक, पाप या दोष से रहित नारी ।
'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी'
ऋ. १.७३.३

अनवद्यगोहना - अश्विद्वय या स्त्री पुरुष या विशेषण। अर्थ-एक दूसरे के दोषों और निन्दनीय कार्यों को आच्छादित या गोपन करने वाले स्त्री पुरुष ।
'समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना'
ऋ. १.३४.३
(हे एक दूसरे के दोषों और निंदनीय कार्यों को

आच्छादित या गोपन करने वाले स्त्री पुरुष । एक ही दिन में (समाने अहन्) आप दोनों तीन तीन बार मधुरगुण वाले जल से अन्न, बल या मधुर गुण से यज्ञ, आत्मा शरीर और मन का नित्य सेचन करो)।

अनवद्राणः – कभी कुत्सित आचरण न करने वाला सदाचारी आचार्य। Andrews, शब्द की 'अनवद्राण' से समता विचारणीय है।

'अस्वप्नश्च त्वानवद्राणश्च रक्षताम्'

अ.८.१.१३

अनवभ्रराधसः – अक्षय धन, ऐश्वर्य एवं बल के स्वामी ।

'पृषदश्वासः अनवभ्रराधसः'

ऋ. २.३४.४, ३.२६.६

(२) मरुद्गण जिनका बल कभी नष्ट नही होता । (३) धनैश्वर्यो को नाश न होने देने वाले – सदा सम्पन्न मरुत् ।

'त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः'

ऋ. ५.५७.५

पुनः –

'प्रस्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसः'

ऋ. १.१६६.७

अनवमृग्णा – (१) सम्पर्क –रहित, एक दूसरे के सटा हुआ न हो । (२) खुले, हवादार (३) शरीर के सुखकारी वस्त्र ।

'अनवमृग्णा विहता वसानम्'

ऋ. १.१५२.४

(सदा हम उसे खुले हवादार शरीर के सुखकारी वस्त्रों को धारते और विस्तृत घरों एवं वस्त्रों में रहते हुए देखें।)

अनवब्रव – (१) अनवक्षिप्त वचन. (२) अप्रतिहत शासन, (३) जो निरर्थक वचन बोलने वाला न हो ।

नञ् +अव +ब्रूञ् +अप =अनवब्रव ।

'विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवः।'

ऋ. १०.८४.५, अ. ४.३१.५, नि. ६.२९

हे मन्यो, तू इन्द्र के समान विजयी और अप्रतिहत शासन है (अनवब्रवः) ।

अथवा

(हे मन्यु, तू विजयकर्त्ता है और राजा की तरह निरर्थक उत्मत्त वचन बोलने वाला नहीं है ।)

अनवस्यन्तः – एकवचन में 'अनवस्यनः' रूप है । नञ् +अवस् +कयप् + शतृ = 'अनवस्यन्' । अर्थ –(१) प्रकाशित करने में असमर्थ (२) रक्षा करने में असमर्थ ।

'ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम्'

ऋ. ४.१३.३

अनवह्वरम् – नञ् +अवह्वरम् =अनवह्वरम् । छल कपट या कुटिलता से रहित ।

'सचेते अनवह्वरम्'

ऋ. २.४१.६, साम. २.२६२

अनवायम् – (अ.) निरन्तर ।

'द्वेषोधत्तम् अनवायं किमीदने'

ऋ. ७.१०४.२, अ. ८.४.२, का.सं. २३.११, नि. ६.११

अनवाय – नञ् +अव +इ+घञ् =अनवाय = अनवयव (सकल पृषोदरादि शब्दो की तरह 'अनवाय' का 'अनवयव' हो जाता है)। अर्थ है- निरन्तर, सम्पूर्ण (२) यत् अन्ये न व्यवेयुः (धर्मात्मा पुरुष जिसे न रोकें अर्थात् सज्जनों से अनुमोदित, (३) नास्ति व्यवायो यस्मै तत् अव्यवायम् –(दया.)

'ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे,
द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने'

ऋ. ७.१०४.२,अ. ८.४.२, २३.११., नि. ६.११

(ब्रह्मद्वेषी, घोर रूप वाले, कच्चा मांस खाने वाले पिशुन राक्षस के लिए तुम दोनों सदा द्वेष भाव रखो।)

अनशन – (सं) नञ् +अश् +ल्युट् =अनशन । नहीं खाने वालाजड़ अचेतन प्राणी ।

'साशनानशने अभि'

ऋ. १०.९०.४, वाज. सं. ३१.४, तै. आ. ३.१२.२

अनश्रु – आंसुओं से रहित स्त्री ।

'अनश्रवो अनमीवाः सुरत्नाः'

ऋ. १०.१८.७, अ १२.२.३१, १८.३.५७, तै.आ. ६.१०.२

अनश्रू – (द्वि.व.) आंसुओं, क्लेश या बाधा पीड़ा से रहित ।

अनश्यू – अनस् = च्यू = अनश्यू । गाड़ी को उठाने या ले जाने वाले ।

(२) राष्ट्रभाषा को उठाने वाले । 'अनश्यू' पाठ

दयानन्द सम्मत है ।
'अनश्रू अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ'
वाज.सं. ४.३३, वाज.सं. (का.) ४.१०.४,तै.सं. १.२.८.२, श. ब्रा. ३.३.४.१२,

अनश्व – (१) अश्व-रहित -सूर्य ।
(२) अश्व या भोक्ता के समान बद्ध न होकर ।
(३) स्वभाव से अभोक्ता होने से आत्मा अनश्व है ।
'अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा'
ऋ. १.१५२.५

अनश्वदा – (१) अविद्यमाना अश्वाः यस्या सा गतिः-(दया.) (वह गति जिसने अश्व न हो,) (२) किरणों को बाहर न जाने देने वाला मेघ (३) अश्व सैन्य को मार्ग न देने वाल पर्वत ।
'अनश्वदां यन्ययातना गिरिम्'
ऋ. ५.५४.५

अनश्वरथ – बिना घोड़े का रथ ।
'अनश्वं याभी रथमावंत जिबे'
ऋ. १.११२.१२
(जिन उपायों से बिना घोड़े के रथ को विजय के लिए (जिसे) यन्त्रादि साधनों से चला देते हो ।)

अनष्टपशुः – (१) जिस परमेश्व के जीव गण नष्ट नहीं होते ।
'अनष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१, नि. ७.९ (२) जिसके रहते पशु नष्ट नहीं होते-पूषा या अदित्य का विशेषण (३) निरन्तर प्रकाश युक्त- (दया.) । (४) अविनश्वर पशुयुक्त या निरन्तर प्रकाशयुक्त आदित्य ।
'पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वान्
अनष्ट पशुर्भुवनस्य गोपाः'
अव्यवहित ज्ञान एवं प्रत्यक्षदर्शी भगवान् आदित्य (पूषा) हे मृतात्मा, तुझे (त्वा) इस लोक से (इतः) उत्तम लोक को पहुंचाने (प्रच्यावतु)

अनष्टवेदाः – धन और ज्ञान से सम्पन्न ।
'इर्यमनष्टवेदसम्'
ऋ. ६.५४.८

अनः – (१) आगे बढ़ने का साधन सवारी ।
'वज्रेणान उषसः सं पिपेष'
ऋ. २.१५.६
(२) जीवनी शक्ति (३) गाड़ी ।
'य आवहदुशी नराण्या अनः'
ऋ. १०.५९.१०
अन (जीवन धारण करना) +असुन् =अनस् (१) शकट, (२) वायु । वायु जीवन का आधार है । (३) मेघ यह भी जीवन का आधार है । प्रचलित अर्थ-गाड़ी, भोजन, भात, जन्म, प्राणी, पाकशाला
'आ ते कारो शृणवामा वचांसि
ययाथ दूरादनसा रथेन'
ऋ. ३.३३.१०, नि. २.२७
हे स्तुति करने वाले (कारो) विश्वामित्र, तेरी बात हम ध्यान से सुनते हैं । तू दूर से आया है । अतः गाड़ी या रथ से जा ।
मेघ के अर्थ में –
'एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या'
ऋ. ४.३०.११, नि. ११.४८
यह उषा का आश्रय भूत मेघ (एतत् अस्या अनः) वायु से संचयि होकर तथा सभी बन्धनों से रहित हो, (विपाशि) सोया हुआ है ।

अनसः खः – (१) शकट (बैलगाड़ी) का अवकाश (२) प्राण ग्रहण के छिद्र-नाक, मुख, फेफड़ा ।
'खे रथस्य खेडनसः'
ऋ. ८.९१.७, अ. १४.१.४१, तै.ब्रा. १.२२१

अनस्थ – नञ् +अस्थि =अनस्थ । अर्थ = पुष्ट प्रष्ट, जिसकी हड्डी न दिखाई पड़े ।
'अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः'
अ. ४.३४.२
(२) अस्थि-रहित आत्मा ।
'अनस्थ उरु खरम्बमाणः'
ऋ. ८.१.३४

अनस्था – (१) हड्डी अर्थात् शरीर से रहित आत्मा
'अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति'
ऋ. १.१६४.४, अ. ९.९.४
(२) अस्थि-रहित परमेश्वर जो अनस्था होकर भी अस्थि युक्त शरीर का निर्माण करता है ।

अनस्वन्ता – शकट आदि से युक्त दो बैल, (२) गृहस्थ रूप भार से युक्त दो स्त्री पुरुष ।
'अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे'
ऋ. ५.२७.१

अनस्वान् – अनस् + वतुप =अनस्वत् अर्थ

(१) शरीर रूप गाड़ी का स्वामी प्राण, (२) गाड़ी में लगा बैल, (३) उत्तम प्राण, यज्ञ, यान या शकट का स्वामी ।

अन्त - (१) प्रान्त । (२) सिद्धान्त प्रतिपादन, (३) मर्यादा का निर्णय ।

'अन्ताय बहुवादिनम्'

वाज. सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.८.१६.४

(३) आखिरी सीमा ।

'न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुः'

ऋ. १.३३.१०

(४) पार, आखिरी ।

'आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः'

ऋ. १.१६७.९

(५) अत (गत्यर्थक धातु) +तन् =अन्त (त् का न्)। अवसान ।

(६) अत+अच् = अन्त (नुट् का आगमः) । समीप की वस्तु प्राप्त हुई होती है । अतः अन्त

'समान्या वियुते दूरेअन्ते
ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके
उत स्वसारा युवती भवन्ती
आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ।'

ऋ. ३.५४.७

ये द्यौ और पृथिवी तुल्य अलग अलग वर्तमान जिनके अन्त दूर हैं, अविनाशी । अपने अपने अधिकार के प्रति सदा अविनाशी अन्तरिक्ष में (ध्रुवे पदे) स्थित, दो बहनों के समान युवतियां सी, जोड़े नामों वाले अनन्तर परस्पर बोलती हैं। स्वा. दयानन्द का अर्थ- समान दृष्टि कर्म करने वाले, पृथक् पृथक् वर्तमान सूर्य और पृथिवी (वियुते) दूर या समीप या विमश्रीभूत, सर्वदा जागरूक, परमात्मा के आश्रय में स्थित, स्वकीय परिधि में घूमते हुए (स्वसारा) सामने तथा पीछे होते (युवती) उस समय (आत् उ) अहोरात्र के जोड़ो को (मिथुनानि) बना रहे हैं । (ब्रुवाते)

(७) आंचर, अञ्चल ।

'या देवी रन्ता अभितोऽददन्त'

अ. १४.१.४५

आधुनिक अर्थ - निकट, अन्तिम, सुन्दर नीचतम, सबसे बुरा, सबसे निकट मृत्यु , शब्द की अन्तिम मात्रा, छोटा , किनारा सीमा, अन्तिम बिन्दु, समास का उत्तर पद, किसी प्रश्न का समाधान, शेषभाग, प्रकृति, अवस्था, प्रकार, स्वभाव, सार तत्व ।

अन्तक - (१) प्रजा के दुःखों और शत्रुओं को भस्म कर देने वाला पुरुष ।

'याभिरन्तकं जसमानमारणे
भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिन्वथुः'

ऋ. १.११२.६

(२) मृत्यु के देवता, (३) अति निकट ।

अतः पात्रे रेरिहती - पात्र में पड़ी शत्रु की भोजन सामग्री को खा जाने वाली सेना ।

'अन्तः पात्रे रेरिहतीम्
रिशां दुर्णिहितैषिणीम्'

अ. ११.९.१५

अन्तः पर्शव्य - भीतर की पसुली ।

'महादिवं अन्तः पर्शव्येन'

वाज.सं. ३९.८

अन्तमः - (१) समीपतम (२) तृतीय कोटि का, (३) जिससे सभी दुःखों का अन्त हो ।

'शिक्षा वस्वो अन्तमस्य'

ऋ. १.२७.५, साम. २.८४९

(अति समीपतम, तृतीय कोटि के ऐश्वर्य को प्राप्त करा) (४) सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर ।

'शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य'

ऋ. ३.५५.८

'भवेरापिर्नो अन्तमः'

ऋ. ८.४५.१८

'उक्थे क उ स्विदन्तमः'

ऋ . ८.६४.९

(५) ईश्वर के अति समीप पहुंचा हुआ मनीषी ।

'अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्'

ऋ. १.४.३, अ. २०.४७, ६८.३, साम २.४३९

अन्तर - (१)भीतर (२) हृदय ।

'कृष्णा युजश्चिदन्तरम्'

ऋ. १.१०.९

हे इन्द्र, मेरी स्तुतियों को सुनकर मित्र की तरह (युजः चित्) हृदयंगम कर (अन्तरं कृष्व)।

(३)अन्तरिक्ष ।

'उभे अन्ता रोदसी सं चिकित्वान्'

ऋ. ४.७.८

(दोनों द्यावापृथिवी तथा उनके अन्तराल अन्तरिक्ष को जानते हो) ।

(४) अन्तर्यामी सबके अन्तर में व्याप्त परमेश्वर, (४) अग्नि ।
'त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरः'
ऋ. १.३१.१३
(६) भीतर भीतर विद्यमान अंग ।
'प्रकाशेनान्तरम्'
वाज.सं. २५.२,मै.सं. ३.१५.२,१७८.५,

अन्तरङ्ग – भीतर का अंग ।
'यक्ष्मं ते अन्तरंगेभ्यः'
अ.९.८.७

अन्तरं ब्रह्म – निकटतम, अति समीप ब्रह्म, चेतन ।
'बह्म वर्म ममान्तरम्'
ऋ. ६.७५.१९, अ. १.१९.४, साम. २.१२२२, आम. श्रौ. सू. १४.२६.१

अन्तर्देश – बीच का प्रदेश (१) भीतरी देश ।
'अन्तर्देशाः किंकराः'
अ. ८.८.२२

अन्तर्याम – भीतर व्यापक अन्तर्याम वायु ।
'अन्तर्यामश्चम ऐन्द्रवायवश्च मे'
वाज.सं. १८.१९

अन्तर्याम – पृथिवी का युवाच जो स्वार अर्थात् राजा गण से उत्पन्न होता है ।
'स्वारादन्तर्यामः'
वाज.सं. १३.५५, मै.सं. २.७.१९: १०४.४, का.सं. १६.१९, श.ब्रा . ८.१.१.८

अन्तर्वती – (१) भीतर रहने वाली, (२) राष्ट्रसभा के भीतर रहने वाली प्रजा
'अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता'
ऋ. ३.५५.५
(३) वीर्य धारण करने वाली माता ।
'अन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा'
ऋ. १०.९१.६, साम. २.११७४

अन्तर्वावत् – (१) सब के अन्तर्गत चलने वाले वायु से युक्त (अन्तर् +वा + वत्) (२) भीतर आने वाले ऐश्वर्य युक्त पदार्थों से पूर्ण-गृह ।
'अन्तर्वावत् क्षयं दधे'
ऋ. १.४०.७

अन्तः सिन्धु – (१) महाप्रवाह, (२) सागर, (३) मूल प्रकृति रूप कारण ।
'तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौसूनुः'
अ. ६.१.२

अन्तरा – (१) बीच में (२) ब्रह्माण्ड में
'अन्तरा मित्रा वरुणा चरन्ती ।'
वाज.सं. २९.६, तै.सं. ५.१.११.२,मै.सं.३.१६.२, १८४.८, का.सं. (अश्व) ६.२.
(३) भीतर ।
'यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्नेविततमन्तरा'
ऋ. ९.६७.२३, वाज.सं. १९.४१, मै.सं. ३.११.१०: १५६.३, का.सं.'३८.२, तै.ब्रा.१.४.८.२, २.६.३.४, आश्व. श्रौ.सू. २.१२.४, ला.श्रौ.सू. ५.४.१४,

अन्तरिक्ष – (१) अन्तरा, क्षान्तम् (बीच में रहने वाला) (२) 'अन्तरे क्षियतिं' अर्थात् आकाश और पृथिवी के बीच में रहता है। (३) स्कन्द स्वामी के मत से 'सर्वभूतानामन्तराक्षान्तम् निष्क्रियम् वां अर्थात् सभी भूतों के मध्य में अन्तरिक्ष है । (४) अन्य विद्वान्-अन्तर ऋक्षाशांलम् अस्य', इसके अन्तर के ऋक्ष या नक्षत्र-हैं ऐसा अर्थ करते हैं (५) दीर्घमध्यं द्यावापृथिव्योः अन्तर् इक्ष्यते -आकाश में और पृथिवी के बीच में लम्बा विस्तार देखा जाता है। ऐसा अर्थ भी कुछ विद्वानों ने किया है । (६) शरीर । आकाशात्मक तत्त्व शरीर के अन्तर अक्षय होकर रहता है । अतः इस का नाम अन्तरिक्ष हुआ है । पृथिवी आदि तत्त्व क्षीयमाण हैं । (७) अन्तर्यामी आत्मा
'उदन्तरिक्ष मादय'
अ. ६.१३०.४
(८) अन्तर् +ईक्ष =अन्तरिक्ष, अन्तर्यामी परमेश्वर
(९) अन्तरिक्षलोक ।
अ. ६.१२४.१, हि.गृ.सू. १.१६.६, आप. मं. पा. २.२२.१३

अन्तरिक्षप्राः – (१) आकाश में व्यापने वाला सूर्य
'अन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः'
ऋ. ७.४५.१, मै.सं. ४.१४.६: २२३.१३, का.सं. ७.१९ तै.ब्रा. २.८.६.१
(२) अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूर्ण करने वाला सूर्य, मेघ या इन्द्रः ।
'अन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम्'
ऋ. १.५१.२

अन्तरिक्षप्रुत् – (१) अवकाशे गच्छन्तीनौ दया. (२) जल में चलने वाली नौका ।

अन्तरिक्षषद् – (१) अन्तरिक्ष में विराजने वाला पितर

'स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः'
अ. १८.४.७९, आप. श्रौ.सू. १.९.६, गो.गृ.सू. ४.३.१०, हि.गृ.सू. २.१२.४
(अन्तरिक्ष-निवासी पितरों के लिए स्वधा)
(२) वायुमण्डल में रहने वाला।'
'पृथिविसदम् त्वान्तरिक्षसदम्'
वाज.सं. ९.२, तै.सं. १.७.१२.१, मै.सं. १.११.४: १६५.१०, का.सं. १४.३, श.ब्रा. ५.१.२.६, तै.ब्रा. १.३.९.२

अन्तरिक्षसंशित - अन्तरिक्ष की शक्तियों से सुशिक्षित।
'अन्तरिक्ष संशितो वायु तेजाः'
अ.१०.५.२६

अन्तरिक्षे एकादशदेवाः - (१) अन्तरिक्ष के ११ देव - दिव्य शक्तियां। स्व. दयानन्द के अनुसार अप्सुक्षित् एकादश देव-श्रोत्र, त्वक्,चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और मन हैं।
'ये देवा अन्तरिक्ष एकादशस्थः'
अ. १९.२७.१२

अन्तर्धि - रक्षा स्थान।
'अन्तर्धिर्देवानाम'
अ. १२.२.४४

अन्तस्पथ - (१) जिसके अभ्यन्तर (भीतर) में पथ हो (२) भीतर भूगर्भ के बीच में जाने योग्य मार्गवाला।
'अन्तस्पथा अनुपथाः'
ऋ. ५.५२.१०

अनार्वान् - समस्त विश्व को अपने में धारण करने वाला।
'पुमानन्तर्वान् स्थविरः पयस्वान्'
अ. ९.४.३

अन्तर्हस्त - हाथ के अन्दर।
'अन्तर्हस्तं कृतं मम'
अ. ७.५०.२

अन्ध - (१)आध्यानीयम्। ध्यान या प्रार्थना करने योग्य-जिसे सभी चाहे अर्थ है अन्न। अन्ध +असुन् (जो भूख लगने पर अन्धा बना दे। व्यग्र कर दे। अथवा अद् (भोजन करना) +नुम् +ध =अन्ध (अन्न)
(२) तम, अन्धकार। न अस्मिन् ध्यानं भवति (जिसमें देखा न जा सके)
(३) अन्धा-अदर्शन लक्षण वाला आधुनिक अर्थ-अन्धा किया गया, अन्धेरा, एक नरक का नाम, पूर्ण अन्धकार।
'स्त्रियः सतीस्ताँ उ मेपुंस आहुः
पश्यदक्षण्वान्न विचेतदन्धः
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत
यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत्'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, तै.आ. १.११.४, नि. ५.१, १४.२०
आदित्यन्तर पुरुष कहते हैं, मेरी जो ये रश्मिरूपी स्त्रियां हैं उन्ही को (वृष्टि का जल देने के कारण) पुरुष भी कहते हैं। इस गूढ़ तत्त्व को ज्ञान दृष्टि वाला ही जानता है, स्थूल दृष्टि वाला अन्धा नहीं। और जो स्त्री पुरुष रूप रश्मियों का विद्वान् पुत्र है (रश्मियों से उत्पन्न जल पुत्र ही है), वही इस स्त्री से पुरुष होने वाले गूढ़ तत्त्व को जानता है। जो भी इन्हें जानता है वह जगत्पालक रश्मि समूह का पिता अर्थात् आदित्य ही है। या जो उन्हें जानता है वह पिता का पुत्र होकर भी पुत्र का पिता होता है (पुत्र पौत्र युक्त चिरकाल तक जीता है)
आध्यात्मिक अर्थ-जो ये स्त्रियां हैं वही मेरे लिए पुरुष हैं। इस तत्व को तत्वज्ञ ही जानते हैं।
'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि
त्वं कुमारी उत वा'
अ. १०.८.२७
और भी।
'नैव स्त्री न पुमानेष नैव चायं नपुसंकः
यत् यत् शरीर मादत्ते तेन तेन स चोदयते'
स्वामी दयानन्द का अर्थ-जो सत्य विद्या को जानने वाली स्त्रियां हैं, कवि लोग उन्हे पुरुष बताते हैं। द्रष्टा विद्वान् पुरुष आंखों वाला होता है। जो ज्ञानी नहीं वह अन्धा है। जो अल्प वयस्क मनुष्य भी मेधावी हो वह इस सत्य कथन को समझता है। जो इन न +तत्त्वों को समझता है वह वृद्ध मनुष्य का भी पिता है।

अन्धस् - अन (प्राण) +धा+असन् =अन्धस्। प्राणधारी (२) अन्न (३) जीवन धारण करने वाला।
'स पाहि मध्वो अन्धसः'

ऋ. ३.४०.१, अ. २०.१.१, ६.१
'अपाय्यस्यान्धसो मदाय'
ऋ. २.१९.१
'अन्धं तमः प्रविशन्ति'
वाज.सं. ४०.९, ४०.१२, श.ब्रा. १४.७.२.१३; बृ.आ. उप. ४.४.१३, ईश. उप. १२.
(४) जीवन को नित्य धारण करने वाला बल वीर्य, यश ।
'यो अन्धोयः पुनः सरः'
अ. ६.१२९.३

अन्धसस्पतिः – अन्न आदि भोग्य पदार्थों का पालक रुद्र ।
'द्राये अन्धसस्पते'
वाज.सं. १६.४७, तै.सं. ४.५.१०.१,मै.सं. २.९.९: १२७.६, का. सं. १७.१६; श.ब्रा. ९.१.१.२४

अन्धसः मह – महान् अन्न को देने वाला ।
'प्रवो महे मन्दमानायान्धसः'
ऋ. १०.५०.१, वाज.सं. ३३.२३, ऐ.आ. १.५.२.१, नि. ११.९
(तुम महान् अन्न को देने वाले एवं मोद युक्त के लिए स्तुति करो ।)

अन्न – (न) अद् + क्त (कर्म या कर्तृवाच्य में वर्तमान अर्थ में) = अन्न । यह खाया जाता है या अन्न ही जीवों को खाया जाता है । या अन्न ही जीवों को खाता है ('अत्ति भूतानिं', अथवा 'अद्यते' (२) भोजन के लिए सामने लाया जाता है (आनतं भूतेभ्यः) आङ् + नम् + क्विप् = आनम् – अन्नम्, (३) अन् (प्राणन अर्थ वाला धातु) + न = अन्न । यह जीवन प्रदान करना है । अपभ्रंश है । नाज , अनाज ।
(२) अर्क , (३) शान्ति, (४) प्राण, (५) अपान, (६) मृत्यु,(७) जीवन, (८) पशुश्री, (९) प्रजाओं का प्रजनन ।
'अर्को वै देवानामन्नम्'
श. ब्रा. १२.२.१.२
'अन्नं वै देवा अर्ज इति वदन्ति'
तै. आ. १४.३.२३
'शान्तिर्वा अन्नम्
'अन्नं प्राणम् अन्नम् अपानमाहुः अन्नं ब्रह्मणो जरसं वदन्ति, अन्नमाहुः प्रजननं प्रजानाम्'
तै.ब्रा. २.८.८.३
'अन्नं पशवः अन्नमु श्रीः ।'
श. ब्रा. ८.६.२.१.
'अन्नमु चन्द्रमाः'
तै. आ. २.२.३४
'अन्नं वा अपां पाथः'
श. ब्रा. ७.५.२.६०.
'अपूपवान् अन्नवान् चरुरेह सीदतु'
अ. १८.४.२१, तै.आ. ६.८.१

अन्नकामः – अन्न की कामना वाला भिक्षु
'अन्नकामाय चरते कृशाय'
ऋ. १०.११७.३

अन्नतेजाः – अन्न के समान तेज वाला
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा'
कृषि संशितोऽन्न तेजाः'
ऋ. १०.५.३४

अन्नपतिः – अन्नमल समस्त लोकों का स्वामी
'यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव'
अ. १३.३.७

अन्नभागः – अन्न का भाग या भोजन
'सह वो अन्नभागः'

अन्नविद् – अन्नविद्या का ज्ञानी पुरुष
'कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया'
अ. ६.११६.१

अन्नस्यकीलालः – अन्न का सार भूत अंश । अन्नों में भी उत्तम बलकारी साखान् अन्न ।
'अथो अन्नस्य कीलालः'
अ. ७.६०.५, वाज.सं. ३.४३, आप.श्रौ.सू. ६.२७.३, शां.गृ.सू. ३.३.१, ७.२ हि.गृ.सू. १.२९.१

अन्वग्रम् – प्रत्येक पदार्थ के आगे, चोटी में
'अन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः'
ऋ. ३.५५.७

अन्वङ् – अन् + अञ्च् + क्विप् = अन्वञ्च् । पीछे से आक्रमण करने वाला
'जहि प्रतीचो अनूचः पराचः'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३.१.४.

अन्वञ्च् – कपट वृत्ति से अनुकूल या पीछे से आक्रमण करने वाला, (२) अनुकूल सुख रूप से प्राप्त व्यसन ।

अन्नाद – (१)अन्न का भोजन सामर्थ्य ।
'मनसान्नादेन अन्नमत्ति य एवं वेद'
अ. १५.१४.२

(२) अन्न को स्वीकार करने वाला ।
'अन्नादायान्नपतये'
अ. १९.५५.५
(३) समस्त विश्व को अपना अन्न बना कर खा जाने वाला – परमेश्वर ।
'यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव'
अ. १३.३.७.

अनाद्य – (१) राष्ट्र के भोग्य अन्न आदि पदार्थों का भोग ।
'सरस्वत्यै भैषन्येन वीर्यायान्नाद्यायामि'
वाज.स. २०.३
(२) अन्न को भोग करने का सामर्थ्य ।
'अन्नञ्च अन्नाद्यञ्च'
अ. १३.४.२२

अनादी – अन्न आदि का भोग करने वाली आप्त प्रजा ।
'अद्भिरन्नादिभिः अन्नमत्ति'
अ. १५.१४.६

अनावृध् – अन्न से बढ़ने वाला ।
'अनावृधं प्रतिचरन्ति अन्नैः'
ऋ. १०.१.४

अन्य – (पु.) दूसरा ।
'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्'
ऋ. १०.१०.१०, अ. १८.१.११, नि.४.२०
(२) दो में से एक ।
'अन्यः कर्ता सुकृतोरन्यऋन्धन्'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६
(उन दो उत्पादित सन्तानों पुत्र और पुत्री में एक पुत्री वाली पोसी जाकर दूसरे को दी जाती है । और एक पुत्र सन्तान कर्ता होता है ।)
'जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः'
ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३
(तुम दो में से एक जयशील तथा सुमहान् बल के प्रेरक हैं ।)

अन्यक – (१) अन्य शत्रु ।
'नभन्तामन्यकेषाम्
ज्या का अधिधन्वसु ।'
ऋ. १०.१३३.१–६, अ.२०.९५.२–४, साम. २.११५१–११५३, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४: १८९.९, तै.ब्रा. २.५.८.२
(अन्य शत्रुओं के धनुषों में चढ़ाई मौर्वी टूट जाय)।
(२) और साधारण साधारण ।
'चित्र इद् राजा इदन्यके यके सरस्वतीमनु '
ऋ. ८.२१.१८
(३) शत्रु, पराया ।
'नभन्तामन्यके समे'
ऋ. ८.३९.१–४०.११, ४१.१–१०, ४२.४–६; तै.सं. ३.२.११.३, नि. ५.२३ .१०.५
(४) अन्य +अकच् (कुत्सा अर्थ में)= अन्यक ।
अर्थ–दूसरा, शत्रु, पराया
'तमू ष समना गिरा
पितृणां च मन्मभिः ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिः
यः सिन्धूनामुपोदये
सप्तस्वसा स मध्यमो
नभन्तामन्यके समे ।'
ऋ. ८.४१.२
नाभा ऋषि की उक्तिहै–मैं समान स्तुति से (समना गिरा) पितरों की अगिमान्य स्तुतियों से (पितृणां मन्नाभिः)तथा अपनी स्तुतियों से (नाभाकस्य प्रशस्तिभिः) उसी वरुण की प्रशंसा करता हूँ जो नदियों या जलों की बाढ़ आने पर (सिन्धूनाम् उपोदने) सात वहन वाले (सप्तस्वसा) हो जाते हैं और जो सात वाणियों में मध्यम वाणी से स्तुत किये जाते हैं । इस वरुण के अनुग्रह से सभी अन्य शत्रु (अन्य को) नष्ट हो जायं (भन्ताम्) ।

अन्यकृत – दूसरे का किया, दूसरे की कमाई
'माहं राजन् अन्यकृतेन भोजम्'
ऋ. २.२८.९, मै.सं. ४.१४.९: २२८.१५

अन्यक्षेत्र – दूसरे का राष्ट्र या अहाता ।
'अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम्'
अ. ३.३.४

अन्यजात – (पु.) अन्य से उत्पन्न पुत्र ।
'न शेषो अग्ने अन्यजातम् अस्ति'
ऋ. ७.४.७, नि. ३.२

अन्यत् – दूसरे की ।
'मा चिदन्यत् विशंसत'
ऋ. ८.१.१, अ.२०.८५.१, साम. १.२४.२, २.७१०, कौ.ब्रा. २३.७, २९.५, पंच.ब्रा. १५.१०.२, ऐ.आ. ५.२.४.२, आश्व.श्रौ.सू. ५.१२.९,२१, ७.४.२,

शा.श्रौ.सू. १२.३.२२, १८.८.११, वै.सू. ३१. १८, ४०.११, नि. ७.२.
(अन्य किसी की पूजा न करो) ।

अन्यतः शितिरन्ध्रः – एक तरफ श्वेत चिटकनों वाला ।
'शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः'
वाज.सं. २४.२, तै.सं. ५.६.१३.१, मै.सं. ३.१३.३, १६९.३, का सं. (अश्व) ९.३

अन्यतः – शितिबाहुः–एक तरफ श्वेत चिटकन वाला ।
'शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः'
वाज.सं. २४.२, तै.सं. ५.६.१३.१, मै.सं. ३.१३.३, १६९.२, का. सं. (अश्व) ९.३

अन्यद्युः – प्रतिदिन दूसरे दिन ।
'यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति'
अ. १.२५.४, ७.११६.२

अन्यनाभिः – विजातीय ।
'मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिः'
अ. १.३०.१

अन्यव्रतः – (१) शत्रुओं का सा काम करने वाला ।
'अन्यव्रतो अमानुषः'
ऋ. १०.२२.८
(२) भिन्न शत्रु के कर्मों वाला पुरुष (३) अन्यो को पालन करने वाला ।
'अन्य व्रतस्य सश्चिम'
ऋ. ५.२०.२, वाज.सं. ३८.२०, मै.सं. ४.९.१०: १३१.६, श.ब्रा. १४.३.१.१९; तै.आ. ४.११.४.

अन्यवापः – (१) स्वक्षेत्र में दूसरों के द्वारा वाज वपन, (२) दूसरे के बीज से उत्पन्न कोयल
'अन्यवापः अर्धमासानाम्'
वाज.सं. २४.३७, तै.सं. ५.५.१७.१, मै.सं. ३.१४.१८, १७६.६, का.सं. (अश्व) ७.७

अन्यरूप – (१) अन्य रूप मे वर्तमान ।
(२) विष्णु, परमेश्वर
'यदन्यरूपः समिथे बभूथ'
ऋ. ७.१००.६, साम. २.९७५, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.५, नि.५.८
(हे परमेश्वर, संसार की रंगस्थली में (समिथे) जो यह तेरा अन्य रूप है।

अन्यस्याः – वत्सः–जड़ प्रकृति से उत्पन्न पुत्रवत् जगत् ।
'अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय'
ऋ. ३.५५.१३, १०.२७.१४

अन्यादृक् – (१) अन्यो के सदृश (२) या इस के सदृश अन्य है ।
'ईदृङ् चान्यादृङ् च'
वाज. सं. १७.८१, तै.सं. १.८.१३.२, ४.६.५.५, मै.सं. २.११.१: १४०.४, का सं. १८.६, आप.श्रौ.सू. १७.१६.१५, १८.१२.१२,

अन्वञ्च् – अनु +अञ्च् +क्विप् =अन्वञ्च् । पीछे पीछे चलने वाला ।
'समानबन्धू अमृते अनूची'
ऋ.१.११३.२, साम. २.११००, नि.२.२०
(रात्रि और उषा के सूर्य ही समान रूप से बन्धु हैं । या दोनों सूर्य से सम्बद्ध हैं, दोनों मृत्यु रहित हैं और एक दूसरे का अनुसरण करने वाले हैं । (अनूची)

अन्वर्तिता – (१) अनुगामी, पीछे पीछे चलने वाला ।
'अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीत्'
ऋ. १०.१०९.२, अ. ५.१७.२
(२) पीछे प्रकट होने वाला ।

अना – अ +ना । नेता रहित
'अभ्रातृव्यो अनात्वम्'
ऋ. ८.२१.१३, अ. २०.११४.१, साम. १.३९९, २.७३९, आश्व.श्रौ.सू.७.८.२, वै.सू.४०.४, ४१.२०, साम. वि.ब्रा. १.८.४

अनाक्ताक्ष – (१) बिना अंजन की आंख वाला, (२) उत्तम रीति से देखने और विवेक करने में असमर्थ ।
'योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तः'
ऋ. २०.१२८.६, गो.ब्रा.२.६.१२, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.१

अनाकृत – (१) अतिपीड़ित , (२) अनिवारित दया.
'वि यथस्थाद् यजतो वातचोदितो
ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः'
ऋ. १.१४१.७
(जब वह जीव बाहर आने योग्य या प्रसव करने योग्य हो जाता है (यजतः) तब वह सुखकारी प्रबल प्राण वेग से प्रेरित होकर (वातचोदितः) कुटिल मार्ग से आता हुआ (ह्वारः) अतिपीड़त होकर (अनाकृतः) वक्ता पुरुष (वक्वा) जिस

प्रकार (न) स्तुतियों को धारण करता है (जरणाः) उसी प्रकार वह भी जेरों को छोड़कर पृथक् हो जाता है)।

अनाग – नञ् +आगस् =अनागस् =अनाग। अपराध या पाप से रहित ।
'कृधीष्वस्माँ अदितेरनागान्'
ऋ.४.१२.४, तै.सं. ४.७.१५.७, मै.सं. ३.१६.५, १९२.८, का.सं. २.१५

अनागमिष्यत् – भविष्य में कभी न आने वाला उत्तम ऐश्वर्य ।
'अनागमिष्यतो वरानवित्तेः'
अ. १६.६.१०

अनागस् – (१) नञ् +अगस् =अनागस् (जिसने अपराध न किया हो) । आङ् + गम् +असुन् =आगस् =पाप । यह पाप कर्ता के पास फलरूप में आता है । अतः *'आगस्'* है ।
'वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो
विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो
यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः।'
ऋ. ५.८३.२, नि. १०.११
वर्षा की इच्छा से किए जाने वाले कारीरी नामक यज्ञ में दिशाओं के उपस्थान के समय इसका प्रयोग होता है । मेघ वृक्षों एवं राक्षसों का वध करते हैं। उसके महावध से समस्त भुवन डरता है। यहां तक कि निरपराध (अनागसः) भी इस मेघ से भागते हैं (वृष्णावतः ईषते) जिससे वह अशनिपात् द्वारा दुष्कर्म करने वालों को नष्ट करे (स्तनयन् हन्ति) ।

अनागास्त्व – नञ् +आगास्त्य =अनागास्त्य। (१) पवित्रता, (२) अनाचार अन्याय और अधर्म का अभाव
'अनागांस्त्वं नो अदितिःकृणोतु'
ऋ. १.१६२.२२, वाज.सं. २५.४५, तै.सं. ४.६.९.४, का.सं. (अश्व) ६ .५

अनागास्त्व – नञ् +आगस् +त्व =आनागस्त्व, निरपराधता ।
'यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशो,
अनागास्त्वमदिते सर्वताता
यं भद्रेण शवसा चोदयासि
प्रजावता राधसा ते स्याम ।'
ऋ. १.९४.१५, नि. ११.२४
हे उत्तममोत्तम धन को देने वाले (सुद्रविणः) अखण्डनी अग्ने, जिस यजमान के सभी कर्मों के विस्तारों में (सर्वताता) पाप राहित्य प्रदान करता है तथा जिसे कल्याण कारक बल से (भद्रेण शवसा) तथा पुत्र सहित धन से प्रजावता (राधसा) प्रेरित करता है उसी प्रकार हम भी तेरे यजमान होवें (ते स्याम) ।

अनागोहत्या – अनागस् +हत्या =अनागोहत्या। निरपराध पुरुष की हत्या ।
'अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये'
अ. १०.१.२९

अनाता – नञ् +आङ् +तन् +क्त =अनातत । अविस्तृत, स्वल्प ।
'न वनिषदनाततम्'
अ. २०.१३२.७, शां.श्रौ.सू. १२.१८.१५

अनातुर – दुःख रोग शोक आदि से रहित ।
'विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्'
ऋ. १.११४.१, वाज.सं. १६.४८, तै.सं. ४.५.१०.१, मै.सं. २.९.९, १२७.१०, का.सं. १७.१६
(२) शान्त, (३) तृष्णा रहित,
'अनातुरान् सुमनसस्तल्प बिभ्रत्'
ऋ. १२.२.४९

अनाद्य – भोजन नहीं करने योग्य ।
'यदाद्यं यदनाद्यम्'
अ. ८.२.१९
'मा ब्राह्मणस्य राजन्य
गां जिघत्सो अनाद्याम्'
अ. ४.१८.१

अनाधृष्टा – नञ् +आघृष्टा =अनाघृष्टा जो कभी शत्रु से घर्षित न हो ।
'अनाधृष्टा पुरस्तात् अग्नेराधिपत्य'
वाज.सं. ३७.१२, मै.सं. ४.९.३, १२४.१, श.ब्रा.१४.१.३.१९, तै.आ. ४.५ .३
नञ् +आङ् +धृष् +क्त =अनाधृष्ट आतिरष्कृत, निरस्कार रहित ।

अनाधृष्य – अतिरष्कणीय ।

अनानत – (१) नञ् +आङ् +नम् +क्त =अनानत् । शत्रुजन के आगे कभी न झुकने वाला –इन्द्र ।
'वृह माया अनानत'
ऋ. ६.४५.९

(२) शत्रु से जो कभी न झुके
'अनानता अविथुरा ऋजीषिणः'
ऋ. १.८७.१
शत्रु के सामने कभी न झुकने वाले (अनानता), अन्य के से परास्त न होने वाले (अविथुरा) सरल धर्म युक्त मार्ग में जाने वाले (ऋजीषिणः)
(३) जो दूसरे से प्रकाशित न हुआ हो, अर्थात् जो स्वयं प्रकाशित न हुआ हो। *'अनानत ज्योतिः सूर्यः'*
'विश्वानरस्य वनस्पतिम्
अनानतस्य शवसः।
एवैश्च चर्षणीनाम्
ऊती हुवे रथानाम्।'
ऋ. ८.६८.४, साम. १.३६४, नि. १२.२१
(मैं स्वज्योति से प्रकाशित सूर्य एवं महान् बल के पति एवं रक्षा करने वाले इन्द्र को आप लोगों की अर्थ सिद्धि के लिए मनुष्यों के मार्गों से तथा रथों या किरणों के मार्ग से जिनसे वे इस लोक में आते हैं, बुलाता हूं।)

अनानुद – नञ् +आ +नुद् =अच् =*'अनानुद'*। अप्रेरित–किसी अन्य से न प्रेरित होने वाला।
(२) स्वयं सबका संचालक इन्द्र परमेश्वर
'अनानुदो वृषभो दोधतोवधः'
ऋ. २.२१.४
(३) अनुपम, दानशील
'अनानुदो वृषभो जग्मि राहवम्'
ऋ. २.२३.११
(४) दूसरे के दान की प्रतीक्षा न करने वाला
'अनानुदं वृषभ रध्रचोदनम्'
ऋ. १०.३८.५, तै.ब्रा. १.२.२८

अनानुद् – (१) नम्+आङ्+नुद्+क्विप् =अनानुद। *'यो अनुगतं न ददातिं'* अनुकूल न वर्तने वाला
(२) अपने अनुकूल उचित पदाधिकारों को न देने वाला (३)कर प्रदान न करने वाला
'त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरः
अनानुदः परिषूता ऋजिश्वना'
ऋ. १.५३.८, अ.२०.२१.८

अनानुभूति – (१) अनुभव शून्यता, (२) अज्ञात बात, (३) अनुभव रहित (४) सामर्थ्य हीन, (५) असहृदय जन।
'अनानभूती रवधून्वानः'
ऋ. ६.४७.१७

अनादिष्टादिक् – अनिर्दिष्ट दिशा।
'सोऽनादिष्टां दिशमनुव्यचलत्'
अ. १५.६.१६

अनानुकृत्य – (१) बार बार न किया जा सकने वाला कर्म।
'अनानुकृत्यम् अपुनश्चकार'
ऋ. १०.६८.१०, अ.२०.१६.१०
(२) वह यत्न जिससे दूसरी बार पुनः पुनर्जन्म रूप बन्धन काटने का उद्योग न करना पड़े।

अनानुदिष्टः – बिना प्रार्थना किए ही, अपार्थित
'ब्रह्मद्विषोहन्य हन्त्यनानुदिष्टः'
ऋ.१०.१६०.४, अ २०.९६.४

अनाप्त – (१) नञ्+आप्त =अनाप्त। जो आप्त अर्थात् विद्या पारंगत नहीं है।
'अनाप्ता ये वः प्रथमा'
अ.४.७.७, ५.६.२, का.सं. ३८.१४; आप.श्रौ.सू. १६.१८.७
नञ् +आप् +क्त =अनाप्त। जो प्राप्त नहीं हैं।
'यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामः'
ऋ. १.१००.२
जिस प्रकार सूर्य का जाने का मार्ग तथा अधीन ग्रहों को नियन्त्रित करने का महान् सामर्थ्य अन्य ग्रहों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता (अनाप्तः)।

अनापिः – नञ् +आपि =अनापि। बन्धु रहित
'अनापिरिन्द्र जनुषासनादसि'
ऋ.८.२१.१३, अ. २०.११४.१, साम. १.३९९, २.७३९
'अनापिरज्ञा असजात्यामतिः'
ऋ. १०.३९.६

अनाभयी– भय न करने वाला।
'अनाभयिन् ररिमा ते'
ऋ. ८.२.१, साम. १.१२४, २.८४

अनाधू – असमर्थ सेना, (२) अधर्म –दया।

अनामगः – (१) अनामकः–सा (२) परमात्मा का नाम न लेने वाला पुरुष (३) अनास्माकः (जो हमारा नहीं है।)
'अनामगस्तं च दुर्हार्दः'
अ. १९.४५.२

अनामन – बिना जाने ही
'अनामनात् संशीर्यन्ते'

अ.१२.४.५

अनामयित्नु – (१) नञ्+आमय+त्नु=अनामयित्नु। रोग का हरण करने वाला

'अनामयित्नुभ्यां त्वा
ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि'

ऋ.१०.१३७.७,

(२) आयम अर्थात् रोग से रहित

'अनामयित्नुभ्या हस्ताभ्याम्'

अ. ४.१३.७

अनामयोपजिह्विका – अनामय +उप जिह्विका। रागद्वेष से रहित को भी चाट जाने वाली प्रकृति।

'अनामयोपजिह्विका'

ऋ. २०.१२९.२०

अनामि – कभी न झुकने वाला।

'अनामि ओज आ चके'

ऋ. ३.६२.५, तै.ब्रा. २.४.६.४

'अनामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम्'

ऋ. ६.८.६, तै.सं. १.५.११.२, मै.सं. ४.११.१:१६१.५

अनामृणः – (१) जिसे मारने वाला कोई न हो, (२) अमर, (३) अजातशत्रु।

'अनामृणः कुविदादस्य रायो
गवां केतं परमावर्जते नः'

ऋ. १.३३.१

(वह नित्य, सदा अमर, अज्ञात शत्रु है और ऐश्वर्य वेद वाणियों को बार बार इन्द्रियों के सर्वोच्च ज्ञान को बार बार हमें प्रदान करता है।

अनायत – नञ् +आयत =अनायत। चारों ओर कहीं से भी न बंधा हुआ–सूर्य।

'अनायतो अनिबद्धः कथायम्'

ऋ. ४.१३.५, ४.१४.५

अनायतन – नञ् +आयतन =अनायतन। बिना आश्रय का, निराश्रय।

'अप्रतिष्ठानोऽनायतनः'

अ.११.३.४९

अनारम्भण – (१) नञ्+आरम्भण। आलम्बन रहित, भयजनक।

'अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम्'

ऋ.१.१८२.६, ७.१०४.३, अ. ८.४.३

(२) अवलम्बन रहित समुद्र (३)जगत् जहां कुछ करते नहीं बनता, (४) जहां कर्म का उदय न हो।

'अनारम्भणे तदवीरयेथाम्
अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे'

ऋ. १.११६.५

विद्वान् शिल्पी अवलम्बन-रहित आश्रय के स्थल से रहित और सहायता के लिए जहां कुछ पकड़ा नहीं जा सके ऐसे समुद्र में पराक्रम करते हैं। अथवा, प्राण और अपान आत्मा को ऐसी दशा में पहुंचाते हैं जहां प्रथम आरम्भ अर्थात् कर्म का उदय न हो (अनारम्भणे), देह में स्थित न हो और कर्म का बन्धन हो ऐसे समुद्र अर्थात् रस सागर आनन्द मय समुद्र में उस आत्मा को प्रेरित करते हैं।

(४) बिना सहारे का, निरवलम्ब।

अनारम्भणतमः – (१) ऐसा अन्धकार जो अवलम्ब या आधार रहित हो–जहां कुछ भी न सूझ सके।

(२) अविद्या रूपी अन्धकार।

अनावयाः – न हीं पहुंच सकने वाला।

'स्त्रीषु चासद् अनावयाः'

अ. ७.९०.३

अनाबयु – (१) अभक्ष्यमाण सर्षप काण्ड (२) कभी भी इन्द्रियों से न उपलब्ध होने वाला, (३) कभी न खाने योग्य।

'आबयो अनाबयो'

अ. ६.१६.१

(४) किसी से भी प्रकाशित या उत्पादित न होने वाला।

अनाव्याधा – पीड़ा आदि कष्टों से रहित नगरी

'अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य'

अ. १४.१.६४

अनाव्रस्क – अपराध न करने वाला। नञ् +आङ् +व्रस्क =अनाव्रस्क।

'सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ'

अ.१२.४.४७

अनावृत् – (१) अनावर्तमान्, जिसकी पुनः आवृत्ति न हो।

'सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्
परावतं परमां गन्तवा उ
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थे
अधैनं वृका रभसासो अद्युः'

ऋ. १०.९५.१४, श.ब्रा. ११.५.१.८, नि. ७.३

पुरुरवा उर्वशी से कहते हैं-हे उर्वशी, शोभन देव या सुश्रीक पति तुझ से वियुक्त हो अर्थात् पुनः आने वाला न होकर (अनावृत्) आज ही पर्वत से गिरकर मर जाय अथवा दूर से दूर जाने के लिए महाप्रस्थान करे, मरकर भूमि के ऊपर सोवे और उसे कुत्तें सियार वेगवान् हो खायें ।

अनावृतादिक् - वह दिशा जिससे लौटकर फिर न आया जाय ।

'सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत्'

अ. १५.६.१९

अनाशस्त - नञ् +आशस्त =अनाशस्त । जो गुणी, समर्थ और प्रशंसनीय न हो ।

'अनाशस्ता इवा स्मसि'

ऋ. १.२९.१, अ. २०.७४.१

अनाशीर्दा -नञ् +आशीः +दा =अनाशीर्दा । आशा और कामनाओं के अनुकूल न देने वाला ।

'अनाशीर्दामिहमास्मि प्रहन्ता'

ऋ. १०.२७.१

अनाशुः - (१) भोजन आदि से रहित भूखा आदमी, (२) मन्द गति वाला (३) उदर रोगादि से न खा सकने वाला ।

'अनाशोश्चित् अविता रापमस्य चित्'

ऋ. १०.३९.३

(४) स्थिर, अचंचल, (५) कूटस्थ भाव से रहने वाला ।

'धन्वञ्चिद् ये अनाशवः
जीराश्चित् अगिरौकसः।'

ऋ. १.१३५.९

जो स्थिर हैं (अनाशवः) वे धनुष् के कार्य में विजयी होते हैं । धनवान् जीराः) और वे वाणी में भी स्थान नहीं पाते (अगिरोकसः) (६) जो शीघ्रकारी न हो ।

'अमन्महीत् अनाशवः'

ऋ. ८.१.४, अ.२०.११६.२, पंच.ब्रा. ९.१०.१

(७) जो शीघ्रगामी न हो ।

'अनाशुरश्वोऽयामी'

अ.२०.१२८.१०, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.५

(५) शीघ्रता न करने वाला धीर पुरुष ।

अनास् - नाकमुख-रहित ।

'अनासो दस्यूं रमृणो वधेन'

ऋ. ५.२९.१०

अनाम्राव - नञ् +आम्राव =अनाम्राव । वीर्य स्राव को दूर करने वाला ।

'अनाम्रावम् अरोगणम्'

अ. २.३.२

अनास्थान - (१) समुद्र जिसमें आश्रय का स्थान नहीं है (२) मोक्षावस्था जिस में आत्मा की स्थिति शरीर में नहीं रहती ।

अनास्माकः - जो हमारा नहीं है । हमसे भिन्न

'अनास्माकस्तद् देवपीयुं पियारुः'

अ. १९.५७.५

अनाहुति - यज्ञादि का अभाव ।

'तेनास्मद् विश्वाम् अनिराम् अनाहुतिम्'

ऋ. १०.३७.४

अन्तात् - अति समीप से ।

'वयं हि ते अमन्महि
आ अन्तात् आ पराकात्
अश्वे न चित्रे अरुषि ।'

ऋ. १.३०.२१

हे व्यापिनी (अश्वे), आश्चर्य शक्ति शालिनी (चित्रे) दीप्तिमती उषा या ईश्वरीय शक्ति । हम निश्चय ही तेरे स्वरूप को अति निकट में या अति दूर में विवेचना कर भी नहीं पर पाते ।)

अन्ता - (१) समीप ।

'अपादशीर्षा गुहमानो अन्ता'

ऋ. ४.१.११

अन्ताः - (स्त्री. ब. व) (१) अति सूक्ष्म नाड़ियां । (२) गृह के अन्दर रहने वाली स्त्रियां ।

'साकम् अन्ता अरंसत'

अ. १.१७.३

अन्वान्त्र्य - अनु +आन्त्र्य ।

आंतो में उत्पन्न होने वाला विषूचिका आदि का कीट ।

'अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यम्'

अ. २.३१.४

अन्वानद् - अनु +आ +नश् (गति कर्मक) के लुङ् प्रथम पुरुष एक वचन का रूप । अनुक्रम से समीप लाया

'अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यम्
जिगीषमाणमिष आ पदे गोः
यदा ते मर्तो अनुभोगमानद्
आदिद् ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः'

ऋ. १.१६३.७, वाज.सं. २९.१८, वाज.सं. (का.) ३१.३.३०, तै.सं. ४ .६.७.२, का.सं. ४०.६
अश्वमेघ में अश्व की स्तुति-
हे अश्व, इस समय देव यजन प्रदेश में दिये जाने वाले अन्नों के इच्छुक तेरे उत्तम रुप को देखता हूं। जब मनुष्य तेरे आगे तेरा भोज्य अन्न रखता है तो रखते ही (आदित्) तू खाने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो अन्नों को खाने लगे।

अनितभा - नञ् + इत + भात + अप्राप्त दीप्ति -दया।
वह भूमि, गहरी नदी या जलमयी खाई जिसमें सूर्य की कान्ति न जाती हो।
'मा वो रसा नितभा कुभा क्रुमुः'
ऋ. ५.५३.९

अनिध्मः - नञ् +इध्म =अनिध्म, बिना इन्धन के।
'यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तः'
ऋ. १०.३०.४, अ.१४.१.३७, नि. १०.१९
(जो विद्युत बिना इन्धन में दीप्त होता है।
'व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः
कदाचन प्रजिगतो अदेवयोः'
ऋ. १.१५०.२
जो न विद्या का दान दे सके और न धन का (अदेवयोः) उन दोनों में जो धनी होकर भी दान देने में असमर्थ हैं (अनिनस्य) उसके और उत्तम रीति से दान और उपभोग में न लगाने वाले (प्रहोषे चित् अररुषः)उत्तम पद पर प्राप्त या बहुत बात बनाने वाले के विषय में भी (प्रजिगतः) कभी विशेष स्तुति वचन नहीं कहता।
अथवा
(अदानशील पुरुषों में से उत्तम प्राणों के स्वामी (अनिनः धनिनः) धन के प्रभु प्रदान के काम में (प्रहोषे) भी रोष से रहित (अररुषः) उत्तम पद को प्राप्त पुरुष के लिए (प्रजिगतः) मैं कभी विपरीत वचन न कहूं।)

अनिन्द्रः - नञ् +इन्द्र =अनिन्द्र। (१) असमर्थ। इन्द्र का अर्थ समर्थ है, अतः असमर्थ को अनिन्द्र कहा गया (२) ईश्वर को न मानने वाला नास्तिक जन।
'अभीदमेक मेको अस्मि
निष्माडभीद्धा किमु त्रयः करन्ति
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि
किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०
दशरात्र के नवम दिन निष्फैवल्प में पढ़ा जाता है। एक ही मैं इस जगत् का अधिपति हूं। कामादि शत्रुओं का अभिभूत करता हुआ (निष्षाट) उन्हे अकेले ही जीतता हूं (एकम् अभि)। दो हो या तीन तभी क्या कर सकते हैं। खलिहान में जैसे धान सहित पुआल को दावा जाता है (खलेन पर्जान्) वैसे ही मैं बहुत शत्रुओं को भी एक ही मार डालता हूं। भला असमर्थ शत्रु या इन्द्र (परमात्मा) की सत्ता न मानने वाले नास्तिक मेरी क्या निन्दा करेंगे।

अनिन्द्रा - इन्द्र या ऐश्वर्यान् राजा से रहित शत्रुसेना।
'द्रुहं जिघांसन् ध्वरसम् अनिन्द्राम्'
ऋ. ४.२३.७

अनिभृष्ट - (१) नीचे न गिरने वाला, ताप रहित।
'प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः'
ऋ. १९.६०.२

अनिभृष्टतविषिः - (१) जिसकी सेना निरन्तर भ्रष्ट नहीं होती -दया.। (२) सेना या बल आदि से कभी च्युत न होने वाला, (३) अनष्ट शक्ति।
'आनेभृष्ट तविषिः हन्त्योजसा'
ऋ. २.२५.४
(४) शत्रु द्वारा अपीड़ित बलवान् सैन्य का स्वामी।
'ऋभुरनिभृष्टतविषिः'
ऋ. ५.७.७

अनिमानः - अनिमान,
(१) अविज्ञेय, (२) परिमाण रहित, (३) महान् परमेश्वर, (४) इन्द्र।
'स नो वक्षत् अनिमानः सुत्रह्मा'
ऋ. ६.२२.७, अ.२०.३६.७
(४) अपरिमित बल शाली।
'स नो यहाँ अनिमानः
धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः
धिये वाजाय हिन्वतु'
ऋ. १.२७.११

अनिमिषम् - (१) प्रतिक्षण, सदा, निरन्तर।
'अनिमिषं नृम्णं पान्ति'
ऋ. ५.१९.२

जो पुरुष निरन्तर मेरे बल की हवि या स्तोत्रों से रक्षा करते हैं – जो प्रतिक्षण योगबल की रक्षा करते हैं–दया. ।

(२) कभी न झपकने वाला सदा सावधान ।

'संक्रन्दनोऽनिमिषः एकवीरः'

ऋ. १०.१०३.१, अ. १९.१३.२, साम.२.११९९, वाज.सं. १७.३३, तै.सं . ४.६.४.१, मै.सं. २.१०.४, १३५.१०, का.सं. १८.५

अनिमिषत् – (१) निरन्तर आंखें खोले हुआ सूर्य । सूर्य का काम पलक न मारना, नित्य चमकना और ताप देना है ।

(२) सदा अप्रमादी, सावधान ।

'नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा'

ऋ.१०.६३.४

अनिमिषा – (१) पालक गिराए बिना, (२) निरन्तर

'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुतद्याम
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे
मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत् ।'

ऋ. ३.५९.१, तै.सं. ३.४.११.५, का.सं. २३.१२, ३५.१८, आश्व. श्रौ.सू. ३.११.२२, आप. श्रौ.सू. ६.२६.७, नि. १०.२२

(शब्द करता हुआ मित्र कृषकों को कृषि कर्म में प्रवृत्त करता है । मित्र ही पृथ्वी तथा स्वर्ग लोक को धारण करता है, मित्र कृषकों को सदा दया दृष्टि से देखता रहता है । इसलिए मित्र के लिए घृतमय हव्य की आहुति दो ।)

अनिमेषम् – (अ) जिसमें नेत्र =निमीलन न हो, (२) बिना एक निमेष के अन्तर क (३) निरन्तर

'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथा भिस्वरन्ति
इनो विश्वास्य भुवनस्य गोपाः
समा धीरः पाकमत्रा विवेश'

ऋ. १.१६४.२१, अ. ९.९.२२, नि. ३.२२

जिस मण्डल में स्थित हो सूर्य की रश्मियां जल का भाग लेकर (अमृतस्य भागमम्) ज्ञानपूर्वक सतत सर्वत्र तपती रहती हैं (विदथा अभिस्वरन्ति) या शब्द करती हैं, वह सकल भुवन के रक्षक धीर एवं पाक ईश्वर मुझ में आविष्ट हों ।

आध्यात्मिक अर्थ– जिस शरीर में इन्द्रियाँ अपने अपने स्थान में अविस्थत हो विषय रस को मन में और मन आत्मा को समर्पित करता है अर्थात् जहां इन्द्रियाँ बुद्धि के समक्ष विषय विज्ञान लाकर सुख से रहना चाहती हैं । इस देह में स्थिर सभी इन्द्रियों का रक्षक आत्मा का ईश्वर धीर एवं सर्वज्ञ (पाक) है । वह इस शरीर में आविष्ट हो हमें अनुगृहीत करें ।)

अनिर – मंन को सुन्दर न लगने वाला, अरुचिकर ।

'अनिरेण वचसा फल्गवेग'

ऋ. ४.५.१४

अनिराः – (१) अन्न आदि का दान ने देने वाला ।

'अनिरामपसेधति'

अ. २०.१३५.१३, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.३, आश्व. गृ.सू. २.९.४

(२) नञ् +इरा =अनिरा ।

अन्न राहित्य, अन्नादि की दरिद्रता

'युयुतमस्मत् अनिराममीवाम्'

ऋ. ७.७१.२

(३) बल रहति कर देने वाली, (४) जल, अन्न न खाने देने वाली 'अमीवा' अर्थात् रोग ।

'अपत्या अस्थु रनिरा अमीवा'

ऋ. ८.४८.११

(५) अन्न जल का अभाव ।

'तेनास्मद् विश्वामनिराम् नाहुतिम्'

ऋ. १०.३७.४

अनिरहित – जो पृथक न किया गया हो ।

'क्रव्याच्चेदनिराहितः'

अ. १२.२.३६

खेतों का निराना आज भी घास निकालने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । ।

अनिल – अन.+इलच् =अनिल् । प्राणों का मूल कारण वायु तत्व ।

'वायुरनिलममृतमथेदम्'

वाज.सं. ४०.१५, श.ब्रा. १४.८.३.१, बृ.आ.उप. ५.१५.१, ईश. उप. १७

अनिबद्ध – जो कहीं बंधा हुआ न हो–सूर्य ।

'अनायतो अनिबद्धः कथायम्'

ऋ. ४.१३.४, ४.१४.५

अनिबाध – (१) पीड़ा बाधा–रहित ।

'उरौ देवा अनिबाधे स्याम'

ऋ. ५.४२.१७, ५.४३.१६
(२) बाधा रहित ।
'उरौ महां अनिबाधे ववर्ध'
ऋ. ३.१.११

अनिवेशजा – कहीं न ठहरने वाली ।
'अतिष्ठन्तीनाम् अनिवेशनानाम्
काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्'
ऋ. १.३२.१०, नि. २.१६

अनिशित – तीक्ष्णता या प्रचण्डता से रहित, शीतल ।
'अनिशितं निमिषि जर्भुराणः'
ऋ. २.३८.८

अनिशित सर्गाः आपः– अनल्प सृष्टि रचने वाले । चल या प्रकति के परमाणु
'इन्द्राय गिरो अनिशित सर्गा
अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात्'
ऋ. १०.८९.४, साम. १.३३९

अनिषङ्ग – पक्षपात-रहित ।
'अनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे'
ऋ. १.३१.१३
तू अन्तर्यामी होकर पक्षपात रहित, साधक, चार आंखों वाला, अति सावधान, चौकन्ना और चारों दिशाओं में व्यापक होकर हृदय में प्रकाशित होता है ।

अनिषव्य – नञ् +इषव्य =अनिषव्य, वाण-प्रहार के अयोग्य ।
'अनिषव्यस्तन्वः सन्तु पापीः'
ऋ. १०.१०८.६

अनिष्कृत – अस्वच्छ ।
'परिष्कृण्वन् अनिष्कृतम्'
ऋ. ९.३९.२, सामे. २.२४.९

अनिष्टृत – अनिस्तृत, जो किसी प्रकार भी क्षति को प्राप्त न हो ।
'उपसत्ता वर्धतां ते अनिष्टृतः'
अ. ७.८२.३, वाज.सं. २७.४, तै.सं. ४.१.७.२, मै.सं. २.१२.५, १४९.१, १८.१६
(२) अहिंसित, अमर ।
'य उग्रः सन् अनिष्टृतः'
ऋ. ८.३३.९, अ. २०.५३.३, ५७.१३, साम. २.१०४८

अनिस्तृत – किसी से भी मारा न गया ।

अन्ति – निकट ।
'आरात् ताच्चित् शवसो अन्तमापुः'
ऋ. १.१६७.९
'यो नो अग्नेऽभिदासति,
अन्ति दूरे पदीष्ट सः।'
ऋ. १.७९.११
(जो हमारे निकट आकर हमारी हानि पहुंचाना चाहता है, वह हमसे दूर हो ।)

अन्तिक – आनीतम् (सन्निकृष्ट)। जो चारों ओर से निकट लाया गया हो । आङ् +नी +तिक् =अन्तिक । आधुनिक अर्थ-निकट तक ।

अन्तिगृह – (१) समीप का घर (२) समीप का मित्र राज्य ।
'वय उषो यदि वष्टि आन्तिगृहात्'
ऋ. १०.९५.४

अन्तिचित् – समीप के समान ।
'सर्व राजभ्यः परमाचिदन्ति'
ऋ. २.२७.३

आनीत – (१) अन्त +क्त =अन्तित । जिस का अन्त हो गया , जो विनष्ट हो गया हो ।
'प्रतिस्पाशनमन्तितम्'
अ. ८.५.११
(२) निकट आया हुआ ।
'यावयत् शत्रुमन्तितम्'
अ. ६.४.२
(३) निकट से ।
'नैनमंहो अश्नोति अन्तितो न दूरात्'
ऋ. ३.५९.२, तै.सं. ३.४.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४६.१४, का.सं. २३.१२

अन्तिदेवाः – अनन्ति जीवन्ति विद्यादिसुख साधनैः ये ते अन्तयः (विद्यादि सुखसाधनों से जीत हैं) अन् +तिन् , =अन्तिन् । जीवन दायक पदार्थ भी 'अन्तिनः' हैं ।
(१) प्राण धारण करने और कराने में समर्थ देवता, (२) अग्नि, वायु, जल, सूर्य, पृथिवी और अन्नादि जीवन दायक पदार्थ ।
'शतमिन्नु शरदो अन्तिदेवाः
'यत्रा नश्चक्रा जरसंतनूनाम्'
ऋ. १.८९.९, वाज.सं. २५.२२, मै.सं. ४.१४.२, २१७.१३का.सं. ३५.१, गो.ब्रा. १.४.१७, श.ब्रा. २.३.३.६, आप. श्रौ.सू. १४.१६.१, शां.गृ.सू.

५.५.१२, आप.मं.पा. २.४.३, हि.गृ.सू.१.४.१३.
(हे उत्तम साधनों से प्राण धारण करने में समर्थ देवों या विद्वानों (अन्तिदेवाः) जिस जीवन दशा में (यत्र), सौ वर्ष ही (शतम् इत् नु) हमारे शरीरों को (नः तनूनाम्) । जीर्ण दशा पूर्ण करते हैं ।)

अन्तिवामा – अपने समपी नाना प्रकार से भोग्य पदार्थों को रखने वाली उषा (२) स्त्री ।
'अन्तिवामा दूरे अमित्रम् उच'
ऋ. ७.७७.४

अन्वियत् – अन्न की कामना करने वाला ।
'यस्ते भरात् अन्नियते चिदन्नम्'
ऋ. ४.२.७

अन्निति – (१) अनुमति (२) अन्वेषण करने वाली समिति
'अन्वित्या दिवा दिवं जिन्व '
वाज.सं. १५.६, मै.सं. २.८.८; ११२.५, श.ब्रा. ८.५.३.३

अनीक – सेनादल, मुख, स्वरूप ।
'प्रैषामनीकं शवसादविद्युतत्'
ऋ. १०.४३.४, अ. २०.१७.४

अनीकवत् – सेना का स्वामी ।
'अग्नयेऽनीकवते प्रमजानालभते'
वाज.सं. २४.१६, मै.सं. ३.१३.१४: १७१.१६, आप.श्रौ.सू. २०.१४.१०

अनीकशः – (१) सेना को टुकड़ी टुकड़ी में बांटना ।
'केतून् कृत्वानीकशः'
अ. ६.१०३.३
(२) सेना का दस्ता बना बनाकर ।
'अमी ये यन्त्यनीकशः'
अ. ५.२१.८.

अनीड – (१) किसी अन्य पदार्थ का आश्रय न लेने वाला परन्तु स्वतः सब का आश्रय (२) किसी विशेष स्थान पर न रहकर भी सर्वत्र व्यापी प्रभु ।
'अ यो महः शूरः सनादनीडः'
ऋ. १०.५५.६, साम.२.११३३

अनीनशत् – नष्ट कर दे ।
'अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत्'
ऋ. १०.१६२.२, अ. २०.९६.१२,

अनीश्वर – (१) ऐश्वर्य हीन, (२) निर्बल पुरुष, (३) नास्तिक ।
'अनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये'
अ. १२.३.४२

अनु – (क्र) (१) अनूपास्ते । शास्त्रीय रीति से चलाते हैं ।
'अर्चन्ननु स्वराज्यम्'
ऋ. १.८०.१-१६, साम. १.४१०-४१२, नि. १२.३४
(२) सदृश, (३) अपरभाव, (४) पश्चात्
बिना क्रिया पद के भी वेद में अनु प्रयुक्त हुआ है और अर्थ निकालने के लिए क्रियापद का अध्याहार किया जाता है । (५) (सं) मनुष्य ।
'अनवः मनुष्याः'
नि. २.३
'अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्'
ऋ. ५.३१.४, साम. १.४४०, तै.सं. १.६.१२.६, मै.सं. ४.१२.४, १८२.७, का.सं. ८.१६
(६) एक वैदिक राजवंश (७) छोटा या अप्रसिद्धजन ।
'यद् द्रुह्यवि अनवितुर्वशे यदौ'
ऋ. ८.१०.५

अनुक्षता – क्षत्ता-अश्वों को चलाने वाले सारथि के समान अधीन पुरुषों को सन्मार्ग पर चलाने वाला ।
'आध्याक्षायानु क्षत्तारम्'
वाज.सं. ३०.११

अनुकामकृत् – इच्छा को निरन्तर पूर्ण करने वाला ।
'देवेभ्यो अनुकामकृत्'
ऋ. ९.११.७, साम. २.७९७

अनुकामं चरणम् – इच्छानुसार विचरण ।
'यत्रानुकामं चरणम्'
ऋ. ९.११३.९

अनुक्रोशन्ति – (१) कोसते हैं-दया. (२) चिल्लाते हैं –
'उतस्मैनं न वस्त्र मथिं न तायुम्
अनुक्रोशन्ति क्षितयः भरेषु ।'
ऋ. ४.३८.५, नि.४.२४
इस दधिक्रावा इन्द्र को युद्धों में देख कर शत्रु चिल्लाने लगते हैं । जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर को देखकर लोग चिल्लाते हैं – जिन युद्धों में वस्त्र तक चुरा लेने वाले चोर की तरह राजा को (भरेषु वस्त्र मथिं तायुं न) प्रजा या शत्रु कोसते हैं ।-दया.

अनुचर – आज्ञा मे चलने वाला पुरुष ।
'बलायानुचरम्'
वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१७

अनुजिघ्रम् – गन्ध लेकर, सूंघकर ।
'अनुजिघ्रं प्रमृशन्तम्'
ऋ. ८.६.६

अनुग्र – नञ् +उग्र =अनुग्र । जो उग्र न हो, शान्त स्वभाव, सौम्य पुरुष ।
'अनुग्रासश्च वृत्रहन्'
ऋ. ८.१.१४, अ. २०.११६.२

अनुगायसः – अनुगम्य, प्रशंस्य (अनुगमन कर, प्रशंसा कर)

अनुचक्षत – (१) पश्चात् प्रकट होता है (२) अनुकूल देखता है ।

अनुचितयत् – जान डालता हुआ, चेतना डालता हुआ ।
'द्यौर्न स्तृभिः चितयद् रोदसी अनु'
ऋ. २.२.५.

अनुजोषम् – प्रतिदिन प्रेम पूर्वक ।
'या इत्था मघवन् अनुजोषम्'
ऋ. ५.३३.२

अनुतप्यमान – पुत्र पौत्र के साथ स्वयं कष्ट या अनुताप करता हुआ, (२) पुत्र पौत्र की ममता में ।
'निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम्'
अ. २.३५.२

अनुतस्थिम – 'अन्वास्थिताः स्म लोकम्' ।(लोक में रहते थे) ।
अनु +स्था +लिट् (म) = अनुतस्थिम ।
'कारुरहं ततो भिषग्
उपलप्रक्षिणी नना
नानाधियो वसूयवः
अनुगा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव ।'
ऋ. ९.११२.३, नि. ६.६
अंगिरस ऋषि के पुत्र को सोमरस के नहीं निकलने पर यह ऋचा ।
हे सोम, मैं कभी दूसरे के लिए स्तुति कर्त्ता या (कारुः) या चाटुकारिता या खुशामद से अपनी जीविका चलाता था, मेरे पिता या पुत्र (ततः) वैद्य हुए (भिषक्), माता या पुत्री (नना) सत्तू पिसकर जीविका चलाने वाली (उपलप्रक्षिणी) हुई । इस प्रकार हम नाना प्रकार के कर्म अपनी जीविका चलाने के लिए करते रहे । (नानाधियः) तथा सदा धन की ही चाह में रहते थे (वसूयवः) इस पृथ्वी पर गौ की तरह । विराजते रहे (गा इव अनुतस्थिम) । हे सोम (इन्द्रो) तू इन्द्र के लिए खूब सव (परिस्रव)।

अनुत्त – (७) नञ् + उद् +क्त =अनुत्त । अबाधित ।
'अनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु'
ऋ. ७.३४.११
(२) अप्रेरित , स्वाभाविक –दया. (३) अपराजित
'अनुत्तं वज्रिन् वीर्यम्'
ऋ. १.८०.७,साम. १.४१२

अनुत्तमा – प्रेरणा से रहित ।
'अनुत्तमा ते मघवन् न किर्नु'
ऋ. १.१६५.९, वाज.सं. ३३.७९, मै.सं. ४.११.३, १६९.७, का.सं. ९.१८
हे परमात्मन् । निश्चय ही कोई भी पदार्थ या कार्य तेरी प्रेरणा के बिना नहीं है ।

अनुत्तमन्यु – शत्रु को उच्छिन्न करने के प्रबल संकल्प से युक्त, (२) क्रोध रहित ।
'इन्द्रं वाणीः अनुत्तमन्युम् एव'
ऋ. ७.३१.१२, साम. २.११४.५

अनुदका – जल रहित या अल्पजला नदी ।
'उदन्वतीरनुदकाश्च याः'
ऋ. ७.५०.४

अनुदेय – खिलाने पिलाने के बाद दी जाने वाली विदाई ।
'परा नववास्त्वमनुदेयम्
महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम्'
ऋ. ६.२०.११

अनुदात्तः – अल्पीयः अर्थरतम् अनुदातम् (अपेक्षाकृत जिसका अर्थ अल्प हो तथा जिस अर्थ की अप्रधानता रहे । जिसका अर्थ उत्कृष्ट एवं प्रधानतर समझा जाय वह उदात्त है ।)
'पुनः पत्नीमग्निरदाद्
आयुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिः
जीवाति शरदः शतम्'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२
पिता के द्वारा दी हुई कन्या को पुनः भी अग्नि, आयु और तेज के साथ दान करते हैं । इस

कन्या का जो पति है वह सौ वर्ष जीवे ।
यहां पति और कन्या में पति ही प्रधान है और उसी की आयु की कामना की जाती है । अतः 'दीर्घायुरस्या यः पतिः' में 'अस्याः' अनुदात्त है ।

अनुध्याः – पीछे आने वाले दुष्परिणाम ।
'प्रेतो यन्तु व्याध्यः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः'
अ. ७.११४.२

अनुद्यून् – प्रतिदिन ।
'युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्'
ऋ. १.१८०.८

अनुद्र – जल से रहित मरुस्थल ।
'अनुद्रे चिद् यो धृषता वरं सते'
ऋ. १०.११५.६

अनुद्रूणानः – (१) अनु +द्रु +शानच् =अनुद्रूणानः । पीछा करता हुआ – दया.
(२) मारता हुआ ।
'तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानः'
ऋ. ४.४.१, वाज. सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७. ८, का.सं. १६.१५, नि. ६.१२
(क्षिप्रगामिनी प्रकृष्ट शत्रुसेना को पीछा करता हुआ या तेज आक्रमण से पीछा करता हुआ ।)

अनुदेयी – (१) कन्या को विदाई के समय दिया जाने वाला दहेज ।
'रैभ्यासीदनुदेयी'
ऋ. १०.८५.६, अ. १४.१.७
(२) निरन्तर ज्ञानबल देने वाली शक्ति (३) प्राण क्रिया ।
'अनुदेयी यथाभवत्'
ऋ. १०.१३५.५
(४) विवाह के अनन्तर देने योग्य शिक्षा

अनुधूपित – सुगन्धित पदार्थों से सत्कार किया गया मनुष्य ।
'ज्योगभूवन् अनुधूपितासः'
ऋ. २.३०.१०

अनुन्मदित – अविवेक या पागलपन से मुक्त
'यदानुन्मदितोऽसति'
अ. ६.१११.१,३

अनुनिक्ष – पहुंचना ।
'अनुनिक्षन्ति पृष्टीः'
अ. ९.८.१५

अनुनेषथा – मार्ग बनाओ (२) मार्ग –दर्शक ज्ञान कराइए–दया.
'अध स्मा नो अरमतिं सजोषसः'
'चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ।'
ऋ. ५.५४.६
और हमारे समान स्नेह रखने वाले (सजोषसः) मरुतो, आप इस लोक से उस लोक में जाते हुए (यन्तम्) पर्याप्त मति वाले यजमान को (अरमतिम्) शोभन मार्ग बना (सुगम् अनुनेषथा) जैसे आंखें मार्ग बतलाने में अनुग्रह करती हैं (चक्षु इव) ।
(अन्य अर्थ)
और हे मनुष्यो, इस प्रकार वेदाध्ययन के पश्चात् सबके साथ मित्रता का बर्ताव करते हुए (सजोषसः) विद्या के लिए प्राप्त हुए (यन्तम्) हमारे उद्यमी पुत्रों को (नः अरमतिम्) चक्षुओं के समान सुमार्ग दर्शक ज्ञान कराइए (चक्षुः इव) सुगम् अनुनेषथ)

अनुनेषि – (१) ले चल, (२) पहुंचा दे ।
'उरुं नो लोकमनुनेषि विद्वान्'
ऋ. ६.४७.८, अ.१९.१५.४, ऐ.ब्रा. ६.२२.५, कौ.ब्रा. २५.७.८, २९.४, गो.ब्रा. २.६.४, तै.ब्रा. १.२.१.९, २.७.१३.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.११, ५.३.२.१, ७.४.७, शां.श्रौ.सू.१८.४.१, आप.श्रौ.सू. ५.३.१.
हे इन्द्र या राजन् , ज्ञानवान् आप (विद्वान्) हमें स्वर्ग नामक लोक को ले चल या महान् अभ्युदय को पहुंचा (उरु लोकम् अनुनेषि)।

अनुपथ – (१) जिसके मार्ग अनेक हों –दया. (२) बड़े बड़े मार्गों में आ मिलने वाला गौण मार्ग ।
'अन्तस्पथा अनुपथाः'
ऋ. ५.५२.१०

अनुपद् – (१) अनुकूल गामिनी (२) अनुकूल या अनुरूप हितकारी पदार्थों को प्राप्त करने में समर्थ अधिकारी ।
'अनुपदसि अनुपदे त्वा'
वाज.सं. १५.८

अनुपदस्वत् – कभी विनाश को प्राप्त न होना वाला ।
'यो वेदानडुहो दोहान् सप्तानुपदस्वतः'
अ. ४.११.९

अनुपदस्वती – (१) कभी किसी के प्रयत्न से भी न

क्षीण होने वाली ।
'रयिमनुपदस्वतीम्'
अ. ७.८०.२
(२) विनाश रहित, शरणदायिनी ।
'पूर्णामनुपदस्वतीम्'
अ. २.३६.५, साम.मं. ब्रा. २.५.१४.

अनुपश्यत् – प्रतिक्षण देखने वाला ।
'एकत्वमनुपश्यतः'
वाज.सं. ४०.७, ईश.उप. ७.

अनुपस्पशान – अनुपस्पाशयमान ।
(अवाध्यमान) बाधारहित करता हुआ ।
नञ् +उप +स्पश् (बाधन और स्पर्शन अर्थ में) +णि +शानच् = अनुपस्पाशयमान =अनुपरस्पशाना ।
'परेथिवांसं प्रवतो महीरनु
बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्
वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा दुवस्य ।'
ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, मै.सं. ४.१४.१६: २४३.६, तै.आ. ६.१.१, आश्व. श्रौ.सू. २.१९.२२, नि. १०.२०
हे आत्मन् या यजमान, उस विवस्वान् के पुत्र यम को (वैवस्वतं ययम्) प्राणियों को सम्यक् प्रकार से अपने अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नरक बहुंचाने वाले (जनानां संगमनम्) प्रकृष्ट कर्म वाले मनुष्यों, देवों एवं नीच योनि वाले अनेकों प्राणि वर्गों को कर्मानुसार स्वर्गादि स्थानों को पहुंचाने वाले (प्रवतः महीः परेयिवांसम्) बहुत पापात्मा एवं पापियों को बाधा रहित पथ दिखलाने वाले (बहुभ्यःपन्थाम् अनुपस्यशानम्) राजा को (राजानम्) हवि से पूजाकर (हविषा दुवस्य) ।
(२) अपने पीछे दिखाता हुआ (३) उपेदश करने वाला ।

अनुपसेचन – ओदन आदि में मिलाए जाने वाले व्यञ्जन द्रव्य से रहित । नञ् +उपसेचन = अनुपसेचन । उपसेचन वह पदार्थ है जो ओदन आदि में मिलाया जाता है ।
'नानुपसेचन इति नेदम्'
अ. ११.३.२४

अनुप्रसिति – प्रसिति = प्रकृष्ट सेना । प्रसिति का अर्थ वागुरा तन्तु या जाल भी है (प्रकर्षेण बन्धनसाधनत्वात्) क्योंकि जाल प्रकृष्ट रूप से बन्धन का साधन है । 'षिञ्' धातु बन्धन अर्थ प्रयुक्त है ।
प्र +षिञ् +क्तिन् =प्रसिति
'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं
याहि राजेवामवां इभेन
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोः
अस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ।'
ऋ.४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १६.१५, नि. ६.१२.
हे अग्निदेव, तेजः संघ इस पृथ्वी को जाल के समान बना दे. (प्रसितिं न कृणुष्व)। अमात्य सहित राजा के समान गतभय शूर या हाथी से शत्रुओं की क्षिप्रगामिनी प्रकृष्ट सेना को तृष्वीं प्रसितिम्) मारता जा (अनुद्रूणानः) क्योकि तू शत्रुओं को काटने वाला है (अस्ता असि)। अपने तेजों से (तपिष्ठैः) राक्षसों का बधकर ।
(अन्य अर्थ)
हे सेनापते, तू फैले हुए जाल की तरह अपने में बल धारण कर (पृथ्वी प्रसितिं न पाजः कृणुष्व) और अमात्यवान्, रोग भूत या राज्य कर्मचारियों से परिवेष्ठित राजा की तरह (अमवान् राजा इव) सैनिकों सहित भोज्य पदार्थों वाले मनुष्य वर्गों के साथ या भयरहित हाथी पर सवार होकर युद्ध में प्रयाग कर (इभेन याहि) । हे सेनापति, तू अस्त्र चलाने वाला है (अस्तासि) । अतः तेज आक्रमण से शत्रुओं का पीछा करता हुआ (तुष्वीं प्रसितिम् अनुद्रूणानः) उन राक्षसों को संतप्त गोलियों से कार्य सिद्ध के कारण तप्त अस्त्रों से या बारुदों से बींध दे (तपिष्ठैः विध्य)।

अनुपूर्वम् – यथापूर्व, क्रम से ।
'यथा दान्त्यनु पूर्वं वियूय'
ऋ. १०.१३१.२, अ २०.१२५.२, वाज.सं. १०.३२, १९.६, २३.३८, तै.सं. १.८.२१.१; ५.२.११.२, मै.सं. १.११.४; १६६.३, २.३.८: ३६.३, का.सं. १२.९, १४.३, ३७.१८, श.ब्रा. ५.५.४.२४, तै.ब्रा. २.६.१.३.

अनुपूर्ववत्सा – (१) प्रतिवर्ष क्रम से बछड़ा देने वाली गौ, (२) क्रम से मनोयोग सहित उच्चारण की हुई वाणी ।

'अनुपूर्ववत्सां धेनुम्'
अ. ९.५.२९

अनुभर्त्री – (१) इष्ट सुख धारण कराने वाली, (२) अनुगत सुख-धारण स्वभावा (३) प्रतिदिन भरण पोषण करने वाली आजीविका (४ पिण्ड पोषिणी आजीविका ।

अनुपलाल – (१) मांस भक्षी का सन्तान (२) हीन का संगी ।
'पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं'
अ. ८.६.२

अनुभोग – भोजन का पदार्थ ।
'यदा ते मर्तो अनुभोग मानट्'
ऋ. १.१६३.७, १०.७.२, वाज.सं. २९.१८, का. सं. (अश्व) ६.३, तै.सं. ४.६.७.३, नि. ६.८

अनुमतिः – (१) अनुकूल मति देने वाला प्रभु ।
'अनुमते मृडया नः स्वस्ति ।'
ऋ. १०.५९.६
(२) अनु + मन् +क्तिन् =अनुमति (मन् के 'न्' को लोप)। जिसका अनुमान किया जाय । (अनुमानात् अनुमतिः) (३) कलाहीन चन्द्रमा, (४) पौर्णमासी-पक्ष के चौदहवें दिन पौर्णमासी तो नहीं है । (५) अनुकूल मति रखने वाली पत्नी ।
'अन्विदनुमते त्वं मन्योसं शं च नस्कृधि
क्रत्वे दक्षाय ना हिनु प्रण आयूंसि ता रिषः'
वाज.सं. ३४.८,
हे अनुमते, (पूर्णिमा का चन्द्रमा) तू हमारी उक्ति समझ जो कुछ हमारा अनुमन्तव्य हो (अनु इदं मन्यासै) वह तथा हमारा कल्याण कर (शं)। संकल्प की सिद्धि के लिए आगे बढ़ा (हिन)। (अन्य अर्थ)
हे अनुकूलमति रखने वाली पत्नी (अनुमते), तू मेरे अनुकूल चिन्तन कर (अनु मन्यासै) और तू हमें सुख दे । तू हम सबकी सन्तान के लिए (क्रत्वे) वृद्धि पर अन्न प्रदान कर(दक्षाय हिनु) और तू हम सबों की आयुओं को सुदीर्घ कर (नः आयूंसि तारिषद्)
(६) अनुमति और राका में दो नाम देवपत्नी और विद्वानों की स्त्री के हैं । (८) ऐ.ब्रा. ७.२.१० में पौर्णमासी का प्रथम भाग अनुमति और अन्तिम भाग राका है ।
(९) चतुर्दशी का अन्तिम आठवां प्रहर मिलकर चन्द्रमा का पूर्ण काल है। इन के पहले दो प्रहरों में चन्द्रमा की कला कुछ न्यून रहती है और अन्तिम दो प्रहरों में चन्द्र पूर्ण कला से युक्त रहता है । जिसे राका कहते हैं । पहले दो पहर के चन्द्रमा का ही नाम अनुमति है ।
(१०) अनुमति नामक सभा (११) एक दूसरे के अनुकूल हित-साधन की मति ।
'अन्वद्य नो अनुमतिः
यज्ञं देवेषु मन्यताम्'
अ. ७.२०.१, मै.सं. ३.१६.४; १८९.१०, ३.१६.५; १९१.१८, ४.१२.६; १९४.१५, शां.श्रौ.सू.९.२७.२, कौ.सू. ४५.१६
'अनुमती राका इति देवपत्न्यौ-नैरुक्ताः
इयं वा अनुमतिः। स यस्तत्कर्म
शंकोति कर्तुं यच्चिकीर्षति-
इयं ह अस्मै तदनुमन्यते ।'
श. ब्रा. ५.२.३.४
(१२) प्रतिनिधि या लोकसभा भी अनुमति देती है, विधि निर्माण करती है ।
इसी निर्वचन से स्त्री भी राका या अनुमति है । पुरुष अपने घर के सब कार्य अपनी स्त्री की अनुमति से करता है । यास्क के अनुसार 'अनुमननात्' अनुमति है। जो स्त्री पति की अभिलाषा के अनुकूल ही पुत्र का निरन्तर चिन्तन करती है वह अनुमति कहलाती है ।
'प्रजापतिरनुमतिः
सिनीवाली अचीकृपत्'
अ. ६.११.३

अनुमद्यमानः – बार बार स्तुति किया जाकर।
'रेभैः उदेति अनुमद्यमानः'
ऋ. ७.६३.३

अनुन्यमानः – सबको अनुमति देने वाला पुरुष ।
'अनु मन्यतामनुमन्यमानः'
अ. ७.२०.३, तै.सं. ३.३.११.४

अनुमन्यासै – अनु +मन् का लेट् म.पु. ए.व. में यह रूप होता है । 'वैतोऽन्यत्र' सूत्र से ऐकार । अर्थ है-समझ ।
'अन्विदमनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि'
अ. ७.२०.२, वाज.सं. ३४.८, तै.सं. ३.३.११.३, ४.४.१२.५, ७.१५.५, मै.सं. ३.१६.४: १८९.१०,

३.१६.५; १९१.८, ४.१२.६: १९४.१५, का.सं. १३.१६.२२.१५, तै.ब्रा. ३.१.३.३, १२.१.१, ३.४, तै.आ. ४.११.२, आश्व.श्रौ.सू. ४.१२.२, शां.श्रौ.सू. ९.२७.२, नि. ११.३०

अनुमाद्य – (१) वह पुरुष जिसके हर्ष में और भी हर्षित होते हैं –
'पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य'
ऋ. ७.६.१, साम.१.७८
(२) प्रतिदिन स्तुति योग्य ।
(३) हर्ष का अनुभव कराने वाला ।
'अस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत्'
ऋ .६.३४.२

अनुमाद्यासः – हर्ष कारक–सूर्य की किरणों का विशेषण ।
'चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः'
ऋ. १.११५.३, मै.सं. ४.१०.२: १४७.३, तै.ब्रा. २.८.७.१
चित्र विचित्र वर्ण वाले शवल वर्ण वाली किरणें भी उक्तनील वर्ण की किरणों के अनुसार ही (एतग्वा) प्राणियों को अधिक हर्षकारक होती हैं ।

अनुप्रोक – चोरों के पीछे चोरों के कामों का अनुसरण करने वाला ।
'प्रोकानुप्रोक पुनर्वो यन्तु'
अ. २.२४.३

अनुम्लोचन्ती – (१) रात्रि के समान अन्धकार करने वाली, (२) सब को सुना देने वाली या (३) वश करने वाली शक्ति ।
'प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१७, वाज.सं.(का.) १६.४.९, तै.सं. ४.४.३१, का.सं. १७.९श, .ब्रा. ८.६.१.१८

अनुया – अनु +या +क्विप् =अनुया । (१) संकोच करने की क्रिया । (२) चोर डाकुओं का पीछा करने वाला विभाग ।
'अनुया रात्र्या रात्रीं जिन्व'
वाज.सं. १५.६

अनुयाज – (१) आशानुरूप कर्म फल प्राप्त करने के लिए सकाम कर्मयज्ञ ।
'येषां प्रयाजा उत वानुयाजां'
अ. १.३०.४, तै.ब्रा. ३.७.१०.४, आप.श्रौ.सू. १४.३२.५.
(२) प्रधान मन्त्रों के बाद आने वाले मन्त्र । 'प्रयाज' मन्त्र यज्ञ के मुख्य भाग हैं और अनुयाज उनके बाद पढ़े जाते हैं । इन सब मन्त्रों का उच्चारण कर सोमरस के सिवा अन्य सामग्रियों की आहुति दी जाती हैं ।
ऐतरेय ब्राह्मण में ३३ देव असोमय बतलाए गए हैं । उनमें ११ प्रयाज ११अनुयाज और ११ उपयाज हैं । तनूनपात और नराशंस का विकल्प मान ११ आप्ती देवता प्रयाज हैं तथा देवीर्द्वारः, उषासानक्ता,देवीजोष्ट्री देवी ऊर्जाहुती, दैव्याहोतारा, तिस्रो देवीः, वर्हिः, नराशंस, वनस्पति, बर्हिर्वारिहीनाम् ही नाम और अग्निः स्विष्टकृत् यही ११ अनुयाज हैं ।
कुछ विद्वान् कहते हैं कि प्रयाज और अनुयाज देवता अग्नि के वाचक हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्नि, छन्द, ऋतु,पशु, प्राण और आत्मा को प्रयाज, तथा अनुयाज देवताओं को ध्येय देवता माना गया है । परन्तु वेद के अनुसार ये मन्त्र अग्नि देवता के ही वाचक हैं । अन्य छन्द आदि अग्नि के विशेष मात्र हैं ।
'प्रयाजान् मे अनुयाजाँश्च केवलान्'
ऋ. १०.५१.८, नि. ८.२२, कौ.ब्रा. १.२
(३) कर्मानुरूप प्राप्तव्य फल ।

अनुराध – (१) आराधना करने योग्य (२) कार्य सिद्धि करने वाला ।
'इन्द्रं वयमनूराधं हवामहे'
अ. १९.१५.२
(अराधना करने योग्य इन्द्र को हम बुलाते हैं ।)

अनुराध्य – सुखपूर्वक समृद्ध होना ।
'अनुराध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा'
अ. १९.१५.२

अनुरुध् – अनु +रुध् +क्विप् । अनुरोध करने वाला ।
'वर्णायानुरुधम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

अनुरूप – (१) अन्त की तीन ऋचाओं का पाठ (२) योग्यता के अनुकूल ।
'प्रत्याश्रावो अनुरूपः'
वाज.सं. १९.२४

अनुबुद्ध – पीछे से ज्ञात किया हुआ पदार्थ ।
'उपाहृतमनुबुद्धम् निखातं'

अ. १०.१.१९

अनुल्बण – नञ् +उल्वण । सौम्य, कोमल, दुःख न देने वाला ।

'अनल्बणेन चक्षसा'

ऋ. ८.२५.९

अनुवर्त्मा – अनुकूल मार्ग पर चलने वाला ।

'मम यातमनुवर्त्मान एत'

अ. ३.८.६, ६.९४.२

अनुवष्टि – (१) खा जाता है–सा. (२) कामना करता है–दया. ।

'घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा'

ऋ. १.१२७.१, अ. २०.६७.३, वाज.सं. १५.४७, का.सं. २६.११, ३९.१५

(अग्नि घृतमिश्रित आज्य के सारे अंश को (विभ्राष्टिम्) भी अपनी ज्वाला से खा जाता है) राजा घृत की दीप्ति से राज्य की तेजस्विता की (विभ्राष्टिम्) कामना करता है (अनुवष्टि)।

अनुव्रत – (१) अनुकूल नियमपूर्वक रहना ।

'अनु व्रताय निमितेव तस्थुः'

ऋ. ३.३०.४

(२) अपने अनुकूल नियमव्रत पालन करने वाला उत्तम बुद्धि का उत्पादक आचार्य आदि, (३) जिसका सत्याचरण व्रत अनुकूल हो ।

'त्रिर्वर्तियातं त्रिरनुव्रते जने'

ऋ. १.३४.४

(हे स्त्री पुरुषो, अपने आचार्य के अधीन तीन बार अर्थात् बार बार रहो ।)

अनुव्रता – मनोनुकूल सभी गृह कार्य और गृहस्थ व्रतों का पालन करने वाली स्त्री ।

'प्रियवादिन्यनुव्रता'

अ. ३.२५.४

'अनुव्रतामप जायामरोधम्'

ऋ. १०.३४.२

अनुवित्त – अनु +विद् +क्त । गुरु परम्परा या वंश परम्परा से प्राप्त ।

'अयं पन्था अनुवित्तः पुराणः'

ऋ. ४.१८.१

अनुबुद्ध – संसार देखने के बाद जिसे परमेश्वर का बोध हुआ हो ।

'यस्य वीर्यं प्रथमस्यानुबुद्धम्'

अ. ४.२४.६

अनुबुध्य – अनुग्रह करना, कृपा करना ।

'प्रजापतेऽनु मा बुध्यस्वेति'

अ.९.१.२४

अनुब्रुवाणः – प्रतिदिन प्रवचन या पाठ करता हुआ ।

'अनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन्'

ऋ. ५.४४.१३

अनुवृजौ – पसुलियों के दोनों भाग ।

'भगस्यास्तामनूवृजौ'

अ. ९.४.१२

अनुवेनन् – पुनः कामना करता हुआ ।

'पुराणां अनुवेनन्तम्'

ऋ.१०.१३५.२

अनुशकन् – अनुकरण कर सका ।

'न तत्ते अन्यो अनुवीर्यं शकन्'

ऋ. १०.४३.५, अ.२०.१७.५

हे इन्द्र या परमेश्वर । तेरा सूर्य को विजय करने वाला वह बल (ते तत् वीर्यम्) तेरे सिवा अन्य अनुकरण नहीं कर सकेगा या सका)।

अनुशस् – अनुगामी होकर शासन करना ।

'ये चेमां अनुशसे'

ऋ. ५.५०.२

अनुशिश्रथः – शिथिल करो ।

'माध्यां गा अनु शिश्रथः'

ऋ. ४.३२.२३

इन अध्यापिका तथा उपदेशिका की शिक्षा द्वारा राष्ट्र के धर्म को शिथिल न कर ।

अनुशी – अनु +शीङ् (सोना) = अनुशी। संभोग करना ।

'सुतिका अनुशेरते'

अ. ८.६.१९

अनुष्टुप् छन्द – (१) द्वात्रिंशदक्षरा अनुष्टुप् । (३२ अक्षरों का अनुष्टुप् छन्द है)।

(२) प्रजापति ।

'प्रजापति वर्ग अनुष्टुप्'

तै. आ. ४.८.९

(३) ३२ वर्षों तक इन्द्रियों और बलों का रक्षक ब्रह्मचारी ।

'अनुष्टुप् छन्द इन्द्रियम्'

वाज.सं. २१.१४, मै.सं. ३.११.११: १५८.३ का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८ .२.

अनुष्ठाता – (१) अनुष्ठान करने वाला ।
(२) भृत्य, कर्मकर, सेवक ।
'बृहच्च रथंतरं चानुष्ठातारौ'
अ. १५.४.२

अनुष्ठा – (१) बहने वाली नदी ।
(२) एक दूसरे के पीछे स्थित जल की तह ।
'विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते'
ऋ. १.५४.१०
(वायु या विद्युत ही एक दूसरे के पीछे स्थित जल की तहों को आघात करके नीचे प्रदेशों में गिरा देता है ।)

अनुष्ठु – अनु +स्था +कु । अर्थ – अनुष्ठान कर्म । टाप् विभक्ति जोड़ने से तृतीया एक वचन में अनुष्ठया होता है ।)
'त्वया वयं सधन्य स्त्वोताः
तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यताते
अनुष्ठुया कृणुहि अह्रयाण ।'
ऋ. ४.४.१४, तै.सं. १.२.१४.५, मै.सं. ४.११.५, १७४.५, का.सं. ६.११
हे अग्नि देव, हे अल्लजितगमन (अह्रयाण) हम स्तुति कर्त्ता तेरी कृपा से सधन्य या समान रूप से धनी हैं । तेरे द्वारा हम रक्षित हैं (त्वोताः) तथा तेरी कृपा से हम अन्न पाते हैं (प्रणीती वाजान् अश्याम) । हे यज्ञ को जानने वाले अग्नि, दोनों शत्रु निकट या दूर के या सामने या पीठ पीछे निन्दा करने वाले (उभाकांसा) शत्रुओं की हत्या कर और हमारे इस यज्ञ के अभीष्ट अर्थ को कर्म द्वारा कर (अनुष्ठया कृणुहि) ।
स्वामी दयानन्द का अर्थ–हे राजन् , आप के द्वारा समान धनी और आप से संरक्षित होते हुए हम आप की सुनीति से बहुविध अन्नों का भोग करें । हे सत्य प्रचार कर (सत्यताता) तथा श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले राजन् । आप स्वदेशी एवं विदेशी दोनों प्रकार के पाप प्रशंसक शत्रुओं को नष्ट करें तथा धर्मानुष्ठान पूर्वक राज्य करें । (अनुष्ठया कृणुहि) ।

अनस्वधम् – (१) अपनी अपनी शक्ति या अन्न या वेतन के अनुसार ।
'ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः'
ऋ. ५.५२.१
(२) अन्न आदि धारणपोषण के सामर्थ्य के अनुसार ।
'क्रत्वा महां अनुष्वधम्
भीम आ ववृधे शवः।'
ऋ. १.८१.४
(३) स्वधा से युक्त (सोम का विशेषण) सोमरस (४) अन्न खाने के पश्चात् (५) स्वधा का अर्थ सवनीय पुरोडाश के रूप में अन्न है । (६) पितरों को जो पिण्ड दान दिया जाता है वह भी स्वधा है । अतः पिण्ड दान के पश्चात् दिया गया अन्न भी अनुष्वधम् है । (७) अन्न उत्पन्न करने के लिए ।
'मरुत्वा इन्द्र वृषभो रणाय
पिबा सोममनुष्वधं मदाय
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं
त्वं राजाडसि प्रदिवः सुतानाम्'
ऋ. ३.४७.१, वाज.सं. ७.३८ (का.) २८.१०, तै.सं. १.४.१९.१, मै.सं . १.३.२२: ३८.१, का.सं.४.८, ऐ.ब्रा.५.४.१४, कौ.ब्रा. २३.१, ऐ.आ. १.२.२.१३, ५.१.१.८, नि. ४.८
हे इन्द्रह तू मरुतों या सैनिकों से युक्त होकर वर्षा का बरसाने वाला (मरुत्वाँ वृषभः) रण तथा मद या जोश के लिए अन्न खाने के पश्चात् सोम रस का पान कर (अनुष्व सोमं पिब) एवं सोम के संघात को अपने उदर में असिञ्चित कर (मध्य ऊर्मिं जठेर असिच्च) क्योंकि कल बनाए सोम रस का (प्रादिवः सुतानाम्) तू राजा है (राजा असि) । अर्थात् आजा ही का नहीं कल्ह के भी सोमरस् का तू राजा है ।
'अनुष्वधमा वह मादयस्व'
ऋ. २.३.११

अनुषत्य – सदा सत्य व्यवहार का अनुसरण करने वाला ।
'हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम्'
ऋ. ३.२६.१

अनुस्पष्टः – (१) दिनों दिन दृष्टिगोचर होने वाला (२) साक्षात् । अनु = स्पश् + क्त = अनुस्पष्ट । (स्पश् धातु का अर्थ है देखना,)
'अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य'

ऋ. १०.१६०.४, अ. २०.९६.४

अनुसर्प – कुटिल पुरुष का साथी ।
'सर्पानुसर्प पुनर्वो'
अ. २.२४.४

अनुस्पद् – (१) अनुकूलता से बहना, (२) अनुकूल होकर चलना ।
'समानोअध्वा प्रवताम् अनुष्यदे'
ऋ.२.१३.२

अनुसृष्ट – अनुकूल चलने वाला पुरुष ।
'स्वतवद्भयोऽनुसृष्टान्'
वाज.सं. २४.१६

अनुसेषिधत् – (क्रि.) अनुकूल चलावे ।
'षट् युक्तां अनुसेषिदत्'
ऋ. १.२३.१५
(राजा अपने छः अमात्यों को सूर्य छः ऋतुओं को तथा जीव छः इन्द्रियों को अपने अनुकूल चलावें ।)

अनुहव – देखा देखी स्पर्द्धा करना ।
'अनुहवं परिहवम्'
अ. १९.८.४, आप. मं.पा. १.१३.५

अनुहूत – अनुशिष्ट, शिक्षित ।
'अनुहूतः पुनरेहि'
अ. ५.३०.७

अनूक – रीढ ।
'अनूकादर्षणीरुष्णिहाभ्यः'
अ. ९.८.२१

अनूक्य – शरीर का सन्धिभाग, जोड़ (२) पीठ का मोहरा ।
'कीकसाभ्यो अनूक्यात्'
ऋ. १०.१६३.२, अ. २.३३.२, २०.९६.१८, आप. मं.पा. १.१७.२
'ऋचो यस्यानूक्यम्'
अ. ९.६.१

अनूकाश – (१) अनुरूप प्रकाश, (२) स्वच्छ आचरण ।
'अनुकाशेन बाह्यम्'
वाज.सं. २५.२

अनूक्या – हंसली की हड्डी ।
'खलःपात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये'
अ. ११.३.९

अनूचानः – विद्वान् , बहुश्रुत ।
'यो अनूचानो ब्राह्मणोयुक्त आसीत्'
ऋ. ८.५८.१

अनूच्या – आसन्दी (चौकी,खाट) की दाहिनी बाईं ओर की पाटी ।
'बृहच्च रथंतरं चानूच्ये'
अ. १५.३.५

अनूची – (द्वि) अनु + अञ्च् + क्विप् + ङीष् = अनूची । (१) एक दूसरे को अनुसरण करने वाली । रात्रि और उषा का विशेषण ।
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात्
औरगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समान बन्धू अमृते अनूची
द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ।'
ऋ. १.११३.२, साम. २.११००., नि. २.२०
श्वेत वर्णा दीप्ता (रुशती) एवं सूर्यरूपी वत्स वाली रुशद्वत्सा) उषा आई । इस उषा को काली रात ने स्थान दिये (सदनाति औरक्) । रात्रि और उषा दोनों के सूर्य ही समान रूप से बन्धु हैं । दोनों मृत्यु-रहित हैं तथा दोनों एक दूसरे का अनुसरण करने वाली हैं (अनूची) या सूर्य की गति अनुसार चलने वाली हैं । ये सभी प्राणियों के वर्ण को या अपने रूप को बदलने वाली हैं । (वर्णम् आमिनाने)। उषा रात्रि का अंधकार एवं रात्रि उषा का प्रकाश हरती है । इस प्रकार ये दोनों प्रकाशमान अन्तरिक्ष मार्ग से चलती हैं । (द्यावा चरतः)

अनूचीन – अनुकूल ।
'अनूचीना जीविता मानुषेभ्यः'
ऋ. ४.५४.२, वाज.सं. ३३.५४

अनूधाः – नञ् +ऊधस् । स्तन रहित पुरुष जो द्यावा पृथिवी को उत्पन्न करता है ।
'अनूधा यदि जीजनत् अधा च नु'
ऋ. १०.११५.१, साम. १.६४

अनून – नञ् + ऊन (१) किसी प्रकार किसी से कम नहीं । (२) हीनता से रहित ।
'अनूनो नाम वा असि ।'
अ. ७.८१.३
(३) त्रुटि-रहित, (४) अग्नि, (५) ज्ञानी पुरुष, (६) परमेश्वर (७) अखण्डव्रती शिष्य ।

'अनुनमग्निं पित्रोरुपस्थे'
ऋ. १.१४६.१

अनूनवर्चाः – नञ् +ऊन =अनून, अनून +वर्चाः । सबसे अधिक तेजवाला युक्त अग्नि (२) सूर्य, (३) देहगत जीवातमा ।
'अनून वर्चा उदियर्षिभानुना'
ऋ. १०.१४०.२, साम.२.११६७, वाज.सं. १२.१०७, तै.सं. ४.२.७.३, मै.सं. २.७.१४: ९५.१४, का.सं. १६.१४, श.ब्रा. ७.३.१.३०

अनूना – अक्षय, अन्यून ।
'श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः'
ऋ. ३.१.५

अनूप – अनु +वप् (बीजसन्तानार्थक) +कन् (औणादिक) =अनूप (व का सम्प्रसारण नियम से उ) । अर्थ है – (१) पर्जन्य, मेघ वर्षा द्वारा अनुवपन करता है । (२) वायु (३) आदित्य । वायु और आदित्य भी यथासमय जल द्वारा अनुगृहीत करते हैं । (४) जिससे जल लेकर अनुवपन किया जाय (एतस्मादेव उदकेन अनूप्यते) नदी, समुद्र ।
'अनूपो महिषे नाम्बु
प्रापदेशेतुवाच्यवत्मेदिनीकोश
जलप्रायमनूपं स्यात् अमरकोश
नाना द्रुमलता वीरुत् निर्धरप्रान्तशीतलैः'
वनैर्व्याप्तमनूपंतत् सत्यै
ब्रीहिय वादिभिः-अमरकोश
(५) अनुगता आपः यस्मिन् (जिस में जल अनगुत हो) । अनु +आप् +अ =अनूप । निरुक्तकार ने वप् धातु से ही अनूप का बनना माना है ।
(६) जो उदक (जल) से अन्वाप्त हो (अनु+आप् +इख =अनूप)
आधुनिक अर्थ-(१) जलप्राय देश, (२) दल दलभूमि, (३) देश विदेश का नाम, (४) तालाब, (५) नदी, (६) पर्वत का जलप्रदेश, (७) महिष (८) मेढ़क, (९) हाथी ।
'अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः।
सोमो दुग्धाभिरक्षाः।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्
मन्दी मदाय तोशते ।'
ऋ. ९.१०७.९,साम. २.३४८, नि. ५.३
सोम जलप्राय देश में गौओं के साथ रहता है। वह सोम सभी गायों से निकल कर इसी प्रकार इन्द्र के मद के लिए भ्रवता है जैसे जल (संवरणानि) सिमिटकर समुद्र में आते हैं । उससे तृप्त होकर इन्द्र शत्रुओं का नाश करते हैं ।
अन्य अर्थ,
जब जलप्राय देश में (अनूपे) गोस्वामी गायों के साथ रहता है (गोभिः अक्षाः) तब दुही हुई गायों से भी दूध झरता है । (दुग्धाभिः सोमः अक्षाः) । जैसे जल चारों ओर से समुद्र को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार खाई हुई घास आदि का रस रूप दूध गाय के स्तनों में प्राप्त होता है । तब प्रसन्न वदन गोस्वामी तेज धारण करने के लिए (मदाय) निर्बलता दूर करता है (तोशते) ।

अनूप्य – (१) अनूप +यत् =अनूप्य । जलमय देश का जल ।
'शमु सन्त्वनूप्याः'
अ. १.६.४
(२) अनूप देश में उत्पन्न जल-धाराएं ।
'शं ते सन्तु अनूप्याः'
अ. १९.२.२

अनूर्मि – नञ् +ऊर्मि =अनूर्मि । भय पीड़ा रहित, (२) अविक्षुब्ध, (३) गम्भीर (४) तरंग या धारा से रहित प्रशान्त अगाध इन्द्र ।
'अनूर्मि वाजिनं यमम्'
ऋ. ८.२४.२२. अ. २०.६६.१

अनूपाः त्रयः – (१) अनुकूल होकर जीवों की रक्षा करने में समर्थ-अग्नि, विद्युत् और सूर्य ।
'त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपाः'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२
(२) पर्जन्य, वायु तथा आदित्य नामक तीन देवता जो अनुवपन करने वला व्याप्त होने वाले या प्रक्षेपण करने वाले हैं-
(३) तीन अनुग्रह करने वाले देव -मेघ, वायु तथा आदित्य ।

अनूर्ध्वभाः – (१) ऊपर को उठने वाली दीप्तियों से रहित (२) अग्नि आदि से रहित, (३) अतेजस्वी अल्पदीप्ति अग्नि के समान स्वल्प शक्ति वाला

दीनजन ।
'अनूर्ध्वभासः सदमित् तुतुर्यात्'
ऋ. ५.७७.४

अनूषत – लट् (वर्तमान) में प्रयोग । अर्थ है – स्तुति करते हैं ।
'गोभिः क्राणा अनूषतः'
नि. ४.१९
स्त्रोतों से इन्द्र के अभिमुख होते हुए स्तुति करते हैं ।
वेद-प्रतिपादित कर्मों को करते हुए (गोभिः क्राणाः)स्तुति करते हैं (अनूषत) ।

अन्त्यू – अन्ति +ऊति । समीपस्थ रक्षक ।
'अर्चामि सुम्नयन्नहम्
अन्त्यूतिं मयोभुवम्'
ऋ. १.१३८.१

अनृक्षर – नञ् + ऋक्षर (कंटक) =अनृक्षर । ऋक्ष् +करच् = ऋक्षर । अर्थ है कण्टक ।
'स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी
यच्छा नः शर्म सप्रथः।'
ऋ. १.२२.१५, वाज.सं. ३५.२१, ३६.१३, मै.सं. ४.१२.२: १८०.१६, का.सं. ३८.१३, तै.आ. १०.१.१०, आप.श्रौ.सू. १६.१७.१७. साम.मं.ब्रा. २.२.७, हि.गृ.सू. २.१७.९, आप.मं.पाठ २.१५.२,१ ८.८, नि. ९.३२
(हे पृथिवी, तू सुखकारी हो (स्योना भव), निष्कण्टक एवं निवास योग्य बन (अनृक्षरा निवेशनी) । सब ओर चौड़ा बन हमें कल्याण दे ।)
'अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।'
ऋ. २.२७.६

अनृजु – नञ् +ऋजु = अनृजु । कुटिल, जो +ऋजु, सरल या सीधा न हो ।
'मा भ्रातुरग्ने अनृजो ऋणं वेः'
ऋ. ४.३.१३

अनृण – नञ् +ऋण =अनृण । ऋण रहित ।
'अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्'
अ. ६.११७.३, तै.ब्रा. ३.७.९.८, तै.आ. २.१५.१, आप.श्रौ.सू. १३. २२.५,
ऋण (कर्ज) तीन प्रकार का कहा गया है ।–
'जायमानो वै ब्राह्मणः त्रिभिः ऋणैः ऋणवान् जायते, ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो, यज्ञेन देवेभ्यः प्रजयापितृभ्यः'
तै.सं. ६.३.१०.५
ऋणं ह वै जायते योऽस्ति स जायमान एव देवेभ्य ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः। स यदेव यजेत तेन देवेभ्य ऋण जायते । तद्धयेभ्य एतत्करोति यदेनान् यजते, यदेभ्योजुहोति । अथ यदेवानुब्रुवीत तेन ऋषिभ्य ऋणं जायते । तद्धयेभ्यः एतत् करोति ऋषीणां निधिगोप इति हयनूचानमाहुः। अथ यदेव प्रजामिच्छेत तेन पितृभ्य ऋणं जायते । तद्धयेभ्य एतत् करोति यदेषां सन्तताऽव्यवच्छिन्ना प्रजा भवति । अथ यदेव वासयेत-तेन मनुष्येभ्य ऋणं जायते तद्धदेभ्यः एतत् करोति् यदेनान् वासयते यदेभ्यो अशनं ददाति । स य एतानि सर्वाणि करोति, स कृतकर्मा , तस्य सर्वमाप्तम्, सर्व जितम् ।
श. ब्रा. १.७.२.१-५
ब्राह्मण उत्पन्न होते ही तीन ऋण से ऋणवान होता है । ब्रह्मचर्य से विद्याभ्यास कर ऋषियों का, यज्ञों से देवों का और प्रजा से पितृलोगों का ऋण शोध होता है । तै. सं.
जो भी उत्पन्न होता है उस पर देव, ऋषि, पितर और मनुष्य चारों के ऋण हो जाते हैं । यज्ञों से देवों का ऋण उतरता है, अनुप्रवचन और अध्ययन से ऋषियों का ऋण उतरता है । विद्यावान् पुरुष ऋषियों का 'निधिगोपा' कहलाता प्रजाओं से पितरों का ऋण उतरता है । इससे प्रजातन्तु टूटता नहीं । मनुष्यों के घरों में अतिथि रूप से रहने और भोजन करने से मनुष्यो का ऋण होता है । घर पर अतिथियों को वास देने और भोजन वस्त्र देने से ऋण चुकता है । जो इन सब कार्यों का करता है वह कृतकर्मा है । उसे सब प्राप्त होता है । वह सब पर विजय प्राप्त करता है ।

अनृतद्विट् – असत्य व्यवहार का द्वेषी, सत्य का विरोध न करने वाला ।
'घोरासो अनृतद्विषः'
ऋ. ७.६६.१३

अनृतदेवः – (१) असत्य बात का प्रकाश करने वाला, (२) ऋत, सत्यानुकूल देन लेन या व्यवहार न करनेवाले ।

'यदिवाहम् अनृत देव आस'
ऋ.७.१०४.१४, अ.८.४.११
(३) असत्य को ही इष्ट मानने वाला ।

अनृत – नञ् +ऋत =अनृत । अर्थ (१) जल से भिन्न वाष्प, (२) सत्य से भिन्न असत्य (३) अप्रकाशमयी छाया
'यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादधि
आददाथे अनृतं स्वेन मन्युना
दक्षस्य स्वेन मन्युना'
ऋ. १.१३९.२
(हे मित्र और वरुण, स्नेहवान् और दुःख विनाशक जनो, जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र दोनों जलमय पदार्त से (ऋतात्) भिन्न रूप वाष्प को (अनृतम्) ग्रहण कर लेते हैं (अधि आददाथे) और जिस प्रकार सूर्य चन्द्र तेजोमय प्रकाश से भी (ऋतात्) अप्रकाशमय छाया को (अनृतम्) उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार हे उत्तम राजपुरुष, आप लोग भी सत्य से असत्य को अपने ज्ञान बल से पृथक् कर सर्वोपरि न्याय वितरण किया करो ।)

अनृतवाक् – असत्यवादी ।
'मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः'
अ. ४.१६.७, का.सं. ४.१६.

अनृता – असत्यवादिनी ।
'पापासः सन्तो अनृता असत्याः'
ऋ.४.५.५

अनृतस्यसेतु – मिथ्याज्ञान को बांधने वाला तामस आवरण, (२) अव्यक्त संसार, जड़ प्रकृति का सेतु ।
'गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ'
ऋ. १०.६७.४, अ. २०.९१.४

अनृतुपा – नञ् +ऋतुपाः । विशेषऋतु में ही नहीं परन्तु सदा जलपान करने वाला–इन्द्र, सूर्य, (२) बिना किसी विशेष काल की अपेक्षा किए सदा एक समान विशेष काल का पालन करने वाला ऐश्वर्यवान् पुरुष ।
'स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा'
ऋ. ३.५३.८, जै.उप.ब्रा. १.४४.६,१०

अनृते – ब्रह्मशक्ति से निकली अनृत नामक दो विक्षेपक वृत्तियां ।
'मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते
अ. २०.१३३.२, शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.

अनेजत् – (१) अपनी अवस्था से कभी च्युत न होने वाला, (२) परिणाम–रहित ब्रह्म
'अनेजदेकं मनसो जवीयः'
वाज.सं. ४०.४, इश.उप. ४.

अनेद्य – (१) अनिन्दित आचरण वाला ।
'अनेद्या अनवद्या अरिष्टाः'
ऋ. ६.१९.४
(२) अनिन्दनीय
'त्वेष रथो अनेद्यः'
ऋ. ५.६१.१३
(३) अनिन्द्य शुद्धाचारी वायु या वीर नायक ।
'असि सत्य ऋणयावानेद्यः'
ऋ. १.८७.४
(४) प्रशंस्य, उत्तम ।
'अनेद्यः श्रव एषो दधानाः'
ऋ. १.१६५.१२, मै.सं. ४.११.३; १६९.१४, का.सं. ९.१८.

अनेनाः – अनेनाः । निष्पाप
'अनेनो वो मरुतो यामो अस्तु'
ऋ. ६.६६.७

अनेहा – आघात रहित, निश्चेष्ट
'एवो ष्वस्मन्निर्ऋतेऽनिहा त्वमयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान्'
अ. ६.८४.३

अन्येद्युः – एक दिन छोड़कर दूसरे दिन आने वाला ज्वर
'यो अन्येद्यु रुभयदद्युरध्येति'
अ. १.२५.४, अ. ७.११६.२

अन्वेति – (१) अनुगमन करता है, प्राप्त होता है ।
'श्येनो न दीयन् अन्वेति पाथः'
ऋ. ७.६३.५, नि. ६.७
वह अन्तरिक्ष उस सूर्य को मार्ग देने के निमित्त बाज पक्षी के समान (श्येनः न) चलता हुआ (दीयन्) उनका अनुगमन करता है (अन्वेति)। अथवा – जब सूर्य श्येन की तरह बड़े वेग से गति करता हुआ (दीयन्) अन्तरिक्ष में प्राप्त होता है । (पाथः अन्वेति।)(२) आच्छादित करता है ।
'न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम्'
ऋ. १०.१४२.५

नीचे आता हुआ आदित्य इस बिस्तृत भूमि को प्रकाश से आच्छादित करता है (उत्तानां भूमिम् अन्वेति) ।

अन्वेतवे – अनु +एतवे =अन्वेतवे । अर्थ – अनुकरण करने के लिए ।
'स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः'
ऋ. ७.३३.८, नि. ११.२०.

अन्योकाः – बिना घर बार का, जंगली, आवारा ।
'इमं गोष्ठं प्रविवेशा न्योकाः'
अ. १२.२.४

अन्योदर्य – अन्य के उदर से उत्पन्न ।
'नहि प्रभायारणः सुशेवो
अन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।'
ऋ.७.४.८, नि. ३.३
(जिससे जल सम्बन्ध न हो वह अन्य उदर से उत्पन्न शिशु अत्यन्त सुखकारक होने पर भी अपना नहीं होता । ऐसा मन से भी न सोचें कि वह अपना होगा ।)

अप् – (१) सामान्य जल, जल, (२) अन्तरिक्ष ।
'अद्भ्यः स्वाहा'
अ. १९.४३.७, वाज.सं. २२.२५,२९, ३९.२, तै.सं. १.८.१३.३, ७.४.१४. १, मै.सं. ३.१२.१०: १६३.११, का.सं. १५.३, का.सं. (अश्व) ४.३, श.ब्रा. १४.३.२.१३, तै.ब्रा. ३.१.५.४, ८.१७.५, १२.२.६, तै.आ. (आन्ध्र) १०.६७.१, आप.श्रौ.सू. १८.१६.१२, २०.११.१७, महा.ना.उप. १९.२, कौ.सू. १०३.२,

अप अप – दूर भगाता है ।
'अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति'
ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९

अपअप ऊहसिः – बार बार नष्ट करता है ।

अपईयमानः – गृहस्थाश्रम कर्म को प्राप्त हुए स्त्री पुरुष, (२) परमेश्वर के उपदिष्ट कर्मों का आचरण करते हुए ।
'अजिरासस्तदप ईयमानाः'
ऋ. ५.४७.२

अपकामः – (१) विफल मनोरथ, अपगत काम, जिसकी कामना या योजना सफल न हो ।
'धनुः शत्रोरपकामं कृणोति'
ऋ.६.७५.२, वाज.सं.२९.३९, तै.सं. ४.६.६.१, मै.सं. ३.१६.३: १८५.१३, का.सं. (अश्व). ६.१, नि. ९.१७
(२) नीचे जाने की कामना या वासना ।
'अपकामं स्यन्दमानाः'
अ.३.१३.३, तै.सं. ५.६.१.३, मै.सं. २.१३.१:१५२.११ का.सं. ३९.२.
(३) निन्दनीय इच्छा ।
'पापमार्छत्वपकामस्य कर्त्ता'
अ. २.१२.५

अपक्रीता – दूर देश से द्रव्य के बदले प्राप्त की हुई औषधि ।
'अपक्रीताः सहीयसीः'
अ. ८.७.११

अपगल्भ – (१) दुरभिमानी, (२) बुरे प्रकार का धृष्ट पुरुष ।
'व्यृद्धया अपगल्भम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४.
(३) धृष्टता रहित ।
'नमो मध्यमाय च अपगल्भाय च'
वाज.सं. १६.३२, तै.सं.४.५.६.१, मै.सं. २.९.६:, १२५.४, का.सं. १७.१४.

अपगा – (१) दूर, (२) अन्यत्र जाने वाली ।
'यथा मन्नापगा असः'
अ. १.३४.५, २२.३०.१, ६.८.१–३.

अपगूढम् – छिपे छिपे ।

अपगूर्य – (१) ऊंचा उठाकर ।
(२) धमका कर, डांट डपट कर –(दया)
'उच्चैरिन्द्रो अपगूर्य जघान'
ऋ. ५.३२.६.
(इन्द्र ने वृत्र को ऊंचा उठाकर मारा ।) –सा.
(राजा चोर व्यभिचारी आदिकों को उत्तमत या धमकाकर (उच्चैः अपगूर्य) दण्डित करे (जघान)। –दया. । गुरगुराना, गुड़ेरना आदि हिन्दी धातुओं का मूल धातु 'गूर' ही है ।

अपगूह – (क्रि.) छिपा दे ।
'मा वर्पो अस्मदप गूह एतत्'
ऋ. ७.१००.६, साम. २.९७५ तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं.४.१०.१, १४४.५, नि . ५.८.
(हे परमेश्वर, जिस रूप में संसार की रंगस्थली में तू विद्यमान है उस रूप को हम से मत छिपा ।)–सा.

अपगूहः – गुरु धातु के म.पु. ए.व. में लोट् का रूप। अर्थ–छिपा दे ।
'मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये'
ऋ. १०.२७.२४
हे अन्तरात्मा, तू इस आदित्य के इस प्रकार के उपकरणों को ((एतादृक्) मृत्यु के साथ संग्राम में (समर्ये) मत छिपा या मत भूल (मोस्म अपगूहः)।

अपगूहमानः – छिपाता हुआ ।
'भिषग्भ्यो-रूपमपगूहमानः'
अ. १९.५६.२

अपगोह – (१) आवरक, आच्छादक, छिपाने वाला । अप +गुह + अच् =अपगोह ।
(२) आच्छादन करने वाला अन्धकार ।
(३) आच्छादक मौन या अज्ञान ।
'स विद्वाँ अपगोहं कनीनाम्
आविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक्'
ऋ. २.१५.७
वह सूर्य या विद्युत् जिस दीप्ति करने वाली किरणों के आच्छादक अन्धकार को दूर कर देता है ।

अपच्यव – (१) मूसल या ओखल से निकालना, (२)त्याग करना, (३) दान देना ।
'यत्र नारी अपच्यवम्
उपच्यवं च शिक्षते'
ऋ. १.२८.३
(जहां नारी मूसल ओखल में डालती और निकालती है या त्याग करना एवं अन्नादि का संग्रह करना जानती है)

अपचित् – बुरे मवाद का संचय जिस से फंसी होती है ।
'वाका अपचितामिव'
अ. ६.२५.१–३.

अपचितिः – (१) आदर पूजा ।
'इन्द्रियमूर्जमपचितिंस्वधाम्'
वाज.सं. २१.५८
(२) पूजा सामग्री (३) प्रजाओं का उत्पन्न होना ।
'पायुर्मेऽपचितिर्भसत्'
वाज.सं.२०.९, मै.सं.३.११.८:१५२.७, तै.ब्रा. २.६.५.५..

अपत्य – अपगत्य पितुः सकाशात् पृथगिव विस्तृतः भवति (पिता से निकलकर पृथक् विस्तृत होता है) अथवा न पतति (इसके जसके जन्म से पतति नहीं होता)
अप + तनु+यक् =अपत्य । निपातन द्वारा सिद्ध । अर्थ–सन्तान, किसी गोत्र में उत्पन्न पुत्र पौत्र या आगे की सनत्ति भी अपत्य ही है ।
(३) अपत्य–सन्तान (४) अ +पत्य । वह धन जिसका स्वामित्व किसी को न हो ।
'त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम्'
ऋ. १.१७४.६
'होता निषत्तो मनोरपत्ये'
ऋ. १.६८.७

अपत्य साच् – (१) पुत्र पौत्र से युक्त, (२) पुत्र पौत्र को प्राप्त होने वाला ।
'अपत्य साचं श्रुत्यं रराथाम्'
ऋ. १.११७.२३
हमें पुत्र पौत्र से युक्त, पुत्र पौत्रादि को होने, वाले बड़े भारी प्रसिद्ध और श्रवणीय गुरूपदेश द्वारा प्राप्त होने योग्य वेदज्ञानमय ऐश्वर्य (श्रुत्यम्) प्रदान करें। (रराथाम्)। पुनः–
'अपत्य साचं श्रुत्यं दिवे दिवे'
ऋ. २.३०.११
'अपत्य साचं श्रुत्यं रराथे'
ऋ. ६.७२.५

अपति – जो पति होने योग्य न हो, जो पुरुष स्त्री का पालन करने योग्य न हो ।
'अपतिः स्वपतिं स्त्रियम्'
अ. ८.६.१६

अपतिघ्नी – पति को नष्ट न करने वाली ।
'अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि'
ऋ. १०.८५.४४, अ.१४.२.१७, साम.मं.ब्रा. १.२.१७, पा.गृ.सू.१.४.१६, आप.मं.पा. १.१.४, हि.गृ.सू.१.२०.२.
पुनः–
'इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीम्'
अ. १४.१.६२

अपद – ऐसा स्थान जहां पैर नहीं रखा जा सके। (२) अगम्य आकाश ।

'अपदे पादा प्रतिधातवेऽकः'
ऋ. १.२४.८, वाज.सं. ८.२३, तै.सं. १.४.४५.१, मै.सं. १.३.३९: ४५.४, का.सं. ४.१३, श.ब्रा. ४.४.५.५.
उस परमेश्वर ने सूर्य के किरणों के प्रत्येक पदार्थ तक पहुँचने के लिए अगम्य आकाश में भी अवकाश बहना दिया है।

अपद्रा – अप +द्रा (भागना) =अपद्रा। दूर भागना। Draw धातु की द्रा से समानता विचारणीय है।
'अपद्रान्तु अरातयः'
ऋ. १०.८५.३२, अ. ६.१२९.१-३, १४.२.११, साम.मं.ब्रा. १.३.१२, आप.मं.पा. १.६.१०.

अपन्नगृहः – विपत्ति रहित गृह वाला।
'अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामि'
वाज.सं. ६.२४, तै.सं. १.३.१२.१, मै.सं. १.३.१:२९.१, का.सं. ३.९, श.ब्रा. ३.९.२.१३, आप.श्रौ. सू. ११.२०.१३.

अपप्रथन्त – खूब बढ़ाते हैं। 'प्रथ' धातु बढाना अर्थ में प्रयुक्त हैं। लट् वर्तमान के अर्थ में लङ् (भूत) का यह प्रयोग है।
'धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त'
ऋ. १०.८८.१.
धारण, रक्षा या अविच्छेद के लिए (धर्मणे) सुखकारक अग्नि को (कम्) अन्न, हवि और पुरोडाश से (स्वधया) देवता या विद्वान् लोग बढ़ाते हैं (अपप्रथन्त)।

अपपाप – पाप से प्राप्त।
'अपपापं परिक्षवम्'
अ. १९.८.५,

अपपित्व – (१) अपचय, (२) दूर होना, (३) भागना, (४) पीछे हटना।
'अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम्'
ऋ. ३.५३.२४.

अपपुष् – अ + पपुष्। नहीं पीने वाला।
'यथोदकमपपुषः'
अ. ६.१३९.४

अपप्रोथ – दूर करना।
'अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः'
ऋ. ९.९८.११

अपभर्तवै – त्यागने योग्य।
'नैषा गव्यूतिः अपभर्तवा उ'
ऋ.१०.१४.२, अ.१८.१.५०, मै.सं.४.१४.१६ :२४२.१०

अपभूः – अपमानित, तिरस्कृत।
'माकिर्देवानाम् अप भूरिह स्याः'
ऋ. १०.११.९, अ.१८.१.२५.

अपमित्य – अप + मङ्.(प्रतिदान अर्थ में) अपमान योग्य (२) प्रदान करने योग्य। अपमातव्यम् अपाकर्तव्यम् करने योग्य अपमातव्य अपाकर्त्तव्यम् धान्यदिकम् (वह ऋण जो भुगताने योग्य है)
'अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि'
अ. ६.११७.१

अपम्लुक्त – बहुत पापों से मुक्त।
'अपम्लुक्तं बहुकृच्छ्राचरन्तम्'
ऋ. १०.५२.४

अपमृष्ट – अपमार्जित, नष्ट।
'अपमृष्टं मनुष्यैसानि'
अ. ६.११३.३

अपर्तु – (१) अप +ऋतु। ऋतु के विपरीत (२) सत्य ज्ञान स्वरूप ब्रह्म के ज्ञान या सत्यमय स्वभाव से शून्य प्रकृति।
'यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः'
अ. ३.२८.१

अपराज – पीछे उत्पन्न। अपर +जन् +ड
'नमः पूर्वजाय चापरजाय च'
वाज.सं. १६.३२. तै.सं. ४.५.६.१. मै.सं. २.९.६: १२५.३, का.सं. १७ .१४.

अपरञ्चन् – कदापि।

अपरम् – उत्कृष्ट, अनुत्तर, जिससे बढ़कर दूसरा कोई न हो। आधुनिक अर्थ (१) उत्कृष्ट, अनुत्तम, अनुत्तर (२) अतिरिक्त (३) दूसरा, भिन्न (४) साधारण, मध्यम कोटि का, दूसरे का (५)अगला भाग, पिछला, अन्तिम (६) समाप्त का परपद, (७) हाथी का अगला पैर (८) पाश्चात्य , (९) नीचता, (१०) नीच, (११) छोटा, (१२) शत्रु, (१३) पश्चिम दिशा, (१४) हाथी का अगला धड़, (१५) गर्भ, (१६) गर्भ डिम्ब का ऊपर वाला चमड़ा (१७) भविष्य।

अपरा – (१) पीछे या बाद की हुई।

'कतरा पूर्वा कतरा परायोः ।'
ऋ. १.१८५.१, ऐ.ब्रा. ५.१३.१०, कौ.ब्रा. २३.८, ऐ.आ. १.५.३.४, नि. ३.२२.

अपराजित – (१) सर्पविष की एक औषधि (२) निघण्टु में अवक्षुरक, वलामोटा, विष्णुक्रान्ता, शुक्लांगी, शेफालिका, शंखपुष्पी और अपराजिता नाम से वर्णित है। अश्वक्षुरक को गिरिकर्णिका और श्वेत आदि भी कहते हैं।
'पृश्निहापराजितः'
अ. १०.४.१५

अपराजिता – (१) कभी नहीं हारने वाला इन्द्र और अग्नि, (२) प्राण और अपान्, (३) आत्मा और अन्तःकरण (४) परमात्मा और जीवात्मा (५) राजा और सेनापति (६) गुरु और शिष्य
'सजित्वानापराजिता'
ऋ. ३.१२.४.
(७) किसी से भी नहीं जीती गई ब्रह्मपुरी।
'पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा
विवेशापराजिताम्'
अ. १०.२.३३, तै.आ.१.२७.३

अपरापरणा – अन्य सहायों से रहित, निःसहाय।
'अपरापरणो भवति क्षीयते'
अ. १२.५.४५

अपराहत – शत्रुओं से पराजित न होने वाला।
'वयोधा अपराहतः'
अ. १८.४.३८

अपरिपर – (१) शत्रुओं से रहित. (२) जीवनहारी चोरवत् रोगों से रहित (३) मित्रदृष्टिमय मार्ग, (४) द्वेष रहित मार्ग, (५) कामादि शत्रुओं से रहित मार्ग।
'अपरिपरेण यथा यमराज्ञः पितृन् गच्छ'
अ. १८.२.४६

अपरिमितप्राण – सप्तम प्राण।
'योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम'
अ. १५.१५.९

अपरिविष्ट – (१) जो किसी पदार्थ से आच्छादित न हो (२) अनावृत्त, खुला।
'ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यम्'
ऋ. २.१३.८

अपरिह्वृत – (१) अकुटिल (२) सुप्राप्य।
'सुदात्वपरिह्वृता'
ऋ. ८.७८.८
(३) कुटिल विचारों और चेष्टाओं से रहित, (४) सौम्य।

अपदी – पद-रहित
'पद्वंतं गर्भमपदी दधाते'
ऋ. १.१८५.२, मै.सं. ४.१४.७, २२४.११, तै.ब्रा. २.८.४.८

अपरी – (१) आगे आने वाली।
'ओ ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान्'
ऋ. १.११३.११, तै.सं. १.४.३३.१, तै.आ. ३.१८.१. (जो आगे आने वाली उषाओं में भी पूर्व की खिलीं उषा देखें वे भी सुख को प्राप्त होते हैं।)
(२) स्वकीया स्त्री, जो परकीया न हो।
'अहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान्'
ऋ १०.१८३.३, आपः मं. पा. १.११.९,
(३) पराई, (४) राजा आदि की प्रजा।
'उतापरीषु कृणुते सखायम्'
ऋ. १०.११७.३
(५) आ +पृ +ङीष् = अपरी। अर्थ-है अपूर्ण सेना क्रिया (६) अपूर्ण।
'उतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये'
ऋ.१.३२.१३
सूर्य (मघवा) सब अपूर्ण अस्थायी चेष्टाओं पर पाता है।

अपरीत – (१) बिना किसी से सहाय पाए (२) बिना रोका गया
'भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण'
ऋ.५.२९.१४
(३) नञ्+ परि+इ (गत्यर्थक) + क्त=अपरीत।
'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः
अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः'
ऋ. १.८९.१, वाज.सं. २५.१४, का.सं. २६.११, कौ.ब्रा. २०.४, ऐ.आ. १.५.३.९, आश्व श्रौ.सू. ५.१८.२
(४) अविपरीत, (५) धर्मानुकूल, (६) अप्रतिहत, अप्रतिरुद्ध।

अपरीवृत – (१) नहीं घिरा हुआ, (२) अग्नि जो कभी अन्धकार से नहीं घिरता।
'अपरीवृतो वसति प्रचेताः'
ऋ.२.१०.३

अपरुद्ध – (१) शत्रुओं से घिरा हुआ, (२) कारागार में रुद्ध ।
'अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम्'
अ. ३.३.४

अपरूप – भ्रष्टरूप ।
'ततोऽपरूपं जायते'
अ.१२.४.९

अपलाशः – अ +पल +अश । पल अर्थात् कर्मफल के अशन (भोग) से रहित, अबद्ध, सदायुक्त, परमेश्वर ।
'बृहन्नच्छा यो अपलाशोअर्वा'
ऋ. १०.२७.१४

अपलिख – (क्रि.) केश का मैल निकालना । केश में पड़े लीख केश के मैल ही हैं ।
'अपास्याः केश्यं मलम् अप शीर्षण्यं लिखात्'
अ. १४.२.६८

अपलित – अ +पल +क्त =अपलित, नहीं पका हुआ ।
'अपलिताः केशाः'
अ. १९.६०.१

अपवक्ता – (१) दुःखदायी वचन बोलने वाला, कटुभाषी ।
'उतापवक्ता हृदयाविधश्चित्'
ऋ. १.२४.८, वाज.सं. ८.२३, तै.सं. १.४.४५.१, मै.सं. १.३.३९, ४५.४, का.सं. ४.१३, श.ब्रा. ४.४.५.५.
वह हृदय अर्थात् मर्म को शस्त्रों और कटु भाषण से बेधने वाले पुरुष का भी निराकरण करे ।
(२) अपवाद करने वाला, विरोधी, निन्दक ।
' अपवक्तार ओषधे'
अ. ५.१५.१-११.

अपवर्ता – (१) रक्षा करने वाला, (२) खोलने वाला (अप +वृ +तृच्) (३) इन्द्र, परमेश्वर ।
उत व्रजमपवर्तासि गोनाम्'
ऋ. ४.२०.८

अपववार – खोल दिया ।

अपव्रत – (१) दस्यु –दया. (२) व्रत नियमों का पालन न करने वाला ।

अपव्रततमः – क्रियाशून्य अन्धकार ।
'गूढं सूर्यं तमसापव्रतेन'
ऋ. ५.४०.६

अपवति – अनपच, वमन आदि के द्वारा निकलता है ।
'यदूवध्यम् उदरस्यापवाति'
ऋ. १.१६२.१०, वाज.सं. २५.३३, तै.सं. ४.६.८.४, मै.सं. ३.१६.१, १८२.१२, का.सं. (अश्व). ६.४.

अपवास – अस्त हो जाना, व्यतीत हो जाना ।
'अपवासे नक्षत्राणाम्'
अ. ३.७.७

अपविध्यताम् – नष्ट करें ।
'अपशत्रून् विध्यतां संविदाने'
ऋ. ६.७५.४, वाज.सं. २९.४१, तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३: १८५.१७, का. सं. (अश्व).६.१, नि. ९.४०.

अपवीरवान् – नञ् +पवीर (अंयुध) +वतुप् =अपवीरवत् । आयुधरहित ।
'उतापवीरवान् युधा'
ऋ. १०.६०.३
(आयुध से युक्त हो या आयुध रहित हो..)

अपश्रित – (१) संसार बन्धन से दूर (२) देहादि में आश्रित आत्मा ।
'एषो अपश्रितो वलः'
ऋ.८.२४.३०

अपश्चा – अपश्चात्, पीछा नहीं ।
'अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम्'
अ. १९.५५.५, मै.सं. ३.९.४, १२०.१७, आप. श्रौ.सू. ७.२८.२,

अपश्यः – नहीं देखने वाला, दृष्टि विहीन, मोहान्ध।

अपश्रय – आसन्दी में लगाया हत्था । हाथ रखने का आश्रय ।
'सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः'
अ. १५.३.८

अपश्रित – (१) बुरी तरह से उठी हुई गिल्टी ।
कक्षे मुष्कावपश्रितौ'
अ. ६.१२७.२
(२) बहुत दूर स्थित ।
'पर्वतेषु अपश्रितम्'
अ. २०.४१.२

अपशुघ्नी – पशुओं का नाश न करने वाली स्त्री ।
'अभ्रातृघ्नीं वरुणायशुघ्नीं बृहस्पते'
अ. १४.१.६२, आप. मं.पा. १.१.३.

अपः – कर्म
'अद्या चिन्नू चित् तदपो नदीनाम्'
ऋ. ६.३०.३, नि. ४.१७
आज भी और पहले भी नदियों का वही कर्म है)।

अपस् – (१) वस्त्र, (२) सन्तानोत्पत्ति कर्म, (३) जल, (४) बालक, (५) अन्तरिक्ष-दया ।
'बालक' अर्थ में 'अपसः अतन्वत'
(बालकों ने वस्त्र को ताना) ऐसा प्रयोग यजुर्वेदीय मैत्रायणी शाखा और ताण्डय ब्राह्मण आदि में पाया जाता है ।
'कर्म' अर्थ में प्रयोग–
'मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निः
ततः सूर्योजायते प्रातरुद्यन्
मायामू तु यज्ञियानामेताम्
अपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजनन्'
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७.
(वैश्वानर गुण वाला अग्नि रात में भूलोक का मूर्धा रूप होता है । तब प्रातः काल होते ही वह अग्नि उदय होता हुआ सूर्य का रूप धारण करता है । अग्नि विविध कर्मों को जानता हुआ या जल उत्पन्न करता हुआ (अपः प्रजानन्) शीघ्रता के साथ सभी स्थानों में चलता है)।
पुनः 'कर्म' के ही अर्थ में–
'सामेभिस्तदपो वो अस्तु'
ऋ. २.१४.११.
(वही आप लोगों का एक मात्र कर्म हो)।

अपसः – (१) कुविन्द या तन्तुवाय के छोटे छोटे लड़के ।
'ग्नास्त्वा कृन्तन् अपसोऽतन्वत'
मै.सं. १.९.४; १३४.८ का.सं. ९.९, पंच ब्रा. १.८.९.१, ला.श्रौ.सू. २.८.२३, आप.श्रौ.सू. १४.१२.४, नि. ३.२.१.
हे वस्त्र, तुझे स्त्रियों ने सूत्र रूप में काता तथा कुविन्द के छोटे-छोटे लड़कों ने ताना (अपसः अतन्वत) ।

अपसः मात्रा – (१) अन्न की मात्रा, (२) कर्मों द्वारा बना शरीर ।
'मा मात्रा शारि अपसः पुरक्रतोः'
ऋ. २.२८.५, मै.सं. ४.१४.९: २२८.१४

अपःवसानाः – (१) कर्म और ज्ञान से सम्पन्न युक्तात्मा ।
'अपोवसाना दिवमुत्पन्ति'
ऋ. १.१६४.४७, अ. ६.२२.१, ९.१०.२२, १३.३.९, मै.सं. ४.१२.५,१९३.७, का.सं ११.९.१३, नि. ७.२४.
(२) जल धारण करने वाले मेघ ।
(३) प्राणमय लिंग शरीरों को धारण करने वाले जीवात्मा ।

अपस्कम्भ – विष से बुझे अस्त्र के घाव की चिकित्सा के लिए एक औषधि जिस के पत्ते से विष दूर होता है । इसे 'क्रमुक' या 'लोध्र' भी कहते हैं । (२) भिल्लतरु, (३) शम्बर, लोध्र, अरोध, आदि भी इसके नाम हैं ।
'अपस्कम्भस्य शल्यात्'
अ. ४.६.४

अपस्तमः – (१) सर्वोत्तम कर्म सम्पादन करने वाला ।
'त्वष्टा माया वेदपसाम् अपस्तमः'
ऋ. १०.५३.९
(२) सबसे अधिक ज्ञानी, कर्मनिष्ठ, (३) आप्त, (४) पुत्र, (५) परमेश्वर ।
'अयं देवानामपसामपस्तमः'
ऋ. १.१६०.४
पुनः
'अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः'
ऋ. १०.११५.२

अपस्तमा – (१) सबसे उत्तम कर्मोपदेश करने वाली वाणी (२) सरस्वती, (३) स्त्री ।
'द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा'
ऋ. ६.६१.१३.
(४) सर्वश्रेष्ठ कार्य करने वाली,
'अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमा'
ऋ. १०.७५.७

अतिसर्पति – घेर लेता है ।
'यद्वम्रो अतिसर्पति'
ऋ. ८.१०२.२१,
(जिसे दीमक भीगी मिट्टी से घेर लेता है) ।

अपस्फुर – (१) उद्वेग रहित शान्त गौ ।
(२) अराजकता से युक्त प्रजा ।
(३) कुमार्ग मे जाने वाला ।
'अपस्फुरं गृभायत'

ऋ. ८.६९.१०, २०.९२.७
(४) स्थिर, (५) चंचलता रहित

अपस्य – कर्म करना
'विवक्तिवह्निः स्वपस्यते मखः'
ऋ. १०.११.६, अ. १८.१.२३.

अपस्या – क्रिया, साधुक्रिया, फल ।
'यादृश्मिन् धायि तमपस्यया विदत् ।'
ऋ. ५.४४.८, नि. ६.१५.
(यजमान जिस किसी कामना में मन लगाता है उस कामना को क्रिया रूप या फलरूप से प्राप्त करता है) ।
(२) कर्म करने की इच्छा (३) उपकार की भावना
'निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः'
ऋ. १.१६१.११.

अपस्यु – (१) उत्तम कर्मों और ज्ञानों को प्राप्त करने की इच्छा वाली (२) ज्ञान, और कर्म का लाभ चाहती हुई ।
'ईङ्खयन्तीरपस्युवः'
ऋ. १०.१५३.१, अ. २०.९३.४, साम. १.१७५, ऐ.आ. ५.१.१.६, वै.सू. ३४.७.

अपरोध – दूर कर, दूर भाग ।
'दूराद्दवीयो अपसेधशत्रून्'
ऋ. ६.४७.२९, अ. ६.१२६.१, वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६, का.सं. (अश्व). ६.१, नि. ९.१३.
(हे दुन्दुभिः । शत्रुओं को दूर से दूर भगा ।)

अप्तुर् – अप् (प्राण) +तुर् (शीघ्रार्थक) +क्विप् =अप्तुर् । मनुष्यों को शरीर और विद्या आदि का बल देने वाला । प्राणशक्ति का वर्द्धक (२) कर्मों और बुद्धियों को प्राप्त करने वाला परमेश्वर
'यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे'
ऋ. २.२१.५
(३) शुभकर्मों को शीघ्र करने वाला–(दया)
(४) याज्ञिक कर्मों के प्रति आने में शीघ्रता करने वाला–सा ।

असुर – (१) प्रकृति के परमाणुओं का संचालक ।
'अश्वं न स्तोममसुरं रजस्तुरम्'
ऋ.९.१०८.७, साम. १.५८०, २.७४४.
(६) प्राणों, आप्तजनों, या जलों को प्रेरित करने वाला इन्द्र, विद्युत् सूर्य ।
'वाजसनिम् पूर्भिदम् तूर्णिम् अप्तुरम्'
ऋ. ३.५१.२
(७) जलों को शीघ्रता से चलाने या प्रेरित करने वाला अग्नि । आप्त प्रजाजनों को सन्मार्ग में चलाने वाला ।
'अग्निं यन्तुरमसुरम्'
ऋ. ३.२७.११

अप्रति – (१) सर्वथा, निःशेष रूप से ।
'घ्नन्तो वृत्राणि अप्रति'
अ. ७.९३.१, का.सं. ४.४, तै.सं. ३.५.३.२.
(२) बिना मुकाबले का ।
'भूरीण्ये को अप्रतीनि हन्ति'
ऋ. ४.१७.१९

अप्नवानः – 'अप्नवा' एक वचन का रूप है (१) उत्तम कर्म करने वाले , (२) उत्तम रूप गुण पुत्र पौत्रादि से युक्त, (३) प्राप्त करने वाले ।
'यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुः'
ऋ. ४.७.१, वाज.सं. ३.१५, १५.२६, ३३.६, तै.सं. १.५.५.१, मै.सं. १.५.१; ६६.१, १.५.५; ७३.१६, का.सं. ६.९, श.ब्रा. २.३.४.१४.

अप्नवानवत् – आप्यतेसुखं येन तत् अप्नः(जिससे सुख प्राप्त किया जाय वह अप्न है) अर्थ–सुख प्राप्त करने वाले समस्त साधनों वाले सामर्थ्य से युक्त–अग्नि, प्रभु, सूर्य, (२) रूप जाल से युक्त ।
'अप्नवानवत् आ हुवे'
ऋ. ८.१०२.४, साम. १.१८, तै.सं. ३.१.११.८, मै.सं. ४.११.२, १६६.१५, का.सं. ४०.१४.

अप्नराजा – (१) उत्तम रूप और कर्म से प्रकाशित होने वाले अश्विद्वय(२) स्त्री पुरुष ।
'युवं ह्यप्नराजा वसीदतम्'
ऋ. १०.१३२.७

अप्नस् – (१) रूप । आप्नोति आश्रयं यत् तत् अप्नस् (जो प्राप्त करता है वह अप्नस् है) । (२) कर्म, (३) यज्ञ ।

अप्नःस्थः – कर्माध्यक्ष ।
'सं यावप्नःस्थः अपसेव जनान्
श्रुधीयतः चित् यतथो महित्वा'
ऋ. ६.६७.३, मै.सं. ४.१४.१०: २३१.६

अप्नस्वती – (१) प्रशस्त पत्ययुक्ता । –(दया) (२) उत्तम कर्म या क्रिया योग का उपदेश करने वाली वाणी ।
'अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे'

कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्'
ऋ. १.११२.२४, वाज.सं. ३४.२९, श.ब्रा. १४.१.३.३३, आप. श्रौ.सू. १५.८.१३.
(३) प्रशस्तं अप्नोऽपत्यं विद्यते यस्याः सा (जिसका अप्तय प्रशस्त हो वह स्त्री)-दया.
(४ कर्म, यज्ञादि वाली वेदी (५) रूपवती, उत्तम, हरी भरी (६) नाना रूप उत्तम वर्णयुक्त।
'अप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिः
आर्तनास्विष्टनिः ।'
ऋ. १.१२७.६
अग्नि जिस प्रकार कर्मयज्ञ वाली उत्तम वेदियों में (अप्नस्वतीषु) यज्ञ करने वाला होता है (इष्टनिः) और जैसे रूपवती हरी भरी उपजाऊ भूमियों में सबकी इष्ट अभिलाषा पूर्ण करने वाला होता है उसी प्रकार सेनानायक या राजा भी नाना रूप वर्ण युक्त नाना धन पैदा करने वाली समृद्ध भूमियों ओर हरी भरी प्रजाओं में सबकी अभिलाषा पूरी करने योग्य, सबका आदरणीय और शत्रुओं की पीड़ा कारिणी सेनाओं में (आर्तनासु) प्रबल गर्जना या आज्ञाकारी होता हुआ भी सर्वादर योग्य (इष्टनिः) एवं सत्य व्यवहार युक्त प्रजाओं में पूज्य अति प्रजाओं को मनमाना ऐश्वर्य प्राप्त करा देना वाला हो।
(७) अप्रस्वती मम धीरस्तु शक्र
ऋ. १०.४२.३, अ. २०.८९.३
(हे शक्र, मेरी बुद्धि श्रेष्ठ कर्म वाली हो।)

अप्य - 'अप्सु भवम् श्रृतम्' अथवा 'अद्भिः संस्कृतम्' (जल में हुआ या जल से निर्मित अप् +यत् =अप्य) अर्थ (१) अन्तरिक्ष, (२) जल-निर्मित, (३) प्राप्तव्य (४) अन्तरिक्ष में उत्पन्न जल।
'नाहमिन्द्राणि रारण
सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्यं हविः
प्रियं देवेषु गच्छति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।'
ऋ. १०.८६.१२, अ. २०.१२६.१२, तै.सं. १.७.१३.२, का.सं. ८.१७, नि. ११.३९.
हे इन्द्राणि, मित्र वृषाकपि के बिना में चैन नहीं पाता। उसका यह प्रीतिकर हवि सभी देवों के पास जाता है तथा या सभी देवों के द्वारा स्वीकृत होता है वह इन्द्र से बढ़कर है। जल के अर्थ में
'भरन्ती मे अप्या काम्यानि'
ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६
भरन्ती से अप्या काम्यानि (५) जलादि विद्या का ज्ञाता, (६) भूमि, अन्तरिक्ष और जलों की विद्या में।
'गोजाता अप्या मृडता च देवाः निष्णात्'
ऋ. ६.५०.११
(७) जलाभिलाषी।
'स ईं मृगो अप्यो वनर्गुः'
ऋ. १.१४५.५

अप्त्य -(१) अप्ति का अर्थ विस्तीर्ण संसार है। अतः 'अप्त्य' का अर्थ सांसारिक हुआ। (२) व्यापन शील , (३) उत्तम ज्ञान और कर्म में कुशल।
'पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य'
ऋ. १.१२४.५
व्यापन शील अन्तरिक्ष या लोक-समूह लोक पूर्व के आधे मार्ग में।
अथवा,-ज्ञान और कर्म करने में कुशल लोक समूह के आगे पूर्व विद्यमान उत्तम पद में विराजती हुई...।

अप्यंहविः - (१) जलों में उत्पन्न होने वाला अन्न (२) व्यापक प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं में उत्पन्न या लिंग शरीरों में स्थित (३) 'अपः' अर्थात् रुधिर मय या सूक्ष्म लिंग देह रूप साधन
'यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषुगच्छति '
ऋ. १०.८६.१२, अ. २०.१२६.१२, तै.सं. १.७.१३.२, का.सं. ८.१७, नि. ११.३९.

अप्यागन्धर्वी - (१) जल से प्राप्त करने योग्य या जल में उत्पन्न वाणी को धारण करने वाली (गन्धर्वी) विद्युत् (२) जल प्रकृति की वाणी को धारण करने वाली स्त्री व प्रजा
'रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा'
ऋ. १०.११.२, अ. १८.१.१९.

अप्या योषा - (१) जलीय परमाणुओं से युक्त स्त्री, (२) एक ही गोत्र की स्त्री स्त्री पुरुष दोनों में जलीय परमाणु हो तो सन्तति नहीं होती।
'गन्धर्वो अप्सु अप्या च योषा'

ऋ. १०.१०.४, अ. १८.१.४

अपक्षित – जो क्षय होने योग्य न हो–अक्षय

'अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोः'

ऋ. १.५५.८

(तू हाथों में अक्षय ऐश्वर्य धारण कर।)

अप्रकेत – अप्रज्ञाप्यमान।

अप्रचङ्कश – (१) लंगड़ा लूला, (२) आंखों से लाचार दृष्टि हीन।

'पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशाः'

अ. ८.६.१६

अप्रचेतस् – मूर्ख, ज्ञान रहित, मूढ़।

'मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः'

ऋ. १०.११७.६, तै.ब्रा. २.८.८३, शां.ब्रा.सू. २.१४.२६.

(जो दान नहीं करता वह मूर्ख व्यर्थ ही अन्न प्राप्त करता है।)

'कथा विधात्यप्रचेताः'

ऋ. १.१२०.१

(२) अनुदार पुरुष।

(३) उत्तम रीति से आदर सत्कार न करने वाला

'ज्येष्ठाय यदप्रचेताः'

अ. २०.१२८.२

अप्रजज्ञिः – अज्ञानी।

'सिरीस्तन्त्रं तन्वतो अप्रजज्ञयः'

ऋ. १०.७१.९, बौ.ध.शा. २.६.११.३२.

अप्रजस्ता – प्रजा हीनता।

'अप्रजस्ताम् अस्वागताम् अवर्तिम्'

अ. ९.२.३

अप्रजाः – प्रजा रहित।

'अप्रजसं करोति'

अ. १२.५.४५

'अस्वं त्वा प्रजसं कृणोमि'

अ. ७.३५.३

अप्रजास्त्व – (न.) सन्तान का न होना।

'अप्रजास्त्वं मार्तवत्सम्'

अ. ८.६.२६

अप्रता – अप्रतृ का प्रथमा एक वचन का रूप–अप्रता। अर्थ है। कोश न भरने वाला।

'न सोमो अप्रता पपे'

ऋ. ८.३२.१६

अप्रति – (१) अप्रत्यक्ष रूप से।

'इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति'

ऋ. ७.८३.४.

(२) बिना रुकावट का।

'यत् कारवे दशवृत्राणि अप्रति'

ऋ.१.५३.६, अ.२०.२१.६

(३) न विद्यते प्रतिःप्रतिनिधिः समानो यस्य स अद्वितीयः–सा.

जिसके समान अन्य कोई प्रति निधि न हो अद्वितीय।

'विश्वाहा हन्त्यप्रति'

अ. ७.५०.१

(४) पालन कारी साधन जैसे अन्न, जल, तेज आदि।

(५) बेजोड़ अद्भुत, अनुपम,

'सो अप्रतीनि मनवे पुरूणि'

ऋ. २.१९.४

अप्रतिधृष्टशवाः – जिसके बल को कोई दबा नहीं सकता–इन्द्र, राजा।

'इन्द्रमिद्धरी वहतो
अप्रतिधृष्टशवसम्'

ऋ.१.८४.२, साम. २.३८०, वाज.सं. ८.३५, तै.सं. १.४.३८.१, मै.सं. १.३.३४, ४१.११, का.सं. ४.११,

अप्रतिधृष्य – किसी के अधिकार में न आने वाला–वायु।

'अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा'

वाज.सं. ३८.७, मै.सं. ४.९.८: १२८.९, श.ब्रा. १४.२.२.४, तै.आ. ४.९.१.

अप्रतिपद – अज्ञात पुरुष जिसे कोई जान न सके।

'सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदम्'

वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा ३.४.१.५.

अप्रतिमन्यूयमान – निष्फल मन्यु अर्थात् क्रोध करने वाला, जिसका क्रोध निष्फल हो।

'पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः'

अ. १३.१.३१

अप्रतिब्रुवत् – विरोध न करने वाला।

'सजातैरिद्धोऽप्रतिब्रुवद्भिः'

अ. ३.८.३

अप्रतिष्कुत – (१) जो किसी से पराजित न हो।

'वृत्राणि अप्रतिष्कुतः'

ऋ. १.८४.१३, अ.२०.४१.१, साम. १.१७९,

२.२६३, मै.सं. २.१३.६: १५४.९, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.१, आप.श्रौ.सू.१७.८.२

(२) अप्रतिष्कुत =अप्रतिशब्दित (प्रतिशब्द रहित) । 'कु' धातु का अर्थ शब्द करना है । प्रति को आगे सुट् (पारस्करादः)। अर्थ है-अप्रतिष्कृत या अप्रस्खलित । अन्य शत्रु द्वारा युद्ध में अप्रतिगत या अप्रतिहत ।

(३) जो अपने मार्ग से स्खलित न हो ।

(४) अप्रतिष्कृत -जिनके उपकारों का प्रतिकार न हो ।

'स नो वृषन्नमुं चरुं
सत्रादावन्नपा वृधि
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः'

ऋ. १.७.६, अ.२०.७०.१२, साम.२.९७१

हे सतत् दान शील (सत्रादावन्), हे वृष्टिप्रद इन्द्र ! हमारे लिए इस दृश्यमान चरु अर्थात् अन्तरिक्ष में दीख पड़ने वाले मेघ को हमारे लिए उत्पादित कर, क्योंकि तू ने कभी नहीं नहीं की या तू कभी किसी से पराजित नहीं हुआ । -सा. स्वामी दयानन्द का अर्थ -हमारे लिए सुख की वर्षा करने वाले , सत्य ज्ञान प्रदाता ईश्वर । आप के महान् उपकारों का प्रतिकार किसी प्रकार नहीं हो सकता । और आपके कार्यों में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं पाई जाती अतः आप हमारे लिए अप्रतिस्खलित हैं । वह आप हमारे लिए सत्य-ज्ञान के ढकने को खोल दीजिए ।

(५) प्रतिकूल शब्द या विरोधी निन्दा से रहित ।

(६) जिसके समान दूसरे किसी को प्रस्तुत नहीं किया जा सके ।

'ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अंग'

ऋ.१.८४.७, अ. २०.६३.४, साम. १.३८९, २.६९१

(६) सर्वोपरि ।

'स वीरो अप्रतिष्कुतः'

ऋ. ७.३२.६

अप्रतिष्ठान - नञ् + प्रतिष्ठान (घर) = अप्रतिष्ठान। बिनाघर का ।

'अप्रतिष्ठानोऽनायतनः'

अ. ११.३.४९

अप्रती - सदा के लिए ।

'इन्द्रो वृत्राणि अप्रती जघन्वान्'

ऋ.७.२३.३, अ.२०.१२.३, मै.सं. ४.१०.५: १५५.१५ तै.ब्रा. २.४.१.३.

अप्रतीत - (१) चक्षु आदि इन्द्रियों से न दीखने वाला परमेश्वर, (२) अगोचर, (३) अनुपम ।

'उपेदहं धनदाम प्रतीतम्'

ऋ. १.३३.२

(मैं ऐश्वर्य दाता, अगोचर, अनुपम परमेश्वर की शरण जाऊं)।

(२) अन्यों से अज्ञात, अज्ञेय ।

(३) अन्यो से प्रतिकार न करने योग्य ।

'वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम्'

ऋ. ५.३२.७

(४) बेरोक, (५) अतुल्यबल वाला (६) अति गूढ़ ।

'सहस्रसां वाजिनम् अप्रतीतम्
अहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम्'

ऋ. १.११७.९

अति बल को धारण करने वाले वेगवान्, अदृश्य, बेरोक, अतुल्य बल, धक्का मारने वाले (अहिहनम्), श्रवण करने योग्य या शब्दकारी (श्रवस्यम्) दूर तक पहुंचा देने वाले (तरुत्रम्) । अथवा,

सहस्रों उपदेश देने वाले (सहस्रसाम्) ज्ञानवान्, अतिगूढ़ (अप्रतीत) अज्ञाननाशक (अहिहनम्), वेद ज्ञान में कुशल (श्रवस्यम्), संसार से तारने वाले आचार्य और परमेश्वर (तरुत्रम्) का अव लम्बन करो ।

(७) पुनः न प्रत्यर्पितम् (न चुकाया हुआ धन)

'अपमित्यमप्रतीत्तं यदस्मि'

अ. ६.११७.१

(८) किसी से भी विरोध पूर्वक न रोके जाने वाला, बेरोकटोक

'अपः सिषासन् स्वर अप्रतीतः'

ऋ. ६.७३.३, अ.२०.९०.३, का.सं. ४.१६,४०.११, तै.ब्रा. २.८.२.८, आप.श्रौ.सू. १७.२१.७.

अप्रदुग्धा - अन्य से अभुक्त, ब्रह्मचारिणी, (२) किसी के द्वा दुही न गई रस पूर्ण दिशा ।

'सबर्दुधाः शशया अप्रदुग्धाः'

ऋ. ३.५५.१६

अप्रददिः - जो दान न देता हो ।

'रेवां अप्रददिश्च यः'

अ. २०.१२८.८, शां.श्रौ.सू.१२.२१.२.३

अप्रदृपित – मोह और गर्व आदि से रहित विनीत पुरुष

'अस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः'

ऋ. १.१४५.२

(विनीत पुरुष ही उसके ज्ञान से युक्त हो जाता है।)

अप्रपाणा – बावड़ी जिसका जल पीने योग्य न हो या जिसमें उत्तम घाट न हो।

'अप्रपाणा च वेशन्ता'

अ.२०.१२८.८, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.३.

अप्रभु – अशासक, अजितेन्द्रिय, असमर्थ।

'अत्राकर्तम् अवपदाति अप्रभुः'

ऋ. ९.७३.९

अप्रमादम् – प्रमाद से रहित होकर कर्म में तत्पर।

'सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जागृतो अस्वप्नजौ,
सत्रसदौ च देवौः'

वाज.सं. ३४.५५, नि. १२.३७.

सूर्य के शरीर में सात रश्मियां निहित हैं। ये ही सभी दिशाओं के जल सूर्य के निकट लाकर अपने अपने कर्म में रक्षा करती हैं अर्थात् ये रश्मियां उदक रूपी इन्धन से सूर्य की रक्षा करती हैं। सात रश्मियां जो आदित्य में व्याप्त हैं (सप्तापः), आदित्य के अस्त होने पर (स्वपतः) आदित्य के आत्मा में चली जाती हैं। उन रश्मियों के इस प्रकार से जाने पर जीवन-दान देने वाले या यज्ञ में रहने वाले (सत्रसदा) वायु नामक देव जागते हैं। आदित्य के मण्डल के सदृश हमारे शरीर में रश्मि के समान इन्द्रियां हैं जो इस शरीर की सतत अप्रमादपूर्वक रक्षा करती हैं। इस जीव के सो जाने पर वही इन्द्रियां शरीर में ही सो जाती हैं अर्थात् भोक्ता जीव में लीन हो जाती हैं। इस सोने की अवस्था में ही यह प्राज्ञ आत्मा और तैजस प्राण पचाता हुआ रहता है।

अप्रमायुक् – मरण से रहित।

'कृणोत्वप्रमायुकम्' कृणोत्वप्रमायुकं

अ. १९.४४.३ अथर्व १९/४४/३

अप्रमूर – मूढ़त्व रहित विद्वान् धार्मिक।

'ते हि वस्वो वसवानाः
ते अप्रमूरा महोभिः
व्रता रक्षन्ते विश्वाहा'

ऋ. १.९०.२

जो सब दिनों (विश्वाहा) नित्य नियात धर्म नियमों को स्वयं पालन करने और औरों से पालन करवाते हैं, वे ही बसे हुए प्रजाजन (वस्वः) ऐश्वर्य के मुख से वसाने और उनकी रक्षा करने में समर्थ हैं और विद्वान् तथा वीर जन (वस्वः) गुणों, कर्मों और उपायों द्वारा असावधानी एवं आलस्य आदि से रहित होकर रहें।

अप्रमृष्य – जिसे शत्रुजन सहन कर सके।

'आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यम्'

ऋ. २.३५.६

अप्रयात – ताजा।

'रात्रिंरात्रिम् अप्रयातं भरन्तः'

अ. १९.५५.१

अप्रयावन् – बिना प्रयाण किए, बिना प्रमाद के।

'वर्चसा मा जिन्वत्व प्रयावन्'

अ. ३.५.१

अप्रयुच्छत् – प्रमाद नहीं करता हुआ।

'अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने'

ऋ. १.१४३.८

पुनः – अप्रयुच्छन् दीद्यद् बोधि गोपाः

ऋ. २.९.२, तै.सं. ३.५.११.३, मै.सं.४.१०.४, १५२.८, का.सं. १५. १२, ऐ.ब्रा. १.२८.३८

अप्रयुता – सब के साथ मिली हुई।

'अप्रयुतामेवयावो मतिं दाः'

ऋ. ७.१००.२

अप्रयुत्वा – कभी पृथक् न होने वाला, सदा का संगी।

'पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वम
अदब्धैरप्रयुत्वभिः'

ऋ. ६.४८.१०, साम. २.९७४

अप्रवीता – (१) बिना घिसी हुई अरणि,

(२) अन्यो से अभुक्त प्रजा।

'यदप्रवीता दधतेह गर्भम्'

ऋ. ४.७.९

(३) जो अच्छी प्रकार रक्षित नहीं है। (४) जो

पुरुष से सृष्ट नहीं है ।
'अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता '
ऋ. ३.५५.५

अप्रशस्त – (१) बुरा, पापाचारी (२) तुच्छ कर ।
'चयत ईम् अर्यमो अप्रशस्तान् '
ऋ. १.१६७.८.

अप्रहित – कभी पराधीन न होने वाला ।
'प्रहेतारमप्रहितम् '
ऋ. ८.९९.७, अ. २०.१०५.३, साम. १.२८३.

अल्पव – बिना जहाज या नाव के ।
'गम्भीरमल्पवा इव
अ. १९.५०.३

अप्वा – (१) शत्रु द्वारा न पराजित होने वाली सेना ।
'गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहिं'
ऋ. १०.१०३.१२
(२) उदर
'अप्वामन्तरोदरात्'
अ. ९.८.९
(३) यत् एनया विद्धः अपवीयते, व्यज्यते प्राणैः (जिससे आक्रान्त होकर प्राणों से हाथ धोया जाय) ।
अर्थ है–व्याधि ।
अपवयति अपगमयति सुखं प्राणान् च (जो सुख और प्राणों को दूर करता है) । अप् +वेञ् + ड +टाप् =अप्वा (अप के प का अ लुप्त हो गया) ।
(४) अप्वा नाम्नी देवी पापाभिभानिनी देवी ।
आज भी कहा जाता है– अन्न में पय या पैया लग गया । हिन्दी में 'पैया' तथा 'पय' दोष का वाचक है ।
कुष्ठादि रोग से ग्रस्त को भी अपयी कहते हैं ।
'अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती'
गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हस्तु शौकैः
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्'
ऋ. १०.१०३.१२, अ. ३.२.५, साम. २.१२११, वाज.सं. १७.४४, नि. ९. ३३.
हे अप्वे (हे पापाभिभानिनि देवि) इन शत्रुओं के चित्त को मोहती हुई इनके अंगों को ग्रस्त कर । तत्पश्चात् शत्रुओं को पुनः दूसरे शत्रुओं के निकट जाकर ग्रस्त कर तथा उनके हृदयों को शोकों से दग्ध कर । मेरे शत्रु गाढान्धकार से संश्लिष्ट हों ।

अप्सः – (१) रूप युक्त तेजस्वी विद्युत् ।
'गिरा वप्सो न योधिषत्'
ऋ. ८.४५.५
(२) नञ् +प्सा +असुन् =अप्सस् (अथवा) आप् +स =अप्स । अर्थ है–आदर्शनीय या रूप । 'अप्सानीय' का अर्थ अभक्षणीय है । रूप देखा ही जाता है खाया नहीं जाता, अतः 'अप्स' कहलाया ।
अथवा
(४) रूप व्यापनीय होता है । (व्यापनीय) ।
'पृथिव्याःपुरीषमस्यप्सो नाम'
वाज.सं. १४.४, तै.सं. ४.३.१२.१, मै.सं. २.८.१, १०७.१, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.२.१.७.
(हे स्वामी । तू शुभगुण–व्यापिनी है ।)
(५) शाकपूणि ने इसे 'दर्शनाय स्पष्टम्' का संक्षिप्त रूप दस्प, अस्प माना है । (६) उवट और महीधर ने अप्स का अर्थ 'रस' माना है । अपः सनोति ददाति इति अप्सः (७) 'अभक्ष्य' अर्थ में भी इसका प्रयोग वेद में मिलता है । जैसे
'यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये
यदेनश्चकृमा वयं यदप्सश्चकृमा वयम्
तदेकस्यामपि चेतासि तदेक स्यापि धर्मणि
तस्य सर्वस्याहसो अघयजनमसि'
मै.सं. १.१०.२:, १४२.२
(जो पाप ग्राम, अरण्य सभा या मन में किया,जो अभक्ष्य (अप्सः) भक्षण किया,या किसी के चित्त के विषय में पाप किया या किसी अन्य के धर्म में बाधा डाली उस सब पाप को दूर कर ।)
रूप के अर्थ में –
'उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः'
ऋ. १.१२४.७
(जिस प्रकार हंसने वाली अपने दांत दिखलाती है, उसी प्रकार उषा भी रात के अपर काल में अपने रूप को दिखाती है ।)

अप्सरस् , अप्सारिणी – अपःप्रतिनित्यमेव सरति, अथवा अदभ्यः सृता (जो नित्य जल में चले या जो जले से हुई हो)।
(१) अप् +सृ (गत्यर्थक) +अच +टाप् =अप्सरा,

(२) अप्स +रा =अप्सरा (३) 'उरु अभ्यश्नुते' बहुत व्यापक होती है-विद्युत, स्त्री
उरु + अशुङ् (व्याप्त्यर्थक) + इन् +ङीप् =उर्वशी । अथवा 'अप्सं रुपम् अस्यै दत्तम्' (इसे रूप मिलाता है)
'स्त्रियां बहुष्वप्सरसः
स्यादेकत्वेऽप्सरा अपि'
बहुवचन में 'अप्सरसः' और एक वचन में 'अप्सरा' ।
आधुनिक अर्थ -
'अप्सु निर्मथनादेव
रसात्तस्माद्वरस्त्रियः
उत्पेतुर्मनुज श्रेष्ठः
तस्मादप्सरसोऽभवन् ।'
पानी मथ कर अप्सरा होने की कथा पौराणिकी है । अप्सरा गन्धर्वों की स्त्रियां मानी जाती हैं । जो आकाश में ही रहती हैं, अतिस्नानप्रिय होती और वेष बदलने में पटु होती हैं । 'स्वर्वेश्या', भी इनका नाम है और इन्द्र की दासियां समझी जाती हैं । बाण ने इनके १४ भेद बतलाए हैं ।
(२) आकाश तथा जल के युद्धों में कुशल सेना ।
'श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे'
अ. ११.९.१५
(४) अप्स अर्थात् रूपों में विचरने वाला चक्षु आदि ।
'अप्सरसां गन्धर्वाणां
मृगाणां चरणे चरन्'
ऋ. १०.१३६.६

अप्सरसः - (१) जल में विचरण करने वाली विद्युत् शक्तियां ।
'पुनस्त्वा दुरप्सरसः'
अ. ६.१११.४
(२) आकाश में प्राप्त् शरीरों में, कर्मों मे प्रकृति के घटक परमाणुओं में विचरने वाले जीवगण, (३) प्रजाओं में विचरने वाले , (४) अन्तरिक्ष में विचरने वाले सूर्य, चन्द्र नक्षत्र आदि ।
'अप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठाः'
ऋ. ७.३३.९

अप्सरसौ - प्रजाओं में गुप्त रूप से विचरने वाली 'उग्रपश्या' और उग्रनजित नामक संस्थाएं जो खुफिया और पुलिस के समकक्ष हैं ।
सायण, ग्रीफिथ और क्षेमकरण यहां अर्थ करने में अस्पष्ट हैं ।
'उग्रं पश्ये उग्रजितौ तदद्य
अप्सरसावनु दत्तामृणं नः'
अ. ६.११८.१

अप्सरा - (१) ज्ञान मार्ग में सरण करने वाली इन्द्रियां, (२) प्रजा ।
'घृतमस्पराभ्यो वहत्वमग्ने'
अ. ७.१०९.२
(२) आप्तपुरुषों के साथ आगे बढ़ने वाली सेना या समिति ।
'पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१५, तै.सं. ४.४.३.१, मै.सं. २.८.१०, ११४.१४, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१६.
(३) नित्य जल में चलने वाली अप्सरा गन्धर्वों की स्त्री ।
(४) इन्द्र की दासियां ।

अप्सरासु गन्धर्व - (१) समस्त लोकों में फेंकने वाली शक्तियों में शक्तिधर अर्थात् शक्तियों का स्वामी (२) जलीय अंशों से युक्त पुरुष (३) सगोत्र पुरुष ।
'अप्सरास्वपि गन्धर्व आसीत्'
अ. २.२.४
'गन्धर्वोऽप्सु अप्या च योषा'
ऋ. १०.१०.४ अ. १८.१.४.

अप्सस् - (१) अपः सनोतिददाति इति अप्सस् (जो जल देता है वह अप्सस् है अर्थात् रस)।
(२) रूप ।
(३) जो व्याप्त रहे ।
'पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम
तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः
स्नोमपृष्ठा घृतवतीह सीद
प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वा
अश्विनाध्वर्यू साद य तामिह त्वा'
वाज.सं. १४.४, तै.सं. ४.३.१२.१, मै.सं. २.८.१, १०७.१, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.२.१.७.
(हे इष्टके, तू रस नाम की पृथ्वी की पूरयित्री है । तेरी सभी देवता स्तुति करें । स्तुति ही तेरी

पीठ है। और तू घृतमयी है। इसी रूप में तू यहां रह। हम पुत्रवान् होवें। तुझे अश्विनी कुमार यहां आदर करें।)

अप्स्वन्तःअग्नयः – प्रजाओं या लोकों में रहने वाले अग्नि (२) प्रकाशवान् सूर्य, चन्द्र और तारे, (३) प्रजाओं में रहने वाले विद्वान्।
'रक्षन्तु त्वाग्नयो ये अप्स्वन्ताः'
अ. ८.१.११

अप्साः– अप् + साः = अप्साः।
जल देने वाला मेघ।
'अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनम्'
ऋ. ९.७१.८

अप्सुः – (१)दर्शनीय रूप वाला।
'माप्सवः परि षदाम मादुवः'
ऋ.७.४.६

अप्सुजा – (१) प्राणों में प्रकट आत्मा।
(२) अन्तरिक्ष में उत्पन्न विद्युत्।
(३) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं या जलों में अन्तरिक्ष में तथा पदार्थों का उत्पादक।
'अप्सुजा वा सहस्कृत'
ऋ. ८.४३.२८
(४) प्रजा से उत्पन्न विद्वान्।
(५) प्राण (६) प्रजाओं में विशेष तेज से स्वामी बनने वाला राजा।
'संशितो अप्सु अप्सुजाः'
वाज.सं. २३.१४, श.ब्रा. १३.२.७.१०.

अप्सुक्षितः – (ब.व.) एक वचन में 'अप्सुक्षित्' है। (१) जलों में रहने वाले देवता (२) अन्तरिक्ष में रहने वाले ११ देवता, द्युलोक में ११ और पृथ्वी में ११ रहते हैं। अथवा १० प्राण और जीवात्मा, १० इन्द्रियां और मन तथा १० दिशाएं और सूर्य में ३३ शक्तियां।
'अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ'
ऋ. १.१३९.११, वाज.सं. ७.१९, मै.सं. १.३.१३: ३५.८, ४.६.४: ८४.११, श.ब्रा. ४.२.२.९.

अप्सुजाता ककुहाः – (१) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के स्थूल रूप धारण कर लेने पर उनसे बीच उत्पन्न हुई ककुह आदि दिशाएं, (प्रजाओं में प्रसिद्ध विद्वान् वाग्मी पुरुष।
'वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता'
ऋ. १.१८४.३

अप्सुजित – (१) प्रकृति के परमाणुओं पर भी शासन करने वाला प्रभु।
'वज्रं च वृषणं भरत् समप्सु जित्'
ऋ. ९.१०६.३, साम. २.४६
(२) प्राप्त प्रजाओं में सर्वातिशायी।
(३) प्राणों, प्रकृति के परमाणुओं और समस्त लोकों में व्यापक।
'समप्सुजित् मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते'
ऋ. ८.३६.१-६.
(४) समस्त अन्तरिक्ष में सूर्यवत् सर्वोपरि वर्तमान, (५) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं और जीवों पर भी वास करने वाला इन्द्र परमेश्वर
'सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित्'
ऋ. ८.१३.२, साम. २.९७.

अप्सुयोग – प्रजाओं के लिए उपयुक्त या जलोपयोगी साधन।
'जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि'
अ. १०.५.५

अप्सुषद् – (१) समुद्रादि में व्यापार आदि के लिए विविध यातायात के रूप में स्थित।
'अप्सुषदं त्वा घृतसदम् व्योमसदम्'
वाज.सं. ९.२, श.ब्रा. ५.१.२.५.
(२) यः यलेषु प्राणेषु वा सीदति। -(दया) जलों में रहने वाला विद्युत्।
(३) अग्नि (४) प्रजाओं में अध्यक्ष पद पर विराजने वाला।

अप्सुसंशित – जलों की शक्तियों में सुशिक्षित।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः'
अ. १०.५.३३

अपाक्त – पश्चिम।

अपाक् – (१) अप + अञ्च् + क्विप् = अपाञ्च्। नीचे की ओर जाने वाला
'एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यः'
ऋ. १०.४४.७, अ.२०.९४.७
(२) नीच पद पर पाने योग्य, अधम।
'तदपागिति शुश्रुम'
अ. २०.१२८.४, शां.श्रौ.सू. १२.२०.२.४.
(३) पश्चिम।

'राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागुदक्'
ऋ. ३.४३.११

अपाक – (१) नञ् +पच् +घञ् =अपाक । कच्चा ।
'अपाकाच्चित् यमवति'
ऋ. ८.२.३५
(२) जिससे अधिक और प्रशंसनीय एवं भोग्यतम प्राप्त न हो, सबसे अधिक प्रशंसनीय ।
अपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरुणि'
वाज.सं. २०.४४, मै.सं. ३.११.१, १४०.१२, का.सं. ३८.६, तै.ब्रा. २.६.८.४.
(३) पाक यज्ञों का न करने वाला ।
(४) परिपक्व ज्ञान, अनुभव और निश्चय वाला विद्वान् ।
'अपाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः'
ऋ. १.११०.२
हे पाकयज्ञों के न करने हारे अर्थात् परिपक्व ज्ञान अनुभव और निश्चय वाले विद्वानो (अपाकाः), नवागत कम उम्र को लोगों की अपेक्षा अधिक प्राचीन वृद्ध तथा ऊंचे मानयोग्य पदों पर जोने वाले (प्राञ्चः) कुछ एक मेरे प्रिय आप्त बन्धु (मम केचित् आपयः)

अपाक्तः – अपाक् +तसिल् =अपाक्तः । पीछे से
'प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तः'
ऋ. ७.१०४.१९, अ. ८.४.१९

अपाकासत् – (१) दुःखादि से रहित, (२) खूब बलवान् (३) सुअभ्यस्त ।
'अपाका सन्तमिषिर प्रणयसि'
ऋ. १.१२९.१
हे सबको प्रेरणा करने वाले (इषिर), तू जिस दुःखादि-रहित, खूब बलवान् एवं सुअभ्यस्त रथ को (आपकासन्तम्) आगे बढ़ता है (प्रणयसि)।

अपाकृतः – जल से पूर्ण तड़ाग ।
'यथा गौरो अपाकृतम्'
ऋ. ८.४.३, साम. १.२५२, २.१०७१, आश्व. श्रौ.सू. ७.४.४
(जैसे गौर मृग जलपूर्ण तालाब को जाता है ।)

अपाकृति – दूर करना ।
'विदा देवा अघानाम्
आदित्यासो अपाकृतिम् ।'
ऋ. ८.४७.२

अपाग् – पश्चिम् में, (२) दूर, नीचे ही नीचे ।
'यदद्याश्विनावपाग्
यत् प्राक् स्थो वाजिनीवसू'
ऋ. ८.१०.५.
'एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यः'
ऋ. १०.४४.७, अ. २०.९४.७

अपागूहन् – अप +अगूहन्, अथवा अपि +अगूहन् । सम्यक् रूप से लाया (उपनीतवन्तः) या (२) उद्भासित किया (संवृतवन्तः) लाए जाने के अर्थ में प्रयोग ।
'अपागूहन् अमृतां मर्त्येभ्यः
कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते
उताश्विनावभरद्यत् तदासीत्
अजाहादु द्वा मिथुना सरण्यूः'
ऋ. १०.१७.२, अ. १८.२.३३, नि.१२.१०.
त्वष्टा की पुत्री सरण्यू (त्वाष्ट्री) का विवाह विवश्वान से हुआ । सरण्यू विवस्वान् का तेज नहीं सह सकी और घोड़ी का रूप धारण कर पिता के घर चली गई । पिता ने उसे पुनः पति के घर भेज दिया, परन्तु सरण्यू पति के घर न जाकर उत्तर कुरु मे तपस्या करने लगी । विवस्वान ढूंढ़ते-ढूंढते श्वसुर के घर गए और वहां से उत्तर कुरु पहुंच गए । विवश्वान ने भी अश्व का रूप धारण कर बड़वा रूप में स्थित सरण्यू से संभोग किया । इस वीर्य को सरण्यू ने नासिका से धारण किया जिससे उत्पन्न पुत्रों के नाम नासत्या या अश्विनी कुमार हुए । पिता का घर छोड़ते हुए सरण्यू ने अपने ही स्वरूप की एक दूसरी स्त्री सवर्णा को मंत्र द्वारा रचकर पति के यहां रख छोड़ा था । उस सवर्णा से विवस्वान् ने आठवें मनु को उत्पन्न किया जो सावर्णि कहे गए ।
ऋचा का अर्थ– रश्मियों ने इस मरण धर्म रहित उषा को मनुषयों के लिए उद्भासित किया तथा समान रंगवाली उस सरण्यू को बना आदित्य को दे दिया। उषा ने स्तुतियों से अश्विनी कुमारों को प्रसन्न किया या सरण्यू ने हवि के द्वारा अश्विनीकुमारों का भरण पोषण किया । ऐसा हो ही रहा था कि (यत् आसीत्) सरण्यू ने मानों (उ) दो मिथुन-मध्यम एवं मध्यमा-वाणी को उत्पन्न किया या छोड़ा । (अगूहात्)।

जब सरण्यू आदित्य मंडल के निकट प्रवेश करती है तब सूर्योदय होने पर मध्यम अग्नि और माध्यमिका वाणी का काल विच्छिन्न हो जाता है।

अन्य अर्थ

ईश्वरीय नियमों ने अमृत स्वरूपा पूर्व कालीन सरण्यू को मनुष्यों से छिपा दिया और तत्सवर्णा अन्तकालीन सरण्यू बनाकर त्वष्टा को प्रदान किया। सरण्यू के दूसरे रूप ने अश्विकालवर्ती अहोरात्र को धारण किया और पूर्वकालीन सरण्यू ने अन्धकार और निस्तब्धता - ये दो मिथुन उत्पन्न किए।

अपाङ् - अपाञ्च के प्रथम पुरुष एक वचन का रुप। (१) नीचि योनि में जाने वाला जीव।

'अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः'

ऋ. १.१६४.३८

(२) देश से बाहर, सभा भवन से बाहर।

'अपाञ्चमिन्द्र तं कृत्वा'

अ. ३.३.६

अपाची - (१) पश्चिम।

'ते नो गोपा अपाच्याः'

ऋ. ८.२८.३

(२) दूर विद्यमान।

'अपो अपाचीरपरा अपेजते'

ऋ. ५.४८.२

अपाचीन - (१) दूर।

'अपाचीनमप व्यये'

अ. ६.९१.१

(२) नीचे का, दूर का, अन्धकार।

'यो अपाचीने तमसि मदन्तीः'

ऋ. ७.६.४

पुनः, दूर अर्थ में -

'अपाचीनं तमो अगादजुष्टम्'

ऋ. ७.७८.३

अपाची पूः - अधोमुखी देह गत चित् पुरी।

'विभिद्या पुरं शयथेमपाचीम्'

ऋ. १०.६७.५, अ. २०.९१.५, मै.सं. ४.१२.५,१९३.५ का.सं. ९.१९.

अपाञ्चौ - नीचे किए हुए।

'अपाञ्चौ त उभौ बाहू'

अ. ७.७०.४, तै.ब्रा. २.४.२.२.

अपात् - (१) पैर रहित (२) स्वयं सबका आश्रय रहने से पैर से समान अन्य पैर की अपेक्षा न करने वाला।

'अपादशीर्षा गुमानो अन्ता'

ऋ.४.१.११

(३) अविज्ञेय रूप, ब्रह्म परमेश्वर।

'अपादग्रे समभवत्'

अ. १०.८.२१

(४) (क्रि.) पान किया या पान करें।

'अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्त'

ऋ. २.३७.४

जिस इन्द्र ने होता के यज्ञ से लेकर सोमरस का पान किया (होत्रात् आपात्)

ऋत्विजों से प्रज्ज्वलित, वृष्टि आदि का प्रदाता यज्ञाग्नि हितकारी हवि के वृष्टिप्रद भाग से (होत्रात्) पान करे। (अपात्) -दया.।

(५) चरण से रहित उषा।

(६) चरणादि से रहित वाणी।

(७) विद्या जिसका नाश न हो।

'अपादेति प्रथमा पद्वतीनाम्'

ऋ. १.१५२.३, अ. ९.१०.२३

(जिस प्रकार पैरो वाले जन्तुओं से सबसे प्रथम पाद-रहित उषा आती है, उस प्रकार चरण, पाद, सर्ग आदि विभाग वाली वाणी से भी प्रथम चरण आदि से रहित वाणी प्रकट होती है।)

(८) अव्याकृत ब्रह्मशक्ति जो एक पदी आदि व्यक्त रूप धारण करने के पूर्व विद्यमान रहती है (९) अविज्ञेय रूप अमात्र, परमतुरीय पद।

अपादम् - पैर रहित करके।

'अपादमिन्द्र तवसा जगन्थ।'

ऋ. ३.३०.८, वाज.सं. १८.६९.

हे इन्द्र या राजन्! तू मेघ को या दुष्ट जन को पैर-रहित (अपादम्) कर अपने सामर्थ्य से मार (तवसा जघन्थ)

अपादः - बिना पैर का।

'अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रम्'

ऋ. १.३२.७

(यदि बिना पैर और हाथ वाला पुरुष इन्द्र या धार्मिक राजा के विरुद्ध युद्ध करे।)

अपानत् - देह से बाहर जाता हुआ।

'नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्तु अपानते'
अ. ११.४.८

अपानक्ष – अपान न देने वाला जठराग्नि ।
'प्राणदा अपानदा व्यानदाः'
वाज.सं. १७.१५, तै.सं. ४.६.१.४, मै.सं. २.१०.१, १३२.१३, श ब्रा. ९.२.१.१७.

अपान्नपात् – (१) एक देवता, (२) विद्युत् जो मेघ से चमकती है । 'तनूनपृ' शब्द से बना है । 'अद्भ्यः आदित्य ततः मध्यम्:' (जल से आदित्य और आदित्य से मध्यमावाक् उत्पन्न हुई। इस प्रकार मध्यमावाक् अप् की नप्त्री हुई। इसीसे विद्युत् का नाम अपाम् नपात् (जल की नलिनी) हुआ) ।
'यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर
यं विप्रासईडते अध्वरेषु।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा
याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय'
ऋ. १०.३०.४, १४.१.३७, नि. १०.१९
हे विद्युत् (अपान्नपात्) जो तू जलों के बीच अर्थात् मेघ में (अप्सु अन्तर) बिना इन्धन के भी (अनिध्मः) दीप्त होता है । और यज्ञ में विप्र जिसकी स्तुति करते हैं वह तू मधुर रस से युक्त वृष्टि जलों को हमें दे जिससे युक्त बलवान् सोम रस पीकर इन्द्र वीर कर्म के लिए बलवान् होते हैं ।

अपानपाः – अपानों का पालक
'प्राणपा मे अपानपाः'
वाज.सं. २०.३४

अपापकाशिनी – पुण्य का ही प्रकाश करने वाली वाणी ।
'या ते रुद्र शिवा तनूः
अघोराऽपाप काशिनी ।'
वाज.सं. १६.२, ४९, तै.सं. ४.५.१.१, १०.१, मै.सं. २.९.२, १२०.१८, २.९.९, १२७.११, का.सं. १७.११,१६,

अपापविद्ध – पापों से सदा युक्त ।
'अस्नाविरम् शुद्धमपापविद्धम्'
वाज.सं. ४०.८, ईश . उप. ८.

अपामग्निः – जलो की आग अर्थात् विद्युत् ।
'अपामग्निस्तनूभिः संविदानः'
अ. ४.१५.१०

अपामग्नयः – (१) प्रजाओं में ज्ञानवान्
(२) शत्रु संतापक पुरुष ।
'ये व आपो अपामग्नयः'
अ. १०.५.२१

अपाम् अर्णांसि – अन्तरिक्ष के जल ।
'इष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै'
ऋ.१.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३:१८३.११ का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.
सूर्य अन्तरिक्ष के जलों की प्राप्ति के लिए (अपाम् अर्णांसि चरध्यै) तिरछी चाल से जाता हुआ (इस्यन्)।

अपामश्मा – (१) प्रजाओं का भोक्ता , (२) दिव्य गुणवान् (३) सूर्य के सामन सब रसों का आदान प्रदान करने वाला ।
'यो व आपोऽपामश्मा'
अ. १०.५.२०

अपामुपस्थः – अपाम् + उपस्थः। जलों का उपस्थ अर्थात् रहने का स्थान अन्तरिक्ष ।
'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत्'
ऋ. ६.८.४, नि. ७.२६, कौ.ब्रा. २१.३.
(अन्तरिक्ष में मरुद्गण ने अग्नि को पकड़ा ।)

अपाम् ओज्मा – (१) जलों का बल रूप तेज विद्युत् (२) प्रजाओं का पराक्रम ।
'अपामोज्मानं परिगोभिरावृतम्'
ऋ. ६.४७.२७, अ. ६.१२५.२, वाज.सं. २९.५३, तै.सं. ४.६.६.६, मै.सं . ३.१६.३, १८६.१०, का.सं. ६.१.

अपां गन्धर्वः – प्रजाओं के बीच ज्ञान वाणी धारण करने वाला ।
'अपां गन्धर्वं दिव्यं नृ चक्षसम्'
ऋ. ९.८६.३६

अपां गर्गराः – (१)जलों को निगल जाने वाले अजगर के समान पृथिवी पर लोटने वाले, गड़ गड़ शब्द करने वाले मेघ (२) भूमि के बरसाती नाले ।
'श्वसन्तु गर्गरा अपाम् वरुणा'
अ. ४.१५.१२

अपां गर्भ – (१) जल का गर्भ –परमात्मा ।
(२) सन्तानों को गर्भ के सदृश धारण करने वाला पिता–(दया.)

'अपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ।'
ऋ. ३.१.१२.
(३) जलों को रश्मियों द्वारा अन्तरिक्ष में धारण करने वाला सूर्य, (४) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को अपने वश में रखने वाला ।
'अपांगर्भं दर्शतमोषधीनाम्'
ऋ. १.१६४.५२
(५) समस्त प्रकृति के परमाणुओं एवं जीवों के लिग शरीरों का गर्भ –परमेश्वर ।
(६) सर्वसंचालक प्रभु ।
'अपां यत् गर्भोऽवृणीत देवान्'
ऋ. ९.९७.४१, साम. १.५४२, २.६०५, नि. १४.१७.
(७) जलों को भीतर धारण करने वाली ओषधि–पुनर्नवाः ।
अ. ८.७.८
(८) प्राणो और सर्वत्र व्यापक प्रकृति के परमाणुओं और लोकों के बीच गर्भवत् छिपा हुआ या उसे पकड़ने, थामने और वश में करने वाला–परमेश्वर ।
(९) लिंग शरीरों और प्राण के बीच छिपा उनको ग्रहण और धारण करने वाला जीव ।
(१०) जलों में गर्भ रूप मे विद्यमान अग्नि ।
'गर्भो यो अपां गर्भो वनानाम्'
ऋ. १.७०.२
(११) विद्युत् ।
'अपां गर्भः प्रस्व आ विवेश'
ऋ. ७.९.३

अपांजग्मिः – (१) जलों के बीच चलने वाला–सोमरस की सीढी जिसे निचुम्पुण कहा जाता है ।
'अपां जग्मिः निचुम्पुणः'
ऋ. ८.९३.२२, नि. ५.१८
(२) जल धाराओं का एक मात्र आधार –समुद्र ।

अपांजारः – (१) जलों को अपनी किरणों से सोखने वाला–सूर्य ।
'हविषा जारो अपाम्
पिपर्ति पपुरिर्नरा ।
पिता कुटस्य चर्षणिः ।'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
किरणों से जलों को सूक्ष्म रूप से खींच लेने वाला सूर्य (अपांजारः) सबका पालन करने वाला (पपुरिः) होकर पिता के समान अन्न से सबका पालन करता है । और समस्त कुटिल मार्गों को प्रकाश से दिखाता भी है (कुटस्य चर्षणिः)
अथवा – हे अश्विद्वय। (नरा) या हे सांसारिक कार्य भार को चलाने वाले द्यावापृथिवी (नरा) जलों का शोषणकर्त्ता (अपांजारः), समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीणयिता (पपुरिः) सूर्य जल से (हविषा) सबका पालन करता है, या सायण के अनुसार हवि से देवताओं को तृप्त करता है (पिपर्ति) ।

अपांतारः – (१) जलों से भरी हुई (२) कर्मों का कर्त्ता –शरीर ।
'अपां तारमवश्वसम्'
अ. ४.३७.३

अपां दुरोण – (१) जलों का घर, जलों के बीच में, (२) आप्त प्रजाजनों के गृह या राष्ट्र के बीच में, (३) प्राणों का गृह –शरीर , (४) प्रकृति केपरमाणुओं या लोकों के बीच ।
'अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे'
ऋ. ३.२५.५,

अपां नपात् – (१) वीर्य को पतन न होने देने वाला । ब्रह्मचारी, (२ प्राणों के बीच न नष्ट न होने वाला । आत्मा, (३) प्रकृति के परमाणुओं लोकों और प्रजाओं के बीच स्वयं नाश न होने और उनको भी नाश न होने देने वाला–परमेश्वर , (४) मेघ, (५) सूर्य ।
'अपां नपातं परितस्थुरापः'
ऋ. २.३५.३, आ.सं. ३.६, तै.सं. २.५.१२.२, मै.सं. २.१३.१, १५१.४, का.सं. ३५.३.
(६) जलों को न गिरने देने वाला या व्यर्थ न बहने देने वाला बांध, सेतु, (७) प्राणों को न गिरने देने वाला, देह, (८) प्रजाओं को न गिराने वाला राजा ।
'येन नपातमपां जुनाम'
ऋ. १.१८६.५

अपां नेता – (१) जलों को ऊपर ले जाने वाला सूर्य, (२) लोकों, लिंग, शरीरों और प्राणों का नायक ।
'अपां नेता या इत ऊतिर्ऋग्मियः'

ऋ. ९.७४.३
(३) जलों , समुद्रों आप्तपुरुषों के कर्म और बुद्धियों का प्रवर्तक –परमात्मा ।
(४) आप्त पुरुषों और प्रजाओं का नायक ।
'यो अपां नेता स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.७, अ. २०.३४.७

अपां नेतारः – सूक्ष्म प्रकृति परमाणुओं के प्रणेता ।
'अपां नेतारः कतमे त आसन्'
अ. १०.८.३५,

अपां प्रतिमा – सूक्ष्म प्रकृति के परमाणुओं पर भी मापने वाला–उनमें भी व्यापने वाला–परमेश्वर ।
'अपां यो अग्ने प्रतिमा बभूव'
अ. ९.४.२

अपां फेनः – (१) जलों का फेन, (२) जल की बाढ़, (३) बुद्धि और कर्म का प्रवृद्ध बल ।
'अपां फेनेन नमुचेःशिर इन्द्रोदवर्तयः'
ऋ. ८.१४.१३, अ. २०.२९.४, साम. १.२११, वाज.सं. १९.७१, श.ब्रा. १२.७.३.४.

अपांभागः – प्रजाजनों का अंश रूप –राजा ।
'यो व आपोऽपां भागोप्स्व'
अ. १०.५.१५

अपां पित्तम् – (१) अग्नि, (२) कर्मों, प्रज्ञानों और आप्त प्रजाओं का तेजः स्वरूप बल ।
'अग्ने पित्तमपामसि'
अ. १८.३.५, वाज. सं. १७.६, तै.सं. ४.६.१.२, मै.सं. २.१०.१; १३१.१०: का.सं. १७.१७, श.ब्रा. ९.१.२.२७.

अपां पुष्पम् – प्रकृति की विकासावस्था ।
'आपं त्वा पुष्पं पृच्छामि'
अ. १०.८.३४

अपां पृष्ठ – (१) अग्नि, (२) जलों की पीठ की तरह शान्त राजा , (३ प्रजाओं की पीठ ।
'आपं पृष्ठमसि योनिरग्नेः'
वाज.सं. ११.२९, १३.२, तै.सं. ४.२.८.१, मै.सं. २.७.३, ७६.१६, ३.१.५, ६.१, का.सं.१६.३ १५, १९.४, २०.५, शा.ब्रा. ६.४.१.८, ७.४.१.९.

अपांभस्मन् – जलों का तेजोभाग मेघ ।
'अपां त्वा भस्मन् सादयामि'
वाज.सं. १३.५३, तै.सं.४.३.१.१, मै.सं. २.७.१८, १०३.७ का.सं. १६.१८, श.ब्रा. ७.५.२.४८.

अपामजः – (१) जलों के नीचे बरसाने वाला –सूर्य (२) इन्द्र, (३ प्रजाओं को सन्मार्ग पर चलाने वाला, (४) शत्रुओं को उखाड़ देने वाला, (५) प्राणों के बीच अजन्मा आत्मा ।
'पुरां दर्मोअपामजः'
ऋ. ३.४५.२, साम.२.१०६९.

अपांरसः – (१) सूक्ष्म 'आपः' रूप परमप्रकृति के परमाणुओं का सूक्ष्म रस, (२) परमाणुओं के भीतर परमाणुओं को भी धारण करने वाला शक्तिरूप परमेश्वर ।
'आपं रस ओषधीनां घृतस्य ।'
अ. ९.४.५

अपांरीतिः – जलों की धारा, (२) आप्तजनों की शैली ।
'वृष्टि दिवः पवस्व रीतिमपाम्'
ऋ. ९.१०८.१०, साम. २.३६२

अपांवत्सः – प्रजाओं में बसने वाला ।
प्रजाओं का प्रिय ।
'यो व आपो अपां वत्सः'
अ. १०.५.१७

अपांबिलम् – जलों का द्वार ।
'अपां बिलम् अपिहितं यदासीत्
वृत्रं जघन्वां अप तद्ववार'
ऋ. १.३२.११, नि. २.१७
(जलों का द्वार जो बन्द था उस वृत्र को इन्द्र ने मारा और बन्द द्वार को खोल दिया ।)

अपांवृषभः – प्रजाओं में सुख बरसाने वाला बलवान् पुरुष ।
'यो व आपो अपां वृषभः'
अ. १०.५.१८

अपां सधस्थः – (१) जलों के साथ मिलकर सबको अपने में घोलने में समर्थ –अग्नि, (२) आप्त पुरुषों का एकत्र होकर बैठने वाला सभा भवन ।
'होता यजिष्ठो अपां सधस्थेः'
ऋ. १.१४९, साम. २.११२५.

अपां सूर्यस्य संगमः – अन्तरिक्ष के जलों तथा सूर्य के मिलने का स्थान ।
'इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ।'

ऋ. १०.१२३.१, वाज.सं ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१०, ३४.२, का .सं. ४.३.श.ब्रा. ४.२.१.१०, नि. १०.३९
इस मध्यमस्थानीय देव की (इमम्) सूर्य तथा जलों के संगम- स्थान में मेधावी विप्र (विप्राः) प्रज्ञापूर्ण स्तुतिओं से (मतिभिः) शिशु के सदृश (शिशुं न) स्तुति करते हैं रिहन्ति ।

अपां हिरण्यगर्भ - प्रजाओं के बीच सुवर्ण आदि धारण करने वाला धनाढ्य पुरुष ।
'यो व आपोऽपां हिरण्यगर्भः'
अ. १०.५.१९

अपामार्ग - (१) दुष्टों को दूर कर राष्ट्र के कण्टकों को शोधन करने वाला-राष्ट्रपति , (२) अपामार्ग नामक ओषधि जिसे 'चिचिरा' कहते हैं ।
'अपामार्गत्वमस्मद्'
वाज.सं. ३५.११, श.ब्रा. १३.८.४.४.
(३) अप मृज्यते रोगो येन सोऽपामार्गः अथवा अपमार्जयति इति अपामार्गः (जिससे रोग दूर होता है अथवा रोगों को दूर करता है । नाना रोगहारी ओषिधयों का नाम (४) अपामार्ग विधान-राष्ट्र के अपकारियों का नाशकारी विधान । अर्थशास्त्र में इसे कण्टक शोधन कहा गया है ।
'अपामार्ग त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे'
अ. ४.१७.६,७, १८.८, ७.६५.३.
(४) पापक्लेशों को दूर परे रखने वाला ।
(५) कर्म-परिशोधक आत्मा ।
'अपामार्ग रुरोहिथ'
अ. ७.६५.१

अपामूर्तिः - (१) कर्मों और विज्ञानों की उन्नति कारिणी शक्ति प्रजाओं में विद्यमान है, (२) जलों की तरंग
'यो व आपो अपामूर्मिः'
अ. १०.५.१६

अपार - दूर पार । वेद में अपारे शब्द आया है । जिसका अर्थ 'दूरे पारे' है । आज भी अपार शब्द निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त है (१) जिसका पार न हो, (२) तटहीन, (३) सीमा रहित, (४) अनन्त, अथाह, (५) अतिविस्तृत (६) पहुचं से बाहर (७) नदी का दूसरा तट ।
'उताभये पुरुहूत श्रवोभिः
एको दृढमवदो वृत्रहा सन्
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे
यत् संगृभ्णा मघवन् काशिरित् ते ।'
ऋ. ३.३०.५.
हे इन्द्र, पुरुहूत, तू एक होता हुआ भी वृत्र असुर का नाशक है । जो तू ने 'असुरों से न डर', ऐसा देवता लोगों के अभय दाने के विषय में कहा है वह ठीक ही हुआ । और भी, हे इन्द्र , चूंकि तू दूर पार में स्थित इन स्वर्ग और पृथिवी को परस्पर ऊपर नीचे से संयुक्त करते हो इससे ज्ञात होता है कि तेरी मुट्ठी (कशिः) बड़ी है ।
(२) एक दूसरे से दूर पर स्थित द्यौ और पृथिवी ।

अपाला - (१) अविवाहित कन्या (२) अपाला को अत्रिसुता कहा गया है । स्मृतियों में अत्रि सुता को ही आत्रेयी कहा गया है । अत्रि ही आत्रेयी है । प्रथम रजस्वला होने के बाद वर प्राप्ति में जिसके तीन वर्ष न लगो हों वह अत्रि (अ +त्रि) है । नव यौवना रजोधर्म युक्त अविवाहिता कन्या
'अपालामिन्द्र त्रिष्पू त्व्यकृणोः सूर्यत्वचम्'
ऋ. ८.९१.७
(३) अबला कन्या ।
'अपालामिन्द्रि त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम्'
अ. १४.१.४१

अपावपः - अप + अवप =अपावपः । अर्थ है-काटगिरावे ।

अपावृक - सर्वथा मुक्त ।
'अपावृक् तमोऽभिज्योतिरश्रैत'
अ. १३.२.९.

अपावृक्त - दूर ।
'अपावृक्ता अरत्नयः
ऋ. ८.८०.८

अपावृत - अप +आङ् +वृ+क्त =अपावृत प्रकट ।
'विश्वायु शवसे अपावृतम्'
अ. २०.१५.१

अपाः - लोट् के अर्थ में 'पा' धातु का लुङ् में प्रयोग । अर्थ है- पी जा ।
'अपाः सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि'
ऋ. ३.५३.६: आश्व. श्रौ.सू. ६.११.९.
(हे इन्द्र, या शत्रुमर्दन राजा, तू सोम पी और घर जा या दूर देश जा ।)

(२) (सं.) नाना कर्म ।
'रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।'
ऋ. २.१३.३, कौ.ब्रा. २५.८.

अपाष्ठ – (क्रि.) (१) दूर देश से लाया, (२) टूटा हुआ ।
'अपाष्टात् श्रृंगात् कुल्मलात्'
अ. ४.६.५

अपाष्ठवत् – (१) रजोधर्म के समय घृणित पदार्थ के समान रजस्वला का शरीर ।
'अपाष्ठवत् विषवत् नैतदत्तवे'
ऋ. १०.८५.३४, अ. १४.१.२९
(२) दूर रखने योग्य

अपाष्ठा – दुर्गति ।
'शता पाष्ठां निगिरतितां'
अ. ५.१८.७

अपाहन् – अपजघान । मारा ।
'इन्द्रो अस्मां अरदद् वज्रबाहुः
अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम्
देवोऽनयत् सविता सुपाणिः
तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ।'
ऋ. ३.३३.६
हे विश्वामित्र, वज्रबाहु इन्द्र ने इन नदियों को खन डाला, नदियों के परिधिभूत मेघ या घेरे को (वृत्रम्) मारा (अदाहन्), सम्पूर्ण जगत् का प्रेरक सुन्दर हाथों वाला, दीप्तिमान इन्द्र इन जलों को मेघ-भेदन कर समुद्र तक लाया । इसलिए हम ऐसे इन्द्र की आज्ञा में रहने वाली फैलती हुई जाती हैं ।
स्वा. दयानन्द ने इन्द्र का अर्थ सूर्य किया है।

अप्नाः – कर्मशील ।
'अग्नेरप्नसः समिदस्तुभद्रा'
ऋ. १०.८०.२

अप्राणा– बिना प्राण की विराट् ।
'अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनाम्'
अ. ८.९.९

अप्रामिसत्य – सत्य रूप महाव्रत का नाश न करने वाला ।
'अप्रामिसत्य मघवन् तथेदसत् '
ऋ. ८.६१.४

अप्रायि – आपूपुरः, आपूरयसि –ओतप्रोत करता है । आपूर्ण करता है ।
'आ खि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः'
ऋ. खि. १०.१२७.१, अ. १९.४७.१, वाज. सं. ३४.३२, नि . ९.२९
हे रात्रि, तू मेघ आदि के स्थानों के साथ अर्थात् अन्तरिक्ष के साथ साथ पृथिवी लोक को अन्धकार से पूर्ण करती है ।

अप्रायु – अप्रायुव – (१) जिस की आयु का वृथा नाश होता प्रतीत न हो, (२) जीवन शक्ति को न खाने वाला–दीर्घायु ।
'अप्रायु वो रक्षितारो दिवे दिवे '
ऋ. १.८९.१
(३) विस्तार दिया जाने वाला ।
(४) कभी न टूटने वाला ।
'अप्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यम् '
अ. २०.६४.६
(५) नञ् + प्र +आङ् +घु +क =अप्रायु =अपगतमनस्क = प्रमाद रहित । सायण ने इसका अर्थ 'अपरित्यजन्' किया है । जैसे अ +प्र +ई (गत्यर्थक) +उण् = अप्रायु । अथवा प्रकर्षेण एति इति प्राय । नञ् +प्रायु–अप्रायु ।
देवराज यज्वा ने 'अप्रायुव '
शब्द माना है ।
'आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।
अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्
अप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे '
ऋ. १.८९.१
हमारे कल्याणकारी अग्निष्टोमादि यज्ञ सर्वतः सर्वदा अप्रतिहत एवं शत्रुओं से अप्रतिरुद्ध होकर शत्रुओं का नाश करते हुए आवें जिस से परितुष्ट होकर देवगण प्रमाद रहित हो । हमारे प्रतिदिन रक्षक होवें –सा.
अन्य अर्थ, भद्र कर्मशील सर्वत्र कष्ट रहित, अविपरीत या धर्मानुकूल कायिक, मानसिक एवं वाचिक पापों को उत्तमतया उच्छेदन करने वाले विद्वान् हमें प्राप्त हों, जिस से वे देव सदैव हमारी उन्नति के लिए हो और प्रमाद रहित रहते हुए प्रतिदिन हमारे रक्षक हों ।

अप्रायुष् – (१) जीवित, जागृत शक्तिशाली पुरुष , (२) नवयुवक शिष्य ।
'अप्रायुषे दिवातरात्'

ऋ. १.१२७.५.
(जीवित, जागृत शक्तिशाली पुरुष या नवयुवक शिष्य के लिए सूर्य के प्रकाश से या दिन से भी अच्छा प्रकाश देने वाला था स्पष्ट मार्ग दर्शी है ।)

अप्सा – अप् +सन् (दान देने वाला) =जल देने वाला ।

अपि – (१) एक उपसर्ग , (२) संसर्ग अर्थ में आता है । (३) 'आङ्' उपसर्ग के स्थान में भी वेदों में प्रयुक्त होता है जैसे–अपिगुः (आगमन) आया या ज्ञात किया । गम् धातु ज्ञानार्थक और गत्यर्थक दोनों हैं । (४) 'अ' हटा कर 'पि' का भी प्रयोग होता है । (आचार्य भागुरि के मत से) जैसे 'पिधान' संज्ञा और क्रिया पदों के साथ प्रयोग होने पर किसी चीज के निकट या ऊपर रखना, किसी पदार्थ की ओर ले जाना, कहीं पहुंचना निकटता अर्थ का परिचायक है (५) क्रिया विशेषण या संयोजक अव्यय के रुप में इसका अर्थ –और भी, सुतराम्, और भी सिवा और 'इसके' अलावे होता है । (६) यद्यपि (७) प्रश्न के आदि में प्रयुक्त (८) आशा एव प्रतीक्षा के अर्थ में, जैसे – 'अपि जीवेत् स ब्राह्मणशिशुः' (९) कदाचित् सम्भवतः (१०) काश, अगर यदि जैसे अपिनामाहं पुरुरवा भवे यम् (११) सन्देह या अनिश्चय का बोधक, जैसे, 'अपि चोरो भवेत्' (१२) संभावना (१३) निरपेक्षिता का द्योतक, जैसे, अपि स्तुहि विष्णुम्' (१४) अतः के अर्थ में जैसे ।
(१५) सम्बन्ध कारक के साथ भी अपि का प्रयोग जैसे 'सर्पिशोऽपिस्यात्'
'मा शिश्नदेवा अपिगुक्रतं नः'
ऋ. ७.२१.५ नि. ४.१९.
(हे इन्द्र, और जो ये तथाकथित मनुष्य नाम धारी, विलासिता प्रिय अब्रह्मचारी पापी (शिश्वदेवाः) हैं वे मेरे यज्ञ में न आवें या सत्य न प्राप्त करें ।)

अपिकक्ष्य – कक्ष्या प्रति वर्जतेयः –दया. । 'कक्ष्या' का अर्थ बोध है । अथः 'अपि कक्ष्या' का अर्थ हुआ कक्षाओं में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ ज्ञान है ।
'सवां मधु प्रवोचदृतायन्
त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम्'
ऋ. १.११७.२२
वह मुख्य पुरुष ऐश्वर्य की कामना करता हुआ (ऋतायन्) आप दोनों का (वाम्) शिल्पियों से बताए गए मधुर एवं शत्रुओं का पीड़न और स्तम्भन करने वाला बल (त्वाष्ट्रम्) या शस्त्रास्त्र साधन या ऐश्वर्य और ज्ञान प्राप्त कराता है । (अपिकक्ष्यम्)।

अपिज –(१) उत्तम बुद्धि और ज्ञान में प्रसिद्ध होना, ज्येष्ठ मास जो व्यास उत्पन्न करता है, (३) ज्ञान प्रवृत्ति कराने वाला ।
'अपिजाय स्वाहा'
वाज.स. ९.२०, १८.२८, २२.३२, मै.सं. १.११.३: १६३.१७, का स० १४.१

अपिधान –(१) आवरण , ढंपना ।
'त्वमपामपिधानावृणोः'
ऋ. १.५१.४
तू जलों के आवरणों में अर्थात् आकाश मे रखने वाले कारणों को दूर करता है । (२) आच्छादित स्थान, विश्रामगृह ।
'ऊष्मण्यपिधाना चरूणाम्'
ऋ. १.१६२.१३, वाज.सं. २४.३६, तै.सं. ४.६.९.१. मै.सं. ३.१६.१:१८३.५
(३) चारों तरफ का आवरण ।
'अश्मानं ते अपिधानं कृणोमि'
अ. ७.३५.३

.अपिधानवान् –आच्छादन से युक्त ।
'गव्यं चिदूर्वम् अपिधानवन्तम्
ऋ. ५.२९.११

अपिधिः–अपि +धा +कि =अपिधि । गुप्त खजाना और राष्ट्र की रक्षा करने वाला, (२) सद्गुण धारक । (दया.)
'प्रियां अपिधीः विनिषीष्ट मेधिर
आ वनिषीष्ट मेधिरः'
ऋ. १.१२७.७
मन को प्रिय लगने वाले मनोहर गोपनीय खजानों और राष्ट्र की रक्षा करने वालों को (प्रियान् अपिधीन्) शत्रुओं का नाशकारी या प्रज्ञावान् होकर (मेधिरः) स्वयं प्राप्त करें या सब को विभक्त करे (वनिषीष्ट)।

अपिनद्ध – अपि +नह् +क्त =अपिनद्ध । दबाया या छिपाया हुआ ।

'अश्नापिनद्धं मधुपर्यपश्यन् '
ऋ. १०.६८.८, अ. २०.१६.८, नि. १०.१२
(बृहस्पति ने मेघसे दबाए या छिपाये जल को देख लिया)।

अपिप्राणी-सबसे उत्कृष्ट प्राण और बल देने वाली ।
'अपिप्राणी च सदनी च भूयाः '
ऋ. १.१८६.११

अपियन् - (१) प्रयाण करता हुआ (२) ब्रह्म में लीन होता हुआ, (३)परिव्राजक मार्ग में जाता हुआ ।
'मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तम् '
ऋ. १.१६२.२० वाज.स. २५.४३ तै.सं. ४.६.९.३ का.सं. (अश्व.) ६.५.
(४)आक्रमण करता हुआ ।

अपिरिप्त - अपि+रिप्+क्त, (१) पीड़त (२) सकल विद्याओं का ज्ञाता । (दया.)
'युवं कण्वाय नासत्या अपिरिप्ता हर्म्ये '
ऋ. ८.५.२३
(३) अन्धा, (४) कण्व का विशेषण ।
'युवं कण्वाय अपरिप्ताय चक्षुः '
ऋ. १.११८.७

अपिवातयन् - प्राप्त कराता हुआ ।
'मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त '
ऋ. १.१६५.१३, मै.सं. ४.११.३:१७०.३, का.सं. ९.१८
हे अद्भुत कार्य को करने वाले मरुतो या विद्वानो आप लोग मनन करने योग्य विद्वानों और धनों को प्राप्त कराते हुए (अपिवातयन्तः).. ।

अपिशत् - अपिशत् (अवयवों से युक्त किया) । पिश् धातु अवयव से युक्त करने के अर्थ में है । अंग्रेजी का piece शब्द भी अर्थ में मिलता जुलता है । अवयवों को जोड़ना ही 'पिश् ' धातु का स्पष्टार्थ है ।
'य इमे द्यावा पृथिवी जनित्री
रूपैरपिंशत् भुवनानि विश्वा
तमद्य होतरिषितो यजीयान्
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् '
ऋ. १०.११०.९,अ. ५.१२.९, वाज.सं. २९.३४, मै.सं. ४.१३.३,२०२ .११, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४ आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१,नि. ८.१४.
जिस त्वष्टा देव ने सभी जीवों को उत्पन्न करने वाली (जनित्री) इन द्यौ और पृथिवी को तथा सभी जीवों या लोकों को रूपों से अवयव युक्त किया उस त्वष्टा को विद्वान् प्रार्थित या परमेश्वर से प्रेरित हैं प्रवीणतम् या उत्तम यज्ञ कर्ता होता । तू स्तुतियों से आज पूज (अद्य यक्षि) ।

अपिशर्वर - (१) रात्रि का अन्धकार, (२) अज्ञानान्धकार का समय, (३) चारों ओर से हिंसाकारी शस्त्रास्त्र के द्वारा प्रवृत्त संग्राम ।
'समिद्धमपि शर्वरे '
ऋ. ३.९.७

अपिष्ठित - उत्तम पद पर स्थित ।
'यदीं गच्छन्ती उशतीरपिष्थितम् '
ऋ. १.१४५.४

अपिहितम् - बन्द,ढका हुआ ।

अब्जित -(१) प्राणों या आप्त प्रजाओं को वश करने वाला ।
'स्वर्जिदब्जित पवते सहस्रजित् '
ऋ. ९.७८.४
(२) जलों, प्राणों, प्रजाओं और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं का विजेता तथा उन्हे वश में करने वाला-इन्द्र-परमेश्वर (३) सूक्ष्मातिसूक्ष्म ।
'अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरा '
ऋ. २.२१.१

अपीच्य -(१) अति सुन्दर, सुगुप्त, सुदृढ़, ।
'अपीच्येन सहसा सहन्ते '
ऋ. ७.६०.१०
(२) गुह्य रहस्य, (३) अन्धकारा वृत पदार्थ ।
'अग्निर्वेद मर्तानामपीच्यम् '
ऋ. ८.३९.६
(४) सबके लय होने का स्थान परमदर्शनीय परम गुप्त परमेश्वर ।
'अपीच्येन वयमस्य विद्म '
ऋ. १०.१२.८,अ.१८.१.३६
(५) गया हुआ अंश (६) वीर्य रूप से प्राण अंश जो पुत्र रूप में उत्पन्न होता है । (७) भीतर छिपा हुआ अति सुन्दर स्वरूप ।
'नाम त्वष्टुरपीच्यम् '
ऋ. १.८४.१५, अ. २०.४१.३, साम. १.१४७,२.६५, मै.सं. २.१३.६: १५४.११, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.१, नि. ४.२५.
अपचितम्, अपगतम् , अपिहितम् , अन्तर्हितम्

अप +चि +य =अपीच्य ,
(४) अप +अञ्च् +क्विन् =अप्यञ्च्, अप्यञ्च् +यत् = अपीच्यम् ।
(५) अपि +यहि (गत्यर्थक) +क्त =अपिहित
(६) भट्ट भास्कर मिश्र के अनुसार अपीच्य का अर्थ 'अप्रकाश' (बिना प्रकाश वाला) है । चन्द्रमा में स्वयं प्रकाश नहीं होता । सूर्य की रश्मियां रात में चन्द्रमंडल में अन्तर्हित होकर चन्द्रमा को प्रकाशित करती हैं । अपीच्य का अर्थ अन्तर्हित तेज है ।
'अत्राह गोरमन्वम्
नाम त्वष्टुरपीच्यम्
इत्था चन्द्रमसो गृहे'
ऋ. १.८४.१५,अ.२०.४१.३.
(यहीं पर चलने वाले चन्द्रमा के मण्डल में (गोः चन्द्रमसः गृहे) दीप्त आदित्य के (त्वष्टुः) अन्तर्हित तेज (अपीच्यम् +नाम) का अवस्थान् इस प्रकार (इत्था) हुआ या सूर्य की रश्मियां चन्द्रमण्डल में अन्तर्हित हुईं ।)

अपीजुषा–उत्तम रूप से कार्य व्यवहार में लाने वाले–उषासानक्ता (उषा और रात) या स्त्री पुरुष ।
'उषासानक्ता जगतामपीजुषा'
ऋ. २.३१.५

अपीवृत्त –अन्धकार से आवृत्त
'अस्य मदे स्वर्यं दा ऋताय
अपीवृत्तमुस्रीयाणामनीकम्'
ऋ. १.१२१.४
(सूर्य अन्धकार से आवृत्त (अपीवृतम्), तेजो मय तापदायक (स्वर्यम्) रश्मियों के समूह को (उस्त्रियाणाम् अनीकम्) प्रकाश और वृष्टिजल से इस लोक की प्रसन्नता के लिए फैलाता है ।

अपुनः – बार बार न होना ।
'अनानुकृत्यम् अपुनश्चकार ।'
ऋ. १०.६८.१०,अ.२०.१६.१०
अपुनर्दीयमाना पुनः लौटायी न जाने वाली ब्रह्मगवी (२) शासन व्यवस्था ।
'क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना'
अ.१२.५.४४

अपुष्पा – पुष्प रहिता, जिसमें पुष्प न निकले या जिससे अल्प पुष्प निकले ।
'उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः
नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु
अधेन्वा चरति माययैषः
वाचं शुश्रवां अफलामपुष्पाम्'
ऋ.१०.७१.५,नि.१.२०.
और चौदह विद्यास्थानों में कुशल एवं वेद रूपी वाणी के सख्य में स्थिरतापूर्वक वेदोक्तार्थरूपी पान करते हुए स्थिरपीत कहते हैं । विद्वानों के मध्य में ऐसे स्थिरपीत पुरुष को कोई नहीं हरा सकता । और जो बिना समझे वेद का सिर्फ पाठ मात्र करता है उसके लिए यह वेदवाणी धर्म ब्रह्मज्ञान रूपी क्षीर को न देने वाली धातु के समान हो जाती है । अर्थात् माया की दूध रहित धेनु के समान अफला और अपुष्पा हो जाती है ।

असुर् – अप्सु अन्तरिक्षे से त्वरित यः सः (जलों या अन्तरिक्ष में वेग से जाने वाला) ।
'ये असुरो दिव्यासो न गृध्रा
अभि प्रयो नासत्या वहन्ति'
ऋ. १.११८.४
(जो जलों और अन्तरिक्ष में वेग से जाने वाले गीध के समान उत्तम गन्तव्य प्राप्तिस्थान या ठिकाने तक ले जाते हैं ।)

अपूपनाभिः – (१) जिसकी नाभि में अपूप हो वह शतौदना पृथिवी । (२) सायण ने 'पूआ युक्त नाभि वाली गौ' अर्थ किया है परन्तु यह अर्थ तर्क संगत नहीं है । पृथिवी की नाभि में । अनेको अन्न उत्पन्न होते हैं । अतः उसे शतौदना कहा गया है । 'अपूपनाभि' भी पृथिवी का विशेषण है ।
'इन्द्रियम् अपूपः' – ऐ.आ. २.२४
'इन्द्रस्य वीर्यम् इन्द्रियम् । तत् नाभिः सन्नहनं वलं यस्याः सा अपूप नाभिः'
जिस पृथिवी को राजा का वीर्य सुबद्ध और सुव्यवस्थित करत है वह अपूपनाभि शतौदना पृथिवी है ।
ज.दे.श.
'स स्वर्ग मारोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः
अपूपनाभिं कृत्वा योददाति शतौदनाम्'
अ.१०.९.५

अपूप – अपूप (पृषोदरादिवत्) जो दूर और निकट

सब । पदार्थों को प्राप्त हो आत्मा, (२) लोक में अपूप का अर्थ पूआ है । (३) इन्द्रिय ।

अपूपवत् – अपूपमिन्द्रियम् – ब्र. । अप + उपवत् = अपूपवत् । दे. अपूप । दूर और निकट सबको प्राप्त आत्मा, (२) गृह से दूर गुरु या आचार्य आदि के समीप जाने वाला ।
'अपूपवन्तम् उक्थिनम्'
ऋ. ३.५२.१,८.९१.२,साम.१.२१,वाज.सं. २०.२९.

अपूपवान् – (१) अप +उपवान् । दूरे आचार्यगृहे उपवीतवान् (गृह से दूर या गुरु आचार्य आदि के समीप जाने वाला –शिष्य । (२) इन्द्रियों का सामर्थ्यवाला ।

अपूपःसोमः – (१) मालपूए के समान समृद्ध राष्ट्र, (२) स्नेह युक्त या ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र (३) मालपुए के समान सोमरस
'अपूपमद्धि सगणोमरुद्भिः'
ऋ. ३.५२.७

अत्पूर्य – (१) उत्तम कर्मों में प्रेरित करने का कार्य (२) आप्त प्रजाओं का शासन कार्य ।
'अपूर्ये मरुत आपिरेषः'
ऋ. ३.५१.९

अपूपापिहित कुम्भ – (१) रस को गुप्त रूप से धारण करने वाले कलशों के समान शारीरिक रस का पात्र–शरीर ।
(२) अपूप अर्थात् मालपूए से ढका घड़ा
'अपूपापिहितान् कुम्भान्'
अ. १८.३.६८,४.२५.

अपूर्वेषिता वाचः – अपूर्वेण आदिभूत परमेश्वरेण इषिता वाचः (आदिभूतपरमेश्वर से प्रेरित वेद वाणियां) ।
'अपूर्वेणेषिता वाचः
ता वदन्ति यथायथम्'
अ.१०.८.३३

अपूर्व्य – (१) पूर्व पुरुषों द्वारा किये कर्म से भी विलक्षण कर्म करने वाला (२) जिसके पूर्व कोई अन्य न हो ।
'त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः'
ऋ. १.१३४.६

अपूरुषघ्नः – अपने शूर पुरुषों को न मारने वाला ।
'अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर'
ऋ. १.१३३.६

अपृमन् – पृ (पालन पोषण करना ।) +शतृ =पृणन् (पालन पोषण करता हुआ) । नञ् +पृणन् =अपृणन् (पालन पोषण नहीं करता हुआ या करने वाला)
'अपृणन्तम् अभि संयन्तु शोकाः'
ऋ. १.१२५.७
पालन पोषण न करने वाले को (अपृणन्तम्) शोक, दुःख और पीड़ाएं सब ओर से प्राप्त हों । (शोकाः अभिसंयन्तु)
पुनः–
'उतापृणन् मर्डितारं न विन्दते'
ऋ. १०.११७.१

अपृतन्यत् – युद्ध करे ।

अपेशस् – रूपहीन, शब्द धनहीन । दरिद्र
पेशस् शब्द पिश् (अवयव जोड़न्ना) धातु से बना है । अर्थ है रूप अंग्रेजी का Face शब्द पेशस् से बहुत मिलता जुलता है ।
'केतुं कृण्वन्नकेतवे
पेशो मर्या अपेशसे'
ऋ. १.६.३,अ. २०.२६.६, ४७.१२,६९.११, साम २.८२०, वाज.सं. २९.३७, तै.सं. ७.४.२०.१, मै.सं. ३.१६.३,१८५.८, का.सं. (अश्व) ४.९, तै.ब्रा. ३.९.४.३.
(दरिद्र पुरुष के दारिद्र्य नाश करने के लिए तू धन देता है)।

अपेक्षाः – धनरहित ।

अपोदक – अप +उदक = अपोदक ।
सूखे रेगिस्तान का सांप
'बभ्रोरपोदकस्य च'
अ. ५.१३.६

अपोदक – अप +उदका =अपोदका । पानी को भीतर न जाने देने वाली नौका ।

अपोदक विष – जलरहित रुधिर को सुखाने वाला विष ।
'यत्ते अपोदकं विषम्'
अ. ५.१३.२

अपोनर्यः – (१) जल की ऊर्मियां (२) नरी शब्द नाली का वाचक है । पानी बहाने वाली नालियां ही नारी हैं । नृ धातु से यह शब्द बना है । 'नरी' का बहुवचन नर्य है ।
(३) अन्तरिक्षस्थजल की तरह रज वीर्य से

उत्पन्न अधिक कर्म या मनुष्यों के लिए हितकारी या मनुष्य की सन्तान ।
नर+यत् = नर्यः ।
'जनिष्ठो अपो नर्यः सुजातः'
ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६
(जल की ऊर्मियां, सुजात पुत्र के समान शस्य रूपी सम्पत्ति को बढ़ाने वाली होती है ।) –सा. अथवा, अन्तरिक्षस्थ जल के प्रपात के समान रज वीर्य से उत्पन्न अधिक कर्मा मनुष्यों के लिए हितकारी या मनुष्य की सन्तान था माता पिता से भी अधिक गुणी पुत्र (सुजातः) उत्पनन होता है ।)

अपोहन – (१) सुवर्ण या लोहे से गढ़ा हुआ (२) ज्ञान से व्याप्त ।
'अयोहतं योनिमा रोहसि द्युमान्'
ऋ. ९.८०.२

अप्रोषिवान् – कभी प्रवास में नहीं रहने वाला ।
'अप्रोषिवान् गृहपतिर्महां असि'
ऋ. ८.६०.१९,साम. १.३९.

अफला – (१) फल रहति, (२) जो वाणी फल नहीं देती, (३) बिना समझी बुझी वेदवाणी ।
'अधेन्वा चरति माययैष
वाचं शुश्रुवां अफलाम् अपुष्पाम्'
ऋ. १०.७१.५,नि. १.२०.
(४) फल रहित ओषधि ।
'फलिनी रफला उत'
अ. ८.७.२७.
'याः फलिनीर्या अफला'
ऋ. १०.९७.१५

अफाणयत् – पहुंचाता है ।
'यो व्यतींरफाणयत्'
अ. २०.९२.१०

अब्जा – जल से उत्पन्न । अहि (इन्द्र) का विशेषण होकर आया है ।
'अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे
बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन्'
ऋ.७.३४.१६,नि. १०.४४.
हे स्तोता, तू जल में होकर जल में उत्पन्न इन्द्र की (अब्जाम् अहिम्) जल के बन्धन के लिए (नदीनां बुध्ने) ऋचाओं से प्रार्थना करता है) ।

अब्द – संवत्सर ।
'सजूरब्दो अयवोभिः'
वाज.सं. १२.७४, तै.सं. ५.६.४.१, मै.सं. २.१२.३,१४६.२, का.सं. २२.५.६.

अब्दया – (१) जल देने वाली मेघमाला से युक्त, (२) आप्तजनों की दान शील क्रिया से युक्त ।
'अब्दया चिन्मुहुरा हादुनीवृतः'
ऋ. ५.५४.३

अबधिर – जो बहरा न हो–भगवान् इन्द्र । वह सबका सुनता है ।
'उत त्वाबधिरं वयम्'
ऋ. ८.४५.१७.

अब्दिमान् – (१) जलवाला, (२) ज्ञानों और कर्मों का उपदेश देने वाला ।
'यो अब्दिमां उदिनामां इयर्ति'
ऋ. ५.४२.१४

अभक्त – (१) विभाग करने के अयोग्य विद्या आदि पदार्थ , (२) जो पहले कभी सेवित न हुआ हो, (३) अपूर्व धन के तुल्य श्रेष्ठ ।
'अभक्तं चित् भजते गोह्यं सः'
ऋ. ३.३०.७
(४) स्वंय किसी की भक्ति न करने वाला, (५) परम पूज्य,सर्वोच्च जिसका विभाजन न हो ।
'भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा'
ऋ. १.१२७.५
परम भजन करने योग्य (भक्तम्) उस स्वयं किसी की भक्ति न करने वाले, परम पूज्य, सर्व प्रधान, सर्वोच्च (अभक्तम्) पास रक्षा (स्वरूप प्रभु को प्राप्त होते हुए (व्यन्तः) ।
(६) असंविभक्त धन
'अभक्ते चिदा भजा राये अस्मान्'
ऋ. १०.११२.१०

अभय – (१) भय रहित अवस्था, (२) भयरहित ।
'उताभये पुरुहूतः श्रवोभिः
एकोदृढम् अवदो वृत्रहा सन्'
ऋ. ३.३०.५
हे देवों के रक्षार्थ आहूत इन्द्र । तू एक होता हुआ भी वृत्र का वध करने वाला हुआ । जो तू ने अभय होने के सम्बन्ध में देवताओं को वचन दिया है ।
हे निर्वाचित राजन् । (पुरुहूतः) तू अद्वितीय दुर्जनघाती होता हुआ भी (वृत्रहासन्) आत्मयशों

से अभय राष्ट्र में अभय वाणी का उदाहरहण करता है । -(दया.)
'सर्वाभ्यो अभयं करत्
ऋ. २.४१.१२. अ. २०.२०.७,५७.१०, तै.ब्रा. २.५.३.१, नि. ६.१

अभयङ्कर - भय नहीं करने वाला, अभय करने वाला ।
'वृषेन्द्रःपुर एतु नः सोमपा अभयंकरः'
ऋ. १०.१५२.२, अ. १.२१.१,तै.ब्रा. ३.७.११.४, तै.आ. १०.१.९, तै.आ. (आंध्र) १०.५५.

अभयसनि - अभय देने वाला ।
'लोकसन्यभयसनि'
वाज.सं. १९.४८

अभयं स्वस्ति - अभयरूपी स्वस्ति या कल्याण ।
'स्वर्वत् ज्योतिः अभयंस्वस्ति'
ऋ. ६.४७.८, कौ.ब्रा. २५.७, तै.ब्रा. २.७.१३.३.
निः श्रेयस् को देने वाले ज्ञान प्रकाश को (स्वर्वत् ज्योतिः) तथा अभयरूपी कल्याण को पहुंचा...।

अभरन् - आभरन् 'आहरत्' लाया हृग्रहोर्भश्छन्दसि. से 'ह' का 'भ',
'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णुत
विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद् विवस्वतो
वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः'
ऋ. ६.८.४, नि. ७.२६, कौ.ब्रा. २१.३.
जहां जल रहता है उस अन्तरिक्ष में मरुद्गण ने अग्नि को पकड़ा और उसी प्रकार से उस पूजनीय अग्नि की स्तुति की जैसे लोग राजा की स्तुति करते हैं । देवताओं के दूत वायु दूरस्थित सूर्य से वैश्वानर अग्नि को लाए ।
(२) भृ धातु के लङ् प्र.पु.ए. वचन का रूप । अर्थ है- पान किया ।
'आदाय श्यनो अभरत् सोमम्'
ऋ.४.२६.७,नि.११.२.

अभवः - भू धातु के लङ् म.पु.एक वचन का रूप । वेद में लङ् का प्रयोग वर्तमान में होता है । 'छन्दसि लुङ् लङ् लिटः'।
'कायमानो वना त्वं
यन्मातृरजगन्नपः
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनम्
यद्दूरे सन्नि इहाभवः'
ऋ. ३.९.२, साम. १.५३, नि. ४.१४,
हे अग्ने ! जब तू वनों को देखता या उनकी कामना करता हुआ या अनुगमन करता हुआ माता रूपी जल के निकट जाता है, तब तेरा वह मार्ग लुप्त नहीं होता या नहीं मिटता क्योंकि तू दूर रहता हुआ भी यहीं रहता है । अर्थात् जब तू जल से विद्युत के रूप में या काष्ठ से अग्नि के रूप में निकल पड़ता है ।

अभ्यञ्च - अभि +अञ्च् +क्विप् =अभ्यञ्च् । प्रथमा एक वचन में अभ्यक् । अर्थ आत्मज्ञान देने वाली विद्या (अभ्यञ्चति आत्मानं यमासा)

अभ्यक्ता - चन्दनादि लेप से लिप्त ।
'अभ्यक्ताक्ता स्वंरकृता'
अ. १०.१.२५

अभ्यगात् - अभ्यगच्छत् । उल्लंघन किया ।

अभ्यघ - अभि +अघ=अभ्यघ । अर्थ -(१) राक्षस, (२) ब्रह्मचारी अनवाय

अभ्यञ्जन - (१) अभि+अञ्जन् । आंखों में लगाने का अंजन ।
'चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।'
ऋ. १०.८५.७,अ. १४.१.६.
(२) शरीर में तैल आदि का मालिश करना ।
'अभ्यञ्जनं सुरभि सा समृद्धिः'
अ. ६.१२४.३
(३) शत्रु पर आक्रमण करने का साधन-सवारी, रथ, हाथी, विमान आदि ।
'गामश्वमभ्यञ्जनम् ।'
ऋ. ८.७८.२
(४) उबटन ।
'यदाञ्जनाभ्यञ्जनमाहरन्ति'
अ. ९.६.११

अभ्यतृणत् - अभि +अतृणत् । अभिहत किया ।
ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.
(जिस जलधारा वाले मेघ को बल से ब्रह्मणस्पति ने अभिहत किया ।)

अभ्यधीताम् - अर्थधारण करना है । अर्थ-चारों ओर से बांधते हैं । लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग हुआ है ।
'तनूत्यजेव तस्करावनर्गू
रशनाभिर्दशभिः अभ्यधीताम्
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा

युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरंगैः'
ऋ. १०.४.६,नि. ३,१४.
हे अग्नि ! ये हमारे बाहु प्राणों का निछावर कर (तनूत्यजा), वनगामी चोरों की तरह (वनर्गू तस्करौ इव) दस अंगुलियों से (दशभिः रशनाभिः) बांधते या पकड़ते हैं (अभ्यधीताम्) (अग्नि उत्पन्न करने के लिए अरणियों को कस कर पकड़ते हैं ।)
हे अग्नि ! यह तेरे लिए नई स्तुति है (नव्यसी मनीषा) अतः तू प्रज्वलित अंगों से अपने को अरणियों में जुटावो जैसे रथ में कोई जोता जाये। आर्य समाजी व्याख्या –हे वनस्थ अग्ने । शरीर की परवा न करने वाले वन गामी चोरों की तरह (तनूत्यजा वनर्गू तस्करा इव । दसो अंगुलियों से यज्ञ कर्मों को भलीभांति धारण करें) हे वनस्थ। यह वाणप्रस्थाश्रम धारण-सम्बन्ध तेरी नवीन इच्छा है (नव्यसी इच्छा) अतः पवित्र इन्द्रियों से रथ रूपों शरीर को उसकी पूर्ति के लिए संयुक्त करें ।

अभ्यर्द्धयज्वन् – अभ्यर्द्धयन् यजति–अभिवर्द्धयन् यः यजति सः । अभ्यर्धन का अर्थ दान है । अतः जो दान देता हुआ यज्ञ करता है, ऐसा अर्थ हुआ । सूर्य या पूषन का विशेषण है । पूषा अपनी रश्मियों से स्वयं पुष्ट होंते और ओषधियों को भी पुष्टि देते हैं ।
(२) प्रवृद्ध यज्ञ करने वाला (३) प्रवृद्ध दाता, (३) प्रवृद्ध सुख प्रदाता राजा ।–(दया.)
'मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी
सिषक्ति पूषा अभ्यर्द्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ
भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रवित्के ।'
ऋ. ६.५०.५
हे मरुतो ! जिन तुम लोगों के साथ रुद्र की पुत्री माध्यमिका वाक् (रोदसी देवी) जल्द-जल्द चलती है, अर्थात् बार बार मिलकर एकता प्राप्त करती है, अर्थात् जिन तुमको अभिवृद्ध दान पूषा अपनी रश्मियों से सेवते हैं, वे तुम हमारा आह्वान् सुनकर जब आते हो तब मार्ग में अर्थात् अन्तरिक्ष में बहुत से जीव कांपने लगते हैं ।–सा.
अन्यअर्थ – जिनमें दिव्यगुण-सम्पन्ना राज्ञी राज्यकर्म जानती है और प्रवृद्ध सुख-प्रदाता पोषक राजा प्रजा की सेवा करता है और हे मनुष्यों उपदेश का श्रवण कर जो तुम सब क्रियाएं करते हो तब जीवन मार्ग के परिशुद्ध होने पर बडे बड़े शत्रु सैन्य तुम से कांपते हैं ।

अभ्यश्याः – अभि +अश्याः। अर्थ है–प्राप्त कर ।
'अभिक्रत्वा पुनती धीतिरश्याः'
ऋ. ४.५.७.
(पवित्र करने वाले कर्म या ज्ञान से (पुनती क्रत्वा) आदित्य को प्राप्त कर (अध्यश्याः)–सा. अपने आपको कर्म से पवित्र करती हुई (क्रत्वा पुनती) और बुद्धिमती होती हुई (धीती) तुम समान गुण कर्म वाले पति को प्राप्त कर–दया.

अभ्यसेताम् – अविभीताम् (भ्यस् धातु का अर्थ भय करना है)। निरुक्तकार के मत से 'वेपन' अर्थात् कांपना अर्थ है ।
(१) डर गए, (२) कांप गए
'यो जात एव प्रथमो मनस्वात्
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्
यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.१,अ.२०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२, मै.सं. ४.१२.३, १८६.४, का.सं. ८.१६, ऐ.ब्रा. ५.२.१, कौ.ब्रा. २१.४,२२.४, ऐ.आ. १.५.२.५,५.३.१.२, वै.सू.३३.१२, का.श्रौ.सू. २५.१४.१९, नि. १०.१०
गृत्समद के यज्ञ में इन्द्र को अकेला या असुरों ने जब मारना चाहा तो इन्द्र गृत्समद का रूप धारण कर स्वर्ग चले गए और असुरों ने गृत्स मद को ही पकड़ लिया । इस पर गृत्समद यह बताते हैं कि कौन सच्चा इन्द्र हैः–
हे असुरो (जनासः) जो जन्मते ही देवों में प्रधान और मेधावी हुए तथा जिसे देव ने वृत्र-वध जैसे कर्म द्वारा या यज्ञ द्वारा देवताओं को अपने अधीन किया, जिसके शारीरिक बल से द्यौ और पृथिवी कांप उठी या डर गई और जो सैनिक बल के महत्व से जाने जाते हैं वही इन्द्र हैं, मैं नहीं –सा. ।
स्वा. दयानन्द का अर्थ –जो सदा विद्यमान ही रहता है (यः जात एव), जो सर्वाधार चेतन तथा सर्व प्रकाशक है (प्रथमः मनस्वान् देवः)जिसने वायु,सूर्य, चन्द्रमा आदि देवों को अपने कर्म से अंलकृत किया और जिसके सामर्थ्य से

द्यावापृथिवी डरते और कांपते हैं, हे मनुष्यो, बल के महत्व से वह परमेश्वर है ।

अभ्र – (१) अप् + र =अभ्र (ब् का भ)। जल देने वाला । वर्षणकारी मेघ की पूर्वदशा वाला मेघ ।

'अभ्राय स्वाहा'

वाज.सं. ३२.२६

(२) मेघ।

'आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आ'

ऋ. ५.४८.१

सर्वतोज्ञेय अन्तरिक्ष लोक के मेघ में–दया.

जो मध्यमावाक् के संस्थान अन्तरिक्ष के ऊपर मेघ में ।

पुनः–

'पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्राः'

ऋ. १.७९.२. तै.सं. ३.१.११.५, मै.सं. ४.१२.५, १९३.१०, का.सं. ११.१३.

(जल वृष्टियां गिरतीं और मेघ गरजते हैं ।)

अभ्रजा – अभ्र +जा । वर्षा ऋतु के प्रकोप से उत्पन्न रोग

'यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मः'

अ. १.१२.३

अभ्रपुषः – एक वचन में अभ्रपुष् मेघों से जल बरसाने वाले मरुद्गण ।

'अभ्रपुषो न वाचा पुषावसु'

ऋ. १०.७७.१

अभ्व – (१) महत्त्व ।

'आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्त'

ऋ. २.२४.५

(जिसका महत्त्व मेरे स्पृहणीय हविदाता (मे वनदः) सदा गाते हैं (आपनन्त)

हे प्रशस्त पदार्थों के दाता मनुष्यो (वनदः) ! यतः तुम मेरे उपदिष्ट कर्मों में स्थिर रहते हुए अपने से बड़े विद्वानों का सत्कार करते हो–दया.

(२) महत्तर ।

'वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम्'

ऋ.१.९२.५

उषा की देदीप्यमान कान्ति विविध दिशाओं में फैल जाती है और महत्तर अन्धकार को दूर करती है । (अभ्वं कृष्णं बाधते) ।

(३) अपराध ।

'द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात्'

ऋ. १.१८५.२–८.

(४) असामर्थ्य, थकान ।

'ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वम्'

ऋ. १.१६८.९.

(४) जल–यास्क (५) अजन्मा परमेश्वर । –(दया.)

'अभ्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे
सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति'

ऋ. १.१६९.३.

हे इन्द्र ! वह तेरी प्रसिद्ध वज्र नाम की शक्ति । (ऋष्टिः) जब मेघ के पास जाती है तब मरुत भी चिर–संचित जल बरसाने लगते हैं–यास्क

हे विद्वान् (आत्मज्ञान देने वाले), हमें विद्या प्राप्त हो जिससे मनुष्य अजन्मा परमेश्वर को प्राप्त करते हैं । –(दया.)

अभागः – (१) भाग्यहीन, (२) भजनीय परमेश्वर से रहित ।

'अभागः सन्नप परेतो अस्मि'

ऋ. १०.८३.५, अ.४.३२.५.

अभ्यानट् – अभ्यश्नुताम्–अभिव्याप्नोतु–अनिव्याप्त हो, प्राप्त करें ।

'पथस्पथः परिपतिं वचस्या
कामेन कृतो अभ्यानडर्कम्
स नो रासत् शुरुधश्चन्द्राग्रा
धियंधियं सीषधाति प्र पूषा'

ऋ. ६.४९.८, वाज.सं. ३४.४२, तै.सं. १.१.१४.२, श.ब्रा. १३.४.१.५ आश्व श्रौ.सू. ३.७.८, नि. १२.१८.

मार्ग मार्ग के अर्थात् सभी मार्गों के अधिपति अर्चनीय पूजा को मनोवांछित फल की प्राप्ति से वशीकृत स्तोता स्तुति द्वारा प्राप्त करें (वचस्या अभ्यानट्) इस प्रकार प्राप्त पूषा धर्म्य या अभिपूजित आगमन वाले धनों को देता हुआ (चन्द्राग्रा शुरुधः रासत्) हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करे ।

अभ्यावर्ती – (१) अभि +आवर्ती । समीप रहने वाला अन्तेवासी शिष्य ।

'अभ्यावर्ती चायमानो ददाति'

ऋ. ६.२७.८

(२) सम्मुख आने वाला (३)शत्रु को जीतकर

लौटने वाला ।
'अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा नि वर्तस्व'
वाज.सं. १२.७, तै.सं. ४.२.१२, मै.सं. १.७.१,१०९.१२, का.सं. १६ .८, श.ब्रा. ६.७.३.६, कौ.सू. ७२.१४.

अभ्याविवासत् – अभि +आ +वि +वास +शतृ = अभ्याविवासत् । धर्म कर्म का विवासन करने वाला आततायी ।
'इन्द्रो यातूनाम् अभवत् पराशरः
हविर्मथी नाम् अभ्याविवासताम् ।'
ऋ.७.१०४.२१,अ.८.४.२१,नि. ६.३०.
इन्द्र या राजा यज्ञ विध्वंसक (हविमर्थीनाम्) तथा धर्म कर्म को विवासित करने वाले (अभ्याविवासताम्) आततायियों का (यातूनाम्) सम्पूर्णतया दमन करने वाले हों । (पराशरः अभवत्)

अभ्यावृत्तः – अभि +आङ्+ वृत् +क्त =अभ्यावृत्तः । साक्षात् वेग से आक्रमण करने वाला ।
'वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः'
वाज.सं. ८.५८

अभ्राजि – शोभता है, प्रदीप्त होता है ।
'अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः'
ऋ. ५.५४.६.
हे वृष्टि के विधाना मरुतो (वेधसः) आप लोगों का गण या बल (शर्ध) शोभता है (अभ्राजि), जिससे जलयुक्त मेघ को (अर्णसं वृक्षम्) जल से रिक्त कर देते हो (मोषथा) जैसे घुन वृक्ष को चाट जाता है ।
हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम्हारा उत्साह (शर्ध) प्रदीप्त होता है (अभ्राजि) जो कि तुम (यत्) जैसे बींधने वाले छोटे छोटे कृमि (वेधसः कपना) वृक्ष को धीरे धीरे हर लेते हैं एवं शब्द सागर वेद को (अर्णसम्) धीरे धीरे ग्रहण कर लेते हो (मोषथ) –दया. ।

अभ्राट् – जो दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित न हो–स्वप्रकाश ।
'चित्रो यदभ्राट् छ्वेतो न विक्षु'
ऋ. १.६६.६

अभ्राता – भ्रातृ हीना, जिस कन्या का कोई भाई न हो ।
'अमूर्या यन्ति योषितो
हिरा लोहितवाससः ।
अभ्रातर इव जामयः
तिष्ठन्तु हतवर्चसः'
अ. १.१७.१
स्त्रियों के प्रदर रोग–निवारण के लिए पठित ऋचाः ।
जो ये अविरक्त धाराएं बह रही हैं अत्यन्त लाल वस्त्र पहने हुई कुल स्त्रियों की तरह सभी रक्त बहाने वाली नाड़ियां रक्त बहाना बन्द कर दें, जैसे बिना नाड़यों रक्त कन्याएं बन्द कर दें जैसे बिना भाई कन्याएं पुत्रवती होने पर अपने पितृ कुल का ही वंश बढ़ाने वाली होती हैं ।
पुनः–
'अभ्रातेव पुंस एतिप्रतीची'
ऋ. १.१२४.७ नि. ३.५.

आभ्रातृघ्नी – भाइयों का नाश न करने वाली वधू ।
'अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते
अ. १४.१.६२, आप. मं.पा. १.१.३

अभ्रातृव्यः – शत्रुरहित ।
'अभ्रातृव्यो अनात्वम्'
ऋ. ८.२१.१३, अ.२०.११४.१, साम. १.३९९, २.७३९, आश्व. श्रौ.सू.७.८.२, वै.सू. ४०.४, ४१.२०, साम.वि.ब्रा. १.८.४.

अभ्रातृव्या – शत्रुरहित ।

अभि – (१) एक उपसर्ग (२) अधिपति (३) पराजित करने के अर्थ में भी ।
'अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाद्
अभी द्वा किमुत्रयः करन्ति ।'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०.
एक ही इस जगत् का अधिपति हूं । शत्रुओं को निश्चय पूर्वक अभिभूत करता हुआ उन्हे अकेले ही जीतता हूँ । दो या तीन भी क्या करेंगे ।
(४) आभिमुख्य अर्थ में (५) मारना,
(६) सर्वतः, सभी ओर ।
"अभित्वा पूर्वपीतये
सृजामि सोम्यं मधु ।'
ऋ. १.१९.९, ८.३.७, अ. २०.९९.१, साम. १.२५६, २.९२३, ऐ.ब्रा. ४.२९ .१३, ५.१८.२१, ऐ.आ. ५.२.२.२. आश्व.श्रौ.सू. ५.१५.२ शा.श्रौ.सू. ७.२०.३, वै.सू.३९.६ साम. वि.ब्रा. ३.६.८ नि.

१०.३७
(७) प्रति, तरफ, ओर ।
'देवानां रातिः अभिनो नि वर्तताम्'
ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२, २१७.७, नि. १२.३९.
(देवों का दान हम लोगों के प्रति आवे) ।
वर्तमान अर्थ- प्रति, बहुत, नवीन, सामने, तरफ, विरुद्ध, निकट, ऊपर, एक एक ।
'वृक्षं वृक्षम् अभि'
(७) किसी को अभिलक्षित करना
'अभिसिध्मो अजिगात् अस्य शत्रून्'
ऋ. १.३३.१३, मै.स. ४.१४.१३,२३७.१३, तै.ब्रा. २.८.४.४
इस इन्द्र का वज्र (सिध्मः) शत्रु को लक्ष्य कर (शत्रून् अभि) गया (अजिगात्) ।

अभिक्रतु - अपने विरुद्ध अभिचार कर्म करने वाला, (२) कर्म और ज्ञान को साक्षात् करने वाला ।
'अथाभवत् दमिताभिक्रतूनाम्'
ऋ. ३.३४.१०, अ. २०.११.१०, मै.सं. ४.१४.५, २२२.१०, ४.१४.१३,२३६.११, तै.ब्रा. २.८.३.७

अभिक्रन्दन् - सबको प्रसन्न करता हुआ ।
'अभिक्रन्दन् स्तनयन् अरुणः शितिंगः'
अ. ११.५.१२

अभिकृत्वरी - काटने वाली अर्थात् दुःख बाधाओं वाली चित्तवृत्ति ।
'अपोच्छन्त्वभिकृत्वरीः'
अ.२.८.२

अभिक्षत्ता - सम्मुख या मुकाबला (अभिक्षृत) होने पर शत्रु को पीस डालने वाला ।
'अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वम्'
ऋ. २.२९.२
'अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता'
ऋ.७.२१.८

अभिक्रोषक - सबको बुलाने वाला ।
'ग्रामण्यं गणकम् अभिक्रोषकम् तान्मदसे'
वाज.सं. ३०.२०

अभिख्य - (१) केवल बात बनाने वाला, (२) निन्दक जन ।

अभिख्याता - साक्षात् उपदेष्टा ।
'अभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्'
ऋ. ४.१७.१७

अभिगात् - अभिगच्छन्, अतिक्रामन् (उल्लंघन करता हुआ)। अभि उपसर्ग के कारण-जान बूझकर उल्लंघन करता हुआ अर्थ हुआ ।
'सप्त मर्यादाः कवयः ततक्षुः
तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'
ऋ.१०.५.६,अ. ५.१.६, नि. ६.२७.
ऋषियों ने सात मर्यादाएं बनाई हैं-उनमें एक का भी उल्लंघन करता हुआ पापी होता है । जो इन मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करता वह सूर्य मण्डल में स्थित आदित्यान्तर पुरुष नारायण के (उपमस्य) स्थान में (नीडे) जो अविनाशी स्थान है वहां जाकर मृत्यु के पश्चात् (पंथा विसर्गे) निवास करता है, अर्थात् ब्रह्म लोक में जाता है ।
अन्य अर्थ - वह जीवन के स्तम्भ, उच्चतम शान्ति के धाम और जहां अनेक मार्गों की सृष्टि न हो ऐसे सर्वाधार परमेश्वर में तथा धारक शक्तियों में स्थिर होता है ।
सात मर्यादाएं - स्तेय, तल्पारोहण, ब्रह्म हत्या, भ्रूणहत्या, सुरापान, दुष्कृत का पुनः पुनः करना तथा उसे छिपाना ।

अभिगूर्त - (१) परिश्रमी ।
'इष्टं वीतम् अभिगूर्तम् वषट् कृतम्'
ऋ. १.१६२.१५, अ.९.५.१३, वाज.सं. २५.३७, तै.सं. ४.६.९.२, मै.सं. ३.१६.१, १८३.११, का.सं. (अश्व) ६.५.

अभिगूर्ति - (२) उद्यम ।
'उतो तेषाम् अभिगूर्तिः न इन्वतु'
ऋ.१.१६२.६,१२, वाज.सं. २५.२९,३५, तै.सं. ४.६.८,२, ९. १.मै.सं. ३.१६.१, १८२.९, १८३.३, का.सं. (अश्व) .६.४,५.

अभिगूर्य - अभि +गृ +ल्यप् - अभिगूर्य । अर्थ है-खूब पलट कर
'आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं
नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः ऋतुभिः पिब ऋतुभिः'
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३
हे द्रविणोद नामक अग्नि ! हे शत्रु धर्षक । तू सोमरस को खूब मिलाकर (आयूय) तथा खूब

पलट कर (अभिगूर्य) यज्ञस्थान से (नेष्ट्रात्) ऋतुओं के साथ पी (ऋतुभिः पिब)।

अभिगृणातु – सन्तुष्ट करे ।
'अभि न डा यूथस्य माता
स्मन्नदीभिः उर्वशी वा गृणातु'
ऋ. ५.४१.१९, नि. ११.४९.
मेघ समूह की निर्मात्री (यूथस्य माता) रूपवती विद्युत् उर्वशी नाम से जो प्रसिद्ध मध्यमा वाक् देवी इडा है वह हमें जलों से (नदीभिः) खूब सन्तुष्ट करे (अभिगृणातु) ।

अभिघ्नत – कुठार चलाकर वृक्ष काटने वाला ।
'नम उद्धुरमाणाय चाभिघ्नते च'
वाज.सं. १६.४६

अभिचक्षण – नाम ।
'चीपुद्धः अभिचक्षणम्'
अ. ६.१२७.२

अभिचक्षणा – दिखाने वाली ।
'यावती राशा अभिचक्षणा दिवः'
अ. ९.२.२१

अभिचक्षाणः – प्रकाश द्वारा देखता और दिखाता हुआ ।
'विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति'
ऋ. २.४०.५, मै.सं. ४.१४.१, २१५.७, तै.ब्रा. २.८.१.६.

अभिचक्ष्य – प्रत्यक्ष दर्शनीय कार्य ।
'महत् ते वृष्णो अभिचक्ष्यम् कृतम्'
ऋ. ८.४.७

अभिचष्टि – (१) उपकार करता है ।
'विश्वमेनाः अभि चष्टे शचीभिः'
ऋ. १.१६४.४४, नि. १२.२७
तीन केशी-अग्नि, वायु और आदित्य में एक वर्षादि कर्मों के द्वारा (शचीभिः) संसार का उपकार करता है (अभिचष्टि)
(२) अभिविपश्यति । शुभ दृष्टि से देखता है ।
'मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे'
ऋ. ३.५९.१, तै.सं. ३.४.११.५, का.सं. २३.१२, ३५.१९, तै.ब्रा. ३. ७.२.४, आप.श्रौ.सू. ९.२.६, नि. १०.२२.

अभिचार – (१) द्वेष कृत आक्रमण (२) मन्त्र पाठ द्वारा किसी पर जादू या टोना चलाना, जोग टोना ।
'परि त्वापातु समानेभ्यः'
'अभिचारात् सबन्धुभ्यः'
अ. ८.२.२६
'यत्त्वा अभिचेरु पुरुषः स्वो यदरणो जनः'
अ. ५.३०.२.
(३) लौकिक साहित्य में भी यह शब्द शत्रु पर आक्रमण करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।
यस्याभिचार वज्रेण वज्रज्वलन तेजसा ।
'शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः'
अ. १९.९.९.

अभिच्छायम् – अपनी छाया को गुरुजन पर फेंकना
'यो माभिच्छायमत्येषि'
अ. १३.१.५७

अभिजायसे – अन्तर अन्तर से उत्पन्न होता है ।

अभिजित् – (१) एक वैदिक यज्ञ ।
'विश्वजिच्चाभि जिध्व यः'
अ. ११.७.१२
(२) अभिजित् नामक नक्षत्र,
'अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव'
अ. १९.७.४, नक्षत्र कल्प. १०.४.
(३) शत्रुओं को सब प्रकार से विजय करने में समर्थ ।
'अभिजिता तेजसा तेजो जिन्व'
वाज.सं. १५.७

अभिशुः – अभितः जानुनी यस्य (पैर समेट कर बैठने वाला), (२) पलथी मार कर बैठा हुआ ।
'संजानाना उपसीदन् अभिशु'
ऋ. १.७२.५, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व .श्रौ.सू. ४.७.४.
(अच्छी प्रकार परस्पर जानने वाले जिस प्रकार पैर समट कर बैठते हैं...।)
'अभिशूवा सत्वभिर्गा अनुग्मन्'
ऋ. ३.३९.५

अभितः – सब ओर से ।
'जम्भयतम् अभितः रायतः शुनः'
ऋ. १.१८२.४.
पुनः–
'संमा तपन्त्यभितः'
ऋ. १.१०५.८, १०.३३.२, नि. ४.६.

अमित्री – शत्रु की स्त्री
'अमित्री भीता समरे वधानाम्'

अ. ५.२०.५.

अभिदासति – नष्ट करता या नष्ट करना चाहता है ।

अभिदासन् – विनाशकारी ।

'ताभ्यां दुहार्दमभिदासन्तम् किमीदिनं'

अ. ८.३.२४

'निर्हस्तः शत्रुरभिदासन्नस्तु'

अ. ६.६६.१

अभिदिप्सु – सबको मारने और ठगने वाला, वञ्चक

'मानो दुःशंसो अभिदिप्सु रीशत'

ऋ. २.२३.१०, का.सं. ३५.५.

अभिद्युः – (१) सब प्रकार से चमकने वाला ।

'प्र वो वाजा अभिद्यवः'

ऋ. ३.२७.१, मै.सं. १.६.१, ८४.१४, श.ब्रा. १.४.१.७,८.९, तै.ब्रा .३.५.२.१, आश्व,श्रौ.सू. १.२.७, ७.८.१,

(२) सब प्रकार से विद्याओं का प्रकाशक, (३) सब प्रकार से दीप्ति युक्त (४) कण्वो के विशेषण के रूप में प्रयुक्त ।

'कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवः
युवां हवन्ते अश्विना'

ऋ. १.४७.४

सोमरस चुवाए हुए, सब प्रकार से दीप्ति युक्त कण्व, हे अश्विद्वय तुम दोनों स्वीकार करें ।

अथवा

सबके प्रेरक, राजा का अभिषेक करने वाले विद्वान् पुरुष, सब प्रकार से दीप्ति युक्त होकर या शत्रुहन्ता वीर प्रतापी होकर तुम दोनों को (सभा सेनापति) अपनावें)

पुनः–

'अनवद्यैरभिद्युभिः
मखः सहस्वदर्चति ।'

ऋ. १.६.८, अ. २०.४०.२, ७०.४

अभिद्रुह् – द्रोहबुद्धि वाला

'या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः'

ऋ. २.२७.१६

अभिधमन्ता – अभिघ्नन्तौ (हत्या करते हुए)।

'यवं वृकेणाश्विना वपन्ता
इसं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्ता
उरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ।'

ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६

हे अश्विनी कुमारो ! जिस प्रकार हल से कृषक यव बुनते हैं, उसी प्रकार तुम दोनों सूर्य से जल बरसा कर बोने वाले तथा मनुष्यो के लिए अन्न पूरा करने वाले हो एवं अन्न नष्ट करने वाले चोर को नष्ट करने वाले तुमने ईश्वर पुत्र ऋजाश्व को (आर्याय) विस्तीर्ण आंखें दी ।

सायण ने 'आर्याय मनुष्याय ज्योतिः चक्रथुः' अन्वय कर 'आपने मनुष्यों के लिए ज्योति की' ऐसा अर्थ क्या है । स्वामी दयानन्द का अर्थ–हे! दर्शनीय राजा तथा राजपुरुषो तुम यव की तरह हल के द्वारा धान बोते हुए और पुनः अन्न को भरपूर पैदा करते हुए तथा सूर्य जैसे अपनी प्रखर ज्योति से रोगों का नाश करता है या द्यावा पृथिवी वर्षा जल से दुर्भिक्ष दूर करते हैं एवं अपने प्रताप से दुष्टों का विध्वंस करते हुए परमेश्वर के श्रेष्ठ सुपुत्र के लिए विस्तृत आनन्द ज्योति का प्रकाश करो ।

अभिधानी – बांधने की रस्सी ।

'गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः'

अ. ८.१०.(२).५

अभिधाः – (१) समस्त पदार्थों को साक्षात् बतलाने और उनको नियमों में बांधने वाला–परमेश्वर, (२) ज्ञानों का उपदेश करने वाला (३) राष्ट्र का प्रबन्ध करने में समर्थ ।

'अभिधा असि भुवनमसि'

वाज.सं. २२.३, तै.सं. ७.१.११.१, मै.सं. ३.१२.१, १६०.१, का.सं. (अश्वः). १.२, श.ब्रा. १३.१.२.३, तै.ब्रा. ३.८.३.४, का.श्रौ.सू.२०.१.२८, आप.श्रौ.सू. २०.३.६,

अभिघारित – प्रकाशमान ।

'आज्येनाभिघारितः'

अ. ५.२१.३

अभिधतेन – 'अभिधावत', अभिधावनं कुरुत रक्षणाय (रक्षा निमित्त दौड़े)' । 'कुरुतन' की तरह अभिधेत में 'न' जोड़ा गया है ।

'जीवान् नो अभिधेतनाऽऽदित्यासःपुरा हथात् ।
कद्ध स्थ हवनश्रुतः'

ऋ. ८.६७.५, नि. ६.२७.

हे आदित्य, हमारे प्राणों की रक्षा के लिए हमारे मरने के पूर्व कहीं पर भी हो सुनकर चारों और से दौड़ पड़ो । सम्भवतः दैत्यो से बचने के लिए

आदित्य वंशीय क्षत्रियों का यह आह्वान है। अन्य अर्थ-हे प्रजा के सुख दुख सुनने वाले, क्षत्रिय लोग, आप कहीं भी हो दौड़े। मछुओं के मारे जाने के पूर्व ही हम सबों की रक्षा करो।

अभिध्रुक् - प्रत्यक्ष द्रोह करने वाला

'जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुक्
अपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रक्'

ऋ. १.१२२.९

हे स्नेह करने वाले तथा दुःखों से निवारण करने वाले माता पिता (मित्रावरुणा) या गुरु और गुरुपत्नी, जो आप दोनों से प्रत्यक्ष द्रोह करता है (अभिध्रुक) और जो टेढ़े तरीके से द्रोह करता है। (अक्ष्णयाध्रुक) और जो दोनों के सम्बन्ध की सत्कारादि क्रियाओं को (अपः) अच्छी प्रकार अनुष्ठान करता या तर्पणादि नहीं करता...।

अभिवक्षण - (१) सर्वत्र ज्ञान बल से पहुँचने वाला, (२) आविष्कारक।

'अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुः'

ऋ. २.२४.६

अभिनत् - छिन्न भिन्न कर दिया या कर दे.।

'विश्रृंगिणमभिनत् शुष्णमिन्द्रः'

ऋ. १.३३.१२, नि. ६.१९

(इन्द्र ने विशिष्ट शिखर युक्त तथा दीप्तिमान् बलवान् मेघ को छिन्न भिन्न कर दिया-) राजा सिर उठाए बलवान् शत्रु को कुचल डाले-(दया.)

अभिनिष्कारी - आक्रमण करने वाला,

'अभिनिष्कारिणः प्रजाम्'

अ. १०.१.३१

अभिनिष्कृत - (सं) अत्याचार, दुत्कार, अपमान

'संदेश्यात् अभिनिष्कृतान्'

अ. १०.१.१२

अभिनिष्टतन - अभि +निस् +पत +शतृ =अभिनिष्पतन। (१) चारों ओर से बड़े वेग से आवरण करता हुआ, (२) मड़राता हुआ, झपटता हुआ।

'अभिनिष्पतन्नपीपतत्'

अ. ७.६४.१

अभिप्रभङ्गी - अभि +प्रभङ्गी। आगे आए हुए शत्रु को अच्छी तरह से विनाश करने वाला, (२) विश्व मात्र के सभी संकटों को नष्ट करने में समर्थ-इन्द्र, परमेश्वर।

'उग्रादभिप्रभङ्गिणः'

ऋ. ८.४५.३५

अभिप्रभु - सर्वोपरि प्रभु।

'अभिप्रभुरा जुह्वा स्वध्वरः'

ऋ .१०.११५.२

अभिप्रवन्त - आभिमुख्येन प्रवन्ति नमन्ति -प्रह्वीयवन्ति (सम्मुख होकर विनम्र होती हैं)।

'अभिप्रवन्ति समनेव योषाः
कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्
घृतस्य धाराः समिधो नसन्तः
ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः'

ऋ. ४.५८.८

जल की धाराएं विद्युत् रूपी अग्नि की ओर नत होकर जाती हैं, जैसे मुस्कुराती हुई रूप यौवनादिगुण सम्पन्न एक ही पति की सामान्य भाव से अनेक स्त्रियां उस एक पति की ओर विनम्र होकर जाती हैं (समनेव योषाः अभि प्रवन्ति), वे जल धाराएं सम्यक् प्रकार से उद्दीप्त करती तथा व्याप्त होती हुई (समिधः नसन्तः) वैद्युताग्नि के पास तथा वैद्युताग्नि प्रीयमाण होकर उन जलधाराओं की कामना करता है।

अभिप्रश्नी - विद्यार्थी के सम्मुख नाना प्रश्न करने वाला विद्वान्।

'उपशिक्षाया अभिप्रश्निनम्'

वाज.सं. ३०.१०

अभिप्रसर्पत् - गर्भ से आगे को निकलता हुआ शिशु।

'वृन्तादभिप्रसर्पतः'

अ.८.६.२२

अभिपित्व - (१) प्रयास, (२) सब प्रकार प्राप्त करने योग्य कार्य व्यवहार।

'तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषुरण्यति'

ऋ. १.८३.६, अ.२०.२५.२.

(३) अभितः प्राप्तव्य-सब प्रकार से और सर्वत्र प्राप्त करने योग्य।

'विश्वं जगत् अभिपित्वेमनीषा'

ऋ. १.१८६.१, वाज.सं. ३३.३४

(४) सब प्रकार से व्यापना।

(५) सब प्रकार से पालन।

'स्मत् सूरिभिभिपित्वे सजोषाः'

ऋ. १.१८६.६.
(६) अभिप्राप्ति । निरुक्तकार ने 'पित्व' का अर्थ 'प्राप्ति' किया है । स्पष्ट अर्थ स्नान भोजन आदि है ।
'कुह स्वित् दोषा कुह वस्तोरश्विना
कुहा भिपित्वं करतः कुहोषतुः
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं
मर्यं न योषा कृणते सधस्थ आ ।'
ऋ. १०.४०.२, नि. ३.१५.
हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों रात में कहां रहते हो । (कुहस्वित् दोषा), दिन में कहां रहते हो (कुहवस्तोः) कहां भोजनादि जनादि के लिए ठहरते हो (कुह अभिपित्वं करतः), कहां पर रहते हो (कुह ऊषतु) और कौन यजमान पूजा करने के तुम्हे सम्मुख करता है (को वां शयुत्रा), जैसे विधवा देवर को सेज पर सुलाती या स्त्री पति के सम्मुख होती है । मर्यं न योषा सधस्थ आकृणुते)-
अन्य अर्थ - हे स्त्री पुरुषो ! कल तुम रात में कहां रहे । कल दिन में कहां रहे ! कहां भोजनादि पदार्थ की प्राप्ति की ! कहां तुम्हारा निवास स्थान है ! जैसे विधवा देवर से या स्त्री अपने पति से मिल सन्तान उत्पन्न करती है उसी प्रकार तुम्हारा परमप्रिय मित्र कौन हैं जिसे मिल तुम धार्मिक सामाजिक या व्यावहारिक कार्य करोगे ।
(७)अभिमतफल (८) साक्षात् पालन पोषण
'इहाभिपित्वं करते गृणानः'
ऋ. ४.१६.१, अ. २०.७७.१

अभिप्रिय - (१) सर्वप्रिय ।
'अभिप्रियं यत् पुरोडाशमर्वता'
ऋ. १.१६२.३, वाज.सं. २५.२६
(२) अभितः प्रियः -सर्वप्रिय सविता एवं परमात्मा का विशेषण ।
'रत्नधामभिप्रियं मतिम्'

अभिपूर्वम् - (क्रि.वि.) पूर्व कर्म के अनुसार ।
'अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै'
अ.११.२.२२

अभिभंग - समस्त जगत का भंग, नाश या प्रलय करने वाला, इन्द्र, परमेश्वर ।
'अभिभुवेऽभिभंगाय वन्वते'
ऋ. २.२१.२

अभिभवन्ती - पराजित करने वाली शक्ति ।
'अभिभवन्तीमेवा प्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते'
अ. ९.५.३६

अभिभाः - सर्वत्र प्रकाशमान विद्वान् पुरुष ।
'यद् वामभिमा अत्रोचुः'
अ. १८.४.४९
(२) (स्त्री.) अभिभव, अभिभूति, तिरस्कार । विघ्नबाधा ।
'मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत्'
ऋ. २.४२.१, नि. ९.४.
(तेरे पास कोई भी विश्व का विघ्न न प्राप्त हो ।)

अभिभु - सबको पराजित करने वाला ।
'अभिभुं क्षत्रवर्धनम्'
अ. १०.६.२९

अभिभू - (१) सबका पराजय करने वाला ।
'अभिभूर्यज्ञः अभिभूरग्निः'
अ. ६.९७.१
(२) अभिभावक, रक्षक ।
'त्वमिन्द्राभिभूरसि'
ऋ. ८.९८.२, १०.१५३.५, अ.२०.६२.६, ९३.८, साम. २.३७६, तै.ब्रा. २.४ .१.२.
(३) सम्मुख जाने वाला ।
'अभिभुवे स्वाहा'
वाज.सं. २२.३०, मै.सं. २.१३.१७: १६४.१५, ३.१२.१४: १६४.११, का.सं. ३५.१०, तै.ब्रा. ३.१०.७.१, आप.श्रौ.सू. १४ .२५.११
(४) सर्वत्र व्यापक इन्द्र, परमेश्वर ।
'अभिभुवेऽभिभंगाय वन्वते'
ऋ. २.२१.२
(५) वश करने वाला ।
'स पौंस्येभिः अभिभूः अशस्तीः'
ऋ. १.१००.१०
वह असाध्य शत्रुओं को भी (अशस्तीः) पराक्रमों से (पौंस्येभिः) वश करने वाला हो (अभिभूः) ।

अभिभू ऋतु - (१) वसन्त ऋतु जो जाड़े को अभिभूत कर आता है ।
(२) अजपञ्चौदन का एक रूप ।
'एष वा अभिभूर्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः'
अ. ९.५.३६

अभिभूत - (१) चारों ओर की विभूति का स्वामी

(२) शत्रुओं का पराजय करने वाला ।
(३) सब तरफ की नाना विभूतियों एवं ऐश्वर्यों का स्वामी इन्द्र ।
'अतः संगृभ्य अभिभूत आभर'
ऋ. १.५३.३, अ. २०.२०.३.
इस राष्ट्र में हे शत्रुओं को पराजित करने वाले, हे समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी ! इस समस्त ऐश्वर्य को संग्रह कर (संगृभ्य) मुझ प्रजा जन को ऐश्वर्य से पूर्ण कर या पालन कर ।

अभिभूतर – शत्रु पराजय में शत्रु में से भी बलवान् ।
'विश्वाःपृतना अभिभूतरं नरम्'
अ. २०.५४.१

अभिभूति – (१) संग्राम में शत्रु को पराजित करने । वाला । (२) वश करने वाला ।
'त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम्'
अ. ६.९८.२

अभिभूत्योजाः – (१) सर्वसृष्टि उत्पन्न करने वाला या शत्रु वीर्यसामर्थ्य वाला –इन्द्र ।
'मायाभिर्दस्यूं रभिभूत्योजाः'
ऋ. ३.३४.६, अ.२०.११.६
पराजित करने योग्य बल से युक्त ।

अभिभूय – शत्रुओं का पराजय
'अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय
अ. १९.३७.३

अभिभूवरी – सबको पराजित करने वाली
'जयन्त्यभिभूवरी
ऋ. १०.१५९.५, आप.श्रौ.सू.१.१६.५

अभिमर्मृशत् – प्राप्त हो जाता है । पहुंच जाता है ।
'यत्सीम् महीमवनिं प्राभिमर्मृशत्
ऋ. १.१४०.५
(जो सब प्रकार से उस महान् सर्वरक्षक को प्राप्त हो जाता है ।)

अभिमाति – अभिमानी शत्रु ।
'विश्वा मृधो अभिमातीर्जयेम
अ. १८.२.५९.
'न देवमभिमातयः'
ऋ. १.२५.१४
(जिस वरुण या राजा को अभिमानी शत्रु भी परास्त नहीं कर पाते ।)

अभिमातिजित – गर्वीले दुष्ट पुरुषों को जीतने वाला
'सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च
वाज.सं. २७.३, तै.सं. ४.१.७.२.

अभिमातिषाट् – अभिमानियों को परास्त करने वाला ।
'सुवीरासो अभिमातिषाहः'
ऋ. २.४.९
'सं वृष्ण्यानि अभिमातिषाहः'
ऋ. १.९१.१८, आ.सं. ३.२, वाज.सं. १२.११३, तै.सं. ४.२.७.४, मै.सं . २.७.१४, ९६.८, का.सं. १६.१४, ३७.५, श.ब्रा. ७.३.१.१४, कौ.सू. ६८.१०
'ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः'
अ. ५.२०.२

अभिमातिषाह्य – अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने वाला संग्राम ।
'इन्द्राभिमाति षाह्ये'
ऋ. ३.३७.३, अ.२०.१९.३, मै.सं. ४.१२.३, १८४.८

अभिमातिहा – गर्वीत शत्रुओं का हन्ता ।
'सत्राडस्यभिमातिहा'
वाज.सं. ५.२४, वाज.सं.(का.) ५.६.३, मै.सं. १.२.१०,२०.५, श.ब्रा. ३. ५.४.१५.

अभिमानी – अभिमानी शत्रु ।

अभियन् – अभि +या +शतृ । समीप जाता हुआ ।
'मेषो भूतोऽभियन् अयः
ऋ. ८.२.४०, नि. ३.१६.
भेड़े या रूप की तरह (मेषः भूतः) समीप जाता हुआ (अभियन्) तू पहुंच गया (अयः) ।

अभियुक् – आक्रमण करने वाला ।

अभियुग्वा – आक्रमण करने वाला ।
'सा सहांश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा
वाज.सं. ३९.७

अभियुज् – (१) आक्रमण कारी ।
'अभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीः
ऋ. ६.२५.२, मै.सं. ४.१४.१२: २३५.४, तै.ब्रा. २.८.३.३.
(२) युद्ध करने वाला (३) शत्रुसेना । –(दया.)
'विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या
ऋ. ५.४.५, अ. ७.७३.९, मै.सं. ४.११.१,१५९.४, का.सं. २.१५, तै ब्रा.२.४.१.१, नि. ४.५.

अभिरोरुद – (१) वह ओषधि जो पति को पत्नी से बहुत दूर जाने से रोके ।
(२) अन्य नारी का संसर्ग रोकने वाला
(३) सौवर्चल नामक यन्त्र

'मांपश्यम् अभिरोरुदम्
अ. ७.३८.१

अभिलव्लग्य – आक्रमण कर के मार कर कुचल कर पकड़कर ।

अभिल्लंग – (१) सब तरफ का पैंतरा, (२) सब तरफ चलने वाला, (३) चौमुखा मारने वाला अस्त्र शस्त्र
'अभिव्लंगैः अपा वपः'
ऋ. १.१३३.४
(सब तरफ के पैतरों से या सब तरफ चलने वाले चौमुखा मारने वाले अस्त्र शस्त्रों से (अभिल्लंगैः) काट गिराये । 'लंगी मारना' अजभी प्रयुक्त होता है ।

अभिवक्षय – 'वस्' धातु काण्यन्त रूप । अर्थ–मिला दे । निवास करा दे ।

अभिवयाः – सब प्रकार के अन्न से सम्पन्न राष्ट्र
'तीव्रस्याभिवयसः अस्य पाहि'
ऋ. १०.१६०.१, अ.२०.९६.१, ऐ.आ.५.१.१.६, वै.सू.३४.२०.

अभिव्रजन् – (१) संसार के बन्धनों का परित्याग करता हुआ संन्यासी (२) शत्रु पर आक्रमण करने वाला, ।
'अभिव्रजन् अक्षितं पाजसा रजः'
ऋ. १.१५८.५
(यह जीव परिव्राजक हो, अक्षय ऐश्वर्य, अक्षय लोक, ऐश्वर्य मोक्ष या परमेश्वर को प्राप्त करता है ।)

अभिवर्धमानः – (१) चारों तरफ से बढ़ता हुआ । वृत्र या दुष्ट जन ।
'अभिवृत्रं वर्धमानां पियारुम्'
ऋ. ३.३०.८, वा.सं. १८.६९.
(चारों ओर से बढ़ते हुए हिंसक वृत्र या मेघ को (वृत्रम्)

अभिवहेयुः – लावें ।
'अभिश्रव ऋज्यन्तो वहेयुः'
ऋ. ६.३७.३, नि. १०.३.
सुन्दर चाल से चलते हुए सोम रस लावें ।

अभिव्याधी – सब ओर से प्रहार करने वाला
'मो अभिव्याधिनो विदन्'
अ. १.१९.१

अभिवीता – रोग से युक्त ।
'वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः'
ऋ. ७.२७.४

अभिवीर – (१) जिसके दाएं बाएं नाना वीर पुरुष रहते हों, वीरों से घिरा हुआ ।
'अभिवीरो अभिषत्वा सहोजित्'
ऋ. १.१३०.५ अ. १९.१३.५, साम.२१२.०३, वाज.सं १७.३७, तै.सं. ४.६.४.२, मै.सं. २.१०.४:१३६.३, का.सं. १८.५

अभिवृष्ट – (१) अभिषेचित स्नातक ।
(२) वर्षा से अभिषिक्त मेढ़क ।
'मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्'
ऋ. ७.१०३.४

अभिवेग – उत्साह ।
'असन्सु मे जरिता सांभिवेगः'
ऋ. १०.२७.१

अभिशस् – पुनः पुनः इच्छा ।
'यदाशसा निःशसाभिशसो पारिम'
ऋ. १०.१६४.३

अभिशस्ति – (१) महा विपत्ति, संकट, मृत्यु ।
'पुरा तस्या अभिशस्तेः अधीहि
ऋ. १.७१.१०
(उस महाविपत्ति या संकट या मृत्यु के पहले ही तू हमें ज्ञान प्रदान कर ।)
(२) मरण –वेदना ।
'बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः'
अ. ७.५३.१, वाज.सं. २७.९, तै.सं. ४.१.७.४, मै.सं. २.१२.५:१४९.१०, ३.४.६:५१.१५, का.सं. १८.१६.

अभिशस्ति पा – (१) निन्दा से बचाने वाला ।
'किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः'
ऋ. ६.५२.३
(२) सभी पीड़ाओं या आघातों से रक्षा करने वाला–विष्णु (३) चारो ओरं से आघातों से रक्षा करने वाला ।
'अनभिशसस्त्यभिशस्तिपा'
वाज.सं. ५.५, तै.सं. १.२.१०.२, ६.२.२.३, मै.सं. १.२.७:१६.१३, का.सं. २.८, गो.ब्रा. २.२.३, शां.ब्रा.३.४.२.१४, आश्व.श्रौ.सू. ४.५.३, शां.श्रौ.सू. ५.८.२, वै.सू १३.१८, शां.गृ.सू. १.६.५.
'अभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ'
अ. १९.२४.६

अभिशस्तिपावा – दानशील पुरुषों, उत्तम कर्मों और

परस्पर के सत्संगों को निन्दा, घात, प्रतिघात या विनाश या विच्छेदन से बचाने वाला-परमेश्वर, विद्वान् राजा ।
'धवा यज्ञानाम् अभिशस्तिपावा'
ऋ. १.७६.३

अभिशस्ताहन्ता - आक्षेपों और शस्त्र प्रहारों से सताने वाले पुरुष का विनाशक ।
'हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसोविदुः'
अ. ५.१८.१४

अभिशाचः - सब प्रकार से शक्तिशाली
पुरोगवाय अभिशाचो अस्य ।
अ. १८.४.४४

अभिश्रिष् - (१) चिपकने का पदार्थ, लस्सा ।
'य ऋते चिदभिश्रिषः'
ऋ.८.१.१२,अ.१४.२.४७,साम १.२४४.
(२) जोड़ने वाला काल ।

अभिश्री - (१) सम्मुख होकर सेवनीय (२) वैश्वानर अग्नि का विशेषण ।
'राजा हि कम् भुवनानाम् अभिश्रीः'
ऋ. १.९८.१, वाज.सं. २६.७, तै.सं. १.५.११.३, मै.सं. ४.११.१,१६१.३, का.सं. ४.१६, नि. ७.२२.
(क्योंकि वैश्वानर अग्नि सम्मुख होकर सेवनीय है (अभिश्रीः) और सभी जीवों का राजा है ।)
(३) अभिश्रयणीय (आभिमुख्येन सेवनीय)
(४) सबके आश्रय योग्य (५) उत्तम राज्य लक्ष्मी से सम्पन्न ।
'श्वेतः सिषक्ति नियुतामिश्रीः'
ऋ. ७.९१.३

अभिश्वसन् - (१) आश्वासन या हार्दिक शान्ति को प्राप्त हुआ । (२) वायु रूप से श्वास लेता हुआ ।
'अभिश्वसन् स्तनयन् एति नानदत्'
ऋ. १.१४०.५.

अभिशोक - सब अंगों में भीतर बाहर व्याप्त ज्वर ।
'यदि शोको यदि वाभि शोकः'
अ. १.२५.३

अभिशोच - सब तरफ शरीर में दाह उत्पन्न करने वाला ।
'अवकादन् अभिशोचान्'
अ. ४.३७.१०

अभिशोचन - (१) कोसना ।
'न कृत्या नाभिशोचनम्'
अ.४.९.५
(२) हाथ पैर आदि का जलन ।
'विष्कन्धात् अभिशोचनात्'
अ. २.४.२

अभिशोचयिष्णु - सब को सब प्रकार शोचित पीड़ित करने वाला ज्वर ।
'अयं यो अभिशोचयिष्णुः'
अ. ६.२०.३

अभिषत्वा - अधिक सत्व बल को धारण करने वाला ।
'अभिवीरो अभिषत्वा सहोजित्'
अ. १९.१३.५, का.सं. १८.५.

अभिषवणी - सोमरस में मिलाने योग्य 'वसतीवरी' नामक जलधारा ।
'अभिषवणीरापः'
अ. ९.६.१(१) १६

अभिष्टन् - अभि +स्तन् । अर्थ (१) सर्वतः शब्द युक्त व्यवहार । (२) गर्जना, (३) आज्ञा ।
'अभिष्टने ते अद्रिवः
यत्स्था जगत् च रेजते'
ऋ. १.८०.१४
(हे अखण्ड बलवीर्य के स्वामिन्, जब तेरी गर्जना और आज्ञा में स्थावर और जंगम सभी कांपते हैं ।)

अभीषाच् - (१) साक्षात् प्राप्त होने वाला-इन्द्र, परमेश्वर ।
'धामसाचम् अभिषाचम् स्वर्विदम्'
ऋ. ३.५१.२
(२) सहयोगी
'दश वशासो अभिषाच ऋष्वान्'
ऋ. ६.६३.९
(३) अभ्यन्तर से सम्बन्ध रखने वाला ।
'शमभिवाचः तशमु रातिषाचः'
ऋ. ७.३५.११, अ. १९.११.२, मै.सं. ४.१४.१: २३२.६, तै.ब्रा. २ .८.६.४.

अभिषाचः - चारों ओर से एकत्र होकर विराजने वाले ।

अभिष्टि - (१) इच्छा की अनुकूलता ।
'प्रियास इत् ते मघवन् अभिष्टौ'
अ. २०.३७.८

(२) साक्षात् कामनामय परमेश्वर, (३) सर्वतो मुख प्रेरणा शक्ति से युक्त (४) सर्वत्र गतिशील।
'जिगायोशिग्भिःपृतना अभिष्टिः'
ऋ. ३.३४.४, अ.२०.११.४, तै.ब्रा. २.४.३.६.
(३) अभिमुखा इष्टिः संगतिः यस्य। (दया.)
(४) सब ओर संगठन करने वाला।
(५) अभिमत नीति।
'सद्यश्चिन्नुते मघवत् अभिष्टौ'
ऋ. ७.१९.९, २०.३७.९.

अभिष्टिकृत् – (१) उत्तम यश, सत्संगति या मैत्री का दान करने वाला।
'अभिष्टिकृत् जायते सत्य शुष्मः'
ऋ. ४.११.४.
(२) सबका अभीष्ट पूरा करने वाला।
'अभिष्टि कृत् विचर्षणिः'
ऋ. ९.४८.५,साम.२.१८९.

अभिष्ठित – लिपटा हुआ।
'स्वज इवाभिष्ठितो दश'
अ. ५.१४.१०

अभिष्टिपा – (१) आने वाली विपत्तियों से बचाने वाला, (२) अपनी शरण में स्वीकार करने वाला।
'त्वायतो अभिष्टिपासि जनान्'
ऋ. २.२०.२

अभिष्टिमान् – उत्तम एषणा अर्थात् स्पर्द्धा से युक्त।
'तद् वां नरा शंस्यं राध्यं च
अभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्
यद् विद्वांसा निधिमिवापगूभ्
उद् दर्शतादद्रूपथुर्वन्दनाय्'
ऋ. १.११६.११
हे विद्वान् स्त्री पुरुषो, गृहस्थ के नायक नायिकाओं या अश्विद्वय। तुम दोनों कभी असत्याचरण न करते हुए (नासत्या) दर्शनीय सुन्दर स्त्री रूप से (दर्शतात्) स्तुतित योग्य पुत्र लाभ करने के लिए (वन्दनाय) खूब गहरे छिपे (अपगूढ़म्) जिस निधि को (निधिम्) वपन कर प्राप्त करते हो (ऊपथुः) वह तुम दोनों का (वाम्) प्रशंसा करने योग्य (शस्यम्) उत्तम एषणा से युक्त (अभिष्टिमत्) दुःखों से बचाने वाला (वरूथम्) और वरणीय श्रेष्ठ धन के समान (राध्यम्) हो।

अभिष्टिशवाः – सब तरफ शासन करने में समर्थ बलशाली।
'मित्राय पञ्च ये मिरे
जात अभिष्टिशवसे'
ऋ. ३.५९.८.

अभिष्टुता – अभिस्तुता–सब प्रकार से प्रशंसित।
'वीरुधो या अभिष्टुताः'
अ.८.७.११

अभिष्ठित – सर्वत्र स्थित।
'अभिष्ठितो वरुणस्य पाशः'
वाज.सं. ८.२३, तै.सं. १.४.४५.१,६.६.३.२, का.सं. ४.१३,२९.३, शा .ब्रा. ४.४.५.११.

अभिषेक्ता – जल से स्नान करने वाला।
'विष्टपायाभिषेक्तारम्'
वाज.सं. ३०.१२

अभिषेणः – सेना सहित सामने आने वाला।
'अभिषेणां अभ्यादेदिशानान्'
ऋ. ६.४४.१७.

अभिसचस्व – सम्मुख आ।
'पिशङ्गराते अभि नः सचस्व'
ऋ. ५.३१.२
हे सुन्दर दान वाले इन्द्र, तू हमारे सम्मुख आ (नः अभि सचस्व)।

अभिसञ्चरेण्य – इधर उधर संचार करने वाला। (अभितः संचरण शीलः)
'अन्यस्य चित्तम् अभिसञ्चरेण्यम्'
ऋ. १.१७०.१,नि. १.६.
(२) अभि +सम् +चर +एण्य =अभिसंचरेण्य।

अभिसत्वा – बलवान् पुरुषों से सम्पन्न।
'अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा'
ऋ. १०.१०.३.५, साम २.१२०३, वाज.सं. १७.३७, तै.सं. ४.६.४.२, मै. सं २.१०.४,१३६.३.

अभिसन्ति – आते हैं, चारों तरफ घेर कर बैठते हैं।
'सधस्थं विश्वे अभिसन्ति देवाः'
ऋ. ७.३९.४.
(विश्वेदेव यज्ञों में समान स्थान पर आते हैं)।

अभिस्कन्द – आक्रमण कारी।
'अभिस्कन्दं मृगीव'
अ. ५.१४.११

अभिसन्ददी – स्त्री पुरुष का विशेषण–धारण करने वाले

हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः'
ऋ. २.३९.७

अभिसर्ता – शत्रु के मुकाबले पर अभिसरण या प्रयाण करने वाला ।
'शोकायाभिसर्तारम्'
वाज.सं. ३०.१४,तै.ब्रा. ३.४.१.१०.

अभिसृष्ट – देहवान् आत्मा ।
'यदो षधीरभिसृष्टो वनानि च
परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये'
ऋ. १०.९१.५,साम २.३३२.

अभिस्वरः – (१) तेजस्वी, अतिगर्जनशील, (२) इन्द्रियों को प्रेरित करने वाली स्वतः प्रकाश आत्मा ।
'स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वरेः'
ऋ. ३.४५.२,साम. २.१०६९
(३) आ, सर्वत्र विचारकर ।
(४) ज्ञानोपदेश के साथ वर्तमान विद्वान्
'मेषं विप्रा अभिस्वरा'
अ. २०.५४.३

अभिस्वर्ता – साक्षात् स्तुत करने वाला
'अभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः'
ऋ. १०.७८.४

अभिस्वरन्ति – अभिपतन्ति अथवा आभिमुख्येन सूर्य मण्डलं सु अरन्ति (सुखेन गच्छन्ति)
'रसान् गृहीत्वा प्रयान्ति ।'
अथवा सर्वतः शब्दं कुर्वन्ति (चारों ओर से आते हैं) चारों ओर से शब्द करते हैं, सामने से आदित्य मण्डल की ओर जाते हैं ।
सूर्य की किरणें इस क्रिया का कर्त्ता हैं ।
'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।'
ऋ. १.१६४.२१,नि. ३.१२.

अभिस्वार – सब प्रकार का उपदेश देने वाली वेदवाणी ।
'अभिस्वरा निषदा गा अवस्यवः'
ऋ. २.२१.५

अभिरूपा – (१) सब प्रकार से नाना रूपों को धारण करती हुई, अभिव्यक्त रूप से प्रकट हुई विराट् प्रकृति ।
'विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजं पश्यन्ति त्वे'
अ. ८.९.९

अभिसृष्ट – आक्रमण करता हुआ ।
'पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे'
ऋ. ३.३५.१,तै.ब्रा. २.७.१३.१

अभिसेहानः – पराजित करता हुआ ।
'सेहान उग्र पृतना अभिद्रुहः शचीपतु'
ऋ. ८.३७.२

अभिहस्य –उपहास योग्य ।
'येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि'
अ. ६.३०.२

अभिह्रुत – (१) अति कुटिल पापाचार, दुष्काल आदि ।
'स नस्त्रासते दुरितात् अभिह्रुतः'
ऋ. १.१२८.५.
(२) कुटिल द्वेषभाव , (३) अप्रीतिभाव, (४) कुटिलाचारी ।
'अभिह्रुतामसि हि देव विष्पट्'
ऋ. १.१८९.६.

अभिह्वार – कुटिलमार्ग ।

अभ्रिः – (१) पृथिवी खोदने वाला यन्त्र,
(२) शत्रु के बीच में घुस जाने में समर्थ पुरुष,
(३) कुदाल ।
'अभ्रिरसि नार्यसि'
वाज.सं. ११.१०, तै.सं. १.३.१.१, ४.१.१.३, ६.२.१०.१, मै.स. १.२.१०, १९.१५, २.७.१, ७४.१४, ३.८.८, १०५.१९, ४.९.१, १२०.६, का.सं. १६.१, श.ब्रा. ६.३ .१.३९, तै.आ,. ४.२.१,५.२.५.
'हिरण्ययीभिरभ्रिभिः'
अ. १०.४.१४
'अभ्रिखाते न रूरुपः'
अ. ४.७.५,७.

अभ्रिखाता – कुदाल से खोदी ओषधि ।

अभ्रिय – मेघ ।
'वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः'
अ. २०.१६.१

अभ्रिया – अभ्र अर्थात् मेघ में निवास करने वाली सूर्य की प्रभा ।
'अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये'
अ. २.२.४

अभ्रिया वाक् – मेघ से उत्पन्न वाणी ।
'यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति'
ऋ. १.१६८.८

अभीक – (१) समक्ष उपस्थित ।
'अभीकेचिदु लोककृत
सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।'
ऋ. १०.१३३.१, अ. २०.९५.२, साम.२.११५१, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४:१८९.८, तै.ब्रा. २.५.८.२.
सामने आये संग्राम काल में (अभीके सङ्गे) तथा संग्रामों में (समत्सु) अभिपूजित लोककर्त्ता या स्थान कर्त्ता (लोककृत् चित्) वृत्र का वध करने वाला इन्द्र होगा वृत्रहा उ)।
(२) भय रहित सत्याचरण ।
'आरे स्याम दुरितादभीके'
ऋ. ३.३९.७
(३) निकट, आसन्न ।
अभि +अञ्च +ईकन् =अभीक – यास्क अभीके वृहतात् । अभ्यक्त से अभीक हुआ है ।
(४) संग्राम ।

अभीक्ष्ण – अभि +क्षम =अभिक्षण =अभीक्ष्ण । मुहुः मुहुः (बारम्बार शश्वत् , आभीक्ष्ण, असकृत् 'क्षण' आभिमुख्य रूप से अवस्थित रहता है । अतः 'अभिक्षण' या अभीक्ष्ण कहलाया ।
क्षण (प्रकर्षेण हीनः हिंसितः कालः) क्ष्णु (तेजन) और हिंसार्थक धातु से बना है । अतः 'अभिक्षण' या अभीक्ष्ण का अर्थ क्षणमात्र सामने रहने वाला है ।
आधुनिक अर्थ–बारबार, लगातार, बहुत ।

अभीति – अभीति । अर्थ है –सब ओर से आने वाली आपत्ति ।
'विश्वा अभीती रपसो युयोधि'
ऋ. २.३३.३
(२) अभय (३) अभिमुख प्रयाण ।
'अभीतिमर्यो वनुषां शवांसि'
ऋ. ७.२१.९

अभीत्वरी – आक्रमण करने वाली सेना ।
'याः सेना अभीत्वरी'
वाज.सं. ११.७७, तै.सं. ४.१.१०.२, मै.सं. २.७.७: ८३.१५, ३.१.९:१२.१५, का.सं. १६.७, १९.१०, श.ब्रा. ६.६.३.१०.

अभीद्धघर्म – (१) सब ओर से प्रकाशित तेजोमय परम रस आनन्द स्वरूप ब्रह्म ।
'अभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत्'
ऋ. १.१६४.२६,७.७३.७,९.१०.४, नि. ११.४३.
(२) अभिदीप्त मध्यमेस्थानीय विद्युत् नामक घर्म

अभीमोदमुद् – साक्षात् प्राप्य सुखों से उत्पन्न होने वाला आनन्द ।
'अभीमोदमुदश्च ये'
अ. ११.७.२६,११.८.२८.

अभीयत् – शरण में आनेवाला ।
'अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तम्'
ऋ. १.१६४.५२, अ.७.३९.१, तै.सं. ३.१०.११.३, का.सं. १९.१४.

अभीरवः – भय रहति, मरुतों का विशेषण –सा.
(२) निर्भय–मनुष्य ।
'ते वाशीमन्त इष्मिनो अभीरवः'
ऋ. १.८७.६, तै.सं. २.१.११.२,४.२.११.२, मै.सं. ४.११.२:१६८.१, का.सं. ८.१७.
(वे मरुत् या पुरुष स्तुतियों से युक्त, हवि या स्तुति के निकट जाने वाले, इच्छावाले या प्रत्यक्ष रूप से पदार्थों को देखने वाले (इष्मिणः) एवं निर्भय हैं ।)

अभीरु – निर्भीक, भयरहित ।
'शवसानम् अभीर्वम्'
ऋ. ८.४६.६

अभीलापलप् – प्रत्यक्ष में दूसरे की बात सुनकर प्रत्युत्तर में या देखा देखी कही जाने वाली बात ।
'अभीलापलपश्च ये'
अ. ११.८.२५

अभीवर्ग – (१) शासक वर्ग ।
'अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे'
अ. ३.५.२
(२) सब ओर से घेरने वाला अन्तरिक्ष ।
'अभीवर्गात् दिवस्पती'
अ. ११.२.४
(३) रक्षा ।
'इमं राष्ट्रस्याभीवर्गे'
अ. ६.५४.२

अभीवर्त – (१) राजा का अभीवर्त स्वरूप (२) शत्रु पर आक्रमण करने में सफल राजा ।
'अभीवर्तो यथाससि'
ऋ.१०.१७४.३, अ. १.२९.३.
(३) राज्य के १९ विभागाध्याक्षों पर स्वयं २० वां होकर शासक करने वाला राजा ।

'तपो नवदशोऽभीवर्त्त सविंशः'
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.३, मै.सं. २.८.४, १०९.३, का.सं. १७.४, २०.१३, श.ब्रा. ८.४.१.१४.
(४) अभीवर्त नामक मणि, यन्त्र, ताबीज ।
(५) शत्रुओं को घेरने, अधीन राष्ट्रों को वश करने, सेना द्वारा चढ़ाई करने और क्रूरों को विनष्ट करने की शक्ति या इस प्रकार के प्रभाव वाला अभीवर्त मणि ।
'अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे'
ऋ. १०.१७४.१, अ. १.२९.१, ऐ.ब्रा. ८.१०.४.

अभीवर्तमणि – (१) रथनेमिमणि या रथचक्रमणि ।
'अभीवर्तेन मणिना'
अ. १.२९.१
पीड़त राष्ट्र की वृद्धि के लिए इसका प्रयोग बतलाया गया है । कौशिक ने –अपः सीसलोह रजत ताम्र वेष्ठित हेमनाभि रथनेमिमणि का स्वरूप बतलाया है । बीच में सोने के छल्ले या क्रम से लोहा, सीसा चांदी आदि के छल्ले लगे रहते हैं ।
(२) शत्रु स्तम्भक पुरुष । 'येन मणिना इन्द्र अभिवावृधें' (जिस मणि से इन्द्र सब प्रकार से बढ़े–समृद्ध हुए ।)
पुनः– 'न सपत्नान् अभिवृत्य पृतयन्तम् अभितिष्ठ' इसी कारण इस मणि को सपत्नक्षयण अर्थात् शत्रुनाशक कहा गया है ।
मह्यं राष्ट्राय सपत्नेभ्यः पराभुवे वध्यताम् (मेरे राष्ट्र के शत्रुओं को पराजित करने के लिए बांधा जाय, नियुक्त किया जाय)।
महाभारत में भीष्म पितामह ने भी कहा है– वद्धो स्म्यर्थेन कौरवैः।

अभीवार – अभि +वृ +घञ् =अभिवार–अभीवार । सब ओर से आच्छादन करने वाला ।
'विश्वमन्यामभीवारम्'
अ. १.३२.४

अभीवृत – (१) सर्वतः साधनों से पूर्ण । सूर्य के रथ का या पिंड का विशेषण ।
(२) पुष्ट, (३) घिरा हुआ ।
'दक्षिणाभिरभीवृतः'
ऋ. ८.३९.४

अभीवृता – (१) अभिप्रवृत्ता, अभितः व्याप्ता (चारो ओर व्याप्त), (२) अधिष्ठिता ।
'अयं सशिङ्कते येन गौरभीवृता'
ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, तै.ब्रा. २.२६०, नि.२.९.
(यह मेघ अव्यक्तध्वनि करता है जिससे मेघ से जल निकलने के समय तक विद्युत नाम्नी माध्यमिका वाक् व्याप्त होकर (अभीवृता) मेघ बनाती या जल बरसाती है ।)

अभीशुः – (१)(स्त्री) अंगुली । अंगुलियां ही किसी पदार्थ को चारों ओर से बांधती हैं ।
'दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यः'
ऋ. १०.९४.७, नि. ३.९.
लौकिक – 'अभीशुः प्रग्रेहे रश्मौ' –अमर
(२) किरण (३) घोड़े की रस्सी । (४) रश्मि । अभि + अश् + उ =अभीशु । 'अश्' के 'अ' का 'ई' हो जाता है । 'अश्' व्याप्त्यर्थक धातु है ।
(५) प्रग्रह (पगहा) । 'अभिव्याप्नोति अश्वम्' ।
'रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो
यत्र यत्र कामयते सुषारथिः
अभीशूनां महिमानं पनायत
मनः पश्चात् अनु यच्छन्ति रश्मयः'
ऋ. ६.७५.६, वाज.सं. २९.४३, तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३,१८६.३, का.सं. (अश्व).६.१., नि. ९.१६.
(जो यह सारथि रथ पर बैठा हुआ जहां चाहता है वहां वह घोड़ो को सामने ले जाता है । यह सारथि की प्रशंसा नहीं अपितु घोड़े की रश्मियों की है । अतः उन रश्मियों की प्रशंसा कर । ये रश्मियाँ मन की इच्छा का अनुसरण करती हैं)।

अभीषाट् – अभि +सह् +ण्वि =अभिवाह् (उपधा की वृद्धि, ह् का ढ् , स् का ष और पूर्व पद का दीर्घ) ।
'आनो वाज्यभी षाडेतु नव्यः'
ऋ. ७.४.८, नि. ३.३.
हमें शत्रुजेता, भयदाता नव शिशु आवे ।

अभीहि – अभियान कर, शत्रुओं का सामना कर ।
'प्रेहि अभीहि धृष्णुहि'
ऋ. १.८०.३, साम. १.४१३.

अभुजिष्ट – (१) दूसरो का पालन करने वाला, (२) जो धन उत्तमरीति से भोग नहीं करता । भुज

धातु पालन तथा भोजन अर्थों में आया है ।
'यश्च पणिरभुजिष्ठः'
अ. २०.१२८.४

अभुञ्जत् – अन्यो का पालन करे वाला- धनवान् पुरुष ।
'अध स्वप्नस्य निर्विदे
अभु ञ्जतश्च रेवतः
उभा ता बभ्रि नश्यतः'
ऋ. १.१२०.१२,
मैं आलसी तथा स्वयं ऐश्वर्य का भोग और अन्यों का पालन न करने वाले धनवान पुरुष इन दोनों से उदासीन हूं- दोनों को निकम्मा समझता हूँ (निर्विदे) । दोनों शीघ्र ही या सुखनाशक होने से (बभ्रि स्वयं नष्ट हो जाते हैं) ।

अभू – (१) असत् (२) अव्यक्त ।
'कृष्णम् अभ्वम् महिवर्पः करिक्रतः'
ऋ. १.१४०.५
(असत्, काले, पापमय, मलीन कर्माशय या मिथ्याज्ञान का विनाश करते हुए और बड़े भारी अव्यक्त (अभ्वम्) वरण करने योग्य आत्मस्वरूप को (वर्पः) भी साक्षात् कर लेते हैं (करिक्रतः)
(अन्य अर्थ)
सूर्य के प्रकाश काले, असत् अन्धकार का नाश करते हुए बड़े सुन्दर प्रकाश को प्रकट करते हैं ।

अभूत – अभवत (भवत)। लोट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग हुआ है । होओ ।
'अभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः'
ऋ. ४.३४.३, नि. ६.१६.
(हे ऋभुओ, आप सभी अग्रगामी होवें)।

अभूताम् – दोनों हुए ।
'यदेदेनमदधुः यज्ञियासो
दिविदेवाः सूर्यमादितेयम्
यदा चरिष्णू मिथुनावभूताम्
आदित् प्रायश्यन् भुवनानि विश्वा ।'
ऋ. १०.८८.११, मै.सं. ४.१४.१४,२३९.१७, नि. ७.२९.
जभी यज्ञार्ह सभी देवों ने द्युलोक में प्रातः काल सूर्य को तथा अग्नि को स्थापित किया और जभी ये दोनों साथ साथ चलने वाले सूर्य और वैश्वानर अग्नि एक जोड़े के समान प्रादुर्भूत हुए उसके बाद से ही उन दोनों को सभी जीवों ने प्रकर्ष पूर्वक देखा ।

अभूति – (१) अनिष्ट ,(२) कल्याण का विनाश ।
'पापात् स्वप्न्यात् अभूत्याः'
अ. ७.१००.१, का.श्रौ.सू. २५.११.२०.
'जागरणमभूत्यै'
वाज.सं. ३०.१७

अभूत्याः पुत्रः – चेतना या ऐश्वर्य की सत्ता के अभाव का पुत्र-स्वप्न ।
'अभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः'
अ.१६.५.३.

अभ्यूढप्रभा – तीसरा प्राण ।
'योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमा
अ. १५.१५.५

अभ्यूर्ण्वाना – अभि +ऊर्ण्वाना । आच्छादित करती हुई ।
'अभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः'
ऋ. ५.४१.१९,२० नि. ११.४.९.
सब कुछ आच्छादित करती (अभ्यूर्ण्वाना) माध्यमिका देवी अर्थात् विद्युत् प्रचुर मात्रा में एकत्रित जल से हमारे अन्नों की पुष्टि के लिए (ऊर्ज व्यस्य पुष्टेः) हमे जल दे (नः सिषक्तु) ।

अभोग् घनः – अभोक् +हनः =अभोग्घनः । एक वचन में अभोग्घन् रूप है । (१) भोजन करने तथा मृत्यु से पृथक् -दया. (२) अन्न के समान भोग्य बनकर और दब कर न रहने वाले प्राण वायु (३) किसी के अधीन होकर भोग्य और दण्डनीय न होने वाले सैनिक
'युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनः'
ऋ. १.६४.३

अम – (१) बल ।
'अमैरमित्रमर्दय'
ऋ. ८.७५.१०, साम.१.११, २.९९८, तै.सं. २.६.११.२, मै.सं. ४.११.६,१७५.१३, का.सं. ७.१७.
'द्याममेन रेजयत् प्रभूम'
ऋ. ४.२२.३
(२) मुख्य प्राण ।
'अमोऽहमस्मि सात्वम्'
अ. १४.२.७१, का.सं. ३५.१८, ऐब्रा. ८.२७.४,

श.ब्रा. १४.९.४.१९, बृ.आ.उप. ६.४.१९, आश्व.गृ.सू. १.७.६, शां.गृ.सू. १.१३.४, कौ.सू. ७९.१०,

(३) भय। इन दिनों 'अम' का अर्थ 'शीघ्रता से' या 'अल्प' है। अम धातु जाना अर्थ में प्रयुक्त होता है- जैसे अमति। सेवा करना, प्रतिष्ठा करना या भोजन करना भी इसका अर्थ है। आमयति का अर्थ है-आक्रमण करता है। रोग से आर्त कराता है या रोगी बनाता है।

(४) कच्चा, (५) रोग, (६) सेवक भृत्य (७) यह

'सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न
दिद्युत् त्वेषप्रतीका।
यमो ह जातो यमो जनित्वं
जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्
तं वः चराथा वयं वसत्याः
अस्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्।'

ऋ. १.६६.७-९, नि. १०.२१.

सेनापति के द्वारा प्रेरित सेना की तरह यह अग्नि भी दीप्तदर्शना शिखा हो (त्वेषप्रतीका) चलाने वाले के वज्र की तरह भय या बल देता है। (अमं दधाति) जिस अग्नि की ज्वाला ऐसी है वह सचमुच यम ही है। जो उत्पन्न है या उत्पन्न होने वाला है वह यम ही है। वही अग्नि कन्याओं का जार तथा स्त्रियों का पति है अर्थात् पालक है। हे अग्ने, हम ऋत्विज उस प्रज्विलित तुझ को जंगम और स्थावर हवि से (चराथा वसत्याः) उसी तरह व्याप्त होती हैं। (८) मंत्री।

अमणिः - मणिभूषणादि से रहित।

'अमणिरहिरण्यवान्'

अ. २०.१२८.९, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.१.

अमणिक - भारी रहित, दरिद्र।

'अमाणिकाः मणिच्छदः'

अ. २०.१३०.९

अमत्रः - अम +अत्रन् =अमत्रम्। अमा अस्मिन् अदन्ति (इसमें अम भोजन करते हैं।) अम वह वस्तु है जिसका निर्माण न हुआ है या जो अपरिमित हो।

(१) आक्रमण करने में कुशल।

'स्वरिरमत्रः ववक्षे रणाय'

ऋ. १.६१.९, अ. २०.३५.९, तै.सं. २.४.१४.२, मै.सं. ४.१२.२,१८१.१२, का.सं. ८.१७.

(२) पात्र।

'आमध्वो अस्मा असि चन् अमत्रम्'

ऋ. १०.२९.७, अ.२०.७६.७

पुनः-

'आमत्रेभिः सिञ्चतामद्य मन्धः।'

ऋ. २.१.१, नि. ५.१.

(सोम भरे पात्रों से आनन्दप्रद अन्न को सिञ्चित करो।)

पात्रामत्रञ्च भाजनम् - अमर नञ् +मीञ् +त्रन् = अमत्र। मीञ् धातु हिंसार्थक है।

(४) महान्। अमत्रो महान् भवति।

(५) अभ्यमित, अहिंसित।

(६) दुराधर्ष -दया. (७) अपरिमित मात्राओं से युक्त -सा. (८) साथ रहकर रक्षा करने वाला, (९) एक ही साथ रहकर ऐश्वर्य का भोग करने वाला, (१०) अपरिमित शक्तिमान परमेश्वर, अपरिमित बलशाली।

'स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः'

ऋ. १.६१.९, अ. २०.३५.९, तै.सं. २.४.१४.२, मै.सं. ४.१२.२,१८१.१२, का.सं. ८.१७.

(स्वतः प्रकाश, सबका उपदेष्टा या सबकी स्तुतियों का पात्र, दमन में परम ऐश्वर्यवान्...)

अमत्त - (१) दृष्ट या हर्षित हुआ।

(२) सुख दे। (दया.)

'अपाद्धोत्रात् उतपोत्रात् अमत्त

ऋ. २.३७.४

(ओर पोता के यज्ञ से सोमरस पीकर हृष्ट हुआ।) यह यज्ञाग्नि हमें सुख दें-

अमत्रं सख्यम् - (१) सहवासी की रक्षा करने वाला, (२) शत्रुओं को पीड़त करने वाला, असीम सख्य भाव।

'किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः'

ऋ. ४.२३.६

अमतिः - (१) अधर्मयुक्त, (२) जड़बुद्धि (३) अदम्य शत्रुसेना।

'आरे अस्मद् अमतिं बाधमानः'

ऋ. ३.८.२, मै.सं. ४.१३.१,१९९.७, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.१२, तै.ब्रा. ३.६.१.२.

(४) अन्धकार, (५) अज्ञान, (६) दारिद्रय।

'ससर्परीरमतिं बाधमाना'

ऋ. ३.५३.१५

(७) रूप, (८) तेज ।
'विसूर्यो अमतिं न श्रियम् सात्'
ऋ. ५.४५.२
(९) अविद्या, (१०) दारिद्र्य दशा ।
'निरुन्धानो अमतिम् गोभिरश्विना'
ऋ. १.५३.४, अ.२०.२१.४
(अज्ञान; अविद्या तथा दारिद्र्य दशा को रोकने वाला ।
(११) अमामयीमति, आत्ममयीमति ।
(१२) आत्म प्रकाशमयी मति ।
(जिसकी मति अमामयी अर्थात् आत्ममयी हो । अमामति के 'मा' का लोप 'पृषोदरादिवत्' हुआ है ।)
अर्थ हुआ-स्वयं सर्वज्ञता । आधुनिक अर्थ-दुष्ट प्रकृति, ठग, चन्द्रमा, अज्ञान, अचेतनता
'अभित्यं देवं सवितार मोण्योः कविक्रतुम्
अर्चामि सत्यसवं रत्नधामभिप्रियं मतिम्
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि
हिरण्यपाणिः अमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः'
अ. ७.१४.१,२, साम. १.४६४, वाज.सं. ४.२५, तै.सं. १.२.६.१, मै.सं. १.२.५,१४.४, का.सं. २.६, कौ.ब्रा. २३.८, २७.२, श.ब्रा. ३.३.२.१२, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३, शां.श्रौ.सू. ४.९.७.
पृथ्वी के क्रान्तयज्ञ, सत्यध्यनुज्ञ एवं रमणीय धन देने वाले, सभी अर्थों को बतलाने वाले (अभिमतिम्) सभी जीवों के प्रिय मैं उस सविताकी अभ्यर्चना करता हूँ जिसकी आत्म-प्रकाशमयी मति ने (यस्य अमतिः) ऊपर जाकर रश्मियों को प्रदीप्त किया और जिसने हिरण्यपाणि होकर समस्त जगत् को निर्मित किया (सवीमनि हिरण्य पाणिः अमिमीत) और जो सुकर्मा (सुक्रतुः) अपने ही सामर्थ्य से आदित्य नामक है । (कृपस्वः)
अन्य अर्थ-द्यावापृथिवी के उत्पादक (ओण्योः सवितारम्) सर्वद्रष्टा तथा सर्व कर्मा (कविक्रतुः) सत्य की आज्ञा देने वाले (सत्य सवम्), सूर्यादि रमणीय पदार्थों के कर्त्ता (रत्नधाम्) सर्वप्रिय (अभिप्रियम्) और मतिमान (मतिम्) उस पूज्य देव की अभ्यर्थना करता हूँ जिस प्रभु की स्वयं सर्वज्ञता की ज्योति (यस्य अमतिः भाः)सबसे ऊपर देदीप्यमान हो रही है । (ऊर्ध्वा अदिद्युः) और जिसके शासन में (सवीमनि) सब लोक लोकान्तर वर्तमान है । उसी तेजस्वी हाथ वाले (हिरण्यपाणिः) सुकर्मा परमेश्वर न अपनी कृपा या या सामर्थ्य से द्युलोक का निर्माण किया है (कृपास्वः अभिभीत)
(१३) कान्ति ।
'हिरण्ययीम् अमतिं याम् अशिश्रेत्'
ऋ. ३.३८.८, ७.३८.१.

अमत्री - बल शाली । अमत्र +इन् (अममिन्) =अमत्रिन् - अमत्री ।
'गम्भीरेण न उरुणा अमत्रिन्'
ऋ. ६.२४.९

अमदत् - हर्षित हुआ ।
'यत्रामदत् वृषाकपिः
अर्यः पुष्टेषु मत्सखा'
ऋ. १०.८६.१, अ. २०.१२६.१, शां.श्रौ.सू.१२.१३.२, वै.सू.३२.१७, नि.१३.४
जिन रश्मियों के सोम से पुष्ट होने पर (यत्र पुष्टेषु) सभी के सखा रूप (मत्सखा) चर एवं अचर के स्वामी (अर्यः) सूर्य (वृषाकपिः) सोमपान में हर्षित हुआ (अमदत्)

अमन् - (अमा) (१) एक साथ उत्पन्न, (२) अचेत, अबोध नन्हा, बेखबर, (३) मन के प्रतिकूल ।
'ये अम्नो जातान् मारयन्ति'
अ. ८.६.१९

अमन्तुः - सबका अपमान करने वाला, किसी को न गिनने वाला ।
'अकर्मा दस्युः अभिनो अमन्तुः'
ऋ. १०.२२.८

अमन्दः - अनल्प (अल्प नहीं) अवालिश योग्य अर्थात् विद्वान् के लिए उपयुक्त । मन्द का अर्थ मूढ या वालिश होता है ।

अमन्दस्तोम - (१) अनल्प स्तोत्र
(२) उत्कृष्ट या अनेक विद्याओं से युक्त वेद (दया.) ।
'अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा'
ऋ. १.१२६.१,नि.९.१०.
(अनल्प स्तोत्रों या उत्कृष्ट विद्याओं से युक्त वेदों को श्रद्धा पूर्वक उच्चारण या धारण करूं)।

अमन्महि - हम समझते हैं ।
'तुर्वशेषु अमन्महि'

ऋ. ८.४.१९.
(मनुष्यों को दी जाने वाली दक्षिणा के रूप में हम समझते हैं ।)

अमन्यमानः – ज्ञान रहित पुरुष
'अमन्यमानां अभिमन्य मानैः
निब्रह्मभिः अधमो दस्युमिन्द्र'
ऋ. १.३३.९.
(हे इन्द्र, तू ज्ञान रहित पुरुषों को ज्ञान करने वाले विद्वान् और वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सब प्रकार से उपदेश कर)
(२) शासन को न मानने और उत्तम मार्ग को न जानने वाला, (३) उच्छृंखल (४) अज्ञानी ।
'अमन्यमानान् शर्वा जघान'
ऋ. २.१२.१०, अ. २०.३४.१०.

अमन्वत – सममंसत-अन्तर्हित हो गयी ।

अमंसत – मानती हैं, समझती हैं ।
'नेन्द्रं देवममंसत'
ऋ. १०.८६.१, अ.२०.१२६.१, वै.सू. ३२.१७. नि. १.४, १३.४
तब वे किरणें आदित्य को अपना प्रकाशक नहीं समझतीं (अमंसत)।

अममदुः – प्रसन्न हुए ।
'प्र ये गृहादममदुः त्वाया'
ऋ. ७.१८.२१.
हे इन्द्र ! जो ऋषि तेरे साथ (त्वाया) घर पर या घर जाकर (गृहात्) सोम पीकर या यज्ञों में अत्यन्त प्रसन्न हुए (प्रअमददुः)।

अमर्त्य – (१) बिना मनुष्य के चलने वाला रथ, (२) नहीं मरने वाला शरीर रूपी रथ जब तक यह समान प्राण से युक्त है ।
'समान योजनो हि वां
रथो दस्त्रावमर्त्यः ।'
ऋ. १.३०.१८
(३) अकालमृत्यु से बचाने वाला ।
(४) अमरण धर्मा महान् वैश्वानर अग्नि, (५) अवध्यमज्ञा । (दया.)
'अपश्यम् अस्य महतो महित्वम्
अमर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु'
ऋ. १०.७९.१.
मैंने मरण धर्मा मनुष्य प्रजाओं में अमरण धर्मा महान् वैश्वानर अग्नि का महत्व देखा- (यास्क) ।
अन्य अर्थ-
मनुष्यो में अवध्य और सबसे बड़े बच्चे के महत्व को समझता हूं ।
(६) अमरण साधन हवि-सा. (७) रोग नाशक औषध हवि । (दया.)
'तुरीयं पात्रम् अमृक्तम् अमर्त्यम्'
ऋ. २.३७.४.

अमर्त्या – (१) मनुष्यों के ऊपर असाधारण उषा का विशेषण ।
'उषो देव्यमर्त्या विभाहि'
ऋ. ३.६१.२
(२) कभी नष्ट न होने वाली, नित्या ।
(३) परमेश्वरी शक्ति ।
(४) अश्विद्वय, साधारण मनुष्यों से विशेष अमर ।
'अमर्त्या हवते अश्विना गीः'
ऋ. ७.७३.१, का.सं. १७.१८.

अमर्त्यौ व्रीहियवौ – कभी न मरने वाले व्रीहि और यव । धानों से बीज और वीज से पुनः धन उत्पन्न होते हैं । अतः वे कभी नष्ट नहीं होते । कठोपनिषद् में भी कहा है
'सस्यमिव मर्त्यः पच्यते
सस्यमिवाजायते पुनः'
पुनः
'व्रीहिर्यवश्च भेषजौ
दिवस्पुपुत्रावमर्त्यौ'
अ. ८.७.२०

अमर्धनी – अहिंसक प्रजा ।
'अमर्धन्ती रूप नो यन्तु मध्वा'
ऋ. ५.४३.१

अमम्रि – कभी न मारने वाला ।
'अमम्रिर्भवामृतोऽतिजीवः'
अ. ८.२.२६

अमर्मा – (१) मर्मस्थल से रहित, (२) अति दृढ़ शत्रु ।
'त्वं शिरो अमर्मणः परान्'
ऋ. ६.२६.३

अमवत् – सहायक या सुखसामग्री से युक्त ।
'शर्म नो यन्तम् अमवत् वरूथम्'
ऋ. ४.५५.४

अमवती – (१) रोगमयी, (२) रोगकारिणी (३) अन्यो को कष्ट न देने वाली ।
'सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती'
ऋ. १.१६८.७.

अमर्मा – अज्ञान मर्मवाला ।
'अमर्मणो मन्यमानस्य मर्म'
ऋ. ३.३२.४

अमवत् – सहायक या गृह के समान ।
'तास्मिन् क्षत्रम् अमवत् त्वेषमस्तु'
ऋ. ५.३४.९

अववत्तर – अधिक बलवान् ।
'दिवश्चिदा वो अमवत्तरेभ्य'
ऋ. १०.७६.५

अमवन्तः – (१) रोगी, (२) विद्युत् की दीप्ति से युक्त बलवान् वायु
'सत्ये त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रि यासः मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ।'
ऋ. १.३८.७
जिस प्रकार विद्युत् की दीप्ति से युक्त बलवान् तीव्रगति वाले जीवों के सुख प्रद जीवनाधार होकर (रुद्रियासः) वायुगण अन्तरिक्ष या मरुभूमि में अविचल मूसलाधार वृष्टि करते हैं उसी प्रकार ये जीव के प्राणवायु भी हृदय देश में बिना वायु के आनन्दरस की वर्षा करते हैं ।

अमवान् – (१) बलवान् ।
'त्वेषासो अग्नेरमवन्तोअर्चयः'
ऋ.१.३६.२०
'रा स द्युमां अमवान् भूषति द्यून्'
ऋ. १०.११.७
(२) अमात्य सहित, (३) रोग सहित, (४) रोगभूत कर्मचारियों से सहित राजा ।
अम का अर्थ अमात्य और रोग दोनों हैं । सायण ने अमात्य सहित अर्थ किया है । दयानन्द ने तीनों अर्थ किए हैं । अमा शब्द अन्तिक और सह अर्थ में प्रयुक्त होता है । 'अमा राज्ञा सह वर्तते' (अमा के साथ राजा रहता है) ।
अमो अमनम् रोगः (शत्रुओं के लिए जो रोगवान हो)
'स्ववान् आत्मवान् स्वतन्त्रः याहि राजेव अमवां इभेन'
ऋ. ४.४.४, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १६.१५,नि.६.१२.
हे सेनापति । अमात्यवान् , रोगभूत या राज्य कर्मचारियों से परिवेष्टित राजा की तरह सैनिकों के सहित भोज्य पदार्थों वाले मनुष्य वर्गों के साथ या भवरहित हाथी पर सवार युद्ध में प्रयाम कर । (दया.)
गतभय शूर या हाथी से युक्त हो जा–
(२) सहायक पुरुषों से युक्त बलवान् के अर्थ में युक्त ।
'महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः'
ऋ. ८.२०.७

अम्बरीष – (१) अवि (शब्दार्थक) +ईषन्–अम्बरीष (रुक् का आगम) अर्थ है –शब्दविद्यावित् । (दया.)
(२) अम्बरीष नामक एक वैदिक राजा ।
'ऋज्राश्वः प्रष्टिभिः अम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः'
ऋ.१.१००.१७

अम्भः – जल ।
'अमश्च मे अम्भश्च मे'
वाज.सं. १८.४; तै.सं. ४.७.२.१, मै.सं. २.११.२,१४१.१, का.सं. १८.७.

अम्भृण – (१) पीड़ा देने वाला, (२) भयङ्कर ।
'पिशङ्गभृष्टिमम्भृणम् पिशाचिमिन्द्र सं मृण'
ऋ. १.१३३.५
पीत रंग के प्रकाश से भुनजाने वाले (पिशंग–भृष्टिम् पीड़ा), देने वाले (अम्भृणम्) देह के अवयव में व्याप्त या रक्त को चूसने वाले रोगकारी कारण को (पिशाचिम्) अच्छी प्रकार नष्ट कर (संमृण) ।

अम्यक् – इस शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाया है । यास्क ने अस्पष्टार्थ शब्दों के उदाहरण स्वरूप इसका उल्लेख किया है । इसका अर्थ 'अञ्चिता' किया है। अञ्च गत्यर्थक धातु है । (२) अभ्यक्ता भी इसका अर्थ यास्क ने किया है ।
(४) आत्मज्ञान देने वाली विद्या । (दया.) अमा आत्मनं अच्छति यथा सा अम्यक् (जिसने आत्मा को प्राप्त करते हैं) ।
'अम्यक् सा त इन्द्र सृष्टिरस्मे सनेम्यध्वं मरुतो जुनन्ति'

'अग्निश्चिद्धि ष्माते शुशुक्वा नापो न द्वीपं दधति प्रयांसि'

ऋ.१.१६९.३

हे इन्द्र, तेरी वह प्रसिद्ध वज्र नाम की शक्ति (इन्द्र ते सा ऋष्टिः) जब मेघ की ओर जाती है (अम्यक्य) तब वायु भी (मरुतः) हमारे लिए (अस्मे) चिरसंचित जल (सनेमि अम्वम्) वेग से बरसाने लगते हैं (जुनन्ति) और तेरा वज्र उसी प्रकार मेघ की ओर जाता है । जैसे आशुगामी देदीप्यमान अग्नि अनुपक्षीण काष्ठ की ओर (शुशुक्वान् अग्निः अतसे चित्) । तेरी इस शक्ति को मेघ के जल उसी प्रकार धारण करते हैं जैसे चारों ओर से इकट्ठा जल किसी टापू को

(आपो द्वीपंन प्रयांसि)-यास्क

अन्य अर्थ-हे विद्वान् । आप की वह आत्मज्ञान देने वाली विद्या हमें प्राप्त हो (ते सा अम्यक् ऋष्टिः अस्मे) जिससे मनुष्य सनातन तथा अजन्मा परमेश्वर को जानते हैं (मरुतः सनेमि अम्वं जुनन्ति) । हे विद्वन् । आप अमृतत्व प्राप्ति के लिए (अतसे) अग्नि की तरह (अग्निश्चित्) अत्यन्त शुचि या तेजस्वी हो (शुशुक्वान् हिस्म) और जैसे जल द्वीप को धारण करते हैं (आपः द्वीपं न) वैसे उत्तम अन्न आप का धारण करते हैं (प्रयांसि दधति) ।

(५) जो सरल गति से चलता है । (दया.)

(६) सर्वश्रेष्ठ और सर्वत्र व्यापक ।

अम्व्य - जल से उत्पन्न (१) जल का उत्पादक प्रकाश, (३) जलमयी ध्वनि ।

'वेति स्तोतव अम्व्यम्'

ऋ. ८.७२.५

अमा - (१) घर में ।

'अमा चैनमरण्ये पाहि रिषः'

ऋ. ६.२४.१०

(२) कच्चा बर्तन ।

'अमा कृत्वा पाप्मानम्'

अ. ४.१८.३

पुनः घर के अर्थ में -

'अमोतपुत्रका एषाम्'

अ. २०.१२७.५, शां.श्रौ.सू. १२.१४१.४

(३) एक अव्यय जिसका अर्थ आत्मा या अपना है (४) अन्तिक, (४) सह (साथ) ।

प्रचलित अर्थ-मान रहित, साथ, निकट, सूर्य और चन्द्रमा के संयोग का दिन अमावस्या , चन्द्रमा की सोलहवीं कला, आत्मा ।

'सा नो अमा सो अरणे निपातु'

ऋ. १०.६३.१६, नि. ११.५६

(वह स्वस्ति देवता, देव गोपा या मेघ हमें घर में (अमा) तथा जंगल में अरणे) रक्षा करें ।

अमाजूः - (अमाजुर्) - अमा +जुर् (१) एक साथ वृद्ध होने वाला स्त्री पुरुष, (२) पीड़ा से जीर्ण रोगी (अमया जीर्ण) ।

'अमाजुरश्चित् भवथोयुवं भगः'

ऋ. १०.३९.३

(३) रोग पीड़ा या पुत्र पौत्रादि से बूढ़ा हो जाने वाला, (४) अज्ञान (अ +मा +जुर) के साथ ही जीवन भर अज्ञानी रहकर बूढ़ा हो जाने वाला ।

'मा ते अमाजुरो यथा'

ऋ. ८.२१.१५.

(५) वह कन्या जो गृह में ही बूढ़ी हो जाती है ।

'अमाजूरिव पित्रोः सचा सती'

ऋ. २.१७.७

अमात्य - (१) साथी (२) मित्र (३) पुत्र ।

'स नो वेदो अमात्यम्
अग्नी रक्षतु विश्वतः'

ऋ. ७.१५.३, साम. २.७३१.

अमावास्य - अमा +वास्य । एक स्थान पर एकत्र होने का अवसर ।

'प्रतिक्रोशेऽमावास्ये'

अ. ४.३६.३

अमावास्या - अमा +वास्या । (१) सब के साथ विद्यमान परमब्रह्म शक्ति (२) सहवास करने वाली स्त्री ।

'अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यः'

अ. ७.७९.४

(३) अमा अर्थात् साथ में वसु रूप इन्द्र इस तिथि में रहते हैं ।

(४) एकत्र सबको आवास देने वाली ब्रह्म शक्ति

'अमावास्ये संवसन्तो महित्वा'

अ. ७.७९.१, तै.सं. ३.५.१.१,

(५) अमावास्या नाम की तिथि, जब सूर्य और

चन्द्रमा एक साथ हो जाते हैं ।

अमारत् - अमा +सद् +क्विप् =अमासत् । (१) साथ रहने वाला, (२) एक गृह में रहने वाला ।
'अमासते वहसि भूरिवामम्
उषो देवि दाशुषे मर्त्याय ।'
ऋ. १.१२४.१२,६.६४.६.
हे उषः । साथ रहने वाले दानशील सूर्य को (अमासते दाशुषे मर्त्याय) तू बहुत उत्तम ऐश्वर्य धारण कराती है ।
अथवा
हे विदुषि कन्ये । अपने साथ या एक गृह में रहने वाले अमासते) अन्न, वस्त्र अपने पुरुष को तू भी बहुत ऐश्वर्य प्राप्त करा ।

अम्बा - (१) माता, (२) पृथिवी, (३) जगत् की माता स्वरूप परमात्मा (४) सब को परमोपदेश देने वाली शक्ति ।
(५) अम्बा नाम की एक जड़ी-औषधि ।
'अम्बे अम्बिके अम्बालिके
न मानयति कश्चन'
वाज.सं. २३.१८,श.ब्रा. १३.२.८.३.
(६) शिक्षा देने वाली, आचार्याणी । (या अम्वयति अध्याप्रयति सा -(दया.)
'प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि'
ऋ. २.४१.१६.
(७) व्यापक शक्तिमती माता ।
'उवे अम्ब सुलाभिके'
ऋ. १०.८६.७, अ. २०.१२६.७
(८) 'अलं भवति' अर्थात् बालक के लिए माता अलं होती है अथवा 'अम्बा अस्मै बलं भवति' (अम्बा ही बालक का बल है) ।
अम्मा शब्द अम्बा का ही अपभ्रंश है । इसी अम्बा से माता वाचक अनेकों शब्द बने हैं ।

अम्बालिका - (१) माता, (२) प्रपिता-मही, (३) पृथिवी ।
'अम्बे अम्बिके अम्बालिके'
वाज.सं. २३.१८

अमित - (१) अपरिमित, (२) अपराजित ।

अमितक्रतु - अनन्त ज्ञान और कर्म-सामर्थ्य से युक्त ।
'गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः'
ऋ. १.१०२.६

अमित्रखादः - शत्रुओं का नाशक ।
'अमित्रखादो अद्भुतः'
ऋ. १०.१५२.१.

अमित्र - नञ् +मित्र =अमित्र ।
'अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्'
ऋ.१०.८९.१५, १०३.१२, साम. २.१२११, वाज.सं. १७.४४, नि.९.३३.
(शत्रु घोर अन्धकार से संश्लिष्ट हों)

अमित्रदम्भवः - शत्रु का नाश करने में समर्थ
'द्युमां अमित्रदम्भनः'
ऋ. ४.१५.४
(२) शत्रुओं का नाशक वृहस्पति ।
'बृहस्पते भीममित्र दम्भनम्'
ऋ. २.२३.२

अमित्रयुः - शत्रु रूप से आचरण करने वाला ।
'मा साममित्रयुर्जनः'
अ. २०.१२७.१३, शां.श्रौ.सू. १२.१५.१.४.

अमित्रसाहः - शत्रुओं का पराभव करने वाला ।
'अमित्रसाहोअस्तृतः'
अ. १.२०.४

अमित्रहा - शत्रुओं को दण्ड देने वाला, नष्ट करने वाला-इन्द्र ।
'या त ऊतिःअमित्रहन्'
ऋ. ६.४५.१४

अमित्राः - (१) शत्रुवर्ग, (२) काम क्रोधादि शत्रुगण ।
'अभिब्लग्य यत्रहता अमित्रा'
ऋ. १.१३३.१
(जहां शत्रु लोग आक्रमण कर मारे जायें)

अमित्रायुध - शत्रुओं पर अस्त्र प्रहार करने में कुशल पुरुष ।
'अमित्रायुधो मरुता मिवप्रयाः'
ऋ. ३.२९.१५

अमित्रिन् - जिसे मित्र न हो, सब का शत्रु ।
'मा कस्मै धातमभ्य मित्रिणे नः '
ऋ. १.१२०.८
आप लोग हमें किसी भी मित्र जनों से रहित सबके शत्रु, स्नेह शून्य, अकारण बैरी पुरुष के स्वार्थ के लिए कभी न धरें या उसको हमारा पता न दें ।

अमिथित - अनाक्रुष्ट, अनुक्त (बिना बोले) । 'मिथ'

धातु आक्रोशन अर्थ में आता है । शालों में थनकः (शाल बोलने वाला होता है) । मिथ का अर्थ-संग करना, मिलना, संयोग करना, स्त्री पुरुष सहवास, हिंसा करना, चोट पहुँचाना, हत्या करना समझना, देखना, जानना और वितण्डावाद भी होता है ।

'को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते'

ऋ. ८.४५.३७, तै.आ. १.३.१, नि.४.२.

हे मनुष्यों ! कौन ऐसा सखा है जिसने बिना बोले या छेड़े दूसरे सखा से बोला या छेड़ा हो । यह कौन मर्यादा है (को न मर्या) कि अपापी को मारा जाय । भला कौन ऐसा अपापी है जो हम से डर कर भागे (अस्मद् ईषते)धर्मज्ञ को मारना मर्यादा नहीं है ।

(२) जिसे अनादर युक्त वचन नहीं कहा गया हो, छेड़ा नहीं गया हो ।

अमिनः - (१) बलवान् शत्रुहन्ता

'आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रः'

ऋ. १०.११६.४

(२) सहायक वर्ग का स्वामी, (३) शत्रु का पीड़क, (४) प्रजा का अहिंसक ।

'उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः'

ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, का.सं. ४.८, मै.सं. १.३.२५:३८.१२, श.ब्रा. ४.३.३.१८

(५) अतिमात्र महान् अभ्यमित, यस्य मात्राणां सानं न भवति (जिसकी मात्राओं का कोई हिसाब नहीं है) माङ् धातु मापना अर्थ में आया है ।

'न मितः अमितः अमिनः अपरिमाणः'

(६)अनभिहिंसितं (जो किसी से हिसिंत न हो) । वधार्थक मा +नक् =मिन । न मिनःअमिनः (७) दुराधर्ष । -(दया.)

अमिनत् - व्रत भंग न करने वाला शिष्य ।

'अमिनते गुरुं भारं न मन्म'

ऋ. ४.५.६

अमिनती - (१) विनाश न होने देती हुई ।

'अमिनती दैव्यानि व्रतानि'

ऋ. १.९२.१२, १२४.२

(प्रातः प्रभा उषा देव परमेश्वर सम्बन्धी उपासना आदि व्रतों का विनाश न होने देती हुई...)

(२) एक दूसरे को पीड़त न करते हुए द्यावापृथिवी , स्त्री पुरुष, वर वधू ।

'अमिनती तस्थतु रुक्षमाणे'

ऋ. ४.५६.२

(३) लोप न करती हुई ।

'अमिनती दैव्यानि व्रतानि'

ऋ.१.९२.१२,१२४.२

देव परमेश्वर सम्बन्धी व्रतों उपसना आदि कर्मों का लोप न करती हुई ।

अमिनात् - मिनाति हिनस्ति (नापता या नष्ट करता है) । यहां लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग है ।

'यं नु नकिःपृतनासु स्वराजं
द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्
इनतमः सत्वभिः यो ह शूषैः
पृथुज्रया अमिनात् आयुर्दस्योः'

ऋ. ३.४९.२

युद्धो में चमकते हुए अश्वारूढ़ मनुष्यों के नेता सर्वथा बल युक्त एवं अजेय जिस इन्द्र को कोई भी जीत नहीं सकता वह प्रसिद्ध ईश्वरतम (नु इनतमः) वह सत्त्व संयुक्त बलों से (सत्वभिः शूषैः) युद्ध में तीव्र वेग से जाते हुए (पृथुज्रयाः) शत्रु, मेघ या वृत्रासर की आयु कम करते या समाप्त करते हैं ।

अन्य अर्थ-जिस स्वराट् उत्तम नेता घुड़सवार को युद्धों में शस्त्र अस्त्र दोनों द्वारा (द्विता) कोई नहीं जीतता और जो अति समर्थ, अति वेग वान् शूर मनुष्यों द्वारा दुष्ट मनुष्य की आयु या योजना को नष्ट करता है उसे इन्द्र या राजा समझो ।

अनिमिषत् - कभी आख न झपकने वाला, सदा सावधान, कर्तव्य पथ पर दृष्टि रखने वाला ।

अमिमीत - (१) निर्मितवान् (बनाया)

(२) हिंसित करता है, ठुकराता है, टालता है

'उशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम्'

ऋ. २.४.५

वह अग्नि मेधावियों के निमित्त या सूर्य की कामना करने वाले ऋत्विजों के लिए (उशिग्भ्यः) वर या प्रार्थना को हिंसित नहीं करता (न अमिमीत) ।

वह विद्वान् तुम इच्छुकों के वर को नहीं टालता (न अमिमीत) । (दया.)

अभिष्टय – एक वचन में 'अभिष्टि' प्रजाएं
'समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः
ऋ. १.५२.४
सब प्रकार की कामना वाली अपनी प्रजाएं ।

अम्बिः – (१) जीवन की रक्षा करने वाली जल । धारा, (२) शरीर में रक्त या प्राण की धारा ।
'अम्बयो यन्ति अध्वभिः
जामयो अध्वरीयताम्
पृञ्चतीर्मधुना पयः ।'
ऋ. १.२३.१६. अ. १.४.१, ऐ.ब्रा.२.२०.१९, कौ.ब्रा. १२.२.
(जीवन की रक्षा करने वाली जल धाराएं शरीर में रक्त या प्राण की धाराएं, भगिनियों या बन्धुओं के समान (जामय) अपने अहिंसित जीवन को चाहने वाले हम जीवों के मार्गों से (अध्वरीयताम् अध्वभिः) मधुर गुणों से युक्त पुष्टि कर रस को युक्त करती हुई गति करती है ।)

अम्बिका – (१) माता , (२) पृथिवी ।
'सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व'
वाज.सं. ३.५७, तै.सं. १.८.६.१, मै.सं. १.१०.४: १४४.१, १.१०.२०,: १६०.५, का.सं. ९.७, ३६.१४, श.ब्रा. २.६.२.९, तै.ब्रा. १.६.१०.४, आप.श्रौ.सू. ८.१८.१
(३) एक जड़ी ओषधि ।

अम्बितमा – (१) अध्यापन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ (२) सबसे अधिक पूजायोग्य ।
(३) या अम्बते अध्यायति ।–(दया.)
'अम्बितमे नदीतमे'
ऋ. २.४१.१६, ऐ.ब्रा. ५.४.१०, आश्व. श्रौ.सू. ७.११.२२.

अमीमेत् – शब्दयति (शब्द करता है । 'मी' धातु का अर्थ शब्द करता है । लट् (वर्तमान) अर्थ में लङ् का प्रयोग है । हिन्दी मिमियाना का प्रयोग होता है ।
'गौरमीमेत् अनुवत्सं मिषन्तम्'
ऋ. १.१६४.२८, अ. ९.१०.६, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व. श्रौ.सू. ४.७.४, नि.११.४२.
माध्यमिका वाक् (गौः) सूर्य को (वत्सम्) बछड़े के समान गौ के लिए तरसते देख (मिषनाम्) भोंकरती है अर्थात् बोलना सुन कर बोलती है (अनु अमीमेत्) ।
अन्य अर्थ–मेघ गौ वृष्टि रूपी क्षीर के अभाव से निमीलिताक्ष भूलोकरूपी वत्स को देख शब्द करती हैं । यास्क ने अनिमिषन्तम का अर्थ सूर्य किया है । पर स्वामी दयानन्द ने 'निमिषन्तम्' का अर्थ निमिलिताक्ष भूलोक किया है जो वृष्टि के बिना मेघ के लिए तरसता है ।

अमीवचातनम् – अमीव (रोग) +चात +ल्युट =अमीवचातनम् । रोग को दूर करने वाला ।
'द्युमद् अमीव घातनम् रक्षोहा'
ऋ. ७.८.६

अमीव चातनः – रोगों को दूर करने वाला वैद्य ।
'विप्रः स उच्यते भिषग्
रक्षोहामीवचातनः'
ऋ. १०.९७.६

अमीवचातनीः – रोग कारणों को नष्ट करने वाली ।
'आपो अमीव चातनीः'
ऋ. १०.१३७.६

अमीवहन् – अमीव +हन् +क्विप् =अमीवहन् । रोग हन्ता ।
'अमीवहा वास्तोष्पते
विश्वा रूपाणि आविशन् ।
सखा सुशेव एधि नः ।'
ऋ. ७.५५.१, मै.सं. १.५.१३: ८२.११, शां.गृ. सू. ३.४.८,
हे गृह पालक (वास्तोष्पते) या अन्तरिक्ष या स्वास्थ्य प्रदवायु ! आप रोगों के नाशक हैं । अतः अनेकों रूप धारण कर हमारे रोगों या उपद्रवों को नष्ट करते हुए हमारे मित्र होकर सुन्दर सुख देने वाले हो ।

अमीवहाः – रोगों या दुःख दायी कारणों को नष्ट करने वाला–सोम, (२) परमेश्वर (३) शक्र ।
'गयस्फानो अमीवहा वसुविद् पुष्टिवर्धनः'
ऋ. १.९१.१२
हे सोम, तू प्राणों, ऐश्वर्यों एवं पशुओं को बढ़ाने वाला, (गयस्फाणः) रोगों को नष्ट करने वाला (अमीवहा), प्रजाओं को ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला तथा पुष्टिप्रद है ।

अमीवा – रोगभूत या रोगोत्पादक कृमि । 'अम' रोग अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । अम +ईवन् =अमीवन् (निपातन नियम से) या अमा +व

=अमीव (निपातन से) या अम +वन् + टाप् =अमीवा ।
'यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्याद्रमनीनशत् ।'
ऋ. १०.१६२.२, अथर्व २०.९६.१२, नि. ६.१२.
पुत्र कामना के लिए बड़ाहुत नामक स्थालीपात्र में विनियुक्त । मंत्र का देवता गर्भस्राप प्रायश्चित है । अतः इसमें गर्भस्राव से रक्षा का उपाय है । हे स्वामी । अर्शनाम का या किमि नाम का रोग (दुर्णामा अमीवा) तेरी योनि में आकर गर्भ में निवास करता है (गर्भ शये) । उस आम (कच्चा) मांस-खाले और गर्भ गिराने वाले रोग को (क्रव्यादम्) ब्रह्म के साथ अग्नि जड़ से नष्ट कर दे. ।
अन्य अर्थ-जो रोगोत्पादक दुर्णामा क्रिमि तेरे गर्भस्थान में वर्तमान है अग्नि उस मांस स्नेही क्रिमि को वैद्य के साथ (ब्रह्मणा सह) निःशेष करे ।

अमुञ्चतम् - मोचितवन्तौ । छुड़ाया, उन्मुक्त किया ।
'अजोहवीत् अश्विना वर्तिकावाम्'
ऋ. १.११७.१७, नि. ५.२१.
यास्क के मन से अश्वनी कुमारों ने सूर्य द्वारा ग्रस्त उषा को सूर्य से छुड़ाया । सायण के अनुसार चटक पक्षी की स्त्री वर्तिका को वृक ने पकड़ लिया था । उसी वृक के पञ्जे से अश्विनी कुमारों ने छुड़ाया ।
(हे अश्विनी कुमारो । तुम दोनों की नर्तिका नाम्नी पक्षी या उषा ने पुकारा ।)

अमुतः - उधर से ।
'इत आ जातो अमुतः कुतश्चित्'
ऋ. १.१७९.४.
लोपामुद्रा काम उत्पन्न होने पर कहती-है न जाने यह काम मेरे शरीर से उस अगस्त्य के शरीर से या और कहीं से आया ।

अमुत्र - (१) दूसरा लोक ।
'अयं मामुत्र गादितः'
अ. ८.१.१८
(२) भविष्य काल में, पीछे ।
'अमुत्रैनम् आगच्छतात्'
अ. ९.३.१०

अमुत्रभूय - परलोक या परकाल में होने वाला ।
'अणुत्रभूयात अधियत् यमस्य'
अ. ७.५३.१, वाज.सं. २७.९, तै.स. ४.१.७.४, मै.सं. २.१२.५,१४९.१०, का.सं. १८.१६, तै.आ. (आंध्र) १०.४८.

अमुत्रभूयात् - अमुत्र +भूयात् । परलोक या परकाल में होने वाला । उन्वट के अनुसार यह दो पद हैं ।

अमुथा - जैसा यह है वैसा (यथा असौ) । अमु +थाल् (प्रकार भेद या उपमा बतलाने के लिए) =अमुथा ।

अमुर - अमर, परमात्मा ।
'अर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर'
अ. ५.१.९

अमुषिता - वह सेना जिसका दिल चुराया नहीं गया है-जिसने साहस नहीं छोड़ा हो ।
'अजीतामुषिता पुरः'
अ. १.२७.४

अम्बु - अरणशील, जल ।

अम्बुद - अम्बु +दा +ड =अम्बुद । जल देने वाला, मेघ ।

अमूर - अमूढ, विद्वान् ज्ञानी, अग्नि या परमात्मा का विशेषण ।
'मूरा अमूरा न वयं चिकित्वो
महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से
शये वव्रिश्चरति जिह्वया दन्
रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्'
ऋ. १०.४.४, नि. ६.८.
हे अमूढ़ चेतनावान् अग्नि, हम मूढ़ भला तेरा माहात्म्य क्या समझें, तू ही अपना माहात्म्य जानता है और तेरा आहवनीय अग्नि नाम का विशेषात्मा (वव्रिः) हस्त परिमित स्थान में ज्वाला से हवियों को खाता हुआ (जिह्वया अदन्) । जलता रहता है (चरत्रि) मानों वह विश्वपति होकर आहुति रूपी युवति को अत्यन्त प्रेम से खाता है ।
अन्य अर्थ-हम विद्यार्थी मूढ़ हैं । हम मित्र वनस्थ (अमूर अंग अग्ने) आप इसका महत्त्व जानते हैं । वरण किए हुए आप वव्रिः) वाणी द्वारा शिक्षा देते हुए (जिह्वया अदन्) अपने आश्रम में (शये) विचरते हैं । ब्रह्म से मिलाने

वाली ब्रह्मविद्या का (युवतिम्) निरन्तर आस्वादन करते हैं ।

अमृक्त – (१) अनुपभुक्त, (२) अपरियुक्त

'श्रव आपन्नमृक्तम्'

ऋ. ६.१.४.

(दूसरों से अनुपयुक्त यश पाते हैं)

(३) रोगनाशक –दया.

'तुरीयं पात्रम् अमृक्तम् अमर्त्यम्'

ऋ. २.३७.४.

वह इन्द्र अपरिभुक्त (अमृक्तम्) एवं अमरण –साधन (अमर्त्यम्) चतुर्थ पात्र में रखे सोम को (तुरीयम् पात्रम्) पीयें ।

चौथी अकाल मृत्यु से बचाने वाला (अमर्त्यम्) रोग–नाशक औषध हवि का पान करे (अमृक्तम्)–(दया.)

(४) अहिंसित –सा. (५) अमर –(दया.)

'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः
श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि
भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ।'

ऋ. ६.१.४, मै.सं.४.१३.६,२०६.११, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६. १०.२, नि. ४.१९.

जो पूज्य अग्नि के अमृत पद को भक्ति भाव से देखते हुए सर्वप्रसिद्ध परमात्मा की इच्छा रखने वाले (श्रवस्यवः) उस प्रख्यात आत्मा को प्राप्त करते हैं (श्रवः आपत्) और उस प्रभु के शुद्ध बुद्ध मुक्त मित्र वरुण आदि प्रशंसनीय नामों को (यज्ञिया नि ननामानि) धारण करते हैं वे भद्र संदर्शन मे रमण करते हैं अर्थात् उन्हे अभद्र के दर्शन नहीं होते ।

(५) पवित्र ।

अमृक्ता – (१) रज आदि से युक्त स्त्री, (२) अहिंसिता ।

'ऋतेन देवीस्मृता अमृक्ता'

ऋ. ४.३.१२.

अमृक्ते – (१) विकारावस्था से अशुद्ध (२) कामनायुक्त (३) अतिशुद्ध (४) खूब अलङ्कृत ।

'आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते'

ऋ. ३.६.४,

अमृत – (१) पूर्ण सौ वर्ष की आयु ।

'सं नह्यस्वामृताय कम्'

अ. १४.१.४२

(२) जल, (३) विषम रस या विषम विज्ञान ।

'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथाऽभिस्वरन्ति'

ऋ. १.१६४.२१, अ. ९.९.२२, नि. ३.१२.

(४) अमरणधर्मा, (५) देन, (६) रोगनाशक औषधि ।

वाचस्पत्य कोष में अमृत औषध को कहा गया है ।

'अनिमेषम्' जिसमें जल के अर्थ में अमृत शब्द का प्रयोग है ।

देव अर्थ में प्रयोग–

'वनस्पते रशनया नियूया
पिष्टतमया वयुनानि विद्वान्
वहा देवत्रा दिधि षो हवींषि
प्रच दातारम् अमृतेषु वोचः'

मै.सं. ४.१३.७:२०९.१, का.सं. १८.२१, तै.ब्रा. ३.६.१२.१, नि. ८.२०.

हे वनस्पते ! अत्यन्त दृढ़ एवं सुरूप ज्वाला से निबद्ध कर अपने अधिकार में प्रयुक्त प्रज्ञानों को जानता हुआ (वयुनानि विद्वान्) इन मेरी दी हुई हवियों को, इस यजमान को अभिमत फल देने के लिए देवों के निकट ले जा तथा इस दाता यजमान का निर्देश देवताओं से कर (दातारं च अमृतेषु प्रवोचः)

(७) मोक्ष ।

'न मृत्यु रासीत् अमृतं न तर्हि'

ऋ. १०.१२९.२

(उस प्रलयावस्था के समय न किसी की मृत्यु थी और न किसी का मोक्ष ।)

अमृत गर्भ – अमृत अर्थात् अमर आत्मा के गर्भ में छिपा–स्वप्न ।

'देवानाम् अमृतगर्भोऽसि स्वप्नः'

अ. ६.४६.१

अमृतबन्धवः – अमृत अर्थात् अविनाशी जीवन से बन्धे हुए जीवगण ।

'तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृत बन्धवः'

ऋ.१०.७२.५.

अमृतस्यधारा – (१) सत्यज्ञान मय वेद विद्या की वाणी, (२) सत्य व्यवहार को धारण करने वाली विद्या ।

'आ यः ससाद धारामृतस्य'
ऋ. १.६७.७

अमृतस्यनाभिः – अन्न, ऐश्वर्य एवं दीर्घ जीवन का आश्रय –अग्नि या परमेश्वर , (२) परमानन्द का आश्रय ।
'देवा अकृण्वन् अमृतस्य नाभिम्'
ऋ. २.४०.१,३.१७.४ तै.सं. १.८.२२.५, मै.सं. ४.११.२: १६३.१५, ४.१३.५: २०५ .१४, का.सं. ८.१७,१८.२१, तै.ब्रा. ३.६.९.१.
(३) वृष्टिजन्य अमृत जल का कारण–सूर्य ।
'जिह्वा देवानाम् अमृतस्य नाभिः'
ऋ. ४.५८.१, वाज.सं. १७.८९, मै.सं. १.६.२, ८७.१४, का.सं.४०.७, तै.आ. १०.१०.२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, महा.ना.उप. ९.१२.
औषधियों के रस का आस्वादन सूर्य की किरणों की ही जिह्वा करती है। वह सूर्य वृष्टिजन्य जल रूपी अमृत का कारण है ।
(४) अमृतमय मोक्ष स्वरूप प्रभु को बांधने वाला प्रेम, (५) प्रजासन्तति को बांधने वाला आश्रय –गृहस्था श्रम ।
'आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम्'
ऋ. ५.४७.२ .

अमृतस्यपत्नी – कभी न विनष्ट होने वाली सत्य सिद्धान्त या निर्णय का पालन करने वाली, (२) दीर्घायु पति की पत्नी ।
'कुहूर्देवानाम् अमृतस्य पत्नी'
अ.७.४७.२, तै.सं.३.३.११.५, मै.सं. ४.१२.६, १९५.१०, का.सं. १३. १६, आश्व. श्रौ.सू. १.१०.८, शां.श्रौ.सू.९.२८.३

अमृतस्य लोक – (१) पूर्ण आयु का जीवन, (२) वाम नासा का प्राण अमृत और दक्षिण नासा का सूर्य है, (३) प्रजा का वीर्य द्वारा उत्पन्न करना अर्थात् गृहस्थ करना अमृत का लोक है ।
'सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके'
अ. ८.१.१
'प्रजामनुप्रजायसे तदुते मर्त्यामृतम्'
तै.ब्रा. १.५.५.६, आप.श्रौ.सू. ८.२१.१, आप.ध.सू. २.९.२४.१.
'एतद्वै मनुष्यस्य अमृतत्वम् यत्सर्वमायुरेति'
श.ब्रा. ९.५.१.१०
'अथ य एवं शतं वर्षाणि यो वा भूयांसि जीवति
'स हैवैतत् अमृतमाप्नोति'
श.ब्रा. १०.२.६.८
'एत उ वाव लोकाः यदहोरात्राणि अर्द्धमासाः मासाः, ऋतवः, संवत्सरः'
श.ब्रा. १०.२.६.७
'अमृतम् उ वै प्राणाः'
श.ब्रा. ९.३.३.१३
'प्रजापतिर्वा अमृतः'
श.ब्रा. ६.३.१.१७
ते देवा होचुः नाते परः कश्चन् सह शरीरेण अमृतोऽसत् । यदैव त्वम् एतं भागं हरासा अथ व्यावृक्ष । शरीरेण अमृतोऽसत् । यो अमृतो असद् विद्या वा कर्मणा वा
(४) जल का लोक ।
'आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकम्'
ऋ. १०.८५:२०, अ.१४.१.६१, साम.मं.ब्रा.१.३.११, नि.१२.८.
(हे सूर्ये । रथ पर सवार हो जल के लोक में जा ।)

अमृता – (१) अमरण शीला, (२) उषा का विशेषण या एक नाम (३) अमृत स्वरूपा सरण्यू
'अपागूहन् अमृतां मर्त्येभ्यः
ऋ. १०.१७.२, अ. १८.२.३३, नि. १२.१०.
(राशियों ने उषा को मनुष्यो के लिए उद्भासित किया)
ईश्वरीय नियमों ने अमृतस्वरूप पूर्वकालीन सरण्यू को मनुष्यों से छिपा दिया ।
(४) अमर चेतना शक्ति, (५) अमरधर्मा देव ।
(६) सूर्य की किरणें ।
'यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै'
ऋ.७.६३.५.
(जिस अन्तरिक्ष में अमरधर्मा पूर्वकालीन देवों ने (अमृताः) इस सूर्य के लिए मार्ग बनाया (गातुचक्रुः)। अथवा, जब सूर्य की रश्मियां (अमृताः) इन मनुष्यो के लिए गमन करती हैं ।

अमृत्युः – मृत्यु रहित ।
'अश्रमणा अश्रथिता अमृत्यवः'
ऋ. १०.९४.११

अमृते – उषा और रात्रि का विशेषण। उषा रात्रि कभी मरने वाली नहीं है ।
'समानबन्धू अनृते अनूची'

ऋ. १.११३.२, साम.२.११००, नि.२.२०
(उषा और रात्रि के सूर्य समान रूप से बन्धु हैं । वे दोनों अमृत हैं तथा एक दूसरे का अवसरण करने वाली हैं ।)

अमृध्रु – (१) नञ् +मृध् +रक् =अमृधु । गीला न करने वाला
'त्यं चिद्घा दीर्घं पृथुं
मिहो नपातममृध्रम्
प्रच्यावयन्ति यामभिः ।'
ऋ. १.३७.११
(वृष्टि के सेवन करने वाले पवन अपने शीघ्र वेगों से (यामभिः) लम्बे चौड़े बड़े भारी जल न गिराने वाले (नपातम्) भूमि को जल से न गीला करने वाले मेघ (अमृध्रम्) के भी जल को गिरा देते हैं । (प्रच्यावयन्ति) ।

अमृध्र – (१) प्रजा की हिंसा न करने वाला, अहिंसक, दयालु ।
'ग्ना वसान ओषधीरमृध्रः'
ऋ. ५.४३.१३
(२)मंगलमय, (३) अहिंसित, (४) अमर (५) अहिंसनीय, (६) दृढ ।
'चित्रसेना इषुबला अमृध्राः'
ऋ. ६.७५.९, वाज.सं. २९.४६, तै.सं. ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३: १८६.४, का.सं.(अश्व) . ६.१.

अमृध्रा – अविनाशी
'शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्'
ऋ. ६.२२.१०, अ.२०.३६.१०

अम्भृण – (१) सोम-सवन में प्रयुक्त अम्भृण नामक पत्र, (२) प्रजा- पालन का कार्य ।
'कुम्भीभ्याम् अम्भृणौ सुते'
वाज.सं. १९.२७

अमेनः – स्त्री-रहित पुरुष (नास्ति मेना स्त्रीः यस्य सः) अस्त्रीक ।
'अमेनांश्चित् जनिवतः चकर्थ'
ऋ. ५.३१.२, नि.३.२१.
(हे इन्द्र, तू स्त्री-रहित स्तोताओं को भी (अमेनान् चित्) प्रजनन कर्म में समर्थ या स्त्री युक्त करता है (जनिवतः चकर्थ) ।

अमेनिः – निरस्त्र बिना हथियार का ।
'मेन्द्रा मेनिरस्यमेनयः ते सन्तु'
अ. ५.६.९

अमेहयन् – बरसवाते हैं या पुरीष और मूत्र का उत्सर्ग करवाते हैं । 'मिह्' धातु पेशाब करना अर्थ में आया है । बरसाना अर्थ में भी इसका प्रयोग है ।
'अमेहयन् वृषभं मध्य आजेः'
ऋ.१०.१०२.५, नि. ९.२३

अमोक्य – कभी न छूटने वाला ।
'मृत्योः पाशैरमोक्यैः'
अ. ३.९.५

अमोत – (१) अमा +उत =अमोत । घर में बुना हुआ वस्त्र, (२) स्वतः प्राप्त यह शरीर ।
'अमोतं वासो द्वयात्'
अ.९.५.१४

अय – जूए का पाशा ।
'अयेभ्य कितवम्'
वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.

अयक्ष्म – (१) यक्ष्मादि रोग से रहित ।
'अयक्ष्मं सुमना असत्'
वाज.सं. १६.४, तै.सं. ३.२.८.६,४.५.१.२, का.स. १७.११,नील.उप. ६ .
(२) रोग रहित ।
'इमा आपः प्र भराम्यक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः'
अ. ३.१२.९, ९.३.२३

अयक्ष्मंकरणीः – राजयक्ष्मादि रोगों को नहीं उत्पन्न करने वाले जल ।
'अयक्ष्मंकरणीरपः'
अ.१९.२.५

अयक्ष्माः – रोग-रहित ।
'अयक्ष्मा बृहतीरिषः'
ऋ.९.४९.१, साम.२.७८५

अयज्ञसाच् – यज्ञ या परस्पर सत्संग को नहीं प्राप्त करने वाला ।
'अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः'
ऋ. ६.६७.९

अयज्युः – (१) संगरहित, (२) कर न देने वाला, (३) संधि न करने वाला, (४) यज्ञ नहीं करने वाला ।
'शासस्तमिद्र मर्त्यम् अयज्युम् शवसस्पते'
ऋ. १.१३१.४, अ. २०.७५.२
(५) विषय में संग न करने वाला
(६) वीर्यदान करने में असमर्थ

'अपि कर्तम् अवर्तयः अयज्यून्'
ऋ. १.१२१.१३
(और उन्हे यज्ञ करने या वीर्य - दान करने में असमर्थ या वृद्धावस्था से अशक्त (अयज्युम्) कर देता है ।)

अयजः- संगत करता है ।

अयत - असंयमी, अब्रह्मचारी ।

अयथम् - असाधारण रूप में ।
'गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत्'
ऋ. १०.२८.१०

अयनम् - (१) गमन, (२) परम चरम उद्देश्य रूप आश्रय ।
'अङ्गिरसामय नं पूर्वो अग्निः'
अ. १८.४.८

अयनम् -इच्छामानाः आप-(१) स्थान या शरण चाहने वाले प्रजागण, (२) विशेष अधिकार चाहने वाले समीपतम आप्त पुरुष ।
'आयन् आपोऽयनम् इच्छमानाः'
ऋ. ३.३३.७

अयनः - (१) मार्ग से जाता हुआ (२) उत्तरायण, दक्षिणायन नामक सूर्य का मार्ग ।
'अयनाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७

अयभ्या - अ +यभ् +यत् +टाप् । जो मैथुन योग्य न हो ।
'अयभ्या कन्या कल्याणी'
अ.२०.१२८.८ शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.३.

अयम् - सन्निकृष्टि अर्थ में इदम् शब्द का प्रयोग होता है । इसी के प्रथमा एकवचन का यह रूप है । अर्थ-यह निकट वर्ती पदार्थ ।
'इदमस्तु सन्निकटे समीपतटवर्ति चैतदो रूपम्
अदसस्तु विप्रकृष्टे तदिति परोक्षे विजानीयात् ।

अयमस्मि - मैं अपराधी हूं, उपस्थित हूं, शरणागत हूं, सेवक हूं ।
'ब्रवीतु सर्वो यातुमान् अयमस्मीत्येत्य'
अ. १.७.४

अयमानः - आगे बढ़ता हुआ ।
'मनोजवा अयमानः'
ऋ. ८.१००.८

अयः - (१) पहुंच गया । 'या' (जाना) का लुङ् प्रथमा मध्यम पुरुष एक वचन में ।
'मेषो भूतोऽभियन्नयः'
ऋ.८.२.४०, नि. ३.१६.
(रूप या भेड़ की तरह समीप जाता हुआ तू पहुंच गया)
(२) क्षात्रबल को प्राप्त करने और चलाने वाला पुरुष
'हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा'
ऋ. ५.६२.७

अयस् - (१) गति, प्रगति, आगे बढ़ना ।
'प्रयद् धिये प्रायसे मदाय'
ऋ. ४.२१.७
(२) लोहा ।
'अय स्थूण'

अयःशया - अयस् में या निम्नश्रेणी की प्रजाओं में प्रसुप्त रूप से विद्यमान परमेश्वर या राजा की व्यापक शक्ति ।
'विश एतद् रूपं यदयः'
श.ब्रा. १३.२.२.१९
'भूलोकस्य रूपम् अयस्मय्य'
तै.सं. ३.७.९.४
'या ते अग्नेऽयः शया तनूः वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा'
वाज.सं. ५.८,श.ब्रा: ३.४.४.२३

अयसः - कर्म करने वाले कर्मण्य पुरुष ।
'येन कर्माण्यपसो मनीषिणः ।'
वाज.सं. ३४.२

अयस्ताप - लोहे को तपाने वाला लोहार ।
'मन्यवेऽयस्तापम्'
वाज.सं. ३०.१४, तै.ब्रा. ३.४.१.१०.

अयस्पात्र - अयस् +पात्र । लोहे का बर्तन ।
'आसीदयस्पात्रं पात्रम्'
अ.८.१०.२

अयस्मय - अयस् +मयट् । लोहे का बना हुआ
'अयस्मान् वि चृता बन्धपाशान्
अ. ६.८४.३
'अयस्मयैः पाशैरंकिनो ये चरन्ति'
अ. १९.६६.१

अपस्युः - कार्यकुशल ।
'शतंधारा अपस्युवः'
ऋ. ९.५६.२

अयःस्थूण - लोहे का बना स्थूण वाला रथ । स्थूण का अर्थ ढांचा है ।

'हिरण्य रूपम् उषसो व्युष्टौ
'अयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य'
ऋ. ५.६२.८
हे मित्र और वरुण, तुम दोनों उषा के उच्छेद काल में (उषस व्युष्टौ) तथा सूर्य के उदय होने पर। (सूर्यस्य उदितौ) हिरण्यमय लोहे के बने ढांचे वाले रथ पर चढ़ते हो (हिरण्यरूपम् अथः स्थूणम्)।

अया – 'अया' और 'एवा' शब्द 'अनया' और 'अनेन'। के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'अनया' के न का लोप आर्ष प्रयोग है।
'अया ते अग्ने समिधा विधेम'
ऋ. ४.४.१५ तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.७, का.सं. ६.११, नि. ३. २१.
(हे अग्ने, इस समिध से हम तेरी परि चर्या करते हैं।)

अयातु – अ+यातु। अन्यों को पीड़ा न देने वाला, अहिंसक (२) प्रजापीड़कया दण्डनीय न हों।
'यो मायातुं यातुधानेत्याह'
ऋ. ७.१०४.१६, अ. ८.४.१६
(२) अन्यत्र न जाने वाला
'ह्वयामि देवां अयातुरग्ने'
ऋ. ७.३४.८

अयान् – प्राप्त।
'अयांसमग्ने सुक्षितिं जनाय
अयांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम्'
ऋ. २.३५.१५

अयामन् – न जाने योग्य मार्ग।
'यामन् अयाम्न श्रणुतं हवं मे'
ऋ.१.१८१.७

अयामी – नियम में न रहने वाला पुरुष।
'अनाशुरश्वो यामी'
अ.२०.१२८.१०

अयाशुः – अ+याशुः। स्त्री भोग करने में असमर्थ।
'कुम्भमुष्का अयाशवः'
अ. ८.६.१५

अया – (अयास्) (१) ज्ञानवान (२) निरन्तर चलने वाला, गतिशील।
'दिवो मर्या ऋतजाता अयासः'
ऋ. ३.५४.१३
(३) मनुष्य।
'मक्षू न येषु दोहसे चिदया'
ऋ. ६.६६.५
'प्रतिघोराणाम् एतानाम् अयासाम्'
ऋ.१.१६९.७.

अयास – अयाक्षीः दिया या किया।
'ऋधगया ऋधगुताशमिष्ठाः
प्रजानन् यज्ञम् उपयाहि विद्वान् स्वाहा'
वाज.सं. ८.२०, श.ब्रा. ४.४.४.१२, नि.४.२५.
हे अग्ने! जिन हवियों को हमने दिया उन्हें तूने पृथक् कर देवों को पहुंचाया (ऋधक् अयाः) हमारी हवियों में जो कुछ त्रुटियां रहीं उन्हे दूर कर हवियों को समृद्ध किया (ऋधक् उत अशमिष्ठाः)।
तू समृद्धि को प्राप्त करता हुआ (ऋधक् अयाः) इस यज्ञ को कर और शक्ति सम्पन्न होता हुआ विघ्नबाधाओं को दूर कर (उत ऋधक् अशमिष्ठा) –दया.

अयासः – अयनाः, भृशं गन्त्र्यः (बहुत चलने वाली)। अय (गत्यर्थक) +असुक् +जस् =अयासः
'यत्र गावो भूरिश्रृंगार अयासः'
ऋ. १.१५४.६, वाज.सं. ६.३, का.सं. ३.३, श.ब्रा. ३.७.१.१५, नि. २.७.
(जहां पर किरणें अत्यन्त दीप्तिमती तथा गति वाली किरणें पहुँचती हों)।

अयास्यः – (१) प्रयत्न रहित, निश्चेष्ट निष्क्रिय, (२) कभी न थकने वाला मुख्य परमेश्वर, (३) मुख्य आत्मा।
'अयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन्'
ऋ.१०.६७.१, अ. २०.९१.१
(४) अथक परिश्रम करने वाला।
'निधीरंदेवाँ अमृणदयास्यः'
ऋ.१०.१३८.४
(५) प्रयत्न से असाध्य अर्थात् स्वाभाविक (६) अनायास सभी कार्यों को सिद्ध करने वाला।
'अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः'
ऋ.१.६२.७
(अनायास सब कामों को सिद्ध करने वाला तेजस्वी।)

अपीवृत – (१) सत्यमार्ग में स्थिर, (२) उत्तम वस्त्रादि से ढका हुआ।

'अपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः'
ऋ. १.१९०.६

अयुक्त – रश्मियां वियुक्त करता या फैला गई ।
'यदेदयुक्त हरितः सधस्थात्'
ऋ. १.११५.४, अ. २०.१२३.१, वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२,१४७.२, तै.ब्रा. २.८.७.२, नि.४.११.
(जभी सूर्य इस लोक से (सधस्थात्) रश्मियों को वियुक्त करते या हटाकर दूसरे लोक में फैलाते हैं ।)

अयुज् – अ +युज् = क्विप् =अयुज् । वह स्त्री जिसका कभी किसी से साथ न हुआ हो ।
'हयो न विद्वां अयुजि स्वयं धुरि'
ऋ.५.४६.१, कौ.ब्रा. २२.१.

अयुज – (ए.व.)। जिसका कोई सहयोगी न हो ।
'अयुजो असमो नृभिरेकः'
ऋ. ८.६२.२

अयुत – (१) अ +यु +क्त । जो जुदा न हो ।
'अयुतोऽहम् अयुतो म आत्मा'
अ.१९.५१.१
(२) दश सहस्र (दशकृत्यं सहस्रम्)
'सहस्रं च सहस्रं चायुतम्'
वाज.सं. १७.२
'अयुतासनमुष्ट्राणाम् विंशतिं शता'
ऋ.८.४६.२२
यु (मिश्रण और अमिश्रण अर्थ में) +क्त =युतम् (अमिश्रित) । नञ् +युत =अयुत (न अमिश्रित अर्थात् मिश्रित) =मिलाया हुआ । इसें सहस्र दसबार मिलाया जाता है अतः अयुत कहलाया । अयुयुत्सन् युद्ध करना चाहते हैं
'अयुयुत्सन् अनवद्यस्य सेनाम्'
ऋ. १.३३.६
(जब वे दोष-रहित धार्मिक राजा की सेना से युद्ध करना चाहते हैं) ।

अयुद्धः – युद्ध किये बिना ही ।
'अयुद्धो अस्य विभजानि वेद'
ऋ. १०.२७.१०

अधिंगमः – युद्ध में न जाने वाला भीरु सैनिक ।
'स्वस्त्या चायुधिंगमः'
अ.२०.१२८.१०

अयो अग्ना – (१) लोहे की सुई की धार, (२) सुई सी तीक्ष्ण बुद्धि ।
'विपा वराहमयो अग्रया हन्'
ऋ. १०.९९.६

अयोगू – चान्दी सोने के परिमाण सिक्कों की गणना या व्यवहार में विज्ञ पुरुष ।
'आक्रयाय अयोगूम्'
वाज.सं. ३०.५

अयोजालः – लोहे का जाल धारण करने वाला असुर ।
'अयोजाला असुरा मायिनः'
अ.१९.६६.१

अयोदंष्ट्र – (१) बड़े-बड़े लोहे की कीलों वाला, (२) लोहे की हाल से मढ़ा रथ, (३) लोहे के शस्त्र अस्त्र रूप शत्रुनाशकारी दाढ़ो वाला ।
'पश्यन् हिरण्य चक्रान्
अयोदंष्ट्रान् विधावतो वराहून्'
ऋ.१.८८.५, नि. ५.४.
(४) लौह-निर्मित दांतों वाला आयुध (५) लौह निर्मित आयुधों से युक्त ।
दशनसाधना ऋष्टयो दष्ट्रा-सा. ।

अयोद्धा – युद्ध नहीं करने वाला ।
'अयोद्धेव दुर्मद आहि जुंह्वे'
ऋ. १.३२.६, तै.ब्रा. २.५.४.३.
यदि दुर्मद पुरुष लड़ना न जानने वाले अकुशल योद्धा के समान युद्ध में ललकार दे ।

अयोध्या – किसी से नहीं जीतने लायक यह शरीर रूपी पुरी ।
'देवानां पूरयोध्या'
अ. १०.२.३१, तै.ब्रा.१.२७.३.

अयोपाष्टिः – लोहे की एड़ी वाला बलवान् पुरुष ।
'श्यनोऽमोपाष्टिर्हन्ति दस्यून्'
ऋ. १०.९९.८

अयोमुख – लोहे के समान कठोर मुख वाला त्रिषन्धि नामक वाण ।
'अयोमुखाः सूचीमुखाः'
अ. ११.१०.३

अयोः – अनयोः । वेद में 'न' का लोप आर्ष है । अर्थ है, इन दोनों का या इन दोनों में
'कतरा पूर्वा कतरापरायोः
कथा जाते कवयः को वि वेद
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम
वि वर्तेते अहनी चक्रियेव'

ऋ. १.१८५.१, ऐ.ब्रा.५.१३.१०, कौ.ब्रा. २३.८, ऐ.आ. १.५.३.४, नि.३ .२२.
अतीन्द्रियज्ञ कवियो, इन दोनों द्यौ और पृथ्वी में कौन पहले और कौन पीछे हुआ और कैसे ये उत्पन्न हुए आप बतावें । इस रहस्य को भला कौन जान सका (को विवेद) जो कुछ भी है स आत्मा से बिभृत है । दिन और रात एक ही गाड़ी के चक्कों के समान घूमते हैं ।

अयोहनुः – (१) सविता, (२) लोहे के बने अस्त्रों शस्त्रों से शत्रु का हनन करने वाला ।
'अयोहनुःयजतो मन्द्रजिह्वः'
ऋ. ६.७१.४

अर – (१) रथाङ्गावयव जो रथ के पहिए मे लगाया जाता है, नाभौ प्रत्यृता (जो नाभि की ओर गया हो) ऋ. +अच् =अर । चक्के के धुरे से लगा हुआ । आज भी इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग है ।
'द्वादशारं नहि तज्जराय
वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य
पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ।'
ऋ. १.१६४.११, अ. ९.९.१३, नि.४.२७.
सत्यात्मक आदित्य का,यज्ञ का या संवत्सर काल का अंगभूत चक्र (ऋतस्य चक्रम्) या मण्डल-रथ चक्र या कालचक्र अन्तरिक्ष के ऊपर बराबर चलता है (वर्वर्ति) । वह बाहर अरों से युक्त है (द्वादशारः), चक्र कभी जीर्ण नहीं होता (नाहि जराय) । हे आदित्य, (अग्ने) तेरे इस चक्र में मिथुनीभूत सात सौ बीस पुत्र हैं ।

अरक्षस् – (१) दुष्टों से रहित (२) निर्भय, (३)निर्विघ्न मार्ग ।
'त्वं न इन्द्र राया परीणसा
या हि पथां अनेहसा पुरो याहि अरक्षसा'
ऋ.१.१२९.९
(४) बाधक शत्रुओं से रहित पुरुष (५) विघ्न नाशक परमेश्वर, (६) बृहस्पति ।
'मृगोनभीमः अरक्षसः तुविष्मान्'
ऋ. १.१९०.३.

अरक्षाः – राक्षसी भावना से रहित मन ।
'अरक्षसा मनसा तज्जुषेत'
ऋ.२.१०.५, वाज.सं.११.२४, श.ब्रा.६.३.३.२०.

अरगराट् – (१) रथों या यन्त्रों से विचरने वाला शिल्पी (२ अरा रथचक्रवयवाः कीलकाः तान् गिरति आत्मना संश्लेषयति इति अरगराः रथाः । तेन अटन्ति संचरन्ति इत अरगरटाः–
(रथचक्रो के कीलकों को संश्लिष्ट करने वाला रथ, उससे अटन अर्थात् भ्रमण करने वाला अरगराट
(३) अरान् गच्छन्ति इति अरगाः वीराः तेषां राटाः जयघोषाः (रथी या वीरों का जयघोष)
(४) अरस्य ज्ञानस्य गरेषु विज्ञायकेषु अटन्ति इति (गुरुओं के प्रति जाने वाला शिष्य) –क्षेमकरण
(५) घाटी–ग्रिफिथ ।
(६) अरम् अव्यर्थं गर् गट् शब्देन
अटन्ति इति अरगराटाः महानताः (घर घर आवाज पूर्वक चलने वाला महानट)
(७) अरघट्टा जल यन्त्राणि धान्य पोषणार्थं जलधारया प्रवर्तितम् पेषणा यन्त्रम् 'घराट' इति प्रसिद्धम् तादृशो वा अन्यो विद्युदादियन्त्र विशेष (जलद्वारा चलने वाली चक्की, मिल या बिजली का यन्त्र)
'गिरा वरग राटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः'
अ.६.६९.१

अरङ्कृत – (१) अरम् +कृत । पर्याप्त किया गया, (२) अलङ्कृत सुभूषित, सुसंस्कृत । आजकल अलङ्कृत रूप में बदल गया है । किसी चीज का उचित रूप से किया जाना ही इसका अर्थ है ।
'वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ।'
ऋ.१.२.१, ऐ.ब्रा. ४.२९.६, कौ.ब्रा. १४.५, ऐ.आ. १.१.४.१, आश्व श्रौ.सू. ५.५.२, १०.५, शां.श्रौ.सू. ७.२.२, १०.९, ११.९.३, नि. १०.२.
(हे दर्शनीय वायुओ, ये सोमरस सुसंस्कृत है अर्थात् उचित रूप से निकाले गए हैं । अतः आप हमारा आह्वान् सुनें और उनमें अपना अंश पीएं ।)
(३) खूब पुरषार्थ करने वाला ।
'त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते'
ऋ. २.१.७

अरङ्कृता – (१) बनाए गए,तैयार किए गए ।

'इमे सोमा अरङ्कृताः'
ऋ.१.२.१.
अरङ्कृतिः – शोभा ।
'काते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः'
ऋ.७.२९.३
अरंगम – (१) विद्या और संग्राम के पार जाने वाला (२) इन्द्र ।
'अरंगमाय जग्मये'
ऋ.६.४२.१,८.४६.१७, साम १.३५२,२.७९०, तै.ब्रा. ३.७.१०.६.
(३) प्राप्त होने योग्य (४) उत्तम रीति से मिल जाने वाला ।
'तीव्रो रसो मधुपृचामरंगमः'
अ. ३.१३.५, तै.सं. ५.६.१.३, मै.सं. २.१३.१, १५२.१७, का.सं. ३५.३, ३९.२
अरंगमासः – अत्यन्त गति करने वाले प्राण या सूर्य की किरणें ।
'अरंगमासः प्रवतो रराणः'
अ.१३.२.३३.
अरंगर – अति उत्तम उपदेष्टा ।
'अरंगरो वावदीति'
अ. २०.१३५.१३, शा.श्रौ.सू. १२.१६.१.३, आश्व.गृसू. २.९.४.
अरंघुषा – अति शब्द करने वाली वीणा की तुम्बी ।
'अरंघुषो निमज्य'
अ. १०.४.४.
अरज्जु – बिना रस्सी के ।
'अरज्जौ दस्यून् समुनब् दभीतये'
ऋ.२.१३.९
अरटव – अलटव , बालकपन से मुक्त-युवा ।
'अरटवे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि'
अ. ८.४६.२७
अरटुपर्णः, अरटुपरम – अरटुपर्ण नामक वृक्ष का पत्ता जिस पर पानी नहीं ठहरता ।
'अरटुपर्णः'
ऋ. २०.१३१.१५.
अरणः – (१) जो अपने से रण नहीं करता ।
'वेशं वा नित्यं वरुणा रणं वा'
ऋ.५.८५.७
(२) दुःखदायी ।
'प्रतीच्ये त्वरणी दत्वतीतान्'
अ. ७.१०८.१
(३) अप्रियजन ।
'संज्ञानम् अरणेभिः'
ऋ. १०.१९१.२, अ. ७.५२.१, मै.सं. २.२.६,२०.२, का.सं. १०.१२, तै. ब्रा. २.४.४.६.
(४) शत्रु, अप्रिय, पराया ।
'स्वाय चारणाय च'
अ. ६.४३.१,वाज.सं. २६.२.
(५) जो रमण करने योग्य, सुखद या चेतन न हो ।
'न किःषो अस्त्यरणो जहुर्हितम्'
ऋ.२.२४.७
(६) बिना सुख के ।
'यो नः स्वो अरणः'
ऋ. ६.७५.१९, अ.१.१९.३, साम. २.१२.२२, आश्व.गृ.सू. ३.५.७, शां.गृ.सू.४.५.८.
(७) अरण्य, वन, जंगल ।
'सा नो अमा सो अरणे निपातु'
ऋ.१०.६३.१६, नि.११.४६.
वह स्वस्ति देवता (देवगोपा या मेघ) हमे गृह में (अमा) तथा जंगल में (अरणें) रक्षा करें)
(८) प्रेरित ।
'हिन्वन्ति अश्वम् अरणं न नित्यम्'
ऋ.३.५३.२४
(९) ऋण-रहित पुरुष, (१०) रण आदि से मुक्त ।
'परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः'
ऋ.७.४.७,नि.३.३
(११) रण या रमण के अयोग्य, अशक्त, दुःखी
'इन्द्र त्वद् अरणा इव'
ऋ. ८.१.१३, अ.२०.११६.१, पंच.ब्रा. ९.१०.१.
(१२) मलिन, गन्दा ।
'गच्छामुम् अरणं जनम्'
अ. ५.२२.१२
(१३) अपगतार्ण-अपगतोदक सम्बन्ध (जिससे जल-सम्बन्ध न हो, पराया) ।
'नहि प्रभायारणः सुशेवः'
ऋ. ७.४.८, नि.३.३.
(जिससे जल-सम्बन्ध न हो वह सुख कारक होता हुआ भी ग्रहण करन योग्य नहीं होता ।
'दशार्णः देशः' में ऋण का अर्थ भट्टोजिदीक्षित

ने जल किया है। हैम ने –'ऋणं देये जले दुर्गे' ऐसा कहा है। निघंटु में 'अर्णस' का अर्थ उदक कहा है। दुर्ग ने ऋण को ही जलवाची माना है।

ऋण का उदक् अर्थ में व्यवहार 'परिषद्य ह्यरणस्य' ऋचा में हुआ है। इसका अर्थ निरमण (रमण रहित अरण्य) भी है।

(१४) निर्गमन–देशान्तर जाना

अरण्यम् – जंगम। न रमणीयं रम्यं वा (जो रम्य सा रमणीय न हो)।

'यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये
यदेनश्चकृमा वयम् इदं तदवयजामहे स्वाहा

वाज.सं. ३.४५.,२०.१७, तै.सं. १.८.३.१, मै.सं. १.१०.२,१४१.१४, का.सं.९.४,३८.५, श.ब्रा. २.५.२.२५,१२.९.२.३, तै.ब्रा. १.६.६.३,२.६ .६.२,

अपार्ण से प्तषोदरादिवत् अरण्य हो गया।

(२) ग्रामात् अपार्णम् दूरम् अपगतम् (गांव से दूर स्थित) 'अपार्ण' से पृषोदरादिवत् अरण्य हो गया।

ऋ (जाना) का निपात ऋण। अप +ऋण = अपार्ण =अरण्य। अथवा 'अरमणम्' से अरण्य

अरण्यानिः – वानप्रस्थ पुरुष

'उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति'

ऋ. १०.१४६.३, तै.ब्रा. २.५.५.७.

'न वा अरण्यानिर्हन्ति'

ऋ. १०.१४६.५, तै.ब्रा.२.५.५.७

अरण्यानी – (१) अरण्य अर्थात् ऋणों से युक्त वाणप्रस्थ की स्त्री, (२) रमण योग्य ग्राम नगर आदि में सुख अनुभव न करने वाली विदुषी।

'अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि'

ऋ. १०.१४६.१, तै.ब्रा. २.५.५.६, नि.९.३०. ऋ.८.८.४

(२) अरण्य की पालयित्री देवी, अरण्य देवी। अरण्य +आनुक् +ङीष् =अरण्यानी।

अरणिः – काष्ठ के दो टुकड़े जिनसे घर्षण से अग्नि उत्पन्न किया जाता है। यह शब्द सदा द्विवचन में प्रयुक्त होता है।

'अग्निं नरो दीधितिभिररण्योः
हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्'

ऋ. ७.१.१, साम. १.७२,२.७२३, का.सं. ३४.१९, ३९.१५, ऐ.ब्रा. ५.५.१६, कौ.ब्रा. २२.७,२५.११, ऐ.आ. १.१.२.१, आश्व.श्रौ.सू. ८.१२.२, २६, शा,श्रौ.सू. १७.८.२, आप.श्रौ.सू. १४.१६.१, नि. ५.१०.

'ऋ' धातु गति और प्राणन अर्थ में प्रयुक्त है। ऋ +अनि =अरणि। 'अग्निः एने प्रति ऋच्छति' (इन काष्ठों के प्रति अग्नि आता है)। इसी अर्थ में अरणि उस लकड़ी को कहते हैं जिससे अग्नि निकाला जाता है।

'अरणिः बह्निमन्थेन द्वयोर्निर्मन्थ्य दारुणि–मेदिनीकोष'

आधुनिकअर्थ–शमी वृक्ष की लकड़ी जिससे आग बनायी जाती है, (२) लकड़ी के दो खण्ड जिनसे आग निकाली जाती है, (३) सूर्य, (४) अग्नि (५) एक प्रकार का बडा चमकीला पत्थर (६) आर्त्तिकारिणी, कष्ट दाविनी बेड़ी, लोहे की कड़ी (७) खा जाने वाली पीड़ा, यन्त्रणा

'प्रतीच्ये त्वरणी दत्वती तान्'

अ. ७.१०८.१

(८) वृथा अटन (घूमने फिरने) की आदत।

'निररणिं सविता साविषत् पदोः'

अ. १.१८.२

(९) सुख प्रापिका, (१०) लकड़ी, (११) वेग से आगे बढ़ने वाली, (१२) रथादि से गमन करने वाली, (१३) ज्ञान बल से दूर तक पहुंचने वाली

'ते जिष्ठाभिः अरणिभिः
नोतिभिःउग्राभिः उग्रोतिभिः'

ऋ.१.१२९.५

हे शूर वीर या अग्नि, तू अति भयंकर, अति तेज या पराक्रम से युक्त वेग से आगे बढ़ने वाली, रक्षाकारिणी सेनाओं से युक्त होकर भी उनके समान तेज ओज से युक्त रथादि से गमन करने वाली, अथवा ज्ञानबल से दूर पहुंचने वाली भयंकर शत्रुओं में ऊधम मचा देने वाले साधनों से युक्त।

अरतिः – (१) प्राप्त होने योग्य, (२) सर्वोपरि सबसे अधिक मतिमान।

'देवासो देवमरतिं न्येरिरे'

ऋ. ४.१.१

(३) पर्याप्त बुद्धि वाला–सा.(४) आर्य–(दया.)

'प्रियं चेतिष्ठम् अरतिं स्वध्वरम्'

ऋ. १.१२८.८,७.१६.१, साम. १.४५,२.९९,

वाज.सं. १५.३२, तै.सं. ४.४.४.४, मै.सं. २.१३.८,१५.७.४, का.सं. ३९.१५.
मैं प्रिय अत्यन्त चेतनावान पर्याप्त बुद्धि वाले तथा यज्ञ को शोभन बनाने वाले अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ -
मैं अत्यन्त चेताने वाले, आर्य, हिंसारहित शुभकर्म करने वाले उपदेशक को स्वीकार करता हूँ। (दया)।
(५) मतिमान, (६) ऐश्वर्यवान् (७) प्रापक।
'प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे'
ऋ. १.१२८.८
(प्रिय, सबसे अधिक ज्ञान देने वाले, अल्पज्ञों को चेताने वाले, मतिमान, ऐश्वर्यवान् (अरतिम्) पुरुष का आदर करते हैं।
(८) देह से देहान्तर में जाने वालाआत्मा
'अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावा'
ऋ. १०.६१.२०
(९) सब ऐश्वर्य का स्वामी, (१०) अति ज्ञानवान् स्वामी, परमेश्वर (१०) जिसका चित्त भोगों में न हो।
'दिव इवेदरतिः मानुषा युगा'
ऋ. २.२.२.
(१२) स्वामी, व्यापक।
'गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः'
ऋ. ७.५.१

अरलिः - दुःखदायी।
'अपावृक्ता अरलयः'
ऋ. ८.८०.८

अरली - हाथ के भाग।
'ऊरू अरत्नी जानुनी'
वाज.सं. २०.८, तै.ब्रा. २.६.५.५, मै.सं. ३.११.८, १५२.६, का.सं. ३८.४.

अरथाः - रमण करने योग्य देहों से रहित विदेह।
'अरश्मानो येऽरथा अयुक्ताः'
ऋ. ९ ९७.२०.

अरथीः - बिना सारथि का रथ।
'अनश्वश्चित् यमजत्यरथीः'
ऋ. ६.६६.७

अरदत् - अखनत् (खन दिया)।
'इन्द्रो अस्माँ अरदन् वज्रबाहुः'
ऋ. ३.३३.६, नि. २.२६

अरध्र - (१) जो वश का न हो, (२) जो चलने योग्य न हो।
'ता ह त्यद् वर्तिर्यदरध्रमुग्रा'
ऋ. ६.६२.४
(३) स्वयं शत्रुओं के वश में न आने वाला, (४) अहिंसक।
'अरध्रस्य रथ्रतुरोबभूव'
ऋ. ६.१८.४

अरपः,अरपस् - (१) पाप और दुःखों से रहित।
'अथा नः शं योररपो दधात'
ऋ. १०.१५.४, वाज.सं. १९.५५, मै.सं. ४.१०.६, १५६.१३, का.सं. २१.१४, नि. ४.२१.
(२) रपस् या रिप्रम् पापवाचाक शब्द हैं, अतः अपापम्। नञ् +रपस् =अरपस्। अंग्रेजी शब्द Lapse की रपस् से समानता विचारणीय है। Lapse का अर्थ भी त्रुटि, कमी, अवगुण आदि होता है
'बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वाग्
इमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शन्तमेन
अथा नः शं योररपो दधात'
ऋ. १०.१५.४, अ. १८.१.५१, वाज.सं. १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४.१०.६, १५६.१२, का.सं. २१.१४.
हे यज्ञ में बैठने वाले पितरो! हम अर्वाचीनों की रक्षा आप करें (बर्हिषदः पितरः अर्वाक् ऊती)। आप लोगों के लिए हमने भी वे हव्य बनाए हैं (वः इमा हव्या चकृमा)अतः उन्हे आप चखें (जुषध्वम्)। वे हव्य खाने वाल आप अत्यन्त सुखकारक रक्षा के साथ आवें (शन्तमेन अवसा आगत) और हमारे कल्याण कामी का पापाभाव दे (नः शंयोःअरपः दधात)।

अरपाः - (१)निष्पाप।
'घृणीव छायामरपा अशीया'
ऋ. २.३३.६
(२) पाप के फल रूप से रहित।
'यथायमरपा असद्'
ऋ. १०.१३७.५,अ. १.२२.२, ४.१३.४, आश्व. श्रौ.सू. २.७.१३.

अरम् - अलम्, पर्याप्त।

अरमणाः अरमणस् - अच्छा न लगने वाला

'निकाम मरमणसं येन'
ऋ. ६.१७.१०

अस्मत् परि - हम सबों के यहां ।
'अस्मत् द्वितीयं परिजात वेदाः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै.सं. २.७.९, ८६.५, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३,
(द्वितीय अग्नि हम लोगों के यहां अग्नि रूप में उत्पन्न हुआ ।)

अरमतिः - अर +मति । (१) पर्याप्त मतिवाला -सा. (२) उपयोगी (३ जिज्ञासु छात्र-(दया.)
'अध स्मा नो अरमतिं सजोषसः
चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम्'
ऋ. ५.५४.६.
और हे हमारे समान स्नेह रखने वाले , मरुतो, (सजोषसः) ! आप इस लोक से उस लोक में जाते हुए (यन्तम्) पर्याप्तमति यजमान को (अरमतिम्) शोभन मार्ग बना । (सुगम् अनुनेष था) जैसे आंखें राह बतलाने में अनुग्रह करती हैं (चक्षुः इव) ।
और हे मनुष्यो, जिस प्रकार वेदाध्ययन के बाद सबके साथ मिलकर (सजोषसः) विद्या के लिए प्राप्त हुए (यन्तम्) हमारे उद्यमीपुत्रों को (नःअरमितम्) चक्षु के समान सुमार्ग दर्शक ज्ञान कराइए (चक्षुः इव सुगम् अनुनेषथ)।
(४) अ +रमतिः । बिना विश्राम के विराम रहित -सूर्य (५) अर +मतिः । अत्यधिक ज्ञानवान् ।
'अरमतिः सविता देव आगात्'
ऋ. २.३८.४
(६) अ +रमतिः । पूर्व काल में जिस कन्या ने रति न की हो-ब्रह्मचारिणी (७) अन्य कहीं विश्राम न करने वाली प्रजा ।
'उप स्वैनम् अरमतिः वसूयुः'
ऋ. ७.१.६, तै.सं. ४.३.१३.६.
'षड् भि उर्वीभिः अरमतिं तरेम'
अ. १२.२.४८

अरम्णात् - 'संयच्छन् स्थिराम् अकरोत् (संयमित कर स्थिर किया ।
'रम्' धातु का अर्थ संयमन करना या विसर्जन करना है ।
'सविता यन्त्रैः पृथिवीम् अरम्णात्'
ऋ. १०.१४९.१ नि. १०.३२.
(सविता ने षृष्ट्यादि साधनों तथा वायवीय पाशों से (यन्त्रैः) पृथिवी को संयतकर स्थिर किया (पृथिवीम् अरम्णात्)

अरम्णाः - वेद में 'रम' धातु संयमन और विसर्जन अर्थ में प्रयुक्त है । लोक में इस का अर्थ रमण करना है । यहां इसका अर्थ 'विसृष्टवान् ' या सारित वान् विसर्जन किया या प्रवाहित कराया ।
'त्वमर्णवान् बद्बधानां अरम्णाः'
ऋ. ५.३२.१, साम. १.३२, नि. १०.९.
तू ने जल से लदे तथा बंधे मेघ समूहों को विसर्जित प्रवाहित किया ।

अररिन्द - (१) उदक,जल । (२) 'अररि' का अर्थ न देने वाला अराति अर्थात् शत्रु है। अजः अररिम् +दः का अर्थ शत्रु का दमन करने वाला साधन है ।
(३) गमनागमन का साधन रथ और सैन्य ।
'अधारयत् अररिन्दानि सुक्रतुः'
ऋ. १.१३९.१०.

अररिवान् - अदानशील ।
'यो नो अग्ने अररिवां अधायुः'
ऋ. १.१४७.४.

अरस - (१) प्रापक, प्राप्त करने वाला -(दया.) (२) व्यापनशील मेघ (३) आक्रमण करने वाला ।
'अमिमीताररुं यश्चतुष्पात्'
ऋ. १०.९९.१०.
(४) फैला हुआ, (५) रुलाने वाला दुष्टजन ।
'यावीः अररुं शूर मर्त्यम्'
ऋ. १.१२९.३
(६) हिंसक स्वभाव (७) प्रजापीड़क असुर, (८) निरन्तर गमनशील
'अपाररुं पृथिव्यै देवयजनात् वध्यासं ।'
वाज.सं. १.२६, श.ब्रा. १.२.४.१७.
(९) अतिशीघ्र गति वाला, (१०) क्षणावस्थायी स्वप्न ।
'अररुर्नमासि'
अ. ६.४६.१

अररुष - जो दानशील न हो, अदाता ।
'मा नः शंसो अररुषोः धूर्तिः'
ऋ .१.१८.३

(अदानशील मनुष्य का नाशकारी, कष्टप्रद आक्षेप न पहुंचे)
(२) अति अधिक हिंसा कारी
'तपा शंसम् अररुषः परस्य'
ऋ. ३.१८.२
(३) अक्रोधी (अ +ररुष्) ।
'पुरा गृधात् अररुषः पिबातः'
ऋ. ५.७७.१,मै.सं. ४.१२.६, १९६.१, तै.ब्रा. २.४.३.१३.
(४) अर +रुष् । अतिक्रोधी ।
'रक्षा सु नो अररुषः'
ऋ. ९.२९.५
(५) अहिंसक -(दया.)
'प्रहोषे चित् अररुषः'
ऋ. १.१५०.२.
उत्तम रीति से दान और उपभोग में न लगाने वाले से ..अथवा, प्रदान के काल में भी रोष से रहित पुरुष के लिए ।

अररुषी - अनुदार ।
'मा नः सेना अररुषीरुपगुः'
अ. १९.१५.२

अरश्मा - रास अर्थात् बंधन से रहित , निर्बन्ध ।
'अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता'
ऋ. ९.९७.२०

अरस - (१ बिना रस के, (२) बिना प्राण के ।
'दूना अदूना अरसा अभूवन्'
अ. २२.३१.३.
(३) विष-रहित ।
'अरसः त इषो शल्यः'
अ. ४.६.६.
(४) निर्बल ।
'वृश्चिकस्यारसं विषम्'
ऋ. १.१९१.१६

अरसतरा - (१) अत्यन्त रस हीन, सूखी गण्डमाला ।
'सेहोररसतरा लवणाद्'
अ. ७.७६.१

अरा - जो विषैली या घातक न हो ।
'अरसाः सन्तु कृत्वरीः'
अ. ४.१८.१

अर्क - अर्च +घञ् (कर्मवाच्य में) =अर्क (च् का क्) अर्च् +क (कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः) =अर्क, ऋ +क =अर्क अर्थ-(१) स्तुति, (२) अन्न ।
'बृहस्पति वर्द्धया नव्यमर्कैः'
ऋ. १.१९०.१, नि. ६.२३.
(३) देव । एनमर्चन्ति (इन्हे पूजते हैं), (४) मंत्र । 'अनेन अर्चन्ति' इस से पूजा करते हैं (५) अन्न । भूतानि अर्चन्ति, अन्न जीवों की पूजा करता है, (६) वृक्ष कटुकिम्नासंवृतः (वृक्ष कटुक भाव से संवृत या संगत रहता है ।)
'अर्चन्त्यकमर्किणः'
ऋ. १.१०.१, साम. १.३४२, २.६९४, तै.सं. १.६.१२.३, नि. ५.५.
हे इन्द्र, ऋत्विक् तुझ पूज्य को पूजते हैं (अर्किणः अर्कम् अर्चन्ति) (७) आदित्य, (८) चक्षु (९) अग्नि (१०) जीव, (११) परम पुरुष, (१२) प्राण, (१३) पुरुष ।
'गायत्रेन प्रति मिमीते अर्कम्'
ऋ. १.१६४.२४, अ. ९.१०.२.
'अन्न वै देवाः अर्क इति वदन्ति'
तै.आ. १५.३.२३,
'आदित्यो वा अर्कः'
श.ब्रा. १०.६.२.६.
'अग्निर्वा अर्कः'
श.ब्रा. २.५.१.४
'स एषोऽग्नि रर्को यत्पुरुषः'
श.ब्रा. १०.३.४.५
वेत्थार्कमिति पुरुषं हैव तदुवाच । वेत्थार्कपुष्पे इतिअक्षिणी हैव तदुवाच । वेत्थार्क कौश्याविति-नासिके हैव तदुवाच । वेत्थार्क समुद्रावित्योष्ठौ हैव तदुवाच । वेत्थार्कधाना इति दन्तान् हैव तदुवाच । वेत्था र्काष्ठी लामिति जिह्वां हैव तदुवाच । वेत्थार्क ।
श.ब्रा. १०.३.४.५
(१९) शास्त्र
'बृहस्पति र्हन्त्यमित्रमर्कैः'
ऋ. ६.७३.३, अ. २०.९०.३, का.सं. ४.१६.४०.११, तै.ब्रा. २.८.२.८.
(१७) अर्चन करने वाला, (१८) पूज्य विद्वान् ।
'अर्को वा श्लोकमाघोषतेदिवि'
ऋ. १.८३.६, अ. २०.२५.६.

अर्कयज्ञ – विराट् रूप से उपासना करने योग्य चितियज्ञ ।
'अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे'
अ. ११.७.७

अर्कशोक – (१) सूर्य के समान तेज से युक्त, (२) यथोक्तस्थान कर्मानुप्रदानवान् मन्त्रः–उव्वट ।
'त्वा हि मन्द्रतमम् अर्क शोकैर्ववृमहे'
ऋ. ६.४.७, वाज.सं. ३३.१३

अर्कसातिः – (१) अन्न का विभाग, (२) पूज्य पुरुष की प्राप्ति ।
'रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ'
ऋ. १.१७४.७.
(३) पूजनीय पुरुषों की सेवा, (४) सूर्य की पूजा, (५ तेजस्वी पुरुष का आश्रय, (६) अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति या विभाग ।
'दशोणये कवये अर्कसातौ'

अर्काः – स्तुतिकर्ता विद्वान् जन ।
ऋ. ६.२०.४
'यमर्का अध्वरं विदुः'
ऋ. ८.६३.६

अर्किन् – अर्क +इनि =अर्किन् । अर्थ (१) मंत्री, (२) मन्त्र कहने वाला, (३) ऋत्विक् । (४) ऋग्वेदी होता को अर्की और सामवेदी की उद्गाता कहते हैं ।
'अर्चन्त्यर्कमर्किणः'
ऋ. १.१०.१, साम. १.३४२, २.६९४, तै.सं. १.६.१२.३, नि. ५.५. महाभारत. १२.२८४.७८.
(ऋग्वेदी ऋत्विक् आदित्य की अर्चना करते हैं)

अर्ध्य – समृद्ध ।
'शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम्'
ऋ. ५.४४.१०

अर्चत्र्य – अर्चण करने योग्य , पूज्य ।
'अर्चत्र्य मघवा नृभ्य उक्थैः'
ऋ. ६.२४.१

अर्चत्रिः – (१) परस्पर मान सत्कार करने वाला (२) माता, पिता, गुरु ।
'अर्चत्रयो धुनयो न वीराः'
ऋ. ६.६६.१०, मै.सं. ४.१४.१, २३३.१

अर्चद्धूम – उज्ज्वल दीप्तियुक्त धूम वाला अग्नि ।
'अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः'
वाज.सं. ३३.१

अर्चन् – (१) अङ्गिरस के पुत्र हिरण्य स्तूप का पुत्र अर्चन् (२) प्रार्थना या अर्चना करता हुआ (अर्थ +शतृ)
'हिरण्यस्तूपः सवितः यथा त्वा
अङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन् अवसे वन्दमानः
सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ।'
ऋ. १०.१४९.५, नि. १०.३३
हे सविता, जिस प्रकार अङ्गिरस के पुत्र तथा मेरे पिता हिरण्य स्तूप ने इस अन्न निमित्त यज्ञ में आमन्त्रित किया इसी प्रकार मैं अर्चन् नामक या पूजा करता हुआ तुझे रक्षा के लिए बुलाकर तेरी परिचर्या के लिए जागरण करता हूँ जैसे कोई यजमान सोम-रस की रक्षा के लिए जागता है ।

अर्चनानाः – (१) अर्चन +अनाः । अर्चनीय अनः शकटं यस्य स अर्चनानाः
पूजनीय उत्तम शकट वाला या उसका रचयिता ।
'श्यावाश्वः सोभरी अर्चनानाः'
अ. १८.३.१५
(२) श्रेष्ठ नासिका वाला ।
'बिभ्रतावर्चनानसम्'
ऋ. ५.६४.७

अर्चन्ति – पूजा करते हैं ।
'अर्चन्त्यर्कमर्किणः'
ऋ. १.१०.१.

अर्चा – प्रार्थना ।
'तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिम्'
ऋ. १०.१६५.१, अ. ६.२७.१,
(उस पाप से निवृत्ति पाने के लिए हम आप लोगों की अर्चना करते हैं ।)

अर्जन – धन आदि का उत्तम उपार्जन करने वाला ।
'यदर्जुन सारमेय दतः
पिशंग यच्छसे'
ऋ. ७.५५.२

अर्जुन – (१)रात्रि का श्वेत पुत्र दिन या सूर्य, (२) कृषि-योग्य पृथिवी का पुत्र राजा, (३) परमेश्वरी शक्ति का पुत्र जीव ।
'कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनः'
अ. १३.३.२६

(न) उज्ज्वल ।
'अहश्च कृष्णम् अहरर्जुनञ्च'
ऋ. ६.९.१, ऐ.ब्रा. ५.१५.५, कौ.ब्रा. २३.८, नि. २.२.
(४) श्वेत रंग वाला कुटिल गति से जाने वाला, एक प्रकार का कीट ।
'क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्'
अ. २.३२.८,५.२३.९
दिन काला और उजला भी है । अथवा रात काली और दिन उजला है ।

अर्जुन काण्ड – श्वेत काण्ड या डंटी वाला यव ।
'बभ्रोरर्जुनकाण्डस्य'
अ. २.८.३

अर्जुनी – (१) श्वेत गौ, (२) श्वेत धातु या रत्न आदि से पृथिवी, (३) सत्वमयी प्रकृति, (४) फाल्गुनी नक्षत्र जिनमें सूर्य की किरणों को पुनः प्राप्त किया जाता है ।
'को अर्जुन्याः पयः'
अ. २०.१३०.३
'अघासु हन्यते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते '
ऋ. १०.८५.१३
(५) प्रकाशवती कमनी या उषा ।
'पेरुम् अस्यसि अर्जुनि
ऋ. ५.८४.२
(६) अपने कुकर्म से द्रव्य अर्जन करने वाली स्त्री ।
(७) प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति ।
'अर्जनि पुनर्वो यन्तु'
अ. २.२४.७.
(८) अर्ज धातु प्रतियत्न अर्थ में आया है । सबको प्रयत्न और उत्साह में लगाने वाली उषा
'वयश्चित् ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि'
ऋ. १.४९.३, साम. १.३६७.
अर्ण – (१) जल , (२) योद्धा ।

अर्णवः अर्णवान् – (१) जल का दाता सूर्य ।
'महान् केतुः अर्णवः सूर्यस्य'
ऋ. ७.६३.२,
(२) अन्तरिक्ष जिसमें जल रहता है ।
'शिशू क्रीडन्तौ परियातोऽर्णवम्'
अ. ७.८१.१, १४.१.२३,१३.२.११.
(३) अर्णस् +वतुप् =अर्णवान् । मेघ, जलवाला । स् का लोप पृषोदरादिवत् ।
'त्वमर्णवान् बद्बधानां अरम्णाः'
ऋ. ५.३२.१, साम. १.३१५, नि. १०.९.
(तूने जल वाला होकर बंधे हुए मेघों को बरसने के उन्मुक्त किया) । आधुनिक अर्थ–समुद्र ।

अर्णस् – ऋ +असुन् =अर्णस् (नुट् का आगम्)।
अर्थ – (१) समुद्र (२) उदक, (३) जलयुक्त , (४) शब्द सागर वेद –(दया.)
'अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसम्
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः'
ऋ. ५.५४.६
हे वृष्टि के विधाता मरुतो (वेधसः), आप लोगों के गण या बल (शर्धः) शोभता है (अभ्राजि) जिसे (यत्) जलयुक्त मेघको अर्णसं वृक्षम् निरुदक करते हो (मोषथाः) जैसे घुन (कपना इव) वृक्ष को चाट जाता है ।
हे विद्वान् मनुष्यो, (मरुतः) तुम्हारा उत्साह प्रदीप्त होता है, (अभ्राजि) जो कि तुम (यत्) बींधने वाले छोटे–छोटे कृमियों की तरह (वेधसः कपना इव) वृक्ष को धीरे–धीरे हर लेते हैं । एवं शब्द–सागर वेद को (अर्णसम्) धीरे–धीरे ग्रहण कर लेते हो (मोषथः) –दया.
निघंटु भी अर्णस् का अर्थ उदक बतलाता है ।
उदक +नुट् + असुन् = अर्णस् ,

अर्णस् –(४) वेदवाणी –(दया.)
'महो अर्णः सरस्वती
प्र चेतयति केतुना
धियो विश्वा वि राजति ।'
ऋ. १.३.१२, वाज.सं. २०.८६, नि. ११.२७.
माध्यमिका वाक् सरस्वती महान् जल–राशि अपनी प्रज्ञा से बरसाती है । (सरस्वती महः अर्णः केतुना प्रचेतयति) यही नहीं, वह संसार के समस्त यज्ञ सम्बन्धी या कर्म–सम्बन्धी ज्ञानों को उत्पन्न करती है (विश्वाधियः विराजति ।) अन्य अर्थ–वेदवाणी कर्मयोग तथा ज्ञानयोग के साथ महान् शब्द सागर को बतलाती है और सम्पूर्ण सत्य विद्याओं को प्रकाशित करती है । –(दया.)

अर्णसाति – (१) ज्ञान , सुख या धन की प्राप्ति ।
'आशुषाणासो मिथो अर्णसातौ'

ऋ. ४.२४.४
(२) जल की प्राप्ति, (३) अभीष्ट फल की प्राप्ति।
'इन्द्राय देवोभिरर्णसातौ'
ऋ. २.२०.८
(३) जिसमें योद्धाओं का सेवन हो-समर-(दया.)
(४) जलों को प्राप्त कराने और जलवर्षण का अवसर।
'त्वा ह त्यदिन्द्र अर्णसातौ
स्वर्मीढे नर आजा हवन्ते'
ऋ. १.६३.६

अर्णाआपः - (१) स्थिर जल-सा. (२) नहरों के जल-(दया.)
'ऋणोरपो अनवद्यार्णा
यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२.
हे अनवद्य इन्द्र। स्थिर जलों को (अर्णाअप) तू ने बहाया या चलाया (ऋणोः) तथा स्तुति शील पुरुकुता नामक यजमान के लिए धन सम्पादित किया।
हे पाप-रहित राजा (अनवद्य) आप पुरुषार्थी कृषकों के लिए (यूने पुरकुत्साय) नहरों के जल (अर्णाअपः) पहुंचाए (ऋणोः) तथा इन साधनों से कष्टों का नाश किया है (वृत्र रन्धीः) -(दया.)

अर्णा - (१) नदी, (२) नहर।

अर्त - (१) निकले-सा. (२) लाओ-(दया.)
'भानुरर्तत्मना दिवः'
ऋ. ५.५२.६.
सूर्य के प्रकाश के समान स्वयं ही जल द्युलोक से निकले (दिवःत्मना अर्त)
जल की तरह विद्युत्, वायु एवं सूर्य के प्रकाश आदि को (दिवःभानुः) अपने उपयोग में लाओ (त्मना अर्त) -(दया.)

अर्तन - जो लोगों से प्रतिज्ञा निभवा सके
'प्रति श्रुत्काया अर्तनम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.
अर्थ - (१) ऋ (गत्यर्थक) +स्थन् =अर्थ। अर्यते असौ (यह गमा जाता है अर्थात् समझा जाता है अतः अर्थ है)
(२) अरणस्थः (अरण या गमन अर्थात् विवेकिनी बुद्धि मे जो स्थित हो वह अर्थ है।) शब्द बनाने वाला अर्थात् शब्द के स्वामी इस लोक को छोड़कर अन्य लोक में जाता है, तथापि उस शब्द का अर्थ उसी शब्द के साथ स्थित रहता है।
'यो अर्थज्ञ इत् सकलं भद्र मश्नुते'
जो वेद का अर्थ जानता है वह सभी कल्याणों का उपभोग करता है।
(३) गुण या द्रव्य जिसे जाना जाता है या प्राप्त किया जाता है।
'तदिन्द्रो अर्थं चेतति,
यूथेन वृष्णि रेजति।'
ऋ. १.१०.२, साम. २.६९५.
इसी प्रकार ऐश्वर्यवान् परमेश्वर भी प्राप्त होने योग्य समस्त पदार्थों को सर्वोपरि होने से जानता है। वर्षण करने वाला मेघ जिस प्रकार वायु-गण से प्रेरित होकर आगे बढ़ता है उसी प्रकार परमेश्वर समस्त काम्य सुखों का वर्षण करने वाला होकर सुख प्रदान करने वाले समस्त साधनों से संसार को चलाता है
(४) प्राप्य लोक।
'आपश्चिदस्य विनशन्त्यर्थम्'
ऋ. १०.२७.२०

अर्थःपारः - प्राप्तव्य परमपद
'प्रेरय सूरो अर्थं न पारम्'
ऋ. १०.२९.५, अ. २०.७६.५.

अर्द अर्दयः - (१) गति और याचना अर्थ में प्रयुक्त धातु। अर्दयः का अर्थ है प्राप्त होता या सन्मार्ग में चलाता है।
'य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयः'
ऋ. ८.५३.२
(२) गिरना।
'श्लोणया काटमर्दति'
अ. १२.४.३

अर्ध, अर्द्ध - (१) परम सम्पन्नतम पद या स्वरूप।
'तुस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः'
अ. ८.९.१
(२) दूसरा आधा, (३) दूसरा वर्ग।
'पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः'
ऋ. १०.२७.१८
(३) समृद्ध।

'उभावर्धौ भवतः साधूअस्मै'
ऋ. २.२७.१५
(४) विभूति-सम्पन्न संसार ।
'अर्धमधेन पयसा पृणक्षि'
अ. ५.१.९
(५) हृ धातु को उलट कर अर्थात् 'हर' से 'अर्ह' बनाकर कर्मवाच्य मे घञ् प्रत्यय लगाकर तथा 'ह' का 'घ' आदेश कर अर्थ और अर्ध बनाया गया है । अर्थ है -उद्धृत (निकाला हुआ)
(६) ऋध् +घञ् =अर्ध । अभि सम्पन्न तम । विभाग होने से बंटवारा होने से भागियों का मनोरथ सम्पन्न होता है अतः यह अर्द्ध कहलाया
'पूर्वे अर्धे रजसो भानु मञ्जते'
ऋ. १.९२.१, साम. २.११०५, नि. १२.७.
उषा अन्तरिक्ष के पूर्वार्द्ध में सूर्य को व्याप्त करती है ।

अर्धकघाती - समृद्ध संसार का नाश करने वाला -रुद्र ।
'रुद्रेणार्धकघातिना'
अ. ११.२.७

अर्धगर्भा - परम उत्कृष्ट परमेश्वर की शक्ति को अपने भीतर धारण करने वाली प्रकृति ।
'सप्तर्धगर्भा भुवनस्य रेतः'
ऋ. १.१६४.३०, अ. ९.१०.१७, नि. १४.२१.

अर्धभाक् - (१) श्रेष्ठ पद को पाने वाला, (२) इन्द्र को 'देवानाम्' अर्धभाक् कहा गया है । सभी देवता एक ओर, है और इन्द्र एक ओर अतः अर्धभाक हैं ।
'देवानामर्धऊभागसि'
अ. ६.८६.३

अर्धमास - महीने का आधा -पक्ष
'अर्धमासेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२८, तै.सं. ७.१.१५, मै.सं. ३.१२.७, १६२.१५, का.सं. (अश्व). १.६, तै.ब्रा. ३.१.६.१.

अर्धर्च - अर्ध +ऋच् =अर्धर्च । परमेश्वर का तेजोमय समृद्ध ज्ञानमय स्वरूप ।
'अद्भिर्चेन चाक्लृपुः विश्वमेजत्'
अ. ९.१०.१९

अर्भ - (१) बालक सर्प ।
'अर्भस्य तृप्रदंशिनः'
अ. ७.४९.३
(२) छोटा युद्ध ।
'नास्य वर्ता न तरुता महाधने
नार्भे अस्ति वज्रिणः'
ऋ. १.४०.८
बड़े संग्राम में या छोटे संग्राम में इसके सामने होने वाला कोई नहीं है (महाधने अर्भे अस्य वर्तान) और इसे परास्त कर इसके आगे बढ़ने वाला है (न तरुता) ।

अर्भक - (१) दभ (वधार्थक) से दभ्र बना है इसका अर्थ अल्प होता है , क्योकि अल्प पदार्थ सुच्छेद्य होता है । उसी प्रकार अर्भ +कप् =अर्भक का भी अर्थ अल्प होता है । अपहृतम् ह्रस्वम् ।
आधुनिकअर्थ - थोड़ा, छोटा, अल्प, सूक्ष्म । दुर्बल, पतला, मूर्ख, शिशु, पशु का बच्चा, ।
'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः
नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान् यदि शक्नवाम
मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः'
ऋ. १.२७.१३, ऐ.ब्रा. ७.१६.८, आश्व.श्रौ.सू. १.४.७, शां.श्रौ.सू. १५.२२, आप.श्रौ.सू. २४.१३.३, नि. ३.२०.
महान् परिणाम वाले देवों को नमस्कार, अल्प परिमाण वाले देवों को नमस्कार, व्यापी देवों को नमस्कार । हे श्रेष्ठ देवो, हम कम पढ़े लिखे भी देवताओं की प्रार्थना करते हैं । इस प्रकार स्तुति करने को आप यज्ञफल से वञ्चित करें । 'आशिनेभ्यः' का अर्थ स्वा.दयानन्द ने 'वृद्धेभ्यः' और देव का अर्थ विद्वान् किया है ।
(२) अन्यत्र ।
'कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके
बभ्रू यामेषु शोभते ।'
ऋ. ४.३२.२३, नि. ४.१५
हे इन्द्र, दो पीली घोड़यां (बभ्रू) यज्ञों मे विद्ध (यामेषु विद्रधे) पादुकारण्य स्नान में अधिष्ठित नई कन्याओं की तरह (नवे कनीनिकेव) सोहती हैं ।
(३) बालक विद्या बल में अल्प, (४) पुत्र, (५) शिष्य ।

अर्भकदेवाः - (१) अल्प परिणाम वाले देवता -सा. (२) नए विद्वान् - (दया.) ।

अर्भग - (१) अर +भग =अर्भग । अत्यधिक

ऐश्वर्यवाला पुरुष -ज.दे.श.
(२) छोटा बालक -दया.
'यावर्भगाय विमदाय जायां
सेना जुवा न्यूहतू रथेन ।'
ऋ. १.११६.१.
जो अश्विद्वय या सत्य विज्ञान वाले शिल्पी अधिक अति ऐश्वर्यवान् विशेष हर्षोत्पादक युवा पुरुष के लिए (अर्भगाय विमदाय) उसकी स्त्री को और सेना को अपने साथ संचालन करने वाले रथ से सुरक्षित रूप से ले जाते हैं ।

अर्म - बड़ी सवारी ।
'अर्मेभ्यो हस्तिपम्'
वाज.सं. ३०.११, तै.ब्रा. ३.४.१.९.

अर्मक - पीड़ादायी व्यक्ति को दुःखदायी ।
'वैलस्थानके अर्मके'
ऋ. १.१३३.३

अर्मक वैलस्थानक - पीड़ादायी व्यक्तियों को दुःखदायी छोटे से बिल के समान बनाया हुआ कैदखाना जिसे cell कहते हैं ।

अर्थजारा - वह शूद्रा जिसका जार उसका वैश्य, स्वामी या मालिक है ।
'शूद्रा यदर्यजारा
न पोषाय धनायति ।'
वाज.सं. २३.३०, तै.सं. ७.४.१९.३, मै.सं. ३.१३.१, १६८.८, का.सं. (अश्व). ४.८, श.ब्रा. १३.२.९.८, तै.ब्रा. ३.९.७.३, शां.श्रौ.सू. १६.४.४.

अर्य - (१) ऋ +यत् =अर्य । स्वामी, वशयिता ईश्वर (आत्मीयाना इन्द्रियाणाम् ईश्वरः)
(२) संयमी, जितेन्द्रिय ।
'स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोः'
ऋ. ७.२१.५, नि. ४.१९.
जो विघ्नकारी जीवों का रोकने वाला संयमी ब्रह्मचारी हो वह यज्ञ में आवे ।
'अर्यः स्वामिवैश्ययाः' पा. ३.१.१०३ । जर्मनी में नाम के पहले प्रयुक्त Herr शब्द इसी अर्य का अपभ्रंश प्रतीत होता है ।
(३) ईश्वरः स्तोमानाम् वाचस्पति ।
(४) वेदों का पूर्णज्ञाता-(दया.)

अर्यपत्नी - (१) स्वामी की पत्नी, (२) आर्य ललना ।
'यो अर्यपत्नीरुषसः चकार'
ऋ. ७.६.४, तै.ब्रा. २.४.७.९.
'यो अर्यपत्नी अकृणोत् इमा अपः'
ऋ. १०.४३.८, अ. २०.१७.८

अर्वन् - ईरण्वान् , अरणकुशलः अनर्वन् का अर्थ अपराश्रित या स्वतन्त्र किया गया है । इस प्रकार अर्वन् का अर्थ पराश्रयी भी होगा ।
'आ दधिक्राः शवसा पञ्चकृष्टीः
सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा
पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि'
ऋ. ४.३८.१०, तै.सं. १.५.११.४, ऐ.ब्रा. ७.३३.१, आश्व, श्रौ.सू. २.१२.५, नि. १०.३१.
जो दधिक्रा देवता बल से देव, मनुष्य असुर, राक्षस, पितर या निषाद तथा चारों वर्णों के लिए उसी प्रकार जल फैला देते हैं जैसे सूर्य ज्योति । वह अग्नि शतसहस्र उदकों के दाता गतिमान है एवं अरण कुशल है । वे हमारी इन स्तुतिओं को जल से सम्बद्ध करें ।
आधुनिक अर्थ- अश्व, चन्द्रमा के दस घोड़ों में एक, इन्द्र, गोकर्ण, परिमाण

अर्यमन् - (१) अरि+यम्+कनिन्=अर्यमन् । अरीन् नियच्छति (शत्रुओं का नियन्त्रण करता है, (२) अरीणां तमसां नियन्ता (अन्धकार रूपी शत्रुओं का नियन्ता -सूर्य
'वामंवामं त आदुरे
देवो ददात्वर्यमा
वामं पूषा वामं भगो
वामं देवो करुडती'
ऋ. ४.३०.२४, नि. ६.३१
हे आदरवान् यजमान, सूर्य (अर्यमा देवः) तुझे दृष्ट धन दें (वामं ते ददातु) पूषा इपृ पदार्थ दे, भग इष्ट पदार्थ दे और करुड़ती देव इष्ट पदार्थ दे अर्थात् दन्त होने पर पूषा देव दे ।
(३) विद्वान्,
'नार्यमणं पुठयति नो सखायं
केवलाघो भवति केवलादी ।'
ऋ. १०.११७.६, तै.ब्रा. २.८.८.३.
(४) दिन रात का विभाजक सूर्य
(५) न्यायकारी विद्वान् -(दया.) ।

अर्यमस् , अर्यमा - न्यायकारी अर्यमा देवता
'चयत ईम् अर्यमो अप्रशस्तान्'

ऋ. १.१६७.८

अर्यम्य – (१) शत्रुओं या दुष्टपुरुषों को बन्धन में बांध ने वाला पुलिस (२) न्यायाधीश, न्यायकारी वर्ग ।

'अर्यभ्यं वरुणं मित्र्यं वा'

ऋ. ५.८५.७

अर्यमा – (१) अरि +यम +कनिन् =अर्यमन् (२) अरीन् नियच्छति । शत्रुओं का नियन्त्रण करता है, या अरीणां तमसां नियन्ता । अन्धकारों का नियमन करने वाला –आदित्य ।

'अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा
सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु'

ऋ. १०.६४.५, नि. ११.२३.

'अर्यमा इति तमाहुः यो ददाति'

तै.सं. १.१.२.४

कन्या का दान करने वाला ।

'अयमायात्यर्यमा'

अ. ६.६०.१

अर्या – (१) गृह की स्वामिनी नववधू (२) उषा ।

'कृष्णात् उदस्थात् अर्याविहायाः
चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय'

ऋ. १.१२३.१

अपने पिता ने शोकातुर गृह से (कृष्णात्) नववधू (अर्या) अपने पति सम्बन्धी गृह को प्राप्त करने के लिए (मानुषाय क्षपाय) अपना मनोरथ करती हुई (चिकित्सन्ती) विशेष आदर युक्त होकर (विहायाः) उस रथ पर चढ़े (उत् अस्थात्)

(३) समर्थ गति, शीघ्रगति, रथगति या दैवगति ।

'तिरश्चिदर्यमा परि'

ऋ. ५.७५.७, नि. ३.२०

हे अश्विनीद्वय, प्राप्त या अप्राप्त स्थान में (तिरश्चित्) स्थित होकर या दूर देश से भी परिवर्त्तन कर आओ ।

अर्योगयः – दानशील पुरुष शत्रु के लिए भी गृह के समान आश्रमरूप परमेश्वर ।

'अर्योगयं मंहमानं विदाशुषे'

ऋ. ८.२४.२२, अ. २०.६६.१

अर्वत् – अश्व, तुरंग ।

'अर्वद्भिरस्तु तरुता'

ऋ. १.२७.९, साम. २.७६७.

घोड़ो से संग्राम को पार करने वाला ....।

अवती – (१)नीची बहती नदी, (२) अधीन महती शक्ति, (३) प्रकृति की विकृति ।

'सर्गो न सृष्टो अर्वती ऋतायन्'

ऋ. ७.८७.१, का.सं. १२.१५

(४) विद्वान् की ज्ञान वाणी, (५) अश्वसेना । (६) बलवती कन्या ।

'तमिद्गच्छन्ति जुह्वः तमर्वतीः'

ऋ. १.१४५.३

उस शिष्य को ही वेद वाणियां तथा विद्वानों की ज्ञान वाणियां (अर्वतीः) प्राप्त होती हैं । अथवा वेद वाणियों और विद्वानों की सब वाणियां आचार्य को प्राप्त हैं । अथवा, राजा को शत्रु की ललकार और अश्व सेनाएं प्राप्त होती हैं । अथवा, विद्वान् को ज्ञानवती और बलवती कन्या (अर्वती) प्राप्त होती हैं ।

अर्वा – शीघ्र गमन करने वाली, (२) ज्ञानी पुरुष, (३) व्यापक आत्मा ।

अर्वाक्, अर्वाञ्च – (१) समीपवर्ती देश, ।

'अर्वाके आस्ति भेषजम्'

ऋ. ८.९.१५, अ. २०.१४१.५

(२) अर्वाचीन

'बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वाक्'

ऋ. १०.१५.४, अ. १८.१.५१, वाज.सं. १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४.१०.६ १५६.१२ का.सं. २१.१४, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२.

(हे यज्ञ में बैठने वालो ! आप हम अर्वाचीनों की रक्षा करें ।)

(३) आभिमुख्येन (सामने), तरफ, प्रति, सामने की ओर, इस ओर, नीचे या पीछे, आगामी । निकट, अभ्यन्तर, आधुनिक

'ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा
उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त सुभ्राः
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वम्
श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य'

ऋ. ७.३९.३, नि. १२.४३

जो पृथ्वी के देवता इस लोक में हैं और जो यजमानों सुन्दर धन प्राप्त कराने वाले विस्तृत अन्तरिक्ष वर्तमान हैं वे दोनों स्थानों के देवता तथा स्वर्ग के देवता आप तीनों स्थानों के देवता गण को मैं प्रार्थना करता हूँ कि हमारे इस

आपके निकट जाने वाले अग्नि रूप दूत के आह्वान को आप सुनें तथा सुनकर सामने से (अर्वाक्) बहुत प्रकार के आगमन मार्गों को बना (उरुज्रयः पथः कृणुध्वम्) ।

अर्वाक्वसुः – अन्न समृद्धि देने वाला ।
'अयमुपर्यर्वाक् वसुः'
वाज.सं. १५.१९, तै.सं. ४.४.३.२, मै.सं. २.८.१०, ११५.५, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.२०.

अर्वाञ्च् – आभिमुख्येन (सामने) Yonder, तरफ सामने की ओर, इस ओर, नीचे या पीछे, आगामी, निकट, अभ्यन्तर आधुनिक ।

अर्वाञ्चः – (बः व.) (१) समीपवर्ती, (२) इस जगत में कार्य रूप से दीखने वाले जल आदि, (३) इस लोक को छोड़कर ब्रह्मलोक प्राप्त जीव, (४) निकटस्थित ग्रह ।
'ये अर्वाञ्चःतां उ पराच आहुः
ये पराञ्चः तां उ अर्वाच आहुः'
ऋ. १.१६४.१९, अ. ९.९.१९, जै.ब्रा. २.५१.३.

अर्वाञ्चा – (द्वि.व.) (१) अश्विद्वय का विशेषण, (२) घोड़े के समान वेग वाले ।
'अर्वाञ्चा वाँ सप्तयो अध्वरश्रियः
वहन्तु सवने दुप ।'
ऋ. १.४७.८

अर्वाची – (१) भूतल के नीच जाने वाली सीता–हल की फार ।
'अर्वाची सुभगे भव'
ऋ. ४.५७.६, अ. ३.१७.८, तै.आ. ७.७.२.
(२) प्राची के समीप की कोणदिशा अर्वाची है
'अर्वाच्यै दिशेस्वाहा'
वाज.सं. २२.२४.२७, मै.सं. ३.१२.८,१६३.४, ५,६

अर्वाचीनः – (१) आगे से बढ़ा हुआ, (२) वर्तमान में विद्यमान ।
'अर्वाचीनः परिवीतो निषीद'
ऋ. ४.३.२

अर्वान् – (१) ज्ञानवान् (२) बलवान् ।
'उप प्रागात् परमं यत् सधस्थम्
अर्वान् अच्छा पितरं मातरं च ।'
ऋ. १.१६३.१३, वाज.सं. २९.२४, तै.सं. ४.६.७.५, का.सं. (अश्व) ६ .३, श.ब्रा. १३.५.१.१७, १८.

अर्वावत् – (१) समीप का देश ।
'अर्वावतो न आगहि'
ऋ. ३.३७.११, ४०.८, अ. २०.६.८, २०.४,५७.७, मै.सं. ४.१२.३, १८४.९
(२) समीप में स्थित आत्मा ।
'ये अर्वावति सुन्विरे'
ऋ. ८.९३.६, ९.६५.२२, अ. २०.११२.३, साम. २.५१३.

अर्वाहः – शरीर में जुते हुए ।
'अयन् महा ते अर्वाहः'
अ. २०.१२९.११

अर्बुद – (१) जलद् मेघ ।
'न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः'
ऋ. २.११.२०
'वि मूर्धानम् अभिनत् अर्बुदस्य'
ऋ. १०.६७.१२, अ. २०.९१.१२
(२) अम्बुदः मेघः (अरणशीलः अम्बु तत् ददाति इति अम्बुदः) वह जिस प्रकार खूब बरसता है और अपरिमित होता है उसी प्रकार अर्बुद भी अपरिमित समझा जाता है (स यथा महान् बहु भवति वर्षन् तदिव अर्बुदम्)। जैसे अरणशीलम् अम्बु है वैसे ही अरणशील अर्बु है ।
अर्बुद संख्या अपरिमित द्रव्य का वाचक है ।
अर्बुद (अरव) सौ करोड़ो का होता है ।
(३) एक व्रण ।
'अर्बुदञ्च न्यर्बुदञ्च'
वाज.सं. १७.२ तै.सं. ४.४.११.३, मै.सं. २.८.१४, ११८.१५, का.सं . १७.१०.
(४) प्रजा को दुख देने वाला ।
'न्यर्बुदस्य विष्टपम् वर्ष्माणं बृहस्पतस्तिर'
ऋ. ८.३२.३
आधुनिक अर्थ फोड़ा भी है

अर्तुदस्य मूर्धा – (१) मेघ का मुख्य अंशजल
(२) देह का मूर्धा भाग अर्थात् सूर्यचक्र ।

अर्वुदि – लक्ष्य देने का अधिपति ।

अर्श – (१) शिकारी ।
'क्रमस्वर्श इव रोहितम्'
अ. ४.४.७, ६.१०१.३
(२) अश्लील, (३) पाप युक्त । इन दिनों अर्श का अर्थ बवासीर है । बवासीर अश्लील है ।
नञ् +श्रिञ् (सेवा करना) + अ =अश्र =अर्श (श्रिञ् के इ का लोप)

अर्शस् – बवासीर ।
'अर्शस उपचितामसि'
वाज.सं. १२.९७

अर्शसा अर्शसन् – समीप आया प्रजा को मारता हुआ शत्रुगण ।
'न्यर्शसानमोषति'
ऋ. १.१३०.८,८.१२.९.
समीप आए प्रजा और अपनी सेना को मारते हुए शत्रु गण को (अर्शसानम्) सर्वथा भस्म करे (नि ओषति) ।

अर्शसानः – नाशकारी रोग और अन्धकार

अर्ष – (१) पकड़ना , लिपटना ।
'ता अर्षन्ति शुभ्रियः'
अ. २०.४८.२
(२) प्राप्त होना, (३) जाना ।
'तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः'
ऋ. २.२५.४.
(४) पहुँचना ।
'आशुरर्ष बृहन्मते'
ऋ. ९.३९.१, साम. २.२४८.

अर्षनी – तीव्र पीड़ा नामक जनक रोगमात्रा ।
'मूर्धानं प्रति अर्षणीः'
अ. ९.८.१३

अर्षत् – गति करता हुआ ।
'नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वम् अर्षत्'
वाज.सं. ४०.४, वाज.सं. (का.) ४०.४, ईश.उप. ४.

अर्हणा – (१) अर्चना ।
'प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे'
ऋ. १०.९२.७
(२) पूजा, (३) मान आदर करने योग्य, ।
(४) भक्तिपूर्वक दिया हुआ ।
'आदद्धव्यानि आददिः
यज्ञस्य केतुरर्हणा'
ऋ.१.१२७.६
और अग्नि जिस प्रकार यज्ञ का ज्ञापक मुख्य आश्रय होता है (यज्ञस्य केतुः) और सब पदार्थों को अपने में लेने में समर्थ होने से (आददिः) यज्ञोपासना में भक्ति पूर्वक दिये सब चरु पदार्थों को ग्रहण करता है (अर्हणा हव्यानि आदद्) उसी प्रकार व्यापक सुव्यवस्थित प्रजापालन कारी राष्ट्र और सैन्य दलके संगठन तथा प्रजापति पद का मुख्य ध्वजा के समान उच्च होकर पूजा, मान आदर करने योग्य समस्त उत्तम अन्नो और ग्राह्य ऐश्वर्यों को सब प्रकार से स्वीकार करता है (आदद्) ।

अर्हत् – पूज्य ।
'इमं स्तोमम् अर्हते जातवेदसे'
ऋ. १.९४.१, अ. २०.१३.३, साम.१.६६, २.४१४, मै.सं. २.७.३, ७८.१, ऐ. ब्रा. ६.१२.१२, कौ.ब्रा. २३.८, गो.ब्रा. २.२.२२, पंच.ब्रा. १३.८. १, ऐ.आ. १.५.३.१४, आश्व. श्रौ. सू. ५.५.१९, साम.मं.ब्रा. २.५.२, हि.गृ.सू. १.९.४, आप.मं.पा. २.७.१.

अर्हन् – (१) अन्यो का सत्कार करने वाला ।
'ईडितो अग्ने मनसानो अर्हन्'
ऋ. २.३.३
(२) योग्य, समर्थ ।
'अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वा'
ऋ. २.३३.१०, मै.सं. ४.९.४, १२४.१०, कौ.ब्रा. ८.४, तै.आ. ४.५.७, ५.४.१०.

अर्हरिष्णिः – (१) अर्ह +रिष् +वणि =अर्हरिष्णि । यो अर्हन् हिंसकान् च संभजति (जो अर्ह और हिंसकों का विवेक करता है) । अहिंसक धार्मिक और पापी का विवेचक , (२) पूज्य और शत्रुओं का विवेचक, (३) वेगवान् धनापहारी पुरुषों को अपने प्रताप से रुलाने वाला ।

अराजी – दीप्ति हीन, (२) राजा के विपरीत उच्छृंखल, द्रोही ।
'विवृत्रं पर्वशोययुः
विपर्वतां अराजिनः'
ऋ. ८.७.२३

अराटकीः – (१) रोगनाशक ।
'अजश्रृंगी अराटकी'
अ. ४.३७.६

अरातिः – (१) मानसिक अनुदारता, अदानशीलता
'तन्मा तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः'
ऋ. ६.१२४.३
(२) (सं) नहीं देने, वाला, (३) शत्रु 'या मे दूरे तड़तो या अरातयः' मैं इसे यह न दूं ऐसी बुद्धि वाला, (६) षट् (छः) , क्योकि काम क्रोध आदि छः शत्रु भी अराति हैं , (७) अमित्र ।

'आदाय श्येनो अभरत् सोमम्
सहस्रं सवां अयुतं च साकम्
अत्रा पुरन्धिः अजहात् अरातीः
मदे सोमस्य मूरा अमूरः'
ऋ. ४.२६.७, नि. ११.२.
इन्द्र ने (श्येनः) सोम लेकर पान किया (सोमम् आदाय अभरत्) जहाँ पर ऋत्विज् सोम रस और दक्षिणा से युक्त सहस्रों यज्ञ करते हैं (सहस्रम् अयुतम् च सवान्) । यहां प्रचुर धन देने वाले इन्द्र ने (पुरन्धिः) सोम के मद में भी स्वयं अमूढ़ (सोमस्य मदे अमूढ़ः) शत्रुओं को मूढ़ बना प्राणों से हीन किया (मूरा अरातीः अजेहात्) ।

अराति दूषण – शत्रुओं का नाशक ।
'जङ्गिड नामक यन्त्र
अथो अरातिदूषणः'
अ. १९.३४.४

अरातिदूषि – अदान अर्थात् कञ्जूसी भावों का नाशक ।
'अथो अरातिदूषिः'
अ. २.४.६

अरातिक – (१) अदानशील, (२) शत्रुओं का संगी ।
'अरातीवा मर्तः सानुको वृकः'
ऋ. २.२३.७

अरातीयत् – शत्रुवत् आचरण करने वाला या करता हुआ ।
'अरातीयतो निदहाति वेदः'
ऋ. १.९९.१. ऋ.खि. १०.१२७.६, तै.आ. १०.२.१, महा.ना.उप. ६.२, नि. १४.३३.
(वह शत्रुता करने वाले का धन या ज्ञान भस्म करता है ।)
अराति से नाम धातु कर अरातीयति होता है । शतृ प्रत्यय कर अरातीयत् बनता है ।

अरातीयुः – कर ने देने वाला ।
'अरातीयोः भ्रातृव्यस्य'
ऋ. १०.६.१

अरातीवा – (१) अदानशील ।
'अरातीवा मर्चयति द्वयेन'
ऋ. १.१४७.४
(२) शत्रुभाव से युक्त जन ।
'अरातीवा मा नस्तारीत्'
ऋ. ९.११४.४

अराधस् , अराधाः – (१) आराधना से रहित ।
'यदा पणींरराधसः'
ऋ. ८.६४.२, अ. २०.९३.२, साम. २.७०५.
(२) नञ्+राध् +असुन् =आराधस् । अराधना या यज्ञ न करने वाला ।
'कदा मर्तमराधसं यदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।'
ऋ. १.८४.८, अ. २०.६३.५, साम. २.६९३, नि. ५.१७.
यज्ञ आराधना न करने वाले मनुष्य को इन्द्र या परमात्मा कब सांप के छाते के समान नष्ट कर देंगे ।
(३) अनुदार, अदानशील
'कृतागसो देव पीयो रराधसः'
अ. १२.५.६०,६५.

अराधाःपणिः – यज्ञार्थ या दान पुण्य के लिए धन या करआदि से रहित केवल धन का व्यवहार करने वाला, (२) बिना धन के व्यापार करने वाला दिवालिया ।
'पदा पणींरराधसः
निबाधस्व महां असि'
ऋ. ८.६४.२, अ. २०.९३.२, साम. २.७०५.

अराधि – (१) कार्य में सिद्धि न होना, (१) दरिद्रता, (३) बड़ी कन्या के अविवाहित रहते छोटी कन्या का विवाह करने वाला पुरुष ।
'अराध्या एदिधिषुः पतिम्'
वाज.सं. ३०.९

अराय – (१) अलक्ष्मीक , (२) कुलक्षण (३) दरिद्र ।
'अराया नस्या मुष्काभ्याम्'
अ. ८.६.४
(४) देह की पुष्टि, कान्ति और लक्ष्मी का नाशक
'अरायम् असृक् पावानम्'
अ. २.२५.३
(५) नञ् +राय =अराय, निर्धन ।
'अरायेभ्यो जिघत्सुभ्यः'
अ. ८.२.२०
(६) दूसरे का अधिकार हरण ने करने वाला ।
'न पापासो मनामहे
नारायसो न जल्हवः
यदिन्विन्द्रं वृषणं सचा
सुते सखायं कृणवामहे'
ऋ. ८.६१.११, नि. ६.२५.

हम पापी नहीं हैं । हम निर्धन नहीं है, और न हम धनी होने हेतु अनाहिताग्नि हैं (जल्हवः) अतः हम इनको मानते हैं जिस कारण से यहां हम मनोरथ पूर्ण करने वाले इन्द्र को (यत् इत् न) सोमरस तैयार होने पर इस रस के साथ (सचा) सखा बनाते हैं ।
पापियों यज्ञहीनों एवं निर्धनों को इन्द्र पूजक होने का अधिकार नहीं ।

अरायक्षयण – दान न करने वालों, कंजूस स्वार्थी, अनुदार पुरुषों का नाशक परमेश्वर ।
'अरायक्ष्यणमस्यरायचातनं मे दाः स्वाहा'
अ. २.१८.३

अरायचातन – लोलुप, अदानशील पुरुषों का नाश करने वाला ।
'अरायचातनं मेदाः स्वाहा'
अ. २.१८.३

अराय्यः – समृद्धि सम्पत्ति और उत्तम गुणों रहित दुष्ट वृत्ति ।
'रक्षो अम्वम् अराय्यः'
अ. ४.१७.५, ७.२३.१.

अरायी – (१) अदानशीला, दुर्भिक्षाधिदेवता के विशेषण रूप में प्रयुक्त ।
रायि–धन देने वाला । नञ् +रा +णि +युक् + ङीष् =अरायी ।
'अरायि काणे विकटे
गिरं गच्छ सदान्वे
शिरिम्बिठस्य सत्वभिः
ते भिष्ट्वा चातयामसि'
ऋ. १०.१५५.१, नि. ६.३०.
भरद्वाज के पुत्र शिरिम्बिठ ऋषि ने दरिद्र हो जाने पर इस मन्त्र के जप से दारिद्र्य हटा दिया । मुख भर जल में खड़े होकर इस मन्त्र का जप आज भी करते हैं । आर्य समाजी विद्वान् शिरिम्बिठ का अर्थ मेघ करते हैं ।
हे अदानशीले दुर्भिक्षाधिदेवते । अथवा हे अलक्ष्मि ! हे कुत्सित दर्शने ! (काणे) विकृताङ्गि या कुब्जे (विकटे), हे सदा न दो न दो कहने वाली (सदान्वे) तू पहाड़ पर चली जा नहीं तो मेघ के शिरिम्बिठ ऋषि के उन प्रसिद्ध चल रूपी सत्वो से हम तुम्हे नष्ट कर देंगें ।
(२) जो मनुष्य को लक्ष्मी या शोभा से रहित करने वाली है ।
'तत्र सन्त्वराय्यः'
अ. २.१४.३

अरालागू – अन्तरिक्ष में स्थित ।
'अरालागुदभर्त्सथ'
अ. २०.१३४.१.

अरावन् – अ +रावन । अदानशील, अति कृपण ।
'पाहिधूर्तेरराव्णः'
ऋ. १.३६.१५
हे अग्नि ! हमें अदानशील , अतिकृपण विश्वासघाती धूर्त हिंसक से रक्षाकर ।

अरावा – (१) शत्रु , (२) वचन आदि से रहित धूर्तजन ।
'नू चित् यमन्य आदभत् अरावा'
ऋ. ७.५६.१५.
(३) अदानशील ।
'अरावा चन मर्त्यः'
ऋ. ८.२८.४.
'मान नो निदेच वक्तवे
'अर्यो रन्धीरराव्णे'
ऋ. ७.३१.५, अ. २०.१८.५.

अरि – (१)ऐश्वर्य वान् स्वामी, (२) सुखों और धनों को प्राप्त कराने वाला ।
'पुरुत्वा दाश्वान वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७. नि. ५.७.
हे विद्वन् नायक प्रभो ! मैं दानशील ऐश्वर्यवान् स्वामी और सुखों और धनों को प्राप्त कराने वाला होकर (अरिः) तुझे बहुत कुछ स्तुति करूं (पुरु वोचे) ।
(३) सबको कष्ट देने वाला शत्रु ।
'अपेह्यरिरस्थ रिर्वाअसि'
अ. ७.८८.१
(४) आगे बढ़ने वाला ।
'अर्यो विपो जनानाम्'
ऋ. ८.१.४, अ. २०.८५.४
(५) प्रजा ।
'प्रजा वाऽअरिः'
श.ब्रा. ३.९.४.२१
(६) स्वामी ।
'अर्यो गयं मंहमानम् वि दाशुषे'
ऋ. ८.२४.२२, अ. २०.६६.१

(७) सेवक । ऋ (हिंसार्थक धातु) +इ =अरि
(८) ईश्वर । (परिचरणार्थक) +इ = अरि । ईश्वरः सेव्यते (ईश्वर की परिचर्या की जाती है)
सेवक के अर्थ में प्रयोग-
'पुरुत्वा दाश्वान् वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्ये व शरण आमहस्य ।'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७, नि. ५.७.
हे अग्ने । तुझे बहुत दान देकर तेरा ही सेवक (तव स्विद् अरिः) मैं तुझे पुकारता हूँ या अनेक वरदान मांगता हूँ (वोचे), क्योंकि जैसे महान् विदीर्ण भूखण्ड के बिल में (महस्य तोदस्य इव शरणे) चारों ओर से पानी आने पर भी बिल नहीं भरता उसी प्रकार तू भी अपिरमित है । अनेकों यजमान तेरे लिए या अन्य देवों के लिए हवि देते हैं पर तू ऊबता नहीं ।
(९) ऋ +र =अरि । अच्छति गृह्णाति अन्यायेन इति अरिः । जो अन्याय से सुखों या धनों का ग्रहण करता है ।
(१०) ऋच्छति सुखानि च यः सोऽरिः-दया. (उत्तम सुखों को प्राप्त होने वाला)
(११) अनुष्ठेय कर्मों को करने वाला यजमान इयन्ति गच्छति अनुष्ठेय कर्म इति अरिः यजमानः ।
(१२) सुखों का लिप्सु पुरुष ।
'सुते सुते न्योकसे
बृहत् बृहत एदरिः'
ऋ. १.९.१०, अ. २०.७१.१६
सुखों का लिप्सु पुरुष प्रत्येक ऐश्वर्य की प्राप्ति में परमेश्वर के महान् बल की स्तुति करता है ।
(१३) व्यापक स्वामी, प्रभु ।
'अगो ररिरा चिकेत'
ऋ. ८.२.१४
(१४) स्वामी राजा ।
'ब्रवद् यथा न आदरिः सुदास'
ऋ. ७.६४.३.
'अम्ब निष्पर समरीः विदग्म्'
वाज.सं. ६.३६, तै.सं. १.४.१.२, ६.४.४.३, मै.सं. १.३.४, ३२.१, ४.५.७, ७३.२०, का.सं. ३.१०, श.ब्रा. ३.९.४.२१, आप.श्रौ.सू. १२.९ .९.
(१५) जल,(१६) वेग से चलने वाला वायु
'ऊर्जं सप्त पदी मरिः'
ऋ. ८.७२.१६

अरिगूर्त - शत्रुओं पर उद्यत् ।
'इषश्च पर्षत् अरिगूर्त सूरिः'
ऋ. १.१८६.३

अरित्र - काम, क्रोध आदि अरिवर्ग से रक्षा करने के साधन ।
'अरित्राणि हिरण्यया'
अ. ५.४.५

अदित्रपरणी - अदित्रद्वारा पार करने योग्य नौका ।
'नावम रित्रपरिणीं कृणुध्वम्'
ऋ. १०.१०१.२

अरिता, अरितृ - (पु.) ईरयिता । ईर् +तृच् कर्णधार ।
'इयर्तिवाचम् अरितेव नावम्'
ऋ. २.४२.१, ९.९५.२

अरिधायस् - (१) अरि +धायस् । ऐश्वर्यवान् स्वामी को धारण पोषण करने में समर्थ, (२) विपक्ष के शत्रु को थाम लेने वाला (३) आत्मा रूपी स्वामी को धारण करने वाला प्राण ।
'त्रीन् युक्तान् अष्टावरिधायसोगाः
सुबन्धवो ये विश्या इव ब्रा
अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ।'
ऋ. १.१२६.५
जो शरीर में एकत्र सुबद्ध प्राण (सुबन्धवः पज्राः) आत्मा रूपी स्वामी को धारण करने वाले हैं (अरिधायसः) शरीर, जीवन को धारण करने वाले हैं (अनस्वन्तः) और वे अन्न चाहते हैं (श्रव ऐषन्त) अथवा हे उत्तम सम्बन्धों से सम्बद्ध, परस्पर प्रेम और विद्या सम्बन्ध तथा योनि-सम्बन्ध से बंधे हुए (सुबन्धवः) ज्ञानी विद्वान् पुरुष (प्रजाः) प्रजाजनों में उत्तम धनवान् वैश्य पुरुष (विश्याः) गाड़ियों के स्वामी होकर (अनस्वन्तः) जिस प्रकार वरण करने योग्य उत्तम स्त्रियों, प्रजा तथा अन्न, यश, धन चाहते हैं, मैं अध्यक्ष आपमें से उत्तम राति से कार्य करने योग्य कुशल तीन मुख्य पुरुषों और आठ प्रमुख सभासदों को ऐश्वर्यवान् स्वामी को धारण करने में समर्थ या शत्रु को थाम लेने वाला (अरिधायसः) जान शकट में लगे बैलों के समान (अनस्वन्तः) उत्तम पुरुषों और आप लोगों

के उत्कृष्ट प्रयत्नो में भी धारण करते हैं ।

अरिप्र – निष्पाप । अ +रिप्र ।

'तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य'

ऋ. ७.४७.१

'अरिप्रा आपो अप रिप्र मस्मत्'

अ. १०.५.२४, १६.१.१०

अरिषण्यन् – (१) अपने शरीर से हिंसा आदि अधर्म न करने वालाइन्द्र का विशेषण ।

'त्वं ह त्यद् इन्द्र अरिषण्यन्'

ऋ. १.६३.५

(२) 'अजिघांसन्' । दुर्ग के मत से 'अहिंस्यमानः'। रिष् (हिंसा करना) + क्यच् (इच्छार्थक) + शतृ = रिषण्यन् (हिंसा करने की इच्छा करता हुआ) नञ् + रिषण्यन् =अरिषण्यन् (हिंसा करने की इच्छा न करता हुआ) । रिष् धातु से ही 'रिसियाना' क्रुद्ध होने के अर्थ में हिन्दी में प्रयुक्त हो रहा है ।

'मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे
अरिषण्यन् वीडयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वम्
नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोद पिब ऋतुभिः'

ऋ. २.३७.३, नि. ८.३

हे वनस्पते ! हे द्रविणोद नामक अग्ने । तेरे घोड़े (वह्नयः) जिनसे तू नित्य चलता है (ईयसे) तृप्त होवें (मेद्यन्तु) और तू भी हिंसा की इच्छा न करता हुआ (अरिषण्यन्) अपने को दृढ़कर (वीडयस्व), उसके बाद हे शत्रु धर्षक (धृष्णो) सोमरस को खूब मिलाकर (सोमम् आयूय) तथा खूब पलटकर (अभिगूर्य) यज्ञ स्थान से (नेष्ट्रात्) ऋतुओं के साथ पान कर (ऋतुभिःपिब) । अथवा, हे वृष्टि जल की रक्षा करने वाले (वनस्पते), हे द्रविणोद नामक अग्नि, तेरे रथ के वाहक, ज्वाला से (रथस्य वह्नयः) जिनसे तू चलता है घृताहुति से स्निग्ध हो (मेद्यन्तु) ।

अरिष्टः – अहिंसित, अपीडित

'अरिष्टःसर्व एधते'

ऋ. १.४१.२, ८.२७.१६.

(वह किसी प्रकार भी अहिंसित या अपीड़त न होकर सबगुणों से बढ़ता है ।)

अरिष्टगातुः – (१) जिसका गमन अहिंसा मय पीड़ा-रहित हो, (२) अहिंसित वाणी वाला-दया. (३) भूमि वासी प्रजाओं को बिना पीड़ा दिए ही अविघ्न मार्ग से जाता हुआ ।

'अरिसृगातुः स होता स हो भरिः'

ऋ. ५.४४.३

अरिष्ठग्नामः – (१) अप्रतिहत संघः (जिसका संघ या साथ अप्रतिहत हो) मरुतों का विशेषण (२) संघ शक्ति से सम्पन्न तेजस्वी विद्वान् –(दया.) ।

अरिष्टग्रामाः – (१) सदा साथ रहने वाले मरुद्गण (२) संघ शक्ति सम्पन्न विद्वज्जन –(दया.)

'यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना
अरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।'

ऋ. १.१६६.६.

हे उग्र मरुतो ! सुन्दर बुद्धि वाले आप (सुचेतेना) तथा सुन्दर सदा साथ रहने वाले (अरिष्टग्रामाः) आप हमारी बुद्धि को (नः सुमतिम् । पूर्ण करें (पिपर्तन) ।–सा.

अथवा हे संघ शक्ति से सम्पन्न तेजस्वी विद्वानो ! (अरिष्ट ग्रामाः उग्राः मरुतः) आप हमारी शिक्षा को (नः सुमतिम्) विज्ञान से (सुचेतुना) परिपूर्ण करो (पिपर्तन) –(दया.)

(३) अपने जन संघों, ग्रामों और प्राण-समूहों को नष्ट न होते देते हुए-मरुतों का विशेषण

अरिष्टतातिः – (१) मृत्यु –नाशक उपाय ।

'आ त्वागमं शन्तातिभिरथो
अरिष्टतातिभिः'

ऋ. १०.१३७.४, अ. ४.१३.५.

(२) अरिष्ट से रक्षा

'मह्या अरिष्टतातये'

-अ. ३.५.५, ८.५.२०

अरिष्टनेमिः – (१) दुःखों का विनाशक –सूर्य ।

'अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं'

ऋ. १.१८०.१०

(२)अप्रतिहत वज्र जिसके वज्र का प्रहार कोई रोक नहीं सकता, ।

(३) दृढ़ व्रत का निर्माता

'त्यमूषु वाजिनं देवजूतं
सहावानं तुरुतारं रथानाम्
अरिष्टनेमिंपृतनाजमाशुं
स्वस्तये तार्क्ष्य मिहा हुवेम'

ऋ. १०.१७८.१, अ. ७.८५.१, साम. १.३३२, ऐ.ब्रा.

४.२०.२२, २९.१६, ३१. १४, ५.१.२२, ४.२३, ७.९, १२.८, १६.२९, १८.२५, २०.२१, कौ.ब्रा. २५.८, श.ब्रा. ५.१, अ.ब्रा. १. ऐ,आ. ५.३.१.२, आश्व.श्रौ.सू. ७.१.१३, नि. १०.२८.
हम उस प्रसिद्ध भयदाता बलवान् (वाजिनम्) देवों के साथ आए हुए (देवजूतम्) बलवान (सहावानम्) रथों के तारयिता रथानां तरुतारम्) अप्रतिहत वज्रप्रहार (अप्रतिहत नेमिम्) सेनाओं के विजयिता (पृतनाजम्) ताक्ष्ये को इस कार्य में अपने कल्याण के लिए (स्वस्तये) बुलाते हैं (आहुवेम) ।
(४) हिंसन पीड़नादि से रहित मार्ग पर ले जाने वाला नायक ।
'अरिष्टनेमे अभिनः सचस्व'
ऋ. ३.५३.१७
(५) अरिष्टानां दुःखानां तेभिः वज्रवत् छेत्ता (दुःखों का वज्र के समान छेदन करने वाला-परमेश्वर) (६) रथ चक्र की नहीं टूटने वाली धारा (७) अटूट दृढ़ हथियारों से युक्त ।
(८) दुष्टों का नाशक-परमेश्वर ।
'स्वस्तिनः ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः'
ऋ. १.८९.६, साम. २.१२२५, वाज.सं. २५.१९, मै.सं. ४.९.२७: १४०.१, का.सं. ३५.१, तै.आ. १.१.१, २.१.३, १०.१.९, आप.श्रौ.सू. १४.१६ नृसिंह.पू.ता.उप.१.
(९) अहिंसित नियमन शक्ति वाला ।
'तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च
सेनानी ग्रामण्यौ ।'
वाज.सं. १५.१८, तै.सं. ४.४.३.२, मै.सं. २.८.१०, ११५.६, का.सं. १७ .९, श.ब्रा. ८.६.१.१९.

अरिष्टभर्मा – (१) अरिष्ट अर्थात् सुखों को पूर्ण करने वाली, (२) अहिंसित बालक पुत्रों का पोषण करने वाली ।
'देवेभिर्देव्यदिते अरिष्टभर्मन् आगहि ।'
ऋ. ८.१८.४

अरिष्टवीरः – (१) आरोग्य युक्त सामर्थ्य वाला ।
'अरिष्टवीरा उपसंचरेम'
अ. ३.१२.१, हि.गृ.सू. १.२७.२.
(२) अहिंसित वीर पुरुषों और पुत्रों से युक्त
'अरिष्ट वीरा जुहुवाम तेहविः'
ऋ. १.११४.३, का.सं. ४०.११, आप.श्रौ.सू. १७.२२.१

अरिष्टासू – अरिष्ट +असू (१) जिनके असु अर्थात् प्राण सुरक्षित हैं वे पति पत्नी,
'अरिष्टासू सचेवहि'
अ.१४.२.७२ ,

अरिष्टि – (१) नाश का न होना ।
'अरि अश्वसादम्'
वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७.
(२) रोग-राहित्य ।
'पोषं रयीणाम् अरिष्टि तनूनाम्'
ऋ.२.२.२१.६

अरिष्टन् – कभी नाश को न प्राप्त हुआ ।
'अरिष्यन्तः सचेमहि'
ऋ.२.८.६.

अर्किणः – ऋग्वेदी होता ।
'इन्द्रमर्केभिरर्किणः'
ऋ. १.७.१, अ. २०.३८.४,४७.४,७०.७, साम १.१९८,२.१४६, तै.सं.१. ६.१२.२, मै.सं. २.१३.६, १५४.१५, का.सं. ८.१६, ३९.१२, तै.ब्रा. १ .५.८.२.
हे ऋग्वेदी होताओ ! आप ऋग्वेद के मन्त्रों से इन्द्र का ही अनुष्ठान करें ।

अर्चिवत् – (१) अर्चि +वतुप् । तेद से युक्त-नक्षत्र, सूर्य (२) आदर सत्कार योग्य ।
'उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्'
ऋ. ७.८१.२, साम .२.१०.२

अर्पिताः – अर्प +क्त +जस् =अर्पिताः । अर्पित किये गए हैं, (२) ठोके गए हैं ।
'तास्मिन् त्साकं त्रिशता न शंकवः
अर्पिताःषष्टिर्न चलाचलासः'
ऋ. १.१६४.४८, नि. ४.२७.
उस काल चक्र में वर्ष के ३६० दिन रूपी शंकु अर्थात् कील ठोके गए हैं ये दिनरात चल और अचल दोनों हैं ।

अरीढः – अविनाशी परमेश्वर ।
'अरीढं वत्सं चरथाय माता'
ऋ ४.१८.१०

अरुचः – कान्ति हीन चन्द्र, पृथ्वी आदि ग्रह ।
'अयं रोचयद् अरुचो रुचानः'
ऋ.६.३९.४

अरुजत् – लट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग । अर्थ-काटती है ।

'इयं शुष्मेभिः बिसखा इवारुजत्'
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः'
ऋ.६.६१.२, मै.सं.४.१४.७,२२६.९, का.सं. ४.१६, तै.ब्रा.२.८.२.८, नि.२.२४.
यह सरस्वती नदी अपनी बलवती महती ऊर्मियों से पर्वता की चोटी काटती है ।

अरुण – (१) रुचिकर, (२) प्राप्त करने योग्य (३) प्रकाशयुक्त, (४) गतिशील ।
'अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुम्'
ऋ. ७.९८.१, अ.२०.८७.१
(५) आरोचन, संसार को अपनी ज्योति से प्रकाशित करने वाला,–सूर्य । चन्द्रमा (६) लाल रंग, (७) प्रातः कालीन प्रभा, (८) सूर्य का । सारथि रूप उषाकाल
'अरुणो मासकृत वृकः
पथा यन्तं ददर्शहि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव
पृष्ट्या मयी वित्तं मे अस्य रोदसी'
ऋ. १.१०५.१८, नि. ५.२१.
आरोचन (अरुणः) मासों तथा अर्द्धमासों का कर्त्ता चन्द्रमा (मासकृत् वृकः)आकाश मार्ग से जाते हुए नक्षत्र को देखता है (पथा यन्तं ददर्शहि), परन्तु कूप में पतित मुझ को नहीं देखता । नक्षत्र को देखकर भी ऊपर ही देखता रहता है नीचे नहीं (निचाय्य उज्जिहीते) जैसे पीठ का रोग बढ़ई नीचे की ओर नहीं देखता उसी प्रकार चन्द्रमा भी मुझे नहीं देखता (तष्टा पृष्ट्यामयी इव) । इसलिए हे द्यावा पृथिवी, इस कुदशा में मेरी यह दशा तुम दोनों जानों (अस्य मे वित्तम्)
अन्य अर्थ –अन्य नक्षत्रों से अधिक चमकने वाला तथा मास और पक्षों का निर्माता चन्द्रमा अपने मार्ग में प्राप्त होते हुए नक्षत्रगणों से योग करता हुआ मानों उन्हें देखता है और प्रतिदिन जिस नक्षत्र से योग करना होता है मानो उसे देखता –उस से योग करता है (निचाय्य उज्जिहिते) । जैसे पीठ का रोगी चित्रा नक्षत्र चन्द्रमा से योग करता है एवं अन्य नक्षत्र भी योग करते हैं । हे स्त्री पुरषो, (रोदसी) तुम मेरी उस नक्षत्र विद्या को जानो –दया.
(९)यस्मिन् त्रयो अरुण गुणाः सन्ति सूर्य–दया.
(१०) आदि, मध्य और अन्त तीनों दशाओं में तेजस्वी , (११) तीनों कालों और तीनों पदों पर शोभा देने वाला, (१२) तीन वेद विद्याओंमन, वाणी और शरीर तीनों को पारंगत , (१३) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ से उत्तीर्ण, (१४) इह लोक , अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों प्रकाश से व्याप्त–तीनों से परे सूर्य ।
'वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत'
ऋ. ५.२७.१

अरुणकेतु – लाल पताका, झण्डा ।
'अरुणैः केतुभिः सह'
अ.११.१०.२

अरुणप्सवः,अरुणप्सुः – (१) वायुगण जो सूर्य की दीप्तियों को मानों खा जाते या अपने में विलीन कर देते हैं ।
(२) कान्तिदायक तेजों वर्द्धक पदार्थ का भोजन करने वाले ।
'उदुत्ये अरुणप्सवः'
ऋ.८.७.७
(३) प्सान्ति इति प्सवः अश्वाः: अरुणाःरक्ताः: (लाल घोड़े)
(४) रक्त गुण–विशिष्ट जिसका भोजन हो वह । (दया.) ।
'वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम्'
ऋ. १.४९.१.
हे उषा या विदुषी कन्ये । तुझे लाल वर्ण के घोड़े (अरुणप्सवः) ऐश्वर्यवान् बलवीर्य से युक्त ब्रह्मचारी प्रियपति के घर तक सुखपूर्वक ले आवें ।
(५) अरुण कान्ति युक्त उषा, (६) स्वस्थ नवयुवती ।
'अरुणप्सुरशिश्वितत्'
ऋ. ८.५.१,साम १.२१९.
(७) लाल तेज से युक्त सूर्य–कर्त्ता–उषा का विशेषण ।
'ऋतावरी मरुणप्सुं विभातीम्'
ऋ. ५.८०.१.

अरुणस्तूप – (१) उज्ज्वल स्तुति घोष ।
(२) उज्ज्वल वर्ण अन्न ।
(३) उज्ज्वल तेज–समूह युक्त अग्नि ।
(४) दीप्यमान तेज संघ से युक्त रोषरहित स्तुत्य

शिष्य ।
'अरुषस्तूपो रुशदस्य पाजः'
ऋ.३.२९.३, वाज.सं. ३४.१४.

अरुणवभ्रु – लालभूरा, लाल भूरा रंग की पोशाकवाला ।
'बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः'
वाज.सं. २४.२, तै.सं. ५.६.११.१, मै.सं. ३.१३.३: १६९.१, का.सं. (अश्व). ९.१.

अरुणवात – (१) वेगवान् वायु, (२) वात अरुण का अर्थ वेगवान् अश्व हुआ ।
'त्वं वातैः अरुणैः यासि शंग्यः'
ऋ. २.१.६, तै.सं. १.३.१४.१, तै.ब्रा. ३.११.२.१.

अरुणाश्वः – लाल घोड़े का स्वामी ।
'पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः'
ऋ. ५.५७.४

अरुणाभानवः – लाल रंग की किरणें ।
'उदपप्तन् अरुणा भानवोवृथा'
ऋ. १.९२.२, साम. २.११०६.

अरुणिः – तेजस्विनी
'ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः'
ऋ. १०.९५.६.

अरुणी – (१) तेजस्विनी, (२) ब्रह्मचारिणी, कन्या ।
आघ वा याभिः अरुणीरशिक्षतम्'
ऋ. १.११२.१९
जिन उपायों से तेजस्विनी ब्रह्मचारिणी कन्याओं को शिक्षा प्रदान करते हो ।
(३) प्रकाशवती उषा, (४) सबके चित्त को लुभाने वाली उत्तम धार्मिक नीति ।
'नक्षद्धवमरुणी पूर्व्यं राट्'
ऋ. १.१२१.३
प्रकाशमान सूर्य (राट्) पूर्व दिशा में प्रकट होने वाले देने योग्य प्रकाश को (हवम्) देता और प्रकाशमान उषाओं को व्यापता है (अरुणीः नक्षत्) ।
अथवा, तेजस्वी पुरुष (राट्) पूर्व के विद्वानों से दिये और उपदेश किए गए और आदर पूर्वक ग्रहण करने योग्य न्याय और ज्ञान को (हवम्) प्रकट करता और सबके चित्त को लुभाने वाली उत्तम धार्मिक नीतियों को बरतता है (अरुणीः) ।
(५) अरुण, तेजोमयी, कान्तिमयी ज्ञानधारा या वेदवाणी ।
'क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्'
ऋ.४.२.१६, अ. १८.३.२१, वाज.सं. १९.६९, तै.सं. २.६.१२.४.
(६) अरुण वर्ण वाली स्वस्थ माता ।
(७) अरुण वर्णवाली गौ, (८) पृथिवी ।
'आसीनासो अरुणीनामुपस्थे'
ऋ.१०.१५.७, अ.१८.३.४३, वाज.सं.१९.६३
(९) गौरवर्ण, तेजस्वी एवं गौओं के समान प्रिय मनोहर मातृजन ।
(१०) लाल ऊन की गद्दी ।
(११) उषा की लाल कान्ति ।
'आवहन्ती अरुणी ज्योतिषागात्'
ऋ.४.१४.३.

अरुतहनुः – इन्द्र जिसकी दण्डदात्री शक्ति (हनु) कभी बाधित नहीं होती ।
'अरुतहनुरद्भुतं न रजः'
ऋ. १०.१०५.७

अरुन्धती – (१) घावों को भर देने वाली ओषधि–सिलाची, लाक्षा, लाह ।
'सा न एह्यरुन्धति'
अ. ५.५.५,९
(२) अरुष–घाव को पूरने वाली ओषधि ।
'रोहमेदमरुन्धति'
अ. ४.१२.१
(३) अरोधन शीला सबको मुक्त करने वाली, सुखकारिणी गृह– पत्नी ।
'धेनुभ्यस्त्वमरुन्धति'
अ. ६.५९.१.
(४) एक औषधि ।
'अरुन्धतीन् उन्नयन्तीम्'
अ. ८.७.६

अरुरुष – अदानी, अतिक्रोधी ।
'गुरुद्वेषो अरुरुषे दधन्ति'
ऋ. ७.५६.१९, मैं.सं. ४.१४.१८, २४७.१३, तै.ब्रा. २.८.५.७.

अरुष – अ+रुष् (क्रोध करना, हिंसा करना) +क्विप् =अरुष, (१) क्रुद्धन होने वाला, (२) नहीं रुचने वाला (अ +रुच् +क्विप्) ।

अरुषः – (१) दीप्तिमान्, (२) रोष रहित ।
'वि रोचनतामरुषो भानुना शुचिः'
ऋ. १०.४३.९, अ. २०.१७.९

(३) मर्मों में व्यापक आत्मा, (४) दीप्त सूर्य , (५) रोष- रहित सौम्य स्वभाव ।

'युञ्जन्ति ब्रध्नम् अरुषं
चरन्तं परि तस्थुषः'

ऋ. १.६.१, अ. २०.२६.४,४७.१०,६९.७, वाज.सं. २३.५, साम. २.८१८. तै.सं. ७.४.२०.१, मै.सं. ३.१२.८, १६५.९, ३.१६.३: १८५.४, का.सं.(अश्व) ४.९, कौ.ब्रा. २५.१५, श.ब्रा. १३.२.६.१, तै.ब्रा. ३.९.४.१, आश्व.श्रौ.सू. ६.४.१०, शां.श्रौ.सू. ९.१७.१, १२.१.४, वै.सू. २६.१२,२७.१९, ३३.२,३९.४, आप.मं.पा. १.६.२.

(६) अहिंसक परमेश्वर , (७) प्राण वायु, (८) रक्त-गुण से युक्त ।

अरुषस्तूपः - (१) हिंसारहित ज्वालामय अग्नि (२) अपने तेज या वीर्य से स्त्री को कष्टदायी न होने वाला पति ।

'अरुषस्तूपो रुषदस्य पाजः'

ऋ. ३.२९.३, वाज.सं. ३४.१४.

अरुषा - (१) कान्तिमान और उद्वेग से रहित प्राण और अपान ।

'अन्तरीय से अरुषा युजानः'

ऋ. ४.२.३

(२) चमकीले श्वेत अश्व के जोड़े ।

'उतारुषा ह चक्रे विभृत्रः

ऋ. २.१०.२

अरुषी - (१) दीप्तियुक्त चमकती कान्ति वाली पृथिवी ।

'अरुषीणां चतुःशतम्'

ऋ. ८.५५.३

(२) रक्त गुण वाली गमन शील एवं कान्तियुक्त हरणशील शक्ति (३) भौतिक अग्नि की ज्वाला, (४) गतियुक्त शक्ति जो रक्तयुक्त कान्ति वाली है ।

'युक्ष्वाह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः ।'

ऋ. १.१४.१२

(५) अरोचमाना उषा । नञ् +रुच् +क्विषू =अरुषी ।

'एता उत्या उषसः केतुमक्रत
पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः
प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ।'

ऋ. १.९२.१, साम. २.११०५, नि. १२.७

जो उषाएं अन्तरिक्ष के पूर्वार्द्ध में सूर्य को व्यक्त करती हैं वे ही अन्धकार करती हैं । जैसे योद्धागण अपने अपने आयुधों को तेज करते और चमकाते हैं (धृष्णवः आयुधानि निष्कृण्वाना इव) उसी प्रकार संसार के लिए वे प्रकाश करती हैं । तब गमनस्वभाव अरोचमाना सूर्य प्रकाश की निर्मात्री उषाएं सूर्य में ही लीन हो जाती हैं (गावः अरुषीः मातरः प्रति यन्ति)।

सूर्योदय उषा के ही बाद होता है और सूर्योदय होते ही उषा अनार्हित हो जाती है ।

(६) सत्य युक्त अन्तः करणवाली जीव या चित् सत्ता (७ पराक्रम युक्त तेजस्वी सेना (८) तजोमयी उषा ।

'श्यावी च यद् अरुषी च स्वसारौ'

ऋ. ३.५५.११

अरु - (न.) घाव ।

'यद् वारुर्हरसा कृतम्'

अ. ५.५.४

अरुम्राण - (न.) मर्मभूत वस्तु को पकाने वाला ।

'अरुस्राणमिदं महत्'

अ. २.३.३,५

अरेजताम् - गति करते हैं ।

'अरेजेतां रोदसी होतृवूर्ये'

ऋ. १.३१.३

(परमेश्वर से वरण करने और संविभाग करने योग्य द्यौ और पृथिवी दोनों उसी के संकल्प से गति करते हैं ।)

अरेणु - (१) रेणु-रहित, (२) अनवद्य ।

'स तुर्वणिमहाँ अरेणु पौंस्ये
गिरेः भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः'

ऋ. १.५६.३, नि. ६.१४.

वह क्षिप्रकारी इन्द्र (तुर्वणिः) अपने बल या प्रभाव से तथा अनवद्य पौरुष में महान् है । यह शीघ्र प्रदाता महात्मा तेजस्वी पुरुष (तुर्वणिः) अक्षीण यौवन में (अरेणु पौस्ये) पर्वत श्रृंग की तरह चमकता है ।- (दया.)

पुनः

'ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो
अरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।'

ऋ. १.३५.११, वाज.सं. ३४.२७, तै.सं. ७.५.२४.१, का.सं.(अश्व). १.१, तै.ब्रा. ३.९.४.३, आप.श्रौ.सू. २०.२.२,१६.१५,
(३)क्षय-रहित कर्म, (४) निर्दोष (५) अहिंसक।
'अरेणवः तुज आ सद्मन् धेनवः'
ऋ. १.१५१.५
(६) अक्षीण -(दया.)
नञ्+रीञ् (गति और रेषण अर्थों में) +नु =अरेणु

अरेयस् - (१) निष्पाप , (२) मल-रहित,निर्मल।
'अरेयसः सचेतसः स्वसरे
मन्युमत्तमाश्चिते गोः'
अ. ७.२२.२, साम.१.४५८, आप.श्रौ.सू. २१.९.१५,

अरेपसा - (१) पाप-रहित स्त्री पुरुष ,(२) अश्विद्वय।
'अरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः'
ऋ.१.१८१.४, नि.१२.३.

अरोगण - रोग को हटाने वाली ओषधि।
'अनाम्नावम् अरोगणम्'
अ.२.३.२

अर्णोवृत - (१) अर्णस् + वृत। जल से भरा या घिरा हुआ, (२) जलदुर्ग में स्थित, (३) विश्वमहासागर में विद्यमान।
'अहिमिन्द्रो अर्णोवृतं विवृश्चत्'
ऋ.२.१९.२.

अलकम् - व्यर्थ।
'रेकुपदम् अलकम् आजगन्थ'
ऋ.१०.१०८.७
'यदीं श्रृणोत्यलकं श्रृणोति'
ऋ.१०.७१.६, ऐ.आ. ३.२.४.३, तै.आ. १.३.१, २.१५.१.

अलजः - (१) जो पुरुष अपने कार्यों से दूसरे को सन्ताप न दे, (२) अलज नामक पक्षी।
'अलज आन्तरिक्षः'
वाज.सं. २४.३४. तै.सं. ५.५.२०.१, मै.सं. ३.१४.१६,१७६.१, का.सं. (आश्व). ७.१०.

अलज्ञा - (१) जल की कल कल ध्वनि।
(२) उषा कालीन पक्षियों का कलरव।
(३) प्रकृति की मनोहर ध्वनि या अद्भुत गति।

अललाभवन्ती - (१) अव्यक्त ध्वनि से कल कल करती हुई नदी, (२) पक्षियों की अव्यक्त ध्वनि करती हुई उषा, (३) अति मनोहर ध्वनि करती हुई या अद्भुत आश्चर्यजनक होती हुई प्रकृति।
'एता अर्षन्ति अललाभवन्तीः
ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः'
ऋ.४.१८.६.

अलगण्डू - अत्यधिक खाज पैदा करने वाला क्रिमि।
'अलगण्डून् सर्वान् छलुनान् कृमीन्'
अ.२.३१.२

अलजिः - आख के भीतर दाने या रोहे आदि का फूलना।
'वातीकारस्य वालजेः'
अ. ९.८.२०

अल्गौ - अतिवेग से गमन करने वाले उरुओं के दो सन्धिभाग।
'मित्रावरुण वल्गाभ्याम्'
वाज.सं. २५.६,वाज.सं. (का.) २७.९.

अल्पपशुः - थोड़ी पशु-सम्पत्ति वाला।
'अनपत्यम् अल्पपशुम्'
अ.१२.४.२५

अल्प शयुः - (१) स्वल्पवृत्ति (२) तुच्छ स्वभाव का, (३) छिद्रान्वेषी , (४) छोटे बिलों में रहने वाला हानिकारक कीड़ा या मूस आदि।
'जने अल्प शयूनिव'
अ. ४.३६.९

अलसाला - (१) अल + साला। अधिक गति वाली क्रियावती, (२) अलसाला अर्थात् अव्यक्त (३) शस्य विशेषस्य मञ्जरी (सस्य की मंजरी)
'अलसालासि पूर्वा'
अ. ६.१६.४

अलातृण - अलम् पर्याप्तम् आतर्दनम् हिंसा यस्य (बहुल जल के होने से जो अत्यन्त हिंसित हो)। अलम् + तृद् +ण =अलातृण-द् का लोप, गुणा भाव, अलम् के म् का आत्व। पृषोदर शब्द के ऐसा बना है)। मेघ का विशेषण है। अर्थ है-(१) पूर्ण तया पका हुआ मेघ जो वृष्टि के रूप में छिन्न भिन्न करने के लिए पर्याप्त है।
'अलातृणो वल इन्द्र वज्रो
गोः पुरा हन्तोः भयामानो व्यार
सुगान् पथो अकृणोत् निरजेगाः
प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः'
ऋ.३.३०.१०, नि.६.२.

हे इन्द्र ! जो यह अत्यन्त हिंसित (अलातृणः) अन्तरिक्ष के मध्यमा के वाक् के (गोः) गोष्ठभूत अर्थात् अन्तरिक्षवासी (व्रजः) आप के द्वारा वज्र से हत किये जाने के पूर्व (हन्तोः पुराः) मानों डरता हुआ (भयमानः) इधर उधर विश्लिष्ट हो गया (व्यार) उसके जल-निर्गमन के लिए (गांनिरजे) आपने सुगम मार्ग बनाए (सुगान् पथः अकृणोत्) । तब मेघ से निकले वे सुन्दर जल (वाणीः) उन मार्गों से नीचे की ओर जाते हुए (धमन्तीः) नदियों एवं तालाबों में आ गए (पुरुहूतम् प्रावन्) ।

अन्य अर्थ - हे शत्रु विदारक राजन् ! जैसे अन्तरिक्ष में आच्छादित (वलः) इधर उधर मड़राता हुआ (व्रजः) पका हुआ मेघ (अलातृणः) मानों विद्युत् गर्जन के वाक् प्रहार के पूर्व ही भयभीत हो ढीला पड़ जाता है (गोः हन्तोः पुरा भयमानः व्यार) और वह विद्युत् जलों के निकलने लिए सुगम मार्ग बना देती है (गाः निरजे सुगान् पथः अकृणोत्) और फिर वे जल नदी आदि में जाते हुए (वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः) प्रणियों की रक्षा करता है (प्रावन्) इसी प्रकार राष्ट्र में अपने प्रभाव से फैला और राष्ट्र में विचरने वाला प्रवृद्ध शत्रु तुम्हारे वाक् प्रहार से पूर्व ही भयभीत हो ढीला पड़ जाए और तुम वेदवाणी के प्रसार के लिए सुगम मार्गों को निकाल लो और ये वेदवाणियां प्रत्येक मनुष्य के पास पहुँचती हुई राष्ट्र का कल्याण करें ।

(२) बहुत अधिक शत्रुओं पर प्रहार करने योग्य-समर्थ, (३) अज्ञान नाशक आचार्य ।

अलातृणासः - अलं शत्रूणां हिंसकाः-दया. । शत्रुओं को खूब काट गिरा देने वाले ।

'अलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः'

ऋ.१.१६६.७

अलाबु - (१) सर्प-विष (२) आलाबुपात्रं पात्रम् ।

अ. ८.१०५.१४

अलाबुक- तुम्बा ।

'आदलाबुकमेककम्'

अ.२०.१३२.१.

अलाबुपात्र - विष का पात्र ।

'अलाबुपात्रं पात्रम्'

अ.८.१० (५).१४

अलाबूनि, अलाबु - तम्बे ।

'अलाबूनि पृषातकानि'

अ. २०.१३५.३

अलाय्य - (१) अराय्य, (२) क्षमा , धन आदि देने के अयोग्य, (३) अधिकार न देने वाला ।

'अलाय्यस्य परशुः ननाश'

ऋ.९.६७.३०

अल्पाञ्जिः - अल्प + अञ्जिः (लंगोट) । छोटे लंगोट वाला ।

' कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः'

वाज.सं. २४.४, मै.सं. ३.१३.५,१६९.१०

अलिक्लव - (१) भयानक शब्द करने वाला पक्षी, काक । क्लव शब्द का अर्थ शब्द करने वाला काक है ।

अंग्रेजी शब्द Crow कल्व से बहुत समता रखता है ।

(२)गृध्र । गृध्र भी भयङ्कर शब्द कारी है ।

'अलिक्लवा जाष्कमदाः'

अ.११.९.९

अलिन - ऋग्वेद के जनों में एक । ऋग्वेद के मंत्र ७.१८.७ में वसिष्ठ ने पक्थ भलान, अलिन, विषाणी और शिव का उल्लेख किया है ।

'आ पक्थासो भलानसा भनन्ताऽलिनासो विषाणिनः शिवासः'

'आयोऽनयत् सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नृन्'

ऋ.७.१८.७.

अलिनाः, अलिनास् - (१) सुन्दर नासिका वाला । (२) अत्यन्त तपोनिष्ठ, (३) अलीन अनासक्त । (४)जो लीन या कार्य व्यग्र न हुआ हो ।

'अलिनासो विषाणिनः शिवासः'

ऋ.७.१८.७

अलिश - लिश अल्पी भाव में प्रयुक्त है और गत्यर्थक भी है । अर्थ (१) अगम्य (२)अस्पृश्य (३) त्वचागत संक्रामक रोग से युक्त

'अलिंश उत वत्सपः'

अ.८.६.१

अल्पिका - थोड़ी ।

'यदल्पिका स्वल्पिकाः'

अ.२०.१३६.३

अलीक - सर्प की एक जाति, बिना रंग का सांप ।

'आ मे श्रृणुतासिता अलीकाः'
अ.५.१३.५

अव् – (१) रक्षा करना ।
'त आगतावसा शान्तमेन'
ऋ.१०.१५.४, अ.१८.१.५१, वाज.सं. १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४.१०.६,१५६.१३, का.सं. २१.१४.
(२) रक्षा करने वाला ।
'अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ'
ऋ. ६.६७.११
(३) व्रत नियमादि का पालक ।
'अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुः'
ऋ.७.६७.४

अव – (१) नीचे ।
'वाशीमग्निः भरत उच्चावच'
ऋ.८.१९.२३
(२) रक्षण (३) गति (४) कान्ति, (५) प्रीति (६) तृप्ति, (७) अवगम, (८) प्रवेश, (९) श्रवण, (१०) स्वाम्यर्थ, (११) याचन, (१२)क्रिया, (१३) इच्छा. (१४)दीप्ति, (१५) अवाप्ति, (१६) आलिंगन, (१७) हिंसा, (१८) आदान, (१९) भाग और (२०) वृद्धि अर्थ में आया है ।
'अन्ति षद् भूतु वामवः'
ऋ.८.७३.१-१८.
(२१) (प्र.) बाढ़
'अपामवो न समुद्रे'
ऋ.८.१६.२, अ.२०.४४.२
(२२) अवग्रह अर्थ में प्रयुक्त उपसर्ग । दो या अधिक पदों के अर्थ का अवच्छेद पूर्वक ग्रहण अवग्रह है और विच्छेदपूर्वक ग्रहण विग्रह है ।

अवईमहे – हम दूर करते हैं ।
'अव तदेन ईमहे तुराणाम्'
ऋ.७.५८.५
उस पाप को हम शीघ्रगामी मरुतों के प्रभाव से दूर करते हैं ।

अवऋति – नीचे की ओर दृष्टाचरण की ओर जाना ।
'अव ऋत्यै वधायोपमन्थितारम्'
वाज.सं. ३०.१२,तै.ब्रा. ३.४.१.८.

अवक्रक्षी – (१) सबको अधीन रख कर अपने प्रति आकर्षण करने वाला ।
'अवक्रक्षिणं वृषभम्'
अ.२०.८५.२
(२) हल या शंकट खींचने वाला बैल
(३) अपने अधीन जगत् भर को चलाने वाला परमेश्वर इन्द्र ।
'अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरम्'
ऋ. ८.१.२,अ.२०.८५.२,साम.२.७११

अवक्रन्द – (१) शत्रु को ललकारने वाले विद्वानों को बुलाने वाला, (२) ललकारने वाले को दबाने वाला, (३)विजय से बुलाने वाला सत्पुरुष ।
'अवक्रन्दाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८, मै.सं.३.१२.३,१६०.१२.
(४) नीच शब्द का प्रयोग, (५) ललकारने वाला, (६) दबाने वाला ।
'अवक्रन्देन तालु'
वाज.सं. २५.१, तै.सं. ५.७.११.१, मै.सं. ३.१५.१, १७७.७, का.सं.(अश्व) १३.१.

अवका – (१) रक्षा करने की विधि, (२) शैवाल, सेवार, (३) काटने वाला हथियार ।
'अवकां दन्तमूलैः'
वाज.सं. २५.१, मै.सं. ३.१५.१, १७७.७, का.सं.(अश्व) १३.१, श.ब्रा. १३.३.४.१.
(४) राष्ट्र की रक्षा करने वाली सेना (५) जल पर उतराने वाली काई ।

अवकाद – (१) अवका +अद । जल पर उतराने वाली काई को खाने वाला कीट (२) रस लोलुप गन्धर्व ।
'अवकादान् व्यृषतु'
अ.४.३७.८,९.

अवक्रामन् – रौंदता हुआ ।
'अवक्रामन्तःप्रपदैरमित्रान्'
ऋ. ६.७५.७, वाज.सं. २९.४४, तै.सं. ४.६.६.३, मैं.सं. ३.१६.३,१८६.६, का.सं. (अश्व) ६.१.

अवक्षाम – सूखा हुआ ।
'शुने पेष्ट्रमिवावक्षामम्'
अ.६.३७.३.

अवक्षिपन् – नीचे गिरता हुआ ।
'अवक्षिपन् अर्क उल्कामिवद्योः'
ऋ.१०.६८.४, अ.२०.१६.४

अवकेशः – बालों को खोलने वाला ।

'यस्ते मदो अवकेशो विकेशः'
अ.६.३०.२

अवकोल्बा – अवका +उल्बा । जल में उतराने वाले सेवार के भीतर उत्पन्न होने वाली औषधि
'अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः'
ऋ.८.७.९

अवखादः – भय, विखाद ।
'नात्रावखादो अस्ति वः'
ऋ.१.४१.४
(इस मार्ग में आप लोगों को कोई भय नहीं है ।)

अवचरन्तिका – नीचे उतरती हुई ।
'गिरेरवचरन्तिका'
अ. ५.१३.९

अवघ्नती – (१) कूटकूटकर आघात करने वाली औषधि, (२) अत्यन्त दुःख देती हुई औषधि ।
'अथो अवघ्नती हन्ति'
ऋ.१.१९१.२

अवट – (१) अवट इति कूप नाम-नि ३.२३ ।
'कूपादि गर्त
ये वावेटेषु शेरते'
वाज.सं. १३.७, तै.सं. ४.२.८.३, मै.सं. २.७.१५,९७.४, श.ब्रा. ७.४.१.२९, नील. उप. २०, आप. मं.पा. २.१७.७.
पुनः
'तुम्भं खाता अवता अद्रिदुग्धाः'
ऋ.४.५०.३,अ.२०.८८.३

अवतः – (१) जगत् की रक्षा करने वाला ।
'उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना'
ऋ.८.५०.६
अवातितो महान् भवति (जो अधरत्तात् अर्थात् नीचे की ओर गया हो)। खने जाने के बाद कूप बहुत नीचे की ओर चला जाता है । अव का अर्थ अवाङ् (नीचे की ओर) है ।
'द्रोणाहावम् अवतम् अश्मचक्रम्'
ऋ.१०.१०१.७, नि. ५.२६.
(३) नीचे या भूमि की ओर आता हुआ ।
'अश्मास्यम् अवतम् ब्रह्मस्पति'
ऋ.२.२४.४, नि.१०.१३
नीचे आते हुए पत्थर के समान कठोर मुख वाले मेघ को ।

अवततधन्वा – धनुष पर बाण चढ़ाया हुआ । दे. पिनाक ।
'अवततधन्वा पिनाकवस्तः कृत्तिवासा'
वाज.सं. ३.६१, तै.सं.१.८.६.२, श.ब्रा. २.६.२.१७, आप.श्रौ.सू.८ .१८.९.

अवत्क – रोगों से रक्षा करने वाला ।
'अवत्कम् अधिपर्वतात्'
अ.२.३.१

अवत्त – अवदान धर्म से रखा हुआ हवि के लिए मांस-खण्ड ।
'अंगादंगादवत्तानां करत
एवाश्विना जुषेतां हविहोतर्यज ।'
वाज.सं. २१.४३
(अंग अंग से अवदान धर्म से रखे उन अंगों को ही वे अश्विनीद्वय हवि का सेवन करे। इस हवि को पाकर वे सुख देते हैं (करतः) । अतः हे होता ! तू भी उनकी पूजा कर)
(२) प्राप्त किया हुआ कर ।

अवतन्तु – दैर्घ्य-रहित
'यदाततम् अवतत् तनु'
अ.७.९०.३

अवतम् – (१) रक्षा करो ।
'अग्नीपर्जन्यावतं धियं मे'
ऋ.६.५२.१६.

अवतरः – अत्यन्त पतित, निकृष्ट ।
'अव स्रवेदधशंसोऽवतरम्'
ऋ.१.१२९.६, नि.१०.४२
(अत्यन्त निकृष्ट को जल की तरह अपने स्थान से गिरा दे ।)

अवत्तरः – बड़ी भारी रक्षा करने वाला ।
'अवत्तरो नदीनाम्'
अ. १८.३.५

अवत्सारः – (१) अवत् +सारः । रक्षा करने वालों के बीच में स्वयं सारवान् ।
(२) बलशाली या पालक पुरुषों के बने उत्तम सैन्य बल का नायक ।
(३) यः रक्षकान् साति प्राप्नोति (जो रक्षकों को प्राप्त करता है) -(दया.)
'अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः'
ऋ. ५.४४.१०

अवति – गच्छति (जाता है) । प्रवतः (प्र +अव +शतृ + शस् =प्रवतः) प्रकृष्टगतिमतः –

(प्रकृष्टगति वालों को) ।
अवधातु रक्षण, गति, प्रीति, तृप्ति, अवगम, प्रवेश, श्रवण, स्वामी, अर्थ-याचन, क्रिया, इच्छा, दीप्ति, अवाप्ति ,आलिंगन , हिंसा, दान, भाग और वृद्धि अर्थ में प्रयुक्त है ।

अवतीर्यती – कट जाने वाली भूमि ।
'शं भूमिरवतीर्यतीः'
अ.१९.९.८

अवतोका – (१) पतित गर्भवाली स्त्री ।
'अवतोकाम् इमाम् स्त्रियम्'
अ.८.६.९
(२) शत्रुओं को अपने नीचे दबा दुख देने वाली सेना, (३) वह स्त्री जिसका बच्चा गर्भ में ही नष्ट हो जाता है ।
'अथर्वभ्योऽवतोकाम्'
वाज.सं. ३०.१५, तै.ब्रा. ३.४.१.११.
(४) प्राप्त प्रसवा स्त्री जिसका बालक प्रसव के समय नीचे आ रहा हो ।

अवदः – वद् धातु के लङ् प्र.पु.ए.व का रूप । अर्थ है- बोला, वचन दिया ।
'उताभये पुरुहूत श्रवोभिः
एकोदृढमवदो वृत्रहासन् ।'
ऋ.३.३०.५.
(हे देवों के रक्षार्थ आहूत इन्द्र, तू एक होता हुआ भी वृत्र का वध करने वाला हुआ जो तूने अभय होने के सम्बन्ध में देवताओं को वचन दिया ।)

अवद्य – (१) निन्दनीय ।
'युवं सिन्धूंरभिशस्तेवद्यात्
अग्नीषोमाणमुञ्चतम् गृभीतान्'
ऋ.१.९३.५, तै.सं. २.३.१४.२, मै.सं. १.५.१, ४.१०.१, १४४.१५, का.सं . ४.१६, ऐ.ब्रा. २.९.५, तै.ब्रा. ३.५.७.३, कौ.सू. ५.१.
(२) गढ़ो पर नियत पुरुष ।
'नमः कूप्याय चावद्याय च'
वाज.सं. १६.३८, तै.सं. ४.५.७.२, का.सं. १७.१५.
(३) दण्ड देना ।
'यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमवदये'
अ.१६.७.११
(४) पाप (५) अधर्मा चरण-दया. ।
'दहा शसो रक्षसः पाह्यस्मान्
द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्'
ऋ.४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं.४.११.५, १७४.८, का.सं. ६.११ .
(६) निन्दनीय आचरण ।

अवद्यपः – (१) अवद्य +प । गर्हणीय या निन्दनीय आचरणों से रक्षा करने वाला (२) निन्दित विषयभोगों से रक्षा करने वाला ।
'बृहस्पति र्मिथो अवद्यपेभिः'
ऋ.१०.६७.८, अ.२०.९१.८

अवद्यभीः – पाप या निन्दा से भय खाने वाला ।
'अवद्यभिया बहवः पृणन्ति'
ऋ.१०.१०७.३

अवद्यवती – निन्दायोग्य, घृणित ।
'को अस्या नो द्रुहोऽवद्यवत्याः'
अ.७.१०३.१

अवद्राणः – कुत्सित आचरण करने वाला ।
'अवद्राणश्च रक्षताम्'
अ.८.१.१३

अवध – पीड़ा ने देने वाला ।
'हुवे स्वर्वत् अवधं नमस्वत्'
ऋ.१.१८५.३.

अवध्वंस – देह को जलाकर नष्ट करने वाला ज्वर ।
'अवध्वंस इवरुणः'
अ.५.२२.३

अवधि – काल ।
'मिमाति मायुं ध्वसनावधिश्रिता'
ऋ.१.१६४.२९, अ.९.१०.७.

अवधीः – मारा या मारी । वध् धातु के म.पु. ए.व. का लङ् में रूप ।
'वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्'
ऋ.१.३३.१२.
हे इन्द्र, वज्र से संघ की अभिलाषा करने वाले शत्रु को (पृतन्युम् । शत्रुम्) मार (अवधीः) -सा. हे राजन् पराक्रम से सेना के साथ आने वाले शत्रु को पृतन्युं शत्रुम्) मार (अवधीः) ।

अवधीयमाना – तिरिस्कृत होती हुई ।
'पारुष्यम् अवधीयमाना'
अ. १२.५.३०

अवधूत – नीचे दबाकर नष्ट किया गया ।
'शर्मास्यवधूतं रक्षः'
वाज.सं. १.१४.

अवधून्वानः – दूर करता हुआ ।
'अनानुभूतीन् अवधून्वानः'
ऋ.६.४७.१७

अवनद्ध – अव +नह् +क्त = अवनद्ध । कसा गया
'अवनद्धम् अभिहितम्'
अ. ९.३.८

अवन्ती – (१) रक्षा करने वाली सेना या प्रजा ।
(२) रोगों से बचाने वाली ओषधि ।
'अवन् अवन्तीः उपनो दुरश्चर'
ऋ.७.४६.२

अवन्तु – आगच्छन्तु । अव धातु गत्यर्थक भी है । अर्थ है आवें ।
'उदीरताम् अवर उत्परासः
उन्मध्यमा पितरः सोम्यासः
असुं य ईयुःअवृका ऋतज्ञाः
ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ।'
ऋ.१०.१५.१, अ.१८.१.४४, वा.सं.१९.४९, तै.सं.२.६.१२.३, आश्व.श्रौ .सू.२.१९.२२,५.२०.६, आश्व गृ.सू.२.४.६, नि.११.१८.
जे निकृष्ट पितर पृथ्वी में आश्रित हैं वे ऊपरी लोक में आवें (अवरे पितरः उदीरताम्) जो द्युलोक में स्थित है वे नीचे न आकर ऊपर उठें या मोक्ष प्राप्त करें । तथा मध्यम स्थानाश्रयी हैं वे उत्तम लोक प्राप्त करें (परास उत मध्य मा उत) । वे सौम्य, सोमार्ह या सोम सम्पाद (सोम्यासः) जो प्राणमात्र धारण करते हैं (असु य ईयुः) जो अहिंसक, अस्तेन या अजात शत्रु हैं (अवृकाः) जो यथावत् सत्य के ज्ञाता हैं (ऋतज्ञाः) ऐसे पितर हमारे आह्वान करने पर नित्य आवें (पितरः नः हवेषु अवन्तु)
Thesophy में पितरों के कई लोकों का वर्णन है । प्राणमात्रधारी पितरों (Spirits) की भी कल्पना करते हैं जो बुलाने पर आते भी है । इस ऋचा में यह सिद्धान्त पूर्णतः प्रतिपादित हैं। आर्यसमाजी विद्वान् पितरों का अर्थ मृत पितर न कर जीवित पुरुष समझ कर ऐसा अर्थ करते हैं –
प्रथम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पितर हमें शिक्षा प्रदान करें (अवरे सोम्यासः पितरः उदीरताम्), उत्तम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पितर हमें शिक्षा प्रदान करें (परासः उत) और मध्यम श्रेणी के पितर हमें शिक्षा प्रदान करे (मध्यमाः उत) एवं जिन पितरों ने प्राण – विद्या प्राप्त की है (ये पितरः असुम् ईयुः) और जो सबके मित्र है या सत्यज्ञाता या यज्ञज्ञाता हैं (अवृक ऋतज्ञाः) वे हमारे निवेदनों पर हमारे घर पधारें (वे हवेषु नः अवन्तु) ।

अबन्धनः – बन्धन –रहित ।
'अबन्धनः चरित वत्स एक'
ऋ.३.५५.६

अबन्धु – बन्धु और सहायक से रहित ।
'अबन्धुना सुश्रवसो पजग्मुषः'
ऋ.१.५३.९,अ.२०.२१.९

अबन्धुकृत – शत्रु बनाने वाला ।
'कृतो अस्यबन्धुकृत्'
अ. ४.१९.१
(३) पृथिवी, (२) पृथिवी के समान पालक ।
'आवां रथोऽवनिर्नप्रवत्वान्'
ऋ.१.१८१.३.
(३) अंगुलि । अवन्ति कर्माणि ते अवनयः (जो कर्मों की रक्षा करते हैं वे अवनि हैं)। अव (रक्षा करना +इ =अवनि रक्षा करने वाली अंगुलि ।
दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यः
दशयोक्त्रेभ्यः दशयोजनेभ्यः
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यः
दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः'
ऋ.१०.९४.७, नि.३.९.
हे ऋत्विजों, आप लोग उस ग्रावा की अर्चना करें जिसे दश अंगुलियां धारण करती हैं । ये दशों अंगुलियाँ अनेकों कार्य करती हैं जैसे रक्षा करना, प्रकट करना (काशनम्) मिलना (योजनम्) बांधना (अभीशवः), सदा नूतन रहना (अजर), धुरों का काम करना इत्यादि । ये ही अंगुलियाँ सोम रस चलाने में भी काम आती हैं । अतः अर्चनीय हैं ।
अंगुली के लिए वेद में अवनि, कक्ष्या, योक्त्रा, योजन, अभीशु, तथा धुद् पर्याय निघंटु में दिये गए हैं ।

अवजिघ्नते – नीचे गिरकार परास्त करता है ।
'अभिक्रम्यावजिघ्नते'

ऋ.१.८०.५

अवनी – (१) जन्तुओं की रक्षा करने वाली (२) पालन करने वाली भूमि ।

'गा न व्राणा अवनीरमुञ्चत्'

अ.२०.३५.१०

(३) रात्रि, (४) रक्षा-कारिणी शक्ति, (५) तृप्तिदायिनी भूमि

'चकार महीः अवनीः अहभ्यः'

ऋ.७.८७.१, का.सं. १२.१५.

अवनीत – (१) अवाङ् मुखतया असुरैःप्रापितः (उलटे मुंह द्वारा लाया हुआ) ।

(२) अवस्तात् नीतम् (नीचे अर्थात् पृथ्वी के नीचे गया)।

'हिमेनाग्निं घ्रंसम् अवारयेथाम्
पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतम्
उन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ।'

ऋ.१.११६.८, नि.६.३७.

हे अश्विनी कुमारो । तुम दोनों ने ग्रीष्म के बाद अत्यन्त बढ़ी गर्मी को ठंडे जल से शान्त किया (हिमेन अग्निं घ्रंसम् अवारयेथाम्)। तत्पश्चात् अग्नि के लिए अन्न सहित आज्य उत्पन्न किया (पितुरुतीम् ऊर्जम् अस्मै अधत्तम्), क्योंकि अन्न ही अग्नि को सबल करता है-जठराग्नि अन्न के बिना कमजोर पड़ जाती है और तुम दोनों ने ठंडी पृथ्वी के भीतर प्रवाङ्मुख पड़ी सभी गुणों की औषधियों तथा वनस्पतियों को जगत् के कल्याण के लिए जमाया (ऋजीषेतम् अवनतम् अत्रिम् सर्वगणं स्वस्ति उन्निन्यथुः) ।

सायण का ऐतिहासिक अर्थ-अत्रिऋषि को गण के साथ राक्षसों ने एक बार सौ द्वार वाले पीड़ा यन्त्र गृह में अवाङ्मुख लाकर रख दिया और घर में आग लगा दी । इससे पीडित हो ऋषि ने अश्विनी कुमारों की स्तुति की । अश्विनी कुमारों ने अग्नि को ठंडे जल से बुझा उन्हें अन्न और रसात्मक क्षीरादि पुष्ट होने के लिए दिया । स्वा. दयानन्द का अर्थ – हे सूर्य तथा पृथ्वी ! तुम ग्रीष्म काल में जल के द्वारा अग्नि की तरह घातक गर्मी के दिनों को दूर करते हो । पृथ्वी के भीतर गई आग को ऊपर निकाल देते हो (ऋजीषे अवनीतम् अत्रिम् उन्निन्यथुः) और इस अग्निहोत्री प्रजावर्ग के लिए प्रशस्त अन्न से युक्त बल को प्राप्त करते हो तब सभी प्राणियों का कल्याण होता है (सर्वगणं स्वस्ति) ।

अवपद् – आपद् काल ।

'त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः'

ऋ.२.२९.६, वाज.सं. ३३.५१. मै.सं.४.१२.६, १९४.६,

अवप्रभंशन – नीचे फिसलना, (२) हिम का पिघलना ।

'यत्र नावप्रभंशनम्'

अ.१९.३८.८.

अवपान – (१) भीतर ही पान करने योग्य ।

'गौराद् वेदीयां अवपानमिन्द्रः'

ऋ.७.९८.१, अ.२०.८७.१

(२) पान, (२) प्रजा पालन करने का वेतन, (४) ओषधि उत्पातक जल, (५) तृप्ति कारक ज्ञानरस ।

'अस्मिन् सुसोमेऽवपान मस्तु ते'

अ.२०.१७.२

(६) नीचे की अति ।

'उद्यानं ते पुरुष नावयानम्'

अ.८.१.६

अवभरते – (१) नीच उपाय से प्राप्त करता है (२) नीच कार्य में ज्ञान और धन का उपयोग करता है ।

'अव त्मना भरते केतवेदा
अव त्मना भरते फेनमुदन्'

ऋ.१.१०४.३

(एक पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त कर और ज्ञानवान् होकर भी (केतवेदाः) अपने मतलब से (त्मना) चक्रवृद्धि ब्याज आदि बढ़े हुए धन और ज्ञान को नीच उपाय से प्राप्त करता है ।)

अवभृथ – (१) सबको नीचे से ऊपर तक भरण पोषण करने वाला-यज्ञ , (२) अवभृथ स्नान जो यज्ञ के अन्त में किया जाता है । अव + भृ + वथन =अवभृथ ।

'अवभृथ निचुम्पुणं'

वाज.सं. ३.४८, ८.२७,२०.१८, तै.सं.१.४.४५.२, ६.६.३.४, मै.सं. १.३.३९: ४५.११, ४.८.५: ११३.२, का.सं. ४.१३, २९.३, ३८.५, श.ब्रा.२.५.२ .४७, ४.४.५.२२, १२.९.२.४, तै.ब्रा. २.६.६.३,

आप.श्रौ.सू. १३.१९.१०, १९.१०.५, नि.५.१८.
(३) पूर्ण
'अच्छावभृथमोजसा'
ऋ.८.९३.२३, साम. १.१५१.

अयासिषम् – (१) अवनीत कर सका, (२) डुबो सका–सा. (३) दूर करूं–(दया.)
'अव देवैः देवकृतमेनोऽयासिषम्'
वाज.सं. ३.४८,८.२७, श.ब्रा.२.५.२.४७, ४.४.५.२२.
तू अपने द्योतनात्मक इन्द्रियों से किए हुए देव हवि प्रति पाप को (देव कृतम् एनः) इस जल में अवनीत कर सकाया डुबो सका (अयासिषम्) मैं मन तथा वाणी आदि इन्द्रियों से (देवैः) मानसिक तथा वाचिक पाप को (देवकृतम् एनः) दूर करूं (अयासिषम्) –दया.

अवभेत् – अवाभिनत्। भिदिर (विदारणार्थक) के लङ् प्रथम पुरुष एक वचन का वैदिक रूप। अर्थ–विदीर्ण किया।
'प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं
यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वान्
अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत्'
ऋ.१.५९.६, नि. ७.२३.
मनुष्य भी (पूरवः) वर्षा की कामना से जिस वृत्रासुर या मेघ को मारने वाले वैश्वानर की सेवा करते हैं (यं वृत्रहणं सचन्ते) उस वर्षा बरसाने वाले वैश्वानर के भाग्य का वर्णन शीघ्र ही करता हूँ (वृषभस्य महित्वं नु प्रवोचम्)। वैश्वानर अग्नि ने रस सुखाने वाले को (दस्युम्) या राक्षसों को मारा (जघन्वान्),जलों को नीचे प्रवाहित किया (काष्ठाःअधूनोत्) और शम्बर नामक राक्षस या मेघ को विदीर्ण किया।
स्वा. दयानन्द का अर्थ–मैं उस वृष्टि कर्त्ता विदयुत की महिमा बखानता हूँ जिस मेघ–संहारक को (वृत्रहणम्) सही मनुष्य सेवते हैं (पूरवः सचन्ते) वह सर्वजन–हितकारी विदयुत अग्नि (वैश्वानरः अग्निः) अनावृष्टि का नाश करती हुई (दस्युं जघन्वान्) मेघ को विदीर्ण करती है (शम्बरं अवभेत्) और जल बरसाती है। (काष्ठा अधूनोत्)।

अवभेदी – व्यूह और गढ़ो को तोड़ने वाला।
'नमः शूराय चावभेदिने च'
वाज.सं. १.६.३४, का.सं.१७.१४.

अवम – (१) निकृष्ट, तुच्छ।
'तवेदिन्द्रावमं वसु
त्वं पुष्यसि मध्यमम्'
ऋ.७.३२.१६, साम. १.२७०.
(२) अवरः रक्षकः यः –(दया.) (रक्षा करने वाला)
(३) सबसे मुख्य आधार रूप।
'अस्मै बहूनामवमाय सख्ये'
ऋ.२.३५.१२
(४) अधम, साधारण, (५) वृत्ति का उपाय।
'यद्वावमे वृजने मादयासे'
ऋ.१.१०१.८
चाहे साधारण शुद्ध घर या जीवन के दुःखों को दूर के लिए वृत्ति –उपाय में तृप्त होकर रहें। नीच और अधम के अर्थ में।
'सं घोषः श्रृण्वेऽवमैरमित्रैः'
ऋ.३.३०.१६.
(५) सबसे उत्तम रक्षक।
'स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती'
ऋ. ४.१.५, वाज.सं. २१.४, तै.सं. २.५.१२.३, मै.सं. ४.१०.४.१५३.१४, ४.१४.१७, २४६.११, का.सं. ३४.१९, ऐ.ब्रा.७.९.५,

अवमं वृजनम् – (१) साधारण रहने का घर, (२) जीवन के दुःखों को दूर करने के लिए वृत्ति का उपाय।

अवमा – (१) अति समीप का स्थान, (२) अपेक्षा कृत निम्न स्थान (३) निम्न कोटि का शरीर।
'या ते धामानि परमाणि या वमा'
ऋ. १०.८१.५, वाज.सं. १७.२१, तै.सं. ४.६.२.५, मै.सं. २.१०.२, १३३.१०, का.सं. १८.२, आश्व श्रौ.सू. २.१८.१९, ३.८.१.
(४) अनुत्कृष्टगुण वाली पृथ्वी।
'यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्याम्'
ऋ.१.१०८.९
(५) सबसे नीचे की भूमि।
'उदन्वती द्यौरवमा'
अ.१८.२.४८

अवयाता – (१) नीचे गिरा देने वाला।
'अवयाता सदमित् दुर्मतीनाम्'

ऋ.१.१२९.११
तू दुष्टजनों को सदा ही नीचे गिरा देने वाला है। (अवयाता)।

अवमार्जन – (१) शोधन का उपाय।
'इमा ते वाजिन अवमार्जनानि'
ऋ. १.१६३.५, वाज.सं. २९.१६, तै.सं. ४.६.७.२, का.सं. ४०.६.
(२) पापों को दूर करने तथा आत्मा को शुद्ध करने वाला व्रत (३) शोधन।

अवमृक्ष – नीचे गिराना।
'अवामृक्षन् निर्ऋते ते मुखेन'
अ.७.६४.२

अवयजनम् – दूर करने वाला।
'देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि'
वाज.सं. ८.१३, तै.सं. ३.२.५.७, पंच ब्रा. १.६.१०, शां.श्रौ.सू. ८.९.१, आप.श्रौ.सू. १३.१७.९, का.श्रौ.सू. १०.८.६.
पुनः–
'तस्यावयजनमसि'
वाज.सं. २०.१७, तै.सं १.८.३, का.सं. ३८.५, शा.ब्रा. १२.९.१२.३, तै.ब्रा. २.६.६.२.

अवयन् – बुना। वि (Weave) बुनना अर्थ में आता है। इसी के लङ् प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
'वयित्र्योऽवयन्'
हे वस्त्र! तुझे कविन्द की लड़कियों ने बुना।

अवयातहेडाः – जिसने अपने क्रोध या अनादर के कारणों को दूर किया है।
'भवामरुद्भिः अवयातहेडाः'
ऋ.१.१७१.६.

अवयाः – (१) हीन यज्ञ अर्थात् इन्द्रियों में विषयार्थों की आहुति, (२) कुसंगति।
'या तेषामवया दुरिष्टिः'
अ.२.३५.१, मै.सं.२.३.८,३७.१२.
(३) नीचे गिराने वाला, (४) शत्रुओं या पापों को दूर करने वाला।
'अस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन् अवयाः'
ऋ.१.१७३.१२, वाज.सं.३.४६, श.ब्रा.२.५.२.२८.

अवयुन – (१) जिसमें तनिक भी ज्ञान नहीं होता, (२) अन्धकार (३) अप्रज्ञान।
'स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्'
ऋ.६.२१.३, नि. ५.१५.
(४) वी (गत्यर्थक) +न =वेन, अथवा वी +उनन् =वयुन (वाहुलक नियम से)। नञ् +वयुन =अवयुन। जिसमें प्रज्ञान या कान्ति न हो।
'सं इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्
सूर्येण वयुनवत् चकार।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामे
यक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः'
ऋ.६.२१.३, नि.५.१५.

अवर्जुषी – अवर्जनशीला, प्रतिकितवैः पराजयेऽपि पुनरहमेव जेष्यामि इत द्यूतक्रियाम् अपरित्यजन्ती (१) जुआड़िओं से हार खाने पर भी फिर मैं ही जीतूंगां ऐसा सोच कर जो जुआ खेलना नहीं छोड़ती, (२) जो अपने दोषों को या प्रकृति-सिद्ध स्वभावों को नहीं छोड़ सकती।
'विशाम् अवर्जुषीनाम्
अ.७.५०.२

अवर्त्या – जन्म मरण के व्यापार से रहित, (२) पुनः इस संसार में न होने के निमित्त, (३) लाचार, अगतिक (४) दारिद्र्य प्रेरित होकर।
'अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे
ऋ.४.१८.१३

अवर्त्र – किसी से निवारित न किया जाने वाला अग्नि।
'अमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु'
ऋ.६.१२.३, मै.सं.४.१४.१५,२४०.६,

अवर्ति – (१) अप्राप्त दूरदर्शी देश (२) अप्राप्य पद।
'किमङ्ग वां प्रत्यवर्ति गमिष्ठा'
ऋ.१.११८.३,३.५८.३.
(३) अन्न, (४) आजीविका, (५) मार्गादि से रहित पुरुष, (६) अमार्ग।
'प्रत्यवर्ति दाशुषे शम्भविष्ठा'
ऋ.५.७६.२,साम. २.११०३.
(७) कष्ट।
'नैनान् अवर्तिः सचते कदाचन'
अ.४.३४.३.
(८) बेरोजगारी, (९) अरक्षा।
'अप्रजस्तामस्वगतामवर्तिम्'
अ.९.२.३
'आर्तिरवर्तिः निर्ऋतिः'
अ.१०.२.१०

(१०) असत्, अविद्यमान् (११) अपाव पदार्थ।
'अवर्ति हन्ति चक्षुषा'
अ.९.४.१७.

अवर्द्धन् – अवर्द्धयन् (बढ़ाया)। वेद में वर्तमान काल (लट्) में प्रयुक्त।
'उतेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः'
ऋ.१०.९५.७, नि.१०.४७.
और स्वयं गामिनी नदियाँ (उत स्वगूर्ताः नद्यः) इस पुरुरवा को बढ़ाती हैं (ईम् अवर्द्धन्)

अवर्ष्य – अतिवृष्टि को दूर करने में समर्थ।
'नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च'
वाज.सं. १६.३८, तै.सं. ४.५.७.२, मै.सं. २.९.७, १२५.१३, का.सं. १७.१५.

अवर – (१) निकृष्ट, (२) स्वल्प विज्ञान वाला, (३) अत्यन्त कम बुद्धि वाला, (४) प्रथम श्रेणी का, (५) कम शक्ति वाला, (६) नीच आधुनिक अर्थ –छोटा, आगे का, पिछला, आगामी, नीचे, निचला, कम निकृष्ट अन्तिम, कम से कम, पाश्चात्य, हाथी का पिछला जांघ, छोटा भाई (अवरज)।
निष्कृष्ट अर्थ में प्रयोगः
'यावन्मात्रम् उषसो न प्रतीकं
सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्
बाह्मणो होतुरवरो निषीदन्।'
ऋ.१०.८८.१९, नि.७.३१
हे मातरिश्वा! जितनी ही रात्रियाँ उषा का प्रतीक आच्छादित करती हैं (यावन्मात्रम् सुपर्ण्यः) या जितनी ही उषाएं रात्रियों में देखी जाती हैं (उषसः न प्रतीकं वसते) उतना ही ज्ञान होताओं में अल्पज्ञानवाला ब्राह्मण (होतु अवरो ब्राह्मणः) यज्ञ में आकर बैठता हुआ धारण करता है। तात्पर्य यह है कि अग्नि के अनुग्रह से ब्राह्मण होत्र कर्म सम्पादित करता है।
पुनः कम शक्ति वाले के अर्थ में –
'यमः परोअवरो विवस्वान्'
अ.१८.२.३२

अवदत् – नञ् +वद +शत्। वेदज्ञ हो कर भी उपदेश न देने वाला।
'वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान्'
ऋ.१०.११७.७

अवरंपरं तृतीयम् – (१) अवर (पौत्र), पर (पुत्र) और तृतीय पिता मिलाकर तीन पुरुष अर्थात् तीन पीढियाँ होती हैं। (२) निकृष्ट, उत्तम और सर्वोच्च स्वरूप।
'दधाति पुत्रो अवरं परं पितुः
नाम तृतीयम् अधिरोचने दिवः'
ऋ.१.१५५.३

अवरम्बमाणः – अवलम्बमान आश्रय लेकर रहने वाला।
'अनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः'
ऋ.८.१.३४

अवरः अग्निः – पार्थिव अग्नि।
'यत्रावदेते अवरः परश्च
यज्ञन्योः कतो नौ विवेद'
ऋ. १०.८८.१७, नि.७.३०.
(जिस कर्म में यह पार्थिव अग्नि और वह सूर्य अर्थात् अन्तरिक्ष अग्नि या वायु परस्पर विवाद करते हैं कि हम दोनों यज्ञ के वेत्ताओं में कौन अधिक यज्ञ कर्म जानता है)।

अवरस्पर – आस पास और दूर दूर के लोगों को बुलाना।
'अवरस्पराय शंखध्मम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

अवरा – (१) शरीर के नीचे भाग की नाड़ी (२) नाते में छोटी स्त्री।
'तिष्ठावरे तिष्ठ पर'
अ.१.१७.२
(३) माता, (४) अर्वाचीन।
'नि नव्यसीष्ववरासु धावते'
ऋ.१.१४१.४
जीव पहले की माताओं की तरह उसके बाद और अब की माताओं के गर्भ में उसी प्रकार जन्म लेता रहता है।

अवरासः – बाद के उत्पन्न जीव।
'तं पृच्छन्तो अवरासः पराणि'
ऋ.६.२१.६

अवरुद्ध – अव +रुध् +क्त। रुका हुआ।
'अवरुद्धः परिपदं न सिंहः'
ऋ.१०.२८.१०

अवरेपितरः – (१) निकृष्ट पितर या प्रेतात्मा जो मृत्यु के उपरान्त पृथ्वी लोक में ही आश्रित हैं–

(२) प्रथम श्रेणी के ऐश्वर्य –सम्पादक पितर प्रेतात्मा के अर्थ में 'पितर' शब्द को आर्य–समाजी विद्वान् नहीं मानते ।
'उदीरतामवर उत्परासः
उन्मध्यमा पितरः सोम्यासः'
ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं ४.१०.६,१५७.४, ऐ.ब्रा. ३.३७.१२, आश्व,श्रौ.सू. २.१९.२२,५.२०. ६, आश्व.गृ.सू. २.४.६, नि. ११.१८.

अवरोकी – बुरे कामों से रोकने वाला पुरुष ।
'श्वेता अवरोकिण आदित्यानाम्'
वाज.सं. २४.६,मै.सं. ३.१३.७,१७०.१.

अबलास – अ +बलास =अबलास, बलास =अर्थात् कफ को बढ़ाने वाला जो न हो ।
'अबलासावदोमधौ'
अ.८.२.१८

अवलिप्त – शरीर पर चन्दन आदि का विशेष अवलेप लगाने वाला ।
'अवलिप्ता रौद्राः'
वाज.सं. २४.३,मै.सं. ३.१३.४,१६९.६.

अववित् – समीप का देश ।
'अर्वावतो न आगहि'
ऋ.३.३७.११,४०.८, अ. २०.६.८, २०.२०.४, २०.५७.७, मै.सं. ४.१२.३: १८४.९,

अवविद्ध – निराश ।
'अवविद्धं तौग्र्यम् अप्सु अन्तः'
ऋ. १.१८२.६

अवंश – (१) बांस से रहित, (२) स्तम्भ के बिना, (३) अवलम्ब–रहित आकाश ।
'अवंशे द्याम् अस्तभायत् बृहन्तम्'
ऋ.२.१५.२
(४) सन्तान रहित होना ।
'नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात्'
ऋ.७.५८.१

अवंशे – बांस आदि स्थूल पदार्थ को अवलम्ब के बिना रहने वाले द्यावापृथिवी ।
'उर्वी गभीरे रजसी सुमेके
अकंशे धीरः शच्या समैरत्'
ऋ.४.५६.३, मै.सं. ४.१४.७,२२४.१०, तै.ब्रा. २.८.४.७.

अवव्ययन् – अपने अधीन करता हुआ ।
'अवव्यन् असितं देव वस्म'
ऋ.४.१३.४, मै.सं. ४.१२.५,१९४.१, का.सं. ११.१३, तै.ब्रा. २.४.५ .५, आप.श्रौ.सू.१६.११.१२.

अवव्रव – (१) अवक्षिप्त वचन, (२) निरर्थक वचन, (३) उन्मत्त प्रलाप ।

अवशस् – अव +शसु (हिंसा करना) +क्विप् =अवशस् –नीचे गिराने वाला ।
'अवशसा निःशसायत् पराशसा'
अ.६.४५.२

अवश्रथया – ढीला कर यह खोल ।
'अवाधमं विमध्यमं श्रयाय'
ऋ.१.२४.१५, अ.७.८३.३,१८.४.६९, आ.सं. १.४., वाज.सं. १२.१२, तै.सं. १.५.११.३,४.२.१.३, मै.सं. १.२.१८,२८.८,४.१४.१७:२४६.५ का.सं. ३.८, १६.८, श.ब्रा. ६.७.३.८, साम.मं.ब्रा. १.७.१०.
हे आदित्य ! आप हमारे ऊपर वाले तथा निचले बंधन को ढीला करें ।

अवश्वस् – (१) नीचे की ओर से बहने वाली नदी, (२) प्राण लेने वाला ।
'अपां तारम् अवश्वसम्'
अ.४.३७.३

अवः, अवस् – नीचे ।
'अवः परेण पर एना वरेण'
ऋ.१.१६४.१७, अ.९.९.१७,१८.
अव (रक्षा करना) +असुन् = अवस् । अर्थ–रक्षा ।
'त आ गतावसा शंतमेन'
ऋ.१०.१५.४, अ.१८.१.५१, वाज.सं. १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं.४.१०.६,१५६.१३, का.सं. २१.१४.
वे हव्य खाने वाले आप अत्यन्त सुख–कारक रक्षा के साथ आवें (शन्तमेन अवस्त आगत)
पुनः–
'हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा
अङ्गिरसो जुह्वे अस्मिन्
एवा त्वार्चन् अवसे वन्दमानः
सोमस्येवांशुं प्रति जागरहाम्'
ऋ.१०.१४९.५, नि. १०.३३
हे सविता जिस प्रकार तुझे अंगिरस के पुत्र तथा मेरे पिता हिरण्यस्तूप ने इस अन्न निमित्त यज्ञ में आमन्त्रित किया उसी प्रकार मैं अर्चन् नाम का या पूजा करता हुआ तुझे रक्षा के लिए वन्दना

करता हूँ जैसे कोई यजमान सोमरस की रक्षा के लिए जागता है ।

अवसः - अव (रक्षा करना) धातु से सम्पन्न । जिससे रक्षा होती है । अर्थ है-पाथेय ।

'तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहि'

तै.सं. १.८.६.२, मै.सं. १.१०.४: १४४.१४, १.१०.२०: १६०.१५, का.सं. ९.७,३६.१४, ला.श्रौ.सू. ५.३.१२.

हे इन्द्र ! उस पाथेय को ले (तेन अवसेन) मूजवान् नाम पर्वत के उस पार (मूजवतः) जा (अतीहि) ।

(२) अवसम्-रक्षण सामर्थ्य ।

'एतत्ते रुद्रावसम् तेन परो मूजवतोऽतीहि'

वाज.सं. ३.९६, वाज.सं.(का.) ३.८.६, श.ब्रा. २.६.२.१७.

(३) भृशं गन्तृसत्वभूतम् (नित्यगमनशील-गौ)

(४) पथि अदनम् -मार्ग में भोजन करना । गाय का दूध पाथेय के कार्य में आता है । अतः वह अवस है ।

अव +असु =अवस् । अव का अर्थ जाना है । पथि +अद् +ल्युट् =पथ्यदन । तस्तुसः जो चलता हुआ खाता है (अवत् गच्छत् अशति) उसे अवस कहा गया है । पृषोदरादिवत् सिद्ध ।

'मयोभूः वातो अभिवातूम्रा
ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम् ।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्व ।
वसाय पद्वते रुद्र मृड ।'

ऋ.१०.१६९.१, तै.सं.७.४.१७.१, का.सं. (अश्व.)४.६, तै.ब्रा.३.८.१८.३, आप.श्रौ.सू. २०.१२.२, आश्व.गृ.सू. २.१०.५.

घास के लिए वन मे जाती हुई गौओं के सम्बन्ध में इस विनियोग है । वायु (मयोभूः) इन गायों के सामने (एता उम्रा अभिवातु) तथा ऐसी हवा में खूब दूध वाला होकर (ऊर्जस्वतीः) औषध घासों का घूम घूमकर स्वाद ले (ओषधीः तृणानि आरिशन्ताम्), घास खा खाकर जीवों का प्राण दायक जल पीवें, (जीवधन्याः पिबन्तु) । हे रुद्र, तू इस चरण युक्त पथ में चल कर चरने वाली गौ हिंसा न कर (पद्वते अवसाय मृड)

अवसर्जन - सुखपूर्वक विचरण ।

'एषां बद्धानाम् अवसर्जनाम कम्'

अ. ६.८४.१, वाज.सं. १२.६४. तै.सं. ४.२.५.३, का.सं.१६.१२, श. ब्रा. ७.२.१.११.

अवस्थः - अव +स्था +क । (१) स्त्री योनि के निकट गया हुआ -सा. (२) निम्न कोटि का

'अवस्थस्य क्रदीवतः'

अ.७.९०.३

अवस्पर्ता - रक्षा कर दुःख से पार करने वाला ।

'अवस्पर्तधिवक्तारमस्मयुम्'

ऋ.२.२३.८

अवस्फूर्जत् - (१) नीचे विद्युत् फेंकने वाला मेघ, (२) आग्नेय अस्त्रों का शत्रु पर प्रयोक्ता ।

'अवस्फूर्जते स्वाहा'

वाज.सं. २२.२६

अवस्थत् - अपनी रक्षा चाहता हुआ या चाहने वाला ।

'अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय
ऋजूयते नासत्या शचीभिः'

ऋ.१.११६.२३

हे सत्यज्ञान और व्यवहार वाले विद्वान् पुरुष आप दोनों अपना रक्षण और ज्ञान चाहने वाले (अवस्यते), स्तुतिशील (स्तुवते) विद्वान् सबके चित्तों के आकर्षक (कृष्णियाय) या दुःखों के विनाश करने में समर्थ धर्म मार्ग पर चलने वाले सरल स्वभाव (ऋजूयते) सर्वहितकारी पुरुष के व्यवहारों को यथार्थ रूप से देखने के लिए अपनी शक्तियों और ज्ञानवाणियों द्वारा (शचीभिः) व्यापक ज्ञानशील विद्वानों से प्राप्त होने वाला ज्ञान खोए हुए पशु के समान प्राप्त करें (नष्ट पशुं न) ।

अवस्रवेत् - अधोगति प्राप्त करे, नीचे गिरे या गिरावे ।

'अवस्तवेददधशंसाडेवतरम् अवक्षुद्रमिव स्रवेत् ।'

ऋ. १.१२९.६, नि. १०.४२

पापों का प्रचारक या चोर अधोगति प्राप्त करे। अत्य निकृष्ट को जल की तरह अपने स्थान से गिरा दे ।

अवस्रस् - नीचे गिराना, स्थानभ्रष्ट होना ।

अवस्वन्य - ऊंचे गर्जन क साथ कार्य करने वाला ।

'नम ऊर्माय चावस्वन्याय च'

वाज.सं. १६.३१, तै.सं. ४.५.५.२, मै.सं.

२.४.५,१२४.१४, का.सं. १७.१४.

अवसा - (१) ज्ञान, (२) रक्षादि सामर्थ्य ।
'कथा श्रृण्वन् अवसामस्य वेद'
ऋ.४.२३.३

अवसाता - दाता प्रभु ।
'अत्रायुक्तो अवसातारामिच्छात्'
ऋ.१०.२७.९

अवसान - (१) स्थान ।
'इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागाम्'
अ.१९.१४.१
(२) शरण, (३) सुख ।
'ददाम्यस्मा अवसानमेतत्'
अ.१८.२.३७

अवसानदर्श - अवसाने अन्तभूते द्युलोके दशर्म्', अवसानं कर्मफलं तद् दर्शमिति (प्रलयः काल में भी जो कर्मफलों को दिखलाने वाला हो) (२) प्रलय काल में भी सब पदार्थों और कर्मफलों का द्रष्टा परमात्मा ।
'श्येनो नृचक्षा अवसानदर्शः'
अ.७.४१.१

अवसान्य - कार्यों की समाप्ति करने में कुशल ।
'नमो याम्याय च क्षेम्याय च'
वाज.सं. १६.३३, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६: १२५.५, का.सं. १७.१४

अवसानां - (१) समीप या शरण में आई हुई (२) सदा पति को चाहने वाली तथा निकट रहने वाली स्त्री ।
'दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः'
ऋ. ३.१.६

अवस्तात् - नीच की ओर ।
'स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्'
ऋ.१०.१२९.४, वाज.सं.३३.७४, तै.ब्रा. २.८.९.५.

अवसृष्टा - अव +सृज् +क्त +टाप् । छोड़ी गई । रुद्र की विद्युत का विशेषण ।
'या ते दिद्युत् अवसृष्टा दिवस्परि'
ऋ.७.४६.३,नि.१०.७.
हे रुद्र । जो तेरा ज्वरादि व्याधि रूप आयुध दयुलोक से छोड़े जाकर ।

अवसै - अवसान, समाप्ति ।
'स्वस्त्या गृहेभ्यः आवसा आ विमोचनात्'
ऋ. ३.५३.२०, आप.मं.पा.२.३.१, हि.गृ.सू.१.५.१.

अवहना - नाश करने वाला ।
'दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः'
ऋ. ४.२५.६

अव्यः - (१) रक्षा कुशल जन ।
'अव्यो वारे परि प्रिय'
ऋ.९.५०.३, साम. २.५५७.
(२) उत्तम रक्षक या ज्ञानी के योग्य ।
'अव्य हरिर्न्यधाविष्ट सानवि'
ऋ.९.७०.८

अव्यस् - अध्यापक ।
'अव्यसश्च व्यचसश्च'
अ.१९.६८.१

अव्यंत्वच् - (१)भेड़ के बाल का आसन (२) सबको आवरण करने वाला तपोमय प्रधान तत्व प्रकृति ।
'अव्ये वधूयुः पवते परित्वाचि'
ऋ.९.६९.३

अव्यथमाना - कभी पीडित न होती हुई स्त्री ।
'अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण'
वाज.सं. ११.६३, मै.सं. २.७.६, ८२.१, ३.१.८, १०.१७, का.सं. १६.६, १९.७, श.ब्रा. ६.५.४.१२.

अव्यथ्य - (१) पीड़ा न देने योग्य, (२) स्त्रियों को पीड़ा न देने वाला, (३) कठोर वचन या अपमान आदि न करने योग्य ।
'अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीः'
ऋ.२.३५.५.

अव्यथिः - व्यथा रहित ।
'प्रोढ़ समुद्रम् अव्यथिः जगन्वान्'
ऋ.१.११७.१५
तुम दोनों में से प्रत्येक विवाहित पुरुष (प्रोढ़ः) बिना व्यथा के (अव्यथिः) संसार रूपी समुद्र के पार जाने वाला है (समुद्रं जगन्वान्)

अव्यथी - (१) व्यथा न देने वाला, पीड़ा से बचाने वाला, (२) पीड़ा, दुःख बाधादि से रहित ।
'तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति'
ऋ.१०.२७.२१
(३) व्यथित न होने वाला या दूसरे को व्यथित न करने वाला ।
'पतत्रिभिः अश्रमैः अव्यथिभिः'
ऋ.७.६९.७, मै.सं.४.१४.१०,२३०.८, तै.ब्रा. २.८.७.९.

अव्यनत् – अ +वि +अनत् । अप्राणी ।
'अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि'
ऋ. १०.१२०.२, अ. ५.२.२, २०.१०७.५, साम. २.८३४, ऐ.आ. १.३.४.७.

अव्ययवार – (१) भेड़ की ऊन का बना आसन्, (२) स्थायी, वरणीय पद या अधिकार ।
'पवन्ते वारे अव्यये'
ऋ. ९.६४.५, साम.२.३८.५.

अव्ययी – (१) भेड़ का बना कम्बल, (२) अविनाशी कन्या ।
'गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी'
ऋ.९.७०.७

अव्रण – व्रण, घाव आदि से रहित ।

अव्रत – (१) अनियमित रुप से आने वाला ज्वर ।
'इमं मण्डूकम् अभ्येति अव्रतः'
अ.७.११६.२
(२) व्रत या नियम से नहीं रहने वाला ।
(३) यज्ञहीन ।
'निरव्रतां अधमो रोदस्योः'
ऋ.१.३३.५
(तू व्रतहीनों, नियम या प्रतिज्ञा नहीं पालने वालों अशिक्षितों को पृथ्वी और आकाश से विनाश कर दे ।

अव्रदन्त – कोमल होकर झुक जाते हैं ।
'अश्रथ्नन् दृढाव्रदन्त वीडिता'
ऋ.२.२४.३

अब्रह्मनता – धन हीनता, (२) अवेदज्ञता (३) निरीश्वरवादिता ।
'अयुक्तासो अब्रह्मता यदसन्'
ऋ.५.३३.३

अब्रह्मा – (१) ज्ञान और गुणों से दरिद्र (२) जो वेदज्ञ न हो ।
'अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रः'
(३) बिना वेद या वेदज्ञ का यज्ञ
'ना ब्रह्मा यज्ञ ऋधक् जोषति त्वे'
ऋ.१०.१०५.८

अवाक् – अयोग्य निन्दितवाणी बोलने वाला ।
'दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः'
ऋ.४.२५.६

अवाची – नीचे गति करने वाली ।
'ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः'
अ.१०.२.११

अवाजी – नञ् +वाजी । मूर्ख, अज्ञानी ।
'नावाजिनं वाजिनाहासयन्ति'
ऋ.३.५३.२३

अवात – (१) जिसे वायु के झोंके न लगे हों, (२) शत्रुरूप प्रतिकूल वायु से न झुका हुआ, (३) कभी न बुझने वाला अग्नि ।
'वन्वन् अवातो अस्तृतः'
ऋ.६.१६.२०, का.सं.२०.१४.
(४) प्रचण्ड वायु के समान धक्का न लगाने वाला ।
'अदृप्त क्रतुरवातः'
ऋ.८.७९.७
(५) वायु-रहित
'न मृत्यु रासीत् अमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास'
ऋ.१०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४.

अवाता – विघ्नादिनाशक कारणों से रहित, (२) अहिंसक पुरुष के अधीन स्त्री, (३) अनन्यपूर्वा स्त्री ।
'सावह योक्षभिरवाता
उषो वरं वहसि जोषमनु'
ऋ.६.६४.५
(४) प्रतिकूल शत्रुओं से रहित ।
(५) बिना वायु के मूसलाधार वृद्धि ।

अबाधूनोत् – अव +अधूनोत् । अधोमुखानि अपातयत् (अधोमुख कर नीचे गिराया या लाया)

अवायसी – अव +आयती । नीचे की ओर जाती हुई जल धारा, (२) समझती बुझती हुई कन्या ।
' 'कन्या वारवायती'
ऋ.८.९१.१

अवार – अवारम् , अवरम् , अवनाय । अवरम् = परस्मात् कूलात् (दूस किनारे से तट से) । अव (रक्षणार्थक) +अरन् =अवरम् अवारम् (उपधा की वृद्धि बाहुल्लक नियम से)।
अर्थ – (१) जो रक्षाके निमित्त हो वह अवार है ।
आधुनिक अर्थ-नदी का समीपवर्ती तट, इस पार, अवार पार, समुद्र , अवारपारीण, (१)

सामुद्रिक ।
'अवाराय केवर्तम्'
वाज.सं. ३०.१६

अवार्य – (१) अपरा विद्या का विज्ञ ।
'नमः पार्याय चावार्याय च'
वाज.सं. १६.४२
(२) नदी के इस पार का लगा कास, (३) अनिवार्य, (४) तिरस्कार न करने योग्य, (५) समीप प्रान्त का वासी ।
'अवार्या इक्षवः'
वाज.सं. २५.१

अवास्तु – नञ् +वास्तु । गृह-विहीन ।
'अवास्तुमेनम् अस्वगम्'
अ. १२.५.४५

अवास्या – अव +अस् +ल्यप् =अवास्य । अर्थ (१) गिरकर, (२) पड़कर, (३) नीचे कर ।
'अवास्या शिशुमतीः'
ऋ.१.१४०.१०
(जल धाराओं को गिराकर गौओं पर पड़कर या शत्रु सेनाओं को नीचे कर (अवास्या) बालकों से युक्त उत्तम प्रजाओं अश्वों से युक्त सेनाओं की ।

अव्रात्य – जो व्रात्य नहीं है ।
'अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवः'
अ.१५.१३.११

अवि – (१) षण्मासकालोऽविः (छः महीनों का काल अवि कहलाता है ।)
'पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः'
वाज.सं. २१.१४, मै.सं. ३.११.११, १५८.३, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.२.
(२)अपने अंगों का रक्षक, (३) लोक से लोकान्तर में गति करने वाला-आत्मा ।
'अविं लोकेन संमितम्'
अ.३.२९.३-५.
(४) सर्व-रक्षिका भूमि, (५) राज शक्ति ।
'अविरासीत पिलिप्पिला'
वाज.सं. २३.१२,५४, तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९, १६६.७, का. सं.(अश्व). ४.७.
(६) सर्वपालक देवता ।
'अविर्वै नाम देवता'
अ.१०.८.३१

अविका – (१) गन्धार देश की एक प्रकार की भेड़, (२) रक्षा करने वाली । (३) अधिक रक्षा करने वाली स्त्री ।-(दया.)
'सर्वाहमस्मि रोमशा
गन्धारीणा मिवाविका'
ऋ.१.१२६.७.
मेरे सर्वांग में रोएं हो आए हैं जैसे गन्धार देश की भेड़ियों में अवि का नाम की भेडी को-सा. मैं पूर्णतया प्रशस्त रोओं वाली और पृथ्वी का राज्य धारण करने वाली स्त्रियों में (गान्धारीणाम्) अधिकांक्षा करने वाली हूं (अविका अस्मि)

अविक्षित – अक्षीण ।
'अविक्षितास आयुषा सुवीराः'
ऋ.७.१.२४

अविक्रीत – जो बिक गया न हो । अ +वि +कृ + क्त =अविक्रीत ।
'अविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन्'
ऋ.४.२४.९

अविचाचलि – अचल, स्थिर ।
'ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः'
ऋ.१०.१७३.१, वाज.सं. १२.११, तै.सं. ४.२.१.४, ५.२.१.४, श.ब्रा. ६ .७.३.७, तै.ब्रा. २.४.२.८.

अविचेतन – अविज्ञातार्थ, जिसका अर्थ विज्ञात न हो ।
'यद्वाग्वदन्ती अविचेतनानि
राष्ट्रीं देवानां निषसाद मन्द्रा
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि
क्वस्विदस्याः परमं जगाम'
ऋ.८.१००.१०, तै.ब्रा. २.४.६.११, आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१, नि. ११. २८,
जब माध्यमिका वाक् शब्द रूपी गर्जन लक्षण वाली अविज्ञातार्थ ध्वनि करती, तब अन्तरिक्ष लोक अर्थात् माध्यमिक देवों की ईश्वरा (राष्ट्री) तथा लोक को प्रसन्न करने वाली (मन्द्रा) वर्षा बरसाने लगती है (निषसाद) तब चारों दिशाएं एवं उपदिशाएं अन्न तथा जलों का संग्रह करती हैं (दुदुहे) इस माध्यमिका वाक् का श्रेष्ठ तत्व (परमम्) कहां चला जाता है (क्वसित् जगामः) दुर्ग का अर्थ-क्वैतानि निष्या द्यौषधीः गच्छन्ति ? कुतो वा प्रतिवत्सरं पुन रागच्छन्ति ?

इन औषधियों को उत्पन्न कर कहां चली जातीं ओर फिर प्रति वर्ष कहां से वे औषधियों आ जाती हैं ?)
आर्यसमाज का अर्थ –जब अविज्ञात अर्थों को बतलाने वाली, विद्वान् लोगों की स्वामिनी (देवानां राष्ट्री) प्रसन्नता देने वाली (मन्द्रा) दिव्यवाणी प्राप्त होती है (निषसाद) तब वह अपने प्रभाव से चारों दिशाओं में अन्न और रस दोहाती है, (चतस्रयः ऊर्ज पयांसि दुदुहे) । देखो, मनुष्य इस वाणी के प्रभाव से उत्पन्न रस को कहां कहां पाता है ।

अविच्छेद – नाश न होना ।
'यज्ञस्यविच्छेदाय तद् व्रतम्'
अ.९.६.३८

अविजाता – विशेष कारण से सन्तान न उत्पन्न करने वाली स्त्री ।
'परिवत्सराय अविजाताम्'
वाज.सं. ३०.१५

अविजानन् – विशेष तत्वज्ञान को न जानने वाला ।
'पाकः पृच्छामि मनसा विजानन्'
ऋ.१.१६४.५, अ.९.९.६.

अविज्ञाता – (१) ज्ञान–रहित प्रजा, (२) अज्ञात कुल की कन्या ।
'अविज्ञाताऽदित्यै'
वाज.सं. २४.५

अवितवे – रक्षा के लिए ।
'न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः'
ऋ.७.३३.१

अवितारा – अवितारौ –रक्षा करने वाले अश्विद्वय, स्त्री पुरुष या राजा रानी ।
'वसुधिती अवितारा जनानाम्'
ऋ.१.१८१.१.

अवितारिणी – विनाश न होने देने वाली ।
'सुमेधामवितारिणीम्'
ऋ. ८.५.६.

अवित्री – रक्षा करने वाली ।
'सानोबोध्यवित्री मरुत्सखा'
ऋ.७.९६.२

अविधुर – (१) परास्त न होने वाला । (२) जिसकी स्त्री मरी न हो ।

अविद् – अविद्वान् विद्याहीन ।
'विद्वांसाविद् दुरः पृच्छेत्'
ऋ.१.१२०.२
(अविद्वान् जानकार से बड़े महल के दरवाजे पूछता है या अज्ञानी ज्ञानी से संसार बन्धन से मुक्त होने के द्वारों को पूछे ।)

अविदत् – अविन्दत । 'विन्दते' का अर्थ प्राप्त करता है ।
'ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन
ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते
यादृश्मिन् धायि तमपस्यया विदत्
य उ स्वयं वहते सो अरं करत्'
ऋ.५.४४.८.
हे देव । यह यजमान अत्यन्त प्रवृद्ध, गमनशील या प्रयत्नशील भगवान् सूर्य के प्रज्ञापक कर्म से (अस्य य तुनस्य केतुना) विशिष्ट ऋषियों से स्तुत्य (ऋषि स्वरम्) तेरी स्तुति करता है (चरति) । जिन स्तुतियों में तेरा रूप या नाम वर्तमान रहता है वह यजमान किसी कामना में मन रखता है उस कामना को क्रिया रूप से या फल रूप से (अपस्यया) वह प्राप्त करता है ।

अविदाम – विजानीम (हम जानते हैं)
'बतो बतासि यम
नैव ते मनो हृदयं चाविदाम
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तम्.
परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्'
ऋ. १०.१०.१३, अ. १८.१.१५, नि. ६.२८
यमी यम से कहती है–हे यम, तू निर्बल है (बतः) तू सचमुच अनुकम्प्य है कि मेरे साथ संभोग नहीं कर सकता (बत असि) मुझे तेरे मन या हृदय का पता नहीं । जान पड़ता है मेरे समान कोई अन्य युवती तुझ से उसी प्रकार हिलमिल गई है जैसे घोड़ी की जिन कसने वाली रस्सी (कक्ष्या) घोड़े से या लता वृक्ष से मिल जाती है ।

अविदस्य – अविनाशी ।
'धाता रयिमविदस्यं सदासाम्'
ऋ.७.३९.६.

अविद्या – (१) अविद्या, नित्य, पवित्र सुख और आत्मा से पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा जानना
'येऽविद्यामुपासते'

वाज.सं. ४०.१२
(२) लौकिक ज्ञान या कर्म जिससे जीवन यापन किया जाता है वैज्ञानिक आविष्कार आदि अविद्या के ही अन्तर्गत है । विद्या का अर्थ पारलौकिक ज्ञान या ब्रह्म ज्ञान या आत्म ज्ञान है जिस से मोक्ष सिद्धि होती है ।

अविद्रिया – (१) द्र (विदारणार्थक) +इयक् +टाप् =द्रिया, अ +वि +द्रिया = अविद्रिया–महीधर
(२) दृ +क +घ–दया.
(३) द्रा (कुत्सागति) +कि =अविद्रिः, निन्दा, तद्विरोधिनीं स्तुतिं याति इति अविद्रिया ।
अर्थ–अखण्डित, कभी नष्ट न होने वाला, दृढ़ त्रुटि रहित, आनन्दित, उत्तम ।
'अविद्रयाभिरूतिभिः'
ऋ. १.४६.१५, वाज.सं. ३४.२८.
(दृढ़ रक्षा के उपायों से)

अविद्वान् – विद्या रहित, मूर्ख ।
'अविद्वान् इत्था परो अचेताः'
ऋ.१.१२०.२

अविद्विष – कभी द्वेष न करना, प्रेमव्यवहार करना ।
'इक्षुणा गामविद्विषे'
अ.१.३४.५

अविदुष्टर – व्रतों तथा शुभ कर्मों को सर्वथा न जानने वाला ।
'विदुषा देवा अविदुष्टरासः'
ऋ.१०.२.४, अ.१९.५९.२ तै.सं. १.१.१४.४, मै.सं. ४.१०.२, १४७.६, का.सं. ३५.९.

अविद्वेष – परस्पर द्वेष भाव से रहित ।
'अविद्वेष कृणोभि वः'
अ.३.३०.१.

अविधवा – विधवा न होने वाली नारी ।
'इमा नारीरविधवाः सुपत्नीः'
ऋ.१०.१८.७, अ. १२.२.३.१, १८.३.५.७, तै.आ. ६.१०.२, आश्व.गृ.सू. ४.६.१२, शा.शौ.सू. ४.१६.६.

अविप्र – (१) अविद्वान् , बालक आदि ।
(२) ब्राह्मणेतर ।
'अवि प्रेचिद् वयोदधत्'
ऋ.६.४५.२.
'अविप्रो वा यदविधत्'
ऋ.८.६१.९, शां.श्रौ.सू. १८.८.१४.

अविपाल – भेड़ो का पालक ।
'वीर्यायाविपालम्'
वाज.सं. ३०.११, तै.ब्रा. ३.४.१.९.

अबिभ्युस् (१) अभयवान्, निर्भीक ।
'इन्द्रेण सं हि दृक्षसे
संजग्मानो अबिभ्युषा
मन्दू समानवर्चसा'
ऋ.१.६.७, अ. २०.४०.१, साम. २.२००, पंच.ब्रा. १२.२.६, आश्व.श्रौ.सू .७.२.३, नि.४.१२.
तू दीप्त एवं निर्भीक इन्द्र से संगत दीख पड़ता है और तुम दोनों जब साथ रहते हो तो नित्य प्रसन्न और समान दीप्ति से युक्त रहते हो ।
(२) निर्भय, (३) भय–निवारक ।
'स्तवा अबिभ्युषा हृदा'
ऋ.९.५३.२, साम. २.१०६५.

अविमान् – (१) प्राणों का स्वामी, (२) राष्ट्र के रक्षक पुरुषों स्वामी, (३) भेड़े आदि पशुओं का स्वामी, भेडिया ।
'गोमान् अग्ने अविमां अश्वीयन्नः'
ऋ.४.२.५, तै.सं. १.६.६.४, ७.६.७, ३.१.११.१, का.सं. ५.६,३२.६.
'वृक इवाविमतो गृहम्'
अ.६.३७.१

अविमोक्य – नहीं छूटने लायक ।
'दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत्'
अ.६.६३.१

अविरण – अ +वि +रण । विशेष युद्धादि का न करना ।
'सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः'
ऋ. १.१७४.८

अविराध्यन्ती – बिगाड़ न करती हुई स्त्री ।
'संप्रिया पत्याविराधयन्ती'
अ.२.३६.४

अविवेनन् – अ +वि +वेनन् । विशेष कामना से रहित ।
'सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्'
ऋ.४.२४.६

अविशस्ता – (१) विशेष ज्ञान के शासन या शिक्षा करने में अकुशल पुरुष (२) शत्रु का नाश करने में असमर्थ ।
'मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय

छिद्रा गात्राणि असिना मिथू कः'
ऋ.१.१२६.२०, वाज.सं. २५.४३, तै.सं. ४.६.९.४, का.सं. (अश्व) ६.५.

अविश्वमिन्व – (१)विश्व अर्थात् जीवों का नाश न करने वाला (२) जिसे जीवगण नाश नहीं करते या जीव से जिसे पृथक न रखा सके-देह । •
'सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्'
ऋ.२.४०.३, मै.सं. ४.१४.१, २१५.१, तै.ब्र. २.८.१.५.

अविश्वमिन्वा – (१) समस्त साधारण अज्ञजनों से न सेवन करने योग्य वाक् वेदवाणी ।
'मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे
विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्'
ऋ.१.१६४.१०, अ. ९.९.१०.
उस परोक्ष सबके कामना करने योग्य (अमुष्यदिवः) तेजोमय सबके रक्षक परमेश्वर पालन, सबके वर्धन सेचन के समार्थ्य के वर्णन में (पृष्ठे) समस्त साधारण अज्ञजनों से न सेवन करने योग्य (अश्वमिन्वाम्) समस्त संसार का ज्ञान कराने वाली (विश्वविदम्) वेदवाणी को (वाचम) गूढ़ रूप से भावपूर्ण रूप से वर्णन करते हैं (मन्त्रयन्ते) । (२) जो बात सबके समझने योग्य न हो ।

अविष – विषरहित ।
'अविषं नः पितुं कृणु'
वाज.सं. २.२०, तै.सं. १.१.१३.३, श.ब्रा. १.९.२.२०, तै.ब्रा. १.२.१.२५, ३.३.९.९.

अविष्ठः – सर्वोत्तम रक्षक ।
'यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठः'
ऋ.७.२८.५

अविष्यवःदेवाः – समस्त संसार की रक्षा की इच्छा करने वाले दक्षिण दिशा के देवता ।
'येऽस्यां स्थ दक्षिणायांदिशि
अविष्यवो नाम देवास्तेषां वः काम इषवः'
अ. ३.२९.२

अविष्या – अवि +स्य +टाप् । रक्षा (२) आने और जाने की गति ।
'अह्मर्षूणां चिन्न्ययां अविष्याम्'
ऋ.२.३८.३

अविष्यु – हिंसा करने की इच्छा करने वाला, (२) हिंसा शील ।
'अविष्यवे रिपवे दुच्छुन्नायै'
ऋ.१.१८९.५,
'मा त्वा मूरा अविष्यवः'
ऋ.८.४५.२३, अ. २०.२२.२, साम २.८२.
(३) रक्षा चाहने वाला ।

अविहर्यतक्रतुः – (१) अविरुद्ध अर्थात् सबके प्रति उत्तम हित जनक कार्यों और प्रज्ञाओं के स्वामी-इन्द्र (२) न विद्यन्ते विरुद्धाः हर्यताः प्रज्ञा कर्माणि यस्य (जिसके प्रज्ञा कर्म विरुद्ध न हो वह) –(दया.)
'येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्
पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः'
ऋ. १.६३.२
(जिससे हे सबके प्रति हितजनक उत्तम कार्यों और प्रज्ञागणों के स्वामी ! हे सर्वस्तुत्य ! तू पूर्वकालीन शत्रुओं के नगरों पर चढ़ाई कर (इष्णासि)

अवीरघ्नी – वीर्य और सन्तान के नाश न करने वाला जल ।
'अवीरघ्नीः उदजन्त्वापः'
अ. १४.१.३९, आप.मं.पा. १.१.७.

अवीरत – (१) वीरों से रहित सैन्य या देश
'मा नो अग्नेऽवीरते परा दाः'
ऋ.७.१.१९

अवीरता – वीरता का न होना ।
'मा वीरतायैरीरधः'
ऋ.३.१६.५.

अवीरहणौ – राष्ट्र के वीर पुरुषों का नाश न करन वाले ।
'अवीरहणौ ब्रह्मचौदनौ'
वाज.सं. ४.३३.

अवीरहा – (१) व्यर्थ ही वीरजनों को नहीं मारने वाला (२) वीर्य को नष्ट न करने वाला ब्रह्मचारी ।
'अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्'
ऋ.१.९१.१९, वाज.सं. ४.३७, तै.सं. १.२.१०.१, का.सं. ११.१३, मै.सं. ४.१२.४, १८८.१२, ऐ.ब्रा. १.१३.२४, श.ब्रा. ३.३.४.३०.
हे सोम, आप व्यर्थ वीर पुरुषों का नाश न करने वाला होकर हमारे घरों में या द्वारों वाले नगरों

में आवें । (३) पुत्रों या प्राणों का नाश न करने वाला ।
'अप द्राहि अवीरहा'
अ. ६.१४.३

अवीरा – (१) वीरराजा से रहित प्रजा, (२) वीरपति से रहित स्त्री ।
(३) अबला
'अवीरामिव मामयं
शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणी
इन्द्रपत्नी मरुत्सखा
विश्वस्मात् इन्द्र उत्तरः'
ऋ. १०.८६.९, अ. २०.१२६.९, नि. ६.३१.
इन्द्र पत्नी कहती है–यह मूर्ख तथा मृत्यून्मुख या शोख या शरूर नहुष मुझे अवीरा सी समझता है, नहीं जानता कि मैं इन्द्रपत्नी वीरिणी हूँ और इन्द्र मरुतों के मित्र एवं सबसे बढ़ कर है ।
अन्य अर्थ–यह मुझे मारने की इच्छा रखने वाला मूर्ख मनुष्य मुझे अवीरा सी समझता है परन्तु में वीरांगना हूँ, अपनी आत्मा की रक्षा करने वाली हूँ (इन्द्रपत्नी) तथा प्राण अपान वायु मेरे मित्र हैं तथा मेरा आत्मा सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत् से ऊपर उठा हुआ है ।
(४) अ + वि + ईरा = अवीरा । विशेष चेतन तथा प्रेरक शक्ति से हीन –प्रकृति

अबुध्न – मूलरहित या बन्धन रहित आकाश ।
'अबुध्ने राजा वरुणो वनस्य
ऊर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः'
ऋ.१.२४.७
प्रकाशमान तेजोमय, सर्वश्रेष्ठ, स्वयं स्वच्छ, पवित्र और पावन कारी तेजोबल से युक्त होकर सेवन करने योग्य एवं विभक्त कर सर्वत्र पहुँचाने योग्य तेज समूह को सबके ऊपर मूल–रहित या बन्धन रहित आकाश में धारण करते हैं ।

अबुध्य – अज्ञानी ।
'अतृप्णुवन्तं वियतम् अबुध्यम्'
ऋ.४.१९.३

अबुध्यमान – चेताने पर भी न चेतने वाला ।
'अबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र'
ऋ.४.१९.३

अबुभोजीः – भोगना या पालन करता है ।
'परि यदिन्द्र रोदसी उभे'
'अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम्'
ऋ.१.३३.९
हे सूर्य ! तू जिस प्रकार आकाश और पृथिवी दोनों का अपने महत् सामर्थ्य से भोग करता है

अवृक – (१) बिच्छू, सर्प आदि से रहित ।
'प्रनो यच्छतात् अवृकं पृथुच्छर्दिः'
ऋ. १.४८.१५
हमें तू बिच्छू आदि से रहित विशाल घर दे ।
(२) चोरी के स्वभाव से रहित, ईमानदार
'त्रायस्व नो अवृकैभिर्वरूथैः'
ऋ. ७.१९.७, अ. २०.३७.७, तै.सं. १.६.१२.६, मै.सं. ४.१२.३, १८३.३,
(३) अनमित्र , जिसका अमित्र या शत्रु न हो । अज्ञात शत्रु, सबसे साम्यभाव से बरताव करने वाला । वृक एक घातक जन्तु है जिसे भेड़िया कहते हैं । (४) अहिंसक । (५) अचोर
'यो रातहव्योऽवृकाय धायसे'
ऋ.१.३१.१३
जो रातहव्य तू वृक के समान हिंसक न होकर अहिंसक सौम्य होकर रहने वाले, और सबका पालन पोषण करने वाले पुरुष को (धायसे) ।

अवृकतम – सबसे अधिक ईमानदार । चौर्यवृत्ति से रहित, कृपालु ।
'अवृकतमो नरां नृपाता'
ऋ.१.१७४.१०

अवृकाःपितरः – (१) अहिसंक अस्तेन या अज्ञात शत्रु पितर (२) सबके मित्रविद्वान् –(दया.)
'असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञाः
ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु'
ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५७.५, नि. ११.१८.

अवृजिन – त्याज्य पाप कर्म से रहित ।
'अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः'
ऋ. २.२७.२, मै.सं. ४.१२.१, १७७.१२.

अवृत – (१) विघ्न बाधाओं से न घिरा हुआ (२) अकेला (३) अरक्षित, (४) जो मोहादि से घिरा हुआ न हो ।
'सहस्रावाजि अवृतः'
ऋ. १.१३३.७, ८.३२.१८, अ. २०.६७.१

यज्ञ का कर्म करने वाला ही अधिक पुरुषों से रक्षित न रहने पर भी (अवृतः) बलवान् होकर सहस्रों ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है। (५) अनावृत, (६) न वरण करने योग्य, शरीर जो घृणा जनक पदार्थों का बना हुआ है, (७) अवद्ध अर्थात् आत्मा से सदा पृथक् शरीर।

'यस्य त्रिधात्ववृतम्'

ऋ. ८.१०२.१४, साम. २.९२१, का.सं. ४०.१४

अवृधः - दूसरों को न बढ़ने देने वाला।

अवेनन् - विशेष कामना न करने वाला।

'गर्भं माता सुधितं वक्षणासु
अवेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति'

ऋ.१०.२७.१६

अवेरिण - अव +इरिण =अवेरिण। अर्थ =अपार्ण मरुभूमि।

'यथा गौरो अपाकृतम्
तृष्यन्नेत्यवेरिणम्'

ऋ. ८.४.३, साम. १.२५२, २.१०७१, आश्व. श्रौ.सू. ७.४.४.

जैसे मरुप्रदेश में प्यासा मृग जल-पूर्ण तड़ाग को जाता है।

अवेहि - नीचे आ।

'एवात्वं दशमास्य
सहावेहि जरायुणा'

ऋ. ५.७८.८,

इसी प्रकार हे गर्भ (दशमास्य) तू जरायु के साथ नीचे आ (अवेहि)

अवैरहत्य - वैर के साथ हत्या न करना।

'अवैरहत्यायेदमा पपत्यात्'

अ. ६.२९.३

अवोः - नीचे।

'अवो देवमुपरि मर्त्यम् कृधि'

ऋ. ८.१९.१२

अश् - भोजन करना।

'यदश्नासि यत् पिबसि

अ.८.२.१९

अशन् - (१) मेघ। अश् (व्यापानार्थ) +नक् =अशन् (बाहुलक नियम से) (२) व्यापक, (३) वायु।

'अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्
मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्
निष्टत् जभार चमसं न वृक्षात्
बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य'

ऋ. १०.६८.८, अ. २०.१६.८, नि. १०.१२.

(बृहस्पति ने मेघ से छिपाए या दबाए जल को स्पष्ट देख लिया जैसे सूखे पानी में मत्स्य को फंसाने वाला मत्स्य को देखता है (दीन उदनि क्षियन्तं मत्स्यं न)। तत्पश्चात् अत्यन्त भयंकर ध्वनि से उस जल को खण्ड खण्ड कर उसे बाहर निकाला (निर्जभार), जैसे कुशल बढ़ई वृक्ष से काटकर चमस निकाल देता है।

अशनः - भोजन व्यापार से युक्त चेतन प्राणिगण

'साशनानशने अभि'

ऋ. १०.९०.४, वाज.सं. ३१.४, तै.आ. ३.१२.२.

अशनकृत् - भोजन बजाने वाला।

'यदशनकृतं हयन्ति'

अ. ९.६.१३

अशमिष्ठाः - त्रुटियों को शमन किया या उन्हे दूर किया।

'ऋधगया ऋधगुता शमिष्ठाः'

वाज.सं. ८.२०, तै.सं. १.४.४४.२, मै.सं. १.३.३८, ४४.१५, का.सं. ४.१२, श.ब्रा. ४.४.४.१२, नि. ४.२५.

अशस् - (१) अप्रशस्त-दया. (२) प्रार्थना न करने वाला।

'दहाशसो रक्षसो पाह्यस्मान्'

ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११५, १७४.८, का.सं. ६.११.

प्रार्थना न करने वाले द्रोही तथा निन्दक राक्षसों से रक्षाकर -

अप्रशस्त एवं घातक शत्रुओं से हमारी रक्षा कर -दया. (३) अश् (भोजन करना) धातु से सम्पन्न प्रजा को खा जाने वाला दुष्ट पुरुष (४) स्वयं अन्यों को न मारने वाला शस्त्र रहित पुरुष-निःशस्त्र।

'अवरुद्रा अशसो हन्तना वधः'

ऋ.२.३४.९

अशस्त - निन्दनीय।

'किमशस्तानि शंससि'

अ. ६.४५.१

अशस्त वार - अप्रशस्त मार्ग का वरण करने वाला।

'स रुद्रेभिः अशस्तवार ऋभ्वा'
ऋ.१०.९९.५

अशस्तिः – (१) असाध्य शत्रु । (२) शासन का उल्लंघन करने वाला (३) उच्छृंखल, (४) दुष्टपुरुष ।
'प्रतूर्वन्नेहि अवक्रामन् अशस्तीः'
वाज.सं. ११.१४
(५) निन्दित व्यक्ति ।
'शापं सिन्धूनाम् अकृणोत् अशस्तीः'
ऋ.७.१८.५.
(६) निन्दा ।
'हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एताम्'
अ. १७.१.८

अशस्तिहा – (१) निन्दकों का नाशक ।
'अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि'
ऋ. ८.९९.५, अ. २०.१०५.१, साम. १.३११, २.९८७, वाज.सं. ३३.६६

अश्न – (१) सर्वव्यापक, (२) कर्मफल भोक्ता जीव, (३) सर्वव्यापक वायु (४) सब पदार्थों को खा जाने वाला अग्नि ।
'तस्य भ्राता मध्यमो अस्ति अश्नः'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.१.१, नि. ४.२६.
(४) भोजन, (६) भोक्ता जीव का भोग्य कर्मफल आदि ।
'वि य इनोत्यजरः पावकः
अश्नस्य चित् शिरश्नघत् पूर्व्याणि'
ऋ. ६.४.३
(७) प्रजा को खा जाने वाला दुष्ट (८) एक दैत्य ।
'अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान'
ऋ.२.१४.५.
अश् +नक् =अशन् । (९) जो व्याप्त हो वायु (१०) अशनि-(दया.) ।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठोअस्य
अत्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.
स्वर्ग में चमकने वाले, आरोग्यार्थियों के सेवनीय तथा पालक उस आहवनीय आदित्य के मध्यमस्थानी सर्वव्यापक भ्राता के समान वायु हैं क्योकि वायु वर्षा बरसाने के लिए सूर्य से रस पाता है जैसे भाई भागहती होता है । और इस वायु का भाई तृतीय अग्नि घृतस्पृष्ट है जो पृथ्वी पर रहता है । इन तीन भागों में विभक्त ज्योतियों में प्रजाओं के पालयिता सर्पणशील, सूर्यरूपी पुत्रों से युक्त सूर्य को देखा ।
सूर्य, वायु और अग्नि – इन तीनों ज्योतियों में प्रधान सूर्य हैं । अन्य अर्थ-इस प्रशस्त पालक, तथा ग्रहोपग्रहो को आहर्ता सूर्य का (होतुः) मेघ मध्यवर्ती अशनि दूसरा भाई है (मध्यमः अश्नः) भ्राता अस्ति) और इसका तीसरा भाई अग्नि (घृतस्पृष्टः)। इन तीनों भाइयों में मैं आदित्य को विशेषतया सर्वपालक देखता हूँ ।

अश्नःमृगः – भूखामृग, हरिण या सिंह
'मृगो नाश्नोअति यज्जुगुर्यात्'
ऋ.१.१७३.२.
भूखे मृग के समान ऊपर उठता और अधिक मात्रा में जल को अपने भीतर ग्रहण कर लेता है ।

अश्नापिनद्ध – व्यापक परमात्मा द्वारा ढका हुआ वेद ।
'अश्नापिनद्धं मधुपर्यपश्यन्'
ऋ. १०.६८.८, अ. २०.१६.८, नि. १०.१२.

अश्म – हीरा, पत्थर ।
'कार्मारो अश्मभिः द्युभिः हिरण्यवन्तमिच्छति'
ऋ.९:११२.२.
जैसे सोनार (कार्मारः) चमकते हीरों से (द्युभिःअश्मभिः) धनी सेठ को चाहता है (हिरण्यन्तम् इच्छति) ।

अश्मचक्र – (१) पत्थर के घेरे वाला, (२) सदा गतिशील चक्र से युक्त कूप ।
'द्रोणाहावमवतम् अश्मचक्रम्'
ऋ. १०.१०१.७, नि. ५.२६.
(३) अशनचक्रम् अशनि शब्द से अशणा का विनिमय हुआ है अर्थ व्यापनचक्र । अथवा असनानि क्षपणानि चक्राणि आयुधविशेषाः यत्र (जिसमें पीछे जाने वाले चक्र के समान आयुध हो) एक प्रकार का विशिष्ट आयुध ।

अश्नदिद्यव,: अश्मदिद्यु – (१)मेघ को प्रकाशित करने वाले –वायु गण (२) व्यापक प्रभु या आत्मा में चमकने वाले ।

'विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवः'
ऋ. ५.५४.३, नि. आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७.

अश्मन् – अशन्-असन्। अशुङ् (व्याप्तत्यर्थक) या 'अस' (क्षेपणार्थक्) + मनिन् =अश्मन्। अर्थ व्याप्त होने वाला या फेंके जाने वाला (२) पत्थर, (३) हीरा।

अश्मन् अन्धः – (१) पत्थर या शिला या चक्की आदि में पीसा अन्य या कटी ओषधि (२) मेघ के आधार पर उत्पन्न दुःख।
'स्वर्यदश्मन् अधिपा उ अन्धाः'
ऋ. ७.८८.२

अश्मनःपरि – पाषाण या मेघ के घर्षण से विद्युत या अग्नि की उत्पत्ति होती है।
'त्वमद्भ्यः त्वमश्मनः परि'
ऋ. २.१.१, वाज.सं. ११.२७, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.१०, का.सं. १६.२, तै.आ.(अश्व). १०.७६, नि. ६.१.
तू जलों से तथा मेघों या पाषाणों के घर्षण से उत्पन्न होती है।

अश्मन्मय – पत्थर के समान दृढ़।
'अश्मन्मयानि नहणा व्यस्यन्'
ऋ. १०.६७.३, अ. २०.९१.३, तै.सं. ३.४.११.३, मै.सं. ४.१२.६, १९७.२, का.सं. २३.१२.

अश्म – (न्) मय-अर्थ-(१) अयः शिला सारभूत, (२) पत्थर का बना, (३) व्यापन समर्थ।

अश्मन्मयी – अश्म +मनिन् =अश्मन्। अश्मन् +मयट् =अश्मन्मयः। अश्मन्मय + ङीष् =अश्मन्मयी। अर्थ-(१) व्यापन – समर्थ, (२) अयः शिला सारभूत (३) पत्थर की बनी।
'आतूषिञ्चहरिमींद्रोरुपस्थे
वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिः
उभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त'
ऋ. १०.१०१.१०, नि. ४.१९.
हे अध्वर्यो! तू इस हरे रंग के सोम में (हरिम्) लकड़ी के बने बर्तन से (द्रोरुपस्थे) जल डाल (ईम आसिञ्च) और आप दूसरे अध्वर्यु भी इस अध्वर्यु के द्वारा लाए इस सोम को अयःशिला सारभूत वसिला से काटे (अश्मन्मयीभिः तक्षत) अन्य अर्थ-उस हरे सोम को द्रोण कलश के ऊपर ढालें और आप होतागण इस आसिक्त किए जाने वाले सोम को व्यापन-समर्थ स्तुतियों से (अश्मन्मयीभिः वाशीभिः) संस्कृत करें। उस सोम के रस को दश अंगुलियों से ग्रहण करो (दश कक्ष्याभिः परिष्वजध्वम्) इस प्रकार अंगुलियों से पकड़ दोनों धुराओं में बैल जोतो ओर सोम रस चलाओ।
तृतीय अर्थ-हे विद्वानों (विश्वेदेवाः) इस सोम को लकड़ी के बर्तन में सिञ्चित करो और पाषाण निर्मित्त शस्त्रों या आप्त वाणियों से संस्कृत करो तथा दशविभागों से युक्त इस सोम को ग्रहण करो ओर जरा एवं मृत्यु इन दोनो व्याधियों को शरीर में से निकाल कर ले जाने वाले सोम का उपयोग करो।
सुश्रुत में २४ प्रकार का सोम रस वर्णित है उनमें दशभेदों का यहां उल्लेख है। जरा और मृत्यु का भय मिटाने वाला सोम रस है।
(१) लौहसार की बनी बंसुली (वाशी)

अश्मनोःअन्तः – द्यौ और पृथिवी के बीच में, (२) दो अरणियों के बीच में।
'यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान'
ऋ. २.१२.३, अ. २०.३४.३, मै.सं. ४.१४.५, २२२.१२, नि. ८.२.

अश्मवर्म – पत्थर का दृढ़ कवच।
'अश्म वर्म मेऽसि'
अ.५.१०.१-७.

अश्म व्रज – मेघ जिसमें बिजलियों दौड़ती हों।

अश्मव्रजाः – (ब.व.) (१) ये अश्मयु मेघेषु व्रजन्ति-दया. (२) मेघ के समान ज्ञानवान् लोगों की शरण जाने वाले, (३) पत्थर की बनी गोशाला, (४) व्यापक परमेश्वर की तरफ जाने वाली वाणी (५) शस्त्र धारण कर चलने वाली सेनाएं।
'अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तः'
ऋ. ४.१.१३

अश्महन्मा – विद्युत् या ओले के समान आघात करने वाला।
'अग्नितत्पेभिःयुवमश्महन्मभिः'
ऋ. ७.१०४.५, अ. ८.४.५.

अश्मा – (१) अश्मा, लोहसार या फौलाद की बनी तलवार या शस्त्र।
'प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र'

ऋ. ७.१०४, १९, अ. ८.४.१९
(२) व्यापक मेघ, (३) व्यापक परमेश्वर
'बृहस्पतिरुद्धरत् अश्मनोगाः'
ऋ. १०.६८.४, अ. २०.१६.४

अश्मास्य – (१) अश्मवत् दृढ़तरास्य, अश्नानवत् अथवा आस्यन्दनवान् (जल की व्याप्तिवाला या जल प्रक्षारण क्रिया युक्त)। जिसमें जाल व्याप्त हो या जल बहता हो, (२) जिसका मुख पत्थर जैसा कठोर हो। मेघ का विशेषण।
'अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिः
मधुधारमभि यमोजसातृणत्
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो
सिसिचुरुत्समुद्रिणम्'
ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.
माध्यमिक देव ब्राह्मणस्पति ने जिस पत्थर के समान कठोरमुख वाले या जलपूर्ण या बहते हुए जलवाले, जलधारा वाले, चारो ओर विस्तृत या भूमि की ओर आते हुए (अवतम्) मेघ को बल से अभिहत किया (अभ्यतृणात्)। उसी मेघ को सूर्य की सभी रश्मियाँ पीती हैं (विश्वे स्वर्दृशः पपिरे) और वर्षाकाल में आकाश में उठते हुए मेघ को (उत्सम् उद्रिणम्) बहुत जल मिलकर (बहुसाकम्) देती हैं।

अश्न – (१) मेघ, (२) सत्व को खा जाने वाला ,अपने पेट में घर लेने वाला –अन्धकार, लोभ, मोह या अज्ञान, (३) लोभी।
'अश्नस्य चित् शिश्नथत् पूर्व्याणि'
ऋ. २.२०.५, ६.४.३.

अश्रद्धः – सत्यवचन, कर्म या श्रद्धा को न धारण करने वाला, (२) नास्तिक।
'पणींरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान्'
ऋ. ७.६.३
(३) उच्छृंखल।
'येऽश्रद्धा धनकाम्यात्'
अ. १२.२.५१

अश्रमः – श्रान्त नहीं होने वाला।
'पतत्रिभिरश्रमैर्व्यथिभिः'
ऋ. ७.६९.७, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.८, तै.ब्रा. २.८.७.९.
'ये अश्रमास उरवो वहिष्ठाः'
ऋ. ६.२१.१२.

अश्रमणः – कभी न थकने वाला।
'अश्रमणा अश्रथिता अमृत्यवः'
ऋ.१०.९४.११

अश्रमिष्ठाः – कभी न थकने वाले
'अतन्द्रासो अवृका अश्रमिष्ठाः'
ऋ. ४.४.१२, तै.सं. १.२.१४.५, मै.सं. ४.११.५, १७४.१, का.सं. ६.११.

अश्रवम् – अश्रौषम्। सुना।
'अश्रवं हि भूरि दावत्तरा वां
विजामातुरुत वा घा स्यालात्
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्याम्
इन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्'
ऋ. १.१०९.२, तै.सं. १.१.१४.१, का.सं. ४.१५, नि.६.९.
हे इन्द्र और अग्नि, तुम दोनों बहुत दान करने वाले हो (भूरि दावत्तरा) क्योंकि (हि) सुना है कि अयोग्य निर्गुण जामाता से जो अपने ससुर को बहुत धन देकर विवाह करता है या उस साले से भी जो अपनी बहन को दान देता है तुम अधिक दान देते हो (विजामातुः उतवा स्यालात् घा)। इस कारण तुम दोनों के लिए अभिसुत सोमरस के प्रदान के साथ-साथ (सोमरस प्रयती) बिलकुल नवीन स्तोत्र का उच्चारण करता हूँ।
पुन :–
'इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगाम् अहमश्रवम्'
ऋ. १०.८६.११, अ. २०.१२६.११, तै.सं. १.७.१३.१, का.सं. ८.१७. नि. ११ .३८.

अश्रात – अपरिपक्व (२) नहीं पका हुआ खेत।
'यद्यश्रातो ममत्तन'
ऋ. १०.१७९.१, अ. ७.७२.१, आप.श्रौ.सू. १३.३.४,

अश्व – (१) अश् +क्वन् =अश्व। अश्नोति असौ (यह खाता है) इति अष्टा अश्वः।(२) अब्जा एव अश्वाः। अप्सु जाताः अश्वाः' (घोड़े जल से उत्पन्न हुए) जैसे उच्चैःश्रवाः। (३) हयः, अर्वा–ये भी अश्व के अन्य नाम हैं। अत +यत् =अत्यः। हयति गच्छति इत हयः (हय धातु घोड़े की चाल का द्योतक है) (४) हन्ति अध्वानम् (मार्ग को खाता है) अथवा 'महाशनः भवति अश्व बहुत भोजन करने वला होता है)। फारसी

में अश्व का अश्य हो गया है। (५) अश्व का अर्थ सप्त संख्या भी है (६) सूर्यरश्मिः। दे. 'अज्म' (७) कर्मों से समस्त जगत् को व्याप्त करने वाला अग्नि या विद्वान्।
'प्र नूनं जातवेदसम् अश्वं हिनोत वाजिनम् इदं नो बर्हिरासदे'
ऋ. १०.१८८.१, नि. ७.२०.
अपने कर्मों से समस्त जगत में व्याप्त होने वाले, गतिशील अग्नि या वेदवेत्ता को आस्तीर्ण कुशासन पर बैठने के लिए प्रेरित करो।
(८) वीर्य।
'वीर्यं वा अश्वः'
श.ब्रा. २.१.४.२३,
(९) वज्र।
'वज्रोऽश्वः'
श.ब्रा. १३.१.२.९
(१०) इन्द्र-'इन्द्रो वा अश्वः'।
कौ. ब्रा. १५.४
(११) आत्मा।
'ब्रह्मन्नश्वं भन्त्सयाभि देवेभ्यः प्रजापतये'
वाज.सं. २२.४, मै.सं. ३.१२.१,१६०.२, श.ब्रा. १३.१.२.४, तै.ब्रा. ३ .८.३.१, आप.श्रौ.सू. २०.३.३.
(१२) समस्तराज्य का भोक्ता।
'अश्वोऽसि हयोऽसि'
वाज.सं. २२.१९, तै.सं. ७.१.१२.१, मै.सं. ३.१२.४, १६१.८, का.सं. (अश्व) १.३, पंच.ब्रा. १.७.१,श.ब्रा. १३.१.६.१, तै.ब्रा. ३.८.९.१, ला.श्रौ.सू. २.७.२०, हि.गृ.सू. १.१२.३, आप.मं.पा. २.२१.२०.
(१३) सर्व व्यापक (१४) कर्मफल भोक्ता जीव, (१५) सर्वव्यापक वायु (१६) सब पदार्थों को भस्म कर खा जाने वाला अग्नि (१८) कर्मेन्द्रिय।
'गोभिरश्वभिर्वसुभिर्न्यृष्टः'
ऋ.१०.१०८.७

अश्वक : - (१) कुत्सित राजा, (२) क्षुद्र पुरुष, (३) कुत्सित विषयों का भोक्ता मनुष्य।
'ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकाम् काम्पीलवासिनीम्'
वाज.सं. २३.१८, तै.सं. ७.४.९.१, २,३, मै.सं. ३.१२.२०, १६६.१०, का.सं.(आश्व). ४.८.

अश्वक्षमा - अशु +अक्ष +मा। अतिशीघ्र व्यापक शक्ति से सृष्टि उत्पन्न करने में समर्थ -प्रकृति।
'अश्वक्षमा सुहवा संभृतश्रीरा'
अ.१९.४९.१

अश्वघ्न - इन्द्रिय रूप अश्वों को जीतने वाला-जितेन्द्रिय।
'आश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः'
ऋ.१०.६१.२१

अश्वजित् - (१) अश्व अर्थात् व्यापक पदार्थों और भोक्ता जीवों को भी अपने अधीन रखने वाला इन्द्र, परमेश्वर, (२) अश्व को जीतने वाला।
'अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरा'
ऋ.२.२१.१

अस्वतर - (१) खच्चर, (२) एक बल कारक, औषधि।
'अश्वस्याश्वतरस्य'
अ.४.४.८.

अश्वतरी - (१) खच्चरी, (२) अत्यधिक व्याप्त घोड़ी, (३) चारों दिशाएं जो अत्यधिक व्याप्त हैं।
'दिशश्चतस्रो अश्वतर्यः'
अ. ८.८.२२

अश्वत्थ - (१) पीपल का वृक्ष, (२) अग्नि का महान् आश्रय सूर्य।
'अश्वत्थो देवसदनः'
अ. ५.४.३, ६.९५.१, १९.३९.६.
(३) आशुगामी वायु पर स्थित मेघ।
'अश्वत्थे वो निषदनम्'
ऋ. १०.९७.५, वाज.सं. १२.७९, ३५.४, तै.सं. ४.२.६.८, मै.सं. २.७.१३, ९३.९, का.सं. १६.१३, श.ब्रा. १३.८.३.१.
(४) अश्वारूढ़ सावधान क्षत्रिय राजा, (५) अ +श्वः +स्थ। कलतक भी न रुकने वाला, अनित्य (६) सनातन, (७) व्याप्त होकर विचरने वाला।
'अश्वत्थ खदिरोधवः'
अ. २०.१३१.१४.
(१) अश्वादि पशुओं को देने या पालने वाली स्त्री।

अश्वदाः - (१) अश्वों का पालक या दाता (२) व्यापक सूर्य या प्राण को देने वाली उषा।
'ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदाः'

ऋ.५.४२.८
(४) अश्वरथ या वेग वान् साधन का दाता ।
'ये अश्वदाः सह ते सूर्येण'
ऋ. १०.१०७.२.

अश्वदावन् – (१) व्यापक विज्ञान आदि गुणों का दाता, (२) तीव्र अश्व, (३) अश्व –सैन्य या व्यापक राष्ट्र का देने वाला ।
'व्यश्वदावन् नीयते'
ऋ. ५.१८.३

अश्वथः – (१) अश्वों या अश्वसैन्यों का स्वामी । (२) राष्ट्र का भोक्ता राजा ।
'अश्वथः पायवेऽदात्'
ऋ.६.४७.२४

अश्वपः – अश्वपालक ।
'जवायाश्वपम्'
वाज.सं. ३०.११, तै.ब्रा. ३.४.१.९

अश्वपर्ण – (१) अश्वरूपी पंख, (२) शीघ्र जाने वाला रथ ।
'रथेभिः यातऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः'
ऋ. १.८८.१, नि. ११.१४.
(३) अश्वपर चढ़कर वेग से जाने वाला ।
'समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरः'
ऋ. ६.४७.३१, अ. ६.१२६.३, वाज.सं. २९.५७, तै.सं. ४.६.६.७,मैं.सं. ३.१६.३, १८७.१३, का.सं. (अश्व). ६.१.
(४) अशन पतन युक्त मेघ, (५) अश्नुवन्तः ये अन्तरिक्षे पतन्ति (जो अन्तरिक्ष में प्राप्त होते हुए या खाते हुए गिरते हैं)(६) मेघ अथवा रथ का विशेषण होकर अश्वपर्ण का अर्थ अश्ववाहन (जिसका वाहन अश्व हो) होगा ।
'आ विद्युन्मद्भिः मरुतः स्वर्कैः
रथभिर्यात् ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः
वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
ऋ. १.८८.१, नि. ११.१४.
हे मरुतो । तुम विशिष्ट दीप्तियुक्त (विद्युन्मद्भिः) सुगमन, सुपूजित, या सुन्दर अर्चियों से (स्वर्कैः) अकालनाशक (ऋष्टिमद्भिः) अशनपतन युक्त मेघों के सहित (अश्वपर्णैः रथेभिः) आओ । अथवा हे मरुतो ! विद्युत् के समान आयुधोपेत अश्ववाहन रथों पर चढ़ तुम आओ तथा आकर हे सुकर्मा (सुमायाः) अत्यन्त अन्न को देख जैसे पक्षी आते हैं, वैसे ही तुम आओ ।
'(वर्षिष्ठया इषा वयः न पप्तत) ।'
(७) घोड़े सहित दौड़ते हुए वीर सैनिक, (८) प्राण से वेगवान् इन्द्रिय गण ।

अश्वत्थपलाशम् – पीपल का पत्रा ।
'अश्वत्थपलाशम्'
अ. २०.१३५.३, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.२१, शां.श्रौ.सू. १२.२३.३, वै.सू. ३२.२५.

अश्वनिर्णिज् – इन्द्रियों की शुद्धि ।
'गो अर्णसि त्वाष्ट्रे अश्विनर्णिजि'
ऋ. १०.७६.३

अश्वपस्त्य – (१) व्याप्त गृह, (२) अश्ववाला गृह, घुड़शाला, (३) बल का भण्डार धन ।
'ब्रह्मप्रजावत् रयिमश्वपस्त्यम्'
ऋ. ९.८६.४१.
सन्तान संयुक्त अन्न (प्रजावत् ब्रह्म) गोहिरण्यादिधन (रयिम्) तथा व्याप्त गृह या अश्व वाला घर (अश्वपस्त्यम्) हमारे लिए मांग ।

अश्वपृष्ठः – (१)सूर्य के द्वारा सेचन समर्थ (२) बड़े बड़े विद्वानों के ऊपर विद्यमान (३) अश्वों के बल पर पृष्ठ ।
'ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना'
ऋ.८.२६.२४

अश्वपेशस् – (१) आशुगामी मन के उत्तम रूप वाला, (२) मनन क्रिया से युक्त, (३) अश्व अर्थात् राजसी सम्पत्ति (४) घोड़ के रूप वाला ।
'ये स्तोतृभ्यो गो अग्राम् अश्वपेशसम्'
ऋ. २.१.१६, २.२.१३.

अश्वपिष्टिः – शीघ्रगामी साधनों में वेग देने वाला अग्नि ।
'ऊर्जो नपादश्वमिष्टे'
ऋ. २.६.२

अश्वमेध – (१) एक वैदिक यज्ञ ।
'अर्काश्णमेधावुच्छिष्टे'
अ. ११.७.७

अश्वयातुः – अश्व पर चढ़कर जाने वाला ।

अश्वयुज् – (१) घोड़ों को रथ में लगाने वाला, (२) योगाभ्यास से आत्मा को परमात्मा में लगाने वाला, (३) इन्द्रियों को वश में करने

वाला ।
'वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः'
ऋ. ५.५४.२.

अश्वयुजौ – अश्विनी नामक नक्षत्र ।
'आरेवती चाश्वयुजौ भगं मे'
अ. १९.७.४, नक्षत्र कल्प १०.५.

अश्वयुः – (१) अश्व का इच्छुक ।
'त्वामश्वयुरेषते'
ऋ.८.७८.९
(२) अश्व +यु (वतुप् अर्थ में) =अश्वयुः। अर्थ अश्ववान्
'इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके
पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुः
इन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता'
ऋ. १.५१.१४.
अंगिरा ने इन्द्र को ही पुत्र रूप में पाने की इच्छा से देवताओं का आराधन किया। अतःइन्द्र सत्य नाम से अंगिरा से पुत्र हुए ।
इन्द्र द्वार पर गाड़े यूप की तरह (दुर्य यूपः नः) शोभन कर्मा यजमानों या विद्वानों के (सुध्यः) निर्धन होने पर (निरेके) सेवा करते हैं (अश्रायि) जो इन्द्र युद्धों में (पज्रेषु) स्तोम या स्तोत्र की तरह निश्चल या प्रधान हो खड़े रहते हैं तथा इन्द्र ही धन के प्रकृष्ट दाता हैं (रायः प्रयन्ता) अतः वे सर्वोपरि द्रष्टा या प्रभु हैं (क्षयति) क्योंकि अश्वों से युक्त, गौओं से युक्त तथा नाना विध धनों से युक्त हैं–सा. ।
स्वा.दयानन्द की व्याख्या –राजा सन्देह स्थलों में बुद्धिमानों का आश्रय ले (इन्द्रः निरेके सुध्यः अश्रायि) तथा उपार्जन कर्मों में प्रशस्त (पज्रेषु स्तोमः) द्वारस्थ स्तम्भ की तरह (दुर्यः न यूपः) घोड़ो, गौओं, रथों तथा धनों से युक्त होकर ही नियामक राजा (प्रयन्ता इन्द्रः) समान ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है (रायः क्षयति)

अश्वयुप – घोड़े का स्तम्भ ।
'चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति'
ऋ. १.१६२.६, वाज.सं. २५.२९, तै.सं. ४.६.८.२, मै.सं. ३.१६.१, १८२.८, का.सं. (अश्व.). ६.४.

अश्वयोगः – (१) घोड़ों को रथों में जोतने वाला, (२) सारथि, (३) अश्वों के साथ सेना में योग देने वाला (४) मन और आत्मा से युक्त ।
'उतन ईं मतयो अश्वयोगाः
शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति'
ऋ. १.१८६.७.

अश्वराधस् – अश्वों को साधने वाला उत्तम वीर पुरुष ।
'शुम्भन्ति अश्वराधसः'
ऋ. ५.१०.४, १०.२१.२

अश्वःवाजी – सर्वव्यापी ज्वालाओं से चंचल या अन्नयुक्त या अश्व के सदृश बलवान् अग्नि । वाज का अर्थ अन्न और बल है । अश् (व्याप्त्यर्थक) धातु से अश्व बना है । अग्नि अश्व है क्योकि यह सर्वव्यापी है । वह वाजी भी है । यह परमात्मा में भी घटित होता है ।
'अश्वं हिनोत वाजिनम्'
ऋ. १०.१८८.१, नि. ७.२०
सर्वव्यापी ज्वाला युक्त का अन्नयुक्त अग्नि को स्तुतियों से बढ़ा या प्रेरित कर (हिनोत)

अश्ववार – (१) अश्व का बाल अर्थात् काश या सरपत की एक जाति जिसे राज निघण्टु में अश्वाल कहा गया है । यह पानी में बहुत फैलता है और इसके पत्ते दाह तृष्णा को शान्त करते हैं । यह विष बोधने वाला है ।
'अश्वस्य वारः परुषस्य वारः'
अ. १०.४.२

अश्वबुध्नाः – भोक्ता आत्मा से बद्ध, मन और इन्द्रियों के आश्रित शरीर ।
'अस्य पत्मन् अरुषीरश्वबुध्ना'
ऋ. १०.८.३

अश्वबुध्न्य – (१) सूर्य के आश्रय पर होने वाला अन्न आदि, अश्वसैन्य के आश्रय पर होने वाला ऐश्वर्य तथा संग्राम ।
'प्र नो वाज्यान् रथ्यो अश्वबुध्न्यान्
इषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै'
ऋ. १.१२१.१४
हमें रथरोहियों में सबसे कुशल रथारोही होकर (रथ्यः) या राजा या परमेश्वर या मेघ सूर्य के आश्रय पर होने वाले अन्नो को या अश्व सैन्य के आश्रय पर होने वाले ऐश्वर्यों या संग्रामों को कीर्ति और ऐश्वर्य एवं उत्तम धनादि समृद्धि, वेदवाणी तथा धन-प्राप्ति के लिए प्रदान कर

(३) वेगवतः अश्वान् बोधयन्ति अस्मिन् संग्रामे-दया. (जिसमें वेगवान् अश्वों को बोधित किया जाता है -संग्राम) (४) अश्व आदि विजय के साधनरूप बलवान् पशुओं के दृढ़ आश्रय वाला संग्राम (५) व्यापक परमात्मा से बोध करने वाला

'प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यान्
उषो गो अग्रान् उप मासि वाजन्'

ऋ. १.९२.७

पुनः-

'दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम्'

ऋ. १.९२.८

अश्वश्चन्द्राः - वेग से जाने वाले अश्व आदि आह्लाद कारक पदार्थ ।

'स गोमधा जरित्रे अश्वश्चन्द्राः'

ऋ. ६.३५.४

अश्वसनिः - (१) अश्व आदि ऐश्वर्य से युक्त, (२) कर्मेन्द्रि से युक्त ।

'यस्ते अश्वसनिर्भक्षः
यो गोसनिस्तस्य त इष्टयजुस

वाज.सं. ८.१२, वा.सं. (का.). ८.७.२, श.ब्रा. ४.४.३.११.

अश्वस्यवारः - घुड़सवार ।

'अश्वस्य वारो गोशपद्यके'

अ. २०.१२९.१८

अश्वस्यशिरः - (१) शीघ्रगामी मेघ का मुख्य भाग -जलांश (२) अश्व का शिर ।

'इच्छन् अश्वस्य यत् शिरः
पर्वतेष्वपश्रितम् तद् विदच्छर्यवाणति'

ऋ. १.८४.१४, अ. २०.४१.२, साम. २.२६४, मै.सं. २.१३.६, १५४.१३, का.सं. ३९.१२ तै.ब्रा. १.५.८.१.

शीघ्रगामी मेघ का मुख्य भाग जलांश जो आकाश में और मेगों में व्यापक हैं उसे सूर्य अपनी किरणों से व्याप्त लेता है ।

अश्वस्य शीर्षा - (१) अश्वसैन्य या भोक्ता राजा होने का प्रमुख अधिकार, (२) सकल विज्ञानों में पारंगत आचार्य का मुख्य पद, (३) अश्व का सिर। अश्वियों को अश्व के सिर से उपदेश करना और पुनः उसका छेदन करना अलंकार रूप से कहा गया है ।

अश्वसा - (१) अश्व देने वाला ।

'अश्वसा वाजसा उत'

ऋ. ९.२.१०, साम. २.३९५, का.सं. ३५.६.

(२) अश्वों का देने वाला स्वामी

'गोषा उ अश्वसा असि'

ऋ. ९.६१.२०, साम. २.१६६.

अश्वसात्तमः - (१) समस्त अश्वसैन्य को राष्ट्र के भिन्न भिन्न भागों में विभक्त करने वाला ।

'मंसीष्ठा अश्वसातमः'

ऋ. १.१७५.५.

अश्वसाद - अश्वरोही ।

'अरिष्ट्या अश्वसादम्'

वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७.

अश्वसूनृत - (१) विद्याओं में पारंगत विद्वान् (२) अश्ववन् भोक्ता राजा के समान उत्तम वाणी बोलने वाला पुरुष ।

अश्वसूनृता - (१) भोक्ता पति अथवा हृदय में व्यापक पुरुष के प्रति उत्तम वाणी बोलने वाली (२) अश्व अर्थात् भोजन करने वालों को सूनृत अर्थात् अन्न देने वाली (३) व्याप्त, हृदयंगम महत्युक्त वाणी या अन्न आदि की स्वामिनी (४) विद्या के मार्ग में वेग से जाने वाली विद्वान् की वाणी ।

'सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते'

ऋ. ५.७९.१-१, साम. २.१०९०-१०९२

अश्वहय - वेगवान् घोड़ा ।

'अश्वहयैरनिशितं नमोभिः'

ऋ. ९.९६.२.

अश्वयः - (१) अश्वारोही सेना में कुशल (२) अश्व वाला, (३) इन्द्र का विशेषण ।

'अश्वयोवारो अभवस्तदिन्द्र
सृकेयत् त्वा प्रत्यहन् देव एकः'

ऋ. १.३२.१२

हे इन्द्र ! वीर ! राजन् ! जब विजय करने की इच्छा वाला शत्रु अकेला ही तेरे प्रति आघात करता है तब अश्वारोही सेना में कुशल एक मात्र वज्र के आश्रय पर ही (सृके) सेना द्वारा वरण करने और शत्रु को वारण करने में समर्थ हो (सृके वारः अभवः) ।

अश्व्यं राधः - अश्व या सैन्यबल ।

'नि राधो अश्व्यं मृजे'

ऋ. ५.५२.१७

अशास्य – अ + शास् +यत् =अशास्य । शासन न होने योग्य ।

'स्त्रिया अशास्यं मनः'

ऋ. ८.३३.१७

अश्मास्य – (१) व्यापक विद्युत् को फेकंने वाला, स्वयं फैलने वाला, जल धाराओं से बहने वाला मेघ (२) शस्त्र बल से नीचे गिराया हुआ, पराजित ।

'अश्मास्यम् अवतम् ब्रह्मणस्पतिः'

ऋ. २.२४.४, नि.१०.१३.

अश्वा – (स्त्री) सर्वत्र व्यापिनी उषा या ईश्वरीय शक्ति ।

'अश्वे न चित्रे अरुषि'

ऋ. १.३०.२१

(२) (पु.ब.व.) एक वचन में अश्व ।

(१) सूर्य के घोड़े (२) सूर्य के किरणें –(दया.)

'यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः'

ऋ. १.१६३.१०, वाज.सं. २९.२१, तै.सं. ४.६.७.४, का.सं.(अश्वा). ६.३, नि. ४.१३.

'अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्'

ऋ. १०.१४९.१, नि. १०.३२.

सविता ने अगम्य, अहिंसित अन्तरिक्ष में लगे मेघ को प्रवाहित किया । (अश्वा–घोड़ी, (४) द्विवचन में–दो घोड़ियां । विपाशा और शुतुद्रि नदियों के वेग की उपमा दो छूटी हुई घोड़ियों से दी गई है ।

'अश्वे इव विषिते हासमाने'

ऋ. ३.३३.१, नि. ९.३९.

वाजिशाला से छूटी दो हिनहिनाती घोडियों के सदृश...।

अश्वाजनी – (१) अश्व +अजनी । अश्वों को प्रेरणा करने वाली कशा – चाबुक । अश्वांना क्षेप्री (घोड़ों को चलाने वाली) (२) अज +ल्युट् +ङीष् =अजनी

'आ जङ्घन्ति सान्वेषां
जघनां उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसो
अश्वान् समत्सुचोदय'

ऋ. ६.७५.१३, वाज.सं. २९.५०, तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८७.१६, का.सं.(अश्व). ६.१, नि. ७.२०.

हे चाबुक या कशे ! जिस तुझ से प्रकृष्ट ज्ञान वाले अश्वरोही (प्रचेतसः) घोड़े के उठे जानु के ऊपर (एषां सानु) मारते हैं (आजङ्घन्ति) तथा उनके जाघों में मारते हैं (उपजनते) वह तू संग्रहों में (समत्सु) घोड़ों को प्रेरित कर (प्रचोदय) ।

अश्वाभिधानी –अश्व को बांधने वाली रस्सी ।

'अश्वमिवाश्वाभिधान्या'

अ. ४.३६.१०, ५.१४.६.

अश्वामधा – अश्वों से समृद्ध स्त्री पुरुष या अश्विद्वय

'अश्वामधा गोमधा वां हुवेम'

ऋ. ७.७१.१, कौ.ब्रा. २६.११.

अश्वावत् – अश्व या अश्वरोहियों से युत् सेना दल ।

'अश्वावति प्रथमो गोषुगच्छति'

ऋ. १.८३.१, अ. २०.२५.१.

अश्वावत् रथ – घोड़ो वाला रथ ।

'आगोमता नासत्या रथेन
अश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम्'

ऋ. ७.७२.१, ऐ.ब्रा. ५.१६.११, ७.९.२, कौ.ब्रा. २५.२, २६.८, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, ८.९.२.

अश्वावती – (१) गतिमान या व्यापक तेजस्वी सूर्य से युक्त उषा (२) अश्व आदि वेगवान् धन हाथी, घोड़े आदि सवारी के पशुओं तथा रथों और अश्व रोहियों की स्वामिनी, (३) सांसारिक सुखदुःखों के भोक्ता उत्तम आत्मा से युक्त (४) आलस्य रहित स्त्री ।

'उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि'

ऋ. १.९२.१४, साम. २.१०८२

(५) कर्मेन्द्रियों से युक्त कर्ममयी जीवन नदी (६) प्रस्थरों से पूर्ण तीव्र नदी, (७) अश्वों से युक्त शत्रु सेना ।

'अश्वावतीं प्र तर या सुशेवा'

अ. १८.२.३१.

(८) अश्वों तथा अश्वरोहियों से युक्त सेना ।

'अश्वावतीः गोमतीः विश्वसुविदः

ऋ. १.४८.२

'आश्विनावश्वावत्या
इषा यातं शवीरया'

ऋ. १.३०.१७, आश्व. श्रौ.सू. ४.१५.२, शां.श्रौ.सू. ६.६.२
हे अश्विद्वय, तुम दोनों अश्वारोहियों से बनी सैकड़ों वीरों वाली सेना से पूर्ण इच्छानुकूल प्रेरित सेना से सर्वत्र प्रयाण करें।
(१०) अश्व के समान गन्धवाली ओषधि
'अश्वावतीं सोमावतीम्'
ऋ. १०.९७.७, वाज.सं. १२.८१, तै.सं. ४.२.६.४, मै.सं. २.७.१३,९३.१५, का.सं. १६.१३, तै.ब्रा. २.८.४.८.
(११) सूर्य से युक्त उषा, (१२) उत्तम भोक्ता पुरुष युक्त स्त्री।
'अश्वावती गोमितीर्न उषासः'
ऋ. ७.४१.७, ८०.३, अ. ३.१६.७, वाज.सं. ३४.४०, तै.ब्रा. २.८.९.९, आप.मं.पा. १.१४.७.
(१२) अश्वों से युक्त शाला।
'अश्वावती गोमती सूनृतावती'
अ. ३.१२.२, शा.गृ.सू. ३.३.१, पा.गृ.सू. २.१७.९, ३.४.४, हि.गृ.सू. १ .२७.३.
(१३) उषा या विशोका प्रज्ञा का विशेषण।
(१४) अश्व, कर्मेन्द्रिय या मन रूपी अश्व वाली
'अश्वावति विभावरी'
ऋ. १.९२.१४, साम. २.१०८२

अशित – खाने वाला, जिसे खिलाया जाता है।
'उताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः'
ऋ. १०.११७.१

अशिपदाः – (१) भोजनादिव्यवहारायप्राप्ता (भोजनार्थ सब प्रकार के अन्न उपजाने वाले)
'शिवा देवीरशिपदा भवन्तु'
ऋ. ७.५०.४

अशिमिद् – (१) क्लेशात्मकं कर्म शिमितत् ददाति इति शिमिदम्, न शिमिं शान्तिं द्यति, खण्डयति इति अशिमिः (२) क्लेश विवर्तकाय इति महीधरः (३) अक्लेशदाय इति उव्वटः (४) नशिमिं क्लेशयुक्तं कर्म ददाति इतिवाः (५) शिमिः शक्तिः न दीयते खण्डयते यस्य सः शिमिदः तस्मै (६) रस –दया.
यत् अश्यते भुज्यते तत् अन्नम् तत् मोदते यस्मिन् तत् रसः– दो.
'अशिमिदायत्वा त्वा वाताय स्वाहा'
वाज.सं. ३८.७, श.ब्रा. १४.२.२.५

अशिमिदा – (१) भोजनादि स्नेह कारिका –दया. (२) अहिंसाकारिणी।
'सर्वानद्यो अशिमिदा भवन्तु'
ऋ. ७.५०.४

अशिव – (१) अमंगलजनक, अकल्याणकारी (२) अनात्म प्रत्यय, अश्विमाया।
'मिनन्ता दस्योः अशिवस्यमायाः'
ऋ. १.११७.३.
आप दोनों अमंगलजनक, प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुष के छल कपट के जालों को नष्ट करते हुए, अथवा, आप दोनों प्राण अपान अनात्म प्रत्यय अश्विमाया को दूर करते हुए।

अशिश्लिक्षु – (१) असंग ब्रह्म जो प्रकृति से लिपटना नहीं चाहता, (२) स्नेह रहित।
'अशिश्लिक्ष्णुं शिश्लिक्षते'
अ. २०.१३४.६

अशिश्वी – (१) वत्सरहिता गौ।
'स्तनाभुजो अशिश्वीः'
ऋ. १.१२०.८
स्तनों द्वारा बच्चों को पिलाने वाली गौएं ओर माताएं शिशु रहित न हो (अशिश्वीः) (२) कन्या, शिशु रहित, अबला।
'आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः'
ऋ. ३.५५.१६

अश्रित – (१) अन्यों द्वारा न भोगने योग्य (२) जो किसी अन्य पर आश्रित न हो।
'वन आ वीतमश्रितम्'
ऋ. ४.७.६

अश्विन् – (१) अश् (व्याप्त्यर्थक) + क्वन् =अश्व, अश्व + इन् = अश्विन्, यत् समस्तं भुवनम् अश्नुते (जो समस्त भुवन में व्याप्त है) एक रसेन व्याप्नोति अन्यः ज्योतिसा व्याप्नोति (एक रस अर्थात् जल से मध्य स्थान अर्थात् अन्तरिक्ष को व्याप्त करता है तथा दूसरा अश्विन तेज से द्युलोक को प्राप्त करता है) दो अश्विन हैं। दोनों की स्तुति एक साथ की गई है। दोनों द्युलोक तथा अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं तथा जल और तेज के देवता समझे जाते हैं। (२) और्णनाम आचार्य के मत से –अश्ववन्तौ पुण्यकृतौ राजानौ =अर्थात् घोड़े वाले दो पुण्यवान् राजा हैं। (३) कुछ मनीषी 'द्यावापृथिव्यौ' द्यौ और पृथिवी

को ही अश्विद्वय मानते हैं । द्यौ तेज से तथा पृथिवी अन्न से व्याप्त रहती हैं ।
(४) कुछ 'अहोरात्रौ' - दिन और रात्रि को ही अश्विद्वय मानते हैं । दिन में ज्योति और रात में तुषार रहता है ।
(५) कुछ 'सूर्याचन्द्रमसौ' (सूर्य और चन्द्रमा) को अश्विद्वय मानते हैं । सूर्य में ज्योति और चन्द्रमा में रस व्याप्त रहता है ।
(६) ऐतेहासिक विद्वान भी इन्हें राजा समझते हैं ।
(७) स्वामी दयानन्द इस शब्द का अर्थ औरों से भिन्न करते हैं । जैसे कहीं राजा और राजपुरुष, कहीं स्त्री पुरुष और कहीं अन्य दो का जोड़ा, जहां कहीं भी अश्विन का प्रयोग हुआ है वहीं किसी न किसी जोड़े का अर्थ लगाया गया है । जैसे -(१) अध्यापक और उपदेशक, (२) भिक्षुक, शल्यचिकित्सक, राजा रानी, स्त्री पुरुष । राजा मन्त्री इत्यादि ।
अश्विनों का काल अर्द्धरात्रि से लेकर सूर्योदय पर्यन्त हैं । यही अहोरात्र काल है । जब अन्धेरे को फाड़ता हुआ थोड़ा प्रकाश उसमें मिलता रहता है उस समय जो तमोभाग है वह मध्यभाग और जो ज्योतिर्भाग है वह आदित्य का है । 'अर्द्धरात्रात् ऊर्ध्वम् प्रकाशी भावस्य अनुविष्टभ्यम्' - अर्थात् आधीरात के बाद सूर्योदय के पूर्व तक अन्धकार प्रकाश से अनुष्टम्भित रहता है । इस बीच में सन्धिस्तोत्र 'अश्वन' कहा जाता है और सूर्योदय के बाद 'सौर्य' । जब तम ज्योति में अनुप्रविष्ट रहता है वह भाग 'मध्यम' कहलाता है । जब ज्योति तम में अनुप्रविष्ट रहती है तो उस भाग को आदित्य कहते हैं । इसी से अश्विद्वय को मध्यम और उत्तम दोनों माना गया है ।

'वसातिष स्म चरथः
असितो पेत्वा विव
कदेदमश्विना युवम्
अभिदेवां अगच्छतया'

नि. १२.२.

हे अश्विद्वय ! तुम दोनों रातों में (वसातिषु) चलते हो, क्योंकि तुम दोनों काले मेघ की तरह हो (असितौ इव पेत्वौ) अतः उषा काल में मैं तुम्हें मुश्किल से ही देख सका । इस लिए मेरे इस यज्ञ में जो देवता आए हैं उनके पास कब आओगे ।

अश्विना - अश् +विनि । सदा द्विवचन प्रयुक्त । यह सदा जोड़े का वाचक है । इसके भिन्न भिन्न अर्थ भिन्न भिन्न प्रसंग में किए गए हैं । (१) दो अश्विनी कुमार -सा. (२) राजा और प्रजा-(दया.)

'अजोहवीत् अश्विना वर्तिका वाम्'

ऋ. १.११७.१६, नि. ५.२१

हे अश्विनीकुमारो । आप दोनों को उषा ने बुलाया । हे राजा तथा राजपुरुषों ! जैसे द्यावापृथिवी सूर्य के मुख से उषा को छुड़ाते हैं उसी प्रकार दुष्ट जनों के ग्रास से प्रजाजन को राजा बचावे ।
(३) त्वष्टा (विश्वामित्र) की पुत्री सरण्यू का विवस्वान् से विवाह होने पर जब सरण्यू विवस्वान् का तेज नहीं सह सकने के कारण उत्तर कुरु में घोड़ी का रुप धारण कर तपस्या करने चली गयी तो विवस्वान् भी ढूंढते ढूंढते अश्व के रूप में उत्तर कुरु जाकर बड़वा रूप धारिणी सरण्यू से संभोग किया । सरण्यू ने उस वीर्य को नासिका में धारण किया जिससे दो पुत्र नासत्या-अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए ।
(४) सूर्य और पृथिवी -(दया.) । 'ऋजीष' 'अत्रि' और 'सर्वगण स्वस्ति'

'ऋबीसे अत्रिम् अश्विनावनीतम्
उन्निन्युथुः सर्वगणं स्वस्ति ।'

ऋ. १.११६.८, नि. ६.३७.

सूर्य और पृथिवी ने (अश्विना) पृथ्वी के नीचे की आग को वर्षा द्वारा ऊपर ला बीजों को उगाया और समस्त प्रजा वर्ग का कल्याण किया
(५) अश्विनी कुमार नामक दो वैद्य-

'युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम्
महः क्षोणस्यावश्विना कण्वाय
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां
यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम्'

ऋ. १.११७.८.

हे अश्विद्वय ! तुम दोनों ने कुष्ठ रोग के कारण कपिश रंग वाले श्याम ऋषि या राजा को ज्वलित रूपश्री दी या दीप्तवर्णा स्त्री दी

(श्यावाय रुशतीम् अदत्तम्)
दृष्टिहीन होने के कारण एक ही स्थान पर रहने वाले (क्षोणस्य) कण्व ऋषि को तुम दोनों ने तेज या प्रकाश दिया (कण्वाय महः), या सायण के अनुसार, तुम दोनों ने राक्षसों के द्वारा गूढ़ अन्धकार में रखे कण्व के लिए वीणा द्वारा जोर से ध्वनि की और हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय (वृषणा) ! तुम दोनों का वह कृत्य वस्तुतः प्रशंसनीय है (वां तत् कृतम् प्रवाच्यम्) जब नृषदपुत्र नार्ष ऋषि को तुम दोनों ने श्रवण शक्ति दी (यत् नार्षदाय श्रवः अध्यधत्तम्)।
स्वामी दयानन्द का अर्थ- हे राजा तथा राज पुरुषो । तुम उत्तम निवास के प्रापक (क्षोणस्य श्यावस्य) मेधावी पण्डित के लिए (कण्वाय) लक्ष्मी प्रदान करें (रुशतीम् अदत्तम्) और हे बलवान् राजा तथा राज पुरुषो ! (वृषणा) आपके जो वर्णनीय विद्याश्रवण और कर्म हैं वाम् यत् प्रवाच्यम् श्रवः कृतम्) उस ज्ञान तथा कर्म की शिक्षा राजकर्मचारियों के सन्तानों को (नार्षदाय) विशेषतया दें । (अध्यधत्तम्) ।
(६) गुरु और शुक्र ग्रह जो रात में आधीरात के बाद दृष्टि गोचर होते थे ।
'ईर्मान् यत् वपुषे वपुः
चक्रं रथस्य येमथुः
पर्यन्या नाहुषा युगा
मह्ना रजांसि दीयथः'
ऋ. ५.७३.३
ऋग्वेद में अश्विनी का सम्बन्ध उषा से बतलाया गया है । निरुक्त में भी द्युस्थानीय देवताओं में अश्विनी की गणना की गई है और उनकी स्तुति का काल अर्द्धरात्रि के बाद बतलाया गया है । बृहस्पति और शुक्र जब तब एकत्र भी रहते हैं । (७) अश्व अर्थात् अपनी इन्द्रियों को उत्तम अश्वों के समान वश में रखने वाले स्त्री पुरुष, (८) भविष्य के कर्त्तव्य न टालने वाले स्त्री पुरुष , (९) राष्ट्र पालन या अश्वमेघ के करने वाले स्त्रीपुरुष ।
'अश्विना वायुना युवं सुदक्षा'
ऋ. ३.५८.७, ऐ.ब्रा. ४.११.१७, कौ.ब्रा. १८.५.
(१०) अग्नि और जल (११) द्युस्थानी देवता, (१२) द्यावापृथिवी , (१३० सूर्य और चन्द्रमा
'या सुरथा सथीतमो भा देवा दिविस्पृशा
अश्विना ता हवामहे'
ऋ. १.२२.२.
इसी प्रकार अन्य द्वन्द्व भी अश्विनी कहे जा सकते हैं ।

अश्विनी - (१) शीघ्र चलने वाले की स्त्री, (२) विवाह में बद्ध स्त्री ।
'इन्द्राण्यग्नाय्यश्विनीराट्'
(३) अश्विद्वय की पत्नी -सा.
'उतग्ना व्यन्तु देवपत्नी
इन्द्राण्यग्नाय्यश्विनी राट्
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु
व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्'
ऋ. ५.४६.८, अ. ७.४९.२, मै.सं. ४.१३.१०, २१३.१०, तै.ब्रा. ३.५.१२.१, नि. १२.४६.
यज्ञ में अग्नि आदि पुरुष देवों ने आज्य दिया । अब देवपत्नियों को आज्य पीने की प्रार्थना की जाती है । स्त्रियां भी कामना करें या खावें पीवें (उतग्नाः व्यन्तु) जो देवपत्नियाँ इन्द्राणी, अग्निपत्नी, अश्विद्वय की पत्नी विराज रही हैं और जो रुद्र की पत्नी रोदसी और वरुण की पत्नी हैं वे सुने । जो स्त्रियों के भोजन का समय है (जनीनां यः ऋतुः) उस समय वे सभी भोजन करें या पेय पीवें (व्यन्तु) (४) व्यापक धारा (५) वाणी, (६) शक्ति ।
'प्र त आश्विनीः पवमान धीजुवः'
ऋ. ९.८६.४, साम. २.२३६, पंच.ब्रा. १२.७.१.
(७) अश्वी, वेगवान् रथ, विद्युत् आदिके प्रणेता शिल्पी पुरुष की स्त्री ।

अश्विनोःचमसः - प्राण और अपान दोनों को शक्ति प्राप्त करने या अन्न रस के भोजन का साधन आत्मा ।
'यो अश्वनोश्चमसो देव पानः'
अ. ७.७३.३, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, शां.श्रौ.सू. ५.१०.२३.

अश्विनोः देवी - (१) दिन रात के बीच प्रकट होने वाली उषा, (२) प्राण और अपान के बीच प्रकट होने वाली वाणी ।
'अभुत्स्यु प्र देव्या
'साकं वाचाहमश्विनोः ।'
ऋ. ८.९.१६, अ. २०.१४२.१

अश्विनोः सखा – प्राण और अपान दोनों के साथ रहने वाली विशोका प्रज्ञा ।
'सखा भूदाश्विनोरुषाः'
ऋ. ४.५२.२, साम. २.१०७६

अशीतमः – सर्वव्यापक अग्नि ।
'अग्नेऽदब्धायोअशीतम पाहि मा दिद्योः'
वाज.सं. २.२०, श.ब्रा. १.९.२.२०

अशीति – अस्सी ।
'आशीत्या नवत्या याहि अर्वाङ्'
ऋ. ८.२.१८.६

अशीतिःहोमाः – अन्न का अशन अर्थात् भोजन पुरुष यज्ञ का होम है ।
'अशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः'
वाज.सं. २३.५८

अशीय – अश (व्याप्त होना, प्राप्त करना) मैं प्राप्त करू ।
'तेना मृतत्वम् अशीय'
कौ.सू. ९.९, पंच.ब्रा. १.८.२, १०.११, १३.
हे देवि देवियो ! तुझे इस प्रकार पाकर मैं अमृतत्व प्राप्त करू (अमृतत्वम् अशीय) ।

अशीर्षा अशीर्षन् – शिर रहित ।
'अशीर्षाणम् अहिं कृणु'
अ, १९.४७.८, ५०.१.
(२) शिर के तुल्य सबसे मुख्य होकर शिर की अपेक्षा न करता हुआ ।
'अपादशीर्षा गुहमानो अन्ता'
ऋ. ४.१.११.

अश्री – श्री से हीन, श्री रहित ।
'अश्रीरातनूर्भवति'
ऋ. १०.८५.३०,

अश्रीर – कुरूप, शोभा-रहित पुरुष ।
'अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम्'
ऋ. ६.२८.६, अ. ४.२१.६, तै.ब्रा. २.८.८.१२.
'अश्रीर इव जामाता'
ऋ .८.२.२०
(२) शोभा, लक्ष्मी सौभाग्यादि से रहित ।

अश्लील – अश्रि +र (मतुप् अर्थ में) =अश्रिर =अश्लील । 'अश्रिमत्' का अर्थ विषम है । तीक्ष्ण धार से युक्त –विषम । आज अश्लील का अर्थ अभद्र है ।

अश्लीला – गन्दा, मलीन, शोभा रहित ।
'अश्लीला तनूर्भवति'
अ. १४.१.२७

अशुन – दुःखदायी क्लेश ।
'अघ्न्यावशुनमारताम्'
अ. १४.२.१६

अशुष् – कभी शोषण या कृश न किए आने वाला, (२) शोषण न करने वाला ।
'वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः'
ऋ. ६.२०.४
(३) सुखादि से रहित, दुःख दुःखेदायी, (४) अन्यो द्वारा शोषित न होने वाला ।
'कुत्साय शुष्णम् अशुषं निवर्हीः'
ऋ. ४.१६.१२
(६) स्वयं किसी से शोषण या निर्बल न किया जा सकने वाला अदम्य शत्रु ।
'यः शुष्णम् अशुषं यो व्यसम्'
ऋ. २.१४.५
(७) अग्नि जिसमें धातु पिघलाकरें और उसका शोषण न हो–दया. (८) शोषण या पीड़न से रहित (९) अन्यों को पीड़ा ने देने वाला ।
'रक्षो अग्निम् अशुंष तूर्वयाणम्'
ऋ. १.१७४.३
(१०) शोक–रहित, दया. (११) जिसका शोषक या बल–नाशक विरोधी न हो ।
'इन्द्रो यः शुष्णाम् अशुषं न्यावृणङ्'
ऋ. १.१०१.२
जो इन्द्र या राजा बलनाशक विराधी न होने के कारण प्रजा के रक्त शोषण करने वाले को (अशुषम् शुष्णम्) भी सर्वथा परास्त करता है ।

अश्रुमुखी – आंसुओं से मुंह धोती हुई ।
'प्रतिघ्नाश्रुमुखी'
अ. ११.९.७

अश्रुतित – कभी शिथिल न होने वाला ।
'अश्रमणा अश्रुथिता अमृत्यवः'
ऋ. १०.९४.११

अशोषाः, अशेषस् – पुत्र सन्तान आदि से रहित ।
'मा शेषसोऽवीरता परित्वा'
ऋ. ७.१.११.

अश्रेष्मा, अश्रेष्मन् – (१) दूसरों को पीड़ा न पहुँचाने वाला, (२) दयालु, (३) बहुत ममता न करने वाला अनासक्त पुरुष ।

'अश्रेष्माणो अधारयन्'
अ. ३.९.२

अश्वेषित – अश्व +इषित । आंखों से प्राप्त होने योग्य ।
'अश्वेषितं रजेषितं शुनोषितम्'
ऋ. ८.४६.२८

अश्वैत् – आगे बढ़ता या बढ़ती है ।
'अवेयमश्वैत् युवतिः पुरस्तात्'
ऋ. १.१२४.११
जिस प्रकार यह उषा प्रौढ स्त्री के समान आगे आगे बढ़ती है (अश्वैत्) ।

अशोणा दन्ता – जो दाँत पीले न हों ।
'अशोणा दन्ताः'
अ. १९.६०.१.

अश्नोति – व्याप्त होता है । अश् धातु (व्यापनार्थक) के लट् प्र प्र.ए.व. का रूप ।
'नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्'
ऋ. ३.५९.२, तै.सं. ३.४.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४६.१४, का.सं. २३.१२.
(इसे पाप (अंहस्) निकट से और न दूर से व्याप्त करता है) ।

अश्लोण – अविकृत ।
'अश्लोणा अङ्गैरह्नुताः स्वर्गे'
अ. ६.१२०.३, तै.आ. २.६.२.

अषतरा – अष् धातु के रेफ का लोप कर अषतरा बना है । अर्थ–शत्रु पक्ष के शस्त्रास्त्रों की अपेक्षा अधिक वेग से फैलने और जाने वाला ।
'ता कर्माषतरास्मै प्रच्यौत्नानि'
ऋ. १.१७३.४, कौ.ब्रा. २४.५.

अष्टऋत्विजः – आठ ऋत्विज जोयथाकाल परस्पर मिलते और सर्ग रचते हैं ।
'अष्टेन्द्र ऋत्विजो दैन्याये'
अ. ८.९.२१

अष्टकर्णी – व्यापक साधनों वाला ।
'सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः'
ऋ. १०.६२.७.

अष्टका – अष्टकाया मुखां सम्भरति प्रजापत्यमेतदहर्यदष्टका । प्राजापत्यमेतत्कर्म यदुखा प्राजापत्य एव तदहन् प्रांजापत्यं कर्म करोति । यदुख यदेवाष्टकाययाम् । पर्व एतत्संवत्सरस्य यदष्टका । पैर्वतदग्नेः पर्वण्येव तत् पर्व करोति । यद्वेवाष्टकायाम् । अष्टका वाऽउखा ।
श.ब्रा. ६.२.२.२३–२५
(१) आठों पहर गृह प्रबन्ध करने वाली गृहपत्नी, (२) माघ की कृष्णाष्टमी –सा., (३) ऋतु मती स्त्री ।
'एकाष्टका तपसा तप्यमाना'
अ. ३.१०.१२, तै.सं. ४.३.११.३, का.सं. ३९.१०, साम.मं.ब्रा. २.३.२१, गो.गृ.सू. ४.४.३३,

अष्टधायुक्त – आठ रूपों से युक्त परमेश्वर –सूर्य ।
'अष्टधायुक्तो वहति वह्निरुग्रः'
अ. १३.३.१९

अष्टन् – अश् (व्याप्त्यर्थक धातु) +कनिन् = अष्टन् (तुक् का आगम) । जो संख्या एक से आरम्भ कर सात तक की संख्या को व्याप्त करे वह अष्टन् (आठ) या लैटिन oct या अंग्रेजी का eight है ।

अष्टपुत्रा – आठ पुत्रों वाली प्रकृति ।
'अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा'
अ. ८.९.२१

अष्टमं दैव्यम् – (१) आठवां, देवों में देवपरमदेव, (२) देह में सात प्राणों पर प्रेरक आत्मा या मन, (३) सात ऋतुओं पर एक सूर्य ।
'मनुष्वत् दैव्यमष्टमम्'
ऋ. २.५.२

अष्टमःशूर – ऋत्विजों के बीच आठवीं शक्ति वेदवाणी । सात प्रकार के ऋत्विक हैं और आठवीं शक्ति वेद की ऋचा है ।
'कम् ऋत्विजा मष्टमं शूरमाहुः'
ऋ. १०.११४.९.

अष्टमीरात्रिः– आठवीं रात, संसार की व्यक्तदशा ।
'अष्टमीं रात्रिम् अभि हव्यमेति'
अ. ८.९.२१
'अष्ट रात्रेण वेदेवाः सर्वमाश्नुवत'
तै.आ. २२.११.६
'प्राजापत्यमेतदहः यदष्टका रात्रिव्युष्टिः ।'
श.ब्रा. १३.२.१.६.
अष्टका प्रजापति सम्बन्धी दिन है अर्थात् परमेश्वर की सर्वव्यापक शक्तियों के परस्पर संयोग से जो संसार के व्यक्त होने की विशेष

दशा है वही अष्टमी रात्रि है जिस दशा में अदिति समस्त संसार को अपने में धारण करती है ।

अष्टयोनिः – (१) अष्टयोनि, (२) आठ स्वरूपों वाली अदिति- अविनाशिनी प्रकृति (३) प्रजापति की आठ मूर्तियां-आपः, फेन, सिकता, शर्करा, अश्मा, अपः, हिरण्य और प्रजापति । यह अक्षर का आठ रूपों से क्षरण है ।
(४) रुद्र के आठ नाम-रुद्र, सर्व, पशुपति, उग्र, अशनि,भव, महादेव, ईशान और नवम कुमार है । इनके प्राकृतिक नाम क्रम से अग्नि, आपः ओषधि, वायु, विद्युत् , पर्जन्य, चन्द्रमा और आदित्य हैं ।

अष्टवृष – आठ प्राणों वाला आत्मा ।
'यद्यष्टवृषोऽसि'
अ.५.१६.८

अषाढः – पराजित न होने वाला ।
'शूरः सत्राषाड्जनुषेम् अषाढः'
ऋ. ७.२०.३.

अषाढ़ा – अजेया, कभी पराजित न होने वाली
'अषाढासि सहमाना
वाज.सं. १३.२६, तै.सं. ४.२.९.२, मै.सं. २.७.१६, ९९.१६, का.सं. १६.१६ ,श.ब्रा. ७.४.२.३९, का.श्रौ.सू. १७.४.२५, आप. श्रौ.सू. १६.२४.१२.

अष्टा – (१) अष्टौ, (आठ) सात मुख्य प्राण और आठवीं वाणी -अष्ट है ।
'अष्टा परः सहस्रा'
ऋ. ८.२.४१.
(२) व्यापक भोक्ता, (३) महान् आकाश या प्रकाश का भोक्ता या व्यापक सूर्य अष्टा है ।
'अष्टा महो दिव आदो हरीइह
द्युम्नासाहम् अभि योधान उत्सम्'
ऋ. १.१२१.८
महान् आकाश या प्रकाश का भोक्ता या व्यापक सूर्य जल बरसाने वाले मेघ के साथ (द्युम्नसाहम् उत्सम् अभि) युद्ध करता हुआ (योधानः) अपने आकर्षण और प्रकाश या प्रकाश और ताप दोनों को (हरी) अपने वश में रखते हैं ।
अथवा, बड़े भारी तेज, विद्वत्सभा या विजयशालिनी सेना का भोक्ता वीर सभापति और सेनापति इस राष्ट्र में या संग्राम में (इह) ऊपर उठते हुए (उत्सम्) ऐश्वर्य को जीतते हुए (द्युम्नसाहम्) शत्रु से युद्ध करता हुआ (अभियोधानः) रथ के दोनों अश्वों को (हरी) अपने वश में करता है । (३) अश्+ तृच्=अष्ट । प्रथमा ए.व. में अष्टा । अश्नोति असौ (यह खाता या व्याप्त होता है) अर्थ-खाने वाला या व्यापने वाला अश्व

अष्टाकपालः – आठ मस्तिष्कों का विचार ।
'अग्नये गायत्राय त्रिवृते
राथन्तरायाष्टाकपालः'
वाज.सं. २९.६०

अष्टाक्षर – (१) परमेश्वर के अष्ट अक्षय सामर्थ्य, (२) राजा के आठ बल-स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष,राष्ट्र, दुर्ग, बल और भूमि (३)आठ महामात्य, (४) आदित्य के आठ अंश ।
'बृहस्पतिरष्टा क्षरेण गायत्रीमुदजयत्'
वाज.सं. ९.३२, तै.सं. १.७.११.१.

अष्टाचक्रा – आठ चक्रों वाला शरीर रूप पुरी ।
'अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या'
अ. १०.२.३१, तै.आ. १.२७.२.

अष्टापक्षा – आठ घरों वाली शाला ।
'अष्टापक्षां दशपक्षाम्'
अ. ९.३.२१

अष्टापदी – (१) बछड़े सहित आठ पैरों की गौ, (२) आठ सचिवों से बनी राजसभा, (३) आठों प्रमाणों से युक्त या आठों उच्चारण स्थानों वाली सत्यवाणी ।
'अष्टापदीभि राहुतः'
ऋ. २.७.५
(४) आठ पैरों वाली ब्राह्मण रूप गौ, (५) आठ अमात्य वाला राष्ट्र ।
'अष्टपदी चतुरक्षी'
अ. ५.१९.७
(६) आठ पैरों वाली या आठ अधिष्ठानों से एकात्मभूत (७) माध्यमिका वाक् गौरी का विशेषण ।
'गौरी मिमाय सलिलानि तक्षती
एकपदी द्विपदी सा चतुस्पदी
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४, नि. ११. ४०.

माध्यमिका वाक् चारों दिशाओं एवं चार अवान्तर दिशाओं से युक्त एवं एकात्म हो जल बरषाती हुई यह सब निर्माण करती है ।

अष्टापदी वाक् – (१) अष्ट ज्ञान स्थान वाली वाणी, (२) आठ पदों वाली वाणी ।

'वाचमष्टापदीमहम्'

ऋ. ८.७६.१२, अ. २०.४२.१, साम. २.३४०, ऐ.आ. २.३.६.३.

अष्टभूता – आठ भूत, आठ भावपदार्थ ।

'अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्य'

अ. ८.९.२१

अष्टायोग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि के योग के आठ अंग हैं ।

'इमं यवम् अष्टा योगैः'

अ. ६.९१.१

अष्टाबन्धुर – आठ शीर्षगत प्राणों मे बन्धा आत्मा ।

'अष्टाबन्धुरं वहताभितोरथम्'

ऋ. १०.५३.७

अष्टा – (१)चाबुक ।

'शुनमष्टाम् उदिङ्गव

ऋ. ४.५७.४, अ. ३.१७.६, तै.आ.६.६.२.

(२) व्यापक शक्ति ।

'या ते अष्ट्रा गोओपशा'

ऋ. ६.५३.९

अष्टिः – उत्तम कुलों की प्राप्ति ।

'इन्द्रं शुम्भामि अष्टये'

अ. ९.५४.१

अष्टौ – (१) आठ, (२) राज सभा के आठ सदस्य, (३) सात शीर्षण्य प्राण और वाक् ।

अष्टौककुभः – चार दिशाएं और चार उपदिशाएं

'अष्टौव्यख्यत् ककुभः पृथिव्या'

ऋ. १.३५.८, वाज.सं. ३४.२४

वह सूर्य पृथ्वी के ऊपर आठों दिशाओं को प्रकाशित करता है ।

अष्टौपुत्रासः – (१) व्यापक प्रकृति के आठ अवयव-उत्पादनोन्मुख, प्रकृति-महत्, अंहकार, पंच तन्मात्रा, (२)सूक्ष्मभूत प्रकृति ही सात ग्रहों के रूप में सात ग्रहों को प्राप्त हुई । उनसे सूर्य को इन सातों मे परे दूर फेंका । इनमें आठवां मार्तण्ड सूर्य है ।

'अष्टौ पुत्रा सो अदितेः'

'ये जातास्तन्वस्परि'

ऋ. १०.७२.८, मै.सं. ४.६.९, ९२.२, पंच.ब्रा. २४.१२.६, श.ब्रा. ३.१.३.२, तै.आ. १.१३.२.

अष्टौमन्यः – आठ धमनियां ।

'सप्त प्राणान् अष्टौमन्यः'

अ. २.१२.७

अष्ठीवत् – विशेष अस्थिवाला घुटना ।

'ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्याम्'

ऋ. १०.१६३.४, अ. २.३३.५, २०.९६.२०, आप.मं.पा. १.१७.४.

अष्ठीवन् – (१) थूक फेंकता हुआ –दया. (२) स्थूल अस्ति से युक्त पैर ।

'अष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत्'

ऋ. ७.५०.२

अष्ठीवन्तौ – अस्थि के बने दोनों घुटने ।

'अष्ठीवन्ता वव्रवीन् मित्रः'

अ. ९.४.१२

अष्ठीवे – घुटने ।

'अहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे'

वाज.सं. १८.२३, मै.सं. २.११.६, १४३.१३.

असक्रा – (१) अन्य के पास न जाने वाली ।

'धेनुं न इषं पिन्वतम् असक्राम्'

ऋ. ६.६३.८, नि. ६.२९.

(२) असं क्रमणी-असंक्रमणशीला, जो अन्यत्र संक्रमण न करे, (३) अनपायिनी कभी दूर न होने वाली ।

'पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णम
धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम्
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च
रसाश्च ये वामनुरातिमग्मन्'

ऋ. ६.६३.८.

हे पुरुभुज-बहुभोजी या बहु-पालक आश्विद्वय ! तुम दोनों का दातव्य धन बहुत है (वाम् देष्णं पुरु) । अतः हमें धेनु और अन्यत्र नहीं हटने योग्य (असक्राम्) अन्न (इषम्) दो (पिन्वतम्) । हे मधुपायी अश्विद्वय ! तुम्हारे स्तोत्र भी हैं और सुन्दर स्तुति भी (वां स्तोत्रा स्तुतश्च), सोम रस भी है (रसाश्च) जो तुम्हारे दान का लक्ष्य कर देवयजन में लगाए गए हैं (रातिम् अनुअग्मन्) । अर्थात् स्तोत्रा की स्तुति सुन

सोमरस पीकर तुम यथेष्ट दान दोगे ।
अन्य अर्थ– हे बहुपालक राजा एवं राजपुरुषो ! (पुरुभुजा) निश्चय ही तुम्हारा दान प्रजा की इच्छाओं को पूर्ण करने वाला हो (वा हि देष्णं पुरु) । तुम हम से कभी दूर न होने वाली दो दुग्धतुल्य (असक्रा धेनुं न) अन्न का सिञ्चन करो (इषं पिन्वतम्) । तुम्हारा प्रशंसित कर्मचारी वर्ग (वां स्तुतेः) और मधुर वाणी (माध्वी सुष्टुतिः) तथा जो अन्नादि वे सब हमें दान में प्राप्त हो (अनुरातिम् अग्मन्) ।

असकौ – असौ ।
'यकासकौ शकुन्तिका'
वाज.सं. २३.२२, श.ब्रा. १३.२.९.६, ५.२.४ का.श्रौ.सू. २०.६.१८.

असघ्नः – धारण करता है ।
'असघ्नोर्भरिमयजोमहोवसो'
ऋ. १.३१.३
तू ही जीवों और लोकों के भरण पोषण के कार्य को भी धारण करता है (असघ्नः) और वे सबको बसाने और सब में बसने वाले परमेश्वर । तू ही बड़े सूक्ष्म तत्वो को संगत करता है (अयजः)
'असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः'
अ. १२.३.२८

असंख्याता रुद्राः – असंख्य अधिष्ठाता या शासक ।
'असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्'
वाज.सं. १६.५४, मै.सं. २.९.९, १२८.७, का.सं. १७.१६, श.ब्रा. ९.१.१.३०, तै.आ. १.१२.१, नि. १.१५.

असंज्ञा – निश्चेतन, बेहोश करने वाली ।
'असंज्ञा गन्धेन'
अ. १२.५.३४

असजात्या – समान गुणादियुक्त अनुरूप पुरुष से रहित ।
'अनापिरज्ञा असजात्या मतिः'
ऋ. १०.३९.६

असत् – (१) अस्तु (हो), भवतु । 'लेटोऽडाटौ', सूत्र से लेट् में अट् का आगम हुआ और तिप् के 'इ' का लोप (इतश्च लोपः) । अतः अस्तु न होकर असत् रूप हुआ । (२) अस् (होना) +शतृ =सत् (जो है, वर्तमान है) । नञ् +सत् = असत् (जो नहीं है) ।
'असतो मा सद्गमय'
श.ब्रा. १४.४.१.३०, ३१ बृ. आ.उप. १.३.३०.३१
(मुझे असत् से सत् को ले जा) अस्तु के अर्थ में प्रयोग ।
'सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वो
बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो
मुक्षीजयेव पदिमुत् सिनाति ।'
ऋ. १.१२५.२, नि. ५.१९.
कक्षीवत् के पिता अपने पुत्र को राजा से मिले दान को लाते देख राजा को आशीर्वाद देते हैं–वह राजा सुन्दर गौओं, सुन्दर हिरण्य, तथा सुन्दर अश्वों से युक्त हो, इस राजा को परमात्मा बहुत धन तथा आयु दे, क्योंकि हे प्रातःकाल आने वाले पथिक (प्रातरित्वः) धन देकर रात में आते पथिक को उसी तरह रोक रखा जैस कोई कुमार पाश्या या रस्सी से पक्षी को रोक रखे (मुक्षी जया पदिमिव उत् सिनाति) ।
पुनः – 'सभरा असत् नः' (औषधियां फल से लदी भरी हों)
'पुनः हतेमसन्न वक्षति'
ऋ. १.१२९.८.
वह शक्ति नष्ट हो जाय (हता असत् ईम्) और हमारे पास न पहुँचे (ह वक्षति) । (३) अव्यक्त, (४) क्षणभंगुर प्राकृतिक जगत् , प्रधान प्रकृति ।
'असति सत् प्रतिष्ठितम्'
अ. १७.१.१९
'जो नहीं हैं' के अर्थ में ।
'देवानां युगे प्रथमे
असतः सदजायत ।'
ऋ. १०.७२.३
(५) असत्य ।
'असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता'
ऋ. ७.१०४.८, अ. ८.४.८
(६) छोटा सा, तुच्छ पदार्थ ।
'असद् भूम्याः समभवत्'
अ. ४.१९.६.

असत्तरा – बुरी से बुरी गड़ी हुई गण्डमाला अयची ।
'असतीभ्यो असत्तराः'
अ. ७.७६.१

असत्या – असदाचारिणी ।
'पापासः सन्तो अनृता असत्याः'
ऋ. ४.५.५
असती – बुरी गण्डमाला नामक रोग ।
असन् – (१) असत्यभाषी, (२) अस्तित्व रहित, (३) नहीं सा । (४) रस ।
'तस्य हास्नास्युक्षिता'
अ. ५.५.८
(५) अस्तित्व रहित, (६) शून्य, (७) नष्ट, (८) रक्त ।
'अस्ना रक्षांसि'
वाज.सं. २५.९
पुनः–
'अस्नस्ते मध्ये कल्यायाः'
अ. ५.१९.३
असन – (१) अस (क्षेपणार्थक) + ल्युट् =असन् । अर्थ –उखाड़ फेंकने वाला । कार्य, (२) संग्राम ।
'याभिः कृशानुं असने दुवस्यथः'
ऋ. १.११२.२१
'क्षद्येव तिग्गम् असनाय संश्यत्'
ऋ. १.१३०.४.
(४) फेंकना ।
'इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम्'
अ. १.१३.४
असना – (१) भोजन, (२) अन्न ।
'कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः'
ऋ. १.१५५.२, नि. ११.८.
तुम दोनों हवि पहुंचने वाले (अस्तुः) अग्नि के द्वारा (कृशानोः) यशशील मनुष्य के लिए भोजन या अन्न (असनाम्) प्रस्तुत या प्रदान करते हो (उरुष्यथः)(२) प्रक्षेपण क्रिया–फेंकना (३) फेंकी हुई शर्यावाण ।
'अस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून्'
ऋ. १.१४८.४
असंदित – (१) अखण्डित, बन्धन रहित ।
'असन्दितो विसृज विष्वगुल्काः'
ऋ. ४.४.२
असन्दिन् – कभी स्थिति प्राप्त न करने वाला शरीर ।
'बर्हिस्तथावसन्दिनम्'
ऋ. ८.१०२.१४, साम. २.९२१, का.सं. ४०.१४.
असन्मन्त्र – दुष्ट पुरुषों की दुष्ट सलाह ।
'असन्मन्त्रात् दुश्चन्याद्'
अ. ४.९.६.
असपन्न – शत्रु का अभाव ।
'असपत्नं नो अधरादस्'
अ. ८.५.१७
पुनः–
'कृण्वन्तो मह्यमसपत्नमेव'
अ. ९.२.८
असपत्ना – सपत्नी या शत्रु से रहित ।
'सपत्ना किला भुवम्'
ऋ. १०.१५९.४
असंबाधम् – बिना एक दूसरे को पीड़ा दिए ।
'असंबाधं बध्यतो मानवानाम्'
अ. १२.१.२
असम्भव – (१) उत्पन्न नहीं होना, (२) कारण रूप प्रकृति का ज्ञान ।
'अन्यदाहुरसम्भवात्'
वाज.सं. ४०.१०, ईश.उप. १३
असम्यव्य – बिना सम्भावना के ।
'असम्भव्यं पराभवन्'
अ. ५.१८.१२, १९.११,
असंभूति – (१) सत्व, रजस् और तमस् तीनों गुणों वाली प्रकृति (२) आत्मा का पुनर्जन्म ।
'येऽसंभूतिमुपासते'
वाज.सं. ४०.९, श.ब्रा. १४.७.२.१३, बृ.आ.उप. ४.४.१३, इश. उप. १२
असंमृष्ट – (१) अशुद्ध, (२) कान्ति–रहित, (३) असंस्कृत, (४) उपनयन आदि बाह्य संस्कारों से रहित ।
'असंमृष्टो जायसे मात्रोः'
ऋ. ५.११.३, तै.सं. २.४.३.३.
असमः – (१) अनुपम ।
'असमं क्षत्रम् असमामनीषा'
ऋ.१.५४.८.
(२) सबसे अधिक ।
'येषां ब्रह्माणि असमानि विप्राः'
ऋ. ७.४३.१
असमन – (१) विषम, (२) संग्राम से भिन्न

अवसर ।
'असमने अध्वनि वृजिने पथि'
ऋ. ६.४६.१३

असमना – अ +समना । एक समान चित्तवाला न होकर, (२) समत् अर्थात् संग्राम छोड़कर ।
'असमना जहतीः भोजनानि'
ऋ. ७.५.३.
(३) अन्यो से असाधारण चित्त और ज्ञानवाला ।
(४) एक से बढ़कर एक ।
'असमना अजिरासो रघुष्यदः'
ऋ. १.१४०.४.

असमरथ – असम + रथ । जिसके मुकाबले में दूसरा कोई रथ नहीं लड़ सके ।
'रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानी ग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१७

असमष्टकाव्य – (१) जिसकी क्रान्तदर्शिता एवं बुद्धिमत्ता का कोई पार नहीं पा सके इन्द्र, परमेश्वर ।
'गम्भीर ऋष्वो असमष्ट काव्यः'
ऋ. २.२१.४
(२) अन्य विज्ञानों द्वारा भी न प्राप्त होने योग्य वेदादि ज्ञानमय काव्यो का रचयिता ।
'पिता मतीनाम् असमष्ट काव्यः'
ऋ. ९.७६.४

असमा – एक से एक भिन्न ।
'यश्चा समा अजनो दिद् युतो दिवः'
ऋ. २.१३.७

असंयत्त – संयम या जितेन्द्रियता से रहित पुरुष ।
'असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति'
ऋ. १.८३.३, अ. २०.२५.३
जे असंयमी पुरुष भी तेरे उपदिष्ट नियम में रहता है...।

असंस्थित – (१) असमाप्त, (२) असंस्कृत (३) अपरिपक्व, अधकच्चा, (४) अरक्षित ।
'ब्रह्मेवा संस्थितं हविः'
अ. ६.५०.२

असंसूक्तगिल – असंम् +सु +उक्त + गिल ='असंसूक्तगिल' अर्थ अनुत्तम वाणियों को बोलने वाले सैनिकों को निगल जाने वाला ।
'असंसूक्तगिलेभ्यः'
अ. ११.२.३०

असमाति – (१) अन्न की इतनी समृद्धि हो जाने अंट न सके ।
'असमातिं गृहेषु नः'
अ. ६.७९.१.
(२) असाधारण मान और आदर के योग्य ।
'असमातिं नितोशनम्'
ऋ. १०.६०.२

असमृद्धि – समृद्धि का अभाव, दरिद्रता ।
'नमो वीर्त्साया असमृद्धये'
अ. ५.७.१

असर्ववीरः – सब वीर्यों अर्थात् सामर्थ्यों से रहित ।
'असर्ववीरः चरतु प्रणुत्तः'
अ. ९.२.१४

असबन्धु – जो समान गोत्र का न हो ।
'सबन्धुश्चासबन्धुश्च'
अ. ६.१५.२, ५४.३.

असश्चत् – (१) अनासक्त, (२) विलक्षण, (३) जो ग्रन्थो से उपयुक्त या अन्यों से अधीन न हो ।
'द्वारो देवीः असश्चतः'
ऋ. १.१३.६, १४२.६.
(४) संगरहित ।
'प्र ते धारा असश्चतः'
ऋ. ९.५७.१, साम. २.११११, शां.श्रौ.सू. ७.१५.४.
(५) अन्यो में अप्राप्य वेदवाणी (६) विशुद्ध विभूति ।
'तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः'
ऋ. २.२५.४

असश्चतः – सदा
'विश्रयन्तामृता वृधो
द्वारो देवी रसश्चतः'
ऋ. १.१३.६,

असश्चता – (१) विलक्षण स्वरूप –दया. (२) अयुक्त कार्यों तथा कामादि विलासों में असक्त, (३) जितेन्द्रिय और निःस्वार्थ मातापिता ।
'उरुव्यचसा महिनी असश्चता'
ऋ. १.१६०.२.

असश्चन्ती – असज्यमाने, परस्परम् असंश्लिष्यमाने–परस्पर नहीं सटने वाली (२) निकट निकट न रहने वाली

-(अव्युदस्यन्तौ - अनुपक्षियन्तौ-अविपर्यस्यन्तौ) (३) पृथक् भूत, अलिप्त ।
नञ् +सञ्च् + शतृ +ङीष् =असञ्चन्ती । यहां गत्यर्थक सञ्च् धातु अस्त्यर्थक हो गया है । (४) द्यावापृथिवी, ये एक दूसरे पर आश्रित समझी जाती हैं (अवक्षियन्तौ-आश्रिते) । प्रथमा का द्विवचनान्त रूप है और 'औ' पूर्वसवर्ण दीर्घ एकादेश हो गया है ।

'असञ्चन्ती भूरिधारे पयस्वती
घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते
राजन्ती अस्य भुवनस्य दोदसी
अस्मे रेतः सिञ्चतं यत् मनुर्हितम् ।'

ऋ. ६.७०.२, नि. ५.२.

द्यावापृथिवी के सूक्त में पठित । अभिप्लव के बाद सन्तान हेतु प्रार्थना । परस्पर संश्लिष्ट नहीं रोती हुई, बहुत धारा वाली या बहुत जीवों को धारण करने वाली, जलवाली (पयस्वती) सुन्दर कर्मों वाली (शुचिव्रते) द्यौ और पृथ्वी यजमान के लिए सुन्दर निर्मित (सुकृते) शस्यादि समृद्धि के हेतु जल देती है (घृतं दुहाते) । हे द्यावा पृथिवी ! अपने अपने तेजों से इस भुवन को दीप्त करती हुई तुम दोनों (अस्य भुवनस्य राजन्ती) हममें वह सन्तानात्पादक वीर्य दो । (अस्मे रेतः सिञ्चन्तम्) जो मनुष्यों के लिए कल्याण कारक हैं (यत् मनुर्हितम्), अथवा इस संसार के राजा सूर्य पृथ्वी मनुष्यों के लिए हितकर जल हमारे लिए बरसावें ।
(४) अनासक्त रहती हुई ।

'या ते अग्ने पर्वतस्येव धार
असञ्चन्ती पीपयद् देव चित्रा'

ऋ. ३.५७.६.

(६) स्थिर रहने वाली ।

'असञ्चन्ती दिवेदिवे'

ऋ. ८.३१.४

असस्तः - किरणों का विशेषण । एक वचन में 'असस्न्' । अर्थ (१) कभी नाश न होने वाले, (२) कभी सोने वाले ।

'अग्नेरेजन्ते असस्तो अजराः'

ऋ. १.१४३.३

असस्तन - अस्वपक्ष (सोयें) । 'षुस्' धातु सोना अर्थ में आता है । लङ् मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप है । त प्रत्यय का तनप् आदेश होने से असस्तन रूप होता है ।

'उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं
निवत्स्वपः. स्वपस्यया नरः
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे
तददयेदम् ऋभवो नानु गच्छथ'

ऋ. १.१६१.११

हे सूर्य रश्मि ऋभुओ ! प्रकाश, वृष्टि तथा ऊदक लाने वाले आप (नरः) वर्षा रूपी लोकानुग्रह क्रिया से (स्वपस्यया) मेरु आदि उन्मत प्रदेशों में (उद्वत्सु) व्रीहियवादि रूप तृण (तृणम्) इस लोक के लिए उत्पन्न किया (अकृणोतन) या प्रतिवर्ष करते हो । निम्न भूभागों में (निवत्सु) जल दिया और आदित्य मन्डल में जब तक तुम सोये या बिना व्यापार के पड़े रहे (अगोह्यस्य गृहे यत् असस्तन्) तब तक आज दिन अनुसरण न करें (इदम् अनुगच्छथ) ।

अस्कम्भनम् - पतन प्रतिरोधकम् आलम्बनम् स्कम्भनम् (पतन रोकने वाला आलम्बन स्कम्भन है)। नञ् + स्कम्भनम् =अस्कम्भनम् , जिसका आधार खम्भा आदि न हो-अन्तरिक्ष ।

अस्कम्भः - नञ् + स्कम्भ =अस्कम्भ । बिना खम्भा के ।

'अस्कम्भने सविता द्यामदृंहत्'

ऋ. १०.१४९.१, नि. १०.३२.

(सविता ने बिना खम्भा के स्थित अन्तरिक्ष में भी द्युलोक को स्थापित किया) ।

अस्त - (१) गृह, (२) दूरदेश ।

'अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि'

ऋ. ३.५३.६, अश्व श्रौ.सू. ६.११.९.

हे इन्द्र या शत्रु-मर्दन राजन् । तू सोम पी और घर या दूर देश जा । (अस्तं प्रयाहि) ।
(३) रहने का स्थान ।

'अस्तं न आवो नक्षन्त इद्धम्'

ऋ. १.६६.९, नि. १०.२१.

जैसे गौएं अपने वास स्थान में जाती हैं ।
पुनः-

'पुनरेहि वृषाकपे
सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनः
अस्तमेषि पथा पुनः

विश्वस्मात् इन्द्र उत्तरः'
ऋ. १०.८६.२१, अ. २०.१२६.२१, नि. १२.२.८.
हे वृषाकपे ! जो ये निन्द्रा नाशने वाले आदित्य हैं वह तू ही है । वह तू अपने कल्पित मार्ग से अपने वासस्थान को पुनः जाता है । और जो तू इन्द्र सम्पूर्ण जगत से बढ़कर है वह तू फिर हमारे पास आ अर्थात् पुनः उदय भे । इसी हेतु इन्द्राणी और में सुप्रसृत कर्मों को (सुविता) सगुण बनाते हैं (कल्पयावहै)

अस्तक - (१) गृह, (२) शरीर ।
'आ पत्नीरिदमस्तकम्'
अ. २.२६.५

अस्तताति - गृह का कल्याण करने वाला अग्नि ।
'अस्तताति चिदायवे'
ऋ. ५.७.६

अस्तमीक - अति समीप घर में ।
'सचस्व नः पराक आ सचस्वस्तमीक आ'
ऋ. १.१२९.९
(अति समीप हमारे घर में भी तू प्राप्त हो ।)

आस्तं यत् - अस्त होता हुआ ।
'अस्तं यते नमः'
अ. १७.१.२३, वै.सू. ११.१३

अस्ता - (१) अस् (क्षेपणार्थक) + तृन् =अस्तृ अर्थ है-फेंकने वाला, पहुंचाने वाला । अग्नि का विशेषण है ।
'कृशानोःअस्तुः असनाम् उरुष्य थः'
ऋ. १.१५५.२, नि. ११.८
हवि पहुंचाने वाले (अस्तुः) अग्नि के द्वारा (कृशानोः) भोजन या अन्न को (असनाम्) प्रस्तुत करते या देते हो (उरुष्यथः) (२) उखाड़ फेंकने वाला, (३) प्रहार करने वाला ।
'अस्तासि विध्य रक्षसः तपिष्ठैः'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५,९७.८, का.सं. १६.१५, नि. ६.१५.

अस्थ - हड्डी ।
'अस्थभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१०, तै.सं. ७.३.१६.२

अस्थन्वान् - (१) हड्डियों से युक्त शरीर । (२) रूपवान जगत् ।
'अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति'
ऋ. १.१६४.४, अ. ९.९.४.

अस्था - (१)अस् +थन् =अस्थन् । रोगादि विघ्नों को दूर फेंकने वाली शक्ति, (२) तमो नाशक शक्ति ।
'इन्द्रो दधीचो अस्थभिः'
ऋ. १.८४.१३, अ. २०.४१.१, साम. १.१७९, २.२६३, तै.सं. ५.६.६.३, मै.सं. २ १३.६, १५४.९, का.सं. ३९.१२, पंच.ब्रा. १२.८.५, तै.ब्रा. १.५.८.१, आश्व.श्रौ.सू. ७.२.३, वै.सू. ४०.१४, आप.श्रौ.सू. १७.८.२,

अस्थेयस् - अस्थिर ।
'राधो अस्थेयसामिव'
ऋ. १०.१५९.५

अस्नाता - (१) स्नान नहीं करने वाला ।
'सो अस्नातॄन् अपारयत् स्वस्ति'
ऋ. २.१५.५
(२) जो गीला या भींगा न हो-विद्युत् ।
'अस्नातापो वृषभो न प्रवेति'
ऋ. १०.४.५

अस्नाविरः - (१) स्नान आदि से रहित, (२) शुद्ध, (३) अविद्या आदि दोषों से रहित ।
'अस्नाविरम् शुद्धमपाप विद्धम्'
वाज.सं. ४०.८.

अस्पः - (१) खुशकर, (२) पार कर, (३) लांघना
'महोराये चितयन् अत्रिमस्पः'
ऋ. ५.१५.५

अस्पन्दमानः - (१) मन्द मन्द चलता हुआ मेघ, (२) न चलता हुआ सूर्य, (३) धर्ममार्ग से विचलित न होने वाला पुरुष ।
'अस्पन्दमानो अचरत् वयोधाः'
ऋ. ४.३.१०

अस्मत - मेरा या हमारा ।
'उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्
अवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।'
ऋ. १.२४.१५, अ. ७.८३.३, १८.४.६९, आ.सं. १.४, वाज.सं. १२.१२, तै.सं. १.५ .११.३, ४.२.१.३, ५.२.१.३, का.सं. ३.८, १६.८, १९.११, २१.१३, मै.सं. १.२.१८: २८.८, २.७.८: ८५.१३, ३.२.१: १५.१९, ४.१०.४: १५३.९, ४.१४.१७: २४६.५, श.ब्रा. ६.७.३.८, साम.मं.ब्रा. १.७.१०, हि.गृ.सू. १.९.१०.
हे आदित्य ! (वरुण), तू मेरे ऊपर वाले, निचले

तथा बीच वाले बन्धन को खोल या ढीलाकर (श्रथाय)

अस्मत्रा – अस्मासु (हम सबों में) ।

'अस्मत्रा ते सध्यग् सन्तु रातयः'

ऋ. १.१३२.२.

(हम सबों में आप के दान लग जाएं) ।

अस्माकः – (१) हमारा ।

'सास्मा के भिरेतरी न शूषैः
अग्निष्ट वे दम आ जातवेदाः'

ऋ. ६.१२.४

जातधन या जातप्रज्ञ अग्नि हमारे सुखकर स्तोत्रों से (अस्माकेभिः शूषैः) हमारे यज्ञ-गृह में (दमे) अतिथि या याचक के सदृश (एतरी न) स्तुत किए जाते हैं (आस्तवे) । (२) हमारे बीच में वर्तमान

'प्रास्माकासश्च सूरयः'

ऋ. १.९७.३, अ. ४.३३.३, तै.आ. ६.११.१.

जो हमारे बीच विद्वान् हैं

अस्मत्राञ्चः – हम लोगों में पूजनीय । एकवचन में 'अस्मत्राङ्' ।

'अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो'

ऋ. ६.४४.१९

अस्मद् अधि – हममें, हमें ।

'मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध'

ऋ. १.३३.३.

हे प्रकृष्ट बुद्धियुक्त इन्द्र ! तू हमें (अस्मद् अधि) धन देते हुए बनिया मत बन (मा आपणिः भूः)

अस्मद्र्यक् – अस्मद् +र्यक् । हमें प्राप्त हमारे सम्मुख

'अस्मद्र्यञ्चो ददतोमघानि'

ऋ. ७.१९.१०, अ. २०.३७.१०.

अस्मद्र्यञ्चः – हमारे सम्मुख ।

अस्मदानिद् – (१) अस्मद् +आङ् +निद् +कसुन् = अस्मदानिदस् । सायण के मत से 'अस्मत्तः आनिदः' (मुझ से मेरे निन्दक को) ऐसा अर्थ हैं (२) मेरा निन्दक (अस्मद् अभिनिन्दिता)

'प्र तद् वोचेयं भव्याय इन्दवे
हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति ।
रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो
वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव ग्रवेदघशंसोऽवतरम्
अव क्षुद्रमिव ग्रवेत् ।'

ऋ. १.१२९.६, नि. १०.४२

मैं भव्य इन्द्र के लिए (भव्याय इन्दवे) उनके इष्टतम् उस स्तुति को कहता हूँ (तत प्रवोचेयम्) जो इन्द्र यज्ञ में हवि के भागी नहीं हैं (यः हव्यः न) और जो अन्नवान् हमारी प्रजाओं को (मन्म) आकुञ्चित करते हैं (रेजति) तथा जो राक्षसों को मारते हुए (रक्षोहा) हमारी प्रज्ञाओं या कर्मों को आकम्पित करते हैं । वह इन्द्र स्वयं हमारे निन्दकों तथा हमारे प्रति पाप-बुद्धि रखने वालों को (अस्मदानिदः दुर्मतिम्) मार भगावें (अजेत)। अघशंस अर्थात् पापों प्रचारक या चोर अधोगति प्राप्त करें । 'अवस्' 'तवेत्' अत्यन्त निकृष्ट को जल की तरह अपने स्थान से गिरा दे (अवतरम् क्षुद्रमिव अवग्रवेत्)

अस्मध्रुक – हमारा द्रोही ।

'घनेव विष्वक् विजहि अराव्णम्
तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक'

ऋ. १.३६.१६.

हे शत्रुओं और दुष्टों को संताप देने वाले हननकारी शस्त्रों वाले राजन् या परमेश्वर (तपुर्जम्भ) जैसे घन पर लोहा पीटा जाता है उसी प्रकार अदानशील कृपणों को तथा जो हमारा द्रोही है उसे सब प्रकार से (विष्वक्) विनष्ट कर (विजेहि) ।

पुनः-

'स्पाशयस्व यो अस्मध्रुक्'

ऋ. १.१७६.३

अस्मयु – (१) अस्मन् +क्यात् +उ = अस्मयु (अस्मान् कामयमानः) अर्थ –हम सबों की शुभकामना करता हुआ

'तन्नस्तुरीपमद्भुतं -
पुरु वारं पुरु त्मना
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु
राये नाभा नो अस्मयुः'

ऋ. १.१४२.१०,

वैद्युताग्नि (त्वष्टा) हमारी शुभ कामना करते हुए (अस्मयुः) गौ आदि धन के पालन पोषण के लिए (राये) हमारे यज्ञ की उत्तर वेदी में (नाभा) हमारे लिए अभूतपूर्व (अद्भुतम्) बहुत देशान्तरों

को आवृत्त करता हुआ (पुरुवाराय) स्वयं संचित (त्मना संभृतम्) प्रचुर मात्रा में (पुरु) उस जल को (तत् तुरीपम्) बरसावे (विष्यतु)
(२) हमारा स्वामी, (३) हमें सदा समृद्ध रूप में चाहने वाला, (४) हमारे सदृश, हमारे देह में आत्मा के समान अभिमान सहित होकर रहने वाला ।
'जुषाणो याहि अस्मयुः'
ऋ. १.१३५.२
(६) हमें चाहने वाला
'उतत्वम् अस्मयुः वसो'
ऋ. ३.४१.७, अ. २०.२३.७

अस्मयू – (१) हमारी कामना करते हुए-सा, (२) हमसे प्रीति करते हुए -(दया.) ।
'अच्छागिरः सुमतिं गन्तमस्मयू'
ऋ. १.१५१.७.
हमसे प्रीति करते हुए हमारी स्तुतियों को अभिलक्षित कर आओ ।

असमात्योजाः – बल पराक्रम में अनुपम
'एवा हि जातो असमात्योजाः'
ऋ. ६.२९.६

अस्मृति – बिना विचारे भूलचूक से, अनजाने ।
'यदस्मृति चकृम किं चिदग्न'
अ. ७.१०६.१

अस्य अस्याः – (१) 'अस्य' या 'अस्या' प्रथमादेश में उदात्त और अन्वादेश में अनुदस्त होता है (२) कभी-कभी 'अस्मै' के स्थान में भी प्रयुक्त (३) इदम् के षष्ठी ए.व. स्त्री लिंग में, उसी प्रकार अस्याः भी अस्मै के स्थान में प्रयुक्त होता है ।

अस्यत् – बाण फेंकने या चलाने वाला ।
'नम आयच्छद्भ्योऽस्थद्भ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२२, तै.सं. ४.५.३.२, मै.सं. २.९.१४: १२३.१०, का.सं. १७.१३.

अम्रवन्ती – (१) नहीं म्रने वाली नौका (२) अपना रहस्य किसी पर प्रकट न करने वाली ।
'अम्रवन्तीमनागसम्'
वाज.सं. २१.७.

अस्व – अ +स्व । धन-हीन ।
'अस्वं त्वाप्रजसं कृणोमि'
अ. ७.३५.३.

अस्वग – घर बार तथा धन-धान्य से हीन ।
'अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं'
अ. १२.५.४५.

अस्वगता – अ + स्वगता । निर्धनता, दरिद्रता, सम्पत्ति हीनता ।
'अप्रजास्ताम् अस्वगताम् अवर्तिम्'
अ. ९.२.३.

अस्वप्नः – न सोने वाला प्रहरी, पहरेदार ।
'अस्वप्नश्च त्वा नवद्राणश्च रक्षताम्'
अ. ८.१.१३.

अस्वप्रजः – कभी न सोने वाला, सदा जागरूक ।
'अस्वप्नजस्तरणयः सुशोवाः'
ऋ. ४.४.१२, तै.सं. १.२.१४.५, मै.सं. ४.११.५, १७४.१, का.सं. ६.११.

अस्वप्रजो – (१) जागृत अवस्था में उत्पन्न होने वाले, जो कभी स्वप्न शील नहीं होते-सदा क्रिया शील (२) जीवन दान देने वाले वायु और आदित्य, (३) प्राज्ञ आत्मा और तैजस प्राण जो सोने पर भी अन्न पचाते हैं ।
'सप्तायः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जागृतो अस्वप्नजौसत्रसदौ च देवौ ।'
वाज.सं. ३४.५५, नि. १२.३७.
(३) असु अर्थात् आत्मा में 'अल्पजौ' कभी तीन लीन न होने वाले प्राण और अपान वायु जो सदा निद्रा रहित हैं ।

अस्वापकः – जो स्वयं परिपक्व सन्तापक बल से युक्त न हो ।
'इमा उते स्वपाक प्रतीचीः'
ऋ. ४.३.२.

अस्ववेश – (१) अ + स्व +वश । जिसे अपना घर न हो, (२) गृहादि -रहित परिव्राजक, (३) राजा जिसका राष्ट्र ही घर है, अपना कोई घर नहीं ।
'अस्ववेशं यं कृण्वन्त मर्ताः'
ऋ. ७.३७.७.

असाद – वह सैनिक जो घोड़े पर सवार नहीं है ।
'असादा ये च सादिनः'
अ. ११.१०.२४

असाढ़ – (१) शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाला अदम्य बल ।
'अषाढं सहस्तन्वि श्रुतो दधे'

ऋ. १.५५.८.
अपने शरीर में या सुविस्तृत राष्ट्र में (तन्वि) शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाले अदम्य बल को (असाढम् सहः) धारण कर ।
(२) किसी से कभी भी उल्लंघन न नहीं करने योग्य –इन्द्र, परमेश्वर (३) किसी से अभिभूत न होने वाला रुद्र का विशेषण ।
'अषाढ़ाय सहमानाय वेधसे'
ऋ. २.२१.२, ७.४६.१, तै.ब्रा. २.८.६.८, ३.१.२.२, नि. १०.६.
पुनः–
'अषाढ़ युत्सु पृतनासु पप्रिम्'
ऋ. १.९१.२१, वाज.सं. ३४.२०, वाज.सं.(का.) ३३.२३, मै.सं. ४.१४.१, २१४.४, तै.ब्रा. २.४.३.८, ७.४.१, आश्व श्रौ.सू. ३.७.७.

असात् – निकट से ।
'सनो दूराच्च असाच्च
नि मर्त्यात् अघायोः
पाहि सादमिद् विश्वायुः ।'
ऋ. १.२७.३, साम. २.९८६.
वह तू समस्त विश्व में व्यापक परमेश्वर सदा ही हमें पाप कर्म हत्या आदि करने वाले मनुष्य से दूर से तथा निकट से बचा ।

असाम – भवेम (होवें) ।
'तदद्य वाचः प्रथमं मंसीय
येना सुरां अभिदेवा असाम ।'
'ऊर्जाद उत यज्ञियासः
पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम्'
ऋ. १०.५३.४, आश्व. श्रौ.सू. १.२.४.९, आप.श्रौ.सू. २४.१३.३, नि. ३.८ .
विश्वेदेवों के साथ संवाद में होतृजप में विनियोग । मंत्र वर्णात्मक वाणियों में (वाचः) प्रथमोत्कृष्ट बल मैं आज मानता हूँ (अद्य मंसीय), जिस बल से मैं असुरों को पराजित करूं या करता हूँ (अभि असाम) । हे अन्न खाने वालो ! (ऊजदिः) हे यज्ञ करने वालो, हे देवो और हे मनुष्यों (पञ्चजनाः), मेरे इस होत्र को स्वीकार करो (होत्रं जुषध्वम्) ।

असामि – (१) पूर्ण ।
'यशश्चक्रे असाम्या'
ऋ. १.२५.१५
जो परमेश्वर पूर्ण रूप से (असाम्या) अन्न और यश प्रदान करता है । (२) अनन्त –सा.दे. 'ऋचीषम्' सामि का अर्थ समाप्त है । षो +मि = सामि । नञ् +सामि = असामि
'असामि राधो हरिजात हर्यतम्'
ऋ. १०.९६.५, अ. २०.३०.५.
(३) बहुत अधिक ।
'सद्यश्चित् यो वावृधे असामि'
ऋ. ६.१९.२
पुनः–
'मित्रो न यो जनेष्वा
यशश्चक्रे असाम्या'
ऋ. १०.२२.२

असामिशवाः – बहुत पूर्ण बल वाला ।
'नरो असामि शवसः'
ऋ. ५.५२.५.

असि – (१) खड्ग, तलवार ।
'छिद्रा गात्राणि असिना मिथूकः'
ऋ. १.१६२.१०, वाज.सं. २५.४३, तै.सं. ४.६.९.४, का.सं.(अश्व). ६.५.
(२) अस (क्षेपणार्थक) +कि । सब दुःखों को काटने वाला ज्ञान वज्र
'असिं सूनां नवं चरुम्'
ऋ. १०.८६.१८, अ. २०.१२६.१८.
(३) देह को पेरने वाला–प्राण ।

असिक्नी – (१) कृष्णा रात्रि, (२) न सींचने वाली भूमि ।
'असिक्न्यां यजमानो न होता'
ऋ. ४.१७.१५
(३) फलियों वाली ।
'असिक्नीः कृष्णा ओषधीः'
अ. ८.७.१
(४) अन्धकार दशा को प्राप्त प्रजाएं (५) अन्धकार मय गुफा ।
'त्वद्भिया विश आयन् असिक्नीः
असमनाः जहतीः भोजनानि'
ऋ. ७.५.३
(६) कुष्ठ और पलित रोग में प्रयुक्त एक ओषधि
'रामेकृष्णे असिक्नि च'
ऋ .अ. १.२३.१, तै.ब्रा. २.४.४.१
असिकनी और असिशिम्बी सम्भवतः असिक्नी

ही है जो व्रणदोषनाशक है । (७) गाढ़ी काली गौ, (८) वह भूमि जिसकी सिंचाई के लिए कोई प्रबन्ध न हो (९) रजोमयी प्रकृति ।
'को असिक्न्याः पयः'
अ. २०.१३०.२
(१०) एक नदी, (११) अशुक्ला असिता–निरुक्त, (१२) शरीर की वह नाड़ी जो शुक्ल या चमकीली नहीं है और उसमें बहने वाले रस का कोई रंग नहीं हैं, (१३) सर्प की एक जाति ।
'जाता दास्यसिक्न्या'
अ. ५.१३.८
नदी के अर्थ में –
'असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया
आर्जीकीये श्रणुह्या सुषोमया'
ऋ. १०.७५.५, तै.आ. १०.१.१३, महा.ना.उप. ५.४, नि. ९.२६.
हे असिक्नी और वितस्ता नदियों के साथ मरुद्वृधा, तथा सुषोमा के साथ आर्जकीया नदी– तुम सभी सुनो ।

असित – (१) काष्ठ आदि के आश्रय रूप बन्धन से रहित–सूर्य ।
'व्यख्यत् जिह्वयासितः'
ऋ. १.४६.१०
बन्ध रहित सूर्य ज्वाला रूप से प्रकट होता है ।
(२)बंन्धन –रहित ।
'असितस्य ते ब्राह्मणा'
अ. १.१४.४
(३) सर्प की एक जाति, काला फनवाला सांप, करैत ।
'आ मे श्रृणुतासिता अलीकाः'
अ. ४.१३.४
(४) नञ् +सित =असित । कृष्ण, काला ।
'असितौ पेत्वाविव'
नि. १२.२.
हे अश्विद्वय ! तुम काले मेघ के समान हो । 'अवदातः सितो' गौरः सित गौर वर्ण का नाम है । इसके प्रतिकूल असित अर्थ कृष्ण हुआ ।
(५) यमुना नदी । कृष्णोदका असिक्नी नदी । असिक्नी, अशुक्ला +असिता

असितग्रीवः – (१) नीले गर्दन वाला, (२) नील मणि या विशेष चिह्न को गर्दन में पहनने वाला ।
'असितग्रीवश्छागैः'
वाज.सं. २३.१३, श.ब्रा. १३.२.७.२.

असितस्य गृह – बन्धन रहित प्रभु का बनाया स्थान
'तां वीतहव्य आभरत्
असितस्य गृहेभ्यः ।'
अ. ६.१३७.१

असितज्ञू – व्यापक परमेश्वर रूप अग्नि को बतलाने वाली पृथिवी ।
'अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूः'
अ. १२.१.२१, गो.ब्रा. १.२.९, कौ.सू. १३७.३०.

आसिन्व – अवद्ध ।
'असिन्वं वव्रं मह्यादद्रुग्रः'
ऋ. ५.३२.८

असिन्वत् – असंखादन्, असंचूर्णयन् (अच्छी तरह से नहीं खाता हुआ), (२) बिना संचूर्ण किए या बिना चबाए खाता हुआ । 'षिञ्' बन्धनार्थक धातु है, परन्तु यहां पर भक्षणार्थक है ।
'अपश्यमस्य महतो महित्वम्
अमर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु
नाना हनू विभृते सं भरेते
असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ।'
ऋ. १०.७९.१
मैं ने मरणधर्मा मनुष्य प्रजाओं में (पर्त्यासु विक्षु) अमर धर्मा·महान् वैश्वानर अग्नि का महत्व देखा । इसकी समर्थ ज्वालाएं (हनू) नाना रूप में दह कर भी एकत्र ही हवि या लकड़ियों को जलाती हैं (नाना विभृते संभरेते) और एकत्र कर बिना चबाए खाती हुई (असिन्वती वप्सति) प्रचुर मात्रा में हवि और लकड़ी खाती हैं ।
अन्य अर्थ–बध्य मनुष्यों में अबध्य और सबसे बड़े बच्चे के (मर्त्यासु विक्षु अमर्त्यस्य महतः आस्य) महत्व को मैं जानता हूँ । बचपन से ही सृष्टिकर्त्ता की ओर से धारणा किए हुए इसके दोनों जबड़े (विभ्रतेनाना हनू) दूध का आहरण करते हैं (संभरेते) और बिना चबाए खाए हुए प्रभूत दुग्ध का पान करते हैं (असिन्वतीं बप्सती भूरिः) ।

असिन्वती – नहीं बांधती हुई ।

असिमत् – असि +मतुप्
'नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यः'

वाज.सं. १६.२१, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.६, का. सं. १७.१२.

असिर – (१) तम को दूर करने वाला प्रकाश, (२) सूर्य, (३) दक्षिण प्राण का मलशोधक प्राणायाम आदि साधन।
'यः सूर्यस्यासिरेण मृज्यते'
ऋ. ९.७६.४

असिष्ठौ – सबसे अधिक वेगवान्, समस्त लोक लोकान्तरों के प्रेरक, उनको इधर उधर फेंकने वाले भव और शर्व नामक शक्तियाँ।
'यौ विदिता विषुभृतामसिष्ठौ'
अ. ४.२८.२.

अस्ति – अभिपूजित (स्पृहणीय, आदरणीय पूज्य के अर्थ में प्रयुक्त)। सु +अस्ति = स्वस्ति अविनाशी या अविनाश।
'स नः पितेव सूनवे
अग्ने सूपायनो भव
सचस्वा नः स्वस्तये।'
ऋ. १.१.९, वाज.सं. ३.२४, तै.सं. १.५.६.२, मै.सं. १.५.३, ६७. ७, का.सं. ७.१.८, श.ब्रा. २.३.४.३०.
हे अग्ने! जो हम तेरी परिचर्या करते हैं वह तू हमारे पुत्र के लिए पिता की तरह सुन्दर उपचार या उपहार लाने वाला हो तथा कल्याण के लिए हमारे अनुकूल कार्यकर (आसचस्व)।
(२) मुख या हृदय।
'आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च'
अ. ११.८.२८
'आस्तेयी' का अर्थ मुख या हृदय का रुधिर या थूक है।

अस्थि – अस् + क्थिन् =अस्थि। अस्यति प्रक्षिपति येन तत् (जिससे फेंका जाता है)। अर्थ–
(१) हड्डी, (२) शत्रु पर अस्त्र फेंकने वाला दृढ़ पुरुष।
'शम् अस्थभ्यः मज्जाभ्यः'
वाज.सं. २३.४४, तै.सं. ५.२.१२.२, का.सं.(अश्व.) १०.६.

अस्थिज – हड्डियों में उत्पन्न होने वाला कष्ट।
'अस्थिजस्य किलासस्य'
अ. १.२३.४, तै.ब्रा. २.४.४.२.

अस्थिभूयान् – केवल बड़े –बड़े हाड़ उठाए हुआ।
'गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्'
अ. ५.१८.१३

अस्थिर – अस्थिर, चंचल, जो स्थिर न हो।
'अथोश्वा अस्थिरो भवन्'
अ. २०.१३०.१९

अस्थिभ्रंस – हड्डियों को तोड़ डालने वाला कफ रोग, खांसी।
'अस्थिभ्रंसं परुभ्रंसम्'
अ. ६.१४.१

असुत – अनुत्पन्न।
'इन्द्र त्वमसुतानाम्'
ऋ. ८.६४.३, अ. २०.९३.३, साम. २.७०६.

असुतप् (पः) – जिस किसी तरह प्राण–पोषण में तत्पर।

असुतपा – असु +तपा। शत्रुओं के प्राणों को तपाने वाली राजशक्ति।
'रात्री हि तान् असुतपा'
अ. १९.४९.७

असुतृप् – (१) दूसरे का प्राण लेकर अपने को तृप्त करने वाला प्राणघातक डाकू।
'परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि'
अ. ८.३.१३, १०.५.४९.
'परासुतृप्तो अभि शोशुचानः'
ऋ. १०.८७.१४
(२) प्राण–धारण मात्र से तृप्त होने वाला।
'असुतृप उक्थशासः चरन्ति'
ऋ. १०.८२.७, वाज.सं. १७.३१, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३५.२. का.सं. १८.१, नि. १४.१०.
(३) प्राणों से अपनी तृप्ति करने वाला, (४) अपने प्राणों को ही तृप्त करने वाला।

अस्त्रिध् – नञ् +स्त्रिध् +क्विप् =अस्त्रिध। अर्थ है अक्षम विज्ञानवान्।
'विश्वे देवासो अस्त्रिध'
ऋ. १.३.९

अस्त्रिधा – एक दूसरे की देहों या मानस भावों की हिंसा न करने वाले अश्विना –स्त्री पुरुष।
'सोमं पिबतम् अस्त्रिधा सुदानू'
ऋ. ३.५८.७.

अस्त्रिधानः – नाश न होने वाला।
'उदूहक्षुः अर्णसो अस्त्रिधानैः'
ऋ. ७.६९.७, मै.सं. ४.१४.१०: २३०.७, तै.ब्रा.

२.८.७.९.

अस्रीवयः – कामनायोग्य अन्न ।
'अस्रीवयश्छन्दः'
वाज.सं. १४.१८, का.सं. १७.३, ३९.४, श.ब्रा. ८.३.३.५,

असु – (१) अस् (क्षेपणार्थक धातु) +उरन ८ असु । शरीर के रोगों को बाहर फेंकने वाला –प्राण, (२) शत्रु को फेंकने वाला वीर, (३) प्राण शरीर में फेंका जाता है ।
'असवे स्वाहा वसवे स्वाहा'
वाज.सं. २२.३०
(३) वायु का अंश–प्राण ।
'भूत्या असुः असृगात्मा क्वसित्'
ऋ. १९४.४, अ. ९.९.४.
(४) जीवन के बाधक विघ्नो को परे फेंकने वाला प्राण ।
'इहा यमस्तु पुरुषः सहासुना'
अ. ८.१.१
(५) सब दुःखों को दूर फेंकने वाला प्राणशक्ति ।
'परासुतृयो अभिशोशुचानः'
ऋ. १०.८७.१४
'असो असवे मृड'
अ. १९.४४.४, कौ.सू. ४७.१६.
पुनः–
'असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञा'
ऋ. १०.१५.१
जो पितर मरने के बाद प्राण मात्र धारण करते हैं और जो अंहिसक, अस्तेन या अजात शत्रु हैं –सा. अन्य अर्थ – जो पिता या प्रौढ़ विद्वान् प्राण विद्या के ज्ञाता हैं और जो अजात शत्रु एवं सबके मित्र हैं । –(दया.)
(६) प्राणमात्र मूर्ति –मरने के बाद प्रेतात्मा आधुनिक अर्थ–श्वास, जीवन, प्रेतात्मा, समान व्यान और उदान ।

असुतृपा – (१) प्राण–रक्षायोग्य द्रव्यमात्र से तृप्त होने वाले–भृति मात्र से सन्तुष्ट होने वाले राजपुरुष, (२) प्राण से तृप्त होने वाले दो यमदूत (३) सारमेय, श्वान, (४) प्राण को तृप्त करने वाले प्राण अपान ।
'उरुणसावसुतृपावुदुम्बलौ'
अ. १०.१४.१२ अ. १८.२.१३, तै.आ. ६.३.२,

असूतिष्टा – (१) गण्डमाला जो पीव पैदा नहीं करती, (२) चिर परिपाका ।
'असूतिका रामायणी
अपचित् प्र पतिष्यति'
अ. ६.८३.३

असुतृपौ – सब प्राणियों को प्राणों से तृप्त करने वाले–रातदिन ।
'उरूणसौ असुतृपौ'
अ. १८.२.१३, तै.आ. ६.३.२.

असुन्वत् – (१) यज्ञ नहीं करने वाला, नञ् +सु +शतृ =असुन्वत् ।
'वीडोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधः'
ऋ. १.१०१.४.
जो इन्द्र या परमात्मा या राजा यज्ञविरोधी की हन्ता है ।

असुन्वा – (१) ऐश्वर्यों को न उत्पन्न करने वाला । (२) सवन यज्ञादि न करने वाला
'असुन्वाम् इन्द्र संसदम्
विषूचीं व्यनाशयः'
ऋ. ८.१४.१५, अ. २०.२९.५.

असुनीत – प्राण द्वारा लोकान्तर में पहुँचने वाला आत्मा ।
'असुनीताय वोढवे'
अ. १८.२.५६,

असुनीति – (१) प्राणधारा करने वाली ।
'तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेताम्'
अ. १८.३.५९, वाज.सं. १९.६०, वाज.सं. (का.) २०.६०.
(२) असून् नयति (प्राणों को ले जाता है) । देवतावाचक शब्द । प्राणवायु, मध्यम प्राण । इन्द्र को मध्यम प्राण कहा गया है (अयमिन्द्रः मध्यमः प्राणः) । जब यह मध्यम प्राण शरीर से निकलने लगता है तो और प्राणों को भी साथ लिए जाता है (यत् एतस्मात् शरीरात् उत्क्रामति अथ इतरान् असून् नयति) प्राणम् उत्क्रामन्तम् सर्वेप्राणाः अनूत्क्रामन्ति ।
'असुनीते मनो अस्मासु धारय
जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः
रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व'
ऋ. १०.५९.५, नि. १०.४०,

हे प्राण (असुनीते) तू मेरे शरीर में मन को चिर जीवन के लिए धारण कर (मनः अस्मासु धारय) और इस तरह से हमारी आयु को खूब प्रकृष्ट भाव से बढ़ा (नः आयुः सुप्रति रा)। हमें संयत कर अनुगृहीत कर जिससे हम सूर्य का दर्शन करते हैं (सूर्यस्य संदृशि) अर्थात् सुन्दर अन्न खाकर हमारी आंखें अच्छी रहे जिससे सूर्य की उपासना हम करते रहे। इसलिए मुझ अपने पुत्र को घृत से संवर्द्धित कर। (घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व)।

(३) प्राणशक्ति।

'अहा यद् देवावसुनीतिमायन्'

ऋ. १०.१२.४, अ. १८.१.३१

(४) प्राणों को मृत्यूपरान्त वायु में प्राप्त कराने वाला।

'तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य'

अ. १८.३.४९, वाज.सं. १९.६०, वाज.सं. (का.) २०.६०

असुं य ईयुः – (१) प्रेतात्मा या पितर जो मरने के बाद प्राण मात्र धारण करते हैं (२) जो विद्वान् पितर प्राण विद्या जानते हैं।

'असुं य ईयुः अवृका ऋतज्ञाः
ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु।'

ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५७.५, नि. ११.१८.

असुम्न – दुःखकारी, परपीड़क।

'अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्नाः'

वाज.सं. ३५.१, श.ब्रा. १३.८.२.३

असुर – (१) राक्षस।

'येनासुरान् अभि देवा असाम'

ऋ. १०.५३.४, आप.श्रौ.सू. २४.१३.३, नि. ३.८. (जिस बल से मैं असुरों को पराजित करूं)

(२) जो अपने स्थान में आनन्द पूर्वक न रहे। (अ +सुष्ठु + रताः – स्थानेषु न सुष्ठु रताः)। अर्थात् अतृप्त होकर इतस्ततः धावे।

(३) स्थानों से जो भगा दिये गए हो (स्थानेभ्यः अस्ताः देवैः)। अस् (क्षेपणार्थक धातु) +रण।

(४) असु +र (मत्वर्थीय) =असुर। जिसमें प्राण या जो महाप्राण वाला हो अर्थात् प्राण या जो महाप्राण वाला हो अर्थात् जो मुश्किल से मरे –दुर्मर हो। (५) सोः देवान् असृजत् (प्रशस्त आत्मा के प्रदेश से देवों को प्रजापति ने निर्मित किया)। इसी से सु +र =सुर हुआ। इसी का उल्टा असुर हुआ। ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थो में वर्णित है।

(६) अस्यति क्षिप्यति सर्वान् (सभी को फेंक देते है) इति असुरः

(७) असुंराति ददाति इति असुरः (जो प्राण दे)। प्राणदाता। दें 'कवि' असुर और सुर का परस्पर विरोधी अर्थ जन्दा अवेस्ता में मिलता है। यह उस प्रवृत्ति का परिचायक है जब देवासुर संग्राम होने पर दोनों दल एक दूसरे के देवताओं को अपमानित करने लगे। फारसी में सुर को ही राक्षस कहते हैं संस्कृत मे असुर को (८) निघण्टु में प्रज्ञा अर्थ में असु शब्द का प्रयोग है। अतः 'असुर' का अर्थ प्रज्ञा वान् भी है। (९) अन्नवान्, (१०) प्राणवान् क्योकि प्राणबल या जल से उत्पन्न अन्न से ही असुर सृष्टि करता है। (११) 'असुर' शब्द 'वसुर' से वना है। वसु का अर्थ धन, रश्मि या उदक है और वसुर का धनवान्, रश्मिवान् या उदकवान्। उदक से ही सृष्टि होती है। त्वष्टा उदकवान् वसुवान् या असुवान् है। (१२) इन्द्र के विशेषण के रूप में भी 'असुर' का प्रयोग हुआ है।

'तमुत्वा नूनम् असुरं प्रचेतसम्'

ऋ. ८.९०.६, साम. २.७६२.

हे इन्द्र। अवश्य हम इस बलवान् प्रज्ञावान् महाप्रापा प्रकृष्ट चेतना वाले तुझ में।

(१३) केवल प्राण पोषी, खाऊ पीऊ उड़ाऊ।

'यः कृष्णःकेश्यसुरः'

अ. ८.६.५

(१४) असु +र। केवल प्राणों में रमण करने वाला विषय–विलासी पुरुष।

'स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ'

अ. १९.५६.१

(१५) प्राण, विद्या का ज्ञाता वैद्य।

'असुरास्त्वा न्यखनन्'

अ. ६.१०९.३

(१६) प्राणवान् जन्तु।

'यां इन्द्र भुज आभरः स्वर्वां असुरेभ्यः'

ऋ. ८.९७.१, अ. २०.५५.२, साम. १.२५४, ऐ.आ.

५.२.४.२, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.३, शा.श्रौ.सू. १८.८.१, २

(१७) पुराणों में असुर , दैत्य या राक्षस के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है ।

असुरक्षयण – असुरों का नाशकारी अस्त्र ।

'असुरक्षयणं वधम्'

अ. ११.१०.१०, १२, १३.

असुरघ्नः – दुष्ट असुरों का हनन करने वाला ।

'पुरुहूत पुरुवसोऽसुरघ्नः'

ऋ. ६.२२.४, अ. २०.३६.४

असुरत्व – अर्थ–(१) प्राबल्यं, (२) ऐश्वर्य, (३) प्राचीन अर्थ में असुर का प्रयोग था । अत्यन्त बलवान् या महाप्राण ही था। पीछे चलकर सुर का उलटा असुर अर्थात् राक्षस अर्थ में समझा जाने लगा । प्रावल्य के सिवा प्रज्ञावत्ता भी इस का अर्थ है (असु = प्रज्ञा । क्योंकि असुर अपनी प्रज्ञा से अनर्थों को दूर भगा देता है (अनर्थान् अस्यति) । या इस प्रज्ञा से असुर सब कुछ उत्पन्न करता है (प्रज्ञया उदकेन च सर्वं जनयति)

(२) अन्नवत्वम् और प्राणवत्व भी उसका अर्थ है, क्योंकि प्राण बल या जल से उत्पन्न अन्न से ही असुर सृष्टि करता है ।

या 'असुर' 'वसुर' से बना हुआ है । वसु का अर्थ धन,रश्मि या उदक है । वसुरत्व का अर्थ उदकत्व हुआ है। उदक से ही सृष्टि होती है । त्वष्टा उदकवान् या वसुवान सा असुवान् है ।

(३) सामर्थ्य –

'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः
पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य
महद्देवानाम् असुरत्वमेकम् ।'

ऋ. ३.५५.१९, नि. १०.३४.

सविता ही सर्व प्रेरक होने से सभी जीवों के त्वष्टा नामक मध्यमदेव हैं (सविता विश्वस्य त्वष्टा) नानारूप प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं (पुरुधा प्रजाः जजान) तथा उन्हे पालते हैं (पुपोष) क्योंकि ये सभी जल या सभी भुवन जो रचे हुए दीख पड़ते हैं त्वष्टा के एक मात्र महान् सामर्थ्य का द्योतक है (अस्य एक महत् असुर त्वम्) ।

(४) प्राणों में रमने वाला प्राणप्रद सामर्थ्य, प्राणों के भीतर रहने वाला अद्वितीय ब्रह्म, (६) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सत्ता

'महद्देवानाम् असुरत्वमेकम्'

ऋ. ३.५५.१–२२.

असुरदयौः – (१) सबको प्राण देने वाला सूर्य (२) सबको ज्ञान देने वाला आचार्य ।

'दिवो अस्तोषि असुरस्य वीरैः
इषुध्येव मरुतो रोदस्योः'

ऋ. १.१२२.१

आकाश और पृथिवी के बीच (रोदस्योः) सबको प्राण देने वाले सूर्य की ओर (असुरस्य दिवः) जल वृद्धिधारक वायुओं के समान (इषुध्या इव मरुतः) वीर पुरुषों के साथ विद्यमान (वीरैः) विजिगीषु और शत्रु दोनों के बीच स्थित वीर सेनापति के तुल्य मातापिता के बीच स्थित ज्ञानदेने वाले आचार्य को गुणों का वर्णन मैं करता हूँ ।

असुरस्य नीडयः – तेजस्वरूप प्राणों के दाता आत्मा के आश्रय स्थान प्राणगण

'दिवः श्येनासो असुरस्य नीडयः'

ऋ. १०.९२.६

असुरस्यभक्षणम् – (१) प्राणों के पोषण में रत प्राणी के खाने योग्य अन्न, (२) प्राणों में रमण करने वाले प्राणापान के अभ्यासी योगी के भोगने योग्य जीवन सुख या ज्ञान ।

'त्यं चित् चमसम् असुरस्य भक्षणम्'
एकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम्'

ऋ. १.११०.३

असुरस्य वीराः – 'असुर' अर्थात् संसार के प्रेरक बल में रमण करने वाले परमेश्वर के वीर्यवान् विद्वान् ।

'दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः'

ऋ. ३.५३.७, १०.६७.२, अ. २०.९१.२

असुर्य – (१) असुर +यत् = असुर्य । अर्थ असुरों का व्यवहार ।

'असुर्यात् पासि धर्मणा'

ऋ. १.१३४.५, आश्व. श्रौ.सू. ४.११.६.

तू धर्म से असुरों या दुष्टों के व्यवहार से भी प्रजा का पालन करने में समर्थ है ।

(२) असु अर्थात् प्राणों में रमण करने वाले जीवों (असुरों) का हितकारक प्रभु असुर्य है ।

'शंत वा यदसुर्य प्रति त्वा'
ऋ. १०.१०५.११
(३) प्राण –शक्ति देने वाला ।
'महना देवानामसुर्यः पुरोहितः'
ऋ. ८.१०१.१२, अ. २०.५८.४, साम. २.११३९, वाज.सं. ३३.४०
(४) मेघ द्वारा उत्पन्न रुई कपास आदि, (५) बलशाली पुरुषोचित राज्याधिकार ।
'अन्यदन्यत् असुर्यं वसानाः
निमायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ।'
ऋ. ३.३८.७
(६) असुर कहलाने योग्य, केवल अपने प्राण को पोसने वाला पापाचारी ।
'असुर्या नाम ते लोकाः'
वाज.सं. ४०.३, श.ब्रा. १४.७.२.१४, बृ.आ.उप. ४.४.१४, ईश.उप. ३.
(७) प्राणयुक्त बल, (८) विद्युत् ओर मेघ के स्वरूप जल या पवन के समान प्राणयुक्त बल ।
'सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यम्'
ऋ.६.७४.१, मै.सं.४.११.२, का.सं. ११.१२.

असुर्यक्षत्र – मेघ में उत्पन्न होने वाला जल ।
'देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वे
अनुक्षत्राय ममिरे सहांसि ।'
ऋ. ७.२१.७

असुर्यवर्ण – अज्ञानमय प्रकाश-रहित आवरण ।
'असुर्यं वर्णं निरिणीते अस्य तम्'
ऋ. ९.७१.२

असुरा – प्राणों के बल पर रमण करने वाले आंख, नाक कान आदि प्राण गण ।
'निर्माया उत्ये असुरा अभूवन्'
ऋ. १०.१२४.५

असुराणां दुहिता – (१) दीमक (२) प्राणवान् पुरुषों के लिए बल या रस या दोहन करने वाली ओषधि, (३) ग्रिफिथ के मत से सिलाची नाम की ओषधि ।
'सिलाची नाम वा असि
सा देवानामसि स्वसा ।'
अ. ५.५.१
सिलाची के अन्य नाम स्वरणी, अरुन्धती, कानीना, कन्यला ।
'असुराणां दुहितासि'
अ. ६.१००.३

असुष्टिः – (१) प्राणों द्वारा चलाने वाला इन्द्रिय (२) प्राणी जन ।
'आदित् सोमो विपपृच्यात् असुष्टीन्'
ऋ. ४.२४.५

असू – (१)ब्रह्म चारिणी कुमारी जिसने पुत्र न जना हो, (२) शत्रुओं पर शास्त्रादि फेंकने वाली सेना ।
'यमाय असूम्'
वाज.सं. ३०.१४, तै.ब्रा. ३.४.१.१०

असूधेनुः – (१) कुमारी गौ, (२) कुमारी कन्या, (३) अन्यों से प्रेरित होने वाली अदम्य या नित्य वाणी, (४) अयोग्य पुरुषों से शासन न होने योग्य पृथिवी ।
'याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा'
ऋ. १.११२.३
हे प्राण अपान वायुओ ! जिस बल से तुम दोनों अन्यो से न प्रेरित होने वाली नित्य वाणी को बलवान् बनाते हो (पिन्वथः) । अथवा, हे स्त्री पुरुषो ! राजारानी ! राजा-अमात्य ! राजा सेनापित ! आप दोनों अयोग्य पुरुषों से शासन न होने योग्य पृथिवी या पुत्रादि न उत्पन्न करने वाली कुमारी या गौ को नाना ऐश्वर्य से सेवित करते हो ।
असू धेनु का विवरण अथर्ववेद के वशा सूक्त में द्रष्टव्य है ।

असूयक – असूया करने वाला ।
'असूयकायानृजवे ऽयताय
न मा ब्रूयाः वीर्यवती तथा स्याम्'
व.ध.शा. २.८, विष्णुस्मृति २९.९, नि. २.४.
विद्या आचार्य से कहती है –मुझे असूया करने वाले, कुटिल स्वभाव वाले तथा अब्रह्मचारी को न दे क्योंकि मैं निर्बल हो जाऊंगी ।

असूयन् – असूया या निन्दा भाव रखता हुआ ।
'असूयन् अभ्यचाकशम्'
ऋ. १०.१३५.२

असूर्त्त – (असूर्त्ते) – असुसमीरिताः वात समीरित्यः । जस् का शे होने से बहुवचन में 'असूर्त्ते' रूप होता है । अर्थ है (१) वायु से प्रेरित । यह मेघ का विशेषण-है । यास्क, (२) माध्यमिक देवगण –मेघ, मरुद्गण ।

'त आयजन्तद्रविणं समस्मा
ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते
ये भूतानि समकृण्वन् इमानि ।'
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.६ ,का.सं. १८.१.
जिस माध्यमिका देवगण (मेघ, मरुत आदि) ने वायु या प्राण से प्रेरित होकर (ये असूर्ते) सुविस्तीर्ण (सूर्ते) निश्चलरूप से स्थित अन्तरिक्ष में (निषते रजसि) रहकर इन प्राणियों की रचना की (समकृण्वन्) वे सभी जीवों के लिए जल देते हैं (द्रविण् आयजन्त) । स्तुति करने वाले (जरितारः) पूर्व कालीन ऋषियों ने (पूर्वेऋषयः) जैसे वर्षिसहसिक सत्र से सृष्टि की (भूमना) । यज्ञों से पूर्व कालीन ऋषियों ने समस्त भूतग्राम को सिरजा और अनुगृहीत किया । इस प्रकार मेघ भी जल से पृथिवी को तृप्त करते हुए जीवों को उत्पन्न करते हैं ।
अन्य अर्थ- जो विद्वान् विस्तृत अन्तरिक्ष लोक में स्थित (सूर्ते रजसि निषते असूता) इन सब पुष्टियों की सम्यक् प्रकार से सुखी करते हैं (इमानि भूतानि समकृण्वन्) वे ऋषिगण प्राचीन परमात्म भक्तों के समान (पूर्वेजरितारः न) महान् तपश्चरण से (भूमना) इस विश्वकर्मा जगदीश को भक्ति की भेंट देते हैं (अस्मै द्रविणम् समायजन्त) (३) प्रकाशहीन ।
'असूर्तं रजो अप्यगुः'
अ. १.३.९

असूर्य - जहां सूर्य न हो , अन्धकार ।
'असूर्ये तमसि वावृधानम्'
ऋ. ५.३२.६

असूर्या - (१) मेघों से उत्पन्न होने वाली, (२) असुर अर्थात् प्राणों में रमण करने वाले और प्राणों का प्रदान करने वाले (३) प्राण-प्रिय पुरुष की हितकारिणी, (४) बलवान् पुरुषों के योग्य ।
'जोषद् यदीमसुर्या सचध्यै'
ऋ. १.१६७.५.

असूसू - प्रलय काल में प्रसव न कराने वाली वशा शक्ति ।
'जायमानात् असूस्वः'
अ. १०.१०.२३

अस्थूरि - (अ.) निर्विघ्न ।
'अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु'
ऋ. ६.१५.१९, तै.सं. ५.७.२.१, मै.सं. ४.१४.१५, २४०.२, का.सं. ४०.२, तै.ब्रा. ३.५.१२.१,

अस्थूरी - दोष रहित ।
'अथोऽश्वा अस्थूरिणो भवन्'
अ. २०.१३०.१९

असृक् - जल का अंश, रुधिर ।
'भूम्या असुरसृगात्मा क्वस्वित्'
ऋ. १.१६४.४, अ. ९.९.४.

असृक् पावा - रक्त को पी जाने वाला या विकृत कर देने वाला ।
'अरायम् असृक् पावानम्'
अ. २.२५.३

असृक्षत - छोड़ा ।
'ऋष्वाऋष्टीरसृक्षत'
ऋ. ५.५२.६
मरुतों से अस्त्रों को छोड़ा ।

असृङ्मुख - शत्रु का खून पीने वाला भयङ्कर सैनिक ।
'कुम्भमुष्कान् असृङ्मुखान्'
अ. ११.९.१७

अस्कृधोयु - (१) सदा अविनाशी, अखण्ड महान् (२) अकृध्वायुः दीर्घायुः । कृधु का अर्थ ह्रस्व, लघु या कम है । जो निकृत् हो (निकृत्तमिव यद् भवति) । कृधु का प्रतिकूल अकृधु है जिसका अर्थ बड़ा, दीर्घ है । अतः अस्कृधुः आयुः यस्य अस्कृधोयुः (सुट् का आगम और पृषोदर की तरह सिद्ध) । आयुम् के ऊ और अ का विपर्यय । (३) अथवा 'अकृतायुः' से अस्कृधोयु बन गया । अर्थ है-'नित्यायुः' (४) अविनाशी ।
'तमीमह इन्द्रमस्य रायः
पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः
अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्
तमा भर हरिवो मादयध्यै'
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३
हे अपने अश्व से युक्त इन्द्र (हरिवः) मैं तुझ से मेरे इस बहुत वीर वाले (पुरुवीरस्य) परिचारकों से युक्त (नृवतः) बहुत अन्नयुक्त (पुरुक्षोः) उस धन का रक्षक (अस्य रायः इन्द्रम्) जांचते हैं

(ईमहे) जो पुत्र दीर्घायु (अस्कृधोयु) अजर अर्थात् जराहीन (अजरः) और बलवान् (स्वर्वान्) हों । इस पुत्र को हमें प्रसन्न करने निमित्त (मादयध्यै) हमें दे (आभर) ।
अन्य अर्थ –अतिवीर (पुरुवीर) सैनिकादि अनेक मनुष्यो से युक्त (नृवतः) तथा भली प्रकार बसाने वाले (पुरुक्षोः) इस राजा रूपी धन के मालिक उस परमेश्वर की हम प्रार्थना करते हैं (तम् इन्द्रम् ईमहे) जो अविनाशी (अस्कृधोयुः) अजर और आनन्दमय है (अजरः स्वर्वान्) । हे प्रशस्तेन्द्रिय मनुष्य (हरिवः) आनन्दलाभ के लिए धारण कर (मादयध्यै तम् आभार) ।

अस्तृत – (१) कभी नहीं मारे जाने वाले वाला बलवान् पुरुष, (२) 'अस्तृत' नायक मणि जिसे धारण करने से मनुष्य कभी शत्रु द्वारा मारा नहीं जा सकता
'अस्तृतस्त्वाभिरक्षतु'
अ. १९.४६.१–३, ४,५,७.
(३) स्तृ (हिंसार्थक) +क्त =स्तृत + नञ् +स्तृत =अस्तृत । अहिंसित ।
'कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।'
ऋ. ८.६६.१०.
कब इन्द्र का हन्तव्य अहिंसित हुआ (४) जो कभी मारा न गया हो, (५) कभी न नष्ट होने वाला अग्नि ।
'वन्वन् अवातो अस्तृतः'
ऋ. ६.१६.२०, का.सं. २०.१४.
(५) अपीडित , अव्यथित ।
'अच्छा गच्छत्यस्तृतः'
ऋ. १.४१.६
वह किसी भी प्रकार से पीडित या व्यथित न होकर प्राप्त होता है । (६) अहिंसक ।

अस्तृतयज्वा – दानशील या यज्ञशील पुरुष का नाश न करने वाला–अग्नि ।
'अग्नेरस्तृतयज्वनः'
अ. ८.४३.१

अस्त्रैण – स्त्री से रहित ।
'अस्त्रैणाः सन्तुण्डगाः'
अ. ८.६.१६

अस्पृत – अस्पृष्ट, अछूत, अनुपयुक्त ।
'तिरो रंजासि अस्पृतम्'
ऋ. ८.८२.९, ९.३.८, साम. २.६१३

अस्मे – (१) अस्मासु (हम सबों में) (२) अस्माभिः (हम सबों से), और कहीं कहीं (३) अस्मभ्यम्, (हमारे लिए) भी होता है । सप्तमी में सुप् का शे होकर 'अस्मे' रूप बनता है ।
'शतं ते शिप्रिन् ऊतयः सुदासे
सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य
अस्मे द्युम्नम् अधिरत्नं च धेहि ।'
ऋ. ७.२५.३
हे सुन्दर मुख वाले या मुकुट धारी (शिप्रन्) उष्णी सिन् इन्द्र तेरी सैकड़ो रक्षाएं या रक्षा करने की क्रियाएं कल्याणकारी दान करने वाले या राजा सुदास के प्रति या कर देने वाली प्रजाओं के निमित्त हों । इसी प्रकार नाना प्रकार की प्रशंसनीय कामनाएं हो (सहस्रं शसाः) या आए हुए आप के लिए अनेकों स्तुतियां हों एवं (उत) धन हो (रातिः अस्तु) तथा हिंसक मनुष्य के (वनुसः मर्त्यस्य) हिंसा–साधक आयुधों को नष्ट करें (वधःजहिः) । उन्हे मार कर हमें दीप्तिमान यश, बल और रत्न दो ।
पुनः, 'अस्माभिः' (हम सबों से) अर्थ में–
'भूरि चकर्थ युज्यभिरस्मे
समानेभिः वृषभ पौंस्येभिः
भूरिणि हि क्रणवामा शविष्ठ
इन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ।'
ऋ. १.१६५.७, मै.सं. ४.११.३, १६९.३, का.सं. ९.१८
इन्द्र और मरुतों का संवाद हैः– हे इन्द्र ! तू ने अनेकों वीरता के कार्य किए (भूरि चकर्थ) परन्तु वह सब हम लोगों की सहायता से ही (समानेभिःअस्मेः) तथा संयुक्त बल से (युज्येभिः पौंस्येभिः)। हे बलिष्ठ (शविष्ठ) हमने तुमसे भी बढ़कर कार्य किए है (भूरीणि कृणवामाः) निश्चय ही (हि) जो कुछ भी हम वृष्टि आदि की कामना करते हैं – सफल होते हैं ।
अन्य अर्थ– हे राजन् ! आप हम सहयोगियों एवं समान चित्त वालों से मिलकर पुरुषार्थों के द्वारा बहुत उत्तम राज्य–पालन करते हो और इसी प्रकार हे पराक्रमी राजन् ! हम प्रजाजन जिन कर्मों को करने की इच्छा करते हैं (शविष्ठ!

मरुत यद् वशामः) उन सबों को आप के सहयोग से पुरुषार्थ द्वारा सिद्ध करते हैं (भूरिणि क्रत्वा कृणवाम) । पुनः 'अस्मभ्यम्' (हमारे लिए) के अर्थ में

'अस्मे प्र यन्धि मघवन् ऋजीषिन्
इन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा
अस्मे वीरान् शश्वत इन्द्र शिप्रिन् ।'

ऋ. ३.३६.१०, आश्व.श्रौ.सू. १.१५.३, पा.गृ.सू. १.१८.५, नि. ६.७.

हे धनवाला (मघवन) सार-रहित सोम रस वाला (ऋजीषिन् इन्द्र) सर्वस्पृहणीय प्रचुर धन या सब के दुःख दूर करने वाले महान् विद्याध्यक्ष को हमारे लिए दे (विश्व वारस्य भूरेः रायः अस्मे प्रयन्धि) और हमारे लिए (अस्मे) जीने के लिए (जीवसे) सौ वर्ष दें (शतं शरदः धाः) । हे सुन्दर हनुवाले (शिप्रिन्) इन्द्र! दीर्घायु पुत्र दे । (शश्वतः पुत्रान्) ।

(४) अस्मभ्यम् (हमसे-पञ्चमी अर्थ में प्रयोग)

'तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्य
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे
आराच्चित् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।'

ऋ. ६.४७.१३, १०.१३१.७ अ. ७.९२.१, २०.१२५,७ वाज.सं. २०.५२, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.५: १९१.६, ४.१४.१२, २३५.१०, का.सं. ८.१६, तै.ब्रा. २.८.४.१, ७.५.

हम यज्ञार्ह उस इन्द्र के या पवित्र राजा की अनुग्रहात्मिका बुद्धि में (सुमतौ) तथा उसके स्तुत्य मनोभाव मे रहे (अपि भद्रे सौमनसे स्याम) । धनवान् तया अपने अधिकार मे रहने वाला (स्ववान्) वह सुन्दर रक्षक (सुत्रामा) हम से दूर देश में ही (आरात् चित्) शत्रुओं को अन्तर्हित कर सदा (सनुतः) पृथक या नष्ट करें (प्रयोतु) ।

(५) अस्माकम् (हमारा) अर्थ में प्रयोगः-

'आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं
नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके
ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे
तमा पृण वसुपते वसूनाम्'

ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१.

हे इन्द्र! द्युतिमान् धनराशि हमें दे (द्युमन्तं भगं नः आभर) । उतना दे कि तेरे भुक्त शेष दान का जो अतिरिक्त हो उसके हम पात्र बनें (देष्णस्य ते प्ररेके निदधीमहि) , क्योंकि हमारी कामनाएं (अस्मे कामः) बड़वामुख में स्थित अपूर्ण काम अग्नि के समान बढ़ती ही जाती हैं (ऊर्व इव प्रप्रथे) । हे वसुपते, इन्द्र हमारी उस अतृप्त इच्छा की तू पूर्त्ति कर (आपृण)

अन्य अर्थ - हे राजन्! हमें उत्तम ऐश्वर्य दे । हम आप दात्ता के धनधान्य पूर्ण राज्य में (प्ररेके) उस ऐश्वर्य को निरन्तर धारण करें (निदधीमहि)। प्रचण्ड अग्नि की तरह तेजस्वी (ऊर्व इव) हमारे वैदिक कार्य विस्तृत हैं (अस्मे कामः पप्रथे) । हे धनों के स्वामी राजन् (वसूना वसुपते) आप उन्हे पूर्ण करें (तम् आपृण) ।

(२) अस्यम्यम् (हमारे लिए) के अर्थ में -

'अम्यक् सो त इन्द्र ऋष्टिः अस्मे
सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति'

ऋ. १.१६९.३

हे विद्वान्! आत्म ज्ञान देने वाली वह विद्या हमें प्राप्त हो जिससे मनुष्य सनातन तथा अजन्मा परमेश्वर को जानते हैं -दया. । अन्य अर्थ - हे इन्द्र! वह तेरी प्रसिद्ध वज्र की शक्ति जब मेघ की ओर जाती है तब वायु भी हमारे लिए चिरसंचित जल वेग से बरसाने लगते है- यास्क ।

अस्मेरा - अ +स्मेरा । गर्वरहित, विनय शील ।

'तमस्मेरा युव तयो युवानम्'

ऋ. २.३५.४, तै.सं. २.५.१२.२, मै.सं. ४.१२.४, १८८.५.

अस्मेवत्सः - हम सबों में व्यापक होकर रहने वाला प्रभु ।

'अस्मे वत्सं परिषन्तं न विन्दन्'

ऋ. १.७२.२

हम सबों में व्यापक होकर रहने वाले, सबके ऊपर, सबके भीतर और बाहर विद्यमान प्रभु को चाहते हुए भी सब कोई उसे नहीं पाते (न विन्दन्)।

अस्मेहितिः - अस्मासुहितिः (हममें निधान अभिधान या अर्थ या प्रयोजन) 'अस्मे' 'अस्मासु' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अस्मे +

धा + क्तिन् =अस्मेहिति ।

'किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड्
दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्
कथं रसाया अतरः पयांसि'

ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५.

इन्द्र गुरु बृहस्पति की गायों को बलासुर के पणि चुराकर ले गए । इन्द्र ने पता लगाने के लिए सरमा नाम की कुत्ती को भेजा । रसा नाम्नी नदी पारकर सरमा बलपुर गई और पणियों के द्वारा छिपाई गई गाएं देखीं । पणियों ने सरमा को अपने पक्ष में लाने के लिए वार्तालाप किया जो इस मंत्र में है:-

यह सरमा किस इच्छा से हमारे स्थान पर आई ? यह मार्ग भी देवताओं से दूर ही है क्योंकि यह खूब चलने वालों के लिए भी दुस्साध्य है (पराचैः अगुरिः)। लम्बे मार्ग पर चलते-चलते थक जाने पर परवश मनुष्य ही चलता है, अतः हे सरमा ! यह बता कि तेरी हम लोगों से क्या जरूरत थी या हमारे यहां तेरा क्या रखा था, कौन सा प्रयोजन था । (अस्मे का हिति) और आते समय तेरी रात कैसे कटी का परितक्म्या) और कैसे तूने रसा नदी का जल पार किया (कथं रसायाः पयांसि अतरः) ।

अन्य अर्थ- वेदवाणी (सरमा) असुर पणियों के पास जाती है । असुर पूछते हैं-यह वेदवाणी किस इच्छा से यहां आई हैं । यह मार्ग तो देवताओं से बड़ी दूरी पर है । और उनसे पराङ्मुख चलने वालों से प्राप्य है (पराचैः अगुरिः) । अतः हमारी ओर वेदवाणी के आने का क्या काम (काहितिः)। यह हमारी ओर आगमन (परितक्म्या) क्यों हुआ ? रात में क्यों आना हुआ ? तूने मार्ग की नदी के जल को कैस तरा ? यो जो स्वादु जल है उसे तर कर क्यों आई ? वेदवाणी धारण करने वाले राज पुरुषों का यह वर्णन है ।

सरमा का अर्थ वेदवाणी किया गया है । अस्मै इसके लिए । इसका प्रयोग सन्निकृष्ट अर्थ में होता है ।

अस्त्रैधत् - कभी क्षीण न होने वाला, (२) दूसरे के प्रति हिंसा के भाव से रहित ।

'अग्नेधता मन्मना विप्रो अग्ने

ऋ. ४.१४.५, वाज.सं. १८.७५.

अग्रेमा - सर्वश्रेष्ठ ।

'अस्त्रेमा वत्सः शिमीवां अरावीत्'

ऋ. १०.८.२

अग्रेमाणः - शत्रुओं द्वारा शोषण न किए जाने योग्य ।

'अग्रेमाणं तरणिं वीडुजम्भम्'

ऋ. ३.२९.१३, का.सं. ३८.१३, तै.ब्रा. १.२.१.१९, आप.श्रौ.सू. ५.११.६.

असोःपौत्रः - प्राण शक्ति के पुत्र का पुत्र असु का पुत्र मन है और मन में ज्योतिः रूप से प्रकट होने वाला पौत्र रूप उच्छिष्ट ब्रह्म ।

'असोः पौत्रः पितामहः'

अ. ११.७.१६

अह - (१) निश्चय से ।

'अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः'

ऋ. १.१५४.६, वाज.सं. ६.३, तै.सं. १.३.६.२, मै.सं. १.२.१४, २३.१७, का.सं. ३.३, श.ब्रा. ३.७.१.१५, नि. २.७.

(२)कुछ ।

'नाह दामानं मघवा नियंसन्'

ऋ. १०.४२.८, अ. २०.८९.८

(३) और,

'नो अह प्रविन्दसि'

ऋ. १०.८६.२, अ. २०.१२६.२

(४) तब ।

'अपोष अनसः सरत्
संपिष्टादह बिभ्युषी'

ऋ. ४.३०.१०, नि. ११.४७.

वायु से छिन्न भिन्न होते मेघ को जब उषा देखती है तो वायु से डर जाती है ।

(५) एव ही । विनिग्रहार्थक अव्यय ।

'अयम् अह इदं करोतु अयमिदम्

(यह यह करे और यह यह) । 'अयमह देवदत्तः गां पातयतु' (यह देवदत्त ही गौवों को पिलावें)

पुनः-

'यो अस्मै घ्रंस उतवा य ऊधनि
सोमं सुनोति भवति द्युमां अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति
तनूशुभं मघवा यः कवासखः'

ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९.
जो यजमान इन्द्र के लिए दिन में या रात में (घ्रंस उतवाय ऊधनि) सोम रस अभिसुत करता है वही निश्चय द्युतिमान होता है (द्युतिमान् भवतिअह) और जो इसके विपरीत असाधुजन संपर्की (कवासखः) होता है उस सनातन धर्म से दूर पुरुष को या आत्ममण्डनपरायण या विशेष भोग परायण या धर्म रहित अनेक प्रकार से अपने धन को बढ़ाने वाले पुरुष को (ततनुष्टिम्) अपने शरीर पोसने वाले को (तनूशुभ्रम्) धनस्वामी (मघवा) इन्द्र (शक्रः) बार बार नष्ट करते हैं (अप अप ऊहति) अर्थात् ऐसे धर्म विमुख पुरुष का विनाश अवश्यम्भावी है ।
पुनः एक अर्थ में –
'अन्वेनां अह विद्युतः
मरुतो जज्झतीरिव
भानुरर्तत्मना दिवः ।'
ऋ. ५.५२.६.
इन प्रहारों की तरह (एनान् अनु) मरुतों ने बिजलियाँ छोड़ी (विद्युतः) सूर्य के समान स्वयं ही द्युलोक से निकले (भानुः इव त्मना दिवः अर्त) तथा झर झर शब्द करने वाले जल भी निकले (जज्झतीः अह) –सा. । जल की तरह (जज्झतीःइव) विद्युत् , वायु और सूर्य का प्रकाश (विद्युतः मरुतः दिवः भानुः) इन सबको (एनान्) अपने अनुकूल में लावो (अह अनु अर्त) –(दया.)
और के अर्थ में–
'ममेदह श्वसुरो नाजगाम'
ऋ. १०.२८.१

अहति – पीड़ित न न होने देना ।
'अजीतयेऽहतये पवस्व'
ऋ. ९.९६.४

अहदयौ – दिन का उत्पादक सूर्य की किरण ।
'प्रतिवस्तोरहद्युभिः'
ऋ. १०.१८९.३, अ. ६.३१.३, २०.४८.६, साम. २.७२८, वाज.सं. ३.८, का.सं. ७.१३.३, श.ब्रा. २.१.४.२९.

अहन् – उपहरन्ति अस्मिन् कर्माणि (इसमें लोग कर्मों को करते हैं) उप + आङ् + हृ + विच् (अधिकरण में) = अहन् (उप का लोप, आङ् का ह्रस्व और र का व होकर पृषोदरादिवत् सिद्ध) । लोक में इसकी व्युत्पत्ति–नञ् + हा + कनिन् = अहन् (आतोलोपः से आ का लोप) अर्थ –(१) दिन ।
'न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः'
ऋ. १०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४.
(उस प्रलय काम में रात्रि का दिन का ज्ञान नहीं था अर्थात् काल की स्थिति नहीं थी ।) (२) दिन और भी इसी का अर्थ है ।
'अहश्च कृष्णमहरर्जुनंच
वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः
वैश्वानरो जायमानो न राजा
अवातिरत् ज्योतिषाग्निस्तमांसि ।'
ऋ. ६.९.१, नि. २.२१,
दिन काला है अर्थात् रात काली है, दिन सौर तेज से उजला है (अहः अर्जुनञ्च) । द्यौ और पृथिवी के प्रति (रजसी) अनुकूलता से ज्ञातव्य अपनी अपनी प्रवृत्तियों से (वेद्याभिः) ये दिन और रात बारी बारी आते हैं । वैश्वानर अग्नि प्रादुर्भूत होते हुए अपने तेज से (ज्योतिषा) आदित्य के समान (राजा न) अन्धकारों को दूर करते हैं । अन्य अर्थ–उदय होते हुए सब ज्योतियों के राजा जिस सूर्य की तरह (जायमानः राजा वैश्वानरः न) अग्रणी राजा (अग्निः) विद्याज्योति से अविद्या अन्धकार को दूर करता है (तमांसि अवातिरन्), उस सूर्य के कारण काला दिन और श्वेत दिन मनुष्यो के लिए ज्ञातव्य अपनी अपनी प्रवृत्तियों के साथ परस्पर विरुद्ध भाव से वर्तमान हैं (वेद्याभिः विवर्तेते) । उत्तरध्रुव प्रदेश में दिन का काला और उजला होना सांकेतिक है । (३) हन् धातु का लङ् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ –मारा
'अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम्'
ऋ. १.३२.५, मै.सं. ४.१२.३, १८५.९, तै.ब्रा. २.५.४.३,

अहना – (१) प्रकाश से फैलने वाली उषा (२) सबके समक्ष गुणों का प्रकाश करने वाली, (३) जो कभी ताड़ने या व्यथा देने योग्य न हो ।
'गृहं गृहम् अहना यात्यच्छा
दिवे दिवे अधिनाभा दधाना'

ऋ. १.१२३.४, शां.गृ.सू. ३.१.९.

अहन्यः – (१) अहनिभवः (दिन में हुआ) दया. (२) दिन को करने वाला सूर्य – (३) 'अहन् याः' बिना ताड़न के ही चलने वाला अश्व ।
'पुरुप्रैषाः अहन्यो नैतशः'
ऋ. १.१६८.५

अहनी – (१) जीवन में पीडित दुःखित न होते हुए उषासानक्ता (उषा और रात्रि) या स्त्रीपुरुष ।
'उभे यथा नो अहनी निपात'
ऋ. ४.५५.३
(२) रात और दिन ।
'विवर्तेते अहनी चक्रियेव'
ऋ. १.१८५.१, नि. ३.२२.
(रात और दिन दो चक्के के समान घूमते रहते हैं ।)

अहन्ती – किसी को न मारने वाला ।
'नमः सूतायाहन्त्यै'
वाज.सं. १६.१८, तै.सं. ४.५.२.१.

अहम्पूर्वः – अपने को ही सबसे प्रथम रखने वाला ।
'अहंपूर्वः यजतो धिष्ण्या यः'
ऋ. १.१८१.३.

अहंयुः – अहं भाव से युक्त आत्मवान् जितेन्द्रिय ।
'सचायदीं वृषमणाअहंयुः'
ऋ. १.१६७.७

अहंसन – आत्मभाव, आत्मसम्मान का भाव देने वाला इन्द्र, परमेश्वर ।
'प्राचामन्यो अहंसन'
ऋ. ८.६१.९

अहर्जात – दिन में उत्पन्न होने वाला–सूर्य (२) प्रतिदिन का परिचय ।
'अहर्जातस्य यन्नाम'
अ. ३.१४.१, ५.२८.१२.

अहर्दिव – दिनों दिन, दिन रात ।
'संविजन्ते अहर्दिवि'
अ. ५.२१.६

अहर्दृश् – (१) सूर्यदृश–सूर्य को देखने वाला, (२) लौकिक दिन का न कि अदृष्ट का देखने वाला (लौकिकमेव अहः पश्यति न तु पारलौकिकम् अदृष्टम्) (३) दृष्टप्रधान नास्तिक, विषय भोग लोलुप, (४) दिनों को ही गिनने वाला–सूदखोर, कुसीदक (अहानि एव यः पश्यति कुसीदग्रहणाय)
'कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः
कदुवृत्रघ्नो अस्तृतम्
इन्द्रो विश्वां बेकनाटाँ अहर्दृश
उतक्रत्वा पणीरंभि'
ऋ. ८.६६.१०
कब (कदु) इस इन्द्र के बल (तविषीः) महान् और अधृष्ट हैं (महीः अधृष्टाः)? कब इन्द्र का हन्तव्य अहिंसित हुआ (अस्तृतम्) ? अर्थात् कभी नहीं । ऐसा इन्द्र सभी गिनने के वाले (अहर्दृशः) सूदखोरों को (बेकनाटान्) और व्यापारियों को (पणीन्) कर्म से ही अभिभूत करते हैं ।

अहर्विद् – (१) दिन को प्राप्त कराने वाला किरण–समूह, (२) प्रकाश लाभ कराने वाला–आचार्य
'दाधार दक्षमुत्तममहर्विदम्'
ऋ. १.१५६.४, ऐ.ब्रा. १.४०.१९.

अहरहः – अहः + अहः । प्रतिदिन ।
'अहरहर्जायते मासिमासि'
ऋ. १०.५२.३, नि. ६.३५.
यह पृथ्वी स्थानीय अग्नि प्रतिदिन उत्पन्न होता और आधे मास पर भी दर्शपौर्णमासों में ।

अहरित – हारिद्र या पाण्डुरोग से मुक्त ।
'अथो अहरितो भुवत'
अ. १.२२.२

अहःकेतुः – दिन का केतु – सूर्य ।
'अहः केतुना जुषताम्'
वाज.सं. ३७.२१, ३८.१६, मै.सं. ४.९.८, १२८.१३, श.ब्रा. १४.२.१.१, २ .४१, का.श्रौ.सू. २६.४.१४,

अहर्पति – (१) दिनों का पालक, (२) कलावित् पुरुष, (३) सूर्य, (४) भाद्रपद ।
'अहर्पतये स्वाहा'
वाज.सं. ९.२०, १८.२८, मै.सं. १.११.३, १६३.१७, श.ब्रा. ५.२.१.२.

अहर्विद् – विज्ञान का प्रकाश जानने वाला ।
ऋ. १.१.८

अहर्विदा – (द्वि.व) अश्विनों का विशेषण, (२) दिन के समस्त कृत्यो को रीति से जानने वाले

प्रधान और गौणजन, (३) अश्विद्वय ।
'उतसिन्धूं रहर्विदा'
ऋ. ८.५.२१

अहल – (१) अविलेखन योग्य, (२) न पराजित करने योग्य (३) बिनाहल चलाया हुआ परती खेत ।
'अहल कुशवर्तक'
अ. २०.१३१.९

अहवा उ – और ।
'कर्ता सुदासे अहवा उ लोकम्'
ऋ. ७.२०.२

अहविः – अ + हविः (१) यज्ञादि न करने वाला, (२) देने लेने योग्य अर्थात् व्यापार योग्य पदार्थों का भोजन करने योग्य अन्नादि पदार्थों से रहित ।
'जनोयः कश्चित् अहविर्महीयते'
ऋ. १.१८२.३

अहस्त – (१) हस्त रहित, (२) हनन-साधन शस्त्रों से रहित, (३ अप्रशस्त कर्मा विद्यार्थी ।
'अहस्तमिन्द्रं संपिणक् कुणारुम्'
ऋ. ३.३०.८, वाज.सं. १८.६९, नि. ६.१.
बिना हाथ का चूर्ण

अहस्तम् – (क्रि.वि.) हस्त रहित कर ।

अह्नवाय्य – दिन भर में करने योग्य कार्य की मात्रा ।
'विदानो अह्नवाय्यम्'
ऋ. ८.४५.२७.

अह्नःषष्टः – परम व्यापक शक्ति की सर्व व्यापक निगूढ़ शक्ति-परम रूप ।
'उदिता यन्ति अभि षष्ठमह्नः'
अ. ८.९.६

अह्नधर्म – (१) दैनिक घृतरूप सामग्री (२) दिन का घाम ।
'अह्नां घर्मं श्रीणन्तु'
अ. ४.१.२

अह्यः अयः – मेघ में स्थित जल । अहि का अर्थ मेघ मानकर दुर्ग ने ऐसा अर्थ किया है । आर्यसमाजी विद्वान् 'अह्यः दंशयः' ऐसा अन्वय कर प्राणनाशक अर्थ दिया है ।
'यत्रा दशस्यन् उषसो रिणन्नपः
कुत्साय मन्मन् अह्यश्च दंसयः'
ऋ. १०.१३८.१
जिस मेघ के विदीर्ण होने पर (यत्रा) माध्यमिक देव उषा (उषसः) मेघ में स्थित जलों को (अह्यः अपः) देती है (दशस्यन्) -दुर्ग । जिस समय (यत्रा) उषाकाल को प्रदान करते हुए (उषसः दशस्यन्) और ओषजल को ले जाते हुए (अपः रिणन्) ।

अह्यः – नाश न होने वाला ।
'शतचक्रं योऽह्यो वर्तनिः'
ऋ. १०.१४४.४

अह्यः दंसयः – पाप नाशक श्रेष्ठ कर्म ।
'कुत्साय मन्मन् अह्यश्च दंसयः'
ऋ. १०.१३८.१.
परमात्मा के स्तोता के लिए (कुत्साय) पापनाशक श्रेष्ठकर्मों को (अह्यः दंसयश्च) जतलाते हुए -सूर्य

अह्यर्षु – अहि + अर्षु = अह्यर्षु (१) मेघों को लाने वाला वायु, (२) मेघवत्, प्रभुस्वरूप को प्राप्त होने वाला पुरुष
'अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्याम्'
ऋ. २.३८.३

अह्वय – (१) लज्जा दूर करने वाला धन ।
'मेधसाता वाजिनमह्वये धने'
ऋ. १०.१४७.३
(२) अक्षीण, अविनाशी ।
'महिस्थूरं शशयं राधो अह्वयम्'
ऋ. ८.५४.८.
(३) भय, लज्जा और संकोच से रहित । (४) लज्जा न दिलाने वाला, (५) स्वतः प्रकाश वेदमन्त्रों से जानने योग्य ।
'वृणीमहे अह्वयं वाजमृग्मियम्'
ऋ. ३.२.४
(६) कभी नष्ट न होने वाला-अमोघ ।
'प्रजावत् रेतो अह्वयं नो अस्तु'
ऋ. ७.६७.६, तै.ब्रा. २.४.३.७.

अह्वयाणः – (१) विगतलज्जः (बिना लाज या संकोच के)
'दुवस्यन्ति स्वसारो अह्वयाणम्'
ऋ. १.६२.१०
बहनें जैसे निस्संकोच अपने भाइयों की सेवा करती हैं । (२) अह्व +याणः । अलज्जित गमन ।

अग्नि का विशेषण ।
'अनुष्ठुया कृणुहि अह्वयाणम्'
ऋ. ४.४.१४, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.६, का.सं. ६.११, १६.१, नि. ५.१५.
हे अलज्जित गमन अग्नि ! हमारे इस यज्ञ के अभीष्ट अर्थ को कर्म द्वारा कर ।
(३) लज्जारहित निर्भीक ।

अह्वयाणा - लज्जा या-निद्रा से त्यागी हुई स्त्री ।
'अग्र एति युवतिः अह्वयाणा'
ऋ. ७.८०.२

अंहसस्पतिः - सब मासों में अवशिष्ट तिथियों के रूप में सटे हुए काल का पालक मलमास १३ वां मास ।
'अंहसस्पतये स्वाहा'
वाज.सं. २२.३१.

अहा - (ब.व.) (१) दिन, (२) अपराह्न आगे बढ़ने वाले सैन्यदल ।
'अहा विश्वेव सूर्यम्'
ऋ. १.१३०.२
जैसे सभी दिन सूर्य के आश्रय पर रहते हैं । या सभी आगे बढ़ने सैन्यदल ।
'(विश्वा अहा सूर्यम् इव)'

अह्नाम् अग्ने - दिन के पूर्वाह्न में ।
'वस्तोरस्याः वृज्यते अग्ने अह्नाम्'
ऋ. ८.६.८
इस पृथिवी रूपी वेदी पर आच्छादन के लिए दिन के पूर्वाह्न में कुश बिछाया जाता है या यज्ञाग्नि पृथ्वी के निवास के लिए दिन के पूर्वाह्नि में स्थापित किया जाता है।

अह्नाम् अभिपित्व - दिनों का आना, दिनों का प्राप्त होना ।
'सनत् कक्षीवान् अभिपित्वे अह्नाम्'
ऋ. १.१२६.३
दिनों के प्राप्त होने पर (अह्नाम् अभिपित्वे) यश समय उत्तम जितेन्द्रिय युद्ध कुशल और विद्या कुशल पुरुष (कक्षीवान्) सदा प्राप्त करे और उनका भोग करें (सनत्) । कक्षीवान् ऋषि का भी नाम है ।

अह्नाम् केतुः - (१) दिनों का प्रतीकरूप, (२) कृष्ण पक्ष के अन्त में एक कला मात्र अव शिष्ट हो प्रातः काल में उदय लेने वाला चन्द्रमा भी दिन होने का लक्षण है ।
'नवो नवो भवतिजायमानो
अह्नां केतुः उषसामे त्यग्रम्'
ऋ. १०.८५.१९,अ. ७.८१.२, १४.१.२४, तै.सं. २.४.१४.१, मै.सं. ४.१२.२:१८१.५, का.सं. १०.१२, नि. ११.६.

अह्नां विमानः - (१) दिनों का निर्माता सूर्य, (२)न नाश होने वाले तत्वों का जगतरूप में बनाने वाला
'विमानो अह्नां भुवनेषु अर्पितः'
ऋ. ९.८९.४५, साम. २.९६६.

अह्नां सूरः - दिनों का उत्पादक
'सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः'
अ. १८.४.५८

अहि - (१) इन्द्र ।
'अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे'
ऋ. ७.३४.१६, नि. १०.४४.
(तू जल में उत्पन्न इन्द्र की स्तुति करता है) (२) मेघ । (एति अन्तरिक्षे अन्तरिक्ष में चलता है अतः 'अहि' है)। इ (चलना) + इन् = अयि । य का ह होकर 'अहि' हो गया ।
(३) मेघ की विद्युत । विद्युत् मेघ संचारी है-मेघ का का हनन करती है । (४) सर्प (एति सर्पति) । इ + इन् = अयि । इ का एत्व और य का ह । अहि । (५) आङ् + हन् । इण् (आङि श्रि हनिभ्यां प्रेश्वश्च) = अहि ।
(६) सूर्य जो अन्धकार का नाश करता है आधुनिक अर्थ-सूर्य, सर्प राहु, वृत्रासुर , धूर्त, मेघ ।
सर्प के अर्थ में-
'अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं
ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्
पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः'
ऋ. ६.७५.१४, वाज.सं. २९.५१, तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३: १८७.४, नि. ९.१५, आप.श्रौ.सू. २०.१६.१२,
जो यह ज्या से होने वाली हिंसा को निवारता हुआ (ज्याया हेतिं परिवाधमानः) शरीर से (भोगैः) सांप जैसे अपने को लपेटता है (अहिः इव) उसी प्रकार धनुर्धारी के प्रकोष्ठ में बन्धनीय

हस्तघ्न (हस्तघ्नः) सभी प्रजाओं को (वयुनानि) जानते हुए के समान इस धनुर्धारी पुरुष का सब प्रकार से रक्षा करे (परिपातु) ।
इन्द्र के अर्थ में अहि का प्रयोग –
'अब्जामुक्थै रहिं गृणीषे
बुध्नेन दीनां रजःसु षीदन्'
ऋ. ७.३४.१६, नि. १०.४४.
हे स्तुति करने वाला, तू जलों में तिष्ठित होकर अर्थात् जल के निमित्त अन्तरिक्ष में वर्तमान उदक जन्मा इन्द्र के स्तोत्रों से स्तुत करता है ।
(७) अविनाशी प्रकृति तत्व ।
'यो हत्वाहिमरिणात् सप्तसिन्धून्'
ऋ. २.१२.३, अ. २०.३४.३, मै.सं. ४.१४.५, २२२.११,
(८) प्रकृति का व्यापक सूक्ष्म रूप ।
(९) हनन करने योग्य शत्रु ।
'अस्य मदे अहिमिन्द्रोजघान'
ऋ. २.१५.१

अहिगोपा – अहिना मेघेन गुप्ता । मेघ से रक्षित । अहि के अर्थ के लिए ।
'दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठम्
निरुद्धा आपः पणिनेव गावः
अपां बिलम् अपिहितं यदासीत्
वृत्रं जघन्वाँ अप तत् ववार ।'
ऋ. १.३२.११, नि. २.१७.
मेघ से रक्षित (अहिगोपाः) वृत्र के अधिकृत दासपत्नीःआपः) पणि असुर के द्वारा रोकी हुई गायों की तरह (पणिना निरुद्धाः गावः) अन्तरिक्ष में थमे हुए थे । वह जलों का द्वार जो बन्द था उस वृत्र को इन्द्र ने मारा और बन्द द्वार को खोल दिया ।

अहिनामा – अभिमुख होकर लड़ने वाला नायक ।
'पैद्वो न हि त्वम् अहिनाम्नां हन्ता'
ऋ. ९.८८.४

अहिभानवः – मरुतों का विशेषण । विद्युत् द्वारा मेघों के प्रकाशक मरुद्गण ।
'मरुतो अहिभानवः'
ऋ. १.१७२.१.

अहिमायः – (१) सर्ववत् कुटिला चारी (२) मेघवत् चेष्टा वाला, (३) आत्मा को ढंक लेने वाला अज्ञानी पुरुष, (४) अधिमाय–वर्ण विपर्यय द्वारा अधिक बुद्धिमान् का द्योतक है ।
'वि पिप्रोः अहिमायस्य दृढ़ाः'
ऋ. ६.२०.७

अहिर्बुध्न्यः – यः अहिः स बुध्न्यः (जो अहि है वही बुध्न्य है) । बुध्न अन्तरिक्ष का नाम है । अतः अन्तरिक्ष में निवास करने वाला बुध्न्य हुआ । अर्थ । (१) अन्तरिक्षस्थ मेघ, अहि के अर्थ के लिए ।
'मानोऽहिर्बुध्न्योरिषे धात्
मा यज्ञो अस्य स्त्रिधदृतायोः'
ऋ. ७.३४.१७, नि. १०.४५.
अहिर्बुध्न्य या मेघ हमारे हिंसक को न दे (द्विषे माधात्) । इस यज्ञ की कामना वाले यजमान का (ऋतायोः अस्य) यज्ञ विनष्ट न हो (मा म्रिधत्) ।
पुनः,
'उतनो अहिर्बुध्न्यः श्रृणोतु'
ऋ. ६.५०.१४, वाज.सं. ३४.५३, मै.सं. १.६.२, ८८.१२, आश्व.श्रौ.सू. ५.२०.६, शां.श्रौ.सू. ८.६.८, आप.श्रौ.सू. ५.१९.४, १३.१६.३, नि. १२.३३ .

अहिरण्यवान् – अ + हिरण्यवान्। सुवर्णादि धारण न करने वाला ।
'अमणिः अहिरण्य वान्'
अ. २०.१२८.६, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.१.

अहिशुष्य – अग्रगामी या सर्वतोमुख जाने वाले बल का स्वामी इन्द्र ।
'आस्मात् जगम्यात् अहिशुष्म सत्वा'
ऋ. ५.३३.५

अहिंसती – किसी प्रकार का कष्ट न देने वाली ।
'शाले प्रैम्यहिंसतीम्'
अ. ९.३.२२

अहिंसान् – अहिंसक ।
'अहिंसानस्य सश्चिरे'
ऋ. ५.६४.३

अहिहन् – (१) मेघ का नाशक सूर्य, (२) अज्ञान आवरण का नाशक, (३) प्रकृति के अविकृत तमस् को दूर करने वाला परमेश्वर, (४) वृत्र–नाशक इन्द्र ।
'यो धौतीनाम् अहिहन् नारिणक् पथः'
ऋ. २.१३.५

(५) आगे आने वाली रोक या डाँट को धक्का मारने वाला अश्व, (६) अज्ञान-नाशक आचार्य या परमेश्वर ।
(७) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाला इन्द्र -सूर्य
(८) प्रकृति के व्यापक स्वरूप में परमाणु में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाला-परमेश्वर ।
'इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः'
ऋ. २.३०.१

अहिहा - (१) मेघ पर आघात करने वाला इन्द्र-सूर्य, (२) अव्यक्ततम या प्रलय दशा में अविकृत प्रकृतितम ।
'प्रैरयत् अहिहाच्छा समुद्रम्'
ऋ. २.१९.३

अहीशु - (१) अभीशु, (२) प्रग्रहवान् (३) राष्ट्र की बागडोर संभालने वाला शासक ।
'और्णवाभमहीशुवम्'
ऋ. ८.७७.२, ३२.२६.
(४) मेघ या दुष्ट के समान, बढ़ने वाला दुष्ट जन ।
'पिपुं दासमहीशुवम्'
ऋ. ८.३२.२

अहुत - जो हनन नहीं करता ।
'वाम् अहुतेभ्यः'

अह्रुतप्सुः - सरल सीधी प्रकृति ।
'वहन्ते अह्रुतप्सवः'
ऋ. ८.२०.७

अहुताद् - (१) बिना बुलाए या निमन्त्रण दिए भोजन करने वाला ।
'ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति'
अ. १८.२.२८
(२) आहुति न दिए गए केवल भिक्षा मात्र से प्राप्त भोजन करने वाला ।
'हुतभागा अहुतादश्च देवा'
अ. १.३०.४

अह्रुतप्सवः - कुटिलता रहित आजीविका या वृत्ति वाला पुरुष ।
'तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः
शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः'
ऋ. १.५२.४
रक्षाकारी बलवान् प्रतिकूल शत्रुओं से रहित, कुटिलता रहित आजीविका या वृत्ति वाले वीर पुरुष वृत्र या विघ्न कारी शत्रु के विनाशकार्य में (वृत्र हत्ये) इन्द्र या सभाध्यक्ष के पीछे रहें ।

अहूमहि - (हम) पुकारते हैं ।
'अहूमहि श्रवस्यवः'
ऋ. ६.४५.१०, ८.२४.१८, अ. २०.६४.६, साम. २.१०३६.

अहृणानः - (१) अनादर या कोप से रहित ।
'किमे हव्यमहृणानो जुषेत'
ऋ. ७.८६.२
(२) बिना क्रोध किए, प्रसन्नता पूर्वक । हृणीङ् (रोषणार्थक धातु) + शानच् = हृणानः । न हृणानः = अहृणानः ।

अहृणीयमान - संकोच और लाज किए बिना ।
'सर्वा धुक्ष्व अहृणीयमानः'
अ. १८.४.६
पुनः-
'अनुमन्यन्ताम् अहृणीयमानाः'
अ. १.३५.४, ८.२.२१.

अहृणीयमाना - क्रोध-रहित स्त्रीपुरुष, राजा अमात्य ।
'राजाना क्षत्रमहृणीयमाना'
ऋ. ५.६२.६.

अहेडत् - नञ् + हेड + शतृ = अहेडत् । क्रोध या घृणा न करता हुआ, अक्रुद्ध, घृणा-रहित ।
'अहेडता मनसा श्रुष्टिमावह'
ऋ. २.३२.३
(अक्रुद्ध मन से)

अहेडन् - अनुग्रह करता हुआ ।
'तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेडन्
राजन् सोम प्रतिहव्या गृभाय ।'
ऋ. १.९१.४, तै.सं. २.३.१४.१, मै.सं. ४.१०.३, १४९.१३, का.सं. १३.१५ , तै.ब्रा. २.८.३.२.
उन सब सामर्थ्यों से हम पर अनुग्रह करता हुआ (अहेडन्) देने और ग्रहण करने योग्य समस्त पदार्थों को (हव्या) प्रत्येक प्राणी को प्रदान करें (प्रतिगृभाय) ।

अहेडमानः - (१) अनादर नहीं करता हुआ । अ + हेड + शानच् = अहेडमानः। (२) क्रुद्ध न होता हुआ -दया.

अह्वे - 'आह्वयामि' पुकारता हूँ ।

आ

आ – (१) अधि के अर्थ में प्रयुक्त (२) समन्तात् –चारों ओर से ।
समन्तात् के अर्थ में
'पुरुत्वा दाश्वान् वोचे
अरिरग्ने तव स्विदा
तोदस्येव शरण आ महस्य'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७, नि. ५.७.
हे अग्ने, मैं दाता तथा तेरा ही सेवक (तव स्विद् अरिः) तुझे पुकारता या तुझसे बहुत वरदान मांगता हूँ । जैसे महान् भूखण्ड के बिल में (महस्य तोदस्य शरण इव आ) चारों ओर से (आ) जल आकर भी बिल को नहीं भरता उसी प्रकार यजनामों के हवियों से तू नहीं ऊबता ।
(३) अभिमुख, सम्मुख (४) प्राक् अर्थ में ।
'चतुरश्चिद् ददमानाद् बिभीयादानिधातोः ।
न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ।'
ऋ. १.४१.९, नि. ३.१६.
अक्षों अर्थात् पाशों को (चतुरः) धारण करते हुए धूर्त जुआरी से (ददमानात्) पाश रखने के पूर्व जैसे डरा जाता है, वैसे (चित्) दुर्वचन बोलने या सुनने से डरें । कभी दुर्वचन बोलने या सुनने की चेष्टा न करें ।
'आत्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते ।
उश्मसित्वा सधस्थ आ'
ऋ. ८.४५.२०, नि. ३.२१.
हे इन्द्र ! हम तेरा आश्रय उसी प्रकार लेते हैं जैसे वृद्ध पुरुष लकुटी या डंडे का । हे बल के पोषक (शवसस्पते) ! यज्ञस्थान में हम तुझे देखने या स्तवन करने की कामना करते हैं (आत्वा उश्मसि) । 'अधि' अर्थ में ।
'आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि
तुविकूर्विमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ।'
ऋ. ८.६८.१, साम. १.३५४, २.११२१.
'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे
स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आं
अपो वृणाना वितनोति मायिनी ।'
ऋ. ५.४८.१
वैद्युताग्नि की स्तुति (सा.) । आप् । की गणना भी विश्वेदेवों में की गई है (आपो वै विश्वेदेवाः)। हम सुखकारक (कत् उ) प्रिय (प्रियाय उ) अपने ही बल के आश्रय पर रहने वाले (स्वक्षत्राय), जहां अपना ही यश है उस के लिए (स्वयशसे), महान् विश्वदेवों के स्थान के लिए (धाम्ने) याचना करते हैं (मनामहे) । जो मध्यमा वाक् के वासस्थान अन्तरिक्ष के ऊपर (यत् मेन्यस्य रजसः आ) मेघ में (अभ्रे) स्थित जलों को (अपः) रखे या ढांपे हुई (आ वृणाना) मायाविनी या प्रज्ञावती हो वर्षा बरसाती है (वितनोति) । अन्य अर्थ – सर्वतोज्ञेय (आमेन्मस्य) अन्तरिक्ष लोक के मेघ में (रजसः अभ्रे) जैसे जल को बरती हुई (यत् अप वृणना) उसे वृष्टि द्वारा फैलाती है (वितनोति) वैसे बुद्धिपूर्वक नीतिकर्मों को बरती हुई (मायिनी) सर्वत्र फैलाती है । सुख के लिए (कत् उ), प्रिय स्थान के लिए, स्वकीय क्षात्र तेज के लिए तथा स्वकीय महान् यश के लिए हम उस नीति को समझे (मनामहे) ।
(५) साक्षात् ।
'अत आ त त्रदास्पृशो निषेदुः'
ऋ. ४.५०.३, अ. २०.८८.३
(६) और
'मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या'
ऋ. १०.२२.२

आइयाते – आता है । आ + इ का लट् प्र.पु. द्वि.व. में रूप । अर्थ आवें ।

आकर – (१) समूह, आश्रय ।
'आकरे वसोः जरिता पनस्यते'
ऋ. ३.५१.३, मै.सं. ४.१२.३, १८४.१.
(२) सब ओर से संग्रह करने में कुशल ।
'न किल्विषात् ईषते वस्व आकरः'
ऋ. ५.३४.४
(३) कर्मों का करने वाला (४) ऐश्वर्यों को धारण करने वाला (५) खनि, खान ।
'या आकरः सहस्रा यः शतामघः'
ऋ. ८.३३.५

आक्रम – (१) सब तरफ आक्रमण करने में समर्थ, (२) आक्रमण ।
'अक्रमोऽसि आक्रमाय त्वा'
वाज.सं. १५.९, पंच.ब्रा. १.१०.१२, वै.सू. २७.२७.

आक्रय – सब प्रकार के पदार्थों का क्रय विक्रय ।
'आक्रयाया अयोगूम्
वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

आक्ताक्ष – आंजी हुई आंख वाला ।
'य आक्ताक्षः स्वभ्यक्तः'
अ. २०.१२८.७, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.२.

आक्षाणः – (१) शत्रु-हनन का कार्य ।
'आक्षाणे शूरवज्रि वः'
ऋ. १०.२२.११
(२) आश्नुवानः – जो चारों ओर से व्याप्त होता है । 'आश्नुवानः' से 'आक्षाणः' हो गया है आङ् + आश् (व्याप्त्यर्थक) + शानच् = आश्नुवानः । आङ् + अश् + सिप् + शानच् (सिपं बहुलं लेटि) । अश् का ष् , पुनः ष् का क् , सिप् के स् का ष् होकर 'आ' +अक् + ष् + आव बना । इसी से 'आक्षाण' सिद्ध हुआ । जिसमें एक दूसरे से व्याप्त होकर लड़ा जाय (संग्रामे इतरेत्तरं व्याप्नुवन्ति योधाः) वह स्थान 'आक्षाण' है । इन दिनों अखाड़ा शब्द आक्षाण का ही अपभ्रष्टरूप है ।

अक्षिषुः – आयन् (व्याप्नुवन्ति) । उदय से लेकर अस्ततक । आङ् + अश् को लङ् प्र.पु.ए.व. का रूप ।

अकीवत् – कितने भी दूर पर विद्यमान ।
'आकीवतः सललूकं चकर्थ'
ऋ. ३.३०.१७, नि. ६.३.

आक्षी – अश्वियों या स्त्री पुरुषों का विशेषण । आंखों के समान मार्ग दिखाने वाले ।
'आक्षी शुभस्पती दन्'
ऋ. १.१२०.६

आकूति – (१) प्रतिभा ।
'मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये'
अ. ६.४१.१
(२) संकल्प शक्ति ।
'आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु'
ऋ. १०.१२८.४, अ. ५.३.४, तै.सं. ४.७.१४.२, का.सं. ४०.४.
(३) अनुकूल सम्मति, (४) सद्बुद्धि, (५) दृढ़ संकल्प ।
'अर्वाङ् आकूत्या चर'
अ. ३.२.३

आकूतिदेवी – सब गूढ़तत्वो को दर्शाने और प्रकाशित करने वाली, वाक्य तात्पर्य-रूप शक्ति ।
'आकूतिंदेवीं सुभगां पुरो दधे'
अ. १९.४.२, तै.ब्रा. २.५.३.२.

आकूतिप्रः – (१) प्रजा के समस्त संकल्पों को पूर्ण करने वाला, (२) सब कामनाओं को पूर्ण किया आत्मा ।
'आकूतिप्रोऽविर्दत्तः'
अ. ३.२९.२

आकृणुते – आभिमुख्येन कुरुते (परिचर्या के लिए सामने करता है) ।

आकृषे – आकुरुषे (उपगम्य तेन तेन देवतात्मना कुरुषे), कुरुष्व, निर्वर्तय (लेट् म.पु.ए.व.) । अर्थ- करते हो, निकट आकर उस उस देवता को रूप में करते हो ।
'एता विश्वा सवना तूतुमाकृषे'
ऋ. १०.५०.६, नि. ५.२५.
इन सभी स्थानों को शीघ्र निकट आकर निवर्तित कर ।

आके – समीप विद्यमान ।
'त्वमग्ने ऋभु राके नमस्यः'
ऋ. २.१.१०

आक्षेति – क्षि-रहना । ऊंचे स्थान पर विराजता है ।

आखण्डलः – प्रलयकारी विघ्ननाशक, संशयच्छेदक, इन्द्र, परमेश्वर, खण्ड खण्ड में व्यापक ।
'आखण्डल प्रहूयसे'
ऋ. ८.१७.१२, अ. २०.५.६, २.७६, नि. ३.१०.
आखण्डयिता (मेघों या शत्रुओं को आखण्डित करने वाला -इन्द्र का एक नाम) । आङ् + खड् (भेदन अर्थ में) + अलच् = आखण्डल (बाहुलकविधि से सिद्ध)

आखरः – (१) चारों ओर सुखमय परमेश्वर, (२) गृह, (३) पशुशाला ।
'यथाखरो मघवन् चारुरेष'
अ. २.३६.४
(३) ज्वालाओं का वासस्थान सूर्य ।
'आखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः'
ऋ. १०.९४.५, अ. ६.४९.३, का.सं. ३५.१४.

आखरेष्ठः – (१) चारों ओर से खोदी हुई खाई के बीच में स्थित दुर्ग (२) दुर्ग के समान सुरक्षित अग्नि ।
'कृष्णोऽस्याखरेष्ठः अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि'
वाज.सं. २.१, तै.सं. १.१.११.१, का.सं. १.११,३१.१०, श.ब्रा. १.३.३.१,

आख्यात – 'भावप्रधानमारख्यातम्' । असत्वभूत धातु का अर्थ आख्यात है इसी भावना का नाम उत्पादन या क्रिया भी है ।
'धात्वर्थो भावना सैवोत्पादना सैवच क्रिया ।
असत्वभूतो यावश्चतिङ् पदैरभि धीयते ।
यावत् सिद्धमसिद्धञ्च साध्यत्वेनाभिधीयते
आश्रितक्रम रूपत्वात् सा क्रियेत्यभिधीयतेहरिः'
आ + ख्या + क्त = आख्यात् । आख्या के चार भेद हैं – (१) कर्तृवाच्य, (२) भाववाच्य, (३) कर्मवाच्य और कर्मकर्तृवाच्य, जैसे –
(१) देवदत्तः पचति (देवदत्त पकाता है) कर्तृवाच्य
(२)देवदत्तेन भूयते (देवदत्त से हुआ जाता है) भाववाच्य ।
(३) देवदस्तेन ओदनः पच्यते (देवदत्त से भात पकाया जाता है)–कर्मवाच्य ।
(४)पच्यते ओदनः स्वयमेव (भात स्वमेव पकता है) –कर्मकर्तृ वाच्य ।
इन चारों उदाहरणों में क्रिया ही प्रधान है ।

आखिदत् – दीनों पर नियुक्त पुरुष ।
'नम आखिदते च प्रखिदते च'
वाज.सं. १६.४६, तै.सं. ४.५.९.२, मै.सं. २.९.८, १२७.३, का.सं. १७.१५.

आखुः – (१) भूमि के चारों ओर धातु ओषधियों का खोदने वाला खनक, (२) चूहा जो भूमि खन कर रहता है ।
'स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्तेपशुः'
वाज.सं. ३.५७
'हतं तदं समङ्कमाखुमश्विना'
अ. ६.५०.१

आगच्छान् – आगमिष्यन्ति (आवेंगे) । आङ् + गम् + झि (लृट) = आगच्छान् । लोक में 'आगमिष्यन्ति ।

आगत् – आगमत् (आया)
आङ् + गम् + शप् + तिप् = आगत् । 'बहुलं छन्दसि' –पा. २.४.७३ से शप् और म् का लोप ।
'नदस्य मारु धतः काम आगत्
इत आजातो अमुतः कुतश्वित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति
धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ।'
ऋ. १.१७९.४, नि. ५.२.
लोपामुद्रा अपने पति अगस्त्य से कहती है–जप करते हुए (नदतः) एवं इन्द्रियों पर संयम करते हुए (रुधतः) ब्रह्मचारी अगस्त्य के प्रति कामभावना मेरे प्रति आई (कामः या आगत्) । न मालूम यह काम मेरे इस शरीर में (इतः) या उस अगस्त्य के शरीर से (अमुतः) या और कहीं से (कुतश्चित्) उत्पन्न हुआ (आजातः)। कामाविष्ट हो लोपामुद्रा अपने पति अगस्त्य के पास (वृषणम्) जाती है (नीरिणाति) । वह अधीर हो अगस्त्य को चित्त से पान करती या देखती है (धीरं श्वसन्तं धर्यात) ।

आगत – आगच्छत (आओ) । आङ् + गम् + त (लङ् म.पु.ब.वचन) = आगत । वेद में 'बहुलं छन्दसि' से शम् का लोप 'होकर अनुदात्तापदेशः' (पा.६.४.३७) से म् का लोप
'ओमासश्चर्षणी धृतो
विश्वेदेवास आगत ।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम्'
ऋ. १.३.७, वाज.सं. ७.३३, तै.सं. १.४.१६.१, मै.सं. १.३.१८, ३७.१, का.सं. ४.७. श.ब्रा. ४.३.१.२७, ऐ.आ. १.१.४.११, नि. १२.४०.
हे विश्व देवा, जो आप मनुष्यों के धारण या पालन करने वाले (चर्षणीधृतः) तथा अपने उपकार कर्मों द्वारा उनके रक्षिता या तर्पणार्ह हैं (ओमासः) वे आप हमें दान देने का संकल्प किए (दाश्वांसः) इन दाता यजमानों के तैयार किए सोम रस को पान करने आओ (दाशुषः सुतम् आगत) ।

आगतिः – (१) आज्ञा सुनते ही आ जाना, उपस्थित होना ।
'त्वङ्म आनतिरागतिः'
वाज.सं. २०.१३
(२) आगमन, (३) प्राप्ति ।
'तासामध्वर्युरागतौ
'यवो वृष्टीव मोदते'

ऋ. २.५.६.

आगधिता – आसमन्तात् गृहीता-आलिंगिता । आङ् + गह् + क्त + टाप् = आगधिता (गह् का गध् आदेश) । गध् धातु मिश्रीभाव में प्रयुक्त है ।

अर्थ (१) आलिंगिता –सा. (२) सभी वर्गों में मिली हुई । –(दया.)

'आगधिता परिगधिता
या कशीकेव जङ्गहे
ददानि मह्यं यादुरी
यासूनां भोज्या शता ।'

ऋ. १.१२६.६, नि. ५.१५.

बृहस्पति की पुत्री ब्रह्मवादिनी रोमशा ने अपने पति भावयव्य से रति-प्रार्थना की । इस पर भावयव्य हास्य पूर्वक कहते हैं-ह रोमशे ! एक दूसरी स्त्री (भोज्या) आलिंगित की गई (आगधिता) जो प्रगाढ़ रूप से आलिंगन करने पर (परिगधिता) नेवली की तरह (कशीका इव) संभोग में (जंगहे) बहुत रेत वाली (यादुरी) सौ सौ संभोग मुझे देती है (यासूनां शता) –सा. स्वा. दयानन्द का अर्थ – राजा कहते हैं-जो सब कर्मों में मेरे साथ मिली हुई (या आगधिता) और सब तरह से संयुक्त (परिगधिता) रानी पूर्णतया गृहीत राज कर्म में (जङ्गहे) चाबुक की तरह (कशीका इव) शासिका है वह मेरी पत्नी प्रयत्नशीलों में अधिक प्रयत्नशीला होती हुई (यासूनां यादुरी) मुझे राज्य पालन संबन्धी अनेको साहाय्य प्रदान करती है (शता भोज्या ददाति) ।

अगनिगन्ति – आगच्छति । आङ् + गम् + तिप् । निपातन से सिद्ध । अर्थ-आता है ।

आगम – (१) सहवास, (२) पुत्रोत्पत्ति करने का उचित अवसर ।

'तं त्वमा गमयागमे'

अ. ६.८१.२

आगमिष्ठ – आने वालों में सबसे उत्तम –सूर्य ।

'देवां ओहानोऽवसागमिष्ठः'

ऋ. ६.५२.५

आगर – घर ।

'य आगरे मृगयन्ते'

अ. ४.३६.३

आगस् – आङ् + गम् + असुन् = आगस् । बाहुलक नियम से कित् होने के कारण अम् रूपी टि का लोप । अर्थ –पाप । यह कर्त्ता के आगे फल रूप में आता है अतः आगस कहलाया ।

'पापापराधयोरागस्' –अमरकोष

आगहि – आगच्छ (आ) । आङ् + गम् + सि । सि का लोट् में हि और 'बहुलं छन्दसि' से शप् का लोप । 'अनुदात्तापदेश' से म का लोप ।

'प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
'मरुद्भिरग्न आ गहि ।'

ऋ. १.१९.१, साम. १.१६, आश्व.श्रौ.सू. २.१३.२, वै.सू. २३.८, कौ.सू. १२७.७, नि. १०.३६.

हे अग्ने । उस अङ्ग –वैकल्य रहित यज्ञ में आकर (त्यं चारु अध्वरंप्रति) सोम-पान या दुग्ध पान के लिए (गोपीयाय) तू पुकारा जाता है, अतः तू मरुतों के साथ आ । पुनः –

'अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु ।
मरुद्भिरग्न आगहि ।'

ऋ. १.१९.९, ८३.७, अ. २०.९९.१, साम. १.२५६, २.९२३, ऐ.ब्रा. ४.२९.१३,५.१८.२१, ऐ.आ. ५.२.२.२, आश्व.श्रौ.सू. ५.१५.२, शां.श्रौ. सू. ७.२०.३, वै.सू. ३९.६, साम.वि.ब्रा. ३.६.८, नि. १०.३७.

पुनः–

'आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि'

ऋ. ८.४.३. साम. १.२५२, २.१०७.१, नि. ३.२०.

आगन्तन – आओ ।

'आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसः
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिः
तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे'

ऋ. ५.५७.१, कौ.ब्रा. २०.४.२३.३, श.ब्रा. १३.५.१.१२, नि. ११.१५.

हे रुद्रो ! आप इन्द्र के साथ समान प्रेम के साथ जल लाते हुए , सोने के रथ से आते, इस यथाशास्त्र किए जाने वाले यज्ञ के लिए (सुविताय) आओ (आगन्तन)। हमारी यह स्तुति आप लोगों की कामना करती है । अतः आप जैसे वर्षा ऋतु में द्युलोक से जल (दिवः उत्सः) जलार्थी लोक के लिए आते हैं, वैसे आओ ।

आग्रयण – (१) 'अग्र' अर्थात् मुख्य पद प्राप्त करने

योग्य, (२) अग्रपद प्राप्त सर्वोत्तम पदाधिकारी, (३) सर्वधातुओं में मुख्य स्थान वाला –शुक्र –सोम ।

'आग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः

वाज.सं. ७.२०, तै.सं. १.४.१०.१, ११.१, मै.सं. १.३.१३३५.९, श.ब्रा. ४.२.२.९,

(४) आग्रयण ओर मार्गशीर्ष का विशेष यज्ञ

'आग्रमणश्च वैश्वदेवश्च मे

वाज.सं. १८.२०, तै.सं. ४.७.७.१, मै.सं. २.११.५, १४३.५,

(५) निधनवन् साम से उत्पन्न आग्रयणग्रह ।

(६) आगे बढ़ने वाला शूरवीरों का पद ।

'निधनवत आग्रयणः'

वाज.सं. १३.५८, तै.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.७.१९:१०४.१३, का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.१.२.८

आगात् – आगमत् (अगच्छति –आता है) । यहां लट् (वर्तमान्) । के अर्थ में लुङ् (भूत) का प्रयोग है ।

'इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्
चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवाय
एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ।'

ऋ. १.११३.१, साम, २.१०९९, नि. २.१९.

द्योतमान ग्रहों में यह उषा श्रेष्ठ प्रकाश पूर्व दिशा में आता है । यह प्रकाश चायनीय या पूजनीय (चित्रः) अन्धकारावृत सभी पदार्थों का प्रकाशक (प्रकेतः) तथा सर्वत्र व्यापक (विभ्वा) होकर प्रकट हुआ (अजनिष्ट) और जैसे रात सूर्य के निकट से उत्पन्न होती है उसी प्रकार से इस रात ने भी उषा की उत्पत्ति के लिए (उषसे सवाय) अपने अपर भाग रूपी अवकाश के लिए कल्पना की (योनिम् आरैक्) या रात्रि के सकाश से उत्पन्न उषा (प्रसूता उषा) सूर्य के जन्म के लिए (सवितुः सवाय) कारण होती है । इसी प्रकार रात्रि ने भी आत्मलाभ के लिए या उषा के लिए रात के पिछले भाग को दे दिया । अर्थात् रात्रि का पिछला पहर ही उषाकाला है ।

आगार – (१) आश्रय, (२) देह ।

'पर्यागारं पुनः पुनः'

अ. २०.१३२.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१८.१८.

आग्नावैष्णव – अग्नि और वैष्णव विभाग का ।

'वामना अनड्वाहः आग्ना वैष्णवाः'

वाज.सं. २४.८, मै.सं. ३.१३.९, १७०.६.

आग्निमारुत – (१) अग्नि और मरुत् का, (२) अग्नि और मरुत विभाग का ।

'कल्याषा आग्निमारुताः'

वाज.सं. २४.७

अग्निवेशि – अग्नि के अधीन रहने वाली प्रजाओं के हितार्थ ।

'सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे'

ऋ. ५.३४.९

आग्नीध्र – (१) अग्नि के धारण करने वाले सूर्यादि लोक से प्राप्त, (२) तेज धारण करने वाले राजपद से प्राप्त ।

'पिबाग्नीध्रात तवभागस्य तृप्णुहि'

ऋ. २.३६.४, अ. २०.६७.५

आंगूष्य – (१) सबको शरणवस् प्राप्य (२) अंग अंग में बसने वाला आत्मा ।

'आङ्गूष्यं पवमानं सखायः'

ऋ. ९.९७.८,

आग्नेयः – अग्नि देवता वाला ।

'कृष्णग्रीवं आग्नेयो रराटे पुरस्तात्'

वाज.सं. २४.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१०,

आघाटा – बड़े बल से पीटा गया नगाड़ा आदि बाजा ।

'यत्राघाटाः कर्कर्यः संवदन्ति'

अ. ४.३७.४

आघाटी – (१) बार बार पटका हुआ वस्त्र, (२) वीणा का स्वर ।

'आघाटिभिरिव धावयन्'

ऋ. १०.१४६.२, तै.ब्रा. २.५.५.६.

आघ्नाना – हाथों से छाती पीटती हुई स्त्री ।

'परि नृत्यन्ति केशिनी राघ्नानाः पाणिनोरसि'

अ. १२.५.४८.

आघृणिः – आङ् + घृ (क्षरण और दीप्ति अर्थ में) (१) हवि आहरण करने वाला, (२) दीप्ति वाला (३) सूर्य, (४) ज्ञान में प्रदीप्त पोषक विद्वान्–

'नहि त्वा पूषन् अतिमन्य आघृणे
न ते सख्यमपह्नुवे'

ऋ. १.१३८.४.

हे वृष्टि बरसाने वाले या हवि आहरण करने वाले या दीप्ति वाले या ज्ञान से प्रदीप्त पोषक

पूषन या विद्वन् ! तुझ से बढ़कर मैं किसी को नहीं समझता और न आपकी मित्रता को ही छिपाता हूँ ।
आगतहृणिः, आगतदीप्तिः, आगतक्रोधः ।
निघण्टु में घृणि का पाठ दीप्ति कर्मों में है । इसका अर्थ क्रोध भी है । लाक्षणिक अर्थ सूर्य है । स्वा.दयानन्द ने इसका अर्थ ज्ञान से प्रदीप्त किया है । घृ (क्षरण, दीप्ति) मा घृणु से घृणि शब्द बना है । घृ + निन् = घृणिः ।
वाचस्पत्य के अनुसार 'हृणिया' और अमरकोष के अनुसार 'हृणीवा' का प्रयोग घृणा अर्थ में होता है । 'हृणीङ्' धातु दोष एवं लज्जा अर्थ में आया है ।
'एहि वां विमुचो नपात्
आघृणे सं सचावहै ।
रथीर्ऋतस्य नो भव ।'
ऋ. ६.५५.१.
हे प्रजाओं को अन्धकार से मुक्त करने वाला पूषन् (विमुचः), हे नाती (नपात् -जल से अग्नि और अग्नि से सूर्य) तथा हे आगतदीप्ति-सूर्य (आघृणे) तू आ (एहि) । हम दोनों (वाम्) परस्पर एक दूसरे की सेवा करते हैं (संसचाव है) या सायण के अनुसार मुझ स्तोता के यहां आ (वाम् एहि)। तू हम लोगों के यज्ञ का गमयिता हो (नः ऋतस्य रथीः) हो (भव) ।
अन्य अर्थ- विषपादिकों से विमुक्त (विमुचः) पतित नहीं होने वाले (नपात्) और ज्ञान से प्रकाशित पोषक विद्वान् (आघृणे) आइए (एहि) । हम दोनों भली प्रकार धर्म सेवन करें (वां संसचाव है) । आप हमारे लिए सत्य विद्या के प्राप्त कराने वाले हो (ऋतस्य रथीः भव) ।
पुनः - सूर्य के अर्थ में
'आघृणे धरुणं दिवः'
ऋ. १.२३.१३

आङ्गिरस - (१) अंग अंग में व्यापक प्राण (२) लोकों में रस या परम बल रूप से विद्यमान ।
'बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान्'
ऋ. ६.७३.१, अ. २०.९०.१
(३) अथर्ववेद का विद्वान्
'सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणः'
ऋ. १०.६८.२, अ. २०.१६.२

आङ्गिरसः हिरण्यस्तूपः - अंगिरस का पुत्र तथा अर्चन का पिता हिरण्यस्तूप ।
'हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा
अङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्'
ऋ. १०.१४९.५, नि. १०.३३.
हे सविता । जिस प्रकार अङ्गिरस के पुत्र तथा मेरे पिता हिरण्य स्तूप ने अन्न निमित्त यज्ञ में आमन्त्रित किया.... ।

आङ्गिरसी - (१) अंगों में रस बल और धातु की पोषक ओषधि ।
'आथर्वणीराङ्गिरसीः'
अ. ११.४.१६
(२) अथर्व वेद का विद्वान् विज्ञानी ।
'याः कृत्या आङ्गिरसीः'
अ. ८.५.९
(३) अंग या शरीर मे रस को उत्पन्न करने वाली, या अंगिरा (अथर्ववेद के विद्वान्) की परीक्षित ओषधि ।
'या रोहन्त्याङ्गिरसीः'
अ. ८.७.१७
(४) अग्नि के उत्पन्न होने वाली पृथिवी ।
'ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा,
ऊर्जं मयि धेहि ।'
वाज.सं. ४.१०, वाज.सं.(का.) ४.४.२, तै.सं. १.२.२.२, ११.५, का.सं .२.३, श.ब्रा. ३.२.१.१४.

आङ्घूष - आङ् + घुष् + घञ् = आघोष (१) घोष, उपदेश, वेदवाणी (२) विद्वान् -दया.
'आङ्घूषो वां मघवाना जनेषु'
ऋ. ३.५८.५.
(३) स्तुति, आघोषणीय, स्तोत्र, वेद वेद सर्वत्र घोषणीय है ।
'भराम्याङ्घूष बाधे सुवृक्ति'
ऋ. १.६१.२, अ. २०.३५.२
पृषोदरादि नियम से आघोष से ही आङ्घूष हुआ है ।
'एनाङ्घूषेण वयमिन्द्रवन्तः
अभिष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौः ।'
ऋ. १.१०५.१९, का.सं. १२.१४, नि. ५.११.
इस स्तुति से (एन आङ्घूषेण) अनुग्राहक इन्द्र से

युक्त हम (इन्द्रवन्तः) वीर पुत्र पौत्रों के साथ (सर्ववीराः) संग्राम में (वृजने) शत्रुओं को पराजित करें (अभिष्याम)। हमारे इस वचन को (तत् नः) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी तथा द्यौ बार बार पालन करें या पूजें (मामहन्ताम्)।

स्वा. दयानन्द का अर्थ – इस वेद के स्वाध्याय द्वारा (एना आङ्गूषेण) श्रेष्ठ आत्मा वाले (इन्द्रवन्तः) पूर्णवीर (सर्ववीराः) हम संसार संग्राम में (वृजने) अन्तरीय और बाह्य शत्रुओं को जीतें । हमारे उस आत्मिक बल को प्राण, अपात, अन्तरिक्ष, नदी (मित्र, वरुण, अदितिः, सिन्धुः) पृथ्वी और सूर्य बढ़ावें ।

(२) अगि + ऊषन् = अङ्गूष । अङ्गूष + अण् = आङ्गूष । अर्थ – विद्वान् ज्ञान बल से युक्त ।

'आङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत्'

ऋ. १.६२.१, वाज.सं. ३४.१६.

आङ्गूष्य – (१) विज्ञानानां भावः, भक्तिभाव ।

"आङ्गूष्यं शवसानाय साम'

ऋ. १.६२.२, वाज.सं. ३४.१७.

बड़े बलशाली विज्ञानमय परमेश्वर के लिए (शवसानाय) नमस्कार रूप भक्तिभाव को (आङ्गूष्यम्) उच्चारण करो । (२) घोषणा करने योग्य, (३) कीर्त्ति जनक, (४) स्तुतियोग्य ।

आचक्रिः – नित्य करने वाला परमेश्वर, इन्द्र ।

'असच्च सन् मुहुराचक्रिरिन्द्रः'

ऋ. ६.२४.५

आचक्रे – फैलाता है ।

'मित्रो न यो जनेष्वा
यशश्चक्रे असाम्या ।'

ऋ. १०.२२.२.

जो अनन्त इन्द्र (असामि) जनों में कीर्त्ति फैलाता है (आचक्रे)

आचरण – आ + चर + ल्युट् = आचरण अर्थ –आगमन ।

'ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे
समुद्रे न श्रवस्यवः ।'

ऋ. १.४८.३

जो धन की इच्छा करने वाले व्यापारी (श्रवस्यवः) इस प्रातः काल के आगमन होने पर (अस्या आचरणेषु) समुद्र में अपने जहाजों पर काबू करते हैं ।

आचरण्यु – (१) सब ओर से आने वाली, (२) समस्त दिशाओं में जाने वाली, (३) सब पक्षों में लगाने वाली वेदवाणी ।

'सिञ्चन्ती राचरण्यवः'

अ. २०.४८.१

आचरन्ती – आचरन्त्यौ (आचरण करती हुई) । आङ् + चर + शतृ + ङीष + औट् = आचरन्त्यौ । वैदिक प्रयोग 'आचरन्ती' ही है ।

'ते आचरन्ती समनेव योषा
मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने
आर्त्नी इमे विस्फुरन्ती अमित्रान्'

ऋ. ६.७५.४, वाज.सं. २९.४१, तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१६, का.सं.(आश्व) ६.१, नि. ९.४०.

जो धनुष की कोटियां (आर्त्नी) समान पति वाली दो स्त्रियों के समान धनुष खींचने वाले की ओर आचरण करती रहती हैं (समना योषा इव आचरन्ती) वे जैसे माता पुत्र को गोद में धारण करती है उसी प्रकार धनुष खींचने वाले राज की रक्षा करें, और परस्पर संवाद करती हुई सी (इमे संविदाने) छटपटातीं हुई (विस्फुरन्ती) शत्रुओं को (अमित्रान्) विनष्ट करे अपविध्यताम्) । (२) सब तरफ विचरती हुई गौ ।

'पिब शुद्ध मुदकमाचरन्ती'

ऋ. १.१६४.४०, अ. ७.७३.११, ९.१०.२०, का.श्रौ.सू. २५.१.१९, आप.श्रौ. सू. ९.५.४, नि. ११.४४.

आच्छत् – आच्छादन योग्य वस्त्र, (२) अन्न– आच्छन् छन्दः ।

वाज.सं. १५.४,५, तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७, १११.१२, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.३,४.

आच्छद्विधान – (१) चारों तरफ का प्रकोट (२) आवरण –विधान ।

'आच्छद्विधानैर्गुपितः'

ऋ. १०.८५.४, अ. १४.१.५

(३) सब ओर से सुरक्षित विद्या, विधान ।

(४) सत्कर्म आचरणों को रखने वाला गुरु ।

(५) इन्द्रियों को सुरक्षित रखने वाला ।

आचार्य – आचारंग्राहयति (जो शिष्य को आचार बताये), (२) आचिनोति (जो अर्थों का आचमन करे) (३) आचिनोति बुद्धिम् बुद्धिवा आचमन करे) ।

आङ् + चर् + ण्यत् = आचार्य । अन्तर्भावित कर्तृवाच्य में 'ऋहलोर्ण्णिसेर्यत् से मनु कहते हैं ।

'उपनीय तु यः शिष्यं
वेदमध्यापयेत गुरु
सकल्पं सरहस्यं च
तमाचार्यं प्रचक्षते ।
आम्नाय तत्वविज्ञानात्
चराचर समानतः
यमादियोग सिद्धत्वात्
आचार्य इति कथ्यते ।'

(२) मत प्रस्थापक को भी आचार्य कहते हैं ।

आच्या – सिकोड़कर ।

'आच्या जानु दक्षिणतो निषद्य'

ऋ. १०.१५.६, अ. १८.१.५२, वाज.सं. १९.६२.

आचित – (१) तीव्र तेज से पूर्ण सञ्चित जीवन ।

'आदेधस्यान आचितम्'

ऋ. १०.८६.१८, अ. २०.१२६.१८

(२) सब तरफ से धन संचय करने वाला (३) सब प्रकार से प्रबुद्ध ज्ञानवान् (४) सब प्रकार से चेतनावान् आत्मा ।

'पूर्णरथं बहेथे मध्व आचितम्'

ऋ. १.१८२.२.

आचिता – (द्वि.व.) मित्रावरुण का विशेषण । आदर प्राप्त करने योग्य ।

'विश्वस्य यामन् आचिता जिगत्नु'

ऋ. ७.६५.१.

आजगन्तन – आगत (आया) आङ् + गम् + च्लि (लुङ् में) । श्लुवत् भाव होकर गम् का द्वित्व और अभ्यास किए जाने पर तत जोड़ा जाता है । च्लि का लोप ।

'यदुदञ्चो वृषाकपे
गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्वस्य पुल्वघो मृगः
कमगन् जनयोपनः
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः'

ऋ. १०.८६.२२, अ. २०.१२६.२२, नि. १३.३.

हे भगवन् वृषाकपे ! इन्द्र ! आदित्य ! जब तू उत्तर दक्षिण की ओर परिक्रमा करता हुआ (उदञ्चः) अस्त् हो घर पर आया (गृहम् आजगन्तन) तब तेरे अस्त होने पर निरालोक संसार विस्मित हो कहता है–यह बहुत खाने वाला है (स्यः पुल्वघः) सदा चलने वाला (मृगः) कहां गया ? (क्व) लोगों को मुग्ध करने वाला (जनयोपनः) वह किस देश को चला गया (कं अगन्) कि हम उसे नहीं देख पाते । हे इन्द्र ! आदित्यक सब से बड़ा है ।

अन्य अर्थ–हे धर्म में सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, जब ऊर्ध्वगामी मुक्तात्मा (उदञ्चः) ब्रह्मधाम में जाते हैं (गृहम् आजगन्तन) तब तेरा वह सर्वसंहारक (पुल्वघः) तथा अन्तर्धान होने वाला स्वरूप कहां चला जाता है (मृगः कं अगन्) और तेरा जनों को मोहने वाला स्वरूप किस देश में चला जाता है ? जो आदित्य स्वरूप परमेश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में उत्कृष्ट है ।

आजगन्था – आ + गम् के लोट् म.पु.ब.व. का रूप है । अर्थ है–आ. ।

'परावत आजगन्था परस्याः'

ऋ. १०.१८०.२, साम. २.१२२३, वाज.सं. १८.७१, का.सं. ८.१६.

हे इन्द्र ! तू द्युलोक के (परस्याः) उस शूर के स्थान से (परावतः) आ (आजगन्था) ।

आजग्मुः – आगच्छत (आओ) । प्रार्थना मे लोट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग । पुरुष में व्यव्यय (गड़बड़ी) आर्ष है । मध्यम पुरुष बहुवचन के बदले प्रथम पुरुष बहुवचन का प्रयोग हुआ है।

'सुगावो देवाः सदना अकर्म
य आजग्मुः सवनमिदं जुषाणाः ।
भरमाणा वहमाना हवींषि
अस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा'

वाज.सं. ८.१८. श.ब्रा. ४.४.४.१०.

हे वसुनायक देवो, (वसवः) आप सभी इस यज्ञ में (इदं सवनम्) प्रेम के साथ (जुषाणाः) आवें (आजग्मुः) । हम ने आपके लिए सुगम सुपथ (वःसुगाः सुपथाः) बना दिए हैं (अकर्म)। अतःइस यज्ञ में हवियों को खाकर (जक्षिवांसः)

तथा सोम रस का पान कर (पपिवांसः) हमें (अस्मे) धनों को दो (वसूनि धत्त) ।

आजघान – मरा, छिन्न भिन्न किया ।

'उच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान'

ऋ. ५.३२.६

इन्द्र ने वज्र ऊंचा उठाकर वृत्र को मारा या सूर्य ने मेघ को छिन्न भिन्न किया अथवा राजा चोर व्यभिचारी आदि को डरा धमका दण्डित करे ।

आजङ्घन्ति – मारते हैं ।

'आजङ्घन्ति सान्वेषां'

ऋ. ६.७५.१३, वाज.सं. २९.५०, तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३: १८७.६, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.२०.

आजनुषः – जन्म से लेकर ।

'विश्वस्मात् आजनुषो वेदसस्परि'

ऋ. २.१७.६

आजमीढ – धनाढ्य पुरुष ।

'सधस्तुतिम् आजमीढासो अग्मन्'

ऋ. ४.४४.६, अ. २०.१४९.९

आज्य – (१) तेज– तेजो वा आज्यम् (२) वज्र – वज्रो वा आज्यम् (३) रण में शत्रु पर आक्रमण (४) हवि ।

आज्यया – (१) विजय साधक शस्त्रास्त्रों का पालक, (२) आज्य का पालक देव ।

'यत्र देवानामाज्यपानाम् प्रिया यामानि'

वाज.सं. २१.४६, मै.सं. ४.१३.७, २०८.१५, का.सं. १८.२१, तै.ब्रा. ३. ६.११.३.

आजा – अजन्ति संगच्छन्ते वीराः शत्रुभिः यस्मिन् (जिसमें वीर चलते हैं) संग्राम ।

'आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत'

ऋ. १.१०२.३

आजात – (१) स्वरूप ।

'महान् गर्भो आजातमेषाम्'

ऋ. ३.३१.३

(२) और अधिक प्रकृट ।

'इत आजातो अमुतः कुतश्चित्'

ऋ. १.१७९.४.

आजान – (१) समस्त जनों के करने योग्य कर्म –दया. (२) सर्वतः उत्पन्न –सा. (३) सृष्टि की आदि में उत्पन्न आजान देवसूर्य आदि ।

'तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे'

वाज.सं. ३१.१७, का.सं. ३९.२.

(४) आजानम् आज्ञापनम् –दया. (५) ज्ञान करने वाले व्यवहार का निर्णय (६) आज्ञापन, (७) राजनियम ।

'काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे'

वाज.सं. ३३.७२, शां.श्रौ.सू. ७.१०.११.

आजानिः – उत्तम या नवीन शक्ति को उत्पन्न करने वाली–माता के समान दशा (२) सब ओर से प्रसिद्ध –(दया.) ।

'तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने'

ऋ. ३.१७.३, तै.सं. ३.२.११.२, मै.सं. ४.११.१, १६१.१२, का.सं. २.१५.

आजयमाना – (१) पूर्व विद्वानों से संस्कृत जाया, (२) सब प्रकार से प्रकट होती हुई ।

'दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना'

ऋ. ३.३९.२

आजासः – (१) अजासः –बकरे (२) घोड़े–दुर्ग, (३) सूर्य की क्षिप्त प्रक्षिप्त होने वाली किरणें । –(दया.)

अज धातु गति और क्षेपण अर्थ में आता है । अज् + अच् = (अज जो सदा चलता है) । अज + जस् = अजासः । वेद में जस् का असुक् हो जाता है ।

अजन्ति अनवरतं गच्छन्ति (जो सदा चलते हैं), अथवा सर्वतः तमः विक्षिपन्ति (सर्वत्र अन्धकार फैलाते हैं) । पूषन् देवता का वाहन अश्व ही अधिक उपयुक्त अर्थ जान पड़ता है ।

आ + अजास = आजासः । आ उपसर्ग का सम्बन्ध क्रिया से है –

'आजासः पूषणं रथे
निशृम्भास्ते जनश्रियम् ।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ।'

ऋ. ६.५५.६, नि. ६.४.

अविश्रान्त भाव से वहन करने वाले अश्व (निशृम्भाः अजासः) जीवों के आश्रयभूत देवता पूसन् को रथ में लेकर लावें ।

अन्य अर्थ–वे अविश्रान्त गति से रसंहारिणी तथा क्षिप्त तथा प्रक्षिप्त होने वाली सूर्य की किरणें (ते विश्रम्याः अजासः) प्राणियों के आश्रय या शोभायमान प्रकाशक तथा पोषक सूर्य को (जनश्रियं देवं पूषणम्) द्युलोक रूपी रथ में

धारण करती हुई (रथे बिभ्रतः) सर्वत्र पहुँचा रही हैं (आ वहन्तु) ।

आज्ञाता - आज्ञा देने वाला अध्यक्ष ।
'त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता'
ऋ. १०.५४.५.

आजिः - पु.। 'आजयनः' या आजवन । वह विजय दिलाने वाला है । अर्थ - संग्राम । आ +जि =आजिः ।
'न्यक्रन्दमन् उपयन्त एनम्
अमेहयन् वृषभं मध्य आजेः
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रम्
गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ।'
ऋ. १०.१०२.५, नि. ९.२३..
मुद्गल कहता है -मुद्गल ने शकट में एक बैल के स्थान में एक काठ का मुद्गर ही जोत दिया । और उसी से युद्ध मे हजारों जीवों को जीत लिया । समीप जाते हुए मनुष्य (उपयन्तः) जिस इस वृषभ को जोर से क्रन्दन कराया अर्थात् फुत्कार कराया (न्यक्रन्दयन्) और इस वृषभ ने भी संग्राम के मध्य में विश्राम के लिए मूत्र पुरीषोत्सर्ग किया (अमेहयन्) । उस वृषभ से सुन्दर (सुभर्वम्) सौगुना सहस्रगाएं (शतवत् सहस्रम्) मैं मुद्गल के संग्राम में (प्रधने) जीता । अन्य अर्थ संग्राम में यह सैनिक (आजेः मध्ये उपयन्तः) इस सांढ को उच्च शब्द के साथ शब्दायमान करते हैं (एनं वृषभं न्यक्रन्दयन्) और फिर शत्रुओं के ऊपर उसे बरसवाते हैं एवं उस सांढ के द्वारा सात्विकान्नभोजी, जितेन्द्रिय निरभिमान या हर्ष शोक में समचित्त राजा (मुद्गल) युद्ध में (प्रधने) धनापहारक या प्रजाभक्षक शत्रु राजा को (सूभर्वम्) तथ गाय आदि अनेक उत्तमोत्तमे पदार्थों को (गवं शतवत् सहस्रम्) जीतता है (जिगाय) ।
(२) परमसीमा, (३) मोक्षपद, (३) परब्रह्म ।
'मा त्वा दभन् परियान्तमाजिम्'
अ. १३.२.५
(४) अन्तिम लक्ष्य, (५) परमात्मा रूप ।
'अभ्यर्चत सुष्टुतिं गव्यमाजिम्'
अ. ७.८२.१

आजिकृत् - युद्ध करने में कुशल ।
'यदाजिं याति अजिकृत्'
ऋ. ८.४५.७

आजितुर् - संग्राम में शत्रुओं का नाश करने वाला ।
'आजितुरं सत्पतिम् विश्वचर्षणिम्'
ऋ. ८.५३.६

आजुह्वन्ति - पुकारते हैं, आह्वान करते हैं ।
आङ् + हु + झि = आजुह्वन्ति

आजुह्वान् - आहूयमान । स्कन्दस्वामी के मत से अग्नि शरणार्थियों में बुलाया जाता है (आहूतः शरणार्थिभिः यातः प्राप्तः अर्थिभिः) । इस प्रकार 'आजुह्वान्' दो धातुओं ('हू' और 'या') के योग से वना है । आङ् + या + हू + क + शानच् (वाहुलक नियम से) = आजुह्वान् । औरों के मत से आङ् + हू + शानच = आजुह्वान् होता है । भली प्रकार से हूयमान होता है ।
'आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च
आ याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः
त्वं देवानामसि यह्व होता
स एनान् यक्षीषितो यजीयान् ।'
ऋ. १०.११०.३, अ. ५.१२.३, वाज.सं. २९.२८, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१४, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.८.
हे भगवत् अग्ने ! तू आ, क्योंकि तू प्रार्थनीय (ईड्यः) और सभी के स्तोतव्य हैं (वन्द्यश्च) । वह तू आहूत होकर (आजुह्वानः) वसु नामक देवों के साथ आ (वसुभिः सजोषाः आयाहि) क्योंकि हे प्रार्थनीय तथा महान् (यह्वः) तू देवों का होता है, वह तू हम लोगों से अधिषित होकर (स इषितः) इन देवों को हवि से पूज (एनान् यक्षि) । तू हम से बढ़कर यष्टा है (यजीयान्) । अन्य अर्थ-हे यज्ञाग्नि ! तू हवि से भली प्रकार हूयमान है और गृहस्थों से एक साथ सेवनीय है (वसुभिः सजोषाः), अतः प्रशस्य या यज्ञ शाला में संदीप्य और आदर के योग्य (ईड्यः वन्द्यश्च) हमें प्राप्त हो । हे महान् गुण वाला यज्ञाग्नि तू उत्तम पदार्थों का दाता है (देवानां होता असि) । वह तू हमसे प्रेरित हो या आदर पूर्वक नियुक्त हो अधिक दाता होती हुई उन उत्तम पदार्थों को प्राप्त करा (एनान् यक्षि) ।
(२) आहुति दिया गया
'आजुह्वानस्य मीढुषः'

ऋ. ७.१६.३. तै.सं. ४.४.४.५, का.सं. ३९.१५.

आजोहुवाना – आदर पूर्वक आमन्त्रित की गई –बुलाई गई उषा कन्या ।
'पितृभ्य आदसने जोहुवाना'
ऋ. ५.४७.१

आञ्जन – (१) नीलाञ्जनादि मणि जो चित्रकूट पर होता है और जिससे आञ्जन बनता है ।
'आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च'
अ. ६.१०२.३
(२) ज्ञान का प्रकाश आञ्जन
'तदाञ्जनं त्वं शतांते'
अ. १९.४४.१

आञ्जनगन्धि – आञ्जन अर्थात् आत्मा पर आए हुए रजो विकार के लेप को नाश करने वाली वनस्थ वृत्ति ।
'आञ्जनगन्धिं सुरभिम्'
ऋ. १०.१४६.६, तै.ब्रा. २.५.५.७.

आञ्जनं सर्पिः – (१) शरीर पर मलने योग्य घृत (२) घृतमिश्रित आञ्जन ।
'आञ्जनेन सर्पिषा संस्पृशन्ताम्'
अ. १२.२.३१

आञ्जनीकारी – आञ्जन लगाने वाली सुशीला स्त्री ।
'शीलायाञ्जनीकारीम्'
वाज.सं. ३०.१४, तै.ब्रा. ३.४.१.१०.

आट्णार – अटनशील । भृशम् अत्यर्थं अटति यः सः (जो बहुत घूमे) । अट् + यूणारञ् (औणादिक प्रत्यय) = आट्णार । लोपो व्योर्वलि से य का लोप और 'अचोऽञ्णिति' ञित प्रत्यय परे रहने से अट् के अ की वृद्धि । अटन + आरक् (शील अर्थ में) = आट्णार । आज भी उस बैल या गाय को जो दिनरात घूमा करते हैं 'अनेरिया' कहा जाता है ।

आडम्बराघात – (१) आडम्बर पूर्वक बाजों को बजाने वाला, (२) कोलाहल करने वाले को दण्ड देना ।
'शब्दायाडम्बराघातम्'
वाज.सं. ३०.१९, वाज.सं.(का.). ३४.१९.

आण्ड – अमन्ति रोगान् कुर्वन्ति इति आण्डानि । अम + ड = आण्ड । अर्थ (१) अण्डा, (२) रोगकारी संयोगी अंश ।
'शुष्णस्याण्डानि भेदति'
ऋ. ८.४०.१०
(३) प्रजनन कोष । दुर्ग के मत से प्रार्दक को आण्ड कहा गया है । जिस का अण्ड कोष बढ़ जाता है वह उसे कटवा कर छोटा करता है (प्रकर्षेण अर्दयति) इसलिए वह प्रार्दक कहा जाता है । वही आण्ड भी है ।
आधुनिक अर्थ – (१) अण्ड से उत्पन्न आण्ड, (२) हिरण्यगर्भ का विशेषण (३) अण्डों का समूह, (४) अण्डकोष (५) गर्भगत बालक ।
'आण्डा मा नो मघवन् शक्र निर्भेत्'
ऋ. १.१०४.८
हे परमेश्वर ! हमारे गर्भगत सन्तानों को नष्ट न कर ।

आण्ड्य – अण्डकोश
'उभे भिनत्वाण्ड्यौ'
अ. ६.१३८.२

आण्डाद् – बालक के अण्डकोष भाग को खा जाने वाला कीट ।
'आण्डादो गर्भान् मा दभन्'
अ. ८.६.२५

आणिः – (१) कीला ।
'गन्तम् निधिं धुरमाणिर्न नाभिम्'
ऋ. ५.४३.८
अरणात् (ऋ गत्यर्थक) । अण् धातु का अर्थ भी जाना है । अण् + इण् (करण में) = आणि । णित् प्रत्यय परे रहने से अण् के अ की वृद्धि । अथवा – न अणति अनेन इत आणिः (जिससे निकले नहीं) रथ का पहिया धुरा से न निकल सके । इस हेतु पहिया को एक कील लगायी जाती है जिसे आणि कहते हैं ।
'आणिराणिवदक्षाग्र कीलाश्रिसीमसुद्वयोः– मेदिनीकोष'
आधुनिक अर्थ–गाड़ी की धुरा की कील, (२) घुटने के ऊपर का पैर का भाग, (३) सीमा, (४) तलवार की धार

आण्डीक – बड़ा कमल ।
'नाण्डीकं जायते बिसम्'
अ. ५.१७.१६
(२) आण्डाकार ।
'आण्डीकं कुमुदं संतनोति'

अ. ४.३४.५

आत् – (अ.) अनन्तर, तुरत, अब

'तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम्
मध्याकर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्तहरितः सधस्थात्
आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ।'

ऋ. १.११५.४, अ. २०.१२३.१, वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२, १४७.१, तै.ब्रा. २.८.७.१, वै.सू. ३३.६, नि. ४.११.

सूर्य का वही देवत्व है और वही महत्व है कि वह किए जाते हुए कर्मों के मध्य में ही (कर्तोः मध्या) अपने विस्तीर्ण किरण जाल को अपने से खींच लेते हैं (विततं संजभार) और जभी (यदेत्) इस खींचने वाली रश्मियों को इस लोक से (हरितः सधस्थात्) वियुक्त करते हैं या इस लोक से हटा दूसरे लोक में फैलाते हैं (अयुक्त) वैसे ही तुरत (आत्) रात्रि (रात्री) सभी के लिए (सिमस्मै) अन्धकार विस्तृत कर देती है (तनुते) ।

हरित् का अर्थ घोड़ा और सधस्थ का अर्थ कुछ विद्वानों ने रथ भी किया है। उस दशा में–ज्योंही सूर्य अपने रथ से अश्वों को हटाते हैं ।

आत् उ – (१) उस समय – दया. (२) अनन्तर ।

'उत स्वसारा युवती भवन्ती
आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम'

ऋ. ३.५४.७

उस समय स्वकीय परिधियों में परस्पर घूमते हुए सूर्य और पृथ्वी दिन और रात के जोड़े बनाते हैं । –द. ।

दो बहनों के समान युवतियों सी द्यौ और पृथ्वी जोड़े नामों वाली परस्पर बोलती हैं ।–सा. ।

आत – आचार, व्यवहार, चाल, बराबर चलने वाला, आने जाने वाला ।

'विपक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः'

वाज.सं. २९.५, तै.सं. ५.१.११.२, मै.सं. ३.१६.२, १८४.६, का.सं.(अश्व) .६.२.

आतत – आ + तन् + क्त = आतत । फैला हुआ (२) विस्तृत, (३) व्यापक ।

'यजाततमव तत् तनु'

अ. ७.९०.३

पुनः–

'उग्रं विनषदाततम्'

अ. २०.१३२.६, शा.श्रौ.सू. १२.१८.१४.

आततर्द – आतृणत्ति –आभिनत्ति । भेदन करता है । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग । आङ् + तृद् + णल् = आततर्द ।

'ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः
ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द
कर्णा बुधानः शुचमान आयोः'

ऋ. ४.२३.८, आश्व.श्रौ.सू. ९.७.३६, नि. ६.१६, १०.४१.

मध्यम ऋतदेव के पूर्वकाली जल हैं, ऋतदेव की स्तुति उदक दान द्वारा अकाल नष्ट करती हुई वर्जनीय अयशस्कर पापों का विनाश करती है (वृजिनि हन्ति) क्योंकि अकाल पड़ने पर क्षुधार्थी अनेक पाप करते हैं । ऋतदेव का अत्यन्त महान् श्लोक अर्थात् स्तुति वचन (श्लोकः) बोधित करता हुआ तथा चमकता हुआ (शुचमानः) मनुष्य के बधिर कानों को भी छेद डालता है । (आयोः बधिरा कर्णा आततर्द) ।

आतता – व्याप्त ।

'तत्रा मे नाधिरातता'

ऋ. १.१०५.९

आततान – आतनोति –सर्वतः विस्तारयति (सभी ओर विस्तृत करता है) । वर्तमान के अर्थ में लिट् का प्रयोग ।

'सूर्य इत ज्योतिषापस्त तान'

ऋ. ४.३८.१०, १०.१७८.३, तै.सं. १.५.११.४, ऐ.ब्रा. ४.२०.३०, कौ.ब्रा. २५.८, नि. १०.२९, ३१.

आतन्वान् – धनुष पर डोरी तानने वाला ।

'नम आतन्वानेभ्यः प्रति दधानेभ्यश्च वो नमः'

वाज.सं. १६.२२, तै.सं. ४.५.३.२, मै.सं. २.९.४, का.सं. १७.१३

आतपः – सब प्रकार से तपस्वी ।

'घृणा वरन्त आतपः'

ऋ. ५.७३.५

आतप्य – (१) सूर्य के ताप का उत्तम उपयोग, (२) विज्ञान वेत्ता ।

'नमो वीध्याय चातप्याय च'

वाज.सं. १६.३८, का.सं. १७.१५, मै.सं. २.९.७ ,

१२५.१४

आतस्थौ – निवास करती है ।

'आयस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती
सचा मरुत्सु रोदसी ।'

ऋ.५.५६.८,नि.११.५०

जिस मेघ में जलों को धारण करती हुई (सुरणानि बिभ्रती) मरुतों के साथ रहने वाली (मरुत्सु सचा), मरुतों की निर्मात्री, रुद्र या वायु की पत्नी माध्यमिका देवी अर्थात् विद्युत् (रोदसी) निवास करती हैं (आतस्थौ) ।

आतस्थिवांसा – विराजमान ।

'समानं चित् रथमातस्थिवांसा'

ऋ.२.१२.८,अ.२०.३४.८

आत्मदा – शरीर में जीवात्मा को पहुँचाने वाला प्रभु ।

'य आत्मदा बलदा यस्य विश्व

ऋ.१०.१२१.१, अ.४.२.१,१३.३.२४.

आत्यदूषिः – चित्त में विकार उत्पन्न करने वाला

'प्राको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषि'

अ. १६.१.३

आत्मन् – (१) अत + मनिन् =आत्मन् । 'अचो ञ्णिति' से अप्र की वृद्धि । 'अत' धातु सतत गमन के अर्थ में है अतः 'आत्मन्' का अर्थ हुआ सदा गमनशील अथवा 'सर्वमेव तेन अतितम्' (उससे सब कुछ व्याप्त है) ऐसी कोई चीज नहीं है जिसमें आत्मा व्याप्त न हो ।

(२) आप् + मनिन् = आत्मन् (प का पृषोदरादवत् त) । अर्थ-जो सबको प्राप्त करे या सब में व्याप्त हो । सर्वव्यापी होने पर भी जहा तक कार्य कारणस्थ हो व्याप्त रहता है वहां तक ही वह आत्मा ज्ञातव्य है । 'आत्म इव' अर्थात् कार्यकारण सम्बन्ध होने पर जहां व्याप्त होता है वहीं उसकी चैतन्य शक्ति लक्षित होती है ।

'यदि मा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुराजीवगृभोयथा ।'

ऋ.१०.९७.११,वाज.सं.१२.८५,मै.सं.२.७.१३, ९३.१७

जब मैं (यत् अहम्) इन ओषधियों की स्तुति करता हूँ (वाजयन्), हाथ में रखता हूँ (हस्ते करोमि) तो ओषधि प्रयोग करने के पूर्व ही (पुरा) यक्ष्मा रोग का आत्मा नष्ट हो जाता है जैसे मारने वाले के द्वारा मारे जाने के पूर्व ही दैव से जीव नष्ट हो जाय ।

आत्मन्वत् यक्ष्मम् – जीवात्मा के साथ विद्यमान ब्रह्म तत्व ।

'तस्मिन् यत् यक्ष्ममात्मन्वत्'

अ.१०.२.३२,८.४३.

आत्मन्वत् – (१) आत्मा का अधीनभूत देह ।

'तदात्मन्वत् चरत्यप्स्वन्तः'

अ.४.१०.७

(२) आत्मशक्ति से सम्पन्न पुरुष ।

'प्राणेनात्मन्वतां जीव'

अ.१९.२७.८

(३) अपने जनों में युक्त, (४) दृढ़, (५) आत्मायुक्त देह ।

'आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम्'

ऋ.१.१८२.५

आत्मन्वती – (१) प्रशस्ताः आत्मन्वन्तः विचारवन्तः क्रियाकुशलाः पुरुषाः विद्यन्ते यस्याम् नौकायाम् सा – दया. (वह नौका जिसमें अत्यन्त प्रशस्त विचारवान् क्रियाकुशल पुरुष हों), (२) सुदृढ़ ।

'तमूहथुः नौभिः आत्मन्वतीभिः
अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः'

ऋ.१.११६.३, तै.आ.१.१०.२.

जिस प्रकार दो नाविक प्रशस्त विचार वान् पुरुषों वाली या सुदृढ़ (आत्मन्वतीभिः) जल के अवकाश पर चलने वाली (अन्तरिक्ष प्रुद्भिः) पानी को भीतर न जाने देने वाली (अपोदकाभिः) नावों से (नौभिः) पार उतार देते हैं ।

(२) आत्मशक्ति से युक्त ।

'आत्मन्वती उर्वरा नारीयमागन्'

अ.१४.२.१४

आत्मपराजित – अपने ही व्यसनों से पराजित ।

'पाप आत्मपराजितः'

अ.५.१८.२

आत्मसनि – (१) अपने देह में बल धारण करने वाला, (२) राजा के भोग योग्य ।

'आत्मसनि प्रजासनि
पशुसनि लोक सन्यभयसनि'

वाज.सं. १९.४८,मै.सं. ३.११.१०, १५६.१७ का.सं. ३८.२२, तै.ब्रा. २.६.३.५ ,शां.ब्रा. १२.८.१.२२,

शां.श्रौ.सू. ४.१३.१, आप.श्रौ.सू. ६.११.५.

आता - दिशा ।

'प्र ये द्विता दिवऋञ्जन्त्याता'

ऋ.३.४३.६

'अतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा'

ऋ १.५६.५

आत्ताम् - खावें ।

'होता यक्षदश्विनौ

छागस्य हविष आत्ताम्'

वाज.सं.२१.४३,मै.सं. ४.१३.७:२०८.३ तै.ब्रा. ३.६.११.१.

छाग के हवि खावें ।

आचित - फैला हुआ ।

'परि ग्राममिवाचितम्'

अ. ४.७.५

आतिरत् - आ+ अतिरत् = आतिरत् । अर्थ है- दूर करता है । लट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग हुआ है ।

'इन्द्रः पूर्भिदातिरत् दासमर्कैः'

ऋ.३.३४.१, अ.२०.११.१ ऐ.ब्रा. ६.१८.२,१९.३ गो.ब्रा. २.४.२, वै.सू. ३१.२५.

शत्रु नगरों का भेदन करने वाला इन्द्र प्रकाश या वेदज्ञान से अन्धकार या पापान्धकार को दूर करता है (आअतिरनत्) ।

आतिः - गृहपत्नी ।

'ता आतयो न तन्वः शुम्भतस्वा'

ऋ.१०.९५.९.

आतिथ्य - (१) अतिथि सत्कार ।

'आतिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने'

ऋ.१.७६.३

(२) एक प्रकार की इष्टि ।

'आतिथ्यरूपं मासरं'

वाज.सं. १९.१४

अतिथिग्व - अतिथि के आदर सत्कारार्थ वाणी को विनय पूर्वक प्रयोग करने वाला ।

'सुरथां आतिथिग्वे'

ऋ.८.६८.१६

आतुज् - (१) सब प्रकार के बल प्राप्त करने और कराने वाला, (२) सर्वतः पालक ।

'कृणुध्वं राय आतुजे'

ऋ.७.३२.९

आतुच् - सब ओर सन्तापित करने वाला सूर्य ।

'यन्मध्यंदिन आतुचि'

ऋ. ८.२७.२१

आतुर - रोगी, निर्बलपुरुष ।

'येन हिन्वन्ति आतुरम्'

अ. ६.१०१.२

आतृद् - (१) शरीर की हंसलियों का मोहर ।

'पुरा जत्रुभ्य आतृदः

ऋ.८.१.१२, अ.१४.२.४७, साम.१.२४४, पंच.ब्रा.९.१०.१, तै.आ.४.२०.१, का.श्रौ.सू. २५.५.३०. आप.मं.पा.१.७.१.

(२) छिद्र

आतोदिनौ - जीव और मन का विशेषण । मृत्य काल में शरीर से निकलते समय समस्त शरीर में व्यथा उत्पन्न करने वाले

'आतोदिनौ नितोदिनौ'

अ. ७.९५.३

आथर्वणा - (१) अश्विद्वय, (२) हिंसा न करने वाले ।

'आथर्वणायाश्विना दधीचे

अश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।'

ऋ.१.११७.२२

हे अश्व सेना और विद्वत्सभा के स्वामी, वीर सेना विद्वत्सभा के नायक अध्यक्षो ! आप दोनों न हिंसा करने वाले (आथर्वणा) प्रजापालक और शान्ति-विधायक प्रजा पति के पद पर काम करने वाले, राष्ट्र को धारण करने में सामर्थ्य को प्राप्त किए हुए विद्वान् बलवान् पुरुष को ही (दधीचे) अश्व सेना और राष्ट्र का मुख पद प्रदान करो (अश्व शिरः प्रत्यैरयतम्)।

आथर्वण - (१) ज्ञान का धारण करने वाला अथर्व वेद का ज्ञाता, (२) किसी प्रकार की हिंसा न करने वाला शमादियुक्त माता पिता, (३) प्रजापालक विद्वान् गुरुओं का शिष्य, (४) अहिंसकस्य अपत्यम् (अहिंसक का सन्तान) । - (दया.)

'दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वाम्

अश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ।'

ऋ. १.११६.१२.

मै धारण योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त राजा (दध्यङ्) किसी प्रकार भी हिंसा न करने वाले शमादि

युक्त माता पिता औ प्रजापालक विद्वान् गुरुओं का शिष्य होकर (आथर्वणः) आप दोनों स्त्रीपुरुषों वर्गों को (वाम्) ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए अश्वसैन्य या भोक्ता राजा होने के मुख्य अधिकार से (अश्वस्य शीर्ष्णा) अति उग्र प्रबल अज्ञान और पाप के नाशक ज्ञान और दण्ड प्रयोग का भी उपयोग करूं ।

अथवा, जैसे ज्ञान को धारण करने वाला अथर्ववेद का ज्ञाता विद्वान् (आथर्वणः) तुम दोनों को सकल विज्ञान के पारंगत आचार्य के मुख्य पद से (अश्वयस्य शीर्ष्णा) मधुर आनन्द जनक ज्ञान का प्रवचन करता है। (४) कूटस्थ परमात्मा का ध्यान करने वाला (६) ब्रह्म का उपासक ।

'प्रजापतिर्वा अथर्वा
अग्निदेव दध्यङ् आथर्वणः'
तै.सं. ५.६.६.१३
'आथर्वण स्तुहि देवं सवितारम्'
अ.६.१.१

(७) वह बन्धन जिसमे जीव का घात नहीं किया जाना ।

'आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्'
अ.४.३.७

आथर्वणी – अथर्वा अर्थात् आत्मा की शक्ति को बढ़ाने वाली आथर्वणी ओषधि ।

'प्राथर्वणी राङ्गिरसीः'
अ.११.४.१६

आद् – आ + अद् = आद् । अर्थ सर्प-विष को मुख में चूसने क्रिया ।

'विषं ह्यस्यादिष्यथो एनमजीजभम् ।'
अ. ७.५६.५

आद – अद् (भोजन करना) + घ = अद । अर्थ –भोजन करने वाला, भोक्ता ।

'अष्टमहो दिव आदो हरी इह'
ऋ.१.१२१.८

आदघ्नः,आदघ्नासः – आस्यदध्ना एव आदघ्ना । आस्य + दघ्नच् = आदघ्न, । बहुवचन में आदघ्नासः बोध होता है । वेद में अकारान्त शब्दों के बाद जस् का असुक् हो जाता है । क्षेपणार्थक् अस् + ण्यत् = आस्य । अर्थ है- 'मुख' क्योंकि मुख में भोजनार्थ अन्न आदि डाला जाता है । दध् (स्ववणार्थक) यास्क के अनुसार दिवादि धातु है । दघ् + नन् (औणादिक कर्म अर्थ में) = दघ्नन् ।

अथवा दस् (अक्षयार्थक) + नन् (स् का घ्) = दघ्नन् अर्थात् विदस्ततर या उपक्षीणतर । जैसे मुख के ऊपर जल आजाय तो आदमी डूब जाय ।

आददन्त – आधारयन्त (रखा, धारण किया) आङ् + दद् (वेद में धारण अर्थ में प्रयुक्त) + लङ् का झि = आददन्त ।

आदसनः – लेता हुआ ।

'तामाददानस्य ब्रह्मगवीम्'
अ. १२.५.६

आददिः – (१) प्राप्त करने वाला ।

'य आददिः स्वर्नृभिः'
ऋ. ८.४६.८

(२) सब पदार्थों को अपने में ग्रहण करने में समर्थ-अग्नि , (३) राजा ।

आदधिरे – रखा । आङ् + धा + लिट् (प्र.पु.ब.व.) + इरच् = आदधिरे ।

'अयं यो होता किरु स यमस्य
कमप्यूहे यत् समञ्जन्ति देवाः
अहरहर्जायते मासि मासि
अथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ।'
ऋ.१०.५२.३, नि. ६.३५.

यह पृथ्वी स्थानीय अग्नि देवों का होता है। वह भगवान् आदित्य का कर्त्ता है (स उ यमस्य किः) और अन्न भी ढोता है (कम् अपि ऊहे) जिसे देवता लोग खाते हैं (यत् देवाः समञ्जन्ति)। यही अग्नि प्रति दिन उत्पन्न होता और आधे आधे महीने पर भी दर्शपूर्ण मारने में देव और पितर के यज्ञों में भी उत्पन्न होता है । इसी लिए हव्य ढोने वाले अग्नि को (हव्यवाहम्) देवताओं ने रखा (आदपि दे ।)

अन्य अर्थ – यह जो हव्य साधक अग्नि है वह शुद्ध वायु का कर्त्ता है (यमस्याकिः)। यह अग्नि सुख कारी अन्न प्राप्त कराता है । (कम् अपि अहे), जिसे आचार्य लोग प्राप्त करते हैं (यत् देवाः समञ्जन्ति) । यह यज्ञाग्नि प्रतिदिन प्रतिमा से पैदा होता है और आर्यलोग हव्यवाह् अग्नि को सदा धारण करते हैं (देवाः

आदधिरे) ।

आदधे – रखता हूं ।
'ओषधीर्हस्त आदधे'
ऋ. १०.९७.११, वाज.सं. १२.८५, तै.सं. ४.२.६.२, मै.सं. २.७,१३.९३.१७ क.सं. १.६.१३.

आदधर्ष – अभिभूत किया या कर सकता ।
'महीं देवस्य नकिरादधर्ष'
ऋ. ५.८५.६.
(कोई भी अभिभूत नहीं कर सकता ।

आदर्ता – आदरपूर्वक स्वीकार करने वाला
'आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीमः'
ऋ. ४.२०.६

आदर्दिरः – सब को छिन्न भिन्न करने वाला ।
'आदर्दिरो भुवना दर्दरीमिः'
ऋ. ८.१००.४
'आदर्दिरासो अदर्योन विश्वहा'
ऋ. १०.७८.६.

आदर्दृहि – आदर युक्त कर, बढ़ा ।
'आ नो गोत्रा दर्दृहिगोपतेगाः'
ऋ. ३.३०.२१

आदर्षते – (१) आदृणाति, हिनस्ति विदीर्ण करता है, मारता है । आङ् + दृ + सिप् + ते = आदर्षते । लेट् में लोटोऽडाटौ सूत्र से आट्का आगम और छन्दसि वहु लम् से सिप् का आगम (२) पराभूत करता है । तरासना का प्रयोग आज भी काटने के अर्थ में होता है जैसे भाजी तरासता है ।
'स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वम्
इनतममाप्तयमाप्त्यानाम्
आदर्षते शवसां सप्तदानून्
प्रसाक्षते प्रतिमानानि भूरि ।'
ऋ. १०.१२०.६, नि. ११.२१.
स्तोतव्य (स्युषेय्यम्) बहुरूप वाले (पुरुवर्पसम्) अतिदीप्त (ऋभ्वम्) सर्वशक्तिमान (इन तयम्) महान् स्तोतव्यो में स्तोतव्य (आप्त्यानाम् आप्त्यम्) इन्द्र की स्तुति करता हूँ जो इन्द्र बल से (शवसा) सात सर्पणशील दानवों या मेघों को (सप्तदानून्) मारता या विदीर्ण करता है (आदर्षते) तथा जो अनेकों अधिकार जमाता है (प्रतिमानानि प्रसाक्षते) ।
अथवा मैं स्तोतव्य अग्नि, वायु, आदित्य, विष्णु, मित्र, वरुण आदि अनेक रूपों वाले सर्वव्यापी (ऋभ्वम्) और राजाओं के राजा परमेश्वर को (इनतमम्) तथा आप्त पुरुषों में आप्त महात्मा (आप्तयानाम् आप्तयम्) की उपासना करता हूँ जो परमेश्वर सातों ज्ञान प्रदाता इन्द्रियों को (सप्तदानून्) अपनी महिमा से पराभूत करता है (शवसा आदर्षते) और जो अनेक उपमाओं को पाता है (प्रतिमानानि प्रसाक्षते) ।

आदहन – जलती चिता ।
'क्षिप्रं वै तस्या दहनं'
अ. १२.५.४८

आदय – भोजन के योग्य ।
'यदाद्यं यदनाद्यम्'
अ. ८.२.१९

आदान – (१) एक प्रकार का पाश–सा. (२) शत्रु को पकड़ने का उपाय ।
'आदानेन संदानेन अमित्रानाद्यामसि'
अ. ६.१०४.१

आदारः – (१) समन्तात् शत्रूर्णा दारण कर्त्ता (शत्रुओं का पूर्ण रूप से नाशक प्रभाव) (३) शत्रुओं का नाशक प्रभाव ।
'आदरो वां मतीनाम्
नासत्या मतवचसा
पातम् सोमस्य धृष्णुया'
ऋ. १.४६.५
हे सदा सत्य आचरण करने वाले (नासत्या) हे प्रिय ज्ञानयुक्त वाणी बोलने वाले (महवचसा) आप दोनों को (वाम्) मननशील बुद्धिमान् पुरषों के बीच (मतीनाम्) शत्रुओं के नाश का प्रभाव और आदर हो (आदारः) । शत्रुओं को धर्षण करने वाले प्रभाव से (धृष्णुया) आप दोनों राष्ट्र ऐश्वर्य और शरीरस्थ वीर्य का (सोमस्य) पालन करो (पालम्) ।

आदारी – (१) उत्तम दारा युक्त गृह (२) शत्रुजन को आक्रमण कर छेदनभेदन करने में कुशल ।
'आदारि यथा गयम्'
ऋ. ८.४५.१३

आ द्वादशं छन्दासि – बारह संख्या तक छन्द ।
'छन्दासि च दधत आद्वादशम्'
ऋ. १०.११४.६

आदित् - आत् + इत् = आदित् । अर्थ -जुरत ही ।

'यदा ते मर्तो अनुभोग मानट्'

ऋ. १.१६७.७, १०.७.२, वाज.सं. २९.१८, वाज.सं.(का.) ३१.३०, का.सं.(अश्व) ६.३, तै.सं. ४.६.७.६, नि. ६.८.

आदित्य - (१)आदत्ते रसान् ज्योतिषां भासम् आदत्ते (जो रस प्रदान करता, जो नक्षत्रों को प्रकाश देता है) । आङ् + दा + यक् = आदित्य । (२) भाषा आदीप्तः (जो सर्वत्र प्रकाश से दीप्त है) । (३) आदितेः पुत्र आदित्यः (अदिति का पुत्र आदित्य)। अदिति + ण्य = आदित्य अचत्य अर्थ में । यस्येति च सूत्र से ति के इ का लोप और अ की वृद्धि । कश्यप की पत्नी देवमाता अदिति है । उसका पुत्र आदितेय ही आदित्य है । सूर्यम् आदितेयम् (ऋ.१०.८८.११) में आदितेय अदिति के पुत्र अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

(४) अन्य देवों की स्तुति भी आदित्य के नाम से की गई है (अन्यासामपि देवानाम् आदित्य प्रवादाःस्तुतयो भवन्ति) । मित्र अर्यमन् भग, तुविजात, वरुण और अंश नामक देवता आदित्य ही समझे गए हैं ।

(५) मित्रा वरुण भी आदित्य ही माने गए हैं ।

'ता सम्राजा घृतासुती
आदित्या दानुनस्पती
सचेते अनवह्वरम् ।'

ऋ. २.४१.६, साम. २.२६२

वे दोनों संदीप्त (सम्राजा) जल बरसाने वाले (घृतासुती) अदिति के पुत्र (आदित्या) दान के स्वामी अर्थात् यजमानों की स्तुतियों तथा हवियों से सेवित (दानुनस्पती), अकुटिल यजमान को (अनह्वरम्) अमित दान से सन्तुष्ट करते हैं (सचेते) ।

(६) मित्र भी आदित्य है -

'प्रस मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्
यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो
नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्'

ऋ. ३.५९.२, तै.सं. ३.४.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४६.१४, का.सं. २३.१२.

(७) वरुण भी आदित्य है

'उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्
अवाधमं विम ध्यमं श्रक्षाय ।
अथा वयमादित्य व्रतेतवा
नागसो अदितये स्याम ।'

ऋ. १.२४.१५, आ. ७.८३.३, १८.४.६९, वाज.सं. १२.१२, तै.सं. १.५.११.३, ४.२.१.४, मै.सं. १.२.१८: २८.९, ४.१४.१७: २४६.६, का.सं. ३.८, १६.८, श.ब्रा. ६.७.३.८ ।

(८) स्वर भी आदित्य है । सुखेन अरणः (सुख से चलने वाला) । सु + ऋ + विच् = स्वर । अथवा सुष्ठु तमासि ईखति (सम्यक् प्रकार से अंधेरा दूर करता है) । सु + ईद् = स्वर, (ई का व्यत्यय द्वारा अ) ।

अथवा - सु + ऋतः = स्वृतः । सुष्ठु भौमान् अन्तरिक्षान् च रसात् आदातुं ऋतः गतः (पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष के रसों को लेने के लिए गया) ।

अथवा - ज्योतिषां ग्रहण क्षत्रादीनां भासम् आदातुं सुष्ठु ऋतः गतः (ग्रहों की ज्योति लेने के लिए गया) ।

अथवा -दीप्ति से सर्वत्र व्याप्त (भासासु ऋतः) = स्वर ।

(९) पृश्रियी आदित्य है वर्णः (प्रोज्ज्वलः) एनम् (आदित्यम्) अगश्नुते (व्याप्नोति) । प्रोज्ज्वल वर्ण आदित्य को व्याप्त करता है । प्र + अश् + नि = वृक्षि । कुछ विद्वान् स्पृश + नि = पृश्नि कहते हैं । इस अर्थ में पृश्नि सदा रसों को लेने वाला है (संस्पृष्टा) ।

ज्योतिमां भासं संस्प्रष्टा (ग्रहों के प्रकाश को नष्ट करने वाला आदित्य) ।

(१०) नाक भी आदित्य है। रसानां नेता रसों का नयन करने वाला, भासां नेता (प्रकाश का हरण करने वाला) ।

ज्योतिषां प्रणयः (प्रकाशक आदित्य जलों का रस खीचं वर्षा देता है प्रकाश देता है । इसी के रश्मि जाल से जगत् प्रकाशित होता है ।

(११) गौ भी आदित्य है । गमयति रसात् (रसों को खींचता है अपने प्रति) । अथवा गच्छति अन्तरिक्षम् (आकाश में चलता है) । अथवा पृथिव्या अतिदूरं गता (पृथ्वी के ऊपर दूर गई गौ) गम् + ड = गौ ।

(१२) विष्टप् भी आदित्य है । पृथ्वी और अन्तरिक्ष के रसों को लेने के लिए रश्मियों द्वारा प्रविष्ट रहता है (ज्योतिषां भासम् आविष्टः) ।
(१३) नभ भी आदित्य हैं। रसानां नेता, भासां नेता ज्योतिषां प्रणयः (रसों को लेने वाला, सभी दिशाओं में प्रकाश फैलाने वाला) । प्रकाश पहुंचाने वाला यह नभ है । नी + असुत् = नयस् = नभस् (य का भ वाहुलक नियम से हुआ है) । अथवा -भासनः (चमकने वाला) = भनः = नभः (वर्णों के विपर्मय द्वारा) । अथवा त्रन भाति (नहीं चमकता है ऐसा नहीं अर्थात् चमकता है न + न + भा + असुन् = नभस् (न का लोप और भा के टि का लोप)।
(१४) आदित्य बहुवचन में भी प्रयुक्त हुआ है, जिससे जान पड़ता है कि आदित्यासः उन लोगों को कहा गया जो किसी मत विशेष के थे ।
(१५) वणिक् लोगों को भी आदित्याः रुद्राः आदि कहते हैं ।
'जीवान्नो अभिधेतनाऽऽदित्यासः पुरा हथात् कद्धस्थ हवनश्रुत ।'
ऋ. ८.६७.५, नि. ६.२७
दिति से दैत्य और अदिति से आदित्य हुए । दोनों दलों का परस्पर वैमनस्य इस ऋचा में उपलक्षित है ।
(१) आदि के १२ प्रकार हैं- (१) त्वष्टा (रात्रिकालीन आदित्य) (२) सविता (उदय से पूर्व का आदित्य, (३) भग जिसका काल सूर्योदय से पूर्ववर्त्ती है अर्थात् अवनीत आदित्य (४) सूर्य,(उदयकालीन आदित्य) (५) पूषा (पूर्वाह्न कालीन आदित्य), (६) विष्णु (मध्याह्न कालीन आदित्य), (७) विश्वानर (मध्याह्नोत्तर कालीन आदित्य), (८) वरुण (रश्मिजाल से आच्छादित करने वाला रोग -विनाशक आदित्य), (९) केशी (रश्मियुक्त आदित्य), (१०) वृषाकपि (अस्यहोता हुआ आदित्य), (११) यम (सायं कालीन अस्तंगत् आदित्य), (१२) अनएकपात् (अस्त भवगत आदित्य), ।
(१३) नाना प्रकार के रस ओषधियों का से नह करने वाला विषवैदय (१४) अर्कपत्री, (१५) अकवन । आदित्य नामक । जड़िया विष हरने वाली हैं । अर्क विषहारी है । अर्क की तीन कोपलें गुड़ में लपेट, खिलाकर ऊपर घी पिलाने से सांप का विष उतरता है । बिच्छू के दंश पर अर्क का दूध लगाने से विष उतरता है । अर्क की जड़ पीसकर पिलाने से सर्पदंश उतरता है । अर्कपत्री को घिस कर लगाने से बिच्छू का विष उतरता है ।
(१६) सब रोगों को हरने वाला सूर्य ।
'उद्यन् आदित्य रश्मिभिः'
अ. ९.८.२२
(१७) सबको अपने भीतर समा लेने वाला
'बड़ादित्य महां असि'
ऋ. ८.१०१.११, अ. १३.२.२९, २०.५८.३, साम. १.२७६, २.११३८, वाज.सं. ३३.३९, वाज.सं.(का.) ३२.३९

आदित्यजूतः - (१) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान्
(२) अखण्ड शक्ति के धारक और उपासक पुरुषों से प्रेरित ।
'आदित्यजूत एधते'
ऋ. ८.४६.५

आदित्यवनिः - विद्वानों या धनसंग्रही वैश्यो को वृत्ति देने वाली ।
'सिंह्यसि आदित्यवनिः स्वाहा'
वाज.सं. ५.१२, का.सं. २.९, २५.६, श.ब्रा. ३.५.२.११.

आदित्यः पन्थाः - प्रकाशमान अखण्ड ब्रह्म से उत्पन्न जिज्ञासु जनों के प्राप्त करने योग्य मार्ग ।
'असौ यः पन्था आदित्यो
दिवि प्रवाच्यं कृतः'
ऋ. १.१०५.१६
यह तो अखण्ड ब्रह्म से उत्पन्न मार्ग है । आकाश में प्रकाश के लिए जैसे सूर्य है उसी प्रकार प्रवच्य के द्वारा गुरु शिष्य परम्परा से उपदेश किया जाता है ।

आदित्या - (स्त्री) (१) आदान करने वाली सबको अपने में धारण करने वाली पृथ्वी (२) अखण्ड प्रकाशमयी ब्रह्मशक्ति ।
'आदित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि'
वाज.सं. ४.२१. तै.सं. १.२.५.१, मै.सं. १.२.४, १३.८, का.सं. २.५, श. ब्रा. ३.३.१.२.

आदित्याः - (१) अखण्डब्रह्म के पुत्र रूप परमयोगी ।

'यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति'
अ. १८.४.३
(२) अदिति अर्थात् पृथ्वी पर उपकार करने वाले सूर्यचन्द्र या सूर्य और विद्युत, (३) पुत्र के लिए हितकारी एवं एक दूसरे को स्वीकार करने वाले स्त्री पुरुष ।
'आदित्या दानुनस्पती'
ऋ. १.१३६.३, २.४१.६, साम. २.२६२, नि. २.१३.
(४) अदिति के दो पुत्र ।
'ता सम्राजा घृतासुती
आदित्या दानुनस्पती ।'
वे दोनों से दीप्त जल बरसाने वाले अदिति के पुत्र, दान के स्वामी अर्थात् यजमानों की स्तुतियों तथा हवियों से संसवित ...।

आदित्याः नरः – (१) सूर्य के समान सत्य ज्ञान के प्रकाशक विद्वान् पुरूष (२) ४८ वर्षों तक ब्रह्मचर्य पालन करने वाले ।
'यं यज्ञं नयथा नरः
आदित्या ऋजुनापथा,
प्र वः स धीतये नशत्'
ऋ.१.४१.५
हे सूर्य के समान सत्य मार्ग के प्रकाशक पुरुषो, आप लोग जिस यज्ञ या प्रजापालन या परोपकार कार्य में सरल कुटिलता रहित मार्ग में ले जाते हो वह राजा और राजकार्य आप लोगों के ऐश्वर्य –भोग के लिए सदा प्राप्त हो ।

आदित्यानां स्वसा – दान आदान करने वाले व्यापारी वैश्य जनों की सर्व सुख रात्री भगिनी के समान गौ या प्रथिवी ।
'स्वसादित्यानाम् अमृतस्य नाभिः'
ऋ. ८.१०१.१५, तै.आ. ६.१२.१, साम.मं.ब्रा. २.१८.१५, पा.गृ.सू. १.३.२७, आप.मं.पा. २.१०.९, हि.गृ.सू. १.१३.१२.

आदित्यासः – (१) अग्नि, वायु और सूर्य, (२) सूर्य, मेघ और अन्न, (३) अखण्ड ब्रह्म के उपासक ब्रह्मज्ञानी (४) राजशासक जन जो अखण्ड शासक राजा के अधीन हैं ।
'ऋतेनादित्यामहि वो महित्वं'
ऋ. २.२७.८, तै.सं. २.१.११.५, मै.सं. ४.१४.१४, २३९.३, का.सं. ११.१२.
(४) आदित्य वंशी राज पुरुष (६) क्षत्रिय ।
'जीवान्नो अभिधेतन
'आदित्यासो पुरा हथात्
कद्धस्थ हवनश्रुतः ।'
ऋ. ८.६७.५, नि. ६.२७.
(७) पृथिवी की गति से उत्पन्न बारह मास, (८) १२ प्राण (९) वैश्यगण, (१०) विद्वान् गण, (११) सूर्य की किरणें (१२) अखण्ड शक्ति ब्रह्म या राज शक्ति के धारक पुरुष (१३)) आदित्य या वैदिक धर्म के मानने वाले ।
'यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नम्
आदित्यासो भवता मृडयन्तः'
ऋ. १.१०७.१, वाज.सं. ८.४; ३३.६८, तै.सं. १.४.२२.१, २.१.११.४, मै.सं. १.३.२६; ३९.७, ४.१४.१४; २३९.४, का.सं. ४.१०, श.ब्रा. ४.३.५.१५.

आदिनवदर्श – किए कर्म में विध्यमान दोष या त्रुटियों को देख लेने में चतुर पुरुष ।
'कृतायादिन वदर्शम्'
वाज.सं. ३०.१८.

आद्विहायाः – (१) सर्वव्याप्त एवं महान् आदित्य विश्वकर्मा, (२) पुण्य पाप के फलों का आपयिता आत्मा ।
'विश्वकर्मा विमना आद्विहायाः'
ऋ. १०.८२.२, वाज.सं. १७.२६, मै.सं. २.१०.३, १३४.३, का.सं. १८.१, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, नि. १०.२६.
प्रकाश, वृष्टि आदि का कर्त्ता (विश्व कर्मा) अप्रतिहत प्रज्ञान वाला (विमनाः) सर्वव्याप्त एवं महान् (आद्विहायाः) अथवा प्रति शरीर में वर्तमान परमात्मा (विश्वकर्मा) सर्वप्रज्ञान महान् पुण्यपापों के फलों का आपयिता (आद् विहायाः) ।

आदितेय सूर्य – (१) अदिति से उत्पन्न सूर्य (२) प्रातः कालीन सूर्य ।
'यदेदेनमदधुः यज्ञियासो
दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्'
ऋ. १०.८८.११, मै.सं. ४.१४.१४, २३९.१७, नि. ७.२९.
(जभी यज्ञार्ह सभी देवों ने द्युलोक में प्रातः काल सूर्य को तथा अग्नि को स्थापित किया) ।

आदीध्ये – संकल्प करता हूं ।

'यदादीध्ये न दविषाण्येभिः'
ऋ. १०.३४.५.
जब मैं संकल्प करता हूँ कि मैं इन जुओं के पाशों के चलते संतप्त न होऊंगा (न दविषाणि)।

आदुरिः – आदरणीय।
'देवो ददात्वर्यमा'
ऋ. ४.३०.२४, नि. ६.३१.

आदृष्नोति – सम्पन्न करता है।
'आदृष्नोति हविष्कृतिम्'
ऋ. १.१८.८

आदेदिशानः – आदेश देता हुआ।
'अभिषेणां अभ्यादेदिशानान्'
ऋ. ६.४४.१७

आदेव – (१) सब ओर प्रकाश करने वाला सूर्य।
'देवमादेव जनत प्रचेतसं
विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम्'
ऋ. ४.१.१
(२) अल्प व्यवहारज्ञ, (३) स्वल्प विदया प्रकाश से युक्त।

आधत्तम् – दो।
'प्रजावतीरिष आधत्तमस्मे'
ऋ. ६.५२.१६.

आधव – (१) आकम्पयिता, कम्पित कर देने वाला। आङ् + धू + अच् = आधव। धू धातु का अर्थ है– धुनना, झकझोरना, कंपाना या गत्यर्थक है। (२) प्रेरक, (३) स्थिरीकर्त्ता।
'महीमहि त्वा वयम्
घअस्माकं देव पूषन्
मतीनां च साधनम्
विप्राणां चाधवम्।'
ऋ. १०.२६.४.
हे देव पूषन्, हम स्तोता अपने मनोरथों या बुद्धियों के साधक तथा अन्य मेधावियों को अपनी गुणवत्ता से आकम्पित करने वाले या ब्राह्मणों के प्रेरक (विप्राणाम् आधवम्) तुझे प्रार्थना करते हैं (मंसी महि)।

आधवनीय – सोम रखने का पात्र।
'पूतभृच्च म आधवनीयश्च व्यं'
वाज.सं. १८.२१

आध्यक्ष्य – अध्यक्षता।
'आध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम्'
वाज.सं. ३०.११.

आध्वर्यव – अध्वर्यु –सम्बन्धी, हिंसा रहित मित्रपद या राज्य शासक का कार्य।
'अश्विना ध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतुयज'
वाज.सं. २८.१९, मै.सं. ४.१३.८, २१०.१५, का.सं. १९.३, तै.ब्रा. २.६.१०.५, ३.६.१३.१.

आध्र – आङ् + ध्रा + रक् = आध्र। (१) आध्र = दरिद्रः
(२) अपुत्रस्य पुत्रः इति वा स्यात् –दया. ध्रै (तृप्तयर्थक) से अध्र बना है। अध्र ही आध्र है। न तृप्यति यः स आध्रः। अध्र एव आध्रः –महीधर अर्थ– (१) अधीर, (२) अतृप्त, (३) भोगेच्छु (४) दरिद्र, (५) अन्यों से धारण पोषण करने योग्य – दरिद्र।
'आध्रश्चित् यं मन्यमानः तुरश्चित्'
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.३५, तै.ब्रा. २.८.९.७, आप.मं.पा. १.१४.२, नि. १२.१४
(६) सब प्रकार से रक्षित सैन्य बल
(७) समन्तात् धृतः –दया.।
'आध्रेणं चित्त तद्वेकं चकार'
ऋ. ७.१८.१७
पुनः –
'य आध्राय चकमानाय पित्वः'
ऋ. १०.११७.२
(८) आढ्यालु–आढ्यानां स्पृहयिता (खूब धन चाहने वाला– दरिद्र
'प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम
वयं पुत्रमदिते र्यो विधर्ता।
आध्रश्चित् यं मन्यमानस्तुरश्चित्
राजाचित् यं भगं भक्षीत्याह।'
ऋ. ७.४१.२.
हम उस अन्धकार को जितने वाले सूर्योदय से पूर्व भग नामक आदित्य को पुकारते हैं जो समस्त जगत को अपने अनुग्रह से पालन करने वाला है और जिस भग देव को दरिद्र भी धन की आकांक्षा से प्रतिदिन पूजता रहता है क्योंकि सूर्य के उदय से काल बीतता जाता है। राजा भी जिस देश को मुझे यह धन दे, ऐसा कहता है।
(९) सब प्रकार से धारण पोषण करने योग्य राष्ट्र, (१०) दुर्बलहीन प्रजाजन।

'आध्रस्यचित् प्रमतिरुच्यसे पिता'
ऋ. १.३१.१४

आधात् – बरसाता है ।
'अत्रापिता दुहितु गर्भमाधात्'
ऋ. १.१६४.३३, अ. ९.१०.१२, नि. ४.२१.
इस अन्तरिक्ष में द्युलोक नाम से प्रख्यात पर्जन्य नामक मेघ (पिता) दूर निहित पृथ्वी पर (हरितः) सर्वोत्पादन समर्थ वृष्टिजल (गर्भम् बरसता है (आधात्) ।

आधावता – शीघ्र आओ ।
'आधावता सुहस्त्यः'
ऋ. ९.४६.४.
ऐ सुन्दर हाथ वाले ऋत्विजों । आप शीघ्र आओ

आधिः – (१) आधीन, अग्नि, स्थापन या पदार्थ संग्रह करने वाला ।
'स्वाहाऽऽधिमाधीताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२०, तै.सं. -७.३.१५.१, का.सं.(अश्व). ३.५, श.ब्रा. १३.१.८.३, तै.ब्रा. ३.८.११.१, १७.३, आप.श्रौ.सू. २०.८.६, ११.११.
(२) प्रेम से उत्पन्न होने वाली मानसी व्यथा, हृदय वेदना
'आध्यो नितिरामि ते'
अ. ६.१३१.१

आप्रिगुः – अज्ञेय गतिवाला । इन्द्र का विशेषण ।
'अस्मा इदु प्र तवसे तुराय
प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१
इस बलवान् फुर्तीले एवं पूज्य इन्द्र के लिए तृप्ति कारक अन्न एवं स्तुति अर्पित करता हूँ ।

आधीः – (१) निरन्तर ध्यान करता हुआ मन ।
'विमेमनश्चरति दूर आधीः'
ऋ. ६.९.६
(२) आधि, मानसी पीड़ा, मानसिक रोग ।
'आधिःस्यात् मानसी व्यथा' –अमरकोष
(३) कामना, मनोरथ पूर्ण न होने पर भी दुःख होता है । इसलिए आधि का अर्थ कामना भी किया गया है ।
'मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः'
ऋ. १.१०५.८, १०.३३.३, नि. ४.६.
मेरी मानसिक पीड़ाएं मुझे खाए जाती हैं जैसे चूहे अपने घी लगे पूंछ या जननेन्द्रिय को चाटते हैं (मूषो न शिश्ना) ।

आधीत – (१) समस्त विद्याओं को पढ़ाने वाला ।
'आधीताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२०
(२) आध्यात । आ + ध्या + क्त = आध्यात् । या का सम्प्रसारणनियम से ई अर्थ अभिप्रेत अभिलषित, अभीष्ट जिसकी चिन्ता की जाय, जिसका ध्यान किया जाय ।

आधीपर्णा – व्यथारूप पंखों वाला काम प्रेरणा ।
'आधीयर्णा काम शल्याम्'
अ. ३.२५.२

आधीषमाणा – सब प्रकार से धारण पोषण की गई ।
'आधीषमाणायाः पतिः'
ऋ. १०.२६.६

आधून्वत् – अपने चित्त के मलों ओर विक्षेपों को साफ कर डालने और कषाय मलों को त्याग देने वाला ।
'स्तोत्रे शिक्षन् आधून्वते च सुक्रतो'
ऋ. ९.७२.८

आधृत्य – (१) तिरस्कार, बलात्कार करने वाला ।
'त्वं सखा सुशेवः पासि आधृषः'
ऋ. २.१.९
(२) प्रगल्भतापूर्ण व्यवहार ।
'रुद्रासो नू चिदाधृषे'
ऋ. १.३९.४

आन – प्राण ।
'नित्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ'
ऋ. १.५२.१५
हे इन्द्र, वृत्र के या शत्रु के जीवन को या प्रमुख भाग को नष्ट करता है (आनं निजगन्थ) ।

आनजाना – (द्वि.) गुणों का प्रकाश करते हुए –इन्द्राग्नी (२) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् पुरुष, (३) राजा या मन्त्री (४) वायु और अग्नि , (५) जीवात्मा और परमात्मा (६) प्रसिद्ध करने वाले ।
'समिद्धेष्वग्निष्वानजाना'
ऋ. १.१०८.४

आनद् – (१) ला रखता है ।
'यद्वा ते मर्तो अनुभोगमानद्'
ऋ. १.१६३.७, १०.७.२, वाज.सं. २९.१८,

वाज.सं.(का.) ३१.३०, का.सं.(अश्व.) ६.३, तै.सं. ४.६.७.३, नि. ६.८.
जब मनुष्य तेरे लिए योग्य पदार्थ ला रखता है (२) आई ।
'किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानट्'
ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५.
किस इच्छा से सरमा नाम की इन्द्र की कुतिया यहां आई-सा. । किस इच्छा से वेदवाणी यहां आई ।-(दया.)

आनति - शत्रुओं को एवं दुष्टपुरुषों को झुकाने की शक्ति ।
'त्वं म आनतिरागतिः'
वाज.सं. २०.१३

आनम - वश करना (२) सत्कार या नमस्कार करना ।
'स वेद देव आनमम्'
ऋ. ४.८.३, का.सं. १२.१५

आनन्दनन्दौ - स्त्री भोग द्वारा प्राप्त सुख में सुखी होने वाले अण्डकोश ।
'आनन्दनन्दावाण्डौमे'
वाज.सं. २०.९, वाज.सं.(का). २१.१००, मै.सं. ३.११.८, १५२.८: का.सं. ३८.४, तै.ब्रा. २.६.५.६.

आनव - (१) मनुष्यों का हितैषी ।
'ज्येष्ठमग्निवानवम्'
ऋ. ८.७४.४, साम. १.८९.
(२) अतिनवीन ।
'द्रोघाय चिद् वचस आनवाय'
ऋ. ६.६२.९
(३) अनु अर्थात् प्राणी जीव के योग्य शरीर का, मनुष्यों के रहने योग्य राष्ट्र ।
'व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाक्'
ऋ. ७.१८.१३
(३) प्राणधारी ज्ञानवान पुरुष ।
'सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवे
असि प्रशर्ध तुर्वशे'
ऋ. ८.४.१, अ. २०.१२०.१, साम. १.२.७९, २.५८१.

आनशानः - प्राप्त करता हुआ ।
'यत्रदेवा अमृतमानशानाः'
अ. २.१.५, वाज.सं. ३२.१०, तै.आ. १०.१.४, महा.ना.उप. २.५.

आनशाना - भोग करते हुए ।
'त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशाना'
अ. १९.५६.३

आन्तरिक्ष्य - अन्तरिक्ष में उत्पन्न ।
'पवताम् अन्तरिक्ष्या'
ऋ. ९.३६.५

आन्द - बांध बांधने में, किनारा बनाने में चतुर पुरुष ।
'तीर्थेभ्य आन्दम्'
वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

आन्त्य भौवन - (१) सबसे अन्त में होने वाला, (२) सर्वोच्च परम भुवन में व्यापक लोकपति भौवन (३) पौषमास,(४) जाठराग्नि को दीपन कर पोषण करने वाले पौष के समान राजा
'आन्त्याय भौवनाय स्वाहा'
वाज.सं. ९.२०, १८.२८, २२.३२, का.सं. १४.१, श.ब्रा. ५.२.१.२.

आन्त्र - (१) गुर्दा ।
'यदान्त्रेषु गवीन्योः'
अ. १.३.६
'अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे'
ऋ. ४.१८.१३,
(२) आंत, अंतड़ी ,(३) ज्ञान कराने वाला गुह्य साधन (ज्ञान साधन का इन्द्रिय) ।
'आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमानाः'
वाज.सं. १९.८६, मै.सं. ३.११.९, १५३.१३
'आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यः'
ऋ. १०.१६३.३, अ. २.३३.४, २०.९६.२०, आप.मं.पा. १.१७.३
'विद्युत आन्त्रैः'
वाज.सं. २५.७, मै.सं. ३.१५.९, १८०.४

आन्तरिक्ष - (१) अन्तरिक्ष के समान सब का रक्षक, (२) अन्तरिक्ष गति में विशेषज्ञ ।
'अलज आन्तरिक्षः'
वाज.सं. २४.३४, तै.सं. ५.५.२०.१, मै.सं. ३.१४.१६, १७६.१, का.सं.(अश्व) ७.१०.

आनिशित - तीक्ष्ण किया गया ।
'दुरोण आ निशितं सोम सुद्भिः'
ऋ. ४.२४.८

आतिः - (१) निरन्तर सर्वत्र भ्रमण करने में समर्थ, (२) एक पक्षी ।

'आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे'
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.९

आनीत् - अन् (प्राण धारण करना) के लुङ् अ.पु.ए.व. का रूप । अर्थ -प्राण धारण करता था, श्वास लेता था ।
'आनीदवातं स्वधया तदेकम्'
ऋ. १०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४.
(उस प्रलय काल की स्थिति में, वह एक सत् ब्रह्म स्वभावतः वायु के बिना प्राण धारण करता था) ।

आनुषक् - अनुषक्तम् (क्रम से, आनुपूर्व्य का पर्याय) क्रिया विशेषण अनुपूर्व, निरन्तर नियमपूर्वक । अनु + षच् + क्विप् = आनुषक्
'आ घाये अग्निमिन्धते
स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ।'
ऋ. ८.४५.१, साम. १.१३३, २.६८८, वाज.सं. ७.३२, मै.सं.४.१२.६, १४९.९, का.सं. १३.१५, तै.ब्रा. २.४.५.७, ऐ.आ. ५.२.३.२, आश्व.श्रौ. सू. २.९.१४, ६.४.१०, ७.८.१, शां.श्रौ.सू. १२.११.२०, १८.७.६, आप.श्रौ.सू. ११.१०.१७, १२.१.२.
जो ऋषि अग्नि को प्रदीप्त करते हैं और जिन ऋषियों को नित्य तरुण इन्द्र मित्र की तरह यज्ञ में आते हैं वे ही ऋषि कुशों को क्रम से (आनुषक्) बिछाते हैं ।
अन्य अर्थ - जो मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त करते हैं अर्थात् यज्ञ करते हैं और जिनका पुरुषार्थी ब्राह्मण मित्र है वे निरन्तर वृद्धि का विस्तार करते हैं ।

आनूक - शरीर के अनुकूल भूषण ।
'आनूकमर्यो वपुषे नार्चत्'
ऋ. ५.३३.९

आप् - (१) जल, (२) गर्भ, । (३) आप्त स्त्रियां -दया. । (४) सन्तति ।
'सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया'
ऋ. २.३२.४, अ. ७.४८.१, तै.सं. ३.३.११.५, मै.सं. ४.१२.६, १९५.१, का.सं. १३.१६, साम.मं.ब्रा. १.५.३, आप.मं.पा. २.११.१०, नि. ११.३१.
(राजा हमारी सन्ततिरूप वस्त्र को (अपः) अविच्छिन्न सुई से (अच्छिद्यमानया सूच्या) सीए ।)

आपः - (१) जल जिसमें गति करते करते विद्युत् व्याप्त हो जाती है ।
'तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीः
तस्मादापो अनुष्ठन'
अ. ३.१३.२, तै.सं. ५.६.१.३, मै.सं. २.१३.१, १५२.१०.
(२) प्रकृति के व्यापक सूक्ष्म परमाणु ।
'इन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्न आपः'
ऋ. ४.१८.७
(३) प्राप्त होने वाली, (४) स्वंय वरण करने वाली सहधर्मिणी (५) जल । सदा बहुवचन में इस शब्द का प्रयोग होता है ।
'आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः'
ऋ. २.३५.१४
(६) अमृत, (७) शान्ति, (८) श्रद्धा, (९) क्षीर (१०) अन्न, (११) वीर्य, (१२) रेतस, (१३) सभी काम, (१४) देव, (१५) वरुण की पत्नियाँ, (१६) योद्धा (१७) अन्न ।
अमृतं वै आपः - कौ.ब्रा. १२.१
श्रद्धा वा आपः -तै. सं. ६.२.४.१
आपो वै क्षीर आसवः तै.ब्रा. १३.३.६
अन्नमापः कौ.ब्रा. १२.३.८
वीर्यं वा आपः शं.ब्रा. २.३.४.१
आपो वै सर्वे कामाः श.ब्रा. १०.५.४.१५
आपो वै सर्वे देवाः श. ब्रा. १०.५.४.१४
आपो वरुणस्यपत्न्य आसन् तै.सं. १.१.३.८
योषा वा आपः श.ब्रा. १.१.१.१८
'अपूपवान् अपवान् चरुरेह सीदतु'
अ. १८.४.२३
(१८) प्राप्त पत्नियाँ ।
'आपस्पुत्रासो अभिसंविशध्वम्'
अ. १२.३.४
'देव्योहि आपः'
श.ब्रा. १.१.३.७
अग्निना वा आपः सुपत्न्यः श.ब्रा. ६.८.२.३
(१९) आपनाः (सर्वस्यलोकस्य व्यापनाः) आप् धातु से सम्पन्न ।

आपणिः - वणिक् ।
'मापणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध'
ऋ. १.३३.३
हे प्रकृष्ट बुद्धि वाले, तू हमें रत्न् देते समय

बनिया मत बन (मा आपणिः भूः) ।

आपति – चारों ओर से रक्षक ।

'अपतये त्वा परिपतये
गृह्णामि तानूनप्त्रे
शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय'

वाज.सं. ५.५, का.सं. २.८, श.ब्रा. ३.४.२.१०.

आपनन् – (१) सत्कार करता हुआ, (२) गाता हुआ ।

आपनन्त – आ + पन (स्तुति प्रशंसा) धातु के लट् प्र.पु.ब.व.का रूप । अर्थ –(१) सदा गाते हैं, (२) सत्कार करते हैं ।

'आयन्मे अभ्वं वनदः पनन्त'

ऋ. २.४.५

जिसका महत्व (यत् अभ्वम्) मेरे स्पृहणीय हविदाता (वनदः) सदा गाते है (आपनन्त) । अथवा, हे प्रशस्त पदार्थों के दाता मनुष्यो । (वनजः) यत तुम मेरे उपदिष्ट कर्मों में स्थित रहते हुए अपने से बड़े विद्वान् का सत्कार करते हो (यत् मे अभ्वम् आपन्त) ।

आपनीफनत् – आङ् + फण् के यङ् लुङन्त का रूप । अर्थ फांद गया ।

आपप्तत – आओ ।

'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'

ऋ. १.८८.१

हे सुकर्मा मरुतो ! आओ ।

आपप्रिवान् – (१) सब विद्या से पूर्ण करने वाला, (२) विश्व का पालक परमेश्वर या (३) सूर्य, (४) अग्नि ।

'विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम्'

ऋ. १.१४६.१

आपया – (१) जलों से व्याप्त नदी ताल वाली भूमि, (२) आप्त पुरुषों से प्राप्त होने योग्य वाणी, (३) दूरदेश गामिनी वेगवती सेना ।

'दृषद्वत्यां मानुस आपयायाम्'

ऋ. ३.२३.४

आप्त्य – (१) लिंगशरीरस्थ जीव ।

'इन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत्'

ऋ. १०.८.८

(२) आप्तों का हितकारी (३) ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन पर वश करने वाला प्राण ।

'त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर'

अ. १९.५६.४

(४) आप्त जनों में श्रेष्ठ, (४) प्राणों के तत्वो ज्ञाता योगी या आत्मा (५) आप्त प्राप्त जनों का हितकारी ।

'त्रितस्तद् वेद आप्त्यः
स जामित्वाय रेभति ।'

ऋ. १.१०५.९

आप्त जनों में श्रेष्ठ अथवा प्राण तत्व ज्ञाता योगी या आत्मा ही सब अज्ञान बन्धन को पारकर (त्रितः) परम ज्ञान रहस्य को जान लेता है । वह परम बन्धुता को प्राप्त करने के लिए परमेश्वर की स्तुति करता है ।

(७) स्तोतव्य (८) आप्त पुरुष ।

'इनतममाप्त्यमाप्त्यानाम्'

ऋ. १०.१२०.६, अ. ५.२.७, २०.१०७.१०, नि. ११.२१.

आप्य – (१) जलागमन का लक्षण ।

'युवां नरापश्य मानास आप्यम्'

ऋ. ७.८३.१

(२) प्राप्त होने योग्य, (३) बन्धुजनों के योग्य, (४) बन्धु ।

'नहि त्वदन्यत् मघवा न आप्यम्'

ऋ. ७.३२.१९, अ. २०.८२.२, साम. २.११४७.

(४) आप् + ण्यत् = आप्य । आपिः बन्धुः तस्य भावः आप्यः । दुर्ग ने इसका अर्थ धन किया है क्योंकि धन ही आप्य अर्थात् आप्तव्य है ।

'अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो
देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत
मक्षू सुम्नाय नव्यसे ।'

ऋ. ८.२७.१०, नि. ६.१४.

हे हिंसकों के मारने वाले (रिशादसः) देवों (देवासः), आप लोगों की समान जाति है (वः सजात्यम् अस्ति हि) और बन्धुता है (आप्यमस्ति) या धन है अतः पूर्व में हुए और नए (पूर्वस्मै नव्यसे) सुविधा तथा सुख के लिए (सुविताय सुम्नाय) हमें (नः) शीघ्र (मक्षु) वचन दें (प्रावोचत) (५) मित्रता

'अग्ने देवेष्वाप्यम्'

ऋ. १.३६.१२

हे अग्नि, तेरी देवों में मित्रता, बन्धुता या प्राप्यता है ।

आप्र – पूर्णज्ञानी और अन्यों को ज्ञान से पूर्ण करने वाला विद्वान् ।

'स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मनि'

ऋ. १.१३२.२

पूर्णज्ञानी विद्वान् के प्रवचन में ...।

आप्रद्रव – सम्मुख आ ।

'आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः'

ऋ. ५.३१.२.

हे अश्व वाला इन्द्र (हरिवः) हमारे सम्मुख आ (आप्रद्रव), हम से निरपेक्ष न हो (वि वेनः मा) ।

आपाकेष्ठ – आपाकेष्ठ, अकेले टूटे फूटे रद्दी भयङ्कर स्थानों में रहने वाला ।

'आपाकेष्ठाः प्रहासिनः'

अ. ८.६.१४ आपान – व्यापक, विस्तृत ।

'आपानं ब्रह्म चितयत् दिवे दिवे'

ऋ. २.३४.७

आपान्त मन्युः – (१) ज्ञान और तेज को चारों ओर विस्तृत करने वाला ।

'आपान्त मन्युः तृपल प्रभर्मा'

ऋ. १०.८९.५, तै.सं. २.२.१२.३, तै.आ. १०.१.९. नि. ५.१२.

(२) जिसे क्रोध उत्पन्न हुआ हो ।

आप्नानः तीर्थ – (१) व्यापक तारने वाला मोक्ष मार्ग, (२)सोम यज्ञ में चात्वाल और उत्कर के बीच के मार्ग को तीर्थ कहते हैं जिससे जाकर सोमरस का पान करते हैं ।

'आप्नानं तीर्थ क इह प्रवोचत्
येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य'

ऋ. १०.११४.७

आप्राः – आपूपुरत् (आपूरयति) । आपूर्ण करता है । आङ् + प्रा (लङ्) + ति = आप्राः । काल और पुरुष का यहां व्यत्यय है । 'प्रा' धातु का अर्थ पूर्ण करना है ।

'चित्रं देवानामुदगादिनीकम्
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथ्वी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषः च'

ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७.१४, आ.सं. ५.३, वाज.सं. ७.४.२, १३, ४६, तै.सं. १.४.४३.१, २.४.१४.४, मै.सं. १.३.३७,४३.९ का.सं. ४.९,२२.५, श .ब्रा. ४.३.४.१०, ७.५.२.२७, तै.ब्रा. २.८.७.३, ऐ.आ. ३.२.३.१०, तै.आ. १.७.६, २.१३.१, नि. १२.१६.

जब यह विचित्र पूजनीय किरणों का समूह (चित्रं देवानाम् अनीकम्) उदयाचल पर उदित हुआ (उदगात्) तब इस में ही मित्र, वरुण तथा अग्नि को चक्षु दीख पड़ा अर्थात् सूर्य ही मित्र, वरुण तथा अग्नि है (मित्रस्य, वरुणस्य अग्नेः चक्षुः) । उदय लेकर सूर्य ने द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से आपूर्ण किया (आप्राः) ऐसा सूर्य जंगम तथा स्थावर का आत्मा है (सूर्यः जगतः तस्थुषः आत्मा)

आपि – सकल शुभगुण –व्यापी विद्यादि गुणों में व्यापक धनादि प्राप्त करने वाला । इन दिनों आदर के लिए प्रयुक्त 'आप' शब्द इसी आपि का बिगड़ा रूप है ।

'हये देवा यूयमिदापयः स्थ'

ऋ. २.२९.४

आप् + इण् = आपि । (२) सुमति, (३) कल्याणी विद्या, (४) जो प्राप्त किया जाय ।

(५) सदा आप्त बन्धु ।

'आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानाम्'

ऋ. १.३१.१६, ला.श्रौ.सू. ३.२.७.

आपित्व – बन्धुता, (२) सन्धि, (३) मेल ।

'युधेदापित्वमिच्छसे'

ऋ. ८.२१.१३, अ. २०.११४.१, साम. १.३९९, २.७३९.

(४) आपान, पानी पीना ।

'आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमागहि'

ऋ. ८.४.३, साम. १.२५२, २.१०७१, नि. ३.२०.

सोमपान का समय होने पर शीघ्र आ ।

आप्रिय – पशुयाग –सम्बन्धी प्रयोगों के आप्री देवता की याज्या ऋचाएं ।

'चतुर्होतार आप्रियः'

अ. १२.७.१९

आपीत – जो कुछ कुछ पीला हो ।

'यदापीतासो अंशवः'

ऋ. ८.९.१९, अ. २०.१४२.४

आपीतिः – पान करना, पालन करना ।

'सोम आपीतये सुतः'

ऋ. १.१३७.३

आपीना - सर्वतोमुख रसपान करने वाली महाशक्ति ।

'यामापीनामुपसीदन्ति आपः'

अ. ९.१.९

आप्री - (१) आप्री ऋचाएं, (२) सबको प्रसन्न करने वाली वेतन दान पारितोषिक दान आदि क्रिया ।

'आप्रीभिराप्री यज्ञस्य'

वाज.सं. १९.१९

(३) आप्री ऋचा या तत्सम्बन्धी देवता, आप् (प्राप्त्यर्थक धातु) और प्री (प्रीत्यर्थक) के संयोग से सम्पन्न । अतः प्राप्ति अर्थ में आप् + रीङ् (औणादिक कर्ता अर्थ में) = आप्री, अथवा आङ् + प्री + क्विप् = आप्री । देवता अर्थ में ये दोनों प्रत्यय कर्म अर्थ में आते हैं । ऋचाएं देवताओं को प्राप्त कराती या प्रसन्न करती हैं (ऋचः तावत् आप्नुवन्ति आप्रीणान्ति वा देवताः इति आप्रियः) इसी से इन्हे आप्रियः कहा गया है । देवता प्राप्त किए या प्रसन्न किए जाते हैं (देवताः आप्यन्ते वा प्रीयन्तेवा) । आप् + रक् + ङीस् , से भी आप्री बनता है । इन ऋचाओं के प्रसंग से आप्री देवता १२ हैं- (१) इध्म, (२) तनूनपात् , (३) नराशंस, (४) इड, (५) वर्हिष, (६) द्वारः (७) उषासानक्ता, (८) दैत्या होतारा, (९) तिस्रो देवीः (१०) त्वष्टा, (११) वनस्पति और (१२) स्वहाकृतयः ।

आप्रीतया - सब प्रकार से सन्तुष्ट प्रजाओं का पालक राजा ।

'विष्णुराप्रीतया आप्याय्यमानः'

वाज.सं. ८.५७

आप्रुषायन् - (१) चारों ओर से सींचता हुआ, (२) शस्त्रास्त्रों से शत्रुओं पर प्रहार करता हुआ । पुनः

'आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिम्'

ऋ. १०.६८.४, अ. २०.१६.४

आपू - आप्लृ + ऊ = आपू । अर्थ है-बोध ।

आपूर्ण - (१) खूब भरा हुआ ।

'आपूर्णः अस्य कलशः स्वाहा'

ऋ. ३.३२.१५, अ. २०.८.३, ऐ.ब्रा. ६.११.१३, गौ.ब्रा. २.२.२१, आश्व श्रौ.सू. ५.५.१९.

(२) सब तरह से पूर्ण परमेश्वर

'आपूर्णो अंशुः पर्येति विश्वतः'

ऋ. ९.७४.२

आपृच् - आ + पृच् + क्विप् = आपृच् (१) सबसे प्रेम करने वाला ।

'वस्वो वीरस्यापृचः'

ऋ. ८.४०.९

(२) परस्पर के सम्बन्ध से बंधना ।

'ते राया ते ह्यापृचे'

ऋ. ५.५०.२

आपथिः - अभिमुखः पन्थाः यस्य (जिसके सामने मार्ग हो) (२) सब ओर जाने वाले मार्ग से युक्त ।

'आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः'

ऋ. ५.५२.१०

आपृच्छ्य - (१) परस्पर पूछ कर जिज्ञासा से प्राप्त होने ज्ञान, (२) ज्ञातव्य परमपद ।

'आपृच्छ्यं क्रतुमाक्षेति पुष्यति'

ऋ. १.६४.१३

जो परस्पर पूछ कर जिज्ञासा से प्राप्त करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करता है वह बल और ज्ञान से शीघ्र समस्त जनों से बढ़ चढ़ कर उच्च आसन पर विराजता है ।

अथवा जो, ज्ञातव्य परमपद ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त करता है वह ज्ञान बल से सबको पार कर ऊंचा होकर परमपद में विराजता है ।

आपृण - पूर्णकर ।

'तमा पृण वसुपते वसूनाम्'

ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१.

आपृणत् - आ + अपृणत् = आपृणत् अर्थ है पालन कर, लट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग ।

'भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे'

ऋ. ३.३४.१, अ. २०.११.१.

हे प्रचुर दाता इन्द्र! तू दोनों पृथ्वी तथा द्युलोक का पालन कर या करता है । अथवा, हे राजन्! तू जैसे सूर्य तथा पृथ्वी लोक का पालन करता है वैसे तू प्रजाओं का पालन कर ।

आयोयुवानः - कार्य में नियुक्त करता हुआ ।

'आयोयुवानो वृषभस्यनीडे'

ऋ. ४.१.११.

आबयु - आवपति आत्तिकर्मा + उ । अर्थ

(१) सर्वव्यापक, (२) खाए जाने योग्य अन्न, (३) रोग-निवृत्ति के लिए खाए जाने वाला ।
'आबयो अनाबयो रसस्त उग्र आबयो'
अ. ६.१६.१
(३) सर्वप्रकाशब्द, (४) सर्वोत्पादक ।

अबाध - दुष्टपुरुषों को सब प्रकार से पीड़ित करने वाला ।
'येषामाबाध ऋग्मियः'
ऋ. ८.२३.३

आभग - (१) सब प्रकार से भजन करने योग्य इन्द्र परमेश्वर ।
'कृधि प्रजासु आभगम्'
ऋ. ८.५३.६
(२) सब प्रकार से सेवन करने योग्य ।
'सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः'
ऋ. १०.४४.९, अ. २०.९४.९
पुनः-
'कर्मन् कर्मन् आभगम्'
अ. ४.२३.३
(३) सब प्रकार से सेवा करने और सुख देने वाला, (४) सब ऐश्वर्यों से युक्त ।
'देवो देवेषु आभगः'
ऋ. १.१३६.४

आभवन् - सब प्रकार से सामर्थ्यवान् ।
'आभवन् प्रभवन् भवन्'
अ. ३.२९.२

आभर - दे ।
'आनोभर भगमिन्द्र द्युमन्तम्'
ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१.
हे इन्द्र ! हमें द्युतिमान धन दे ।
पुनः -
'किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो
नाशिरं दुह्रे न तपन्ति धर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो
नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः ।'
ऋ. ३.५३.१४, नि. ६.३२.
हे इन्द्र, जो गाएं अनार्यदेश निवासी मनुष्यो के पास हैं (कीकटेषु) वे तेरा कौन कौन उपकार करती हैं । वे सोम-मिश्रणयोग्य दूध नहीं दुहते (आशिरं न दुह्रे) प्रवर्ग्य कर्म के उपयुक्त महावीरपात्र या अग्नि कुण्ड को (धर्मम्) अपने दूध के दान द्वारा दीप्त नहीं करते (न तपन्ति) अतः उन गायों को लाकर हमें दो (न आभर)। सूद पर धन चलाने वाले का या विषय-परायण नास्तिक या हिंजड़े का जो धन है (प्रमगन्दस्य वेदः) उसे भी दे और हे भगवन् अर्थात् धनी शूद्रादि नीच योनियों में पुत्रादि उत्पन्न करने वालों का धन हमें दें (नैचाशाखम्) या हमारे अधीनकर (रन्धया नः)

आभूः - (१) पुनः पुनः आने वाला, (२)अन्त रहने वाला ।
'रयिं ददात्याभुवम्'
ऋ. १.१३३.७, अ २०.६७.१
(२) कारागृह - सा ।
'दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि'
ऋ. १.५६.३.
दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला इन्द्र (दुध्रः) शत्रुओं के कारागृहों में (आभूषु) रमाय (रामयन्) -सा. स्वामी दयानन्द ने आभूषु शब्द मान कर इसका अर्थ शोभायमान किया है ।
(३) धर्मचारी -दया. (४) अपने अधीन भूमियों के माण्डलिक अधीशों द्वारा या अधिक सामर्थ्यवान् वीर पुरुषों द्वारा (आभूभिः) अपने मुकाबले पर न आ सकने वाली शत्रुओं का विनाश करता हुआ...।
(५) सब प्रकार की विभूति-ऐश्वर्य

आभूक - सामर्थ्यहीन, नाचीज ।
'आभूकं प्रति चाक शान्'
अ. ६.२९.३

आभूमि - विभूति ।
'आभूत्या सहजा वज्र सायक'
ऋ. १०.८४.६, अ. ४.३१.६

आभूति - चारों ओर विद्यमान भूमियों से या उत्तम शक्ति शाली सहायकों से युक्त ।
'आभूमिरिन्द्र तुर्वणि'
ऋ. ५.३५.३.

आभूषु - (१) आ + भूष् + उ = आभूषु । अर्थ है शोभायमान । -(दया.)
(२) कारागृह । सायण 'आभू' का अर्थ कारागृह मानते हैं ।
'दुध्र आभूषु रामयन् नि दामनि'
ऋ. १.५६.३

विद्या से पूर्ण कर प्रसन्नता से रमण करने वाला (दुघ्रः मदे रामयन्) । -(दया.)

आभूषति - (१) अनुकूल आचरण करता है । (२) आक्रमण करता है ।
'आवयुनेषु भूषति'
ऋ. ८.६६.८, अ. २०.९७.२, साम. २.१०४२.
इन्द्र का कुत्ता भेड़ों का शिकारी होकर भी प्रशस्त मार्गों में प्रज्ञानों में (वयुनेषु) इन्द्र के अनुकूल आचरण करता है । (आभूषति) राजा का कुत्ता इशारों पर (वयुनेषु) आक्रमण करने वाला हो (आभूषति) ।

आभूषेण्य - (१) सब प्रकार से आभूषण के तुल्य शोभाजनक, (२) सब ओर कार्य करने में सामर्थ्यप्रद
'आभूषेण्यं वे मरुतो महित्वनम्'
ऋ. ५.५५.४.

आभृति - आ + भृ + क्तिन् । (१) ग्रहण करना, (२) चारों ओर फैलाना, (३)बलवीर्य का धारण करना
'स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति'
ऋ. १.१२८.२
वह यज्ञाग्नि हमारे नाना प्रकारों के अन्नों के ग्रहण और सर्वत्र फैला देने के लिए (ऊर्जाय उपाभृति) इस सामर्थ्य से (अया कृपा) कभी क्षीण नहीं होता (न जूर्यित) । अथवा, वह हमारे बल वीर्यों के धारण कर लेने पर अपने इस सामर्त्य से (अयाकृपा) कभी क्षीण नहीं होता ।

आभोग - चारों ओर भोग विलास में मग्न, भोग-प्रिय
'आभोगं हन्मना हतम्'
ऋ. ७.९४.१२

आभोगय - समन्तात् भोगेषु साधुः व्यवहारः शेष सब तरफ समस्त जीवों की रक्षा करने और सब सुख उपभोग करने में श्रेष्ठ बल और ज्ञान
'आभोगयं प्रयदिच्छन्त ऐतन'
ऋ. १.११०.२
यदि सब तरफ समस्त जीवों की रक्षा करने और सुख उपभोग करने में सर्वश्रेष्ठ बल और ज्ञान की (आभोगयम्) इच्छा करते हो तो आओ ।

आभोगि - वह क्रिया जिसमें सब ओर से सुख हो ।
'जिह्मश्ये चरितवे मघोनी
आभोगय इष्टये राय उ त्वम्'
ऋ. १.११३.५
उषा किसी पुरुष को टेढ़े मोढ़े सोने के लिए (जिह्मश्ये) किसी को उठकर काम पर जाने के लिए (चरितवे) और किसी को सब प्रकार के भोग सुखों को प्राप्त करने के लिए (आभोगये) और किसी को यज्ञ दान करने के लिए (इष्टये) प्रकट होती है ।

आम - (१) आमरोग, (२) रोगकारी हिंसकजन्तु ।
'य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति'
ऋ. १.१६२.१०, वाज.सं. २५.३३, तै.सं. ४.६.८.४, मै.सं. ३.१६.१, १८२.१२, का.सं.(अश्व). ६.४.
(३) कच्चा, अपक्व ।

आमणकः - मननशील ।
'आमणको मणत्सकः'
अ. २०.१३०.९

आमन्त्रण - परस्पर प्रेम और सम्मानपूर्वक बुलाना ।
'यन्त्यस्यामन्त्रणम्'
अ. ८.१०.१३

आमन्त्रणीय - आमन्त्रण के योग्य ।
'आमन्त्रणीयो भवति य एवं वेद'
अ. ८.१०.१३

आमनाः - अनुकूल चित्त वाला ।
'वरमामनसं कुणु'
अ. २.३६.६

आमपात्र - कच्चा बर्तन ।
'आसीदामपात्रं पात्रम्'
अ. ८.१०.५. १०

आमयत् - रोग कारक पदार्थ ।
'मूत्रं भवत्वामयत्'
अ. ९.८.१०

आमरीता - नाश करने वाला ।
'न राधस आमरीता मघस्य'
ऋ. ४.२०.७

आमा - (१) सहधर्मचारिणी दारा ।
'इन्द्रा सोमा पक्वमामास्वन्तः'
ऋ. ६.७२.४
(२) सहचरी, (३) बल से कच्ची निर्बल ।
'आमापक्वं चरति बिभ्रतीगौः'
ऋ. ३.३०.१४

(४) गृह ।
'आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यम्'
ऋ. २.३५.६
(५) अपक्वा, अप्राप्तयौवना गौः ।
(६) अपक्व ओषधि-ज.दे.श. ।
'आमासु पक्वमैरयः'
ऋ. ८.८९.७, साम. २.७८१, का.सं. ८.१६, तै.सं. १.६.१२.२, शां.श्रौ.सू . १८.११.२.
हे इन्द्र, अपक्व या अप्राप्त यौवना गौओं मे तूने परिणत एवं पूर्ण दुग्ध प्रेरित किया (पक्वम् एरेयः) ।
हे परमेश्वर ! तू अपक्व ओषधियों में पक्व रस डालता है ।

आमाद् - (१) कच्चे अपसिक्व वायु वाले जीवों को खाने वाला, (२) रोगादि ज्वर, (३) कच्चा मांस खाने वाला ।
'आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः'
ऋ. १०.८७.७, अ. ८.३.७.

आमिक्षा - (१) गर्म दूध में खट्टा डालने से जो स्थूल पदार्थ निकलता है -छेना, (२) राजा और प्रजा के अधिकारियों का सम्मिलित गण ।
'आमिक्षा वाजिनम्मधु'
वाज.सं. १९.२१
(३) समन्तात् मेषति हिनस्ति इति आमिक्षा । -(दया.)
(४) मेहति सिञ्चति वासा आमिक्षा-प्रजा पर सुखों का वर्षण करना
(५) सब ओर से राज्य के मुख्य पद पर अभिषेक किया होगा ।
'सौम्यस्य रूपमामिक्षा'
वाज.सं. १९.२३
(६) आण्डस्य वा एतत् रूपम् यत् आमिक्षा -तै.सं. १.२.६.४
जमा हुआ दही, (७) फटादूध, (८) ब्रह्माण्ड, (९) हिरण्यगर्भ के घटक पदार्थ का नाम ।
'आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः'
अ. ९.४.४

आमिनाना - विनाश करती हुई ।
'श्वघ्नीव कृत्नुः विज आमिनाना'
ऋ. १.९२.१०

आमिनाने - (स्त्री.दि.) बदलती हुई ।
'समानबन्धू अमृते अनूची
द्यावा वर्णं चरत आमिनाने'
ऋ. १.११३.२, साम. २.११००, नि. २.२०.
उषा और रात्रि जिनके सूर्य समान रूप से बन्धु हैं और जो एक दूसरे का अनुसरण करने वाली है । प्रकाशमान अन्तरिक्ष लोक से एक दूसरे का रंग बदलती चलती हैं ।

आमिनोन् - आम् + इनोन् । अर्थ मैं ने आत्मा को जान लिया ।
'आमिनोनिति भद्यते'
अ. २०.१३१.१

आमिश्लतमः - सब प्रकार से मिला हुआ, तुल्य, परस्पर प्रेमयुक्त ।
'स सोम आमिश्लतमः सुतो भूत्'
ऋ. ६.२९.४

आमिष् - फल ।
'न्यूङ्खयन्ते अधिपक्व आमिषि'
ऋ. १०.९४.३

आमुर् - (१) मूढ़ या सर्वत्र महामारी करने वाले हिंसक ।
'इतो युच्छन्तु आमुरः'
ऋ. ८.३९.२
(२) अतिमोह करने वाले या चारों ओर से मार करने वाले शत्रु ।
'स्याम वन्वन्त आमुरः'
ऋ. ९.६१.२४

आमुरिः - (१) शत्रुओं का नाशक ।
'क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुत'
ऋ. ८.९७.१०, अ. २०.५४.१
(२) कामादि शत्रुओं का नाशक ।

आमुष्यायण - (१) अमुक गोत्र और वंश से उत्पन्न
'असावामुष्यायणामुष्याः पुत्र'
अ. ४.१६.९
'इदमहमामुष्यायणे अमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे'
अ. १६.७.८
(२) पौत्र, पोता ।
'इदमहमामुष्यायणस्यामुष्यः
पुत्रस्य वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामि'
अ. १०.५.३६

आमृडयत्तमा - एक दूसरे को प्राप्त होकर अति अधिक सुखी करने स्त्री पुरुष ।

'यामन्ना मृडयत्तमा'
ऋ. ५.७३.९

आमेन्य - (१) चारों ओर से नाम लेने के योग्य (२) समन्तात ज्ञानस्य विषयः-दया. (चारों ओर से ज्ञान योग्य विषय) ।
'आमेन्यस्य रजसो यदभ्रआं'
ऋ. ५.४८.१

आमेम्याने - नक्तोषसा का विशेषण । अर्थ नाश करने वाले रात और उषा एक दूसरे के वर्म का नाश करती है ।
'नक्तोषासा वर्णमामेम्याने'
ऋ. १.९६.५

आयच्छत् - शत्रुओं का निग्रह करने वाला ।
'नम आयच्छद्भ्योऽस्यन्द्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२२.

आयजिष्ठ - (१) सबसे सत्संगति और मैत्री भाव रखने वाला, (२) यज्ञ करने वाला अग्नि ।
'यष्टा देवां आयजिष्ठः स्वस्ति'
ऋ. २.९.६, तै.सं. ४.३.१३.२, ६.१.५, मै.सं. ४.१०.५, १५४.४, का.सं. २१.१३.

आयजी - समन्तात् यज्यन्ते पदार्थाः याभ्यां तौ स्त्री पुरुषौ - दया. (एक साथ संगत हो दान देने वाले या यज्ञ करने वाले स्त्री पुरुष) ।
'आयजी वाजसातमा
ताह्युच्चा विजर्भृतः'
ऋ. १.२८.७, नि. ९.३६
एक साथ संगत हो यज्ञ करने वाले और ऐश्वर्य का उपयोग करने वाले स्त्री पुरुषों दोनों ऊंचे पद या गृहस्थादि कार्य भार उठाते हैं ।

आयत् - (१) आता हुआ ।
'आयतः प्रतिनन्दनम्'
अ. ७.३८.१
(२) आगामी काल, भविष्य ।
'रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते'
ऋ. २.१३.४
(३) सब तरफ जाने वाला ।
'मरुतां श्रृण्व आयतामुपब्दिः'
ऋ. १.१६९.७

आयतन - आश्रय, प्रतिष्ठा ।
'पर्यस्यास्मिन् लोक आयतनं शिष्यते'
अ. १५.१२.७.

आयता - अति विस्तृत भूमि या वाणी ।
'न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता'
ऋ. ५.४४.९

आयती - (१) समीप आती हुई ओषधि ।
(२) समन्तात् प्राप्य ओषधि
'अदृष्टान् इन्त्या यती'
ऋ. १.१९१.२.
समीप आती हुई ओषधि न दीखने वाले विष जन्तुओं को नाश कर देती है ।
(३) आगे आने वाली उषा ।
'आयतीना प्रथमा शश्वती नाम्'
ऋ. १.११३.८

आयद्वसुः - समस्त लोकों को वश करने वाले केन्द्रस्थ महासूर्यों के भी भीतर शक्ति रूप से बसने वाला परमेश्वर ।
'संयद्वसु रायद्वसुः'
अ. १३.४.५४

आयन - (१) घर में आने और रहने का स्थान (२) शाला ।
'आयनेते परायणे
पूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः'
ऋ. १०.१४२.८, अ. ६.१०१.१
(३) आगमनः (४) सन्तान की प्राप्ति
'येषां दत्तं पित्र्यमायनेन'
अ. ६.१२२.२, तै.आ. २.६.२.

आयवः - शिल्पी जन, ज्ञानी जन ।
'अतक्षन् आयवो नव्यसे सम्'
ऋ. २.३१.७

आयवन - (१) जल और चावल को मिलाने वाला दण्ड ।
'बृहदायवनम् रथन्तरं दर्विः'
अ. ११.३.१६
(२) सोम रस को बार बार मिलाना ।
'स्रुग् दर्विर्नेक्षणमायवनम्'
अ. ९.६.१७
(३) घृत आदि को भात आदि में मिलाने का चमस, (४) राष्ट्र विरोधी बल को नष्ट करने वाला पुलिस आदि ।
'वि गाहेथामायवनं च दर्विः'
अ. १२.३.३६
(५) नीचे ऊपर करना ।

'आयवनेनती मेजनी'
अ. २०.१३१.८

आयवसः – (१) सर्वत्र व्यापक अन्नादि सामग्री का स्वामी, (२ अन्नादि का स्वामी आत्मा ।

आयुस् – (१) जीवनकाल ।
'पुनः पत्नीमग्निरदात्
आयुषा सह वर्चसा'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४, ९,१४.
पिता के द्वारा दान देने के बाद पुनः अग्नि आयु और तेज के साथ दान देते हैं ।
(२) आदित्य ।
'आयोर्ह स्कम्भ उपमस्यनीडे,
पथां विसर्गे धरुणेयु तस्थौ ।'
ऋ. १०.५.६, अ. ५.१.६.
मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करने वाला पुरुष आदित्य मण्डल में स्थित आदित्यान्तर नारायण के स्थान में जो अविनाथी स्थान है वहाँ जाकर मरने के बाद निवास करता है ।
(३) भोजन ।
'पृथुज्रया अमिनायुर्दस्योः'
ऋ. ३.४९.२, नि. ५.९.
अति वेगवान् इन्द्र या राज दुष्ट मनुष्य को आयु यो भोजन नष्ट भ्रष्ट करता है । (४) मनुष्य ।
'ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द
कर्णा बुधानः शुचमान आयोः'
ऋ. ४.२३.८, नि. १०.४१.
ऋतदेव का स्तुति वचन बोधित करता एवं पवित्र करता हुआ मनुष्य के बहरे कानों को भी छेद डालता है (आयोः बधिर कर्णा आततर्द) ।
(५) जल ।
'प्रमृथस्य आयोः'
प्रचुर मात्रा में एकत्रित जल से ।

आयसः – (१) सुवर्ण के बने पदार्थ के तुल्य कान्तिमान प्रभु ।
'हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसः'
ऋ. १०.९६.८, अ. २०.३१.३
(२) अयस् (लौह) + अण् = आयस । अर्थ- लौह कवच धारण करने वाला -इन्द्र का विशेषण ।
(३) लौह समान दृढ़ शरीर वाला ।
'येन शुष्णं मायिनमायसो मदे'
ऋ. १.५६.३
वह लौह कवच पहने (आयसः) सोमपान से हर्षित होने पर (मदे) .. .जिस बल से सबके शोषक (शुष्णम्) मायावी शत्रु को (मामिनम्) अथवा, वह लौह समान दृढ़ शरीर वाला तेजस्वी पुरुष ..जिससे उस बलवान् (शुष्णम् प्रज्ञावान् (मायिनम्) पुरुष को । ...(दया.)

आयसी जंघा – (१) लोहे की बनी शत्रुओं को मारने वाली सशस्त्र सेना, (२) गाड़ी में लगा लोहे का पहिया ।
'सद् यो जंघामायसीं विश्पलायै
धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्'
ऋ. १.११६.१५
शीघ्र ही आप दोनों प्रजावर्ग को पालन करने वाली नीति की रक्षा के लिए (विश्पलायै) ऐश्वर्यप्राप्ति और प्रजा हित के निमित्त (धने हिते) तथा आगे बढ़ने के लिए (सर्तवे) लोहे की बनी शत्रु को मारने वाली सशस्त्र सेना को, गाड़ी में लगे लोहे के पहिए के समान (आयसीं जंघाम् संयोजित करो (प्रत्यधत्तम्) ।

आयसीपुर् – (१) लोहे की बनी शस्त्रास्त्र से सुसज्जित नगरी, प्राणों से युक्त शरीर ।
'पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा'
ऋ. १०.१०१.८, अ. १९.५८.४, का.सं. ३८.१३, आप.श्रौ.सू. १६.१४.५.
(३) लोहे की बनी प्रकोट, (४) प्राणों से बनी पञ्चकोश मय देह ।
'आयसी मतरत् पुरम्'
ऋ. ८.१००.८,

आयसीवाशी – (१) सुवर्णमयी वंशी, (२) लोहे की बनी बंसुली, (३) सबको संचालन करने में समर्थ ज्ञान वाणी (४) सर्व-संचालिका प्रभुशक्ति ।
'वाशीमेको विभर्ति हस्त आयसीम्
अन्तर्देवेषु निध्रुविः'
ऋ. ८.२९.३

आयान – आगमन ।
'अस्मिन्ना वाम् आयाने वाजिनीवसू'
ऋ. ८.२२.१८

आयास – अंगों का व्यापक श्रम ।

'आयासाय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११, तै.सं. १.४.३५.१, का.सं. (आश्व). ५.६, तै.आ. ३.२०.१.

आयु – मनुष्य ।
'त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुम्'
ऋ. १.५३.१०, आ. २०.२१.१०

आयुज् – आयोजन ।
'आयुजः प्रयुजो युजः'
अ. ११.८.२५

आयुधः – आ + युध् + अच् = आयुध । जिससे युद्ध किया जाय-अस्त्र शस्त्र
'इमा रुद्राय स्थिर धन्वने गिरः
क्षिप्रेष वे देवाय स्वधाव्ने
अषाढाय सहमानाय वेधसे
तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु नः ।'
ऋ. ७.४६.१, तै.ब्रा. २.८.८, नि. १०.६
हे स्तोता गण । इन स्तुतियों को स्थिर धनुष वाले, शीघ्र गामी वाण वाले, अन्न वाले, किसी से अभिभूत न होने वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले देदीप्यमान या दानशील विधाता, तीक्ष्ण आयुध वाले रुद्रनामक देवता को अर्पित करो । रुद्र भी हमारी स्तुतियों को सुने ।

आयुन् – (१) प्राप्ति, (२) दीर्घायु होना ।
'अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुनि'
ऋ. ३.३.७

आयुपोषस् – जीवन और आयु की पुष्टि और वृद्धि करने वाला धन ।

आयुर्युध् – जान पर लड़ने वाला ।
'ऐलबृदा आयुर्युधः'
वाज.सं. १६.६०. तै.सं. ४.५.११.१, मै.सं .२.९.९, १२९.१.

आयुवः – 'मरीचयः' का विशेषण । परस्पर संगत एवं सुव्यवस्थित होकर रहने वाली सूर्य की किरणें या सेवाएं ।
'तस्य मरीचयो ऽप्सरस आयुवो नाम'
वाज.सं. १८.३९, तै.सं. ३.४.७.१, मै.सं. २.१२.२, १४५.३, का.सं. १८.१४, श.ब्रा. ९.४.१.८.

आयुः प्रतारण – आयु या जीवन में पार उतारने वाल –शंख ।
'आयुष्प्रतारणो मणिः'
ऋ. ४.१०.४

आयुः – मनुष्य ।
'वृधे चिदर्य उपरस्यायोः'
ऋ. ४.२.१८, अ. १८.३.२३

आयुःकृत् – आयु को दीर्घ बनाने वाली ।
'आयुषायुः कृताम् जीव'
अ. १९.२७.८

आयुष्कृत् – आयु को बढ़ाने वाला सूर्य ।
'आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ'
अ. ५.९.८, का.सं. ३७.१५.

आयुर्दद – दीर्घ जीवन देने वाली ।
'आयुर्ददं विपश्चितम्'
अ. ६.५२.३

आयुष्पत्नी – आयु का पालन करने वाली पृथ्वी ।
'आयुष्कृदायुष्पत्नी स्वधावन्तौ'
अ. ५.९.८, का.सं. ३७.१५.

आयुष्य – आयु बढ़ाने वाला ।
'आमुष्यं वर्चस्यम्'
वाज.सं. ३४.५०, शां.गृ.सू. ३.१.७, हि.गृ.सू. १.१०.६, आप.मं.पा. २.८.१.

आयुषक् – (१) सब के प्राणों को प्राप्त करने वाला (२) सब मनुष्यो को प्रेम से बांधने वाला–सोम ।
'पवस्व देव आयुषक्'
ऋ. ९.६३.२२, साम. १.४८३, २.५८५, पंच.ब्रा. १४.११.१.

आयुष्याः – सबके आयुओं का पालक ।
'आयुष्पा आयुर्मे याहि'
वाज.सं. १४.१७, २२.१, श.ब्रा. १३.४.१.७.

आयूय – खूब मिलाकर । आ + यु + ल्यप्
'आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं
नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः'
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३.
हे द्रविणोद नामक अग्नि, हे शत्रु धर्षक ! सोम रस को खूब मिलाकर (आयूय) तथा खूब पलट कर (अभिगूर्य) यज्ञस्थान से (नेष्ट्रात्) ऋतुंओं के साथ पान करें ।

आयै – आने के लिए ।
'आयै सुक्तेन वचसा नवेन'
ऋ. २.१८.३.

आयोःस्कम्भः – (१) आदित्य का मण्डल –सा. (२) जीवन का स्तम्भ परमात्मा ।

आर – निकट ।

आरंगरा – द्वि.व. । एक वचन में 'आरंगर' । अर्थ– खूब उपदेश देने वाले 'आयंगर' और 'आरंगर' की समानता विचारणीय है ।
'आरंगरैव मध्वेरयेथे'
ऋ. १०.१०६.१०

आरण – (१) आनन्द प्रद अवसर ।
'यो गाधेषु य आरणेषु हव्यः'
ऋ. ८.७०.८
(२) सर्वतः युद्ध भाव ।
'याभिरन्तकं जसमानमारणे'
ऋ. १.११२.६

आरण्य अज – (१) जंगली अज, (२) अजाश्रृंगी नामक औषधि, (३) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला पुरुष
'आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः'
वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१२.१, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.३, का.सं.(अश्व). ७.२.

आरण्य गौर – गौर नानक बारहसींगा
'गौरमारण्यमनु ते दिशामि'
वाज.सं. १३.४८, तै.सं. ४.२.१०.२, मै.सं. २.७.१७, १०२.१३. का.सं. १६.१७, श.ब्रा. ७.५.२.३३.

आरण्यमेष – जंगली भेड़ ।
'वरुणायारण्यो मेषः'
वाज.सं. २४.३०, ३८, मै.सं. ३.१४.११, १७४.७

आरपन्ती – आलपन्ती, स्पष्ट रूप से बतलाती हुई ।
'ऋतस्य सामन् सरमारपन्ती'
वाज.सं. २२.२, तै.सं. ४.१.२.१, ७.१.११.१ मै.सं. ३.१२.१, १५९.१४, का.सं.(आश्व) १.२, तै.ब्रा. ३.८.३.४.

आरब्ध – पकड़ा गया ।
'उतारब्धां स्पृणुहि जातवेदः'
ऋ. १०.८७.७, अ. ८.३.७

आरभ – (१) आलम्बन, आश्रय
'पर्णामृगस्य पतरोरिवा रभेः'
ऋ. १.१८२.७.
(२) आरम्भ ।
'पवित्रवन्तः परिवाच मासते
पितैषां प्रत्नो अभिरक्षित व्रतम्
महः समुद्रं वरुणस्तिरोदधे
धीरा इच्छेकुः धरुणेष्वारभम्'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ, १.११.१, नि. १२.३.
रश्मियुक्त माध्यमिक देवगण (पवित्रवन्तः) माध्यमकि वाणी को घेरकर बैठते हैं (पर्यासते) प्राचीन रक्षक वह विद्युत नामक वरुण देव (प्रत्नः पिता वरुणः) इन मरुत प्रभृति माध्यमिक देवों के कर्म की रक्षा करते हैं । महान् वरुण जब आदित्य को (समुद्रम्) मेघजल से तिरोहित कर देते हैं तब बुद्धिमान् पुरुष पानी बरसाने पर (धरुणेषु) कृषि कर्म या वैदिक कर्म का आरम्भ कर सकते हैं (आरभं शेकुः)
वरुण ही (विद्युत्) कृषि आदि कार्य का साधक है ।

आररम्भ – आ + रम्भ (आश्रय लेना) का लिट् में रूप । यज्ञ लिट् का प्रयोग वर्तमान अर्थ में हुआ है । अर्थ आश्रय या अवलम्बन लेते हैं ।
'आत्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते'
ऋ. ८.४५.२०, नि. ३.२१.
जैसे वृद्ध लकुटी का आश्रय लेते हैं वैसे ही हे बल के पालक ! हम तेरा आश्रय लेते हैं ।

आरम्भण – आरम्भक मूल कारण या उपादान कारण ।
'किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणम्'
ऋ. १०.८१.२, वाज.सं. १७.१८, तै.सं. ४.६.२.४, मै.सं. २.१०२, १३३.६, का.सं. १८.२.

आरात्तात् – आरात् + तात् । अति समीप या अति दूर ।
'आरात् तात् चित् भूतमस्मे अवसे'
ऋ. ८.२२.१६.

आर्की – ज्ञानवान्, बुद्धिमान्, ज्ञान का दान एवं ग्रहण करने वाला पुरुष ।
'आर्की सूर्यस्य रोचनात्
विश्वान् देवान् उषर्बुधः'
ऋ. १.१४.९
ज्ञानवान् पुरुष सूर्य या संचालक परमेश्वर के प्रकाश रश्मी उषाकाल अर्थात् सृष्टि की आदि में बोध प्राप्त कराने वाले समस्त ज्ञानप्रद वेद मन्त्रों को सबसे प्रकार सर्वत्र उपदेश करें ।

आर्क्ष – (१) शत्रु को पीड़ित करने में समर्थ, (२) विद्वान् ।
ऋचः सनोति इति ऋक्षः । ऋक्ष + अण् = आर्क्ष

(स्वार्थ में) ।
'आर्क्षो अनीक एधते'
ऋ. ८.७४.४
पुनः
'स्वभीशुं रार्क्षे'
ऋ. ८.६८.१६

आर्चत्कः – (१) अर्च + अति + क = आर्चत्कः शिष्टट्यानुकम्पकः –(दया.)
(२) पूज्य विद्वान् पुरुष ।
'शरस्य चित् आर्चत्कस्यावतात् आ'
ऋ. १.११६.२२
हिंसा के व्यसनी निकृष्ट कोटि के पुरुष के रक्षण–सामर्थ्य से भी प्रजापालन के लिए शत्रुओं का वारण करो । उसी प्रकार पूज्य विद्वान् पुरुष के उत्कृष्ट कोटि के ज्ञान–रक्षण–सामर्थ्य रूप मेघ जल के समान शान्तिदायक ज्ञान प्राप्त करा

आर्जक – धार्मिक निवासियों से वरण करने योग्य नगर या देश । ऋजीक + अण् = आर्जीक
'आर्जीके पस्त्यावति'
ऋ. ८.७.२९

आर्जकीया – ऋजूक प्रभवा वा ऋजु गामिनी वा –नि. अर्थ (१) ऋजूक से उत्पन्न या (२) ऋजु गति वाली (३) वह नाड़ी जो मस्तक के ऋजूक नामक स्थान से निकलती है (४) एक नदी का नाम विपाशा या विपाट् नदी ।
विपाशा तु विपाद् स्त्रियाम् – अमर
ऋजीव नामक पर्वत से निकलने वाली नदी ।
ऋजीक + अण् + टाप् = आर्जीका , आर्जीका + छ (स्वार्थ में) = आर्जकीया ।
'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया
घआर्जकीये श्रृणुह्या सुषोमया ।'
ऋ. १०.७५.५, तै.आ. १०.१.१३, महा.ना.उप. ५.४,नि ९.२६.
इसमें प्रधान सात नदियों की स्तुति है । उनके सहायक तीन और नदियाँ भी सायण के अनुसार सम्मिलित हैं । कुछ विद्वानों के अनुसार ९ ही नदियाँ हैं ।
हे गंगे, हे यमुने, हे सरस्वति, हे शुतुद्रि ! तुम मेरे इस स्तोत्रं को सुनो (इमं मे स्तोमम् आसचत) ! हे परुष्णी के साथ मरुद्वृधे ! (परुष्ण्या मरुद्वृधे) ! हे आर्जकीये ! तू भी असिक्नि , वितस्ता और सुषोमा के साथ सुन ! पंजाब की पांच नदियों के साथ तीन नदियां परिगणित हैं ।

आर्जुनेय – (१) अर्जुने न रूपेण निर्वृत्तम् (सुन्दर रूप से सिद्ध) ।– (दया.)
(२) ऐश्वर्य के अर्जन करने और शत्रु का मुकाबला करने वाले सेनाध्यक्ष का ।
'याभिः कुत्सम् आर्जुनेयं शतक्रतू'
ऋ. १.११२.२३.
जिन साधनों से ऐश्वर्यों के अर्जन करने और शत्रुओं का मुकाबला करने वाले सेनाध्यक्ष के शस्त्रास्त्र एवं सेनाबल का (आर्जुनेयं कुत्सम्) आप दोनों सैकड़ो प्रज्ञाओं और कर्मों से युक्त होकर (शतकतू) रक्षा करते हो ।

आर्तना – (१) या आर्तपति सत्ययति (सत्य आचरण करने वाली) –दया.
(२)शत्रुओं की पीड़ा कारिणी सेना –

आर्तव – (१) ऋतुओं के पक्ष मास आदि भाग ।
'आर्तवानुत हायनान्'
अ. ३.१०.९, ११.६.१७.
(२) ऋतु. विभाग, (३) राजसभा के सदस्य के समान अन्य पदाधिकारी ।
'ऋतुभ्यष्ट्वा र्तवेभ्यः'
अ. १९.३७.४

आर्तवाः – ऋतु सम्बन्धी वायुएं ।
'आर्तवाः समिन्धते'
अ. ११.३.१७

आर्ल्ली – (द्वि.व.) । अर्तन्यौ अरण्यौ अरिषण्यौ ऋ (गव्यर्पक) + नि = आर्त्नि । ऋ का आर्त हो जाता है । आर्त्नि + ङीष् = आर्ल्ली । अर्थ – चलावे अर्थात् जो वाणों को चलावे । आर्ल्ली का द्विवचन रूप 'आर्त्यौ ' है, धनुष की दो कोटियाँ ।
'आर्ल्ली इमे विस्फुरन्ती अमित्रान्'
ऋ. ६.७५.४, वाज.सं. २९.४१, तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.१३,१८५.१७, का.सं.(अश्व) ६.१, नि. ९.४० ।
ये धनुष की कोटियां चटकती हुई शत्रुओं का नाश करें ।

आर्त्व्य – (१) दो शिरों वाला आर्त्व्य नामक असुर, (२) ऋतु से विहित उत्पन्न, (३) गति क्रिया शास्त्र का विद्वान्,(४) कला कौशल विद् इञ्जिनीयर,
'तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक्'
अ. ८.१०.(४) ३

आर्त्विज्य – (१) ऋत्विजों का गुण प्रकाशक कर्म, (२) ऋतु अर्थात् सभा के सदस्यो का सुसंगत करना ।
'विश्वा विद्वां आर्त्विज्या धीर पुष्यसि ।'
ऋ. १.९४.६
हे अग्नि या परमेश्वर । तू समस्त ऋत्विजों के यज्ञोपयोगी कर्मों को (आतिर्वज्या) जानने वाले विद्वान् के सामन समस्त ऋतु अर्थात् सभा के सदस्यो को सुसंगत करने तथा सेना आदि के नियमों को जानता हुआ उनको खूब हृष्टपुष्ट कर देता है ।

आर्द्र – (१) कीचड़ वाला स्थल, (२) उपासना (आध्यात्मिक, अर्थ) ।
'आर्द्रादा शुष्कं मधुमत् ददोहिथ'
ऋ. २.१३.६

आर्द्रदानु – (१) जलप्रद मेघ के समान आर्द्र भाव से प्रजा पर ऐश्वर्यों का त्याग करने वाला दयालु परमेश्वर (२) राजा ।
'समुद्रोऽसि नभस्वान् आर्द्रदानुः'
वाज.सं. १८.४५, तै.सं. ४.७.१२.३, मै.सं. २.१२.३,१४५.१४, ३.४.३.४८.११, का.सं. १८.१४, श.ब्रा. ९.४.२.५,
(३) जलों को देने वाला मेघ ।
'आर्द्रदानुश्च मा मातरिश्वां च मा हासिष्टाम्'
अ. १६.३.४

आर्द्रपवि – जलप्रद मेघ की वाणी, गर्जनशील विद्युत् ।
'विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टाम्'
अ. १६.३.४

आर्द्रपवित्र – (१) जिसके घर में सोमरस, छानने वाला दशापवित्र आर्द्र रहता है (२) जिसके घर सदा अतिथि सत्कार होता रहता है ।
'सर्वदा वा एष युक्तग्रावार्दपवित्रः'
अ. ९.६.२७

आर्द्रहस्ता दासी – गीले हाथों वाली अर्थात् अपवित्र हाथों वाली नौकरानी ।
'यद्वा दास्यर्द्रहस्ता समंक्त'
अ. १२.३.१३

आर्ध्र – आढ्यालुः आढमानां स्पृहपिता (धनियों का सेवक अर्थात् दरिद्र) । आढयान् आश्रित्य ध्रियते अवतिष्ठते (जो धनियों का आश्रय लेकर रहता है ।) आढय का आ मात्र आर्ध्र में रहता है और धृ में क प्रत्यय जोड़कर आर्ध शब्द बना है । आध्र का यह पर्याय है ।

आर्पित – जकड़ा हुआ ।
'अंगे अंगे अर्पित उत्सितश्च'
अ. ६.११२.३

आर्य – (१) सर्वश्रेष्ठ स्वामी ।
'ध्रुवस्तिष्ठासि सवितवे चार्य'
अ. १९.४५.४
(२) ऋ + ण्यत् = आर्य । अरि शब्द से भी आर्य शब्द बना है । –(दया.)
'अरेः अपत्य आर्य
(३) ईश्वरपुत्र ऋजाश्व
(४) परमेश्वर का श्रेष्ठ सुपुत्र
'उरु ज्योतिश्च क्र पुरायपि
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६.
तुमने ईश्वर पुत्र ऋजाश्व को विस्तीर्ण आखें दीं ।
अथवा, परमेश्वर के पुत्र श्रेष्ठ मनुष्य के लिए आनन्द ज्योति का प्रकाश दिया–दया. । ईश्वर नामक एक ऋषि के पुत्र आर्य थे जो अन्धे हो गये थे और जिन्हे गुरु के बताए अश्विमन्त्र के जप से आंखे मिलीं । आधुनिक आर्थ – आर्यजाति, योग्य, आदरणीय, उच्च,श्रेष्ठ, अनार्य, दस्यु एवं दास शब्दो का प्रति कूलार्थक, वैश्य, स्वामी । (५) सम्पत्ति का वास्तविक स्वामी
'विजानी हि आर्यान् ये च दस्यवः
ऋ. १.५१.८
– जर्मनी भाषा का Herr शब्द आर्य का ही बिगड़ा रूप है ।

आर्यज्योति – श्रेष्ठ ज्योति ।
'विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम्'
ऋ. १०.४३.४, अ. २०.१७.४

आर्ययजमान – (१) सबके शरण योग्य विद्या आदि

गुणों में श्रेष्ठ अन्यो को धन आदि और राजा को कर आदि देने वाला प्रजाजन –ज.दे.श.
(२) श्रेष्ठ यज्ञ करने वाला ।
'इन्द्रः समत्सु यजमानमार्य'
ऋ. १.१३०.८

आर्यवर्ण – श्रेष्ठ वर्ण, ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि ।
'हत्वी दस्यूं प्रार्यवर्णमावत्'
अ. २०.११.९

आर्श – शूरता का उत्पादक ओषधिरस ।
'उतार्शमसि वृष्ण्यम्'
अ. ४.४.५

आरा – (१) काष्ठ चीरने का औजार, (२) तीक्ष्ण चाबुक, (३) सब प्रकार की शिक्षा और आर्ति पीडा आदि की व्यवस्था ।
'परितृन्धि पणीनाम्
आरया हृदया कवे'
ऋ. ६.५३.५
'वि पूषन् आरयातुदः'
ऋ. ६.५३.७

आरात् चित् – दूर ही ।
'आराच्चिते षः सनुतर्युयोतु'
ऋ. ६.४७.१३, १०.७७.६, १३१.७, अ. ७.९२.१, २०.१२५.७, वाज.सं. २०.५२, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.५, १९१.७ का.सं. ८.१६, नि. ६.७.
ये इन्द्र शत्रुओं को सदादूर ही रखें ।

आरात् तात् – दूर रहता हुआ, दूर से ।
'आरात् ताच्चित् सधमादं न आगहि'
ऋ. ७.३२.१

आराधनः – (१) नियम में रखने वाला
(२) मार्ग ।

आर्चाभ्यामायः – ऋचाः अभि अधिकतया आम्नायन्ते (जिसमें अधिक ऋचाऐं आम्नात हों–कही गई हों) । ऋग्वेद का एक नाम ।

आर्द्रा – आर्द्रा नामक एक नक्षत्र ।
'अस्तु भद्रं मृगशिरःशमार्द्रा'
अ.१९.७.२, नक्षत्र कल्प, १०.२.

आर्वाचीन – अभिमुख, सम्मुख ।
'अर्वाचीनं सु ते मनः'
ऋ. १.८४.३, ३.३७.२, अ. २०.१९.२, साम. २.३७९, वाज.सं. ८.३३, तै.सं. १.४.३७.१, का.सं. ३७.९, श.ब्रा. ४.५.३९.

आरितः – (१) स्तुति द्वारा प्राप्त होने वाला –परमेश्वर ।
'इन्द्रो यः पूर्भिदारितः'
ऋ. ८.३३.५
(२) व्यापक शासन वाला ।
'वृतञ्चयः सुहरिः विक्ष्वारितः'
ऋ. २.२१.३
(३) स्तोमान् प्रति नित्यं ऋतः अवस्मितः देवता–रूपेण (देवता रूप में स्तोमों के प्रति जो नित्य अवस्थित हो)
(४) सायण के मत से आ 'प्रति' के स्थान में प्रयुक्त हुआ है । ऋत का अर्थ उन्होने गत और आरित का अर्थ प्रत्यृतः या प्रत्यागतः या प्रीनिवृत्तः किया है ।
(५) देवराज ने 'ऋ' धातु से यङ् लुक् में निष्ठा अर्थ में छान्दसहट् कर ऋ का यण्, रुक प्रत्यय से निष्पक्ष र का रोरि सूत्र से लोप कर ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोंडणः से अ का दीर्घ कर 'आरित' सिद्ध किया है ।
(६) हिन्दी में आर का अर्थ खेतों की मेड़ है । ऋ + घञ = आर (खेतों के चतुर्दिक् चलाने वाली मेगडंडी) । आर + क्त = आरित (जो आर के समान मर्यादित है या जो आर की तरह करदिया गया हो ।
(७) वेदों के अनुकूल चलने वाला ।
'यो अश्वानां यो गवां गोपतिः वशि
य आरितः कर्मणि कर्मणिस्थिरः
वीडोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।'
ऋ. १.१०१.४.
जो इन्द्र या राजा बड़वों का और जो गौओं का गोपति है, जो अपराधीन या स्वतन्त्र है (वशी), जो इन्द्र प्रत्येक कर्म में स्थिर है या जिसके बिना कोई कार्य नहीं हो सकता, जो सबके आधार भूत मर्यादित मार्ग की तरह है (आरितः) या जिसके पास स्तोता स्तुतियों के द्वारा जाते हैं या जो राजा वेदानुकूल चलने वाला है, जो यज्ञ विरोधी तथा दर्पित शत्रु का (असुन्वतः) वीडोः चित्) हन्ता है (वधः) ऐसे गुण –सम्पन्न मरुतों के साथ रहने वाले (मरुत्वन्तम्) इन्द्र को अपना

सखा बनाने के लिए हम आह्वान् करते हैं ।
(८) आज्ञापित -दया. (९) प्रस्तुत किया गया, (१०) अघोषित किया गया
'य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः'
ऋ. १.१०१.४

आरिशामहे - रचा लेते हैं ।
'परिशम् आरिशामहे'
ऋ. १.१८७.८, का.सं. ४०.८.
शरीर मे सर्वत्र व्यापने वाला अंश रचा लेते हैं ।

आर्ति - (१) क्षुधा आदि की पीड़ा
'आर्त्यै परिवित्तम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४.
(२) वेदना ।
'आर्तिश्चान पवाचना'
अ. ८.८.९

आर्ष्टिषेण देवापिः - (१) एक ऋषि का नाम जिसने वृष्टि काम यज्ञ किया था ।
'आर्ष्टिषेणो होत्रमृषि र्निषीदन्
देवापिर्देव सुमतिं चिकित्वान्'
ऋ. १०.९८.५, नि. २.११.
आर्ष्टिषेण ऋषि देवताओं की बरसाने वाली मति को जगाने वाला होता कर्म कर बैठे ।
(२) ऋष्टिषेम या इषितसेन का पुत्र ऋष्टिषेण राजा का सम्बन्धी या राजा का पुरोहित (३) ऋष्टियुक्ता सेना यस्य स ऋष्टिषेणः (जिस की सेना ऋष्टि अर्थात् आयुध से युक्त हो वह ऋष्टिषेण है) । ऋष + क्तिन् = ऋष्टि । इनेन ईश्वरेण सहिता सेना (अधिपति सहित) । अथवा समान म इनम् गतिः यस्याः सा सेना (जिसकी इन अर्थात् गति समान हो समान गति से चलने वाले योद्धागण से सेना बनती है) ।

अर्ष्टिषेण - दर्शन शक्तियों की सेना अर्थात् इन्द्रियगण पर विजयी ।
'यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्ने
'आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे'
ऋ. १०.९८.८, मै.सं. ४.११.२, १६७.१०, का.सं. २.१५, आश्व श्रौ.सू. २.१३.८.

आरी - (१) ऋ + इन् + ङीष् = आरी। अर्थ है-ज्ञानवती ।
'विश उपब्रुवते दस्ममारीः'
ऋ. १.७७.३
उस शत्रुओं के नाशक दर्शनीय पुरुष को (दस्मम्) ज्ञानवती प्रजाएं (आरीः विशः) अग्रासन देती हैं । (२) आहुं योग्या (प्राप्त होने योग्य) (३) स्वयं शरण में आने वाली प्रजा
'विश आरीराहुतमृञ्जसानम्'
ऋ. १.९ ६.३
प्राप्त होने वाली प्रजाओं को उत्तमरीति से समृद्ध करते हुए परमेश्वर को ...।

आरुजत्नु - (१) मेघों को भंग कर देने वाला वायु,(२) सब प्रकार के दुःखों का नाशक ।
'वीडुचित् आरुजत्नुभिः
गुहा चिदिन्द्र बह्निभिः'
ऋ. १.६.५, अ. २०.७०.१, साम. २.२०२. वै.सू. ३३.१५.

आरुजन् - पराजित करता हुआ
'त्वया मन्यो सरथमारुजन्तः'
ऋ. १०.८४.१, अ. ४.३१.१, तै.ब्रा .२.४.१.१०, नि. १०.३०.
हे मन्यो ! तेरे साथ एक रथ पर चढ़कर शत्रुओं को पराजित करते हुए ।

आरुणी - (१) प्रातः बेला, (२) लाल वर्ण वाली तेजस्विनी या सुख देने वाले रथों की बनी सेना
'यद् आरुणीषु तविषीः अयुग्ध्वम्'
ऋ. १.६४.७

आरुपित - आदर व प्रेम से वपन किया हुआ ।
'अग्ने रुप आरुपितं जबारु'
ऋ. ४.५.७, नि.६.१७.

आरुह् - (१) चढ़ना, ।
'न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहम्'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.
(२) प्रत्यक्ष वृत्ति, (३) चारों ओर दीख पड़ने वाली परमात्मा की उत्पादक शक्ति ।
'यास्ते रुहः प्ररुहो या स्त आरुहः'
अ. १३.१.९

आरुहम् - आरोढ्म् (चढ़ने के लिए) । आ + रुह् +कमुल् (तुमुन् अर्थ में) = आरुहम् ।
'पृथक प्रायन् प्रथमा देव हूतयः
अकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहम्
ईर्मैव ते न्यविसन्त केपयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.

आर्जुनेय – (१) अर्जुनी अर्थात् पृथ्वी के उपकारी पुत्र के समान प्रजागण
'अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन्'
ऋ. ७.१९.२, अ. २०.३७.२
(२) पृथ्वी के ऊपर रहने वाला प्रजाजन,
(३) सुरूपवती विदुषी का पुत्र ।

आर्जुनेय कुत्स – (१) विद्वान् पुरुष का बनाया शस्त्रास्त्र, (२) ऋजु मार्ग पर चलने वाला विद्वान् भक्त, (३) एक ऋषि ।
'अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जे'
ऋ. ४.२६.१
(४) 'अर्जुनी ' शत्रुदल की नाशक सेना या शुद्धचित् को कहते हैं । अतः आर्जुनेय कुत्स का अर्थ हुआ–शत्रु–दल नाशिनी सेना का बना हुआ शस्त्र बल, (५) शुद्ध चित् का स्तुति कर्त्ता जीव ।
'वहत् कुत्समा र्जुनेयम् शतक्रतुः'
ऋ. ८.१.११

आरे – पास, निकट ।
'तान्यारे चकृमा मृडता न'
ऋ. १.१७१.४.

आरे अघा – (१) पाप–रहिता ।
'आरे अघामुपावसुम्'
ऋ. ६.५६.६.
(२) पापों और पापियों को दूर भगाने वाली इच्छा या सेना ।
'पूर्वीरिषो बृहती रारे अघाः'
ऋ. ६.१.१२, मै.सं. ४.१३.६, २०७.१४, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.५.

आरेभ – सर्वत्र कोलाहल करने वाला ।
'उतारेभाणां ऋष्टिभिः यातुधानान्'
अ. ८.३.७

आरेहण – चुम्बन ।
'यासां नाभिरारेहरणम्'
अ. ६.९.३

आरे शत्रु – शत्रुओं से रहित ।
'आरे शत्रुंकृणुहि सर्ववीरम्'
अ. ७.८.१, तै.सं. १.२.३.३, आश्व.श्रौ.सू. ४.४.२, शा.श्रौ.सू. ५.६.२,

आर्षेय – ऋषिपुत्र ।
'य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यः'
अ. १२.४.२,१२

आरैक् – अरिचत् (दिया, रिक्त किया, स्थान दिया) । (१) देवे ।
'न जामये तान्वो रिक्थमारैक्'
ऋ. ३.३१.२ नि. ३.६
(बेटा बहन के लिए पैतृक धन न दें)
'आरैगु कृष्णा सदनान्यस्याः'
ऋ. १.११३.२, साम. २.११००, नि. २.२०
(इस उषा को काली रात ने स्थान दिए)
(२) कल्पित किया, बनाया ।
'एवा रात्र्यषसे योनि मारैक्'
ऋ. १.११३.१, साम. २.१०९.९, नि. २.१९
उसी प्रकार रात ने उषा के लिए अपने अपर भाग को अवकाश के लिए कल्पित किया ।

आरोका – सब ओर चमकती हुई अग्नि ज्वाला ।
'आरोका इव घे दह'
ऋ. ८.४३.३

आरोधन – (न.) (१) वश करना, (२) संचय करना, (३) वृद्धि करना
'विद्वाँ आरोधनं दिवः'
ऋ. ४.८.४, का.सं. १२.१५
(४) मार्ग –(५) नियम में रखने वाला कर्म–(दया) ।
'दूत ईयसे प्रदिव उराणः
विदुष्टरो दिव आरोधनानि ।'
ऋ.४.७.८, नि. ६.१७
हे अल्प हवि को बहुत करने वाला (उराणः) विद्वत्तर अग्नि तू स्वर्ग के मार्गों से (द्वि.व.) (आरोध्य नानि) हवि देने जाता है (ईयसे) –सा.
अन्य अर्थ, हे अनर्थ निवारक, (दूत) सनातन (प्रदिवः) विश्वकर्मा (उराणः) विद्वानों को तारने वाला (विदुष्टरः) आप द्युलोक को नियम में रखने वाले कर्मों को जानते हो –(दया) ।

आरोहयः – (१) आरोपित किया –सा.
(२) उदित करता है ।
'आ सूर्य रोहयो दिवि'
ऋ. ८.८९.७,९; .१०७.७, १०.१५६.४, साम. २.७८१, २.८८०, तै.सं. १.६.१२.२, का.सं. २.१४, ८.१६.
हे इन्द्र, द्युलोक में सूर्य को तूने स्थापित किया

–सा. । हे परमेश्वर, तू द्युलोक में सूर्य को उदित करता है ।

आलाक्ता – आल + अक्ता (१) आरा अर्थात् शस्त्रों से सुसज्जित सेना, (२) विष से बुझी, (३) आरक्ता या आरा अक्ता – ईषद् अनुराग से युक्त स्त्री ।

'आलाक्ता या रुरुशीर्ष्णी'

ऋ. ६.७५.१५

आलाप –परस्पर का वार्तालाप ।

'आलापाश्च प्रलापाश्च'

अ. ११.८.२५

आलिगी – सब प्रकार से चिकरने वाली, कानखजूरा ।

'आलिगी च विलिगी च'

अ. ५.१३.७.

आलुम्प – वापिस ले लेना, लौटा लेना ।

'यथाज्यं प्रगृहीतम्
आतुम्पेत् स्रुचो अग्नये'

अ. १२.४.३४

आवक्षत् – आवहति, ददातिं (लाता है, देता है)

'देवी जोष्ट्री वसुधिती देवनिन्द्रमवर्धताम्
अयाव्यन्याधा द्वेषांसि अन्या वक्षद्वसु
वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने
वसुधेयस्य वीतां यज ।'

वाज.सं. २८.१५

जो जोषयित्री दो देवियां धन धारण करने वाली है (वसुधिती) जिनमें एक आज के पापों को दूर करती हैं और दूसरी धन संभक्त करने के लिए यजमान के लिए वरणीय धन लाती या देती है (आवक्षत्) । वे विशेष धन से साधित इसयज्ञ के अंश पीवे । अतः हे होता ! उनकी पूजा कर ।

आवक्षति – आवहतु (लावे) । लोट् के अर्थ में लृट का प्रयोग । आङ् + वह् (प्रापण अर्थ में) + स्य + तिप् = आवक्षति । स्य के 'प् का लोप छान्दस है ।

'अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः ड्यो नूतनैरुत ।
स देवां एह वक्षति ।'

ऋ. १.१.२, नि. ७७.१६.

वह अग्नि पूर्व कालीन ऋषियों से स्तुत्य है और नवीन ऋषियों से भी । वह देवताओं को इस यज्ञ में लावे (आवक्षति) ।

आवत् – समीप ।

'आवतस्ते आवतः'

अ. ५.३०.१

आवदाथः – उच्चारण करो ।

'अधाजित्री विदथमावदाथः'

ऋ. १०.८५.२७.

हे वधू, तू पति के साथ हिलमिल कर वृद्धावस्था प्राप्त कर यज्ञों में मन्त्रों का उच्चारण करो ।

आवदेते – विवदेते (परस्पर विवाद करते है) ।

'यत्रावदेते अवरः परश्च
यज्ञन्योः कतरो नौ विवेद ।
आशेकुरित् सधमादं सखाय ।
नक्षन्त यज्ञं क इदं विवोचत्'

ऋ. १०.८८.१७, नि. ७.३०

जिस कार्य में यह पार्थिव अग्नि (अवरः) और वह सूर्य अर्थात् आन्तरिक्ष अग्नि या वायु (परश्च) आपस में विवाद करते हैं (आवदेते) कि हम दोनों यज्ञ के नेताओं में (नौ यज्ञन्यो) कौन यज्ञ का कर्म अधिक जानता है (विवेद) उस कर्म में जो ये सखा रूप ऋत्विज इस मदान्वित करने वाले यज्ञ को करते तथा सम्यक् प्रकार से अनुष्ठान करते हैं । वे स्थित होकर कहते हैं कि कौन यह कह सकता है कि दोनों में से कौन अधिक, उपयोगी है । दोनों समान भाव से उपयोगी हैं ।

आवय – प्रसव कालीन पीड़ा ।

'आद् रोदमघमावयम्'

अ. ८.६.२६

आवपन – (१) बोने के खेत, (२) स्थूल विकारों को उत्पन्न करने वाली प्रकृति ।

'किंस्विदावपनं महत्'

वाज.सं. २३.९,४५, तै.सं. ७.४.१८.१ मै.सं. ३.१२.१९. , १६६.१, का.सं.(अश्व). ४.७, श.ब्रा. १३.२.६.१३, तै.ब्रा. ३.९.५.४, आश्व. श्रौ. सू. १०.९.२ शा.श्रौ.सू. १६.५.३.

आवयत् – चबा डालता है ।

'अविस्तोकान्यावयत्'

अ. ५.१९.२

आवयाः – (१) यज्ञ में सात ऋत्विजों मे

प्रतिप्रस्थाता नामक एक है । सात ऋत्विज् होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नीध्र, ग्रावस्तुत,, प्रशास्ता, और ब्रह्मा, (२) सर्वत्र व्यापक, (३) सबको अपने अधीन योग्यता के अनुसार कल पुर्जों के समान जोड़ने वाला ।

'होता अध्वर्युरावया अग्नि मिन्धो
ग्रावग्राभ उतशंस्ता सुविप्रः'

ऋ. १.१६२.५, वाज.सं. २५.२८, तै.सं. ४.६.८.२, मै.सं. ३.१६.१, १८२.६, का.सं.(अश्व). ६.४.

(४) आहुति प्रदान करने वाला, (५) सबको परस्पर सुसंगत करने वाला (६) अधनों को वेतन देने वाला ।

आवरः – आगे आने वाला ।

'आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम्'

ऋ. १०.५६.६

आवर्तनम् – जीवों का इस संसार में लौट कर आना (२) आगमन ।

'आवर्तनं निवर्तनम्'

ऋ. १०.१९.४,५, अ. ६.७७.२.

अवर्जते – बहुत बार प्रदान करता है ।

आवर्तयामसि – अवर्तयामः (आश्रय लेते हैं)

'आ त्वा रथं यथोतये
सुम्नाय वर्तयामसि ।'

ऋ. ८.६८.१, साम. १.३५४,

हे इन्द्र ! हम रक्षा एवं सुख के लिए तेरा आश्रय ले हैं जैसे अंशक्त पुरुष रथ का ।

आववृततीः – (ब.व.) आवर्तरूप से संसार को उत्पन्न करने वाली आपः अर्थात् प्रकृति के परमाणु ।

'आववृततीरधनु द्विधारा'

ऋ. १०.३०.१०, ऐ.ब्रा. २.२०.३, कौ.ब्रा. १२.१, आश्व.श्रौ.सू.५.१.९ .

आवव्रतत् – निरन्तर वर्तमान, (२) संसार अथवा देह में भ्रमण करने वाला-आत्मा ।

'आवर्व्रतः कृणवो वपूंषि'

अ. ५.१.८

आववृत्रन् – अर्वाञ्चः पर्यावर्तन्ते (नीचे की ओर आते हैं) ।

'कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा
अपो वसाना दिवमुत्पपन्ति ।
त आववृत्रन् सदनात् ऋतस्य
आदित् घृते न पृथिवी व्युद्यते'

ऋ. १.१६४.४७, अ. ६.२२.१,९ .१०.२२, १३.३.९.

कारीरी यज्ञ में वर्षा बरसाने के लिए पठित ये रस हरने वाली (हरयः) तथा सुन्दर गति वाली (सुपर्णाः) सूर्य की रश्मियां सूर्य के दक्षिणायन पथ में अर्थात् माध्यमिक अन्तरिक्ष में (कृष्णं नियानम्) सभी लोकों से जलों को रखती हुई (अपः वसानाः) सूर्य लोक मे चली जातीं हैं (दिवम् उत्पतन्ति) । तब छः महीनों के बाद वे रश्मियां जल के सदन अर्थात् सूर्य से (ऋतस्य सदनात्) नीचे की ओर लौटती हैं (आववृत्रन्) तब (आदित्) जल से (घृतेन) पृथ्वी किक्ल हो जाती है । (पृथिवी व्युद्यते) ।

आवसथ – निवास के लिए उचित स्थान ।

'यदावसथान् कल्पयन्ति'

अ. ९.६.७

आवह – (१) आवहनात् (ओहयते अस्मिन् उदकम्) इसमें जल खींचा जाता है इसीसे आहव वर्ण विपर्यय से हो जाता है जिसका अर्थ कूप है । आहवः सङ्गरे कूपे –हेम आहाव का अर्थ भी कूप है । (२) पशुओं का पनघट क्योंकि यहां पानी पिलाने के लिए पशु लाए जाते हैं । (३) क्रिया होने पर अर्थ है– देवताओं को बुला या हवि पहुंचा ।

'आच वह मित्रमहश्चिकित्वान्'

ऋ. १०.११०.१, आ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०१.९, का. सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.

हे मित्रों के पूज्य तथा चेतनावान् अग्नि । तू देवताओं को बुला या उन्हे हवि पहुँचा ।

आवहन्तु – लावे ।

'आत्वा सुशिप्र हरयो वहन्तु'

ऋ. १.१०१.१०.

हे सुन्दर हनूया नासिका वाले इन्द्र । तुझे तेरे अश्व लावें ।

आव्यध्वन् – (१) अच्छीतरह विरुद्ध मार्ग वाला अग्नि, (२) विपरीत मार्ग से आने वाला गर्भगत जीवात्मा ।

आव्रस्क – अपराध ।

'सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ'

अ. १२.४.४७

आवाक्ष – ले जा ।
'देवानां वक्षि प्रियमासधस्थम्'
वाज.सं. २९.१, तै.सं. ५.१.११.१, मै.सं. ३.१६.२, १८३.१३, का.सं.(अश्व). ६.२.
हे अग्नि । तू देवताओं के समान स्थान वाले (देवा सधस्थम्) प्रिय अश्व या यन्त्र को भी ले जा (आवक्षि) ।

आवातु – आदाय वातु, आगच्छतु (लेकर आवे) ।

आव्याधिनी – सब तरफ से शस्त्रों का प्रहार करने वाली सेना ।
'आव्याधिनीनां पतये नमः'
वाज.सं. १६.२०, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२२.१६, का.सं. १७. १२.
पुनः –
'आव्याधिनी रुगणा उत'
वाज.सं. ११.७७, तै.सं. ४.१.१०.२, मै.सं. २.७.७, ८३.१५, का.सं. १६.७.

आवित्त – साक्षात् प्राप्त ।
'अवित्तो अग्निर्गृहपतिः'
वाज.सं. १०.९, मै.सं. २.६.९: ६९.३,४.४.३. ५२.१७, का.सं. १५.७, श.ब्रा. ५.३.५.३२,

आविद्वान् – समस्त विद्याओं का ज्ञाता, बहुदर्शी विद्वान् ।
'आविद्वां आह विदुषे करांसि'
ऋ. ४.१९.१०

आविः – (१) रक्षक ।
'असिन्वन् भूरि आवयः'
ऋ. ८.४५.३८
(२) सर्वप्रकट,(३) सबका रक्षक पृथ्वी ।
'तयो रन्यद् गुह्यमाविरन्यत्'
ऋ. ३.५५.१५.
(४) प्रत्यक्ष रूप में ।
'योन स्तायत् दिप्सति योन आविः'
अ. ७.१०८.१
'यत्सस्वर्ता जिहीडिरे यदाविः'
ऋ. ७.५८.५
जिस छिपे और जिस प्रकट पाप से हम लज्जित होते हैं ।
(५) आ + विद् = आविस । अर्थ – आवेदन से, ज्ञापन से, प्रकाशन से प्रकाश को आविस् कहा गया है । आविष्टय् मे दिए 'आविस्' का अर्थ द्रष्टव्य है ।
प्रकाशित, प्रकट, बाहर आदि अर्थों में प्रयुक्त ।
'नोधा इवाविरकृत प्रियाणि'
ऋ. १.१२४.४.
यह उषा नौधा ऋषि की तरह अपने उद्गीर्ण प्रकाश से लोगों का रूप प्रकाशित करती है (प्रियाणि आविः अकृत) ।

आविः कृणुते – प्रकाशित करता है, प्रकट करता है ।
'आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं'
ऋ. १०.२७.२४, नि. ५.१९.
वह आदित्य सदा जगत् को प्रकाशित करता है और जल को (बुसम्) वही छिपाता है (गूहते) ।

आविवासेम – परिचरेम (परिचर्या करें) । आङ् + वि + वस् + णिच् + महिङ् (लिङ्) = आविवासेम । वेद में णिच् का लोप भी हो जाता है ।
'इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानुगिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः'
ऋ. ६.६१.२, मै.सं. ४.१४.७ , २२६.९, का.सं. ४.१६, तै.ब्रा. २.८.२.८, नि. २.२४.
यह सरस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से पर्वतों के सानुओं को कमल खनने वाले की तरह (बिसखा इव) काटती है (अरुजत्) । उस पार अरार को तोड़ने वाली नदी को (पारावतीघ्नीम्) सुप्रकृत कर्मों या स्तोत्रों से (सुवृक्तिभिः धीतिभिः) हम परिचारित करें, विनय करें (आविवासेम) ।

आविवासन्ती – नानागुणों को प्रकाशित करती हुई उषा ।
'आविवासन्ती युवतिः मनीषा'
ऋ. ५.४७.१

आविविशुः – प्रवेश करते हैं । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग है ।
'आ दृढ़ पुरं विविशुः'
ऋ. ५.१९.२.
वे ईश्वरोपासक या यज्ञशील पुरुष ब्रह्मलोक में प्रवेश करते हैं ।

आविवेश – आविशति – प्रवेश करता है । वर्त्तमान

अर्थ में लिट् का प्रयोग ।
'एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश
स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे
तं पाकेन मनसा पश्यमन्तितः
तं मात रेढि स उ रेढि मातरम्'
ऋ. १०.११४.४, ऐ.आ. ३.१.१६.१५, नि. १०.४६.
अद्वितीय एक वह वायु (स सुपर्णः) नित्य अन्तरिक्ष में रहता है (समुद्रमाविवेश) । यहां आविष्ट होकर इस समस्त प्राणिमात्र को (इदं विश्वं भुवनम्) अनुग्रह भाव से देखता है (विचष्टे) । ऐसे देवता को में विपक्व प्रज्ञा से (पाकेन मनसा) निकट देखता हूँ (अन्तितः अपश्यम्) । माध्यमिकी वाक् उस वायु को चाहती हैं अर्थात् उसे पाकर जीती है (तम् रेढि) । वायु भी (स उ) जल निर्मात्री वाक् को चाहता है (मातरम् रेहि) अर्थात् एक दूसरे के आश्रय से जीते हैं।

आविश् - (१) जहां पर लोग चारों ओर से आते हैं । (२) गुरु गृह ।
'यत उ आयन् तदुदीयु राविशम्'
ऋ. २.२४.६

आविष्ट्य - (१) आविर्भूत, प्रकाशमान, आङ् + विद् + क्विप् = आविद् = आविर् + अथवा आविस् + त्य = आविष्ट्य , (२) दुर्ग के मत से आविस् + तन् + डय = आविष्ट्य । आविस् का अर्थ प्रकाश का तानने वाला हुआ । प्रकाश विस्तारक (३) प्रकाश-
'विस्तारक त्वष्टा अग्नि
आविष्टयो वर्धते चारुरासु
जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुजायमानात्
प्रतीची सिंह प्रति जोषयेते ।'
ऋ. १.९५.५,मै.सं. ४.१४.८.२२७.४, तै.ब्रा. २.८.७.४, नि. ८.१५.
प्रकाशमान या प्रकाश-विस्तारक त्वष्टा अग्नि (आविष्ट्यः) इन क्रियाओं में (आसु) चरणशील (चारुः) तथा दूसरे का आश्रय न लेने वाला (स्वयशाः) अपने स्थान में (उपस्थे) कुटिल मनुष्यों या कुटिल इन्धनों के ऊपर सीधे होकर जाता है (जिह्नानाम ऊर्ध्वं वर्धते) ऐसे उत्पन्न त्वष्टा नामक अग्नि से (जायमानात् त्वष्टुः) द्यौ और पृथिवी दोनों डर गए (उभे बिभ्यतः) । अतः उस शक्तिशाली अग्नि की ओर सेवभाव से बढ़े (सिंह प्रतीची प्रतिजोषयेते)
अन्य अर्थ - प्रकाश विस्तारक सुमनोहर अग्नि इन यज्ञ क्रियाओं में बढ़ती है । यह अग्नि कुटिल वस्तुओं के मध्य ऊर्ध्वगामी है । यह इसका अपना स्वभाव है (जिह्मा नाम् उपस्थे ऊर्ध्वा स्वयशाः) । इस प्रज्ज्वलित अग्नि से अन्तरिक्ष और पृथ्वी दोनों में रहने वाले पक्षी, मनुष्यादि अथवा दिवाचारी और निशाचारी अथवा अरणियों से अग्नि उत्पन्न करने वाले स्वयं अरणी-सहचारी मनुष्य डरते हैं ।
(४) गर्भ से निकलने वाला बालक
(५) प्रकट रूप में
'न वोगुहा चकृम भूरि दुष्कृते
नाविष्टयं वसवो देवहेडनम्'
ऋ. १०.१००.७

आविष्ठित - घेरा हुआ, आवृत ।
'येनाविष्ठितः प्रविवोशिथापः ।'
ऋ. १०.५१.१.
जिस जरायु का आवरण से घिरा हुआ तू अग्नि या विद्युत । जल में प्रविष्ट हुआ या प्रविष्ट है ।

आवीत - सर्वत्र व्याप्त, आग्नि, कान्तिमान्, गतिमान् ।
'वन आवीतमाश्रितम्'
ऋ. ४.७.६

आखुः - चूहा
'भूम्या आखूनालभते'
वाज.सं. २४.२६, मै.सं. ३.१४.७ , १७३.११,

आहुवेम - पुकारे, आह्वान् करें ।
'स्वस्तये तार्क्ष्यमिहाहुवेम'

आवृणानः - (१) प्रदान करता हुआ ।
'अग्निर्देवानामव आवृणानः'
ऋ. ४.१.२०, वाज.सं. ३३.१६, तै.ब्रा. २.७.१२.५.
(२) चाहता हुआ
'आ सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः'
अ.१९.४२.३

आवृणाना - ढकती हुई ।
'अपो वृणाना वितनोति मायिनी'
ऋ. ५.४८.
जो मेघ में स्थित जलों को ढकती हुई विद्युत्....।

आवृणीमहे – (१) आभि मुख्येन प्रार्थयामः रसम्मुख हो प्रार्थना करते हैं । सा. (२) याचना करते हैं
'तच्छंयोरावृणीमहे
गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये ।
दैवी स्वस्तिरस्तु नः स्वास्तिर्मानुषेभ्यः
ऊर्ध्वं जिगातु भेषजम्
शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे'
ऋ. खि. १०.१९१.५.
इस कर्म से शंयु से निकट यह प्रार्थना करते हैं (शंयोः तत् आवृणीमहे) कि यज्ञ का देवों के प्रति गमन हो (गातुं यज्ञाय) यजमान का देवों के प्रति गमन हो हमें देवों का अनुग्रह मिले (दैवी स्वस्तिः) मनुष्यों से भी मेरे कल्याण हो (स्वस्तिः मानुषेभ्यः), भय का सादन करने वाला कर्म (भेषजम्) ऊपर जाय (ऊर्ध्वं जिगातु), हम मनुष्यों का कल्याण हो, गौ आदि का कल्याण हो ।
स्वा. दयानन्द का अर्थ – हे पदे मते परमात्मन्! हम उस सदाचारी शांत विद्वान् के (ततशंयोः) अपने यज्ञ में आने की ओर यज्ञपति के समीप पधारने की याचना करते हैं (आवृणीमहे) हमें देवताओं से कल्याण प्राप्त हो अर्थात् हमें आधिदैविक ताप न सताए । मनुष्यों से भी स्वस्ति हो अर्थात् आधिभौतिक ताप से हम मुक्त रहें । आपका भेषजमय हाथ हमारे ऊपर रखा रहे । हमारे दो पाए मनुष्यादिकों की शान्ति हो और चौपाए पशुओं को सुख हो ।
आवृत् – (१) लौटना, (२) आवरण, (३) देह व्यवस्था, (४)आवागमन का उपाय ।
'शतं ते सनतु आवृतः'
अ. ६.७७.३, वाज.सं. १२.८

आवृत – (१) घिरा हुआ ।
'आवृतासो अवतासो न कर्तृभिः'
ऋ. १.५५.८.
(२) उपदेश किया आचार या व्रत ।
'सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते'
अ. १०.५.३७, वाज.सं. २.२६, का.सं. ५.५., ३२.५, श.ब्रा. १.९.३.७, ६.१५.
(३) सब प्रकार से छिपा, अप्रकट ।
'अच्छा राजाना नम एति आवृतम्'
ऋ. २.३६.६.

आवृत्वत् – हमारी ओर आने वाला ।
(२) प्रेम अनुराग से युक्त ।
'आवृत्वद् भूतु ते मनः'
ऋ. ८.४५.३६

आशयत् – आ + अशयत्, सर्वतः पतितवान् (चारों ओर गिरा या सोया हुआ) ।आङ् + अट + शी + तिप् (लङ् प्र.पु.ए.व.की विभक्ति) आपुशयन = आशयन्

आशयान् – पड़ा हुआ ।
'इन्द्रो महां सिन्धु माशयानम्'
ऋ. २.११.९.

आशये – आशेते ।
'लोपस्त आत्मने पदेषु'
(पा.७.१.४१)
अर्थ है सोया हुआ है ।
'एतदस्या अनः शये
सुसंपिष्टं विपाश्या
ससार सीं परावतः'
ऋ. ४.३०.११, नि. ११.४८.
पृथ्वी पर बरसे मेघ को दिखाते हुए ऋषि कहते हैं-यह उषा का आश्रय भूत मेघ वायु से संचूर्णित होकर (एतत् अस्याः पुनः सुसंपिष्टम्) तथा सभी बंधनों से रहित हो (विपाशि) सोया हुआ है । या पृथ्वी पर बरस कर पड़ा हुआ है उस संचूर्णित किए जाने वाले दूरवर्ती मेघ से दूर चली गई ।
सायण का अर्थ – इस उषा का इन्द्र द्वारा संचूर्णित यह शकट (अनः) विपाशा नदी के तीर पर (विपाशि) पड़ा हुआ है (आशये) । शकट टूट जाने से उषा दूर देश से दूर चली गई (परावतः शीं ससार) ।

आशरीक – चारों ओर से राष्ट्र पर आघात करने वाला ।
'आशरीकं विशरीकम्'
अ. १९.३४.१०

आशस् – (१) प्रति प्रशंसित रूप, (२) प्रशस्त ज्ञान ।
'तवाशसा जातवेदो यदीदम्'
ऋ. ४.५.११
(३) उत्तम आज्ञा ।
'प्र सप्तवध्रिराशसा'

ऋ. ८.७३.९
(४) घात प्रतिघात, (५) पीड़ा कारी ।
'यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे'
अ. ७.५७.१
(७) इच्छा ।
'यदाशसा निःशमाभिशसा'
ऋ. १०.१९४.३

आशसन – (१) कन्या में प्राप्त कुछ ढिठाई ।
(८) खण्ड खण्ड करना ।
'मेनि राशसनम्'
अ. १२.५.३९
(३) रजस्वला होने के समय अंगों का कटना ।
(४) घात करना ।
'क्रूर यस्या आशसनम्'
अ. ५.१९.५

आश्वमेध – (१) अश्वमेध सम्बन्धी (२) अश्व अर्थात् भोक्ता आत्मा का, (३) भोक्ताआत्मा या अश्ववत् इन्द्रिय मन से युक्त (४) अश्व-सैन्यो से शत्रुओं का संग्राम करने वाला नायक ।
'आश्वमेधस्य रोहिता'
ऋ. ८.६८.१५

आश्वपस्तरः – आशु + अपस + तर । अधिक वेग से कार्य करने वाला ।
'विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः'
ऋ. १०.७६.५

आश्वश्व – तेज वेगवान् अश्वों या अश्वारोहियों का स्वामी ।
'य आश्वश्वा अमवत् वहन्त'
ऋ. ५.५८.१

आश्वश्वतमः – आशु + अश्वतमः । अति वेगवान् अश्वारोही
'आजिंन जग्मुः आश्वश्वतमाः'
ऋ. ५.४१.४

आशा – (१) आशा शब्द वाली बञ्चा ।
'विश्वा आशाः प्रभूवरीः'
वाज.सं. २३.३५
(२) व्यापने वाले तेज, अग्नि, आकाश, वायु जल आदि तत्व, (३) दिशा ।
'भुव आशा अजायन्त'
ऋ. १०.७२.४
(४) आशा ।
'देवा नामाशा उपवीतपृष्टः'
ऋ. १.१६२.७, वाज.सं. २५.३०, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१: १८२.४, का.सं.(अश्व). ६.४.
सुन्दर पीठ वाला अश्व देवताओं की आशाओं की पूर्ति करने आवें ।
(५) आशा आसादनात् आभिमुख्येन ताः सर्वत्र सन्नाः (प्राप्ताः) । अर्थात् दिशाएं सर्वत्र सामने ही प्राप्त रहती हैं या कोई पदार्थ इन से दूर नहीं । आङ् + अश् (व्याप्त्यर्थक) + अच् = आश । आश + टाप् = आशा (जो चारों ओर व्याप्त हो) । अथवा, आङ् + शद् (शातन अर्थ में) + ड = आश
आधुनिक अर्थ-आशा, प्रतीक्षा, भावी उन्नति, दिशा ।
'इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् जेता शत्रून् विचर्षणिः'
ऋ. २.४१.१२, अ. २०.२०.७, ५७.१०, तै.ब्रा. २.५.३.१, नि. ६.१.
अभिप्रव के द्वितीय दिन पढ़ा जाता है । सर्वद्रष्टा (विचर्षणिः) शत्रुओं या असुरों का विजेता इन्द्र सभी दिशाओं से (सर्वाभ्य आशाम्यः परि) अभय करे ।

आशापाल – (१) दिशा का पालक, अध्यक्ष । पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के अग्नि, वरुण और सोम क्रमशः अध्यक्ष हैं ।
'आशानामाशापालेभ्यः'
अ. १.३१.१, तै.ब्रा. २.५.३.३, ३.७.५.८, आश्व.श्रौ.सू. २.१०.१८, आप.श्रौ.सू. ४.११.१, ७.१६.७.
(२) दिशावासिनी प्रजाओं का पालक माण्डलिक राजा ।
'देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं'
वाज.सं. २२.१९

आशारैषी – चारों तरफ से इच्छा करने वाला ।
'आशारैषी कृशगुरेत्वस्तम्'
अ. ४.१४.६

आशासंशित – अवान्तर दिशाओं की शक्तियों में सुशिक्षित ।
'आशासंशितो वाततेजाः'
अ. १०.५.२९

आशासाना – आशा करती हुई ।

'आशासाना सौमनसम्'
अ. १४.१.४२, तै.सं. १.१.१०.१, का.सं. ११.१०, तै.ब्रा. ३.३.३.२, वै.सू. २.६, आप.श्रौ.सू. २.५.२, आप.मं.पा. १.२.७.

आशिक्षा – सब प्रकार की विस्तृत शिक्षा ।
'आशिक्षायै प्रश्निनम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६.

आशित – खाने योग्य अन्न ।
'कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति'
ऋ. १०.११७.७

आशिनः – (१) व्यापी देवता, सा. (२) वृद्ध विद्वान् –(दया.) ।
'आशिनाः देवाः'
अश् धातु व्याप्त्यर्थक है । देवता व्यापी होते हैं । स्वामी दयानन्द इसका अर्थ वृद्ध विद्वान् करते हैं ।
पुनः–
'नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः'
ऋ. १.२७.१३, आप.श्रौ.सू. २४.१३.३.

आशिनाः देवाः – (१) व्यापी देवता–सा. (२) वृद्ध विद्वान् । –(दया.)
'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः
नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः'
ऋ. १.२७.१३, आप.श्रौ.सू. २४.१३.३.
यहां शक्ति ओर तेज के तारतम्य से देवताओं का भेद अभिप्रेत है । स्वामी दयानन्द ने देव का अर्थ विद्वान् किया है ।

आशिर् – (सं) आश्रयणात् प्राश्रयणात् आङ् + शृ या श्रृ + क्विप् =आशिर् । नितपातन से सिद्ध । यहां 'आङ्' ईषत् अर्थ प्रयुक्त है । जो थोड़ा श्रृत हो । होमार्थ सोम के आश्रय से आशिर् का अर्थ पय हुआ । अर्थ है दूध उपभोग करने योग्य दुग्ध आदि उत्तम द्रव्य (२) स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ – 'आश्रय' किया है ।
'किन्ते कृण्वन्तिकीकटेषु गावः
नाशिरं दुह्रे न तपन्ति धर्मम्'
ऋ. ३.५३.१४, नि. ६.३२.
अनार्य देश वासियों के पास जो गाए हैं वे भला कौन उपकार करती हैं, न तो वे सोम–मिश्रणयोग्य दुग्ध देती और न प्रवर्ग्य कर्म के उपयुक्त महावीर पात्र या अग्निकुण्ड को अपने दूध से तप्त ही करती हैं (नाशिरं दुह्रे न तपन्ति धर्मम्) ।
पुनः–
'इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु
यत्सीम् उपह्वरे विदत् ।'
ऋ. ८.६९.६, अ. २०.२२.६,९२.३, साम. २.८४१, तै.ब्रा. २.७.१३.४
गायों ने वज्री इन्द्र के लिए मधुर दूध बार बार दिया (आशिरं दुदुह्रे) जब स्तन में (यत् उपह्वरे) सर्वतोभाव से (सीम्) जानता या प्राप्त करता है (अविदत्) या जिसे वह सदा समीप में प्राप्त करता है ।
'देवासो नित्ययाशिरा'
ऋ. ८.३१.५
(३) परमानन्द रूप रस ।
'स्वेदाञ्जिभिराशिर मिच्छमानः'
ऋ. १०.६७.६, अ. २०.९१.६, मै.सं. ४.१४.५, २२२.६.

आशिषः – सब पदार्थों को शासन करने वाली, सबकी नियामक शक्तियां ।
'किमु धाम का आशिषः'
अ. ८.९.२५

आशिष्ट – आशु + इष्ट । शीघ्र वेग से जाने वाला रथ ।
'उताशिष्ठा अनुश्रृण्वन्ति वह्नयः'
ऋ. २.२४.१३

आशिष् – आङ् + शास् (अभिलाषा अर्थ में) + क्विप् = आशिस् । उपधा का इ । अर्थ हुआ –हिता शंसा, आशीर्वाद
'सा मे सत्याशीर्देवान् गम्यात्
श्रृण्वन्तु ते समर्धयन्तु जुष्टात्
जुष्टतरा पण्यात् पण्यतरा
अहेडता मनसा नु गच्छ
यज्ञो देवान् गच्छतु'
मै.सं. १.४.१:४७.१२, का.सं. ५.३, आप.श्रौ.सू. ४.१२.६
वह मेरा आशीर्वाद् देवों को प्राप्त हो । वे देवता सुनें और सुनकर समृद्ध करें । प्रिय से प्रिय (जुष्टतरा) और स्तुत्य से स्तुत्य (पण्यात् पण्यतरा) और अक्रुद्ध मन से (अहेडता मनसा) प्रहित हे प्रस्तर ! देवों के समीप जा । यज्ञ भी

देवों के समीप जाये ।

आश्विनः – (१) स्त्री पुरुष का सम्बन्ध ।
'लोपाश आश्विनः'
वाज.सं. २४.३६. मै.सं. ३.१४.१७, १७६.३
(२) स्त्री पुरुष जो राजवर्ग और प्रजा वर्ग से अभिसिक्त हो ।
'आश्विनः पयस्यानी यमाने'
वाज.सं. ३९.५
(३)सूर्यचन्द्रवत्अश्विन नामक अधिकारी ।
'अश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे'
वाज.सं. १८.१९, तै.सं. ४.७.७.१, मै.सं. २.११.५, १४३.४, का.सं. १८.११ .

आश्विनौ – अश्व देवता वाले ।
'आश्विनौ अधोरायौ बाह्वोः'
वाज.सं. २४.१. मै.सं. ३.१३.२, १६८, ११.

अश्विनकृत – प्रजा के स्त्री पुरुषों द्वारा कृत्,निश्चित्
'अश्विनकृतस्य ते सरस्वति कृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि'
वाज.सं. २०.३५

आश्विनं तेजः – (१) सूर्य चन्द्र, दिनरात्रि स्त्री पुरुष –इन युगलों के समान राजा प्रजा का सम्मिलित वीर्य ।
'आश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यम्'
वाज.सं. १९.८, का.सं. ३७.१८, तै.ब्रा. २.६.१.५, आप.श्रौ.सू. १९.७. ५.

आशीर्त – आसेवित ।
'क्षीरैर्मध्यत आशीर्त'
ऋ. ८.२.९

आशीर्वान् – आ + शास् + क्विप् = आशीस्, आशीस् + वनुप् = आशीर्वत् । सायण ने श्रीञ् से आशीः की सिद्धि की है । अर्थ – नाना कामना एवं आशा वाला जीव ।
'तीव्राः सोमास आगहि
'आशीर्वन्तः सुता इमे ।
'वायो तान प्रस्थितान् पिब ।'
ऋ. १.२३.१
ये उत्पन्न (इमे सुताः) नाना प्रकार की कामना एवं आशाओं वाले (आशीर्वन्तः) तीव्र वेग से जाने वाले (तीव्राः) देह से देहान्तर में गति करने वाले जीव गण हैं । तू आकर दर्शन दे और उन समस्त जीवों एवं प्रस्थान करने वाले मुमुक्षुओं को अपनी शरण में ले । अथवा आचार्य दीक्षित कर तीव्र बुद्धि वाले शिष्यो को लें । उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने वाले, तीक्ष्ण वेग अस्थिर जलों में वायु पान करता है ।

आशीविष – दाढ़ो में विष धारण करने वाला सूर्य
'आशीविष उद्भृता'
अ. १२.५.३४.

आशुंग – शीघ्र गामी ।
'आशुंगःशिशु को यथा'
अ. ६.१४.३

आशुपत्वा – वेग से गति करने वाला ।
'प्रश्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा'
ऋ. ४.२६.४

आशुमत् – वेगवान् ।
'परापतति आशुमत्'
अ. ६.१०५.१, २.

आशुः – शीघ्र करने वाला ।
'यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः
श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ।'
ऋ. १०.९४.१, नि.९ .९.
हे ऋत्विजो, जब शीघ्रकारी दृढ़ पर्वत एक साथ इन्द्र के लिए श्रवणीय घोष करते हैं तो आप भी इन्द्र के लिए स्तुति रूप वचन बोलें ।
(२) शीघ्र चलने वाला ।
'अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुम्'
ऋ. १०.१७४.१, अ. ७.८५.१, साम. १.३३२, ऐ.ब्रा. ४.२०.२४, नि. १०.२८.
(३) (अव्ययं) अतिशीघ्र, क्षिप्र ।
'त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिः
त्वमद्भ्यः त्वम् अश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यः त्वम् ओषधीभ्यः
त्वं वृणां नृपते जायसे शुचिः'
ऋ. २.१.१, वाज.सं. ११.२७, तै.सं. ४.१.२५, मै.सं. २.७.२, ७६.१०, का.सं. १६.२, तै.आ.(आंध्र) १०.७६, कौ.ब्रा. २१.४, नि. ६.१, १३.१.
हे अग्ने या विद्युत्! तू द्योतनात्मक यज्ञ के दिनों से अर्थात् पौर्मास्य आदि से मनुष्यों से मथे जाने पर उत्पन्न होता है (द्युभिः नृणां जायसे) अर्थात् यज्ञ के दिनों में प्रत्यक्ष होता है । तू शीघ्र दीप्ति से शत्रुओं का क्षय करने वाला है (त्वम् आशुशुक्षणिः) । हे यष्टाओं का पालक (नृपते) !

तू वृष्टि के जलों से या समुद्र के नलों से बड़वा रूप में उत्पन्न होता है (त्वम् अद् भ्यः) तू पाषाण के उत्तरोतर घात से उत्पन्न होता है (त्वं अश्मनः परि) या मेघ से अन्तरिक्ष में निर्घात रूप से तू दावाग्नि के रूप में वृक्षादि समूहों से उत्पन्न होता है (त्वम् वनेभ्यः) । तू ओषधि आदि ब्रीहियों से उत्पन्न होता है (त्वम् ओषधीभ्यः) । इसमें विद्युत्, के उत्पत्ति स्थान सूर्य की किरणें, जल, उद्भिद् और काष्ठ आदि बतलाए गए हैं । (४) ज्ञानोपदेश ग्रहण करने में आशुगति वाला शिष्य, (५) व्यापक ।

'एमाशुमाशवे भर'

ऋ. १.४.७, अ. २०.६८.७

आशुपत्वा – तेजी से चलने वाला ।

'उत श्वेत आशुपत्वा'

अ. २०.१३५.८, ऐ.ब्रा. ६.३५.१२, गो.ब्रा. २.६.१४, शां.श्रौ.सू. १२.१९.४.

आशुया – वेग से जाने वाले ।

'तव भ्रमास आशुया पतन्ति'

ऋ. ४.४.२, वाज.सं. १३.१०, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५,९ ७.९, का.सं.१६.१५.

आशुरथ – शीघ्रगामी रथ सेना वाला ।

'नम आशुषेणाय च आशु रथाय च'

वाज.सं. १६.३४, तै.सं. ४.५.६.२, मै.सं. २.९.६, १२५.१, का.सं. १७. १४.

आशुशुक्षणि – (१) आशु + शु + क्षणि = आशु शुक्षणि । आशु का क्षिप्र और शु का अर्थ भी क्षिप्र ही है । 'आशु इति च शु इति च क्षिप्रन्तमनी भवतः' । 'क्षणि ' क्षण (हिंसार्थक) + इन से बना है । अतिशीघ्रं क्षणोति (अति शीघ्र नाश करता है) ।

अर्थ –अग्नि या विद्युत् ।

(२) आशु शोकं ददाति (शीघ्र शोक देता है । इस अर्थ में भी अग्नि का ही पर्याय है । 'आशु शुचा क्षणोति ' –शीघ्र अपनी ज्वाला से नष्ट करता है ।(३) शुच् धातु का सन्नन्त रूप भी हो सकता है । आङ् शुशुक्षणि = आशु शुक्षणिः । अर्थ सर्वतः दीप्तिमान् ।

(४) आशु शुचा दीप्त्या क्षणोति हिनस्ति । (शीघ्र दीप्ति से नाश करता है) । अग्नि ।

(५) आशु शुचा सनोति (शीघ्र शोक से युक्त करता है) । अग्नि

आशुषाणः – (१) प्राप्त करता हुआ (२) तपस्या करता हुआ ।

'अभि प्र सेदुः ऋतमाशुषाणाः'

ऋ. ४.१.१३

(३) उपभोग करता हुआ, (४) अति शीघ्रता से कार्य करता हुआ ।

'अश्यामतत्सामम् आशुषाणाः'

ऋ. २.१९.७

(५) निरन्तर या अति अल्प काल में ही ग्रहण कर लेने वाला – शिष्य ।

'ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः'

ऋ. १.१४७.१.

(६) आदर पूर्वक देह का शोषण करता हुआ तपस्वी ।

'आशुषाणासो मिथो अर्णसावौ'

ऋ. ४.२४.४

(७) शीघ्र गामिनी सेना का स्वामी ।

'नम आशुषेणाय च आशुरथाय च'

वाज.सं. १६.३४

आशुहेमन् , आशुहेमा – (१) शीघ्र चलने वाला पदार्थ, गतिशील रथ का विशेषण । (२) बहुत शीघ्र ऐश्वर्य आदि से बढ़ाने वाला ।

'त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यम्'

ऋ. २.१.५

(३) शीघ्र प्रेरणा करने वाला (४) सेना, अश्वों या रथों को शीघ्र प्रेरणा करने वाला (५) शीघ्र बढ़ने या जाने वाला । अपांनपात्–विद्युत्

'अपांनपात् अवतु आशुहेमा'

ऋ. ७.४७.२

(६) शीघ्र क्रिया करने वाला, (७) ज्ञान और बल की वृद्धि करने वाला ।

'अपां न पात् आशुहेमा कुवित्स'

ऋ. २.३५.१, मै.सं. ४.१२.४, १८८.१, का.सं. १४.६, तै.ब्रा. १.३.५.४,

(८) शीघ्र गति से चलने वाले सूर्य, विद्युत् आदि लोकों ओर पदार्थों का प्रेरक परमेश्वर ।

(९) शीघ्रगामी अश्वों, यन्त्रों, का संचालक ।

'अपांनपात् आशुहेमा धिया शमि'

ऋ. २.३१.६

आशुहेषसा – (१) शीघ्र ही उत्तम ध्वनि करने वाले

आश्विद्वय, (२) अश्वारोही या जितेन्द्रिय जन ।
'इन्द्राविष्णू अश्विना वाशु हेषसा'
ऋ. ८.१०.२

आश्रुत्कर्ण - (१) सर्वत्र श्रोतारौ कर्णौयस्य सः (जिसके कान सर्वत्र सुनने वाले हों या भली प्रकार सुनने वाला जिनके कान हों) । इन्द्र का विशेषण, (२) भली भांति कानों से सुनने वाला विद्वान् । -(दया.)
'आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवम्
नूचित् दधिष्व मे गिरः
इन्द्र स्तोम मिमं मम
कृष्वा युजश्चिदन्तरम्'
ऋ. १.१०.९, आश्व.श्रौ.सू. ७.८.३, नि. ७.६.
हे सर्वत्र सुनने वाले इन्द्र, हमारा आह्वान् आप शीघ्र सुनें । मेरी स्तुतियों को भी चित्त में धारें और हे इन्द्र, मेरे इस स्तोत्र को मित्र के सदृश हृदयंगम करें ।
स्वामी दयानन्द का अर्थ - भलीभांति सुनने वाले कानों से युक्त विद्वन् , मेरी प्रार्थना सुनिए एवं मेरे वचनों को शीघ्र धारण कीजिए। हे विद्वान् ब्राह्मण, मेरी इस वाणी को सुनकर एवं धारण कर अपने प्यारे सम्बन्धी की तरह मेरा अन्तः करण पवित्र कीजिए । (३) निरन्तर श्रवण शक्ति रूप कर्णवाला, (४) सर्वत्र श्रवण करने वाले कानों से युक्त इन्द्र या परमेश्वर

आश्रुतिः - सब तरफ से उत्तम रीति से श्रवण करने हारी ।
'आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपव्ये रायस्पोषं मे दाः'
वाज.सं. ३७.१२, श.ब्रा. १४.१.३.२२.

आश्नुवानः - सर्वत्र व्याप्त होता हुआ । आ + श्नु + शानच् = आश्नुवान् ।

आश्रृण्वत् - आदर से सुनने वाला ।
'आश्रृण्वते आदृपिताय मन्म'
ऋ. ४.३.३.

आश्रृण्वन् - माता पिता आचार्य आदि की आज्ञा सुनने वाला बालक,।
'आश्रृण्वन्तं यवं देवम्'
अ. ६.१४२.२

आश्रेष - शीघ्र चिपट जाने वाले संक्रामक रोग से पीड़ित, (२) गर्मी सुजाक, आदि दाहकारी रोग से पीड़ित ।
'आश्रेषं वविवाससम् '
अ. ८.६.२

आश्लेषा - आश्लेषानामक नक्षत्र ।
'भानुराश्लेषा अयनं मघा मे'
अ. १९.७.२

आष - ज्वाला, आंच ।
'मृत्योराषमा पद्यन्ताम्'
अ. ८.८.१८
'आष्ट्रीपदं कृणुते अग्निधाने'
ऋ. १०.१६५., ३. अ. ६.२७.३, मै.सं. ४.१२.१, १७८.२

आस् - (१) मुख ।
'नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा'
ऋ. १०.६७.१०, अ. २०.९१.१०,
(२) प्रमुख मनुष्य ।
'आसा देवा हवि रदन्ति आहुतम्'
ऋ. २.१.१४

आस - (१) मुख, (२) प्रमुख स्थान ।
'व्यास इन्द्रः पृतणाः स्वोजा'
ऋ. ७.२०.३.
(३) बाहर फेंका हुआ ।
'आसो बलासो भवतु'
अ. ९.८.१०
(४) स्थापन ।
'वषट् ते विष्णावास आकृणोमि'
ऋ. ७.९९.७, १००.७, साम. २.९.७७, तै.सं. २.२.१२.४, का.सं. ६.१०, आश्व. श्रौ.सू. ३.१३.१४.
मुख के अर्थ में ।
'मध्वः पिबतम् मधुपेभिरासभिः'
ऋ. १.३४.१०, ४.४५.३.

आसंग - असंगः, संगरहित ।
'आसंगस्य स्वनद्रथः'
ऋ. ८.१.३२

आसचत - (१) आसेवध्वम् (सर्वतोभाव से सेवन करो) (२) सुनो ।
'इमंमे गंगे यमुने सरस्वती
शुतुद्रि स्तोमं सचा परुष्ण्या'
ऋ. १०.७५.५, तै.आ. १०.१.१३, महा.ना.उप. ५.४, नि. ९.२६.

आसते - आस् (बैठना) धातु के लट् प्र.पु.ब.व.

का रूप ।
'पवित्रवन्तः परिवाचमासते'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.
आ + सद् + क्विप् = आसद्

आसद् – (१) आकर बैठने का स्थान ।
'ऋतस्य योनिमासदम्'
ऋ. ३.६२.१३,९ .८.३, ६४.२२, तै.सं. ३.४.२.
(२) विराजना, ग्रहण करना, आसन जमाना ।
'यजिष्ठं बर्हिरासदे'
ऋ. ८.६०.१, अ. २०.१०३.२, साम. २.९०.२, का.सं. ३९.१५.
'इदं नो बर्हिरासदे'
ऋ. १.१३.७, ८.६५.६, १०.१८८.१, नि. ७.२०

आसद – (१) राज्य –सिंहासन, (२) राजसभा, (३) प्रतिष्ठा ।
'आ दक्षिणा सृज्यते शुष्म्यासदम्
ऋ.९ .७१.१.

आसदे – (१) आस्स्तुम् , प्राप्तुम् (पाने के लिए) आङ् + सद् + केन् = आसदे ।
'प्रनूनं जातवेदसम्
अश्वं हिनोत वाजिनम् ।
इदं नो बर्हिरासदे ।'
ऋ. १०.१८८.१, नि. ७.२०.
हे स्तोता गण ! तुम इन कर्मों से समस्त जग व्याप्त करने वाले (अश्वम्) गति शील चंचल अग्नि को (वाजिनम् जातवेदसम्) हमारे इस आस्तीर्ण कुशासन पर आने के लिए (नः इदं बर्हिरासदे) स्तुतियों से प्रेरित करो (प्रहिणोत) । अन्य अर्थ–सर्वव्यापी गतिशील (वाजिनम्) वेद वेत्ता के आस्तीर्ण आसन पर आने के लिए आसन दे । (२) सुख से बैठने योग्य ।

आसन् – (१) मुख ।
'हव्या जुह्वान आसनि'
ऋ. १.७५.१, मै.सं. ३.१०.१, १३०.७, का.सं. १६.२१. तै.ब्रा. ३.६.७. १, ऐ.ब्रा. २.१२.४.
मुख में हव्य या अन्नो को रखता हुआ ।
(२) आस्यात् (मुख से) . ऐसा प्रयोग वेद में आया है । आस्य का आसन आदेश और पंचमी एक वचन में 'अ' का लोप हो जाता है ।

आसना – दुर्वृत्ति ।
'अजैष्याद्यासनाम च'
ऋ. ८.४७.१८, १०.१६४.५, अ. १६.६.११.

आसन्वान् – मुख से काटने वाला सर्प ।
'यद्भूतं भाव्यमासन्वत्'
अ. ६.१२.२

आसन्दी – (१) पृथिवी । अस्या हि इदं सर्वमासन्नम् (यह सब कुछ इस पृथ्वी से आसन्न है) ।
'आसन्दी रूपं राजसन्द्यै'
वाज.सं. १९.१६
(२) राज्य–सिंहासन ।
'वरुण आसन्द्यामसन्नोऽग्नि राग्नीध्रे'
वाज.सं. ८.५६,
(३) कुरसी, खाट, आसन ।
'यदासन्द्यामुपधाने
अ. १४.२.६५

आसया – समीप, निकट ।
'अतिथिं मानुषाणाम्
पितुर्न यस्यासया ।'
ऋ. १.१२७.८,
जिस सर्वपालक के निकट उसकी गोद और उपासना में स्थित (पितुः आसया) समस्त मनुष्यों में अतिथि के समान पूजनीय तुझ को हम प्राप्त होते हैं ।

आसवः – (१) सर्व कार्यों की अनुज्ञा देने वाला (२) सब प्रकार से से ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (३) राजा ।
'आसवं देववीतये'
वाज.सं. २२.१३

आसस्राणासः – आससृवांसः नित्यम् आसर्पन्ति ये ते (जो नित्य चलने वाले हों)
'आसन्त्राणासः शवसानमच्छ
इन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।
अभिश्रव ऋज्यन्तो वहेयुः
नू चिन्नु वायोरमृतं विदस्येत् ।'
ऋ. ६.३७.३, नि. १०.३.
नित्य चलने वाले (आसस्रणासः) रथ में जोते जाने वाले (रथ्यासः) घोड़े (अश्वाः) सुन्दर चक्के वाले रथ में (सुचक्रे) जोते जाकर सुन्दर चाल से चलते हुए (ऋज्यन्तः) अपने को बलवान् मानने वाले इन्द्र को (शवसानम् इन्द्रम्) सामने अच्छा 'नया' पुराना अन्न या सोम रस

(श्रवः) उस प्रकार लावे (अभिवहेयुः) जिससे इन्द्र का (वायोः) यह सोम (अमृतम्) शीघ्र घट न जाए (नु नूचित् विदस्यत्) ।

आतस्थिवान् - बैठा हुआ ।

'शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्'

ऋ. १.११६.५

सैकड़ो चक्षुओं वाली नाव में बैठे हुए

आस्तरण - बिछावन ।

'वेद आस्तरणम् ब्रह्मोपबर्हणम्'

अ. १५.३.७

- स्तुत किया जाता है ।

'अग्निष्ट्वे दम आ जातवेदाः'

ऋ. ६.१२.४, ७.१२.२, साम. २.६५५.

जात धन या जातप्रज्ञ अग्नि यहगृह में (दमे) स्तुत किये जाते हैं (आस्तवे) ।

आस्त्रबुध्न - अस्त्र विद्या का ज्ञाता ।

'त्वं त्यमिन्द्रमर्त्यमास्त्रबुध्नायवेन्यम्'

ऋ. १०.१७१.३

आस्पन्दमाना - सब तरफ से आती उछलती कूदती हुई ।

'आधेनवः सायमास्पन्दमानाः'

अ. ३.१२.३

आस्य - (१) मुख । अस् (क्षेपणार्थक) + ण्यत् = आस्य (जिसमें अन्न आदि क्षिप्त किया जाय) (२) आङ् + स्यन्द + ड = आस्यन्द । मुख में आस्यन्दित होता है । अतः यह आस्य है ।

(३) आश्य, खाने योग्य, देने योग्य ।

'इदं पितृणां हवि रास्यं यत्'

अ. ७.६८.२.

आसा - उपवेशन ।

आसात् - समीप से ।

'आ न इन्द्रो दूरात् आन आसाद्'

ऋ. ४.२०.२, वाज.सं. २०.४८, ऐ.ब्रा. ४.३०.१, कौ.ब्रा. २२.१, ऐ.आ. ५.२.२.३, शां.श्रौ.सू. १२.३.९.

आसाद - आसन्दी (पीढ़ा) पर लगाया पीठ रखने का आश्रय ।

'सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः'

अ. १५.३.८

आसानः - (१) समीप बैठा हुआ, ।

'आसानेभिः यजमानो मियेधैः'

ऋ. ६.५१.१२

(२) रहता हुआ ।

'यं त आसानो जुहुते हविष्मान्'

ऋ. ६.१०.६

आस्कन्द - सब तरफ से राष्ट्र के रसों को शोषण करने या चूस लेने की कार्य-व्यवस्था ।

'आस्कन्दाय सभास्थाणुम्'

वाज.सं. ३०.१८

आस्कन्दम् - उछल कूद कर ।

'शश आस्कन्दमर्षति'

वाज.सं. २३.५६

आस्क्रः - (१) समन्तात् आहूतः -दया. (चारों ओर से आहूत) (२) सब प्रकार से खरीदा भृत्य

'त्वया वयं सहसावन् आस्क्राः'

ऋ. ७.४३.५

(३) शत्रुबलस्यक्रमिता। शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला ।

'आवो विश्वा आस्क्रा गमन्तु देवाः'

ऋ. १.१८६.२, मै.सं. ४.१४.११, २३२.२ तै.ब्रा. २.८.६.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.१०.

आस्थाता - अध्यक्ष

'आस्थाता ते जयतु जेत्वानि'

ऋ. ६.४७ ६, अ. ६.१२५.१, वाज.सं. २९.५२, तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८६.८, का.सं.(अश्व). ६.१, साम.मं.ब्रा. १.७.१६, गो.गृ.सू. ३.४.३२, नि. ९.१२.

आस्थान - (१) ठीक स्थान ।

'आस्थाने पर्वता अस्थुः'

अ. ६.७७.१, ७.९६.१

(२) आश्रय स्थान ।

'तासाम् आस्थानात् उज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः'

वाज.सं. ११.३८, मै.सं. २.७.४, ७८.६,३.१.५, ६.२०, का.सं. १६.४, श. बा. ६.४.३.२.

(३) शरीर में चिपकने का गुण ।

'आस्थानमसितं तव'

अ. १.२३.३, तै.ब्रा. २.४.४.१.

आम्राव - अंग प्रत्यंग से इकट्ठा होकर बहने वाला बहुमूल्य ।

'एवा रोगं चाम्रावम्'

अ. १.२.४

आस्राव भेषन – रक्तस्राव को अच्छा करने वाला औषध-विषाणका नामक दवा ।
'श्रेष्ठमास्रावभेषजम्'
अ. ६.४४.२

आदित्यासः – (१) अदिति माता पृथिवी के पुत्र प्रजागण, (२) पृथ्वी के स्वामी तेजस्वी राजा गण, (३) अखण्ड ब्रह्म या अविनाशिनी वेदवाणी के उपासक ।
'त्वामग्न आदित्यास आस्यम्'
ऋ. २.१.१३, तै.ब्रा. २.७.१२.६.

आसिच् – (१) पूर्ण आसेचन, पुष्टि या दान, (२) समन्तात् सेचन -दया ।
'अध्वर्यवः सपूर्णां वष्ट्यासिचम् ।'
ऋ. २.३७.१

आसिञ्च – प्रक्षारम (ठार, डाल, रख) ।

आसिञ्चन्ती – बहुत सींचने वाली नदी का विशेषण ।
'आसिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम्'
ऋ. ५.८५.६.

आसिष्विदाना – खूब पसीना बहाते हुए ।
'कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना'
ऋ. १०.१०६.१०

आस्थित – शरीर में बैठा रोग जमा हुआ रोग ।
'तेन ते मृन्म आस्थितम्'
अ. ४.१७.८
'आस्थितम् हृदयामयम्'
अ. ६.१४.१

आसीन – गौ के बैठने का रूप ।
'आग्नि रासीन उत्थितोऽश्विना'
अ. ९.७.१९

आसुतिः – (१) बहुत सा अन्न आदि ऐश्वर्य ।
'पुरु सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः'
ऋ. ७.९७.७, मै.सं. ४.१४.४, २२०.१, का.सं. १७.१८, तै.ब्रा. २.५.५.५.
(२) वीर्य की आधान क्रिया, (३) प्रसवक्रिया ।
'यदासुतेः क्रियमाणायाः'
अ. ३.७.६.
(४) रस । (५) पान करने योग्य दुग्ध आदि रस (६) प्रजा -(दया.)
'इन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः'
ऋ. १.१०४.७

आसुन्वत् – सवन या चिन्तन करने वाला ।
'आसुन्वता सख्यं वष्टि शूरः'
अ. २०.८९.४

आसुर – (१) स्वयं अप्रकाशित पिण्ड, (२) अन्यों से प्रकाशित होने वाला चन्द्रादि आकाशीय पिण्ड ।
'तमसा विध्यदासुरः'
ऋ. ५.४०.५,९, कौ.ब्रा. २४.४.
(३) असुर अर्थात् प्रकाश से रहित वायु के आश्रय पर उत्पन्न होने वाला अग्नि
'तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरः'
ऋ. ३.२९.११
(४) सब तरह से धन शाली दान ।
'देवा ददत्वासुरम्'
अ. २०.१३५.१०, ऐ.ब्रा. ६.३५.१८, गो.ब्रा. २.६.१४, शा.श्रौ.सू. १२.१९.३.

आसुरःस्वर्भानुः – चन्द्रादि अप्रकाशित पिण्ड जो सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है ।
'यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुः
तमसा विध्यदासुरः'
ऋ. ५.४०.५.

आसुरी – (१) त्वचा दोष-नाशक एक ओषधि । कुष्ट की सर्वोत्तम ओषधि कही गई है । राई, लाल सरसों ही आसुरी है जो कृमि व्रणनाशक है ।
'तदासुरी युधाजित'
अ. १.२४.१
(२) बुद्धिमानों द्वारा उपदिष्ट विवेक बुद्धि ।
'येनानि चक्र आसुरी'
अ. ७.३८.२

आसुम्रस् – शीघ्र सुगम रीति से विनष्ट होने वाला । गण्डमाला रोग
'आ सुम्रसः सुम्रसः'
अ. ७.७६.१

आस्कु – पीड़ित करना ।
'यो अस्याः कर्णा वास्कुनोति'
अ. १२.४.६

आसेचन – सेचन करने का साधन कूप तड़ाग । आदि स्थान
'या पात्राणि पूष्णा आसेचनानि'
ऋ. १.१६२.१३, वाज.सं. २५.३६, तै.सं. ४.६.९.१,

मै.सं. ३.१६.१, १८३.४, का.सं.(अश्व.) ६.६.

आस्ते – रहता है। 'आछे' और 'अछि' का प्रयोग जनपदीय भाषाओं में 'आस्ते' का ही बिगड़ा रूप प्रतीत होता है।

'ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्'

ऋ. १०.७२.११, नि. १.८.

एक (त्वः) होता देवताओं की ऋचाओं का (ऋचाम्) यथाविधि उपयोग (पोषम्) करता हुआ (पुपुष्वान्) रहता है (आस्ते)।

आस्क्रे – (१) आक्रमण शील, (२) आगे उन्नति की और बढ़ने वाले स्त्री पुरुष।

'आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते'

ऋ. ३.६.४

आस्तेयी – 'अस्ति' अर्थात् हृदय या मुख में विद्यमान रुधिर या थूक।

'आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च'

अ. ११.८.२८

आहनन्य – सेना में जोश डालने के लिए नगाड़ों पर दण्डादि से आघात कर बजाने वाला।

'नमो दुन्दुभ्याय च आहनन्याय च'

वाज.सं. १६.३५, तै.सं. ४.५.७.१, मै.सं. २.९.७, १२५.११, का.सं. १७. १४.

आहनाः,आहनस् – (१) अभिगन्ता पुरुष, (२) स्त्री संभोग कर्त्ता, (३) आघात करने वाला शिल्पी-राजा, (४) सर्वत्र व्यापक प्रभु।

'य आहना दुहितुर्वक्षणासु
रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः'

ऋ. ५.४२.१३

(५ आह नस् अर्थात् कटाक्षों से आघात् करने वाली स्त्री

'अन्येन मदाहनो याहितूयम्'

ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९, नि. ५.२.

(६) आहननवान्, वञ्चनवान्, (७) सम्मोहयिता, (८) शत्रुओं का सामना सामनी हनन करने वाला। आङ् + हन् + असुन् (मंत्वर्थीय) = आहनस् (९) उपदेश प्रद-दया. (१०) असत्य से दूसरे का चित्त दुखाने वाला

'आहनसः आहननवन्तः वचनवन्तः
इति यास्कः सुगतिवन्तः वचनवन्तः।'

सायण के मत से इसका अर्थ अभिहन्यमान, अभिषूयमान, स्तुतिमान् या शब्दवान् है। सोम का विशेषण होकर यह प्रयुक्त हुआ है। सोम पीने वाले शत्रुओं का मुकाबला करते हैं और उन्हे मारते हैं अतः सोम को आहनस् कहा गया है। सोम रस चुलाने के लिए इसे दो ग्रावाओं के बीच मारना पड़ता है। इसी से सायण ने इसे अभिहन्यमान कहा। अभिषव करने के समय शब्द होता है इससे यह शब्दवान् भी हुआ। दुर्ग भी आहनवन्तः वञ्चवन्तः सम्मोहितारः ऐसा लिखा है। देवराज यड्वा ने जो दुर्ग के पूर्ववर्ती हैं लिखा है-सूत्रे दूरमाहतम् ब्राह्मणे इदमाहतम् इत्यादि प्रयोगदर्शनात् अहन्तिः वचनार्थः। अतः 'आहनस्' का अर्थ आहनवन्तः वचनवन्तः हुआ।

'परि सोमप्रधन्वा स्वस्तये
नृभिः पुनानो अभिवासयाशिरम्।
ये ते मदा आहनसो विहायसः
तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम्'

ऋ. ९.७५.५

हे सोम! हमारे कल्याण के लिए हम ऋत्विजों से पूयमान तू पात्रों में प्रवेश कर (परिप्रधन्वा) और क्षीर आदि में मिल जा (आशिरम् अभिवासय) एवं शत्रुओं को मारने वाले (आहनसः) जो तेरे प्रबल या महान् रस हैं (ये ते विहायसः मदाः) उन मदों से प्रसन्न हो हमें धन देने के लिए (मघं दातवे) इन्द्र को प्रेरित कर (इन्द्रं चोदय)।

अन्य अर्थ-जगदुत्पादक प्रभो (सोम), हमारे कल्याण के लिए आप हमें सभी दिशाओं उपदिशाओं में हमें प्राप्त हों (स्वस्तये परिप्रधन्व) और हम मनुष्यों से पाए हुए आप (नृभिःपुनानः) हमें अपने आश्रय में निवास कराइये (आशिरम् अभिवासय) और ये जो आप के उपदेशक महान् आनन्दप्रद वेद हैं। उनके द्वारा हमारे आत्मा को (इन्द्रम्) धन दान के लिए प्रेरित करें।

(११) असह्य भाषण से मर्माहत करने वाले के अर्थ में प्रयोग –

'न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते
देवानां स्पश इह ये चरन्ति'

ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९.

'अन्यनेमदाबनो याहि तूयं
तेन विवृह रथ्येव चक्रा।'

ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९, नि. ५.२.
हे यमी ! जो ये देवताओं के चोर अर्थात् जासूस इस लोक में चलते हैं वे न कभी विराम लेते हैं न सोते हैं । मुझे फुर्सत नहीं अतः हे बातों से मर्माहत करने वाली (आहनः) मेरे सिवा किसी अन्य के पास शीघ्र जा । और उसके साथ विवाह कर (तेन विवृह) जैसे रथ के दो चक्के एक ही धुरा पर अवलम्बित रहते हैं ।
(१२) सबके हृदय में चोट पहुंचाने वाली या हृदय में प्रवेश करने वाली प्रियतमा ।
'कदु ब्रव आहनो वीच्या नृन्'
ऋ. १०.१०.६, अ. १८.१.७

आहना – (१) प्रेममयी माता, (२) व्याप्ता ।
'तदाहना अभवत् पिप्युषी पयः'
ऋ. २.१३.१.

आहनन – (१) मारना ।
'तस्या आहननं कृत्या'
अ. १२.५.३९
(२) डुग्गी पीटना ।
'दुन्दुभिमाहननाभ्याम्'
अ. २०.१३५.१, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१९, वै.सू. ३२.२५.

आहन्त्री – असत्य भाषण से मर्माहत करने वाली ।

आहलक् – कृषिनिमित्त हलादि चलाने में कुशल, (२) हृदय का विलेखन से अंकन या आकर्षण करने वाली ।
'आहलगिति वञ्चति'
वाज.सं. २३.२२

आहवनीय – द्यौरूप, इन्द्रजीव यजमान पुरुष, पुरुष का मुख प्राण, यज्ञ का मुख आहवनीय के रूप हैं ।
'सोदक्रामत् साहवनीयेन्यक्रामत्'
अ. ८.१०.४.
द्यौराहवनीयः –श.ब्रा.८.६.३.१४
यजमान आहवनीयं पुरुषस्य मुखमेव ।
आहवनीयः –कौ.ब्रा. १७.७
यज्ञस्य शिर आहवनीय) कौ.ब्रा. १७.८
प्राणोदानावेवाहवनीयश्च गार्हपत्यः श.ब्रा. २.२.२.१८

आहार – आङ् + हृ + घञ् = आहार, भोजन । आह्रियते (भोजन चारों ओर से लाया जाता है ।

आहार्य – भोजन योग्य, लाने योग्य ।
'मधुमदस्याहार्यं भवति'
अ. ९.१.२३

आहाव – (१) कूप के समीप पशुओं के जल पानार्थ बनाया हुआ कुण्ड ।
'द्रोणाहावमवतमश्मचक्रम्'
ऋ. १०.१०१.७, नि. ५.२६.
लकड़ी का बना द्रोण ही जिस रथ का निपान है । उस द्रोणाहाव की रक्षा करो ।
(२) कटोरा ।
'पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वः'
ऋ. १०.११२.६.
(३) आह्वनात् , आहूयते अस्मिन् पाययिता (पानी पिलाने वाला जहां आह्वान् करता है) ।(४) वह कुण्ड जहां पशुओं को पानी पिलाने के लिए बुलाया जाता है । (५) रण भूमि को भी आहाव कहते हैं । आहूयन्ते योद्धार अस्मिन् (इस में योद्धा आहूत किए जाते हैं) । आङ् + हू + अप् = आहाव ।

अहिनुहि – प्राप्त कर ।
'अग्नि तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आदमे'
ऋ. १.१४३.४.
उस अग्नि को स्तुतियों द्वारा अपने घर में प्राप्त कर ।

आहुत – अभिहुतम् (जो आहुति रूप से अग्नि में दिया जाय) । विसृष्टम् (दिया हुआ)
'हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि
दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा
धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ।'
ऋ. १०.८८.१, नि. ७.२५.
सूर्य और वैश्वानर अग्नि देवता, जो यह पीने लायक सोमात्मक हवि (पान्तं हविः) जराधर्म रहित (अजर) देवताओं के प्रिय आदित्य को जानने वाले, प्राप्त करने वाले (स्वर्विदि), द्यौलौक को हवि द्वारा छूने वाले अग्नि में दिया जाता है, उस हवि को अधिक करने (भर्मण) देवताओं के तृप्तिकारक बनाने (भुवनाय) धारण रक्षा या अविच्छेद के लिए (धर्मणे) सुखद अग्नि को (कम्) अन्न, हवि और पुरोकाश से (स्वधया) देवता या ऋत्विज लोग बढ़ाते हैं ।

अन्य अर्थ - सूर्य की तरह वर्तमान ऊंची ज्वालाओं से अन्तरिक्ष को छूते हुए वैश्वानर अग्नि में जिस दुग्ध, घृत आदि रस और प्रीत स्वच्छ प्रभूत हवि को डालते हैं, विद्वान् लोग उसे जगत् पोषक बताने के लिए, सुगन्धिप्रद करने के लिए, जगद्धारक बनाने के लिए अन्न की हवि से निरन्तर विस्तृत करते हैं ।

आहुतयः - तत् यत् आह्वयति । कल्याणकारी आवाहन ।

'तस्मादाहुतिर्नाम'

श. ११.२.२.६

'वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान् समर्धयन्तु भूः स्वाहा'

वाज.सं. २०.१२, का.सं. ३८.४, श.ब्रा. १२.८.३.३०, तै.ब्रा. २.६.५.८.

आहुतिः - (१) आह्वान्, (२) हवन, (३) दाता, (४) धारण करने और प्रकट करने वाला, (५) अन्न भृति देने वाला ।

'अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिम्
यमश्वत्थमुपतिष्ठन्तजायवः
अस्मे ते सन्तु जायवः'

ऋ. १.१३५.८

मधुर फल के देने वाले पीपल को पक्षिगण प्राप्त होते और उसका आश्रय लेते हैं और अपत्य की कामना करने वाले (जायवः) पीपल को प्राप्त होते हैं और औषध रूप से सेवन करते हैं । उसी प्रकार इन्द्रवायू विजयी शूरवीर, जिस शत्रुदल को कंपा देने वाले सामर्थ्य को धारण और प्रकाशन वाले और अधीन भृत्यों को अन्न भृति देने वाले आश्रय वृक्ष के समान दृढ़ एवं अश्व सैन्य के बल पर संग्राम में स्थित होने वाले जिस नायक पुरुष का आश्रय लेते हैं हे राजन् और सेनापति इस राष्ट्र में उस वीर नायक को धारण करो ।

आहुतीवृध् - (१) आहुति धनादि से बढ़ने वाला अग्नि, (२) जठराग्नि ।

'युवानमाहुतीवृधम्'

ऋ. ९.६७.२९, अ. ७.३२.१.

आहुवामहे - आह्वयामहे (हम पुकारते हैं) आङ् + हू + महे = आहुवा महे । बहुलंछन्दसि से 'व' का सम्प्रसारण 'उ' हो गया है ।

'रथं नु मारुतं वयं
श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती
सचा मरुत्सु रोदसी ।'

ऋ. ५.५६.८, नि. ११.५०.

हम आत्रेय श्रवस्यु एवं रंहण स्वभाव मेघ को (रथम्) मरुतों के साथ (मारुतम्) तुरत बुलाते हैं (आहुवामहे) जिस रथ से (यस्मिन्) सुन्दर जलों को (सुरणानि) धारण करती हुई (बिभ्रती) मरुतों के साथ (मरुत्सु सचा) मरुतों की माता रुद्र की पत्नी या वायु की पत्नी माध्यमिका देवी (रोदसी) रहती है (आतस्थौ) । मारुत रथ का 'मरुतों का ही रथ' ही अर्थ सहज मालूम पड़ता है ,किन्तु मेघ गतिवान् है अतः उसे रथ कहा गया है । बिना मरुत् की सहायता पाए मेघ चलता भी नहीं अतएव मरुत् का रथ भी मेघ को कह सकते हैं ।

आहूर्य - बुलाने योग्य ।

'जनेन शेव आहूर्यः सन्'

ऋ. १.६९.४

वह जनों के बीच में सबका सुखाकारी सर्वप्रिय के समान आदर से बुलाने योग्य हो ।

आहृत यज्ञक्रतुः - जो सदा यज्ञ का फल प्राप्त करता रहता है ।

'आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति'

अ. ९.६.२७.

इ

इक्षवः - (१) नीचे की पलकों के लोम, (२) इच्छानुकूल पदार्थ ।

'पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवः'

वाज.सं. २५.१, मै.सं. ३.१५.१, १७८.१.

इक्ष्वाक - (१) इक्ष्वाक नामक पक्षी जो वाण के समान वेग से जाता है । (२) एक राजा का नाम-ग्रीफिथ (३) इक्ष्वाकुराजा ।

'यं त्वावेद पूर्व इक्ष्वाकः'

अ. १९.३९.९

अक्ष्वाकु - (१) गन्ने के समान मधुरवाणी युक्त विवेकी पुरुष, (२) इक्ष्वाकु नामक राजा ।

'यस्येक्ष्वाकु रुप व्रते'

ऋ. १०.६०.४

इङ्खयन्ति – उथल-पुथल करते हैं । इङ्ख धातु उथल पुथल करने के अर्थ में आया है ।
'य ईङ्खयन्ति पर्वतान्
तिरः समुद्रमर्णवम्'
ऋ. १.१९.७
जो वायु पर्वतों, अन्तरिक्ष और समुद्र को उथल पुथल करते हैं ।

इङ्ख – (१) उथल पुथल करना । (२) पति संग करना, (३) शरण में जाना ।

इङ्खयन्ती – (१) पति-संग लाभ करती हुई, (२) परमेश्वर या राजा की शरण में जाती हुई ।

इङ्ग – चलाना ।
'शुनमष्ट्रामुदिङ्गय'
ऋ. ४.५७.४, अ. ३.१७.६.

इङ्गयन्ति – इधर उधर नहीं होती ।
'गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयति '
ऋ. १.१६४.४५, अ. ९.१०.२७, श.ब्रा. ४.१.३.१७, तै.ब्रा. २.८.८.६, जै.उप.ब्रा. १.७.३, ४०.१, नि. १३.९.
वाणी के चार भेदों में तीन परा, पश्यन्ती और मध्यमा गुहा मे छिपी रहती है । वे इधर उधर नहीं होतीं (नं इंगयन्ति) ।

इच्छक – (१) इच्छा शील, (२) लालची ।
'स इच्छकं सधाघते'
अ. २०.१२९.१२

इच्छमानः – इच्छा, करता हुआ ।
'ऋणावा बिभ्यद् धनमिच्छमानः
अन्येषामस्तमुपनक्तमेति ।'
ऋ. १०.३४.१०
ऋण ग्रस्त जुड़ी (ऋणावा) धन की इच्छा से (धनामिच्छमानः) डरता डरता (बिभव्) दूसरों के घर में (अन्येषां असम्) । रात में (नक्तम्) चोरी करना आता है (उपएति)

इट – (१) घास, (२) इत- गुजरा हुआ, बीता हुआ
'अथो इट इव हायनः'
अ. ६.१४.३
(३) चढ़ाई ।
'इटस्यं ते वि चृतामि'
अ. ९.३.१८, कौ.सू. ६६.२४.

इटत् – चाहना करने वाला ।
'त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः'
ऋ. १०.१७१.१

इड् – (१) भूमि (२) अन्न, (३) वाणी (४) इच्छा, (५) स्तुति ।
'स न ईडानया सह'
ऋ. ८.१०२.२
(५) स्तोतुम अर्हः (स्तुति करने योग्य) । –(दया.)
(७) वेदवाणी, ।
'अदब्धो होता निषदद् इडस्पदे'
ऋ. १.१२८.१
सदा विघ्न पीड़ा आदि से रहित होकर (अदब्धः) ज्ञान प्रदान या हवन करने में कुशल पुरुष (होता) स्तुति योग्य वेदवाणी के ज्ञान और भूमि प्राप्त कराने के कार्य में प्रमाण योग्य पद पर (इडः पदे) विराजे (निषद्) ।
अथवा, सुरक्षित हो पृथ्वी को प्राप्त करे और राजा के सिंहासन पर विराजे ।

इड – स्त्युत्यर्थक इड् धातु से धत्र् प्रत्यय कर इड बना है । ईड, इड, इन्धडड । अर्थ-अन्न । (अन्नमेव तत प्रीणाति) । अर्थात् अन्न की इड है । अन्न ही उसे प्रसन्न करता है ।

इडयत – विचरो ।

इडः ऊर्मिः – (१) अन्न या भूमि का ऊपर उठने वाला जल (२) वाणी की तरंग ।
'इन्द्र पानमूर्मिमकृण्वतेडः'
ऋ. ७.४७.१

इडस्पतिः – भूमि और वाणी की पालना करने वाला बृहस्पति ।
'इडस्पतिं जरितुर्नूनमश्याः'
ऋ. ५.४२.१४

इडस्पद – (१) वाणी का मार्ग ।
'दमे दमूना इषयन्निडस्पदे'
ऋ. १०.९१.१
(२) पृथ्वी, (३) अन्नादि का लाभ, (४) वाणी, वेद या विद्या को प्राप्त कराना ।
'इडस्पदे मनुषा यत्समिद्धः'
ऋ. २.१०.१
(५) वेदवाणी की प्राप्ति, (६) पृथ्वी की प्राप्ति, (७) राजसिंहासन पद की प्राप्ति । (८) अन्न का आश्रय भूत भूतल , (९) श्रद्धा का आश्रय स्थान हृदय, (१०) चेतना एवं मनन शक्ति का आश्रय

आत्मा ।
'श्रद्धेडा'
श.ब्रा. ११.२.७.२०.
'इडा वै मानवी यज्ञानुकाशिनी आसीत्'
तै.ब्रा. १.१.४.४.
'पशवो वा इडा, पांक्ता वै पशवः'
श.ब्रा. १.८.१.१२
अर्थात् इडा का अर्थ श्रद्धा चितिशक्ति जिसके पांच विभाग पांच चैतन्य ज्ञानेन्द्रिय हैं ।
'इडस्पदे समिध्यसे'
ऋ. १०.१९१.१, अ. ६.६३.४, वाज.सं. १५.३०, तै.सं. २.६.११.४, ४.४.४..४ , मै.सं. २.१३.७, १५६.९, का.सं. २.१५.
(११) वाणी का परम प्राप्तव्य पद ओंकार ।

इडा – (१) स्तुति योग्य (२) अन्न के समान चाहने और शक्ति उत्पन्न करने वाला, (३) वाणी के समान सब अर्थों का प्रकाशक , (४) भूमि के समान सर्वाधार परमेश्वर ।
'इडा भगोबृद्दिवोत रोदसी'
ऋ. २.३१.४
(५) ईड् (स्तुत्यर्थक) + घञ् (कर्म अर्थ में) + टाप् =इडा । ईकार का इ और ड का लोप हो जाता है ।
अर्थ –मध्यमा वाक् देवता जिसका स्थान अन्तरिक्ष है इडा कही जाती है । (६) प्रशस्त या चमकने वाला विद्युत्, (७) ईडयते स्तूयते अनेन इति सा वाणी इडा वाणी है क्योंकि इससे स्तुति की जाती है ।
ईड् + अन् + ण्य = इडा । –(दया.) ईड् + टाप् = इडा । ईड् अथवा इन्ध + घञ् = इडा । इण् (गत्यर्थक) + ड = इडा । इर् (प्रेरणार्थक) + अच् + टाप् = इडा ।
'अभिनइडा यूथस्य माता
स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणाना
अभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः'
ऋ. ५.४१.१९, नि. ११.४९.
मेघ समूह की निर्मात्री (यूथस्य माता) रूपवती विद्युत् उर्वशी नाम से प्रसिद्ध माध्यमिकावाक् देवी इडा है (उर्वशी इडा) वह हमें (सानः)जलों से खूब सन्तुष्ट करें (नदीभिः स्मत् अभिगृणातु) । उर्वशी की तरह (उर्वशी इवा) विद्युत् सहित उदकसमूह से शब्द करती हुई (दिवो गृणाना) सब कुछ प्रच्छादित करती (अभ्युर्ण्वाना) हमें इष्ट पदार्थ दे (बृहत् गृणातु) तथा प्रचुर मात्रा में एकात्रित जल से हमारे जलों को पुष्ट करने के लिए दें (प्रभृथस्य आयोः ऊर्ज व्यस्य पुष्टेः नः सिषक्तु) (८) पृथ्वी स्थानीय इडा देवी अग्नि
'इडा मनुष्वदिह चेतयन्ती'
ऋ. १०.११०.८, अ. ५.१२.८, वाज.सं. २९.३३, मै.सं. ४.१३.३, २०२.९ , का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१३.
इस यज्ञ में मनुष्य की तरह चेताने वाली पृथ्वी स्थानीय इडा देवी अर्थात् अग्नि प्राप्त हो ।
(९) स्त्री, (१०) गौ, (११) अन्नवती, (१२) गोमती ।
'इयं पृथिवी वा इडा'
कौ.ब्रा. ९.२
(१३) पशु–
"पशवो वा इडाः'
श.ब्रा. १.८.१.२०
'इडा वै मानवी यज्ञानुकारिणी आसीत्
तै.ब्रा १.१.४.४
'इडा सदस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः
ऋ. १.१३.९ ,१४२.९ ,५.५.८, अ. ५.२७.९, मै.सं. २.१२.६, १५०.१४,
(१४) पूज्य, ईश्वरोपासना योग्य , (१५) सामवेद
अन्य व्युत्पत्ति–इल् (स्वपि और क्षेपण अर्थ में) । सुप्यते अस्यां क्षिप्यते बीजादिकम् इति पृथ्वी ।

इडानामानेता – समस्त प्राणियों का प्रवर्तक ।
'यो रायामानेता यं इडानाम्'
ऋ. ९.१०८.१३, साम. १.५८२, २.४४६.

इडायाःवयुनम् – भूमि रूपी स्त्री का अन्तरंग भाग
'इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट'
ऋ. ३.२९.३, वाज.सं. ३४.१४.

इडावती – उत्तम अन्न सम्पदा से युक्त ।
'इडावतीं शङ्गयीं जीरदानुम्'
ऋ.९ .९७.१७

इडावान् – उत्तम वाणी या भूमि का स्वामी ।
'इडावां एषो असुर प्रजावान्'
ऋ. ४.२.५, तै.सं. १.६.६.४, ३.१.११.१, मै.सं. १.४.३, ५१.३, १.४.८, ५६.९, का.सं. ५.६,३२.६.

इत् – (१) (अ.) एव, ही ।
'जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि'
ऋ. २.१४.१
(वह इसे ही चाहता है)
(२) पादपूरक अनर्थक , ।
(३) अवधारण अर्थ में ।
(४) 'च' के अर्थ में ।
(५) तमस् प्रत्यय के समान ।
'य ईं चकार न सो अस्य वेद
य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर
बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश'
ऋ. १.१६४.३२, अ.९ .१०.१०, नि. २.८.
जो यह गर्भ करता है वह इसका तत्व नहीं जानता, जो इस जठर में अन्तर्हित गर्भ का तत्व समझता है (य ईं हिरुक् ददर्श) उसी का यह निश्चित गर्भ है (तस्मात् नु इत) । वह आत्मा गर्भ में आ उदर में उल्व और जरायु से परिवेष्टित हो यथा समय उत्पन्न हो अनेकों जन्म प्राप्त करने वाला प्रकृष्ट दुःख प्राप्त करता है (स मातुः योना अन्तर् परिवीतः बहुप्रजाः निर्ऋतिम् आविवेश) ।
गर्भ-तत्त्व समझे बिना गर्भकर्त्ता दुःखभागी होता है । तत्वज्ञ पुनः पुनः जन्म ग्रहण करने से निवृत्त हो जाता है ।
अपि के अर्थ में इत् का प्रयोग
'युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं
कृते योनौ वपते ह बीजम्
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो
नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्'
ऋ. १०.१०१.३, अ. ३.१७.२, वाज.सं. १२.६८, तै.सं. ४.२.५.५, मै.सं. २.७ .१२, ९१.१५, का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.५.
हे देवो ! हलों को जोतो (सीरा युनक्त), युगों को विस्मृत करो (युगाच वितनुध्वम्), जोतने के बाद खेत में बीज डालो (कृते इह योनौ बीजं वपत) जिससे स्तुति द्वारा जिसकी हम याचना करते है वह शीघ्र ही हो (श्रुष्टिःअसत्) अर्थात् ये औषधियाँ फल के भार से अवनत हो जांय (सभरा नः) तथा पका हुआ अन्न हंसुआ या अंकुश से भी निकटतम आ जाय (सृण्यः इत् नेदीय पक्वम् एयात्) ।

इतऊती – इस लोक से ही रक्षा प्राप्त करने वाली । द्यावा पृथिवी ।
'संत स्थाने अजरे इत ऊती'
ऋ. १०.३१.७

इतरजान – आर्यजनों से इतर अनार्य जो चोरी डकैती आदि का जीवन बिताते हैं ।
'तां तिरोधामितरजना उपजीवन्ति ।'
अ. ८.१० (५) १२

इतः – इस भूलोक से । यहां से ।
'हविर्भिरिके स्वरितः सचन्ते'
ऋ. खि. १०.१०६.१, नि. १.११.
कुछ (एके) इस भूलोक से (इतः =) हवि आदि द्वारा प्राप्त करते हैं । (सचन्ते) ।

इत्वर – (१) सरीसृप आदि जीव । इ (गमन्नर्थक) + त्वर = इत्वर
(२) चलने वाला ।
'स पतत्रीत्वरं स्था जगत्
यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः'
ऋ. १०.८८.४, नि. ५.३

इत्था – (१) इत्थम्, अनेन प्रकारेण (इस प्रकार से) (२) अमुत्र अत्र (यहां) (३) अमुस्मिन् (इसमें) –दुर्ग ।
व्युत्पत्ति –इदम् + थाल् (हेतु अर्थ मे) = इत्था (इदम् का इत् आदेश) (४) स्वामी दयानन्द ने इत्था का अर्थ सत्यवक्ता किया है, (४) अदस् + थाल् = इत्था (अदस् के सप्तमी अर्थ में थाल प्रत्यय किया गया है । (६) इस तरह (७) उस तरह, (८) इस हेतु से (९) इस प्रकार, (१०) वहां संस्कृत साहित्य में 'इस प्रकार' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है । निघण्टु में यह शब्द सत्यवाची है । 'अपीच्य' इस प्रकार से या 'इसमें' के अर्थ में प्रयोग –
'त्यं चिदित्था कत्पयं शयानम्
असूर्ये तमसि वावृधानम्
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्य
उच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जधान'
ऋ. ५.३२.६,
अभिसुत सोम से प्रसन्न (सुतस्य मन्दानः) मनोरथों को बरसाने वाला (वृषभः) इन्द्र इस प्रकार से या इस अन्तरिक्ष लोक में (इत्था)

सुखकर जलवाले (कत्पयम्) जलों में सोने वाले (शयानम्) सूर्यरहित अन्धकार में (असूर्येतमसि) बढ़ने वाले (वावृधानम्) उसी वृत्र असर या मेघ को (तं चित्) वज्र ऊंचा उठाकर (उच्चैः अपगूर्य) मारा (आजघान) ।

अन्य अर्थ – जैसे उस सुखकारी जल देने वाले मेघ को (त्यम् चित् कत्पयम्) जो अन्तरिक्ष में पड़ा हुआ है (इत्था शंयानम्) और रात के समय बहुत वृद्धि करता है (असूर्ये तमसि वावृधानम्) सूर्य छिन्न भिन्न कर देता है, उसी प्रकार रात्रि काल में वृद्धि करने वाले उन चोर व्यभिचारी आदिकों को (तंचित्) पुत्र तुल्य प्रजा को आनन्द देने वाला (सुतस्य मन्दानः) श्रेष्ठ राजा (वृषभःइन्द्रः) धमका कर दण्डित करे (उच्चै अपगूर्य) ।

अमुत्र (यहां) अर्थ में प्रयुक्त

'बडित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति महना जिनोषि महिनि ।'

ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.२, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९, नि. ११.३७.

पृथिवी माध्यमिका देवता अर्थात् विद्युत् भी मानी गई है । माध्यमिका देवता भी पृथिवी है । हे पृथिवी, अर्थात् विद्युत् , इस भूमि या अन्तरिक्ष में स्थित तू (इत्था) बल रखती है जिससे मेघ छेदे जा सकते हैं (पर्वतानां खिद्रं विभर्षि) । हे महिनि या जलवाली, हे चलने वाली जो तू (या) इस प्रत्यक्ष भूमि को (भूमिम्) महत्व से या जल से (महना) वर्षा देकर प्रसन्न करती है (प्र जिनोषि) वह तू मेघों को छेदने वाला बल क्यो न धारण करेगी, अर्थात् अवश्य करतो है ।

अन्य अर्थ-नीचे पृथ्वी की ओर आने वाली (प्रवत्वति) महान् गुणों वाली या मेघ जल वाली (महिनि) जो तू वृष्टि कर्म के महत्व से (या मह्ना) भूमि को तृप्त करती है (भूमि प्रजिनोषि) सो तू सचमुच (वट्) उस अन्तरिक्ष में (इत्था) मेघों के छेदन बल को धारण करती है (पर्वतानां खिद्रंभर्षि) ।

'त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः'

ऋ. १.१५५.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.७.९, नि. ११.८.

इष्ट प्रदान कर्म वाले या प्रहरणादि कर्म वाले इन्द्र और विष्णु का (शिमीवतोः) इस प्रकार (इत्था) प्रदीप्त समागम को (त्वेषं समरणम्) ...

सत्यवक्ता के अर्थ में –

'इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम्'

ऋ. ८.२.४०.

हे वज्री राजन् ! सत्यवक्ता (इत्था), कर्मशील (धीवन्तम्), मेधावी (काण्वम्) तथा संगति योग्य अतिथि को (मेधातिथिम्) । सायण ने इसका अर्थ 'इस प्रकार' ही किया है ।

पुनः इस प्रकार के अर्थ में प्रयोग –

'अत्राह गोरमन्वत
नाम त्वष्टुरपीच्यम्
इत्था चन्द्रमसो गृहे ।'

ऋ. १.८४.१५, अ. २०.४१.३, साम. १.१४७, २.२६५, मै.सं.२. १३.६, १५४.११, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.१, आश्व.श्रौ.सू. ९.८.३, बौ.ध.शा. ३.८.८, नि. २.६,४.२५.

यहीं पर चलने वाले चन्द्रमा के मण्डल में दीप्त आदित्य के अन्तर्हित तेज का अवस्थान इस प्रकार हुआ है ।

इत्थाधीः – (१) सत्य बुद्धि और सत्य क़र्म वाला, (२) न्यायशील ।

'त्वमिनो दाशुषो वरुतेत्थाधीः'

ऋ. २.२०.२.

(३) इस प्रकार की सत्य निश्चित बुद्धि वाला ।

'पुरः सद्य इत्थाधिये'

ऋ. ९.६१.२, साम. २.५६१.

इत्या – (१) धारा, (२) प्राप्त करने योग्य । –(दया.)

'त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या'

ऋ. १.१६७.५.

(३) इष्ट पदार्थ प्राप्त करने का साधन या ज्ञान ।

'इत्याच मे गतिश्च मे'

वाज.सं. १८.१५, मै.सं. २.११.५, १४२.१०, का.सं. १८.१०.

इति – इ + क्तिन् = इति (१) आगमन ।

'आते चिकित्र उषसा मिवेतयः'

ऋ. १०.९१.४

(२) इष्ट प्राप्ति, (३)जाना आना ।

'प्रासावीत् द्विपत् प्र चतुष्पदित्यै'

ऋ. १.१२४.१

सर्व प्रेरक परमेश्वर इष्टप्राप्ति या आने जाने के लिए दो पाए चौपाए भृत्यादि और पशुधन भी दें ।

इदद्वसु – परम ऐश्वर्यवान् सूर्यादि पदार्थों में भी बसने वाला परमेश्वर ।
'भवद्वसुरिदद्वसुः'
अ. १३.४.५४.

इदंयु – इदं कामयमानः (इसकी कामना करने वाला)। मतुप् प्रत्यय के अर्थ में 'यु' का प्रयोग हुआ है ।

इद्ध – (१) प्रदीप्त, (२) समिद्ध, (३) सर्वभोगानाम् ईश्वरः वा प्रदाता (सभी भोग्य वस्तुओं का दाता) ।

इध्म – (१) जातवेदाः अग्निः (आग), (२) इध्मः समिन्धनात् , इध्मते अनेन अग्निः इति इध्मः (इस से अग्नि जलाया जाता है , अर्थात् जलावन, इन्धन) (३) ज्वलन नाम का इध्मः (जलता हुआ भी इध्म है) । अतः रूढि अर्थ अग्नि हुआ, (४) आचार्य काथक्य (कत्थकस्य पुत्रः) इध्म को यज्ञ का इन्धन भी समझते हैं (यज्ञेध्म इति कात्थक्यः) (५) शाकपूणि और यास्क इध्म का अर्थ अग्नि मानते हैं । दुर्ग ने इस शब्द को इन्धन के ही अर्थ में लिया है । आधुनिक अर्थ – इन्धन, सूर्य का प्रकाश, गर्मी, सौन्दर्य, आश्चर्य ।
'समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे
देवो देवान् यजसि जातवेदः ।
आच च वह मित्र महश्चिकित्वान्
त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ।'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०१.८, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.
हे अग्ने ! जो तू संदीप्त होकर आज मनुष्य के घर में (जातवेदः समिद्धः अद्य मनुषः दुरोणे) दीप्य मान हवि देवताओं को पूजता है – (देवः यजसि) । इस लिए हे मित्रों के स्तुत्य (मित्रमहः) तथा चेतनवान् अर्थात् यजमानों की स्तुतियों को समझने वाला (चिकित्वान्) देवताओं को बुलाकर या उन्हें हवि पहुंचाकर उनकी पूजा कर (आवह च) क्योंकि तू ही देवताओं का दूत है, (दूतः) । कान्तप्रज्ञ या कान्त प्रकाश है (कविः) तथा प्रकृष्ट ज्ञान वाला है (प्रचेताः असि) ।

इध्मभृति – (१) लकड़ी से अपना भरण पोषण करने वाला, (२) अग्नि के समान तेज पात्र धारण करने वाला ।
'दभीतिरिध्मभृतिः प्रक्थ्यकैः'
ऋ. ६.२०.१३

इद्वत्सर – (१) इस लोक को बरसाने वाला–अग्नि, परमेश्वर ।
'इद्वत्सरोऽसि'
वाज.सं. २७.४५, श.ब्रा. ८.१.४.८, तै.ब्रा. ३.१०.४.१, तै.आ. ४.१९.१.
(२) पांचवा वर्ष ।
'इद्वत्सरायातिष्कद्वरीम्'
वाज.सं. ३०.१५

इदा – इसी अवसर पर ।
'इदा हिवो विधते रत्नमस्ति'
ऋ. ६.६५.४

इदावत्सर – (१) अन्न के द्वारा सब के बसाने वाला अग्नि परमेश्वर ।
'इदावत्सरोऽसि
वाज.सं. २७.४५, मै.सं. ४.९.१८, १३५.७, श.ब्रा. ८.१.४.८, तै.ब्रा. ३.१०.४.१, तै.आ. ४.१९.१.
(३) तीसरा वर्ष ।
'इदावत्सरायातीत्वरीम्'
वाज.सं. ३०.१५
(४) प्रभव आदि से लेकर प्रत्येक पंचयुगी के वर्षों क्रमश पांच वर्ष होते हैं –संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और उदावत्सर
(५) चन्द्रमा ।
'चन्द्रमा इदावत्सरः'
तै.ब्रा. १.४.१०.१
'इदावत्सराय परिवत्सराय
संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः'
अ. ६.५५.३

इदाहि – इस समय भी ।
'इदहिते वेविषतः पुराजाः'
ऋ. ६.२१.५

इद्धाग्नि – (१) अग्निहोत्रादिक्रिया करने वाला ।
'इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया'
ऋ. १.८३.४, अ. २०.२५.४.

(२) बाहर का यज्ञाग्नि और भीतर का प्राणाग्नि प्रज्वलित करने वाला अंगिरा (३) ब्रह्म चारी ।
'आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वयः
इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया'
ऋ. १.८३.४, अ. २०.२५.४
जो जले अंगारो के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष बाहर के यज्ञाग्नियों और भीतर के प्राणाग्नियों को प्रज्वलित कर उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त (सुकृत्यया) शान्तियुक्त साधनों से (शम्या) प्रथम अवस्था को ब्रह्मचर्य पूर्वक धारण करते हैं (प्रथमं वय दधिरे) ।

इदु – इत् + उ । अर्थ है –शीघ्र ही ।
'अस्मा इदु प्रभरा तू तुजानो
वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः'
ऋ. १.१६.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१०, का.सं. ८.१६, नि. ६ .२०.
हे इन्द्र या राजन् ! तू आशुकारी (तूतुजान) हम लोगों का स्वामी या भूमि पति (ईशानः) अनेक गुणों का धारण करने वाला (कियेधाः) है । तू इस वृत्र या दुष्ट के प्रति (अस्मै वृत्राय) वज्र या खड्ग शीघ्र चला (इदु प्रभरा) ।

इध् – प्रदीप्त करना ।

इधानः – प्रकाशित होता हुआ, उदय लेता हुआ (२) तेजस्वी
'स इधान उषसोराम्या अनु'
ऋ. २.२.८

इन – (१) वध, हिंसाआदि करना ।
'नकिर्देवा मिनीमसी'
ऋ. १०.१३४.७
'न कि देवा इनीमसी'
साम. १.१७६, साम.वि.ब्रा. १.८.१०.
(सं.) (२) ऐश्वर्य अर्थ वाले चार धातु हैं –इर, पत, क्षि और रज । ऐश्वर्यवाची शब्द भी चार हैं –राष्ट्री, अर्यः, नियुत्वान् और इन ।
सनितः ऐश्वर्येण (जो ऐश्वर्य से संभक्त हो) अथवा –सनितम् अनेन ऐश्वर्यम् (इससे ऐश्वर्य संभक्त है) ।
इण् + नक् = इन, अथवा षण् + नक् = इन । (इणसिन् जिदीङुण्पविभ्योनक्)
अर्थ –ईश्वर,(३) आत्मा, (४) स्वामी ।
'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः'
ऋ. १.१६४.१२१, नि. ३.१२.
वह सकल भुवन का रक्षक धीर या पाक ईश्वर या सकल इन्द्रियों का रक्षक आत्मा ।
आधुनिक अर्थ – पराक्रमी, साहसी, सूर्य, स्वामी, राजा ।

इनक्षत् – इ + नक्ष + शतृ = इनक्षत् । अर्थ–व्याप्त होता हुआ, फैलता हुआ ।
'वृद्धस्यचित् वर्धतो द्यामिनक्षतः'
ऋ. १.५१.९
आकाश में फैलते हुए मेघ के समान तेजस्विता में बढ़ने वाले शत्रु बल को भी विविध उपायों से नाश करें ।

इनतमः – इन + तमप् = इनतम । अर्थ –ईश्वरतम, ऐश्वर्यवानों में श्रेष्ठ (२) अत्यन्त समर्थ ।
'इनतमः सत्वभिर्योहशूषैः'
ऋ. ३.४९.२.
(३) सर्वशक्तिमान–(४) राजाओं का राजा परमेश्वर ।
'इनतममाप्त्यमाप्त्यानाम्'
ऋ. १०.१२०.६, अ. ५.२.७, २०.१०७.९, नि. १.२१.
सर्वशक्तिमान् या राजाओं के राजा महान् स्तोतव्यो में स्तोत या आप्त पुरुषों में आप्त महात्मा को ।

इनधत – स्वामिवत् धारण करने वाली

इनधते – (१) इन्धते (प्रकाशित करना है (२) स्वामी जानकर सेवा करता है ।
'यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्'
ऋ. ४.१२.१.

इनस्यइनः – (१) स्वामी कम स्वामी, (२) सूर्य, (३) परमेश्वर ।
'इन इनस्य वसुनः पद आ'
ऋ. १.१४९.१

इनस्पति – समान ऐश्वर्यों का स्वामी ।
'दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः'
ऋ. १.५३.२, अ. २०.२१.२.
तू यवादि अन्नों का देने वाला और समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी है ।

इन्दवः – (१) ऐश्वर्यवान् पुरुष ।
'अस्माकमिन्द्रमिन्दवः'
ऋ. ८.१.१५
(२) सोमरस ।

'आत्वा विशन्तु इन्दवः'
ऋ. १.१५.१, ८.९२.२२, साम. १.१९७, २.१०१०, वाज.सं. ८.४२, तै.सं. ७.१.६.६, श.ब्रा. ४.५.८.६, शां.श्रौ.सू. ९.१९.३, १८७.१२.

इन्द्र – (१) इरां दृणाति (अन्न को पानी वरण कर अंकुरित करता है, (२) इरां ददाति (अन्न देता है), (३) इरां दधाति (अन्न धारण करता है, (४) इरां दास्यति (अन्न दरवाता है) (५) इरां धारयते (अन्न धारण करवाता है) (६) इरादः (इरा अर्थात् अन्न देने वाला) (७) इराधः (इरा धारण करने वाला) (८) इरा अर्थात् मेघ का विदारण करने वाला। इरा + 'दृ,' या 'दा' या 'धा' + रक् = इन्द्र। निपातन से सिद्ध।
(९) इन्दवे द्रवति (सोम पीने के लिए आता है) = इन्द्रः। अमृतेन सर्वस्य क्लेदयित–अमृत से सभी को तृप्त करने वाला चन्द्रमा
(१०) इन्द्रौ रमते (सोम में रमता है) = इन्द्ररमः = इन्द्रः।
(११) इन्ध् (दीप्ति अर्थ में) + रक् = इन्ध्र = इन्द्र। भूतानि इन्धे (जीवों को अन्नोत्पत्ति द्वारा दीप्त करता है)।
(१२) तत् यत् एनं प्राणैः समैन्धन् तत् इन्द्रस्य इन्द्रत्वम् (जो प्राणों से दीप्त किया वह इन्द्र का इन्द्रत्व है)। इन्ध् + रक् = इन्ध्र = इन्द्रः–जीवात्मा
(१३) आग्रायण के मत से – 'इदं करणात्'। अर्थात् 'इदं सर्वम् असौअकरोत्' यह सब इसने किया। इदंकरः इन्द्रः परमात्मा।
(१४) औपमन्युओं के मत से –इदं दर्शनात् –इदं सर्वम् असौअद्राक्षीत् (वह सब इसने देखा)। इदंदर्शी = इन्द्र–ईश्वर
(१५) इद् + शतृ = इन्दन् = ईश्वरः इदि ऐश्वर्य अर्थवाला है।
(१६) इन्दवः –शत्रूणां दारयिता (ऐश्वर्यवान् हो शत्रुओं का दारण करने वाला,) अथवा द्रावयिता–द्रावित करने वाला।
अथवा यज्वनाम् आदरयिता (यजमानों का आदर करने वाला)
(१७) स्वामी दयानन्द ने इन्द्र के कई अर्थ दिए हैं, जैसे– ईश्वर, जीवात्मा, राजा, विद्वान् आचार्य आदि।
वेदों में सर्व शक्तिमान् के रूप में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है। जो कुछ शक्तिशाली या ऐश्वर्यवान् है, इन्द्र ही है।
(१८) इन्द्र का अर्थ ऐश्वर्य भी किया गया है।
(१९) सेनापति।
(२०) राष्ट्र।
'इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः'
ऋ. १.३०.१३, अ. २०.१२२.१, साम. १.१५३, २.४३४, तै.सं. १.७.१३.५, २.२.१२.८, मै.सं. ४.१२.४,१८९.५, का.सं. ८.१७.
राष्ट्र में अन्न विद्या आदि से युक्त (तुविवाजाः) स्त्रियाँ एवं प्रजाएं हो। पुनः, इन्द्र के अर्थ में प्रयोग–
'तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथा
इन्द्र उक्था समग्मत
अर्चन्ननु स्वराज्यम्'
ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४
वे अन्न और मन्त्र इनके पास पूर्व की भांति आवे क्योकि इन्द्र ने वृत्रादि असुरों को मार कर अपना आधिपत्य प्रकटित किया और अपना राज्य शास्त्रीय रीति से चलाते हैं।
(२)सूर्य के अर्थ में –
'महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा
उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, मै.सं. १.३.२५, ३८.१२, का.सं. ४.८, ऐ.ब्रा. ५.१८.१४, कौ.ब्रा. २१.४, २६.१२, श.ब्रा. ४.३, ३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.४.
बड़ा नायक राजा की तरह सर्वत्र मनुष्यों का पालन करने वाला और द्युलोक तथा अन्तरिक्ष दोनों स्थानों में अपनी रश्मियों के द्वारा फैला हुआ (द्विबर्हाः) स्वकीय तेज के कारण दुराधर्ष (सहोभिः अमिनः) और हमें प्राप्त होने वाला सूर्य पुनः–
'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, का.सं.९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ. १०.७३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३ (आंध्र)
(३) विद्वान् –(दया.)।
'अभ्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे'

ऋ. १.१६९.३.
हे विद्वन्! वह तेरी आत्म ज्ञान देने वाली विद्या हमें प्राप्त हो-(दया.)! हे इन्द्र! वह प्रसिद्ध वज्र नाम की शक्ति जब मेघ की ओर जाती हो ... -यास्क
(४) पुत्र के अर्थ में।
'तमीमह इन्द्रमस्य रायः'
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३.
इस धन के रक्षक उस पुत्र की हम कामना करते हैं। इस परमात्मा रूपी धन के अधिपति परमेश्वर की कामना करते हैं। (५) पुनः = ब्राह्मण के अर्थ में।
'येषामिन्द्रो युवा सखा'
ऋ. ८.४५.१-३,
जिनका मित्र पुरुषार्थी ब्राह्मण है या इन्द्र है।
(६) चन्द्रमा (७) जल से आर्द्र मेघ (८) जीव (९) ओषधिगण।
'सैनं सश्चत्
देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः'
ऋ. २.२२.१-३, अ. २०.९५.१, साम. १.४५७, २.८३६-८३८, तै.ब्रा. २.५.८.१०.
वह जलप्रद बलशाली जल से आर्द्र मेघ (सत्य इन्दुः) बलवान् नित्य विद्युत् को प्राप्त होता है।
(१०) जीवात्मा, (११) परमात्मा, आत्मा के ज्ञापक लिंग का नाम इसीसे इन्द्रिय पड़ा। उसका देखा, उस से उत्पन्न, उससे सेवित और उसकी शक्ति से युक्त होने के कारण इन्द्रिय कहलाया है।
'इन्द्रियम् इन्द्रलिंगम् इन्द्र दृष्टम् इन्द्र सृष्टम्? इन्द्रजुष्टम् इन्द्रदत्तमितिवा।'
पा. ५.२.९३
स एतमेव पुरुषं ब्रह्म तमपश्यत् इदम दर्श मिति तस्मा दिन्द्रो नाम इन्द्रो ह वै नाम तम् इदन्द्रं सन्त मिन्द्र इत्या चक्षते परोक्षेण, परोक्ष प्रिया हि देवाः।
मुमुक्षु कहता है 'इदमदर्शम्' इसी से ब्रह्म इदन्द्र हो गया। इसी का परोक्ष रूप इन्द्र है।
(१२) अध्यात्म या प्रत्यक्ष तत्व को देखने वाला आचार्य।
'सत्यं तदिन्द्रो दशभिः दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम्।'
ऋ. ३.३९.५
(१३) भूमि में जल देने वाला, भूमि को हल से विदारण करने वाला कृषक।
'इन्द्रः सीतां निगृह्णातु'
ऋ. ४.५७.७, अ. ३.१७.४, कौ.सू. १३७.१९.
कृषक हल की फाल खूब दबाकर पकड़े, बलवान् पुरुष स्त्री का पाणिग्रहण कर।
(१४) इन्द्र नामक सर्प की औषधि। इसे अश्मन्तक या अश्वान्तक भी कहते हैं। इन्द्रक भी इसे कहते।
'इन्द्रो मेऽहिमघायन्तम्'
अ. १०.४.१०
(१५) अन्नों को देने वाला, अन्नों को काटने वाला, अन्नों को धारण करने वाला।
'तवेदिन्द्राहमाशसा'
ऋ. ८.७८.१०, शां.श्रौ.सू. १८.११.२.
(१६) ऐश्वर्यवान् प्रभु।
'इन्दुं सहस्रचक्षसम्
ऋ. ९.६०.१

इन्द्रगोपाः - इन्द्र या ऐश्वर्यवान् शत्रु हन्ता राजा की रक्षा में रहने वाला।
'मदन्तीन्द्रगोपा
'मदन्ति देवगोपाः
ऋ. ८.४६.३२

इन्द्रजा - इन्द्र से उत्पन्न अर्थात् शक्ति पूर्वक किसी को वश में करने की क्रिया।
'इन्द्रजाः सोमाजा आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्'
अ. ४.३.७

इन्द्रजाल - इन्द्र का आवरण कारी जाल रूप यह लोक।
'अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान्
तेनाहमिन्द्रजालेनामूंस्वमसाभि दधामि सर्वान्'
अ. ८.८.८

इन्द्रजूत - (१) इन्द्र द्वारा प्रेरित, (२) सभाध्यक्ष, प्रेरित -(दया.)।

इन्द्रजूतः ग्रामः - विद्वान पुरुषों से प्रेरित विद्वज्जनों का संघ, ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक द्वारा प्रेरित इच्छावान् सैन्य समूह, (३) आत्मा द्वारा प्रेरित प्राणगण।
'गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः'

ऋ. ३.३३.११

इन्द्रज्येष्ठः – (१) इन्द्र या राजा को ज्येष्ठ मानने वाला प्रजा गण ।
'इन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम्'
ऋ. ७.११.५

इन्द्रज्येष्ठाः – (१) मरुद्गण जिनमें इन्द्र अर्थात् सूर्य बड़ा प्रशंसनीय है, (२) जिनमें राजा और सेनापति सबसे श्रेष्ठ और श्रेष्ठ पद पर विराजते हैं वे वीर पुरुष (मरुद्गण) (३) सूर्य को प्रबल रूप से धारण करने वाले-सूर्य की शक्ति को प्राप्त करने वाले तेजोगण से युक्त वायुगण, (४) इन्द्र-ईश्वर को ही सर्वश्रेष्ठ मानने वाले (५) मरुद्गण का विशेषण ।
'इन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे'
अ. ७.७९.२
'इन्द्रज्येष्ठामरुद्गणाः'
ऋ. १.२३.८, २.४१.१५.
(६) विद्युत् वायु आदि बड़े बड़े शक्तिमान् तत्वो वाले अन्तरिक्ष आदि प्रदेश । (८)राजा या सेनापति सर्वश्रेष्ठ पदों से युक्त ।
'इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः'
ऋ. ४.५४.५.

इन्द्रज्येष्ठाः देवाः – (१) इन्द्र या राजा को सबसे मुख्य मानने वाले राष्ट्र के अधिकारी (२) इन्द्र को मुख्य राष्ट्र के मानने वाले देवगण या मरुद्गण ।
'देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया'
अ. ३.१९.६.

इन्द्रतमा – (१) अत्यधिक ऐश्वर्य वाली उषा ।
'अभूदुषा इन्द्रतमा मघोनी'
ऋ. ७.७९.३
(२) सब से अधिक ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक, (३) आत्मा के प्रमुख बल प्राण और अपान
'इन्द्रतमा हिधिष्ण्या मरुत्तमा'
ऋ. १.१८२.२.

इन्द्रद्विष्टा – सूर्य की विरोधिनी काली रात्रि ।
'इन्द्रद्विष्टामपधमन्ति मायया'
ऋ. ९.७३.५.

इन्द्रधनुः – ईश्वर का सत्त्व रजस्तमोमय त्रिगुणात्मक प्रकृति रुपी धनुष ।
'स धनुरादतंत तदेवेद्रधनुः'
अ. १४.१.६

इन्द्रः नासत्या – (१) इन्द्र और नासत्य और (अश्विद्वय), (२) ऐश्वर्यवान् और कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुष ।
'आ ने अस्य प्रतीव्यम्
इन्द्र नासत्यागतम्'
ऋ. ८.२६.८

इन्द्र पत्नी – (१) महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु को पतिरूप में धारण करने वाली प्रकृति ।
'इन्द्रपत्नी मरुत्सखा'
ऋ. १०.८६.९, अ. २०.१२६.१०
(२) इन्द्र की स्त्री – (३) आत्मा की रक्षा करने वाली ।
'इन्द्र पत्नी मरुत्सखा
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः'
मैं इन्द्रपत्नी हूँ और इन्द्र मरुतों के सखा एवं सब से बढ़कर है । मैं अपनी आत्मा की रक्षा करने वाली हूँ तथा प्राण, अपान आदि वायु मेरे मित्र हैं । मेरी आत्मा सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत् से ऊपर उठी हुई है ।

इन्द्रपानम् – (१) जीवों के पीने योग्य –(दया.) (२) सूर्य द्वारा पान करने योग्य (३) इन्द्र के पान करने योग्य (४) राजा के समान पालक
'इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेडः'
ऋ. ७.४७.१

इन्द्रपुत्रा – ऐश्वर्यवान् पुत्र वाली स्त्री
'इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे'
अ. ३.१०.१३.

इन्द्रमेदी – इन्द्र या राजा का स्नेही ।
'ताभ्याम् इन्द्रमेदिभ्याम्'
अ. ११.९.४.
पुनः –
'इन्द्रमेदी सत्वनो नि ह्वयस्व'
अ. ५.२०.८.

इन्द्रमादनासः – इन्द्र आत्मा या प्राणों को प्रसन्न करने वाले वायु या प्रजा ।
'ये वायव इन्द्र मादनासः'
ऋ. ७.९२.४, ऐ.ब्रा. ५.१६.११, आश्व.श्रौ.सू. ८.९.२.

इन्द्रमोदिनौ – इन्द्र या राजा के अर्बुदि और न्यर्बुदि नामक सेनापति । लक्षसेनाओं का अधिपति

अर्वुदि और दस लक्ष सैनिकों का अधिपति न्यर्वुदि है ।
'अमित्रां जयतामिन्द्र मोदिनौ'
अ. ११.९.१८

इन्द्रयुः – ऐश्वर्य पाने की आकांक्षा करता हुआ ।
'पुनान इन्दविन्द्रयुः'
ऋ. ९.५४.४

इन्द्रयोग – ऐश्वर्यवान् पुरुषों का साधन
'जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि'
अ. १०.५.३

इन्द्रवन्ता – बहुत ऐश्वर्ययुक्त स्त्री पुरुष (२) अश्विद्वय (३) अति ज्ञान और धन वाले
'निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता
पृथुश्रवसो वृषणा वरातीः'
ऋ. १.११६.२१
ऐश्वर्यवान् राजा के बल से बढ़कर शत्रुओं पर अस्त्रों की वर्षा करते हुए (वृषणा) दुःख दायी, सुख के नाशक, विशाल ऐश्वर्यशाली (पृथुश्रवसः) अदानशील शत्रु सेनाओं को अच्छी प्रकार नाश करो । अथवा, स्त्री पुरुष बलवान् होकर अति ज्ञान और धन वाले (इन्द्र वन्ता) दुष्ट सुखों के नाशक, सुख न देने वाली दुश्चेष्टाओं को (दुच्छुना) दूर मार भगाओ ।

इन्द्रवतन्तः, इन्द्रवत् – (१)इन्द्र से युक्त, (२) श्रेष्ठ आत्मा वाले –(दया.) ।
'एनाङ्कूषेण वयमिन्द्रवन्तः'
ऋ. १.१०५.१९, का.सं. १२.१४, नि. ५.११.
इस स्तुति से अनुग्राहक इन्द्र से युक्त हम सा. । इस वेद के स्वाध्याय से श्रेष्ठ आत्मा वाले हम दया. । (३) रुद्रों का एक विशेषण । इन्द्र के साथ रहने वाले रुद्र ।
'आरुद्रासः इन्द्रवन्तः सजोषसः
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।'
ऋ. ५.५७.१, कौ.ब्रा. २०.४,२३.३, श.ब्रा. १३.५.१.१२, नि. ११.१५.
हे रुद्रो ! आप इन्द्र के साथ (इन्द्रवन्तः), समान प्रेम के साथ (सजोषसः) जल लाते हुए सोने के रथ से (हिरण्य रथाः) यथा शास्त्र किए गए यज्ञ के लिए (सुविताय) आओ (आगन्तन) ।

इन्द्रवाट्, इन्द्रवाह् – (१) ऐश्वर्य और बल को धारण करने वाला ।
'एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुम्'
ऋ. १०.४४.३, अ. २०.९४.३.
(२) इन्द्र या राजा के कार्य को वहन या संचालन करने में समर्थ पुरुष ।

इन्द्रवायू – (१) इन्द्र और वायु, (२) ऐश्वर्यवान् और बलवान् (३) विद्युत् और वायु, (४) तीव्र और बली ।
'इन्द्रवायू सरथं यातम् अर्वाक्'
ऋ. ७.९१.५

इन्द्रवाहा – (१) इन्द्र को वहन करने वाले घोड़े (२) जीवात्मा का निरोधवृत्ति द्वारा वहन करने वाले प्राण और अपान ।
'इन्द्रवाहा वचोयुजा'
ऋ. ८.९८.९, अ. २०.१००.३
(३) विद्युत् संचालित रथ को वेग से दूर ले जाने में समर्थ दो यन्त्र, (४) ऐश्वर्यवान् राजा आदि को वहन करने वाले अश्व ।
'तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू'
ऋ. १.१११.१, ऐ.ब्रा. ४.३२.५, कौ.ब्रा. २०.४, २२.२.

इन्द्र शत्रु – (१) इन्द्र अस्य शमयिता (इन्द्र इसकी हत्या करने वाला है) । अथवा –इन्द्रः शत्रु यस्य (२) इन्द्र जिसका शत्रु है अर्थात् वृत्र । दे. 'अतिष्ठन्ती' (३) मेघ, मेघ का भी इन्द्र शत्रु है ।
'दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः'
ऋ. १.३२.१०, नि. २.१६.
वृत्र मानो महानिद्रा में सो गया । अथवा, मेघ अपने पेट में चलते हुए जलप्रवाहों को रोकने की इच्छा से मानों अपना शरीर बढ़ाकर चारों ओर घोर अन्धकार विस्तारित कर देता है । (४) अथवा, शासयिता (हिंसा करने वाला है) शासयति इति शत्रुः। शात् + क्रुन् = शत्रु (बाहुलक भाव से णि का लोप) ।

इन्द्र सखा – (१) राजा का मित्र – पहरेदार, (२) आत्मा का मित्र प्राण ।
'शुनश्चेन्द्र सखा चरन्'
अ. ४.५.२

इन्द्रस्य अष्ट – परमात्मा के आठ रूप ।
'अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य'
अ. ८.९.२३

इन्द्रस्यकर्त्ता – मेघ के जल को विदारण करने में

समर्थ विद्युत् (इन्द्र) का उत्पादक –सूर्य ।
'इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत्'
ऋ. ४.१७.४.

इनद्रस्य युज्यः सखा –जीव का सर्वत्र साथ देने वाला विष्णु ।
'विष्णोः कर्माणि पश्यत
यतो व्रतानि पस्पशे
इन्द्रस्य युज्यः शखा ।'
ऋ. १.२२.१९, अ. ७.२६.६, साम. २.१०२१, वाज.सं. ६.४, १३.३३, तै.सं. १.३.६ .२, मै.सं. १.२.१४ २३.१८, ३.९.३, ११८.२, का.सं. ३.३, १६.१६, २६.५, श .ब्रा. ३.७.१.१७, ७.५.१.२५, शां.श्रौ.सू. १३.७.६, आप.श्रौ.सू. ७. १०.९ ,११.३,

इन्द्रस्यबाहू – जीव के दो बाहु रूप प्राण और अपान ।
'इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ'
अ. १९.१३.१, साम. २.१२१९, गो.ब्रा. २.१.१८.

इन्द्रहूति – (१) ऐश्वर्य को देने वाली भूमि, (२) ज्ञान–प्रकाश से युक्त विद्वान् द्वारा उपदेश करने योग्य वाणी, (३) इन्द्र की वाणी ।
'महीं भर्वद् द्युमतीमिन्द्रहूतिम्'
ऋ. ६.३८.१.

इन्धते – प्रज्वलित करते हैं । 'ईध्' धातु (प्रज्वलित करना) के लट् प्र.पु.ब.व. का रूप ।
'आ घा ये अग्निमिन्धते'
ऋ. ८.४५.१, साम. १.१३३, २.६८८, वाज.सं. ७.३२, मै.सं. ४.१२.६, १९४.९, का.सं. १३.१५, तै.ब्रा. २.४.५.७, ऐ.आ. ५.२.३.२, आश्व.श्रौ.सू. २.९ .१४, ६.४.१०, ७.८.१, शां.श्रौ.सू. १२.११.२०, १८.७.६, आप.श्रौ.सू. ११.१०.१७, १२.१.२.

इन्धन्वन् – प्रकाश करने वाला ।
'इन्धन्वभिर्धेनुभीरप्शदूधभिः'
ऋ. २.३४.५

इन्व – इवि (प्रणिनार्थक) धातु से सम्पन्नअर्थ प्रसन्न करने वाला ।
'पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिः'
ऋ. ५.६०.८.
पावक वृष्टि आदि के द्वारा जगत् को तृप्त करने वाली आयुष्प्रद ज्वालाओं से ...।

इन्वन् – व्याप्त करता हुआ ।
'इन्वन्तोविश्वं प्रति यन्नृतेन'
ऋ. ३.४.५

इनासः – (१) सूर्य की किरणें, (२) स्वामी गण
'पिन्वन्त्युत्सं यदिनास्तो अस्वरन्'
ऋ. ५.५४.८

इन्द्रा कुत्सा – (१) इन्द्र और कुत्स (२) ऐश्वर्यवान् सेनापति और शत्रुनाशक क्षेत्र बल या वेदों का उपदेष्टा ।
'इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेन'
ऋ. ५.३१.९,

इन्द्राग्न – (१) इन्द्र और अग्नि का पद, (२) एक यज्ञ ।
'इन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे'
वाज.सं. १८.२०, तै.सं. ४.७.७.२, मै.सं. २.११.५, १४३.५, का.सं. १८.११.

इन्द्राग्नी – (१) इन्द्र और अग्नि, (२) इन्द्र, सूर्य, वायु या विद्युत् के समान बलवान् पुरुष और अग्निवत् दीप्ति एवं उत्तेजना उत्पन्न करने वाली स्त्री ।
'इन्द्राग्नी जीवथो युवम्'
ऋ. ६.५९.१
माता या स्त्री की अग्निरूपता छान्दोग्य के पञ्चाग्नि प्रकरण में देखें ।
'मोषा वै अग्निः, तस्यां देवाःवीर्यं जुह्वति ।
सामवेद मंत्र ब्राह्मण में भी–
'अग्निं क्रव्यादम कृण्वन् गुहानाः
स्त्रीणामुपस्थं ऋषयः पुराणाः
तेनाज्यमकृण्वन् त्रैश्रृंगं त्वाष्ट्रं
त्वयि तद् दधातु'
साम. मं.ब्रा. १.१.४.
(३) अध्यापक और उपदेशक ।
'इन्द्राग्नी सोमं जनयामि नव्यम्'
ऋ. १.१०९.२, तै.सं. १७.१४.१, का.सं. ४.१५, नि. ६.९.
हे इन्द्राग्नी या अध्यापक और उपदेशक, मैं तुम्हारे लिए नव्य स्तोत्र या नया नया भेंट उपस्थित करता हूँ ।
(४) ब्राह्मण मन्त्री और राजा –दुर्ग । दुर्ग ने ब्राह्मण के निम्नलिखित आधार पर ऐसा अर्थ किया है और इस अर्थ को आर्य–समाजी विद्वान् भी मानते हैं ।
'यदिन्द्रश्च अग्निश्च भूयिष्ठभागौ देवतानां तस्मात्

ब्राह्मणाश्च राजा च भूयिष्ठ भोजौ मनुष्याणाम् ।'
जैसे देवताओं में इन्द्र और अग्नि भूयिष्ट भाग वाले हैं । उसी से ब्राह्मण और राजा भी मनुष्यो में भूयिष्टभागी हैं । (५) मुख्य प्राण और जाठर अग्नि ।
'उदिन्द्राग्नी स्वस्तये'
अ. ८.१.२, १६.

इन्द्राणी – (१) इन्द्र की स्त्री, – (२) परमेश्वर की स्त्री प्रकृति ।
'इन्द्राणीमासु नारिषु
सुभगामहमश्रवम्'
अ. २०.१२६.११
इन्द्र + आनुक् + ङीष् = इन्द्राणी
(३) आत्मसहचारिणी अर्थात् आत्मा के विरुद्ध कभी कार्य न करने वाली विदुषी । मैंने इन सभी स्त्रियों में इन्द्राणी को ही सब से बढ़कर सुभगा सुना है –सा. ।
मैं इन सभी स्त्रियों में आत्मसहचारिणी अर्थात् आत्मा के विरुद्ध कभी कार्य न करने वाली विदुषी स्त्री को सौभाग्य वाली सुनता हूँ ।

इन्द्रापर्वता – (१) इन्द्र, सूर्य या विद्युत् और पर्वत अर्थात् सर्वपालक मेघ ।
(२) ऐश्वर्यवान् राजा और पर्व पर्व से बना सैन्य वर्ग ।
'इन्द्रापर्वता बृहता रथेन'
ऋ. ३.५३.१, साम. १.३३८, का.सं. २३.११.
(३) इन्द्र और पर्वत, (४) सर्वोपकारक ज्ञान प्रकाश और ऐश्वर्य जल को देने वाले पिता और गुरु ।
'शिशीतमिन्द्रा पर्वता युवं नः'
ऋ. १.१२२.३, तै.सं. २.११.१, का.सं. २३.११.
हे सूर्य, विद्युत् , वायु और पर्वत या मेघ के समान ज्ञान प्रकाश दाता एवं ऐश्वर्य दाता पिता और गुरु आप हम अधीनस्थ ब्रह्मचारियों और सन्तानों को तीक्ष्ण बुद्धि, तपस्या और अभ्यास से शिक्षित करें ।

इन्द्रापूषणा – (१) विद्युत् और वायु, (२) आत्मा और पुष्टि या प्रजानन शक्ति ।
'पातं न इन्द्रापूषणा'
अ. ९.३.१, वै.सू. १६.९.
(३) इन्द्र और पूषणा (४) ऐश्वर्य युक्त और निर्बलों का पोषक, (५) अन्नोत्पादक कृषकजन और भागधुक् पृथिवीपति ।
(६) व्यापारी वर्ग और कृषक वर्ग (७) सूर्य और वायु ।
'इन्द्रा नु पूषणा वयम्'
ऋ. ६.५७.१, साम. १.२०२, मै.सं. ४.१२.६, १९६.३, का.सं. २३.११.
(८) सेनापति और पोषक स्वामी ।
(९) ऐश्वर्यवान् और सर्वपोषक ।
'इन्द्रपूष्णोः प्रियमप्येति पाथः'
ऋ. १.१६२.२, वाज.सं. २५.२५, तै.सं. ४.६.८.१, मै.सं. ३.१६.१, १८१.१०, का.सं.(अश्व) ६.४,शां.श्रौ.सू.१६.३.३.२.

इन्द्रामरुत् – (१) इन्द्र और मरुत् (२) विद्युत् और वायु (३) ऐश्वर्यवान् सेनापति और शत्रुमारक बलवान पुरुष ।
'स्वस्तिमिन्द्रा मरुतो दधात'
ऋ. २.२९.३

इन्द्रावरुणा – (१) इन्द्र और वरुण, (२) कोशवान् और दण्डवान् (३) अर्थपति और बलाध्यक्ष ।
'इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुः'
ऋ. ७.८२.५.
(४) राजा और अज्ञान-नाशक शिक्षाध्यक्ष । –(दया.)
ऋ.७.८२.२ में इन्द्र को सम्राट और वरुण को स्वराट् कहा है तथा ऋ.७.८४.२.में –
'युवो राष्ट्रं बृहत् इन्वति' अर्थात् तुम्हारी अध्यक्षता में राष्ट्र बहुत प्रसन्न रहता है, ऐसा कहा है ।
पुनः ऋ ७.८५.३,में वरुण प्रजा को पवित्र तथा विवेकी और इन्द्र बलवान् शत्रुओं को हनन करता है, ऐसा कहा है ।
'कुष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता
वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति'
ऋ. ७.८५.३

इन्द्राविष्णू – (१) इन्द्र और विष्णु, (२) ऐश्वर्यवान् और सामर्थ्य वाले, (३) आत्मा और मन ।
'इन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत'
ऋ. ४.२.४.

इन्द्राबृहस्पती – इन्द्र और बृहस्पति

इन्द्राब्रह्मणस्पती – (१) इन्द्र और बृहस्पति , (२)

ऐश्वर्यवान् और वेदज्ञान तथा बृहत् राज्य का पालक राजा और सभापति ।
'अच्छेन्द्रा ब्रह्मणस्पती हविर्नो'
ऋ. २.२४.१२

इन्द्रासोमा - (१) सूर्य और चन्द्रमा, (२) ऐश्वर्य और वीर्य से युक्त प्रजाओं के उत्पादक स्त्री पुरुष ।
'इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वम्'
ऋ. ६.७२.१
(३) राजा और राजा के पुत्रवत् प्रजानन-इन्द्रासोमा है, (४) ऐश्वर्य वान् राजा और शासक (५) इन्द्र और सोम -
'इन्द्रा सोमातपतं रक्ष उब्जतम्'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.
(६) राजा और विद्वान् । अथवा,
(७) राजा और न्यायाधीश-(दया.) ।
'इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघम्'
ऋ. ७.१०४.२, अ. ८.४.२, का.सं. २३.११, नि. ६.११.

इन्धान - इध् (जलाना) + शानच् = इन्धान । प्रदीप्त करना जलाता हुआ ।
'इन्धान एनं जरते स्वाधीः
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै.सं. २.७.९ , ८६.६, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २.११.२१, नि. ४.२४.
इस अग्नि को सुप्रज्ञनेता या यजमान (एनंस्वाधीः प्रज्वलित करता हुआ (इन्धावः) स्तुति करता है (जरते) ।

इन्द्रिय - (१) आत्मा सम्बन्धी बल, (२) आत्मा के सहायक इन्द्रियाँ भी इसी से इन्द्रिय हैं ।
'इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तभोजः'
अ. १९.४२.४
(३) इन्द्रा या राजादि से सेवनीय ऐश्वर्य ।
'आतेदधामि इन्द्रियम्'
ऋ. ८.९३.२७
(४) इन्द्र (जीवात्मा सम्बन्धी) शरीर के दस इन्द्रियों के नाम (५) मन के अर्थ में प्रयोगः ।
'यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा'
वाज.सं. ३.४५, २०.१७, तै.सं. १.८.३.१, मै.सं. १.१०.२, १४१.१४, का.सं. ९.४, ३८.५, श.ब्रा. २.५.२.२५, १२.९.२.३, तै.ब्रा. १.६.५.३, २.६ .६.२, जो पाप ग्राम में, अरण्य में, सभा में या मन मे किया है .... (६) ऐश्वर्य ।
'न क्षोणीभ्या परिभ्वेत इन्द्रियम्'
ऋ. २.१६.३
(७) महान् ऐश्वर्यमय स्वरूप ।
'इन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते'
ऋ. ६.२७.३

इन्द्रियरस् - (१) इन्द्र, आत्मा से सेवन करने योग्य ओषधि आदि रस, (२) आत्मिक आनन्द ।
'नः सोम इन्द्रियो रसः'
ऋ. ८.३.२०.

इन्द्रियावत् - शरीर मे बल लाने वाला ।
'तेजः पशूनां हविरिन्द्रियावत्'
वाज.सं. १९.९५, मै.सं. ३.११.९: १५५.३, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.६,

इन्द्रियावान् - समस्त इन्द्रियों से सम्पन्न ।
'देवीरापो अपां नपाद्यो व ऊर्मि
हविष्य इन्द्रियावान् मदिन्तमः'
वाज.सं. ६.२७, तै.सं. १.३.१३.२, का.सं. ३.९, श.ब्रा. ३.९.३.२५.

इन्दु - (१) अमृतेन सर्वस्य क्लेदयित् (अमृत से सभी को तृप्त करता है) (२) चन्द्रमा, (३) सोम ।
'इन्द्रायेन्दो परिस्रव'
ऋ. ८.९१.३, ९.१०६.४, ११२.१-४, ११३.१-११, ११४.१-४, साम.१.५६७, जै.ब्रा. १.२२०, नि. ६.६,९.२.
अंगिरस पुत्र की उक्ति-हे सोम, तू इन्द्र के लिए स्रवण कर (४) इन्द्र ।
'प्र तद् वोचेयं भव्यायेन्दवे'
ऋ. १.१२९.६, नि. १०.४२.
मैं भव्य इन्द्र के उस इष्टतम स्तुति को करता हूँ।

इन्द्रेषिता - (१) इन्द्र , मेघ या विद्युत् द्वारा प्रेरित -गर्जना (२) परमेश्वर या गुरु की प्रेरित वाणी ।
'इन्द्रेषितां धमनि पप्रथनिन्'
ऋ. २.११.८

इन्द्रेषिताः देवाः - इन्द्र अर्थात् परमेश्वर द्वारा प्राकृतिक दैवी उत्पात ।
'इन्द्रेषिता देवा आज्यमस्य मथमन्तु'
अ. ७.७०.२, तै.ब्रा. २.४.२.२.

इन्द्रेषिते – (१) सूर्य या वृष्टि द्वारा अति वेग प्रेरित होकर दो नदियाँ–विपाशा और शुतुद्रि (२) अज्ञान नाशक विद्वान् पुरुष द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित–स्त्री पुरुष ।
'इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे'
ऋ. ३.३३.२

इन्द्रोत – इन्द्र + ऊत । इन्द्र से रक्षित, (२) आत्मा से रक्षित शरीर, (३) इन्द्र से रक्षित राष्ट्र ।
'ऋजाविन्द्रोत आ ददे'
ऋ. ८.६८.१५

इभ – हस्तिबल, हस्ती, (२) निर्भय गण
'याहि राजेव अमवान् इभेन'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १६.१५, नि. ६.१२.

व्युत्पत्ति – (१) इराभृत, अन्नभृत् । इराभृत शब्द ही इभ शब्द में परिवर्तित हुआ है ।
(२) इतमयः इभः –गतभय हाथी –(दया.) ।
(३) भोज्य पदार्थ वाला (रसद) मनुष्य वर्ग जो सेना के साथ साथ जाता है । – (दया.) ।
'याहि राजेवामवां इभेन'
हे सेनापति ! तू अमात्य सहित रोग भूत या राज्य कर्मचारियों से परिवेष्टित राजा की तरह भोज्य पदार्थ वाले मनुष्य वर्गों के साथ या भयरहित हाथी पर सवार हो युद्ध में प्रयाण कर ।
(४) अन्न से पाला पोसा हुआ ।

इभ्यः – (१) हाथी का नियमन करने वाला ।
(२) हाथी पर सवारी करने वाला ।
'इम्यान्न राजा वनानि अत्ति'
ऋ. १.६५.७

इमथा – इम + थाल् (प्रत्नपूर्व विश्वेमात् थाल् छन्दसि) = इमथा । 'इदम्' से 'इम' निपातन् द्वारा सिद्ध है । अर्थ – (१) इन वर्तमान कालीनों के जैसा, (२) इस मन्त्रिमन्डल की तरह ।
'तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा
ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराऽऽशुं
जयन्तमनु मासु वर्धसे ।'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२, तै.सं. १.४.९.१, मै.सं. १.३.११, ३४.४, कौ.ब्रा. २४.९ श.ब्रा. ४.२.१.९, नि. ३.१६.
हे भगवन् सोम ! ज्येष्ठ कुशासन पर बैठने वाले सूर्य के सदृश दीख पड़ने वाले शीघ्र गामी, असुरादिकों को पराजित करने वाले इस इन्द्र को लक्ष्य कर जिन क्रियाओं में तू वृद्धि प्राप्त करता है । इन तमाम कही स्तुतियों से युक्त होकर तू अभिख इन्द्र या वैश्व देव को तृप्त कर पुरातन भृगु आदि ऋषियों की तरह सभी ऋषि पुत्रों तथा ऋषियों के मनोरथों को जैसे पूर्ण किया उस तरह (विश्वथा) तथा वर्तमान कालीन ऋषियों एवं यजमानों की कामनाएं जैसे तूने पूर्ण की उस तरह (इमथा) इस यजमान को धन दे (वृजनं दोहसे) ।
अन्य अर्थ, राजा के योग्य समस्त गुणों से सम्पन्न राजन् ! सनातन धर्म की तरह (प्रत्नथा) प्राचीन राजाओं की तरह (पूर्वथा) सभी प्रजाओं की अनुमति के अनुकूल (विश्वथा) मन्त्रिमण्डल की सम्मति के अनुकूल (इमथा) वर्तमान आप आयु में बढ़ें (ज्येष्ठ तातिम्) । राजसिंहासन पर बैठने वाले (बर्हिषदं), सुख पहुंचाने वाले (स्वर्विदन्), प्रजा के प्रति चलने वाले (प्रतिचीनम्) वृलावान् (वृजनम्) और शत्रुओं को जीतने वाले (आशुम्) अपने आपको जिन प्रजाओं में रहकर बढ़ाते हो (यासु अनुवर्धसे) उस प्रजावर्ग की शिक्षा से पूर्ण करो (तं गिरा दोहसे) (दया.) ।

इमा – इमानि (इदम् का प्रथम पुरुष ब.व. क्लीव लिंग का रूप) छन्द में 'शि' का लोप हो जाया करता है (शेश्छन्दसि बहुलम्) ।

इयक्षन् – (१) आदर करता हुआ, (२) याचना करता हुआ ।
'सुम्न गियक्षनाः त्वावतो नृन्'
ऋ. २.२०.१

इयक्षमाण – (१) अपने साथ संयुक्त पति या सूर्य ।
'एषि देवि देवमियक्षमाणम्'
ऋ. १.१२३.१०.
हे तेजस्विनि ! तू अपने साथ संयुक्त अपने योग्य एवं कामना शील प्रिय पति को प्राप्त होती है । हे उषा, तू तेजस्वी अपने साथ संगत सूर्य को प्राप्त होती है ।

इयत्तक – इतना छोटा, कुत्सित, मैला कुचैला ।
'इयत्तकः कुषुम्भकः
तकं भिनद्मि अश्मना'

ऋ. १.१९१.१५

इयत्तिका – (१) इतनी छोटी सी चिडिया ।
(२) हयति प्रदेशे भवा बाला –(दया.) । इस प्रदेश में हुई बाला ।
'इयत्तिका शकुन्तिका
सका जघास ते विषम्'
ऋ. १.१९१.११.
(३) इतनी बड़ी ।
'इयत्तिका शलाककका'
अ. २०.१३०.२०

इयती – सुख चाहने वाली ।
'स विशे दाति वार्यमियत्यै'
ऋ. ७.४२.४

इयध्यै – गमना गमन के लिए ।
'मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै'
ऋ. ६.२०.८

इयति – गच्छताम् (जायें) ।
'प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषाम्
आ विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामुक्तोरुषशः पूर्वहूतौ
वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ।'
ऋ. ७.३९.३, वाज.सं. ३३.४४, नि. ५.२८.
सुन्दर बैठने या आने लायक (सुप्रयाः) कुशासन (बर्हिः) बिछाया जाता है (प्रवावृजे) और प्रजाओं के पालक (विश्पती) बड़वा को वाहन बनाने वाले (नियुत्वान्) वायु तथा पूषा प्रजाओं के कल्याण के लिए (विशां स्वस्तये) रात के बाद (अक्तोः) उषा के आगमन काल में (उस-सः) पहले ही आह्वान में (पूर्वहूतौ) अन्तरिक्ष में स्थित (बीरिटे) आवे (आ इयाते) । अन्य अर्थ-रात के चले जाने पर तथा उषा के प्रारम्भ होने पर (अक्ताः उससः पूर्वहूतौ) जब सब लोकों को नियम में रखने वाली या उन्हे परस्पर मिलाने वाली गति से युक्त वायु और सूर्य (नियुत्वान् वायु पूषा) कल्याण के लिए अन्तरिक्ष में आते हैं (बीरिटे आ इयाते)तब इन मनुष्यों के लिए शुभागमनयुक्त वृद्धि प्रदान की जाती है (एषां सुप्रयाः बर्हिः प्रवावृजे) ये वायु और आदित्य सर्वजनों के रक्षक और पालक हैं (विश्व ही) ।

इयर्ति – प्रेरयति (प्रेरित करता है)

इयानः – (१) आता हुआ, (२) जाता हुआ ।
'इयानासो अमन्महि'
ऋ. ५.२२.३
'इयानास इषण्यन्तधीभिः'
ऋ. १०.६७.८, अ. २०.९१.८
(३) प्राप्त करता हुआ ।
'स्तोतृभ्योधृष्णवियानः'
ऋ. १.३०.१४, अ. २०.१२२.२, साम. २.४३५.
हे बलवान् वायुओं की पराजय करने वाले परमेश्वर (धृष्णो) स्तुति करने वालों को अभिलाषित फल प्राप्त कराता हुआ ।

इरध – इलान् प्रेरकान् दधति इति इरधः (जो प्रेरकों या शासकों को धारण करता है) । अर्थ शासक का भी रक्षक ।

इरधन् – यः इलान् प्रेरकान् दधति स इरधः । इरध इव आचरन् (इरध के समान आचरण करने वाला) – (दया.) ।
अर्थ – (१) प्रेरकों को धारण करने वाला इरध है । (२) समस्त शासकों का भी शासक
'तमीशानास इरधन्त वाजिनम्
पृक्षमत्यं न वाजिनम्'
ऋ. १.१२९.२.
उस ऐश्वर्यवान् और बलवान् पुरुष को शक्तिशाली अधिकारवान् पुरुष भी (ईशानासः) सत्संग योग्य और सुखों और ऐश्वर्यों से प्रजा और आश्रित जनों को सेचन और सेवर्द्धन करने वाला (पृक्षम्) जानकर अति वेगवान् बलवान् अश्व के समान (अत्यम् वाजिनम् न) समस्त शासकों का भी शासक बना देते हैं (इरधन्त) ।

इरस्या – (१) अन्न की इच्छा, (२) अन्न समृद्धि का लोभ ।
'इरस्या दुग्धो भियसा निगारीत्'
ऋ. ५.४०.७

इर्य – (१) प्रेरक –दया. (२) शत्रुओं को कंपाने और भृत्यों तथा समृद्धों को सन्मार्ग में चलाने वाला (३) गति देने वाला ।
'यूयं राजानम् हर्यं जनाय'
ऋ. ५.५८.४
'पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा'
ऋ. ७.१३.३
(३) आज्ञापक ।

'इर्यो गोपाः पुष्टपतिर्वा आजत्'
अ. ३.८.४
(४) रक्षक, (५) स्वामी ।
'सहि गोपा इवेर्यः'
ऋ. ८.४१.४
(६) सन्मार्ग में ले जाने वाला पूषा
'इर्यम् अनष्ट वेदसम्'
ऋ. ६.५४.८

इर्य – अन्न का स्वामी ।
'इर्य इव गोपा अभिरक्ष पक्वम्'
अ. १२.३.११.

इरा – (१) जल ।
'स्वधामिरां च नो गृहे'
अ. १९.३१.३
(२) अन्न ।
आधुनिक अर्थ –पृथ्वी, वाणी, सरस्वती, जल, भोजन और सुरा ।

इरावत् – (१) अन्न से समृद्ध
'यासिष्टं वर्तिरश्विवना विरावत्
ऋ. ७.४०.५, ६७.१०.
(२)धन धान्यादियुक्त ।
'इरावन्तो हसामुदाः'
अ. ७.६०.६, हि.गृ.सू. १.२९.१.

इरावती – (१) पारुष्णी नदी का नाम पारुष्णी का अर्थ पर्ववती (पर्वों वाली) (२) भारवती, (३) कुटिल गामिनी, टेढ़ी मेढ़ी चालवाली । (४) 'इरा' जल का वाचक है, अतः 'इरावती' नदी का वाचक हुआ ।
(५) अन्नवती विराट् प्रकृति
'सूनृत एहि इरावत्येहीति'
अ. ८.१०.(२).४, मै.सं. ४.२.५, २६.१४, ४.२.६, २७.११, शां.श्रौ.सू. २.१२.३, आप.श्रौ.सू. ४.१०.४.
(६) जलों, अन्नो से युक्त द्यावा पृथिवी
(७) अन्न और जल से पूर्ण ।
'इरावती धेनुमती हि भूतम्'
ऋ. ७.९९.३, वाज.सं. ५.१६, तै.सं. १.२.१३.२, मै.सं. १.२.९,१८.१९, श.ब्रा. ३.५.३.१४, तै.आ. १.८.२, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

ईर्या – (१) इर अर्थात् अन्न देने वाले मेघ और सूर्य, (२) अश्विद्वय (३) स्त्री पुरुष ।
'इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै'
ऋ. १०.१०६.४

इरिण – (१) जलाशय , (२) शुष्क भूमि –
'पातम् गौरा विवेरिणे'
ऋ. ८.८७.१
(३) निर्ऋण, निर्गतर्ण, अपार्ण, ऋण रहित, (४) जहां जल न हो वह स्थान–अपार्ण, अपगतोदक (५) जहां से ओषधियां समाप्त हो गई हों (अपरताः अस्मात् ओषधयः) (६) शून्य, (७) ऊसर भूमि । आज भी कहा जाता है ऋण से उऋण होना चाहिए ।
(८) बिना घास की भूमि
'मण्डूका इरिणानु'
अ. ४.१५.१२
पुनः –
'प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः'
ऋ. १०.३४.१, नि. ९.८.
वर्षाऋतु या सूखे स्थल या शून्य रूप या ऊसर भूमि में बहुत पाए जाने वाले (हर्रे) ।

इरिण्य – ऊसर भूमियों का अधिकारी ।
'नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च
वाज.सं. १६.४३, तै.सं. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८, १२६.८, का.सं. १७. १५.

इरिन् – (१) अन्न युक्त, (२)भय से कांपने वाला शत्रु ।
'विश्वमेरिणं पुषा यन्त सेनाः'
ऋ. १.१८६.९.

इरिवान् – उत्तम विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्यों का स्वामी ।
'अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीः'
ऋ. ४.२२.७

इरी – (१) प्रेरक, संचालक ।
'न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आं'
ऋ. ५.८७.३
(२) जलाशय
'तृष्यन्नेत्य वेरिणम्'
ऋ. ८.४.३, साम. १.२५२, २.१०७१.

इल-इर – चलाना ।
'तौविलिके अवेलय'
अ. ६.१६.३

इला – (१) अन्न, (२) अग्नि, (३) पृथ्वी स्थानीय इला देवी ।

पुनः-
'अग्नी पर्जन्या ववतं धियं मे
अस्मिन् हवे सुहवा सुष्टुतिंनः
इडामन्यो जनयत् गर्भमन्यः
प्रजावतीरिष आधन्तमस्मे'
ऋ. ६.५२.१६.
हे अग्नि तथा पर्जन्य ! आप दोनों मेरे यज्ञरूपी कर्म की रक्षा करें । (मेधियम् अवतम्) । हे सुखपूर्वक आहूत किए जाने वाले (सुहवा) इस यज्ञ में (हवे) हमारी स्तुति आप सुनें । आप में एक पर्जन्य अन्न उत्पन्न करें (इडां जनयत्) और दूसरा अग्नि गर्भ उत्पन्न करे (अन्यः गर्भम्) । आप दोनों प्रजा से युक्त अन्न हमें दें (प्रजावतीः इषः आधत्तम्)।

इलीविश् - इलाविलशय (पृथ्वी के विल में सोने वाला वृत्र) भूमेः विले शयानः वृत्रः । वर्ण-विपर्णय से 'विलेशय' से 'विश' हो गया है । इला का अर्थ पृथिवी है । वृत्र भी मेघ का नाम है । पृथिवी मध्यमस्थानीया अर्थात् अन्तरिक्ष और इस लोक का भी देवता है । मेघ अन्तरिक्ष में ही रहता है । अतः वह 'इलीविश' है । (२) सायण के मत से वृत्र का नाम इलीविश् है । (३)इलार्थं विलेशयः । दुर्ग के मत से भी इसका अर्थ मेघ ही है । (४) इला पृथ्वी या अन्न का वाचक है । इसके हेतु भूत उदक के निकलने के लिए बिलों को रोककर जो सोता है, वह मेघ है ।
'तस्याः हेतोः उदकस्य आत्मीयानि
निर्गमन विलानि संरुध्य शेते ।
तस्मैव विलेषु इलाहेतुः उदकं
शेते इति इलीविशः'
(५) इलाविल शय का इलांविश हुआ । भूमि के बिल में रहने वाला या भूमि के अन्दर कोठरी बनाकर रहने वाला ।
'न्याविध्यदिलीबिशस्य दृढ़ा
वि शृङ्गिणमभिनत् शुष्णमिन्द्रः
यावत्तरो मघवन् यावदोजो
वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्'
ऋ. १.३३.१२, नि. ६.१९.
इन्द्र ने वृत्र या मेघ के दृढ़ उदक रोकने वाले स्थानों को रोक दिया (इन्द्रः इलीविशस्य दृढ़ा न्याविध्यत्) और विशिष्ट शिखायुक्त तथा दीप्तिमान (विश्रृंगिणम्) एवं बलवान् मेघ को छिन्न भिन्न किया (अभिनत्) । हे मघवन्! जहां तक तुम में बल और ओज है उससे संघ की अभिलाषा करने वाले शत्रु को मारो (पृतन्यु शत्रुम् अवधीः)
अन्य अर्थ- राजा भूमि के अन्दर दुर्ग बनाकर रहने वाले शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों को तोड़े और ऊंचा सिर उठाए हुए बलवान् शत्रु को कुचले । हे ऐश्वर्यवान् राजन्! जितना तेरा शारीरिक बल है उतने पराक्रम से (वज्रेण) सेना के साथ आक्रमण करने वाले शत्रु को मार ।

इव - सदृश, समान । उपमा का वाचक ।
आधुनिक अर्थ-सदृश,मानो, कुछ, कदाचित् ।

इष् - (१) गत्यर्थक इष् धातु दिवादि गण से पठित है अर्थ है - प्रयोग करना use का पूर्व रूप 'इष्' है ।
'द्विपाच्चतुष्पाद् इष्णामि'
अ. ८.८.१४
(२) जिसकी इच्छा की जाय अन्न । इष् + क्विप् = इष् ।
'जिगीषमाणमिष आ पदे गोः'
ऋ. १.१६३.७, वाज.सं. २९.१८, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं.(अश्व). ६.३.
देव यजन प्रदेश में दिए जाने वाले अन्नों को जीतने के इच्छुक अश्व को (३) धेनु (४) उदक (सर्वतोमुखंतत् गच्छति जल सर्वतोमुख होकर बहता है) । (५) ज्ञान ।
'धेनुं न इषं पिन्वतमअसक्राम्'
ऋ. ६.६३.८, नि. ६.२९.
हमें धेनु और अन्यत्र न हटने योग्य अन्न दो (असक्राम् इषम्) पुनः जल के अर्थ में ।
'विश्वकर्मा विमना आद्विहाया
धाता विधाता परमोत संदृक्
तेषामिष्टानि समिषामदन्ति
यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः'
ऋ. १०.८२.२, वाज.सं. १७.२६, मै.सं. २.१०.३, १३४.३, का.सं. १८.१, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, नि. १०.२६.
आधिभौतिक अर्थ - प्रकाश वृष्टि आदि का

कर्ता आदित्य (विश्वकर्मा), अप्रतिहत प्रज्ञान वाला (विमनाः) सर्व व्याप्त एवं महान् (आद्विहायाः) सभी जीवों का उत्पादिया (धाता), अन्न आदिआजीविका का स्रष्टा (विधाता) तथा प्रकृष्ट संदृष्टा (परमा संदृक्) है। जिस आदित्य में (यत्र) उन जीवों के इष्ट (तेषाम् इष्टानि) गतिशील या सात (सप्त) रसापकर्षक् रश्मियां (ऋषीन्) जलों के साथ सुख पूर्वक रहती है (इथा संमदन्ति)। उन रश्मियों से परे एक ही आदित्य में (यत्र) उन जीवों के इष्ट (तेषाम् इष्टानि) गतिशील या सात (सप्त) रसावकर्षक् रश्मियां (ऋसीन्) जलों के साथ सुख पूर्वक रहती है। उन रश्मियों से परे एक ही आदित्य है (परम एकम् आहुः) अर्थात् ये सप्त रश्मियों आदित्य मण्डल में एक हो गई हैं।

आध्यत्मिक अर्थ – प्रति शरीर में क्षेत्रज्ञ रूप से वर्तमान परमात्मा (विश्वकर्मा) सर्वप्रज्ञान महान् पुण्य पाप के फलों का आपयिता, अपनी शक्ति का धाता तथा तद् योग्य विषयों का विधाता उत्कृष्ट एवं इन्द्रियों का संदर्शयिता जिस अधिष्ठाता रूपी क्षेत्रज्ञ में सभी इन्द्रियां अन्न या जल के साथ तृप्त होती है वह क्षेत्रज्ञ इन्द्रियों से परे है तथा इन्द्रियां उस क्षेत्रज्ञ में एकवत् होकर रहती हैं। वही आत्मा आत्म तत्वज्ञ की दृष्टि में परमात्म है।

(६) सेना।

'इन्द्र ता रथिनीरिषः'

ऋ. १.९.२, अ. २०.७१.१४.

रथादि चतुरंग-सम्पन्न सेनाएं प्रदान कर।

इष – (१) आश्विन।

'उपयामगृहीतोऽसीषेत्वा'

वाज.सं. ७.३०,

(२) इच्छा करने वाला।

'एष इषाय मामहे'

अ. २०.१२७.३, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.३.

(३) बाण।

इषकृत् – बाण बनाने वाला।

'नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमः'

वाज.सं. १६.४६, तै.सं. ४.५.४.२, मै.सं. २.९.४, १२३.९, का.सं. १७.१३.

इषण्यन् – प्रकट करता हुआ।

'इयानास इषणयन्तधीभिः'

ऋ. १०.६७.८, अ. २०.९१.८

इषति – 'ईष गतिहिंसा दर्शनेषु' गति हिंसा और दर्शन अर्थों में ईष धातु प्रयुक्त है। अर्थ-गच्छति (जाता है)। हिनस्ति (हिंसा करता है) और (पश्यति देखता है)।

इषध्यै – इष् धातु का ध्यै प्रत्यय कर। जानने और चाहने के लिए।

'द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै'

ऋ. ७.४३.१.

इषयन्ती – (१) अन्न उत्पन्न करती हुई नदी, (२) उत्तम अन्न बनाती हुई स्त्री।

'प्रपिन्वध्वम् इषयन्तीः सुराधा
आवक्षणाः पृणध्वं यातशीभम्'

ऋ. ३.३३.१२.

इषयुः – इष्यते सर्वैः विज्ञायते यत् तत् याति प्राप्नोति स –दया.। इष् + क = इष, इष + या + कु = इषयु।

(१) उत्तम ज्ञानों और प्राप्तव्य परम पद को प्राप्त करने में कुशल, (२) बाण चलाने में सिद्धहस्त, (३) लक्ष्य वेध में चतुर।

'प्रैषयुर्न विद्वान्'

ऋ. १.१२०.५

इषव्यः – धनुर्धर।

'आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्येऽतिव्याधी'

वाज.स. २२.२३, मै.सं. ३.१२.६, १६२.७, श.ब्रा.१३.१.९.२.

इषवान् – इष्+अङ्= इष। इष् + वतुपः इषवत्। अर्थ – अन्नवाला।

'हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति'

ऋ. १.१२९.६, नि. १०.४२

जो अन्नवान् इन्द्र हमारी प्रज्ञाओं को आकम्पित करते हैं।

इषःस्तुतः – सेनाओं, आज्ञाओं और उत्तम इच्छाओं द्वारा प्रशंसित।

'इषस्तुतो मनामहे'

ऋ. ५.५०.५

इषस्पति – (१) अन्नों और समस्त कामनाओं का स्वामी आत्मा।

'अभिद्युम्नं बृहद्यश इषस्पते'

ऋ. ९.१०८.९, साम. १.५७९,२.३६.१.
(२) सेनाओं का पालक, (३) अन्नो का स्वामी।
'मर्जयन्तीरिषस्पतिम्'
ऋ. ९.१४.७.

इष्कर – (१) अन्न उत्पन्न करने वाला।
'अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करम्'
ऋ. १०.४८.८

इष्कर्ता – (१) इस महान् जगत् मय यज्ञ का प्रेरक पूर्ण रूप से संचालक।
'इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं'
ऋ. १०.१४०.५, साम. २.११७०, वाज.सं. १२.११०, मै.सं. २.७.१४,९६.४:, श.ब्रा. ७.३.१.३३
(२) ठीक कर देने वाला परमेश्वर या जीवात्मा
'उस्कर्ता विह्रुतं पुनः'
ऋ. ८.१.१२., २०.२६, का.श्रौ.सू. २५.५.३०.
(३) सबका संचालक परमेश्वर इन्द्र।
'इष्कर्तारमनिष्कृतम् सहस्कृतं'
ऋ. ८.९९.८.

इष्कृत – (१) बनाया हुआ चलने योग्य मार्ग, (२) सुशोभित।
'अमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः'
ऋ. ७.७६.२.

इष्कृति – (१) अन्न उत्पन्न करने वाली पृथिवी
'इष्कृतिर्नाम वो माता।'
ऋ. १०.९७.९, वाज.सं. १२.८३.
(२) रोगियों की इच्छा से उत्पन्न होने वाली ओषधि।

इष्ट – इष + क्त = इष्ट। अर्थ (१) प्रिय। इष् इच्छार्थक धातु है।

इष्टक – ईंट (२) ईंटों का बना गृह आदि, (३) यज्ञ कर्म, (४) इष्ट अभिलषित पदार्थ (५) प्रिय सम्बन्धी जन।
'शं ते भवन्त्विष्टकाः'
वाज.सं. ३५.८, श.ब्रा. १३.८.३.५.
(६) अभीष्ट सुख साधना।
'अपां पतिर्वृषभ इष्टकानाम्'
वाज.सं. १३.३१, मै.सं. २.७.१६,१००.६, का.सं. ३९.३. श.ब्रा. ७.५.१.९, आप.श्रौ.सू. १६.२५.२.
(५) राज्य के नाना विभागों में नियुक्त शासक
'इमा मे अग्न इष्टकाः धेनवः सन्तु'
वाज.सं. १७.२, वाज.सं.(का.). १८.२, तै.सं. ४.४.११.३, ४, ५.४.२.४,मै. सं.२.८.१४, ११८.१४, १६,३.३.४, ३६.२, का.सं. १७.१०, २१.६, श.ब्रा. ९. १.२.१६, आप.श्रौ.सू. १७.११.२,

इष्टका – सबको इष्टया प्रिय लगने वाला।
'तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम्'
वाज.सं. १३.२१, तै.सं. ४.२.९.२, श.ब्रा. ७.४.२.१५, तै.आ. १०.१.८.

इष्टनिः – इष् + अनि (नुक्) = इष्टनि। अर्थ – (१) इच्छा विशिष्ट (२) यष्टुंयोग्य (यज्ञ करने योग्य) दया.।
(३) सबकी इष्ट अभिलाषा पूर्ण करने वाला।
(४) सर्वादर योग्य एवं सत्य व्यवहार युक्त। प्रजाओं में पूज्य।

इष्टयामा – अपने इष्ट माता पिता आदि बन्धुओं की ओर जाने वाला ब्रह्मचारी, (२) सोम।
'वायुर्न यो नियुत्वाँ इष्टयामा'
ऋ. ९.८८.३.

इष्टरश्मि – (१) समस्त रश्मियों का प्रेरक –परमेश्वर ज्ञानतन्तुओं का प्रेरक आत्मा।

इष्टान् – प्रेरणा करता या देता हुआ।
'ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन्'
ऋ. २.२०.५

इष्टिणः – धनुषबाण वाले–मरुत्।
'स्वायुधास इष्मिणः'
ऋ. ५.८७.५, ७.५६.११.

इष्णन् – (१) समस्त जगत् को प्रेरणा करता हुआ।
'इष्णन्निषाणामुम्'
वाज.सं. ३१.२२
(२) पुत्रादि की इच्छा करता हुआ।
(३) ऐश्वर्य एवं पुत्रादि फलों की कामना करता हुआ।
'पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्'
ऋ. १.१८१.६

इष्मी – (१) उत्तम अन्न का स्वामी, (२) उत्तम इच्छा शक्ति से युक्त।

इष्मन् – (१) इच्छा करता हुआ, (२) जाता हुआ।
'इष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै'
ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.११, का.सं. ८.१६,६.२०.
हे इन्द्र। वृष्टि जलों की कामना करता हुआ तू

(अर्णांसि इष्यन्) जलों को बहाने के लिए (अपां चरध्यै)
हे राजन् ! तिरछी चाल से जाता हुआ सूर्य (तिरश्च इष्यन्) अन्तरिक्ष के जलों की प्राप्ति के लिए (अपां अर्णांसि चरध्यै) ।

इषा – इष् + क्विप् + टाप् = इषां । अर्थ (१) चाही हुई, मनोनुकूल । सेना का विशेषण ।
'आश्विनावश्वावत्या इषायातं शुवीरया'
ऋ. १.३०.१७, आश्व.श्रौ.सू. ४.१५.२, शां.श्रौ.सू. ६.६.२.
अश्वारोहियों से बनी सैकड़ों वीरों से पूर्ण इच्छानुकूल सेना के साथ हे अश्विद्वय ! प्रयाण करो ।

इष्टापूर्त – परस्पर की संगति से होने वाले नाना शिल्प कार्य, देवोपासना और यज्ञ, कूप, उद्यान्, तडाग, सेतु आदि लोकोपकारक कार्य ।
'इष्टापूर्तस्य षोडशम्'
अ. ३.२९.१
इष्ट = यज्ञ, ईश्वरपूजा, आपूर्त = कूप तड़ाग आदि उपकार जनक कार्य ।
'इष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै'
अ. ६.१२३.२
(२) इष्ट अभिलषित सुख देने के वाले उत्तम कर्म, दान, यज्ञ, तप आदि और पूर्त अर्थात् शरीर और गृह को पूर्ण करने वाले ब्रह्मचर्य और कृषिकूप आदि कर्म ।
'त्वमिष्टापूर्ते सं सृजेथामयं च'
वाज.सं. १५.५४

इष्टावान – यज्ञ करने वाला ।
'इष्टावन्तो रातिसाचो दधानाः'
अ. १८.३.२०

इष्टाश्व – समस्त वेगवान् मन, अग्नि आदि व्यापक पदार्थों का इष्ट अर्थात् प्रेरक परमेश्वर, (२) अश्व, अर्थात् इन्द्रियों का प्रेरक आत्मा ।
'किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत
ईशासानास स्तरुष ऋञ्जते नॄन्'
ऋ. १.१२२.१३
ये सूर्य आदि लोक या बड़े बड़े राजा महाराजा (ईशानासः) या ये प्राण गण ही क्या ईश्वर हैं ? (किम् ईशानासः) नहीं । वह परमेश्वर ही समस्त वेगवान् मन अग्नि आदि व्यापक पदार्थों का इष्ट अर्थात् प्रेरक है (इष्टाश्वः) या आत्मा ही इन्द्रियों का प्रेरक है । वही समस्त रश्मियों का घोड़ो के सारथि के समान प्रेरक और संचालक है (इष्टरश्मि) ।

इष्णानः – (१) मारता हुआ ।
'युधे यदिष्णानम् आयुधानि
ऋघायमाणो निरिणाति शत्रून् ।'
ऋ. १.६१.१३, अ. २०.३५.१३.
(२) शत्रुओं का नाश करने वाले योद्धा के समान (इष्णानः) अभ्यास करने वाला अस्त्रों का अभ्यास करता हुआ (आयुधानि + धायमाणः) शत्रुओं का नाश करता है ।

इष्णासि – आक्रमण करता है ।

इष्वास – धनुर्धारी ।
'भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्'
अ. १५.५.१

इषित – (१) गतिमान पदार्थ ।
'इषितं ह वितिष्ठते'
अ. १९.५३.५.
संचालित
'उदश्विभ्याम् इषिताः पारयन्ति'
ऋ. १.१८२.६
दो इञ्जिनों से संचालित हो पार करती है ।
(३) प्रेषित, अधीष्ट (४) अध्येषित, याचित, प्रार्थित, (५) प्रेरित ।
'तमद्य होतरिषितो यजीयान्
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्'
ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९, वाज.सं. २९.३४, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१२, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१४.
हे विद्वान् एवं प्रार्थित या ईश्वर से प्रेरित प्रवीणतम यज्ञकर्ता । उस त्वष्टा देने को तू स्तुतियों से आज पूज । पुनः,
'स एनान् यक्षीषितो यजीयान्'
ऋ. १०.११०.३, अ. ५.१२.३, वाज.सं. २९.२८, मै.सं. ४.१३.३: २०१.१५, ४.१४.१५, २४२.७, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.८.
वह अग्नि ! तू हम से प्रार्थित होकर (इषितः) इन देवों को हवि से पूज (एनान् यक्षि) क्योंकि तू महान् पूजक है (यजीयान्) ।

इषिधः – (१) नाना इच्छाओं को प्रकट कराने वाला

(२) रुचिकारक अन्न ।
'इषः पृक्ष इषिधो अनुपूर्वी'
ऋ. ६.६३.७.
इषिर – (१) इच्छानुकूल, अभिलाषित कार्य
'ग्रावाणो यस्योषिरं वदन्ति'
ऋ. ५.३७.२.
(२) आवश्यक रूप से अपेक्षित ।
(३) दीपक के समान मार्ग दिखाने वाला ।
'शुचिंन यामन् इषिरं स्वर्दृशम्'
ऋ. ३.२.१४
(४) प्रबल इच्छा, ज्ञान और कर्म वाला ।
'धृतव्रता आदित्या इषिराः'
ऋ. २.२९.१
(५) अतिशक्तिशाली इन्द्र, ।
(६) इच्छा या आत्म संकल्प में रमण करने वाला आत्मा ।
'युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयः'
ऋ. ८.९८.९ अ. २०.१००.३.
(७) विशेषण पद । ईष् + किरच् = इषिर (सर्वात्मनागतः–सर्वात्म भाव से गया हुआ । बाहुलक नियम से ईष् का इष् आदेश)
(८) एषण (इष् इच्छायाम्) = फल प्रार्थना –युक्त
(९) ऋषण (गत्यर्थक ऋष धातु) ज्ञानमय, । गतिमय या दर्शनशील
'इषिरेण ने मनसा सुतस्य
भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन् प्रण आयूंषि तारिः
अहानीव सूर्यो वासराणि'
ऋ. ८.४८.७, का.सं. १७.१९. नि. ४.७.
हे सोम, हे स्वामिन् , हे राजन् । तेरे अति सर्वात्मभाव से गत मन से या तेरी कामना करते हुए मन से (इषिरेण मनसा) चुवाए सोमरस के भाग को, या स्वामी दयानन्द के अनुसार, जगत् को हम भोगें (सुतस्य ते भक्षीमहि) जैसे पैतृक धन को पुत्र भोगता है (पित्र्यस्य रायः इव) । हे राजन्, हमारी आयु बढ़ा (नः आयूषिं प्रतारीः) जैसे सूर्य दिनों को बढ़ाता है । (सूर्य वासराणि इव) । इन दिनों 'इषिर' आग का वाचक है ।
इषिरा – (१) अन्न से पूर्ण, (२) क्रान्ति मार्ग से चलने वाली पृथिवी, (३) अनुराग संयुक्त,(४) प्रेम वाली स्त्री, (५) परमेश्वर की इच्छा शक्ति से गति करने वाली प्रकृति ।
'नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिम्'
ऋ. ३.३०.९
(६) पुत्रोत्पादन करने में समर्थ पुरुष की इच्छा करने वाली स्त्री (७) प्रभु इच्छा शक्ति द्वारा प्रेरित करने योग्य प्रकृति । ईश्वर प्रकृति को जगत् की सृष्टि करने के लिए प्रेरित करते हैं ।
'इसिरा योषा युवतिः दमूनाः'
अ. १९.४९.१
(८) इच्छा से युक्त स्त्री ।
'य ईं वहाते महिषीमिषिराम्'
ऋ. ५.३७.३
इष्टि – (१) यज्ञ, (२) सत्कार
'त्वामग्ने पितरमिष्टिभिः नरः'
ऋ. २.१.९
(३) शक्ति देने वाली या साथ जुड़ी (४) इच्छा ।
'स इष्टिभिः मतिभी रंहयो भूत्'
ऋ. २.१८.१
(५) इच्छानकुल संचालित नीति ।
(६) इष्ट साधिका नीति ।
'इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ
विदत् सरमा तनयाय धासिम्'
ऋ. १.६२.३.
ईष्मिन् – (१) ईषणिन् । हविषांस्तुतीनाञ्च उपगन्त –हवि या स्तुति के निकट जाने वाला । इष् (गत्यर्थक) + मक् + इनि = इष्मिन् = जाने वाला (२) एषणिन् (इच्छावान्) इष् + मक् + इनि = इष्मिन् । (३) आर्षणिन् (अभिमुख्येन सर्वार्थानां द्रष्टा–सभी वस्तुओं को प्रत्यक्ष देखने वाला) । 'ऋष' गति, ज्ञान और दर्शन अर्थ में आया है । अर्थ – क्रियाशील, (४) आप्तकाम, (५) तत्वदर्शी ।
'श्रियसे कं मानुभिः संमिमिक्षिरे
ते रश्मिभिसा ऋक्वभिः सुखादयः
ते वाशीमनाः इष्मिणो अभीरवो
विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः'
ऋ. १.८७.६, तै.सं. २.१.११.२, ४.२.११.२, मै.सं. ४.११.२, १६७.१५, का.सं. ८. १७,
रस हरने वाली सूर्य की रश्मियों के साथ (ऋक्वभिःरश्मिभिः) वृष्टिजल (कम्) प्राणियों के सेवन के लिए (श्रियसे) वे मरुत् बरसाना चाहते

हैं (संमिमिशिरे) । वे मरुत् लोगों के सुखदायक यो शाभन हवि के खाने वाले (सुखादयः) सुन्दर स्तुतियों के निकट जाने वाले या इच्छा वाले या प्रत्यक्ष रूप से सभी पदार्थ को देखने वाले (इष्यिणः) तथा भयरहित हैं (अभीरवः) । अतएव प्रिय मरुतों के स्थान की प्राप्ति के लिए (प्रियस्य मारुतस्य स्थानस्य विद्रे) मै स्तुति करता हूं ।
अन्य अर्थ- सुख भोगने वाले विद्वान् मनुष्य (सुखादयः) सुख सेवन के लिए (श्रियसे) दीप्तिमान् विद्युत् आदि पदार्थों से (भानुभिः) सुख सेवन की कामना करते हैं (संमिमिक्षिरे) । वे सूर्य रश्मियों से तथा अन्य प्रशस्त पदार्थों से (से रश्मिभिः त ऋक्वभिः) सुख सेवन की कामना करते हैं । वे वाग्मी (वाशीमन्तः) क्रियाशील, आप्तकाम या तत्वदर्शी (इष्मिणः) निर्भय मानुषिक प्रिय तेज प्राप्त करते हैं (मारुतस्य प्रियस्य धाम्नः) ।

इषीका - (१) सींक ।
'इसीकामिवं संनमः'
अ. ७.५६.४
(२) इष् (गर्भनाशक) + ईकक् + टाप् = इसीका । सा हि निर्गतां भवति मुञ्जात् (वह मुञ्ज से निकलती है) अतः इषीका है । सींक मुञ्ज से निकाली जाती है । सींक 'इषीका' का ही अपभ्रंश है । सींक से बाण भी बनाते हैं। अतः इषीका बाण का भी पर्याय वाची है ।

इषु - ईष् (हिसा, गति और दर्शन अर्थ में + उ = इषु । बाण जो छोड़कर चलता है और शत्रुओं की ओर जाता है और उसे मारता है (गच्छति शत्रून प्रति तान् हन्ति वा)।
'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो
गोभिःसन्नद्धा पतति प्रसूता
यत्रा नरः संच विच द्रवन्ति
तत्रा स्मभ्यमिषुवः शर्म यंसन्'
ऋ. ६.७५.११, वाज.सं. २९.४८, तै.सं. ४.६.६.४, मै.सं. ३.१६.३, १८७.२, का.सं.(आश्व). ६.१, नि. ९.१९.
यह बाण सुन्दर पक्ष को (सुपर्णम्)आच्छादित करता है (वस्ते) इसका दांत मृग के सिंह की तरह है (अस्या मृगो दन्तः)। यह स्नायु, श्लेष्मा याज्या से सन्नद्ध है (गोभिः सन्नद्धा) तथा चलाए जाने पर गिरता है (प्रसूता पतति) जिस संग्राम में (यत्र) लोग एक साथ हो या पृथक् पृथक् भागते हैं (नर संद्रवन्ति विद्रवन्ति च) वहां (तत्र) हमारे (अस्मभ्यम्) ये बाण (इषव्याः) जयप्रद शरण और सुख देवें ।

इषुका - बाण ।
'यथेषुका परापतत्'
अ. १.३.९

इषुकार - बाण बनाने वाला ।
'शरव्याया इषुकारम्'
वाज.सं. ३०.७, तै.ब्रा. ३.४.१.३.

इषुकृता - (१) बाण विद्ध जन्तु के समान एक दूसरे के प्रति उत्पन्न अनुराग ।
(२) प्रबल मिलने की इच्छा रूप बाण से आहत, । (३) अति अनुरक्त स्त्री पुरुष ।
'श्रिये पूषन् इषुकृतेव देवा'
ऋ. १.१८४.३.

इषुध् - कामना करना ।
'धेनूनामिषुध्यसि'
ऋ. ८.६९.२, साम. २.८६२, ऐ.आ. १.३.५.५, ५.१.६.५.

इषुध्याः - जलवृष्टि धारक मरुत् ।

इषुध्यु - (१) नाना ऐश्वर्यों को चाहने वाली, (२) नाना देशों को जाने वाली, (३) बाण आदि अस्त्रों से युद्ध करने वाली प्रजा या सेना ।
'इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीः'
ऋ. ५.४१.६

इषुधि - इषूणां निधानम् (वाणों के रखने का स्थान), तूणीर, तरकश ।
'बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रः
चिश्चाकृणोतिसमनावगत्य
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः
पृष्ठे निन्द्धो जयति प्रसूतः'
ऋ. ६.७५.५,
यह तूणीर (इषुधिः) बहुत बाणों का रक्षक है (बह्वीनां पिताः) इसके इषु रुप अनेकों पुत्र हैं (अस्य बहुपुत्राः) यह तूणीर युद्ध में जाकर (समना अवगत्य) पीठ में बाधे जाकर (पृष्ठे निबद्धः) बाणों को प्रेरित करता हुआ (प्रसूतः) साथ हो शब्द करता हुआ (सङ्काः) सभी सेनाओं को जीतता हुआ (सर्वाश्च पृतनाः) चिञ्चिश जैसा

शब्द करता या हंसता है ।

इषुधिमत् – बाणों का तर्कश उठाने वाला ।
'नमो निषंगिण इषुधिमते'
वाज.सं. १६.२१, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.२, का.सं. १७.१२, आप.मं.पा. २.१८.४६.

इषुबला – धनुष बाण के बल या सैन्य से युक्त ।
'चित्रसेनाः इषुबला अमृध्राः'
ऋ. ६.७५.९, वाज.सं. २९.४६, तै.सं. ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३, १८६.१४, का.सं.(अश्व). ६.१.

इषुहस्तः – हाथ में धनुष धारण किए हुआ ।
'स इषुहस्तैः स निसंगिभिर्वशी'
ऋ. १०.१०३.३, अ. १९.१३.४, साम. २.१२०१, वाज.सं. १७.३५, तै.सं. ४.६.४.१, मै.सं. २.१०.४, १३५.१३, का.सं. १८.५.

इह – यहाँ ।
'स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम'
ऋ. १०.१७८.१, अ. ७.८५.१, साम. १.३३२, ऐ.ब्रा. ४.२०.२५, नि. १०.२८.

इहक्रतु – इस लोक में प्रशस्त कर्मों का करने वला ।
'इहचित्त इहक्रतुः'
अ.१८.४.३८

इहचित्त – इस लोक में सर्वप्रसिद्ध ।
'इहचित्त इहक्रतुः'
अ.१८.४.३८

इहेह – इह + इह = इहेह । अर्थ–यहीं पर ।
'इहेहजाता समवावशीताम्'
ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३.
हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों यहीं द्युस्थान में उत्पन्न हुए और रात्रि और उषा के पुत्र के रूप में स्तुत्य हुए ।

ई

ई – (१) याचना करना, (२) जाना, चलना ।
'मक्षू गोमन्तमीमहे'
ऋ. ८.३३.३, ८८.२, अ. २०.९.२, ४९.५, ५२.३, ५७.१६, साम. २.३६, २१६.
'मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे'
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३
(२) जल ।
'आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे'
ऋ. १०.१०१.१०, नि. ४.१९.
हे अध्वर्यो, इस हरे रंग के सोम में लकड़ी के बने बर्तन से जल ढाल अथवा हरे रंग के सोम द्रोण कलश के ऊपर ढाल ।
(३) प्रार्थना करना ।
'तमीमह इन्द्रमस्य रायः'
ऋ.६.२२.३,अ.२०.३६.३.
इस धन के रक्षक पुत्र की हम याचना करते हैं–सा. । इस धन के अधिपति परमेश्वर की हम प्रार्थना करते हैं ।

ईक्ष – देखना, साक्षात् करना ।

ईक्षमाणः – साक्षात् करता हुआ ।
'ईक्षमाणाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८

ईक्षे – ईशिषे (ईशधातु के म.पु.ए.व. का लोट् में रूप) अर्थ है – तू स्वामी होता है (स्वामी भवसि) ईश् + से = 'ईक्षे । ईशः से' शूत्र से इट् का अभाव है ।
'नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती
वंसीमहि त्वामं श्रोमतेभिः
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्
धारत्नं महि स्थूरं बृहन्तम्'
ऋ. ६.१९.१०
हे राजमान इन्द्र, (राजन् इन्द्र) हम तुझ से (ते) मनुष्यों या परिचारकों से युक्त (नृवत्) श्रवणीय यशों से युक्त (श्रोमतेभिः) सुन्दर याचनीय या संभजनीय (वामम्) एवं मनुष्यों की रक्षा करने की योग्यता से युक्त धन को (नृतमाभिःऊती) परस्पर बांटते हैं (वंसीमहि) । चूंकि पार्थिव तथा दिव्य धन को (उभयस्य वस्वः) देने में समर्थ है (इक्षे) अतः महान् स्थूल एवं बृहत् रमणीय धन हमें दे, (महिस्थूरं बृहन्तं रत्नं धाः) । अन्य अर्थ – तेजस्वी राजन् ! आपकी प्रशस्त मनुष्य बनाने वाली रक्षा से (ते नृतमाभिः ऊती) श्रवणीयतम उपदेशों के द्वारा (श्रोमतेभिः) मनुष्योचित प्रशंसनीय कर्म का सेवन करे (नृवत् वामं वंसीमहि) । हे राजन् , आप विद्याधन और सांसारिक धन दोनों के स्वामी हैं (उभयस्य वस्वः हि ईक्षे), आप हमें महान् रत्न समान विद्याधन और प्रभूत सांसारिक स्थूल धन प्रदान

करें (महिरत्नं बृहन्तं स्थूरं धाः) ।

ईक्षेण्यः – तत्व बोधनार्थ देखने वाला ।
'ईक्षेण्यासो अह्यो न चारवः'
ऋ. ९.७७.३

ईख – (क्रि.) (१) झूलना ।
'प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम्'
ऋ. ७.८८.३
(२) देना, (३) प्रेरित करना ।
'वधैर्वधस्नवी'
ऋ. ९.५२.३

ईज – (क्रि.) प्रार्थना करना, स्तुति करना (२) यज्ञ करना, (४) संत्संग या व्यवस्था में रखना ।
'वर्षा ज्यावग्नी ईजाते'
अ. १३.१.४७

ईजानः – (१) देवोपासना करने वाला आत्मा ।
'ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्तलोके'
अ. १८.४.१
'यैरीजानाः स्वर्गयन्ति लोकम्'
अ. १८.४.२
(देवोपासना करने वाला करने वाला स्वर्ग लोक जाता है ।)
(३) यज्ञ करने वाला ।
'ईजानमिद्यौ द्यौगूर्तावसुः'
ऋ. १०.१३२.१
(४) यज्ञशील, (५) सबको सत्संगति या व्यवस्था में रखने वाला ।
'ईजानञ्च यक्ष्यमाणञ्च धेनवः'
ऋ. १.१२५.४, तै.सं. १.८.२२.४, मै.सं. ४.११.२, १६५.५, का.सं. ११.१२.

ईडि – स्तुति करने के अर्थ में प्रयुक्त धातु ।

ईड – अग्नि । ईड (स्तुति अर्थ में) क्ष घञ् = ईड । अर्थ (१) स्तुत्य (२) अग्नि (३) इन्ध (दीपनार्थक) + घञ् = ईड (निपातन से सिद्ध) अर्थ– अग्नि जो दीप्त किया जाए ।

ईडते – स्तुवन्ति (स्तुति करते हैं) । ईड् के प्र पु. ब.व. का रूप ।

ईड्य – (१) स्तुति योग्य, प्रार्थनीय । ईड् + यत् (२) संदीप्य ।
'ईड्यं नाम ह इन्द्रम्'
अ. १७.१.२
पुनः–
'आनुह्वान् ईड्यो वन्द्यश्च'
हे अग्ने ! तू प्रार्थनीय एवं सभी के स्तोतव्य है। तू आहूत होकर । हे यज्ञाग्नि ! तू हवियों से भली प्रकार हूयमान है । अतः यज्ञशाला में संदीप्य (ईड्यः) और आदर के योग्य (वन्द्य)

ईडान् – ईड + शानच् = ईडानः) (१) ईडा अर्थात् अन्न का इच्छुक (२) अपनी स्तुति करने या चाहने वाला ।
'ईडानायावस्यवे'
ऋ. २.६.६.

ईडा – अन्न ।

ईडि – अध्येषणा, पूजा, प्रार्थना करना ।

ईडे – याचे (जांचता हूं) ।
सायण ने इसका अर्थ स्तौमि किया है ।
'अग्निमीडे पुरोहितम्'
ऋ. १.१.१, आ.सं. ३.४, तै.सं. ४.३.१३.३, मै.सं. ४.१०.५, १५५.१, का.सं. २.१४, गो.ब्रा. १.१.२.९, आश्व.श्रौ.सू. २.१.२६, शां.श्रौ.सू. ६.४.१, १४.५२.१, आश्व.गृ.सू. ३.५.६, शां.गृ.सू. ४.५.७, नि. ७.१५.

ईदृक्ष – (१) इस प्रकार का ।

ईदृक्षाः – (१) मरुद्गण ।
'ईदृक्षास एतादृक्षांस ऊ षु णः'
वाज.सं. १७.८४, तै.सं. ४.६.५.६, मै.सं. २.११.१, १४०.५, का.सं. १८.६

ईदृश् – इदम् + दृश् = इदृश् = ईदृश । अर्थ –इस प्रकार का ।
'क्षेत्रस्यपतिनावयं
हितेनेव जयामसि
गामश्वं पोषयित्वा
सनोमृडातीदृशे ।'
ऋ. ४.५७.१, तै.सं. १.१.१४.२, मै.सं. ४.११.१, १६०.३, का.सं. ४.१५, आश्व श्रौ.सू. ९.११.१४, आप.मं.पा. २.१८.४७, नि. १०.१५.
हम मित्र के साथ जैसे संयुक्त जय प्राप्त करते हैं उस प्रकार क्षेत्रपति के साहाय्य से जय करे तथा अन्नादि से युक्त होवें । (हितेनेव क्षेत्रस्य पतिना जयामसि)
धनी हो हम पोषण करने वाले गौ और अश्व (पोषयित्नु गाम् अश्वम्) लाओ– ऐसी आज्ञा हम परिचारकों को देवें । वह क्षेत्रपति (सः) हमें

इस प्रकार के लाभ तथा सुख भोग के लिए (ईदृशे) बल तथा धन से सत्कृत या युक्त करें।

ईम् – (१) यह, इसे।
'य ईं चकार न सो अस्य वेद'
अ. १.१६४.३२, अ. ९.१०.१०, नि. २.८.
जो यह गर्भ करता है वह इसका तत्त्व नहीं जानता।
(२) पदपूरक अव्यय। कम्, ईम्, इत् और उये चार पदपूरक अव्यय हैं। इनका प्रायः विशेष अर्थ नहीं होता।
(३) उदक, (४) वीर्य, (५) सब प्रकार का सुख।
'आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा'
ऋ. १.१२२.९.
जो मातापिता या गुरु या गुरुपत्नी को या मित्र वरुण को सत्य मार्ग पर चलने वाला (ऋतावा) सत्कार की वाणियों या होत्र से आदरसत्कार करता है वह सब प्रकार से सुख करता है (ईम् आप)।
(६) राष्ट्र।
'सत्रा यदीं भार्वरस्यवृष्णः'
ऋ. ४.२१.७.

ईमहे – हम जांचते हैं। 'ई' धातु याचना अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।
'राधोभागमिवेमहे'
ऋ. ८.९०.६. साम. २.७६२.
हमें तुझ से पैतृकधन की तरह (भागम् इव) झन जांचते हैं।

ईयचक्षसा – ज्ञान करने योग्य दर्शन या कथन करने वाले विद्वान् पुरुष।
'आ यद् वामीय चक्षसा'
ऋ. ५.६६.६

ईयते – जाना जाता है।
'रूपा मिनन्तदपा एक ईयते'
ऋ. २.१३.३

ईयमान – सदा गतीशील।
'व्रात्य आसीदीयमानः'
अ. १४.१.१

ईयसे – जाता है, चलता है। 'ई' धातु चलना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।
'मेघन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे'
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३.
हे वनस्पते, तेरे अश्व जिनसे तू जलता है तृप्त हों।

ईयिवान् – अतिक्रमण करने वाला।
'ईयिवांसम् अतिम्रिधः'
ऋ. ३.९.४.

ईयुः – 'इ' (गमनअर्थ में) धातु का लिट् प्र.पु.ब.व.का रूप है। अर्थ है–जग्मुः (गए)।

ईयुषी – आने वाली
'ईयुषीणामुपमा शश्वतीनाम्'
ऋ. १.११३.१५, १२४.२.
अनादिकाल से आने वाली समस्त उषाओं की उपमा अर्थात् उनके समान धर्मों को धारण करती हुई उषा।

ईर – (क्रि) (१) उठना (२) गमन करना।
'गिर स्तोमास ईरते'
ऋ. ८.३.१५, ४३.१, अ. २०.१०.१,५९.१, साम. १.२५१, २.७१२, मै.सं. १.३.३९, ४६.५, आप श्रौ.सू. १३.२१.३.

ईरण – ईर् + ल्युट्। अर्थ स्तुतियों का प्रेरक।
'ईरयति हिअसौ स्तुतीन्'
ईरते–जाता है।

ईर्त्स – (क्रि.आ.प.) प्राप्त करना। ऋणान्नो नर्णमेर्त्समानः
ऋ. ६.११८.२

ईर्म – (१) बाहु। arm यह अन्य अंगों से अधिक लम्बायमान होता है।
'ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः'
ऋ. १.१६३.१०, वाज.सं. २९.२१, तै.सं. ४.६.७.४, का.सं.(अश्व) ६.३, नि. ४.१३.
(२) यहां। here अव्यय।
'ईर्मैव ते न्यविशन्त केपयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.
वे पापी अपने अपने कर्मानुसार इसी लोक में अधोगति को प्राप्त हो नीच योनि में चले जाते हैं।
(३) गति, (४) शक्ति।
'ईर्माभ्यामयनं जातम्'
अ. १०.१०.२१

ईर्मा – (१) इह (यहां) अव्यय, here शब्द से ईर्मा

मिलता जुलता है ।
(२) समीरित, पृथु,विस्तृत । प्रेरणार्थक-ई् + मक् = ईर्म ।

ईर्मान्तासः - ईर्म + अन्त = ईमन्ति । बहुवचन में वैदिकरूप 'ईर्मान्तासः' अर्थ-
(१) विस्तृत अन्नों वाली सूर्यकिरणें । -दया.
(२) सूर्य के चार अश्व ।
'ईर्मान्तासः सिलिकमध्यभासः'
ऋ. १.१६३.१०.
(३) पिछले भागों पर कुश द्वारा प्रेरित अश्व ।
(४) गुरुओं द्वारा प्रेरित उपदेशों द्वारा सिद्धान्तों और अन्तिम उद्देश्यों को धारण किये शिष्य ।
(५) सूर्य, (६) बाहुवत् बलवान् पुरुष ।
'ईर्मा तस्थुषीरहभिःदुदुह्रे'
ऋ. ५.६२.२, मै.सं. ४.१४.१०, २३१.१२, तै.ब्रा. २.८.६.६.
(७) संसार मार्ग पर जाने वाले युगल स्त्री पुरुष मित्रा वरुण ।
'ईर्मान्य द्वपुषेवधुःचक्रं रथस्य येमथुः'
ऋ. ५.७३.३.

ईर्मान्तिः - समीरितान्तः पृथिव्यन्तः वा (बाहुरूप से पृथ्वी के अन्त को विजय करने वाला) (२) प्रेरित प्राप्त अन्तवाला, उद्देश्य तक पहुंचा हुआ योगी ।
'ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः'
ऋ. १.१६३.१०, वाज.सं. २९.२१

ईर्ष्या - दाह, एक मानस रोग ।
'ईर्ष्यायानाम भेषजम्'
अ. ७.४५.१

ईर्यता - दूसरों को सन्मार्ग पर ले जाना ।
'ईर्यताया अकितवम्'
वाज.सं. ३०.८

ईरिरे - ईर् धातु के लिट् प्र.पु. ब.व. का रूप । 'झस्' प्रत्यय का एरच् आदेश होने से 'ईरिरे' रूप हुआ है । अर्थ है प्रेरित किया (ईरितवन्तः)
'तांपूषन् शिवतमामेरयस्व
यस्यां बीजं मनुष्यावपन्ति ।
या व ऊरु उशतीविश्रयाते
यस्यामुशन्तःप्रहरामशेयम् ।'
ऋ. १०.८५.३७, अ. १४.२.३८, आप.मं.पा. १.११.६.
हे पूषन् , कल्याण कारिणी उस योनि को बीज ग्रहण के लिए सुपुष्ट करो (शिवतमा तां आ ईरयस्व) जिसमें मनुष्य बीज बोते हैं (यस्यां बीजं वपन्ति) जो यह कामयमाना कामिनी (या उशती) विविध प्रकार से उरुओं का आश्रय लेती है । जिस योनि में हम कामुक हों (यस्याम् उशन्तः) जननेन्द्रिय क्षिप्त करते हैं (शेषपम् प्रहराम्) । पुनः
'यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं
नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना
अग्नि तं गीभिर्हिनुहि स्व आ दमे
य एको वस्वो वरुणोन न राजति'
ऋ. १.१४३.४.
जिस विश्वधन अग्नि को अपने घर को भृगुओं ने पृथिवी की नाभि से जल के बल से प्रेरित किया उस अग्नि को अपने घर मैं स्तुतियों द्वारा प्राप्त था । जो वरुण के समान धन का ईश्वर है ।

ईवत् - (१) ज्ञान और रक्षा सहित ।
'प्रये वसुभ्य ईवद् आनमोदुः'
ऋ. ५.४९.५
(२) जलयुक्त, (३) धनयुक्त ।
'य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः'
ऋ. ७.५६.१८
(४) शरण में आने वाला, समीप आने वाला, उपासक ।
'उपश्रोता म ईवतो वचांसि'
ऋ. ७.२३.१, अ. २०.१२.१, साम. १.३३०.
(५) शरणागत ।
'जनाय चिद् य ईवत उलोकम्'
ऋ. ६.७३.२, अ. २०.९०.२, का.सं. ४.१६.
(६) आने वाला, जन्म लेने वाला ।

ईश - परमात्मा, ईश्वर, सकलैश्वर्य सम्पन्न
'ईशा वास्यमिदं सर्वम्'
वाज.सं. ४०.१, ईश.उप. १,

ईशा - (१) शासन ।
'ईशायै मन्युं राजानम्'
वाज.सं. २१.५७, मै.सं. ३.११.५, १४८.२, तै.ब्रा. २.६.१४.६.
(२) वशकारिणी सर्वोत्पादिका शक्ति ।
'ईशे वशस्य या जाया'

अ. ११.८.१७
पुनः –
'स देवानामीशां पर्यैत्'
अ. १५.१.५

ईशान – (१) ऐश्वर्य शील अग्नि, वायु, जल आदि । महान् शक्ति शक्तियों पर शासक ।
'स ईशानोऽभवत्'
अ. १५.१.५
(२) शासन करने योग्य, (३) भूमिपति, (४) समर्थ ।
'क ईशानं न याचिषत्'
ऋ. ८.१.२०, सा. १.३०७, नि. ६.२४.
भला समर्थ से कौन नहीं जांचता

ईशानकृत् – (१) गोस्वामी या सामर्थ्यवान् बनाने वाला–इन्द्र, परमेश्वर या राजा । (२) ऐश्वर्ययुक्त सूर्य, विद्युत्, वायु , आदि रचयिता ईश्वर ।
'ईशानकृद् दाशुषेदशस्यन्'
ऋ. १.६१.११, अ. २०.३५.११.
वह दानशील प्रजा गण को ऐश्वर्यवान् स्वामी बनाने वाला है और शत्रु नाशक है ।

ईशावास्य – ईश अर्थात् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से व्याप्त ।
'ईशावास्यमिदं सर्वम्'
वाज.सं. ४०.१, ईश उप.१.

ईष् – (१) हिंसा करना ।
'न य ईषन्ते जनुषोऽयानु.'
ऋ. ६.६६.४
(२) गति, हिंसा दर्शन अर्थ में ।
'या इषवो यातुधानानाम्'
वाज.सं. १३.७, तै.सं. ४.२.८.३, श.ब्रा. ७.४.१.२९, नील. उप. २०, आप मं.पा. २.१७.७.

ईषते – गच्छति (जाता है), भीतः उद्विग्नः सन् पलायते (डरकर भागता है), भागने के अर्थ में ईषधातु का प्रयोग वेद में हुआ है ।
'उतानगा ईषते वृष्ण्यावतः'
ऋ. ५.८३.२, नि. १०.११.
मेघ से निरपराध भी भागता है ।
पुनः
'जहा को अस्म दीषते'
ऋ. ८.४५.३७, तै.आ. १.३.१, नि. ४.२.
(२) आगे बढ़ता है ।
'कं ईषते तुज्यते को बिभाय'
ऋ. १.८४.१७, नि. १४.२६.

ईषमाणः – भय खाता हुआ, गति करता हुआ (२) प्रेरित, होता हुआ ।
'अस्यादहं तविषादीषमाणः'
ऋ. १.१७१.४
'वृत्रस्य त्वा श्वसथादोषमाणाः'
ऋ. ८.९६.७, साम. १.३२४.

ईषमाणा – चलती हुई, ।
'ईषमाणा उपस्पृशः'
अ. २०.१२७.२, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.२

ईषा – (१) रथ का वह दण्ड जिसके आगे घोड़े जुते जाएं, रथ अग्रदण्ड ।
'विराडीषा'
अ. ८.८.२३
(२) रथ में लगा ईषादण्ड (३) आगे आगे चलने वाली विघ्नों एवं कष्टकारी कारणों का नाश करने वाली दर्शनीय स्त्री (४) शत्रु ।
'मेषा विवर्हिमा युगं विशारि'
ऋ. ३.५३.१७
'हिरण्ययी वां रभिःईषा अक्षो हिरण्ययः'
ऋ. ८.५.२९

ईषायुग – ईषा + युग (१) ईषा, अर्थात् हल जोतने के लिए लगाए जाने वाला दण्ड और युग जुआठ है जिसमें बैल जोते जाते हैं ।
(२) आत्मा और परमात्मा दोनों को जोड़ने के लिए 'ईषा' मानस प्रेरणा रूप चितिशति ।
'नम ईशायुगेभ्यः'
अ. २.८.५.

ईषे – शंकट के दो दण्ड, ।
'खलः पात्रं स्म्यावंसावीसे अनूक्ये'
अ. ११.३.९

उ

उ – (१) भी ।
'नहि प्रभायारणःसुशेवो
अन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ'
ऋ. ७.४.८, नि. ३.३.
अत्यन्त सुख कारक होता हुआ भी अन्य से

उत्पन्न बालक ग्रहण करने योग्य नहीं है। ऐसा मन से भी न सोचे कि वह अपना होगा।
(२) पादपूरण के लिए प्रयुक्त।
(३) विनिग्रह अर्थ में (एव) 'ही' के अर्थ में भी। (४) अलग करने के अर्थ में।
मृषमे वदन्ति सत्य मुते वदन्ति (ये झूठ बोलते हैं, वे सत्य बोलते हैं) (५) भी अर्थ में, (६) एव अर्थ में। तम् उ (उसे ही)
(७) पादपूरण में।
'उदज्योतिरमृतं विश्वजन्यम्
विश्वानरः सविता देवो अश्रेत्'
ऋ. ७.७६.१, नि. ११.१०.
अमृतत्व साधक (अमुतम्) सर्वजन हितकारक, (विश्वजन्यम्) सूर्य (ज्योतिः) प्रेरयिता (सविता) मध्यम वायु नाम का विश्वानर देव (विश्वानरः) ऊपर ही ओर (उत् उ) उच्छ्रय करता है (अश्रेत्) पुनः 'ही' के अर्थ में-
'इमा उ वां भृमयो मन्यमाना'
ऋ. ३.६२.१, आश्व श्रौ.सू. ७.९.२.

उक्थ - वच् + स्थक् = उक्थ। अर्थ-मन्त्र, स्तोत्र।
'तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथा
'इन्द्र उक्था समग्मत।'
ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४.
वे अन्न और सोम इन्द्र के पास पहले की तरह आवे।
(२) प्रशस्यगुण, (३) कर्म
'मा चिद् अन्यद् विशंसत
सखायो मा रिषण्यत्।
इन्द्रमित् स्त्रोता वृषणं सचा सुते
मुहुरुक्था च शंसत।'
ऋ. ८.१.१, अ. २०.८५.१, साम. १.२४२, २.७१०, कौ.ब्रा. २३.७, २९.५, पंच.ब्रा. १५. १०.२, ऐ.आ. ५.२.४.२, आश्व श्रौ.सू. ५.१२.९, २१, ७.४.२, शा.श्रौ.सू. १२.३.२२, १८.८.११. वै.सू. ३१.१८, ४०.११, नि. ७.२.
हे मनुष्यो! अन्य किसी की पूजा न करो (मा चित् अन्यत् विशंसत), अपने आप को दुःखी मत बनाओ (मा रिषण्यत), सोम तैयार होने पर या संसार में एकत्र होकर (सुते सचा) सुखकारक परमेश्वर की स्तुति करो (वृषणम् इन्द्रम् इत् स्तोत) और बराबर उसके प्रशस्य गुण कर्मों का गान करे (मुहुः उकथा च शंसत)।

उक्थभृत् - ऋग्वेद का धारण करने वाला।
'उक्थभृतं सामभृत्यं बिभर्ति'
ऋ. ७.३३.१४

उक्थवर्धन - (१) प्रकाशनीय गुणों को बढ़ाने वाला, (२) वेद के सूक्तों से जानने लायक।
'इन्द्रास्युक्थवर्धनः'
ऋ. ८.१४.११, अ. २०.२९.१.

उक्थवाहाः - उत्तम स्तुति वचनों को (उक्थवाहस्) स्वीकार करने वाला।
'उक्थवाहसे विभ्वे मनीषाम्'
ऋ. ८.९६.११

उक्थशंसी - (१) ऋचा कहने वाला, (२) उत्तम वचन बोलने वाला।
'नयसीद्वतिद्विषः
कृणोस्युक्थ शंसिनः'
ऋ. ६.४५.६.

उक्थशास - (१) वचन मात्र से प्राण स्वरूप सूर्य परमेश्वर की स्तुति करने वाला (२) वेद वचनों या शास्त्र वचनों का ही उच्चारक।
'असुतृप उक्थशासश्चरन्ति'
ऋ. १०.८२.७, वाज.सं. १७.३१, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३५.२ का.सं. १८.१, नि. १४.१०.
(३) ज्ञानवाणियों का उपदेशक।
'नरः शंसन्ति उक्थशास उक्था'
ऋ. ७.१९.९, अ. २० ३७.९

उक्थशासा - (१) उक्थ अर्थात् उत्तम वेदों के सूक्तों को कहने वाले,।
(२) अश्विनीद्वय या स्त्री पुरुष का विशेषण
'ब्रह्माणेय विदथ उक्थशासा'
ऋ. २.३९.१

उक्थशुष्म - (१) स्तुत्य एवं बलशाली (२) उपदिष्ट वेदज्ञान में बली।
'उक्थशुष्मान् वृषभरान् स्वप्नसः'
ऋ. १०.६३.३, मै.सं. ४.१२.१, १७७.८.

उक्थशुष्मा - उत्तम प्रशंसनीय बल से युक्त-वाणी।
'समुद्रं न सिन्धवः उक्थशुष्माः'
ऋ. ६.३६.३, मै.सं. ४.१४.१८,२४८.१४ का.सं. ३८.७, तै.ब्रा. २.४. ५.२.

उक्थामद - उक्थ या ब्रह्म का आनन्द।

'इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन्
यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा'
अ. ५.२६.३

उक्थार्क – उत्तम अर्चनायोग्य वचन वाला ।
'पस्पृध इन्द्रे अध्युक्थार्का'
ऋ. ६.३४.१

उक्थ्य – (१)अग्निष्टोम के बाद स्तुतिमन्त्रों का उच्चारण रूप-उक्थ्य ।
'सद्यः क्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः'
अ. ११.७.१०.
(२) वच् + थक् + यत् = उक्थ्य । अर्थ – उक्थार्ह , प्रशंसनीय ।
'एकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे
श्रृणोतु नः सुभगा बोध तु त्मना ।
सीव्यत्वपः सुच्याऽच्छिद्यमानया
ददातुवीरं शतदायमुक्थ्यम्'
ऋ. २.३४.४, अ. ७.४८.१, तै.सं. ३.३.११.५, मै.सं. ४.१२.६, १९४.१६, का.सं. १३.१६, साम.मं.ब्रा. १.५.३. आप.मं. पा. २.११.१०, नि. ११.३१.
मैं होता सुन्दर आह्वान वाली पूर्णिमा को (सुहवां राकाम्) सुन्दर स्तुति से (सुष्टुती) पुकारता हूँ (हुवे) । वह सुधना हमारी प्रार्थना सुने और हमारा अभिप्राय स्वयं (त्मना) समझ जाय (बोधतु) एवं अविच्छिन्न सुई से (अविच्छेद्य मानया सूच्या) सन्तति रूपी वस्त्र को सी (अयः सी व्यतु) और बहुत धन पैदा करने वाला (शतदायम्) प्रशंसनीय और वीर पुत्र दे (उक्थ्यं वीरं ददातु) ।

उक्ष – सींचना, पुष्ट करना ।
'उक्षेथां मित्रा वरुणा घृतेन'
ऋ. ७.६४.४

उक्षणः – (१) धर्म मेघ रूप आनन्द जल की वर्षा करने वाला
'सिन्धोरुच्छ्वासेपतयन्तमुक्षणम्'
ऋ. ९.८६.४३, अ. १८.३.१८, साम. १.५६४, २.९६४
(२) सींचने वाला (३) शरीर की शक्ति से खींचने वाला परमात्मा
'घसत् त इन्द्र उक्षणः'
ऋ. १०.८६.१३, अ. २०.१२६.१३, नि. १२.९.
(४) अवश्याय-संस्त्यायः (ओसों का समूह) । उक्ष (सेचन अर्थ में) + कनिन् = उक्षण । वृद्धि करण अर्थ में भी उक्षधातु आया है, ओस ओषधियों को बढ़ाती है । अतः उक्षण है (उक्षन्ति उदकेन) । 'ओस' शब्द 'उक्षण' का ही अपभ्रंश है । उक्षण-उक्खन ओक्खन-ओख-ओस ।
(५) एक गोत्र का नाम (६) बैल, (७) अश्व

उक्षण्यायन – (१) बलवान्, बैल या अश्व से जाने योग्य, (२) बलवान् सुख- सेचक पुरुषों का भी आश्रय स्थान ।
'ऋज्रमुक्षण्यायने'
ऋ. ८.२५.२२
(३) उक्षणगोत्रीय सुषामा का पुत्र वरु नामक राजा, ।
(४) बड़े-बड़े लोकों का गमन स्थान-दया.

उक्षस् – (१) वीर्य -सेचन में समर्थ युवा ।
'मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्'
ऋ. १.११४.७, वाज.सं. १६.१५, तै.सं. ४.५.१०.२, तै.आ.(आंध्र). १०.५२,
(२) सांढ़, (३) मेघ, (४) वीर्यवान् पुरुष ।
'वशाभिरुक्षभिः'
ऋ. २.७.५
हममें से जो वीर्य -सेचन समर्थ युवा पुरुष हैं, (उक्षन्तम्) और जो निषेक द्वारा गर्भाशय में स्थित है (उच्छितम्) उसे नष्ट मत होने दे ।

उक्षमाण – (१) बड़े भारों को दूर तक ले जाने वाला-अग्नि, (२) राष्ट्रभार को उठाने में समर्थ, (३) समृद्धि से सींचकर पुष्ट करने वाला ।
'तमुक्षमाणं रजसि स्व आदमे'
ऋ. २.२.४

उक्षा – (१) वीर्य सेचन में समर्थ बैल ।
'उक्षाच मे वशाच मे'
वाज.सं. १८.२७, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२
(२) महत्, महान्, (३) सेचक सूर्य (४) जगत् भर को उठाने वाला परमेश्वर ।
'उक्षा महां अभिववक्ष एने
ऋ. १.१४६.२

उक्षागौः – वीर्य -सेचन में समर्थ वृषभ-सांढ़ ।
'उक्षागौर्न वयो दधुः
वाज.सं. २१.२०, मै.सं. ३.११.११, १५८.१५, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.४.

उक्षाणः – (१) सेवक, (२) विद्याओं को वहन करने वाला और मेघ के समान अन्यों को देने के समर्थ ।
'उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीराः'
'ऋ. १.१६४.४३, अ.९.१०.२५

उक्षान्न – (१) वीर्य-सेचन में समर्थ अन्न खाने वाला जीवात्मा, (२) उक्षाः-अर्थात् जल-सेचक नाना लोकों के वहन करने वाले सूर्यादि का अन्नवत् उपयोग करने वाला परमेश्वर ।
'उक्षान्नाय वशनानाय सोमपृष्ठाय वेधसे'
ऋ. ८.४३.११, अ. ३.२१.६, २०.१.३, तै.सं. १.३.१४.७, मै.सं. २.१३.१३, १६३.४, ४.११.४, १७२.१५, का.सं. ७.१६, ४०.५, ऐ.ब्रा. ६.१०.५, कौ.ब्रा. २८.३, गो.ब्रा. २.२.२०, आश्व.श्रौ.सू. ५.५.१८, आप.श्रौ .१६.३५.१.
(३) उक्ष + अन्न । शरीर को एवं समष्टि रूप से ब्रह्माण्ड को वहन करने वाले आत्मा को अपना अन्न अर्थात् प्राप्य विषय बनाने वाला भक्तजन योगी जन ।
(४) राज्य जिसका अन्न तृप्त करने में समर्थ है ।

उक्षित – (१) मेघवत् सबका सेचक उत्पादक तथा बृद्धिकारक ।
'इन्द्रम् अर्जुयम् जरयन्त मुक्षितम् ।'
ऋ. २.१६.१
(२) अभिषेचिता ।
(३) निषेक द्वारा गर्भ में स्थित बालक ।
(४) गर्भस्थ डिम्भ
'मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्'
ऋ. १.११४.७, वाज.सं. १६.१५, तै.सं. ४.५.१०.२ तै. आ.(आध्र) १०.५२,

उक्षिते – (१) द्यावा पृथिवी या स्त्री पुरुष (२) जलादि से सीचंती हुई , (३) परस्पर प्रेम से युक्त, हृष्टपुष्ट निषेक करने और धारने में समर्थ स्त्री पुरुष ।
'साध्वपांसि सनता न उक्षिते'
ऋ. २.३.६

उखच्छित् पर्व – (१) शत्रु की गति को काटने वाला, (२) आक्रमण रोकने वाला, (३) उखा अर्थात् पात्रों को भेदकर तीव्र गति वेग से छेदन करने वाला, तीर आदि अस्त्र से निकलने वाला पोरु वाण (पर्व)- बन्दूक आदि (४) उखा अर्थात् हंडिया या दीर्घपात्र में विस्फोटक पदार्थों को बन्दकर प्रयोग किया जाने वाला बम आदि अस्त्र-
'निर्भूत् उखच्छित समरन्त पर्व'
ऋ. ४.१९.९

उख्य – (१) उखा अर्थात् स्थाली के योग्य, (२) पृथिवी के योग्य ।
'उखस्य केतुं प्रथमं जुषाणा'
वाज.सं. १४.१, तै.सं. ४.३.४.१, मै.सं. २.८.१, १०६.८, का.सं. १७.१, श.ब्रा. ८.२.१.४.
'उख्यं हस्तेषु बिभ्रतः'
अ. ४.१४.२, वाज.सं. १७.६५, तै.सं. ४.६.५.१, मै.सं. २.१०.६,५.१, का.सं. १८.४, श.ब्रा. ९.२.३.२४.
'सा तुभ्यदिते मही ओखांदधातु हस्तयोः'
वाज.सं. ११.५६, तै.सं. ४.१.५.३, मै.सं. २.७.५, ८०.१०, का.सं. १६.५, श.ब्रा. ६.५.१.१०.
(२) पाक-साधिका वह बर्तन जिमें कुछ पकाया जाता है । (३) शरीर जिसमें मांस परिपक्व होता है, (४) मस्तिष्क जिसमें उत्तम विचार परिपक्वव होता है ।
'यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखायाः'
ऋ. १.१६२.१३, वाज.सं. २५.३६, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१, १८३.४, का.सं.(आश्व). ६.४.

उगणा – उच्च कोटि के सैनिकों की सेना
'नम उगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वोनमः'
वाज.सं. १६.२४, तै.सं. ४.५.४.१, मै.सं. २.९.४, १२३.१५, का.सं. १७. १३.

उग्र – (१) उग्र । प्रातः कालीन आदित्य का एक विशेषण ।
'प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम'
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.३५, तै.ब्रा. २.८.९.७, आप.मं.पा. १.१४.२, नि. १२.१४. हम अन्धकार को जीतने वाले उग्रभग नामक आदित्य को बुलाते हैं । (२) भयङ्कर ।
(३) उद्गीर्ण (४) तेजस्वी ।

उग्रंऋतम् – भयकारी सत्य व्यवस्था
'सत्यं बृहत् ऋतमुग्रम् दीक्षा तपः'
अ. १२.१.१, मै.सं. ४.१४.११, २३३.८,

उग्रजित् , उग्रजितौ – एक वचन में उग्रजित ।

द्वि.व. में उग्रजितौ । अर्थ-(१) उग्रता से सबको वश करने वाली संस्था, पुलिस (२) अपराधियों को खोजकर दण्ड देने वाली ।
'उग्रं पश्ये उग्रजितौ तदद्य'
अ. ६.११८.१

उग्रदेव - शिव का एक पर्याय ।
'उग्रं देवमिष्वासम्'
अ. १५.५.१०

उग्रपश्य - उग्रता से शत्रु पर देखने वाला, देखने में भयानक ।
'उग्रंपश्या राष्ट्रभृतो ह्यक्षाः'
अ. ७.१०९.६

उग्रंपश्ये - एकवचन में उग्रंपश्या । उग्र उद्यतदण्ड होकर देखने वाली संस्था, (२) पापियों को खोज खोजकर पता लगाने वाली
'उग्रंपश्ये उग्रजितौ तदद्य'
अ. ६.११८.१

उग्रपुत्रा - शत्रु को भय देने वाले पुत्रों की माता ।
'पर्षिदीने गभीर आं
उग्र पुत्रे जिघांसतः'
ऋ. ८.६७.११

उग्रःपुत्रः - दुष्टों को भयकारी और बहुतों का रक्षक प्रभु ।
'प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम
वयं पुत्रमदितेर्योविधर्ता'
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.३५, तै.ब्रा. २.८.९.७,आ.प.मं.पा. १.१४.२. नि. १२.१४.

उग्रादेव - तीव्र स्वभाववान विजिगीषु (तीव्र स्वभाव वाला विजय का इच्छुक), (२) उग्र (भयानक) पुरुषों को जीतने वाला ।
'उग्रादेवं हवामहे'
ऋ. १.३६.१८

उग्रामरुतः - (१) उग्रवायु ।
(२) तेजस्वी विद्वान् -दया. ।
'यूयं न उग्रामरुतः सुचेतुना
अरिष्टग्रामाः सुमति विपर्तन'
ऋ. १.१६६.६
हे उग्रमरुतो ! (सुचेतुनाः) तथा सदा साथ रहने वाले (अरिष्ट ग्रामाः) आप हमारी बुद्धि (नः सुमतिं) परिपूर्ण करें (विपर्तन)-
अन्य अर्थ,
संघ शक्ति से सम्पन्न तेजस्वी विद्वानो ! (अरिष्ट ग्रामाः उग्रभरुतः) आप हमारी शिक्षा को (नः सुमतिम्) विज्ञान से (सुचेतना) परिपूर्ण करें (विपर्तन) ।

उग्री - उग्रशक्ति ।
'य उग्रीणामुग्रबाहुर्ययुः'
अ. ४.२४.२.

उचय - (१) वचन, उक्ति ।
'एताते अग्न उचथानि वेधः
जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।'
ऋ. १.७३.१०, ४.२.२०, मै.सं. ४.१४.१५, २४१.१३.
(२) प्रवचन, उपदेश, (३) अध्याय्य शिष्य ।
'स्वादिष्टा धीतिरुचथाय शस्यते'
ऋ. १.११०.१
स्वादिष्ट ज्ञान धारा प्रवचन, उपदेश या अध्याय्य शिष्य के लिए उपदेश की जाती है ।

उचथ्य - (१) वचनयोग्य, (२) स्तुतिपात्र ।
'उचथ्ये वपुषि यः स्वराट्'
ऋ. ८.४६.२८

उच्छन्ती - प्रकट होती हुई ।
'अतारिष्म तमसस्पारम्
अस्योषा उच्छन्ती वयुनाकृणोति'
ऋ. १.९२.६, १८३.६, १८४.६, ७.७३.१, मै.सं. २.७.१२, ९२.१७, का.सं. १७.१८, तै.आ. ६.६.२, आप.श्रौ.सू. १६.१९.८.
प्रभात बेला जिस प्रकार प्रकट होती हुई और अन्धकार को दूर करती हुई समस्त पदार्थों का ज्ञान कराती है, उसी प्रकार कन्या प्रथम वयस में बाल भाव का दूर करती हुई अन्य कर्मों और ज्ञानों को प्रकट करती है ।
(२) प्रकट करती हुई, अन्धकार दूर करती हुई, प्रकाश करती हुई ।
'उषा उच्छन्ती समिधाने अग्नौ'
ऋ. १.१२४.१

उच्छलंख - सिर के ऊपर के दोनों कपाल ।
'के नोच्छलंखौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम्'
अ. १०.२.१

उच्चंचमाना - उत् + सु + अञ्चमाना = उच्चंचमाना ।
अर्थ-ऊपर उठती हुई, ऊपर उठे शरीर वाली (२) पुलकित शरीर वाली, (३) कृषि आदि से

सम्पन्न पृथिवी ।
'उच्चञ्चमानापृथिवी सुतिष्ठतु'
ऋ. १०.१८.१२, अ. १८.३.५१, तै.आ. ६.७.१.
(४) उत्साह उत्पन्न करती हुई ।
(५) उत्तम पूज्य पद प्राप्त करती हुई ।

उच्चा – उच्चैः (ऊंचा) ।

उच्चाचकम् – (१) जिसके ऊपर चक्का लगा हो–कूप, (२) शरीर जिसके ऊपर शिर रूप चक्र है ।
'उच्चाचकम् परिज्मानम्'
ऋ. ८.७२.१०, साम. २.९५४.

उच्चाबुध्न – (१) वह रथ जिसका अवकाश उच्च हो –दया.
(२) ऊपर आकाश में मूल आधार वाला मेघ
'परावतं नासत्या नुदेथाम्
उच्चाबुध्नं चक्रथुः जिह्मबारम्'
ऋ. १.११६.९
हे सत्यविज्ञान के नियमों से युक्त या अश्विद्वय! तुम दोनों ऊपर आकाश में मूल आधार वाले (उच्चाबुध्नम्) सब की रक्षा करने वाले मेघ को दूर–दूर देशों तक ले जाते हो और से तिरछे जाने वाले बनाते हो ।

उच्छिष्टब्रह्म – (१) प्रलय के बाद शेष रह जाने वाला नेति नेति के बाद सबसे अतिरिक्त सत् ।
'उच्छिष्टे नाम रूप च
उच्छिष्टे लोक आहितः'
अ. ११.७.१

उच्छेषि – उच्छिष्ट रहने वाला, बचजाने वाला ।
'मैषामुच्छेषि किञ्चन'
अ. ११.९.१३

उच्चैस् – उत् + चि + डैस् (उदि येर्डैसिः) = उच्चै । अर्थ जो ऊंचा हो, उत्कृष्ट चिता हुआ ।
'उच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान'
ऋ. ५.३२.६
इन्द्र ने वज्र ऊंचा ठाकर वृत्र को मारा । अथवा, सूर्य ने मेघ को छिन्न भिन्न किया या करता है । अथवा, राजा चोर आदि को खूब धमका कर दण्डित करे ।

उच्चैर्घोष – ऊंची आवाज वाला ।
'उच्चैर्घोषो दुन्दुभिः सत्व नायन्'
अ. ५.२०.१, कौ.सू. १६.१.

उच्छोचनौः – उत् + शोचनौ । अति अधिक कान्ति देने वाले आत्मा और प्राण ।
'उच्छोचन प्रशोचनौ'
अ. ७.९५.१

उज्जिति – उत्तम विजय ।
'अग्नीषोमयो रुज्जितिम् अनूजेष्'
वाज. सं. २.१५

उज्जिहान – दूर–दूर तक ऊंची ओर फैलाता हुआ ।
'यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः'
ऋ. ५.१.१,अ. १३.२.४६, सा. १.७३.२.१०९६, वाज.सं. १५.२४, तै.सं. ४.४.४.२, मै.सं. २.१३.७, १५५.१५.

उज्जिहीते – अभि जिहीते–अभिलक्ष्य उत्पश्यति ।
(१) ऊपर देखता है –
(२) योग करता है –दया. ।
'उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव
पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी'
ऋ. १.१०५.१८, नि. ५.२१.
जैसे पीठ का रोगी, बढ़ई नीचे की ओर नहीं देखता (तष्टा पृष्ट्या मयी इव) वैसे ही चन्द्रमा नक्षत्र को देखकर भी ऊपर ही देखता है (निचाय्य उज्जिहीते) । अतः हे द्यावा पृथिवी ! इस कुदशा में मेरी यह दशा तुम दोनों जानो ।
जैसे पृष्टरोग चित्रानक्षत्र चन्द्रमा से योग करता है एवं अन्य नक्षत्र भी योग करते हैं । हे स्त्रीपुरुष ! तुम मेरी इस नक्षत्र विद्या को जानो ।
(३) ओहाङ् (गत्यर्थक) के लट् प्र.पु.ए.व. में अभ्यास का इत् होकर जिहीते बनता है अर्थ उद्गच्छति (ऊपर जाता है)

उज्जेषी – उत्तम पदों का जय करने वाला ।
'च शाकी चोज्जेषी'
वाज.सं. १७.८५

उत् – (१) ऊपर ।
'वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च'
ऋ. ८.१९.२३
'उदुज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत्'
ऋ. ७.७६.१, नि. ११.१.
अमृतत्वसाधक सूर्य (अमृतंज्योतः) ऊपर की ओर (उत् उ)उश्रयण करता है (अश्रेत्) (२) उद्ग्रहण अर्थ में । जैसे 'वि' से विग्रह, 'नि'

से निग्रह और 'अव' से अवग्रह का बोध होता है। वैसे उत् से उद्ग्रह का बोध होता है।

(३) एक उपसर्ग जो ऊपर के अर्थ में प्रयुक्त है।

उत् – (अ) और।

'ऋधकया ऋधगुता शमिष्ठा'

वाज.सं. ८.२०, श.ब्रा. ४.४.४.१२, नि. ४.२५.

तूने हवियों को पृथक कर देवों के पास पहुँचा या और हवियों की त्रुटियों को दूर कर उन्हें समृद्ध बनाया।

(२) अपि, (३) वितर्क, (४) अपिच, (५) अतः

अपि के अर्थ में–

'उतत्वः पश्यन्नददर्शवाचम्
उतत्वः श्रृण्वन्नश्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे
जायेव पत्य उशानी सुवासाः'

ऋ. १०.७१.४, नि. १.१९.

कोई एक पुरुष (त्वः) पढ़कर तथा मन से पर्यालोचन कर (पश्यन् उत) वेद की वाणी नहीं समझता (वाचं न ददर्श), इसी प्रकार कोई इस वाणी को (एनाम्) सुनता हुआ भी नहीं सुनता। किसी को यह वेदवाणी वाणी के शरीर, आत्म तत्व या भाव को (तन्वम्) विशेष रूप से स्पष्ट कर देती है (विसस्रे) जैसे स्त्री पति को कामना करती हुई (उशती जाया पत्ये) ऋतुकालों में सुन्दर वस्त्र पहनती है और पति स्त्री की बात सुनता है।

अपि च के अर्थ में

'उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम्
न्यैरयत् स्थीतमः'

ऋ. ६.५६.३, नि. २.६.

और (उत) प्रेरक (सूरः) तथा अतिशय रथों वाला या नेतृतम (रथीतमः) पर्व वाले या प्रकाश वाले आदित्य के लिए (परुषेगवि) सुवर्णमय (हिरण्ययम्) उसके रथ के काल रूपी चक्के नित्य चलाता है (अदः चकं न्यैरयुत्)

पुनः–

'उतस्मैनं वस्त्र मथिं न तायुम्
अनुक्रोशन्ति क्षितयो भरेषु
नीचाचमानं जसुरिं न श्येनम्
श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्'

ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४.

अतः के अर्थ में 'उत' का प्रयोग

'सा ते जीवातुरुततस्य विद्धि'

ऋ. १०.२७.२४.

हे अन्तरात्मन् तेरी वह आदित्यात्मिका देवता (ते सा) जीवन का हेतु है (जीवातुः) अतः (उत) उसके उपकारों को मत भूल जाना (तस्य विद्धि)।

उतम् – भौहों का बाल।

'कुवलैरुतानि'

वाज.सं. १९.८९

उतवा – अपि च, अपिवा।

उतस्म – और, अपि च। सायण ने स्म का अर्थ शीघ्र किया है।

'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुम्
अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनम्।
श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्'

ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४.

और (उतस्म) उस दधिक्तावा इन्द्र को देख युद्धों में वैरी चिल्लाने लगते हैं (एन भरेषु अनुक्रोशन्ति) जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर को देखकर लोग चिल्लाते हैं (वस्त्रमथिं तायुं क्षितयो न) तथा नीचे नीचे उड़ते हुए पालतू बाज के छोड़े जाने पर और पक्षी क्रन्दन करने लगते हैं (नीचायमानं जसुरिं श्येनं न)। ऐसे इन्द्र की हम धन एवं पशुओं के यूथ का लक्ष्य कर प्रार्थना करते हैं (श्रवःपशुनत् यूथं च अच्छा)।

स्वा. दयानन्द का अर्थ–और (उत) चोर की तरह (तायुं न) युद्धों में (भरेषु) वस्त्र तक चुरा लेने वाले (वस्त्रमथिम्) नीचता की ओर जाने वाले (नीचायमानम्) तथा मुक्त किये बाज की तरह हिंसक (जसुरिं श्येन न) जिस राजा को प्रजा या शत्रुजन (क्षितयः) कोसते हैं (अनु क्रोशन्ति) और जिसकी पशुतुल्य कीर्त्ति या धन को (पशुमत् श्रवः च) अथवा पशुतुल्य कर्मचारी वर्ग या सैनिक वर्ग को कोसते हैं। वह राजा शीघ्र (स्म) विनष्ट हो जाता है। (विनश्यति)।

उत्कस – उखड़ जाना।

'उत्कसन्तु हृदयानि'

अ. ११.९.२१

उत्क्रम – (१) उत्तम पद या स्थान पर क्रमण करने में समर्थ (२) उन्नति रूपा स्त्री ।
'उत्क्रमोऽसि उत्क्रमाय त्वा'
वाज.सं. १५.९.

उत्क्रान्ति – (१) उन्नति करने वाली स्त्री (२) उन्नति क्रिया (३) ऊंचे प्रदेशों में क्रमण करने में समर्थ ।
'उत्क्रान्तिरसि उत्क्रान्त्यैत्वा'
वाज.सं. १५.९

उत्तत – पद प्रतिष्ठा में उठा हुआ ।
'यदुत्ततं नितत्तनु'
अ. ७.९०.३

उत्तम्भनम् – ऊपर उठाने वाला ।
'वरुणोस्योत्तम्भनमसि'
वाज.सं. ४.३६, श.ब्रा. ३.३.४.२५.

उत्तम – (१) सबमें उत्कृष्ट शरीर वाला ।
'उत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व'
वाज.सं. १५.७
(२) उत्तम मोक्ष विषय सूक्त ।
'उत्तमेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.१२,
(३) सबसे उत्कृष्ट ।
'अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यम्'
ऋ. १.१६३.७, वाज.सं. २९.१८, वाज.सं.(का.) ३१.३.३०, तै.सं.४.६.७.३, का.सं. (अश्व). ६.३.
हे अश्व ! इस समय मैं तेरे उत्तम रूप को देखता हूँ (४) सब से ऊपर वाला ।
'उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्'
ऋ. १.२४.१५, अ. ७.८३.३, १८.४.६९, वाज.सं. १२.१२, तै.सं. १.५.११.३, का.सं. ३.८,१६.८, मै.सं. १.२.१८: २८.८, श.ब्रा. ६.७.३.८.
हे आदित्य (वरुण) मेरे ऊपर वाले बन्धन को खोल ।

उत्तम पाश – पुण्य कर्म के फलस्वरूप देवलोकादि शुभकर्मबन्धन ।
'अधमं पाशमुत्तमम्'
अ. २.८.१, ३.७.४.

उत्तमादिक् – सबसे ऊंची दिशा ।
'स उत्तमां दिशमनुव्यऽचलत्'
अ. १५.६.७.

उत्तमाप्य – उत्तमजनों से प्राप्य मोक्षपद ।
'उतेदमुत्तमाय्यम्'
ऋ. ९.२२.६

उत्तर – (१) शत्रु के बल से अधिक बलवान् ।
'सोमपा उत्तरो भवन्'
ऋ. ८.१४.१५, अ. २०.२९.५.
(२) कर्मकाण्ड या यज्ञविषयक सूक्त ।
'उत्तरेभ्यःस्वाहा'
अ. १९.२२.१३.
(३) श्रेष्ठतर ।
'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः'
ऋ. १०.८६.१-२३ अ. २०.१२६.१-२३, का.सं. ८.१७,नि. ११.३८,३९, १२.९,२८, १३.३,४.
(इन्द्र सबसे बढकर है)

उत्तरण – भवसागर से ऊपर उठाने वाला ।
'नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च'
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२, मै.सं. २.९.८, १२६.१०, का.सं. १७. १५.

उत्तरद्रिः – ऊपर का जबड़ा ।
'यदुत्तरद्रावुपरश्च खादतः'
अ. ६.४९.२

उत्तरवेदी – उत्तरवेदी ।
'अन्तर उत्तर वेद्या रूपम् कारोतरो भिषक्'
वाज.सं. १९.१६

उत्तर समुद्रः – ऊपर का समुद्र ।
'स उत्तरस्मादधरं समुद्रम्
अपो दिव्या असृजत् वर्ष्या अभि'
ऋ. १०.९८.५, नि. २.११.
उस देवापि ऋषि ने ऊपर के समुद्र से नीचे के समुद्र में दिव्य वर्षा के जल बरसाए ।

उत्तरसुम्न – भविष्य में प्राप्त होने वाला या उत्कृष्ट सुख ।
'मा दुरेवा उत्तरं सुम्न मुन्नशन्'
ऋ. २.२३.८

उत्तानहस्त – हाथ को ऊपर की ओर बढ़ाए हुए प्रणाम मुद्रा में स्थित
'उत्तान हस्ता नमसोपसद्य'
ऋ. ३.१४.५, वाज.सं. १८.७५.
'उत्तानहस्तो नमसा विवासेत्'
ऋ. ६.१६.४६.

उत्तरहनु – ऊपर का जबड़ा ।
'द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्या धरहनुः'

अ. ९.७.२.

उत्तरा – उत्तर और अधर सापेक्ष शब्द हैं । उत्तर का अर्थ ऊपरी या उपरिष्ठान् है ।
(१) आगे आने वाले ।
'आ घा ता गच्छान् उत्तरा युगानि'
ऋ. १०.१०.१०, अ. १८.१.११, नि. ४.२०.
आगे ऐसे युग आवेंगे (२) उर्ध्वलोक में तैराने वाली कर्मविद्या, (३) ब्रह्म विद्या ।
'उत्तराहमुत्तरे'
ऋ.१०.१४५.३, अ. ३.१८.४, आप.मं.पा. १.१५.३.
(४) उत्तरा नामक नक्षत्र ।
'ऊर्ज देव्युत्तरा आ वहन्तु'
अ. १९.७.४

उत्तराद्यौः – (१) ऊपर का आकाश, (२) सर्वोपरि शासक शक्ति ।
'अमाय तो मरुतो यातवे द्यौः
जिहीत उत्तरा बृहत्'
ऋ. ८.२०.६

उत्तराधूः – उत्कृष्ट धारण शक्ति ।
'दिवश्चिन्मे बृहत उत्तराधूः'
ऋ. १०.२८.६

उत्तरावत् – (१) उत्कृष्ट ।
'उत्तरं राष्ट्र प्रजयोत्तरावत्'
अ. १२.३.१०
(२) उत्कृष्ट कर्मों से युक्त ।
'अन्वारभेथां वय उत्तरावत्'
अ. १२.३.४७

उत्तरासद् – उत्तर दिशा में विराजने वाला ।
'या देवा मिजावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरादसदः'
वाज.सं.९ .३६, वाज.सं.(का.) ११.१.२, श.ब्रा. ५.२.४.६.

उत्तस्थिवान् – दूसरे राष्ट्र पर चढ़ाई करने वाला ।
'देवजनाः सेनयोत्तस्थिवांसः'
अ. ६.९३.१

उत्पतन्ति – ऊपर जाती हैं । सूर्य की किरणें ।
'अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति'
ऋ. १.१६४.४७, अ. ६.२२.१,९. १०.२२, १३.३.९, मै.सं. ४.१२.५, १९३.७, का.सं. ११.९ ,१३. नि. ७.२४.
सूर्य की किरणें लोकों का जल लेकर अन्तरिक्ष में रखती हुई सूर्य लोक में चली जाती हैं ।

उत्स – (१) कोष, भण्डार ।
'उत्सो देव हिरण्ययः'
ऋ. ८.६१.६,९. १०७.४, अ. २०.११८.२, साम. १.५११, २.२५, ९३०.
(२) उत् + सृ + ड = उत्स, अथवा उत् + सद् + ड उत्स, अथवा उत् + सद् + ड = उत्स (स्पन्द के य का बाहुलक नियम से लोप । अर्थ-(२) जिससे उदक निकलता है (उत्सरति) या (३) अवसन्न होकर मेघ ऊपर जाता है या (४) जो पृथ्वी को उन्नयाछिन्न करता है । आजकल इस शब्द का अर्थ है-झरना, सरोवर, जलप्राय भूभाग
(२) मेघ ।
'अदर्दरुत्सम् असृजो वि खानि'
ऋ. ५.३२.१, साम. १.३१५, नि. १०.९.
तूने मेघ को बार बार विदीर्ण किया ।
(३) कूप, (४) स्तोत्र ।
'विद्या तमुत्सं यत आजगन्थ'
ऋ. १०.४५.२, वाज.सं. १२.१९, तै.सं. ४.२.२.१, का.सं. ९.१९,१६.९, श.ब्रा. ६.७.४.४, आप.मं.पा. २.११.२२.
हे मन्यु ! हम उस कूप को या स्तोत्र को जानते हैं जहां से तू हुआ है ।
(४) ऊपर उठता हुआ ।
'बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम्'
ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.
सूर्य की किरणों ने मिल कर उठते मेघ को बहुत जल दिया है । (५) जल ।
'तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे'
ऋ. ५.५७.१, नि. ११.१५, कौ.ब्रा. २०.४.
जिस प्रकार वर्षा ऋतु में द्युलोक से जल (उत्साः) जलार्थी लोक के लिए (उदन्यवे) आते हैं ।

उत्सव – उत् + सु + अच् = उत्सव । हर्ष का अवसर ।
'तम् अप्सन्त शवस उत्सवेषु'
ऋ. १.१००.८.
हर्षों के अवसरों पर और संग्राम के कालों में उसी की शरण में रक्षा प्राप्त करने के लिए आते हैं ।

उत्सधि – (१) उत्साःकूपाः धीयन्ते यस्मिन् भूभागे (जिस भूभाग में कूप हो) ।
(२) ऊंचे स्थान पर विद्यमान सर्वोच्च परमज्ञानान्द रसों को कूप के समान धारण करने वाला परमेश्वर ।
(३) ऊपर अन्तरिक्ष में कूप के समान अधिक जल को धारण करने वाला मेघ ।
'ब्रह्म कृण्वन्तो गोतयासो अर्कैः
ऊर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै'
ऋ. १.८८.४.
वेदाध्येता उत्तम वाणी को धारण करने वाले विद्वान् (गोतमासः) उत्तम वेदमन्त्रों द्वारा (अर्कैः) ज्ञान रस का पान करने और औरों को पान कराने के लिए (पिबध्यै) सबसे ऊपर उच्च स्थान पर विराजमान सर्वोच्च परमानन्द रसों को कूप के समान धारण करने वाले परमेश्वर को (उत्सधिम) उत्तम रीति से स्तुति करते हैं (नुनुद्रे) ।
(४) कूप प्रदेश ।

उत्तान – (१) उत्ततान –ऊर्ध्वतान ऊपर की ओर तनाहुआ उत्तान (२) उत्तः उन्नः क्लिन्नः रसेन (रस से क्लिन्न) तानः विस्तारः यस्य । जिसका विस्तार रससे ओत प्रोत है वह उत्तान है । उत् + न = उन्न । पृषोदरादि से न का लोप । परस्पर तना हुआ (३) ऊर्ध्वं तानम् यस्य सः जिसका ऊपर की ओर विस्तार हो ।उत् उपसर्ग ऊर्ध्ववाची है ।
'द्यौर्मेपिता जनिता नाभिस्त्र
बन्धुर्मेमाता पृथिवी महीयम्
उत्तानयोश्चम्वो र्योनिन्तः
अत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्'
ऋ. १.१६४.३३, नि. ४.२१.
दीर्घतमा ऋषि कहते हैं –मेरा द्युलोक पिता है, अर्थात् रक्षक या पालयिता (मे द्यौः पिता), वह उत्पन्न करने वाला भी है (जनिता) । इस द्युलोक में (अत्र) नाभिभूत भूमि का रस रहता है । (नाभिः) जिससे अन्न, अन्न से रेत और रेत से मनुष्य होता है । द्युलोक स्थित रस से सब कुछ उत्पन्न होता है अतः वह जनयिता है । यह बन्धुरुपिणी (इयं बन्धुः) बड़ी पृथ्वी (महती पृथ्वी) मेरी माता है (मे माता) । भोग–साधन अर्थात् हमें खिलाने वाले तथा ऊपर तने (उत्तानयोः चम्वोः) द्यौ और पृथिवी के मध्य में (अन्तः) सभी जीवों के निर्माण तथा आश्रय का स्थान अंन्तरिक्ष है (योनिः) । इस अन्तरिक्ष में (अत्र) द्युलोक नाम से प्रख्यात पर्जन्य अर्थात् मेघ (पिता) दूर निहित पृथ्वी पर (दुहितुः) सर्वोत्पादन वृष्टिका जल बरसता है (गर्भम् आधात्) । सूर्य और पृथ्वी के द्वारा ही समस्त औषध वनस्पतियों उत्पत्ति होती है ।
'औषधिभ्योऽन्नम् अन्नात् रेतः रेतसः पुरुषः ।'
सूर्यरूपी पिता भूमिरूपमाता में वृष्टि रूपी रस का सिञ्चन करता है ।

उत्तानपद – (१) ऊपर की ओर फैलाने वाले चरणों का किरणों वाला सूर्य, (२) ऊर्ध्व आकाश में गति करने वाला सूर्य चन्द्र आदि
'तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि'
ऋ.१०.७३.३

उत्तानपर्णा – (१) ब्रह्मविद्या, उच्चहृदयों में ब्रह्म विद्या के पूर्ण प्रज्ञान रस खिलते हैं (२) एक औषधि जिसके पत्ते ऊपर फैले रहते हैं ।
'उत्तान पर्णे सुभगे देवजूते सहुस्वति ।'
ऋ. १०.१४५.२, अ.३.१८.२, आप.मं.पा.१.१५.२.
(३) ऊपर की ओर फैलने ज्ञानमय पत्रों वाली उपनिषद् ब्रह्मविद्या

उत्तानपदा – (१) उत्तानपाद नामक एक राजा जिसका पुराणों में भी वर्णन है । उन्ही से भूमि की उत्पत्ति हुई–सा. ।
'भूर्जज्ञ उत्तानपदो
भुव आशा अजायन्त'
ऋ. १०.७२.४.
उत्तानपाद से भूमि की उत्पत्ति हुई और भूमि से दिशा हुई ।

उत्तानशीवरी –ऊंचे खण्ड वालों में स्थित जल, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र की ज्योति में खुले रहने वाले जल ।
'आप उत्तान शीवरीः'
अ.३.२१.१०.

उत्ताना – विस्तृत भूमि ।
'न्यङ् उत्ताना मन्वेति भूमिम्'
ऋ. १०.२७.१३

उत्ताने –ऊपर तने द्यौ और पृथिवी ।

'उत्तानयोश्चम्वोः योनिरन्तः'
ऋ.१.१६४.३३, अ.९.१०.१२, नि.४.२१.
ऊपर तने भोग-साधन द्यौ और पृथ्वी के बीच में यह अन्तरिक्ष है (योनिः)।

उत्थाता - प्राण।
'उत्थातुरब्रुवन् पद'
अ। ९.४.१४

उत्पारण - शरीर त्याग के बाद की जीवन-यात्रा।
'उतापरणस्य यो वेद तमग्निम्'
अ. ५.३०.१२

उत्साद - (१) उखाड़ने का व्यापार (२) शत्रु को उखाड़ने की शक्ति।
'जिह्वाया उत्सादम्'
वाज.सं. २५.१, मै.सं.३.१५.१: १७७.८
(३) विनाश कारी कार्य।
'उत्सादेभ्यः कुब्जम्'
वाज.सं.३०.१०., तै.ब्रा.३.४.१६
(४) शरीर का छेदन प्रदेश
'होता यक्षदश्विनौ छागस्य
हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं'
वाज.सं.२१.४३., मै.सं.४.१३.७: २०८.३, तै.ब्रा.३.६.११.१.

उत्सादत् - (१) राजा के विरुद्ध सिर उठाने वाल देश (२) उखड़ने वाला अर्थात् निर्बल, (३) हानि प्राप्त करने वाला, (४) शरीर का छेदन प्रदेश।
'शितामत उत्सादतो ऽङ्गादङ्गात्'
वाज.सं.२१.४३
अश्विनीद्वय बकरे का हवि पंजरी से (पार्श्वतः), कटिप्रदेश से (शोणितः), बाहु प्रदेश से (शितामतः), और छेदन प्रदेश से (उत्सादतः) खावें (अस्ताम्)।

उत्स्याः - विशेष वेग से बहने वाली जलधाराएं।
'शमु ते सन्तु उत्स्याः'
अ.१९.२.१

उत्तिरः - शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ।
'सहस्रपर्ण उत्तिरः'
अ.१९.३२.१

उत्थित - (१) व्यापार से उठाया हुआ नफा। Profit
'शुनं नो अस्तु चरित मुत्थितञ्च'
अ. ३.१५.४
(२) गौ के उठने का रूप।
'अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना'
अ. ९.७.१९

उत्पिपानः - बढ़ता हुआ।
'अभिक्रन्दस्तनयोत्पिपानः'
अ. ५.२०.७

उत्सित - बंधा हुआ।
'त्रयस्त्रिभिरुत्सिता येभिरासन्'
अ. ६.११२.२

उत्सिनाति - बांधता है। 'सि' धातु बांधना अर्थ में आया है
'मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति'
ऋ. १.१२५.२, नि. ५.१९.
जैसे रस्सी से पक्षी को बांधते हैं। उत्सि सृप्सत् -ऊपर चढ़ने की इच्छा करने वाला।
'मायाभिरुत् सिसृप्सतः'
ऋ. ८.१४.१४, अ. २०.२९.४

उत्तुदः - उत्तमरीति से व्यथा देने या प्रेरणा करने वाला उत्तेजक काम।
'उत्तुदस्त्वोत् तुदतु'
अ. ३.२५.१

उत्कूल - (१) ऊंचा स्थान।
'उत्कूल निकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम्'
वाज.सं. ३०.१४
(२) नदी के किनारे को लांघ कर।
'उत्कूलमुद्वहोभव'
अ. १९.२५.१

उतोनुचित् - और।
'उतोनुचित् यओजसा'
ऋ. ८.४०.१०

उद् - नि और अब का प्रतिलोम
आधुनिक अर्थ- (१) स्थान में उच्चतर का सूचक, (२) ऊपर, (३) स्थान विशेष से निकलना, (४) ऊपर की गति, (५) आश्चर्य, (६) मोक्ष, (७) वृद्धि।

उद - जल।
'उदेव यन्त उदभिः'
ऋ. ८.९८.७, अ. २०.१००.१, साम. १.४०६, २.६०.

उदक् - उदय को प्राप्त करने वाला।
'तद् विप्रो अब्रवीत् उदक्'

अ. २०.१२८.४, शां.श्रौ.सू. १२.२० २२.

उदक – (१) जल जिसे उत् अर्थात् ऊपर चढ़ाया जाता है–जिसे किरणें समुद्र से ऊपर उठा लेती है ।

'उदानिषुर्महीरिति तस्मादुदकमुच्यते'

अ. ३.१३.४, तै.सं. ५.६.१.३, मै.सं. २.१३.१, १५२.१४, का.सं. ३९.२.

(२) गहो प्रदेश से ऊपर निकाला गया जल

'उदकाय स्वाहा'

वाज.सं. २२.२५

(३) उन्द + क्वु = उद्क । उन्द (क्लेदनार्थक) धातु से निपातन द्वारा उदक बना है ।

उन्नति क्लेदयति (भिंगोता है), पढ़ाता है, सींचता है ।

उदक्तः – (१) ऊपर से , (२) उत्तर ।

'प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तः'

ऋ. ७.१०४.१९, अ. ८.४.१९

पुनः–

'त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तः'

ऋ. १०.८७.२०, अ. ८.३.१९

उदत्कात् – उत्तर से ।

'आश्विनायातम् अधरादुदक्तात्'

ऋ. ७.७२.५, ७३.५

उदकात्मा – (१) जलमय देहवाली ओषधि–जल के बिना न जीने वाली ।

'अवकोल्बा उदकात्मान ओषधयः'

अ. ८.७.९

उदगात् – उदय लिया ।

'चित्रं देवानामुदगादनीकम्'

ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७.१४, आ.सं. ५.३, वाज.सं. ७.४२, १३.४६, तै.सं. १.४.४३.१, २.३.८.२, ४.१४.४, मै.सं. १.३.३७:, ४३.८, ४.१४, ४.२२०.१३, का.सं. ४.९, २२.५,६,८, ऐ.ब्रा. ४.९.११, श.ब्रा. ४.३.४.१०, ७.५.२.२७, तै.ब्रा. २.८.७.३, ऐ.आ. ३.२.३.१०, तै.आ. १.७.६, २.१३.१, आश्व श्रौ.सू. ३.८.१,९ .८.३, वै.सू. ३३.६, आप.श्रौ.सू. १९.२३.४, नि. १२.१६.

किरणों का विचित्र या पूजनीय समूह उदित हुआ ।

उद – (१) आदर सत्कार के लिए जल ग्रहण करने वाला (२) अभिषेचक प्रजाजन

'उदग्राभस्य नमयन् वधस्नैः'

ऋ. ९.९७.१५, साम. २.१५८.

उदङ् – उत्तम मार्ग से जाने वाला पुरुष ।

'यदुदञ्चो वृषाकपे
गृहमिन्द्राजगन्तन'

ऋ. १०.८६.२८, अ. २०.१२६.२२, नि. १३.३.

उत् + अञ्च् + क्विप् = उदञ्च । उत्तर दिशा ।

'राजा ववृत्रं जंघनत् प्रागपागुदक्'

ऋ. ३.५३.११

उदञ्चः – (१) सायण ने इसका अर्थ 'उत्तर से' किया है, (२) जयदेव शर्मा ने प्रथमा बहुवचन का रूपमान इसका 'उर्ध्वगामी मुक्तात्मा' किया है ।

सायण के अर्थ के अनुसार सूर्य के उत्तर से दक्षिण की ओर जाकर अस्त होने की बात आई है । सूर्य तो पूर्व से पश्चिम में ही अस्त होते हैं ।

'यदुदञ्चो वृषाकपे
गृहमिन्द्राजगन्तन'

ऋ. १०.८६.२८.

हे आदित्य ! जब तू उत्तर से दक्षिण की ओर भुवन की परिक्रमा करता है । अस्त हो घर पर आया ।

हे धर्म में श्रेष्ठ परमेश्वर ! (वृषाकपे) जब उर्ध्वगामी मुक्तात्मा (उदञ्च) ब्रह्म धाम में जाते हैं (गृहम् आ जगन्तन) ।

उदञ्चनः – (१) ज्ञानों का पात्रवत् उत्तम रीति से प्राप्त करने वाला, (२) उत्तमपद को प्राप्त करने वाला ।

'विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः'

ऋ. ५.४४.१३

उदधि समुद्र – ज्वार के साथ उमड़ता सागर ।

'समुद्रस्योदधेरिव'

अ. १.३.८

उदन् – जल । उद्क शब्द का उदन् ।

'उद्नाग्निमिव शमय'

अ. ७.४५.१

'मत्स्यं न दीन उदनिक्षियन्तम्'

ऋ. १०.६८.८, अ. २०.१६.८, नि. १०.१२.

मछआ सूखे जाल में जैसे मछली देखता है ।

उदन्य – उदक + यत् = उदन्य । अर्थ–समुद्र ।

Ocean और उदन्य की समता विचारणीय है।

उदन्यजा – (१) समुद्र के दो रत्न या मोती।
'उदन्य जेव जेमना मदेरू'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
(२) उदके साधु उदन्य समुद्रः तस्मिन् जातौ उदन्यजौ (समुद्र से उत्पन्न दो रत्न चन्द्रमा, रत्न) उदक + यत् = उदन्य, उदन्य + जन् + सड = उदन्यज। इसी के द्विवचन में उदन्यजा रूप है।

उदन्या – जल-सम्बन्धी, जल की।
'धारा उदन्या इव'
ऋ. २.१७.३, का.सं. ३५.१२, आप.मं.पा. १.५.५, हि.गृ.सू. १.२०.५, २९.२, २.१.३.

उदन्युः – (१) आदरार्थ जल लिये हुए।
'हरिं नवन्तेऽव ता उदन्युवः'
ऋ. ९.८६.२७
(२) उदकम् इच्छन् (उदक का इच्छुक-जलार्थीजनता।
'तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे'
ऋ. ५.५७.१, नि. ११.१५, कौ.ब्रा. २०.४.
(३) चातक-दया.

उदन्वती – (१) प्रचुर जल वाली नदी।
'उदन्वती रनुदकाश्चयाः'
ऋ. ७.५०.४
(२) जलवाली, (३) भोगमयी, (४) तामसी, (५) मेघमयी द्यौ।
'उदन्वती द्यौरवमा'
अ. १८.२.४८

उदनिमान् – (१) जलवाला मेघ (२) उत्तम पद पर ले जाने वाले कर्म से युक्त।
'यो अब्दिमां उदनिमां इयर्ति'
ऋ. ५.४२.१४

उदप्रुत – (१) जल से भींगा।
'उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः'
ऋ. १०.६८.१, अ. २०.१६.१, तै.सं. ३.४.११.३, मै.सं. ४.१२.६, १९६.१८, का.सं. २३.१२, गो.ब्रा. २.४.१६, आश्व श्रौ.सू. ६.१२, शां.श्रौ. सू. ९.३.४, १२.१२.९.
(२) जल से भरी नदी।
'प्र धेनव उदप्रुतोनवन्त'
ऋ. ७.४२.१
(३) जल से पूर्ण समुद्र।
'वनक्रक्षमुदप्रुतम्'
ऋ. ९.१०८.७, साम. १.५८०, २.७४४.

उदपुनः – जल से पूर्ण मरुत्।
'उदवाहा उदप्रुतः'
अ. १८.२.२२

उदल्पुत – जल में तैरने वाला।
'उदप्लुतमिवदारु'
अ. १०.४.३,४

उदपू – जल से प्रजा का पालन या पवित्र करने वाला।
'उदपूरसि मधुपूरसि'
अ. १८.३.३७

उदमेघ – यस्य उदकैः मिह्यते सिच्यते जगत् स समुद्रः (समुद्र जिसके जलों से संसार सिक्त होता है)-दया.
'तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे
रयिं न कश्चित् ममृवां अवाहाः'
ऋ. १.११६.३, तै.आ. १.१०.२.
जैसे कोई मरता हुआ (ममृवान्) पुरुष अपनी जीवन रक्षा के लिए धन त्याग देता है (भुज्युं रयिम् अवाहाः) और जैसे समुद्र में (उदमेघे)

उदयन् – अर्थ-ऊपर मोक्ष धाम की ओर ले जाने वाला उत्तरायण मार्ग।
'विद्वानु दयनं पथः'
अ. ५.३०.७

उदर – (१) उदर, पेट, (२) अन्नों को लेकर 'उद' अर्थात् 'रस' ग्रहण करने वाला और मल को बाहर निकालने वाला।
'आसन्दी नाभिरुदरं न माता'
वाज. सं. १९.८६, मै.सं. ३.११.९, १५३.१४, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २. ६.४.३.
'अस्माकमुदरेष्वा'
ऋ. १.२५.१५
(२) हृदय।
'क्रत्व इत् पूर्णमुदरम्'
ऋ. ८.७८.७

उदरम् – अर्थ-उठूं।
'अच्छा न हूत उदरम्'
ऋ. ४.१५.७

उदारदार – अतिसार, उदर रोग ।
'उदरदारस्त्वा हनिष्यति'
अ. ११.३.४२

उदर्क – उदितसूर्य, सूर्योदय का होता ।
'वायोरिव सूनृतानामुदर्के
ता अश्वदा अश्नवत् सोम सुत्वा'
ऋ. १.११३.१८.
परमेश्वर का उपासक (सोम सुत्वा) उन व्यापक सूर्य वत या प्राण को देने वाली (ता अश्वदा) अर्थात् उसको प्रकट करने वाली उषाओं को वायु या प्राण के समान (वायोः इव) उत्तम स्तुति वाणियों का उच्चारण करते करते (सूनृता नाम्) सूर्य के अस्त हो जाने पर (उदर्के) भोग करें अर्थात् प्राणायाम, स्तुति, भजन, कीर्ति तथा मन्त्रोच्चारण करते करते ध्यानी पुरुष को प्रभात वेला में उषाओं का आत्मिक सुख प्राप्त हो । अथवा, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला ब्रह्मचारी या ऐश्वर्य वान् पुरुष ही ज्ञानवान गुरु के समान (वायोरिव) वह वाणियों को उत्तम रीति से प्राप्त करके स्नातक बन अश्वादि पशुओं को देने और पालने वाली स्त्रियों को पतिरूप में प्राप्त हो ।

उदर्य – उदरस्थ यन्त्र ।
'नम उदर्येण'
वाज.सं. २५.८

उदव – अच्छी प्रकार से सुरक्षित रख ।
'अस्माकमंशमुदवा भरे भरे'
ऋ. १.१०२.४
प्रत्येक संग्राम में हमारा अंश उत्तम प्रकार से सुरक्षित रख ।

उदवन् – उत् + अवन् । ऊपर झपटता हुआ ।
'उदवन्तौ वृकाविव'
अ. ७.९५.२

उदव्रज – (१) जल के गमन योग्य मार्ग आकाश । (२) नदी ।
'उदव्रजे वर्चिनं शम्बरञ्च'
ऋ. ६.४७.२१

उदवाह – उदक + वत् + अण् = उदवाह । जल को वहन करने वाला मेघ
'दिवा चित्तमः कृण्वन्ति
पर्जन्येनोदवाहेन'
ऋ. १.३८.९, तै.सं. २.४.८.१, मै.सं. २.४.७, ४४.१६, का.सं. ११.९,
वायु जल युक्त मेघ से दिन में ही अन्धकारा कर देते हैं ।

उदवाहाः – जल उठाने वाले वायु मरुत् ।
'उदवाहा उदप्रुतः'
अ. १८.२.२२

उदशेम – उत् + अशेम । उन्नत, उत्कृष्ट पद प्राप्त करें ।
'भगभक्तस्य ते वयम्
उदशेम तवावसा ।'
ऋ. १.२४.५

उदश्रेत् – उदशि श्रियत्-उच्छ्रयति ऊर्ध्वम् उपनयति (ऊपर ले जाता है) । 'श्रि' धातु के लुङ.प्र.पु.ए.व. का छान्दस रूप है ।

उदहार्य – जल ढोने वाला कहार ।
'ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं
कुम्भेनेवोदहार्यम्'
अ. १०.८.१४

उदहारी – जल लाने वाली कहारिन ।
'उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्युः
स दृष्टो मृडयातिनः'
वाज.सं. १६.७, तै.सं. ४.५.१.३, का.सं. १७.११, मै.सं. २.९.२, १२१.१२.

उद्रः – (१) प्रचण्ड ।
'उद्रः शीपाल मिववात आजत्'
ऋ. १०.६८.५, अ. २०.१६.५
(२) जल से पूर्ण ।
'उद्रो दिव्यस्य नोधातः'
अ. ७.१८, १९.१

उद्धर्षी – अति अधिक कामी ।
'उद्धर्षिणं मुनिकेशम्'
अ. ८.६.१७

उद्भयस – दूसरों में भय उत्पन्न करने में समर्थ सैनिक ।
'स्वभ्यसा ये च उदभ्यसा'
अ. ११.९.१७

उघ्न् – दलदल भूमि ।
'अपां त्वोघ्न् त्वा सादयामि'
वाज.सं. १३.५३, तै.सं. ४.३.१, मै.सं. २.७.१८, १०३.६, का.सं. १६.१८, शा.ब्रा. ७.५.२.४७.

उद्यत – उत्तम उत्तम व्यवस्था ।
'स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्'
ऋ. १०.८.२

उद्यत् ऋतु – शिशिर ऋतु जिसमें सूर्य उत्तरायण को जाता है । अज पञ्चौदन का एक रूप ।
'एषवा उद्यन्नामर्तुर्यदजःपञ्चौदनः'
अ. ९.५.३५

उद्यतं ब्रह्म – श्रेष्ठ वेदवाणी ।
'इन्द्राय ब्रह्मोद्यतम्'
ऋ. ८.६९.९, १.८०.९, अ. २०.९२.६

उद्यत् स्रुक् – (१) जिसकी स्रुवा यज्ञ के लिये सदा गृहीत हो, यज्ञानुष्ठाता, (२) ऊर्ध्वमस्तक भाग में वीर्य को दमन करने वाली भृकुटि (३) ब्रह्म रन्ध्र जिसमें योग द्वारा समस्त प्राण वृत्तियों को रोका जाता है ।
प्राण एव स्रवः । सोऽयं प्राणः सर्वाणि अंगानि अनुसंचरन्ति ।
'योषावैस्रुक् वृषा स्रुवः'
श.ब्रा. १.३.१.९
'उद्यतेस्रुचे भवसिश्रवाय्यः'
ऋ. १.३१.५
हे विज्ञानवान् परमेश्वर या अग्नि ! तू यज्ञानुष्ठाता के लिए सुनने सुनाने योग्य है । अथवा ऊर्ध्व मस्तक भाग में वीर्य को दमन करने वाली भृकुटि या ब्रह्मरन्ध्र में समस्त प्राण वृत्तियों को रोकने वाले योगियों के लिए श्रवण करने, साक्षात्कार करने और दूसरों को बतलाने योग्य होता है ।

उद्यति – (१) उत्थान, (२) उद्योग ।
'उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च
श्लोकं यंसत् सवितेव प्र बाहू ।'
ऋ. १.१९०.३

उद्यती – निरन्तर उठती हुई शक्ति ।
'उद्यतीमुद्यतीमेवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्यश्रियमादत्ते'
अ. ९.५.३५

उद्यमान – बोला जाता हुआ, अध्ययन के समय गुरुमुख से निकलता हुआ ब्रह्मज्ञान, वेदाध्ययन करते समय उसका तात्त्विक श्रवण ।
(२) अधीयमान ।
'यदम्रवन् पशवः उद्यमानम्'
अ. ७.६६.१

उद्यमीयसी – (१) जंघा के ऊपर उठाने वाली
'न सक्थ्युद्यमीयसी'
ऋ. १०.८६.६, अ. २०.१२६.६.
(२) ईश्वरीय तेज को नियमन करने वाली । –प्रकृति (३) स्त्री ।

उद्युध् – परस्पर युद्ध करना ।
'उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तमाः'
अ. १२.३.२९

उद्र – उदक में रमण करने वाला कर्कट ।
'अपामुद्रः'
वाज.सं. २४.३७, तै.सं. ५.५.२१.१, मै.सं. ३.१४.१८, १७६.६, का.सं.(अश्व.) ७.११.

उद्वत् – उन्नत प्रदेश । अद्भिः अनाक्रान्तः भूभागः (जल से अनाक्रान्त भूभाग अर्थात् ऊंची भूमि) । उद् + वति = उद्वत् । उत् उपसर्ग ऊपर अर्थ वाला है ।

उद्वन्दन – उत्तम स्तुतिशील, उत्तम आचरणों से नित्य अभिवादन शील शिष्य या पुत्र ।
'उद्वन्दनम् ऐरतम् दंसनाभिः
उद्रेभं दात्रा वृषणा शचीभिः'
ऋ.१.११८.६
हे नाना सुख प्रदान करने वाले एवं निषेक आदि करने वाले (वृषणा) आप लोग उत्तम आचरणों से नित्य अभिवादनशील तथा उत्तम स्तुति करने वाले पुत्र या शिष्य को ऊपर उठाओ । आप लोग उत्तम वाणियों, शादियों एवं कर्मों द्वारा अध्ययन शील शिष्य को (उद्रेभम्) उत्तम या उच्च पद प्राप्त कराओ ।

उद्येमिरे – महिमा बढ़ाते हैं ।
'ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ।'
ऋ. १.१०.१, साम. १.३४२, २.६९४, तै.सं. १.६.१२.३, नि. ५.५.
हे शतक्रतो ! परमात्मन् ! ब्राह्मण ध्वजा के समान स्तुति द्वारा तेरी महिमा बढ़ाते हैं ।

उद्वह – किनारों को लांघ कर बहने वाला जल ।
'उत्कूलमुद्वहोभव'
अ. १९.२५.१

उद्वहनति – ऊपर करते हैं, उदित करते हैं ।
'उदुत्यं जातवेदसं देवं
वहन्ति के तवः'

ऋ. १.५०.१, अ. १३.२.१६, २०.४७.१३, साम.१.३१, वाज.सा. ७.४१, ८.४१, ३३: ३१, तै.सं. १.२.८.२, ४.४३.१, मै.सं. १.३.३७, ४३.६, का.सं. ४.९, ३०.५, श.ब्रा. ४.३.४.९, ६.२.२, नि. १२.१५.

रश्मियां या अश्व जिस जातप्रज्ञ या जातधन सूर्यदेव को उदित करती हैं। (उद् वहन्ति) उसे (त्यम्)

उद्वहन्ती – ऊपर उठाने वाली किरण

'देवीरा तस्थौ मधु मद्वहन्ती'

ऋ. ३.७.२

उद्व्रज – पानी और गोचर भूमिवाला देश। सम्भवतः रावलपिण्डी के आसपास का प्रदेश जहां पर पीछे गिरिव्रज बसा।

उद्वृति – उद् पूर्वक वृत्ति धातु छेदनार्थक है-उवट।

'अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः'

ऋ. ८.१४.१३, अ. २०.२९.३, साम. १.२११, वाज.सं. १९.७१, श.ब्रा. १२.७.३.४.

उदात्त – तीव्रार्थतरम् उदात्तम् (उत्कृष्ट अर्थ बतलाने वाला) पाणिनि ने 'उच्चैरुदात्तम्' कहा है।

'अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवो
अहेडमानो ररिगँ अजाश्व
श्रवस्यतामजाश्व।'

ऋ. १.१३८.४, नि. ४.२५.

इस ऋचा में 'अस्या' उदात्त है। 'अस्याः सातये' (इसकी प्राप्ति के लिए) यही स्तुति का मुख्य उद्देश्य या अर्थ है। दे. 'अज'

उदान – उदान नामक वायु।

'उदानो यज्ञेनकल्पताम् स्वाहा'

वाज.सं. २२.२३

उदायत् – सूर्य के समान ऊपर आने वाला।

'उदायते नमः'

अ. १७.१.२२

उदायन् – उद्गताः, उत्पन्नाः (उत् + आङ् + इ (लङ् प्र.पु.ब.व. + झि = उदायन्। अर्थ-उत्पन्न हुए।

'देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्
कृन्तत्रात् एषाम्रपरा दाययन्
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूषा
द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम्'

ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.

देवताओं की सृष्टि के समय (देवानां माने) सबसे पहले ये माध्यमिक देवगण मेघ निर्मिति हुए (प्रथमा अतिष्ठान्)। इन मेघों के (एषाम्) इन्द्र के द्वारा छिन्न स्थानों से (कृनात्रात्) मेघ के जल निकले (उपराः उदायन्)। जलों के पतित होने पर इन्द्र की आज्ञा से पर्जन्य, वायु तथा आदित्य नामक तीन देवता (त्रयः) शीत, उष्ण और वर्षा से पृथ्वी की ओषधियों को (पृथिवीम्) परिपक्व करते हैं (तपन्ति)। वे देवता व्याप्त होने वाले या प्रक्षेपण करने वाले हैं (अनूपाः)। उनमें दो (द्वा) वायु और आदित्य ओषधियों के पोषक रस को (पुरीषम्) एवं जल को (बृबूकम्) इस पृथ्वी लोक से आदित्य मण्डल में ले जाते हैं (वहतः)। वायु शोषित कर तथा आदित्य रश्मियों द्वारा रस लेकर आदित्य मण्डल में पहुँचाते हैं।

अन्य अर्थ-देवताओं के निर्माण में वायु ही प्रथम है। इन वायुओं की प्रेरणा से (कृन्तत्रात्) अन्तरिक्ष से मेघ बरसते हैं (उपराः उदायन्) मेघ वायु, तथा आदित्य ये तीन अनुग्रह करने वाले देव पृथिवी की ओषधियों को पकाते हैं और वायु और आदित्य पालक और वृष्टि दाता जल पहुंचाते हैं (पुरीषं बृबूकम्)।

उदार – (१) उत् + आर = उदार। उन्नत करने वाला।

'श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम्'

ऋ. १०.४५.५, वाज.सं. १२.२२, तै.सं. ४.२.२.३, का.सं. १६.९, मै.सं. २.७.९, ८६.११, आप.मं.पा. २.११.२७.

(२) विशाल, (३) ऊपर उठने वाला, (४) ऊपर से प्रहार करने वाला महास्त्र।

'सप्तजातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन्'

अ. ११.९.६

(५) देहत्याग।

'सुप्रजा सन्त्स उदारे न सर्षद्'

अ. ४.११.३

(६) ऊर्ध्वगतः मेधाविना परिणतः – (उदारचित्त वाला पवित्रात्मा)

'उदारान् गच्छोत वा नीहारान्'

अ. ६.११३.२

उदारत् – उत् + आरत् । उदित हुआ ।
'समुद्रादूर्मिर्मधुमां उदारत्'
ऋ. ४.५८.१, वाज.सं. १७.८९. मै.सं. १.६.२, ८७.१३, का.सं. ४०.१७, ऐ.ब्रा. ५.१६.६, कौ.ब्रा. २५.१, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना.उप. ९.१२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, आप.मं.पा. २.३.२, नि. ७.१७.
अन्तरिक्ष से प्रकाश के द्वारा सब का आच्छादन करने वाला, सर्वप्रिय उदकवाला सूर्य (मधुमान् उर्मिः) उदित हुए ।

उदारथि – (१) शक्ति वीर्य आदि धातु का उद्दीपक ओषधि ।
(२) सबको उत्तेजना देने वाला राजा ।
'पीवो वृक्क उदारथिः'
ऋ. १.१८७.१०, का.सं. ४०.८.
(३) शरीर को सुला डालने वाला विष, (४) बहुत अधिक पीड़ा जनक ।
'पीबस्पाकमुदारथिम्'
अ. ४.७.३

उदावत् – उत्तममार्ग पर चलने वाला ।
'उदावता त्वक्षसा पन्यसा च'
ऋ. ६.१८.९

उद्रा – जल से ।
'एकं यदुद्रा न पृणन्त्येनीः'
ऋ. ५.८५.६
जैसे (यत्) अनेकों प्रगति शील नदियां भी (एनीः) एक समुद्र को (एकम्) जल से नहीं भर पातीं (उद्र न पृणन्ति) ।

उद्ग्राभ – ऊपर ले जाने वाला, उपाय ।
'उद्ग्राभेणो दग्रभीत्'
वाज.सं. १७.६३, तै.सं. १.१.१३.१, ६.४.२, ४.६.३.४, मै.सं. १.१.१३: ८.१३: ३.३.८,४१.९ का.सं. १.१२, १८.३, २१.८, श.ब्रा. ९.२.३.२१.

उद्यानम् – ऊपर की ओर गति, उन्नति ।
'उद्यानं पुरुष नावयानम्'
अ. ८.१.६

उद्यास – उठाने का परिश्रम ।
'उद्यासाय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११, तै.सं. १.४.३५.१, का.सं. (अश्व.) ५.६, तै.आ. ३.२०.१.

उद्रावः – बहुत तीव्र गति से जाता हुआ ।
'उद्द्रावाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८, तै.सं. ७.११३.१, मै.सं. ३.१२.३:१६१.१ का.सं.(अश्व). १.४

उद्वाचन – (न.) उत्तेजक वाणी, ललकार ।
'यथेन्द्र उद्वाचनं लब्ध्वा चक्रे अधस्पदम्
अ. ५.८.८'

उद्वावृषाणः – उत्तम सुखों की वर्षा करता हुआ इन्द्र-परमेश्वर ।
'उद्वावृषाणस्तविषीव उग्र'
ऋ. ४.२०.७

उदित – (१) उच्चारण किया वाक्य ।
(२) जलयुक्त अन्न ।
'इमानि त उदिता शंतमानि'
अ. ७.६८.२, मै.सं. ४.१२.६, १९८.११.
(३) उन्नत, (४) उदय लेने वाला ।
'उदिता यो निदिता वेदिता वसु'
ऋ. ८.१०३.११

उदिता इन्द्राग्नी – ऊपर की तरफ गए वायु और अग्नि तत्व को जल से युक्त हो जल पूर्ण होते हैं ।
'यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य
मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे'
ऋ. १.१०८.१२
जिस कारण वायु और अग्नि तत्त्व ऊपर की तरफ जाकर सूर्य और अन्तरिक्ष के बीच में जल से युक्त होकर स्वयं तृप्त और जलपूर्ण होते हैं ।

उदिति – उत् + इ + क्तिन् = उदिति । ऊपर उठने की प्रवृत्ति ।
'राद्धिःसमृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः'
अ. १०.२.१०
(२) उदय ।
'अयस्थूणम् उदिता सूर्यस्य'
ऋ. ५.६२.८, तै.सं. १.८.१२.३, मै.सं. २.६.९, ६९.११, का .सं. १५.७.
सूर्य के ऊदय लेने पर ।

उदिनक्षन् – उत् + इन क्षन् । प्राप्त कराने वाला ।
'भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्त मोनः'
ऋ. १०.८.९

उदियर्ति – (१) उच्चारण करता है, (२) प्रेरित करता है ।
'स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीः'

ऋ. ९.८६.४१, नि. ५.२.
वह स्तुतियों को करता या प्रेरित करता है ।

उद्धिः – रथ के शरीर का ऊपर का भाग ।
'अन्तरिक्षमुद्धिः'
अ. ८.८.२२

उद्धिता – (१) उठाई हुई ।
'ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता'
अ. १९.४२.२

उद्धिताः – जो उर्ध्ववगति को पदों पर पहुंच गये है–पितर ।
'ये दग्धा ये चोद्धिताः ।'
अ. १८.२.३४.

उद्भित् – (१) समस्त स्थावरों को पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न करने वाला ।
(२) शत्रुओं को उखाड़ने वाला ।
(३) उर्ध्वभाग ब्रह्मरन्ध्र को भी भेदन करने समर्थवीर्य या प्राण ।
'विश्वजितं उद्भिदित् सोमः'
ऋ. ८.७९.१, तै.ब्रा. २.४.७.६
(४) उत् + भिद् + क्विप् शत्रुओं नाशक का नाशक क्रतु यज्ञ ।
(५) मानसिक, कायिक और वाचिक पापों का उद्भेदन करने वाला विद्वान् ।
'आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः
अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः'
ऋ. १.८९.१, वाज.सं. २५.१४, का.सं. २६.११.
(६) आविर्भाव, (७) उद्भेदक धन, अन्न आदि जो पृथ्वी भेदकर उपजते हैं ।
'सदःसदो वरिवस्या त उद्भिदा'
ऋ. १०.७६.१
घर या प्रत्येक यज्ञग्रह को उद्भेदक धन से द्यौ और पृथ्वी पूर्ण करे –
दिन और रात अपने आविर्भाव से (उद्भिदा) हमारे प्रत्येक गृह को परिपूजित करे ।

उद्भिन्न – (१) उत्तम फल ।
'जितमस्माकम् उद्भिन्न मस्काकम्'
अ. १०.५.३६, १६.९.१
(२) राष्ट्र की उपज ।

उद्रिण, उद्रिन् – (१) उदकवान् (जल से पूर्ण) ।
(१) उदक देने वाला ।
'बहुसाकम् सिसिचुरुत्समुद्रिणम्'
ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.
सूर्य की किरणों से मिलकर उठते हुए मेघ को बहुत जल दिया ।
(२) जल से भरा कूप या मेघ ।

उदीच्य विषम् – (१) उत्तर दिशा के विष, (२) सिर की ओर फैलने वाला विष, (३) मध्यमबल वाला विष ।
'अरसं यदुदीच्यम्'
अ. ४.७.२.

उदीची – (१) पूर्वाभिमुख पुरुष के बाएं हाथ की दिशा–उत्तरदिशा ।
'उदीच्यै दिशे स्वाहा'
वाज.सं. २२.२४, तै.सं. ७.१.१५.१, मै.सं. ३.१२.८, १६३.५, का.सं.(अश्व.) १.६.
(२) उत्तर दिशा जो सब दिशाओं में श्रेष्ठ है ।
'दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम्'
अ. १२.३.१०

उदीचीनः पन्थाः – ऊर्ध्वगामी, पर ब्रह्म तक ले जाने वाला मार्ग ।

उदीरताम् – (१) ऊपर लोक में आवें ।
(२) शिक्षा प्रदान करें–ज.दे.श. ।
'उदीरतामवर उत्परासः
उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः'
ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१३.३, मै.सं. ४.१०.६, १५७.४, ऐ.ब्रा. ३.३७.१३. नि. ११.१८.
जो निष्कृष्ट पितर पृथिवी लोक में आश्रित हैं वे ऊपरी लोक में आवें (अवरे वितर उदारीताम्) । जो द्युलोक में स्थित हैं नीचे न आकर ऊपर उठें या मोक्ष प्राप्त करें तथा जो मध्यम स्थानाश्रयी हैं, वे उत्तम लोक प्राप्त करें तथा जो मध्यम् लोक प्राप्त करें (परास उत मध्यमा उत्)।

उदीरयन्ती – जगाती हुई, उठाती हुई उषा
'व्युच्छन्ती जीवम् उदीरयन्ती
उषा मृतं कंचन बोधयन्ती'
ऋ. १.११३.८.

उदीराणः – (१) उत्तम उपदेश देता हुआ ।
'उदीराणा यज्ञमुप प्रयन्तः'
ऋ. ४.३९.५, ७.४४.२.
(२) उठता हुआ ।
'उदीराणा उतासीनाः'

'अ. १२.१.२८

उदीष - उत् + ईष् । बाहर निकल जाना

'ऊर्ध्वःप्राण उदीषतु ।'

अ. ११.९.२१.

उद्गीथ - उद्गाता से गाया गया सामभाग

'उद्गीथः प्रस्तुत स्तुतम्'

अ. ११.७.५

उद्री - (१) कूप ।

'उद्रीव वज्रिन् अवतो न सिञ्चते'

ऋ. ८.४९.६

(२) उदकयुक्त मेघ ।

'उत्सं कवन्धमुद्रिणम्'

ऋ. ८.७.१०

उदुम्बर - (१) गूलर ।

सोऽब्रवीत् । अयं वाव मा सर्वस्मात् पाप्मन उदभार्षीदिति तस्मात् उदुम्बरः । उदुम्बर

'इति आचक्षते परोक्षम् ।'

श. ७.५.१.२२

(२) अन्नं वा ऊर्फ उदुम्बरः ऊर्जः

श.ब्रा. ३.२.१.३३

सभी पापों से मुक्त करता है अतः उदुम्बर है . अन्न भी उदुम्बर है ।

(३) गूलर, (४) भारी बलवान् पुरुष ।

'महान् भद्र उदम्बरः'

अ. २०.१३६.१५, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.८०.

उदुम्बल - अति अधिक भोगी ।

'उपेषन्तमुदुम्बलम्'

अ. ८.६.१७

उदुम्बलौ - (१) अति बलवान् रातदिन, (२) सारमेय नामक यम के दो दूत जो श्वान है ।

'उरूणसौ असुतृपौ उदुम्बलौ'

ऋ. १०.१४.१२, अ. १८.२.१३, तै.आ. ६.३.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.१९.२०

(३) अति बलशाली राजपुरुष ।

(४) प्राण और अपान ।

उद्गुरमाण - भार उठाकर लाने वाला ।

'नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च'

वाज.सं. १६.४६

उद्भु - उद्भूत ।

'यत् ते काम शर्म त्रिवरूछोथमुद्भु ब्रह्म वर्म विततमनतिव्याध्यं कृतम्'

अ. ९.२.१६

उद्युग - क्षयी रोग ।

'बलासं कामसमुद्युगम्'

अ. ५.२२.११

उद्युत - उचटा हुआ ।

'यदितेमन उद्युतम्'

अ. ६.१११.२

उद्द्रु - उछल-उछल कर द्रुत गति से जाता हुआ ।

'उद्द्रुताय स्वाहा'

वाज.सं. २२.८, तै.सं. ७.१.१३.१, मै.सं ३.१२.३, १६१.१, का.सं.(अश्व.) १.४.

उदृक् - (१) उत् + ऋच् । यज्ञ की समाप्ति के समय का अन्तिम ऋचा पाठ ।

'अस्य यज्ञस्योदृचि स्वाहा'

अ. ६.४८.१-३

(२) अन्तिम ऋचा तक पूर्ण होने वाला यज्ञ ।

'य उदृचियज्ञे अध्वरेष्ठा'

ऋ. १०.७७.७

उदृची - जिसकी स्तुति या वर्णन में उत्कृष्ट ऋचाएं हों । इन्द्र या परमेश्वर का विशेषण ।

'य उदृचीन्द्र देवगोपाःसखायः'

ऋ. १.५३.११, अ. २०.२१.११.

उदृह्वत् - जलों को ऊपर उठाने वाला मेघ ।

'उदृह्वते स्वाहा'

वाज.सं. २२.२६, तै.सं. ७.५.११.२, का.सं.(अश्व.) ५.२.

उदृहीत - जलों से भरा मेघ ।

'उदृहीताय स्वाहा'

वाज.सं. २२.२६, तै.सं. ७.५.११.२, का.सं.(अश्व.) ५.२.

उद्भृ - (१) उत्पन्न ।

'दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतम्'

ऋ. ६.४७.२७, अ. ६.१२५.२.

(२) उखाड़ कर लाया हुआ ।

'दूरात् त्वा मन्य उद्भृतम्'

अ. ७.४५.१

उद्वृह - लोट् के म. पु. ए.व. का रूप । उद् + वृह । अर्थ-उद्धर उन्मूलय - उन्मूलित कर । 'वृह्' धातु उद्यमान अर्थ में प्रयुक्त है । उखाड़ दे, उजाड़ दे ।

उद्रेभ – उत्तम अध्ययनशील शिष्य या पुत्रे ।

उन्नयन्ती – रोगी की दशा में सुधार लाने वाली ओषधि ।
'अरुन्धतीमुन्नयन्तीम्'
अ. ८.७.६

उन्मत्त – उत्तम कोटि के हर्ष से युक्त योगी ।
'प्रयुग्म्य उन्मत्तम्'
वाज.सं. ३०.८

उन्मथाय – उलट पुलट कर नष्ट करना, हिलाना डुलाना ।
'तद्वात उन्मथायति'
अ. २०.१३२.४

उन्मदित – (१) उत्तम हर्षयुक्त ।
'उन्मदिता मौनेयेन
वातां आ तस्थिमावयम्'
ऋ. १०.१३६.३
(३) उन्मत्त, पागल ।
'देवै नसात् उन्मदितम्'
अ. ६.१११.३

उन्मोचन – जाल से किसी पदार्थ को ऊपर करना
'उन्मोचन प्रमोचने
अ. ५.३०.२-४.

उन्मुञ्चन्ती – रोग से मुक्त करने वाली ओषधि
'उन्मुञ्चन्तीर्विवरुणा'
अ. ८.७.१०

उप – (१) उपसर्ग, समीपार्थक । संज्ञा तथा धातु से मिलकर अनेकों अर्थों में प्रयुक्त होता है जैसे (१) उपकरोति (२ उपकीर्ण, (३) उपदेश, (४) उपरत-मृत, (५) उपनयति, (६) उपहरति (७) उपक्रम, (८) उपाध्याय, (९) उपाध्यक्ष, (१०) उपवन, (११) उपहरिं सुराः-हरि से नीचे सुर है ।
'उपोय मे परामृश मामेदभ्राणि मन्यथाः
सर्वाहमस्मि रोमशा गान्धारीणाभिवाविका'
ऋ. १.१२६.७, नि. ३.२०.
भावयव्य से उनकी स्त्री का कथन-हे पति ! मेरे अति निकट आकर मेरे अंगों को छू (उपोयमे परामृश) मेरे छोटे-छोटे रोओं को मत देख (मामे दभ्राणिमन्यथाः) मेरे सभी अंगों में रोएं हो गये हैं (अहंसर्वा रोमशा अस्मि) जैसे गन्धार देश की भेड़यों में अविका नाम की भेड़ी होती है । (गान्धारीणाम् अविका इव) ।
स्वामी दयानन्द का अर्थ-हे पतिदेव राजन् मेरे साथ भली प्रकार परामर्श कीजिए (उपोय परामृशः), मेर सामर्थ्यों को कम न समझिए (मे दभ्राणि मा मन्यथा) मै पूर्णतया प्रशस्त रोमों वाली और पृथ्वी का राज्य धारण करने वाली स्त्रियों में से (गान्धारीणाम्) अधिक रक्षा करने वाली हूं (अविकाइव अस्मि) ।
पुनः-
'उपश्वासय पृथिवीमुकतद्याम्
पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैः
इराद्दवीयो अपसेध शत्रून्'
ऋ. ६.४७.२९, अ. ६.१२६.१, वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६, मै.सं.३.१६.३, १८७.८, का.सं.(अश्व.) ६.१, आश्व.गृ.सू. ३.१२.१७, नि. ९.१३.
हे दुन्दुभि, पृथ्वी और द्युलोक को अपनी ध्वनि से प्राणित कर दो (पृथिवीमुतद्यामु उपश्वासय) जिस से स्थावर और संगम जगत् तेरे शब्द को बहुत प्रकार से जान जाय (विष्ठितं जगत् पुरुत्रा मनुताम्) । हे दुन्दुभि, पृथिवी और द्युलोक को इन्द्र के साथ प्रसन्नता पूर्वक (इन्द्रेण सजूः) तथा और देवों के साथ (देवैः) शत्रुओं को दूर से दूर भगा दे (अपसेध दूरात् दवीग्रः)
(२) समीप अर्थ में-
'मानःसेना अररुषीरुपगः'
अ. १९.१४.२

उपकक्ष, उपकक्षासः – (१) कक्षसमीप प्रमाणोदक कांख भरपानी वाला तालाब । दे. 'अक्षण्वत्'
'आदघ्नास उपकक्षास उत्वे
ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे ददृश्रे'
ऋ. १०.७१.७, नि. १.९.

उपकक्ष्या – कन्धे, पीठ और बगल में की गण्डमाला ।
'अथो या उपपक्ष्याः'
अ. ७.७६.२

उपक्वस – टिड्डी आदि जीव ।
"तर्द है पतंग है जभ्यहा उपक्वस'
अ. ६.५०.२

उपक्षित् – समीप रहने वाला ।

'उपक्षितो वया इव'
ऋ. ८.१९.३३

उपच्यव – (१) ओखल में मूसल का डालना (२) धन संग्रह करना ।
'यत्रनारी अपच्यवम् उपच्यवं च शिक्षते'
ऋ. १.२८.३

उपचित् – दोषों के एकत्र हो जाने से उठने वाला गण्डमाला आदि रोग ।
'अर्शस उपचितामसि'
वाज.सं. १२.९७

उपजग्मुष् – समीप प्राप्त अतिथि, निकट आ गया अभ्यागत ।

उपजिघ्नते – 'उपजिघ्नन्ति' का पद व्यत्यय है । अर्थ है – चारों ओर से मारते हैं । (समन्तात् घ्नन्ति) ।
'जघनां उपजिघ्नते'
ऋ. ६.७५.१३, वाज.सं. २९.५०, तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३,१ ८७.६, का.सं.(अश्व.) ६.१, नि. ९.२०.
(घोड़ो के जांघों पर मारते हैं) । दुर्ग ने इस का अर्थ 'उपजिघ्रते' किया है । 'घ्रा' धातु हिंसाअर्थ में भी है । और इसका 'पा घ्राध्मा' सूत्र में जिघ्र आदेश होता है ।

उपजिघ्रताम् – निकट से सूंघे ।
'ऋजीषमुपजिघ्रताम्'
तेरे घोड़े 'ऋजीष' जीभ अर्थात् सोम की सीढ़ी को निकट से सूंघे (उपजिघ्रताम्) ।

उपजिह्विका – (१) जिह्वा को वश करने वाली निर्लोभ स्त्री
'यदत्त्युपजिह्विका'
ऋ. ८.१०२.२१, वाज.सं. ११.७४, तै.सं. ४.१.१०.१, मै.सं. २.७.७, ८३.९, कौ.सं. १६.७, श.ब्रा. ६.६.३.६, नि. ३.२०.
(२) पिपीलिका । उपजिह्विका उपजिघ्न्य । उपजिघ्रन्ति हिताः (वे सूंघती हैं) । इनकी प्राणशक्ति तीव्र होती है) । उपजिघ्री + कन् + टाप् = उपजिह्विका
'यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पयि ।
सर्वतदस्तु ते घृतम्'
इस मंत्र से यज्ञ में अग्नि में समिध डाली जाती है ।
हे अग्ने ! जिस काष्ठादि को पिपीलिका या दीमक खाता है (यत्उपजिह्विका अति) और जिसे दीमक भी भींगीमिट्टी से घेर लेते हैं (यत् वम्रःअति अपसर्पति) हे नित्य युवा अग्नि यह सब कुछ तेरा घृत हो (सर्वतत् ते घृतम् अस्तु) उसे तू सेवन कर (त्वं जुषस्व) ।

उपजीकाः – (१) ब्रह्म के आश्रय में जीने वाले, (२) औषध बेचने वाले ।
'उपजीका उद्धरन्ति'
अ. २.३.४
(३) उपजीव्य, जीवन के कारण-भूत-देव, किरण या दिव्य वायु आदि पदार्थ, (४) वल्मीक निर्मात्री दीमक-सा. । वल्मी विषनाशक है । (५) ग्रीफिथ के मत से सिलाची नामक विषौषधि ।
'यद्वो देवा उपजीकाः'
अ. ६.१००.२

उपजीवः – जीवन को और भी अधिक बढ़ाने में समर्थ ।
'उपजीवा स्थोप जीव्यासम्'
अ. १९.६९.२

उपजीवनीय – औरों का निर्वाह करने में समर्थ ।
'उपजीवनीयोभवति य एवं वेद'
अ. ८.१०.(४) ४

उपतिष्ठन्ती – समीप आती हुई ।
'सेदिरुपतिष्ठन्ती'
अ. १२.५.२४

उपतिष्ठमाना – स्थिर होना ।
'उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम्'
अ. ८.९.८

उपतृण्य – सर्प की एक जाति, घास के रंग का सांप ।
'कैरात पृश्न उपतृण्यबभ्रो'
अ. ५.१३.५

उपद्रष्टा – दोष दर्शी, निन्दक ।
'स य एवं विदुष उपद्रष्टाभवति प्राणं रुणद्धि'
अ. ११.३.५४

उपदा – भेंट पुरस्कार देने वाला पुरुष ।
'बलायोपदाम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.७.

उपदृग् – प्रजा के व्यवहारों को समीपस्थ हो देखने

वाला ।
'अयं सूर्य इवोपदृक्'
ऋ. ९.५४.२

उपध्वय – (क्रि.) अच्छा संस्कार डालना ।
'पूतौ पवित्रै रूप तत् ध्वयेथाम्
अ. १२.३.३

उपधान – सिरहाना ।
'यदासन्द्यामुपधाने'
अ. १४.२.६५

उपध्मानी – 'ध्मा' शब्दाग्निसंयोगयोः। अर्थ- (१) अतिशब्द करने वाला, (२) आग लगा देने वाला ।
'पूतिरज्जुरुपध्मानी'
अ. ८.८.२

उपधि – लकड़ी का बना चक्र (चक्का) जिस पर लोहे का हाल दिया जाता है ।
'यथा प्रधिः यथोपधिः'
अ. ६.७०.३

उपधी – (द्वि.व.) (१) रथ के बीच के भाग में भार में भार सहने वाले, बगलों में लगे दण्ड, (२) उपधि के समान स्त्री पुरुष ।
'नभ्येव न उपधीव प्रधीव'
ऋ. २.३९.४

उपनिपद्यमान – (१) समीप रहता हुआ (२) नीचे मार्ग से जाता हुआ, (३) संकट या विपत्ति में पड़ा ।
'पश्यामसि नोपिनिपद्यमानम्'
ऋ. १.१५२.४
हम पति को कभी नीचे मार्ग से जाते न देखें या उसे सदा स्त्री के समीप रहते देखें ।

उपनतिः – समीप आने वाले लोगों को आदर से झुकाने वाली शक्ति ।
'मांसं म उपनतिः वसु'
वाज.सं. २०.१३, मै.सं. ३.११.८, १५२.१०, का.सं. ३८.४, श.ब्रा. १२.८.३.३१, तै.ब्रा. २.६.५.८.

उपपति – पति के समान भोग करने में प्रवृत्त
'गेहायोपपतिम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

उपपर्चनम् – (१) सम्पर्क, संयोग, उप + पृच् + ल्युट् ।
'उपेदमुप पर्चनम् आसु गोषूपपृच्यताम्'
ऋ. ६.२८.८, तै.ब्रा. २.८.८.१२, ला.श्रौ.सू. ३.३.४.

उपपर्चन – (प्र.) (१) अति समीप अनन्य भाव से संयुक्त सदा का संगी परमात्मा ।
'उपेहोपपर्चन'
अ. ९.४.२३

उपप्रक्ष – (१) सम्बन्ध, (२) पीछे
'उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना
दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ'
ऋ .५.४७.६

उपप्रयन् – समीप जाता हुआ, उपासना करता हुआ ।
'उपप्रयन्तो अध्वरम् मन्त्रं वोचेम अग्नये'
ऋ. १.७४.१, साम. २.७२९, वाज.सं. ३.११, तै.सं. १.५.५.१, मै.सं.१.५.१, ६५.६ का.सं. ६.९, श.ब्रा. २.३.४.१०.

उपपाक – (१) यव (२) समीप आए शत्रु को दग्ध करने में समर्थ ।

उपयाम – (१) राज्य प्रबन्ध, (२) वाक् संयम, मौनमुद्रा ।
'उपयामगधरेणौष्ठेन'
वाज.सं. २५.२, तै.सं. ५.७.१२.१, मै.सं. ३.१५.२, १७८.३, का.सं. (अश्व.) १३.२.

उपप्रागात् – उपप्रैतु, प्रकर्षेण एतु (प्रकर्ष से निकट आवे) । लोट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग ।
'उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म
देवाना माशा उपवीतपृष्ठः
अन्वेनं विप्राऋषयोमदन्ति
देवानां दुष्टे चकृमासुबन्धुम्'
ऋ. १.१६२.७, वाज.सं. २५.३०, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१, १८२.४, का.सं.(अश्व.) ६.४, नि. ६.२२.
मेरा मननीय अर्थ (मे मना) स्वयं मेरे निकट आवे (सुमन् उप प्रागात्) जिसे मेरे मन ने ध्यान में रखा (मे अधायि) और यह सुन्दर पीठवाला अश्व भी मेरे निकट आवे (वीतपृष्ठः अश्वः) । देवताओं की आशा पूर्ण करने के लिए (देवानाम् आशाः) दूध में बांधे इस यज्ञीय अश्व को (एनं सुबन्धुम् देवताओं के पोषण के लिए हम करते हैं (देवानां पुष्टे चकृम) और इसे विप्र और अतीन्द्रियार्थ द्रष्टागण अनुमोदित करें (विपाःऋषयः अनुमदन्ति) ।

अन्य अर्थ –मेरा मन जिसका ध्यान करता है (मे मन्म अधायि) वह अभिलषित पदार्थ जिस राष्ट्र यज्ञ से स्वयं प्राप्त हो जाता है (सुमत् उपप्रागात्) सत्यज्ञान की गहराई तक पहुंचने वाला विद्वान् (वीत् पृष्ठः) जिस राष्ट्र यज्ञ में देवजनों की आशाओं को प्राप्त करता है, (देवानाम् आशाःउप) और जिस राष्ट्र को पाकर ब्राह्मण ऋषि लोग प्रसन्न रहते हैं (एनम् अनु विप्राः ऋषयः मदन्ति) देव जनों के परिपुष्ट उस राष्ट्र में (देवानां पुष्टे) सबके साथ बन्धुवत् उत्तम व्यवहार करने वाले मनुष्य को हम राजा बनाते हैं (सुबध्रं चकृम) –दया. ।

उपप्रुत – प्राप्त ।
'उपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना'
ऋ. ९.७१.२

उपपृक् – उपपर्चनः, संपर्कस्य कर्त्ता (निकट से संपर्क करने वाला) उप + पृच्.+ क्विप् = उपपृच् । प्रथमा ए.व. में उपपृक् ।
'अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम्
इन्द्रो वज्रेण महता वधेन
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्ण
अहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः'
ऋ. १.३२.५, मै.सं. ४.१२.३, १५८.९, तै.ब्रा. २.५.४.३.
इन्द्र ने अपने महान् वध करने वाले वज्र से (महता वधेन वज्रेण) संसार को अत्यन्त आवृत करने वाले मेघ को (वृत्ततरं वृत्रम्) का वृत्र नामक असुर को छिन्न स्कन्ध कर मार डाला (व्यंसम् अहन्), जैसे कुठार से (कुलिशनम) बिल्कुल छिन्नभिन्न (विवृक्णा) वृक्ष की शाखाएं हों (स्कन्धासि इव) । इस प्रकार छिन्न वातु मेघ या चल नहीं सकने वाला वृत्रासुर (अहिः) पृथ्वी के निकट संपर्क में आ (पृथिव्याः उपपृक्) जलरूप में पृथ्वी पर वासकर मानों सोता है ।
स्वा.दयानन्द का अर्थ –राजा बड़ावध करने वाले खड्ग से जब अत्यन्त पापी शत्रु की गर्दन काट देता है तो कुल्हाड़े से कटे वृक्ष के स्कन्धों की तरह यह शत्रु पृथ्वी का संपर्क करता हुआ सदा के लिए सो जाता है ।
(२) ऊपर ।
'अहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः'
ऋ. १.३२.४, मै.सं. ४.१२.३, १८५.१० तै.ब्रा. २.५.४.३, नि. ६.१७.
मेघ पृथिवी के ऊपर जल के रूप में गिर पड़ता है ।

उपपृञ्च् – (क्रि.) प्राप्त होना, प्रेम करना ।
'यौवने जीवानुपपृञ्चतीजरा'
अ. १८.४.५०

उपपृञ्चीत – संगठित करता है ।
'उपक्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिः'
ऋ. १.४०.८

उपपृञ्चती – प्राप्त होती हुई, प्रेम करती हुई ।

उपब्द –(सं) गर्जना, घोषणा ।
'ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः'
ऋ. ७.१०४.१७, अ. ८.४.१७.

उपब्दिः – (१) गुप्त रूप से कलह करने वाली और परपुरुष से संग करने वाली स्त्री, (२) निन्दा ।
'उपब्दे पुनर्वः'
अ. २.२४.६
(३) उपदेष्टा ।
'जनो न युध्वा महत उपब्दिः'
ऋ. ९.८८.५.

उपभुवः – पृथ्वी के निकट ।

उपभृत् – (१) यज्ञ के तीन सुवों–जुहू, उपभृत और ध्रुवों में एक । ये ब्रह्माण्ड में द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी वाचक हैं । और राष्ट्र में राजा के भृत्य और प्रजा के ।
'घृताच्यसि उपभृन्नाम्ना'
वाज.सं. २.६, वाज.सं.(का.) २.१.८, श.ब्रा. १.३.४.१४.
(२) समस्त प्राणियों का भरण पोषण करने वाली महती परमेश्वरी शक्ति ।
'जुहूदीधार द्यामुपभृत्'
अ. १८.४.५

उपमः – (१) सर्वभूतोप निर्माता आदित्यानर पुरुष नारायण ।
(२) उच्चतम शान्ति –सा.
का धाम परमात्मा –ज.दे.श. ।
'आयोर्हस्कम्भउपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'

ऋ. १०.५.६, अ. १.६.
(३) गुणों का बहुत ज्ञान कराने वाला, (४) उपमानों द्वारा वर्णन करने वाला ।
'इन्द्रं नमस्यन् उपमेभिरर्कैः'
ऋ. १.३३.२
गुणों का बहुत ज्ञान कराने वाली उपमाओं द्वारा वर्णन करने वाली स्तुतियों से परमेश्वर की प्रार्थना करता हुआ-।
(५) उपमान, दृष्टान्त ।

उपमन्त्रिन् - (१) नर्म सचिव । (२) समीपस्त सलाटकार मित्र ।
'हसवामुपमन्त्रिणः'
ऋ. ९.११२.४, नि. ९.२.

उपमन्थिता - दण्ड देने वाला ।
'अवक्रत्यै बधायोपमन्थितारम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

उपमश्रवस्तम् - सर्वोपमायोग्य, श्रवण करने योग्य, कीर्ति, विद्या, और बल में सर्व श्रेष्ठ-गणपति का विशेषण ।
'कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्'
ऋ. २.२३.१, तै.सं. २.३.१४.३, का.सं. १०.१३, व.पू.ता.उप. १.५.

उपमश्रवाः - अति उत्तम ज्ञान से सम्पन्न गुरु या प्रभु ।
'उपमश्रवसः पितुः'
ऋ. १०.३३.६

उपमस्यनीड् - (१) आदित्यान्तर पुरुष नारायण का धाम (२) उच्चतम शान्ति का धाम (३) परमात्मा का धाम ।

उपमा - (१) सबकी रचना की कारणभूत प्रकृति से उत्पन्न विकृति रूप महत्तत्व, सूक्ष्म और स्थूल भूत आदि सामग्रियां
'स बुध्न्या उपमा अस्यविष्ठाः'
अ. ४.१.१,५.६.१, साम. १.३२१,वाज.सं. १३.३, तै.सं. ४.२.८.२, मै. सं. २.७.१५, ९६.१२, का.सं. १६.१५, ३८.१४, श.ब्रा.७.४.१.१४, तै.ब्रा. २.८.८.८, तै.आ. १०.१.१०, आश्व .श्रौ.सू. ४.६.३, शां.श्रौ.सू. ५.९.५.
(२) 'यत् अतत् तत् सदृशम्' (जो पदार्थ तद्भिन्न होकर भी उसके सदृश हो वह उपमा है)-गार्ग्य (३) उपेति आन्यधर्मैः गार्ग्य मानम् उपमा (दूसरे पदार्थों के धर्मों से जो मान प्राप्त करे वह उपमा है । (४) साधर्म्यमुपमा भेदे (भेद रहने पर भी दो पदार्थों मेंसाधर्म्य होने पर उपमा होती है) -मम्मट
न, इव आदि उपमा के वाचक हैं । (५) जगत् निर्माण करने वाली शक्ति ।
'दिवश्चिदन्तात् उपमामुदानट्'
ऋ. १०.८.१, अ. १८.३.६५, साम. १.७१. तै.आ. ६.३.१.
(६) अपने समान अन्य ।
'उतोपमानां प्रथमे नि षीदसि'
ऋ. ८.६१.२, अ. २०.११३.२, साम. २.५८४.

उपमातिः - (१) उपमान ।
'पूर्वीष्ट इन्द्र उपमातयः'
ऋ. ८.४०.९, ऐ.ब्रा. ६.२४.३, आश्व.श्रौ.सू. ७.२.१७.
(२) समीपस्थ शत्रु हनन कारिणी (३) मान उत्पन्न करने वाली, (४) सम्मति या अनुमति देने वाली, (५) ज्ञान शक्ति, (६) मान-पद ।
'का अस्य पूर्वीरूपमातयोह'
ऋ. ४.२३.३

उपमातिवनि - ज्ञान देने वाला ।
'अस्माकं भूदुपमति वनिः'
ऋ. ५.४१.१६
'उपमानां प्रथमः'
अपने समान अन्यों के बीच में सबसे श्रेष्ठ ।
'उतोपमानां प्रथमो निषीदसि'
ऋ. ८.६१.२, अ. २०.११३.२, साम. २.५८४.

उपमाबुध्न्याः - महान् शक्ति के बतलाने वाले निदर्शक नाना स्थूलों और नाना रूपों में स्थित आकाशस्थ लोक ।
'स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः'

उपमास्य - (१) मासिक वृत्ति वेतन ।
(२) मासिक श्रद्धि, (३) स्वधा
'तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यम् ददति'
अ. ८.१० (३) ४

उपमास्व - (१) दे, (२) बना, निर्माणकर ।

उपमित् - जगत् को स्वंय जानने, बनाने और चलाने वाला-वैश्वानर सूर्य ।
'उपस्तभायद् उपमिन्नरोधः'
ऋ. ४.५.१

उपमिता – सुन्दर रूप से योजना के अनुकूल बनाई गई शाला ।
'उपमितां प्रतिमिताम्'
अ. ९.३.१

उपमुहूर्तम् – मुहूर्तभर ।
'रमध्वं मे वचसे सोम्याय
ऋतावरीं रूप मुहूर्तमेवैः ।'
ऋ. ३.३३.५, नि. २.२५.
ऐ नदियो ! मुझ सोम बनाने वाले के लिए अपनी तीव्र गतियों से मुहूर्त भर ठहर जाओ ।

उपयन्तः – उप + इ + शतृ = उपयत् । बहुवचन में उपयन्तः । अर्थ निकट जाते हुए ।
'न्यक्रन्दयन् उपयन्त एनम्'
ऋ. १०.१०२.५, नि. ९.२३.
संग्राम गए सैनिक इस वृषभ को उच्च शब्द में शब्दायमान करते हैं ।

उपयाज – वेद में तीन प्रकार के मन्त्र हैं-प्रयाज, अनुयाज और उपयाज । प्रयाज मन्त्र यज्ञ के मुख्य भाग हैं, अनुयाज प्रयाज के बाद पढ़े जाते हैं और उपयाज मन्त्र प्रयाजों के सहयोगी हैं । इन मन्त्रों का उच्चारण कर सोमरस के सिवा अन्य पदार्थों की आहुति दी जाती है ।

उपयाम गृहीत – (१) प्रजातन्त्र स्वीकृत राजा, (२) विवाह द्वारा स्वीकृत पति ।
'उपयामगृहीतोऽसि'
वाज.सं. ७.४, ८,१२,१६,२०,२५,३०,३१,३५,३६, ४०, ८,१,७,८, ९,११,३३, ३४३५.३८.४१.४४.४७, ९.२,३,४, १०,३२, १९.६,८,२०.३३, २३.२,४;२६.३-१०. मै.सं. १.३.५, का.सं. ४.१,२.

उपयासत् – आवें ।
'युक्त्वा हरिभ्या उपयासदर्वाङ्'
ऋ. ५.४.४, अ. २०.१२.७.
घोड़े के रथ जोतकर सामने आवें (अर्वाङ् उपयासत्)

उपर – (१) वपन दिए हुए बीजों को शस्य सम्पत्ति देने वाला मेघ, (२) शत्रु सेना को वपन या छेदन करने वाला ।
'वृधे चिदर्य उपरस्य आयोः'
ऋ. ४.२.१८, अ. १८.३.२३.
(३) उपल-नीचे का जबड़ा
'यदुत्तराद्रावुपरश्च खादतः'
अ. ६.४९.२
(४) उप + रम् + ड = ऊपर । यूपस्य अतष्टभागः पञ्चमांशः (यूपका पञ्चमभाग जो छिला हुआन हो 'उपर' कहलाता है) ।
(५) मेघ (इसमें जल टिका हुआ रहता है)
'त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू'
अ. १८.४.४.
'नोपरस्याविष्कुर्यात् यदुपस्याविष्कुर्यात्
गर्तेष्ठाः स्यात् प्रमायुक्तः यजमानः ।'
यज्ञ के खम्भे का बिना छिला हुआ पांचवा भाग व्यक्त न करे अर्थात् मिट्टी में गाड़ दे । यदि कोई इस ऊपर को व्यक्त करेगा तो वह यजमान श्मशानस्थ (गर्तष्ठाः) सा होकर प्रमरण धर्मशाला (प्रमायुक्तः) हो जाता है । अर्थात् उसका आयुर्बल क्षीण हो जाता है ।
(६) गर्भाशय ।
'वृधे चिदर्य उपरस्यायोः'
ऋ. ४.२.१८, अ. १८.३.२३.

उपरतातिः – (१) मेघादि के समान शरवर्षी अस्त्रों से करने योग्य युद्ध काल ।
'विश्वां अर्य उपरताति वन्वन्'
ऋ. ७.४८.३
(२) मेघ के समान ज्ञान वर्षक ।
(३) मेघों का अवकाश-अन्तरिक्ष ।
'स्वरन्तिता उपरतातिसूर्यम्'
ऋ. १.१५१.५

उपरमयति – ध्रुवीकरोति । (स्थिर करता है) उप + रम + णिच् + तिप् = उपरमयति । किसी कार्य से उपरत या मुक्त करता है । काम धाम छोड़कर स्थिर करता है ।

उपरस्ययोनिः – (१) मेघ के उत्पन्न होने का स्थान, (२) गर्भाशय उत्पत्ति कमल
'अर्यमा मित्रो वरुणो परिज्मा
त्वचं पृञ्चन्ति उपरस्ययोनौ'
ऋ. १.७९.३,
सूर्य, वायु, जल और सर्वत्र व्यापक भूमि के अंश रूप धूलि आदि मेघ के उत्पन्न होने के स्थान में (उपास्य योनौ) जल की त्वचा को अर्थात् जल के बाह्यांश को (त्वचम्) संयुक्त करते हैं (पृञ्चन्ति) ।

उपराः – (ब.व) (१) मेघ के जल (२) मेघ ।

'कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.
इन मेघों के इन्द्र के द्वारा छिन्न स्थानों से (एषां कृन्तत्रात्) मेघ के जल निकले (उपरा उदायन्) ।
इन वायुओं की प्रेरणा से (एषां कृन्तत्रात्) मेघ बरसते हैं (उपरा उदायन्)
(३) यज्ञवेदी, (४) दिशा, (५) भीतर ध्यानपूर्वक रमणयोग्य योग्य आभ्यन्तरिक चित्त भूमि
'तमस्य पृक्षम् उपरासु धीमहि'
ऋ. १.१२७.५
इस महान् संसार के सेचने वाले जीवनप्रद या सुव्यवस्थित करने वाले सर्वत्र संगत, सर्वव्यापक प्रभु को (पृक्षम्) हम यज्ञ वेदियों में अग्नि के समान (उपरासु) समस्त दिशाओं में और भी भीतरी रमण करने योग्य आभ्यन्तर चित्त भूमियों में भी (उपरासु) धारण करे (धीमहि) ।

उपरिमतिः - सबसे ऊपर विराजमान मननशील प्रज्ञा
'इयमुपरिमतिः तस्यैवाक्'
वाज.सं. १३.५८, तै.सं. ४.३.२.३, ५.२.१०.४, मै.सं. २.७.१९:१०४.१२, का.सं. १६.१९, २०.९, श.ब्रा. ८.१.२.७, ४.२.

उपरिशयन - खाट पर का उपरी विछावन ।

उपरिसद् - ऊपर विराजने वाली ।
'उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३६.

उपलः - (१) उप + रम + र= उपर = उपल । अर्थ -उपरः उपलः, मेघः भवति , मेघ के अर्थ में उपल शब्द आया है । (२) पर्वत, पर्वत भी उपलशब्दवाच्य है ।
'उपरमन्ते अस्मिन् अभ्राणि'
(इसमें बादल निकट से ही रमण करते हैं- पर्वत अथवा उपरताः आपः अस्मिन् भवन्ति (इसमें जल निकट आकर लीन हो जाते हैं । अतः मेघ उपर या उपल हुआ) ।
माधव ने 'उपरोजल वापनात्' कहा है । अर्थात् मेघ जल को गिराता है अतः उपर कहलाया । इनके अनुसार वप + अरन् = उपर है ।
(३) बालुका ।
वेद में मेघ के अर्थ में ही इस शब्द का उपयोग हुआ है ।
(४) पत्थर या पत्थर की चक्की ।

उपलप्रक्षिणी - (१) चक्की चलाने वाली, (२) पिसाई कर जीविका चलाने वाली । यह कार्य निकृष्ट समझा गया है । इसके लिए अंगिरस के पुत्र ने पश्चाताप किया है ।
उपलप्रक्षिणी नना (मेरी मां या पुत्री चक्की चलाने वाली थी ।)
(३) सवनीयानां पेष्ट्री, दासी कर्मकरी, पशुपुरोडाशादीनां सोमानां वा पेष्ट्री संचूरिका पशुओं का पुरोडाश सोमलताओं को उपल में पीसने वाला ।
(४) धानासक्तुक रम्भादीनां कारिका (सत्तू आट्टा आदि पीसने वाली धान्य भुनने वाली) । उपल + प्र + क्षिप् + णिनि + ङीष् = उपल प्रक्षिणी । अथवा उपल + प्र + क्षि + णिनि + ङीष् = उपल प्रक्षिणी ।

उपवक्ता - उपदेश करने वाला ।
'उपवक्ता जनानाम्'
ऋ. ४.९.५
'उदू अयां उपवक्तेव बाहू'
ऋ. ६.७१.५

उपबन्ध - नमस्कार करने योग्य ।
'सायं न्यह्न उपबन्धो नृभिः'
अ. १८.४.९५

उपब्द - (१) वाक् प्रहार (२) तीक्ष्ण दण्डाज्ञा (३) घर घराहट का शब्द ।
'ग्रावाणोध्नन्तु रक्षस उपब्दैः'
ऋ. ७.१०४.१७, अ. ८.४.१७.

उपवर्हिः - उपवर्हणं कुरु, उपधानंकुरु (तकिया बना), उपधेहि ।
'चित्तिरा उपवर्हणम्'
ऋ. १०.८५.७, अ. १४.१.६, शां.गृ.सू. १.१२.४.
(२) सिरहाना ।
'ब्रह्मोपवर्हणम्'
अ. १५.३.७.
(३) अन्न ।
'अनड्वाहमुपवर्हणम् ।'
अ. ९.५.२९

उपबर्हिणी - (१) खूब ऐश्वर्य बढ़ाने वाली सुवर्द्धिका (२) नाशकारिणी ।

'क्षां दासयोपबर्हणीं कः'
ऋ. ९.१७४.७

उपवाक – (१) तत्त्व ज्ञान, (२) नाना प्रकार की वाणी ।
'नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः'
ऋ. १.१६४.८, अ. ९.९.८.
(३) परस्पर का वचन प्रतिवचन (४) वेदवाक्य का तत्त्व ।

उपवाक्य – स्तुति करने योग्य ।
'सनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्यः'
ऋ. १०.६४.१२

उपवाका – (१) गुरुओं की दीक्षा, (२) उपदेश-क्रिया ।
'बदरैरुपवाकाभिः भेषजं तोक्मभिः'
वाज.सं. २१.३०, ३१, मै.सं. ३.११.२: १४१.५, ३.११.२, १४१.८, तै.ब्रा. २.६.११.२, २.

उपवाच्य – (१) प्रार्थना करने योग्य ।
'इदानीमह्न उपवाच्योनृभिः'
ऋ. ४.५४.१, का.सं. ३४.१८, गो.ब्रा. २.२.१२, तै.ब्रा. ३.७.१३.४,
(२) समीप बैठकर अनुकरण द्वारा बांचने योगा ।
'अहन् इन्द्रो यथा विदे
शीर्ष्णा शीर्ष्णोपवाच्यः'
ऋ. १.१३२.२
जैसे सूर्य प्रत्यक्ष ज्ञान कराने के लिए (विदे) अन्धकार का नाश करता है (अहन्) और प्रत्येक शिर या मुख द्वारा स्तुति योग्य होता है उसी प्रकार ज्ञानोपदेश करने के लिए अज्ञान नाशक गुरु अज्ञान का नाश करता और ज्ञान का उपदेश करता और वह प्रत्येक शिर से समीप बैठकर अनुकरण द्वारा बांचने योग्य होता है ।

उपवासन – (१) रहन सहन, (२) वस्त्र ।
'यावतीः कृत्या उपवासने'
अ. १४.२.४९
'यद्वापवासने कृतम्'
अ. १४.२.६५

उपनाह – अति समीप होकर बांधकर वश करने वाला ।
'देवानां भाग उपनाह एषः'
अ. ९.४.५

उपब्दिः – (१) शब्द, (२) हितकारीशब्द ।
'न योः उपब्दिः अश्व्यः
श्रृण्वे रथस्य कञ्चन'
ऋ. १.७४.७, शां.श्रौ.सू. १४.५२.५.
(३) उपदेशमयी वाणी ।
'मरुतां श्रृण्व आयतामुपब्दिः'
ऋ. १.१६९.७

उपविष्ट – आसन वृत्ति से नीति पूर्वक विराज़ने वाला ।
'उपविष्टाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, मै.सं. ३.१२.३: १६०.१४.

उपवीतपृष्ठः – (१) सुन्दर पीठ वाला, ।
'देवानामाशा उपवीत पृष्ठः'
ऋ. १.१६२.७, वाज.सं. २५.३०, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१, १८२.४, का.सं.(अश्व.) ६.४.
सुन्दर पीठ वाले अश्व देवताओं की आशा पूर्ण करने यज्ञ में आवें ।
(३) सत्य ज्ञान की गहराई तक पहुंचने वाला विद्वान् -दया. ।
(४) जिसकी पीठ पर यज्ञोपवीत हो (५) उत्तम वस्त्रादि से यज्ञोपवीत के समान दुपट्टा धारण करने वाला (६) हृष्ट पुष्ट पीठ वाला द्विज, आचार्य ।

उपवती – यज्ञोपवीतधारण करने वाला बाल ब्रह्मचारी ।
'हरिकेशायोपवीतिने'
वाज.सं. १६.१७

उपशाक – (१) शक्तिशाली प्रयत्न और सहायक, (२) सामर्थ्य पूर्ण कर्म ।
'एकश्चरन् उपशाकेभिरिन्द्र'
ऋ. १.३३.४
हे ऐश्वर्यवान् , शक्तिशाली प्रयत्न और सहायकों सहित या समार्थ्य पूर्ण कर्मों से अकेला विचरता हुआ भी तू ।

उपश्रुति – (१) सूक्ष्म श्रवणशक्ति ।
'सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा'
अ. १६.२.५.
(२) उपयुक्त श्रवण ।
'गिरामपुश्रुतिं चर'
ऋ. १.१०.३, साम. २.६९६, वाज.सं. ८.३४, श.ब्रा. ४.५.३.१०.

वाणियों का उपयुक्त श्रवणकर ।

उपश्रोता – निकट होकर ध्यान से सुनने वाला ।
'उपश्रोता म ईवतोवचांसि'
ऋ. ७.२३.१, अ. २०.१२.१, साम. १.३३०.

उपश्वस् – स्थिर जीवन-यात्रा ।
'उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयम्'
अ. ११.१.१२.

उपश्वासय – श्वास दे, प्राणितकर, जानफूंक दे ।
'उपश्वासय पृथिवी मुत द्याम्'
ऋ. ६.४७.२९, अ. ६.१२६.१. वाज.सं. २९.५५ तै.सं. ४.६.६.६., मै.सं. ३.१६.३, १८७.८, का.सं.(अश्व.) ६.१, आश्व.गृ.सू. ३.१२.१३. नि. ९.१३.
हे दुन्दुभि! अपनी ध्वनि से तू पृथ्वी और द्युलोक को प्राणित कर दे ।

उपशिक्षा – (१) समीपस्थ विद्यार्थियों की शिक्षा, (२) अतिसूक्ष्म विषयों की इच्छा ।
'उपशिक्षाया अभिप्रश्निनम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६.

उपस् – (उपसि) उपस्थः, आत्मनः उपस्थानम् –अन्तरिक्ष लोकः मण्डलं वा (गोद, अन्तरिक्ष लोक या मण्डल)
उपस्थ = उपस्
'पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति
शीर्ष्णा शिरः प्रतिदधौ वरूथम्
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति
न्युद्भृत्ताना मन्वेति भूमिन्'
ऋ. १०.२७.१३.
आदित्य रश्मिरूपी चरणों से या पादस्थानीय भूमि से को ग्रहण करता या निगलता है (पत्तःजगार), उस प्रतिकूल जाते हुए जल को ग्रहम कर स्वयं पी जाता है (प्रत्यञ्चम अत्ति) अर्थात् अपने मन्डल में स्थापित करता है । तत्पश्चात् उस ताप-निवारक वृष्टिजल को या उत्तम जल को (रूथम् शिरस्थानीय रश्मिजल से (शीर्ष्णा) समस्त संसार के सिरपर (शिरः) बरसाता है या रखता है (प्रतिदधौ) तथा अपने मण्डल में बैठा (उपसि आसीनः) ऊपर अन्तरिक्ष लोक में अवस्थित नीचे की ओर सब विस्तृत भूमि के समीप आता है तब वृष्टि को प्रच्युत करता या दीप्ति को संसार में आकीर्ण करता है (ऊर्द्ध्वाम् क्षिणाति) और नीचे जाता हुआ (न्यङ्) इस विस्तृत भूमि को (उतानाम्) आच्छादित करता है (अन्वेति) जिस से सर्वत्र प्रकाश फैल जाय ।

उपसत्ता – (१) बैठने वाला, (२) गृहों को बरसाने वाला
'मा ते रिषन् उपसत्तारो गृहाणाम्'
अ. ३.१२.६.
(३) समीप बैठने वाला उपासक
(४) अमात्य, (५) शिष्य, (६) मित्र
'माचरिषदुपसत्तातेऽग्ने'
वाज.सं. २७.२, तै.सं. ४.१.७, मै.सं. २.१२.५, १४८.१४, का.सं. १८.१६.
(७) आश्रय लेने वाला प्रजा
'उपासत्ता वर्द्धतां ते अनिष्टुतः'
अ. ७.८२.३, वाज.सं. २७.४, तै.सं. ४.१.७.२, मै.सं. २.१२.५,१४९.१,१८.१६.

उपसद् – (१) उपजीवी, (२) भृत्य, (३) दरबारी, (४) शरण में आने वाला ।
'विश्वानि भूतानि उपसदः'
अ. १५. ३.१०
(५) निकट में स्थित रखा हुआ ।
(६) वेदी जिसमें हवन किया जाता है ।
'इमामुप सदं वनेः'
ऋ. २.६.१, ऐ.ब्रा. १.२५.७.
(७) समीप समीप स्थित होकर विचार करने वाली उपसमिति (८) निकटतम मित्र ।
'प्रकामोद्यायोसदम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.६.
(९) आश्रित जन, समीप बैठने वाला ।
'अक्षितास्त उपसदोऽक्षिताः सन्त राशयः'
अ. ६.१४२.३
(१०) वज्रा वा उपसद ।
श.ब्रा. १०.२.४.२
'जितयो वै नामैता यदुपसदः'
ऐ.आ. १.२५.
'इषुं वा एते देवाः समस्कुर्वत
यदुपसदः तस्य अग्निरनी मासीत्'
ए.आ. १.२४
उपसद् नामक दृष्टि वज्र ।
(११) समीप विराजने वाला अधिकारी पुरुष ।

'रूपमुपसदामेतत्'
वाज.सं. १९.१४
'उपसदः पर्शवः'
अ.९ .७.६

उपसद्य – (१) प्राप्त करने योग्य, (२) शरण योग्य
'उपसद्यो नमस्यो भवेह ।'
अ. ३.४.१
(३) अपनी दुख-कथा कहने के लिए प्राप्त करने योग्य ।
'चर्कृत्य ईड्यो वन्दयश्चोयसद्यः'
अ. ६.९८.१
'भरेषु हव्यो नमसोपसद्य'
ऋ. २.२३.१३

उपसर्ग – (१) उपगृह्य सृजन्ति-आख्यातस्य अर्थ विशेषं सृजन्ति (जो आख्यात के अर्थ में विशेषतः उत्पन्न करता है वह उपसर्ग है)
(२) शाकटायन के मत से उपसर्ग वह है जो पद से अलग किए जाने पर निरर्थक हो जाता है और पद से युक्त हो जाने पर अर्थ में विशेषत पैदा करता है (ननिर्वदद्धा उपसर्गा अर्थान् निराहुः) ।
(३) गार्ग्य के मत से उपसर्ग पदों का अर्थ बहुत प्रकार का होता है चाहे वे उपसर्ग नाम और आख्यात से अलग ही क्यों न हो (उच्चावचाः पदार्थाः भवन्ति इति गार्ग्यः) ।
पद से युक्त और अयुक्त रहने पर भी उपसर्ग का अर्थ होता है । वेदों में विमुक्त उपसर्गों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है ।

उपसर्पत् – सरकता हुआ ।
'नीचीनस्योपसर्पतः'
अ. ७.५६.५

उपस्तरण – (१) आच्छादक आवरण ।
'उपस्तरणं चम्वोर्नभस्मयम्'
ऋ. ९.६९.५
(२) चटाई या खाट आदि विछावन ।
'यदुपस्तृणन्ति बर्हिरेव तत्'
अ. ९.६.८.

उपस्थसत् – सबसे समीपतम हृदय देश में विराजमान आत्मा ।
'प्रेष्ठःश्रेष्ठः उपस्थ सत्'
ऋ. १०.१५६.५. सा. २.८८१.

उपस्थावरा – (१) उपवन में लगे छोटे-छोटे स्थावर वृक्षों की वाटिका ।
(२) उपस्थित तुच्छ कार्य ।
'उपस्थावराभ्यो दाशम्'
वाज.सं. ३०.१६

उपसि – निकट, समीप ।
'पितुर्नपुत्र उपसि प्रेष्ठः'
ऋ. ५.४३.७, मै.सं. ४.९.३, १२३.१४, तै.आ. ४.५.२.
'आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति'
ऋ. १०.२७.१३, नि. ६.६

उपसिष्मियाणा – ईषत् स्मित करती हुई ।
'अप्सरा जारम् उपसिष्मियाणा'
ऋ. १०.१२३.५.

उपस्तिः – (१) उपस्थित ।
'उपस्तीन् पर्ण मह्यम् त्वं'
अ. ३.५.६,७.
(२) वश में रहने वाला, (३) समीपस्थ ।
'उपस्तिरस्तु सोऽस्माकम्'
ऋ. १०.९७.२३, अ. ६.१५.१, वाज.सं. १२.१०१.
(३) संघ बनाकर समीप रहने वाला ।
(४) उपासक ।
'तव वृक्षा उपस्तयः'
ऋ. १०.९७.२३, अ. ६.१५.१, वाज.सं. १२.१०१.

उपस्पिज – उपस्पिज मिति स्पर्धा ।
'युक्तं वचन मिति सायणः'
(१) स्पर्धायुक्त वचन ।
'नोपस्पिजं वः पितरो वदामि'
ऋ. १०.८८.१८

उपस्तुत – उपगतः स्तौति (उपगत हो स्तुति करता है । (१) उपगत स्तुति करने वाला विद्वान् ।
'यं वृषा यमुपस्तुतः'
ऋ. १.३६.१०
जिसको वर्षाने वाला और जिसे स्तुति करने वाला विद्वान् ।
(२) निकट पहुंचा हुआ या निकट पहुंचकर, साक्षात्, कर विनाश न होने वाले नित्य पदार्थों में ।
'उपस्तुता उपमं नाधमानाः
अमर्त्यैषु श्रव इच्छमानाः'
ऋ. १.११०.५

विनाश न होने वाले नित्य पदार्थों में (अमर्त्येषु) श्रवण, गुरूपदेश अर्थात् सत्यज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा करते हुए उसका प्रति समीप तक पहुंचकर (उपस्तुता) उस साक्षात् कर विद्वान् पुरुष उन अविनाशी पदार्थों के सदृश उपमान को दृष्टान्त रूप में चाहते हुए (नाधमानाः) अति तीक्ष्ण ज्ञान से ज्ञान प्राप्त करते हैं ।

उपस्तुता – (१) स्तुति आदर करने योग्य, (२) सम्मति ग्रहण करने योग्य परमेश्वर और आचार्य माता पिता, प्राण और अपान
'यज्ञे यज्ञे उपस्तुता'
ऋ. १.१३६.१

उपस्तुति – (१) उपमा द्वारा की हुई स्तुति ।
'उपस्तुति र्मधोनां प्रत्वावतु'
ऋ. ८.१.१६
(२) प्रशंसा ।
'उपस्तुतिं नमस उदयतिंच'
ऋ. १.१९०.३
(३) स्तोत्र ।
'तवाहमद्यमघवन् उपस्तुतौ'
ऋ. १०.१६७.३, नि. ११.१२.
हे भगवन् । आज मैं तेरे स्तोत्र में प्रवृत्त हूं । हे विद्युत । आज मैं तेरी स्तुति में वर्त्तमान हूं- ज.दे.श .
(४) समीप बैठकर तथा राज्य के हित के लिए यथार्थ बातों की चर्चा ।
'उपस्तुतित रौचथ्य मुरुष्येत्'
ऋ. १.१५८.४.

उपस्थम् – (अ.) (१) निकट ।
'आ वामुपस्थम द्रुहा
देवाःसीदन्तु यज्ञियाः'
ऋ. २.४१.२१, मै.सं. ३.८.७:१०५.७ कौ.ब्रा. ९.४. नि. ९.३७.
तुम्हारे निकट यज्ञार्ह देव उपस्थित हो ।
(२) गोद ।
'मातेव पुत्रं विभृतामुपस्थे'
ऋ. ६.७५.४, वाज.सं. २९.४१, तै.सं. ४.६.६.२. मै.सं. ३.१६.३, १८५.१६, का.सं.(अश्व.) ६.१, नि. ९.४०.
जिस प्रकार माता पुत्र को गोद में धारण करती है, उसी प्रकार धनुष की कोटियां धनुष खींचने वाले की रक्षा करे । (३) स्थान ।
'जिह्यानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे'
ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.१८: २२७.४, तै.ब्रा. २.८.७.४, आप.श्रौ.सू. १६.७.४,नि. ८.१५.

उपस्थसत् – सदा समीप रहने वाला –अग्नि ।
'प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्'
ऋ. १०.१५६.५, साम. २.८८१

उपस्पृक् – (१) पास पहुंचने वाला ।
'अहिंसन्ती रूप स्पृशः'
ऋ. १०.२२.१३
(२) छूनेवाली ।
'ईषमाणा उपस्पृशः'
अ. २०.१२७.२, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.२.

उपसेक्ता – (१) जल का या सुखों का सेचन करने वाला, (२) वीर्य सेचक पुरुष ।
'सर्वेभ्यो लोकेभ्यः उपसेक्तारम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

उपसेचनः – (१) सिञ्चन करने वाला,
(२) आनन्द की वर्षा बरसाने वाला ।
'त्रय कोशास ज्यसेचनासः'
ऋ. ७.१०१.४
(३) ओदन (भात) आदि में मिलाए जाने वाला । व्जञ्जन द्रव्य
'नाल्प इतिब्रूयात् नानुपसेचन इति'
अ. ११.३.२४
(४) गूंधने का जल ।
'कुल्योपसेचनम्'
अ. ११.३.१३

उपसेचनी – अभिषेक क्रिया ।
'वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद'
ऋ. १०.२१.२

उपसदिम – उपसीदेम, प्राप्नुयाम (प्राप्त करें), उपगच्छेम । उप + सद् के लिट् उत्तम पुरुष एक वचन का रूप । 'छन्दसि लुङ् लङ् लिट् से वर्तमान अर्थ में लिट् का प्रयोग ।
'देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्
देवानां राति रभिनो निवर्तताम्
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम्
देवा न आयुःप्रतिरन्तु जीवसे ।'
ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२, २१६.६, नि. १२.३९.

ऋतुगानी देवों या रश्मियों की (ऋजूयताम् देवानाम्) कल्याण कारिणी सुन्दर मति (भद्रासुमतिः) हमारे प्रति हो, देवताओं का दान हमारे प्रति आभिमुख्य से नियम पूर्वक हुआ करे (अभिनिवर्तताम्) । हम उन देवों की मित्रता प्राप्त करें (वयं देवानां सख्यम् उपसेदिम) और हमारी आयु को चिरजीवन के लिए (जीवसे) वे देव गण प्रवर्द्धित करें (ते देवाः प्रतिरन्तु) । दुर्गने रश्मियों को ही देव माना है जो बहुत होने के कारण विश्वेदेवाः कही जाती हैं । यह स्तुति विश्वदेवों के लिए ही है ।

'ओमासश्चर्षणीधृतः
विश्वेदेवास आगत
दाश्वांसो दाशुषः सुतम्'

ऋ. १.३.७, वाज.सं. ७.३३, ३३.४७, तै.सं. १.४.१६.१, मै.सं. १.३.१८.३७.२, का.सं. ४.७. श.ब्रा. ४.३.१.२७, ऐ.आ. १.१.४.१३, नि. १२.४०.

उपसेदुष् – प्राप्त करने वाला, ।

'तं भागमुपसेदुषे'

ऋ. ८.४७.१६

उपसेदु – उप + सद् के लिट् प्र.पु.ब.व. का रूप । अर्थ है–निकट गईं ।

'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्'

ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ.(आंध्र). १०.७३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.

चलने वाली सूर्य की रश्मियां सूर्य के निकट गईं ।

उपस्थेयाम – (१) सेवा या उपस्थान करते हैं – (२) प्राप्त करें ।

'ऋष्वात इन्द्र स्थविरस्यबाहू
उपस्थेयाम शरणबृहन्ता'

ऋ. ६.४७.८, तै.ब्रा. २.७.१३.४, नि. ७.६.

हम तुम हमान् या वृद्ध के (ते स्थविरस्य) दर्शनीय, बृहत् एवं रक्षक हाथों की (ऋष्वा बृहन्ता शरणा बाहू) सेवा या उपस्थान करते हैं (उपस्थेयाम) ।

हे राजन् ! ज्ञान वयोवृद्ध आप को (स्थविरस्य ते) दर्शनीय आश्रय देने वाली एवं लम्बायमान भुजाओं को हम प्राप्त करें (उपस्थेयाम) ।

उपस्तोषाम – निकट जाकर स्तुति करते या गाते हैं ।

'नराशंसस्य महिमानमेषाम्
'उपस्तोषाम यजतस्ययज्ञैः'

ऋ. ७.२.२, वाज.सं. २९.२७, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१२, का.सं. ३७.४, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.७.

उन देवताओं में हविया स्तोत्रों से (एषाम् यज्ञैः) यजनीय अग्निका (यजतस्य नराशंसस्य) महत्व (महिमानम्) हम निकट जाकर गाते हैं (उपस्तोषाम) ।

उपहत्नु – (१) शत्रु का नाशक । रुद्र का विशेषण

'मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्'

ऋ. २.३३.११, तै.सं. ४.५.१०.४, नृसिंह पू.ता.उप. २.४.

(२) दण्डकर्ता ।

उपहव्य – एक सोमयाग ।

'उपहव्यं विषूवन्तम्'

अ. ११.७.१५

उपहस्वा – उपहास करने वाला, खिल्ली उड़ाने वाला । 'उपहस्वन्' का प्रथमा एकवचन में रूप ।

'मोपहस्वान आ दभन्'

ऋ. ८.४५.२३, अ. २०.२२.२, साम. २.८२.

उपह्वये – बुलाता हूँ, आह्वान करता हूँ ।

'उपह्वये सुदुघां धेनुमेताम्'

ऋ. १.१६४.२६, अ. ७.७३.७,९ .१०.४, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, नि. ११.४३.

मैं अच्छी तरह से दुही जाने वाली धेनु या माध्यमिक वाक् को बुलाता हूँ ।

उपह्वर – (१) पर्वतों के समीप गुप्त एकान्त स्थान, ।

'उपह्वरे गिरीणाम्'

ऋ. ८.६.२८, साम. १.१४३, वाज.सं. २६.१५

(२) समीप, (३) सुरक्षित स्थान (४) खजाना ।

'यत्सीम उपह्वरे विदत्'

अ. २०.२२.६

(५) स्तन–सा. (६) समीप –दया. ।

'यत्सीम् उपह्वरे विदत्'

ऋ. ८.६९.६, अ. २०.२२.६,९२.३, साम. २.८४१, तै.ब्रा. २.७.१४.४.

जब दूध (यत्) स्तन में (उपह्वरे) सर्वतोभाव से (सीम्) प्राप्त करता है (विदत्) ।

अथवा, जिसे सदा (यत् सीम्) समीप में (उपह्वरे) प्राप्त करता है या जानता है (विदत्)
(६) कुटिलता युक्त व्यवहार - दया. ।
(७) आकाश, (८) आश्रम योग्य भूप्रदेश ।
'उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्
मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः'
ऋ. १.६२.६
कि आकाश में ही चारों मेघ युक्त दिशाएं मधुर जल से युक्त होकर तृप्त हो सींचती हैं ।
अथवा, इस आश्रय योग्य भू प्रदेश पर चारों दिशाओं की प्रजाएं, मेघ बरसने पर मधुर जल से भरी नदियों के समान सभी को तृप्त करती हैं
(९) कुटिलता से जाने योग्य आकाश मार्ग ।
'उपह्वरेषु यदचिध्वं यथिम्
वय इव मरुतः केनचितपथा'
ऋ. १.८७.२, तै.सम. ४.३.१३.७.
वायुगण कुटिलता से जाने योग्य आकाश मार्गों में (उपह्वरेषु) जाते हुए मेघ को किसी भी मार्ग से हटाकार संचित कर देते हैं ।

उपह्वत - (१) अनुगृहीत ।
'उपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी'
अ. १९.४०.२.
(२) निमन्त्रित ।
'स उपहूतः पृथिव्याम्'
अ. ९.६.५५.

उप्त - लगाया हुआ, रोया हुआ, बोया गया ।
'इस उप्ता मृत्युपाशा'
अ. ८.८.१६

उब्ज - (१) उब्ज आर्जवे (तुदादि)। अर्थ-वश करना, अधीन कर विनीत करना, दबाना ।
'तेन शत्रून अभि सर्वान् न्युब्ज'
अ. ८.८.६
आजकल 'उब्जना' से ही उजबुजाना हो गया है । (२) ढंकना to cover
'वरुणेन समुब्जिताम्'
अ. ९.३.१८

उब्जतम् - झुकाओ गर्व चूर करो ।
'इन्द्रसोमा तपतं रक्ष उब्जतम्'
ऋ. ७.१०४.१,
(२) झुका दे, मूलोच्छेदकर दे ।
'इन्द्राग्नी रक्षे उब्जतम्'
ऋ. १.२१.५
इन्द्र और अग्नि दुष्ट राक्षसों को झुका दे मूलोच्छेद कर दे या क्रूर स्वभाव छुड़ा कर सरल बना दे ।

उब्जन् - (१) दुष्टों का दमन न करता हुआ
'उब्जन्तो यन्तु ओजसा'
अ. ८.८.१३
(२) फेंकता हुआ ।
'उब्जन अर्णांसि जर्हषाणो अन्धसा'
ऋ. १.५२.२
जलों को फेंकता हुआ और प्रचुर अन्न सामग्री से जगत् को हर्षित करता हुआ (जर्हृषाणः)
अथवा इन्द्र जलों को फेंकता हुआ और अन्न से प्रसन्न होता हुआ ।

उब्ध - उन्दकः (सब ओर से मिला हुआ,)
(२) ज्ञान से पूर्ण (३) अन्यों का अज्ञाननष्ट करने वाला ।
'ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धम्'
ऋ. ४.१.१५

उपाक - समीप ।
'सिन्धोरूर्मा उपाकआ'
ऋ. १.२७.६, साम. २.८४८
समुद्र के तरंगों के उठने पर समीप ही ।
(२) पार्श्ववर्ती, समीपस्थ ।
'श्रियऋष्व उपाकयोः निशिप्री हरिवान्
दधे हस्तयोःवज्रमायसम्'
ऋ. १.८१.४, साम. १.४२३.
हाथों में लोहे के बने खड्ग के समान ही पार्श्ववर्ती स्थित सेनाओं में भी वेग से जाने वाले बल वीर्य को धारण कराये ।

उपाकृत - योग-साधनों से संस्कृत ।
'उपाकृतं शशमानं यदस्थात्'
अ. २.३४.२, तै.सं. ३.१.४.३, का.सं. ३०.८,

उपाके - (द्वि.व.) (१) एक दूसरे के समीप रहने वाले -उषसा-रातदिन (२) स्त्री पुरुष ।
'आभन्दमाने उषसा उपाके'
ऋ. ३.४.६
(३) उपक्रान्ते, उपक्रम्य इतरे तरं क्रान्ते, प्रशस्ये (एक दूसरे से निकट आक्रान्त हुए लिपटे हुए सेवित किए हुए) ।
'आ सुष्वयन्ती यजते उपाके

उषासानक्ता सदतां नियोनौ
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे
आधेश्रियं शुक्रपिशंदधानो'
ऋ. १०.११०.६, अ. ५.१२.६, २७.८, वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३, २०२.५, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.११.
सुन्दर रीति से चलने वाली या परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई या लोगों को अच्छी तरह से सुलाती हुई (सुषुपन्ती) यज्ञ की सम्पादयित्रियां या पूज्य (यजते), एक दूसरे के निकट जा परस्पर क्रान्त या संलग्न (उपाके) द्युलोक से उत्पन्न या द्युति-युक्त (दिव्ये), परस्पर संमिश्र (योषणे), गणों से महती (वृहती), सुन्दर शोभायुक्त सुरुक्मे) उषा तथा रात्रि रूपी देवता (उषासानक्ते), शुक्ररूपिणी शोभा स्थापित करती हुई, (शुक्रपिशं श्रियं अधिदधाने) इस यज्ञ स्थान में या सृष्टि में (योनौ) नियमपूर्वक नित्य रहे (नि आसदताम्) ।
अन्य अर्थ-परमात्मा यज्ञ कर्त्ताओं को आशीर्वाद देता है-हे यज्ञकर्त्ता मनुष्यो । यज्ञ करने के योग्य में प्रातः और सायं (यजते उषासानक्ता) सेवित किये हुए (उपाके) तुम्हारे घर में (योनौ) मुस्कुराते हुए या शयनावस्था की तरह सौमनस्य स्थापित करती हुई (सुषुपन्ती) सब व्यवहारों के साधन, शुभ कर्मों को संयुक्त करने वाले (दिव्येयोषणे) महान् सुख देने वाले (वृहती सुरुक्मे) शुभवर्ण लक्ष्मी को धारण करते हुए (शुक्रपिशं श्रिय में अधिदधाने) निरन्तर प्राप्त हों (न्यासीदताम्) ।

उपाकचक्षाः - (१) अति समीप अन्तः शत्रु के भीतर दृश्य, (२) गुरु द्वारा समीप रहकर उपदेश करने योग्य ।
'अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम्'
ऋ. ८.६.२५

उपानस - अनस अर्थात् यज्ञस्थान या देह ।
'निरक्षात् निरुपानसात्'
अ. २.१४.२

उपातसत् - विनष्ट ।
'कृधुस्थूलमुपातसत्'
अ. २०.१३६.१, वाज.सं. २३.२८, शा.श्रौ.सू. १२.२४.२.२.

उपायन - निकट आगमन ।
'उपायन उषसांगोमतीनाम्'
ऋ. २.२८.२

उपानह् - जूता । जूता पैर को चारों तरफ से नद्ध कर देता है ।
'उपानहिपादम्'
अ. २०.१३३.४, आ.श्रौ.सू. ८.३.१९.

उपावसु - (१) धनप्रद, धन देने वाला ।
'आरे अधामुपावसुम्'
ऋ. ६.५६.६
(२) उपवसुः सर्वत्र सदा समीप बसने वाला ।
'देवानां सुम्न इषयन् उपावसुः'
ऋ. ९.८४.३

उपावसृज - (१) उप + अवसृज । अर्थ निकट आकर दे -सा. (२) बना ।
'उपावसृज त्मन्या समञ्जन्
देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि'
ऋ. १०.११०.१०
हे यूप या अग्नि या गार्हपत्य अग्नि, (वनस्पते), आत्मा से या जीव से या स्वयं (त्मनया) अन्न या आज्य आदि हवि, (हवींषि) ऋतु के अनुसार (ऋतुथा) देवताओं के निकट आकर दो (देवानाम् उपावसृज) ।
अन्य अर्थ-हे अग्नि ! तू अपने आपको स्वयं अभिव्यक्त कर (त्मनया समञ्जन) देवजनों के अन्न तथा मिष्टान्न आदि हवियों को बना (देवानां पाथ हवींषि ऋतुथा उपावसृज) ।

उपावह्यिमाण - सन्निकट स्थापित ।
'अथर्वोपावह्यिमाणः'
वाज.सं. ८.५६

उपावीः - समीप रहकर रक्षा करने वाला ।
'उपावीरसि उपदेवान्दैवीर्विशः'
वाज.सं. ६.७, का.सं. ३.४,२६,७, श.ब्रा. ३.७.३.९, का.श्रौ.सू. ६.३.१९.

उपावृत् - (१) समीप आगमन । उप + आवृत् । (२) कर्मबन्धन, (३) समीप देश प्राप्ति का उपाय, ।
'सहस्रं त उपावृतः'
अ. ६.७७.३, वाज.सं. १२.८, तै.सं. ४.२.१.३, मै.सं. १.७.१, १०९.१४, का.सं. १६.८, कौ.सू. ७२.१४

उपांशु – गायत्रबल से उत्पन्न उपांशु नामक जय-प्राण ।
'गायत्रादुपांशुः'
वाज.सं. १३.५४, तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९, १०४.१, का.सं. १६. १९, श.ब्रा. ८.१.१.५.

उपाहृत – उप + आ + हृ + क्त । उपहार रूप में दिया गया ।
'उपाहृतमनुबुद्धम् निखातं'
अ. १०.१.१९

उपेति – उपायन, उपहार, भेंट ।
'कात उपेतिः मनसो वराय'
ऋ. १.७६.१, का.सं. ३९.१४, आश्व.श्रौ.सू. ४.१३.७.
हे प्रभो या विद्वान् , मन या संकल्प विकल्प करने वाले चित्त और ज्ञान को वरण करने या श्रेष्ठ बनाने के लिए (मनसःवरायः) तुझे क्या उपायन उचित है ? (उपेतिः)

उपेष् – उप + इष् + क्विप् = उपेष् । अर्थ-पकड़, आक्रमण
'स्वंय सा रिषध्यै या न उपेषे अत्रैः'
ऋ. १.१२९.८.
वह हमें हिंसित करने के लिए या जो हमें पकड़ने या आक्रमण करने के लिए (उपेषे)

उपेषन् – भोग के लिए निकट आने की इच्छा करता हुआ ।
'उपेषन्तम् उदुम्बलम्'
अ. ८.६.१७

उपोत्तम – उत्तम सूक्तों के समीप साधन विषयक सूक्त ।
'उपोत्तमेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.११

उपोदय – नदियों की बाढ़ ।
'यः सिन्धूनाम् उपोदये सप्तस्वसा समध्यमः ।'
ऋ. ८.४१.२, नि. १०.५.
जो वरुण नदियों में बाढ़ आने पर सात बहन वाले हो जाते हैं और जिनकी स्तुति सात स्वरों में मध्यम स्वर से की जाती है ।

उपोदर – गर्भाशय
'अग्रदिह्रं.म उपोदरे'
ऋ. ८.९१.५, सै.ब्रा. १.२२१.

उपोय – (१) अति निकट (२) भली भाँति –दया ।
'उपोय मे परामृश'
ऋ. १.१२६.७, नि. ३.२०.
हे पति देव । मेरे अति निकट आ मेरे अंगों को छू-सा. । हे पति देव, मेरे साथ भलीप्रकार परामर्श की जिए –दया. ।

उपोह – (१) धान्य को खेत में प्राप्त कराने वाली शक्ति, (२) राष्ट्र को फटक फटक कर साफ करना ।
'उपोहश्च समूहश्च'
अ. ३.२४.७

उभ् (उम्भ) – उभ् उम्भ पूरणे (तुदादिः) । समाप्त करना ।
'यमदूता अपोम्भत'
अ. ८.८.११

उभय – दोनों ।
'श्रृण्वेवीर उग्रभुग्रं दमायन्
अन्यमन्यमतिनेनीयमानः
एधमानद्विडुभयस्य राजा
चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्'
ऋ. ६.४७.१६
यह इन्द्र बलवान् है, ऐसा सुनता हूँ । (इन्द्रःवीरःश्रृण्वे) क्योंकि वह शत्रु के प्रति उग्र (उग्रम् उग्रम्) शत्रुओं का दमन करने वाला (दमायन्) परस्पर व्यवहार से स्तोताओं को अभीष्ट सिद्धि की ओर पुनः पहुँचाने वाला (अन्यम् अन्यम् अतिनेनीय मानः) दीप्यमान या यज्ञ न ही करने वालों या सोमाभिषवण नहीं करने वालों का द्वेष्टा (एधमानद्विट) है । वह दिव्य और पार्थिव दोनों प्रकारों के मानव धनों का प्रदाता है (उभयस्य राजा) तथा यज्ञविमुख मनुष्यो को (विशः) दण्ड देता है । (चोष्कूयते) और यज्ञशील मनुष्यो को मनुष्यान् पुण्य लोक में स्थान देता है ।

उभयङ्कर – (१) अनुग्रह या दण्ड देने वाला, (२) दोनों लोकों मे कल्याण करने वाला इन्द्र या परमेश्वर ।
'विद्वेषणं संवननो भयङ्करम्'
ऋ. ८.१.२, अ. २०.८५.२, साम. २.७११.
(३) निग्रह, अनुग्रह दण्ड और कृपा करने में समर्थ इन्द्र ।

उभयजन्म – दोनों जन्म, (२) अतीत आगामी और वर्तमान-ये तीन जन्म और आचार्य प्रदत्त द्विजन्मता ये चारों मिलकर एक जन्म है और मुक्त होने के पश्चात् पुनः जन्म लेना द्वितीय जन्म है ।

'यस्तातृषाण उभयाय जन्मने
मयःकृणोषि प्रयआचसूरये'

ऋ. १.३१.७

उभयतःशीर्ष्णी – चेतना जो ज्ञान शीर्ष्णी है, जैसे गौ प्रसव काल में बच्चा के आधा बाहर आने पर उभयतः शीर्ष्णी दोनों तरफ वाली हो जाती है । चेतना का एक अंश बाहर पदार्थ का ज्ञान करता है । और दूसरा अंश भीतर मनन करता है ।

'अदितिरसुभयतः शीर्ष्णी'

वाज.सं. ४.१९, तै.सं. १.२.४.२, ६.१.७.५, मै.सं. १.२.४:१३.४, ३.७.५, ८१.१९, का.सं. २.५, २४.३, श.ब्रा. ३.२.४.१६.

उभयद्युः – (१) दोनों दिनों के अन्तर पर आने वाला ज्वर ।

'यो अन्येद्युः उभयद्युः अभ्येतिः'

अ. १.२५.४, ७.११६.२.

(२) हर दूसरे दिन

'तस्मान्मनुष्येभ्य उभयद्युः उपहरन्ति'

अ. ८.१० (३) ८.

उभयस्यराजा – इन्द्र का विशेषण । वह दिव्य या पार्थिव दोनों प्रकार के धनों का स्वामी या दाता है ।

'एधमानद्विट् उभयस्यराजा'

ऋ. ६.४७.१६, नि. ६.२२.

उभयहव्य – (१) वनस्पतियों से उत्पन्न तथा पशुओं से उत्पन्न घृत दुग्ध आदि दोनों प्रकार के हव्य पदार्थ

'स्वदन्ति देवा उभयानिहव्या'

ऋ. ७.२.२, वाज.सं. २९.२७, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१३, का.सं. ३७.४, तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.७

'मदन्ति देवा उभयानि हव्या'

अ. ७.१०९.२.

(२) सौमिक तथा हविमयहव्य ।

'स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या'

पृथ्वी, जल आदि पञ्चभूतदेव (देवाः) सौमिक तथा हवि मय दोनों हव्यों को आस्वादित करते हैं (स्वदन्ति) ।

उभयादत् – दोनों जबड़ो मे दांत वाला जीव ।

'ये के चोभयादतः'

ऋ. १०.९०.१०, वाज.सं. ३१.८., तै.आ. ३.१२.५.

उभयादति – जिनके दोनों जबड़ो में दांत हो ।

'पशूनाम् उभयादति'

अ. ५.३१.३

उभयादम् – जबड़ो के बीच में (अद) चबा जाना ।

'पेत्वस्तेषामुभयादम्'

अ. ५.१९.२

उभयानिहव्या – दो प्रकार के हव्य-एक सोमरस तथा दुग्ध घृतादि का बनाया और दूसरा अन्नों का बनाया हुआ ।

उभयावी – (१) दोनों लोकों में कर्म और भोग की रक्षा करने वाला, (२) दोनों योनियों में विद्यमान जीवों की रक्षा करने वाला परमेश्वर ।

'मंहिष्ठमुभयाविनम्'

ऋ. ८.१.२, अ. २०.८५.२, साम. २.७११.

(३) स्थावर जंगम या शत्रु मित्र दोनों का रक्षक-इन्द्र (४) दोनों का सम्मिलित ।

'अदुष्टे देवाःपुत्रं सोमपा उभयाविनम्'

अ. ५.२५.९

उभयाहस्त्या – दोनों हाथों में भर भरकर ।

'उभयाहस्त्या वसु
शिशीहि राय आ भर'

ऋ. १.८१.७, अ. २०.५६.४, मै.सं. ४.१२.४, १८९.१६, का.सं. १०.१२, तै.ब्रा. २.४.४.७.

दोनों हाथों से भरभर कर ऐश्वर्य आदिदे ।

उभयाहस्ति – (अ.) (१) उभौ हस्तौ यस्मिन् कर्मणि (जिस कर्म में दोनों हाथ लगाए जाएं)

(२) उभाभ्यां हस्ताभ्याम् दोनों हाथों से द्विदण्डयादिभ्यश्च (पा.५.४.१२८) से इच् प्रत्यय

'उभयाहस्ति आभर'

ऋ. ५.३९.१, साम. १.३४५, २.५२२, पंच.ब्रा. १४.६.४, नि. ४.४.

उभयेद्युः – दो दिन छोड़कर या दो दिन आकर तीसरे दिन न आने वाला ज्वर ।

'यो अन्येद्युः उभयद्युः अभ्येति'

अ. १.२५.४, ७.११६.२

उभा – उभौ (दोनों) । संहिता में 'औङ्' का 'आ'

हो जाता है ।
'तुविक्षं ते सुकृतं सूमय धनुः
साधुर्बुन्दो हिरण्ययः ।
उभाते बाहू रण्या सुसंस्कृत
ऋदूपे चिदृइवृधा'
ऋ. ८.७७.११, नि. ६.३३.
हे इन्द्र या हे राजन ! तेरा धनुष बहुत बाणों का चलाने वाला बहु वाणवर्षी (तुविक्षम्) सुन्दर कर्मों का करने वाला (सुकृतम्),सुखकर (सूमयम्) और सोने का बना है । (हिरण्यमः) तेरा बाण (बुन्दः) शत्रु समूह का साधक है (साध्रः) और तेरे दोनों हाथ (ते उभा बाहू) रमणीय या रण के योग्य हैं (रण्या), सुसंस्कृत (सुसंस्कृता) शत्रुओं के नाशक (ऋदूपे) तथा मर्मभेदी (ऋदूवृधा) हैं ।

उभावन्तौ – परा और अपरा विद्या की दोनों सीमाओं के मध्य में समन्वय भाव से प्राप्त मुमुक्षु आत्मा
'उभावन्तौ समर्षति वत्सः सं मातराविव ।'
अ. १३.२.१३

उभावरा – एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री पुरुष ।
'अश्विनास्तामुभावरा'
ऋ. १०.८५.९, अ. १४.१.९

उभाशंसा – (१) दोनों पक्ष, दोनों वादी ।
'उभाशंसा सूदय सत्यताले'
ऋ. ४.४.१४, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.६, का.सं. ६.११.
(२) निकट या दूर के, (३) सामने या पीठ पीछे निन्दा करने वाला, ।
(४) स्वदेशी विदेशी दोनों प्रकार के पाप प्रशंसक शत्रु–दया .

उभे – (१) द्यौ और पृथिवी, (२) अन्तरिक्ष और पृथिवी के निवासी (३) अग्नि उत्पन्न करने वाले दो अरणि ।
'उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्'
ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.८, २२७.५, तै.ब्रा. २.८.७.५, नि. ८.१५.
उत्पन्न होने त्वष्टा अग्नि से दोनों द्यौ और पृथिवी या उनके निवासी या दो अरणियों से अग्नि उत्पन्न करने वाले डर गए ।

उभे अहनी – (१) दोनों द्यौ और पृथिवी (२) दोनों दिन और रात ।
'उभे यथा जो अहनीसचाभुवा
सदःसदो वरिवस्यातउद्भिदा'
ऋ. १०.७६.१
जिस से (यथा) परिचर्या करते हुए हमें (वरिवस्यतःनः) साथ ही उत्पन्न (सचाभुवा) दोनों द्यौ और पृथिवी (उभे अहनी) घर घर या सभी यज्ञ गृहों में (सदः सदः) उद्भेदक धन से पूर्ण करें–सा .
अन्य अर्थ–जिससे हमारे दोनों दिन रात (नः उभे अहनी) हमारे अनुकूल होते हुए (सचाभुवा) अपने आविर्भाव से (उद्भिदा) हमारे प्रत्येक गृह को (सदः सदः) परिपूजित करें (वरिवस्यतः)

उभेजन्मनी – इहलोक और परलोक । दोनों लोकों में जीवात्मा का जन्म होता है ।
'रश्मीरिव योयमति जन्मनी उभे'
ऋ. १.१४१.११
सूर्य जिस प्रकार किरणों को और सारथि घोड़े के बाणों को वश में करता है (यमति) इसी प्रकार दोनों जन्म इहलोक और परलोक दोनों को नियम में रखता है ।

उभेजनसी – (१) जनयिन्यौ द्यावा पृथिव्यौ –दया. जन्म देने वाले द्यौ और पृथिवी (२) दोनों राजा (३) और प्रजा वर्ग के जन ।
'पाथो न पायुं जनसीउभेअनु'
ऋ. २.२.४

उभेजनुषी – (१) दोनों, जन्म, (२) इहलोक और परलोक ।
'जनुषी उभे अनु'
ऋ. ९.७०.३
(२) स्थावर और जंगम दोनों जन्म वाले, (३) आकाश और भूमि ।
'अदाभ्यासौ जनुषी उभेअनु'
ऋ.९.७०.३,साम.२.७७५.

उभेविशौ – दोनों उत्तम, और निकृष्ट, स्थावर, गंगम या मानव तिर्यङ्दोनों प्रकार की प्रजाएं ।
'उभेनृचक्षा अनुपश्यते विशौ'
ऋ.९.७०.४

उभोभयावी – दोनों प्रकार के शस्त्रास्त्रों और बलों से युक्त ।

'उभोभयाविन् उपधेहि दष्ट्रौ'
ऋ. १०.८७.३,अ.८.३.३.

उभौ समुद्रा – (१) दो समुद्र, (२) मन के पक्ष में स्वप्न और जाग्रत ।
'उभौ समुद्रावाक्षेति'
ऋ.१०.१३६.५

उयम् – (अ.) ओ देखो ।
'उयं य कांश लोककाः'

उर – मेष, भेड़ । उर्ण शब्द से बना शब्द । मेष ऊन वाला होता है । अत वह उर कहा गया है ।

उरण – (१) आच्छादक –दया. ।
(२) दूसरे के धन को या सत्य को छिपाने वाला,
(३) मेध के समान प्रतिस्पर्ध्धा से हटने वाला,
(४) एक असुर–
'अध्वर्यवा य उरण जघान'
ऋ.२.१४.४
(५) उरणः ऊर्णावान् (ऊनवाला) । ऊर्णा + न (मतुप् अर्थ में) = उर्णन = उरण । अर्थ–मेष, भेड़ा, ऊर्णा शब्द 'वृ' धातु से बना है, क्योकि ऊन विशेषरूप से लोगों के द्वारा अभिलषित है (शीतरक्षार्थ विव्रियन्ते) । अथवा आच्छादनार्थक उर्ण धातु से 'ड' प्रत्यय कर 'टाप्' प्रत्यय जोड़ ऊर्णा बना । ऊर्णा से आच्छन्न होने के कारण भेड़ का नाम उरण पड़ा
'वृकश्चिदस्य वारण उरामथिः आ तयुनेषु भूषति
सेमं नस्तोमं जुजुषाम आगहि
इन्द्र प्रचित्रया धिया ।'
ऋ. ८.६६.८, अ. २०.९७.२, सान. २.१०४.२, नि. ५.२१.
इस इन्द्र का कुत्ता भी (अस्यवृकः चित्) शत्रुओं का वारयिता है (वारणः) जो भेड़ों को शिकारी होकर भी (उरामथिः) प्रशस्त मार्गों या प्रज्ञानों में इन्द्र के अनुकूल आचरण करता है (वयुनेषु आभूषति) । हे इन्द्र, वह तू हमारी इस स्तुति को सुनकर प्रसन्न होता हुआ (हे इन्द्र सत्वम् इमनः जुजुषाः), कमनीय स्तुतिरूपी कर्म से (चित्रेण धिया) शीघ्र आ (आ आगहि) । अन्य अर्थ–इस राजा का कुत्ता (अस्य वृकः चित्) शत्रुओं को निवारण करने वाला (वारणः) तथा भेड़ो को हांकने वाला हो (उरामथिः) वह कुत्ता इशारों पर (वयुननेषु) आक्रमण करने वाला हो (आभूषति) । वह तू हे राजा प्रजा से प्रीति करता हुआ (जुजुषाणः) अद्भुतबुद्धि से (प्रचित्रयाधिया) हमारे इस दुष्ट जनों से रक्षा के लिए (नः इम स्तोमम् आगहि) ।

उरवः – महान् सामर्थ्य वाले 'आदित्यासः' का विशेषण ।
'त आदित्यास उरवः गभीराः'
ऋ. २.२७.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

ऊर्व – (१) नाश करने वाला ।
'ऊर्वान् दयन्त गोनाम्'
ऋ. ७.१६.७, साम. १.३८. वाज.सं. ३३.१४.
(२) बड़वा मुख में स्थित अपूर्ण काम अग्नि
(३) प्रचण्ड अग्नि–दया. ।
'उर्व इव पप्रथे कामो अस्मे'
तै.ब्रा. २.५.४.१.
बड़वामुख में स्थित अपूर्ण काम अग्नि के समान (उर्वइव) हमारी कामनाएं बढ़ती ही जाती हैं –सा. । प्रचण्ड अग्नि की तरह तेजस्वी हमारे वैदिक कर्म विस्तृत हैं–दया. (४) बड़ा महान्
'अपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः'
ऋ. ३.१.१४

उर्वर्य – (१) बड़े बड़े ऐश्वर्यों का स्वामी, ।
(२) उर्वरा भूमिओं का क्षेत्र या उद्यान बनाने में कुशल ।
'न उर्वर्याय च खल्वाय च'
वाज.सं.१६.३३,तै.सं.४.५.६.१.

उर्वरा – (१) उरुवरा –विशाल वरांग देशा नितम्बनी इत्यर्थ (गर्भग्रहण करने योग्य कन्या ।
'असौ च या न उर्वरा'
ऋ. ८.९१.६
(२) उत्तमवेदी, (३) उपजाऊ भूमि, (४) नानाधनधान्य उत्पन्न करने वाली समृद्ध भूमि (५) हरी भरी प्रजा ।
(६) बड़े बड़ों से करण करने योग्य अति उत्तम प्रकृति ।

उर्वराजित् – शस्यादि उत्पन्न करने में श्रेष्ठ भूमि के समान और बड़े बड़ो में वरण करने योग्य अति उत्तम प्रकृति को भी अपने वश करने वाला–इन्द्र परमेश्वर ।
'सत्राजिते नृजित उर्वराजिते'

ऋ. २.२१.१

उर्वरापतिः – उत्पादक भूमि का स्वामी ।

'अश्वपते गोपत उर्वरापते'

ऋ. ८.२१.३, साम. १.४०२

उर्वशी – (१) जंघाओं से लांघने वाली या बड़े राष्ट्रों को वश करने वाली उर्वशी –सेना

'मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्'

ऋ. ४.२.१८

(२) अति कान्तिमती, तैजस सात्विक विकार से युक्त (३) अति विस्तृत व्यापक प्रकृति (४) उर्वशी नाम्नी अप्सरा ।

'उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः'

ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४

उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ, जीव और ब्रह्म परमेश्वर है । उर्वशीसे वसिष्ठ की उत्पत्ति की कथा तथा प्रकृति से जीव की उत्पत्ति का रहस्य विचारणीय है ।

(५) 'उरु अभ्यश्नुते' अर्थात् बहुत व्यापक होती है । उरु + अशुङ् + इन् + ङीष् = उर्वशी । या उरुभ्याम् अश्नुते (जो विस्त दो वस्तुओं से व्यापक होती है ।) विद्युत् धन और ऋण नामक दो शक्तियों से व्याप्त हैं । एवं स्त्री भी ज्ञान और कर्म से व्याप्त है । अतः उर्वशी विद्युत् और (६) स्त्री का वाचक है । (७) कुछ भाष्य कारों ने उरु का अर्थ जंघा किया है जो कि ठीक नहीं है । ऊरु का अर्थ जंघा होता है । उरुभ्या जानुपरिभागाम्या अश्नुते व्याप्नोति वशीकरोति (जानु के ऊपर वाले भागों से जो मैथुन कर्म से पुरुष को वश में लाती है) । उर्वाशिनी से ऊर्वशी हुआ है ।

(८) उरुः वशः अस्याः–महान् कामः अस्याः जिसका काम अत्यन्त बढ़ा चढ़ा हो वह 'उरुवशिनी' अर्थात् उर्वशी है । कामिनी ।

(९) स्त्री और विद्युत के वश में बहुत रहते हैं । उरु + वश (कान्त्यर्थक) + इन् + ङीष् = उर्वशी।

(१०) उरु अभ्यश्नुते –महत् यशः अभिव्याप्नोति (महान् यश जिसे अभिव्याप्त करे)

(११) माध्यमिका देवी विद्युत्इडा । आधुनिक अर्थ – (१) स्वर्ग की एक अप्सरा जो प्रकरण की स्त्री बनी । ऋग्वेद में उर्वशी का नाम अनेक स्थलों पर आया है । कहा जाता है उसे देखकर मित्र और वरुण का वीर्य गिर पड़ा जिससे अगस्त और वसिष्ठ उत्पन्न हुए । मित्र और वरुण के शाप से वह मर्त्य लोक में आई और पुरुरवा की स्त्री बन गई । शाप की अवधि समाप्त होने पर उर्वशी पुनः स्वर्ग चली गई परन्तु पुरुरवा से उसका पुनर्मिलन हुआ और आयु नामक एक पुत्र उत्पन्न कर पुनः स्वर्ग को विदा हुई । पौराणिक कथा में नारायण ऋषि की जंघा से उसकी उत्पत्ति बतलाई गई है ।

'उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः'

ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४.

हे वसिष्ठ ! तू उर्वशी के मन से उत्पन्न हुआ । अथवा, हे अन्न दाता जल । तू विद्युत् के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ ।

उर्वशी इडा – उर्वशी नाम से प्रसिद्ध रूपवती विद्युत् जिसे इडा कहते हैं ।

'अभि न इडा यूथस्यमाता
स्मत् नदीभिरुर्वशी वागृणातु'

ऋ. ५.४१.१९, नि. ११.४९

मेघ समूह की निर्मात्री (यूथस्य माता) रूपवती विद्युत्, उर्वशी नाम से जो प्रसिद्ध माध्यमिका वाक् देवी इडा है । (उर्वशी इडा) वह हमें जलों से (नदीभिः) खूब सन्तुष्ट करें (अभि गृणातु) ।

उरा – (१) भेड़ ।

'उरांन धूनुते वृकः'

ऋ. ८.३४.३, साम. २.११५८.

(२) विस्तृत वाणी ।

उराणः – (१) प्राणवान् बलवान् प्रवक ।

(२) बहुत सेवा करने वाला शिष्य जन

'प्रदक्षिणित् देवतातिम् उराणः'

ऋ. ३.१९.२, ४.६.३.

(३) अल्पमपि उरु कुर्वाणः (थोड़े को भी अधिक करता हुआ) ।

(४) उरु कुर्वाणः (बहुकर्मा) । 'उरु कुर्वाणः' से 'उराणः' हुआ है ।

'वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वान्
उभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान्
दूत ईयसे प्रदिव उराणः
विदुष्टरो दिव आरोधनानि ।'

ऋ. ४.७.८.

हे अग्नि ! अभीष्ट फलदायक यज्ञ के (वेःअध्वरस्य) दूत कर्मों को जानता हुआ (दूत्यानि विद्वान्) दोनों द्यौ और पृथिवी के बीच में (उभेरोदसी अन्तः) स्थित अन्तरिक्ष को जानता हुआ (संचिकित्वान्) पुराण एवं अल्प हवि को बहुत करने वाला (प्रदिवः उराणः) विद्वन्तर (विदुष्टुरः) मनुष्य होता के निकट से स्वर्ग के मार्गों से (दिवः आरोधनानि) देवताओं को हवि देने जाता है (ईयसे) ।

अन्य अर्थ- हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर, आप अनर्थ-निवारक कर्मों को जानते हैं (अध्वरस्य दूत्यानि वेः) और दोनों द्यावा पृथिवी तथा दोनों के अन्तराल अन्तरिक्ष को जानते हैं अतः आप सर्वज्ञ हैं (संचिकित्वान्) । अनर्थ निवारक (दूतः), सनातन (प्रदिवः) विश्वकर्मा और विद्वानों को तारने वाले आप (विदुष्टरः) द्युलोक को नियम में रखने वाले कर्मों को प्राप्त किये हैं (दिवः आरोधनामि ईयसे) ।

(५) बहुत बड़ा यज्ञ करने वाला

'अहेम यज्ञं पथामुराणा'

ऋ. ७.७३.३

(६) अतिदानशील ।

'प्रहोतागूर्तमना उराणः'

ऋ. ६.६३.४

(७) बहुतों को जीवन देने वाला सूर्य ।

(८) बहुतों से जीविका देने में समर्थ ।

उरामथिः - (१) उरान् मेषान् मथ्नाति इति उरामथिः (भेड़ो का शिकार करने वाला कुत्ता) ।

(१) भेड़ो को हांकने वाला कुत्ता-

'वृकश्चिदस्य वारणउरामथिः'

ऋ. ८.६६.८, साम. २.१०४२, नि. ५.२१.

उर + मथ् + इन् = उरामथिन् (पूर्वपद का दीर्घ) । यहां 'उर' शब्द का अर्थ उरण है जो भेड़ का वाचक है ।

(३) हल के समान भूमि को खनने वाला, (४) चन्द्र के समान रात्रि के अन्धकार का नाशक ।

(५) संकटों का मन्थन करने वाला ।

'वृकश्चिदस्य वारण उरामथिः'

ऋ. ८.६६.८,

ऊर्जोनपात् - (१) पराक्रम के कारण कभी पछाड़ न खाने वाला राजा (२) बल के कारण कभी शिष्ट मर्यादा से न गिरने वाला ।

'अग्ने गृणन्तं अंहस उरुष्य
ऊर्जोनपात् पूर्भिरायसीभिः'

ऋ. १.५८.८

हे विद्वन् ! हे अग्ने ! हे आत्मन् ! तू बल के कारण कभी भी शिष्ट मर्यादा से न गिरता हुआ (ऊर्जोनपात्) स्वंय दृढ़ रहकर स्तुति करने वाले की ज्ञान-साधनोंसे बनी पालन करने वाली साधनाओं से पाप से रक्षा कर (आयसीभिः पूर्भिः उरुष्य) जैसे राजा लोह से बनी या शस्त्रों से सजी परकटों से प्रजा जन की रक्षा करता है ।

उर्वारु - उरु + वारि = उरुवारि = उर्वारु । बहुत जल वाला, ककड़ी, कर्कटी, खरबूज ।

'मूलमुर्वा र्वा इव'

अ. ६.१४.२

उर्वारुक - उर्वारुक फलम् । ककड़ी, खरबूजा

'उर्वारुक मिवबन्धनात्
मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्'

ऋ. ७.५९.१२, वाज.सं. ३.६०. तै.सं. १.८.६.२, मै.सं. १.१०.४, १४४.१३, का.सं.९.७, शा.ब्रा. २.६.२.१२, तै आ. (आंध्र) १०.५६. वै.सू. ९.१९. ला.सौ.सू. ५.३.७, नि. १४.३५.

उर्विया - उरुत्वेन (भावप्रधान-निर्देश) । अर्थ-उरु होकर, चौड़ा होकर । 'उरु' शब्द के तृतीय एक वचन का रूप ।

'इयाडियाजीकाराणाभुपसंख्यानम्' से उरु के बाद तृतीया एकवचन में 'इयाट्' आदेश हो जाता है और 'उर्विया' रूप सिद्ध होता है ।

'व्यचस्वती रुर्विया विश्रयन्ताम्
पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः
देवीद्विरो बृहतीर्विश्वमिन्वा
देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ।'

ऋ. १०.११०.५, अ. ५.१२.५, वाज.सं. २९.३०, मै.सं. ४.१३.३,२०२.३, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.१०

व्याप्ति वाली या अंटाने वाली, काफी चौड़ी (व्यचस्वतीः) अतएव बड़ी (बृहतीः) द्वाररूपी देवता या शाकपूणि के अनुसार अग्नि या अग्नि की ज्वालाएं रूपी द्वार (द्वारःदेवीः) चौड़ी होकर रहें (उर्विया विश्रयनाम्) जैसे शोभने की इच्छा

करती हुई कामिनियां अपने पतियों के निमित्त मैथुन के लिए। हे द्वारो (देवीः द्वारः) तुम सभी को प्रसन्न करने वाली या सभी यज्ञ की सामग्रियों को द्वार से होकर जाने देने वाली (विश्वमिन्वाः) तथा इन देवताओं या ऋत्विजों के आने जाने लायक (देवेभ्यः सुप्रायणाः) हो (भवत)।

अन्य अर्थ – जैसे पतियों के लिए शोभायमान पत्नियां गर्भाधान काल में पतियों के जाँघों को सेवती हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकार के यज्ञों में वर्तमान अग्नि अधिकतया हमें सेवन करें (व्यचस्वतीः उर्विया विश्रयनराम्)। हे दिव्य पदार्थों का दाता (देवोः), अनेक गुणों वाली एवं सारे जगत को चलाने वाली गतिशील या रोगादि विनाशक यज्ञाग्नि (बृहतीः विश्वमिन्वाः द्वार) तू यज्ञकर्ता द्विजों के लिए सुगति वाली हो (देवेभ्यः सुप्रायणी भवत)।

उर्वी – (१) पृथिवी–उरु + ङीष्। विस्तृत या बड़ी हुई।

'स यो व्यस्थात् अभिदक्षदुर्वीम्'

ऋ. २.४.७

'तस्य वयं प्रसवेयाम उर्वीः'

ऋ. ३.३३.६, नि. २.२६.

हम उस इन्द्र या सूर्य आज्ञा या प्रसव में बड़ी हुई जा रही हैं।

(२) उदकैः प्रभूतः (जल से पूर्ण क्योकि वे बहुत विस्तृत होती है। नदियों का विशेषण –सा. (३) ऊर्ण (आच्छादनार्थक) और वृ (संभजनार्थक) धातुओं से इसकी व्युत्पत्ति यास्क मानते हैं। ऊर्ण + उ = उरु, उरु + ङीष् = उर्वी। अथवा वृञ् + उ = उरु, उरु + ङीष् = उर्वी। अर्थ बड़ी। (४) उर्वी नाम्नी छः देवियां जैसे द्यौ, पृथिवी, रात्रि, अपः और ओषधियां।

'देवीः षडुर्वीरुरुनः कृणोत'

ऋ. १०.१२८.५, तै.सं. ४.७.१४.२, आप.मं.पा. २.९.६.

हे छः उर्वी देवियो! आप से हम जो कुछ जांचे उसे विस्तृत करें।

उरु – (१) अन्धकार–निवारक सूर्य।

'उरु पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्'

ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, मै.सं. १.३.२५, ३८.१३, का.सं. ४.८, कौ.ब्रा. २१.४, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.५.

यह अन्धकार निवारक और विस्तृत सूर्य कर्मकर्ता मनुष्यों से सुकृत हो।

(२) अधिक, विस्तीर्ण उरु।

'प्रथा उरु प्रथस्व उससे यज्ञपतिः प्रथताम्'

वाज.सं. १.२२, श.ब्रा. १.२.२.८.

पुरोडाश के प्रति यह मंत्र कहा गया है। हे पुरोडाश, तू स्वभावतः विस्तीर्ण होने वाला या फैलने वाला है (उरु प्रथाः)। अतः अधिक फैलना (उरु प्रथस्व) और यह तेरा यज्ञपति या यजमान (यज्ञपतिः) उसी प्रकार धन धान्य से फैले समृद्ध हो (प्रथताम्)।

उरुक्रमः – (१) बड़े बड़े डेगों वाला, (२) बहुत पराक्रमी।

'विश्वेत् ता विष्णुराभरत् उरुक्रमरत्वेषितः।'

ऋ. ८.७७.१०, मै.सं. ३.८.३९ ५.१३.

उरुक्षयः – बड़े बड़े महलों में निवास करने वाला

"उरुक्षयाः सगणा मानुसासः'

अ. ७.७७.३, तै.सं. ४.३.१३.४

उरुक्षयाः – जिनके अनेकों जगत् के पदार्थों में निवास हो। मित्रावरुण का विशेषण।

'कवी नो मित्रवरुणा तुविजाता उरुक्षया।'

ऋ. १.२.९, साम. २.१९९

उरुक्षितिः – बहुत मनुष्यो के बसने योग्य पृथिवी।

'उरुक्षितिं सुजनिम् आचकार'

ऋ. ७.१००.४, मै.सं. ४.१४.५, २२१.८, तै.ब्रा. २.४.३.५.

उरुगातुः – महान् अतिश्रेष्ठ गमन मार्ग

'सहि घृणिरुरुर्वराय गातुः'

अ. ७.३.१, तै.सं. १.७.१२.२, मै.सं. १.१०.३:१४३.१०, का.सं. ९.६,१४.३, का. सं.(अश्व). ५.१२, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.३२, शां.श्रौ.सू. ३.१७.१, का.श्रौ.सू. २५.६.१०.

उरुगायः – (१) बहुभिः महात्मभिः गातव्यः (अनेक महात्माओं द्वारा गाने योग्य) अतिस्तुत्य (२) सब को गति देने वाला विष्णु परमेश्वर।

'अत्राहतदुरुगायस्य वृष्णः
परमं पदमवभाति भूरि।'

ऋ. १.१५४.६, वाज.सं. ६.३, तै.सं. १.३.६.२.

मै.सं. १.२.१४,२३.१७, का.सं. ३.३, श.ब्रा. ३.७.१.१५, नि. २.७.
ऐसे ही स्थान में अति स्तुत्य या सबको गति देने विष्णु का परम पद अत्यन्त शोभता है ।
(३) विशालवाणी वेद का स्वामी (४) महान् लोकों में व्यापक, महान् कीर्त्तिमान् प्रभु ।
'त्रीण्येक उरुगायो विचक्रमे'
ऋ. ८.२९.७

उरुग्राह् – (१) बड़ी पकड़ वाला ।
(२) जंघाओं को पकड़ने या जकड़ने वाला अस्त्र–
'उरुग्राहैः बाहुङ्कैः'
अ. ११.९.१२

उरुगूला – बड़ी गुदा वाली सर्प की एक जाति ।
'उरुगूलाया दुहिता'
अ. ५.१३.८

उरुचक्र – बड़े बड़े चक्रों वाला रथ ।
'रथे युञ्जन्त्यु रुचक्र ऋष्वम्'
ऋ. ९.८९.४

उरुचक्रिः – (१) बहुकर्त्ता, बड़ा भारी कारीगर–परमेश्वर ।
'अंहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः'
ऋ. २.२६.४

उरुचक्षस् उरुचक्षाः – (१) विस्तृत दर्शनशक्ति
(२) दीर्घ दर्शनी धर्मपत्नी ।
'सं दक्षिणयोरुचक्षसा'
वाज.सं. ४.२३, श.ब्रा. ३.३.१.१२.
(३) बहुत प्रकार के ज्ञानों का द्रष्टा ।
'मृडीकायोरुचक्षसम्'
ऋ. १.२५.५
(४) दूरदर्शी ।
'तां आनमोभिरुरुचक्षसोनृन्'
ऋ. ६.५१.९

उरूची – (१) बह्वीनां पदार्थ विद्यानां ज्ञापिका (अनेक पदार्थ विद्याओं को जनाने वाली),
(२) बहुत ऐश्वर्यों से युक्त
(३) बहुतों का सत्कार करती हुई ।
'उरूच्यस्मै घृतवत् भरन्ती'
ऋ. ३.३१.११

उरुज्मा – समस्त लोकों में व्यापक परमात्मा ।
'उरुष्या ण उरुज्मन् अप्रयुच्छन्'
अ. ६.४.३

उरुज्योतिः – (१) विस्तीर्ण प्रकाश, (२) विस्तीर्ण आंख, (३) आनन्दज्योति का प्रकाश –(दया)
'उरुजोतिश्चक्रथुश्चरार्याय'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६.
ईश्वर पुत्र ऋजाश्व को तुमने विस्तीर्ण आंखें दीं । आर्य मनुष्य के लिए तुमने ज्योति की – अथवा,
परमेश्वर के सुपुत्र श्रेष्ठ मनुष्य के लिए आनन्द ज्योति का प्रकाश करो –(दया.)

उरुज्रयः – एक वचन में उरुज्रिः । उरु + ज्रि, + विच् + सु = उरुज्रिः । निरुक्त में 'ज्रि' धातु गमनार्थक है । उरुज्रि में गुण के अभाव आर्ष है ।
अर्थ – (१) बहुत गति वाला (२) बहुत प्रकार के गमनमार्ग ।
'अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वम्
श्रोता इतस्य जग्मुषो नो अस्य ।'
ऋ. ७.३९.३, नि. १२.४३
हे देवो ! हमारे रस आपके निकट जाने वाले अग्नि रूप दूत के आह्वान को सुनें तथा सामने से बहुत प्रकार के आगमन मार्गों को बनाएं ।

उरुज्रिः – (१) बड़े बड़े मार्ग पर चलने वाला (२) बहुत गति वाला (३) बहुत प्रकार के गमनमार्ग ।

उरुज्जिरा – उरुजला (बहुत जल वाली) । वर्ण विपर्यय से सिद्ध शब्द । यह विपाशा नामक नदी का पूर्व नाम है । विश्वामित्र के शाप से जब वसिष्ठ के सभी पुत्र मर गये तो शोकाभिभूत हो वसिष्ठ अपने शरीर को रस्सी से बांध उरुज्जिरा नदी में डूब गए परन्तु नदी की धाराओं से उनके शरीर के पाश खुल गए । इसी से इस नदी का नाम विपाशा पड़ गया । (२) एक नाड़ी जिसके फटने से प्राण शरीर छोड़ देते हैं ।

उरूणसौ – (१) महान् शब्द करने वाले सारमेय, (२) रातदिन
'उरूणसा वसुतृपा उदुम्बलौ'
ऋ. १०.१४.१२,अ. १८.२.१३, तै.आ. ६.३.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.१०.२०.
(३) ऊंची नाक वाले दो दूत –सारमेय श्वान
(४) तीण शक्ति वाले राज पुरुष, (५) नासिका

गत प्राण और अपान वायु ।

उरुण्ड- तामस ।

'उरुण्डा ये च मद्मटाः ।'

अ. ८.६.१५

उरुधारा - (१) बहुतों की पोषकभूमि (२) बहुत धारा वाली गौ (३) विशाल वेद वाणी ।

'उरुधारेव दोहते'

ऋ. ८.९३.३, अ. २०.७.३, साम. २.८०.२.

उरुप्रथाः - उरू + प्रथ + असुन् = उरु प्रथाः । अर्थ-स्वभावतः विस्तीर्ण होने वाला, या फैलने वाला ।

'उरुप्रथा उरु प्रथस्व उसने यज्ञपतिः प्रथताम्'

वाज.सं. १.२२, श.ब्रा. १.२.२.८.

उरुब्ज - उरु + अप् + जन् + ड = उरूब्ज । अर्थ- (१) महान् प्रभूतप्राणों या सूक्ष्मजलों या प्रकृति के परमाणुओं से उत्पन्न ।

'गवामुरुब्जमम्यर्षति व्रजम्'

ऋ. ९.७७.४

उरुयुगः - बड़े भारी जुए वाला रथ ।

'उरौरथ उरुयगे'

ऋ. ८.९८.९, अ. २०.१००.३, साम. २.६२.

उरुलोकः - (१) स्वर्ग लोक,

(२) महान् अभ्युदयज.

'उरुनो लोकमनुनेषिविद्वान्'

ऋ. ६.४७.८,अ. १९.१५.४, ऐ.ब्रा. ६.२२.५, कौ.ब्रा. २५.७,८, २९.४, गौ.ब्रा. २.६.४, तै.ब्रा. १.२.१.९, २.७.१३.३, आश्व. श्रौ.सू. ३.७.११, ५.३.२१, ७.४.७, शां.श्रौ.सू. १८.४.१, आप.श्रौ.सू. ५.३.१.

हे इन्द्र ! जानता हुआ तू स्वर्ग नामक लोक हो हमें संचाल-

हे राजन् । ज्ञानवान् होते हुए आप हमारे लिए महान् अभ्युदय को (उरुलोकम्) पहुंचा (अनुनेषि) ।

उरुव्यचाः - (१) बहुत अधिक गुणवान् । शक्तिमान् अधिकारवान् ।

'ओरुव्यचाः पृणतामेभिरनैः'

ऋ. ३.५०.१

(२) बहुत प्रसिद्ध ।

'न यं शुक्रो न दुराशीः
न नृप्रा उरुव्यचसम्'

ऋ. ८.२.५.

(३) बहुत सत्कारों से युक्त ।

'उरुव्यचा जठर आवृषस्व'

ऋ. १.१०४.९, अ. २०.८.२.

तू विविध सत्कारों से युक्त होकर (उरुव्यचाः) जठर में दुग्ध आदि के समान राष्ट्र में सुख का वर्णन कर ।

उरुव्यचसा - बहुव्यापिन्यौ -(दया.) (१) बहुत विस्तृत पृथिवी, (२) विविध कान्तियों और पदार्थों से युक्त ।

'उरुव्यचसा महिनी असश्चता
पिता माता च भुवनानि रक्षतः'

ऋ. १.१६०.२

उरुव्रजा - (१) दूर दूर तक जाने वाली, (२) वैश्य-सभा या उनकी संस्था (३) गमनागमन की व्यवस्था करने वाली संस्था ।

'अनेहो न उरुव्रजे

ऋ. ८.६७.१२, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

उरुवाक् - (१) विशाल वेदवाणी का प्रवर्तक गुरु, (२) परम गुरु परमेश्वर ।

'उरुवाचो अधृष्णुहि'

अ. २०.४९.२

उरुशर्मा - (१) बहुतों को शरण देने वाली अदिति-पृथिवी ।

'आवित्तादितिरुरु शर्मा'

वाज.सं. १०.९, श.ब्रा. ५.३.५.३७.

उरुशंसः - (१) बहुतों से स्तुति करने योग्य वरुण-परमेश्वर ।

'उरुशंस मान आयुः प्रमोषीः'

ऋ. १.२४.११, वाज.सं. १८.४९, २१.२, तै.सं. २.१.११.६, मै.सं. ३.४.८: ५६.८,४.१४.१७:२४६.४, का.सं. ४.१६, ४०.११, श.ब्रा. ९.४.२.१७, आप.मं.पा. १.४.१३.

हे बहुतों से स्तुत्य परमेश्वर, हमारी आयु नष्ट न कर ।

(२) बहुतों को उपदेश करने वाला ।

'उरुशंस्य वरुण प्रणेतः'

ऋ. २.२८.३

उरुष् - (१) रक्षा करना (२) दुर्ग के अनुसार निकट आकार रक्षा करना । अतः दोनों अर्थों को

मिलाकर इस धातु का अर्थ निकट आकर रक्षा करना ।

उरुष्य – (१) महान् ।
'समेद्धारम् अंहस उरुष्यात्'
'ऋ. ७.१.१५
(१) उरुष् धातु रक्षा करने के अर्थ में माना गया है । अतः उरुष्य का अर्थ हुआ–रक्षा कर । दुर्ग ने उरुष का अर्थ निकट आकर रक्षा कना माना है । अतः दोनों अर्थों को मिलाकर अर्थ हुआ–निकट आकर रक्षा कर ।
'तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः
सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः
सन नो बोधि श्रुधी हवम्
उरुष्याणो अघायतः समस्मात्'
ऋ. ५.२४.४, साम. २.२४५९, वाज.सं.३.२६, १५.४८,२५.४७,तै.सं. १.५.६. ३, ४.४.३.८, मै.सं. १.५.३, ६९.१०, का.सं. ७.१, श.ब्रा. २.३.४.३१, कौ.सू. ६८.३१.
हे अत्यन्त दीप्तिमान् (शोचिष्ठ), हे सभी को दीप्त करने वाला (दीदिवः) तुझे (तं त्वाम्) हम अपने मित्रों के लिए (सखिभ्यः) तथा सुख के लिए (सुम्नाय) निश्चय पूर्वक जांचते हैं (नूनम् ईमहे) । वह तू हमारा अभिप्राय समझ (सनः बोधि) और हमारा आह्वान सुन (हवं श्रुधी) आहूत हो हमारे निकट आ (उरुष्याणः) सभी परापकारियों से (समस्मात् अघायतः) हमारी रक्षा कर ।

उरुष्यति – 'उरुष्य' पूजा करना या वर्णन करना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । प्रस्तुत करना या देना अर्थ में भी इसका प्रयोग हुआ है । अर्थ है पूजित या वर्णित करता है ।
'इन्द्राविष्णू सतपा वामुरुष्यति'
ऋ. १.१५५.२, नि. ११.८.
हे इन्द्र और विष्णु , तुम दोनों के आगमन को (वाम्) सोमपीती यजमान (सुतपा) पूजित या वर्णित करता है (उरुष्यति) ।

उरुष्यथः – उरुष्य, पूजित करना, वर्णित करना, प्रस्तुत करना या देना अर्थ में प्रयुक्त
प्रस्तुत करना या देना अर्थ में प्रयोग ।
'कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः'
ऋ. १.१५५.२, नि. ११.८.
जो आप दोनों इन्द्र और विष्णु ! भोजन या अन्न को (असताम्) हविपहुंचाने वाले (अस्तुः) अग्नि के द्वारा (कृशानोः) अविच्छेद्य भाव से प्रस्तुत या प्रदान करते हैं (उरुष्यथः) ।

उरुषा – उरु + या । बहुत सुख समृद्धि देने वाली भूमि ।
'मही मस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयः'
ऋ. ५.४४.६

उरुषी – रक्षा करने की इच्छा ।
'ससवान् स्तौलाभिर्धौतरीभिः'
ऋ. ६.४४.७

उरूची – (१) बहुत ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हुए द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष ।
'उरूची विश्वे यजते निपातम्'
ऋ. ४.५६.४
(२) विशाल राष्ट्र के शासक रूप से व्यापक ।
'तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीम्'
अ. ७.६.२, वाज.सं. २१.५, तै.सं. १.५.११.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.११, का.सं. ३०.४,५, आश्व.श्रौ.सू. २.१.२९, शा.श्रौ.सू. २.२.१४.
(३) बहुत वेग से जाने वाली ।
'उरूचि विप्रसर्तवे'
ऋ. ८.६७.१२.

उल – (१) ऊन का वस्त्र देने वाला ।
'उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे'
वाज.सं. २४.३१, मै.सं. ३.१४.१२, १७४.११ का.सं.(अश्व.) ७.२.
(२) श्रृगाल – wolf
'उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित्'
अ. १२.१.४९

उलप – (१) तृण, उलभशब्दः शस्यमात्रो पलक्षणम् ।
'बहोरग्न उलपस्य स्वधावः'
ऋ. १०.१४२.३
(२) धान्य आदि । इन दिनों 'पुआल' शब्द उलभ से वर्ण विपर्णया और वर्णवृद्धि से हुआ प्रतीत होता है ।
(३) कीट पंतगों का दृण धान्यादि पर किया गया विघ्न, (४) इधर उधर का दृश्य ।
'यदि वृक्षेषु यदिवोलपेषु'
अ. ७.६६.१

उलप्य – तृण राशि का संग्रह करने वाला ।

'नमो लोप्याय चोलप्याय च'
वाज.सं. १६.४५, तै.सं. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८:१२६.१३ का.सं. १७.१५.

उल्व – 'ऊर्' अथवा 'वृ' + घञ् (करण अर्थ में) = ऊर्ण । ऊर का उल होकर व प्रत्यय लगाने से उल्व बना है । तेनहिगर्भ आवृतः भवति (उससे गर्भ आवृत होता है) ।
अर्थ है – (१) जरायु ।
'गर्भाशयो जरायुःस्यात् उल्वञ्च-अमरकोस'
(२) आवरण – 'ऊर्ण' अथवा 'वृञ्' + व = उल्व ।
आधुनिक अर्थ–गर्भाशय, योनि, गर्भ ।
'महत्तदुल्बं स्थविरं तदासीत्
येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।
विश्वा अपश्यत् बहुधा ते अग्ने
जानवेदस्तन्वो देव एकः'
ऋ. १०.५१.१, नि. ६.३५.
हे अग्नि ! (अग्ने) उस समय (तत्) तेरा वह जरायु (तत् ते उल्बम्) बड़ा (महत्) तथा चिरन्तन या स्थूल (स्थविरम्) था (आसीत्) जिससे आवेष्टित हो तू (येन आवेष्टितः) सृष्टि के आरम्भ में जल में प्रविष्ट हुआ (अपः प्रविवोशिथ) और हे जातप्रज्ञ अग्नि (जातवेदः) तेरे सभी अंग (ते विश्वाः तन्वः) बहुत प्रकार दीख पड़ते हैं (बहुधा) किन्तु एक प्रजापति ने ही तुझे देखा (एकः देवः अपश्यत्) ।
इस पर एक कथा भी है । वज्रभूत वषट्कार तथा देवताओं के हविर्वहन द्वारा अपने ज्येष्ठ भाइयों के मारे जाने पर सौचीक नामक अग्नि डरकर देवताओं के यहां से भाग कर जल में घुस गए । देवता लोग खोजते आए और मछलियों ने जब उन्हे दिखलाया तब देवताओं ने अग्नि से बातें की ।
अन्य अर्थ – हे सभी पदार्थों में विद्यमान विद्युत् (जातवेदः अग्ने), वह आवरण महत् परिमाण वाला और चिरन्तन है । (तत् उल्बम् महत् तत् स्थविरम् आसीत्) जिससे घिर हुए तुम जलों में प्रविष्ट हो । तेरे सम्पूर्ण शरीरों को कोई बड़ा वैज्ञानिक (एक देवः) अनेक साधनों से (बहुधा) देखता है (अपश्यत्) ।

उल्का – (१) आकाश से गिरने वाला चमकता तारा, (२) चमकता आग्नेयास्त्र ।
'असन्दितो विसृज विष्वगुल्काः'
ऋ. ४.४.२, वाज.सं. १३.१०, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५: ९७.१० का.सं. १६.१५.
(३) आकाश से भूमि पर गिरने वाल लघु ग्रह ।
'शमुल्का निर्हतं च यत्'
अ. १९.९.८
'अवक्षिपन् अर्क उल्कामिव द्योः'
ऋ. १०.६८.४, अ. २०.१६.४

उल्काभिहतनक्षत्र – उल्का से युक्त नक्षत्र ।
'नक्षत्रमुल्काभिहतम् शमस्तुनः'
अ. १९.९.९.

उलुलु – विजयनाद प्रदर्शकध्वनि ।
'पृथग्घोषा उलुलयः'
अ. ३.१९.६.

उल्कुषीमान् – उल्कुषी + मतुप् = उल्कुषीमत् । प्रथमा ए.व. में उल्कुषीमान् । अर्थ गर्म मिजाज वाला आदमी ।
'यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान्'
अ. ५.१७.४

उल्कुषी – गर्म मिजाज ।

उल्लुप्त – (१) आवृत ।
'घृतादुल्लुप्तं मधुनासमक्तम्'
अ. ५.२८.१४
(२) सम्पन्न ।
'घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्'
अ. १९.३३.२, अ. १९.४६.६
(३) व्याप्त ।

उलूक – (१) उल्लू, ।
'वनस्पतिभ्य उलूकान्'
वाज.सं. २४.२३
(२) मूर्ख दूत ।
'यदुलूको वदतिमोघमेतत्'
ऋ. १०.१६५.४ अ. ६.२९.१,

उलूकयातुः – (१) उलूक के समान चाल चलने वाला, (२) छिपकर प्रजा के धन प्राण पर आघात करने वाला ।
'उलूकयातुं शुशुलूकयातुम्'
ऋ .७.१०४.२२, अ. ८.४.२२
(३) रात में छापा मारने वाला ।

उलूखल – (१) उरुकर (बहुअन्नं करोति –बहुत अन्न करता है) से परोक्ष वृत्ति द्वारा 'उलूखल' बना है ।
(२) ब्राह्मण ग्रन्थ में उरु में कुरु (तू मेरे लिए बहुत अन्न संस्कृत कर) ऐसा आया है ।
(३) ऊर्करम् (ऊर्ज अन्नस्य एव ही हि करणार्थ तत् उपपद्यते–अन्न करने के लिए ही उसका उत्पादन होता है) । ऊर्ककरम् ('झरो झरिसवर्णे' से क का लोप) = उलूखल
(४) ऊर्ध्वखम् (ऊर्ध्वमेव हितस्य एवं भवति इसके ऊपर ही 'ख' अर्थात् गढ्ढा होता है या जिसका मुख छिद्र ऊंचा होता है । ऊर्ध्वखम् – व् ध् ख् अ–ऊधूखर –उलूखल ।
अर्थ– (१) ओखल, (२) बहुत बड़े कार्य को करने वाला पुरुष–
'यत्रग्नावा पृथु बुध्नः
ऊर्ध्वो भवति सोतवे
उलूखल सुतानाम्
अवेद्विन्द्रजल्गुलः ।'
ऋ. १.२८.१
पुनः –
'यच्चिद्धि त्वं गृहे गृहे
उलूखलक युज्यसे
इह द्युमत्तंम वद
जयतामिव दुन्दुभिः'
ऋ. १.२८.५, ऐ.ब्रा. ७.१७.२, शां.श्रौ.सू. १५.२३, आप.श्रौ.सू. १६.२६.१, नि. ९.२१.
हे ओखल ! यद्यपि (यच्चिद्धि) तू घर घर में काम लाया जाता है (त्वं गृहे गृहे युज्यसे) तथापि इस सोमाभिषवण में तू खूब ध्वनिकर (इह द्युमत्तमं वदः) जैसे विजयी राजाओं की दुन्दुभि बजती है ।

उर्वज्र – उरु + अज्र = 'उर्वज्र' । अर्थ–महान् आकाश ।
'अहं यवाद उर्वज्रे अन्तः'
ऋ. १०.२७.९

उवा – जन्मदात्री प्रकृति ।
'उवे अम्ब सुलाभिके'
ऋ. १०.८६.७, अ. २०.१२६.७.

उव्यूतिः – उरु + ऊतिः । बड़ी रक्षा–सामर्थ्य वाला ।
'श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः'
ऋ. ६.२४.२

उवे – सम्बोधन में प्रयुक्त अव्यय इन दिनों प्रचलित 'अबे' का समानार्थक ।
'उवे अम्ब सुलाभिके'

उशत् – वश् (कामना करना) + शतृ = उशत् कामयमानः । अर्थ – कामना करता हुआ ।
'ते हियज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः
सधस्थं विश्वे असभिसन्ति देवाः ।
तां अध्वर शतो यक्ष्यग्ने
श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम्'
ऋ. ७.३९.४, शां.श्रौ.सू. ६.१०.६.
वे यज्ञार्ह तथा रक्षा करने वाले विश्वेदेव (ते यज्ञियासः ऊमाः विश्वेदेवाः) यज्ञों में समान स्थान पर आते हैं (यज्ञेषुसधस्थं अभिसन्ति)। हे अग्नि ! हमारे यज्ञ में अपने अपने अंश चाहने वाले उन विश्वे देवों को पूज (अग्ने अध्वरे उशतः तान् यक्षि) तथा भग, अश्विनी कुमारों एवं इन्द्र को भी पूज (भंग नासत्यौ पुरन्धिम्) ।

उशती – वश् + शतृ + ङीष् । कामना करने वाली। स्त्री का विशेषण है । दे. 'अप्सः' ।
'जायेव पत्य उशती सुवासाः'
ऋ. १.१२४.७, ४.३.२, १०.७१.४, ९१.१३, नि. १.१९, ३.५.
जैसे सुन्दर वस्त्र पहन स्त्री पति की कामना करती है ।

उशधक् – (१) अग्नि ।
'अहन् व्यंसमुशधक् वनेषु'
ऋ. ३.३४.३, अ. २०.११.३, वाज.सं. ३३.२६.
(२) चाहे ।
'जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि'
ऋ. ७.७.२

उशन्तः – वश् + शतृ + जस् = उशन्तः । अर्थ–कामना करते हुए ।
'पत्नीवन्तः सुता इमे उशन्तो यन्ति वीतये
अपां जग्मि र्निचुम्पुणः'
ऋ. ८.९३.२२, शां.श्रौ.सू. १८.७.१४, नि. ५.१८.
ये जलमय अभिसुत सोम इस उद्देश्य से कि हमें देव गण पीवें उन देवताओं की ओर जाते हैं । (इमे पत्नीवन्तः सुता वीतये उशन्तः यन्ति) और सोमरस की जो सीढ़ी है (निचुम्पणः) वह भी

जलों के बीच से बहती चली जा रही है (अपाम् जग्मिः) ।

उश्मसि – हम कामना करते हैं । 'वश्' धातु के उत्तम पुरुरष बहुवचन में रूप । वेद में 'मस्' का मसि हो जाता है ।

'ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्यै'

ऋ. १.१५४.६, का.सं. ३.३. नि. २.७.

हे दम्पति युगल ! तुम दोनों इन सुखदायक निवास स्थानों में रहो ऐसी हम कामना करते हैं ।

उशानः – कामनाशील ।

'पृथुगाणमुशन्तमुशानः'

ऋ. ३.५.७

उशमानः – कामना करने वाला ।

'दृढ़ा न्यौभ्नादुशमानओजः'

ऋ. ४.१९.४, तै. २.४.५.३.

उशिक् – (१) धनादि की अभिलाषा करने वाला वणिक् विभाग (२) कान्ति ।

'उशिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व'

वाज.सं. १५.६, मै.सू. २.८.८, ११२.८.

उशिज् – (१) एक ऋषि का नाम जिसके कक्ष से कक्षीवान् नामक ऋषि उत्पन्न हुए । वश् (कान्त्यर्थक धातु) + इजि = उशिज् ('व' का सम्प्रसारण नियम से 'उ')

(२) कमनीय –शब्द कल्प द्रुम

(३) कामना करने वाला ।

(४) इच्छुक –(दया.)

'सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते
कक्षीवन्तं य औशिजः'

ऋ. १.१८.१, साम. १.१३९, वाज.सं. ३.२८, तै.सं. १.५.६.४, ८.४, मै.सं. १ .५.४, ७०.१३, १.५.११:७९.११ का.सं. ७.२.९, श.ब्रा. २.३.४.३५, तै.आ. १०.१.११, शां.श्रौ.सू. २.१२.५, आप.श्रौ.सू. ६.१८.१, ३.१.२९, नि. ६.१०.

हे ब्राह्मणस्पते ! मुझ सोमकर्त्ता को (सोमानम्) उस तरफ से सुयशश्वी, ज्ञानवान् या प्रकाशवान् बना (स्वरणं कृणुहि) जैसे उशिज् ऋषिका पुत्र (औशिजः) अपने अनुष्ठानों से यशस्वी बना ।

स्वामी दयानन्द का अर्थ– हे वेदपति परमेश्वर ! (ब्रह्मणस्पते) जो मैं आप कमनीय का सुपुत्र हूँ (औशिजः) उस मुझको उद्योगीपुरुष की तरह अथवा मुझ मनुष्य को (कक्षीवन्तम्) ऐश्वर्य सम्पदाक और तेजस्वी कीजिए (स्वरणं कृणुहि) ।

उशीनराणी – पृथिवी ।

'य आवहत् उशनिराण्या अनः'

ऋ. १०.५९.१०

उशेन्य – कमनीय, ।

'आयो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट'

ऋ. ७.३.८

उषत् – दाहकारी किरण ।

'समुषद्भिरजायथाः'

ऋ. १.६.३, अ. २०.२६.६, ४७.१२, ६९.११, साम. २.८२०, वाज.सं. २९.३७, तै.सं. ७.४.२०.१, मै.सं. ३.१६.३: १८५.९, का.सं.(अश्व) ४.९.

उषमाणः – और धारण करता हुआ ।

'श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णाम्'

ऋ. ४.२२.२

उषर्भुत् – (१) प्रातः काल में बोध कराने वाला सूर्य ।

(२) प्रथम वयस् में बोध कराने वाला राजा या आचार्य ।

'क्रत्वा चेतिष्ठो विशाम् उषर्भुत्'

ऋ. १.६५.९.

उषर्बुध् – (१) उषा का बोध कराने वाली किरण, (२) सृष्टि के आरम्भ में बोध कराने वाला वेदमन्त्र ।

'आकीं सूर्यस्यरोचनात्
विश्वान्देवां उषर्बुधः'

ऋ. १.१४.९

(३) प्रातः काल जागने वाला ।

(४) उषा काल में उत्पन्न होने वाली । पापों को जलादेने वाली विशोका प्रज्ञा ।

'आदाशुषे जातवेदो वहात्वम्
अद्या देवां उषर्बुधः'

ऋ. १.४४.१, साम. १.४०, २.११३०.

उषस् – (१) उच्छी (समाप्ति या नाश अर्थ में) धातु से 'असि' प्रत्यय जोड़ 'छ' का पृषोदरादि के समान ष का 'उषस्' शब्द बना है ।

उच्छी + असि = उषस् । अर्थ है–नाशक, अन्धकार का नाशक उष–काल । रात्रि का अपर

काल उषा है । (रात्रेः अपरःकालः) । ५५ घटी रात बीतने पर उषा का आरम्भ होता है ।
(२) उष् (दाहार्थक) + का = उषा । उषा रात्रेः अवसाने-अमरकोष ।
(३) विद्युत् ।
आधुनिक अर्थ- (१) रात और दिन का अन्तिम भाग (२) नमक वाली मिट्टी, (३) पकाने वाला पात्र (४) बाणासुर की कन्या, (४) उषा देवता
उषस् का प्रयोग-
'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टा
वयः स्थूपा मुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तम्
अतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च'
ऋ. ५.६२.८.
हे मित्र और वरुणः ! तुम दोनों उषा के उच्छेदकाल में (मित्र वरुण उषसो व्युष्टौ) तथा सूर्य के उदयकाल में (सूर्यस्य उदिता) अपने सुनहले लोहे के स्थूण वाले रथ पर चढ़ते हो (हिरण्य रूपम् अयः स्थूणम् आरोहथः) । अतः इस रथ पर चढ़कर अपने पक्ष को अनुपक्षीण (अदितिम्) तथा शत्रु पक्ष को उपक्षीण (दितिम्) करो ।

उषसः - (ब.व.) (१) कामनावान् इन्द्रियगण, (२) उषाएं ।
'सचन्त यत् उषसः सूर्येण'
ऋ. १०.१११.७

उषस्पति - उषा का स्वामी सूर्य ।
'उषस्पतिः वाचस्पतिना संविदानः ।'
अ. १६.६.६

उषस्य - उषा, शत्रु वाहक या प्रकाशकारी दिमाग
'कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उपस्याः'
वाज.सं. २४.४, मै.सं. ३.१३.५, १६९.१०.

उषसा - (१) एक दूसरे को चाहने वाले (१) पति पत्नी (२) दिन और रात्रि ।
'आभन्दमाने उषसा उपाके'
ऋ. ३.४.६

उषसां प्रतरीता - उषाओं का प्रवर्तक सूर्य ।
'सूरो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः'
अ. १८.४.५८.

उष्ट्र - (१) ऊंट ।
'त्वष्ट्र उष्ट्रान्'
वाज.सं. २४.२८, मै.सं. ३.१४.१०, १७४.६
(२) राष्ट्र में बसने वाला, (३) शत्रु को दग्ध करने वाला (४) नाना पदार्थों की कामना करने वाला, (५) कर्म बीजों को ज्ञानग्नि से दहन करने वाला
'उष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत्'
ऋ. ८.६.४८.
(६) राष्ट्र में बसने वाली प्रजा का पालन करने में समर्थ ।
'उष्ट्रो न पपीरो मृधः'
ऋ. १.१३८.२
जैसे ऊंट रोगिस्तान को पार कर लेता है उसी संग्राम कारियों को (मृधः) पार कर (पीपरः) ।

उष्ण - (१) उष् (दाहार्थकः) + क्त = उष्ण इस शब्द को घृत के अर्थ में लिया गया है ।
आधुनिक अर्थ - गर्म तीक्ष्ण, कर्मठ, दाहक र, चतुर, विसूचिकाग्रस्त प्रदेशं गर्मी, ग्रीष्म ऋतु सूर्य की किरण, त्याग ।

उष्पल - खाट के पौवे पर लगाने वाला दण्ड-पाटी ।
'भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि'
अ. १४.१.६०

उष्णन् - जलाता हुआ ।
'अग्निः शोचिष्मा अतसानि उष्णन्'
ऋ. २.४.७

उषा - (१) उषा काल, सूर्योदय से पूर्व का समय ।
'अपोषा अनसः सरत्'
ऋ. ४.३०, १०, नि. ११.४७.
उषा वायु से दूर हट गई (२) कन्या, (३) शत्रुपीड़क होने से सेना आदि भी उषा है ।
'भास्वती नेत्री सूनृतानाम्
दिवःस्तवे दुहित गोतमेभिः
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यान्
उषो गो अग्रां उपमासि वाजान्'
ऋ. १.९२.७

उषाण - (१) प्रदीप्त करता हुआ (२) धारण करता हुआ ।
'मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः'
ऋ. ४.१६.१४

उषासानक्ता - अहोरात्र्य भिमानान्यौ देवते । (दिन और रात्रि के अभिमानी देवता) । अर्थ-(१) उषा

और रात्रि ।
(२) उषाश्च नक्तञ्च उषासानक्ता । 'उषासोषसः' पा. ६.३.३१ से 'उषस्' का उषासा आदेश ।
'उषासानक्ता सदनां नियोनौ'
ऋ. १०.७०.६, ११०.६, अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३, २०२.५, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.११.
उषा और रात्रि यज्ञ सृष्टि या गृह में नियमपूर्वक नित्य रहे (३) दिन की तरह ज्ञान का प्रकाश करने वाला पुरुष और रात्रि की तरह सद्गुणों के तारामण्डल से विभूषित स्त्री
'उशासानक्ता पुरुधा विदाने'
ऋ. १.१२२.२
पुरुष और स्त्री (उषासानक्ता) नाना विद्याओं के जानने वाले हो (पुरुधा विदाने) ।

उषाः – अज्ञानोङ्कुरों का दहन करने वाली साधकों की विशोका प्रज्ञा
'सखाभूत् अश्विन्तेरुषाः'
ऋ. ४.५२.२, साम. २.१०.७६

उष्टारा – (१) एक दूसरे की सदा कामना करने वाले स्त्री पुरुष ।
(२) अश्विद्वय ।
'उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे'
ऋ. १०.१०९.२

उष्णिक् – (१) उत् + स्निह् + क्विप् = उष्णिह् (उद् के द् का ष्) । अर्थ है । अधिकं स्निग्धं देवानाम् (देवताओं का अधिक प्रिय) (२) एक वैदिक छन्द का नाम जिसमें गायत्री छन्द से चार अक्षर अधिक रहते हैं ।
(३) उद् + स्ना + इक् (कर्मवाच्य में) = उष्णिक् । अर्थ है उत्स्नाता-खूब धोई मंजी ।
(४) उष्णीषिणी उष्णीषवती- जो उष्णीष के समान शुद्ध स्वच्छ दीख पड़े । अधिक स्नायात् इति उष्णीषम्-जो आधिक स्नान करे । शुद्ध शुल्क अर्थात् अत्यन्त शुद्ध छन्द
(५) इससे उत्कृष्ट कोटि की पवित्रता का लाभ होता है ।
उत् उत्कृष्टं स्नातम् शुद्धत्वं यथा सा उष्णिक् । उत् + स्ना + इज् = उष्णिज् । गायत्री के प्रति चरण में आठ और उष्णिक् के प्रति चरण में नौ अक्षर होते हैं । इस प्रकार गायत्री के तीनों पादों में एक अक्षर अधिक होने से 'उष्णिक्' पगड़ी सी है । उष्णीषिणी उष्णिष्-उष्णिन् ।
(६) उत्तम बड़ी शक्ति प्रकृति ।
'उष्णिक् छन्दः'
वाज.सं. १४.१०.१८, मै.सं. २.१३.१४, १६३.१२, श.ब्रा. ८.२.४.१४, ३.३.६.
(७) आयु, (८) चक्षु, (९)पशु ।

उष्णिहा – (१) ऊपर की ओर जाने वाली धमनी
'ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः'
ऋ. १०.१६३.२, अ. २.३३.२, २०.९६.१८, आप.मं.पा. १.१७.२.
(२) उष्णिक् छन्द ।
'उष्णिहया सविता सं बभूव'
ऋ. १०.१३०.४
(३) गर्दन की नाड़ी ।
'अनूका दर्षणी रुष्णिहाभ्यः'
अ. ९.८.२१
'श्रृणातु ग्रीवाः
प्रश्रृणातु उष्णिहाः'
अ. ६.१३४.१

उष्णिहाछन्दः – (१) उष्णिहा नामक छन्द, (२) उष्णिक छन्द के २८ अक्षरों के समान २८ वर्षों तक अपने बलवीर्य को आच्छादित करने वाला पगड़ी पहने के समान विशेष अधिकार से शोभित पुरुष-
'उष्णिहाछन्द इन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.१३, का.सं. ३८.१०.
उष्णिक् इति उत्स्नानात् स्निहयतेर्वा कान्तिं कर्मणः अपिवा उष्णीषिणो वा इति औपभिकम् ।
(३) आयु । 'आयुवी उष्णिक्' ऐ.आ.-१.५
(४) चक्षु ।
'चक्षुरुष्णिक्'
श.ब्रा.
(५) पशु ।
'पशवोवा उष्णिक्'

उष्मीष – (१)पगड़ी
'इन्द्राण्या उष्णीषः'
वाज.सं. ३८.३, श.ब्रा. १४.२.१.८.
(नः) पगड़ी ।
'अहरुष्णीषम्'

अ. १५.२.५.
उत् + स्ना + इषक् = उष्णीष । अत्यन्त शुद्ध उज्ज्वल श्वेत पगड़ी ।

उष्णीषी – पगड़ी पहनने वाला उष्णीष + इन् =
'नम उष्णीषिणे गिरिचराय'
वाज.सं. १६.२२, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.७, का.सं. १७.१२.

उस्र – (१) – सूर्य की किरण ।
'उस्रा इव स्वसराणि'
ऋ. १.३.८, नि. ५.४.
(२) वृष (सांढ) । वश् + रक् = उस्र)
'सास्माकेभिरेतरी न शूषैः
आग्निःष्टै वे दम आ जातवेदाः
द्रवन्नो वन्वन् नार्वा
उस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः'
ऋ. ६.१२.४.
जात धन या जातप्रज्ञ अग्नि (जातवेदाः स अग्निः) हमारे सुखकर स्तोत्रों से (अस्माकेभिः शूषैः) हमारे यज्ञगृह में (दमे) अतिथि या याचक के सदृश (एतरीन)स्तुत किये जाते हैं (आ स्तवे) तथा वृक्षों का भक्षयिता (द्रवन्नः) वनों का संभजन करता हुआ (वन्वन्) अपने कर्म से (क्रत्वा) अनाश्रित, स्वतन्त्र, छूटा अनेरिया (अनार्वा) सांढ़ के सदृश (उस्रः इव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है । (जारयायि) ।
कुछ भाष्य कारों ने जारयामि को 'उस्र' का विशेषण माना है । गौवों के यौवन का जारयिता अर्थात् जार और गौवों पर अभिगमन करने वाला 'यायि' ।

उस्रयामा – सूर्यवत् तेजस्वी होकर जाने वाला ।
'त्रिवन्धुरो वसुमां उस्रयामा'
ऋ. ७.७१.४

उस्रा – उत्स्राविणः अस्याः भोगाः (गौ से दूध, दही, घी आदि भोग्य पदार्थ निकलते हैं) ।
उत् + स्रु + उ = उस्र, उस्र + घ (स्वार्थ में)= उस्रा अथवा, –उत्स्रवन्ति आभ्यः रसाः (इस से रस निकलते हैं) लौकिक व्युत्पत्ति –वसति क्षीरादि अस्यात् (इसमें क्षीरआदि रहता है) ।
अन्तः यह उस्रा है । वस् + रक् + टाप् = उस्रा
'वचिस्वपि यजादीनां किति' से 'व' का 'उ'

उस्रिक – (१) यः उस्राभिः चरति (जो गौओं के साथ चलता है), अर्थ – सांढ ।
(२) वेदवाणियों के साथ विचरने वाला । ज्ञानवर्षक गोतम विद्वान्
'ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः'
ऋ. १.१९०.५.

उस्रियः – (१) किरणों वाला सूर्य ।
'ईशेयो वृष्टेरित उस्रियो वृषा'
ऋ. ९.७४.३
(२) सब के भीतर स्वंय बसने वाला, (३) सब को अपने में वास देने वाला परमेश्वर ।
'बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान्'
अ. ९.४.१

उस्रिया – उस्र + घ + टाप् = उस्रिया । उस्रा की व्युत्पत्ति के लिए देखिए 'उस्रा' । अर्थ –(१) गौ.दे. 'अक्र' (२) जल–सा. (३) तेजस्विता –(दया.)
'उदुस्रिया जनिता यो जजान'
ऋ. ३.१.१२
पुनः–
'उतवां विक्षु मद्यास्वन्धो
गाव आपश्च पीपयन्त देवीः
उतोनो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्
वीतं पातं पयस उस्रियायाः'
ऋ. १.१५३.४.
मित्र और वरुण से ऋत्विज् कहते हैं –हे मित्र और वरुण ! आप दोनों की मादयित्री या मादनीय इन प्रजाओं में जो यह अन्न है (उत वांमद्यासु विक्षु अन्धः) उसे वे देवियां (देवीः) गौएं और जल आप्यायित करें (गाव आपश्च पीपयन्त) तथा हमारे इस यजमान के पूर्व कालीन पालक अग्नि (नःअस्य पूर्व्यःपति) दाता बने (दन्) । हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों गाय का दही (उस्रियायाः पयसः) खाओ और पीओ (वीतम् पातम्) ।
स्वामी दयानन्द का अर्थ – हे उपदेशक तथा अध्यापक, आप की सुखी प्रजाओं में (वां मद्यासु विक्षु) अन्न, गाय तथा उत्तम जल (अन्धःगावः देवी ! आपश्च) निरन्तर बढ़े (पीपयन्त) और इस जगत् का मुख्य मालिक (उतो अस्य पूर्व्यःपतिः) उन पदार्थों को हमें दें (नः दन्) आप गो दुग्ध के बने खीर आदि ।

पदार्थों का आसन करें (उस्रियायाः पयसः) । (४) उत्सर्पण शील चितिशक्ति, (५) ऊर्ध्व मूर्धा भाग की ओर ऊर्ध्व गामी वीर्य के बल से सर्पण करने वाली चितिशक्ति

उहानः – धारण करता हुआ ।

'उहानायन्ति सिन्धवः'

ऋ. ८.४०.८.

ऊ

ऊ – (१) 'ऊ' वितर्क अर्थ में आता है परन्तु वेदों में 'ऊ' होता है । सायण के अनुसार इसका अर्थ 'एव' है ।

'मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निः
ततः सूर्योजायते प्रातरुद्यन्
मायमूतु यज्ञियानामेता
अपो यत्तूर्णिश्चरतिप्रजानन् ।'

ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.

जो यह वेगवान् वैश्वान्तर अग्नि अपने कर्म को जानता हुआ तीनों लोकों में संचारण करता है (यत् तूर्णिःअग्निः अपः प्रजानन् चरति) वह रात के समय (नक्तम्) सुप्त मनुष्यों की मूर्धा होता है (भुवःमूर्धा भवति) अर्थात् सिर की तरह पदार्थ प्रकाशक होता है । और फिर वही अग्नि प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्य के रूप में प्रकट होता है । यज्ञ –सम्पादक अग्नि, विद्युत् और सूर्य देवों के इस विज्ञान को तत्त्ववे लोग जानते हैं (यज्ञियाम् एताम् मायां ऊतु) । 'एव' अर्थ में प्रयोग के लिए देखिए 'अरिष्टनेमि' ।

ऊढ़ा – विवाहिता पत्नी ।

'अपः स्वरूषसो अग्न ऊढ़ाः'

ऋ. ६.६०.२, का.सं. ४.१५.

ऊतः – रक्षित । घत्वोताः' (तुझ से रक्षित)

ऊतिः – अव (रक्षा करना) + क्तिन् = ऊतिः। 'व' का 'ऊति यूतिजूति साति हेतिश्च' पा.३.३.९७ से 'व' का ऊङ् । अव धातु रक्षा, गति, शोभा, प्रीति, तृप्ति, बोध, प्रवेश, श्रवण, स्वामित्व, क्रिया, इच्छा, तेज, प्राप्ति आलिङ्गन, हिंसा, आदान, भजन और वृद्धि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है ।

'बर्हिषदः पितरः ऊत्यर्वाक्'

ऋ. १०.१५.४, अ. १८.१.५१, वाज.सं. १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४.१०.६, १५६.१२, का.सं. २१.१४, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२.

हे यज्ञ में बैठने वाले पितरों ! आप अर्वाचीनों की रक्षा करें ।

'आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते'

ऋ. ८.६८.१,साम. १.३५४.

हे वसिष्ठ (शविष्ठ) सज्जनों का पालक इन्द्र (सत्पतेइन्द्र) अनेक कर्मों को करने वाले (तुवि कूर्मिम्) तथा आर्तों के अभिभावक तुझे (ऋतीषह्यत्वा) हम अपनी रक्षा तथा सुख के लिए (ऊतये सुम्नाय) उसीतरह से स्तुति द्वारा तेरा आश्रय लेते हैं (आवर्तयामसि), जैसे कोई अशक्त रथ का आश्रय लेता है (रथं यथा)

ऊधन् ऊधनि – (१) रात्रि । वेद में सप्तमी में 'अनङ्' आदेश होता है ।

उद्धततरम् –उच्छ्रिततरम् प्रसव काले अङ्गान्तरेभ्यः (प्रसव काल में उद्धृत या उच्छ्रिततर हो जाय अर्थात् निकल जाय उठ जाया) । 'उद्धततर' का ही ऊधस् आदेश हो जाता है ।

अर्थ है –दूध का थन (स्तन) । (२) उपोन्नद्धम् (उपश्लिष्य गोः उदरे नद्धम्)। जो गौ के उदर में उपनद्ध है । उपनद्ध का ही निपात से 'ऊध' हो गया है ।

अर्थ–स्नेह, रस, दुग्ध, अवश्याय (ओस) । रात्रिरूपी स्तन से भी दूध की तरह ओस गिरता है अतः ऊधस् का अर्थ रात्रि भी है । (रात्रिरपि ऊध उच्यते) । उदक के आधान से ऊध कहा जाता है । (उदकाधानात् ऊध + उच्यते) ।

'यो अस्मै घ्रंस उतवा य ऊधनि
सोमं सुनोति भवति द्युमां अह'

ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९.

जो इस इन्द्र के लिए दिनों में या रात में सोमरस अभिसुत करता है वह निश्चय रूप से द्युतिमान होता है ।

क्षीरस्वामी के मत से –उद् (क्लेदनार्थक) + असुन् = ऊधस् । बाहुलक से न् का लोप द् का ध् और उ का ऊ हुआ है । रात्रि ओस के द्वारा ओषधियों का सिञ्चन करती है । (उन्नन्ति

अवश्यापेन ओषधिवनस्पतीन्) ।
(३) सोमरस रखने का पात्र, (४) अज्ञानता-
'हिनोता नो अध्वरं देवयज्या
हिनोत ब्रह्म सनयेधनानाम्
ऋतस्य योगे विष्यध्वमूधः
श्रुष्टीवरीर्भूत नास्मभ्यमापः'
ऋ. १०.३०.११, नि. ६.२२.
हे ऋत्विजो ! देवयजन मार्ग में इस हमारे यज्ञ को प्रवृत्त करें (नः अध्वरं देव यज्या हिनो) तथा धनों की प्राप्ति के लिए ब्रह्म को प्रवृत्त करें, सोम रखने के यज्ञ-पात्र रूपी ऊध को यज्ञ के शकट वियुक्त करो (ऊधः ऋतस्य योगे विष्यध्वम्) । हे सोम-मिश्रित जल (आपः) तुम भी ऋत्विजों से इस प्रकार उत्सिक्त होकर हमारे लिए सुख कारक बनो (अस्मभ्यं श्रुष्टीवरीः भूतन) ।
अन्य अर्थ -हे आप्त देवियो ! (आपः) तुम देव पूजा के लिए हमारे यज्ञ में आओ (देवयज्या नः अध्वरं हिनोत), धनों के लाभ के लिए वेद को जानो (धनानां सनये ब्रह्म हिमोत), यज्ञ के सम्बन्ध में अज्ञानता को छोड़ो (ऋतस्य योगे ऊधः विष्यध्वम्) या यज्ञ सम्बन्धी शकट के जोड़ने में रात्रि का त्याग करो तथा हमारे लिए सुख कारिणी बनो (अस्मभ्यं श्रुष्टीवरीः भूतन)।
(४) ज्ञान-रस का धारक वेद

ऊधःरोमशम् - उत्तम आधान और धारण करने वाला रोमयुक्त अर्थात् यौवनयुक्त-गुप्तांग
'समूधो रोमशं हतः'
ऋ. ८.३१.९

ऊनयीः - ऊन (कम) से नाम धातु कर 'ऊनयीः' । किया गया है । अर्थ है- नष्ट कर ।
'मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः'
ऋ. १.५३.३, अ. २०.२१.३.
हे इन्द्र ! तुझे चाहने वाले स्तुति वचनों को कहने वाले भक्त की (त्वायतः जरितुः) अभिलाषा को (कायम्) नष्ट न होने दे (मा ऊनयीः) ।

ऊवध्य - (१) ताड़नीय -दया. (२) विनाश करने योग्य, (३) चिकित्सनीय ।
'यद् ऊवध्यम् उदरास्य अपवाति'
ऋ. १.१६२.१०, वाज.सं. २५.३३, तै.सं. ४.६.८.४, मै.सं. ३.१६.१:१८२.१२, का.सं.(अश्व.). ६.४.
(४) अन्नादि का नाश ।
'वलग ऊबध्यम्'
अ. १२.५.३९.
(५) अपक्व भोजन, मल ।
'ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः'
अ. ९.४.१६
(६) उच्छेद करने योग्य, (७) मलिन कार्य करने वाला राष्ट्र का भाग (८) पेट में बैठी अपान वायु, (९) लटका कर मारने योग्य ।
'ऊवध्यं वातं सब्वं तदारात्'
वाज.सं. १९.८४, मै.सं. ३.११.९,१५३.१०, का.सं.३८.३, तै.ब्रा. २.६.४२.

ऊमाः - (ब.व.) रक्षा करने वाले । विश्वेदेवों का विशेषण ।
'ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः
सधस्थं विश्वे अभिसन्ति देवाः'
ऋ. ७.३९.४, शां.श्रौ.सू. ६.१०.६.
वे यज्ञार्ह तथा रक्षा करने वाले विश्वदेव यज्ञों में समान स्थान पर आते हैं ।

ऊर्ज् - (१) कार्तिक ।
'उपयाम गृहीतोऽस्यूर्जे त्वा'
वाज.सं. ६.३०,
(१) ऊर्ज (बल प्राणन अर्थ में) + क्विप् = ऊर्ज् । अर्थ जो बल दे. अन्न (२) अथवा 'पक्व' के 'प' का लोप कर 'क्व' के 'क्' और 'व' का व्यत्यास कर 'व' का उर् होने से 'उर्क' हुआ है (१) ऊर्ज + असन् = ऊर्जस् (२) बल-दया. (३) क्षीरादि रस-सा. ।
'पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम्'
ऋ. १.११,६,८, नि. ६.३६.
हे अश्विद्रय ! या सूर्य और पृथिवी ! तुम दोनों ने प्रजा वर्ग के लिए अन्नयुक्त बल दिया । या, सायण के अनुसार, हे अश्विनीकुमार ! तुम दोनों ने अत्रि ऋषि के लिए उन्हे आग से निकाल अन्न तथा दुग्धादिरस दिया, या अग्नि के लिए अन्न सहित आज्य उत्पन्न किया ।
(४) अन्न ।
'ऊर्जाद उत यज्ञियासः
पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्'
ऋ. १०.५३.४, आप.श्रौ.सू. २४.१३.३, नि. ३.८.
हे अन्न खाने वाले तथा यज्ञ करने वालो ! पञ्चजनो, मेरे इस होत्र को स्वीकार करो ।

पुनः देखें –
'आपो हि ष्ठा मयोभुवः
ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ।'
ऋ. १०.९.१, अ. १.५.१, साम. २.११८७, वाज.सं. ११.५०, ३६.१४, तै.सं. ४.१ .५.१, ५.६.१.४, ७.४.१९.४, मै.सं. २.७.५: ७९.१६; ४.९.२७, १३९.३, का.सं. १६.४, ३५.३, तै.आ. ४.४२.४, १०.१.१२, आप.मं.पा. २.७.१३, नि. ९.२७ .
हे जल यतः तुम सुखदायक हो (मयोभुवः) ऐसे तुम (ताः) हमारे भोजनार्थ अन्न के लिए (ऊर्जे) अनुग्रह करो (दधातन), महान् एवं सुन्दर ज्ञान के लिए भी (महेरणाय चक्षसे)
बल के अर्थ में–
'देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे इषमूर्जमन्या वक्ष त्सग्धि सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ।'
वाज.सं. २८.१६, तै.ब्रा. २.६.१०.३.
अन्न को निष्पादन करने वाली देवियां (ऊर्जाहुती देव्यौ) द्यौ और पृथिवी हैं । उनमें से एक अन्न रस तथा क्षीर आदि लाती है । (आवक्षत्) और दूसरी पुत्र पौत्रों के साथ भोजन (सग्धिम्) और बन्धु वर्गों के साथ दुग्धाधि का पाने लाती है । (सपीतिम्) हम नए अन्न से पुराने अन्न की रक्षा करते रहे (पुराणेन नवम्) उस अन्न को (ताम् ऊर्जम्) वे युगल देवियां बल एवं प्राण देने वाले धन के निधान के लिए (ऊर्जयमाने वसुवने) यजमान को देवें (अधाताम्) तथा धन से सिद्ध यज्ञ के आज्य को अपना अपना भाग वे पीवें (वसुधेयस्य वीताम्)। हे होता ! तू इन देवियों की उपासना कर (यज) ।
रस के अर्थ में–
'देवीं वाचमजनयन्त देवाः
तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सानो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ।'
ऋ. ८.१००.११, तै.ब्रा. २.४६.१०, पा.गृ.सू. १.१९.२, नि. ११.२९.
माध्यमिक देवों ने वाक् देवी को उत्पन्न किया (देवाः वाक् देवीम् अजनयन्त) । उन सभी प्राणियों के अन्तर्गत रहने वाली वाक् को सब प्रकार के जीव बोलते हैं । (तां विश्वरूपाः पशवः वदन्ति) । वह वाणी स्तुति से प्रसन्न होने तथा जल से हर्षित करने वाली है (सा मन्द्रा), अतः हमें अन्न (इषम्) तथा दूध घी के रूप में रस देती हुई (ऊर्जम् दुहाना) गाय की तरह अच्छी तरह से स्तुत हो (सुष्टुता) हमारे पास आवे (अस्मान् उपैतु) । (५) बल दायिनी उषा को भी ऊर्ज कहते हैं । (६) अन्नयुक्त, (७) बलवान्
'इमाहित्वामूर्जो वर्धयन्ति'
ऋ. २.११.१

ऊर्जःपुत्रः – (१) बल और अन्न से उत्पन्न परमेश्वर, (२) पुरुकोष क्षुधादि भरण से त्राण करने वाला ।
'ऊर्जःपुत्रं भरतं सृप्रदानुम्
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्'
ऋ. १.९६.३
बल और अन्न से उत्पन्न, पुरुष को क्षुधादि भरण से त्राण करने वाले, भरण पोषण करने वाले, सर्पण शील व्यापक चेतना या बल को देने वाले (सृप्रदानुम्) प्राण और अन्न को उत्पन्न करने वाले (द्रविणोदाम्) सर्व-पूज्य धनैश्वर्य के दायक परमेश्वर को देवगण धारण करें ।

ऊर्जयन्ती – (१) बल बढ़ाने वाली ओषधि ।
'ऊर्जयन्तीमुदोजसम्'
ऋ. १०.९७.७, वाज.सं. १२.८, तै.सं. ४.२.६.४, मै.सं. २.७.१३,९ ३.१५, का.सं. १६.१३.
(२) अन्न उत्पन्न करने वाली भूमि, (३) पराक्रम शील सेना ।
'ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यम्'
ऋ. २.१३.८
(४) अधिक बल देने वाली शक्ति (५) बल रूप में बदलने वाली दीप्ति ।
'महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यम्'
ऋ. ३.७.४

ऊर्जव्य – (१) अन्न और बल पराक्रम से प्रकाशित
'सिषुक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः'
ऋ. ५.४१.२०, नि. ११.४९.

(न.) यवादि अन्न ।

ऊर्जसनः – अन्नो बलों का देना वाला अग्नि ।
'स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जधाः'
ऋ. ६.४.४, तै.सं. १.३.१४.७.

ऊर्जास्कम्भः – (१) बल पराक्रम रूप स्कम्भ को धारण करने वाला ।
'ऊर्जःस्कम्भं धरुण आवृषायसे'
ऋ. १०.४४.४, अ. २०.९४.४
(२) बलों से स्तम्भन करने वाला ।

ऊर्जस्वत् – ऊर्ज + असुन् + वतुप् = ऊर्जस्वत् । अर्थ (१) साखान्, (२) रसवान्, (३) बलवान्, (४) अन्नवान्, (५) धनधान्य से पूर्ण ।
'प्रयाजान् मे अनुयाजांश्च केवलान्
ऊर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम्
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनाम् अग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः'
ऋ. १०.५१.८, नि. ८.२२, कौ.ब्रा. १.२.
हे देवो ! मुझे आप केवल प्रधान देवों के मुख में यष्टव्य हवि के भागों को (प्रयाजान्) तथा प्रधान के पश्चात् देवों को देय हवियों को (अनुयाजान्) दें (दत्त), तथा मुझे रस युक्त, बलयुक्त हवि का भाग ही दें (ऊर्जस्वन्तं हविषभागम्) तथा जल का सारभाग तथा घृत एवं ओषधियों में पुरुषौषधि जैसे पुरोड़ाश ही दें (घृतञ्च अपाञ्च ओषधीनां पुरुषम्) और हे देवो, मुझ अग्नि की आयु लम्बी हो (अग्नेश्च दीर्घम् आयुःअस्तु) अर्थात् मुझे वषट्कार से मारे जाने का भय न हो ।
'ऊर्जस्वन्तः प्रयस्वन्तः'
ऋ. ७.६०.२, हि.गृ.सू. १.२९.१.

ऊर्जस्वती – (१) खूब दुधवाली गौ, (२) बल वाली औषधि ।
'मयोभूः वातो अभि वातूम्रा
ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्'
ऋ. १०.१६९.१, तै.सं. ७.४.१७.१.
वायु गायों के सम्मुख होकर बहे तथा ऐसी हवा से खूब दूधवाली होकर औषध घासों का घूमघूमकर स्वाद लें ।

ऊर्णम्रदाः – (१) ऊन के समान कोमल पृथिवी ।
'ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदाः'
वाज.सं. ४.१०.
'ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि'
वाज.सं. २.२,५, तै.सं. १.१.११.१. का.सं. १.११, श.ब्रा. १.३.३.११, ४.११, तै.ब्रा. ३.३.६.७, कौ.सू. २.१७.
'ऊर्णम्रदाः पृथिवी रक्षिणावतः'
अ. १८.३.४९
(२) ऊन की तरह शरीरवत् राष्ट्र की रक्षा करने वाला वीर पुरुष (३) राष्ट्र पर आच्छादन आवरण करने वाले, (४) ऊन के समान अति मृदु, सुखकारी, (५) राष्ट्र का रक्षक होकर शत्रु का मान मर्दन करने वाला
'ऊर्णम्रदा विप्रथस्व'
ऋ. ५.५.४
(६) ऊन के समान मृदु ।
'ऊर्णम्रदा युवतिः दक्षिणावते'
ऋ. १०.१८.१०, अ. १८.३.४९, तै.आ. ६.७.१.

ऊर्दर – कृदर, आवपन (धान्य आदि रखने का भाण्ड) । ऊर्दरम् उदीर्णं भवति (ऊर्दर उदीर्ण होता है) । मटका, घड़ा, भांड़ ।
अथवा – ऊर्जे दीर्णम् (अन्न के लिए दीर्ण)। अर्थ–कुसूल (कोठिला) जो ऊपर से दीर्ण रहता है और जिस में अन्नादि रखा जाता है ।
'अध्वर्यवोयो दिव्यस्यवस्वः
यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा
तमूर्दरं न पृणता यवेन
इन्द्र सोमेभिः तदपो वो अस्तु'
ऋ. २.१४.११.
हे अध्वर्युवो ! या अहिंसक प्रजाजनो ! जो इन्द्र द्विलोक में स्थित धन का (दिव्यस्यवस्वः) जो अन्तरिक्ष के धन का (पार्थिवस्त्र) तथा गड़े पृथ्वी के धन का (क्षम्यस्य) राजा है (राजा) ऐसे इन्द्र को यव से जैसे कोठिला भरा जाता है (यवेन ऊर्दरंन), उसी प्रकार सोमरसों से या धन धान्यो से (सोमेभिः) पूर्ण करो (पृणत)। यही आप लोगों का एक मात्र कार्य हो (तत् एतत् वः–अपः स्तुति) ।
स्वा. दयानन्द ने अध्वर्य का अर्थ अहिंसक प्रजा मान कर इस ऋचा का भाव यह निकाला है कि प्रजा राजा को धनधान्य दे तथा पृथिवी के खनिज पदार्थ का स्वामी राजा ही है ।

ऊर्ध्व – (१) ऊपर उठने वाला अग्नि का

विशेषण ।
'जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे'
ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.८, २२७.४, तै.ब्रा. २.८.७.४, आप.श्रौ.सू. १६.७.४, नि. ८.१५.
कुटिल इन्धनों से सीधे ऊपर की ओर जाता है। यह अपने वंश में रहने वाला अपने स्थान में (उपस्थे) कुटिल इन्धनों से ऊपर बढ़ता है।
(२) ऊर्ध्व गति से जाने वाला।
'वषड्वइत्यूर्ध्वासो अनक्षन्'
ऋ. १०.११५.९

ऊर्ध्वकृशनः – (१) ऊर्ध्वकृशन यामायन नामक एक वैदिक ऋषि। (२) उत्तम पद की ओर तेजी से जाने वाला अग्नि।
'अयं बिभर्त्युर्ध्वकृशनम् मदम्'
ऋ. १०.१४४.२

ऊर्द्ध्वग्रावा – (१) उपदेष्टवा पुरुष को सबसे ऊंचा रखने वाला, (२) ग्रावा अर्थात् क्षत्रिय को अपने ऊपर नायक बनाने वाला।
'ऊर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट'
ऋ. ३.५४.१२

ऊर्ध्वचित् – मोक्ष पद का प्रवचन या ज्ञान करने वाला।
'चितस्थ परिचित ऊर्ध्वचितःश्रयध्यम्'
वाज.सं. १२.४६

ऊर्ध्वदेव – (१) सबसे ऊपर विराजने वाला सर्वाध्यक्ष परमेश्वर।
(२) सूर्य।
'विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः'
ऋ. २.३८.२.

ऊर्ध्वनभस्ऊर्ध्वनभाः – सबका परम बन्धनकारी।
'ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्'
तै.सं. १.३.९.२, मै.सं. १.२.१६, २७.१, का.सं. ३.६, कौ.सू. ४५.१२.

ऊर्ध्वप्राण – मुख्यप्राणः।
'योऽस्य प्रथमःप्राणऊर्ध्वो
नामायं सो अग्निः'
अ. १५.१५.३.

ऊर्ध्वपृश्निः – ऊपर की ओर चित्रविन्दुवाली।
'पृश्नीस्तिरश्चीनपृश्निः
ऊर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः'
वाय.स. २४.४

ऊर्ध्वमायुः – उच्च शब्द करता हुआ।
'संजयन् पृतना ऊर्ध्वमायुः'
अ. ५.२०.४

ऊर्ध्वबुध्न – (१) ऊर्ध्वावस्थितः बोधयति प्रकाशेन (ऊपर स्थित द्वे प्रकाश से बोधन कराने वाला–आदित्य मण्डल) (२) अध्यात्म पक्ष में शिर जो शरीर के ऊपर विद्यमान है और सम्पूर्ण शरीर पर नियन्त्रण रखता है। ऊर्ध्वबन्धन ऊपर से बांधने वाला। यदि शिर स्थिर न रहे तो समस्त शरीर विश्रृंखलित एवं निष्कर्मण्य हो जाय।
'तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नो
तास्मिन् यहो निहितं विश्वरूपम्।
तदा ऋषयः सप्त साकं
ये अस्य गोपा महतो बभूवुः।'
नीचे छिद्र वाला (तिर्यग्बिलः) अर्थात् नीचे की ओर किरणों को फैलाने वाला यह सूर्यरूपी चमस (चमसः) जो जल गिराता है, ऊपर से समस्त जगत् को प्रकाशित या उद्बोधित करता है या नियन्त्रण रूपी बन्धन में जगत् को जकड़े रहता है (ऊर्ध्वबुध्नः)। जिस आदित्य मण्डल में (यस्मिन्) अनेक प्रकार का जल रखा हुआ है। (विश्वरूपं यशः निहितम्) उस जल को रखने वाले वे हैं जो इस जगत् के रक्षक रूप रश्मियां हैं (ये अस्य महतः गोपा बभूवः) और जो सात ऋषियों के नाम से इस आदित्य मण्डल में (अत्र) साथ ही रहते हैं। (सप्त ऋषयः साकम् आसते)।
अध्यात्म पक्ष में –नीचे की ओर बिल वाला यह शिर समस्त शरीर को ऊपर से ही बांध कर नियन्त्रित रखता है और इस शरीर में स्थित इन्द्रियां शरीर की रक्षा करती हैं तथा साथ ही रहती हैं।

ऊर्ध्वशोचिः – ऊपर उठती हुई कान्ति वाला –अग्नि।
'वनस्पतावीड्यम् ऊर्ध्वशोचिषम्'
ऋ. ६.१५.२

ऊर्ध्वस्वप्नाः – विशाल खड़े-खड़े सोने वाले वृक्ष।
'अस्थुर्वृक्षा ऊर्ध्वस्वप्नाः'
अ. ६.४४.१

ऊर्ध्वसानः – उच्च पद को प्राप्त करने वाला ।
'स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसानः'
ऋ. १०.९९.७

ऊर्ध्वसानुः – (१) पर्वत आदि उच्च प्रदेशों में व्याप्त सूर्य, (२) शिरों स्कन्धो को ऊंचा रखता हुआ, (३) सर्वोपरि प्राप्तव्य ब्रह्म ।
'कनिक्रदत् पतयत् ऊर्ध्वसानुः'
ऋ. १.१५२.५

ऊर्म्य – तरंग या उमंग में आकर काम करने वाला ।
'नम ऊर्म्याय चा वस्वनाय च'
वाज.सं. १६.३१, तै.सं. ४.५,५.२, मै.सं. २.९.५, १२४.१४, का.सं. १७. १४.

ऊर्म्य – (१) हिंसा कारी शक्ति ।
'उदूर्वाद् गा असृजोअङ्गिरस्वान्'
ऋ. ६.१७.६
(२) अग्नि ।
'ऊर्व इवपप्रथे कामो अस्मे'
ऋ. ४.३०.१९, नि. ६.७.
(३) समूह, वर्ग ।
'समान ऊर्वे अधिसंगतासः'
ऋ. ७.७६.५
(५)विनश्वर पदार्थ ।
'उरु ऊर्वा अभितः सास्युक्थ्यः'
ऋ. २.१३.७

ऊर्व्य – भूमि विस्तृत खेतों का स्वामी ।

ऊर्जा – अन्नमयी विराट् प्राकृति ।
'ऊर्ज एहि स्वध एहि'
अ. ८.१०.११.
ऊर्जाद् = ऊर्जा + अद् (भोजन करना) + क्विप् = ऊर्जाद् । अन्न खाने वाला ।

ऊर्जादःपञ्चजना – अन्न खाने वाले पञ्चजन- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चाण्डाल । अथवा-देव, यक्ष, राक्षस किन्नर और गन्धर्व ।

ऊर्जानपात् – (१) बल शक्ति को न गिरने देने वाला- अग्नि ।
'ऊर्जोनपादश्वमिष्टे'
ऋ. २.६.२
(२) अन्न का नप्ता -अग्नि -
(३) बल का नाश नहीं करने-दया. । उपदेशक का विशेषण ।
'एनावोअग्निं नमसा
ऊर्जोनपात माहुवे ।'
ऋ. ७.१६.१, साम. १.४५,२.९९, वाज.सं.१५.३२
हे ऋत्विक् यजमानो । इस अन्न से (एना नमसा) अपा लोगों के (वः) अन्न के नप्ता (ऊर्जा नपात्) अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ ।
हे प्रजाजनो ! तुम्हारे लिये (वः) इस अन्नादि से (एना नमसा) सत्कार पूर्वक बल का नाश न करने वाले (ऊर्जा नपात्) तेजस्वी उपदेशक को (अग्निम्) स्वीकार करता हूं (आहुवे) ।

ऊर्जानी – (१) पराक्रम युक्त नीति, (२) अन्न सम्पत्ति, (३) पराक्रम शक्ति ।
'आवाम् ऊर्जानी रथमश्विनारुहत्'
ऋ. १.११९.२

ऊर्जापति – अन्नों, बलों, पराक्रमों और समस्त परम रसों का परिपालक आदित्य ।
'वसिष्वाहि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जापते ।'
ऋ. १.२६.१.
हे ऋत्विक्! सत्संग उपासना योग्य परमेश्वर ! हे अन्नों, बलों और परमरसों का परिपालक तू वस्त्रों को धारण कर ।

ऊर्जायमान – बल और प्राण देने वाला ।
'तामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जायमाने अधाताम्'
वाज.सं. २८.१६, मै.सं. ४.१३.८, २१०.६ का.सं. १९.३, तै.ब्रा. ३.६.१३.१, नि. ९.४३.
उस अन्न को निष्पादन करने वाली देवियां द्यौ और पृथिवी (ऊर्जाहुती) बल एवं प्राण देने वाले धन के निधान के लिए (ऊर्जायमाने वसुवने) यजमान को देवें (अधाताम्) ।

ऊर्जोव्युष्टि – (१) बल दायिनी उषाओं का प्रादुर्भाव, (२) अन्नवती या सारवती उषाओं का विभाग ।
'आव ऋञ्जस ऊर्जा व्युष्टिषु'
ऋ. १०.७६.१, नि. ६.२१.
हे पत्थरो ! तुम्हे अन्नवती या सारवती उषाओं के विभागों में चारों ओर से अलङ्कृत करता हूँ. (अऋञ्जसे) -
हे मनुष्यो ! बलदायिनी उषाओं के प्रादुर्भूत होने पर हृदय मन्दिर को सजाने के लिए (ऋञ्जसे) आप ।

ऊर्जाहुती – (१) द्यौ और पृथिवी नाम की देवियां

जो अन्न और रस लाती हैं । ऊर्ज + आहुती ।
ऊर्जाह्वान्यौ अन्नं च ।
रसं च आवहत्यौ ।
ऊर्जस्य निष्पादयित्र्यौ अन्न निष्पन्न करने वाली दो देवियाँ। (२) अन्न की थाली (३) अन्न और वीर्य की आहुतियां
'देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे'
वाज.सं. २१..५२, २८.१६,३९, मै.सं. ३.११.५, १४७.७, तै.ब्रा. २.६.१०.३, १४.३.
(४) राष्ट्र को अन्न सम्पत् देने वाली
'ऊर्जामूर्जाहुती ऊर्जयमाने'
वाज.सं. २८.१६

ऊर्जाहुतिः – बल, ज्ञान और अन्नादिका दान
'ऊर्जाहुतिर्वसूनाम्
शंच योश्चमयो दधे'
ऋ. ८.३९.४

ऊर्णा – 'वृ' (वरण करना) या 'ऊर' (आच्छादन करना) + ड + टाप् = ऊर्णा । शरीर की रक्षा के लिए जिसकी विशेष रूप से वरणा या अभिकांक्षा की जाय या जिससे आच्छादन किया जाय वह ऊर्णा है ।
अर्थ – (१) ऊन । (२) सुरक्षित । (३) आच्छादन करने वाली ऊन की बनी ।
'श्रियेपरुष्णी मुषमाण ऊर्णाम्'
ऋ. ४.२२.२

ऊर्णायुः – ऊन देने वाला भेड़ ।
'इममूर्णायुं वरुणाय नाभिम्'
वाज.सं. १३.५०, मै.सं. २.७.१७, १०२.१७, का.सं. १६.१७, श.ब्रा. ७.५.२.३५.

ऊर्णावती – (१) आच्छादक लोक त्वचा से युक्त ।
'ऊर्णावती युवतिः सीलमावती'
ऋ. १०.७५.८
(२) ऊनवाली भेड़ ।
'शतमूर्णावतीनाम्'
ऋ. ८.५६.३

ऊर्णा सूत्र – ऊन का सूत ।
'ऊर्णासुत्रेण कवयो वयन्ति'
वाज.सं. १९.८०, मै.सं. ३.११९, १५३.१, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.१.

ऊर्ध्वा – (१) ऊर्ध्व दिशा, (२) ऊर्ध्व दिशा के समान उन्नत ।
'ऊर्ध्वायैत्वा दिशेबृहस्पतयेऽधिपतयेश्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते'
अ. १२.३.६०
(३) अग्नि की ज्वालाओं के समान ऊपर रहने वाली आदरणीया स्त्री ।
'ऊर्ध्वाभवन्ति दर्शता यजत्राः'
ऋ. ३.५७.४

ऊर्ध्वादिक् – ऊर्ध्वदिशा ।
'स ऊर्ध्वादिशमनुव्यचलत्'
अ. १५.६.४

ऊर्ध्वाधीति – (१) ऊंची धारणा दया. (२) ऊंची स्थिति (३) देह और आत्मा के धारण पोषण का कार्य ।
'ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्यप्रयामनि
अधायि शस्मन्त्समयन्त आदिशः'
ऋ. १.११९.२
हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! रथ के उत्तम मार्ग में (अस्य प्रयामनि) जिस प्रकार रथ की ऊंची स्थिति रखी जाती है । (ऊर्ध्वाधीतिः अधायि) उसी प्रकार इस देह और आत्मा के धारण पोषण का कार्य उत्तम मोक्ष मार्ग में जाने वाले के लिए ही प्रतिक्षण रखा जाये ।

ऊर्ध्वानदी – (१) ऊपर से पड़ने वाली उमड़ती, हुई नदी (२) उत्तम कोटि के गुणों से समृद्ध स्त्री
'वेष्वन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः'
ऋ. १.१८१.६

ऊर्ध्वाम् – ऊपर की ओर ।
'आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति'
ऋ. १०.२७.१३, नि. ६.६.
ऊपर अन्तरिक्ष में या अपने मण्डल में (उपसि) स्थित (आसीन) आदित्य नीचे की ओर जब विस्तृत भूमि के समीप आता है तो वृष्टि को प्रच्युत करता है (क्षिणाति) या दीप्ति को संसार में आकीर्ण करता है ।

ऊर्ध्वासःइन्दवः – उत्तम कोटि के ऐश्वर्य या ऐश्वर्य युक्तजन ।
'ऊर्ध्वासः त्वा नुइन्दवः'
ऋ. ७.३१.९

ऊर्म्या – (१) रात्रि, (२) उत्तम ज्ञान-सम्पादन करने में लग्न जनता ।

'अध बहु चित्तम ऊर्म्यायाः'
ऋ. ६.१०.४
(३) रात्रि के समान सुखदायिनी (४) उत्तम ऊंचे से शब्द करने वाली विद्युत् ।
'एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्म्याय परावह'
ऋ. ५.६१.१७

ऊर्मि – ऊर (उर्णुञ) + मि = ऊर्मि । 'ऊर' धातु आच्छादनार्थक है । ऊर्मि नीर को या जल में स्थित अन्य किसी पदार्थ को आच्छादित करती है । अर्थ (१) लहर, (२) संधाता,
'आसिञ्च स्वजठरे मध्य ऊर्मिम्'
ऋ. ३.४७.१, वाज.सं. ७.३८, वाज.सं.(का.) २८.१०, तै.सं. १.४.१९.१, मै.सं. १.३.२२, ३८.२, का.सं. ४.८,नि. ४.८.
अपने पेट में सोमरस की धारा या संधात आसिञ्चित कर ।
पुनः–
'मानः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः
ऊर्मिर्न नाव मावधीत् ।'
ऋ. ८.७५.९, तै.सं. २.६.११.२, मै.सं. ४.११.६, १७५.१०, का.सं. ७.१७, नि. ५.२३.
जिस प्रकार समुद्र या नदी की लहर (ऊर्मिः) नाव को पीड़त करती है (नावं न) उस तरह हमें (नः) सभी परिद्वेषी और पापर बुद्धि वालें का वध या उत्पात् (समस्य परिद्वेषसः दूढ्यः अंहतिः) हमें चोट न पहुंचावे (मा अवधीत्) ।
(३) छादक, (४) प्रकाश के द्वारा सभी को आच्छादित करने वाला सूर्य ।
'समुद्रादूर्मिर्मधुमां उदारद्
उपांशुना सममृतत्वमानट ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदास्ति
जिह्वा देवानाम् अमृतास्यनाभिः'
ऋ. ४.५८.१, वाज.सं. १७.८९, मै.सं. १.६.२, ८७.१३, का.सं. ४०.७, ऐ.ब्रा. ५.१६.६, कौ.ब्रा. २५.१, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना.उप. ९.१२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, आप.मं.पा. २.३.२, नि. ७.१७.
प्रकाश के द्वारा सबका आच्छादन करने वाला सर्व प्रिय या उदक वाला सूर्य (मधुमान् ऊर्मिः) सागर या अन्तरिक्ष से उदित हुए (समुद्रात् उदारत्) । चन्द्रमा के साथ उस सूर्य का संयोग होने पर (अंशुना सम्) मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त करता है (अमृतत्वम् उपानट्) । जिन ओषधियों में जल का गुप्त रूप से वास है (यत् घृतस्य गुह्यं नाम अस्ति) वहां सूर्य रश्मियों की जिह्वा (देवानां जिह्वा) पहुँचती है अर्थात् सूर्य रश्मियां उस रस का आस्वादन करती हैं और वह सूर्य वृष्टिजन्य अमृत जल का कारण है । (अमृतस्य नाभिः)

ऊरु – जंघा ।
'या न ऊरु उशती विश्रयाते'
ऋ. १०.८५.३७, अ. १४.२.३८, आप.मं.पा. १.११.६,
जो यह कामयमाना कामिनी (या उशती) विविध प्रकार से उरुओं का आश्रय लेती है ।

ऊरूची – या ऊर्वी विद्याः अञ्चति (जो बहुत सी विद्याओं या ज्ञानों को धारण करती है) वाणी
'अग्नेदेवेषूच्यत ऊरूची'
ऋ. ३.५७.५.

ऊर्जोनपात् – (१) बल सामर्थ्य एवं ब्रह्मानन्द रस का कभी परित्याग न करने वाला–अग्नि परमात्मा ।
'ऊर्जोनपात् जातवेदः सुशस्तिभिः'
ऋ. १०.१४०.३, साम. २.११६८, वाज.सं. १२.१०८, तै.सं. ४.२.७.२, मै.सं. २.७.१४, ९५.१८, का.सं. १६.१४, श.ब्रा. ७.३.१.३१.
(२) बल का अक्षय भण्डार स्वरूप–अग्नि ।
'ऊर्जोनपातम्घृतकेशमीमहे'
ऋ. ८.६०.२, अ. २०.१०३, ३, साम. २.९०३.
(३) बल से उत्पन्न एवं अन्न बलवीर्य का नाश न होने देने वाला ब्रह्मचारी ।
'ऊर्जोनपातमाहुवे'
ऋ. ७.१६.१, ८.४४.१३, साम. १.४५,२.९९, १०६२, वाज.सं. १५.३२, तै.सं. ४.४.४.४., मै.सं. २.१३.८:१५७.३ का.सं. ३९.१५.

ऊषतुः – वस् (वसना) के लिट् प्र.पु. द्वि.व. का रूप । वेद में पुरुष का व्यत्यय हुआ है और लट् में प्रयुक्त हुआ है । अर्थ है – वसथः (बसते हो) ।

ऊष्मण्य – (१) ऊष्मासु साधुः (जो ग्रीष्मकाल में सुख कारी हो) ।
'ऊष्मण्यापिधाना चरूणाम्'

ऋ. १.१६२.१३, वाज.सं. २५.३६, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१, १८३.५, का.सं.(अश्व) ६.४.
विचरने वाले पथिकों के निमित्त (चरुणाम्) ग्रीष्मकाल में सुखकारी (ऊष्मण्या) आच्छादित स्थान अर्थात् विश्राम गृह हैं (अपिधानानि) और जो स्थान स्थान पर अंकित मार्ग हैं ।
(२) गर्म करने वाला उवट (३) देह के ताप की रक्षा करने वाली त्वचा का आच्छादक ।

ऊष्मा, ऊष्मन् – शरीरस्थ गर्मी, गर्मी ।
'नीहारमूष्मणा'
वाज.सं. २५.९, मै.सं. ३.१५.८,१८०.१

ऊह – (१) एकत्र करना ।
'यतस्तयः समूहसि'
अ. १.१३.२
(२) नष्ट करना ।

ऊहति – नष्ट करता है ।
'अपापशक्रस्ततनुष्टिमूहति'
ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९.
इन्द्र सनातन धर्म से दूर, आत्ममण्डन परायण, विषयोपयोभोग परायण, या धर्मरहित अनेक प्रकार से अपने धन को बढ़ाने वाले मनुष्य को बार बार नष्ट करते हैं ।

ऊहे – वह (ढोना) धातु के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है ढोता है, प्राप्त करता है ।
'कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः'
ऋ.१०.५२.३, नि. ६.३५.
यह अग्नि अन्न भी ढोता या प्राप्त कराता है (कम् अपि इऊहे) जिसे देवता लोग या आर्य (देवाः) खाते या प्राप्त करते हैं (यत् देवाः समञ्जन्ति) ।

ऋ

ऋ – उद्वेग जनक क्रोध आदिदुर्भाव ।

ऋक्व – (१) वाणी या आज्ञा के अधीन पुरुष, (२) ज्ञानी विद्वान् (२) वेद की ऋचा
'बृहत् शरीरो विमिमान ऋक्वभिः
युवा कुमारः प्रत्येति आहवम् ।'
ऋ. १.१५५.६
ब्रह्मचारी नित्य वृद्धिशील, विशालकाय होकर (बृहत्शरीरः) वेद की ऋचाओं या ज्ञानी विद्वानों से (ऋक्वभिः) विविध ज्ञानों को प्राप्त करता हुआ (विमिमानः) समस्त ज्ञान को (आहवम्) प्राप्त हो (प्रति एति) ।
अथवा, युवा पुरुष अपनी वाणी या आज्ञा के अधीन रहने वालों से (ऋक्वभिः) विविध दिशाओं के शत्रुओं को गिराता हुआ (विमिमानः) युद्ध के प्रति जाता है (आहवं प्रति एति) ।

ऋक्वत् – (१) ज्ञानवान् , (२) मन्त्रों से युक्त
'स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन'
ऋ. ४:५०.५, अ. २०.८८.५, तै.सं. २.३.१४.४, मै.सं. ४.१२.१ , १७८.५, का.सं. १०.१३,
(३) ऋग्वत्, स्तुत्य, (४) प्रशस्त
'अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः
सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः
पावकेभिः विश्वमिन्वभिरायुभिः
वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः'
ऋ. ५.६०.८, ऐ.ब्रा. ३.३८.१९, कौ.ब्रा. १६.९, आश्व.श्रौ.सू. ५.२०.८.
हे सर्वजन-हितकारी अग्नि ! शोभायमान, प्रशस्त (शुभयद्भिः ऋक्वभिः) समूह रूप में आश्रित (गणश्रिभिः) पावक वृष्टि आदि के द्वारा जगतच् को तृप्त करने वाली (पावकेभिः विश्वम् इन्वेभिः) आयुष्प्रद तथा परिमित चमकने वाली ज्वालाओं के साथ (आनन्दित करने वाली (मन्दसानुः) सोम, दुग्ध आदि उत्तम रसों का पान कर (सोमं पिब) ।

ऋक्वन् – (१) प्रशस्त पदार्थ -दया. (२) रस हरने वाली सूर्य-रश्मि ।
'ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः'
ऋ. १.८७.६, तै.सं. २.१.११.२, ४.२.११.२, मै.सं. ४.११.२,१६७.१५, का.सं. ८.१७.
वे सुख दायक या शोभन हवि के खाने वाले मरुत् रस हरने वाली सूर्य की रश्मियों से जल बरसते हैं ।-
वे सुख भोगने वाले पुरुष (सुखादयः) प्रशस्त पदार्थों से सुख-सेवन करते हैं-दया.

ऋक्सम – जगती छन्द से उत्पन्न ऋक् नामक साम ।
'जगत्या ऋक्समम्'
वाज.सं. १३.५६, तै.सं. ४.३.२.२, मै.सं. २.७.१९,

१०४.७, का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.१.२.२.

ऋक्संशित – ऋग्वेद के ज्ञान में सुशिक्षित ।
'विष्णोःक्रमोऽसि सपत्नह
ऋक्संशितः सामतेजाः'
अ. १०.५.३०

ऋक्ष – (१) सूर्य, (२) सदा अर्चणीय , (३) वेदाज्ञाओं का पालक, (४) ऋक्ष (भालू), (५) भालू सा भयङ्कर बलशाली ।
'ऋक्षोनवो मरुतः शिमीवान् अमः'
ऋ. ५.५६.३
रीछ जो पशु होकर भी अपुच्छ है ।
'ऋक्षोजतूः सुषिलीका त इतरजनानाम्'
वाज.सं. २४.३६, मै.सं. ३.१४.१७, १७६.४
(६) ऋष् (गत्यर्थक) + स = ऋक्ष (कित् का आगम) अर्थ है नक्षत्र । नक्षत्र उद्गत से दीखते हैं (उदीर्णानि- उदीरितानि इव ख्यायन्ते ।
आधुनिक अर्थ – (१) भालू, (२)एक पर्वत का नाम, (३) नक्षत्र, (४) सप्तर्षि या सात नक्षत्रों का समूह ।
'अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा
नक्तं ददृश्रे कुहचित् दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि
विचाकशत् चन्द्रमानक्तमेति'
ऋ. १.२४.१०, तै.आ. १.११.२, नि. ३.२०.
ये जो नक्षत्र ऊपर आकाश में निहित रात में दीख पड़ते हैं वे दिन में कहां चले जाते हैं (दिवा कुहचित् ईयुः) । अवश्य ही ये अनमहिंसित अतः आश्चर्यमय कार्य सूर्य के हैं (वरुणस्य अदब्धानि व्रतानि) जो न जाने कहां इन्हे दिन में छिपा रखते हैं और रात में आकाश में ला रखते हैं । उसी प्रकार दीप्तिमान् चन्द्रमा (विचाकशत् चन्द्रमा) रात में आते हैं । तात्पर्य यह कि चन्द्रमा भी सूर्य से ही प्रकाशित होते हैं ।

ऋक्षग्रीव – अक्ष के समान मोटी गर्दन वाला, अतिलोमश ।
'ऋक्षग्रीवं प्रमीलिनम्'
अ. ८.६.२

ऋक्षर – कण्टक ।
'अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।'
ऋ. २.२७.६
'अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानः'
ऋ. १०.८५.२३, अ. १४.१.३४, आप.मं.पा. १.१.२.

ऋक्षरा – कंटकाकीर्ण । ऋक्ष + करच = ऋक्षर । ऋक्ष हिंसार्थक धातु है । टाप् प्रत्यय के योग से बहुब्रीहि समास में में 'ऋक्षरा' हुआ ।
'स्योना पृथिवी भवानृशा निवेशनी,'
ऋ. १.२२.१५, वाज.सं. ३५.२१, ३६.१३, मै.सं. ४.१२.२, १८०.१६, का.सं. ८.१३, तै.आ. १०.१.१०, आश्व.श्रौ.सू. ८.१४.१८, आप.श्रौ.सू. १६.१७. १७, आश्व.गृ.सू. २.३.७, शां.गृ.सू. १.२७.९, ३.१०.१६, ४.१८.५, साम. मं.ब्रा. २.२.७, गो.गृ.सू. ३.९.१८, पा.गृ.सू. ३.२.१३, आप.मं.पा. २.१५.२, १८.८, हि.गृ.सू. २.१७.९, नि. ९.२३.
हे पृथिवी ! तू सुख कारक बन, निष्कण्टक एवं निवास योग्य बन ।
* आधुनिक अर्थ – (१) पुरोहित, (२) कण्टक

ऋक्षला – (१) चूतड़ के नीचे नाड़ी ।
(२) ऋक्षरा कंपाटिका जिससे गोरैया आदि पक्षी पकड़े जाते हैं ।
'ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान्'
वाज.सं. २५.३

ऋक्षाक – (१) भालुओं से पूर्ण (२) ज्ञानेन्द्रिय गण ।
'आर्क्षाकं वा प्रतरं नवीयः'
अ. १८.२.३१

ऋक्षीका – (१) ऋक्ष जाति के वनचारी जन्तु, (२) कुटिल चालों को चलने वाली स्त्री ।
'ऋक्षीकाभ्यो नैषादम्'
वाज.सं. ३०.८., तै.ब्रा. ३.४.१.५.
(३) ऋज जाति का एक दुःख दायी पशु ।
'ऋक्षीकां रक्षो अपबाधयास्मत्'
अ. १२.१.४९.

ऋग्मियः – (१) ऋचाओं से जानने योग्य ।
(२) वेदों का कर्ता ।
'गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्'
ऋ. १.९.९, अ. २०.७१.१५
(३) ऋच् + घ (मत्वर्थीय) = ऋग्मिय । बाहुलक से ऋच् के बाद मुक् का आगम । अथवा पूजार्थक अर्च के सम्प्रासरम रूप ऋच से 'मिय' प्रत्यय कर ऋग्मिय शब्द बना । अर्थ-ऋग्मान, स्तुतियुक्त (४) अर्चनीय, पूजनीय (५) वेदज्ञाता, (६) अर्चनीय अग्नि का वाचक ।

'विशो राजानमुपतस्थुर्ऋग्मियम् ।'
ऋ. ६.८.४, नि. ७.२६.

ऋग्मी – (१) ऋग्वेदी वेदमन्त्रों का ज्ञाता ।
'ऋग्मिभिः ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो'
ऋ. १.१००.४
वह वेदमन्त्रों के ज्ञातापुरुषों के साथ सब से अधिक वेदों का अर्थज्ञ हो । (२) वेद मंत्र से स्तुति करने वाला ।
'गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणोमयुः'
ऋ. ९.८६.४६

ऋघ – (१) शत्रु को मारने वाला अस्त्र, (२) त्रट अर्थात् भीतरी शत्रु उद्वेगजक क्रोधादि दुर्भाव को नाश करने वाली शक्ति ।
(२) ऋध्यत इति ऋध्यः पूज्यः । ऋघ् + क = ऋघ । अर्थ-जिसकी पूजा हो ।
'नहित्वा रोदसी उभे
ऋघायमाणमिन्वतः'
ऋ. १.१०.८
हे परमेश्वर ! आकाश और पृथिवी दोनों भी (रोदसी) उपासना करने योग्य तुझ को (ऋघायमाणम्) नहीं व्यापते (नहि इन्वतः)

ऋघायत् – 'ऋतं हन्तुं गन्तुम् इच्छत्' (१) सत्य का हनन करने वाला (२) शस्त्र से आघात करने वाला (३) सत्य ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक ।
'सिन्धुर्नक्षोदः शिमीवां ऋघायतः'
ऋ. २.२५.३

ऋघायमाण – ऋघ धातु परिचरण अर्थ में आया है । जिसकी पूजा की जाती है । वह ऋघ है । ऋघयत इति ऋघः पूज्यः ।
ऋघवत् आचरति इति ऋघायमाणः-दया.
(२) गृन् हनति इति – ऋघा । अनृघा ऋघा भवति ऋघायमाणः-सा. । (मनुष्यों को जो मारता है वह ऋघा है । मनुष्यो को नहीं मारने वाला हो जाए तो वह 'ऋघायमाण' है ।
(३) उपासना करने योग्य परमेश्वर -दया. ।
(४) अभ्यास करता हुआ ।
'ऋघायमाणः निरिणाति शत्रून्'
ऋ. १.६१.१३, अ. २०.३५.३५.१३.

ऋघावत् – हिंसादि से युक्त संग्राम ।
'यदावाख्यत् समरणमृघावत्'
ऋ. १०.२७.३

ऋघावान् – (१) शत्रुओं को मारने वाले नाना शस्त्रों, नाना वी पुरुषों और सेनाओं का स्वामी इन्द्र (२) भीतरी शत्रु 'ऋ' अर्थात् उद्वेग जनित क्रोधादि दुर्भावों को नाश करने वाली शक्ति का स्वामी-परमेश्वर, आत्म द्रष्टा ।
'महाव्रातः तुविकूर्मिःऋघावान्'
ऋ. ३.३०.३

ऋङ्गा – सत् मार्ग पर चलने वाले ।
'मन ऋङ्गामनन्या न जग्मी'
ऋ. १०.१०६.८

ऋच् – (१) ऋचन्ति अर्चन्ति अनेन इति ऋक् (इससे पूजा करते हैं) ऋच् + क्विप् = ऋच् ।
अर्थ – (१)मंत्र जिससे पूजा की जाती है, (२) वेद का मंत्र जो सत्य विद्या का प्रचारक है, (३) आधियाज्ञिक अर्थ ॐ, (४) आधिदैविक अर्थ आदित्य, (५) आध्यात्मिक अर्थ आत्मा । प्रणव (ओम्) सभी वेदों में व्याप्त है । सभी वेदों का यह सार है ।
'तान् वेदान् अन्वतपत् तेभ्यः
अभितप्तेभ्यः त्रयः वर्णाः'
अजायन्त अकार उकार मकार इति । तान् एकधा समभरत् तत् एतत् ओ३म् इति । (तै.ब्रा.पा.३२)
मनु ने कहा है ।
'अकार चाप्युकारञ्चमकारञ्च प्रजापतिः ।
वेदत्रयात् निरऊहत्
भूर्भुवं स्वरितीति च ।
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः
यस्तन वेद किमृचा करिष्यति
इत्तद्विदुस्ते अमी समासते'
ऋ. १.१६४.३९, अ.९.१०.१८, गो.ब्रा. १.१.२२, तै.ब्रा. ३.१०.९.४, तै.आ. २.११.१, श्वेत.उप. ४.८, नृसिंह पू.ता.उप. ४.२, ५.२, नि. १३.१०.
शाकपूणि का आधियाज्ञिक अर्थ ऋच् के प्रणवरूप अक्षर में जो अविनाशी और सभी वेदों में व्याप्त है तथा जो सर्व श्रेष्ठ है और जिसमें विविध शब्द ओतप्रोत हैं उस परम व्योमरूप ओम् में (परमे व्योमन्) जिस प्रणव में सभी देवता वर्तमान हैं (यस्मिन् विश्वे देवाः अधिनिषेदुः) अर्थात् 'अ' में पृथिवी, अग्नि, ऋग्वेद तथा पृथिवी लोक-निवासी देवता, 'उ'

में अन्तरिक्ष, वायु, यजुर्वेद तथा अन्तरिक्ष निवासी देवता या प्राणी और 'म' में द्यौ, आदित्य, सामवेद, तथा द्युलोक निवासी जन हैं। जिस अक्षर को जो नहीं जानता है (यत् यः न वेद) वह इस ऋचा नामक मन्त्रों से क्या करेगा जो उसे सिर्फ अक्षर मात्र समझे ? (असौ ऋचा किं करिष्यति)। और जो भी इस अक्षर को जान जाता है (य इत् तत् विदुः) वे ही (त इमे) प्रणव रूपी आत्मा में प्रविष्ट हो शान्त ज्वाला अग्नि की तरह समीभाव से रहते है।

देवता मंत्रों में, मन्त्र वर्णों में और वर्ण प्रणव में रहते हैं।

शाकपूणि के मत से ऋच् अर्चनीय आदित्य है। इस आदित्य को सभी ऋचाओं का प्रतिनिधिमान कर पूजते हैं। इसी आदित्य में रश्मि के रूप में सभी देवता निवास करते हैं (य एष अन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः दृश्यते, यस्मिन् सर्वे देवाः रश्मयो अधिनिषेदुः) इस आदित्य मण्डल रूपी ऋच् को जिसे न समझा वह क्या करेगा ? आध्यात्मिक अर्थ-इन्द्रियों देवता, शरीर ऋच् जिससे सभी इन्द्रियों की पूजा की जाती है और उस शरीर में अविनाशी रूप से वर्तमान आत्मा ही को इन्द्रियों रूपी ऋचाएं पूजती हैं। इसी आत्मा का आश्रय ले सभी इन्द्रियां रहती हैं उस आत्मा को जिसने न समझा वह कुछ नहीं समझ सका।

आधुनिक अर्थ - (१) ऋचा, (२) स्तुति, (३) सौन्दर्य।

ऋचस् - (१) सेवन करना,।

'प्र वां मन्मानि ऋचसे नवानि'

ऋ. ७.६१.६

(२) उत्तम कार्य।

'गा अर्वतो नृन् ऋचसेरिरीहि'

ऋ. ६.३९.५

ऋचः - (१) प्राण

'प्राणाव ऋक्'

कौ.सू ७.१०.

(२) अमृत,।

'अमृतं ऋक्,'

कौ.सू.७.१०

(३) वाक्।

'वाक् ऋक्'

जै ब्रा-३-४-२३-४

(४) अस्थि

'अस्थि वा ऋक् आहुतियां'

श.ब्रा. ७.५.२.२५

(५) पयस् की आहुतियां

'पय आहुतयो यदृचः'

श.ब्रा. १.५.६.४

'सामानि ऋग्भिर्ऋः पुरोऽनुवाक्याभिः'

वाज.सं. २०.१२, श.ब्रा. १२.८.३.३०.

ऋचा - सत्य विद्या का प्रचारक मन्त्र

ऋचीषमः - ऋच् (स्तुति अर्थ में) + कि + ङीष् + सम = ऋचीषम। अर्थ (१) स्तुति के समान अर्थात् जिस अर्थ में स्तुति की जाती है। उसी अर्थ के तुल्य स्तुत पुरुष है (यावता एव अर्थेन युक्ता उच्चार्यते ऋक् तावान् एव असौ भवति ऐश्वर्य योगात्)।

(२) ऋचा के अनुरूप ऐश्वर्यवाला, (३) ऋचा के तुल्य गुणों वाला इन्द्र, परमेश्वर (४) विद्वान्।

'इहश्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य
स्तवे वज्री ऋचीषमः।
मित्रोन यो जनेष्वा
पयश्च के असाम्या।'

ऋ. १०.२२.२.

ऋचा के समान गुणों वाला (ऋषीचमः) वज्रहस्त्र इन्द्र (वज्री) सभी दिशाओं में ख्यात (श्रुतः) इस यज्ञ या कर्म में (इह) आज (अद्य) हम लोगों से (अस्मे) स्तुत हो रहा है (स्तुवे)। जो इन्द्र (यः) मित्र के सदृश (मित्रोन) अनन्त है (असामि) और सभी दिशाओं में यश फैलाता (यशः आचक्रे)।

अन्य अर्थ - और जो विद्वान् मित्रों की तरह मनुष्यों में पूर्ण यश को स्थापित करता है। (आ यःमित्रः न जनेषु असामि यशः आचक्रे) वह राष्ट्र में प्रख्यात वीर्यदान् और स्तुति के अनुरूप विद्वान् (श्रुतः वज्री ऋचीषमः) सर्वदा हम से प्रशंसित किया जाता है (अस्मे स्तवे)।

पुनः-

'ऋचीषमायाधिगव ओहम्'

ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१,
'घृषौ मीढ ऋचीषम
ऋ.६.४६.४
पुनः - ऋचा या स्तुति द्वारा सर्वत्र समान रूप से स्तुत्य - इन्द्र ।
'परोमात्रमृचीषमम्'
ऋ. ८.६८.६

ऋज्यन् - (१) ऋजु, सरल धर्मानुकूल आचरण करता हुआ ।
'अभिश्रव ऋज्यन्तो वहेयुः'
ऋ. ६.३७.३, नि. १०.३.
सुन्दर चाल से चलते हुए घोड़े नया पुराना अन्न या सोम रस लावें ।
(२) ऋजुगामी, सीधा चलने वाला या चलता हुआ अश्व ।

ऋज्र - (१) ऋजुगामी-
'स्यूमन्यू ऋजा वातस्याश्वा'
ऋ. १.१७४.५
वायु के वेग से जाने वाले सुखप्रद दोनों ऋजुगामी अश्व को ।
(२) ऋञ्ज् (प्रसाधन कर्म) + र = ऋज्र । अर्थ सत्याचरण, (३) सीधा मार्ग या राजपथ ।
(४) सरल धार्मिक व्यवहारवाला
'ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासः'
ऋ. ७.१८.२३

ऋज्रा - ऋञ्जू, (प्रसाधन कर्म) अर्थ- (१) सत्याचरण, ऋजुगामी, (२) सीधा मार्ग, (३) राजपथ
(४) सायण ने इसे बहुवचन मानकर 'ऋजुगामी घोड़े' अर्थ किया है । स्वामी दयानन्द ने सत्याचरण की बहुवचन रूप माना है ।
'ऋज्रावाजं न गद्यं युयूषन्'
ऋ. ४.१६.११, नि. ५.१५.
ऋजु अर्थात् सुन्दर और सीधे राजपथ से ग्रहणार्ह सोम रस को (गद्यम्) अन्न की तरह (वाजं न) सेवनेच्छुक (युयूषन्) हे इन्द्र ! तू जाता है । अथवा ऋजुगामी घोड़ों को (ऋज्रा) -सा.
अन्य अर्थ - हे राजन् , ग्राह्य बल की तरह (गद्यं वाजं न) सत्याचरण की प्राप्ति की इच्छा रखते हुए (ऋजा युयूषन्) तू जाता है - (दया.) ।

ऋज्राश्व - (१) एक राजर्षि का नाम जो शतसंख्यक भेड़ों को वृकीको देने का कारण पिता से शप्त हो अन्धे हो गए, (२) सधे हुए घोड़े वाला शिकारी-दया. । (३) सधे हुए युद्ध कुशल अश्वों और अश्वारोहियों का स्वामी सेनापति या (४) इन्द्र ।

ऋज्वक् , ऋज्वञ्च् - (१) ऋजु + अञ्च् + क्विप् = ऋज्वञ्च । प्रथमा एक वचन में रूप ऋज्वक् अर्थ- सरल धार्मिक मार्ग पर चलने वाला, (२) अग्नि ज्वाला ।
'रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः'
ऋ. ४.६.१९

ऋजिप्यासःऋजिप्य -- एक वचन में ऋजिप्य । बहुवचन में ऋजिप्यमासः । अर्थ ऋजु अर्थात् सरल या धर्मानुकूल मार्ग को प्राप्त होते हुए,
(२) सरल सीधे मार्ग से जाने वाले मरुद्गण ।
'ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः'
ऋ. २.३४.४.
(३) सत्य धर्म का पालक ।
'अनुयद् गावः स्फुरान् ऋजिप्यम्'
ऋ. ६.६७.११

ऋजिश्वन् - (१) ऋजुगामी, (२) सरल ज्ञान-दया. ऋजि = ऋजु = सरल । ऋजि + श्व (गत्यर्थक) + कनिन् = ऋजिश्वन् ।
अर्थ - सरल गति का ज्ञान । (२) सधे हुए कुत्ते के समान आज्ञाकारी एवं वशवर्ती सेनाबल ।
(३) ऋजिगण युक्ताः सुशिक्षिताः श्वानो येन (कोमल गुण युक्त कुत्तों को सिखलाने वाला)

ऋजिश्वा - सरल स्वभाव का कुत्ता ।
'आत्वाक् ऋजिश्वा सख्याय चक्रे'
ऋ. ५.२९.११

ऋजीक - ऋज् (गति , स्थान, अर्जन और उपार्जन अर्थों में) + ईकन् = ऋजीक अर्थ-(१) स्थान (२) ऋजु का, अकुटिल गति वाला (३) प्रसिद्ध (४) ऋजीक नामक पर्वत, आर्जक नदी ऋजीक पर्वत से निकलती है । ऋजीक + अण् + टाप् = आर्जीका ।

ऋजीतिः - (१) सत्य न्याय, (२) सरल सीधे मार्ग पर जाने वाला बाण ।
'ऋजीते परि वृंधि नः'
ऋ. ६.७५.१२, वाज.सं. २९.४९, तै.सं. ४.६.६.४, मै.सं. ३.१६.३.१७६.१७, आप.श्रौ.सू. २०.१६.१२.

(४) तापदायक खाने या भोगने की इच्छा ।
'ऋचीतिभी रशनाभिः गृभीतान्'
ऋ. १०.७९.७
(५) सत्यमार्ग से जाने वाली ।
'ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे'
ऋ. १०.२९.२.

ऋजीती – सरल गति वाली नाड़ी ।
'ऋजीत्येनी रुशती महित्वा'
ऋ. १०.७५.७

ऋजीयः – ऋजु + ईयसु = ऋजीयस् । अर्थ – (१) अधिक सरल, (२) ऋजुधर्मानुकूल ।
'तयोर्यत् सत्यं यतरत् ऋजीयः'
ऋ. ७.१०४.१२, अ. ८.४.१२.

ऋजीष – (१) सोमरस को छान लेने के बाद जो सीढ़ी बच जाती है वही ऋजीष है ।
'शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषा भषवणीरापः'
अ. ९ .६.१६
(२) ऋज् + तीषन् = ऋजीष । 'अर्जे ऋजि च' से तीषन् । ऋजीष् + अच् (मत्वर्थीय) = ऋजीष्य । अर्थ–सोमस्य निर्गतः रसः शिष्टमानः निर्गतः निकाल लेने पर बची हुई सीढी ।
पिष्ट पचनम् पीसी चीज को पकाने का पात्र अर्थात् तवा ।
वेदों में 'ऋजीष' शब्द सोमरस की सीढी के ही अर्थ में आया है । यह इन्द्र के घोड़ों को दिया जाता है (स हि इन्द्रस्य अश्वयोःभागः)।
(३) घास को भी ऋजीष कहते हैं, (४) इन्द्र, (५) प्रयत्न शील–दया. । अर्ज + ईषन् = ऋजीष । (६) ठंडी पृथिवी , (७) पृथिवी–दया.
'ऋजीषे अत्रिमश्विनावनीतम्
उन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति'
ऋ. १.११६.८, नि. ६.३६.
हे अश्विद्वय ! तुम दोनों ने पृथ्वी के भीतर अवाङ्मुख पड़ी हुई सभी गुणों की ओषधियों को जगत् के कल्याण के लिए जमाया ।
अथवा स्वामी दयानन्द के अनुसार, हे सूर्य और पृथिवी ! तुम दोनों पृथिवी के भीतर गई आग को ऊपर निकाल देते हो और इस प्रजावर्ग के लिए प्रशस्त अन्न से युक्त बल को प्रदान करते हो ।
सायण के अनुसार –हे अश्विनी कुमारो ! तुमने अवाङ् भाव से पड़े गणयुक्त अत्रि ऋषि को अग्नि से बचाया और उनका कल्याण किया ।
आधुनिक अर्थ – (१) ऋचीष (नरक) (२) चना भूंजने का पात्र ।

ऋजीषी – (१) इन्द्र के अर्थ में
'ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्
शुष्मी राजा वृत्रहा सोम पावा
युक्त्वा हरिभ्यामुपयासदर्वाङ्
माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः'
ऋ. ५.४०.४,
ऋजीषवाला इन्द्र (ऋजीषी) जिसके घोड़े को सोमरस निकाल ऋजीष दिया जाता है, वज्रहस्त (वज्री), मनोरथों या जलों को बरसाने वाला (वृषभः) त्वरमाण शत्रुओं को अभिभूत करने वाला (तुराषाट्) बलवान् (शुष्मी), अधिपति (राजा), वृत्र नामक असुर या मेघ को हनन करने वाला (वृत्रहा) तथा सोमरस को पीने वाला (सोमपावा) इन्द्र घोड़ो से (हरिभ्याम्) रथ जोतकर (युक्त्वा) तथा उस पर सवार हो हमारे समक्ष (अर्वाक्) आवे (उपयासत्) तथा माध्यन्दिन सवन में (माध्यन्दिने सवने) सोमरस का पान कर मस्त होवे (मत्सत्) ।
अन्य अर्थ – प्रशस्त घोड़ों वाला (ऋजीषी) वज्री, बलिष्ठ, हिसंकों का घातक, बलिष्ठ सेनावाला, वृत्र या दुर्जनों का हन्ता, सन्तानों का रक्षक, इन्द्र घोड़ों से गाड़ी जोतकर हमारे समक्ष आवें ओर माध्यान्दिन सवन में हमारा दिया सोमरस पान करे ।
स्वा. दयानन्द ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है– राजा राज सभा में आवे और मध्यदिन में आराम करे ।
(२)ऋज् + तीषन् = ऋजीष, ऋजीष + इन् = ऋजीषिन् । अर्थ–ऋजीष वाला इन्द्र ।
(३) प्रशस्त घोड़ों वाला इन्द्र या राजा ।
'धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी'
ऋ. १०.८९.५, तै.सं. २.२.१२.३, तै.आ. १०.१.९, नि. ५.१२.
(४) सार–रहित सोमरस वाला ।
(५) सरलस्वभाव वाला विद्वान् –(दया.)

ऋजीषिणः – 'ऋजीषिन्' का बुहुवचन रूप । मरुतों का विशेषण । अर्थ– (१) जलों से पूर्ण मरुत,

(२) धर्मानुकूल सन्मार्ग पर चलने वाले और अन्यों को चलाने वाले विद्वान्
'अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणः'
ऋ. २.३४.१, तै.ब्रा. २.५.५.४.

ऋजु – ऋञ्ज् (प्रसाधन अर्थ में)+कु= ऋजु (न का लोप)। यहां पर 'ऋञ्जन्' धातु अ कौटिल्य अर्थ में है। अर्थ है (१) सरल, सीधा, सत्य। (दया.) आधुनिक अर्थ. –सीधा, ईमान दार, सरल प्रकृतिवाला, बाण।
'ऋजुनीती नो वरुणः
मित्रोनयतुविद्वान्
अर्यमा देवैः सजोषाः'
ऋ. १.९०.१, साम. १.२.१८, ऐ.ब्रा. ६.२.२., कौ.ब्रा. २६.१०, गो.ब्रा. २.५.१२, आश्व.श्रौ.सू. ७.२.१०, नि. ६.२१.
दिन का देवता मित्र तथा वही रात का देवता और लक्ष्यस्थान का ज्ञाता है (विद्वान्) हमें सरल मार्ग से (ऋजुनीती) कर्ममार्ग की प्राप्ति के निमित्त एक लोक से दूसरे लोक को ले जांय (नयतु) तथा इन्द्र आदि और देवों क साथ (देवैः) प्रेमपूर्वक (सजोषाः) दिनरात का विभाजक सूर्य (अर्यमा) हमें सरल मार्ग से ले चलें।
स्वा. दयानन्द का अर्थ– देव इन्द्रियों से संयुक्त (देवैः सजोषाः) श्रेष्ठ उपकारी और न्यायकारी (वरुणःमित्रः अर्यमा) विद्वान् हमें सत्य मार्ग से (ऋजुनीती से चले नयतु)।

ऋजुक्रतु – (१) सरल क्रिया से सम्पन्न
(२) सरल धर्मानुकूल सुखप्रद विज्ञानों या कर्म सामर्थ्यवाला परमेश्वर (३) राजा।
'मदेमदे हि नो ददिः
यूथा गवाम् ऋजुक्रतुः'
ऋ. १.८१.७, अ. २०.५६.४, मै.सं. ४.१२.४, १८९.१५, का.सं. १०.१२, तै.ब्रा. २.४.४.७, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.३.
हे परमेश्वर! तू अति सरल धर्मानुकूल सुखप्रद, विज्ञानवान् और कर्म सामर्थ्यवान् है। तू हमें प्रत्येक हर्ष के अवसर में या प्रत्येक आनन्द जनक पदार्थ में ज्ञान वाणियों, लोक समूहों, विद्वानों तथा पशुसमूहों को प्रदान कर।

ऋजुगः – (१) सरल सीधे मार्ग से निकलता हुआ गर्भस्थ बालक।
'स नो मृडाति तन्वऋजुगो रुजन्'
अ. १.१२.१.

ऋजुगाथः – (१) ऋजु, सरल, सत्य धर्म को उपदेश करने वाला (२) धर्मनीति में प्रजाओं को ले जाने वाला।
'धारवाकेषु ऋजुगाथ शोभसे'
ऋ. ५.४४.५

ऋजुनीतिः – सरलमार्ग।
'ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्'
ऋ. १.९०.१
श्रेष्ठ उपकारी और न्यायकारी विद्वान् (वरुणः मित्रः अर्यमा विद्वान्) हमें सत्य मार्ग से ले चले (ऋजुनीती नयतु)। –(दया.)
दिन का देवता मित्र तथा रात्रि का देवता वरुण जो लक्ष्य स्थान का ज्ञाता है (विद्वान्) हमें सरल मार्ग से (नःऋजुनीती) कर्ममार्ग की प्राप्ति के निमित्ति एक लोक से दूसरे लोक को ले जाए।

ऋजुमुष्क – यः ऋजुणामुष्णाति
(१) ऋजु सरल धर्ममार्ग से परिपुष्ट होने वाला, (२) धर्मनीति से पुष्ट
'ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्राश्च'
ऋ. ४.२.२.

ऋजुमुष्काः – (१) सरल धार्मिक नीति से पुष्ट होने वाले, (२) अग्नि की ज्वालाएं।
'अरुषासो वृषण ऋजुमुष्काः'
ऋ. ४.६.९

ऋजुवनिः – सरल धर्मयुक्त पुरुषों को नाना पदार्थ देने वाली पृथिवी।
'स्मत् सूरिभिः ऋजुहस्त ऋजुवनिः'
ऋ. ५.४१.१५.

ऋजुस् – ऋञ्ज् + असुन् = ऋजुष्। अर्थ – (१) प्रसाधन कर्म, (२) सजावट।

ऋजुहस्ता – सरल धार्मिक सिद्धहस्त हाथों या कार्य–कलाओं वाली पृथिवी।

ऋजूनाः – ऋजु + नास्। सरल नासिका वाला, योगाभ्यासी पुरुष।
'स्यूमरश्मावृजूनसि'
ऋ. ८.५२.२

ऋजूयत् – ऋतु के अनुकूल गमन करने वाला ऋतुगामी। सूर्य रश्मि या देवों का विशेषण।

'देवानां भद्रा सुमतिः ऋजूयताम्'
ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२:२१७.७, नि. १२.३९.
ऋतुगामी देवों या रश्मियों की (ऋजूयताम् देवानाम्) कल्याणकारिणी सुन्दरमति हमारे प्रति हो (भद्रा सुमतिः)

ऋजूयन् – अति विनयशील होकर रहने वाला ।
'ऋजूयन्तम् अनुव्रतम्'
ऋ. १.१३६.५

ऋजूया – अत्यन्त सरल मार्ग ।
'दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता'
ऋ. १.१८३.५

ऋजूयु – (१) कर्मों से अपनी सरलता चाहने वाला, । (२) धर्म मार्ग पर चलने वाला ।
'सत्यमन्त्रा ऋजूयवः'
ऋ. १.२०.४.

ऋञ्ज् – (१) संगत होना, छाना ।
'समस्मिन् ऋञ्जतेगिरः'
ऋ. १.६.९, अ. २०.७०.५
(२) प्रसाधन करना ।

ऋञ्जति – ऋञ्ज् धातु प्रसाधन कर्म में प्रयुक्त होता है । अर्थ है (१) अलङ्कृत करता है ।
'आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिषु
इन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा
सदः सदो वरिवस्यात उद्भिदा ।'
ऋ. १०.७६.१, नि. ६.२१.
हे पत्थरो ! तुम्हे अन्नवती या सारवती उषाओं के विभागों में (ग्रावाणः वः ऊर्जां व्युष्टिषु) चारों ओर से अलंकृत करता हूँ (आ ऋञ्जसे) । तुम सोम से इन्द्र , मरुत्, द्यौ और पृथ्वी को (इन्द्र मरुतं रोदसी) व्यक्त करो (अनक्तन) जिससे (यथा) परिचर्या करते हुए हमें (परिवस्यतः नः) साथ ही उत्पन्न (सचाभुवा) दोनों (उभे) द्यौ और पृथिवी (अहनी) घर घर या सभी यज्ञगृहों में (सदः सदः) उद्भेदक धन से (उद्भिदा) पूर्ण करें ।
अन्य अर्थ–हे मनुष्यो ! (मरुतः) बल दायिनी उषाओं के प्रादुर्भूत होने पर (ऊर्जाम् व्युष्टिषु) हृदय मन्दिर को सजाने के लिए (ऋञ्जसे) आप (वः) परमेश्वर (इन्द्रः) और द्युलोक एवं पृथिवी लोक को (रोदसी) विद्या द्वारा प्रकाशित कीजिए (आ अनक्तन) जिससे (यथा) हमारे दोनों दिनरात (उभे अहनी) हमारे अनुकूल होते हुए (सचाभुवा) आविर्भाव से (उद्भिदा) हमारे प्रत्येक गृह की परिपूजित करें । (सदः सदः वरिवस्यतः) ।

ऋञ्जती – (१) बहुत वेग से जाने वाली, (२) उत्तम कार्य साधिका विद्या ।
'मरुत ऋञ्जती शरुः'
ऋ. १.७२.२

ऋञ्जती शरु – बहुत वेग से जाने वाली, शत्रुओं को संताप देते और जलाने वाली, हिंसा करने वाली पंक्ति, (२) धार या शस्त्र (३) उत्तम कार्य साधन करने वाली विद्या (४) प्राणों की रोगादि नाशक शक्ति ।

ऋञ्जन् – ऋञ्ज् + शतृ = अञ्जन् । प्रसाधयन् । अलंकृत करता हुआ
'शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यङ्गात्
विद्वां ऋतस्यदीधितिं सपर्यन्
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्
सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ।'
ऋ. ३.३१.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.२, १९.४, गो.ब्रा. २.५.१५, ६.१, नि. ३.४.
अपुत्र पिता जो कन्या को अन्य कुल में भेजता है (वह्निः) विवाह करते समय वर से इस प्रकार कहता हुआ कि तुझे मैं इस अभ्रातृ का कन्या को अलङ्कृत कर देता हूँ तथा इस कन्या से जो पुत्र होगा वह मेरा होगा (शासन्) अपनी कन्या के पुत्र को (दुहितुः नप्त्यम्) अपना पुत्र समझता उसे अपनाता है (गात्) यह जानता हुआ कि (विद्वान्) यह पुत्र मुझे पिण्ड-दान करेगा । वह पिता पुत्रोत्पादन समर्थ रेतस् को धारण करने वाले (ऋतस्य दीधितिम्) जामाता को वस्त्रालंकारादि से पूजता हुआ (सपर्यत्) उसके पुत्र में नप्तृ का भाव उत्पन्न करता है । विवाह करते समय (यत्र) वह अपुत्र पिता लड़की के सेक्ता या पति को (सेकम्) अंलकृत करता हुआ (ऋञ्जन्) सुखी मन से (शग्मेन मनसा) अपने मन को आश्वस्त करता है कि इस प्रकार मैं भी पुत्रवान् हो जाऊंगा (सन्दधन्वे) अथवा जिस कन्या का पति (पिता) उसमें वीर्य

सिञ्चन सिर्फ सुख भाव से ही करता है यह सोच कर कि तुमसे होने वाला पुत्र उसके श्वसुर का होगा- सा.

इस ऋचा का अर्थ कई विद्वान् कन्या के दायभागित्व के प्रामाण रूप में उपस्थिति करते हैं और कई पुत्र के दायभागी होने में। मन्त्र के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध का एक साथ अर्थ करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुत्र न होने पर कन्या को पुत्र स्थानी मानकर नप्ता को ही पौत्र समझें।

(२) ऋञ्ज् (अलंकृत करना) + असुन् = ऋञ्जम्। अर्थ सजावट, अलंकरण।

अंग्रेजी का range धातु ऋञ्ज् का ही विकृत रूप है। जिससे arrange बनता है।

ऋञ्जसानः - (१) उत्तम रीति से समृद्ध करता हुआ परमेश्वर।

'विश आरीः आहुतमृञ्जसानम्'

ऋ. १.९६.३

(३) किए कर्मों को प्राप्त करता हुआ।

(४) सब कार्यों को सहज ही में साधता हुआ।

'रथान वि क्ष्वृञ्जसान आयुषु'

ऋ. १.५८.३

एक देह से दूसरी देह में जाने वाला जीव (रथः) सब कार्यों को सहज ही में साधता हुआ (ऋञ्जसानः) बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य आदि आयु की नाना दिशाओं में (आयुषु)।

(४) अच्छी प्रकार वश करता हुआ

'ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैः'

ऋ. ४.२१.५

ऋण - (न) (१) जल, (२)मेघ, (३) कर, (४) ऋण।

'ऋतवानः चयमानाः ऋणाति'

ऋ. २.२७.४, तै.सं. २.१.११.५, मै.सं. ४.१२.१, १७७.१०, का.सं. ११.१२.

(पुः) (५) चुपचाप निकल भागने वाला (६)वर्ग वर्धन करने वाला, (७) योग करने वाला।

'ऋणोनतायुः अतिधन्वाराट्'

ऋ. ६.१२.५

कर्ज के अर्थ में -

'यथर्ण संनयन्ति'

अ. ६.४६.३, अ. १९.५७.१

जल के अर्थ के लिए। जिसका अर्थ अपगतार्ण (जिससे जल सम्बन्ध न हो) किया गया है। दशार्ण देश में ऋण का अर्थ भट्टोजिदीक्षित ने जल किया है। हेम ने 'ऋणं देये जले दुर्गे' ऐसा कहा है। दुर्ग ने ऋण को ही जलवाची माना है।

(८) ओषधि।

ऋणकाति - धनोत्पादक।

'ऋणकातिमदाभ्यम्'

ऋ. ८.६१.१२

ऋणचित् - धनों का संग्रह करने वाला बृहस्पति का विशेषण।

'स ऋणचित् ऋणया ब्रह्मणस्पतिः'

ऋ. २.२३.१७

ऋणच्युत - (१) जलों से प्राप्त होने वाला विद्युत्, (२) ऋण से मुक्त करने वाला, (३) पितृऋण से मुक्त कर देने वाला पुत्र।

'इयमददात् रभसं ऋणच्युतम्'

ऋ.६.६१.१, का.सं. ४.१६, ऐ.ब्रा. ५.१२.५, आश्व.श्रौ.सू. ८.१.१२.

ऋणञ्चयः - (१) धन-संग्रही, (२)जिससे ऋण लिया जाता है।

'ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि'

ऋ. ५.३०.१२

ऋणयावा - (१) जल लाने वाला वायु,।

(२) सत्य धर्माचरण करने वाला, ईमानदार,

(३) अपने और पराए के ऋम को चुकाने वाला।

'असिसत्य ऋमयावा नेद्यः'

ऋ.१.८७.४

हे वायु या वीर नायक! तू जल लाने वाला या ईमानदार ऋण चुकाने वाला पृथिवी पर विद्यमान जन्तुओं का हितकारी एवं अनिन्द्य।

ऋणयाः- (१) ऋण लेने वाला, अधमर्ण।

'ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रः'

ऋ. ४.२३.७

(२) ऋण चुकाने वाला,।

(३) सबके अन्त हो जाने पर भी प्राप्त होने वाला- परमेश्वर।

'असिसत् ऋणया ब्रह्मणस्पते'

ऋ. २.२३.११.

ऋण्वति – प्राप्त करता और भोगता है ।

'व्यानुषक् वार्या देव ऋण्वति'

ऋ. १.५८.३

बाल्य, यौवन एवं वार्द्धक्य सभी दशाओं में अनुकूल या निरन्तर (आनुषक्) परिवर्तन –रहित रहकर नाना वरणीय ऐश्वर्यों के (वार्या), स्वयं विविध उपायों से प्राप्त करता और भोगता है (ऋण्वति) ।

ऋणावा – ऋणी ।

'जायातप्यते कितवस्य हीना
माता पुत्रस्य चरतः क्वसित्
ऋणावा बिभ्यत् धनमिच्छमानः
अन्येषामस्तमुपनक्तमेति ।

ऋ. १०.३४.१०

कहीं (क्वसित) मारे फिरते हुए जुआड़ी की स्त्री हीनावस्था को प्राप्त हो दुःख भोगती है, पुत्र की दुरवस्था देख माता संतप्त होती है और वह ऋण ग्रस्त जुआरी धन की इच्छा से रात में डरता डरता दूसरे के घर में चोरी करने जाता है ।

ऋणावान् – ऋणवाला ।

'येमर्त्यं पृतनायन्तमूमैः
ऋणावाणं न पतयन्त सर्गैः'

ऋ. १.१६९.७

ऋतायत् – जल प्रदान करता हुआ, (२) सत्य धर्मानुकूल सुख की कामना करता हुआ । 'ऋन' से 'ऋक्तय' धातु बना है ।

'अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतः'

ऋ. २.३२.१

ऋणोः – पहुंचाता है।

'ऋणोरक्षं च चक्रयोः'

ऋ. १.३०.१४, अ. २०.१२२.२, साम. २.५३५.

जैसे चक्रो के बीच में लगा हुआ धुरा गति करता हुआ स्वंय भी चलता है और अन्यों को भी अभिलषित स्थान तक पहुंचाता है ।

ऋतम् – ऋ (गत्यर्थक) + क्त = ऋत । अर्थ – (१) जल । ऋतमिति उदक नाम (ऋत उदक का नाम है) ।

'प्रत्यृतं भवति ।'

(२) यज्ञ ।

'तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्
मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व'

ऋ. १०.११०.२, अ. ५.१२.२, वाज.सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३.३: २०१.१०, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६.

हे अग्ने ! यज्ञ के इन फल प्राप्ति कारक मार्गों को मधु से मिलाते हुए स्वादिष्ट बना ।

पुनः,

'मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः'

ऋ. ७.२१.५, नि. ४.१९.

विषयी अब्रह्मचारी भी हमारे यज्ञ में न आवें ।

(३) सत्यात्मक आदित्य, (४) सृष्टि, (५) यज्ञ, (६) संवत्सर रूपी काल ।

'द्वादशारं नहि तज्जराय
वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य'

ऋ. १.१६४.११, अ. ९.९.१३, नि. ४.२७.

सत्यात्मक आदित्य, सृष्टि, यज्ञा या संवत्सर काल का अंगभूत चक्र या मण्डल जिसमें १२ अर हैं सदा अन्तरिक्ष के ऊपर चलता रहता है

(७) सत्यविद्या या यज्ञ ।

'रथीर्ऋतस्य नो भव'

ऋ. ६.५५.१.

हे पूषन, सूर्य या विद्वन् ! आप हमारे यज्ञ के गमयिता या सत्यविद्या के प्राप्त कराने वाले हैं ।

(८) मध्यम ऋतदेव जो अन्तरिक्षस्थ है और जल बरसाता है । अन्तरिक्ष का देवता ।

'ऋतस्यहि शरुधः सन्ति पूर्वी'

ऋ. ४.२३.८, आश्व.श्रौ.सू. ९.७.३६, नि. ६.१६, १०.४१.

मध्यम ऋतदेव के पूर्वकालीन जल हैं ।

(९) वेदज्ञान, –दया. (१०) रेतस् वीर्य ।

'ऋतस्य दीधितिः'

(११) शकट, । (१२) संवत्सर ।

(१३) गतिशील व्यक्त संसार, (१४) अन्न ।

'प्रसीमादित्यो असृजत् विधर्ता
ऋतम् सिन्धवो वरुणस्य यन्ति'

ऋ. २.२८.४

अंग्रेजी का right शब्द ऋत का बिगड़ा रूप है ।

ऋतकर्मा – सत्पुरुषों के आचारित हितकर्मों को करने वाला ।

ऋतचित् – (१) सत्यज्ञान या ऐश्वर्य को संग्रह करने वाला ।
'अग्निर्विद्वाँ ऋतचित् हि सत्यः'
ऋ. १.१४५.५
(२) सत्यज्ञान और पुण्य ज्ञान का उपार्जन करने वाला, (३) वेदद्वारा यज्ञ चयन करने वाला ।
'स सुक्रतुः ऋतचित् अस्तु होता'
ऋ. ७.८५.४

ऋतचित् नारी – (१) सत्य वचन की प्रतिज्ञा करने वाली स्त्री, (२) धन संचय करने वाली नरों से युक्त पृथिवी, (३) सत्यवचन से बद्ध नायक मनुष्यो से युक्त सेना ।
'विवां चिकित्सत् ऋतचिद्ध नारी'
ऋ. ४.१६.१०

ऋतज्ञः – (१) सत्यस्य वेदिता वा यज्ञस्य वेदिता । सत्य या यज्ञ या वेद या ऋतु या उदक –विज्ञान का ज्ञाता । (२) सत्य व्यवस्था का ज्ञाता
'धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः'
ऋ. ७.३८.८, वाज.सं. ९.१८, २१.११, तै.सं. १.७.८.२, ४.७.१२.१, मै.सं. १.११.२, १६२.१२, का.सं. १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५. २४.

ऋतज्ञाः पितरः – (१) पितर जो यथावत् सत्य के ज्ञाता हैं ।
(२) सत्य ज्ञाता हैं या यज्ञज्ञाता –दया ।
'असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञाः
ते नोऽवन्तु पितरः हवेषुः'
ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५७.५, नि. ११.१८.

ऋतज्य – (१) सत्यं ज्या यस्मिन् (जिसमें सत्य ही ज्या है) –दया. (२) उत्तम डोरी वाला धनुष (३) सत्य वचन और व्यवहार रूपी डोरी
'ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिः'
ऋ. २.२४.८

ऋतजाः – (१) सत्य से परिष्कृत (२) ऋत से उत्पन्न
'रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः'
ऋ. ३.५८.८
(३) सत्य और ज्ञान से विशेष सामर्थ्यवान्
'अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतंबृहत्'
ऋ. ४.४०.५, वाज.सं. १०.२४, १२.१४, तै.सं. १.८.१५.२, ४.२.१.५, मै.सं. २.६.१२, ७१.१५, का.सं. १५.८.१६.८, ऐ.ब्रा. ४.२०.५, श.ब्रा.५.४.३.२२, ६.७.३.११, तै.आ. १०.१०.२, ५०.१, कठ.उप. ५.२, महा.ना.उप. ९.३,१७.८, नि. १४.२९.

ऋतजात – (१) सत्याचरण से प्रसिद्ध (२) सत्य, राष्ट्रशास्त्र प्रजापालन एवं धर्माचरण में कुशल ।
'दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितः'
ऋ. १.३६.१९
तू विद्वान् ज्ञानी पुरुष के आश्रय में रहकर सत्याचरण से प्रसिद्ध एवं धर्माचरण में कुशल हो अभिषेचित होकर चमक ।
(३) सत्यज्ञान में उत्पन्न ।
'ऋतजाता ऋतावृधः'
अ. १८.२.१५

ऋतजाता–ः – (१) सत्य में उत्पन्न होने वाले वायुगण ।
(२) सत्य, न्याय, व्यवहार, ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के लिए प्रसिद्ध (३) जल से उत्पन्न प्राणगण ।
'ऋतजाता अरेपसः'
ऋ. ५.६१.१४

ऋतजाता – सत्य ज्ञान को देने वाली वाणी ।
'शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा'
ऋ. १०.१३८.२

ऋतज्ञा – (१) जलोत्पादक नदी ।
(२) सत्य प्रतिज्ञावाली स्त्री
'ध्वस्त्राअपिन्वत् युवती ऋतज्ञाः'
ऋ. ४.१९.७

ऋतजुर – सत्यज्ञान को प्राप्त करने वाला जन ।
'त्यं चिदत्रिमृतजुरम् '
ऋ. १०.१४३.१

ऋतद्युम्न – (१) सत्य ज्ञानमय वेद से कान्ति युक्त (२) सत्य कान्ति युक्त ।
'ऋतं वदन ऋतद्युम्न'
ऋ. ९.११३.४

ऋतधामा – (१) सत्य पर दृढ़, (२) सत्य ज्ञान रूप अवनाशी तेज वाला ।
'ऋताषाट् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः'
वाज.सं. १८.३८

ऋतधीति – (१) ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान का धारक ।
'प्रसप्तगुमृतधीतिं सुमेधाम्'

ऋ. १०.४७.६
(२) ऐश्वर्य, न्याय या सत्य ज्ञान का धारण या पालन ।
'ऋतधीतय आगत'
ऋ. ५.५१.२
पुनः
'ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः'
ऋ. ४.५५.२
(३) जल धारक किरण ।
(४) ज्ञान धारण करने का उपाय ।
'ऋतधीतिभिः ऋतयुक् युजानः'
ऋ. ६.३९.२
(४) सत्य कर्म करने और सत्य शास्त्रों के पढ़ने वाला ।
'ऋतधीतयो वक्म राज सत्याः'
ऋ. ६.५१.१०

ऋतानिः – (१) सत्य मार्ग में ले जाने वाला उत्तम नायक ।
(२) सत्य वचनानुसार परिणय करने वाली स्त्री ।
'योराजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश'
ऋ. २.२७.१२

ऋतप्रजात – (१) वेदज्ञान, सत्य, न्याय और धर्म से प्रसिद्ध पुरुष ।
'यद्दीदयत् शवस ऋतप्रजात्'
ऋ. २.२३.१५, वाज.सं. २६.३, तै.सं. १.८.२२.२, मै.सं. ४.१४.४, २२०.४ का.सं. ४.१६, ४०.११, ऐ.ब्रा. ४.११.८.
(२) कारण से उत्पन्न वायु-दया. ।
'सोमो न वेधा ऋतप्रजातः'
ऋ. १.६५.१०
(३) सत्य व्यवहार, धर्म और ज्ञान द्वारा प्रसिद्ध, एवं उत्कृष्ट, (४) व्यक्त जगत् का उत्पादक, सत्य रूप प्रसिद्ध परमेश्वर ।

ऋतप्रजाता – (१) ठीक रीति से जीवित बालक को प्रसव करने वाली स्त्री ।
'सिम्रतां नारी ऋतप्रजाता'
अ. १.११.१
(२) समस्त ऋत-संसार को उत्पन्न करने वाली प्रकृति ।
(३) सत्य ज्ञान को उत्पन्न करने वाली वेदवाणी ।
'ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत्'
ऋ. १०.६७.१, अ. २०.९१.१

ऋतप्रवीत – (१) जल युक्त भूमि, (२) सूर्य से प्रेरित भूमि, (३) सत्य कारण से जात या उदक से चालित ।
'स्थातुश्च रथम् ऋतप्रवीतम्'
ऋ. १.७०.७
जो जल से युक्त या सूर्य से प्रेरित भूमि स्थावर वृक्ष से बने रथ के तुल्य बनाता है ।

ऋतप्सू – अश्विद्वय या पति पत्नी का विशेषण । अर्थ-सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के अभिलाषी
'अन्तर्यत् वनिनो वाम् ऋतप्सू'
ऋ. १.१८०.३.

ऋतपा – सत्य व्यवहार को पालन करने वाली उषा या स्त्री ।
'यावयत् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः'
ऋ. १.११३.१२
हे उषा के समान तेज और कान्ति को धारण करने वाली स्त्री ! तू समस्त अप्रीति कारक द्वेषोत्पादक कर्मों को दूर करती हुई सत्य व्यवहार, ज्ञान, यज्ञ, अन्न आदि ऐश्वर्यों के निमित्त गुणों में विख्यात होने वाली ।

ऋतपेशस् – सत्य ज्ञान का धनी ।
'वरुणाय ऋतपेशसे
दधीत प्रयसे महे'
ऋ. ५.६६.१

ऋतकृण्वत् – (१) जल निर्माता सूर्य ।
(२) सत्यज्ञान, वेद और सत्य जगत् का कर्त्ता परमेश्वर ।
(३) ऐश्वर्य या राज्य व्यवस्था नियमादिका संचालक राजा ।
'ऋतं देवाय कृण्वते सवित्रे'
ऋ. २.३०.१

ऋतंयत् – (१) अन्न प्राप्त करने का प्रयत्न करने वाला, (२) वेद और ऐश्वर्यों को प्राप्त होने वाला ।
'तनूनपात् ऋतं यते'
ऋ. १.१८८.२.

ऋतंयती सरमा – (१) सत्य ज्ञान को प्राप्त करने में यत्नशील बुद्धि ।

'ऋतं यती सरमा गा अविन्दत्'
ऋ. ५.४५.७

ऋतं शसन् – (१) जल की सूचना देता हुआ मेघ। (२) सत्योपदेश करता हुआ।
'ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुः'
ऋ. ३.४.७, ७.८.

ऋतयन् – सत्यज्ञान की प्राप्ति का जिज्ञासु पुरुष।
'कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवता'
ऋ. ८.३.१४, अ. २०.५०.२,२१.१, कौ.ब्रा. २४.६, गो.ब्रा. २.६.३, आश्व श्रौ.सू. ७.४.६.

ऋतयुक् – (१) तेजो युक्त सूर्य या विद्युत्, (२) सत्य-ज्ञान के भीतर योग देने वाला, (३) सत्य ज्ञान का योग कराने वाला गुरु। ऋत + युज् + क्विप्।
'ऋतधीतिभिःऋतयुक्युजानः'
ऋ. ६.३९.२

ऋतयुक्ति – ऋत + युज + क्तिन्। ऋतुकाल में स्त्री गम।
'ऋतं वदन्त ऋतयुक्ति मग्मन्'
ऋ. १०.६१.१०

ऋतयुः – व्यवहार, ज्ञान या यज्ञादि को चाहने वाला।
'त्वं न इन्द्र ऋतयुः'
ऋ. ८.७०.१०.

ऋतवाक – त्रिकालबाधितसत्य, ज्ञानमय वेदवचन।
'ऋतवाकेन सत्येन'
ऋ. ९.११३.२

ऋतवादी – सत्यवादी, सत्यज्ञानी।
'ऋतमृतवादिभ्यो नमोद्यावापृथिवीभ्याम्'
वाज.सं. ५.७, तै.सं. १.२.११.१, मै.सं. १.२.७, १७.२, का.सं. २.८, ऐ.ब्रा. १.२६.५, गो.ब्रा. २.२.४, श.ब्रा. ३.४.३.२१, आश्व.श्रौ.सू. ४.५.७, शा.श्रौ.शू. ५.८.५, वै.सू. १३.२४.

ऋतसद् – ऋत अर्थात् सत्य पर आश्रित।
'नृषद्वरसद् ऋतसद् व्योमसत्'
ऋ. ४.४०.५, वाज.सं. १०.२४, १२.१४, तै.सं. १.८.१५.२, ४.२.१.५, मै.सं. २.६.१२, ७१.१५, का.सं. १५.८,१६.८, ऐ.ब्रा. ४.२०.५, श.ब्रा. ५.४.३.२२, ६.७.३.११, तै.आ. १०.१०.२, ५०.१, कौ.सू. १८.३.६, कठ.उप. ५.२, महा.ना.उप. ९.३, १७.८, नि. १४.२९.

ऋतसदनम् – (१) राज्य शासन का मुख्य स्थान-सभावन।
'वरुणस्य ऋतसदनमासीद'
वाज.सं. ४.३६, मै.सं. १.२.६, १६.५, श.ब्रा. ३.३.४.२९, का.श्रौ.सू. ७.९.३०,
'वरुणस्य ऋतसदनमसि'
वाज.सं. ४.३६, का.सं. २.७, श.ब्रा. ३.३.४.२९.

ऋतसदनी – ज्ञानों का आश्रयभूत विद्वत्सभा।
'वरुणस्य ऋतसदन्यसि'
वाज.सं. ४.३६, श.ब्रा. ३.३.४.२९, का.श्रौ.सू. ७.९.२८. आप.श्रौ. सू. १०.३१.२.

ऋतसाप् – ऋत + सप् (स्पर्श करण) = ऋतसाप्। अर्थ –(१) वेदाध्यायी, (२) वेदवाणी, (३) धन और ज्ञान का संचय करने वाली
'इषुध्यवः ऋतसापः पुरन्धीः'
ऋ. ५.४१.६
(४) सत्यवचन के आधार पर दृढ़ता से समवाय बनाने वाला, सत्य पर दृढ़ पुरुष।
'ये अग्निजिह्वाऋतसाप आसुः'
ऋ. ६.२१.११

ऋतस्तुम् – ऋत + स्तुभ् + क्विप्। सत्य ज्ञान का उपदेष्टा।

ऋतस्थाः – सत कारण में आधार रूप से बैठा हुआ परमेश्वर ब्रह्म।
'स हि दिवः सपृथिव्या ऋतस्थाः'
अ. ४.१.४

ऋतस्पतिः – सत्यपालक।
'तव वायवृतस्पते'
ऋ. ८.२६.२१, वाज.सं. २७.३४, वाज.सं.(का.) २७.३३, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, शां.श्रौ.सू. ३.१८.५.

ऋतस्पृक् – ऋत + स्पृश् + क्विप्। (१) सत्यतत्व को पहुँचने वाला विद्वान् (२) अखण्ड ब्रह्म शक्ति का दोहन करने वाला।
'अत आत ऋतस्पृशो निषेदुः'
ऋ. ४.५०.३, अ. २०.८८.३
(३) सत्य का ज्ञान कराने वाली वाणी।
'नवस्त्रक्तिम् ऋतस्पृशम्'
ऋ. ८.७६.१२, अ. २०.४२.१, साम. २.३४०, ऐ.आ. २.३.६.४,५.

(४) तेजस्वी ।
'ते हि सत्या ऋतस्पृशः'
ऋ. ५.६७.४

ऋतस्पृशा – (१) ब्रह्म की प्राप्ति कराने के निमित्त, (२) उचित समय पर जल वृष्टि कराने वाले ।
'ऋतावृधावृतस्पृशा'
ऋ. १.२.८, साम. २.१९८.

ऋतस्यऋतम् – (१) सत्यमय ईश्वर का सत्य ज्ञान, (२) वेद व्यवहार ।
'ऋतस्यर्तेन मुञ्चत'
अ. ६.११४.१, तै.ब्रा. २.४.४.८.

ऋतस्यगर्भः – (१) तेज को अपने भीतर धारण करने वाला अग्नि ।
(२) सत्य न्याय व्यवहार को अपने में धारण करने वाला पुरुष ।
'यमायो अद्रयो वना गर्भम् ऋतस्य पिप्रति'
ऋ. ६.४८.५

ऋतस्य गोपाः – सत्य तथा वेद ज्ञान का रक्षक विद्वान्
'ऋतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः'
ऋ. १.१६३.५, वाज.सं. २९.१६, तै.सं. ४.६.७.२, का.सं. ४०.६.

ऋतस्य ज्योतिषः पतिः – जीवनमय ज्योति अर्थात् चेतना का परिपालक ।
'ऋतस्य ज्योतिषस्पतिम्'
अ. ६.३६.१, साम. २.१०५८, वाज.सं. २६.६, तै.सं. १.५.११.१, मै.स. ४.११.१, १६०.११, का.सं. ४.१६, आश्व.श्रौ.सू. ८.१०.३, शां.श्रौ.सू. ३.३.५.

ऋतस्य दीधितिः – (१) पुत्रोत्पादन –समर्थ रेतस् को (ऋतस्य) धारण करने वाला ।
पुत्रोत्पादन – समर्थ रेतस को धारण करने वाले जामाता को पूजता हुआ लड़की का पिता
(२) धर्मशास्त्र या सत्य को धारण करने वाली व्यवस्था
'विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्'
ऋ. ३.३१.१, नि. ३.४.

ऋतस्यनाभिः– सत्य ज्ञान, समस्त संसार या यज्ञ का एकमात्र आश्रय–परमेश्वर ।
'ऋतस्य नाभावभि संपुनाति'
ऋ. १०.१३.३, अ. १८.३.४०.

ऋतस्यपत्नी – महत् यज्ञ, सत्य और ज्ञान का पालन करने वाली ब्रह्म की ज्ञानमयी भवतारिणी शक्ति ।
'ऋतस्य पत्नी मवसे हवामहे'
अ. ७.६.२, वाज.सं. २१.५, तै.सं. १.५.११.५, का.सं. ३०.४, ५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.१०, आश्व.श्रौ.सू. २.१.२९, शां.श्रौ.सू. २.२.१४.

ऋतस्यपन्थाः – सत्यस्वरूप यज्ञप्रजापति का मार्ग ।
'ऋतस्य पन्था मनुपश्य साधु'
अ. १८.४.३

ऋतस्य प्रथमजा – (१) सब नियमों का प्रथम उत्पादक परमेश्वर ।
'उपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य'
अ. २.१.४
(२) सत्य ज्ञान अथवा इस गतिमान् जगत् के भी पूर्व ही मूल कारण रूप से विद्यमान विश्वकर्मा–परमेश्वर ।
'विश्वकर्मन् प्रथमजा ऋतस्य'
अ. ६.१२२.१
(३) सत्य ज्ञानमय वेद के प्रथम प्रथम उत्पन्न ज्ञान ।
'यदामागन् प्रथमजाऋतस्य'
ऋ. १.१६४.३७, अ. ९.१०.१५.

ऋतस्य पूर्वी – सत्यज्ञान की सनातन वेदवाणी ।
'पूर्वीर्ऋतस्य बृहती रनूषत'
ऋ. ८.५२.९, अ. २०.११९.१, साम. २.१०२७.

ऋतस्यमातरः – सत्यज्ञाना वेद के जानने वाले विद्वान् ।
'यह्वीर्ऋतस्य मातरः'
ऋ. ९.३३.५

ऋतस्ययोनिः – (१) जल का आश्रय स्थान महान् आकाश ।
'ऋतस्य योना विघृते मदन्ती'
ऋ. ३.५४.६
(२) सत्य का आश्रय परमेश्वर ।
'ऋतस्य योना गर्भे सुजातम्'
ऋ. १.६५.४.
(३) जल का आश्रय मेघ ।
'आपुषायन् मधुन ऋतस्य योनिम्'
ऋ. १०.६८.४, अ. २०.१६.४

ऋतस्य वर्तनयः – (१) अन्न के उत्पादक विद्वान्, (२) ज्ञान, सत्य निर्णय और ऐश्वर्य को प्राप्त

करने वाले (३) ज्ञानार्थी (४) सत्यार्थी, (५) धनार्थी ।
'ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातम्'
ऋ. १०.५.४

ऋतस्य वाक् – मन्त्र वाणी ।
'अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि
स्वाहा कृतं हविरदन्तु देवाः'
ऋ. १०.११०.११, अ. ५.१२.११, वाज.सं. २९.३६, मै.सं. ४.१३.५, २०५.६, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.२१.
इस आहवनीय अग्नि के स्वाहपूर्वक मन्त्र द्वारा दिया आज्य रूपी हवि देवता पीवें ।

ऋतस्य वेधा – गतिशील जगत् की विधात्री प्रकृति ।
'वेधा ऋतस्य वीरिणी'
ऋ. १०.८६.१०, अ. २०.१२६.१०

ऋतस्य सदनम् – (१) जल का घर, सूर्य ।
'त आववृत्रन् सदनात् ऋतस्य'
ऋ. १.१६४.४७, अ. ६.२२.१, ९.१०.२२, १३.३.९, मै.सं. ४.१२.५, १९३.८, का.सं. ११.१३, नि. ७.२४.
वे रश्मियां जल के गृह सूर्य से लौटती हैं ।
(२) सत्य ज्ञान प्राप्त करने का स्थान–गुरु गृह
(३) सत्य ज्ञान के आश्रय स्थान परमात्मा का सदन ।
'प्र बह्वैतु सदनात् ऋतस्य'
ऋ. ७.३६.१, कौ.ब्रा. २५.२.

ऋतस्य सदः – (१) जल या गति शील संसार का एकमात्र स्थान अन्तरिक्ष (२) सत्य व्यवहार या अन्न से पूर्ण राजसभा ।
'ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तम्'
ऋ. ३.७.२

ऋतस्य सुदुघा – (१) सत्य ज्ञान को अच्छी तरह देनेवाली ऋतम्भरा नामक प्रज्ञा ।
'धूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्'
ऋ. १०.४३.९, अ. २०.१७.९.

ऋतसात – तप या स्वाध्याय में संलग्न ।
'येचित् पूर्वऋतसाताः'
अ. १८.२.१५

ऋतसाप् – यः आप्नुते स आप् आप् च समानश्च, साप् ऋत सत्यज्ञान, वेद को समान रूप से प्राप्त करने वाला ।
'ये चिद्धिपूर्वे ऋतसाप आसन्'
ऋ. १.१७९.२

ऋत्व्य → ऋतुकाल ।
'स्वायां तनूऋत्व्येनाधमानाम्'
ऋ. १०.१८३.२, आप.मं.पा. १.११.२,

ऋता – (१) वेदवाणी ।
'धियं वनेम ऋतया सपन्तः'
ऋ. २.११.१२.
(२) परस्पर सत्यव्यवहार से युक्त स्त्री पुरुष, (३) अश्विद्वय ।
'मित्रेव ऋताशतरा शातपन्ता'
ऋ. १०.१०६.५

ऋतात् अधि – (१) मेघ मण्डलस्थ जल के ऊपर विद्यमान सूर्य ।
(२) सत्य व्यवहार और सत्य व्यवस्था के ऊपर प्रकाशित राजा ।
'यमग्निं मेधातिथिः
कण्व ईध ऋतादधिं'
ऋ. १.३६.११
मेध्यातिथि कण्व या उत्तम संगत होने वाले अतिथिरूप शिष्यों से युक्त विद्वान् पुरुष मेघमण्डलस्थ जल के ऊपर स्थित सूर्य को ...स्थापित करते हैं ।

ऋतायत् – (१) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य, अन्न और वेदानुकूल न्याय व्यवस्था को कहने वाला (२) अग्नि ।
'तवनेष्टं त्वमग्निन् ऋतायतः'
ऋ. २.१.२,१०.९१.१०

ऋतायन् – (१) जाता हुआ, (२) ज्ञान पूर्वक संचालित करता हुआ ।
'सर्गो न सृष्टो अर्वतीः ऋतायन्'
ऋ. ७.८७.१, का.सं. १२.१५.
(२) सत्य न्याय, और बल में बढ़ने वाला ।
'को नु वां मित्रावरुणा वृतायन्'
ऋ. ५.४१.१, मै.सं. ४.१४.१०,२३१.९ कौ.ब्रा. २३.३. श.ब्रा. १३.५.१.११.

ऋतायिनी – (१) अन्न वाले माता पिता, (२) अन्न और तेज से सम्पन्न ।
'ऋतायिनी मायिनी संदधाते'
ऋ. १०.५.३

ऋतायु – (१) जल का इच्छुक (२) सत्य और धन का इच्छुक ।
'प्रणेतारः कस्यचित् ऋतायोः'
ऋ. १.१६९.५.
(३) ऋत + कयच् + उ= ऋतायु । यज्ञकाम (यज्ञ की इच्छा वाला) (४) जल युक्त मेघ
'स्वरन्ति घोषं वितनं ऋतायवः'
ऋ. ५.५४.१२

ऋतावन् – ऋत + वनिप् = ऋतावान् (छन्दसि वनियौ च) । अर्थ (१) जलवाला , (२) नद, (३) तड़ाग, (४) सागर, (५) मेघ, (६)सत्यवान् (७) ब्रह्म यज्ञ में युक्त ।

ऋतावरी – (१) सत्य कारण युक्ते द्यावा पृथिवी –दया. (सत्य कारण से युक्त दयौ और पृथिवी) ।
(२) प्रकाश और जल से पूर्ण द्यावा पृथिवी ।
(३) सत्य व्यवहार । उत्तम धन को चाहने और स्वीकार करने वाले पति पत्नी ।
'ऋतावरी रजसो धारयत्कवी'
ऋ. १.१६०.१.
(४) सत्य कारण परमेश्वर की शक्ति को धारण करने वाली प्रकृति ।
(५) धन के बल पर चलने वाली सेना
'ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः'
ऋ. ४.१८.६
(६) सत्यज्ञान का वरण करने वाली ऋतम्भरा प्रज्ञा ।
'माता गवामृतावरी'
ऋ. ४.५२.२, साम. २.१०७६.
(७) सत्यमयी ।
'उपातिष्ठऋतावरि'
अ. १०.१०.९
(८) ऋत + वनिप् = ऋतत्वन्, ऋतत्वन् + ङीष= ऋतावरी, बाहुलक नियम से ।
अर्थ–नदी
'रमध्वं में वचसे सोम्याय
ऋतावरीरुप मुहूर्त मे वैः'
ऋ. ३.३३.५, नि. २.२५.
ऐ नदियों, मुझ सोम बनाने वाले के लिए अपनी तीव्र गतियों से मुहूर्तमात्र ठहर जाओ ।
(९) अन्न धनादि से सम्पन्न उषा या स्त्री ।
'ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम्'
ऋ. ५.८०.१
(१०) चेतना शक्ति को अपने भीतर गुप्त रखने वाली आपः ।
'अयं वत्स ऋतावरीः'
अ. ३.१३.७

ऋतावा – (१) सत्य ज्ञान और मूल कारण प्रकृति रूप ऋत या अव्यक्त तत्त्व का स्वामी ।
'ऋतावानं विचेतसम्'
ऋ. ४.७.३
(२) जल से पूर्ण ।
'यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा'
ऋ. ६.७३.१, अ. २०.९०.१, वै.सू. ३३.२०.
(३) धन–सम्पन्न, (४) सत्य न्याय विधान का पालक ।
'दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा'
ऋ. ३.२०.४

ऋतावान् – (१) सत्य स्वरूप, (२) यज्ञवान् –यज्ञकर्त्ता ।

ऋतावाना – (द्वि.व.) (१) सत्य न्यायशील प्रमुख पुरुष (२) मित्रावरुण का विशेषण ।
'तथाराजाना करथो यदीमह
ऋतावाना यदीमहे'
ऋ. १.१३६.४

ऋतावृध् – (१) ऋतस्य सत्यस्य यत्रस्य वा वर्धयिता (सत्य या यज्ञ का बढ़ाने या प्रचार करने वाला
(२) उदक वृध् जल का बढ़ाने वाला
(३) वेदविद्या से वृद्ध ।
'उत नोऽअहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज
एकपात पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः
स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु'
ऋ. ६.५०.१४, वाज.सं. ३४.५३, मै.सं. १.६.२, ८८.१२, अश्व.श्रौ.सू. ५.२०.६, शा.श्रौ.सू. ८.६.८, आप.श्रौ.सू. ५.१९.४,१३.१६.३, नि. १२.३३.
और (उत) अहिर्बुध्न्य हमारी स्तुति सुनें तथा अज स्तुति एकपात् पृथिवी, समुद्र एवं विश्वेदेव, ये सभी और दूसरे भी सत्य या यज्ञ के प्रचारक या वेद विद्या से वृद्ध हम से आहूयमान एवं पूर्व ऋषियों द्वारा स्तुत और

मेधावियों द्वारा प्रशंसित मित्र हमें रक्षा करें ।

ऋतावृधा – सत्य और यज्ञ को बढ़ाने वाले इन्द्र और अग्नि ।

'य इन्द्राग्नी सुतेषु वां
स्तवत्तेस्वृतावृधा ।'

ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.

हे सत्य या यज्ञ के बढ़ाने वाले इन्द्र और अग्नि जो यजमान सोम रस चलाकर तेरी स्तुति करते हैं ।

(२) जल वृष्टि का हेतु होकर वृद्धि कार्य करने वाले ।

ऋताषाड् – (१) सत्य व्यवहार को सहन् करने वाला अर्थात असत्य को न सहन करने वाला (२) सत्य ज्ञान के बल पर पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने वाला ।

'ऋताषाड्ऋतधामाऽग्निर्गन्धर्वः'

वाज.सं. १८.३८, वाज.सं.(का.) २०.२१. तै.सं. ३.४.७.१, मै.स. २.१२.२,१४५.१. का.सं. १८.१४, श.ब्रा. ९.४.१.७.

ऋजिष्य – (१) ऋजु सरल धर्मानुकूल व्यवहार करने वाला, (२) सरल व्यवहारों का वर्द्धक –दया.

'सखाय इन्द्रकाम्या ऋजिप्याः'

ऋ. ३.३१.१७

ऋति – (१) हत्या आदि का कार्य, (२) शत्रुनाशे ।

'ऋतये स्तेन हृदयम्'

वाज.सं. ३०.१३

ऋतिषाट् – (ऋतीषाट्) दुःखदायी हिंसकों को पराजित करने वाला ।

ऋत्विक् – (१) ईरणः–स्तुतीनाम ईरयिता (स्तुतियों को प्रेरित करने वाला) (२) शाकपूणि के मत से ऋत्विक ऋग्यष्टा अर्थात् ऋचाओं से पूजा करने वाला है । (३) ऋतुयाजी (ऋतु के अनुसार यजन करने वाला) ।

'वसन्ते ब्राह्मणो अग्नीन् आदधीत,
वर्षासु राजन्यः शरदि वैश्यः'

वसन्त ऋतु में ब्राह्मण, वर्षा में क्षत्रिय और शरद् में वैश्य अग्नि का आधान करें ।

ऋत्विज् के चार भेद हैं ।

(१) होतृ (२) उद्गातृ (३) अध्वर्यु और (४) ब्रह्मन् (५) समय समय पर शिल्पादि यज्ञों में सहायक –दया.

व्युत्पत्ति – ऋतु + यज् + क्विप् = ऋत्विज् ।

ऋत्विय – (१) सत्य ज्ञान को धारण करने वाले गुरुओं के अधीन रहने वाला शिष्य ।

'होता पृथिव्यां न्यसीदत् ऋत्वियः'

ऋ. १.१४३.१

(२) प्रति ऋतु के अनुकूल यज्ञ करने वाले ऋत्विजों के योग्य आदर सत्कार, (३) अग्नि ।

'तवाग्ने होत्रं तव पोत्रम् ऋत्वियम्'

ऋ. २.१.२, १०.९१.१०.

(४) ऋतु के अनुकूल यज्ञ करने वाला ।

'सत्तो होता न ऋत्वियः'

अ. २०.२३.२

ऋत्वियभागः – (१) ऋतु अनुकूल भाग (२) सत्यज्ञान, ब्रह्ममय, प्राप्तव्य मोक्षपद, (३) प्राण–सम्बन्धी भाग– इन्द्रियगण ।

'इन्द्रस्यभाग मृत्वियम्'

ऋ. १०.१७९.१, अ. ७.७२.२.

ऋत्वियः योनिः – ऋतुओं, राजकर्त्ताओं और सदस्यो में आश्रित राजाग्नि का मूल आश्रय स्थान

'ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो
यथा मनुष्यस्य'

वै १.१.१.१३

'ऋतव उपसद'

श.ब्रा. १०.२.५.७

'सदस्या ऋतवोऽभवन्'

तै.ब्रा. ३.१२.९.४

श.ब्रा. २.३.४.१३

'अयं ते योनिर्ऋत्वियः'

ऋ. ३.२९.१०, अ. ३.२०.१, वाज.सं. ३.१४, १२.५२,१५.५६, तै.सं. १.५.५.२,७.२, ३.४.१०.४, ४.२.४.३.७.१३.५, मै.सं. १.५.१:६६.४, १.५.५,७४.१,१.५.६,७४.७,१.६.१,८५,७ का.सं. २.४,६.९, ७.४,५.१६.११, १८.१८,२३.६. जै.ब्रा. १.६१. श.ब्रा. २.३.४.१३, ७.१०१.२८, ८.६.३.२४, तै.ब्रा. १.२.१.१६, २.५.८.८, आश्व.श्रौ.सू. ३.१०.५, आप.श्रौ.सू. ५.८.५, ६.२.८.९, १६.१४.६

ऋत्विया – ऋतुधर्म ।

'योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियै'

अ. १२.३.२९

ऋत्वियावती – काल पर फल देने वाली ।
'इयं धीर्ऋत्वियावती'
ऋ. ८.८०.७

ऋत्वियावाक् – (१) पावस ऋतु की वाणी, (२) ज्ञानवान् सदस्य पुरुषों की वाणी, (३) सदस्यों की वाणी, ।

ऋतीषह – (१) दुःखों को नष्ट करने वाला इन्द्र का विशेषण ।
'तुविकूर्मिमृतीषहम्'
ऋ. ८.६८.१, साम. १.३५४,२.११२१.
अनेकों कर्म करने वाले तथा दुःखों को नष्ट करने वाले इन्द्र को ।
(२) आर्तों का अभिभावक सा. (३) सत्य से बलवान् –दया. (४) ज्ञान, प्रयाण यां चालों से शत्रुओं को परास्त करने वाला इन्द्र या राजा ।
'तं वो दस्म मृतीषहम्'
ऋ. ८.८८.१, अ. २०.९.१, ४९.४, साम. १.२३६, २.३५, वाज.सं. २६.११, गो.ब्रा. २.४.२. पंच.ब्रा. ११.४.३, ऐ.आ. ५.२.४.२, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.३, ८.६.१६, शां.श्रौ.सू. १८.१०.८. वै.सू. २२.७, ३१.२३,३३.७,४२.५.

ऋतीषाट् – ऋतिषाट् (१) शत्रुकृत हिंसा का हिंसक सेनाओं को पराजित करने में समर्थ ।
(२) सब पीड़ाओं को मिटा देने वाला इन्द्र ।
'दस्मादहमृतीषहः'
ऋ.. ८.४५.३५
(३) शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'अग्निरप्सामृतीषहम्
वीरं ददाति सत्पतिम्'
ऋ. ६.१४.४.

ऋजीषी – (१) सरल इच्छाओं वाला (२) ऋतु अर्थात् सारा उत्तम अन्न का भोग करने वाला ।
'प्रपुथ्या शिप्रेमघवन् ऋजीषिन्'
ऋ.३.३२.१
(३) सोमरस चुलाने के बाद अवशिष्ट सीठी को खाने वाला इन्द्र का घोड़ा, ऐसे अश्ववाला इन्द्र ।

ऋतीसह – सर्वदुःखनाशक ।
'तं वो दस्ममृतीषहम्'
ऋ. ८.८८.१, अ. २०.९.१.

ऋतु – (१) ऋतु, (२) मृत्यु, (३) प्रयाण काल ।
'मा मात्रा शारि अयसः पुर ऋतोः'
ऋ. २.२८.५, मै.सं. ४.१४.९,२२८.१४.
(४) ऋ (गत्यर्थक) + तु = ऋतु अर्थ–सदागतिशील
(५) ऋच्छतिप्राप्नोति येन सः समय पर आने वाला ।
'नेष्टात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः'
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३.
हे द्रविणोद नामक अग्नि तू ! यज्ञ से सोम ऋतुओं के साथ पी ।
(६) समय ।
'व्यन्तुदेवीर्य ऋतुर्जनीनाम्'
ऋ. ५.४६.८, अ. ७.४९.२, मै.सं. ४.१३.१०, २१३.११, नि. १२.४६.
सभी देवियां, जो भोजन का समय है । उस समय भोजन करें ।
धरणि ने ऋतु का अर्थ यों किया है । –
ऋतुर्मासि वसन्तादौ धीरे स्त्री कुसुमेऽपि च
'–धरणि'
अर्थात् ऋतु का अर्थ – मास, वसन्तादि ऋतु, धीर, स्त्री का रजो धर्म है ।
(७) सत्य धारक बल ।
'ऋतुना यज्ञमाशाथे'
ऋ. १.१५.६
हे मित्रावरुण (सूर्य, चन्द्र, प्राण और अपान वायु, राजा और मन्त्री या गृहस्थ और गृहपत्नी) तुम दोनों सत्य धारक बल से (ऋतुना) परस्पर संग से उत्पन्न प्रजापालने व्यवहार में व्याप्त होकर रहो या यज्ञ करो (यज्ञ में आशाथे) ।
(८) विभूति
'या षट् विभूतयः ऋ तवस्ते
जो छः विभूतियां हैं वे ऋतु हैं ।
(९) उपसद् उपसभा ।
'ऋ तव उपसदः'
श.ब्रा १०.२.५
(१०) मोर्चा राजाओं का सम्बन्धी जन ।
ऋतवो वै सोमस्य राज्ञः
'राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य'
(११) क्षत्रियपदाधिकारी ।
'ऋतव ऐते य ऋतव्याः
क्षत्रं वा ऋतव्याः

विशइमा इतरा इष्टकाः'
पुनः
'अग्निष्वात्तान् ऋतुमतो हवामहे'
वाज.सं. १९.६१, मै.स. ४.१०.६,१५७.८,का.सं. २१.१४, तै.ब्रा. २.६.१६.१.
(१२) गर्भधारण सामर्थ्य (१३) विशेषरूप से सृष्टि रचने का सामर्थ्य (१४) जगत् के मूल कारण रूप ब्रह्म शक्ति का उत्पादक बीज, (१५) गर्भधारण करने का काल ।
'क ऋतून् क उ कल्पमस्याः'
अ. ८.९.१०

ऋतुःजनित्री – (१) ऋतुमती स्त्री, ।
(२) सब औषधियों को उत्पन्न करने वाला मौसम, (३) ज्ञानवान् पुरुषों की बनी सभा ।
'ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि'
ऋ. २.१३.१, गो.ब्रा. २.४.१७.

ऋतुथा – ऋ (गत्यर्थक) + तु = ऋतु (गतिशील, नियत समय पर आने वाला) ऋतु + थाल् (प्रकार वचन में) = ऋतुथा । अर्थ । ऋतुऋतु में ।
'उपावसृजत्मन्या समञ्जन्
देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ।'
ऋ. १०.११०.१०, अ. ५.१२.१०, वाज.सं. २९.३५, मैं.सं. ४.१३.३, २०२.१३, का.सं. १६.२०. तै.ब्रा. ३.६.३.१४, नि. ८.१७.
हे यूप या अग्नि (वनस्पते), आत्मा से या जीव से या स्वयं (त्मनया) अन्न तथा आज्य आदि हवि (हवीषिं) ऋतु ऋतु के अनुसार (ऋतुथा) सम्मुख कर (समञ्जन) । देवताओं के लिए निकट आकर दो (उप अवसृज) ।
अन्य अर्थ – हे वनस्पति अग्नि, तू अपने आप से अपने को अभिव्यक्त कर (त्मनया समञ्जन्), ऋतु ऋतु के अनुकूल (ऋतुथा) देवजनों के अन्न और मिष्ठान्न आदि हवियों को (देवानां पाथः हवीषि) बना (उपावसृज) । गार्हपत्याग्नि (वनस्पतिः) दक्षिणाग्नि (शमिता) और आहवणीय अग्नि (देवः अग्निः) ये तीनों मिष्ट और घृत के साथ (मधुना घृतेन) हवि का आस्वादन करायें । (हव्यं स्वदन्तु) ।
(१) वनस्पति का अर्थ कात्थक्य ने 'यूप' और शाकपूणि ने अग्नि किया है ।
(२) 'त्मनया' और 'त्मन्या' दो पाठ हैं । अर्थ है – आत्मना (आत्मा से) । किसी किसी ने 'त्मना' या 'त्मनी' का अर्थ 'पशु का मांश' मानकर पशु के मांस के साथ अन्न दो, ऐसा अर्थ किया है । तीसरी अर्थ 'स्वयं' है जो उचित जान पड़ता है ।
पुनः–
'त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते
संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमन्यो अभिचष्टे शचीभिः
ध्राजिः एकस्य ददृशे न रूपम् ।'
ऋ. १.१६४. ४४, अ. ९.१०.२६, नि. १२.२७
अग्नि, वायु और आदित्य, ये तीन केशवाले देवता (त्रयःकेशिनः) ऋतु के अनुसार (ऋतुथा) लोक पर अनुग्रह करते है (विचक्षते) । एक अर्थात् पृथ्वीस्थानी य अग्नि (एकः) संवत्सर के अन्त में पृथ्वी को दोहता है (वपते) जिस से पृथ्वी उपजाऊ होती है । दूसरा आदित्य वर्षा आदि कर्मों के द्वारा विश्व का उपकार करता है (विश्वम् अभिचष्टे शचीभिः) और तीसरे वायु की गति (एकस्य ध्राजिः) केवल अनुभूत की जाती है, रूप नहीं दिखाई पड़ता (न रूपं ददृशे)
पुनः–
'नहि स्थूरिः ऋतुथा यातमस्ति'
ऋ. १०.१३१.३, अ. २०.१२५.३

ऋतुयाः – (१) ऋतुओं का पालन करने वाला ।
'अयं कनीन ऋतुपा अवेदि'
ऋ. १०.९९.१०,
(२) वसन्त आदि ऋतुओं का पालक–सूर्य ।
(३) ऋतु का पालक ऋतुगामी पति ।
(४) राजा–भ्राताओं और राज सभा के सदस्यों का स्वामी ।
'दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा'
ऋ. ३.२०.४

ऋतुमत् – (१) क्षात्रबल का स्वामी पुरुष
(२) अग्निष्वात्त का विशेषण ।
'अग्निष्वात्तान् ऋतुमतोहवामहे'

वाज.सं. १९.६१, मै.सं. ४.१०.६, १५७.८, का.सं. २१.१४, तै. ब्रा. २.६.१६.१.

ऋते – (१) ऋ (गत्यर्थक) धातु से बना है । अर्थ है बिना, बगैर ।

'सूर्यस्येव रश्यमो द्रावयित्नवो
मत्सरासः प्रसुयः साकमीरते ।
तन्तुं ततं परिसर्गास आशवो
नेन्द्रात् ऋते पवते धाम किञ्चना'

ऋ. ९.६९.६, साम. २.७.२०.

सूर्य की रश्मियों के सदृश द्रावण शील या आकर्षक (द्रावयित्नवः) मदकारक (मत्सरासः) सोमरस प्रसूत होकर (प्रसुपः) इन ऋत्विजों के साथ ही (साकम्) इन्द्र के समीप जाते हैं (ईरते) । जाकर वितस्त वस्त्र में जैसे छोटे अवयव व्याप्त रहते हैं (ततं तन्तुं परिसर्गास आश्वः) उसी प्रकार ये सोमरस इन्द्र में व्याप्त हो जाते हैं क्योकि यह सोम इन्द्र को छोड़ (इन्द्रात् ऋते) किसी अन्य स्थान को नहीं जाता (नकिञ्चन धाम पवते) । यहां सोम आत्मा का बोधक है ।

अन्य अर्थ – सूर्य की रश्मियों की तरह आकर्षण करने वाले हर्षप्रद, प्रसुप्त हो जाने वाले अर्थात् अन्त में कारण में मिल जाने वाले (प्रसुपः) में फैले हुए लोक लोकान्त (आशवः–सर्गासः) विस्तृत ब्रह्मरूप सूत्र में पिरोये एकत्र विचर रहे हैं । (ततं तन्तु परिसाकम् ईरते) उस परमेश्वर के बिना (इन्द्रात् ऋते) कोई भी लोक (किञ्चनधाम) गति नहीं करता (न पवते) ।

ऋतेजा – (१) सत्य व्यावहार, ज्ञान, यज्ञ, अन्न और ऐश्वर्य के निमित्त गुणों में विख्यात होने वाली उषा या स्त्री ।

(२) सत्य से निष्ठ ।

'क्षयत् सराय ऋतपा ऋतेजाः'

ऋ. ६.३.१, मै.सं. ४.४.१५, २४०.३.

ऋतोद्य – (१) सत्य + वद् + यत् = ऋतोद्य ।

'ऋतं वदन्तावृतोद्येषु'

अ. १४.१.३१.

ऋद – कष्टपाना, नष्ट होना । पीड़ा से शरीर का ऐंठना या मरोड़ना ।

'विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु'

ऋ. ७.१०४.२४, अ. ८.४.२४.

ऋदु – (१) मर्म ।

'ऋदूदरेण सख्या सचेय

ऋ. ८.४८.१०, तै.सं. २.२.१२.३, मै.सं. ४.११.२, १६४.९, का.सं. ९.१९, नि. ६.४.

मैं मृदु उदर वाले सोम से या मित्र रूप दुग्धादि हल्के सात्विक भोजन से युक्त होऊं ।

ऋदूपे – शत्रुनाशक । बाहु का विशेषण ।

'ऋदूपे चिद् ऋदूवृधा'

ऋ. ८.७७.११, नि. ६.३३.

तेरे हाथ शत्रुनाशक (ऋदूपे) तथा मर्मभेदी हैं (ऋदूवृधाः) ।

ऋदूदर – (१) सोम का नाम । 'ऋदूदरः सोमः' । मृदु उदर वाला (मृदूदरः) या उदरों में जाने में जो मृदु हो (मृदुः उदरेषु) ।

सोम का उदर मृदु होता है, क्योकि इसके भीतर छिद्र होते हैं (मृदु हिसोमस्य उदरं सुषिरत्वात) ।

(२) हल्का भोज्य पदार्थ जो उदर में शीघ्र पच जाय ।

'ऋदूदरेण सख्या सचेय
यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यध्यायिअस्मे
तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः ।'

ऋ. ८.४८.१०

मैं प्रगाथ मृदु उदर वाले सोम से (मृदूदरेण) सुहृदभाव से संगत होऊं (सख्या सचेम) जो सोम पिए जाने पर हानि न पहुँचावे (यः पीतः मान रिष्येत्), हे सोम का स्वामी इन्द्र (हर्यश्व) जो यह सोम हमें दे दिया गया था या मिला दिया गया था (यः अयं सोमः अस्मे न्यधायि) उसके लिए प्रतीर्ण आयु (तस्मै प्रतिरम् आयुः) तुझ इन्द्र से याचता हूँ (इन्द्रम् एमि) ।

अन्य अर्थ – हरण तथा भरण गुणों से युक्त परमेश्वर ! मैं मित्र, सूप, दुग्धादि हलके सात्विक भोजन से युक्त होऊं (संख्या ऋदूदरेण सचेम) जो पीया या खाया हुआ (यः पीतः) मुझे हानि न पहुंचाये और हममें जो यह सात्विक भोजन अर्पित किया गया है (यः अयं सोमः न्याधायि) उस से दीर्घायु की प्राप्ति के लिए (तस्मै प्रतिर आयुः) अन्न दाता प्रभु से (इन्द्रम्) याचना करता हूँ (एमि)

(३) सत्य को अपने भीतर धारण करने वाला, (४) कोमल हृदय वाला
'ऋदूदराः श्रृणवन् अग्नि जिह्वाः'
ऋ. ३.५४.१०.

ऋदूये – अर्द + उण = ऋदु (अर्द का ऋत आदेश) ऋदूपा का अर्थ है- 'अर्दनपातिनी' या 'गमनपातिनी' । ऋदु + पत् (णि प्रत्यय अन्तर्भावित है) + ड = ऋदूप । 'अन्येषामपि दृश्यते' पा. ६.३.१३७ से दीर्घ यह शब्द बाहु का का विशेषण है । (१) शत्रुओं को अर्दन द्वारा गिराने वाले बाहु (शत्रूणाम् अर्दनेन पातितोरो । (२) शत्रुओं के नाशक । प्रथमा के द्विवचन में प्रयुक्त । (३) निरन्तर गति से शस्त्रास्त्र चलाने वाला,

ऋदूवृधा – (द्वि.व.) (१) मर्म भेदी ।

ऋदूवृध् – हाथ का विशेषण ।
'ऋदूपे चिद् ऋदूवृधा'
ऋ. ८.७७.११, नि. ६.३३.
तेरे हाथ शत्रुनाशक (ऋदुपे) तथा मर्मभेदी हैं (ऋदूवृधा)

ऋदुवृध् – एक वचन में 'ऋदूवृध्' रूप है । 'ऋदु' का अर्थ मर्म है । उसे भेदने वाला बाहु है । 'वृध्' धातु अदेन या पीड़ित करने के अर्थ में प्रयुक्त है ।
ऋदु + वृध् + क्विप् = ऋदूवृध् । (वृध धातु यहां वेधनार्थक है ।

ऋध् – समृद्ध होना ।
'ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य'
ऋ. २.२८.५, मै.सं. ४.१४.९, २२८.१३.
पुनः–
'इन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम'
अ. १९.५५.४.

ऋधक् – (१) विभूति युक्त महानकार्य, बड़ा –बड़ा कार्य ।
'किंस ऋधक् कृणवत्यं सहस्रम्
मासो जभार शरदश्च पूर्वीः'
ऋ. ४.१८.४
(अ.) (२) कभी कदापि, सर्वथा ।
'ना ब्रह्मा यज्ञ ऋधक् जोष तित्वे'
ऋ. १०.१०५.८.
(३) ऋध् (समृद्ध करना) से ऋधक् बना है । अर्थ–पृथक्–सा. (४) समृद्धि प्राप्त करता हुआ–दया. (५) शक्ति सम्पन्न होता हुआ ।
'ऋधगया ऋधगुता शमिष्ठाः
प्रजानन् यज्ञमुपयाहि
विद्वान् स्वाहा'
वाज.सं. ८.२०, तै.सं. १.४.४४.२, मै.सं. १.३.३८: ४४.१५, का.सं. ४.१२, श.ब्रा. ४.४.४.१२, नि. ४.२५.
हे अग्नि ! तूने हवियों को पृथक् कर देवों को पहुँचाया और तूने हवियों की त्रुटियों को दूर कर समृद्ध बनाया ।
हे ब्रह्मचारी ! तू समृद्धि को प्राप्त करता हुआ इस यज्ञ को कर और शक्ति सम्पन्न होता हुआ विघ्नबाधाओं को दूर कर । –(दया.)
(६) सच्ची
'ऋधक् सावो मरुतो दिद्युदस्तु'
ऋ. ७.५७.४
(७) पृथक् पृथक् ।
'गुहाशिरो निहितं ऋधगक्षी'
ऋ. १०.७९.२
(८) सत्यस्वरूप में ।
'ऋधक् हुमेव कविनेषितासः'
ऋ. ६.४९.१०

ऋदक्षत्रः – (१) मानव शक्ति से पृथक् विशेष ज्ञान से रहित (२) वेदमय बृहत् सत्य ज्ञान से युक्त परमेश्वर ।
'ऋधक्षत्रो योनिं य आबभूव'
अ. ५.१.१.

ऋधत् – समृद्ध । ऋध् (समृद्ध होना)
'ऋधत् यस्ते सुदानवे'
ऋ. ६.२.४.

ऋधद्रयः – बहुत वेगवाला ।
'दशश्यावा ऋधद्रयः'
ऋ. ८,४६.२३.

ऋधद्वारः – सम्पन्न एवं समृद्ध करने वाले धनों व्यवहारों से युक्त अग्नि ।
'ऋधद्वारायाग्नये ददाश'
ऋ. ६.३.२.

ऋधा – सत्यासत्य विवेक करने वाली मति ।

ऋघावा – शत्रुओं को नाश करने में समर्थ ।
'यदा समर्यं व्यचेत् ऋघावा'

ऋ. ४.२४.८

ऋघायन्त – बाधित होते हुए।

'ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतासः'

ऋ. ४.१७.२

ऋघायमाणः – (१) मारता हुआ।

'ऋघायमाणो निरिणाति शत्रून्'

ऋ. १.६१.१३, अ. २०.३५.१३.

(२) वर्द्धमान, (३) शत्रुओं का हनन करता हुआ।

'ऋघायमाण इन्वसि
शत्रुमन्ति न विन्दसि'

ऋ. १.१७६.१

ऋघावान् – (१) सत्यासत्य विवेक करने वाली मति से युक्त।

'सत्योमन्त्रः कविशस्त ऋघावान्'

ऋ. १.१५२.२

ऋध्याम – बढ़ावें, अधिक फलदायक बनावें।

'ऋध्याम कर्मा पसा नवेन'

ऋ. १.३१.८

नित्य नये नए उत्साह और प्रयत्न से हम अपने अभिलषित कर्म और उद्देश्य को बढ़ावें (ऋध्याम)।

ऋन्धन् – अर्धयित्वा वर्धयित्वा (पोस पालकर बढ़ाकर)। ऋध् (वृद्धि अर्थ में) + शतृ = ऋन्धन् (नुम् का आगम)।

अर्थ–(१) समृद्ध करता हुआ। ऋन्ध धातु किसी चीज को सुन्दर या सिद्ध करने के अर्थ में आया है। हिन्दी का 'रींधना' इसी अर्थ का वाचक है। जैसे भात रींधना।

'मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्'

ऋ. १०.११०.२, अ. ५.१२.२, वाज.सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३.३. २०१.११, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६. हमारे अभिप्रेत पदार्थों का अपने कर्मों का बुद्धियों से समृद्ध करता हुआ।

(२) पोसता पालता हुआ।

'यही मातरो जनयन्त वह्निम्
अन्यः कर्त्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्'

ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.

यदि ये माताएं कुल को बढ़ाने वाली पुत्र और पुत्री उत्पन्न करती हैं तो इन दोनों सुकृतों में एक पुत्र कुल का कर्त्ता होता है और दूसरी पुत्री पाल पोस कर दूसरे को दी जाती है। पुनः, 'समृद्ध करता हुआ' के अर्थ में।

'यज्ञोहि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धन्'

ऋ. १.१७३.११

ऋवीस – अपगत भास, अपहृत भास, अन्तर्हित भास, गत भास। अपगत + भास = ऋवीस (अपगत का ऋ, भास के भ का ब और आ का ई आदेश हुआ है)। अर्थ है जिसका भास समाप्त हो गया है – पृथ्वी। पृथ्वी में प्रकाश नहीं रह गया है – अपगततेजस्वक हो गई है।

ऋभवः, ऋभुः – (सं.ब.व.) एक वचन में ऋभु। अर्थ है (१) खूब प्रकाश से समझने वाले सूर्य किरण, (२) ज्ञान पूर्वक कर्म करने में समर्थ शिल्पी (३) सत्य, ज्ञान और ऐश्वर्य में प्रकाशित होने वाले

'तेन देवत्वमृभवः समानश'

ऋ. ३.६०.२

ऋभ्व – ऊरुभूत (बड़ा) बहु भासमान (बहुत दीप्ति वाला)।

ऋभ्वस् – (१) ऋभून् मनुष्यादीन् पदार्थान् वा अस्यन्तियेन स. (जिसमें मनुष्यादि पदार्थों को प्रक्षेपित करते हैं)–यान – दया.

(२) अतिदीप्ति के साथ तीव्रवाण आदि फेंकने में समर्थ यान–

'दक्षं महे पाययते हिरण्मयं
रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम्'

ऋ. १.५६.१

बहुत अधिक दीप्ति के साथ तीव्र बाण आदि अस्त्रों को फेंकने में समर्थ (ऋभ्वसम्) अश्वों द्वारा जोते जाने वाले (हरियोगाम्) लोहे के बने रथ या तोप को (हिरण्ययं रथम्) बड़े भारी विजय के लिए (महे) बल या क्रिया सामर्थ्य में (दक्षम्) सुरक्षित रखता है। (पाययते)।

(३) (१)सत्य ज्ञान वान् गुणों में महान् विद्वान्।

'ऊर्ध्वस्तस्था वृभ्वा यज्ञे'

ऋ. १०.२०.५

(४) सत्य के बल से बढ़ने वाला।

'इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसम्'

ऋ. ८.७०.३, अ. २०.९२.१८, साम. १.२४३, २.५०५.

ऋभु – उरु भाति (बहुत शोभता है)। ऋतेन भाति (सत्य या यज्ञ से शोभता है), ऋतेन भवति (सत्य या यज्ञ से होता है । उरु + भा + कु = ऋभु (उरु के उ का लोप और र् का निपातन से सम्प्रसारण ऋ) । ऋतम् + भा + कु = ऋभु । ऋत + भू = ऋभु ।
अर्थ – (१) पुराण-प्रसिद्ध आङ्गिरस सुधन्वा के तीन पुत्र जिन्होने अपने कर्म से देवपद प्राप्त किया (२) सूर्य की किरण । (३) सत्यवादी ब्रह्मचारी –दया.
'अयं वो यज्ञ ऋभवो अकारि, '
ऋ. ४.३४.३
(४) अतिदीप्त–सा. (४) व्यापक। (६) सत्यशील विद्वान्
'ऋभुः ऋभुभिरभिवः स्याम'
ऋ. ७.४८.२, का.सं. २३.११.
(७) इन्द्र या परमात्मा
पुनः –
'स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वम्'
ऋ. १०.१२०.६, अ. २०.१०७.९, नि. ११.२१.
स्तुत्य, अनेक रुपों वाले, अतिदीप्त या व्यापक इन्द्र या परमात्मा को (८) मेधावी, (९) वैश्यराष्ट्र की रक्षा से वैश्य बहुत चमकते हैं ।
आङ्गिरस सुधन्वा के तीन पुत्र थे ? ऋभु, विभ्वा और बाज जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के द्योतक हैं । 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हुए, जिनमें प्रथम तीन आर्य (अर्य या परमेश्वर के पुत्र) और अज्ञानी होने से शूद्र अनार्य । ऋभु, विभ्वा और बाज ये तीन ओंकार वाची प्राण स्वरूप परमेश्वर के पुत्र उत्पन्न हुए। 'ऋभु' और 'बाज', दोनों बहुवचन में और विभ्वा एकवचन में प्रयुक्त होता है ।
'विष्ट्वी शमी तरिणत्वेन वाघतो
मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः
संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः '
ऋ. १.११०.४, नि. ११.१६.
कर्मों या यज्ञों को (शमी) सर्वयज्ञ सम्पद् दर्शन करने के कारण क्षिप्रकारिता के साथ (तरणित्वेन) कर या व्याप्त कर (विष्ट्वी) । ढोने वाले या यज्ञ के अनुष्ठाता या अनुष्ठाता या मेधावी (वाघतः) मनुष्यों ने (मतसिः) अमृतत्व प्राप्त किया (सन्तः अमृतत्वम् आनशुः) । इस प्रकार अमृतत्व या देवत्व प्राप्त कर सुधन्वा के पुत्र (सौधन्वनः) सूर्य –समान दर्शन वाले या (सूरचक्षसः) ऋभु लोग (ऋभवः) या बहुत शोभने वाले संवत्सर के वसन्तादि ऋतुओं में (संवत्सरे) अग्निष्टोमादि सूर्य समान ज्ञान वाले अनुष्ठ्य कर्मों से (धीतिभिः) अर्थात् हुए (समपृच्यन्तः) अर्थात हवि के भागी हुए ।
अन्य अर्थ– अन्नादिवाहक या मेधावी सत्यावादी वैश्य लोग (वाघतःसन्तः मर्तासः) शीघ्रता से (तरणित्वेन) व्यावहारिक कर्मों को कर (शमी विष्ट्वी) सुख का भोग करते हैं अमृतत्वम् आनशुः) । ये सूर्य-समान् यथार्थवादी या परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले (सौधन्वनः सूरचक्षसःऋभवः) आर्य वैश्य लोग वर्ष भर व्यापारिक कर्मों से युक्त रहते हैं (संवत्सरे धीतिभिः समपृच्यन्त)
विद्वान् पुरुषों या ऋत अर्थात् राष्ट्र से चमक वाला राजा (१) शिल्पी ।
'ऋभुभ्योऽजिनसंधम्'
वाज.सं. ३०.१५

ऋभुक्षण – महान्
'ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुम्रयावृधम्'
ऋ. ८.४५.२९

ऋभुक्षाः – उदौ अन्तरिक्षे क्षयति इति ऋभुक्षाः (अन्तरिक्ष में निवास करने वाला,) या ऐश्वर्यार्थक 'क्षि' धातु से–ऋभु + क्षि + इन् = ऋभुक्षा ('पथिमथ्यृभुक्षामात्' से इ का आत्व)। अर्थ (३) सब प्रजाओं का आश्रय दाता (४)सत्यवादी प्रजा का राजा (५) ऋभु अर्थात् विद्वानों के बीच में रहने वाला (६) विद्वान् ।
'ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता'
ऋ. ६.५०.१२
(६) महान् तेज से चमकने वाला ।
'रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः'
ऋ. ७.३७.१

ऋभुक्षिन् – उरु + क्षि (ऐश्वर्य या निवास अर्थ में) + इनि (वृतेः छन्दसि उ. ४.१३६) ऋभुक्षिन् । 'क्षि' के 'टि' का लोप और मुट् का आगम,

सम्प्रसारण तथा पूर्वरूप करने पर वर्ण व्यत्यय किया गया है और 'उरु' से 'ऋभु' हो गया है। अर्थ- (१) महा ऐश्वर्य वाला, (२) अन्तरिक्ष में रहने वाला, (उरौ अन्तरिक्षे क्षियति यःसः) (३) ऋभु नामक देवों का निवास भूत-महा ऐश्वर्य वाला, (४) इन्द्र का विशेषण- महा ऐश्वर्यवाला, (५) ऋभुदेवों का राजा (ऋभूजा देवानां राजा), (६) ऋभुओं की पूजा करने वाला (ऋभून् क्षियति इष्टे)। क्षि के बाद इनि प्रत्यय जोड़ टि का लोप और न का आ।

इन दिनों 'ऋभुक्षिन्' इन्द्र का पर्याय है। ऋभुक्ष का अर्थ है स्वर्ग।

ऋभुमद्वय - सत्यज्ञान के प्रकाश से युक्त या अति बलवान् प्राण से युक्त जीवन।

'आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः'

ऋ. १.१११.२

ऋभुमन्ता - ऋभुओं या सत्य ज्ञान से चमकने वाले पुरुषों से युक्त अश्विद्वय या स्त्रीपुरुष।

'ऋभुमन्ता वृषणा वाजयन्ता'

ऋ. ८.३५.१५

ऋश - धनुर्धर, हिंसक, शिकारी जीव।

'क्रमस्वर्श इव रोहितम्'

अ. ४.४.७, ६.१०१.३,

ऋष् - जाना, प्राप्त होना।

'हृदं न हित्वा न्यृऋषन्ति ऊर्मयः।'

ऋ. १.५२.७, मै.सं. ४.१२.३, १८५.२.

हे परमेश्वर! जैसे तरंगें स्वतः जलाशय में चली जाती हैं। (हृदं ऋषन्ति) उसी प्रकार...।

ऋषयः - सूर्य की किरणें प्रकाशक होने के कारण सर्वद्रष्टा होने से ऋषि हैं।

'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्
पियमेधा ऋषयो नाधमानाः'

ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ.(आंध्र). १०.७३, आप. श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.

चलने वाली सूर्य की रश्मियां सूर्य के निकट गईं। वे यज्ञ से प्रेम करने वाली (प्रियमेधाः) प्रकाशक होने से सर्वद्रष्टा (ऋषयः) तथा लोगों की प्रज्ञा को जांचने वाली हैं नाधमानाः)।

ऋषभ - (१) बड़ा बैल (२) शरीर में गति देने वाला आत्मा या मुख्य प्राण (३) ऋषभदेव।

'इन्द्रस्य रूपमृषभोबलाय'

वाज.सं. १९.९१, मै.सं. ३.११.९, १५४.८, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.५.

(४) वृष गण की ओषधि जिससे वीर्य पुष्ट होता है।

'सार ऋषभाणाम्'

अ. ४.४.४.

(५) सर्वव्यापक सर्वप्रकाशक परमात्मा।

'अथ ऋषभस्य ये वाजा'

अ. ४.४.८.

'साहस्रस्वेष ऋषभः पयस्वान्'

ऋ. ९.४.१.

ऋषभदायी - (१) ऋषभ अर्थात् गौ का दान देने वाला, (२) सर्वश्रेष्ठ प्रभु का उपदेश करने वाला- ज.दे.श.

'तत् सर्वमनुमन्यन्तां देव ऋषभदायिने'

अ. ९.४.२०

ऋष्ट - पूर्ण।

'उद्रेव कोशं वसुन्त न्यृष्टम्'

ऋ. ४.२०.६

ऋष्य - मृगों की पाचं जातियां हैं-ऋष्य, रुद्र, न्यङ्क, पृषत और कुलङ्ग।

'वसुभ्या ऋष्यानालभते'

वाज.सं. २४.२७, मै.सं. ३.१४.९, १७४.३.

ऋष्य नामक मृग जो संगीत से मुग्ध हो जाता है। ऋष्यमृग का स्वर ऋषभ होता है।

'ऋष्यो मयूरः सुपर्णस्वे गन्धर्वाणाम्'

वाज.सं. २४.३७

ऋष्यदः - कष्टदायी दुःख।

'युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुः'

ऋ. १०.३९.८

ऋष्व - (१) महान् ज्ञाता इन्द्र, परमेश्वर

'गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः'

ऋ. २.२१.४

(२) महान्।

'प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू'

ऋ. ७.६१.३

(३) ऋष् + वन = ऋष्व। 'ऋष्' धातु दर्शनार्थक है। सम्भवतः 'ऋष' धातु का वर्ण विपर्यय

नियम से अंग्रेजी में See हुआ है । अर्थ है दर्शनीय ।

'उरं नो लोक मनुनेषिविद्वान्
स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू
उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता ।'

ऋ. ६.४७.८,

हे इन्द्र ! जानता हुआ तू आदित्य के समान प्रकाशवाले (इन्द्र विद्वान् स्वर्वत् ज्योतिः) तथा भयरहित (अभयम्) स्वर्ग नामक लोक को (लोकम्) हमें (नः) कल्याण के लिए (स्वस्ति) ले चल (अनुनेषि) हम तुझ महान् या वृक के (ते स्थविरस्य) दर्शनीय (ऋष्वा) बृहत् (बृहन्ता) रक्षक (शरणा) हाथों की (बाहू) सेवा या उपस्थान करते हैं (उपस्थेयामः) ।

अन्य अर्थ - हे राजन् , ज्ञानवान् होते हुए आप हमारे लिए महान् अभ्युदय को (उरु लोकम्) निःश्रेयस् को देने वाले ज्ञान प्रकाश को (स्वर्वत् ज्योति) और अभय रूपी कल्याण को अभयं स्वस्ति पहुंचाओ (अवनेषि) । राजन् ! ज्ञान पयोवृद्ध आपको (स्थविरस्य ते) दर्शनीय आश्रय देने वाली (ऋष्वा शरणा) और लम्बायमान बाहुओं को हम प्राप्त करें (बृहन्ता बाहू उपस्थेयाम) । (४) आघातकारी, हिंसाजनक ।

'यस्तेपृथु स्तनयित्नुर्य ऋष्वः'

अ. ७.११.१

(५) प्राप्तविद्य, जिसने विद्या प्राप्त की हो, (६) प्रबल तेजस्वी ।

'श्रिय ऋष्व उपकयोः'

ऋ. १.८१.४, साम. १.४२३

ऋष्ववीरः - (१) ऋष्वाः महान्तः गुणाः वीराः वा यस्य (जिसके महान् वीर या गुण)-परमात्मा (२) बड़े-बड़े सामर्थ्यों वालों सूर्यादि लोकों और बड़े बड़े वीर पुरुषों से युक्त ।

ऋषाणः - प्यासा । ऋष + शानच् = ऋषाण । 'ऋष आत्मेनपदी-प्यास लगना ।

'धन्वान्यजाँ अपृणक् तृषाणाँ'

ऋ. ४.१९.७

ऋष्टि- (१) ऋष् (गति या ज्ञान अर्थ में) + इन् = ऋषि (इगुपधात् कित्) (२) दृश् + इन् = दृषि = ऋषि । दर्शनात् ऋषिः । अर्थ -(१) सूक्ष्म अर्थों का द्रष्टा (२) औपमन्युओं ने ऋषि का अर्थ 'स्तोमान् ददर्श' (मन्त्रों को तारक ज्ञान से देखा अतः वह ऋषि कहलाया - ऐसा कहा है) । मन्त्रद्रष्टा (३) मेदिनी कोष में ऋषि -देव और दीधिति का वाचक है ।

(४) तपस्या करते हुए ऋषियों को स्वयम्भू ब्रह्म स्वयं आविर्भूत हुआ । यही ऋषियों का ऋषित्व है । तत् यत् एनान् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयभ्यु अभ्यानर्षत् ते ऋषयः अभवन् तत् ऋषीणां ऋषित्वम् इति विज्ञायते ।

वेद (ऋग् , यजुः, साम) ऋषियों को स्वयं दृष्ट हुआ अतः वे ऋषि कहलाए और वेद अपौरुषेय माना गया । बिना अध्ययन किए ही तपोबल से ऋषियों ने वेदमन्त्रों को देखा ।

(५) रस का अपकर्षक अर्थात् रश्मि । ऋष् + कीनन् = ऋषीण । ऋष् धातु गति, आकर्षण और ज्ञान अर्थ में प्रयुक्त है । ऋषीण से ऋषि होकर रश्मि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । यास्क ने लिखा है - साक्षात् कृतधर्माणो ऋषयो बभूवुः । ते अवरेभ्योऽसाक्षात्कृत धर्मभ्यः उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रापुः ।

(६) मंत्रार्थ देखने वाले अध्यापक -दया. । स्वामी दयानन्द ने भी ऋषि शब्द का प्रयोग विद्वान गुरु शिष्यो में ही होना बतलाया है । जैसे ऋ. १.१.२ में

'अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।'

विद्या के पढ़ने वाले अब के और पुराने मन्त्रार्थ देखने वाले अध्यापक

(७) कात्यायन ने भी सर्वानुक्रमणी में ऋषि को मन्त्रद्रष्टा ही माना है ।

गृत्समदो द्वितीय मण्डलमपश्यत् । गाथिनो विश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत् । वामदेवो गौतमः चतुर्थ मण्डलमपश्यत । बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठी मण्डलमपश्यत । सप्तमं मण्डलम् वसिष्ठोऽपश्यत् ।

अर्थात् -गृत्समदने द्वितीय मण्डल, विश्वामित्र ने तृतीय, वामदेव गौतम ने चतुर्थ, बार्हस्पत्य भरद्वाज ने षष्ठ और वसिष्ठ ने सप्तम मण्डल देखा

(८) अन्य व्युत्पत्ति-ऋं गतिं सिनाति यःसः (गति अर्थात् क्रिया और ज्ञान शक्ति को उत्तम रीति से बांधने में समर्थ विद्वान् पुरुष)

'स्तोता वामश्विना ऋषिः'
ऋ. ५.७५.१, साम. १.४१८, २.१०९३
(९) वेदार्थ जानने के लिए उत्सुक शिष्य, (१) साक्षात् ज्ञाता ।
'तमृषे मारुतं गणम्
नमस्या रमया गिरा ।'
ऋ. ५.५२.१३

ऋषिकृत् – (१) दर्शनकारी, सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष कराने वाला अग्नि (२) सौम्य जनों का तत्वदर्शी बनाने वाला परमेश्वर-दया. ।
'भूमिरसि ऋषिकृन् मर्त्यानाम्'
ऋ. १.३१.१६, ला.श्रौ.सू. ३.२.७. नि. ६.२०.
हे अग्नि ! तू सोमयज्ञ करने वाले मनुष्यों के प्रापणीय, संसार में भ्रामयिता, भ्रामक या कर्म-निर्वाहक है और तू दर्शनकारी अर्थात् सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष करने वाला है (ऋषिकृत् असि)-
हे परमेश्वर! तू सौम्य जनों को तत्व दर्शी बनाने वाला है (सौम्यानां मर्त्यानाम् ऋषिकृत्) एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नायक है (भूमिः असि) ।

ऋषिचोदन – ऋषियों या तत्वदर्शी पुरुषों से उपदेश करने योग्य-आत्मा ।
'चिकिद् य ऋषिचोदनः'
ऋ. ८.५१.३.

ऋषिबन्धुः – जगत् द्रष्टा के वन्धुस्वरूप एवं उसको प्राप्त होने वाला भक्त ।
'अपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे'
ऋ. ८.१००.६

ऋषिषाट् – (१) दर्शनकारी इन्द्रियों को अभिभूत करने वाला आत्मा (२) सूर्य का प्रकाश ।
'ऋतस्य धीतिम् ऋषिषाडवीवशत्'
ऋ. ९.७६.४

ऋषिषाणाः – तत्त्वद्रष्टाव्य ऋषिजनों से सेवित, उपासित – आत्मा
'ये त्वामृजन्ति ऋषिषाण वेधसः'
ऋ. ९.८६.४, साम. २.२३६.

ऋषिस्वर, – (१) ऋषियों से स्तुत्य, सूर्य का विशेषण ।
'ऋषिस्वरं चरति'
ऋषियों से स्तुत्य सूर्य की स्तुतित करता है ।
(२) ऋषियों का उपदेश ।
'ऋषिस्वरं चरति यासु नामते'
ऋ. ५.४४.८

ऋष्टि ÷ (१) शक्ति, (२) हिंसाकारी अस्त्र । ऋष् (गमन करना, नाश करना, हिंसा करना) + क्तिन् = ऋष्टि ।
'पृषतीभिः ऋष्टिभिः यामं'
अ. २०.६७.४
(२) इन्द्र का वज्र यास्क (३) ज्ञानार्थक-ऋष् + क्तिन् = ऋष्टि । अर्थ-विद्या-दया । अभ्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिः । हे इन्द्र ! वह तेरा प्रसिद्ध वज्र जब मेघ की ओर जाता है – यास्क हे विद्वान् ! आत्मज्ञान देने वाली विद्या हमें प्राप्त हो -दया.
(३) वे कलायन्ता जिनसे व्यवहार का ज्ञान होता है । (४) तलवार – मैक्समूलर

ऋष्टिमत् – (१) ऋष् + क्तिन् + मतुप् = ऋष्टिमत् । रेषणवत् (नाशवाला) (२) अकाल नाशक मेघ मेघ का विशेषण ।
'आ विद्युन्मद्युद्भिर्मरुतः स्वर्कैः
रथेभिर्यातऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः'
ऋ. १.८८.१, नि. ११.१४.
हे मरुतों ! तुम विशिष्ट दीप्तियुक्त ! सुगमन, सुपूजित या सुन्दर अर्चियों से अकाल नाशक अशन-पतन-युक्त मेघों के सहित आओ ।
(२) गत्यर्थक ऋष् धातु से सिद्ध होने पर अर्थ है-गतिमान्
(३) ज्ञानार्थक ऋष् धातु से निष्पन्न होने पर अर्थ होगा-ज्ञानवान्
(४) अस्त्र शास्त्रों से युक्त रथ ।

ऋष्टिविद्युत – विद्युति ऋष्टिः विज्ञानं यस्य (जिसका विद्युत् शास्त्र में विज्ञान हो) -दया.
(२) शस्त्रों से विशेषरूप से चमकने वाला
(३) शस्त्रों में विद्युत का प्रयोग करने वाला
(४) विद्युत् का विशेष ज्ञानी
'य ऋष्वा ऋष्टि विद्युतः'
ऋ. ५.५२.१३
(५) मरुतों का विशेषण, विद्युत् की तरह गति वाला, (६) दुधार तलवार के समान बिजली को धारण करने वाले वायुगण, (७ आत्मा में ज्ञान दीप्ति को धारण करने वाला ।
'को वोऽन्तर्मरुतऋष्टिविद्युतः'

ऋ. १.१६८.५.

ऋष्टिषेण – (१) एक राजा का नाम जिसका पुत्र आर्ष्टिषेण हुआ । इनका नाम इषितसेन भी था (आर्ष्टिषेणः ऋष्टिसेनस्य पुत्रः इषितसेनस्य वा) (२) ऋष्टि एक आयुध विशेष है । ऐसे आयुध वाली जिसकी सेना है वह 'ऋर्ष्टिषेण' है (ऋष्टिः आयुध विशेषः तद्बहुला सेना यस्य सः) (३) जो नित्य अपनी सेना को शत्रुओं पर आक्रमण के लिए भेजे वह इषित सेन (नित्यमेव प्रेषितसेनः शत्रून् प्रति) ।

इषित का पृषोदरादि के समान 'ऋष्टि' आदेश हुआ है ।

ऋषीणां नपात् – (१) ऋषि सिद्धान्तों को न गिरने वाला विद्वान्, (२) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियों का पुत्र

'त्वामद्य ऋष् आर्षेय

ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानः'

वाज.सं. २१.६१, २८.२३,४६, मै.सं. ४.१३.९, २११.९, का.सं. १९.१३, तै.ब्रा. २.६.१५.२, ३.६.१५.१.

ऋषीवा – ऋषियों द्रष्टाओं या इन्द्रियों का स्वामी इन्द्र परमेश्वर ।

'शिप्रिन् ऋषीवः शचीवः'

ऋ. ८.२.२८

ऋषु – (१) प्राप्तविद्य, जिज्ञासु (२) बड़ा ज्ञानवान् पुरुष (३) विद्यावान् वैद्य (४) दर्शनीय जिज्ञासु विद्यार्थी ।

(५) श्रद्धा से आने वाला जिज्ञासु शिष्य ।

'अग्रे रेभो न जात ऋषूणाम् जूर्णिर्होत ऋषूणाम्

ऋ. १.१२७.१०

ऋष्णु – हिंसाकारी पदार्थ ।

'यष्णवो देवकृताः'

अ. १९.३५.५

ऋतसापः ऋतसाप् – एक वचन में ऋतसाप् । सत्य ज्ञान का सेवन करने वाले ।

'येचित् पूर्व ऋतसापः'

ऋ. १०.१५४.४, अ. १८.२.१५.

ऋहत् – बढ़ाने वाला ।

'बृहन्तं चिद् ऋहते रन्धयानि'

ऋ.

ए

एक – (१) इ (गत्यर्थक) + इक = एक । इ का गुण ए हुआ और 'अ' का पूर्वरूप हो गया ।

अथवा 'इण् + कत् = एक' । अर्थ–जो संख्या सर्वत्र अनुगत हो । एक सभी संख्याओं में गत है (एकः इता संख्या) एकत्वं केवल न्वयी (एकत्व केवल का अन्वयी है) अन्य संख्याएं एक से ही होती हैं (प्रभवति अस्मात्) ।

(२) एक परमेश्वर ।

'एकस्मै स्वाहा'

वाज.सं. २२.३४, तै.सं. ७.२.११.१, १२.१, मै.सं. ३.१२.१५, १६४.१३, का.सं. (अश्व). २.१.२, तै.ब्रा. ३.८.१५.३, १६.१, आप. श्रौ.सू. २०.१०.७, १२.१०,

एकः अश्व – (१) एक व्यापक संवत्सर (२) एक मात्र कर्मफल भोक्ता जीव, (३) विराट् विश्वमय देह में व्यापक परमात्मा ।

'एको अश्वो वहति सप्तनामा'

ऋ. १.१६४.२, अ. ९.९.२, १३.३.१८, तै.आ. ३.११.९, नि. ४.२७.

एकक – एकमात्र, अकेला ।

'आद लाबुकमेककम्'

अ. २०.१३२.१

एकचक्रः – (१) अकेला चलने वाला (एक एवहि अन्तरिक्षे चलति) और अपनी ज्योति से अन्य ज्योतियों को नष्ट करने वाला इतराणिज्योतिंषि नाशपति) अर्थ है– 'आदित्य' । चक्र की व्युत्पत्ति–चक्र (तृप्ति,तति तथा प्रतिघात अर्थ में) +रक् = चक्र , अथवा चर् + अच् = चक्र । (कुक् का आगम), अथवा क्रम् (गत्यर्थक) + ड = चक्र (ड प्रत्यय आने से द्वित्व) ।

(२) एकाकी घूमने वाला एक चक्र वाला सूर्य का रथ ।

'समयुञ्जन्ति रथमेकचक्रम्'

ऋ. १.१६४.२, अ. ९.९.२, १३.३.१८, तै.आ. ३.११.८, नि. ४.२७.

एक चक्रवाले आदित्य रूपी रथ में साथ किरणें रहती हैं । अथवा, एकाकी घूमने वाले एक चक्र सूर्य रूपी रथ को किरण रूपी सात अश्व जोड़ते हैं ।

एक चक्ररथ – (१) संवत्सररूपी एक चक्र रथ, (२) कर्त्ता से युक्त रमण साधन यह देह ।

एकज – (१) एक अधिक मास से उत्पन्न ऋतु, (२) आत्मा के मुख्य बल से उत्पन्न
'साकंजानां सप्तथमाहुरेकजम्'
ऋ. १.६४.१५, अ. ९.९.१६, तै.आ. १.३.१, नि. १४.१९.
(३) अकेला, (४) स्वयं सामर्थ्यवान् ।
'पुरुणामानमेकजम्'
अ. ६.९९.१
(५) एक स्वयं उत्पन्न, (६) सूर्य, (७) मन ।
'षड्यमा एक एकजः'
अ. १०.८.५.

एकत – एक वेद में पारंगत होना ।
'द्विताय त्वैकताय त्वा'
वाज.सं. १.२३, श.ब्रा. १.२.३.५.

एकत्व – एकता, समानता ।
'एकत्व मनुपश्यतः'
वाज.सं. ४०.७, ईश.उप. ७.

एकतेजना – (१) एक काण्डवाला बाण, (२) अध्याय में यह शरीर ।
'येनेषुमेक तेजनाम्'
अ. ६.५७.१

एकःदेव – (१) एक प्रजापति– (२) एक वैज्ञानिक ज.दे.श. ।
'विश्वाअपश्यत् बहुधा ते अग्ने
जातवेदस्तन्वो देव एकः ।'
ऋ. १०.५१.१.
हे जातप्रज्ञ अग्नि ! (जातवेदः अग्ने) तेरे सम्पूर्ण अंग बहुत प्रकार से दीखते हैं (बहुधा) किन्तु एक प्रजापति ने ही (एकःदेवः) तुझे देखा (अपश्यत्)–सा. । अथवा हे सभी पदार्थों में विद्यमान विद्युत् (जातवेदः अग्ने), तेरे सम्पूर्ण अंगों को (विश्वा तन्वः) कोई वैज्ञानिक (एकःदेवः) अनेक साधनों से (बहुधा) देखता है ।

एकनीड – (१) एक ही नीड अर्थात् स्थान में रखने के समान, (२) एक आश्रय पर स्थित ।
'यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्'
अ. २.१.१, वाज.सं. ३२.८, वाज.सं. (का.) ३५.३५, तै.आ. १०.१.३ , महा.ना.उप. २.३.

एकपदी – (१) एक ब्रह्म रूप से जानने योग्य ब्रह्मशक्ति, (२) अजः एकपाद्–वेद, (३) ओम् रुप एकपदा वाणी ।
'एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, १३.२.४, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.
(४) माध्यमिक वाक् गौरी विद्युत् का विशेषण । वह एक ही अधिष्ठान से इन्द्र के साथ एक होकर जल बरसाने से एक पदी है ।
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।'
ऋ. १.१६४.४१

एकपरः – (१) एक की प्रधानता वाला, एक परायण
'अक्षस्याहमेक परस्य हेतोः'
ऋ. १०.३४.२

एकपात् – एकश्च कस्य ब्रह्मणः पादः (ब्रह्म का एक चरण अग्निःपादः, वायु पादः आदित्य पादः, विशः पादः, इस प्रकार अज भी एकपात् कहा गया है । अर्थ–(१) एक पाद वाला (२) या एकेन पादेनु पाति (एक अंश से रक्षा करता है) । सोने के समय प्राण रूपी अंश से अन्न आदि पचाता है । अतः वह 'एक पाद' कहा गया ।
(३) एकेन पादेन पिवति एक अंश से समस्त जगत् का उदक पीता है ।
पा + क्विप् = पात् (त् का आगम् आर्ष है ।
(४) एक अस्य पादः (इसका एक ही चरण है) । ब्रह्म का जीव रूपी अंश समस्त जगत् में एक चरण के सदृश व्याप्त है अतः एक 'अज पात् कहा गया है ।
(५) एकं पादं न उत्खिदति
'सलिलात् हंस उच्चरन् ।'
अ. ११.४.२१.
हंस एकंचरण को जल के ऊपर आता हुआ नहीं उठाता है । अगर वह उठावे तो उठाते ही शीघ्र सब कुछ अव्यपदेश्य हो जाय ।
यहां आदित्य ही हंस है । वह महान् अन्धकार का नाशक है । ब्रह्म महान् अन्धकार का नाशक है । ब्रह्म रुपी सत् में लीन इस जगत् से (सलिलात्) रोज रोज ऊपर उठता हुआ (उच्चरन्) अपने एक चरण को नहीं उठाता है । (एकं पादं न उत्खिदति) । अगर वह जीवभूत

उस अपने चरण को उठावे तो शीघ्र सब कुछ अस्त व्यस्त हो जाय। (६)शक्ति के एक चतुर्थांश के द्वारा चराचर जगत् को धारण करने वाला प्रकाशमय परमेश्वर
'शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु'
ऋ. ७.३५.१२, अ. १९.११.३,
(७) वायु
वायुरेकपादः तस्य आकाशे पादः -गो.ब्रा. ५.२.८.
'एकपाद् द्विपदो भूयो विचक्रमे'
अ. १३.२.२७, ३.२५

एकं चक्रम् - एक कालचक्र।
'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम्'
ऋ. १.१६४.४८.अ. १०.८.४, नि. ४.२७
एक काल चक्र है। और मास रूपी उसके बारह घेरे हैं।

एकमुखा - एक परमेश्वर के ही मुख्य विषय को प्रतिपादन करने वाली वेदवाणी
'सहस्रं स एकमुखा ददाति'
अ. ९.४.९

एकमूर्ध्नी - (१) एक हीं शिरवाली, (२) एक ही मूर्धा में लगी हुई पांच ज्ञानेन्द्रियां, (३) एक ही मूल धनी -एक ही मूलवाली पांच ज्ञानेन्द्रियां जिनका एक ही मूल आत्मा या मुख्य प्राण है।
'ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम्'
अ. ८.९.१५
(४) एक ही आकाश रूप मूल में बद्ध दिशाएं।

एकया अर्वाङ् - एक शक्ति परम प्रकृति या भीतरी चिति शक्ति से डरे।
'पञ्चभिः पराङ् तपसि एकयार्वाङ्'
अ. १७.१.१७.

एकया - एक ही से।
'एकया प्रतिधाऽपिबत् साकम् सरांसि त्रिंशतम् इन्द्रः सोमस्य काणुका'
ऋ. ८.७७.४, नि. ५.११.
यह इन्द्र एक ही प्राण धान से या एक ही झोंके में (एकया प्रतिधा) एक साथ ही (साकम्) सोम रस के तीस सुन्दर बर्तनों को पी गए (त्रिंशतम् सोमस्य काणुका सरांसि अपिबत्)-
अन्य अर्थ-कालाभिमानी इन्द्र, कृष्ण और शुक्ल पक्ष से तीसों रात्रों का एकसा अनुभव करता है। अथवा, यह सूर्य (इन्द्रः) एक टिकाव से (एकया प्रतिधा) पक्ष के तीस दिन रात में आई हुई चन्द्रमा की प्रदीप्त, प्राप्त अथवा निर्मल रश्मियों को पीता है (त्रिंशत् सरांसि सोमस्य काणुका अपिवत्)।
अथवा सूर्य चन्द्रमा की रश्मियों को अपनी इच्छा भर पीता है। (काणुका अपिबत्)

एकराट्- एक मात्र सबके ऊपर अधिकारी।
'प्राङ् विशांपति रेकराट् त्वं विराज'
अ. ३.४.१.

एकरात्र - एक प्रकार का सोमयज्ञ
'एकरात्रो द्विरात्रः'
अ. ११.७.१०

एकर्तु - (१) एकमात्र ऋतु के समान संवत्सर रूपी काल (२) एकमात्र शरीर का प्रेरक प्राणरूप।
'एकर्तुः कतमोनुसः'
अ. ८.९.२५.

एकर्षिः - अकेला विराजने वाला सूर्य।
'एकर्षिर्यस्मिन्नर्पितः'
अ. १०.७.१४

एकराट् - (१) अद्वितीय प्रकाशमान् इन्द्र, परमेश्वर, (२) एकछत्र सम्राट,।
'एकराडस्य भुवनस्य राजसि शचीपते'
ऋ. ८.३७.३

एकरूपाः - निष्काम कर्म से एकरूप है।
'विरूपां सन्तो बहुधैकरूपाः'
अ. २.३.४.४, तै.सं. ३.१.४.२, का.सं. ३०.८, तै.आ. ३.११.१११२,

एकविंश - (१) एक विंश नामक आत्मा,।
'कथमनुष्टुप् कथमेक विशः'
अ. ८.९.२०

एकवाद्या - एक ही बात दुहाराते जाने का आदत।
'एकवाद्यां जिघत्स्वम्'
अ. २.१४.१

एकव्रात्य - एक मात्र समस्त व्रतों का आश्रय-व्रात्य प्रजापति, (२) प्रजापालक मेघ, पर्जन्य।
'स एकव्रात्योऽभवत्'
अ. १५.१.६

एकविंश - (१) यज्ञ का एकविंश नामक साम। वाणी के बल पर हृदय मंथन हो जाने पर बीस

अंगों सहित इक्कीसवां आत्मा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होता है ।
'मन्थिनः एकविंशः'
वाज.सं. १३.५७, तै.सं. ४.३.२.२., मै.सं. २.७.१९, १०४.१०, का .सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.१.२.५.

एकवीरः – एकमात्र शूरवीर ।

एकवृत् – एकमात्र वरण करने और पूजने योग्य ।
'यक्षं पृथिव्यामेकवृत्'
ऋ. ८.९.२५, २६

एकवृतः – (१) एक परमात्मा में आश्रित सभी देवगण, (२) आत्मा में आश्रित इन्द्रियाँ
'एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।'
अ. १३.४.१३
(३) एकरूप में सदा वर्तमान परमेश्वर ।
'य एतं देवमेकवृतं वेद'
अ. १३.४.१५

एकवृष – (१) एक मात्र सब सुख बरसाने वाला–सर्वश्रेष्ठ ।
'वृषा विश्वस्य भूतस्य त्वमेक वृषो भव ।'
अ. ६.८६.१
(२) एक मात्र सबसे श्रेष्ठ ।
'एकवृष इन्द्र सखा जिगीवान्'
अ. ४.२२.६,७, तै.ब्रा. २.४.७.८,
(३) एक प्राण वाला–आत्मा ।
'यद्येक वृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.१

एकशतः – (१) एक सौ वर्ष का जीवन ।
'एकशताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.३४, मै.सं. ३.१२.१५, १६४.१३.

एकशतं मृत्यवः – एकसौ एक प्रकार की मृत्यु ।
'ये मृत्यव एकशतम्'
अ. ८.२.२७

एकशतमृत्यु – १०० या १०१ प्रकार की मृत्यु ।
'मृत्युन् एकशतं ब्रूमः'
अ. ११.६.१६

एकशतं लक्ष्म्यः – एक सौ एक मनुष्य के शरीर को दर्शाने वाली मानस वृत्तियाँ ।
'एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य'
अ. ७.११५.३
(२) एक सौ एक मनुष्य के स्वरूप को दर्शाने वाली मा वृत्तियां ।

एक शफः–एक खुर वाला अश्व,खच्चर आदि पशु ।
'इमं मा हिंसीरेकशफं पशुम्'
वाज.सं. १३.४८, तै.सं. ४.२.१०.२, मै.सं. २.७.१७.१०२.१२, का.सं. १६.१७, श.ब्रा. ७.५.२.३३.
'यां ते चक्रुरेकशफे'
अ. ५.३१.३

एकशितिपात् – एक पैर काले रंग का रखने वाला 'पेत्व' नामक अधिकारी ।
'वारुणः कृष्ण एकशितिपात् पेत्वः'
वाज.सं. २९.५८, तै.सं. ५.५.२४.१, का.सं. (आश्व). ८.३.

एकशीर्षाणो दशवत्साः – एक शिर से युक्त दश प्राण ।
'तं वत्सा उप तिष्ठन्ति एकशीर्षाणो युता दश'
अ. १३.४.६

एकशुङ्गा – एक सरपत वाली ओषधि ।
'प्रस्तृणाती स्तम्बिरेकशुङ्गाः'
अ. ८.७.४.

एकश्रुष्टि – एक जैसा भोजन ।
'एकश्रुष्टीन् संवननेन सर्वान्'
अ. ३.३०.७

एकःजातः – आद्वितीय, एक हिरण्यगर्भ ।
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्'
ऋ. १०.१२१.१, अ. ४.२.७, वाज.सं. १३.४, २३.१,२५.१०, वाज.सं. (का). २९.३३, तै.सं. ४.१.८.३, २.८.२, मै.सं. .२.७.१५, ९६.१३, २.१३.२३, १६८.५, ३.१२.१६, १६५.१, का.सं. १६.१५, ४०.१, का.सं. (अश्व). ५.११, श.ब्रा. ७.४.१.१९, नि. १०.२३.
सृष्टि के पूर्व परमात्मा से हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ । वह अद्वितीय एक जन्मे लेते मात्र (एकःजातः) इस स्थावर जंगमात्मक जगत् का (भूतस्य) पति, पालक या ईश्वर हुआ (भूतस्य पतिः आसीत्) ।

एकः सत् बहुधा – एक ही परमेश्वर बहुत नामों से ख्यात है जैसे इन्द्र (ऐश्वर्यवान्), मित्र (स्नेही या मृत्यु से त्राणकारी), वरुण (सर्वश्रेष्ठदुःख निवारक), दिव्य (तेजोमय) सुपर्ण (भलीभाँति पालन कर्ता), गरुत्मान् (महान् आत्मा), अग्नि

(अग्रणी, सबसे पूर्व और ज्ञानवान्) यम (सर्व नियन्ता) मातरिश्वा (जगन्निर्मात्री प्रकृति में और ज्ञाता आत्मा में भी सूक्ष्मतया व्यापक और गति दाता)। परमेश्वर अद्वितीय होने से एक, बलरूप और कारण होने से सत् है ।

'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः
अथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान्
एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति,
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।'

ऋ. १.१६४.४६, अ. ९.१०.२८, नि. ७.१८.१४, १.

एकःसन् वृत्रहा – एक होता हुआ भी वृत्त को मारने वाला इन्द्र, परमात्मा ।

'एको दृढमवदो वृत्रहासन्'

ऋ. ३.३०.५.

हे इन्द्र । तूने अकेले ही जो वृत्र का वध किया इस देवताओं को अभयदान दिया ।

एकः सम्राट् – लोकों का एक मात्र प्रकाशक, अग्नि, स्वयं सबमें अकेला प्रकाशमय, सबका एक महेश्वर ।

'सम्राडेकोविराजति'

अ. ६.३६.३, साम. २.१०.६०, वाज.सं. १२.११७, वाज.सं. (का.) १३.७.१६, तै.ब्रा. २.४.१.९, आश्व. श्रौ.सू. ८.१०.३, शांश्रौ.सू. ३.५.८.

एकःसुपर्णः – एक ही अद्वितीय वायु । सुन्दर गति वाला वायु भी है । 'सुपर्ण' का बहुवचन में प्रयोग सूर्य की किरणों के अर्थ में हुआ है । एक वचन में इस शब्द का प्रयोग वायु के अर्थ में हुआ है ।

'एकः सुपर्ण स समुद्रमा विवेश'

ऋ. १०.११४.४, ऐ.आ. ३.१.६.१५, नि. १०.४६.

एक वह अद्वितीय वायु नित्य अन्तरिक्ष में रहता है । (समुद्रम् आविवेश) ।

एका – चितिशक्ति, एक महान् प्रकृति ।

'एकपा च दशभिश्चा सुहूते'

अ. ७.४.१, वाज.सं. २७.३३, मै.सं. ४.६.२, ७९.६, श.ब्रा. ४.४ .१.१५, तै.आ. १.११.८,आश्व श्रौ.सू. ५.१८.५, शां.श्रौ.सू. ८. ३.१०.

एकाक्षर – (१) एक मात्र वायु की अक्षय शक्ति, (२) अग्नि, की एकमात्र प्रकाश शक्ति ।

'अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयतत्तमुज्जेषम्'

वाज.सं. ९.३१, शा.ब्रा. ५.२.२.१६.

(३) एक मात्र अक्षर 'ओम्' । पदवाच्य परमेश्वर

'एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः'

अ. ८.२८.८

एकाकी – अकेला

'कःस्विदेका की चरति'

वाज.सं. २३.९,४५, तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.९:१६५.१७, का.सं. (अश्व). ४.७, श ब्रा. १३.२.६.१०, ५.२.१२, तै.ब्रा. ३.९.५.४, आश्व.श्रौ.सू. १०.९.२, शां श्रौ.सू. १६.५.३

एकगौः – एक पृथिवी ।

'पर्येका चरति वर्तनि गौः'

ऋ. ३.७.२

सूर्य के चारों ओर यह एक पृथिवी बार बार लौटकर आने वाला मार्ग चलती है ।

एकादश – (१) दस प्राण और जीवात्मा, (२) दस इन्द्रियां और मन, (३) दस दिशाएं और सूर्य या प्रजापति ।

'ये देवासो दिवि एकादशस्थ
पृथिव्यामधि एकदशस्थ
अप्सुक्षितो महिनैकादशस्थ
दे देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ।'

ऋ. १.१३९.११, वाज.सं. ७.१९, ऐ.ब्रा. ५.१२.५, श.ब्रा. ४.२.२.९, आश्व.श्रौ.सू. ८.१.१२.

(४) दस प्राणों से अतिरिक्त ग्यारहवां अत्मा ।

'यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि'

अ. ५.१६.११

एकादशकपालः – (१) ग्यारह मस्तिष्कों का विचार, (२) ग्यारह शिर वाला ।

'इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय
बार्हतायैकादशकपालः'

वाज.सं. २९.९०, तै.सं. ७.५.१४.१, मै.सं. ३.१५.१०, १८०.८ का.सं. (अश्व). ५.१०.

एकादशाक्षर – (१) परमेश्वर के ग्यारह रुद्र रुप सामर्थ्य (२) दस सदस्य और ग्यारहवां सभापति,(३) जीवात्मा के ग्यारह प्राण ।

'इन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्'

वाज.सं. ९.३३, तै.सं. १०.७.११.२, का.सं. १४.४.

एकानृच – एकचरण का मन्त्र जो पूर्ण ऋच नहीं है । और जिसमें पाद की व्यवस्था नहीं है ।

'एकानृचेभ्यः स्वाहा'

अ. १९.२३.२२.

एकायुः – एकं सत्यगुणस्वभावम् में आयुः यस्य (जिसका सत्यगुण स्वभाव एक आयु है) । (१) एक मात्र समस्त संसार रूप जीव-परमेश्वर (२) समष्टि् महान् चैतन्य चित् ।

एकाष्टका – एकमात्र गृह की आठों पहर सुधि लेने वाली गृहिणी ।
'एकाष्टके सुप्रजसः सुवीराः'
अ. ३.१०.५, साम.मं.ब्रा. २.२.१३, हि.गृ.सू. २.१४.४, आप.मं.पा. २.२०.३४.

एकेष – ईषारूप अग्रदण्ड वाला रथ या शरीर ।
'एकेषं विश्वतः प्राञ्चम्'
ऋ. १०.१३५.३

एज – (क्रिया.) करना, कांपना, चलना, गतिशील होना तथा क्रमशः बढ़ने के अर्थ में आता है । अंग्रेजी का Age शब्द भी इसी अर्थ का द्योदक है । प्राणी के बढ़ने की मात्रा Age है ।
वाज.सं. ४०.५, ईश.उप. ५.

एजत् – (१) शरीर को संचालित करता हुआ आत्मा, (२) संसार संचालित करता हुआ परमेश्वर ।
'एजत् ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम्'
ऋ. १.१६४.३, अ. ९.१०.८.
(३) चर, जीवितसंसार ।
'ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति'
ऋ. १०.८८.१५, वाज.सं. १९.४७, का.सं. १७.१९, ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.२१, १४.९.१.४, तै.ब्रा. १.४.२.३, आप.श्रौ.सू. १९.३.५, बृ.आ.उप. ६.१.४.

एजत् विश्व – गतिमान विश्व ।
'अर्धर्चेन चाक्लृपुर्विश्वमेजत्'
अ. ९.१०.१९

एजत्कः – एजत्क नामक रोग कीट जो थोड़ा थोड़ा कांपता है, ।
'एजत्का शिपवित्नुकाः'
अ. ५.२३.७.

एजति – 'एज' धातु कांपना, चलना, गतिशील होना, तथा क्रमशः बढ़ने के के अर्थों में आता है । कहां क्रमश बढ़ते रहने के अर्थ में आया है ।
'यथा वातो यथा वनम्
यथा समुद्र एजति ।
एवात्वं दशमास्य
सहा वेहि जरायुणा ।'
ऋ. ४.७८.८, नि. ३.१५.
जिस प्रकार हवा, बन और समुद्र कांपते या स्पन्दन या गति करते हैं उसी प्रकार हे दस महीनों का गर्भ ! तू जरायु के साथ नीचे आ ।

एजथुः – कम्पन । एज धातु से सम्पन्न ।
'महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे'
अ. १२.१.१८

एनी – (१) गेहुएं रंग की कपिलागौ ।
'एणीर्धाना हरिणीरर्जनी सन्त धनेवः'
तै.आ. ६.७.१.
'एनीःश्येनीः सरूपा विरूपाः'
अ. १८.४.३३

एणी – (१) हलकी, लाल श्वेत रंग की गंडमाला (इसत् रक्तमिश्रःश्वेतः एतवर्ण) ।
'एन्येका श्येन्येका कृष्णैका रोहिणी द्वे'
अ. ६.८३.२

एत – (१) शुक्ल वर्ण के वस्त्रों वाला (२) उत्तम कर्म ज्ञान से सम्पन्न ।
'प्रति घोराणाम् एतानाम् अयासाम्'
ऋ. १.१६९.७.
(२) कर्वुर (चितकबरा रंग का) ।
'एता ऐन्द्राग्नाः'
वाज.सं. २४.८,१५,१७, मै.सं. ३.१३.९: १७०.६, ३.१३.१३, १७१.४, ३.१३.१५, १७१.१०, आप.श्रौ.सू. २०.१४.९, १२.१५.३.

एतग्वा – (१) शुद्ध श्वेतवर्ण के शुद्ध चरित्रयुक्त स्त्री पुरुष ।
'एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते'
ऋ. ८.७०.७, साम. १.२६८.
(ए.व.) (२) इन प्रत्यक्ष पदार्थों का प्राप्त होती हुई, (३) इनके अनुसार ही ।
ऋ. १.११५.३, मै.सं. ४.१०.२, १४७.३, तै.ब्रा. २.८.७.१.
(३) अश्ववत् गृहस्थ रथ में नियुक्त स्त्री पुरुष
'एतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः'
ऋ. ७.७०.२

एतरसम् – बिना, बगैर ।
'अहानेतरसं न विचेतनानि'
अ. २०.१३५.७, ऐ.ब्रा. ६.३५.१०.गो.ब्रा. २.६.१४, शां.श्रौ.सू. १२.१९.२.

एतरी – गत्यर्थक 'इ' धातु से बना है । अर्थ –(१) अतिथि, (२) याचक ।
'सा स्माकेभिरेतरी न शूषैः
अग्निष्ट्वे दम आजातवेदाः'
ऋ. ६.१२.४.
जातधन या जातप्रज्ञ अग्नि हमारे सुखकर स्तोत्रों से (अस्माकेभिः शूषैः) हमारे यज्ञ गृह में (दमे) अतिथि या याचक के सदृश (एतरीन) स्तुतित किये जाते हैं (आस्तवे) ।

एतश – (१) वेगादियुक्त अश्व वाला ।
'त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने'
ऋ. १.५४.६
(२) आवागमन कारी आत्मा (३) जल वर्षी मेघ (४) अश्व, अश्वसैन्य, (५) देह से देहान्तर में जाने वाला जीव ।
'यत् तुदत् सूर एतशम्'
ऋ. ८.१.११
(६) बलवान् अश्व ।
'भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र'
ऋ. १.१२१.१३
वेगवान् बलवान् अश्व जिस प्रकार चक्रवान् रथ को या रथ के चक्र को (चक्रम्) धारता और ले जाता है ।

एता – (१) रथ ।
'गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः'
ऋ. ५.४१.१०
(२) एतत् शब्द के नपुंसक पु.ब.व. का वैदिक रूप 'एतानि' के स्थान में 'एता' अर्थ–ये

एतादृक् – एतत् + दृश् + क्विप् = एतादृश् । प्रथम पुरुष एकवचन में एतादृक् । अर्थ इस प्रकार का ।
'मा स्मैता दृगपगूहः समर्ये'
ऋ. १०.२७.२४.
इस मृत्यु के साथ होने वाले संग्राम में (समर्ये) अन्तरात्मन् , तू आदित्य के इस प्रकार के उपकरणों को (एतादृक्) मत छिपा या मत भूल (मा स्म अपगूहः)

एतादृक्ष – इस प्रकार का ।
'ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः'
वाज.सं. १७.८४, तै.सं. ४.६.५.६, मै.सं. २.११.१:१४०.५, का.सं. १८.६.

एतिः – रक्षक ।

एतोः – (१) बराबर चलते रहने कि लिए, पार करने के लिए, ।
'स ईं महीं धुनिमेतोः अरम्णात्'
ऋ. २.१५.५, आश्व.श्रौ.सू. ९.८.४.
(२) व्यापने के लिए ।
'अरीरमत् अतमानं चिदेतोः'
ऋ. २.३८.३

एदिधिषुपतिः – पूर्व ही धारण करने योग्य सम्पत्ति का स्वामी, (२) बड़ी बहन के विवाह के पूर्व ब्याही गई छोटी बहन 'एदिधिषु' है, उसका पति ।
'अराध्या एदिधिषुपतिम्'
वाज.स. ३०.९

एदिधिषु – (१) बड़ी बहन के विवाह के पूर्व ब्याही गई छोटी बहन । अग्रे दिधिषु से एदिधिषु हुआ है । (२) पूर्व ही धारण करने योग्य सम्पत्ति

एधतु – वृद्धि ।
'व्याप्तिर्महएधतुः'
अ. ११.७.२२

एधमानः – एध + शानच् = एधमान । अर्थ– दीप्यमान या यज्ञ या सोमाभिषवण नहीं करने वाला पुरुष ।

एधमानद्विट् – दीप्यमानान् अपि असुन्वतः सोमाभिषवम् अकुर्वाणा यज्वनः द्वेष्टि (दीप्य मान होते हुए भी सोमाभिषवण नहीं करने वालों से जो द्वेष करता है इन्द्र परमेश्वर ।
एध + शानच् = एधमान । एधमान + द्विष् + क्विप् = एधमानद्विष । उसीका प्र. पु. ए. व. में रूप एधमान द्विट् ।
'एधमानद्विट् उभयस्य राजा'
ऋ. ६.४७.१६, नि. ६.२२.
इन्द्र या परमेश्वर का विशेषण । वह यज्ञ नहीं करने वाले का द्वेष्टा है । तथा दिव्य और प्रार्थिव दोनों प्रकारों के धनों का दाता है (उभयस्य राजा) (२) पाप से बढ़ने वाले का शत्रु । 'एध' धातु वृद्ध्येर्थक और 'इन्ध्' दीप्त्यर्थक है । जो वृद्धि शील है वही दीप्त भी रहता है । धनी पुरुष यज्ञ नहीं करे तो वह परमेश्वर के द्वारा दण्डनीय है । अतः इन्द्र को 'एधमान द्विट्' कहा गया है ।

(३) अपने से बढ़ते हुए प्रतिस्पर्धी शत्रु से द्वेष करने वाला ।

एधस् – काष्ठ, इन्धन

'मामाम् एधो दशतयः चितोधाक्'

ऋ. १.१५८.४.

मुझे दसगुणा संचित सेना न जलावे ।

एधि – भव (हो) । अस् (होना) + हि = एधि । अ का ए और हि काधि ।

एनश्चिपङ्क्तिका – पाप के समूह से सम्बन्ध रखने वाली ।

'एनश्चिपंक्तिका हविः'

अ. २०.१३०.११

एनस् – इ (गत्यर्थक) + नस् = एनस् (इ का गुण) । अर्थ है (१) जाने वाला अथवा इण् + अस् = एनस् । अर्थ है । (२) पाप करने वाले निकट पाप का फल अवश्य जाता है अतः यह 'एनस्' है । अंग्रेजी में पाप का वाचक Sin शब्द है । मेदिनी कोश में एनः पापापराधयो एसा कहा है ।

एनस्यः – एनस् + यत् = एनस्य । अर्थ– (१) पाप करने वाला ।

'एन एनस्यो ऽकरम्'

अ. ६.११५.२, तै.ब्रा. २.४.४.९

(२) पाप से उत्पन्न

'तास्ते यक्ष्ममेनस्यम्'

अ. ८.७.३.

एनस्वान् – एनस् + वतुप् = एनस्वत् । प्र.पु. एक वचन में 'एनस्वान्' । अर्थ–पापी

'मा त एनस्वन्तौ यक्षिन् युजेम'

ऋ. ७.८८.६.

एन्द्रवसुक्रः – वह पुरुष जो इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् पुरुष के धन (वसु) द्वारा अपने को बेच देता है और भृत्य या वेतनभोगी बनकर रहता है ।

एना – (१) अनेन (इससे) । नपुंसक और पुल्लिंग दोनों में तृतीया एक वचन में 'एना' होता है । नपुंसकलिंग मे तृतीया के एकवचन में–

'एना वो अग्नि नमसा
ऊर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं
विश्वस्य दूतमगृतम् ।'

ऋ. ७.१६.१, साम. १.४५,२.९९, वाज.सं. १५.३२, तै.सं. ४.४.४.४, मै.सं. २.१३.८, १५७.३, का.सं. ३९.१५.

हे ऋत्विक यजमानो ! इस अन्न से (एना नमसा) आप लोगों के (वः) अन्न के नप्ता (ऊर्जोनपातम्) देवताओं के प्रिय (प्रियम्) अत्यन्त चेतनावान् (चेतिष्टम्) पर्याप्त बुद्धि वाले (अरतिम्) यज्ञ को सुशोभित करने वाले (स्वध्वरम्) अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ (अग्निम् आहुवे)।

स्वामी दयानन्द का अर्थ–हे प्रजाजनो ! तुम्हारे बल का नाश न करने वाले (ऊर्जो नपात्) हितकर (प्रियम्) चिताने वाले (चेष्ठिम्), आर्य (अरतिम्), हिंसा रहित शुभ कर्म करने वाले (स्वध्वरम्), संसार को अनर्थों से बचाने वाले (अमृतम्), तेजस्वी (अग्निम्) । विश्व के उपदेशक को (विश्वस्य् दूतम्) स्वीकार करता हूँ (आहुवे) ।

'एना' का पुल्लिंग तृतीयैकवचन मे प्रयोग –

'इह प्रियं प्रजया ते समृध्ययताम्
अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्यो तन्वं ससृजस्व ।
अधा जिव्री विदथमावदाथः ।'

ऋ. १०.८५.२७, अ. १४.१.२१., आश्व.गृ.सू. १.८.८, आश्व.मं.पा. १.९.४.

हे वधू ! इस गृह में संतति से युक्त तेरा मंगल बढ़े (प्रजया ते प्रियम् समृध्यताम्) । इस घर में गार्हस्थ्य धर्म पालन करने के लिए या गृहपत्नीत्व के लिए (गार्हपत्याय) जागृत् हो तत्पर हो । इस पति के साथ अपने शरीर को एक कर दो या मिला दो (एना पत्या तन्वं संसृजस्व) और इस प्रकार हिलमिल कर (अधा) पति पत्नी बुढ़ापे तक संयुक्त हो यज्ञ में मन्त्रोच्चारण करो (जिव्री विदथं आवदाथः) यही आशीर्वाद है ।

एनाम् – एतत् शब्द के स्त्रीलिंग द्वितीया एकवचन में रूप । अर्थ–इसको एतत् का अन्वादेश 'एना' होता है ।

एनी – (१) शुभ्र गौ, (२) नदी, (३) जलधारा (४) श्वेत वर्ण की मज्जा वाहिनी या शुक्र वाहिनी नाड़ी ।

'ऋजीत्येनी रुशती महित्वा'

ऋ. १०.७५.७
नदी के अर्थ में-
'वियद् वर्तन्त एन्यः'
ऋ. ५.५३.७
(५) श्वेत, शुक्लवर्ण, गौर (६) सदाचारिणी, (७) प्राप्त होने योग्य मन्तव्या स्त्री ।
'सन एनीं वसवा नो रयिं दाः'
ऋ. ५.३३.६
(८) इ (गत्यर्थक) धातु से सिद्ध । अर्थ है-प्रगतिशीला ।
'एनीः अवनयः'
(प्रगतिशील नदिया) । शुद्ध श्वेतवर्ण की गौ के अर्थ में-
'आयत् पतन्त्येन्यः'
ऋ.८.६९.१०, २०.९२.७, शा.श्रौ.सू. ९.६.१५.
(९) एक तरफ से चित्रित वर्ण का वस्त्र पहनने वाली
'एन्योमैत्र्यः'
वाज.सं. २४.८.

एनी अवनिः - (१) सदा बहती हुई नदी, (२) भूमिवासिनी प्रजा
'एकं यदुद्ना न पृणन्ति एनीः
आसिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम्'
ऋ. ५.८५.६

एम - (१) मार्ग । अंग्रेजी Aim से इस शब्द की समानता विचारणीय । मार्ग पर चला जाता है । अतः यह एम है ।
'कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाः'
ऋ. ४.७.९
(२) प्राप्तव्य पदार्थ (३) यत्न ।
'एमश्च म इत्या च मे'
वाज. सं. १८.१५
(४) प्राप्त करने योग्य परमपद (५) लक्ष्य (aim) ।
'कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजरः'
ऋ. १.५८.४
हे जन्ममरण रहित (अजर), प्रकाश युक्त जीवात्मन्, तेरा प्राप्त करने योग्य परम पद (एम) अत्यन्त आकर्षण करने वाला है ।
अथवा हे दीप्त ज्वाला युक्त अग्ने ! तेरा मार्ग (एमः) कृष्ण है ।

एमीत् - आता या आ जाता हूँ ।
'एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव'
ऋ. १०.३४.५.
तब मैं इन जुआरियों के (एषाम्) अड्डे पर (निष्कृतम्) व्यभिचारिणी स्त्री की तरह (जारिणी इव) आ जाता हूं (एमीत्) ।

एमुषः - (१) आमुषम् । 'आमुषम्' के आ का ए छान्दस है । अर्थ है-सर्वेषाम् असुराणां मध्ये मोहस्थानीयम् (सभी असुरों में प्रसिद्ध) । 'आमुष्य' का अर्थ प्रसिद्ध सम्भ्रान्त परिवार का । यह शब्द 'सर्वश्रेष्ठ' का वाचक है ।
(२) आ अधिष्ठिताः मुषाः मोषकाः अत्र (जहां चोर रहते हों वह स्थान आमुष है) । आमुष से ही एमुष हुआ है ।
'विश्वेत्ता विष्णुराभरत्
उरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनम्
वराहमिन्द्र एमुषम् ।'
ऋ. ८.७७.१०, मै.सं. ३.८.३, ९५.१४, नि.५.४
बड़े बड़े डेगों वाला या बहुत पराक्रमी (उरुक्रमः) व्यापनशील (विष्णुः) स्तुति परक मन्त्रों से संदीपित (त्वेषितः) इन्द्र ने (इन्द्रः) सैकड़ो चरु आदि से सिद्ध होने वाले आदेन (क्षीरपाकम् ओदनम्) बड़े-बड़े यज्ञों (महिषान्) तथा श्रेष्ठ वराह (एमुषम् वराहम्) रूपी सभी (विश्वा इत्) उन धेनों को (ता) लाया (आभरत्) ।
दुर्ग ने इसका अर्थ 'सभी धनों को लाया और वराह नामक प्रसिद्ध असुर को मारा' किया है । वस्तुतः आभरत् क्रिया का कर्म यज्ञ और वराह है । महिष का अर्थ बड़ा यज्ञ है ।
अन्य अर्थ-बहुत पराक्रमी (उरुक्रमः) तेजस्वी (त्वेषितः) तथा उत्तमगुणों को प्राप्त किया हुआ (विष्णुः) सेनापति (इन्द्रः) चोरों के निवास स्थान पर्वत प्रदेशों को जीतकर (एमुष वराहम्) अनेक प्रशस्त पदार्थों (शतं महिषान्) दूध में पकाए हुए चावल आदि सभी वस्तुओं को (क्षीरपाकम् ओदनम्) लाया (विश्वाइत् आभरत्) ।

एयात् - आवे ।
'नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्'

ऋ. १०.१०१.३, वाज.सं. १२.६८, श.ब्रा. ७.२.२.५, नि. ५.२८.
पका अन्न अंकुश या हंसुआ से भी निकटतर आ जाय ।

एयुषी - आने वाली ।
'शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम्'
ऋ. १.१२४.४, नि. ४.१६.
चर कर लौटने वाली गौ आदि के लिए उषा बार बार आने वाली है ।
एर्त्समान - आ + ईर्त्समान । अर्थ-प्राप्त करता हुआ ।
'ऋणान्नो नर्णमेर्त्स मानाः'
अ. ६.११८.२

एरिरे - आङ् +ईरिरे । आभिमुख्येन प्रेरितवन्तः (बार-बार सामने प्रेरित किया) । ईर् धातु प्रेरणा अर्थ में आया है । उसी के लिट् प्र. पु. बहुवचन का यह रूप है, । 'झि' का 'इरेच्' आदेश होता है । आङ् का प्र उपसर्ग के अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

एरु - प्रेरक ।
'एरुं तुन्दाना पत्येव जाया'
अ. ६.२२.३.

एवः - (१) बुरा अभिप्राय, (२) कुटिल जाल, चाल बाजी ।
'ये पाकशंसं विहरन्त एवैः'
ऋ. ७.१०४.९, अ. ८.४.९.

एव - (१) ज्ञान, (२) प्रजाओं का शिक्षण, (३) गमनागमन का साधन रथ आदि, (४) यह लोक (शतपथ के अनुसार) ।
'एव श्छन्दः'
वाज.सं. १५.४,५, तै.सं. ४.३.१२.२,३, ५.३.५.४, मै.सं. २.८.७, ११२.२, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.३,५, का.श्रौ.सू. १७.११.५, आ.श्रौ.सू. १७.३.४,
ज्ञान के अर्थ में-
'स्वेभिरेवैः'
अ. २०.९१.११.
गति के अर्थ में -
'रमध्वं मे वचसे सोम्याय
ऋतावरी रूपमुहूर्तमेवैः'
ऋ. ३.३३.५, नि. २.२५.
ऐ नदियो ! मुझ सोम बनाने वाले के लिए अपनी तीव्र गतियों से मुहूर्त भर ठहर जाओ ।
(५) अवन, प्रार्थना या कामना विशेष । इ (गत्यर्थक) + व (भाव में) = एव, अथवा अव (रक्षा करना) + घञ् (भाव में) = एव ।
(६) गति शील वायु (Air)
'आते सुपर्णा अभिनन्तएवैः'
ऋ. १.७९.२, तै.सं. ३.१.११.५, मै.सं. ४.१२.५, १९३.९, का.सं. ११.१३, ऐ.ब्रा. ७.९.४.
जब किरणें (सुपर्णा) वायुओं से (एवैः) मिलकर इस प्रकार सब तरफ से मेघ पर आघात करता है तब श्याम रंग का बादल (कृष्णः) गर्जन करता है ।

एवया मरुत् - (१) ज्ञान वान् मनुष्य -दया. (२) उत्तम गमन करने योग्य मार्गों पर जाने या पहुंचाने वाला और वायु के समान ज्ञानवान् बलवान् पुरुष, (३) सब जीवों का स्वामी परमेश्वर, (४) ज्ञान मार्ग पर जाने वाले जीवों का स्वामी, (५) प्राणों का प्राण ।
'मरुत्वते गिरिजा एवया मरुत्'
ऋ. ५.८७.१,
(६) मार्गों पर या साधनों से जाने वाला ।
'प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्'
ऋ. ५.८७.२

एवयावन् - (१) यः एवं विज्ञानं याति (जो विज्ञान को प्राप्त करता है) -दया. (२) ज्ञानों को प्राप्त करने वाला ।
'तान् वो महो मरुतो एव यान्नः'
ऋ. २.३४.११.

एवयावरी - एव + यावरी (१) वेगयुक्त अश्वों, उत्तम उपायों द्वारा प्राप्त होने वाली भूमि या ज्ञान वाणी ।
'या सुम्नैरेवयावरी'
ऋ. ६.४८.१२

एवयावाः - एवं बोधं याति प्रापयति यः सः (ज्ञानों को प्राप्त कराने वाला परमेश्वर-विद्वान्) ।
'उतनोधियो गोअग्राः
पूषन् विष्णो एवयावः
कर्तानःस्वस्तिमतः ।'
ऋ. १.९०.५, आश्व.श्रौ.सू. ९.११.१८.
हे सबके पोषण करने वाले, हे व्यापक सामर्थ्य

वाले (विष्णो), हे ज्ञानों को स्वयं प्राप्त करने और औरों को प्राप्त कराने वाले (एवयावाः) आप लोग हमारी बुद्धियों को उत्तम वेद वाणियों से प्रकाशित होने वाला करो (नः धियः गो अग्रा) तू हमें सब कल्याण से युक्त कर ।

एवयाः – एव + याः । रक्षक के पास आने वाला –विष्णु

'विभूत द्युम्न एवया उ सप्रथाः'

ऋ. १.१५६.१, तै.ब्रा. २.४.३.८.

एवा – एवम् । पृषोदरादि की तरह एवम् के म् का लोप और 'निपातस्य' च पा. (६.३.१३६) से संहिता मे दीर्घ । अर्थ है इसी प्रकार ।

'एवा रात्र्युषसे योनिमारैक्'

ऋ. १.११३.१, साम. २.१०९९, नि. २.१९.

जिस प्रकार रात सूर्य से उत्पन्न होती है उसी प्रकार रात ने उषा के लिए अपने अपर भाग अर्थात् अन्तिम प्रहर की कल्पना की (योनि मारैक्) ।

एवार – आदरों से प्राप्त होने योग्य ।

'एवारे वृषभा सुते'

ऋ. ८.४५.३८

एवावदः – (१) आगे जाने योग्य मार्ग का उपदेश करने वाला, (२) प्राप्त तथ्यों को कहने वाला –दया.

'एवावदस्य यजतस्य सध्रेः'

ऋ. ५.४४.१०

एवाहि – एवहि । इस प्रकार ।

'एवाहि मां तवसंवर्धयन्ति'

ऋ. १०.२८.६

एवैव – एवएव । वैसे वैसे ।

'एवैव तस्थुः सवितः सवायते'

ऋ. ४.५४.५

एष् – (१) इच्छावान्, (२) सब प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण करना ।

'अपोन क्षोदोऽवृणीतमेषे'

ऋ. १.१८०.४

एष – इष् + अच् = एष । अर्थ (१) अभिलषणीय, (२) अभिलषणीय तत्व ।

'विष्णोरेषस्य मीढुषाम्'

ऋ. ८.२०.३

(३) सबकी इच्छा का पात्र, (४) सबका संचालक, (५) अर्थ और यश का इच्छुक प्रजा प्रिय राजा ।

'विष्णोरेषस्य प्रभृथेहवामहे'

ऋ. २.३४.११, ७.४०.५.

एष्टा – (१) पर्यालोचक, (२) प्राप्त करता हूँ ।

'श्रुतं म अच्छोक्तिभिःमतीनाम्
एष्टानरा निचेतरा च कर्णैः'

ऋ. १.१८४.२

हे उत्तम नायको या स्त्री पुरुषो ! प्राप्त संपदाओं और ज्ञानों को अच्छी तरह से संचय करने वालो (निचेतारा) मननशील विद्वान् पुरुषों के उत्तम प्रशंसा वचनों से मैं आप दोनों को प्राप्त करता हूँ (एष्टा) ।

एष्टि – कार्य–साधक, प्रजा की प्रेरक आज्ञा ।

'तस्य ऋक्सामा न्यप्सरस एष्टयोनाम'

वाज.सं. १८.४३, मै.सं. २.१२.२, १४५.८, श.ब्रा. ९.४.१.१२.

एहिमाय – आङ् + ईह (चेष्टार्थक) + इन् । क्रिया में बुद्धि रखने वाला, क्रियापरायण ।

'एहिमायासो अद्रुहः'

ऋ. १.३.९.

ऐकपदिक – एकएकपद के क्रम से ।

ऐट्ट – मांगता है, ।

'उपस्थाय मातरम् अन्नमैट्ट'

ऋ. ३.४८.३

ऐड – (१) अनुष्टुप् छन्द से उत्पन्न ऐड नामक साम । इडा + अण्= ऐड (२) वाणी का विस्तार ।

'अनुष्टुभ ऐडम्'

वाज.सं. १३.५७, वाज.सं. (का). १४.७.८, मै.सं. २.७.१९, १०४.१०, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ८.१.२.५.

(३) 'इडाया अन्नस्य इदम् ऐडम्' कृषिकर्म, (४) अन्न, ओषधि या पृथ्वी के गुणों को जानने वाला विभाग ।

'ऐडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्व'

वाज.सं. १५.७, वाज.सं. (का). १६.२.४.

(४) इडा अर्थात् पृथिवी का स्वामी ।

'इतित्वा देवा इम आहुरैड'

ऋ. १०.९५.१८

ऐतन – आओ ।

'आभोगयं प्रयदिच्छन्न ऐतना'

ऋ. १.११०.२

ऐतरेयब्राह्मण – (१) ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक। (२) एक ब्राह्मण ग्रन्थ

ऐतरेयारण्यक – ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक।

ऐन्द्रवायव – इन्द्र और वायु का सम्मिलित पद।
'ऐन्द्रवायश्च मे मैत्रावरुणश्च मे'
वाज.सं. १८.१९. तै.सं. ४.७.७.१, मै.सं. २.११.५, १४३.३, का.सं. १८.११.

ऐन्द्राग्नः – (१) इन्द्र और अग्नि का (२) सेनापति और अग्रणी नेता पुरुषों के वर्ग का।
'कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽज्जि सक्थस्त ऐन्द्राग्ना'
वाज.सं. २४.४, मै.स. ३.१३.५, १६९.१०.
(३) इन्द्र और अग्नि, (४) राजा और सेनापति का प्रदान किया हुआ।
'ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलम् यदुग्रं'
अ. ८.५.१९, का.सं. ३८.१४, आप.श्रौ.सू. १६.१९.१.
(४) सामवेद के ऐन्द्र और आग्नेय काण्ड
'ऐन्द्राग्नं पावमानम्'
अ. ११.७.६

ऐरयत् – ईर् (चलनार्थक) के लङ् प्रथम पुरुष एक वचन का रूप। अर्थ– चलाया या चलाता है।
'उतादः परुषे गवि
सूरश्चक्रं हिरण्ययम्'
न्यैरयत् रथीतमः।'
ऋ. ६.५६.३, नि. २.६.
और प्रेरक (सूरः) तथा अतिशय रथों वाला नृतमं (रथीतमः) पर्ववाले या प्रकाशवाले आदित्य के लिए (परुषेगवि) सुवर्णमय (हिरण्ययम्) उसके रथ के काल रूपी चक्के को (अदः चक्रम्) नित्य (नि) चलाता है (ऐरयत्)।

ऐरय – ईर् (चलनार्थक प्रेरणार्थक) धातु के लङ् म.पु. एकवचन का रूप।
'आमासु पक्वमैरयः'
ऋ. ८.८९.७, साम. २.७८१, का.सं. ८.१६, तै.सं. १.६.१२.२, शां.श्रौ.सू. १८.११.२.
हे इन्द्र! तू ने अपक्व या अप्राप्त यौवना गौवों में पूर्ण दुग्ध प्रेरित किया या तू आपक्व ओषधियों में पक्व रस डालता है।

ऐरावतधृतराष्ट्र – जिसने विषवती विराट् से विष का दोहन किया।
'तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक्'
अ. ८.१० (५) १५

ऐलब – (१) ऐलब नामक चक्षुरोग– (२) प्रकृति–संचालक शक्ति का स्वामी – इला + अण् = ऐलब। इला का अर्थ पृथिवी, प्रकृति, वाणी आदि है।
'अवायमैलब ऐलयीत्'
अ. ६.१६.३
(३) गीधों जैसा कोलाहल, कुत्सित ध्वनि, चीत्कार।
'गृध्राः कुर्वत ऐलबम्'
अ. १२.५.४७

ऐलबकार – सैनिक क्रीड़ाओं का करने वाला सैनिक।
'रुद्रस्यै लब कारेभ्यः'
अ. ११.२.३०

ऐलबृद – पृथ्वी पर के अन्न आदि पदार्थों को बढ़ाने का वाला।
'ऐलबृदा आयुर्धुधः'
वाज.सं. १६.६०, तै.सं. ४.५.११.१, मै.सं. २.९.९, १२९.१.

ओ

ओ – (१) सम्बोधन अर्थ में।
'ओ सुष्टुत इन्द्रयाहि अर्वाङ्'
ऋ. १.१७७.५
(२) अभिमुख्य अर्थ में एक अव्यय।
'ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुः'
ऋ. १.१०४.२
(३) आ + उ। आदर पूर्वक।
'ओचित् सखायं सख्या ववृत्याम्'
ऋ. १०.१०.१, अ. १८.१.१.

ओकस् – (न.) उच् (समवाय अर्थ में) + क = ओक।
'ओकः शब्दाश्रयश्चौकाः'–अमरकोश
शकुन्त और वृषल के अर्थ में भी यह शब्द आया है।
वेद में गृह (घर) के अर्थ में प्रयुक्त है।
'अधाचिदोकः पुनरित्स एति'
ऋ. ७.४.८, नि. ३.३.

क्योकि वह अन्य से उत्पन्न बालक फिर अपने ही पिता के घर चला जाता है ।

ओक्त – आ + उक्त = ओक्त । अर्थ–समन्तात् प्रशंसित, ।

'ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम्'

ऋ. १.६३.९

ओक्य – (१) गृहवत्, आश्रयभूत ।

'आपो न वज्रिन् नन्वोक्यं सरः'

ऋ. ८.४९.३

(२) भुवनों या गृहों का व्यवस्थापक नियम ।

'अनु पूर्वाण्योक्या
साम्राज्यस्य सश्चिम'

ऋ. ८.२५.१७

(३) निवास स्थान, गृह ।

'अस्मिन् सुते सवने अस्तु ओक्यम्'

ऋ. १०.४४.९ अ. २०.९४.९

पुनः–

'तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये'

ऋ. ३.४२.८, अ. २०.२४.८

(५) गृहे साधुः (गृह कार्य में कुशल)–दया.

(६) आश्रय, गृह, देश या पद को धारण पोषण करने योग्य, (७) प्रवचन योग्य गुरु का उपदेश

'इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयः
देवां अच्छा न धीतयः'

ऋ. १.१३२.५

जिस प्रकार दान लेने वाले पुरुष दान देने वालों के सम्मुख रहे उसी प्रकार अध्ययन करने वाले शिष्य जन अविद्यानाशक गुरु के अधीन रहकर (इन्द्रे) प्रवचन योग्य गुरूपदेश को (ओक्यम्) धारण करे (दिधिषन्त)

अथवा, उस ऐश्वर्य वान् सेनापति के अधीन ही अपने आश्रय देख, गृह या पद को धारण पोषण करने योग्य जन जिस प्रकार अपने दाताओं का आदर करते हैं उसी प्रकार वेतन–भृत होकर वे दानशील राजाओं को पुष्ट करें । घर के अर्थ में–

'मर्म इव स्व ओक्ये'

ऋ. १.९१.१३

जैसे पुरुष अपने घर में प्रसन्न रहता है,

ओकिवांसा – परस्पर मिलकर रहने वाले, समवेत, एक दूसरे से नित्य सम्बन्ध बना कर रहने वाले स्त्री पुरुष

'ओकिवांसा सुते सचा'

ऋ. ६.५९.३

ओघ – (१) बाढ़, (२) जलप्लावन, (३) धारा, (४) ढेर, प्रचुरता, (५) संख्या, (६) समूह, (७) पूर्ण, (८) क्रम, (९) प्रणाली, रिवाज, परिपाटी (१०) चिरन्तन विधान

ओजस् – (१) बल, (२) पुरुषार्थ । ओज् (वृद्ध्यर्थक नैरुक्त धातु) + असुन् = ओजस्, अथवा उब्ज + असुन् = ओजस् (न का लोप) । उब्ज धातु न्यक् भाव के अर्थ में प्रयुक्त होता है । जो बढ़ावे या न्यक् भाव करे । (वर्द्धयति उब्जयाति इति वा) (३) प्रभाव ।

'श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत
वसूनि जाते जनमान ओजसा
प्रतिभागं न दीधिम ।'

ऋ. ८.९९.३, अ. २०.५८.१, साम. १.२६७, २.६६९, वाज.सं. ३३.४१, कौ.ब्रा. २५.६, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.३, शां.श्रौ.सू. ११.१३.२१, १२.४.१९, १६.२१.१९, वै.सू. ३३.६, ४०.५, ४१.९, १०,१९, ४२.५, ला.श्रौ.सू. ४.६.२३, नि. ६.८.

जैसे सूर्य में समाश्रित रश्मियां सूर्य में स्थित जलोंका विभाग करने की इच्छा करती हैं (श्रायन्तः सूर्यम् इव) उसी प्रकार मरुद्गण इन्द्र से सभी (इन्द्रस्य विश्व इत्) धन (वसूनि) उत्पन्न हुए तथा उत्पन्न होने वाले (जाते जनमाने) मनुष्य के लिए बल से विभक्त करते हैं (भक्षत) उन धनों में जो हमारा धन है उसके लिए हम ध्यान करते हैं (नः प्रतिभागं दीधिमः) –दुर्ग

अन्य अर्थ, हे मनुष्यो ! जैसे समाश्रित रश्मियां सूर्य को भजती हैं उसी प्रकार इन्द्र के सभी धनों को भजो । वह इन्द्र जिन धनों को उत्पन्न या उत्पन्न होने से वाले मनुष्यों के लिए अपने बल से पैदा करते हैं उन धनों को पैतक धन के समान हम समझते हैं । –सा.

अन्य अर्थ–परमात्मा के आश्रित मनुष्य उस सर्व प्रेरक परमेश्वर की उपासना करते हैं (श्रायन्तः सूर्यम् इव) जैसे सूर्य की रश्मियां सूर्य की उपासना करती हैं । इसी प्रकार परमात्माश्रित

तेजस्वी पुरुष इन्द्र अथवा परमेश्वर की उपासना करते हैं । हम उत्पन्न तथा उत्पन्न होने वाले जगत् में (जाते जनमाने) परमेश्वर के सब धनों का विभाग करने की इच्छा रखते हुए ही (इन्द्रस्य विश्वा वसूनि भक्षत् इत्) पुरुषार्थ से (ओजसा) अपने भाग का अनुचिन्तन करें । (भागं प्रति दीधिमः)

प्रभाव के अर्थ में –

'पितुं नु स्तोषं महोधर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ।'

ऋ. १.१८७.१, वाज.सं. ३४.७, का.सं. ४०.८, नि. ६.२५.

मैं अगस्त्य अत्यन्त बल धारण करने वाले अन्न को (महः तविषीं धर्माणाम् पितुम् नु) भजता हूं (स्तोषम्) जिसके प्रभाव से (यस्य ओजसा) तीनों लोकों में अप्रतिहत इन्द्र ने (त्रितः) वृत्र नामक असुर या मेघ को (वृत्रम्) टुकड़े टुकड़े कर या गाँठ गाँठ तोड़कर (विपर्वम्) विदीर्ण किया (व्यर्दयन)

(४) २६ अध्यक्षों का स्वयं प्रवर्त्तक २७ वा राजा । – दया.

'ओजस्त्रिणवः'

वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.४, मै.सं. २.८.४, १०९.५, का.सं. १७.४, २०.१३, श.ब्रा. ८.४.१. २०.

ओज्मा – (१) ओज, बल, तेज ।

'उग्रं ओज्मानमादधत्'

अ. ४.१९.८

(२) बलरुप ।

'अपाम् ओज्मानम् परिगोभि रावृतम्'

ऋ. ६.४७.२७, अ. ६.१२५.२, वाज.सं. २९.५३, तै.सं. ४. ६.६.६, मै.सं. ३.१६.३, १८६.१०, का.सं. (अश्व) ६.१.

ओजायमानः – बल पकड़ता हुआ ।

'ओजायमानं यो अहिं जघान'

ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११

ओजिष्ठ – (१)अत्यधिक ओजस्वी, (२) अत्यधिक पुरुषार्थी, (३) अत्यन्त प्रभाव शाली ।

ओजिष्ठा – अतिबल प्रदान करने वाली, अत्यन्त प्रभाव या पुरुषार्थ देने वाली ।

'ओजिष्ठया दक्षिणयेवरातिम्

ऋ. १.१६९.४

ओणि – (१) ब्रह्मचर्य, (२) व्रतपालन (३) शारीरिक, आत्मिक एवं मानसिक बलवीर्य, (४) दुःख नाशक रक्षण, (४) दुःखान्धकार का अपनयन ।

'उपो वेनस्य जोगुवाणं ओणिम्
सद्यो भुवद् वीर्याय नोधधः'

ऋ. १.६१.१४, अ. २०.३५.१४

तेजस्वी विद्वान् आचार्य का (वेनस्य) अज्ञान को दूर करने वाला ज्ञानधारी और व्रतधारी शिष्य जिस प्रकार शीघ्र ही ब्रह्मचर्य एवं शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल वीर्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है, उसी प्रकार तेजस्वी सभापति या सेना पति के दुःख नाशक रक्षण के अधीन रहकर (ओणिम्) उसके साथ मंत्रणा करता हुआ (जोगुवानः) शीघ्र ही बल वृद्धि करने में समर्थ होता है (सद्यो भुवत् वीर्याय नोधाः) ।

ओणी – द्यावापृथिवी ।

'अभित्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम्
अर्चामि सत्यसवम् रत्नधामभि प्रियं मतिम्'

ऋ. ७.१४.१, साम. १.४६४, वाज.सं. ४.२५, तै.सं. १.२. ६.१, मै.सं. १.२.५, १४.४, का.सं. २.६, कौ.ब्रा. २३.८.२७.२, श.ब्रा. ३.३.२.१२, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३, शां.श्रौ.सू. ५.९.७.

द्यावापृथिवी के उत्पादक, सर्वद्रष्टा तथा सर्वकर्मा सत्य की आज्ञा देने वाले सविता अर्थात् सृष्टि कर्ता परमात्मा की अर्चना करता हूँ ।

ओतवै– (१) बुनने के लिए, (२) ओत–प्रोत करने के लिए ।

'वितत्निरे कवय ओतवा उ'

ऋ. १.१६४, ५, अ. ९.९.६.

(३) रचना के लिए ।

अ. ५.२३.१, ६.९४.३

ओतःप्रोतः – (१) उरोया पिरोया, (२) परमात्मा ।

'स ओतः प्रोतश्च विभूःप्रजासु'

वाज.सं. ३२.८, तै.सं. १०.१.३, महा.ना.उप. २.३.

ओता – (१) निरंतर बंधी धारा से बहने वाली

'ओता आपः कर्मण्याः'

अ. ६.२३.२

(२) सब प्रकार से संगत

'ओता देवी सरस्वती'
अ. ५.२३.१, ६.९४.३

ओतु – (१) भरनी, वस्त्र बुनने में तानी और भरनी की प्रक्रियाओं में एक (२) अध्वर्यु के कर्म ओतु है, यज्ञ वस्त्र है, गायत्री आदि तन्तु है (३) सूक्ष्म पञ्चभूत 'तन्तु' और स्थूल पञ्चभूत 'ओतु' हैं ।
'नाहं तन्तुं न विजानाम्योतुम्'
ऋ. ६.९.२
(४) बाने का सूत ।
'य ओतवो ये च तन्तवः'
अ. १४.२.५१

ओदती – (१) स्तुति करती हुई ।
'नदं व ओदतीनाम्'
ऋ. ८.६९.२, साम. २.८६२, ऐ. आ. १.३.५.२, ८.२,५.१.६.४,५, शां.श्रौ.सू. १८.१.१३, ला.श्रौ.सू. ७.३.८.
(२) उदन्तं कुर्वती (ओदा करती हुई, गीली करती हुई) उषा का विशेषण । उषा ओसों से पृथ्वी को गीली करती हुई आती हैं ।
'पदं न वे त्योदती'
ऋ. १.४८.६
जिस प्रकार युद्ध कुशला स्त्री देश को रक्त से गीला करती हुई आगे बढ़ती है और जिस प्रकार आंचल गीला करती हुई नववधू पतिगृह जाती है उसी प्रकार ओसों से पृथ्वी को गीला करती हुई (ओदती) उषा आती है ।

ओदनम् – (१) चावल का भात ।
'शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनम्'
ऋ. ८.७७.१०, मै.सं. ३.८.३, ९५.१४.
इन्द्र ने सैकड़ों यज्ञों या प्रशस्त पदार्थों एवं दूध मे पकाए चावल को दिया ।
(२) अन्न , (३) उदकदाता मेघ, (४) खीर, (दूध में सिद्ध किया गया चावल) ।
'निराविध्यद्गिरिभ्य आ
धारयत् पक्वमोदनम्
इन्द्रो बुन्दं स्वाततम्'
ऋ. ८.७७.६, नि. ६.३४.
इन्द्र ने मेघों को उद्दिष्टकर (गिरिभ्यः) अच्छी तरह से खींचे वज्र को (स्वाततम् बुन्दम्) चलाया (निरविध्यत्) और ऐसा कर पके भात या पके अन्न की उत्पत्ति का आधार रूप जल स्थिर किया (पक्वम् ओदनम् आधारयत्) ।
दुर्ग ने ओदन का अर्थ मेघ किया है । और इस ऋचा का अर्थ यह किया है– कि मेघों में जो परिपक्व मेघ था उसे ही विदीर्ण किया ।
आर्य समाजी विद्वान् भी यहां दुर्ग से सम्मत हैं । इन्द्र ने मेघों को विदीर्ण कर जल बरसाया जिससे प्रजा भात या पका अन्न पा सकी ।
(५) यज्ञमय प्रजापति का एक नाम
'वामदेव्यमुदरमोदनस्य'
अ. ४.३४.१,
'परमेष्ठी वा एष यदोदेनः'
तै.आ. १.७.१०.
'प्रजापति र्वा ओदनः'
श.ब्रा. १३.३.९.७.
'रेजो वा ओदनः'
(६) परमेष्ठी, (७) रेतस् , वीर्य । भात के अर्थ में –
'भिनत् कनीन ओदनम्'
ऋ. ८.६९.१४, अ. २०.९२.११
वीर्य के अर्थ में –
'यं वां पितापचति यंच माता
रिप्रात् निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः'
'स ओदनः शतधारः स्वर्गः
उभे व्यापि नभसी महित्वा'
अ. १२.३.५.
जिसे पिता और माता पकाते, जिससे पाप और प्रतिज्ञा भंग के दोष से मुक्त हो सके वह शतधार ओदन है । पतिपत्नी वीर्यरक्षा कर सैकड़ो जीवों का पालन करते हैं अतः यह शतधार ओदन है । गृहस्थ के पालक पति पत्नी का जीवन शत वर्ष तक रहता है वही गृहस्थ स्वर्ग है ।

ओपश – (१) (प्र.) आङ् + उप + शी + असुन् अर्थ –पति के समीप शयन । ओपस सहशयनम्
'कुरीरं छन्द ओपशः'
ऋ. १०.८५.८, अ. १४.१.८.
(२) मेघ, (३) स्थिति, सब प्रकार से स्थिति ।
'चक्राणं ओपशं दिवि'
ऋ. ८.१४.५, अ. २०.२७.५, साम. १.१२१, २.९८९.
(४) स्त्री के योग्य पोशाक ।

'क्लीबमोपशिनं कृशि'
अ. ६.१३८.१
(५) स्त्री के सिर का एक आभूषण ।
'अक्षुमोपशम् विततम्'
अ. ९.३.८.
(६) समीप में विद्यमान, (७) समीप सोने वाली स्त्री ।
'भर्ति स्वधावां ओपशमिव द्याम्'
ऋ. १.१७३.६,

ओपशिन् – स्त्री के योग्य पोशाक से युक्त ।
'क्लीबमोपशिनं कृधि'
अ. ६.१३८.१

ओप्यमान – प्रजा के कार्य में लगाया गया ।
'असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः'
अ. १२.३.२८.

ओपिषे – बोता है । 'वप्' धातु का रूप ।
'त्वं कल्याण वसुविश्वमोपिषे'
ऋ. १.३१.९
हे सुखमय, तू जगद्विधाता के लिए समस्त जीव संसार को मानों बोता है । (विश्वं वसु ओपिषे) ।

ओम् – अव + म् = ओम् (१) प्रणव, (२) रक्षक परमात्मा ।

ओम – (पु.) (१) रक्षक, (२) ज्ञानी, (३) विद्याकाम, (४) उपदेश प्रेमी (५) व्यवहार में पुरुषार्थी (६) ज्ञानवृद्ध ।
अव धातु रक्षण, गति, कान्ति, प्रीति, तृप्ति अवगम, प्रवेश, श्रवण आदि अर्थ में आया है । (७) रक्षा बन्धन ।
'विश्वेभिर्गन्तु ओमभिर्हुवानः'
ऋ. ५.४३.१३

ओमन् – अव (रक्षा करना) + मन् = ओमन् । अथवा 'अवन' शब्द से ही अ का ओ और व का म होकर ओमन बना । अर्थ है (१) रक्षा, (२) तृप्ति ।
'युवोः श्रियं परियोषा वृणीत
सूरोदुहिता परितकम्यायाम् ।
यद् देवयन्तमवथः शचीभिः
परि घ्रंसमोमना वां वयो गात्'
ऋ. ७.६९.४, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.५, तै.ब्रा. २.८.७.८.
हे अश्विनी द्वय ! आप के रथ को या आप की कान्ति को (युवः श्रियम्) सूर्य की उषा नाम्नी दुहिता (सूरःदुहिता) तुम में अपने को मिश्रित करती हुई (योषा) अर्द्धरात्रि के बाद (परितकम्यायाम्) सब प्रकार से भजती है (पर्यवृणीत) और आप दोनों देव पूजक मनुष्य को (देवयन्तम्) अपने कर्मों से (शचीभिः) रक्षा करते हैं (अवथः) । अतः यह हवि रूप अन्न (वयः) दिन में रक्षा के लिए या रक्षा के निमित्त से (ओमना) आपको समर्पित है । (वां पर्यगात्) ।
अन्य अर्थ–हे अध्यापक तथा उपदेशका आपकी विद्या–लक्ष्मी तथा धर्म लक्ष्मी को (युवोः श्रियम्) अविद्यान्धकार के समय (परितकम्यायाम्) स्त्री, पुत्र एवं पुत्रियां सभी ग्रहण करें (योषा सूरः दुहिता परिवृणीत) और यतः आप देवत्व की कामना करने वाले की उन सुमतियों से रक्षा करते हो (यत् देवयन्तम् शचीभिः अवथः) । अत आपकी तृप्ति के लिए प्रतिदिन (वाम् ओमना घ्रसम्) उत्तम अन्न प्राप्त होता है (पर्यगोत्) ।

ओमन्वान् – नाना रक्षाओं से युक्त सुखदायी ।
' ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये'
ऋ. १०.३९.९

ओम्य – रक्षक के पास जाने वाला ।

ओमा – रक्षाकारी उपाय ।
'ओमानं शंयोर्ममकायसूनवे'
ऋ. १.३४.६
शान्ति– सुख को चाहने वाले के योग्य मेरे रक्षाकारी उपाय (शंयोःओमानम्) निजबन्धुपुत्र को प्रदान करो (ममकाय सूनवे) ।

ओमात्रा – रक्षण शक्ति ।
'महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः'
ऋ. १०.५०.५

ओमासः – अव (पालन या तर्पण अर्थ में) + मन् (कृत या कर्म वाच्य में) + ऊमन् = ओमन (व्यत्यय से गुण), ओमन् + जस् =ओमासः (आज्जसरेसुक् पा.७.१.५० से जस् का असुक्) । अर्थ है – (१) रक्षितारः या तर्पितारः अथवा (२) रक्षणीयाः या तर्पणीयाः ।

ओम्यावत् – ये अवन्ति ते ओमान्नः तान् ये यान्ति ते ओम्याः एतेप्रशस्ताः विद्यन्ते यस्य सः –दया. रक्षक वर्गों का रक्षक सेना पति ।

ओम्यावती – सत्य ज्ञान और अन्न को धारण करने वाली रक्षणशील पुरषों की विद्या या नीति ।

'ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभम्'

ऋ. १.११२.२०

सत्यज्ञान के उपदेष्टा पुरुष (ऋतस्तुभम्) और सत्य ज्ञान और अन्न को धारण करने वाली रक्षण शील पुरुषों की उत्तम विद्या या नीति से युक्त (ओम्यावती) उत्तम रीति से प्रजा के भरण पोषण करने वाली नीति की (सुभराम्) जिन उपायों से रक्षा करते हो ।

ओषः – (१) अग्नि ।

'ओषः पात्रं च शोचिषा'

ऋ. १.१७५.३, साम. २.७८४.

(२) सहवास

'ओषंपत्या सौभगमस्त्वस्यै'

अ. २.३६.१

(३) दाहकारी, अन्धकारनाशख तेज

'उपद्रव पयसा गोधुगोषम्'

अ. ७.७३.६, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, शां.श्रौ. सू. ५.१०.१०.

ओषधि – ओषं धयति (शरीर में जो कुछ जलाने वाला–ओषत्–जैसे यक्ष्मा आदि रोग है, उसे पी जाता या नाश करता है) । ओषत् + धे (पीना अर्थ में) + कि = ओषधि (ओषत् के त् का लोप और धे क ए का आनिपातन नियम से) ।

अथवा दोषं धयति जो वातादि कृत दोषों को पी जाय । अर्थ – (१) अन्न–सा ।

'आदित् प्रसिष्ठ ओषधीरजीगः'

ऋ. १.१६३.७, वाज.सं. २९.१८, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व.) ६.३, नि. ६.८.

शीघ्र ही तू अन्नों को खाने लगता है ।

(२) जड़ी बूटी, दवा, दवा का चूर्ण

'या ओषधीः पूर्वाजाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा
मनैनु बभ्रूणामहं शतं धामनि सप्त च ।'

ऋ. १०.९७.१,

ज्वरादि उत्पात् में इस मंत्र से मार्जन किया जाता है । जो ये ओषधियां (या ओषधीः) देवताओं से (देवेभ्यः) कलि, द्वापर और त्रेता के पहले अर्थात् आदियुग में (त्रियुगं परा) उत्पन्न हुई (जाताः) उन पीले रंग की या रोग हरने वाली ओषधियों के (बभ्रूणाम्) एक सौ सात स्थानों को (शतं सप्त च धाम्नानि) मैं जानता हूँ । (मनैनु) । शरीर के १०७ मर्मस्थान हैं। 'धामन्' का अर्थ –स्थान, नाम, और जन्म है ।

पुनः–

'सोमं मन्यते पपिवान्
यत् सं पिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुः
न तस्याश्नाति कश्चम ।'

ऋ. १०.८५.३, अ. १४.१.३, गौ.ब्रा. १.२.९, नि. ११.४.

विवाह में इसका विनियोग है । जिस सोम को आनन्दोपभोग के लिए पीता ओसधि और बनाने के लिए पीसता है उसे भी वह सोम ही समझता है । परन्तु वस्तुतः वह सोम नहीं है वह सोम सोम है जिसे ब्राह्मण या यज्ञकर्त्ता जानते हैं । उस सोम को कोई यज्ञ–विमुख पान नहीं करता ।

(३) ओष अर्थात् कामना को धारण करने वाला पति

'त्वमस्मै धेह्योषधे'

अ. २.३६.८

(४) उष्णता को धारण करने वाली जीवन शक्ति

'प्राशं प्रतिपाशे जह्यरसान् कृण्वोषधे'

अ. २.२७.१–६

ओषधी – (१) रोग– निवारक ओषधि, (२) शत्रु दाहक वीर्य को धारण करने वाली सेना और प्रजा

'यस्तेरसः संभृत ओषधीषु'

वाज.सं. १९.३३, मै.सं ३.११.७, १५०.१८, का.सं. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.४, तै.ब्रा. २.६.३.१,

(३) तेजोमय वीर्य को धारण करने में समर्थ माता ।

'सौषधीरनुरुध्यसे'

ऋ. ८.४३.९, वाज.सं. १२.३६, तै.सं. ४.२.३.३, ११.३, मै.सं. २.७.१०:८८.६, का.सं. १६.१०, शा.ब्रा. ६.८.२.४, १२.४.४.४.

ओषधीनां पुरुषः – ओषधियों में पुरुषौषधि जैसे पुरोडाश –

'घृतं चापंपुरुषं चौषधीनाम्'
ऋ. १०.५१.८, नि. ८.२२, कौ.ब्रा. १.२.

ओषधीभ्यः – ओषधि आदि ब्रीहियों से। अग्नि या विद्युत की उत्पत्ति होने के प्रसंग में कहा गया है विद्युत् ओषधियों से उत्पन् होती है।
'त्वं वनेभ्यः त्वमोषधीभ्यः'
ऋ. २.१.१, वाज.सं. ११.२७, तै.सं. ४.१.२, ५, मै.सं. २.७.२, ७६.११, का.सं. १६.२, तै.आ. (आंध्र) १०.७६, नि. ६.१.

ओषधीमती – ओषधियों समृद्ध जल।
'अपस्त ओषधीमती ऋच्छन्तु
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात्'
अ. १९.१८.६

ओषधीसंशित – ओषधियों की शक्तियों में सुशिक्षित।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा
ओषधीसंशितः सोमतेजाः'
अ. १०.५.३२.

ओषन्ती – जलाती हुई।
'ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः'
अ. १२.५.५४

ओषु – (अ).आ + उ + सु = ओषु। अच्छी तरह से।
'ओषु त्वाववृतीमहि'
ऋ. १.१३८.४
अच्छी तरह से हम तुझे लाते हैं –सा.। हम आपके समीप वर्तमान रहें –दया.

ओष्ठौ – (१) दोनो ओठ (२) दोनों ओठों के समान मधुरभाषी स्त्री पुरुष।
'ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता'
ऋ. २.३९.६

ओह – (१) बीजादि का स्थापन, –दया. (२) वहन करना, चलाना, (३) अपने ऊपर भार धारण करना, (४) वाणी का वितर्क, ऊहापोह।
'गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः'
ऋ. १.१८०.५
गमनशील सवार के वहन करने या चलाने से या पृथ्वी के भार को अपने ऊपर धारण करने से (गोः ओहेण) या वाणी के तर्क वितर्क या ऊहापोह से ...।
(५) वह् (प्रापणार्थक धातु) + घञ् = ओह (छान्दस सम्प्रसारण)। अर्थ–प्रापणीय।
'अस्मा इदु प्रतवसे तुराय
प्रयो न हर्मिस्तोमं महिनाय।
ऋचीष मायाध्रिगव ओहम्
इन्द्राय ब्रह्माणि राततमा।'
ऋ. १.६१.१, आ. २०.३५.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.३.५, कौ.ब्रा. २६.१६, गो.ब्रा. २.५.१५, वै.सू. ३१.१९.
उस बलवान् फुर्तीले पूज्य प्रशंसनीय तथा अज्ञेय गति वाले जिसकी गतियों को शत्रु धारण न कर सके ऐसे इन्द्र या राजा के लिए (अस्मै तवसे तुराय मोहिनाय, ऋचीषमाय, अध्रिगवे इन्द्राय) तृप्तिकारक अन्न की तरह (प्रयो न) प्रापणीय उचित सत्कार (ओहमस्तम्) तथा दातव्य धनों को (राततमा ब्रह्माणि) देता हूँ (प्रहर्मि)।
(६) ओह – तर्क करना।
'ऋषिः को विप्रओहते'
ऋ. ८.३.१४, अ. २०.५०.२
(७) अति विचारणीय।
'ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.५.
(८) उखाड़ना।
'शफेन इव ओहते'
अ. २०.१३१.७

ओहत् – वितर्क युक्त।
'ओ देवानाम् ओहते विव्रयो हृदि'
ऋ. २.२३.१९

ओहन् (आह्य) – (१) सत्कर्म पथ का त्यागी, (२) गतिशील।
'अहिमोहोनम् अपं आशयानम्'
ऋ. ५.३०.६

औ

औक्ष – प्रोक्षण, अर्घ्य, पाद्य का जल (२) दूध का बना पदार्थ।
'अयमौक्षो अथोभगः'
अ. २.३६.७

औक्षगन्धि – (१) मांसी का एक भेद, गंधमांसी। यह विष नाशक है। (२) नासिका।
'औक्षगन्धिः प्रमन्दनी'

अ. ४.३७.३

औचथ्यः – (१) उपदेश करने योग्य उत्तम शिष्य, (२) प्रशंसितेषु भवः –दया. (३) उत्तम वचनों के परम प्रशंसनीय (४) गुरु द्वारा प्रवचन या उपदेश पाने के योग्य होने से औचथ्य जीव है ।

'दस्रा हयद् रेक्ण औचथ्यो वाम्'

ऋ. १.१५८.१

उपदेश करने योग्य उत्तम शिष्य (औचथ्यः) तुम दोनों के समीप जब विद्या प्राप्ति के लिए प्राप्त होता है ।

औच्चैः श्रवाः – उच्च कानों वाला घोड़ा ।

'औच्चैः श्रवसमब्रुवन्'

अ. २०.१२.१५, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.२.

और्णवाभ् – (१) मकड़ी का जाल

'अवाभिनद् दानुर्मौर्णवाभम्'

ऋ. २.११.१८

(२) उर्णां वहन्ति इति वर्णवाभः (भत्वम् छान्दसम्) ।

स्वार्थे अण् । (२) और्णवाभ नामक राजा (३) तेजस्वी दण्डधर राजा (उर्णायाः वस्त्रं आहननार्थ तोदो वा और्णम् तद् वहति वा । विशेषपरिच्छद –भूषितो दण्डधरो वा)

और्द्भिद – उद्भिद् + अण्:– और्द्भिद् । दुःखों और शत्रुओं को उखाड़ फेकने में समर्थ ।

'रायस्योष मौद्भिदम्'

ऋ. खि. १०.१२८.२, वाज.सं. ३४.५०, हि.गृ.सू. १.१०.६, आप.मं.पा. २.८.१.

औदुम्बरः – (१) उरुम्भरः । सबको उत्पन्न करने वाला या प्रजा को बहुत पुष्ट करने वाला अधिकारी (२) औदुम्बर नामक मणि या ताबीज

'मह्यमौदुम्बरो मणिः'

अ. १९.३१.६

औदुम्बरमणि – (१) उत्तम पुष्टि करने वाला, (२) पापों से ऊंचा उठाने वाला, (३) अन्नाध्यक्ष (४) विद्वान् नर शिरोमणि (५) औदुम्बर नामक मणि या यन्त्र । सोऽब्रवीत् अयं वाव समासर्वस्मात् पाम्मन उद् अभार्षीत्, तस्मात् उदुम्बर । उदुम्बर इति आचक्षते परोक्षम् ।

श.ब्रा. ७.५.१.२२.

सभी पापों से उद्धार करने से उदुम्भर है ।

'अन्नं वा ऊर्ग उदुम्बरः'

श.ब्रा. ३.२.१.३३

औपद्रष्ट्रय – सूक्ष्मता से सब पदार्थों को दिखाने वाले का कार्य ।

'औपद्रष्ट्रयायानु क्षत्तारम्'

वाज.सं. ३०.१३, वाज.सं. (का.) ३४.१३.

और्वभृगुवत् – (१) भूमि के भीतर सब पदार्थों को भर्जन या परिपाक करने वाले तेज से युक्त अग्नि (२) भूमि के पदार्थों का परिपाक करने की शक्ति से युक्तसूर्य ।

'और्वभृगुवत् शुचि मप्न वानवदा हवे'

ऋ. ८.१०२.४, साम. १.१८, तै.सं. ३.१.११.८, मै.सं. ४.११.२, १६६.१५, का.सं. ४०.१४.

औलाना – जीव ।

'अप्यौ लानं दिविदेवेषु धेहि'

ऋ. १०.९८.११

औशिजः – (१) उशिजः पुत्रः औशिजः (उशिज् ऋषि के पुत्र जो उशिज ऋषि के कक्ष से उत्पन्न होने के कारण कक्षीवान् कहलाए) ।

(२) उशिज् का अर्थ कमनीय ब्रह्म मानकर औशिज का अर्थ कमनीय परमात्मा का पुत्र, या भक्त होगा –दया. ।

'सोमानं स्वरणं कृणुहिब्रह्मणस्पते
कक्षीवन्तं य औशिजः'

ऋ. १.१८.१, साम. १.१३९, वाज.सं. ३.२८, तै.सं. १.५.६.४, मै.सं. १.५.४, ७०.१४, का.सं. ७.२, श.ब्रा. २.३.४.३५, तै.आ. १० .१.११, नि. ६.१०.

हे वेदपति परमेश्वर, मैं जो कमनीय परमात्मा का पुत्र हूँ (य औशिजः) उस मुझ मनुष्य को ऐश्वर्य सम्पदाक सथा तेजस्वी बनाएं । (कक्षीवन्तम् सोमानम् स्वरणं कृणुहि) । –दया. ।

हे ब्रह्मणस्पते इन्द्र ! मुझ सोम कर्त्ता को (सोमानम्) उस प्रकार यशस्वी ज्ञानवान् एवं प्रकाशवान् बना (स्वरणं कृणुहि) जैसे उशिज् ऋषि का पुत्र (औशिजः) अपने अनुष्ठानों से यशस्वी बना। –

(३) विद्याभिलाषी पुरुष (४) उशिज् अश्विनों का भी वाचक है ।

(५) विद्या के प्रकाश में संसार को विदित होने वाला, विद्वानों के पुत्र या शिष्य के समान ।

क

क – (न.) (१)सुख ।
'कमिति सुख नाम्'
नि. ३.६ ।
(२) कम् + ड = क , क्रम् + ड = क
(रेफ का लोप) । क्रः क्रमणो वा क्रमनो वा (कामियों के काम्य अर्थों में जो साधनभूत वह 'फ' है अथवा जो क्रमण का साधन या जो स्वयमेव क्रमण करे–प्रजापति) ।
क्रमनो वा (कामियों के काम्य अर्थों में जो साधनभूत वह 'क' है अथवा जो क्रमण का साधन या जो स्वयमेव क्रमण करे –प्रजापति
'प्रजापतिः अकामयत्'
(३) सुखकारक अन्न । यह अर्थ नपुंसक 'कम्' का है ।
'कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः'
ऋ. १०.५२.३, नि. ६.३५.
यह अग्नि अन्न भी ढोता है (कम् अपि ऊहे) जिसे देवता लोग खाते हैं–
यह अग्नि सुखकारी अन्न को भी प्राप्त कराता है । जिसे आर्य लोग (देवाः) प्राप्त करते हैं (समञ्जन्तिः)
(५) वृष्टि जल ।
'श्रियसे कं भानुभिः संमिमिक्षिरे'
ऋ. १.८७.६, तै.सं. २.१.११.२, ४.२.११.२, मै.सं. ४.११.२, १६७ .१५, का.सं. ८.१७,
सुख सेवन के लिए मरुत् वृष्टि जल बरसाना चाहते हैं – अथवा, विद्युत् आदि दीप्तिमान पदार्थों से (भानुभिः) सुख सेवन की कामना करते हैं (कम् समिमिक्षिरे) ।
प्रजापति के अर्थ में प्रयोग–
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम'
ऋ. १०.१२१.१, अ. ४.२.७, वाज.सं. १३.४,२३.१, २५.१०, तै.सं. ४.१.८.३, २.८.२, मै.सं. २.७.१५: ९६.१३, २.१३.२३: १६८.५, ३, १२.१६:१६५.१, का.सं. १६.१५, ४०.१, का.सं. (अश्व.) ५.११. नि शा.ब्रा. ७.४.१.१९, नि. १०.२३.
सृष्टि के पहले (अग्रे) हिरण्यगर्भ परमात्मा से उत्पन्न हुआ (हिरण्य गर्भः समवर्तत) जन्म लेने मात्र अद्वितीय वह (जातः एकः) स्थावर जंग मात्मक जगत् का पति अर्थात् पालक हुआ, स्वर्ग (पतिः आसीत्)। उसने अन्तरिक्ष (पृथिवीम्), स्वर्ग (द्याम्), तथा (उत्) इस पृथिवी को (इमाम्) धारण किया (दाधार) । उस प्रजापति देव को (कस्मै देवाय) हवि से हम परिचरित करते हैं (हविया विधेम) ।
(५) करोति इति कः (कर्त्ताप्रभु)

ककजाकृता – दुर्दशा से पीड़ित सेना ।
'विविधा ककजाकृता'
अ. ११.१०.२५

ककर – हेमन्त ऋतु में पाए जाने वाला एक पक्षी विशेष ।
'हेमन्ताय ककरान्'
वाज.सं. २४.२०, मै.सं. ३.१४.१, १७२.९, का.सं. (अश्व). १०.४ , आप.श्रौ.सू. २०.१४.५.

ककर्दु – काटना , दुःखबन्धन को काटना ।
'ककर्दवे वृषभो युक्त आसीत्'
ऋ. १०.१०२.६

कक्कट – निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करने वाला ।
'पिद्वोन्युङ्क कक्कटः'
वाज.सं. २४.३२

कक्ष – (१) गाह (विलोडन अर्थ में) + कस (संज्ञात्व प्रयोजक प्रत्यय) = क, क+ कृष = कक्ष = कक्ष (आदेश प्रत्ययोः से क् स का क्ष), (२) रव्या (प्रकथनार्थक धातु) का अनर्थक द्वित्व कर 'रव्या रव्या' बनाया और 'खरव्या'–करव्या–करव्य–कक्ष किया । अर्थ है–रव्याति इव अयम् कुछ कहता है अतः कक्ष कहलाया । (३) किम् अस्मिन् रव्यानम् (इस कांख में कौन सी रव्यापनीय बात है ? कुछ नहीं, क्योंकि यह अदर्शनीय है । अतः 'किंरव्यः' से करव्य और कक्ष हो गया (४) हिंसार्थक कष् + स (वृ तृ वदि हनि कपि कषिभ्यः सः) = कक्ष । अर्थ है – कांख जो नख से खुजलाया जाता है (नखैः कष्यते खेद शीलत्वात्) । (५) काशृ (दीप्त्यर्थक) + स = कश् + स = कक्ष
(१) घोड़े की पीठ जिस पर जीन कसा जाता है ।

'ग्रीकयां बद्धो अपि कक्ष आसनि'
(२) बाहु, (३) घोड़े के अगले पैर का मूल प्रदेश, (४) कांख, (५) एक कक्षा वाला सहयोगी ।
'पक्षेभिरपि कक्षेभिः
अत्राभि संरभामहे'
ऋ. १०.१३४.७
आधुनिक अर्थ –(१) छिपने का स्थान (२) अधोवस्त्र का अन्तिम छोर, (३) लता, (४) घास (५) कांस, (६) सूखी घास, (७) सूखे वृक्षों का जंगल (८) कांख, (९) राजा का अन्तः पुर, (१०) वन का मध्यभाग, (११) किसी वस्तु का किनारा, (१२) भैंस, (१३) द्वार फाटक मेले (१४) गीली जमीन ।

कक्ष्य – उत्तम कसा कसाया हुआ अश्व, (२) उत्तम पेटियों से सुशोभित ।
'श्येन आसामदितिः कक्ष्यः'
ऋ. ५.४४.११
(३) पर्वतों और नदियों के तटों का अध्यक्ष ।
'नमो वन्याय च कक्ष्याय च'
वाज.सं. १६.३४, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६, १२५.७, का.सं .१७.१४.
(४) अंगुलि ।
'दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यः'
ऋ. १०.९४.७, नि. ३.९.
लौकिक अर्थ – कक्ष्या गजबन्धन को कहते हैं ।
'दूष्या कक्ष्या वस्त्रा अपा
कक्ष्या वृहति कार्यास्यात्
काञ्च्यां मध्येभबन्धने ।
हर्म्यादीनां प्रकोष्ठे च'
– मेदिनी

कक्ष्यप्रा – कक्ष्य + प्रा । कक्ष का अर्त है कुक्षि या किसी पदार्थ का अवयव । 'कक्ष्यप्रा' का अर्थ (१) जिनकी कुक्षि भरी पूरी हो तथा जिनकी कुक्षि पर हृष्ट पुष्ट मांस हो । घोड़ों का विशेषण (२) आध्यात्मिक अर्थ है–सभी पदार्थ को अवयव अवयव में व्याप्त परमेश्वर ।
'युक्ष्वा हि केशिना हरी
वृषणा कक्ष्यप्रा'
ऋ. १.१०.३, वाज.सं. ८.३४, श.ब्रा. ४.५.३.१०, ऐ ऐश्वर्यवान् प्रकाशस्वरूप ! जिस प्रकार तेजस्वी राजा लम्बे बालों वाले, कोसों पर भरे पूरे हृष्ट पुष्ट दो घोड़ों को रथ में जोड़ता है उसी प्रकार तू प्रकाश युक्त किरण रूप केशों वाले, व्यापकशील, वृष्टि करने वाले , सब पदार्थों के अवयव अवयव में व्याप्त धन और ऋण दोनों विद्युत् बलों के निश्चय से जोड़ता है ।
(३) कोखों में पूर्ण शरीर ।
'सुधुरं कक्ष्यप्राम्'
ऋ. ८.३.२२.

कक्ष्या – (१) कक्ष्या रज्जुः अश्वस्य (घोड़े की जिन कसने की रस्सी ।
'अन्याकिल त्वां कक्ष्येव युक्तम्
परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्'
ऋ. १०.१०.१३, अ. १८.१.१५, नि. ६.२८,
(२) अंगुली, ।
'परिष्वजध्वं दश कक्ष्याभिः'
ऋ. १०.१०१.१०
सोम रस को दश अंगुलियों से ग्रहण करो या दश विभागो सें युक्त सोम को ग्रहण करो ।
(३) विभाग । कक्ष + यत् = कक्ष्य, कक्ष्य + टाप् = कक्ष्या । 'कक्ष', जो कांख के अगल बगल लगायी जाती है उसे कक्ष्या कहते हैं (कक्षं सेवते) ।
अथवा –गाह (विलोडन अर्थ में) + कस = गाह्स = गह्स = कक्ष । अथवा – कक्ष्याः प्रकाशयन्ति कर्माणि (अनुष्ठान से अथवा फल से अंगुलियां ही कर्मों को प्रकट करती हैं) । कक्षे भवः कक्ष्याः (कांख में होने वाली कक्ष्या हैं) । अंगुलियां भी कांख से ही सम्बन्ध रखती हैं । कक्ष नित्य क्रोध से प्रकाशित होने के कारण प्रकाश्य है । अथवा 'कक्ष्या' रस्सी का नाम है । रस्सी बनाने में साधनभूत अंगुलियाँ भी कक्ष्या ही हुईं ।
(३) विद्या प्रदेशेषु भवाः बोधाः (कक्षाओं में हुआ ज्ञान) दया. ।

कक्षीवत् – (१) अश्व के समान कसे कसाए, (२) सदा कटिबद्ध, (३) कक्षा में यज्ञोपवीत धारण करने वाला (४) अपनी कक्षा में उत्तम रहने वाला (५) प्रशस्त ।

'कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम्'
ऋ. १.११६.७,
(६) कक्षीवान् नामक प्राण (७) उशिज् नामक ऋषि के कक्ष (कोख) से उत्पन्न पुत्र (उशिज्) नाम ऋषेः कक्षे (उत्पन्नः) कक्ष से कक्षीवान नाम पड़ा । यह शब्द निपातन से सिद्ध है । -सा.
(८) उद्योगी पुरुष । कक्ष्याभ्याम् अंगुलिभ्याम् जायन्त इति कक्ष्याः क्रियाः ता. प्रशस्ताः विद्यन्तेयस्य स कक्ष्यावान् (जिससे प्रशस्त क्रियाएं हो अर्थात् उद्योगी)कक्ष्यावान् से कक्षीवत् बना है- दया. । (९) कक्ष (बगलों) से युक्त पुरुष ।
'कक्षीवन्तं य औशिजः'
ऋ. १.१८.१, साम. १.१३९, वाज.सं ३.२८, तै.सं. १.५.६.४, मै.सं. १.५.४, ७०.१४, का.सं. ७.२, श.ब्रा. २.३.४.३५, तै.आ. १०.१.११, नि. ६.१०.
(१०) कोखों में विचरने वाला प्राण ।
'स कक्षीवन्तं रेजयत्'
ऋ. १०.६१.१६

कक्षीवान् - (१) कक्षं सेवते -यास्क (२) एक ऋषि, (३) प्राण रश्मियों को अपने वश में करने वाला ।
'कण्वः कक्षीवान् पुरुनिधो अगस्त्यः'
अ. १८.३.१५
(४) शासन शक्ति का स्वामी (५) व्यापक ज्ञान और शासन वाला आत्मा, ।
'यद् वां कक्षीवान्'
ऋ. ८.९.१०, अ. २०.१४०.५
(६) कक्ष + वतुप् । शिल्पविद्यावान् आंगुलि क्रिया में कुशल ।

कङ्क - (१) गृध्र, (२) सुखाभिलाषी पुरुष ।
'कङ्काः सुपर्णा अनुयन्त्वेनान्'
साम. २.१२१४
(३) काक ।
'तत् कंकपर्वणो विषम्'
अ. ७.५६.१

कंकपर्वा - काक के समान पोरुओं वाला उड़ाकू सांप ।

ककुदमान् - ककुद् + मतुप् । अर्थ-ककुद् वाला, श्रेष्ठ ।
'अरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ।'
ऋ. १०.१०२.७

ककुन्मान् - ककुद् + मतुप् । सर्व श्रेष्ठ पद और सामर्थ्य धारण करने वाला ।
'देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्मान् वाजसास्तेनायं वाजं सेत्'
वाज.सं. ९.६, वाज.सं. (काण्व) १०.२.२, श.ब्रा. ५.१.४.६, का श्रौ.सू. १४.३.४.

ककुप् - (१) क + कुभ् + क्विप् = ककुप् । प्रजा का सुखवर्धक उपाय, (२) प्राण (३) एक वैदिक छन्द ।
'ककुप् छन्दः'
वाज.सं. १५.४

ककुप् छन्द - (१) २८ अक्षरों वाला ककुभ नामक वैदक छन्द (२) २८ वर्षों तक ब्रह्मचर्य पालक, (३) प्राण के समान श्रेष्ठ मुख्य नेता ।
'ककुप् छन्द इहेन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.२१, मै.सं. ३.११.११, १५८.१७, का.सं. ३४.१०, तै.ब्रा. १.६.१८.४.

ककुभ् - (१) कुभ् (कौटिल्य अर्थ में) + क्विप् = ककुभ् (कु का द्वित्व हुआ है, (२) उब्ज, (न्यक् या आर्जव भाव में) + क्विप् = ककुभ् (पृषोदरादि के जैसा), (३) कुज् + कुज् = ककुज् = ककुभ् (४) उब्ज - ज् + उन् - कुभ्-कुकुभ् (५) कुज् कुब्ज, उब्ज ककुभ (५) क्षीरस्वामी के मत से ककुभ् (विस्तार करना) + क्विप् = ककुभ् हुआ है । अर्थ है-कुकुभ्नाति । अर्थ - (१) एक छन्द का नाम जो उष्णिक् नामक छन्द में जगती छन्द का एक चरण जोड़कर बनता है और मध्य में चोटी अर्थात् ककुभ् जैसा बन जाता है । इस छन्द के पादों में मध्यवर्ती पाद अधिक अक्षरों वाला होने के कारण ककुभ् की तरह उठा रहता है, (२) पीठ में उठा हुआ भाग- कूबड़ा (पृष्ठे समुन्नतः प्रदेशः) (३) दिशा ।
मेदिनीकोष - ककुप् स्त्रियां प्रवेणी दिक्
'शोभासु चम्बक स्त्रजि ।'

ककुभ - (१) कुभि (आच्छादन अर्थ में) से बना । अर्थ (१) कुत्सित आच्छादनशील, (२) कुत्सित निन्द्य वस्त्र पहनने वाला, बदपोशाक ।
'कुकुभाः करुमाः स्त्रिमाः'

ऋ. ८.४.६६.

ककुत्सल – कन्धे का भाग ।
'ककुत्सलमिव जामयः'
अ. १८.४.६६

ककुह – (पु.) (१) उत्तम बैल या अश्व ।
'वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम्'
ऋ. ४.४४.२, अ. २०.१४३. २
(२) विद्वान् पुरुष, (३) वृद्ध पुरुष ।
'वच्यन्ते वां ककुहासो
जूर्णायामधि विष्टपि'
ऋ. १.४६.३, साम. २.१०८०
वृद्धावस्था में (जूर्णायाम् विष्टिपि अधि) वर्तमान बड़े बूढ़े आदमी (ककुहासः) तुम दोनों को (वाम्) सदा उपदेश करते रहे (वच्यन्ते)।
(४) श्रेष्ठ ।
'उग्रो वां ककुहो यथिः'
ऋ. ५.७३.७

कच्छ – (१) क + छद् + ड = कच्छ । 'अन्येष्वपि दृश्यते' पा. ३.२.१०१. से ड प्रत्यय (२) खञ्चः, खच्छदः । अर्थ-कटाह-कड़ाह । कड़ाह आकाश को आच्छादित करता है (खम् आकाशम् छादयति) । 'खच्चर' से 'खञ्च' और 'खच्छ' से 'कच्छ' हुआ ।
(२) नदी का तट । कम् उदकम् तेन छादयते (उससे जल छाया जाता है अतः वह कच्छ हुआ । (३) अनूप देश, (४) कच्छा जो कमर चारों ओर लपेटा जाता है । (५) कछुए का मुखसंपुट । आधुनिक अर्थ –(१) तट, सीमाप्रान्त चाहे जल के निकट या दूर हो, (३) ओदर भू भाग, (४) घंघरी का किनारा, (५) नाव का एक भाग, (६) झील ।

कच्छप – कच्छं पाति, कच्छेन पाति, कच्छं पिबति इति कच्छपः (अपने मुख संपुट को कड़ाह में छिपाकर रक्षा करता है । अथवा कड़ाह के जैसे अपनी पीठी से अपनी रक्षा करता है या मुख संपुट से पीता है । अर्थ है-कछुआ । कच्छ = संपुट । कच्छरूपी संपुट से जो रक्षा करे वह कच्छप है । कच्छ की व्युत्पत्ति के लिए ।

कश्चित् – कोई
'यद्वोवयं चकृमा कच्चिदागः'
ऋ. २.२७.१४.

कटुक – (१) कटु अर्थात् अजभिलषित परिणाम उत्पन्न करने वाला शरीर
'तृष्टमेतत् कटुकमेतत्'
ऋ. १०.८५.३४, अ. १४.१.२९.
(२) रजोधर्म के समय विषम कष्ट उत्पन्न करने रजस्वला का शरीर
'तृष्टमेतत् कटुकम्'
ऋ. १०.८५.३४. वाज.सं. १४.१.२९.

कण – कण् (छोटा होना, अणुभाव) + अच् = कण । अर्थ – (१) कन (२) अतिसूक्ष्म, (३) अन्न का अंश (४) काना, (५) काक ।
कण शब्द अपूर्ण दर्शन, अणुदर्शन- जो पूरा-पूरा दीख न पड़े या जो पूरा पूरा देख न सके – इस अर्थ में आया है ।
मेदिनी कोश में –
'कणोऽतिसूक्ष्मे धान्यांशे
कणः काकैक चक्षुषोः ।'

कणति – कण (कम होना, अणुभाव में) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है-कम होता है । वस्तुतः कणति से ही 'कम होता है' बिगड़ा है ।

कण्टक – (१) कंघी
'कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः'
अ. १४.२.६८, कौ.सू. ७६.५.
कण्ट (गत्यर्थक धातु) + ण्वुल् = कण्टक । यहां कण्ट धातु हिंसा अर्थ में भी प्रयुक्त है । कांटा हिंसित करता है अथवा कांटा उद्गततम होता है-पेड़ या पौधे से निकला हुआ,
(२) कन्तपः (कम् सुखम् तपति दहति) । अर्थात् यह सुख को जलाता है अतः कण्टक है ।
(३) कृत् (काटना) । + ण्वुल = कण्टक (ऋ का अ और त काटे) । कण्टकः कन्तपा वा कृन्तत वा
कण्टतैर्वास्यात् गति कर्मणः – निः
कण्टति पश्यति परान् स्कन्दस्वामी
अंग्रेजी का Cut धातु कण्ट का ही बिगड़ा रुप है ।

कण्टकी – हिंसा करने वाली नीति ।

कण्टकीकारी – कण्टकी अर्थात् हिंसा करने वाली नीति को अपने व्यवहार में लाने वाली सेना ।
'यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्'

वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.

कण्व – (१) जीवन को मिटा देने वाला रोग ।
'गर्भादं कण्वं नाशय'
(२) कण (निमीलन अर्थ में) + क्वन् = कण्व (ब्राह्मेन्द्रिय को निमीलित करके ध्यान करने वाला योगी, (३) कण्व नामक एक ऋषि – (४) मेधावी विद्वान् –(दया.) ।
'कण्वा इव भृगवः सूर्या इव'
ऋ. ८.३.१६, अ. २०.१०.२, ५९.२, साम. २.७.१३, मै.सं. १.३.३९. ४६.७, आप.श्रौ.सू. १३.२१.३.
'कण्वेषुसुसचा पिब'
ऋ. ८.४.३, साम. १.२५२,१.१०७१
हे इन्द्र ! मेधावियों के साथ सोम रस पी
कण्व ऋषि के अर्थ में –
'महक्षोणस्य अश्विना कण्वाय'
ऋ. १.११७.८, नि. ६.६.
हे अश्विनी कुमारो ! क्षीण दृष्टि के कारण एक ही स्थान पर रहने वाले कण्व ऋषि को तेज या प्रकाश दिया ।
हे राजा या राजपुरुषो ! उत्तम स्थान के दायक मेधा विद्वान् के लिए तुम दोनों लक्ष्मी हो । –(दया.)
(४) ज्ञान का उपदेश करने वाला ।
'कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः'
अ. १८.३.१५
(५) कणकणकर खाने वाले मुर्गा आदि पक्षी ।

कण्वजम्भनी – (१) पाप और पाप से उत्पन्न होने वाले कुष्ट आदि रोगों को नाश करने वाली पृश्निपर्णी नामक औषधि ।
'उग्राहि कण्व जम्भनी'
अ. २.२५.१

कण्वमित्रः – (१) स्तुति कर्त्ता जनों के परममित्र, (२) कण्वो का मित्र ।
'स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखा'
ऋ. १०.११५.५

कण्ववत् – कण्व + वतुप् । कण कण् कर खाने वाला मुर्गा आदि पक्षी के जैसा ।
'कण्ववज् जमदग्निवत्'
अ .२.३२.३, ५.२३.१०.

कण्ववान् – कण्वो या विद्वान् पुरुषों से युक्त जन ।
'आतू षिञ्च कण्वमन्तम्'
ऋ. ८.२.२२.

कणूकयन्ती – रोती बिलखती दुःखी प्रजा ।
'तानः कणूकयन्ती नृमेधः'
ऋ. १०.१३२.७.

कणेहतः – कणे शब्दः अभिलाषा तिशये (कणे शब्द अभिलाषातिशय का द्योतक है) । तत्प्रती घातंयावत् अपिवत् अभिलाषातिशय प्रतीघात होने तक पान किया– जब तक तृप्त नहीं हुआ पीता रहा ।
पाणिनि ने भी कहा है–
'कणे मनसी श्रद्धाप्रतीघाते'
पा. १.४.६६

कणेहतः – आकण धातः । यावत् कणे कणे हन्यते तावत् (जब तक इच्छा पूर्ण न हो जाय तब तक) ।

कत् – (१) कितना, कैसे, किस प्रकार ।
'कदित्वषन्त सूरयः'
ऋ. ८.९४.७
(२) सुखकर । कम् (सुख) के म् का तो हो गया है । (३) कब ।
'कदराये चिकितुषे भगाय'
ऋ. ५.४१.११
पुनः–
'कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ'
ऋ. ४.२३.५
'कदु द्युम्न मिन्द्र त्वावतः'
ऋ. १०.२९.४, अ. २०.७६.४.

कत्पयः – सुखकरं पयः यस्य तत् (जिसका जल सुखकर हो) । कम् + पयस् = कल्पयः। (म् का त् और पयस् के स् का लोप)।
अर्थ है– (१) सुखखर जल वाला मेघ ।
'त्यंचिदित्था कत्पयं शयानम्'
ऋ. ५.३२.६, नि. ६.३.
इस प्रकार से या इस अन्तरिक्ष में (इत्था) सुखकर जल वाले मेघ में सोने वाले (कत्पयं शयानम्) वृत्रासुर को या मेघ को मारा –सा. । उस सुखकारी जल देने वाले मेघ को (त्यं चित् कत्पयम्) जो अन्तरिक्ष में पड़ा हुआ है (इत्था शयानम्) जैसे सूर्य छिन्न भिन्न करता है–दया.

कतयः – (१) कौन सबसे श्रेष्ठ (२) परम का अर्थात् सुख रूप ।

'को अर्क इन्द्र कतमः स होता'
ऋ. ६.२१.४.

कतर – (पु.) दो में कौन ।
'यज्ञन्योः कतरो नौ विवेद'
ऋ. १०.८८.१७, नि. ७.३०.
हम दोनों यज्ञ के नेताओं में कौन यज्ञकर्म अधिक जानता है ।

कतरा – दो में से कौन ।
'कतरापूर्वा कतरा परायोः'
ऋ. १.१८५.१, ऐ.ब्रा. ५.१३.१०, कौ.ब्रा. २३.८. ऐ.ब्रा. १.५.३.४, नि. ३.२२.
द्यौ और पृथिवी इन दोनों में कौन पहले और कौन पीछे हुआ ।

कतिधा – कितने ही रूपों में दिखाई देन वाला परमेश्वर ।
'द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे'
ऋ. १.३१.२.

क्रतुविदा – यज्ञ आदि उत्तम कर्म और श्रेष्ठ ज्ञान का लाभ करने वाले स्त्री या आश्व रूप ।
'दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु'
ऋ. २.३९.२.

कथा – (१) कथमपि, किसी प्रकार ।
'मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः'
अ. ८.१.१६.
(२) कैसे किस प्रकार से ।
'कथादाशेमाग्नये कास्मै'
ऋ. १.७७.१.
(३) क्यों, किस प्रयोजन से ।
'कथाजाते कवय को विवेद'
ऋ. १.१८५.१, नि. ३.२२.
हे अतीन्द्रियज्ञ कवियो, द्यौ और पृथिवी ये दोनों कैसे उत्पन्न हुए आप बतावें । यह रहस्य भला कौन जान सका ।

कथो – कथा + उ = कथो । किस प्रकार ।
'कथो नु ते परिचाराणि विद्वान्'
ऋ. ५.२९.१३, आश्व.श्रौ.सू. ९.५.१६.

कद् – कब ।
'कद्वाहो अर्वाक् उपमामनीषा'
ऋ. १०.२९.३, अ. २०.७६.३.
'कदित्था नृं पात्रं देवयतां
श्रवद् गिरो अंगिरसां तुरण्यन्'
ऋ. १.१२१.१.
सब मनुष्यो और नायकों का पालक, सत्कार योग्य राजा या प्राणों का पालक जितेन्द्रिय तथा सब मनुष्यो का आश्रय होकर (नृन् पात्रम्) उत्सुक होकर (तुरण्यन्) उत्तम राजा को हृदय से चाहने वाले (देवयताम्) तेजस्वी विद्वानों की वाणियों और उपदेशों को (अंगिरसां गिरः) इस प्रकार से (इत्था) कब (कद्) श्रवण करें ।

कद्रः – कत् + द्रा + अङ् = कद्रं । कद्र + टाप् = कद्रा श्वभिः सह कद्रा (कुत्तों की तरह कुत्सित गति) । विविधाः श्वद्राः यस्य स विश्वकद्रः (जिसकी कुत्ते की तरह विविध गतियाँ हों वह विश्व कद्रा है) । अथवा कुत्ते के समान जीवन यापन करने वाले पुरुष (श्वजीवनः पुरुषः) । अथवा 'विश्वकं द्रवति' अथवा 'विश्वं कन्दति' । 'द्रु' गत्यर्थक और 'कन्द आह्वानार्थक है ।
कत् द्राति इति कद्र (जिस की गति कुत्सित से भी कुत्सित है वह कद्र है) । कुत्सित अर्थ में 'किम्' का 'कत्' हो जाता है । 'द्रा' धातु भी कुत्सित अर्थ में आता है (द्राति इति गति कुत्सना) । यह कुत्सित और कुत्सिततर दोनों गति है जिससे वह विश्वकद्रा है । कुत्ते का ही दूसरा नाम विश्वकद्र है । वि और कद्र कुत्ते की जातियों के नाम हैं । कद्र से विगड़ कर कुत्ता हुआ है । जो पाद्यदिविकल मृगयानुगत श्वान को आकर्षित करता है वह विश्वकद्राकर्ष कहा जाता है ।
आधुनिक अर्थ – (१) खल, (२) विश्व कद्रु, (३) श्वान (४) आखेट का श्वान,
'विश्वकद्रुः त्रिषु खले
ध्वानाखेटशुनोः पुमान्' –मेदिनीकोश
श्व का पर्यायवाची तथा खल अर्थ में विश्वकद्रु शब्द आता है ।

कद्ध – (१) कत् ह = कद्ध । कहीं भी क्व नु, कत् ह (कहीं पर) कतहूँ ।
'जीवान्नो अभिधेतन
आदित्यासः पुराहथात्
कद्धस्थ हवनश्रुतः'
ऋ. ८.६७.५, नि. ६.२७.
हे आदित्यो ! चाहे कहीं भी हो हमारी पुकार

सुन हमारे प्राणों की रक्षा के लिए दौड़ पड़ो ।
'कद्ध' का ही विकृत रूप कहीं किम् + ह = कद्ध (किम् का कत् हुआ है) ।

कदा – (अ). कब । किम् शब्द से बना है ।

कद्रानि – कुत्सित गति से चलता है ।

कद्रीची – (१) न जाने कहां से आने और कहां जाने वाली ब्रह्म शक्ति ।
'सा कद्रीची कंस्विदर्धं परागात्'
ऋ. १.१६४.१७, अ. ९.९.१७, १३.१.४१.
(२) अचाक्षुष्य गमना
(३) अदृश्य स्थान से न जाने कहां से आती हुई उषा
(४) अदृश्य परमेश्वरी शक्ति, ।

कदु – (१) कत् + उ = कदु । कभी
'कदु प्रेष्ठाविषां रयीणाम्'
ऋ. १.१८१.१.
'कदूमहीरधृष्टा अस्य तविषीः'
ऋ. ८.६६.१०.
कब इस इन्द्र के बल महान् और अधृष्ट हैं ।
(१)सुख कारक ।
सुख के लिए प्रिय स्थान के लिए हम उस नीति को समझें ।

कद्रुद्रः – दुष्टों को सताने वाला ।
'कद् रुद्राय प्रचेतसे
मीढुष्टमाय तव्यसे'
ऋ. १.४३.१, तै.आ. १०.१७.१, महा. ना. उप. १३.३.

कद्रू – (१) पृथ्वी ।
(२) कवते उपदिशति असौ कद्रू
(उपदेष्टा विद्वान्)
(३) ब्रह्म विद्या ।
'अपिबत् कद्रुवं सुतम्'
ऋ. ८.४५.२६.साम. १.१३१.

कधप्रियः – सत्य कथाओं से प्रीति रखने वाला ।
'कद्ध नूनं कधप्रियः'
ऋ. १.३८.१, ८.७.३१, कौ.ब्रा. २६.१३, शां.श्रौ.सू. १०.१०.८.

कधप्रिया –जिस समय कथा प्रिय हो –रात्रि बेला, उषा (२) स्तुति एवं ज्ञान कथा से प्रिय ।
'कस्त उषः कधप्रिये
भुजे मर्तो अमर्त्ये
कं नक्षसे विभावरि ।'
ऋ. १.३०.२०
हे पाप नाशिनी उषा या ज्योतिर्मयी परमेश्वरी शक्ति ! हे स्तुति ज्ञानकथा से अतिप्रिय ! हे कभी न मरने वाली अविनाशिनी, नित्ये तेरे परमानन्द के भोग या सुख को प्राप्त करने के लिए (भुजे) कौन मरण धर्मा प्राणी समर्थ है ? हे विशेष तेजोयुक्त तेजस्विनि ! तू किस मनुष्य को प्राप्त हो सकती है । तू सुखमय परमेश्वर को ही प्राप्त है (कम्)

कन् – यह धातु कान्ति कर्म में पठित है । इसी धातु से कन्या शब्द बना है ।

कनक्नक – धतूरे का विष ।
'कान्दाविषं कनक्नकम्'
अ. १०.४.२२.

कन्यला – कन्या, नवयुवति ।
'वृषण्यन्तीव कन्यला'
अ. ५.५.३.
'उशतीः कन्यला इमाः'
अ. १४.२.५२.

कन्या – (१) कम (कान्ति अर्थ में) + यक् + टाप् = कन्या (निपातन से सिद्ध) । अर्थ है –
(१) कमनीया, कुमारी ।
(२) कमनेन आनीयत इति वा (पति द्वारा अत्यन्त अभिलाषा से लायी जाती हैं) ।
(३) इयं नेतव्याइति वा (पिता सदा इसी चिन्ता में रहता है कि कहां किससे इसका विवाह किया जाय) । और किम् + नी + यक् + टाप् = कन्या । यह शब्द नाम और धातु दोनों से बन सकता है ।
(४) कन् + यक् + टाप् = कन्या । कन् धातु भी कान्ति अर्थ में प्रयुक्त होता है ।
'मर्यायेव कन्या शश्वे चैते'
ऋ. ३.३३.१०, नि. २.२७.

कनिक्रदत् – पुनः पुनः शब्दायमान । 'दाधर्ति दधर्ति' पा. ७.४.६५, से निपातन हुआ है । क्रन्द + शतृ (बार बार बोलता हुआ) ।
'कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाणः
इयर्ति वाचमरितेव नावम्'
ऋ. २.४२.१, आश्व.गृ.सू. ३.१०.९.

कनिष्कन् – (१) कूदता हुआ, (२) अन्यों को विद्या

प्रदान करता हुआ ।
'मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्'
ऋ. ७.१०३.४

कनिष्ठिका –(१) शरीर की छोटी से छोटी गाड़ी, (२) रिश्ते में छोटी स्त्रियाँ ।
'कनिष्ठिका च तिष्ठति'
अ. १.१७.२

कनी – (१) कन्या ।
'अनुगावोऽनुभगः कनीनाम्'
ऋ. १.१६३.८, वाज.सं. २९.१९, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व). ६.३.
(२) स्त्री, (३) कन्यका, (३) शालभञ्जिका (कठपुतली) । कम् + मक् + टाप् = कन्या = कनी (य का ई सम्प्रारण से तथा बाहुलक नियम से)
'जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्'
ऋ. १.६६.८, नि. १०.२१.
अग्नि कन्याओं का जार तथा स्त्रियों का पालक है ।
(५) दीप्ति करने वाली किरण, (६) दीप्ति वाला तेज या प्रकाश ।
'स विद्वां अपगोहं कनीनाम्'
ऋ. २.१५.७.

कनीनः – (१) कान्तियुक्त सूर्य, (२) तेजस्वी कनिष्ठ शिष्य ।
'भिन त्कनीन ओदनम्'
ऋ. ८.६९.१४, अ. २०.९२. ११.
(३) कान्तिमान् (४) सुन्दर कमनीय ।
'अंय कनीन ऋतुपा अवेदि'
ऋ. १०.९९.१०.

कनीनकः – (१) आंख की पुतली ।
'वृत्रस्यासि कनीनकः'
वाज.सं. ४.३, मै.सं. १.२.१, १०.४, श.ब्रा. ३.१.३.१५,
(२) उज्ज्वल बालक ।
'जनिष्ट योषा पतयत् कनीनकः'
ऋ. १०.४०.९

कनीनिका, कनीनका – कम् + यक् + टाप् = कन्या । कमनेन अभिलाषेण इयम् आनीयते (विवाह करने वाला लालसा से कन्या लाता है) । अर्थ कन्या (२) कठपुतली ।
'प्रतेबभ्रू विचक्षणा
शंसामि गोषणोनपात्
माभ्यां गाः अनुशिश्रिथः ।'
ऋ. ४.३२.२२.
हे दूरदर्शी तथा वेदवाणी को भजने वाला राजन् (विचक्षण गोषणः), मै तेरी विद्याधर्म को धारण करने वाली तथा अविद्या तथा अधर्म को हरने वाली अध्यापिका तथा उपदेशिका की प्रार्थना करता हूँ (ते बभ्रू प्रशंसामि), इनकी शिक्षा द्वारा राष्ट्र के धर्म से न पतित करने वाले राजन (आभ्यां नपात्) तू धर्म को शिथिल न कर ।
पुनः–
'कनीनकेव विद्रधे
नवे द्रुपदे अर्भके
बभ्रूयामेषु शोभते ।'
ऋ. ४.३२.२३
हे इन्द्र ! बीले रंग की घोड़ियां (बभ्रू) यज्ञों में (यामेषु) छिद्र की हुई पादुका में (विद्रधे द्रुपदे) नवजात छोटी छोटी (नवे अर्भके) कठपुतलियों की तरह (कनीनकेव) शोभती हैं (शोभेते) ।
अन्य अर्थ – यह अध्यापिका तथा उपदेशिका (बभ्रू) गढ़ी हुई नवीन पादुकाओं पर (विद्रधे नये द्रुपदे) छोटी लड़कियों की तरह (अर्भके कनीनके इव) यम नियमों पर आरुढ़ हो (यामेषु) शोभती है (शोभेते) ।
(३) वस्तु प्रकाश कारिणी शक्ति ।
'तस्य हासि कनीनिका'
अ. ४.२०.३
(४)आंख की पुतली ।
'विद्युतं कनीनकाम्याम्'
वाज.सं. २५.१,२, मै.सं. ३.१५.१, १७७.१०, ३.१५.२, १७८.५, का.सं. (अश्व). १३.२.

कनीयः – अल्प से भी अल्प ।
'कनीयः कृणुते स्वम्
अ. १२.४.६
(२) स्वल्प ।
'भूयसा वस्नम् अचरत् कनीयः'
ऋ. ४.२४.९
अल्प + ईयस् = कनीयस् (अल्प का कन आदेश) । अन्य से छोटा

कपन – (१) कपन, (२) क्रिमि, (३) घुण (घुन) ।

कप् + युच् = कपन (यु का अन् और नुम् का लोप) । कपनाः अल्प सत्वाः (घुन एक कीड़ा है जो काठ में घुसकर काठ खाता है और अति अल्प सत्व वाला होता है) (२) क्रिमि-ये गति शील होते हैं ।

'अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अधस्मानो अरमतिं सजोषसः
चक्षुरिव यन्तमनुनेषथा सुगम्'

ऋ. ५.५४.६

हे वृष्टि के विधाता मरुतो (वेधसः) ! आप लोगों का गण या बल (शर्ध) शोभता है (अभ्राजि) जिस गण या बल से (यत्) जलयुक्त मेघ को (अर्णसं वृक्षम्) निरुदक करते हो (मोषथा) जैसे घुन (कपना इव) वृक्ष को चाट जाता है और (अधस्मा) हे हममें समग्र स्नेह रखने वालो (सजोषसः) आप (यूयम्) इस लोक से उस लोक में जाते हुए पर्याप्त मति वाले यजमान को (यन्तम् अरमतिम्) शोभन मार्ग बताओ (सुगम् अनुनेषथ) जैसे आंखें राह बतलाने में अनुग्रह करती हैं (चक्षुः इव)

अन्य अर्थ - हे विद्वान् मनुष्यो (मरुतः) ! तुम्हारा उत्साह (शर्धः) प्रदीप्त हो रहा है (अभ्राजि) जोकि तुम (यत्) जैसे बींधने वाले छोटे छोटे कृमि (वेधसः कपनाः) वृक्ष को धीरे धीरे हर लेते हैं (वृक्षम् इव) एवं शब्द सागर वेद को (अर्णसम्) धीरे धीरे ग्रहण कर लेते हो (मोषथ) और इस प्रकार वेदाध्ययन के पश्चात् सब के साथ मित्रवत (सजोषसः) विद्या के लिए प्राप्त हुए हमारे उद्योगीपुत्रों को (नः यन्तम् अरमतिम्) चक्षु के समान दर्शक ज्ञान कराओ ।

कपना - (१) वायुगति, (२) कृमिगण ।

'मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः'

ऋ. ५.५४.६, नि. ६.४.

कपर्दिनः - कपर्द + इति = कपर्दिन । बहुवचन में कपर्दिनः । कपर्द का अर्थ जटाजूट या कौड़ी है अतः कपर्दिन् का अर्थ (१) जटाजूट वाला और (२) धनाढ्य है।

'श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनः'

ऋ. ७.८३.८

(३) मानसूचक शिखा धारण करने वाला, (४) प्रमुख ।

'रथीतमं कपर्दिनम्'

ऋ. ६.५५.२

(४) क + पर्दी । सुख से पूर्ण करने वाला प्रभु ।

'शुनमष्ट्रा व्यचरत् कपर्दी'

ऋ. १०.१०२.८

(५) सिर पर कपर्द जटाजूट धारण करने वाला - रुद्र ।

(६) सिर पर शुभ फुनगी या मौर को धारण करने वाला वीर पुरुष ।

'विज्यं धनुः कपर्दिनः'

वाज.सं. १६.१०, तै.सं. ४.५.१.४, मै.सं. २.९.२:१२२.३, का.सं . १७.११.

(७) कौड़ी, सीप, शंख आदि का अध्यक्ष ।

'नमः कपर्दिने च पुलस्तये च'

वाज.सं. १६.४३, वाज.सं. (का.) १७.७.२, तै.सं. ४.५.९.१.

रुद्र के अर्थ में ।

'इमां रुद्राय तवसे कपर्दिने
क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः'

ऋ. १.११४.१, वाज.सं. १६.४८, मै.सं. २.९.९:१२७.९. का.सं. १७.१६, शां.गृ.सू. ५.६.२.

कपाल - खोपड़ी ।

'ककृकाटिकां प्रथमोयः कपालम्'

अ. १०.२.८

कपि - (१) कप् (कांपना) + इन् । कम्पनवान् -अग्नि, (२) क + पा +इ = कपि । कम् उदकं शरीरगतं रसं पिवति इति कपिः (शरीरगत रस को पीने वाला)-(३) कस्य प्रजापतेः हिरण्यगर्भस्य पालक परमात्मा ।

'कपि र्बभस्ति तेजनम्'

अ. ६.४९.१ का.सं. ३५.१४, तै.आ. ६.१०.१, आप.श्रौ.सू. १४.२९.३.

(४) विषय वेगों से विचलित आत्मा (५) वानर के समान अति चंचल स्वभाव वाला, (६) वानर

'प्रिया तष्टानि मे कपिः'

ऋ. १०.८६.५, अ. २०.१२६.५

कपिञ्जलः - (१) कपिः इव जीर्णः (वानर के जैसा जीर्ण (२) कपिः इव जवते (वानर के समान जो चलता है), कपि इव ईषत् पिंगलः (वानर के

समान कुछ कुछ पिंगल वर्ण का) (४) कमनीयं शब्दं पिञ्जयति (जो मधुर बोली बोलता है),
कपि + गृ + अप = कपिञ्जल, कुपिङ्गलः = कपिञ्जलः कपि + जू (चलना) + डल् = कपिञ्जल ।
(५) कपिञ्जल नामक एक पक्षी, (६) कपिञ्जल इन्द्र, (७) पक्षी तुल्य आत्मदर्शी संन्यासी -(दया.)
आधुनिक अर्थ - चातक, तीतर

कपिल - (१) सबको कम्पित करने वाला सबका संचालक-जीव ।
'दशानामेकं कपिलं समानाम्'
ऋ. १०.२७.१६

कपूय - केपयः कपूयाः भवन्ति (केपि ही कपूय है) पापी प्रायश्चित द्वारा कुत्सित कर्म को पवित्र बनाता है। (पापकारी प्रायश्चित्तेन कुत्सित कर्म पुनाति) वह कर्म दुष्पूय होता है, (दुष्पूयं दूष्पावं दुःशोधं भवति) ऐसे कर्म के लिए प्रायश्चित करना ही 'कपूय' है ।
कु + पु + कयप् (कर्मवाच्य में कपूय) । (कु का क हो जाता है) । कुत्सितं सत् पूयते तत् (कुत्सित होने से वह पवित्र, किया जाता है अतः वह कपूय है) ।

कपूया - कपूय + अच् (मतुप् अर्थ में) = कपूया, अर्थात् कपूय वाला कुत्सित कर्म के लिए प्रायश्चित करने वाला ।

कपृत् , - (१) क + पृत् । सुखग्राही अन्तःकरण,
'न सेशेयस्य रम्बते
अन्तरा सक्थयाकपृत्'
ऋ. १०.८६.१६, अ. २०.१२६.१६.
(२) क + पृत् । सुख से जगत् को पूर्ण करने वाला परमेश्वर ।
'कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन'
ऋ. १०.१०१.१२, अ. २०.१३७.२, कौ.ब्रा. ३०.७, आश्व. श्रौ.सू. ८.३.३०, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.
(३) सुख एवं प्रजा पालक पद को पूर्ण करने एवं निभाने में समर्थ ।
(४) कपाल, मस्तक ।

कपृथ - (१) सुख का पालक ।
'कपृथमुत् दधातन'
ऋ. १०.१०१.१२. अ. २०.१३७.२, कौ.ब्रा. ३०.७, आश्व श्रौ.सू. ८.३.३०. शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.
(२)सुख पूरक आनन्द धन प्रभु ।

कपोत - कबूतर ।
'मित्रावरुणाभ्यां कपोतान्'
वाज.सं. २४.२३, मै.सं. ३.१४.४, १७३.६,
'कपोत इव गर्भधिम्'
ऋ. १.३०.४.अ. २०.४५.१, साम. १.१८३,२.९४९
(२)कवते वर्णयाति दर्शयति इति कपोतः (जो वर्णन करता है, दिखलाता है, वह कपोत है) ।
कव (वर्णन करना) + ओतच् = कपोत्
'शिवः कपोत इषितो नो अस्त्व'
ऋ. १०.१६५.२, अ. ६.२७.२,
कबूतर के अर्थ में प्रयोग-
'देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्
दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम'
ऋ. १०.१६५.१, अ. ६.२७.१
हे देवो ! पाप देवता के निकट से आया हुआ (निर्ऋत्या इषितः कपोतः) जिस धन आदि की कामना करता हुआ (यत् इच्छन्) हमारे इस घर में आया (इदम् आजगाम)....

कफोडौ, कफोड - द्वि.व. । एक वचन नें कफोड । दोनों हंसलियां या गाल ।
'कतिस्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ'
अ. १०.२.४.

कबन्ध, कवन्ध - (१) उदक । कबते गच्छति इति कवः । कब + ल्यु = कबन्ध (नप् आदेश) (२) अथवा कबम् धीयते अस्मिन् (जल भरा जाता है इसमें) । अतः वह कबन्ध अर्थात् मेघ है ।
'नीचीनबारं वरुणः कवन्धम्
प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा
यवं न वृष्टिर्व्युनत्तिभूम ।'
ऋ. ५.८५.३, नि.१०.४.
सम्पूर्ण भूतजात या उदक के राजा वरुण ने (विश्वस्य मुख्यस्य राजा वरुण) अधोमुख मेघ को (नीचीनबारम् कवन्धम्) द्यौ अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर मानो पसार दिया (रोदसी अन्तरिक्ष प्रससर्ज) जैसे पटाने वाला (वृष्टिः) यव जमाने के लिए भूमि को विविध प्रकार से पटाता है (यवं न भूम व्युनत्ति) ।
(३) शरीर का भाग, (४) ज्ञानमय, सुखमय,

शक्तिमय बन्धन-सामर्थ्य ।
'वसोः कबन्धम् ऋषभो बिभर्ति'
अ. ९.४.३
(५) कुत्सित, दुर्गन्ध, मलमूत्र बहाने वाला, विचित्र रूप से बंधा हुआ, परस्पर संसक्त, छोटी-छोटी नाडियों से पूर्ण, कटि से ऊपर का शरीर भाग ।
'जानुभ्यांमूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम्'
अ. १०.२.३
आधुनिक अर्थ- (१) सिर रहित शरीर जब इसमें प्राण हों, (२)पेट, (३) मेघ, (४) एक तारा, (५) राहु, (६) जल (७) रामायण में कबन्ध नामक राक्षस ।

कबन्धिनः मरुतः- (१) जल से भरे वायुगण, (२) हृष्ट-पुष्ट शरीर वाले मनुष्य ।
'अर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः'
ऋ. ५.५४.८

कब्रु - नाना प्रकार के दृश्य ।
'कब्रुफलीकरणाः शरोऽभ्रम्'
अ. ११.३.६

कम् - (१) एक अनर्थक अव्यय ।
'वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम
राजा हिं क भुवनानामभिश्रीः
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे
वैश्वानरो यतते सूर्येण'
ऋ. १.९८.१, वाज.सं. २६.७, तै.सं. १.५.११.३, मै.सं. ४.११.१, १६१.३, का.सं. ४.१६, नि. ७.२२.
अग्नि की सुमति में हम होवे (वैश्वानरस्य सुमनौ स्याम), क्योंकि वह अग्नि सम्मुख हो सेवनीय है। (हि अभिश्रीः) सभी जीवों का राजा है (भुवनानां राजा कम्) जो वैश्वानर इस अरणि से उत्पन्न है (इतःजातः), सम्पूर्ण जगत् को देखता है (इदं विश्वं विचष्टे) तथा प्रातः उदय लेने वाले सूर्य के साथ चलता है (सूर्येण यतते) । यहां पर 'कम्' पाद पूरक मात्र निरर्थक अव्यय है और 'हि' के साथ मिलकर 'क्योंकि' अर्थ देता है ।
(२) सुखपूर्वक (३) अव्यय ।
'अरमयः सरपसः तराय कम्'
ऋ. २.१३.१२.

कमल - जार, परस्त्रीगामी ।
'अस्याः कमलमञ्जिवम्'
अ. ८.६.९

कंकत् - (१) अति चंचल, (२) विषैलाजीव ।
'कंकतो न कंकतः'
ऋ. १.१९१.१.

कंकूप - कान का भीतरी भाग ।
'कर्णाभ्यां ते कङ्कषेभ्यः'
अ. ९.८.२

कम्पील - कं सुखं पीलयति वदनाति गृह्णाति इति कम्पीलः । स्वार्थ अण् । (सुखों को बांधने वाला पति) ।

कम्बल - (१) जल ।
'कम्बले दुरितं वयम्'
अ. १४.२.६७
(२) जाड़े से बचने के लिए वस्त्र जिसे कम्बल कहते हैं (३) कम + युक + कल = कम्बल
(३) कम्यते अभीप्स्यत इति कम्बलः (जो सभी शीतार्त्त पुरुषों से चाहा जाय) (४) अथवा कमनीयः स भवति वह (प्रार्थनीय या सुन्दर होता है) । (५) एक प्रकार का हरिण या मृग, (६) दीवाल, ।

कम्बूक - छिलका ।
'परः कम्बूकान् अपमृद्धिढदूरम्'
अ. ११.१.२९

कम्बोज - एक देश विशेष का नाम जिसे आजकल कम्बोडिया कहते हैं ।
व्युत्पत्ति - (१) कम्बोजः कम्बल योजाः (कम्बल का प्रयोग करने वाले मनुष्य जो शीत प्रधान देश में रहते हैं, (२) कमनीय भोजाः (जहां के लोग कमनीय भोजन करते हैं) । कम् + भुज् + अच् (कर्म अर्थ में) = कम्भोज= कम्बोज ।
कहा जाता है कम्बोज देश में बहुत रत्न पाया जाता है (प्रचुर रत्नोहि स देशः) यह दूसरी व्यत्पत्ति अधिक युक्ति संगत जान पड़ती है ।
(३) कम्बोज के राजा का नाम भी कम्बोज और कम्बोज देशवासियों को भी कम्बोज कहा जाता है । कम्बोज + अञ् = कम्बोजा (कम्बोजातु लक्)
(४) कम्बोजना राज्ञाम् अपत्यानि कम्बोजाः मनुष्याः देशाच्च (कम्बोज के राजाओं की प्रजाएं तथा उनके सन्तान भी कहे जाते हैं) ।

आधुनिक अर्थ – (१) एक देश, (२) कम्बोज निवासी, (३) एक प्रकार का सितुहा, (४) एक प्रकार का हाथी ।

कम्भन –(न) कम् + ल्युट् थामने वाला सामर्थ्य ।
'चास्कम्भ चित् कम्भनेन स्कभीयान्'
ऋ. १०.१११.५

कयः– (१) कस्य इत्यत्र यकारोपजन इति सायणः ।
(२) चिकेतिजानाति इति कयः–दयानन्दः ।
सायण के अनुसार कस्य का कयस्य हो गया है परन्तु दयानन्द इसका अर्थ विद्वान् कहते हैं ।
अर्थ – (१) ज्ञानवान् युद्धविद्याकुशल ।
'नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्
घवाजो अस्ति श्रवाय्यः ।'
ऋ. १.२७.८, साम. २.७६६
हे सहनशील (सहन्त्य) इस ज्ञानवान् युद्धविद्याकुशल पराक्रमी सेनापति का मुकाबला करने वाला कोई नहीं है । और इसका बलवीर्य स्तुत्य और आश्चर्यकारी है ।
(२) कोई ।
'अभिमातिं कयस्य चित्'
ऋ. ८.२५.१५
(३) जल, (४) ज्ञानोपदेश विद्वान् ।
'निषू नमातिमतिं कयस्य चित्'
ऋ. १.१२९.५

कर – (१) कृ + अच् = कर । अर्थ–कर्म ।
(२) करपत्र, हिंसासाधन शस्त्र (३) किरण ।
'करेणेव विचकर्ता रवेण'
ऋ. १०.६७.६, अ. २०.९१.६, मै.सं. ४.१४.५, २२२.५
(४) हाथ ।

करञ्ज – कृ + अञ्जन = करञ्ज । अर्थ–(१) धार्मिकों को दुःख देने वाला, (२) प्रजाओं पर हाथ छोड़ने वाला (३) शास्त्रों को फेंकने वाला ।
'त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीः
तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी'
ऋ. १.५३.८, अ. २०.२१.८
तू धार्मिकों को दुःख देने वाला या प्रजाजनों पर शस्त्र प्रहार करने वाले को (करञ्जम्) तथा प्राप्त या अप्राप्त या पालन योग्य पदार्थों को चलाने वाले या प्रजा के पालक पुरुषों पर आक्रमण करने वाले शत्रु को (पर्णयम्) अतिथि के समान पूजनीय पुरुषों को प्राप्त होने वाले (अतिथिग्वस्य) प्रजाजन की रक्षा के लिए (वर्तनी) अति तेजस्विनी अग्नि से दीप्त होने वाली शक्ति से (तेजिष्ठया) विनाश कर (वधीः) । (४) कुत्सित स्वभाव वाला (५) हिंसा व्यसनी । आज भी कञ्जर 'घुमन्तू' लोगों को कहते हैं जिनकी देखभाल पुलिस करती है ।

करञ्जह् – करावलम्ब देने वाले का हाथ छोड़ देने वाला ।
'यत्पर्णयघ्न इत वा करञ्जहे'
ऋ. १०.४८.८

करण – साधन ।
'सत्या सत्यस्य करणानि वोचम्'
ऋ. २.१५.१.

करणा – अश्विद्वय या स्त्री पुरुष का विशेषण ।
(१) कार्य करने में कुशल, (२) गृहस्थी करने वाले स्त्री पुरुष ।
'रथं न दस्रा करणा समन्विथः'
ऋ. १.११९.७
हे दर्शनीय रूपवाले या एक दूसरे दुःखों को दूर करने वाले स्त्री पुरुष (दस्रा), कार्य करने में कुशल होकर (करणा) सागर की दूर यात्रा करने के लिए सत्संग करो (समन्विथः) ।

करत् – करोतु । करें ।

करतः – 'कुरुथः' का वैदिक प्रयोग । अर्थ है–करते हो । कृ (करना) के लट् में म.पु.द्वि.व. का रूप ।

करन् – कुर्वन्तु (करें, बनावें) ।
'करन् सुषाहा विथुरं न शवः'
ऋ. १.१८६.२, मै.सं. ४.१४.११, २३२.४, तै.ब्रा. २.८.६.३.

करन्ति – कुर्वन्ति (करते हैं) या करिष्यन्ति (करेंगे) । कृ (करना) का लट् में प्र.पु.ब.व. का रूप ।

करम्भः – (१) भात की लस्सी (२) राज्य कार्य करने वाला कर्मचारी (३) दही से मिला सत्तू ।
'धानाः करम्भः सक्तवः'
वाज.सं. १९.२१
(४) कृ + अम्भच् = करम्भ । कर्मफल का भोक्ता ।
'करम्भादिति पूषणम्'

ऋ. ६.५६.१
(५) कर्म सामर्थ्य से युक्त क्षात्रबल ।
'पूषण्वते ते चकृमा करम्भम्'
ऋ. ३.५२.७
(६) उत्तम कर्म करने वाला ।
'करम्भेण सजोषसः'
वाज.सं. ३.४४, तै.सं. १.८.३.१, मै.सं. १.१०.२, १४१.११, का.सं. ९.४, श.ब्रा. २.५.२.२१
(७) ओषधि का लेप या मिश्रण ।
'करम्भेण विकल्पति'
अ. ४.७.२
(८) दिया हुआ अन्न, (९) सुखमयरम्भ लम्भ या ज्ञान संवेदन (१०) सार्षपातैल मिश्र भृष्ट सरसों के पत्ते की साग-
'आ ते करम्भमद्मसि'
अ. ६.१६.१
(९) शरीर को रचने वाली ओषधि (१०) राज्यादि का कर्त्ता राजा ।
'करम्भ ओषधेभव'
ऋ. १.८७.१०, का.सं. ४०.८

करम्भी - कृ + अम्बच् = करम्ब = करम्भ । करम्भ + इणि= करम्भी ।
अर्थ- क्रिया शील, उद्यमी पुरुषों से सम्पन्न
'धानावन्तं करम्भिणम्'
ऋ. ३.५२.१, ८.९१.२, साम. १.२१०, वाज.सं. २०.२९, जै.ब्रा. १.२२०, आश्व.श्रौ.सू. ५.४.२, गो.गृ.सू. ३.३.६.
(२) क्रिया कुशल, (३) शौर्ययुक्त (३) पुरुषार्थी, कर्मण्य (४) दही से मिला सत्तू वाला, (५) ध्यान योग विवेकद्वारा पवित्र किया सत्यज्ञान वाला ।

करसू - करने योग्य कार्य ।
'आविद्वां आह विदुषे करांसि'
ऋ. ४.१९.१०,

करस्न - (१) बाहु । कर + स्ना + अच् = करस्न । कर का न अर्थ कर्म है ।
'अशपत यः करस्नं व आददे'
ऋ. १.१६१.१२
जो आप लोगों की बांह पकड़े और कार्य-साधन में हस्तक्षेप करे उसे शाप दो । कर्मणां प्रस्नातारौ (कर्मों को विवर्तित करने वाली भुजाएं)
(२) कर्म को करने वाला भी करस्न ही है ।
'बृबदुक्थं हवामहे
सृप्रकरस्नमूतये
साधु कृण्वन्तमवसे'
ऋ. ८.३२.१०, साम. १.२१७,
हम अदीर्घबाहु वाले (सृप्रकरस्नम्) सुन्दर कर्म करने वाले (साधु कृण्वन्तम्) बृबदुक्थ को (बृबदुक्थम्) रक्षा के लिए बुलाते हैं (ऊतये हवामहे)

करस्ना - नाना कर्मों को करने वाले, आर्यजनों को शुद्ध निर्दोष करने वाले -बाहु ।
'पृथू करस्ना बहुला गभस्ती'
ऋ. ६.१९.३

करा - (द्वि.व.) अश्वियों का विशेषण । अर्थ- कार्यकुशल ।
'अजोहवीत् नासत्या करावाम्
महेयामन् पुरुभुजा पुरन्धिः'
ऋ. १.११६.१३
हे कभी असत्य आचरण न करने वालो (नासत्या) ! हे मुख पर नासिका के समान मुख्य पद पर विराजमान ! आप दोनों को कार्य कुशल (करा) और बहुत सी प्रजाओं और राष्ट्रों के पालने और बहुत सी भुजाओं अर्थात् वीरजनों सहित बलवान् जान कर (पुरुभुजा) पुर की रक्षा करने वाला संस्था (पुरन्धिः) बड़े भारी युद्ध यात्रा के काल में (महे यामन्) बुलाती है और मुख्य कार्य कर्त्ता के रूप में स्वीकार करती है ।

करामहे - करें, बनावें ।
'आ वरुणं करामहे'
ऋ. १:२५.५

करिक्रत - करैत सर्प ।
'दर्वि करिक्रतं श्वित्रम्'
अ. १०.४.१३

करिक्रत् - (१) अत्यन्त करने वाला -(दर्वा) (२) साक्षात् करने वाला ।

करीष - (१) समृद्धि । पुरीष और करीष समान है ।
'समानं वै पुरीषं च करीषं च'
श.ब्रा.२.१.१.७
'पुरीष्य इति वैतमाहुः यः श्रियं गच्छति'
श.ब्रा. २.१.१.७

करिष्ठः – सबसे बड़ा उत्पन्न करने वाला –वृहस्पति ।
'पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः'
ऋ. ७.९७.७, मै.सं. ४.१४.४, २२०.१, का.सं. १७.१८, तै.ब्रा. २.५.५.५

करिष्य – कर्त्तव्य, अद्भुद् कर्म ।
'यानिं करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध'
ऋ. १.१६५.९, वाज.सं. ३३.७९, मै.सं. ४.११.३, १६९.९, का.सं. ९.१८ .
सबसे अधिक बढ़ा हुआ तू जिन कर्त्तव्यों और अद्भुत कर्मों को करता है ।

करीषिणी – (१) गोबर और मूत्र आदि करने वाली गौ, (२) ऐश्वर्य सम्पन्न ।
'आस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः'
अ. ३.१४.३, मै.सं. ४.२.१०, ३३.३, कौ.सू. ८९.१२.
'करीषिणीं फलवतीम्'
अ. १९.३१.३

करुण – (१) कार्य व्यवहार ।
'ममेदु कर्मन् करुणेऽधिजाया'
अ. १२.३.४७
(२) अनुग्रह विग्रह आदि कर्म ।
'स विश्वस्य करुणस्य ईशः एकः'
ऋ. १.१००.७
वह समस्त अनुग्रह, विग्रह आदि कार्य करने में समर्थ है ।

करुमः – रु + मन् (ओणादि प्रत्यय) कुत्सित शब्दकारी, गाली गलौज करने वाला ।
'ककुभाः करुमाः स्त्रिमाः'
अ. ८.६.१०

करुकर – हाथ पैर की हड्डी ।
'संकर्षन्ती करुकरम्'
अ. ११.९.८

करुडती – कृत्तदती (जिस के दांत तोड़ दिये गये हैं या कटे हों) 'पूषन्' का एक विशेषण या संज्ञा । पूषन् अदन्तक है ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है । वेद में द का ड होता है । 'ल' और 'ड' की समानता मानी गई है । 'करूडती' या 'करूलती' का अर्थ बिना दाँत वाला पूषन् । कृत् (काटना) धातु का करू रूप हुआ है और समास होने पर दन्त का दत् आदेश हो जाता है । करूदत् + इन् = करूदतिन् = करूदती = करुडती है ।
अर्थ – एक देवता ।
'वामं पूषा वामं भगो
वामं देवः करूडती ।'
ऋ. ४.३०.२४, नि. ६.३१.

कर्कन्धुः – (१) कर्कान् कारुकान् अन्तति व्यवहारे बध्नाति यः (कारीगरों को व्यवहार में बांधने वाला इन्जीनियर,) (२ कर्मकर शिल्पियों को भृति वेतन आदि से बांधने वाला ।
'याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथः
ताभिरूषु ऊतिभि रश्विना गतम्'
ऋ. १.११२.६
जिन उपायों से कर्मकार शिल्पियों को भृति आदि द्वारा बांधने वाला शिल्पज्ञ उत्तम कारीगरों को सन्तुष्ट करते हों वे बड़े इन्जिनियर और वस्त्रादि बनाने वाले (वय्यम्) आप दोनों उन्हीं उपायों से एक दूसरे के उपकारक हुए ।
(२) काँटेदार वृक्ष, बैर आदि, (३) हिंसा कारी शस्त्र ।
'यवैः कर्कन्धुभिर्मधु'
वाज.सं. २१.३२, मै.सं. ३.११.२, १४१.११, तै.ब्रा. २.६.११.३.
'कर्क कण्टकं दधाति इति कर्कन्धुः' –दया.
(४) बेरफल, (५) सेनावान् (कण्टक ।
'रूपान् शत्रून् धुन्वते
दध्नो रूपं कर्कन्धूनि'
वाज.सं. १९.२३

कर्कन्धुरोहितः – (१) बेर के फल का सा लाल रंग, (२) कर्कन्धुरोहित रंग का पोशाक पहने अधिकारी ।
'रोहितोधूम्ररोहितःकर्कन्धुरोहितास्ते सौम्याः'
वाज.सं. २४.२, तै.सं. ५.६.११.१, मै.सं. ३.१३.३, १६९.१,

कर्कन्धूका – वनबैर ।
'कर्कन्धूकेव पद्यते'
अ. २०.१३६.३

कर्करि – (१) एक प्रकार का बाजा, कर्त्ता, (२) कद्दू का फल, (३) ककरी, (४) भृशं कुर्वन –दया. (५) प्रधान कार्य कर्त्ता ।
'कएषी कर्करिं लिखत्'

अ. २०.१३२.८
'यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा'
ऋ. २.४३.३, कौ.सू. ४६.५४.

कर्करिक – कंकरी ।
'कर्करिको निरवातकः'
अ. २०.१३२.३, शां.श्रौ.सू. १२.१८.११.

कर्कीवत्सा – ज्योतिष्मती प्रज्ञारूप देहवासिनी गौ ।
'कर्कीवत्सा मिह रक्षवाजिनम्'
अ. ४.३८.६,७.

कर्ण – (१) कार्य, (२) गुरूपदेश का श्रवण ।
'सुदीतयो वो अद्रुहोऽपिकर्णे'
ऋ. ८.९७.१२, अ. २०.५४.३, साम. २.२८,१.
(३) कार्य-साधक शरीर ।
'अग्निर्हत्यं जरतः कर्णमावान्
ऋ. १०.८०.३
(४) कृत् (छेदनार्थक धातु) + अन् = कर्ण (पृषोदरादि की तरह) । निकृत्तद्वारः छिन्नद्वारः (जिस का द्वार छेदा गया हो । कान में छिद्र होता है वह कर्ण कहलाता है) (५) रथ या वेगवान् मन्त्र ब्राह्मण में ऋक्ष् (गत्यर्थक) + न अर्च्छ । अर्च्छ + न = च्छ + अर् + न = कर्ण । अर्थ है- 'खे ऋच्छन्ति इव' । (अकाश में अभिव्यक्त शब्द इन कानों की ओर आते हैं अतः ये कर्ण कहे गए हैं) ।
'ऋतस्य श्लोको वधिराततर्द
कर्णाबुधानः शुच्यमान आयोः'
ऋ. ४.२३.८, नि. १०.४१.
ऋतदेव का स्तुति वचन बोधित करता तथा चमकता हुआ मनुष्य के बधिर कानों को भी छेद डालता है ।
'नदस्य कर्णैः तुरयन्त आशुभिः'
ऋ. २.३४.३.

कर्णकौ – (१)क्रियाशील जीव और प्रकृति ।
'निगृह्य कर्णकौद्धौ'
अ. २०.१३३.३, शां.श्रौ.सू. १२.२२.३.
(२) दोनों कान ।

कर्णगृह्या – कान पकड़कर
'कर्णगृह्या मघवा शौर देव्यः'
ऋ. ८.७०.१५

कर्णयोनिः – (१) जिसकी योनि कर्ण हो –(दया.)
'नृचक्षयो दृशये कर्णयोनयः'
ऋ. २.२४.८
(२) कान तक पहुँचने वाला धनुष ।
(३) कर्ण गोचर होकर ।

कर्णवत्, कर्णवन्तः– कर्ण + मतुप् = कर्णवत् ।
अर्थ–कान वाला ।
'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोजवेष्वसमा बभूवुः'
ऋ. १०.७१.७. नि. १.९.

कर्णशूल – कान का दर्द
'कर्णशूलम् विलोहितम्'
अ. ९.८.१

कर्णशोभन – (१) कानों को सजाने का साधन, (२) उत्तम वचन, (३) कर्णकुण्डल आदि अलंकार ।
'उत्तनः कर्णशोभना'
ऋ. ८.७८.३

कर्ण्य – कानों में फैला विसर्पक ।
'यो अङ्ग्यो यो कर्ण्यः'
अ. ६.१२७.३

कर्णोगर्दभः – कानों वाला गधा ।
'श्वा कृष्णः कर्णोगर्दभः'
वाज.सं. २४.४०

कर्त – (न) काटने वाला, तलवार, गड़ांस, कत्ता, आदि ।
'यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे'
अ. ४.१२.७

कर्णेतरस्वी – कर्त्तव्य कर्म में शीघ्रता करने वाला ।
'सुदीतयो वो अद्रुहोऽपिकर्णे तरस्विनः समृक्वभिः'
ऋ. ८.९७.१२, अ. २०.५४.३, साम. २.२८१.

कर्त – (१) गर्त, गूढ़ा (२) छेदन हिंसन् आदि कार्य । कृन्तन योग्य छेदन भेदन रूपे कर्मणि वा करोते वौणादिके तपरे कर्त्त कर्म तस्मिन् ।
'आवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्'
ऋ. ९.७३.८.
'त्राध्वं कर्तात् अवपदो यजत्राः'
ऋ. २.२९.६, वाज.सं. ३३.५१, मै.सं. ४.१२.६,१९४.६.

कर्ता – (१) कृ + सृच् । वंष को चलाने वाला ।
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्
अन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्'

ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.
यदि ये माताएं कुल को बढ़ाने वाली सन्तति - पुत्र पुत्री उत्पन्न करती हैं तो उनमें एक पुत्र कुल का कर्त्ता होता है और दूसरी पुत्री पाली पोसी जाती है ।

कर्त्व - (१) कृ + त्वन् = कर्त्व । अर्थ किया जाने वाला कार्य, कर्म
'कृतानि या च कर्त्वा'
ऋ. १.२५.११
किये कर्मों को तथा भविष्य में किये जाने वाले कर्मों को देखता है ।
(२) काटना चाहिए। कृ + त्वन्। कर्तुम् अर्हः । कर्तव्य करने योग्य ।
'सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः'
ऋ. १.२३.१८, अ. १.४.३.
'अश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः'
ऋ. १.१६१.३
उत्तम अश्व तथा आशुगामी रथ और अश्व सैन्य तैयार कर चाहिए ।

कर्त्वा - अर्थ-करना चाहिए ।
'धेनुःकर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा'
ऋ. १.१६१.३
नाना रस पिलाने वाली गौ के समान पृथिवी तैयार करनी चाहिए और उत्तम वाणी बोलनी चाहिए तथा स्त्री पुरुष दोनों को युवा बलवान् बनाना चाहिए ।

कर्तु - कृ + तु = कर्तु । (१) क्रियाशील जगत् ।
'मध्या कर्तोः विततं संजभार'
ऋ. १.११५.४, अ. २०.१२३.१, वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२, १४७.१, तै.ब्रा. २.८.७.१, नि. ४.११.
सूर्य ने किए जाते हुए कर्मों के मध्य से अपने विस्तीर्ण रश्मिजाल को खींच लिया ।

कर्तो - (३) अन्तरिक्ष कमर्बल
'मध्या कर्तोः न्यधात्शक्म धीरः'
ऋ. २.३८.४

कर्म - (१) क + मनिन् । यज्ञादि कर्म, कार्य ।
'न किष्टं कर्मणानशत्'
ऋ. ८.३१.१७, ७०.३, अ. २०.९२.१८, साम. १.२४३, २.५०५, तै.सं. १.८.२२.४, मै.सं. ४.११.२, १६५.१, का.सं. ११.१२. पंच.ब्रा. १४.४.२, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.४.
'य आरितः कर्मणि कर्मणिस्थिरः'
ऋ. १.१०१.४. नि. ५.१५.
जो इन्द्र या राजा अपराधीन स्वतन्त्र है, जो सबके आधारभूत मर्यादित मार्ग की तरह है । या जो राजा वेदानुसार चलने वाला है और जो प्रत्येक कर्म में स्थिर है ।

कर्मकृत्य - संसार की रचना ।
'यः प्रथमः कर्मकृत्याय जज्ञे'
अ. ४.२४.६

कर्मण्य - कर्मकुशल ।
'सोमोवीरं कर्मण्य ददाति'
ऋ. १.९१.२०, वाज.सं. ३४.२१, मै.सं. ४.१४.१, २१४.२, तै.ब्रा. २.८.३.१.

कर्मण्या - (१) कर्म, (२) क्रियाशील उत्पन्न करने में समर्थ ।
'ओताआपः कर्मण्याः'
अ. ६.२३.२
(३) उत्तम कर्म करने वाली प्रजा ।
'धीरैः कर्मण्या मृदम्'
वाज.सं. ११.५५, तै.सं. ४.१५.२, मै.सं. २.७.५, ८०.७, का.सं. १६.५, श.ब्रा. ६.५.१.९.

कर्मणि कर्मणि स्थिरः - (१) प्रत्येक कर्म में स्थिर, (२) जिसके बिना कोई कार्य नहीं हो सकता, (३)परमात्मा, इन्द्र या राजा का विशेषण ।

कर्मनिष्ठाः - कर्म में निष्ठ ।
'अग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम्'
ऋ. १०.८०.१

कर्मार - लोहार, लौहकार ।
'ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्'
ऋ. १०.७२.२
'मायायै कर्मारम्'
वाज.सं. ३०.७, तै.ब्रा. ३.४.१.३.

कर्म्मार - लौहकार ।
'नमः कुलालेभ्यः कमरिभ्यश्च वो नामः'
वाज.सं. १६.२७, तै.सं. ४.५.४.२, मै.सं. २.९.५, १२४.६, का.सं. १७.१३.

कर्मोपसंग्रह - दो या अनेक अर्थों का एकत्र समास में लाया जाना कर्मोपसंग्रह कहलाता है । विग्रह का उलटा संग्रह है । दो या अनेक अर्थों को अलग करना विग्रह है (द्वौ अर्थौ बहून् वा

गृहीत्वा एकस्मिन् समसनम् उपसंग्रहणम् द्वयोः बहूनां वा अर्थानां विविच्य पृथक् ग्रहणम् विग्रहः)। सम् + गृह् + अच् = संग्रह ।

कर्वर – (१) विक्षेपक, चित्त डुलाने वाला कार्य, विषय विघ्न ।

'अत इन्वत कर्वराणि धूरि'

अ. ५.२.६

(२) सर्जन का कार्य ।

'आय विष्ठा जनयन् कर्वराणि'

अ. ७.३.१, तै.सं. १.७.१२.२, मै.सं. १.१०.३, १४३.१०, का.सं. ९.६,१४.३, ३३.४, ३६.१३, का.सं.(अश्व.) ५.१२, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.३२. शां.श्रौ.सू. ३.१७.१, का.श्रौ.सू. २५.६.१०, आप.श्रौ.सू. ८.१६.५, १८.२.३, शां.गृ.सू . ५.८.२.

(३) नदी का अति क्षुब्ध मध्यबाग ।

'पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम्'

अ. १०.४.१९

(४) कर्म ।

'अन्यदद्य कर्वरम् अन्यदुश्वः'

ऋ. ६.२४.५

कर्शफ – (१) कर शफ अथवा कृशशफ जिन पशुओं के खुर पंजे के समान है जैसे व्याघ्र आदि अथवा जिनके खुर निर्बल हैं ।

श्री क्षेमकरण त्रिवेदी ने 'कृशृ शलिवलि गर्दिभ्योऽ भवत्' तथा 'ऋषि वृषिभ्यां कित्' इन सूत्रों से शरभ वृषभ शब्दों की सिद्धि होती है ।

'कर्शफस्य विशफस्य'

अ. ३.९.१

कर्णिनी – कानों वाली ।

'शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी'

अ. १०.१.२.

कर्हिचित् – कहीं भी ।

'अश्विना यद्ध कर्हिचित्'

ऋ. ५.७४.१०

कलविङ्क – (१) ग्रीष्मऋतु में पाए जाने वाला पक्षी विशेष ।

'ग्रीष्म कलविङ्कान्'

वाज.सं. २४.२०, मै.सं. ३.१४.१, १७२.८, का.सं.(अश्व). १०.४, श.ब्रा. १३.५.१.१३, आप.श्रौ.सू. २०.१४.५.

(२) मधुर ध्वनियों या कला यन्त्रों को प्रकट करने वाला ।

'कलविङ्को लोहिताहिः पुष्कर सादस्ते त्वाष्ट्राः

वाज.सं. २४.३१, मै.सं. ३.१४.१२,१७५.१.

कलश – (१) राष्ट्र, (२) ब्रह्माण्ड, (३) कलश

' आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा ।'

ऋ. ३.३२.१५, अ. २०.८.३, ऐ.ब्रा. ६.११.१३, गो.ब्रा. २.२.२१, आश्व.श्रौ.सू. ५.५.१९.

कलाः मात्राः शेरते अस्मिन् (इसमें सोमरस को समुदाय से पृथक् कर कुछ कला या मात्रा रखी जाती है । अतः कलश हुआ) । कला + शीङ् = कलाश = कलश ।

कला शब्द 'कृ' (विक्षेप अर्थ में) धातु से बना है । 'कला' किसी समुदाय से निकाल कर विक्षिप्त की जाती है । कृ + अच् + टाप = करा = कला ।

'सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि
बृहस्पतेनुमत्या उ शर्मणि ।'
'तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ
धातर्विधातः कलशांअभक्षयम्'

ऋ. १०.१६७.३, नि. ११.१२

मैं राजा सोम के कर्म या या यज्ञ में वर्तमान (अहं राज्ञः सोमस्य धर्मणि) तथा बृहस्पति एवं अनुमति के यज्ञ गृह में वर्तमान (बृहस्पतेः अनुमत्या उ शर्मणि) हे इन्द्र (मघवन्), तेरे स्तोत्र में प्रवृत्त हूं । हे धाता (धातः) तथा हे विधाता (विधातः), आप सभी से अनुज्ञात हो मैं ने इन सोम कलशों को पीया (कलशान् अभक्षयम्) ।

अन्य अर्थ – मैं ने प्रकाशमान अग्नि, चन्द्रमा और मेघ के धर्म में (राज्ञः सोमस्य वरुणस्य धर्मणि) तथा सूर्य और चतुर्दशी युक्त पूर्णिमा के आश्रय में रहकर तथा हे विद्युत् हे वायु तथा हे मृत्यु (उ बृहस्पतेः अनुमत्याः शर्मणि मघवन्, धात विधातः) मैं ने तेरी स्तुति में वर्तमान रहकर (अहम् अद्य तव उपस्तुतौ) ऐश्वर्य कलाओं का भक्षन् किया (सोम कलशान् अभक्षयम्) ।

(४) कलाओं, राज्य के अंशों को सुचारु रूप से धारण करने वाला राष्ट्र और राष्ट्रपति ।

'आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः'

वाज.सं. ८.४२, तै.सं. ७.१.६.६,

कल्प – (१) उत्पादन-सामर्थ्य ।

'क ऋतून् क उ कल्पमस्याः'
अ. ८.९.१०
(२) कार्य का अवसर ।
'तोता कल्पेषु संमिताः'
अ. २०.१२८.६,११, शां.श्रौ.सू. १२.२१.१,६.

कल्पी – (१) कल्पना शील, (२) सामर्थ्यवान्, (३) दूरदर्शी, (४) विज्ञ पुरुष ।
'त्रेतायै कल्पिनम्'
वाज.सं. ३०.१८

कल्मलि – तारागण ।
'रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः'
अ. १५.२.५.

कल्मलीकिन् – (१) मतों को शोधने वाला उज्ज्वल अग्नि के समान परम पावन ।
'नमस्या कल्मली किनं नमोभिः'
ऋ. २.३३.८

कला – कृ (विक्षेप अर्थ में) + अच् + टाप् = कला । कला किसी समुदाय से निकाल कर कहीं विक्षिप्त की जाती है । अर्थ – (१) अंश, भाग, सम्पूर्ण पदार्थ से निकला हुआ भाग, (२) कलाः मानोन्मान प्रतिमानादिविषयाः (तौल आदि का नाम कला है)
'इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा
आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना
जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे'
ऋ. ७.१८.१५.
हे मेघ या असुर जो पहले ऊंची गति से या उत्तान होकर चलते थे, इन्द्र से दीर्ण होकर (एते इन्द्रेण तृत्सवः) छिन्न भिन्न हो या युद्ध के लिए संगत होकर भी जल के सदृश विलीन हो नीचे हो विनत हो चलने लगे (वेविषाणाः आपो न सृष्टाः नीचीः अधवन्त) और दुष्ट कलाबाज बनिया जिस प्रकार कम सौदा देने पर राजा से प्रताड़ित हो पूरा तौल देता है उसी प्रकार (दुर्मित्रासः प्रकलवित् मिनानाः) ये सभी भोज्य पदार्थ या धन (विश्वानि भोजना) सुदास नामक राजा को या अच्छा दान देने वाले यजमान को देने लगे (सुदासे जहुः) । अर्थात् कम जल देने वाले मेघ या कम धन देने वाले असुर भी अधिक जल या धन इन्द्र से डरकर देने लगे । अन्य अर्थ– ये सारे राज्य में फैले हुए दुष्टों के हिंसक क्षत्रिय (एते वे विषाणाः तृत्सवः) राजा के साथ मिलकर (इन्द्रेण) जो राजद्रोही हैं उन्हें (दुर्मित्रासः) फेंके हुए जाल की तरह (सृष्टाः आपः न) नीचे पहुंचा दे (नीचीः अधवन्त) और तोलने वाले व्यापारी लोग (मिमानाः प्रकलवित्) उत्तम दाता ब्रह्मणादिकों के लिए (सुदासे) सब प्रकार के भोग्य पदार्थ दें । (विश्वानि भोजनानि जहुः)
आधुनिक अर्थ – (१) किसी पदार्थ का अंश (२) चन्द्रमा की कला, (३) ब्याज, सूद, (४) समय-विभाग-कला, विकला-१ मिनट, ४८ सेंकेड, या ८ सेंकेड, (५) कोई व्यावहारिक गुण-संगीत, वाद्य, चित्रकारी आदि (६) बुद्धि प्रवीणता, (८) धोखा, जाल, प्रवञ्चना, (९) छन्द की मात्रा, (१०)नौका, (११) आर्तयम्राव
(३) काल की मात्रा ।
'यथा कलां यथा शफम्'
ऋ. ८.४७.१७, अ. ६.४६.३, १९.५७.१
(४) षोड़श भाग, सोलहवां हिस्सा ।

कल्माष – (१) श्वेतकाला (२) चितकबरा या खाकी रंग की पोषाक वाला अधिकारी ।
'शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा अग्निमारुताः'
वाज.सं. २४.७, मै.सं. ३.१३.८, १७०.४.
'मारुतः कल्माषः'
वाज.सं. २९.५८,५९, तै.सं. ५.५.२२.१, २४.१, का.सं.(अश्व.). ८.१,३,

कल्माषग्रीवः – हरे, लाल नाना रंगो से सुशोभित, वृक्ष लता आदि से चित्रित वनस्पति संसार जिसकी ग्रीवा है.–ध्रुवा दिक्, पृथिवी ।
'कल्माषग्रीवो रक्षिता'
अ. ३.२७.५, तै.सं. ५.५.१०.२, मै.सं. २.१३.२१, १६७.९, आप.मं.पा. २.१७.१९.

कल्याण – कमनीय, प्रार्थनीय । कम् + यक् (सार्वधातुक) + आन = कल्याण (म् का ल् और न का ण) । जो पदार्थ कमनीय हो और जिसकी सभी कामना करे वह कल्याण है । अथवा कृ + यक् + आन् । आधुनिक अर्थ– (१) भाग्यशाली, (२) सुन्दर, कमनीय, (३) अति उत्तम, (४) उदाहरणीय (५) शुभ

शकुनप्रद, (६) समृद्धि, सुख।

कल्याण वर्ण रूपः – सुवर्ण के सदृश रूप वाला (कल्याण वर्णस्यइव रूपं यस्य) । यह शब्द अग्नि और देवता के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

कृ + यक् + आन = कल्याण । अर्थ है- कमनीय । कमनीय वर्ण का अर्थ है सुवर्ण (सोना) । वृ + नन् = वर्ण । रुच् + पन् = रूप (रुच् के च् का उ)

कल्याणी – (१) कम् + यक् + आन = कल्याण । कल्याण + ङीष् = कल्याणी । अर्थ- कल्याणकारी गुणों से युक्त । (२) कल्याण करने वाला देवता-सा.

(३) देश का कल्याण करने वाली परिषद् ।

'कल्याणि सर्वविदेमापरिदेहि'

अ. ६.१०७.४

कल्याणी जाय – (१) कल्याणी स्त्री (२) इन्द्र की स्त्री शची, (३) कल्याणकारिणी स्त्री ।

'कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते'

ऋ. ३.५३.६, नि. ७.६.

हे इन्द्र या हे शत्रुमर्दन राजन् आपके गृह में कल्याणी स्त्री या शची है तथा अन्य सुन्दर पदार्थ हैं ।

कलि – (१) कृ (विक्षेप अर्थ में) + कि = करि = कलि । कलौ वचांसि परस्परं विक्षिप्यन्ते (कलह में परस्पर बातों का विक्षेप किया जाता है) अर्थ है (१) कलह, (२) कलियुग ।

(३) कल (गिनना) + कि = कलि । धन राशि गिनने में कुशल पुरुष ।

'कलिंयाभिः वित्तजानिं दुवस्यथः'

ऋ. १.११२.१५

जिन उपायों से धनराशि को गिनने में कुशल पुरुष को (कलिम्) तथा नववधू को प्राप्त पुरुष को या वित्त को स्त्री के समान मानने वाले धनी को (वित्त जानिम्) रक्षा करते हो । (४) उत्तम ज्ञान वाला, कर्मशील पुरुष ।

'कलयो मा बिभीतन'

ऋ. ८.६६.१५

(५) ज्ञान करने वाला पन ।

'घृतेन कलिंशिक्षामि'

ऋ. ७.१०९.१

आधुनिक अर्थ – (१) झगड़ा, (२) युद्ध (३) कलियुग जिसका आरम्भ १८ वीं फरवरी ३१०२ ईसा पूर्व हुआ, (४) हर्रे का पेड़ (विभीतकी), (५)रुपया या मोहर का एक कोर, (६) बहादुर (७) बाण, (८) फूल की कली ।

कलिगन्धर्व – क्रीड़ा करने वाली गन्धर्व शक्ति ।

'वशा समुद्रमध्यष्ठाद्
गन्धर्वैः कलिभिःसह ।'

अ. १०.१०.१३

कवची – कवच धारण करने वाला ।

'नमो बिल्मिने च कवचिने च'

वाज.सं. १६.३५, तै.सं. ४.५.६.२, मै.सं. २.९.६, १२५.१, का.सं. १७.१४.

'यश्च कवची यश्चाकवचः'

अ. ११.१०.२२

कवत्नु – कुत्सित आचरण वाला पुरुष ।

'न देवासः कवत्नवे'

ऋ. ७.३२.९

कवच – कु + अञ्च् + अच् = कवच । (१) कु अञ्चितम्-टेढ़ा किया हुआ -कुटिल (२) काञ्चितम्-कुटिलीकृत या (३) काये अञ्चितम् -शरीर में पहनाया हुआ (शरीरे गतम्)

कवच नामक अस्त्र जिसे शरीर में रक्षार्थ लगाया जाता है ।

आधुनिक अर्थ – (१) एक अस्त्र का नाम, (२) युद्ध में रक्षा निमित्त शरीर को ढंकने वाला पदार्थ, (३) ताबीज, यन्त्र, (४) तन्त्र शास्त्र में एक अक्षर हुम् जो कवच के सदृश रक्षा करता है ।

कवचपाश – कवच की फांस ।

'ज्यापाशैः कवच पाशैः'

अ. ११.१०.२२

कवना – कु (शब्द करना) + ल्युट् + टाप् = कवना । अर्थ-शब्द करने वाली ।

कवषः – (१) उपदेष्टा, विद्वान् ।

'अधश्रुतं कषयं वृद्धमप्सु'

ऋ. ७.१८.१२

(२) किवाड़ ।

कवषी – (१) किवाड़युक्त, (२) शब्द करने वाली, (३) उत्तमस्तुति करने वाली, (४) उत्तम

हर्षध्वनि करने वाली
'इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमानाः'
वाज.सं. २०.४०, मै.सं. ३.११.१, १४०.४, का.सं. ३८.६, तै.ब्रा. २ .६.८.२.

कव्य – (न) (१) पितृ दैवत्य कव्य– सा. (२) कवि (३) विद्वानों के लिए हितकारी अन्न ।
'अग्नये कव्य वाहनाय'
अ. १८.४.७१

कव्यवाहन – (१) विद्वान् कवि पुरुषों के देने योग्य ऐश्वर्य का धारक –दया. (२) अग्नि–
'यमग्ने कव्यवाहन'
वाज.सं. १९.६४.
(३) देवों या विद्वान् मेधावी पुरुषों के लिए हितकारी सात्त्विक अन्न रूप पदार्थों को प्राप्त कराने वाला अग्नि ।
'अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः'
अ. १८.४.७१ तै.ब्रा. १.३.१०.३, आश्व. श्रौ.सू. २.६.१२, आप.श्रौ.सू. १.८.४,

कवारिः – कव + अरि । कुस्वामी, कुत्सितधनों का स्वामी ।
'न कवारिभ्योनहि ते पृणन्ति ।'
ऋ. १०.१०७.३

कवासखः – कपूयाः कुत्सिताः सखायः यस्य सः (जिसके कुत्सित मित्र हों)। वह पुरुष जो असाधु जन सम्पर्की है । (२) जिसका सहायक कुत्सित जन है, कुसंगति वाला पुरुष (३) धर्म से दूर, विषय–परायण ।
कु अथवा कपूय + सखि + टच् = कवासख (कु या कपूय का 'कवा' आदेश) (४) जैसे तैसे धन बढ़ाने वाला ।
'अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति
तनू शुभ्रं मघवा यः कवासखः'
ऋ. ५.३४.३ नि. ६.१९
जो धर्म से दूर विषय परायण तथा जैसे तैसे धन बढ़ाने वाला है और जो असाधुजन संपर्की है उसे ऐश्वर्यशाली शक्तिशाली इन्द्र बार बार नष्ट करते हैं ।
(५) विद्वान् पुरुषों का मित्र–(दया.) (६) इन्द्र

कवि – क्रान्तदर्शी विद्वान् । क्रम् + इन् = कवि (म् काव्) अथवा कव् + इन् = कवि । कव् धातु का अर्थ गमन है । कवि सदा प्रगतिशील है । वह क्रान्तप्रज्ञ है । अतीत अनागत तथा विप्रकृष्ट विषयों का युगपद् ज्ञान रखने वाला क्रान्त दर्शन कहलाता है । (अतीतानागतविप्रकृष्ट विषयानाम् युगपत् ज्ञानम्)
अर्थ– (१) क्रान्तप्रज्ञ (२) क्रान्त प्रकाश (३) जिसकी प्रज्ञासीमा को पार कर गई हो या जिसका प्रकाश अत्यधिक हो, (४) अग्नि का वाचक, (५) परमेश्वर भी कवि है ।
'त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः'
ऋ. १०.११.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०१.९. का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.
हे अग्नि ! तू देवताओं का दूत, क्रान्त प्रज्ञ या क्रान्त प्रकाश तथा प्रकृष्ट ज्ञान वाला है ।
पुनः –
'पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां
विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरि वर्पसा
पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः'
ऋ. ३.३.४
यज्ञों का पालयिता (यज्ञानां पिता), विद्वान् स्तोतांओं के मध्य में प्रज्ञावाला (विपश्चिताम् असुरः), कर्मों का साधन (विमानम्), मेधावी ऋत्विजों प्रज्ञानस्वरूप (वाघतां वयुनञ्च) अग्नि ने पार्थिव वैद्युत आदि अनेक रूपों से (भूरिपर्वसा) द्यौ और पृथिवी में प्रवेश किया (रोदसी आविवेश) । ऐसे अग्नि को अनेक मनोरथों वाला (पुरुप्रियः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (कविः) अनेक प्रकार के नामों या स्तोत्रों से (धामभिः) स्तुति करता है ।
अन्य अर्थ – यज्ञों का रक्षक, तत्व वेत्ताओं का प्राणदाता (विपश्चिताम् असुरः) बुद्धिमानों से मान्य (वाघताम् विमानम्) और प्रशस्य (वयुनम्) सर्वनायक ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (अग्निः) अनेक रूप से (भूरिवर्पसा) द्यावापृथिवी में अन्तर्यामित या प्रविष्ट है (रोदसी आ विवेश) । वह बहुप्रिय कवि (पुरुप्रियः) अपने तेजों से (धामभिः) वेद का बखान करता है (भन्दते)
पुनः, परमेश्वर के अर्थ में 'कवि' का प्रयोग–
'विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चतेकविः

प्रासावीत् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे'
५.८१.२, वाज.सं. १२.३,तै.सं. ४.१.१०.४, मै.सं. २.७.८: ८४.१४, ३.२.१:१५.१ का.सं. १६.८, श.ब्रा. ६.७.२.४. नि. १२.१३.
क्रान्तदर्शन मेधावी सविता (कविः) सभी रूपों में विराजते हैं (विश्वारूपाणि प्रतिमुञ्चते) तथा द्विपदतथा चतुष्पदों के लिए कल्याण की सृष्टि करते हैं (द्विपदे चतुष्पदे भद्रं प्रासावीत्) । वह सविता वरणीय है और द्युलोक को भी दिखलाते या प्रकाशित करते हैं (सविता वरेण्यं नाकं व्याख्यत्) तथा उषा के उदय के पश्चात् स्वयं उदित होते हैं (उषसः प्रयाणम् अनु विराजति) ।

कविक्रतुः - कान्तप्रज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वकर्मा परमेश्वर, सविता ।
'कविक्रतुमर्चामि सत्यसवम्'

कविच्छदा - (१) विद्वान् पुरुषों को अन्न वस्त्रादि से आच्छादित करने वाले-इन्द्र और अग्नि (२) वायुवत् बलवान् और अग्निवत् तेजस्वी
'इन्द्रमग्निं कविच्छदा'
ऋ. ३.१२.३, साम. २.२१.

कवितमः - (१) समस्त क्रान्तदर्शी विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, (२) वरुण, प्रकृष्ट प्रज्ञ देव वरुण ।
'इमामु नु कवितमस्य मायाम्
महीं देवस्य नकि रादधर्ष'
ऋ. ५.८५.६,
प्रकृष्ट प्रज्ञदेव वरुण के इस सर्वविदित महती माया को (इमां महीं मायाम्) कोई भी (नकिः) अभिभूत नहीं कर सकता (आदधर्ष) ।

कवित्वन् - कवि + त्वन् । अर्थ-विद्वत्ता

कविवृधः - विद्वानों को आचार्यवत् बढ़ाने वाला -इन्द्र
'स प्रत्नथा कविवृधः'
ऋ. ८.६३.४, शां.श्रौ.सू. १८.१८.११,

कविशस्तः - (१) कविभिः शस्तः विद्वानों से प्रशंसित् । 'कवि' की व्युत्पत्ति के लिए ।
'कविशस्तो बृहता भानुनागा
हव्या जुषस्व मेधिर'
ऋ. ३.२१.४, मै.सं. ४.१३, ५:२०४.१५, का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.१२.१५, तै.ब्रा. ३.६.७.२,
हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवान् अग्नि ! महान् प्रकाश से युक्त हो हव्यों का भोगकर ।
(२) विद्वानों से उपदेशप्राप्त
'सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान्'
ऋ. १.१५२.२.
कवीनां कविः क्रान्तदर्शी मेधावी पुरुषों में सर्व श्रेष्ठ- गणपति का विशेष पद ।
'कविः कवीनामुपमः श्रवस्तमम्'
ऋ. २.२३.१, तै.सं. २.३.१४.३, का.सं. १०.१३.

कवीयमानः - (१) क्रान्तदर्शी विद्वान् ।
'कवीयमानः क इह प्रवलोचत्'
ऋ. १.१६४.१८, अ. ९.९.१८
(२) अति विद्वान् कान्तदर्शी होता हुआ ।

कश - (१) एक प्रकार का पक्षी (२) गति, गमन (३) शासन वश ।
'दिवे कशान्'
वाज. सं. २४.२६, मै.सं. ३.१४.७: १७३.११.
'चतुर्युगः त्रिकशः सप्तरश्मिः'
ऋ. २.१८.१.

कशनी - कृशन् + इन् । धनादि से सम्पन्न ।
'स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके'
ऋ. ७.१८.२३

कशप्लक - घुटना
'माते कशप्लकौ दृशन्'
ऋ. ८.३३.१९

कशस् - जल ।

कश्मश - मनमुटाव ।
'विद्वेषं कश्मशं भयम्'
अ. ५.२१.१
आज भी 'कशमकश' का प्रयोग होता है ।

कश्यप - (१) द्रष्टा आत्मा । आरोग, भ्राज, पटर, पंतग, स्वर्णर, ज्योतिषीमान् और विभास ये सात आदिव्य हैं और आठवां कश्यप है जो मेरुदण्ड को नहीं छोड़ता ।
आरोगो भ्राजः पटरः पतंगः स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभास इति सप्त आदित्याः तत्र कश्यपोः अष्टमः स मेरुदण्डं न जहातितै । -तै.ब्रा.
'कश्यस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति'
साम. १.३६१
(२) सर्व प्रकाश सूर्य
'मासान् कश्यमः'
वाज.सं. २४.३७, तै.सं. ५.५.१७.१,

का.सं.(अश्व) ७.७.
(३) कश्यप नामक ऋषि, (४) देदीप्यमान चक्षु वाला तत्वदर्शी ।
'कश्यपस्य त्र्यायुषम्'
अ. ५.२८.७, वाज.सं. ३.६२, वाज.सं.(का.) ३.९.४, शां.गृ.सू. १.२८.९, साम.मं.ब्रा. १.६.८, आप.मं.पा. २.७.२, हि.गृ.सू. १.९.६,
(५) सर्वद्रष्टा (६) विद्युत् का प्रकाश सम्बन्धी विज्ञान ।
'असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च'
अ. १.१४.४

कशा – (१) शासन, (२) प्रभुशक्ति ।
'मधोः कशामजनयन्त देवाः'
अ. ९.१.५
(३) चाबुक । वेद में अश्वाजनी, या अश्वकशा शब्द कशा के लिए प्रयुक्त हुआ है । (४) वाक् के अर्थ भी में कशा का प्रयोग हुआ है, वाक् अर्थ को प्रकाशित करती है (अर्थ प्रकाशयति इति कशा)
व्युत्पत्ति-खे शया-खशया-खशा-कशा (वाक् मुखाकाशे शेते – वाणी मुखरूपी आकाश में सोती है)
अथवा-क्रुश् (क्रोशना) धातु से भी कशा की व्युत्पत्ति की गई है ।
यह अश्व को भय दिखलाती है । काष्ट् + अच् + टाप् = कशा । यह बहुत पतली होती है । कृश् + अच् + टाप् = कशा ।
(५) समस्त जगत् को अपने शासन में रखने वाली ब्रह्मशक्ति (६) पशु को हांकने वाली चाबुक (७) प्रेरक शक्ति ।
'पृथिवी दण्डो अन्तरिक्षं गर्भोद्यौः कशा'
अ. ९.१.२१.

कशावती – (१) वाणी या आज्ञा की स्वामिनी राजसभा, (२) वाणी की स्वामिनी ।
'स्वभीशुः कशावती'
ऋ. ८.६८.१८

कशावन्ता – अर्थप्रकाशक शुभवाणी वाले मित्रावरुण या स्त्री पुरुष ।
'स्मदमीशूकशावन्ता'
ऋ. ८.२५.२४

कशिपु – चटाई ।
'यथा वडं कशिपुने'
अ. ६.१३८.५

कशिपूपबर्हण – कशिपु + उपबर्हण । चादर और सिरहाना जो खाट पर बिछाया जाता है ।
'यत् किशपूपबर्हणमाहरन्ति परिधय एव ते'
अ. ९.६.१०

कशीका – कशा-कशिका-कशीका । (१) नेवली सा. (२) चाबुक –(दया.) ।
'या कशीकेव जङ्घहे'
ऋ. १.१२६.६
जो स्त्री संभोग में नेवली की तरह है-सा.
जो रानी पूर्णतया गृहीत राजकर्म में चाबुक सी है-(दया.)

कशुः – (१) ज्ञानदर्शी, (२) तेजस्वी ।
'यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानाम्'
ऋ. ८.५.३७.

कशोक – व्यथा ।
'मा त्वा दभन् दुरेवासः कशोकाः'
अ. ५.२.४

कशोजूः – कशांसि उदकानि जव यति गमयति इति कशोजू दया. (१) मेघ को आघात कर छिन्न भिन्न करने वालासूर्य (२) इन्द्र (३) वायु ।
'याभिः महामतिथिग्वं कशोजुवम्
दिवोदासं शम्बहरहत्य आवतम्'
ऋ. १.११२.१४
जिन उपायों से मेघ को आघात कर छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य या वायु को (कशोजुवम्) शंबर या सुखशान्ति के नाशक दुष्ट पुरुषों के नाश करने के कार्य में (शम्बरहत्ये) बड़े भारी अतिथि जनों के आश्रय (अतिथिग्वम्) ज्ञान और प्रकाश के देने और धारण करने वाले पुरुष को (दिवो दासम्) प्राप्त होते हो ।

कष्कष – एक प्रकार का रोग कीट जो घिस घिस कर चलता है।
'येवाषासः कष्कषासः'
अ. ५.२३.७

कस्य – (सं) (१) ज्ञानयोग्य, (२) सर्वोपरि शासक, क (३) परमवैद्य, (४) ब्रह्म ।
'कस्येमृजाना अतियन्ति रिप्रम्'
अ. १८.३.१७

कसाम्बु – (१) विकस्वर अम्बु (२) वीर्य ।

'इदं कसाम्बु चयने न चितम्'
अ. १८.४.३७

कसी- (१) ज्ञानदीप्ति, (२) शासन व्यवस्था, कसि (गति और शासन अर्थ में) या कश् धातु से कसी बना है ।
(३) मूर्छा, मोह, समुच्छ्राय अर्थों में प्रयुक्त ।
'यः शम्बरं पर्यतरत् कसीभिः'
अ. २०.३४.१२

क्रक्षमाण - शत्रु का कर्षण, विनाश या उन्मूलन करता हुआ ।
'क्रक्षमाणम कृपेताम्'
ऋ. ८.७६.११, अ. २०.४२.२

क्रतु - (१) कर्ता, (२) आत्मा ।
'क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यजते'
ऋ. ९.८.४३, अ. १८.३.१८, साम. १.५६४, २.९६४.
(३) कर्म करने वाला जीवात्मा ।
'क्रतुं पुष्यसि गा इव'
ऋ. ३.४५.३, साम. २.१०.७०
(४) कर्म, (५) गति, (६) प्रज्ञा ।
'क्रतुं दधिक्रा अनुसन्तवीत्वत्'
ऋ. ४.४०.४, वाज.सं. ९.१४, वाज.सं.(का.) १०.३.७, तै.सं. १.७.८.३, मै.सं. १.११.२, १६३.३, का.सं. १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५.१९. नि. २.२८.
अश्व अश्वारोही की प्रज्ञा या अपने कर्म या गति के अनुकूल चलता है ।
(६) संकल्प, (८) सन्तान -(दया.) ।
'क्रत्वे दक्षायनोहिनु'
ऋ. ९.३६.३, वाज.सं. ३४.८, तै.सं. ३.३.११.४, मै.सं. ३.१६.४. १८९.११, आश्व.श्रौ.सू. ४.१२.२, शां.श्रौ.सू. ९.२७.२, नि. ११.३०.
संकल्प की सिद्धि के लिएआगे बढ़ा - हमारी सन्तान के लिए वृद्धिप्रद अन्न प्रदान कर -(दया.)
(९) यज्ञ- (१०) कर्मशील दया. ।
'आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो
अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः'
ऋ. १.८९.१, वाज.सं. २५.१४, का.सं. २६.११, हमारे भद्र कर्मशील, सर्वत्र कष्ट रहित, अविपरीत धर्मानुकूल कायिक, वाचिक एवं मानसिक पापों को उत्तमत या उद्भेदन करते हुए विद्वान् लोग हमें प्राप्त हों-(दया.) । हमारे कल्याणकारी अग्निष्टोमादि यज्ञ सर्वतः सर्वदा अप्रतिहत एवं शत्रुओं से अप्रतिरुद्ध हों, शत्रुओं का नाश करते हुए आवें ।
'देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२, मै.सं. ४.१२.३, १८६.४, का.सं. ८.१६, नि. १०.१०.
आधुनिक अर्थ - (१) यज्ञ, (२) विष्णु का एक विशेषण, (३) दस प्रजापतियों में एक, (४) बुद्धि, योग्यता, कुशलता ।

क्रतुप्रा - कर्म और ज्ञान को देने वाला ।
'चित्रस्तेभानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः'
ऋ. १०.१००.१२

क्रतुप्रावा - कर्मों या यज्ञों का प्रवर्तक सूर्य ।
'क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामवः'
ऋ. १०.१००.११.

क्रतुमन्ता - (१) स्त्री पुरुष या अश्विद्वय का विशेषण । अर्थ (२) क्रतु अर्थात् यज्ञ करने वाला (३) कार्यकुशल स्त्री पुरुष ।
'यत् तिष्ठथः क्रतुमन्ता नु पृक्षे'
ऋ. १.१८३.२

क्रतुस्थला - (१) क्रतु अर्थात् प्रज्ञा का एक मात्र आश्रय समिति ।
'पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१५, तै.सं. ४.४.३.१, मै.सं. २.८.१०, ११४.१४, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१६.

क्रन् - करता हुआ ।
'रतं न क्रन्तो अपसा भुरिजोः'
ऋ. ४.२.१४

क्रन्दत् - युद्ध के लिए ललकारने वाला ।
'क्रन्दते स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१९.१ मै.स. ३.१२.३:१६०.१२, का.सं. (अश्व.)१.१०

क्रन्दनुः - (१) आह्वाता -दया. (२) मेघ (३) विद्युत्, (४) रोदनशील. प्रकृति, (५) विदुषी स्त्री ।
'प्रक्रन्दनुः नभन्यस्य वेतु'
ऋ. ७.४२.१, कौ.ब्रा. २६.११

क्रन्दसी - द्वि.व. (१) नाना गुणों से युक्त आकाश और पृथिवी ।
'यं क्रन्दसीअवसा तस्तभाने'
ऋ. १०.१२१.६, वाज.सं. ३२.७, वाज.सं.(का.)

२९.३४, तै.सं. ४.१.८.५.
(२) पति पत्नी, (३) गुरुशिष्य (४) परस्पर आह्वान् करन या ललकारने वाले ।
'यं क्रन्दसी संयतीविह्वयेते'
ऋ. २.१२.८, अ. २०.३४.८.
(५) दुःखों के कारण रोने वाले स्त्री पुरुष ।

कनिक्रदत् – गर्जना करता हुआ ।
'कनिक्रदतो वृष्णो अस्यवज्रात्'
ऋ. २.११.९

क्रम – (१) पग ।
'विष्णोः क्रमो ऽसि सपत्नहा'
वाज.सं. १२.५, मै.सं. २.७.८: ८५.३,४.४.५: ५५.१४, का.सं. १६.८ , शा.ब्रा. ६.७.२.१३.
(२) क्रम से उत्पन्न होने वाला परिणाम, (३) नाना कर्म
'क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान्'
अ. ८.९.१०.

क्रमजटा – 'अग्निम्ईडे 'इडे अग्निम्' इत्यादि क्रम से पारायण करना क्रमजटा है ।

क्रमति – चलता है । क्रम् नैरुक्त धातु है और सरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । क्रम् + कि = क्रिमि । क्रिमि सरणशील है ।

क्रमदण्ड – अग्निम्ईडे, ईडे पुरोहितम् , पुरोहितम् ईडे अग्निमीडे पुरोहितम्-इस प्रकार संहिता का पाठ क्रमदण्ड कहलता है ।

क्रमपद – ऋग्वेद के चार पारायणों में एक । संहितानुसार पदपाठ क्रमपद कहलाता है ।

क्रमपार – ऋग्वेद के चतुर्विध पारायणों में एक । जिस क्रम में संहिता पढ़ी गई है उसे क्रमपार कहते हैं ।

क्रमु – वह नाड़ी जिससे आत्मा देह के अंगों के चलने की व्यवस्था करता है ।
'त्वं सिन्धो कुभयागोमतीम् क्रुमुम्'
ऋ. १०.७५.६

क्रवणः – (१) शब्द कर्त्ता-दया. (२) कर्म कुशल पुरुष ।
'अत्रा न हार्दिक्रवणस्य रेजति'
ऋ. ५.४४.९

क्रव्य – आमा मस, कच्चा मांस, । स्वामी दयानन्द के मत से कु (गत्यर्थक) + यत् = कव्य है । 'निकृन्तत् क्रूयते प्राप्यते (जो किसी जीव को काटकर प्राप्त किया जाता है वह क्रव्य है) पाणिनि के अनुसार भी यही व्युत्पत्ति है । निरुक्त में निकृत्तानत् जायते' जो काटकर प्राप्त किया जाता है वह क्रव्य है । कृत् (काटना) + यत् क्रव्य (पृषोदरादिवत्) ।
अंग्रेजी का (cruel) शब्द क्रु से सम्बन्ध रखता है ।

क्रव्यवाहनः – (१) मांस ढोने वाला अग्नि, (२) कटे काष्ठादि में लगा अग्नि, (३) क्रव्य नामक हवि का वाहक अग्नि-सा. (४) स्वा. दयानन्द ने क्रविस् का अर्थ भक्षित किया है । वाज.सं. २५.३२) । क्रव्य का अर्थ पकाया मांस है ।
'क्रव्यं विकृत्तात् जायतेनि-
यो अग्निः क्रव्यवाहनः'
ऋ. १०.१६.११, वाज.सं. १९.६५, का.सं.२१.१४, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२९.

क्रव्यात् – क्रव्य + अद् + क्विप् । (१) कच्चे मांस का आहारी, (२) मच्छड़, खटमल आदि ।
'क्रव्याद् यातूनां शयने शयानम्'
अ. ५.२९.८,९.
(३) चिता की अग्नि, (४) मृत्युकारक कारण, । (५) प्रजाघात के जन्तु ।
'निष्क्रव्यादं सेधा'
वाज.सं. १.१७, तै.सं. १.१.७.१, का.सं. १.७.श.ब्रा. १.२.१.४, तै.ब्रा. ३.२.७.१, आप.श्रौ.सू. १.२२.२.
'ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे
द्वेषोधत्तम् अनवायं किमीदिने'
ऋ. ७.१०४.२, अ. ८.४.२, का.सं. २३.११, नि.६.११.
(६) शव जलाने वाला अग्नि-
(७) कच्चा मांस खाने वाला व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु-।
यदि अग्निः क्रव्याद् यदिवा व्याघ्रः इमं गोष्ठं प्रविशति अन्योकः तं माषाज्यं कृत्वा प्रहिणोमि दूरम् ।
यहां माषाज्य का अर्थ उर्द की वरी कर शवाग्नि को देने का अर्थ किया गया है, पर पं जयदेव शर्मा ने क्रव्याद् का अर्थ हिंसक व्याघ्र मानकर उसे माषाज्य, अर्थात् घातक वज्र से मारने का

अर्थ किया है ।
अन्य व्युत्पत्ति – क्रव्य + अद् + विट् = क्रव्याद्
(८) कच्चा मांस खाने वाला राक्षस ।
(९) गर्भाशय नष्ट करने वाला एक क्रिमि जो गर्भाशय का मांस खाता है ।
'अग्निष्टं ब्रह्मणासह निष्क्रव्यादमनीनशत्'
ऋ. १०.१६२,२. अ. २०.९६.१२,
(१०) जंगली जीव

क्रव्यादग्निः – (१) मांस खाने वाला श्मशानाग्नि, (२) सन्ताप दायक दुष्ट जन्तु, (३) मृत्यु ।
'क्रव्यादग्निं प्रहिणोमि दूरम् ।'
ऋ. १०.१६.९, अ. १२.२.८, वाज.सं. ३५.१९, वाज.सं.का. ३५.५३,
(४) नर शरीर का मांस खाने वाला शवाग्नि ।
'आरादग्निं क्रव्यादं निरूहन्'
अ. ८.२.९
'शान्तो अग्निः क्रव्याद्'
अ. ३.२१.९

क्रविष् – कृवि हिंसा करणयोः (१) विजय करने योग्य , (२) काटा हुआ मांस ।
'यदश्वस्य कविषोमक्षिकाश'
ऋ. १.१६२.९ वाज.सं. २५.३२, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१, १८२.१४, का.सं. (अश्व.) ६.४.
(३) क्रमु + इसि = क्रविष् । अर्थ क्रमणशील –(दया.)
(४) विजय करने योग्य अश्व या राष्ट्र ।

क्रंशति – (१) प्रकाशयति । 'क्रंश्' धातु प्रकाश करना अर्थ में आया है ।

क्रंस – कदम बढ़ाना, पहुंचना, पार करना । अंग्रेजी का cross धातु का पूर्व रूप क्रंस ही है ।

क्रंसते – कदम बढ़ाता है, पहुंचता है ।
'प्रयद् आनड् विश आहर्म्यस्य
उरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः'
ऋ. १.१२१.१
जब सत्संग करने या राष्ट्र रूपी यज्ञ की रक्षा करने वाला स्वामी या परमेश्वर से मेल करने वाला मुमुक्षु (यजत्रः) बड़े महल या अन्त पुर के समान प्रजाओं के पालन रूप उत्तम कार्य में प्रतिष्ठा प्राप्त करे और बहुत ऊंचे पद पर कदम बढ़ावे या (मुमुक्षु) अपने प्रवेश योग्य प्राणों पर वश प्राप्त कर ले और महल के बहुत अधिक ऊंचे पद पर कदम बढ़ावें (हर्म्यस्य उरु क्रंसते) ।

क्लथन् – क्लथ (नाश करना) + शतृ = क्लतन् । शत्रुओं का नाश करता हुआ ।
'मारुतः क्लथन्'
वाज.सं. ३९.५.

क्लदीवत् – गँवारों की तरह बकने और सबको कलह लड़ाईऔर दंगा फसाद के लिए उभाड़ने वाला–
'अवस्थस्य क्लदीवतः'
अ. ७.९०.३

क्लन्दा – संसार में जन्म लेने वाली ।
'याः क्लन्दाः तमिषीचयः'
अ. २.२.५

क्वचित् – (१) कहीं, (२) क्वस्वित् (कहां) ।

क्वयि– एक प्रकार का पक्षी ।
'रुरू रौद्रः क्वयिः कुटुरुर्दात्यौहस्ते'
वाज.सं. २४.३९.

क्वस्वित् – (१) क्यों ।
'जङ्घे निर्ऋत्यं न्य दधुः क्वस्वित्'
अ. १०.२.२.
(२) कहीं भी ।
'क्वस्वित् तान्या पितरा व आसतुः'
ऋ. १.१६१.१२
उस समय (तान्या) आप लोगों के माता पिता कहीं भी (क्वसित्) रहें ।
(३) कहां ।
'क्वस्विमदस्याः परमं जगाम'
ऋ. ८.१००.१०, तै.ब्रा. २.४.६.११, नि. ११.२८.
इस माध्यमिक वाक् का परम तत्व कहां चला जाता है । अथवा इस वाणी के प्रभाव से उत्पन्न रस को कहां कहां पाया जाता है।

क्षदम – जल ।
'क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा'
ऋ. १०.१०६.७.

क्षण – 'क्षणु' (हिंसार्थक धातु) + अच् = क्षण (प्रकर्षेण हीनः हिंसित कालः) । अर्थ अल्प काल प्रक्षुत काल । क्षणु धातु तेजन अर्थ में होने पर भी यहां हिंसा अर्थ में पाया गया है । धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं । अथवा, क्षण् (खण्ड खण्ड करना) + अच् = क्षण ।
आधुनिक अर्थ – (१) अल्पतम काल, एक सेकण्ड का ४/५ भाग, (२) फुर्सत, विश्राम

काल, (३) उपयुक्त अवसर (४) सौभाग्य का समय , शुभकाल, शुभ समय, शुभ मुहूर्त, (५) उत्सव, प्रसन्नता, (६) निर्भरता , (७) केन्द्र, मध्य बिन्दु

क्षणिः – क्षण् (नाश करना) + इन् = क्षणि । अर्थ –नाश करने वाला ।

क्षत्ता – (१) क्षतों से त्राण करने वाला ।

'नमः क्षत्तृभ्यः'

वाज.सं. १६.२६, तै.सं. ४.५.४.२, मै.सं. २.९.४, १२४.२ का.सं. १७. १३.

(२) दाता ।

'असिक्षत्तावामस्य देवभूरेः'

ऋ. ६०.१३.२, मै.सं. ४.१०.१, १४३.४, आप.श्रौ.सू. ५.२३.९.

(३) सारथि, (४) इन्द्रियों को सन्मार्ग में चलाने वाला मन, (५) मनुष्यों को सन्मार्ग में चलाने वाला पुरुष ।

'विविक्त्यै क्षत्तारम्'

वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७.

(६) कोठारी, प्रबन्धक, मैनेजर ।

'यत् क्षत्तारं ह्वयति'

अ. ९.६.(६) १

क्षत्र – क्षद् (निघण्टु के मत से ग्रहणार्थक, माधव के मत से शकलीकरण तथा हिंसा अर्थ वाला तथा सुबोधिनीकार के मत से गति तथा हिंसा अर्थ वाला) + त्र = क्षत्र अर्थ है । (१) धन भोग करने वाले धन रखते हैं, यह दारिद्र्य को मार भगाता है, किसी नाशक पाप से रक्षा करता है (क्षतात् त्रायते) (२) पाप से रक्षा करने वाला (क्षत् + त्रै) (३) क्षति से बचाने वाला ।

'नहि ते क्षत्रम् न सहाने मन्युम्'

ऋ. १.२४.६

पुनः

'सुक्षत्रासो ऽरिशादसः'

ऋ. १.१९.५

आधुनिक अर्थ–शक्ति, राज्य महत्ता, क्षत्रियजाति (४) घर का बुना वस्त्र, (५) छाता (६) ढंकना (७) प्रेरक आत्मा ।

'क्षत्रेणात्मानं परिधापयाथः'

अ. १२.३.५१

'घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्'

ऋ. १.१५७.२, साम. २.११०९.

(८) सेनाबल (९) बलवीर्य, (१०) राज्य ।

'उपक्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिः'

ऋ. १.४०.८

जो राजा अपने क्षत्र या सेनाबल को अच्छी तरह संगठित करता है ।

'अनुक्षत्र मंहना मन्यत द्यौः'

ऋ. ४.१७.१, मै.सं. ४.११.४, १७१.३, का.सं. ६.१०.

(९) सबल , चेतनावान् ।

'केन सत् क्षत्रमुच्यते'

अ. १०.२.२२

(१०) वीर्य के अर्थ में प्रयोग –

'अस्मै क्षत्राणि धारयन्तमग्ने'

अ. ७.७८.२, कौ.सू. १३७.३०.

(११) रक्षण–सामर्थ्य ।

'नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं
वयश्च नामी पतयन्त आयुः'

ऋ. १.२४.६.

हे प्रभो ! तेरे रक्षण सामर्थ्य, बल और मन्यु को ये उड़ने वाले पक्षी तथा सूर्य, चन्द्र और तारा गण भी प्राप्त कर सकते हैं ।

क्षत्रद्रविण – क्षत्रबलरूपीधन ।

'ग्रीष्मऋतुः क्षत्रं द्रविणम्'

वाज.सं. १०.११, तै.सं. ४.३.३.१, मै.सं. २.७.२०, १०५.४, श.ब्रा. ५.४.१.४.

क्षत्रपिता – कष्टों से बचाने वाला पिता ।

'उत पुत्रः पितरं क्षत्रमीडे'

अ ५.१.८

क्षत्रभृत् – क्षात्रबल को पालन और धारण करने वाला ।

'विराडग्ने क्षत्रभृद् दीदिहीह'

अ. ७.८४.१, वाज.सं. २७.७, वाज.सं.(का.) २९.७, तै.सं. ४.१.७.३, मै.सं. २.१२.५, १४.९.६, का.सं. १८.१६,

क्षत्रयोग– क्षत्रियोचित साधन ।

'जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वोयुनज्मि'

अ. १०.५.२

क्षत्रवनिः – क्षत्र+ वन + कि = क्षत्रवनि, क्षत्रियों को वृत्ति देने वाला ।

'ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि'

वाज.सं. ५.२७,६.३, श.ब्रा. ३.६.१.१७.
'ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि
'सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य दधाय'
वाज.सं. १.१७,१८, श.ब्रा.१.२.१.७,१०
'ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं पर्यूहामि'
तै.सं. १.३.१.२, ६.२ , मै.सं.१.२.११, २१.१, १.२.१४, २४.१, ३.८.९, १०८.५, ३.९.३, ११८.३, का.सं. २.१२,३.३, मा.श्रौ.सू. १.८.२. २०, २.२.३.१७,

क्षत्रवर्धन – (१) क्षत्रबल को बढ़ाने वाला ।
'अभिभुं क्षत्रवर्धनम्'
अ.१०.६.२९

क्षत्रश्री – (१) बल वीर्य की शोभा ।
'प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठः'
ऋ. ६.२६.८
(२) समस्त बलों का आश्रय ।
'कदा क्षत्रश्रियं नरं
आ वरुणं करामहे'
'मृडीकायोरुचक्षसम्'
ऋ. १.२५.५
समस्त बलों के आश्रय, सबके नायक, सब कष्टों के वारक, बहुत प्रकार के ज्ञानों और प्रजाजनों के द्रष्टा पुरुष को हम लोग कब राजा रूप में बनावें ।

क्षत्रिया – (१) मित्रावरुण, (२) वीर बलशाली ।
'सिन्धुपती क्षत्रियायातमर्वाक्'
ऋ. ७.६४.२

क्षद् – खिलाना ।
'तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे'
अ. १०.६.५

क्षद्मन् – जल, अन्न ।

क्षदस् – (१) अज्ञान-नाश ।
'होतेव क्षदसे प्रियम्'
ऋ. १.२५.१७
यज्ञकर्त्ता विद्वान् के समान अपने हृदय के अज्ञान के नाश के लिए (क्षदसे) उस प्रिय ज्ञान राशि को (प्रियम्) तू प्राप्त करता है ।

क्षप् – (१) रात्रि, (२) शत्रु नाश कारिणी सेना ।
'द्विव इवेदरतिर्मानुषा युगा
क्षपो भासि पुरुवार संयतः'
ऋ. २.२.२.
'वर्धान् यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः'
ऋ. १.७०.७.
अन्धेरी रात्रियां (पूर्वी क्षपः) जिस प्रकार उगते सूर्य या प्रकाशवान् अग्नि को बढ़ाती हैं अर्थात् उसके महान् सामर्थ्य को प्रकट करती हैं उसी प्रकार अग्रणी नायक को विविध रूपों वाली (विरूपाः) पूर्व से ही विद्यमान या पूर्व शिक्षित सिद्धहस्त, नाना साधनों से पूर्ण शत्रुनाश कारिणी सेनाएं (पूर्वी क्षपः) बढ़ावें (वर्धानः)
पुनः रात्रि के अर्थ में–
'तिस्रः क्षपः त्रिरहाति व्रजद्भिः'
ऋ. १.११६.४, तै.आ. १.१०.३.
तीन रात और दिन लगातार चलने वाले

क्षपावान् – क्षपा + वतुप् = क्षपावान् (१) रात्रियों का स्वामी चन्द्रमा (२) शत्रुनाशिनी सेना का स्वामी राजा ।
'स हि क्षपावान् अभवत् रयीणाम्'
ऋ. १.७०.५, अ. ७.१०.५
(३) जल क्षेपन शक्तियों से युक्त रात्रिवत्, अन्धकार करने वाला मेघ, (३) रात्रि दिन करने वाला सूर्य (४) किरणों के बीच तेज प्रकाश का प्रक्षेप्ता सूर्य ।
'स हि क्षपावान् सभगः स राजा'
ऋ. ३.५५.१७
पुनः
'नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्'
ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१.
(५) समस्त रजो विकारों को नाश करने वाली चितिशक्ति (क्षपा) का स्वामी आत्मा ।
(६) सोते समय भी पहरे दारों के समय मुख्य प्राण ।
(७) रमण कारिणी राजशक्ति का स्वामी,
(८) दोषों का नाशक चेतना शक्ति का स्वामी ।
(९) रात्रि के अन्धकार का नाश करने से रात्रि का स्वामी अग्नि ।
(१०) अज्ञानमयी मोह रात्रि का नाशक परमेश्वर ।
'सहिक्षपावां अग्नी रयीणाम्'
ऋ. १.७०.५
वह रात्रि स्वामी अग्नि या परमेश्वर अपने उपासकों को ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

(११) सोमभागी । क्षमा का अर्थ सोम मान कर सायण ने इसका अर्थ सोमभागी किया है, (१२) क्षपा का अर्थ काल रात्रि मानकर श्री जयदेव शर्मा ने इसका अर्थ कालरात्रि का निर्माता परमेश्वर किया है ।

'नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्'

ऋ.१०.२९.१, अ. २०.७६.१

क्षपा – (१) रात्रि, (२) शत्रुनाशिनी सेना, (३) रजोविकारों को नाश करने वाली चितिशक्ति, (४) रमण कारिणी राजशक्ति, (५) दोषों का नाशक चेतनशक्ति, (६) अज्ञानमयी मोह रात्रि, (७) सोम । (८) कालरात्रि

क्षपांवस्ता – (१) रात्रि को अपने तेज से आच्छादित करने वाला–इन्द्र, परमेश्वर (२) राष्ट्र की नाशक शक्तियों को अपने तेज से आच्छादित करने वाला ।

'क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य'

ऋ. ३.४९.४

क्षम् – (१) पृथिवी ।

'दर्शं रथ मधि क्षमि'

ऋ. १.२५.१८

रथ पर चढ़ (रथम् अधि) इस पृथिवी पर (क्षमि) सबके दर्शनीय (दर्शम्) परमेश्वर को...।

(२) क्षमा ।

'ये वृक्णासो अधिक्षमि'

ऋ. ३.८.७

पुनः, पृथिवी के अर्थ में–

'अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः'

ऋ. १०.१०.१, अ. १८.१.१

क्षम्य – (१) क्षमायोग्य, (२) इस पृथिवी पर रहने योग्य (३) क्षमा अर्थात् पृथ्वी से प्राप्त होने वाला क्षेत्र सेना, पशु, हरित आदि का ।

'यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा'

ऋ. २.१४.११

'सहि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः'

ऋ. ७.४६.२

क्षम्यं वसु – पृथिवी का धन ।

'अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो
यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा'

ऋ. २.१४.११.

हे अध्वर्युवो ! जो इन्द्र द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी के धनों का राजा है ।

क्षमा – (१) सब कुछ सहने वाली पृथिवी

'क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानम्'

अ. १२.१.२९

क्षमाचर – पृथिवी पर विचरने वाला ।

'नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः सर्वा अधः क्षमाचरा

वाज.सं. १६.५७, तै.सं. ४.५.११.१.

क्षय – क्षि + अच = क्षय । (१) निवास, (२) ऐश्वर्य, (३) वृष्टि आदि ऐश्वर्य, (४) व्यवहार (५) रोगनाशक सामर्थ्य ।

'सहि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः'

ऋ. ७.४६.२

(६) निवास स्थान, पृथिवी ।

'त्वा विष्णु र्बृहत् क्षयः'

ऋ. ८.१५.९, अ. २०.१०६.३

निवास के अर्थ में ।

'अर्यो मानस्य स क्षयः'

ऋ. ८.६३.७

समस्त जगत् का ईश्वर (अर्यः) तथा दर्प, बल और वीर्य का निवास (मानस्यक्षयः) ।

(७) ऐश्वर्य ।

'त्वं हि राधस्पते राध सोमहः क्षयस्यासि विधतः

ऋ. ८.६१.१४

(८) गृह, घर,। 'क्षि' (निवास और गति अर्थ में है) + घ = क्षय क्षियन्ति निवसन्ति अस्मिन् (इसमें रहते हैं निवास करते हैं) ।

'अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो
वनस्पते मधुना दैव्येन
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणोह धत्ताद्
यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे'

ऋ. ३.८.१, मै.सं. ४.१३.१, १९९, का.सं. १५.१२, तै.ब्रा. ३.६.१.१ , नि. ८.१८.

हे खदिर या पलास के यूप (वनस्पते) तुझे अध्वर्युजन (देवयन्तः) देवसम्बन्धी घृत से (दैव्येन मधुना) सिक्त या मृष्ट करते हैं (अञ्जन्ति) जिससे तू सीधा खड़ा रहे (ऊध्वःतिष्ठा) और इस माता पिता पृथिवी की गोद में तेरा निवास हो (मातुः अस्याः उपस्थे क्षयः) । इस प्रकार स्थिर हो तू हमारे लिए धन दे (द्रविण इह धत्तात्) ।

अन्य अर्थ – हे गार्हपत्याग्नि (वनस्पते) ! अपने में देव भाव की कामना करते हुए गृहस्थ लोग (देवयन्तः)तुझे हिंसारहित बलि वैश्वदेव यज्ञ में (त्वां अध्वरे) मिष्टान्न और घृत के साथ प्रकाशित करते हैं (मधुना दैव्येन अञ्जन्ति) क्योंकि यदि तू आहवनीय के रूप में ऊंची (यत् ऊध्वः तिष्ठाः) और यदि इस भूमि पर तेरा निवास होगा अर्थात् दक्षिणाग्नि के रूप में निम्न ज्वालाओं के साथ प्रदीप्त होगा (यद्वा अस्यमातुः उपस्थेक्षयः) तो इन दोनों रूपों में तू हमें धन देगा (इह द्रविणा धत्तात्) ।

क्षयण – गृह बनाने वाला ।

'नमः किंशिलाय च क्षयणाय च'

वाज.सं. १६.४३, तै.सं. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८, १२६.७, का.सं. १७.१५.

क्षयद्वीरः – (१) शत्रुओं या अधीन रहने वाले वीरों का स्वामी, ।

'क्षयद्वीरः स साधते'

ऋ. ८.१९.१०.

(२) क्षयन्तः शत्रूणां नाश कर्त्ता रो वीराः यस्य सेनाध्यक्षः–(दया.) । वह सेनापति जिसके वीर शत्रुओं के नाशक हो ।

'क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे'

ऋ. १.१०६.४

(३) दोषनाशक वीर पुरुषों का स्वामी (४) शत्रुओं का नाशकारी, (५) ऐश्वर्य् युक्त वीर पुरुषों का स्वामी, (६) रुद्र का एक विशेषण ।

'क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः'

ऋ. १.११४.१, वाज.सं. १६.४८, तै.सं. ४.५.१०.१, मै.सं. २.९.९, १२७.९, का.सं. १७.१६.

क्षयन् – क्षि (निवासकरना) + शतृ = क्षयत् । प्र. ए.व. में क्षयन् । अर्थ – निवास करता हुआ या करने वाला ।

'प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नाम
अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके ।'

ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं .२.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.६, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.

हे रश्मियों से आविष्ट विष्णुदेव (शिपिविष्ट) तेरा व शिपिविष्ट नाम श्रेष्ठ है (तत् ते नाम अर्यः) यह स्मरण कर तथा तेरे प्रज्ञानों एवं गुणों को जानता हुआ मैं (वयुनानि विद्वान्) आज तेरी स्तुति करता हूँ (अद्य प्रशंसामि) । जो तू सर्वगुण सम्पन्न ईश्वर है उस तुझ महान् तथा इस अन्तरिक्ष से भी दूर देश में बसने वाले को (तंत्वा तवसम् अस्य रजसः पराके क्षयन्तम्) मैं क्षुद्र या अमहान् (अतव्यान्) स्तुतियों से प्रणाम करता हूँ (गृणामि) ।

अन्य अर्थ – हे तेजः स्वरूप विष्णु परमेश्वर (शिपिविष्टः), विज्ञानों को जानता हुआ वाचस्पति मैं (वयुनानि) आज मैं तेरे उस प्रसिद्ध ऊं नाम को जपता हूँ (अद्य तत् ते प्रशंसामि) और इस जगत् से दूर पृथक् रहते हुए (अस्य रजसः पराके क्षयन्तम्) महाशक्तिशाली उस तुझको (तवसं तम्) अल्पशक्तिवाला मैं (अतव्यान्) भजता हूँ (गृणामि) ।

अथवा, हे परमेश्वर ! तू ईश्वर है (अर्यः) । अतः मैं विज्ञानों को जानता हुआ उस ओम् नाम को भजता हूँ ।

क्षरन्ती – बहती हुई ।

'बाढे अश्विना त्रेधाक्षरन्ती'

ऋ. १.१८१.७

क्स – संज्ञाप्रयोजक प्रत्यय । नाम बनाने के लिए इस प्रत्यय का प्रयोग होता है । जो गाह् + क्स के योग से बना है ।

काकः – धृष्टता आदि दोषों के कारण को कुत्सित समझा जाय वह काक है (धाष्ट्र्यादि दोष समुच्चयेन यः कुत्स्यते स काकः) । काक शब्द पक्षियों आदि के शब्द की अनुकृति है (काक इति शब्दानुकृतिः) । 'का' 'का' करने से काक कहलाया । पक्षियों का नाम करण प्रायः शब्दानुकृति से पाया जाता है । (तदिदं शकुनिषु बहुलम्) । परन्तु औपमन्यव इस सिद्धान्त का पोषण नहीं करते क्योकि हंस आदि नामों में शब्दानुकृति नहीं है ।

(२) अतः काकः अपकालयि तव्यः अपसारितव्यः (काक को भगाना चाहिए) इस अर्थ में काक शब्द बना है । काक जिस किसी पदार्थ को छूता है वह अपवित्र हो जाता है । अतः उसे लोग भगा देते हैं (यत् यत् स्पृशति

तत् तत् उपहन्ति) । काल + कन् = काक
आधुनिक अर्थ - काग, धृष्ट या दुष्ट पुरुष, लंगड़ा, पानी में सिर्फ सिर डालकर ही स्नान करने वाला ।

काकं वीरः - कांक + वीर (१) काका आदि का नाना पक्षियों का भरण पोषण करने वाला वट वृक्ष आदि (२) क्षुद्र या छोटे जनों का पालक पुरुष
'मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पति'
ऋ. ६.४८.१७

काकुद - (१) सब में श्रेष्ठ, (२) समस्त दिशाओं में व्याप परमेश्वर ।
'उर्वीरापो न काकुदः'
ऋ. १.८.७, अ. २०.७१.३
(३) तालु (काकुदं तालु इति आचक्षते)
'अनु क्षरन्ति काकुदम्'
ऋ. ८.६९.१२, अ. २०.९२.९, मै.सं. ४.७.८, १०४.१२, नि. ५.२७.
कोकुवा या जिह्वा इसी तालु में वर्णोच्चारण के लिए बार बार आता है । अतः यह 'तालु' का पर्याय हुआ (जिह्वा कोकुवा सा अस्मिन् धीयते) । कोकुवा -धारण अर्थात् कोकुवा के रहने का स्थान 'काकुद' बना ।
(४) या जिह्वा तालु पर वर्णों को प्रेरित करती है । अतः कोकुवानुद् काकुद बन गया।
(५) अथवा शब्दार्थक षङ्लुगन्त 'कु' धातु से 'द' प्रत्यय लगा कर काकुद हुआ । तालु पर ही जिह्वा के लगने से वर्णोच्चारण होता है ।

काचित्करः - अति सुख कारी । 'कम्' सुख वाचक है । कस्यचित् करः काचित्करः ।
'प्रियं काचित्करं हविः'
ऋ. १०.८६.१३, अ.२०. १२६. १३, नि. १२.९.
कस्यचित् का अर्थ है सुख का संघ (चित्) । अर्थ हुआ सुखकारक

काट - (१) गढ़ा ।
'श्लोण या काटमर्दति'
अ. १२.४.३
(२) कटन्ति सर्वा विद्याः यस्मिन् स अध्यापकः -(दया.)
(३) कूप आदि -गिर जाने का विषमस्थान ।
'इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाढ़ ऋषि रह्वदूतये'
ऋ. १.१०६.६
कूप आदि गहरे स्थान में (काटे) गिरे हुए (निबाढ़ः) कुत्स ऋषि ने शचीपति वृत्रहा इन्द्र को रक्षा के लिए बुलाया (कुत्सः ऋषि इन्द्रं वृत्रहणं शचीपतिम् ऊतये अह्वत्) ।
अन्य अर्थ- विद्युत् वेग से जाने वाली होकर कूप आदि गहरे स्थान में गिरता हुआ मेघों को छिन्नभिन्न करनेवाले शक्ति या समस्त कर्मों के पालक जलों के भीतर उनको फाड़ने में समर्थ तेज को प्रकट करता है । अथवा, विद्युत् आदि विद्याओं को प्रकट करने वाला (कुत्सः) निरन्तर ज्ञानवान् होकर यन्त्रार्थों और सत्यसिद्धातों का साक्षात् करने वाला, कूप आदि गिर जाने के विषम स्थान में (काटे) अज्ञानान्धकार और वाणियों के पालक, विद्या ज्ञान और धन के स्वामी परमेश्वर, आचार्य और नायक पुरुष, को रक्षा तथा ज्ञान आदि की वृद्धि के लिए पुकारता है ।

काट्य - (१) 'कट' अर्थात् चटाई आदि बनाने में प्रवीण
'नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च'
वाज.सं. १६.४४, तै.सं. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८, १२६.१२, का. सं. १७.१५

काण - (१) कुत्सित शब्दकारी, कुत्सित दर्शन, (३) काना, (४) अविक्रान्त दर्शन
'नमः काट्याय च नीप्याय च'
वाज.सं. १६.३७, तै.सं. ४.५.७.१, का.सं. १७.१५. (औपमन्यव के मत से) (५) अपूर्ण दर्शन (जो पूरा न देखे) (६) अणु दर्शन (कम देखने वाला), (७) निर्धन, ।
क्रम् + घञ् = क्राम = काण । अथवा -(८) कण (कम करना) अणूभाव तथा शब्द का कम करना शब्दाणूभाव है । किसी पदार्थ मात्रा के अणूभाव में भी कण धातु का प्रयोग होता है जैस अन्न का कण देखने की शक्ति में कम होने के कारण काण शब्द बना है ।
कण (कण होना) + घञ् = काण ।

काण्ड - काण्ड, गिरह ।
'काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती'
वाज.सं. १३.२०, तै.सं. ४.२.९.२, ५.२.८.३, मै.सं.

२.७.१५, ९८.१३, ३.२.६: २४.१९, का.सं. १६.१६, २०.६, श.ब्रा. ७.४.२.१४, तै.आ. १०.१.७, आप.श्रौ.सू. १६.२४.१, मा.श्रौ.सू. ६.१७, शां.गृ.सू. ६.६.९, महा.ना.उप. ४.३.

काण्डिनी – काण्ड या पोरुओं वाली ओषधि ।
'अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखाः'
अ. ८.७.४

काण्व – (१) काण्व मेधातिथि नामक ऋषि–सा.
(२) मेधावी –(दया.)
'इत्था धीवन्तमद्रिवः
काण्वं मेध्यातिथिम्'
'ऋ. ८.२.४०.
हे वज्रधारी इन्द्र या राजन्! (अद्रिवः) इस प्रकार या सत्यवक्ता (इत्था) कर्मशील या बुद्धिमान् (धीवन्तय) काण्व मेधातिथिको या मेधावी तथा संगति के योग्य अतिथि को (काण्वं मेधातिथिम्) ।
(३) कण्व का पुत्र ।

काणा – (१) चक्षुहीन गौ, (२) निरुक्त व्याकरणादि व्याख्या के बिना वेदवाणी ।
'काणयादीयते स्वम्'
अ. १२.४.३
(३) दुर्भिक्ष आदि देवता के विशेषण के रूप में प्रयुक्त अर्थ है – कुत्सित दर्शना, कुत्सित दीखने वाली, (४) एक आंख वाला ।
'अरायि काणेविकटे'
ऋ. १०.१५५.१, नि. ६.३०
हे अदानशीले ! दुर्भिक्षादि देवते ! हे कुत्सित दर्शने और हे विकृताङ्गि या कुब्जे ।

काण्वायन – कण्व या विद्वान् जनों के अधीन ।
'सुदेवाः स्थ काण्वायनाः'
ऋ. ८.५५.४

आणुका – (१) कान्तकानि कमनीयानि प्रियाणि । अर्थ प्रिय, कामुक, इच्छुक, प्रेमी । कान्त + क = काणुकः । कृत + क काणुकः । यहां कान्त और कृत का काणु आदेश हुआ है ।
(२) सम्यक् प्रकार से किया गया पदार्थ 'काणुक' है–कमनीय हो जाता है । (३) सोमरस तैयार किए जाने पर काणुक कहलाता है (४) जिस बर्तन में सोमरस रखा जाता है वह भी काणुक है (५) सुन्दर, पवित्र, निर्मल (६) इन्द्र का विशेषण भी है
'एकया प्रतिधापिबत्
साकं सरांसि त्रिंशतम् ।
इन्द्रः सोमस्य काणुका ।'
ऋ. ८.७७.४, नि. ५.११.
एक ही प्रणिधान में या झोंके में इन्द्र सोमरस के तीस सुन्दर बर्तनों को पी जाता है ।
अथवा, सूर्य एक ही टिकाव से पक्ष के तीस दिन रात में आई प्रदीप्त निर्मल रश्मियों को पीता है ।
अथवा, सूर्य चन्द्रमा की रश्मियों को इच्छा भर पीता है (काणुका अपिबत्)
पुनः– कान्तकानि, क्रान्तकानि, कणेधात इतिवा, कणेहत, कान्ति हतः, इच्छा कृतकानि इतिवा . इन्द्रः सोमस्य कान्त इति वा
कान्तियुक्त, दूरगत, कृतव, कृत्रिम्,सूर्य का विशेषण, कन्नी काटना, कान्ति, इच्छा–प्रतिघात ।

कान्दाविष – कन्दो का विष ।
'कान्दाविषम् कनक्नकम्'
अ. १०.४.२२

कानीतः – तेजस्वीपुरुष ।
'पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्पददे'
ऋ. ८.४६.२१

कानीन – दीप्ति का पुत्र ।
'सिलाचीनाम कानीनः'
अ. ५.५.८

काबव – हिसंक जन्तु ।
'श्रवस्युं शुष्मं काबवम्'
अ. ३.९.३

काधूः – (१) जलमयी पृथिवी, (२) कौन कारण ? (३) पृष्ठ भूमि ।
'कया भुवा नि दधे धेनुरूधः'
ऋ. ३.५५.१३, १०.२७.१४.

काम – (१) करन्तिमान, (२) सर्वसंकल्पमय ईश्वर ।
'कामो जज्ञेप्रथमः'
अ. ९.२.१९
(३) सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा (४) समष्टि संकल्प ।
'कामस्तदग्रे समवर्तताधि'

ऋ. १०.१२९.४, अ. १९.५२.१, तै.ब्रा. २.४.१.१०, ८.९.४, तै.आ. १. २३.१, नृसिंहपू.ता.उप. १.१.
(५) इच्छा ।
'सो अस्य कामं विधतो न रोषति
मनो दानाय चोदयन्'
ऋ. ८.९९.४, अ. २०.५८.२.
वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भक्त की इच्छा को, अपने मन को दान के लिए प्रेरित करता हुआ भंग नहीं करता ।

कामकातिः – अपनी नाना अभिलाषाओं को कहने वाला ।
'अवृत्रन् कामकातयः'
ऋ. ८.९२.१४, तै.सं. १.४.४६.१, आप. मं.पा. २.११.७.

कामज्येष्ठः – संकल्प के कारण ज्येष्ठ और श्रेष्ठ पुरुष ।
'कामज्येष्ठा इह मादयध्वम्'
अ. ९.२.८

काम धारण – अभिलाषा को पूर्ण करने का सामर्थ्य ।
'संज्ञानमसि कामधरणम्'
वाज.सं. १२.४६, तै.सं. ४.२.४.१, मै.सं. २.७.११, ८९.६, का.सं. १६.११, श.ब्रा. ७.१.१.८, तै.ब्रा. १.२.१.१७.

कामप्रः – (१) मनोरथों का पूर्ण करने वाला ।
'कामप्रश्छन्दसा सह'
अ. ११.७.८
'कामप्रेण स कल्पते'
अ. १०.९.४
'कामप्रेणेव मनसा चरन्ता'
ऋ. १.१५८.२
एक दूसरे के मन की अभिलाषा को पूर्ण करने वाले मन से परस्पर आचरण करते हुए ।

काममूता – काम से युक्त ।
'काममूता बहु एतत् रपामि'
ऋ. १०.१०.११, अ. १८.१.१२.

कामशल्या – जिसमें काम का शल्य लगाया गया हो ।
'आधीपर्णाम् कामशल्याम्'
अ. ३.२५.२

काम्य – (१) एक पक्षी विशेष, (२) कामना वाला पुरुष, (३) एक राजा का नाम (ग्रिफिथ के अनुसार) (४) कामान्ध, (५) श्येन नामक पक्षी, (६) चक्रवाक् (७) कबूतर (८) चटकेरा ।
'यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः'
अ. १९.३९.९
(९) अत्यन्त सुन्दर, उत्तम ।
'ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनानि'
ऋ. १.१७१.३
(१०) कमनीय ।
'भरन्ती मे अप्या काम्यानि'
ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.
अन्तरिक्ष में उत्पन्न हमारे कमनीय जलों को लाती हुई माध्यमिका वाक् उर्वशी ।

कामिना – एक दूसरे के प्रति प्रेम अभिलाषा वाले कुमार कुमारी
'कामिना सं च वक्षथः'
अ. २.३०.२

कामी – कामना करने वाला । इन्द्र का विशेषण ।
'कामीहि वीरः सदमस्य पीतिं
जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ।'
ऋ. २.१४.१
वह तेजस्वी पुरुष कामनावान् है । सदा वह अन्न रस का सेवन चाहता है । अतः इसी अन्न को बलवीर्य् सम्पन्न बनाने के लिए या (सायण के अनुसार) इन्द्र के लिए अर्पित करो ।

काम्पील वासिनी – (१) सुन्दर सुखप्रद शोभा जनक वस्त्रों से ढकी सुन्दरी स्त्री, (२) सुखों से बांधने वाले पति को अपने ऊपर बसाने में समर्थ स्त्री (३) सुखों से बांधने वाले राष्ट्रपति को अपने ऊपर बसाने में समर्थ पृथिवी, (४) काम्पील नगर में होने वाली सुभगा, सुरूपा, विदग्धा स्त्री-उव्वट । काम्पील नगेरहि सुभगा सुरुपा विदग्धा स्त्रियो भवन्ति, (५) काम्पील नामक वस्त्र-विशेष को धारण करने वाली स्त्री- सा. । काम्पील शब्देग वस्त्र विशेष उच्यते तत् वस्त्रम् आच्छदयति इति काम्पीलवासिनी (६) श्रृंगार के लिए विचित्र वस्त्र पहने हुई-स्त्री सा. । (७) कं सुखं पीलयति बध्नाति इति कम्पील स्वार्थे अण् । तं वासयितुं शीलमस्याः लक्ष्मी-दया. (८) कं प्रजापतिं पीड़यति । लत्वं छान्दसम् । (९) सुखेन बध्नाति

आश्लिष्यति यः स काम्पीलः (पृषोदरादित्वात् साधुः) तं वासयति तदधीनं वा वसति या सा काम्पील वासिनी स्त्री । तत्सादृश्पाञ्च राज्यलक्ष्मीः ।
'ससस्त्यश्वकः सुभद्रिवां काम्पीलवासिनीम्'
वाज.सं. २३.१८

कायमानः – (१) चाहता हुआ, कान्तिमान् । कामयमान =कायमानः । म का लोप छान्दस है । (२) चायमानः (पश्यन्)–देखता हुआ) = कायमानः । यहां भी च का क छान्दस है । चायृ धातु पूजा और निशामन अर्थ में आया है (चाय पूजानिशामनयोः) चाय + शानच् = चायमान = कायमान, (३) अनुगच्छन् (अनुगमन करता हुआ) (४) प्रशस्त पदार्थों का निर्माता ।
'कायमानो वना त्वं
यन्मातृरजगन्नपः'
ऋ. ३.९.२, साम. १.५.३, नि. ४.१४, मा.श्रौ.सू. ३.८.१.
हे अग्ने ! जब तू वनों को देखता या उनकी इच्छा करता हुआ अपनी उत्पत्ति के कारण माता स्वरूप जल एवं काष्ठों के पास जाता है ।

कार – (१) परमेश्वरीय नाना शिल्प, (२) कर्त्ता, विश्व निर्माता परमेश्वर ।
'पश्वमन्त्रासो अभिकारमर्चन्'
ऋ. ४.१.१४
(२) क्रिया–सामर्थ्य ।
'चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे'
ऋ. १.१३१.५, अ. २०.७५.३
(३) कार्य कुशल पुरुष
'याभिः भरे कारमंशाय जिन्वथः'
ऋ. १.११२.१
हे अश्विनो ! स्त्रीपुरुषों के या राजा प्रजा वर्गों ! आप दोनों जिन रक्षाओं के निमित्त या जिन रक्षा साधनों से युक्त होकर (याभिः) संग्राम में (भरे) अपने भाग के लिए (अंशाय) कार्य कुशल पुरुष को (कारम्) सुप्रसन्न करते हो (जिन्वथः)। (४) व्यवहार ।

काराधुनिः – (१) शब्दो को कंपाता हुआ –दया. (२) नक्कारा, (३) शब्दध्वनि करने वाला मेघ
'काराधुनीव चितयत् सहस्रैः'
ऋ. १.१८०.८

कारि – नकल उतारने वाला ।
'हसाय कारिम्'
वाज.सं. ३०.६, ३०.२०, तै.ब्रा. ३.४.१.२.

कारिन् – (१) कार्य कर्त्ता, (२) भृत्य ।
'भगस्येव कारिणो यामनिग्मन्'
ऋ. ३.५४.१४
(३) सर्वकर्त्ता–इन्द्र, परमेश्वर ।
'हुवे भरं न कारिणाम्'
ऋ. ८.६६.१, साम. १.२३७, २.३७.

कारुः – कृ + उण = कारु ('अचोञ्णिति' से वृद्धि) । अर्थ है (१) करने वाला, कर्त्ता, (२) स्तुति करने वाला –सा. (३) कर्म निष्ठ ।
'आते कारो शृणवामा वचांसि'
ऋ. ३.३३.१०, नि. २.२७.
हे स्तुति करने वाले (विश्वामित्र) हम तेरी बातों को ध्यान से सुनते हैं । (४) चाटुकार, खुशामदी ।
'कारुरहं ततो भिषक्
उपलप्रक्षिणी नना'
ऋ. ९.११२.३, नि. ६.६.
मैं चाटुकारिता से जीवन बिताता था । पिता या पुत्र वैद्य थे, माता या लड़की पिसाई कर जीविका चलाती थी ।

कारुधायाः – (१) समस्त विश्व के विधायक जगदुत्पादक सामर्थ्यों, स्तुतिकर्त्ता विद्वानों और शिल्पियों को भी धारण करने वाला ।
'अथा भवः पूर्व्यः कारुधायाः'
ऋ. ३.३२.१०
(२) विद्वानों, एवं शिल्पियों का धारण पोषण करने वाला ।
'त्वमसि प्रदिवः कारुधायाः'
ऋ. ६.४४.१२.
(३) विद्वान् स्तोता, तथा शिल्पियों का पालक पोषक–इन्द्र, ईश्वर,
'ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः'
ऋ. ६.२१.८

कारू – कृ + उण् = कारु । द्विवचन में कारू । अर्थ (१) स्तुति करने वाले (२) अग्नि और आदित्य, (३) अनेक कर्म करने वाले अग्नि और वायु ।
'दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा

मिमाना यज्ञं मनुष्यो यजध्यै
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू
प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ।'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२.७, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.१२.
देवताओं के होता अग्नि और आदित्य (दैव्या होतारा), जो मनुष्य होताओं से प्रथम अर्थात् मुख्य या बढ़कर है (प्रथमा) और जो सुस्तुत अर्थात् सुन्दर स्तुतियों से युक्त हैं (सुवाचा) मनुष्य या स्वर्ग या यष्टा की पूजा के निमित्त (मनुषः यजध्यै) प्रेरणा करते हुए (प्रचोदयन्ता) अतएव यज्ञ का निर्माण करते हुए (यज्ञं मिमाना) यज्ञों में (विदथेषु) स्तुति करने वाले (कारू) आहवनीय अग्नि को प्रदिश्यमान मन्त्र से (ज्योतिः प्रदिशा) प्रदिशत करते हुए (दिशन्ता) स्वभाव से ही यज्ञ में सहायता पहुँचाते हैं । अग्नि एवं आदित्य ही विश्व के सम्पूर्ण यज्ञों के प्रेरक एवं विधायक हैं ।
अन्य अर्थ - मनुष्य जीवन के लिए मुख्य (प्रथमा) वाणी आदि इन्द्रियों को उत्तम बनाने वाले (सुवाचा) प्रत्येक मनुष्य के यज्ञ कार्य के लिए यज्ञ के निर्माता (मनुष्यः यजध्यै यज्ञं मिमाना) यज्ञों में (विदथेषु) शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाले (प्रचोदयन्ता) अनेक कर्मों को सिद्ध करने वाले (कारू) और वेदोक्तविधि के अनुसार प्राचीन ज्योति ही अर्थात् पूर्व की ओर हो (प्रदिशा प्राचीनं ज्योतिः दिशन्ता) दिव्यगुण-सम्पन्न सुख दाता अग्नि और वायु हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न करें (दैव्या होतारा) ।

कारोतर - (१) कार + उ + तर = कारोतर । व्यवहारान् कुर्वतः शिल्पिनः तरन्ति येन (जिससे शिल्पी तर्क के साथ पार करते हैं) -दया.
(२) जल बरसाने वाला छनना ।
(३) हृदय और फुसफुसों का जोड़ा जो अश्व के खुरों के आकार के हैं और रक्त शोधक छनना हैं ।
'कारोतरात् शफादश्वस्य वृष्णः
शतं कुम्भान् असिञ्च तं सुरायाः'
ऋ. १. ११६.७
हे दोनों नायक पुरुषों ! घोड़े के खुर के आकार के बने मेघ के समान जल नीचे बरसाने वाले 'कारोतर' अर्थात् छनने से (वृष्णः कारोतरात्) जल के समान सुख, शान्ति और आनन्द देने वाली विद्यारूप रस के सैकड़ो कलश सेचन करो अर्थात् उसे विद्या स्नातक और व्रतस्नातक करो ।
अथवा, देह में हृदय और फुसफुसों का जोड़ा अश्व के खुरों के आकार का होने से रक्त शोधक छनना है (कारोतर) । उससे रक्त के सहस्रों कुम्भ अर्थात् कोष्ठ या सेतों से सेचित किए जाते हैं । अथवा, वर्षणशील मेघ के संघ से जल के सैकड़ो घड़े मानों छलनी से सहस्र धारा के रूप में बरसते हैं । (४) कूप, (५) उत्तम शिल्पी, (६) क्रियानिष्ठ पुरुष ।
'कारोतरेण दधतोगवां त्वचि'
वाज.सं. १९.८२, मै.सं. ३.११.९, १५३.६, का.सं. ३८.३, ब्रा. २.६.४.२.
(७) छनना,(८) सार और असार पदार्थों का विवेचक ।
'रूपं कारोतरो भिषक्'
वाज.सं. १९.१६

कार्पाण - कृपाण, तलवार आदि शस्त्रास्त्रों से होने वाला संग्राम ।
'कार्पाणे शूर वज्रिवः'
ऋ. १०.२२.१०

कार्मार - (१) शिल्पी , कारीगर, ।
'कार्मारो अश्मभिर्द्युभिः'
ऋ. ९.११२.२
(२) स्वर्ण कार, सोनार । जैसे चमकते हीरे से (द्युभिः अश्मभिः) सोनार (कामरिः) धनी सेठ को (हिरण्यन्तम्) चाहता है (इच्छति) ।

कार्ष्मज् - संघर्षण, शत्रुपीड़न का कार्य ।
'कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत्'
ऋ. ९.३६.१

कार्ष्म - काठ का पीढा ।
'आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य
कार्ष्मे वा तिष्ठ दर्वता जयन्ती'
ऋ. १.११६.१७
सूर्य की उषा के समान, उत्तम तेजस्विनी बाप की बेटी, काठ के पीढ़े के समान उच्च घोड़े से जुते रथ पर विराजे ।

कार्षि – कृषि कराने में समर्थ ।
'कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि'
वाज.सं. ६.२८, श.ब्रा. ३.९.३.२७.

कार्ष्णी – (१) कृष्ण गौ, (२) कृषि की जाने योग्य भूमि, ।
(३) तमोमयी प्रकृति ।
'कः कार्ष्णर्याः पयः'
अ. २०.१३०.४

कार्षीवणः – कृषि + वन । अर्थ । (१) कृषि करने वाला, (२) शूद्र, कर्मकर –
'कार्षीवणा अन्नविदो न विद्यया'
अ. ६.११६.१

काल – (१) काल, (२) सर्वज्ञ, (३) सर्व व्यापक महान् परमेश्वर (४) कलारूप इञ्जिन ।
'कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः'
अ. १९.५३.१
(४) कल (गति, संख्या अर्थ में) + णिच् + घञ् = काल । अर्थ– काल जो सभी जीवों को क्षय की ओर ले जाता है (स हि सर्वाणि भूतानि कालपति क्षयं नयति) ।
आधुनिक अर्थ– समय, मृत्यु, महाकाल, यम, कृष्ण ।
'कालोमृत्यौ महाकाले समय यम कृष्णयो'

कालकर्ण – द्रर्भिक्ष । कालं सुकालं कृनाति इति काल कर्ण (जो सुकाल को नष्ट करता और दुष्काल लाता है) ।

कालका – (१) यथा काल ऋतु के अनुसार फल प्राप्त करने वाला, (२) एक पक्षी ।
'गोधा कालका दार्वघाटस्ते वनस्पतीनां'
वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१५.१, मै.सं. ३.१४.१६, १७५.१२, का .सं.(अश्व). ७.५

कालकाञ्जाः – (१) कालकाञ्ज नामक तारे जो मृगशिरा नक्षत्र मण्डल में होते हैं ।
(२) चेतनाशील कञ्जपद्म, सहस्र कमल सूर्य ।
(३) मूर्धागत मस्तिष्क शक्ति के पत्रवत् हैं, ।
(४) मूर्धास्थल में विराजमान तीन प्राण की शक्तियां– चक्षु, वाणी और श्रौत्र ।
(५) कालकाञ्जा वै नामासुरा आसन्, ते सुवर्गा पलोकाय अग्निमचित्वत ।
तै.ब्रा. स इन्द्र इष्टकमावृहत् । ते अवाकीर्यन्त, ये अवाकीर्यन्त
त ऊर्णनाभयोऽभवन् , द्वावुदपतताम् तौ दिव्यौ श्वानाभवताम्
मृगशिरा नक्षत्र के तारे नेविला या मूलमेघ या नीहारिका से आवृत हैं । इन्हे ही तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'ऊर्णनाभि' कहा है । उन में दोश्वा (कुत्ते) 'कैनिसमेजर' और कैनिस माइनर कहलाते हैं ।
(६) अध्यात्म में चेतनामय देह में कान, आंख, मुख, कालकाञ्ज हैं और इनके साथ दो प्राण– दो श्वान है,
(७) कालकाञ्ज नामक तीन असुर सत्कर्मवश देवता बनकर द्युलोक में है ।

कालयति – नाशं नयति (नष्ट करता है) काल के नाम धातु में लट् के प्र.पु.ए.व. का रूप ।

काव्य – (१) विद्वान् कवि का पुत्र या शिष्य, (२) कान्तदर्शी तेजस्वी राजा ।
'आ गा आजदुशना काव्यः सचा'
ऋ. १.८३.५, अ. २०.२५.५.
विद्वान् पुरुष का पुत्र या शिष्य सुशिक्षित तेजस्वी, सब प्रजा की हितकामना वाला पुरुष (उशनां) वेद वाणियों को (गाः) प्रकाशित करता है (आजत्) ।
अथवा, क्रान्तदर्शी, तेजस्वी राज्यलक्ष्मी का इच्छुक राजा भूमियों को प्राप्त करता है ।

काशि – (१) मुट्ठी ।
'आप इव काशिना संगृभीताः'
ऋ. ७.१०४.८, अ. ८.४.८.
काश् (प्रकाशन अर्थ में) + इन् = काशिन् । अर्थ मुष्टि। जो प्रकाशित किया जाय (प्रकाश्यः त इति काशिः)
'उताभये पुरुहूत श्रवोभिः
एकोदृढमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे
यत्संगृभ्णा मघवन् काशिरित्ते'
ऋ. ३.३०.५
हे इन्द्र ! हे देवों से रक्षार्थ आहूत इन्द्र ! हे इन्द्र पुरूहूत) तू एक होता हुआ भी वृत्र का वध करने वाला हुआ (एकः सन् वृत्रहा) । जो तूने अभय होने के सम्बन्ध में देवताओं को वचन दिया है (अभये अवदः) वह सत्य ही है(दृढम्) और हे इन्द्र (मघवन्) जो तूने एक दूसरे से दूर स्थित इन द्यौ और पृथिवी को धारण किया है (यत्

अपारे इमे चित् रोदसी संगृभ्णा) इससे तेरी मुट्ठी अवश्य ही बड़ी मालूम पड़ती है (ते काशिः)। अन्य अर्थ - और हे निर्वाचित राजन् (पुरुहूत), तू अद्वितीय दुर्जनघाती होता हुआ (एकः वृत्रहासन्) आत्मयज्ञों से (श्रवोभिः) अभय राष्ट्र में (अभये) अभयवाणी का उच्चारण करता है (दृढां अवदः)। हे राजन् (इन्द्र), जो तू इन अपार अन्तरिक्ष और पृथिवी का (यत् इमेचित् अपारे रोदसी) संग्रह करता है (संगृभ्णाः) धनपते तेरी मुट्ठी (काशिः) महान् है।

काव्य उशना- (१) मेधावी पुरुषों द्वारा शिक्षित पुत्र या शिष्य काव्य है और सर्ववशीकार में समर्थ उशना है। अतः अर्थ हुआ- वशीकार में समर्थ मेधावी पुरुषों द्वारा शिक्षित पुत्र या शिष्य, (२) गर्जन कारी मेघ से सम्पन्न, कान्तिमान, विद्युत्

काष्ठा - (१) दिशा, (२) दूर दूर देश की सीमा (३) क + आस्या -परम सुखदायी स्थिति, (४) गाष्ठा-काष्ठा। वेदवाणियों में परमस्थिति।

'अर्वन्तोन काष्ठां नक्षमाणाः'

ऋ. ७.९३.३, मै.सं. ४.११.१, १५९.१०, तै.ब्रा. ३.६.१२.१.

(५) क्रान्त्वा स्थिताः भवन्ति (जल जाकर-चलकर जलाशय में स्थिर होता है अतः काष्ठा कहलाता है)। अर्थ-जल।

'काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्'

ऋ. १.३२.१०, नि. २.१६.

जलों के मध्य में निहित शरीर, क्रान्त्वा स्थिताः काष्ठाः = काष्ठा। (क्रान्त्वा का 'का' और स्थित्वा का 'स्था')

पुनः

'अधूनोत काष्ठा अव शम्बरं भेत्'

ऋ. १.५९.६, नि. ७.२३.

(६) उपदिशा, (७) आदित्य, क्योकि आदित्य अपनी परिधि में घूमकर स्थित है, (८) संग्राम प्रदेश क्योंकि यह कुछ दूर जाकर सीमित होता है, (९) स्थावर जल-तालाब, समुद्र आदि का खड़ा जल इधर उधर से बहकर स्थिर होता है (१०) चल जल भी काष्ठा है।

संग्राम के अर्थ में प्रयोग-

'काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्'

ऋ. १०.१०२.९, नि. ९.२४.

(संग्राम के बीच पड़े हुए मुद्गर को...)

कास - (१) कास रोग, खांसी।

'मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनम्'

अ. १.१२.३

पुनः-

'सह काशा वेपयः'

अ. ५.२२.१०

(२) चकास्ति इति कासा। प्रकाशमान। अर्थ-चितिशक्ति कौशिक ने इसका अर्थ कास रोग किया है और सायण ने भी। कौशिक ने इस सूक्त को सूर्योपस्थान के लिए भी लिखा है। पर श्री जय देव शर्मा ने इसे आत्मध्यान या ब्रह्मोपासना का मन्त्र माना है। चितिशक्ति की तीन साधनाएं हैं- मन की गति के अनुकूल उसे यथाभिमत विषय पर लाना, पृथिवी या मूल भाग में किसी अधिष्ठान में स्थिर करना और अन्त में परमात्मा के विशाल गुणों में लगा देना।

'एवा त्वं कासे प्रपत'

अ. ६.१०५.१-३

कासिका - खांसी।

'चस्य तक्मा कासिका हेतिरेकम्'

अ. ११.२.२२

पुनः-

'स्वप्ना कासिकया सह'

अ. ५.२२.१२

काहाबाह - कड़कड़ाने वाला रोग।

'काहाबाहं तवोदरात्'

अ. ९.८.११

क्याम्बू - (१) काई, (२) ज्ञान बल का धारक, (३) चितिशक्ति।

'क्याम्बूरत्र रोहतु'

अ. १८.३.६, तै.आ. ६.४.१.

क्राण - (१) सम्पन्न, (२) साधना करने वाला।

'उषर्बुधः स्वस्मिन् अञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि'

ऋ. १.१३२.२

(३) कुर्वाणः (करता हुआ)। कृ + शानच् = क्राणः (यण्)

'मन्दन्तु त्वामिन्दु मतिभिः सुते'

सुनीथासो वसूयवः ।
गोभिः क्राणा अनूषतः ।'
ऋ. १.१३४.२, नि. ४.१०.
हे इन्द्र ! सुन्दर स्तुति करने वाले (सुनीथासः) धनार्थी (वसीयवः) मेधावियों के द्वारा सोमरस के अभिसुत होने (पर सुते) तुझे अभिमुख करते हुए (त्वां क्राणा) स्तोत्रों से (गोभिः) स्तुति करते हैं (अनूषत)
अन्य अर्थ – हे परमेश्वर ! सुनीति पर चलने वाले विद्वान् (सुनीथासः) सबके निवासक आपकी कामना करते हुए (वसूयवः) संसार में ज्ञानपूर्वक वेदों से प्रतिपादित कर्मों को करते हुए (सुते मतिभिः गोभिः क्राणाः) आपकी स्तुति करते हैं (त्वाम् अनूषत) ।

क्राणा – (१) उत्पन्न करती हुई ।
'क्राणा यदानशे भगम्'
ऋ. ५.७.८
(२) पु. बनाने वाला ।
'क्राणा सिन्धूनां कलशाँ अवीवशत्'
ऋ. ९.८६.१९
(३) कृ + आनच् = क्राणा (आकारादेश) । अर्थ –कर्त्ता ।
'क्राणा रुद्रेभिः वसुभिः पुरोहितः'
ऋ. १.५८.३
वसुओं और रुद्रों द्वारा वश जाकर पुरोहित कर्त्ता जीवात्मा ।

क्रामति – क्रम् (पादविक्षेप करना) का 'क्रमः परस्मैपदेषु' से दीर्घ होता है । अर्थ है– 'पादौ विक्षिपति' (डेगों को डालता है) ।

क्षा – (१) पृथिवी ।
'अजोनक्षां दाधार पृथिवीम्'
ऋ. १.६७.५
पुनः
'विश्वासुक्षासु जोगुवे'
ऋ. १.१२७.१०, ५.६४.२.
समस्त भूमियों और चित्तभूमियों में (विश्वासु क्षासु) प्राप्त होने वाले परमेश्वर के लिए ।
(२) निवासस्थान–
'जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्'
ऋ. १.९६.७
जन्म लिए हुए तथा जन्म लेने वाले के निवासभूत (क्षाम्) अग्नि को ....।

क्षातिः – शत्रु को नाश करने वाली शक्ति ।
'शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्ने'
ऋ. ६.६.५

क्षामाणिस्था – (१) परम रक्षा–सामर्थ्य या परमाश्रय में विद्यमान ।
'हिरण्ययं शकुनं क्षामणि स्थाम्'
ऋ. ९.८५.११

क्षामबुध्न – (१) खोखला आकाश (२) कृश निर्बल राज्य प्रबन्ध, (३) बंधा मोर्चा, गढ़ या आधार ।
'अक्षोदयत् शवसा क्षामबुध्नम्'
ऋ. ४.१९.४, तै.ब्रा. २.४.५.२.

क्षामा – (१) अन्धकार ।
'क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन्'
ऋ. ४.२.६, वाज.सं. १९.६९, अ. १८.३.२१, तै.सं. २.६.१२.४
(२) विनाशकारिणी नीच प्रवृत्ति, (३) भूमि (४) आकाश और भूमि ।
'क्षामेव नः समजतं रजांसि'
ऋ. २.३९.७

क्ष्मा – क्ष्मा (विधूनन अर्थ में) + णिच् + क्विप् = क्ष्मा (य का लोप) । पृथ्वी विधूननशील है ।
'या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि
क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा
मा नस्तोकेषु तनयेवु रीरिषः ।'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७.
हे रुद्र ! जो तेरे ज्वरादि व्याधिरूपी आयुध (याते दिद्युत्) द्युलोक से छोड़ेजाकर (दिवस्परि अवसृष्टा) पृथ्वी में उत्पन्न अन्नपानादि से मिश्रित हो सर्वत्र विराजमान है (क्ष्मया चरति) वे अनुग्रह कर हमें छोड़ दे (नः परिवृणक्तु) और हे स्वाप्तवचन या वातावरण में आविष्ट या वातावरण का धारण कर्त्ता (स्वपिवात) तेरी सहस्रों ओषधियां (ते सहस्रभेषजा) हमारे पुत्र पुत्री रूपी सन्तानों में (नः तोकेषु तनयेषु) हिंसा न करें (मा रीरिषुः)

किः – वृ + इ = कि । अर्थ है (१) कर्त्ता
'अयं यो होता किरु स यमस्य'
ऋ. १०.५२.३, नि. ६.३५.
वह पृथ्वी स्थानीय अग्नि भगवान् आदित्य का

(यमस्य) कर्ता है (किः) ।
अथवा, यह हव्य साधक अग्नि शुद्ध वायु का कर्त्ता है (यमस्य किः उ) ।

किंकर – रथ के पीछे खड़ा होने वाला चाकर ।
'अन्तर्देशाः किंकराः'
अ.८.८.२२
कथा करूं, ऐसा कहने वाला भृत्य (किं कर वाणि) किंकर है ।

किकिदीवी – (१) कि कि आदि विशेष वेदना सूचक ध्वनि करने वाला रोग, (२) हिचकी आदि कफ जनक रोग ।
(३) ज्ञानपूर्वक प्रयोग किया गया भोजन ।
'चाषेण किकि दीविना'
ऋ. १०.९७.१३, वाज.सं. १२.८७, मै.सं. २.७.१३, ९४.७, का.सं. १६.१३.

किकिरा – (१) व्यवस्थाओं की छोटी बातें (२) सर्वत्र विस्तारित ।
'आ रिख किकिरा कृणु'
ऋ. ६.५३.७,८

कितव – (१) किं तव अस्ति (जुआरी जुए के दाव में धन लगाने के लिए पूछता है – तेरे पास क्या है ?) इसी का द्योतक अर्थ शब्दानुकृति से 'कितव' बना । जुआ खेलने के समय जुआड़ी अन्य जुआड़यों से प्रायः पूछता है कि क्या तेरा दाव आया ? अतः इस शब्द का अर्थ है- जुआड़ी । (२) 'कृतवान्' अर्थ में भी कितव शब्द का निर्वचन किया गया है । एक जुआड़ी दूसरे जुआड़ी को समझाता है कि वह द्यूत के द्वारा काफी कर चुका (कृतवान्) अर्थात् काफी धन कमा सका । कृतवान् से ही 'कितव' बना है ।
(३) 'श्वघ्नी कितवो भवति' । जुआड़ी अपने धन का नाश करता है अतः वह श्वघ्नी है । (स्वं धनं हन्ति) । स्व+ हन् + णिनि = श्वघ्नी । अथवा परस्वानां हन्ता (पराया धन लेने वाला) कितव है ।
'धूर्तोऽक्षदेवी कितवोऽक्ष धूर्तोद्यूत्कृत्समः'
-अमरकोश
'जाया तप्यते कितवस्य हीना'
ऋ. १०.३४.१०
जुआड़ी की स्त्री दुरवस्था को प्राप्त कर दुःख झेलती है ।
आधुनिक अर्थ-धूर्त, गुण्डा, असत्य वादी, वञ्चक, ठग, धतूर का पौधा, एक प्रकार का सुगन्धिकारक द्रव्य

किन्त्व – तुझे क्या चाहिए ।
'किन्त्वो वदति किन्त्वः'
वाज.सं. २०.२८

किमीदिन् – किमिदं किमिदं कारिन् ।
(यह क्या यह क्या करने वाला) पिशुन को बराबर यह चिन्ता रहती है कि कहां क्या हो रहा है । अतः वह किमीदिन् कहलाया । अर्थ- (१) पिशुन ।
'द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने'
ऋ. ७.१०४.२, अ. ८.४.२, का.सं. २३.११, नि. ६.११.
पिशुओं के प्रति निरन्तर द्वेष भाव रखो ।
(२) कमीना-दया. ।

किम्पूरुष – अल्प शक्ति और व्यवसाय वाला पर्वत वासी जन । पुरुष प्रमाण से भी छोटे कद वाला । इसे देख कहा जाता है । किम् पुरुषः ? क्या आदमी है ।
'पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम्'
वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१०.१२.

कियत् – अल्पज्ञानी, अल्पशक्ति ।
'इदं मे अग्ने कियते पावक'
ऋ. ४.५.६

कियती – कितनी
'यावतीः किमती श्चेमाः'
ऋ. ८.७.१३.

कियात्या समया – कितने काल तक
'कियात्या यत् समयाभवति
'या व्युषुः या च नूनं व्युच्छान्'
ऋ. १. ११३. १०
जो उषाएं प्रकट हुईं और जो अभी तक प्रकट हो रही हैं वे सब कितने काल ही तक रहती हैं ।

कियाम्बु – कितना जल है अर्थात् (१) अथाह जल वाला, समुद्र, (२) ज्ञान-सागर ।
'कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा'

ऋ. १०.१६.१३

किंयुः – किसविशेष कामना को करता हुआ

'किंयुः विप्रो नद्यो जोहवीति'

ऋ. ३.३३.४

कियेधस् – (१) कियद्धा किं यद् अपि उदकम् अपरिमाणं धारयति– (अपरिमाण जल धारण करता है) (२) क्रममाणधा–कममाणः धारयति– अर्थात्, आक्रमण करता हुआ दूसरे के बल को धारण करता है या रोकता है, (३) सर्वधारण समर्थ (सब कुछ धारण करने में समर्थ) मेघ या इन्द्र का हेतुगर्भ विशेषण है ।

(४) कितने गुणों का धारण करने वाला–दया. (५) सर्वोपरि होता हुआ उनका धारण करने वाला ।

व्युत्पत्ति– कियत् + धा (धरण करना) + विच् = कियेधस् । क्रममाण + धा + विच् = कियेधस् । किम् + वतुप् = कियत् (कितना)

'किभिदध्या बोधः

'अस्मा इदुप्रभरा तूतुजानो

वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।

गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चा

इष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै'

ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं.४.१२.३, १८३.१०, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.

हे इन्द्र ! यह वृत्र या मेघ बहुत जल धारण करने वाला है (कियेधाः), इस पर तू शीघ्र वज्र चला (अस्मै तूतुजानःवज्रं प्रभर), क्योंकि हम लोगों का स्वामी तू (ईशानः) वृष्टि जलों की कामना करता हुआ (अर्णांसि इष्यन्) जलों को बहाने के लिए (अपां चरध्यै) मेघ या वृत्र के जोड़ों को (पर्व) तिर्यग्गामी वज्र से (तिरश्चा) विदीर्ण कर (विरद) जैसे मांस बेचने वाले पशुओं का मांस काटते हैं (गोः न) --सा. ।

स्वामी दयानन्द का अर्थ– हे राजन् ! आशुकारी (तूतुजानः) भूमिपति (ईशानः) कितने एक गुणों को धारण करने वाले आप (किमेधाः) इस दुष्ट शत्रु के लिए (अस्मै वृत्राय) शीघ्र खण्ड का प्रहार कर (वज्रं प्रहर) और तिरछी चाल से जाते हुए (तिरश्चा इष्यन्) जैसे सूर्य अन्तरिक्ष के जलों की प्राप्ति के लिए (अपां अर्णाधि चरध्यै) मेघ के जोड़ों को तोड़ देता है (गोः पर्वन) एवं शत्रु की संघ शक्ति को छिन्न भिन्न कीजिए (विरद) ।

(६) न जाने कितने बल पराक्रम ऐश्वर्य को धारण करने वाला

ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं.४.१२.३, १८३.१०, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.

किरणः – कृ (विक्षेप) अर्थ वाला + ल्युट् = किरण । (१) किरणों वाला सूर्य, (२) शत्रु को उखाड़ देने में समर्थ सैन्य ।

'एवेदनुद्यून् किरणः समेजात्'

ऋ. १०.२७.५

(३) सूर्य की किरण ।

किरणौ – (द्वि.व.) (१) पीस पीसकर फेंकने वाले चक्की के दो पाट , (२) आकाश और पृथिवी

'विततौ किरणौ द्वौ'

अ. २०.१३३.१, गो.ब्रा. २.६.१३, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१८, शां.श्रौ.सू. १२.२२.११, वै.सू. ३२.२१.

किरात – (१) तुच्छ कर देने वाला किरात् जो पर्वतों की गुहाओं में रहता है ।

'गुहाभ्यः किरातम्'

वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

कि + रात (दान) = किरात ।

किरिक – नाना पदार्थों को कारीगरी से पैदा करने वाला ।

'नमोवः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यः'

वाज.सं. १६.४६, तै.सं. ४.५.९.२, का.सं. १७.१६, श.ब्रा. ९.१.१.२२, २३.

किर्मिर – (१) चित्र विचित्र, (२) काले पर श्वेतचित्र

'नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम्'

वाज.सं. ३०.२१, तै.ब्रा. ३.४.१.१७.

किल – विज्ञानातिशय के लिए पृथक् अव्यय (विद्या प्रकर्षे) जैसे – एवं किल एनदासीत् युद्धम् (यह युद्ध इस प्रकार से हुआ) यहां किल शब्द युद्ध की पूर्ण जानकारी बतलाया है । यह निश्चयार्थक अव्यय है । अर्थ–अवश्य ही, निश्चय ही ।

'अन्या किलत्वां कक्ष्येवयुक्तं

परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्'

ऋ.१०.१०.१३, आ. १८.१.१५, नि: ६.२८.

यमी यम से कहती है–हे यम ! मुझे ऐसा लगता है कि अवश्य ही किसी अन्य स्त्री से हिल मिल

गया है जैसे जीन कसने की रस्सी से घोड़ा और और वृक्ष से लता ।
आज भी इसका प्रयोग समचमुच, निश्चय, जैसे वे कहते हैं या कहा गया है, अधिकृत वार्ता, एक दिखाऊ कार्य, आशा या सम्भावना, असंतोस या घृणा का भी द्योतक है । कभी कभी कारण अर्थ में भी प्रयुक्त ।

किलास – (१) एक प्रकार का कुष्ट ।
'इदं रजनि रजय किलासम् पलितं च यत्'
अ. १.२३.१, तै.ब्रा. २.४.४.१,
(२) श्वेत् वर्ण का पदार्थ
'चन्द्रमसे किलासम्'
वाज.सं. ३०.२१,

किलास्य – किल + आस्य (१) निश्चित मुख वाला –(दया.) (२) निश्चित् रूप से प्रमुख, (३) स्थिर वाणी वाला, (४) देह में प्राणों को प्रयोग करने वाला, आत्मा, (५) राष्ट्र में अधीन भृत्यो को , युद्ध में सैनिकों को या यन्त्रों में वायुवों को प्रयोग करने वाला ।
'यद् युयुज्रे किलास्यः'
ऋ. ५.५३.१

किल्विष – (१) किल्भिदम् सुकृत कर्मणोभयम् (पुण्य को भेदन करने वाला अर्थात् भय), (२) अथवा कीर्त्तिम् अस्य भिनत्ति (इसकी कीर्त्ति को जो छिन्न भिन्न करता है वह पाप) । आज भी पाप अर्थ में ही इसका प्रयोग है ।
'पाप किल्विषकल्मषम्' –अमरकोश
(१) पाप, अपराध, (२) रोग ।

किल्विषस्पृत् – पापाचरण, अज्ञानादि का नाश करने वाला ।
'किल्विषस्पृत् पितुषणिहर्येषाम्'
ऋ. १०.७१.१०,

किंशल – छोटी बजरी का प्रयोग जानने वाला ।
'नमः किंशलाय च क्षयणाय च'
वाज.सं. १६.४३, तै.सं. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८, १२६.७, का.सं. १७.१५

किंशुक – किम् शुकः (क्या यह शुक है ? पलाश के हरे पत्ते और लाल फूल से यह ऐसा संदेह होता है अतः यह किंशुक कहलाया) । अर्थ (१) प्रकाश, (२) पलाश का वृक्ष, (३) सेमर का वृक्ष ।
'सुकिंशुकं शल्मलिंविश्वरूपम्
ऋ. १०.८५.२०, अ. १४.१, ६१. नि. १२.८.
सुप्रकाश या पलाश के बने, या सेमर के बने चित्रविचित्ररथ को
व्युत्पत्ति– नैरु क्त धातु क्रंश् (प्रकाशनार्थक) + उकञ् = किंशुक (क्रंश् का किंश्) काश (दीप्ति अर्थ में) + उकञ् = किंशुक ।

किशोर – कच्ची उम्र का बालक ।
'ततः किशोराः म्रियन्ते'
अ. १२.४.७

क्रिमि – रोग कीटाणु ।
'क्रिमे र्विश्वस्य तर्हणी'
अ. २.३१.१
व्युत्पत्ति – (१) क्रव्ये मेद्यति (क्रव्य अर्थात् कच्चे मांस में जो उत्पन्न होता है) । क्रव्य + मिद् + डि = क्रिमि (क्रव्य का क्रि), (२) क्रम् (चलना) + कि = क्रिमि जो (चलता है) सम्प्रसारण से क्र का कृ (क्रिमितमि सति स्तम्नामत इच्च) (३) क्राम् (पाद विक्षेप अर्थ में) + कि = क्रिमि । आधुनिक अर्थ–कीड़ा ।

क्रिवि – (१) कूप
'आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्'
ऋ. १.३०.१, साम. १.२१४.
अन्न की कामना करने वाले किसान जैसे कूप के पास जाते हैं (२) काटने वाला, काटने में समर्थ कृवि (काटना) + क्विन् = क्रिवि (ऋ. का रेफ) । लोक में भी 'कृवि' काटना अर्थ में आया है । (३) हिंसाशील ।
'अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविम् युधाभवत'
ऋ. २.२२.२, साम. २.८.३८.

क्रिविर्दत् – विकर्त्तन समर्था दन्ताः यस्य सः (जिसके दाँत काटने में समर्थ हो) । कृवि + क्विन् = क्रिवि (निगम में क्रि का आदेश) । कृणोति हिंसति अनेन इति क्रिविः (रेफ का आगम और समास होने पर दन्त का दत्) ।

क्रिविर्दती – विकर्त्तनसमर्थाः दन्ताः यस्य स क्रिविर्दती (जिसके दाँत कांटने में समर्थ हो) कृवि + क्विन् (करण में) = क्रिवि (निगम में क्रि आदेश) । लोक में भी 'कृवि' धातु हिंसा अर्थ में आया है । कृणोति हिनस्ति अनेन इति क्रिवि (इससे हिंसा करता है) । रेफ का आगम

और दन्त का दत् होकर क्रिविर्दत हुआ है । क्रिविर्दत् + ङीष् = क्रिविर्दती । अर्थ है- आयुध विशेष जिसके दाँत हो ।

'यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना
रिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती
रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा'

ऋ. १.१६६.६.

हे उग्र मरुतो ! सुन्दर बुद्धि वाले (सुचेतुनाः) तथा सदा साथ रहने वाले (अरिष्टग्रामाः) आप (यूयम्) हमारी बुद्धि पूर्ण करें (नः सुमतिं पिपर्तन) जब आप को (यत्रा) काटने वाली हेति, (क्रिविर्दती दिद्युत्) मेघ समूह को उस तरह से काटती है (रदति) तथा पशुओं को मारती है (पश्वः रिणाति) जैसे सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त बढ़ी हुई हिंसा भावना से पशुओं को काटता है (सुधिता बर्हणा इव) । हवा प्रचन्ड झोंकों से बादल अस्तव्यस्त हो जाते हैं तथा पशु पक्षी मरते हैं । उस समय यदि मनुष्य बुद्धि से काम न ले तो उसे भी दुःख हो ।

अन्य अर्थ - संघ शक्ति से सम्पन्न तेजस्वी विद्वानो (अरिष्टग्रामाः उग्राः मरुतः), आप हमारी शिक्षा को विज्ञान से पूर्ण करें (यूयं नः सुमतिं सुचेतुना पिपर्तन) जिस विज्ञान में (यत्र) तुम्हारे कांटने वाले दांतों वाली विद्युत् (वः क्रिविर्दती दिद्युत्) खोदने का काम करती है (रदति) तथा बहुत मात्रा में सुस्थापित की हुई (बर्हणा सुधिता) पशुओं की तरह ले जाती है (पश्वः इव रिणाति) -दया.

क्लिब - भरसक सामर्थ्य और प्रभुता के साधे हुए लोक की प्राप्ति ।

'क्लिबेस्मर'

वाज.सं. ४०.१५,

क्षि - (१) बसना ।

'मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्'

ऋ. १०.६८.८, अ. २०.१६.८, १०.१२.

(२) रहना ।

'उप क्षयेम शरणा बृहन्ता'

अ. १९.१५.४

क्षिणाति - (१) प्रकाश आकीर्ण करता है, (२) जल प्रच्युत करता है ।

'आसीनं ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति'

ऋ. १०.२७.१३, नि. ६.६.

अन्तरिक्ष लोक या अपने मंडल में स्थित (उपसि आसीनः) आदित्य प्रकाश को जगत् में आकीर्ण करता या जल प्रच्युत करता है (क्षिणाति) ।

क्षितायुः - क्षित + आयुः । वह रोगी जिनकी जीवन शक्ति नष्ट हो गई हो ।

'यदि क्षितायुर्यदि वा परेतः'

ऋ. १०.१६१.२, अ. ३.११.२, २०.९६.७.

क्षिति - (१) क्षय करने वाली ।

'ब्रह्मज्यस्य क्षिति हिंसा'

अ. १२.५ (३) १६.

(२) क्षि + क्तिन् = क्षिति । जिस पर रहा जाय पृथिवी । अर्थ है-प्रजाजन, (३) शत्रु, (४) लोग ।

'उतस्मैनं वस्त्रमथिं न तायुम्
अनुक्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।'

ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४.

और इस दधिक्रावा इन्द्र को (एनम्) देखकर युद्धों में बैरी चिल्लाने लगते हैं जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर को देखकर लोग चिल्लाते हैं (वस्त्रमथिं तायुं न क्षितयः अनुक्रोशन्ति) -सा. । और युद्ध में वस्त्र तक चुरा लेने वाले चोर की तरह (भरेषु वस्त्रमथिं तायुं न) जिस राजा को बैरी या प्रजाजन कोसते हैं (क्षितयः अनुक्रोशन्ति) -(दया.)

(५) जिसमें रहा जाय-गृह । वेद में 'मनुष्य' अर्थ में प्रयुक्त है । पृथिवी मृत्युलोक है और इस पर रहने वाले मर्त्य हैं । रूढ़ अर्थ में यह शब्द मनुष्य का वाचक है ।

आधुनिक अर्थ - पृथ्वी, गृह, नाश, हानि, प्रत्यय ।

क्षितीणां वृषभः - (१) मनुष्यो में सर्वश्रेष्ठ, (२) इन्द्र, (३) मनुष्यों को जल देने वाला सूर्य ।

'जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्'

ऋ. ७.९८.१, अ. २०.८७.१

क्षिप् - (१) अंगुली, (२) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेना ।

'दशक्षिपो युजते बाहू अद्रिम्'

ऋ. ५.४३.४,

(३) पाप वासनाओं को फेंकने वाला शुद्धजन ।

'क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतम्'
ऋ. ९.८६.२७

क्षिप्र – संक्षिप्त, विक्षिप्त या विकर्ष का उलटा (निकर्षः संक्षिप्ते)। अर्थ है–थोड़े में शीघ्र, त्वरित् (तुरत) । क्षिप् + र = क्षिप्र । क्षिप्र धातु क्षेपण अर्थ में आया है ।

क्षिपणि – (१) शत्रु नाशक सेना
'एष स्यवाजी क्षिपणिं तुरण्यते'
वाज.सं. ९.१४, तै.सं. १.७.८.३, मै.सं. १.११.२, १६३.१, का.सं . १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५.१९.
(२) क्षिप् (प्रहार करना) + ल्युट् = क्षेपण = क्षिपण = क्षिपणिः । अर्थ –चाबुक की मार ।
'उतस्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति'
ऋ. ४.४०.४, नि. २.२८.

क्षिपणुः – (१) प्रेरक गुरु, (२) व्याधा ।
'मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः'
ऋ. ४.५८.६, वाज.सं. १७.९४, का.सं. ४०.७, आप.श्रौ.सू. १७.१८.१.
(३) हिंसक

क्षिप्त – वह रोग जिसमें रोगी वेदना से हाथ पैर पटकता है ।

क्षिप्तभेषजी – पीपल ओषधि जो क्षिप्त रोग की दवा है ।
'पिप्पली क्षिप्तभेषजी'
अ. ६.१०९.१,

क्षिप्रधन्वा – वोग से धनुष चलाने वाला ।
'तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्सु'
ऋ. ९.९०.३, साम. २.७५.

क्षिप्रश्येन – वेग से झटकने वाला बाज ।
'क्षिप्रश्येनाय वर्तिका'
वाज. सं. २४.३०, तै.सं. ५.५.११.१, मै.सं. ३.१४.११, १७४.८, का.सं.(अश्व) ७.१

क्षिपा – (स्त्री) इन्द्रिय
'हिन्वति धीरा दशभिः क्षिणभिः'
ऋ. ९.५७.५७

क्ष्विङ्का – (स्त्री) चील, नाना शब्द करने वाली ।
'आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः'
ऋ. १०.८७.७, अ. ८.३.७.

क्षिप्ता – (स्त्री) परास्त की हुई सेना ।
'हतेमसन्न वक्षति
क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति'
ऋ. १.१२९.८
वह सेना आप ही आप विनाश को प्राप्त हो । (हताईम् असत्) । वह परास्त होकर (क्षिप्ता) हम तक न पहुँचे (न वक्षति) और लौटकर अपने देश भी न पहुँचे ।

क्षिप्रेषुः – (१) तीव्र वेग से बाण चलाने में चतुर–रुद्र का विशेषण ।
'क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने'
ऋ. ७.४६.१, तै.ब्रा. २.८.६.८, नि. १०.६.
शीघ्रगामी, बाण चलाने वाले, अन्न वाले रुद्रदेव को इन स्तुतियों को अर्पित करें ।

क्षियत् – क्षि (रहना) + शतृ = क्षियत् अर्थ (१) रहता हुआ ।
'मत्स्यं न दीन ऊदनि क्षियन्तम्'
ऋ. १०.६८.८, अ. २०.१६.८, नि. १०.१२.
मछुआ जैस सूखे जल में मछली देखता है ।
(२) अन्तरिक्षों में रहने वाला ।
'सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तम्
अहस्तमिन्द्रं सं पिणक कुणारुम्'
ऋ. ३.३०.८, वाज. सं. १८.६९, नि. ६.१
हे इन्द्र ! तू उदक दाता अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ का (सप्तदानुं क्षियन्तम् कुणारुम्) बिनाहाथ का कर (अहस्तम्) चूर्ण चूर्ण कर दे (संपिणक्)

क्षियन् – रहता हुआ ।
'सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्'
ऋ. १.११७.५

कीकटाः – अनार्य देश निवासी ।
'किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावः'
ऋ. ३.५३.१४, नि. ६.३२.
हे इन्द्र ! जो गायें अनार्य देश निवासियों के पास हैं वे कौन उपकार करती हैं ?
(२) अनार्यों का वासस्थान, (३) नास्तिक अनीश्वरवादियों का वासस्थान, (४) कृपण, (५) नास्तिक जो वैदिक कर्म को करते देख–यह क्या किया, इस प्रकार उपेक्षा भाव से बोलता है वह कीकट है (किं कृताः वा किं क्रियाः किं कृताः वा किं क्रियाः–क्यों उत्पादित किए गए या यज्ञ आदि कर्म क्यो किए जाँय ऐसा कहने वाला आलोचक – critic) । अथवा–'किमर्थम् उत्पादिताः असदाचाराः' या यज्ञादि कर्मों का

विरोधी। Critic शब्द का मूलशब्द कीकट ही जान पड़ता है। यज्ञादि कर्मों की आलोचना या निन्दा करने वाले पहले से ही होते आये हैं और आज भी हैं। 'कर्मकीट' शब्द का मेल भी कृकट से है।

पाली में कीकट शब्द का पर्याय उस स्थान के अर्थ में मिलता है जहां बैल काटे जाते हैं। ऐसे स्थान को आज भी 'टिकटी' कहते हैं।

कीजः – अद्भुत, इन्द्र, परमेश्वर

'यो वा कीजो हिरण्ययः'

ऋ. ८.६६.३,

कीनारा – (द्वि.व.) एक वचन में 'कीनार'। अर्थ है– दो किसान

'कीनारेव स्वेदमासिञ्चिदाना'

ऋ. १०.१०६.१०

कीनाशः – (१) जीवात्मा, (२) कर्मफलों का काटने हार।

'श्रमेणानड्वान् कीलालं
कीनाशश्चाभि गच्छतः'

अ. ४.११.१०

(३) किसान।

'शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः'

ऋ. ४.५७.८, अ. ३.१७.५, वाज.सं. १२.६९, तै.सं. ४.२.५.६, मै.सं. २.७.१२, ९२.१, का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.९.

कीरिन् ,कीरी – (१) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाला बल।

'स कीरिणा चित् सनिता धनानि'

ऋ. १.१००.९

वह शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले बल से ही (कीरिणाचित्) ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है (धनानि सनिता)।

(२) विक्षेपक, (३) स्तोता।

'उत्समा कीरिणा नृतुः'

ऋ. ५.५२.१२.

(४) स्तुतिशील

'यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानः'

ऋ. ५.४.१०, तै.सं. १.४.४६.७, आश्व.श्रौ.सू. २.१०.९,

कीरिः – (१) स्तुति कर्त्ता (२) उत्तम कार्य करने वाला।

'कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः'

ऋ. १०.६७.११, अ. २०.९१.११.

(३) ज्ञानवान् पुरुष।

'धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चित्'

ऋ. ७.९७.१०, अ. २०.१७.१२, ८७.७, तै.ब्रा. २.५.६.३, अ. २०.३४.६.

(४) विक्षिप्तचित्र (५) क्रियाशील शिल्पी

'यो ब्रह्मणो बाधमानस्य कीरेः'

ऋ. २.१२.६, अ. २०.३४.६

(६) कृ + इ = कीरिं (बाहुलक से दीर्घ)

'किरति विविधया वाचा इति स्तोता'

नि. ३.१६

स्तुति करने वाला भक्त।

'कीरेश्चित् मन्त्रं मनसा वनोषितम्'

अपनी स्तुति करने वाले भक्त के नाना प्रकार के मन से विचारित मन्त्र या मनन संकल्प को भी स्वीकार करता है।

कीरिचोदनः – विद्यार्थियों तथा स्तोताओं को उपदेश देने वाला।

'सखायं कीरिचोदनम्'

ऋ. ६.४५.१९

कीवत् – कियत्। किम् + वतुप = कीवत्। वेद में 'इदं-किमोरीश् की' (पा. ६.३.९०) से किम् का की हो जाता है। अर्थ है कितना परिमाण। आङ् के साथ कीवत् का प्रयोग बहुत दूर देश के अर्थ में हुआ है।

कीकसा – (ब.व.) (१) गौ के गले की मोहर।

'बृहस्पतिः ककुद् बृहतीः कीकसाः'

अ. ९.७.५.

(२) हड्डी।

'की कशाभ्यो अनूक्यात्'

ऋ. १०.१६३.२, अ. २.३३.२, २०.९६.१८,

(३) पसली,।

'यः कीकसाः प्रश्रृणाति'

अ. ७.७६.३

(४) उपदेशक्रिया, (५) कूल्हे की पहली मोहरी,

'विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा।'

वाज.सं. २५.६, मै.सं. ३.१५.६, १७९.७.

कीलाल – कल (गत्यर्थक), कील (बन्धन खण्डन अर्थ में)

कलयति कल्पते वा तत् ज्ञानम् कीलालम् कीलयति बध्नाति खण्डयति, खण्डयति बध्यते वा तत् कीलालम् प्रबन्धः शत्रुच्छेदकं बलम् धन्नम् वा ।
अर्थ-(१) शत्रुच्छेदक बल (२) अन्न, (३) फल, (४) भोग्य पदार्थ (५) मनन करने योग्य, धारण करने योग्य ज्ञान ।
'कीलालमश्विभ्यांमधुदुहे'
वाज.सं. २०.६५, मै.सं. ३.११.३, १४४.१२, तै.ब्रा. २.६.१२.४.
(६) अन्न या ओषधि का सारभाग, ।
(७) शराब ।
'कीलालाम सुराकारम्'
वाज.सं. ३०.११, तै.ब्रा. ३.४.१.९.

कीर्तेन्य - कीर्तन या स्तुति करने योग्य, ।
'कीर्तेन्यं मघवानामबिभ्रत्'
ऋ. १.१०३.४

कीलालय - (१) कीलाल अर्थात् अमृत रस पान करने वाला, (२) शत्रुच्छेदन में समर्थबल की रक्षा करने वाला । (३) नाशवान्, स्वतः उच्छेद्य संसार का रक्षक, (४) उत्तम अन्नाहारी या अन्न रक्षक ।
'कीलालये सोमपृष्ठायवेधसे'
ऋ. १०.९१.१४, वाज.सं. २०.७८, मै.सं. ३.११.४, १४६.१४, का.सं.३८.९, तै.ब्रा. १.४.२.२, आप.श्रौ.सू. १९.३.२.

कीलालोध्नी - कीलाल अर्थात् अमृतमय रस को गाय की तरह अपनी थनों से बराबर धारण करने वाली भूमि ।
'कीलालोध्नी पयस्वती'
अ. १२.१.५९

कीस्तः - (१) मेधावी, नि. ३.१५. (२) कीर्तन, भजन स्तुति करनेवाला, ।
(३) विद्यादि का उपदेष्टा,
'द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो
नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवः
मथ्नन्तो दाशा भृगवः'
ऋ. १.१२७.७
पाप-संकल्पो को भून डालने वाले (भृगवः) तेजस्वी पुरुष यज्ञ में चरु आदि देने के लिए जिस प्रकार (यत्) इस प्रत्यक्ष भौतिक अग्नि का मन्थन करते हैं (ईम् मथ्नन्तः) ।
(४) विद्वान् ।
'वियद्वाचं कीस्तासो भरन्ते'
ऋ. ६.६७.१०

क्रीड् - जिस पर क्रीड़ा की जाय । विमान या रथ का विशेषण ।
'क्रीडं वः शर्धो मारुतम्
अनर्वाणं रथेशुभम्'
ऋ. १.३७.१, तै.सं. ४.३.१३.६, मै.सं .४.१०.५, १५५.४, का.सं. २१.१३,
हे कण्वो ! (अथवा अपने तेज और बल से शत्रुओं की आखों को चकाचौंध करने वाला) वीर पुरुषो ! आप लोगों का मारुतबल या शत्रु को मारने वाला सामूहिक बल (मारुतः शर्धः) जिसके मुकाबले पर कोई न आ सके या जो बिना अश्व का है और जो रथ या नाग के बल पर अधिक शोभाप्रद है (रथे शुभम्) उसका अच्छी तरह से वर्णन करो ।

क्रीड - (पु.) इन्द्रियोपभोग्य विषयों में रमण करता हुआ ।
'क्रीडन्ति क्रीडा विदथेषु घृष्वयः'
ऋ. १.१६६.२

क्रीडन्तौ शिशू - (१) खेलते हुए सूर्य और चन्द्र रूप शिशु, (२) परमात्मा और आत्मा ।
'शिशू क्रीडन्तौ परियातोऽर्णवम्'
ऋ. १०.८५.१८, अ. १३.२.२१, ७.८१.१.१४.१.३३, मै.सं. ४.१२.२, १८१.३, तै.ब्रा. २.७.१२.२, ८.९.३

क्रीडय - मस्तों या वीर सैनिकों का विशेषण । अर्थ-क्रीडा के व्यसनी । एक वचन में क्रीडि रूप है ।
'ते क्रीडयः धुनयो भ्राजदृष्टयः'
ऋ. १.८७.३, तै.सं. ४.३.१३.७, मै.सं. ४.११.२, १६८.५.
युद्ध क्रीड़ा के व्यसनी, शत्रुओं या वृक्षों को धुन डालने वाले (धुनयः) चमचमाते अस्त्र शास्त्रों से सुसज्जित (भ्राजदृष्टयः) मरुद्गण या सैनिक ।

क्रीड़ी - (१) क्रीड़ा शील ।
'क्रीडी च शाकी चो ज्ञेषी'
वाज.सं. १७.८५, वाज.सं. (का.) १७.७.७, आप.श्रौ.सू. १७.१६.१८.
(२) आनन्द विनोद करने वाला ।

'मद्भ्यः क्रीडिभ्यः संसृष्टान्'
वाज.सं. २४.१६, वाज.सं. (का.) २६.२०, मै.सं. ३.१३.१४, १७१.६. आप.श्रौ.सू. २०.१४.१०

क्रीडु – क्रीड़ा कारी बालक ।
'क्रीडुर्मखो न मंहयुः'
ऋ. ९.२०.७, साम. २.३२४.

क्लीब – (१) नपुंसक ।
'क्लीबं कृध्योपशिनम्'
अ. ६.१३८.२
(२) शक्तिहीन (३) उदासीन ।
'पाप्मने क्लीबम्'
वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

क्लीबरूप – नपुंसक ।
'क्लीबरूपान्स्तिरीटिनः'
अ. ८.६.७

क्षीर – (१) दुग्ध (२) रेतस् ।
'शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावौ अस्य'
ऋ. १.१६४.७, अ. ९.९.५.
इस सूर्य की किरणें सिर अर्थात् ऊपर की ओर भी मेघ द्वारा जल वर्षण करती हैं ।
'यत् पयः तत् रेतस्'
(२) जल ।
'क्षीरेण स्नातः कुयवस्म योषे'
ऋ. १.१०४.३
(३) क्षर (च्योतनार्थक) + अ = क्षीर (उपधा का इकार) । अथवा – घस् (अदन्, खाना) + घस् (अदन्, खाना), + ईदन् = क्षीर (घस् के अ का लोप, घ का 'खरिच' सूत्र से क् और क्स् का क्ष)। ईरन् प्रत्यय संज्ञाज्ञापक है । अर्थ है–यह क्षरता है या खाया जाता है ।

क्षीरपाक – (१) क्षीर में पकाया अन्न (२) पानी से सेचित पकने वाला अन्न ।
'शतं महिषान् क्षीरपाक मोदनम्
वराहमिद्र एमुषम् ।'
ऋ. ८.७७.१०, मै.सं. ३.८.३, ९५.१४.
इन्द्र ने सैकड़ों बड़े बड़े यज्ञों (शतंमहिषान्) चरु आदि से सिद्ध होने वाले ओदन तथा श्रेष्ठ वराह रूपी धन दिया–सा. । अन्य–अर्थ सेनापति ने चोरों के निवास स्थान पर्वतों को जीता (एमुषम् वराहम्) तथा अनेक प्रशस्त पदार्थों (शतं महिषान्) एवं दूध में पकाए चावल को दिया ।

क्षीरश्रीः – दूध के समान कान्तिवाला ।
'शुक्रः क्षीरश्रीः'
वाज.सं. ८.५७

क्षीरवान चरु– क्षीरमय चरु, वीर्य या बल से युक्त । क्षीर का अर्थ–पयः, रेतस है ।
'यत् पयस्तत् रेतस्'
गो.ब्रा. ३०२.६,
'अपूपवान् क्षीरवान् चरुः'
अ. १८.४.१६, २४,

कु – (१) कुत्सित अर्थ ।
'यवानो यतिस्वभिः कुभिः'
अ. २०.१३०.७
(२) क्व, कहां ।
'देवी हनत् कुहनत्'
अ. २०.१३२.११

कुक्षि – (१) कोख (२) कोखों के बीच रुधिर से भरा स्थान ।
'ह्रदान् कुक्षिभ्याम्'
वाज.सं. २५.८
(३) पेट, (४) खजाना ।
'इन्द्रस्य कुक्षिरसि सोमधानः'
अ. ७.१११.१.
(५) कुषि + क्सि = कुक्षि । अर्थ–सूर्यलोक, (६) जो सभी पदार्थों से रस खींचता है ।
'यः कुलिः सोमपातमः'
ऋ. १.८.७, अ. २०.७१.३.
जो सूर्य के समान समस्त पदार्थों से रस भाग अपने भीतर ले लेने में समर्थ है ।

कुक्षिल – (१) बड़ी बड़ी कोखों वाला, (२) मोटा ताजा ।
'कुसूला ये च कुक्षिलाः'
अ. ८.६.१०

कुक्कुट – (१) मुर्गा (२) चोरडाकुओं को नाश करने वाला ।
'कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वः'
वाज.सं. १.१६, श.ब्रा. १.१.४.१८.

कुकुन्ध – कुत्सिल मांस हड्डी आदि मलिन पदार्थों को धारण करने वाला ।
'ये कुकुन्धाः कुकूरभाः'
अ. ८.६.११

कुकूनना– निरन्तर विद्याध्ययन करने वाली

विनयशील प्रजा ।
'कुकूननानां त्वा पत्मन् आधूनोमि'
वाज.सं. ८.४८, श.ब्रा. ११.५.९.८.

कुकूरभ – (१) कुत्सित पदार्थों को खरेजने वाला, (२) गन्दे शब्द बोलने वाला ।
'ये कुकून्धाः कुकूरभाः'
अ. ८.६.११

कुचर – (१) कुत्सित चरण, कुत्सित गमनः हिंस्रत्वात् (जिसका आना कुत्सित हो) अथवा (२) कुत्सितं चरति (वध आदि कुत्सित कर्म करता है) इति कुचरः (३) क्व अयं न चराति (कहां यह नहीं जाता है) । इस अर्थ में यह शब्द देवता का वाचक है ।
आधुनिक अर्थ– मन्द गति से चलने वाला, रेंगने वाला, दुष्ट, नीच प्रकृति वाला,
'मृगोन भीमः कुचरो गिरिष्ठाः
रावत आजगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं
वि शत्रून् ताढि विमृधो नुदस्व ।'
ऋ. १०.१८०.२, अ. ७.८४.३, साम. २.१२२३, वाज.सं. १८.७१, तै.सं. १.६.१२.४, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१४, का.सं. ८.१६.
हे इन्द्र ! तू हिंसक होने के कारण कुत्सित गति का, या कुत्सित चरण या सर्वत्रगामी है (कुचरः) । पर्वत निवासी (गिरिष्ठाः) तथा सिंह या व्याघ्र के समान भयङ्कर (मृगः न भीमः) द्युलोक के भी उस पार के स्थान से (परस्याः परावतः) आ (आजगन्था) और सरणशील (सृकम्) तीक्ष्ण (तिग्मम्) वज्र को (पविम्) सम्यक् प्रकार से तेज करे (संशाय) शत्रुओं को विशेष प्रकार से ताड़ित करे (विताढि) तथा हिंसक एवं युद्ध करने वालों को (मृधः) विशेष रूप से तिरस्कृत कर (विनुदस्व) ।

कुट – (१) कृत, साधु या असाधु सार्वभौमिक कर्म । पृषोदरादि शब्दों के समान 'कृत' का 'कुट' हो गया है ।
(२) अथवा कुट् (करना) + क (कर्म में) = कुट । अर्थ है जो किया जाय ।
आधुनिक अर्थ– जल धरने का पात्र, गढ़, कीला, हथौड़ा, वृक्ष, घर, पर्वत, । पाली में 'कृत' को 'कट' कहते हैं
'हविषा जारो अपां
घपिपर्ति पपुरिर्नरा ।
पिता कुटस्य चर्षणिः ।'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
हे अश्विनीद्वय (नरा) सर्वभूतान्तर्गत जलों का (अपाम्) शोषयिता या प्राण भाव से स्थित या अपने ताप से जल शोषण कर्त्ता (जारः) समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीणयिता (पपुरिः) सम्पूर्ण जगत् का पालक (पिता) अच्छे बुरे कर्मों का द्रष्टा (कुटस्य चर्षणिः) सूर्य हमारे दिए हवि से देवों को प्रसन्न करता है (हविषा पिपर्ति) अतः आप सूर्योदय के समय आवें – सा.
स्वा. दयानन्द का अर्थ – सांसारिक कार्यभार को चलाने वाले द्यावापृथिवी (नरा) तुम में से एक आदित्य जल शोषक (अपां जारः) पालक या तप्त करने वाला (पपुरिः) पितृस्थानीय (पिता) तथा प्रत्येक कृतकार्य का द्रष्टा है (कुटस्य चर्षणिः) । वह जल से (हविषा) सब का पालन या तृप्ति करता है (पिपर्ति) ।

कुटरु – कुटस नामक मुर्गा पक्षी, कुक्कुट ।
'अग्नये कुटरूवालभते'
वाज.सं. २४.२३.
'क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनाम्'
वाज.सं. २४.३९, तै.सं. ५.५.१७.१.

कुटस्य चर्षणिः – सभी अच्छे बुरे किए कर्मों का द्रष्टासूर्य ।
'पिता कुटस्य चर्षणिः'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.

कुणप – मुर्दा का मांस, लोथ, लाश ।
'पौरुषेयेऽधि कुणपे'
अ. ११.९.१०

कुण्डपाय्यः – (१) कुण्ड अर्थात् रमण करने वाले प्राणों द्वारा पान करने योग्य ज्ञान रस ।
(२) सोमरस ।
'प्रणपात् कुण्डपाय्यः'
ऋ. ८.१७.१३, अ. २०.५.७, साम. २.७७, तै.ब्रा. २.४.५.१.
(३) कुण्डों के जलादि से पालन करने योग्य राष्ट्र रूप ऐश्वर्य (४) दाह कारी तथा रक्षण करने वाला सामर्थ्य ।

कुणारु – (१) परिक्वणन शील । क्वण् + आरुक् =

कुणारु (व का सम्प्रसारण द्वारा उ) । क्वण धातु का अर्थ शब्द करना है । अर्थ है-मेघ । मेघ गर्जता है अतः वह कुणारु है । कुणारु से ही कुडारु, कुलाडु, क्लाउड (cloud) बना है ।

'सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तम्
अहस्तमिन्द्रं संपिणक् कुणारुम्
अभिवृत्रं वर्धमानं पियारुम्
अपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ।'

ऋ. ३.३०.८, वाज.सं. १८.६९, श.ब्रा. ९.५.२४, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

हे पुरुहूत इन्द्र ! तू उदक दाता (सहदानुम्), अन्तरिक्ष लोक में रहने वाले (क्षियन्तम्) मेघ को (कुणारुम्) बिना हाथ का कर (हस्तम्) चूर्ण चूर्ण कर दे (संपिणक्) और इस हिंसनशील चारों ओर से बढ़ने वाले वृत्र को (पियारुम् अभिवर्धमानं वृत्रम्) पैर से रहित कर (अपादम्) बल से (तवसा) मार (जघन्थ) ।

अन्य अर्थ - हे निर्वाचित राजन् (पुरुहूत इन्द्र), अन्तरिक्ष में निवास करने वाले जलदाता मेघ को (क्षियन्तम् सहदानुं कुणारुम्) जैसे सूर्य छिन्न-भिन्न करता है वैसे ही तू राष्ट्र में रहने वाले दानवों के साथी दुर्जन को हस्त रहित कर नष्ट कर (अहस्तं संपिण्क) । और हे राजन् , बढ़ते हुए देवजनों के हिंसक पापी को (वर्द्धमानं पियारूं वृत्रम्) पाद-रहित कर अपने सामर्थ्य से नष्ट कर ।

(२) शब्दायमान् -दया. (३) वृत्र का विशेषण वचन बोलने वाला दुष्ट पुरुष

कुण्डृणाच्या - (१) दाह करने वाली प्रकृति या गति, (२) चाल करने वाला कुटिल (३) कुटिल गति

'पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि'

ऋ. १.२९.६, अ. २०.७४.६.

(४) एक पशु विशेष, (५) कामानल से पीड़त हो पुरुष के पास जाने वाली स्त्री

'रोहित कुण्डृणाची गोलत्तिका
तेऽप्सरसां मृत्यवेऽ सितः'

वाज.सं. २४.३७, तै.सं. ५.५.१६.१, मै.सं. ३.१४.१८, १७६.६, का.सं.(अश्व.) ७.६.

वायु वन से निकलकर भी बहुत दूर तक कुटिल गति से चला जाता है ।

कुतश्चित् - कहीं से ।

'इत आजातो अमुतः कुतश्चित्'

ऋ. १.१७९.४.

कुत्स - (१) कृन्त् + स = कुत्स, अथवा (२) कृ + स = कुत्स । यह एक संदिग्ध पद है । अर्थ है-(१) एक ऋषि का नाम, (२) वज्र, (३) वेदज्ञविद्वान्

ऋष अर्थ होने पर स्तोनां कर्त्ता (स्तोत्रों का रचने वाला) अर्थ में कृ + स से कुत्स बना ।

वज्र अर्थ में कृन्त् + स वाली व्युत्पत्ति ग्राह्य है क्योंकि वज्र काटता है या छेदता है (कृन्तति) । औपमन्यव ने इस शब्द का अर्थ ऋषि किया है । इन्द्र स्तुति शत्रुओं के वध के लिए ही की जाती है । अतः स्तोम भी वध -निमित्त ही हुए । (४) दुर्ग ने इस शब्द का अर्थ कृषीवल (कृषक) किया है । वस्तुतः 'कुत्स' किसान शब्द का रूप जान पड़ता है ।

(५) परमात्मा का स्तोता-दया.

'तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः
ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।
यत्र दशस्यन् उषसोरिणन्नपः
कुत्साय मन्मन्त्रह्यश्च दंसयः'

ऋ. १०.१३८.१

हे इन्द्र ! तेरे इन सखारूप अश्वों ने (इन्द्र तवत्य सख्येषु वह्नयः) इसमें जल है, ऐसा समझते हुए (ऋतं मन्वाना) मेघ को (वलम्) विदीर्ण किया (व्यदर्दिरुः) जिसके विदीर्ण होने पर (यत्र) माध्यमिक देव उषा (उषसः) मेघ में स्थित जलों को देती है (अह्यःअपः दशस्यन्) और वे जल पृथिवी पर आते हैं (रिणन्) । कृषक के लिए कृषि कर्मों को सफल करने के निमित्त आवश्यक समझ कर (दंसयः मन्मन्) तेरे अश्व ऐसा करते हैं । -दुर्ग

अन्य अर्थ- हे सूर्य ! (इन्द्र) जिस समय (यत्र) तुम मनुष्यों के लिए (जनाय) उषा काल को प्रदान करते हुए (उषसः दशस्यन्) और ओसजल को ले जाते हुए (अपः ऋणन्) परमात्मा के स्तोता के लिए (कुत्साय) आत्ममननों (मन्मन्) एवं पाप नाशक श्रेष्ठ कर्मों को जतलाते हुए उदय लेते हो (अह्यः दंसयश्च) उस समय तेरे सख्य में विद्यमान् (तव सख्येषु) वे नेता विद्वान् (ते वह्नयः) सत्य स्वरूप प्रभु का मनन करते हुए

(ऋतं मन्वानाः) आन्तरिक शत्रु बल को (वलम्) विदीर्ण करते हैं (व्यदर्दिरुः) । (६) एक राजा, (७) शत्रुनाशकारी वीर या सैन्य बल ।
'त्वंह त्यदिनद्र कुत्समावः'
ऋ. ७.१९.२, अ. २०.३७.२

कुत्सपुत्रः- (१) कुत्स का पुत्र, (२) दुष्टों को काटने वाला और बहुतों की रक्षा करने वाला बल ।
'अवो यत् दस्युहत्ये कुत्सपुत्रम्'
ऋ. १०.१०५.११,

कुत्सवत्स - दुष्टों को बसाने वाला ।
'प्रावो यत् दस्यु हत्ये कुत्सवत्सम्'
ऋ. १०.१०५.११

कुनखी - बुरे मैले नखों वाला ।
'श्यावदता कुनखिना'
अ. ७.६५.३

कुनन्नमा - कुनं क्वणं ध्वनिं कर्त्तु नमति प्रह्वीभवति या जिह्वा । ध्वनि करने के लिए जो अड़ती है वह जिह्वा ।
'पिनष्टि स्मा कुनन्नमा'
ऋ. १०.१३६.७

कुपप - (१) गोपनीय-दया. (२) सब का पालक, (३) राष्ट्र रक्षक ।
'आसाच्यं कुपपं वर्धनं पितुः'
ऋ. १.१४०.३

कुप्य - (१) खजाना, (२) हौदा, (३) झूला, ।
'शतंकुप्याः हिरण्ययाः'
अ. २०.१३१.७

कुपायुः - कुप धातु से युच् प्रत्यय । क्रोध करने वाला ।
'अकुप्यन्तः कुपायकुः'
अ. २०.१३०.८

कुपूय - कु + पू + क्यप् = कपूय (कु. का क)। कुत्सितं सत् पूयते (कुत्सित होने के कारण पवित्र किया जाता है । 'केपि' का अर्थ भी कुपूय है । पाप कर्म में रत ।

कुब्ज - (१) कुबड़ा, (२) कुत्सित मार्ग में चलने वाला, । 'कुञ्' या कुब्ज + अच् = उब्ज । कुञ् धातु कौटिल्य अर्थ में आता है ।
'उत्सादेभ्यः कुब्जम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६.
आधुनिक अर्थ - कुबड़ा, कुटिल, टेढ़ी तलवार ।

कुभत्यु - आत्मनः कुम्भनम् उन्दनम् इच्छुः -दया. (१) जल का इच्छुक जल, (२) धनार्थी ।
'घन्दस्तुभः कुभन्यवः'
ऋ. ५.५२.१२

कुभा - (१) वह नाड़ी जाल जिससे देह की त्वचा का निर्माण होता है , (२) एक नदी जिसे आज काबुल नदी कहते हैं ।
'त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुम्'
ऋ. १०.७५.६
(३) कुत्सितप्रकाशा -(दया.) । ऐसी भूमि जिस पर कान्ति, दीप्ति न्यून या कष्ट दायी रूप में पड़ती है ।
'मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुः'
ऋ. ५.५३.९

कुम्ब - (१) सिर का एक आभूषण जिसे स्त्रियां धारण करती हैं ।
'कुम्बं चाधि निदध्मसि
अ. ६.१३८.३

कुम्भ - कुम् + भ (१) पृथ्वी को भी पोषण करने से समर्थ, (२) वीर्य शौर्य आदि से पूर्ण ।
'कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिः'
वाज.सं. १९.८७, मै.सं. ३.११.९, १५३.१५, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.३.
(३) जल कलश । (४) सबको आवरण करने वाला आकाशमय ब्रह्माण्ड ।
'पूर्ण कुम्भोऽधिकाल आहितः'
अ. १९.५३.३

कुम्भमुष्क - घोड़े के समान अण्डकोश वाला ।
'कुम्भमुष्का अयाशवः'
अ. ८.६.१५

कुम्भिनी - (१) कहारी (२) नदी, (३) जलाधिकारिणी ।
'उदकं कुम्भिनीरिव'
ऋ. १.१९१.१४.

कुम्भी - (१) छोटी कलशी, (२) जलाधार या धान्याधार कलश ।
'कुम्भीभ्याम्भृणौ सुते'
वाज.सं. १९.२७
(३) घट के समान गोलाकार पात्र ।
'वेद्यै कुम्भी सुराधानी'

वाज. सं. १९.१६
(४) भोजन बनाने के लिए पात्र –डेगची ।
'द्रोणकलशाःकुम्भ्यः'
अ. ९.६.१७
(४) हांड़ी ।
'उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्टाः'
अ. १.२.३.२३

कुम्भीका – घड़े के समान पेट बढ़ा देने वाला जलोदर रोग ।
'कुम्भीका दूषीकाः पीयकान्'
अ. १६.६.८.

कुम्भे आभृत – कुम्भ में रखा जल ।
'शमुयाः कुम्भ आभृताः'
अ. १.६.४.

कुमार – कु + मार । (१) बुरी तरह शत्रुओं को मारने वाला, (२ ब्रह्मचारी ।

कुमारकः – (१) कुमार, (२) कुत्सित उपाय से मारने वाला ।
'नहि वो अस्त्यर्भकः
देवासो न कुमारकः'
ऋ. ८.३०.१, शा.श्रौ.सू. १०.११.८.
(३) नौजवान् कुमार ।
'अर्भको न कुमारकः'
ऋ. ८.६९.१५, अ. २०.९२.१२

कुमार देष्णः – (१) कुत्सित भावों के नाशक शिष्यो को ज्ञान देने वाला गुरु, (२) कुमारों, वीरों को धन पुरस्कार देने वाला (३) कुत्सि व्यवहारों को नाशक वीरों को धनादि देने वाला ।
'कुमार देष्णा जयतः पुनर्हणः'
ऋ. १०.३४.७

कुमारिका – कुसारिका या बन्ध्य कर्कीटिका नामक सर्प की एक जड़ी ।
'कैरातिका कुमारिका'
अ. १०.४.१४

कुमारिणा – नवयुवक सन्तान वाले मातापिता ।
'पुत्रिणा ता कुमारिणा'
ऋ. ८.३१.८, आप.मं.पा. १.११.१०.

कुमारी – (१) नवयौवन कन्या, (२) रहस्य न जानने वाली मुग्ध बुद्धि ।
'न वै कुमारि तत् तथा'
अ. २०.१३३.१–६.

कुमारीपुत्र – कुमारी दशा में व्यभिचार से उत्पन्न कानीन बच्चा
'प्रमदे कुमारी पुत्रम्'
वाज.सं. ३०.६

कुमुद – क + मुद् + अच् । कमल
'आण्डीकं कुमुदं सं तनोति'
अ. ४.३४.५

कुयव – (१) कुत्सित अन्न, (२) निन्दित संगी या (३) द्वेषी पुरुष ।
'प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा'
ऋ. ४.१६.१२
(४) कुत्सित यव आदि धान्य (५) क्षुद्र जाति का और उत्तम जाति का शालि आदि धान्य
'कुयवं च अक्षितं च मे
वाज.सं. १८.१०, मै.सं. २.११.४, १४२, १, का.सं. १८.९.
(६) पृथ्वी से यव आदि पैदा करने वाला मेघ, ।
(७) कुत्सित अन्न खाने वाला ।
'शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र'
ऋ. १.१०३.८
(८) कुत्सित संगति वाला पुरुष ।
'दासं यत् शुष्णं कुयवं न्यस्मा'
ऋ. ७.१९.२, अ. २०.३७.२

कुयवाक् – कुत्सित वाणी बोलने वाला ।
'नि दुर्योणे कुयवाचं मृधिश्चेत्'
ऋ. १.१७४.७

कुरीर – (न) क्रियत इति कुरीरम् मैथुनं वा इति दयानन्दः उणादिभाष्ये । अर्थ (१) कर्तव्य कर्म, (२) मैथुन
'कुरीरं छन्द ओपशः'
ऋ. १०.८५.८, अ. १४.१.८.
(३) कुरीर नाम का सिर का आभूषण ।
'अथो कुरीरिणं कृधि'
अ. ६.१३८.२
(४) सींग ।

कुरीरिन् – (१) कुरीर नामक सिर का आभूषण धारण करने वाला ।
'अथो कुरीरिणं कृधि'
अ. ६.१३८.२
(२) कुरीर अर्थात् सींग वाला पशु ।
'अजेवा यां कुरीरिणि'

अ. ५.३१.२

कुरु – (१) शत्रून कृन्तति इति कुरु (जो शत्रुओं को काटता है)। कृत् + कु = करुः (कृत् के ऋ का उ और निपातन से त् का लोप)। कृत् धातु का अर्थ छेदना है। अर्थ है– (१) योद्धा
(२) क्रूर अर्थ में भी कुरु है। कृत् + रक् = क्रूर (कृत् का क्रूर आदेश)। कृतः क्रू च। क्रूर से ही कुरु हुआ है
आधुनिक अर्थ – (१) वर्त्तमान दिल्ली से उत्तर स्थित देश का नाम जसे कुरुक्षेत्र कहते हैं, (२) कुरुदेश का राजा, (३) पुरोहित, (४) भात यह शब्द अत्यन्त प्राचीन है। उत्तर कुरु उस देश का नाम है जहां आर्य पहले निवास करते थे। वहां के निवासी उत्तराः कुरवः कहे गये हैं। आज भी कृषि कर्म आरम्भ करने के पूर्व कुरुखेत की पूजा की जाती है। कुरुक्षेत्र उस क्षेत्र का नाम है जिसमें खेती की जाती है। कुरु का अर्थ कृषि करने वाला भी है। 'कृ + कु' से भी कुरु बन सकता है।

कुरुंग – (१) कर्म करने वाले समाज जीवों को प्राप्त –उनमें व्यापक –इन्द्र, प्रभु।
'कुरंगस्य दिविष्टिषु'
ऋ. ८.४.१९, नि. ६.२२.
(३) एक राजा का नाम। वे कुरुओं के पास पुत्र रूप से गए अर्थात् उनके वंश में मिल गए (कुरून् राज्ञः प्रति पुत्र त्वेन पुत्रत्वेनगतः)। या कुरुङ्ग राजा कुरुक्षेत्र को जीतने गए (कुरुन् देशान् जेतुंगतः) या शत्रुओं के कुलों को पराजित करने नित्य जाते हैं (शत्रुकुलान् विजेतुम् नित्यमेवगच्छन्ति)।
कुरुम् + गम् + खच् = कुरुङ्ग (मुम और टि का लोप) क्रूरान् शत्रून् गच्छतीति कुरुङ्ग कुरुन् + गम् + उ = कुरुङ्ग।
शत्रुकुलं प्रति गच्छति इति कुरुङ्ग कुल + गम्। + उ= कुरुंग।

कुरुतन – कुरुत (करो)। यहां 'न' का उपजन अनर्थक है। इसी प्रकार कर्तन का अर्थ 'कुरु त', यातन का अर्थ 'यात' है। 'न' व्यर्थ बढ़ा हुआ है।
'कुरुतनेत्यनर्थ का उपजनाः भवन्ति।'

कुरुपिशंगिता – स्वयं अपने कर्मों से उत्पादित रूपों को अपने में धारण करने वाला।
'श्वावित् कारु पिशङ्गिला'
वाज.सं. २३.५६

कुरुरु – कुत्सित शब्द करने वाला, चिटचिटाने वाला, बुरी तरह से रुलाने वाला कीट।
'अथो कुरुरुमतृहन्'
अ. २.३१.२

कुरुश्रवण – कुरु, करु ऐसा कर ऐसाकर ऐसी नाना प्रेरणाओं को सुनने वाला पुरुष, (२) क्रियाशील पुरुषों से श्रवणणीय आज्ञा वाला।
'कुरुश्रवण ददतोमघानि'
ऋ. १०.३२.९

कुरूटिनी – कुत्सित कठोर शब्द या प्रतिघात करने वाली।
'वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी'
अ. १०.१.१५

कुरूरु – चील।
'यावती भृङ्गाः जत्वकुरुरवः'
अ. ९.२.२२.

कुर्कुर – कुत्ता।
'कुर्कुराविव कूजन्तौ'
अ. ७.९५.२

कुर्वती – क्रियाशीलता।
'कुर्वतींकुर्वतीमेवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते'
अ. ९.५.३२

कुर्वन्ऋतुः – (१) क्रियाशील वर्षा करने वाली वर्षाऋतु।
'योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति
यो वै कुर्वन्तं नामर्तुं वेद'
अ. ९.५.३२

कुल – कुष् (निष्कर्ष अर्थात् बाहर निकलना) + क = कुल। ष् का ल् पृषोदरादि के तुल्य। विकुष्यत इति कुलम्। जब परिवार बढ़ जाता है तो परिवार के कुछ लोग एक स्थान से निकलकर अन्यत्र चले जाते हैं। इस चले जाने का ही नाम विकोषण या निष्कोषण है। इस प्रकार कुष् शब्द से कुल बना। आज भी Colony शब्द उस प्रदेश के लिए प्रयुक्त होता है जहां किसी देश विदेश की जनता जाकर बस जाती

है । यह शब्द कुल से ही बना है । यहां अनेक कुलों के लोग बसते हैं (कुलानि) ।
अथवा कुल् (संस्थान फैलाना) + क = कुल (जो फैलते हैं वे कुल हैं) ।
कुलपः कुल + पा + अच् । कुल का पालक पुत्र, शिष्य
'कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम्'
ऋ. १०.१७९.२, अ. ७.७२.२

कुलपा – (स्त्री) (१) कुल का पालन करने वाली, बहुत से कार्यों का पालन करने वाली ।
'एषा ते कुलपा राजन्'
अ. १.१४.३

कुल्फ – पैर का टखना, ठेहुना ।
'अष्ठीवन्तौ परिकुल्फौ च देहत्'
ऋ. ७.५०.२

कुड्मल – (१) कुल्मल नामक पद्म ओषधि जिससे विष दूर होता है । (२) प्राणी के मल से उत्पन्न ।
'अपाष्ठात् श्रृंगात् कुल्मलात्'
अ. ४.६.५
(३) कुड्मल, कोमलफूल की कली ।
'शल्य इव कुल्मलं यथा'
अ. २.३०.३

कुल्यः – नहरों के प्रबन्ध में या बनाने में लगा पुरुष ।
'नमः कुल्याय च सरस्याय च नमः'
वाज.सं. १६.३७, का.सं. १७.१५

कुलाय – (१) गृह ।
'कुलसिनी घृतवती पुरन्धिः'
वाज.सं. १४.२, मै.सं. २.८.१,१०६.९, का.सं. १७.१, श.ब्रा. ८.२.१.५,१५.
(२) घोसला ।
'कुलायेऽधिकुलायम्'
अ. ९.३.२०
'वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम्'
अ. १४.१.५७
(३) कुटुम्ब ।
"कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः'
अ. २०.१२७, ८, शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.२.

कुलायिनी – (१) गृहवाली स्त्री या प्रजा, (२) शरीर रुपी गृहवाली चितिशक्ति ।
'कुलायिनी घृतवतीपुरन्धिः'
वाज.सं. १४.२, मै.सं. २.८.१, १०६.९, का.सं. १७.१, श.ब्रा. ८.२.१.५,१५.

कुलायी – (१) गृहोपयोगी, (२) नानाद्रव्यों से समृद्ध, (३) सर्वाश्रय प्रद ।
'कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे'
ऋ. ६.१५.१६, तै.सं. ३.५.११.२ मै.सं. ४.१०.४, १५२.५, कासं. १५.१२, ऐ.ब्रा. १.२८.२८.

कुलाल – कुम्हार ।
'नमः कुलालेभ्यः कमरिभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२७, तै.सं. ४.५.४.२. मै.सं. २.९.५:१२४.६, का.सं. १७.१३.

कुलाययत् – (१) घर या स्थान घेर कर संघ बनाकर रहने वाला, कुत्सित रूप प्राप्त कराने वाला विष (३) अंहाकारादि वृत्त को उत्पन्न करने वाला
'कुलालयत् विश्वयत् मा न आगन्'
ऋ. ७.५०.१

कुल्माष – सजातीय अन्न संघों में जो अन्न सीदन करे या भ्रष्ट हो जाय उसे कुल्माष कहते हैं (कुल्माषाः कुलेषु सीदन्ति-सजातीयान्नसंघेषु भ्रष्टाः भवन्ति सीदन्ति इति कुल्माषाः)
कुल + माष् (ण्यन्त) + अच् = कुल्माष । अर्थ है-(१) निकृष्ट अन्न । (२) अर्द्ध स्विन्ना श्वगोधूमः अन्ये च चणकादयः, कल्माष इति कथ्यन्ते । अधपका गेहूं चना और यव आदि अन्न । कुल + सद् = कुल्सद् = कुल्पाष ।
आज भी जिस आम के फल में पत्थर आदि गिरने से दोष आ जाता है उसे कुलवांसी कहते हैं । कुल्मासांश्चिदाहर' (कुत्सित अन्न ही ला) आधुनिक अर्थ- (१) लप्सी (gruel) (४) कुत्सित अन्न, (३) कुत्सित ।

कुल्या – (१) धारा ।
'घृतस्य कुल्या उपक्रतस्य पथ्या अनु'
वाज.सं. ६.१२,
(२) नहर ।
'मेदसः कुल्या उप तान् स्रवन्तु
वाज.सं. ३५.२०,
(३) छोटी-छोटी नाली ।
'सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम्'
ऋ. १०.४३.७, अ. २०.१७.७.
(४) छोटी छोटी जलधारा ।
'ह्रदं कुल्या इवाशत'

ऋ. ३.४५.३, साम. २.१०७०.
'अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः'
अ. ५.१९.३
(५) नहर, नदी ।
'कुल्योपसेचनम्'
अ. ११.३.१३
धारा के अर्थ में- ।
'तेभ्यो घृतस्य मे कुल्यैतु'
अ. १८.४.५७, ३.७२, तै.आ. ६.१२.१

कुलिश - (१) वज्र । कूल + शत (शातन अर्थ में) + ड = कुलिश ('कू' का 'कु', इ का आगम) । इसका कूल (किनारा) तीक्ष्ण होने के कारण काटते हैं ।
स्कन्दस्वामी ने इसका अर्थ 'कुलपर्वतान् श्यति पक्षच्छेदेन तनूकरोति' (कुल पर्वतों का पंख काटकर जो छोटा बना दे वह) इति कुलिशः- ऐसा कहा है । उनके अनुसार -कुल + शा (तनूकरण) + क क्ष कुलिश हुआ है । आतोऽनुपसर्गे कः से क प्रत्यय ।
वेद में कुलिश पुल्लिंग में प्रयुक्त हुआ है । परन्तु इस समय इसका प्रयोग नपुंसक में है ।
'अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम्
इन्द्रो वज्रेण महता वधेन
स्कन्धांसीव कुलिशेनाविवृक्ण
अहिःशयत उपपृक् पृथिव्याः ।'
ऋ. १.३२.५, मै.सं. ४.१२.३ः १८५.९,१०, तै.ब्रा. २.५.४.३.

कुलिशी - अस्त्र शास्त्र से युक्त या अस्त्र शस्त्र से राष्ट्र की रक्षा करने वाली प्रजा ।

कुलीक - कुलीक नामक पक्षी ।
'कुलीका देवजामिभ्यः'
वाज.सं. २४.२४,

कुलीपय - (१) मुर्गायी नामक जन्तु ।
'मित्राय कुलीपयान्'
वाज.सं. २४.२१
(२) एक जलजन्तु, (३) कुलीपय की तरह बनी नौका ।
'नाक्रो मकरः कुलीपयः'
वाज.सं. २४.३५

कुलुङ्गः - कुरंग जाति का मृग ।
'साध्येभ्यः कुलुङ्गान्'
वाज.सं. २४.२७, मै.सं. ३.१४.९ः १७४.४.

कुलुञ्च - कुलों का अध्यक्ष ।
'कुलुञ्चानां पतये नमः'
वाज.सं. १६.२२ तै.सं.४.५.३.७; मै.सं. २.९.३; १२३.७; का.सं. १७.१२.

कुवल - बेर का पौधा, (२) शत्रु की भूमिका को घेर देने वाला सेवादल ।
'कुवलैर्भेषजं मधु'
वाज.सं. २१.२९
(३) भूमि में उगा कांटेदार वृक्ष ।
'कुवलैरुतानि'
वाज.सं. १९.८९
(४) कोमल बेर का फल ।
'धानानां रूप कुवलम्'
वाज.सं. १९.२२.

कुवित् - (१) बहुत, बहुत बार ।
'उक्थेभिः कुविदागमत्'
अ. २०.२४.४
(२) खूब । कुवित् से ही खूब बना है ।
'कुवित्सोमस्यापामिति'
ऋ. १०.११९.१-१३
(३) बहुत, महान् ।
'कुवित् नो अग्निः उचथस्य वीरसत्'
ऋ. १.१४३.६
विनीत विद्यार्थी (अग्निः) हमारे (नः) बहुत से उत्तम वचनों या आज्ञा वचनों का (उचथस्य) पालक या प्राप्त करने का इच्छुक हो (वीः असत्)
(४) बहु कृत्वः (अनेकबार), कई बार, अत्यन्त-दया. ।
'तां आरुद्रस्य मीढुषो विवासे
कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः
यत्सस्वर्ता जिहीडिरे यदाविः
अव तदेन ईमहे तुराणाम्'
ऋ. ७.५८.५.
मैं उन मनोरथों को बरसाने वाले रुद्र के पुत्र मारुतों की अभिमुख हो परिचर्या करता हूं (तान मीढुषः रुद्रस्य मरुतः आ विवासे) क्योंकि वे अनेकों बार (कुवित्) हमें जल दान द्वारा अनुगृहीत करते हैं (न पुनः नंसन्ते) और जिस छिपे (यत् सस्वर्ता) तथा प्रकट (आविः) पाप से (एनः) लोग लज्जित होते हैं (जिहीडिरे) उन

दोनों प्रकार के पापों को शीघ्रगामी मरुतों के अनुग्रह से हम दूर कर देते हैं (तुराणाम् अव) अतः हम उनसे याचना करते हैं (ईमहे) - सा.। स्वा. दयानन्द का अर्थ- हम उन दुःखभंजक परमात्मा के सेवक (तान् रुद्रस्य मीढुषः) मनुष्यों की सेवा करते हैं (अविवासे) जो सेवा करने पर हमारे प्रति अत्यन्त नम्र हो जाते हैं (नः पुनः कुवित् नंसन्ते), परन्तु जो गुप्त या प्रकट पाप के द्वारा (यत् सस्वर्ता यत् आविः) हमारा निरादर करते हैं (जिहीडिरे) हम उन हिंसकों को (तुराणाम्) उस पाप को (एनः) दूर करते हैं (अव ईमहे)।

'कुवित् तिसृभ्य आ वरम्'

ऋ. २.५.५.

कुवित्स - (१) कुत्सित ज्ञान वाला अल्प ज्ञानी, जीव, (२) बहुतों देहों का नाश करने वाला, (३) बहुत जन्म लेले कर देहों को त्यागने वाला जीव।

'कुवित्सस्य प्र हि व्रजं
गोमते दस्युहा गमत्'

ऋ. ६.४५.२४, अ. २०.७८.३, साम. २.१०१८.

(४) विवेक पूर्वक बहुत धनका विभाग करने वाला, (५) न्यायकर्त्ता विवेकी पुरुष, (६) बहुत से भोग्य पदार्थों का भोक्ता जीव

कुबेर - (१) पृथ्वी में गड़े खजाने का मालिक (२) कुबेर नामक देवता।

कुत्वेर वैश्रवण - तिरोधा विराट् का पुत्र।

'तस्याः कुबेरो वैश्रवणो वत्स आसीत्'

अ. ८.१० (५) १०

कुशर - (१) छोटी जाति के सरकण्डे के समान विषैला जीव।

'शरासः कुशरासः'

ऋ. १.१९१.३.

कुशवर्तक - (१) कुश के समान रहने वाला (२) नित्य वर्तमान परमात्मा, (३) संसार में सोया पड़ा व्यवहारी जीव। कु + श + वर्तक

'अहल कुशवर्तक'

अ. २०.१३१.६

कुशिक - कोषतेः शब्द कर्मणः, क्रंश तेर्ना स्यात् (शब्दार्थक कुष् या क्रंश् धातु से सिद्ध)। अर्थ प्रकाशयति कर्मणः, साधु विकोशयिता अर्थानाम् (१) वाग्मी, (२) ऐश्वर्य वान्, धनी (३) तेजस्वी, (४) ज्ञानी पुरुष।

'कुशिकासो अवस्यवः'

ऋ. ३.४२.९, अ. २०.२४.९

(५) कुशिक नामक ऋषि जिसके पुत्र विश्वामित्र थे।

'अवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः'

ऋ. ३.३३.५.

मैं कुशीक पुत्र अपनी रक्षा का इच्छुक पुकारता है। (६) एक राजा का नाम (कुशिको राजा बभूव)।

व्युत्पत्ति - क्रुश् (बोलना या आह्वान् करना) या कंश (प्रकाशित करना) + ईहक् (कर्त्ता में) = क्रुशिक = कुशिक्। पृषोदरादिवत् र् का लोप। अथवा क्रश् = ईशक् = क्रशिक = कुशिक (क्रंश् का कुश)। (७) कुशिक धर्मों का प्रकाशक या सदा साधु कर्म करने का उपदेश देने वाला। ('साधूनाम धर्माणाम् प्रकाशयिता' अथवा 'साधु एव क्रियताम् इति क्रोशति स्म')।

(८) या साधुओं को अर्थ देने वाला (साधुषु अर्थानां विक्रोशयिता) (९) या कुश् + ईशक् = कुशिक (दान देने कि निमित्त जो सदा कुश् लेकर प्रस्तुत है अर्थात् दान शील) (१०) स्वामी दयानन्द ने उत्तम वाणी वाला या विद्वान् अर्थ माना है। (११) कुश + ठक् = कुशिक। विद्या से प्रकाशित या हित की बातों को प्रकाशित करने वाला। कुश धातु प्रकाशित करना अर्थ में है।

कुशिकस्य सूनुः - (१) कुशिक का पुत्र विश्वामित्र, (२) निष्कर्ष रूप में विद्याओं के द्वारा उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष का पुत्रवत् शिष्य, (३) शस्त्रास्त्रकुशल सैन्यबल का संचालक पुरुष (४) कोशस्थ आत्मा का ज्ञाता।

'अवस्यु रह्वे कुशिकस्य सूनुः'

ऋ. ३.३३.५, नि. २.२५.

कुशिकाः - (१) कुशिक वंश वाले, (२) उद्बोधक राजपुरुष।

'उपप्रेत कुशिकाश्चेतयध्वम्'

ऋ. ३.५३.११, नि. ७.२.

ऐ कुशिक वंश वालो, या उद्बोधक राजपुरुषों! सावधानचित्त होओ। व्युत्पत्ति के लिए।

कुशिकासः – (१) कुशिक वंश वाले, (२) सत्य का उपदेश करने वाले विद्वान्, (३) शत्रु को ललकारने वाले वीरजन ।
'गीर्मी रण्यं कुशिककासो हवामहे'
ऋ. ३.२६.१

कुष्ठ – (१) कूट नामक ओषधि ।
'कुष्ठस्य नलदस्य च'
अ. ६.१०२.३
(२) कौ पृथिव्या तिष्ठतीति कुष्ठः (कु + स्था + क) । अर्थ–कुष्ठ नामक वनस्पति जो हिमवान् पर्वत पर होता है पृथ्वी पर स्थित सभी ओषधियां कुष्ट ही हैं । जल–भेद से, अग्नि भेद से रस भेद से सूर्य के भिन्न–भिन्न प्रकार के आतपभेद से, मास भेद से, ऋतुभेद से, वायु, पृथिवी आदि भेद से कुष्ट के नामभेद हो सकते हैं ।

कुष्ठा – (१) जाँघ और चूतड़ दोनों के बीच का गहरा भाग ।
'बलं कुष्ठाभ्याम्'
वाज.सं. २५.६, मै.सं. ३.१५.३, १७८.९.
(२) त्वचा के कुत्सित रोग
'संकुष्ठा अगुः'
अ. १९.५७.२

कुष्ठिका – (१) गौ के खुरों के ऊपर पीछे की ओर लगी हुई उंगली ।
'अप्सरसः कुष्ठिकाः'
अ. ९.७.१०
(२) प्रजापति की कुष्टी ।
'ते कुष्ठिकाः सरमायै'
अ. ९.४.१६

कुषुम्भ – कीटों की विष वाली थैली ।
'भिनद्धि ते कुषुम्भम्'
अ. २.३२.६

कुषुम्भकः – (१) बहने वाला, (२) विषमय छोटा नकुल, (३) छोटा नेवला ।
'इयन्तकः कुषुम्भकः'
ऋ. १.१९१.१५.

कुसिन्ध – शरीर ।
'देवः कुसिन्धे अध्या दधौ'
अ. १०.२.५

कुसूल – कुसि + ऊलच् = कुसूल
कुसेरुवच् इत्यतः उणादिरुलच ।
(१) कुत्सित रूप में दूसरे के साथ लगाने वाला, बिना मतलब दूसरों के सिर हो जाने वाला ।
(२) गाली गलौज करने वाला ।
'कुसूला ये च कुक्षिलाः'
अ. ८.६.१०

कुह – (१) कहाँ (अव्यय) ।
'यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम्'
अ. २०.३४.५
(२) विद्वान् पुरुष ।
'एतं पृच्छ कुहं पृच्छ'
अ. २०.१३०.५
कहां के अर्थ में–
'कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः'
ऋ. १०.४०.२२, नि. ३.१५.
कहां स्नानभोजनादि करते हो और कहां रहते हो ?

कुहचित् – कहां ।

कुहया– कहां है ऐसी जिज्ञासा ।
'कुहया कुहयाकृते
ऋ. ८.२४.३०

कुहयाकृतिः – कुहया + कृति । आत्मा या प्रभु कहां है इस प्रकार की जिज्ञासा करने वाली बुद्धि ।
'कुहया कुहयाकृते'
ऋ. ८.२४.३०

कुहस्वित् – (अ.) कहां ।
'कुहस्वित् दोषा कुह वस्तोरश्विना'
ऋ. १०.४०.२, नि. ३.१५.
(रात कहां बितायी) ।

कुहाक् – आश्चर्यमय ।
'कुहाकं पक्वकं पृच्छे'
अ . २०.१३०.६

कुहू – (१) उत्तरा अमावास्या, (२) अन्तरंगसभा ।
'कुहूं देवीं सुकृतं विघ्ना पसम्'
अ. ७.४७.१, मै.सं. ४.१२.६, १९५.८, का.सं. १३.१६.
व्युत्पत्ति – गुह् + कु + ऊङ् = कुहू । अर्थ है– (३) देव पत्नी जो गुह्य बातों को गुप्त रखती है अर्थात् बहुत गम्भीर रहती है, (४) अथवा देव पत्नी को देखकर पूछा जाता है कि यह किस

कुल की है-क्व + यू = कुहू । Queen शब्द का मूल 'क्या क्व यू' या 'कुहू' ही है ! (५) अमावस्या, (६) नष्ट कला । अमावस्या के अन्तिम दोपहर जब कला का सम्पूर्णतः क्षय हो जाता है कुहू है ।

सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दु कला 'कुहू' -अमर कोश

चतुर्दशी का अन्तिम प्रहर और अमावस्या के आठ प्रहर चन्द्रमा का क्षयकाल है । इन नौ प्रहरों में पहले के दो पहर चन्द्रमा की सूक्ष्मता के लिए प्रसिद्ध हैं और अन्तिम दो प्रहरों में चन्द्रमा की सम्पूर्ण कलाओं का क्षय हो जाता है । अतः अमावास्या का प्रथम प्रहर जिसमें कला की सूक्ष्मता रहती है 'सिनीवाली' नाम से प्रसिद्ध है और अमावास्या के अन्तिम दो प्रहर जब कला का सम्पूर्णतः क्षय हो जाता है, 'कुहू' कहा जाता है बीच वाले पांच प्रहर 'दर्श' नाम से प्रसिद्ध है ।

(६) देवपत्नी जहां कहीं भी हो बुलायी जाती है (क्व + ह्रूञ् = कुहू) । या यह देवी किस कुल में आहुत हव्य को ग्रहण करती है-क्व + हु = कुहू

(८) गम्भीर पत्नी ।

'कुहूं देवीं सुकृतं विद्यनापसम्
'अस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि'
अ. ७.४७.१

मैं शोभन कार्य करने वाली (सुकृतं) कर्म को जानने वाली, सुन्दर आह्वान वाली अमावास्या को (सुहवां कुहूम्) इस यज्ञ में बुलाता हूँ । (अस्मिन् यज्ञे जोहवीमि) ।

अन्य अर्थ - मैं साधु कर्म कारिणी (अहं सुवृतं) अपने कर्त्तव्यों को जानने वाली (विद्यनापसम्) आदरपूर्व बुलाने के योग्य (सुहवाम्) गम्भीर पत्नी को (कुहूम्) इस गृहस्थ यज्ञ में स्वीकार करता हूँ (अस्मिन् यज्ञे जोहवीमि) ।

क्रुङ् - (१) हंस (२) अतिसूक्ष्म आत्मा (३) ज्ञानी, योगी (४) परमहंस ।

'अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत्
क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया'
वाज.सं. १९.७३, मै.सं. ३.११.६:१४८.१२, का.सं. ३८.१, तै.ब्रा. २.६.२.२

क्रुञ्च - क्रौञ्च, सारस ।

'इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्'
वाज.सं. २४.२२, मै.सं. ३.१४.३, १७३.३.

क्रुध्मी - क्रोधयुक्त ।

'शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि'
ऋ. ७.५६.८

क्रुमुः - (१) क्रमिता -दया. (२) ऊंची तरंगें फेकने वाला नद, (३) एक नदी का नाम ।

'मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुः
मा वः सिन्धुः निरीरमत्'
ऋ. ५.५३.९

क्षु - अन्न ।

'पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्'
अ. १९.८.५.

क्षुणुवानः - देता हुआ ।

'वाचं क्षुणुवानो दमयन् सपत्नान्'
अ. ५.२०.१

क्षुद्र - (१) क्षुद्र नामक सूक्त जिसमें अति सूक्ष्म ब्रह्म विवेचन किया गया है ।

'क्षुद्रेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.६, २३.२१

(२) न. जल ।

'अवतरमव क्षुद्रमिवभ्रवेत्'
ऋ. १.१२९.६, नि. १०.४२.

इन्द्र अत्यन्त निकृष्ट को (अवतरम्) जल की तरह (क्षुद्रमिव) अपने स्थान से गिरा दे (अवभ्रवेत्) । क्षुद् + रा = क्षुद्र । क्षुधा अर्थात् भूख देने वाला जल (३) छोटा, नीच ।

क्षुद्रपृषती - छोटी छोटी छींट वाली पोषाक वाली स्त्री ।

'पृषती क्षुद्रपृषती
वाज.सं. २४.२, मै.सं. ३.१३.३, १६९.४, का.सं. (अश्व) ९.२.

क्षुध्यत् - क्षुधापीड़त, भूखा । क्षुध् + शतृ = क्षुध्यत् ।

'इन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः'
ऋ. १.१०४.७

हे परमेश्वर ! क्षुधापीड़तों को अन्न और पान करने योग्य दुग्ध आदि दे ।

क्षुधामार - (१) भूख के कारण मारने वाला, (२) मृत्यु, (३) भस्मक नामक रोग ।

'क्षुधामारं तृष्णामारम्'
अ. ४.१७.६

क्षुभ् – शोभा या उत्साह पूर्वक संचालन की रीति।
'क्षुभामर्तमनुयातं वधस्नैः'
ऋ. ५.४१.१३

क्षुमत् – (१) क्षु + मतुप्। अन्न वाला स्थान।
'आयूथेव क्षुमति पश्वो अख्यत्'
ऋ. ४.२.१८, अ. १८.३.२३
(२) अन्नयुक्त
'क्षमन्तो याभिर्मदेय'
ऋ. १.३०.१३, अ. २०.१२२.१, साम. १.१५३.२, २.४३४, तै.सं. १.७.१३.५, २.२.१२.८, ४.१४.४, मै.सं. ४.१२.४, १८९.६ का.सं. ८.१७.
हम अन्नयुक्त हों जिन ऐश्वर्यवती प्रजाओं या स्त्रियों के साथ राष्ट्र में सुखपूर्वक रहे।
'त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे'
ऋ. २.१.१०

क्षुमती – मन्त्रमय शब्दों से युक्त वेदवाणी
'सो चिन्नु भद्राक्षुमती यशस्वती'
ऋ. १०.११.३, अ. १८.१.२०

क्षुम्पम् – (न.) क्षुभ् + ण्यत् = क्षौम्य (छूते ही टूट जाने योग्य) क्षौम्य से पृषोदरादिवत् क्षुम्य हो गया है (औ का उ, भ का प, य का लोप, म का आगम)। क्षुभ् धातु संचलन या शीर्ण होने के अर्थ में है (स्पष्ट मात्रं क्षुभ्यते)।
अथवा –क्षुभ् + प = क्षुम्य। अर्थ– (१) सांप का छाता जो बरसात के दिनों में लकड़ी आदि में उत्पन्न हो जाता है और जिस का आकार छाते का सा है।
'कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्'
ऋ. १.८४.८, अ. २०.६३.५, साम. २.६९३, नि. ५.१७.
इन्द्र कब आराधना न करने वाले मनुष्य को सांप के छाते के समान नष्ट कर देंगे।

क्षुर – छुरा।
'क्षुरो न भुरिजोरिव'
अ. २०.१२७.४ शां.श्रौ.सू. १२.१५.१.१.
'आयमगन् सविता क्षुरेण'
अ. ६.६८.१, कौ.सू. ५३.१७.

क्षुरपविः – (१) तीक्ष्ण धारवाला चक्र।
'तं मरुतः क्षुरपविना व्ययुः'
नि. ५.५.
उस वृत्र को मरुतों ने तीक्ष्ण धार वाले चक्रनेमि से क्षीण भिन्न किया। (२) छुरे की धार के समान तीक्ष्ण
'क्षुरपविरीक्षमाणा'
अ. १२.५.२०

क्षुरभृष्टि – छुरे की धार से सम्पन्न।
'तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना'
अ. १२.५.६६

क्षुरा – (१) उत्तम शब्द, (२) धर्मशब्द।
'अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि'
ऋ. १.१६६.१०

क्षुरोभ्रजः – (१) छुरा कर्म,. (२) आदित्य।
'क्षुरोभ्रजश्छन्दः'
वाज.सं. १५.४, तै.सं. ४.३.१२.३, मै.सं. २.८.७, १११.१५, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.४.

क्षुल्लक – छोटा मोटा कीटों का सहचर (२) कीटों का छोटा छोटा बच्चा।
'अथो ये क्षुल्लका इव'
अ. २.३२.५, ५.२३.१२

कूचिदर्थी – कहीं भी अभ्यर्थना करने योग्य परमेश्वर।
'सुवेदं कूचिदर्थिनम्'
ऋ. ४.७६

कूटा – कूटनीति वाली वशा।
'कूटयास्य संशीर्यन्ते'
अ. १२.४.३

कूदी – कांटेदार बेड़ी या कड़ी।
'कूद्यं पदयोपनीम्'
अ. ५.१९.१२

कूप – कु + पा + ड = कूप (बाहुलक भाव से कु का कू)। अर्थ–(१) कुआं। कुत्सितं पानं यस्य (रस्सी आदि से जल निकालने के कारण कुएं का जल कुत्सित समझा जाता है)।
अथवा – यत्सम्बन्धात् उदकार्थिनः कुप्यन्ति। कूप रहने पर डोरी आदि न रहने के कारण प्यास नहीं बुझने से जलार्थी कुपित हो जाते हैं अतः कूप है)। कुप् + क = कूप (बाहुलक से दीर्घ)। शाकटायन के मत से 'कु' धातु से 'प' जोड़कर कूप बना है। कुर्वन्ति शब्दायन्ते मण्डूकाः अस्मिन् इति कूपः (इसमें मेढ़क बोलते हैं अतः

कूप हैं) ।
पाणिनि ने 'कुत्सिताः ईषत् वा आपः अस्मिन्' (कुत्सित या अल्प जल है इसमें ऐसी व्युत्पत्ति की है) । कु + आप = कूप । समासान्त 'अ' प्रत्यय जोड़कर दीर्घ निदेश ।

कूप्य – कूप + यत् = कूप्य । कूपों पर नियत पुरुष ।
'नमः कूप्याय चावट्याय च ।'
वाज.स. १६.३८, तै.सं. ४.५७.२, का.सं. १७.१५.

कूप्या – कूप का जल ।
'कूप्याभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२५, तै.सं. ७.४.१३.१, का.सं. (अश्व.) ४.२, तै.ब्रा. ३.८.१७.१५, आप.श्रौ.सू. २०.११.१७.

कूर्मः – (१) क्रिया उत्पन्न करने में समर्थ सूर्य, (२) द्यौ और पृथिवी रूप विराट् कूर्म-कच्छप ।
'द्यावापृथिवीयः कूर्म'
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.१०.

कूल – (१) रुज् + घञ् (कर्मवाच्य में)= गुर् + घञ् = कूल । अर्थ है-तट, किनारा
(२) क्रोधः निरुणद्धि जलप्रवाहम् (जो जल प्रवाह को रोकता है) । रुज् (भंग करना) धातु को विपरीत कर अर्थात् जुर् बनाकर कूल शब्द बना है । उ को ऊ और ज् का क् तथा (का ल) रूज्यते भज्यते इति कूलम् (जो जल से तोड़ दिया जाय वह कूल है)

कूल्य – तटों पर आश्रय बनाकर रहने वाला ।
'नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च'
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२, का.सं. १७.१५.

कूल्वज् – कु + उल्वज, उच्यति समवति इति उल्वः । कु सम्बन्धी उल्वः कूल्वः । तस्मात् जातः कूल्वजः । पृथिवीवासिसमुदायोद्भूत नेतृपुरुषः ।
अर्थ – पृथ्वी वासीजन समुदाय से उत्पन्न पुरुष ।
'कृत्या कूल्वजमावृता'
अ. १२.५.५३.

कूश्म – (१) शासक, पदाधिकारी, (२) अग्नि के बल से फेंके जाने वाला गोला और अग्निमय पदार्थ, (३) शासनबल ।
'कूश्मान् शकपिण्डैः'
वाज.सं. २५.७, वाज.सं.(का.) २७.१०, मै.सं. ३.१५.९, १८०.६.

कुष्ठ – कु + स्थ । भूमि पर विराजने वाला ।
'कूष्ठोदेवावश्विना'
ऋ. ५.७४.१

क्रूर – (१) कृत् (छेदन भेदन करना) + छ = क्रूर (कृतेश्छः क्रू च) । छेदन भेदन सामर्थ्य ।
'नहि ते अग्ने तन्व क्रूरमानंशमर्त्यः'
ऋ. ६.४९.१, का.सं. ३५.१४, तै.ब्रा. २.२२३, तै.आ. ६.१०.१, आप.श्रौ.सू. १४.२९.३, कौ.सू. ४६.१४.
(२) कृत् (कृन्तन) + रक् = क्रूर । ('कृतः छः क्रू च' से कृत् का क्रू) । अर्थ-काटने वाला, हिंसा करने वाला । (३) कृती + ऊरन् = क्रूर आधुनिक अर्थ – क्रूर ।

कृ – कृञ् हिंसायाम् (स्वादिः) । स्वादिभ्यः श्नुः। हिंसा करना, मारना
'परुषानमून् परुषाह्नः कृणोतु'
अ. ८.८.४

कृकदाशुः – (१) कृका हिंसा तां दाशति प्रयच्छति इति कृकदाथुः । हिंसाकारी प्रयोग करने वाला, (२) कृकलाश- गिरगिट, (३) उल्लू के समान धूर्त कपटी पुरुष ।
'जम्भया कृकदाश्वम्'
ऋ. १.२९.७, अ. २०.७४.७.
(४) कृक (हिंसा) + दाशृ + उण् = कृकदाश । हिसां और आघात करने वाला डाकू ।

कृकलास – सरत, गिरगिट ।
'कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायैः'
वाज.स. २४.४०, तै.सं. ५.५.१९.१, तै.सं. ३.१४.२१, १७७.५, का.सं.(अश्व.) ७.९.

कृकवाकु – (१) मयूर आदि सुन्दर पालतू पक्षी ।
'यां ते चक्रुः कृकवाकौ'
अ. ५.३१.२
(२) कण्ठ से सुन्दर वाणी बोलने वाला विद्वान् । (३) मुर्गा ।
'कृकवाकुः सावित्रः'
वाज.सं. २४.३५, तै.सं .५.५.१८.१, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.९, का.सं. (अश्व.) ७.८.
'महानग्नी कृकवाकुम्'
अ. २०.१३६.१०, शा .श्रौ.सू. १२.२४.२.५.
(४) सवितुः कालम् असौवदति (यह सविता

का काल बतलाता है) । अतः कृकवाकु सावित्र कहलाया । इसका पूर्वपद 'कृक' शब्दानुकरण है और उत्तरपद वाकु वच् (बोलना) + उण् से बना है । वच् के अ की वृद्धि च् का कू । कृकं वक्ति (कृक जैसा शब्द बोलता है । अतः यह कृकवाकु है । अर्थ कुक्कुट मुर्गा।
आधुनिक अर्थ- ताम्रचूड़ कुक्कुट, चरणायुध, मयूर, छिपकिली ।

कृकाट - गौ के गले की पेटी
'प्रजापतिश्च परमेष्ठी च श्रृंगे शिरो
अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम्'
अ. ९.७.१

ककाटिका - गले की घंटी ।
'ककाटिकां प्रथमो यः ललाटम्'
अ. १०.२.८

कृच्छ्रेश्रित् - (१) संकटग्रस्त ।
'कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः'
ऋ. ६.७५.९, वाज.सं. २९.४६, तै.सं.४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३, १८६.१३, का.सं.(अश्व). ६.१.
(२) संकट में प्रजाओं द्वारा आश्रय लेने योग्य

कृणवन् - करिष्यन्ति (करेंगे) । कृ (करना) के लृट् प्र.पु. ब. व. का रूप। लृट् लङ् भाव । शप् आर्ष है ।

कृण्वन् - कृ + शतृ - कृण्वन् । अर्थ-करता हुआ ।
'गातुं कृण्वन् उषसो जनाय ।'
ऋ. ४.५१.१

कृण्वन्ति - कुर्वन्ति (करते हैं) ।

कृणवाम - करते हैं ।
'तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिम्'
ऋ. १०.१६५.१, अ. ६.२७.१, मा.श्रौ.सू. ९.१.५.
उप पाप से निवृत्ति पाने के लिए अर्चना करते हैं

कृणु - कृणुहि, कुरु । कर । कृ धातु के लोट् म.पु.ए.व. का रूप ।

कृणुते - कुरुते (करता है) कृ के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप ।
'साते जीवातुरुत तस्य विद्धि
मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं
स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ।'
ऋ. १०.२७.२४.

हे अन्तरात्मन् , तेरी वह आदित्यात्मिका देवता जीवन का हेतु है (ते सा जीवातुः) अतः उसके उपकारों को जान (तस्य विद्धि) । इस मृत्यु के साथ होने वाले संग्राम में (समर्ये) उसके ऐसे उपकार को मत भूल (एतादृक मा स्मापगूहः) क्योकि कौन कब कैसे पड़ेगा वही जानता है । इस आदित्य का गमन (अस्य पादुः) कभी विराम नहीं लेता या श्रम से मुक्त नहीं होता (निर्णिजः न मुच्यते) और यह आदित्य सदा जगत् को प्रकाशित करता है (स्वः आविःकुरुते) तथा अपनी रश्मियों से जल से (वुसम्) वही छिपाता है । (गूहते) ।

कृणोति - कृ (करना) के लट् प्र.पु.ए.व. में । अर्थ है-करता है ।
'त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति
इतीदं विश्वंभुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश ।'
ऋ. १०.१७.१, अ. ३.३१.५, १८.१.५३, नि. १२.११.
विश्वकर्मा (त्वष्टा) अपनी दुहिता सरण्यू का विवाह करते हैं (दुहित्रे बहतुं कृणोति) । इस कारण से (इति) यह समस्त भूतजात (विश्वं भुवनम्) विवाह देखने के निमित्त एकत्र होता है (समेति) । वह यम की भाविनी माता (यमस्य माता) विवाहित हो (पर्युह्यमाना) यम और यमी को उत्पन्न कर महान् आदित्य की भार्या अदृश्य हो गई (महः विवस्वतः जाया ननाश) तथा उत्तर कुरु जली गई ।
पौराणिक कथा - सरण्यू अपने सदृश एक स्त्री बनाकर विवस्वान् के समीप से पिता के घर भाग गई । पिता ने जब उसे अपने घर से पुनः पति के पास भेजा तब वह पति के यहां न जाकर बड़वा का रूप धारण कर उत्तरकरु देश में चली गई। विवस्वान् भी अश्व का रूप धारण कर खोजते खोजते बड़वा रूपिणी सरण्यू से जा मिले और दोनों के संभोग से जो रेत निकला उसे सरण्यू ने नाक से ही खींचा और जो पुत्र उत्पन्न हुए वे 'नासत्या' या अश्विना कहलाए।
आध्यात्मिक अर्थ - अन्धकारमय उषा का मध्यम भाग त्वष्टा है । उसने ज्योतिरूपिणी दुहिता का का विवाह आदित्य से किया । यह

ज्योति या समस्त विश्व अपने अपने कार्य में मग्न हो गया । मध्यम देवयम की माता वह ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी गई । प्रभात होते ही सूर्य की ज्योति सूर्य से छिटकर दूर भाग गई । आदित्य की जाया रात्रि, सूर्योदय होते ही अन्तर्हित हो जाती है ।

कृत – (१) जुआ खेले जाने वाला एक प्रकार का पाशा, (२) किया कर्म, (३) अधिकार ।
'प्रतिदीव्ने दधत आकृतानि ।'
ऋ. १०.३४.६
(४) चतुः सख्यायुक्तः अक्ष विसय अपः
'ये वै चत्वारः स्तोसाः कृतं तत्
अथ ये पञ्चकत्यिः सः'
तै.ब्रा. १.५.११
कृत के लाभ से द्यूत में विजय होती है । कृत नामक पाशा । एक से लेकर पांच तक के पाशे अय कहलाते हैं उनमें चार की कृत से जो पांच फांसे हैं वे कलि हैं ।
'चतुरः चित् ददमानात् विभीयादा निधातोः'
ऋ. १.४१.९, नि. ३.१६.
(५) क्रियाशक्ति ।
'अन्तर्हम्रं कृतं मम'
अ. ७.५०.२
(६) पुरुषार्थ –(७) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कर्म और कर्मफल (८) कर्म, कृत्य, ।
'प्रवाच्यन्तत् वृषणा कृतं वाम्'
ऋ. १.११७.८.
हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय ! तुम दोनों का वह कृत्य सचमुच प्रसनीय है ।
(९) पूर्व पुरुषों का उपार्जित धन ।
'कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने'
ऋ. १०.४३.५, अ. २०.१७.५, नि. ५.२२.
परधन हारी धूर्त या जुड़ी (श्वघ्नी) जैसे (न) पूर्व पुरुषों का अर्जित धन (कृतम्) द्यूत में (देवने) ढूंढ़ता है (विचिनोति) ।
(१०) विजय–जैसे जुड़ी जुआरी में विजय को देखता है ।

कृतद्विष्टा – द्वेष किए हुई स्त्री
'यथो कृतद्विष्टासः'
अ. ७.११३.१

कृतध्वज् – हाथ में ध्वजा या झण्डा लिए हुए ।
'यत्रानरः समयन्ते कृतध्वजः'
ऋ. ७.८३.२

कृतद्वसू – (द्वि.व.) कृतवसू–वे पति पत्नी जिन्होंने उत्तम धन, गृह , बल वीर्यादि प्राप्त किया हो ।
'वीतिहोत्रा कृतद्वसू'
ऋ. ८.३१.९, आप.मं.पा. १.११.११.

कृतव्यधनी – बाण आदि शस्त्र से मारने वाले को ताड़ने वाली शक्ति ।
'कृतव्यधनि विध्यतम्'
अ. ५.१४.९

कृतब्रह्मा – (१) जिसने बहुत अन्न, सम्पदा एवं धन का सम्पादन किया हो ।
'कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः'
ऋ. ६.२०.३
(२) जिसने वेदादि में परिश्रम किया हो, (३) धनादि में समृद्ध ।
'कृतब्रह्मा समर्यो भवति'
ऋ. ७.७०.६
'कृतब्रह्मा शूशुवत् रातहव्य इत्'
ऋ. २.२५.१, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.१५, तै.ब्रा. २.८.५.२.

कृतवीर्य – वीर्यवान् ।
'जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः'
अ. १७.१.२७

कृतागाः – कृतागस् जिसने आग से अर्थात् पाप से अपराध किया हो अपराधी ।
'कृतागसो देवपीयोरराधसः'
अ. १२.५.६०

कृत्रिम रोधस् – (१) भिन्न–भिन्न निमित्तों से उत्पन्न रुकावट (२) कृत्रिम रोक, (३) मर्यादा ।
'रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषाम्'
ऋ. २.१५.८

कृत्नु – (१) संसार का कर्त्ता –इन्द्र, परमेश्वर ।
'ज्येष्ठ राजं भरे कत्नुम्'
ऋ. ८.१६.३, अ. २०.४४.३.
(२) कृ +त्नु कृत्नु । अर्थ करने वाला ।
'सुरूपकृत्नमूतये'
ऋ. १.४.१
(३) पोरू पोरू काटने वाला (४) श्येनी, वाजपक्षिणी ।
'श्वघ्नीव कृत्नुः विजआमिनाना'

ऋ. १.९२.१०
पशुओं को मारने वाली भेड़िया के समान या बाजपक्षिणी जैसे इधर उधर उड़ने वाले पक्षियों को नष्ट करती है उसी प्रकार भय से उद्विग्न प्राणियों को काल धर्म से विनाश करती हुई उषा..
(४) कतरने वाला, नाश कारी ।
'ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्'
अ. २०.४४.३.

कृत्वः – कर्त्ता । सायण और तैत्तिरीय ब्राह्मण ने 'शश्वत्कृत्वः' को एक पद माना है ।
'शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः'
ऋ. ३.५४.१, ऐ.ब्रा. १.२८.६

कृत्वन् – ऋग्वेद के समय का एक देश

कृत्वरी – विनाश कारी विधि ।
'अरसाः सन्तु कृत्वरीः'
अ. ४.१८.१

कृत्व्यः – (१) समस्त कर्मों का कर्त्ता ।
'अग्ने वाजी न कृत्व्यः'
ऋ. ६.२.८
(२) कर्म करने वाला ।
'ऋभुर्न कृत्व्यं मदम्'
ऋ. १०.१४४.२
(३) कृत्वी का अर्थ है कर्म, कर्मसुसाधुः (कर्मों में साधु पुरुष ।
(४) कर्त्तव्य कर्म–
'यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनुद्यून्'
ऋ. १.१२१.७
जिस प्रकार सूर्य प्रतिदिन अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाशों से चमकता है, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुष ! आप भी अपने कर्त्तव्य कर्मों से दिनानुदिन चमकें (कृत्व्यान् अनु) ।
कर्त्तव्य के अर्थ में –
'त्व रथमेतशंकृत्व्ये धनेत्वम्'

कृत्य – षड्यन्त्र, साजिश, हिंसा कारिणी शक्ति, जोग टोना ।
'कृत्ये कृत्याकृतं पुनः'
अ. ५.१४.१०

कृत्या – (१) मन्त्र से होने वाला टोना । तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार कृत्या का स्वरूप बताना मुश्किल है । (२) क्रिया से उत्पन्न हुई पिशाची
'यः कृत्याकृन्मूलकृत् यातुधानाः'
अ. ४.२८.६
उपर्युक्त ऋचा का अर्थ करते हुए सायण ने लिखा है– क्रियया निर्वृत्तया पिशाच्या छिनत्ति इति कृत्याकृत् (३) मन्त्र और औषध से शत्रु को पीड़ा देने वाली कृत्या
'यो देवाः कृत्या कृत्वा
हराद् अविदुषो गृहम्'
अ. ४.१८.२
(४) कृत्या को जमीन में गाड़ा भी जाता है । (कृ निखननार्थ गच्छत्) (५) अभिचार कर्मों से उत्पादित पिशाची (अभिचार कर्मभिः उत्पादिताः पिशाच्य)
'शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः'
अ. १९.९.९.
कृत्या के चार भेद हैं–(१)आङ्गिरिसी, (२) आसुरी, (३) स्वयंकृता (४) अन्याभृता, अर्थात् अंगिरा ऋषि द्वारा प्रयुक्त ।
अंगिरा ऋषि का अंगिरस कल्पसूत्र भी है ।
(५) असुरों द्वारा की गई ।
(६) स्वयं प्रयोग करने पर भी भूल चूक से अपने ही पर उलट कर आ जाने वाली, (७) दूसरों से प्रयुक्त ।
'याः कृत्या आंङ्गिरिसीर्याः
कृत्या आसुरीः याः कृत्याः स्वयंकृताः
याउचान्योभिराभृताः ।'
अ. ८.५.९
(८) शत्रु से प्रयुक्त गुप्त हत्या का घातक प्रयोग ।
'अपकृत्यामपो रपः'
वाज.सं. ३५.११, श.ब्रा. १३.८.४.४.
(९) संहारकारी क्रिया, टोना ।
'याः कृत्या आङ्गिरिसीः'
ऋ. ८.५.९

कृत्याकृत् – कृत्या अर्थात् घातक प्रयोग या जादू टोना करने वाला ।
'कृत्याकृते दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम्'
ऋ. १०.१.२३.
'शतं कृत्याकृतश्चये'
अ. १९.३४.२

कृत्यादूषण – घातक गुप्त प्रयोगों का नाशक ।
'कृत्यादूषण एवायम्'

अ. १९.३४.४

कृत्यादूषणी – दुष्ट प्ररुषों के दुष्ट घातक अपचारों से उत्पन्न पीड़ाओं का नाश करने वाली ओषधि।
'कृत्यादूषणीश्चया'
अ. ८.७.१०

कृत्यादूषि – (१) कृत्या अर्थात् राक्षसी भावों की विनाशक सेनाओं का नाशक (२) वह यन्त्र या मणि जिससे किसी के किए जोग टोन का नाश हो।
'कृत्यादूषिरयं मणिः'
अ. २.४.६

कृत्यासक्तिः – (१) उचित पति-प्रेम रूप कार्य में स्त्री की प्रवृत्ति।
'कृत्यासक्तिर्व्यज्यते'
ऋ. १०.८५.२८, अ. १४.१.२६. आप.मं.पा. १.६.८.
(२) कृत्या + आसक्ति। कृति शक्ति रूप पानी का प्रेम।
'नीललोहितं भवति
कृत्या शक्तिर्व्यज्यते'
ऋ. १०.८५.२८, अ. १४.१.२६, आ.मं.पा. १.६.८.

कृत्रिम – मनुष्यों के द्वारा शिल्प साधनों से निर्मित्त।
'सहि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा'
ऋ. १.५५.६

कृत्वा – (कृत्वन्)। कर्म करना वाला।
'वृषुः श्येनाय कृत्वने'
ऋ. १०.१४४.३.

कृतिः – (१) काटने वाला तलवार (२) क्रिया कौशल, (३) कर्तव्य।
'हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे'
ऋ. १.१६८.३

कृत्ति – कृत् (काटना, छेदना, कर्तन cut) + क्तिन् = कृत्ति। अर्थ है (१) यश, (२) अन्न। यश द्वषी जनों के मर्मों को काटता है (यशो हि द्विषनां मर्माणि कृन्तति)। इसी प्रकार ठीक से उपयोग में नहीं लाया हुआ अन्न आयु क्षीण करता है (अन्नमपि असम्यक् उपयुक्त आयुः एठ कृन्तति) अंग्रेजी का corn शब्द कृत् धातु से ही बना है। (३) कन्या, (४) उपमार्थीय, (५) चर्म। कृत् धातु वेष्टन अर्थ में भी प्रयुक्त है।
यश के अर्थ में प्रयोग–
'तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं
राधो भागमिवेमहे।
महीव कृत्तिःशरणातइन्द्र
प्र ते सुम्नानो अश्नवन्'
ऋ. ८.९०.६, साम. २.७६२.
हे इन्द्र! अवश्य ही (नूनम्) हम उस बलवान् या प्रज्ञावान् या महाप्राण प्रकृष्ट चेतना वाले तुष्ट में (तम् त्वा उ प्रचेतसम् असुरम्) पैतृक भाग के सदृश धन याचते हैं (भागम् इव रुधः ईमहे) यश के समान (कृत्तिः इव) अन्तरिक्ष रूपी तेरा गृह महान् है (ते शरणा मही) तेरे सुख से (ते सुम्ना) हमें (नः व्याप्त हो (आश्ववम्)।
दुर्ग के अनुसार – मैं इस लोक तथा उस लोक में सुखों को प्राप्त करूं।
आधुनिक अर्थ – चर्म, मृग चर्म, भूर्जपत्र, भूर्जपत्र का वृक्ष (६) पशुओं की खाल।
'कृत्तीदूर्शानिबिभ्रति'
अ. ८.६.११.

कृत्तिका – कृत्तिका नक्षत्र।
'सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी च'
अ. १९.७.२

कृत्तिवासस् – (१) कृत्ति वप्सो यस्य (चिथड़ों या चमड़ों को पहनने वाला)। पहले संन्यासी चिछड़े या चर्म धारण करते थे। शिव का नाम भी चर्म धारण करने से कृत्तिवासः है।
(२) चर्म के समान आच्छादन वस्त्र धारण करने वाला
'पिनाकाहस्तः कृत्तिवासा अवततधन्वा'
मै.स. १.१०.४: १४४.१५, १.१०.२०: १६०.१६.
(३) कृत्ति (चर्म) + वस् + असुन् = कृत्तिवासस्।

कृत्वी – (१) कर्म। पुनः (२) करने के लिए।
'तानि भ्रातः अनु वः कृत्वी एमसि'
ऋ. १.१६१.३
उन नाना उत्तम कार्यों को करने के लिए आप प्रजाओं के लिए (वः) हम प्राप्त होते हैं (आ इमसि)

कृदर – (१) सकल पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला गुण, (२) सकल पदार्थों का विवेक करने वाला गुण (३) उदर की शक्ति,।
(४) कृत दरम्–कृदरम् (जिस में 'दर' या छिद्र

किया गया है। निधान स्थान-किसी पदार्थ को रखने का स्थान जिसमें छिद्र किया रहता है।
'समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनां
घृत मग्ने मधुमत् पिन्वमानः।
वाजी वहन वाजिनं जातवेदो
देवानां वक्षि प्रियमासधस्थम्'
वाज.सं. २९.१,तै.सं. ५.१.११.१, मै.सं. ३.१६.२, १८३.१२, का. सं. (अश्व). ६.२.
हे अग्निदेव, समिद्ध होकर (समिद्धः) बुद्धियों या देवताओं के निवास स्थान (मतीनां कृदरम्) मधुवत् या मधुर घृत को (मधुमत् घृतम्) देवताओं को पहुँचाता हुआ (अञ्जन्) तथा स्वयं पीता हुआ (पिन्वमानः) तू गतिवान् (वाजी) सभी जीवों में विद्यमान् या सभी प्राणियों का ज्ञाता (जातवेदः) हवनीय पदार्थों को देवताओं के निकट ले जाता हुआ (वहन्) देवताओं के समान स्थान वाले (देवानां सधस्थम्) प्रिय अश्व या अन्न को (प्रिय वाजिनम्) भी ले जा (आवक्षि)।

कृध्वायु - कृधु + आयु = कृध्वायु। अल्पायु।

कृधि - कुरु। कर।

कृधु - (१) स्वल्प।
'प्रतीत्येन कृधुनातृपासः'
ऋ. ४.५.१४
(२) छोटी भाग।
'कृधु स्थूलमुपातसत्'
अ. २०.१३६.१, वाज.सं. २३.२८, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.२.
(३) निकत्तमिव तत् भवति ह्रस्वत्वात् (छोटा होने से कटा सा)। कृती + कु = कृतु = कृधु। त का ध हो गया है। यह बड़े में से कटा हुआ होता है अतः 'कृधु' कहलाया। अर्थ है -ह्रस्व, लघु।

कृधुवर्णः - छोटे उपकरण वाला, अल्पशक्ति वाला
'मम स्वनात् कृधु कर्णः भयाते'
ऋ. १०.२७.५

कृधुकर्णी - कानों को खुला किये स्त्री।
'कृधुकर्णी च क्रोशतु'
अ. ११.९.७, १०.७

कृन्त् - काटना।
'या अकृन्तन् अवयन् याश्च तत्निरे'
ऋ. १४.१.४५

कृन्त - सूत कातना।
'ग्नास्त्वाकृन्तन्'
मै.सं. १.९.४, १३४.८, का.सं. ९.९, पंच.ब्रा. १.८.९, ला.श्रौ.सू. २.८.२३, आप.श्रौ.सू. १४.१२.४, मा.श्रौ.सू. ५.२.१४.१०, ११.१.१, नि. ३.२१.
हे वस्त्र, तुझे स्त्रियों ने सूत रूप में काता।

कृन्तत्र - (१) उच्छेद करने योग्य भयानक जंगल।
'धन्व च यत् कृन्तत्रं च
कतिस्वित् ता वियोजना।'
ऋ. १०.८६.२०, अ. २०.१२६.२०
(२) जल देने वाला कूप, (३) सुखदायी शरीर को छेदन भेदन करने वाला (४) छिन्नस्थान -सा. (५) करने की प्रेरणा।
'कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.
इन मेघों के (एषाम्) इन्द्र के द्वारा छिन्न स्थानों से (कृन्तत्र) मेघ के जल (उपरा) निकले (उदायन्)।
इन वायुओं की (एषाम्) प्रेरणा से (कृन्तत्रात्) अन्तरिक्ष से मेघ बरसते हैं (उपा उदायन्)।
(६) उत्कृत्त प्रदेश, (७) विकृत्त (छिन्न, कटा हुआ, छेदा हुआ)। कृत् (छेदन, कर्त्तन अर्थ में) + कत्रन् = कृन्तत्र (बाहुलक नियम से) (८) मेघों का छिन्न भाग, (९) अन्तरिक्ष-क्योंकि अन्तरिक्ष में ही मेघ छिन्न होता है। -(दया.)

कृप् - कृप् + क्विप् = कृप्। अर्थ (१) कृपा। कृप् कृपतेः वा कल्पतेःवा (कृप् शब्द कृप या कल्प धातु से बना है) कृपण्यति, कृपयति, अर्पयति (पूजा करता है,) (२) सामर्थ्य, (३) अर्चना करने वाला, (४) सामर्थ वाला।
'अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं
वसुं सूनं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्
यऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा
घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा
आजुह्वास्य सर्पिषः'
ऋ. १.१२७.१, अ. २०.६७.३, वाज.सं. १५.४७, का.सं. २६.११, ३९.१५
परुच्छेप कहता है-मैं होम निष्पादक अतिशय दानशील, सभी के निवासहेतु बल के पुत्र

(सहसः सूनुम्), प्राणियों के ज्ञाता, जात प्रज्ञ, जातबल (जातवेदसम्) तथा विप्र के सदृश जातविद्या या मेधावी अग्नि की स्तुति करता हूँ (मन्ये) जो देव शोभन यज्ञ वाले (स्वध्वरः) उत्कृष्ट हवि वहन करने की कल्पना से युक्त (उत्कृष्टया देवाच्या कृपा) चारों ओर से डाले जाने वाले सर्पणशील घृत के (आजुह्वानस्य सर्पिषः घृतस्य) विलेपन से दीप्त आज्य के गिरे हुए स्वल्प भाग को भी (विभ्रष्टिम् अनु) अपनी ज्वाला से खा लेना चाहते हैं (वष्टि) ।

स्वामी दयान्द का अर्थ – मैं यज्ञकर्त्ता, दाता, निवासक, साहसी वीर के पुत्र, प्रजा के प्रत्येक सुख दुःख के जानने वाले (जातवेदसम्) और ब्राह्मण के समान वेदज्ञ क्षत्रिय को (विप्रंन जातवेदसम्) अग्रणी अर्थात् राजा मानता हूँ (अग्निं मन्ये) । जो तेजस्वी राजा (यः देवः) देव जनों के रक्षार्थ लगे हुए कर्म या सामर्थ्य से (देवाच्या ऊर्ध्व या कृपा) राज का भली प्रकार पालन करने वाला है (स्वधरः) और जो भली प्रकार तपा कर स्वच्छ किये हुए आहूयमान घृत की दीप्ति से राज में तेजस्विता की कामना करते हैं (विभ्राष्टिम् अनुवष्टि) ।

(५) (क्रि.) समर्थ होगा To cope

'उतस्तामुर्मघवन् अक्रपिष्ट'

ऋ. ७.२०.९

(६) कृपालु ।

'शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपम् '

ऋ. ८.३.१२

(७) भोग करना ।

'मर्तासश्चिदुर्वशीरकृपन्'

अ. १८.३.२३

(८) सामर्थ्य के अर्थ में–

'हिरण्यपाणिरमिमी सुक्रतुः कृपा स्वः '

अ. ७.१४.२, साम. १.४६४, वाज.सं. ४.२५, तै.सं. १.२.६.१, मै.सं. १.३.१५, १४.६, का.सं. २.६. श.ब्रा. ३.३.२.१२ आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३, शां.श्रौ.सू. ५.९.७.

उन तेजस्वी हाथों वाले सुकर्मासविता या परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से द्युलोक का निर्माण किया या सायण के अनुसार जो अपने ही सामर्थ्य से आदित्य नामक है ।

कृप – कृप्+ अच् । शारीरिक श्रमवाला, श्रमी पुरुष शूद्र ।

'यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे'

ऋ. ८.४.२, अ. २०.१२०.२, साम. २.५८२.

कृपण्यति – बल या अन्न चाहता है ।

'यथा यथा कृपण्यति'

ऋ. ८.३९.४

कृपयन् – कृपायमाणः (कृपा करता हुआ) ।

कृपणा (स्त्री) शरीर में मन्दगति अथवा तुच्छ स्वरूप में विद्यमान ।

'त्वरणाः कृपणाश्चयाः'

अ. ११.८.२८

कृपनीड – महान् कृप अर्थात् कर्म सामर्थ्य और परानुग्रह या दया का परमआश्रय अग्नि ।

'यमासा कृपनीडम्'

ऋ. १०.२०.३

कृपमाण – (१) कल्पना करता हुआ ।

'अश्रूणि कृपमाणस्य'

अ. ५.१९.१३

(२) कृपा और अनुग्रह करने वाला, (३) समर्थ ।

'उतो कविं पुरुभुजा युवं ह
कृपमाणम् अवृणुतम् विचक्षे ।'

ऋ. १.११६.१४

आप दोनों विविध न्याय व्यवहारों को देखने के लिए (विचक्षे) अध्यक्ष पद पर प्रजा पर कृपा और अनुग्रह करने वाले और समर्थ दूरदर्शी विद्वान् प्रज्ञावान् पुरुष को नियुक्त करो ।

कृपीट – सामर्थ्य

'यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति'

ऋ. १०.२८.८

कृश – (१) तपस्या द्वारा शरीर को कृश करने वाला त्यक्तभोगी (२) निर्बल ।

'यथा संवर्ते अभदो यथा कृशे'

ऋ. ८.५४.२

(३) निर्धन

'यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य'

ऋ. २.१२.६, अ. २०.३४.६

कृशगुः – (१) दुबले बैलों वाला, (२) भूमि को कर्षण करने वाला, जोतने वाला, हलवाहा ।

'आशारैषी कृशगुरेत्वस्तम्'

अ. ४.१५.६

कृशन – अतिसूक्ष्म, आत्मा ।

'देवानामस्थि कृशनंबभूव'

अ. ४.१०.७

(२) घोड़ों का सफेद आभूषण

'अभिश्यावं न कृशनेभिरश्वम्'

ऋ. १०.६८.११, अ. २०.१६.११

(३) जलों को अति सूक्ष्म करने में समर्थ सूर्य की किरण ।

'अभीवृतं कृशनैः विश्वरूपम्'

ऋ. १.३५.४, मै.सं. ४.१६.६, २२३.१५, तै.ब्रा. २.८.६.१,

जलों को अति सूक्ष्म करने में समर्थ किरणों से व्याप्त, बड़े भारी गतिशील पिण्ड रूप में स्थित सूर्य या रथ में स्थित सूर्य है ।

(४) कृशों का उज्जीवक (५) शत्रुओं का कर्शन करने वाला, (६) शत्रु बल को नीति द्वारा तोड़ने वाला ।

'स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशान'

वाज.सं. ४.२७, तै.सं. १.२.७.१, श.ब्रा. ३.३.३.११

कृशानु – (१) अग्नि ।

'या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तु रसनामुरुष्यथः ।'

ऋ. १.१५५.२, नि. ११.८.

जो तुम दोनों इन्द्र और विष्णु यज्ञशील मनुष्य के लिए (मर्त्याय) यज्ञफल स्वरूप (प्रतिधीयमानम् इत्) भोजन या अन्न को (असनाम्) हवि पहुँचाने वाले (अस्तुः) अग्नि के द्वारा (कृशानोः) प्रस्तुत करते या देते हो (उरुष्यथः)

(२) शत्रुपक्ष को दुर्बल करने वाला सेनापति –(दया.)

'याभिःकृशानुम् असने दुवस्यथः'

ऋ. १.११२.२१

जिन रक्षा साधनों से आप दोनों अग्नि के समान तेजस्वी तथा शत्रुपक्ष को कृश, दर्बल करने वाले सेनापति की (कृशानुम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने के संग्राम आदि कार्य में (असने) परिचर्या करते हो (दुवस्यथः) ।

कृषस्व – खेती कर ।

'अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषस्वः'

ऋ. १०.३४.१३.

ऐ जुआरी, जुआ न खेल , कृषि ही कर ।

कृष्टपच्य – खेती से प्राप्त होने वाला अनाज ।

'कृष्टपच्याश्च मे अकृष्टपच्याश्च मे'

वाज.सं. १८.१४, तै.सं. ४.७.५.१, मै.सं. २.११.५, १४२.८, का.सं. १८.१०.

कृष्टयोजसा – (१) इन्द्र और वरुण का विशेषण 'कृष्टि' – शत्रु के कर्षण पीड़ा करने वाली सेनाओं से पराक्रम करने वाले इन्द्र और वरुण ।

'पुरोयोधा भवतं कृष्ट योजसा'

ऋ. ७.८२.९

कृष्टि – मनुष्य ।

'अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषु'

ऋ. २.२.१०

कृष्ण– (१) काला, (२) कर्षण करने योग्य दबाने योग्य दुष्ट जन, (३) कृषक, (४) आकर्षण करने योग्य प्रियशिष्य ।

'अन्तः कृष्णान् अरुषैः धमभिःगात्'

ऋ. ३.३१.२१

(५) कालाभेड़ ।

'यमाय कृष्णः'

वाज.सं. २४.३०, मै.सं. ३.१४.११, १७४.७.

कृष्णकर्ण – श्याम कर्ण अश्व ।

'नास्य श्वेतः कृष्णकर्णः'

अ. ५.१७.१५

कृष्णगर्भा – (१) काले अन्धकार को गर्भ में रखने वाली रात्रि, (२) कर्षण अर्थात् प्रजा पीड़न करने वाले शत्रु को अपने गर्भ में रखने वाली शत्रु सेना, (३) तामस भावों को अपनेभीतर रखने वाली दुश्चेष्टा ।

'यः कृष्णगर्भा निरहन् ऋजिश्वना'

ऋ. १.१०१.१, साम. १.३८०.

कृष्णग्रीवः – (१) कालीग्रीवा (गर्दन) वाला ।

'कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे पुरस्तात्'

वाज.सं. २४.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१०.

(२) गर्दन में काले रंग का चिह्न रखने वाला अग्नि नामक प्रधान अधिकारी ।

'आग्नेयः कृष्णग्रीवः'

वाज.सं. २९.५८,५९, तै.सं. ५.५.२२.१, का.सं. (अश्व). ८.१

'कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽज्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः'
वाज.सं. २४.४, मै.सं. ३.१३.५, १६९.१०.

कृष्णपविः – (१) काले मार्ग वाला – अग्नि (२) श्याम धारा वाले या शत्रु को काटने वाले शस्त्रास्त्र से युक्त ।
'कृष्णपविः ओषधीभिः ववक्षे'
ऋ. ७.८.२

कृष्टराधिः – (१) कृषि द्वारा बहुत अन्न धान्यादि से सम्पन्न पुरुष ।
'कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद'
अ. ८.१० (४) .१२

कृष्णजंहस् – (१) जिसमें कृष्ण हनन हो काला हनन हो –(दया.) ।
(२) खिंचाव तनाव के मार्ग में स्थित जच्चा
'तस्य पत्मन् दक्षुषः कृष्णजंहसः
शुचिजन्मना रज आ व्यध्वनः'
ऋ. १.१४१.७
और तब विपरीत मार्ग से आने वाले (वि. अध्वनः) माता को पीड़ा और संताप देने वाले (दक्षुषः) खिंचाव तनाव के मार्ग में स्थित (कृष्ण जंहसः) शुद्ध जन्म वाले (शुचिजन्मनः) उस जीवात्मा के मार्ग में (पत्मन्) रुधिर या राजस भाव भी आता है (रजः आ अस्थात्) ।

कृष्णम् – (१) सूर्य का आकर्षण करने वाला बल–आकर्षण शक्ति ।
'कृष्णमन्यत् हरितः संभरन्ति'
ऋ. १.११५.५, आ. २०.१२३.२, वाज.सं. ३३.३८, मै.सं. ४.१४.४, २२०.१०, तै.ब्रा. २.८.७.२.
(२) प्रजाओं का कर्षण पीड़न करने वाला अत्याचारी राजा ।
'इयानः कृष्णः दशभिः सहस्रैः'
ऋ. ८.९६.१३, अ. २०.१३७.७ का.सं. २८.४, तै.आ. १.६.३.
(३) काला ।
'अहश्च कृष्णमहरर्जुनञ्च'
ऋ. ६.९.१, ऐ.ब्रा. ५.१५.५, कौ.ब्रा. २३.८, नि. २.२१.
दिन काला भी है और उजला भी अथवा रात काली और दिन उजला होता है ।

कृष्णद्र – गौ का कण्ठ ।
'विश्वं वायुः स्वर्गोलोकः
कष्णद्रम् विधरणी निवेष्यः'
अ. ९.७.४

कृष्ण नियान – आकर्षण शील (२) सर्व भयदुःखों का विलेखन करने वाला ब्रह्म ।
'कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः'
ऋ. १.१६४.४७, अ. ६.२२.१, ९.१०.२२, १३.३.९, मै.सं. ४.१२.५, १९३.७, का.सं. ११९.१३, आश्व.शौ.सू. २.१३.७, नि. ७.२४.
(३) कृष्ण अन्तरिक्ष । कृष्णवर्ण ज्योतिश्चन्कं निवमेन गच्छति अत्र) ।
(४) दक्षिणायन गति ।
'धूमो रात्रिः नवा कृष्णषण्मासा दक्षिणायनम्'
(५) खींचने वाला एव नियमन में समर्थ,
(६) नीचे गिराने वाला पाप कर्म ।
(८) माध्यमिक, अन्तरिक्ष । ये रस हरने वाली तथा सुन्दर गति वाली सूर्य की रश्मियां (हरयः सुपर्णाः) सूर्य के दक्षिणायन पथ में अर्थात् माध्यमिक अन्तरिक्ष में (कृष्णं नियानम्) सभी लोकों से जलों को रखती हुई

कृष्णप्रुतौ – चित्ता कर्षण वृत्तिं प्राप्नुनवत्यौ –(दया.)
(१) सदा आकर्षण या प्रेम से पूर्ण माता पिता,
(२) द्यौ और पृथिवी रुपिणी माताएं ।
'कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षितौ'
ऋ. १.१४०.३
जिस प्रकार माता और पिता या द्यौ और पृथिवी उस बालक सूर्य के प्रति सदा आकार्षण या प्रेम से पूर्ण सदा रहा करते हैं और वे उसके साथ सदा रहा करते हैं (अस्य सक्षितौ) बालक और सूर्य के आकर्षणबल से कांप उठते हैं (वेविजे)
(३) आकर्षण बल से प्राप्त द्यौ और पृथिवी –माता पिता ।
(४) शत्रुदल को गिरा देने और प्रजा के आकर्षण करने के गुणों से व्याप्त राज वर्ग और प्रजावर्ग

कृष्णपिंगाक्ष – श्याम और पीले नेत्रों वाला ।
'राज्यै कृष्णं पिंगाक्षम्'
वाज.सं. ३०.२१, तै.ब्रा. ३.४.१.१७.

कृष्णयोनि – (१) काले अन्धकार का उत्पादक (२) नेत्र शक्ति का लोप करने वाली रात्रि, (३) मेघ (४) पाप युक्त कर्मों उत्पन्न करने वाला, (५) काले कर्म, अत्याचार पापादि को करने वाली प्रजा नाशक शत्रु सेना ।

'स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनीः'
ऋ. २.२०.७

कृष्णवर्तनि – (१) पापों का नाशक व्यवहार वाला, (२) चिन्ताकर्षक मार्ग वाला, (३) आकर्षकशील सूर्यादि लोकों को अपने अपने मार्गों से संचालन करने वाला, (४) मार्ग को काला कर देने वाला–अग्नि ।
'पावकं कृष्ण वर्तनिम् विहायसम्'
ऋ. ८.२३.१९

कृष्णःशकुनिः – (१) काला काक ।
मन को अपनी तरफ आकर्षित करने वाला प्रबल पाप ।
'इदं यत् कृष्णः शकुनिः'
अ. ७.६४.१,२.

कृष्णव्यथिः – (१) सब व्यथाकारी कण्टकों को काला करने वाला अग्नि (२) व्यथादायी शत्रुओं को नष्ट करने वाला । कृष्णा व्यथि ।
'कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम'
ऋ. २.४.७

कृष्णशकुनेः मुखम् – (१) काले तथा शक्तिशाली पाप का मुख अर्थात् प्रवर्त्तक (२) स्वप्न ।
'मातृष्टानामसि कृष्णशकुनेः मुखम्'
अ. १९.५७.३

कृष्णःश्वा – काला कुत्ता ।
'श्वाकृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसाम्'
वाज.सं. २४.४०,

कृष्णसीत – (१) रथ को खींचकर हल के समान भूमि पर रेखा डालने वाला अश्व, (२) हल चलाने वाले कृषक, (३) कर्षण या तपस्या द्वारा कर्मबन्धनों को अन्त कर देने वाला ।
'रघुद्रुवः कृष्णासीतस्य ऊजुवः'
ऋ. १.१४०.४

कृष्णा – काली फन्सी वाली गण्डमाल ।
'कृष्णैका रोहिणी द्वे'
अ. ६.८.३.२
(२) कृष्णवर्णा, अंधेरी, (३) काली रात ।
'आरैगु कृष्ण सदना न्यस्याः'
ऋ. १.११३.१, साम. २.११००. नि. २.२०.
इस उषा को काली रात ने स्थान दिए (४) कृष्ण विष्णु के अवतार का भी द्योतक हैं । कृश् (तनूकरण, छोटा करना) + नक् = कृष्ण । कृश् धातु का कृष् हो गया है । कृष् (आकर्षण करना) + नक् = कृष्ण । अपनी ओर सभी को आकृष्ट करने वाला, सभी जीवों को अपनी ओर खींच लेने वाला कृष्ण ।
'कृष्णः काके पिके वर्णे
विष्णौ व्यासेऽर्जुने कलौ ।
कृष्णा तु नील्यां द्रौपद्यां
पिप्पली द्राक्षयोरपि
कृष्णान्तु मरिचे लोहे-हेम'
(५) कुष्ट और पतित रोग का एक ओषधि विशेष, (६) काश्मर्य, (७) कृष्णा तुलसी (८) कृष्णानील पुनर्भवा (गधपूर्णा) (१०) द्राक्षा, (११) पिप्पली ।
कृष्ण तुलसी जन्तु, भूत, कयि आदि का नाशक है ।
नील पुननर्नवा हृद्रोग, प्रदर, पाण्डु, सोज, श्वास, वात और आम आदि का नाशक है । काल जीरा कफ शोथ नाशक हैं । पिप्पली रक्त शोधक है ।
(१२) कर्षण करने वाली पिंगला नाड़ी ।
'कृष्णासु रोहिणीसुचः'
ऋ. ८.९३.१३, आ.सं. २.१.
(१३) कृषि करने योग्य भूमि ।

कृष्णा इषिरा – (१) अपने ग्रह उपग्रहों को खींचने में समर्थ सूर्य के गतिमान धब्बे ।
'आखरे कृष्णा इषिरा अन्नर्तिषुः'
ऋ. १०.९४.५, अ. ६.४९.३, का.सं. ३५.१४

कृष्णाजिन – कृष्ण + अजिन ।
कृष्ण मृगछाला जिसका यज्ञ में प्रयोग होता है ।
'पात्राणीयमेव कृष्णाजिनम्'
अ. ९.६ (१) १७

कृष्णाञ्जिः – काली लंगोट वाला ।
'कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उषस्याः'
वाज.सं. २४.४, मै.सं. ३.१३.५, १६९.१०.

कृष्णात्वच् – (१) काला चमड़ा, (२) काले चमड़े वाला पुरुष, (३) शत्रु काटने वाला देह की त्वचा (४) शत्रु की रक्षा करने वाली सेना, पाप करने वाली निन्दनीय शत्रुजनों की रक्षा करने वाली सेना ।
'त्वचं कृष्णाम् अरन्धयत्'
ऋ. १.१३०.८

कृष्णाध्वा – (१) जिसका मार्ग काला हो–अग्नि (२) चित्ताकर्षक या शत्रु को काट गिरादेने वाले मार्ग पर चलने वाला ।
'कृष्णाध्वा तपूरण्वश्चिकेत'
ऋ. २.४.६

कृष्णायाः पुत्रः – (१) रात्रि का पुत्र दिन या सूर्य, (२) कृषि योग्य पृथ्वी का पुत्र, राजा, (३) सबको आकर्षण करने वाली परम शक्ति परमेश्वरी का पुत्र जीव ।
'कृष्णायाः पुत्रो अजुर्नो रात्र्यवत्सोऽजायत'
अ. १३.३.२६

कृष्णा रजांसि – प्रकाश रहित आकर्षण गुण वाले लोक ।
'कृष्ण रजांसि तविषीः दधानः'
ऋ. १.३५.४, मै.सं. ४.१४.६, २२३.१६, तै.ब्रा. २.८.६.१.
प्रकाश –रहित आकर्षण गुण वाले लोकों को और बड़ी भारी शक्ति को (तविषीम्) धारण करने वाला सूर्य ।

कृषि – खेती ।
'अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषण्व
वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः
तत्रगावः कितव तत्र जाया
तन्मे विचष्टे सविता यमर्यः'
ऋ. १०.३४.१३.
हे जुआरी ! जुआ न खेल, खेतीकर, खेती का धन प्रचुर समझ, उसमें मगन रह । उसमें गाएं मिलतीं तथा पतिव्रता स्त्री मिलती हैं ऐसा स्वामी सविता ने मुझ से कहा है ।

कृषि संशित – कृषि विषय में सुशिक्षित ।
'विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा कृषि संशितोऽन्नतेजाः
अ. १०.५.३४

कृष्टि – कृष् + क्तिन् । कृषक जन कृष्टय इति मनुष्य नाम । कर्मवन्तो भवन्ति विकृष्ट देहा वा (कृष्टि मनुष्य का नाम है । वह कर्मवान् या विकृष्ट शरीर वाला होता है) ।
कर्ष शब्द कृष् से बना है जो हल जोतने के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । कर्ष सामान्यतः कर्म का द्योतक समझा गया है । मनुष्य कर्मशील है । अतः 'कृष्टि' का रुढ़ि अर्थ मनुष्य है । यों कृषक का ही कृष्टि वाचक है ।
वि + कृष् + क्त = विकृष्ट । यह देह परि कण्डूयन आदि कर्मों से समर्थ है । ऐसे शरीर वाला कृष्टि है । कृप् + इ (मत्वर्थीय) = कृष्टि । अर्थ (१) शरीर वाला, (२) कर्मवाला, (३) मनुष्य, (४) कषजनं, ।
'मित्र कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे'
मित्र हम को सदा दयादृष्टि से देखते हैं
ऋ. ३.५९.१, तै.सं. ३.४.११.५, का.सं. २३.१२, ३५.१९, तै.ब्रा. ३.७.२.४, आप.श्रौ.सू. ९.२.६, मा.श्रौ.सू. ३.२.८, नि.१०.२२.
मित्र हमको सदा दयादृष्टि से देखते हैं ।
आचार्य दुर्ग का मत है कि मनुष्य अपने शरीर को इच्छानुकूल मोड़ सकता है और उसके शरीर को विकर्ष है । पशु आदि शरीर में यह विकर्षण शक्ति नहीं है (संसृष्टा देहाः अन्ये पशवो गवादयः, ते हि न काम कारतो अङ्गानि प्रसारयितुं शक्नुवन्ति स तेषां संकर्षः । मनुष्यस्तु कामतः प्रसारयन्ति अङ्गनि, स तेषां विकर्षो देहस्य) ।

कृष्टिहा – (१) मनुष्यों को मारने वाला (२) सब मनुष्यों तक पहुंचने वाला ।
'प्र कृष्टिहेव शूष'एति रोरुवत्'
ऋ. ९.७१.२

कृष्णिय – (१) चित्ताकर्षक, (२) दुःखों का विनाश करने में समर्थ पुरुष ।

कृष्णी – (१) कृष्ण वर्णा रात्रि, (२) हृदय को आकर्षित करने वाली मनोरमा स्त्री ।
'रिणक्ति कृष्णी रुरुषाय पन्थाम्'
ऋ. ७.७१.१

कृष्णे यत्रे – (१) प्रकाशमय और अन्धकारमय परस्पर संगत दिन रात्रि (२) एक दूसरे को परस्पर आकर्षित करने वाले एक दूसरे को आत्म समर्पण करने वाले स्त्री पुरुष ।
'अनुकृष्णे वसुधिती जिहाते
उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे'
ऋ. ३.३१. १७,

कृप्त – (१) कार्य करने में समर्थ होना
'कृप्तं च मे कृप्तिश्च मे'
वाज.सं. १८.११, तै.सं. ४.७.२.२, मै.सं.२.११.३, १४१.७, का.सं. १८.८.

कृप्ति – सामर्थ्य ।

केतः – ज्ञान, वेदज्ञान ।
'तदयं केतो हृदयं आ विचष्टे'
ऋ. १.२४.१२
वह वेदज्ञान हृदय को सब प्रकार से प्रकाशित करता है । पुनः
'अन्वस्य केतं इषितं सवित्रा'
ऋ. २.३८.५.

केतपू – (१) अज्ञान को पवित्र करने वाला
'दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः'
वाज.सं. ९.१,११.७, ३०.१, वाज.सं. (का.) १०.१.१, तै.सं. १.७.७.१, ४.१.१.२, मै.सं. १.११.१, १६१.७ का.सं. १३.१४.१५,११, श.ब्रा. ५.१.१.१६, ६.३.१.१९ साम.मं.ब्रा. १.१.१.
(२) अपने ज्ञान से सबको पवित्र करने वाला

केतमन्तः (केतमान्) – (१) ज्ञान कराने वाले प्रकाश से युक्त सूर्य की किरणें, (२) ज्ञान- साधनों से युक्त, (३) अज्ञानहारी जीव, (४) किरण रूप अश्व ।
'सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः'
अ. १३.१.२४

केतवेदाः (केतवेदस्) – वह पुरुष जिसने धन या ज्ञान प्राप्त किया हो ।
'अव त्मना भरते केतवेदा
'अव त्मना भरते फेनमुदन्'
ऋ. १.१०४.३

केतसाप् – (१) संकेत मात्र से संघ बनाने में कुशल, (२) संकेत पर चलने वाला ।
'शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः'
ऋ. ५.३८.३

केतु – कि (ज्ञान अर्थ में) + तुन् = केतु । अर्थ- (१) ज्ञापक , जिससे किसी पदार्थ का ज्ञान हो, (२) लक्षण (३) कर्म, (४) कर्त्ता, (५) रश्मि, (६) अश्व, (७) प्रज्ञापक, (८) अन्धकार, (९) सामर्थ्य ।
'एता उत्या उषसः केतुमक्रत
पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते'
ऋ. १.९२.१, साम. २.११०५, नि. १२.७.
जो उषाएं अन्तरिक्ष के पूर्वार्द्ध में सूर्य को व्यक्त करती हैं ।
(१०) प्रज्ञा (११) कर्म योग तथा ज्ञान योग- (दया.)
'महो अर्णः सरस्वती
प्रचेतयति केतुना ।
धियोविश्वाविराजती'
ऋ. १.३.१२, वाज.सं. २०.८६, नि. ११.२७.
माध्यमिका वाक् सरस्वती अपनी प्रज्ञा से महान् जलराशि को बरसाती है तथा संसार के समस्त यज्ञ-सम्बन्धी या कर्म सम्बन्धी ज्ञानों को उत्पन्न करती है । वेदवाणी कर्मयोग तथा ज्ञानयोग से महान् शब्द सागर को बतलाती है और सम्पूर्ण सत्यविद्याओं को प्रकाशित करती है ।
(१२) प्रज्ञापक कर्म । ज्यायसमस्य यतुनस्य केतुना अत्यन्त प्रबुद्ध गमनशील या प्रयत्नशील सूर्य के प्रज्ञापक कर्म से ।
लक्षण या चित्त के अर्थ में –
'नवो नवो भवति जयमानो
अह्नां केतुः उषसामेत्यग्रम्
भागं देवेभ्यविदधात्यायन्
प्रचन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ।'
ऋ. १०.८५.१९, अ. ७.८१.२, १४.१.२४, तै.सं. २.४.१४.१, मै.सं. ४.१२.२, १८१.६, का.सं. १०.१२, नि. ११.६.
शुक्ल पक्ष में पश्चिम दिशा में उदय लेता हुआ चन्द्रमा प्रतिदिन प्रतिपदा से पूर्णिमा तक एकएक कला बढ़ता हुआ सूर्य के अस्त होने के बाद मास मास (सायण के अनुसार प्रतिदिन) मानों नया जन्म ग्रहण करता है । वह कृष्ण पक्ष के अन्त में एक कला मात्र अवशिष्ट हो प्रातः काल में उदय लेता हुआ मानों दिनों का लक्षण या दिन होने का चिह्न हो (अह्नां केतुः) प्रभातों के आगे ही आता है (उषसाम् अग्रम् एति) । कुछ विद्वानों ने 'अह्नाम् केतुः' का अर्थ दिन का केतु सूर्य किया है । दिन का प्रतीक सूर्य प्रभात के बाद आता है यह भीअर्थ है । यह चन्द्रमा प्रतिदिन ह्रास वृद्धि द्वारा पक्षान्त तक पहुंचते पहुँचते देवताओं के लिए हवि का भाग बनता है । वह चन्द्रमा यज्ञ कर्त्ताओं की आयु बढ़ाता है ।
रश्मि या अश्व के अर्थ में –
'उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः
दृशे विश्वाय सूर्यम्'
ऋ. १.५०.१, अ. १३.२.१६, २०.४७.१३, साम.

१.३१, वाज.सं. ७.४१, ८.४१, ३३.३१, तै.सं. १.२.८.२, ४.४३.१, मै.सं. १.३.३७, ४३.६, श.ब्रा. ४.३.४.९,६.२.२, नि. १२.१५.
रश्मियां या अश्व (केतवः) सभी प्राणियों के दर्शन के निमित्त (विश्वाय दृशे) जिस सूर्य को उदित करते हैं (सूर्यम् उद् वहन्ति) उस जात प्रज्ञया जातधान देवता को (जात वेदसम्) हम प्रणाम करते हैं ।
(१३) ३० विभागों का शासक ३१ वां राजा
'क्रतुरेकत्रिंशः'
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.५, मै.सं. २.८.४, १०९.६, का.सं. १७.४,२०.१३, श.ब्रा. ८.४.१.२१

केतुमत् दुन्दुभिः – (१) झण्डे के सहित नक्कारा , (२) ज्ञानवान् गुरु ।
'केतुमत् दुन्दुभिर्वाविदीति'
ऋ. ६.४७.३१, अ. ६.१२६.३, वाज.सं. २९.५७, तै.सं. ४.६.६.७, मै.सं. ३.१६.३, १८७.१२, का.सं. (अश्व). ६.१.

केतुमती – (१) सबके ज्ञापक सूर्य को साथ लिए हुई सायं प्रातः रुपी उषाएं ।
'केतुमती अजरे भूरि रेतसा'
अ. ८.९.१२, मै.सं. २.१३.१०, १६०.४, का.सं. ३९.१०.

केनि – (१) सुख मय आनन्द रस । (२) ईख । cane का पूर्णरूप केनि ही है ।

केनियः – (१) ज्ञानी पुरुष (२) सुखमय आत्मा के परम रस का पान कराने वाला, (३) मेधावी केनिय इति मेधावि नाम । केनि शब्द यो रूपपदयोः पततेः पाते र्वाङ । के आत्मनि सुख मये पर ब्रह्मणि निपतन्ति गच्छन्ति पान्ति वा रसम् इत केनियाः ।'
केनि + पत् (अथवा पा) + ड = केनिय । सुखमय आनन्द रस का पान करने वाला । अंग्रेजी का cane शब्द इसी केनि का बिगड़ा रूप है ।
'असोयथा केनिपानाम् इनो वृधे'
ऋ. १०.४४.४, अ. २०.९४.४.

केपयः – ब. व. । एक वचन में केपिः । अर्थ – (१) पापी ।
'ईर्मैव ते न्यविशन्त केपयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.
केपायी (केपयः) इसी लोक में (ईर्मैव) अधोगति प्राप्त कर नीच योनियों में जाते हैं ।

केपिः – (१) कुत्सित आचरण वाला ।
(२) कुत्सित आचरणों में लिप्त ।

केवट – (१) कूप, (२) गढ़ा ।
'माकीं सं शारि केवटे'
ऋ. ६.५४.७

केवर्त – (१) जल के भीतर रहने वाला (२) मल्लाह, (३) जल की आजीविका करने वाला ।
'अवाराय के वर्तम्'
वाज.सं. ३०.१६
के + वृत् + अच् = केवर्त

केवल – (१) असाधारण ऐश्वर्य ।
'त्वं विश्वा दधिषे केवलानि•
ऋ. १०.५४.५
(२) के आनन्दे वलनं स्वरूपावगतिः यस्य स केवलः (आनन्दमात्र प्रतीत होने वाला ब्रह्म केवल है ।
'पतिं मे केवलं कृधि'
ऋ. १०.१४५.२, अ. ३.१८.२.
(३) एक मात्र सुखस्वरूप ।
'अस्माकमस्तु केवलः'
ऋ. १.७.१०, अ. २०.३९.१, ७०.१६ साम. २.९७०., तै.सं. १.६. १२.१, ३.१.११.१ मै.सं. ४.११.४: १७०.१०, ४.१३.१०: २१३.४, का.सं. ८.१७, तै.ब्रा. २.४.३.२.

केवलाघः – (१) पूर्णतः पापी ।
'केवलाघो भवति केवलादी'
ऋ. १०.११७.६, तै.ब्रा. २.८.८.३, नि. ७.३.
अकेले खाने वाला पूर्णपापी है

केवलादी – (१) अकेले भोजन करने वाला ।

केवली – एक मात्र प्रेमिका ।
'मृदुर्निमन्युः केवली'
अ. ३.२५.४.

केवली विट् – अनन्य साधारण प्रजा ।
'यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत्'
अ. ७.९४.१, तै.सं. ३.२.८.६, का.सं. ३५.७.

केनिका – (१) सुख में बांधने वाली, (२) प्रकृति
'अजागार केविका'
अ. २०.१२९.१७

केश – (१) क्लेश , (२) केश–बाल ।
'केशान् खादन्तआसते'
अ. ५.१९.३

केशदृंहणी – केशों को दृढ़ करने वाली ।
'उतस्थ केशदृंहणीः'
अ. ६.२१.३

केशव – (१) लम्बीकेश वाला, (२) मायावी ।
'गर्भान् खादन्ति केशवाः'
अ. ८.६.२३

केशवर्धनी – केशों को बढ़ाने वाली ओषधि ।
'अथोह केशवर्धनीः'
अ. ६.२१. ३,
'दुहित्रे केशवर्धनीम्'
अ. ६.१३७.१

केशवन्ता – (१) केशयुक्त, किरणयुक्त, सूर्यचन्द्र (२) वायुमेघ ।
'अधि यस्तस्थौ केशवन्ता'
ऋ. १०.१०५.५

केश्य – केश का, केश + यत् ।
'आपस्याः केश्यं मलम्'
अ. १४.२.६८

केशिन् – केश + इनि (प्रशंसा में) = केशिन् । केश का अर्थ रश्मि है । अतः केशिन् का अर्थ (१) रश्मिवान् आदित्य हुआ । (२) काश् (दीप्ति अर्थ में) + घञ् = काश, काश + इन् = काशिन् = केशिन् । अर्थ–स्वयं दीप्त,
(३) प्रकृष्टाः केशाः अस्य (इसके केश प्रकृष्ट हैं– अग्नि) (४) वायु, (५) आदित्य के १२ प्रकारों में एक रश्मियुक्त आदित्य ।
'केश्यग्नि केशीविषं
केशी बिभर्ति रोदसी
केसी विश्व स्वर्दृशे
केशीदं ज्योति रुच्यते ।'
ऋ. १०.१३६.१, नि. १२.२६.
केशी अग्नि को हवियों से पोषता है । या वर्षा के जल से ओषधियों का उत्पादन कर आहुति द्वारा अग्नि का पोषण करता है (केशी अग्नि बिभर्ति) क्योंकि हवन कालविशेष में ही किया जाता है और सूर्य ही काल का स्रष्टा है। केशी ही ग्रीष्म काल में रश्मियों द्वारा खींचे जल को सुरक्षित रख वर्षा काल में बरसता है (केशी विषम्) केशी ही द्यौ और पृथ्वी को (रोदसी) या उनके निवासी प्राणियों को धारण करता है । यह आदित्य केशी सब कुछ देखता है । (स्वः केशी विश्वं दृशे) और यही केशी अर्थात् सूर्य ज्योति कहा जाता है ।

केशिनः – एक वचन में केशिन् । अर्थ है (१) केश वाले देवता, अग्नि, वायु, आदित्य ।
'त्रयः केशिनः ऋतुथा विचक्षते'
ऋ. १.१६४.४४, अ. ९.१०.२६, नि. १२.२७.
तीन केश वाले देवता–अग्नि, वायु और आदित्य, ऋतु के अनुसार लोक पर अनुग्रह करते हैं (विचक्षते) ।

केशिना हरी – (द्वि.व.) (१) केश वाले घोड़े, (२) प्राण और उदान, (३) सजीव निर्जीव योगमार्ग ।
'इन्द्रमित केशिना हरी'
ऋ. ८.१४.१२, २०.२९.२

केशी – (१) लम्बे बालों, वाला, (२) शरीर में बहुत केशों वाला (३) बालों के तुल्य रश्मियों का धारक सूर्य ।
'यः कृष्णं केश्यसुरः'
अ. ८.६.५

केसरप्रबन्धा– (स्त्री), मोक्षाभिलाषिणी चितिशक्ति
'ये केसर प्राबन्धायाः'
अ. ५.१८.११

क्षेत्रम् – (न) क्षि + त्रन् = क्षेत्रं । अर्थ है – (१) खेत । 'क्षि' बसन्त अर्थ में आया है । क्षेत्र का आश्रय ले धातु तो लोग बसते हैं (तदाश्रयेण हि ग्रामे क्षियन्ति बसन्ति कुटुम्बिनः) (२) शरीर जिसमें आत्मा का निवास है (३) प्रकृति ।
'क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि'
ऋ. ४.५७.१, तै.सं. १.१.१४.१, मै.सं. ४.११.१, १०६.३, का.सं. ४.१५, नि. १०.१५.
हम जैसे मित्र के साथ संयुक्त जय प्राप्त करते हैं, वैसे क्षेत्रपति के साहाय्य से जय प्राप्त करें ।

क्षेत्रजुष् – (१) खेत का जोतना, (२) खेत में अन्न उपजाना, (३) रणा क्षेत्रों का विजय, (४) भूमि का हितजनक ।
'क्षेत्रजेषे मघवन् श्वित्र्यंगाम्'
ऋ. १.३३.१५
जिस प्रकार खेत को जोतने के लिए (क्षेत्रजेषे)

किसान पृथ्वी के हितकारी बैल को (श्वित्र्यं गाम्) खेत में चलाता है और सूर्य खेतों में अन्न उपजाने के लिए भूमि हितकारी किरणों को फेंकता है उसी प्रकार तू रणक्षेत्रों के विजय के लिए भूमि के हितचिन्तक प्रबन्ध और शासन में समर्थ नर पुंगव को भेज ।

क्षेत्रवित् – (१) क्षेत्र + विद् + क्विप् । क्षेत्र को जानने वाला, (२) कृषि विद्या का ज्ञाता, (३) देह या प्रकृति का ज्ञाता ।
'अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं ह्यप्राट्'
ऋ. १०.३२.७.

क्षेत्रवित्तरः – क्षेत्रवित् + तर = (१) देह रूप निवास स्थान को प्राप्त करने वाला, (२) प्रकृति तत्व को भली प्रकार जानने वाला ।
'क्षेत्रवित्तरो मनुष्यो वि वोमदे'
ऋ. १०.२५.८

क्षेत्रस्यपतिः – (१) क्षेत्रपति, खेती करने वाला । (२) आत्मा, (३) पुरुष, (४) निवास करने योग्य गृह, बीजवपन करने योग्य क्षेत्र या गृहपत्नी का स्वामी ।
'क्षेत्रस्य पतिना वयम्'
ऋ. ४.५७.१, तै.सं. १.१.१४.१, मै.सं. ४.११.१.१६०.३, का.सं. ४.१५, आश्व.श्रौ.सू. ९.११.१४, नि. १०.१५.

क्षेषत् – दीर्घ जीवन प्राप्त करता हुआ ।
'अग्ने स क्षेषत् ऋतपा ऋतेजाः'
ऋ. ६.३.१, मै.सं. ४.४.१५, २४०.३

क्षेष्यम् – सुख से निवास करने की इच्छा करता हुआ ।
'प्रियंधुः क्षेष्यन्तो न मित्रम्'
ऋ. २.४.३ अ.

क्षेत्रिय – (१) वर्तमान देह में रखने वाला आत्मा ।
'वि क्षेत्रियस्य मुच्यताम्'
अ. २.८.१; ३.७.४
(२) क्षेत्र या देह में उत्पन्न होने वाला, (३) माता पिता से प्राप्त होने वाल क्षय आदि रोग ।
'क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या'
अ. २.१०.१

क्षेत्रियनाशिनीवीरुत् – (१) देहस्थ आत्मा के देह बन्धन का नाश करने वाली, सब विरुद्धभावों की विनाशिका चितिशक्ति या ब्रह्म विद्या रूप ब्रह्मवल्ली ।
'वीरुत् क्षेत्रियनाशनी'
अ. २.८.२
(२) क्षेत्र में उत्पन्न अन्न को नष्ट करने वाली घास ।

क्षेप्नु – धनुष चलाने वाला धनुर्धारी ।
'गौरो न क्षेप्नो रविजे ज्यायाः'
ऋ. १०.५१.६

क्षेम – (१) प्राप्त वस्तु की सुरक्षा ।
'योगं प्रपद्ये क्षेमं च'
अ. १९.८.२
(२) क्षेम, ।
(३) कल्याण (४) प्रजा रक्षण, सामर्थ्य
'क्षेयस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपते'
ऋ. ८.३७.५
(५) रक्षण कार्य करने योग्य धन और जीवन
'तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वतत्राम्'
ऋ. १.१००.७
ऐसे वीर पुरुष को ही पृथिवी निवासी प्रजाजन (क्षितयः) अपने रक्षण कार्य करने योग्य धन और जीवन का कार्य करने योग्य धन और जीवन का (क्षेमस्य) पालक तथा रक्षक नियुक्त करते हैं (त्राम् कृण्वत) ।
कल्याण अर्थ में–
'दाधार क्षेमम् ओको न रण्वः'
ऋ. १.६६.३
जो अग्रणी नायक घर के समान सुखदायी होकर प्रजा कल्याण करता है ।

क्षेमकामः – कल्याण कामना वाला
'क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते'
ऋ. १०.९४.१२

क्षेमयन् – रक्षा करने और सुखशान्ति देने वाला सूर्य ।
'ऋतस्य त्वासदसि क्षेमयन्तम्'
ऋ. ३.७.२

क्षेम्य – (१) प्रजाओं का क्षेम करने में कुशल ।
'नमो याम्याय च क्षेम्याय च'
वाज.सं. १६.३३, तै.सं. ४.५.६,१, मै.सं. २.९.६, १२५.५, का.सं . १७.१४.
(२) सबका कुशल मंगल करने वाला ।
'क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः'

अ. १२.२.४९

क्षेम्याधू – रक्षण कारी और धारण करने में समर्थ आश्रय

'यमर्धं ते मघवन् क्षेम्याधूः'

ऋ. १०.२८.५

क्षेत्रसाति – (१) खेतों का न्यायोचित विभाग, (२) रणक्षेत्र की प्राप्ति ।

'क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम्'

ऋ. ७.१९.३, अ. २०.३७.३

(३) क्षेत्रों की प्राप्ति ।

क्षेत्रसाधस् – क्षेत्र + साध् (साधना दमन करना) + असुन् = क्षेत्र साधस् अर्थ है – (१) जो खेत को साधे या ठीक करे बैल, अनड्वान् (२) वेद में यह शब्द अग्नि का भी पर्यायवाची है . जैसे– दमूना क्षेत्र साधाः

दमूना अग्नि का नाम है जो दम धातु से बना है । लोक में भी दमुनस् या दम्नस् अग्निवाचक है, (३) शरीर को साधन सम्पन्न करने वाला अग्रणी–परमेश्वर ।

'अग्नि वः पूर्व्यं गिरा
देवमीडे वसूनाम्
सपर्यन्तःपुरुप्रियम्
मित्रं न क्षेत्रसाधसम्'

ऋ. ८.३१.१४, तै.सं. १.८.२२.३, मै.सं. २.१३.७:१५६.१०,

हे मित्र, वरुण और अर्यमा ! आपकी सेवा करते हम सनातन पितरों सर्वप्रिय मित्र की तरह शरीर को साधना सम्पन्न बनाने वाले अग्रणी परमेश्वर को पूजते हैं ।

(४) देह पर वश करने में कुशल (५) युद्ध क्षेत्र या क्षेत्र के साधना उत्पन्न करने वाला वीर या कृषक ।

'देवत्रा क्षेत्रसाधसः'

ऋ. ३.८.७

कैरात – करैत सर्प, काला नाग, कीरा ।

'कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्रो'

अ. ५.१३.५

कैरातिका – किरात वर्ग की कुमारिका नामक सर्प की एक जड़ी ।

'कैरातिका कुमारिका'

अ. १०.४.१४

क्षैत्रजित्य – (१) भूमि विजय करना (२) देह या बन्धन जीतना

'वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः'

वाज.सं. ३३.६०, तै.ब्रा. २.४.६.८.

क्षैत्रपत्य – (१) क्षेत्रपतियों किसानों का कर्म, (२) खेतों, भूमियों, अन्नों जीवों के कर्म

'मन्धातारं क्षैत्रपत्येषु आवतम्'

ऋ. १.११२.१३

ज्ञान को धारण करने वाले मेधावी को और किसानों के कर्मों को प्राप्त करते हो ।

क्षैतवत् – (१) पृथिवी, (२) पार्थिव

'त्वंहि क्षैतवत् यशो अग्ने
मित्रो न पत्यसे'

ऋ. ६.२.१, साम. १.८४,

कोक – (१) भेड़या । (२) उल्लू, (३) उल्लू या भेड़िया के स्वभाव का छली और निर्दयी ।

'पलालानुपलालौ शर्कुं कोकम्
मलिम्लुचम् पलीजकम्'

अ. ८.६.२

(४) भेड़या के स्वभाव का कीट ।

'गृध्रः कोकश्च ते हताः'

अ. ५.२३.४

कोकयातु – (१) उलूक या वृक के समान प्रजा को कष्ट देने वाला ।

'जहि श्वयातुम् उत कोकयातुम्'

ऋ. ७.१०४.२२, अ. ८.४.२२.

(२) भेड़िए के समान चाल चलने वाला, (३) पीछे से आक्रमण करने वाला ।

कोकुवा – जिह्वा (जीभ) । कोकूय माना वर्णान् उदति (वर्णों का उच्चारण करते समय जीभ वर्णों को चेष्टा विशेष से तालु करने से प्रेरित करती है अतः इसका नाम कोकुवा हुआ) ।

कोकूय और नुद् धातुओं के योग से काकुद शब्द बना है । कु धातु का अर्थ शब्द करना है । इससे यङ् प्रत्यय कर, उ का उवङ् कर कोकुव बना । कोकुव + टाप् = कोकुवा (कोकूयते पुनः पुनः शब्द करोति बार–बार शब्द करती है ।

कोकूयति – कु (शब्द करना) से यङ् प्रत्यय का लट् के प्रथम पुरुष एक वचन का रूप । अर्थ है– बार–बार शब्द करता है ।

क्नोपयति – स्नेहयति (स्निग्ध करता है) । इसके

विपरीत न क्नोपयति का अर्थ है-विरुक्षीकरोति (विरुक्ष करता है, भस्म कर देता है)
अक्नोपन अग्नि का नाम है । यह स्थौलाष्ठीवि ऋषि का मत है । क्नुप् धातु स्नेहन अर्थ में है ।

कोशः - कुष् (निष्कर्षण अर्थात् निकालना) + घञ् = कोश । अर्थ (१) जो निकाला जाय, अन्तर्गत पदार्थ का बाहर निकाला जाना (२) कूप में निबद्ध एकपत्थर का आवरण, (३) चर्मकोशष (४) द्रव्यकोश भण्डार (५) खड्ग रखने का एक पदार्थ-म्यान ।
(६) अक्षयकोश, (७) ज्ञान का भण्डार परमप्रभु ।
'यस्मात् कोशात् उदभराम वेदम्'
अ. १९.७२.१, कौ.सू. १३९.२६.
(८) मेघ, (९) उपदेश करने वाला शब्द मय और वेद मय ज्ञान कोश -परमेश्वर ।
'कोशन सिक्तम् अवतं न वंसगः'
ऋ. १.१३०.२
(१०) जलगर्भित मेघ ।
'दिवः कोशमचुच्यवुः'
ऋ. ५.५३.६, तै.सं. २.४.८.१, मै.सं. २.४.७:४४.१८, का.सं. ११.९
'वृष्णः कोशः पवते मध्वऊर्मिः'
ऋ. २.१६.५
आधुनिक अर्थ - (१) तरल पदार्थ रखने का एक पात्र विशेष, (२) कटोरा, (३) बक्सा, कटोरा रखने का एक पात्र, (४) बक्स में बनाया गया खींचने के लिए एक पदार्थ- drawer (५) खड्ग रखने का म्यान (६) आवरण, (७) भण्डार, खजाना (८)द्रव्य, (९) स्वर्ण या रजत् (१०) शब्द कोश, (११) फूल की कली, (१२) फल की गुठली, (१३) रेशम के कीड़े का घर जिससे रेशम निकलता है (१४) गर्भाशय (१५) अण्डा, (१६) अण्डकोश, (१७) पुरुष लिंग, (१८) वर्तुल पदार्थ, गेंद (१९) दर्शन शास्त्र में वर्णित अन्नमय कोश आदि ।

कोशकारी - कोशसञ्चय करने वाली स्त्री या नीति ।
'निर्ऋत्यै कोशकारीम्'
वाज.सं. ३०.१४, तै.ब्रा. ३.४.१.१०

कोश्य - (१) कोश में रखने योग्य शस्त्र, (२) ऐश्वर्य
'वसिष्ठहनुःशिङ्गीनि कोश्याभ्याम्'
वाज.सं. ३९.८

क्रोड - (१) गोद, (२) पेट का अगला भाग, (३) नाभिस्थान ।
'इन्द्रस्य क्रोडः'
वाज.सं. २५.८, वाज.सं. (का.) २७.११, तै.सं. ५.७.१६.१, मै.सं. ३.१५.७, १७९.११, का.सं. (अश्व). १३.६.
'क्रोड आसीजामिशंसस्य'
अ. ९.४.१५

क्रोश - सैन्यबल और जनसमूह को निमन्त्रण देकर बुलाना ।
'क्रोशाय तूणवध्मम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

क्रोशानि - क्रुश् (शब्द करना) के लट् प्र.पु. ए . व. का रूप । शब्द करता है पुकारता है ।

क्लोमन् - (न) (१) कलेजे का खण्ड
'वल्मीकान् क्लोमभिः'
वाज.सं. २५.८, तै.सं. ५.७.१६.१, मै.सं. ३.१५.७, १७९.१२, का.सं. (अश्व). १३.६.
'उदरात् ते क्लोम्नः'
अ. ९.८.१२

क्लोमा (१) कण्ठनाड़ी, (२) दुष्ट प्ररुषों का नाश ।
'यकृत्क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्'
वाज.सं. १९.८५, मै.सं. ३.११.९, १५३.१२, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.३.

क्लोश - (१) क्रोश, (२) भय (३) पक्षियों का कुलाव, (४) आह्वान् (५) जलकार ।
'यदि क्लोशमनुष्वणि'
ऋ. ६.४६.१४

क्रोष्टा - (१) दूर तक बुलाने वाला पुरुष (२) श्रृगाल सियार ।
'क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गोरमृगः'
वाज.सं. २४.३२, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.३

क्षोण - (१) देह में निवास करने वाला आत्मा, (२) गुरु के अधीन रहने वाला अन्तेवासी ब्रह्मचारी ।
(३) क्षि (वसना) + ल्युट् = क्षयण = क्षोण (य का उ आर्ष है) । अर्थ है वासस्थान ।
'महः क्षोणस्य अश्विना कण्वाय'
ऋ. १.११७.८, नि. ६.६.

हे अश्विनो कुमारो ! तुम दोनों ने दृष्टि क्षीण होने के कारण एक ही स्थान पर रहने वाले कण्व तेज और प्रकाश दिया -सा. ।
हे राजा तथा राज पुरुषो ! उत्तम निवास प्रापक मेधावी विद्वान् को तुम लक्ष्मी दो - दया. ।
(४) निवास प्रापक मेधावी विद्वान् -दया. ।
(५) रहने वाला ।

क्षोणि - (१) प्राणी । क्षि (बसना) धातु से सम्पन्न (२) नदी , (३) पृथिवी जिसमें जल रहता है ।
'यं क्षेणी रनुचक्रदे'
ऋ. ८.३.१०, अ. २०.९.४, ४९.७.

क्षोणी - (द्वि.व.) (१) अश्विद्वय का विशेषण । नदी आदि या पृथ्वी , जिसमें जल रहता है, (२) सूर्य और पृथिवी ।
'अपः क्षोणी सचते माहिना वाम्'
ऋ. १.१८०.५
(३) पृथिवी ।
'क्षोणीरिव प्रति नोहर्य तद्वचः'
ऋ. १.५७.४, अ. २०.१५.४, साम. १.३७३.
(४) उत्तम वाणी, (५) उत्तम कर्म ।
'सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृंक्ते'
ऋ. १०.९५.९
(६) पृथ्वी निवासी जन ।
'कथा न क्षोणी भियसा समारत'
ऋ. १.५४.१
भय के मारे त्रस्त पृथिवी निवासी जन (भियसा क्षोणी) क्यों न एक संग मिलकर तेरी शरण में आवें (समारत) । (७) आकाश और पृथिवी, (८) राजा और प्रजा ।
'क्षोणी शिशुं न मातरा'
ऋ. ८.९९.६, अ. २०.१०५.२, साम. २.९८,८, वाज.सं. ३३.६७

क्षणोत्र - शाण जिससे हथियार तेज किया जाता है ।
'क्षणोत्रेणेव स्वधितिं संशिशीतम्'
ऋ. २.३९.७

क्षोद् - (१) जल, (२) जल का निरन्तर बहने वाला शान्तिदायक प्रतिरोधी बाधक कारण ।
'अपो न क्षोदो अवृणीतमेषे'
ऋ. १.१८०.४

क्षोदस् - (१) प्रवाह ।
'या भी रसां क्षोद् सोद्नः पिपिन्वथुः'
ऋ. १.११२.१२
(२) सर्जन शक्ति का अक्षय भण्डार ।
'सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते'
ऋ. १.६५.६
परमेश्वर सिन्ध के समान सर्जन शक्ति का अक्षय भण्डार है । उस प्रभु को कौन पूरा जान सकता है ।

कौरम - कुरुष भवः साधुः वा कौरवः । कुर्वन्ति इति कुरवः । कौ पृथिव्या रमत इतिवा । कुरून् युद्ध कर्तृन् माति मन्यते वा यःसः कौरुमः । कुरु युद्ध कर्त्ता सैनिक कुरुओं में उत्पन्न या साधु कौरव हैं । जो करते है वे कुरु हैं । अथवा कु (पृथ्वी) में जो रमण करता है वह कुरु है । अथवा करुओं युद्ध कर्त्ताओं को तो काटता या मारता है वह कौरुम् है ।
अर्थ है - (१) युद्ध कर्त्ता सैनिक (१) कौ + रम + अच् = कौरम् । पृत्वी पर रमण करने वाला (३) पृथ्वी पर युद्ध क्रीड़ा करने वाला
'षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे
अ. २०.१२७.१, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१०, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१. १.

कौरयाण - (१) कृतयान - कुरयाण-कौरयाण । कृतम् मानम् येन (जिसने आक्रमण किया है,) । कृत का कुर आदेश पृषोदरादिवत् हुआ है । कुरयाण + अण= कौरयाण, (कुरयाण के अर्थ में ही अण् प्रत्यय) । कृ धातु से कौर बना है यह भाष्यकार कानिर्णय है । (२) कौरयाण से ही कोरान बना है । बहुत से गांवों के नाम में भी यह शब्द प्रयुक्त है । जैसे-कोरान सरैयां । (आक्रमण कारी सेना विश्राम स्थान पड़ाव) । आक्रमण कारी सेना (३) दुर्ग ने कृतयान का अर्थ संस्कृत मान लिया है (४) स्वामी दयानन्द ने कृतयान् का अर्थ सत्व को गति देने वाला किया है ।
'यं मेदुरिन्द्रो मरुतः
पाकस्थामा कौरयाणः
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठम्
उपेव दिविधावमानम् ।'
ऋ. ८.३.२१.
मेधातिथि कहते हैं-इन्द्र और मरुतों ने जो दान मुझे दिया वैसा ही हमेशा शत्रुओं पर आक्रमण

करने वाले पाकस्थान पर आक्रमण करने वाले पाकस्थामा नामक राजा ने दिया (इन्द्रःमरुतः मं मे दु तत् कौरयाणः पाकस्थामा) वह दान सभी धनों में स्वंय अत्यन्त शोभायमान (विश्वेषां त्मनाशोभिष्ठम्) आकाश में नित्य धावने वाले सूर्य के समान हैं (दिवि उपधावया नम् इव) अन्य अर्थ - महाबली (पाकस्थामा) सबको गति देना वाला (कौरयाणः) और सबके जीवनाधार वायु का स्वामी परमेश्वर (मरुतः इन्द्रः) जिस अग्नि, सूर्य, वृष्टि आदि पदार्थ-समूह को मुझे देने वाला है (यं मे दुः) उस प्रभु ने मुझे सबके मध्य में स्वंय प्रकाश मान (विश्वेषां त्मना शोभिष्टम्) तथा द्युलोक में (दिवि) दौड़ने वाले (धावमानम्) सूर्य को प्रदान किया है । (५) क्रियावान्, (६) सब पदार्थों में व्यापक सबको चलाने वाला, (७) कर्त्ता जीवों (कौर) का प्राप्तव्य (याण) परमेश्वर ।

'पाकस्थामा कौरयाणः'

ऋ. ८.३.२१

कौरव्य - कर्मकुशल पुरुषों में श्रेष्ठ ।

'कुलायं कृण्वन् कौरव्यः'

अ. २०.१२७,८, शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.२.

कौलाल - कुलाल अर्थात् घड़ा बनाने वाले कुम्भकार का अनुकरण ।

'तपसे कौलालम्'

वाज.सं. ३०.७

कौलीक - बया नामक पक्षी ।

'त्वष्टे कौलीकम्'

वाज.सं. २४.२४, मै.सं. ३.१४.५, १७३.७.

कौशिक - (१) सब पदार्थों का यथार्थ उपदेश करने वाला परमेश्वर या गुरु, (२) पञ्च कोशों में विराजमान जीव ।

'आतू न इन्द्र कौशिक
मन्दासान् सुतं पिब ।'

ऋ. १.१०.११

हे इन्द्र ! सर्वान्दकारक हे समस्त पदार्थों का यथार्थ उपदेश करने वाला परमेश्वर या गुरु, तू प्रयत्न से उत्पन्न किए ज्ञान रस का औषधि रस के समान पान कर श्रवण कर, अथवा हे पञ्च कोशों में विराज मान जीव (कौशिक) तू प्रकाश युक्त हो ब्रह्म रस का पान कर ।

(३) कुशिक का पुत्र, विश्वामित्र

कौशीतकि आरण्यक - ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक ।

कौशीतकि ब्राह्मण - ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक

ख

ख - (न) खन् + उ = ख । खन्यते अवदीर्यते (जो खनाजाय या अंवदीर्ण हो जाय) । अर्थ है (१) इन्द्रिय, (२) आकाश, (३) जल निकालने का स्थान, (४) बिल ।

'अदर्द रुत्सम् असृजो विखानि'

ऋ. ५.३२.१, साम. १.३१५, नि. १०.९

हे इन्द्र ! तूने मेघ को बार बार विदीर्ण कर उसमें जल निकालने का स्थान बनाया ।

(५) खुदी हुई नहर, जलमार्ग ।

'वज्रेण खानि अतृणत् नदीनाम्'

ऋ. २.१५.३, तै.सं. २.३.१४.५.

आधु० अर्थ-(१)आकाश (२) इन्द्रिय (३) स्वर्ग (४) नगर (५) क्षेत्र (६) अनुस्वार (७) बिन्दु (८) शून्य (९) छिद्र (१०) व्रण (११)आनन्द (१२) कहानी (१३) कर्म (१४) ज्ञान, (१५) ब्रह्मन् ।

खच्छः - ख + छद् + उ = खच्छद = खच्छ (दवा लोप) खम् आकाशम् छादयति, (आकाश को आच्छादित करता है अर्थात् जिसमें आकाश हो) । खच्छद से खच्छ और खच्छ से कच्छ हुआ है । अर्थ है-(१) कटाह, (२) मुख सम्पुट कच्छ के अर्थ के लिए देखिए कच्छ । कम् उदकम् आच्छादयति इति कच्छ ।

खज - ख + जन् + उ = खज । अर्थ (१) संग्राम, (२) ख अर्थात् इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान, (३) आकाशस्थ ब्राह्माण्ड ।

खजकृत् - (१) नाना संग्रामों को करने वाला इन्द्र परमेश्वर ।

'स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा'

ऋ. ६.१८.२, का.सं. ८.१७.

(२) संग्राम करने में कुशल ।

'युध्मो अनर्वा खजकृत समद्वा'

ऋ. ७.२०.३

(३) ख + ज + कृत् । इन्द्रियों के बीच प्रकट होने वाला, (४) प्राण शक्तियों को प्रकट करने

वाला, (५) ख अर्थात् आकाश में परमेश्वर उत्पन्न जगत् का रचयिता परमेश्वर (६) संग्राम करने वाला राजा ।
'अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर'
ऋ. ८.१.७, साम. १.२७१

खजङ्करः – (१) शत्रुओं का नाश करने वाला, (२) इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञानों का कर्त्ता आत्मा, (३) आकाशस्थ ब्रह्माण्डों का स्रष्टा परमेश्वर ।
'कर्मन् कर्मन् शतमूर्तिः खजंकरः'
ऋ. १.१०२.६
हे इन्द्र या परमेश्वर या राजा ! तू कर्म कर्म में सैकड़ो ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य और पराक्रमों वाला, शत्रुओं का संग्राम करने वाला है या इन्द्रियों से उत्पन्न ज्ञान का कर्त्ता या आकाशस्थ ब्राह्माण्डों का स्रष्टा है ।

खड्ग – (१) गैंडा नामक पशु (२) तलवार ।
'खड्गो वैश्वदेवः'
वाज.सं. २४.४०, वाज.सं. (का). २६.४४, मै.सं. ३.१४.२१, १७७. ४.

खडूर – दूर आकाश ।
'खडूरेऽधिचङ्क्रमाम्'
अ. ११.९.१६

खण्ड – खड् (भेदन अर्थ में) + ड = खण्ड (जो भेदन करता है अलग करता है) । आङ् + खड् + अलच् = आखण्डल (जो मेघों को खण्डित करता है–इन्द्र) ।
'आखण्डल प्र हूयसे'
ऋ. ८.१७.१२, अ. २०.५.६, साम. २.७६, नि. ३.१०.
आधुनिक अर्थ– टूट, दरार, खण्ड, भाग, हिस्सा टुकड़ा, अध्याय, समूह, टुकड़ी, खाँड (गुड़), गृह का एक भाग जिसमें बैल वगैरह रहते है, नष्ट भ्रष्ट गृह ।

खण्वखा – (स्त्री) (१) एक प्रकार की मण्डूक की जाति, (२) इड़ा नाड़ी (३) कण्वम् आत्मानं खनत्ति इति कण्वखाः । छान्दसः खकारः । अर्थ– आत्मा को खोद लेने वाली, (४) खण्वे छिद्रे खजाति गच्छति सा खण्वखा ब्रह्मरन्ध्रगामिनी ।
'खण्वखाइ इ खैमखाइ इ मध्ये तदुरि'
अ. ४.१५.१५

खदिर – (१) खैर नाम का वृक्ष ।
'अश्वत्थः खदिरा दधि'
अ. ३. ६.१
(२) शत्रुहिंसक सेना ।
'अभिव्ययस्व खदिरस्य सारम्'
ऋ. ३.५३.१९
(३) सदा स्थिरता से विद्यमान ।
(४) नित्य ।
'अश्वत्थः खदिरो धवः'
अ. २०.१३१.१४
(५) शत्रु पर प्रहार करने वाला वीर ।
'खादामून खदिरा जिरम्'
अ. ८.८.३
(६) खैर के अर्थ में–
"अश्वत्थात् खदिरात् धवात्'
अ. ५.५.५

खनः – (१) शरीर के रस धातुओं को खन डालने वाला रोग ।
'म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः
अ. १६.१.३

खनिः –सेंध खोदने वाला ।
'म्रोकं खनिं तनूदूषिम्'
अ. १६.१.७

खनित्रिम – (१) खोदकर कूप से निकाला जल, (१) खोदने से उत्पन्न होने वाला जल ।
'शंनः खनित्रिमा आपः'
अ. १.६.४
(३) खान आदि की रक्षक प्रज, (४) कृषि से या कूप आदि खोद कर जीने वाला ।
'खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः'
ऋ. ७.४९.२

खनित्रिमा – (स्त्री) (१) भूमि में मांद आदि बनाकर रहने वाली साहिल आदि जन्तु ।
'याः काश्चेमाः खनित्रिमाः'
अ. ५.१३.९

खनित्रिमा आपः – (ब.व.) खोदकर निकाले हुए जल ।
'शंते खनित्रिमा आपः
अ. १९.२.२.

खर – ख + र । खं सुखं राति इति खर । सुखप्रद प्रभु ।

'ऋभू नपात् खरमज्रा खरजुः
ऋ. १०.१०६.७

खरजु – तीव्र गति से व्यापने वाला वायु ।

खर्गला – उल्लुनी, मादा उल्लू ।
'प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तम्'
ऋ. ७.१०४.१७, अ. ८.४.१७,

खर्विका – छोटे छोटे रूप वाली शस्त्र शक्ति
'खर्विकां सर्ववासिनीम्'
अ. ११.९.१६ .

खल – (१) खल् (भ्रष्ट होना) + घ = खल । भ्रंशन्ति योद्धारः यत्र (जहां पर योद्धा भ्रष्ट होते हैं) । (२) स्खल् (हिंसा अर्थ में) + घ = खल । हिंस्यन्ते हि तत्र परस्परेण (वहां एक दूसरे से मारा जाता है) ।(३) खलिहान जिसमें कृषक धान्य आदि की दौनी करते हैं (चूर्ण्यमानानि धान्यानि भ्रश्यन्ति) । खलिहान में धान्य चूर्ण हो कर फैल जाता है व्याप्त होता है (विप्र कीर्णैः धान्यैः व्याप्तः भवति) ।
आधुनिक अर्थ – खलिहान (खल धान्य), पृथ्वी, मिट्टी, स्थान, धूलि की ढेर, तेल का जमाव, दुष्टजन, औषध आदि कूटने के लिए एक पात्र विशेष ।

खलज – खल अर्थात् दुष्ट जनों से उत्पन्न ।
'खलजाः शकधूमजाः'
अ. ८.६.१५

खलतिणक्ष – संचलनार्थस्य खलते स्खलतेरिति औणादिको निपातः स्खवल सञ्चलति इति खलतिः उपचारात् स्खलनविज्ञः ।
'स्खलनं ग्रहगतिभ्रंशोव ' – (दया.)
अर्थ (१) जो स्खलन करता है, चलता है, (२) स्खलनविज्ञ नक्षत्रों में ग्रहों का संचलन जानने वाला, (३) स्खलन ग्रहगति का भ्रष्ट होगा
'दिवे खलतिम्'
वाज.सं. ३०.२१, तै.ब्रा. ३.४.१.१७.

खल्य – खलिहान में धान्य आदि को स्वच्छ करने में कुशल ।
'नम उर्वर्याय च खल्याय च'
वाज.सं. १६.३३, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६, १२५.६, का.सं . १७.१४.

खल्व – चना ।
'मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे'
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२, मै.सं. २.११.४, १४२.४, का.सं. १८.९.
'दृषदा खल्वाँ इव'
अ. २.३१.१, ५.२३.८.

खलु – (१) प्रतिषेधार्थक अव्यय, जैसे खलु कृत्वा (नहीं करना चाहिए) । खलु कृतम् (नहीं किया) (२) पाद पूरक अव्यय जैसे एवं खलु तद् ब्रभूव (वह बात इस प्रकार हुई) (३) निश्चयार्थक जैसे अहं खलु गमिष्यामि (मैं जरूर जाऊंगा) ।
आधुनिक अर्थ – (१) निश्चय, सचमुच, अवश्य, (२) प्रार्थना एवं अनुनय विनय में प्रयुक्त (३) विचिकित्सा, (४) प्रतिषेधक अर्थ में (५) तर्क वितर्क में (६) विषाद या वैराग्य सूचक, (७) वाक्यालङ्कार में वाक्य की सुन्दरता बढ़ाने के लिए ।

खा – (१) नदी, (२) खुदी हुई वापी, (३) तड़ाग ।
'ऋध्याम ते वरुणे खामृतस्य'
ऋ. २.२८.५, मै.सं. ४.१४.९, २२८.१३.
खन् (खोदना) + ड = ख, ख + टाप् = खा ।

खादयः – (ब.व.) ए.व. में खादि । पैर में पहनने के लिए जूता जैसा पदार्थ ।
'अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयः'
ऋ. ५.५४.११
'असेष्वा वः प्रपथेषु खादय'
ऋ. १.१६६.९

खादिः – खाद (खाना) + कि = खादि, (१) खाने का पदार्थ, खाद्य भोजन (२) हस्त त्राण, (३) काटने वाली तलवार, (४) भूख ।
'हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च संदधे'
ऋ. १.१६८.३

खादिहस्तः – जिस के हाथों में वज्र तलवार आदि हो ।
'त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तम्'
ऋ. ५.५८.२

खादी (खादिन्) – (१) खाने वाला, (२) सशस्त्र सेनादल का स्वामी ।
'द्यावो न स्तृभिः चितयन्त खादिनः'
ऋ. २.३४.२
(३) शस्त्रधारी ।
'आयं हस्तेन खादिनम्
शिशुं जातं न बिभ्रति'

ऋ. ६.१६.४०, तै.सं. ३.५.११.४, मै.सं. ४.१०.३, १४८.७, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. १.१६.१५, कौ.ब्रा. ८.१, आश्व.श्रौ.सू. २.१६.७, शां.श्रौ.सू. ३.१३.१७.

खादो अर्णाः -(१) खाने पीने योग्य अन्त वाली नदी, (२) भक्षण योग्य अन्न जल से समृद्ध उपदेष्टा ।
'धन्वर्णसो नद्यः खादो अर्णाः'
ऋ. ५.४५.२.

खालत्य - (न) गंजापन ।
'जराखालत्यं पालित्यम्'
अ. ११.८.१९

खिद्र - (न) (१) दैन्य -दया., (२) दीन प्रजा ।
'खिद्रं बिभर्षि पृथिवि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.१, का.सं. १०.१२, आप. मं. पा. २.१८.९, नि. ११.३७.
(३) खिद् + र = खिद्र । छेदने वाला ।
'बडित्था पर्वतानाम्
खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।'
ऋ. ५.८४.१,
हे पृथिवि, अर्थात् विद्युत् । तू मेघों को छेदने वाला बल रखती है (पर्वतानां खिद्रम्) -सा.
हे विद्युत । सचमुच (वट्) तू मेघों को छेदने वाली शक्ति खिद्रम्) रखती है । -(दया.)

खिद्वान् - शत्रुओं को खेदजनक ।
'कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः'
ऋ. ६.२२.४, अ. २०.३६.४

खिल्य - (१) अंश (२) शत्रु आदि से न टूटने वाला
'अभिन्ने खिल्ये निदधाति देवयुम्'
ऋ. ९.२८.२, अ. ४.२१.२. तै.ब्रा. २.८.८.११.

खिल - बाड़ा, बयान, गौओं के रहने का स्थान ।
'एता एना व्याकरं खिलेगाविष्ठिता इव'
अ. ७.११५.४

खिल्या - विहार योग्य भूमि ।
'उतखिल्या उर्वराणां भवन्ति'
ऋ. १०.१४२.३

खील - कील ।
'षष्टिश्च खीला अविचाचलाये'
अ. १०.८.४

खुद - प्रसन्न और सुखी करना ।
'चोदयत खुदत वाजसात ये'
ऋ. १०.१०१.१२, अ. २०.१३७.२.

खृगल - मोटे खाल वाला अथवा कठोर गले वाला पशु ।
'पिशङ्गे सूत्रे खृगलम्'
अ. ३.९.३

खृगला - (द्वि.व.) खृगल का द्विवचन (१) खोदे हुए को गलाने वाला खृगल है । -(दया.)
(२) कन्धों पर लगे कवच ।
'खृगलेविम्रसः पातमस्मान्'
ऋ. २.३९.४

खेणस् - ऐश्वर्य से युक्त ।
'यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य'
ऋ. १.१६२.२, वाज.सं. २५.२५, तै.सं. ४.६.८.१, १८१.९ का.सं. (अश्व). ६.४.

खेदा - (१) व्यापार वाली दीप्ति, (२) रज्जुसदृश प्रेरणा जिससे आत्मा इस अन्नमय कोष के चलाता है ।
'खेदया त्रिवृता दिवः'
ऋ. ८.७२.८

खेल - (१) खेल, क्रीड़ा (२) भोग विलास की क्रीड़ा करने वाला ।
'चरित्रंवेरिवाच्छेदि पर्णम्
आजा खेलस्य परितकम्यायाम्'
ऋ. १.११६.१५.

खैमुखा- (१) मेढ़क की एक जाति (२) पिंगला नाड़ी (२) खै स्थैर्ये खदने (भ्वादिः) । हिंसायाञ्च इति शब्द कलप्द्रुमः ततः मन् प्रत्ययः । खैमं स्थैर्यं खनाति स्थिरीकरोति इति खैमुखा-पिंगला
'खण्वखा इ खैमखा इ मध्ये तदुरि'
ऋ. ४.१५.१५
खै (स्थैर्य खनन अर्थ में) + मन् = खैम (स्थैर्य)
खैम + खन् + ड + टाप् = खैमुखा

खोदन - (न.) सुख, ऐश्वर्य ।
'महतः साधु खोदनम्'
अ. २०.१३६.१२,१४,१५

ग

गण- (१) गण् + थ = मण । जो बहुत होने के कारण गिना जाता है, वह गण है । सहि गण्यते

बहुसंयोगात् , यह शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है । आज भी इसका प्रयोग इसी अर्थ में हो रहा है । वेदों में इस का प्रयोग अनेक स्थानों में हुआ है । जैसे-

'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे'

ऋ. २.२३ .१

यहां गणपति, गणेश का वाचक है जो देवताओं के स्वामी या मुखिया समझे जाते हैं ।

(२) गणों में पढे गए खलिल शान्ति सूक्त आदि ।

'गणेभ्यः स्वाहा'

अ. १९.२२.१६

(३) गणनां योग्य प्रमुख (४) प्राण गण ।

'आदीं हंसो यथा गणम्'

ऋ. ९.३२.३, साम. २.१२०.

गणक - हिसाब मे चतुर ।

'ग्रामण्यं गणकम् अभिक्रोशकं तान्महसे'

वाज.सं. ३०.२०

गणंगणम् - प्रत्येक गण या कटक में, ।

'व्रातं व्रातं गणं-गणं सुशस्तिभिः'

ऋ. ३.२६.६, ५.५३.११.

गणपतिः - (१) समस्त गणों, जनों, वर्गों या इन्द्रियगणों का पालक स्वामी इन्द्र (२) गणेश ।

'निषुसीद गणपते गणेषु'

ऋ. १०.११२.९

(३) गणों का स्वामी, (४) मुखिया (५) गणनायोग्य प्रमुखों में सबसे प्रमुख ।

गणश्रि- समूह रूप में आश्रित, अग्नि ज्वालाओं का विशेषण ।

'सोमं पिबमन्दसानो गणश्रिभिः'

ऋ. ५.६०.८, नि. ८.२.

हे आनन्दित करने वाला, सर्वजन हितकारक वैश्वानर अग्नि, समूह रूप में आश्रित ज्वालाओं से (गणश्रिभिः) सोमरस का पान कर (सोमंपिब)

गणश्रीः - (१) गणनीय, दर्शनीय शोभा से युक्त अग्नि, (२) राजा, (३) प्रभु ।

'तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः'

ऋ. ८.२३.४

गण्या - (१) गणना करने योग्य, पूज्य (२) गण अर्थात् सैन्य दलों या जनों की हितकारिणी ।

'इडा येषां गण्या माहिना गीः'

ऋ. ३.७.५

गत - गम् + क्त = गत । अर्थ (१) मृत, (२) चला गया ।

'मा गतानामादीधीथाः'

अ. ८.१.८.

गत्नु - गम् + कत्नु = गत्नु ।

अर्थ - (१) जुए के पाशों की चाल (२) जुए से प्राप्त हटने वाला अर्थ लाभ, (३) गन्तव्य ।

'अक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः'

अ. ६.११८.१

गतासु - गतं + आसु । मृत ।

'दण्डं हस्तात् आददानो गतासोः'

अ. १८.२.५९

गध्य - (१) ग्रहण करने योग्य पदार्थ

'ऋजा वाजं न गध्यं युयूषन्'

ऋ. ४.१६.११, नि. ५.१५.

(२) सभी प्रकार चाहने योग्य ऐश्वर्य

'अवीर्वाज्य गाध्यस्य सातौ'

ऋ. ६.१०.६

(३) ग्रह् + यत् = गध्य (ग्रह् का गध् आदेश), ग्रहणीय, ग्रहण करने योग्य। यह शब्द सोम का पर्याय है । गृह्यमाण सिश्री भूतहो सोम भक्षयितव्य होता है ।

गध्यं, गृहणीय, स्वीकरणीय, खाने लायक के अर्थ में है । ऐसा पदार्थ जो खाने योग्य हो जाए गध्य है ।

'यासि कुत्सेन सरथमवस्युः
तोदो वातस्य हर्योरीशानः
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषत्
कविर्यदहन् पार्याय भूषात्'

ऋ. ४.१६.११

हे इन्द्र ! कुत्स की रक्षा करने का इच्छुक ! (अवस्युः) तथा कुत्स के शत्रुओं का हिंसक (तोदः) बलशाली अश्वों का स्वामी (हर्य ईशानः) तू कथंससनामक राजर्षि के पुत्र राजर्षि कुत्स के साथ एक पथ पर आरुढ़ हो (कुत्सेन सरथम्) वायु की गति से (वातस्य) ऋजु अर्थात् सुन्दर या सीधे राजपथ से ऋतुगामी घोड़ों को ग्रहणार्ह सोमरस को (गध्यम्) अन्न की तरह (वाजं न) सेवनेच्छुक (युयूषन्) जाता है (यासि) । वह अन्तर्दशन प्राज्ञ कुत्स भी (कविः)

जिसी दिन (यत् अहन्) आपत्ति को निवारने या शत्रुओं से पार करने की या रक्षा करने की (पर्याय) इच्छा करता है। उसी दिन शत्रुओं को अतिक्रमण करता है (भूषात्)। या हे इन्द्र, क्रान्तदर्शी जिस दिन शत्रुओं का पराजय करना चाहता है, कर डालता है।

अन्य अर्थ – हे राजन् दूरदर्शी शासक (तोदः) और वायु समान अश्वों का स्वामी (वातस्य हर्योः ईशानः), जो तू (यत्) ग्राह्य बल की तरह (गध्यं वाजं न) सत्याचरण की प्राप्ति की इच्छा रखते हुए (ऋज्रा युयूषन्) तथा आत्म संरक्षण चाहते हुए (अवस्युः) वेदज्ञ ब्राह्मण के साथ (कुत्सेन) एक रथ पर आरूढ हो (सरथम्) जाता है (यासि) वह तू प्रतिदिन (अहन्) जाता है (यासि) वह तू प्रतिदिन (अहन्) दुःख सागर से पार होने के लिए (पार्याय) सामर्थ्यवान् होता है (भूषन्)।

गध्यति – मिश्रयति, (मिलाता है)।

गध् – आज भी गध् धातु मिलाना अर्थ में प्रयुक्त होता है। गध् धातु मिश्रीकरण अर्थ में आता है।

गधित – मिश्रीकृत, मिलाया हुआ। गध् + क्त = गधित।

गधिता – गध् (मिश्रीकरण) + क्त + टाप् = गधिता (इट् का आगम्)। अर्थ है– मिश्रीकृता। पाणिनि के मत से ग्रह् + क्त से गध् होता है, जिसका अर्थ है– गृहीत।

गन्तम् – प्राप्त करते हो। गम् के लोट् म. पु. द्वि.व. का रूप।

'अच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू'

ऋ. १.१५१.७.

गन्तोः – गुजरता हुआ, चलता हुआ, बीतता हुआ।

'मा नोमध्या रीरिषतायुर्गन्तोः'

ऋ. १.८९.९, वाज.सं. २५.२२, मै.सं. ४.१४.२, २१७.१४, का.सं. ३५.१, गो.ब्रा. १.४.१७, श.ब्रा. २.३.३.६, आप.श्रौ.सू. १४.१६.१, आप. मं. पा. २.४.३, हि.गृ.सू. १.४.१३.

गन्ध – गन्ध (अर्दन्, पीड़ा देना अर्थ में)। अर्थ तीव्र गन्ध, पीड़ाकर दण्ड।

'तानोषधे त्वं गन्धेन'

अ. ८.६.१०

गन्धर्व – (१) सूर्यादिलोकों को धारण करने वाला –परमेश्वर।

'ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधिनाके अस्थात्'

ऋ. ९.८५.१२, १०.१२३.७, अ. १३.१.११, साम. २.११९७.

(२) गन्ध आदि में विचरण करने वाली नासिका आदि।

'अप्सरसां गन्धर्वाणां
मृगाणां चरणे चरन्।'

ऋ. १०.१३६.६

(३) भूमि आदि लोकों सबको चलाने वाली शक्ति को धारण करने वाला।

(४) पुरुष।

'गन्धर्वो अप्सु अप्या च योषा'

ऋ. १०.१०.४, अ. १८.१.४

(५) द्वितीय पति जो नियोग में नियुक्त होता है।

'नमो गन्धर्वस्य नमसे'

अ. १४.२.३५

(६) वाणी को धारण करने वाला विद्वान्।

'गन्धर्वः काम्यं वचः'

अ. २०.१२८.३, शां.श्रौ.सू. १२.२०.२.२.

व्युत्पत्ति – गां देववाणीं धारयति इति गन्धर्व (जो देववाणी को धारण करता है वह गन्धर्व है)।

(७) आर्यसमाजी विद्वान् गन्धर्व का अर्थ ब्रह्मचारी भी करते हैं।

(८) गन्धर्व नामक एक जाति विशेष। यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, देव और असुर मिलकर पञ्चजन माने गए हैं।

(९) आजकल गायकों की एक जाति गन्धर्व नाम से ख्यात है। आर्य समाजी विद्वान् गन्धर्व को ब्रह्मचारी, पितरको वाणप्रस्थी, और राक्षस को आश्रय धर्म से च्युत समझते हैं।

(१०) पृथ्वी को धारण या पोषण करने वाला मेघ या वायु भी गन्धर्व है।

'गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे'

ऋ. १.२२.१४.

मेघ और वायु के ध्रुव अर्थात् स्थिर स्थान अन्तरिक्ष में।

(११) गन्ध से युक्त अंश, (१२) रजोभाव।

'गन्धर्वो विविद उत्तरः'

ऋ. १०.८५.४०, पा.गृ.सू. १.४.१६, आप.मं.पा. १.३.१, हि गृ.सू. १.२०.२.

गन्धर्व – (१) परमात्म-पालित व्यवस्था, (२) गन्धर्व की पत्नी अप्सरा ।
'ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्यः'
अ. २.२.५

गन्धर्वाप्सरसः – (१) गन्ध वायु या जल द्वारा लग जाने वाली बीमारियां (२) का भी पुरुष और कामिनी स्त्रियां (३) गन्धर्व और अप्सरायें ।
'गन्धर्वाप्सरसां शतम्'
अ. १९.३६.६.

गन्धारी, गन्धारिन् – (१) गन्धार देश का बासी, (२) दुर्गन्ध वाला ।
'गन्धारीभ्यो मूजवद्भ्यः
अ. ५.२२.१४

गनीगन्ति – गच्छति (जाता है) । गम् धातु का लट् में निपातितरूप है ।

गभः – (१) भग, (२) भाग्यवान् (३) समृद्ध प्रजा ।
'आहन्ति गभे पसः
वाज.सं. २३.२२., शं.ब्रा. १३.२.९.६.

गभस्ति – (१) हाथ ।
'मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ'
ऋ. १०.४४.२, अ. २०.९४.२
(२) किरण

गभस्तिपूत – (१) गभस्तिना पूतः किरण से पूत या पवित्र किरणें पवित्र करती है । (ते हि स्पर्शेनैव पावयन्ति) ।
'वाचस्पतये पवस्व वृष्णो
अंशुभ्यां गभस्तिपूतः
देवो देवेभ्यः पवस्व
येषां भागोऽसि'
वाज.सं. ७.१, तै.सं. १.४.२.१, ६.४.५.३, मै.सं. १.३.४, ३१.७ .का.सं. ४.१, श.ब्रा. ४.१.१.९
हे सोम ! प्राणात्मा इन्द्र के लिए (वाचस्पतये) अपने को पवित्र कर (पवस्व) तू आदित्य की रश्मियों से पवित्र हो (वृष्णः अंशुभ्याम्) तथा तू अभिसुत होने के पूर्व भी सूर्य की किरणों से पवित्र है (गभस्ति पूतः) । अतः देव समान तू सोम ! देवताओं के निमित्त पवित्र हो (देवः देवेभ्यः पवस्व) जिन देवों का तू भाग है (येषां भागः आसि) ।
यहां देवेभ्यः से तात्पर्य है- ऋत्विक् यजमानों से जो सोमरस तैयार करते हैं और तैयार किये जाने के कारण सोमरस जिनका भाग है ।
(२) बाहुबल में पवित्र सोम ।
'गभस्तिपूतं भरत श्रुताय'
ऋ. २.१४.८.

गभिषक् – गम्भीर ।
'तेषा हिं धाम गभिषक् समुद्रियम्'
अ. ७.७.१.

गभीर – (१)गम्भीर, (२) सब पर प्रभाव डालने वाला ।
'बृहद् गभीरं तव सोमधाम'
ऋ. १.९१.३
(३) गम्भीर स्वभाव वाला ।
'त आदित्यास उरवो गभीराः'
ऋ. २.२७.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

गभीरं पदम् – (१) गहरा संकट स्थान, (२) अधःपतन, (३) नरक, (४) गढ़ा ।
'इदं पदम् अजनता गभीरम्'
ऋ. ४.५.५

गंगा – गम् + गन् + टाप् = गंगा । यहां गम् में ण प्रत्यय अन्तर्भूत समझा जाता है । दो अर्थ हैं – (१) गंगा विशिष्ट स्थान को जाती है । (साहि विशिष्टं स्थानं गच्छति) अथवा, (२) विशिष्टं स्थानं गमयति (विशिष्ट स्थान को पहुंचाती है । गंगा नदी सतत वाहिनी है और पवित्र समझी जाती है, यह प्रसिद्धि है । इसका जल पावन और रोग विनाशक है । गंगा नदी
'इमं मे गंगे यमुने सरस्वति'
ऋ. १०.७५.५, तै.आ. १०.१.१३, नि. ९.२६.
(२) शरीर की इडा नाम्नी नाड़ी जो आत्मा को ज्ञान प्राप्त कराती है ।

गम्भन् – धारण करता हुआ ।
'अपां गम्भन् सीद'
वाज.सं. १३.३०. श.ब्रा. ७.५.१.८,

गम्भर – गम्भीर स्थान ।
'बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठान्'
ऋ. १०.१०६.९

गम्भीरः – (१) गम्भीर, (२) सर्वव्यापक, (३) निगूढ़ परम मेघ, (४) सब का गन्तव्य महान् पुरुष (५) गम्भीर राजा, (६) रात्रि ।

'अति विश्वानि अरुहत् गम्भीरः'
अ. १९.४९.२.
(७) गहरा (८) अपार बल सामर्थ्य वाला इन्द्र परमेश्वर ।
'गम्भीर ऋष्वो असमष्ट काव्यः'
ऋ. २.२१.४

गम्भीरवेपस् – (१) गम्भीर कर्मा, गम्भीर कर्मों वाला (२) गम्भीर यज्ञ, गम्भीर बुद्धि वाला ऋषि ।
'विरुपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परिजज्ञिरे'
ऋ. १०.६२.५,
वे वेद या कर्म के द्रष्टा नाना प्रकार के हैं (ऋषयः विरूपासः इत्) वे गम्भीर या गम्भीर कर्मों हैं (गम्भीर वेपसःइत्) वे अङ्गिरस के पुत्र हैं (ते अङ्गिरसः सूनवः)और वे अग्नि से उत्पन्न (ते अग्नेः परिजज्ञिरे)
अन्य अर्थ – नानादर्शी तत्वदर्शी ही ऋषि कहलाता है (विरूपासः इत् ऋषयः) और वे ही गम्भीर कर्मों वाले या गम्भीर प्रज्ञा वाले होते हैं (तेइत् गम्भीर वेपसः) वे संन्यासी वानप्रस्थाश्रम के पुत्र होते हैं (ते अङ्गिरसः सूनवः) अतः वे वानप्रस्थाश्रम से उत्पन्न होते हैं (ते अग्नेः परि जज्ञिरे) ।

गम्भीर शंसः – (१) गम्भीर समुद्र के समान अगाध और प्रशंसा करने योग्य (२) वेदमय गम्भीर ज्ञान का उपदेष्टा ।
'गंभीर शंसो रजसो विमानः'
ऋ. ७.८७.६.

गमिष्ठ – यात्रा करने में बढ़ा चढ़ा ।
'अच्युतच्युत् समदो गमिष्ठः'
अ. ५.२०.१२

गमिष्ठा – (द्वि.व.) (१) प्राप्त, (२) अतिशय चलने वाले ।
'न संस्कृतं प्रमिमी तो गमिष्ठा'
ऋ. ५.७६.२, सामं. २.११०,३
(३) अश्विद्वय या स्त्री पुरुष का विशेषण । अत्यन्त चलने वाले या चलते हुए ।
'किमङ्गवां प्रत्यवर्ति गमिष्ठा'
ऋ. १.११८.३, ३.५८.३.

गय – (१)गृह, घर ।
'यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य'
ऋ. ७.१९.१, अ. २०.३७.१
(२) विद्युत् का शब्द सम्बन्धी विज्ञान, (३) सर्वाश्रम प्राणस्वरूप प्रभु ।
'असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च'
अ. १.१४.४
(४) धन, (५) प्राण ।
'अरक्षत् दाशुषे गयम्'
ऋ. १.७४.२, सोम. २.७३०.
वह विद्यादि के दानी तथा ईश्वर को आत्मसमर्पण करने वाले के लिए (दाशुषे) धनैश्वर्य तथा प्राण जीवन की भी रक्षा करता है । (गयम् अरक्षत्)

गयसाधनः – (१) घर को चमकाने वाला शिशु (२) प्राणों के वशीकार द्वारा साधना करने योग्य–प्रभु ।
'सृजता गयसाधनम्'
ऋ. ९.१०४.२, साम. २.५०,८.

गयस्फान – (१) गयानां प्राणानां वर्धयिता (प्राणों को बढ़ाने वाला)– (दया.) ।
(२) ऐश्वर्यों और पशुओं को बढ़ाने वाला परमेश्वर सा. ।
'गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः
सुमित्रः सोमनो भव'
ऋ. १.९१.१२, तै.सं. ४.३.१३.५, मै.सं. ४.१०.४, १५२.११, श.ब्रा. ११.४.३.१९,
(१) गृह, प्राणक्षर धन बढ़ाने वाला
'गयस्फानो गोभिरश्वोभिरिन्दो'
ऋ. ७.५४.२

गरगीर्ण – जहर पीए हुए ।
'गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्'
अ. ५.१८.१३

गरुत् – (१) स्तुति, (२) उपदेश ।

गरुत्मत् – मरुत् + मतुप् = गरुत्मत् । स्तुतियों वाला (गरण वान् – स्तुतिभिः तद्वान्) (२) रसों का गरण करने वाला (रसानां गरिता) आदित्य, (३) स्तोता, (४) उपदेष्टा, (५) महान् आत्मा (गुरु + आत्मन् = गरुत्मन्) ।
पाली में गुरु को गरु ही कहते हैं और आत्मन् के आ का लोप बहुत्र पाया जाता है ।
'इन्द्रं मित्रं वरुणम् अग्निमाहुः
अथोदिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान्

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः'
ऋ. १.१६४.४६, अ. ९.१०.२८, नि. ७.१८.
अग्नि को ही इन्द्र मित्र और वरुण नाम से तत्ववेत्ता पुकारते हैं । द्युलोक का रहने वाल (दिव्यः) सुन्दर रूप से गिरने वाला (सुपर्णः) स्तुति वाला या रस को वरुण करने वाला आदित्य (गरुत्मान्) भी अग्नि ही है । अग्नि को ही (एकं सत्) मेधावी पुरुष आत्म-तत्ववेत्ता तत्तत् कारण वश अनेक नामों से पुकारते हैं (बहुधा वदन्ति) जैसे अग्नि, यम और मातरिश्वा ।
(६) गरुड़ ।
'सुपर्णस्त्वा गरुत्मान्'
अ. ४.६.३

गर्गर – (१) शब्द करने वाला, (२) स्तुति वाचक, (३) कण्ठ, (४) कण्ठगत प्राण, (५) प्रवक्ता गुरु (६) गड़ गड़ शब्द कारी नगाड़ा ।
'अवस्वरातिगर्गरः'
ऋ. ८.६९.९ अ. २०.९२.६.

गर्गराणां पिता – वेद या ब्रह्मज्ञान के गुरुओं का पालक ।
'अयो पिता महतां गर्गराणाम्'
अ. ९.४.४, तै.सं. ३.३.९.२. का.स. १३.९.

गर्त्त – गुर् + क्त = गूर्ण (उदयत) = गर्त, अथवा गृ + तन् = गर्त । गृ धातु स्तुति करना अर्थ में आया है । अर्थ – (१) रथ । वैदिक युग में रथ का नाम गर्त था । सम्भवतः रथ का निर्माण गर्त सा ही किया जाता है । अंग्रेजी का cart शब्द इसी गर्त्त का अपभ्रंश है । रथ स्तुत्य पदार्थ है ।
(२) श्मशान ।
(३) अक्ष – निर्वापन स्थान ।
रथ के अर्थ में प्रयोग –
'आरोहथो वरुण मित्रगर्तम्'
ऋ. ५.६२.८, मै.स. २.६.९, ६९.१२, का.सं. १५.७, नि. ४.५.
हे वरुण और मित्र ! रथ पर सवार हो ।
(४) श्मशान घाट पर रहने वाला जीव जो मांस खाने के लिए नित्य जीवों की मृत्यु के लिए आशा लगाए रहता है ।
आधुनिक अर्थ – (१) छिद्र, (२) गुहा (३) रिक्त स्थान (४) एक देश का नाम, (५) एक प्रकार का रोग, (६) गढ़ा, (७) कमर के दोनों पुट्ठों के बीच का भाग ।

गर्तसद् – (१) हृदय रूप गुहा में विराजमान्
'स्तुहि श्रुतं गर्तसदम् जनानाम्'
ऋ. २.३३.११, अ. १८.१.४०, तै.सं. ४.५.१०.३, आश्व.गृ.सू. ३.१०.१०, नृसिंह पू.ता.उप. २.४.
(२) रथ पर विराजने वाला ।

गर्तारुह् – (१) गर्त + आङ् + रुह् + क्विप् । गर्त नामक अक्ष निर्वापुन स्थान् पर चढ़ने वाली स्त्री । दक्षिणात्य स्त्री अपने पति के बंधु बांधवों का धन लेने के लिए गर्त नामक अक्ष- निर्वापन स्थानपर चढ़ती है । अपुत्रा और अपतिका स्त्री अपनी सच्चरित्रता सिद्ध कर पति का कुछ धन ले अपने पिता के घर चली जाती है ।
'गर्तारुगिव सनयेधनानाम्'
ऋ. १.१२४.७, नि. ३.५.
गर्त का अर्त श्मसान और रथ भी है ।
(२) सभाध्यक्ष के पद पर विराजने वाला पुरुष, (३) आदित्य के ऊपर विराजती हुई उषा, (४) रथरोही विजिभीषु । (५) रथ पर आरूढ़

गर्तासः – (ब.व.) गर्त + जस् = गर्तासः । बहुवचन का यह रूप छान्दस् ।

गर्तेष्ठाः – श्मशानस्य ।
'गर्तेष्ठाः स्यात्'
वह श्मसानरथ हो । गर्त का अर्थ रथ भी है और अक्ष-निर्वापन स्थान भी ।

गर्दभ – (१) गधा । (२) गर्दभ के समान कठोर भाषी । गद् (शब्द करना) + रभच् = गर्दभ, (३) गर्धया धनतृष्णया भाति इतिवा (तृष्णा से व्याप्त लोभी) (४) गरेण विषेण दभ्नाति हिनस्ति इति वा (विष से मारने वाला)
'समिन्द्र गर्दभं मृण'
ऋ. १.२९.५, अ. २०.७४.५
'शतं मे गर्दभानाम्'
ऋ. ८.५६.३
'न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति'
ऋ. ३.५३.२३

गर्दभनादी, गर्दभनादिन् – गधे के समान खें खें कर

हंसने और कोलाहल मचाने वाला
'सायं गर्दभनादिनः'

गर्दभी – गर्दन + ङीष् । गधी, घोड़ी ।
'विनद्धा गर्दभीव'
अ. १०.१.१४

गर्दभौ – (१) द्वि.व.) (१) गर्दभ, अश्व, (२) अति आकांक्षा वाले ।
'सिकतास्विव गर्दभौ'
अ, २०, १३६.२, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.३.

गर्भ – ग्रह के सम्प्रसारण रूप गृह से गृभ् (स्तुति, गिरण या उगलना) + घ (संज्ञा अर्थ में) = गर्भ । गर्भ स्तुत्य होता है या गर्भ से अनर्थक पदार्थ जो उल्व से आवृत रहता है , निकलता है । गृह् + घ = गर्भ । स्त्री का रज पुरुष के वीर्य के अस्थि, स्नायु और मज्जा इन तीन गुणों को ग्रहण करता है और पुरुष वीर्य स्त्री रज के त्वचा, मांस और रुधिर इन तीनों के गुणों को ग्रहण करता है । इन छः गुणों के संयोग से शरीर को 'षाट्कौशिक' अर्थात् छः कोशों का बना कहते हैं ।
या स्त्री पुरुष के परस्पर प्रेम-प्रदर्शन से गर्भधारण होता है । अतः गर्भ ग्रहण करना अर्थ में हुआ (यदा हि स्त्री गुणगान् । गृह्णाति, गुणाश्च आयाः गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति)
अर्थ – गर्भ ।
'चकार गर्भं सनितुर्निधानम्'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.
पालते पोसते बहनोई के लिए पिता पुत्री को गर्भधारण योग्य बनावे (२) सर्वोत्पादन समर्थ वृष्टि जल ।
'अत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्'
ऋ. १.१६४.३३, अ. ९.१०.१२, नि. ४.२१.
इस अन्तरिक्ष में द्युलोक नाम से प्रख्यात पर्जन्य नामक मेघ (पिता) दूर निहित पृथ्वी पर (दुहितुः) सर्वोत्पादन समर्थ वृष्टिजल (गर्भम्) बरसाता है (आधात्) ।
(३) अन्तः संचारी प्राण या जीवात्मा भी गर्भ कहलाता है । (४) सबके भीतर गर्भ में बालक के समान प्रसुप्त अग्नि ।
'तनूनपात् उच्यते गर्भआसुरः'
ऋ. ३.२९.११
(५) परस्पर ग्रहण करने-एक दूसरे को पकड़ लेने वाला बल प्रकृति ।
'अतिष्ठत् गर्भो वृजनीष्वन्तः'
ऋ. १.१६४.९, अ. ९.९.९.
(६) २४ विभागध्यक्षों का प्रवर्तक राजा स्वयं २५ वां होकर गर्भ कहलाता है ।
'गर्भाः पञ्चविंश'
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.४, मै.सं. २.८.४,१०९.५, का.सं.१७.४,२०.१३, श.ब्रा. ८.४.१.१९, मा.श्रौ.सू. ६.२.१

गर्भकरण – गर्भ विधायक, ओषधि ।
'तद् गर्भकरणं पिब'
अ. ५.२५.६

गर्भधः – (१) ग्रहण करने या वश करने के लिए सामर्थ्य को धारण करने वाला, (२) गर्भ धारण करने में समर्थ पति, (३) हिरण्यगर्भ को धारण करने वाला परमेश्वर ।
'आ हम जानि गर्भधम्'
वाज.सं. २३.१९; तै.सं. ७.४.१९.१, मै.सं. ३.१२.२०, १६६.१२, का.सं. (अश्व). ४.८, श.ब्रा. १३.२.८.५, तै.ब्रा. ३.९.६.४, मा.श्रौ.सू. ९.२.४.
(४) समस्त संसार को अव्यक्त रूप में धारण करने वाली प्रकृति ।
(५) गर्भधारकं कलत्ररूपम्

गर्भरसा – (१) गर्भरूप, सार रूप वीर्य को धारण करने में समर्थ स्त्री, (२) बीज वपनादिद्वारा गर्भित होने के रस अर्थात् बल को धारण करती हुई पृथिवी, (३) ब्रह्मबीज से गर्भित प्रकृति (४) गर्भजनक वीर्य, गर्भधारक तेज
'सा बीभत्सुः गर्भरसा निविद्धा'
ऋ. १.१६४.८, अ. ९.९.८.

गर्भाद् – गर्भ + अद् + क्विप् = गर्भाद् । अर्थ-गर्भ-विनाशक रोग ।
'गर्भादं कण्वं नाशय'
अ. २.२५.३

गर्भधा – (१) स्त्री, (२) प्रकृति ।

गर्भधिः – (१) गर्भ-धारण करने वाली कपोती, (२) अग्नि को गर्भ में धारण करने वाली पृथ्वी ।
'कपोत इव गर्भधिम्'
ऋ. १.३०.४, अ. २०.४५.१, साम. १.१८३, २.९४९.

जैसे कपोत गर्भधारण करने वाली कपोती के निकट जाता है। (३) गर्भ धारण करने में समर्थ

गमध्यै – गम् + शध्यै। जाने के लिए –गन्तुम्। यहां 'ध्यै' तुम् अर्थ में प्रयुक्त है।

'ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै'

ऋ. १.१५४.६, का.सं. ३.३.

गल्दा – गृ (निगलना) अथवा आस्वादनार्थक गल् धातु से द और टाप् प्रत्यय कर गल्दा बना है। अथवा गलन + धा + गल्दा इसमें गलन अर्थात् रस स्थापित किया जाता है। अर्थ (१) धर्मनी (शरीर नाड़ी)। गल्दया और गल्दा दोनों क्रमशः तृतीयान्त और प्रथमान्त हेतु हुए भी एकार्थवाची है।

(२) स्तुति। यथा – सोमस्य गल्दया (सोम की स्तुति से या गालन से (गालवेन)।

सोमस्य आगलनेन उपलक्ष्ययाणा धमनिः गल्दा (सोमरस निगलते समय लक्ष्यमाण धमनि गल्दा है)।

(३) नाड़ी, (४) ज्ञानयुक्त। इस में गलन (रस) स्थापित किया जाता है।

(५) आस्वादक।

'मा त्वा सोमस्य गल्दया
सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं
क ईशानं याचिषत्'

ऋ. ८.१.२०, नि. ६.२४.

हे इन्द्र! यज्ञों में (सवनेषु) चुलाए हुए सोम रस से आप्यायित धमनी वाले तुझे (सोमस्य गल्दया त्वा) सदा प्रार्थना करता हुआ (याचन्) तथा स्तुतित से भी युक्त होकर मैं तुझे क्रोधित नहीं करता (गिरा माचुक्रुधम्) जैसे श्रृगाल आदि वन्यजीव घूमते हुए सिंह को क्रोधित नहीं करता (भूर्णिम् मृगं न) और भला कौन अपने स्वामी से याचना नहीं करता (क ईशानम् न याचिषत्)। गल्दा का धमनी अर्थ में प्रयोग

'आ गल्दा धमनीनाम्'

आप.श्रौ.सू. ८.७.१०, मा.श्रौ.सू. १.७.२.१८, नि. ६.२४.

हे इन्द्र! तुम्हें सोम आविष्ट करे जो धमनियों में प्रविष्ट हो नवीन मद उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार धमनियों में जा स्वयं धमनी बन जाते हैं (धमनीनाम् आ गल्दा)।

आस्वादन अर्थ में–

अन्य अर्थ – हे परमेश्वर! संगति से सदा वरदान मांगता हुआ मैं (इन्द्र गिरा सदा याचन् अहम्) यज्ञों में ऐश्वर्य के आस्वादन से (सवनेषु सोमस्य गल्दया) सब के धारण कर्त्ता आपको (भूर्णिम्) सिंह के समान (मृगं न) क्रुद्ध न करूं (मा चुक्रुधं)। भला कौन अपने मालिक से याचना नहीं करता।

गलुन्तः – गडु + तस् + क्विप् = गलुन्तः। (नकार का उपाजन छान्दस है)। अर्थ– (१) गलता हुआ गण्डमाला, (२) गण्डमाला के विकार से हस्तपादादि सन्धियों से उद्भूत गडुओं को जो नष्ट करता है।

'सु गलुन्तो नशिष्यति'

अ. ६.८३.३

गवय – (१) जंगली पशु, गवय, वीलगौ।

'गवय मारण्यमनु ते दिशामि'

वाज.सं. १३.४९, तै.सं. ४.२.१०.३, मै.सं. २.७.१७, १०२.१६, का.सं. १६.१७. श.ब्रा. ७.५.२.३४.

'बृहस्पतये गवयान्'

वाज.सं. २४.२८, मै.सं. ३.१४.१०:१७४.५

गव्य – गो + यत् = गव्य (१) गौ से मिलने वाले दूध आदि पदार्थ, २) गोमय, (३) गौ के लिए उपयुक्त (४) गोचरभूमि।

गवयी – (१) गौ, (२) पृथिवी।

'ऋषभाय गवयी'

वाज.सं. २४.३०, तै.सं. ५.५.११.१, का.सं. (अश्व). ७.१.

गव्यत् – अपने लिए गौ आदि शुद्ध इन्द्रियों, वाणियों एवं उत्तम स्तुतियों की कामना करता हुआ पुरुष। 'गो' शब्द का अर्थ गौ, पृथ्वी, वाणी, स्तुति आदि है।

'एतायामोप गव्यन्त इन्द्रम्'

ऋ. १.३३.१, कौ.ब्रा. २१.३, शां.श्रौ.सू. १४.११.८.

हे विद्वान् पुरुषो! आओ, हम अपनी इन्द्रियों, वाणियों और उत्तम स्तुतियों की कामना करते हुए उस परमेश्वर की शरण को प्राप्त हों।

(२) स्तुतिशील।

'नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः'

ऋ. ३.३१.९

गव्यत् मनः – (१) आज्ञा-पालन की इच्छा वाला चित्त, (२) भूमि प्राप्ति की कामना वाला मन, (३) स्तुतिवाणी से युक्त चित्त (४) ज्ञान वाणियों को प्राप्त करने वाला चित्त ।
'ये गव्यता मनसा दध्रमुब्धम्'
ऋ. ४.१.१५

गव्यन्ता – गो समूह वाणी समूह, या इन्द्रियों का दमन करते हुए मिथुन ।
'यद्गव्यन्ता द्वा जना'
ऋ. १.१३१.३, अ. २०. ७२.२, ७५.१

गव्यवः – गौ आदि पशु और भूमिओं को चाहने वाले (२) एक वैदिक राजवंश ।
'निगव्यवोऽनवोद्रुह्यवश्च'
ऋ. ७.१८.१४

गव्यंराधः – (१) श्रवण करने योग्य, (२) वाणी द्वारा प्राप्त करने योग्य (३) वाङ्मय ज्ञान सम्पदा, (४) भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य ।
'उद्राधो गव्यं मृजे'
ऋ. ५.५२.१७

गव्यःव्रजः – (१) गवादिपशु, (२) वेदवाणियों से उत्पन्न ज्ञेय ज्ञान ।
'व्रजस्यसाता गव्यस्पनिःसृजः'
ऋ. १.१३१.३ अ. २०.७२.२, ७५.१,
गव्यव भरताः – (१) उत्पन्न भूमि के स्वामी प्रजापालक पुरुष (२) भूमि क्षेत्र, स्त्री की कामना करने वाले भरत अर्थात् पालन पोषण में समर्थ पुरुष, (३) वाणी के इच्छुक शिष्य ।
'अतारियुः भरता गव्यवः सम्
अभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्'
ऋ. ३.३३.१२

गवांमाता – (१) इन्द्रिय रूप गौओं की उत्पादन करने वाली ।
'माता गवामृतावरी'
ऋ. ४.५२.२, साम. २.१०७६.
(२) किरणों, वाणियों या भूमियों का उत्पादक सूर्य ।
'ऊर्वात् गवां माता जानतीगात्'
ऋ. ५.४५.२

गवां गोपति – सभी वाणियों भूमियों और सूर्यादि लोकों के समान स्वामी-इन्द्र परमेश्वर ।
'गवामसि गोपतिरेक इन्द्र'
ऋ. ७.९८.६, अ. २०.८७.६, मै.सं. ४.१४.५, २२२.१ तै.ब्रा. २.८.२.६.

गवां गोत्रम् – (१) किरणों का समूह (१) किरणों का समूह (२) भूमियों का समूह ।
'गवां गोत्रम् उदसृजोयदङ्गिरः'
ऋ. २.२३.१८, का.सं. ४०.११. आप.श्रौ.शू. १७.२१.७

गवाशिरः – (१) गौ के दूध से मिला (२) भूमि के बल से शत्रुओं का नाशक, (३) आज्ञा या वाणी से नाश करने वाला ।
'यत्ते सोम गवाशिरः'
ऋ. १.१८७.९.
(४) गौ दुग्ध से मिश्रित सोम, (५) पृथ्वी या गौ आदि पशुओं पर आश्रित ऐश्वर्य मय राष्ट्र
'सोमभिमन्द्र गवाशिरम्
ऋ. ३.४२.१, अ. २०.२४.१
(६) किरणों से ताप द्वारा गृहीत जल, (७) गौ, भूमि, मेघ से प्रजाओं द्वारा उपयुक्त ।
'इममिन्द्र गवाशिरम्
यवाशिरं च नः पिबः'
ऋ. ३.४२.७

गंव्या – गो + यत् टाप् = गत्या । अर्थ-गोविकार भूता (तांत) । धनुष में लगाए जाना वाला गौ के चर्म की बनी चीज ।
आज भी गव्या शब्द तांत के अर्थ में प्रयुक्त है । गौ शब्द ज्या के अर्थ में प्रयुक्त है, क्योंकि ज्या ही वाणों को चलाने में साधनभूत है (गमयति इषून्)

गव्याधी – (१) वाणी से युक्त क्रिया (२) जैसी वाणी वैसा कार्य ।
'अयाधिया च गव्यया'
ऋ. ८.९३.१७

गविनी – मूत्र को मूत्राशय तक पहुंचाने वाली गविनी नामक मूत्रवाहिनी नाड़ियां ।
'यदान्त्रेषु गविन्योः'
अ. १.३.६

गविषः – (१) गौ की कामना करने वाला वृषभ, (२) पृथिवी की यात्रा करने वाला पुरुष, (३) भूमि राज्य की आकांक्षा करने वाला ।
'द्रप्सं दविध्वत् गविषोन सत्वा'

ऋ. ४.१३.२

गविष् – गौ + इष् + क्विप् = गविष् (१) वाणी को प्रेरित कर प्रार्थना करने वाला ।
'निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते'
ऋ. १०.७६.७
(२) स्तुतियों या वेदवाणियों को प्रेरित करने वाला, (३) आज्ञा दाता ।
'अगोरुधाय गविषे'
ऋ. ८.२४.२०, अ. २०.६५.५, आश्व गृ.सू. १.१.४
(४) वाणी या वेद को चाहने वाला (५) पृथ्वी को चाहने वाला ।

गविष्टा – गौः इष्टा यस्याः (जिसे भूमि प्राप्त करना इष्ट हो वह सेना) ।
'रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ'
ऋ. १०.१०२.२

गविष्टि – (१) गौ + इष्टि । गवां पृथिव्या प्राप्तीच्छा यस्मिन् (जिसमें गो आदि की प्राप्ति की इच्छा हो वह गविष्टि है–संग्राम) (२) वाणी, गौ और इन्द्रियों की प्राप्ति ।
'क्रन्ददश्वो गविष्टिषु'
ऋ. १.३६.८
'सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ'
अ. २०.१४३.९
(३) पार्थिव सम्पत्ति ।
'त्वाभिन्नरो वृणतेगविष्टिषु'
ऋ. १०.१४७.२
(४) गौ = सूर्य । इष्टिमेल । सूर्य की रश्मियों का संयोग गविष्टि है ।
(५) गवाम् इन्द्रिय पृथिवी राज्यविद्या प्रकाशानां इष्टयो यस्मिन् स –(दया.)
पृथिवी, पशु सम्पत्ति इन्द्रियों से भोग्य पदार्थों और ज्ञान और वाणी प्रकाश की नाना कामनाओं को प्राप्त कराने वाला संग्राम या प्रति स्पर्द्धा ।
'उभयेभ्यः प्रचिकित्सा गविष्टौ'
ऋ. १.९१.२३, वाज.सं. ३४.२३, वाज. (क.) ३३.१६.
तू पृथिवी, पशु सम्पत्ति, इन्द्रियों से भोग्य पदार्थों और ज्ञान और वाणी प्रकाश की नाना कामनाओं को प्राप्त करने वाले संग्राम या प्रतिस्पर्द्धा में खूब अच्छी प्रकार विचार कर बाधक शत्रुओं और रोगादि दुःख कारणों को दूरकर ।

गविष्ठिर – (१) रश्मियों पर स्थिर पुरुष–सूर्य (२) वेदवाणी के निमित्त स्थिर चित्त होने वाला । शिष्यजन ।
'गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ'
अ. ५.१.१२, वाज.सं. १५.२५, तै.सं. ४.४.४.२ मै.सं. २.१३.७, १५५.१७.
(३) इन्द्रियाधिष्ठित आत्मा, (४) भूमि पर स्थिर रहने वाला कृषक (५) गौ पर स्थिर रहने वाला
'यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरम्'
अ. ४.२९.५

गवीनिका – मूत्राशय के निकट वर्तिनी गविनी नामक नाड़ी ।
'अथो एति गवीनिके'
अ. ९.८.७

गवीनिके – (द्वि.व.) एक वचन में गवीनिका । योनिभाग के पार्श्वों पर लगी दो नाड़ियां जिनसे मातृबीज आता है ।
'वि योनिं वि गवीनिके'
अ. १.११.५, तै.सं. ३.३.१०; का.सं. १३.९.

गव्ययी – (१) गोचर्य का बना, (२) वाणी के ज्ञान का बना ।
'गव्ययी त्वग्भवति निर्णगव्ययी ।'
ऋ. ९.७०.७

गव्युः – गो + यु (मतुप् के सदृश) = गव्यु । अर्थ (१) गौ वाला, (२) गोधन से युक्त (३) इन्द्र का विशेषण, (४) इन्द्रियों से युक्त (५) वाणी से युक्त (६) पृथ्वी से युक्त ।
'अश्वयुर्गव्यू रथयुवर्वसूयुः
इन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता'
ऋ. १.५१.१४, नि. ६.३१.

गव्यूति – गौ + यूति = गव्यूति ।
अर्थ (१) वाणी की गति, (२) इन्द्रियों की पहुंच ।
'असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः'
अ. १६.३.६
(३) वाणियों का एकीभाव और पृथक् भाव, संकलन विकलन ।
'अग्नेर्गव्यूतिर्घृतआनिषत्ता'
ऋ. १०.८०.६

गव्यूती – गौओं के रहने का स्थान, बाड़ा ।
'परामे यन्ति धीतयो,

गावो न गव्यूतीरनु'
ऋ. १.२५.१६
जैसे गौवें अपने बाड़े में जाती हैं, वैसे ही बुद्धियां और चेष्टाएं (धीतयः) दूर तक परमात्मा को लक्ष्य कर चली जाती है ।

गवेषणः – गो + एषण (१) किरणों को प्रेरणा या प्रक्षेप करने वाला सूर्य (२) किरणानाम् इष्टः (किरणों का इष्ट) (३) येः वाणीम् इच्छति (वाणी का इच्छुक) (४) ज्ञान वाणियों को प्रदान करने वाला उपदेष्टा (५) सन्मार्ग में चलने वाला, (६) प्राण वृत्तियों, इन्द्रियों एवं गौओं को गोपाल के समान रक्षा करना वाला ।
'स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणः
बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः'
ऋ. १.१३२.३
वही गुरु और परमात्मा ज्ञानवान् पुरुष के लिए, ज्ञानोप्रदेश के लिए किरणों को प्रेरणा या प्रक्षेप करने वाले सूर्य के समान (गवेषणः इन्द्र इव) बन्धु के समान विद्या सम्बन्ध से अधीन रहने वाले शिष्यों के हितार्थ बन्धुक्षिद्भ्यः) अनुकूल होकर ज्ञान वाणियों का प्रदाता हो रहा है (गवेषणः) ।
(७) भूमि राज्य का अभिलाषी
'नः सत्वा गवेषणः सधृष्णुः'
ऋ. ७.२०.५
(८) पशु, भूमि, उत्तम वाणी आदि का इच्छुक ।
'इमं च नो गवेषणम्'
ऋ. ६.५६.५

गवेषणः रथः – इन्द्रियों को प्रेरण करने में समर्थ रमण करने वाला रथ रूप आत्मा ।
'युजे रथं गवेषणम् हरिभ्याम्'
ऋ. ७.२३.३, अ. २०.१२.३, मै.सं. ४.१०.५, १५५.१४, तै.ब्रा. २.४.१.३

गहन – (न.) (१) वन, (२) संकट, ।
'गहनं यदि नक्षत्'
ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३. श.ब्रा. ४.६.९, १४, वै.सू. ३४.१, आप.श्रौ.सू. २१.१२.९, मा.श्रौ.सू. ७.२.३.
यदि वन में चला जाय या संकट में पड़ जाय ।

गह्वरेष्ठः – पर्वतों के गह्वारों, गहरे जल और विषम स्थानों का उत्तम परिचित ।
'नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च'
वाज.सं. १६.४४, तै.सं. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८, १२६.१२, का.सं. १७.१५.

गह्वरेष्ठा – (स्त्री) गह्वर या प्रजा के हृदयों में बसी व्यापक शक्ति ।
'तनूवर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा'
वाज.सं. ५.८. श.ब्रा. ३.४.४.२४.

ग्रथी – कुटिला चारी, अज्ञान में बंधा हुआ ।
'न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः'
ऋ. ७.६.३

ग्रन्थिनी – समान प्रेम से युक्त ।
'हृदे चक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः'
ऋ. १०.९५.६

ग्रन्थिः – गांठ, गिरह ।
'पाशो ग्रन्थिश्च यः कृतः'
अ. ९.३.२

ग्रभः – (१) ग्रहः ग्रभः (ह् का भ् छान्दस है) । ग्रहीतुं योग्यः (ग्रहण करने योग्य) । (२) ग्रहण ।
'नहि ग्रभायारणः सुशेवः'
ऋ ७.४.८, नि. ३.३.
जिससे जल-सम्बन्ध नहीं होता वह सुख कारक होता हुआ भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता ।

ग्रभण – ग्रहण ।

ग्रभणवत् – (१) सबके ग्रहण करने योग्य (२) सबको भीतर ग्रहण करने वाला परमेश्वर (३) अग्नि, (४) गृह ।
'आदस्यायु ग्रर्भणवत्
वीडु शर्म न सूनवे'
ऋ. १.१२७.५
इसके बाद (आत्) उसका परम जीवन या उसका प्राप्त होना ही (आयुः) सबके ग्रहण योग्य सब को भीतर लेने वाला (ग्रभणवत्) पुत्र के लिए पिता के समान ही (सूनवे न शर्म) बलवान् दृढ़ आश्रय (वीडु) हो जाता है ।

ग्रसिष्ठः – खाने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित । ग्रस् + इ = ग्रसिष्ट ।
'आदिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः'
ऋ. १.१६३.७, वा.सं. २९.१८. तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व.) ६.३, नि. ६.८.
हे अश्व ! खाने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित तू तुरत ही अन्नों को खाने लगता है ।

(२) ग्रसितृतमः भक्षयितृतमः (अत्यधिक भोजन करने वाला। (३) उत्तम रीति से ग्रसने वाला, भूखा, भोक्ता।

ग्रह – एक दूसरे को ग्रहण या स्वीकार करने वाला।
'अश्विभ्यां चक्षुः अमृतं ग्रह्यभ्याम्'
वाज.सं. १९.८९, मै.सं. ३.११.९,१५४.४, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.४.

ग्लह – (१) ग्रह, (२) इन्द्रियों का व्यापार।
'ग्लहे कृतानि कृण्वानाम्'
अ. ४.३८.१

ग्लहन – ग्रहण।
'यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणञ्च'
अ. ७.१०९.५

ग्लहा – (१) माध्यमिका वाक् विद्युत्।
'एजातिग्लहा कन्येवतुन्ना'
अ. ६.२२.३

गांग्य – गंगा वाला प्रदेश जो पीछे कुरुदेश कहलाया।
'उरु कक्षोन गाङ्ग्यः'
ऋ. ६.४५.३१

गाङ्ग्यः कक्षः – (१) गंगा का तट, (२) वेगवती नदी का तट।

गाणपत्य – सोनासमूह या गण का पति पद
'रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि'
वाज.सं. ११.१५, श.ब्रा. ६.३.२.७, का.सं. १६.१,१९.२

गात् – उपागमत् (छन्दसि लुङ्-लङ् लिटः) में इ का गा आदेश और अट् का अभाव। उपसर्ग का योग तथा लट् का लुड में प्रयोग आर्ष है। अर्थ है–जाता है।
'शासद्वह्निः दुहितुर्नप्त्यङ्गात्'
ऋ. ३.३१.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.२,१९.४, नि. ३.४.
पुत्री को दूसरे कुल में भेजने वाला अपुत्र पिता (वह्निः) यह शर्त करता हुआ कि इस कन्या से उत्पन्न पुत्र उसका होगा (शासत्) दुहिता के पुत्र को नाती के रूप में अपनाता है (दुहितुः नप्त्यं गात्)।
(२) समझता है, अपनाता है।

गात्र – हस्त, हाथ।
'यत्ते गात्रात् अग्निना पच्यमानात्'
ऋ. १.१६२.११, वाज.सं. २५.३४, तै.सं. ४.६.८.४, मै.सं. ३.१६.१, १८२.१६, का.सं. (अश्व). ६.५.

गातु – गा + तु (उणादि) = गातु। भाव अर्थ में तु प्रत्यय, गाङ् गत्यर्थक धातु है। अंग्रेजी का Go गा का ही अपभ्रंश है। Gait शब्द गातु से मिलता जुलता है। अर्थ है (१) मार्ग।
'यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र'
ऋ. ६.३०.३
हे इन्द्र! तूने जो इन नदियों के लिए मार्ग या कर्म निश्चित किया।
(२) कर्म –ज.दे.श. (३) गमन। (४) साम गान करने वाला, (५) विद्या –दया (६) वाणी (७) सुशिक्षा।
'ऋग्मिभिः ऋग्मी गातुभिः ज्येष्ठः'
ऋ. १.१००.४
वह देव मन्त्रज्ञों के साथ रहकर सबसे अधिक वेदार्थ ज्ञाता है और साम आदि गान करने वालों में से सबसे श्रेष्ठ है।

गातुम् – (१) सायण ने इसका अर्थ कर्म मान कर गमन किया है, (२) स्वा. दयानन्द ने तुमुन् प्रत्ययान्त मानकर 'आने के लिए ऐसा अर्थ किया है।
'गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये'
मै.सं. ४.१३.१०,२१२.१४,
हम शंयु ऋषि के निकट यह प्रार्थना करते हैं कि यज्ञ का देवों के प्रति गमन हो (गातुं यज्ञपतये) –
हम उस सदाचारी शान्त विद्वान् के अपने यज्ञ में आने की और यज्ञ पति के समीप पधारने की याचना करते हैं –(दया.)

गातुविद् – (१) सन्मार्ग प्राप्त कराने वाला, (२) मार्ग या भूमि प्राप्त करने वाला।
'अयं यज्ञो गातुविद् नार्थाविद् प्रजावित्'
अ. ११.१.१५
'उतात्रये शतदुरेषु गातुवित्'
ऋ. १.५१.३
तीनों प्रकार के दुःखों से मुक्त करने के लिए या राष्ट्र वासी प्रजाजन के हित के लिए (अत्रये) तू सैकड़ो द्वारों भूल भूलैया वाले गढ़ या व्यूहों में

भी या सैकड़ो आवरण वाले मेधावयवों में श्री (शतदुरेषु) मार्ग और भूमि को प्राप्त कराने वाला हो (गातुवित्) ।
(३) वेदवाणी का ज्ञाता ।
'गातुविदं तमीमहे'
ऋ. १.१०५.१५.

गातुवित्तमः –(१) मार्गज्ञान और वाणी के ज्ञाताओं में श्रेष्ठतम, गुरुओं का भी गुरु परमेश्वर ।
'सोमो मीढ्वान् पवते गातुवित्तमः'
ऋ. ९.१०७.७

गातुवित्तरा – (१) अधिक मार्ग जानने वाले मित्रावरुण या स्त्री पुरुष ।

गातूय – नामधातु गातु अर्थात् पृथ्वी के समान सब आश्रयों आश्रय भूत ब्रह्म चर्य, सन्मार्ग और गान योग्य वेदराशि के अभ्यास की इच्छाकरना ।
'ये स्मापुरागातू यन्तीव देवाः'
ऋ. १.१६९.५

गातूयन्ति – गातूप धातु के लट् प्रथमपुरुष बहुवचन का रूप ।

गाथपतिः – (१) गाथा, ज्ञानवाणियों और विद्वानों के परिपालक (२) स्तुति करने वालों का पालक ।
'गाथपतिम् मेघपतिम्
रुद्रं जलाषभेषजम्'
ऋ. १.४३.४,
गाथा, ज्ञान वाणियों और विद्वानों के परिपालक, यज्ञों, यज्ञकर्त्ता धर्मात्मा एवं पवित्र पुरुषों के पालक (मेघपतिम्) सुखकारी ओषधि और दुःख से छुटने के उपाय बतलाने वाले ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् परमेश्वर से (जलाषभेषजम्)

गाथ श्रवाः, गाथश्रवस् – जिसका यश और श्रोतव्य ज्ञान का स्वरूप गान करने योग्य है – इन्द्र परमेश्वर ।
'गाथश्रवसं सत्पतिम्'
ऋ. ८.२.३८

गाथा – (१) गाथा, (२) श्लोक , (३) मन्त्र पाठ । गा + थन् + टाप् ।
'गाथयैतिपरिष्कृतम्'
ऋ. १०.८५.६, अ. १४.१.७.
(४) वाणी ।
'युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथया'
ऋ. ८.९८.९, अ. २०.१००.३, साम. २.६२.

गाथानी – (१) स्तुति–सा. (२) उप देश–(दया.) ।
'गाथान्यः सुरुचो यस्य देवाः
आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'
ऋ. १.१९०.१.
जिस सुन्दर बृहस्पति की स्तुतियां देवता और मनुष्य दोनों सुनाते हैं ।
जिस वैदिक ज्ञान प्रदाता तेजस्वी, एवं बहुमान्य विद्वान् के उपदेश को दाता गृहस्थ सदा सुनाते हैं । –(दया.)
(३) उत्तम वेदी वेदादि शास्त्र की कथा या ज्ञान वाणी को दूसरे तक पहूँचाने वाला ।
(४) वेदवाणी को हमतक पहुँचाने वाला बृहस्पति या परमेश्वर ।

गाथान्य, गाथानी – (१) गुणगान करने योग्य (२) गाथा या वेदवाणी में प्रसिद्ध ।
'गाथान्यं समश्रुतम्'
ऋ. ८.९२.२, साम.२.६४.

गाथिन् – गा + थन् + इनि = गाथिन् ।
अर्थ – (१) सामवेदी होता, (२) सामग उद्गता
'इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत् इन्द्रमर्केभिरर्किणः
इन्द्रं वाणी रनूषत'
ऋ. १.७.१
हे सामगायको, उद्गाताओ, बृहत् नामक साम से इन्द्र का ही आप अनुष्ठान करें, हे ऋग्वेदी होताओ, (अर्किणः), आप भी ऋग्वेद के मन्त्रों में इन्द्र का ही अनुष्ठान करें । एवं यजुर्वेदी अध्वर्युवो । आप भी यजुर्मयी वाणियों से (वाणीः) इन्द्र की ही स्तुति करें । (असूनत) ।

गाध – (१) बड़ा भारी । गा + ध । गा धातु गत्यर्थक है ।
'अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठाम्'
ऋ. ५.४७.७, अ. १९.११.६, तै.ब्रा. ३.७.९.९. आप. श्रौ.सू. २१ .२०.७.
(२) वैद्युतिक, ऐश्वर्य, (३) ज्ञानैश्वर्य, ।
'तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः'
ऋ. १.६१.११. अ. २०.३५.११
(५) पार करने योग्य, (६) नदी का वह स्थान जो पार करने योग्य है । जो पार करने योग्य नहीं है उसे आज भी लोग अगाध कहते हैं (७) मुख्य प्रतिष्ठा स्थान, (८) दुर्ग, (९) गढ़

(१०) राजधानी वह शत्रुओं का नाशक (तुर्वणिः) अति शीघ्रता से राष्ट्र भर में फैल जाने जाने के लिए (तुर्वीतये) अप प्रतिष्ठा स्थान या दुर्ग या गढ़ या राजधानी बनाता है गाधम् कः)
(११) प्रतिष्ठा, (१२) ऐश्वर्य वृद्धि ।
'विदागाधं तु चेतुनः'
ऋ. ६.४८.९, साम. १.४१.२, ९७३.
(१३) प्रतिष्ठा का कर्म ।
'यो गाधेषु य आरणेषु हव्यः'
ऋ. ८.७०.८
(१४) थाह ।
'गम्भीरे चित् भवति गाधयस्मै'
ऋ. ६.२४.८
(१५) गहरा जल ।
'प्रव्राजे चित् नद्यो गाधमस्ति'
ऋ. ७.६०.६

गान्धर्वी – वेदमयी वाणी ।
'अग्निर्गान्धर्वी पथ्यामृतस्य'
ऋ. १०.८०.६

गान्धारी – (१) पृथ्वी को धारण करने वाले पर्वत प्रदेश की भेंड़ी, (२) गन्धार देश की भेंडी–सा. (३) पृथ्वी का राज्य धारण करने वाली स्त्री –(दया.) (४) गो पालन करने वाली स्त्री, (५) वाणी को धारण करने वाली चेतना शक्ति,
'सर्वाहमस्मि रोमशा गान्धरीणामिवाविका'
ऋ. १.१२६.७.
मेरे सर्वांग में रोएं हो गए हैं जैसे गन्धार देश भेड़यों में अविका जाति की भेड़ी को । मैं पूर्णतया प्रशस्त रोओं वाली (रोमशा) और पृथ्वी का राज्य धारण करने वाली स्त्रियों में से (गान्धारीणाम्) अधिक रक्षा करने वाली (अविका) हूं –(दया.)

गायत्र – गान अर्थात् भक्ति करने वाले का त्राता परमेश्वर (२) गायत्री छन्द ।
'यद् गायत्रे अधिगायत्र माहितम्'
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.१०.१, ऐ.ब्रा. ३.१२.६, कै.ब्रा. १४.३, गो.ब्रा. २.३.१०.
(३) गै (गाना) + षत्रन् (करण में) = गायत्र । स्तुतित की जाय ।
'गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु'
ऋ. १०.७१.११, नि. १.८.
एक उद्गाता शक्ति शाली मन्त्रों में (शक्वरीषु) देवताओं का स्तुतिगान करता है (गायत्रं गायति)
'ता गायत्रेषु गायत'
ऋ. १.२१.२
(४) प्राण गण भी गायत्र है । (५) ब्राह्मण, विद्वान् गण ।
'गायत्रो विद्वान् गण
गायत्रो वै प्राणाः
गायत्रो वै ब्राह्मणः'
(६) गायत्री और गायत्र शब्दो से वैदिक परिभाषा में तीनों लोक, भूलोक प्राण, अग्नि, ब्राह्मण, ब्रह्मवर्चस् तेज, वीर्य, शिर, मुख, अष्टा क्षर छन्द, प्राचीदिशा, वसुपत्नी रथन्तर, सप्ददश स्तोय, यज्ञ, प्रातः सवन, पुरुष और उत्तम पदार्थ लिए गए हैं ।
जैसे–
'इमे वै लोकाः गायत्रम्
गायत्रोऽयं भूलोकः'
कौ.सू ८.९.
'गायत्रेऽस्मिन् लोके गायत्रोऽयमग्निरप्यू'
कौ.सू. १४.२
'प्राणो गायत्री प्रजानाम्'
जै. उ. १.३७.७
'अग्निर्वै गायत्री'
श.ब्रा. १९.१.१.५
'गायत्री ब्राह्मणः'
१.२८
'तेजोवैब्रह्मवर्चसी गायत्रम्'
कौ.सू. १९.२९
'वीर्यं गायत्री'
ता. ७.३.१३
'गायत्रं टिशिरः'
श.ब्रा. ८.६.२.६
'अष्टाक्षरागायत्री
चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री'
श.ब्रा. ३.४.१.१०
'गायत्री प्राचीदिक्'
श.ब्रा. ३.४.१.१२
'गायत्री वसूमां पत्नी'
गो. ३२..९
'वसवो गायत्रीं समभरन्'

जै.३.२.८.४
'गायत्रं वै दपन्तरम्
गायत्रः सप्तदशः स्तोमः
गायत्रो यज्ञः
गायत्रं वै प्रातः सवनम्'
गो .उ. ३.१९
'गायत्रो वै पुरुषः'
इस लोक में अग्नि आस्थित है । भूलोक अग्नि पर आस्थित है, ब्राह्मण में ब्रह्म तेज है, पत्नी पुरुष पर आश्रित है, रथन्तर साम गायत्री छन्द पर आश्रित है, प्राणात्मा देह में आश्रित और जीवात्मा परमात्मा में आश्रित है।

गायत्रं छन्दः – (१) प्राणों की रक्षा करने के वाला बल, (२) ब्राह्मणोचित बल ।
'पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त
गायत्रेण छन्दसा'
वाज.सं. २.२५, श.ब्रा. १.९.३.१०,१२, शां.श्रौ.सू. ४.१२.४.

गायत्रच्छन्दाः – गायत्र प्राण आदि का वाचक है, अतः अर्थ हुआ (१) प्राण –साधना (२) आत्म साधना, (३) ब्रह्मवृत्ति, ब्रह्मचर्य (४) तेज और वीर्य को प्राप्त कराने वाला ब्रह्मचर्य (५) २४ अक्षरों वाले गायत्री छन्द के समान जीवन का प्रारम्भ रूप २४ वर्ष ।
'श्येनोऽसि गायत्रच्छन्दाः'
अ. ६.४८.१, तै.सं. ३.२.१.१, गो.ब्रा. १.५.१२, पंच.ब्रा. १.३८, श.ब्रा. १२.३.४,३ शां.श्रौ.सू. ६.८.१०, का.श्रौ.सू १३.१.११, आप.श्रौ.सू. १२.१७.१५. मा.श्रौ.सू. २.३.६.८.

गायत्र वर्तनि – (१) गायत्री छन्द में विद्यमान स्तुति या उपदेश ।
'इमां गायत्रवर्त्तनिम्
जुषेथां सुष्टुतिं मम'
ऋ. ८.३८.६
(२) ब्राह्मबल पर अपना मार्ग बनाने वाला क्षात्रबल ।
'बृहद् गायत्र वर्तनिं'
वाज.सं. ११.८, तै.सं. ३.१.१०.१, ४.१.१.३, मै.सं. २.७.१, ७४.११, का.सं. १५.११, श.ब्रा. ६.३.१.२०, कौ.सू. ५.७.

गायत्र वेपस् – (१) गान करने वाले की रक्षा करने वाला रूप जिससे प्रकट हो, कत (२) गान करने वाले का रक्षक इन्द्र का विशेषण ।
'स्वाहा गायत्रवेपसे'
ऋ. १.१४२.१२

गायति – गै (गाना, स्तुति करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप ।
'ऋचांत्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्
गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातिविद्यां
यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः ।'
ऋ. १०.७१.११, नि. १.८.
होता आदि १६ ऋत्विज् होते हैं और सदस्य मिलाकर वे १७ होते हैं । उनमें चार होता, उद्गाता, ब्रह्मा और अध्वर्यु महा ऋत्विज् हैं । इस ऋचा में इन्ही चारों का कर्त्तव्य वर्णित है । एक (त्वः) होता यज्ञ काल में स्वकीय देवताओं की ऋचाओं का (ऋचाम्) यथाविधि कर्मों में उपयोग करता हुआ (पोसं पुपुष्वान्) रहता है (आस्ते) एक उद्गाता (त्वः) शक्तिशाली मन्त्रों से (शक्वरीषु) देवताओं का स्तुति गान करता है (गायत्रं गायति), एक सर्वज्ञ ब्रह्मा तरह तरह के कर्त्तव्य कर्म के सम्बन्ध में ज्ञान देने वाली बात या आत्म–विज्ञान (विद्याम्) कहता है (वदति) और एक अध्वर्यु किस यज्ञ में क्या क्या होना चाहिए, कैसी और किस मात्रा में वेदी बनायी जानी चाहिए इत्यादि कार्य–सम्पादन करता है । (यज्ञ स्य मात्रां विमिमीते)

गायत्रिणः – गायत्र + इनि = गायत्रिण । उद्गाता साम वेद का गान गाने वाला ।
'गायन्ति त्वा गायत्रिणः'
ऋ. १.१०.१, साम. १.३.४२, २.६९,४, तै.सं. १.६.१२.२, कौ.ब्रा. २४.७, पंच.ब्रा. ८.९.१०, आश्व.श्रौ.सू. ७.८.३, शा.श्रौ.सू. १८.६.२, नि. ५.५, महाभारत. १२.२८४.७८.

गायत्री – गै (गाना) + अत्रिन् + ङीप् गायत्री । तया हि
'गीयन्तो स्तूयन्ते देवाः'
ऋग्वेद के आदि मन्त्र अग्नीमीडे से पदार्थ स्तवन प्रारम्भ होता है । एक वैदिक मन्त्र जिसका जप सन्ध्या करने के समय किया जाता है । गायते स्तुति कर्मणः

छन्दोग्योपनिषद् में –
'वाग्वै गायत्री वाग्वा इदं
सर्वं भूतं गायति च'
त्रायते च । (यह वाणी सब भूतों को दर्शाती और हमारी रक्षा करती हैं)
(२) गै + त्रैङ् से बनी गायत्री है । यह गाने वाली की रक्षा करती है ।
(३) अथवा यह छन्द त्रिगमन तीन पदों वाला है । अतः गम् + त्रि के विपर्यय से गायत्री शब्द बना ।
गमत्रि = गायत्री ।
(४) ब्राह्मण कहता है गान करते हुए परमेश्वर के मुख से सबसे पूर्व यही छन्द निकला अतः इसका नाम गायत्री पड़ा ।
गै + पत + रक् = गायत्र, गायत्र + ङीष् = गायत्री ।

गार्दभ – गर्दभ + अण् । अर्थ गधे का ।
'हास्तिनं गार्दभं च यत्'
अ. ६.७२.३.

गार्ष्टेयः – जगत् का प्रसव करने वाला प्रकृति का स्वामी ।
'सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानद्'
ऋ. १०.१११.२

गार्हपत्य – (१) गार्हपत्य, (२) प्रजापति (३) भूलोक, (४) स्त्री (५) अन्न (५) कर्म ।
'सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत्'
अ. ८.१०.२.
'प्रजापतिर्हि गार्हपत्यः'
कौ.पू २७.७.
'अयं वै लोको गार्हपत्यः'
श.ब्रा. ७.१.१.६.
'जाया गार्हपत्यः'
कौ.पू २.१.
(७) गार्हस्थ्य धर्म, (८) गृहपत्नीत्व ।
'अस्मिन् गृहे गार्हपत्यायजागृहि'
ऋ. १०.८५.२७, अ. १४.१.२१, आप.मं.पा. १.९.४.
हे वधू, इस गृह में तू गार्हस्थ्य धर्मपालन करने के लिए या गृह पत्नीत्व के लिए जागृत हो ।
(९) राजा, (१०) गार्हपत्य अग्नि ।
'सुगार्हपत्यो वितपन् अरातिम्'
अ. १२.२.४५, तै.ब्रा. १.२.१.१०, आप.श्रौ.सू. ५.१२.३,

गावौ – (१) एक दूसरे के पास जाने वाले (२) एक दूसरे को प्राप्त स्त्री पुरुष (३) रथ में लगे दो बैल, (४) राजा प्रजा ।
'स्थिरौ गावौ भवतां वीडुरक्षः'
ऋ. ३.५३.१७, आश्व.गृ.सू. २.६.७.
(५) प्राण और अपान ।
'एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ'
ऋ. १०.२७.२०

गाः – गावः (गौएं) । वेद में प्रथमा के बहुवचन में जस् विभक्ति का शस् आदेश हो जाता है ।

ग्ना – गच्छन्ति एताः अर्थात् इन के निकट मैथुन के लिए पुरुष जाते हैं अतः ये ग्नाः हैं गम् + टापू = ग्ना । पृषोदरादिवत् निपात से सिद्ध, अर्थ (१) स्त्री । (२) जल
'समस्मिन् जायमान आसतग्नाः'
ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७
इस पुरुरवा के जन्म लेने पर अर्थात् वर्षा ऋतु के आने पर जल उसे घेर कर खड़े हो गए या देवी स्त्रियां उस घेरकर बैठ गईं ।
(३) ऋतुगामिनी, (४) गमन शील जल, (५) यास्क ने इसका अर्थ देवपत्नी किया है, (६) वेद वाणी ।
छन्दासि वैग्नाः तै.ब्रा. ५.१.७
पुनः –
'ग्नास्त्वा कृन्तन्नपसो ऽतन्वत
वयित्र्योऽवयन् वरुणस्त्वा नयतु
देवि दक्षिणो बृहस्पतये वासः
तेनामृतत्वमशीय
वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ।'
का.सं. ९.९.
यह वासः प्रतिग्रहण तक के लिए मंत्र है । हे वस्त्र, स्त्रियों ने तुझे सूत्र रूप में काता(अकृन्तन्), छोटे छोटे कुविन्द के लड़कों ने तुझे ताना (अपसः अतन्वत) कुशल बुनने वाली कुविन्द की लड़कियों ने तुझे बुना (वयित्र्य अवयन्) तदुपरान्त वरुण देवता या जल के स्वामी कृषक (वरुणः) मुझ अध्यात्मा वेत्ता को (बृहस्पतये) दक्षिणा के साथ अन्दर अर्पित करें (आनयतु) और हे देवि दक्षिणे । तुझे इस प्रकार पाकर में अमृतत्व प्राप्त करू (अमृतत्वम् अशीम) तथा

इस दक्षिणा दान से (तेन) दाता यजमान को अन्न या आयु हों (वपः यूयात्) तथा मुझे सुख हो (महयं च मयः)।

ग्नावत् – (१) ग्ना + वतुप् = ग्नावत्। अर्थ– स्त्री युक्त (२) सब पदार्थों को प्राप्त करने की शक्ति वाला।
'ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना'
ऋ. १.१५.३, वाज.सं. २६.२१.
(२) प्रशंसित वाणी वाला, (४) स्तुति वाणियों का स्वामी, (५) विद्वान्।
'तव ग्नावोमित्रमहः सजात्यम्'
ऋ. २.१.५

ग्राभः – शरीर को जकड़ने वाला रोग।
'इदमहं रुशन्तं ग्राभम्'
अ. १४.१.३८

ग्राम – (१) गांव। ग्राम शब्द का अर्थ समूह है। गाँव अनेक भवनों का समूह होने के कारण ग्राम कहलाया।
'यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेन श्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा'
वाज.सं. ३.४५,२०.१७, मै.सं. १.१०.२, १.१०.२, का.सं. ९.४. श.ब्रा. २. ५.२.५५, १२.९.२.३.
(२) जन समूह।
'स ग्रामेभिः सनिता सरथेभिः'
ऋ. १.१००.१०
(३) संघ।
'यस्य ग्राया यस्यविश्वेरथासः'
ऋ. २.१२.७, अ. २०.३४.७.

ग्रामजित् – (१) शत्रु समूहों का विजेता (२) गावों का विजेता।
'ग्राम जितं गोजितं वज्रबाहुम्'
अ. ६.९७.३, १९.१३.६.
'नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरः'
ऋ. ५.५४.८, आश्व. श्रौ.सू. २.१३.७.

ग्रामघोषी – (१) ग्रामों में अपने नाद की घोषणा करता हुआ –दुन्दुभि।
'प्रवेदकृत् बहुधा ग्रामघोषी'
अ. ५.२०.९

ग्रामणी – ग्राम + नी ग्राम का नेता।
'सहस्रदा ग्रामणीर्मारिषन् मनुः'
ऋ. १०.६२.११

ग्रामा – (१) समस्त इन्द्रियगण, (२) जीवगण, (३) लोकगण, (४) सैनिक संघ।
'यस्य ग्रामा यस्यविश्वे रथासः'
ऋ. २.१२.७, अ. २०.३४.७

ग्राम्याः पशवः– (१) समान धर्म का पालन करते हुए आत्मिक मार्ग का दर्शन करते हुए (२) ग्राम्य पशु।
'य ग्राम्याः पशवो विश्वरूपा'
अ. २.३४.४, ३.१०.६, तै.अ. ३.११.११.१२, आश्व.श्रौ.सू. २.२.१७, आप.श्रौ.सू. ६.५.७, मा.श्रौ.सू. १.६.१.१५, साम.मं.ब्रा. २.२.१४, हि.गृ.सू. २.१७.२.

ग्रावग्राभ – (१) यो ग्राव्णः गृह्णाति (प्रशंसा ग्रहण करने वाला) दया (२) यज्ञ के सात ऋत्विजों में एक ग्रावस्तु नामक ऋत्विज् (३) विद्वानों और शस्त्रास्त्र बल को अपने वश में रखने वाला।
'ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः'
ऋ. १.१६२.५, वाज.सं. २५.२८, तै.सं. ४.६.८.२, मै.सं. ३.१६.१, १८२.६, का.सं. (अश्व). ६.४.
(४) सोम रस में प्रस्तरों को ग्रहण करने वाला, (२) राष्ट्र में विद्वानों का आदर सत्कार करने वाला, (६) शस्त्रास्त्र।

ग्रावहस्तासः – (ब.व.) (१) सोमरस चुराने के लिए हाथों में ग्रावा धारण करने वाले ऋत्विज्।
'ग्रावहस्त्रासो अध्वरे
यज्ञेषु देवमीडते।'
ऋ. १.१५.७, नि. ८.२.
अहिंसामय यज्ञ में हाथों में ग्रावा धारण किये ऋत्विज् यज्ञों में धन देने वाले देव को पूजते या जांचते हैं (२) वज्र आदि शस्त्रास्त्रों को हाथ में लिए हुए (३) उत्तम स्तुति करने में सिद्ध हस्त

ग्रावा – (१) विद्वान् पुरुष जो उत्तम ज्ञान का उपदेश करता है। (२) पत्थर जिससे सोमरस चलाया जाता है।
'पातु ग्रावा पातु सोमो नो अंहसः'
ऋ. ६.३.२.

ग्रावाणः – क्षत्रिय।
'ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः'
ऋ. ७.१०४.१७, अ. ८.४.१७.

ग्रावाणा – (द्वि.व.) (१) दो बड़ी शिलाएं, (२) दो महामेघ, (३) उत्तम वचन और उपदेश कहने

वाले ।
'ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे'
ऋ. २.३९.१, ऐ.ब्रा. १.२१.११.

ग्रावन् – हन् + क्वनिप् = ग्रावन् (हन् का ग्रा) । अर्थ – पत्थर जिसमें सोम रस चुलाया जाता है सोमाभिषवण कर्म में पत्थर पर चोट दी जाती है । (हन्यन्ते हि सोयाभिषवणे) अथवा (२) गृ क्वनिप् = ग्रावन् (जिसकी स्तुति की जाय या जिस पर पीसने से शब्द निकलता है । (३) गृह + क्वनिप् = ग्रावन् (गृह का ग्रा) गृह्यन्ते हि ते सुन्वभिः (सवन करने वाले पत्थर को गहते हैं) ।
'ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः'
ऋ. १०.९४.१, नि. ९.९.
ग्रावों के लिए आप भी प्रशंसापूर्ण वचन बोलें । शिलाओं के लिए ही प्रसंग से दृढ़, मधुरभाषी और ग्राह्य सज्जन को ग्रावा कहा जाता है ।
(४) कठोर, विवाह के समय वधू को शिलारोपण करते समय ।
'अश्मेव त्वं स्थिराभव'
का उच्चारण किया जाता है ।
आश्व.गृ.सू. १.७.७. शां.गृ.सू. १.१३.१२, साम.मं. ब्रा. १.२.१., पा.गृ.सू. १.७.१, आप मं.पा. १.५.१, २.२.२, हि.गृ.सू. १.४.१ ,१९.८.
ग्राव सूक्त में यज्ञशिला के व्याज से स्थिर मनुष्यों का वर्णन है ऐसा आर्यसमाजी विद्वानों का मत है । सायण के अनुसार सोम रस उत्पन्न करने के लिए यह शिलाओं का वर्णन है ।

ग्राह्याः पुत्रः – अंगों के शिथिल करने वाली शक्ति का पुत्र स्वप्न ।
'ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः'
अ. १६.५.१

ग्राहिः – (१) शरीर को जकड़ लेने वाला रोग ।
'ग्राहिर्जग्राह यदिवैतदेनम्'
ऋ. १०.१६१.१, अ. ३.११.१, २०.९६.६.
(२) हाथ पैर जकड़ देने वाली सुख सम्पद् चाट जाने वाली वृत्ति ।
'परोग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान्'
अ. ८.२.१२.
(३) कैदखाना, जेल, कारागृह ।
'ततो यदित्वा ग्राहि रानशे'
अ. ६.११३.१,३.

ग्राही – (१) पकड़ लेने वाली कैद, (२) अविद्या ।
'ग्राह्या बन्धेभ्यः परिपात्वस्मान्'
अ. १९.४५.५
'स ग्राह्याः पाशान् विचृत प्रजानन्'
अ. ६.११२.१,२
(३) ग्रहण करने वाली भोग तृष्णा ।
'दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि'
अ. २.९.१

ग्लावी – जिसे ग्लानि हो जाय ।
'पश्चादोषाय ग्लाविनम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

गिर् – गृ + क्विप् = गिर (ऋत इद्धातोः से ऋ का पर) (स्त्री.)
(१) वाणी (२) स्तुति ।
'कदा नः शुश्रुवद् गिरः इन्द्रोअंग'
ऋ. १.८४.८, अ. २०.६३.५, साम. २.६९३, नि. ५.१७.
पुनः–
'तमिद्वर्धन्तु नो गिरः
वत्सं संशिश्वरीरिव य इन्द्रस्य हृदंसनिः'
ऋ. ९.६१.१४, साम. २.६८६., नि. १.१०.
हमारी स्तुतियां (नः गिरः) उस सोम को (तम् इत्) जो (यः) इन्द्र के हृदय को संभक्त करने वाला है । (इन्द्रस्य हृदं सनिः) बढ़ावें (वर्धन्तु) जैसे शिशुवाली माताएं (शिश्वरीः) बालक को बढ़ाती है ।
'तमूषु समना गिरा'
ऋ. ८.४१.२, नि. १०.५
मैं उस वरुण को समना वाणी से स्तुति करता हूँ ।

गिरति – गृणाति शब्द करोति (स्तुति करता है , शब्द करता है) । गृ के लट् में प्रथम पुरुष एक वचन का रूप ।

गिरः (१) अन्न, अन्नो का संग्रह ।
'गिरःछन्दः'
वाज.सं. १५.५, तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७,११२.१, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.५.

गिरःयज्ञम् – वाणी का सहयोग
'यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च'
ऋ. ५.४३.१०

गिरा गिरा – (१) प्रत्येक वाणी में ।
'गिरगिरा च दक्षसे'
ऋ. ६.४८.१, साम. १.३५.२.५३, वाज.सं. २७.४२.मै.सं. २.१३.९, १५९.१०, का.सं. ३९.१२, पंच.ब्रा. ८.६.५, आप.श्रौ.सू. १७.९. १.
(२) अन्तरिक्षस्थ मेघ गर्जनाओं का स्वामी सूर्य (वाणियों या स्तुति कर्त्ता का पालक ।
'पतिर्भव वृत्रहन् सूनृतानाम्
गिरां विश्वायुर्वृषभो वणोधाः'
ऋ. ३.३१.१८

गिरी – गृ + कि = गिरि । गिरिः समुद्गीर्णः भवति । (भूमि के वमन के सदृश गिरि दीख पड़ता है । उसी प्रकार मेघ भी अन्तरिक्ष के वमन में समान दीख पड़ता है) । अर्थ (१) पर्वत, (२) मेघ ।
'अरायि काणे विकटे
गिरिं गच्छ सदान्वे'
ऋ. १०.१५५.१, नि. ६.३०.
हे दुर्भिक्षाधिदेवते । हे विकृतांगि ! हे कुत्सित दर्शने दरिद्रते ! हे सदा नहीं नहीं कहने वाली तू पर्वत पर चली जा । मेघ के अर्थ में–
'निराविध्यत् गिरिभ्य आ
धारयत् पक्वमोदनम्
इन्द्रो बुन्दं स्वाततम्'
ऋ. ८.७७.६०, नि. ६.३४.
इन्द्र ने मेघों को लक्ष्य कर (गिरिभ्यः) अच्छी तरह खींचे वज्र को चलाया (स्वाततं बुन्दम् निराविध्यत्) और इस पके भात, खीर या अन्न की उत्पत्ति के लिए आधार भूत जल को स्थिर किया (पक्वम् ओदनम् आधारयत्) ।

गिरिचर – पर्वतों पर रहने वाला ।
'नम उष्णीषिणे गिरिचराय'
वाज.सं. १६.२२, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.७. का.सं. १७.१२.

गिरिजा – (१) वाणी में प्रसिद्ध, (२) वेद में प्रसिद्ध परमेश्वर ।
'मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत्'
ऋ. ५.८७.१.

गिरित्र – (१) विद्वानों का रक्षक, (२) अपनी व्यवस्था में सबका रक्षक–रुद्र, (३) गिरि का रक्षक या गिरि के रक्षा करने वाला ।
'शिवां गिरित्र तां कुरु'
वाज.सं. १६.३, तै.सं. ४.५.१.२, मै.सं. २.९.२, १२१.२, का.सं. ७.११, नील. उप. ५. श्वे.उप. ३.६.

गिरिभ्रज् – (१) पर्वत से झरने वाली जलधारा ।
'गिरिभ्रजो नोर्मयोमदन्तः'
ऋ. १०.६८.१, अ. २०.१६.१, तै.सं. ३.४.११.३, मै.सं. ४.१२.६, १९७.१, का.सं. २३.१२.
(२) मेघ से भ्रष्ट होने वाली गिरने वाली जलधारा ।

गिरिश – गिरि अर्थात् पर्वत पर शयन करने वाला रुद्र, शिव (२) समस्त वाणियों या आज्ञाओं में स्वयं आज्ञापक एवं व्यवस्थापक रूप से विद्यमान–रुद्र ।
'गिरशाच्छा वदामसि'
वाज.सं. १६.४, तै.सं. ४.५.१.२, मै.सं. २.९.२, १२.१.३. का.सं. १७.११, नील.उप. ६.

गिरिशन्तः – (१) आज्ञा रूप या वाणी में सबको शान्ति दायक, सब पर बरसाने वाले स्वरूप में सबको शान्तिदायक रुद्र ।
'यामिषुं गिरिशन्त
हस्ते बिभर्ष्यस्तवे'
वाज.सं. १६.३, तै.सं. ४.५.१.१, मै.सं. २.९.२, १२१.१, का.सं. १७.११, नील.उप. ४.श्वे. उप. ३.६.

गिरिष्ठाः – (१) पर्वत निवासी । यहां इन्द्र का विशेषण है ।
'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः'
ऋ. १.१५४.२, १०.१८०.२, अ. ७.२६.२, ८४.३, साम. २.१२२३, वाज.सं. ५.२०, १८.७१, तै.सं. १.६.१२.४, मै.सं. का.सं. २.१०,८.१६, श.ब्रा. ३.५.३.२३,९.५. २.५, तै.ब्रा. २.४.३.४, नृसिंह पू.ता.उप. २.४. आश्वश्रौ.सू. २.१०.१४, आप.श्रौ.सू. ११.९.१, नि. १.२०
हे इन्द्र ! तू व्याघ्र सिंह जैसा भयंकर पर्वत निवासी एवं हिंसक होने के कारण कुत्सित गमन या कुत्सित चरण सर्वत्रगामी है (कुचरः) ।
(२) वाणी में कुशल स्थिर
'गिरिष्ठां वृषणं हुवे'
ऋ. ८.९४.१२

गिर्वणस् – गीः + वन (संभजन अर्थ में) = गीर्वणस् (दीर्घ का अभाव छान्दस्य है) गीर्वणीयम्

(गीभिः एवं वनयन्ति) स्तुतियों से इसे लोग भजते हैं । अर्थ है – (१) देव, देवता

'गिर्वणाः देवो भवति
घआमासु पक्वमैरयः
आ सूर्य रोहयोदिवि
धर्मं न सामान्तपता सुवृक्तिभिः
जुष्टं गिर्वणसे बृहत्'

ऋ. ८.८९.७, साम. २.७८१, तै.सं. १.६.१२.२. का.सं. ८.१६, नि. ६.१४.

हे इन्द्र ! परमेश्वर ! अपक्व या अप्राप्त यौवन गौवों में (आमासु) परिणत एवं पूर्ण दूध तूने प्रेरित किया है (पक्वम् ऐरयः) । द्युलोक मे तू ने सूर्य को आरोपित किया (दिवि सूर्यम् आरोहयः) और हे स्नाताओं, तुम सुन्दर (स्तुतियों सुवृक्तिभिः) प्रिय तथा बृहत् धर्म के समान सुप्रयुक्त एवं सुष्टु सामगान को इन्द्र के लिए गाओ (जुष्टं बृहत् धर्मं न समान् निर्वणसे तपत) । अन्य अर्थ, हे परमेश्वर, तू अपक्व ओषधियों में पक्व रस डालता है (आमासु पक्वं ऐरयः), द्युलोक में सूर्य को उदित कराता है, संवत्सर में आने वाले धर्म दिनों की तरह (सामं धर्म च) हे मनुष्यो, तू कायिक, वाचिक तथा मानसिक शुद्धियों के द्वारा (सुवृक्तिभिः) तपश्चरण करो (तपत) और पूज्य देव के लिए प्यारे तथा महान् साम को गाओ (निर्गणसे जष्ट बृहत्) ।

(२) स्तुतियों द्वारा भजन करने योग्य

'अधा हीन्द्रः गिर्वणः'

ऋ. ८.९८.७, अ. २०.१००.१, साम. १.४०६, २.६०, गो.ब्रा. २.४.१७, पंचब्रा. १७.१.५, आश्व.श्रौ.सू. ६.१.२, वै.सू. ३९.७, ४०.४,

(३) वाणी या विशेष शब्द के साथ विभक्त होने वाला अग्नि ।

'तं त्वा गीर्भिः गिर्वणसम्'

ऋ. २.६.३

गिर्वणः – (१) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य ।

'गिर्वणः पाहि न सुतम्'

अ. २०.६.६.

(२) समस्त वाणियों का सेवन करने वाला ।

'न हि त्वदन्यो गिर्वणः गिरः सधत्'

ऋ. १.५७.४, अ. २०.१५.४, साम. १.३७३.

गिर्वणस्तमः – (१) सबसे अधिक प्रशंसनीय ।

'गिर्वणस्तमो अध्रिगुः'

ऋ. ६.४५.२०

(२) वाणी द्वारा अति स्तुत्य इन्द्र, परमेश्वर ।

'तं गीर्भिर्गिर्वणस्तमः'

ऋ. ८.६८.१०

गिर्वाहस् गिर्वाहाः – (१) गिर् + वह् + असुन् = गिर्वाहस् गीर्भिः वेद वाणीभिय उह्यते (जो वेद वाणियों से प्राप्त होता है) (२) समस्त वाणियों को धारण करने वाला परमेश्वर, (३) जानने योग्य पदार्थों को जानने तथा दिखलाने वाला ।

'स्तोत्रं सधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते
विभूतिरस्तु सूनृता'

ऋ. १.३०.५, अ. २०.४५.२, साम. २.९५०.

हे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे वीर ! जिस समस्त स्तुति वाणियों को धारण करने वाले उनके योग्य तेरी स्तुति है । उस तेरी ही यह उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण विविध सम्पदा है ।

(३) वाणियों द्वारा स्तुत्य परमेश्वर ।

'गिर्वाहसं गीर्भि र्यज्ञवृद्धम्'

ऋ. ६.२१.२

'गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम्'

ऋ. ४.४४.१, अ. २०.१४३.१

(४) वाणियों को देने वाला इन्द्र परमेश्वर ।.

'गिरश्च यास्ते गिर्वाहः'

ऋ. ८.२.३०

(५) समस्त स्तुतियों का पात्र ।

'गिरिश्च गिर्वाहसे सुवृक्ति'

ऋ. १.६१.४, अ. २०.३५.४.

गीयमान– गाया जाता हुआ ।

'न गायत्रं गीयमानम्'

ऋ. ८.२.१४, साम. १.२२५, २.१.५५.

गीः – (१) परमात्मा की उद्गिरण करने वाली शक्ति ।

'गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा'

अ. १३.१.५४.

गीर्ण – गृ + क्त = गीर्ण ।

'गीर्णं भुवनं तमसापगूढम्'

ऋ. १०.८८.२

ग्रीवा – (स्त्री) निगरण साधना (निगलने की साधना) कण्ट, गर्दन, गृ (उद्गारण करना)

अथवा गृह् (ग्रहण करना) +वन् +टाप् = ग्रीवा । निपातन द्वारा सिद्ध । तया गिलन्ति अन्नम् उससे अन्न निगलते हैं) । तयाहि शब्दो गीर्यते (उससे शब्द उच्चारित होता है) । तयाहि उदकादि गृह्यते (उससे उदक आदि का ग्रहण किया जाता है) ।
'ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः'
ऋ. १०.१६३.२, अ. २.३३.२, २०.९६.१८. आप. मं.पा. १.१७.२.

ग्रीष्मः – (१) ग्रीष्म नामक ऋतु ।
'ग्रीष्म इस्मः शरद्धविः'
ऋ. १०.९०.६, अ. १९.६.१०, वाज.सं. ३१.१४, तै.आ. ३.१२.३.
(२) ग्रस्यन्ते अस्मिन् रसाः (इस ऋतु में सूर्य की किरणों से पृथ्वी के रस खींचे जाते हैं) (३) ग्रस् + मक् = ग्रीष्म (ई का आगम्) ।
अथवा गम् + मक् = ग्रीष्म (गमयति क्षयं भूतानि) यह ग्रीष्म जीवों को क्षय को प्राप्त कराता है ।

गुद् – (१) क्रीड़ा शील, (२) व्यसनी पुरुष, (३) गुदा ।
'उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि'
वाज.सं. २३.२१, तै.सं. ७.४.१९.१, का.सं. (अश्व). ४.८. श.ब्रा. १३.५.२.३. शां.श्रौ.सू. १६.३.३६, आप.श्रौ.सू. २०.१८.४ .

गुदा – (१) गुदागत स्थूल नाड़ी, (२) आनन्द (३) मधु, (४) ऐश्वर्य , (५) उत्तेजना उत्पन्न करने वाला, (५) गति प्रदान करने वाला संचालक ।
'गुदाः पात्राणि सुदुधा न धेनुः'
वाज.सं. १९.८६, मै.सं. ३.११.९, १५३.१३, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.३.
(७) गुदा नाम की शरीर की नाड़ी जिसके द्वारा मल निकलता है ।
'आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यः'
(८) गुदा भाग ।
'गुदा आसन् सिनीवाल्याः'
अ. ९.४.१४

गुरु – घोषित करना ।
'दैवीं वाचं दुन्दुभ आगुरस्व'
अ. ५.२०.४

गुङ्गु – भूमि पर विचरने वाला ।
'अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करम्'
ऋ. १०.४८.८.

गुङ्गूः – प्रेम वश अव्यक्त अस्फुट शब्द करने वाली अति लज्जाशील स्त्री ।
'या गुङ्गूर्या सिनीवाली'
ऋ. २.३२.८.

गुगु – एक वेद कालीन देश ।

गुग्गुलु , गुल्गुलु – गुगुल नामक ओषधि जिसे राज यक्ष्मा का नाशक कहा है ।
'यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते'
अ. १०.३८.१
'इदं हिरण्यं गुल्गुलु'
अ. २.३६.७

गुल्गुलु – (१) गुग्गुलु जो सुगध और कृमि नाशक है , (२) रसना ।
'गुल्गुलूः पीला नलदी'
अ. ४.३७.३

गुरस्व – उद्यम कर (१) उत्तम अन्न खा और व्यायाम कर ।
'जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च'
ऋ. ३.५२.२

गुरुभृत् – पर्वतादि गुरु पदार्थों को धारण करने वाली पृथिवी ।
'मल्वं बिभ्रती गुरुभृत्'
अ. १२१.४८

गुल्म – लता आदि से आवृत देश ।
'ग्लौभिर्गुल्मान्'
वाज.सं. २५.८, मै.सं. ३.१५.७, १७९.१३.

गुल्फ – टखना, घुटने के नीचे का भाग ।
'केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ'
अ. १०.२.१
'कस्मान्नु गुल्फावधरावकृण्वन्'
अ. १०.२.२.

गुष्पित – (१) झाड़ झखाड़ के रूप में बड़ा हुआ ।
'व्रततेरिव गुष्पितम्'
ऋ. ८.४०.६, अ. ७.९०.१.
(२) शाखापुञ्ज, (३) गुप्तबल (४) छिपा हुआ ।
'विषाणे विष्य गुष्पितम्'
अ. ३.७.२

गुः – गच्छन्ति (जाते हैं) ।

'ऋतस्य देवा अनुव्रता गुः'
ऋ. १.६५.३
दिव्य अग्नि आदि से तेजस्वी पदार्थ (देवाः) तथा समस्त प्राकृतिक शक्तियाँ, विद्वान् या विजयेच्छु सत्यस्वरूप सबके प्रवर्त्तक परमेश्वर तथा सत्य ज्ञानमय वेदज्ञान और सबके संचालक सत्य व्यवहार सनातन ऋत के उपदेश किए कर्त्तव्यों का अनुसरण करते हैं ।

गुह – गूढ़ विज्ञान ।
'विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः'
ऋ. १.६७.३
हे विद्वन् ! बुद्धि में स्थिर हो, गूढ़ विज्ञान को प्राप्त कर । अथवा,
हे परमेश्वर, तू बुद्धि में भी अतिगूढ़ स्थान में परम विचार से प्राप्त होता है ।

गुहत् – गुप्त ।
'आ यद् रविं गुहदवद्यमस्यै'
ऋ. २.१९.५

गुह्य – (१) छिपने में कुशल । (२) गुहा में स्थित, (३) सुगूढ़ ।
'पायो घृतस्य गुह्यस्य नाम'
अ. ७.२९.१, मै.सं. ४.१०.१, १४२.५, का.सं. ४.१६.
(४) गुहा अर्थात् बुद्धि द्वारा जानने योग्य (५) गूढ़ तत्व ।
'परेषु या गुह्येषु व्रतेषु'
ऋ. ३.५४.५, १.११४.२.

गुह्यमानः – सुरक्षित ।
'अग्ने देव पर्णिर्भिर्गुह्यमानः'
वाज.सं. २.१७, तै.सं. १.१.१३.२, मै.सं. ४.१.१४, २०.५, का.सं. १.१२, ३१.११. तै.ब्रा. ३.३.९.६, श.ब्रा. १.८.३.२२, मा.श्रौ.सू. १.३.४.२६.

गुह्यव्रत – पालन करने योग्य ब्रह्मचर्यव्रत ।
'असि त्रितो गुह्येन व्रतेन'
ऋ. १.१६३.३, वाज.सं. २९.१४. तै.सं. ४.६.७.१, का.सं. ४०.६.

गुहा – (१) ग्रहा, खोह ।
'गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति'
ऋ. १.१६४.४५, अ. ९.१०.२७, श.ब्रा. ४.१.३.१७, तै.ब्रा. २.८.८.६, जै.उप.ब्रा. १.७.३,४०.१.नि. १३.९.
परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीवाणी के इन चार भेदों में तीन गुहा में छिपी हुई है। वे इधर उधर नहीं होतीं (वा इङ्गयन्ति) ।
(२) महान् एवं सबका आवरण करने वाला आकाश ।
'सगुहा चक्रे तन्वः पराचैः'
अ. ८.९.२
(३) गुह्य ज्ञान, (४) बुद्धि, रूपगृह गुह् (छिपाना) धातु से अच् और टाप प्रत्यय कर गुहा शब्द बना है ।
'अमे देवान् धाद् गुहा निषीदन्'
ऋ. १.६७.३
गुहस्या उत्तम ज्ञान में स्थित विद्वान्, आचार्य, देव या अन्य ज्ञानेच्छु पुरुषों को अपने ज्ञान में (गुहा) धारण करता है । (धात्) (५) हृदय ।
'य ईं चिकेत गुहा भवन्तम्'
ऋ. १.६७.७.
(६) आकाश, (७) बुद्धि ।
'गुहा वन्वन्त उपरां अभिष्युः'
ऋ. २.४.९.

गुहासतीगौ – (१) गुप्त स्थान में छिपी हुई गौ, (२) हृदय गुहा में छिपी हुई ज्ञानरश्मि या वेदवाणी
'उद्ना आजद् अंगिरोभ्यः
आविष्कृण्वन् गुहा सतीः'
ऋ. ८.१४.८, अ. २०.२८२, ३९.३, साम. २.९९१, ऐ.ब्रा. ६.७.६, गो. ब्रा. २.५.१३.

गुहासरभम् – गुह्यहृदय , गुफारूप आश्रय स्थान ।
'नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्'
ऋ. १०.६८.७, अ. २०. १६.७

गुहाहित – (१) गुफा, या गुप्त स्थानों में रखा धन, (२) बुद्धि मे रखा हुआ ।
'निधिं पणीनां परमं गुहाहितम्'
ऋ. २.२४.६,
(३) अन्तरिक्ष में स्थित ।
'गुहाहितं गुह्यं गूढ़मप्सु'
ऋ. २.११.५, ३.३९.६, १०.१४८.२.

गूढ़ –छिपा हुआ ।

गूढ्वीतमः – (१) गहरा अन्धकार (२) शोक मोह आदि
'गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि'

ऋ. ७.८०.२

गूर्त – (१) उद्यम, (२) बड़ा Great का पूर्वरूप

गूर्तमनाः – (१) उद्यमुक्त चित्त वाला, (२) ज्ञानोपदेश कर्त्ता ।
'प्रहोता गूर्तमना उराणः'
ऋ. ६.६३.४

गूर्तवचाः – श्रमपूर्वक वेदवाणी का अभ्यासी पुरुष
'इदमित्था रौद्रं गूर्तवचाः'
ऋ. १०.६१.१, ऐ.ब्रा. ५.१३.१२, कौ.ब्रा. २३.८.

गूर्तश्रवाः – (१) जिसके उद्यम का पथ फैला हुआ है ।
'शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः'
ऋ. १.१२२.१०
जो अत्यन्त बल शाली है (शर्धस्तरः) और जिसके उद्यम् का यश मनुष्यो में फैला हुआ है (गूर्तश्रयाः) ।
(२) गूर्त निगलितं शास्त्रश्रवणं येन (जिसने सभी शास्त्रों का श्रवण किया हो) (३) गुरु के श्रवण करने योग्य ज्ञान का धारण करने वाला ।
'पुरागूर्तश्रवसं दर्माणम्'
ऋ. १.६१.५, अ. २०.३५.५.
गुरु के श्रवण करने योग्य को धारण करने वाले या अन्यो के प्रति उपदेश करने वाले यशस्वी, नगरों और दुर्गों तोड़ने का या देहबन्धन तोड़ने वाले परमेश्वर को.. (४) ज्ञानोपदेशों का परमगुरु (५) अन्यों के प्रति उपदेश करने वाला (६) प्रशस्तकीर्तिमान्

गूर्तावसु – हाथों मे ऐश्वर्यों लिए हुआ ।
'ईजानमित् द्यौर्गूर्तावसुः'
ऋ. १०.१३२.१

गूर्ताशरद – (१) उद्यम्शील हिंसा कारिणी वीर सेना, (२) बड़ी शरद् ऋतु ।
'पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ताः'
ऋ. ४.१९.८

गूर्तिः – (स्त्री) (१) उद्यम युक्ता कन्या, (२) उद्यन शील या उपदेशों से युक्त, (३) स्तुतिशील ।
'तं गूर्तयो नेमिन्निषः परीणसः'
ऋ. १.१०.४९.२
उद्यम शील उपदेशों से युक्त या स्तुति शील (गूर्तयः) लज्जा से विनीत (नेमन्) हृदय से पति को चाहने वाली (इषः) शुभनासिका वाली सुन्दर स्त्रियां (परीणसः) जैसे पति को प्राप्त होती है ।

गूर्ध – स्तुति करना ।
'तं गूर्धया स्वर्णरम्'
ऋ. ८.१९.१, साम. १.१०९,२. १०३७.

गृणत् – उपदेशक ।

गृणन् – दुःख निवेधक करता हुआ
'पर्षत् विश्वाति दुरिता गृणन्तम्'
ऋ. ३.२०.४

गृणाति – गिरति, शब्द करोति । गृ धातु के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । गृ धातु स्तुत्यर्थक भी है ।

गृणान – स्तोता, उपदेशक ।
'इन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः'
ऋ. ३.५०.३

गृणाना – (१) गृ + शानच् + टाप् । कड़कड़ाती या गड़गड़ाती हुई विद्युत ।
'दिवा गृणाना' विद्युत् सहित उदक समूह से शब्द करती हुई इडा देवी

गृणामि – (१) स्तोमि (स्तुति करता हूँ) । गृ धातु के लट् उत्तम पुरुष ए. व. में । (२) प्रणाम करता हूँ – (३) भजता हूँ –(दया.)
'तं त्वा गृणामि तवसम् अतव्यान्'
ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.७, का.सं. ६.१०. नि. ५.९.
उस तुझ महान् विष्णु को (तवसम् तम्) मैं क्षुद्र या अल्पशक्ति वाला (अतव्यान्) प्रणाम करता या भजता हूँ (गृणामि) ।

गृणीषा – स्तुति का कार्य ।
'प्रियं प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि'
ऋ. ६.१५.६.

गृणीहि – उपदेश कर ।
'अभियज्ञं गृणीहि नः'
ऋ. १.१५.३, वाज.सं. २६.२१.
हे सब पदार्थों को प्राप्त करने की शक्ति वाले । हे सब पदार्थों को शुद्ध करने वाले ! तू यज्ञ, प्रजा पति परमेश्वर को लक्ष्य कर हमें उपेदश कर और सत्य ज्ञान के बल पर आनन्द रस का पान कर, क्योंकि निश्चय से तू ही अति रमण करने योग्य ज्ञान और आत्म तत्व को धारण करने वाला है ।

गृत्स – (१) मेधावी (२) विषय लम्पट या

(३) मेधावी-महीधर ।
(४) स्तुतिशील, गृ (स्तुति करना) से सिद्ध, ।
(५)उत्तम बुद्धिमान् ।
'गृत्साय चित् तवसे गातु मीषुः'
ऋ. ३.१.२

गृत्सपतिः - मेधावी पुरुषों का प्रमुख नेता
'नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वे नमः'
वाज.सं. १६.२५, तै.सं. ४.५.४.१.

गृत्समद - (१) गृत्स का अर्थ मेधावी और मदन का अर्थात् हर्षालु है । अर्थ-हुआ-गृत्स श्च मदश्च गृत्समदः (जो मेधावी तथा स्तोता होने के साथ हर्षालु भी है) ।
(२) एक वैदिक ऋषि (३) आनन्द चाहने वाला, (४) सब की आकांक्षा के पात्र परममेधावी परमेश्वर में ही हर्ष प्राप्त करने वाला योगी ।
'एवा ते गृत्समदाः शूरमन्म'
ऋ. २.१९.८

गृत्समदासः - (१) गृत्समदका विशेषण अर्थ (२) ज्ञान और मनन में आनन्द लेने वाले, (२) रथों पर आनन्द से युद्ध करने वाला ।
'त्वयायथा गृत्समदासो अग्ने'
ऋ. २.४.९

गृत्सी - (१) लोभकारिणी, (२) विषय विलास में फंसी स्त्री या जनश्रेणी ।
'या गृत्स्यः त्रिपञ्चाशीः'
अ. १९.३४.२

गृध् - लालच करना, आकांक्षा करना ।

गृध्नु - दूसरे का उत्कर्ष चाहने वाला-(दया.)
'साधुर्न गृध्नु स्तेव शूरः'
ऋ. १.७०.११
वह परमेश्वर साधना करने वाले भक्त के समान ही उसकी उन्नति करने का अभिलाषी होता है ।

गृध्र - (१) मंगलाभिलाषी ।
'अहानि गृध्राः पर्या व आगुः'
ऋ. १.८८.४.
(२) वेदाध्ययन करता हुआ मंगलाभिलाषी ब्राह्मण (३) गृध्रपक्षी ।

गृध्रयातु - (१) गीध के समान चाल चलने वाला ।
'सुपर्णयातुम् उत गृध्रयातुम्'
ऋ. ७.१०४.२२, अ. ८.४.२२,
(२) गीध के समान घेरा बांध कर प्रजा को नाचकर खा जाने वाला ।
(३) विद्यार्थियों को हृदय से चाहने वाला (४) उपदेश योग्य ज्ञान को धारण करने वाला आचार्य, (५) बृहस्पति का विशेषण (६) धन का आकांक्षी ।
'बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः'
ऋ. १.१९०.७

गृध्य - गृध् + यत् । मृतात्मा ।
'महुर्गृध्यैः प्रवदति'
अ. १२.२.३८

गृध्रौ - लौकान्तर की इच्छा करने वाले आत्मा और मन अथवा आत्मा और प्राण ।
'गृध्रौ द्यामिव पेततुः'
अ. ७.९५.१.

गृभ् - (१) गृभ्धातु स्तुतित करना, गिराना या उगलना अर्थ प्रयुक्त है, (गृणाति वा गिरति अवर्थान्) । (२) लेने देने-ग्रहण करने का व्यापार ।
'नियो गृभं पौरुषेयीमुवोच'
ऋ. ७.४.३

गृभ - गृह ।
'न्युध्रियन्ते य शसो गृभादा'
ऋ. ७.२१.२

गृभिः - ग्रहण करने वाली ।
'वनस्पतीनां गृभि रोषधीनाम्'
ऋ. १२.१.५७.

गृभीतातातिः - हाथ में लिए राष्ट्र का कल्याण ।
'गृभीता तातिः येन
यदीं नृभीततातये'
ऋ. ५.७४.४

गृष्टिः - (१) प्रथम प्रसूता गौ ।
'केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिः'
अ. ८.९.२४
(२) कृष्टि गौओं के समान इन विषयों और सभी पदार्थों और ज्ञानों तक पहुँचाने वाली या विषयों की और खींच लेने वाली इन्द्रिय या प्रजा ।
'अभूर्गृष्टीनाम् अभिशस्तिपा उ'
अ. २.१३.३, १९.२४.६, हि.गृ.सू. १.४.३, आप.मं.पा. २.२.८.
(३) गौ, (४) वेदवाणी जो उपदेश करने वाली

है ।
'गृष्टिःससूव स्थविरं तवागाम्'
ऋ. ४.१८.१०

गृह् – गृह (ग्रहण कर) ।

गृह – गृह + क = गृह । जो ग्रहण करता है अर्थात् जिसमें लोग रहते हैं है या चीजें रखी जाती हैं ।
'यच्चिद्धित्वं गृहे गृहे
उलूखलक युज्यसे'
ऋ. १.२८.५, आप.श्रौ.सू. १६.२६.१, मा.श्रौ.सू. ६.१.७
हे ओखल, यद्यपि तू घर घर में काम में लाया जाता है ।
गृहाः – प्रंसि च भूम्न्येव–अमर । गृह शब्द एक वचन में पुल्लिंग है ।
आधुनिक अर्थ – घर , स्त्री, गृहस्थ का जीवन, राशियों का मेष वृष आदि चिन्ह । गृही का अर्थ गृहवासी होता है ।

गृहपतिः – (१) गृहपालक, (२) गार्हपत्यअग्नि या गृहस्थों के लिए आवश्यक अग्नि, (३) अग्नि का एक विशेषण ।
'दूरे दृशं गृहपतिमथर्युम्'
ऋ. ७.१.१, साम. १.७२, २.७२३, का.सं. ३४.१९.३९.१५, आप.श्रौ.सू. १४.१६.१, मा.श्रौ.सू. ६.२.२. नि. ५.१०.
दूर ही से दीख पड़ने वाले अर्थात् प्रकाशमान गृहपालक गमनशील अग्नि को ।
(४) गृह अर्थात् जाया का पति ।
'गृहमेधी गृहपतिं मा कृणुः'
अ. १९.३१.१३

गृहपत्नी – गृह की स्वामिनी ।
'गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः'
ऋ. १०.८५.२६, अ. १४.१.१०,२.७५.

गृहमेधासः – (१) गृह में उत्तम बुद्धि रखने वाले, (२) गृह में यज्ञ करने वाले उत्तम गृहस्थ ।
'गृहमेधास आगत
मरुतो माप भूतन'
ऋ. ७.५९.१०, तै.सं. ४.३.१३.५, मै.सं. ४.१०.५, १५४.१२,

गृहमेधी – (१) गृहस्थ (२) गृहम् + एधी । गृह की बृद्धि करने वाला ।
'गृहमेधी गृहपतिं मा कृणुः'
अ. १९.३१.१३
'सान्तपनश्च गृहमेधी च
वाज.सं. १७.८५, आप.श्रौ.सू. १७.१६.१८.
(३) गृहस्थविद्वान् ।
'मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यः'
वाज.सं. २४.१६, मै.सं. ३.१३.१४, १७१.७, आप.श्रौ.सू. २०.१४.१० .

गृहमेधीय – गृहस्थो से प्राप्त या गृह के निर्वाह योग्य ।
'गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम्'
ऋ. ७.५६.१४, तै.सं. ४.३.१३.६, मै.सं. ४.१०.५, १५४.१५, का.सं. २१.१३.

गृहपः – गृह का पालक ।
'भद्राय गृहपम्'
वाज.सं. ३०.११, तै.ब्रा. ३.४.१.९.

गृहुः – (१) ग्रहण करने वाला, (२) दान का उत्तम पात्र ।
'सइद् भोजो यो गृहवे ददाति'
ऋ. १०.११७.३

गृहेकृता – (द्वि.व.) गृह में एकत्र पति पत्नी रूप से बने स्त्री पुरुष ।
'सुदंससा गृहेकृता'
ऋ. ८.१०.३

गेह – घर में विद्यमान स्त्री ।
'गेहायो पपतिम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

गेहय – गेह + यत् । (१) गृह का भृत्य ।
'नमस्तल्प्याय च गेह्याय च'
वाज.सं. १६.४४, तै.सं. ४.५.९.१, का.सं. १७.१५.
(२) गृहोपयोगी धन ।
'अभक्तं चिद् भजते गेह्यं सः'
ऋ. ३.३०.७

गैरिक्षित – (१) पर्वतादि दुर्ग का निवासी (२) वाणी, आज्ञा, वेद की स्थिर शर्तों की मर्यादा में रहने वाला ।
'गैरिक्षितस्य ऋतुभिर्नुसश्च'
ऋ. ५०.३३.८

ग्रैव्या – ग्रीवा + अण् + टाप् । ग्रीवा में उत्पन्न गण्ड माला ।
'सं यन्ति ग्रैव्या अभि'
अ. ६.२५.२

ग्रैष्म – गर्मी से उत्पन्न होने वाला ज्वर ।
'ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम्'
अ. ५.२२.१३

ग्रैष्मी त्रिष्टुप् – सूर्य के-प्रखर ताप वाले ऋतु के मानस तेज से उत्पन्न त्रिष्टुप् अर्थात् मन, वाणी और कर्म तीनों में हिंसा करने वाला क्षात्रबल ।
'त्रिष्टुप् ग्रैष्मी'
वाज.सं. १३.५५, तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९, १०४.४, का.सं. १६.१९. श.ब्रा. ८.११.८.

ग्रैष्मौ मासौ – ग्रीष्म ऋतु के दो महीने ।
'ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्'
अ. १५.१ (४) ५

गो अग्रा – (१) उत्तम वेद वाणियों से प्रकाशित होने वाली बुद्धि , (२) जिस कर्म या विचार में वेदवाणी मुख्य साक्षी रूप से रहे, (३) उत्तम वाणियों द्वारा आगे आने या प्रकाशित होने वाला विचार, (४) आज्ञा को आगे रख कार्य का किया जाना, (५) जिन कर्मों में इन्द्रियां अग्र ग्रामी हो
'उतनो धियो गो अग्रा'
ऋ. १.९०.५, आश्वश्रौ.सू. ९.११.१८.
(६) भूमि और सेनापति की आज्ञा को ही मुख्य लक्ष्य रखने वाली, (७) इन्द्रिय, धेनु या पृथिवी जिस में श्रेष्ठ हो – (दया.) (८) उत्तम वाणी तथा गौ आदि पशु सम्पदा का पालन करने वाली स्त्री ।
'गो अग्रया अश्वावत्या रभेमहि'
ऋ. १.५३.५. अ. २०.२१.५, मै.सं. २.२.६, २०.५. का.सं. १०.१२ .
(९) चक्षु आदि इन्द्रियों को आगे किया हुआ ।
(१) सावधान ।
'ये स्तोतृभ्यो गो अग्राम् अश्वपेशसम्'
ऋ. २.१.१६, २.१३.

गोः अंघ – (१) गौ का अंग, (२) मास –सा. (३) गौ, वाणी, योगादि उपाय वेदमन्त्र ।
'उतगोरङ्गैः पुरुधा यजन्त'
अ. ७.५.५

गो अजन – (१) गौ आदि हांकने का डंडा । (२) भूमियों का शासक (३) वाणी के अभ्यास में अप्रगल्भ ।
'दण्डा इवेद् गोअजनास आसन्'
ऋ. ७.३३.६

गोअर्णस् – (१) सूर्य की किरणों का प्रकाश या जल, (२) ज्ञान-वाणियों का विशद प्रकाश –ज्ञान (३) पृथिवी के ऐश्वर्य की प्राप्ति ।
'अग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः'
ऋ. १.११२.१८
(४) पृथ्वी रूप समुद्र ।
'गो अर्णसि त्वाष्ट्रे अश्व निर्णिजि'
ऋ. १०.७६.३
(५) किरणों और जलों से युक्त सूर्य और मेघ ।
(६) वेदवाणी मय ज्ञान जल ।
'महो ज्योतिषा शुचता गो अर्णसा'
ऋ. २.३४.१२.

गो ऋजीक – (१) गोदुग्ध आदि से मिश्रित (२) सुन्दर वाणियों से निश्चित धर्ममार्ग ।
'इमा हिं वां गोऋजीका मधूनि'
ऋ. ३.५८.४
(३) भूमि से सरलता से न्याय धर्म के अनुसार प्राप्त होने वाला ।
'असाविदेवं गोऋजीकमन्धः'
ऋ. ७.२१.१, साम. १.३१३, मा.श्रौ.सू. ९.१.३.
(३) गोरस दूध आदि से संस्कृत (४) इन्द्रियों को ऋजु, सौम्य सरल बनाने वाला, (५) वाणी से संस्कृत (६) भूमि आदि से सुसम्पन्न ।
'पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र'
ऋ. ६.२३.७

गोःऋतम् – (१) भूमि से प्राप्त अन्न, (२) वाणी के सत्य ज्ञान से प्राप्त सत्याचरण ।
'ऋतेन ऋतं नियत भीऽआगोः'
ऋ. ४.८३.९

गो ओपशा – (१) भूमि पर प्रशान्त रूप से विद्यमान् व्यापक शक्ति (२) बैलों के सदा समीप रहने वाला चाबुक ।
'या ते अष्ट्रा गो ओपशा'
ऋ. ६.५३.९

गोगतिः – (१) इन्द्रियों की चंचलता (२) गौओं के चलने का मार्ग ।
'स घाघते गोमीद्या गोगतीरिति,'
अ. २०.१२९.१३.

गोघ्न – गौ आदि पशुओं का हत्यारा ।
'आरे ते गोघ्नम् उत पूरुषघ्नम्

क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु'
ऋ. १.११४.१०
हे वीर पुरुषों को अपने आश्रय में बसाने वाले राजन् या रुद्र ! गाय आदि पशु के हत्यारे (गोघ्नम् उत् पुरुषघ्नम्) हिंसक पुरुष को तू राष्ट्र से दूर कर (आरे) । इस प्रकार हमें और तुझे दोनों को सुख प्राप्त हो ।

गोघात – गौ मारने वाला ।
'अन्तकाय गोघातम्'
वाज.सं. ३०.१८

गौजा – प्रजाओं द्वारा प्रजाओं में विशेष रूप से प्रादुर्भूत ।
'अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्'
ऋ. ४.४०.५, वाज.सं. १०.२४, १२.१४, तै.सं. १.८.१५.२, ४.२.१.५, मै.सं. २.६.१२,७१.१५. का.सं. १५.८, १६.८, ऐ.ब्रा. ४.२०.२, श.ब्रा. ५.४.३,२२, ६.७.३.११, तै.आ. १०.१०.२,५०.१, कठ उप. ५.२. महा.ना.उप. ९.३,१७.८, नृसिहं पू.ता.उप. ३. व.पू.ता.उप. २.३, नि. १४.२९.

गोजात – (१) वेदवाणी में निष्णात ।
'गोजाता उतये यशियासः'
ऋ. ७.३५.१४, १०.५३.५, अ. १९.११.४.
(२) वाणी से सुशिक्षित विद्वान् तेजस्वी जन ।
'गोजाता अप्या मृडता च देवाः'
ऋ. ६.५०.११

गोजित् – (१) इन्द्रियों, प्राणों एवं समस्त सूर्यलोक को वश करने वाला परमेश्वर –रोहित ।
'वसुजिति गोजिति संधनाजिति'
अ. १३.१.३७
(२) गौओं, भूमियों, वाणियों या इन्द्रियों को वश करने वाला ।
'गोजिन्नः सोमो रथजित् हिरण्यजित्'
ऋ. ९.७८.४
(३) गमनशील पृथिवी सूर्य आदि को भी जीतने वाला–उनका भी स्वामी इन्द्र, परमेश्वर ।
'अश्वजिते गोजिते अब्जिते भर'
ऋ. २.२१.१

गोजिता – (द्वि.व.) बाहुओं का विशेषण (१) सेनाओं को पीड़त करने वाली भुजाएं, (२) भूमियों को विजय करने वाली, (३) अपने विस्तार और बल सामर्थ्य से वृषभ को जीतने वाली भुजाएं ।
'गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः'
ऋ. १.१०२.६
मेरी भुजाएं गोजित हैं, तू अनन्तज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त है । सब से श्रेष्ठ तथा प्रजाओं को प्रबन्ध व्यवस्था द्वारा और शत्रुओं को वध, बन्धन, सन्धि आदि से बांधने वाला है ।

गोजीरा – (१) वर्तमान लोकों को चलाने वाला वेग ।
'गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या'
ऋ. ९.११०.३, साम. २.७१५, वाज.सं. २२.१८. ऐ.ब्रा. ८.११.३.
(२) गौ आदि पशुओं को जीवन देने वाली ।
(३) समस्त पृथ्वी लोक को जीवन देने की शक्ति ।

गोतम – (१) वेद वेत्ता ब्राह्मण –(दया) (२) गौतम ऋषि ।
(३) उत्तम किरण
'अकारि त इन्द्र गोतमेभिः'
ऋ. १.६३.९
हे ऐश्वर्यवन् इन्द्र या राजन् ! जिस प्रकार उत्तम किरणों से (गोतमेभिः) अन्न, ऐश्वर्य और नाना सुख उत्पन्न होते हैं । (ब्रह्माणि अकारि)

गोत्र – (१) मेघ (२) गो + त्रै । भूमि को पालन करने वाला पर्वत, (३) ज्ञानयुक्त हितकारी आज्ञा ।
'त्वं गोत्रामङ्गि रोभ्योऽवृणोरप'
ऋ. १.५१.३
प्राणो से युक्त प्राणियों के लिए (अंगिरोभ्यः) तू मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है ।
(४) ज्ञान की रश्मियों को रोकने वाला बाधक आवरण ।
'गोत्रा रुजत् अंगिरोभिर्गृणानः'
ऋ. ४.१६.८, अ. २०.७७.८
(५) गौ अर्थात् भूमि में सुरक्षित नाना बीज जो बार बार अंकुरित होते हैं ।
'विश्वायत् गोत्रा सहसा परीवृता'
ऋ. २.१७.१
(६) वेदवाणी का रक्षक आचार्य जिसके नाम पर गोत्र चला है (७) इन्द्रियों का रक्षा साधन, (८) वंश ।

'उद् गोत्राणि ससृजे दंसनावान्'
ऋ. ३.३९.४

गोदत्र – गौ, भूमि, इन्द्रियों या वाणी का दाता ।
'माते गोदत्र निरराम राधसः'
ऋ. ८.२१.६

गोदरिः – (१) गौ अर्थात् भूमि के विदारण कार्य में कुशल कृषक, (२) वाणी के मर्मों को खोल खोल कर बतलाने वाला, (३) भूमि या वाणी का धारक इन्द्र ।
'अर्वद्भिः शक्र गोदरे'
ऋ. ८.९२.११

गोदा – (१) चक्षुरिन्द्रिय व्यवहार प्रदः (आंखों को देखने की शक्ति देने वाला–सूर्य) (२) भूमि या वाणी देने वाला परमेश्वर । अंग्रेजी का God शब्द 'गोद' का ही विकृत रूप है ।
'गोदा इद् रेवतो मदः'
ऋ. १.४.२, अ. २०.५७.२.
सूर्य जिस प्रकार चक्षु आदि को सामर्थ्य प्रदान करता है। उत्तम भूमि तथा पशु आदि का प्रदाता परमेश्वर (५) वेदवाणीप्रद आचार्य (६) वाणी का दाता ईश्वर ।
'अस्मभ्यं सु मघवन् बोधि गोदाः'
ऋ. ३.३०.२१, वाज.सं. (का). २८.१४.
(७) भूमि, वाणी, ज्ञानरश्मि और गौ आदि पशुओं को देने वाला ।

गोधा – (१) वाणी को धारण करने वाली स्त्री (२) इन्द्रियों को धारण करने वाली मनः शक्ति ।
'गोधा परि सनिष्वणंत्'
ऋ. ८.६९.९, . २०.९२.६,
(३) वाणादि फेंकने वाली धनुष डोरी को धारण करने वाले चिल्ला को सदा चढ़ाए रखने वाला सैनिक, ।
'गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत्'
ऋ. १०.२८.१०
(४) गौओं का पालक ।
'गोधा कलका दार्वा घाटस्ते वनस्पतीनां'
वाज. सं.. २४.३५, तै.सं. ५.५.१५.१, मै.स. ३.१४.१६, १७५.१२, का.सं.(अश्व). ७.५.
(५) वाणी को धारण करने वाला (६) हाथ पर बांधा धर्म जिसे हस्तघ्न कहते हैं ।

गोधायस् – (१) गौओं को रोकने वाला पणि (२) ज्ञान वाणियों को रोकने वाला अज्ञान, (३) प्रकाश को रोकने वाला अज्ञानावरण ।
'गोधायसं विधनसै रदर्दः'
ऋ. १०.६७.७, अ. २०.९१.७, मै.सं. ४.१४.१०.२३०.१०, तै.ब्रा. २.८.५.१.
(४) गौ का अर्थ वाणी या जल है अतः गोधायस् का अर्थ हुआ– जलों का धारक मेघ –(५) वेदपति–परमात्मा –दया. ।

गोधुक् – (१) गौ दुहने वाला, (२) चिति रूप कामधेनु का दोहन करने वाला अभ्यासी आत्मा, (३) गोरूप आत्मा का दोहन करने वाला ।
'उपद्रव पयसा गोधुगोषम्'
अ. ७.७३.६, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व. श्रौ.सू. ४.७.४, शां. श्रौ.सू. ५.१०.१०
(४) गो + दुह् + क्विप् = गोदुह् । प्रथमा एक वचन में गोधुक् । सविता का विशेषण ।
'सुहस्तो गोधुक् उत दोहदेनाम्'
ऋ. १.१६४.२६, अ. ७.७३.७, ९.१०.४, नि. ११.४३.
इस माध्यमिका वाक् रूपी धेनु को दुहने में सधे हाथ वाला ग्वाला रूपी सविता (गोधुक्) दुहे (सविषत्) ।

गोधूम – गेहूं ।
'गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे'
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२, मै.सं. २.११.४, १४२.४, का.सं. १८.९.

गोन्योघाः – (१) वेग से जाने वाले अधीन जन समूह का स्वामी, (२) वाणियों को नम्रता से प्रवाहित करने वाला विद्वान् ।
'इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा'
ऋ. ९.९७.१०, साम. १.५४०, २.३६९, पंच ब्रा. १३.५.६,

गोपति – (१) गौओं का स्वामी, (२) पृथिवी का स्वामी, (३) इन्द्रियों का स्वामी, (४) इन्द्र का एक नाम ।
'यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी'
ऋ. १.१०१.४.
(५) किरणों का स्वामी सूर्य ।
(६) समस्त भूमियों ओर आज्ञा वाणियों का

स्वामी, (७) वेदवाणियों का पालक विद्वान् ।
'अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गाः'
ऋ. ३.३१.२१

गोपद – (१) यज्ञस्थान-सा. ।
'जिगीषमाणमिषआपदे गोः'
ऋ.१.१६३.७, वाज.सं. २९.१८, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं.(अश्व). ६.३.
गोपद या यज्ञ स्थान में सर्वत्र विजय के इच्छुक तुझे (२) पृथ्वी ।

गोपयत्य – वर्ण व्यत्यय से गोपायितव्य का गोपयत्य हो गया है । अर्थ है-(१) गोपायितव्य, रक्षणार्ह, रक्षणीय (२) रक्षणीय (३) जिस धन के लिए आप रक्षक हैं वह धन या आपका रक्षणीय धन ।
'तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम्
मित्रो यत् पान्ति वरुणो यदर्यमा'
ऋ. ८.२५.१३.
हे स्तोतागण, हम वरणीय (वार्यम्) उस प्रकार के धन वर्णन करते हैं (तत् वृणीमहे) जो सर्वोत्तम (वरिष्ठम्) एवं आपलोगों का रक्षणीय है (गोपयत्यम्) तथा जिस धन को सबके मित्रभूत मित्र, शत्रुओं के वारयिता तथा अर्यमा नामक तीन देवता पालते हैं ।
अन्य अर्थ – हम उस श्रेष्ठतम, अति विस्तृत तथा रक्षा के योग्य ज्ञान का वरण करते हैं (तत् वार्यं वरिष्ठम् गोपयत्यं वृणीमहे) जिसको मित्र, श्रेष्ठ तथा व्यापारी देवजन रक्षा करते हैं (यत् मित्रः वरुणः यत् अर्यमा पान्ति) ।

गोपरीणास् – भूमि का वाणी का महाबल
'इहत्वा गोपरीणासा'
ऋ. ८.४५.२४, अ. २०,२२.३. साम. २.८३

गोपरीणया – गो + परि + इन + असुक् । (१) पृथ्वी का राजा, (२) गोदुग्ध से मिश्रित, (३) पृथ्वी ।

गोपवन – (१) गो + पवन । वाणी द्वारा अपने पवित्र करने वाला, (२) गोप + वन । वाणी के पालक विद्वानों का सेवन करने वाला ।
'यं त्वा गोपवनो गिरा'
ऋ. ८.७४.११
(३) वाणियों ओर इन्द्रियों को वश में करने वाला ।

गोपा – गां पाति इति गोपा (जो गौ का पालन करता है वह गोपा है) । अर्थ (१) गोपायिता, आदित्य, (२) सभी इन्द्रियों का गोपायिता-आत्मा । गो शब्द इन्द्रिय, रश्मि, पृथवी, माध्यमिक वाक् (विद्युत्) और वाणी आदि के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । (३) गांपाति इति गोपाः (जो गौ का पालन करता है वह गोपा है । (४) पृथ्वी का पालक ईश्वर, ।
'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः'
ऋ. १.१६४.२१, नि. ३.१२.
समस्त भुवन का रक्षक या इन्द्रियों का स्वामी आत्मा ।
(५) पूषा-पूषा भी आदित्य का ही वाचक है ।
'पूषा त्वे तश्च्यावयतु प्रविद्वान्
अनष्टपशुः भुवनस्य गोपाः
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यः
अग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१, नि. ७.९.
यह मंत्र मृतक के कान में कहा जाता है ।
भगवान् आदित्य (पूषा) तुझे इस लोक से उत्तम लोक में ले जाए (त्व इतः प्रच्यावयतु) । वह पूषा अव्यवहित ज्ञान एवं प्रत्यक्षदर्शी (विद्वान्) अतएव अविनश्वर पशु युक्त अर्थात् उसके रहते पशु नष्ट नहीं होते या निरन्तर प्रकाश युक्त (अनष्ट पशुः) तथा सम्पूर्ण प्राणियों का रक्षक (भुवनस्य गोपाः) है । वह तुझे दक्षिणायन चन्द्र लोक से उत्तरायण पितृलोक में ले जाय या वह अग्नि या अग्रणी परमेश्वर तुझे इन पितरों के पास ले जावें (स त्वा एतेभ्यः पितृभ्यः परि ददत्) तथा अग्निदेव सुन्दर ज्ञान या सुन्दर धन वाले देवों के पास तुझे प्रेषित करें (अग्निः सुविदत्रियेभ्यः देवेभ्यः) अर्थात् मृतात्मा देवलोक में जावें ।
(६) किरणों और भूमियों का रक्षक अग्नि ।

गोपाजिह्व – (१) भूमि, वेद और वेदवाणी की रक्षा करने वाली जिह्वा अर्थात् वाणी और आज्ञा को धारण करने वाला ।
'गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा
विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि'
ऋ. ३.३८.९

गोपीथः – (१) सोमपान या दुग्धपान ।
'गोपीथाय प्रहूयसे'

ऋ. १.१९.१, साम. १.१६. कौ.सू. १२७.७, नि. १०.३६.
हे अग्ने ! तू सोम रस या दुग्ध के पान के लिए आहूत होता है ।
(२) वाणी का पान या पालन करने वाला ।
'उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः'
अ. १६.२.३.
(३) गो + पीथ । वाणियों का पान करने का कार्य ।
'गोपीथेन् उरुष्यतम्'
ऋ. ५.६५.६

गोपुरोगव – गाय का दूध ।
'घृतमन्नं दुहतां गोपुरोगवम्'
अ. ८.७.१२

गोबन्धुः – पृथ्वी, वाणी, इन्द्रिय का बन्धु ।
'गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे'
ऋ. ८.२०.८

गोभाक् – (१) इन्द्रियों पर प्रभाव करने वाली ओषधि ।
'गो भाज इत् किलासथ'
ऋ. १०.९७.५, वाज.सं. १२.७९, ३५.४, तै.सं. ४.२.६.२, मै.सं. २.७.१३,९३.१०., का.सं १६.१३.
(२) भूमि, सूर्य और रश्मियों का सेवन करने वाली ओषधि ।

गोभिः सन्नद्धा – स्नायु, श्लेष्मा, या ज्या से लिपटी इषु (वाणः) ।
'गोभिः संनद्धा पततिप्रसूता'
ऋ. ६.७५.११, वाज.सं. २९.४८, तै.सं. ४.६.६.४, मै.सं. ३.१६.३, १८७.२, का.सं. (अश्व). ६.१, नि. २.५,९.१९.
यह इषु स्नायु श्लेष्मा या ज्या से सन्नद्ध है और चलाए जाने पर गिरता है है (प्रसूता पतति) ।

गोमघा – द्वि.व. (१) गौ आदि धन से समृद्ध स्त्री पुरुष–अश्विद्वय ।
'अश्वामघा गोमघा वां हुवमे'
ऋ. ७.७१.१, कौ.ब्रा. २६.११.

गोमघाः – (ब.व.) भूमि के धन ।
'कदा गोमघा हवनानि गच्छाः'
ऋ. ६.३५.३

गोमत् – गोभिः सहितः गोमान् (गौओं के सहित गोमान् है । गो + मतुप् । अर्थ (१) गौओं का स्वामी , (२) सोमलता जिसमें गौ अर्थात् दुग्ध रहता है ।
(३) गो का अर्थ दुग्ध भी है अतः गोमत् का अर्थ दुग्धवान् भी है । (४) भूमि, वाणी एवं पशुओं से युक्त ।
'स नःस्तुतो वीरवत् धातु गोमत्'
ऋ. १०.१९०.८, ७.२३.६, अ. २०.१२.६, वाज.सं. २०.५४. का.सं. ८.१६, गो.ब्रा. २.४.२.

गोमत् रथ – बैलों वाला रथ ।
'आ गोमता नासत्या रथेन'
ऋ. ७.७२.१, ऐ.ब्रा. ५.१६.११, ७.९.२,कौ.ब्रा. २५.२, २६.८, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, ८.९.२.

गोमत् व्रज – (१) गौवों से युक्त गोष्ठ (२) इन्द्रियों से युक्त गोष्ठ रूप शरीर ।
'अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे'
ऋ. ८.७०.६, अ. २०.८१.२, ९२.२१, साम. २.२१३, मै.सं. ४.१२.४, १८९.२.
(३) उत्तम वाणियों से युक्त परम प्राप्तव्य ज्ञान मार्ग, (४) भूमियों से युक्त उत्तम राज्य ।
'आ गोमति व्रजे भजात्वं नः'
ऋ. ७.२७.१, साम. १.३१८, तै.सं. १.६.१२.१, मै.सं. ४.१२.३, १८५.१.
'कुवित् सस्य प्रहिव्रजं
गोमन्तं दस्युहा गमत्'
ऋ. ६.४५.२४, अ. २०.७८.३, साम. २.१०१८.
(४) वाणियों से युक्त सबसे आदरपूर्वक प्राप्तव्य गुरु, (५) रश्मि युक्त सूर्य (६) पृथिवी के स्वामी के अधीन रहने वाला ।
'आ देवयुं भजति गोमति व्रजे'
ऋ. ५.३४.५

गोमती – (१) प्रातः प्रभाकिरणों से युक्त उषा, (२) उत्तम पशु सम्पदा, (३) उत्तम इन्द्रिय शक्तियों से युक्त ।
'उषा अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि'
ऋ. १.९२.१४, साम. २.१०८२.
(४) किरणों वाली, (५) वेदवाणियों से युक्त ।
'उपायन उषसां गोमतीनाम्'
ऋ. २.२८.१
(६) उत्तम वाणियों से युक्त स्त्री
'अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासः'
ऋ. ७.४१.७, ८०.३, अ. ३.१६.७ वाज.सं.

३४.४०, तै.ब्रा. २.८.९.९. आप.मं.पा. १.१४.७.
(७) एक नदी, (८) वह नाड़ी जिससे आत्मा वाणी का उच्चारण करता है या इन्द्रिय शक्तियों को वश करता है ।
'त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुम्'
ऋ. १०.७५.६

गोमतीइष् – (१) उत्तम वाणियों से युक्त इच्छा, (२) उत्तम भूमियों से युक्त अन्न, (३) दुग्ध, दधि घृतादि गोरस से युक्त अन्न ।
'उतनो गोमतीरिषः उतसातीरहर्विदा'
अ. ८.५.९

गोमयःवसु – वाङ्मय धन ।
'य उदाजन् पितरो गोमयं वसु'
ऋ. १०.६२.२

गोमातरः – (१) सूर्य, पृथिवी या तीव्र वेग से उत्पन्न होने वाले वायु गण (२) पृथ्वी माता के पुत्र देशभक्त ।
'गोमातरो यत् शुभयन्ते अञ्जिभिः'
ऋ. १.८५.३
जिस प्रकार सूर्य, पृथिवी या तीव्रगति से उत्पन्न होने वाले वायुगण (गोमातरः) प्रकाशित होने वाली विद्युतों से सुशोभित होते हैं (अञ्जिभिः शुभयन्ते)

गोमान् – (१) गो + मतुप् । गौवाला या गौ का स्वामी–ज.दे.श. (२) दुग्ध युक्त सोमरस । गौ का अर्थदुग्ध भी है अतः गोमान् सोम रस का विशेषण हुआ ।
'अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः'
ऋ. ९.१०७.९, साम. २.३४८, नि. ५.३.
जल प्राय देश में गोस्वामी गायों के साथ रहता है ।
जल प्राय देश में गौओं के साथ सोमलता रहती है–सा.
(३) भूमि, गौ आदि सम्पदा, उत्तम वाणी और रश्मिरूप अधीन पुरुषों का स्वामी ।
'गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वीयज्ञः'
ऋ. ४.२.५, तै.सं. १.६.६.४, ७.६.७,३.१.११.१, मै.सं. १.४.३, ५१.२, १.४.८, ५६.८, का.सं. ५.६, ३२.६,

गोमायु – (१) वेद वाणियों को उत्तमरीति से प्रवचन करने वाले में समर्थ, (२) गौ के समान बोलने वाला मेढ़क ।
'गोमायुरेको अजमायुरेकः'
ऋ. ७.१०३.६

गोमीद्या – इन्द्रियों की हिंसामयी प्रवृत्तियाँ ।
'स घाघते गोमीद्या गोगतीरीति'
अ. २०.१२९.१३

गोमृग – (१) नीलगौ, गवय
प्रजापतये च वायवे च गोमृगः'
वाज.सं. २४.३०, मै.सं. ३.१४.११, १७४.७.
(२) गवय के समान भोग्य लक्ष्मी के लिए प्राणपण से लड़ने वाला ।
'अश्व स्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः'
वाज.सं. २४., तै.सं. ५.५.२३.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१०.का.सं. (अश्व). ८.२.

गोपोष – गौ आदि पशुओं की सम्पत्ति ।
'गोपोषं च मे वीर पोषं च धेहि'
अ. १३.१.१२, आश्व. श्रौ.सू. १.१२.३७. आप. श्रौ.सू. ९.३.१, मा.श्रौ.सू. ३.१.२८.

गोपीथ– गौ आदि पशुओं की संपत्ति ।

गोरभस – (१) गौ के दुग्ध के साथ मिश्रित सोमरस, (२) सेनापति की आज्ञा से वेग से जाने वाला अश्वबल ।
'हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे
गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम्'
ऋ. १.१२१.८
याज्ञिक प्राण के बल से प्राप्त होने योग्य (वाताप्यम्) थका देने वाले, तृप्ति करने वाले (मन्दिनम्) हरे सोमरस को (हरिम्) गोदुग्ध के मिश्रित कर (गोरभसम्) पत्थरों से कूटकर रस प्राप्त करते हैं ।
हे सेनापते, तेरी वृद्धि के लिए (वृधे) वीरगण अति प्रसन्न करने वाले (मन्दिनम्) वेगवान् वायु से प्राप्त होने वाले (वाताप्यम्) अति शीघ्रगामी सेनापति की आज्ञा पर ही वेग से जाने वाले (गोरभसम्) वेगवान् अश्वबल को (हरिम्) मेघों के समान अचल महारथियों के द्वारा (अद्रिभिः) दोहता है ।

गोलत्तिका – (१) एक प्रकार की पशुजाति (२) गोरतिका गौ के स्वभाव की स्त्री । अन्न वस्त्र से ही सन्तोष करने वाली, (४) पशु के समान रतियात्र प्रज्ञा चित्रिणी जाति की स्त्री ।

'रोहित् कृण्ड्णोची गोलत्तिका ता अप्सरसाम्' वाज.सं. २४.३७, तै.सं. ५.५.१६.१, मै.सं. ३.१४.१८, १७६.७, का.सं. (अश्व). ७.६.

गोवयुः – (१) वेद वाणी का शरीर, (२) वाणियों का आच्छादन करने वाला ।
'बृहस्पति र्गोव पुषो वलस्य'
ऋ. १०.६८.९, अ. २०.१६.९

गोविद् – गा भूमिं विन्दति येन (जिससे भूमिका का राज्य प्राप्त हो) रथ का विशेषण (२) सूर्यादि लोकों में व्यापक परमाणु, (३) इन्द्रिय रूप अश्वों से युक्त आत्मा (४) सुखकर इन्द्रियों को वश करने वाला शरीर ।
'स घा तं वृषणं रथम्
अधितिष्ठानि गोविदम्'
ऋ. १.८२.४, साम. १.४२४.
(४) ज्ञानमय परमेश्वर ।
(५) पृथिवी या गौ को प्राप्त कराने वाला ।
'गोविदम् वसुविदम्'
अ. २०.१२७.६, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.५.
(६) भक्तों की वाणी जानने वाला परमेश्वर ।
'पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदम्'
ऋ. ८.५३.१

गोविन्दुः – (१) वेद वाणियों और भूमियों को धारण करने वाला, (२) रश्मियों का धारक सूर्य (३) तेजस्वी ।
'गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत्'
ऋ. ९.९६.१९; साम. २.५२७.

गोशफ – (१) छोटा सा स्थान (२) गौ का खुर ।
'गोशफे शकुलाविव
अ. २०.१३६.१, वाज.सं. २३.२८. वाज.सं. (का.) २३.३०,शा. श्रौ.सू. १२.२४.२.२. ला.श्रौ.सू. ९.१०.५.

गोशर्य– गौ अर्थात् धनुष की डोरी और शर्य अर्थात् बाण चलाने में कुशल जन, (२) भूमि का हिंसक कृषक जन, (३) गौ आदि पशुओं का हिंसक ।
'याभिर्गोशर्यमावतम्'
ऋ. ८.८.२०
(४) इन्द्र ।
'यथागोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनि'
ऋ. ८.४९.१०

गोश्रीत – (१) भूमि पर आश्रित सूर्य द्वारा परिपक्व फलवान् वृक्ष, गोश्रीत से ही गाछ या गाछी शब्द बना है ।
(२) वाणियों द्वारा आश्रय करने या सेवने योग्य । (३) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ।
'सीदन्तस्ते वयो यथा
गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे'
ऋ. ८.२१.५, साम. १.४०७.

गोषखा – (१) गोसखा, (२) समस्त पृथ्वी का मित्र, (२) वाणी का मित्र, विद्वान् ।
'स्तोता मे गोषखा स्यात्'
ऋ. ८.१४.१, अ. २०.२७.१, साम. १.१२२, २.११८४.
(३) इन्द्रियों का मित्र, (४) भूमि का मित्र, (५) गो सम्पदा का मित्र (६) धनुष की डोरी का मित्र अर्थात् शस्त्रादिसम्पन्न ।

गोषणाः – गां सनोति इति गोषणाः । गो + सन् + असुन् = गोषणाः । अर्थ–वेदवाणी को भजने वाला ।
'प्र ते बधू विचक्षण
शंसामि गोषणो नपात्'
ऋ. ४.३२.२२
हे दूरदर्शी तथा वेदवाणी को भजने वाले राजन् (विचक्षण गोषणः), मैं तेरी विद्याधर्म को धारण करने वाली तथा अविद्या एवं अधर्म को हरने वाली अध्यापिका तथा उपदेशिका की प्रार्थना करता हूँ (ते बधू प्रशंसामि) ।

गोषणिः – (१) गौ देने वाली, (२) पृथ्वी या वाणी देने वाली धी–बुद्धि ।
'उत नो गोषणिं धियम्'
ऋ. ६.५३.१०, साम. २.९४,३.

गोष्ठ – (१) वार्त्ता, बातचीत, चर्चा, (२) गोशाला ।
'स्वंगोष्ठमावतम् देवी दुर्ये'
वाज.सं. ५.१७, श.ब्रा. ३.५.३.१८.
(३) वेदवाणी, ज्ञानकथा और आत्मा का निवास स्थान हृदय ।
'निर्वो गोष्ठादजामसि'
अ. २.१४.२
(४) गौ या इन्द्रियों का निवास स्थान देह ।
'आ नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति'
अ. ७.३९.१
गोशाला के अर्थ में–

'गावो गोष्ठादिवेरते'
ऋ. १०.९७.८, वाज.सं. १२.८२, तै.सं. ४.२.६.३, आप.श्रौ. सू. २१.२०.३, मा.श्रौ.सू. ७.२.७.

गोष्ठ्य– गोशालाओं के अध्यक्ष ।
'नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च'
वाज.सं. १६.४४

गोषाः – (१) गौओं, भूमियों एवं वाणी का दाता, (२) सोम ।
'गोषा इन्दो नृषा असि'
ऋ. ९.२.१०, साम. २.३९५, का.सं. ३५.६.
(२) भूमि का भोक्ता या दाता
'गोषाः शतसा न रंहिः'
ऋ. १०.९५.३

गोषादी – गौओं पर बैठने वाली गुरुसल नामक पक्षी ।
'गोषादी र्देवानां पत्नीभ्यः'
वाज.सं. २४.२४

गोष्ठान् – (१) गौ आदि पशुओं का स्थान, (२) सत्पुरुषों के गमन करने या बैठने विचारने का स्थान ।
'व्रजं गच्छ गोष्ठानम्'
वाज.सं. १.२५,२६, तै.सं. १.१.९.१, २. मै.सं. १.१.१०, ५.१४.१६, ६.३, ४.१.१०, १२.१६, का.सं. १.९.,३१.३, आप.श्रौ.सू.. २.१.५, मा.श्रौ.सू. १.२.४.१.

गोषु अग्रियः – (१) इन्द्रियों में भी सर्वश्रेष्ठ आत्मा, (२) इन्द्रियों के विकास के भी पूर्व शरीर में व्याप्त होने वाला आत्मा ।
'अग्रेवाचो अग्नियो गोषु गच्छति'
ऋ. ९.८६.१२, साम. २.३८३.

गोषुयुध् – (१) गौओं के लिए युद्ध करने वाला, (२) राष्ट्र, राज्य या पृथिवी के लिए युद्ध करने वाला ।

गोषुयुधः – (ब.व.) (१) भूमियों पर आ पड़ने वाली मेघ की जल धाराएं, (२) रश्मियों या गति दायक शक्तियों के बल पर परस्पर मिलने वाले मात्र से प्राकृतिक परमाणु (३) वाणी मात्र से प्रहार.करने वाली स्त्रियां ।
'गोषुयुधो न नि ष्वं चरन्तीः'
ऋ. १०.३०.१०,

गोषुयोधाः – (ब.व.) (१) भूमि प्राप्त करने के लिए युद्ध करने वाले (२) वेदादि वाणियों के विजयार्थ युद्ध करने वाले ।
'ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः'
ऋ. ३.३९.४

गोषेधा – (१) गाय के समान कद में छोटी स्त्री ।
'गोषेधां विधमामुत'
अ. १.१८.४

गोसतमः – गोस + तमः । उत्तम ज्ञानवाणी, गवादि पशुओं और भूमियों का सुख सेवन करने वाला ।
'दिविष्याम पार्थे गोषतमाः'
ऋ. ६.३३.५

गोः अग्रा – (१) दधि दुग्धादि मुख्य पदार्थ । गो शब्द मधुपर्क का वाचक है । जैसे-अर्हयेत् प्रथमं गवा ।
'सं सुष्टुती नसते सं गोअग्रया'
ऋ. ९.७१.८

गोः अंगाः – गौ, वाणी, योगादि उपाय या वेदमंत्र ।
'उत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त'
अ. ७.५.५.

गोःचित् – (१) जगम पृथिवी के पदार्थों का दर्शन, (२) सर्व प्रेरक परम प्रभु का दर्शन, (३) गौ का दर्शन ।
'अरेपसः सचेतसः स्वसरे
मन्युमत्तमाश्चिते गोः'
अ. ७.२२.२, सांम. १.४५८, आप.श्रौ.सू. २१.९.१५, मा.श्रौ.सू. ७.२.३.

गोःद्वे शते – (१) दो सौ गौएं, जीवन के दो सौ अयन-प्रति वर्ष दो अयन होने से १०० वर्ष में २०० अयन ।
'द्वे नप्तुः देववतः शते गोः'
ऋ. ७.१८.२२,

गोः निष्षिधम् – (१) वेदवाणी का निर्गमस्थान-परमेश्वर, (२) गतिमान संसार का प्रभव मूल कारण ।
'अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधंगोः'
ऋ. ३.५५.८

गोःपद – (१) सूर्य का रूप, (२) वाणी का ज्ञान ।
'महद् विजज्ञे अक्षरं पदे गोः'
ऋ. ३.५५.१

गोःपर्व– (१) पशुओं का जोड़ गांठ ।

(२) मेघों का जोड़-दया. । गौ का अर्थ मेघ भी है ।

'गोर्न पर्व विरदा तिरश्चा'

ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.११, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.

हे इन्द्र ! तू मेघों को, जैसे हिंसक पशुओं के जोड़ो को काटते हैं (गौः पर्वन) उसी प्रकार काट डाल (विरदा) तिरछी चाल से (तिरश्चा) । अथवा, जैसे सूर्य मेघों के जोड़ों को विदीर्ण करता है (गौः पर्व न) उसी प्रकार हे राजन् , तू दुष्टों को विदीर्ण कर (विरदा) -(दया.)

गोःव्रजः - (१) गौओं की गोशाला, (२) पृथिवी का एकमात्र आश्रय, (२) अतिवेगवती विद्युत् का आश्रय मेघ, (४) पृथ्वी निवासि प्रजा का जीवनाश्रय, (५) वेदवाणी का आश्रय या प्राप्ति मार्ग आचार्य ।

'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गौः'

ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.

गोः सनिः - (१) गवादि पशुओं को देने वाली भूमि, (२) ज्ञानवाणी को देने वाली वेदवाणी या स्मृति ।

'इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः'

ऋ. ३.१.२३, ५.११, ६.११, ७.११, १५.७, २२.५, २३.५, साम. १.७६, वाज.सं. १२.५१,तैसं. ४.२.४.३, मै.सं. २.७.११, ९०.१, का.सं. १६.११ , श.ब्रा. ७.१.१.२७, आश्व.श्रौ.सू. ३.५.९, आप.मं.पा. १.७.२

गोः संगति - (१) ज्ञान वाणी की प्राप्त कराने वाला ।

'पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः'

ऋ. ४.४४.१, अ. २०.१४३.१

गोसखासोमः - (१) भूमि का मित्रभूत या किरणों के साथ मित्रवत वाष्प होकर ऊपर जाने वाला जल, (२) वाणी या वचन के अनुसार या भूमि वासी प्रजा का मित्रवत् उपकारक राष्ट्र ।

'तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम्'

ऋ. ५.३७.४

(३) दुग्ध मिश्रित सोमरस

गोसनिवाक् - गौ अर्थात् वाणी, ज्ञान, आत्मा, परमेश्वर और वेदवाणी को भजन करने वाली वाक् ।

'गोसनिं वाचमुदेयम्'

अ. ३.२०.१०

गोह - गृह ।

'सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे'

ऋ. ४.२१.६

गोहा - गौ आदि पशु समूह का मारने वाला गो हत्यारा ।

'आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु'

ऋ. ७.५६.१७

गोह्रद - (१) गोरस, (२) उत्तम बल दायक रस ।

'उद्वो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः'

ऋ. १०.१०२.४

गौ - (१) ज्ञानेन्द्रिय ।

'गोभिरश्वेभिः वसुभिर्नृष्टिः'

ऋ. १०.१०८.७

(२) गम् + डो = गो । डित् प्रत्यय होने से गम् के म् का लोप । यागच्छतीतिगौः (जो चलती है वह गौ है) । अथवा गा + डो = गो । अर्थ पृथिवी, दूरगंता भवति (पृथ्वी दूर तक चली गई है) अथवा अस्यां भूतानि गच्छन्ति (इस पर जीव चलते हैं)

(३) पशु । गच्छति अभिमत देशे संचरणाय, (अभिमत स्थान में पशु चरने जाते हैं) । अथवा गच्छन्ति अस्या रस भाषाय यवसादयः (इसमें रसभाव में परिणत होने के लिए यवस आदि जरते हैं) ।

'गौ र्नादित्ये बली वर्दे
किरणक्रतु भेदयोः
स्त्री तुस्यात् दिशिभाव्यां
भूमौ च सुरभावपि ।
तृ स्त्रियोः स्वर्ग वज्राम्बु
रश्मि दृष्वाण लोमसु
अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि'

ऋ. १०.९४.९, नि. २.५

सोमरस गोचर्य में दुहते हुए जब स्थिर होते हैं । अथवा, ऋत्विक् सोमपात्र में सोमरस निकाल कर रखते हैं ।

(४) गो शब्द ऊपर की ऋचा में गोचर्म या (५) सोमपात्र के अर्त में प्रयुक्त हुआ है ।

गोचर्म में ही सोमरस रखा जाता होगा यहां गो शब्द गो + यत् से बना है । वेद में यत् का

लोप (६) दुग्ध ।
'आ धावता सुहस्त्यः
शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना
गोभिः श्रीणीत मत्सरम्'
ऋ. ९.४६.४
ऐ शोभन हस्त वाले ऋत्विजो, आप शीघ्र आवें (आधावत) तथा इन सुन्दर मथनियों को ग्रहण करें । (शुक्रा मन्थिना गृभ्णीत) और दूध से मादक सोम को मिलावें । (गोर्भि मत्सरं श्रृणीत) गौ के अर्थ में प्रयोग-
'अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः'
ऋ. ९.१०७.७, साम. २.३४८, नि. ५.३.
सोमलता (गोमान्) जलप्राय देश में (अनूपे) गौओं के साथ रहता है (गोभिः अक्षाः)-सा. । जल प्राय देश में (अनूपे) गोस्वामी (गोमान्) गायों के साथ निवास करता है (गोभिः अक्षाः) । गौ का अर्थ दुग्ध भी है, अतः गोमान् सोम का विशेषण होकर दुग्धवान् अर्थ में लिया जा सकता है । सोम में दुग्ध सा पदार्थ रहता है । गोपीथ शब्द भी सोम रस के अर्थ में आया है) ।
(७) विद्युन्मयी माध्यमिका वाक् गौ है, मेघ का गर्तक माध्यमिका वाक् गौ है ।
'अयं सशिंक्ते येन गौरभीवृता
मिमाति मायुं ध्वसनावधिश्रिता'
ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, तै.ब्रा. २.२.६०. नि. २.९.
(८) मेघ ।
'गौरमीमेत् अनुवत्सं मिषन्तम्'
ऋ. १.१६४.२८, अ. ९.१०.६, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.५, नि. ११.४२
मेघ वृष्टिरूपी क्षीर के अभाव में निमीलिताक्ष भूलोकरूपी वत्स को शब्द करता है -(दया) माध्यमिक वाक् सूर्य को बछड़े के समान गौ के लिए तरसते देख भोंकती है -यास्क ।
(९) किरण ।
'यत्रगावो भूरि श्रृंगा अयासः'
ऋ. १.१५४.६, वाज.सं. ६.३, का.सं. ३.३, श.ब्रा. ३.७.१.१५, नि. २.७.
जहां पर अति दीप्तिमती तथा बहुत गति शील (अयासः) किरणें ।
(१) गमनस्वभावा । उषा का विशेषण ।
'प्रतिगावोऽरुषी यन्ति मातरः'
ऋ. १.९२.१, साम. २.११०५, नि. १२.७.
तब गमनस्वभाव, आरोचमाणा, सूर्यप्रकाश की निर्मात्री उषाएं सूर्य में ही तीन हो जाती हैं ।
(११) जल ।
'सुगान्पथो अकृणोत् निरजेगाः'
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.
तूने जल के निर्गमन के लिए सुगम मार्ग बनाए।
(१२) आदित्य । गमयति रसान् (रसों को वह अपने प्रति खींचता है) अथवा गच्छति अन्तरिक्षम् (आकाश में चलता है) ।
'उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं
हिरण्ययम् न्यैरयद् रथीतमः'
ऋ. ६.५६.३.
प्रेरक परमात्मा तथा सर्वश्रेष्ठ नेतृत्व शक्ति वाला पर्व वाले या प्रकाश वाले आदित्य के लिए (परुषे गवि सुर्वणमय कालचक्र चलाता है । अन्य अर्थ - सर्वप्रेरक तथा रथिक श्रेष्ठ नेतृत्व जिसके सूर्य चन्द्र आदि सभी लोक रथ हैं (रथीतमःसूरः) वह पोषकपरमात्मा उस सुदूरवर्ती अहोरात्रादि पर्वों वाले या प्रकाशमान सूर्य में (परुषे गति) स्वर्ण सदृश चमकीले चक्र को (हिरण्यकं चक्रं) नियम से चला रहे हैं ।
(१३) चर्म, श्लेष्मा ।
'वनस्पते वीड्वङ्गोहिभूयाः
अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः
गोभि सन्नद्धो असि वीडयस्वा
आ स्थाता ते जयतु जेत्वानि'
ऋ. ६.४७.२६, अ. ६.१२५.१, वाज.सं. २९.५२, तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८६.७, का.सं. (आश्व). ६.१, साम.मं.ब्रा. १.७.१६, नि. ९.१२.
रथ चर्म से अत्यन्त नद्ध रहता है । (गोभिः सन्नद्ध) तथा चक्के के अरों में श्लष्मा दी जाती है ।
काष्ठ निर्मित रथ, तू दृढ़ अंगों वाला (वनस्पते वीड्वंगः) हमारे अनुकूल (अस्मन्सखा) टीलों, गढ़े तथा रेतीले प्रदेशादिकों को कूदने पालने वाला (प्रतरणः) और सुवीर योद्ध से युक्त हो (सुवीरः हि भूयाः) तू चर्म और सरेश से मजबूत बंधा हुआ है (गोभिः सन्नद्धः असि) अतः युद्ध

में वीरता दिखा (वीडयस्व) जिससे तेरा अधिष्ठाता योद्धा (ते आ स्थाता) जेतव्य शत्रुओं को (जे त्वानि जयतु)

(१४) स्नायु के अर्थ में -

'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो
गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता
यत्रानरः संच विच द्रवन्ति
तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन्'

ऋ. ६.७५.११, वाज.सं. २९.४८, तै.सं. ४.६.६.४, वाज.सं. २९.४८ , मै.सं. ३.१६.३,१८७.२, का.सं. (आश्व). ६.१, नि. ९.१९.

इषु स्नायु से वेष्टित् रहता है, तथा श्लेष्मा से संश्लेषित (गोभिः सन्नद्धा) इषु पंख धारण करता है (सुपर्णं वस्ते), इसका दांत पशु की हड्डी से बना रहता है या यह शत्रु की हड्डी से बना रहता है । या यह शत्रु को ढूंढकर उसी पर पड़ता है (अस्या दन्तो मृगः) यह स्नायु से भली प्रकार बंधा हुआ चलाऐ जाने पर (प्रसूता) शत्रु पर जहां योद्धा कभी समीप जाते गिरता है । और कभी बिखर जाते हैं । (यत्रानरः संद्रवन्ति च विद्रवन्ति च) उस युद्ध में (तत्रा) बाण हमें सहारा प्रदान करे (इषवः शर्म यंसन्) ।

(१४) ज्या के अर्थ में-

'वृक्षे वृक्षे नियतामीमा यद्गौः
ततो वपः प्रपतान् पूरुषादः
अथेदं विश्वं भुवनं भयात
इन्द्राय सुन्वद् ऋषये च शिक्षत्'

ऋ. १०.२७.२२, नि. २.६.

प्रत्येक धनुष में निबद्ध मौर्वी (वृक्षे वृक्षे गौः) इन्द्र की भुजा से आकृष्ट होकर शब्द करती है (मीमयत्), उस शब्द के बाद (ततः) पक्षी के समान चलने वाले बाण पुरुषों को भक्षण करने के निमित्त (पुरुषादः) शत्रुओं पर गिरते हैं (प्रपतान) इस प्रकार से इन्द्र के होने के निमित्त (अथ) यह समस्त भूतजात (इदं विश्वं भुवनम्) इन्द्र के लिए सोमयज्ञ करता हुआ (इन्द्राय सुन्वत्), द्रष्टा या ऋत्विज् को दक्षिणा देता हुआ (ऋषये च शिक्षत्) इन्द्र से डरता है (भयात्)

(१६) स्तोत्र ।

(१७) सुषुम्णा नाम्नी सूर्य की रश्मि । यह रश्मि किरण धारण करती है अतः गन्धर्व है (गंधरति) ।

'अत्राह गोरमन्वत
नाम त्वष्टुरपीच्यम्
इत्था चन्द्रमसो गृहे'

ऋ. १.८४.१५, अ. २०.४१.३, साम. १.१४७, २.२६५, मै.सं. २.१३.६, १५४.११, का.सं. ३९.११, तै.ब्रा. १.५.८.१, नि. ४.२५.

यहां. (अत्र) चन्द्रमा के गृह में (चन्द्रमसो गृहे) निश्चय ही (ह) उस आदित्य से निकल कर गए हुए (इत्था त्वष्टुः अपीच्यम्) सुषुम्णा नामक सूर्य रश्मि के अवस्थान को (गोः नाम) आदित्य रश्मियां अपना अवस्थान मानती हैं (अमन्वत)।

(१८) चन्द्रमा ।

अथापि अस्य एको रश्मिः चन्द्रमसं प्रति दीप्यते (सूर्य की रश्मि ही चन्द्रमा में प्रतिफलित होती है) ।

'सुषुम्णःसूर्यरश्मिचन्द्रमा गन्धर्वतस्य नक्षत्राणि अप्सरसो भेकुरयो नाम । स न इदं ब्रह्मं क्षत्रं पातु तस्मे स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ।'

वाज.सं. १८.४०

सभी प्राणियों को सुखद सुषुम्णा नाम्नी सूर्य की रश्मि चन्द्रमा में जाकर चन्द्रमा तथा गन्धर्व कहलाती है । उस चन्द्रमा नामक गन्धर्व के प्रकाशमान नक्षत्र ही अप्सराएं हैं (भेकुरयः नक्षत्राणि रूपी अप्सरसः नाम) । उन नक्षत्ररूपी अप्सराओं को स्वाहा । और वह चन्द्रमा रूपी गन्धर्व हमारे इस ब्राह्मण और क्षत्रिय की रक्षा करें (स न ब्रह्म क्षत्रं पातु) । उस चन्द्रमा रूपी गंधर्व के लिए स्वाहा वषट् (तस्मै स्वाह वषट्) ।

अन्य अर्थ - उत्तम सुख देने वाली सुषुम्णा नामक सूर्य रश्मि को धारण करने वाला चन्द्रमा गन्धर्व है । उस चन्द्रमा से सम्बन्ध रखने वाले नक्षत्र अन्तरिक्ष में घूमने के कारण अप्सरसः हैं जो प्रकाश युक्त होने के कारण भेकुरि कहे जाते हैं । यह चन्द्रमा हमारे ब्रह्म तेज और क्षात्र तेज की रक्षा करें । अपने कार्यों को चलाने के लिए (वाट्) हम उस धनुष का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करे (ताभ्यः स्वाहा) और उन अप्सरा नक्षत्रों का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करें ।

(१९) ब्रह्मशक्ति, (२०) उषा, (२१) चेतना शक्ति

'पदावत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१७,१३.१.४१.
(२२) व्यापक ब्रह्मशक्ति
'गौरीर्मिमाय सलिलानितक्षती'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, तै.ब्रा. २.४.६.११, ऐ. आ. १.५.३. ८, तै.आ. १.९.४,नि. ११.४०.
आधुनिक अर्थ – (१) गौ (२) पशु (३) गौ का दूध आदि, (४) नक्षत्र, (५) आकाश, (६) इन्द्र का वज्र, (७) प्रकाश किरण, (८) मोती (९) स्वर्ग, (१०) बाण, (११) वाणी, (१२) सरस्वती, (१३) माता, (१४) कम्पास का चतुर्थांश, (१५) आंख, (१६) सांढ़, बैल, (१७) शरीर का बाल, (१८) इन्द्रिय (१९) मेषराशि, (२०) सूर्य, (२१) नौ की संख्या, (२२) चन्द्रमा, (२३) अश्व अंग्रेजी का cow शब्द गौ का ही बिगड़ा रूप है ।

गौः चन्द्रमाः – चलने वाला चन्द्रमा ।
'अत्राह गोरमन्वत
ना त्वष्टु रपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसा गृहे'
ऋ. १.८४.१५.

गौरः – (१) गौर मृग । रुच् + रन् = गौर । रच् का गौ आदेश ।
'यथा गौरो अपाकृतम्'
ऋ. ८.४.३, साम. १.२५२, २.१०७१, आश्व श्रौ.सू. ७.४.४.
जैसे प्यासा गौर मृग जलपूर्ण तालाब को जाता है ।
(२) गौ + र । केवल वाणियों में रमण करने वाला विद्वान् (३) जाज्वल्यमान (४) इन्द्रियों में रमण करने वाला पुरुष प्राण ।
'गौराद् वेदीयां अवपानमिन्द्रः'
ऋ. ७.९८.१, अ. २०.८७.१
(५) खेती को हानि पहुंचाने वाला मृग ।
'गौरं ते शुगृच्छतु'
वाज.सं. १३.४८, मै.सं. २.७.१७,१०२.१४, का.सं. १६.१७, श.ब्रा. ७.५.२.३३.
(६) गौओं के प्रति अनुराग आदि करने वाला वृषभ पशु (७) इन्द्रियों में रमण करने वाला जीव (८) गौ + र । भूमि में रमण करने वाला प्रजाजन, (९) पृथ्वी पर का जलाशय समुद्र, (१०) एक मृगा की जाति ।
'मित्राय गौरान्'
वाज. सं. २४.२८, मै.सं. ३.१४.१०,१७४.५.
(११) गौरवर्ण वाला । आधुनिक अर्थ–श्वेत, गोरा, चमकीला पीतवर्ण लिए हुआ, पवित्र, स्वच्छ, श्वेत तेलहन, एक प्रकार का भैंसा, चन्द्रमा, एक प्रकार का मृग, कमल की पंखुड़ी, सुवर्ण सुनहला रंग ।

गौरगवय – हरिण और नील गौ जाति का एक स्श्वेत पशु ।
'विदद् गौरस्य गवयस्य गोहे'
ऋ. ४.२१.८

गौरमृगः – गोषु वाणीषु भूमिसु ।
धनेषु वा रमते इति गौरः ।
(१) वाणियों में रमण करने वाला पुरुष, (२) अन्तः करण को शुद्ध करने में समर्थ पुरुष, (३) गौओं और भूमियों में रमण करने और धनादि को खोजने वाला पुरुष, (४) एक जाति का मृग
'क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः'
वाज.सं. २४.३२, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.४.

गार्यः – किरणें ।
'स्वादोरित्था विषूवतो
मध्वः पिबन्ति गौर्यः'
ऋ. १.८४.१०, अ. २०.१०९.१, मै.सं. ४.१४.१४, २३८.५,
सूर्य की किरणें (गौर्यः) स्वादिष्ट तथा सूक्ष्म होकर ऊपर फैलने वाले (विषूवतः) वाष्पमय जल को (मध्वः) पीती हैं (पिबन्ति) ।

गौरी – (१) गौर वर्ण वाली । रुच् (ज्वलनार्थक) + रन् = गौर (रुच् का गौ आदेश) । अर्थ–जो चमके या जाज्वल्यमान हो । गौर + ङीष् = गौरी । अर्थ चमकने वाली ।
(२) रुच् + घञ् + ङीष् = गौरी । दीप्तिमती माध्यमिका वाक् (३) विद्युत्
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, तै.ब्रा. २.४.६.११,

तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.
वृष्टिजल करती हुई माध्यमिका वाक् गौरी है। यह सब कुछ बनाती है। यह काम वह या तो इन्द्र या या वायु के साथ होकर एक ही अधिष्ठान से (एकपदी) या इन्द्र और आदित्य के साथ मेघ और अन्तरिक्ष नामक अधिष्ठान पाकर (द्विपदी) या चारों दिशाओं के ही चार पैर बनाकर (चतुष्पदी) या चारों दिशाओं एवं चारों उपदिशाओं को ही आठ पैर बना (अष्टापदी) या आठों दिशाओं एवं ऊपर की दिशा या सूर्य रूपी नव पैरों से युक्त हो (नवपदी) एकात्मभूता होकर इस उत्कृष्ट व्योम में (परमे व्यामन्) बहुजल युक्त (सहस्राक्षरा) होकर सलिलनिर्माण द्वारा सब कुछ बनाती है।
जल निर्मित कर सारी सृष्टि रची गई है। विद्युत से ही जल बरसता है। अतः गौरी ही जल बरसाने वाली देवी है। वृष्टि द्वारा जल उत्पन्न करती हुई विद्युत् सस्यादि का निर्माण करती है (सलिलानि तक्षती गौरीः मिमाय) वह विद्युत् मेघों में रहने से एक स्थान वाली, आठों दिशाओं में रहने से आठ स्थानों वाली है।
(४) सूर्य की श्वेत किरणें, (५) पृथ्वी पर रमण करने वाली भुजा, (६) ज्ञान वाणियों में रमण करने वाली आत्म साधक प्रजा, (७) पार्वती
आधुनिक अर्थ – (१) पार्वती, (२) अष्ट वर्षीया कन्या, (३) कुमारी कन्या जिसे ऋतु न होती हो, (४) गौरोवर्ण की स्त्री, (५) पृथ्वी, (६) एक पीला रंग (गोचन) (७) वरुण की स्त्री, (८) मल्लिका लता (९) तुलसी का पौधा (१०) मजिष्ठा का पौधा (११) हरिद्रा (हल्दी)

ग्लौ – (१) हृदय की एक विशेष नाड़ी जिससे हर्ष क्षय, शोक, पीड़ा आघात एवं संवेदना, का आदि अनुभव किया जाता है।
'ग्लोभिः गुल्मान्'
वाज.सं. २५.८, मै.सं. ३.१५.७, १७.९.१३.
(२) व्रण की पीड़ा।
'ग्लौरितः प्र पतिष्यति'
अ. ६.८३.३

घ

घ, घा – (१) एक अनर्थक पादपूरक अव्यय, (२) 'भी' (अपि) के अर्थ में भी प्रयुक्त।
घ का घा आदेश 'ऋचि तु नु घ' (पा ६.३.१३३) से ही जाता है।
'अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां
विजामातु रुत वाघा स्यालात्'
ऋ. १.१०९.२, तै.सं. १.१.१४.१, का.सं. ४.१५, नि. ६.९.
हे इन्द्राग्नी! अथवा, अध्यापक तथा उपदेशक मैं ने तुझे चूंकि क्रीतापति जामाता से या बहन को दान देने वाले साले से भी बढ़कर दानी होते सुना है।
यहां घा का प्रयोग अनर्थक है।
(३) कभी अर्थ में
'स घा वीरो न रिष्यति'
ऋ. १.१८.४
वह वीर कभी नष्ट नहीं होता।
(४) हो, वैसा ही अर्थों में।
'स घेत् अग्ने भवसि सत्समिद्धः'
ऋ. ३.१८.५

घन – (१) शत्रुओं को मारने में समर्थ।
'घनो वृत्राणामभवः'
ऋ. १.४.८, अ. २०.६८.८
(२) हनन करने वाले शतघ्नी भुसण्डी, असि, चाप, बाण आदि अस्त्र।
'वज्रं घना ददीमहि'
ऋ. १.८.३, अ. २०.१७.१९.
(३) घन जिस पर लोहा आदि पीटा जाता है।
'घनेव विष्वक् विजहि अराव्णः'
ऋ. १.३६.१६.

घनाघनः – (१) शत्रुओं का नाश करने वाला।
'घनाघनः क्षोभणः चर्षणीनाम्'
ऋ. १०.१०३.१, अ. १९.१३.२, साम. २.११९९, वाज.सं. १७.३३, तै.सं. ४.६.४.१, मै.सं. २.१०.४, १३५.९, का.सं. १८.५,

घनिघ्नत् – (१) निरन्तर नष्ट करता हुआ।
'विश्वा घनिघ्नत् दुरिता पवस्व'
ऋ. ९.९०.६

घसत् – (१) ग्रस जाने वाला, ग्रास बना डालने

वाला (२) पिवतु घसतु । घस्तृधातु अदन अर्थ में आया है ।
'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु'
(पा. ३.४.९७) से इ का लोप
'घसत् त इन्द्र उक्षणः'
ऋ. १०.८६.१३, अ. २०.१२६.१३, नि. १२.९, पा. ३.४.९७, से इ क लोप ।

घर्म – (१) हृ (हरण करना) + मक् = हर्म– घर्म, अथवा दीप्तिर्थक) + मक् = घर्म । अर्थ–हरण शील या दीप्ति करने वाला आदित्य (रसानां हर्ता हरणः वा.)
'सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना'
ऋ. १६४.२८, अ. ९.१०.१६, नि. ११.४२.
नीचे गिरते सूर्य की बार बार कामना करती हुई यास्क ।
चलते हुए रस हरण शील भूलोक को प्यार करती हुई माध्यमिका वाक् –(दया.) (२) घरण (घड़े के आकार की कड़ाही) (३) प्रवर्ग नामक कर्म में लाए जाने वाला महावीर पात्र जिसमें दूध औटा जाता है । (प्रवर्ग्याख्यकर्मोपयुक्त महावीर पात्रम्) ।
'नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्'
ऋ. ३.५३.१४, नि. ६.३२.
वे कीकट (अनार्य देश वासी) न तो सोममिश्रण योग्य दूध (आशिरम्) दुहते हैं और न महावीर पात्र या यज्ञकुण्ड को दुग्ध से दीप्त ही करते हैं (४) घाम, धूप, ।
'घर्मस्तेदेभिर्द्रविणं व्यानट्'
ऋ. १०.६७.७, अ. २०.९१.७, मै.सं. ४.१४.१०.२३०.११, तै.ब्रा. २.८.५.२.
(५) विद्युत् ।
'अभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम्'
ऋ. १.१६४.२६, अ. ७.३७.७, ९.१०.४, नि. ११.४३.
अभिदीप्त मध्यमस्थानीय विद्युत् (अभीद्धः घर्मः) जल बरसावे इसीलिए मैं (तद् उ) यह स्तुति करता हूँ। (६) प्रशस्त यज्ञ करने वाला –(दया.) आधुनिक अर्थ – (१) गर्मी धूप, (२) ग्रीष्म ऋतु, (३) स्वेद, पसीना (४) कड़ाही जिसका मुख घड़े के समान होता है ।

घर्मसद् – (१) यज्ञगत हवि, (२) यज्ञवासी मेधावी पितर, (३) तपस्वीगुरुजन । (४) सूर्य लोक में रहने वाले पितर
'सत्यैः कव्यैः पितृभिः घर्मसद्भिः'
ऋ. १०.१५.९, अ. १८.३.४७, मै.सं. ४.१०.६, १५८.१, तै.ब्रा. २ .६.१६.२.
पितृ दैवत्य कव्यों से तथा यज्ञगत हवियों से या यज्ञवासी, मेधावी पितरों से या सूर्यलोक वासी पितरों से या तपस्वी गुरुजनों के साथ हमारे निकट आइए ।
(५) तेजः सम्पन्न यज्ञ में बैठने वाला ।

घर्मस्तुभ् – (१) यज्ञ की स्तुति करने वाला (२) तेज की स्तुति या उपासना करने वाला
'घर्मस्तुभे दिव आपृष्ठयज्वने'
ऋ. ५.५४.१

घर्महोमः – (१) प्रदीप्त यज्ञ, (२) युद्ध यज्ञ
'घर्मः समिद्धोअग्निनायं होमः सहस्रहः'
अ. ८.८.१७

घर्मस्वरस् – (१) बहते जलों से पूर्ण नदी (२) अतिदीप्त उज्ज्वल स्वर से प्रसन्नता युक्त ।
'घर्मस्वरसो नद्यो अपव्रन्'
ऋ. ४.५५.६

घर्मस्वेद – पसीना बहाने वाला ।
'घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट्'
ऋ. १०.६७.७, अ. २०.९१.७, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.११, तै.ब्रा. २.८.५.२.

घर्मस्वेदिन्– (१) घर्म अर्थात् घाम या यज्ञ के परिश्रम से जिसे पसीना हो । (२) घाम से जिसे स्वेद हुआ हो, (३) दीप्त आगमन वाला, (४) यज्ञ में भाग लेने वाला, (५) यज्ञ में जाने वाला ।

घर्मा– (द्वि.व.) (१) तेजस्वी अश्विद्वय (२) तेजस्वी पति पत्नी ।
'घर्मेव मधु जठरे सनेरू'
ऋ. १०.१०६.८

घर्म्येष्ठा– (१) तेजस्वी रूपों में स्थित अश्विद्वया या स्त्रीपुरुष ।
'वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा'
ऋ. १०.१०६.५

घ्रन् – (१) घाम (२) ग्रीष्म काल (३) प्रचण्ड सूर्य ।
'न घ्रंसताप न हिमो जघान'
अ. ७.१८.२.

घ्रंसः– ग्रह् + घ्रंस = ष (ग् का घ, नुम् का आगम, ह् का पृषोदरादिवत्)। अस्मिन् अवश्याया रसाः आदित्येन गृह्यन्ते (दिन में आदित्य के द्वारा ओस के रस गृहीत किए जाते हैं) । अर्थ है– (१) दिन । (२) दाहक गर्मी ।

'हिमेनाग्नि घ्रंसमावारयेथाम्'

ऋ. १.११६.८, नि. ६.३६.

हे अश्विद्वय ! या सूर्य और पृथिवी तुम दोनों ने ग्रीष्म में ठंडे जल से अग्नि की तरह दाहक गर्मी को शान्त किया ।

'हिमं घ्रंस च रोहितः'

अ. १३.१.४६

आधुनिक अर्थ – (१) दिन (२) हानिप्रद सूर्य ।

'यो अस्मै घ्रंस उतवाय ऊधनि
सोमं सुनोति भवत द्युमांअह'

ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९.

जो इस इन्द्र के लिए दिन में या जो रात में सोमरस अभि सुत करता है ।

घा – निश्चय ही, ही ।

'न घा त्वद् रिग् अपवेति मे मनः'

ऋ. १०.४३.२, अ. २०.१७.२

'न घा वसु र्नियमते'

ऋ. ६.४५.२३, अ. २०.७८.२, साम. २.१०१.७

घातुक – जीवन का नाशक मृत्यु ।

'वत्सांश्च घातुको वृकः'

अ. १२.४.७

घास – (१) घास (२) भोजन करना ।

'होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविज आत्तामद्य मध्यतो भेद उद्धृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्ता नूनं घासे अज्राणां यवस प्रथमानां सुमत्क्षराणां शतरुद्रयाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाश्विना जुषेतां हविः'

वाज.सं. २१.४३, मै.सं. ४.१३.७, २०८.३, तै.ब्रा. ३.६.११.१.

घासि – (१) घास, (२) भोजन के अन्न ।

'यच्चपपौ यच्चघासिं जघास'

ऋ. १.१६२.४, वाज.सं. २५.३८, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१, १८३.९, का.सं. (आश्व). ६.५.

घ्रात – गन्धादि को भोग करा अनुभवी, सुगन्ध प्रेमी

'गन्धाय स्वाहा घ्रातायस्वाहा'

वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१३, का.सं. (आश्व.) १.१०.

घृ – क्षरण, सिञ्चन तथा दीप्ति अर्थों में प्रयुक्त धातु । घृ + क्त से घृत शब्द बना है, यह ढरकता है (क्षरति) । जल का पर्यायवाची भी घृत शब्द है क्योंकि जल पृथ्वी सींचता है ।

घृण – चमकने वाला ।

'आयो घृणे न ततृषाणो अजरः'

ऋ. ६.१५.५, वाज.सं. १७.१०, तै.सं. ४.६.१.२, मै.सं. २.१०.१, १३१.१६, का.सं. १७.१७.

घृणा– घृ (क्षरण) धातु से सम्पन्न, (१) दीप्ति का क्षरण, (२) दीप्ति ।

'परींघृणा चरति तित्विषेशवः'

ऋ. १.५२.६

तब दीप्ति सर्वत्र फैलती है (घृणा परिचरिति) और उस प्रबल बल (शवः) भी प्रकाश के लिए होता है अर्थात् चमकता है (तविषे) ।

घृणिः – (१) घृ (क्षरण, दीप्ति और सिञ्चन अर्थों में) + निन् = घृणि । घृणु से भी घृणि बना है । निघण्टु में घृणि का पाठ दीप्ति कर्मों में है । इस का अर्थ क्रोध भी है ।

(२) घर्षण, संघर्ष, (३) परस्पर प्रतिस्पर्धा ।

'घृषौ मीढ़ ऋचीषम'

ऋ. ६.४६.४

(४) सूर्य ।

'शं वातः शं हिते घृणिः'

वाज.सं. ३५.८, श.ब्रा. १३.८.३.५, तै.आ. ६.७.३, ९.२.

'घृणीव छाया मरपा अशीया'

ऋ. २.३३.६

घृणीवान् – (१) सूर्य, (२) सूर्यवत् तेजस्वी ।

'उष्ट्रो घृणीवान्वार्धीनसस्ते मत्यै'

वाज.सं. २४.३९, मै.सं. ३.१४.२०, १७७.१.

घृतनिर्णिक् – (१) जल को पवित्र करने वाला –अग्नि ।

'घृतनिर्णिक् ब्रह्मणे गातुमेरय'

ऋ. १०.१२२.२, कौ.ब्रा. २२.९.

(२) दीप्ति युक्त स्वरूप वाला, (३) जल बरसाने वाला, (४) जलों में तेजस्वी विद्युत (५) सेवन करने योग्य वीर्य को पुष्ट करने वाला, वीर्य को

पुष्ट करने वाला, परिपक्व वीर्य वाला पुरुष, (६) दीप्ति स्वरूप या घृत से अति पवित्र स्वरूप वाला अग्नि, परमेश्वर ।
'शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः'
ऋ. ३.१७.१, तै.ब्रा. १.२.१.११, आप.श्रौ.सू. ५.६.३.
'दीदा या निध्मो घृतनिर्णिगप्सु'
ऋ. २.३५.४, तै.सं. २.५.१२.२, मै.सं. ४.१२.४, १८८.६.

घृतपदी – (१) तेजोमय स्वरूप वाली, ज्ञानमयी, पद पद पर घृत के समान पुष्टिकारक एवं बुद्धि वर्द्धक पदार्थ को उत्पन्न करने वाली-इडा, (२) कामधेनु, (३) बुद्धि ।
'घृतपदी शक्वरी सोम पृष्ठा'
ऋ. खि. ९.८६.१, अ. ७.२७.१

घृतप्रतीक – (१) घी को प्राप्त होकर चमकने वाला अग्नि, (२) ज्ञान का प्रकाशक तेजस्वी, (३) अविछिन्न धारा से बरसने वाला ।
'घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदम्
अग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते'
ऋ. १.१४३.७, तै.ब्रा. १.२.१.१२, आप.श्रौ.सू. ५.६.३.

घृतप्रतीका – (१) स्नेह से सबकी उत्तम प्रतीत होने वाली स्त्री, (२) उषा (३) प्रज्ञा ।
'घृतप्रतीकामुषसं न देवीम्'
ऋ. ७.८५.१

घृतप्रसत्तः – (१) घृत में तीव्र हुआ अग्नि, (२) अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदि जलों द्वारा उत्तम पद पर प्रतिष्ठित ।
'घृत प्रसत्तो असुरः सुशेवः'
ऋ. ५.१५.१

घृतप्रुष् – (१) घृत दुग्धादि के साथ अन्नादि सेवन करने वाला (२) विधिपूर्वक सेवन करने वाला (२) विधि पूर्वक जलों और ज्ञान द्वारा स्नात् स्नातक विद्वान्, (३) जलों का सेचन करने वाला ।
'वरे यवो न मर्या घृतप्रुषः'
ऋ. १०.७८.४
(४) घृतेन तेजसा पुट् पूर्णः
(घृत से युक्त – (दया.) (५) उदक बरसाने वाला, (६) दीप्तियुक्त ज्ञान ।
'घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्'
ऋ. २.३.२, वाज.सं. २०.४६, मै.सं. ३.११.१, १४१.१, का.सं. ३८. ६, तै.ब्रा. २.६.८.४.

घृतप्वः – घृत अर्थात् तेज से पवित्र करने वाले सूर्य आदि पदार्थ । एक वचन में घृतम् ।
'घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु
ऋ. १०.१७.१०, अ. ६.५१.२, वाज.सं. ४.२, तै.सं. १.२.१.१, मै.सं. १.२.१, १०.१, ३.६.२, ६१.८, का.सं. २.१, श.ब्रा. ३.१.२.११.

घृतपू – (१) घृत, जल या स्नेह से पवित्र करने वाला, (तेजोमय ज्ञान से पवित्र करने वाला) ।

घृतपृचा – स्नेहपूर्वक एक दूसरे से सम्बद्ध द्यावापृथिवी ।
'घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा'
ऋ. ६.७०.४, ऐ.ब्रा. ५.२.९.

घृतपृष्ठ – (१) अत्यन्त प्रदीप्त तेजो मय, (२) जलमय प्रकृति तत्व, (३) जल को पीठ पर लिए भूलोक (४) मेघ, (५) विद्युत् रूप अग्नि –(दया.)
'तृतीयोभ्राता घृतपृष्ठो अस्य'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.
घृतेनस्पृष्टः (घृत से छुलाया हुआ) अथवा आहुति लक्षणं घृतं पृष्टे यस्य (आहुतिरूप घृत जिसके पृष्ट पर हो । अर्थ है-अग्नि जो पृथिवी पर रहता है-आहिताग्नि ।
इस आदित्य का तृतीय भ्राता पृथ्वी स्थायी अग्नि है ।

घृतपृष्ठाः स्वर्गाः – (१) घृतवान् पुष्टि कारक पदार्थ, (२) जल पूर्ण तल वाले सुखमय प्रदेश, (३) घृतपृष्ठ स्वर्ग ।
'प्रतीमां लोका घृतपृष्ठाः स्वर्गाः'
अ. १८.४.५

घृतम् – घृ (क्षरणदीप्तयोः) गृधृ (सेचने) + क्त = घृत । जिघर्ति सञ्चलति दीप्यतेवा तत् घृतम् (जो महकता है, सञ्चारण करता है या दीप्त होता है वह घृत है । अर्थ (१) घृत (२) उदक् (३) सर्पिः (४) प्रदीप्त-दया. (५) अन्न का रस, (६) रेतस् का सेचन, (७) उल्व, (८) अन्तरिक्ष का जल ।
'घृताची नाम वा असि'
अ. १९.४८.६
घृत के अर्थ में ।
'तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः

स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।'
ऋ. ३.२१.४, मै.सं. ४.१३.५, २०४.१४. का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.१२.१४, तै.ब्रा. ३.६.७.२.
हे कर्मिष्ठ, सतत गमनशील अग्ने ! तेरे लिए मेदा और घृत के कण टपक रहे हैं ।
जल के अर्थ में –
'घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते'
ऋ. ६.७०.२.
सुन्दर कर्मों वाली द्यौ और पृथिवी यजमान के लिए सुन्दर निर्मित शस्यादि समृद्धि के हेतु जल देता है (घृतं दुहाते) । पुनः–
'घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति'
ऋ. ४.५८.१, वाज.सं. १७.८९, मै.सं. १.६.२, ८७.१४, का.सं. ४०.७, तै.आ. १०.१०.२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, महा.ना.उप. ९.१२.
जिन औषधियों में जल का गुप्त रूप से वास है ।
आधुनिक अर्थ– घी, मक्खन, जल ।

घृतयोनि – क्षरण शील संसार का उत्पत्ति स्थान–विष्णु ।
'घृतं घृतयोनेपिब'
ऋ. ७.२६.३, वाज.सं. ५.३८.४१, वाज.सं. (का.) २.६.८, तै.सं. १.३.४.१, मै.सं. १.२.१३, २२.९, १.२.१४, २३.४, का.सं. ३.१,२, श.ब्रा. ३.६.३.१५, ४.३, ४.५.१.१६, आश्व.श्रौ.सू. ५.१९.३, शां श्रौ.सू. ८.४.३.

घृतयोनी – (द्वि.व) (१) जल और स्निग्ध पदार्थ से उत्पन्न होने वाले वैद्युत् और पार्थिव अग्नि, (२) तेज या दीप्ति के आश्रय पर रहने वाले ।
'सम्राजा या घृतयोनी'
ऋ. ५.६८.२, साम. २.४९४.

घृतवत् – घृत + वतुप् त्र घृतवत्। घृत से युक्त ।
'सिन्धुभ्योहव्यं घृतवज्जुहोत'
ऋ. ७.४७.३
उन नदियों के लिए घृतमिश्रित हव्य हो (घृतवत् हव्य जुहोत) ।
घृत की व्युत्पत्ति के लिए ।

घृतवत् योनिः – (१) घृतयुक्त यज्ञ स्थान, (२) जल युक्त मेघ का आश्रय स्थान, (३) क्षरणशील जलमय समुद्र ।
'आयोनिमग्निः घृतवन्त मस्थात्'
ऋ. ३.५.७

घृतवती – (१) घृतमयी इष्टका (यज्ञ) (२) प्रकाश, वायु और घृत से युक्त शाला ।
'ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती'
अ. ३.१२.२.
'स्तोमपृष्ठा घृवती सीद'
वाज.सं. १४.४, १५.३, तै.सं. ४.३.४.२, मै.सं. २.८.१, १०७.३, २.८.७, १११.११, का.सं. १७.१, ६, श.ब्रा. ८.२.१.७.

घृतवर्तनिः – (१) जल से सींचे मार्ग पर चलने वाला, (२) तेजो स्निग्ध मार्ग से जाने वाला, (३) उत्तम व्यवहारवान् ।
'घृतवर्तनिः पविभी रुचानः'
ऋ. ७.६९.१, मै.सं. ४.१४.१०, २२९.१२, तै.ब्रा. २.८.७.७.

घृतवान् चरुः – (१) घृत से युक्त चरु । घृत का अर्थ घी, अन्न का रस देवव्रत, रेतस् का ,सेचन, उल्व, अन्तरि का जल है ।
'अन्नस्य घृतमेव रसस्तेजः
संपत्कामो जुहोमि स्वाहा'
साम.मं ब्रा. २.६.१५
'देवव्रतं वै घृतम्
रेतःसिक्तिर्वैघृतम्'
कौ.सू. १९.४
'उल्वं घृतम्'
श.ब्रा. ६.६.२.१.
'घृतमन्तरिक्षस्य रूपम्'
श.ब्रा. ७.४.१.३
'अपूपवान् घृतवान् चरूरेह'
अ. १८.४.१९

घृतश्रीः – (१) घृत या पाक का सेवक करने वाला अग्नि, (२) दीप्तिमयी कान्ति से युक्त ।
'तुविश्रणसं सुयजं घृतश्रियम्'
ऋ. ५.८.३, तै.सं. ३.३.११, २, तै.ब्रा. १.६४, शा.ब्रा. १२.४.४.२, मा.श्रौ.सू. ५.१.२.१७.

घृचश्चुत् – (१) घृत चुलाने वाला पात्र ।
'स्रुचा देवं घृतश्चुता'
ऋ. ५.१४.३, तै.सं. ४.३.१३.८, मै.सं. ४.१०.१, १४३.९.
(२) घृत आदिपुष्टिकारक पदार्थों का देने वाला ।

'ते गुहासो घृतश्चुतः स्योनाः'
ऋ. १०.१८.१२, अ. १८.३.५१,
(३) जल बरसाने वाला ।
'हविर्भरन्ति अमृतं घृतश्चुतः'
ऋ. ९.७४.६
(४) जल बरसाने वाला, (५) तेज, प्रताप को दिखलाने वाला ।
'घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्'
ऋ. २.११.७
(६) घृत से सींचा अग्नि, (७) तेज से युक्त विप्र या विद्वान् ।

घृत श्रिया – (द्वि.व.) (१) द्यावापृथिवी का विशेषण (२) जल, तेज से शोभित, (३) स्नेह और ज्ञान से शोभित ।

घृतसद् – घृतादि पदार्थों के अधिकार में स्थित ।
'अप्सुषदं त्वा घृतसदम् व्योमसदम्'
वाज.सं. ९.२, श.ब्रा. ५.१.२.५.

घृतस्ताव – (१) अमृतरूप परमात्मा की स्तुति करता हुआ, (२) घृत द्वार आहुत अग्नि ।
'तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा'
अ. १२.२.१७

घृतस्नाः – (१) जल या तेज से स्नान करने वाला नित्य शुद्ध तेजस्वी ।
'उतवायो घृतस्नाः'
ऋ. ८.४६.४८

घृतस्नु – तेजोमय ज्ञान और बल वीर्य को प्रदान करने वाली ।
'इमा गिर आदित्योभ्यो घृतस्नूः'
ऋ. २.२७.१, वाज.सं. ३४.५४. का.सं. ११.१२, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, नि. १२.३६.

घृतस्नुवा – स्नेह में नहाने वाले परस्पर स्नेही ।
'घृतस्नुवा रोहिता धुरिधिष्व'
ऋ. ३.६.६.

घृतस्नू – (द्वि.व.) (१) प्रकाश में स्नान करने वाले द्यावाभूमी, रोदसी (२) मातापिता ।
'अर्चामि वां वर्धायायो घृतस्नू'
ऋ. १०.१२.१, अ. १८.१.३१.
(३) घृत + ष्नु + क्विप् + ऊङ् = घृतस्नू । ष्नु धातु का अर्थ प्रस्र वण करता है ।
अथवा–घृत + षणु + उ + ऊङ् । अर्थ है –घृतप्रस्राविणी (घृत चुलाने वाली)
(४) तेज और बल का प्रस्रवण करने वाले
'घृतस्नू बर्हिरासदे'
ऋ. ३.४१.९, आ. २०.२३.९.
(५) तेज का संचार करने वाले प्राण अपान वायु ।
'अत्या वृधस्नू घृतस्नू'
ऋ. ४.२.३,

घृतस्य जूतिः – (१) तेज स्वरूप परमेश्वर की परम ज्ञान मय ज्योति– (२) घृत की ज्योति ।
'घृतस्य जूतिः समाना सदेवा'
अ. १९.५८.१

घृतस्य धारा – (१) घृत की धारा (२) जल की धारा ।
'घृतस्य धाराः समिधोनसन्तः'
ऋ. ४.५८.८, वाज.सं. १७.९६, का.सं. ४०.७, आप.श्रौ.सू. १७.१८.१, नि. ७.१७.

घृतस्य मातरः – (१) घृत के समान स्नेहमय प्रेम के उत्पन्न करने वाली माताएं, (२) गौवें ।
'गावो घृतस्य मातरः'
अ. ६.९.३, वै.सू. ३४.९. का.श्रौ.सू. १३.३.२१, आप.श्रौ.सू. २१.२०.३, मा.श्रौ.सू. ७.२.७

घृतस्य योनिः – घृत अर्थात् वर्षा रूप में झरने योग्य, सेचने योग्य या जल का आश्रयभूत अन्तरिक्ष ।
'घृतस्य योनौ स्त्रवथे मधूनाम्'
ऋ. ३.१.७.

घृतह्रदा – जिनके उदर में घृत हो ।
'घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदका'
अ. ४.३४.६.

घृताची – घृत + अञ्च + क्विन् ङीष् = घृताची । अर्थ जल का निर्माण ।
'धियं घृताची साधन्ता'
ऋ. १.२.७, साम. २.१९७, वाज.सं. ३३.५७, ऐ.आ. १.१.४.५.
जल निर्माण करने वाले (घृताचीम्) कर्म को (धियम्) करने वाले ।
(२) सेचति अपने भूमिं पर्जन्य (इससे मेघ पृथिवी को सींचता है) ।
क्षरति मेघात् (मेघ से जल गिरता है)
दीप्तं वा स्वेन तेजसा (यह अपने तेज से दीप्त रहता है) ।
परमात्मा की जल दात्री, जीवन दात्री, तेजो दात्री

शक्ति घृताची है । यथा –मेघ,
(३) शूर्य, (४) वायु (५) प्राणप्रद शक्ति (६) रात्रि ।
'घृताचीनाम वा असि'
अ. १०.४.२४, १९.४८.६
(६) एक अप्सरा का नाम (८) सर्वत्र पुष्टि कारक पदार्थों को प्राप्त करने वाली शक्ति ।
'विश्वाची च घृताची चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१८, तै.सं. ४.४.३.२, मै.सं. २.८.१०:११५.३, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१९.

घृताचीं धियं साधन्ता – (द्वि.व.) (१) जलनिर्माण कर्म को सिद्ध करने वाले मित्र और वरुण, (२) उद्न तथा ओषजन वायु जिनके मेल से जल निर्माण होता है ।

घृताची हरितः – (१) तेजोयुक्त भरजल युक्त किरणें, रश्मियां या दिशाएं ।
'अयुक्त सप्त हरितः सधस्थात्
'या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः
ऋ. ७.६०.३

घृतान्नः – (१) अग्नि, (२) जिसका घृत ही अन्न् है, (३) घृत युक्त अन्न का भोजन करने वाला ।
'तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः'
ऋ. ७.३.१, साम. २.५६९, का.सं. ३५.१, आप.श्रौ.सू. १४.१७.१

घृतावृधा – (द्वि.व.)स्नेह से बढ़ने और एक दूसरे को बढ़ाने वाला ।

घृतासुति – (१) घृतम् आसूयते येन –(दया.)
(२) जलवर्षी मेघ, (३) स्नेह पुष्टिकार और अन्न तेजोयुक्त पदार्थों और ओज का प्रदान करने वाला विष्णु ।
'भवामित्रोन शेव्यो घृतासुतिः'
ऋ. १.१५६.१, तै.ब्रा. २.४.३.८, आश्व.श्रौ.सू. ८.१२.७.

घृतासुती – (द्वि.व.) । घृत अर्थात् जल को बरसाने वाले दो आदित्य ।
'तासम्राजाधृतासुती'
ऋ. १.१३६.१, २.४१.६, साम. २.२६२.
वे दोनों संदीप्त, जल बरसाने वाले
(२) जल का आसेचन करने वाले सूर्य चन्द्र या सूर्य विद्युत् (३) घृत युक्त अन्न का सेवन करने वाले स्त्री पुरुष (४) क्षरण शील शुक्र की आसुति अर्थात् उत्तम पुरुष या प्रजा उत्पन्न करने वाले ।
(५) इन्द्राविष्णू का विशेषण (६) तेज और अन्न आदि उत्पन्न करने वाले
'घृतासुती द्रविणं धत्तमस्ते'
ऋ. ६.६९.६

घृताहवन – (१) जिसमें घृत तथा जल आदि चारों ओर से देते हैं, (२) जलों या तेजो-वर्धक साधनों की आहुति लेने वाला अग्नि, (३) जलों को ग्रहण करने वाला सूर्य ।
'घृतावहन दीदिवः
प्रतिष्म रिषतोदह'
ऋ. १.१२.५.
हे घृत या जलों या तेजों वर्धक साधनों की आहुति लेने वाले अग्नि या सूर्य ! हे दीप्यमान ! हे तेजस्विन् , तू दुष्ट पुरुषों वाले हिंसक शत्रुओं को एक एक कर जला डाल ।

घृष्वि – (१) दीप्ति युक्त पदार्थों को घर्षण कर विद्युतादि उत्पन्न करने वाला, (२) घर्षण से उत्पन्न होने वाला अग्नि, (३) प्रजाओं में संघर्ष, स्पर्धा उत्पन्न करने वाला ।
'रत्नं भर शशमानाय घृष्वे'
ऋ. ४.२.१३.
(४) परस्पर संघर्ष से उत्पन्न होने वाला बल ।
(५) वह पदार्थ जिससे घर्षण करते हैं ।
'प्रवः शधयि घृष्वये
त्वेष द्युम्नाय सुष्मिणे ।
देवत्तं ब्रह्म गायत'
ऋ. १.३७.४
हे विद्वान् पुरुषो, आप लोग परस्पर संघर्ष प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न होने वाले बल की वृष्टि करने और उज्ज्वल यश प्राप्त करने के लिए परमेश्वर द्वारा दिए महान् वेदमय ज्ञान वचन का गान करें ।
(५) संघर्ष या स्पर्धा करने वाला ।
'मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः'
ऋ. १.८५.१.
(६) संघर्षण करने वाला, स्पर्धा करने वाला-इन्द्र (७) घर्षण द्वारा उत्पन्न होने वाला विद्युत्
'उग्रस्ययूनः स्थविरस्य घृष्वेः'
ऋ. ३.४६.१, मै.सं. ४.१४.१४, २३८.७.

घृष्विराधसः – (ब.व.) एक दूसरे से बढ़ने वाले, (२) सम्बद्ध धनैश्वर्य से सम्पन्न (३) जिनका एकत्र धन हो-(दया)।
'ओषु घृष्विराधसः'
ऋ. ७.५९.५

घृषु – (१) शत्रुबल को नष्ट करने वाला (२) घर्षण उत्पन्न करने वाला वायु।
'घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिम्
रुद्रस्य सूनुं हवसागृणीमसि'
ऋ. १.६४.१२
हम लोग शत्रुबल नाशक, अग्निवत् तेजस्वी, भोग्य ऐश्वर्य या वेतन प्राप्त करने वाले, विविध मनुष्यों से बने हुए, शत्रुदल को रुलाने वाले संग्राम के वीर सेनापति के पुत्र के समान देने योग्य वेतन, स्वीकार योग्य उपहार तथा भक्ष्य भोज्य आदि द्वारा आदर करें।
अथवा घर्षण करने वाले (घृषुम्) पवित्र कारक-सब पदार्थों को पृथक् पृथक् करने वाले, तीव्र प्राण रूप से जीव के प्रेरक और परमेश्वर के पुत्र के समान अथवा कारण रूप वायु उत्पन्न कर उसके ग्राह्य रूप से उपदेश करें (हवसा गृणीमसि)। (३) दीप्तियुक्त।
'घृषुः श्येनाय कृत्वने'
ऋ. १०.१४४.३
(४) बड़ा।
'घृषुं वाये विनिदुः सखायम्'
ऋ. १०.२७.६

घृतेश्रित – (१) घृत अर्थात् स्निग्ध पदार्थ पर आश्रित अग्नि, (२) जल के रूप में स्थित मेघ, (३) निषेक योग्य वीर्य आश्रित पुरुष।
'घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम'
ऋ. २.३.११, वाज.सं. १७.८८, तै.आ. १०.१०.२, आश्व.श्रौ.सू. ५.१९.३, महा.ना.उप. ९.११.

घोर – (१) कष्टदायी आक्रमण।
'द्विशो दिशो अग्ने परिपाहि घोरात्'
अ. १८.४.९
(२) पाप।
'यत्त आत्मनितन्वां घोरमस्ति'
अ. १.१८.३
(३) घोर, सबका हनन करने वाला, भयानक काम।
'यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम्'
ऋ. २.१२.५, अ. २०.३४.५.

घोरचक्षस् – घोर + चक्ष (व्यक्तवाणी बोलना) + असुन् = घोरचक्षस्। बाहुलक नियम से यहां चक्ष् का ख्याञ् आदेश नहीं हुआ है। चक्ष्धातु दर्शन अर्थ में भी आया है। अर्थ है- (१) भयंकर वाणी वाला।

घोरवर्पस् – भयानक रूप धारण करने वाला।
'ये शुभ्रा घोरवर्पसः'
ऋ. १.१९.५

घोरा – दुष्कर संग्राम करने वाली।
'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे'
ऋ. १०.९५.१, श.ब्रा. ११.५.१.६.

घोषः – घुष् + घञ् = घोष। घुष्यते इति घोषः घोषित किया जाए। अर्थ -(१) शब्द, वचन, स्तुति।
'श्लोकं घोषं भावेन्द्राय सोमिनः'
ऋ. १०.९४.१, नि. ९.९.
हे ऋत्विजो, आप इन्द्र के लिए श्रवणीय स्तुतिपूर्ण वचन बोलें।
(२) निवास स्थान।
'अयामि घोष इन्द्र देवजामिः'
ऋ. ७.२३.२, अ. २०.१२.२.
(३) शोर, (४) झोपड़ी।
'वने ये कुर्वते घोषम्'
अ. ८.६.११

घोषबुद्धा – विजयघोष से जगकर।
'आश्रृण्वती नाथिता घोषबुद्धा'
अ. ५.२०.५

घोषा – घुष् (घोषणा करना) + अच् + टाप् = घोषा। अर्थ (१) घोषणा (२) स्तुति।
'इन्द्रे घोषा असृक्षत'
ऋ. ८.६३.७
इन्द्र के लिए स्तुतियाँ की गईं।

घोषि – उत्तम शब्द से युक्त।
'अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्'
ऋ. ४.४.८, तै.सं. १.२.१४.३, मै.सं. ४.११.५, १७३.८, का.सं. ६.११, आश्व.श्रौ.सू. ४.१.२,३.

घोषिणी – घोषणा करने वाली सेना।
'नमस्ते घोषिणीभ्यः'
अ. ११.२.३१

वैदिक कोश

भाग २

च

च – (१) समुच्च में अर्थ में । यथा
'अहं च त्वं च वृत्रहन्'
ऋ. ८.६२.११, तै.सं. ७.४.१५.१, का.सं.(अश्व). ४.४, आप.श्रौ.सू २०.३.१४, नि. १.४.
(२) 'न च' का प्रयोग 'इत्' के साथ तब होता है जब एक प्रश्न का उत्तर देने पर पुनः प्रश्न किया जाय । जैसे, प्रश्न–तिष्ठन्ति गृहे वृषलाः? उत्तर–तिष्ठन्ति । पुनः प्रश्न – ततः यदितिष्ठन्ति किमिति नागच्छन्ति
उत्तर – न चेत् सुरां न पिबन्ति ।
अर्थ होगा–यदि नहीं (न चेत्)
आधुनिक अर्थ– (१) चन्द्रमा, कच्छप, चोर, समुच्चयार्थक अव्यय ।

चक – इच्छा करना । अंग्रेजी का seek धातु इससे मिलता जुलता है । तृप्ति, गमन और प्रतिघात अर्थ में भी इस धातु प्रयोग हुआ है ।

चकद्र – (१) कुद्राति –कद् द्रांति (कु का कत्) कुत्ते के समान कुत्सित गति से चलता है । कद्द्राति या चकद्द्राति समानार्थक है, (२) अथवा श्वभि साकं गतिः यस्य (कुत्तों के साथ कुत्तों सी गति वाला । अर्थ है–कुत्ते सा जीवन व्यतीत करने वाला ।

चक्रद्द्राति – कुत्ते के समान या साथ कुत्सित गति से चलता है ।

चकमानः – अर्थ की कामना करता हुआ ।
'चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम्'
ऋ. ५.३६.१
(२) प्रबल कामना या संकल्प करता हुआ ।
'दूरात् चकमानाय'
अ. १९.५२.३
(३) अन्नो को चाहने वाला बुभुक्षित याचक ।
'म आधाय चकमानाय पित्वः'
ऋ. १०.११७.२

चक्रम् – चक् (तृप्ति, गमन और प्रतिघात अर्थ में) + रक् = चक्र । अर्थ–(१) चक्का, पहिया । चर् + अच्न =क्रच
'वर्वति चक्रं परि द्यामृतस्यं'
ऋ. १.१६४.११, अ. ९.९.१३.
कालचक्र अन्तरिक्ष के चारों ओर घूमता रहता है । (२) चलन (चलना) ।
(३) ग्रहचक्र
'सूरश्चक्रं प्रवृहत् जात ओजसा'
ऋ. १.१३०.९.
सूर्य अपनी शक्ति से उत्पन्न ग्रहचक्र की अच्छी तरह से धारण करता है (प्रवृहत्)
अथवा क्रम् (गतिअर्थ में) + उ = चक्र (क्र का द्वित्व)

चक्रमासजः – (१) संवत्सररूपी चक्र में या मास मास में प्रकट होने वाला सूर्य (२) राज चक्र या सैन्य चक्र के मुखस्थल पर प्रकट होने वाला, (३) सैन्यादि को अति स्नेह करने वाला या उस में तन्मय राजा ।
'वित्वक्षणः समृतौ चक्रमाजः'
ऋ. ५.३४.६

चक्रवाक – चकोर ।
'वरुणाय चक्रवाकान्'
वाज.सं २४.२२, मै.सं. ३.१४.३, १७३.४

चक्रवाका – (१) चकवा चकई के समान उत्तम वचन बोलने वाले स्त्री पुरुष, (२) अश्विद्वय ।
'चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा'
ऋ. २.३९.३

चक्षण – (१) साक्षात् दर्शन (२) ज्ञान ।
'कद् वरुणस्य चक्षणम्'
ऋ. १.१०५.६
सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर का साक्षात् दर्शन और ज्ञान कहां है ?
(३)स्त्रोत ।

'तत्रामृतस्य चक्षणम्'
अ. ५.४.३,६.९५.१, १९.३९.६,८
(४) प्रकाशनम् -(दया)
(५) वचन, (६) ज्ञान दर्शन ।
'दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्'
ऋ. ५.५५.४

चक्षदानः - चक्षि + आनक् = चक्षदान । (दुक् का आगम) । अर्थ-(१) व्यक्तोपदेशक -दया. (२) शासन करने में समर्थ

चक्षस् - चक्ष् (व्यक्तवाणी बोलना या दर्शन करना) + असुन् = चक्षस् । बाहुलक नियम से यहां चक्ष का का ख्याङ् आदेश नहीं हुआ है । अर्थ (१) ख्यान (२) आंख ।
'येना पावक चक्षसा
भुरण्यन्तं जनां अनु
त्वं वरुण पश्यसि ।'
ऋ. १.५०.६, अ. १३.२.२१, २०.४७.१८, आ.सं. ५.११, वाज.सं. ३३. २२, नि. १२.२२.२५.
(३) ज्ञान ।
'महेरणाय चक्षसे'
ऋ. १०.९.१, अ. १.५.१, साम. २.११८७, वाज.सं. ११.५०, ३६.१४, तै.सं. ४.१.५.१, ५.६.१.४, ७.४.१९.४, मै.सं. २.७.५, ७९.१७, ४.९.२७, १३९.४, का.सं. १६.४, ३५.३, तै.आ. ४.४२.४, १०.१.१२. आप.मं.पा. २.७.१३, नि. ९.२७.
हे जलो, तुम महान् एवं रमणीय ज्ञान के लिए अनुग्रह करो ।
(४) सम्यक् दर्शन ।
'सोमस्य जिह्वां प्रजिगाति चक्षसा'
ऋ. १.८७.५
उत्पादक के गुणों को देखने से ही (सोमस्य चक्षसा) वाणी भी (जिह्वा) तदनुरूप व्यवहार योग्य नामों को कहती है (प्रजिगाति) ।
(५) भीतरी चक्षु, आत्मा की दर्शन शक्ति ।
'मत्यै श्रुताय चक्षसे'
अ. ६.४१.१.
(६) ज्ञान दर्शन ।
'नेमिं नमन्ति चक्षसा'
८.९७.१२, अ. २०.५४.३, साम. २.२८१.
आधुनिक अर्थ - दर्शन, ज्ञान, शिक्षक, अध्यात्म विद्या पढाने वाला, दोक्षागुरु, बृहस्पति का एक विशेषण ।

चकानः - कामना करने वाला या करता हुआ । कम + शानच्
'श्रवस्यवो वाजं चकानाः'
ऋ. २.३१.७

चकार - करोति (लट् के अर्थ में लिट) अर्थ है । करता है ।

चक्राणः - (१) भृशं युद्धं कुर्वन् (बार बार युद्ध करता हुआ), (२) प्रजाजनों के ऊपर शासन प्रबन्ध करने वाला ।
'चक्राणासः परीणहं पृथिव्याः'
ऋ. १.३३.८
पृथ्वी में प्रजाजनों पर शासन करने वाले (चक्राणासः) राष्ट्र के तेजस्वी स्वामी को (परीणाहम्)

चक्षथि - चक्ष धातु के लोट् प्र. पु.द्वि.व. का रूप । अर्थ है - करो ।
'आरोहथो वरुण मित्र गर्तम्
अतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च'
ऋ. ५.६२.८, मै.सं. २.६.९, ६९.१२, का.सं. १५.७, नि. ३.५.
हे वरुण और मित्र ! तुम दोनों रथ पर चढ़ो (गर्तम् आरोहथः) और चढ़कर अपने पक्ष को अनुपक्षीण (अदितिम्) और शत्रु पक्ष को उपक्षीण करो (दितिं चक्षाथे) ।

चक्षाणः - दिखाता हुआ, देखता हुआ । चक्ष + शानच् ।
'शतं चक्षाणो अक्षभि र्देवो वनेषु तुर्वणिः'
ऋ. १.१२८.३, का.सं. ३९.१५
अपने किरण प्रकाशों से सैकड़ो पदार्थों को दिखाता हुआ (अक्षभिः शतं चक्षाणो)-सूर्य
अन्य-अर्थ ।
अपने अध्यक्षों द्वारा सैकड़ों कार्यों का विचार करें ।

चक्रिः - (१) कर्मों को करने वाला इन्द्र या परमात्मा, (२) साधु करणशील ।
'चक्रिं विश्वति चक्रये'
ऋ. १.९.२, अ. २०.७१.८.
साधु करणशील सोम रस को सभी कर्मों को करने वाले इन्द्र को सम्मुख हो प्रस्तुत करो ।
(३) रथ का चक्का ।

'अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्'
ऋ. ६.२४.३
चक्कों की धुरी के समान ।
(४) क्रियाशील जीवात्मा, (५) समस्त लोकों को जीवात्मा, (६) समस्त लोकों को बनाने वाला परमात्मा ।
'चक्रिं विश्वानि चक्रये'
(६) सैन्यचक्र ।
'वर्तयत तपुषा चक्रियाभितम्'
ऋ. २.३४.९

चक्रिया, चक्री– (द्वि. व.) एक वचन काटने वाले घूमने वाले चक्के ।
'विवर्तेते अहनी चक्रियेव'
ऋ १.१८५.१, नि. ३.२२.
(२) चक्रवती (पहिया वाली) चक्र + घ + टाप् = चक्रिया । घ का इप ।

चक्री – कृ + कि = चक्री । अर्थ–रथाङ्गी, रथ का पहिया ।
'ऋणो रक्षं न चक्र्योः'
ऋ. १.३०.१४, अ. २०.१२२.२, साम. २.४३५.
दो चक्रों के बीच का धुरा जैसे स्वयं चलता और औरों को भी चलाता है ।

चुक्रुधम् – क्रोधित करूं ।
'भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधम्'
ऋ. ८.१.२०, साम. १.३०७, नि. ६.२४.
हे इन्द्र ! मैं तुझ धारण कर्त्ता को (भूर्णिम्) यज्ञों में (सवनेषु) सिंह के समान (मृगं न) क्रुद्ध न करूं (न चुक्रुधम्) ।
अथवा, जैसे गालादि कन्यजीव भ्रमणशील सिंह को (भूर्णिम् मृगम्) क्रुद्ध नहीं करता, उसी प्रकार हे इन्द्र ! मैं तुझे क्रुद्ध न करूं (मा चुक्रुधम्)

चक्रुष् – करने वाला ।
'उतागश्चक्रुषं देवाः
देवाजीवयथा पुनः'
ऋ. १०.१३७.१, अ. ४.१३.१, मै.सं. ४.१४.२, २१८.१.

चक्षुः – आंख ।
'चित्रं देवाना मुदगादनीकम्
चक्षु र्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७.१४, आ.सं. ५.३, वाज.सं. ७.४२, १३.४६, तै.सं. १.४.४३.१, २.४.१४.४, मै.सं. १.३.३७: ४३.८, का.सं. ४.९.२२.५. श.ब्रा. ४.३.४.१०, ७.५.२.२७, तै.ब्रा. २.८.७.३, ऐ.आ. ३.२.३.१०, तै.आ. १.७.६, २.१३.१, नि. १२.१६.
किरणों का पूजनीय या विचित्र समूह उदित हुआ । यह मित्र, वरुण एवं अग्नि नाम से ज्ञात सूर्य की आख है ।
(२) दर्शन शक्ति ।
'चक्षुरक्ष्णोः'
अ. १९.९०.१, वै.सू. ३.१४.

चक्षुर्मन्त्रः – (१) आंखों के इशारों से बातें करने वाला या गुप्त मन्त्रणा करने वाला (२) दुष्ट हृदय ।
'चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः'
अ. २.७.५, १९.४.५.१.

चक्षुष् – इख्या (प्रकथन अर्थ में) + उस् , अथवा चक्ष् (व्यक्त वचन या दर्शन अर्थों में) + उस् = चक्षुष् (चक्षेः शिच्च सूत्र से) । ख्या का बाहुलक नियम से चक्ष । अर्थ है–नेत्र ।
'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं
प्रियमेधाऋषयोनाधमानाः
अपध्वान्तमूर्णुहिपूर्धिचक्षुः
मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९. का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८. तै.आ. ४.४२.३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.
चलने वाली सूर्य की रश्मियाँ (वयः सुपर्णाः) सूर्य के निकट गईं (इन्द्रम् उपसेदुः) । वे रश्मियां यज्ञ से प्रेम करने वाली (प्रियमेधाः) प्रकाशक होने के कारण सर्वद्रष्टा (ऋषयः) तथा लोगों की प्रज्ञा को जांचने वाली हैं (नाधमानाः) । हे आदित्य, इस चक्षुरोधक अन्धकार को (ध्वानाम्) दूर कर (अपोर्णुहि), प्रकाश से चक्षु को पूर्णकर तथा बंधन में बंधे पक्षियों की तरह अपनी किरणों को मुक्त कर (निधया बद्धान् मुमुग्धि) ।
आधुनिक अर्थ–आंख, दृष्टि ।

चक्षुषः पिता – ज्ञान दर्शन करने वाले ।
इन्द्रियगण या सूर्य आदि का निर्माता
'चक्षुषः पिता मनसा हिधीरः'
ऋ. १०.८२.१, वाज.सं. १७.२५, तै.सं. ४.६.२.४,

मै.सं. २.१०.३, १३४.१, का.सं. १८.२., आप.श्रौ.सू. १७.१४.२.

चक्षुष्पाः – चक्षु का पालक ।
'चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च ो'
वाज.सं. २०.३४

चक्षुष्यत् – चक्षुवाला, मृत्यु का विशेषण ।
'चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि'
ऋ. १०.१८.१, अ. १२.२.२१, वाज.सं. ३५.७, श.ब्रा. १३.८.३.४, तै.ब्रा. ३.७.१४.५, तै.आ. ३.१५.२, ६.७.३, तै.आ. (आंध्र) १०.४६, आप श्रौ.सू. २१.४.१, साम.मं.ब्रा. १०.१.१५, नि. ११.७.

चक्षुष्मती – सब पर अपनी आंख रखने वाली
'चक्षुष्मती मे उशनी वपूंषि'
अ. १९.४९.८

चकृत – (१) बार बार किया हुआ –सा. (२) दुष्कृत कर्म –(दया.) ।
'अधस्मा नो मघवन् चर्कृतादित'
ऋ. १.१०४.५,
हे इन्द्र, बार बार की हुई मेरी स्तुति से (चकृतात्) हमें परामुख न कर ।
हे राजन्! दुष्कृत कर्म से (चकृतात्) हमें रक्षा करें । –(दया.)

चङ्क्रमा – इधर उधर जाने वाला
'खड्रेऽधिचङ्क्रमाम्'
अ. ११.९.१६

चचरा – (ब.व.) स्वतन्त्र एवं सुख से विचरण करने वाले ।
'पतरेव चचरा चन्द्र निर्णिक्'
ऋ. १०.१०६.८

चण्ड – (१) अति प्रचण्ड क्रोधी, (२) लोभी ।
'सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यः'
अ. २.१४.१

चतन् – जानता हुआ ।
'पश्वा न तायुं गुहा चतन्तम्'
ऋ. १.६५.१
(२) गुप्त रूप से रहता हुआ–आत्मा ।
'गुहा चतन्त मुशिजो नमोभिः'
ऋ. १०.४६.२

चतसृ – चार ।
'तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः'
ऋ१.१६४.४२, अ. ९.१०.१९, ११.५.१२, तै.ब्रा. २.४.६.११, नि. ११.४१.
उस जल से चारों दिशाएं जीवन धारण करती हैं ।

चतस्रः (१) चार । चतसृ + शस् । (द्वि.व.) (२) साम, दाम, दण्ड, भेद नामक चार वृत्तियां (३) चारवर्ण ।
'यदिन्द्र ते चतस्रः'
ऋ. ५.३५.२, शां.श्रौ.सू. १६.२६.२०.

चतस्रः नद्यः – (१) चारों मेघ युक्त दिशाएं ।
'मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः'
ऋ. १.६२.६,
मधुर जल से पूर्ण चारों दिशाएं ।

चतस्रः नाभाः – आदित्य की चार दीप्तियाँ ।
'चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवः'
ऋ. ९.७४.६

चतस्रः नाव – (१) चार नावें , (२) मुख्य चित्त में लगे चार अन्तकरण जो चिन्तन्, संकल्प विकल्प, मनन और धारण किया करते हैं । (३) चार वेद ।
'चतस्रो नावो जठलस्यजुष्टा'
ऋ. १.१८२.६.

चत्तः – (१) अति आह्लादित ।
'शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः'
अ. ९.५.९.
(२) याचित–दया. (३) चला गया
'दूरेचत्ताय छन्त्सत्'
ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३, श. ब्रा.४.६.९, १४, वै.सू. ३४.१, आप.श्रौ.सू. २१.१२.९, मा. श्रौ.सू. ७.२.३.
दूर चले शत्रु को भी पकड़ने की इच्छा करे ।
(४) नष्ट, (५) ताड़ित ।
'चत्तो इतश्चत्तामुतः'
ऋ. १०.१५५.२

चत्वार – (१) पृथिवी, जल, वायु और अग्नि नामक चार तत्व (२) चारों वर्ण और चारों आश्रम ।
'चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तः
ऋ. ५.४७.४
(३) चार वेद, (४) सेना के चार अंग ।
'चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वः
त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।'
ऋ. १.१२२.१५.

दुष्टों को नाश करने (माशर्शारस्य) और विजय करने वाले (जिष्णोः) राजा को (राज्ञः) चारों वर्ण और चारों आश्रम (चत्वारः) या सेना के चार अंग और सर्वव्यापक अन्नादि सामग्री के स्वामी पुरुष के (आयवसस्य) अध्यक्ष जन, भृत्यजन, और प्रजाजन ये सब बालक के समान पालन करने योग्य हैं ।

चत्वारि – (१) चार, (२) चार प्राप्तव्य पुरुषार्थ–अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ।

'चत्वार्युयुता ददत्'

ऋ. ८.२.४१

चत्वारि नाम – ब्रह्म के चार रूप चार दशाएं– जाग्रत , स्वप्न, सुषुप्ति और अमात्रा तुरीया और तदनुसार सृष्टि, स्थिति, लय और परमादशा ।

'चत्वारि ते असुर्याणिनाम

अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति'

ऋ. १०.५४.४

चत्वारि पदानि – वाणी के चार रूप जैसे (१) भूः, भुवः स्वः और प्रणव, (२) मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और लौकिक व्यवहार तथा काव्यादि भाषा, (४) सर्प, पक्षी, क्षुद्रसरीसृप और मनुष्य की भाषा, (५) पशुओं, वाद्य यन्त्रों, मृगों और अपने आत्मा की भाषा, (६) परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी–मूला धार में सूक्ष्म नाद रूप में रहने वाली परा, हृदयचक्र में पश्यन्ती , बुद्धि में मध्यमा और मुख में वैखरी (७) ब्राह्मण के अनुसार तीनों लोकों में तीन प्रकार की चौथी जंगम प्राणियों के तीनों लोको में अग्नि, विद्युत् दीप्ति रूप में और पशुओं में ध्वनि रूप में (८) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात (९)चार पैर ।

ऋक्यजुः, साम और व्यावहारिक पद (१०) ऊंकार तथा भूःभुवः और स्वर् ये तीन व्याहृति मनुस्मृति २–७६ में कहा है ।

'आकारञ्चाप्यु कारञ्च

'मकारञ्च प्रजापतिः

'वेदत्रयान्निरदुहत्

'भूभुर्वः स्वरितीति च ।'

(११) वैयाकरण नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात को ही चत्वारि पदानि मानते हैं ।

(१२) नैरुक्त ऋक् , युजुः, साम तथा व्यावहारिकी वाणी को चार पद मानते हैं ।

(१३) कई विद्वान् सर्पों की वाणी, पक्षियों की वाणी क्षुद्र जाति के रेंगने वाले क्रिमियों की वाणी–इन्हें ही परमेश्वर से उत्पन्न बतलाते हैं ।

(१४) आत्म वादियों के अनुसार–ग्राम्य पशु, वाद्य, आरण्य पशु और मनुष्यों की वाणी चार पद हैं ।

(१५) यास्क ने पृथ्वी अन्तरिक्ष, द्यौ तथा मनुष्यों की वाणी को चार पद माना है ।

(१६) याज्ञिकों के मत से मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और लौकिक भाषा ।

(१७) निरुक्त वादियों के मत से ऋक्,यजुः साम और लौकिक भाषा ।

(१८) ऐतिहासिकों के अनुसार सूर्य, पक्षी, क्षुद्रजन्तु और मनुष्यों की वाणी ही चार पद हैं ।

(१९) अध्यात्म वादियों के मत से पशु, वाद्ययन्त्र, मृग और मानव देह में फैली वाणी,

(२०) तान्त्रिकों के मत से परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ।

(२१) ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वी में अग्नि रूप, अन्तरिक्ष में वायुरूप, द्यौ में आदित्य रूप और ब्राह्मणों मे विकृता वाणी ।

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि'

ऋ. १.१६४.४५, अ. ९.१०.२७, श.ब्रा. ४.१.३.१७, तै.ब्रा. २.८.८.५, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, जै.उप.ब्रा. १.७.३,४०.१ , नि. १३.९.

चत्वारि भुवनानि– (१) चार भुवन, (२) चार जल, (३) चार जलों के समान पवित्र ।

शान्तिदायक वेदमयसाधन

'चत्वारि अन्या भुवनानि निर्णिजे'

ऋ. ९.७०.१, साम. १.५६०, २.७७३.

चत्वारिंशत् – चालीस ।

'आचत्वारिंशता हरीभिः युजानः'

ऋ. २.१८.५

चत्वारिंशी शरद् – चालीसवां जाड़ा, चालीसवां वर्ष ।

'यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं

चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्'

ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११.

सूर्य जैसे पर्ववाले मासों में विद्यमान चन्द्रमा चालीसवें वर्ष फिर पूर्व स्थान पर पाता है ।

चत्वारि श्रृंगाः – (१) यज्ञ के ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नामक चार श्रृंग, (२) कुमारिल के अनुसार दिन के चार भाग हैं, (३) सायण के मत से चार श्रृंग चारों दिशाएं हैं, (४) शाब्दिकों के मत से शब्द रूप ब्रह्म के चार प्रकार के शब्द–नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात, (५) उद्योत के मत से चारश्रृंग हैं, वाणी के चार भेद –परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ।
'चत्वारि श्रृंगाः त्रयो अस्य पादाः'
ऋ. ४.५८.३, वाज.सं. १७.९१, मै.सं. १.६.२, ८७.१७, का.सं. ४०.७, गो.ब्रा. १.२.१६, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना.उप. १०.१, आप. श्रौ.सू. ५.१७.४, नि. १३.७.

चत्वारि समुद्राः – –(१) चार समुद्र , (२) अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा और विद्युत् ।
'त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरःसमुद्रान्'
अ. १९.२७.३

चती – शत्रुनाशक ।
'तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैः'
ऋ. ६.१९.४

चतुर – (१) चल् + उर् = चतुर् । चतुर का अर्थ चार की संख्या है । चत्वारः चलितः तमाः संख्या (तीन के बाद चल कर चार होता है) (२) द्यूत क्रीड़ा में फेंके जाने वाला पाश या अक्ष भी चलता है । अक्ष ।
'चतुरक्षित् दमदमानात्'
ऋ. १.४१.९, नि. ३.१६.
अक्षों को धारण करते हुए धूर्त जुआड़ी से
(३) विष, मादक पदार्थ, परपीड़ा दूसरे के घर में आए ये चार पदार्थ ।
'अग्नि दान् भक्त दांश्चैव
तथा शस्त्रोपकाशदान् ।
संनिधातंश्च मोषूस्य
हन्यात् चौर मिवश्वरः'
मनु. अ. ९.२७७
(४) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ।

चतुरक्षः – (१) चार आंखों वाला, (२) चौकन्ना (३) अत्यन्त सावधान (४) चारों दिशाओं में व्यापक–अग्नि या परमेश्वर का विशेषण ।
'अनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे'
ऋ. १.३१.१३
(२) मकड़ी के समान चारों तरफ देखने वाला ।
'विश्वरूपं चतुरक्षम'
अ,२.३२.२.

चतुरक्षी – (१) चार आँखों वाली, (२) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणों या चार वेदों से दर्शन करने वाली ।
'शुन्याश्च चतुक्ष्याः'
अ. ४.२०.७
(३) चार आंखों वाली ब्राह्मण रूप गौ (४) चार वर्ण रूप आखों वाला राष्ट्र ।
'अष्टापदी चतुरक्षी'
अ. ५.१९.७

चतुरक्षौ – चार इन्द्रियों अर्थात् आंख, नाक, कान, और रसना वाले, (२) चारो ओर आँख रखने वाली उषी से उत्पन्न रात दिन ।
'चतुरक्षौ सबलौ साधुनापथा'
ऋ. १०.१४.१०, अ. १८.२.११, तै.आ. ६.३.१.
(३) चारों आश्रयों में व्याप्त प्राण अपान, (४) चार आंखों वाले सदा सावधान दो गुप्तचर (५) यम के दो दूत, (६) चार आंखों से कुत्ते ।
'चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ'
ऋ. १०.१४.११, अ. १८.२.१२, तै.आ. ६.३.१,

चतुरंगः – चार अंगों वाला नियन्ता ।
'नराशंसश्चतुरंगोयमोऽदितिः'
ऋ.१०.९२.११

चतुरश्रि – चारों वेदों को प्राप्त कर अथवा चारों वर्गों का उत्तम साधक ।
'त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो
देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन्'
ऋ. १.१५२.२

चतुरुत्तणि – सात प्राणों के सिवा और चार जो अन्तः करण चतुष्ठय के नाम से ख्यात हैं जो एक दूसरे में आश्रित हैं ।
'सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराणि'
अ. ८.९.१९

चतुर्दशमहिमानः – (१) परमेश्वर के चौदह महान् सामर्थ्य चौदह भुवन ।
'चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य'
ऋ. १०.११४.७

चतुर्दशाक्षर – (१) अन्तःकरण चतुष्ठय सहित दश इन्द्रियां (२) राष्ट्र के १४ अध्यक्ष ।

'रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोष मुदजयन्'
वाज.सं. ९.३४, तै.सं. १.७.११.२.

चतुर्दंष्ट्र – चार शत्रुओं को चबा जाने वाला सैनिक।
'चतुर्दंष्ट्रान् श्यावदतः'
ऋ. ११.९.१७

चतुधरितः – चार प्रकार से विभक्त वशा (परमात्म शक्ति) की उत्पादक शक्तियां–आप्त प्रजाएं, अमृत (मोक्षावस्था), यज्ञ और पशु।
'चतुर्धा रेतो अभवत् वशायाः'
अ. १०.१०.२९

चतुर्भुज द्रष्टाः – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों के साथ मनोयोग करने वाले या अन्तःकरण की चारों वृत्तियों का विरोध करने वाले तथा कर्मबीजों को ज्ञानाग्नि से विरोध करने वाले
'उष्ट्रांश्चतुर्युजो ददत्'
ऋ. ८.६.४८

चतुर्भृष्टिः – चारों ओर से भ्रंश वाली गोलभूमि।
'यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम्
ऋ. १०.५८.३

चतुर्यज् – (१) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों के साथ मनोयोग करने वाला।
(२) चतुरः अन्तः करण वृत्तीन् युञ्जतेसमादधति युञ्जते समादधति निरुन्धन्ति इति चतुर्भुजः। अन्तःकरण की वृत्तियों का विरोध करने वाला

चतुर्वय – (१) चतुर्गुण, चौगुना (२) ईश्वरीय ज्ञानका चार वेदों में विभाग, (३) जीवन रूप यज्ञ का आश्रम भेद से चार विभाग, (४) जीवन के चार पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

चतुर्बिल – (१) चार छिद्रों वाला, (२) चार भागों से युक्त (३) चार वेदों वाली मधुर वाणी।
'कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलम्'
अ. १८.४.३०

चतुर्वीर – (१) धर्म, अर्थ, ब्रह्म और मोक्ष इन चार सामर्थ्यों से युक्त प्रभु, (२) चार प्रकार के वीर्यों से युक्त पदाति, अश्व, रथ और गज से युक्त सेना।
'चतुर्वीरं पर्वतीयम् यदाञ्जनं'
अ. १९.४५.३

चतुर्वृष – चार प्राणों से युक्त आत्मा।
'यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.४

चतुर्होतारः – चतुर्होतृ नामक अश्वपाक।
'चतुर्होतार आप्रियः'
अ. ११.७.१९

चतुःश्रृंगगौरः – पदाति, रथ, अश्व और हाथी आदि चार हिंसा–साधनों से सम्पन्न गौर अर्थात् पृथ्वी में रमण करने वाला राजा।
'चतुः श्रृंगोऽवभीत गौर एतत्'
ऋ. ४.५८.२, वाज.सं. १७.९०.मै.सं. १.६.२.८७.१६, का.सं. ४०.७, तै.आ. १०.१०.२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, महा.ना.उप. ९.१३.

चतुःश्रोत्रा – (१) चार कानों वाली ब्राह्मण रूप गौ, (२) चार आश्रयरूप जन वाला राष्ट्र।
'चतुःश्रोत्रा चर्तुर्हनुः'
अ. ५.१९.७

चतुष्कपर्दा – (२) चार शिखाओं वाली। वाणी की चार शिखाएं चार वेद हैं।
'चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशाः'
ऋ. १०.११४.३

चतुष्टोम – चारों दिशाओं पर विजय करने में समर्थ।
'धर्त्रं चतुष्टोमः'
वाज.सं. १४.२३, मै.सं. २.८.४, १०९.८, का.सं. १७.४, २१.१. श.ब्रा. ८.४.१.२६.

चतुष्पदी – (१) चारों पैरों वाली, (२) माध्यमिका वाक्, (३) गौरी का एक विशेषण।
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, तै.ब्रा. २.४.६.११, ऐ.आ. १.५.३.८, तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.
माध्यमिका वाक् गौरी ने एक अधिष्ठान से या मेघ और अन्तरिक्ष नामक दो अधिष्ठानों से या चारों दिशाओं से एकात्म हो जल बनाती हुई यह सब कुछ निर्मित किया।
(४) चतुर्वेदमय वेदवाणी
'चतुष्पदीमन्वैतत् व्रतेन'
ऋ. १०.१३.३, अ. १८.३.४०

चतुष्पाद् – (१) पादचतुष्टयोपन (चार पैरों वाला), गौ आदि जन्तु, चौपाया जानवर।
'शं नो भवतु द्विपदे शं चतुष्पदे'
ऋ. ७.५४.१, १०.८५.४३, ४४, अ. १४.२.४०, मै.सं. १.५.१३, ८२.१४, ४.१२.४, १९०.१०,

आश्व.श्रौ.सू. २.९.१०, शां.गृ.सू. १.७.९, ३.४.२, ८.३, साम.मं.ब्रा. १.२.१७,१८, २.६.१, पा.गृ.सू. १.४.१६, ३.४.७, आप.मं.पा. १.१.४.

पुनः –

'प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे'

ऋ. ५.८१.२, वाज.सं. १२.३, तै.सं. ४.१.१०.४, मै.सं. २.७.८, ८४.१४, ३.२.१, १५.१, का.सं. १६.८, श.ब्रा. ६.७.२.४, नि. १२. १३.

(२) अन्तः करण चतुष्टय (३) चतुष्पाद ब्रह्म

'चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे'

वाले तथा कर्मबीजों का ज्ञानाग्नि से विरोध करने वाले ।

ब्रह्म के चतुष्पाद का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में द्रष्टव्य है।

'धर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात्'

अ. ४.११.५

चतुष्पाद् भोग्य – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रकट करने के बाद चतुष्पाद् रूप ब्रह्म ।

'चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः'

अ. १०.८.२१

चतुरक्ष – चार आंखों वाला ।

'दृव्यास्यात् चतुरक्षात्'

अ. ८.६.२२

चतुरक्षर – (१) चार अक्षय बल-सुख, शान्ति, गति और स्फूर्ति रूप सोम के चार धर्म (२) अ, उ,म. और अमात्र नामक अक्षर, (३) चतुरंग सेना (४) साम दाम भेद और दण्ड

'सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्'

वाज.सं. ९.३१, तै.सं. १.७.११.१, मै.सं. १.११.१०.१७१.२०, का.सं. १४.४.

चतुरश्रि – (१) चार स्कन्धों वाला, चतुरंगिणी सेना ।

'वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्'

ऋ. ४.२२. २

(२) चार मुखों वाला बाण, (३) चारों प्रकार के सैन्यों से युक्त राजा ।

'सजिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते'

ऋ. ५.४८.५

चतुर्युग – (१) जिसमें घोड़े जोड़ने के चार स्थान हों, (२) जो चार स्थानों में जोड़ा जाता है । (३) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में संलग्न, (४) चारों वेदों से संदेह समाधान करने वाला, (५) चारों अन्तः करेणों से युक्त ।

'चतुर्युगः त्रिकशः सप्तरश्मिः'

ऋ. २.१८.१

चतुः श्रृंगः – (१) अज्ञान का नाशकारी चार वेदमय ज्ञान को धारण करने वाला ब्रह्मा (२) चार सींगों वाला मृग (३) अन्धकार रूप अज्ञान का नाशक ।

'चतुः श्रृंगोऽवमीद् गौर एतत्'

ऋ. ४.५८.२ वाज.सं. १७.९०, मै.सं. १.६.२: ८७.१६, का.सं. ४०.७, तै.आ. १०.१०२, आपं.श्रौ.सू. ५.१७.४, महा ना. उप. ९.१३.

चतुर्हनुः – (१) चार दाढ़ों वाला ब्रह्म रूपी गौ, (२) चारों प्रकारी की सेना चार हनु हैं ।

'चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः'

अ. ५.१९.७

चतुष्पक्षछदिः – चारों पक्षों से शरीर को आच्छादित करने वाली मृगछाला जिसके प्रयोग से रक्त, पित्त वात आदि का नाश होता है । मृगछाला पर बैठने से अर्श, कण्डू, खाज आदि रोग दूर होते हैं ।

''चतुष्पक्षमिवच्छदिः'

अ. ३.७.३

चतुष्पक्षा – चार कोठरियों या चौतरफी ओसारेवाली शाला ।

'या द्विपक्षा चतुष्पक्षा '

अ. ९.३.२१

चतुष्पदी – (१) चार पदों या आश्रयों से युक्त जीवन पद्धति, (२) चार वेदों से युक्त वाणी ।

'चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन'

ऋ. १०.१३.३, अ. १८.३.४०.

(३) चारों दिशाओं में व्यापक ब्रह्मशक्ति, (४) चार भूतों में परिणाम पैदा करने वाली (५)प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रूप ब्रह्मशक्ति ।

(६) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के विचार से वाणी चतुष्पदी है ।

'एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी'

ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, १३.२.४२, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.

चतुस्त्रिंशत् – (१) चौतीस, (२) चौतीस प्रकार के

विकार-८ वसु, १२ आदित्य, ११ रुद्र, प्रजापति वषट्कार और विराट् ।

'चतुस्त्रिंशता पुरुधा विचष्टे
सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ।'

ऋ. १०.५५.३

चतुस्त्रिंशत् तन्तवः – (१) राष्ट्र यज्ञ को विस्तृत करने वाले ३४ घटक, (२) यजुर्वेद के अध्याय आठ के मन्त्र ५४ से ५९ तक सोमराजा के ३४ पदाधिकारी वर्णित हैं जो सोम राजा के ३४ अंश हैं ।

'चतुस्त्रिंशत् तन्तवो ये वितत्निरे'

वाज.सं. ८.६१

चतुःभ्रक्ति – चारों दिशाओं में प्रबल अस्त्र शस्त्रों वाली ।

'चतुःभ्रक्तिनीभिः ऋतस्य'

वाज.सं. ३८.२०, मै.सं. ४.९.१०, १३१.५, श.ब्रा. १४.३.१.१७ तै.आ. ४.११.४, ५.९.६, आप.श्रौ.सू. १५.१४.५,

चतूरात्रः – चार दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ ।

'चतूरात्रःपञ्चरात्रः'

अ. ११.७.११

चन – पच् + ल्युट् (कर्म वाच्य में) = पचन = चन (प का लोप) अर्थ है (१) जो पकाया जाय (यः पच्यते) । अथवा, भक्षणार्थक-चमु + असुन् = चसन् (मकान) । अथवा, चनस + क्विप् = चनस् (३) अव्यय, (४) अन्न अव्यय के अर्थ में प्रयोग के लिए ।

'य इन्द्राग्नी सुतेषु वां
स्तवत् ते ष्टुता वृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा
न देवा भसथश्चन'

ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.

हे ऋत अर्थात् सत्य या यज्ञ के बढ़ाने वाले (ऋतावृधा) इन्द्र तथा अग्नि, जो यजमान सोम रस चुलाकर तुम्हारी सृष्टि करते हैं उनका सोम तुम ग्रहण करते हो (यः सुतेषु वां स्तवत्) और जो अविज्ञान मलिन बात बोलते हैं (जोषवाकं वदतः), हे प्रसिद्ध स्तोत्र वाले देवों, उन के सोम रस का ग्रहण तुम कदापि नहीं करते (पज्रहोषिणा देवा न भसथः चन)

अन्य अर्थ – हे सत्य प्रचारक (ऋतावृधा) तथा अपनी आज्ञाओं का पालन कराने वाले देव, प्रधानमन्त्री तथा राजन् (इन्द्राग्नी) जो मनुष्य उन अन्नादि सोम पदार्थों के उत्पन्न होने पर तुम्हारा सत्कार करता है (वां स्तवत्) उस का अन्न तुम खाते हो (भसथः) परन्तु गमन शील संन्यासी भी ब्राह्मण का अन्न नहीं खाते (च न जोषपाकं बदतः न)

अन्न अर्थ में चन का प्रयोग –

'अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि
चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा
सत्याः सन्तु यतमानस्य कामाः'

ऋ. १०.११६.८, नि. ६.१६.

हे इन्द्र ! ये हवि प्रस्थित किये गए हैं (इन्द्र इमा हवींषि प्रस्थिताः) अतः इस हवि रुपी अन्न को जो पकाया गया है उसे पेट में धारण कर (पचता चनः दधिष्व) तथा इस सोम रस को भी धारण कर अर्थात् पी (उत सोमस्य) । हम अन्न वाले (प्रयस्वन्तः) तेरी कामना करते हैं (त्वां प्रति हर्यामसि) ।

अन्य अर्थ – हे विद्वन् (इन्द्र) ये परिपक्व फल उपस्थित हैं (इमा पचता हवींषि प्रस्थिताः) भक्षण करें (अद्धिइत्), अन्न और दूध को ग्रहण कीजिए (चनः उत सोमं दधिष्व) । अन्नयुक्त हम (प्रयस्वन्तः) आप की कामना करते हैं (त्वां प्रति हर्यामि) जिससे मुझ गृहस्थ की अभिलाषाएं सच्ची हों (यजमानन्य कामाः सत्याः सन्तु)।

'भी' अर्थ में प्रयोग

'इन्द्रश्चन त्याजसा विहुणाति तत्'

ऋ. १.१६६.१२

विद्युत् भी जल के साथ विविध कुटिल गति से चमका करता है ।

अन्नादि भोग्य पदार्थ के अर्थ में –

'सुते दधिष्व न श्चनः'

ऋ. १.३.६, अ. २०.८४.३, साम. २.४९८.वाज.सं. २०.८९

(५) उपदेश । पचतेर्वा वचे र्वा । पचनः वचनः वर्णलोपः छान्दसः । चन का अर्थ है – अन्न और (२) प्रवचन करने योग्य स्तुति योग्य भजण ।

उपेदश अर्थ में –
'चनो दधीत नाटयो गिरो मे'
ऋ. २.३५.१, मै.सं. ४.१२.४, १८७.१७, का.सं. १२.१५, आप.श्रौ.सू. १६.७.४.
प्रवचन या स्तुतित करने योग्य भजन के अर्थ में
'यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनः'
ऋ. ८.१९.११

चनस्यतम् – अन्न के समान सेवन करे ।
'पुरुभुजा चनस्यतम्'
ऋ. १.३.१

चन्द्र – (१) चद् अथवा चंद (कान्ति अर्थ में) = रक् = चन्द्र (न का आगम्) । काम्यते असौ (चन्द्रमा को सभी चाहते हैं या यह कान्त होता है) ।
(२) अथवा 'चारु द्रमति' सुन्दर रीति से चलाया है या चिरं द्रमति (चिरकाल तक चलता है) ।
(३) अथवा चम् + द्रम् = चन्द्र या चन्द्रमा (पृषोदरादिवत्) (४) अथवा–देवैः चम्यमानः द्रमति (देवताओं से भक्ष्यमाण वह चलता है) ।
(५) अथवा चिर + द्रुम् = चिरन्द्र = चन्द्र (६) अथवा, चम् + द्रम् + उ= चन्द्र (यह कृष्ण पक्ष में सूर्य के द्वारा निरन्तर पीयमान रहता है और इसकी चन्द्रिका भी घटती जाती है) ।
आधुनिक अर्थ– (१) चन्द्रमा, (२) कपूर, (३) मयूर के पंख की आंखें (४) जल, (५) सुवर्ण ।

चन्द्रनिर्णिक् – चन्द्रमा के समान शुद्ध ।
'पतरेव चचरा चन्द्र निर्णिक्
ऋ. १०.१०६.८

चन्द्रबुध्नः – (१) चन्द्रमा को अन्तरिक्ष में बांधने वाला रखने वाला सूज्ञय, (२) सूर्य आदि को अपने मूल आश्रय में रखने वाला राजा ।
'चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः'
ऋ. १.५२.३
अन्तरिक्ष में चन्द्र को रखने वाला सूर्य या अपने मूल आश्रय में रजत स्वर्ण आदि ऐश्वर्य को रखने वाला राजा ।

चन्द्रमस् – चायन् + द्रुम् + असुन् = चन्द्रमस् (चायन का चन्) । सर्वभूतानि चायन्, द्रमति गच्छति (सभी जीवों को देखता हुआ जाता है या सभी ओषधियों पर कृपा दृष्टि रखता हुआ चलता है) अथवा–चन्द्र + मा + असुन् चन्द्रमस् (डित् होने से टि का लोप) । चन्द्रश्चासौ निर्माता च (यह चन्द्र भी है और सब का या वर्ष का निर्माता भी) ।
अथवा–चान्द्रं मानम् अस्य (इसका मान चन्द्र का है) । चन्द्र सोम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । सोम पौधा चन्द्रमा की कला के अनुसार शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक एक पत्ता कर बढ़ता है । चन्द्रमा के बढ़ने का मान भी सोम लता के ही सदृश है ।
अर्थ – (१) चन्द्रमा, (२) सोमलता ।
'अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपी च्यम्
इत्था चन्द्रमसो गृहे'
ऋ. १.८४.१५, अ. २०.४१.३, समा. १.१४७, २.२६५, मै.सं. २.१३.६, १५४.१२, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.१, नि. ४.२५.

चन्द्रमसो गृहः – (१) चन्द्रलोक , (२) शरीर में आह्लाद जनक मार्ग (३) सोमचक्र
'इत्था चन्द्रमसोगृहे

चन्द्ररथ – (१) सुवर्ण का निर्मित रथ, (२) स्वर्ण रथ वाला, (३) चन्द्रवत् स्थानीय रूप वाला, (४) चन्द्रवत् सर्वाह्लादक एवं शान्तिकारक रथ सैन्यादि से युक्त, (५) अग्नि, (६) आनन्द मय रस रूप परमेश्वर ।
'चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतम्'
ऋ. ३.३.५, का.सं. ७.१२, आप.श्रौ.सू. ५.१०.४, मा.श्रौ.सू. १.५ .२.१४.
(७) जिसके रथ में रजत या सुवर्ण हो, (८) आह्लादक सुवर्ण या चन्द्र के समान प्रकाशक जीवात्मा ।
'होता मन्द्रः श्रृणवत् चन्द्ररथः'
ऋ. १.१४१.१२

चन्द्रवत् – सुवर्ण से युक्त ।
'चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च'
ऋ. ३.३०.२०, तै.ब्रा. २.५.४.१.

चन्द्रं वहतु – आह्लादकारी रथ या दहेज ।
'ये वध्वश्चन्द्रं वहतु
यक्ष्मा यन्ति जनादनु'
ऋ. १०.८५.३१, अ. १४.२.१०, आप.मं.पा. १.६.९

चन्द्रा – आह्लादकारिणी ।
'व्युषाश्चन्द्रा मध्या वो अचिषा'

ऋ. १.१५७.१, साम. २.११०.८.

चन्द्राग्रः – चन्द्र का अर्थ चयनीय या अभिपूजित और अग्र का अर्थ आगमन है। जिसका आगमन अभिपूजित है वह चन्द्राग्र है, यथा चन्द्राग्रं धनम् (अभिपूजित आगमन वाला धन)। धन का आगमन मंगलमय समझा जाता है। अर्थ– (१) धर्म्य या अभिपूजित आगमन वाला।

'स नो रासत् शुरुधश्चन्द्राग्राः
धियं धियं सीषधाति प्रपूषा'

ऋ. ६.४९.८, वाज.सं. ३४.४२, तै.सं. १.१.१४.२, नि. १२.१८.

वह पूषा धर्म्य या अभिपूजित आगमन करने वाले धनों को देता हुआ हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करें।

चनिश्चदद् – आह्लादवती रत्न सुवर्णादि।

'चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः'

ऋ. ५.४३.४

चनिष्ठः – (१) अत्युत्तम अन्न, (२) प्रचुर अन्न।

'चनिष्ठं पित्वोररते विभागे'

ऋ. ५.७७.४

चनिष्ठा – अन्न ऐश्वर्यादि से युक्त।

'अस्मे वो अस्तु सुमति श्चनिष्ठा'

ऋ. ७.५७.४

चन्द्री – (१)ऐश्वर्य वान् (२) आनन्द कारी।

'हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः'

वाज.सं. २०.३७, मै.सं. ३.११.१, १३९.१५, का.सं. ३८.६, तै.ब्रा. २.६.८.१.

चनोधाः – अन्न समृद्धि का धारक।

'सावित्रोऽसि चनोधाः'

वाज.सं. ८.७, मै.सं. १.३.२७, । ३९.१५, श.ब्रा. ४.४.१.६.

चनोहित – (१) अन्न से परिपुष्ट।

'हव्यवाऽग्निरजरश्चनोहितः'

ऋ. ३.२.२.

(२) पाचन करने वाले उपयुक्त अग्नि, (३) प्रवचन कार्य में नियुक्त (४) शासन और उपदेशक कार्य में नियुक्त।

'अत्योन वाजसातये चनोहितः'

ऋ. ३.२.७, वाज.सं. ३३.७५.

चनः वचन शब्दस्य नकार लोपेन अन्तसकारोपजनेन चनः। यद्वा वचे दसुनि बाहुलकात् नोन्तादेशः। चनः इति अन्ननाम पचनस्य पकारलोपे सकारो पजनेन च पंचेर्वासुनिनोन्ता देशः पीपतेर्वा।

(५) वचनों को धारण करने में समर्थ (६) अन्न परिपाक करने में उपयोगी (७) संचित ज्ञान का उत्तम कर्म को धारण करने वाला।

'उशिग्दूतश्चनोहितः'

ऋ. ३.११.२, वाज.सं. २२.१६, तै.सं. ४.१.११.४, मै.सं. ४.१०.१, १४३.१५, का.सं. १९.१४.

चप् – सान्त्वना अर्थ में। चुप होना इसी से बना है।

चप्य – चप् सान्त्वन। सान्त्वना अर्थ में चप् धातु आया है। दुष्टों को दूर कर प्रजा को सान्त्वना और सुख की आशा दिलाने का श्रेष्ठ कार्य।

'चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालः'

वाज.सं. १९.८८, मै.सं. ३.११.९, १५४.३, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.४.

चमस – (१) मेघ, (२) भोजन के करने का पात्र, (३) थाली, कटोरा चमच आदि (४) शस्त्रास्त्र बरसाने वाला वीर, (५) राष्ट्र का उपभोक्ता अध्यक्ष (६) भूमि और प्रजा को खा जाने वाला।

'याभिः शचीभिः चमसाँ अपिंशत'

ऋ. ३.६०.२

(७) चमनम् उदकम् सनोति, संभजते ददाति इति वा चमसः अथवा चमनम् ज्ञानावृतं सनोति इति चमसः (अर्थात् जो जल देता है वह चमस है या जो ज्ञानामृत देता है वह चमस है)। सूर्य का विशेषण (८) अध्यात्म अर्थ में सिर का विशेषण।

'तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः'

ऋ. १०.८.९, नि. १२.३८.

सूर्य नीचे छिद्र वाला है, क्योकि वह नीचे ओर किरणों को विस्तृत करता है। वह चमस है, तथा ऊपर से समस्त जगत् को उद्बोधित या नियन्त्रित करता है।

आध्यात्म अर्थ में सिर के सम्बन्ध में भी यह बात घटती है। सिर समस्त शरीर को नियन्त्रित करता है।

(९)स्रुवा, (१०) मस्तिष्क

'ऋतेनये चमसमैरयन्त'

अ. ६.४७.३, तै.सं. ३.१.९.२, का.सं. ३०.६,

का.श्रौ.सू. १०.३ .२१, मा.श्रौ.सू. २.४.१७.
(११) आध्यात्म अर्थ में चमस पात्र का निर्णय प्राणाधानाभ्यामेव उपांश्वन्त र्यामौ निरमिमीत। व्यानात् उपांशुसवनम् वाच ऐन्द्रवायवम्, पक्ष क्रतुभ्याम् मैत्रावरुणम्।
श्रोत्राद् आश्विनम्, चक्षुषः शुक्रामन्थिनौ आत्मन आग्रायणम् अङ्गेभ्य उक्थम् आयुषो ध्रुवम् प्रतिष्ठाया ऋतुपात्रे।
तै.ब्रा. १.५.१.२.
चमस समस्त आयु है। यज्ञ में चमस स्थित सोम को चार भागों में विभक्त किया जाता है। जिसका अभिप्राय जीवन को चार भागों में बांटना है। इस प्रकार यज्ञ पर अर्थ संगत होता है।
चम् (अदन् अर्थ में) + असच् = चमस्। अर्थ है (१) यज्ञ पात्र, (२) सोमरस पीने का पात्र। इन दिनों चमस और चमस् दोनों का प्रयोग इसी अर्थ में होता है।
(१३) परराष्ट्र को वश करने या हड़प जाने वाला सैनिक, (१४) पिण्ड भोजी वेतन बद्ध भृत्य।
'न्यग्रोधः चमसैः
वाज.सं. २३.१३, तै.सं. ७.४.१२.१, का.सं. (आश्व). ४.१, श ब्रा. १३.२.७.३.

चमसाध्वर्यु – चमस + अध्वर्यु चमस लेकर यज्ञ करने वाला।
'चमसाध्वर्यव एव ते'
अ. ९.६.५१

चम्बा – (द्वि.व.) सम्पूर्ण जगत् को अपने भीतर लेने वाली आकाश और भूमि।
'मही समौचम्बा समीची'
ऋ. ३.५५.२०

चम्रिस् – चम् + इति = चम्रिस् (सुट् का आगम)। चाम्यति अदति भोगान् यः (जो भोगों को भोगता है खाता है वह चम्रिस है।
'एष प्रपूर्वीरव तस्य चम्रिषः
'अत्यो न योषामुदयं स्त भुर्वणिः'
ऋ. १.५६.१, कौ.ब्रा. २५.७.
अश्व जिस प्रकार घोड़ी को प्राप्त होता है (अत्यः योषां न) या बल शौर्य में अति बढ़ने वाला पुरुष स्वयंवर में भरण पोषण करने वाला हो (भुर्वणिः) कन्या को ववाह लेता है उसी प्रकार राजा उस राष्ट्र की (तस्यचम्रिषः) सर्वश्रेष्ठ पात्र में रखी भरी पूरी (पूर्वीः) भोग्य सम्पदाओं को अधीन कर उन पर शासन कर नियम में चलाता है।

चमुरि– (१) दूसरे के ऐश्वर्य पर मुंह लगाने वाला –(दया.) (२) एक दस्यु– (३) मुख द्वारा खाने की लालसा (४) परद्रव्यभोक्ता।
'स्वप्रेनाभ्युप्या चमुरिं धुनिं च
जघन्य दस्युं प्रदभीतिमावः।'
ऋ. २.१५.९, आश्व.श्रौ.सू. ९.८.४.

चम्रीष– ये चमूभिः शत्रुसेनाः ईषन्ते हिंसन्ति ते चम्रीषः (जो सेनाओं से शत्रु सेनाओं को हिंसित करते हैं वे चम्रीष हैं) –(दया.)
'चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यः'
ऋ. १.१००.१२
बल से ही सेना द्वारा शत्रुओं का नाश करने वाला पांचों जनों के बीच शासक रूप से विद्यमान हो।

चमू – चम् + ऊ = चमू। चमति इति चमू (जो भोजन करता है वह चमू है)। अर्थ– (१) भोक्ता, भक्षयिता। (२) चमू शब्द भोग साधन द्यौ और पृथ्वी का भी वाचक है।
आधुनिक अर्थ – सेना जिसमें ७२९ गज, ७२९ रथ, २१८७ अश्व और ३६४५ पदाति योद्धा रहे।

चमूषद् – (१) पात्र में स्थित सोमरस या जल, (२) सेना में सुसज्जित वीर, (३) सेनाओं में अच्छे पद पर विराजमान (४) अच्छे पद पर विराजमान (५) ब्रह्मास्वाद में निरत मुक्त जीव।
'सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः'
ऋ. १०.४३.४, अ. २०.१७.४
(५) सेनाओं पर अध्यक्षवत् विराजने वाला सेनापति, (६) विषयों का भोक्ताइन्द्रिय, मन तथा देह के ऊपर अध्यक्षवत् विराजने वाला आत्मा (७) चमू में विराजने वाला सोम रस।
'चमूषत् श्येनः शकुनो विभृत्वा'
ऋ. ९.९६.१९, साम. २.५२७.

चम्वौ – (द्वि.व.) (१) द्यौ और पृथिवी का पर्याप्त। द्यौ और पृथिवी प्राणिमात्र के लिए भोग साधन हैं अतः उन्हें चमू नाम दिया गया है।
'उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तः'
ऋ. १.१६४.३३, अ. ९.१०.१२, नि. ४.२१.

तने हुए हमारे भोग साधन द्यौ और पृथिवी के बीच में अन्तरिक्ष है । (योनिः) ।

चयनम् – अवयवों का एकत्र होना संगृहीत होना ।
'इदं कसाम्बु चयनेन चितम्'
अ. १८.४.३७

चयमान – संग्रह करता हुआ ।
'ऋतावानश्चयमाना ऋणानि'
ऋ. २.२७.४, तै.सं. २.१.११.५, मै. सं. ४.१२.१: १७७.१०, का.सं. ११.१२

चयसे – चातयसि, नाशयसि (तू नष्ट करता है) । देवराज ने चम् धातु को गत्यर्थक भ्वादिगणीय एवं आत्मने पदीमाना है और इसे नाशन अर्थ में प्रयुक्त समझा है या चातयसि का ही विकृत रूप माना है ।
'ये त्वा देवोस्त्रिकं मन्यमानाः
पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः
न दूढ्ये अनु ददासि वाम
बृहस्पते चयस इति पियारुम्'
ऋ. १.१९०.५.
हे बृहस्पति देव ! जो यजमान धनी होते हुए भी भोग प्रधान पाप से जीर्ण (पज्राः) एवं पाप कर्म परायण हो (पापा) तुम तेजस्वी तथा कल्याणकारी का अपमान करते हुए जीवन यापन करते हैं और अपने धन को प्रत्युपकार में नहीं लगाते (उपजीवन्ति इत्) उन कुत्सित बुद्धिवालों को (दूढ्ये) तू समजनीय धन उनके अनुकूल नहीं देता (वाप्नम् अनु न ददासि) तथा यज्ञविमुख देवहिंसक को (पियारुम्) तू नष्ट करता है (चयसे) ।

चरकाचार्य – भोज्य पदार्थों के ऊपर आचार्य ।
'दुष्कृताय चरकाचार्यम्'
वाज.सं. ३०-१८, तै.ब्रा. ३.४.१.१६.

चरण – (१) सत् आचरण ।
'उपारिम चरणे जातवेदः'
अ. ७.१०६.१.
(२) गमन, कार्य,
(३) ब्रह्मचर्य व्रत ।
'पाति यह्नः चरणं सूर्यस्य'
ऋ. ३.५.५
(४) चर् + ल्युट् = चरण ।
अर्थ-स्थान ।
'सस्त्रिमविन्दत चरणे नदीनाम्'
ऋ. १०.१३९.६, मै.सं. ४.९.११,१३२.३, तै.आ. ४.११.८, नि. ५.१.
जलों का चरण स्थान अन्तरिक्ष में ही है ।

चरणिः – (१) आचरण करने वाला ।
(२) चरणशील, (३) सदाचारी साधक, (४) सेनाओं को बनाने वाला विद्वान् ।
'सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम्'
ऋ. ८.२४.२३, अ. २०.६६.२,

चरण्युः – विचरण करने वाली ।
'हृदे चक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः'
ऋ. १०.९५.६

चरति – चलता है, अनुसरण करता है ।

चरथ् – जंगम, चरपदार्थ, जगत् ।
'गर्भश्चस्थातां गर्भश्चरथाम्'
ऋ. १.७०.३
जो अग्नि या परमेश्वर स्थावर अचेतन तथा जंगम चेतन पदार्थों में भी व्याप्त हैं और उन्हें वश में रखने वाला है ।

चरथः – चर (गमनार्थक) + अथच् (भाव में) = चरथ । अर्थ है – चलना, विचरना ।
'युवं च्यवानं सनयं यथारथं
पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौर्यमूहथुरद्भ्यस्परि
विश्वेषत् तावां सवनेषु प्रवाच्या'
ऋ. १०.३९,४,
हे अश्विनीद्वय ! तुम दोनों वृद्ध एवं चलने फिरने में असमर्थ भृगु पुत्र च्यवन ऋषि को (सनयं च्यवानम्) जीर्णरथके सदृश (यथा रथम्) पुनः तरुण कर चलने योग्य बनाने के लिए (पुनः चरथाययुवानम्) प्रयत्न किया (तक्षथुः) तथा तुग्र के पुत्र भुज्यु को समुद्र से बाहर निकाला (अद्भ्यःपरि निः ऊहथुः) तुम्हारे वे सभी कर्म (वां विश्वा ता) यज्ञों में प्रवचनीय हैं (सवनेषु प्रवाच्याः) ।
अन्य अर्थ- हे राज प्रजापुरुषो (अश्विनौ) ! तुम पुराने वृद्ध उपदेशक को (युवं सनयं च्यवानम्) विचरने के लिए (चरथाय) रथ की तरह (यथा रथम्) फिर युवा करो (पुनः युवानं तक्षयुः) वैश्य वर्ग को (तौग्र्यम्) व्यापार के लिए समुद्र के पार पहुंचाओ (अद्भ्:परिनिरूहथः) तुम दोनों

राजा तथा प्रजा को ये सभी कार्य (वां ता विश्वा इत्) राष्ट्र के सभी स्थानों में (सवनेषु) कहने चाहिए । (प्रवाच्या)
(२) ज्ञान सुख की प्राप्ति (३) धर्माचरण ।
'कृधीन ऊर्ध्वाञ्चरथायजीवसे'
ऋ. १.३६,४. मै.सं. ४.१३.१, १९९.१०, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.२१, तै.ब्रा. ३.६.१.२.
(४) फल भोग, कर्मफल ।
'पुरुषा चरथे दधे'
ऋ. ८.३३.८, अ. २०.५३.२,५७.१२, साम. २.१०,४७.
(५) जंगम सम्पत्ति तथा भोग्य अन्नादि सामग्री ।
'आदित् सखिभ्यश्चरथं समैरत्'
ऋ. ३.३१.१५, तै.ब्रा. २.७.१३.३.

चरथां गर्भः – (१) चर एवं चेतन पदार्थों का गर्भरूप अर्थात् उनमें व्याप्त परमेश्वर अथवा (२) अग्नि, (३) जीव ।

चरध्यै– चर + अध्यै (तुम् प्रत्यय के अर्थ में) चरध्यै । अर्थ (१) बहाने के लिए । (२) चलाने के लिए । (३) प्राप्ति के लिए –(दया.) (४) चलने के लिए ।
'इष्यन्नर्णास्यपां चरध्यै'
ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.११ का.सं. ८. १६, नि. ६.२०.
हे इन्द्र ! तू जलों को बहाने की कामना करता हुआ ।
हे राजन् ! जैसे सूर्य अन्तरिक्ष के जलों की प्राप्ति के लिए (अपाम् अर्णांसि चरध्यै) –(दया.)

चरमः – (१) अन्तिम ।
'नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते'
ऋ. ७.५९.३, साम. १.२४१.
(२) अधम संत्राण ।
(३) अन्तिम लक्ष्य ।
'अराणां न चरमः तदेषाम्'
ऋ. ८.२०.१४

चरमतः – अन्त से ।
'स रक्षिता चरमतः स मध्यतः'
अ. १९.१५.३.

चरमाजा – (१) अन्तिम अज ।
(२) अमर आत्म शक्ति
'चरमाजापमेचिरन्'
अ. ५.१८.११,

चरुवान् – (१) प्रतिघात –दया (२) प्रतिघात करने वाला, (३) बदला लेने वाला ।
'नव चरुवांसम् नवतिं च बाहून्'
ऋ. २.१४.४

चरस् – भोग करना ।
'दशगर्भं चरसे धापयन्ते'
ऋ. ५.४७.४

चर्कृत्य – (१) पुनः पुनः कर्तव्यों में कुशल, (२) समस्त करने योग्य कार्यों में कुशल ।
'चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरम्'
ऋ. १.६४.१४.
हे मरुतो ! समस्त करने योग्य कार्यों में कुशल, संग्रामों में पराजित न होने वाले..।
(३) नए कर्म करने में समर्थ देह या वीर पुरुष ।
'चर्कृत्यं ददथुर्द्रविवयत्सखम्'
ऋ. १०.३९.१०
(४) सदा उपासना करने योग्य ।
'चर्कृत्यं चरणीनाम्'
ऋ. ८.२४.२३, अ. २०.६६.२
(५) कृती (दारणार्थक) + यङ् + अच । जो अपने विरोधियों को सदा काटता है ।
'चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यः'
अ. ६.९८.१.

चर्कृषत् – खेती करने वाला ।
'गाय गा इवचर्कृषत्'
ऋ. ८.२०.१९

चर्चक – ऋग्वेद के अध्येता शिष्य को चर्चक कहा जाता है ।

चर्चर – कर्मफल प्राप्त करने योग्य ।
'पज्रेव चर्चरं जारं मरायु'
ऋ. १०.१०६.७.

चर्चा – ऋग्वेद के चार पाद हैं चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीय । इन्हीं में चर्चा एक है । चर्चा का अर्थ है, केवल अध्ययन करना अर्थात् मुख द्वारा उच्चारण मात्र करना ।

चर्म – (१) चर्म, (२) बिछाया वस्त्र ।
'आरोह चर्म महिशर्म यच्छ'
अ. १२.३.१४.

चर्चूर्यमाण – सदा विचारणशील ।

'अनुष्टुभमुन चर्चूर्यमाणम्'
ऋ. १०.१२४.९, ऐ.आ. २.३.५.५.

चर्मन् – (१) चर् (गत्यर्थक)+ मनिन् = चर्मन् । सर्वस्मिन् शरीरे गतं संलग्नं भवति (चर्म समस्त शरीर में संलग्न है) । अथवा चर्यते शरीरात् (शरीर से यह निकाला जाता है) । उद्धृत्तं भवति (२) चलने के निमित्त, (३) शरीर ।
आधुनिक अर्थ – (१) चमड़ा, (२) स्पर्शेन्द्रिय, (३) ढाल ।
'ससस्यचर्मत्ल धिचारु पृश्नेः
अग्रेरूप आरुपितं जबारूः'
ऋ. ४.५.७.
जिस आदित्य का दीप्तिमान मण्डल चारु (जवारू) सृष्टि की आदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथिवी के निकट से (रूपः) निश्चल द्युलोक के ऊपर (ससस्य पृश्नेः अधि) चलने के निमित्त (चर्मन्) आरोपित हुआ (आरुपितम्) –सा.
अन्य अर्थ–जिस सोते हुए के भी शरीर पर (ससस्यपृश्नोः अधि) सुन्दर ऊर्ध्वरेतस्कं आरोपित हो (चारुजवारू आरूपितम्) । जैसे द्युलोक में आरोपण कर्त्ता परमात्मा का (पृश्नेः अधि सपः) उसी प्रकार वीर्य पति के शरीर में आरोपित है ।

चर्मम्नः – (१) चर्म खण्ड आदि का अभ्यासी (२) चर्म वेष्टित शरीर में कर्म और ज्ञान का अभ्यासी जीव ।
(३) चमड़ा बनाने वाला, रगड़ रगड़ कर मुलायम करने वाला ।
'साध्येम्यश्चर्मम्नम्'
वाज.सं. ३०.१५.

चर्षाणि – (१) चायिता, द्रष्टा, देखने वाला । चायृ (पूजा और निशामन अर्थों में)+ अनि = चर्षणि (चायृ का चर्ष आदेश) ।
शाकटायन के मत से ।
'कृष् + अनि = चर्षणि'(क् का च्)
(२) सर्वद्रष्टा सूर्य ।
' पिता कुटस्य चर्षणिः '
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
अच्छे बुरे किए कर्मों का (कुटस्य) द्रष्टा (चर्षणिः) सम्पूर्ण जगत का पालक पितृस्थानीय (पिता) सूर्य ।
(३) मनुष्य ।
'एवैश्च चर्षणीनां'
ऋ. ८.६८.४, साम. १.३६४, नि. १२.२१.
मनुष्यों के मार्गों से ।
(४) द्रष्टा ।
'जेता शत्रून् विचर्षणिः'
ऋ. २.४१.१२, अ. २०.२०.७, ५७.१०, तै.ब्रा. २.५.३.२.
इन्द्र शत्रुओं का विजेता और सर्वद्रष्टा है ।

चर्षणिप्रः – (१) मनुष्यों को पूर्ण करने वाला परमेश्वर ।
'यः चर्षणिप्रः वृषभः स्वर्विद्'
अ. ४.२४.३,

चर्षणिप्राः– (१) प्रजा को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला –परमेश्वर ।
'विशः पूर्वीः प्रचरा चर्षणिप्राः'
ऋ. ७.३१.१०, अ. २०.७३.३, साम. १.३२८, २.११४३,
(२) दर्शन कराने वाले चक्षुओं को प्रकाश से पूर्ण करने वाला सूर्य ।
'महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९,तै.सं. १.४.२१.१, मै.सं. १.३.२४. ३८.१६, का.सं.४.८, ऐ.ब्रा. ५.१८.१४, कौ.ब्रा. २१.४.२६.१२, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.४.
लोगों की कामना पूर्ण करने वाला इन्द्र या सूर्य ।
(३) मनुष्यों का पालन करने वाला । –(दया.)
(४) किसानों या विद्वानों के मनोरथ को पूर्ण करने वाला ।
'आवृत्रहेन्द्रः चर्षणिप्राः'
ऋ. १.१८६.६.

चर्षणीधृत् – मनुष्यों को धारण करने वाला इन्द्र ।
'इन्द्रस्य चर्षणीधृतः'
ऋ. ३.३७.४, अ. २०.१९.४, मै.सं. ४.१२.३, १८४.६,

चर्षणीधृत – (ब.व.) चर्षणीनां मनुष्यानां धारयिता (मनुष्यों को धारण करने वाला) । अर्थ– (२)

मनुष्यों को धारण या पालन करने वाले विश्वेदेवा ।

'ओमासश्चर्षणीधृतः

विश्वेदेवास आगत'

ऋ. १.३.७, वाज.सं. ७.३३, ३३.४७, तै.सं. १.४.१६.१, मै.सं. १.३.१८, ३७.१, का.सं. ४.७, कौ.ब्रा. २६.१०, शां.ब्रा. ४.३.१.२७, ऐ.आ. १.१.४.११ शा.श्रौ.सू. ७.१०.१४, १०.९.१६, आप.श्रौ.सू. १२.२८.४, मा.श्रौ.सू. २.४.२.३५, नि. १२.४०.

मनुष्यों के धारण या पोषण करने वाले तथा अपने उपकारों के द्वारा उनके रक्षिता विश्वदेव आवे ।

चर्षणीनां राजा- (१) मनुष्यों के बीच में राजा, (२) दर्शन शील इन्द्रियों का राजा ।

'यो राजा चर्षणीनाम्'

ऋ. ८.७०.१, अ. २०.९२.१६, १०५.४, साम. १.२७३, २.२८३, ऐ.आ. ५.२.४.२, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.४., शां.श्रौ.सू. १८.१०.७, वै.सू. ३९.१२.

चर्षणीसह् - (१) सब मनुष्यों को जीतने वाला ।

' अस्मभ्यं चर्षणीसहम्

सस्निं वाजेषु दुष्टरम्'

ऋ. ५.३५.१

(२) सब मनुष्यों को वश करने में समर्थ ।

'हर्यश्वं सत्यपतिं चर्षणीसहम्'

ऋ. ८.२१.१०, अ. २०.१४.४, ६२.४.

'चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्'

ऋ. १.११९.१०.

'गां न चर्षणीसहम्'

ऋ. ८.१.२. अ. २०.८५.२, साम. २.७.११,

चरथ - पशु ।

चरा- (१) विचरना, घूमना, (२) कर्मफलों का उपभोग ।

'विश्वंजीवं प्रसुवन्ती चरायै'

ऋ. ७.७७.१.

चराथ - पशु के हृदय आदि का अथवा पशुजन्य घृतादि का हवि ।

चरथा- चर + अथक् = चराथ + टाप् = चराथा (दीर्घ छान्दस है) । सायण ने चरथ का अर्थ पशु और चारथ का अर्थ पशु के हृदय आदि से बना हवि किया है । अतः सायण का अर्थ पश्वाहुत्या (पशु की आहुति अर्थात् पशु जन्य घृतदुग्धादि की आहुति) है ।

चराचर- (१) चर और अचररूप संसार

'दिवि पन्थाश्चराचरः'

ऋ. १०.८५.११, अ. १४.१.११.

(२) चराचर प्राणी ।

'चराचरेभ्यः स्वाहा'

वाज.सं. २२.२९, तै.सं. १.८.१३.३, मै.सं. ३.१२.१०,१६३.१२. का.सं. १५.३.

चरित - (१) किया हुआ व्यापार (२)चालान किया गया माल ।

'शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च'

अ. ३.१५.४.

चरितवे - उठकर काम पर जाने के लिए ।

'जिह्मश्ये चरितवे मघोनी'

ऋ. १.११३.५

चरित्र - (१) चरित्र, चाल चलन, (२) शील, (३) आगे बढ़ने वाला कदम ।

'चरित्रं हि वे रिवा च्छेदि पर्णम्

आजा खेलस्य परितक्म्यायाम्'

ऋ. १.११६.१५

रात्रि में अन्धकारमयी अज्ञान दशा में (परितक्म्यायाम्) भोगविलास की क्रीड़ा करने वाले राजा का (खेलस्य) शील, चरित्र या आगे बढ़ने वाला कदम (चरित्रम्) पक्षी के पंख के समान (वेः पर्णम् इव) बढ़ जाता है । (अच्छेदि) ।

चरिष्णु - चर् + इष्णुच् । अर्थ-चरणशील ।

चरिष्णुधूमः - (१) फैलने वाले धूम वाला -अग्नि । (२) विश्व भर में व्यापक संचालक शक्ति वाला ।

'चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्'

ऋ. ८.२३.१,साम.१.१०३.

चरिष्णूमिथुनौ - (१) साथ साथ चलने वाले सूर्य और वैश्वानर अग्नि का जोड़ा ।

'यदा चरिष्णू मिथुनावभूताम् ।

आदित् प्रापश्यन् भुवनानिविश्वा'

ऋ. १०.८८.११, मै.सं. ४.१४.१४, २३९.१८, नि. ७.२९.

जब ये दोनों साथ-साथ चलने वाले सूर्य तथा

वैश्वानर अग्नि एक जोड़े के समान प्रादुर्भूत हुए उसके बाद से ही उन दोनों को सभी जीवों ने प्रकर्ष पूर्वक देखा ।

चरु – चि (चुनना, चयन करना) + डरु = चरु (डित् होने से टि का लोप) ।
अथवा – चर् + उ = चरु
अर्थ – (१) मिट्टी का बर्तन जिसमें जल रखा जाता है–चरुई
'समुच्चरन्ति अस्मात्'
आपः (इसमें से जल निकलता है) ।
(२) हव्यपाक–हवनीय पदार्थ ।
(३) चर्यते भक्ष्यते (जो खाया जाता है) । हंड़िया, चरुई ।
'तपुर्यस्तु चरु रग्निवां इव'
ऋ. ७.१०४.२, अ. ८.४.२, का.सं. २३.११, नि. ६.११.
वह दण्डित या राक्षस आगे में पड़े हंड़िया की तरह उबके या शुद्ध होकर प्रयत्न शील हो ।
(४) अन्तरिक्ष में दीख पड़ने वाला मेघ –
(५) सत्यज्ञान का ढंकना –(दया.)
'सनो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि'
ऋ. १.७.६, अ. २०.७०.१२, साम. २.९७१.
हे वर्षा बरसाने वाले इन्द्र या सत्य वर्षक परमेश्वर ! आप के महान् उपकारों का प्रतिकार नहीं हो सकता । अतः आप अन्तरिक्ष के इस दृश्यमान मेघ को या सत्य ज्ञान के ढकने को उत्पादित करें ।
आधुनिक अर्थ– (१) चावल का पिण्ड, (२) हंड़िया, (३) चरुई ।
(६) आचरण ।
'असिं सूनां नवं चरुम्'
ऋ. १०.८६.१८, अ. २०.१२६.१८.
(७) ओदन् (८) परमेष्ठी प्रजापति, (९) रेतस् ।
ओदनो हि चरुः
श.ब्रा. ५.४.२.१
'परमेंष्ठी वा एष यदोदनः'
तै.ब्रा. १.७.१०.६
'प्रजापतिर्वाओदनः'
श.ब्रा. १३.३.६.७
'ईतो वा ओदनः'
श.ब्रा. १३.१.१.४
'अपूपवान् क्षीरवान् चरुरेह सीदतु'
अ. १८.४.१६, २४.
(१०) भोग योग्य कर्मफल ।
'सनो वृषन्, अमुंचरुम्'
ऋ. १.७.६, अ. २०.७०.१२, साम. २.९७,१.

चलाचलासः– (ब.व.) चल + अचल = चलाचल ।
चलाचल + जस् = चलाचलासः । अर्थ – (१) चल और अचल, (२) दिनरात का विशेषण । दिनरात चल इसलिए है कि वे अस्थायी हैं और अचल इसलिए कि वे नियमपूर्वक एक दूसरे के बाद आते हैं ।
'तस्मिन् साकं त्रिशतान शंकवः
अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः'
ऋ. १.१६४.४८, नि. ४.२७.
उस काल चक्र में वर्ष के ३६० दिन रूपी कील ठोके गए हैं । वे दिन रात चल और अचल दोनों है (चला चलासः) ।

चषाल– (१) एक वृक्ष विशेष, (२) स्तम्भ का मुख्य भाग, (३) राजा का प्रधान पद ।
'चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति'
ऋ. १.१६२.६, वाज.सं. २५.२९, तै.सं. ४.६.८.२, मै.सं. ३.१६.१, १८२.८, का.सं. (अश्व.) ६.४.
(४) यूप का छल्ला या अग्रभाग, (५) राजा का अग्रासन ।

चषालवत् – (१) भोग करने योग्य नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न (२) सुन्दर छल्लों से युक्त यज्ञयूप, (३) यज्ञयूप के ऊपर लगाए जाने वाला सुवर्ण का छल्ला ।
'चषाल वन्तः स्वरवः पृथिव्याम्'
ऋ. ३.८.१०, तै.ब्रा. २.४.७.११, आप श्रौ.सू. ७.२८.२.

च्यवतानः – दानशीलपुरुष ।
'सहस्रा मे च्यवतानो ददानः'
ऋ. ५.३३.९.

च्यवन – च्यु + णि + ल्युट् च्यावन (णि अन्तर्हित है) । च्याव + युच् = च्यावन
(१) च्यावयिता स्तोमानाम् (स्तोमों का प्रवर्तयिता) (२) एक ऋषि का नाम जो भृगु के पुत्र थे ।
च्युधातु गत्यर्थक है

(३) मन्त्रद्रष्टा - दया. ।
(४) बल वीर्य का नाशक ज्वर ।
'नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे'
अ. ७.११६.१.

च्यवना - (ब.व.) (१) गतिशील पदार्थ, (२) सूर्यलोक आदि ।
'येनेमा विश्वा च्यवनाकृतानि'
ऋ. २.१२.४, अ. २०.३४.४.

च्यवान - व्युत्पत्ति के लिए ।
(१) भृगु पुत्र च्यवन ऋषि- (२) उपदेशक, द्रष्टा-(दया.)
'युवं च्यवानं सननं यथारथम्
पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः
ऋ. १०.३९.४, नि. ४.१९.
हे अश्विनीद्वय, तुम दोनों ने वृद्ध एवं चलने फिरने से असमर्थ भृगुपुत्र च्यवन ऋषि को (सनयं च्यवानम्) जीर्ण रथ के सदृश (यथा रथम्) पुनः तरुण कर चलने के योग्य बनाने के लिए (पुनः चरथाय युवानम्) प्रयत्न किया (तक्षथुः) ।
हे राजा एवं राज पुरुषो ! (अश्विनौ) तुम पुराने वृद्ध उपदेशक को (युवं सनयं च्यवानम्) विचरने के लिए (चरथाय) रथ की तरह फिर युवा करो । -(दया.)
(३) इस लोक को छोड़कर जाने वाला, (४) वृद्ध पुरुष ।
'पुनश्च्यवानं चक्रथुर्यवानम्'
ऋ. १.११८.६

चाक्रन् - (१) चायन् ,पश्यन् (भय या उत्सुकता से देखता हुआ) (२) कामयमान (कामना करता हुआ) ।
चाय + शतृ = चायन् = चाकन् (च् का क)
चक (इच्छा करना) + शतृ = चकन = चाकन् ।
'वने न वा यो न्यधायि चाकन्
शुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता
नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् '
ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१,
हे पोषक या धारक अश्विनीद्वय (भुरण्यौ), जैसे वन में (वने न) पक्षी द्वारा वृक्ष पर, (रखा हुआ बच्चा (वायः न्यधायि) भय या उत्सुकता से दिशाओं को देखता हुआ (चाकन्) रहता है उसी प्रकार नीड़ रूपी हममें स्थित पवित्र (शुचिः) आप दोनों का (वाम्) स्तोत्र (स्तोम) है जिसका (यस्य) मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा या शूरों में श्रेष्ठ शूर (नृणां नृतमः) तथा मनुष्यों का उपकारी (नर्यः) सोम भागी इन्द्र भी ललचता है (क्षपावान् इन्द्र इत्) बहुत दिन (पुरुदिनेषु) नित्य यह स्तोत्र मेरा हो-ऐसा कहने वाला या आह्वाजा होता है । ऐसा स्तोत्र जिसके लिए इन्द्र भी ललचता है - आप अश्विनी द्वय के लिए नित्य प्रयुक्त होता है आप दोनों के निकट जाता है (अजीगः) ।
अन्य अर्थ- हे सबके पालन करने वाले स्त्री पुरुषो (भुरण्यौ) ! जैसे इधर उधर देखने वाला या भोजनादि की इच्छा करता हुआ पशु पक्षी किसी वन में रखा हुआ होता है (चायन् वायः वनेन न्यधायि) एवं सुपर्ण परमेश्वर का पुत्र पवित्र वेद तुम्हें वन में स्थापित किया हुआ प्राप्त होता है । (शुचिः स्तोम वाम् अजीगः) जिसके लिए कल्याणकारी (यस्य नृणानृतम्ः नर्यः) और प्रलयरात्रि को करने वाला परमेश्वर ही (क्षपावान् इन्द्र इत्) बहुतदिनों के व्यतीत हो जाने पर प्रलय के पश्चात् प्रदाता है (पुरुदिनेषु होता) । कामनावान के अर्थ में प्रयोगः
'उक्थेष्विन्नु शूर के येषु चाकन्'
ऋ. २.११.३

चाक्ष्म - (१) व्यक्तवाक्-(दया.) (२) सबको स्पष्ट आज्ञा देने वाला, (३) उत्तम वाणी से उपदेश करने वाला ।
'चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धना'
ऋ. २.२४.९

चाक्षुष - अपराधों को भली भांति परखने वाला ।
'सुयामन् चाक्षुष'
अ. १६.१७.७

चाक्षुषीवर्षा - परमेश्वर के चक्षु रूप सूर्य से उत्पन्न वर्षा ।
'वर्षाश्चाक्षुष्यः'
वाज.सं. १३.५६,श.ब्रा.८.१.२.२

चाण्डाल- चण्डता से युद्ध करने वाला ।
प्रचण्ड पुरुष ।

'वायवे चाण्डालम्'
वाज.सं. ३०.२१, तै.ब्रा. ३.४.१.१७.

चातयति – नाशयति (नाश करता है) ।

चातयामसि – चातयामः (दूर करते हैं) नष्ट करते हैं ।
'शिरिम्बिठस्य सत्वभिः
तेभिष्ट्वा चातयामसि'
ऋ. १०.१५५.१, नि. ६.३०.
हे दरिद्रते ! हम तुझे शिरिम्बठ ऋषि के उन प्रसिद्धजल रूपी सत्वों से नष्ट कर देंगे । या मेघ से नष्ट कर देंगे ।

चाति – नाश करना ।

चातुर्मायानि – चातुर्मास में किये जाने योग्य वैश्वदेव, वरुण प्रघास साकमेध ।
'चतुर्होतारे आप्रियः
चातुर्मास्यानि नीविदः'
अ. ११.७.१९

चाय – इच्छा करना, देखना, हिन्दी का चाहना धातु चाय का ही बिगड़ा रूप है ।

चायमानः – (१) सत्कार करता हुआ ।
'अभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्'
ऋ. ६.२७.५
(२) ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (३) वृद्धियुक्त ।
'पशुष्कविरशयत् चायमानः'
ऋ.७.१८.८

चायु – (१) सत्कार करने वाला (२) सत्कार करने योग्य ।
'यज्ञेषु ये उ चायवः'
ऋ. ३.२४.४

चारथ गण– विचरण करने वाला सैन्यगण ।
'अधयञ्चारथे गणे
शतमुष्ट्रां अचिक्रदत्
ऋ. ८.४६.३१

चारु– चर् (गत्यर्थक) + उण् = चारु (उपधा की वृद्धि) । अर्थ है – (१) चलने वाला, चरण शील, (२) त्वष्टा अग्नि का विशेषण, (३) अनवस्थित (४) पवित्र, (५) चरति चित्ते इति चारुः रूपों (जो चित्त में चरण करता है वह चारु अर्थात् सुन्दर है) (६) चर् + ञुण = चारु, (७) रुच (दीप्त्यर्थक से पृषोदरादिवत् वर्ण विपर्यय से चारु शब्द बना) ।
'आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु
जिह्वाना मूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।'
प्रकाशमान या प्रकाशविस्तारक त्वष्टा अग्नि इन क्रियाओं में चरण शील (आसुचारुः) तथा दूसरे का आश्रय न लेने वाला (स्वयशा) अपने स्थान में (उपस्थे) कुटिल मनुष्यों या कुटिल इन्धनों के ऊपर सीधे होकर जाता है ।
अन्य अर्थ–प्रकाश विस्तारक (आविष्ट्यः) सुमनोहर अग्नि (चारुः) इन यज्ञ क्रियाओं में बढ़ती हैं (आसु वर्द्धते) । यह अग्नि कुटिल वस्तुओं के मध्य में भी उर्ध्वगामी है ।
आधुनिक अर्थ– (१) मन के अनुकूल (२) प्रिय, (३) पवित्र, (४) मनोज्ञ ।
(८) सर्वत्र विद्यमान्, प्रभु ।
'यज्ञश्चभूत विदथे चारुरन्तमः'
ऋ. १०.१००.६
(९) उत्तम चलने वाला रथ ।
(१०) रथादि चलाने वाला अग्नि ।
(११) उत्तम संचालक।
''राजा विशामतिथिश्चारुरायभवे'
ऋ. २.२.८

चारुतमः – (१) सबसे अधिक प्रशंसनीय , (२) पवित्रतम ।
'दस्मस्य चारुतममसि दंसः'
ऋ. १.६२.६
दुःखों के नाशक विद्युत् इन्द्र का यही सबसे प्रशंसनीय कार्य हैं ।

चारुनाम – (१) उत्तम वेग से चलने वाला जल, (२) उत्तम स्वरूप (३) सुन्दर नाम, कीर्ति यश (४) उत्तम व्यापक शासन ।
'ऋभुश्चक्र ईड्यं चारुनाम' ।
ऋ. ३.५.६

चारुप्रतीक – (१) उत्तम उपक्रम वाला (२) उत्तम गुण कर्म स्वभावों से उत्तम रीति से कार्यारम्भ करने वाला, (३) उत्तम गुणों से प्रतीत । प्रसिद्ध (४) अग्नि ।
'चारुप्रतीक आहुतः'
ऋ. २.८.२

चाष – चष् (भक्षणार्थक) + अण् = चाष । अर्थ (१) बुभुक्षा ।

'चाषेण किकिदीविना '
ऋ. १०.९७.१३, वाज.सं. १२.८७. मै.सं. २.७.१३, ९४.७, का.सं. १६.१३.
(२) खाने योग्य पदार्थ, (३) भुक्त पदार्थ ।
'चाषान् पित्तेन'
वाज.सं. २५.७,मै.सं. ३.१५.९,१८०.५.
(४) लोवा नामक पक्षी ।
'अग्नीषोमाभ्यां चाषान् '
वाज.सं. २४.२३, मै.सं. ३.१४.४,१७३.५.

चिकित्र- (१) प्राप्ति, (२) कान्ति ।
'आते चिकित्र उषसाभिवेतयः '
ऋ. १०.९१.४

चिकित्वन्मनाः - विज्ञानयुक्त विद्वानों के समान ज्ञान एवं मननशक्ति वाला ।
'चिकित्वन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये '
ऋ. ५.२२.३

चिकित्वान् - (१) चेतनवान्, जानने वाला, ज्ञान ।
'मूरा अमूरा न वयं चिकित्वो
महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से '
ऋ. १०.४.४, नि. ६.८.
हे अमूढ़ चेतनावान् अग्ने ! हम मूढ़ भला तेरा महत्त्व क्या जाने ? तू ही अपना महत्व जानता है ।
अन्य अर्थ- हम मूढ़ विद्यार्थी जगत्पिता का महत्त्व क्या समझें । हे अमूढ़ मित्र ! आप इसका महत्व जानते हैं ।
(२) अग्नि का वाचक ।
'आ च वह मित्र महश्चिकित्वान् '
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं, ४.१३.३,२०१.९, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.१,नि. ८.५.
हे मित्रों के स्तुत्य (मित्रमहः) तथा चेतनावान् अर्थात् यजमानों की स्तुतियों को समझने वाला (चिकित्वान्) देवताओं को बुला या उन्हें हवि पहुंचा (च आवह) पुनः ।

चिकितुष् - (१) जानने वाला, ज्ञानवान् ।
'सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय '
ऋ ७.१०४.१२, अ. ८.४.१२.
'अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम्'
ऋ. ३.५३.२४
(२) क्रान्तदर्शी विद्वान् ।
'अचिकित्वान् चिकितुषः चिदत्र'
ऋ. १.१६४.६
अज्ञानी मैं ज्ञानवान् के समीप ।
(३) प्रशस्तविद्य, विद्वान् ।

चिकितुषी - ज्ञानवती ।
'चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्'
ऋ. १०.१२५.३

चिकिते- (१) जाना जाता है -सा. (२) निवास करता है-दया. ।
'संचित्रेण चिकितेरंसु भासो'
ऋ. २.४.५, नि. ६.१७.
वह अग्नि अपनी विचित्र आभा से युक्त हो द्युलोकादि या अग्नि होत्र जैसे स्थानों में जाना जाता है (रसु चिकिते) ।
अन्यअर्थ-वह विद्वान् अद्भुत् तेज के साथ रमणीयस्थानों में निवास करता है । (रंसु चिकिते) -(दया.) ।

चिकेतत् - जानता है जाने ।
'इहब्रवीतु य उतश्चिकेतत् '
ऋ. १.३५.६
जो भी इस रहस्य को जाने वह इस विषय में सबको उपदेश करे ।

चिञ्चिकः - ज्ञान की कामना करने वाला पुरुष ।
'वृषारवाय वदते यदुपावंते चिञ्चिक '
ऋ. १०.१४६.२, तै.ब्रा. २.५.५.६,

चित्- अनेक अर्थों में प्रयुक्त ।
(१) पूज्य अर्थ में ।
'आचार्यश्चित् इदं ब्रूयात्'
आचार्य ही ऐसा कहे और कौन कह सकता है ।
(२) 'ही' अर्थ में ।
ओकश्चित्
(उसी घर में)
(३) भी अर्थ में ।
'आधश्चित् यं मन्यमानः तुरश्चित् द्र '
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.३५, तै.ब्रा.२.८.९.७, आप. मं.पा. १.१४.२, नि. १२.१४.
जिस भग (आदित्य) को दरिद्र भी पूजता और यम भी (तुरश्चित्) (४) चित्त ।

'नू चित् तधिष्व मे गिरः'
ऋ. १.१०.९.
हे इन्द्र ! मेरी स्तुतियों को शीघ्र चित्त में धारण कर ।
पुनः–
'यो विश्वतः सुप्रतीकः सुदृङ्ङसि
दूरेचित् सन्तडिदिवातिरोचसे ।
रात्र्यश्चिदन्धो अतिदेवपश्यसि
अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।'
ऋ. १.९४.७
हे अग्ने ! तू सर्वतः शोभनदर्शन (सुप्रतीकः) तथा समान रूप से देखा जाता है । (संदृक्), दूर पड़ता हुआ भी (दूरे चित् सन्) तड़ित के समान निकट ही अतिदीप्त जान पड़ता है । (तड़ित् इव अति रोचसे) और राज का भी जो अन्धकार है, (रात्र्याः चित् अन्धः) उसे भी निकालकर तू देखता है (अतिपश्यसि) । हे देव, तेरी मैत्री में स्थित हम किसी से हिंसित न होंवे (तव सख्ये वयं मा रिषाम) ।
(५) इव, जैसा, तरह, सदृश् ।
(६) अभिपूजित अर्थ में ।
'प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्
सङ्गे समत्सु वृत्रहा
अस्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां
ज्याका अधिधन्वसु'
ऋ. १०.१३३. अ. २०.९५.२, साम. २.११५१, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४,१८९.८, तै.ब्रा. २.५.८.२.
हे स्तोताओं, प्रकृष्ट तथा प्रशस्त स्तुतियों से (प्र उ सु) इस इन्द्र के रथ के आगे खड़े होकर इसके बल की स्तुति करो (शूषम् अर्चत्) । किस लिए ? संग्राम काल में (संगे) संग्रामों में अभिपूजित लोककर्त्ता या स्थान कर्ता (लोककृत् चित्) वृत्र का वध करने वाला इन्द्र होगा (वृत्रहा उ)।
हे इन्द्र ! तू हमारा अनुज्ञाता है । (भगवन् इन्द्र ! अस्माकं चोदिता) अतः तू हमारा ध्येय समझ (बोधि) । अन्य शत्रुओं के धनुषों मे चढ़ायी मौर्वी टूट जाय (अन्यकेषाम् अधिधन्वसु ज्याका नभन्ताम्) ।
अपि (भी) के अर्थ में
'अश्विना वेह गच्छतं
ना सत्या मा विवेनतम्
तिरश्चिद् अर्यमा परि
वर्तियतिमदाभ्या माध्वी ममश्रुतं हवम् ।'
ऋ. ५.७५.७.
हे प्रत्यक्षभूत नासत्य देवो ! (नासत्यौ) अश्वनीद्वय (अश्विना), तुम दोनों इस यज्ञ में अप्रतिबद्धगति से सोम पीने के लिए आओ (अदाभ्या आगच्छतम्) और विगत काम न होओ (मा विवेनतम्) तथा प्राप्त या अप्राप्त स्थान में भी स्थिर होकर तुम दोनों (तिरश्चित्) समर्थ, शीघ्र रथगति या दैवगति से (अर्यया) परिवर्तन कर आओ (परिवर्तिः यातम्) ।
सायण ने इसका अर्थ दूर देश से भी हमारे घर पर आओ (तिरश्चित् परिवर्ति यातम्) किया है । हे मधुर और सोम मिश्रित पेय वाले । (माध्वी) तुम मेरी पुकार सुनो (मम हवं श्रुतम्) ।
पुनः, काशि, उलूखल ।
(७) पशु नाम में चित् का प्रयोग ।
'चिदसि मनासि धीरसि'
हे गौ अर्थात् वेदवाणी । तू चित् है क्योंकि तुझ में सभी भोग संचित हैं (चिताः त्वयि भोगः) या 'सर्व चेतयसे ज्ञायसे '
(८) संज्ञान अर्थ में चित् + क्विप् = चित् । अर्थ है ज्ञाता ।
(९) एव अर्थ में ।
त्यंचित् (उसी को)
(१०) मर्म ।
(११) चेतनावान् जीव ।
'चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना'
ऋ. १०.१४३.४
(१२) जिस प्रकार, जैसे ।
'कुमारश्चित् पितरं वन्दमानम्'
ऋ. २.३३.१२
'परशुं चिदं वितपति
शिम्बलं चिद् विवृश्चति ।'
ऋ. ३.५३.२२

चित – चि + क्त (१) इन्धन युक्त अग्नि (२) चिता, (३) चेतनायुक्त जीव
'यथाकृतम् अभिमित्रं चितासः'
ऋ. ७.१८.१०

चिन्तनी – (१) ज्ञान उत्पन्न कराने वाली, (२) बुद्धिमती ।
'वनेमतद्धोत्रया चितन्त्या'
ऋ. १.१२९.७
हम लोग ज्ञान उत्पन्न कराने वाली वाणी द्वारा (चितन्त्या होत्रया) उस परमश्रेष्ठ ब्रह्मपद को प्राप्त करें (तत् वनेम) ।

चितयन् – भय खाता हुआ ।
'प्रवद्भिरिन्द्रात् चितयन्त आयन्'
ऋ. १.३३.६
परम ऐश्वर्यवान् शत्रुघाती इन्द्र या राजा से भय खाते हुए (इन्द्रात् चितयन्तः) नीचे उतरने वाले मार्गों से (प्रवद्भिः) जल धाराओं के समान भाग जाते हैं (आयन्) ।

चित्त – चित् (संज्ञान अर्थ में) + क्त = चित्त । अर्थ है (१) प्रज्ञान, (२) जानने वाला ।
आधुनिक अर्थ – (१) देखा गया, (२) विचारा गया, (३) इष्ट, (४) चिन्ता, (५) ध्यान, (६) इच्छा, (७) लक्ष्य (८) मन, (९) हृदय, (१०) बुद्धि । (११) तर्कशक्ति ... ।
'अमीषा चित्तं प्रतिलोभयन्ती'
ऋ. १०.१०३.१२; अ. ३.२.५, साम. २.१२११, वाज.सं. १७.४४, नि. ९.३३.
ग्रहण करने वाली–प्रजा ।
'वयाकिनं चित्त गर्भासु सुस्वरुः'
ऋ. ५.४४.५

चितयन्ती – ज्ञान देने वाली ।
'पावकया यश्चियन्त्या कृपा'
ऋ ६.१५.५, वाज.सं. १७.१०, मै.सं. २.१०.१, १३१.१५, का.सं. १७.१७. श.ब्रा. ९.१.२.३०.

चित्तस्यमाता – ज्ञान करने के समान रूप अन्तःकरण को बनाने वाली आकृति देवी, ।
'चित्तस्यमाता सुहवा नो अस्तु'

चित्पतिः – चेतनाओं का पति परमेश्वर ।
'चित्पतिर्मापुनातु'
वाज.सं. ४.४, श.ब्रा. ३.१.३.२२, आप श्रौ. सू. १०.७.१२.

चित्रक्षत्रः – आश्चर्यकारी वीर्यवाला और राज्य का स्वामी ।
'चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्'
ऋ. ६.६.७
'चित्रं ग्राभं सं गृभाय'
ऋ. ८.८१.१, साम. १.१६७, २.७८, व.पू.ता. उप. १.४.

चित्रतम – सबसे अधिक संग्रह करने योग्य ।

चित्रदृशीकं – आश्चर्य से देखने योग्य ।
'अयं विदत् चित्रदृशीकमर्णः'
ऋ. ६.४७.५

चित्रा – एक नक्षत्र का नाम ।
'चित्राशिवा स्वाति सुखो मे अस्तु'
अ. १९.७.३

चित्य – रचना ।
'चिखा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य'
अ. १०.२.८.

चित्रध्रजति – ध्रजति का अर्थ वेग है । अतः चित्र धजति का अर्थ हुआ–अद्भुत वेगवान् गति वाला ।
'चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोः'
ऋ. ६.३.५, मै.सं. ४.१४.१५, २४०.१२.

चित्र – चाय + क्रप् = चित्र =(चाय का चि और तुक् का आगम) अर्थ – (१) = पूजनीय, (२) विचित्र ।
'यदिन्द्र चित्र मेहना अस्तित्वादातमद्रिवः'
ऋ. ५.३९.१, साम. १.३४५, २.५२२, पंच.ब्रा. १४.६.४, नि. ४.४.
हे इन्द्र, जो तेरा पूजनीय या विचित्र धन है और जो तेरे द्वारा देने योग्य है तथा बढ़ने वाला है ।
(३) उषा – प्रकाश का विशेषण ।
'चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा'
ऋ. १.११३.१, साम. २.१०९९, नि. २.१९.
यह प्रकाश चयनीय या पूजनीय है । अन्धकारावृत सभी पदार्थों का प्रकाशक तथा सर्वत्र व्याप्त होकर प्रकट हुआ
(विभ्वा अजनिष्ट) (४) चित् रूप में रमण करने वाला उत्तम ज्ञानवान् पुरुष ।
(५) समस्त संसार का संचय करने वाला –सूर्य ।
'चित्रः चिकित्वान् महिषः सुपर्णः'

ऋ. १३.२.३२, वै.सू. ३३.८.
(६) सबको चेतना या ज्ञान देने वाला प्रभु (चित् + र्) (समस्त जगत् में पूज्य आश्चर्यजनक शक्ति वाला ।
' चित्र इद्राजा राजकाइदन्यके '
ऋ. ८.२१.१८.
(८) चित् स्वरूप में रमण करने वाला आत्मा ।

चित्रभानुः – (१) आश्चर्यजनक दीप्तिवाला इन्द्र (२) अग्नि ।
'श्रूया अग्निं श्चित्रभानुर्हवं मे '
ऋ. २.१०.२
इन्द्र के अर्थ में –
'इन्द्रायाहि चित्रभानो '
ऋ. १.३.४. अ. २०.८४.१, पंच. ब्रा. १४.२.५, ऐ.आ. १.१.४.९, शां .श्रौ.सू. ७.१०.१३, वै.सू. ३१.१६,३३.१४,४०.११.
(३) चित्र विचित्र नाना रंगों की किरणों वाला सूर्य ।
'विभक्तासि चित्रभानो
सिन्धोरूर्मा उपाक आ
सद्योदाशुषे क्षरसि '
ऋ. १.२७.६, सामं. २. ८४८
हे सूर्य ! तू समुद्र के तरंग के उठने पर समीप ही जलों को जलकणों के रूप में विभक्त कर देता है और उस सूक्ष्म जल को शीघ्र ही वर्षा रूप में बरसा देता है ।

चित्रयाम – अद्भुत वेग से जाने वाला ।
' तं चित्रयामं हरिके शमीकहे '
ऋ. ३.२.१३.

चित्ररथ – (१) पुण्यगन्धाविराट् ।
का वत्स, (२) यह शरीर ।
'तस्या श्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् '
ऋ. ८.१० (५) ६

चित्र्य– आश्चर्यजनक ।
'आ चित्र चित्र्य भरा रयिं नः '
ऋ. ७.२०.७

चित्रराती– (द्वि.व.) (१) अद्भुत दान देने वाले अश्विद्वय (२) स्त्री पुरुष ।
'बभूवतुर्गृणते चित्रराती '
ऋ. ६.६२.५

चित्रवर्हिष् – (१) जिसके प्रकाश से अन्तरिक्ष विचित्र हो जाता है । सूर्य का विशेषण (२) अद्भुत वृद्धिशील कर्मों का ऐश्वर्यों ओर प्रजाजनों से या लोक-समूह सें युक्त तेजस्वी विद्वान् ।
'आपूषन् चित्र बर्हिषम्
आधृणे धरुणं दिवः
आजा नष्टं यथापशुम् '
ऋ. १.२३.१३

चित्रसेनः – नाना प्रकार की सेनाओं का स्वामी ।
'चित्रसेना इषुबला अमृधाः '
ऋ. ६.७५.९, वाज.सं. २९.४६, तै.सं. ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३, १८६.१४, का.सं. (अश्व.) ६.१

चित्रा – (१) चैतन्य देह में रहने वाली आत्मा ।
'अश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता '
ऋ. १०.७५.७
(२) आश्चर्य शक्ति शालिनी उषा कया ईश्वरीय शक्ति ।
'अश्वे न चित्रे अरुषि '
ऋ. १०.३०.२१
हे व्यापक (अश्वे) आश्रचर्यशक्ति शालिनि (चित्रे) अतिदीप्तिमती (अरुषी) ईश्वरीय शक्ते ।
(३) संग्रहशील वैश्य प्रजा ।
'पशून् न चित्रा सुभगा प्रथाना '
ऋ.१.९२.१२

चित्राधीः– चेताने वाली बुद्धि या कार्यशैली ।
'इन्द्र प्रचित्रयाधिया '
ऋ. ८.६६.८, अ. २०.९७.२, साम. २.१०४२

चित्रामघा – उषा ।

चित्रायुः – आश्चर्यजनक या जीवन वाली ।
'पावीरवी कन्या चित्रायुः '
ऋ. ६.४९.७, तै.सं. ४.१.११.२, मै.सं. ४.१४.३, २१९.३, का.सं. १७.१८, आश्व.श्रौ.सू. २.८.३, ३.७.६, ५.२०.६.

चित्तिः– (१) ज्ञान, (२) चित्त का उत्तम संकल्प ।
'चित्तिरा उपबर्हणम् '
ऋ. १०.८५.७, अ. १४.१.६, शां.गृ.शू. १.१२.४.
(३) सुचित्तता, (४) चेतना (५) सावधानता ।
'चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे '
ऋ. २.२१.६, पा.गृ.सू. १.१८.६
(६) संगृहीत संचित धन ।
(७) पुण्य से प्राप्त धन ।

(८) चेतनायुक्त ।
'चित्तिमचित्तिं चिनवद् विविद्वान्'
ऋ. ४.२.११, तै.सं. ५.५.४.४. का.सं. ४०.५.
(९) चित् स्वरूप सबमें चेतना देने वाला परमेश्वर, (१०) स्वयं ज्ञानवान् (११) प्रजाओं को चेताने वाला ।
'चित्तिरपां दमे विश्वायुः
सद्येव धीराः संमायचक्रुः'
ऋ. १.६७.१०.
वह ज्ञानवान् चित्त स्वरूप सबमें चेतना को देने वाला, सब का जीवनाधार होकर प्राणों और जलों के बीच में समस्त प्रजाओं को उत्पन्न करता है । ध्यानी बुद्धिमान् पुरुष निर्माण कर के जैसे अपना घर खड़ा कर देते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष जिसे अच्छी प्रकार जानकर अपना परम आश्रय बना लेते हैं ।
(१२) चित् + क्तिन् । बरसाने की क्रिया जैसे विद्युत् सम्पन्न करती है, (१३) बरसने की चिह चिटा ध्वनि, (१४) विद्युत् की चमक ।
'सा चित्तिमि र्निहिचकार मर्त्यम्'
ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, जै.ब्रा. २.२६०, नि. २.९.
विद्युत् अपनी चिटचिटा ध्वनि से मनुष्यों को भय से विनम्र कर देती है ।
(१५) सायण ने इस शब्द का अर्थ द्योतन लक्षण कर्म किया है । (१६) कर्म, (१७) चेतनाशक्ति ।
'आकूतय उत चित्तये'
अ. ६.४१.१
(१८) चित्त सा संकल्प ।
'चित्तिरा उपबर्हणम्'
ऋ. १०.८५.७, अ. १४.१.६, शां.गृ.सू. १.१२.४.

चित्तिनः – (ब.व.) समान चित्त वाले ।
'ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट'
अ. ३.३०.५

चिदर्बुद – असंख्यत ऐश्वर्यों एवं उत्तम गुणों से युक्त ।
'महान्त चिदर्बुदं निक्रमीः पदम्'
ऋ. १.५१.६
महान एवं असंख्यात एश्वर्यों एवं उत्तम गुणों से युक्त पद को प्राप्त कर ।

चिद्ध – चित् + ह । इसी प्रकार ।
'कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेष'
ऋ. ४.१०.७

चिश्चा– चिश्चा हंसना अर्थ में आया है । अर्थ है (१) हंसी की ध्वनि, (२) बाण छूटने की आवाज ।
'चिश्चाकृणोति समनावगत्य'
ऋ. ६.७५.५, वाज.सं. २९.४२,तै.सम. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३, १८६.१, का.सं.(अश्व.) ६.१, नि. ९.१४.
युद्ध में जाकर बाण चिश् चिश् शब्द करता है । या मानुषी दीप्ति से हंसता है (चिश्चा करोति) ।

चिश्चाकृणोति – प्रस्मयते (अत्यन्तस्मित या लज्जित होता है), चिश्चा का अर्थ चींचीं ऐसा शब्द करना भी है, जो हंसने की तरह है । बाण छूटने के समय ऐसा ही शब्द होता है । जिससे हंसी से उत्प्रेक्षा की गई है ।

चीक्लृपाति – क्लृप् धातु समर्थकरना अर्थ में प्रयुक्त है । अर्थ है– समर्थ बनाता है ।
'आदित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति'
ऋ. १०.१५७.२, अ. २०.६३.१, १२४.४, साम. २.४६१, वाज.सं. २५.४६ तै.आ. १.२७.१, मा.श्रौ.सू. ७.२.६, आप.श्रौ.सू. २१.२२.१

चीति– (१) शरीर–परमाणुओं के संग्रह और उपचय होने की विधि (२) देह में वृद्धि प्राप्त करने की विधि ।
'देवास्ते चीतिमविदन्'
अ. २.९.४

चीपुद्रु – चीपु नामक वृक्ष । यह अज्ञात है । सम्भवतः यह शिफा या जटामासी हो । कफ से उठी गिल्टी को दबाने में यह एक ओषधि है ।
'चीपुद्रुरभिचक्षणम्'
अ. ६.१२७.२

चीयमानः– बढ़ता हुआ ।
'सहस्राक्षोमेधाय चीयमानः'
वाज.सं. १३.४७, मै.सं. २.७.१७,१०२.१०, श.ब्रा. ७.५.२.३२.

चुमुरिः – (१) प्रजा के धन को हड़प जाने वाला ।
'त्वं निदस्युं चुमरिंधुनिं च'
ऋ. ७.१९.४, अ. २०.३७.४, तै.ब्रा. २.५.८.११

(२) खा जाने वाला ।
'इन्द्रो धुनिं च चुमुरिंच दम्भयन्'
ऋ. १०.११३.९
पुनः-
'सुमन्तुनामा चुमुरिंधुनिंच'
ऋ. ६.१८.८

चुमुरी- राष्ट्र को भोगने वाला सामर्थ्य ।
'सस्तो धुनी चुमुरी याह सिप्रव'
ऋ. ६.२०.१३

चृ - (१) चीरना, काटना ।
'क इमान् विद्वान् विचचर्त पाशान्'
अ. १४.१.५६
(२) खोलना, दूर करना ।
'अयस्मयान् विचृता बन्धपाशान्'
अ. ६.८४.३

चृत- (१) बांधना ।
'आत्वा चृतत्वर्यमा'
अ. ५.२८.१२
(२) जुदा करना, खोलना ।
'ब्रह्मणा विचृतामसि'
अ. ९.३.८

चृतन्ति - खोलते हैं, प्रकट करते हैं ।
'विथे चृतन्ति ऋता सपन्तः'
ऋ. १.६७.८
जो एकत्र हो विविधसत्यों को प्रकट करते हैं ।

चेकितान - ज्ञानवान्, अन्यों को ज्ञान देने वाला ।
'एवा बभ्रो वृषभ चेकितान'
ऋ. २.३३.५, तै.ब्रा. २.८.६.९.

चेतत् - ज्ञानी पुरुष ।
'प्रिया मित्रस्य चतेतोध्रुवाणि'
ऋ. ४.५.४

चेतनी- चेतना सम्पन्न ।
'रयिं दधातु चेतनीम्'
अ. ९.४.२१.

चेतयन्ती - (१) चेतयमाना, जतलाती हुई, (२) चेतानेवाली ।
'आनोयज्ञं भारती तूयमेतु
इडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदंस्योनं
सरस्वती स्वयसः सदन्तु ।'
ऋ. १०.११०.८, अ. ५.१२.८, वाज.सं. २९.३३, मै.सं. ४.१३.३, २०२.९,का.सं. १६.२० तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१३.
आदित्य से उत्पन्न दीप्ति हमारे यज्ञ में शीघ्र आवे (नः यज्ञे भारतीतूयम् आ एतु) तथा मनुष्य के सदृश जानती हुई पृथ्वी स्थानीय इडा देवी यहां आवे एवं मध्यमस्थानी सरस्वती वे तीनों देवियां जो सुन्दर कर्मों से युक्त हैं इस सुखकर कुशपर बैठें (चेतयन्ती इडा इह सरस्वती तिस्रः देवीः स्वपसः इदं स्योनं बर्हिः आसदन्तु) ।
अन्य अर्थ-हमारे घर में आदित्य ज्योति शीघ्र प्राप्त हो, मनुष्य की तरह चेताने वाली पृथिवी स्थ अग्नि (इडा) हमारे इस यज्ञ में शीघ्र प्राप्त हो, एवं उत्तम कर्मों को सिद्ध करने वाली ये तीन देवियां (स्वपसः तिस्रो देव्यः) हमारे इस सुखकारी शिल्प यज्ञ में आस्थित हों ।
अर्थात्-सूर्य की किरण, अग्नि और विद्युत् की सहायता से शिल्प यज्ञ करना चाहिए ।

चेतस् - चित् + असन् = चेतस्
अर्थ (१) चित्त ।
'यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा'
वाज.सं. ३.४५,२०.१७,मै.सं. १.१०.२, १४२.१, का.सं. ९.४, श.ब्रा. २.५.२.२५, १२.९.२.३,
(२) सम्यक् ज्ञान ।
'मनसे चेतसे धिय आकूतय चित्तये'
अ. ६.४१.१

चेत्यः - उत्तमदाता ।
'त्वं त्राता तरणे चेत्योभूः'
ऋ. ६.१.५, मै.सं. ४.१३.६, २०६.१४, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.२.

चेता - विवेक द्वारा छानवीन करने वाला ।
'इमे चेतारो अनृतस्यभूरेः'
ऋ. ७.६०.५

चेत्ता - (१) ज्ञान स्वरूप, (२) साक्षात् दर्शाने और ज्ञान कराने वाला सूर्य, (३) सब ज्ञानों को प्राप्त कराने वाला, (४) धर्माधर्म को चेताने वाला ।
'सचेत्ता देवतापदम्'
ऋ. १.२२.५, वाज.सं.२२.१०,तै.सं. १.४.२५.१, २.२.१२.२, मै.सं . ४.१२.२:१८०.१२.
(२) जानने वाला विद्वान् ।

'उग्रश्चेत्ता सपत्नहा'
अ. ४.८.२, का.सं. ३७.९, तै.ब्रा. २.७.८.१, १६.१.

चेतिष्ठः – (१) अत्यन्त चेतनावान् अग्नि का विशेषण–
(२) उत्तम चेताने वाला उपदेशक–(दया.)
'प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरम्'
ऋ. १.१२८.८, ७.१६.१, साम. १.४५., २.९९, वाज.सं. १५.३२, तै.सं.सं. ४.४.४.४, मै.सं. २.१३.८, १४७.४, का.सं. ३९.१५.
प्रिय अत्यन्त चेतनावान् (चेतिष्ठम्) पर्याप्त बुद्धि वाले (अरतिम्) एवं यश को सुशोभित करने वाले अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ।
हितकर, चेताने वाले, आर्य,हिंसा रहित, शुभकर्म करने वाले (स्वधरम्) उपदेशक को स्वीकार करता हूँ। (दया.) (३) सबसे अधिक ज्ञानवान्।
'गावा चेतिष्ठो आसुरो मघोनः'
ऋ. ५.२७.१

चेदिः– विद्वान्।
'येनेमे यन्ति चेदयः'
ऋ. ८.५.३९

चेरु – सेवा, परिचर्या करने वाला।
'त्वं ह्येहि चेरवे'
ऋ. ८.६१.७, साम. १.२४०, २.९३१. ऐ.ब्रा. ४.३१.११, ५.१६.२०, २०.२०, ऐ.आ. ५.२.२.५, आश्व.श्रौ.सू. ५.१५.३, शां.श्रौ.सू. ७.२०.४.

चेष्टत् – क्रिया शील संसार।
'ईशे सर्वस्य चेष्टतः'
अ. ११.४.२४

चैद्यः – (१) विद्वानों में उत्तम (२) प्रभु, (३) सब जीवों में व्याप्त।
'यथा चित्यैद्यः कशुः'
ऋ. ८.५.३७.

चोदः – (१) कशा (चाबुक) की चोट (२) प्रेरक पुरुष।
'जघमे चोद एषां विसक्थानि नरो यमुः'
ऋ. ५.६१.३.
(३) गुरु द्वारा उपदेश करने योग्य प्रभु–प्रेरित वाक्य – वेद।
(४) आज्ञा, (५) कानून।
'एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ'
ऋ. २.१३.९

चोद प्रवृद्ध – (१) प्रेरणा से प्रवृद्ध, (२) चोदना या वेदाज्ञा के बल से सबसे उत्तम और बढ़ी हुई शक्ति से युक्त (३) सबसे बड़ा और आदरणीय।
'चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून्'
ऋ. १.१७४.६

चोदयन् – प्रेरित करता हुआ।
'सो अस्य कामं विधतोनरोषति
मनो दानायचोदयन्।'
ऋ. ८.९९.४, अ. २०.५८.२.
मन को दान के लिए प्रेरित करता हुआ वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भक्त की कामना भग्न नहीं करता।

चोदयसि – संयोजयसि, अनुगृह्णासि (प्रेरित करता है, संयोजित करता है, अनुग्रहीत करता है)

चोदना– (द्वि.व.) उत्तम कर्मों को करते हुए स्त्री पुरुष।
'अप्रियं चोदनां वां मिमाना'
वाज.सं. २९.७,तै.सं. ५.१.११.३, मै.सं. ३.१६.२,१८४.११, का. सं. (अश्व.) ६.२.

चोदयन्मतिः – (१) सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाली बुद्धि और वाणी वाला, (२) प्रेरक वाणी वाला।
'रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते'
ऋ. ८.४६.१९

चोदिता – प्रेरक ज्ञापक।
'शाकीभव यजमानस्यचोदिता'
ऋ. १.५१.८
तू यजमान या कर देने वाले,
या आदर मान करने वाले का आज्ञापक होकर शक्तिमान होकर रहा।
(२) अनुज्ञात के अर्थ में–
'अस्माकं बोधि चोदिता'
ऋ. १०.१३३.१, अ. २०.९५.२, साम. २.११५१, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४,१८९,९, तै.ब्रा. २.५.८.२.
हे इन्द्र। तू हमारा अनुज्ञाता है। (अस्माकं चोदिता) अतः तू हमारी ध्येय समझ (बोधि) (३) ऐश्वर्य देने वाला (४) आज्ञा चलाने वाला।

'यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य'
ऋ. २.१२.६, अ. २०.३४.८

चोदौ – (१) चोदना अर्थात् वेदशास्त्र के अनुसार चलाने वाले इन्द्रासोमा अर्थात् इन्द्र और सोम, (२) राजा और वैश्यवर्ग –(दया.)
'रध्रास्यस्थो यजमानस्य चोदौ'
ऋ. २.३०.६

चोष्कूय– ष्कुञ् (छकाना) का नाम धातु। यह धातु कहीं दानार्थक और कहीं नाशार्थक भी है।

चोष्कूयते– (१) व्युदस्यति (छकाता है) ष्कुञ् धातु व्युदसन् अर्थात् तंग करना और छकाना अर्थात् में है। यङ्गुलन्त में यह लट् में प्र.पु.ए.व. की रूप है। अर्थ है, दण्ड देता है। हिन्दी का छकाना धातु इसी चोष्कु का अपभ्रंश प्रतीत होता है।
'चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्'
ऋ. ६.४७.१६, नि. ६.२२
इन्द्र या परमेश्वर यज्ञ-विमुख मनुष्यों को (विशः) दण्ड देता है। (चोष्कूयते) तथा यज्ञशील मनुष्यों को (मनुष्यान्) पुण्य लोक में स्थान देता है।
(२) देता है।
'निसर्वसेन इषुधीरसक्त
समर्योगा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कयमाण इन्द्र भूरिवामम्
मापणिर्भूरस्मदधिप्रवृद्ध'
ऋ. १.३३.३
बहुत सेनाओं से युक्त इन्द्र ने (सर्व सेनः) निषङ्गों को पीठ पर रख लिया (रषुधीन् न्यसक्त) ये सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं (अर्यः) जिस राजा के देश में लोग जल चाहते हैं (वृष्टि) अतः जिसके बाण मेघों को क्षीण करते हैं (गाः संभजति)। हे प्रकृष्ट बुद्धि युक्त इन्द्र! (प्रवृद्ध इन्द्र) हमें प्रचुर धन देते हुए (अस्मत् अधि भूरिवामं चोष्कूयमाणः) तू बनिया मत बन (मा आपणिःभूः)।
चोष्कूय शानच् = चोष्कूयमाण (छकाता हुआ, दण्ड देता हुआ,
(३) शक्ति में अत्यन्त बढ़ा हुआ, (४) सब शत्रुओं को मारने वाला इन्द्र या परमेश्वर का विशेषण।
'चोष्कूयमाण इन्द्र भूरिवामम्'
ऋ. १.३३.३
हे ऐश्वर्यवन्, हे अतिअधिक शक्ति में बढ़ा हुआ या शत्रुओं को मारने वाला तू बहुत अधिक सुन्दर, भोगने योग्य, उत्तम धन को प्रदान करने वाला होकर।

च्यौत्न – (१) प्राप्त करना, प्राप्ति।
'पुरां च्यौत्ना य शयथोयनूचित्'
ऋ. ६.१८.८
(२) शत्रु को पदच्युत करने वाला साधन-शस्त्रास्त्र (३) स्तोत्र –दया.
'प्रच्यौत्ना नि देवयन्तो भरन्ते'
ऋ. १.१७३.४, कौ.ब्रा. २४.५.
(४) शत्रुओं को पद दलित करने वाला बल।
'तवच्यौत्नानि वज्रहस्तंतानि'
ऋ. ७.१९.५,अ. २०.३७.५

छ

छदयत् – आच्छादन करने वाला रक्षक।
'सो अस्मै चारु श्छदयदुत स्यात्'
ऋ. १०.३१.४

छदिः– (१) छत, छजनी।
'द्यौरासीदुतच्छदिः'
ऋ. १०.८५.१०, अ. १४.१.१०.
(२) दुर्गम स्थान पर चढ़ने का साधन, (३) अन्तरिक्ष।
'छदि श्छन्दः'
वाज.सं. १४.९, १५.५, तै.सं. ४.३.५.१,१२.३, मै.सं. २.८.२, १०८.५, २.८.७,११२.३, का.सं. १७.२,६, शा.ब्रा. ८.२.४.५, ५.२.६.

छन्दस् – छदि + असुन् = छन्दस्। वेद मन्त्रों का छन्द। छन्द सात हैं –गायत्री, पंक्ति, त्रिष्टुप, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती और जगती।
छादन से अर्थात् पाप दुःखादिको से रक्षा के लिए आत्मा के आच्छादन से इसका नाम छन्दस है।
छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है– देवा वै मृत्योः विभ्यतः त्रयीं विद्यां प्राविशः ते छन्दोभिः अच्छादयन् पदेभिः आच्छादयः तत् छन्दसः छन्दस्त्वम्। (२) उणादि कोष में आह्लादन अर्थ

वाले चदि धातु से छन्दस् की सिद्धि की गई है। वेदाध्ययन से सत्य विद्या के ज्ञान के कारण मनुष्य आह्लादी होता है। अतः मन्त्र या वेद का नाम छन्दस् है।

छन्दःपक्षे – दिशा रूप पक्षों वाली दोनों उषाएं सांय और प्रातः।
'प्रजापतेवी एतानि अंगाति
यच्छन्दांसि'
ऐ. ब्रा.
'छन्दः पक्षे उषसा पेपिशाने'
अ. ८.९.१२

छन्दःस्तुभ– (१) वेदमन्त्रों का उपदेशक, (२) छन्दों से स्तवन करने वाला (३) युद्ध की नाना गति से शत्रुदल को मारने वाला।
'छन्दस्तुभः कुभन्यवः'
ऋ. ५.५२.१२

छन्दस्या – (१) छन्दोमयी वाणी (२) प्रजानुरंजनी वाणी।
'छन्दस्यां वाचं वदन्'
ऋ. ९.११३.६

छन्दांसि – छन्द, (२) अर्थववेद –(दया.)।
'छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्
यजुस्तस्मादजायत।'
ऋ. १०.९०.९, अ. १९.६.१३, वाज.सं. ३१.७, तै.आ. ३.१२.४.
(३) दिशाएं (४) रस, (५) इन्द्रियां, (६) प्राण, (७) पशु।
'छन्दांसि पक्षौ मुखमस्यसत्यम्'
अ. ४.३४.१

छन्दुः – (१) स्वच्छन्द, स्वतन्त्र।
'वृषाछन्दुः भवति हर्यतोवृषा'
ऋ. १.५५.४
वह मेघ के समान वर्षक (वृषा) प्रजाओं का मनोरञ्जन करता हुआ स्वतन्त्र या मुक्त हो जाना है।

छन्दोम – गायत्री आदि स्थानों से निर्मित त्रिपृत आदि स्तोत्र का नाम छन्दोस है।

छन्दोमयज्ञ – (१) छन्दोय से निष्पन्न न होने वाला यश (२) गायत्री आदि छन्दों से निर्मित त्रिवृत् आदिस्तोत्र छन्दोम कहलाया है।
छान्दोय यज्ञ का निर्णय सामवेद के ताण्डय ब्राह्मण में वर्जित है।
यह दश रात्रि का होने से दाशरात्र भी कहा गया है।

छर्दिः – (१) गृह, शरण।
'छर्दिर्यच्छ वीतह व्याय शप्रथः'
ऋ. ६.१५.३
(२) शुद्ध आच्छादन से प्रकाशमान पर
'प्र नो यच्छतात् अवृकं पृथुच्छर्दिः
प्र देवि गोमती रिषः'
ऋ. १.४८.१५
हे उषा या कान्तिमनी देवि, स्त्री। हिंसक प्राणी बिच्छू सर्पादि से रहित (अवृकम्) अति विशाल घर (पृथु छर्दिः) और गौ आदि पशुओं से सम्पन्न अन्नादि ऐश्वर्यों का खूब प्रदान किया कर (३) सबके शरण रूप परमेश्वर।
'अग्नि सुदीतये छर्दिः'
ऋ. ८.७१.१४, अ. २०–१०३.१
(४) छत, सुख युक्त।
'छर्दिर्यच्छमघवद्भ्यश्च मह्यं च'
ऋ. ६.४६.९, अ. २०.८३.१, साम. १.२६६. का.सं. ९.१९.
'छर्दिर्यन्तमदाभ्यम्'
ऋ. ८.५.१२, ८५.५.

छर्दिष्पाः – (द्वि.व.) (१) गृहों की रक्षा करने वाले।
'यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा'
ऋ. ८.९.११, अ. २०.१४१.१

छागः– (१) छाग्या इयम् (बकरी का दूध। (२) बकरा, (३) छयत्ति छिन्नति रोगान् यः स छागः।
'होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आताम्'
वाज.सं. २१.४३, मै.सं. ४.१३.७, २०८.३, तै.ब्रा.३.६.११.१.
अग्नि (होता), अश्विनीद्वय या कर्म की पूजा करे (अश्विनौ यक्षत), ये दोनों छागके हवि खावें (छागस्य हविः आत्ताम्)।
(४) शत्रुओं का छेदन करने वाला, (५) शस्त्रविद्या और युद्ध में निपुण, (६) राष्ट्र को भिन्न–भिन्न भागों में बांटने वाला वीर पुरुष (७) शत्रुओं को काट गिराने वाला सैन्यबल सेनापति।

'सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन'
वाज.सं. २८.२३,४६, का.सं. १९.१३
(८) पर पक्ष का छदन करने वाला तर्क (९) शत्रु पक्ष का छेदक नीति बल ।
'छागेन तेजो हविषा श्रृतेन'
वाज.सं. १९.८९,मै.सं. ३.११.९,१५४.४,का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २ .६.४.४.
(१०) छयते, छेदनार्थान् छातोः
औणादि को गन प्रत्ययः ।
छयाते छिनस्ति इति छागः
छापूखडिभ्यः कित् (दया.)
छो छेदने दिवादिः ।
छो गुग्ह्रस्वश्च इति कन् प्रत्यये
गुगागमो ह्रस्वश्च
छयति छिनत्ति इति छगलः
छागः वर्करो वा इति दयानन्दः ।

छायक – मुंह से काटने वाला ।
'छापकादुत नग्नकात्'
ऋअ. ८.६.२१

छाया – छाया ।
'छायेव विश्वं भुवनं सिसक्षि'
ऋ. १.७३.८

छावा– गृह ।

छिद्र – दोष त्रुटि ।
'यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः'
अ. १९.४०.१

छिन्नपक्ष– कटे पंखों वाला, आश्रय-रहित ।
'छिन्नपक्षाय वञ्चते'
अ. २०.१३५.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.५.

छुबुक– ठोढ़ी ।
'कर्णाभ्यां छुबुकादधि'
ऋ. १०.१६३.१, अ. २.३३.१, २०.९६.१७, आप. मं.पा. १.१७.१.

ज

जक्षत् – (१) खाता पीता हुआ, विनोद क्रीड़ा करता हुआ (२) भोगी, विलासी ।
'त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च'
ऋ. १.३३.७

जक्षिवस् – घस् (खाया) + क्वसु = जक्षिवस् । घस् का जक्षि आदेश । अर्थ है-खाए हुआ ।

जक्षिवान् – अर्थ-उत्तम अन्न खाने वाला ।
'जक्षिवांसः पपिवांसो मधूनि'
अ. ७.९७.३

जक्षिवांसः – 'जक्षिवस्' शब्द के प्रथमा ब.व.का रूप । घस् (खाना) + क्वसु = जक्षि-वस् । (१) वसुओं के विशेषण के रूप में प्रयुक्त खाये हुए या खाकर ।

जगत् – (१) सर्व व्यापक प्रभु ।
'यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं'
ऋ. १.१६४.२३, अ. ९.१०.१, ऐ.ब्रा. ३.१२.६, कौ.ब्रा. १४.३.
(२) चर, (३) प्राणी, (४) जंगम संसार, (५) गतिशील ।
'यत्किञ्च जगत्यां जगत्'
वाज.सं. ४० + १, ईश.उप.१.
(६) गम् + अति = जगत् । निपातन से सिद्ध । अर्थ है- जंगम पदार्थ, गतिशील जगत् सृष्टि
(६) गम् यङ् + शतृ = जगत् ।
'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७.१४, आ.सं. ५.३, वाज.सं. ७.४२,१३.४६, तै.सं. १.४.४३.१, २.४.१४.४, मै.सं. १.३.३७,४३.९, सं. ४.९.२२.५, श.ब्रा. ४.३.४.१०, ७.५.२.२७, तै.ब्रा. २.८. ७.४, ऐ.आ. २.२.४.७, ३.२.३.१०, तै.आ. १.७.६,२.१३.१, नि. १२.१६.
सूर्य जंगम तथा स्थावर का आत्मा है । पुनः,
'पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्'
ऋ. ६.४७.२९, अ. ६.१२६.१, वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६, मै.सं. ३.१६.३,१८७.८, का.सं. (अश्व.) ६.१., नि. ९.१३.
हे दुन्दुभि, तेरे शब्द को स्थावर या जंगम जगत् जान जाय । पुनः जंगम अर्थ में-
'यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टो
यं समाञ्जन् आज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद् यत्
श्वात्रमग्निरकृणोत् जातवेदाः ।'
ऋ. १०.८८.४, नि. ५.३.
जो वैश्वानर अग्नि (यः होता) देवों में प्रथम

होने के कारण देवों से आसेवित हुए (प्रथमः देवजुष्ट आसीत्) और जिस वैश्वानर देवजुष्ट आसीत्) और जिस वैश्वानर अग्नि की सेवा करते हुए यजमानों से (यम् आवृणानाः) घृत से सिक्त किया (आज्येन समा ञ्जन्) इस जातप्रज्ञ अग्नि ने (स जातवेदाः अग्नि) जो यह पक्षी आदि प्राणि जात (यत् पतत्रि) सदीसृप् आदि (इत्वरम्), वृक्षादि स्थावर (स्थाः) संसार है (स्थाः जगत्) उसे सृष्टि के आदि काल में शीघ्र ही (श्वात्रम्) उत्पन्न कर दिया (अकृणोत्) ।

अन्य अर्थ – जो अनादि, विद्वत् सेवी (प्रथमः देवजुष्टः) सृष्टिकर्ता है (होता आसीत्) जिसे (यं) भक्तिरूपी हवि से (आज्येन) भजते हुए (अवृणानाः) अपने हृदयों में प्रदीप्त करते हैं । (समाञ्जन्) उस सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमेश्वर ने (स जातवेदाः अग्निः) जो उड़ने वाले (यत् पतत्रि)चलने वाले (इत्वरम्) तथा स्थावर और जंगम पदार्थ है (स्थाजगत्) उन्हें शीघ्र पैदा किया ।

(१) गतिशक्ति, (२) निरन्तर मति ।

'जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायत्'

ऋ. १.१६४.२५, अ. ९.१०.३,

जगच्छन्दाः– ४८ अक्षरों के जगती छन्द के समान ४८ वर्षों तक का ब्रह्मचर्य व्रत ।

'ऋभुरसि जगच्छन्दाः'

अ. ६.४८.२, श.ब्रा. १२.३.४.५, कौ.ब्रा. १३.१.११.

जगत्या – (द्वि.व.) जगत् के पालक।

'भूतं जगत्या उतनस्तनूपा'

ऋ. ८.९.११, अ. २०.१४१.१

जगती – (१) वेद के प्रसिद्ध ७ छन्दों से एक वैदिक छन्द जो ४८ अक्षरों का होता है, (२) सर्वप्रेरक गति देने वाली काल शक्ति ।

'जगता सिन्धुं दिवि अस्त भायत्'

(३) गमन योग्य रात्रि, (४) प्रजा ।

' युवं ह गर्भं जगतीषुधत्थः '

ऋ. १.१५७.५

हे स्त्री पुरषो, आप दोनों गमन योग्य रात्रियों में ही गर्भाधान करो ।

(५) गततमं छन्दः (जिस छन्द में अत्यन्त प्रवाह हो) अथवा जल चरगतिः (जिस छन्द की गति जलों में लहर के समान हो)। (६) ब्रह्म ने जिसे क्षीणहर्ष होकर रचा जल्गल्यमानः असृजत् ।

गम् + अति = जगत् । जगत् + ङीष् = जगती ।

यह छन्द अन्य छन्दों से आगे गया है– बहुत बड़ा है, अतः जगती है ।

(७) निरन्तर गमन करने वाले दूरगामी रथ आदि साधन ।

'सं रेववतीः जगतीभिः पृच्यन्ताम्'

वाज.सं. १.२१, श.ब्रा. १.२.२.२. शां.श्रौ. सू. ८.९.२.

(८) सृष्टि ।

'यत्किञ्चजगत्यां जगत्'

वाज.सं. ४०.१, ईश. उप. १,

(९) वैदिक परिभाषा में जगती के अर्थ है – समस्त संसार, (१०) आत्मा, (११) पृथिवी, (१२) सिनीवाली, (१३) ब्रह्म, (१४) पशु, (१५) वैश्य, (१६) द्वादशाक्षर छन्द, (१७) प्रतीची दिशा, (१८) आदित्य की पत्नी, (१९) द्यौ, (२०) स्थान, (२१) अवाङ् प्राण, (२२) श्रोत्र, (२३) तृतीय सवन, (२४) ग्रावा, (२५) श्रेणी,(२६) यश ।

'यद्वा जगत् जगत्याहितम् पदम्'

ऋ. १.१६४.२३, अ. ९.१०.१, ऐ.ब्रा. ३.१२.६, कौ.ब्रा. १४.३.

जगती में जगत् आश्रित् है, समस्त जगत् उसके चलाने वाले परमात्मा में आश्रित है, आदित्य द्यौ लोक में स्थित है । अवाङ् प्राण अर्थात् नीचे का प्राण श्रोणी या कूल्हों में आश्रित हैं । पशुगण वैश्यों का वैश्ववर्ण पशु समृद्धि में आश्रित हैं आदित्य ब्रह्मचारी तृतीय सवन में स्थित है , ४८ वर्षों का ब्रह्मचर्य शक्ति आदित्य ब्रह्मचारी में स्थिति है, श्रोत्र, श्रवण या श्रुति विद्या का श्रवण विद्वानों में स्थित है ।

जागता वै ग्रावांणः–कौ.ब्रा. २९.१.

जगत्येन यशः

'सर्ववाडइदमात्मा जगत्'

श.ब्रा. ४.५.९.८.

'तदिदं सर्व जगदस्याम् ।'

श.ब्रा. १.८.२.११

'या सिनीवाली सा जगती'

ऐ.ब्रा.
'जगती वै वैश्यः'
ऐ.ब्रा.
'जगती प्रतीची'
श.ब्रा. ८.३.१.१२
'जगती आदित्यानां पत्नी'
गो.ब्रा.
'साम्नाम् आदित्यं दैवतं तदेव ज्योति जागतं छन्दो द्यौः स्थानम्।'
गो.ब्रा.
'श्रोणी जगत्यः'
श. ब्रा. ८.६.२.८
'अवाङ् -प्राणः एव जगती, जागतं'
श्रोत्रम् ता.
'जगतं वै तृतीय सवनम्'
ऐ.ब्रा.

जगन्तन- गतः (गया)। गम् धातु के लुङ् में च्लि का लोप। श्लुवद्भाव तथा गम् का द्वित्व।

जगन्वान् - आगे बढ़ता हुआ।
'अपश्यमत्र मनसा जगन्वन्'
ऋ.[1] ३.३८.६

जग्धपाप्मा - जिसका पाप नष्ट हो गया हो।
'सर्वो वा एषो जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति'
अ. ९.६.२५

जाग्मिः - (१) गमनशील, जाने वाला, चलने वाला, (२) बहने वाला।
'अपां जग्मिः निचुम्पुणः'
ऋ. ८.९३.२२, नि. ५.१८.
सोमरस की सीढी (निचुम्पुणः) जलों के बीच बह रही है।
'अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं'
ऋ. २.२३.११.
(३) ज्ञानवान्, (४) सर्वत्रगत।
'मीढुषे अरंगमाय जग्मये'
ऋ. ८.४६.१७

जग्मी - 'जग्मि का द्वि.व.। अर्थ-चलने वाले।
'मनश्चङ्गा मनन्या न जग्मी'
ऋ. १०.१०६.८

जग्मयः - जग्मि का ब.व.। जाने वाले।
'शुभंयावनानो विदथेषु जग्मयः'
ऋ. १.८९.७ वाज.,सं. २५.२०, का.सं. ३५.१, आप. श्रौ.सू. १४ .१६.१,

जगती छन्दः - (१) जगती छन्द (२) ४८ वर्षों तक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालक।
'जगती छन्द इन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.१८, मै.सं. ३.११.११, १५८.११, का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.३.

जगन्वान् - जाने वाला।
'प्रोढः समुद्रम् अव्यथिः जगन्वान्'
ऋ. १.११७.१५

जग्रसानः - (१) ग्रस्त होता हुआ, (२) वशी कृत।
'सृजः सिन्धंरहिना जग्रसानान्'
ऋ. ४.१७.१, १०.१११.९,मै.सं. ४.११.४, १७१, ४, का.सं.६.१०.

जग्रसानाः - (ब.व.) वायु को भीतर लेते हुए प्राणगण।
'यच्छसन्तो जग्रसाना अराविषुः'
ऋ. १०.९४.६

जगाम - गच्छति। जाता है। लट् केअर्थ में लिट् का प्रयोग छान्दस है।

जग्मिवस् - गतवान् (गया हुआ)। गम + क्वसु (लिट् में) जग्मिवस्।
'न वा अमुं लोकं जग्मुषे किञ्चनाकम्'
द्युलोक में चले गए प्राणी को कोई दुःख नहीं है।

जङ्गह - गृह् (गृहण करना) से यङ्लुङ् कर भृशं गृहीतम् के अर्थ में 'जङ्गह' बना है।
अर्थ है - (१) सम्भोग, रति -सा. (२) पूर्णतया गृहीत राज कर्म-दया. (३) राष्ट्र को वश में करने का कार्य।

जङ्गिड - (१) सन्तानोत्पत्तिः को निगल जाने वाला ब्रह्मचर्य भाव।
(२) यंत्र, जड़ी का वाचक।
'जङ्गिडं बिभृमो वयम्'
अ. २.४.१
(३) किसी वृक्ष की लकड़ी का टुकड़ा। यह वृक्ष बनारस की तरफ होता है। यह शब्द अर्थवेद में दो स्थानों पर आया है। कां. २.४ में तथा काण्ड १९-३४, ३५ में।
सायण के अनुसार इस मणि को धारण करने के तीन प्रयोजन हैं - कृत्या दषण, आत्मरक्षा

ओर विघ्नशमन । हारिल के मत से यह अर्जुन वृक्ष है । वेद इसे विष्कन्धदूषण बतलाता है । शत्रु के सेना-शिविरों को विध्वस्त करने वाला - दक्षमाणाः रणाय अरिष्पन्तःसदैव विभृमः (युद्ध के लिए जाना चाहें तब हम उसे बांधे) । कृत्यादूषि और आरति दूषि भी इसे बताया गया है । कृत्या का अर्थ जोग टोना है । (३) उत्पन्न हुए प्राणियों को निगलने वाला, (४) शत्रुओं को निगलने वाला या उन पर आक्रमण करने वाला । (५) एक वनस्पति, (६) अर्जुन नामक औषधि जो तीन प्रकार के वात रोग में कामआता है । विष के उपचार में भी काम आता है । जंगिड़ सिर के भीतर उठने वाले नाद, भनभनाहट और सातों धातुओं के विपरीत रूप में बहने या नष्ट होने के रोगों को दूर करता है । यह सब ओषधियों से अधिक वीर्यवान है । यह देह की व्यापक पीड़ा, स्नायविक पीड़ा, कफजन्य रोग, पीठ पसलियों का दर्द ज्वर, तथा समस्त शरीर में शीत लगने के रोगों का नाशक है । इस औषध का आर्ष नाम इन्द्र है । इसे सहस्र चक्षु भी कहते हैं ।

व्युत्पत्ति - जातानां निगरण कर्त्ता असि ।

अतो 'जङ्गिड़' इति उच्यते । यद् जंगम्यते शत्रून् वाधितुम् ति जंगिडः । अथवा जनेः जयतेः वा 'ड' प्रत्यये कृते ज ' इति भवति । जं गिरति इति जंगिरः कपिलादित्वात् तत्वम् । पूर्वपद्स्य सुपोलुगाभावः छान्दसः । खच् प्रत्ययो वा द्रष्टव्यः ।

कृत्याओं को हटाने वाला है। अतः जंगिड है। अथवा तुमसे शत्रुओं को बाधित करने के लिए प्रयोग किया जाता है, अतः जंगिड् है । अथवा जन् + ड = ज, जो ज को नष्ट कर देता है । वह जंगिड है । कपिलादिवत् र का लत्व होने से जंगित-जंगिड बना है पूर्वपदस्य (जम् के अम् का) लोप न होना छान्दस है । यहां (खच् प्रत्यय नहीं होगा ।

(६) विजयी लोगों को भी निगलने वाला वीरपुरुष , (७) आत्मा ।

जंहः - वेग से जाता हुआ ।

'त्रिषधस्थ स्ततरुषो न जंहः '

ऋ. ६.१२.२

जगुरिः - (१) गृ (निगरणअर्थ में) + किन् = जगुरी (लिट् के ऐसा द्वित्व होकर । अर्थ है (१) उद्गूर्ण । (२) दुस्साध्य (३) दुर्गम । (४) अथवा यङ् नुगन्त गम् + उरिक् = जगुरि । अर्थ है अञ्चित्, प्राप्त किया हुआ ।

(५) जाने योग्य ।

'दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः '

ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५.

जग्मुष् - जाने वाला ।

'श्रोता दूतस्य जग्मषो नो अस्य '

ऋ. ७.३९.३, नि. १२.४३.

हे देवो । आप हमारे इस आप के निकट जाने वाले अग्निरूप दूत का आह्वान सुनें ।

जग्मुषी - जग्मुष् + ङीष् = जग्मुषी । अर्थ -जाने वाली ।

'आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी '

ऋ. १.११९,५.

तेरे सुखभाव मे जाने वाली पुरुष के हृदय को जीतने वाली । ....

जगृभ्वान् - ग्रहण करने वाला ।

'नमो जगृभ्वान् अभियत् जुजोषत् । '

ऋ. ४.२३.४

जघनम् - जंघनं जंघन्यते (बार-बार जघन हना जाता है । अथः वह जघन है) ।

हन् (गत्यर्थक) + यङ् + अच् = जघन । बाहुलक नियम से सिद्ध । यहां नुम् का अभाव है क्योंकि आगम शास्त्र अनित्य है ।

अथवा कुटिलं हन्यते (जांघ टेढ़ा मेढा हो जाता है) । अर्थ-जंघा ।

'जघनाँ उपजिघ्नते '

ऋ. ६.७५.१३, वाज.सं. २९.५०, तै.सं. ४.६. ६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८७.६, का.सं. (अश्व.) ६.१. नि. ९.२०.

घोड़ो के जाघों को मारते हैं ।

जघन्य - जहि । हन् धातु के लोट् म.पु.ए. व. का वैदिक रूप । अर्थ है - मार डाल ।

'अपादमिन्द्र तवसाजघन्थ '

ऋ. ३.३०.८, वाज.सं. १८.६९.

हे इन्द्र ! वृत्र, मेघ या दुष्ट को पैररहित कर (अपादम्) सामर्थ्य से (तवसा) मार डाला (जघन्थ) ।

जघन्य – छोटे कर्म में लगा हुआ ।
'नमो जघन्याय च बुध्न्यायच'
वाज.सं. १६.३२, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६, १२५.४,

जघन्वान् – (१) हतवान् । हत् + क्वसु (लिट् में) = जघन्वस् (ह का घ्) । प्रथमा ए. व. में जघन्वान् । अर्थ है – मारा (२) संज्ञा होने पर अर्थ है – दण्ड देने वाला (३) शत्रुहन्ता ।
'जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरून्'
ऋ. १.१७४.६.
पुनः–
'भूम्या उपस्थे ऽवपज्जघन्वान्'
ऋ. २.१४.७

जंघा – (१) जांघ , (२) शत्रु को मारने वाली सेना, (३) गाड़ी में लगा पहिया ।
'ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः'
अ. १९.६०.२ , वै.सू. ३.१४.

जघ्रिः – सूंघने वाली ।
'मोरवाभ्राजन्त्यभिविक्ति जघ्रिः'
ऋ. १.१६२.१५, वाज.सं. २५.३७, तै.सं. ४.६.९.२, मै.सं. ३.१६. १,१८३.१०, का. सं. (अश्व.) ६.५.

जजान – जनयति (उत्पन्न करता है)। लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग छान्दस है ।

जज्ञियासः – यज्ञियासः, यज्ञार्हाः यज्ञसम्पादिनः यजमानाः । अथवा देवा इव सूर्यरश्मयः (यज्ञ के योग्य यजमान या सूर्य की रश्मियां) ।

जज्ञिरे – समभवन् (उत्पन्न हुए) । प्रकट हुए (प्रादुर्भूताः) ।
'ते अंगिरसः सूनवः
ते अग्नेः परिजज्ञिरे'
ऋ. १०.६२.५, नि. ११.१७.
वे अंगिरा के पुत्र आग से उत्पन्न हुए ।

जज्ञे – उत्पन्न हुआ ।
'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८., तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१ मै. सं. २.७.९,८६.५, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३.
यह जात प्रज्ञ अग्नि पहले द्युलोक के ऊपर आदित्य रूप में उत्पन्न हुआ ।

जज्जणाभवत् – (१) खूब प्रज्वलित होता हुआ, (२) बार-बार उत्पन्न होता हुआ जीव ।
अर्चिषा जज्जणाभवन्'
ऋ. ८.४३.८

जज्जती – (१) सबको अधीन करने वाली, (२) युद्ध में प्रवृत्त सेना ।
'पृथुज्रयी असुर्येव जज्जती'
ऋ. १.१६८.७.

जज्झती – (ब. व.) (१) आप. (जल) । जज्झतीः आपः भवन्ति शब्दकारिण्यः । (जल शब्द करने वाली है अतः आपः) । जज्झ् (शब्दानुकरण) + क्विप् + शतृ + ङीष् = जज्झती । जज्झसा शब्द करती हुई ।
'आ रूक्मैरा युधा नर
ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत
अन्वेनाँ अह विद्युतो
मरुतो जज्झतीरिव
भानुरर्तत्मना दिवः'
ऋ. ५.५२.६
यास्क ने मरुत् के स्थान में प्रदिव पाठ माना है ।
वृष्टि के नेता (नरः) महान् मरुतों ने (ऋष्वा मरुतः) सुवर्ण निर्मित आयुधों तथा शक्तियों को मेघों के प्रति छोड़ा (रुक्मैः आयुधा ऋष्टीः असृक्षत) तथा इन्हीं प्रहारों की तरह बिजली छोड़ा (एता न अनु विद्युतः) । सूर्य के समान स्वयं ही द्युलोक से निकले (भानुः इव त्मना दिवः अर्त) तथा झरझर शब्द करने वाले जल भी निकले (जज्झतीः अह) ।
अन्य अर्थ – हे बड़े मनुष्यों (ऋष्वा नरः), अपने प्रतापों से शस्त्रों एवं अस्त्रों का निर्माण करो (रुक्मैः आयुधाऋष्टीः आ असृक्षत) और जल की तरह (जज्झतीः इव) विद्युत् वायु और सूर्य का प्रकाश (विद्युतः मरुतः दिव भानुः) इन सब को अपने अनुकूल उपयोग में लाओ (एनान् अह अनुअर्ज) (३) शब्द या गर्जना करने वाली विद्युत् ।

जठर – जग्धम् अस्मिन् ध्रियते धीयतेवा (खाया हुआ अन्न इसमें रखा जाता है) ।
जग्धधरम् – जठरम् ।
अथवा –जग्ध धानम् जठरम् । खाया हुआ अन्न रखने का स्थान जठर है ।
जग्ध + धृ (धा) + अरन् = जग्धधर –जठर ।

पृषोदरादिवत् जग्ध का ज और ध का ठा ।

जठल – (१) समुद्र का मध्य भाग, (२) मध्यस्थ मुख्य चित्त (३) जग्ध या मुक्त को धारण करने वाला भुक्तभोगी आत्मा जो जलवत् है । (४) जल । जग्धं राति इति जठरम् ।
'चतस्रो नावः जठलस्यजुष्टा'
ऋ. १.१८२.६.

जत्रु – (१) शकट में बैल जोतने की रस्सी जोता,
'आन्त्राणि जत्रवः'
ऋ. ११.३.१०
(२) गर्दन की हंसली की हड्डी ।
'पुरा जत्रुभ्य आतृदः'
ऋ. ८.१.१२, अ. १४.२.४७, साम. १.२४४, पंच.ब्रा. ९.१०. का.श्रौ.सू. २५.५.३०.
(३) हंसली, शरीर की हड्डी (४) कन्धे, और कुक्षि के बीच की पसलियां ।
'दिशा जत्रवः'
वाज.सं. २५.८, तै.सं. ५.७.१६.१, मै.सं. ३.१५.७, १७९.११, का.सं. (अश्व.) १३.६,

जतू – चमगीदड़ ।
'अहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूः'
वाज.सं. २४.२५,
'यावतीर्भृङ्गाः जत्वःकुरूरवः'
अ. ९.२.२२.

जनना – द्वि.व. (१) उत्पन्न करने वाले माता पिता (२) नर नारी, (३) सोमा पूषाणः ।
'सोमा पूषाणा जनना रयीणाम्'
ऋ. २.४०.१, तै.सं. १.८.२२.५, मै.सं.४.११.२, १६३.१४, का.सं.८ .१७. आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१.

जनः – (१) जन् + ड = जन । अर्थ जन्म लेने वाला ।
'येना पावक चक्षसा
भुरण्यन्तं जनां अनु
त्वं वरुण पश्यसि'
ऋ. १.५०.६, अ. १३.२.२१, २०.४७.१८, वान.सं. ३३.३२, नि. १२.२२,२५.
(२) जनता ।
'मित्रो यो जनेष्वा
यशश्चक्रे असाम्या'
ऋ. १०.२२.२.
हे अनन्त इन्द्र ! (असामि) मित्र के सदृश (मित्रों न) जनों में (जनेषु) जो कीर्त्ति फैलाता है । (यशः आचक्रे) ।
(३) असुर ।

जनपान – (१) कूप , पनघट । (२) जीव जगत् का पालक प्रभु, (३) सोमरस पालक प्रभु, (३) सोमरस ।
'उत्सं न कञ्चित् जनपानमक्षितम्'
ऋ. ९.११०.५, साम. २.८५७.

जनभक्ष – (१) सब मनुष्यों के सेवन करने योग्य (२) सब प्रजागण भोक्ता इन्द्र परमेश्वर । जनभृत् जनो
'सत्रा साहो जनभक्षो जनं सहः'
ऋ. २.२१.३

जनभृत् – जनों का भरणपोषण करने वाला ।
'जनभृतस्थ राष्ट्रदाः'
वाज.सं. १०.४१,श.ब्रा. ५.३.४.१९.

जनमान – (१) जन्म लेने वाला
'वसूनि जाते जनमान ओजसा
प्रति भागं न दीधिम'
ऋ. ८.९९.३, अ. २०.५८.१. साम. १.२६७, २.६६९, वाज.सं. ३३.४१, नि. ६.८.
(२) उत्पन्न होने वाला मनुष्य, (३) जगत् ।
हे मनुष्यो, उत्पन्न या उत्पन्न होने वाले जगत में परमात्मा के लिए साधनों का हम पुरुषार्थ से अपना अपना भाग भोगें ।
जनमाने का अर्थ जनिष्यमाण है । विभक्ति की विकृति और व्यत्यय आर्ष है ।

जनयोपन – युप् धातु विमोहनार्थक है । युप् + ष्यु = योपन ।
अर्थ– (१) लोगों को मोहित करने वाला रूप । (२) सूर्य ।
'कमगन् जनयोपनः'
ऋ. १०.८६.२२, अ. २०.१२६.२२.
(३) मनुष्यों को विध्वंस करने वाला, (४) जन्म का नाशक जीव ।

जनराट् – जनों पर राजा के समान विद्यमान ।
'जनराडसि रक्षोहा'
वाज.सं. ५.२४, वाज.सं. (का.) ५.६.३, श.ब्रा. ३.५.४.१५.

जनराजा – (१) जनपदों का राजा ।
'त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दश

अबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः '
ऋ. १.५३.९, अ. २०.२१.९.
तू इन तेरे प्रति जाने वाले (उपजग्मुषः) बीस जनपद के राजाओं को (द्विर्दश जनराज्ञः) बन्धुरहित (अबन्धुना) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न (सुश्रवसा) राष्ट्रपति या प्रजावर्ग के साथ....
(२) जनों या सैनिकों का राजा ।

जनवादी – सर्वसाधारण को स्पष्ट रूप से सूचना देने वाला ।
'आर्त्यै जनवादिनम् '
वाज.सं. ३०.१७

जनश्रीः– (१) जातश्री उद्भूत श्री (२) प्राणियों का आश्रयभूत पूषण (सूर्य) देवता का विशेषण (३) सायण के अनुसार स्तोतृ संघ के निकट जाने वाला या उस का आश्रय लेने वाला (जनं स्तोतृ संघं श्रयति गच्छति इति जन श्रीः) ।
'आजासः पूषणं रथे
विशृम्भास्ते जनश्रियम् ।
देवं वहन्तु बिभ्रतः '
ऋ. ६.५५.६, नि. ६.४.
अविश्रान्त सूर्य की शीघ्र प्रक्षिप्त होने वाली किरणें या घोड़े (अजासः) प्राणियों के आश्रयभूत पूषणदेव को अर्थ में या द्युलोक रूपी रथ में धारण करती हुई लाती है ।

जनंसहः – (१) सब जन्तुओं को सहन करने वाला (२) सब जीवों को अपने अधीनरखने में समर्थ इन्द्र-परमेश्वर ।
'सत्रासाहो जनभक्षोजनं सहः '
ऋ. २.२१.३

जन्तु – जन + तु = जन्तु । अर्थ –(१) जन्म लेने वाला जीव, प्राणी ।
'स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोः '
ऋ. ७.२१.५, नि. ४.१९
जो विघ्नकारी जीवों को रोकने वाला हो वह यज्ञ में आवे ।

जन्मन् – जन् + मनिन् । अर्थ (१) जन्म, (२) उदय, (३) जीव ।
'अतूर्त पन्थाः पुरुरथो अर्यमा
सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु '
ऋ. १०.६४.५, नि. ११.२३.
नियमित मार्गवाला, बड़े रथवाला, अन्धकार नाशक सात किरणों वाला आदित्य उत्तरायण और दक्षिणायन गतियों में विषम रुपों में उदय लेते हैं ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य । हे सूर्य, तू सभी जीवों को (जन्मानि) देखता हुआ (पश्यन्) जाता है ।
४) जल ।

जन्य – (१) व्यापक परमेश्वर ।
'जनजनं जन्यो नाति मन्यते '
ऋ. १०.९१.२
(२) युद्ध सम्बन्धी ।
'न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् '
ऋ. १०.४२.६, अ. २०.८९.६
(३) आगे होने वाला , (४) जन-समूह में होने वाला
'पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रः '
ऋ. ४.५५.५
(५) बन्धु ।
'उत्तमां जनिमां जन्यामुत्तमान् '
अ.२०.१३५.२
(६) सब जनों का हितकारी अग्नि ।
'दूतो जन्येव मित्र्यः '
ऋ. २.६.७

जनानाम् उभयास – मनुष्यों में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों
'त्वां राय उभयासो जनानाम् '
ऋ. ६.१.५, मै.सं. ४.१३.६, २०६.१३, का.सं. १८.२०.

जनानां संगमनः – (१) यम का ।
विशेषण – पापी जनों को कर्मानुसार योग्य स्थान पर भेजने वाला-यम । संगमनः ।
'वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानां हविषा दुवस्य '
ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, ३.१३, मै.सं. ४.१४.१६,२४३.७,तै.आ. ६.१.१, नि. १०.२०.

जनायन – जन + अयन । अर्थ-मनुष्यों के जाने का मार्ग
'ये ते पन्थानो बहवो जनायनाः '
अ. १२.१.४७

जनासः – जन शब्द के प्र.ब. व. का रूप । अर्थ है –मनुष्य, असुर ।
'मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास

इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु'
ऋ. १०.८१.६, साम. २.९३९, तै.सं.
यह कर्म निष्ठा देखकर वे असुर जो कर्म की उपासना नहीं करते जलते रहें (अन्ये अभितः जन्तासः मुह्यन्तु) तथा हम कर्मनिष्ठों को सर्वधन का स्वामी तथा प्रज्ञाता इन्द्र अपनाएं (इह मघवा सूरिः अस्माकम् अस्तु ।)

जनाषाट् – समस्त जनों को अपने वश में करने में समर्थ परमेश्वर – इन्द्र ।
'महि क्षत्रं जनाषाडिन्द्र तव्यूम'
ऋ. १.५४.११, मै.सं. ४.१४.१८, २४९.१, का.सं. ३८.७, तै.ब्रा. २.६.९.१. हे समस्त जनों को अपने वश में करने में समर्थ इन्द्र ! तू बड़े भारी बलशाली (तव्यम्) क्षत्रिय बल सा... ।

जन्याः– (१) सृष्टि की उत्पत्ति के विशेष कारण ।
'क आसं जन्याः के वराः'
अ. ११.८.१

जन्या – द्वि.व. । जनों के हित कारक स्त्री पुरुष का अश्विद्वय (२) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले ।
'दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा'
ऋ. २.३९.१.

जनि – जन् (उत्पन्न करना) + इ = जनि । अर्थ सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री (जन्मन्ते असु)।
'पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः'
ऋ. १०.११०.५, अ. ५.१२.५, वाज.सं. २९.३०,मै.सं. ४.१३.३, २०.२.३, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.१०.
जैसे शोभायमान या शोभन की इच्छा करती हुई स्त्रियां अपने पतियों के निमित्त मैथुन के लिए।
पुनः–
'जारः कन्तीनां पतिर्जनीनाम्'
ऋ. १.६६.८. नि. १०.२१.
दे अग
(२) पुत्रोत्पादन समर्थ पति ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीः । जैसे पुत्रोत्पादक समर्थ पुरुष (जनयः) अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हैं (पत्नीः न) ।

जनिकाम – पुत्रोत्पादन में समर्थ भार्या की अभिलाषा वाला ।
'जनिकामोऽहमागमन्'
अ. २.३०.५

जनित्री – सभी जीवों को उत्पन्न करने वाली द्यावा पृथिवी । य इमे द्यावापृथिवी जनित्री
'रुपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा'
ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९.वाज.सं. २९.३४, मै.सं. ४.१३.३:२०२.११ ,का.सं. १६.२०, तै.ब्र. ३.६.३.४, नि. ८.१४.
व्युत्पत्ति – जन् + णि + तृन् + ङीष् = जनित्री णि अन्तर्भूत है । द्विवचन में पूर्व सवर्ण दीर्घ है ।

जनित्व – (१) उत्पत्ति का आधार ।
'अदितिर्जातम् अदितिर्जनित्वम्'
ऋ. १.८९.१०, अ. ७.६.१, वा.सं. २५.२३, मै.सं. ४.१४.४, २१२.२ ,ऐ. ब्रा. ३.३१. १२, तै.आ. १.१३.२, जै. उप. ब्रा. १.४१.४ नि . ४.२३.
(२) जनिष्यमाण, जन्म लेने वाला ।
व्युत्पत्ति – जन् + त्वन् = जनित्व (कृत्यार्थे तवै केन् केन्यत्वनः)
(३) भार्या का धर्म पुत्रोत्पादन ।
'पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ'
ऋ. १०.१८.८, अ. १८.३.२, तै. आ. ६.१.३.

जनित्वन – उत्पन्न करना ।
'जनि त्वनाय मामहे'
ऋ. ८.२.४२

जनिता – (१) जन् म्तृच् = जनिता । उत्पन्न करने वाला, (२) पिता –(दया.)
'उदुह्रिया जनिता यो जजान'
ऋ. ३.१.१२
जिस विद्वान् पिता ने तेजस्विता को उत्पन्न किया है –(दया)
जिस परमात्मा ने जल उत्पन्न किया –
(३) द्युलोक को भी जनिता कहा गया है क्योंकि द्युलोक से ही रस, रस से अन्न, अन्न से रेतस् और रेतस् से पुरुष होता है ।
औषधिभ्योऽन्नं अन्नात् रेतस् , रेतसः पुरुषः ।
'द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र'
ऋ. १.१६४.३३. नि. ४.२१.

जनितु – जन्म ।
'पुरा रात्र्य जनितोरेके अह्नि'
अ. १९.५६.२

जनितुः पितां – समस्त उत्पादक प्राणियों और

लोगों का पिता या पालक उच्छिष्ट ब्रह्म ।
'पिता जनितुरुच्छिष्टः '
अ. ११.७.१६

जनिदा – अपत्योत्पादक स्त्री को देने वाला ।
'जनीयन्तो जनिदायम् अक्षितो तिम् '
ऋ. ४.१७.१६

जनिधाः – पत्नी को धारण पोषण करने वाला पति ।
'ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् '
ऋ. १०.२९.५, अ. २०.७६.५.

जनिः पत्नीः – सन्तानाभिलाषिणी स्त्री ।
'तमीं गिरो जनयो न पत्नीः'

जनिमा – (१) उत्तम जन्म-वाला स्थान
(२) रत्नों और अन्नों को उत्पन्न करने वाली भूमि का स्वामी ।
'तव त्विषो जनिमन् रेजत द्यौः '
ऋ. ४.१७.२
(३) जन्म ।
'उत्तमां जनिमाम् '
अ. २०.१३५.२
'अश्वस्यात्र जनिमास्यचस्वः '
ऋ. २.३५.६.

जनिवत् – जनि + वतप् = जनिवत् ।
अर्थ –(१) स्त्री वाला, स्त्री युक्त, (२) प्रजनन कर्म में समर्थ ।
'अमेनांश्चिजनिवतश्चकर्थ '
ऋ. ५.३१.२, नि. ३.२१.
हे इन्द्र ! तू स्त्री –रहित श्रोताओं को स्त्रीयुक्त या प्रजनन कर्म समर्थ बताता है ।

जनिष्ट – अजनिष्ठ (वेद में अट् का अभाव है ।) यहां लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग है । अतः अर्थ है जायते (उत्पन्न होता है)
'विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्
भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः ।
प्रोर्वशी तिरत् दीर्घमायुः ।। '
ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.
जो माध्यमिक देवता उर्वशी विद्युत् के सदृश अन्तरिक्ष में जाती हुई (या उर्वशी विद्युत् पतन्ती) अन्तरिक्ष में उत्पन्न हमारे कमनीय जलों को मेरे लिए लाती हुई (काम्यानि अप्या मे भरन्ती) जिनसे जल की ऊर्मियाँ सुजात पुत्र के समान शस्य रूपी सम्पत्ति को बढ़ाने वाली उत्पन्न होती है (अपः नर्यः सुजातः जनिष्ट उ) बार-बार चमकती है (दविद्योत्) उन जल की लहरों में अन्न उत्पन्न कर उर्वशी दीर्घ आयु बढ़ाती है (दीर्घम् आयुः प्रतिरते) है ।
अन्य अर्थ – जिस प्रकार अन्तरिक्षस्थ काम्य उत्पन्न जलों को प्रदान करती हुई बिजली द्योतमान होती है उसी प्रकार हमारी प्राप्तव्या प्रिया काम्य सुखों को देती हुई गर्भाधान काल में अपने उत्तम स्वरूप को दर्शाती है (ये अप्या काम्यानि भरन्ती या पतन्ती विद्युत न दविद्योत्) और जब निश्चय से अन्तरिक्षस्थ जलों से जल प्रपात की तरह उस रज वीर्य से यह अधिक कर्मा मनुष्यों के लिए हितकारी या मनुष्य की सन्तान तथा माता पिता से भी अधिक गुणी पुत्र उत्पन्न होता है (अपः नर्यः सुजातः जनिष्टः) तब स्त्री पालन पोषण कर इसकी आयु को बढाती है (दीर्घम् आयुः प्रतिखे) ।

जनी – (१) जाया, स्त्री ।
'प्रतिष्या सूनरी जनी '
ऋ. ४.५२.१, सामं. २.१०७५.
(२) जगज्जननी ।
'आय वनेनती जनी '
अ. २०.१३१.८

जनीनां ऋतु – स्त्रियों का ऋतुकाल ।
'व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् '
ऋ. ५.४६.८, अ. ७.४९.२, मै.सं. ४.१३.१०, २१३.११. नि. १२.४६.

जनीयन् – उत्तम सन्तति जनक भार्या की कामना करने वाला ।
'जनीयन्तो न्वग्रवः '
ऋ. ७.९६.४, साम. २.८१०, आश्व श्रौ.सू ३.८.१.
'जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिम् '
ऋ. ४.१७.१६
' तेना जनीयते जायाम् '
अ. ६.८२.३.

जनुष् – (१) जन्म, अभिजाति , (२) जनिष्यमाण, भावी, होनहार, । (३) जन्म लेने वाला प्राणी ।
'धीरा त्वस्य महिना जनूंषि '
ऋ. ७.८६.१, का.सं. ४.१६.

(४) सर्वोत्पादक ।
'द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते'
ऋ. १.६१.१४, अ. २०.३५.१४

जन्यु– सन्तानोत्पत्ति करने वाला पति ।
'जन्युः पतिस्थन्वमाविविश्याः'
ऋ. १०.१०.३, अ. १८.१.३.

जनू – (१) उत्पत्ति , (२) उत्पादिका माता ।
'जनूश्चिद्वो मरुतो त्वेष्येण'
ऋ. ७.५८.२

जभ्रिरे– धारण करते और पुष्ट करते हैं ।
' आ रोदसी बृहती वेविदानाः
प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः'
ऋ. १.७२.४
मरण समय में प्राणियों को रुलाने वाले (रुद्रियासः) । प्राणों के साधक ज्ञान सम्पादन करने वाले (वेदिदानाः) सर्वोपास्य परमेश्वर के उपासक विद्वान् (यज्ञियासः) । बड़े भारी सूर्यऔर पृथ्वी के समान देह में स्थित प्राण और अपान् भूमि और राज्य या विद्या और कर्म दोनों को (रोदसी) उत्तम रीति से धारण और पोषण करते हैं (जभ्रिरे) ।

जमति – गच्छति (जाता है) । जम् धातु का जाना अर्थ में प्रयोग हुआ है ।
जिसमें जामि शब्द लड़की के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । लड़की पिता के गृह से पति के घर चली जाती है । अतः जम धातु से जामि शब्द बना (निर्गमन प्राया) ।

जमदग्निदत्ता – (१) प्रज्वलित अग्नि वाली किरणों से प्रदान की हुई –उषा ।
(२) चक्षु द्वारा प्राप्त ज्ञान को अपने भीतर धारण करने वाली ।
(३) प्रज्वलित तेजस्वी अग्नि नामक या आग्नेयास्त्र को प्रज्वलित करने वाले वीरों से दी गई भूमि ।
'बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता'
ऋ. ३.५३.१५

जम्भ– (१) जभ्यन्ते गात्राणि विनाम्यन्ते येन सः (जिसके कारण मात्र हिलते डुलते हैं) । शरीर ।
(२) मुख ।
(३) दाँत, (४) हिंसाकारी अस्त्र शस्त्र ।
'तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः'
ऋ. ७.३.४
(५) नाश ।
'जङ्गिडो-जम्भाद् विशरात्'
अ. २.४.२
(६) अंगों को जकड़ने वाला ।
(७) असुर, (८) अस्थूलदन्त –
'मात्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदत्'
अ. ८.१.१६

जभ्यः – हिंसायोग्य, विनाश करने योग्य पंतग है ।
'तर्द है पतंग है जभ्य हा उपक्वस'
अ. ६.५०.२

जम्भक – हिंसक जन्तुओं का नाशक ।
'सानुभ्यो जम्भकम्'
वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

जम्भय – नष्ट कर । जम्भधातु नष्ट करना अर्थ में है ।
या मे दूरे तड़ितो या अरातयोभिसन्ति जम्भया ता अवप्रसः । जो दूर या निकट मेरी शत्रु सेनाएं हैं उन्हें नष्ट कर तथा अरूप बना डाल ।

जम्भयन् – हिसंक, पीड़ा पहुंचाने वाला ।
'जम्भयन्तं मरीमृशम्'
अ. ८.६.१७.

जम्भसुत – जाया और पति जम्भौ है । (१) जाया और पति दोनों से उत्पन्न पुत्र (२) जम्भ से ही दीप्तियुक्त ।
'इमं जम्भसुतं पिब'
ऋ. ८.९१.२, जै.ब्रा. १.२.२०.

जम्भ्य – अन्न कुतरने वाले अगले दांत ।
'जम्भ्यैस्तस्करां उत'
वाज.सं. ११.७८, तै.सं. ४.१.१०.२, का.सं. १६.७.

जमदग्नि– प्रयमिताग्नि, प्रज्वलिताग्नि, प्रभूताग्नि . (जिसे बहुत आग हो) । यमदग्नि से जमदग्नि शब्द बना है और जमदग्नि का अपत्य जामदग्न्य (परशुराम) के लिए आया है । जम धातु गत्यर्थक है ।

जमदग्निऋषिः – (१) सबका द्रष्टा सूर्य (२) जमदग्नि नामक ऋषि ।
'जमदग्निर्ऋषिः'
वाज.सं. १३.५६, मै.सं. २.७.१९, १०४.८, का.सं. १६.१९.श. ब्रा. ८.१.२.३.

जयत् – (१) जयति (जीतता है) । (२) जीता हुआ ।
'सवर्गं यन्मघवासूर्यं जयत्'
ऋ. १०.४३.५, अ. २०.१७.५.
जब इन्द्र वृष्टि देने वाले मेघ को (सवर्गं सूर्यम्) जीतता है–दुर्ग ।
जिस तेज से धनपति परमेश्वर (मघवा) सूर्य को जीता हुआ है (सूर्य जयत्) दुगुर्णों को हटाने वाले उस तेज को (संवर्गम्) ।
(३) विजयी ।
'जयतामिव दुन्दुभिः'
ऋ. १.२८.५, आप.श्रौ.सू. १६.२६.१, मा.श्रौ.सू. ६.१.७, नि. ९ .२१.
विजयी राजाओं की दुन्दुभि की तरह ।

जयन् – जीतता हुआ या जीतने वाला । इन्द्र या राजा के विशेषण के रूप में व्यवहृत ।
'आशुं जयन्त मनु यासु वर्धसे'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.२१, तै.सं. १.४.९.१, मै.सं. १.३.११, ३४.५, श.ब्रा. ४.२.१.९.
शीघ्रगामी, असुरों को जीतने वाले हे सोम ! जिन स्तुतियों से तू बढ़ता है तृप्त कर । हे राजन्! जिन प्रजाओं में रहकर शीघ्र शत्रुओं को जीतने वाले अपने आप को तू बढ़ाता है (यासुअनुवर्धसे) –दया.

जयाय – जयाय (जीता) – दीर्घ वेद में ही होता है ।

जयामसि– जयामः (इम जीतते हैं)
'इदन्तोमसि' (पा. ७.१.४६)
से मस् का आगम इ के साथ हुआ है ।

जयुष् – (१) रथ – (२) विजयी–(दया.)

जर – अर ।
'द्वादशारं नहि तज्जराय'
ऋ. १.१६४.११, अ. ९.९.१३, नि. ४.२७.
वह बारह अरों वाला कालचक्र कभी जीर्ण नहीं होता ।

जरण– (१) स्तुत्य कर्म, (२) ऐश्वर्य ।
'स्रुवेण सिञ्चन् जरणमिधाम'
ऋ. १.१२१.६
स्रुना से अभिषिक्त होता हुआ तेज और बल का भोग करें और स्तुत्य कर्मों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करे (जरणा है अभिधाम) ।

जरणा– (१) उत्तम स्तुति, (२) वार्द्धक्य, (३) दीर्घायु ।
'स्वाभुवो जरणामश्नवन्त'
ऋ. ७.३०.४
पुनः
'भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि'
ऋ. १०.३७.६
(४) गर्भाशय का जेरझार ।
'ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः'
ऋ. १.१४१.७

जरण्या– (१) उपदेश करने योग्य वेद वाणी, (२) जरायु ।
'युवं वन्दनं निक्रतं जरण्यया'
ऋ. १.११९.७
हे स्त्रीपुरुषो ! उपदेश करने योग्य वेदवाणी से युक्त (जरण्यया) नित्याभि वन्दन योग्य (वन्दनम्) ।
अथवा,
तुम दोनों स्तुतियोग्य, जरायु के साथ बाहर आए, विविध गुणों से पूर्ण रमणीय बालक को....।

जरणिप्रा– विद्वानों या स्तोताओं की इच्छा को पूर्ण करने वाली ।
'सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः'
ऋ. १०.१००.१२

जरण्युः – उपदेष्टा ।
'सरत् सरण्युः कारवे जरण्यु'
ऋ. १०.६१.२३

जरति – जरते (स्तौति), स्तुति करता है ।

जरती– परिपक्व जीर्ण
'जरतीभिरोषधीभिः
पर्णेभिः शकुनानाम्
कार्मारो अश्मभिः द्युभिः
हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव'
ऋ. ९.११२.२.
परिपक्व औषधियों से दुकानदार (जरतीभिः ओषधीभिः), पक्षियों के पंख से कुशल कारीगर (शकुनानां पर्णेभिः), चमकदार हीरों से सुनार (द्युभिः अश्मभिः कार्मारः) धनाढ्य सेठ को चाहता है (हिरण्य वन्तम इच्छति) । अतः हे

ऐश्वर्यमय प्रभो ! (इन्दो) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए (इन्द्राय) ऐश्वर्य की सृष्टि कीजिए (परिस्रव) अथवा, हे सोम इन्द्र के लिए तू चू (इन्द्राय परिस्रव) ।

जरते – स्तौति–स्तुति करता है ।

'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः
अस्मत् द्वितीयं परिजातवेदाः
तृतीयमप्सु नृपणाअजस्त्रम्
इन्धानं एनं जरते स्वाधीः'

ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै सं..२.७.९,८६.६,का.सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २ .११.२१, नि.४.२४

वह जात प्रज्ञ अग्नि पहले द्युलोक के ऊपर आदित्य रूप में उत्पन्न हुआ (जातवेदाःअग्नि प्रथमं दिवः परिजज्ञे) द्वितीय अग्नि मनुष्यों पर अनुग्रहशील (द्वितीय नृमणाः) हमलोगों के यहां अग्नि रूप में उत्पन्न हुआ (अस्मत्परि) तथा तृतीय अग्नि (तृतीयम्) अन्तरिक्ष लोक में (अप्सु) विद्युत् के रूप में प्रादुर्भूत हुआ । ऐसे अग्नि को सुप्रज्ञनेता या यजमान दीप्त करता हुआ स्तुति करता है (एवं स्वाधीःइन्धानः जरते) ।

अन्य अर्थ – सब प्राणियों में अग्रणी श्रेष्ठ मनुष्य सर्वप्रथम ज्ञान देने वाले ब्रह्मचर्याश्रम में उत्पन्न होता है । पुनः वेदविद्या प्राप्त कर (जात वेदाः) गृहस्थाश्रम में द्वितीय जन्म धारण करता है, पुनः विद्यार्थियों में संलग्न मनवाला (नृमणाः) कर्म प्रधान वाणप्रस्थाश्रम में (अप्सु) तृतीय जन्म ग्रहण करता है और फिर इस परमात्मा को निरन्तर (अजस्रम्) अपने हृदय में प्रदीप्त करता हुआ ध्यानी संन्यासी हो (स्वाधीः) वैदिक धर्म का उपदेश करता है (जरते) ।

जरदष्टिः – (१) जरा अवस्था तक की जीवन यात्रा,
(२) जीवन पर्यन्त उपभोग करने के निमित्त अन्न आदि सामग्री । अश + क्तिन् = अष्टि जरत् + अष्टिः ।

'अच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते'

अ. ८.२.१

(३) वृद्धावस्था तकभोक्ता ।

'जरदष्टिः कृतवीर्योः विहायाः'

अ. १७.१.२७

(४) बुढ़ापे तक जीवन बिताना ।

'जरदष्टि कृणोमित्वा'

अ. ५.३०.५,८,

(५) जरावस्था तक जीवन यापन करने वाला ।

'विश्वे देवा जरदष्टिः यथासत्'

अ. २.२८.५, तै.सं. २.३.१०.३, ११.५, मै.सं. २.३.४.३१.१२, का. सं. ११.७.८, ३६.१५, तै.ब्रा. २.७.७.५, तै.आ. २.५.१, शां.गृ. सू. १.२७.७, आप. मं.पा. २.४.२.

'उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेति'

ऋ. ७.३७.७

जरद्विषः – (१) जरद् + विषः । सर्पादि के विष का नाशक अग्नि,
(२) शत्रुरूप विष को शमन करने वाला,
(३) व्यापक विस्तृत ज्ञान में उपदेश करने वाला,
(४) विद्युत् तथा मेघ द्वारा जल गिराने वाला सूर्य ।

'सुशर्माणं स्ववसंजरद्विषम्'

ऋ. ५.८.२

जरन् – उपदेश करने वाला ।

'उत्तिष्ठ वि चरा जरन्'

अ. २०.१२७.११, शां.श्रौ.सू. १२.१५.१.२.

वृद्ध होता हुआ, बुझाता हुआ, अल्पप्रकाश ।

जरमाण– (१) स्तुति किया जाता हुआ
(२) गुणस्तुति करता हुआ ।

'सं जागृवद्भिः जरमाण् इध्यते'

ऋ. १०.९१.१

'अग्नयो न जरमाणा अनु द्यून्'

ऋ. २.२८.१

(३) उपदेष्टा ।

'ता नव्यसो जरमाणस्य मन्म'

ऋ. ६.६२.४

जरयन् – काल क्रम से सभी को जीर्ण करने वाला इन्द्र–परमेश्वर ।

'इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं'

ऋ. २.१६.१.

जरयन्ती – (१) वृद्धावस्था तकआयु व्यतीत करती हुई,
(२) प्राणियों के जीवन की हानि करती हुई,

(३) उषा या स्त्री का विशेषण ।
'जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत
उत्पातयति पक्षिणः'
ऋ. १.४८.५
जिस प्रकार स्त्री पुरुष के साथ ही वृद्धावस्था तक आयु व्यतीत करती हुई गमन योग्य मार्ग पर जलती है उसी प्रकार उषा भी प्रतिदिन प्राणियों के जीवन की हानि करती हुई मानो पग पग धरती हुई प्राप्त होती है । जिस प्रकार स्त्री घर के अन्न की रक्षा के लिए पक्षियों को उड़ाती है या अपने पक्ष वाले सम्बन्धियों को उत्तम आदर प्राप्त कराती है, उसी प्रकार उषा भी अपने आगमन पर पक्षियों को उड़ाती है (उत्पातयति) ।

जरस् – जृ + अङ् = जर । जर + टाप् = जरा = जरस् । अर्थ –वार्द्धक्य ।

जरस्व – जृ (स्तुतिकरना) के लोट् म.पु.ए.व. का रूप ।
अर्थ (१) स्तुतिकर,
(२) ग्रहण कर,
(३) जिधर तिधर भगा दे.
(४) दूरकर ।
'पुरुणीथा जातवेदो जरस्व'
ऋ. ७.९.६
हे बहुस्तुत अग्नि, इस हवि को सर्वतो भाव से ग्रहण कर ।
अथवा, हे अग्नि ! बहुत स्तोत्रों से देवों की स्तुति कर या जिधर तिधर राक्षसों को भगा दे ।
अथवा,
हे मनुष्य मात्र की शिक्षा देने वाले विद्वान् (जातवेदाः) धर्मनीति के द्वारा (पुरुणीथा) दुःखों को दूर कीजए ।

जर्भरी– (द्वि.) । भृ (भरण करना) के यङ्लुङन्त जभृ + ई= + जर्भरी ।
अर्थ–(१) एकत्र स्थापित करने वाले,
(२) भरण करने वाले ।
'सृण्येव जर्भरी तुर्फरीत्'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों अंकुश के समान एकत्र स्थापित करने वाले एवं नाश करने वाले हो ।
(३) बलवान् के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग होता है ।
आजकल भी जब्बर या 'जाबिर बलवान् या कुशल के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

जरूथ – (१) आयुनाशक वार्द्धक्य ।
(२) जीवन नाशक अकालमृत्यु ।
'अग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम्'
ऋ. १०.८०.३

जर्भुराण – (१) खूब परिपुष्ट होता हुआ
(२) राष्ट्र का निरन्तर धारण पालन करता हुआ ।
'अरण्येषु जर्भुराणा चरन्ति'
ऋ १६३.११, वाज.सं. २९.२२, तै.सं. ४.६.७.४, का.सं. (अश्व.) ६.३.
(३) पालन करता हुआ ।
(४) विस्तृत रूप से अत्यन्त पुष्ट अग्नि ।
'नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः'
ऋ. २.१०.५, वाज.सं. ११.२४, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.६, का.सं. १६.२, श.ब्रा. ६.३.३.२०.
अग्नि किसी का स्पर्श सहन नहीं करता ।
पुनः
'अनिशितं निमिषि जर्भुराणः'
ऋ. २.३८.८

जर्हृषाणः – (१) प्रसन्न होता हुआ
(२) प्रसन्न करता हुआ ।
'उब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा'
ऋ. १.५२.२
(३) अन्न से प्रसन्न होता हुआ या जगत् भर को प्रसन्न करता हुआ
(४) हृष्ट, प्रसन्न ।
'इन्द्र पुरो जर्हृषाणो विदूधोत्'
पुनः–
'नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणः ।'
ऋ. १०.१६.७, अ. १८.२.५८,
तै.अ. ६.१.४.
(५) हरण करने की इच्छा करता हुआ ।

जरा– जृ (वयो हानि अर्थ में) + अङ् = जर । जर + टाप् = जरा ।
अर्थ–(१) वार्द्धक्य, बुढ़ापा,

'न ह्यस्या अपरं चन
जरसा मरते पतिः'
ऋ. १०.८६.११, अ. २०.१२६.११, तै.सं. १.७.१३.१, का.सं. ८.१७, नि. ११.३८
इस इन्द्राणी के समान और स्त्री मैंने नहीं देखी और इनके पति इन्द्र कभी बुढापा से नहीं मरते। अथवा,
आत्मा के विरुद्ध कभी कार्य न करने वाली विदुषी स्त्री के पति कदापि वार्द्धक्य से नहीं मरते।
(२) स्तुति,
(३) प्रसवोपरान्त निकलने वाला पदार्थ-झार।
स्तुति के अर्थ में जरा का प्रयोग
'जराबोध तद्विविड्ढि
विशे विशे यज्ञियाय।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम्'
ऋ. १.२७.१०, साम. १.१५, २.१०१३, नि. १०.८.
हे भगवन अग्नि, (रुद्र) जो यह स्तुति मुझ से की जा रही है उसे आप जाने (जरा बोध) अथवा, हे स्तुति से जगाए जाने वाले या हे देवों को होता रूप में होकर जगाने वाले अग्नि (जराबोध) यज्ञसम्बन्धी अनुष्ठान की सिद्धि के लिए देवयजन रूपी कर्त्तव्य को (तत्) यज्ञ कर्ता के लिए तथा प्रत्येक मनुष्य के लिए कर (यज्ञियाय निशे निशे निविड्ढि)। रुद्र के लिए दर्शनीय स्तोत्र (रुद्राय दृशीकम् स्तोमम्)। यहां अग्नि को ही रुद्र माना गया है और प्रत्येक व्यक्ति को यज्ञशील होने का आह्वान् है।

जरामृत्यु - (१) वृद्धावस्था में ही मृत्यु कराने वाली आयु।
'जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः'
अ. २.१३.२, १९.२४.४.
(२) बुढापा भोगकर मरने वाला।
'जरामृत्यु र्भवति यो बिभर्ति'
ऋ. खि. १०.१२८.६, अ. १९.२६.१

जरायु - जरा + यु (मिश्रण अर्थ में) = जरायु। अर्थ -(१) यह जरा के साथ रहता है।
(२) गर्भ का आवरण, उल्व, जरायु,
(३) (वेष्टन ढंकने वाला)। जैसे जैसे गर्भ बढता जाता है वैसे वैसे एक आवरण बनता जाता है। जिससे गर्भ वेष्टित रहता है। यह गर्भ की जरावस्था के साथ रहता है (गर्भस्य जरया)। प्रसूता स्त्री के प्रसव के बाद निकलने वाला पदार्थ भी 'जरा' (झार) कहलाता है। इस जरा से जो युक्त है वह जरायु है (जरया यूयते)
(४) झिल्ली जिसके भीतर गर्भ रहता है।
'एवा त्वं दशमास्य
सहा वेहि जरायुणा'
ऋ. ५.७८.८, अ. १.११.६.
इसी प्रकार हे गर्भ (दशमास्य) जरायु के साथ नीचे आ (जरायुणा सह अवेहि)
पुनः -
'अयं वेन श्चोदयत् पृश्निगर्भा
ज्योति र्जरायू रजसो विमाने।
इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति'
ऋ. १०.१२३.१. वाज.सं. ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१० , ३४.२, का.सं. ४.३. श.ब्रा. ४.२.१.१०, नि. १०.३९.
वेन नामक करन्त मध्यस्थानीय देव (अयं वेनः) द्योतमान मेघ (ज्योतिः) जो बिजली से चमकता है तथा गर्भ के जरायु के सदृश वेष्टक (जरायुः) है अर्थात् मेघरूपी जरायु में प्रकाशमान गर्भ सा स्थित तथा जल के निर्माता अन्तरिक्ष में वर्तमान हो (रजसः विमाने) आदित्य की रश्मियों में रहने वाले जलों को (पृश्निगर्भाः) वर्षा ऋतु में पृथिवी की और प्रेरित करता है (चोदयत्)। इस अन्तरिक्ष में जल तथा सूर्य के संगमन स्थान में वर्तमान इस वेन को (अपां सूर्यस्य संगमे इमम्) मेधावी विप्र प्रज्ञा पूर्ण स्तुतियों से (विप्राः मतिभिः) शिशु के सदृश अर्चना करते हैं (शिशुं न रिहन्ति)।
(५) जीर्ण होने वाला।
गर्भावरण के अर्थ में प्रयोगः-
'यत्रवा प्रजापतिरजायत गर्भोभूत्वा
एतस्मात् यज्ञात् तस्य यत्
नेदिष्टम् उल्वमासीत् ते शणाः
'स्वं जरायु गौरिव'
अ. ६.४९.१, का.सं. ३५.१४, आप.श्रौ.सू. १४.२९.३

जराबोध - (१)स्तुति से प्रकाशित होने वाला,
(२) अपना वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने वाला

परमेश्वर ।
'जराबोध तद् विविड्डि'
ऋ. १.२७.१०, साम. १.१५, २.१०१३, आश्व.श्रौ.सू. ९.११.१४, नि . १०.८.
हे स्तुति से अथवा वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने वाले (जराबोध) उसे प्राप्त कर ।
(३) स्तुतित से जगाए जाने वाला,
(४) देवों को होता रूप में होकर जगाने वाला – अग्नि ।
जरा का अर्थ यहां स्तुति है ।

जरिता – जृङ् (स्तुति करना) + तृच् = जरितृ ।
प्र.ए.व. में रूप . जरिता ।
अर्थ (१)स्तुति कर्त्ता ।
'ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना'
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३ , १३४.६, का.सं. १८.१.
स्तुति करने वाले पूर्वकालीन ऋषियों ने जैसे वार्ष साहस्रिक यज्ञ से सृष्टि की ।
अथवा, प्राचीन भक्तों के समान ऋषिगण महान् तपश्चरण से जिस प्रकार परमात्मा को भक्ति भेंट करते हैं ।
(२) आस्तिक–दया. ।
स्तोता के अर्थ में ।
'नूनं साते प्रतिवरं जरित्रे ।
दुहीयदिन्द्र दक्षिणामघोनी
शिक्षा स्तोतृभ्या मातिधग्भगोनो
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः'
ऋ. २.११.२१, १५.१०, १७, १६.९, १७.९, १८.९ २०.९, नि. १.७.
हे इन्द्र ! तेरी वह पुत्र रूपी दक्षिणा धनधान्य से संयुक्त होती हुई (इन्द्र साते दक्षिणा मघोनी) स्तुतिशील यजमान को अभिमत अर्थ प्रदान करे (जरित्रे वरं प्रतिदुहीयत्) तथा तू हम स्तोताओं में मनोरथ पूर्ण कर (स्तोतृभ्यः शिक्षा) तथा हमें छोड़ अन्य को न दे (या अति धन्क्) या हमें देने के बाद जो शेष बचे उसे अन्य को दे । हमें धन हो (भगोनः) जिससे यज्ञ में या अपने घर वीर पुत्रों से युक्त हो हम आप की कीर्त्ति गावें (विदथे सुवीराः बृहद् वदेम) ।
(३) आयु को जरावस्था तक पहुंचाने वाली स्त्री ।
'अनुस्वं धाम जरितुर्ववक्ष'
ऋ. ३.७.६

जरिता अक्तुः – (१) शब्द करने और जल सेचन करने वाला मेघ,
(२) अपने आयु को जीर्ण कर देने वाली और अपने गुणों को पुरुषों में अभिव्यक्त करने में समर्थ स्त्री ।
'उक्षा हयत्र परिधानमक्तोः
अनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ।'
ऋ. ३.७.६

जरिमन् – (१) स्तुत्य
(२) बुढ़ापा ।
'नभो न रूपं जरिमा मिनाति'
ऋ. १.७१.१०
बुढ़ापा इस रूप को जल के समान या मेघ खण्ड को जल के समान या मेघ खण्ड के समान नाश कर देता है ।
जरिता, वयोहानिकर्त्ता
'मिनाति श्रियं जरिमा तनूनाम्'
ऋ. १.१७९.१
(३) सबको वृद्ध करने वाला वार्द्धक्य काल ।
(४) स्तुति योग्य–अग्नि ।
'तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयम्'
अ. २.२८.१

जरूथ – 'जृ' अथवा गृ (अर्चना या स्तुति अर्थ में) । + ऊथन् = जरूथ । अथवा गरूथ' अर्थ है –(१) स्तोत्र
(२) परुषभाषी
(३) आदर भाव–(दया.)
'त्वामग्ने समिधानो वशिष्ठो
जरुथं हन्यसि राये पुरन्धिम् ।
पुरुणीथा जातवेदा जरस्व ।
यूयं पात स्वस्तिभिः सदानः'
ऋ. ७.९.६
हे भगवान् अग्ने ! वसिष्ट ने बहुकर्म मय तुझे संदीप्त कर धन प्राप्ति के लिए स्तोत्र द्वारा पूजित किया (अग्ने वसिष्ठः पुरन्धिम् त्वां समिधानः राये जरूथं हन् यक्षि) ! हे बहुस्तुत । (पुरुणीथा) जात प्रज्ञ अग्नि (जातवेदः) हमारे दिए हुए इस हवि को सर्वतोभाव से ग्रहण कर (आजरस्व)

और हे देवो ! आप आशीर्वादों से सदा हमारी रक्षा करें । (यूयं स्वस्तिभिः नः पात) ।
अन्य अर्थ- हे अग्नि, तुझे वसिष्ठ प्रदीप्त करते हैं (वसिष्ठ समिधानः) और तू परुषभाषी राक्षस गण के मार (जरूथं हन्), धनवान् यजमान के लिए (राये) बुद्धि मान् देवगण की पूजा कर पुरन्धिम् यक्षि और हे अग्नि बहुस्तोत्रों से देवों की स्तुति कर (पुरुणीथा जातवेदो जरस्व) या जिधर तिधर राक्षसों को भगा दे ।
अन्य अर्थ-हे हमारे नायक विद्वान् , विद्या ज्योति को प्रदीप्त करता हुआ धनाढ्य मनुष्य (अग्ने समिधानः वसिष्ठः) बहुत बुद्धि वाले आप के प्रति (त्वां पुरन्धिम्) आदर भाव को पहुंचाता हुआ (जरूथं हन्) धर्मधन की प्राप्ति के लिए (राये) आप की संगति करता है (यक्षि) । हे मनुष्यमात्र को शिक्षा देने वाले विद्वान् (जातदेवः), धर्म नीति के द्वारा (पुरुणीथा) दुःखों को दूर कीजिए (जरस्व) और आप सभी विद्वान् स्वस्ति वचनों से सदा हमारी रक्षा करें ।
(४) जीर्ण या सूखा घास या काठ ।
(५) परुषभाषी शत्रु ।
'येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्'
ऋ. ७.१.७

जल्प - व्यर्थ वाद विवाद कुशल ।
'नीहारेण प्रावृता जल्प्या च'
ऋ. १०. ८२.७, वाज.सं. १७.३१, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३ , १३५,२ का.सं. १८.१, नि. १४.१०.

जल्हु - (१) ज्वलु (ज्वलनहीन) ।
ज्वल् + क्विप् = ज्वल् ।
ज्वल् + कु = ज्वलु = जल्हु ।
ज्वलं जहाति इति (जिसमें ज्वाला नहीं है । ज्वलनेन हीनः ।)
(२) अथवा ज्वलनम् अग्नि होत्रं जहाति इति जल्हुं (जोअग्नि छोड़ देता है) । यज्ञादि नित्य कर्म नहीं करता है ।
(३) अनाहिताग्नि, ।
'नारायासो न जल्हवः'
ऋ. ८.६१.११, नि. ६.२५
हम निर्धन हैं और न धन रहते अनाहिताग्नि ही ।

जलाष - (१) सुख
(२) सन्ताप का नाशक,
(३) जलवत् सुखों का देने वाला रुद्र का विशेषण ।
'शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः'
ऋ. ७.३५.६, अ. १९.१०.६.
'हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः'
ऋ. २.३३.७

जलाषभेषज - (१) जिससे सुख के लिए ओषधि हो रुद्र का विशेषण, (२) सुखकारी ओषधि, (३) उपाय बतलाने वाला । (४) सुखस्वरूप सब का चिकित्सक, (५) भवरोग निवारक ।
'रुद्र जलाषभेषज'
अ. २.२७.६
(६) जलवत् शान्तिदायक, ।
दुःखनाशक (७) सब बाधाओं को दूर करने में समर्थ वैद्यवत् ।
'शुचि रुग्रो जलाषु भेषजः
ऋ. ८.२९.५

जल्पि - (१) जल्पना, (२) जल्प वाद, (३) परस्पर वार्तालाप ।
'येषा जल्पिः चरन्तन्तरेदम्'
अ. १९.५६.४

जल्गुलः - (१) गृहपति ।
'उलूखल सुतानाम् अवेद्विन्द्र जल्गुलः ।'
ऋ. १.२८.१-४.
जैसे गृहपति (जल्गुलः) ओखली से पीसकूट बनाए अन्न और ओषधि आदि पदार्थों को प्राप्त करता है उसका भोजन करता है वैसे ही हे इन्द्र या आचार्य ! तू बहुत बड़े कार्यों को करने वाले पुरुषों द्वारा उत्पन्न किये पुत्रों को प्राप्तकर उन्हें उपदेश दे ।

जवनी - (१) वेगयुक्त
(२) बलवती वाणी तथा आज्ञा प्रदान करने का अधिकार ।
'शतक्रतुं जवनी सूनृता रुहत्'
ऋ. १.५१.२
शतक्रतु को ही वेगवती सच्चे हृदय से निकली स्तुति प्राप्त होती है ।
'अजवसो जवनीभिः विवृश्चन्'
ऋ. २.१५.६.

जनस् – (१) गति, (२) वेग से बहने वाला प्रवाह
'पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि'
ऋ. ४.२१.८

जबारु – (१) मण्डल, (२) आदित्य ।
जवमानरोहि (शीघ्रता से आकाश में आरोहण करने वाला) (३) अथवा जरमाण रोहि (समस्त लोकों को जीर्ण करता हुआ नभ में चढ़ने वाला) (४) अथवा गरमाणरोहि–रसों को निगलता हुआ आकाश में चढ़ने वाला ।
व्युत्पत्ति – (१) जबमान + आङ् + रुह् + डु = जवारु (जबमान का जब और रुह का निपातन से रु (२) जृ + आङ् + रुह् = जबारु (निर्बलता या रोग आदि को नष्ट करता हुआ) आरूढ (५) गृ + आङ् रुह् = जबारु (रोग आदि को निगलता हुआ) ।
(६) ऊर्ध्वरेताः
'तमिन्वे इव समनासमानम्
अभिक्रत्वा पुनती धीतिरश्याः
ससस्य चर्मन् अधिचारु पृश्नेः
अग्रे रुप आरुपितं जबारु ।'
ऋ ४.५.७.
आदित्यात्मारूप में वैश्वानरअग्नि की स्तुतिः– हे यजमान ! तू उसी (तम् इत्) सभी के लिए एक रूप (समानम्) आदित्य को उनके अनुरूप स्तुति से (समाना धीतिः) तथा पवित्र करने वाले कर्म से या ज्ञान से (पुनती क्रत्वा) शीघ्र ही (न्वेव) प्राप्त कर (अभ्यश्याः) जिस आदित्य का दीप्तिमान् मण्डल (चारु जवारु) सृष्टि की आदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथ्वी के निकट से (रुपः) निश्चल (ससस्य) द्युलोक के ऊपर (पृश्नेः अधि) चलने के निमित्त (चर्मन्) आरोपित हुआ (आरुपितम्) ।
अन्य अर्थ–उसी समान गुण कर्मों वाले पति को (तंनुस्य समानम्) समान गुण कर्मों वाली कन्या तू (समाना) कर्म से अपने आप को पवित्र करती हुई (क्रत्वा पुनती) और बुद्धिमती होती हुई (धीती) प्राप्त कर (अभि अश्याः) जिस सोते हुए के भी पूरे शरीर पर (ससस्य इत् चर्मन् अधि)सुन्दर ऊर्ध्वरेतस्त्व आरोपित हो (चारु जबारु आरुपितम्) । जैसे द्युलोक में आरोपण कर्त्ता परमात्मा का आदित्य का मण्डल आरोपित है (प्रश्नेः अग्रे रूपः) उसी प्रकार वीर्य पति के शरीर में आरोपित है ।

जविष्ठ – अत्यन्त गतिमान् ।
'उतो पद्याभिर्जविष्ठः'
अ. २०.१३५.८, ऐ.ब्रा. ६.३५.१३, गो.ब्रा. २.६.१४, शां.श्रौ.सू. १२.१९.४.

जवेते – जु (वेग से जाना) के लट् प्र. प्र.,द्वि. व. का रूप । जवेन गच्छतः (वेग से जाते हैं ।) गमनार्थक जु धातु पाणिनि के अनुसार परस्मैपदी है, परन्तु क्षीरस्वामी इसे उभयपदी मानते हैं ।
'प्र पर्वतानामुशती उपस्थात्
अश्वे इव विषिते हासमाने
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे
त्रिपाट् छुतु द्री पयसा जवेते'
ऋ. ३.३३.१
ये पर्वत की गोद से आती हुई विपाशा और शुतुद्रि नदियां जल से पूर्ण हो वेग से इस प्रकार कामना करती हुई जा रही हैं (पर्वतानाम् उपस्थात् उशती विपाट् शुतुद्रि पयसा प्रजवेते) जैसे वाजिशाला से छूटी घोड़ियां एक दूसरे से चलने में स्पर्द्धा करती या हंसती हुई दौड़ती हैं (विषिते हासमाने अश्वे इव) या जैसे दो सुन्दर प्रसूता गायें (शुभ्रे मातरा गावा इव) अपने बछड़े को चाटने के लिये दौड़ती हों (रिहाणे) ।

जष – महा मत्स्य ।
'जषामत्स्यारजसा येभ्यो अस्यसि'
अ. ११.२.२५

जसमानः – (१) हिंसा करता हुआ (२) शत्रुओं पर आघात करता हुआ ।

जस्वनः – नाश करने वाला ।
'जह्यसुष्वीन् प्रवृहापृणतः'
ऋ. ६.४४.११

जसु – (१) नाशकारी प्रभाव ।
'यदा वलस्य पीयतो जसुं भेत्'
ऋ. १०.६८.६, अ. २०.१६.६.
(२) हिंसावृत्ति, (३) सर्वनाशक मृत्यु, (३) नाश ।
'निबाधते अमतिर्नग्नता जसुः'
ऋ. १०.३३.२.

जसुरिः – (१) हिंसक शत्रुनाशक ।

(२) अज्ञाननाशक विद्वान्
'शयवे चिन्नासत्या शचीभिः
जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम्'
ऋ. १.११६.२२.
तुम दोनों जिस प्रकार सोने वाले को (शयवे) बिस्तर बिछाया जाता है उसी प्रकार शत्रुओं के नाश करने वाले के लिए (जसुरये) विस्तृत बढ़ाओ
अथवा,
अज्ञान-नाशक विद्वान् शुभ प्रेममयी वाणी और उत्तम गौ प्रदान कर ।
व्युत्पत्ति जस् (ताड़न्, फेंकना-असन) + उरिन् = जसुरि (३) देवराज ने इसका अर्थ -तर्ज ताड़ित, (४) बद्धमुक्त, (५) हतवेग और (६) श्रान्त किया है । (७) मुक्त किया हुआ (वाज) ।
'नीचायमानं जसुरिं नश्येनम्'
नीचे उड़ते हुए पालतू बाज के छोड़े जाने पर जैसे अन्य पक्षी चिल्लाते हैं ।
(अथवा)
नीचता की ओर जाने वाले (नीचाय मानम्) तथा मुक्त किये बाज की तरह हिंसक (जसुरिं श्येनं न) जिस राजा को लोग कोसते हैं ।

जहका - ओहाङ् (गत्यर्थक) से सिद्ध । अर्थ -(१) सर्वत्र फैलाने वाली व्यापक शक्ति ।
'जहका वैष्णवी'
वाज.सं. २४.३६, मै.सं. ३.१४.१७, १७६.४.

जहा - यह शब्द सम्भवतः 'हन्' या 'हा' धातु से बना है । यास्क ने इसे 'हन' धातु से निष्पन्न माना है । 'हन्' धातु के लिट् उत्तम पुरुष ए.व का रूप 'जघान' है । उसीसे 'जहा' हो गया है । अर्थ है- मारा गया ।
'जहाको अस्मदीषते'
ऋ. ८.४५.३७, तै.आ. १.३.१, नि. ४.२.
कौन अपापी मारा जाता है ?

जह्नावी - (१) हा + नु + अण् । जहत्या त्यजन्त्यः । शत्रुसेनायाः ।
विरोधिनी (भागती हुई शत्रु सेना की विरोधिनी सेना) -दया. (२) शत्रुओं पर हथियार छोड़ने वाले सेनापति की, या वेतन, भृति आदि देने वाले, राजा की सेना ।
(३) जह्नोः त्यक्तुः नीतिः (त्यागी की नीतिः) दया. (४) त्यागी पुरुष की दान करने की शैली ।
(५) जह्नु की कन्या-गंगा ।
'युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम्'
ऋ. ३.५८.६

जहित - (१) हा + इतच् = जहित । त्यागी पुरुष ।
'प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रां'
ऋ. १.११६.१०
त्यागी पुरुष केजीवन को उत्तम रीति से बढ़ाओ
(२) आया हुआ ।
'समुद्रे जहितो नरा'
ऋ. ८.५.२२

जह्नु - (१) त्याग करने वाला -दया (२) राजा जह्नु ।

जहुष् - ओहाङ् + उसि = जहुष् । अर्थ - गन्तव्य ।

जह्नुष - मारने वाला ।
'हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत्'
ऋ. १.३२.१४
हे इन्द्र तुझ हन्ता के (जघ्नुषः) हृदय में भी यदि भय हो जाय तो...।

जहू - परमेश्वर की विशाल आदान करने वाली वशकारिणी शक्ति ।
'जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं'
अ. १८.४.५

ज्रय - (१) वेग युक्त, (२) बलवान् (३) नाश कारक - अग्नि का विशेषण ।
(४) शत्रु पर आक्रमण करने में वेग वान् ।

यस् - ज्रि + असुन् = ज्रयस् । अर्थ है -(१) वेग, (२) गति । (३) तेज, (४) शत्रु संहारक बल (५) विजयी ।
'रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथुज्रयः'
ऋ. १.१०१.७
स्त्री या भेदनीति की वाणी (योषा) जिस प्रकार वीर पुरुषों की सहायता से (रुद्रेभिः) बड़ा शत्रु संहारक बल प्रकट करती है ।
'इमे चिदस्य ज्रयसे नु देवीः
ऋ. ५.३२.९.
'वियस्य ते ज्रयसानस्या जर'
ऋ. १०.११५.४

ज्रयसानौ - (१) ज्ञानमार्ग से जाने वाले स्त्री पुरुष (२) मित्रा वरुण ।

'जयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः'
ऋ. ५.६६.५
जन् + ड + टाप् = जा ।

जा – (१) जन् धातु से सम्पन्न, (२) पिता, (३) उत्पादक।
'अनिमिषद्भिः परिपाहि नो जाः'
ऋ. १.१४३.८
(४) जायते मातृपितृभ्यां सकाशात् इति जा । अर्थ–सन्तान्
(५) कन्या, बेटी ।
'सोमः परिक्रतुना पश्यते जाः
ऋ. ९.७१.९
(६) उत्पन्न हुआ सूर्य ।
'कृष्णा असेधत् अप सद्मनो जाः'
ऋ. ६.४७.२१
(७) प्रजा के अर्थ में –
(८) जाति ।
'समानौ बन्धुर्वरुण समा जा'
अ. ५.११.१०

जागतं छन्दः – (१) जगती नामक वैदिक छन्द, (२) वैश्यबल, (३) धनबल ।
'जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत्'
वाज.सं. ११.१०, मै.सं. २.७.१, ७४.१५, श.ब्रा. ६.३.१.३९.
(४) जगतों की रचना करने वाला बल
'दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा'
वाज.सं. २.२५, श.ब्रा. १.९.३.१०, १२, शां.श्रौ.सू. ४.१२.२.

जागर– जागर्मि (जागता हूं) जागृ (जागन्त) के लिट् उ.पु.ए.व. का रूप । वर्त्तमान अर्थ में लिट् का प्रयोग वैदिक है ।

जागरण – जागृ + ल्युट् = जागरण । अर्थ –जागना, सावधान रहना ।
'भूत्यै जागरं'
वाज.सं. ३०.१७,तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

जागरूके – (द्वि.व.) जागरूक । अर्थ (१) अपने अपने अधिकारों के प्रति सदा जागरुक द्यौ और पृथ्वी, (२) सदा जागरूक पृथ्वी और सूर्य –(दया.)
'ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके'
ऋ. ३.५४.७.

जाग्रद् दुःस्वप्न्य – जागते समय का दुःस्वप्न ।
'जाग्रद् दुःष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम्'

जागृवत् – जागरुक पुरुष ।
'सं जागृवद्भिः जरमाण इध्यते'
ऋ. १०.९१.१
पुनः –
'जागृवांसः समिन्धते'
१.२२.२१, ३.१०.९, साम. २.१०२३, वाज.सं. ३४.४४. नृसिंह पू. ता.उप. ५.१०, स्कन्द उप. १६. मुक्तिका उप. २.७८, आ. उप. ५.
परमात्मा के उस स्वरूप को जागरूक पुरुष ही प्रकाशित करते हैं ।

जागृविः– जागृ + क्विन् = जागृवि । जागृ में णि प्रत्यय छिपा हुआ है । अर्थ है–जो जगाता है (यः जागरयति) जगाने वाला ।
'विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्'
ऋ. १०.३४.१. नि. ९.८.
हर्रे या जुआ मुझे जगाने वाला तथा मन को आच्छादित करने वाला है ।
(२) जागरूक, सावधान ।
'द्युम्निनं पाहि जागृविम्'
ऋ. ३.३७.८, अ. २०.२०.१, ५७.४

जाट्य – जट (संघात अर्थ में) + णयत् = जाट्य । यहां ण्यत् का प्रयोग मतुप् अर्थ में हुआ है । अर्थ–जटवाला ।

जात– जन् + क्त = जात । अर्थ (१) उत्पन्न आप्राणि संघ, (२) अपत्य, (३) अन्न पानादि पदार्थ –दया. ।
'जातं विश्वाचो अहतं विषेण'
ऋ. १.११७.१६.
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों ने चारों ओर गतिशील विश्वाच् नामक राक्षस के अपत्य को विष से मार डाला ।
अन्य अर्थ– तुम दोनों ने मेघ के जल से उत्पन्न समस्त प्राणि संघ को सुख प्राप्त कराया–यास्क ।
अथवा, विषम गति वाले दस्यु मण्डल के अन्नपानादि पदार्थों को विष से नष्ट करो । दया.
(४) सदा वर्तमान् ।
'यो जात एव प्रथमो मनस्वान्'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२,

मै.सं. ४.१२.३. १८६.४, का.सं. ८.१६, ऐ.ब्रा. ५.२.१, कौ.ब्रा. २१.४,२२, ४. ऐ.आ. १.५.२.२५, ५.३.१.२, वै.सू. ३३.१२, का.श्रौ.सू. २५.१४.१९, नि. १०.१०.

जो सदा वर्तमान ही रहता है (जात एव) जो सर्वाधार और चेतन है। (५) जायमान (उत्पन्न होने वाला।

'सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम्
अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः
अस्म होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि
स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः'

ऋ. १०१.११०.११, अ. ५.१२.११, वाज.सं. २९.३६, मै.सं. ४.१३.५, २०५,६, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.२१.

तत्क्षण जन्मते ही अग्नि यज्ञ सम्पादन करने लगता है। अतएव यह देवताओं में मुख्य या अग्रणी हुआ (देवानां पुरोगा अभवत्)। पूर्वदिशा में (प्रदिशिशि) आहवनीय अग्नि के रूप में वर्तमान इस होम -निष्पादक अग्नि के (ऋतस्य अस्य होतुः) स्वाहाकार पूर्वक मन्त्र द्वारा दिया आज्य रूपी हवि देवता पियें।

जातविद्य - (१) जाते जाते विद्या-जातविद्या (प्रायश्चित आदि कर्मों में क्या करना चाहिए इस सबका ज्ञान)।

(२) जाते जाते विद्यते (प्रत्येक जीव में विद्यमान) (३) जातमात्र एव विद्योतते प्रज्ञानस्वभावत्वात् (जो उत्पन्न होते ही विद्योतित हो उठे) - अग्नि

(४) जातं प्रज्ञानं यस्य (जिसमें वेद या ज्ञान या विचार हो) (५) जातानिसर्वाणि भूतानि वेद (जो सभी उत्पन्न जीवों को जानता है)। सर्वज्ञ परमेश्वर या पदार्थ ज्ञाता विद्वान् - (दया.)

(६) जाते जाते विद्या (तरह तरह के कर्त्तव्य कर्म के सम्बन्ध में ज्ञान देने वाली बात या आत्म विज्ञान।

'ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्'

ऋ. १०.७१.११, नि. १.८.

एक सर्वज्ञ ब्रह्मा तरह तरह के कर्म के सम्बन्ध में ज्ञान देने वाली बात या आत्मविज्ञान (जातविधाम्) यज्ञ में कहता है (वदति)। (८) प्रायश्चित आदि कर्मों में यथा यथा करना चाहिए इस सब का ज्ञान।

जातवेदाः - जात + विद् + असुन् = जातवेदस्। विद् धातु जानना, सत्ता और प्राप्ति अर्थ में आता है। (१) जातानि सर्वाणि भूतानि वेद (जो सभी उत्पन्न जीवों को जानता है।, (२) सर्वज्ञ परमेश्वर या पदार्थ ज्ञाता विद्वान् -(दया.) (३) जातानि एनं विदुः (जन्मने वाले इसे जानते हैं) -परमेश्वर या अग्नि, (४) जात + विद् + असि = जातवेदस्, (५) जातम् अस्य वित्तम् इति जात वेदस-दुर्ग (जिसे धन हो) ऐश्वर्यवान्,) (६) जाते जाते विद्यते (जो प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान हो। जात + विद् (सत्ता) + असि = जात वेदस्।

(७) जातं हविर्लक्षणम् धनं यस्य स जातवित्तः (जिसे हवि रूप धन हो)(८) जाता विद्या प्रज्ञानं यस्मात् यस्य वा स जातवेदाः (जिससे सब विद्याएं उत्पन्न हुई) परमेश्वर, अग्नि (९) यत् जात पशूनविन्दत् तत् जातवेदस् (जिसने जन्म लेते ही पशुओं को प्राप्त किया)

(१०) अग्नि, जातप्रज्ञ अग्नि -

(११) सभी पदार्थों में विद्यमान्-विद्युत्।

'विश्वा अपश्यद् बहुधा ते अग्ने
जात वेदस्तन्वो देव एक'

ऋ. १०.५१.१.

हे जातप्रज्ञ अग्नि। तेरे समस्त अंग (विश्वा तन्व) अनेक प्रकार से दीख पड़ते हैं किन्तु एक प्रजापति ने ही तुझे देखा (एकःदेवः)

(अथवा)

हे सभी पदार्थों में विद्यमान विद्युत् (जातवेदः अग्ने) कोई बड़ा वैज्ञानिक (एकःदेवः)तेरे सभी अंगों को (विश्वाः तन्वः) अनेक प्रकार से देखता है (बहुधा अपश्यत्)।

पुनः -

'जातवेदसे सुनवाम सोमम्
अरातीयतो निदहाति वेदः।
सनः पर्षदति दुर्गणि विश्वा
नावेष सिन्धुं दुरितात्यग्निः'

ऋ. १.९९.१,

जीवों के ज्ञाता अग्नि के लिए (जातवेदसे) सोम रस का अभिषवण करता हूं। वह अग्नि शत्रुवत् आचरण करने वाले मनुष्य का धन भस्म करता

है । तथा हमें दुर्गमनीय दुःख से पार करता है । जैसे कर्णधार नाव से नदी को पार करता है, वह हमें पापों से मुक्त करे ।
अग्नि के अर्थ में –
'देवो देवान् यजसि जातवेदाः'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३,२०१.८. का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५,
हे दीप्त अग्नि, तू हवि से देवताओं को पूजता है ।
पुनः
'ईडिष्वा हि प्रतीत्यं
यजस्व जातवेदसम्'
ऋ. ८.२३.१, साम. १.१०३.

जाता – (१) जातौ । (द्वि.व.) उत्पन्न हुए । अश्विनी कुमारों के सम्बन्ध में प्रयुक्त ।
'इहेह जातो समवावशीताम्'
ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३.
हे अश्विनी कुमारो तुम दोनों यहीं द्युस्थान में उत्पन्न हुए और रात्रि और उषा के पुत्रों के रूप से स्तुत्य हुए ।
(२) सर्वगुण्–सम्पन्न कन्या ।
'जातायाः पतिवे दनौ'
ऋ. ८.६.१

जाति – जन् + क्तिन् = जाति अर्थ – जन्म

जात्री – जनने वाली माता ।
'जातं जात्रीर्यथा हृदा'
अ. २०.४८.२

जातू – जनी + तु = जातू । उत्पन्न होने वाला जीव ।

जातूभर्मा – यो जातान् जन्तून् विर्भति (उत्पन्न जीवों का भरण पोषण करने वाला परमेश्वर)
'स जातूभर्मा श्रद्दधान ओज'
ऋ. १.१०३.३

जातूष्ठिर – जातुस्थिर (२) प्रत्येक उत्पन्न एवं नश्वर पदार्थ में कारण रूप से स्थिर रहने वाला (२) कदाचित लब्ध स्थिति –(दया.) ।
'जातूष्ठिरस्य प्रवयः सहस्वतः'
ऋ. २.१३.११

जानम् – (१) उत्पत्ति, उत्पत्तिस्थान (३) उत्पत्ति का रहस्य ।
'स्थिरं हि जानमेषाम्'
ऋ. १.३७.९
'पुत्रो यजानं पित्रोरधीरयति'
ऋ. १०.३२.३
'देवानां नु वयं जाना'
प्रवोचाम विपन्यया'
ऋ. १०.७२.१
'विद्म वै ते जायन्य जानस्'
अ. ७.७६.५
उत्पत्ति का रहस्य ।
'को वेद जानमेषाम्'
ऋ. ५.५३.१

जानती – (१) समझती हुई, जानती हुई ।
'ओको नाच्छा सदनं जानती गात्'
ऋ. १.१०४.५.
अपना घर समझती हुई चली जाती हैं
(२) ज्ञानवाली विदुषी स्त्री, ज्ञानमयी ।
'ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता
मनस्तिष्ठतु जानती'
ऋ. १.१३४.१
ज्ञानवती विदुषी स्त्री प्रिय सत्यवाणी बोलती हुई अपने प्रियतम के मन को जानती हुई तदनुसार ही आचरण करती है ।
अथवा,
उत्तम वेदवाणी मन को ज्ञान प्रदान करती हुई या ज्ञान को जानती या जनाती हुई तेरे कार्य के अनुकूल रहे ।
(३) प्रकट करती हुई, ।
'अच्छा रवं प्रथमा जानती गात्'
ऋ. ३.३१.६, वाज.सं. ३३.५९, मै.सं. ४.६.४, ८३.११, का.सं. २७. ९, तै.ब्रा. २.५.८.१०, आप.श्रौ.सू. १२.१५.६.

जानराज्य – जनता के ऊपर राजा बनना ।
'इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय
महते ज्यैष्ठयाय महते
जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय'
वाज.सं. ९.४०,१०.१८, वाज.सं. (का.) ११.३.२, ६.२, शं.ब्रा. ५.३.३.१२, ४.२.३.

जनिवान् – उत्तम जन्म, पद या प्रतिष्ठा को प्राप्त ।
'वेत्यग्रुर्जनिवान् वा अतिस्पृधः'
ऋ. ५.४४.७

जम्भयन – मारता हुआ । 'जम्भ' धातु मारना अर्थ में प्रयुक्त है ।
'जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि'
ऋ. ७.३८.७, वाज.सं. ९.१६.२१.१०, तै.सं. १.७.८.२, मै.सं. १.११.२, १६२.११, का.सं. १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५.२२, नि. १२.४४.
हनन करने वाले शत्रु भी सर्प को (अहिम्), चोर का (वृकम्) तथा राक्षसों को मारते हुए (जम्भयन्तः)

जामर्य – उत्पन्न होने वाले प्राणियों को प्राप्त होने वाला और जीवन देने वाला, (२) जाम अर्थात् भोजन को प्राप्त करने वाला पुष्टि कारक जल और अमा, (३) जाम अर्थात् आस्वादन करने योग्य रस ।
'जायर्येण पयसा पीपाय'
ऋ. ४.३.९

जामाता– नाती का उत्पादक जामाता, (जामातृ) जवाई (२) सर्वजगदुत्पादक प्रभु ।
'त्वष्टुर्जामातरं वयम्
ईशनं राय ईमहे'
ऋ. ८.२६.२२
(३) जायां मिमीते मिनातिवा । जाया + माङ् तृच् = जामातृ (जाय का जा) । जा शब्द का अर्थ भी कन्या है ।

जामि – (१) अव्यय । अर्थ है अति अधिक।
'जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम्'
ऋ. ८.७२.४
(२) दोष ।
'सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ,
ऋ. १०.१०.४
(३) (अव्यय)– निष्प्रयोजन ।
'जामि ब्रुवत आयुधम्'
ऋ. ८.६.३, अ. २०.१३८.३, साम. २.६५८.
(४) जां मिनोति प्रक्षिपति इति जामिः (जो पुत्री अपने अपत्य को पिता को ही दे देती है, वह जामि है) । (४) जमति गच्छति पितुः गृहात् पतिगृहम् (जो पिता के घर या कुल से पति के घर या कुल में जाती है) । जम + इण् = जामि । अथवा –जन् + इण् (कर्त्ता में) = जामि ।
(५) एकस्मिन् कुले जायत इति जा (जो एक कुल में जन्म लेता है वह जा है) । जन् + ड + टाप् = जा, जा + मि = जामि ।
(६) स्वसा, भगिनी, बहन जामिः स्वसृकुलस्त्रियौ –अमर ।
(७) मूर्ख ।
'आघाता गच्छान् उत्तरा युगानि
यत्र जामयः कृणवन् अजामि'
ऋ. १०.१०.१०, अ. १८.१.११, नि. ४.२०.
ऐसे युग आगे आयेंगे जब बहन अपने कुल में भी मैथुनादि कार्य करेंगी ।
पुनः –
' न जामये तान्वो रिक्थमारैक्
चकार गर्भं सनितुर्निधानम्'
यदी मातरो जनयन्त वह्निम्
अन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.
बेटा (तान्वः) बहन के लिए (जामये) पैतृक धन (रिक्थम्) न दे (न आरैक्) किन्तु साथ ही पालते पोसते बहनोई के लिए (सनितुः) गर्भधारण करने योग्य बनावे (गर्भं निधानं चकार) । जो ये माताएं कुल को बढाने वाला पुत्र (बह्निम्) या पुत्री उत्पन्न करती हैं उनमें से एक (अन्यः) सन्तान कर्त्ता होता है (कर्त्ता) । पुत्र ही धन का भागी होता है । उन दो उत्पादित सन्तानों में (सुकृतोः) एक पुत्री पाली पोसी जाकर (ऋन्धन्) दूसरे को दी जाती है (परस्मै प्रदीयते) इस लिए वह धन का भाग नहीं पाती ।
पुनः ।
'अमूर्या यान्ति जामयः'
अ. १.१७.१, नि. ३.४.
(८) समान जातीय, सज्ञाति, बन्धु
(९) एक ही पाणि से जन्म लेने के कारण अंगुलि भी जामि है (१०) योग्य, अनुरूप, (११) आसन्न (जामिम् आसन्नम्) (१२) असमानजातीय –दुर्ग (१३) अतिरेक बालिका, समान जातीय–देवराज यज्वा (१४) ज्ञाति या बन्धु, (१५) यास्क ने पुनरुक्ति के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है । जमति पुनः पुनः आगच्छति इति जामिः ।
अजामि का अर्थ दोष रहित है । अतः जामि का अर्थ मूर्ख बालिश हुआ, (१६) जा + मि =

जामि । अर्थ-ज्ञाता, बन्धु , परिचित ।
'कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः '
ऋ. १.७५.३, साम. २.८८५.
(१७) चतुर्विंशतिवर्षा ब्रह्मचारिणी -दया (१८) वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाली ओषधि, (१९) वह स्त्री जिससे पुत्र हो सके, (२०) गति शील, विस्तृत या बहन के समान प्रीति युक्त प्रजाएं ।
'या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिम्
ऋ. ३.५७.३.

जामिकृत् - मित्र बनाने वाला ।
'उतो असि नु जामिकृत्
अ. ४.१९.१

जामित्व - बन्धुता ।
'स जामित्वाय रेभति '
अ. १.१०५.९.

जामिशंस - (१) भगिनी, (२) स्त्री, (३) बन्धुओं का वाक् प्रहार ।
'क्षेत्रियात् त्वा निकृत्या जामिशंसात्
अ. २.१०.१
(४) जामि + शंस । सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली माता है - ऐसा कहने वाला जामिशंस है । जाम अयत्यं जायते अस्याम् इति जामिर्माता । जामि इति ।
'शसति स जामि शंसः
क्रोड आसीज्जामिशंसस्य '
अ. ९.४.१५

जामी - (द्वि.व.) । द्यावा पृथिवी का विशेषण । एक पेट से उत्पन्न सन्तानों के समान बन्धुवत् ।
'स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे '
ऋ. १.१८५.५

जाम्बील - (१) गाड़ी के नीचे का भाग (२) जम्बीर जाति का एक कांटेदार वृक्ष
'जाम्बीलेनारण्यम् '
वाज.सं. २५.३, मै.सं. ३.१५.३, १७८.१०.

जायमानः - जन्म लेता हुआ ।
'समस्मिन् जायमान आसतग्ना '
ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७
इस पुरुखा के जन्म लेने पर या वर्षाऋतु में बरसने पर इसे घेर कर जल ठहर गए या देवस्त्रियां उसे घेर कर बैठ गईं ।

जाया - (१) स्त्री ।
'जायेव पत्य उशती सुवासाः '
ऋ. १.१२४.७, ४.३.२, १०.७१.४, ९१.१३, नि. १.१९, ३.५,
जैसे पति की कामना करती हुई स्त्री (उशती जाया) ऋतु कालों में सुन्दर वस्त्र पहनती है (सुवासाः) ..
पुनः -
'जाया तप्यते कितवस्य हीना '
ऋ. १०.३४.१०
जुआड़ी की स्त्री हीनावस्था को प्राप्त कर दुःख सहती है ।
(२) पुत्रोत्पादन करने में समर्थ स्त्री, (३) जय दिलाने वाली ।
'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे '
ऋ. १०.९५.१, श.ब्रा. ११.५.१.६.
(४) प्रकृति ।
'अपश्यम् जायामहीयमानाम् '
ऋ. ४.१८.१३
'यन्मन्युर्जायामावहत् '
अ. ११.८.१
(५) जायारूप पृथिवी या राष्ट्र सभा ।
'तेन जायामन्वविन्दत् बृहस्पतिः'
ऋ. १०.१०९.५, अ. ५.१७.५.

जायान्य - (१) स्त्री संभोग से प्राप्त होने वाला यक्ष्मा रोग ।
'पक्षी जायान्यः पतति '
अ. ७.७६.४
'यो हरिमा जायान्यः'
अ. १९.४४.२

जायु - (१) जयशील, (२) सन्तान का इच्छुक ।
'अस्मे ते सन्तु जायवः '
ऋ. १.१३५.८
(३) विजय के लिए यत्नशील ।
'शुभे मखा अमिता जायवो रणे '
ऋ. १.११९.३
युद्ध में विजय करने के लिए यत्नशील (जायवः) आदरणीय अपरिमित या अपराजित पुरुष रण या किसी अन्य शुभ अवसर पर एकत्र होते हैं ।
पुनः-

'वनेषुजायुः मर्तेषुमित्रः'
ऋ. १.६७.१
जो अग्नि वन में विजय करने वाला अर्थात् भस्म करने वाला और मनुष्यों के बीच मित्रवत् स्नेही है।

जार- (१) स हि रात्रे जारयिता (रात को जलाने वाला सूर्य (२) पति, (३) जृ (पुराना होना) + घञ् = जार।
'जारः कनीनां पतिः जनीनाम्'
ऋ. १.६६.८, नि. १०.२१.
अग्नि कन्याओं का जार तथा स्त्रियों का पालक है (४) अपने ताप से जल-शोषण कर्त्ता (अपां जारः) - सूर्य।
'हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
हे अश्विनीद्वय (नरा), जलों का शोषयिता या प्राण भाव से स्थित या अपने ताप से जल शोषण कर्त्ता (जारः) समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीण यिता (पपुरिः) सूर्य हमारे दिए हवि से या स्वा. दयानन्द के अनुसार जल से (हविषा) प्रसन्न करता है।
(५) अग्नि भी जार है
'उदीरय पितरा जार आभगम्
इयक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखः
तविष्यते असुरो वेपते मती'
ऋ. १०.११.६, अ. १८.१.२३.
पितृमेध में विनियोग-हे अग्नि! जिस प्रकार सूर्य पृथिवी के रस के प्रति अपने को प्रेरित करता है। वैसे ही तू अरणियों के प्रति द्यौ और पृथिवी के प्रति प्रेरित कर (जार आ भगं पितरौ उदीरय) क्योंकि यह यजमान देवताओं की पूजा करना चाहता है (अग्नं हर्यतः इयक्षति) तथा हृदय से अपने मनोरथों की पूर्त्ति चाहता है (हृत्तः इष्यति)। यह अग्नि भी (वह्निः) सुन्दर कर्म की इच्छा करने वाले यजमान के लिए (स्वपस्यते) देवताओं की प्रार्थना करता है (विवक्ति) और अग्नि की कृपा से यज्ञ सफलता के साथ समाप्त होगा (मखः तविष्यते)। तथा असुर भी यज्ञकर्म में प्रकम्पित हृदय होकर रहेंगे। (असुरः मती वेपते)
अन्य अर्थ - जैसे अन्धकार विनाशक सूर्य द्यावा पृथिवी को ज्योति पहुंचाता है उसी प्रकार हे विवाहित पुरुष! तू माता पिता को सुख पहुंचा (जरा आभगम् पितरौ उदीरय), चाहने वाले को दान दे (हर्यतः इ. यक्षति) और हृदय से सब कर्मकर (हृत्तः इष्यति)। विवाहित पुरुष सुन्दर वचन बोले (वह्निः विवक्ति) तथा शुभ कर्म में (स्वपस्यते) बुद्धिमान् गृहस्थ (असुरः) मनन द्वारा (मती) पापादिकों से कांपे (वेपते)
आधुनिक अर्थ - (१) परस्त्रीगामी प्रेमी, वीर। प्रेमी भी जारयिता ही होता है।

जारयायि - (१) उत्पन्न किया जाता है, (२) कुछ भाष्य कारों के मत से यह शब्द उक्ष (सांढ़) का विशेषण है, क्योंकि सांढ गौओं के यौवन का जारयिता अर्थात् जार और गौवों पर अभिगमन करने वाला है (यायि)।
'द्रन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा
उस्त्रः पितेव जारयायि यज्ञैः'
ऋ. ६.१२.४,
वृक्षों का भक्षयिता (द्रन्नः), वनों का संभजन करने वाला अग्नि (वन्वन्)अपने कार्य से (क्रत्वा अनाश्रित, स्वतन्त्र अर्थात् छूटे सांढ के सदृश (अनार्वा पिता उस्त्रः इव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है (यज्ञैः जारयायि)।

जारिणी - स्वैरिणीस्त्री।
'यदादीध्ये न दविषाण्येभिः
परायद्भ्योऽवहीयेसखिभ्यः
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतं
एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव'
ऋ. १०.३४.५-
कितव देवता है। जब मैं यह संकल्प करता हूँ कि मैं इन जुए के पाशों के चलते संतप्त न होऊंगा (यत् आदीध्ये एभिः नदविषाणि) तब जुआ खेलने जाते हुए मित्रों को देख कर अपने को हीन सा समझने लगता हूं (परायद्भ्यः सखिभ्यःअवहीये), या सायण के अनुसार, यह सोचता हूँ कि मैं पहले पाश न फेकूंगा, परन्तु जब फेंके हुए पीले रंग के पाश शब्द करते हैं (न्युप्ताः च बभ्रवः वाचम् अक्रत) तो मैं इन जुआड़ियों के अड्डे पर (एषां निष्कृतम्) स्वैरिणी व्यभिचारिणी स्त्री के सदृश (जारिणीव) आ

जाता हूँ (एमीत्) ।

जार्य - स्तुति करने योग्य ।
'शेवं हि जार्यं वाम्'
ऋ. ५.६४.२

जाल - (१) जले भवम् (जो जल में हो), जल + अण = जाल, अर्थ-जलचर , (२) जले शयम् (जल में पड़ने या सोन वाला) (३) जाल । हिन्दी में भी इसका अर्थ है मछली फंसाने वाला जाल ।
'बृहज्जालेन संदिताः'
अ. ८.८.४

जालदण्ड - जाल तान कर लगाने का डंडा ।
'जालदण्डा दिशोमहीः'
अ. ८.८.५

जाल्म - (१) जालिम, अत्याचारी आततायी, दुष्टपुरुष ।
'आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा'
अ. ४.१६.७, का.सं. ४.१६.
'इन्द्रस्य मन्यवे जाल्माः'
अ. १२.४.५१

जालाष - (१) जल, (२) गोमूत्र का फेन, इससे व्रण धोने का विधान है । (३) ज + लाष = जलाष । प्राणियों का एकमात्र अभिलाषा का विषय- परम ब्रह्म सुख ।
'जालाषेणाभिषिञ्चत'
अ. ६.५७.२,

जावत् - (१) जा + वतुप् । जाया के तुल्य प्रजा से युक्त (२) भूमि से युक्त राष्ट्र ।
'त्रिषधस्थस्य जावतः'
ऋ. ८.९४.५, साम. २.११३.६.

जाष्कमद - शक्तिशाली पक्षी ।
'अलिक्रवा जाष्कमदाः'
अ. ११.९.९

जास्पत्य - पति पत्नी भाव, दाम्पत्य ।
'संजास्पत्यं सुयममस्तुदेवाः'
ऋ. १०.८५.२३, आप. मं. पा. १.१.२.
(२) पति पत्नी का सम्बन्ध ।
'संजास्पत्यं सुयममाकृणुष्व'
ऋ. ५.२८.३, अ. ७.७३.१०, वाज.सं. ३३.१२, मै.सं. ४.११.१, १५९.६, का.सं. २.१५, तै.ब्रा. २.४.१.१, ५.२.४, आप. श्रौ.सू. ३.१५.५.

जास्पति - (१) जाया का पति, (२) पत्नी, पति, जामाता या वरवधू ।
'सखायं वासदमिज्जास्पतिं वा'
ऋ. १.१८५.८
(३) प्रजा का पालक ।
'अनुतन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट'
ऋ. ७.३८.६

जासु- (१) पीड़ा देने वाला रोग ।
'अनमीवोरुद्रजासुनोभव'
ऋ. ७.४६.२

जाहुष - जहुष् + अण् । अर्थ ।
(१) गन्तव्य का गमन, प्राप्त होने योग्य, (२) नगर आदि का राज्य-दया. (३) भोग्य सुख ।
'परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीम्
सुगेभिः नक्तम् ऊहथु रजोभिः'
ऋ. १.११६.२०
हे दो प्रमुख नायको, आप दोनों गन्तव्य, प्रयाण करने योग्य स्थान को (जाहुषम्) सब ओर से (विश्वतः सीम्) घेर लो (परिविष्टम्) और सुख से गमन करने योग्य, मार्गों से अपने सैन्य को रातों रात ले जाओ ।
अथवा
हे स्त्री पुरुषो, आप दोनों इस भोग्य सुख को प्राप्त करो और सुखदायक राजसुख से रात्रिकाल व्यतीत करो ।
(४) त्यागी, निःसग, निःस्वार्थी पुरुष ।
'निजाहुषं शिथिरे धातमन्तः'
ऋ. ७.७१.५

जाहृषाणः - (१) सन्तापक-(दया.) (२) निरन्तर सबको सन्तुष्ट और हर्षित करने वाला ।
'यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना'
ऋ. १.१०१.२
जो निरन्तर सबको सन्तुष्ट और हर्षित करने वाले क्रोध से (जाहृषाणेन मन्युना) या शत्रुस्तम्भन करने वाले बल से विविध स्कन्धा वार अर्थात् छावनी वाले शत्रु को विनाश करने में समर्थ हो ।

ज्ञात्र- (१) ज्ञान-साधन, (२) ज्ञान साधनों से उत्पन्न उत्कृष्ट विज्ञान सामर्थ्य ।
'संविद्म मे ज्ञात्रं च मे'

वाज. सं. १८.७

ज्ञाति – ज्ञा + क्तिन् = ज्ञातिः । ज्ञाति; संज्ञानात् (सम्यक् प्रकार से बन्धुओं की हालत जानने के कारण ज्ञाति कहलाता है) ।

ज्ञातुमुख– बन्धुओं का सा रूप धारण करने वाला ।
'ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति'
अ. १८.२.२८

ज्ञास् – (१) विद्वान् या ज्ञातव्य पदार्थ –दया. (२) ज्ञानवान् या ज्ञातिगण ।
'इन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्'
ऋ. १.१०९.१, तै.ब्रा. ३.६.८.१,
हे इन्द्र और अग्नि ! मैं ज्ञानवान् या ज्ञातिगण को तथा एकवंश पद, समाज और कुल में उत्पन्न हुए लोगों को विविध प्रकार का उपदेश दूं ।

ज्या – (१) पृथिवी ।
'ज्मया अत्र वसवो रन्त देवाः'
ऋ. ७.३९.३, नि. १२.४३.

ज्या – (१) धनुष का गुण । गमयति इषून् (वाणों को यह चलाती है)। यह गौ की चर्बी से बनायी जाती है अतएव उसका नाम गौ हुआ । 'ज्या' तो अर्थ में 'गो' शब्द का प्रयोग 'सुपर्ण वस्ते.. भंसत्' ऋचा में हुआ है ।
(२) जि (जीतना) + अच् = जय । जय + टाप् = जया = ज्य । इससे जीता जाता है अतः यह ज्या है । (३) 'ज्या' धातु वयोहानि अर्थ में भी प्रयुक्त है । ज्या जीवन से हटने वाली है । (४) अथवा –जूङ् (गत्यर्थक) + णिच् + कि = जावि = ज्या । यह वाणों को चलाती है ।
आधुनिक अर्थ– धनुष का गुण पृथ्वी माता ।
'ज्या इयं समने पारयन्ती'
ऋ. ६.७५.३, वाज.सं. २९.४०,तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१५, का.सं.(अश्व) ६.१, नि. ९.१८.
युद्ध में धनुर्धारी को जिताने वाली यह ज्या है ।

ज्याका – (१) धनुष की डोरी ।
'ज्याका अधिधन्वसु'
ऋ. १०.१३३.१–६, अ. २०.९५.२–४, साम. २.११५१–११५३. तै.सं. १.७ .१३.५, मै.सं. ४.१२.४,१८९.९, तै.ब्रा. २.४.८.२.
(२) मौर्वी जिसे धनुष पर चढ़ाया जाता है ।

ज्याकार – धनुष की डोरी बनाने वाला ।
'कर्मणे ज्याकारम्'
वाज.सं. ३०.७, तै.ब्रा. ३.४.१.३.

ज्यापाश – धनुष की डोरी की फांस ।
'ज्यापाशैः कवचपाशैः'
अ. ११.१०.२२

ज्यायस् – बड़ा । गुरु + ईयस् = ज्यायस् ।
'यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्'
तै.आ. १०.१०.३, महा. ना. उप. १०.४, नि. २.३.

ज्यायसः देवाः – (ब.व.) श्रेष्ठ देव (२) श्रेष्ठ विद्वान् –दया. ।
'यजाम देवान्यदि शक्नवाम
माज्यायसः शसमावृक्षि देवाः'
ऋ. १.२७.१३, आप श्रौ.सू. २४.१३.३.
हे श्रेष्ठ देवो, हम कम पढे लिखे भी देवताओं की प्रार्थना करते हैं । इस प्रकार हम स्तुति करने वालों को आप यज्ञ फल से वञ्चित न करें । देवताओं के अर्भकयुवा, आशन ज्यायाः आदि भेदशक्ति के अनुपात में वर्णित है । स्वा. दयानन्द ने यहां देव का अर्थ विद्वान् ही किया है ।

ज्यायास्वन्तः – एक दूसरे से बड़े होते हुए ।
'ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट'
अ. ३.३०.५

ज्यायान् – प्रवृद्ध ।
'ज्यायां समस्य यतुनस्य केतुना'
ऋ. ५.४४.८.
प्रयत्नशील सूर्य के प्रज्ञापक कर्म से ।

ज्यावाज– धनुष की डोरी की आवाज ।
'ज्यावाजं परिणयन्त्याजौ'
ऋ. ३.५३.२४

ज्वार – सन्ताप, थकान, पीड़ा ।
'न नवज्वारो अध्वने'
ऋ. १.४२.८

जि – नुकसान करना ।
'यो जिनाति तमन्विच्छ'
अ. ६.१३४.३

जिगत्नु– (१) जीतने वाला, विजयी ।
'विश्वस्य यामन् आचिताजिगत्नु'
ऋ. ७.६५.१
(२) प्राप्त करने योग्य, (३) हमारे प्रति आने

वाली ।
'वृष्टि नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुम्'
ऋ. ९.९७.१७.

जिगर्ति – गृ (निगलना, बोलना तथा ग्रहण करना) के लट् प्र.पु. ए. का रूप । अर्थ है – निगलता है, बोलता है या ग्रहण करता है ।

जिगीषमाणः– जि (जीतना) का सनन्तरूप । अर्थ है – विजय का इच्छुक ।
'जिगीषमाणमिष आपदे गोः'
ऋ. १.१६३.७, वाज.सं. २९.१८, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व.) ६.३.

जिगीषा – जि (जीतना) का सनन्त रूप । अर्थ है – (१) विजयी करने की इच्छा, (२) जीतने योग्य राज्य सुख ।

जिगीषु – जीतने का इच्छुक ।
'ऊर्ध्वानः सन्तु कोम्या वनानिः
अहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ।'
ऋ.१.१७१.३.

जिगीवान् – विजयशील ।
'जिगीवाँ अपराजितः'
अ. ८.५.२२

जिग्यु– विजेता ।
'यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः
ऋ. १.०१.६

जिग्युष् – (१) विजयशील ।
'अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम्'
ऋ. १.१७.७
हे इन्द्र और वरुण, आप हमें विजय शील बनावें ।
'विश्वा धनानि जिग्युषः'
ऋ. ८.१४.६, ९.६५.९, अ. २०.२७.६.

जिघत्नु– हिंसा करने वाला आततायी ।
'यो नः सनुत्य उत वा जिघ्नत्नुः'
ऋ. २.३०.९

जिघत्स्व– (१) खाऊमल होना, बहुत अधिक खाते रहने की आदत ।
'एक वाद्यां जिघत्स्वम्'
ऋ. २.१४.१.
(२) भूक्खड, दूसरों को खा जाने वाला (२) हिंसक जन्तु ।
'अरायेभ्यो जिघत्सुभ्यः'
अ. ८.२.२०

जिघ्नमान् – (१) ताड़न करता हुआ, (२) परमाणुओं को सूर्यादि रुप में धनीभूत पिण्डित करता हुआ ।
'एको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः'
ऋ. ३.३०.४

जिघर्ति – घृत सूंघना (सिञ्चन करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है–सूंघता है, सिञ्चन करता है ।

जिघांसत् – हत्या का इच्छुक।
'पाहि रीषत उतवा जिघांसतः'
ऋ. १.३६.१५

जिनत् – (१) हानि पहुंचाने वाला मनुष्य
'जिनतो वज्र त्वं सीमन्तम'
अ. ६.१३४.३
(२) अत्याचार करने वाला ।
'आदत्से जिनतां वर्चः'
अ. १२.५.५६

जिन्वति– जि (प्रीति करना) के लट् प्र.पु. ए. व. का रूप ।
'भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति
दिवं जिन्वन्त्यग्नयः'
ऋ. १.१६४.५१, तै. आ. १.९.६, नि. ६.२२, ७.२३.
भूमि को बादल तृप्त करते हैं और द्युलोक को तीन अग्नि ।

जिन्वः – सर्वैः सुखैः तर्पकः (सभी सुखों से तृप्त करने वाला, (२) सभी जीवों को तृप्त करने वाला ।
'तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिम्
धियंजिन्वमवसे हूमहेवयम्'
ऋ. १.८९.५, वाज.सं. २५.१८

जिन्वित – सन्तुष्ट ।
"इन्द्रेण जिन्वितो मणिः
अ. १९.३१.७

जिर्विः – (१) जीर्ण । जृ + वि. ।
'अथ जिर्विर्विदथमावदासि'
अ. ८.१.६, १४.१.२१.
(२) जीवन देने वाला, (३) विजयशील ।
'अवासृजन्त जिव्रयोन देवाः'
ऋ. ४.१९.२

जिव्री – (द्वि.व.) वृद्ध पति और पत्नी ।

'अधा जिव्री विदथमावदाथः'
ऋ. १०.८५.२७
हे वधू , तू पति के साथ हिल मिलकर वृद्धावस्था प्राप्त कर यज्ञ में मन्त्रों का उच्चारण करो (विदथम् आवदाथः)

जिव्रिः – जृ (जीर्ण होना) से पृषोदरादिवत् सिद्ध। अर्थ – वृद्ध पुरुष ।
'आ त्वा रम्भं न जिव्रयो
ररम्भा शवसस्पते'
ऋ. ८.४५.२०, नि. ३.२१.
हे इन्द्र ! हम तेरा आश्रय उसी तरह लेते हैं जैसे वृद्ध पुरुष लकुटी या डंडे का ।

जिष् – विजय ।
'अनश्वं याभी रथमावतं जिषे'
ऋ. १.११२.१२

जिष्णु – जि (विजय करना) + ष्णुच् = जिष्णु । अर्थ (१) जेता, जयशील , जय प्राप्त करने वाला ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः । तुम दोनों (अश्विनी कुमारों में) एक जय प्राप्त करने वाले तथा सुमहान् बल के प्रेरक हुए (सुखमस्य सूरिः) ।

जिह्म – (१) कुटिल, टेढ़ा ।
'जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा
सिञ्चन् उत्सं गोतमाय तृष्णजे ।'
ऋ. १.८५.११
वासुगण प्यासे भूमि पालक किसान के लिए या प्यासे उत्तम प्रदेशों के लिए उसी दिशा से प्रजा की रक्षा करने वाले कूप के समान अगाध जल को धारण करने वाले जल प्रद मेघ को तिरछा आकाश मार्ग से उड़ा ले जाते हैं ।
(२) आहाङ् (हा) गत्यर्थकधातु है । हा + मन् = जिह्म (सन्वत् भाव और आ का लोप)। अर्थ – कुटिल चेता, खोटा पुरुष ।
'जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे'
ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.८, २२७.४, तै.ब्रा. २.८.७.४, आप. श्रौ.सू. १६.७.४, नि. ८.१५.
यह अग्नि दूसरे का आश्रय न लेने वाला (स्वयशाः) अपने स्थान में (उपस्थे) कुटिल इंधनों से होकर सीधे निकलता है । (३) कपट, (४) गुप्त ।

जिह्मबार – (१) गुप्त द्वार वाला, (२) दुष्प्राप्य ।
'जिह्मबारमपोर्णुत'
ऋ. ८.४०.५
(३) तिरछा जल वाला मेघ (४) रथ जिसका बार टेढ़ा हो–दया. ।

जिह्मशी – यः जिह्मः शेते (टेढ मेढ़ सोना या सोने वाला)

जिहानः – जाता हुआ ।
'अत्योन वाजी सुधुरो जिहानः'
ऋ. ३.३८.१

जिह्मायन्त्यः– (१) प्रतिकूल चलती हुई, (२) कपटपूर्ण आचरण करती हुई स्त्रियाँ ।
'नेजिह्मायन्त्यो नरके पताम'
ऋ. खि. १०.१०६.१, नि. १.११.
नहीं तो पति से कपट का आचरण करती हुई हम स्त्रियाँ नरक में गिर जायेंगी ।

जिह्मायन्ती – जिह्म का अर्थ है कपट । जिह्मायन्ती का अर्थ है कपट का आचरण करती हुई ।

जिह्वा – (१) हु (हवन करना) को यङन्त कर तथा अच् कर 'जोहुव' बनता है । तत्पश्चात् टाप् ' प्रत्यय कर जोहुवा' बनता है । जोहुवा से ही जिह्वा शब्द बना है । अहरहः हूयतेऽस्मिन् अन्नम् (प्रतिदिन इस में अन्न की आहुति दी जाती है) (२) आहूयति अनेन (इससे पुकारते हैं) । इस अर्थ में भी जिह्वा भी व्युत्पत्ति की गई है । 'ह्वय' धातु पुकारना अर्थ में है । (३) यह रसों का ग्रहणकरता है । जुहोत्यादिगणी हु + वन् जोहुवा = जिह्वा । अर्थ –(१) जिह्वा, (२) अग्नि की ज्वाला ।
'अध जिह्वा पापतीति प्रवृष्णः'
ऋ. ६.६.५.
और प्रवर्षिता अग्नि की ज्वाला (प्रवृष्णः जिह्वा) । लड़कियों पर बारबार गिरती है । (पापतीति) ।

जहीहानः – अनादर करता हुआ ।
'मानो वधाय हत्नवे
जिहीडानस्य रीरधः'
ऋ. १.२५.२.

जहीडिरे – निरादर करते हैं । 'हडे' (लज्जित होना के उत्तम पुरुष ब.व. का रूप) ।
'यत्सस्वर्ता जिहीडिरे यदाविः'

ऋ. ७.५८.५.
जो छिपा (सस्वर्ता और जो प्रकट (यत् आपिः) पाप से हम लज्जित् होते हैं (जिहीडरे) ।

जि – गमनार्थक धातु ।

जीत – दुःखित ।
'यानि जीतस्य वावृतुः'
अ. ५.१९.१३.

जीमूत – विजयशील पुरुष ।
'जीमूतान् हृदयौपशेन'
वाज.सं. २५.८.

जीरः – (१) वेगवान्, (२) जीव (३) जु (गत्यर्थक) या जृ' धातु से सम्पन्न । अर्थ – विद्वान् (४) नित्य सब को संहार करने वाला ।
'जीरं दूतममर्त्यम्'
ऋ. १.४४.११, तै.ब्रा. २.७.१२.६.
(५) प्राण (६) अन्न ।
'यः सुत्रामाजीरदानुः सुदानुः'
ऋ. १८.३.६१

जीरदानवः – (१) जीवन देनेवाले वायुगण (२) अन्यों को जीवन देने वाले सबके प्राणोपकारक विद्वान् पुरुष (३) स्वयं जीवन धारण करने वाले जीवगण ।
'मित्राय वा सद मा जीरदानवः'
ऋ. २.३४.४

जीरदानुः – जीवन ।
'विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्'
ऋ. १.१६५.१५, १६६.१५, १६७.११, १६८.१०, १६९.८, १७१.६, १७३.१३, १७४.१०, १७५.६, १७६.६, १७७.५, १७८.५, १८०.१०, १८१.९, १८२.८ , १८३.६. १८४.६, १८५.११, १८६.११, १८९.८. १९०.८ वाज.सं. ३४.४८. मै.सं. ४.११.३.१७०.८, ४.१४.७, २२४.१४. ४.१४.१३:२७३.३ का.सं. ९.१८, तै.ब्रा. २.८.४.८.
(२) सबको प्राण और अन्न देने वाला, (३) प्राण धारी जीव (४) चेतन शील ।
'स सुन्वते मघवाजीरदानवे'
ऋ. १०.४३.८, अ. २०.१७.८

जीरदानू – (द्वि.व.) । मित्रावरुण (२) जलप्रद मेघ और वायु, (३) संसार को वेग जीवन और प्राण देने वाले ।
'अव दिव इन्वतं नीरदानू'
ऋ. ७.६४.२

जीरा – (१) वेगवती, (२) बहुत वेगवाली ।
'उवासोषा उच्छाञ्चनु
देवी जीरा रथानाम्'
ऋ. १.४८.३
जब उषा व्यापती है तब वह प्रकाश वाली होकर सब पदार्थों को प्रकट करती है । वही सब रथों या देहों में वेग देने वाली है (रथानां जीरा देवी) ।

जीराध्वरः– जीवनधारी प्राणियों का नाश न करने वाला ।
'जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये'
ऋ. १०.३६.६

जीराश्व – (१) अति वेगवान् अश्व, (२) जीवरूप अश्व वाला शरीर ।
'जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे'
ऋ. १.११९.१
'उतनः सुद्योत्मा जीराश्वः'
ऋ. १.१४१.१२

जीरीः – (१) जीर्ण हो जाने वाला शरीर मनुष्य ।
'रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि'
ऋ. ३.५१.५
(२) वेगवान् सूर्य महान्, लोक और ब्रह्माण्ड ।
(३) वेगवाना, अश्व ।
'प्रभीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक्'
ऋ. २.१७.३

जीरु – (१) उपदेश प्रद, (२) अज्ञान का नाशक ।
'अव्ये जीरावधिष्वणि'
ऋ. ९.६६.९

जीव – जीव (जीना) + अच् = जीव । अर्थ–(१) जीव, (२) प्राण ।
'जीवान्नो अभिधेतन
आदित्यासः पुराहथात्
कद्धस्थहवनश्रुतः'
ऋ. ८.६७.५, नि. ६.२७
(३) (क्रि) जीव् धातु के म.पु. ए.व. लोट का रूप ।
'अङ्गादङ्गात् संभवसिहृदयात् अधिजायसे
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीवशरदःशतम्'
श.ब्रा. १४.९.४.८, बृ.आ. उप. ६.४.८, कौ.ब्रा. उप. २.११. आश्व गृ.सू.१.१५.९, साम. मं.ब्रा.

१.५.१६,१७,गो.गृ.सू. २.८.२१, पा.गृ.सू. १.१८.२, आप.मं.पा. २.११.३३, हि.गृ.सू. २.३. २, नि. ३.४, महाभारत. १.७४.६३,
पिता पुत्र का सिर संघता हुआ कहता है - हे पुत्र, तू मेरे अंग अंग से निकला है और हृदय से उत्पन्न होता है । अतः तू मेरा आत्मा है । यद्यपि तू पुत्र नाम से विख्यात है । वह आत्मारूप मेरा पुत्र तू शतायु हो ।

जीवगृभ् - जीव + गृह + क्वि - जीवगृभ् । अर्थ है - (१) जीवग्राहः, हन्ता, जीवन लेने वाला, मारने वाला ।
'आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति
पुराजीवगृभो यथा
ऋ. १०.९७.११, वाज.सं. १२.८५, तै.सं. ४.२.६.२, मै.सं. २.७. १३, ९३.१८, का.सं. १६.१३, नि. ३.१५.
यक्ष्मा का आत्मा दवा देने के पूर्व हो उसी प्रकार नष्ट होता है जैसे हत्यारे के मारने के पहले ही जीव मर गया । (२) जीवों को पकड़ने वाला प्राण घाती ।

जीवत् - जीवन युक्त जीव ।
'जीवतो जीवतोऽयनम्'
अ. ५.३०.७

जीवधन्य - जीव से या जीवन के श्रेष्ठ धन से सम्पन्न ।
'इमं जीवं जीवधन्याः समेत्य'
अ. १२.३.४

जीवधन्या - (१) या जीवेषु धन्याः धनाय हिताः अप जलानि (जीवों के लिए धनु उत्पन्न करने वाली जलधाराएं -दया. (२) जीवों को धन्य अर्थात् तृप्त करने वाली जलधाराएं ।
'सृजामरुत्वतीरव
जीवधन्या इमा अपः'
ऋ.१.८०.४
(३) जीवित पुत्र, पति, पशु, आदि जीवों को धन समझने वाली या उनका पालन पोषण करने वाली स्त्री ।
'एमा अग्मन् रेवतीर्जवधन्याः'
ऋ. १०.३०.१४, ऐ.ब्रा. २.२०.२६, कौ.ब्रा. १२.२., आश्व.श्रौ. सू. ५.१.१९.
(४) जीव को दूध से धन्य अर्थात् तृप्त करने वली गौ ।
'पीवस्तवीर्जीवधन्याः पिबन्तु
अवसाय पद्वते रुद्रमृड'
ऋ. १०.१६९.१, तै.सं. ७.४.१७.१, का.स. (अश्व.) ४.६.
जीव को तृप्ति दायक एवं प्राण तथा पुष्टि वर्धक दूध देने वाली गौएं शुद्ध जल पीवें । हे रुद्र ! इस चरण युक्त पथ में चलकर चरने वाली गौ की हिंसा न करें ।
(५) (ब.व.पु.) जीवों को धन्य करने वाले पुरुष
'ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः'
अ. १२.३.२५

जीवन - जीव + ल्युट् = जीवन । जीवयति इति जीवनम (जो जिलाता है वह जीवन है) । अर्थ (१) इक्षु रस (ईख का रस) (२) शाक जाति-साग का एक प्रकार, (३) जल, (४) जीना प्रचलित अर्थ - जीवनप्रद, जीता हुआ, वायु, पुत्र, प्राण (Vital energy), जल, जीविका, एक दिन के पुराने दूध का मक्खन, मन्त्र
'विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे'
ऋ. १.४८.१०

जीवन्त - कुष्ठ नामक ओषधि की पालक शक्ति ।
'जीवन्तो नाम ते पिता'
अ. १९.३९.३

जीवन्ती - जीवन्ती नामक ओषधि ।
'जीवन्तीमोषधीमहम्'
अ. ८.२.६, ७.६.

जीवपीतसर्ग - (१) जीवैः सह पीतः सर्गो येन विद्याबल -दया. (२) जीवों को जल पिलाने वाला-सूर्य (३) जीवितपुरुषों और प्राणियों को शीतलजलों के समान नाना सृष्टि के सुखों को पिलाने वाला- राजा, (४) संसार के कर्मफलों को भोग करने वाला -परमेश्वर (५) सर्ग अर्थात् कर्मफल का भोक्ता जीव ।
'सयो वृषा नरां न रोदस्योः
श्रवोभि रस्ति जीवपीतसर्गः'
ऋ. १.१४९.२

जीवपुत्रावत् - जीवितपुत्रों वाला ।
'तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवन्तौ जीवपुत्रौ
अ. १२.३.३५

जीवपुराः – जीव के निवासयोग्य देह के अंग
'अधिजीवपुरा इहि'
अ. ५.३०.६

जीवभोजनः – (१) अपनी आजीविका का भोग करने वाला ।
'यः स्त्रीणां जीवभोजनः'
वाज.सं. २३.२१, का.सं. (अश्व.) ४.८, शां.श्रौ.सू. १६.३.३६.
(२) जीवों के लिए भोजन के तुल्य पुष्टि कारक प्राणाधार, (३) आत्मा का आभ्यन्तर मानस भोजन, (४) समस्त भोग प्रद ज्ञानाञ्जन या अञ्जन ।
'अथो असि जीवभोजनम्'
अ. ४.९.३

जीवयाज– (१) जीवा याजयति, धर्मं च संगमयति (जीवों से यज्ञ करने वाला) धर्म में प्रेरित कराने वाला), (२) प्राण धारण करने के लिए आजन्म यज्ञ ।
'जीवयाजं यजते सोपमादिवः'
ऋ. १.३१.१५
जो प्राण धारण करने के निमित्त आजीवन यज्ञ करता है वह सूर्य के समान सुखप्रद जाना जाता है ।

जीवपुर – (१) प्राणधारी पुर –देह ।
'अधिजीवपुरा अगन्'
अ. २.९.३

जीवल – जीवनतत्व को प्राप्त करा देने वाला
'जीवला स्थ जी जीव्यासंसर्वमायुर्जीव्यासम्'
अ. १९.६९.४

जीवला – (१) जीवनप्रद, प्राणप्रद ओषधि ।
'जीवलां न धारिषाम् जीवन्तीम् ओषधीमहम्'
अ. ८.२.६, ७.६.
(२) सबको जीवन प्रदान करने वाली स्त्री ।
'अच्छावदामि जीवलाम्'
अ. ६.५९.३
(३) प्राण धारण करने वाली शक्ति (४) कुष्ट औषधि की माता अर्थात् रचना करने वाली शक्ति ।
'जीवला नाम ते माता'
अ. १९.३९.३
(५) जीवन को प्राप्त कराने वाला जल ।
'ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः'
अ. १२.३.२५
(६) आयुष्प्रदा ओषधि

जीवलोक – जीवित प्राणिलोक ।
ऋ. १०.१८.८, अ. १८.३.२, तै.आ. ६.१.३, आश्व.गृ.सू. ४.२.१८.

जीववर्हि– जीव की शक्तियों को बढ़ाने वाली ब्रह्मोपासनाम यज्ञ ।
'जीवबर्हिर्मदिन्तमः'
अ. ११.७.७

जीवस् – जीवन ।
'अवाधमानि जीवसे'
ऋ. १.२५.२१, का.सं. २१.१३, तै.ब्रा. २.४.२.६, मा.श्रौ.सू. ३.१.२९.
निकृष्ट कोटि के प्राणों को भी जीवन को सुख प्रद करने के लिए नीच योनियों में भोग भुगाकर ।
'अस्मे शतं शरदोजीवसेधाः'
ऋ.३.३६.१०, पा.गृ.सू. १.१.८.५.
हमें जीने के लिए सौ वर्ष दे । पुनः–
'देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे'
ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२, २१७.९, नि. १२.३९.
देवता हमारे चिरजीवन के लिए आयु बढ़ावें ।

जीवसे – जीवितुम् (जीवों के लिए) तुम् प्रत्यय के अर्थ में 'असे' प्रत्यय का प्रयोग ।

जीवा – प्राण के संसर्ग से चेतनायुक्त इन्द्रियवृत्ति
'जीवाभिर्भुनजामहै'
ऋ. १०.१९.६

जीवाति – जीवतु (जीवे) । लोट् के अर्थ में लट् का प्रयोग ।
'पुनः पत्नी मग्निरदाद
आयुषा सहवर्चसा
दीर्घायुरस्या यः पतिः
जीवन्ति शरदः शतम्'
ऋ. १०.८५, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४.९,१४,
विवाह में विनियोग । जो इसका पति है वह दीर्घायु हो सौ वर्ष जिये इस प्रकार अग्नि दान में दी हुई कन्या को पुनः आयु और तेज से युक्त कर देती है ।

जीवातुः – जीव + आतु = जीवातु । अर्थ – (१) जीवन, (२) जीविका जीवन का हेतु जीवनाधार
'धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातु मक्षिताम्'
अ. ७.१७.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.१४.१६, शां.श्रौ.सू. ९.२८.३, शा.गृ.सू. १.२२.७, नि. ११.११.
संस्कृत में इस शब्द का पुल्लिग में प्रयोग है । अर्थ –भोजन, अस्तित्व, पुनरुज्जीवन, मुर्दे को जिलाने वाली दवा ।
'साते जीवातु रुत तस्य विद्धि'
ऋ. १०.२७.१४
हे अन्तरात्मन् , आदित्यात्मिका देवता तेरे जीवन का हेतु है । अतः उसके उपकारों को जान (उततस्य विद्धि) ।

जीवा युवति – जीवित युवती स्त्री ।
'अपश्यं युवतिं नीयमानां
जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्'
अ. १८.३.३

जीवितयोपन – (१) जीवन को संदेह में डालने वाला रोग ।
'कण्वान् जीवितयोपनान्'
अ. २.२५.४,५.
(२) जीवन का नाशकारी ।
(३) क्रव्याद् अग्नि, मुर्दा जलाने वाली आग ।
(४) जान लेने वाला दुष्ट पुरुष ।
'यो अग्निर्जीवितयोपनः'
अ. १२.२.१६.

जु – लाना ।
'गृत्सं राये कवितरो जुनाति'
ऋ. ७.८६.७

जुगुर्वणी – (द्वि.व.) एक वचन में में रूप हैं– जुगुर्वणि । अर्थ (१) निरन्तर उद्यमशील, (२) अध्ययनशील होता का विशेषण ।
'मन्द्रजिह्वर जुगुर्वणी
होतारा दैव्या कवी'
ऋ. १.१४२.८

जुजुरुष – वृद्धपुरुष ।
'जुजुरुषो नासत्योत वव्रि
प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।'
ऋ. १.११६.१०
युद्ध में डर कर भाग जाने वाले भीरु से जैसे सेनापति कवच छुड़ा लेता है (च्यवानात् द्रपिम् इव), उसी प्रकार हे सत्य नियमों के व्यवस्थापक राष्ट्र और दो नायक विद्वान् स्त्री पुरुषो, आप दोनों आयु समाप्त करने वाले वृद्ध, संसार भोगते हुए मरणोन्मुख पुरुष से विभाग करने योग्य धन सम्पत्ति को मरने के पूर्व ही छुड़ा कर (जुजुरुषः) अगले आने वाले सन्तान को प्रदान करो ।
पुनः–
'प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः'
ऋ. ५.७४.५

जुजुर्वान् – (१) रोगापन्न, (२) जीर्ण ।
'जुजुर्वान् दशमे युगे'
ऋ. १.१५८.६.
(३) जॄ (जीर्ण होना) से यङन्त में वतुप् प्रत्यय । अर्थ है – बार बार जीर्ण होता हुआ । अग्नि का विशेषण ।
'जुजुर्वां यो मुहुरायुवाभूत्'
ऋ. २.४.५
जो अग्नि बार बार जीर्ण होता हुआ भी तरुण सा हो जाता है । अथवा जो विद्वान् जीर्णावस्था को प्राप्त होता हुआ भी युवा की तरह पुरुषार्थी होता है । –दया.

जुजुषाणा – (द्वि.व.) (१) स्वीकार करते हुए (२) स्वाद लेते हुए, अश्वि द्वय का विशेषण ।

जुजुषाणासः – (१) ए.व. में जुजुषाण । जोषयमाणाः देवैः से व्यमाना (आस्वाद लेते हुए, देवों द्वारा सेव्यमान या मद उत्पन्न करने वाले (२) प्रभावोत्पादक सोम–
(३) सेवित हुआ गुरुजन ।
'प्रवोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुः
अभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः'
ऋ. ४.३४.३, नि. ६.१६.

जुजुष्वान् – प्रेम से सेवन करने वाला ।
'सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्'
ऋ. २.२०.५

जुजोषत् – प्रेम पूर्वक सेवन किया जाता हुआ ।
'भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते'
ऋ. ९.१०३.१, साम. १.५७.३.

जुनन्ति – (१) बरसते हैं (२) जानते है–दया. । जुन्

जुन् – (१) प्राप्त करना । Join शब्द से इसकी

समानता विचारणीय है (२) बरसाना-यास्क (३) जानना -दया.
'सनेम्यध्वं मरुतो जुनन्ति'
ऋ. १.१६९.३

जुनाः - प्रेरित करता है ।
'अवा वाजेषु यं जुनाः'
ऋ. १.२७.७, साम. २.७६५, वाज.सं. ६.२९, तै.सं. १.३.१३.२, मै .सं. १.३.१, ३०.१, का.सं. ३.९,श.ब्रा. ३.९३.३.
जिस मनुष्य को तू संन्यासों के बीच में प्रेरित करता है ।

जुम्बक - (१) सब शत्रुओं को नाश करने में समर्थ, (२) सबसे अधिक वेगवान् बलवान् पुरुष, (३) रोगनाशन में समर्थ, (४) वेगवान् बलकारी अपान, (५) वरुण ।
'वरुणोवै जुम्बकः'
श.ब्रा. १३.३.६.५
'जुम्बकाय स्वाहा'
वाज.सं. २५.९, मै.सं. ३.१५.८, १८०.३, का.सं. (अश्व.) ५.७,श.ब्रा. १३.३.६.५, तै.ब्रा. ३.९.१५.३, का.श्रौ.सू. २०.८.१६, आप.श्रौ.सू. २०.२२.६, मा.श्रौ.सू. ९.२.५.

जुजुर्वान् - गृष्, + क्वसु = जुर्जुवस् । वृद्धावस्था को प्राप्त जीर्ण ।
'जुजुर्वां इव विश्पतिः'
ऋ. १.१.३७.८
'जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत्'
ऋ. २.४.५

जुरत् - (१) वृद्ध, मान्य, (२) देह ।
'उतत्यद् वां जुरते अश्विना भूत्'
ऋ. ७.६८.६.
'त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः'
ऋ. २.३४.१०.

जुषमाणः - प्रेम पूर्वक सेवन करता हुआ ।
'पिबन्तु शानो जुषमाणो अन्धः'
ऋ. ४.२३.१

जुष्टः- (१) प्रिय । जुष् + क्त, (२) आसेवित (३) प्रजाप्रिय (राजा) दया.
'जुष्टा दमूना अतिथिर्दुरोणे'
ऋ. ५.४.५, अ. ७.७३, ९. मै.सं. ४.११.१, १५९.३, का.सं. २.१५ , तै.ब्रा. २.४.१.१, नि. ४.५.

जुष्टतरा - प्रियतरा ।

जुष्ट्वी - प्रेमयुक्त, (२) ऐश्वर्यों का सेवन करती हुई ।
'जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य'
ऋ. १.११८.५

जुषाणः -प्रेम से सेवन करता हुआ ।
'जुषाणो हस्त्यमभि वानशे वः'
ऋ. २.१४.९

जुषाणाः- (ब.व.) वसुओं का विशेषण ।
'य आजग्मेदं सवनं जुषाणाः'
वाज. सं. ८.१८
जो देवता इस यज्ञ में प्रेम के साथ आवें ।

जुष्टिः - (१) सेवन करने योग्य वाणी, प्रीति उत्पादक वाणी ।
'जुष्टा भवन्तु जुष्टयः'
ऋ. १.१०.१२, वाज.सं. ५.२९,तै.सं. १.३.१.२, मै.सं. १.२.११, २१.५. का.सं. २.१२, श.ब्रा. ३.६.१.२४, आप. मं.पा. १.२.६.
सेवन करने योग्य वाणियां तुझे अत्यन्त प्रिय लगे (जुष्टाः भवन्तु) (२) प्रेम, कृपा ।
'यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते'
अ. ४.२४.५

जुह्वा - हवन करने का पात्र ।
'अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या'
ऋ. २.१०.६

जुह्वानः - (१) दान देने वाला, (२) हवन करने वाला ।
'जुह्वानाय प्रचेतसे'
ऋ. ८.२७.२१

जुह्वास्य - जुहू + आस्य = जुह्वास्य । अर्थ -(१) ज्वाला रुपी मुख वाला-अग्नि (२) उपदेशप्रदवाणी को मुख से धारण करने वाला ।
'हव्यवाड्जुह्वास्यः'
ऋ. १.१२.६, साम. २.१९४, तै.सं. १.४.४६.३, ३.५.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४५.६, का.सं. १५.१२, ३४.१९. ऐ.ब्रा. १.१६.२८,श.ब्रा. १२.४.३.५, तै.ब्रा. २.७.१२.३, कौ.सू. १०८.२.
ग्रहण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाला ज्ञानी पुरुष तथा उपदेश मयी वाणी को मुख में धारण करने वाला या हव्य वहन करने वाला

नया ज्वाला रुपी मुखवाला अग्नि ।

जुहुरः – (१) कुटिल बर्ताव करने वाला (२) विनाश करने वाला ।

'स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः'

ऋ. ७.४.४

जुहुरन्त – बलात्कार करें ।

'मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवाः
मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः'

ऋ. ३.५५.२

जुहुराणः – (१) आमन्त्रित ।

'मित्रश्चिद्धिष्मा जुहुराणो देवान्'

ऋ. १०.१२.५, अ. १८.१.३३

(२) वक्र गति से चलता हुआ

'आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति'

ऋ. ४.१७.१४

जुहुरे– जुह्विरे (आह्वयन्ति) । पुकारते हैं, आह्वान करते हैं । ह्वय, धातु का वर्तमान अर्थ में लिट् के प्र.पु.ब.व. का रूप । झ प्रत्यय से होने वाले इर् का रे हुआ है । दुर्ग ने इसे जुह्वति का व्यत्यय माना है । यास्क ने 'जुह्विरे' का विचेतयमाना (विशेष रूप से चिन्तन करते हुए) अर्थ किया है । आर्यसमाजी पण्डितों ने जुहरे का अर्थ त्याग करते हुए किया है ।

'जुहुरे विचितयन्तः
अनिमिषं नृम्णं पान्ति
आदृढांपुरं विविशुः'

ऋ. ५.१९.२, नि. ४.१९

हे अग्नि, जो तुझे प्रदीप्त करते हुए (विचितयन्तः) तेरे प्रभाव को जानते हुए सदा (अनिमिषम्) तुझे पुकारते हैं (जुहुरे) तथा तेरे बल की हवि और स्तोत्रों से रक्षा करते हैं वे दृढ़ पुर में प्रवेश पाते हैं (दृढ़पुरं आविविशुः) अर्थात् ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं या इनकी ऐहिक और पारलौकिक स्थिति दृढ़ होती है । अन्य अर्थ – जो मनुष्य अग्रणी परमेश्वर का विशेष रूप से चिन्तन करते हुए आत्म त्याग करते हैं और जो प्रतिक्षण योगबल की रक्षा करते हैं (अनिमिषं नृम्णं पान्ति) वे ब्रह्म पुरी में प्रवेश करते हैं ।

जुहू – (१) जुहू नामक पात्र ।

'सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि'

ऋ. २.२७.१, वाज.सं. ३४.५४, का.सं. ११.१२, नि. १२.३६

(२) ज्वाला, (३) उपदेशप्रद वाणी ।

'अग्निनाग्निः समिध्यते'
कविर्गृहपतिर्युवा
'हव्यवाड् जुह्वास्यः'

ऋ. १.१२.६, साम. २.१९४,तै.सं. १.४.४६.३, ३.५.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४५.६, का.सं. १५.१२, ३४.१९, ऐ.ब्रा. १.१६.२८, श.ब्रा. १२.४.३.५. तै.ब्रा. २.७.१२.३.

(४) शुक्र (वीर्य) ग्रहण करने वाला मातृ गर्भस्थ शुक्रधारक नाड़ी ।

'निंसानं जुह्वो मुखे'

ऋ. ८.४३.१०, का.सं. ७.१२.

(५) यज्ञ में तीन स्रुवा होते हैं–जुहू, उपभृत तथा ध्रुवाः तीनों ब्रह्माण्ड में द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी है । और राज्य में राजा, भृत्य और प्रजा है ।

'घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना'

वाज.सं. २.६, वाज.सं. (का.) २.१.८,श.ब्रा. १.३.४.१४.

जुबाध् – घुटने मोड़ कर बैठने वाला ।

'उपजुबाधः नमसा सदेम'

ऋ. ६.१.६

जू – (१) वेगवान् ।

'आत्वा जुवो रारहाणा अभिप्रयः'

ऋ. १.१३४.१

वेगवान् शीघ्र गमनशील (जुवः रारहाणाः) अश्व सोम या ऐश्वर्य को सबसे पूर्व प्राप्त करने के लिए (सोमस्य पूर्वपीतये) वीर पुरुष को प्राप्तत्य युद्ध तथा विजेय देश में प्राप्त कराते हैं । (२) सबके सेवन योग्य वाणी । जूरिव्येतत् ह वा अस्याः वाचः एकं नाम । मनसा वा इयं वाग् धृता । मनो वा इदं पुरस्तात् वाचः इत्थं वद, मा एतद्वादीः, इत्य लग्ल मिव वै वाग वदेद् यन्मनो न स्यात् ।

श. ब्रा. ३.२.४.११

'जू' यह वाणी का नाम है । मन इस वाणी को वश में रखता है । वाणी बोलने के पूर्व मन विचार करता है । ऐसा बोल मत बोल । यदि मन न हो तो वाणी गड़वड़ बोल जाती है ।

'जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे'
वाज.सं. ४.१७, तै.सं. १.२.४.१, ६.१.७.२, मै.सं. १.२.४, १३.१,३.७.५, ८१.८, का.सं. २.५,२४.३, श.ब्रा. ३.२.४.११.

जूः – जीर्णावस्थाप्राप्त ।
'इन्द्रं सौमै रोर्णुत जूनवस्त्रैः'
ऋ. २.१४.३, मै.सं. ४.१४.५,२२२.८

जूजुवान् – तेजी से जाने वाला रथ ।
'पूर्वं करदुं परं जूजुवांसम्'
ऋ. ५.३१.११

जूति – जू (गत्यर्थक) + क्तिन् = जूति । अर्थ – (१) ज्ञान, जू धातु गमनार्थक होने से ज्ञानार्थकभी है (२) गति, (३) ज्ञाति (४) सेवनीय गुण ।
'प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे'
ऋ. ३.३.८.
(५) सर्वत्र प्रसृतं ज्ञानम् (प्रसृतज्ञान) (६) मति, मनीषा, (७) स्मृति, संकल्प क्रतु असु, काम और वश ।
'घृतस्य जूतिः समना सदेव'
(८) वेग
'तं समाप्नोति जूतिभिः'
अ. १३.२.१५.

जूतिमान् – जू + क्तिन् + मतुप् = जूतिमत । प्रथमा एक वचन में रूप जूतिमान् । अर्थ– वेगवान्, उत्साही (२) ज्ञानी, (३) सेवनीय गुणों वाला ।
'त्विषीमानस्मि जूतिमान्'
अ. १२१.५८

जूर्णः– (१) ज्ञान और वयस में वृद्ध उपदेष्टा ।
'जूर्णो वाम् अक्षुरंहसो यजत्रा'
ऋ. १.१८०.५.

जूर्णा युगाः – (१) अतीत वर्षों की गाथाएं (२) गुजरे हुए अतीत काल के जोड़े, स्त्री पुरुष ।
'युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः'
ऋ. १.१८४.३

जूर्णा – गन्तुमशक्या, वृद्धा, ।

जूर्णि– (१) शक्ति, (२) आयुधविशेष, (३) सेना, जव (गति), द्रव. अथवा द्रु (हिंसार्थक) + क्तिन् = जूर्णि, पृषोदरादिवत् सिद्ध । लोक में जर + क्तिन् = जूति शब्द बनता है ।

'प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती
परिवर्गं इन्द्रो दुर्मतीनाम् ।
दरीमन् दुर्मतीनाम्'
स्वयं सा रिषयध्यै यान उपेषे अत्रैः
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्रा जूर्णिर्न वक्षति'
ऋ. १.१२९.८

हे स्तोताओ । मैं आप से कहता हूँ कि आप मेरे निमित्त (अस्मे) अपने यशों से युक्त रक्षा परायण इन्द्र की स्तुतियां करें (स्वयशोभिः ऊति प्र) । स्तुत होकर इन्द्र दुर्मति शत्रुओं को संग्राम में (दुर्मतीनां परिवर्गे) मारने वाले होंगे । तब पापियों के हनन शील इन्द्र द्वारा मेरी रक्षा होने पर (दुर्मतीनां दुरीमन्) भक्षकों या राक्षसों के द्वारा (अत्रैः) जो शक्ति (या जूर्णिः) हमें हिंसित करने (नः रिषध्यै) या हमें पकड़ने के लिएं (उपेषे) चलायी जाय (क्षिप्रा) वह स्वयं नष्ट हो जाय (सा स्वयम् हता असत् ईम्) और हमारे निकट न आने पावे (न वक्षति) । इन की महिमा से वे बीच में ही नष्ट हो जाएं ।

स्वा. दयानन्द का अर्थ –हे प्रजाजनो, तुम्हारी और हमारी रक्षा के लिए (वः अस्मे ऊर्ति) राजा दुर्जनों के परिवर्जन में (दुर्मतीनां परिवर्गे) अपने सामर्थ्य और प्रताप से सामर्थ्यवान् हों (स्वयशोभिः प्रप्र) । दुर्मतियों के विदारक ऐसे राजा के होने पर (दुर्मतीनां दरीमन्) भक्षक जनों का आततायियों ने (या अत्रैः) हम पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी है (नः उपेषे जूर्णिः क्षिप्रा) हमारे नाश के लिए प्रवृत्त वह सेना राजा के प्रताप से स्वंय ही पराभूत हो (स्वयं हता ईम् असत्) वह सेना हम तक न पहुंचे । (४) ज्वर आदि कष्टों से पीड़ित (५) स्तुतिकर्ता ।

'जूर्णिर्होत ऋषूणाम्'
ऋ. १.१२७.१०

ज्वर आदि कष्टों से पीड़ित पुरुष विद्वान् वैद्यों के समक्ष अपनी बात कहता है ।

अथवा

स्तुतिकर्त्ता उपासक या विद्या प्रदाता आचार्य भी उत्तम उपदेशक होकर दर्शनीय, प्राप्त विद्य या जिज्ञासु विद्यार्थी जनों के आगे ज्ञानोपदेश करता है ।

जूर्णिनी घृताची – (१) वेग से बीतने वाली रात्रि, (२) वृद्ध पुरुष के स्नेह से युक्त ।
'प्रतिरेति जूर्णिनीघृताची'
ऋ. ६.६३.४

जूर्णि– (१) आयु का नाश करने वाली नागिनी की वृत्ति से अपने और दूसरे के बल नाश करने वाली दुष्ट स्त्री, (२) चिन्ता ।
'जुर्णी पुनर्वो यन्तु यातवः'
अ. २.२४.५

जूर्यः – (१) वृद्ध, (२) हितोपदेष्टा ।
'रण्वः पुरीव जूर्यः'
ऋ. ६.२.७

जूर्व– भून डालना ।
'यो रक्षांसि निजूर्वति'
ऋ. १०.१८७.३, अ. ६.३४.२

जूर्वन् – नाश करता हुआ ।
'पुरु विश्वानि जूर्वन्'
ऋ. १.१९१.९

जत्व– (१) जेतव्य (जीतने योग्य) जि + त्वन् (तव्य के अर्थ में) = जेत्व ।
'वनस्य ते जेत्वानि'

जेता – जीतने वाला । जि + तृच्= जेतृ ।
'जेता शत्रून् विचर्षणिः'
ऋ. २.४१.१२, अ. २०.२०.७, ५७.१०, तै.ब्रा. २.५.३.२.
इन्द्र शत्रुओं का विजेता तथा सर्वद्रष्टा है ।

जेन्यः – विजय हेतु ।
'गृहे गृहे श्येतो जेन्योभूत्'
ऋ. १.७१.४
अग्नि गृह में प्राप्त होता तथा विजय का हेतु बनता है ।

जेन्यावसू – विजय करने योग्य धनों को प्राप्त करने वाले ।
'देवेभिर्जेन्यावसू'
ऋ. ८.३८.७, ऐ.ब्रा. ६.१०.६, गौ.ब्रा. २.२.२०, ३.१५.

जेमना – जयशीलौ (जिनका स्वभाव जयशील हो) । जि + मनिन् + औ = जेमनौ ==जेमना । यह रूप छान्दस है । अश्विनीद्वय का विशेषण । अर्थ–जयशील ।
'उदन्यजेव जेमनामदेरू'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो । तुम दोनों चन्द्रमा के समान जयशील और मदमत्त हो ।

जेमा – विजय, ऐश्वर्य ।
'जेमा च मे महिमा च मे'
वाज.सं. १८.४, तै.सं. ४.७.२.१, मै.सं. २.११.२, १४१.२. का.सं. १८.७.

जेषे – जि + से = जेषे । अर्थ विजय के लिए ।
'अपां तोकस्य तनयस्य जेषे'
ऋ .१.१००.११, ६.४४.१८.
हम आप्तजनों तथा हमारे पुत्रों और पौत्रों के विजय के लिए ।

जेह – (१) प्रयत्न करना । (२) जेहन करना, अभ्यास करना, रगर करना
'ये तातृषुः देवत्रा जेहमानाः'
ऋ. १०.१५.९, अ. १८.३.४७, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१६, तै.ब्रा. २.६.१६.२, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२४.

जेहमान – (१) प्रयत्नमान, प्रयत्नशील । जेह (प्रयत्न करना) + शानच् = जेहमान् ।
'अरेणुभिः जेहमानं पतत्रि'
ऋ. १.१६३.६, वाज.सं. २९.१७, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व.) ६.३.
(२) प्रयत्न साधक, प्रयत्नों से साधना करने वाला (३) धारणा देने वाला, (४) अन्दाज लगाने वाला, (५) जेहन देने वाला ।
'एकपात्रं ऋभवो जेहमानम्'
ऋ. १.११०.५
शिल्पीजन नमूने के समान दूसरा पात्र बनाने की इच्छा करते हुए एक प्रयत्नसाधक बर्तन को सीके के बने पैमाने से मान लेते हैं । (६) जाता हुआ, (७) प्राप्त करता हुआ ।
'ये तातृषुर्देवत्रा जेहमानाः'
ऋ. १०.१५.९, अ. १८.३.४७, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१६, तै.ब्रा. २.६.१६.२, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२४.
देवों के प्रति जाते हुए (देवत्रां जेहमानाः) अर्थात् क्रमशः देवत्व प्राप्त करते हुए..जो पितर तृषित होते हैं ।
अथवा जो देवताओं को प्राप्त करते हुए वेदमन्त्रों के द्वारा तर गए हैं ।

ज्येष्ठतातिः – ज्येष्ठ + तातिल = 'ज्येष्ठताति' । अर्थ–(१) आयु में वृद्ध, (२) श्रेष्ठ ।
'ज्येष्ठ तातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२, तै.सं. १.४.९.१, का.सं. ४.३, श. ब्रा. ४.२.१.९.
ज्येष्ठ, कुशासन पर बैठने वाले तथा सूर्य के समान दीख पड़ने वाले इन्द्र को ।
अथवा–अत्यन्त वृद्ध, राजसिंहासन पर तथा सुख पहुंचाने वाले राजा का ।
आधुनिक अर्थ– बड़ा, अधिकतर वयस्क

ज्येष्ठघ्नी– (१) ज्येष्ठा नक्षत्र जिसमें उत्पन्न होने वाला बालक अपने भ्रात, का नाश करता है (२) प्रथम बालक को खो चुकने वाली मृतसी स्त्री ।
'ज्येष्ठघ्न्यांजातो विचृतोर्यमस्य'
अ. ६.११०.२

ज्येष्ठतम् – (१) सब से अधिक स्तुतियोग्य (२) विद्या ऐश्वर्य आयु में सब से बड़ा
'प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिम्'
ऋ. २.१६.१.

ज्येष्ठम्– सर्वश्रेष्ठ वेद ज्ञान
'यस्मिन् ज्येष्ठमधिश्रितम्'
अ. १०.८.१९

ज्येष्ठवरः– सबसे अधिक श्रेष्ठ प्रवर्तक कारण,
'क उज्येष्ठवरोऽभवत्.'
अ. ११.८.१

ज्येष्ठराट् – (१) बड़ो –बड़ो का राजा (२) बड़े बड़े सूर्यादि में प्रकाशमान इन्द्र–परमेश्वर
'ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्'
ऋ. ८.१६.३, अ. २०.४४.३.
(३)गणपति का विशेषण
'ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते'
ऋ. २.२३.१, तै.सं. २.३.१४.३, का.सं. १०.१३.

ज्येष्ठा – (१) ज्येष्ठानामक नक्षत्र
'ज्येष्ठासु नक्षत्रमरिष्टमूलम्'
अ. १९.७.३
(२) (ब.व.) मुखिया, सरदार, नेता,
(३) मरुद्गण या व्यापारीवर्ग का विशेषण । दे. वातासः
'प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः'
ऋ. १०.७८.२.
प्रकृष्ट ज्ञानवाले, सुन्दर नीति वाले मरुद्गण या व्यापारीवर्ग मुखिया या नेता के समान...

जैत्र – (१) जि + ष्ट्रन् = जैत्र । अर्थ–जिताने वाला, विजय दिलाने वाला ।
'तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये
जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे'
ऋ. १.१०२.३
(२) शत्रुओं पर विजय की प्राप्ति, (३) गति
'जैत्रायाविशतादु माम्'
ऋ.खि. १०.१२८.२, वाज.सं. ३४.५०, आप. मं.पा. २.८.१, हि.गृ. सू. १.१०.६.
(४) विजयशील ।
'इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे'
ऋ. ८.१५.३, अ. २०.६१.६, ६२.१०.
(५) विजय ।
'स्वस्त्यश्व जैत्राय'
अ. २०.१२८.१५, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.२.

जैत्री– (१) जीतने वाली ।
'सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा
जामिम् अजामिम् पृतनासु सक्षणिम्'
ऋ. १.१११.३
बन्धु और उससे भिन्न शत्रु को भी संग्रामों में जीतने वाले विजय देने वाले हमारे धन सामग्री का सभी दिन आदर करे ।
(२) विजय करने वाली सेना ।
'अभि जैत्री रस चन्त स्मृधानम्'
ऋ. ३.३१.४

जैष्ठ्य – सब से बड़ा ज्येष्ठ पद ।
'इन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणाणाः'
ऋ. ३.५०.३

जोगुवानः – (१) अव्यक्त शब्द करता हुआ, (२) मन्त्रणा करता हुआ । (३) प्रार्थना करता हुआ ।
'उपोवेनस्य जोगुवान ओणिम्'
ऋ. १.६१.१४, अ. २०.३५.१४

जोगूः – (१) भृशम् उपदेशक–दया (२) प्राप्त होने वाला परमेश्वर ।
'विश्वासु क्षासु जोगुवे'
ऋ. १.१२७.१०, ५.६.४.२.

जोषमुक्षित – जोषम् उक्षित । प्रेम या सेवा को देख कर मेघ के समान बरसने वाला इन्द्र

परमेश्वर ।
'च्यवनो युध्मो
अनुजोषमुक्षितः '
ऋ. २.२१.३.

जोषवाक् – जपनशील संन्यासी या ब्राह्मण (२) अविज्ञात मलीन वाणी ।
'जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा
न देवाः भसथश्चन '
ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.
हे प्रसिद्ध स्तोत्र वाले देवो (पज्रहोषिणा देवाः), जो अविज्ञात मलीन बात बोलते हैं (जोषवामं वदतः) उनके सोमरस का ग्रहण कदापि तुम नहीं करते (न भसथः चन) ।
अथवा, हे अपनी आज्ञाओं का पालन कराने वाला राजा और मन्त्री (पज्र होषिणा) आप जपनशील संन्यासी या ब्राह्मण का अज नहीं खाते ।
'विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः '
ऋ. १.१७३.८
तुझे लक्ष्य कर सभी वाणी सेवन करने योग्य होती है ।

जोष्ट्री – जोषयित्र्यौ (द्वि.व.) । अर्थ–जोषयित्री
'देवी जोष्ट्री वसुधिती
ययोररन्याद्या द्वेषांसि यूयवत्
अन्या वक्षत् वसु वार्याणि
यजमानाय शिक्षिते वसुवने
वसुधेयस्य वीतां यज । '
वाज.सं. २८.१५.
हे जोषयित्री तथा धनों की धारयित्री देवियो ! जिनमें एक आज के पापों या दौर्भाग्यों को (आद्या द्वेषांसि) दूर करती है (यूययत्) और दूसरी धन बांटती है (वसुवने) तथा यजमानों को वरणीय वस्तुओं को देती है, (आवक्षत्) इस सुन्दर वसु विशिष्ट आज्य को पीवे (वसुधेयस्य वीताम्) या उसकी कामना करे ।

जोष्ट्री देवी – (द्वि.व.) । जोष्ट्र्यौ देव्यौ । दो जोषयित्री ।
'देवी जोष्ट्रीवसुर्धितो '
वाज.सं. २८.१५
जो दो धनधारण करने वाली जोषयित्री देवियां हैं ।

जोहवीमि – (१) आह्वयामि (पुकारता हूं) । (२) स्वीकार करता हूँ ।
'कुहूमहं सुवृतं विद्मनापसम्
अस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि
सानो ददातु श्रवणं पितृणाम
'तस्यै ते देवि हविषा विधेम '
मै.सं. ४.१४.१, २१६.१.
मैं शोभन कार्य करने वाली (अहं सुवृतम्) कर्म को जानने वाली (विद्मनापसम्) सुन्दर आह्वान् वाली अमावास्या को (सुहवाम् कुहूम्) इस यज्ञ में (अरिमन यज्ञे) बुलाता हूँ (जोहवीमि) । वह हमें पितरों का धन और यश दे (सो नो पितृणां श्रवणं ददातु) इस प्रकार उपकारिणी तुझ देवी को (तस्यै ते) हम हवि से परिचर्या करते हैं (हविषा विधेम) ।
अन्य अर्थ – मैं साधु कर्म कारिणी (अहं सुवृतम्) अपने कर्त्तव्यों को जानने वाली (विद्मनापसम्) आदर पूर्वक बुलाने के योग्य (सुहवाम्) गम्भीर पत्नी को (कूहूम्) इस गृहस्थ यज्ञ में स्वीकार करता हूँ (अस्मिन् यज्ञे जो हवीमि) वह श्रेष्ठ पत्नी हमारे कुल क्रमागत ऐश्वर्य एवं यश को प्रदान करे (सा नः पितृणां श्रवणं ददातु) । हे देवि, ऐसे गुणों से सम्पन्न तेरी हम उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा करते हैं (देवितस्यैते हविषा विधेम) ।

जोहुत्र – (१) अति स्पर्द्धित, (२) सेना में शत्रुओं को ललकारने वाला ।
'जोहुत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रम्
सहस्रसां वृषणं वीड्वंगम् । '
ऋ. १.११८.९.

जोहूत्र – (१) निरन्तर उत्तम पदार्थ देने वाला, (२) भक्त प्रेमी (३) नित्य स्मरण किया जाने या प्रकार जाने वाला ।
'सत्रो युवेन्द्रो जोहत्रः
ऋ. २.२०.३
(४) नाना सुख देने वाला–अग्नि (५) नाना कार्यों में प्रयोग करने योग्य, (६) नाना ज्ञानों और ऐश्वर्यों को देने वाला (७) शत्रुओं को ललकारने वाला (८) विपत्ति में पुकारे जाने योग्य ।
'जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेव '

ऋ. २०.१०.१.

जोहुवा – (१) आदर पूर्वक बुलाने वाला – आह्वान करने वाला ।
'पुरुवसुरागमत् जोहुवानम्'
ऋ. ५.४२.७

ज्योक् – (अ.) (१) दीर्घ कालतक।
'ज्योगेव दीर्घतम आशयिष्ठाः'
ऋ. १०.१२४.१
(२) निरन्तर–दया. (३) चिरञ्जीवी ।
'ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि'
ऋ. १.१३६.६
'ज्योगभूवन्ननुधूपितासः'
ऋ. २.३०.१०.
(३) चिरकाल तक ।
'ज्योक्च सूर्यं दृशे'
ऋ. १.२३.२१, १०.९.७,५७.४, अ. १.६.३ १२.२.१८, वाज.सं. ३.५४. तै.सं. १.८.५.३, मै.सं. १.१०.३, १४३.१८, ३.११.१०, १५५.१६, का.सं. ९.६, १२.१५, श.ब्रा. २.६.१.३९, तै.आ. ४.४२.५, ला.श्रौ.सू. ५.२.११, कौ.सू. ८९.१, आप.मं.पा. २.१.२, ५.२१, हि.गृ.सू. १.७.१०, २.६.१०.
सूर्य के प्रकाश को चिरकाल तक देखने के लिए रोग निवारण करने वाला सर्वश्रेष्ठ औषध सेवन कराओ ।
(४) कदापि ।
'मारे अस्मन् मघवन् ज्योक्कः'
ऋ. ७.२२.६, साम. २.११५०.
(५) बहुतदिन ।
'ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्'
वाज.सं. ३९.१९
(६) खूब
'ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः'
अ. १८.२.२९

ज्योति – प्रकाशित करना ।
'ज्योतयैनं महते सौभगाय'
अ. ७.१९.१

ज्योतिः – द्युत् + इस् = ज्योति ष् (द् का ज् में विपर्यय) अर्थ – (१) प्रकाश ।
'आदधिक्राः शवसा पञ्चकृष्टीः
सूर्ये इव ज्योतिषापस्ततान'
ऋ. ४.३८.१०, तै.सं. १.५.११.४, नि. १०.३१.
जिस दधिक्रा देव या मेघ ने पञ्चजनों–मनुष्य देव, असुर, राक्षस, और पितर या ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शुद्र तथा निषादों के लिए उस उसी प्रकार जलों का विस्तार किया जैसे सूर्य ने प्रकाश का ।
(२) उषा ।
'इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्'
ऋ. १.११३.१, साम. २.१०९.९, नि. २.१९
द्योतमान ग्रहों में यह उषारूपी श्रेष्ठ प्रकाश पूर्व दिशा में आता है (३) चमकने वाला देव
(४) अमृत, (५)प्राण
'आरोह तमसोज्योतिरेहि'
अ. ८.१.८

ज्योतिरग्निः – परमात्यज्योति भौतिक अग्नि में प्रकट है
'अग्निर्ज्योति र्ज्योतिरग्निः स्वाहा'
साम. २.११८१, वाज.सं. ३.९, मै.सं. १.६.१०, १०२.११, १.८.१, ११५.२, १.८.५, १२१.१, २.७.१६, ९९.४, का.सं. ४०.६, ऐ.ब्रा. २.३१ .४, ३२.१, ३७.१७, ५.३१.४, कौ.ब्रा. २.८.१४.१, जै.ब्रा. १.४, ष.ब्रा. १.४.९, श.ब्रा. २.३.१.३०, ३२, ३६, तै.ब्रा. २.१.९.२, तै.आ. ४.१०.५, ५.८.१०, आश्व.श्रौ.सू. २.३.१६, ५.९.११, शां.श्रौ.सू. २.९.१, ७.२.९, ला.श्रौ.सू. १.८.१४, आप.श्रौ.सू. ६.१०.८, १५.१२.८, १६.२३.१०, मा.श्रौ.सू. १.६.१.३७.

ज्योतिरग्रा– (१) ताराओं से युक्त उषा ।
'ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि'
अ. १४.२.३१
(२) प्रकाश को मुख्यरूप से प्राप्त होने वाला ।
(३) प्रकाश की ओर बढ़ने वाली ।
'तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्रा'
ऋ. ७.३३.७, सै.ब्रा. २.२३६.
(४) पहले विद्युत् का प्रकाश और तब गर्जन ।
(५) उत्तम ज्ञान– ज्योतियों से युक्त वेदवाणी ।
(६) अग्र भाग में प्राण या रूप ज्योति से युक्त ।
'तिस्रोवाचः प्रवद्धज्योतिरग्राः'
ऋ. ७.१०१.१

ज्योतिर्जरायु– जरायु के सदृश मेघ में स्थित गर्भवत् विद्युत् । द्योतमान गर्भ के जरायु के सदृश ।

वेष्टक–मेघ जिसममें विद्युत् प्रकाशमान गर्भ के सदृश रहती है । अर्थ है–विद्युत गर्भ मेघ ।
'ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने'
ऋ. १०.१२३.१, वाज.स. ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१०, ३४.१, का.सं. ४.३, श.ब्रा. ४.२.१.८, १०, नि. १०.३९.
जल के निर्माता अन्तरिक्ष में (रजसो विमाने) वर्तमान गर्भ के सदृश जरायु रूप मेघ में रहने वाली विद्युत् ।

ज्योतिर्वर्चः– परमात्मज्योति दीप्तिमान है ।
'अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा'
वाज.सं. ३.९.
'सूर्योवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा'
वाज.सं. ३.९, श.ब्रा. २.३.१.३१.

ज्योतिःसूर्यः – परमात्म ज्योति भौतिक रूप में प्रकट है ।
'सूर्योज्योतिः ज्योतिः सूर्यः स्वाहा'
सामं. २.११८१ वाज.सं. ३.९

ज्योतिष्कृत् – समस्त सूर्यादि शक्तियों का उत्पादक ।
'ज्योतिष्कृदसि सूर्य'
ऋ. १.५०.४, अ. १३.२.९, अ. २०.४७.१६, आ.सं. ५.९, वाज.सं. ३३.३६ ,तै.सं. १.४.३१, मै.सं. ४.१०.६, १५८.१२, का.सं. १०.१३, तै.आ. ३.१६.१, महा.ना.उप. २०.७.

ज्योतिष्मन्तः लोकाः – आत्मज्योतिसे सम्पन्न पुरुष ।
'लोका यत्र ज्योतिष्मन्तः'
ऋ. ९.११३.९

ज्योतिषस्पती– (द्वि.व.) (१) ज्योति, प्रकाश और तेज के पालक सूर्य और वायु अथवा सूर्य और मेघ –मित्रावरुण (२) ब्राह्मण वर्ग और छात्र वर्ग ।
'ऋतेन यावृतावृधौ
ऋतस्य ज्योतिषस्पती
ता मित्रावरुणा हुवे'
ऋ. १.२३.५, साम. २.१४४.

ज्योतिषावृत स्वर्ग – (१) ज्योति से ढका हुआ सुखस्वरूप जीवात्मा, (२) ज्योति से ढका स्वर्ग ।
'स्वर्गो ज्योतिषावृतः'
अ. १०.२.३१

ज्योतिषां ज्योतिः – (१) सभी ज्योतियों में श्रेष्ठ सूर्य, (२) परमज्योति प्रकाश स्वरूप ब्रह्म ।
'इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्'
ऋ. १.११३.१, साम. २.१०९९, नि. २.१९.

ज्योतिषी – (१) विद्युत् , (२) सूर्य, (३) अग्नि ।

ज्योतिषीमान् – सूर्य के समान अतिदीप्त परमेश्वर –सूर्य ।
'तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतिषीमान्'
अ. १८.४.१४

ज्योतिरथ – (१) जिसका ज्योति ही रथ है, अग्नि ।
(२) प्रकाश युक्त रमणीय रथ ।
(३) सुवर्णचान्दी आदि से बने रथ वाला
'ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम्'
ऋ. १.१४०.१, कौ.ब्रा. २५.९.

ण

णक्ष् – गत्यर्थ धातु ।

णिसि– चुम्बनार्थक धातु ।
'ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसते'
ऋ. १०.९४.९
वे सोमरस पीने वाले परस्पर इन्द्र के घोड़ो को चूमते हैं ।
वे सोमपान करने वाले सैनिक राजा की तरह बलवीर्य प्राप्त करते हैं ।

त

तक – (सं.) अर्थ (१) दुष्ट, (२) विष
'तकं भिनद्धि अश्मना'
ऋ. १९१.१५

तकत् – वही ।
'तकत् सुते मनायति'
ऋ. १.१३३.४
वही (तकत्) तेरा उत्तम मन संकल्प हो (ते सुमनायति)

तकवानः – तक (गत्यर्थक धातु) + उ = तकु । तकु + शान च = तकवान । अर्थ है प्राप्तविद्य जिसने विद्या प्राप्त की है आजकल टेकना चलना अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

'श्रुतं गायत्रं तकवानस्या'
ऋ. १.१२०.६
ज्ञानवान् विद्यावान् पुरुष का (तकवानस्य) श्रवण करने योग्य गायन करने वाले की नित्य अज्ञान पूर्वक ।

तक्त – (१) शुद्ध, (२) तेजस्वी ।
'मृगो ने तक्तो अर्षसि'
ऋ. ९.३२.४
(३) पूर्ण, (४) सुप्रसन्न, (५) हृष्ट पुष्ट ।
'स सर्गेण शवसाः तक्तो अत्यैः'
ऋ. ६.३२.५

तक्ति – जाता है कि तक् धातु गमनार्थक है ।
'सर्गोन तक्ति एतशः'
ऋ. ९.१६.१

तक्मन् – (१) तक् + मनिन् = तक्मन् , तक् धातु गत्यर्थक है । अतः तक्मन् का अर्थ हुआ चलने वाला, (२) उष्ण । (३) शरीर को कष्ट देने वाला ज्वर ।
'सनः सं विद्वान् परिवृङ्ग्धि तक्मन्'
अ. १.२५.१-३.

तक्वन् – तक् (गत्यर्थक) + वतुप् अर्थ –चोर ।

तक्व : – (१) शत्रुहन्ता ।
'तक्वो नेता तदि द्रधुः'
ऋ. ८.६९.१३, अ. २०.९२.१०
(२) कृच्छ्र तपस्वी ।

तक्ववी – (१) चोरों से रक्षा करने वाला पहरेदार ।
(२) जो सेवा जन को व्याप्त हो ।
'आनिम्रुच उषसः तक्ववीरिव'
ऋ. १.१५१.५
(३) समस्त उत्पन्न बोने वाले प्राणियों में हिताकारी (४) स्वंय समान् जगत् को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर ।
'वने वने शिश्रिये तक्ववीरिव'
ऋ. १०.९१.२

तक्ववीय – (१) तक्वन् का अर्थ है स्तेन, चोर और तक्ववीय का–चोरों का जिसमें सम्बन्ध न हो वह मार्ग दया. (२) प्रजा–पीड़क पुरुषों को दूर करने का उत्तम कार्य ।

तक्ष – बताना, उत्पन्न करना काट छांट कर छोटा करना ।'
'उत् तक्षतं स्वर्थं पर्वतेभ्यः'
ऋ. ७.१०४, अ. ८.४.४.

तक्षकः वैशालेय :– विषवती विराट् का वत्स ।
'तस्यास्तक्षको वैशालेये वत्स'
अ. ८.१० (५)१४

तक्षण – बढ़ई, काष्टकार ।
'धैर्याय तक्षाणम्'
वाज.सं. ३०.६.

तक्षत – (१) तनुकुरुत (काट छांटकर छोटा करो, (२) कुरुत (करो) तक्ष धातु तनूकरण तथा कनरा अर्थ में आया है, (३) संस्कुरुत, अभिष्णुत (सुन्दर बनाओ, बढ़िया बनाओ) ।

तक्षति – करोति (करता है) ।

तक्षती – तक्ष + शतृ + ङीष् । (१) बनाती हुई, (२) गौरी अर्थात् माध्यिमका वाक् का विशेषण ।
'गौरी र्मिमाय सलिलानि तक्षती'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, तै.ब्रा. २.४.६.११, ऐ.आ. १.५.३.८ , तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.
माध्यमिका वाक् गौरी ने सलिल बनाती हुई यह सब कुछ निर्मित किया ।

तक्षथुः – अकुरुतम् (किया) ।

तड़ित् – अक्ताड़यति अशनि रूपेण (वज्ररूप से वह अवताडित करती है) । दूराञ्च दृश्यते करती है, दूराञ्च दृश्यते (और वह दूर से दीख पड़ती है । अर्थ – (१) विद्युत् ।
'यानोदूरे तड़ितो या अरातयः'
ऋ. २.२३.९, नि. ३.११.
जो हम से दूर यह शत्रु सेनाएं हैं ।
(२) निकटस्थ, अन्तिकस्थ अन्तिक तथा वध दोनों का अभिधायक तड़ित् शब्द है । तड़ (ताड़न करना) + इति = तड़ित (ताड़े णिः लुक् च) । वृद्धि नहीं हुई है ।
विद्युत् दूर चमकती हुई भी निकटस्थ दीख पड़ती है अतः भी वह भी ताड़ित है । विद्युत् है (विद्युत् तड़ितवत् भवति) यह शाकपूणि का मत है । (३) आघात करने वाली ।

तकुः – तक् (गत्यर्थक) + उ । अर्थ –शरणागत्
'पुरुमेधश्चित् तकवे नरंदात्'
ऋ. ९.९७.५२, साम. १.५४१, २.४.५४.

तुङ्गल्व – फूली गाल वाला ।

'पवीनसात् तङ्गल्वात्
अ. ८.६.२१

तण्डुल – तड + उलच् = तण्डुल (वृजलुटि)
'तनिताण्डभ्यश्च उलच् तण्डश्च ।
तण्डयति ताडयति इति तण्डुल'
(१) दुष्टों को ताड़ने करने वाला, (२) राजा को घेरने वाला, (३) पीड़कों को तारण करने वाला, (४) शत्रुओं को लूटने वाला, (५) चावल, (६) धनुष को तानने वाला ।
'यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः
अ. १०.९.२६
'सोमस्यां शवः तण्डुला यज्ञिया इमे'
अ. ११.१.१८

तत् एकम् – वह एक सत् ब्रह्म ।
'आनीदवातं स्वधया तदेकम्'
ऋ. १०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४.
उस प्रलय काल की अवस्था में वह एक सत् ब्रह्म स्वभावतः (स्वधयो) वायु के बिना (अवातम्) प्राण धारण कर रहा था (आनीत्)

तत् ते नाम – (१) तेरा वह नाम अर्थात् रश्मियों से आविष्ट शिपि विष्ट विष्णु – (२) तेरा वह नाम अर्थात् ओम् –दया. ।
'प्रतत् ते अद्य शिपिविष्ट नाम
अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्'
ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.६, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.
हे रश्मियों से आविष्ट विष्णु देव (शिपिविष्ट) तेरा वह शिपिविष्ट नाम श्रेष्ठ है (तत् ते नाम अर्यः) यह स्मरण कर तथा तेरे प्रज्ञानों या गुणों को जानता हुआ (वयुनानि विद्वान्) मैं आज स्तुति करता हूँ ।
अन्य अर्थ– हे तेजः स्वरूप विष्णु परमेश्वर (शिपिविष्ट) विज्ञानों को जानता हुआ वाचस्पति मैं आज तेरे उस प्रसिद्ध नाम ऊं को जानता हूँ । –दया.

तत – तनु (तनना) + क्त = तत ' अर्थ है–(१) तना हुआ विस्तृत । (२) पिता या पुत्र तन्यते यस्मात् सः (जिससे विस्तार बढ़ता है । वह अर्थात् पिता) ।
तन्यते यःस. (जो विस्तार रूप में बढे अर्थात् पुत्र) । तनु + क्त = तत । यहां क्त प्रत्य अपादान और कर्त्ताअर्थ में हुआ है।
'एतत् ते तत स्वधा'
ऋ. १८.४.७७
(३) मेघजल या ओषधिवर्ग ।
'कारुरहं ततो भिषक्'
ऋ. ९.११२.३, नि. ६.६.
यहां तत पिता के अर्थ में प्रयुक्त है ।
'तनोति सन्तान मितिततः'
(४) प्रिय ।
'शिरस्तवस्योर्वराय'
ऋ. ८.९१.५, जै.ब्रा. १.२२१.
(५) व्यापक परमेश्वर । (६) विस्तृत जगत् ।
'टाट' तत का ही बिगड़ा रूप है ।

ततक्ष – संश्चकार (सुसंस्कृत किया है) ।

ततक्षुः – कुर्युः (किया) .तक्षधातु करना, अर्थ में आया है ।

ततन्तु – (१) अविच्छिन्नतन्तु (२) प्रजा, सन्ताति, सन्तान ।
'ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति'
अ. ६.१२२.२, तै.आ.२.६.२.

ततनः– विस्तार करता हुआ फैलता हुआ ।
'पर्जन्य इव ततनः'
ऋ. १.३८.१४
मेघ के समान फैलता हुआ ।

ततन्थ – विस्तृत करता है ।
'त्वमा ततन्थ उर्वन्तरिक्षम्'
ऋ. १.९१.२२, आ.सं. ३.३, वाज.सं. ३४.२२, मै.सं. ४..१४.१,२१४.१०, का.सं. १३.१५, तै.ब्रा. २.८.३.१.

ततनुष्टि – तितनिषु । अर्थ (१) वह पुरुष जो धर्म से दूर हैं, (२) आत्म मण्डन परायण, (३) विषयोपभोगपरायण–धर्म हित (४) अनेकों उपायों से जैसे तैसे धन बढ़ाने वाला ।
'अपाप शक्र स्ततनुष्टिमूहति'
ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९.
इन्द्र धर्म से दूर, आत्म मण्डन परायण विषयोपभोगपरायण धर्म से रहित पुरुष को जो जैस तैसे अनेक उपायों से अपना धन बढ़ाता है बार बार नष्ट करता हैं ।
'ततनुष्टि' का अर्थ है–धर्म सन्तानात् अपेतः,

अलङ्करिष्णुः, अपज्वानः
(२) ततनुन्न (धर्म या अग्नि होत्रादि से दूर-अयजन शील पुरुषः (३) ततं धर्मसंनतिं नुदति वष्टि कामयते च कामान् (जो सनातन धर्म मार्ग को नष्ट करता है और वासना में प्रवृत्त ही धन का विस्तार चाहता है ।
(४) विषयी होकर जैसे तैसे धनाढ्य होने वाला (५) भृशं तननं वष्टि इति तत नुष्टिः (तनु धातु का यङ्लुङ्न्त रूप -ततन + नश् + क्तिन् = ततनुष्टि । (६) शक्ति, (७) विस्तृत शक्ति वाला ।
'अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति'
ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९

ततरुष - सबको संकटों से तारने वाला -सूर्य
'त्रिषधस्थः ततरुषोन जंहः'
ऋ. ६.१२.२

ततः - (१) तत् + तसिल् = ततः । अर्थ है । तत्पश्चात् , उसके बाद ।

ततः - पूर्वपुरुषों की सन्तानें ।
'तता अवरे ते मावन्तु'
अ. ५.२४.१६

ततामहः - (१) पितामह ।
'एतत् ते ततामहस्वधा ये च त्वामनु'
अ. १८.४.७६
(२) सन्तानों का सन्तान ।
'ततस्ततामहास्ते मावन्तु'
अ. ५.२४.१७

तति - उतना ।
'तावद् वां चक्षुस्ततिवीर्याणि'
अ. १२.३.२

ततिधा - उतने प्रकार का ।
'तावत्तेजः ततिधा वाजिनानि'
अ. १२.३.२.

ततुरि - (१) तरणशील- (२) दुःख सागर से पार करने वाला । (३) अतिशीघ्र कार्य-सम्पादन करने वाला ।
'नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठाम्'
ऋ. ६.२२.२, अ. २०.३६.२, नि. ६.३.
(४) दुःखों से तरने वाला (५) शत्रु-नाशक।
'प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः'
ऋ. ६.६८.७

ततृषाणः - (१) मारने वाला, (२) प्रजादि के धन का लोलुप ।
'दक्षन्न विश्वं ततृषाणमेषति'
ऋ. १.१३०.८
सब प्रकार के मारने वाले शत्रु या प्रजा के धनादि की तृष्णा से लोलुप पुरुष को सूंखे काष्ट को अग्नि की तरह जला दे ।

तदर्म - तृण का बना आसन ।
'शंमेथिर्भवतु शंयुगस्य तद्र्म'
अ. १४.१.४०

तदिदर्थ - तत् + इत् + अर्थ । इस लोक तथा उस लोक के प्रयोजनों की इच्छा करने वाला ।
'वयमु त्वा तदिदर्थाः'
ऋ. ८.२.१६, अ. २०.१८.१, साम. १.१५७.२,.६९, पंच.ब्रा. ९.२.५ आश्व.श्रौ.सू. ६.४.१०, शां.श्रौ.सू. ९.९.१,वै.सू. २६.५.
(२) वह और यह -पारमार्थिक और रोहिक नाना प्रयोजनों को चाहने वाला ।

तदुरी - (१) मेढ़क की एक जाति, (२) ब्रह्म तक पहुंचने वाली सुषुम्ना नाम की नाड़ी (तत् ब्रह्म इयर्ति इति तदुरि सुषम्ना साच मध्ये । इडापिङ्गलयोः वर्तमाना भवति)

तदोजाः - अपने ही ओज से पूर्ण परमेश्वर -सूर्य ।
'सहस्रशृंगो वृषभस्तदोजाः'
ऋ. ५.१.८

तन्त्र - (१) प्रपञ्च, (२) लोकव्यवहार, (३) कृषि, कुटुम्ब भरण आदि ।
'सिरीस्तन्त्रं तन्वतेअप्रजज्ञयः'
ऋ. १०.७१.९, बौ.ध.शा. २.६.११.३.

तन्द्रयुः- (१) आलस्य युक्त ।
'मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुः'
ऋ. ८.९२.३०, अ. २०.६०.३, साम. २.१७६

तन् - (१) तानना, ताना बाना करना, तन्तु नानना ।
'या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे'
अ. १४.१.४५
'अपसोऽतन्वत'
मै.सं. १.९.४,१३४.९, का.सं. ९.९, पंच.ब्रा. १.८.९,मा.श्रौ.सू. ५.२.१४.१०, ११.१.१, नि. ३.२१.
हे वस्त्र, तुझे कुविन्द के छोटे छोटे लड़को ने ताना (२) विस्तृत यज्ञ ।
'यज्ञिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे'

ऋ. १.२६.६, साम. २.९६.८

तन – तनय, पौत्र ।
'उरु णस्तन्वे तन'
ऋ. ८.६८.१२

तनय – तनु (विस्तार अर्थ में) + कयन् = तनय । अर्थ है । (१) पुत्र । स हि कुलं तनोति (पुत्र कुल का विस्तार करता है ।
'मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७.
हमारे पुत्र पुत्री रुपी सन्ताओं में तेरी सहस्त्रों औषधियां हिंसा न करें (मारीरिषः) ।

तनयस्य मज्मन् – (१) पुत्र का बल, (२) वायु का तनय अग्नि है अतः अग्नि का बल । (३) राज्य प्रसारक सैन्य बल का बल ।

तनस् – पौत्र ।
'मा शेषसा मा तनसा'
ऋ. ५.७०.४

तना – नित्य ।
'अण्वीभिस्तना पूतासः'
ऋ. १.३.४, अ.२०.८४.१, साम. २.४९६, वाज.सं. २०.८७.

तन्तिः – (१) रस्सी, (२) विस्तृत राजनियम ।
'वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र'
ऋ. ६.२४.४

तन्तु – (१) आगे बढ़ने या बढ़ाने वाला तन्तु, (२) प्रजातन्तु, (३) शिष्य तन्तु ।
'तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं
सुतसोमाय दाशुषे ।'
ऋ. १.१४२.१, ८.१३.१४.
(४) ताने का सूत ।
'य ओतवो ये च तन्तवः'
अ. १४.२.५१
(५) सूत्र ।

तन्द्रम् – (१) गणित विद्या, (२) पंक्ति ।
'तन्द्रं छन्दः'
वाज.सं. १४.९.१५.५, तै.सं. ४.३.५.१, १२.३, मै.सं. २.८.२. १०८.४, २.८.७,११२.४, का.सं. १७.२.६, श.ब्रा. ८.२.४.३, ५.२.६.

तन्द्रयुः – आलस्य से युक्त ।
'मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुः'
ऋ. ८.९२.३०, अ. २०.६०.३, साम. २.१७६.

तन्दते – नाश करता है, मिटाता है ।
'महित्वमस्य तवसो न तन्दते'
ऋ. १.१३८.१

तना – (१) उम्रिया, (२) देह के सब कार्यों का विस्तार करने वाली उत्कर्षण शील चेतना शक्ति, (३) देह का विस्तार करने वाली गौ ।
'मधोर्दुग्धस्याश्विना तनायाः
वीतं पातं पयस उम्रियायाः ।'
अ. ७.७३.५, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, शां.श्रौ.सू. ५.१०.१८

तन्द्री – (१) आलस्य भाव ।
'स्वप्नो वै तन्द्री निर्ऋतः,'
अ. ११.८.१९
(२) निद्रा ।
'श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च'
अ. ८.८.९

तन्यत् – गर्जन ।
'न वेपसा न तन्यता
इन्द्रं वृत्रो विबीभयत्'
ऋ. १.८०.१२
न वेग से और न गर्जन से वृत्र या मेघ से इन्द्र. या विद्युत् को डरा सकता है ।

तन्यतुः – (१) विस्तार करने वाली ।
'पावीरवी तन्यतुरे कपादजः'
ऋ. १०.६५.१३, नि. १२.३०
माध्यमिका ऐन्ट्री वाणी (पावीरवी) अन्यों की वाणी का विस्तार करने वाली है (तन्यतुः)
(२) गरजतामेघ
'सृजावृष्टिं न तन्यतुः'
ऋ. ९.१००.३
(३) गर्जन ।
'उतो ते तन्यतुर्यथा'
ऋ. ५.२५.८.
(४) तन् + युच् = तन्यतु । विस्तृत वेगस्वभाव विद्युत् (५) घोरध्वनि ।
'जयतामिव तन्यतुः
मरुतामिति धृष्णुया ।'
ऋ. १.२३.११

तना – (१) धन ।
'वराय ते पात्रं धर्मणे तना'
ऋ. १०.५०.६

हे इन्द्र ! अपनी श्रेष्ठ कामना के लिए (वराय) तथा अपनी धारणा या धर्म रक्षा के लिए (धर्मणे) तुझे सोमरस पूर्णपात्र तथा धन देता हूँ। (तना)।

तनु – तन् + उ = तनु। अर्थ–(१) शरीर।
'एना पत्या तन्वं संसृजस्व'
ऋ. १०.८५.२७, अ. १४.१.२१, आप. मं.पा. १.९.४, नि.३.२१.
हे वधू, तू इस पति के साथ अपने शरीर को एक कर दो अर्थात् ऐकात्म्य स्थापित कर दो।
(२) शरीर व्यापी बल।
'तनूस्तन्वा मे सहे'
अ. १९.६१.१,तै.सं. ५.५.९.२, तै.आ. (आंध्र) १०.७२, वै.सू. ३ .१४, पा.गृ.सू. १.३.२५.
(३) बाहु।
'एष स्य ते तन्वोः'
ऋ. २.३६.५, अ. २०.९७.६
शरीर के अर्थ में प्रयोगः–
'उरुणस्तन्वे तने'
ऋ. ८.६८.१२

तनुते – तन् धातु का लट् प्र.पु.ए.व. का रूप। अर्थ फैला देता है।
'आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै'
ऋ. १.११५.४, अ. २०.१२३.१, वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२, १४७.२, तै.ब्रा. २.८.७.२, नि. ४.११.
तुरत ही (आत्) रात्रि सभी के लिए (सिमस्मै) अन्धकार फैला देती है (वासः तनुते)।

तनू – तन् (विस्तार करना) + ऊ = तनू। अर्थ–(१) पुत्र।
'घृतेनत्वं तन्वं वर्धयस्व'
ऋ. १०.५९.५, वाज.सं. १२.४४, तै.सं. ३.१.४.४, ४.२.३.४, मै.सं. १.७.१,१०८.११, श.ब्रा. ६.६.४.१२, आप.श्रौ.सू. ७.६.५, मा.श्रौ.सू १.७.३.४०, नि. १०.४०.
(२) शरीर, (३) आत्मा, (४) तत्व, (५) भाव
'उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे'
ऋ. १०.७१.४, नि. १.१९.
किसी को तो वेदवाणी वाणी के तत्व, आत्मा, या भाव को (तन्वम्) विशेष रूप से स्पष्ट कर देती है (विसस्रे) (६) जल। जल अन्तरिक्ष में विस्तृत है। (७) गौ, गौ में दूध घी आदि भोज्य पदार्थ विस्त है।

तनूकृथे – तनुकृते, शरीर के लिए।
'ता वां विश्व को हवते तनूकृथे'
ऋ. ८.८६.१.३.

तनूकृत् – (१) यः तनूषु पृथिव्यादि विस्तृतेषु लोकेषु विद्यां करोति (पृथिव्यादि बड़े लोकों में विद्या प्राप्त करने वाला)। (२) समस्त प्राणियों, लोकों और पृथिवी आदि तत्वों के रूपों –देहों को रचने वाला परमेश्वर अग्नि।
'तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे'
ऋ. १.३१.९
तू सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला और समस्त प्राणियों और लोको और पृथिवी आदि तत्वों के रूपों देहों की रचना वाला होकर कर्त्ताजीव को ज्ञान प्रदान करता है। (३) क्षीण करने वाला।
'त्वं सोम तनू कृद्भ्यः'
ऋ. ८.७९.३, वाज.सं. ५.३५, तै.सं. १.३.४.१, ६.३.२.२, मै.सं. १.२.१३, २२.३,३.९.१,११२.८, का.सं. ३.१, श.ब्रा. ३.६.३.७, मा.श्रौ.सू. २.२.४.२४, आप.श्रौ.सू. ११.१६.१६.

तनुमात्रा – अतिविस्तृत, जगत् को फैलानी वाली–समस्त जगत् को बनाने वाली प्रकृति।
'परो मात्रया तन्वा वृधामः'
ऋ. ७.९९.१,मै.स. ४.१४.५, २२१.५,तै.ब्रा. २.८.३.२, आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१.

तनूज – त्वचा और अस्थि के बीच मांस से उत्पन्न होने वाला किलास नामक कुष्ठ।
'तनूजस्य च यत् त्वचि'
अ. १.१.२३.४, तै.ब्रा.२.४.४.२.

तनूत्यजा – (द्वि.) तनूत्यजौ (शरीर की परवा नहीं करने वाले। तनु+ त्यज् + क्विप् = तनूत्यज्। द्वि.व. में तनूत्यजा (वैदिक रूप)।
'तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू
रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्'
ऋ. १०.४.६, नि. ३.१४.
हे वनस्थ वाणप्रस्थी, शरीर की परवाह न करने वाले वनगामी चोरों की तरह दसों अंगुलियों से यज्ञकर्मों को धारण करो।
अन्य अर्थ – हे अग्नि, ये हमारे बाहु प्राणों का निछावर कर वनगामी चोरों की तरह दस

अंगुलियों से बांधते या पकड़ते हैं । अग्नि उत्पन्न करने के लिए अरणियों को पकड़ने का तात्पर्य है ।

तनूदूषिः – (१) शरीर में दोष उत्पन्न करने वाला ।
'म्रोकोमनोहा खनोनिदहि आत्मदूषिस्तनूदूषिः'
अ. १६.१.३
(२) शरीर को दूषित करने वाला रोग ।
'तनूदूषिमपोहामि'
अ. १४.१.३८

तनूनपात् – (१) अग्नि–शाकपूणि ।
'तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्
मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व'
ऋ. १०.११०.२, अ. ५.१२.२, वाज.सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१०, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६.
हे अग्नि, यज्ञ के इन फल प्राप्ति कारक हविरूपी मार्गों को मधुरस से मिलाते हुए स्वादिष्ट बना ।
(२) आज्य, घृत–काथक्य के मत से (३) यज्ञाग्नि–दया. । नपात् का अर्थ पोता (पौत्र) है और तनू का गौ । गौ का पुत्र दुग्ध और दुग्ध का पुत्र घृत तनूनपात हुआ । यही काथक्य का मत है । तनू + नपात् ।
पुनः 'तनू' का अर्थ जल है, जल से ओषधि वनस्पति और सूखी औषधधियों से अग्नि उत्पन्न होता है । अतः तनू (जल) का पौत्र अग्नि हुआ । यह शाकपूणि का मत है ।
स्वामी दयानन्द के अनुसार यज्ञाग्नि शरीर तथा ओषधि आदि अंशों की भी रक्षा करने वाला है । (शरीरौषध्या दीनां ऊनानि न्यूनानि उपाङ्गानि पाति रक्षति यः सः) ।
'मधुमन्तं तनून पात्
यज्ञत्रं देवेषुनः कवे ।'
ऋ. १.१३.२, साम. २.६९८.
(४) देह को न गिरने देने वाला आत्मा, (५) अन्न, (६) राष्ट्र विस्तार को काम न होने देने वाला प्रजापति ।
'तनूनपाद् ऋतंयते
मध्वा यज्ञः समज्यते ।'
ऋ. १.१८८.२

तनूनप्त्रा – शरीर का रक्षक ।
'तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय'
वाज.सं. ५.५.

तनूया – (द्वि.व.) (१) शरीर के पालक अश्विद्वय –प्राण और अपान ।
'भूतं जगत्पाउतनस्तनूपा'
ऋ. ८.९.११, अ. २०.१४१.१
(२) (स्त्री) शरीरों अर्थात् पुत्रों की रक्षा करने वाली ।
'तनूपाश्च सरस्वती'
वाज.सं. २१.१३, का.सं. ३८.१०.

तनूपान– (१) शरीर रक्षा के लिए कवच धारण करने वाला ।
'तनूपानं परिपाणं'
अ. ५.८.६, ११.१०.१७
(२) समस्त प्रजा के शरीरों का रक्षक ।
'तनूपानोऽसि'
अ. २.११.४

तनूरुच् – प्रत्येक देह में कान्तिरूप अग्नि ।
'त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्'
ऋ. २.१.९

तनूरुचा– (द्वि.व.) (१) अपनी देह की कान्ति से चमकने वाले दो पुरुष, (२) विस्तृत सेनाओं । या राष्ट्रसम्पदा से शोभायमान
'तनूरुचा तुरुषि यत्कृण्वैचे'
ऋ. ६.२५.४

तनूवशी – (१) अपने शरीर पर वश करने में समर्थ ।
'यो अक्षेषु तनूवशी'
अ. ७.१०९.१
(२) जितेन्द्रिय, (३) अग्नि ।
'जातवेदस्तनूवशिन्'
अ. १.७.२, ५.८.२.
(४) शरीर को अपने वश में करने वाला सदाचारी ।
'अस्मिन् धेहि तनूवशिन्'
अ. ४.४.४

तनूशुभ्रः – अथवा शरीर सजाने वाला विषयी, (२) अपना शरीर पोसने वाला ।
'अपाज शक्रस्ततनुष्टिमूहति
तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः'
ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९.
धर्मविमुख, आत्म मण्डन परायण या

विषयोपभोगपरायण या जैसे तैसे अनेक प्रकार से अपनाधन बढ़ाने वाले पुरुष को या उसे जों सिर्फ अपना शरीर पोसता है । (ततनुष्टिम् तनूशुभ्रम्) ऐश्वर्य शाली इन्द्र बारबारष्टकरता है और जो असाधुजनसंषर्की है उसे भी (कवासखः) । (३) शरीर से शोभने के वाद, (४) राष्ट्र से शोभने वाला, (५) देह को सजाने वाला अभिमानी ।

तन्वेइच्छमानः – विस्तृत संसार को प्रकट करने के लिए संकल्प करने वाला प्रभु ।
'स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम्'
ऋ. ४.१८.१०

तपन – (१) तपाने वाला, दुखः देने वाला ।
'ब्रह्माद्विषस्तपनो मन्युमीरसि'
ऋ. २.२३.४
(२) सूर्य, तपाने वाला ।
'निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः'
ऋ. १०.३४.७

तपनी – (१) सन्ताप और पीड़ा देने वाली व्यवस्था शक्ति या सेना ।
'तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप'
ऋ. २.२३.१४

तपस् – तप् (आलोचनार्थक) + असुन् = तपस् । अर्थ है –(१) म्रष्टव्य पर्यालोचन रूप व्यापार, (२) तपस्या ।
(३) तपस्या करना, (४) पर्यालोचन करना । (तपपर्यालोचने इति रति धातु पाठः) (५) वेद का पर्यालोचन, साक्षात्कार और अनुशील तप है, (६) ऋत् ,सत्य, तप,शम, दम यज्ञ, मानव सेना, प्रजोत्पादन, प्रजारक्षण, प्रजावर्धन, स्वाध्याय, और प्रवचन तप है । (७) राथीतर आचार्य सत्यपालन को तप कहते हैं (८) पौरुशिष्ट तप को ही तप कहते हैं।
'ऋतं, तपः, सत्यं तपः, श्रुतं तपः,
शान्तं तपः, दमस्तपः, शमस्तपः,
दानं तपः यज्ञस्तपः, भूर्भुवः
सुवब्रह्मैदुपास्वैतत्तमः'
तै.आ. १०.८
'मनसश्चन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं तप उच्यते'
(९) श्रम कार्य ।
'तपसे शूद्रम्'
वाज.सं. ३०.५,तै.ब्रा. ३.४.१.१
(१०) माघ ।
'उपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वा'
वाज.सं. ७.३०

तपस्पतिः – तपश्चर्या का पालक परमेश्वर ।
'अनु मे दीक्षा दीक्षापतिः
मन्यतामनतपस्तपपतिः'
वाज.सं. ५.६, तै.सं. १.२.१०.२, का.सं. २.२, गो.ब्रा. २.२. ३, श.ब्रा. ३.४.३.९. ६.३.२१, वै.सू. १३.१८.

तपस्य – फाल्गुनमास ।
'उपयामगृहीतोऽसि तपस्यायत्वा'
वाज.सं. ७.३०

तपस्वान् – तपस्या करने वाला ।
'ऋषीन् तपस्वतो यम'
ऋ. १०.१५४.५, अ. १८.२.१५, १८,
तप्त –तप् + क्त (१) ऐश्वर्ययुक्त (२) संतप्तपुरुष । (३) सिद्ध तेजस्वी पुरुष ।
'तप्ताय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१२

तप्तायनी – (१) तप्त, (२) भूख आदि से पीड़ित, (३) आधिदैविक उत्पादक, (४) हिम, आतप वर्षा आदि से पीड़ित पुरुष को शरण रूप में प्राप्त होने वाली पृथ्वी, (५) तप्त, प्रतप्त या ताप देने वाले अग्न्युत्पादक पदार्थों को देने वाली पृथिवी ।
'तप्तायनी मेऽसि'
वाज.सं. ५.९, मै.सं. १.२.८,१७.८.३.८.५, ९९.१५,श.ब्रा. ३.५.१ .२७, मा.श्रौ.सू. १.७.३.१५

तप्यतुः – (१) सन्तप्त करने वाला ।
'आदित् सूर्यस्तपति तव्यतुर्वृथा'
ऋ. २.२४.९

तप्यत् – तपस्या करने वाला ।
'तप्यते स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१२

तपिष्ठः – (१) तप्ततम, अत्यन्तसन्तप्त, तेज– (२) संतप्तगोली, कार्य सिद्धि के कारण तप्तअस्त्र या वारूद –दया. ।
'अस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.८, का.सं. १६.१५, नि. ६.१२.

राक्षसों को अपने तेजों से नष्ट कर-सा. उन राक्षसों को संतप्त गोलियों, अस्त्रों या वारूदों से बींध दे-(दया.)

तपिष्ठा- (१) अत्यन्त तापदायिनी, (२) अग्नि से खूब प्रज्वलित, (३) अशनि का विशेषण (४) ताप

'जहीन्येषु अशनिं तपिष्ठाम्'

ऋ. ३.३०.१६

तपु - (१) सन्ताप जनक, ताप जनक, (२)अग्नि, (३) ज्वाला ।

'तपोष्वग्ने अन्तरां अमित्रान्'

ऋ. ३.१८.२, का.सं. ३५.१४, कौ.ब्रा. ४.५.५,आप. श्रौ.सू. १४.२९.३, १५.७.९,

(४) तपाया या दण्डित हुआ (५) राक्षस (६) दण्डित-दया.

'तपुर्यथस्तुचरुरग्निवां इव'

ऋ. ७.१०४.२, अ. ८.४.२, का.सं. २३.११, नि. ६.११.

वह राक्षस अग्नि में पड़े हंडिया की तरह डहके -सा. । वह दण्डित आग में हंडिया की तरह शुद्ध होकर प्रयत्न शील हो -(दया.)

(७) ताप जनक ।

'तपूंषि अग्ने जुह्वापतङ्गान्'

ऋ. ४.४.२, वाज.सं. १३.१०,तै.सं. १.२.१४.१, का.सं.१६.१५.

तपुर्जम्भः - (१) तपूंषि तापाः जम्भो वक्त्रमिवयस्य (जिसकी ज्वालाएं मुख के समान हो वह अग्नि) (२) जीव ।

'तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितः'

ऋ. १.५८.५

ज्वाला रूप मुख वाला अग्नि (तपुर्जम्भः) जिस प्रकार वायु से प्रेरित होकर (वात चोदितः) जंगल में फैल जाता है उसी प्रकार यह जीव वायु रूप प्राणों से प्रेरित होकर संताप देने वाले जाठर अग्नि को अपना मुख या साधन बनाकर भोग्य विषयों में या संसार में गति करता है । (३) शत्रुओं को सताने या नाश करने वाले अस्त्रों के धारक सेनानी या परमेश्वर । (४) जिसका तप अर्थात् ज्वाला ही जम्भ (मुख) है-अग्नि अग्नि की ज्वाला ही सब पदार्थों को खा जाने वाले मुख के समान है (५) शत्रु-तापन शस्त्रास्त्र बल ही जिसका जम्भ है ।

'तपुर्जम्भस्य सुद्युतेः गणश्रियः'

ऋ. ८.२३.४

तपुर्मूर्धा - (१) सूर्य, (२) अग्नि (३) विद्युत् (४) दुष्टों को सन्ताप देने के सामर्थ्य में सर्वोत्कृष्ट ।

'तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः'

ऋ. ७.३.१, साम. २.५६९, का.सं. ३५.१, आप.श्रौ.सू. १४.१७.१.

तपुष्पा - (१) शत्रु के सन्तापकारी शस्त्रों को पालन करने वाला, (२) शस्त्राघातों से रक्षा करने वाला ।

'उपोनयस्व वृषणा तपुष्पा'

ऋ. ३.३५.३

तपुर्वध - (१) सन्तापकारी आग्नेयास्त्र ।

'तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणाः'

ऋ.७.१०४.५, अ. ८.४.५.

(२) दुष्टों का नाशकारी अस्त्र-नालीक आदि गुलिका ।

तपुरग्रा - अग्नि में तप्त अगले फणों वाली ।

'तपुरग्राभिरर्चिभिः'

ऋ. १०.८७.२३, ८.३.२३.

तपुषि - सन्तापार्थक तप् + उसि = तपुषि । अर्थ है सन्ताप देने वाला ।

तपोज - तपोनिष्ट ।

'तपोजां अपिगच्छतात्'

ऋ. १०.१५४.५, अ. १८.२.१५,१८

तपोजाः - तप से उत्पन्न होने वाला तपस्वी ।

'मह्यं देवा उत विश्वे तपोजाः'

अ. ६.६१.१

तम आसन - (१) कृष्ण वर्ण का सिंहासन, (२) शत्रुओं को कष्ट दायी आसन ।

'तम आसन माचरन्'

अ. २०.१२७.८

तमत् - तमतु (आकर्षित करे) 'तम' धातु-आकर्षण करना अर्थ में है ।

'न मा तमत् न श्रमत् नोत तन्द्रत'

ऋ. २.३०.७

तमस् - तन + असुन् = तनस् = तमस् । अर्थ है-(१) अन्धकार ।

'आ त्वेषं वर्तते तमः'

ऋ.खि. १०.१२७.१, अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
यह महान् अन्धकार व्याप्त रहता है ।
(२) सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व प्रलय रात्रि से आच्छादित प्रकृति (३) मृत्यु, (४) पाप ।
'मृत्युर्वैतमः '
गो.ब्रा. ३०.२५.१
'पाप्मा वै तमः '
श.ब्रा. १२.९.२.८
(४) आंखों के आगे अंन्धेरा लाने वाला शिरोरोग-चक्कर ।
'मात्वाजम्भःसंहनुर्मा तमो विदत् '
अ. ८.१.१६

तमिषीचिः- अज्ञानरात्रि में सात्विक वृत्तियों की आच्छादिका ।
'याः क्लन्दास्तमिषीचयः '
अ. २.२.५

तमिषीची - (१) अन्धकार ला देने वाली बाधा या सेना ।
'निरत्रसन् तमिषीचीरभैषुः '
ऋ. ८.४८.११

तमिस्रा - (१) रात्रि, (२) अन्धकार मयी दशा ।
'मा नो दीर्घा अभिनशन् तमिस्राः '
ऋ. २.२७.१४

तमोगा - (१) अन्धकार रूप नीलिमा को प्राप्त मेघ, (२) अज्ञानान्धकार को प्राप्त ।
'मिहोनपातं सुवृधं तमोगाम् '
ऋ. ५.३२.४

तमोवृध् - (१) अन्धकार में शक्ति से बढ़ने वाला, (२) माया तथा छल कपट से अपनी शक्ति को बढ़ाने वाला, (३) नीच कर्मों से अपने को बढ़ाने वाला ।
'न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः '
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.
(४) अन्धकार या अज्ञानादि को बढ़ाने वाला

तमोहन् - (१) अन्धकार का नाश करने वाला -अग्नि ।
'ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् '
ऋ. १.१४०.१, कौ.ब्रा. २५.९

तमोहना - (द्वि.व.) (१) अन्धकार नाशक सूर्यऔर चन्द्र, (२) दिनरात ।
'तमोहना वपुषो बुध्नएता '
ऋ. ३.३९.३

तर्क ऋषिः - (१) अनेक विद्याप्रवीण, बहुश्रुत तपस्वी मनुष्य का ऊहापोह ।

तर्कुः - कृती (छेदना, काटना, Cut) + उ = कर्तु = तर्कु' अर्थ है- काटने वाला, कैंची ।

तर्तुराणा - वेगवती होती हुई ।
'अपामिवेत् ऊर्मयस्तर्तुराणाः '
ऋ. ९.९५.३, साम. १.५४.४

तर्द - हिंसक जन्तुः ।
'तर्द है पतङ्ग है '
अ. ६.५०.२
'हतं तर्दं समङ्क्ष्माखुमश्विना '
अ. ९.५०.१

तदीपति - हिंसकों का स्वामी ।
'तदीपते वधापते '
अ. ६.५०.३

तर्पण - (१) तृप्त करने के लिए मधुपर्क (२) तृप्तिकर भोग्य पदार्थ (३) पितरों को तृप्त करने के लिए दिया गया जल ।
'यत् तर्पणमाहरन्ति '
अ। ९.६.६

तर्यः- (१) सबको कष्ट से पार उतारने वाला, (२) शत्रुनाशक ।
'बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्योवः सचा '
ऋ. ५.४४.१२

तर्ष्यावान् - (१) सदा प्यासा, (२) सदा मारने को तैयार ।
'निरुद्धश्चित् महिषः वर्ष्यावान् '
ऋ. १०.२८.१०

तर्ह - विनाश करना ।
'संपृथिव्या अघशंसाय् तर्हणम् '
ऋ. ७.१०४.४, अ. ८.४.४

तर्हणम् - तर्ह + ल्युट् = तर्हण, नाशकारी ।

तर्हणी - विनाश कारिणी शक्ति ।
'क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी '
अ. २.३१.१

तर्हि - (अ.) तब, उस समय ।
'न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि '
ऋ. १०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४, नि. ७.३.

उस प्रलयावस्था के समय न किसी की मृत्यु थी और न किसी का मोक्ष ।

तर – (१) तरना, तर जाना, पार कर जाना ।
'अरमयः सरपसस्तराय कम्'
ऋ. २.१३.१२
(२) ज्ञान बढ़ाने और अज्ञान से पार उतारने वाला आचार्य बृहस्पति, (३) संग्राम से पार उतारने वाला, (४) तारने वाला, (४) नौका ।
'बृहस्पतिस्तर आपकश्च गृध्रः'
ऋ. १.१९०.७

तरक्षुः– चीता ।
'श्वाकृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसाम्'
वाजसं. २४.४०

तरणि – (१) संसार से पार करने वाला परमेश्वर, (२) सूर्य, (३) रोहित ।
'विपश्चितं तरणिं भ्राजमानम्'
अ. १३.२.४
(४) सब संकटों से पार करने वाला (५) शीघ्रकारी, (६) पुरुषार्थी ।
'तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति'
ऋ. ७.३२.९
(७) महान् आकाश को पार करने वाला सूर्य ।, (८) कष्टों से तारण करने वाला विद्वान्
'तरणि र्विश्वदर्शतः
ज्योतिष्कृदसि सूर्य'
ऋ. १.५०.४, अ. १३.२.१९, २०.४७.१६, आ.सं. ५.९, वाज.सं. ३३.३६ , तै.सं. १.४.३१.१, मै.सं. ४.१०.६, १५८.१२, का.सं. १०.१३, तै.आ. ३.१६.१, महा.ना.उप. २०.७.

तरणित्व – (१) क्षिप्रकारिता, किसी कार्य को शीघ्रता से करना ।
'विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतः'
ऋ. १.११०.४, नि. ११.१६.
यज्ञ कर्मया व्यापार कर्म को (शमी) क्षिप्रकारिता सेकर (तरणित्वेनविष्टवी) मेधावी, यज्ञानुष्ठाता या व्यापारी वैश्यजन ।

तरत् – तरति (पार करता है) ।
'तरत्स मन्दी धावति'
ऋ. ९.५८.१, २,३,४, साम. १.५००, २.४०७, ४०८,४०९, ४१० . नि. १३.६. बृ.प.सं. २.१३७.
जो स्तोत्र से देवताओं को प्रसन्न करने वाले हैं (मन्दी) वह तरता है (स तरत्) अर्थात् पापों से मुक्त होता है तथा सोम की धारा से ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है (धावति)

तरद्द्वेषाः– समस्त शत्रुओं को पार कर जाने वाला ।
'तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिः'
ऋ १.१००.३
वह समस्त शत्रुओं को पार कर जाने वाला (तरद्द्वेषाः) अति सहनशील (सासहिः) बलों से वीर सैनिकों का स्वामी (पौंस्येभिः) ।

तरन्ती – (१) एक दूसरे की सहायता से कष्टों को पार करते हुए द्यावा पृथिवी, (२) स्त्रीपुरुष ।
'तरन्ती प्रियती ऋतम्'
ऋ. ४.५६.७.साम. २.९४८

तरांसि – (ब.व) (१) अविद्यान्धकार को पार करने वाले ।
'तरांसि यज्ञा अभवन्'
अ. १०.१०.२४

तरस् – (१) अविद्यान्धकार को पार करने वाला, (२) शारीरिकबल ।
'यावत्तरो मघवन् यावदोजः'
ऋ. १.३३.१२
हे इन्द्र ! जहां तक तुझ में बल हो और जहां तक ओज हो । हे राजन् ! जहां तक तुझ में शारीरिक बल हो और जहां तक आत्मिक बल हो–(दया.)

तरावी– (१) अति वेगवान् (२) बलवान् ।
'उग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम्'
ऋ. ८.९७.१०. अ. २०.५४.१, साम. १.३७०, २.२८०.

तराः– 'तरस्' का प्रथमैकवचन में रूप । अर्थ – (१) तारने वाला ज्ञान ।
'तरोर्भिर्वोविदद्वसुम्'
ऋ. ८.६६.१, साम. १.२३७,२.३७,गो.ब्रा. २.४.३, पंच.ब्रा. ११.४.५,१५.१०.४, ऐ.आ. ५.२.४.२, आश्व.श्रौ.सू. ५.१६.२, ७.४.४.

तरित्रत् – लांघता हुआ ।
'दधिक्राव्णः सहोर्जातरित्रतः'
ऋ. ४.४०.३, वाज.सं. ९.१५,तै.सं. १.७.८.३, मै.सं. १.११.२, १६,३.५, का.सं. १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५.२०

तरी– (१) समस्तु दुःखों से तारने वाला परमेश्वर ।

'जरी मन्द्रासु प्रयक्षु'
अ. ५.२७.६

तरीयान् – सबसे अधिक बलवान्।
'नभस्तरीयां इषिरः परिज्मा'
ऋ. ५.४१.१२

तरीषण् – पार करना।
'विश्वा आशास्तरीषणि'
ऋ. ४.३७.७, ५.१०.६

तरुक्षः – (१) वृक्ष के नीचे की भूमि के समान सभी को आश्रय देने वाला, (२) दुखों से तारने वाला।
'विप्रस्तरुक्ष आददे'
अ. ८.४६.३२

तरुत्र – (१) तारने वाला परमेश्वर या आचार्य, (२) दूर तक पहुंचा देने वाला।
'त्वं सत्पतिर्श्मघवा नस्तरुत्रः'
ऋ. १.१७४.१

तरुता – (१) पार करने वाला।
'अर्वद्भिरस्तु तरुता'
ऋ. १.२७.९, सामं. २.७६७
घोड़ो की सहायता से संग्राम को पार करने वाले हो। (२) संप्लवनकर्त्ता (३) पराजित कर आगे बढ़ने वाला।
'नास्यवर्ता न तरुता महाधने'
ऋ. १.४०.८
(४) तृ +तृच्। तारने वाला, (५) दुरुस्त करने वाला, बनाने वाला, सुधारने वाला।
'त्यमूषु वाजिनं देवजूतम्
सहावानं तरुतारं रथानाम्'
ऋ. १०.१७८.१, ऐ.ब्रा. ४.२०.२३, नि. १०.२८ हम उस प्रसिद्ध भयदाता, बलवान् देवों के साथ आते हुए, बलवान् रथों के तारयिता।
(६) पार उतारने वाला।
'विश्वेषां तरुतारं मदच्युतम्'
ऋ. ८.१.८१
'अर्वद्भिरस्तु तरुता'
ऋ. १.२७.९, साम. २.७६७..
(७) नाशक।
'विश्वासां तरुता पृतनानाम'
ऋ. ८.७०.१, अ. २०.९२.१६, १०५.४, साम. १.२३७,२.२८३.

तरुतारः – (१) पार पहुंचा देने वाला सैनिक, (२) शब्दान् सन्तारकः प्लावकः ताराख्य व्यवहारः –(दया.)
शब्दों को पहुंचाने वाला तार नामक व्यवहार टेलीग्राम।

तरुष् – (१) आकाश मार्ग से सूर्य के समान जाने वाला समस्त नक्षत्रादि लोक, (२) गतिशील नायक, (२) प्राण (३) सबको तारने वाला।
'ईशानासस्तरुष ऋञ्जतेनृन्'
ऋ. १.१२२.१३
वही परमेश्वर आकाश मार्ग के नक्षत्रादि लोकों को और समस्त नायकों या पुरुषों को चलाया जाता है। और वश करता है (ऋञ्जते)।
'क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि'
ऋ. २.२.३
(४) संग्राम काल (५) प्रहार, मारना।
'तनूरुचा तरुष यत्कृण्वैते'
ऋ. ६.२५ ४

तरूषस् – (१) तरन्ति शत्रुबल येन–दया. (जिसके बल से शत्रु बल को पार करते हैं) (२) संकटों से पार करने वाला, (३) शत्रुओं का नाश करने वाला।
'त्वं न इन्द्र राया तरूषसा'
ऋ. १.१२९.१०
हे इन्द्र, तू शत्रुओं को नाश करने वाले तथा संकटों से पार करने वाले ऐश्वर्य से (तरुषसाराया) हमें।

तरुषः – (१) तारने वाला अग्नि।
'अर्यः परस्या न्तरस्य तरुषः'
ऋ. ६.१५,३, १०.११५.५

तरुष्यत् – (१) हिंसाकारी।
'त्वं तूर्य तरुष्यतः'
अ. २०.१०५.१

तरुष्यती – हिंसार्थक 'तृ' धातु से 'यक्' प्रत्यय कर नामधातु तरुष्य के लट् प्रथम पुरुष ए.व. का रूप।

तरूणक – (१) तरुणक, तरुण, (२) कर्तृक नामक औषधि।
'दर्भ शोचिस्तरूणकम्'

तल्प – (१) शय्या, (२) पलग, (३) पलंग के समान सबको आराम देने वाला–परमेश्वर।

'अनातुरान् सुमनसस्तल्प बिभ्रत्'
अ. १२.२.४९

तल्पशीवरी – उत्तम शय्यापर सोने वाली ।
'नारीर्यास्तल्पशीवरीः'
ऋ. ७.५५.८

तल्पानिरक्षांसि– सेज के ऊपर होने वाले राक्षसी भाव ।
'स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति'
अ. १४.२.४१

तल्प्य – शय्या –निर्माण में प्रवीण ।
'नमस्तल्प्याय च गेह्याय च'
वाज.सं. १६.४४., तै.सं. ४.५.९१, का.सं. १७.१५.

तलव – करताल बजाने वाला ।
'आनन्दाय तलवम्'
वाज.सं. ३०.२०, तै.ब्रा. ३.४.१.१५.

तलीद्य – पसली का निकटवर्ती फेफड़ा ।
'तलीद्यमवतिष्ठति'
अ. ७.७६.३

तल्पेशया – (१) सेज पर सोने वाला, (२) नाड़ी जो सोते समय बिस्तर से सट जाती है जैसे-त्वचा, पीठ आदि ।
'प्रोष्ठेशया स्तल्पे शयाः'
अ. ४.५.३

तलाशा – एक प्रकार का वृक्ष ।
'तलाशा वृक्षाणामिव'
अ. ६.१५.३

तवस् – (१) महान्, (२) परमेश्वर विष्णु का विशेषण ।
'तं त्वागृणामि तवसमतव्यान्'
ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.७, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.
उस तुझ महान् को मैं क्षुद्र या अल्प शक्ति वाला मैं प्रणाम करता या भजता हूँ। (३) तु + असच् = तवस् । अर्थ –सामर्थ्य । (४) बलवान् इन्द्र का विशेषण ।
'अस्मा इदु प्रतवसे तुराय'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.३.५, कौ.ब्रा. २६.१६, गो.ब्रा. २.५.१५, वै.सू. ३१.१९.
इस बलवान् एवं फुर्तीले इन्द्र के लिए ।

तवस्तमः – सबसे अधिक बलशाली –रुद्र ।
'तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो'
ऋ. २.३३.३

तवस्तरः– (१) अतिबल शाली इन्द्र परमेश्वर , (२) वेदों से ज्ञेय परमेश्वर, तूयते विज्ञायते इति तवाः सोऽतिशयितः –(दया.)
'योगेयोगे तवस्तरम्
वाजे वाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ।'
ऋ. १.३०.७, अ. १९.२४.७, २०.२६,१. साम. १.१६३,२.९३., वाज.सं. ११.१४, तै.सं. ४.१.२.१, ५.१.२.२. मै.सं. २.७.२, ७५.६, का.सं. १६,१.१९.२, श.ब्रा. ६.३.२.४, आप.मं.पा. १.६.३, २.४.१.
हम मित्र बनकर ऐश्वर्य प्राप्ति के प्रत्येक अवसर पर और प्रत्येक संग्राम के अवसर पर भी रक्षा के लिए अति बल शाली और ज्ञानशाली परमेश्वर या राजा को बुलावें ।

तवस्तमा – (द्वि.व.) बहुत अधिक बल वाले –विद्युत और अग्नि, (२) इन्द्राग्नी
'युवामिन्द्राग्नी वसुनोविभागे
तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये '
ऋ. १.१०९.५
विद्युत् और अग्नि दोनों पदार्थों को फाड़ने के कार्यों में (वृत्रहत्ये) बहुत अधिक बलवाला सुनता हूं ।

तवसः तवीपान् – बलवान् से भी बलवान् –विष्णु ।
'प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्'
ऋ. ७.१००.३, मै.सं. ४.१४.५, २२१.१०.तै.ब्रा. २.४.३.५.

तवस्य – बल को बढ़ाने वाला चरु ।
'तस्मै तवस्यम् अनुदायि सत्रा'
ऋ. २.२०.८

तव्य– तवे बले भवः तव्यः (बलशाली) ।

तव्यस् – बहुत बड़ा बलशाली ।

तव्यसी – (१) अतिबलवती, (२) बलसम्पादन करने वाली धीति । अध्ययन क्रिया का विशेषण ।
'प्रतव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये'
ऋ. १.१४३.१, ऐ.ब्रा. ४.३०.१४, कौ.ब्रा. २२.१.

तव्यान् – महान् शक्तिशाली ।

तवाशा – सर्वशक्तिमानं इन्द्रपरमेश्वर ।
'गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागाम्'
ऋ. ४.१८.१०

तविष – (१) बलवान् शक्तिशब्द ।
'स्वेन भामेन तविषो बभूवान्'
ऋ. १.१६५.८
'मखस्य ते तविषस्य प्रजूतिम्'
ऋ. ३.३४.२, २०.११.२
(२) महान् ।
'इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः'
ऋ. ६.६१.२, मै.सं. ४.१४.७, २२६.९, का.सं. ४.१६, तै.ब्रा. २ .८.२.८, नि. २.२४.
यह सरैस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से पर्वतों की चोटी की कमल खनने वाले की तरह काटती है।

तविष्य – बल का कर्म करना । नामधातु ।
'तविष्यते असुरो वेपतेमती'
ऋ. १०.११, ६. , अ.१८.१.२३.

तविष्यते – सफलता के साथ समाप्त होता है या होवे ।
अग्नि की कृपा से यज्ञ (मख.) सफलता के साथ समाप्त होता है (तविष्यते) ।

तविषी – सेना, बल ।
'पितुं नु स्तोषं महोधर्माणं तविषीम्'
ऋ. ऋ. १.१८७.१, वाज.सं. ३४.७,का.सं. ४०.८, नि. ९.२५.
मैं अगस्त्य अत्यन्त बल धारण करने वाले अन्न रो भजता हूं । यह तविषीम् धर्माणम् स्तोषम् ।

तवीयस् – अप्रत्यधिक बल ।
'उग्रमुग्रस्य तुवस्तवीयः'
ऋ. ६.१८.४

तवीषी – बलशालिनी सेना ।
'आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत'
ऋ. १.१६६.४

तविषीयमान – सेना से आक्रमण करने वाला ।
'त्यंचिच्छर्धन्तं तविषीयमाणम्'
ऋ. २.३०.८

तविषीयुः – (२) बलवान् ।
'अश्वाइव वृषणस्तविषीयवः'
ऋ. ८.२३.११
(२) बलवती सेना बनाने का इच्छुक, (३) बलयुक्त वेगवान् वायु ।
'यदङ्ग तविषीयवो यायं शुभ्रा अचिध्वम्'
ऋ. ८.७.२

तविषीवान् – बलवतीसेना का स्वामी –इन्द्र ।
'उद्वावृषाणास्ततिषीव उग्रः'
ऋ. ४.२०.७

तष्टा – (१) चित्रा नक्षत्र । यह नक्षत्र बहुत चमकीला है और इसका देवता है तष्टा है । अतः इसका नाम तष्टा पड़ा । तष्टा और त्वष्टा समानार्थ है। चित्रा नक्षत्र का पृष्ठ अनेक धब्बों से चित्रित है । अतः इसे वेद में 'पृष्टामयी' भी कहा गया है ।
(२) त्वष्टा देवता, (३) बढ़ई तक्ष (करणार्थक) + तृच् = तष्टा ।

तंस् – अलङ्कृतकरना ।

तसर – (१) तन्तुजाल ।
'सामानि चक्रुस्तसराणि ओतवे'
ऋ. १०.१३०.२, अ. १०.७.४४.
(२) तिरछा तन्तु, (३) तसर जिससे रेशमी वस्त्र बुना जाता है, (४) दुःख क्षयकारक पुत्र, (५) दुःख नाशक ।
'नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेगः'
वाज.सं. १९.८३, मै.सं. ३.११.९,१५३.८, का.सं. ३८.३, तै. ब्रा. २.६.४.२.

तस्कर – (१) चोर ।
'प्रदोषं तस्कराइव'
ऋ. १.१९१.५
(२) उस उस नियम कार्य का कर्त्ता ।
'तस्काराणां पतये नमः'
वाज.सं. १६.२१,तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.५, का.सं . १७.१२.
(३) तत् + कर = तस्कर । उसे करने में समर्थ ।
'पथ एकः पीपाय तस्करों यथा'
ऋ. ८.२९.६
'तमसे तस्करम्'
वाज.सं. ३०.५,तै.ब्रा. ३.४.१.१.

तस्करा – (द्वि.व.) (१) दो चोर ।
'तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू
रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्'
ऋ. १०.४.६, नि. ३.१४.

(१) नाना और निरन्तर कार्य करने वाली भुजाएं ।

तस्ताभान – शत्रुनाशक ।

'त्वं सिन्धूरसृजस्तस्तभानान्'

ऋ. ८.९६.१८

तस्तभ्वान् – (१) घेरने वाला, (२) स्तम्भित करने वाला,(३) असमर्थ बनाने वाला ।

'उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसम्'

ऋ. २.११.५

तस्तुव – (१) एक सर्प की जाति (२) एक हिंसक ओषधि जो तस्तुव जाति के सर्प के काटने पर दी जाती है ।

'तस्तुतं न तस्तुवम्'

अ. ५.१३.११

तस्थिवांसः – भूमि पर स्थिर रूप से रहने वाले प्रजाजन ।

'ज्योक्चिदत्रतस्थिवांसो अक्रन्'

ऋ. १.३३.१५

भूमि पर स्थिर रूप से रहने वाले प्रजाजन (तास्थिवासः) चिरकाल तक (ज्योक्चित्) कृषि व्यापार आदि कार्य करें ।

तस्थुष्– 'स्था' धातु से सम्पन्न । स्थावर पदार्थ, जड़ ।

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७,१४. आ.सं. ५.३.वाज.सं. ७.४२,१३.४६, तै.सं. १.४.४३.१, २.४.१४.४, मै.सं. १.३.३७,४३.९, का.सं. ४.९, २२.५, श.ब्रा. ४.३.४,१०, ७.५.२.२७, तै.ब्रा. २.८.७.४, ऐ.आ. २.२.४.७,३.२.३.१०, तै.आ. १.७.६, २.१३.१, नि. १२.१६.

सूर्य ही जंगम तथा स्थावर पदार्थों का आत्मा है ।

तस्थुषी – (१) स्थान, (२) शरीर, (३) स्थिर प्रजा ।

'ईर्मा तस्थुषी रहभिर्दुदुह्रे'

ऋ. ५.६२.२, मै.सं. ४.१४.१०, २३१.१२, तै.ब्रा. २.८.६.६

त्मनया-त्मन्या – आत्मन् + टा = त्मन्या आ का लोप और टा का या) । अर्थ आत्मा से (२) जीवसे, (३) स्वयं ।

'उपावसृज त्मनया समञ्जन्
देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।'

ऋ. १०.११०.१०, अ. ५.१२.१०, वाज.सं. २९.३५, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१३, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१७.

हे यूप या अग्नि का गार्हपत्य अग्नि (वनस्पते)! आत्मा से या जीव से या स्वंय (त्मनया) अन्न तथा आज्य आदि हवि (पाथ हवींषि) ऋतु के अनुसार (ऋतुथा) सम्मुख कर (सम्मुखकर) देवताओं के लिए (देवानाम्) निकट आकर दो (उपावसृज)

अन्य अर्थ – हे वनस्पति अग्नि, तू अपने आप से (मनया) अपने को अभिव्यक्त कर (समञ्जन्) देवजनों के अन्न और मिष्ठान्न आदि हवियों को (पाथ हवीषिं) बना (उपावसृज) (४) किसी किसी आचार्य ने त्मना का अर्थ पशुमांस कर इसका अन्वय त्मनया समञ्जन् कर अर्थ यह किया है कि हे अग्नि पशुमांस से मिश्रित कर अन्न और हवि बना । यह अर्थ अमान्य और अनर्थ है ।

त्मन्य– अपना सामर्थ्य, बल ।

'उतत्मन्या वनस्पते
'पाथो देवेभ्यः सृज'

ऋ. १.१८८.१०

त्मन्या– अपना, स्वयम् ।

'अश्वो घृतेन त्मन्या समक्तः'

वाज.सं. २९.१०, तै.सं. ५.१.११.४, मै.सं. ३.१६.२, १८४.१६, का.सं. (अश्व.) ६.२.

त्यजस् – (१) त्याग ।

'पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधित्यम्'

ऋ. १.११९.८

अपने पिता के त्याग से दुखित पुत्र या शिष्य को । (२) पुत्र, अपने से उत्पन्न पुत्र ।

'एकस्यचित् व्यजसं मर्त्यस्य'

ऋ. १०.१०.३, अ. १८.१.३.

(३) ऐश्वर्य दान,

'महश्चिदसि व्यजसो वरूता'

ऋ. १.१६९.१, कौ.ब्रा. २६.१२. (४) जल ।

त्यत् – प्रसिद्धवह ।

'त्यमूषुवाजिनं देवजूतम्'

ऋ. १०.१७८.१, अ. ७.८५.१, साम. १.३३२, ऐ.ब्रा. ४२०.२२, २९. १६, ३१.१४, ५.१.२२,४.२३, ७.९,१२.१८,१६.२९,१८.२५,२०.२१,कौ. ब्रा.

२५.८. ऐ.आ. ५.३.१२, आश्व. श्रौ.सू. ७.१.१३, नि. १०.२८.
हम उस प्रसिद्ध भयदाता, बलवान् तथा देवों के साथ आए हुए ।

त्यः - तनु (विस्तार करना) + य = त्य । अर्थ -विस्तारक

तान् - आत्मा ।
'विश्वं त्मना बिभृतोयद्धनाम्'
ऋ. १.१८५.१, नि. ३.२२.
जो कुछ भी सब आत्मा से विभृत है अर्थात् आत्मैमय है ।

त्मना- आत्मनां (आ का लोप) ।
'मन्त्रेषु आङ्यादेरात्मनः'
पा. ६.४.१४१
अर्थ -स्वयम् ।
'विश्वेषां त्मना शोभिष्ठम्
उपेव दिवि धावमानम्'
ऋ. ८.३.२१.
वह दान सभी धर्मों में स्वयं (विश्वेषां त्मना) शोभायमान आकाश में नित्य धाने वाले सूर्य के समान है ।

त्रदः - (१) शत्रु का नाशक।
'तरणिं वो जनानाम्
त्रदं वाजस्य गोमतः'
ऋ. ८.४५.२८, साम. १.२०४

त्ववता - तुझसे सुप्रबद्ध ।
'सन इन्द्र त्वमताया इषेधाः'
ऋ. ७.२०.१०, २१.१०.

त्रप - टीन, सीसा, रांगा आदि धातु ।
'त्रपु भस्म हरितं वर्णः'
अ. ११.३.९
'सीसञ्च मे त्रपुचमे'
वाज.सं. १८.१३, वाज.सं. (का.) १९.५.१,तै.सं. ४.७.५.१, मै. सं. २.११.५, १४२.६, का.सं. १८.१०.

त्रयः अक्षराः- (१) तीन अक्षर अ, उ और म (२) अवि नाशी वेद ।
'चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः'
अ. २३.३.६

त्रयः आहावाः- तीन जलाधार मार्ग ।
'त्रय आहावस्त्रेधाहविस्कृतम्'
ऋ. १.३४.८

त्रयः काण्डा - (१) तीन प्रकार की व्यवस्थाएं, बालक युवक और वृद्ध के लिए अलग अलग तीन व्यवस्थाएं हैं, (३) तीन वेद (४) उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीनों वर्णों की तीन व्यवस्थाएं, (५) धर्म, अर्थ और काम की साधना की तीन व्यवस्थाएं ।
'त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्स्वर्गान् अरुक्षत्'
अ. १२.३.४२

त्रयः केशिनः- (१) वायु, विद्युत् और सूर्य, (२) अपनी किरणों और व्यापक चिन्हों के साथ विद्यमान पदार्थ, (३) विश्वपति परमेश्वर के तीन रूप -उत्पन्न करना, पालन करना और सहार करना ।
'त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते'
ऋ. १.१६४.४४, अ. ९.१०.२६, नि. १२.२७
(४) तीन केशी अर्थात् तेजस्वी पदार्थ-अग्नि, आदित्य और वायु या मेघ, आदित्य और वायु (५) सृष्टि, स्थिति और संहार नामक तीन ईश्वरी शक्तियाँ । तीन केश वाले देवता- अग्नि, वायु और आदित्य ऋतु के अनुसार लोक पर अनुग्रह करते हैं ।

त्रयः कोशास - (१) तीन कोश-विज्ञानमय, मनोमय और आन्दमय (२) सूर्य के तीन कोशक्रोमो-स्फीयर, फोटो स्फीयर और उद्रजनं ।
'त्रयः कोशास उपसेचनासः'
ऋ. ७.१०१.४

त्रयः घर्माः- (१) तीन तेज-आत्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।
'त्रयो घर्मा अनुरेत आगुः
अ. ८.९.१३
(२) तीन ज्योतियां ।
'त्रीन घर्मान् अभिवावशाना'
अ. ९.१.८

त्रयः तपन्ति - तीन -मेघ, वायु और आदित्य पृथ्वी की ओषधियों को परिपक्व करते हैं ।
'त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपाः
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२

त्रयस्त्रिंशः - (१) त्रयस्त्रिशत् स्तोमानाम् अधिपतिः (स्तोमों के तैंतीस अधिपति) (२) तैंतीस, (३) परमेश्वर ।

'त्रयस्त्रिंशेन जगती'
अ. ८.९.२०
(४) ज्योतिः त्रयस्त्रिशः स्तोमानाम्
'सत् त्रयस्त्रिशंस्तोमानाम्'
(५) तैंतीस विमानों से युक्त
'सवित्र औष्णिहाय
त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः'
वाज.सं. २९.६०, तै.सं. ७.५.१४.१, मै.सं. ३.१५.१०,१८०.१२, का. सं. (अश्व.) ५.१०
(६) आग्रयण ग्रह से उत्पन्न त्रयस्त्रिंशनामक स्तोम
'आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशः'
वाज.सं. १३.५८
'त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट् सहस्राः'
६३३३ या ३३, ३०३. और ६००० नक्षत्र आदि
'गन्धर्वा एनम् अन्वायन् त्रयस्त्रिंशत्
त्रिशताः षट् सहस्राः'
अ. ११.५.२

त्रयस्त्रिंशत् देवाः– तैंतीस दिव्य शक्तियां ।
'त्रयस्त्रिँशत् देवतास्त्रीणि चवीर्यानि'
अ. १९.२७.१०

त्रयः नाकाः– (१) तीन सुखमय लोक (२) तीन स्वर्ग (३) माता, पिता और आचार्य ।
'त्रीन् नाकान् त्रीन् समुद्रान्'
अ. १९.२७.४

त्रयः पनयः – (१) वज्र के समान कठोर और विद्युत् के देने वाले तीन पवि चक्र या मन्त्र (२) शरीर रूपी रमणयोग्य रथ के मन, वाणी और कार्यरूपी बलवान् वज्र ।
'त्रयः पवयो मधुवाहने रथे'
ऋ. १.३४.२
मधुर अन्न आदि और मधुर वेग आदि धारण करने वाले रथ में या स्त्री पुरुष दोनों के आनन्द प्रद रमण साधन देह में वज्रवत कठोर विद्युत् देने वाले तीन पवि यन्त्र या चक्र हो अथवा मन , वाणी और कामरूपी तीन बलवान् वज्र है ।

त्रयः पवित्राः – (१) तीन पवित्र करने के साधन प्रकाश, वायु और सूर्य, (२) पवित्र आचरण, पवित्र वचन और पवित्र विचार और मनन ।
'त्रिभिः पवित्रैपुयोद्ध्यर्कम्'
ऋ. ३.२६.८

त्रयःपादाः – (१) यज्ञ के तीन सवन ही तीन पाद हैं, (२) कुमारिल कृत तन्त्र वार्तिक के अनुसार सूर्य के तीन पाद– शीत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु है, (३) सायण ने तीन वेदों को ही तीन पाद माना है (४) शाब्दिकों के मत से तीन काल ही तीन पाद हैं–भूत, भविष्य और वर्तमान ।
'चत्वारि श्रृंगाः त्रयो अस्यपादाः'
ऋ. ४.५८.३, वाज.सं. १७.९१, मै.सं. १.६.२, ८७.१७, का.सं. ४०.७, गो.ब्रा. १.२.१६, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना.उप. १०.१,आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, नि. १३.७.

त्रयःपितरः – (१) जगत् के तीन पिता के समान पालक तीन लोक या (२) अग्नि, वायु, और सूर्य (३) तीन पितर पिता, पितामह और प्रपितामह ।
'तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् बिभ्रत्'
ऋ. १.१६४.१०, अ. ९.९.१०.

त्रयःपोषाः– तीन पुष्टियां अन्न भूमि और पशु ।
'त्रयः पोषस्त्रिवृत्तिं श्रयन्ताम्'
अ. ५.२८.३

त्रयः ब्रध्ना – (१) तीन लोक–मन, वाक् और काय, (२) तीन वाधनशील ।
'त्रीन् ब्रध्नान् त्रनि वैष्टपान्'
अ. १९.२७.४

त्रयः वृषभासः – (१) तीन वृषभवर्णन शील सूर्य विद्युत् और अग्नि अथवा (२) अग्नि, वायु और जल, (३) तीन बलवान् उत्तम प्रबन्ध कर्त्ता धर्मानुकूल शासन से चमकने वाले राजपुरुष ।
'त्रयस्तस्थुश्चवृषभासस्तिसृणाम्'
ऋ. ५.६९.२

त्रयःमातरिश्वानः – तीन वायु–प्राण, अपान और उदान ।
'त्रीन मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान्'
अ. १९.२७.४

त्रयाय्यः– (१) तीनों लोकों में व्यापक –अग्नि, (२) बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य–तीनों अवस्थाओं को प्राप्त वृद्ध पुरुष (३) मित्र, शत्रु और उदासीन (४) आगे पीछे और मध्य से आचरण करने वाले या प्रणय करने वाला, (५) विद्या, तप और कर्म या तीनों वेदों में निष्ठ ।

'सूनुर्न त्रय याय्यः '
ऋ. ६.२.७

त्रयः रथाः- (१) तीन प्रकार के रथ जल, स्थल और अन्तरिक्ष में चलने वाले, (२) जीवन के तीन काल जिनसे होकर जीवन बीतता है-शैशव, यौवन और वार्द्धक्य ।
'समुद्रस्य धन्वन् आर्द्रस्य पारे,
त्रिभी रथैः शतपद्भिःषडश्वैः '
ऋ. १.११६.४, तै.आ. १:१०.३.
सैकड़ो चरणों वाले (शतपद्भिः) और छः अश्वों अर्थात् वेगवान् यन्त्र कलाओं से युक्त समुद्र, रेत और कीचड़ तीन प्रकार की भूमियों में (समुद्रस्य धन्वन् आर्द्रस्य) अथवा जल, स्थल और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों में चलने वाले तीन प्रकार के रथों से पार करने हैं ।
अध्यात्म में शतपद् का अर्थ सौ वर्ष, षडश्व का अर्थ मन सहित पांच इन्द्रियां, समुद्र धन्व और आर्द्र क्रमशः ज्ञान कर्म और उपसना हैं।

त्रयः समुद्राः - (१) सुखदायी तथा समस्त पदार्थों के उत्पादक तीन लोक और तीन काल ।
'त्रीन् समुद्रान् समसृपत् स्वर्गान् '
वाज.सं. १३.३१, मै.सं. २.७.१६,१००.६, श.ब्रा. ७.५.१.९ .
(२) आत्मा ,परमात्मा और प्रकृति ।
'त्रीन् नाकान् त्रीन् समुद्रान्
अ. १९.२७.४

त्रयः स्कम्भासः - (१) तीन खम्भे या दण्ड, (२) शरीर के तीन स्कन्ध-शरीर, इन्द्रिय और मन ।
'त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे '
ऋ. १.३४.२
रत में तीन आलम्बन या आधार के लिए तीन खम्भे या दण्ड लगाए गए हों । शरीर में आलम्बन के लिए तीन खम्भे शरीर इन्द्रिय और मन हैं ।

त्रयःस्वर्गाः- (१) तीन सुखमय लोक (२) आध्यात्मिक, गृहस्थ और राष्ट्र, (३) तीन वेदों, के तीन क्षेत्र ।
'त्रिभिः काण्डैः त्रीन् स्वर्गान् अरुक्षत् '
अ. १२.३.४२

त्रयः सानवः - तीन सेवन योग्य पदार्थ-धर्म, अर्थ और काम ।
'नाभा पृथिव्या अधिसानुषुत्रिषु '
ऋ. २.३.७

त्रयःसुपर्णाः- (१) उत्तम पालन शक्ति से युक्त जीन सुपर्ण-अग्नि, सूर्य और सोम ।
'त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू '
अ. १८.४.४
(२) तीन शुभ ज्ञानवान् आत्मा (३) तीन प्रकार के योगी-ध्यान योगी, (४) वसु, रुद्र और आदित्य, (५) इन्द्रिय, मन और आत्मा ।
'त्रयः सुपर्णा स्त्रिवृतायदायन् '
अ. ५.२८.८

त्रयः सूर्याः - (१) अग्नि, विद्युत् और सूर्य ।
'त्रीन्मातरिश्वन स्त्रीन् सूर्यान् '
अ. १९.२७.४

त्रयः सोम्याः सरांसि - (१) तीन सोम रस के सर, (२) तीन राष्ट्रैश्वर्य के हितैषी उत्तम ज्ञान बल । सम्पन्न परिषद् ।
'त्री सरांसि मघवा सोम्याणाः'
ऋ. ५.२९.८

त्रयस्त्रिंशतमा - (१) तैंतीस देवता (२) भूमि आदि तैंतीस गुणों वाला, (३) तैंतीस प्रकार के विद्वान् ।
'त्रयस्त्रिंशतमा वह '
ऋ. १.४५.२

त्रयस्त्रिंशत् वीर्याणि - तैंतीसबल या अधिकार ।
'त्रयस्त्रिशद्यानि च वीर्याणि '
अ. १९.३७.१

त्रयस्त्रिशांसः - (१) शरीर के तैंतीस तत्व या संचालक केन्द्र
'त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः '
अ. १९.५६.३

त्रयोघर्मासः- (१) तीन प्रकार के तेज-सूर्य, अग्नि और विद्युत्, (२) सूर्य, मेघ और बलवान् पुरुष ।
'त्रयोघर्मास उषसं सचन्ते '
ऋ. ७.३३.७

त्रयोदश भौवनाः - (१) तेरह भौवन अर्थात् संवत्सर के अवयव तेरह मोस (२) विश्वकर्मा आदि तेरह भौवन सृष्टि कर्त्ता ।
'त्रयोदशं भौवन पञ्चमानवाः '
अ. ३.२१.५

त्रयोदश मास – तेरहवां महीना ।
'त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते'
अ. १३.३.८

त्रयोदशाक्षर – (१) नव बाह्य द्वार और चार अन्तः करणों में स्थित १३ अक्षय वीर्य (२) राजा के १३ प्रधान पुरुष ।
'वसवस्त्रयोदशाक्षरेण
त्रयोदशं स्तोममुदजयन्'
वाज.सं. ९.३४, तै.सं. १.७.११.२.

त्रयोवन्धुरः– तीन बाधन ।
'क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीडाः'
ऋ. १.३४.९.
और जो तीन एक ही आश्रय में जुड़े हुए विशेष वाधन हैं वे कहां है ?

त्रयो वराः– राष्ट्र के या यज्ञ के तीन प्रकार के श्रेष्ठ पुरुष ।
'त्रयोवरा यतमांस्त्वंवृणीषे'
अ. ११.१.१०

त्रसदस्यु– (१) यो दस्युभ्यः त्रस्पति –दया.(दस्युओं से भय खाने वाला) (२) दुष्टों को हराने वाला वीर पुरुष ।
'याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतम्'
ऋ. १.११२.१४
जिन उपायों से शत्रुओं के नगरों को तोड़ने आदि कार्यों में (पूर्भिद्ये) दुष्टों को हराने वाले वीर पुरुषों को प्राप्त होते हो । (३) दस्युओं को भयभीत करने वाला, (४) एक दानशील राजा का नाम । (५) दस्युओं को भय देने वाला इन्द्र ।
'यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि'
ऋ. ८.४९.१०
वैदिकराजा के अर्थ में–
'प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः'
ऋ. ७.१९.३, अ. २०.३७.३,

त्र्यक्षर – (१) तीन प्रकार का अक्षय बल –आदित्य, विद्युत् और अग्नि, (२) आकर्षण, ताप और प्रकाश ।
'विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीन् लोकान् उदजयत्'
वाज.सं. ९.३१, वाज.सं. (का.) १०.६.१, तै.सं. १.७.११.१

त्र्यनीकः– त्रि + अनीक (१) तीनों प्रकार की जीवनशक्ति, (२) ग्रीष्म, वर्षा, शरद, इन तीन ऋतुओं का स्वामी महान् सामर्थ्य युक्त सूर्य, (३) प्रकृति के तीन गुणों को धारण करने वाला परमेश्वर ।
'त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्'
ऋ. ३.५६.३

त्र्यम्बक – (१) त्रि + अम्बकः त्र्यम्बक । रुद्र का एकनाम, (२) तीनों कालों में ज्ञानमयी वेदवाणी से तीन रूप अथवा उत्साह प्रज्ञा आदि तीनों गुणों से युक्त राजा (३) तीन शक्तियों से सम्पन्न ।
'अवरुद्र मदीमह्यंवदेवं त्र्यम्बकम्'
वाज. सं. ३.५८, श.ब्रा. २.६.२.११, का.श्रौ.सू. ५.१०.१४.
(४) रुद्र, शिव ।
'त्र्यम्बकं यजामहे'
ऋ. ७.५९.१२, वाज.सं. ३.६०,तै.सं. १.८.६.२, मै.सं. १.१०.४, १४४.१२, १.१०.१२,१६०.११, का.सं. ९.७,३६.१४,श.ब्रा. २.६.२.१२ ,१४, तै.ब्रा. १.६.१०.५, तै.आ.(आंध्र) १०.५६, वै.सू. ९.१९, ला.श्रौ.सू. ५.३.७, आप.श्रौ.सू. ८.१८.२, ३.४, बृ.प.सं. ९.११४, का.उप. १, नि. १४.३५.
(५) अवि (शब्दार्थक धातु) से अम्ब बना है । अम्बति शब्दायत इति अम्ब–अम्ब + कप्= अम्बक । त्रयाणाम् अम्बकःत्र्यम्बकः ।
(६) अथवा–त्रिषु अम्बकं रक्षणं यस्य रुद्रस्य परमेश्वरस्य यद्वा त्रयाणां जीव कारण कार्याणां रक्षकः परमेश्वरः–(दया.) तीनों लोकों में जिसका रक्षण हो वह रुद्र या परमेश्वर, अथवा तीनों जीव, कारण एवं कार्य का रक्षक परमेश्वर (७) तीनों शब्दमय वेदों का उपदेशक (८) तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीनों वर्णों का उपदेष्टा रक्षक, (९) द्विपात्, चतुष्पाद् और सरीसृप तीनों का माता के समान पालक (१०) अम्बा, अम्बिका और अम्बालिनका नामक तीन औषधियों का समूह जिनके सेवन से आयु वृद्धि होती है ।
'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिँ पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्'
ऋ. ७.५९.१२.

त्र्यर- त्रि + अर (१) तीन अरों वाला जीवात्मा, (२) हिरण्यमय कोश
'त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते'
अ. १०.२.३२

त्र्यवि- त्रि + अवि = त्र्यवि (१) तीनों लोकों का रक्षक और प्रकाशक सूर्य ।
'ऊर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहणा'
ऋ. ३.५५.१४
(२) शरीर, इन्द्रिय और आत्मा तीनों की रक्षा करने वाला ।
'त्र्यविगौर्वयो दधुः'
वाज.सं. २१.१२, मै.सं. ३.११.११,१५७.१६, का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.१.
(३) माता, पिता और गुरु इन तीनों की रक्षा में रहने वाली कुमारी कन्याः ।
'रोहिण्यस्त्रयवयो वाचे'
वाज.सं. २४.५
(४) मन, वाणी और देह तीनों की रक्षा करने वाली साधना ।
'त्र्यविं गां वयो दधत्'
वाज.सं. २८.२४, तै.ब्रा. २.६.१७.१,
(५) तीन भेड़ो वाला स्त्री पुरुष ।
'त्र्यविश्चमे त्र्यवी च मे'
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२,२१.११.
(६) तीनों वेदों की रक्षा करने वाला ।
'त्र्यविर्वयः त्रिष्टुप् छन्दः'
वाज.सं. १४.१०.१८, तै.सं. ४.३.३.१, ५.१, मै.सं. २.७.२०,१०४.१७, २.८.२, १०.७.१९, का.सं. १७.२,३९,७.श.ब्रा. ८.२.४.११, आप.श्रौ.सू. १७.१.८.

त्वक् - (१) त्वचा, (२) छाल, छिलका ।

त्वक्षति- 'त्वक्ष्' (करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ- करता है ।

त्वक्षस् - (१) बल, कार्य शक्ति विवेचक और प्रकाशक ज्ञान (३) सर्वसंहारकारी बल ।
'स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च'
ऋ. १.१००.१५
वह अस्त्र शस्त्र बल से (त्वक्षसा) पृथिवी और आकाश तथा सामान्य प्रजा और राजा वर्ग दोनों से बढ़ा हुआ (प्ररिक्वा) ।
अथवा
वह परमेश्वर अपने विवेचक और प्रकाशक ज्ञान और प्रलयकारी सर्वसंहारक बल से (त्वक्षसा) आकाश, और पृथ्वी के विस्तार से कहीं बड़ा है (प्ररिक्वा) ।

त्वक्षीयस् - (१) अत्यन्त उज्जवल, (२) शत्रुओं को टुकड़े कर डालने वाला ।
'त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्'
ऋ. २.३३.६

त्वत् - समुच्चय अर्थ में प्रयुक्त अव्यय (२) च या अथवा का पर्याय आश्विन भी और पर्याय भी (३) एक , (४) अन्य ।
'स्तरीरुत्वत् भवति सूत उ त्वत्'
ऋ. ७.१०१.३

त्वद्रिग् - तेरे प्रति लगा हुआ ।
'न घा त्वद्रिगप वेति मे मनः'
ऋ. १०.४३.२, अ. २०.१७.२.

त्वं त्वम् - तू ही तू ।
'त्वं त्वमहर्यथा उपस्तुतः'
ऋ. १०.९६.५, अ. २०.३०.५

त्वष्टा - त्वर् + अशन् = तवश् । तवश् + तृन् = त्वष्ट्ट । अर्थ- (१) शीघ्र फैलाने वाला (२) अथवा -त्विष् (दीप्त्यर्थक) + तृन् = त्वष्टा । अर्थ -दीप्ति मान्, (३) त्वक्ष् (करना) + तृन् = त्वष्टा । अर्थ कर्त्ता (४) तूर्णम् अश्नुते (शीघ्र-व्याप्त होता है) तूर्ण + अश् + तृन् = त्वष्टृ (निपातन द्वारा) । शीघ्र व्याप्त होने वाला वायु (५) शिल्पी देवता, विश्वकर्मा (६) शुद्धि आदि का कर्त्ता दिव्यगुणसम्पन्न अग्नि । यज्ञाग्नि से ही अन्तरिक्ष मेघमालाओं के कारण अनेक रूप धारण करता है । पृथ्वी भी ओषधियों से रूप वती हो जाती और उत्तम भोजन पाकर प्राणी रसवान् बनते हैं ।
'तमद्य होत रिषि तोयजीयान्
देवं त्वष्टारमिहमक्षिविद्वान्'
ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९, वाज.सं. २९.३४,मै.सं. ४.१३.३,२०२. १२.का.सं. १६.२०,तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१४.
(७) दीप्त आदित्य ।
'अत्राह गोरमन्वत
नामत्वष्टुरपीच्यम्

इत्था चन्द्रमसो गृहे'
ऋ. १.८४.१५, अ. २०.४१.३, साम. १.१४७,२.२६५, मै.सं. २.१३.६, १५४.११,का.सं. ३९.१२,तै.ब्रा. १.५.८.१, अश्व.श्रौ.सू. ९.८.३, बौ.ध.शा. ३.८.८,नि. २.६,४.२५.
यहीं पर चलने वाले चन्द्रमा के मण्डल में दीप्त आदित्य के अन्तर्हित तेज का अवस्थान इस प्रकार हुआ ।
(८) सभी जावों के त्वष्टा नामक सविता देव ।
'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः'
ऋ. ३.३५.१९, १०.१०.५, अ.१८.१.५, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, शां.श्रौ.सू. १३.४.२, नि. १०.३४.
(९) रात्रिकालीन आदित्य (१०) वैद्युताग्नि ।
'त्वष्टा पोषाय विष्यतु'
ऋ. १.१४२.१०,नि. ६.२१.
वैद्युताग्नि हमारे पालन पोषण के लिए जल बरसावे, (११) विश्वकर्मा, (१२) अन्धकारमयी उषा का मध्यमभाग ।
'त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति'
ऋ. १०.१७.१, अ. ३.३१.५,१८.१.५३,नि.१२.११.
विश्वकर्मा अपनी दुहिता सरण्यू का विवाह करता है ।
अथवा,
अन्धकारमयी उषा मध्यम भाग (त्वष्टा) ने ज्योतिरुपिणी दुहिता का विवाह आदित्य से किया ।
(१२) आचार्य शाकपूणि ने इसे अग्नि अर्थ में ही लिया है । यथा,अग्निरिति शाकपूणिः । यहां अग्नि से तात्पर्य पार्थिव अग्नि से है ।
(१३) वाक् ऐ.ब्रा. । वाग्वै त्वष्टा वाचमेव तत् प्रीणाति (१४) सरण्यू (सन्ध्या के बाद और उषा के पूर्व का काल) के समकालीन अस्तंगत आदित्य का नाम त्वष्टा है। भागवत स्कन्ध ६ अ.९. में लिखा है ।
'येना वृत्ता इमे लोका
तमसा त्वाष्ट्रमूर्तना ।
सवै वृत्रमिति प्रोक्तः
पापः परम दारुणः ।'
मत्स्य पुराण ११-५ में भी लिखा है-"त्वष्ट्री स्वरूपेण नाम्ना द्यायेति भामिनी"
महाभारत में - त्वाष्ट्री तु सवितुर्भार्या लिखा है । त्वष्टा से ही छाया या रात्रि की उत्पत्ति होती है । अतः सरण्यू त्वष्टा की पुत्री है । जिस प्रकार सूर्य की सहचारिणी सूर्या सूर्य की पत्नी है उसी प्रकार यह सरण्यू त्वष्टा की पत्नी है ।
(१५) विवस्वत् । त्वष्टा का पर्याय वाची विवस्वत् माना गया है । (१६) त्वष्टा का अर्थ इन्द्र परमेश्वर या पति भी है ।
(१७) पशुओं का या दम्पति युगलों का बनाने वाला रूपपति अर्थात् सभी जीव जातियों का स्वामी (त्वष्टा पशूनां मिथुनानां रूप कृत् रूप पतिः) तै.सं. ३.८.११-२
(१८) माता के गर्भों में समान रूप से सिक्त वीर्य को तीन प्रकार से परिपक्व कर भिन्न-भिन्न रूप में बनाने वाला त्वष्टा है 'त्वष्टा वै रेतः सिक्तं विकरोति' कौ.सू. ३.९

त्वाष्ट्र (१) रेत - वीर्य का सेक्ता पति या प्रजापति
'त्वाष्ट्रेणाहं वचसा'
अ. ७.७४.३

त्वष्ट्रःउत्तरः पिता- शिल्पियों का उत्कृष्ट पिता-परमेश्वर ।
'पिता त्वष्टुर्य उत्तरः'
अ. ११.८.१८

त्वः - तनु + व = त्व । विनिग्रहार्थक सर्वनाम । यह अनुदात्त है । परन्तु कुछ लोग इसे उदात्त मानते हैं । अर्थ-कोई एक । सर्वनाम 'त्वत' का प्र.पु.ए.व. में रूप त्वः है ।
'उतत्वः पश्यन् न ददर्शवाचम्'
ऋ. १०.७१.४,नि. १.१९.
कोई एक पुरुष (त्वः) पढ़कर या मन से पर्यालोचन कर (पश्यन् उत) वेद की वाणी नहीं समझता (वाचं न ददर्श) ।
हिन्दी के 'कोई तो का 'तो' वैदिक 'त्वः' का बिगड़ा रूप प्रतीत होता है ।
'ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्'
ऋ. १०.७२.११, नि. १.८.
एक होता (त्वः) देवताओं की ऋचाओं का यथा विधि कर्मों में उपयोग करता हुआ (पोषं पुपुष्वान्) रहता है (अस्ति) ।
(२) अर्ध, आधा । निरुक्त में त्वोनेम इति अर्धस्य' ऐसा कहा है । एक से दो भाग होकर

जो विस्तार हो जाता है वही त्वं है, अतः 'त्व' का अर्थ 'अर्ध' हुआ । (३) कौन एक ।
'युध्यै त्वेनसंत्वेन पृच्छै'
ऋ. ४.१८.२

त्सर् – (१) कुटिल चाल चलना ।
'त्सरैन् विषक्तं बिल आससाद'
अ. १२.३.१३
(२) भेष बदलकर सतीत्व नष्ट करना
'यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति'
अ. ८.६.८

त्सरु – (१) कुटिल चारी सर्प, (२) छद्म गति से छूने से देह में फैलने वाला रोग, (३) ब्रह्मचारी, (४) कुटिल काम क्रोधादि
'मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः'
ऋ. ७.५०.३

ता – (अ.) अतः ।
'तामे जराय्व जरं मरायु'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्वनी कुमारो । इसीलिए तुम मुझ जरायु अर्थात् मरणशील को अमर करो ।

ताजद्भंग – ताजत् + भंग । अर्थएरण्डद्रुम–हारिल ने कौशिक सूत्र भाष्य में लिखा है । रेड़ का पेड (२) सूखा सरकण्डा ।

ताड – प्रहार ।
'नोरसि ताडमाघ्नते'
अ. १९.३२.२

तात् – जितना, उतना ।
'यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम्'
ऋ. ६.२१.६

तात्या– उस समय ।
'क्वस्वित् तात्या पितरा व आसतुः'
ऋ. १.१६१.१२

ताती – तते व्यापके परमेश्वरे साधुः ताती (व्यापक परमेश्वर में निष्ठ वुद्धि) ।
'अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरम्
पृक्षो नो अर्वान्युहीत वाजी'
ऋ. ७.३७.६

तातृपि – (१) सबको तृप्त करने वाला सामर्थ्य ।, (२) तृप्तिकारी अन्न ।
'पिबा वृषस्व तातृपिम्'
ऋ. ३.४०.२, अ. २०.६.२, ७.४

तातृषाणः – तृषा का अनुभव करता हुआ, प्यासा ।
'यस्तातृषाण उभयाय जन्मने
मयः कृणोषि प्रय आच सूरये'
ऋ. १.३१.७
जो दोनों जन्मों में सुख प्राप्त करने और उनको उत्तम बनाने के लिए तरसता रहता है उस विद्वान् के लिए तू परम सुख और अन्न, ऐहिक सुख–श्रेय और प्रेम दोनों प्रदान करता है ।
'तीर्थेनाच्छा तातृषाणमोकः'
ऋ. १.१७३.११
'तातृषाणो न वंसगः'
ऋ. १.१३०.२
प्यासे वृषभ के समान ।
'आयोवना तातृषाणोन भाति'
ऋ. २.४.६

तातृषि – तृप्ति करने वाला ।
'पिबा वृषस्व तातृपिम्'
ऋ. ३.४०.२, अ. २०.६.२,७.

तादीला – उस समय (तदानीम्), वर्णविपर्यय से 'आ' के स्थान में 'ई' और 'ई' के स्थान में 'आ' तथा 'तुट्' का आगम हुआ है ।
'तादीत्ना शत्रुंन किला विवित्से'
ऋ. १.३२.४, तै.ब्रा.२.५.४.३.
तभी तू अपने राष्ट्र में निश्चय से शत्रु को भी नहीं प्राप्त कर सकेगा ।

तादुरी – (१) 'तदुर' अर्थात् मेढ़क की बच्ची, (२) तद् + उर = तदुर । उरु अर्थात् पर ब्रह्म की ओर जाने वाले या पर ब्रह्म में लीन आत्मा के पुत्री स्वरूप ।
'वर्षमावद तादुरि'
ऋ.खि. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१४, नि. ९.७.
(३) तैरने वाली (४) समस्त शरीर में विस्तृत उदर वाली मेढ़क की जाति (तरणशीला) ।
तावत् + उदरि= तादुरि ।
इसी से दादुर शब्द निकला है ।

तान्वः– (१) तनु सम्बन्धी ज्ञान का वेत्ता ।
'सद्यो दिदिष्ट तान्वः'
ऋ. १०.९३.१५
(२) देहवादी ।
'जहच्छर्याणि तान्वा'
ऋ. ९.१४.४

(३) जनु से उत्पन्न पुत्र ।
'न जामये तान्वो रिक्थमारैक'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.
बेटा बहन के लिए पैतृक धन न दे ।

तानु – विस्तृत सामर्थ्य ।
'गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा'
ऋ. ९.७८.१

तापयिष्णु – तपाने वाला ।
'निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः'
ऋ. १०.३४.७

ताम्र – ताम्बा आदिधातुओं का प्रयोग करने वाला ।
'नमस्ताम्राय चारुणाय च'
वाज.सं. १६.३९,तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७.२,१२६.२ का.सं. १७. १५.

तायत् – छिपकर चोर के समान आचरण करता हुआ ।
'यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः'
अ. ७.१०८.१.

तायमान – (१) विस्तृत होता हुआ ।
'सरस्वतीमध्वरे तायमाने'
ऋ. १०.१७.७, अ. १८.१.४१,४.४५, का.सं. १७.१८.
(२) किया जाता हुआ ।

तायादर – सन्तान उत्पादक अंग-योनि ।
'यथा पसस्तायादरम्'
अ. ६.७२.२

तायु – (१) चौर ।
'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुम्
अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु'
ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४
और इस दधिक्रावा इन्द्र को देख कर युद्धों में बैरी चिल्लाने लगते हैं जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर देखकर लोग चिल्लाते हैं, और युद्ध में वस्त्र तक चुरा लेने वाले चोर की तरह (भरेषु वस्त्रमथिं तायुं न) जिस राजा को बैरी या प्रजा जन कोसते हैं । -(दया.)
(२) पालक, (३) सन्तानार्थिनी स्त्री । तायृ सन्तानपालनयोः। तायृ धातु सन्तान और पालन अर्थों में आया है ।
'अप त्ये तायवोयथा
नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः'
ऋ. १.५०.२, अ. १३.२.१७, २०.४७, १४, आ.सं. ५.७.
जिस प्रकार रात्रि के कालों में नक्षत्र गण चन्द्रमा के साथ संगत होते हैं और दिन में दूर हो जाते हैं उसी प्रकार सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्रियां भी (तायवः) आह्लादकारी पति के साथ ऋतु रात्रियों में संगत हों ।

तार् – तारा, Star
'दिवि तारो न रोचन्ते'
ऋ. ८.५५.२

तार– जल समुद्रादि से तारने वाला ।
'नमस्ताराय'
वाज.सं. १६.४०,तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७,१२६.४, का.सं. १७.१५.

तार्क्ष्य – (१) रथ या अश्व, (२) अश्ववत् बलवान् राजा, (३) व्यापक परमेश्वर ।
'स्वस्तिनः तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः'
ऋ. १.८९.६, वाज.सं. २५.१९,साम २.१२.२५, मै.सं. ४.९.२७,१४०,२ का.सं. ३५.१, तै.आ. १.१.१, २१.३, १०.१.९, आप.श्रौ.सू. १४.१६.१, नृसिंह पू.ता.उप. १., नृसिहं.उ.ता.उप. १.
(४) त्वरित् शक्ति वाला सेनानी ।
(५) अन्तरिक्ष में तीक्ष्ण बाणों को फेंकने वाला
'तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१८, तै.सं. ४.४.३.२, मै.सं. २.८.१०,११५.६, का. सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१९.
(६) तृ + क्षि + ञ्य = तार्क्ष्य, अर्थ है-वायु । यह विस्तृत अन्तरिक्ष में निवास करता है, यह शीघ्र प्रयोजन की रक्षा करता है ।
त्वर् + रक्ष् + ञ्य = तार्क्ष्य
(८) यह शीघ्र फैलता है त्वं + अश् + ञ्य = तार्क्ष्य (९) तष्टा, रथ आदि का निर्माता
'स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम'
ऋ. १०.१७८.१, अ. ७.८५.१, साम. १.३३.२, ऐ.ब्रा. ४.२०.२५, नि . १०.२८.
(१०) तृक्ष् (गत्यर्थक) + ण्यत् = तार्क्ष्य (११) तृक्षितुं वेदितुं योग्यः = तृक्ष्यः । स एव तार्क्ष्यः ज्ञातव्य परमेश्वर -दया. (१२) विद्वान्, ज्ञानी, (१३) वेग से अत्यन्त जाने वाला शिल्पी

(१४) वेग से शत्रुपर आक्रमण करने वाला, (१५) व्यापक सर्वप्रेरक परमेश्वर ।
'स्वस्ति नः तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः '
विद्वान् ज्ञानी या वेग से अत्यंत जाने वाला शिल्पी (तार्क्ष्यः) रथ चक्र की न टूटने वाली धारा वाला होकर हमें मार्ग लांघने सुख प्रदान करें और वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर पुरुष अटूट दृढ़ हथियारों से युक्त हो हमें विजय सुख दे ।
अथवा व्यापक प्रेरक परमेश्वर जो दुष्टों का नाशक है हमें सुख दें ।

तार्प्य- (१) तर्पणार्ह, प्रीतिकर, (२) आत्मा को तृप्त करने वाला प्रेम या भोग्य पदार्थ, (३) तृपा नामक तृण का बना वस्त्र ।
'तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर '
अ. १८.४.३१

तार्ष्टाघी - तार्ष्ट + अघी । तृषा रोग को दूर करने वाली ।
'तार्ष्टाघीरग्वे समिधः '
अ. ५.२९.१५

तारकः - (१) तारने वाला, (२) दूर देशों तक ले जाने वाला ।
'सिध्मास्तारकाः '
वाज.सं. २४,१०, मै.सं. ३.१३.११, १७०.११, आप.श्रौ.सू.२०.१४.६.

तारके - (१) तारने वाले प्राण और अशन, (२) विद्या और अविद्या, (३) उत्तरायण और दक्षिणायन ।
'विचृतौनाम तारके '
अ. २.८.१,३.७.४,६.१२१.३, तै.आ. २.६.१.
(४) तारे ।

तारका- (स्त्री) दुःख सागर से तारने वाली ।
'यामाहुस्तारकैषा विकेशीति '
अ. ५.१७.४, कौ.सू. १२६.९.

तालु- तृ + ञुण् = तारु = तालु । अथवा लत (लम्बा अर्थ में प्रयुक्त धातु) का विपर्यय से तल कर ञुण् प्रत्यय जोड़कर तालु शब्द बना ।

ताबुव- (१) सर्प की एक जाति (२) ताबुव नामक सर्प की ओषधि - शायद कड़वा तुम्बा । कौशिक सूत्र में इस मंत्र से उसका जलपान करना लिखा है ।
'ताबुवं न ताबुवं नषेत् त्वमसि ताबुवम् ।
तस्तुवेनारसं विषम् '
अ. ५.१३.१०

त्या- (सर्वनाम) । अर्थ - वह ।
'ऐता उत्या उषसः केतुमक्रत '
ऋ. १.९२.१, साम. २.११०५, नि. १२.७.

त्रा - रक्षक ।
'तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वतत्राम् '
ऋ. १.१००.७

त्रामन् - (१) त्राण करने वाला साधन ।
(२) त्रै + मनिन् = त्रामन् । जिसका त्राण किया जाय + शूर , धार्मिक विद्वान्, (३) देह का रक्षक कवच आदि ।
'त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिः
तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् '
ऋ. १.५३.१०
अपने रक्षा-साधनों से (तव ऊतिभिः) तू उत्तम यशस्वी ज्ञानी और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त राष्ट्र और राष्ट्रपति की रक्षाकर (सुश्रवसम् आविथ) । हिंसक शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर सैनिक गण को भी (तूर्वयाणाम्) देहों के रक्षक कवच आदि साधनों से (त्रामभिः) सुरक्षित रख ।

त्रामण- रक्षा, पालन ।
'सुदीतयो नद्य स्त्रामणेभुवन् '
ऋ. ५.४६.६

त्रायमाण - (१) रक्षा करने वाली शक्ति (२) रक्षा करने वाला देवता ।
'त्राणमाणे द्विपाच्च सर्वम् नः '
अ. ६.१०७.१

त्रायमाणा - एक औषधि ।
'त्रायमाणां सहमानाम् सहस्वतीम्
अ. ८.२.६

त्र्यायुषं - (१) तिगुनी आयु ।
'त्र्यायुषं जमदग्नेः '
अ. ५.२८.७, वाज.सं. ३.६२,वाज.सं. (का.) ३.९.४, शां.गृ.सू. १.२८.९, साम.मं.ब्रा. १.६.८, गो.गृ.सू. २.९.२१, हि.गृ.सू. १.९. ६, आप. मं.पा. २.७.२, जै.उ.ब्रा. ४.३.१.
(२) बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य आदि तीनों अवस्थाओं अथवा तिगुनी आयु से युक्त ।

त्र्यशिरः – (१) बालक युवा वृद्ध तीनो द्वारा उपभोग करने योग्य, (२) वसुरुद्र और आदित्य द्वारा उपभोग करने योग्य ।
'सोमा इव त्र्याशिरः'
ऋ. ५.२७.५

त्रासते – रक्षा करता है
'सनस्त्रासते वरुणास्यधूते'
ऋ. १.१२८.७
वह अग्नि हमें रात के अधिकार से रक्षा करता है । अथवा, वह राजा शत्रुओं के हिंसाकारी सैन्य बल से रक्षा करता है ।

त्वादात – त्वया दातव्यम्–तुझ से दिया जाने वाला पदार्थ । त्वया का त्वा और और दातव्यम् का दातम् हो गया है । तुझ से सुशोभित तेरे द्वारा स्वीकृत सुरक्षित (२) तुझ से दिया पदार्थ
'इन्द्र त्वादातमिद् यशः'
ऋ. १.४०.७, ऋ.३.४०.६, अ. २०.६.६, साम. १.१९५.

त्वानिद् – तेरी निन्दा करने वाला ।
'त्वानिदो नितृम्पसि'
ऋ. ८.७०.१०

त्वायत् – तुझ प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ ।
'इन्द्र त्वायन्तः सखायः'
ऋ. ७.२४.५, अ. २०.१८.१,साम. १.१५७, २.६९.
(२) तुझे चाहने वाला ।
'त्वायन्द्र्यो मघवञ्छर्म यच्छनः'
ऋ. १.१०२.३
तुझे चाहने वाले हम सबको हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! कल्याण दो । पुनः
'त्वं न इद्र त्वाभिरूती त्वायतः'
ऋ. २.२०.२

त्वाया– (१) त्वदीयया नीत्या (तेरी नीते से) ज.दे.श. (२) तुझ से –सा. ।
'प्र ये गृहादममदुस्त्वाया'
ऋ. ७.१८.२१
जो तेरी नीति से (त्वात्वाया) गृहस्थाश्रम को पाकर (गृहात्) अत्यन्त प्रसन्न हुए (प्रअममदुः) अथवा, जो ऋषि तुझ से या तेरे साथ (त्वाया) घर पर या घर जाकर (गृहात्) सोम पीकर या यज्ञों में अत्यन्त प्रसन्न हुए (प्राममदुः)
(३) तेरी कामना ।
'त्वाया हविश्चकृमासत्यराधः'
ऋ। १.१०१.८

त्वायु – (१) तेरी कामना करने वाला ।
'वयमिन्द्र त्वायवः'
ऋ. ३.४१.७.
(२) तेरे उत्पन्न किये व्यवहारों से युक्त ।
(३) तुझे प्राप्त करने का इच्छुक ।
'सुता इमे त्वायवः'
ऋ. १.३.४,. अ. २०.८४.१, साम २.४९६, वाज.सं. २०.८७.

त्वावत् – तेरे जैसा , तुझे अपनाने वाला ।

त्वावसु – (१) तुझ से ऐश्वर्य पाने वाला, (२) तुझ में ही बसने और रमने वाला, (३) तेरे अधीन रहने वाला ।
'कस्तमिन्द्र त्वावसुम् आमर्त्यो दधर्षति'
ऋ. ७.३२.१४, साम. १.२८०, २.१०३२.

त्वावान् – (१) अपने जैसा अद्वितीय (२) आत्म–सामर्थ्य से स्थिर ।
'आ घ त्वावान् त्मनाप्तः'
ऋ. १.३०.१४, अ. २०.१२२.२, सामं. २.४३५.
(३) तुझ सहायक को पाने वाला ।
'विघत्वावां ऋतजातयंसत्'
ऋ. १.१८९.६

त्वावृध् – तेरे बल से बल से बढने वाला ।
'त्वावृधोमघवन् दाश्वध्वरः'
ऋ. १०.१४७.४

त्वावृधा – तुझको बढ़ाने वाली देवी ।
'देवी यदि तविषी त्वावृधातये'
ऋ. १.५६.४

त्वाष्ट्र – (१) त्वष्टा या शिल्पी द्वारा बनाया यन्त्र प्रबन्ध, (२) सूर्य का तेज ।
'महि त्वाष्ट्रम् उर्जयन्तीरर्जुयम्'
ऋ. ३.७.४
(३) शिल्पियों से प्राप्त होने योग्य पदार्थ ।, (४) परमेश्वरीय ।
'अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपम्'
ऋ. २.११.१९
(४) वृत्र का एक नाम । ऐतिहासिक पक्ष वाले व्याख्याता, त्वाष्ट्र नामक एक असुर को ही वृत्र कहते हैं । भागवत स्कन्द ६.९ में त्वाष्ट्र का उल्लेख निम्नालिखित हैं–

'येनावृता इमे लोकाः
तमसा त्वाष्ट्र मूर्तिना
स वै वृत्र इति प्रोक्तः
पापः परम दारुणः ।'
पुनः–
'त्वाष्ट्री स्वरूपेण
नाम्ना छायेति कामिनी'
मत्स्य पु. ११.५.
पुनः –
त्वाष्ट्री तुसवितुः भार्या–महा.
वस्तुतः त्वष्टा शब्द बहुत रहस्यमय है । सूर्यास्त के बाद और उषा के पूर्व का तमसाच्छन्न काल सरण्यू है और उसी के समकालीन अस्तंगत आदित्य का नाम त्वष्टा है । इस काल के तमस् को या सृष्टि के आदि में तमस् को ही वृत्र या त्वाष्ट्र कहा गया है । सृष्टि के प्रारम्भ के बाद वृत्ररूप अन्धकार से मुक्ति पाना समस्या थी । विद्वानों को आर्यों के आदि निवास स्थान का पत लगाने में त्वष्टा, त्वाष्ट्र, वृत्र सरण्यू आदि शब्द अत्यन्त सहायक हैं ।

त्वाष्ट्र वचः – इन्द्र, परमेश्वर, या पति का वचन ।
'त्वाष्ट्रेणाहं वचसा'
अ. ७.७४.३

त्वाष्ट्रौ – शत्रु सेनाओं को शस्त्रों से विनष्ट करने वाले ।
'त्वाष्ट्रौ लोकमशसक्थौ सक्थ्योः'
वाज.सं. २४.१, तै.सं. ५.५.२३.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१२, का.सं. (अश्व) ८.२

त्सारी– (१) कुटिल गामी, छदमगति से चलने वाला कुटिलाचारी ।
'त्वां त्सारी दसमानो
भगभीष्टे तक्वनीये'
ऋ. १.१३४.५
कुटिलाचारी (त्सारी) शत्रुओं का नाश करता हुआ (दसमानः) तुझ ऐश्वर्य वान् पुरुष की और प्रजापीड़क पुरुषों के दूर करने के उत्तम कार्य के निमित्त का (तृक्ववीये) स्तुति करता है । (इष्टे) ।

तिग्म – तीक्ष्ण,।

तिग्मजम्भः– (१) तीव्र मुख वाला, (२) तेजोमय मुख या ज्वाला वाला अग्नि, (३) तीक्षा नाखश साधनों वाला ।
'स तिग्मजम्भ रक्षसो दहप्रति'
ऋ. १.७९.६, २.९१३,
'प्र तां अग्नि र्बभसत् तिग्मजम्भः'
ऋ. ४.५.४
अग्नि के अर्थ में –
'तिग्मजम्भस्य मीढुषः'
ऋ. ४.१५.५

तिग्मतेजसः रुद्राः – तीक्ष्ण प्रकाश वाले रुद्र नामक केतुग्रह अथवा प्राण अपान आदि ११ रुद्र ।
'शं रुद्रास्तिग्मतेजसः'
अ. १९.९.१०

तिग्मभृष्टिः – (१) तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त सूर्य, (२) पापों को भस्म करने में समर्थ ।
'साम द्विबर्हा महितिग्मभृष्टिः'
ऋ. ४.५.३

तिग्महेतः – तीक्ष्ण शस्क्षों को धारण करने वाला ।
'न्यमित्रा ओषतात् तिग्महेतेः'
ऋ. ४.४.४, वाज.सं. १३.१२, तै.सं. १.२.१४.२, मै.सं. २.७.१५, ९७.१२, का.सं. १६.१५.

तिग्ममूर्धा – तीक्ष्ण सिर से युक्त प्राण ।
'दिद्यवस्तिग्म मूर्धानः'
ऋ. ६.४६.११

तिग्मश्रृंगः – (१) अंधकारों का नाश करने वाले तीक्ष्ण प्रकार से युक्त परमेश्वर, (२) तीक्ष्ण श्रृंग वाला वृषभ ।
'वृषभो न तिग्मश्रृंगः'
ऋ. १०.८६.१५, अ. २०.१२६.१५.

तिग्मशोचिष् – तीक्ष्ण ज्वाला या दीप्ति वाला –अग्नि ।
'प्रपूतास्तिग्मशोचिषे'
ऋ. १.७९.१०
तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्नि या परमेश्वर के लिये आचार आदि के पवित्र प्रभावजनक वाणियों को ।

तिग्मानीक – (१) तीक्ष्ण तेज से उज्वल मुख वाला सूर्य, (२) तीक्ष्ण सैन्य वाला पुरुष ।
'तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु
विरोचमानं परिषीं नयन्ति'
ऋ. १.९५.२, तै.ब्रा. २.८.७.४.

तिग्मायुधः– तीक्ष्ण आयुधवाला रुद्र का विशेषण ।

'तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु नः'
ऋ. ७.४६.१, तै.ब्रा. २.८.६.८, नि. १०.६,
तीक्ष्ण आयुध वाले रुद्र के लिये स्तुतियां अर्पित कर और वे हमारी स्तुति सुनें ।

तिगित – तीक्ष्ण । तिग् + क्त = तिगित ।
'अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति'
ऋ. १.१४३.५
योद्धा जिस प्रकार शत्रुओं को तीक्ष्ण शस्त्रों से नाश कर देता है ।

तिग्मेषु, तिग्मेषनः– (पु.) तीक्ष्ण बाण धारण करने वाला
'तिग्मेषव आयुध संशिशानाः'
ऋ. १०.८४.१, अ. ४.३१.१, तै.ब्रा. २.४.१.१०, नि. १०.३०.
तीक्ष्ण बाणधारी योद्धा गण आयुधों का प्रयोग कर मारते काटते हुए ।

तितउ – (पु.) चलनी । चालनी तितउः प्रमान् –अमर तितउ परिपवनं भवति–ततवत् वा तुन्नवत् वा तिलमात्रं तुन्नम् इतिवा (तितउ चलनी का नाम है, क्योंकि यह तत (चमड़े) से नद्ध रहता है, तुन्न या छिद्र वाला या तिल सदृश छिद्रों से युक्त रहता है । तन + उउ = तितउ . पृषोदरादिवत् ।
'सक्तु मिव तितउना पुनन्तः
यत्र धीरा मनसावाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२, नि. ४.१०.
जिस प्रकार चलनी से चालकर सत्तू शुद्ध करते हैं उसी प्रकार ध्याजवान् या धीमान पुरुष प्रज्ञा या मन से शुद्ध वचन बोलते हैं ।

तितिर्वसु – तृ + क्वसु । सम्यक् प्रकार से तरता हुआ ।
'तितिर्वांसो अतिस्त्रिधः'
ऋ. १.३६.७

तित्तिरि –(१) तृ +ई (कित् भाव) = तित्तिरि (उछलने वाला पक्षी) । तीतर (२) तिलयात्र चित्रितः = तिलचित्रः तिद्चिर= तित्तिर = तित्तिरि । तीतर वर्षाऋतु का एक पक्षी है ।
'वर्षाभ्यस्तित्तिरीन्'
वाज.सं. २४.२०, मै.सं. ३.१४.१, १७२.१८, का.सं. (अश्व.) १०. ४, श.ब्रा. १३.५.१.१३, आप.श्रौ.सू. २०.१४.५.

तित्रत् – पार करता हुआ ।
'यदाशवः पद्याभिस्तित्रतोरजः'
ऋ. २.३१.२

तित्विषाण– निरन्तर कर चमकने वाला
'त्विषिः सा तेतित्विषाणस्य नाधृषे'
ऋ. ५.८.५

तिरश्चा – (१) तिरछीगति से (तिर्यञ्च)' शब्द के तृतीय एक वचन का रूप ।
'गोर्नपर्व विरदा तिरश्चा
इष्यन् अणीस्यपां चरध्यै'
ऋ. १.६१.११२, २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.११, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.
तिरछी चाल से जाते हुए सूर्य जैसे (तिरश्चा इष्मन्)मेघों के जोड़ो को (गोःपर्व न) अन्तरिक्ष के जलों की प्राप्ति के लिये विदीर्ण करता है (अपाम्) अर्णासि चरध्यै) उसी प्रकार हे राजन् तू शत्रु सेंध को विदीर्ण कर (विरद) । –दया. जलों की कामना करता हुआ (अर्णांसि इष्यन) जलों को बहाने के लिये (अपो चरध्यै) हे इन्द्र, मेघों को या वृत्र को विदीर्ण कर (विरद) जैसे पशुओं के जोड़ो का मांसाहारी विदीर्ण करते हैं (गो.पर्व न) ।
(२) आसन्दी (चौकी) के सिरहाने और पैर की ओर की पाटी

तिरश्चित् – (१) दूर देश से भी (२) अप्राप्त स्थान में भी ।
'तिरश्चिदर्यया परिवर्तिर्यातम्'
ऋ. ५.७५.७, नि. ३.२०
हे अश्विनीद्वय, तुम दोनों प्राप्त या अप्राप्त स्थान में भी (तिरश्चित्) समर्थ रथ गति या दैव गति से (अर्यया) परिवर्तन कर आओ (परिवर्तिः यातम्) या दूर देश से भी हमारे घर में आओ ।

तिरश्चिराजि – (१) तिरछी धारियों वाला ।
'नमस्तिश्चिराजिभ्यः'
अ. ६.५६.२
(२) तिरछी धारी वाला सर्प ।
'तिरश्चिराजेरसितात'
अ. ७.५६.१

तिरश्चिराजी – (१) टेढ़ो पर राज्य करने वाला, (२) तिर्यक् ऋजन्तुओं के भी विविध रूप से चमत्कारी ।

'तिरश्चिराजी रक्षिता'
अ. ३.२७.२

तिरश्चीः– तिरछी वेदना ।
'यास्तिरश्चीरुपर्षन्ति'
अ. ९.८.१६

तिरश्चीन पृश्निः– तिरछेया आड़े शरीर पर चिटकने वाले चित्र विचित्र वर्ण वाला ।
'पृश्निस्तिश्चीन पृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः'
वाज.सं. २४.४,तै.सं. ५.६.१२.१, मै.सं. ३.१३.५, १६९.८,का.सं.(अश्व.) ९.२.

तिर्यक रम्भ – धान या चावल का मिश्रण ।
'करम्भं कृत्वा तिर्यम्'
अ. ४.७.३
पैप्पलाद शाखा के पाठ के अनुसार 'करम्भ कृत्वा तिर्यम्' है। निरय नामक धान का चावल मेद बढ़ाने वाला पुष्टिकर होता है ।
'निरयो मधुरः स्निग्धः
शीतलो दाहपित्तजित् ।
त्रिदोष शमन्तो रुच्यः
पथ्यः सर्वामियामपुद्'

तिर्यग्बिलः चमसः – तिरछेमुख वाला कटोरा –यह सिरः (२) आकाश मण्डल ।
'तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः'
अ. १०.८.९, नि. १२.३८.

तिर्यग्बिलः– (१) जिसके नीचे छिद्र हो । यह शब्द आदित्य का विशेषण है । क्योंकि आदित्य नीचे की ओर किरणों को फैलाने वाला है । (२) आध्यात्म अर्थ में यह शिर का विशेषण है, क्योंकि शिर समस्त शरीर को ऊपर से भी बांधकर नियन्त्रित करता है ।
'तिर्यग्बिलश्चमसः ऊर्ध्वबुध्नः'
सूर्य नीचे से किरणों को विस्तृत करने वाला है–चमस के सदृश है तथा जगत् को उब्दोधित या प्रकाशित करने वाला है या नियन्त्रण रूपी बन्धन में जगत् को जकड़े रखता है । आध्यात्म अर्थ में सिर शरीर को नियन्त्रित रखता है अतः वह तिर्यग्बिल और ऊर्ध्वबुध्न है ।

तिर्यञ्चः तन्तवः – खाट के तिरछे लपेट–नीवार का रस्सी ।
'ऋचाः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः'
अ. १५.३.६

तिरिन्दिर – (१) तिरः तीर्णतमः इन्दिरः इन्द्रः (२) जीर्णतम, (३) सर्वोपरि ऐश्वर्यवान् (४) शत्रुहन्ता राजा ।
'शतमहं तिरिन्दिरे'
ऋ. ८.६.४६, शां.श्रौ.सू. १८.११.२१

तिरीटिन् – (१) उन्मार्गगामी, (२) टेढ़े रास्ते पर जाने वाला कुपथगामी ।
'क्लीबरूपान् तिरीटिनः'
अ. ८.६.७

तिरः– ओझल होकर ।
'पतिर्वा जाये त्वत् तिरः'
अ. १२.३.३९

तिरोअह्नय – (१) विगत या वर्तमान् में प्राप्त दिन का कमाया, (२) तिरश्चीन दिनों में साधु–(दया.)
'नासत्या तिरो अह्नयं जुषाणा'
ऋ. ३.५८.७
(३) सायंकाल या सूर्यास्त काल का आहुत पुरोडाश (४) दिन व्यतीत हो जाने पर प्राप्त अन्न ।
'अग्ने वीहि पुरोडाशम् आहुतो तिरो अह्नयम्'
ऋ. ३.२८.३

तिरोजन – जनों से परे, जंगल में ।
'यदिवासि तिरोजनम्'
ऋ. ७.३८.५

तिरोदधे–तिरोहित कर देते हैं–छिपा देते हैं आरम्भ ।
'महः समुद्रं वरुणः तिरोदधे'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.
विद्युत् नामी महान् वरुण आदित्य को मेघ जाल से तिरोहित कर देते हैं ।

तिरोधा – (१) विराट् का एक रूप (२) छिपाने की कला ।
'तामितरजना उपाह्वयन्त. तिरोधएहीति'
अ. ८.१० (५) ९

तिरःवर्तिः– प्राप्त आजीविका का कार्य, मार्ग या गृह ।
'तिरश्चिदर्ययापरि
वर्तिर्यातम् अदाभ्या'
ऋ.५.७५.७, नि. ३.२०.

तिरस् – तृ + असुन् = तिरस् । अर्थ होता है– (१) तिरा हुआ नीचे की ओर । (२) तीर्णतम,

महान्,
'तिरः धन्वाति रोचते'
आदित्य रूप में अवस्थित अग्नि की तीर्णतम् इस महान् अन्तरिक्ष को पारकर (अति) हम लोगों को प्रकाशित करते हैं (सोचते)।

तिल- तिल, नारियल आदि। तृ + अ = तिर = तिल।
'माषाश्च मे तिलाश्च मे'
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२, मै.सं. २.११.४,१४२.२, का.सं. १८.९.

तिलपिञ्जा - तिल की फली।
'तिलस्य तिलपिञ्ज्या'
अ. २.८.३

तिलमिश्राः- (१) तिल से मिले चावल (२) तिल के समान काली अन्धकारमय रात्रियों सहित (३) प्रकाश हीन नक्षत्रों से मिले।
'तिलमिश्राः स्वधावतीः'
अ. १८.३.६९,४.२६,४३.

तिलवत्साः - तिलों के समान स्नेह युक्त छोटे छोटे बछड़ो वाली गौएं।
'तिलवत्सा उपतिष्ठन्तु त्वात्र'
अ. १८.४.३३

तिल्पिञ्ज - तिल का डंठल।
'तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्'
अ. १२.२.५४

तिल्विल- स्नेहयुक्त चिकनी मिट्टी वाली भूमि।
'भद्रेक्षेत्रे निमिता तिल्विलेवा'
ऋ. ५.६२.७

तिल्विला - (१)तिलों से सुशोभित भूमि, (२) स्नेहोत्पादक भूमि के समान स्त्री।
'तिल्विला यध्वमु यसोविभातीः'
ऋ. ७.७८.५

तिष्ठत् - अपने स्वरूप में स्थित।
'तद् धावतोऽन्यानत्यति तिष्ठत्'
वाज.सं. ४०.४, ईश.उप.४.
(२) समान भाव से स्थिरता से खड़ा होने वाला वृक्षआदि।
'ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतः'
अ. ९.२.२३

तिष्ठन्ति- विराम लेते हैं, ठहरते हैं। 'स्था' धातु के लट् प्र.पु. ब.व.का रूप।
'न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते'
ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९.

तिष्ठन्ती- स्थावरजल।
'तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२५

तिस्तिराणा- (द्वि.व.) बिछाते हुए।
'यतस्रुचा बर्हिरुतिस्तिराणा'
ऋ. १.१०८.४

तिष्य- (१) आदित्य, (२) पुष्य नक्षत्र।
'न योमुच्छति तिष्यो यथादिवः'
ऋ. ५.५४.१३
गुरु और पुष्य नक्षत्र का योग अत्यन्त निकट है। पुष्य नक्षत्र का स्वामी भी गुरु माना गया है।
'बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः
तिष्यं नक्षत्रमभि संबभूव'
तै.ब्रा. ३.१.१.

तिस्रः- (१) तीन सभाएं (२) तीनशक्तियां दण्ड, धन और मन्त्र, (३) आन्विक्षि की, त्रयी वार्ता, (४) तीन तीन महासभाएं।
'यच्छूर सन्ति तिस्रः'
ऋ. ५.३५.२
(४) तीन शक्तियां-परस्पर प्रेम, अन्न और राजशक्ति (६) आत्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक शक्ति।
'ऋतस्य पन्थामनुतिस्र आगुः'
अ. ८.९.१३, तै.सं. ४.३.११.१, मै.सं. २.१३.१०, १६०.५,का.सं. ३९.१०, आप.मं.पा. २.२०.३२.

तिस्रःआजानीः- (१) तीन उत्तम या नवीन शक्तियों को उत्पन्न करने वाली- माता के समान उत्पादक दशाएं, (२) उत्तम ज्ञान प्रद ज्योतियां -मन बुद्धि और चित्त।
'तिस्रं आजानीरुष सस्ते अग्ने'
ऋ. ३.१७.३, तै.सं. ३.२.११.२, मै.सं. ४.११.१, १६१.१२, का.सं. २ .१५.

तिस्ररह - (१) तीन दिन, (२) बाल्य, यौवन और जरा।

तिस्रआपः - (१) जल की तीन गतियां पृथ्वी से वाष्प बनकर ऊपर उठना, मेघ से जल बरस कर नीचे आना और समुद्र से वायु के बल पर नीचे आना, (२) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं

की तीन गतियां -संयोग, विभाग और चक्रगति
'तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुतुरायः '
ऋ. १०.१.४

तिस्रउस्राः- (१) ऋक्, यजुः और साममयी ज्ञानरश्मियां (२) ऊर्ध्व ब्रह्माण्ड और मस्तक में प्रकट रश्मियां, (३) गुहा, हृदय और ब्रह्मरन्ध्ररूपी द्वार, (४) अधिष्ठान, मणिपूर और ब्रह्मरन्ध्र ।
'उदुस्रा आकर्विहि तिस्रआवः '
ऋ. १०.६७.४, अ. २०.९१.४

तिस्रःक्षयः - (१) तीन रात, (२) बाल्य, यौवन और जरा ।
'तिस्रः क्षपस्त्रिरहाति व्रजद्भिः '
ऋ. १.११६.४, तै.आ. १.१०.३

तिस्रःचम्वः- (१) तीन चमू, (२) राष्ट्र की भोक्ता प्रजाएं या सेनाएं (३) कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मन ।
'तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः '
ऋ. ८.२.८

तिस्रःजिह्वाः - (१) तीन जिह्वाएं, (२) वेदत्रयी ।
'तिस्रोजिह्वा वरुणास्यान्तर्दीद्यत्यासन्ति '
अ. १०.१०.२८

तिस्रःतन्वः - तीन शरीर -देह, यश और राष्ट्र ।
'तिस्र उते तन्वो देववाताः '
ऋ. ३.२०.२, तै.सं. ३.२.११, १, मै.सं. २.४.४:४२.११, का.सं. ९.१९.

तिस्रोद्यावः- (१) प्रकाशमान सूर्य, अग्नि और विद्युत् नामक तीन पदार्थ , (२) आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी ।
'तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां
एका यमस्य भुवने विराषाट् '
ऋ. १.३५.६
प्रकाशमान सूर्य, अग्नि और विद्युत् तीन पदार्थ हैं। उनमें दो अग्नि और विद्युत् सब के उत्पादक सूर्य के आश्रय हैं और एक यम अर्थात् वायु के आश्रय में जो भुवन या अन्तरिक्ष में रहती है जो वीर पुरुषों को भी पराजित करने में समर्थ हैं ।
अथवा, आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी तीन द्यौ हैं । दो-आकाश और अन्तरिक्ष सूर्य के आश्रय हैं और भूमि नियन्ता राजा के शासन में हैं ।
तीन लोक - पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सूर्य ।
'तिस्रो द्याव स्त्रेधा सस्रुरापः '
ऋ. ७.१०१.४

तिस्रः दिवः - (१)तीन प्राकार के तेज-रक्त, नील और पीत, (२) प्रभुसत्ता, जनसत्ता और मन्त्रसत्ता, (३) तीन आकाश-अग्नि, विद्युत् और सूर्य ।
'तिस्रो दिवः पृथिवीः तिस्र इन्वति '
ऋ. ४.५३.५
(३) तेज के तीन प्रकार -शरीर में तेज के तीन रूप-अस्थि, मज्जा और वाणी ।
'तिस्रोदिवः तिस्रःपृथिवीः '
अ. ४.२०.२, अ. १९.२७.२
'तिस्रःदिवः अग्निविद्युत् सूर्याः '
तै. ३.८.१६.४
'त्रीणिरजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः '
अ. १३.३.२१

तिस्रःदेवताः- (१) तीन देवता, (२) गुरु, शिष्य, और परीक्षक ।
'तिस्रोदधुः देवताः संरराणाः '
वाज.सं. १९.८१, मै.सं. ३.११.९, १५३.१५३.३, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा .२.६.४.१,

तिस्रःदेवपुराः - (१) तीन ज्ञान- प्रकाशः (२) तीन इन्द्रियों की नगरियां ।
'इमास्तिस्रो देवपुराः '
अ. ५.२८.१०

तिस्रः देवीः- तीन देवियां इला, सरस्वती और मही जो सुख देने वाली हैं ।
इडा का अर्थ है वाणी । दीप्ति करने से प्रकाश होने से इडा वाणी और विद्युत् हैं । गौ और अन्न दोनों का वाचक इडा शब्द है । उनकी स्वामिनी इडा है । पशु, अन्न, श्रद्धा, सत्य, धारणावती बुद्धि, मनुष्य की पत्नी, और समस्तविश्वचक्र कारणों की स्वामिनी प्रकृति भी इडा है और इरा नाम से कहाती है । सरस्वती वाक् है । सरस्वती स्त्री है। पूषा पुरुष हैं । सरस्वती वज्र विद्युत् है । सर और सरस्वती दोनों वाणी के नाम हैं । सरः जल वाचक है अतः मध्यमा वाक् विद्युत् सरस्वती है । सरः उत्तम ज्ञान है । अतः उत्तम ज्ञान से युक्त

वेदवाणी सरस्वती है मही पृथिवी वाणी और गौ तीनों का वाचक है । फलतः इडा ऋक् सरस्वती यजुः और मही साम है । तीनों नाम पृथिवी वाचक है । इडा-अन्नदायी, सरस्वती-जलदात्री और मही-उत्तम रत्नआदि दात्री है । गृहस्थ पक्ष में -इडा = कुमारी, सरस्वती गृहपत्नी, मही= वृद्धा, । राज्य पक्ष में -इडा = भूमि प्रबन्धकारिणी सभा, सरस्वती विद्धन्सभा और मही = पूज्य शिक्षक समिति है । इलादिशब्दाभिधेया वह्निमूर्त्तयः तिस्रो देव्य इति सायणः ।

तिस्रो देवीः- तीन देवियां जो सृष्टि के सभी यज्ञों या स्वा. दयानन्द के अनुसार शिल्प यज्ञों को सम्पन्न करती हैं । वे हैं (१) सूर्य की किरण, (भारती), (२) पृथ्वी स्थानीय अग्नि, (इडा) तथा विद्युत, (मध्य यस्थानीय सरस्वती) ।

'तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनम्
सरस्वती स्वपमसः सदन्तु'

ऋ. १०.११०.८, अ. ५.१२.८, वाज.सं. २९.३३, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१० का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.४, नि. ८.१३.

उत्तम कर्मों को सिद्ध करने वाली ये तीन देवियां (स्वपसः तिस्रो देवीः) हमारे इस सुखकारी यज्ञ में अवस्थित हों । ये तीन देवी-सूर्य की किरण (भारती), पृथ्वी स्थानीय इडा देवी (अग्नि) तथा मध्यमस्थानीय विद्युत् (सरस्वती) हैं ।

(२) प्राण, अपान और उदान वायु = ऐ.ब्रा. प्राणों वा अपानो व व्यानः तिस्रो देव्यः एवं प्रीणाति तायजमानो दधाति ऐ.ब्रा.

(३) सरस्वती, इडा और भारती (४) उत्तम ज्ञान वाली विदुषी-सरस्वती, अन्न दात्री इडा और सब सुखों को उत्पन्न करने वाली भारती है

'तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदम्'

ऋ. २.३.८

(४) विदुषी, अन्न साधिका और गृहस्थ सुख देने वाली अर्द्धागिनी (६) राष्ट्र पक्ष में विद्वत्सभा, भूमि या अन्न की उपज आदि की प्रबन्ध कर्त्री सभा और समाज की सुव्यवस्था करने वाली सभा । सरस्वती (Legislative) इडा (Revenue) भारती (Municipality)

तिस्रः धिषणाः - (१) तीनों लोक -सूर्य आकाश और पृथिवी, (२) तीन राजसभाएं ।

'त्रयस्तस्थु र्वृषभासस्तिसृणां
धिषणानां रेतोधाविद्युमन्तः'

ऋ. ५.६९.२

तिस्रो निम्रुचः- तीन अस्तकाल ।

'निम्रुचस्तिस्रो व्युषोहतिस्रः'

अ. १३.३.२१

तिस्र- तीन प्रकार की भूमि-पर्वतमयी, सम और जलमयी या उत्तम, मध्यम और निकृष्ट

'करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रा'

ऋ. १.१७४.७

तिस्रः निर्ऋतयः- निःशेष सत्यज्ञान से पूर्ण तीन वेद ।

'तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते

ऋ. १०.११४.२

तिस्रःपञ्चाशत् - तीन पचास पचास सैनिकों की टुकड़ियां ।

'यासां तिस्रः पञ्चाशतो
अभिव्लङ्गैः अपावपः'

ऋ. १.१३३.४

जिन सेनाओं के (यासाम्) तीन पचासों को भी (तिस्रः पञ्चाशतः) सब तरफ के पैतरों से या सब तरफ चलने वाले चौमुख मारने वाले शस्त्रों और अस्त्रों से (अभिव्लङ्गैः) तू काट गिराये (अप अवपः)

तिस्रः प्रजाः - (१) तीन प्रकार की प्रजा, (२) तीन प्रकार के पक्षी, (३) तीन प्रकार की प्रजाएं जेरज, अण्डज और उद्भि ।

'प्रजाह तिस्रो अत्यायमीयुः'

ऋ. ८.१०१.१४, श.ब्रा. २.५.१.४, ऐ.आ. २.१.१.४.५,

'तिस्रः प्रजा आर्याज्योतिरग्राः'

ऋ. ७.३३.७, जै.ब्रा. २.२३६.

तिस्रःप्रवतः- तीन ऊपर नीचे की भूमियां ।

'अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु'

ऋ. ६.४७.४

तिस्रः पितरः - (१) पालन करने वाले तीन-अग्नि, वायु और सूर्य, (२) अग्नि, वायु और जल ।

तिस्रः पूर्वीजिह्वाः- तीन पूर्वआचार्यों द्वारा उपदिष्ट सनातन वाणियां-स्तुतिरूप ऋक् , गान रूप साम और कर्म निदर्शक गद्यमय यजु, (२) राजा

की तीन जिह्वाएं उनकी तीन वाणियां हैं-शासकों के प्रति प्रजा के प्रति और पर पक्ष के प्रति ।
'तिस्रस्ते जिह्वाः ऋतुजात पूर्वीः
ऋ. ३.२०.२, तै.सं. ३.२.११.१, मै.सं. २.४.४,४२.१०, का.सं. ९.१९.

तिस्रःपृथिवीः- (१) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश, (२) स्थूल, त्रसरेणु और परमाणु ।
'तिस्रः पृथिवी रुपरिप्रवा दिवः'
ऋ. १.३४.८,
पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों स्थानों पर अच्छी प्रकार पहुंचने वाले आप दोनों (युवाम्)
(३) सूर्य, वायु और भूमि
(४) सूर्य, अन्तरिक्ष और भूमि ।
'तिस्रो दिवः पृथिवीः तिस्र इन्वति'
ऋ. ४.५३.५
(५) पृथ्वी के तीन प्रकार
(६) शरीर में स्थूल रूप पुरीष, मध्यम रूप मांस और सूक्ष्म रूप मन ।
'तिस्रो दिवः तिस्रः पृथिवीः'
अ. ४.२०.२, १९.२७.३,
(७) तीन विशाल लोक ।
'इमा यास्तिस्रः पृथिवीः'
अ. ६.२१.१

तिस्रःभूमयः- (१) पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष, (२) उत्तम, मध्यम और अधम (३) स्व, पर और उदासीन ।
'तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना'
ऋ. १.१०२.८

तिस्रःमहीः- (१) तीनों लोक, (२) चित्त की तीन भूमियाँ ।
'तिस्रोमहीरुपरास्तस्थुरत्याः'
ऋ. ३.५६.२.

तिस्रः मातरः - (१) तीन माताएं, (२) अन्न, जल और तेज को उत्पन्न करने वाली पृथिवी, अन्तरिक्ष और वायु नामक तीन भूमि, (३) सत्व, रजस् , तमस् तीनो गुणों से युक्त तीनों प्रकार की प्रकृति (४) उत्तम, मध्यम और निष्कृष्ट भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ ।
'तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् बिभ्रदेकः'
ऋ. १.१६४.१०, अ.९.९.१०.
(५) जगत् की तीन निर्माणकारणी शक्तियां-सूर्य, मेघ और पृथिवी ।

तिस्रः मात्रा- तीन माताएं
'तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणाम्'
अ. ३.२४.६

तिस्रःयोनयः- (१) तीनों लोक, (२) गार्हपत्य आदि तीन अग्नि (३) सिंहासन, शासक वर्ग और प्रजावर्ग, (४) स्वराष्ट्र, परराष्ट्र और उदासीन ।
'उशन् होतर्निषदा योनिषु त्रिषु'
ऋ. २.३६.४, अ. २०.६७.५

तिस्रःवाचः- (१) परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों में प्रथम तीन वाणियां जो देह के भीतर ही रह जाती हैं । और दूसरे नहीं समझ सकते । वैखरी वाणी तालु, ओष्ठ आदि स्थानों से होकर वर्ण, पद और वाक्य रूप से प्रकट होती है । परा वाणी आत्मा में बीज रूप से होती है । पश्यन्ती वाणी प्रयोग के पूर्व वक्ता के मन में संकल्प रूप से रहती है । और मध्यमा मानस् संकल्प में रहकर ही शरीर के हर्ष विषाद आदि मुख विकार को प्रकट करती है ।
(२) छन्दोमय ऋक् गीतिमय साम और गद्यमय यजुःतीन वाणियां हैं ।
'तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्राः'
ऋ. ७.१०१.१

तिस्रोव्यूषः - वि + उषः । तीन उषाकल ।
'अहर्व्युष्टिः'
तै.सं. ३.८.१६.४
'रात्रिर्वैव्युष्टिः'
श.ब्रा. १३.२.१.६
अध्यात्म, आधिदैविक आधिभौतिक भेदेन तिस्रो व्युषाः ।
'निमुचस्तिस्रो व्युषो हि तिस्रः'
अ. १३.३.२१

तिस्रः समिधः- अच्छी प्रकार देदीप्यमान अग्नि, विद्युत् और सूर्य ।
'गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुः'
ऋ. १.१६४.२५, अ. ९.१०.३.
(२) बाल्य, तारुण्य और वार्द्धक्य रूप पुरुष यज्ञ की तीन समिधाएं हैं (३) तीन मुख्य ऋतु-शीत, वर्षा, ग्रीष्म, (४) प्रज्ञा, उत्साह और सेना ।

'अशीतिर्होमाः समिधोह तिस्रः'
वाज.सं. २३.५८
(४) अग्नि की तीन ज्वालाएं (६) जाठराग्नि, सूर्य और गार्हपत्य अग्नि ।
'तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनः'
ऋ. ३.२.९, आप.श्रौ.सू. १२.७.१०.

तिस्रःसरस्वतीः – तीनों वेदवाणियां ।
'तिस्रः सरस्वतीरदुः
सचित्ता विषदूषणम्'
अ. ६.१००.१

तिस्रः हरितः– (१) तीनों नाड़ियां इडा, पिंगला, और सुषुम्ना, (२) तीन वेदवाणियां ।
'यस्यमा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया'
ऋ. १०.३३.५

तिसृभ्यः वरम् – (१) तीनों प्रकार की भूमियों –जल, पर्वत और पृथ्वी से श्रेष्ठ (२) कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों से श्रेष्ठ आत्म तत्व, (३) वेदत्रयी से श्रेष्ठ आत्मज्ञान ।
'कुवित् तिसृभ्य आवरम्'
ऋ. २.५.५

त्रिः – तिगना
'द्वियत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त'
ऋय ६.६६.२, मै.सं. ४.१४.११,२३३.५.

त्रि – तीर्णतमा, अतिशयेन वृद्धिंगता (जो संख्या दो के बाद अत्यन्त बढ़ी रहती है) । अर्थ– तीन नामक संख्या । इमौ द्वौ अयम् एकः इति इमे त्रयः) वृद्धि के भाव का द्योतक 'तृ'धातु का 'त्रि' शब्द बन गया है । तृ + डि = त्रि ।लैटिन भाषा में tri और अंग्रेजी में three 'त्रि' का ही बिगड़ा रूप है ।

त्रिककुद– तीन कुदान वाला ।
'त्रिशीर्षाणं त्रिककुदम्'
अ. ५.२३.९

त्रिककुप् – (१) त्रिविधसुखों का सम्पादन, (२) उदान ।
'त्रिककुप् छन्दः'
वाज.सं. १५.४. मै.सं. २.८.७,१११.१४, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५ .२.४.
(३) सेना, अध्यापक और उपदेशक युक्त जिसकी दिशाएं हैं–दयां. (४) तीनों लोक (५) माता, पिता और आचार्य (६) शत्रु, मित्र और उदासीन (७) प्रज्ञा, उत्साह और प्रभुत्व ।
'यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्नि वर्तत्
अप द्रुहो मानुषस्य दुरावेः'
ऋ. १.१२१.४
जिस प्रकार तीनों लोकों में श्रेष्ठ, सर्वोच्च सूर्य अपने उत्तम प्रकाश को प्रकट कर अन्धकार को दूर करता है, जिस प्रकार माता, पिता और आचार्य इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ अर्थात् वेदत्रयी का विद्वान् अपने उत्कृष्ट सर्ग–विद्योपदेश काल में संशय युक्त अज्ञान को दूर करता है उसी प्रकार शत्रु, मित्र और उदासीन में सर्वश्रेष्ठ होकर अथवा प्रज्ञा, उत्साह और प्रभुत्व तीनों में श्रेष्ठ होकर दाहकारी दुष्ट पुरुषों को दूर करती हैं वह समृद्धि के नाना द्वारों को गृह के द्वार के समान खोल देता है ।

त्रिकद्रुक – त्रि + कदि + क्रुन् + क = त्रिकद्रुक । कद्रुः विविधकलाः । अर्थ (१) वह पदार्थ जिसकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाश से तीन कलाएं व्यवहार में बतलाने वाले हैं, (३) तीनों लोक ।
'त्रिकद्रुकेश्वपि बत् सुतस्य'
ऋ. १.३२.३,२.१५.१, अ. २.५.७, तै.ब्रा. २.५.४.२.
भूमि को सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान आचरण करने वाला सूर्य तीनों लोकों में अथवा तेज किरण वायु द्वारा उत्पन्न जगत् के जलीय अंश को प्राप्त करता और पान कर लेता है ।
पुनः –
'त्रिकद्रुकेषुचेतन
देवासो यज्ञमत्नत ।
ऋ. ८.१३.१८, ९२.२१, अ. २०.११०.३, साम. २.७४.
(३) ज्योति, गौ और आप, (४) मन, इन्द्रियगण और जीवन (५) तीन प्रकार का कष्ट, (६) शरीर आत्मा और मन, (७) तेजस्विता वेदवाणी और दीर्घ आयु ।
'त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र'
ऋ. २.११.१७
(८) सूर्य, पृथिवी और प्राणी तीनों रूपों में स्थित
'त्रिकन्दुकेषु महिषो यवाशिरम् तुविशुष्मः'
ऋ. २.२२.१, अ. २०.९५.१, साम. १.४५७

२.८३६, कौ.ब्रा. २७.२, शाँ.श्रौ.सू. १५.२.१, तै.ब्रा. २.५.८.९.

त्रिकश- (१) तेज, मध्यम और मन्द तीन प्रकारों की गति से चलने वाला रथ (२) तीनों गतियों पर शासन या वश करने के यन्त्र से युक्त -रथ, (३) तीनों वेद वाणियों को धारण करने वाला, (४) मन, वाणी और काय तीनों पर शासन करने वाला, (५) तीनों लोकों का शासक परमेश्वर, (६)वैखरी या वेदत्रयी तीनों वाणियों को धारण करने वाला ।

'चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः '

ऋ. २.१८.१

त्रिचक्र - (१) तीन कलायुक्त चक्रों से युक्त रथ, (२) आत्मा, मन और इन्द्रिय का आत्मा, मन और प्राण इन तीन कारक पदार्थों से यह शरीर त्रिचक्र है (३) मन, वाणी और काय तीन कारकों से युक्त त्रिचक्र शरीर ।

'त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः '

ऋ. १.१८३.१

(४) स्त्री पुरुष के मनोमय रथ के तीन चक्के - दो श्रोत और तीसरी बुद्धि हैं ।

'यदश्विना पृच्छमानावयातम्
त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायः '

ऋ. १०.८५.१४, अ. १४.१.१४

त्रिचक्रः मधुवाहनः रथः- (१) अ, उ और म रूप तीन चक्कों से युक्त आत्मा, मन और इन्द्रिय या वात, पित्त और कफ से युक्त शरीर रूप रथ ।

'अर्वाङ्त्रिचक्रो मधुवाहनोरथः '

ऋ. १.१५७.३, साम. २.१११०.

त्रिणव - (१) आग्रयण ग्रह से उत्पन्न त्रिनव स्तोम, (२) सत्ताइस का संघ

'आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ '

वाज.सं. १३.५८. तै.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.७.१९, १०४.१३, का.सं. १६.१९.

त्रित - (१) तीन वेदों में पारंगत होना (२) पारकिया हुआ (१) मित्र शत्रु और उदासीन इन तानों से अधिक शक्तिमान् ।

'त्रितायत्वा द्वताय त्वा '

वाज.सं. १.२३, श.ब्रा., १.२.३.५.

(२) तीर्णतम, महान् (३) तीन अंक, (४) तीनों लोकों में अप्रतिहत -इन्द्र या परमेश्वर ।

'यस्य त्रितो व्योजसा
वृत्रं विपर्वमर्दयत् '

ऋ. १.१८७.१, वाज.सं. ३४.७, का.सं. ४०.८, नि. ९.२५.

जिसके प्रभाव से (यस्य ओजसा) तीनों लोकों में अप्रजिहत इन्द्र ने (त्रितः) वृत्र नामक असुर या मेघ को (वत्रम्) गांठ गांठ तोड़कर (वियर्वम्) विदीर्ण किया (व्यर्दयत्) (५) त्रित नामक ऋषि (६) मेधा से तीर्णतम या मेधावी दया. (७) त्रीन् तनोति इति त्रितः एकं तनोति इति एकतः (जो अकेले ज्ञान का सम्पाद्न करना है) ।

'द्वौ तनोति इति द्वितः '

(जो ज्ञान, भक्ति तथा कर्म तीनों का सम्पादन करता है वह त्रित है) ।

'त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु
वित्तं मे अस्य रोदसी '

ऋ. १.१०५.१७.

कुएं में पतित त्रित नामक ऋषि अपनी रक्षा के लिये देवों को पुराकते थे, त्रित के इस आह्वान् को बृहस्पति ने सुना । बृहस्पति ने जब उद्धार नहीं किया तब ऋषि ने कहा हे द्यौ और पृथिवी । मेरे इस दुःख को तुम समझो और पाप कूप से (अंहूरणात्) सदा के लिये त्राण करते हुए उद्धार करो ।

'त्रितस्तद् वेद आप्त्यः '

ऋ. १.१०५.९

त्रितेदेवाः- (१) छोटे भाई, पिता और माता, -दया (२) एकत, द्वित और त्रित नामक देवता -सा. प्राचीन काल में देवताओं ने पुरोडाश और हवि को भली प्रकार धारण किया, फिर उसके दोष से उत्पन्न पाप का मार्जन करने के लिये अग्नि और जल के सम्पर्क से एकत, द्वित और त्रित नामक आप्यों को उत्पन्न किया और उनमें उन पापों को थाती के समान रख दिया । इन्होंने इसे सूर्याभ्युदित ने सूर्याभिनियुक्त में स्थापित किया, सूर्याभिनियुक्त ने कुनखी में स्थापित किया। कुनखी ने श्यावदत (दूषित दांतवाला) स्थापित किया । श्यावदत ने अग्रदिधिषु में स्थापित किया, अग्रदिधिषु ने परिवित्त में ,

परिवित्त ने वीरहा में, वीरहा ने ब्रह्महा में । वह पाप ब्रह्महत्यारे से दूर नहीं हो सकता
'त्रितेदेवा अमृजतैतदेनः '
तै.ब्रा. ३.७.१२.५.

त्रिदिव – (१) तीन ज्योतियों से पूर्ण ।
'अजस्त्रिना के त्रिदिवे त्रिपृष्ठे '
अ. ९.५.१०
(२) तीनों प्रकार के प्रकाशों से युक्त ।
'त्रिनाके त्रिदिवेदिवः '
ऋ. ९.११३.९

त्रिधातवः – (१) तीनों लोकों का धारण पोषण करने वाले किरण, (२) गर्भ, जीवन और मरणोत्तर तीनों कालों में जीव को पालने वाली इन्द्रियां ।
'त्रिधातवः परमाअस्य गावः '
ऋ. ५.४७.४
(३) तीन धातु, (४) तीन धारण-सामर्थ्यों से युक्त- गृह (५) कफ, पित्त और वायु का बना शरीर
'इन्द्र त्रिधातु शरणं '
ऋ. ६.४६.९, अ.२०.८३.१, साम. १.२६६, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ५.१.२१, २०.२१, आश्व.श्रौ.सू. ७.३.१९, शा.श्रौ.सू. ६.१३.३, वै.सू. २७.२२, ३३.११ साम.वि.ब्रा. २.२.२.
(६) सत्त्व, रजस् और तमस् का बना महान् ब्रह्माण्ड रूप देह ।
'यस्य त्रिधात्ववृतम् '
ऋ. ८.१०२.१४, वाज.सं. ३४.७ का.सं. ४०.८, नि. ९.२५.
शरीर के अर्थ में-
'परि त्रिधातुरध्वरम् '
ऋ. ८.७२.९
(७) तीनों गुणों को धारण करने वाली, परम सूक्ष्म तत्व प्रकृति ।
'तव त्रिधातु पृथिवी उतद्यौः '
ऋ. ७.५.४
(८) सुवर्म, रजत और लोहे का बना ।
'त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि '
ऋ. ३.५६.६
(९) तीनों लोकों को धारण करने वाला सूर्य, (१०) अन्न, रुधिर और मांस धारण करने वाला-अर्क या अन्न, (११) मंत्र, वाणी, मन और काय तीनों के कर्मों को धारण करने वाला, (१२) उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकारों के जनों का धारक।
'अर्क स्त्रिधातू रजसो विमानः '
ऋ. ३.२६.७, वाज.सं. १८.६६, मै.सं. ४.१२.५, १९२.१०, नि. १४.२ .

त्रिधातु शरणः– सुवर्ण आदि तीन धातुओं से निर्मित भवन, (२) कफ, पित्त और वायु से बना शरीर ।
'स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत् '
ऋ. ७.१०१.२

त्रिधातु शर्म – (१) तीन धातु वात, पित्त और कफ का बना सुख-साधन देह, (२) तीन धातुओं का बना रोग-निवारक आभूषण ।
'त्रिधात् शर्म वहतं शुभस्पती '
ऋ. १.३४.६
हे शुभ गुणों और आभरणों के पालक तथा धारक स्त्री पुरुष (शुभस्पती) वात, पित्त और कफ के बने सुख-साधक शरीर को या तीन धातुओं के बने रोग नाशक आभूषण धारण करो ।

त्रिधातुश्रृंग– (१) तीन धातुओं के बड़े सींगों से सुशोभित, (२) तीन धातुओं के बाणों की किरणों से सुशोभित, (३) ताम्र, लोह, सुवर्ण आदि का बना हिंसाकारक शस्त्रास्त्रों से युक्त, (४) सूर्य ।
'त्रिधातुश्रृंगो वृषभो वयोधाः '
ऋ. ५.४३.१३

त्रिधावद्धः वृषभः– (१) मंत्र, ब्राह्मण और कल्प रूपी तीन बन्धनों से बंधा हुआ यज्ञ ही वृषभ है जो फलों का वर्ष पिता है । (२) कुमारिल के अनुसार प्रातः, मध्याह्न और सायं सवनों में सोमरसका खींचा जाना ही यज्ञ के तीन बन्धन हैं । यह यज्ञ वृष्टि का मूल प्रवर्त्तक है, (३) ग्रीष्म, वर्षा और शीत तीन कालों में वद्ध सूर्य नामक वर्षपिता वृषभ, (४) शब्द ब्रह्म के तीन स्थानहृदय, कण्ठ और मूर्धा तीन स्थानों में बद्ध हो वर्षण करने वाला है ।

त्रिधाविकस्त– मन, वाणी और काम तीनों प्रकार से विशेष विकास को प्राप्त ।
'त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तम् '

ऋ. १.११७.२४

त्रिनव– सत्ताईस विभागों से युक्त ।
'बृहस्पतये पांक्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः '
वाज.सं. २९.६०, तै.सं. ७.५.१४.१, मै.सं. ३.१५.१०, १८०.११, का. सं. (अश्व.) ५.१०.

त्रिनाक– (१) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों दुःखों से रहित ।
'अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे '
(२) तीनों प्रकार से सुखों से युक्त लोक ।
'त्रिनाके त्रिदिवेदिवः '
ऋ. ९.११३.९

त्रिनाभि– संवत्सर का विशेषण । एक वर्ष में चार चार मासों के तीन ऋतु–ग्रीष्म–फाल्गुन से ज्येष्ठ तक, वर्षा–आषाढ़ से आश्विन् तक, और शरत्– कार्तिक से माघ तक –संवत्सर की नाभि है । इसी को वेद में 'त्रिनाभिचक्रम्' कहा गया है ।

त्रिनाभिचक्रम् – (१) तीन नाभियों से युक्त संवत्सर काल । ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त ही काल की तीन नाभियां हैं । अतः काल का यह नाम पड़ा ।
'त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वम् '
ऋ. १.१६४.२, अ. ९.९.२, १३.३.१८, तै.आ. ३.११.९, नि. ४.२७.
एकचक्रवाला सूर्यरूपी रथ सात किरणें रूपी अश्वों से जुतकर अजर एवं किसी के आश्रित न रहने वाले तीन नाभि वाले काल चक्र का निर्माण करता है ।

त्रिणामा– तीनों शक्तियों से प्रजाओं को वश करने वाला –राजा तीन शक्तियां प्रजा उत्साह और शौर्य हैं । या अमात्य, कोश और दण्ड हैं ।
'एवा त्रिणामन्नहृणीयमानः '
अ. ६.७४.३, तै.सं. २.१.११.३.

त्रिपञ्चाशः व्रातः– तिरपन का संघ ।
'त्रिपञ्चाशः क्रीड़ति व्रात एषाम् '
ऋ. १०.३४.८

त्रिपञ्चाशीः– (१) तिरपन– (२) एक सौ पचास–Whitney
'या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः '
अ. १९.३४.२

त्रिपञ्चाशीःगृत्स्यः– तिरपन या एक सौ पचास प्रकार की या सैकड़ो लोभकारिणी या विषय विलास में फंसी स्त्रियां या जन श्रेणियां–जुआ खोरी का पेशा करने वाली ।
'या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः '
अ. १९.३४.२

त्रिपस्त्य– त्रि + पस्त्य । (१) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ या उदर, हृदय और सूर्य में विद्यमान अग्नितत्व, (२) तीन मञ्जिले गृह में रहने वाला, (३) उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं को गृहवत् बसाने वाला ।
'तमागन्म त्रिपस्त्यम् '
ऋ. ८.३९.८

त्रिप्रतिष्ठित– तीन चरणों या आश्रमों पर स्थित होने वाला – हिरण्यय कोश अर्थात् जीवात्मा ।
'तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते '
अ. १०.२.३२

त्रिपाजस्यः– (१) शरीर, आत्मा और सम्बन्धियों के बलों में निपुण–दया. (२) तेज, विद्युत्, और अग्नि अथवा अप तेज और वायु और तीन बलों का धारकपरमेश्वर ।
'त्रिपाजस्यो वृषभोविश्वरूपः '
ऋ. ३.५६.३

त्रिपाद्– (१) तीन चरणों वाला पुरुष जिसका एकचरण व्यक्त जगत् है ।
'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः'
ऋ. १०.९०.४, आ.सं. ४.४, वाज.सं. ३१.४, तै.आ. ३.१२.२.
(२) तीन चरणों वाला आदित्य ।
'आदित्यस्त्रिपाद्तस्येमे लोकाः पादाः '
'द्विपात् त्रिपादमभ्येतिपश्चात् '
ऋ. १०.११७.८, अ. १३.२.२७, ३.२५.

त्रिपात् पुरुषः– तीन अंशों वाला पुरुष जो संसार से पृथक् शुद्ध बुद्ध मुक्त होकर रहता है ।
'त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः '
ऋ. १०.९०.४, वाज.सं. ३१.४, आ.सं. ४.४.,तै.आ. ३.१२.२.

त्रिपाद् ब्रह्म– (१) तीन चरणों वाला, तीन रूपों वाला ब्रह्म, (२) ब्रह्मा , विष्णु, महेश रूप ब्रह्म ।
'त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वितष्ठे '
अ. ९.१०.१९

त्रिपृष्ठ- (१) तीनों प्रकार के रस आनन्द से सम्पन्न।
'आजस्त्रिना के त्रिदिवेत्रिपृष्ठे'
अ. ९.५.१०
(२) तीनों लोकों को पोषण करने वाला।
'वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गाअभि
ऋ. ९.७१.७
(३) तीन प्रकार के वस्त्र धारण करने वाला, (४) तीन वेदों या तीनों ज्ञान, कर्म या वाणी को वस्त्रवत् धारण करता हुआ।
'अधि त्रिपृष्ठ उषसो विराजति'
ऋ. ९.७५.३, साम. २.५२.

त्रिपृष्ठःसोमः- (१) सोम जिसके तीन रूप हों-(दया.) (२) तीन रूपों वाला ऐश्वर्य या ज्ञान।
'अभित्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैः'
ऋ. ७ ३७.१

त्रिबन्धुः- (१) तीनों आश्रमों का बन्धु -परिप्राजक।
'उपत्रिबन्धुर्जरदष्टिमेति'
ऋ. ७.३७.७

त्रिबर्हिः- त्रिलोक के समान तीन मुख्य प्रधान वेदवेत्ताओं की बनायी धर्म-सभा।
'त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नृन्'
ऋ. १.१८१.८.

त्रिभुज् योनि - तीन प्रकार से भोग करने योग्य -सत्य, रज और तमः रूप मिश्रण, अभिश्रण या संयोग विभाग।
'योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः'
अ. ८.९.२

त्रिमन्तुः- (१) कर्म, उपासना और विज्ञान की विद्या को मानने वाला (२)त्रैविद्य-तीनों वेदों का ज्ञाता, (३) अरि, मित्र और उदासीन तीनों को वश में करने वाला, (४) माता, पिता, और गुरु का मान करने वाला।
"याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणः'
ऋ. १.११२.४

त्रिमाता - जन्म, स्थान और नाम तीनों का रचने वाला।
'उत त्रिमाता विदथेषु सम्राट्'
ऋ. ३.५६.५

त्रिमूर्धा- (१) जिसका निकृष्ट मध्यम और उत्तम पदार्थों में मूर्धा हो-अग्नि, (२) माता, पिता और निज का मिलाकर तीन मूर्धावाला पुत्र, (३) माता-पिता और गुरु तीनों की शिक्षा प्राप्त करने वाला, (४) माता, पिता और गुरु इन तीनों को अति आदर से सिर पर रखने वाला, (५) तीनों लोकों के ऊपर सिर के समान विराजमान सूर्य (६) माता पिता और गुरुओं सिर से आदर करने वाला (७) माता, पिता और गुरु तीनों के ऊपर परमेश्वर।
'त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषे'
ऋ. १.१४६.१

त्रियुगः- सत्ययुग, द्वापर और त्रेता।
'या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्य स्त्रियुगं पुरा'
ऋ. १०.९७.१, वाज.सं. १२.७५, का.सं. १३.१६, श.ब्रा. ७.२.४. २६, नि. ९.२८.
जो ओषधियां तीनों युगों से पहले देवताओं से उत्पन्न हुई।

त्रिरश्रिः - (१) वाणी, मन और शरीर से भोग करने योग्य (२) तीनों गुणों को प्राप्त (३) वाक्, शरीर और मन से पुष्ट।
'त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रः'
ऋ. १.१५२.२

त्रिवत्सः - (१) कर्म, उपासना और ज्ञान में या वेदत्रयी में निवास करने वाला, (२) तृतीयाश्रमी पुरुष।
'त्रिवत्सो वयः'
वाज.सं. १४.१०, तै.सं. ४.३.३.२,५.१, मै.सं. २.७.२०, १०५.९, २.८.२, १०८.१, का.सं. १७.२, ३९.७, श.ब्रा. ८.२.४.१४.
(३) तीन वर्ष का बैल।
'त्रिवत्सश्च से त्रिवत्साच मे'
वाज.सं. १८.२६

त्रिवत्सःगौः- तीन वर्षों का हृष्ट पुष्ट बैल।
'त्रिवत्सो गौर्वयोदधुः'
वाज.सं. २१.१५, मै.सं. ३.११.११,१५८.५, का. सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.२.

त्रिवत्सा - तीन वर्ष की गाय।
'त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे'
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२.

त्रिवन्धुरः- (१) तीन बन्धनों से युक्त (२) तीनों प्रकार के शिल्पों से बना (३) आकाश, पृथ्वी और

जल तीन स्थानों पर चलने वाला रथ ।
'त्रिवन्धुरेणत्रिवृतासुपेशसा
रथेना यातमश्विना'
ऋ. १.४७.२
(४) प्राण, उदान और व्यान में या सिर, छाती और नाभि में बंधा होने से आत्मा त्रिवन्धुर है, (५) मस्तक, मेरुदण्ड, और मांस पेशियां इनके तीन बन्धनों के कारण शरीर त्रिवन्धुर है, (६) आत्मा युक्तदेह जो सत्य, रजस् और तमस् से बंधा हुआ है, (७) तीन बन्धनों वाला रथ ।
'त्रिवन्धुरो वृषण यस्त्रिचक्रः'
ऋ. १.१८३.१

त्रिवर्तुज्योतिः- (१) तीन ऋतुओं में सुखप्रद प्रकाश, (२) विविध ज्ञान देने वाला वेदमय प्रकाश, (३) तीनों कालों में वर्तने वाला स्वामी ।
'त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्टयस्मे'
ऋ. ७.१०१.२

त्रिवयाः- (१) मानस, कायिक और वाचिक तीनों प्रकार के बल, (२) बल, यौवन और वार्द्धक्य-तीनों अवस्था, (३) ऋक्, यजु और साम तीनवेद, (४) मन्त्र, कर्म और उपासना नामक तीन ज्ञान, (५) औषधि अन्न और पशु से प्राप्त औषध, भोजन और दुग्धादि में सम्पन्न ।
'स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे'
ऋ. २.३१.५

त्रिवरूथ - (१) तीन महलों का घर, (२) तीनों प्रकार के कष्टों का वारण करने वाला, (३) शीत, आतप, वर्षा; मानस, वाचिक और कायिक कष्टों का वारक, (४) आध्यात्मिक, आधि भौतिक और आधिदैविक दुःखों वा वारक शरीर ।
'त्रिवरूथं स्वस्तिमत्'
ऋ. ६.४६.९, अ. २०.८३.१, साम. १.२६६, का.सं. ९.१९.

त्रिवरूथं शर्म - (१) तीनों तापों गर्मी, सर्दी और वर्षा तीनों के निवारक गृह, (२) शत्रु-नाशक तीनों प्रकार का सैन्य ।
'शर्मणा नः त्रिवरूथेन पाहि'
ऋ. ५.४.८

त्रिविष्टिः- (१) आकाश, (२) उत्तम, मध्यम और प्रधान तीन प्रकार की प्रजाएं ।
'त्रिविष्ट्येति प्रदिव उदाणः'
ऋ. ४.६.४.

त्रिविष्टिधातु- (१) त्रिगुणमय व्यापन का आश्रय परमेश्वर, (२) बल, पराक्रम और तेज का कारण, (३) पृथ्वी, जल, तेल, वायु, आकाश ब्रह्माण्ड के धारण करने वाले तत्त्वों के उत्तम मध्यम निकृष्ट, स्वल्पं, अधिक और सममात्रा में विचित्र या त्रिगुणमय व्यापन का आश्रय-परमेश्वर (४) तीन गुणा शक्तिशाली राजा ।
'त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसः'
ऋ. १.१०२.८

त्रिवृत् - सत्व, रजस् तमस् गुणों से युक्त, (२) त्रिवृत् पद ।
'त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा'
वाज.सं. १५.९, का.सं. १७.७,३७.१७, पंच.ब्रा. १.१०.९ वै.सू.२६.८,ला .शौ.सू.५.११.३.
(३) शीत, उष्ण और सम स्वभाव वाला राजा ।
'आशुस्त्रिवृत्'
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.१, मै.सं. २.८.४,१०९ .३, का.सं. १७.४, २०.१२, १३, श.ब्रा. ८.४.१.९, का.श्रौ.सू. १७.१०.६, आप.श्रौ.सू. १७.२.९,
(४) उपांशु प्राण से उत्पन्न त्रिवृत् नामक प्राण ।
'उपांशोस्त्रिवृत'
वाज.सं. १३.५४, तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९, १०४.१, १६. १९, श.ब्रा. ८.१.१.५

त्रिवृत- (१) त्रिगुण प्रकृति तत्व, (२) तीन प्रकार से वर्तमान वेद ।
'घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यायतुः'
ऋ. १०.११४.१

त्रिवृततन्तु- तिहरा, तीन सूत्रों का यज्ञोपवीत ।
'तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथाविदे'
ऋ. ९.८६.३२

त्रिवृतहस - (१) शरीर में गमनागमन के करने वाला, त्रिगुण प्रकृति के बंधन में बंधा हुआ अहंकार वान् जीव ।
'अग्नि द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम्'
अ. १०.८.१७, तै.आ. २.१५.१.

त्रिवृत्तः स्तोमः- (१) स्तोम तीन प्रकार के हैं- लोक, प्राण और वीर्य, (२) पञ्चदश, सप्तदश और एकविंश ये तीन प्रकार के स्तोम हैं । (३) प्राण,

अपान और उदान तीन प्रकार के प्राण हैं। शरीर में वीर्य १५ हैं, त्रिंशत् आत्मा और प्राण १५ यों हैः- पीठ के मोहरे १४ और पन्द्रहवां प्राण। (४) समाज में प्रजा के १२ प्रतिनिधि मुख्य सहायक, दो मंत्री और क्षत्र (राजा)।

सप्तदश-१६ कला, सत्रहवां प्रजापति या प्रजनन शक्ति। १२ मास, ५ ऋतु का आश्रय प्रजापति सप्तदश है। शरीर में दश प्राण, चार अंग और प्रन्द्रहवां आत्मा, सोलहवां गर्दन और सत्रहवां सिर। शूद्रवर्ण एकविंश है।

त्रिवृता आपः- (१) मूल प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु के तीन रूप, शरीर में मूत्र, लोहित और सूक्ष्म प्राण।

'त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आपआहुः'

अ. १९.२७.३

त्रिवृदन्त- विवृत् + अन्न, तीनों रूपों से वर्तमान् खाने योग्य अन्न अग्नि रूप से पक्वान्न को विद्युत् रूप से जल को और सूर्य से फलादि को अग्नि प्रदान करता है।

'अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते
संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः'

ऋ. १.१४०.२

त्रिवृत् रथः- (१) त्रिकोण, भूमि, आकाश और जल में चलने योग्य साधनों से सम्पन्न रथ, (२) अग्नि, वायु और तेज तत्वों से त्रिवृत्तीकरण द्वारा बना देह रूप रथ।

'क्व त्रीचक्रा त्रिवृतो रथस्य'

ऋ. १.३४.९

त्रिवृत् रथ के तीन चक्र कहां लगे हैं? अग्नि, वायु और तेज के बने शरीर के तीन चक्र कहां है?

त्रिशता यष्टिः - तीन सौ साठ। काल चक्र के ३६० दिन रूपी आर (Spokes)।

'तस्मिन् साकं त्रिशता न शंकवो
अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः'

ऋऋ.सं. १.१६४.४८, नि. ४.२७.

उस काल चक्र में साथ ही साथ (साकम्) शंकु के समान (शंकवः न) तीन सौ साठ दिन रूपी आर है जो चल और अचल दोनों हैं। दिन रात अस्थायी अर्थात् चल हैं किन्तु दिन के बाद रात, रात के बाद दिन का आना अचल नियम हैं।

त्रिश्चित् - (१) तीन बार, तीनों प्रकार से, (२) मन, वचन और काय तीनों प्रकार से।

'त्रिश्चिन्तो अद्या भवतं नवेदसा'

ऋ. १.३४.१

त्रिशीर्षा- (१) तीन कालरूपी सिरों वाला संवत्सर, (२) तीन धातु-कफ, पित्त, वायु, रूप सिरों वाला देह।

'षडक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्'

ऋ. १०.९९.६

(३) तीन सिरों वाला (४) तीन गुणों से युक्त शरीर।

'त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्'

ऋ. १०.८.८

(५) तीन सिरों वाला कीट।

'त्रिशीर्षाणं त्रिककुदम्'

अ. ५.२३.९

त्रिशोक - (१) तीनों भुवनों मे तेजस्वी, (२) गुण, कर्म, स्वभाव तीनों में उज्जवल पुरुष, (३) अग्नि, विद्युत्, और सूर्य तीनों तेजों को जानने वाला वैज्ञानिक।

'याभिस्त्रिशोक उस्त्रिया उदाजत'

ऋ. १.१२.१२

जिन उपायों से तीनों भुवनों में तेजस्वी, गुण कर्म और स्वभाव में उज्जवल पुरुष, अग्नि, विद्युत् और सूर्य रूपी तेजों का ज्ञाताविद्वान् ऊपर जाने वाली जलधाराओं, किरणों और विद्युत् धाराओं को हटाने में समर्थ होते हैं। (४) तीन ज्योतियों से युक्त (५) तीनों लोकों में व्याप्त प्रकाश वाला -सूर्य, (६) मन्त्र, बल और धन तीनों से चमकने वाला।

'अनुत्रिशोकः शतमावहन् नृन्'

ऋ. १०.२९.२, अ.२०.७६.२.

(७) वाणी, मन और प्राण इन त्रिविधि तेजों से युक्त आत्मा।

'त्रिशोकाय गिरिं पृथुम्'

ऋ. ८.४५.३०.

(८) तीन शोकों अर्थात् कान्तियों से युक्त (९) ज्ञान, वचन और कर्मवान् (१०) कायिक, मानस और वाचिक पापों को ज्ञानाग्नि से भस्म

करने वाला (११) शुद्ध, पवित्र योगी (१२) तापत्रय का नाशकारी विदेह युक्त आत्मा ।

'यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकम्'

अ. ४.२९.६

(१३) एक वैदिक ऋषि (१४) तीनों प्रकार का तेज (१५) जाग्रत स्वप्न, सुषुप्त, तीनों स्थानों में प्रकट होने वाला जीव ।

त्रिंशत् – तीस ।

'आ विंशत्या त्रिंशतायाहि अर्वाङ्'

ऋ. २.१८.५

त्रिशत् अराः– तीस दिन रूप अरों वाला मास ।

'यास्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः'

अ. ४.३५.४

त्रिंशतं योजनानि – ३० योजन अर्थात् १२० कोश, उषाओं से सूर्य की दूरी ।

'अनवद्याः त्रिंशतं योजनानि
एकैका क्रतुं परियन्ति सद्यः'

ऋ. १.१२३.८

उषाएं सूर्योदय के स्थान से तीस तीस योजन दूर तक दीखती है और अकेले अकेले भी प्रत्येक यज्ञ या अपने कर्त्ता सूर्य के आश्रय में रहती हैं । उसी प्रकार स्त्रियां भी कम से कम तीस तीस योजन अपने क्रतु अर्थात् कर्त्ता पति को प्राप्त हो । अर्थात् वे दूरी पर ही विवाहित हों । उत्तरी ध्रुव के प्रदेशों में उषाओं का यह वर्णन है ।

त्रिंशति त्रयः – तीस ऊपर तीन अर्थात् तैंतीस ।

'ये त्रिंशतित्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्'

ऋ. ८.२८.१, ऐ.ब्रा. ५.२१.१४.

त्रिंशदङ्ग– तीस दिन रात मय अंगों वाला मास ।

'अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गम्'

अ. १३.३.८.

त्रिंशद्धाम– (१) तीस स्थान, दिन के तीस स्थान–तीस घड़ियां ।

'त्रिंशद्धाम विराजति'

ऋ. १०.१८९.३, अ. ६.३१.३, २०.४८.६, साम. २.७२८, आ.सं. ५.६. वाज.सं. ३.८, तै.सं. १.५.३.१, मै.सं. १.६.१,८५.११, का.सं. ७.१३, श.ब्रा. २.१.४.२९.

(२) सूर्य के प्रति दिन प्रकाशित होने के तीस स्थान । ज्योतिश्चक्र पर दिन रात्रि में तय होने वाले क्रान्ति वृत्त पर ६० अंश चिह्नित हैं जो दिन की तीस घड़ी या मास की तीस तिथियों का निर्देश करते हैं । (३) आत्मा भी प्रतिदिन देह के तीस धामों को चमकाता है (४) दिन और रात के ३० मुहूर्त ।

त्रिंशत् सरांसि– (१) सोम रस के तीस बर्तन –सा., (२) कृष्ण और शुक्ल पक्ष की तीस रातें, (३) पक्ष के तीस दिन रातों की रश्मियां ।

'एकया प्रतिधा पिबत् साकम्
सरांसि त्रिशतम्'

ऋ. ८.७७.४, नि. ५.११

त्रिंशतं सहस्राणितना – तीस सहस्र ऐश्वर्य ।

'आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे'

ऋ. ९.५८.४, साम. २.४१०.

त्रिशुक् – अग्नि, विदयुत् और सूर्य तीनों के समान तेजस्वी ।

'घर्मस्त्रिशुक् विराजति'

वाज.सं. ३८.२७, श.ब्रा. १४.३.१.३१, शां.श्रौ.सू. ७.१६.८

त्रिषध– (१) त्रीणि भूजलपवनाख्यानि स्थिव्यर्थानि स्थानानि (भूमि,जल और पवन की स्थिति के स्थान अर्थात् अन्तरिक्ष, (२) समान कोटि के स्थान, (३) जिसमें भू, जल और सवन की स्थिति हो ।

'त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा
मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्'

ऋ. १.४७.४.

हे समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामियो, अश्विद्वय या स्त्री पुरुषो या राजा और सेनाध्यक्ष या ज्ञानी पुरुषों आप दोनों तीनों समान कोटि के स्थानों पर स्थित प्रजाजन पर अन्तरिक्षस्थ मेघ और विद्युत् के समान ऐश्वर्य का वर्षण करो ।

त्रिषधस्था – (१) नाभि, उर और कण्ठ तीनों में एक साथ विराजने वाली वाणी ।

'त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्चजाता वर्धयन्ती'

ऋ. ६.६१.१२

त्रिषन्धि– (१) तीन सन्धियों वाला त्रिषन्धि नामक बाण या महास्त्र धारी सेनापति, (२) इन्द्र का सेनापति ।

'भर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्च'
अ. ११.९.२३

त्रिषप्ताः– (१) तीन और सात । पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीनों लोक और उनके तीन अधिष्ठाता, अग्नि, वायु और आदित्य, (२) प्रकृति के तीन गुण, सत्व, रजस् और तमस् । इन गुणों से होने वाले तीन कार्य–सृष्टि, स्थिति और प्रलय (३) सात ग्रह, सात मरुद्गण, सात लोक, सात छन्द, सात ऋषि (४) एकईश प्रसिद्ध सूर्य से अधिष्ठित, (५) प्राचीदिशा को छोड़कर शेष सात दिशाएं जिनसे आरात, भ्राज, पटर, पतङ्ग, स्वर्णर, ज्योतिष्मान और विभाग–ये सात सूर्य की शक्तियां हैं, (६) बारहमास, ५ ऋतु और तीन लोक और आदित्य, (७) शरीर के घटक पंच महाभूत, पंच प्राण, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और अन्तः करण ।
'ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः'
अ. १.१.१, मै.सं. ४.१२.१, १७९.१४.

त्रिष्टुप् छन्दः– (१) त्रिष्टुप् छन्द, (२) २४ वर्षों तक ब्रह्मचर्यपालक ।
'त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.१७, का.सं. ३८.१०

त्रिष्टुपच्छन्दाः– ४४ अक्षरों वाले त्रिष्टुप् छन्द के समान ब्रह्मचर्य व्रत या माध्यन्दिन सवन ।
'वृषासि त्रिष्टुपच्छन्दाः'
अ. ६.४८.३
'ऐन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सव वीर्यं वै त्रिष्टुप्' ।
ऐ.आ.१.२१
'आत्मा त्रिष्टुप्'
ऐ.आ. ६.२.१.२४
'त्रिष्टुप् रुद्राणां पत्नी'
गो.ब्रा. ३.२.९
'रुद्राः त्रिष्टुभं समभरन्'
जै.ब्रा. ३.१.१८.५
'चतुश्चत्वारिं शदक्षरा त्रिष्टुप्'
कौ.सू. १६.७

त्रिषुद्रुपदेषु बद्धः – (१) तीन खूंटों में बंधा हुआ शुनः शेय, (२) प्रकृति के तीन गुणों में जकड़ा हुआ सुखार्थी मुमुक्षु ।
'शुनः शेयो हयह्लद् गृभीतः त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः'
ऋ. १.२४.१३

त्रिषुयोनिषु – तीनों योनियों में । ये तीन योनियां कौन कौन हैं । पं. जयदेव शर्मा इनका अर्थ उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थान बतलाते हैं ।
'सादया योनियु त्रिषु'
ऋ. १.१५.४
हे अग्नि या ज्ञानवान ! तू देवों विद्वानों को तीनों–उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थानों पर स्थापित कर ।

त्रिष्टुभ् – त्रि + स्तुभ् + क्विप् = त्रिष्टुभ् । तीर्णतमम् स्तुततमम् छन्दः (गायत्री आदि छन्दों से स्तुतितम छन्दः) 'स्तोभति च' (जो छन्द श्रेष्ठ है तथा स्तुति करने के लिए प्रयुक्त होता है) । अर्थ – (१) एक वैदिक छन्द का नाम । यह छन्द गायत्री आदि से अधिक अक्षरों वाला होता है, अतः तीर्णतम या त्रि है । यह पंक्ति छन्द से भी चार अक्षर अधिक होता है अतः यह ४४ अक्षरों वाला है । बहुत बड़ा होता हुआ यह छन्द पदार्थों का स्तवन करता है अतः त्रिष्टुम् कहलाया
'यत् त्रिरस्तोभत'
(२) वज्र आयुध भी त्रिवृत होता है । वज्र में भी प्रायः तीन सन्धियां होती हैं– शर, वेणु और श्रृंग (शरोवेणुः श्रृगं शल्यमिति विज्ञायते । इस त्रिवृत वज्र की इस छन्द से स्तुति की जाती है । अतः इस का नाम त्रिष्टुभ् हुआ । त्रिवृत् वज्रस्य स्तोभति । वज्र के भी तीन पार्श्वतीखे होते हैं अतः उसे त्रिवृत् कहते हैं । (३) तीन बार स्तुति की अतः यह त्रिष्टुप् है
'यत् त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभः त्रिष्टुप्त्वम्'

त्रिष्ठः– (१) शरीर, आत्मा और मन से सुख में रहने वाला, (२) दिन और रात्रि के बने प्रभात मध्यान्ह और सायं नाम तीन आधारों पर स्थित रथ, (३) मन्त्र, धन और सैन्य बल आश्रित ऐश्वर्य, (४) तीन चक्कों वाला रथ ।
'त्रिष्ठं वां सुरे दुहिता रुहद् रथम्'
ऋ. १.३४.५.

त्रिष्ठी– तीनों प्रकार के ऊंचे नीचे और सम तथा तीनों कालों में स्थिति करने में कुशल पुरुष ।
'उत्कूल निकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनम्'

वाज.सं. ३०.१४

त्रिष्पूत्वी – (१) तीन प्रकार से शुद्ध कन्या अर्थात् जिसके जननेन्द्रिय, नाक, मुख या जोड़े इन्द्रियों जैसे, कान, आंख , नाक आदि अवयवों में कोई कोई दोष न हो, (२) विवाह के बाद तीन प्रकार के रथों से रथ, अनस् और युग से लाई जाने वाली विवाहिता वधू ।

'अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वी'

ऋ.८.९१.७

त्रिःअन्तरिक्ष– महान् आकाश, मध्याकाश और हृदयाकाश ।

'त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना'

ऋ. ४.५३.५, कौ.ब्रा. २२.२

त्रिःएकादशा देवाः– (१) ३३ देवता, (२) देह में स्थित ३३ देव देह ही ३३ देवों की अयोध्या पुरी है, (३) राष्ट्र के तैंतीस शासक ।

'आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह'

ऋ. १.३४.११, वाज.सं. ३४.४७.

ऐ सत्यवादी स्त्रीपुरुषो, आप तैंतीस दिव्य गुणों से युक्त हो आओ ।

त्रिःदिवः – दिन के तीनों काल ।

'त्रिर्यत् दिवः परिमुहूर्तमागात्'

ऋ. ३.५३.८, जै.उप.ब्रा. १.४४.६,९.

त्रिःवर्तिः– (१) तीन प्रकार के मार्ग, (२) तीन आश्रम ।

'त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना'

ऋ. ८.३५.७–९.

त्रिःषष्ठिः मरुतः – ६३ प्रकार के मरुत् या मनुष्य गण (२) देह में ६३ प्रकार के प्राण गण ।

'त्रिः षष्ठिस्त्वा मरुतो वावृधानाः'

ऋ. ८.९६.८

त्रिःपरमा सत्या– (१) तीन प्रकार के उत्तम कोटि के अग्नि के सर्वहितकारी बलवान् स्वरूप अग्नि, विद्युत् और सूर्य, (२) तेजस्वी राजा के तीन स्वभाव सिद्ध रूप ।

'त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या'

ऋ. ४.१.७

त्रिः सख्युः सप्तपद् – (१) मनसा, वाचा, कर्मणा मित्रा वा सखा का सातवां पद (२) मित्र सखा का २१ वां पद

'मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिःसप्त सख्युः पदे'

ऋ. ८.६९.७, अ. २०.९२.४.

यह २१ पद क्या है ? ऐतरेय ब्राह्मण १–१० में आया है त्रिःसप्तेत्यनेन देवलोकानाम् उत्तम् एकविशंस्थानमुच्यते । आदित्यस्यैक विंशत्वात् । तथा च ब्राह्मणम् –द्वादशमासाः पञ्चर्तवः त्रय इमे लोकाः असौ आदित्य एकविंश इति । अर्थात् १२ मास, ५ ऋतु और तीन लोकों में स्त्री पुरुषों की एक साथ रहने की यह कामना है ।

त्रिसप्त– (१) इक्कीस, (२) शरीर के इक्कीस तत्व ।

'त्रि सप्तैः शूर सत्वभिः'

ऋ. १.१३३.६

त्रिःसप्तगुह्यानि – (१) इक्कीर ज्ञान करने योग्य गुह्या अर्थात् बुद्धि से साक्षात् करने योग्य गुप्त, तत्व, (२) राष्ट्र के २१ अधिकार पद, (३) शरीर के घटक २१ सौ तत्व (४) चित्र में धारण करने योग्य चार वेद, तीन क्रिया, विज्ञान और उद्योग– इन सातों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा धारण करना, (४) सात पाक यज्ञ. सात हविर्यज्ञ और सात सोम यज्ञ ।

'त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत्
पदा विदन् निहिता यज्ञियासः'.

ऋ. १.७२.६

सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना में कुशल पुरुष जिनकी ज्ञान करने योग्य गुहा अर्थात् बुद्धि से साक्षात् करने योग्य गुप्त तत्वों का साक्षात् ज्ञान करते हैं वे सब तुझ में ही स्थित हैं ।

त्रिः सप्तनाम – (१) ईश्वरीय शक्ति या प्रकृति के इक्कीसस्वरूप पञ्चतन्मात्रा पञ्च स्थूलभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और मन (२) त्रिः + सप्त = 10; अघ्न्या प्रकृति के दश नाम ।

'इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे
ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति
एताति अघ्न्ये नामानि
'देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्'

वाज.सं. ८.४३, श.ब्रा. ४.५.८.१०.

त्रिःसप्तमयूर्यः – २१ प्रकार के मयूर की जाति जो विष हरती है ।

'त्रिः सप्त मयूर्यः'

ऋ. १.१९१.१४

त्रिः सप्त सखा– इक्कीस तत्वों का स्वामी मित्र परमेश्वर ।
'त्रिः सप्त सख्युः पदे'
ऋ. ८.६९.७, अ. २०.९२.४

त्रिः सप्त समिधः– २१ समिधाएं प्रकाशकसामर्थ्य, (२) २१ प्राकृतिक विकार अहंकार आदि, (३) प्रकृति, महत्, अहंकार ५ तन्मात्राएं, ५ स्थूलभूत, ५ इन्द्रिय और तीन गुण, (४) ५ तन्मात्रा, ५ भूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय और मन (अन्तःकरण चतुष्ठय) (५) संवत्सर यज्ञ में १२ मास, ५ ऋतु ३, लोक और एक आदित्य ।
'त्रिः सप्त समिधः कृताः'
ऋ. १०.९०.१५, वाज.सं. ३१.१५, अ. १९.६.१५, तै.आ. ३.१२.३.
(६) ब्रह्माण्ड के घटक २१ पदार्थ २१ समिधाएं हैं– प्रकृति, महान् बुद्धि आदि अन्तःकरण और जीव, दस इन्द्रियगण, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, दो चरण, दो हस्त गुदा , उपस्थ, पांच तन्मात्राएं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पांचभूत,पृथिवी, आपः तेज, वायु और प्रकाश, (७) यज्ञ की २१ समिधाएं

त्रिः सप्त परमाणि– (१) वाणी के इक्कीस रूप – गायत्री आदि सात जगती आदि सात और कृति आदि सात, (२) भूमि के सात परमरक्षक स्वामी अमात्य, सुहृद, राष्ट्र, दुर्ग, कोश और बल और उसका तीन प्रकार से ज्ञान– भूमि, सुवर्ण सेना या तीन प्रकार के विचार उत्साहशक्ति, मन्त्रशक्ति और प्रभुशक्ति ।
'त्रिःसप्त मातुः परमाणि विन्दन्'
ऋ. ४.१.१६

त्रिःसाप्तानि – (१) २१ प्रकार के सुखों से रमण करने योग्य पदार्थ (२) यज्ञ पक्ष में अगन्याधेय दर्श, पूर्णमास, अग्निहोत्र, आग्रायण, चातुर्मास्य निरुढ़ पशुबन्ध, सौत्रामणि में सातहवियर्ज्ञ संस्था हैं। पञ्च महायज्ञ, अष्टका श्राद्ध , श्रवणाकर्म प्रत्यवरोहण, शूलगव और आश्वयुजी कर्म ये सात पाकयज्ञ संस्था हैं । सा. (३) ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों के साथ पञ्चयज्ञ, अतिथि सत्कार और दान इन सातों को मन, वाणी और देह से बार बार करना त्रिः सप्त है । –दया. (४) प्राण गत उत्तम व्यवस्थाओं से त्रिगुण भेद से सात सुखप्रद शरीर के धातु ।
'ते नो रत्नानि धत्तन
त्रिरा साप्तानि सुन्वते
एकमेकं सुशस्तिभिः'
ऋ. १.२०.७, कौ.ब्रा. २६.१७.
वे विद्वान् पुरुष सवन ऐश्वर्य, राज्याभिषेक और सब उपासना करने वालों के लिए (सुन्वते) २१ प्रकार से सुखों से रमण करने योग्य पदार्थों को उत्तम उपदेश युक्त क्रियाओं द्वारा एक एक करके धारण करावें ।

त्विष् – त्विष् (दीप्त्यर्थक) + क्विप् = त्विष् । अर्थ है– ज्वाला । आधुनिक अर्थ–प्रकाश, किरण ।
'अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व
सेनानीर्नः सहुरे हुत एधि ।
हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद
ओजो मिनानो विमृधो नुदस्व'
ऋ. १०.८४.२, अ.४.३१.२, नि. १.१७.
हे मन्यु ! अग्नि के समान ज्वलित होकर हमारे शत्रुओं को पराजित कर (त्विषितः सहस्व) । हे सहनशीलत्व (सहुरे) बुलाए जाने पर (हूतः) हमारे संग्राम में सेनाधिपति हो (नः सेनानीः एधि) तथा शत्रुओं को मारकर (शत्रून् हत्वाय) हमें शत्रुओं का धन दे (वेद विभजस्व) और हमें बल देकर शत्रुओं को संग्राम से भगा (ओजःमिमानः मृधः विनुदस्व) ।

त्विषि– (१) तेजः प्रकाश, (२) वीर्य, (३) कान्ति ।
'स्वायां देवो दुहितरित्विषिंधात्'
ऋ. १.७१.५
सूर्य जिस प्रकार अपनी कन्या के समान उषा में कान्ति को धारण करता है । अथवा, कामनावान् पति अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली अपनी भार्या में तेज अर्थात् वीर्य को धारण करता है ।
अथवा, प्रकाश का द्रष्टा आत्मा या ज्ञानों का प्रकाशक परमेश्वर (देवः) अपनी कन्या के समान अपने ही से उत्पन्न होने वाली सब संकल्पों को पूर्ण करने वाली प्रकृति अथवा परमानन्द रस को दोहन अर्थात् प्राप्त करने वाली चिति शक्ति में कान्ति, तेज, प्रकाश और दीप्ति को धारण करता है ।

'सोमस्य त्विषिरसि'
वाज.सं. १०.५.१५, तै.सं. १.८.१४.१, का.सं. १५.७, मै.सं. २.६.१०, ७०.३, ४.४.४, ५४.३, श.ब्रा. ५.३.५.३, ४.१.११, तै.ब्रा. १.७.८.१, आप.श्रौ.सू. १८.१५.५, मा.श्रौ.सू. ९.१.३.

त्विषित- त्विष् (दीप्त्यर्थक) + क्विप् = त्विष्। त्विष् + इतच् = त्विषित। अर्थ - जिसमें ज्वाला हो गई हो -ज्वालित, दीप्त।

त्विषीमत् - प्रकाश वाला, कान्तिमय।
'अधा चन श्रत् दधाति त्विषीमत
इन्द्राय वज्रम् निघनिघ्नते वधम्'
ऋ. १.५५.५
तभी (अधाचन) कान्तिमय सूर्य के समान (त्विषीयते) तेजस्वी उस परमेश्वर या राजा के ऊपर लोग श्रद्धा करते हैं (श्रत् दधाति)।

त्विषीमान् - (१) तेजस्वी।
'त्विषीमानस्मि जूतिमान्'
अ. १२.१.५८
(२) बहु दीप्ति युक्त कान्तिमान् विद्युत् (३) सब कान्तियों और दीप्तियों का स्वामी परमेश्वर।
'अध त्विषीमां अभ्योजसा क्रिविम् युधाभवत्'
ऋ. २.२२.२, साम. २.८३८

तीक्षणश्रृंगी - (१) तीखे सींग या कांटों वाला।
'व्यृषन्तु दुरिते तीक्ष्णश्रृंग्यः'
अ. ८.७.९
(२) तीक्ष्ण स्वभाव की अजश्रृंगी नामक ओषधि।
'तीक्ष्णश्रृंगी व्यृषतु'
अ. ४.३७.६

तीक्ष्णयान् - अधिक तीक्ष्ण।
'तीक्ष्णीयांस परशोः'
अ. ३.१९.४

तीर्थ- (१) तैरने का साधन नौकाआदि, (२) तीर्थ, (३) अध्यात्म यज्ञ।
'तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति'
अ. १८.४.७

तीर्थ्य- परमात्मा तथा गुह आदि तीर्थों का सेवक।
'नमस्तीर्थ्याय च कल्याय च'
वाज.सं. १६.४२,तै.सं. ४.५.८.२, का.सं. १७.१५.

तीव्रःरेणुः - (१) जीवों का अति वेगयुक्त अंश, (२) आत्मा जो रेणुवत् अणु परिमाण या गतिशील है।
'अत्रा वो नृत्य तामिव तीव्रो रेणु रपायत'
ऋ. १०.७२.६

तीव्र सोम - (१) तीव्र सोमरस, (२) वेगवान्, वीर्यवान् पुरुष, (३) अतिहर्षप्रद ब्रह्मरस।
'तीव्रां सोमान् आसुनोति प्रयस्वान्'
ऋ. १०.४२.५, अ. २०.८९.५

त्री चक्रा- (१) तीन चक्र, । (२) शरीर के वात, पित्त, कफ रूप तीन चक्र

त्रीणि अग्रा - (१) तीन अग्रगामी लोक या तीन पदार्थ -शक्ति, धन और जन।
'तस्य त्रीणि प्रतिश्रृणीह्यग्रा'
ऋ. १०.८७.१०, अ. ८.३.१०
(२) जनबल, धन बल और मनोबल

त्रीणिआयूषि- (१) तीन आयु बाल्यकाल, यौवन और वार्द्धक्य, (२) तीन आय के साधन-व्यापार, भूमि और संग्राम, (३) परमेश्वर की प्राप्ति के साधन-ज्ञान, कर्म और उपासना।
'त्रीण्यायूंषि तव जातवेदः'
ऋ. ३.१७.३, तै.सं. ३.२.११.२, मै.सं. ४.११.१, १६१.१२, ४.१२.५, १९.२.८,का.सं. २.१५, १२.४.

त्रीणि उषसः- (१) आयु के तीन काल-बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य, (२) तीन आय- व्यापार, भूमि और संग्राम के उत्पादक उषाएं हैं जैसे शत्रुज्ञानकारी सेना, ऐश्वर्य से कान्तियुक्त प्रजा और अन्नादि के लिये कामना करने योग्य कृषक।
'तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने'
ऋ. ३.१७.३, तै.सं. ३.२.११.२, मै.सं. ४.११.१, १६१.१२, का.सं. २.१५.

त्रीणि जाना - (१) अग्नि के तीन रूप-बाड़वाग्नि, सूर्य, जाठर अग्नि, (२) अग्रणी के तीन रूप- समुद्रवत् गम्भीर, सूर्यवत् तेजस्वी और सर्वजीवनाधार (३) परमेश्वर के तीन रूप-एक महान् आकाश में एक सूर्य में और एक प्राणों में, (४) आत्मा के तीन जान-जल में जीवनोत्पादक, अंश, आकाश में तेजोरूप और प्राणों में वायुरूप।
'त्रीणि जाना परिभूषन्ति अस्य
समुद्रं एकं दिवि एकमप्सु'

ऋ. १.९५.३

त्रीणि ज्योतींषि – (१) तीन तेज, (२) आत्मा, इन्द्रिय और मन, (३) समाज में तीन बल–ब्राह्म बल, क्षात्रबल और अर्थबल ।

'त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोड़शी'

वाज.सं. ८.३६,३२.५, वांज.सं. (का.) ८.११.१, ३२.५, पंच.ब्रा. १२.१३.३२, जै.ब्रा. १.२०५, तै.ब्रा. ३.७.९.५, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना. उप. ९.४, शां.श्रौ.सू. ९.५.१, वै.सू. २५.१२, आप .श्रौ.सू. १४.२.१३. नृसिंह. पू.ता.उप. २.४.

(४) तीन ज्योतियां अग्नि, विद्युत् और सूर्य, (५) उपनिषद् की परिभाषा में प्राण, अपान और व्यान ।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयति अपानं प्रत्यगस्यति । मध्येवा मनसासीनं विश्वे देवा उपासते ।

'आक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि'

अ. ९.५.८

त्रीणि नभ्यानि – (१) कालचक्र के ग्रीष्म वर्षा और हेमन्त रूपी तीन नाभियां ।

'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं
त्रीणिनभ्यानि क उ तच्चिकेत'

ऋ. १.१६४.८, अ. १०.८.४, नि. ४.२७.

कालचक्र के मास रूपी बारह घेरे हैं और तीन नाभियां हैं कोई विद्वान् पुरुष ही जान सकता है ।

त्रीणि पदानि– (१) तीन स्थान, (२) तीन प्राप्तव्य विषय, (३) धर्मयज्ञ और वेद ज्ञान के तीन पद– ऋक् , साम और यजुः (४) मंत्र, गीति और क्रिया (५) ज्ञान, उपासना और यज्ञ ।

'त्रीणि पदान्यश्विनोः
अविःसन्ति गुहापरः'

ऋ. ८.८.२३

त्रीणेपदानि रुपो अन्वरोहत्

अ. १८.३.४०

त्रिपाद स्यामृतं दिवि । त्रीणि पदा विचक्रये (६) जानने योग्य तीन स्वरूप तीनपद (७) तीन पद

'त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य'

अ. २.१.२, वाज.सं. ३२.९, तै.आ. १०.१.४. महा.ना.उप.२.४.

त्र्यनीक – ऋ. ३.५६.३

त्रिप्रतिष्ठितः अ. १०.२.३२

त्रिषधस्थ – ऋ. ५.४.८

इस प्रकार त्रिदिवा, त्रिनाक, त्र्यरुण, त्रिधातु, त्रिवृत आदि नाना त्रिक हैं ।

त्रीणि पुरूणि – (१) राष्ट्र के ऐश्वर्यों को पालने और पूर्ण करने वाले सभास्थल, (२) तीन लोक, (४)स्वप्न, जागृति और सुषुप्ति , (४) सृष्टि प्रलय और मध्य ।

'त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि'

ऋ. ३.३८.६

त्रीणि योजनानि– (१) तीन लोक, (२) वर्षा होने के समय तीन योग–सूर्य का पृथ्वी से, मेघ का वायु से और वृष्टि जल का पृथ्वी से योग

'विश्वरूप्यं त्रिषुयोजनेषु'

अ. १.१६४.९, अ. ९.९.९.

त्रीणि रजांसि – तीन रजस् हैं, तीन लोक हैं ।

'इमे वै लोका रजांसि'

श.ब्रा. ६.३.१.१८.

'त्रीणि रजांसि दिवो अङ्गतिस्रः'

अ. १३.३.२१.

त्रीणि रोचना– (१) सूर्य, चन्द्र और अग्नि, (२) सूर्य, अग्नि और विद्युत् (३) धन, ज्ञान और प्रजाजन

'त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना'

ऋ. ४.५३.५

(४) न्याय, बल और राज्य–शासन ।

त्रीणि बन्धनानि– (१) सूर्य को बांधने वाले तीन बन्धन–आकर्षण, प्रकाश और प्राण, (२) समाज के तीन बन्धन शरीर–रक्षा, वाणी की प्रतिज्ञा और मानस् प्रेम (३) द्यौ लौक में सूर्य के तीन बन्धन हैं – आकर्षण, तेज और गति या चैतन्य–सामर्थ्य (४) उत्पन्न जीव के तीन बन्धन–देवऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण जिनके प्रतिनिधि यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हैं,

'आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि'

वाज.सं. २९.१४, तै.सं. ४.६.७.२, का.सं. ४०.६.

त्रीणि व्रतानि – (१) तीन व्रत– सृष्टिस्थिति और संहार, (२) आत्मसंयम, जनसंयम और अरिसंयम ।

'त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना'

ऋ. ४.५३.५

त्रीणि विदयानि (१) तीन जानने योग्य ज्ञान, कर्म

और उपासना ।
'वेदयस्त्रीणि विदथान्येषाम्'
ऋ. ६.५१.२

त्राणि विष्टया – (१) सन्ताप से रहित तीन पदार्थ जो कन्या के विवाह के विचारणीय हैं । वे ये हैं –पिता का सिर ऊंचा हो अर्थात् विवाह से वे प्रसन्न हो और ऋणग्रस्त न हो, (२) वर और कन्या दोनों योग्य पुरुषार्थी एवं उर्वरा हो और (३) विवाहोपरान्त कन्या गर्भाधान के योग्य हो ।
'इमानि त्रीणि विष्टया
तानीन्द्र विरोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे'
ऋ. ८.९१.५, तै.ब्रा. १.२२१.

त्रीणि वीर्याणि– विशेष रूप से प्रेरक बल–कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार के वीर्य ।
'त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि'
अ. १९.२७.१०
त्रीणि शतात्री सहस्राणि त्रिंशत् नवच ३३३९ देव अर्थात् वीर पुरुष ।
'त्रीणि शतात्री सहस्राणि अग्निम्
त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्'
ऋ. ३.९.९,१०.५२.६, वाज.सं. ३३.७, तै.ब्रा. २.७.१२.२.

त्रीणि शीर्षाणि– सिरस्थ तीन प्राण, सिर में प्राण, मुख और कान नामक तीन छिद्र ।
'आ च क्राणस्त्रीणि शीर्षा परावर्क्'
ऋ. १०.८.९

त्रीणि सरांसि – तीन तालाबों के समान भूमि, अन्तरिक्ष और बृहदाकाश ।
'त्रीणि सरांसि पृश्नयः'
ऋ. ८.७.१०

त्रीधन्व – अपने भीतर सब पदार्थों को धारण करने वाले तीन लोक ।
'त्रीधन्व योजना सप्तसिन्धून्'
ऋ. १.३५.८, वाज.सं. ३४.२४.
सविता सभी पदार्थों को अपने भीतर धारण करने वाले तीनों लोकों को प्रकाशित करता है ।

त्रीरजांसि– (१) तीन प्रकार के लोक–ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक और भूलोक (२) सात्विक, राजस और तामस जन ।
'त्रीणि रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना'
ऋ. ४.५३.५

त्री रोचनानि – (१) आकाश, वायु और पृथ्वी के तेज, (२) चमकने वाले तत्व–अग्नि, विद्युत्, और सूर्य ।
'अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि'

त्री वाजिना – ज्ञान, बल और अन्न, (२) शास्त्र कृत, परानुभव वेद्य और स्वानु भव वेद्य, (३) आत्मिक, वाचिक और शारीरिक बल, (४) खाद्य, लेह्य और चोष्य अन्न, (५) ओषधियां से उत्पन्न धान्य बीजादि, (६) लतावृक्षादि से प्रसूद कन्द, मूल, फल, पुष्पादि, (७) जीवों से उत्पन्न दूध और दूध–से वने पदार्थ ।
'अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था'
ऋ. ३.२०.२, तै.सं. २.४.११.२, ३.२.११.१, मै.सं. २.४.४, ४२.१०.४.१२., ५,१९१.११, का.सं. ९.१९, आप.श्रौ.सू. १९.२७.१८, मा .श्रौ.सू. ५.२.५.१२.

त्रीषधस्थाः – तीन एकत्र होकर रहने के स्थान–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वाणप्रस्थ ।
(२) राज के तीन सधस्थराजसभा, धर्मसभा और विद्वत्सभा ।
(३) तीनों लोकों को रचने वाला ।
'त्रीषधस्था सिन्धवः त्रिः कवीनाम्'
ऋ. ३.५६.५

तु – शीघ्र
'स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्'
ऋ. ४.१.१०

तुक् – तोजयति हिनस्ति हि पितुर्दुःखम् इति तुक् पुत्रः–सा. (जो पिता के दुःख को दूर करता है वह पुत्र है) तुज् + क्विप् = तुक् ।
'ते नो अद्य ते अपरं तु चे तु नः'
ऋ. ८.२७.१४, वाज.सं. ३३.९४.
'विदा गाधं तुचे तु नः'
ऋ. ६.४८.९, साम. १.४१,२. ९७३.

तुग्र – (१) लेन देन करने वाला, (२) शत्रु का नाश करने वाला (३) बलवान् सैन्य ।
'तुग्रस्य सुनुमूहथूः रजोभिः'
ऋ. ६.६२.६
(४) तुज् (चालनार्थक) + रक् = तुग्र । एक

वेद कालीन राजा या ऋषि । (५) वैश्य

तुग्र्यु- तुज् (चालनार्थक) + रक् = तुग्रं । तुग्रे चालनार्थे साधुः तुग्र्यु ।

तुग्र्या - (१) अप् जल, हिंसनक्रिया (३) प्राणियों का नाश करने वाली दशा, (४) दुष्ट पुरुषों द्वारा प्राप्त होने वाला वध बाधा आदि पीड़ा कारी अत्याचार

'आवः शमं वृषभ तुग्र्यासु'

ऋ. १.३३.१५

जिस प्रकार सूर्य ग्रीष्म की दुःखदायी प्राणियों का नाश करने वाली दशाओं में या जलों के निमित्त (तुग्र्यासु) शान्ति दायक जल के बरसाने वाले मेघ को प्राप्त कराता है ।

तुग्र्यावृध् - तुग्र्या + वृध् । (१) शत्रु की हिंसा करने वाली, बल बढ़ाने वाली, राजा प्रजा को आश्रय देने वाली शक्ति को बढ़ाने वाल -इन्द्र ।

'उक्थेषु तुग्र्यावृधम्'

ऋ. ८.४५.२९

शत्रुओं के नाशक सैन्य बलों के हितों को बढ़ाने वाला ।

'मन्दन्तु तुग्र्यावृधः'

ऋ. ८.१.१५

'अतूर्तं तुग्र्या वृधम्'

ऋ. ८.९९.७, अ. २०.१०५.३, सामं. १.२८३.

तुग्वन् - तूर्ण + गम् + वनिप् =तुग्वन् । नदी के द्वारा लोग शीघ्र तीर्थ पर आ जाते हैं । (तुग्वतीर्थं भवति तूर्णमेत-दायन्ति) । अर्थ - तीर्थ, नदीतट ।

तुच् - पुत्र ।

'तुचे तनाय तत्सुनः'

ऋ. ८.१८.१८, साम.वि.ब्रा. २.१.१०.

तुच्छ- परिणाम आदि गुणों से शून्य परमेश्वर ।

तुच्छय - (१) सूक्ष्म रूप ।

'तुच्छ्ये नाभ्वपिहितं यदासीत्'

ऋ. १०.१२९.३, तै.ब्रा. २.८.९.४.

(२) तुच्छ, (३) परिणाम आदि गुणों से सूक्ष्म परमेश्वर ।

तुज् - (धा.) (१) चलना (२) कांपना

'द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते'

ऋ. १.६१.१४, २०.३५.१४

(३) पालन करना, (४) हिंसा करना, (५) रक्षा करना । तुजि हिंसा तुजि हिंसा बलादाननिके तनेषु-चुरादि । तुज् हिंसायां पालने च-भ्वादिः । पालन, रक्षा या बल सम्पादन करना

'तुजे जना वनं स्वः'

अ. ६.३३.१, आ.सं. १.३.

तुजयत् - (१) शत्रुओं का नाश करने वाला ।

'प्रतिस्मरेथां तुजयद्भिरेवैः'

ऋ. ७.१०४.७, अ. ८.४.७.

तुजस् - प्रजापालन और शत्रुनाश ।

'तेतिक्ते तिग्मा तुज से अनीका'

ऋ. ४.२३.७

तुज्य - नाश होने के योग्य ।

'युवावते न तुज्या अभूवन्'

ऋ. ३.६२.१

तुज्यमान- कम्पमान, पीड़ित, ।

'त्वां देवा अबिभ्युषः
तुज्य मानासु आविषुः'

ऋ. १.११.५,

भयरहित तुझ से अपना अपना आश्रय पाकर विद्वान् पुरुष एवं युद्धविजयी सैनिक गण भी तुझे प्राप्त होते हैं ।

अथवा - विषयों के प्रकाशक देव- इन्द्रियगण पीड़ित होकर ज्ञानरूप आत्मा से शान्त होकर उसे ही पाते हैं ।

तुजः रयिः - पालक ऐश्वर्य ।

'आनस्तुजंरयिं भर'

ऋ. ३.४५.४

तुजा- तुज् (हिंसा करना) से सिद्ध । (१) शत्रु हिंसक ।

(२) सब की पालना करने वाला -(दया.)

'गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः'

ऋ. १.५६.३

उस इन्द्र का अनवद्य पौरुष पर्वत श्रृंग के समान चमकता है । उसका बल शत्रु -हिंसक (तुजा शवः) ।

सबकी पालना करने वाले बल को धारण करता है । -दया. (३) दुःख नाशक

तुजिः - (१) सन्मान

'प्रावन्तु न स्तुजये वाजसातये'

ऋ. ५.४६.७, अ. ७.४९.१, मै.सं. ४.४३.१०,

२१३.७, तै.ब्रा. ३.५.१२.१, नि. १२.४५.
(२) अपत्य

तुञ्ज- तुञ्ज् (दान करना) + घञ् । अर्थ- दान ।
'तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे
स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्'
ऋ. १.७.७, अ. २०.७०.१३, नि. ६.१८
दान दान के बाद जो स्तोत्र उत्कृष्ट होते जाते हैं उन स्तोत्रों से इस वज्री इन्द्र की स्तुति की कब समाप्ति होती है मैं नहीं जान पाता । जैसे जैसे स्तुति करता जाता हूँ वैसे वैसे स्तुति की उत्कृष्टता बढ़ती जाती है । (२) दान प्राप्त करने का अवसर

तुञ्ज् - (१) स्तुति करना । यह धातु पालन करना अर्थ में आया है । स्तुति करना आत्मनेपदी है ।
'विश्वेषु हित्वा सवनेषु तुञ्जते'
ऋ. १.१३१.२, अ. २०.७२.१, वै.सू. ३१.२७.
चुरादि में "हिंसा वला दाम - निकेतनेषु भाषार्थञ्च"
(२) प्रति पालन करना, (३) आज्ञा की प्रतीक्षा करना ।

तुञ्जमानः - बलवान् और दानशील ।
'सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमानाः'
ऋ. ३.१.१६

तुण्डकः- तुण्ड (थुथुना) वाला जिसका नाक थोथना हो ।
'स्तम्भज उत तुण्डिकः'
अ. ८.६.५

तुण्डेल - (१) जिसका तुण्ड (मुख) वानर के समान आगे बढ़ा हुआ हो, (२) बहुत बड़ी तोंद वाला ।
'तुण्डेमुत शालुडम्'
अ. ८.६.१७

ततुर्वणिः - शीघ्रगति ।
'यज्ञा यज्ञा वः समना ततुर्वणिः
ऋ. १.१६८.१

तुन्दाना- भय से व्यथित ।
'एरुं तुन्दाना पत्येव जाया'
अ. ६.२२.३

तुन्न- (१) प्रेरित, अभिपीड़ित ।
'ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः'
ऋ. ९.६७.१९

तुन्ना- पीड़ित, दुःखित ।
'एजाति ग्लहा कन्येव तुन्ना'
अ. ६.२२.३

तुम्र- (१) सर्वव्यापक ।
'गातुमिषेनक्षते तुम्रमच्छ'
ऋ. ६.२२.५, अ. २०.३६.५.
(२) स्व सेना को अपने अधीन और पर सेना को परे चलाने वाला - इन्द्र ।
'सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रम्'
ऋ. ४.१७.८
(३) शत्रुओं को ग्लानियुक्त करने वाला, (४) संकट नाशक (५) सब प्रकार से विपक्षी को मारने में समर्थ ।
'आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्'
ऋ. ३.५०.१

तुरगातु- (१) अतितीव्र गति से सर्वत्र व्यापक।
'अनच्छये तुरगातु जीवम्'
ऋ. १.१६४.३०, अ. ९.१०.८
(२) अति वेग से इन्द्रियों में गति उत्पन्न करने वाला आत्मा ।

तुरण- (१) अति क्षिप्रकारी, (२) शत्रुओं का नाश करने में समर्थ, (३) अधीर, जल्दी मचाने वाला ।
'तुभ्यं पयो यत्पितरावनीताम्
राधः सुरतस्तुरणे भुरण्यू'
ऋ. १.१२१.५
भरण पोषण करने वाले मातापिता (भुरण्यू) जल्दी मचाने वाले अधीर बालक के लिए (तुरणे) उत्तम वीर्योत्पादक दूध और धन प्राप्त कराते हैं (सुरतः पयः राधः अवनीताम्) ।

तुरण्यति- तूर्णम् अश्नुते अध्वानम् (तुरत राह पकड़ता है) । त्वरयति गन्तुम् । (चलने में शीघ्रता करता है) । अर्थ- शीघ्र चलता है ।

तुरण्यु - (१) क्षिप्रकारी, कर्मकुशल ।
'तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतम्'
ऋ. ८.५१.१०, अ. २०.११९, २. साम. २.९६०.
(२) अति शीघ्रता से कर्म समाप्त करने वाला, (३) अप्रमादी

तुरत् - (१) हिंसक, (२) दुष्ट पुरुष (३) शीघ्रता से चलने वाला अश्वादि बल ।

'सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य'
ऋ. ६.१८.४

तुरया – अतिशीघ्र ।
'ऋतस्य शुष्मस्तुरया उगव्युः'
ऋ. ४.२३.१०

तुर – (१) मारने वाला (२) शीघ्रता से चलाने वाला, । (३) शीघ्रकारी, (४) शत्रुनाशक ।
'आधश्चित् यं मन्यमानस्तुरश्चित्'
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.३५,तै.ब्रा. २.८.९.७, आप .मं.पा. १.१४.२, नि. १२.१४.
(४) यम, प्रेताधिपति, काल । तृ (तरना) अथवा त्वर । + घ = तुर । तृ के ऋ का उ और त्वर के 'व' का सम्प्रसारण 'उ । त्वरते हि असौ सर्वान् प्राणिनः आभिमुख्येन उपसंहाराय (यम प्राणियों के संहार के लिये तूर्णगति हो जाते हैं) जिस भग अर्थात् आदित्य को दरिद्र भी पूजता है और यम भी (तुरश्चित्) क्योंकि सूर्य के उदय से काल बीतता जाता है । (६) इन्द्र का विशेषण । अर्थ है–फुर्तीला ।
'अस्मा इदु प्रतवसे तुराय'
ऋ. १.१६.१, अ. २०.३५.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.३.५, कौ.ब्रा. २६.१६, गौ.ब्रा. २.५.१५, वै.सू. ३१.१९.
इस बलवान् तथा फुर्तीले इन्द्र के लिए (७) नियन्ता, (८) न्यायाधीश जो न्याय के लिये शीघ्रता करता है, (९) शत्रुनाशक ।
'इमे तुरं मरुतो रामयन्ति'
ऋ. ७. ५६.१९

तुरस्पेय– (१) अति शीघ्र पालन करने का कार्य ।
'तुरस्पेये यो हरिया अवर्धत'
ऋ. १०.९६.८, अ. २०.३१.३
(२) वेगवान साधनों द्वारा पालन कार्य में शक्तिशाली ।

तुर्फरि– तृफ् (मारना, हनन करना) + अरि = तुर्फरि । अर्थ हैं– हन्ता ।

तुर्फरी– (द्वि.व.) दुष्टों का वध करने वाले अश्वि द्वय ।
'नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों नैतोश नामक वधक के समान नाश करने वाले तथा शत्रुको विदीर्ण करने वाले हो ।

तुर्फरीतू – (द्वि.व.) तुर्फरीतारौ शत्रूणां हन्तारौ (शत्रुओं का नाश करने वाले) । तृफ अथवा तृप् । (हिंसार्थक) से सिद्ध । अर्थ –हिंसा करने वाले । तृफ् अथवा + तृप् + अरीतु = तुर्फरीतु । द्वि.व. में 'तुर्फरीतू'
'सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों अंकुश के समान एकत्र स्थापित करने वाले तथा नाश करने वाले हो । तृम्फ् + तृच् = तुर्फरीतु । (पृषो दरादिवत्)

तुर्यवाट् – (१) तुर्य, तुरीय, अर्थात् चतुर्थ आश्रम वासी पुरुष, विद्वान् ।
'तुर्यवाट् वयः'
वाज.सं. १४.१०, तै.सं. ४.३.३.२, ५.१, मै.सं. २.७.२०, १०५. १४,२.८.२, १०८.१, का.सं. १७.२, ३९.७, श.ब्रा. ८.२.४.१५.
(२) परिव्राजक, (३) चारवर्षों का बैल ।
'तुर्यवाट् गौर्वयोदधुः'
वाज.सं. २१.१६,मै.सं. ३.११.११, १५८.७, का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.२
'तुर्यवाट् च मे'
वाज.सं. १८.२६

तुर्यौही– चार वर्षों की गाय ।
'तुर्यौही च मे'
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२.

तुर्वणिः– (१) वेगवान् वीर पुरुषों को धनादि देने वाला ।
'आभूमिरिन्द्र तुर्वणिः'
ऋ. ५.३५.३
(२) अति वेग में सर्वत्र व्यापनशील ।
'तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः'
ऋ. १.६१.११, अ. २०.३५.११
(३) तूर्य वणिः । तूर्णं यः संभजते (जो शीघ्र संभक्त होता है) । (४) सायण के इसका अर्थ शत्रूणां हिंसिता या क्षिप्रकारी किया है, (५) इन्द्र, (६) शक्ति प्रदाता, (७) तेजस्वीपुरुष । –(दया.)
तूर्ण + वन् + इन् = तूर्णवनि = तूर्वणि (तूर्ण का तुर् आदेश आर्ष है)
अथवा – तुर्वी (हिंसा करना) + नि = तुर्वणि ।

(८) शीघ्रदाता या शीघ्र भेजने वाला ।
'स तुर्वणि र्महां अरेणु पौंस्ये
गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजाशव ।
येन शुष्णं मायिनमायसोमदे
दुध्र आभूषु रामयन्निदामनि '
ऋ. १.५६.३, नि. ६.१४.
वह क्षिप्रकारी या शत्रुवध के लिए शीघ्र संभजन करने वाला इन्द्र (स तुर्वणिः) अपने बल या प्रभाव से महान् है । वह लौह कवच पहने (आयसः) सोमपान से हर्षित होने पर (मदे) दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला होता है (दुध्रः) जिस बल से मायावी शत्रु को कारागृहों में (आभूषु) बन्धक निगड़ में रमाया (दामनि रामयत्)। वह बल (शवः) संग्राम में (पौंस्ये) अनवद्य (अरेणु) तथा शत्रुहिंसक ही शोभता है (तुजा भ्राजते) जैसे पर्वत की चोटी शोभती है (गिरेःपृष्टिः न) ।
अन्य अर्थ- वह शीघ्र प्रदाता, महात्मा, तेजस्वी पुरुष (सतुर्वणिः महान्) अक्षय यौवन में (अरेण पौंस्ये) पर्वत श्रृंग की तरह चमकता है । (गिरेः भृष्टिः न याजते) । वह लौह समान दृढ़ शरीर वाला (आयसः) तथा विद्या से पूर्ण कर प्रसन्नता में रमण कराने वाले (दुध्रः मदे रामयन्) शोभायमान (आभूषु) तथा सब की पालना करने वाले बल को (तुजा शवः) धारण करता है जिससे उस बलवान् का प्रज्ञावान् वर को (येन शुष्णंमायिनम्) स्त्री अपने प्रेम पाश में (दामनि) बांधती है ।

तुर्वशः- (१) एक वैदिक राजा, (२) शत्रु-हिंसक, (३) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, सबकी कामना करने वाला ।
'त्वमयो यदवे तुर्वशाय '
ऋ. ५.३१.८, आश्व .श्रौ.सू. ९.५.२.
(४) निकट रहने वाला ।
'नितुर्वशं नियाद्वम् शिशीहि '
ऋ. ७.१९.८, अ. २०.३७.८
'असि प्रशर्ध तुर्वशे '
ऋ. ८.४.१, अ. २०.१२०.१, सामं. १.२७९, २.५८१
(५) हिंसकों को वश में करने में समर्थ (६) शीघ्रता से दूरस्थ पदार्थों की कामना या उन पर अधिकार करने में समर्थ । (तुरा शीघ्रतया पर पदार्थान् वष्टि कोक्षति सः)
'अग्निना तुर्वशं यदुम् परावतः
उग्रा देवं हवामहे '
ऋ. १.३६.१८
अग्नि के बल पर तुर्वश दूरस्थ पदार्थों की कामना या उन पर अधिकार करने में समर्थ, यत्न शील पुरुष को और भयकारक पुरुषों को जीतने वाले पुरुष को (उग्रादेवं) दूर देश से भी हम स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध के लिये पुकारते हैं ।
(६) मनुष्य ।
'राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि '
ऋ. ८.४.१९
दीप्त महान् एवं शोभन धन वाले कुरंग राजा को स्वर्ग प्राप्त कराने वाली क्रियाओं में मनुष्यों को (तुर्वशेषु) दक्षिणा रूप में (रातिषु) हम समझते हैं । (अमन्महि) ।
(८) वेद, शिल्पादि कला का ज्ञाता
'यन्नासत्या परावति
यद्वा स्थो अधितुर्वशे
ऋ. १.४७.७,
हे कभी असत्या चरण न करने वाले, चाहे तुम दूर देश में हो चाहे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के अभिलाषी प्रजाजनों के ऊपर शासन करते हो ।
(९) ऋग्वेद का एक जन । यदु के साथ तुर्वश का नाम प्रायः आया है । दोनों के पुरोहित कण्व, तुत्यत्र वत्स और उनके वंशज थे अत्रि और उनके वंशज सतलज के पूर्व रहने वाले पुरुषों के पुरोहित थे । अवस्यु आत्रेय यदु तुर्वश के भी प्रशंसक थे । भरतों के पुरोहित भरद्वाज ने सृजयों के हाथ तुर्वशों की पराजय का वर्णन किया है (ऋ ६.२७.७) । भरद्वाज बृहस्पति के पुत्र थे । बृहस्पति के दूसरे वंशज शंयु तुर्वश का गुण गठन करते हैं (ऋ ६.४५.१) । तुर्वश और यदु भरतों के प्रतिद्वन्दी के ।

तुरा- (१) तुर् (त्वरण अर्थ में) + क + टाप् = तुरा । अर्थ-द्यूतकर्मणि त्वरमाणः -
(जुए के खेल में त्वरमाण)
(२) चंचल, (३) अविवेकी, (५) अति शीघ्रता करने वाला ।
'तुराणामतुराणां '

अ. ७.५०.२
(५) हिंसक -दया. (६) शीघ्रगामी ।

तुराषाट् - (१) वेगवान् शत्रुवीरों का पराजय करने वाला इन्द्र ।
'उग्रस्तुराषाडभिभूत्योजाः '
ऋ. ३.४८.४
(२) हिंसकों का घातक, इन्द्र का एक नाम ।
'ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् '
ऋ. ५.४०.४, अ. २०.१२.७, गो.ब्रा. २.४.२.

तुर्मिश - अनिष्ट का नाशक।
'तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानः '
अ. १९.७.१

तुरीय- (१) चतुर्थांश, (२) परमपद
'अपस्तुरीयममृतं तुरीयम् '
अ. १०.१०.२९
(३) दुःख संकट से पार करने वाला ।
'तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामोनम् '
ऋ. ८.३.२४
(४) शीघ्रता से स्थानान्तर में जाने में समर्थ ।
'त्वष्टा तुरीयो अद्भुतः '
वाज.सं. २१.२०, तै.ब्रा. २.६.१८.४.
(५) स्थूल, सूक्ष्म, कारण और पाप करण में चौथी अवस्था, (६) मोक्ष स्वरूप, (७) चारों वर्णों का पूरक (८) शत्रु, मित्र और उदासीन सबसे ऊपर विद्यमान चतुर्थ । मण्डूकोपनिषद् में तुरीयस्वरूप का वर्णन इस प्रकार है ।
'अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव । '
पुनः ऋग्वेद १.१५.१०, में
'यत्त्वा तुरीयमृतुभिः द्रविणोदो यजामहे '

तुरीय- (१) नौकाओं का पालक (२) बुनने के यन्त्रों का पालक (३) वेगवान् रथों का पालक (४) शीघ्र रक्षा करने वाला ।
'तन्नस्तुरीप मद्भुतम् पुरुषारं पुरुत्मना । '
ऋ. १.१४२.१०

तुरीय धाम, - चतुर्थ धाम परमपद, प्रभु, ।
ऋ. ९.९६.१९, साम. २.५२७

तुरीयंपात्रम् - (१) चौथा सोमपात्र, (२) चतुर्थपान में रखा सोम-सा. (२) चार प्रकार के हवि हैं होत्र, पोत्र, नेष्ट्र और तुरीय । हवि का वृष्टिप्रद भाग होत्र, सुगन्धिप्रद भाग पोत्र, पुष्टि प्रदभाग नेष्ट्र और अकाल मृत्यु से बचाने वाला तुरीय है । (३) हवि का चतुर्थ भाग ।
'तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यम् '
ऋ. २.३७.४
अपरिभुक्त एवं अमरण साधन चतुर्थपात्र में रखे सोम को पीवे-सा. । अकालमृत्यु से बचाने वाला रोगनाशक औषधिरूप हवि का पान कर । - दया.

तुरीयम् - (१) तूर्णापि - शीघ्र प्राप्त होने वाला -उदक, जल, । तत् हि तूर्णम् आप्नोति निम्न भुवम् (जल नीची भूमि पर शीघ्र पहुंच जाता है)।तूर्णम् आप्तुंशीलं यस्य स तूर्णापिः (जो शीघ्र प्राप्त होने वाला है) । तूर्ण + आप् +णिनि = तूर्णपि = तुरीय (पृषोदरादिवत्) ।
'तन्नस्तुरीपमद्भुतम्
पुरुवारं पुरुत्मना
त्वाष्टा पोषाय विष्यतु
राये नाभानो अस्मयुः '
ऋ. १.१४२.१०
वैद्युताग्नि हमारे पालन पोषण के लिए अद्भुत जल बरसावे । स्वा. दयानन्द का अर्थ-हमें चाहने वाला (अस्मयुः) अति तेजस्वी (नाभानः) विद्या से प्रदीप्त गुरु (त्वष्टा) हमें (नः) शीघ्र प्राप्त होने वाला (तुरीयः) महान् (अद्भुत्) तथा सभी मनुष्यों से वरणीय (पुरुवारम्) उस सत्य ज्ञान को (तत्) अनेक रूप से (पुरुत्मना) धर्म, धन और सांसारिक धन की पुष्टि के लिए (राये पोषाय) प्रदान करे (विष्यतु) ।

तुरीय ब्रह्म- (१) तीनों लोकों से परे विद्यमान ब्रह्म, (२) सर्वातिशायी बल या ऐश्वर्य (३) चतुर्थ वेद या ब्रह्म का अतिसूक्ष्म आनन्दमय स्वरूप
'तुरीयेण ब्रह्मणा विन्ददत्रिः '
ऋ. ५.४०.६
'तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः '
अ. ७.१.१, शां.श्रौ.सू. १५.३.७.

तुरीया - जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से परे शिवरूपा अमात्रा परमशक्ति
'अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीत् '
अ. ८.९.१४

तुरीयावाक् - (१) वाणी के चार विभाग-परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं । चौथा विभाग

अर्थात् वैखरी तुरीया वाक् है। (२) कुछ विद्वान् भूः, भुवः, स्वः और ओम् को ही चार विभाग मानते हैं।
'तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति'
ऋ. १.१६४.४५, अ. ९.१०.२७, श.ब्रा. ४.१.३.१७, तै.ब्रा. २.८.८.६, जै.उप.ब्रा. १.७.३, ४०.१, नि. १३.९.

तुला – तराजू।
'तुलायै वणिजम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

तुर्वीति – (१) बाधक कारण, (२) कर्म बन्धन को नाश करना, (३) शीघ्र ही परम पद प्राप्त कराना।
'तुर्वीतये च वय्याय च स्तुतिम्'
ऋ. २.१३.१२
(४) तुर्वी + इति = तुर्वीति। हिसंक
'तुर्वीतिं दस्यवे सहः'
ऋ. १.३६.१८
(५) शत्रु नाशक। (६) दुष्ट प्राणियों या दोषों का हिंसक, (७) शत्रुओं को मारने में कुशल।
'त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो'
ऋ. १.५४.६.

तुर्वीयत् – अति वेग से जाने वाला पुरुष।
'तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः'
ऋ. १.६१.११, अ. २०.३५.११

तुवि– बहुत।

तुविक्षत्रा – (१) बहुत से क्षत्र बल से युक्त
'तुविक्षत्रामजरन्तीम् उरूचीम्'
वाज.सं. २१.५, अ. ७.६.२, तै.सं. १.५.११.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.११, का.सं. ३०.४.५, आश्व. श्रौ.सू. २.१.२९, शां.श्रौ.सू. २.२.१४.
(२) बहुत प्रकार से क्षति से बचाने वाली, (३) बहुत धन और बल से युक्त ब्रह्म शक्ति।

तुविक्षम् – (१) धनुष का विशेषण। बहतु बाणों को चलाने वाला धनुष।
'तुविक्षम् ते सुकृतं समूमयं धनुः'
ऋ. ८.७७.११, नि. ६.३३.
तेरा धनुष बहुवाणवर्षी (तुविक्षम्) सुन्दर कर्मों का करने वाला (सुकृतम्) और सुखकर-है (सूमयम्)।

तुविकूर्मि – (१) बहुत से कर्मों को करने वाला
'तुविग्राभं तुविकूर्मि रभोदाम्'
ऋ. ६.२२.५, अ. २०.३५.५
(२) बहुकर्मा इन्द्र या परमात्मा का विशेषण।
'तुविकुर्मिमृतीषहम्
इन्द्र शविष्ठ सप्तते'
ऋ. ८.६८.१, साम. १.३५४,
हे इन्द्र! अनेक कर्म करने वाले, दुःखों के नष्ट करने वाले तेरी शरण मे हम आते हैं।

तुविग्र– (१) बहुशब्दवान् –दया. (२) घोर शब्द करने वाला प्राणी (३) बहुत उपदेश करने वाला।
'तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति विज्रयः'
ऋ. १.१४०.९
घोर शब्द करने वाले प्राणियों के साथ ही अति बलवान्, वेगवान् और नाशकारी अग्नि विविध दिशाओं में फैल जाता है।

तुविग्राभः – (१) बहुतों को वश में करने वाला।
'तुविग्राभं तुविकूर्मि रभोदाम्'
ऋ. ६.२२.५, अ. २०.३६.५.
(२) बहुत से लोकों को ग्रहण करने वाला

तुविग्रि– (१) बहुत ज्ञानोपदेश करने वाला। (२) इन्द्र का विशेषण।
'तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे'
ऋ. २.२१.२

तुविग्रीवः – (१) बहुत गर्दन वाला (२) समर्थ पुरुषों से सहाय वान् राजा।
'तुविग्रीवो वृषभो वावृधानः'
ऋ. ५.२.१२
'तुविग्रीवो वपोदरः'
ऋ. ८.१७.८, अ. २०.५.२.
(२) प्रबल गर्दन वाला, उत्सुकता से गर्दन को ऊपर उठाए हुआ।
'तुविग्रीवा इवेरते'
ऋ. १.१८७.५

तुविजातः – (१) बहुत से देहों में प्रादुर्भूत आत्मा।
'गिरश्चये ते तुविजात पूर्वीः'
ऋ. १०.२९.५, अ. २०.७६.५.
(२) बड़े या विद्या वृद्ध से उत्पन्न।
'एवामहस्तुविजातस्तुविष्मान्'
ऋ. १.१९०.८.
(३) बहुत से गुणों में प्रसिद्ध।

'तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः'
ऋ. २.२७.१ वाज.सं. ३४.५४, का.सं. ११.१२ नि. १२.३६.
(४) तुवि + जन + क्त = तुविजात । बहुजन्मा (५) ब्रह्मा, बहुत होने से ब्रह्मा का नाम तुविजात । है । (६) आदित्य का एक नाम ।

तुविद्युम्न – (१) बहुत अधिक ऐश्वर्यवान् ।
'तुविद्युम्न यशस्वतः'
ऋ. १.९.६, ३.१६.६, अ. २०.७१.१२.
(२) बहुत प्रकाश वाला (३) प्रचुर धन वाला
'तुविद्युम्नासोधनयन्ते अद्रिम्'
ऋ. १.८८.३
अति धनाढ्य जन भी तुम लोगों के भरण पोषण और रक्षा के लिये अक्षय शस्त्रास्त्र बल को (अद्रिम्) अपना धन बना लेते हैं (धनयन्ते) या पर्वत के समान विशाल धन को प्राप्त करते हैं ।

तुविदेष्ण– बहुत धन देने वाला ।
'तुविदेष्णम् तुवीमघम्'
ऋ. ८.८१.२, साम. २.७९.

तुविनृम्ण– (१) बहुत धनादि ऐश्वर्यों का स्वामी इन्द्र ।
'ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा'
ऋ. ४.२२.६
(२) बहुत प्रकार के धन ।
'महिश्रवस्तुविनृम्णम्'
ऋ. १.४३.७

तुविप्रतिः– (१) बहुत से शत्रुओं का मुकाबला करने में समर्थ ।
'हुवे तुविप्रतिं नरम्'
ऋ. १.३०.९, अ. २०.२६.३, साम. २.९४.
(२) नाना लोकों को बनाने वाला परमेश्वर ।

तुविमन्युः– अतिक्रोध या ज्ञान से युक्त ।
'भीमासरस्तुविमन्युवोऽयासः'
ऋ. ७.५८.२

तुविम्रक्षः– (१) बहुतों से स्नेह करने वाला ।
'तुविम्रक्षो नदनुमां ऋजीषी'
ऋ. ६.१८.२, का.सं. १८.१७.

तुविमात्र– बहुत धनराशि का स्वामी ।
'तुविमात्रमवोभिः'
ऋ. ८.८१.२, साम. २.७९.

तुविराधाः – बहुत ऐश्वर्यों से सम्पन्न ।
'शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे'
ऋ. ७.२३.५, अ. २०.१२.५.

तुविवाज – बहुत से वेगवान् अश्वादि साधन ।
'तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक्'
ऋ. ६.१८.११

तुविवाजा– प्रचुर अन्न या विद्या बोध से युक्त स्त्री या प्रजा ।
'रेवतीर्नः सधमादः
इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः'
ऋ. १.३०.१३, अ. २०.१२२.१, साम. १.१५३, २.४३४, तै.सं. १.७. १३.५, २.२.१२.८, ४.१४.४, मै.सं. ४.१२.४,१८९,५,का.सं. ८.१७.

तुविवाधः– (१)एक साथ होने वाली कड़ी मार, एक साथ होने वाला प्रहार (२) बहुत शत्रुओं को बांधने वाला ।
'महावीरं तुविबाधमृजीषम्'
ऋ. १.३२.६, तै.ब्रा. २.५.४.३.

तुविवाध– अनेक शत्रुओं को बाधित करने वाला, अनेकों से मुकाबला करने वाला ।

तुविशग्मः– बहुत से सुखों से पूर्ण इन्द्र ।
'यः शग्मस्तुविशग्म ते'
ऋ. ६.४४.२

तुविश्रवस्तमः – (१) अतिशयेन बहुश्रुतः दया । (बहुत ज्ञान वाला) (२) बहुत ऐश्वर्यों से सम्पन्न (३) अग्नि ।
'अग्निस्तुविश्रवस्तमः'
ऋ. ३.११.६, साम. २.९०.८.

तुविशुष्म – बहुत बलवाला ।
'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मः'
ऋ. २.२२.१, अ. २०.९५.१, साम. १.४५७, २.८३६, कौ.ब्रा. २७.२, शं.श्र.सू. १५.२.१, तै.ब्रा. २.५.८.९

तुविष्टम – (१) तुविस्तम्, बहुविधा शक्तियों और ऐश्वर्यों में सबसे महान् बलवान्
'तुविष्टमो नरां न रह गम्याः'
ऋ. १.१८६.६.
(२) अति अधिक प्रजाओं का स्वामी, (३) नाना प्रकार के ऐश्वर्य के सुख, (४) प्रजावृद्धि ।
'तुविष्टमाय धायसे'
ऋ. १.१३०.२
अति अधिक प्रजाओं के स्वामी राष्ट्र के धारक

के लिये ।

तुविष्वणासः – (ब.व.) – (१) बहुत प्रकार से शब्द करने वाले (२) नाना स्वरों से वेदपाठी ।
'तुविष्वण सो मारुतं न शर्धः'
ऋ. ४.६.१०

तुविष्वणिः– (१) बहुत शब्द करने वाला मेघ ।
'सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे'
ऋ. ८.४६, १८
(२) बहुत ऐश्वर्य देने वाला ।
'वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणिः'
ऋ. २.१७.६
(३) यः बहून् पदार्थान् वनति संभजति (बहुत पदार्थों का सेवक (४) बहुत से स्वर अर्थात् वर्णध्वनियों को उत्पन्न करने वाला जीवात्मा ।
'वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः'
ऋ. १.५८.४
ज्वालाओं द्वारा (जुहूभिः) और अपने वेग से गमन करने के शक्ति से चटापटा आदि अनेक शब्द करता है, उसी प्रकार जीवात्मा प्राणों और स्वंय सरण करने वाली वाणी द्वारा (सृण्या) अनायास ही (वृथा) बहुत से स्वर और स्वरध्वनियां उत्पन्न करती हैं ।

तुवीमघः – (१) बड़े ऐश्वर्यों का स्वामी ।
'एवारातिस्तुवीमघ'
ऋ. ८.९२.२९, अ. २०.६०.२, साम. २.१७५.
'सहस्रेषु तुवीमघ'
ऋ. १.२९.१-७, अ. २०.७४.१-७,का.सं. १०.१२, तै.ब्रा. २.४.४.८.
(२) प्रचुर ऐश्वर्य वाला –परमेश्वर इन्द्र ।
'गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ'

तुवीरवः– बहुत शब्द करने वाला–मन ।
'स इद्दासं तुवीरवम् पतिर्दन्
ऋ. १०.९९.६

तुव्योजाः– तुवि + ओजस् । बहुत बल युक्त ।
'अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्याः'
ऋ. ४.२२.८

तुष – सूप से फटकने के बाद अन्न से निकलने वाली भूसी आदि ।
'शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः'
अ. ९.६.१६

तुषयन्ती – अति प्रसन्न होती हुई ।
'अवेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति'
ऋ. १०.२७.१६

तुष्टुवान् – (१) ईश्वर की स्तुति करता हुआ (२) सत्य तत्वों का उपदेश करता हुआ ।
'स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः'
ऋ. १.८९.८, साम. २.१२२४ वाज.सं. २५.२१

तुष्टुवांसः– (१) पदार्थगुणान् स्तुवन्तः (पदार्थों थथा गुणों की स्तुति करते हुए) (२) परमेश्वर की स्तुति उपासना करते हुए (३) ज्ञानयोग्य पदार्थों का याथार्थरूप से वर्णन करते हुए ।

त्र्युधाः– त्रि + ऊधाः (१) तीनों प्रकारों के मेघों को उत्पन्न करने वाला सूर्य ।
(२) तीनों लोकों को रस देने वाल परमेश्वर ।
'उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्'
ऋ. ३.५६.३

तूणवध्म – तूणव + ध्म । तूणव नामक ढोल या ढक्कन बजाने वाला ।
'क्रोशाय तूणवध्मम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

तूताव – तनाव – ववधे (वर्धते–बढ़ता है) । तु (वृद्धि होना) लिट् प्र.पु. ए.व. में । 'तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य' से अभ्यास 'उ' का दीर्घ ।
'स तूताव नैनमश्नोत्यं हतिः'
ऋ. १.९४.२, नि. ४.२५.

तूतुम् – तूर्णम् (शीघ्र) । तूर्णम्' से ही 'तू तु' हो गया है ।
'एता विश्वा सवना तू तुमाकृषे'
ऋ. १०.५०.६, नि. ५.२५.
हे इन्द्र ! इन सभी स्थानों को शीघ्र ही तुझे निवर्तित करता हूँ ।

तूतुजानः– (१) सर्वत्र व्यापक ।
'यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान्'
ऋ. १०.४४.१, अ. २०.९४.१
(२) सबको तीव्रगति देने वाला ।
'अस्या इदु प्र भरा तूतुजानः'
ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१०, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.
(३) तूर्ण, त्वारमाण । तुज् + शानच् = तूतुजान । तुज् धातु हिंसार्थ कर है । अर्थ–आशुकारी, शीघ्रता करता हुआ या शीघ्र करता हुआ । तुज

धातु आशु करना अर्थ में आया है ।

तुतुजिः- (१) शत्रुओं का नाशक (२) प्रजापालक ।
'अतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत्'
ऋ. ७.२८.३

तूपरः- (१) सींगों वाला मेढा-भेड़ (२) भेड़ के समान प्रतिस्पर्धी से जान देकर लड़ने वाला ।
'अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः'
वाज.सं. २४.१, तै.सं. ५.५.२३.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१०.का. सं. (अश्व.) ८.२.
(३) बिना सींग का पशु ।
'वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ'
वाज.सं. २९.५९.तै.सं. ५.५.२४.१

तूपम् - क्षिप्रम्-शीघ्र ।
'आपित्वेनः प्रपित्वे तूयमागहि'
ऋ. ८.४.३, साम. १.२५२, २.१०७१, नि. ३.२०. सोमपान का समय हो जाने पर हे इन्द्र शीघ्र आ ।

तूर्ण्यर्थः- (१) शीघ्र ही अपने अभिप्राय को प्रकट करने वाला ।
'प्रयत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थः'
ऋ. ३.५२.५

तूर्ण्यर्था- (१) अतिशीघ्र गमन करने वाले जल अन्नादि से युक्त नदी, (२) शीघ्र ही समझ में आने वाले अर्थों से युक्त वाणी ।
'आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्थाः'
ऋ. ५.४३.१, ऐ.ब्रा. २.२०.५, कै.ब्रा. १२.१.

तूर्णाश- (१) जल ।
'तूर्णाशं न गिरेरधि'
ऋ. ८.३२.४, नि. ५.१६.
तूर्णम् अश्नुते (तुरन्त फैल जाता है) तूर्ण + अश + अण् (कर्म में) = तूर्णाश । जल तुरत फैल जाता है ।

तूर्णिः - (१) शत्रुहिंसक सेना को आगे ले चलने वाला-इन्द्र ।
'समना तूर्णिरुप यासि यज्ञम्'
ऋ. १०.७३.४
(२) शीघ्र ।
'अपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन्'
ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.
जो अग्नि या सूर्य विविध कर्मों को जानता हुआ या जल उत्पन करता हुआ शीघ्र चलता है । (३) त्वर् + णिनि = तूर्णि । अर्थ- त्वरमाण वेगवान् । वैश्वानर अग्नि का विशेषण ।

तूर्णितमः - अति शीघ्र कारी, आलस्य रहित
'प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमः'
ऋ. ४.४.३, वाज.सं. १३.११, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५ ,९७.११, का.सं. १६.१५

तूर्यः- शत्रु हिंसक ।
'त्वं तूर्यतरुष्पतः'
ऋ. ८.९९.५, अ. २०.१०५, १. साम. १.३११, २.९८७. वाज.सं. ३३.६६.

तूर्व- शत्रु बल-हिंसक योद्धा ।

तूर्वन् - अतिवेग से गमन करता हुआ ।
'प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तीः'
वाज.सं. ११.१५,तै.सं. ४.१.२.१, मै.सं. २.७.२, ७५.७, ३.१.३, ४.४, का.सं. १६.१,१९,२ श.ब्रा. ६.३.२.७.

तूर्वयाणः- (१) शीघ्रकारी रथों का स्वामी (२) शीघ्र शत्रु पर चढ़ाई करने वाला जन ।
'तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम्'
ऋ. १.५३.१०, अ. २०.२१.१०

तूर्वयाण - (१) शीघ्रगामी रथों का स्वामी, (२) हिंसाकारी प्रयाण करने में कुशल ।
'रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणम्'
ऋ. १.१७४.३.
(३) हिंसक शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर सैनिक (४) जिसके शासन में वीर सैनिक हों, दे. त्रामन् (५) शीघ्र यान वाला-इन्द्र ।
'उत् तूर्वयाणं धृषता निनेथ'
ऋ. ६.१८.१३

तूर्षुतरणिः- (१) अतिवेगवान् पदार्थों में अतिशीघ्र गामी वायु, (२) हिंसाकारी शत्रुओं पर वेग से आक्रमण करने वाला (३) सूर्य ।
'याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना
द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति'
ऋ. १.११२.४
सर्वत्र सब पदार्थों में अपने वेग से उथल पुथल मचादेने वाली और प्रेरित करने में समर्थ वायु (परिज्मा) अपने से उत्पन्न अग्नि के बल से (तनयस्यमज्मना) पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाला (द्विमाता) और अति वेगवान् पदार्थों में सर्वाधिक शीघ्रगामी होता

रहता है ।
अथवा, सब तरफ आक्रमण करने वाला दिग्विजयी पुरुष (परिज्मा) अपने राज्य प्रसारक सैन्य बल से (तनयस्य.यज्मना) राजवर्ग और प्रजा आदिकों पर शासनकारी (द्विमाता) या माता पिता दोनों का आदर करने वाला और हिंसाकारी शत्रुओं का वेग से आक्रमण करने वाला (तूर्षुतरणिः) या सूर्यवत् वेगवान् तेजस्वी नाना रक्षादि व्यवहारों से विशेष शोभा को धारण करता है (विभूषति) ।

तूल- अग्रभाग, मुख्य बल
'दिवि ते तूलमोषधे'
अ. १९.३२.३

तूः (तुर्) - (१) शत्रुवध का उपाय, शत्रुवध ।
'पृत्सु तूर्षु श्रवःसुच'
ऋ. ३.३७.७, अ. २०.१९.७

तृ - हिंसार्थक धातु । हिंसा करना ।

तृक्ष्य- तृक्षितुं वेदितुं योग्यः तृक्ष्यः, ज्ञातव्य ।

तृक्षि- विजिगीषु नायक ।
'येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवम्'
ऋ. ८.२२.७

तृक्षु- (१) तृक्षुओं का कल, (२) बलवान् ।
'यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने'
ऋ. ६.४६.८

तृच- तिसृणां ऋचां समाहारः (तीन ऋचाओं का समाहार या एकत्र होना तृच है) । त्रि + ऋच तृच् । ऋचि त्रे रुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि) । त्रि के इ' का लोप र का सम्प्रारण और ऋच् के ऋ का लोप । 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप ।

तृढ़ - मारा गया ।
'वैलस्थानं परितृढा अशेरन्'
ऋ. १.१३३.१

तृण- (१) घास, (२) विनाश योग्य शरीर, (३) शत्रु ।
'अद्धि तृणमघ्न्ये विश्व दानीम्'
ऋ. १.१६४.४०, अ. ७.७३.११,९.१०.२०, का.श्रौ.सू. २५.१.१९, आप. श्रौ.सू. ९.५.४, १५.१२.३, नि. ११.४४.
(४) वधकरना, हनन करना ।
'मधुधारमभि यमोजसातृणत्'
ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.
जिस जल धारा बरसाने वाले मेघ को ब्रह्मणस्पति से अभिहत किया ।
(५) तृद्यते यत् तद् तर्दनम्-जिसका तर्दन हो वही तृण है । व्रीहि, यव आदि ।

तृणास्कन्द- (१) तृण के समान निर्बलों पर आक्रमण करने वाला .(२) तृण डोलने वाला वायु, (३) तृणवत् चलने वाला देह ।
'तृणस्कन्दस्य नु विशः'
ऋ. १.१७२.३.

तृत - विस्तीर्ण आकाश ।
'त्वं तृतं त्वं पर्येषि उत्सम्'
अ. १७.१.१५

तृत्सु- (१) वैदिक काल का एक राजवंश (२) हिंसक पुरुष ।
'गव्या तु सुभ्यो अजगन युधानृन्'
ऋ. ७.१८.७
(३) तृद् + सु = तृत्सु । दीर्ण या युद्ध के लिये संगत - (४) दुष्टों का हिंसक क्षत्रिय ।
'इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणाः
आपो न सृष्टाः अधवन्त नीचीः'
ऋ. ७.१८.१५. नि. ७.२.
ये मेघ या असुर जो पहले ऊंची गति से या उत्तान होकर चलते थे, इन्द्र से दीर्णहोकर या युद्ध के लिये संगत होकर भी (एते इन्द्रेण तृत्सवः) जल के सदृश विलीनप्राय हो नीचे होकर चलने लगे (वेविषाणा आपो न सृष्टा नीचीः अधवन्त)
ये सारे राष्ट्र में फैले हुए दुष्टों के हिंसक क्षत्रिय (एते वेविषाणाः तृत्सवः) राजा के साथ मिलकर (इन्द्रेण) जो राजद्रोही हैं उन्हें (दुर्मित्रासः) फेके हुए जल की तरह (सृष्टाः आपः न) नीचे पहुचा दे । (नीची अधवन्त)

तृतीयक - तीसरे दिन आने वाला ज्वर, निजरा ।
'तृतीयकं वितृतीयम्'
अ. ५.२२.१३
'शीर्षलोकं तृतीयकम्'
अ. १९.३९.१०

तृतीयचक्र - (१) अतिअधिक तीर्णतम्, (२) सबसे ऊपर का लोक।
'तृतीयेचक्रे रजसिप्रियाणि'
ऋ. १०.१२३.८, अ. १३.१.११, साम. २.११९८.

तृतीयज्योतिः- (१) प्राणों से बढ़कर आत्मा रूप ज्योति ।
'तृतीयेण ज्योतिषा संविशस्व'
ऋ. १०.५६.१, अ. १८.३.७, साम. १.६५, का.सं. ३५.१७, तै.ब्रा. ३.७.१.१४, तै.आ. ६.३.१. ४.२, आप.श्रौ.सू. ९.१.१७, मा.श्रौ .सू. ३.४.१.

तृतीय धाम - (१) सर्वोच्च लोक (२) परम, सबसे परे विद्यमान जीव और प्रकृति से भी विलक्षण परम तेज (३) तृतीय रजस, तृतीय वाक, तृतीयपृष्ठ, तृतीय लोक । तृतीय का अर्थ है तीर्णतम, सबसे उच्च ।
'तृतीये धामन् अध्यैरमन्त'
वाज.सं. ३२.१०, तै.आ. १०.१.४, महा.ना.उप. २.५.

तृतीयनांक - (१) तृतीय, परम ज्योतितिर्मय लोक
'तृतीयेनाके सधमादं मदेम'
अ. ६.१२२.४
(२) पुरम दुःखों से पार सुखमय मुक्तिधाम ।
'तमाञ्चरोदधि नाकं तृतीयम्'
अ. ९.५.६
(३) सबके उत्कृष्ट सर्वोच्च निःश्रेयस पद ।
'तृतीये नाके अधिविश्रयस्व'
अ. ९.५.४,८, १८.४.३

तृतीयब्रह्म - (१) परम तीर्णतम वेदज्ञान, सामगान या ईश्वर का तीर्णतम रूप (२) आत्मा की सुषुप्ति अवस्था ।
'तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानाः'
अ. ७.१.१, शां.श्रौ.सू. १५.३.७.

तृतीयभ्राता- (१) सबसे उत्कृष्ट तीर्णतम् सर्वधारक स्वरूप, (२) तीसरा भाई जलमय आपोमय प्रकृति (३) जल को पृष्टपर लिये भूलोक घृतपृष्ट, (४) मेघ, (५) जल को पीठ पर लिये विद्युत् रूप अग्नि ।
'तृतीयोभ्राता घृतपृष्ठो अस्य'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.

तृतीयःभ्राता घृतपृष्टः- (१) तीसरा भाई अग्नि, विद्युत् जल को अपने पीठ पर धारण करने वाला है, (२) तृतीय सर्वोत्कृष्ट भ्राता पोषक आत्मा है जो जलों के वर्षक विद्युत् के समान और सब अंगों में तेज और बल का सेचन करने वाला है, (३) तीसरा भाई अग्नि है जो घृत द्वारा सिक्त हो और बढ़ता है । सूर्य का तेज धारण करने से वह भ्राता है ।

तृतीयराष्ट्र - (१) तृतीय या सबसे श्रेष्ठ राष्ट्र , (२) राष्ट्रोपयोगी प्रजा धन और ऐश्वर्य ।
'तृतीयं राष्ट्र धुक्षे'
अ. १०.१०.८

तृतीयशंख- तृतीय शंख सूक्त ।
'तृतीयेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.१०

तृतीय सवन - (१) तीसरा सवन, (२) आदित्य ब्रह्मचर्य का समय ।
'अग्ने तृतीये सवने हिकानिषः'
ऋ. ३.२८.५, आश्व.श्रौ.सू. ५.४.६.

तृतीयं कर्म- तीसरा श्रेष्ठ कर्म वीर्यः सेचन ।
'आस्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा'
ऋ. १०.५६.६

तृतीयं रजः- तीसरा लोक द्यौलोक ।
'तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः'
ऋ. ९.७४.६

तृतीयाद्यौः- (१) तृतीय द्युलोक ।
'तृतीयस्यामितो दिवि'
अ. ५.४.३, ६.९५.१, १९.३९.६, हि.गृ.सू. २.७.२.
(२) शरीर का तृतीय लोक मूर्धास्थान ।

तृतीया पृथिवी - द्यौ ।
'य स्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्ट नाम । यज्ञियं तेन त्वादधे'
वाज.सं. ५.९

तृदिल- दुःखों, कष्टों तथा संशयों को काटने वाला ।
'तृदिला अतृदितासो अद्रयः'
ऋ. १०.९४.११

तृध् - (धा) तृण के समान तोड़ना ।
'तृन्धि दर्भ सपत्नान् मे'
अ. १९.२९.२

तृपत्- (१) तृप्त होता हुआ ।
'तृपत् सोमंपाहि द्रह्यदिन्द्र'
ऋ. २.११.१५
(२) तृप्त, करता हुआ ।

तृपल - (१) क्षिप्र कार्यकारी (२) सबको अन्न सुखादि से तृप्त करने वाला,
'प्रहंस्तसस्तृपलं मन्युमच्छ'

ऋ. ९.९७.८, साम. २.४६७.
(३) तृप्र -सृप्र- क्षिप्र । शीघ्र । (४) दीक्षित ने इसे 'दुःख' या दुःख का कारण, अर्थ में लिया है । 'क्या अंग्रेजी का Trouble शब्द तृपल का बिगड़ा रूप है । 'तृप्रं दुःखं तत्करणञ्च ।
(५) सृप्र का अर्थ गमनशील है (सृप् + रक्) अतः तृपल का स्पष्ट अर्थ गमनशील प्रहार वाला हुआ

तृपलप्रमर्मा - (१) बड़े वेग से शत्रुओं पर प्रहार करने वाला ।
'आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा'
ऋ. १०.८९.४, तै.सं. २.२.१२.३, तै.आ. १०.१.९, नि. ५.१२.
(१) ग्रावादिभिः क्षिप्र प्रहरी (ग्रावा आदि से शीघ्र प्रहार करने वाला) क्षिप्र प्रहारी- तृपल प्रहारी । क्षिप्र का ही तृपल हो गया है ।
प्रभामी की व्युत्पत्ति -प्र + हृ (धारणार्थक) + मनिन् = प्रभर्मन् (हृग्रहोर्भश्छन्दसि) । तृप्रन् उपल को अर्थ में आया है । अन्य प्रहार -साधन भी इसका अर्थ हो सकता है । दीक्षित ने इसे दुःख या दुःख का कारण अर्थ में लिया है । (तृप्र दुःखं तत् कारणञ्च) सृप्र का अर्थ गमनशील है । सृप् + रक् । अतः गमनशील या शीघ्रता से प्रहार करने वाला अर्थ हुआ ।
(३) इन्द्र या राजा का विशेषण

तृप्रांशुः- एक एक रेशे में तृप्त, रस से पूर्ण सोमरस
'सोमासो नये सुता स्तृप्तांशवः'
ऋ. १.१६८.३

तृप्ति- जल-पान के समान, तृष्णा को शान्त करने वाली तृप्ति ।
'स्वधा च यत्र तृप्तिश्च'
ऋ. ९.११३.१०

तृप्र - (१) तृप्त, (२) अति अतिधनी ।
'न तृप्रा उरुव्यचसम्'
ऋ. ८.२.५

तृप्रदंशी- (१) भरपेट या अतिशीघ्र काट देने वाला -सर्प (२) मुख, पुच्छ पाद सभी अंगों से काटने वाला मच्छड़ आदि ।
'अर्भस्य तृप्रदंशिनः'
अ. ७.५६.३

तृंहती- नाशकारिणी सेना ।
'नम उगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२४, तै.सं. ४.५.४.१, मै.सं. ८.९.४, १२३.१५, का.सं. १७.१३.

तृष्ट- (१) दाह जनक ।
'तृष्टमेतत् कटुकमेतत्'
ऋ. १०.८५.३४, अ. १४.१.२९
'यद् वाचस्तृष्ट जनयन्त रेभाः'
ऋ. १०.८७.१३, अ. ८.३.१२, १०.५.४८.
'मा तृष्टानामसि'
अ. १९.५७.३
(२) प्यासा, (३) अभिलाषी (४) तीखा कठोर वचन ।
'अति तृष्टं ववक्षिथ अथैव सुमना असि'
ऋ. ३.९.३
(५) कटुरुप ।

तृष्टजम्भय - तीक्ष्ण दांत वाला जन्तु ।
'तृष्टजम्भा आश्रृणोतमे'
अ. ६.५०.३

तृष्टदंश्मा- तीक्ष्ण काटने वाला सर्प आदि ।
'यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा'
अ. १२.१.४६, कौ.सू. १३९.८

तृष्टधूम - (१) प्यास लगाने वाला धूम ।
'अध रात्रि तृष्टधूमम्'
अ. १९.५०.१
(२) निः श्वास लेने वाला सर्प ।

तृष्टवन्दना - (१) कामातुर, तृष्णातुर पुरुषों को चाहने वाली स्त्री ।
'तृष्टिके तृष्टवन्दने'
अ. ७.११३.१

तृष्टिका- काम तृष्णा से आतुरस्त्री ।

तृष्णजः- (१) वर्षाऋतु ग्रीष्म से ही वर्षा ऋतु का उदय होता है । अतः यह तृष्णज है । तृष्णा + जन् + ड= तृष्णज ।
'तृष्णजेन दिव उत्सा उदन्यवे'
ऋ. ५.५७.१, नि. ११.१५, कौ.ब्रा. २०.४.
जिस प्रकार वर्षा ऋतु में द्युलोक से जल (दिवः उत्सः) जलार्थी जनता के लिए आते हैं (उदन्यवे) (२) अभिलाषुक - अभिलाषा वाला -यास्क (३) दुर्ग ने इसे ' तृष्णाज' का इसे बिगड़ा रूप माना है । ऋचा में तृष्णज् आया है । जिसका अर्थ है- 'तृष्णा उपजायते विशेषत

यस्मिन् काले (जिस काल में तृष्णा बहुत होती है। वह समय प्रावृट् या वर्षाऋतु है)।
(४) तृष् + णज् = तृष्णज्। प्यासा।

तृषाणः– पियासा कुल पुरुष।
'कदा सुतं तृषाणा ओक आगमः'
ऋ. ८.३३.२, अ. २०.५२.२, ५७.१५, साम. २.२१५.

तृष्टामा – (स्त्री) शरीर की एक नाड़ी जो आमाशय गत भोजन को पचाती है। जिससे आत्मा पहले गति करता है।
'तृष्टामयाप्रथमं यातवे सजूः'
ऋ. १०.७५.६

तृष्णा– प्यास।
'पदीष्ट तृष्णया सह'
ऋ. १.३८.६

तृष्णामार– तृष्णा के कारण मारने वाला रोग, पित्त, दाह।
'क्षुधामारम् तृष्णामारम्'
अ. ४.१७.६

तृष्वी– (१) अति वेग वाली, (२) अति प्यासी, (३) जल-रहित भूमि (४) ऐश्वर्य चाहने वाली, तृ + युक् = तृषु (त्वर् का तृ भाग) (अनेन फल आगन्तुम् रति) त्वर + त्वरते। तृषु त्र ङीष् = तृष्णी (५) क्षिप्रगायि नी। (६) तृष्णालु (७) तेज आक्रमण के साथ। –दया.
'तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणनः'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५. ७.८.का.सं. १६.१५, नि. ६.१२.

तृष्यत् – प्यासा।
'मय इवापो न तृष्यते बभूथ'
ऋ. १.१७५.६.

तृषु – (१) तीव्रवेग, शीघ्र अतिशीघ्र।
'तृषु यदन्ता तृषुणाववक्ष'
ऋ. ४.७.११, का.सं. ७.१६.
'अश्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः'
ऋ. ७.३.४
'तृषु अविष्यन् अतसेषु तिष्ठति'
ऋ. १.५८.२
शीघ्र व्यापक आकाश पृथ्वी आदि तत्वों के आश्रय पर ही उन्हीं पदार्थों का भोग करता हुआ उन्हीं में रहता है।

तृषुच्यवाः – तीक्ष्ण वेग युक्त गति वाला।
'तृषुच्यवसो जुह्वो नाग्नेः'
ऋ. ६.६७.१०

तृषुच्युत् – (१) शीघ्र ही फिसल जाने वाला, (२) अतिशीघ्रता से गति करने वाला (३) शीघ्र ही शत्रु को सिंहासन पर से उखाड़ फेंकने वाला
'प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतम्'
ऋ. १.१४०.३

तृष्णु– तृप्त होने में समर्थ।
'कुविन्वस्य तृष्णवः'
अ. २०.२४.२

तृह् – (धाः) नाश करना, हत्या करना।
'अथो कुरूरुमतृहम्'
अ. २.३१.२
'वीरा ये तृह्यन्ते मिथः'
अ. ५.१७.७.
(२) हिंसा करना।
'तृणोद्वेनान् मत्यं भवस्य'
अ. ८.८.११

तृह्यमाण– विनाश किया जाता हुआ।
'तेषामु तृह्यमाणानाम्'
अ. १०.४.१८

त्यृतु – (१) तीन ऋतुओं वाला संवत्सर। फाल्गुन से ज्येष्ठ तक ग्रीष्म, आषाढ़ से अश्विन तक वर्षा, और कार्तिक से माघ तक शरद।
'व्यृतुः संवत्सरः ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इति।' ऋतुणों का तीन ही विभाग वैदिक काल में हुआ है। छः विभाग पीछे का है।

तेगा – तीक्ष्णता।
'तेगान्दंष्ट्राभ्याम्'
वाज.सं. २५.१ मै.सं. ३.१५.१: १७७.७, का.सं. (अश्व) १३.१

तेजति – उत्साहयति (उत्साहित करता है)। तिज् धातु के लट् प्र.पु. ए.व.का रूप।

तेजन – तेजस्वी सूर्य, (२) तीक्ष्ण स्वभाव का (३) कटु या तिक्त गुण वाला।
'यथा द्यांच पृथिवीं अन्तस्तिष्ठति तेजनम्'
अ. १.२.४
(४) सरकण्डा।
'वासन्तिक मिव तेजनम्'

अ. २०.१३६.३
(५) पाप, अग्नि, ताप, (६) ब्रह्माण्ड ।
'कपिर्बभस्ति तेजनम्'
अ. ६.४९.१, का.सं. ३५.१४, जै.ब्रा. २.२२३, तै.आ. ६.१०.१, प.श्रौ.सू. १४.२९.३.
(७) तीक्ष्ण अस्त्र, (८) हल जोतने का फाल (फार) ।
'क्षेत्रमिव विममुस्तेजनेन'
ऋ. १.११०.५
जैसे किसान खेत को फाल से जोतते हैं या सरकण्डे से मापते हैं ।

तेजनी – अग्नि भड़कने वाली पूणी ।
'आयवनेन तेजनी'
अ. २०.१३१.८

तेजमानः – तीक्ष्ण करता हुआ ।
'यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः'
ऋ. ३.८.११, तै.सं. १.३.५.१, मै.सं. १.२.१४, २३.७, का.सं. ३.२,२६.३.

तेजिष्ठजा– तेजस्विनीशक्ति
'तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी'
ऋ. १.५३.८, अ. २०.२१.८

तेजिष्ठा– (१) अत्यन्त तीक्ष्ण सेना या नीति युक्त बल, (२) तेजस्विनी अग्नि से दीप्त होने वाले शत्रु पर गोला या शस्त्रों को फेंकने वाली शक्ति जैसे –बन्दूक, तोप आदि ।

तेदनी– (१) तेजनी, तीक्ष्ण शक्ति (२) भोजनग्रसन् कीक्रिया ।
'तेदनीमधरकण्ठेन'
वाज.सं. २५.२, मै.सं. ३.१५.२, १७८.५.

तेपानः– संतप्त पीड़ित करता हुआ ।
'तेपानो देव रक्षसः'
ऋ. ८.६०.१९, १०२.१६

त्रेता – (१) भूत, भविष्यत् और वर्तमान् तीनों कालों में होने वाले कार्यों को देखना, (२) त्रेता युग ।
'त्रेतायै कल्पिनम्'
वाज.सं. ३०.१८

त्रेतिनी– ईश्वर की तीनों लोकों में व्यापिनी शक्ति ।
'ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनीभूत्'
ऋ. १०.१०५.९

त्रेधा – त्रि + एधाच् । तीन भाग ।
'तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कम्'
ऋ. १०.८८.१०, नि. ७.२८.
उस सुख कारक अग्नि को देवताओं ने तीन भागों में बांटा, । पुनः–
'इदं विष्णु र्विचक्रमे
त्रेधा निदधे पदम्
समूहुमस्य पांसुरे'
ऋ. १.२२.१७, अ. ७.२६.४, साम. १.२२२, २.१०१९, वाज.सं. ५.१५, वाज.सं. (का.) ५.५.२, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२९.१८.१८ . ४.१.१२.१६.५, का.सं. २.१०. श.ब्रा. ३.५.३.१३, नि. १२.१९.
आदित्य (विष्णुः) इस सृष्टि में जो विभागों में बंटा है विविध प्रकार से क्रमण करते हैं (इदं वि चक्रमे) । वे तीन प्रकार से अपना पद रखते हैं ।
शाकपूणि के अनुसार आदित्य रूप से द्युलोक में, विद्युत् रूप से अन्तरिक्ष में तथा अग्नि रूप से पृथ्वी में (त्रेधा पदं निदधे) । जो पद मलीन अन्तरिक्ष में है वह अन्तर्हित है जिससे सदा दृश्य मान नहीं है (अस्य पांसुरे समूढम्)।

त्रेधा क्षरन्ती गीः – वाणी का तीन प्रकार से क्षरण होता है – मुख से, चक्षु से और हाथ से अथवा अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना रूप से, अथवा आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति रूप से, या वेदवाणी मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प भेद से, अथवा शब्द से, अर्थ से और शब्दार्थ सम्बन्ध से ।
'बाढ़े अश्विना त्रेधा क्षरन्ती'
ऋ. १.१८१.७

त्रेधापद – तीन प्रकार का संसार, (१) प्रत्यक्ष पृथिवी मय जो प्रकाश से रहित है । (२) कारण रूप अदृश्य, (३) प्रकाशमय सूर्यादि (४) तीन डेग–
'त्रेधा निदधे पदम्'
ऋ. १.२२.१७
(३) सृष्टि के तीन स्थिर पद– प्रत्यक्ष प्रकाशमयी पृथ्वी, अदृश्य कारण त्रेसरेणु और प्रकाश मय सूर्यादि ।

त्रेधा भूः – त्रि + एधाच् =त्रेधा, त्रेधा + भू + क्विप् = त्रेधाभू, अर्थ–तीन भावों में होना ।

त्रेधाविचक्रमाण – सृष्टि, स्थिति और प्रलय या

सूक्ष्म कारण रूप सूक्ष्म कार्यरूप और पदार्थों को तीनों प्रकारों से सब पदार्थों को विशेष रूप से संचालित करने वाला विष्णु ।
'विचक्रमाणस्तत्रेधोरुगायः '
ऋ. १.१५४.१, अ. ७.२६.१, वाज.सं. ५.१८, तै.सं. १.२.१३.३, मै.सं. १.२९.१९.९, का.सं. २.१०, श.ब्रा. ३.५.३.२१.

त्रेधापिहितं एकः– एक ही अग्नि या परमेश्वर तीन प्रकार से विशेष रूप से बतलाया जाता है ।
'एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः '
अ. १८.४.११

त्रेधा हिरण्य – तीन प्रकार का हिरण्य एक अग्नि का प्रिय पदार्थ दूसरा पीड़ित सोम का और तीसरा सृष्टि उत्पन्न करने वाली जलों या जीवों का वीर्य अर्थात् अग्नि से तप्त सुवर्ण औषधियों का रस और शरीर का वीर्य ।
'त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यम् '
अ. ५.२८.६

त्वेषः– (१) तीक्ष्णकान्तियुक्त
'महित्वेषा अभवन्तो वृषप्सवः '
ऋ. ८.२०.७
(२) त्विष् (दीप्त्यर्थक)+ अच् = त्वेष अर्थ है– दीप्तिमान् (३) बल, (४) भय, (५) दीप्त, (६) प्रतीक दर्शन, (७) अंग,(८) मुख (९) महान् ।
'आत्वेषं वर्तते तमः '
ऋ.स्वि. १०.१२७.१, अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
महान् अन्धकार व्याप्त रहता है । प्रदीप्त के अर्थ में –
'त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः
इन्द्राविष्णू सुतया वामुरुष्यति
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तु रसनामुरुष्यथः '
ऋ. १.१५५.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.७.९, नि. ११.८.
दैर्घतमस सूक्त में इन्द्रके लिये प्रयुक्त । दुर्ग ने इसे प्रक्षिप्त माना है ।
हे इन्द्र तथा विष्णु (इन्द्राविष्णू), इष्ट प्रदान कर्म वाले या प्रहरणादि कर्म वाले आप दोनों के (शिमीवतोःवाम्) इस प्रकार प्रदीप्त समागम को (इत्था त्वेषं समरणम्) हुत शिष्ट सोमपीती यजमान (सुतपाः) पूजित या वर्णन करता है (उरुष्यति) । जो इन्द्र और विष्णु (या) हविर्दाता यज्ञशील यजमान को (मर्त्याय) यज्ञ के फल रूप (प्रतिधीयमानम् इत्) भोजन या अन्न को (असनाम्) हवि पहुंचाने वाले (अस्तुः) अग्नि के द्वारा (कृशानोः) अविच्छेद्यमान से प्रस्तुत करते या देते हैं (उरुष्यथः) ।
(१०) विद्या, न्याय और तेज या देदीप्यमान, (११) रुद्र को विशेषण
'त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधम्
'वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे '
ऋ. १.११४.४, का.सं. ४०.११, आप.श्रौ.सू. १७.२२.१.

त्वेषंथ – प्रदीप्त, दीप्ति, तेज, ज्ञान प्रकाश ।
'शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः '
ऋ. १.१४१.८
सूर्य के जलाकर्षक किरण जिस प्रकार तेज से व्याप्त होता है उसी प्रकार जीव के भी उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले हंसवत् ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान प्रकाश से (त्वेषपात्) तुझे प्राप्त होवें ।

त्वेषद्युम्न – उज्ज्वल यश ।

त्वेषनृम्ण – प्रचण्ड दीप्ति का धनी सूर्य
'यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः '
ऋ. १०.१२०.१, अ. ५.२.१, २०.१०७.४, साम. २.८३३, वाज.सं. ३३.८०, ऐ.आ. १.३.४.२, ५.१.६.५, आप.श्रौ.सू. २१.२२.३, मा.श्रौ.सू. ७.२.६, नि. १४.२४.

त्वेषप्रतीका – (१) भयप्रजीका, (२) बल प्रतीका, दीप्तिप्रतीका, भयदायिनी , बल दायिनीदीप्ति दायिनी, (३) दीप्त ज्वाला ही जिसका प्रतीक हो अग्नि ।
'सेनेव सृष्टामं दधाति
अस्तुर्न दिद्युत् त्वेषप्रतीका '
ऋ. १.६६.७, नि. १०.२१.
सेनापति के द्वारा प्रेषित सेना की तरह दीप्त दर्शना शिखा होकर चलाने वाले के वज्र की तरह अग्नि भय और बल देता है ।
(४) तेज प्रकाश देने वाली, (५) दीप्तियुक्त मुखवाली कान्तिमती स्त्री ।
'त्वेष प्रतीका नभसो नेत्या '

ऋ. १.१६७.५

त्वेषयामाः– तीव्र वेग से जरने वाले वायुगण

'यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्'

ऋ. १.१६६.५

त्वेषरथः – (१) दीप्तिमान् सूर्य के द्वारा चलने वाला मारुत, (२) चमकीले रथ पर आरूढ़ पुरुष, (३) तेजो मय आत्मा में गति डालने वाला–प्राणगण ।

'युवा स मारुतो गणः त्वेषरथो अनेद्यः'

ऋ. ५.६१.१३

त्वेषस् – दीप्तियुक्त तेज ।

'अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः'

ऋ. १.६१.११, अ. २०.३५.११.

त्वेषसंदृशः– (१) समान कान्ति या तेज (त्वेषसंदृक्) से दीख पड़ने वाले– मरुत (२) विद्युत् दीप्ति से ज्ञात होने वाले (३) उज्ज्वल दृष्टि वाला ।

'पार्थिवस्य जगत त्वेषसंदृक्'

ऋ. ६.२२.९, अ. २०.३६.

'त्वेष संदृशो अनवभ्रराधसः'

ऋ. ५.५७.५

त्वेष्य – प्रखर तेज, अति तीक्ष्ण तेज ।

'जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण'

ऋ. ७.५८.२

त्वेषित – त्विष् + अच = त्वेष, त्वेष + इतच् = त्वेषित । अर्थ – (१) जिसमें तेज या दीप्ति आ गई हो । (२) तेजस्वी, –दया. संदीपित, (३) स्तुति परक मंत्रों से आवेशित ।

'विश्वेत् ता विष्णुराभरत् उरुक्रमस्त्वेषितः'

ऋ. ८.७७.१०, मै.सं. ३.८.३, ९५.१३.

व्यापनशील, बड़े बड़े डेगों वाला (उरुक्रमः) या अत्यन्त पराक्रमी एवं स्तुति परक मंत्रों से संदीपित इन्द्र ने उन सभी धनों को दिया (विश्वा इत् ता आभरत्) तेजस्वी उत्तम गुणों को प्राप्त (त्वेषितः विष्णुः) एवं अत्यन्त पराक्रमी उरू क्रमः) सेनापति ने उन सभी धनों को दिया ।

त्वेषी – तीक्ष्ण, तेजस्विनी ।

'सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषाम्'

ऋ. ७.६०.१०

तैमान् – सर्प की एक जाति ।

'असितस्य तैमातस्य'

अ. ५.१३.६

तैलकुण्ड – कड़ाह ।

'तैलकुण्डमिवाङ्कुष्ठम्'

अ. २०.१३६.१६

त्रैककुद – (१) त्रिकुटी, (२) वेदत्रयी से उत्पन्न ज्ञान ।

'यदाञ्जनं त्रैककुदम्'

अ. ४.९.९, तै.आ. ६.१०.२, आप.मं.पा. २.८.११, हि.गृ.सू. १. ११.५.

(३) तीनों लोकों में सर्व श्रेष्ठ ।

'देवाञ्जन त्रैककुदम्'

अ. १९.४४.६

त्रैतन – (१) धनजन और कोष तीन प्रकार की शक्तियों को बढ़ाने वाला, (२) शरीर, आत्मा और मन के बल और त्रिविध वेद विद्या से युक्त आचार्य ।

'शिरोयदस्य त्रैतनो वितक्षत्'

ऋ. १.१५८.५

त्रैयम्बक – (१) त्र्यम्बक सम्बन्धी (२) तीन तीन अधिकारों में लगा पुरुष ।

'कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः'

वाज.सं. २४.१८

त्रैवृष्णः – (१) यः त्रिषु वर्षर्ति–सूर्य –दया. (२) शास्य, शासक और राजसभा इन तीनों में सूर्यवत् प्रबन्धकर्ता ।

'त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैः'

ऋ. ५.२७.१

त्रैष्टुभ– (१) तीनों वेदों से स्तुति करने योग्य परमेश्वर (२) तीनों वेद

'त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत'

ऋ. १.१६४.२३, ऐ.ब्रा. ३.१२.६, कौ.ब्रा. १४.३.

(३) वैदिक परिभाषा में त्रैष्टुभ के अर्थ –तीनों लोक–पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ (४) वज्र, (५) इन्द्र, (६) माध्यन्दिन सवन, (७) ओज, (८) इन्द्रिय (९) क्षात्रबल, (१०) क्षत्रिय, (११) राका, (१२) वायु, (१३) अपान, (१४) प्रजनन, (१५) प्राण , (१६) चक्षु, (१७) उरः स्थल, (१८) आत्मा, (१९) पञ्चदशस्तोम, (२०) रुद्रों की पत्नी, (२१) ११ अक्षरों या ४४ अक्षरों का छन्द त्रिवृत

वज्रः तस्य स्तोमम् इवेत्यौपमिकम्
'वज्रः त्रिष्टुभ् त्रैष्टुभ इन्द्रः' – कौ.सू. ३.३
त्रैष्टुभोवज्रः– गो.ब्रा. ३.१.१८
ऐन्द्रं हित्रैष्टुभं माध्यन्दिनम् सवनम् –ऐ.ब्रा. ६.११
'एतवै छन्दसां वीर्यवत्तमं यत् गायत्री च त्रिष्टुप् च–
बलं वैवीर्यं त्रिष्टुप् –कौ.सू ७.२
ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप् –ऐ.आ. १.४.२८
उरस्त्रिष्टुप् –श.ब्रा. ८.६.२.७
त्रिष्टुप् छन्दो वै राजन्य–तै.ब्रा. १.२.८
क्षत्रं वै त्रिष्टुप् –कौ.सू. ७.१०
या राका सा त्रिष्टुप् – ऐ.ब्रा. ३.४७
त्रैष्टुभौ हि वायुः श.ब्रा. ८.७.३.१२.
त्रैष्टुभेऽन्तरिक्ष लोके त्रैष्टुभो वायुः अध्यूढ़ – कौ.सू. १७.३
यजुषां वायुदेवितं तदेव ज्योतिः त्रैष्टुभम् छन्दोऽ-न्तरिक्षम् स्थानम् – गो.ब्रा. ४.१.२९
त्रिष्टुप् इयं पृथिवी त्रिष्टुप् असौ द्यौः – श.ब्रा.१.७.२.१५
'त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत'
अ. ९.१०.१
अपानः त्रिष्टुभम् –
त्रैष्टुभं चक्षुः –
आत्मा वै त्रिष्टुप् –श.ब्रा. ६.४.२.६
'त्रैष्टुभं पञ्चदशः सोमः
ता. ५.२.१४
त्रिष्टुप् रुद्राणांपत्नी गो.ब्रा. ३.२.९
एकादशाक्षरावै त्रिष्टुप् –कौ.सू. ३.२.
चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् श.ब्रा. ८.५.१.११.
'त्रैष्टुभम्' से 'त्रैष्टुभम्' की रचना की, अन्तरिक्ष से वायु प्रकट हुआ, उर से बल उत्पन्न हुआ क्षत्रिय में बाहु बल है। इन्द्र में वज्र आश्रित है। आत्मा में इन्द्रिय है। प्रजनन या अपान मध्य भाग में स्थित है। रुद्रों की पत्नी अर्थात् शक्ति रुद्रों में आश्रित है और जीवात्मा परमलोक में आश्रित है।

त्रैष्टुभं छन्दः– (१) तीनों लोकों का पालक व्यापार, (२) तीनों वर्णों की रक्षा रूप क्षात्रबल
'अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा'
वाज.सं. २.२५, का.सं. ५.५, श.ब्रा. १.९.३.१०,१२, शां.श्रौ.सू. ४.१२.३,

तोक – (१) स्वल्प, (२) सूक्ष्म।
'नित्ये तोके दीदिवांसं स्वेदमे'
ऋ. २.२.११.
(३) अपत्य, सन्तान, तुद् (व्यथा करना) + घ (संज्ञा में) तोक। द् का क पृषोदरादिवत्। स हि नित्यं पित्रा तुद्यते (पुत्रपिता द्वारा नित्य व्यथित किया जाता है)
सम्भवतः बंगला का 'खोखा' 'तोक' शब्द का ही बिगड़ी रूप है।
'सहस्रं ते स्वपिवात भेषना
मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७
हे स्वाप्नवचन या वातावरण में आविष्ट या वातावरण को धारण करने वाले रुद्र! (स्वपिवात्) तेरी सहस्रो औषधियां हमारे पुत्रपुत्रीरूपी सन्तानों में (नः तोकेषु तनयेषु) हिंसा ने करें (मा रीरिषुः)।
पुनः–
'नाभ्रात्रीमुपयच्छेत
तोकं ह्यस्य तद्भवति'
जो कन्या भ्रातृहीना है उससे विवाह न करे, क्योंकि उसका अपत्य उस के पिता का है पति का नहीं। पुनः–
'येन तोकं तनयं च धामहे'
ऋ. १.९२.१३, ९.७४.५, साम. २.१०८१, वाज.सं. ३४.३३, नि. १२.६.
जिससे पुत्रों और पौत्रों का भी पालन पोषण करें।

तोकसाता – (१) धनादि का न्यापूर्वक विभाजक।
'स तोकसाता तनये स वज्री'
ऋ. ६.१८.६

तोकसातिः– (१) धनैश्वर्य प्राप्त कराने वाला–संग्राम, (२) सन्तान की प्राप्ति।
'युद्धमानास्तोकसातौ विवक्षसे'
ऋ. १०.२५.९

तोक्म – (१) व्यथा दायी उपाय, (२) रक्षाकारी उपाय।
'बदरै रूप वाकाभि र्भेषजम् तोक्मभिः'
वाज.सं. २१.३०.३१, मै.सं. ३.११.२,१४१.५, ३.११.२,१४१.८, तै.ब्रा. २.६.११.२.
(३) तोकं तुद्यतेः तुजि, स्तुचि, तवति,।

तुद्यति+ मनिन् = तोक्मनन् । अर्थ है- नया यव (४) शत्रु को हनन करने या प्रजा को प्रसन्न करने का कार्य ।
'प्रायणीयस्य तोक्मानि'
वाज.सं. १९.१३
(५) जल से भींगा बीज ।
'मनुस्तोक्मेव रोहतु'
ऋ. १०.६२.८

तोत् - वृद्ध्यर्थक 'तु' + क्विप् = तोत् (गुण) । अर्थ है - वृद्धिप्रद ।

तोद - (पु.) । तुद् + अच् = तोद । अर्थ- (१) विदीर्ण भूखण्ड ।
'तोदस्येव शरण आमहस्य'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७, नि. ५.७.
जैसे विशाल भूखण्ड के बिल में चारों ओर जल आकर भी बिल को नहीं भर पाता उसी प्रकार हे अग्ने । यजमानों के प्रचुर हवियों से भी तू नहीं ऊबता ।
(२) शत्रुओं का हिंसक -इन्द्र का विशेषण (३) दूरदर्शी शासक-दया. ।
'यासि कुत्सेन सरथमवस्युः
तोदो वातस्य हर्योरीशानः'
ऋ. ४.१६.११.
हे इन्द्र ! कुत्स की रक्षा करने का इच्छुक तथा कुत्स के शत्रुओं का हिंसक (तोदः) बलशाली अश्वों का स्वामी (हर्योः ईशानः) तू राजर्षि कुत्स के साथ एक रथ पर आरूढ़ हो
अन्य अर्थ-हे राजन्, दूरदर्शी शासक (तोदः) और वायु समान अश्वों का मालिक तू आत्म -संरक्षण चाहता हुआ (अवस्युः) वेदज्ञ ब्राह्मण के साथ (कुत्सेव) एक रथ पर आरूढ़ हो ।
(४) कूप, बिल, (५) गृहस्थ, (६) शिक्षक, (७) देवराज यज्वा ने निघण्टु की टीका में इसका अर्थ गृहस्थ किया है । यास्क के अनुसार इसका अर्थ कूप है ।

तोशतमः- (१) इसका सुख देने वाला (२) अज्ञान का अच्छी प्रकार नाश करने और हृदय को सुखी करने वाला ।
'त्वे राय इन्द्र तोशतमाः'
ऋ. १.१६९.५.

तोश् - (धाः) निर्बलता दूर करना, नाश करना

तोशते - (धाः) (१) निर्बलता दूर करता है , (२) नाश करता है,
'मन्दी मदाय तोशते'
ऋ. ९.१०७.९, साम. २.३४८.
सोमरस या दुग्ध पीकर प्रसन्न चित्त मनुष्य तेज धारण करने के निमित्त (मदाय) निर्बलतादूर करता है । या प्रसन्न कर शत्रुओं का नाश करता है ।

तोशस् - दुःखनाशक ।
'त्वमिन्द्राय तोशसे'
ऋ. ९.४५.२.

तोशा- (द्वि.व.) (१) भीतरी रोगादि शत्रुओं के नाशक प्राण-अपान वायु (२) आत्मा और अन्तःकरण (३) परमात्मा और जीवात्मा, (४) राजा और सेनापति, (५) गुरु और शिष्य ।
'तोशा वृत्रहणा हुवे'
ऋ. ३.१२.४
(६) बढ़ाने और ज्ञानोपदेश करने वाले इन्द्राग्नी (७) वायु और सूर्य या वायु और सूर्यवत् विद्वान् ।

तोशासा - शत्रुओं, अज्ञानों और दुष्टाचरणों को नाश करने वाले - इन्द्र और अग्नि ।
'तोशासा रथयावाना'
ऋ. ८.३८.२, साम. २.४२४

तौग्र्य - (१) उत्तम बलवान् पुरुष, (२) तगड़ा (३) व्यापारी जन (४) जीव ।
'अवविद्धं तौग्र्यमप्सु अन्तः'
ऋ. १.१८२.६
(५) क्षात्र बल का नाशक (६) बलशाली पुरुषों में श्रेष्ठ (७) आदान प्रतिग्रह करने योग्य पात्रों में उत्तम ।
'गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः'
ऋ. १.१८०.५.
(८) तुग्रबल से निवृत्त सेनावृन्द । -दया.
(९) तुग्र बल से युक्त पुरुष ।
'अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वाम्'
ऋ. १.११७.१५
(१०) शत्रुओं की हिंसा, प्रजाओं का पालन और सैन्य संचालन कार्य में कुशल पुरुष तुग्र हैं । उसका कार्य तौग्र्य है ।
(११) प्राण और उदान दोनों का आश्रय तौग्र्य

अर्थात् आत्म रक्षा और द्युस्थानों के साधना और कर्मलोक ।

'युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरू'

ऋ. १.१५८.३

जिस प्रकार शत्रुओं की हिंसा, प्रजाओं का पालन और सैन्य-संचालन के कार्य में कुशल पुरुष के कार्य के लिये (तौग्र्याय) आप दोनों से युक्त सर्वपालक (पेरुः) राष्ट्रपति -जल, और अग्नि से युक्त महा नौका के समान पार करने वाला (पेरु) ...

(१२) तुग्र का पुत्र भुज्यु -सा. (१३) वैश्यवर्ग

'निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि'

ऋ. १०.३९.४

हे अश्विनीद्वय, तुम दोनों ने तुग्रा के पुत्र भुज्युं को (तौग्र्यम्) समुद्र से बाहर निकाला (अद्भ्यः परि निरूहथुः)-सा. । हे राजा तथा राजपुरुषों, वैश्यवर्ग को (तौग्र्यम्) व्यापार के लिये समुद्र के पार पहुंचाओ ।

तौदीकन्या - (१) सांप को व्यथा देने वाली औषधि । इसे कन्या या घृताची कहते हैं । यह या तो कीड़ी का वाचक है या घृतकुमारी का । इसे धिकुआर और पट्ठा भी कहते हैं । वन्ध्य कर्कोटकी या नागदमन भी कहलाती है ।

'तौदीनामासि कन्या
घृताची नाम वा असि'

अ. १०.४.२४

तौ - द्वि.व. । (१) जीव और ब्रह्म (२) सूर्य और विद्युत,-ग्रीफिथ

'कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः'

अ. ८.९.१

तौरयाण - तूर्णयानः - त्वरित यानः । देवराज का कथन है कि तूर्ण का ही वेद में तौर हो गया है । अर्थ है -(१) जो अपने यान को शीघ्र प्रस्तुत करे या जिसका रथ शीघ्र ग्रामी हो , (२) फुर्तीला आशुकारी ।

(३) शासक ।

'जातं यत् त्वा परि देवा अभूषन्
महेभराम पुरुहूत विश्वे
स तौरयाणः उपयाहि यज्ञं
मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सजोषाः'

ऋ. ३.५१.८, नि. ५.१५.

हे बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र, सभी देवताओं तथा प्राणी मात्र ने तुझे अच्छी तरह से पालन पोषण या रक्षा के लिए (महते भराय) परिगृहीत किया (पर्यभूषन्) अतः तू शीघ्र रथ पर सवार होकर (तौरयाणः) अपने सहाय भूत मरुतों के साथ (सखिभिः मरुद्भिः) प्रेम पूर्वक इस यज्ञ में आ ।

अन्य अर्थ - हे निर्वाचित राजन, राजा बनाये गए जिस तुझको सब देवजनों ने राज्य पोषण के महान् कार्य के लिये राजपद से अलंकृत किया है वह फुर्तीला तू (सःतौरयाणः) मित्रतापूर्वक बर्तने वाला राज कर्मचारियों के साथ सबसे प्रीतियुक्त व्यवहार करता हुआ हमारे यज्ञ में रक्षार्थ आ ।

तौविलिका - (१) तौविलिका नाम की पिशाची (२) 'तुविल'अर्थात् सर्वव्यापक परमेश्वर की शक्ति से अव्यक्त से व्यक्त रूप में प्रकट होने वाली प्रकृति ।

'तौवालिकेऽवेलय'

अ. ६.१६.३

तौल - तुला (तराजू) से परिमित घृतादि आज्य पदार्थ ।

'अग्ने तौलस्य प्राशान'

अ. १.७.२

थ

थर्व - चलना । दे. थर्वति

थर्वति - चरति (चलता है) । 'थर्व' धातु चलना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इसी के प्रतिषेध में 'अथर्वन्' शब्द है । 'न थर्वति' इति 'अथर्वन्' (जो नहीं चलता है वह अथर्वन् है)। स्थिर प्रकृति वाला अथर्वन् कहा जाता है ।

था - उपमा का वाचक । पाणिनि ने इसे प्रकार वचन कहा है । प्रकार भी भेद अर्थ में उपमा ही है । थाल प्रत्यय से यह बना है ।

थु - नाम करण अर्थ में 'थु' प्रत्यय आता है । जैसे मिथुन शब्द मि + नी + थु = मि + न + थु = मि + थु + न (रुढ़ि के बलवान् होने से मध्य और अन्त्य अक्षरों का विपर्यय एक दूसरे के प्रति अपने को ले जाना मिथुन है ।)

अथवा, मि + थ + वन् = मिथुन । व का सम्प्रसारण उ तथा थ के अ का लोप । (अन्यो न्यं प्रति आत्मानं नयत समाश्रितौ) ।

द

द्र – द्रावक या गति देने वाला काल ।
'व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि'
अ. ११.७.३

दक्ष– (१) दग्ध करने वाला अग्नि, (२) बलोत्पादक वायु, (३) सूर्यरूप अग्निमय पिण्ड (४) दक्ष प्रजापति ।
'अदितेर्दक्षो अजायत
दक्षाद्वदितिः परि'
ऋ. १०.७२.४
(५) आदित्य ।
'दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते
राजाना मित्रावरुणा विवासति '
ऋ. १०.६५.५, नि.११.२३.
हे अदिति या सन्धिबेला, तू आदित्य के जन्मरूपी व्रत में उदय या अस्त कर्म में मित्र तथा वरुण (दिन रात) में व्याप्त रहती हो या दिन या रात रूपी राजाओं को सेवती है ।
पुनः–
'अदितेर्दक्षो अजायत
दक्षाद्वदितिः परि'
ऋ. १०.७२.४
अदिति से दक्ष उत्पन्न हुआ और दक्ष से अदिति
(६) वृद्धिप्रद अन्न,– दया. (७) सिद्धि
'क्रत्वे दक्षाय नो हिनु'
ऋ. ९.३६.३, वाज.सं. ३४.४८, तै.सं. ३.३.११.४, मै.सं. ३.१६.४ ,१८९.११, आश्व.श्रौ.सू. ४.१२.२, शां.श्रौ.सू. ९.२७.२, नि. १३.३०.
संकल्प की सिद्धि के लिये हमें आगे बढ़ा । हमारी सन्तान के लिये वृद्धि प्रद अन्न प्रदान कर–दया. ।
(७) आदित्य का एक नाम । निरुक्त के अनुसार अग्नि, वायु और आदित्य ये ही तीन देवता है ।

दक्षक्रतवः – बल के कार्य करने में समर्थ इन्द्रियगण ।
'येदावामनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु'
वाज.सं. ४.११

दक्षति – दक्ष धातु वृद्धि और शीघ्र अर्थों में प्रयुक्त होता है । (सम्यक् अर्धयति, सम्यक् वर्धयति) । 'दक्षति' का अर्थ है 'वर्धयति' (बढ़ाता है) ।

दक्षपितरः – (१) बल, अन्न और प्रज्ञा के पालक, (२) दक्ष के पितर ।
'युष्माभिर्दक्षपितरः'
ऋ. ८.६३.१०

दक्षपिता – (१) कार्य कुशलपुरुषों का पालक पिता, (२) भृत्यों और बल का पालक ।
'स्वैर्दक्षैर्दक्ष पितेह सीद'
वाज.सं. य, १४.३.

दक्षमाणः – प्रयत्न और बल का कार्य करता हुआ ।
'अरिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव'
अ. २.४.१

द्वयक्षर– (१) द्वि. + अक्षर । दो प्रकार का अक्षय बल, (२) दो पाया मनुष्य (३) सूर्य और चन्द्रमा के आग्नेय तथा सौम्य धर्म ।
'अश्विनौ द्वयक्षरेण द्विपदो मनुष्यान् उदयजताम् तानुज्जेषम्'
वाज.सं. ९.३१

दक्षस् – (१) आत्मबल, ।
'प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे'
ऋ. १.१५१.३
(२) बल और क्रिया शक्ति को बढ़ाने वाला ।
'त्वमिज्ञ शतहियासि दक्षसे'
ऋ. २.१.११.

दक्ष साधनः– (१) बल से शत्रुओं को वश में करने वाला, (२) बल बढ़ाने वाला –सोम ।
'पवित्रे दक्षसाधनः'
ऋ. ९.२७.२, साम. २.३६६

दक्षाय्यः– (१) सर्व कर्म करने वाला, (२) अग्नि, (३) चतुर विद्वान् ।
'दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः'
ऋ. ७.१.२, साम. २.७२४, का.सं. ३९.१५.
(४) समर्थ, (५) प्रवीण ।
'दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिः'
ऋ. १.१२९.२
हे इन्द्र ! विद्वन् ! उत्तम नेता पुरुषों के सहित

(नृभिः) पालक पुरुषों के बीच सर्वश्रेष्ठ पालक कहलाने और शत्रुओं के संग्राम के लिए ललकारने के लिये (भरहूतये) समर्थ और प्रवीण होता है। (६) विरोधियों का नाश कारी, बल वान् विरोधियों को भस्म करने वाला, (७) सब समृद्धियों को बढ़ाने वाला।

'आ दक्षाय्यो दो दास्वते दम आ'

ऋ. २.४.३

(८) विज्ञान कारक, बल और यथार्थ न्याय शासन करने वाला परमेश्वर या राजा।

'दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम'

ऋ. १.९१.३

(९) महान् सामर्थ्य का स्वामी बृहस्पति।

'दक्षाय्याय दक्षता सखायः'

ऋ. ७.९७.८

दक्षिण- दक्ष + इनन् = दक्षिण। दिक् हस्त प्रकृतिः (दाहिना हाथ ही जिसके नामकरण का कारण हुआ)। अर्थ- (१) दक्षिण दिशा। प्राङ्मुखस्य प्रजापतेः दक्षिणः हस्तः बभूव सा दक्षिण दिक् अभवत् (प्रजापति के पूर्वमुख होने पर हाथ दक्षिण अर्थात् उत्साहवान हुआ अतः दक्षिणा हस्त की ओर दक्षिण दिशा हो गई)।

दक्ष धातु उत्साह और शीघ्र अर्थ में आता है। दक्षिण हस्त के सदृश वाम हस्त उत्साह पूर्ण नहीं रहता (स यथा कर्मसु उत्साहवान् भवति न तथा सव्यः)।

अथवा-दाश् (दानार्थक) धातु से पृषोदरादिवत् दक्षिण शब्द सिद्ध हुआ। 'दाश्यते' अनेन इति दक्षिणाः (इस हाथ से दान दिया जाता है)।

दक्षिणतःसखा- दाहिना ओर रहने वाला प्रबल सहायक

'असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मे'

ऋ. ८.१००.२

दक्षिणत्र - दाहिना।

'धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्रा'

ऋ. ६.१८.९

दक्षिणतस्कपर्दः- दाएं भाग में जटाजूट रखने वाला।

'श्वित्यञ्चो दक्षिणतस्कपर्दः'

ऋ. ७.३३.१

दक्षिणा- (१) दक्षिण जो यज्ञ में दी जाती है। (२) दक्षता के लिए दिया गया पुरस्कार, (३) पृथिवी, (४) अन्न।

'दक्षिणा वै यज्ञानां पुरोगवी'

ऐ.ब्रा. ६.३५

अन्नदक्षिणा - ऐ.ब्रा. ६.३.

'ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम्'

अ. १८.४.२९

(५) बल और उत्साह उत्पन्न करने वाली।

'नूनं सा ते दक्षिणा मघोनी'

ऋ. २.११.२१

(६) दक्ष (वृद्ध्यर्थक) + इनन् = दक्षिण। दक्षिण + टाप् = दक्षिणा। अर्थ है - यजमान या दाता को बढ़ाने वाली (व्यृधं समर्धयति, यज्ञे यत्किञ्चित् विगतर्द्धिकं भवति तदियं दक्षिणा समर्धयति विवर्ध्य पूरयति) दक्षिणा जो पुरोहित को यज्ञान्त में दी जाती है।

'देवि दक्षिणे बृहस्पतये वासः'

(७) दक्षिण + आच् = दक्षिणा। जो दक्षिण दिशा में उत्सृष्ट की जाती है, (८) ऋत्विज् के दक्षिण लेने के वाद यजमान अग्नि की प्रदक्षिणा करता है अतः यह दक्षिणा है। (प्रदक्षिण गमनात्)

(९) प्रयोजन - (१०) न्याय्य, (१०) पूर्वाभिमुख दाहिने हाथ की दिशा दक्षिणा है।

'दक्षिणायै दिशेस्वाहा'

वाज.सं. २२.२४, तै.सं. ७.१.१५.१, मै.सं. ३.१२.८, १६३.४, का. सं. (अश्व.) १.६.

दक्षिणाग्निः- (१) बलवान् पुरुषों का आश्रय क्रिया शक्ति प्रदान करने वाला परमेश्वर।

'आदित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः'

अ. १८.४.८

(२) दक्षिणाग्नि।

'सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्'

अ. ८.१०.६

दक्षिणा ज्योतिः- (१) ज्योति स्वरूप पञ्चप्राणयुक्त आत्मा।

'योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति'

अ. ९.५.२२,२४,२५,२६,२८.

दक्षिणातिष्ठन् - दक्षिण में खड़ा हुआ यम।

'दक्षिणा तिष्ठन् यमः'

अ. ९.७.२०

दक्षिण दिक् – (१) पूर्व पितरों की दिशा, (२) गृहस्थधर्मों का आचरण करना ही दक्षिण दिशा जाना है ।

'दक्षिणं दिशमभि नक्षमाणौ'

अ. १२.३.८

(३) मृत पितरों की दिशा दक्षिण समझी जाती हैं ।

दक्षिणायाः धूः– (१) क्रिया या बल से सम्पन्न बलवती शक्ति का मूल केन्द्र परमेश्वर (२) द्यौ या आदित्य शक्ति का केन्द्र आकर्षण शक्ति ।

'युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणा याः'

ऋ. १.१६४.९, अ. ९.९.९.

दक्षिणावत् – (१) धर्म से उपार्जित धन ऐश्वर्य विद्या आदि के निमित्त श्रद्धा से दान देने और बल और ज्ञान की साधना करने वाला, (२) धन, ज्ञान और आत्माशक्ति सम्पादन करने वाला, (३) ज्ञान बल का स्वामी ।

'दक्षिणावताम् इदिमानि चित्रा
दक्षिणा वताम् दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते
दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः ।'

ऋ. १.१२५.६

(४) दक्ष + इन् + टाप् + वतुप् = दक्षिणावत् । अर्थ हैं – सप्रयोजन– दया. (५) अन्यदपि (और भी) यास्क ।

'अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते
यत्रा रथस्य बृहतो निधानम्
विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ।'

ऋ. ३.५३.६, आश्व.श्रौ.सू. ६.११.९.

हे भगवन् इन्द्र, आप सोम पीवें (सोमम् अपाः) और पीकर घर जायें (अस्तं प्रयाहि), क्योंकि आपके गृह में कल्याणी स्त्री शची है (कल्याणीः जाया) । रथशाला है (यत्रा बृहतः रथस्य निधानम्) तथा घोड़ो का आरामगृह है (वाजिनः च विमोचनम्) तथा संग्राम जीतकर आए हुए के लिए अन्य सुन्दर पदार्थ हैं (दक्षिणावत् सुरणम्)–यास्क ।

अन्य अर्थ–हे शत्रुमर्दन राजन् ,जहां विशाल यान के (बृहतः रथस्य) वेगवान् मन्त्राश्व का (वाजिनः) सप्रयोजन (दक्षिणावत्) नियोजन और विमोचन होता है (निधानम् विमोचनम्) । उस यान में बैठकर गृह में (गृहे) जो आपकी कल्याणकारिणी जाया है (कल्याणी जाया) उसके साथ दूर देश को जाइए (अस्तं प्रयाहि) उसके साथ (सोमम् अपाः) और उसी के साथ संग्राम में जाइए (सुरणम्) ।

दक्षिणावाट् – (१) दक्षिणा या पारिश्रमिक पैदा करने वाली, (२) दक्षिण दिशा से लाई हुई (३) क्रियाशक्ति को धारण करने वाली ।

'दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति'

ऋ. ३.६.१, मै.सं. ४.१४.३, २१८.१२, तै.ब्रा. २.८.२.५.

दक्षिणावान् – कुशल बुद्धिमान् पुरुषों का स्वामी ।

'हस्तेदधे दक्षिणे दक्षिणावान्'

ऋ. ३.३९.६

(२) दान शील ।

'उच्चादिवि दक्षिणावन्तोअस्थुः'

ऋ. १०.१०७.२

(३) उत्तम सेना वाला, (४) दानशक्ति –सम्पन्न ।

'धृष्णुर्वजीशवसा दक्षिणावान्'

ऋ. ६.२९.३

दक्षिणावृत – (१) या दक्षिणां वृणोति (जो दाहिनी ओर रहती है या जो दक्षिणा ग्रहण करती है)– दया. (२) दक्षिणावर्त होकर प्राप्त (३) दक्षिण द्वारा कारण किया गया होता, (४) यज्ञ की दक्षिणा दिशा में स्थित कन्या (५) दाहिने हाथ की ओर बैठी कन्या, (६) आचार्य के दायें भाग में स्थित शिष्य ।

'अभिम्रुचः क्रमते दक्षिणावृतः'

ऋ. १.१४४.१

दक्षिणासद् – (१) दक्षिणा दिशा में नियुक्त बलशक्ति में विराजमान ।

'यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणा सद्भ्यः स्वाहा'

वाज.सं. ९ ३५. श.ब्रा. ५.२.४.५.

दक्षिणीय – (१) दक्षिणा प्राप्त करने योग्य, (२) कुशल ।

'यज्ञर्तो दक्षिणीयः'

अ. ८.१०.७

दक्षु– (१) जलता हुआ–अग्नि (२) विरोधी को

भस्म करने वाला तेजस्वी ।
'संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः'
ऋ. २.४.४
(३) जलाने वाला -दया. (४) पीड़ा और संताप देने वाला ।

दङ्क्ष्णु - दाढ़ी से काटने वाला पशु ।
'दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः'
वाज.सं. १५.१५.

दग्धाः- (१) जो मानसिक, वाचिक एवं कायिक मलों को भस्म कर चुने हैं, (२) जो जल कर मरे हैं ।
'ये दग्धा ये चोद्धिताः'
अ. १८.२.३४

दग्धान्न - (१) जला अन्न ।
'अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम्'
अ. १९.५५.५, मै.सं. ३.९.४,१२०.१७, आप.श्रौ.सू. ७.२८.२, मा. श्रौ.सू. १.८.६.२२.

दघ्न- (१) दघ्नच् प्रत्यय प्रमाण अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है यथा-
आस्यदघ्ना (मुख भर पानी वाली नदी), उपकक्ष दघ्ना (कांखभर पानी वाली नदी)
(२) दघ् (स्रवणार्थक) + नन् = दघ्न । अर्थ है- म्रुततर अर्थात् किसी परिमाण से कम (३) दस् (उपक्षय अर्थ में) + नन् = दघ्न (स् का घ) । अर्थ है- विदस्ततरम्, उपक्षीणतरम् तत् भवति उत्तरस्मात् परिमाणात् (जो उत्तर परिमाण से क्षीण हो कम-हो वह दघ्न है)
अतः क्षीणार्थक हो प्रमाण वाचक यह दघ्नच् प्रत्यय हो गया है ।

दघ्यति - दघ् (स्रवणार्थक) धातु से लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है - चूता है ।

दण्ड - (१) दमन करने का अधिकार (२) डंडा ।
'दण्डं हस्तादाददानो गतासोः'
अ. १८.२.५९
(३) धारणार्थक दद् + अन्= दण्ड (दद् के बाद णम् का आगम और द् का ड्)
अथवा दम + ड = दण्ड ।
'एषः अमराधेषु राजभिः धार्यते'
(अपराधियों को दण्ड देने के लिये यह राजाओं के द्वारा धारा जाता है) ।
दद् धातु का धारण अर्थ में प्रयोगः-
'अक्रूरो ददते मणिम्'
अक्रूर जो वृष्णि और अन्धकों के राजा थे, सूर्य द्वारा दिये स्यमन्तक मणि को धारण करते हैं ।
(२) जो धारण किया जाय वह भी दण्ड है, (३) डण्डा (४) जुर्माना, (५) शारीरिक दण्ड, (६) जेल देना, (७) आक्रमण, (८) संयम, (९) नियन्त्रण, (१०) चार हाथों का प्रमाण, (११) पुरुषेन्द्रिय, (१२) अभिमान् (१३) शरीर, (१४) यम का विशेषण, (१५) विष्णु का नाम (१६) शिव का नाम ।

दण्डन- बांस,
'तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्'
अ. १२.२.५४

दण्डय - दण्ड + यत् = दण्डय । यास्क ने यत् प्रत्यय का प्रयोग सम्पन्न अर्थ में माना है । अर्थ है (१) पुरुष का विशेषण । (दण्डयः पुरुषः) । जो दण्ड के योग्य हो या जो दण्ड से सम्पन्न हो (दण्डम् अर्हति अथवा दण्डेन सम्पन्नः) ।

दत्रम् - (१) दान, (२) शत्रु-छेदन और प्रजा-रक्षण-सामर्थ्य ।
'इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्ति'
ऋ. ३.३६.९, तै.सं. १.७.१३.३, का.सं. ६.१०.
(३) दान-प्रदत्त पदार्थ
'दत्राणि पुरुभोजसः'
ऋ. ८.४९.२, अ. २०.५१.२, साम. २.१६२
(४) दा + ष्ट्रन् = दत्र । दान

दत्रवान् - (१) दानयोग्य धन का स्वामी -सूर्य ।
'यो दत्रवान् उषसो न प्रतीकम्'
ऋ. ६.५०.८

दत्वत् - (१) दांतों वाला, व्याघ्र आदि जीव ।
'व्याघ्रं दत्वतां वयं
प्रथमं जम्भयामसि'
अ. ४.३.४
'मा दत्वते दशते मादते नः'
ऋ. १.१८९.५

दत्वतीरज्जुः- (१) दांतों वाली रस्सी के समान सर्प ।
'परेण दत्वती रज्जुः'
अ. ४.३.२, १९.४७.७

दत्वती - दांतों वाली, ।
'प्रतीच्ये त्वरणी दत्वतीतान्'

अ. ७.१०८.१

दत्वाय- दद् + क्त्वा + यक् = दत्वाय । अर्थ है । देकर । 'क्त्वो यक्' (पा. ७.१.४७) से क्त्वा के बाद यक् प्रत्यय होता है ।

ददति- धारयति (धारण करता है) । दद् धातु का धारण अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

ददते - धारण करता है ।

'ऊर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्ष'

ऋ. १.२४.७

पवित्र और पावन कारी तेजोबल से युक्त तेजः समूह को ऊपर बन्धन रहित आकाश में धारण करता है (ददते)

ददमानः- दधमानः, धारयन् (धारण करता हुआ । दद् (धारण करना) + शानच् = ददमानः । चतुरश्चित् ददमानात्' अक्षों पाशों को धारण करते हुए धूर्त जुआड़ी से ।

दंदशानः - दांतों से काटता हुआ ।

'अश्वासोन क्रीड़यो दंदशानाः'

ऋ. १०.९५.९

ददानः - देने वाला ।

'सहस्रा मे च्यवतानोददानः'

ऋ. ५.३३.९

'ददान मिन्न ददभन्त मन्म'

ऋ. १.१४८.२

ज्ञान देने वाले को कभी पीड़ित न करे ।

ददाशः- प्रयच्छसि (तू देता है) । दाश् (दानार्थक) के लेट् म.पु. ए.व. का रूप । बहुलं छन्दसि , से शप् के स्थान में श्लु प्रत्यय हुआ है ।

ददाशुः - दानशील, ।

'ददाशुवार्जोभिराशुषाणाः'

ऋ. १.१४७.१

ददाशुष् - नित्य ज्ञान और द्रव्य को देने वाला ।

'याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे'

ऋ. १.११२.२०

जिन उपायों से तुम दोनों नित्य ज्ञान और द्रव्य देने वाले विद्वान् या प्रजा जन के लिये (ददाशुषे) शान्ति और सुखकारक (शन्ताती) होते हो (भवथः) ।

दद्राणः - (१) गति करता हुआ, (२) बहुतों को बल से भगाने में समर्थ ।

'विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे

विधुं दद्राणं समने बहूनाम्'

ऋ. १०.५५.५, अ. ९.१०.९, वै.सू. ४०.७.४१.१२

ददिः - दानशील, दाता ।

'सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते'

ऋ. २.३७.२, अ. २०.६७.७

'अधस्मा नो ददिर्भव'

ऋ. १.१५.१०

तू हमारा दाता और रक्षकहो ।

'ऋभुर्वाजभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः'

ऋ. १.११०.७

वह विद्वान् ही (ऋभुः) ज्ञानों, ऐश्वर्यों और संग्रामों से (वाजेभिः) और चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं सबको बसाने वाला (वसुः) और समस्त सुखों का देने वाला हो ।

ददुष् - देने वाला, वेतन आजीविका देने वाला, ।

'रक्षा चनो ददुषां शर्धो अग्ने'

ऋ. ६.८.७

'ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति'

ऋ. १.५४.८

ददुषिः- वह सर्प जिसके काटने से त्वचा पर दाद के समान चिह्न उठ जाते हैं ।

'प्रतङ्कं ददुषीणाम्'

अ. ५.१३.८

ददृवान् - विदारण या छिन्न भिन्न करता हुआ ।

'ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिम्'

ऋ. ४.१.१४

ददृशानः - दिखाई पड़ जाने वाला ।

'सद्यो जातस्य ददृशानमोजः'

ऋ. ४.७.१०

ददृशानपविः - प्रकट बल शस्त्रादि वाला ।

'अस्य शुष्मा सो ददृशानपवेः'

ऋ. १०.३.६

ददृशे - देखा जाता है ।

'ध्राजिरेकस्य ददृशे नरूपम्'

ऋ. १.१६४.४४, अ. ९.१०.२६, नि. १२.२७.

अग्नि, वायु और आदित्य में एक वायु की गति (ध्राजिः) देखी जाती है, रूप नहीं है । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग हुआ है ।

ददृश्रे- ददृशिरे -दृश्यन्ते । लट् (वर्तमान्) में लिट् का छान्दस प्रयोग ।

दधन् – धारण करे, धारण करता हुआ ।
'दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिम्'
ऋ. १.७१.३
सत्य वेद ज्ञान को धारण करे (ऋतं दधन्) और धन का लाभ करे या उसे धन के समान संचय करे (धनयन्) और बाद में उसका अध्ययन और चिन्तन करे (अस्य धीतिम्) ।

दधन्वान् – (१) अतिधनवान् , (२) अति धनुर्धर, (३) भूमि का स्वामी ।
'अच्छिद्रस्य दधन्वतः
सुपूर्णस्य दधन्वतः'
ऋ. ६.४८.१८

दधन्वे – संधत्ते (रखता है) । 'धा' (रखना) के लिट् प्र.पु.ए.व. में रूप ।

दध्यङ् – ध्यान + अञ्च + क्विप् = दध्यञ्च् । पृषोदरादिवत् ध्यान का दधि आदेश । ध्यानं प्रति अक्तः (ध्यान में मग्न, ज्ञान में मग्न)। क्विप् प्रत्यय कर्ता या अधिकरण अर्थ में हुआ है । ध्यानं प्रति अक्तम् अस्मिन् (इसमें ध्यान का कार्य सफल होता है । (२) यह ध्यान में लगा हुआ है या इसमें ध्यान लगा है । (३) आदित्य, (४) अथर्वन ऋषि का पुत्र दध्यङ् ऋषि ।
'यामथर्वा मनुष्ठिता
दध्यङ् धियमत्नत'
ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४.
जिस कार्य को अथर्वा, मानव पिता मनु तथा अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ने किया ।
(५) दधति यैः ते दधयः सद्गुणाः तान् अञ्चति प्रापयति वा सः (प्रजाओं के धारण पोषण करने वाले समस्त गुणों एवं उपायों को स्वयं प्राप्त कराने वाला-राजा, परमेश्वर या इन्द्र (६) राष्ट्र को धारण करने में समर्थ (७) अथर्वा का ज्ञानी शिष्य (८) ध्यानी पुरुष (९) वायु का पुत्रमेघ ।
'तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्रईधे अथर्वणः'
ऋ. ६.१६.१४, वाज.सं. ११.३३, मै.सं. २.७.३, ७७.६, तै.सं. ३.५.११.४, ४.१.३.२, का.सं. १६.३, श.ब्रा. ६.४.२.३, वै.सू. १५.१४.

दधातन – (१) अनुग्रह करें ।
'ता न ऊर्जे दधातन'
ऋ. १०.९.१, अ. १.५.१, साम. २.११८७, वाज.सं. ११.५०, ३६.१४, तै.सं. ४.१.५.१, ५.६.१.४, ७.४.१९.४, मै.सं. २.७.५, ७९.१६, ४.९. २७,१३९.३, का.सं. १६.४,३५,३, तै.आ. ४.४२.४, १०.११, आप.मं.पा. २.७.१३, नि. ९.२७. वे जल हमारे भोजनार्थ अन्न के लिये (ऊर्जे) अनुग्रह करें (दधातन) (२) धारयत, धत्त, अनुगृहीध्वम् (धारण करो, अनुगृहीत को) । धा (धारण करना) के लोट् म.पु.ब.व. का रूप, 'तप्तनप्तनथनाश्च' (पा.७.१.५५) से तप् का तनप् हो गया है ।

दधानः – करने वाला ।
'यः शश्वतो मह्ये नोदधानान्'
ऋ. २.१२.१०, अ. २०.३४.१०

दध्याशिर – (१) दधि में मिलाया सोमरस (२) पद को धारण करने के विशेष सामर्थ्य (दधि) से युक्त ।
'सोमासो दध्याशिरः'
ऋ. १.५.५, १३७.२, ५.५१.७, ७.३२.४, ९.२२.३, ६३.१५, १०१.१२, अ. २०.६९.३, साम. १.२९३, २.४५२.

दध्याशिरः – (१) शरीर आदि पोषण करने और स्वयं नाश करने वाले, (२) धारण पोषण करने वाले पदार्थों को अपने में विलीन किये हुए, (३) ध्यान योग से अपने जीवन और देह को शीर्ण करने में समर्थ ज्ञानी पुरुष, । (४) धा + किन् = दधि , शृ + क्विप् = शिर् । दधि + आ + शिर्= दध्याशिर् ।

दधि– धा + किन् = दधि । अर्थ (१) दही, (२) इन्द्रिय ऐन्द्रं वै दधि– श.ब्रा. ७.४.१.४२
इन्द्रियं वैदधि –तै.सं. २.१.५.६
दधि हैवास्य लोकस्य रूपम् श.ब्रा. ७.५.१.३
'अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह'
अ. १८.४.१७

दधिक्रा– (१) शिष्यों को धारण उपदेश देने वाला, (२) राज्य के कार्यभार को अपने सिर पर लेने वाले को सन्मार्ग पर चलाने वाला सारथिवत् राजा ।
'दधिक्रामु नमसा बोधयन्त'
ऋ. ७.४४.२
(३) दधि + क्रा । धारण पोषण करने वाले को प्राप्त होने वाली कन्या (४) पोषक पिता से भी बढ़ जाने वाला पुत्र, (५) पीठ पर सवार को

धारण कर वेग से जाने वाला अश्व ।
'अग्निम् उषसम् अश्विना दधिक्राम्'
ऋ. ३.२०.१, बृ.दे.४.१०.२
(६) दधत् क्रामति (अपने आरोही को धारण करता हुआ चलता है या आरोही के सवार होते ही चल पड़ता है) अर्थ है-'अश्व' । दधत आकारी (धारण करते ही आकार प्रकार दिखलाता है-अश्व । अथवा ' दधत् + क्रम् , क्रन्द + आकृ = दधिक्रा (दधत् के त् का लोप और ध में इ का आगम) । क्रम धातु से विट् और आ)। क्रन्द मानने पर विच् , 'अनुनासिक का आ और द् का लोप' । कृ धातु को मानने पर कृ से क्विप् और पणादेश ।
'क्रतु दधिक्रा अनुसन्तवीत्वत्'
ऋ. ४.४०.४, वाज.सं. ९.१४, वाज.सं. (का.) १०.३.७, तै.सं. १. ७.८.३, मै.सं. १.११.२, १६३.३, का.सं. १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५. ५, १९, नि. २.२८. अश्व अश्वरोही की आज्ञा का अनुसरण करता हुआ ...
(७) दधिक्रा देव । दधत् उदकम् अन्तरिक्षे क्रामति (अन्तरिक्ष में उदक धारण करता हुआ चलता है) । मध्यमस्थानीय देव, वर्षा कर्म वाला (८) दधिक्रा वायु जो शिल्प कर्म में प्रयुक्त किया जाता है । यान आदि में धारण की हुई उन्हें चलाती है । वाद्यों से स्वर निकालती है और विशेष आकारों में भिन्न भिन्न यन्त्रों में धारण की जाती है । (९) मौनसून वायु भी दधिक्रा है ।

दधिक्रावा- (१) अपनी पीठ पर सवार लेकर चलने वाला अश्व, (२) राष्ट्र कार्य को अपने सिर पर धारण करने वाला राजा, (३) ध्यान बल से भ्रमण करने वाला योगी ।
'दधिक्रावेव शुचये पदाय'
ऋ ७.४१.६, अ. ३.१६.६, वाज.सं. ३४.३९, तै.ब्रा. २.८.९.९,आप. मं.पा. १.१४.६.
(४) अग्रगन्ता
'दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निम्'
ऋ. ७.४४.३, मै.सं. ४.११.१, १६२.२.
(५) दृढ़ कमर कस कर आगे पैर बढ़ाने वाला (६) अन्यों को अपनी पीठ पर उठाकर ले जाने में समर्थ (७) अपनी जीवन यात्रा के साथ साथ दूसरे के भरण पोषण का भार उठाने वाला ।
'दधिक्राव्यो अकारिषम्'
ऋ. ४.३९.६, अ. २०.१३७.३, साम. १.३५८, वाज.सं. २३.३२, वाज.सं.(का.) ३५.५७, तै.सं. १.५.११.४, ७.४.१९.४, मै.सं. १.५.१, ६६.६, १.५.६, ७४.८, ३.१३.१, १६८.९, ४.११.१, १६२.१, का.सं. ६.९, ७.४, का.सं.(अश्व.) ४.८., ऐ.ब्रा. ६.३६.८, ७.३३.१, गो.ब्रा. २.६.१६, पंच.ब्रा. १.६.१७, श.ब्रा. १३.२.९.९, ५.२.९, तै.ब्रा. ३.९.७.५, आश्व.श्रौ.सू. २.१२.५, ६.१२.१२,८.३.३२,शां.श्रौ.सू. ४.१३.२, १२.२५.१, वै.सू. ३२.३३, आप.श्रौ.सू. ४.१४. १, ६.१६.६, २२.१,१३.१८.१, २०.१८.७, शां.गृ.सू. १.१७.१, ४.५. १०, गो.गृ.सू. ३.३.७, साम. वि.ब्रा. १.५.५.

दधिरे - 'धा' धातु के लिट् प्र.पु.ब.व. का रूप । अर्थ है- रखा, धारण किया ।

दधिषुः- (१) भरणपोषणकारी ।
'हस्तग्राभस्य दधिषो स्तवेदम्'
अ. १८.३.२

दधिषे - धारयसि (तू धारण करता है), धत्स्व (तू धारण करता है), धत्स (धारण कर) । 'धा' के म. पु.ए.व. का रूप ।

दधृक् - (१) अतिकठोर ।
'दधृग्विधक्ष्यन् पर्यं खयाते'
ऋ. १०.१६.७, अ. १८.२.५८
(२) शत्रु का पराजय करके ।
'पिबादधृग्यथोचिषे'
ऋ. ८.८२.२.
(३) अति निर्भय ।

दधृष- शत्रुओं को परास्त करने वाला
'वाजेषु दधृषं कवे'
ऋ. ३.४२.६, अ. २०.२४.६

दधृष्णि- शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'अधृष्टं चिद्दधृष्णिम्'
ऋ. ८.६१.३

दधृष्वान् - (१) शत्रुओं का धर्षण करने वाला ।
'या चिन्नु वज्रिन् कृणवे दधृष्वान्'
ऋ. ५.२९.१४
(२) पराजित करता हुआ
'यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वान्'
ऋ. ४.२२.५

दन् - (१) देता हुआ, (२) दानी ।
'महः स राय एषते पतिर्दन्'
ऋ. १.१४९.१, १०.९३.६
(३) दानशील चित्तवाला ।
'दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः'
ऋ. १.१७४.२, नि. ६.३१
'अग्निर्ह नाम धायिदन्नपस्तमः'
ऋ. १०.११५.२
(४) दाता - (५) देवे-दया.
'उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्'
ऋ. १.१५३.४
और हमारे इस यजमान के पूर्वकालीन पालक अग्नि, (पूर्व्यः पतिः) दाता बनें (दन्)- और इस जगत् का मुख्य मालिक इन पदार्थों को दे. (नः दन्)। दानशील पुरुष के अर्थ में-
'दनो विश इन्द्र मृधुवाचः
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त्
ऋणोरपो अन्नवद्यार्णा
यूने वृत्रं पुरु कृत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२
हे इन्द्र ! इन दानशाली मनुष्यों को मधुर भाषी बना (इन्द्र दनः विशः मृध्रवाचः) यतः तू सात वर्षों तक (सप्त शारदीः) मेघ के पुर को (पुरः) मनुष्यों की कल्याण कामना से (शर्म) दीर्ण करता है (दर्त) अतः तू पुरन्दर कहलाता है । और हे अनवद्य इन्द्र, स्थिर जलों को (अर्णाः अपः) बहाया (ऋणोः) या चलाया तथा स्तुतिशील (यूने) पुरुकुत्स नामक यजमान के लिए (पुरुकुत्साय) धन सम्पादित किया (वृत्रंरन्धीः) ।
अन्य अर्थ- हे राजन् , कर प्रदाता राजाओं को (दनः विशः) शिक्षा द्वारा मधुरवाणी वाला बनाइए (मृध्रवाचः) शरद् आदि छः ऋतुओं के अनुकूल (शारदीः) विस्तृत प्रयत्न साध्य नगरियों को (सप्त यत्पुरः) सुखप्रद बनाइए (शर्मदर्त) । हे पाप-रहित राजन् , (अनवद्य) आप पुरुषार्थी कृषकों के लिये (यूने पुरु कुत्साय) नहरों के जल पहुंचाइए (अर्णाः अपः ऋणोः) तथा ज्ञान साधनों से क्लेश का नाश कीजिए (वृत्रं रन्धीः) ।

दन्तः- दांत ।
'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तः'
ऋ. ६.७५.११, वाज.सं. २९.४८, तै.सं. ४.६.६.४, मै.सं. ३.१६.३ , १८७.२, का.सं. (अश्व) ६.१, नि. ९.१९.
Latin में Dent दांत का नाम है ।

दन्तमूल - दांतों का मूल भाग
'अवकां दन्तमूलैः'
वाज.सं. २५.१, मै.सं. ३.१५.१, १७७.७, का.सं.(अश्व.) १३.१. श.ब्रा. १३.३.४.१.

द्रवन्नः- द्रु + अन्न = द्रव न्न जिसका द्रु अर्थात् वृक्ष भोजन है अग्नि । दे 'उम्र'
'द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा
उस्रःपितेव जारयायि यज्ञैः'
ऋ. ६.१२.४
(१) वृक्षों का भक्षयिता (द्रवन्नः) वनों का संभजन करता हुआ (वन्वन्) अपने कर्म में (क्रत्वा) अनाश्रित स्वतन्त्र अर्थात् छूटा या अनेरिया सांढ़ के सदृश (अनार्वापिता उस्रःइव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है (यज्ञैः जारयायि)
(२) वृक्ष वनस्पति के ही अन्न अर्थात् वानस्पतिक भोजन करने वाला

द्रप्स - (१) भूमि का अग्रभाग धूलि (२) द्रुत गति से जाने वाला (३) अच्छी प्रकार पालित, पोषित, (४) वेतन द्वारा रक्षित सेनाबल
'द्रप्सं दविध्वत् गविषो न सत्वा'
ऋ. ४.१३.२
(५) द्रुत गति से काष्ठों को खाने वाला अग्नि
'तव द्रप्सो नीलवाने वाश ऋत्वियः'
ऋ. ८.१९.३१, साम. २.११७३.
(६) सूर्य
'द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनुद्याम्'
ऋ. १०.१७.११, अ. १८.४.२८, वाज.सं. १३.५, तै.सं. ३.१.८.३, ४.२.८.२, ९.५, मै.सं. २.५.१०, ६१.१४, ३.२.६,२३.१५, ४.८.९, ११८.१०, का.सं. १३.९,१६.१५, ३५.८, श.ब्रा. ७.४.१.२०, तै.आ . ६.६.१.
(७) रस रूप से आस्वादन करने योग्य ।
'अधत्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षण्'
ऋ. १०.११.४, अ. १८.१.२१.
(८) दर्पवान् , गर्वीला (९) कुत्सित कुटिल आचार वाला (१०) कुरीतियों और अनाचारों

से प्रजाओं को खा जाने वाला ।
'अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठत्'
ऋ. ८.९६.१३, अ. २०.१३७.७, साम. १.३२३. का.सं. २८.४, ऐ.ब्रा. ६.३६.१२, गो.ब्रा. २.६.१६, तै.आ. १.६.३, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.३३, वै.सू. ३२.३३.
(११) आदित्य (१२) दृप् + स = द्रप्स (बाहुलक से) दृप्यन्ति अनेन (इस से दृप्त होते हैं या हर्षित होते हैं) । अर्थ है- शुक्र, वीर्य - (१३) जलविन्दु-दया. ।
'उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ
उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन
विश्वेदेवाः पुष्करे त्वाददन्त ।'
ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४.
हे वसिष्ठ या वासकतम जल, तू मित्र और वरुण से या मित्र और वरुण नामक वायुओं से उत्पन्न हुआ । तू उर्वशी के मन से या विद्युत् के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ । मैत्रावरुण का वीर्य उर्वशी को देखकर स्खलित हो गया या जल रूप में परिणत तुझ को किरणों ने (विश्वे देवाः) अन्तरिक्ष में धारण किया । या स्खलित वीर्य को विश्वेदेवों ने जल के कलश में धारण किया ।
(१४) दधि । द्रप्सः सम्भृतः प्सानीयः भवति । (रेतस् के रूप में द्रप्स् पुरुष के अंग अंग से निकलकर स्त्री योनि में सञ्चित होता है । और दधि के रूप में वह प्सानीय या भक्षणीय होती है) । अमर कोष में
'द्रप्सं दधि घनेतरत्'
अर्थात् कठिन दही से अन्य दही को द्रप्स कहा है । लप्सी या लस्सी इसी का अपभ्रंश है । अंग्रेजी का Drops भी द्रप्स का ही अपभ्रंश है ।
(१५) सर्वानन्द ने 'द्रप्सं द्राक् प्सानीयम्' द्रप्स शीघ्र खाने योग्य होता है ऐसा कहा है । बैल को खाने के लिए जो दिया जाता है उसे सानी कहते हैं । 'प्सानीय' का ही अपभ्रंश सानी है ।'

द्रप्सवान् - रसयुक्त ।
'अपूववान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु'
अ. १८.४.१८

द्रप्सी- (१) मेघ, (२) मेघ के समान ज्ञानजल बरसाने वाला,
'सत्वानोन द्रप्सिनो घोरवर्पसः'
ऋ. १.६४.२

दभः - (१) दुष्टों को दण्ड देने वाला ।
'अदब्धः शश्वतो दभः'
ऋ. ५.१९.४
(२) पीड़ा, (३) छल ।
'ऋतस्यगोपा न दभाय सुक्रतुः'
ऋ. ९.७३.८

दभ्रचेताः - (१) अल्पचित्त वाला खोटे मिजाज वाला ।
'स्मदा परैदप दभ्रचेताः'
ऋ. १०.६१.८,
'आ मा वृक्त मर्त्यो दर्भचेताः'
ऋ. ८.१०१.१६

दभ्र- (१) थोड़ी, अल्प मात्र, अतिस्वल्प ।
'दभ्रं चिद्धित्वावतः
वृतं श्रृण्वे अधिक्षमि'
ऋ. ८.४५.३२
(२) हिंसा, (३) पीड़ा, (४) मृत्युदण्ड ।
'रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु'
ऋ. ७.१०४.१०, अ. ८.४.१०.
'आसि दभ्रस्य चिद् वृधः'
ऋ. १.८१.२, अ. २०.५६.२, साम. २.३५३
(३) दभ् (वेधार्थक) + रक् = दभ्र । वह सुच्छेद्य है । (सुदभ्रं भवति) तथा छोटा हलका होता है । अवहृतं भवति । छोटा - कम-दया. ।
'मा मे दभ्राणि मन्यथाः'
ऋ. १.१२६.७, नि. ३.२०.
हे पति देव, मेरे छोटे छोटे रोओं को (दभ्राणि) मत देखें (मा मन्यथाः) । हे पतिदेव, मेरे सामर्थ्यों को कम (दभ्राणि) मत समझें (मा मन्यथाः) -दया.

दभ्रंपश्यत् - (१) अति सूक्ष्म पदार्थ, (२) सूक्ष्म तत्व, (३) भीतरी हृदयाकाश को देखने वाला अध्यात्म साधक ।
'दभ्रं पश्यद्भ्य उर्वियाविचक्ष
उषा अजीग भुवनानि विश्वा ।'
ऋ. १.११३.५
अति सूक्ष्म पदार्थों, तत्वों पर भीतरी हृदयाकाश को देखने वाले अध्यात्म साधकों को वह महान्

परमेश्वर विशेष रूप से साक्षात्कार कराने के लिए समस्त लोकों को प्रकट करता है ।

दभीतिः – (१) नाशक ।

'दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कै '

ऋ. ६.२०.१०

(२)सर्वथा देना, (३) शत्रुनाशक पुरुष

'अस्वापयो दभीतये सुहन्तु '

ऋ. ७.१९.४, अ. २०.३७.४,त तै.ब्रा. २.५.८.११.

(४) नाश ।

'श्रद्धामनस्या श्रृणुतेदभीतये '

ऋ. १०.११३.९

(५) विनाश से बचना ।

'अरजौ दस्यून् समुनब्दभीतये '

ऋ. २.१३.९

दभ्– (१) दया करने योग्य ।

'अस्या जरासो दमामरित्राः '

ऋ. १०.४६.७, वाज.सं. ३३.१, तै.ब्रा. २.७.१२.१.

(२) दमनीय शत्रु

'स्वरादिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः '

ऋ. १.६१.९, अ. २०.३५.९, तै.सं. २.४.१४.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.१२, का.सं. ८.१७

दम – दाम्यन्ति उपशाम्यन्ति दुःखानि (जो दुःखों को दमन का शान्तकरते हैं) । दमु + घञ्= दम । अर्थ गृह ।

'अग्नि गीर्भिर्हिनुहि स्व आदमे '

ऋ. १.१४३.४

उस अग्नि को अपने घर में (स्व दमे) स्तुतियों द्वारा (गीर्भिः)प्राप्त करो (आहिनुहि) (२) यज्ञग्रह । अंग्रेजी का Dam शब्द, दम के साथ अर्थ और रूप में मिलता है ।

'सास्माकेभिरेतरी न शूषैः
अग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः '

ऋ. ६.१२.४.

जातधन या जातप्रज्ञ अग्नि हमारे सुखकर स्तोत्रों से हमारे यज्ञगृह में (दमे) अतिथि या याचक के सदृश स्तुत किए जाते हैं (आस्तवे)

दम्य– दमन करने योग्य ।

'रक्षा चनो दम्येभिरनीकै '

ऋ. ३.१.१५

दमायन् – णिच् में प्रयोग । अर्थ–दमन करने वाला – इन्द्र, परमात्मा ।

'श्रृण्वेवीर उग्रमुग्रं दमायन् '

ऋ. ६.४७.१६.

सुनता हूं, इन्द्रवीर है और शत्रुओं के प्रति उग्र और उनका दमन करने वाला है, या उग्र और दुष्टों का उग्रों के द्वारा दमन कराने वाला है ।

दमिता– दमन करने वाला ।

'अथाभवत् दमिता भिक्रतूनाम्

ऋ. ३.३४.१०, अ.२०.११.१०, मै.सं. ४.१४.५,२२२.१०,४.१४.१३, २३६.११, तै.ब्रा. २.८.३.७.

'उग्रस्य चिद् दमिता वीडुहर्षिणः '

ऋ. २.२३.११

दमूनाः– (१) चित्त को वश में करके रहने वाली, मनन या चेतना से रहित परमात्मा के संकल्प से चलने वाली प्रकृति, (२) दमन कारिणी राजशक्ति ।

'इषिरा योषा युवतिर्दमूनाः '

अ. १९.४९.१

(३) दममनाः (यष्टुः मनोनिग्र हे अग्नेः नित्यं मनः) अर्थात् मन पर दमन रखने वाले पुरुष के ऊपर अग्नि का मन रहता है (४) अक्रूरमनाः– सा. (५) जितेन्द्रिय ।

'जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोणे '

ऋ. ५.४.५, अ. ७.७३.९, मै.सं. ४.११.१, १५.९.३. का.सं. २.१५, तै.ब्रा.२.४.१.१, नि. ४.५.

(६) दानमनाः (दातव्यं मया इति एवं दाने मनः यस्य–मुझे इसे देना चाहे इस प्रकार जिसके मन में रहे वह) –अग्नि । दान्तमनाः (यम नियम वाले पुरुषों में जिसका मन हों या स्नेह हो वह अग्नि)। गृहमनाः ('गृहमनः यस्य' यह मेरा घर है, ऐसी भावना जिसकी हो वह अग्नि)। अक्रूरमनाः–दयालु । यह शब्द अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

'दममनाः' से ही पृषोदर आदि शब्दों के सदृश दमूनाः हो गया है ।

दम् + ऊनस् = दमूनस् । दाम्याति उपशामयति मनः (मन को दमन करता है) (७) गृह का स्वामी, (८)दमनशील मित्रवाला ।

'देवो नो अत्र सविता दमूनाः '

ऋ. १.१२३.३

दय– धा. (१) नाशकरना ।

'ऊर्वान् दयन्त गोनाम्'
ऋ. ७.१६.७, साम. १.३८., वाज.सं. ३३.१४.
(३) धारण करना ।
'विश्वा अर्जुर्य दयसे विमायाः'
ऋ. ६.२२.९, अ. २०.३६.९

दयते – ददाति (देता है) । दय धातु दाह, हिंसा, उड़ना, उपदया, रक्षा, दान और विभाग अर्थों में प्रयुक्त हुआ है ।
(१) रक्षा के अर्थ में –
'नवेन पूर्व दयमानाः स्याम'
मै.सं. ४.१३.८, २१०.५, का.सं. १९.३, तै.ब्रा. ३.६, १३.१, नि. ४.१७, ९.४३.
नए धान्य से पुराने धान्य की रक्षा करते हुए हं रहें (स्यामः) ।
(२) दान अर्थ में–
'य एक इद् विद्यते वसुमर्ताय दाशुषे
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अंग ।'
ऋ. १.८४.७, अ.२०.६३.४, साम. १.३८९.२.६९१.
जो इन्द्र अकेला ही (य एक इत्) सम्पूर्णजगत का स्वामी (ईशानः) अतएव दूसरे से अप्रतिशब्दित (अप्रतिष्कुतः) हवि देने वाले मनुष्य को (दाशुषे मर्ताय) धन देता है (वसु विद्यते) या विविध प्रकार का धन देता है वही इन्द्र है ।
अन्य अर्थ– हे प्रजाननो (अङ्ग) जो एकरस लोक वाला (यः एकइत्) देने वाले प्रजा जन का (दाशुषे मर्ताय) धन देता या बांटता है (वसु विद्यते), जो शासन करने के योग्य है (ईशानः) और जो कभी धर्म मार्ग से स्खलित नहीं होता (अप्रतिष्कुतः) उसे ही राजा बनाना चाहिए ।
(३) जलाना अर्थ में – दहतिकर्मा ।
'दुर्वतुर्भीमो दयते वनानि'
ऋ. ६.६.५, नि. ४.१७.
(दुर्निवार्य प्रचण्ड अग्नि वनों को भस्म कर डालती है)
(४) हिंसा अर्थ में –
'विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्'
ऋ. ३.३४.१, अ.२०.११.१, नि. ४.१७.
(शक्तिमान् तथा शत्रुओं का हनन करने वाला –इन्द्र ।
(४) उड़ना अर्थ में–
दोषा दयमानः वायसः मां अवूवुधत् (रात के अन्तिम भागें में उड़ते हुए पक्षी या सूर्य–किरण ने मुझे जगाया है ।

दयमानः – (१) दयालु ।
'प्रार्चत् दयमानो युवाकुः'
ऋ. १.१२०.३
(२) रक्षा करता हुआ ।
'नवेनपूर्व दयमानाः स्याम'
नए से पुराने धान की रक्षा करते हुए हम रहे ।(३) हिंसा करता हुआ, (४) उड़ता हुआ, (४) जलाता हुआ, (५) दान करता हुआ ।

द्वयाविन् – (१) दोनों पक्षों का भेददेने वाला (२) दोनों तरह धर्म अधर्म से मारने वाला ।
'नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः'
ऋ. २.२३.५.
(३) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षयोः पर पदार्थापहर्ता (आंख के सामने देखते देखते ओर पीठ पीछे दोनों प्रकार से पदार्थ चुराने वाला) ।
'त्वं तस्य द्वयाविनः
अधशंसस्य कस्यचित्
पदाभितिष्ठ तपुषिम्'
ऋ. १.४२.४
आंख के सामने या पीठ पीछे धन चुरा लेने वाले, पाप या हत्यादि करने की घात में लगे, क्या तेरा क्या तेरा करके चुराने वाले, प्रजा को नाना प्रकार से सन्ताप देने वाले को (तपुषिम्) ऊपर पैर रखकर बलपूर्वक शासन कर उनका मुकाबला कर (पदा अभितिष्ठ) ।

द्वयुः – (१) दो प्रकार का भाव रखने वाला बाहर कुछ और भीतर कुछ और । (२) दो भागों को हृदय में रखने वाला ।
'साह्यां इन्द्रो परिबाधो अपद्वयुम्'
ऋ. ९.१०५.६, साम. २.९६३

दरयन् – (१) डराता हुआ, (२) मारता काटता हुआ ।
'इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिः'
ऋ . १.५३.४

दरशया– दरे, श्वभ्रे गर्ते शेते (जो बिल में रहता है । अर्थ है) – स्थूणा, खूंटा ।

द्वय – दो का जोड़ा ।
'यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि'

अ. ४.२४.७

द्वर - (१) य आवृणोति (अन्धकार से आवृत) (२) संवृत, (३) गुप्त रखने योग्य व्यवहारों और राजकार्यों में अत्यन्त संवृत, गुप्त, गम्भीर, गुप चुप रहने वाला, कूप के समान गहरा और शीतल जल वाला या अन्धकार से अगम्य भाव होकर रहे ।

'सहिद्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि '

ऋ. १.५२.३.

दरिद्र- (१) शत्रुओं को दुर्गति में डालने वाला-रुद्र ।

'दरिद्र नीललोहित'

वाज.सं. १६.४७, तै.सं. ४.५.१०.१, मै.सं. २.९.९, १२७.६, का.सं. १७.१६, श.ब्रा. ९.१.१.२४.

द्वरि- (१) गुप्त रखने योग्य व्यवहार, राज्यकार्य ।

दरीमन् - (१) तोड़ने फोड़ने का कार्य ।

'दरीमन् दुर्मतीनाम्'

ऋ. १.१२९.८

(२) दृ (विनाश करना) + ईमन् = दरीमन् । अर्थ-हननशील, मारने वाला इन्द्र का विशेषण--सा. (३) विदारक -राजा का विशेषण- दया.। पापियों का हननशील इन्द्र-सा. । दुर्मतियों का विदारक राजा -दया.

दर्त् - (१) भयभीत करे, डरावे ।

'हन् पूर्वे अर्धे भियसा परोदर्त् '

ऋ. ६.२७.५

(२) दीर्ण किया या करता है ।

'सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् '

ऋ. १.१७४.२, ६.२०.१०

यतः तूने सात वर्षों तक (सप्त शारदीः) मेघ के पुरों को दीर्ण किया-दर्त ।

तूने विस्तृत प्रपन्न साध्य नगरियों को (सप्तयत्पुरः) कल्याण प्रद (शर्मदर्त्) बनाया -दया.

दर्ता- तोड़ने वाला ।

'इन्द्र दर्ता पुरामसि'

ऋ. ८.९८.६, अ.२०.६४.३.

(२) नाशक । दृ + तृच् । तोड़ने वाला ।

'पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः '

ऋ. १.१३०.१०

दर्तु- (१) तोड़ने फोड़ने में समर्थ ।

'विश्वासां यत् पुरां दर्तुमावत् '

ऋ. ६.२०.३

दर्भ- (१) कुश. (२) शत्रु को हिंसित कराने में कुशल पुरुष ।

'निक्षदर्भ सपत्नान् मे '

अ. १९.२९.१

(३) शत्रुनाशक मननशील सेनापति ।

'भिधि दर्भ सपत्नानाम्
हृदयं द्विषतां मणे '

अ. १९.२८.४

कुश के अर्थ में -

'अयं दर्भो विमन्युकः'

अ. ६.४३.१

'दर्भः शोचिस्तरूणकम् '

अ. १०.४.२

(४) कुश पर का जाने वाला विषैला जीवः

'दभसिः सैर्याउत '

ऋ. १.१९१.३

दर्भमणि- (१) शत्रुनाशक सेनापति-ज.दे.श.(२) दर्भ की ताबीज ।

'इमं बध्नामि ते मणिम् '

अ. १९.२८.१

दर्मन् - दृ + मनिन् = दर्मन् । अर्थ-विदारक

'दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः'

ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३, श.ब्रा. ४.६.९.१४, वै.सू. ३४.१, आप.श्रौ.सू. २१.१२.९, मा.श्रौ.सू. ७.२.३.

सब ओर से काटने छांटने वाला (२) तोड़ने वाला ।

'पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम्'

ऋ.१.६१.५, अ. २०.३५.५.

दर्वा - (१) घृत पूर्ण चिमस (२) सब दुःखों का दलन करने वाली गृहपत्नी ।

'पूर्णा दर्वे परा पत'

अ. ३.१०.७, वाज.सं. ३.४९, मै.सं. १.१०.२, १४२.६.

दर्वि- (१) बछड़े के आकार का फण वाला सर्प ।

'दर्विकरिक्रतम् श्वित्रम्'

अ. १०.४.१३

(२) कलछल ।

'स्रुग् दर्विः '

अ. ९.६.१७.
(३) विदारण करने वाली विद्युत् शक्ति ।
'श्रिये दर्विररेपाः '
ऋ. १०.१०५.१०
(४) दृ + विन् = दर्वि । जिससे हवन किया जाता है । (५) स्रुवा, (६) चमच ।

दर्विदा- (१) दारु-काष्ठों का विद्वान् (२) एक पक्षी ।
'आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे '
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.९

दर्विहोमिन् - दर्वि + हु + मिनि = दर्विहोमिन् (जो दर्वि से हवन करता है) । दर्वि उस पदार्थ का नाम है जिससे हवन किया जाता है । यह चमच की तरह होता है ।

दर्वी- (१) देने योग्य पदार्थों को अपने भीतर लेने वाली पत्रिका , (२) यज्ञ में प्रयुक्त पात्रिका, यज्ञ में प्रयुक्त पात्र ।
'पूर्णादर्विपरापत '
वाज.सं. ३.४९, तै.सं. १.८.४.१, मै.सं. १.१०.२, १४२.६, का. सं. ९.५, श.ब्रा. २.५.३.१७, आश्व.श्रौ.सू. २.१८.१३, आप. श्रौ.सू. ८.११.१९.

दर्श- (१) सूर्येण सहैव दर्शनीयः चन्द्रः (अमावास्या को सूर्य के साथ चन्द्रमा देखे जाते हैं । (२) दर्शनीय । (३) सबका द्रष्टा, (४) बुधग्रह, (५) शुक्ल प्रतिपदा को द्रष्टव्य एक कला का चन्द्रमा ।
'दर्शोऽसि दर्शतोऽसि '
अ. ७.८१.४

दर्शतः- दर्शनीय । दे. दर्श । दृश् + अतच् = दर्शत ।
'वायवा याहि दर्शते मे सोमा अरंकृताः
तेषां पाहि श्रुधी हवम् '
ऋ. १.२.१.
हे दर्शनीय वायु , तेरे लिए सोम रस बनाए हुए हैं अतः तू हमारा आह्वान सुन, सुनकर आ और सोम का अंश पी (पाहि) ।
'अग्निं मित्रं न दर्शनम् '
ऋ. १.३८.१३
प्रिय मित्र के समान प्रेम से दर्शनीय.....

दर्शतश्रीः- दर्शनीय विभूतिवाला परमेश्वर ।
'स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे '
ऋ. १०.९१.२

दर्शता- (वि)व.व. । अर्थ (१) दशनीय (२) वायु के विशेषण के रुप में प्रयुक्त । दर्शत (३) उत्तम रूप वाली स्त्री ।
'ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः '
ऋ. ३.५७.४

दर्शन- (१) देखना, (२) धर्मधर्मको देखने वाला है ।

दर्श्य- दर्शनीय
'चित्रारूपाणि दर्श्या '
ऋ. ५.५२.११

दविद्योत् - पुनः पुनः द्योतते । द्युत्, धातु का यङ्लुङन्त निपात है । अर्थ - (१) बार बार चमकती है ।
'विद्युन्नयापतन्ती दविद्योत् '
ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.
जो माध्यमिका देवता उर्वशी विद्युत् के सदृश अन्तरिक्ष में जाती हुई बार बार चमकती है ।

दविध्वत् - (१) शत्रु को कंपा देने वाला, (२) अंधकार का नाशक ।
'दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य '
ऋ. ४.१३.४, मै. सं. ४.१२.५, १९४. २, का.सं. ११.१३, तै.ब्रा. २.४.५.५. आप.श्रौ.सू. १६.११.१२.
(३) कम्पित करता हुआ ।
'हिरण्य शिप्रा मरुतो दविध्वतः '
ऋ. २.३४.३

दविषाणि- क्रि । दुःखी या सन्तप्त होऊंगा ।
'यदादीध्ये न दविषाण्येभिः '
ऋ. १०.३४.५
जब मैं संकल्प करता हूँ कि इन जुओं के पाशों के चलते मैं दुखी न होऊंगा (न एभिः दविषाणि)

द्यविद्यवि - प्रतिदिन ।
'प्रदेव वरुण व्रतम्
मिनीमसि द्यविद्यवि '
ऋ. १.२५.१, तै.सं. ३.४.११.६, मै.सं. ४.१२.६,१९७.१०.
जो भी हम किसी व्रत को दिन प्रति दिन जोड़ा करते हैं ।

द्यवी -द्वि. व (१) एक दूसरे को प्रकाशित करने वाले द्यावापृथिवी, (२) एक दूसरे की कामना करने वाले स्त्री पुरुष ।

'प्र वां महि द्यवी अभि
उपरस्तुतिं भरामहे '
ऋ. ४.५६.५, साम. २.९४६,

द्रवत् - शीघ्र

द्रवचक्र - अतिशीघ्रता से चलने वाली चक्रों से युक्त ।
'द्रवच्चक्रेषु आशुषु '
ऋ. ८.३४.१८

द्रवत्पाणी - पदार्थ विद्या के व्यवहार सिद्ध करने में उत्तम हेतु ।
'अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती '
ऋ. १.३.१.

द्रविः- ताप से धातु गलाकर शोधने वाला स्वर्णकार ।
'द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् '
ऋ. ६.३.४

द्रविण- (१) चारों और दौड़ने वाला मन, (२) धन ।
'परिचिन्मर्तो द्रविणं ममन्यात् '
ऋ. १०.३१.२
'धर्मस्वेदेभि र्द्रविणं व्यानट् '
ऋ. १०.६७.७, अ. २०.९१.७, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.११, तै.ब्रा. २.८.५.२,
(३) द्रु (गत्यर्थक) + इनन् = द्रविण । अर्थ बल । इस अर्थ में इनन् प्रत्यय करण अर्थ में होता है । (४) जल, (५) भक्ति भेंट ।
'त आयजन्त द्रविणं समस्मै '
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८,तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.६, का.सं. १८.१.
वे मेघ इस सृष्टि के लिए जल देते हैं । अथवा वे तपस्विजन इस विश्वकर्मा जगदीश को भक्ति की भेंट करते हैं । धन के प्रति धनार्थी द्रवीभूत होते हैं और बल से हम शत्रुओं को पराजित करते हैं ।
(६) प्रशस्त धन या ज्ञान वाला ।
'पृक्ष प्रयजो द्रविणः सुवाचः '
ऋ. ३.७.१०

द्रविणस् - द्रविण + सन् + क्विप् = द्रविणस् अथवा - द्रविण + सद् + क्विप् = द्रविणस् (बाहुलक से टिका लोप) । द्रविणाय सीदति (धन के लिए जाता है), अथवा द्रविणसानी धनस्य गवादेः देवतार्थस्य हविषो वा सानी संभक्ता अर्थ है- (१) धनार्थी, (२) बलार्थी (३) द्रव्य के लिय कर्म करने वाला शिल्पी -दया, (४) द्रव्य पाने वाला ।
द्रविण शब्द का धन और बल का वाचक है ।
'द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे
यज्ञेषु देवभीडते '
ऋ. १.१५.७, नि. ८.२.
धनार्थी ऋत्विज (द्रविणसः) सोमरस तैयार करने के लिये हाथ में पाषाण धारण करते हुए (ग्रावहस्तासः) अग्निष्टोमादि यज्ञों में (अध्वरे यज्ञेषु) धन देने वाले देव को (द्रविणोदा देवम्) पूजते या जांचते हैं । (ईडते) ।
स्वामी दयानन्द का अर्थ -जिस व्यवहारोपयोगी द्रविणोदा अग्नि को मान हस्त शिल्पी निर्विघ्न राष्ट्र तथा यज्ञों में अधिकाधिक प्रयुक्त करते हैं वह द्रविणोदा अग्नि (द्रविणोदाः) द्रव्य संपादक शिल्पी से (द्रविणसः) जलपान करे (पिवतु) अर्थात् शिल्पी अग्नि के साथ जल मिलाकर अपना शिल्प कर्म सिद्ध करते हैं ।
(५) द्रव्य समूह ।
'द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य '
ऋ. १.९६.८
वह ऐश्वर्यों का दाता शीघ्र गति करने वाले वेगवान् रथ आदि का या जंगम धन पद आदि का हमें दान दें ।

द्रविणस्युः- (१) ऐश्वर्य और ज्ञानकारी कामना करने वाला ।
'देवस्यद्रविणस्यवः '
ऋ. ५.१३.२, साम. २.७५५, मै.सं. ४.१०.२, १४५.१३, का.सं. २०.१४, आप.श्रौ.सू. १७.७.४.
(२) द्रुत गमन करने वाला अग्नि ।
'तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसम्
द्रविणस्युं द्रविणोदः '
ऋ. २.६.३

द्रविणोदस् - (१) द्रविण अर्थात् धन या ज्ञान देने वाला । (२) विद्याबल, राज्य तथा धन का दाता परमेश्वर (३) भौतिक अग्नि । अग्नि को द्रविणोदाः कहा गया है । क्योंकि अग्नि से ही शिल्पी धन पैदा करते हैं - दया. (४) द्रविणोदाः भूस्थानीय देवता है । आचार्य

कौष्टुकि ने इसे इन्द्र का वाचक माना है ।
(५) विद्युत् , बल और धन का दाता इन्द्र ही सबसे बढ़कर बल और धन का दाता है । (बलधनयोः दातृतमः तस्य च सर्वा बलकृतिः)
'द्रविणोदाः पिबतु द्रविणोदसः '
ऋ. २.३७.४, नि. ८.२.
(६) वहां द्रविणोदस् ऋत्विज् का वाचक है । 'एष पुनरेतस्मात् जायते' (यह इन्द्र से उत्पन्न होते हैं) इन्द्र ने पत्थर से अग्नि उत्पन्न किया ।
'यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान
ऋ. २.१२.३, अ. २०.३४.३, मै.सं. ४.१४.५, २२२.१२, नि. ८.२.
'अपाद्धोत्रादुत पोत्रात् अमत्त
उत नेष्ट्रादजुषत प्रयोहितम् ।
तुरीयं पात्र ममृक्त ममर्त्यम्
द्रविणोदाःपिबतु द्रविणोदसः । '
ऋ. २.३७.४, नि. ८.२
जिस इन्द्र ने (द्रविणोदाः) होता के यज्ञ से लेकर सोम रस का पान किया (होत्रात् अपात्) तथा पोता के यज्ञ से (पोत्रात्) सोम रस पीकर हृष्ट हुआ (अमत्त)नेष्टा के यज्ञ से (नेष्ट्रात्) अपने दिए हुए अन्न रुप सोम को आत्मने हितं प्रयः)सेवन किया (अजुषत) वह इन्द्र अपरिभुक्त (अभृक्तम्) एवं अमरण साधन (अमर्त्यम्) चतुर्थपात्र में रखे सोम को (तुरीयम् पात्रम्) पीवे (पिबतु) जिसका अपत्य अग्नि है (द्रविणोदसः) ।
स्व. दयानन्द का अर्थ –यज्ञ के लिए चार प्रकार के हवियों का इस मन्त्र में विधान है । ऋत्विजों से प्रज्वलित वृष्टिआदि का प्रदाता यज्ञाग्नि (द्रविणोदसः द्रविणोदाः) हितकारी हवि के वृष्टिप्रद भाग से पान करे (हितं प्रयः होत्रात् अपात्) तथा सुगन्धि प्रद भाग से (उत पोत्रात्) और पुष्टिप्रद भाग से सेवन करे (नेष्ट्रात् अजुषत्) और चौथी मृत्यु से बचाने वाली (तुरीयम् अमर्त्यम्) रोग नाशक औषधि हवि (अमृतं पात्रम्) का पान करे (पिबतु) यह यज्ञाग्नि हमें सुख दे (अमत्त) ।
(६) शाकपूणि ने इसे अग्नि का वाचक माना है ।
अयमेवाग्निः द्रविणोदा
इति शाकपूणिः । आग्नेयेषु
च सूक्तेषु द्रविणदसः प्रवादाः भवन्ति ।
अग्नि का विशेषणः–
'स प्रत्नथा सहसा जायमानः
सद्यः काव्यानि बडधत्त विश्वा
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम् '
ऋ. १.९६.१, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१३,१५, नि. ८.२.
बल से अर्थात् मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि ने (सहसा जायमानः साः) उत्पन्न होते ही (सद्यः) पुरातन के सदृश (प्रत्नथा) सभी पितरों एवं देवों को दिए जाने वाले कव्य तथा हव्य (विश्वा) सत्य ही (वट्) धारण किया (अधत्त) । जिस विद्युत् रूप में वर्तमान अग्नि को मेघ में स्थित–जल तथा माध्यमिका वाक् (अग्नि को मेघ में स्थितजल तथा माध्यामि का वाक् (आपश्च धिषणा च) मित्र रूप से साधते या मानते हैं (मित्रं साधन्) । उस धन दाता अग्नि को (द्रविणादाम् अग्निम्) दानादिगुण युक्य ऋत्विज् (देवाः) गार्हपत्य रूप से धारण करते हैं (धारयन्) या इन्द्र आदि देव ही हवि के दाता अग्नि को हवि पहुंचाने वाला बना कर रखते हैं ।
स्वामी दयानन्द का अर्थ–पदार्थ विद्या द्वारा जल और वायु को सिद्ध करते हुए विद्वान् लोग (धिषणा आपः च मित्रं च साधन देवाः) जिस धनदाता अग्नि को धारण करते हैं (द्रविणोदा अग्नि धारवन्), वह अग्नि पूर्ववत् (प्रत्नथा) संघर्षणशक्ति से (सहसा) उत्पन्न (जायमानः) शीघ्र अनेक विज्ञानों को (विश्वाः काव्यानि) यथार्थ रूप से (वट्) धारण करता है । (अधत्त) ।

द्रविता – वेग से जाने वाला ।
'अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन् '
ऋ। ६.१२.३, मै.सं. ४.१४.१५, २४०.६.

द्रवित्नू– स्त्री । वेग से जाने वाली विधि, क्रिया या नीति ।
'सं घोरया द्रवित्वा '
ऋ. ८.९२.१५

द्रवित्नु– (१) द्रवणशील, प्रवहणशील ।

'युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्'
ऋ. १०.११.९, १२.९, अ. १८.१.२५

दवीयः- दूर +ईयसु = द्रवीयस् ।
दूरात् दवीयस्, दुन्दुभि । अर्थ है- दूरतर

दश- (१) दस संख्या। (२) दस प्राण (३) दस दिशाएं ।
'एकया च दशभिश्चा सुहूते'
अ. ७.४.१

दश अधिभोजना- दस प्रकार के उत्तमोत्तम भोजन ।
'दशवस्त्राधि भोजना'
ऋ. ६.४७.२३

दश अश्वाः- (१) दस अश्व, (२) दक्ष इन्द्रियां
'दशाश्वान् दशकोशान्'
ऋ. ६.४७.२३

दश उक्षणः- देह को उठाने वाले-चलाने वाले दस प्राण ।
'अधोक्षणोदश मह्यं रुशन्तः'
ऋ. ८.१.३३

दशकोशयी - कोशों या खजानों से भरी पूरी दस भूमियां ।
'दशकोशयीर्दशवाजिनोऽदात्'
ऋ. ६.४७.२२

दशकोशाः- (१) दशकोस खजाने (२) अन्नमयादिपांच और अन्तः करण चतुष्टय और आत्मा ।

दशक्षिपः- (१) दसों दिशाएं, (२) दसों दिशाओं में बसने वाली प्रजाएं ।
'मृजन्ति त्वा दशक्षिपः'
ऋ. ९.८.४, साम. २.५३१, आश्व.श्रौ.सू. ५.१२.५, शां.श्रौ.सू. ७.१५.७
(३) दस प्रेरित प्राण (४) दसों दिशाओं में शत्रुओं पर शास्त्रास्त्र बरसाने वाली सेना ।
'दश क्षिपः पूर्व्यसीम् अजीजनन्'
ऋ. ३.२३.३

दशग्व- (१) दसों इन्द्रिय सामर्थ्यों से युक्त, (२) दसों प्राणों से युक्त, दसों धर्मशास्त्रों का ज्ञान ।
'सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः
सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम्'
ऋ. ३.३९.५
(४) दश + गम् + ड्व = दशग्व । दसों दिशाओं में फैलने वाली रश्मि, (५) दसों दिशाओं में जाने वाला राज पुरुष ।
'वलं रवेण दरयो दशग्वैः'
ऋ. १.६२.४
सूर्य दसों दिशाओं में जाने वाली रश्मियों से मेघ को विदीर्ण करता है । (६) दशों इन्द्रियों को वश में करने वाला ।
'ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे' ...
ऋ. २.३४.१२

दशत्- काटने वाला, सर्प, बिच्छू आदि ।
'मा दत्वो दशते मा दते नः'
ऋ. १.१८९.५

दशतयः- (१) दसों दिशाओं में व्यापक परमेश्वर, (२) दशधाविद्या से युक्त -दया. ।
'एवं शर्धं धाम यस्य सूरेः
इत्यवोचन् दशतयस्य नंशे'
ऋ. १.१२२.१२
सब के प्रेरक और सबके उत्पादक (सूरेः) दसों दिशाओं में व्यापक परमेश्वर के ही (दशतयस्य) समस्त संसार का प्रलय द्वारा नाश करने में (नंशे) इस बड़े भारी बल का और जगत् को व्यापने में (नंशे) जिसके बड़े भारी धारण सामर्थ्य का (धाम) विद्वज्जन वर्णन किया करते हैं । (अवोचन्)
(३) दसों प्रकार के सर्ग, (४) दसों दिशाओं से युक्त जगत् ।
'मन्दामहे दशतयस्य धासेः'
ऋ. १.१२२.१३
(५) दस प्राणगण
दसों दिशाओं से युक्त जगत् को या दसों सर्गों को धारण करने वाले परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ।
(६) दशगुण ।
'मा मामेधो दशतयश्चितो धाक्'
ऋ. १.१५८.४
दसगुणा संचित किया गया काष्ठ के समान प्रज्वलित होने वाला तेजस्वी सैन्य समूह भी मुझे न जलावे ।

दशदेवाः - (१) अग्नि आदि देवों से पूर्व उत्पन्न पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय, (२) प्राण, अपान, चक्षु, श्रौत्र, अक्षिति, (अविनाशिनी

ज्ञानशक्ति), क्षिति (क्षयशील क्रियाशक्ति) व्यान, उदान, वाणी और मन ।

दशद्युः- (१) दसों दिशाओं में चमकने वाला, तेजस्वी ।
'प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् '
ऋ. १.३३.१४
(२) दसों दिशाओं में द्योतित होने वाली विद्युत् (३) मेघ, (४) दसों दिशाओं में चमकने में समर्थ ।

दशन् - दश + अन् = दशन् । दस संख्या । 'दस्ता उपक्षीणा' दस् (उपक्षयार्थक) + कनिन् = दशन् । एक से नौ तक संख्या बढ़ती जाती है पर दस की संख्या पुनः नहीं बढ़ती (सा पुनर्नवर्धते) । अथवा दष्टार्था (वह दस दस ही रह जाता है ।

दशपक्षा- दस कमरों वाली शाला ।
'अष्टापक्षां दशपक्षाम् '
अ. ९.३.२१

दशप्रमतिः - (१) जिसे दस प्रकार की प्रकृष्ट मति हो- दया. (२) दस धर्म-लक्षणों से सम्पन्न पुरुष । दशकं धर्मलक्षणम् ऐसा मनु ने कहा है । (३) दसों उत्तम ज्ञान कर्म साधनों से युक्त पूर्णाङ्ग बालक ।

दक्ष पितरः- (१) दाहक सामर्थ्य या ताप से युक्त किरणें (२) चतुर पाता पितर या गुरुजन ।
'सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितृन् '
ऋ. ६.५०.२

दशभुजिः- (१) या दशभिः इन्द्रियैः भुज्येत (जो दसों इन्द्रियों से भोगी जाय) अर्थ -पृथिवी (२) दसों इन्द्रियों से जीवों द्वारा भोग करने योग्य, (३) दसों दिशाओं से रक्षा करने योग्य ।
'यदिन्विद पृथिवी दशभुजिः '

दशमः - (१) नौ प्राणों के बीच दसवां जीव ।
(२) नवों दिशाओं से भी ऊपर दसवां, नवों प्राणों पर विराजमान आत्मा, (४) नवों पदों पर विराजमान दसवां सेनापति (५) पांच ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, महत्तत्व और प्रकृति इन नव शक्तियों से परे दसवीं शक्ति परमात्मा ।
'एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् '
ऋ. ८.२४.२३, अ. २०.६६.२

दशमायः- (१) दस गुणा वृद्धि देने वाला, (२) दशावरा परिषद् ।
'स वेतसुं दशमायं दशोणिम् '
ऋ. ६.२०.८

दशमास्य- (१) दशमासों में परिपक्व होने वाला गर्भ, (२) दसों दिशाओं में चन्द्रमावत् आह्लादक राजा ।
'एजतु दशमास्योगर्भोः जरायुणासह '
वाज.सं. ८.२८, श.ब्रा. ४.५.२.४.
(३) दस मास तक गर्भ में रहने वाला गर्भगत बालक ।
'एवा त्वं दशमास्य '
ऋ. ५.७८.८, अ. १.११.६
'निरैतु दशमास्यः '
ऋ. ५.७८.७
'एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा '
ऋ .५.७८.८.
इसी प्रकार तू हे गर्भ, जरायु के साथ नीचे जा ।

दशमी- (१) दशावरा परिषद् ।
त्रैविधो हैतुकस्तर्की तैरुक्तो धर्मपाठकः त्रयश्चा श्रमिणः पूर्वे परिषद् सा दशावरा-मनु- १२.१११
(२) सायण ने ९० वर्ष के ऊपर के दस वर्षों को 'दशमी' माना है ।
'दशमीमुग्रः सुमना वशहे '
अ. ३.४.७

दशमी देवता- दस संख्या पूर्ण करने वाले व्यापक राजशक्ति रूप दस दिव्य गुण और सामर्थ्य ।
'दशम्या देवतया प्रसूतः प्र सर्पामि '
वाज.सं. १०.३०, वाज.सं. (का.) ११.९.१,२.

दशमे अहन् - (१) रजोदर्शन का दसवां दिन जब वीर्यवपन करना चाहिए (२) दशमदिवस जब राज्याभिषेक होता है ।
'उदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् '
ऋ. १.११७.१२
हे, युवास्त्रीरुषो, या राष्ट्र के पालक पुरुषों या अश्विद्वय, तुम दोनों रजोधर्म के दसवें दिन अर्थात् स्नानसे पांचवीं रात रमण योग्य एवं आत्मारूप वीर्य को उत्तम रीति से वपन करते हो । अथवा दसवें दिन राज्याभिषेक करते हो ।

दशयन्त्र उत्सः- (१) दस यन्त्रों से युक्त कूप, (२) दसों दिशाओं से नियन्त्रित जगत्, (३) दस विद्वानों द्वारा नियन्त्रित राष्ट्र (४) दस इन्द्रियों

से युक्त देह ।
'सोमो दाधार दशयन्त्र मुत्सम्'
ऋ. ६.४४.२४

दशयन्त्रासः- दस प्रकार के यन्त्र अर्थात् उपकरणों के स्वामी दस प्राण ।
'ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवः'
ऋ. १०.९४.८

दशयुवतयः- (१) दसस्त्रियां, (२) त्वष्टा की दस युवतियां (३) दस दिशाएं ।
'दशेमं त्वष्टुर्जनयन्तगर्भम्
अतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्'
ऋ. १.९५.२, तै.ब्रा. २.८.७.४.

दशयोषणः- (१) दसों दिशाओं की प्रेमयुक्त प्रजाएं, (२)दस दस इन्द्रियां ।
'गृभ्णन्ति योषणो दश'
ऋ. ९.१.७

दश रपांसि - (१) सूर्य के दस हननकारी बल, (२) दस हननकारी सैन्य बल, (२) पापकारी दुष्ट पुरुष ।
'दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य
मुषायश्चक्रमविवे रपांसि'
ऋ. ६.३१.३. कौ.ब्रा. २५.८.

दशराजानः- (१) सुदास राजा से लड़ने वाले दस राजा, (२) दस तेजस्वी पुरुष (३) देह की दस इन्द्रियां राजा तुल्य हैं ।
'दश राजानः समिता अयज्यवः'
ऋ. ७.८३.७

दशरात्रि- (१) दस रात और नवदिन जब प्रसूतक या शव के अशोच में बिताये जाते हैं ।
'दशरात्रीरश्विनानवद्यून्
अवनद्धं श्नथितम् अप्स्वन्तः'
ऋ. १.११६.२४

दशवस्त्रा- (१) दस प्रकार के वस्त्र (२) इन्द्रियों के दस अर्थ ।
'दश वस्त्राधिभोजना'
ऋ. ६.४७.२३.

दशवह्नयः- (१) दस अग्निवत् तेजस्वी शरीर को गाडी के समान उठाने वाले प्राण ।
'यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः'
ऋ. ८.३.२३

दश वज्रः- (१) दसों दिशाओं में जाने वाला, (२) दसों मार्गों से युक्त ।
'याभिर्वशं दशव्रजम्'
ऋ. ८.८.२०

दशवाजिनः- (१) बल वेग, अन्न, धनादि से युक्त दस प्रकार के पदार्थ ।
'दश कोशयी दशवाजिनोऽदात्'
ऋ. ६.४७.२२

दशविश्वसृजः- (१) समस्त संसार के बसाने वाले दस प्राण और पञ्चभूत आदि तत्व स्थूल और सूक्ष्म तत्व ।
'ब्रह्म विश्वसृजो दश'
अ. ११.७.४

दशव्रिशः- दसों दिशाओं में बसने वाली प्रजाएं
'तमीं हिन्वन्ति धीतयोदशव्रिशः'
ऋ. १.१४४.५

दशवीराः- (१) दस प्राण, (२) दस पुत्र ।
'अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूयाः'
ऋ. ७.१०४.१५, अ. ८.४.१५, नि. ७.३.

दशवृक्षः- (१) दस प्राणों के बन्धनों को काटने वाला परमात्मा ।
'दशवृक्ष मुञ्चेम'
अ. २.९.१

दशवृक्षमणि- ढाक, गूलर, जामुन, काम्पील, स्रक्, बंध, शिरीष, भ्रक्ति, अरणि, अस्मयोक्त, तुन्यु पूतदास, वरण, विल्व, कुटक, गुह्य, वलावल, वेतस, शिम्बल, सिपुन और स्यन्दन इन २१ में किन्हीं दस वृक्षों की लकड़ी के छोटे छोटे टुकड़ों का बनाया मणि । इसे शाकल मणि कहते हैं और लाख और सोने में जड़कर धारण करते हैं । अथर्ववेद २-७ और ८-७ मे इसका वर्णन है । ८-७ में नाना औषधियों का २-७ में दसवृक्ष से दस प्राणयुक्त जीव का वर्णन है ।

दशवृष- (१) दस प्राणों से युक्त आत्मा
'यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.१०

दशशक्वरी - (१) दस शक्तियां, (२) दस उंगलियां ।
'तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः'
अ. ११.२.२३

दश शतम् - एक सहस्र ।

'शतं वा यस्य दश साकमाद्य'
ऋ. २.१३.९

दशशताः – हरयः (१) सहस्रों मनुष्य, (२) सहस्र प्राणगण जो ज्ञान तन्तुओं और शक्तितन्तुओं के रूप में शरीर में वर्तमान हैं ।
'युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश'
ऋ. ६.४७.१८, श.ब्रा. १४.५.५.१९, बृ.आ.उप. २.५.१९, जै.उप. ब्रा. १.४४.१,५.

दशशल– काटने चुभने एवं तीक्ष्ण करने वाला दुःखदायी रोग, (२) दस इन्द्रियों का कष्ट ।
'अथो दस शलादुत'
अ. ८.७.२८

दशशिप्र– दशों प्राणों को मुकुट वत् धारण करने वाला ।
'यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये'
ऋ. ८.५२.२

दशशीर्षः – दस प्रकार के रोगों का नाशक ब्राह्मण ओषधि ।
'दशशीर्षो दशास्यः'
अ. ४.६.१

दशश्रृंग– दस प्राण ।
'श्रृंगोभिर्दशभिर्दिशन्'
साम. २.१००६, जै.ब्रा. २.१४४.

दशस्यन् – (१) देता हुआ ।
'अपत्याय जातवेदो दशस्यन्'
ऋ. ७.५.७
(२) देती हुई दुर्ग ।
'यत्रा दशस्यन्नुषस्तेरिणन्नपः
कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः'
ऋ. १०.१३८.१
मेघ के विदीर्ण होने पर (यत्रा) माध्यमिक देव उषा (उषसः) मेघ में स्थित जलों को देती है (अहयः अप दशस्यन्) और वे जल कृषक के लिये (कुत्साय) कृषि कर्म को सफल करने के लिये (कुत्साय) आवश्यक समझ कर (दंसयः मन्मन्) पृथ्वी पर आते हैं (रिणन्) –दुर्ग
हे सूर्य, जिस समय तू मनुष्य के लिये उषा काल को प्रदान करता हुआ (उषसः दशस्यन्) और ओसजल को ले जाते हुए (अपःरिणन्) परमात्मा के स्तोता के लिए (कुत्साय) आत्ममननों (मन्मना) एवं पाप नाशक श्रेष्ठ कर्मों को बतलाते हुए उदय लेता है (अह्न= दंसयश्च.....)

दशस्वसारः– (१) स्वयं सरण करने वाली दस प्रेरणा करने वाली ध्यान वृत्तियां ।
'दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः'
ऋ. ९.९३.१, साम. १.५३८,२.७६८.
(२) दस उंगलियां, (३) उत्तम मार्ग पर प्रेरित करने वाले दस मुख्य विद्वान् । दश + सु + असारः = दशस्वसार ।
'समीरथं न भूरिजोरहेषत
दशस्वसारो अदितेरुपस्थ आ'
ऋ. ९.७१.५
(४) दसोंदिशाएं, (५) दसों दिशाओं की प्रजाएं या सेनाएँ जो 'स्व' अर्थात् धन का लक्ष्य कर आती हों ।
'दशस्वसारो अग्रुवः समीचीः'
ऋ. ३.२९.१३, का.सं. ३८.१३, तै.ब्रा. १.२.१.१९, आप.श्रौ.सू. ५.११.६.

दशस्या– (१) नाना सुख भोग देने वाली द्यावपृथिवी ।
'सूयवसिनी मनुषे दशस्या'
ऋ. ७.९९.३, तै.आ. १.८.२.

दशसुकर्माणि – (१) दसधर्म– धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध, ।
(२) पांच यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह, और पांच नियमयथा– शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ।
'स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः'
ऋ. ९.७०.४

दशहिरण्यपिण्ड– (१) दस सोने के पिण्ड, (२) दशधा गात्र ।
'दशोहिरण्य पिण्डान्'
ऋ. ६.४७.२३

दशाक्षर– (१) विराट् प्रकृति के पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूत रूप दस विभाग, (२) राजा की दशावरा परिषद् (३) दसदिशाएं ।
'वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्'
वाज.सं. ९.३३.तै.सं. १.७.११.२.

दशाङ्गुल – (१) 'दश च तानि अंगुलानि

दशांगुलानिइन्द्रियाणि । केचित् अन्यथा रोचयन्ति दशाङ्गुलप्रमाणम् हृदय स्थानम्। अपरे तु नासिकाग्रं दशाङ्गुलम् उवट (२) दशाङ्गुलमिति उपलक्षणम् । ब्रह्माण्डात् वहिरपि सर्वतः व्याप्य स्थित इति सायणः । (३) पञ्च स्थूल सूक्ष्म भूतानि दशाङ्गुलानि यस्याङ्गानि तत् जगत् -दया. (१) दस उंगलियां, (२) दस अंगुल का हृदय स्थान, (३) दस अंगुल का नासिकाग्र (४) ब्रहाण्ड से बाहर जो कुछ व्याप्त है वह दशाङ्गुल है-सा. (५) जगत् जिसके पांच स्थूल और पांच सूक्ष्य अंग है -दया. । दस अंगविकार महत् आदि या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूत (६) दस इन्द्रियाँ और आत्मा उससे परे हैं। (८) दस इन्द्रियों का योग और कर्म ।

'स भूमिं विश्वता वृत्वा अत्यतिष्ठत् दशाङ्गुलम्

ऋ. १०.९०.१, अ. १९.६.१,आ.सं. ४.३,वाज.सं. ३१.१,तै.आ. ३.१२. १.

दशारित्र-- (१) दस अरित्रों से युक्त रथ (२) जिसमें दस थामने और चलाने के यन्त्र हों, (३) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्दिय रूपी दस अरित्रों से जीवन-यापन करने वाला पुरुष, (४) दसों दिशाओं को स्वामी के समान त्राण करने वाला परमेश्वर ।

'दशारित्रोमनुष्यः स्वर्षाः '

ऋ. २.१८.१

दशास्यः- (१) दस अंगों की पीड़ा को बाहर फेंक देने वाला ब्राह्मण नामक ओषधि ।

'दशशीर्षो दशास्यः '

अ. ४.६.१

दशोण्य- (१) दस प्राणयुक्त आत्मा ।

'यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये '

ऋ. ८.५२.२

दशोणि- (१) दसों को अपने से न्यून करने वाला सर्वश्रेष्ठ, (२) दशावरा परिषद् का स्वामी ।

'दशोण्ये कवये अर्कसातौ '

ऋ. ६.२०.४

(३) दसों दिशाओं को वश में करने में समर्थ ।

'स वेतसुं दशमायं दशोणिम् '

ऋ. ६.२०.८

(४) दस अंगों से युक्त यज्ञ (५) दस उंगलियों से किया गया देवपूजन ।

'हर्यन् यज्ञं सधमादे धशोणिम '

ऋ. १०.९६.१२, अ. २०.३२.२.

(२) दसों इन्द्रियों या प्राणों से युक्त आत्मा ।

दशोनसि- (१) सर्प की एक जाति ।

'कसर्णीलं दशोनसिम् '

अ. १०.४.१७

दंश - दंश् + अच् = दंश।. दंश् धातु दशन (डंसना)अर्थ में प्रयुक्त है । अर्थ है डंस, मच्छ ।

दस- नाश ।

'ये मनुं चक्रः उपरं दसाय '

ऋ. ६.२१.११

दंसना - (१) दुःख नाशन करने वाली क्रिया ।

'वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहत् '

(२) प्रयोग

'इन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः '

ऋ. १०.१३१.५, अ. २०. १२५.५, वाज.सं. १०.३४, २०.७७, वाज.सं.(का.) ११.४७. मै.सं. ३.११,४, १४६.३, का.सं. ३८.९, श.ब्रा. ५.५.४.२६.

(३) कर्म ।

(४) भाषण ।

'स नो हिरण्यरथं दंसनावान्
स नः सनिता सनये स नोऽदात् '

ऋ. १.३०.१६

वह कर्मशक्ति-सम्पन्न, ऐश्वर्यों का दाता हमें दान देने के लिए ही दान दे ।

दंसनावान् - (१) उत्तम कर्म करने वाला ।

'उद्गोत्राणी ससृजे दंसनावान् '

ऋ. ३.३९.४

(२) कर्म शक्ति से सम्पन्न (३) कर्मफल देने वाला परमेश्वर ।

दंसयः- ब.व. (१) पाप-नाशक श्रेष्ठ कर्म-

'यत्रादशस्यन् उषासो रिणन्नपः
कुत्साय मन्मन् अह्यश्च दंसयः '

ऋ १०.१३८.१

दस्मः- वि.,सं. (१) दर्शनीय, (२) दानी, (३) शत्रु-नाशक -

(४) अज्ञान-नाशक विद्वान्-दया. ।

'ओषुत्वा ववृती मही स्तोमेभिः दस्मसाधुभिः '

ऋ. १.१३८.४

हे दर्शनीय, दानी या शत्रु नाशक पूषन्, या

अज्ञान नाशक विद्वन् हमें तुम्हें सुन्दर स्तुतियों या वेदमन्त्रों के स्वाध्याय से आपके समीप वर्तमान रहें ।

दस्मत् – (सं.) (१) सब दुःखों का नाश करने वाला
'दस्मत् कृणोषि अध्वरम्'
ऋ. १.७४.४
सब दुःखों का नाश करने वाले हिंसा-रहित सुखदायी ज्ञानोपदेश और यज्ञोपासना कर ।

दस्मवर्चाः– (१) दस्मेषु शत्रुषु वर्चः तेजोयस्य–दया. शत्रुनाशकारी पराक्रम या तेज से युक्त, (२) प्रजा नाशक शत्रुओं पर पराक्रमी ।
'जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चाः'
ऋ. १.१७३.४

दस्मस्यमातरा– (१) दर्शनीय सूर्य के उत्पादक भूमि और आकाश (२) दर्शनीय उत्तमगुणयुक्त प्रजाओं के दुःख नाशक पुरुष माता और पिता ।
'मही दस्मस्य मातरा समीची'
ऋ. ३.१.७

दस्म्य – दर्शनीय ।
'द्युक्षाय दस्म्यं वचः'
ऋ. ८.२४.२०, अ. २०.६५.२, आश्व.गृ.सू.१.१.४.

दस्यति– उपक्षीयते (उपक्षीण होता है) । दस् धातु उपक्षीण होना अर्थ में आया है ।

दस्रा – द्वि.व. । दस्रौ दर्शनीयौ । वेद में 'औ' का 'आ' हो जाता है । अ (१) दर्शनीय –दया. (२) अश्विनीद्वय ।
'इषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६.
हे दर्शनीय कुमारो । तुम दोनों मनुष्य के भरपूर अन्त देते हुए हो ।
(३) अज्ञान–नाशक–दया. ।

दंसि– दस् (दंशन और दर्शन अर्थ में) + इ= दंसि । अर्थ है – (१) कर्म, क्योंकि कर्म करने वाला इन कर्मों को देखता है (कर्मकराःएनानि कर्माणि दंसयन्ते पश्यन्ति) ।

दंसिष्ठ– (१) दुष्टों का नाशक, (२) कर्म करने में खूब, समर्थ, ।
'ओत्यमह्न आरथम् अद्या दंसिष्ठमूतये'
ऋ. ८.२२.१

दंसिष्ठा– द्वि.व.। उत्तम कर्म, कुशल ।
'दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा'
ऋ. १.१८२.२.

दंसुजूत– (१) अपनी इन्द्रियों का दमन कर उनके द्वारा प्रेरित होने वाला–
(२) विनाश करने वाले वीरों से प्रेरित (३) दुष्ट या प्रजा के नाशकारी जीवों से सेवित ।
'स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः'
ऋ. १.१२२.१०
वह बड़े–बड़े मनुष्यों में भी महान् अपनी इन्द्रियों का दमन कर उनके द्वारा प्रेरित होने वाला या विनाश करने वाले वीरों से प्रेरित होने वाला (दंसुजूतः)

दंसुपत्नी– (१) राष्ट्र को दमन करने वाली, इन्द्रियदमनशीला या कार्यकर्त्ता की पत्नी, (२) दान्त स्वामी को पालन करने वाली भूमि ।
'अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नी'
अ. ४.१९.७

दस्यु– (१) दासयिता, उपक्षयिता रसानाम् (रसों का क्षय करने वाला), अथवा (२) उपदस्यन्ति अस्मिन् रसाः (रस में रस सूखतेहैं) अथवा (३) अनावृष्टिद्वारेण कर्मणामुपदासयिता (अनावृष्टि द्वारा कर्मों का नाशक)।
दस् + युच्= दस्यु अर्थ है– (१) राक्षस आदि, (२) अन्न नष्ट करने वाला, (३) रस सुखाने वाला, (४) रोग, (५) दुर्भिक्ष– दया. (६) चोर (७) दुष्ट ।
'अभिदस्युं बुकरेणाधमन्तां'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६.
सूर्य से रोग को या प्रताप से दुष्टों को या जल से दुर्भिक्षि को दूर करते हुए ।
'वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघिन्वान'
ऋ. १.५९.६, नि. ७.२३.
(८) शत्रुनाशक इन्द्र ।
'प्राति यत् स्या नीथा दर्शि दस्योः
ओको नाच्छा सदनं जानती गात्'
ऋ. १.१०४.५.
हे इन्द्र, जिस प्रकार हमारी वह स्तुति (स्या नीथा) शत्रु को नष्ट करने वाले तेरे (दस्योः) निवास स्थान के सदृश (ओकःन) हृदय में सम्मुख हो (अच्छा) अपना घर समझती हुई (सदनं जानती) चली जाती है (गात्)
आधुनिक अर्थ– (१) देवताओं के शत्रु,

(२) राक्षस, (३) चोर, (४) जातिच्युत, हिन्दू जो संस्कार हीन हो गया हो, (५) दुष्ट ।

दस्युहत्य- (१) दस्युओं को मारने का अवसर ।
'प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येषु आविथ'
ऋ. १.५१.५
तू दस्युओं को मारने के अवसरों में सरल धार्मिक मार्गों पर चलने वालों की रक्षा कर ।

दस्युहत्या- (१) मेघ का वध ।
'महे यत्वा पुरुरवो रणाया
अवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः'
ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७.
हे पुरुरवा । तुझे देवों ने महान् युद्ध तथा मेघ वध के लिये जो बढ़ाया इसीलिए नदियां या देवी स्त्रियां तुझे बढ़ाती हैं । दे 'दस्यु'

दस्युहा- (१) दस्यु का दुष्ट पुरुषों का नाशक ।
'आ दस्युध्ना मनसा याहि अस्तम्'
ऋ. ४.१६.१०
(२) उपक्षुय करने वाले क्षयशील विनाशी देह या अज्ञान का विनाशक आत्मा ।
'कुवित्सस्य प्रहि व्रजं
गोमन्तं दस्युहा गमत्'
ऋ. ६.४५.२४, अ. २०.७८.३, साम. २.१०१८.
(३) दुष्टों का नाशक इन्द्र ।
'इन्द्र यद् दस्युहाभवः'
ऋ. ८.७६.११, अ. २०.४२.२, साम. २.३३९
'स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः'
ऋ. १.१००.१२

दस्योः हन्ता- (१) दूसरे को नाश करने वाले का नाशक इन्द्र ।
'यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.१०, अ. २०.३४.१०

दस्मे- द्वि.व. । दर्शनीय आकाश और पृथ्वी ।
'पदेइव निहिते दस्मे अन्तः'
ऋ. ३.५५.१५

द्रहयत् - दृढ़ होता हुआ ।
'तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र'
ऋ. २.११.१४

दहीः - देहि । 'दहि' धातु दानार्थक है । 'दह्' के लुङ् के म . पु.ए.व. का रूप है । पर लोट् में प्रयुक्त हुआ है ।
'मा अस्मान् अति दहीः'
(हमें छोड़ अन्य को न दें) ।

द्रष्टृ- (१) दाढ़ ।
'तेगान्दंष्ट्राभ्याम्'
वाज.सं. २५.१, मै.सं. ३.१५.१, १७७.७, का.सं. (अश्व.) १३.१ .
(२) दांत । दशनसाधना-ऋष्टयो दंष्ट्राः- सा. (काटने में निपुण जो पदार्थ है वे दंष्ट्र है)

दा - बन्धन में रखना ।
'अथो संद्यामि मध्यमान्'
अ. ६.१०३.२

दाक्षायण- (१) दक्ष, कार्य कुशल प्रज्ञावान् पुरुष से संचालन करने योग्य ।
'यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यम्'
ऋ.खि. १०.१२८.८, अ. १.३५.२, वाज.सं. ३४.५१
(२) दक्ष रूप आत्मा के आश्रय पर रहने वाला-योगी ।
'यथाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यम्'
अ. १.३५.१

दाक्षायणी- (१) अदिति ।
आदित्य दक्ष इत्याहु रादित्यमध्ये च स्तुतः (आदित्य ही दक्ष है, क्योंकि दक्ष की स्तुति आदित्य के मध्य में ही की गई है) अदिति को ही दाक्षायणी समझा गया है । (अदितिर्दाक्षायणी)
'भूर्जज्ञ उत्तानपदो
भव आशा अजायन्त ।
अदिते र्दक्षो अजायत
दक्षा द्वदितिः परि'
ऋ. १०.७२.४
उत्तानपाद राजा से जिसका पुराणों में भी वर्णन है, भू की उत्पत्ति हुई (उत्तानपदः भूःजज्ञे), भू से दिशाएं उत्पन्न हुईं (भुवः आशा अजायन्त), अदिति से दक्ष उत्पन्न हुए (अदितेः दक्षः अजायत) और दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई (दक्षात् उपरि) ।
दक्ष से अदिति और अदिति से दक्ष की उत्पत्ति परस्पर विरुद्ध है । यास्क कहते हैं कि दोनों का प्रादुर्भाव समनन्तर (साथ) हुआ । (समान जन्मानौ स्याताम्) या देव धर्म से एक दूसरे के प्रादुर्भाव के कारण हुए (देवधर्मेण इतरेतर जन्मानौ स्थाताम् इतरेतर प्रकृती) । कारण

प्रकृति और जन्म कार्य है ।
(२) अग्नि ।
अग्निरपि अदितिरुच्यते ।

द्रा – भागना ।
'अपद्राहि अवीरहा'
अ. ६.१४.३

द्राघिमा – (१) दीर्घता (२) अर्थ–संतति परम्परा ।
'वर्षिमा च मे द्राघिमा च में'
वाज.सं. १८.४

द्राघिष्ठाः – अत्यधिक सामर्थ्य से युक्त क्रिया ।
'द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता'
ऋ. ३.६२.१७, साम. २.१४.

द्वा – द्वि.व. । (१) वायु और आदित्य ।
'द्वा बृबूकँ वहतं पुरीषम्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.
उनमें दो –वायु और आदित्य– औषधियोंके पोषक रस को (पुरीषम्) एवं जल को (बूबूकम्) इस पृथ्वी लोक से आदित्य मण्डल में ले जाते हैं । वायु और आदित्य पालक और वृष्टिदाता जल पहुंचाते हैं (पुरीषं बृबूकं वहतः)
(२) दो संख्या । वेद में औ का आ हो जाता है । द्वौ द्रुततरा संख्या (एक के बात तुरन्त दो आता है । अथवा अतिशयेन द्रुता एकस्याः सकाशात्' । यह–एक और यह एक दोनों मिलाकर दो और पुनः पुनः एक मिलाकर तीन इस प्रकार द्रुक्त गति से यह संख्या आगे बढ़ती है । द्रुधातु से द्वि बना है ('पृषोदरा–दिवत्)

दात्र– (१) देने योग्य । (२) दानसामर्थ्य ।
'दीर्घं वो दात्रम् अदितेरिव व्रतम्'
ऋ। १.१६६.१२.
(३) दा (लवनार्थक) + त्रन् = दात्र । उदीच्य देश में शरावती नदी के पश्चिम और उत्तर प्रदेश (४) हंसुआ, छुरी, काटने वाला पदार्थ

दातम् – (वि.) (१) अर्थ – (१) देने योग्य ।
'यदिन्द्र चित्र मेहना अस्ति त्वादातमद्रिवः'
ऋ. ५.३९.१, साम. १.३४५,२.५२२ पंच. ब्रा. १४.६.४,नि. ४.४.
हे इन्द्र, जो पूजनीय या विचित्र धन बढ़ने वाला या तेरे देने योग्य है ।

दातवे – दातुम् । दा = तवेन् । दातवे । तवेन प्रत्यय तुमुन् अर्थ में होता है । अर्थ–देने के हेतु ।
'तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम्'
ऋ. ९.७५.५, नि. ४.१५.
हे सोम । उन सोम रसों से इन्द्र को धन देने के लिए प्रेरितकर –
हे जगदुत्पादक प्रभो । उन महान् आनन्द प्रद वेदों के द्वारा हमारे आत्मा को (इन्द्रम्) धन दान के लिये प्रेरित करें (मघं दातवे चोदय)।

दाता– दा (काटना) + तृच् । (१) काटने वाला, (२) ईंट पत्थर काटने वाला शिल्पी ।
'नमस्तेस्मै नमो दात्रे'
अ. ९.३.१२
(३) दाता । दातृ शब्द के प्र.ए. व. का रूप, (४) यजमान ।
'प्र च दातारममृतेषु वोचः'
मै.सं. ४.१३:७,२०९.२. का.सं. १८.२१, तै.ब्रा. ३.६.१२.१, नि. ८.२०.
और हे अग्नि, देवताओं से यजमान या दाता का निर्देश कर ।

क्षति– दा (लवनार्थकः छेदनार्थक) के प्र. पु.ए.व. का रूप । अर्थ है । (१) काटता है । इसी अर्थ में यह आख्यात् या संज्ञा हो गया है । संज्ञा होने पर इसका अर्थ है –
(२) हंसुआ, (३) प्राप्य देश (शरावती नदी के पूर्व और दक्षिण) । आजकल इसका अर्थ काटना या नष्ट करना है । काटता है के अर्थ में–
'अग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः'
ऋ. १.६५.८.
अग्नि वन की औषधियों को पृथ्वी के सोम के समान जला जलता है ।

दातिवारः– जो दान को प्रेम से वरण या स्वीकार करता है ।
'धुनिव्रतम् मायिनं दातिवारम्'
ऋ. ५.५८.२
(२) वरने योग्य उत्तम ऐश्वर्य का दाता, (३)दानयोग्य कर आदि संग्राह्य पदार्थों को प्रजा से स्वीकार करने वाला ।
'वावृध ईम् मरुतो दातिवारः'
ऋ. १.१६७.८
(४) दान योग्य वेतनादि को प्रसन्नता से वरण स्वीकार करने वाला, (५) शत्रु के खण्डन तथा

छेदनादि कार्य को स्वीकार करने वाला, (६) शत्रुओं की हिंसा का वारण करने वाला।
'अमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः'
ऋ. ३.५१.९

दातु – दान।
'कत् तस्य दातु शवसो व्युष्टौ'
ऋ. १०.९९.१

दात्यौह – कालाकौआ।
'मासेभ्यो दात्यौहान्'
वाज.सं. २४.२५, मै.सं. ३.१४.६: १७३.१०

द्वादशकपालः– द्वादश मस्तिष्कों से सुविचारित सिद्धान्त
'विश्वेभ्यो देवेभ्य जागतेभ्योः सप्तदशेभ्यो वैरुपेभ्यो द्वादश कपालः'
वाज.सं. २९.६०

द्वादशधा– (१) पाप के १२ स्थान ,अर्थात् ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि। (२) प्रथमं देवेषु पश्चात् त्रिषु आप्येषु ततः सूर्याभ्युदितादिषु अष्टसु–

द्वादश प्रधयः– – (१) १२ परिधियां, (२) कालचक्र के १२ मास, (३) पांच स्थूल, पांच सूक्ष्म, महत् और अहंकार, (४) बारह प्राण।
'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम्'
ऋ. १.१६४.४८.

द्वादशर्तवः– (१) बारह–वस्तुएं (२) मधु, माधव आदि बारह मास।
'मे देवा द्वादशर्तवः'
अ. ११.६.२२

द्वादशरात्रीः– प्रजापति के बारह व्रत करने योग्य रत्रियां। ये द्वादशाह कर्म हैं। जो बारह मास या बारह वर्ष का प्रतिनिधि है। उन बारह वर्षों में एक वेद का स्वाध्याय करे। बारह वर्ष ब्रह्म चर्य करे। एक वर्ष तक प्रजापति व्रत करे'।
'द्वादश वा एता रात्रीः व्रत्या आहुः प्रजापतेः'
अ. ४.११.११

दस्म वर्चाः– (१) क्षीण तेज, (२) अन्न को देह में क्षय करने वाला जठराग्नि, (३) शत्रुओं के नाशकारी तेज से युक्त।
'परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः'
ऋ. ६.१३.२, मै.सं. ४.१०.१, १४३.३, आप. श्रौ.सू.५.२३.९.

द्वादशाक्षर– (१) किरण गण के १२ मास (२) बारह अक्षर।
'विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयतन्'
वाज.सं. ९.३३, तै.सं. १.७.११.२.

द्वादशाकृतिः– (१) बारहमास रूप बारह स्वरूपों वाला सूर्य या संवत्सर (२) बारह प्राणों का स्वामी आत्मा।
'पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिम्'
ऋ. १.१६४.१२, अ. ९.९.१२, प्रश्न उप. १.११.
(३) पञ्चतन्मात्रा, पञ्चस्थूलभूत, अहंकार और महत् से बारह उसी ब्रह्म की शक्ति के द्वारा भौतिक विकार या आकार होने से ब्रह्म द्वादशा कृति है।

द्वादशार – (१) बारह मास रूप अरों वाला संवत्सर।
'संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः'
अ. ४.३५.४
(२) बारह अर, वर्ष की बारह राशियां।
'द्वादशारं नहि तज्जराय'
ऋ. १.१९४.११. अ. ९.९.१३
(३) बारह अरों वाला चक्का (४) काल चक्र के बारह अर बारह महीने।
'द्वादशारं नहि तज्जराय
वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य'
ऋ. १.१६४.११, अ. ९.९.१३
सत्यात्मक आदित्य, यज्ञ या संवत्सर काल का अंगभूतचक्र (ऋतस्य चक्रम्) या मण्डल का कालचक्र अन्तरिक्ष के ऊपर बार बार चलता है। वह चक्र बारह अरों से युक्त है और कभीर्जर्ण नहीं होता।

द्वादशाह – एक प्रकार का यज्ञ।
'यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा'
अ.९.६.४३.
'द्वादशाहोऽपि तन्मयि'
अ. ११.७.१२

द्वा-द्वा – दो दो के जोडे जैसे आंख, कान, नाक।
'उपमाषड् द्वा द्वा'
ऋ. ८.६८.१३

द्वादोवाषट् – (१) दो दो के जोड़े–आंख, कान और नाक मिलाकर छः।

दादृहाणः– (१) अपनी वृद्धि करता हुआ,

(२) शत्रुओं का नाश करता हुआ ।
'दाहृहाणो वज्रमिन्द्रोभस्त्यौः '
ऋ. १.१३०.४
'दाहृहाणं चित् बिभिदुः विपर्वतम् '
ऋ. १.८५.१०.
वायुगण बढ़ते हुए मेघ को विशेष प्रकार से छिन्न भिन्न कर देते हैं ।

दाधार – धारयति (धारण करता है)
द्राघीयस्–दीर्घ, अतिविस्तीर्ण ।
'द्राघीय आयुः प्रतरं दधानः '
ऋ. १.५३.११, १०.१८.२.३, ११५.८, अ. ८.२.२, १२.२.३०, २०.११.११, तै.आ. ६.१०.२, आश्व.गृ.सू. २.९.२.

दाधृषिः– (१) दुष्टों को गर्व रहित करने वाला –इन्द्र
' सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रम् '
ऋ. ४.१७.८, साम. १.३३५, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.
(२) प्रतिपक्षियों को दबाने और पराजय करने में समर्थ ।
'पुत्रो भवति दाधृषिः '
अ. २०.१२८.–३
(३) कामक्रोधादि को दबाने वाला
'ब्रह्मणायामि सबनेषु दाधृषिः '
ऋ. २.१६.७

दान – मदजल जिसे हाथी धारण करता है, (२) दान देने योग्य ऐश्वर्य ।
'दाना मृगो न वारणः=। '
ऋ. ८.३३.८, अ. २०.५३.२, ५७.१२.
(३) शुभाशुभ कर्म (४) दान । दा + ल्युट् ।
'सो अस्य कामं विधतो न रोषति
मनोदानाय चोदयन् ।
ऋ. ८.९९.४, अ. २०.५८.२
मन को दान के लिये प्रेरित करते हुए वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भक्त की कामना को भंग नहीं करता है ।

दानव– दनु + अण् = दानव । अर्थ–(१) दनु से उत्पन्न, (२) राक्षस , (३) वृत्रासुर का वाचक
'सृजोविधारा अवदानवं हन् '
ऋ. ५.३२.१, नि. १०.९.
मेघ या वृत्रासुर को उन्मुक्त कर तूने धाराएं बहायीं । (४) जलदाता मेघ – निरुक्त । (दानार्थक) धातु से दानकर्मा दानव शब्द बना है । आधुनिक अर्थ–राक्षस, ।

दाना – (१) दान देने योग्य पदार्थों से युक्त, (२) दान ।
'दाना मित्रं न योषणा '
ऋ. ५. ५२.१४
(३) दान जल वाची भी है ।

दानाप्नाः, दानाप्न्स् – (१) शत्रु खण्डन तथा प्रजा पर कृपा कारी दान रूप कर्म करने वाले ।
'मक्षू तात इन्द्र दानाप्रसः '
ऋ. १०.२२.११

दानु– (१) मर्म को काटने वाला काम विकार, (२) गुप्तसत्य के समान बल को काटने वाला ।
'दानुं शयानं स जनास इन्द्रः '
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११.
(३) दाता, देने वाला, (४) मेघ, (५) दानव,

दानुचित्र – (१) दानयोग्य पदार्थों से अद्भुत रूप से समृद्ध ।
'जयन् अपो मनवे दानुचित्राः '
ऋ. ५.३१.६
(२) उत्तम अन्नु ऐश्वर्य और सुखप्रद पदार्थों से अद्भुत रूप वाली ।
'करत् तिग्मो मघवा दानुचित्राः '
ऋ. १.१७४.७

दानुदः– (१) दान देने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य को देने वाला ।
'प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्वः '
ऋ. ९.९७.२३

दानुनस्पती – (१) दान, जलवर्सण के पालक–सूर्य और चन्द्र या सूर्य और विद्युत्, (२) दान करने योग्य धनैश्वर्य के पालक पतिपत्नी ।
'आदित्या दानुनस्पती '
ऋ. १.१३६.३,
(३) दानपती, दानु शब्द का अर्थ दान (नपुंसक) और दाता (पु.) दोनों हैं । सायण ने दानुनस्पती का अर्थ – ' दानुनः दानस्य देवस्य वाधनस्य पती स्वामिनी' (दान, देव, या धन का स्वामी) किया है । (द्वि.व.) अदिति के दो पुत्र । आदित्या का विसेषण जो जल बरसाने वाले हैं । अर्थ (४) दान देने वाले या यजमानों की स्तुतियों तथा हवियों में संवेवित् । वे दोनों अदिति के पुत्र तथा दान देनेवाले या स्तुतिशील

यजमानों से संसेवित.....(४)मित्रावरुण भी आदित्य का ही पर्यायवाची शब्द है ।

दानुपिन्वः- अपने दान से सबको मेघवत् सेचन कर पुष्ट करने वाला ।

'प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्वः'

ऋ. ९.९७.२३

दानुमत् - (१) दान देने योग्य, (२) जीवन प्रदान करने वाला जल ।

'अधारयः पर्वते दानुमद् वसु'

ऋ. १.५१.४

हे सूर्य, तू मेघों में और पर्वत पर दान देने योग्य और जीवन प्रदान करने वाले मेघ को धारण करता है ।

दानौकस् - (१) दान देने योग्य ऐश्वर्यों का एकमात्र आश्रय परमेश्वर ।

'वीरं दानौकसं वन्दध्यै'

ऋ. १.६१.५, अ. २०.३५.५.

(२) दान का ओकस् अर्थात् पात्र ।

द्रापिः - (१) शत्रुओं को कुत्सित गति में पहुंचा देने वाला-रुद्र ।

'द्रापे अन्धसस्पते'

वाज.सं. १६.४७.तै.सं. ४.५.१०.१, मै.सं. २.९.९, १२७.६, का.सं. १७.१६, श.ब्रा. ९.१.१.२४.

(२) कवच, (३) बाह्य स्वरूप ।

'बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययम्
वरुणो वस्त निर्णिजम्'

ऋ. १.२५.१३

द्वापर - (१) द्वापर युग, (२) करने वाले और देखने वाले दोनों के करने और निरीक्षण के परे और भी उत्तम कार्य को करा लेना ।

'द्वापराय अधिकल्पिनम्'

वाज.सं.३०.१८

द्वाभ्यां परः - (१)कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों से परे बृहस्पति (२) नीचे के दो द्वारों या वाणी और मन से परे ।

दाम- (१) अश्व को दमन करने वाला बन्धन -पेटी

'यदाजिनो दाम संदानमर्वतः'

ऋ. १.१६२.८, वाज.सं. २५.३१, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१ , १८२. १०. का.सं. (अश्व) ६.४.

(२) निगडबन्धन, (३) हथकड़ी-सा. (४) बन्धन -दया. ।

'द्रध्र आभूषु रामयन् निदामनि'

ऋ. १.५६.३.

दुष्ट शत्रुओं पकड़ने वाले इन्द्र ने (दुध्रः) दुष्टों को कारागृहों में (आभूषु) बन्धक निगड़ में (दामनि) रमाया (रामयन्) -सा. । विद्या से पूर्णकर प्रसन्नता में रमाने वाले (दुध्र मदे रामयन्) शोभायमान (आभूषु) ....वर को स्त्री अपने प्रेमपाश में (दामनि) बांधती है- दया.

(५) दान ।

'इन्द्रः स दामने कृतः'

ऋ. ८.९.३.८, अ. २०.४७.२, २०.१३७.१३, साम. २.५७३, मै.सं. २ .१३.६, १५५.९, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.३.

(६) सबको भृति वृत्ति देना (७) प्रजा को दमन करने का कार्य ।

दामा- (१) दानशील, (२) जीवित चित्त वाला तपस्वी, (३) आत्मा समर्पण करने वाला भक्त ।

'आदिद् दामानं सवितर्व्यूर्णुषे'

ऋ. ४.५४.२, वाज.सं. ३३.५४.

'दामानं विश्व चर्षणे'

ऋ. ८.२३.२

(४) दमन करने वाला ।

'दामारथस्य दद्रुशे'

ऋ। ८.७२.६

(५) रसों का दाता, (६) आत्मसमर्पणशील ।

'नाहदामानं मघवा नियंसत्'

ऋ. १०.४२.८, अ. २०.८९.८

द्वामिथुना- (१) दो जोड़े (२) मध्यम और मध्यमा वाणी जिसे सरण्यू ने उत्पन्न किया -सा. (३) पूर्व कालीन सरण्यू ने अन्धकार और निस्तब्धघता नामक मिथुन उत्पन्न किए-

द्वायन्तारा - (१) काल के दो नियामक रूप दो अयन, (२) दो मास जो ऋतु को नियमित करते हैं ।

'द्वायन्तारा भवतस्तथा ऋतुः'

ऋ. १.१६२.१९, वाज.सं. २५.४२, तै.सं. ४.६.९.३, (अश्व.) ६.५, मा.श्रौ.सू. ९.२.४.

दायादः - समस्त धनों का दाता स्वामी ।

'सोमो दायाद उच्यते'

अ. ५.१८.१४

दारसृद् - (१) स्त्रियों का मान भंग करने वाला ।

'अदारसृद् भवतु देव सोम'
अ. १.२०.१, तै.ब्रा. ३.७.५.१२, आप.श्रौ.सू. २.२०.६.

द्वार- (१) जु + आरक् = द्वार ('ज' का 'द') जु धातु गमनार्थक हैं। अंग्रेजी के go धातु से जु की समानता विचारणीय है, (२) द्रु (गमनार्थक) + आरक् = द्वार (द्रु के रेफ का लोप)। जवन्ति द्रवन्ति वा ताभिः (उन से होकर यज्ञ गृह में जाते हैं) (३) वार (निपारणार्थक) धातु से निपातन द्वारा भी द्वार की व्युत्पत्ति की गई है। निवार्यन्तेहि वारणीयाः द्वारादेव (वारणीय पदार्थों के द्वारा रोका जाता है।) अर्थ है - (१) द्वार Door। (२) इन्द्रिय -दया.।
'नवद्वापुरे देही
पुरमेकादशद्वारम्'

दार्भ्य - (१) दर्भ अर्थात् शत्रुओं को विदारण करने में समर्थ, (२) शत्रु हिंसकों में श्रेष्ठ नायक।
'दार्भ्याय परावह'
ऋ. ५.६१.१७

दार्वाघाटः- (१) काष्टों को चीरने फाड़ने वाला, (२)कठफोरवा नामक पक्षी।
'गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्'
वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१५.१, मै.सं. ३.१४.१६, १७५.१२, का. सं. (अश्व.) ७.५.

दार्वाहारः- (१) लकड़हारा।
'भाये दार्वाहारम्
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८

दारु- (१) शत्रु-सैन्यों, दुःखों और शत्रुनगरों का विदारण करने वाला, (२) दुष्टों का भयदाता।
'वन्देदारुं वन्दमानो विवक्मि'
ऋ. ७.६.१
(३) दृ (विदारणार्थक) + त्रुण् = दारु (जो विदाराजाय, फाड़ा जाय)। (४) द्रू (हिंसार्थक) से ही वर्ण विपर्यय के द्वारा 'दारु' शब्द बना है। दारु हिंसा करता है। आधुनिक अर्थ - (१) काटना, (२) दानी, उदार, (३) कलाकार, (४) काष्ठ, काष्ठखण्ड, (५) देवदारु, (६) वज्र (७) ताम्बा।

दावत् - दा (देना) + वनिप् = दावत्। अर्थ है (१) देने वाला। आज भी गावों का नाम 'दावथ' रखा जाता है।

दावन् - (१) दान देना।
'प्र.वः पूष्णे दावंन आँ
अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः'
ऋ. १.१२२.५
आप लोगों में उत्तम उपदेश और ज्ञान की पुष्टि और वृद्धि करने वाले (पूष्णे) और आगे विद्या दान देने वाले विद्यार्थी को (दावने) अच्छी प्रकार ज्ञानमय परमेश्वर या अग्नि के (अग्नेः) धनस्वरूप वेदज्ञान का (वसुतातिम्) प्रवचन करूं (अच्छा प्रवोचेम)। (२) दान, (३) आत्म-समर्पण।
'आवर्तयन्ति दावने'
ऋ. ८.६९.१७, अ. २०.९२.१४
(४) दानशील, (४) आत्म-समर्पक पुरुष।
'त्वं विभासि अनुदक्षि दावने'
ऋ. २.१०.१
(६) दा (देना) + वनिप् (कर्म में) = दावन् अर्थ है जो दिया जाय। दे. 'अकूपार', 'सवीमन्'

दावप- (१) जंगल में लगने वाली आग से रक्षा करने में कुशल पुरुष।
'अन्यतोरण्याय दावपम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.११.

द्यावा क्षामा-(१) आकाश और पृथिवी। दे. अचक्रे' (२) सूर्य और पृथिवी के समान तेजस्वी और क्षमाशील माता पिता।
'द्यावाक्षामारे अस्मद् रणस्कृतम्'
ऋ. ८.१८.१६
'द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति'
ऋ. १.९६.५, वाज.सं. १२.२, १७.७०, तै.सं. ४.१.१०.४, ४.६.५.२, ७.१२.३, मै.सं. २.७.८, ८४.१३, ३.२१, १४.१३, का.सं. १६.८, १८.४, श.ब्रा. ६.७.२.३.
सूर्य कान्तिमान होकर आकाश और पृथ्वी के बीच शोभा पाता है।

द्यावापृथिवीवान् - (१) आकाश और पृथिवी पर वश करने वाला सूर्य, (२) सूर्य नामक अधिकारी।
'सूर्य ते द्यावापृथिवीवन्तम् ऋच्छन्तु'
अ. १९.१८.५

द्यावापृथिवी- 'दिव्' से द्यौ और 'प्रथविवन्' से पृथिवी। द्वन्द्व समास होने पर दिव् का

'द्यावा'हो जाता है । अर्थ है (१) द्यौ और पृथिवी ।

'य इमे द्यावा पृथिवी जनित्री
रूपैशपिंशद् भुवनानिविश्वा

ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९ वाज.सं. २९.३४, मै.सं. ४.१३.३, २०२.११, का.सं. १६.२०., तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१४.

पुनः-

'नयस्य द्यावापृथिवी न धन्व
नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः
यदस्य मन्युरधिनीयमानः
श्रृणाति वीडु रुजति स्थिराणि'

ऋ. १०.८९.६, नि. ५.३.

द्यौ और पृथिवी भी जिस इन्द्र की महिमा की थाह नहीं लगा सकते या जिसकी महिमा को व्याप्त नहीं कर सकते (यस्य न) न अन्तरिक्षं और न पर्वत (न अन्तरिक्षं न अद्रयः) । (सिर्फ सोम ही इस की महिमा को पार पाता है या व्याप्त होता (सोमा अक्षाः) है क्योंकि इस इन्द्र का क्रोध (यत् अस्य मन्युः) सोम रस पी लेने के साथ ही शत्रुओं के ऊपर आकर ही कम होता है (अधिनीयमानः श्रृणाति) यद्यपि शत्रु बल दृढ़ होता है (वीडु) और दृढ़ मेघ वृन्द को भी फाड़ डालता है । (स्थिराणि रुजति)। अन्य अर्थ-जिस परमात्मा की महिमा द्युलोक तथा पृथिवीलोक नहीं पाते, समुद्र नहीं पाता, अन्तरिक्ष नहीं पाता, पर्वत नहीं पाता उसकी महिमा को शान्त जीव पाता है (सोमः) । जिस महिमा से इस परमेश्वर का व्याप्त हुआ मन्यु अभिमानियों को शीर्ण करता तथा कठोर चेताओं की (स्थिराणि) भग्न करता है । (रुजन्ति) ।

द्राविणोदस्- द्रविणोदस+ अण् । द्रविणोदस् का अपत्य (१) अग्नि । द्रविणोदस् ऋत्विज के अर्थ में आया है क्योंकि वे हवि देने वाले हैं । वे ऋत्विज अग्नि को उत्पन्न करते हैं अतः अग्नि का नाम द्रविणोदस् पड़ा । यजुर्वेद में 'ऋषीणां पुत्रों अधिराज एषः' कहा है अर्थात् अग्नि ऋषियों का पुत्र है क्योंकि इसे ऋषि इसे उत्पन्न करते हैं ।

द्रावयत्सखः- अपने मित्र साथियों को द्रुत गति से चलाने वाला ।

'चर्कृत्यं ददथु द्रविवयत्सखम्'

ऋ. १०.३९.१०

द्रावयित्नवः- (ब.व.) । सूर्य रश्मि तथा सोम-रस का विशेषण । अर्थ है-द्रावण शील या आकर्षक ।

'सूर्यस्येव दशमयो द्रावयित्नवः'

ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०.

सूर्य की रश्मियों के समान द्रावण शील या आकर्षक सोम रस ।

द्वयावी- (१) सत्य और असत्य दोनों का सेवन करने वाला, (२) दुरंगा ।

'मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनः'

ऋ. ९.८५.१, साम. १.५६१

दाश- (१) वेतन बद्ध भृत्य

'उपस्थावराभ्यो दाशम्'

वाज.सं. ३०.१६.

(२) सेवन करना, (३) समर्पण करना ।

'समिधा यो निशिती दाशददितिम्'

ऋ. ८.१९.१४

(३) दान ।

दाशति- देता है । 'दाश् ' दानार्थक धातु है । (दाशतिः दानकर्मा)

'यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति
कविर्होता यजति मन्मसाधनः
उपहातं गच्छथो वीथो अध्वरम्
अच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू'

ऋ. १.१५१.७, नि. ६.८.

जो यजमान (योह) आप दोनों मित्रा वरुण को यज्ञों के द्वारा स्तुति करता हुआ (शशमानः) हवि आदि देता है (दशाति) और जो क्रान्तदर्शन होता मननशील या विज्ञान साधक होता है (मन्मसाधनः), सोम यज्ञ आदि करता है (यजति) उसी शोभन प्रज्ञ यजमान को (तम्) उपलक्षित कर (उप) तुम प्राप्त करते हो (गच्छथः अह) तथा उसके यज्ञ को पसन्द करते हो (अध्वरं वीथः) तथा हमारी कामना करते हुए तुम दोनों (अस्मयू) हमारी स्तुतियों को अभिलक्षित कर (गिरःअच्छ) आओ (आगन्तम्) ।

अन्य अर्थ- हे अध्यापक तथा उपदेशक जो

बुद्धिमान् दाता (कविः होता) और विद्या साधक (मन्मसाधनः) पञ्च महायज्ञों को करता है (यज्ञैः यजति) और आप का सत्कार करता हुआ भोग्यादि पदार्थों को देता है (ह वां शशमानः दाशति) उसके पास आप जाते हैं। (अहतम् उपगच्छथः) उसके यज्ञ में शामिल होते हैं (अध्वरं वीथः) और हम से प्रीति करते हुए (अस्मयू) सुभाषित वचनों तथा सुमति को प्राप्त करते हो (अच्छा गिरः)

दाश्वध्वरः– (१) दान रूप अखण्डयज्ञ करने वाला
'त्वावृधो मघवन् दाश्वध्वरः'
ऋ. १०.१४७.४
(२) दानशील अहिंसामययज्ञ करने वाला।
'अग्ने को दाश्वध्वरः'
ऋ. १.७५.३, साम. २.८.८५.
(३) दाशु + अध्वर। दान रूप से दूसरे को कष्ट न देने वाला यज्ञ।
'यं युवं दाश्वध्वराय देवा
रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्'
ऋ. ६.६८.६
(४) वृष्टि अन्नादि देने वाले सूर्य का जीवनप्रद जल प्रदान रूप यज्ञ, (४) राजा का प्रजा पालक यज्ञ।
'सुन्वन्तो दाश्वध्वरम्'
ऋ. ८.४.१३
(६) अन्न वस्त्र देने वाला रक्षक।
'कस्ते जामिः जनानाम्
अग्ने को दाश्वध्वरः'
ऋ. १.७५.३, साम. २.८८५.
हे अग्ने, या ज्ञानवान् तेजस्वी शिष्य, तेरा कौन बन्धु है! तुझे अन्न वस्त्र देने वाला रक्षक कौन है!

दाशराज्ञ– (१) दसराजाओं के बीच हुआ युद्ध दाशराज्ञ कहा गया है। (२) दस इन्द्रियगण।
'दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः
सुदास इन्द्रावरुणा वशिक्षतम्'
ऋ. ७.८३.८
(३) एक वैदिक राजा, (४) दान शीलों में तेजस्वी।
'अदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः'
ऋ. ७.३३.५
(५) दशों दिशाओं के राजा।
'यदिन्द्रादो दाशराज्ञे'
अ. २०.१२८.१२, गो.ब्रा. २.६.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१५.१५.

दाश्वान् – दा + क्वसु (लिट् अर्थ में) = दाश्वस्। प्रथमा एक वचन में दाश्वान्। अर्थ है– (१) दत्तवान् (दिया) (२) देने वाला, (३) अतिशय दानशील।
'पुरुत्वादाश्वानं व वोचे'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७.,नि. ५.७.
हे अग्ने, मैं दाता तुझे बहुत पुकारता या तुझ में वरदान मांगता हूँ।

दाश्वांसः– दाश्वस का प्रथमा ब.व. में रूप (१) दान देने का संकल्प किए हुए विश्वेदेवाः' का विशेषण।
'विश्वेदेवास आगत दाश्वांसो दाशुषः सुतम्'
ऋ. १.३.७, वाज.सं. ७.३३., तै.सं. १.४.१६.१, मै.सं. १.३.१८, ३७.२, का.सं. ४.७, श.ब्रा. ४.३.१.२७, ऐ.आ. १.१.४.१३, नि. १२.४०.
हे विश्वेदेवो, दाता यजमान के तैयार किये सोमरस को पान करने के लिये दान देने के लिये संकल्प से आओं।

दाशुरिः– दाता
'स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनः'
ऋ. ८.४.१२

दाशुष् – (१) दाता, (२) हवि देने वाला (दाशुषे)।
'धाता ददातु दाशुषे
प्राचीं जीवातुमक्षिताम्'
अ. ७.१७.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.१४.१६, शां. श्रौ.सू. ९.२८.३, शां.गृ.सू. १.२२.७, नि. ११.११.
'दासू' नाम आज भी प्रचलित है।

दाः– दोहि। 'दा' धातु के लुङ् म.पु.ए.व.का रूप। लोट् में प्रयुक्त।
'मा अस्मान् अतिहायदाः'
(हमें छोड़ अन्य को न दे)

दास– (१) अज्ञान–नाशक शरीर में रहने वाला जीव (२) दस् (उपक्षय) + घञ् = दास। अर्थ है – कर्मकरः सहि उपदासयति उपक्षापयति कर्माणि (दासकर्मों को समाप्त करता है अर्थात् क्रिया द्वारा सम्पन्न करता है) (३) दुष्काल – दया. दुष्काल भी शुभकर्मों को समाप्त करता

है । (४) अन्धकार दया.
'इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैः
विद्वद्वसुर्दयमानो विशत्रून्
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो
भूरिदात्र आपृणत् रोदसी उभे ।'
ऋ. ३.३४.१, अ. २०.११.१.
शत्रुगणों को भेदन करने वाला (पूर्भिदि) सम्पत्तिमान् (विदद्वसु), शत्रुओं का हनन करने वाला (शत्रून विद्यमानः) इन्द्र या राजा प्रकाश से या वेदों के प्रकाश से (अर्कैः) अन्धकार या पापान्धकार को (दासम्) दूर कर (आ अतिरत्) ब्राह्मणों से संगति करने वाला (ब्रह्मजूतः) शरीर से पुष्टाङ्ग (तन्वा वावृधानः) प्रचुर दाता (भूरिदात्रः) जिस प्रकार सूर्य द्युलोक तथा पृथ्वी लोक को पालता है (उभे रोदसी आ अपृणत्) उसी प्रकार प्रजाओं का पालन कर । -दया.

दासति - दासयति, क्षापयति, समापयति (क्षीण करता है, समाप्त करता है) ।

दासपत्नी - (१) शत्रुनाशक सैनिकों को अपने भीतर पालने वाली सेना ।
'दासपत्नीर धूनुतम्'
ऋ. ३.१२.६, साम. २.९२६,१०५४, तै.सं. १.१.१४.१, मै.सं. ४.१०.५, १५५.९, का.सं. ४.१५.

दासपत्नीः- ब.व. । (१) दासाधिपत्नी दासः कर्मकरः तं हि अधिष्ठाय सा पाति पक्षति (दास का आश्रय ले जो रक्षा करती है । (२) दुष्काल रक्षक, -दया. ।
'दासपत्नीरहिगोपाअतिष्ठन्'
ऋ. १.३२.११, नि. २.१७.
मेघ से रक्षित (अहिगोपाः) वृत्र के अधिकृत जल (दास पत्नी अन्तरिक्ष में थमे हुए थे । -सा. दुष्काल -रक्षक (दासपत्नी) वृष्टिजल (अहिगोपा) अन्तरिक्ष मे जमे हुए थे -दया.
(३) दास अर्थात् आश्रय या रक्षा देने वाले राजा या सेनापति को अपना पालक मानने वाला सेना ।

दासप्रवर्गः- (१) दास एवं भृत्यजनों को उत्तम आज्ञाकारी वर्ग वाला, (२) जिसमें दासों का समूह हो (३) रयि (धन) का विशेषण ।
'दासप्रवर्गम् रयिमश्वबुध्यम्'
ऋ १.९२.८

दासः वर्णः- (१) उपक्षयशील विनाशी स्वभाव वाला, (२) विनाशकारी हत्यारा ।
'यो दासं वर्णमधरं गुहाकः'
ऋ. २.१२.४, अ. २०.३४.४, कौ.ब्रा. २१.४, २२.४.
(३) देने योग्य रूप, (४) देनेयोग्य वर्ण-रूपवान् देह, (५) प्रजा का नाशक वर्ण, ।

दासवेश- (१) प्राणनाशक पदार्थों का नाश (२) दास सेवक भृत्यादि पर अनुग्रह करना, (३) भृत्य पोषक धन
'पृक्षाय च दासवेशाय चावहः'
ऋ. २.१३.८

द्वयास्य- (१) द्वि + आस्य । दो मुखों वाला, (२) दोमुहां बच्चा
'द्वयास्याच्चतुरक्षात्'
अ. ८.६.२२

द्वयास्या- (१) दो मुख वाली ब्राह्मण रूप गौ, (२) राष्ट्र का भीतरी और बाह्य शत्रु ।
'चतुश्रोत्रा चतुर्हनुः'
अ. ५.१९.७

दास्वती - (१) देने वाली । उषा का विशेषण
'सहद्युम्नेन बृहता विभावरि
राया देवि दास्वती'
ऋ. १.४८.१
हे विशेष दीप्तियों से युक्त उषा, दानशीले, (दास्वति) तू बड़े तेज कान्ति या अन्नादि योग्य सम्पति से और गौ आदि पशु ऐश्वर्य से उत्तम अन्न वस्त्रआदि नाना पदार्थों को देने वाली हो ।

दासी - (१) प्रजानाश करने वाली सेना (२) भृत्या, सेवा करने वाली
'आर्याय विशोऽवतारीर्दासीः'
ऋ. ६.२५.२, मै.सं. ४.१४.१२, २३५.४ तै.ब्रा. २.८.३.३.
(३) असिक्नी नामक सर्प से उत्पन्न एक सर्प की जाति
'जाता दास्य सिक्न्या'
(४) नाश करने वाली शत्रुसेना ।
'अस्मे दासीर्विशःसूर्येण सह्याः'
ऋ. २.११.४

दासीविश् - (१) नश्वर प्रजा

द्वा सुपर्णा – (१) उत्तम ज्ञान, पालन और सामर्थ्य से युक्त ईश्वर और जीव या जीव और मन
'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'
ऋ. १.१६४.२०, अ. ९.९.२०, मुण्डक उप. ३.१.१, नि. १४.३०.

द्विः – दुगुना ।
'द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त'
ऋ. ६.६६.२, मै.सं. ४.१४. ११, २३३.५.

द्वि. – दे. 'द्वा' । द्वु + ड्वि = द्वि । यह संख्या एक से आगे हुई है । अतः 'द्वि' है ।

दिक् – (१) दिशा, (२) नानाविद्याओं का उपदेष्टा आचार्य ।
'प्र पाकं शास्सि प्रदिशोविदुष्टरः'
ऋ. १.३१.१४
तू परिपक्व ज्ञान को (पाकम्) भलीप्रकार उपदेश करता है (प्रशास्सि) तथा विद्वानों में श्रेष्ठ होकर (विदुष्टरः) प्राची आदि दिशाओं तथा नाना विद्याओं के उपदेष्टा आचार्यों पर भी शासन करता है ।

दिक्शंसित – (१) दिशाओं की शक्तियों से सुशिक्षित ।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा
दिक् संशितो मनस्तेजाः'
अ. १०.५.२८

दिग्धेषु– दिग्धा + इषु । विष बुझा तीर ।
'इषुरिव दिग्धा नृपते'
अ. ५.१८.१५

द्वि,जन्मा– (१) कर्त्ता और भोक्ता दो रूपों में प्रकट होने वाला अग्नि, (२) देह और ओम इन दो अरणियों से निष्पादित होने वाला सबका दाता और आदान कर्त्ता, (३) द्विज, विप्र ।
'अयं स होता यो द्विजन्मा'
ऋ. १.१४९.५, साम. २.११२६.
(४) विद्या जन्मद्वितीयः–दया. । पिता से एक जन्म और गुरु से विद्या पढ़ने से दूसरा जन्म होता है । अतः मनुष्य द्विजन्मा है । उसे द्विज कहते हैं (५) दो अरणियों से उत्पन्न होने वाला अग्नि ।
'अभिद्विजन्मा त्रिवृदन्न मृज्यते'
ऋ. १.१४०.२
(६) वायु तथा कारण रूप अग्नि तत्व से उत्पन्न अग्नि भी द्विजन्मा है ।
'द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तम्'
ऋ. १.६०.१

द्विजा– (१) प्रभु और प्रकृति से उत्पन्न (२) माता और पिता से उत्पन्न ।
'द्विजाअह प्रथमजा ऋतस्य'
ऋ. १०.६१.१९

द्विजानिः– द्विज । द्वि + जानि ।
'अन्तर्योनेन चरति द्विजानिः'
ऋ. १०.१०१.११

द्विजिह्वा – (१) दो जीभवाली ब्राह्मण रूप गौ,(२) उभयपक्ष के दूत दो जीभ हैं ।
'द्वयास्या द्विजिह्वा भूत्वा'
अ. ५.१९.७

दित्यवाट् – (१) द्विवर्षः पशुः (दो वर्ष का बैल) महीधर (२) दित्यं खण्डनीयं धान्यं वहति इति दित्यवाट् (३) दितये हिते वहति–दया ।
'दित्यंवाड् गौ र्वयोदधुः'
वाज.सं. २१.१३ मै.सं. ३.११.११, १५८.१, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.१
(४) रथवाही बैल ।
'दित्यवाहं गां वयो दधात्'
वाज.सं. २८.२५, तै.ब्रा. २.६.१७.२
'दित्यवाड् च मे दित्यौही च मे
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२

द्वित– (१) दो जनों को प्राप्त (२) शुद्ध ज्ञान को धारक आचार्य और प्रभु की शरण प्राप्त जीव ।
'द्विताय मृक्तवाहसे'
ऋ. ५.१८.२
(२) दो वेदों का पारंगत होना
'द्विताय त्वा
वाज.सं. १.२.३.

द्विता सख्या – दो प्रकार की मित्रता जिससे बल और यश दोनों मिले ।
'गवामेषे सख्या कृणुत द्विता'
ऋ. १०.४८.९
(३) द्वयोःभावः द्विता (दोनों के हित के लिये । (४) द्वि + धा = द्विधा= द्विता (ध का त छान्दस) अर्थ है । दोनों प्रकार से (५) शस्त्र अस्त्र दोनों द्वारा, (६) बलयुक्त एवं अजेय ।
'यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं

द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्'
ऋ. ३.४९.२
युद्धों में चमकते हुए अश्वारूढ़ मनुष्यों के परम तेज सर्वथा बलयुक्त एवं अजेय शास्त्र और अस्त्र दोनों से जिसे कोई नहीं मार सकता है। उसे पुनः-
'यस्त्वद्धोता पूर्वोअग्नेयजीयान्
द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः
तस्या तु धर्म प्रयजा चिकित्वः
अथा नो धा अध्वरं देववीतौ।'
ऋ. ३.१७.५
हे अग्निदेव, तुझे भी पूर्व मध्यम व स्थानीय वायु जो देवों का पहला होता हुआ (त्वत् यःपूर्वः) वह तुझसे बढझकर यष्टा है (यजीमान्)। उसका अस्तित्व भी दो प्रकार का है (च सत्ता द्विता)। क्योंकि अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप में और द्युलोक में सूर्य रूप में वह विद्यमान है और वह सोम या अन्न से वर्षा द्वारा सभी जीवों का कल्याणकारी है (स्वधया चत शम्भुः)। हे चेतना वान् अग्नि (चिकित्वः), उस प्रथम होता वायु के वृत्ति लाभ तथा दीप्त करने वाली वृत्ति को लक्ष्य कर (तस्य धर्मम् अनु) प्रकर्ष के साथ देवताओं को पूज (प्रयज) और तदनन्तर (अथा) हमारे यज्ञ को (नः अध्वरम्) देवताओं के प्रसन्न कारक बना (देववीतौ धाः)।
अन्य अर्थ- हे विद्वन् (अग्ने), जो तेरा दाता (यः त्वत् होता) सनातन (पूर्वः) तथा सृष्टि यज्ञ रचने वालों में श्रेष्ठतर परमेश्वर है (यजीयान्) और जिसकी सत्ता सबके भीतर और बाहर दोनों प्रकार से है (सत्ता च द्विता) तथा जो पृथ्वी द्वारा सुख पहुंचाने वाला है, (स्वधया च शंभुः) उनके वेदोक्त धर्म के अनुकूल उत्तम यज्ञ कर (तस्य धर्मम् अनुप्रयज्) एवं (अथ) हे ज्ञानवान् (चिकित्वः) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (देववीतौ) हमारे हिंसा रहित यज्ञ को धारण कर (नः अध्वरं धाः)।

द्विताशवः- (१) द्वैधी भाव का युद्ध, (२) कर्त्ता और भोक्ता होने का भाव, (३) दूना बल, (४) शब्द और स्पर्श गुणों की दुगुनी शक्ति जो वायु में होती है।
'यत्सीमनुद्विता शवः'
अ. १.३७.९
उन वायुओं का बल भी दुगुना या महान् होता है।

दिति- (१) दान शीलता, (२) दान, देने योग्य पदार्थ, (३) खण्डित होने वाला नश्वर पदार्थ भौतिक ऐश्वर्य।
'दितिञ्चरास्व अदितिमुरुष्य'
ऋ. ४.२.११.तै.सं. ५.५.४.४, का.सं. ४०.५.
(४) उपक्षीण। अदिति का अर्थ इसके प्रतिकूल अनुपक्षीण है। उपक्षीण अर्थ में प्रयोग के लिये
'आरोहथो वरुण मित्र गर्तम्
अतश्चक्षाये अदितिं दितिञ्च'
ऋ. ५.६२.८,
हे वरुण और मित्र, तुम दोनों रथ पर सवार होओ और रथ पर चढ़ अपने पक्ष को अनुपक्षीण (अदितिम्) और शत्रुपक्ष की उपक्षीण करो (दितिं चक्षाथे)।
(५) कश्यप की दो स्त्रियां दिति और अदिति में एक दिति है। (६) सर्प द्रष्टा परमेश्वर की जड़ प्रकृति रूपी शक्ति।

द्वितीयापृथिवी - अन्तरिक्ष।
'यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वादधे'
वाज.सं. ५.९

द्वितीय शंख- द्वितीय शंख सूक्त।
'द्वितीययेम्यः शंखेभ्यःस्वाहा'
अ. १९.२२.९

द्वितीयसवन- (१) दूसरा सवन (२) रुद्र ब्रह्मचर्य का समय

दितेः पुत्राः - (१) दिति के पुत्र, (२) जड़ प्रकृति के पुत्र रूप देह, (३) कश्यप की स्त्रियां दिति और अदिति कही गई है। वस्तुतः कश्यप सर्वद्रष्टा परमेश्वर है और दिति और अदिति उनकी दो शक्तियां जड़ प्रकृति और चिति शक्ति है, (४) जड़ प्रकृति के पुत्र रूप देह को परमात्मा ने अदिति अर्थात् चेतन शक्ति या जीव के अधीन किया
'दितेः पुत्राणामदितेः अकारिषम्'
अ. ७.७.१.मै.सं. १.३.९.,३३.७.

दित्यौही- दो वर्ष की गाय

'दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे'
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२.

दिविधावमानः- द्युलोक में छोड़ने वाला सूर्य ।
'विश्वेषां त्मना शोभिष्टम्
उपेव दिवि धावमानम्'
ऋ. ८.३.२१.
वह दान सभी धनों में स्वयं उत्पन्न शोभायमान (विश्वेषां त्मनाशोभिष्टम्) आकाश में नित्यधाने वाले सूर्य के समान है (दिवि उपधानमानम् इव) ।
उस प्रभु ने मुझे सबके मध्य में स्वयं प्रकाशमान (विश्वेषां त्मना शोभिष्टम्) तथा द्युलोक में दौड़ने वाले (दिवि धावमानम्) सूर्य को प्रदान किया । -(दया.)

दिदिड्ढि - दिश, अतिसृज देहि, उपचय कर, अतिसर्जन कर । आदेश कर, 'दिह्' धातु उपचय अर्थ में या अतिसर्जन अर्थ में आया है ।
'सिनीवालि पृथुष्टुके
या देवानामसि स्वसा
जुषस्व हव्यमाहुतं
प्रजां देवि दिदिड्ढि नः'
ऋ. २.३२.६, अ. ७.४६.१, वाज.सं. ३४.१०, तै.सं. ३.१.११.४, मै.सं. ४.१२.६, १९५.५, का.सं. १३.१६, नि. ११.३२.
हे दृष्ट चन्द्रा अमावास्या (सिनी वालि) हे विस्तीर्ण केशकलापे या विस्तीर्ण जघने (पृथुष्टुके) जो तू (या) देवों की स्वयं संचारिणी बहन है (देवानाम् स्वसा असि) सो तू हमारी दी हुई आहुति का आस्वादन कर (आहुतंहव्यं जुषस्व) और हमारे पुत्रादि को बढ़ा (नः प्रजाः दिदिड्ढि)।
विशाल जघन प्रदेश वाली लम्बे-लम्बे केश समूह वाली, या अत्यन्त पूजनीय (पृथुष्टुके) ऋतुगम्या पत्नी (सिनीवालि) जो तू विद्वान् भाइयों की बहन है (या देवानाम् स्वसा असि) गर्भाधान संस्कार में आहुत हव्य का सेवन कर (आहुतं हव्यं जुषस्व) और हे देवि, गर्भाधानपूर्वक हमें उत्तम सन्तान दे । (नः प्रजां दिदिड्ढि)
'दिह, धातु का इनदिनों क्या रूप आर्य भाषाओं में है विचारणीय है । भोजपुरी में दीहीं, देहली, 'देहब' आदि प्रयोग 'देना' अर्थ में प्रचलित ही है ।

दिद्यु- (१) कठोर दारुण दण्ड रूप दुःख ।
'पाहि मा दिद्योः'
वाज.सं. २.२०, तै.सं. १.१.१३,३ श.ब्रा. १.९.२.२०, तै.ब्रा. ३.३.९.९.
(२) चमचमाता अस्त्र ।
'अवस्वेदा इवाभितः
विष्वक् पतन्तु दिद्यवः'
ऋ. १०.१३४.५
(३) देदीप्यमान, (४) क्रोध ।
'छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः'
ऋ. ६.४६.९, अ. २०.८३.१, साम. १.२६६,का.सं. ९.१९.
(४) द्योतमान् विद्या -दया. (५)द्योतमान बाण आदि ।
'सृजद् अस्ता धृषता दिद्युमस्मै'
ऋ. १.७१.५
धनुर्धर जिस प्रकार प्रगल्भता से वाण फेंकता है ।

दिद्युत् - (१) चमकने वाला पदार्थ ।
'यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिवः'
ऋ. २.१३.७
(क) दो (अवखण्डन अर्थ में) + क्विप् =दिद्युत् (पृषोदरादिवत्) । द्यति शत्रून (शत्रुओं को खण्डित करता है) । (ख) द्यु + शितप् = दिद्युत् (ग) द्यु (अभिगमन अर्थ में) + क्विप् = दिद्युत् (द्वित्व और अभ्यास का सम्प्रसारण) । द्यौति अभिगच्छति प्राणिनः-प्राणियों के निकट जाता है । (घ) द्युत् + क्विप् = दिद्युत् । द्योत् ते हितत् (वह चमकता है)
अर्थ - (२) वज्र ।
'अस्तुर्न दिद्युत् त्वेषप्रतीका'
ऋ. १.६६.७, नि. १०.२१.
अस्त्र चलाने वाले के चमकते अस्त्र की तरह
(३) हेति, आयुध, (४) विद्युत् ।
'यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती'
ऋ. १.१६६.६, नि. ६.३०.

जब आपको काटने वाली हेति (यत्रा व क्रिविर्दती दिद्युत्) मेघ समूह को उस तरह से काटती है (रदति) ।
जिस विज्ञान में (यत्रा) तुम्हारे काटने वाले दांतों वाली विद्युत् खोदने का काम करती है (रदति) – दया. (४) रुद्र के ज्वरादि रुपी आयुध ।
'या ते दिद्युद् वसृष्टा दिवस्परि'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७.
हे रुद्र, जो तेरे ज्वरादि व्याधिरूपी आयुध (या ते दिद्युत्) द्युलोक से छोड़े जाकर (दिवः. परिअवसृष्टा)

दिद्युतानः – (१) दीप्तिमान अग्नि, (२) विद्युत् ।
'व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थे'
ऋ. ३.७.४

दिदृक्षेण्य – देखने योग्य सत्य ज्ञान का दर्शाने वाला ।
'दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्'
ऋ. ५.५५.४
(२) सब लोगों की इच्छा के साथ देखने योग्य ।
'दिदृक्षेण्यः परिकाष्ठासु जेन्यः'
ऋ. १.१४६.५

दिदृक्षेय – (वि) । दिदृक्षा + यत् = दिदृक्षेय । (१) सभी के द्वारा अत्यन्त उत्कण्ठा से दर्शनीय ।
'दिदृक्षेयः सूनने भाऋजीकः'
ऋ. ३.१.१२
जो पुत्र के लिये दर्शनीय एवं सदा प्रकाशमान या विद्या दीप्ति की प्राप्त कराने वाला है । (२) दर्शन करने योग्य ।

द्विधाराः– ब.व. । (१) दोनों तटों को धारण करने वाली नदियां–आपः (२) दोनों कुलों या सन्तान और पति दोनों को धारण करने वाली स्त्रियां, (३) समष्टि और व्यष्टि दोनों को धारण करने वाली आपः अर्थात् प्रकृति के उत्पादक मूल परमाणु ।
'आववृततीरधनुद्विधाराः'
ऋ. १०.३०.१०, ऐ.ब्रा. २.२०.३,कौ.ब्रा. १२.१,आश्व.श्रौ.सू.५. १.९.

द्विधा– द्वि + धा । दो प्रकार का ।

द्विधा सूनवः –(१) दो प्रकार के पुत्र–पुत्र और शिष्य ।
'द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदम्'
ऋ. १०.५६.६

दिधिषाय्यः– (१) आश्रय धारण करने वाला परमेश्वर या अग्नि ।
'मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूत्'
ऋ. २.४.१, का.सं. ३९.१४.
(३) 'धा' दित्व, इत्व और षुक् । अर्थ है धारक, पोषक धारण पोषण करने में समर्थ
(४) हृदय में धारण करने योग्य परमेश्वर ।
'आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत्'
ऋ. १.७३.२
वह आत्मा के मसान सुख प्रद एवं सेवायोग्य और धारण पोषण करने में समर्थ हो । (दिधिषाय्यःभूत्) ।

दिधिषु– (१) विद्याभिलाषिणी कन्या, (२) गृहस्वामिनी, (३) ज्ञान, (२) ज्ञान, ऐश्वर्य और पति को धारण करने वाली ।
'आदिदर्यो दिधिष्वनो विभृत्राः'
ऋ. १.७१.३
विद्याभिलाषिणी कन्याएं और गृह की स्वामिनी ज्ञान, ऐश्वर्य और पति को धारण करने वाली विविध उपायों से प्रजाओं का भरण पोषण करने में कुशल होकर (विभृत्राः)।
(४) धा + सन् + उ= दिधिषु । अर्थ है –दाता, यजमान, देने वाला (५) अग्नि का विशेषण ।
'वहादेवत्रा दिधिषोहवींषि'
मै.सं. ४.१३.७,२०९,२.का.स. १८.२१.
हे अग्नि, दिए हुए हवियों को देवताओं के पास लेना ।
आधुनिक अर्थ –(१) स्त्री का द्वितीय पति, (२) जिस का पुनर्विवाह हो, (३) अक्षत् योनिविधवा जिसका विवाह हो ।

दिन – (१) काटा हुआ अन्न ।
'दिनस्य वा मघवन् संभृतस्य वा'
(२) दिन

द्विपक्षा – (१) दो पक्ष या कोठरियों वाली शाला (२) दो तरफा ओसारे वाली
'या द्विपक्षा चतुष्पक्षा'
अ. ९.३.२१

दिप्स – धा.। (१) मारना, घात करना

'यो मा दिवा दिप्सति यश्चनक्तम्'
ऋ. ७.१०४.११, अ. ८.४.११
(२) 'रा' धातु का सूनन्त रूप। देने की इच्छा करना

दिप्सन् - (१) नाश करता हुआ, नाशकारी।
'दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः'
ऋ. १.१४७.३, ४.४.१३, तै.सं. १.२.१४.५, मै.सं. ४.११.५,१७४.४, का.सं. ६.११.
(२) देने की इच्छा वाला इन्द्र।

दिप्सुः- दा + सन् + उ.। अर्थ हिंसाकारी,
'न यँ दिप्सन्ति दिप्सवँः'
ऋ. १.२५.१४
'इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्'
ऋ. ७.१०४.२०, अ. ८.४.२०

द्विपद्- (१) दो पैरों वाला, पुरुष, (२) दो पाद वाली ऋचा।
'वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदां'
ऋ. १.१६४.२४, अ. ९.१०.२
'शं नो भवतु द्विपदे शं चतुष्पदे'
ऋ. ७.५४.१, १०.८५.४३,४४, अ. १४.२.४०, मै.सं. १.५.१३, ८२.१४, ४.१२.४, १९०.१०, आश्व.श्रौ.सू. २.९.१०, शां.गृ.सू. १.७.९, ३.४.२,८. ३, साम.मं.ब्रा. १.२.१७, १८, २.६.१, पा.गृ.सू. ३.४.७, आप.मं.पा. १.१.४.

द्विपाद् - चन्द्रमा, (२) पुरुष।
'द्विपाद्वा अयं पुरुषः'
श.ब्रा. २.३.४.३३.
'चन्द्रमा द्विपात्। तस्य पूर्वपक्षापरपक्षौ पादौ'
गो.ब्रा. ५.२.८
पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष चन्द्रमा के दो चरण हैं।
'एक पाद् द्विपदो भूयो विचक्रमे'
अ. १३.२.२७, ३.२५.
(३) दो पैरों वाला, (पादद्वयोपतेः)।

द्विपदी- (१) प्रकृति और पुरुष रूप से या चर और अचर रूप से वर्तमान न रहने वाली ब्रह्मशक्ति, (२) सुप् तिङ् भेद से द्विपदा वाणी।
'एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, १३.२.४२, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.
(३) दो चरणों वाली, (४) दो अधिष्ठानों-इन्द्र और आदित्य, या मेघ और अन्तरिक्ष से एकात्म होकर गौरी-माध्यमिका वाक् का विशेषण।
'गौरी मिमाय सलिलानि तक्षती
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।'
ऋ. १.१६४.४१
माध्यमिका पाद गौरी ने ही एक अधिष्ठान से मेघ और अन्तरिक्ष से एकात्म हो दो अधिष्ठानों से, चारों दिशाओं से एकात्म हो चार अधिष्ठानों से जल बनाती हुई यह सब निमिति किया।

द्विःपञ्च - (१) दशों दिशाएं।
'द्विर्यं पञ्च जीजनत् संवसानाः'
ऋ. ४.६.८
(२) दसों सर्ग।
'द्विर्यत् पञ्च बिभ्रतो यन्ति अन्ना'
ऋ. १.१२२.१३
जिस परमेश्वर के आश्रय पर वे दसों प्रकार से सर्ग या दसों दिशा वासी प्रजानन (द्विःपञ्च) अन्नों को धारण करते हुए (अन्ना बिभ्रतः) उद्देश्य को प्राप्त करते हैं (यन्ति)।

द्विमाता- (१) द्वयोः प्रकाशा प्रकाशयोःलोक समूहयोः माता निर्माता -दया. (प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोकों का निर्माता परमेश्वर, (२) सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों का निर्माता
'द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे'
ऋ. १.३१.२
सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों का निर्माता, सबके भीतर प्रसुप्त सत्ता रूप से विद्यमान, एवं जगत् भर को प्रलय में शान्त प्रसुप्त रूप से सुला देने वाला मनुष्यों के लिए कितने ही प्रकारों से नाना शक्तियों के रूप में दिखाई देता है। (३) माता पिता और आचार्य दोनों को माता मानने वाला (४) माता पिता दोनों का आदर करने वाला, (५) पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाला वायु।
'द्विमाता तूर्षुतरणिः विभूषति'
ऋ. १.११२.४
(६) राजसभा और प्रजासभा दोनों को मातृवत् उत्पादक बनाकर रखने वाला राजा, (७) दो माता पिता, (८) एक ज्ञान कराने वाली माता राजसभा और दूसरी शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेना-इन दोनों का स्वामी, (९) स्वराष्ट्र, परराष्ट्र, मित्र शत्रु दोनों का मापने वाला राजा,

(१०) प्रकृति और जीव दोनों को जानने वाला परमेश्वर, (११) माता के समान अपने गर्भ में प्रकृति और जीव को प्रकट करने वाला परमेश्वर, (१२) भूमि और आकाश दोनों इह और पर दोनों लोकों का निर्माता। (१३) राजा जिसकी दो माताएं हैं। अपनी माता और पृथ्वी'

द्विमूर्धा- (१) आर्त्व्य - दो सिरों वाला आर्त्व्य ऋतु से उत्पन्न (२) बुद्धिमान् (३) जो मूलों का धारण करने वाला गतिक्रियाशास्त्र (आर्त्थ) का विद्वान् (४) कला कौशलवित्

'तां द्विमूर्धार्त्वियोऽधोक्'

अ. ८.१० (४).३

दिय- दान के योग्य। दियानां पतिः

दियानां पातिः-(१) राजाओं का स्वामी, (२) ज्ञानप्रद इन्द्रियों का पालक अधिष्ठाता

'वसुर्दियानां पतिः'

ऋ. ८.१९.३७

द्विर्दश -बीस

'त्वभेतां जनराज्ञो द्विर्दश'

ऋ. १.५३.९, अ. २०.२१.९

द्विराज - दो राजाओं का संग्राम

'कीर्ति बहुभ्यो विहर द्विराजे'

अ. ५.२०.९

द्विरात्र- दो दिनों में समाप्त होने वाला सोम योग

'एकात्रो द्विरात्रः'

अ. ११.७.१०

द्विरूपः - दो रंग की पोशाक वाला

'द्विरूपा अग्निषोमीयाः'

वाज.सं. २४.८, मै.सं. ३.१३.९, १७०.६.

दिव् - द्युलोक।

दिवक्षस् - (१) दीप्ति प्राप्य व्याप्तः (दीप्ति पाकर व्याप्त) -दया.

(२) प्रकाश और आकाश में व्याप्त (३) व्यवहार तथा विद्योपार्जन में लगी प्रजा, (४) विजय कामना में लगी प्रजा

'दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वाः'

ऋ. ३.७.२

(५) सूर्य, (६) विज्ञान्, प्रकाश आदि में व्यापक

'दिवक्षा असि वृषभ सत्य शुष्मः'

ऋ. ३.३०.२१, वाज.सं. (का.) २८.१४.

दिवः- ब.व.। पति को चाहने वाली व्यवहार कुशल स्त्रियां

'दिवोयह्वीरवसाना अनग्नाः'

ऋ. ३.१.६

दिवः ककुत् - (१) ज्ञान में श्रेष्ठ।

(२) आकाश में सूर्य।

'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्'

ऋ. ८.४४.१६, साम. १.२७,२.२८२, वाज.सं. ३.१२,१३.१४, १५.२०, तै.सं. १.५.५.१, ७.१, ४.४.४.१, मै.सं. १.५.१, ६५.८, १.५.५., ७३.७,८, १.७.४, ११३.४, का.सं. ६.९,७.४,९.२, श.ब्रा. २.३. ४.११, ७.४.१.४१, १३.४.१.१३, तै.ब्रा. ३.५.७.१, १२.३.४, या ध. शा. १.२९९.

दिवः कोशः- (१) अन्तरिक्ष के जल से पूर्ण वायुमण्डल, (२) ज्ञान प्रकाश का भण्डार-परमेश्वर सोम।

'स्वर्वित् कोशं दिवो अद्रिमातरम्'

ऋ. ९.८६.३

दिवःरुच् - (१) प्रकाश से कान्तिमान् सूर्यवत् तेजस्वी (२) विद्या प्रकाश में रुचि रखने वाला।

'दिवोरुचः सुरुचो रोचमानाः'

ऋ. ३.७.५

द्विवन्धुः- (१) माता पिता रूप दो बन्धुओं वाला-आत्मा।

'स द्विबन्धु वैतरणो यष्टा'

ऋ. १०.६१.१७

द्विवर्तनिः- (१) प्राण और अपान से चेष्टा करने वाला आत्मा।

'अवस्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट्'

ऋ. १०.६१.२०

द्विबर्हज्मा- (१) शास्त्र बल और बुद्धिबल दोनों से भूमि या राष्ट्र की वृद्धि करने वाला, (२) बृहस्पति (३) दोनों लोक-पृथ्वी और आकाश में व्यापक सूर्य (४) शत्रु और मित्र दोनों में व्यापक (५) ज्ञान और कर्म दोनों में प्रविष्ट

'द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न'

ऋ. ६.७३.१, अ. २०.९०.१

द्विबर्हस् (१) द्विपरिबृढः दो स्थानों में परिबृढ़-मध्यम में भी और उत्तम में भी। मध्यम स्थान में विद्युत् के रूप में और उत्तम स्थान में सूर्य

के रूप में ।
द्वि + बृह् (वृद्धि अर्थ में) + असुन् = द्विवर्हस् । दो स्थानों में बढ़ा हुआ । अर्थ-(१) दोनों लोकों के प्रभु-सा. (२) द्युलोक तथा अन्तरिक्ष दोनों स्थानों में अपनी रश्मियों से फैलने वाला सूर्य-दया.
'महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राः
उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, का.सं. ४.८, मै.सं. १.३.२५, ३८.१२, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.५,
(३) आकाश और भूमि दोनों को बढ़ाने वाला-मेघ या सूर्य (४) विद्या और विनय दोनों से बढ़ने वाला (४) ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम दोनों से बढ़ा हुआ वाणप्रस्थ, (६) दोनों लोकों में महान् ।
'साम द्विबर्हामिहि तिग्मभृष्टिः'
ऋ. ४.५.३
(६) ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ने वाला पुरुष ।
'उदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः'
ऋ. ७.८.६
(८) दो महान् शक्तियों वाला ।
'यस्य द्विबर्हसो बृहत्
सहो दाधार रोदसी'
ऋ. ८.१५.२, अ. २०.६१.५, ६२.९

द्विबर्हाःरयिः- दोनों लोकों को बढ़ाने वाला ऐश्वर्य ।
'सोम द्विबर्हसं रयिम्'
ऋ. ९.४.७, ४०.६, १००.२, साम. २.४०३.

द्विबर्हाः सोमः- (१) मेघ और पृथ्वी दोनों से बढ़ने वाला सोम ओषधि ।
'गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः
सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि'
ऋ. ७.२४.२

द्विवृष- (१) दो प्राणों से युक्त आत्मा ।
'यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.२

दिवः अन्ताः- (१) प्रकाशमय मोक्ष या कामनायोग्य भोग क्षेत्र की सीमाएं ।
'दिवश्चरन्ति परिसद्यो अन्तान्'
ऋ. ५.४७.४

दिवश्चक्रिः - आकाश, सूर्य, तेजोमय जगत् का स्रष्टा परमेश्वर, सोम
'चकिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसः'
ऋ. ९.७७.५

दिवः दुहित्रा- द्वि.व. । अर्थ-(१) सूर्य की कन्या उषा (२) कामनाओं को पूर्ण करने वाले और कान्तियुक्त रूप से सुप्रसन्नवदन स्त्री पुरुष ।
'दिवो दुहित्रोषसा सचेथे'
ऋ. १.१८३.२

दिवः धर्ता- (१) द्युलोक को धारण करने वाला-आदित्य या एकपात अज ।
'पावीरवी तन्यतुरेकपादजः
दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः'
ऋ. १०.६५.१३, नि. १२.३०.
एक चरण वाला अज द्युलोक का धारण करने वाला है ।

दिवःधरुणः- (१) द्युलोक का आश्रय -सूर्य, (२) ज्ञानवती राज सभा का आश्रय रूप विद्वान् ।
'आघृणे धरुणं दिवः'
ऋ. १.२३.१३

दिवः नरा- द्वि.व. । (१) ज्ञान प्रकाश या उत्तम कामना और व्यवहार के प्रवर्तक, (२) द्युलोक के दो अश्विनी कुमार ।
'स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता'
ऋ. ६.६२.१

दिवस्पतिः- (१) सूर्य तथा आकाश का पालक।
'गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः'
ऋ. ८.९८.४, अ. २०.६४.१, साम. १.३९३, २.५९७.

दिवस्पयः - (१) द्युलोक का सार (२) सूर्य का विशेषण ।
'वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः'
अ. १९.४४.५

दिवस्परि- (१) द्युलोक के ऊपर, (२) ज्ञान-प्रकाश देने वाला ब्रह्मचर्याश्रम ।
'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै.सं. २.७.९,८६.५, का.सं. १६.९, श.ब्रा. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २.११.२१.

पहले अग्नि द्युलोक में आदित्य के रूप में उत्पन्न हुआ-सा. । पहले अग्रणी विद्वान् ज्ञान प्रकाश देने वाले ब्रह्मचर्याश्रम में उत्पन्न होता है ।

दिवः पुत्रः- (१) द्युलोक का पुत्र-आदित्य, (२) अश्विनी कुमारों में एक की संज्ञा ।
'दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे'
ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३.
(दूसरा द्युलोक का पुत्र आदित्य सुन्दर रश्मि रूपी धन वाला वायु से वहन किया जाता है) ।
(२) सूर्य से उत्पन्न पर्जन्य मेघ (३) ज्ञान प्रकाश से बहुतों का रक्षक प्रभु
'दिवस्पुत्रायमीढुषे'
ऋ. ७.१०२.१, मै.सं. ४.१२.५, १९२.१५, का.सं. २०.१५, तै.ब्रा. २.४.४.५, तै.आ. १.२९.१, आप.श्रौ.सू. ८.१.४.

दिवस्पुत्रौ- (१) द्युलोक से बरसते हुए मेघ के जल और ओस और सूर्य की धूप से उत्पन्न होने वाले या द्युलोक के रस और सूर्य के प्रकाश के बल से मनुष्यों की जीवन-रक्षा करने में समर्थ-व्रीहि और यव ।
'वीहिर्यवश्च भेषजौ
दिवस्पुत्रावमर्त्यौ'
अ. ८.७.२०

दिवस्पृष्ठ- (१) प्रकाश स्वरूप, ज्ञान का परम उन्नत भाग (२) मोक्ष पद ।
'दिवस्पृष्ठं स्वर्ग त्वा'
अ. ४.१४.२, वाज.सं. १७.६५, श.ब्रा. ९.२.३.२४.

दिनःमध्यः- (१) आनन्दमय मोक्ष धाम ।
'मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते'
ऋ. १.१०८.१२, १०.१५.४, अ. १८.२.३५, वाज.सं. १९.६०

दिवः वृषभः- (१) द्युलोक से वर्षण करने वाला-सूर्य ।
'वृषभोदिवो रजसः पृथिव्याः'
ऋ. ८.५७.३, अ. २०.१४३.९

दिवः सदांसि- स्वर्ग लोक के भवन ।
'दिवः सदांसि बृहती वितिष्ठसे'
ऋ. खि. १०.१२७.१, अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
(हे रात्रि, तू दूर रहती हुई भी स्वर्ग लोक के भवनों को भी अन्धकार से व्याप्त करती है) ।

दिवःसूनुः- (१) सूर्य का पुत्र-अग्नि, (२) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश का प्रवर्तक (३) ज्ञान प्रकाश युक्त आचार्य का पुत्र ।
'अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेताः'
ऋ. ३.२५.१

दिव्य- दिव् + यत् = दिव्य । अर्थ है- (१) द्युलोक -सम्बन्धी (२) सुन्दर । (३) द्युलोक में उत्पन्न । (४) सूर्य ।

दिव्यदानु- (१) आकाश का जल
'यवं न वृष्टि र्दिव्येन दानुना'
ऋ. १०.४३.७, अ. २०.१७.७

दिव्यं वसु- (१) द्युलोक का धन ।
'अध्वर्यवोयोदिव्यस्य वस्वः
यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा'
ऋ. २.१४.११
हे अध्वर्युवो, जो इन्द्र द्युलोक के पृथ्वी के तथा अन्तरिक्ष के धन का राजा है ।

दिव्यः श्वा - (१) इन्द्रियों के लिये हितकारी प्राणमय अन्तरात्मा (२) स्वर्ग का कुत्ता ।
'शुनो दिव्यस्य यन्महः'
अ. ६.८०.१,३

दिव्यःसुपर्णः- (१) द्युलोक का रहने वाला (दिव्यः) एवं सुन्दर रूप से गिरने वाला आदित्य ।
'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः
अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्'
ऋ. १.१६४.४६, अ.९.१०.२८, नि. ७.१८,१४.१.

दिवागृणाना- विद्युत् सहित उदक समूह से शब्द करती हुई इडा या माध्यमिका वाक्।

दिवातर- दिन से भी बढ़कर, सूर्य के प्रकाश से भी बढ़ कर ।
'नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरात्'
ऋ. १.१२७.५

दिवापति- (१) दिन का पालक सूर्य (२) दिन के समय दूर तक चलने वाला पथिक ।
'दिवापतये स्वाहा'
वाज.सं. २२.३०

दिवावसु- (१) ज्योतिररूप प्रकाश में वास करने वाला जीवात्मा ।
'दिवं यय दिवावसो'
ऋ. ८.३४.१-१५, साम. १.३४८, २.११५७-११५९.

(२) दिन में आकाश में बसने वाला-सूर्य, (३) ज्ञान प्रकाश से अपने अधीन शिष्यों को बसाकर उन्हें ज्ञानमय वस्त्र से अच्छादित करने वाला आचार्य ।

दिव्या- (१) शुभ्र, बादल के जल ।
'अपोदिव्या असृजत् वर्ष्या अभि'
ऋ. १०.९८.५, नि.२.११.
उसने दिव्य वर्षा के जल बरसाए ।

दिव्याःअग्नयः- द्यौलोक में प्रकाशमान सहस्रों सूर्य और विद्युत् ।
'अतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः'
अ. १६.१.१.

दिव्याआपः- आकाश से बरसने वाले जल ।
'अपामह दिव्यानाम्'
अ. १९.२.४

दिव्यासः- (१) सूर्य के दिव्य अश्व-सा. (२) द्युलोक में उत्पन्न होने वाली सूर्य की किरणें -दया ।

दिवि एकादश देवाः- (१) द्यौलोक में ग्यारह दिव्य पदार्थ । (२) स्वामी दयानन्द के अनुसार ११ देव- प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान , नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीव हैं ।
'ये देवादि व्ये एकादशस्थ'
अ. १९.२७.११, तै.सं. १.४.१०.१, ६.४.११.१, का.सं. ४.५,२७.९, मै.सं. १.३.१३, ३५.७, ४.६.४, ८३.४, ८४.१०, मा.श्रौ.सू. २.३.५.९, ४.४.१०, ५.१.१६.

दिविक्षयः- (१) आकाश या अन्तरिक्ष में विद्यमान विद्युत् (२) ज्ञान, व्यवहार, विजय कामना में पृथ्वी पर निवास करने वाला ।
'आयं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्'
ऋ. ३.२.१३

दिविचराः- आकाश में विचरने वाले ग्रह । धूम केतु उल्का आदि ।
'शं नो दिविचराः ग्रहाः'
अ. १९.९.७

दिविजाः- आकाश में प्रकटित सूर्य ।
'यदग्ने दिविजा असि'
ऋ. ८.४३.२८, आश्व.श्रौ.सू.३.१३.१२.
(२) सूर्य के आश्रय पर प्रकट होने वाली उषा, (३) सूर्यवत् गुरु के अधीन ज्ञान लाभ करने वाली, (४) उत्तम कामना में विद्यमान युवती ।
'व्युषा आवो दिविजा ऋतेन'
ऋ. ७.७५.१

दिविन्मत् - दिव् + इन्ध +क्विप् = दिवित्, दिवित् + मतुप् =दिवित्मत् । अर्थ-(१) जिससे अत्यन्त प्रकाश होता है, (२) प्रकाश या ज्ञान को अधिक बढ़ाने वाले उत्तम या तेज से युक्त ।
'अग्ने दिवित्मता वचः'
ऋ. १.२६.२
हे परमेश्वर, हमें ज्ञान के वर्द्धक वचन वाणीमय उपदेश से युक्त करें ।

दिवित्मती- प्रकाशयुक्ता ।
'उषो राये दिवित्मती'
ऋ. ५.७९.१, साम. १.४२१, २.१०९०.

दिविषद्- तेजोमय मोक्षमार्ग में विविषद् तेजोमय मोक्षमार्ग में विराजने वाला -पितर ।
'स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः'
अ. १८.४.८०, आप.श्रौ.सू. १.९.६, गो.गृ.सू. ४.३.१०, मा.श्रौ.सू. १.१.२.२२, हि.गृ.सू. २.१२.४.

दिविष्टि- (१) कामना या काम की एषणा ।
'आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु'
ऋ. १.१४१.६
जब संसर्ग करने पर काम की एषणाओं में (दिविष्टिषु) लोग सब संस्कारों के ग्रहण करने वाले कर्म फलों के भोक्ता को ही (होतारम्) पुत्र रूप से चाहते हैं (वृणुते) । (२) दिवः एषणम् (स्वर्ग को ले जाने वाली) । (३) याभिः क्रियाभिः दिवमिच्छन्तिगन्तुम् (जिन क्रियाओं से स्वर्ग जाना चाहते हैं) ।
दिव् + इष् (इच्छा या गमन अर्थ में) + क्तिन् = दिविष्टि (४) तेजस्विता तथा प्रसन्नता प्राप्त करने वाला ।
'स्थूरं राधः शताश्वं
कुरङ्गस्य दिविष्टिषु
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु
तुर्वशेष्वमन्महि'
ऋ. ८.४.१९, नि. ६.२२.
दीप्त, महान् एवं शोभन धन वाले राजा कुरंग की (त्वेषस्य सुभगस्य कुरंगस्य राज्ञः) स्वर्ग प्राप्त कराने वाली क्रियाओं में (दिविष्टिषु) मनुष्यों का दक्षिणा रूप में उपकल्पित की जाने पर

(तुर्वशेषु रातिषु) हम स्थूल सौ अश्वों से युक्त धन (स्थूरं शताश्वं राधः) समझते हैं (अमन्महि)।

दिविसद् - (१) द्युलोक में स्थित, (२) विद्या प्रकाश में स्थित ।

'दिविसदं देवसदम्'

वाज.स. ९.२

दिविस्पृश् (क्)- दिविस्प्रष्टा (द्युलोक का स्पर्श करने वाला) दिवि + स्पृश् + क्विप् = दिविस्पृश् (२) द्युलोक को हवि द्वारा छूने वाला अग्नि

'दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ'

ऋ. १०.८८.१, नि. ७.२५.

द्युलोक को हविद्वारा छूने वाले अग्नि में (दिविस्पृशि) प्रिय आहुति दी जाती है । (३) द्युलोक को पहुंचाने वाला यज्ञ ।

'सिध्रमद्य दिविस्पृशम्'

ऋ. १.१४२.८, २.४१.२०, तै.सं. ४.१.११.४, मै.सं. ४.१०.३, १५०.१४, आप.श्रौ.सू. १७.७.४, नि. ९.३८.

स्वर्गादि के साधक (सिध्रम्) तथा द्युलोक को पहुंचाने वाले (दिविस्पृशम्) यज्ञ को (यज्ञम्)...

दिविस्पृशा- द्वि.व.। अश्विद्वय का विशेषण । अर्थ है -(१) आकाश में रथों को चलाने वाले, (२) आकाश मार्ग को स्पर्श करने वाले विद्वान्

'उभादेवा दिविस्पृशा'

ऋ. १.२२.२, २३.२, आश्व.श्रौ.सू. ७.६.२, शा.श्रौ.सू. १०.३.५

दिविस्पृष्ट- मोक्ष में सदा प्राप्त परमेश्वर ।

'दिविस्पृष्टो यजतः सूर्यत्वक्'

अ. २.२.२

दिवेदिवे- अहनिअहनि (प्रतिदिन)

दिव्ये- उषासानक्ता (उषा और और नक्त) का विशेषण । द्युलोक में उत्पन्न या द्युतियुक्त उषा और रात्रि ।

'दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे'

ऋ. १०.११०.६, अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३, २०.२.६, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.११.

द्युलोक से उत्पन्न या द्युति मती (दिव्ये) परस्पर संमिश्र या शुभ कर्मों को संयुक्त करने वाली (योषणे), गुणों से महती या महान् सुख को देने वाली रोचिष्णु (बृहती सुरुक्मे) उषा और रात्रि ।

दिवोजाः- दिवः + जा । (१) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न उषा ।

'एषास्या नो दुहिता दिवोजाः'

ऋ. ६.६५.१

दिवोदास- (१) न्याय विद्याप्रकाशस्यदाता -दया. न्याय और विद्या प्रकाश का दाता, (२) युद्ध की कामना और शत्रु का नाश करने वाला (३) ज्ञान प्रकाश का करने वाला विद्वान् (४) दिवोदास नामक वैदिक राजा, (५) वध्र्यश्व, दिवोदास और सुहास पितामह, पिता और पुत्र । दिवोदास सुदास को भी कहा जाता था ।

'यदयातं दिवोदासाय वर्तिः
भरद्वाजायाश्विना हयन्ता'

ऋ. १.११६.१८

हे अश्वसेना के स्वामी, दो मुख्य सेनापति और सैन्य आप दोनों जब युद्ध की कामना करने और शत्रु का नाश करने वाले के लिए (दिवो दासाय) और पुष्ट और वेगवान् योद्धाओं के स्वामी के लिए (भरद्वाजाय) वेग से जाते हुए ऐश्वर्य से युक्त व्यवहार पद को प्राप्त होते हो। अथवा,

हे वरवधू गृहस्थजनो, तुम दोनों समान रूप से जाते हुए ज्ञान प्रकाश के देने वाले विद्वान् (दिवो दासाय) और अन्नादि से भरण पोषण करने वाले मातापिता के लिये (भरद्वाजाय) धन धान्य सम्पन्न गृह को प्राप्त होते हो...(६) प्रकाश दाता-दया. (७) इच्छानुसार दानशील पुरुष । (८) एकवैदिक राजा-

'दिवोदासाय नवतिं च नव
इन्द्रः पुरो व्यैरत् शम्बरस्य'

ऋ. २.१९.६

दिवो दुहिता - (१) सूर्य की पुत्री, (२) उषा ।

'एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि'

ऋ. १.११३.७

दिवोधर्ता- (१) तेजस्वी, व्यवहारवान् और कामनावान् पुरुषों का धारण करने वाला, (२) द्युलोक का धारक-इन्द्र, परमेश्वर ।

'धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वः'
ऋ. ३.४९.४

दिवोनपाता- (१) सूर्य के समान प्रकाशमान, परम मेधावी परमेश्वर के रचे हुए वेदज्ञान को या तेजोमय वीर्य ब्रह्मचर्य को कभी नष्ट न करने वाले युवा स्त्री पुरुष (दिवः + न + पाता) (२) न्याय प्रकाश और राजसभा को स्थिर रखने वाले राष्ट्र पुरुष, (३) अश्विद्वय,

दिवोरथी- (१) द्युलोक रथ वाला विजयी, रमणकारी प्रकाश मान सूर्य, (२) मोक्षाख्य प्रकाश का रमण कारी आत्मा ।
'समिद्धो अग्निर्वृषणा रथीदिवः'
अ. ७.७३.१, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, शा.श्रौ. सू. ५.१०.८.

दिश् - (क)- दिश् (अतिसर्जन अर्थ में) + क्विप् (अधिकरण में)= दिश् । दिश्यन्ते अतिसृज्यन्ते हि आसु हविरादीनि देवतानाम् (देवताओं की हवि इन दिशाओं में दी जाती है) (ख) आङ् + सद् + क्विप् = दिश् (वर्ण व्यत्यय और उपसर्ग का लोप) यह व्युत्पत्ति आसदन अर्थ है (आसदनात्) अर्थ है- तं . तम् अर्थम् प्रति एता आसन्ना भवन्ति (उस उस अर्थ के प्रति ये दिशाएं आसन्न होती हैं) ।
(३) अभ्यशन अर्थ में भी इस शब्द की व्युत्पत्ति की जा सकती है (अपिना अभ्यशनात्) । अभ्यश्नवते व्याप्नुवन्ति हि एताः तम् तम् अर्थम् (ये दिशाएं उस अर्थ को व्याप्त करती हैं) । अभि + अश् + क्विप् = दिश्

दिशन्ता- प्रदिशन्तौ, उपदिशन्तौ, आज्ञापयन्तौ (आज्ञा देते हुए) । दिश् + शतृ + औ = दिशन्तौ-दिशन्ता (औङ् का आ) ।
द्विवचन में 'दिशन्ता' हो गया है । अर्थ -
(१) आदित्य और अग्नि का विशेषण
(२) अग्नि और वायु का विशेषण
(३) प्रदिशन करने वाले ।
'प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्तां'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, .२०२.८, का.सं. १६.२०,तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१२.
आहवनीय अग्नि को (ज्योतिः) प्रदिश्यमान मंत्र से (प्रदिशा) प्रदिशन करते हुए (दिशन्ता) अग्नि और आदित्य स्वभाव से ही यज्ञ में सहायता पहुंचाते हैं ।
वेदोक्तविधि के अनुसार (प्रदिशा) प्राचीन ज्योति होकर अर्थात् पूर्व की ओर होकर (प्राचीनं ज्योतिः दिशन्ता) दिव्य गुण सम्पन्न सुखप्रदाता अग्नि और वायु ।

द्विशवाः - द्विशवस् । अर्थ -(१) दोनों प्रकार का बल धारण करने वाला परमेश्वर, (२) नरनारी, मातापिता दोनों प्रकार का बल का धारण करने वाला परमेश्वर (३) सोम रस ।
'देवाव्यं मदमभि द्विशवसम्'
ऋ. ९.१०४.२, साम. २.५०८.

दिशांपतिः- (१) समस्त दिशाओं का पालक - सोम ।
'आ पवस्व दिशां पते'
ऋ. ९.११३.२
(२) रुद्र, (३) दिक्पाल ।
'दिशां च पतये नमः'
वाज.सं. १६.१७, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३, १२२.९, का.सं. १७.१२, श.ब्रा. ९.१.१.१८.

द्विष- पु. । अर्थ-(१) अप्रीति कर, बुरा, (२) द्वेष भावना
'आराद् द्विषेभिरपयाहि दूरम्'
अ. १९.५६.६

दिष्ट- लम्बी रचना ।
'दिष्टाय रज्जुसर्जस्'
वाज.सं. ३०.७, तै.ब्रा. ३.४.१.३.

दिष्टा- निर्दिष्ट, उपदिष्ट
'दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता'
ऋ. १.१८३.५

दीक्षा- (१) व्रत धारण करना ।
'विश्वकर्मा दीक्षायाम्'
य. ८.५४
(२) किसी विषय में दक्ष होने के लिए व्रताचरण ।
'व्रतेन दीक्षामाप्नोति'
वाज.सं. १९.३०
(३) कार्य करने का दृढ़ संकल्प ।
'सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपः'
अ. १२.१.१, मै.सं. ४.१४.११, २३३.८.
(४) विशेष व्रत, (५) नियम, नियन्त्रण,

व्यवस्था ।
'यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिः '
अ. ८.५.१५

दीक्षापतिः- दीक्षा का पालक परमेश्वर
'अनु मेदीक्षान् दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तवस्तपतिः '
वाज.सं. ५.६, तै.सं. १.२.१०.२, का.सं. २.२, गो.ब्रा. २.२.३ , श.ब्रा. ३.४.३.९, ६.३.२१, वै.सू. १३.१८.

दीदयत्- दीप्यते (दीप्त होता है)

दीद्यग्नी - (१) देह में व्यापक जाठर अग्नि से स्वतः प्रदीप्त होने वाले (२) अग्नि के समान प्रकाशमान ।
'दीद्यग्नी शुचिव्रता '
ऋ. १.१५.११, तै.ब्रा. २.७.१२.१, आप.श्रौ.सू. २१.७.१६, मा.श्रौ.सू. २.४.२.११, ७.२.२.

दीदाय- दीप्त किया जाता है,

दीदिवः- (१) सभी को दीप्त करने वाला अग्नि, परमात्मा या जीवात्मा ।
'तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः '
वाज.सं. ३.२६.१५.४८, २५.४७, तै.सं. १.५.६.३, ४.४.४.८. मै.सं. १.५.३, ६९.१०, का.सं. ७.१. श.ब्रा. २.३.४३.१,मा.श्रौ.सू. ६.२.२, कौ.सू., ६८.३१.

दीदिवान् - (१) चमकने वाला ।
'नित्ये तोके दीदिवांसं स्वेदमे '
ऋ. २.२.११
(२) प्रकाशित होकर विराजने वाला, (३) प्रकाश करता हुआ (४) दीप्त होता हुआ- सूर्य ।
'अध्वस्मभि र्विश्वहादीदिवांसम् '
ऋ. २.३५.१४

दीदिवाः- (१) जो शुभगुणों से द्रव्यों को प्रकाशित करता है, (२) अग्नि, (३) सूर्य ।
'घृताहवन् दीदिवः
प्रतिष्म रिषतो दह '
ऋ. १.१२.५

दीदिहि- प्रदान कर ।
'दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रम् '
अ. ७.७८.२

दीदी- दीप्ति का कारण ।
'अश्विना पिबतंमधु
दीद्यग्नी शुचिव्रता '
ऋ. १.१५.११, तै.ब्रा. २.७.१२,१, आप.श्रौ.सू. २१.७.१६, मा. श्रौ.सू. २.४.२.११, ७.२.२.

दीदेत्- देदीप्यते (चमकता है) । यो विड्भ्यो मानुषीभ्योदीदेत् (जो अग्नि प्रजाओं को लिये दीप्त होता है ।)

दीध्यानः- (१) योग समाधि द्वारा ध्यान करता हुआ ।
'ये बध्यमानमनु दीध्यनाः '
अ. २.३४.३
(२) देदीप्यमान होता हुआ ।
'देवद्रीचा मनसा दीध्यानः '
ऋ. १.१६३.१२, वाज.सं. २९.२३, तै.सं. ४.६.७.५, का.सं. (अश्व.) ६.३.

दीधितिः- धीयन्ते कर्मसु (उंगलियां कर्म करने के समय पकड़ी जाती है)। धा (ग्रहण करता) + न्दिन् = दीधितिः (पृषोदरादिवत्) अर्थ - (१) उंगुली, (२) आग की चिनगारी ।
'अग्नि नरो दीधितिभिररण्योः
हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् '
ऋ. ७.१.१.१, साम. १.७.२, २.७२३, का.सं. ३४.१९, ३९.१५, कौ.ब्रा. २२.७, आप.श्रौ.सू. १४.१६.१, मा.श्रौ.सू. ६.२.२, नि. ५.१०.
नेता मनुष्य या ऋत्विज प्रशंसनीय अग्नि की अदणियों के टुकड़ो से पथों हाथों के द्वारा घिसकर उत्पन्न करते हैं ।
(२) धारण करने वाला ।
'विद्वान् ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् '
ऋ. ३.३१.१, नि. ३.४.
प्रजोत्पादन- समर्थ रेतस् को धारण करने वाले जामाता की पूजा करता हुआ कन्या का पिता ।
(४) विधान ।
आधुनिक अर्थ-प्रकाश, किरण, सौन्दर्य, शारीरिक ओज ।

दीधिम - ध्यायाम (हम प्रार्थना करते हैं) । ध्यान करें या ध्यान करते हैं । समझें या समझते हैं । अनुचिन्तन करें ।
'वसूनि जाते जनमान ओजसा
प्रतिभागं न दीधिम '
ऋ. ८.९९.३, अ. २०.५८.१, साम. १.२६७,

२..६६९, वाज.सं. ३३.४१ , नि. ६.८.
हे मनुष्यों, हम इस उत्पन्न या उत्पन्न होने वाले संसार में ईश्वर के दिए धनों को पुरुषार्थ से अपने अपने भाग के अनुसार भोगने का अनुचिन्तन करें ।

दीन- (१) गरीब, दुःखी ।
'दीना दक्षा विदुहन्ति प्रवाणम्'
ऋ. ४.२४.९
(२) दि+ क्त = दीन । अर्थ -खण्डित, सूखा ।
'मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्'
ऋ. १०.६८.८, अ. २०.१६.८, नि. १०.१२.
जैसे मछली मारने वाला सूखे जल में मछली देखता है ।

दीनता - दैन्य भाव ।
'क्रंत्वः समह दीनतां प्रतीपं जगमा शुचे'
ऋ. ७.८९.३

दीनदक्ष- हीनबल वाला ।
'यत्पाकत्रा मनसादीनदक्षाः'
ऋ. १०.२.५

दीयन् - बड़े वेग से चलता हुआ ।
'श्येनोनदीयन्'
बाज पक्षी की तरह चलता हुआ ।

द्वीपः- (१) द्वाभ्यां पाति इति द्वीपः (टापू, द्वीप),
'आपो न द्वीपं दधति प्रयांसि'
ऋ. १.१६९.३
जैसे चारों ओर से एकत्रित जल टापू में जाते हैं -यास्क जैसे जल द्वीप को धारण करते हैं वैसे ही उत्तम अन्न (प्रयांसि) आप को धारणा करते हैं-दया. (२) बाहर और भीतर दोनों ओर से धारण करने वाला शरीर ।

द्वीप्य- द्वीप्य के समान शत्रुओं से घिर जाने पर भी उन अवसरों पर भी कार्य करने में कुशल ।
'नमो नादेयाय च द्वीप्याय च'
वाज.सं. १६.३१, का.सं. १७.१४.

दीपि- धा. । प्रज्वलित करना ।
'दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा'
ऋ. ६.२२.८, अ. २०.३६.८, कौ.ब्रा., २५.५.

द्वीपिन्- चीता ।
'व्याघ्रस्य द्वीपिनोवर्च आददे'
अ. १९.४९.४
'यांहस्तिनि द्विपिनि या हिरण्ये'
अ. ६.३८.२, का.सं. ३६.१५, तै.ब्रा. २.७.७.१.

दीर्घ- (१) विस्तृत साधनों वाला, (२) दूर तक शत्रुओं का नाश करने वाला, (३) दूर तक पहुंचने वाला ।
'दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान्'
ऋ. ४.२.५
(४) द्राघ् (आयाम करना) + अण् = दीर्घ (पृषोदरादिवत्) ।

दीर्घचक्षस्- विस्तृत दर्शन या तत्व ज्ञान का लाभ ।
'अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे'
ऋ. ८.१३.३०

दीर्घ जिह्वय- (१) लम्बी जीभ वाला (२) लम्बी-लम्बी बातें करने वाला ।
'सखायो दीर्घजिह्वयम्'
ऋ. ९.१०१.१, साम. १.५४५, २.४७.

दीर्घतन्तुः - बहुत लम्बी संन्तति परम्परा वाला ।
'दीर्घतन्तु बृंहदुक्षायमग्निः'
ऋ. १०.६९.७

दीर्घतमस्- (१) अति विस्तृत अज्ञान और शोकादि में व्याकुल (२) अज्ञानी मातापिता ।
'दीर्घतमा मामतेयः'
ऋ. १.१५८.६.

दीर्घतमाःऋषिः- (१) एक वैदिक ऋषि (२) बड़ी-बड़ी लम्बी चौड़ी आकांक्षाओं वाला । उत्साही दूरदर्शी पुरुष ।
'ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव'
ऋ. ८.९.१०, अ. २०.१४०.५.
(३) खेद, शोक तथा प्रजापीड़ा का नाशक, (४) शोक मोह का नाशक आत्मा ।

दीर्घनीथ- (१) दीर्घ कालतक और दीर्घ मार्ग में ले जाने वाला ।
'दीर्घनीथे दमूनसि'
ऋ. ८.५०.१०

दीर्घ प्रयज्यु- दीर्घ + प्र + यज् + यु । अर्थ - (१) दीर्घ प्रतत यज्ञ, (२) नित्य यायजूक, (३) अग्निहोत्री ।
'इन्द्रावरुणा युवंमध्यवरणय नः
विशे जनाय महिशर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्पति
वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः'
ऋ. ७.८२.१, तै.सं. २.५.१२.३, मै.सं. ४.१२.४,

१८७.२,
हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों हमारे लोगों के लिए या पुत्र पौत्र के लिये तथा यज्ञ के लिये महान् कल्याण गृह या सुख दो (महिशर्म यच्छतम्) और हमारे नित्य यज्ञशील अग्नि होत्री को दीर्घ प्रयज्युम् जो मारने की इच्छा करता है (अतिवनुष्यति) उस दुर्बुद्धि को या सायण के अनुसार उन शत्रुओं को (दूढ्यः) हम पराजित करें (जयेम)

दीर्घप्रसद्म – (१) महाभवन, (२) सत्व का शरण दाता, (३) विश्व का स्वामी ।
'वचोदीर्घ प्रसद्मनि ईशे वाजस्य गोमतः'
ऋ. ८.२५.२०

दीर्घप्रसिति – बड़ी बड़ी चिरकाल तक स्थिर रहने वाली राज्यप्रबन्ध व्यवस्था ।
'दीर्घामनुप्रसितिं स्यन्दयध्यै'
ऋ. ४.२२.७

दीर्घयाथ– (१) लम्बा प्रयाण ।
'यदस्योर्विया दीर्घयाथे'
ऋ. ५.४५.९
(२) दूर तक जाने वाला ।
'वृथासृजत् पथिभिः दीर्घयाथैः'
ऋ. २.१५.३, तै.सं. २.३.१४.५.

दीर्घश्रवस् – (१) दीर्घकालतक गुरुओं से उपदेश श्रवण करने वाला, (२) बहुत अधिक ज्ञानी, (३) बहुत अधिक धनी ।

दीर्घश्रुत् – दीर्घ कालतक वेदादि का श्रवण या अध्ययन करने वाला बहुश्रुत् ।
'विप्रोमन्मानि दीर्घश्रुत् इयर्ति'
ऋ. ७.६१.२

दीर्घश्रुत्तम – (१) दीर्घकालतक उत्तम ज्ञान का श्रवण करने वाला–बहुश्रुत ।
'पप्रथे दीर्घश्रुत्तमम्'
ऋ. ५.३८.२.
(२) दीर्घकाल तक अनेक शास्त्रों का श्रवण करने वाला
'यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तमः'
ऋ. १०.९३.२
(३) विद्वानों में श्रेष्ठ ।

दीर्घश्रुत्तमा– द्वि.व. । दूर ही से गर्जनरूप में सुनाई देने वाले – मित्रा वरुण
'राजाना दीर्घश्रुत्तमा'
ऋ. ५.६५.२, ८.१०१.२

दीर्घाधीः – (१) दीर्घ बुद्धि या क्रिया शक्ति वाला, (२) दीर्घदर्शी
'दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यम्'
ऋ. २.२७.४, तै.सं. २.१.११.४, मै.सं. ४.१२.१, १७७.१०, का.सं . ११.१२.

दीर्घाप्रसितिः – दूर तक फैला पारस्परिक बन्धन
'दीर्घामनुप्रसितिं दीधियुर्नरः'
ऋ. १०.४०.१०, अ. १४.१.४६, आप.मं.पा., १.१.६.

दीर्घायुः– (१) लम्बी आयु वाला ।
'दीर्घायुरस्या यः पतिः'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४, नि. ४.२५.

दीर्घायुत्व – (१) दीर्घायु प्राप्त करना
'दीर्घायुत्वाय दध्मसि'
अ. १.२२.२
(२) दीर्घआयु, (३) ब्रह्मचर्य आदि
'जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च से'
वाज.सं. १८.६, तै.सं. ४.७.३.२, मै.सं. २.११.३, का.सं. १८.९ .

दीर्घाप्साः– (१) दीर्घाः अप्साः शुभगुण व्याप्तयः यस्य सः (विशाल रूप और कर्म वाला (२) विस्तृत उत्तम गुणों से युक्त (३) महान् रूपवान् और कर्मवान् आत्मा
'रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः
स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत्'
ऋ. १.१२२.१५
हे मित्रावरुण, आप दोनों का धारण करने योग्य, रथ के समान यह राष्ट्र (रथः) विशाल रूप से और कार्य वाला और विस्तृत उत्तम गुणों से युक्त, सुखकारी किरणों वाले (स्यूम गभस्तिः) सूर्य के समान सुखकारी शासनप्रबन्ध से युक्त होकर प्रकाशित हो ।
अथवा, आत्मा महान् रूपवान् और कर्मवान् होकर, सुखकारी साधनों से युक्त होकर (स्यूम रश्मिः) सूर्य के समान चमकता है ।

दीव– रमण, क्रीड़ा आदि सुख ।
'न्युप्ता अक्षा अनुदीव आसन्'
ऋ. १०.२७.१७

द्यु – (१) क्रिया, ज्ञान, व्यवहार, (२) जुआ ।

'अक्षाः फलवतीं द्युवम्'
अ. ७.५०.९
(३) द्युत् (चमकना) + डो = द्यो (डि प्रत्यय के सम्बन्ध से उ का लोप) । द्यो + खु = द्यु । अर्थ- दिन अहन् (४) प्रकाशमान । द्युभिः अश्मभिः (चमकीले हीरों से)।

द्रु - (१) नौका ।
'द्रुणा न पारमीरया नदीनाम्'
ऋ. ८.९६.११
(२) द्रवशील ।
'समहिमा स द्रुः भूत्वान्तम्'
अ.१५.७.१
(३) द्रुतगामी रथ ।
'इन्द्ररभि द्रुणा हितः'
ऋ. ९.९८.२
(४) द्रुममयस्य अधिषवन फलकद्वयम् (लकड़ी के बने सोम चुवाने के दो पात्र) (५) द्रुमविकार (६) 'दृ' (विदारणार्थक) या 'द्रु' (हिंसार्थक) + उ = द्रु, द्रु (गमनार्थक) + उ= द्रु । अर्थ-जो ऊपर की ओर बढ़ता है (ऊर्ध्वं गच्छति) । द्रुम, शाखा, (७) द्रुम की शाखा ।
'आतू षिञ्ज हरिमीं द्रोरुपस्थे'
ऋ. १०.१०१.१०, नि. ४.१९.
हे अध्वर्यु, तू इस हरे रंग के सोम में लकड़ी के बने बर्तने से जल डाल या इस हरे सोम को द्रोण कलश के ऊपर ढाल ।

द्युक्ष- न. (१) अन्नधन । 'द्यु + क्षि + ड = द्युक्ष ।
'इन्द्र द्युक्षं तदाभर'
ऋ. ५.३९.२, साम. २.५२३
(२) पु. । कान्तिमान्, प्रकाश स्वरूप ।
'मदाय द्युक्ष सोमपाः'
ऋ. ८.३३.१५, ८.६६.६
'द्युक्षाय दस्म्यं वचः'
ऋ. ८.२४.२०, अ. २०.६५.२, आश्व.गृ.सू. १.१.४.
(३) परम तेजस्वी, द्युतिमान
'द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतम्'
ऋ. ८.८८.२. अ. २०.९.२, ४९.५, साम. २.३६.
(४) अन्तरिक्ष के समान ऊंचा (५) सूर्य के समान तेजोयुक्त ।
'द्युक्षं मित्रस्य सादनम्'
ऋ. १.१३६.२.
सबके स्नेही प्राणवत् जीवनप्रद मित्र अर्यमन् और वरुण का या सर्व श्रेष्ठ दुःखों के वारण करने वाले पुरुष का आसन पद (सादनम्) अन्तरिक्ष के समान ऊंचा और सूर्य के समान तेजो युक्त हो ।
(६) द्युलोक में निवास करने वाला ब्रह्म । द्यु + क्ष ।
'अध द्युक्षं सचेवहि'
ऋ. ८.६९.१६, अ. २०.९२.१३
(७) प्रकाशमान अग्नि ।
'द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम्'
ऋ. २.२.१
(८) सुन्दर, ।
'यन्यमन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षंतदा भर'
ऋ. ५.३९.२, साम. २.५२३.
हे इन्द्र, जो कुछ आप सुन्दर अच्छा समझते हो (यत् द्युक्षं वरेण्यं मन्यसे) उसे हमें दो (तत् आभर)

द्युक्षवचाः- (१) कान्तिवत् उत्तम वाणी का कहने वाला (२) अग्नि ।
'विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिः'
ऋ. ६.१५.४

द्युक्षा- (स्त्री.) (१) द्यु + क्षि + ड = द्युक्ष । दिवि प्रकाशे निवासो यस्य (जिसका प्रकाश में निवास हो)-दया. (२) विजय कार्य में लगी हुई सेना ।
'रोहिच्छ्यावा सुमदंशुः ललामीः
द्युक्षा राय ऋजाश्वस्य'
ऋ. १.१००.१६
खूब साधे हुए, युद्ध कुशल अश्वों और अश्वारोहियों के स्वामी सेनापति की लाल पोषाक वाली (ललामीः) और श्याम वर्ण के अस्त्र शस्त्रों से युक्त, उत्तम व्यापक साधनों से युक्त या स्वयं बड़ी पौरुष युक्त, वीर पुरुषों से बनी विजय कार्यों में लगी हुई (द्युक्षा) सेना अति वेग और उत्साह से जाने वाली होकर (सुमदंशुः)
अथवा, लाल और नीली अग्नि की ज्वाला, उत्तम किरणों वाली प्रदीप्त शिखा ।

दुग्धा - दुग्ध पूर्णा, दुधार ।

'दुग्धाभ्यः गोभ्यः'
(दुधार गायों से या दूध भरे गांठों से)।

द्युगत केशी-(१) भूमि पर जाने वाला अश्व, (२) तेजस्वी पुरुष।
'अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः'
ऋ. ८.९७.४, साम. १.२६४

द्रुग्ध- (१) द्रोही शत्रु।
'दूरस्या द्रुग्धो भियसा निगारीत्'
ऋ. ५.४०.७
(२) हिंसक कर्म व्यवस्था का द्रोही, (३) कर्म व्यवस्था का द्रोही (४) उन्मार्गगामी पुरुष।
'विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम्'
अ. १.१०.२
(५) द्रोह आदि अपराध।
'अवद्रुग्धानि पित्र्या सृजानः'
ऋ. ७.८६.५

द्रुघण- (१) वह पदार्थ जिस पर बढई लकड़ी रख कर काटता है (२) प्राण।
'वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः'
अ. ७.२८.१
(३) द्रु + घन = द्रुघण। द्रुममयः घनः (द्रुममयघन)। अर्थ है मुद्गर। लोक में इसका अर्थ है कुठार। द्रुः हन्यते इति द्रुघणः (इससे वृक्ष काटा जाता है)।
(४) द्रु + मयट् = द्रुम, हन् + अप = घन (हन् का घन आदेश)। 'मूर्त्तौ घनः' (पा. ३.३.७७) से हन् का नियातन्।
घन काठिन्य का वाचक है। मुद्गर कठिन है। अमर कोष में भी कहा है- 'द्रुघणो मुद्गरघनौ' द्रुममप श्चासौ घनश्च।
आधुनिक अर्थ- मुद्गर हथौड़ा सा बना एक अस्त्र, कुल्हाड़ी, ब्रह्मा का एक विशेषण
'इमं तं पश्य वृषभस्य युज्जं
काष्ठायामध्ये द्रुघणं शयानम्
येन जिगाय शतवत् सहस्रं
गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु'
ऋ. २.१.१०, १०२.९, नि. ९.२४.
किसी से पूछे जाने पर मुद्गल ऋषि कहते हैं- इस सामने पड़े हुऐ मेरे उस सहायभूत वृषभ के सखारूप संग्राम के बीच सोए हुए मुद्गर को देख (इमं तं वृषभस्य काष्ठायाः मध्ये शयानम् द्रुघणम्) जिस मुद्गर से (येन) सहस्र संख्यक या बहुंसख्यक गौएं (शतवत् गवां सहस्रम्) मुद्गल ने जीतीं (अजैषम्)।

दुघा- (१) दुही जाने वाली, दूध देने वाली गौ, (२) ब्रह्म रस का दोहन करने वाली प्रकाश धारा
'इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानाम्'
ऋ. १०.६७.६, अ. २०.९१.६

दुच्छुना- (१) दुःख दायी फलों को लाने वाली तृष्णा, (२) दुष्टं शुनं सुखम् अस्याम् इति वा श्वा इव दुष्टा इति वा।
(इसमें दुष्ट सुख है अथवा कुत्ते के समान दुष्टा है)। (२) अनिष्ट कारिणी क्षम देवता।
'द्यौष्पितर्यावय दुच्छुना या'
अ. ६.४.३
(४) जिससे सुख निकल गया हो (दुर्गतम् शुनम् सुखम् यस्याःसा) -दया. (५) दुःखदायी सुखनाशिनी शत्रुसेना, (६) सुख न देने वाली दुश्चेष्टा। (७) दुःखदायिनी प्रकृति।
'स्वा तं ममर्तु दुच्छुना हरस्वती'
ऋ. २.२३.६

द्रुण- (१) शीघ्र गति से जाने वाला दूत।
'अग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूति मूदिम'
ऋ. १.१६१.१

द्रुणानः- (१) गच्छन् (जाता हुआ)। 'द्रु' धातु हिंसा, गति और कौटिल्य अर्थ में प्रयुक्त है।
'द्रूणानः' में 'आन' और दीर्घ आर्ष है (आनदीर्घावार्षौ) (२) हिंसन् (हिंसा करता हुआ।

द्युतद्यामा- (१) द्युतत् + यामा। यामा याम अर्थात् प्रहारों को प्रकाश करती हुई उषा, (२) द्युत + द्यामा। अर्थ -कामनावान् व्यवहारविद् तेजस्वी पति को अथवा इस पृथिवी को अपने गुणों से चमका देने वाली स्त्री या उषा।
'द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन'
ऋ. ५.८०.१
(३) चमकने मार्ग वाला।
'द्यूतद्यामानं वावृधन्त नृणाम्'
ऋ. १०.९३.१२

द्यूत- जला हुआ अंग।
'यत्ते रिष्टं यत्ते द्यूतम्'

अ. ४.१२.२

द्युतानः- (१) सदा चमकने वाला अग्नि (२) परमेश्वर ।
'द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरम्'
ऋ. ६.१५.४
(३) प्रकाशमान सूर्य ।
'अध द्युतानः पित्रोः संचासा'
ऋ. ४.५.१०
(४) तेजस्वी होता हुआ ।
'द्युतानो वाजिभिर्यतः'
ऋ. ९.६४.१५

दुहे - बार बार दूध दिया ।
'इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु'
ऋ. ८.७.१०, ६९.६, अ. २०.२२.६, ९२.३, साम. २.८४१, तै.ब्रा. २.७.१३.४.
गायों ने इन्द्र के लिये बार बार दूध दिया ।

दुर्दशीक- कठिनता से दीखने वाला विषैला जीव ।
'अजकावं दुर्दृशीकं तिरोदधे'
ऋ. ७.५०.१

दुध्र- (१) शत्रु से अजेय ।
'दुध्रो गौरिव भीमयुः'
ऋ. ५.५६.३
(२) दुर्धर, बलशाली ।
'नयं दुध्रा वरन्ते न स्थिरां मुरः'
ऋ. ८.६६.२ साम. २.३८.
'यः सुन्वते पचते दुध्र आचित्'
ऋ. २.१२.१५, अ. २०.३४.१८.
(३) दुह् (प्रपूरणार्थक) + र = दुध्र । दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला - इन्द्र - (४) विद्या से पूर्ण -दया.
'दुध्र आभूषु रामयनि दामनि'
ऋ. १.५६.३
दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला इन्द्र (दुध्रः) दुष्टों को कारागृहों में रमाने वाला है (आभूषु रामयन) -सा. । विद्या से पूर्ण कर (दुध्रः) प्रसन्नता में रमण करने वाले (रामयन्) (४) बलपूर्ण -दया. ।
'दुध्र आभूषु रमयन् निदामनि'
ऋ. १.५६.३
बलपूर्ण पति को तू गृहस्थ बन्धन में बांध ले और वह पति तुझे सब प्रकार की विभूतियों ऐश्वर्यों और भूमियों में या देशों में (आ भूषु) सब प्रकार प्रसन्न रखे (रामयन्) ।
(६) धारण करनेयो, असह्य बल ।

दुध्रकृतः- ब.व. । वायुओं का विशेषण । अर्थ है-धारण करने योग्य या असहाय बल को करने वाले वायुगण या वीर पुरुष ।
'दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः'
ऋ. १.६४.११

दुध्रवाक् - बड़ी कठिनता से धारण करने योग्य वाणी का स्वामी शासक ।
'सोममादोविदथे दुध्रवाचः'
ऋ. ७.२१.२

दुधानः - (१) प्रपूरक, (२) प्रदान करने वाला ।
'दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः
पन्थासो यन्ति श्वसापरीताः'
ऋ. १.१००.३
सूर्य के रश्मिगण (दिवः रेतसः) जिस प्रकार जलों के प्रदान करने वाले होते हैं (दुघानाः) और बल या व्यापक सामर्थ्य से युक्त (शवसा) या सबसे बढ़कर दूर तक जाते हैं । ....

दुधि- हिंसक, शत्रुहिंसक ।
'स्यूमगृभे दुधयेऽर्वतेच'
ऋ. ६.३६.२.
(२) दुर्गम्य ।
'दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानसा'
ऋ. १०.१०२.६

दुधितः - पूर्ण -दया. (२) आकाश में फैला हुआ ।
'नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौः'
ऋ. ४.१.१७
(३) दूर दूर तक स्थित ।
'सीव्यन् तमांसि दुधिता समव्ययत्'
ऋ. २.१७.४

दुन्दुभ्य- दुन्दुभि को उठाने वाला या बजाने वाला ।
'नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च'
वाज.सं. १६.३५. तै.सं. ४.५.७.१, मै.सं. २.९.७, १२५.११, का. सं. १७.१४.

दुन्दुभि - (१) एक बाजा, (२) भीतरी नाद, (३) द्वन्द्व युद्ध में शोभायमान होने वाला राजा ।
'क एषां दुन्दुभिं हनत्'

अ. २०.१३२.९
(क) – दुन्दुभि का युद्ध में प्रयोग होता है। इस के बजाने से –दुन्दुभ दुन्दुभ–जैसी ध्वनि होती है (दुन्दुभ्यति) । दुन्दुभ् + भा + कि = दुन्दुभि ।
यह शब्द शब्दानुकरण से निर्मित हुआ है ।
(ख) द्रुमः भिन्नः (दुन्दुभि द्रुम के एक अंश से निकालकर चमड़े से मढ़ा हुआ एक बाजा है । (द्रुमैक देशात् निष्कुमितः चर्मणा पिनद्धः)
(ग) द्रुम + भिद् = द्रुमद्भि= दुन्दुभि
(घ) शब्दार्थक दुन्दुभ धातु से निष्पन्त है । देवराज यज्वा तथा सायण ने इस धातु को वधार्थक माना है ।
'स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैः
दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून् '
ऋ. ६. ४७.२९,. अ. ६.१२६.१, वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६, का.सं. (आश्व.) ६.१., नि. ९.१३.
हे दुन्दुभि, इन्द्र के साथ प्रसन्नतापूर्वक (इन्द्रेण सजूः) तथा और देवों के साथ (देवैः) शत्रुओं को दूर से दूर (दूराद् दवीयः) भगा दे (अपसेध) ।

द्युभक्त – (१) बहुत दिनों तक सेवन करने योग्य ऐश्वर्य ।
'द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु '
ऋ. ७.४०.२
(२) दीप्तियुक्त, (३) इच्छापूर्वक प्राप्त ।
'आदिद् रत्नं धारयन्तं द्युभक्तम् '
ऋ. ४.१.१८

द्युभक्ता– (१) तेजोयुक्त स्वच्छ अन्न खाने वाली गौ, ।
'स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः '
ऋ. १.६३.६

द्युभिः– (१) द्योतनात्मक यज्ञ के दिन पौर्णमास आदि से ।
(२) अग्नि को पौर्णमास आदि यज्ञों में ऋत्विज् अरणियों से मथ कर निकालते हैं । अतः 'द्यु' से अग्नि की उत्पत्ति बतलाई गई है, (३) सूर्य की किरणों से भी विद्युत् की उत्पत्ति होती है । द्योतन् शील किरण भी द्यौ है ।
'त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिः '
ऋ. २.१.१., वाज.सं. ११.२७, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.१०, का.सं. १६.२, तै.आ. (आ.) १०.७६, कौ.ब्रा. २१.४, नि. ६.१, १३.१.

द्युमत् – द्युतिमान् ।
'आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तम् '
ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१.
हे इन्द्र । द्युतिमान् धनराशि हमें दे ।

द्युमत् – प्रकाशयुक्त ।

द्युमत्तमम् – (१) सुख जोर शोर से, दम दमा कर ।
'इह द्युमत्तमं वद
जयतामिव दुन्दुभिः '
ऋ. १.२८.५, आप.श्रौ.सू. १६.२६.१, नि. ९.२१.
हे ओखल, तू विजयी राजाओं की दुन्दुभि की तरह खूब ध्वनि कर (द्युमत्तमंवद)
(२) प्रकाशवान् और ज्ञानवान् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ
(३) इन्द्र या परमेश्वर का विशेषण ।
'शचीव इन्द्र पुरुकृत् द्युमत्तम '
ऋ. १.५३.३, अ. २०.२१.३.

द्युमती इष – (१) आकाश से आने वाली विद्युत्
(२) सूर्य के तेज से युक्त वृष्टि ।
'तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व
वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः '
ऋ. ७.५.८

द्युम्नम्– द्युत् (दीप्ति अर्थ में) + न = द्युम्न (म का आगम) । अर्थ है– (१) दीप्तिमान (२) यश, (३) बल, (४) अन्न ।
'अस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धहि '
ऋ. ७.२५.३, नि. ५.५.
हे इन्द्र, हमारे लिए दीप्तिमान् यश, बल एवं रत्न दे ।

द्युम्नवत् ब्रह्म – (१) उत्तम कीर्तियुक्त ऐश्वर्य, (२) तेजोयुक्त वेदवचन ।
'द्युम्नवत् ब्रह्म कुशिकास एरिरे '
ऋ. ३.२९.१५

द्युम्नश्रवाः– (१) धन, यश और श्रवणीय ज्ञान से सम्पन्न ।
'द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत '
ऋ. ५.५४.१

द्युम्नसाति– (१) प्रकाश, यश, बल या अन्न की प्राप्ति ।
'द्युम्नसाता वरीमभिः '

ऋ. १.१३१.१

द्युम्नासाह- (१) जल बरसाने वाला मेघ, (२) ऐश्वर्य को विजय करने वाला शत्रु ।

द्युम्नहूति- (१) धन के निमित्त पुकार, (२) ऐश्वर्य के निमित्त पुकार ।

'वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ'

ऋ. ६.२६.८

(३) यश सूचक स्तुति (४) तेजोमय स्वरूप का वर्णन करने वाली स्तुति ।

'आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिः
यजत्रं द्युम्नहूतिभिः'

ऋ. १.१२९.७

दानशील या सत्संग करने वाले उत्तम पुरुष को जिस प्रकार यश सूचक स्तुतियों द्वारा पहुंचते हैं उसी प्रकार हम ऐश्वर्यवान् इन्द्र को भी सत्य (सत्याभिः) उसके तेजोमय स्वरूप का वर्णन करने वाली स्तुतियों से (द्युम्नहूतिभिः) खूब भली प्रकार अपने साथ जोड़ ले (आपृचीमहि) ।

द्युम्नितमः- (१) सबसे अधिक यश, अन्न और तेज से युक्त ।

'द्युम्नितम उतक्रतुः'

ऋ. १.१२७.९, १७५.५.

(२) सबसे अधिक तेजस्वी प्रकाशवान्

द्युम्नी- (१) यशस्वी, (२) प्रशस्तधनी, (३) सोम का विशेषण, (४) कान्ति, तेज ओज आदि का जनक शुक्र (वीर्य) ।

'द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः'

ऋ. १.९१.२, मै.सं. ४.१४.१, २१४.७, तै.ब्रा. २.४.३.८.

द्रुपदे-द्रुपद (१) 'द्रममयः पदः' से द्रुपद हुआ है । अर्थ है - पादुका, (२) पादुकाख्य स्नान में अधिष्ठित कन्याएं ।

'कनीनकेव विद्रधे
नवे द्रुपदे अर्भके
बभ्रू यामेषु शोभते'

ऋ. ४.३२.२३, नि. ४.१५.

द्रुपदा - (१) द्रुपदा, पादुका, खड़ाऊं ।

आधुनिक अर्थ- पाञ्चालों का राजा द्रुपद है ।

द्रुम- द्रुम । दृ (विदारण अर्थ में) + नु = द्रु,दृ (हिंसार्थक) + उ = द्रु , द्रु (गत्यर्थक) + डु = द्रु , द्रु + म = द्रुम । अर्थ है-(१) वृक्ष, (२) वृक्ष की शाखा जो ऊपर की ओर जाती है । (ऊर्ध्वं गच्छति) (३) द्रु वाला अर्थात् शाखा वाला वृक्ष ।

दुर् - (१) द्वार । अंग्रेजी का Door शब्द दुर् से ही बना है । (२) वृष्टि ऐ.ब्रा. वृष्टिर्वै दुरो वृष्टिमेव तत्प्रीणाति वृष्टि मन्नादय यजमानोदधाति (३) दुष्ट, बुरा, । 'सुम्न' का विपरीतार्थक उपसर्ग ।

दुरः- दाता ।

'दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि'

ऋ. १.५३.२, अ. २०.२१.२.

हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर, तू अश्वों और अग्नि आदि व्यापक तत्त्वों का दाता है । तू गौओं का दाता है ।

दुरघ्नी- दुष्ट अन्न का भोजन ।

'पाहि दुरद्मन्यै'

वाज.सं. २.२०, तै.सं. १.१.१३.३, का.सं. १.१२., श.ब्रा. १.९.२.२०., तै.ब्रा. ३.३.९.९.

दुरस्यती- दूसरों का बुरा चाहने वाली दुष्ट प्रवृत्ति

'सोमोहन्तु दुरस्यतीः'

अ. ७.११४.२

दुरदभ्ना- कठिनता से दबाई जाने वाली -वश में आने वाली गौ ।

'दुरदभ्ना हि उच्यसे'

अ. १२.४.४

दुर्ग - दुर + गम् + उ = दुर्ग, अर्थ है- (१) दुर्गमनीय, जिसे कोई पार न कर सके ।

'स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा'

ऋ. १.९९.१, अ. ७.६३.१, तै.आ. १०.२.१, महा.ना.उप. ६.२.नि. १४.३३.

वह अग्नि हमारे दुर्गमनीय दुःखों से हमें पार करें (अति पर्षत्)

आधुनिक अर्थ -जंगल, नदी या पर्वत का संकीर्ण पथ, किला राजभवन, ऊबड़ खाबड़ भूमि, आपत्ति, कठिनाई ।

दुर्गन्धिः- दुर्गन्ध पदार्थों का सेवी ।

'दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्'

अ. ८.६.१२

दुर्गह- दुःख से प्राप्त करने योग्य संकट, (२) दुर्ग्राह्य, (३) अविज्ञेय ।

'इन्द्रो विश्वानि अति दुर्गहाणि'
ऋ. ६.२२.७, अ. २०. ३६.७.
'न पातो दुर्गहस्यमे'
ऋ. ८.६५.१२
(४) कठिनता से पार करने योग्य

दुर्गहा- (१) बड़े-बड़े दुःख से प्राप्त होने वाले और बीतने योग्य जन्म ।
'नाहमतो निरया दुर्गहैतत्'
ऋ. ४.१८.२

दुर्गा- दुःख प्रद ।
'दुर्गा तस्या अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता'
अ. १२.४.२३

दुर्गृभिः- (१) दुःखेन ग्रहीतुं योग्यः (दुःख से ग्रहण करने योग्य, - दया.
(२) असह्य, (३) तीव्र ताप के कारण स्पर्श नहीं करने योग्य, (४) दुर्दान्त, (४) शत्रुओं के वश में न आने वाला ।
'भीमो न ऋङ्गा ददिधावदुर्गृभिः'
ऋ. १.१४०.६
सूर्य भयंकर पशु के समान असह्य होकर किरण रूप श्रृंगों को खूब तीव्रता से फेंकता है । (६) अग्नि, (७) राजा ।

दुर्गृभिश्वण् - गृह् + इक् = गृहि= गृभि, दुर् + गृभि+ श्वन् = दुर्गृभिश्वन् । अर्थ (१) दुःख से ग्रहण किए जाने वाला पकड़ने वाला कुत्ता, (२) कुत्तों के समान टुकड़ो पर जीने वाला वेतनधारी नौकर या भेदिया, (३) वृत्र का विशेषण, (४) बेकाबू इन्द्रिय ।
'वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनः
निजघन्थ हन्वोरिन्द्रतन्यतुम्'
ऋ. १.५२.६
हे इन्द्र, जब तू नीचे फैले दुःख के ग्रहण करने योग्य कुत्ते के समान (दुर्गृभिश्वनः) वृत्र या शत्रु या मेघ के हनुओं में गर्जन करने वाले वज्र को चलाकर मारता है ।

दुर्णश - अविनाशी ।
'एना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक्'
अ. ५.११.६

दुर्णामचातनः- (१) दुष्टख्यातिवाले पुरुषों का नाशक (२) बुरे नाम वाले त्वाचा रोग का नाशक शतवार ओषधि ।
'मणिर्दुर्णाम चातनः'
अ. १९.३६.१
(३) 'दुर्णाम' कुष्ट नामक रोग को दूर करने वाला, (४) दुष्ट नाम वाले दुष्ट रोग से पीड़ित पुरुष को दूर करने वाला ।
'बजं दुर्णाम चातनम्'
अ. ८.६.३

दुर्णामा- (१) बुरे नाम या स्वरूप वाला कुष्ठ आदि रोग ।
'तमाहं दुर्णाम्नां शिरः
वृश्चामि शकुने रिव'
अ. २.२५.२
'दुर्णामा योनिमाशये'
ऋ. १०.१६२.१, २. अ.२०.९६.११,१२, नि. ६.१२
(२) कुष्ठी, (३) पाप रोगी (दुर्नामा कृमिर्भवति पापनामा) क्रिमिः क्रव्ये मेकति । क्रमतेर्वा स्यात् सरण कर्मणः क्रामतेर्वा
'दुर्णामा तत्र मागृधत्'
अ. ८.६.१
(३) दुर् + नामन् = दुर्णामा दुःखदं यस्य तत् । अर्श या क्रिमि नाम का एक रोग जो गर्भाशय में जाकर गर्भ नष्ट करता है ।
(४) पाप नामक क्रिमि

दुर्णाम्नी- (१) बुरे रूप रंग वाली व्याधि ।
'दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचः'
अ. ४.१७.५, ७.२३.१.
(२) कामिनीस्त्री ।
'शतमहं दुर्णाम्नीनाम्'
अ. १९.३६.६

दुर्णिहितैषिणी - शत्रुओं का हित न चाहने वाली सेना ।
'रिशां दुर्णिहितैषिणीम्'
अ. ११.९.१५

दुर्धर - (१) दुर्धर, अदम्य ।
'अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरम्'
ऋ. १.५७.१, अ. २०.१५.१.
(२) जिसे पकड़ा नहीं जा सके, बेरोक ।

दुर्धर्तु- दुःखदायी कष्टों को भी संभालता हुआ ।
'स्यात दुर्धर्तवो निदः'
ऋ. ५.८७.९

दुर्धरीतुः- पराजित न होने वाला ।

'शासा मित्रं दुर्धरीतुम्'
ऋ. १०.२०.२

दुर्धा- (१) दुःस्थिति ।
'दुर्धा दधाति परमे व्योमन्'
ऋ. १०.१०९.४, अ. ५.१७.६.
(२) दुर्धारणीय प्रकृति ।

दुर्धित- (१) दुःख से प्राप्त किया (२) कष्ट से सुरक्षित ।
'इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि'
ऋ. १.१४०.११
हे अग्रणी नायक, विद्वन्, पालक पति या अग्नि, दुःख से प्राप्त किए कष्ट से सुरक्षित प्रिय धन आदि के भी ऊपर यह सुख से धारण करने योग्य (सुधितम्) ।

दुर्धुर्- कठिनता से वश में लाये जाना वाला ।
'वृथा गावो न दुर्धुरः'
ऋ. ५.५६.४

दुर्नियन्ता- (१) दुःख से शासन करने वाला, (२) अन्याय मार्ग से जाने वाला राजा ।
'दुर्नियन्तुः परिप्रीतोनमित्रः'
ऋ. १.१९०.६
(३) बड़ी कठिनता से वश में लाए जाने वाला, । (४) दुष्ट पुरुषों को भी नियन्त्रण करने में समर्थ ।
'सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवः'
ऋ. १.१३५.९

दुर्भृति- (१) दुःख या कष्ट से भरण पोषण करना, ।
'मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु'
ऋ. ७.१.२२

दुर्मतिः - (१) दुष्टमति या बुद्धिवाला
'वधैरजेत दुर्मतिम्'
ऋ. १.१२९.६, नि.१०.४२
वह इन्द्र वधों के द्वारा दुष्ट बुद्धि वालों पर विजय प्राप्त करें । (२) दुष्ट मतिवाला, (३) दुर्मति शत्रु- (४) दुर्जन-दया. ।
'परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनाम्'
ऋ. १.१२९.८
इन्द्र दुर्मति शत्रुओं के संग्राम में ।
राजा दुर्जनों के परिवर्तन में-(दया.)

दुर्मद - (१) दुर्दान्त, अदम्य पुरुष ।
'पुरुष व्याघ्राय दुर्मदम्'
वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.
(२) दुष्ट मद से युक्त ।
'दुर्मदासो न सुरायाम्'
ऋ. ८.२.१२, नि. १.४.
(३) अभिमानी, (४) दुर्मित्र, (५) यदमत्त, (६) बुरा पापमय मद (७) भोगविलास में तृप्त रहने वाला व्यसनी, (८) अपनी प्रजा पर अत्याचार और अन्याय के उपायों से भोग विलास पूर्ण करने वाला पुरुष ।
'अयोद्धेव दुर्मद आहि जुह्वे'
ऋ. १.३२.६, तै.ब्रा. २.५.४.३,

दुर्मन्- (१) यः दुष्टं मन्यते (जो दुष्ट मनन करता है) । (२) दुष्ट कल्पना वाला पुरुष

दुर्मन्तु - (१) दुर्विज्ञेय ।
'दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम'
ऋ. १०.१२.६, अ.१८.१.३४.
(२) मनन करने या समझने में कठिन

दुर्मन्मन् - (१) विपरीत ज्ञान का नाशक, (२) दुःख या कठिनता से मनन करने योग्य, (३) दुर्विज्ञेय परमेश्वर या आत्मा का रूप ।
'दुर्मन्मानं सुमन्तुभिः
एमिषा पृचीमहि'
ऋ. १.१२९.७
उत्तम मनन करने योग्य ज्ञानी और मननशील पुरुषों द्वारा (सुमन्तुभिः) उपदेश प्राप्त कर हम विपरीत ज्ञान के नाशक, एवं दुःख और कठिनता से मनन करने योग्य, दुर्विज्ञेय परमेश्वर या आत्मा के रूप को (दुर्मन्मानम्) इच्छा या प्रेरणा द्वारा (इषा) प्राप्त करें ।
(४) दुष्ट चित्त वाला
'दुर्मन्मा कश्च वेनति'
ऋ. ८.६०.७

दुर्मायु- (१) दुःखदायी शब्द करने वाला ।
'दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासः'
ऋ. ३.३०.१५

दुर्मित्रासः-शत्रु, = दुष्ट, द्रोही ।
'दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिनानाः
जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे'
ऋ. ७.१८.१५, नि. ६.६.
दुष्ट कलावान् बनिए (दुर्मित्रासः प्रकलवित् मिनानाः) सभी भोज्य पदार्थ या धन सुदास

नामक राजा को या अच्छा दान देने वाले यजमान देने लगे ।
धूर्त तौलने वाले व्यापारी लोग (मिनानाः प्रकलवित्) उत्तमदाता ब्राह्मणादिकों के लिये (सुदासे) सब प्रकार से भोज्य पदार्थ दें ।

दुर्य – (१) गृहवासी, (२) गृहस्वामी, (३) अग्नि, ।
'दृहन्तां दुर्याः पृथिव्याम्.'
वाज.सं. १.११, श.ब्रा. १.१.२.२२.
'प्रजावतीषु दर्यासु दुर्य'
ऋ. ७.१.११
(४) दूर + यत् = दुर्य । अर्थ-गृह का, गृह सम्बन्धी ।
'प्रिया अर्यम्णो दुर्या अशीमहि'
ऋ. १०.४०.१२, अ. १४.२.५, आप.मं.पा. १.७.११.
(४) द्वारों में प्रवेश करने वाला, (६) सब द्वारों एवं मार्गों में व्यापक, (६) सर्वत्र हितकारी परमेश्वर ।
'नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुः'
ऋ. २.३८.५
(८) द्वारों वाला नगर ।
'अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्'
ऋ. १.९१.१९, वाज.सं. ४.३७,तै.सं. १.२.१०.१, का.सं. ११.१३, मै.सं. ४.१२.४, १८८.१२, ऐ.ब्रा. १.१३.२४, श.ब्रा. ३.३.४.३०

दुर्वःयूपः– (१) द्वारस्थ स्तम्भ ।
'पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः'
ऋ. १.५१.१४.
द्वारस्थ स्तम्भ की तरह (२) द्वारस्थित यूप ।

द्युराजिः – (१) ज्ञान से चमकने वाला ।
'देवाः द्युराजयोदेहिनः'
अ. १९.२०.३

दुराधिः– (१) दुःखदायी व्याधि ।
'मा नो अज्ञाता वृजनादुराध्यः'
ऋ. ७.३२.२७, अ. २०.७९.२, साम. २.८०७, पंच ब्रा. ४.७.५.

दुराधी– (१) दुष्टचिन्तक मनुष्य ।
'दुराध्ये मर्ताय'
ऋ. ८.७१.७
(२) दुष्टबुद्धि या आचार वाला ।
'दुराध्यो अदितिं श्रेवयन्तः'
ऋ. ७.१८.८

दुरापना– मुश्किल से वश में नहीं आने योग्य ।
'दुरापना वात इवाहमस्मि'
ऋ. १०.९५.२, श.ब्रा. ११.५.१.७.

दुराशीः– (१) दुर्भावना ।
'न यं शुक्रोन दुराशीः'
ऋ. ८.२.५

दुराहा– (१) दुर् + आहा = दुराहा । स्वाहा का प्रतिकूलार्थक शब्द । 'स्वाहा' देवताओं का स्वागतार्थक शब्द है । दुराहा स्वाहा का विपरीतार्थक, (२) अपकीर्त्ति ।
'स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः'
अ. ८.८.२४

दुर्या– (१) गृहिणी, (२) गृह में बसी स्त्री ।
'प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य'
ऋ. ७.१.११
(३) राज्य गृह (४) शत्रु-निवारक सेना या प्रजा ।
'स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्'
ऋ. ४.१.९

दुर्युज्– (१) कुमार्गगामी, (२) मुश्किल से रथ में । लगाए जाने वाला अश्व
'अश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे'
ऋ. १०.४४.७, अ. २०.९४.७.

दुर्योण – दुःखदायी ।
'निदुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत्'
ऋ. १.१७४.७
दुःखदायी रणांगन में कुत्सित वाणी बोलने वाले को खूब मारो ।

दुर्वतुः– (१) दुर्निवार्य, (२) अग्नि ।
'दर्वतुर्भीमो दयते वनानि'
ऋ. ६.६.५, नि. ४.१७.
दुर्निवार्य, प्रचन्ड अग्नि वन को जलाता है (दयते) । (२) दूर् + वृ + तुन् = दुर्वर्तु, अर्थ है दुर्वार (जिसका वारण न किया जा सके) ।
'अध जिह्वा पापतीति प्रवृष्णो
गोषुयुधो नाशनिः सृजाना
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेः
दुर्वर्तु र्भीमो दयते वनानि'
ऋ. ६.६.५.
अनन्तर (अध) प्रवर्षिता अग्नि की ज्वाला (प्रवष्णः जिह्वा) लकड़ियों पर बार बार जाती

है (पापतीति) जैसे गौ के लिए असुरों से युद्ध होने पर असुरों के प्रति वज्र जाता है (गोषु युधो सृजाना अवनिः न) और शूरवीर योद्धा के छिन्न भिन्न एवं रुग्ण शत्रुओं से प्रकीर्णमार्ग से समान (शूरस्य प्रसितिःइव) अग्नि का मार्ग (अग्नेः क्षातिः) दुर्वारणीय है (दुर्वतुः) अर्थात् दावाग्नि की लपट कोई रोक नहीं सकता ।

चन्द्रमणि विद्यालङ्कार का अर्थः- और राज्य के लिए भली प्रकार युद्ध करने वाले बलवान् राजा के फेंके हुए वज्र की तरह (अधगोषु युधः वृष्णः सृजाना अशनिःन) प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला का पात होता है (जिह्वा प्रपाततीति) । पदार्थों को नष्ट करने वाली यह ज्वाला (क्षातिः) शूर पुरुष के बन्धन की तरह है (शूरस्य प्रसितिः इव) । यह दुर्निवार्य अग्नि वनों को दग्ध कर देता है (दुर्वतुः भीमः वनानि दयते) ।

दुर्वाच् - (१) बदनाम करने वाली पाप व्याधि (२) दुःख जनक चीत्कार या बड़बड़ाहट पैदा करने वाली बीमारी ।

'दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचः '

अ. ४.१७.५, ७.२३.१.

दुर्विदत्र - (१) दुः + विदत्र । दुःख दायी धन वाला, (२) दुर्ज्ञेय प्रभु ।

'आरे मन्युं दुर्विदस्य धीमहि '

ऋ. १०.३५.४

दुर्विद्वान् - (१) दुर्गुणि विद्वान् ।

'दुर्विद्वांसम् रक्षस्विनम् '

ऋ. ७.९४.१२

दुर्हृणः- शत्रुभिः दुर्लभं हृणं प्रसह्यकरणं यस्य सः (विरोधियों पर असह्य या विरोधियों से असह्य)

दुर्हणा- (१) कठिनता से नाश होने योग्य दुस्साध्य शत्रु सेना (२) दारिद्रय आदि विपत्ति (३) दुर्गति, (४) दुष्टाचार ।

'त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः
पाहि वज्रिवो दरितात् अभीके '

ऋ. १.१२१.१४

दुर्हृणायत् - दुःखदायीरूप से हिंसा करने वाला दुष्टपुरूष ।

'अवस्म दुर्हृणायतः मर्त्तस्य तनुहिस्थिरम् '

ऋ. १०.१३४.२, साम. २.४४२.

दुर्हणावान् - (१) अति दुःसह पीड़ा देने वाला प्रभु, (२) दुःखदायी, (३) पीड़ा देने वाला ।

'मोष्वद्य दुर्हणावान् '

ऋ. ८.२.२०

'यो अस्मत्रा दुर्हणावां उपद्वयुः '

ऋ. ८.१८.१४

दुर्हार्दः - (१) दुष्ट हृदय ।

'चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः '

अ. २.७.५, १९.४५.१.

'छिन्धि मे सर्वान दुर्हार्दान् '

अ. १९.२८.६.

'ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनम् '

अ. ८.३.२५

दुर्हृणायुः- (१) दुःखदायी, (२) क्रोध करने वाला, (३) दुष्ट हृदय वाला ।

'योनो मरुतो अभिदुर्हृणायुः '

ऋ. ७.५९.८, मै.सं. ४.१०.५, १५४.९, आश्व.श्रौ.सू. २.१८.३.

(४) जिसकी आयु दुर्हृण हो, प्रतापी ।

'शिमीवतो भामिनोदुर्हृणायून् '

ऋ. १.८४.१६, अ. १८.१.६.साम. १.३४१, तै.सं. ४.२.११.३, मै.सं. ३.१६.४, १९०.४, का.सं. (अश्व.) ५.२१, नि. १४.२५.

(५) दुष्ट, दुस्साध्य क्रोध का वशी ।

'यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुः '

अ. ७.७७.२, तै.सं. ४.३.१३.३, का.सं. २१.१३.

(६) 'यः दुर्हृण इव आचरति' (शत्रुओं से असह्य पराक्रम और कोप करने वाला) ।

दुरति- न. । (१) दुर् + इत) दुष्ट आचरण, (२) दुःखदायी बुरा व्यसन ।

'दुरितानि परासुव '

ऋ. ५.८२.५, वाज.सं. ३०.३, तै.ब्रा. २.४.६.३, तै.आ. १०.१०.२ , ४९.१, आप.श्रौ.सू. ६.२३.१, महा.ना.उप. ९.७, १७.७.

(३) दुर् + इ + क्र= दुरित ।

इणेश्विघृषिभ्यःक्रः । दुर्गतिः ईयते गम्यते येन तत् (जिस से दुर्गति प्राप्त होती है) । दुर्गति गमनम् , दुर्गति- प्रापकम् (दुर्गति देने वाला) (४) पाप ।

'अति क्रामन्तो दुरितानिविश्वा '

अ. १२.२.२८, नि. ६.१२.

(सभी पापों का अतिक्रमण करते हुए)।

अमरकोश में भी आया है –
'कलुषं वृजिनैनोऽघम्
अहो दुरित दुष्कृतम्'

दुरिष्टि– (१) दुष्टों जनों की संगति (२) दुष्ट कामना ।
'पाहि दुरिष्ट्यै'
वाज.सं. २.३२०, तै.सं. १.१.१३.३, का.सं. १.१२, श.ब्रा. १.९.२.२०, तै.ब्रा. ३.३.९.९.
(३) दोषयुक्त, (४) शास्त्र विधान के प्रतिकूल तामस वृत्ति ।
'या तेषामवया दुरिष्टिः'
अ. २.३५.१, मै.सं. २.३.८, ३६.१२.

दुर्हित– (१) दुःखदायी, (२) दुष्टाशय ।
'न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः'
ऋ. ८.१९.२६

दुरुक्तम्– (१) दुर्वचन ।
'नदुरुक्ताय स्पृहयेत्'
ऋ. १.४१.९, नि. ३.१६.
दुर्वचन बोलने या सुनने की चेष्टा न करे, ।

दुरेव– दुः + एव । (१) दुष्ट आचरण वाला, (२) दुर्बुद्धि
'मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन्'
ऋ. २.२३.८.
(३) दुःखेन तर्यः दुखेः (जिसे मुश्किल से तरा जाय) (४) दुष्टमर्ण में ले जाने वाला । दुर + इ (गमनार्थक) से सिद्ध ।

दुरेवा– (१) दुःखदायी गति ।
'पतिरिपो न जनयो दुरेवाः'
ऋ. ४.५.५.

दुरीकः– (१) शत्रुओं से दुःख से सेवनीय राष्ट्र या सैन्य बल (२) अग्नि, दूर दूर के घर में जाने वाला ।
'दुरोकमग्निरायवे शुशोच'
ऋ. ७.४.३

दुरोकशोचिः – दूर दूर के घरों में भी जिसका प्रकाश जाता है–अग्नि ।
'दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यः'
ऋ. १.६६.५.
जिस प्रकार अग्नि दूर दूर के स्थानों तक अपना प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार नेता भी अपना पाश दूर दूर तक फैलाने वाला है । वह कर्मों और प्रज्ञानों के कर्त्ता के समान नित्य ध्रुव स्थायी होकर अपने किए कर्मों के फलों का भोक्ता हो ।

दुरोण– दुर् + ओण । (१) दुःख से चलने योग्य अन्तरिक्ष, (२) गृह ।
'विशाम धायि विश्पतिर्दुरोणे'
ऋ. ७.७.४
(३) दुर् + अव (रक्षा करना) + खल् = दुख = दुोण । दुखाः भवन्ति दुस्तर्पाः आयासेन रक्षितव्या (अर्थात् गृह दुःख से तृप्त किए जाते हैं–गृह जंजाल में पड़कर परिवार की रक्षा करना एक दुःखमय कार्य है– गृह की रक्षा एक कठिन कार्य है ।
(४) गृह ।
'जुष्टो दमूनाः अतिथिर्दुरोणे'
ऋ. ५.४.५, अ. ७.७३.९, मै.सं. ४.११.१, १५९.३, का.सं. २.१५, तै.ब्रा. २.४.१.१, नि. ४.५.
'समिद्धो अद्य मनुषोदुरोणे'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०१.८, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.
(५) यज्ञ–गृह ।

दुरोणयुः – (१) गृह पाने का अभिलाषी, (२) दुःख से प्राप्त होने योग्य उत्तम पद की अभिलाषा करने वाला ।
'दिवस्यायु र्दुरोणयुः'
ऋ. ८.६०.१९, साम. १.३९.

दुरोणसद् – (१) बड़े–बड़े कष्ट सहन कर पालने योग्य राष्ट्र रूप गृह में विराजमान ।
'होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्'
ऋ. ४.४०.५, वाज.सं. १०.२४, १२.१४.

दुर्योण– दुःखदायी स्थान ।
'नि दुर्योण आवृणक् मृध्रवाचम्'
ऋ. ५.३२.८

दुरोषाः(१) स्थानों से दग्ध न हो सकने योग्य, (२) उत्तम गृह में रहने वाला ।
'दुरोषासो अमन्महि'
ऋ. ८.१.१३, अ. २०.११६.१, पंच.ब्रा. ९.१०.१.
(३) दुःखकारी रोष वाला, (४) सोम, (५) जो अग्नि से न जले सके, ।
'तं दुरोषमभीनरः'

ऋ. ९.१०१.३, साम. २.४९.
(६) दुस्तर क्रोध या रोष से युक्त (७) क्रोध -रहित ।
'आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता'
ऋ. ४.२१.६
शत्रुओं से सन्ताप न दिए जाने योग्य, सन्ताप रहित ।
'दुरोषासो अमन्महि'

दुवः - न. । (१) प्रार्थना आदि ।
'यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि'
ऋ. ७.२०.६
(२) प्रार्थना, (३) सेना ।
'आ यद् दुवः शतक्रतो'
ऋ. १.३०.१५, अ. २०.१२२.३, साम. २.४३६.
(४) दोआ ।
'दुवस्तेव कृणवते यतस्रुक्'
ऋ. ४.२.९
परिचर्या के अर्थ में- ।
'आयद् दुवः शतक्रतो
आ कामं जरितृणाम्'
ऋ. १.३०.१५
हे सैकड़ो प्रज्ञाओं और कर्मों में कुशल ईश्वर । तेरी जो परिचर्या है वह भी स्तोता विद्वान् पुरुषों को अभिलषित फल प्राप्त कराता है ।
पुनः-
'विदा देवेषु नो दुवः'
ऋ. १.३६.१४, मै.सं. ४.१३.१, १९९.१०, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.२३, तै.ब्रा. ३.६.१.२.
विद्वानों के प्रति हमारे अन्दर उत्तम आचरण तथा सेवा भाव आदि उत्पन्न कर ।
(५) परिचारक ।
'हृत्सु पीतासो दुवसो नासते'
ऋ. १.१६८.३.

दुवस्य- (१) दुवस् + यत । अर्थ-सेवा शुश्रूषा करने योग्य ।
'आ यद् दुवस्यात् दुवसे न कारु'
ऋ. १.१६५.१४, मै.सं. ४.११.३, १७०.५, का.सं. ९.१८.
सेवा शश्रूषा करने योग्य पुरुष से (दुवस्यात्) जिस प्रकार परिचर्या करने वाले पुरुष को (दुवसे) शिल्प साधिका बुद्धि प्राप्त होकर उसे भी शिल्प करने में कुशल कर देती है ।
(२) क्रिया होने पर अर्थ है - परिचर पूज (परिचर्या कर, पूजा कर) । 'दुवस्' धातु निरुक्त में परिचरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । (दुवस्यतिः नैरुक्तो धातुः) । कण्ड्वादि में 'द्रवस्' धातु परिताप तथा परिचरण अर्थों में आया है ।
'यमं राजानां हविषा दुवस्य'
ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, मै.सं. ४.१४.१६, २४३.७, तै.आ. ६.१.१, नि. १०.२०.
यमराजा को हवि से पूज ।

दुवस्यति- दुवस् धातु से लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है-परिचरति (परिचर्या करता है) । 'दुवस्' धातु निरुक्त में परिचरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । (दुवस्यतिः नैरुक्तो धातुः = परिचरणार्थः) ।

द्रुवयः- काष्ठमय ।
'सिंह इवा स्तानीद् द्रुवयो विबद्धः'
अ. ५.२०.२

द्रुवि- धनैश्वर्य ।
'उपश्वसे द्रवये सीदता यूयम्'
अ. ११.१.१२

दुवोयुः - परिचर्या की कामना करने वाला ।
'सतुश्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुः'
ऋ. ६.३६.५

दुश्चरित - दुष्टआचार ।
'परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाधस्व'
वाज.सं. ४.२८, श.ब्रा. ३.३.३.१३.

दुश्चित् - दुष्ट चित्त वाला ।
'अग्निर्दहुत दुश्चितम्'
अ. १२.५.६१

दुश्चित- दुःख में पड़ा ।
'दुश्चितं मृदितं शयानम्'
अ. ११.१०.२६

दुःशंस- (१) कुवाक्य बोलने वाला ।
'दुःशंस आदिदेशति'
अ. ६.६.२
(२) कुख्याति वाला, (३) बुरा बुरा उपदेश देने वाला पुरुष ।
'मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत'
ऋ. २.२३.१०, का.सं. ३५.५
(४) दुष्ट, दुःखदायी, अधार्मिक वचन बोलने वाला, बुरी ख्याति वाला दुष्ट ।

'मा नो दुःशंस ईशत्'
ऋ. १.२३.९, ७.९४.७, अ. १९.४७.६.
हम पर दुष्ट दुःखदायी, बुरा शासन करने वाले या अधार्मिक वचन बोलने वाले कभी शासन न करें ।

दुःशीमः- पराजित न होने वाला ।
'प्रतद् दुःशीमे पृथवाने वेने'
ऋ. १०.९३.१४

दुःशेव- दुःखेन शमयितुमर्हः (जिसके दुःख से शमन अर्थात् शान्त किया जा सके-दुःखदायी पुरुष) ।
'यो नः पूषन् अघो वृकः दुःशेव आदिदेशति'
ऋ. १.४२.२

द्रुषत् - द्रु + सत् । वृक्ष पर बैठने वाला- पक्षी ।
'वेर्न द्रुषत् चम्वोरासदद् हरिः'
ऋ. ९.७२.५

द्रुषद्वा - (१) द्रु + सद् + वा । अर्थ-वृक्ष पर बैठने या विराजने वाला पक्षी, (२)रथ से जाने वाला रथवान् पुरुष ।
'वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः'
ऋ. ६.३.५, मै.सं. ४.१४.१५.२४०.१२.

दुष्कृत् - (१) दुराचारी ।
'न सुगं दुष्कृते भुवम्'
ऋ. १०.८६.५, अ. २०.१२६.५
(२) पापकृत् , पाप कर्मा दुष्कर्म करने वाला
'यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः'
ऋ. ५.८३.२, नि. १०.११.
यह मेघ अशनि पात कर दुष्कर्म करने वालों का वध कर । (३) तस्कर -दुर्ग

दुष्टनु- दुस्तनुः, बुरी तरह से शरीर में फैलने वाला विष ।
'क्षुधा किलत्वा दुष्टनो'
अ. ४.७.३

दुष्टर- (१) दुर् + तर = दुस्तर । दुस्तरम् । नहीं पार पाने योग्य ।
'अकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा'
ऋ. १०.४४.६, २०.९४.६, नि. ५.२५.
जिन्होंने श्रवणीय दुस्तर कर्म किए ।

दुष्टरीतु- (१) दुस्तरीतु, अजेय, दुस्साध्य, दुस्तर ।
'त्वं सीं वृषन् अकृणोः दुष्टरीतु'
ऋ. ६.१.१. मै.सं. ४.१३.६, २०६.६, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.१.
(२) अपार सामर्थ्य वाला (३) दुःखेन तरितुम् अर्हः (दया.)
'तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे'
ऋ. २.२१.२

दुष्टिः- बिगड़ा स्वभाव, दुष्टता ।
'दुष्ट्यै हित्वा भत्स्यामि'
अ. ३.९.५.

दुष्टुतिः- (१) निन्दा वचन, दुर्वचन ।
'न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते'
ऋ. १.५३.१, अ. २०.२०.१, साम. २.२१८.
धन देने वाले के लिये दुर्वचन न कहे ।

दुष्पद् - (१) दुर्गम, (२) असहाय ।
'निचक्रेण रथ्या दुष्पदा वृणक्'
ऋ. १.५३.९, अ. २०.२१.९

दुष्प्राव्य - दुःख से प्राप्त करने योग्य ।
'दुष्प्राव्यो ऽवहन्तेदवाचः'
ऋ. ४.२५.६

दुः - (१) सायण के अनुसार 'दा' धातु के लिट् प्र.पु.व.व.का रूप है । अर्थ है- दिया (२) स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ किया है - देने वाला ।
'यं मे दुरिन्द्रो मरुतः'
ऋ. ८.३.२१.
(इन्द्र और मरुतों ने जो दान मुझे दिया है)- सब के जीवनाधार वायु के स्वामी परमेश्वर (मरुतः इन्द्रः) जिस अग्नि, सूर्य, वृष्टि आदि को देने वाला है (यं दुः) ।-(दया.)

दुःस्वप्न - (१) स्वप्नों का बुरा प्रभाव ।
'यच्च गोषु दुष्वप्न्यं'
ऋ. ८.४७.१४, आश्व.गृ.सू. ३.६.५
(२) बुरे विचारों से उत्पन्न बुरा प्रभाव
'असन्मंत्राद् दुष्वप्न्यात्'
अ. ४.९.६

द्रुह्- द्रुह् + क्विप् । द्रोही ।
'दहा शसो रक्षसः पाह्यस्मान्
द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्'
ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.८, का.सं. ६.११.

दुहन्ता- दुहन्तौ, प्रपूरयन्तौ (दुहते हुए, प्रपूरित करते हुए)। दुह् + शतृ + औ = दुहन्तौ -दुहन्ता (वेद

में औङ् का आ) ।

द्रुहन्तर- (१) विनाश करने वाला ।
'परशुर्न द्रुहन्तरः'
ऋ. १.१२७.३, साम. २.११६५.
(२) वृक्षों को खूब काटने वाला (द्रु + हन्तरः) ।
(३) शत्रुओं को नष्ट करने वाला ।

द्रुह्यवः- (१) द्रोह करने वाले विरोधी (२) द्रुह्यु नामक एक वैदिक राजवंश ।
'निगव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च'
ऋ. ७.१८.१५

दुहा- (१) ब्रह्मानन्द, (२) योग-समाधि जन्य समता-रस, (३) वृष्टि का जल ।

दुहाना- दूध देनी वाली ।
'दुहाना धेनुः वृजनेषु कारवे'
ऋ. २.२.९

द्रुह्वा- (१) द्रोही ।
'आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि'
ऋ. ६.२२.८, अ. २०.३६.८
'स द्रुह्वणे मनुष्य ऊर्ध्वसानः'
ऋ. १०.९९.७
(२) काम क्रोधाति आभ्यन्तर शत्रु-।
'सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नदेथे'
अ. ४.२९.१,२.
(३) द्रुह्वन्, द्रोहशील पुरुष ।

दुहितरा - (१) सूर्य के पुत्र पुत्री तुल्य दिन और रात्रि ।
'देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे'
ऋ. १०.७०.६

दुहिता- (१) आनन्द रस का दोहन करने । वालाज्योतिष्मती प्रज्ञा
'दिवो अदर्शि दुहिता'
ऋ. ४.५२.१, साम. २.१०७५
(२) उरुगूला नाम की सर्प जाति से उत्पन्न एकसर्प की जाति ।
'उरुगूला या दुहिता'
अ. ५.१३.८
(३) प्रकृति जिससे समस्त लोक दुहे जाते हैं ।
'त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति'
ऋ. १०.१७.१, अ. ३.३१.५, अ. १८.१.५३, नि. १२.११.
(४) दुरेहिता (पृथिवी का एक नाम) । पृथ्वी द्युलोक से दूरी पर निहित है अतः अतः वह दुहिता कही गई है ।
'अत्रापिता दुहितुर्गभिमाधात्'
ऋ. १.१६४.३३, अ.९.१०.१२, नि. ४.२१.
इस अन्तरिक्ष (अत्र) द्युलोक नाम से प्रख्यात पर्जन्य अर्थात् मेघ (पिता) दूर निहित पृथ्वी पर (दुहितुः) सर्वोत्पादन समस्त वृष्टिजल (गर्भम्) बरसता है (आधात्) ।
(५) दूरे निहिता दुहितृ (पुत्री विवाह के बाद घर से दूर भेज दी जाती है) ।
(६) दुर्हिता- सा यस्मिन् कुले तत्र दुःखेन हिता भवति । वह जिस कुल में दी जाती है वहां दुःख से हिलती मिलती है ।
'जन्मतः स्वजन दुःख कारिका
सम्प्रदान समयेऽर्थहारिका
यौवनेऽपिबहुशोक कारिका
दारिका हृदय-दारिका पितुः'
(७) या दूरे हिता दूरे वर्तमान । सती पितुर्हिता भवति (जो दूर रहने पर पिता की हित कारिणी परन्तु निकट रहने पर दुःख दायिनी होती है)।
(८) पितुः सकाशात् नित्यं अर्थं दोग्धि (पिता से सदा धन दुहती है ।
(९) वस्तुतः 'दुह् + तृच् = दुहितृ' । अर्थ है - दूध दुहने वाला । पहले कन्या पिता की गाय दुहती थी अतः वह दुहिता कहलायी । आज भी सभी आर्य-भाषाओं में इसी अर्थ में 'दुहितृ-' शब्द का प्रयोग है 'यथा-दोख़तर-फारसी Daughter अंग्रेजी ।

दुहिताःनप्त्यः- दुहिता से उत्पन्न पुत्र जो दुहिता के पिता का नाती कहलाता है ।
'शासद्वह्निः दुहितुर्नप्त्यं गात्'
ऋ. ३.३१.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.२, १९.४, गौ.ब्रा. २.५.१५, ६.१, नि. ३.४

दुहीयात् - पूरयतु, दरातु, दुग्धाम् (पूरा करे) । सायण ने इसका अर्थ 'सम्पादयति' (सम्पादन करता है) किया है, ।

द्रुहः- द्रोह करने वाली ।
'अप द्रुहस्तन्वं गूहमान'
ऋ. ७.१०४.१७, अ. ८.४.१७.

द्रुह्युः- (१) द्रुह्युओं का कुल , (२) द्रोही ।

'यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने'
ऋ. ६.४६.८
(३) एक वैदिक राजवंश (४) परस्पर के द्रोही जन।
'यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ'
ऋ. ८.१०.५
(५) द्रोहकारी, (६) यदु, तुर्वश, अनु तथा पुरु के जैसा एक राजवंश, (७) पञ्चजनों में से एक। इनके पुरोहित भृगु थे। यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु ये पञ्चजन थे और ये इन्द्र और अग्नि के भक्त थे। अनुओं, द्रुह्युओं और पुरोहित कुल वाले भृगुओं ने सुदास पर आक्रमण किया था जिस में हार कर भागते समय श्रुत और कवष जैसे द्रुह्युओं के नेता डूब गए। द्रुह्यु और अनु की भूमि परुष्णी (रावी) के पश्चिम वितस्ता (झेलम) तक फैली थी। सम्भवतः द्रुह्युओं के उत्तर में अनु और दक्षिण में तुर्वश रहते थे।

दुहे- दुहते हैं।
'नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्'
ऋ. ३.५३,१४, नि. ६.३२.
वे अनार्य न तो सोममिश्रण योग्य दूध दुहते हैं और न महावीर पात्र या अग्नि कुण्ड को (घर्मम्) तपाते ही हैं।

द्रुह्वन् - द्रोही।
'न द्रुह्वणो जनानाम्'
ऋ. १.२५.१४
जिस वरुण से मनुष्यों के द्रोही भी द्रोह नहीं कर पाते।

द्रूक्ष्ण - (१) कठोर, दुःखदायी।
'संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ने'
अ. ८.२.१६

द्रूर्ध्नी- दोहरी थन वाली गौ।
'विश्वा रूपाणि बिभ्रती द्रूर्ध्नीः'
साम. १.६२६

दूडभ- (१) रोग शत्रु आदि से न मारे जाने योग्य, अजेय, (२) अग्निवत्, दूर तक चमकने वाला, (३) अग्नि, (४) प्रसिद्ध।
'दूडभो विशामतिथि र्विभावसुः'
ऋ. ३.२.२
अपराजित के अर्थ में-
'परि ते दूडभोरथः'
ऋ. ४.९.८, वाज.सं. ३.३६, वाज.सं.(का.) ३.३.२८, मै.सं. १.५.४, ७१.३, १.५.५, ७३.६, १.५.११, ७.९.१७ का.सं. ७.२,४.९, श.ब्रा. २.३.४.४०, आप.श्रौ.सू. ६.१७.१२.

दूडभासः- (१) दूर तक प्रकाश देने वाले, (२) दुर्दमन करने योग्य।
(३) अहिंसक (४) दूर दूर तक चमकने वाले। कीर्तिमान प्रतापी पुरुष
'ऋतावान् इषिरा दूडभासः'
ऋ. ३.५६.८
'इमे मित्रो वरुणो दूडभासः'
ऋ. ७.६०.६.

दूढ्य - (१) दुर्बुद्धि।
'दूढ्यः बहुवचन का रूप है। यास्क ने इसे एक वचन का रूप माना है।

दूढी- (१) दुर्धी, दुष्टद्धिवाला।
'एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यः'
ऋ. १०.४४.७, अ. २०.९४.७
(२) शत्रु। निपातन से सिद्ध।
(३) पाप बुद्धि वाला।
'मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः'
ऊर्मिर्न नावमा वधीत्'
ऋ. ८.७५.९
जिस प्रकार समुद्र या नदी की लहर नाव को पीड़ित करती है उसी तरह हमें सभी परिद्वेषी और पापबुद्धि वाले (दूढ्यः) का वध या उत्पात (अंहतिः) हमें चोट न पहुंचावे (मा अवधीत्)।
पुनः -
'न दूढ्ये अनुददासि वामम्'
ऋ. १.१९०.५
हे बृहस्पति, तू कुत्सित या पाप बुद्धि वाले को (दूढ्ये) संभजनीय धन (वामम्) उसके अनुकूल (अनु) नहीं देता (ददासि)।

दूणाशः- (१) कठिनता से नाश होने वाला, (२) सुदृढ़।
'आ दूणाशो भरा गयम्'
ऋ. ७.३२.७

दूणाशाः- ब.व.। कभी नष्ट न होने वाले-सूर्य, विद्युत् और अग्नि।
'त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि'
ऋ. ३.५६.८

(२) स्त्री. (ए.व.) । कभी नष्ट न होने वाली ।
'दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम्'
ऋ. ६.२७.८

दूत – (१) जु (गत्यर्थक) + क्त = दूत (ज का द और 'दुतनिभ्यां दीर्घश्च' से दीर्घ) सहि गच्छति प्रेरितः (दूत प्रेरित होकर जाता है) । (२) द्रु (गत्यर्थक) + क्त = दूत (पृषोदरादिवत्) । (३) वार (वारण करना) + क्त = वारितः = दूतः । सहि वारयति अनर्थन् (यह अनर्थों से वारण करता है ।
अर्थ – (१) दूत ।
'श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य'
ऋ. ७.३९.३, नि. १२.४३.
हे देवो, आप हमारे इस आपके निकट जाने वाले दूत रूप अग्नि का आह्वान् सुनें ।
(२) अग्नि का वाचक ।
'त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०१.९, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.
(३) देवताओं को हवि पहुंचाने वाला अग्नि-सा. (४) अनर्थ- निवारक -दया. ।
'दूत ईयसे प्रदिव उराणः
विदुष्टरो दिव आरोधनानि'
ऋ. ४.७.८, नि. ६.१७.
हे अग्नि (दूत), पुराण एवं अल्प हवि को बहुत करने वाला (प्रदिवः उराणः) विद्वत्तर (विदुष्टरः) स्वर्ग के मार्गों से (दिव आरोधनानि) देवताओं को हवि देने जाता है (इयसे) ।
अनर्थ निवारक (दूतः) सनातन (प्रदिवः) विश्वकर्मा (उराणः) एवं विद्वानों को तारने वाले आप (विदुष्टरः) द्युलोक के नियम में रखने वाले कर्मों को (दिवः आराधनानि) प्राप्त किए ही (ईयसे) ।
(घ) 'ज्वल' और 'रि' धातु से क्त प्रत्यय कर भी 'दूत' शब्द की व्युत्पत्ति की गई है ।
'वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा
युवाभ्यां भूत्वश्विना'
ऋ. ८.२६.१६
हे सबके नेताओ, अश्विनी द्वय, स्तोताओं के स्तोत्रों में जो स्तोमविशेष है (हवानां स्तोमा) वही आह्वाताओं में उत्तम (वाहिष्ठः) दूत तुम दोनों को बुलाता हुआ (हुवत्) तुम्हें प्रियकर हो (युवाभ्यां भूत्) ।

दूत्यम्– (१) दूत का कर्म –सा. (२) अनर्थ निवारक कर्म–दया. ।
'वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वान्'
ऋ. ४.७.८.
हे अग्नि, तू अभीष्ट फलदायक यज्ञ के दूतकर्मों को जानता हुआ ।
हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर, आप अनर्थ निवारक कर्मों को जानते हैं ।

दून– जला भुना ।
'दूना अदूना अरसा अभूवन्'
अ. २.३१.३

दुर्भूत– दुष्ट या दुःखदायी पदार्थ ।
'रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतम्'
अ. ८.२.१२

दूर – (क) द्रुतं भवति (मार्ग की महत्ता से भागता सा दीख पड़ता है) (ख) दुरवम्– दुःखेन तत् ईयते (वह दुःख से चला जाता है) (ग) (द्रु + क्त = द्रुत = दूर (घ) दूर् + र + एरच (कर्मवाच्य में)= दुरय = दूर , ।
अर्थ– (१) दूर ।
'यद्दूरे सन् इहाभवः'
ऋ. ३.९.२, साम. १.५३, नि. ४.१४,
जो तू (अग्नि) दूर होता हुआ भी प्राप्त होता है ।
पुनः,

दूरक – दूर ।
'यदन्ति यच्च दूरके'
ऋ. ९.६७.२१, ऐ.आ. ३.२.४.८, आप.ध.सू. १.१.२.२.

दूरश्रवाः– (१) दूरतक परम पाद तक श्रवण करने वाला, (२) बहुश्रुत, ।
'दूरश्रवसे वह'
अ. २०.१३५.११

दूर्श – (१) ऋक्षा या व्याघ्र छाला ।
'दूर्शेभिरजिनैरुत'
अ. ४.७.६
(२) दुःखदायी जन्तु ।
'कृत्ती दूर्शानि बिभ्रति'
अ. ८.६.११.

दूरात् दवीयः – दूर से दूर । दूर + ईयसु = दवीयस् । अर्थ है– दूरतर ।

दूर्वा– (२) दूब नामक घास ।
'अयं वाव माऽधूर्वीदिति
यदब्रवीदधूर्वीन्मेति तस्माद्दूर्वा
धूर्वाहवै तां दूर्वेत्याचक्षते परोऽक्षम्'
श.ब्रा. ७.४.२.१२
'एवा नो दूर्वे प्र तनु'
वाज.सं. १३.२०, तै.सं. ४.२.९.२, ५.२.८.३, मै.सं. २.७.१५, ९८.१४, का.सं. १६.१६, श.ब्रा. ७.४.२.१४, तै.आ. १०.१.८, महा.ना.उप. ४.३.

दूरे अन्ते – द्वि.व. . (१) द्यावापृथिवी (२) मतापिता का विशेषण (३) दूर और समीप सर्वत्र विद्यमान ।
'उर्वीपृथ्वी बहुले दूरे अन्ते'
ऋ. १.१८५.७, मै.सं. ४.१४.७, २२५.१, तै.ब्रा. २.८.४.८.
(४) जिसके अन्त दूर हैं– अविनाशिनी–द्यौ और पृथिवी ।
(५) दूर या समीप या विमिश्रीभूत–सूर्य और पृथ्वी–दया.
'समान्या वियुते दूरे अन्ते'
ऋ. ३.५४.७, नि. ४.२५.

दूरेअर्थः– (१) दूर दूर तक प्रकाश फैलाने वाला सूर्य (२) दूर देश से भी धन प्राप्त करने वाला, (३) दूर देश में जाने वाला ।
'दूरे अर्थस्तरणिः भ्राजमानः'
ऋ. ७.६३.४, का.सं. १०.१३, तै.ब्रा. २.८.७.३, आप.श्रौ.सू. १६.२.१.

दूर उपब्दः– दूरे उपब्दिः वाक् येषाम् (दूर दूर देश तक अपनी वाणी पहुंचाने वाला)
'दूर उपब्दो वृषणो नृषाचः'
ऋ. ७.२१.२

दूरेचित् – दूर पर भी । चित् शब्द 'भी' के अर्थ में प्रयुक्त है ।
'दूरे चित् सन् तड़िदिवातिरोचसे'
ऋ. १.९४.७, नि. ३.११.
हे अग्नि, तू दूर रहता हुआ भी विद्युत् की तरह निकट ही अतिदीप्त जान पड़ता है ।

दूरेदृश्– (१) दूर से देखने योग्य अग्नि, (२) दूरदर्शी ।
'दूरे दृशं गृहपति मथर्युम्'
ऋ.७.१.१, साम. १.७२, २.७२३, का.सं. ३४.१९, ३९.१५, आप.श्रौ. सू. १४.१६.१, नि. ५.१०.
'दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः'
ऋ. १.१६६.११
(३) दूर ही से दीख पड़ने वाला, प्रकाशमान,

दूरेभाः– जिसकी दीप्ति दूर तक हो–सूर्य, अग्नि
'पशुर्नशिश्वा विभुर्दूरेभाः'
ऋ. १.६५.१०
बछड़े के साथ गौ के समान प्रेमवान् होकर रहे, दूर दूर तक दीप्ति फैलाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी हो ।

दूरेवधः – (१) दूरस्थ शत्रुओं को मारने वाला ।
'नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च'
वाज.सं. १६.४०, तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७, १२६.३, का. सं. १७.१५.

दूरोहण – (१) आदित्य, (२) मोहन विद्या
'दूरोहणं छन्दः'
वाज.सं. १५.५.

दूलभ, दूडभ – दुःख से दंभित करने योग्य । दुरोदाश नाश दभध्येषूत्वं व्यमुत्तररपदादेश्च (पा. ६.३.१०९) से दुर् के र् का उ और द का ड ।
'युवं दक्षं धृतव्रत
मित्रा वरुण दूडभम्'
ऋ. १.१५.६
हे व्रतों नियमों को धारण करने वाला और उन्हें स्थिर रखने वाले, सबके स्नेही एवं दुष्टों के वारक सूर्य और चन्द्र, या प्राण और अपान, या राजा और मंत्री, या गृहस्थ और गृहपत्नी, सत्य धारक बल से (ऋतुना) शत्रुओं ने नाश न होने वाले बल को (दूडभम्) और परस्पर संग से उत्पन्न प्रजाजनन पालन व्यवहार को व्याप्त होकर रहो

दूषि – (सं). विनाशक ।
'दूष्या दूषिरसि'
अ. २.११.१, कौ.सू. ३९.१,.७, १३.

दूषी– (१) शरीर के रक्त आदि में विकार उत्पन्न करने वाला विष ।
'दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा'
अ. १.२३.४
(२) प्रजा में द्रोह करने वाली शत्रु–मन्त्रणा ।

दूषीका- (१) शरीर में विष दोष उत्पन्न करने वाली व्याधि ।
'कुम्भीका दूषीकाः पीयकान्'
अ. १६.६.८
(२) नेत्र में उत्पन्न मल कींची ।
'ह्रादुनी दूषिकाभिः'
वाज.सं. २५.९, मै.सं. ३.१५.८, १८०.२.

दृढ़ - (१) दृह् + क्त = दृढ़ ।
'त्वया दृढानि सुक्रतो रजांसि'
ऋ. ६.३०.३.
हे इन्द्र, तूने लोकों को दृढ़ किया ।
(२) सत्य ।
'एको दृढ़मवदो वृत्रहासन्'
ऋ. ३.३०.५
अकेले तूने वृत्र का वध कर देवों को अभयदान दिया यह सत्य ही है (दृढ़म्)

दृढ़पुर् - (१) ब्रह्मलोक, (२) इन्द्रलोक या परलोक में दृढ़स्थिति ।
'आ दृढां पुरं विविशुः'
ऋ. ५.१९.२.
वे ईश्वर-चिन्तक या यज्ञशील पुरुष ब्रह्मलोक की प्राप्ति करने या ऐहिक या पारलौकिक स्थिति दृढ़ करते हैं ।

दृतिः - या दृणाति । (१) जलपूर्ण भाग, (२) मशक, (३) शत्रु-बल विदारक सैन्य, (४) भयप्रद शत्रुबल ।
'दृतिं सुकर्षविषितं न्यञ्चम्'
ऋ. ५.८३.७, तै.सं. ३.१.११.१, का.सं. ११.१३.
(५) समस्त दुःखों और अज्ञानों का विदारक परमेश्वर (६) महावीर राजा ।
'दृते दृंह मा'
वाज.सं. ३६.१८,१९.
(७) कुप्पा, मशक, (८) एक चर्मवाद्य जिसे हवा से पुलाया जाता है ।
'दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः'
ऋ. ७.८९.२
(९) मेघ ।
'ईशानो विष्या दृतिम्'
अ. ७.१८.१, तै.सं. २.४.८.२, ३.५.५.२, मै.सं. १.३.२६, ३९.१२, का.सं. ११.९.
(१०) पात्र, (११) औषधि या सुरा बनाने का पात्र ।
'दृतिं सुरावतो गृहे'
ऋ. १.१९१.१०
(११) दांत ।

दृती - द्वि.व. । (१) दो दांत (२) बन्धन काटने वाले ज्ञान और कर्म ।
'द्वौ च हस्तिनोदृतीः'
अ. २०.१३१.२०

दृभीक - (१) प्रजा को त्रास देने वाला, (२) भयंकर -दया.
'अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान'
ऋ. २.१४.३, मै.सं. ४.१४.५, २२२.७

दृश्- दृश् + क्विप् = दृश् । अर्थ-(१) दर्शन ।
'दृशे विश्वाय सूर्यम्'
ऋ. १.५०.१, अ. १३.२.१६, २०.४७.१३, साम. १.३१. वाज.सं. ७.४१.८.४१, ३३.३१, तै.सं. १.२.८.२, ४.४३.१, का.सं. ४.९, ३०.५, मै.सं. १.३.३७.४३.७, श.ब्रा. ४.३.३.९, नि. १२.१५.
रश्मियां जिस सूर्य के सभी प्राणियों के दर्शन के लिये उदित करती हैं ।

दृशतिः- (१) दर्शन, सत्यज्ञान, (२) दृष्टि
'सूरो न यस्य दृशतिररेपाः
ऋ. ६.३.३.

दृषद्वती- (१) प्रस्तरों से युक्त शिला पर्वत वाली, (२) अज्ञान- नाशक निष्ठ पुरुषों में स्थित, (३) शस्त्रास्त्र से युक्त ।
'दृषद्वत्यां मानुष आपयायाम्'
ऋ. ३.२३.४

दृशप्राचीःकरोमि- (१) दसों अंगुलियों को जोड़कर नमस्करार्थ आगे करता हूँ । (२) दसों दिशाओं को प्राची दिशा के समान आगे बढ़ने या उदय होने के लिए करता हूँ ।
'दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि'
ऋ. १०.३४.१२

दृशान- (१) दीप्ति से दिखाई देने वाला -अग्नि, (२) द्रष्टा जीवात्मा ।
'व्यचिष्ठमन्नैरभसं दृशानम्'
ऋ. २.१०.४, वाज.सं. ११.२३, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.४, का.सं. १६.२, श.ब्रा. ६.३.३.१९.
(२) सब पदार्थों को दर्शाने वाला ।

'दशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौत्'
ऋ. १०.४५.८, वाज.सं. १२१

दृशाना – देखती हुई ।
'सूर्यस चेति रश्मिभिर्दृशाना'
ऋ. १.९२.१२

दृशि – (१) दर्शन, देखना, साक्षात्कार ।
'ध्रुवं ज्योति र्निहितं दृशये कम्'
ऋ. ६.९.५
'अभि मा वपु र्दृशये निनीयात्'
ऋ. ७.८८.२
'आयुचक्षु र्दृशये सूर्याय'
अ. १८.२.४६
(२) दिखलाना ।
'नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः'
ऋ. २.२४.८

दृशीक – (क) दृश् + कीनन् = दृशीक –सा.
(ख) दृश् + ईकन् = दृशीक अर्थ– (१) दर्शनीय ।
'स्तोमं रुद्राय दृशीकम्'
ऋ. १.२७.१०, साम. १.१५,२.१०१३, नि. १०.८.
रुद्र के लिए दर्शनीय स्तोत्र कर

दृशीका – दर्शनशक्ति ।
'कीदृङ् इन्द्रः सरमे का दृशीका'
ऋ. १०.१०८.३

दृशे – अभिविपश्यति (चारों ओर से स्पष्ट रूप से देखता है) ।

दृषद् – (१) मेघ, (२) शिला
'दृषदं जिह्वावधीत्'
ऋ. ८.७२.४
(३) सिलवट या चक्की का पाट ।
'दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र'
ऋ. ७.१०४.२२
(४) विदारण करने वाली ।
'इन्द्रस्या या महीदृषत्'
अ. २.३१.१.
चक्की के अर्थ में –
'दृषदा खल्वा इव'
अ. २.३१.१. अ. ५.२३.८.

दृष्टवीर्य (१) अपने बल को ठीक प्रकार से युद्ध आदि में दिखला कर कीर्ति प्राप्त करने वाला, (२) सत्य पराक्रमी ।
'ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम्'
ऋ. २.२३.१४

दृह् – धा. । दृढ़ करना, स्थापित करना ।
'अस्कम्भेन सविता द्यामदृंहत्'
ऋ. १०.१४९.१, नि. १०३.
सविता ने बिना खम्भे के स्थित अन्तरिक्ष में द्युलोक को स्थापित किया ।

दृंहिता– (१) दृढ़ करने वाला, (२) वृद्धि करने वाला, (३) शत्रुहन्ता–इन्द्र, परमेश्वर ।
'इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावान्'
ऋ. ३.३९.४

द्वे क्रमणे– (१) स्वर्दृश् अर्थात् सूर्य के दो स्थान–पृथिवी और अन्तरिक्ष, (२) प्रजा, सन्तान आदि के सुख मय मार्ग को देखने वाले ब्रह्मचारी और राजा के दो क्रमण, गमन, आश्रय या आचरण, ।
'द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशः
अभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।'
ऋ. १.१५५.५

देभुः– दभ्नुवन्ति, अभिभवितुं शक्नुवन्ति (जीतते हैं, दबाते हैं) । 'दभ्' धातु का लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग ।

द्वे यम्या– मातृगर्भ में स्थित वीर्य कीट और डिम्बकोश जो एक दूसके को बांधने वाले हैं ।
'द्वे यदीं बिभृते मातुरन्ये
इहेह जाते यम्या सबन्धू'
ऋ. ५.४७.५

द्वे रुपे– (१) योगी के दो रूप (२) सूर्य के दो रूप, (३) असम्प्रज्ञात औकर सम्प्रज्ञात निर्बीज और सबीज समाधि ।
'द्वे रूपे कृणुते रोचमानः'
अ. १३.२.२८, ४२.

देवः – (१) प्रकाश देने वाला सूर्य, (२) जल देने वाला मेघ ।
'यो विश्वस्य जगतो देव ईशे'
ऋ. ७.१०१.२
(३) दानात्, दीयनात् द्योतनात् (दान से प्रकाशमान होने से या ज्योतिर्मय होने से 'देव' बना)।
द्युस्थानो भवति (द्युलोक में रहने वाला देव है)
दिव् + अच् = देव ।

(४) सूर्य-रश्मि, (५) दाता, (६) प्रदीपक, (७) द्योतक, (८) द्युस्थानीय पदार्थ, (९) देवलोक में विरचने वाला मुक्तात्मा ।
'देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२, मै.सं. ४.१२.३. १८६.४, का.सं. ८.१६, नि. १०.१०.
प्रकाशमान परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र आदि देवताओं को अपने अपने कर्म से अलंकृत किया । (दया.)
जिस देव ने वृत्रवध जैसे कर्म द्वारा यज्ञ से देवताओं को अपने अधीन किया ।
(९) आर्यजन । जिस अन्न को देवता लोक आर्यजन्य खाते या प्राप्त करते हैं ।
(१०) किरण ।
'चित्रं देवानामुदगादनीकम्'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५,२०.१०७.१४, आ.सं. ५.३. वाज.सं. ७.४२.१३.४६.
किरणों का विचित्र समूह उदित हुआ ।
'देवानां भद्रा सुमतिः ऋजूयताम्'
ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२, २१७.७, नि. १२.३९.
सूर्य-रश्मियों या सत्यमार्ग-गामी देवों की कल्याण कारिणी सुन्दर मति हमारे प्रति हो ।
(११) इन्द्रिय । इन्द्रिय भी द्योतनात्मक है ।
' अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषम्'
वाज.सं. ३.४८,८.२७.श.ब्रा. २.५.२, ४७, ४.४.५, २२, ला.श्रौ.सू. २.१२.९.
मैं इन्द्रियों के द्वारा किए कायिक, वाचिक पाप दूर करूं ।
(१२) द्युलोक वासी देवता, (१३) इन्द्र का विशेषण, (१४) दैवीशक्तिवाला (१५) ब्राह्मण, (१६) राजा, (१७) राजा को सम्बोधित करने में एक उपाधि (१८) इष्ट देव का वाचक जैसे मातृ देव, पितृदेव, आचार्य देव । फारसी में देव का अर्थ राक्षस माना गया है । (१८) विद्वान् ।

देवः अग्निः- (१) तीन प्रकार से अग्नि-गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय मे तीसरा अग्नि देवः अग्नि है ।
'वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन'
ऋ. १०.११०.१०, अ. ५.१२.१०, वाज.सं. २९.३५, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१४, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१७.
गार्हपत्य अग्नि (वनस्पतिः) दक्षिणाग्नि (शमिता) और आहवनीय अग्नि (देवःअग्निः) मिष्ट और घृत से (मधुना घृतेन) हव्य का आस्वादन करावें (हव्यं स्वदन्तु) ।

देवकः - (१) विद्वान् जन, (१) क्षुद्र व्यवहारी, (३) जुआखोर ।
'देवेकं चिन्मान्यमानं जघन्थ'
ऋ. ७.१८.२०

देवकामः - (१) देव, विद्वान्, महात्मा तथा देवतुल्य पुरुषों के निमित्त कार्य करने वाला, (२) देवों, विद्वानों या उत्तम गुणों की कामना वाला ।
'यो देव कामो न धन रुणद्धि'
ऋ. १०.४२,९. अ. ७.५०.६, २०.८९.९.
'श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः'
ऋ. २.३.९, तै.सं. ३.१.११.२, मै.सं. ४.१४.८, २२७.१.

देवक्षत्र - (१) प्रकाश का धनी सूर्य, (२) योद्धागणों के बल से सम्पन्न सेनापति ।
'देवक्षत्रे रुशद्गवि'
ऋ. ५.६४.७

देवकिल्विष - (१) दैवीरोग, (२) इन्द्रिय-सम्बन्धी रोग ।
'सर्वस्माद् देवकिल्विषात्'
ऋ. १०.९६.१६, वाज.सं. १२.९०, मै.सं. ३.११.१०, १५७.९, ला.श्रौ.सू. २.२.२.११, आप.श्रौ.सू. ७.२१.६.
(२) देवता, राजा, विद्वान् या अधिकारी गण के प्रति किया गया अपराध ।
'विश्वस्माद् देवकिल्विषात्'
अ. ६.९६.२, ७.११२.२, ८.७.२८, मै.सं. ३.११.१०, १५७.९.
(३) देव, ईश्वर द्वारा प्राप्त पाप कर्मों के फल स्वरूप कष्ट ।

देवकृत - (१) इन्द्रियों के द्वारा किया गया देव हवि के प्रति पाप -सा. (२) इन्द्रियों के द्वारा किया गया कायिक, वाचिक एवं मानसिक पाप । (दया.)
'अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषम'

वाज.सं. ३.४८
मैं इन्द्रियों के द्वारा किए गए देव हवि के प्रति या कायिक, वाचिक एवं मानसिक पाप दूर करूँ (अपासिषम्) ।

देवकृत योनि – (१) परमेश्वर का बनाया स्थान–समुद्र, (२) मेघ से बरसा या सूर्य से उत्पादित जल, (३) परमेश्वर और विद्वान् द्वारा या प्रिय कामनायोग्य पतिद्वारा बनाया गृह
'अनुयोनिं देवकृतं चरन्तीः '
ऋ. ३.३३.४

देवकृत ब्रह्म – परमेश्वर के दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि या जीवों के लिए बनाया हुआ ब्रह्माण्ड ।
'यो ब्राह्मणो देवकृतस्य राजा '
ऋ. ७.९७.३

देवकोशः– इन्द्रियों का मूल आवरण सिर ।
'देवकोशः समुब्जितः '
अ. १०.२.२७,

देवगोपा– (१) विद्वानों, व्यवहारज्ञों, विजिगीषुओं शुभउत्तम गुणों और इन्द्रियों का पालक, (२) देव की गौओं का पालक ।
'अया धिया स्याम देवगोपाः '
ऋ. ५.४५.११
(३) देवता या विद्वानों की रक्षा में रहने वाला ।
'मदन्ति देव गोपाः '
ऋ. ८.४६.३२
(४) मेघ द्वारा रक्षित ।
'सुपिप्पलाओषधीर्देवगोपाः '
ऋ. ७.१०१.५, का.सं. २०.१५, तै.आ. १.२९.१.
(५) राजा द्वारा परिपालित ।
'य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायः '
ऋ. १.५३.११, अ. २०.२१.११
(६) देवी च असौ गोप्त्री । (देने वाली तथा रक्षा करने वाली) (७) देवताओं की रक्षा करने वाली (देवान् गोपायतुः)।
(८) देवाएनां गोपायतु (देवता इनकी रक्षा करे)
(९) सुख प्रदाता, परमरक्षक, यज्ञ कर्त्तादेव जनों से रक्षणीय मेघ का विशेषण ।
'स्वस्तिरिद्धि प्रपथश्रेष्ठा
रेक्ण स्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा अरणे निपातु
स्वावेशा भवतु देवगोपा '
ऋ. १०.६३.१६, नि. ११.४६.
स्वस्ति ही प्रकृष्ट पथ या अन्तरिक्ष में श्रेष्ठ देवता है (प्रपथे श्रेष्ठा) वह धन वाली या जल से धन वाली है (रेक्णस्वती) जो हमें स्पृहणीय पदार्थों या जलों को देती है– (वामम् अभ्येति) वह स्वति ही-हमें गृह में (अमा) तथा अरण्य में (अरणे) रक्षा करे (निपातु) तथा वह रक्षिका देवी (देवगोपा) सुखपूर्वक उपचरण करने योग्य हो (स्वावेशा भवतु) या सुखपूर्वक उपचरणीय वह (स्वावेक्षा) देवों रक्षा करें (देवगोपा भवतु) ।
अन्य अर्थ – जो प्रशस्त जल को धारण करता है (या वामम् अभ्येति) वह अन्तरिक्षस्थ कल्याणकारी रूप ही (प्रपथे स्वस्ति इत् हि) श्रेष्ठ धनवान् हो (श्रेष्ठारेक्णस्वती) वह हमारे घर में (सनः अमा) और वह अरण्य में (सा उ अरणे) रक्षा करे (पातु), सुखप्रदाता, भूमिरक्षक या देवगायों का रक्षक या यज्ञ कर्त्ता देवगणों से रक्षणीय (देवगोपा) मेघ हमारा उत्तम निवासक हो ।
(स्वावेशा भवतु) ।
(१०) जिसके देवता रक्षक हों या जो देवों के रक्षक हो, (११) विद्वानों से सुरक्षित ।
'य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायः '

देवजन– (१) विषवैद्य (२) सर्पों का नियन्त्रण करने वाला ।
'नमो देव जनेभ्यः '
अ. ६.५६.१,२.

देवजाः षट् ऋषयः– (१) देव अर्थात् आत्मा से उत्पन्न छः प्राण–कान, आंख और नाक के दो दो जोड़े ।
'षडिद् यमा ऋषयो देवजा इति '
ऋ. १.१६४.१५, अ. ९.९.१६, तै.आ. १.३.१, नि. १४.१९.
(२) सूर्य से उत्पन्न ऋतु (३) शिरोगत सात प्राण (४) देवों, विद्वानों द्वारा उत्पन्न ऋषि ।
'महां ऋषि र्देवजा देवजूतः '
ऋ. ३.५३.९

देवजात – (१) विद्वान् या विजय शील पुरुषों में प्रसिद्ध, (२) इन्द्रियों और सूर्यादि में प्रकट शक्तिदाता आत्मा या परमात्मा ।

'यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः
प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि'
ऋ. १.१६२.१, वाज.सं. २५.२४, तै.सं. ४.६.८.१, मै.सं. ३.१६.१ , १८१.८, का.सं.(अश्व.) ६.४, नि. ९.३.
(३) देव + जन + क्त = देवजात। देवैः वसुभिः जनितः ('वसु नामक देवों से उत्पादित,) (४) सायण ने 'बहुदेवतास्वरूपेण उत्पन्नः' ऐसा अर्थ किया है, (५) श्रुति में 'उशा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः (उषा मेध्य अश्व का सिर है)- ऐसा कहा है (६) गान्धर्व कुल में उत्पन्न (७) विजिगीषु योद्धाओं के साथ रहने वाला अश्व।

देवजामिः- (१) मेघ से उत्पन्न, (२) व्यवहारवान् या विजयेषु पुरुष में रहने वाला।
'अयामि घोष इन्द्र देवजामिः'
ऋ. ७.२३.२
(३) ज्ञान को उत्पन्न करने वाली देव अर्थात् इन्द्रियगण की सूक्ष्म शक्ति, (४) मस्तिष्क में आश्रित ज्ञानतन्तु जिससे स्वप्न का उदय होता है।
'देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः'
अ. ६.४६.२, १६.५.८.
(४) विद्वान्, देव, दानशील समस्त दिव्य जैसे वायु जल, अग्नि आदि पदार्थों का।
'अयामि घोष इन्द्र देवजामिः'
ऋ. ७.२३.२, अ. २०.१२.२.

देवजामीनां पुत्रः- (१) इन्द्रिय गतप्राणों के भीतर विद्यमान् दोषों से उत्पन्न स्वप्न। (२) ज्ञान को उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियों का ज्ञान तन्तुओं के आश्रय मस्तिष्क का पुत्र-स्वप्न।

देवजुष्टः- (१) देवों से आसेवित अग्नि या परमात्मा। (२) विद्वत्सेवित।
'यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टः'
ऋ. १०.८८.४.
जो वैश्वानर अग्नि होता देवों में प्रथम तथा देवों से आसेवित हुए।

देवजुष्टागीः- देवों या विद्वानों के हृदय को प्रिय लगने वाली वाणी।
'देवजुष्टोच्यते भामिनेगीः'
ऋ. १.७७.१
देवों या विद्वानों के हृदय में प्रिय लगने वाली कौन सी दुष्टों के प्रति क्रोध करने वाले प्रभु को कही जाय ?

देवजूतः- देवताओं के साथ या युक्त।
(२) देवैः गतम् परत्वेन ज्ञातम् (देवों से श्रेष्ठ समझा गया) (३) देवैः समानप्रीतः (देवों के समान प्रिय) (४) देव + जु (गमनार्थक) + क्त = देवजूतः(दीर्घ आर्ष है)
'जु' गत्यर्थक होने से ज्ञानार्थक भी है।

देवतम- सबसे अधिक तेजस्वी।
'तद्देवानां देवतमाय कर्त्वम्'
ऋ. २.२४.३

देवत्त- देव या ईश्वर का दिया हुआ।
'देवत्तं ब्रह्म गायत'
ऋ. १.३७.४, ८.३२.२७.

देवत्वम्- देवता होने का भाव।
' तत सूर्यस्य देवत्वम्
ऋ. १.११५.४, अ. २०.१२३.१, वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२, १४७.१, तै.ब्रा. २.८.७.१, वै.सू. ३३.६. नि. ४.११.

देवत्तं ब्रह्म- विद्वानों के द्वारा गुरु परम्परा से प्राप्त या प्रभु से दिया वेदज्ञान।
'देवत्तं ब्रह्म गायत'
ऋ. १.३७.४ ८.३२.२७

देवता- (१) सबका प्रकाशक और प्रकाश स्वरूप परमेश्वर।
'बृहस्पति र्देवता तस्य सम्राट्'
अ. ४.१.५, तै.सं. २.३.१४.६, का.सं. १०.१३, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३.
(२) देव। यो देवः सा देवता' (जो देव है वही देवता है)। देव + ताल् (स्व अर्थ में) = देवता,।

देवताति- (१) दिव्यगुणों की प्राप्ति (२) देवों या विद्वानों का उपकार।
'इन्द्रमिद् देवतातये'
ऋ. ८.३.५, अ. २०.११८.३, साम. १.२४९, २.९३७, ऐ.ब्रा. ५.१२.१७, कौ.ब्रा. २२.८, आश्व.श्रौ.सू. ७.३.१९, शां.श्रौ.सू. १०.५.१८, वै.सू. ४१.३, ला.श्रौ.सू. ४.६.२३, साम वि ब्रा. ३.४.८.

(३) दिव्यन्ति स्तुवन्ति अत्र देवताः देवःयज्ञः (यज्ञ जहां देवताओं की स्तुति की जाती है) । 'देव एव देवतातिः' (देव ही देवताति है) । देव + तातिल = देवताति ।

देवताता– 'देवताति' के सप्तमी एक वचन में 'देवताता' होता है अर्थ है– यज्ञ में ।

'शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु
देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि
स नेम्यस्मद् युयमन्नमीवाः '

ऋ. ७.३८.७, वाज.सं. ९.१६,२१.१०, तै.सं. १.७.८.२, मै.सं. १.११.२, १६२.१०, का.सं. १३.१४. श.ब्रा. ५.१.५.२२, नि. १२.४४.

इस यज्ञ में (देवताता) आह्वानों के किए जाने पर या स्तोत्रों के किए जाने पर (हवेषु) मितमार्ग वाले या शोभनगति वाले (मितद्रवः) शोभन अन्न वाले, सुन्दर अर्चावाले या शोभन अर्चि या दीप्तिवाले (स्वर्चाः) वाजि नामक देवता (वाजिनः) हमारे कल्याण करने वाले हों (नः शंभवन्तु) तथा आकर हनन करने वाले शत्रु या सर्प को (अहिम्), चोर को (वृकम्) तथा राक्षसों को (रक्षांसि) मारते हुए (जम्भयन्तः) पुरातन रोगों का (सनेमिअमीवाः) हमसे दूर कर (युयवन्) या रोगों को हम से शीघ्र (सनेमि) दूर कों ।

देवत्या– देव, प्रकाश स्वरूप सूर्य की ।

'या रोहिणी र्देवत्याः '

अ. १.२२.३

देवत्रा– देवान् प्रति (देवों के प्रति) देव + त्रा = देवत्रा । अर्थ–देवताओं की ओर ।

'देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः '

ऋ. १०.११०.२, अ. ५.१२.२, वाज.सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३, ३.२०१.११, का.सं. १६.२०. तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६.

हमारे अहिंसित यज्ञों को देवताओं की ओर प्रवृत्त कर ।

देवत्रादेवः– (१) प्रकाशमान पदार्थों में भी सबसे प्रकाशमान (२) दानशीलों में सब से अधिक दानशील (३) विजिगीषुओं में सबसे अधिक विजिगीषु, (४) सूर्य ।

'देवं देवत्रा सूर्यम् '

ऋ. १.५०.१०, अ. ७.५३.७, वाज.सं. २०.२१, २७.१०,३५, १४,३८.२४.

देवद्रीच् – (१) देव, विद्वान् या विजयशील पुरुषों द्वारा प्राप्त होने वाला ।

'देवद्रीचा मनसा दीध्यानः '

ऋ. १.१६३.१२, वाज.सं. २९.२३, तै.सं. ४.६.७.५, का.सं. (अश्व.) ६.३.

(२) देवताओं या विद्वानों को प्राप्त होने योग्य (३) देव + अञ्च् + क्विप् = देवद्रीच् (टि का अद्रि आदेश) । देवान् विदुषः अञ्चति सत्करोति यः सः (देवताओं या विद्वानों का पूजक)

'यो अग्नीषोमा हविषा सपर्यात्
देवद्रीचा मनसा यो घृतेन '

ऋ. १.९३.८, तै.ब्रा. २.८.७.९.

जो हवि से अग्नि और वायु दोनों की परिचर्या करता है (सपर्यात्) और जो परमेश्वर और विद्वानों को सत्कार करने के चित्त से घृत से सत्कार करता है ।

देवद्रीची– (१) दानशील, स्वामि जनों को अच्छी लगने वाली शिल्पक्रिया, (२) ईश्वरोपासना युक्त वेदवाणी, (३) यज्ञक्रिया, (४) स्रुवा, (५) विद्वानों की सत्कार क्रिया ।

'देवद्रीचीं नयत देवयन्तः '

ऋ. ३.६.१, मै.सं. ४.१४.३, २१८.११, तै.ब्रा. २.८.२.५.

देवःदेवः– (१) प्रत्येक देव – (२) सर्व प्रकाशक, सर्वप्रद, अतिकमनीय प्रभु । इसमें पहला देव शब्द दूसरे देव– का विशेषण है ।–

'देवं देवं हुवेम वाजसातये '

ऋ. ८.२७.१३, वाज.सं. ३३.९१.

देवन– जुआ, विजय काल

'कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने '

ऋ. १०. ४३.५, अ. २०.१७.५, नि. ५.२२.

जैसे पर धनहारी, धूर्त या जुआड़ी जूए में अपने पूर्व पुरुषों के अर्जित धन को (कृतम्) ढूंढ़ता है (विचिनोति)।

देवप्सरस्तमः– (१) सर्वोपरिश्रेष्ठ रूप वाला–सोम

'इन्दो देवप्सरस्तमः '

ऋ. ९.१०५.५ साम. २.९६२

(२) देवों या विद्वानों से अति ग्राह्य, (३) देवों

को अति प्रसन्न करने वाला ।

देवप्सराः- (१) देवरूप, (२) सोम का विशेषण ।
'इन्दो देवप्सरा असि'
ऋ. ९.१०४.५,

देवपत्नी- (१) विद्वान् की या देव की स्त्री ।
'उतग्ना व्यन्तु देवपत्नीः'
ऋ. ५.४६.८, अ. ७.४९.२, मै.सं. ४.१३.१०, २१३.१०, तै.ब्रा. ३.५.१२.१, नि. १२.४६.
(२) देवः पतिः यस्याः (जिसके पति देव हो)- अथवा देवस्य पत्नी (देव की स्त्री) ।
(३) अपने में सूर्य-रश्मिसी ज्योति रखने वाली उत्तम कोटि की साध्वी स्त्री ।

देवप्रसूत- (१) किरण, वायु आदि दिव्य पदार्थों द्वारा उत्पन्न (२) देवताओं से उत्पन्न जल ।
'तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम्'
अ. ६.१००.२

देवयाः- देवों या विद्वानों का सत्कार करने वाला ।
'देवया विप्र उदियर्ति वाचम्'
ऋ. २.८.५, मै.सं. ४.१३.१, १९९.१२, ऐ.ब्रा. २.२.२८, तै.ब्रा. ३.६.१.३.

देवयान- (१) देव या विद्वानों का रक्षक, (२) देवताओं के पीने के लिए चमस ।
'अयं यः चमसो देवमानः'
अ. १८.३.५३
(३) उत्तम मनुष्यों पदार्थों और गुणों का पालक । (४) देवों का पेय- सोम ।
'महेसोम प्सरासे देवपानः'
ऋ. ९.९७.२७
(५) देव- इन्द्रियों की रक्षा करने वाला-आत्मा, । (६) देवों के पीने के लिये पात्र-चमस ।
'यो अश्विनो श्चमसो देवपानः'
अ. ७.७३.३, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, शां.श्रौ.सू. ५.१०.२३.

देवपीयुः- (१) विद्वानों, उत्तम पुरुषों और उत्तम गुणों को नष्ट करने वाला ।
"अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देव पीयवः अस्यलोकः सुतावतः'
वाज.सं. ३५.१
(२) देवों या सत्पुरुषों का धातक।
'प्रमृणन् देवपीयून्'
अ. ११.२.२३.
'सा ब्रह्मज्यं देवपीयुम्'
अ. १२.५ (३) १५
(३) देवहिंसक, देव-विरोधी, (४) यज्ञ विरोधी । 'पी' धातु हिंसार्थक है । देवान् पीयति असौ (यह देवों की हिंसा करता है) । देव + पी + यु + सु = देवपयषुः। जिसमें ' पियारु' शब्द हिंसक अर्थ में आया है)

देवपुत्राः ऋषयः- विद्वान् जनों, देवों के पुत्र और ऋषि ।
'अयं नाभा वदति वत्गु वो गृहे
देवपुत्रा ऋषयस्तत् श्रृणोतन'
ऋ. १०.६२.४

देवपुत्रे -विद्वान्, बलवान्, उत्तम पुरुषों को पुत्रवत् उत्पन्न करने वाली -रोदसी-सूर्य और पृथिवी, (२) स्त्री पुरुष (३) राज और प्रजा (४) तेजस्वी सूर्य आदि के बी उत्पादक ।
'अधारयो रोदसी देवपुत्रे'
ऋ. ६.१७.७
(५) उत्तम पुरुषों या देवताओं को पालन करने वाले -द्यावा पृथिवी । (६) देव, तेजस्वी और दानशील , विजयी और व्यवहार कुशल पुत्रों और शियों से युक्त माता पिता या गुरु ।
'देवेभिः ये देवपुत्रे सुदंससा'
ऋ. १.१५९.१

देवप्रदाः- विद्वान् नगरवासी ।
'यदि प्रेयुः देवपुराः'
अ. ५.८.६, ११.१०.१७.

देवपुरा- देवताओं या श्रेष्ठ पुरुषों की नगरी ।
'अनाव्याधां देवपुराम् प्रपद्यं'
अ. १४.१.६४

देवभक्तम् - (न) । देव विद्वान् और अभिलाषुक जीव के सेवन करने योग्य ।
'अच्छारत्नं देवभक्तं यदस्य'
ऋ. ४.१.१०

देवमणि- देव, विद्वानों के बीच शिरोमणि के समान शोभायमान राजा ।
'आ मारुक्षत् देवमणिः'
अ. ८.५.२०

देवंमनः- क्रीड़ाशील या ज्ञान को संकल्प विकल्प द्वारा दर्शाने वाला मन ।

'देवं मनः कुतो अधिप्रजातम्'
ऋ. १.१६४.१८, अ. ९.९.१८

देवमान– (१) विमान–सा. (२) देवनिर्मित भवन
'भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं
भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म
परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्'
ऋ. १०.१०७.१०
राजा या दानी के लिए (भोजाय) परिचारक शीघ्र गामी अश्व अलङ्कृत करते हैं (आशु अश्वं संमृजन्ति), दानी के लिये (भोजाय) अभिनवयौवना कन्या मिलती है (शुम्भमाना कन्या) , दाता के लिये ही पुष्करिणी समान परिष्कृत राजाप्रसाद की तरह गृह मिलता है । (पुष्करिणी इव परिष्कृतम् देवमानम् चित्रं वेश्म) ।
(३) पांच भौतिक पदार्थों से बना शरीर ।
'इदं यमस्य सादनं देव मानं यदुच्यते'
ऋ. १०.१३५.७

देवय– (१) दिव्य गुणों वाला, विद्वानों का उपासक शिष्य आदि और अग्नि आदि दिव्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला ।

देवयजन– (१) देवों या विद्वानों का यज्ञस्थान
'अपाररुं पृथिव्यै देव यजनात् वध्यासम्'
वाज.सं. १.२६, श.ब्रा. १.२.४.१७.

देवयजनी– (१) तेज, वायु आदि के परस्पर संगत होने की आश्रयभूत पृथ्वी (२) विद्वानों, देवों या राजाओं की यज्ञस्थली ।
'पृथिवि देवयजनि ओषध्याः
ते मूलं या हिंसिषम्'
वाज.सं. १.२५, तै.सं. १.१.९.१, का.सं. १.९,३१.८, श.ब्रा. १.२.४.१६.तै.ब्रा. ३.२.९.२,३.

देवयज्या – (१) देव योग्य पूजा सत्कार ।
'देवं वो देवयज्यया
अग्निमीडीत मर्त्यः'
ऋ. ५.२१.४
(२) देवता की पूजा ।
'अग्नि वो देवयज्यया'
ऋ. ८.७१.१२
(३) देवयजन मार्ग, (४) देवपूजा ।
'हिनोता नो अध्वरं देवयज्यां'
ऋ. १०.३०.११, ऐ.ब्रा. २.२०.२, कौ.ब्रा. १२.१, आश्व. श्रौ.सू. ५.१.८, नि. ६.२२.

देवयत्– (१) देवपूजक (२) देवत्व की कामना करने वाला –
'यद्देवयन्तमवथः शचीभिः'
ऋ. ७.६९.४
हे अश्विद्वय , आप दोनों देवपूजक मनुष्य को (देवयन्तम्) अपने कर्मों से (शचीभिः) रक्षा करते हो (अवथः)
हे अध्यापक तथा उपदेशक, आप दोनों देवत्व की कामना करने वालों की (देवयन्तम्) सुमतियों से (शचीभिः) रक्षा करते हो (अवथः) ।

देवयती– दिव्य भोग्य पदार्थों की इच्छा करती हुई प्रजा ।
'विशाम् देवयतीनाम'
ऋ. १.३६.१, साम. १.५९.

देवयन्तः– (१) सूर्यवत् रश्मियां, (२) देव या राजा के समान आचरण करते हुए राज पुरुष ।
'आपोयंवः प्रथमं देवयन्तः'
ऋ. ७.४७.१, वृ.हा.सं. ८.२७.
(३) अध्वर्युजन जो देवों के लिए यज्ञ करते हैं ।
(४) अपने में देवभाव की कामना करते हुए–गृहस्थ । (दया.)
' अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो
वनस्पते मधुना दैव्येन ।
ऋ. ३.८.१, मै.सं. ४.१३.१, १९९.२, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.४, तै.ब्रा. ३.६.१.१, नि. ८.१८.
हे खदिर या पलाश के यूप (वनस्पते), तुझे अध्वर्युजन (देवयन्तः त्वाम्) अध्वर में देवसम्बन्धी कृत से (दैव्येन मधुना) सिक्त या मृष्ट करते हैं (अञ्जन्ति) ।
हे गार्हपत्य अग्नि, (वनस्पते) बलिवैश्वदेवयज्ञ में (अध्वरे) तुझे अपने में देवभाव की कामना करते हुए (देवयन्तः) मिष्टान्न और घृत के साथ (दैव्येन मधुना) प्रकाशित करते हैं (अञ्जन्ति) –दया.

देवयन्ती– (१) चाहती हुई, (२) देवत्व प्राप्त करने की कामना करती हुई ।
'तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीः'
ऋ. १.७७.३

उसे चाहती हुई प्रजाएं उसे यज्ञों और श्रेष्ठ कार्यों और संग्राम के अवसरों में भी सबसे प्रथम अग्रासन देती हैं ।

देवयान- (१) विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मार्ग
'एहयातं पथिभिया र्देवनैः '
ऋ. १.१८३.६, १८४.६, ३.५८.५,
(२) अन्तरिक्ष में दो मार्ग हैं देवयान और पितृयान् ।
'यस्ते स्व इतरो देव यानात् '
ऋ. १०.१८.१, तै.ब्रा. ३.७.१४.५,तै.आ. ३.१५.२, ६.७.३, तै.आ. (आंध्र). १०.४६, आप.श्रौ.सू. २१.४.१, हि.गृ.सू. १.२८.१, नि. ११.७.
हे मृत्यु, जो तेरा देवयान से इतर पितृयान मार्ग है (३) देवताओं का मार्ग
'अन्तर्विद्वां अध्वनो देवयानात् '
ऋ. १.७२.७

देवयानात् इतरः- (१) देवयान मार्ग से अन्य पितृयान मार्ग जिस से मृत्यु उपरान्त मृतात्माएं जाती हैं ।

देवयावा- (१) ज्ञानी पुरुषों या देवों को प्राप्त होने वाला,(२) अन्यों को शुभगुण प्राप्त कराने वाला ।
'द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः '
ऋ. ७.१०.२

देवयुः - (१) विद्वानों का प्यारा, (२) देवभक्त ।
'प्राचैर्देवासः प्रणयन्ति देवयुम् '
ऋ. १.८३.२, अ. २०.२५.२

देवर- (१) वर का छोटा भाई ।
'प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च '
अ. १४.१.३९, आप.मं.पा. १.१.८.
(२) द्विवरः = देवरः । द्विर से देवर बना है । ऐसा निरुक्तकार कहते हैं । क्योंकि पति के मरने पर पति का छोटा भाई भी दूसरा वर बन जाता है ।
'को वां शयुत्रा विधवेव देवरम्
मर्यं न योषा कृणुतेसधस्थ आ '
ऋ. १०.४०.२, नि. ३.१५

देवलोक - विद्वज्जन, विजयेच्छु पुरुष ।
'देवलोकाम पेशितारम् '
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

देववत् सुदास् - (१) विद्वानों वीरों और व्यवहारवान् पुरुषों का उत्तम दानशील राजा (२) सुदास् नामक पिजवान् का पुत्र ।
'द्वेनसु र्देववतः शतेगोः
द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः '
ऋ. ७.१८.२२.

देववध- (१) देव, विद्वान्, ब्राह्मणों का ज्ञात शस्त्र, (२) वैज्ञानिक शक्ति, (३) देवताओं को मारने वाला आयुध ।
'नमो देव वधेभ्यः '
अ. ६.१३.१, कौ.सू. १४.२५, १५.६, ७२.१३, १०४.३, १०५.१, ११३.३, १२३.१.

देववन्दः- (१) शिष्य जनों से वन्दनीय (२) ईश्वरोपासक ।
'आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः '
ऋ. १०.१५.१०, अ. १८.३.४७

देवबन्धुः- (१) समस्त दिव्य लोकों को बांधने वाला ।
'योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् '
अ. ४.१.७
(२) देव या विद्वानों का बन्धु = अश्व या (३) व्यापक राष्ट्र ।
'चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देवबन्धोः '
ऋ. १.१६२.१८, वाज.सं. २५.४१, तै.सं. ४.६.९.३, का.सं. (अश्व.) ६.५, श.ब्रा. १३.५.१.१८.
(४) देव अर्थात् परमेश्वर का बन्धु (५) इन्द्रियों का मूल कारण आत्मा ।
'अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम् '
अ. ५.११.११, ७.२.१,
(६) प्रकाशमय पृथिवी आदि का बन्धु (७) विद्वानों के बीच सुप्रबन्धक ।

देवव्यचस्तम- (१) देवों में सबसे अधिक गतिवाला- अश्वि, (२) विद्वानों या विविध विद्याओं में सब से अधिक गतिवाला ।
' प्रयज्ञ एतु आनुषक् अद्या देव व्यचस्तमः '
ऋ. ५.२२.२, ५.२६.८

देवव्यचाः- (१) दानशील तेजस्वी पुरुष, (२) विद्वान् का विशेष सत्कार करने वाला, (३) जो देव या पृथिवी आदि में प्राप्त हो । (दया.)
'स्मृणीमहि देवव्यचा विबर्हिः '
ऋ. ३.४.४

देववात- (१) सूर्य की किरणों से स्वच्छ, (२) विद्वानों या देवों से प्राप्त ।
'शुभ्रमन्धो देववातम्'
ऋ. ९.६२.५
(३) देवों द्वारा संचालित ।
'तिग्म उ ते तन्वे देववाताः'
ऋ. ३.२०.२, तै.सं. ३.२.११.१, मै.सं. २.४.४, ४२-११, का.सं. ९.१९.
(४) देवश्रुत तथा देववात भारतऋषि के नाम से प्रख्यात है जिन्होंने ऋग्वेद के मंत्र ३.२३.२ को देखा, (५) विद्वानों द्वारा प्रेरित या उनकी आज्ञा का वशंवद (६) काम्य गुणों से प्रेरित पुरुष या पति ।
'देवश्रवा देववातः सुदक्षम्'
ऋ. ३.२३.२

देववाततमः - देव, सूर्य, राजा या आत्मा के अतिनिकट पहुंच जाने वाला ।
'उक्था शंसन्तो देववाततमाः'
ऋ. ६.२९.४

देववान् - देवों का स्वामी प्रभु ।
'स गृणानो अद्भिर्देववान्'
ऋ. १०.६१.२६

देववाहनः - (१) देव, इन्द्रियों या उत्तम गुणों का धारक अग्नि ।
'अश्वो न देववाहनः'
ऋ. ३.२७.१४, अ. २०.१०२.२, साम. २.८८९,श.ब्रा. १.४.१.३०, ३.६, तै.ब्रा. ३.५.२.२.
(२) देवों का वाहन-अग्नि (३) वीर विक्रमी सैनिकों को युद्ध में ले जाने वाला (४) प्राणों का धारक आत्मा (५) द्योतक किरणों या प्रकाशों का धारक -सूर्य ।

द्वे विरूपे - द्वि.व. । (१) दो भिन्न भिन्न रूप रंग वाली स्त्रियां, (२) प्रकाश और अन्धकार से भिन्न भिन्न रूप वाली रात्रि और दिन, (३) प्राण और अपान रूप दो प्राण की गतियां, (४) ब्राह्मण और क्षत्रिय शान्त और उग्र रूप से भिन्न भिन्न हैं । (५) आकाश और पृथ्वी ।
'द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे'
ऋ. १.९५.१, वाज.सं. ३३.५, तै.ब्रा. २.७.१२.२.

देववीतम - (१) दिव्य गुणों से कान्तियुक्त ।
'शोचस्व देववीतमः'
ऋ. १.३६.९, वाज.सं. ११.३७, ऋ.खि. ७.३४.५, तै.सं. ४.१.३.३, मै.सं. २.७.३,७७.१५, ४.९.३, १२३.११.का.सं. १६.३, श.ब्रा. ६ .४.२.९. तै.आ. ४.५.२.
(२) कान्तिमान सूर्य के समान सबसे अधिक तेजस्वी ।
'मदो यो देववीतमः'
ऋ. ९.६३.१६, ६४.१२.
(३) सब तेजस्वी पदार्थों में अति अधिक कान्तिमान अग्नि ।

देववी - (१) देवताओं को प्राप्त होने वाला सोम, (२) ज्ञानादाता को प्राप्त होने वाला शिष्य ।
'पवस्व देववीरतिपवित्रं सोम रंह्या'
ऋ. ९.२.१

देववीतिः - (१) शुभगुणों, वीरों, विद्वानों को प्राप्त कराने वाला कार्य-उनकी रक्षा, (२) विजिगीषु जनों के आने और चमकने या विघ्नों का स्थान- युद्ध ।
'त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ'
ऋ.७.१९.४, अ. २०.३७.४, तै.ब्रा. २.५.८.१०.
(३) प्राणों के एकत्र योग का अवसर, (४) इन्द्रिय गणों से प्राप्त ज्ञान का भोग
'युवो अध्वरो देववीतये'
ऋ. ६.६८.१०, अ. ७.५८.१, गो.ब्रा. २.२.२२.
(४) देवानां दिव्य गुणानां वीतिः प्राप्तिः (दिव्य गुणों की प्राप्ति) -दया.
(६) देवताओं की प्रसन्नता ।
'अथा नो धा अध्वरं देववीतौ'
ऋ. ३.१७.५.
दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (देववीतौ) हमारे हिंसा रहित यज्ञ को धारण कर । (दया.)
तदनन्तर हमारे यज्ञ को देवताओं के प्रसन्न कारक बना- (६) विद्वान् या उत्तम गुणों की प्राप्ति, (८) परमेश्वर का ज्ञान (९) विद्वानों की रक्षा ।
'सुगंनो अस्यै देववीतये कृधि'
ऋ. २.२३.७.
(१०) उत्तम गुणों और भोगों की परिपूर्णता, (११) उत्तम भोगों की प्राप्ति ।
'यो अग्निं देववीतये
हविष्मां आविवासति'

ऋ. १.१२.९, साम. २.१९६, आप.श्रौ.सू. ९.१.११, जो अन्नादिपदार्थों का स्वामी होकर (हविष्मान्) देवों, उत्तम विद्वान् पुरुषों को तृप्त करने उत्तम गुणों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये यज्ञाग्नि के समान परमेश्वर की आराधना करता है ।

देवश् – देव या विद्वानों को चाहने वाला ।
'प्रतितान् देवशो विहि'
ऋ. ३.२१.५, मै.सं. ४.१३.५, २०५.१, का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.१२.१६, तै.ब्रा. ३.६.७.२.

देवशत्रु – (१) देव का शत्रु, (२) प्रकाश, जल, पृथिवी आदि, पदार्थों और शुभ गुणों का शत्रु (३) किरणों का शत्रु या उनसे नष्ट होने वाला ।
'हतासो वां पितरो देवशत्रवः'
ऋ. ६.५९.१

देवश्रवा – (१) एक वैदिक ऋषि जिसने भारत के नाम से अग्नि देवता के लिये देववात ऋषि के साथ ऋग्वेद का ३.२३.२. मंत्र देखा, (२) विद्वानों के ज्ञानों को श्रवण करने वाला, (३) प्रिय एवं काम्य पति का वचन श्रवण करने वाली स्त्री ।

देवशिष्टे – (१) ज्ञानवान् गुरु से अनुशासित दो शिष्य, (२) राजा से आज्ञापित दो भृत्य, (३) प्रकाशमान सूर्य से शासित या परमेश्वर से शासित रात और दिन ।
'समानो अध्वा स्वस्रोः अनन्तः
तम् अन्यान्या चरतो देवशिष्टे'
ऋ. १.११३.३, साम. २.११०.१.

देवश्रुत – (१) मेघ से स्रवित होने वाला, (२) विद्वानों द्वारा श्रवण करने योग्य ।
'देवश्रुतं वृष्टि वनिं रराणः'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२.
(३) देवों से प्रार्थित, (४) ईश्वरीय नियम ।

देवश्रुति – देवों या विद्वानों से विद्या प्राप्ति करना ।
'देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतम्'
वाज.सं. ५.१७, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२.९, १८.१२, का.सं. २.१०. श.ब्रा. ३.५.३.१३,१४.

देवसद् – विद्वानों या देवों में प्रशंसित ।
'दिविसदं देवसदम्'
वाज.सं. ९.२

देवसदन – (१) देवो अर्थात् इन्द्रियों का गृहभूत –मस्तिष्क (२) देवताओं की गृह ।
'अश्वत्थो देवसदनः'
अ. ५.४.३,६.९५.१,१९.३९.६.
(३) दिव्यगुणों तथा अग्नि का आश्रय सूर्य

देवस्य देवस्यमुनिः – (१) प्रत्येक इन्द्रिया का सके समान नाम रूप वाला होने वाला आत्मा ।
'मुनिर्देवस्य देवस्य
सौकृत्याय सखाहितः'
ऋ. १०.१३६.४

देवस्य पदः – (१) देव या अग्नि का आहवनीय स्थान ।
'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः'
ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६, २०६.११, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.२. नि. ४.१९.
जो देव या अग्नि के आहवनीय स्थान को (देवस्य पदम्) नमस्कार स्तुति या मन्त्र से (नमसा) देखते या जानते हुए (व्यन्तः)

देवसुमति – देवताओं की वर्षा देने वाली कल्याण कारिणी मति ।
'आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्
देवापि र्देवसुमतिं चिकित्वान्
स उत्तरस्मादधरं समुद्रम्
अपो दिव्या असृजद् वर्ष्या अभि'
ऋ. १०.९८.५, नि. २.११.
देवताओं की वर्षा देने वाली कल्याणकारिणी मति का ज्ञाता आर्ष्टिषेण देवापि ऋषि ने ऊपर के समुद्र से नीचे के समुद्र में दिव्य वर्षा के जलों को बरसाया ।

देवहित – (१) ईश्वर, देवों या विद्वानों से निश्चित ।
'व्यशेमहि देवहितं यदायुः'
ऋ. १.८९.८, साम. २.१२२४, वाज.सं. २५.२१.
(२) देवों या विद्वान जनों का हितकारी ।

देवहितं चक्षुः – (१) इन्द्रियों या प्राणों के बीच विद्यमान चक्षु, (२) सूर्य ।
'तच्चक्षुर्देवहितं
शुक्रमुच्चरत्'
ऋ. ७.६६.१६

देवहिति – (१) परमेश्वर का दिया ज्ञान कोश, (२) मेघ का जल ।
'देवहितिं जुगपुर्द्वादशस्य'
ऋ. ७.१०३.९

देवहूः – (१) विद्वानों और विद्या आदि शुभगुणों को स्वयं धारण करने वाला विद्वानों का आह्वाता (२) दिव्य शक्तियों के धारक विद्वानों या देवों को अपने पास बुलाने वाला परमेश्वर ।
'देवहूर्यज्ञ आ चवक्षत्'
वाज.सं. १७.६२, मै.सं. २.१०.५, १३७.१७, ३.३.८,४१.८, श.ब्रा. ९.२.३.२०

देवहूतम – सर्वोत्तम उपदेशकअग्नि, परमेश्वर ।
'देवानामसि देवहूतमम्'
वाज.सं. १.८., मै.सं. १.१.५, ३.१, ४.१.५, ६.१२, का.सं. १.४.,श.ब्रा. १.१.२.१२.

देवहूतिः – (१) यज्ञ में देवों की आहुति का स्थान, । (२) प्राणायतन देह ।
'बृहस्पति र्देवहूतौ चकार'
ऋ. ६.७३.२, अ. २०.९०.२, का.सं. ४.१६.
(२) विद्वान् तथा देवों की वाणी ।
'अग्नेशुक्रेण शोचिषा
विश्वाभिर्देवहूतिभिः
इमं स्तोमं जुषस्व नः'
ऋ. १.१२.१२
(३) देव + हू + क्ति = देवहूति । देवनांहूतिः (देवताओं का आह्वान्) (४) यज्ञ करने वाला, (५) दिव्य गुण वाला ।
'पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५
मुख्य यज्ञ करने वाले या दिव्य गुण वाले अपने अपने कर्म के अनुसार पृथक् मार्ग से जाते हैं ।

देवहूय – मनुष्यों के परस्पर स्पर्द्धा और ललकार का अवसर रूप संग्राम ।
'स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र'
ऋ. ७.८५.२

देवहेडन – (१) परमेश्वर-राजा, विद्वान् या देवता, की क्रुद्ध करने वाला कार्य ।
'नाविष्ट्यं वसवो देवहेडनम्'
ऋ. १०.१००.७
'मा कर्म देवहेडनं तुरासः'
ऋ. ७.६०.८
(२) देवता, गुरुजन या विद्वान् का अनादर ।
'मनसो वा प्रयुती देवहेडनम्'
ऋ. १०.३७.१२, तै.आ. (आंध्र) १०.६०, वै.सू. २३.१२,
'यद् देवा देवहेडनम्'
अ. ६.११४.१, वाज.सं. २०.१४.

देवहेतिः – (१) दैवी आघातकारी पदार्थ ।
'अन्तरिक्षं रश्रतु देवहेत्याः'
अ. ८.१.१२

देवा – 'देवृ' शब्द का प्र.पु.ए.व. में रूप
'सम्राज्ञी अधिदेवृषु'
ऋ. १०.८५.४६, साम.मं.ब्रा. १.२.२०, आप.मं.पा. १.६.६

देवाची – देवान् प्रति अक्ता । देव + अञ्च् + ङीष् = देवाची । अर्थ-(१) हविहविन करने की क्रिया (२) देवों के रक्षार्थ लगा हुआ कर्म या सामर्थ्य-दया ।
(३) देवान् पूजयन्ती । देवों की पूजा करती हुई (४) देवपूजा वाली बुद्धि ।
'य ऊर्ध्वया स्वध्वरः
देवो देवाच्या कृपा
ऋ. १.१२७.१, अ. २०.६७.३, साम. १.४६५,२. ११६३, वाज.सं. १५.४७, तै.सं. ४.४.४.८, का.सं. २६.११, ३९.१५.
जो अग्नि शोभन यज्ञ वाला (स्वध्वरः) उत्कृष्ट हविवहन करने के कर्म से युक्त
जो तेजस्वी राजा (देवताओं के रक्षार्थ लगे हुए कर्म या सामर्थ्य से राज्य को भली प्रकार पालने वाला है (स्वध्वरः) -(दया.)

देवाञ्जन – (१) सर्वकान्तिमय परमेश्वर ।
'देवाञ्जन त्रैककुदम्'
अ. १९.४४.६

देवानाम् अनीकम् – (१) किरणों का समूह । देवशब्द किरण के अर्थ में भी आया है ।
'विश्वे देवाः' का अर्थ भी किरणों का समूह बताया गया है ।
'चित्रं देवानामुदगादनीकम्'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७.१४, आ.सं. ५.३. वाज.सं. ७.१४, १३.४६.
किरणों का पूजनीय या विचित्र समूह उदित हुआ (उदगात्) ।

देवानाम् असुरः – दिव्य पदार्थों में प्राण शक्ति (असु) देने वाला परमेश्वर ।
'अयं देवानामसुरो विराजति'

अ. १.१०.१

देवानाम् एकम् असुरत्वम् – (१) सभी दिव्य पदार्थों का एक बड़ा भारी प्राणों में रमण करने वाला प्राणप्रद सामर्थ्य (२) विद्वानों का एक बड़ा भारी प्राणों के भीतर रमने वाला अद्वितीय ब्रह्म (३) तेजस्वी पिण्डों के बीच अन्धकार दूर करने वाला अद्वितीय बल, (४) सूर्य की किरणों का जीवनदान करने का विशेष कार्य

देवानांगर्भः – (१) देव, विजयशील वीर सैनिकों और विद्वानों, शासकों को अपने अधीन ग्रहण करने वाला (२) सूर्य, (३) समस्त सूर्यादि व्यापक, (४) सब को अपने भीतर लेने वाला।

'गर्भो देवानां पिता महीनाम्'

वाज.सं. ३७.१४, श.ब्रा. १४.१.४.३, तै.आ. ४.७.४, ५.६.८.

देवानां नामधा – (१) समस्त देवों के नामों को धारण करने वाला विश्वकर्मा– प्रभु।

'यो देवानां नामधा एकएव

ऋ. १०.८२.३, अ.२.१.३, वाज.सं. १७.२७, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.१०, का.सं. १८.१ दिव्य पदार्थों के नामों को स्वयं धारण करने वाला, (३) सब प्राणों का नाम या स्वरूप धारण करने वाला–आत्मा।

देवानां पत्नीनां गर्भः– (१) विषयों खेलने वाली इन्द्रियों (देवानां) की शक्तियां ही जिसकी उत्पत्ति कारण है–स्वप्न, प्रमाद।

'देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य करयो भद्रःस्वप्नः'

अ. १९.५७.३

देवानां पाथः– (१) देवों का भोजन मांस।

'प्रियं देवानामप्येतु पाथः'

अ. २.३४.२, का.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.१.१.४.

देवानां प्रियः– देव, विद्वानों या राजाओं का प्रिय। बौद्धों में यह शब्द प्रचलित था। पीछे यह शब्द 'मूर्ख' का पर्याय बन गया।

'प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्'

ऋ. १०.१६.८, अ. १८.३.५३, तै.आ. ६.१.४.

देवानां प्रिय पाथः– देवों का प्रिय मार्ग, देवयान।

'प्रियं देवानामप्येतु पाथः'

अ. २.३४.२

देवानां पुरोहितः– (१) पृथिव्यादि लोकों, पञ्चभूतों में से भी सबसे पूर्व विद्यमान (२) सबके बीच प्रवर्तक सूर्य, (३) देवताओं का पुरोहित– बृहस्पति।

'यो देवानां पुरोहितः'

वाज.सं. ३१.२०, तै.आ. ३.१३.२.

देवानां पूः – (१) इन्द्रियों की पुरी यह शरीर (२) देवताओं की पुरी अयोध्या।

'देवानां पूरयोध्या'

अ. १०.२.३१, तै.आ. १.२७.३

देवानांभागः– (१) देवताओं का भजन करने योग्य, (२) आश्रय स्थान।

'देवानां भाग उपनाह एषः'

अ. ९.४.५

देवानां भिषजा– (१) देवगण अर्थात् इन्द्रियों या विद्वानों के चिकित्सक अश्विद्वय. (२) प्राण और अपान।

'देवानामग्ने भिषजा शचीभिः'

अ. ७.५३.१, वाज.सं. २७.९, तै.सं. ४.१.७.४, मै.सं. २.१२.५, १४९.११, का.सं. १८.१६, तै.आ. (आंध्र) १०.४८.

देवानां मानम्– (१) दिव्य भावों से युक्त देव–अग्नि, विद्युत् सूर्य, भूमि या वायु की तन्मत्राओं का निर्माण (३) देवताओं की सृष्टि।

'देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्'

ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.

देवताओं के निर्माण के समय सबसे पहले ये माध्यमिक देवगण मेघ निर्मित हुए। अथवा देवों के निर्माण में वायु ही प्रथम है।

देवानामधिपतिः– ग्राह्य विषयों में क्रीड़ा करने वाले प्राणों का स्वामी – आत्मा।

' स देवानामधिपतिर्बभूव

अ. ७.५.२, १३.२.२५, तै.सं. १.६.६.४, ३.२.७.२, शां.श्रौ.सू. ४.१२.१०.

देवानामस्थि– (१) इन्द्रियों का प्रेरक आत्मा।

'देवानामस्थि कृशनंबभूव'

अ. ४.१०.६

देवानां माता– (१) सूर्य की किरणों को प्रकट करने वाली उषा (२) देवों की माता अदिति (३) तेजस्वी स्त्री पुरुषों की माता।

'माता देवानाम् अदितेः अनीकम्'

ऋ. १.११३.१९

देवानां सधस्थः– (१) देवताओं के समान स्थान

वाला ।
' देवानां वक्षि प्रियमासधस्थम्'
वाज.सं. २९.१, तै.सं. ५.१.११.१. मै.सं. ३.१६.२, १८३.१३, का.सं. (अश्व) ६.२.
हे अग्नि, देवताओं के समान स्थान वाले प्रिय अश्व या अन्न को भी ले जा (प्रियं वाजिनम् आवक्षि)

देवानां स्पशः- (१) लोगों का द्रष्टा-गुप्तचर (२) दिन जो सदा लोगों के देखने वाले हैं । ए.व. में रूप है- स्पश् । स्पश् धातु देखना अर्थ में आया है । स्पश् + क्विप्= स्पश् ।
(३) देवताओं के चार अर्थात् जासूस ।
'न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते
देवानां स्पश इह ये चरन्ति'
ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९.
जो ये देवताओं के चार इस लोक में घूमते हैं वे न कभी विराम लेते और न कभी सोते हैं । ईश्वर के भेजे चारों की कल्पना आज भी है जो सृष्टि में किए जाने वाले कर्मों का सतत निरीक्षण करते हैं ।

देवानां स्वसा- (१) विद्वान् पुरुषों की उत्तम रूप से गुण प्रकाश करने वाली, (२) ग्रिफिथ के मत से सिलाची नामक औषधि । इस औषधि के अन्य नाम-स्परणी, अरुन्धती, निष्कृति, कनीना और कन्यला
'सिलाची नाम वा असि
सा देवानामसि स्वसा'
अ. ५.५.१, ६.१००.३
(३) देवताओं की बहन-सिनीवाली दृष्ट चन्द्रा अमावस्या -सा. (४) विद्वान् भाइयों वाली बहन - दया. ।
'सिनीवाले पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा'
ऋ। २.३२.६, अ. ७.४६.१, वाज.सं. ३४.१०., तै.सं. ३.१.११.३ मै.सं. ४.१२.६, १९५.४, का.सं. १३.१६, नि. ११.३२.
हे विस्तीर्ण जंघा या केशकलाप वाली या अति पूजनीय (पृथुष्टुके) द्रष्ट चन्द्रा अमावास्या या स्वामी दयानन्द के अनुसार ऋतु गम्या पत्नी (सिनीवालि) तू देवताओं की या विद्वान् भाइयों की बहन है ।

देवानांहृदयः- (१) देवों या दिव्य शक्तियों का संस्थापक, (३) अग्नि, वायु और आदित्य की खोज लगाने वाला ।
'नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यः'
वाज.सं. १६.४६, तै.सं. ४.५.९.२. का.सं. १७.१६, श.ब्रा. ९.१.१.२२, २३.

देवानां होता- (१) देवताओं का होता अग्नि- (२) देव अर्थात् उत्तम पदार्थों का होता अर्थात् दाता- यज्ञाग्नि ।
'त्वं देवानामसि यह्वहोता'
ऋ. १०.११०.३, अ. ५.१२.३, वाज.सं. २९.२८, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१५, ४.१४.१५, २४२.७, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.२. नि. ८.८.
हे अग्नि, उत्तमगुणों से महान् तू देवों का होता है । हे यज्ञाग्नि तू उत्तमपदार्थों का दाता है ।

देवापिः- (१) प्रभु का बन्धु, (२) देवापि, (३) जल, (४) सूर्य की किरणों को प्राप्त करने वाला विद्वान् (५) जीव, ।
'त्वद्देवापे अभिमामगच्छत्'
ऋ. १०.९८.२
(६) राजा शन्तनु का पुरोहित जिसने वर्ष कामेष्टि यज्ञ में होता का कार्य किया था- (७) सत्संगी विद्वान् ।
'यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो
हेत्राय वृतः कृपयन् अदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२.

देवावी- (१) देव + अवी । देवों या विद्वानों का रक्षक-यज्ञ ।
'यज्ञं प्र णय देवाव्यं'
वाज.सं. ११.८, तै.सं. ४.१.१.३, मै.सं. २.७.१,७४.८, का.सं. १५.११, श.ब्रा. ६.३.१.२०.
(२) प्राणों या इन्द्रियों की रक्षा करने वाला ।
'देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम्'
ऋ. ९.७४.५

देवासः- देव शब्द का प्रथमा बहुवचन में वैदिक रूप । अर्थ- बहुत देव ।

देवी- (१) देवी नामक ओषधि जिससे बाल दृढ़ होता है, सायण और कौशिक ने 'काकमाची' नाम रखा है । राजनिघण्टु के अनुसार 'काकादनी' या 'केश्या' है ।
'देवी देव्यामधिजाता'
अ. ६.१३६.१

(२) दिव् + अच् = देव । देव + ङीष् । = देवी । प्रकाश माना ।
(३) नहर = दया. । (४) देव की स्त्री देवी ।

देवी अदितिः- (१) सूर्य के समान् ज्ञान प्रकाश देने वाली, (२) भूमि के समान अन्न और ज्ञान देने वाली माता (३)आचार्य एवं सावित्री वेदवाणी (४) अन्नदात्री भूमि ।
'प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमिः '
ऋ. ५.६९.३

देवीः आपः- (१) दिव्यगुणों वाली प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु, (२) राजा को चाहती हुई प्रजाएं ।
'आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः '
ऋ. ३.५६.४
(२) दिव्यजल ।
'उत वां विक्षु मद्या स्वन्धः
गाव आपश्च पीपयन्त देवीः '
ऋ. १.१५३.४
हे मित्र और वरुण, या हे उपदेशक तथा अध्यापक, आप दोनों की सुखी, मादयित्री या मदनीय प्रजाओं में (मध्यासु विक्षु) अन्न (अन्धः) गौएं और दिव्य जल निरन्तर बढ़ें (गावः देवीः आपश्च पीपयन्त) ।

देवीगौः- ज्ञान का प्रकाश देने वाली वाणी ।
'देवीं देवेभ्यः पर्येयुषींगाम् '
ऋ. ८.१०१.१६

देवीःद्वारः- (१) द्वाररूपी देवता- (२) अग्नि या अग्नि की ज्वालाएं रूपी द्वार -शाकपूणि (३) दिव्य पदार्थों का दाता यज्ञाग्नि ।
'उर्विया '
'देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वाः '
ऋ. १०.११०.५, अ. ५.१२.५, वाज.सं. २९.३०. मै.सं. ४.१३.३, २०२. ४, का.सं. १६.२०, तै.सं. ३.६.३.३., नि. ८.१०.
बड़ी द्वाररूपी देवताओं, तुम सभी यज्ञ की सामग्रियों को द्वार से होकर जाने देने वाली (विश्वमिन्वा) हो अथवा,
अग्नि की बड़ी ज्वालारूपी द्वार, तुम सभी यज्ञ की सामग्रियों को द्वार से होकर जाने देने वाली हो ।
अथवा, अनेक गुणों वाली (बृहती)एवं सारे, जगत् को चलाने वाली गतिशील या रोगादिनिवारक अग्नि । यज्ञशाला के द्वार से तात्पर्य है (४) पापों को वर्जन करने वाली गृह देवियां, (५) सेना की छावनियां (६) प्रकाशयुक्त द्वार ।
'विश्रयन्तामृता वृधो द्वारोदेवीरसश्चतः '
ऋ. १.१३.६, १४२.६.

देवी धी- दिव्य गुण युक्त प्रज्ञा ।
'समख्ये देव्या धिया '
वाज.सं. ४.२३, श.ब्रा. ३.३.१.१२.

देवृ- (देवा) - देवर ।
'सम्राज्युत देवृषु '
अ. १४.१.४४.

देवृकामा- देवरों के प्रति शुभकामना चाहने वाली ।
'वीरसूर्देव कामा स्योना '
ऋ. १०.८५.४४, अ. १४.२.१७,साम. मं.ब्रा. १.२.१७, गो.गृ.सू. २.७.१२, पा.गृ.सू. १.४.१६,

देवेष्वाततः- समस्त प्राणों , समस्त लोकों और दिव्य पदार्थों में फैला हुआ-परमेश्वर ।
'तन्तुर्देवेष्वाततः '
ऋ. १०.५७.२, अ. १३.१.६०. ऐ.ब्रा. ३.११.१८.

देवेषितः(१) विषयक्रीड़ा द्वारा प्राप्त (२) वर्षाकाल में उत्पन्न (३) देवता के प्रकोप से प्राप्त ।
'यक्ष्माद् देवेषितादधि '
अ. ८.७.२

देवैनस- (१) देव, विद्वान् पुरुषों या दिव्य पदार्थों के प्रति किया गया पाप ।
'देवैनसादुन्मदितम '
अ. ६.१११.३
'देवैनसात् पित्र्यान्नमग्राहात् '
अ. १०.१.१२.

द्वेशीर्षे- (१) यज्ञ के दो शीर्षप्रायन् और उदयन अथवा ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्य (२) कुमारिल कृत तन्त्रवार्तिक के अनुसार दो शीर्ष हैं- छः छः मासों के दो अयन- उत्तरायण और दक्षिणायन (३) सायण के मत से दो शीर्ष हैं- रात और दिन (४) शाब्दिकों के मत से शब्द रूप ब्रह्म के दो प्रकार के शब्द-नित्य और अनित्य ही दो शीर्ष हैं, । (५) व्यंङ्ग्य और व्यञ्जक ।
'चत्वारि श्रृंगाःत्रयोअस्य पादाः
द्वे शीर्षे ससप्तहस्तासो अस्य '

ऋ. ४.५८.३, वाज.सं. १७.९१, मै.सं. १.६.२, ८७.१७. का.सं. ४०.७ , गो.ब्रा. १.२.१६, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना.उप.१०.१, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, नि. १३.७.

देशोपसर्गाः- देश में उत्पन्न होने वाले संहारक उपद्रव ।
'देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु'
अ. १९.९.९

द्वेष- (१) द्वेष, (२) द्वोषोत्पादन कर्म । द्विष् त्र अच् ।

द्वेषस्- द्विष् + असुन् = द्वेषस् । अर्थ है । (१) दौर्भाग्यं (२) अप्रिय । (३) शत्रु

देष्ठः- सर्वोत्तम दाता - इन्द्र ।
'देष्ठः सून्वते भुवः'
ऋ. ८.६६.६

देष्ट्र- (१) परस्पर दान, आदान करना, (२) उपदेश करने वाला विद्वान् ।
'क्व देष्ट्राय तस्थथुः'
ऋ. १०.८५.१५, अ. १४.१.१४.
(३) ज्ञानोपदेश ।
(४) उपदेश करने का कार्य ।
'तिम्रो देष्ट्राय निर्ऋरुपासते'
ऋ. १०.११४.२

देष्ट्री- उपदेष्टा ।
'प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री'
अ. ११.४.१२

देष्णम्- 'दा' (देना) धातु से सम्पन्न । अर्थ (१) देने योग्य, देय, दातव्य, ।
'पुरु हिवां पुरुभुजा देष्णम्'
ऋ. ६.६३.८.
हे अश्विद्वय, बहुभोजी या बहुपालक तुम दोनों को दातव्य धन बहुत है ।
'निते देष्णस्य धीमहि प्रेरके'
ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१.
(२) दाता-दया.

द्वेषोयुत- द्वेषभावों से रहित अजात शत्रु ।
'द्वेषोयुतमाविवासन्ति धीभिः'
ऋ. ४.११.५

द्वे सृती- (१) दो मार्ग- देवयान और पितृयाण, (२) जीवन यापन के दो मार्ग-एक पालक (शासक रूप में सरकारी सेवा में लगना) और दूसरा साधारण पुरुष (अपने माता पिता के पेशे में लगा रहना)
'द्वे सृती असृणवम् पितृणाम्
अहं देवानामुत मर्त्यानाम्'
ऋ. १०.८८.१५, वाज.सं. १९.४७. मै.सं. २.३.८, ३६.१४. का.सं. १७.१९, ३८.२, श.ब्रा. १४.९.१.४, तै.ब्रा. १.४.२.३, २.६.३.५, आप.श्रौ.सू. १९.३.५.
छान्दोग्य में तीन मार्ग बतलाए गए हैं-
'तद् य इत्थं विदुः ये चेमेऽस्मदे श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभि संभवन्ति स एतान् ब्रह्म गमयति एष देवयानः पन्थाः ।
अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्तेदत्तम् इत्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति अथैतया पथोर्न कतरेण चना । तानीमानि सुद्राण्यसकृ दा वर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत् तृतीयं स्थानं तेनासौ लोको न संपूर्यते ।

दैवीजनी- (१) देव अर्थात् परमात्मा से उत्पादित पशु, पक्षी, कीट पतंग आदि (२) प्राणों से उत्पन्न उपप्राण ।
'केन दैवजनीर्विशः'
अ. १०.२.२२

दैवत- देवता + अण् = दैवत । देवताम् अधिकृत्य कृतम् दैवतम् (जो देवता के आश्रय से किया जाय वह दैवत है) ।
वेद में जो ऋचा जिस देवता को लक्ष्य कर कही जाती है वह ऋचा उसी देवता के नाम से कही जाती है ।
(यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानाम् तत् दैवतम्)

दैववात्- (१) सूर्यवत् तेजस्वी और वात के समान शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला ।
'वृचीवतो दैववाताय शिक्षन्'
ऋ. ६.२७.७

दैव्या- द्वि.व. (वि.) (१) विद्वानों में उत्तम तथा ज्ञानादि में कुशल स्त्रीपुरुष (२) दिनरात ।

दैव्यजन- (१) विद्वानों में कुशल, (२) ईश्वर भक्त, (३) राजा द्वारा नियुक्त ।
'अचित्तीयज्ञकृमा दैव्येजने'
ऋ. ४.५४.३, तै.सं. ४.१.११.१, मै.सं. ४.१०.३,१४९.१६.

दैव्यंमधु- (१) मेघस्थजल, (२) देव तथा विद्वानों

के योग्य अन्न और ज्ञान ।
'वनस्पते मधुना दैव्येन'
ऋ. ३.८.१, मै.सं. ४.१३.१,१९९.२, का.सं. १५.१२, ऐब्रा. २.२. ४. तै.ब्रा. ३.६.१.१, नि. ८.१८.
(३) देवसम्बन्धी घृत- (४) घृत और मिष्ठान्न-दया. ।
' अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो
'वनस्पते मधुना दैव्येन'
ऋ. ३.८.१
हे खदिर या पलाश का यज्ञयूप, तुझे अध्वर्युजन (देवयन्तः) यज्ञ में यज्ञ -सम्बन्धी घृत से (दैव्येन मधुन्ता) सिक्त या मृष्ट करते हैं (अञ्जन्ति) ।
हे गार्हपत्य अग्नि, (वनस्पते) तुझे हिंसा रहित बलिवैश्वदेव यज्ञ में (अध्वरे) अपने देवभाव की कामना करने वाले गृहस्थ (देवयन्तः) मिष्टान्न और घृत से (दैव्येन मधुना) प्रकाशित करते हैं (अञ्जन्ति) ।

दैव्यं मनः - (१) विद्वानों का मननशील चित्त ।
'मा युष्महि मनसा दैव्येन'
अ. ७.५२.२

दैव्यंवचः- ईश्वर की वाणी वेद ।
'वृणानो दैव्यं वचः'
अ. ७.१०५.१

दैव्यं ब्रह्म- (१) देवअर्थात् आत्मसम्बन्धी ब्रह्मबल, (२) ईश्वरीय वेदज्ञान ।
'युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन'
अ. ७.७८.२, तै.सं. १.६.२.१,१०.१, मै.सं. १.४.१, ४७.६, १.४.५, ५२.१८, का.सं. ४.१४,३१.१५ आप श्रौ.सू. ४.६.४, कौ.सू. ३.१.
(३) दैवसम्बन्धी वेदराशि-सा. (४) देवजनों का अन्न -दया. ।
'द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन
विश्वेदेवाः पुष्करे त्वाददन्त'
ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४.
मैत्रा वरुण के वीर्य के स्खलित होने पर दैव सम्बन्धी वेदराशि से विश्वेदेवों ने तुझे जल कलश में रखा ।
अथवा, देवों के अन्न के निर्म्मित सूर्य की किरणों ने तुम जल को अन्तरिक्ष में धारण किया ।

दैव्यःश्लोकः- (१) विद्वानों की देवोचित स्तुति, (२) परमेश्वर से प्राप्त श्लोक -वेदवाणी
'इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषुक्तु'
ऋ. ७.९७.३

दैव्याः ऋषयः- (१) दिव्यगुण सम्पन्न अथवा देव आत्मा से सम्बद्ध अथवा देव इन्द्रियमय ऋषि गण, (२) ज्ञान के साधन आंख, नाक, कान, मुख, त्वचा, रसना आदि ज्ञानेन्द्रियां
'मानो हासिषुर्ऋयोदैव्या ये'
अ. ६.४१.३

दैव्याहोतारा- द्वि.व. । दैव्यो होतारौ (देव सम्बन्धी दो होता) । अर्थ- (१) देवताओं के होता अग्नि और आदित्य ।
(२) दिव्य गुण सम्पन्न सुख कारक अग्नि और वायु ।
'दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२.७, का.सं. १६.२०.तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.१२.
देवताओं के होता अग्नि और आदित्य जो मनुष्य होताओं से प्रथम, मुख्य या बढ़कर है और जो सुस्तुत या सुन्दर स्तुति युक्त है । मनुष्य जीवन के लिए मुख्य (प्रथमा) वाणी आदि इन्दियों को उत्तम बनाने वाले (सुवाचा) अग्नि और वायु (दैव्या होतारा) (३) दुर्ग के मत से वायु और अग्नि ।
(४) दिव्य गुण-संपन्न अग्नि और वायु । (दया.) (५) प्राण और अपान वायु- ऐ.ब्रा. ।
'प्राणपानौ वा दैव्या होतारा'

दैवी - देव अर्थात् इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाने वाली ओषधि ।
'दैवीमर्नुष्यजा उत'
अ. ११.४.१६

दैवीक्षितिः- (१) जल प्रदान करने वाली मेघों से हरी भरी रहने वाली भूमि, (२) मनः कामना पूर्ण पति के अधीन रहने वाली दारा, (३) दानशील, राजा के पीछे चलने वाली प्रजा ।
'अग्निर्नेता भगइव क्षितीनाम्'
दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा'
ऋ. ३.२०.४, कौ.ब्रा. १५.२.

दैवीधी- (१) पूज्य परमेश्ववर तक पहुंचा देने

वाली धी, (२) ध्यान धारणावती योग-समाधि
'दैवीन्धियं मनामहे'
वाज.सं. ४.११.तै.सं. १.२.३.१, ६.१.४.४. मै.सं. १.२.३, ११.६, ३.६.९, ७२.७, का.सं. २.४, २३.५. श.ब्रा. ३.२.२.१७, आप. श्रौ.सू. १०.१७.९.

दैवीपूतिः- (१) देवों या विद्वानों को पालने की उत्तम व्यवस्था दक्षिणा ।
'दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या'
ऋ. १०.१०७.३

दैवीः विश- दर्शनशील आत्मा के भीतर प्रविष्ट प्राण आदि प्रजाएं-प्राणगण ।
'इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानः'
वाज.सं. १७.८६, तै.सं. ४.६.५.६, मै.सं. २.११.१, १४०.७, ३.३.१०. ४४.१३, का.सं. १८.६, २१.२०.

दैवीस्वस्ति- (१) देव, परमेश्वर और विद्वानों द्वारा सम्पादित कल्याण एवं सुख शान्ति ।
'दैवी स्वस्तिः परिणःस्यातम्'
ऋ. ३.३८.९
(२) देवों का अनुग्रह- (३) देवताओं से प्राप्त कल्याण-आधिदैविक कल्याण-
'देवी स्वस्तिरस्तुनः'
ऋ.खि. १०.१९१.५, मै.सं. ४.१३.१०, २१४.१४. श.ब्रा. १.९.१.२७, तै.ब्रा. ३.५.११.१, तै.आ. १.९.७, ३.१.

देवोदास - द्युलोक में उत्पन्न होने वाला -अग्नि ।
'प्र दैवो दासो अग्निः'
ऋ. ८.१०३.२, साम. १.५१, २.८६७, साम. वि. ब्रा. ३.५.५.

द्यो - (१) दिव् + डो (गमेर्डो) = द्यो । अर्थ है- स्वर्ग । भासा स्वृतः भवति (प्रकाश से सर्वत्रः व्याप्त रहता है) । संस्पृष्टा ज्योतिभिः पुण्यकृद्भिश्च (ज्योतियों तथा पुण्यवानों से संस्पृष्ट)
(२) द्यौः द्योतनात् (स्वप्रकाश से चमकने वाला, (३) द्युलोक ।
पुनः -
'द्यावा नः पृथिवीं इमं सिधमद्य दिविस्पृशम् यज्ञं देवेषु यच्छताम्'
ऋ. २.४१.२०, तै.सं. ४.१.११.४, मै.सं. ४.१०.३, १५०.१५. नि. १०.३८
हे द्यौ और पृथिवी, हमारे स्वर्ग आदि के साधक (सिधम्) देवों को पहुंचाने वाले (दिवस्पृशम्) इस यज्ञ को (इमं यज्ञम्) देवों के लिये दो (देवेषु यच्छतम्) । पुनः

दोग्ध्री - दूध देने वाली गौ ।
'दोग्ध्री धेनुः'
वाज.सं. २२.२२, तै.सं. ७.५.१८.१, मै.सं. ३.१२.६, १६२.८, का. सं. (अश्व.) ५.१४, श.ब्रा. १३.१.९.३. तै.ब्रा. ३.८.१३.१.

दोघ - सुखदायक रूप ।
'उरु दोघं धरुणं देवरायः'
ऋ. ५.१५.५

द्रोघ - द्रोह
'द्रोघवाचस्ते निर्ऋथंचन्ताम्'
ऋ. ७.१०४.१४, अ. ८.४.१४.

द्रोण - (१) अरणी काष्ठ, (२) कुण्डपात्र (३) जाने योग्य मार्ग, (४) राष्ट्र (५) विश्व ।
'क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसे
अग्ने वाजी न कृत्व्यः'।
ऋ. ६.२.८
(६)गति करने का स्थान कलश,(७) शरीर जिसमें सोमरूप आत्मा निवास करता है ।
'अभिद्रोणान्यासदम्'
ऋ. ९.३.१, ३०.४, साम. २.६०६
(८) द्रुनमय - काष्ठ निर्मिति । दोन जो काठ का बनाया जाता है इसके द्वारा कूप से या आहर से जल निकाला जाता है ।
'द्रोणाहावमवतमश्मचक्रम्'
ऋ. १०.१०१.७, नि. ५.२६.
लकड़ी का बना द्रोण ही जिस रस का निधान है उस द्रोणाहाव की रक्षा करो ।

द्रोणकलश - (१) सोम धारण के लिए कलश, यज्ञ में सोम रखने का पात्र ।
'वायव्यानि च मे द्रोण कलशश्च मे'
वाज.सं. १८.२१, मै.सं. २.११.५,१४३.८, का.सं. १८.११.
'द्रोणकलशाः कुम्भ्यः'
अ. ९.६.१७

द्रोणसाक्- (१) राष्ट्र या कलश में विद्यमान, (२) देह रूप घट में व्यापक आत्मा ।
'एवा पतिं द्रोमसाचं सचेतसम्'
ऋ. १०.४४.४, अ. २०.९४.४

(३) राष्ट्र की सेवा करने वाला ।

द्रोणाहाव– (१) द्रोण + आहाव । काष्ठ के बने जलपान पात्र से युक्त कूप (३) द्रोण काष्ठ निर्मित पानी पटाने का एक यन्त्र और आहाव निपान का वाचक है । ये दोनों शब्द कूप रूप संग्राम के विशेषण हैं । संग्राम ही कूप है । आहाव का अर्थ संग्राम भी है । इसमें शूर वीर आहूत होते हैं ।

ऋ. १०.१०१.७, नि. ५.२६

द्रोण्य – (१) शीघ्रगामिषुभवः –दया. । शीघ्रगामी जन्तुओं में सर्व श्रेष्ठ, (२) वेग से आगे बढ़ने वाला, (३) राष्ट्र में उत्तम ।

' दुद्रुवत् द्रोण्यः पशुः '

ऋ. ५.४०.४

द्योतना – (१) शोभती हुई चमकती हुई कुलवधू या (२) उषा ।

'सिषासन्ती द्योतना शश्वदागात्'

ऋ. १.१२३.४

द्योतनिः – (१) तेजस्वी, (२) प्रकाशवान्।

'परिद्योतनिं चरतो अजस्रा

ऋ. १०.१२.७, अ. १८.१.३५

(३) चन्द्रमा, (४) चमकती चांदनी, (५) सूर्य की दीप्ति (६) अर्थ प्रकाश से युक्त विद्या, (७) प्रकाशक तेजस्वी राजा ।

'आद्योतनिं वहति शुभ्रयामा'

ऋ. ३.५८.१

दोधत् – (१) भय से कंपा देने वाला दुष्ट पुरुष ।

' विचिद् वृत्रस्य दोधतः '

ऋ. ८.६.६, अ. २०.१०७.३, साम. २.१००२.

(२) हिंसक, दुष्ट ।

'अनानुदो वृषभो दोधतो वधः '

ऋ. २.२१.४

(३) क्रोध करता हुआ, (४) उमड़ता हुआ ।

'इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानु वज्रेण हीडितः '

ऋ. १.८०.५

सूर्य या वायु उमड़ते हुए (दोधतः) मेघ के ऊपरी भाग को (सानुम्) विद्युत् से (वज्रेण) छिन्न भिन्न करता है (हीडितः) ।

दोधवीति – (१)कंपाता है , (२) स्वच्छ शुद्ध पवित्र करता है ।

'अत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान्'

ऋ. २.४.४.

द्रोघवाक्– द्रोह या परस्पर द्वेष की बात कहने वाला ।

'द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्'

ऋ. ७.१०४.१४, अ. ८.४.१४

दोषण्य – बाहुओं में स्थित ।

'यक्ष्मं दोषाण्यमंसाभ्याम्'

ऋ. १०.१६३.२, अ. २.३३.२, २०.९६.१८, आप.मं.पा. १.१७.२.

दोषणि श्रीः (श्रिस्)– भुजाओं में लिपटी ।

'ममत्वा दोषणिश्रिषम्'

अ. ६.९.२

दोषणी – (१) बाहु के ऊपर के भाग ।

'त्वष्टा चार्यमा च दोषणी'

अ. ९.७.७.

दोषा – दुष् + अच् + टाप् = दोषा । अर्थ है– (१) रात्रि ।

'कुहस्वित् दोषा'

कहां रात बिताई'

आधुनिक अर्थ– (१) रात, (६) बाहु, (३) अन्धकार, (४) दोष, (५) पाप (२) रात्रि का अन्तिम याम ।

'दोषा दयमानः वायसः मामवूवुधत्'

रात के अन्तिम भाग में उड़ता हुआ पक्षी (दयमानः) या सूर्य किरण ने मुझे जगाया (माम् अवूवधत् ।

दोषावस्तः– (१) दिनरात, अहर्निश, ।

'दोषावस्तः दीदिवांसमनुद्यून्'

ऋ. ४.४.९, तै.सं. १.२.१४.४, मै.सं. ४.११.५, १७३.१०. का.सं . ६.११.

'त्वं नः पाह्यंहसः

दोषा वस्तरधायतः'

ऋ. ७.१५.१५

दोषावस्तोः– रातदिन ।

'दोषावस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे'

ऋ. १.१०४.१

दिन और रात (दोषावस्तोः) प्राप्त करने योग्य समीप में (प्रपित्वे) ढोकर ले जाने में समर्थ अश्वों को या अश्वारोहियों को (वहीयसः) ....

दोस् – (१) हाथ । शिताम' शब्द से "दोस्' शब्द अभिहित है । ' श्रितम् अंश भागेन इति शिताम

(कन्धे से लटका हुआ है) या ' एतत् श्रितं कार्य भवति' (इसी के आश्रय से कार्य किया जाता है) अतः यह 'शिताम' हुआ है । निरुक्त के अनुसार 'द्रु' (गमनार्थक) + डोसि = दोस् (पृषोदरादिवत्) हुआ । तस्यैव वलेन पशवः द्रवन्ति गच्छन्ति (उसी के बल से पशु चलते हैं) । पशु दोल्ह मार कर या बाहु के बल से चलते हैं । यह 'दोल्ह' शब्द 'दोस्' का ही नाम धातु सा है ।

लोक में दम् + डोसि = दोस् बना है । बाहु चलने के समय हिलता है । आधुनिक -बाहु, त्रिज्या का एक अंश ।

द्रोः उपस्थः- (१) द्रोण कलश, (२) काष्ठ का बना बर्तन ।

दोहत् - 'दुह्' धातु के लेट् प्रथम पुरुष एक वचन का रूप । ' बहुलं छन्दसि' से 'शप्' का लोप नहीं हुआ और 'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु' से तिप् के इ का लोप हुआ है । अर्थ है- दोग्धुं प्रक्षारयतु उदकानिं (दुहने के लिये जल प्रक्षारित करें) ।

'उपह्वये सुदुघां धेनुमेतां
सुहस्तो गोधुक् उतदोह देनाम्
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नो
अभीद्धो घर्मस्तदुषु प्रवोचम्'

ऋ. १.१६४.२६, अ. ६.७३.७, ९.१०.४, नि. ११.४३

यहां माध्यमिका वाक् से धेनु का रूपक बांधा गया है । इस सुन्दर दुही जाने वाली माध्यमिका वाक् धेनु को बुलाता हूँ (एतां सुदुघां धेनुम् उपह्वये) और (उत) इसे (एनाम्) दुहने में सिद्ध हस्त (सुहस्तः) गाय दुहने वाला (गोधुक्) इन्द्र जल से प्रक्षारित करें । सविता सभी सवों में उत्तम सव (सविता श्रेष्ठं सवम्) उत्पन्न करने वाला है । अतएव अभिदीप्त मध्यमस्थानीय विद्युत् नामक धर्म (अभीद्धःघर्मः) हमारे लिये जल बनावे (नः सविषत्) अतः (तत्) इन्हीं को यह स्तुति करता हूँ (उसु प्रवोचम्) ।

धेनु के अर्थ में अध्वर्यु ही गोधुक हुआ और दूध श्रेष्ठ सव ।

दोहनः - प्राप्त कराने वाला, प्रदान करने वाला ।

'अभीमृतस्य दोहना अनूषत,
योनौ देवस्य सदने परीवृताः'

ऋ. १.१४४.२,

इसको सब प्रकार से (ईम्) सत्य ज्ञान को प्रदान करने वाले (ऋतस्य दोहनाः) ज्ञानप्रद आचार्य के गृह (योनौ) और विद्याभवन में (सदने) विद्यावान् आप्त पुरुष भी सब प्रकार से उपदेश करें (अभि अनूषत्)

अथवा, जल के दोहन प्राप्त कराने वाली धाराएं (ऋतस्य दोहनाः) मेघ या सूर्य के आश्रय भूत अन्तरिक्ष में (योनौ) विद्यमान होकर भी उस अग्निमय सूर्य या विद्युत् के गुणों को (ईम्) बतलाती है (अनूषत्)

दोहस् - (१) पुत्र कामना को पूर्ण करना, (२) इच्छा-पूर्ति ।

'तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे
दशप्रमतिं जनयन्त योषणः'

ऋ. १.१४१.२

जीवात्मा की तृतीय दशा में आने पर (तृतीयमस्य) वीर्य सेक्ता पुरुष के (वृषभस्य) पुत्र -कामना का पूर्ण करने के लिये (दोहसे) स्त्रियां (योषण) दसो उत्तम ज्ञान साधनों से युक्त पूर्णांग बालक को (दशप्रमतिम्) जनती है । यही उत्पन्न जीव के रूप में आत्मा का तीसरा स्वरूप है ।

अथवा यौवन में रस सेचन समर्थ पुरुष का तीसरा पूर्ण समर्थ पुरुष का तीसरा पूर्ण यौवन का समय है । कामना-पूर्ति के लिये (दोहसे) जिसे दस धर्म लक्षणों से सम्पन्न पुरुष को प्राप्त कर स्त्रियां सन्तान उत्पन्न करती हैं ।

द्वौ - (१) कार्य और कारण (२) प्रकृति और पुरुष

'द्वाभ्यां स्वाहा'

वाज.सं. २२.३४, तै.सं. ७.२.११.१, १९.१, का.सं. (अश्व) २.१,९

(३) प्राण और अपान, (४) महत् और अहंकार, (५) दो ।

'द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च'

अ. ७.४.१, वाज.सं. २७.३३, मै.सं. ४.६.२, ७९.६, श.ब्रा. ४.४.१.१५, तै.आ. १.११८, आश्व.श्रौ.सू. ५.१८.५, शां.श्रौ.सू. ८.३.१०.

दौर्जीवित्य - (१) दुःख से जीना (२) सासं लेने के समय फेंफड़ो में पीड़ा होना ।

'दौष्प्रयं दौर्जीवित्यम्'

ऋ. ४.१७.५, ७.२३.१.

दौर्वत्य – (१) दुःखदायी कष्टप्रद व्रत या कार्य ।
'रुद्रं दौर्व्रत्येन'
वाज.सं. ३९.९

दौः स्वप्न्य – (१) बुरेस्वप्न, (२) दुःस्वप्न में होने वाला अनिष्टदर्शन ।

द्यौः– (१) वृष्टिकारणभूत द्यौः वृष्टि (वृष्टि का कारण भूत द्यौ)
'द्यौरासीत् पूर्वचित्तिः'
वाज.सं. २३.१२,५४, तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९, १६६.६ , का.सं. (अश्व.).४.७, शं.ब्रा. १३.५.२.७
(२) स्वर्गलोक ।
'मित्रोदाधार पृथिवीमुतद्याम्'
ऋ. ३.५९.१, तै.सं. ३.४.११. का.सं. २३.१२, ३५.१९. तै.ब्रा. ३.७.२.४, आप.श्रौ.सू. ९.२.६.नि. १०.२२.
मित्र पृथिवी और स्वर्गलोकको धारण या पालन करते हैं ।
(३) सूर्य ।
'तन्त्रो मित्रो वरुणोमामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौः'
ऋ. १.९४.१६, ९५.११, ९६.९, ९८.३, १००.१९, १०१.११, १०२.११, १०३.८.१०५.१९, १०६.७.१०७.३, १०८.१३, १०९.८. ११०.९, १११.५, ११२.२५, ११३.२०.११४.११, ११५.६, ९.९७.५८, आ.सं. ३३.४२, ३४.३०,का.सं. १२.१४, मै.सं. ४.१२.४, १८७.६, ८, ४.१४.४.२२०.१२, ऐ.ब्रा. १.२१.१९, तै.ब्रा. २.८.७.२, तै.आ. ४.४२.३.
हमारे इस वचन को मित्र, वरुण, अदितिः, पृथिवी और द्यौ बार बार पालन करें या पूजें ।

द्यौ संशित – द्युलोक की शक्तियों में सुशिक्षित
'विष्णोःक्रमोऽसि संप्तनहा
द्यौ संशितः सूर्यतेजाः'
अ. १०.५.२७

ध

धक् - दद् – दा (दो या दीजिए) । दा धातु के लुङ् में मा के योग रूप । च्लि का लोप । यहां लोट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग वैदिक है– अर्थ है । दो या दीजिए ।

धक्षुः– भस्म करने वाला अग्नि
'धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः'
ऋ. १०.११५.४

धनकाम्य – जिसका धन ही इष्ट हो, लोभी ।
'ये ऽश्रद्धा धनकाम्याः'
अ. १२.२.५१

धनञ्जय– (१) ऐश्वर्य के लिये विजय प्राप्त करने वाला परमेश्वर ।
'धनञ्जयो रणे रणे'
ऋ. १.७४.३, साम. २.७३२, तै.सं. ३.५.११.४, मै.सं. ४.१०.३, १४८.६, का.सं. ८.१६.
ऐश्वर्य के लिये विजय प्राप्त करने वाला परमेश्वर और राजा प्रत्येक रमण योग्य आनन्द प्रद अवसर में सबसे उत्तम पद पर विराजे
(२) संग्राम में शत्रु का धन जीतने वाला इन्द्र का विशेषण ।
'विद्या हित्वा धनञ्जयम'
ऋ. ३.४२.६, ८.४५.१३, अ. २०.२४.६

धत्तात् – दास्पति (देगा) । यहां लृट् (भविष्य) के अर्थ में लोट् का प्रयोग हुआ है ।

धनजित् – (१) धन ऐश्वर्य द्वारा सत्व को जीतने वाला, (२) सब से अधिक धनी– इन्द्र, परमेश्वर ।
'विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते'
ऋ. २.२१.१. कौ.ब्रा. २५.७,२६.१६, शां.श्रौ.सू. १८.१७.३.

धनदा – ऐश्वर्यदाता परमेश्वर ।

धनपाल – धनाध्यक्ष ।
'धनपालो धनवे'
अ. १९.३५.२

धनभक्ष – धन और ऐश्वर्य का सेवन ।
'धनभक्षेषु नोऽव'
ऋ. १०.१०२.१

धनम् – धि (प्रीणनार्थक) + क्यु = धन (इदितो नुम् से नुम् का आगम) धिनोति प्रीणयति एतत्स्वामिनम् (यह धन स्वामी को प्रसन्न करता है) । अर्थ है– धन ।
'गर्तारुगिव सनये धनानाम्'
ऋ. १.१२४.७, नि. ३.५.
जैसे पतिकुल का धन पाने के लिये दाक्षिणात्य

स्त्री गर्तनामक अक्ष निवापन स्थान पर चढ़ती है । धन के पर्यायवाची वैदिक शब्द ।
(१) मघ, (२) रेक्ण (३) रिक्थ, (४) वेद ।

धनयन् – धन के समान सञ्चय करे या धन के समान सञ्चय करता हुआ ।

धनर्चः– धनैश्वर्यों से अर्चनीय ।
'हिरिश्मश्रुंनार्वाणं धनर्चम्'
ऋ. १०.४६.५

धनसः– (१) ज्ञानधन का प्रदाता गुरु (२) धनदाता, (३) बल और ज्ञान का दाता प्राण ।
'गोधायसं विधनसैरदर्दः'
ऋ. १०.६७.७, अ. २०.९१.७, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.१०. तै.ब्रा. २.८.५.१.

धनसनिः– (१) धन का दाता ।
'इहैधि धनसनिः'
अ. १८.४.३८

धनसा– (१) धन का दानी, (२) धन को प्राप्त करने वाला ।
'उतत्यं वीरं धनसामृजीषिणम्'
ऋ. ८.८६.४
(३) धन + सन् + विट् = धनसा,। धन का विभाग करने वाला, ऐश्वर्य का दान देने वाला, (४) नाना ऐश्वर्यों को देने वाला ।
'सत्राजितो धनसाअक्षितोतयः'
ऋ. ८.३.१५, अ. २०.१०.१, ५९.१, साम. १.२५१, २.७१२, मै.सं. १.३.३९.४६.६, आप.श्रौ.सू. १३.२१.३.
'धनसा धनसातये'
अ. १९.३१.८
(५) ऐश्वर्य का विभाग करने वाला विचारपति ।

धनसातिः– ऐश्वर्य का लाभ ।
'धनसा धनसातये'
अ. १९.३१.८

धनस्पृत्– (१) ऐश्वर्य धन देने वाला ।
'बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतम्'
ऋ. ५.८.२.
(२) धन से पूर्ण और पालन करने वाला ।
'प्रवीर मुग्रं विविचं धनस्पृतम्'
ऋ. ८.५०.६
(२) धन की कामना करने वाला ।
'येन कण्वं धनस्पृतम्'
ऋ. ८.७.१८
(३) धनैः विद्यासुवर्णादिभिः प्रीतः सेवितः धनीविद्वान् (धन एवं विद्या आदि से सेवित धनी विद्वान्) (४) ऐश्वर्यपूर्ण ।
'यं कण्वो मेधातिथि र्धनस्पृतम्'
ऋ। १.३६.१०
जिस ऐश्वर्य से पूर्ण तुझको विद्वान् सत्संग करने योग्य पूज्य अतिथियों वाला गृहस्थ या मेध्यातिथि... ।
धन से पूर्ण के अर्थ में
'तं सोतारो धनस्पृतम्'
ऋ. ९.६२.१८

धनस्पृत्– (१) धनों और ऐश्वर्यों का सेवन करने वाला, (२) ऐश्वर्य वान् परमेश्वर या इन्द्र ।
'धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान्'
ऋ। ३.४६.२

धन्व– (१) जल, समुद्र ।
'न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व'
ऋ. १०.८६.६, नि. ५.३.
जिस इन्द्र या परमात्मा की महिमा न द्यौ न पृथिवी और समुद्र ही पाता है ।
(२) निर्जल देश ।
'धन्व च यत् कृन्तत्रं च'
ऋ. १०.८६.२०, अ. २०.१२६.२०

धन्वचर– (१) मरुभूमि में विचरने वाला, (२) धनुष के बल पर विचरण करने वाला ।
'धन्वचरो न वंसगस्तृषाणः'
ऋ. ५.३६.१

धन्वच्युत् – (१) जल बरसाने वाला वायु, (२) धनुष के द्वारा शरवर्षा किरने वाला, (३) धनुष के बल से शत्रुओं को च्युत करने वाला, (४) धनुष को लेकर आगे आने वाला ।

धन्वन् – (१) अन्तरिक्ष । अस्मात् आप धन्वन्ति । अन्तरिक्ष से जल निकलता है) । धवि (गत्यर्थक) + कनिन् धन्वन् ।
'यः परस्याः परावतः
तिरो धन्वातिरोचते
स नः पर्षदति द्विषः।'
ऋ. १०.१८७.२, अ. ६.३४.३.
जो अग्नि आदित्य रूप में अवस्थित हो (यः)

अति दूर में भी (परस्याः परावतः) रहकर तीर्णतम इस महान् अन्तरिक्ष को पार कर (तिरःधन्व अति) हम लोगों को प्रकाशित करते या प्रकाश देते हैं (रोचते), वह अग्नि (सः) हमारे शत्रुओं को नष्ट करें । (नः द्विप अति पर्षत्) (२) धनुष ।

'धन्वनागाधन्वनाजिं जयेम'

ऋ. ६.७५.२. वाज.सं. २९.३९, तै.सं. ४.६.६.१, मै.सं. ३.१६.३. १८५.१२, का.सं.(अश्व.) ६.१. नि. ९.१७.

धनुष से गौवें और धनुष से संग्राम जीते ।

(३) रेत, रेगिस्तान, मरुभूमि (४) अध्यात्म में कर्म ।

'समुद्रस्य धन्वन् आर्द्रस्य पारे'

ऋ. १.११६.४, तै.आ. १.१०.३.

समुद्र, रेगिस्तान और अन्तरिक्ष के पार या ज्ञान कर्म और उपासना के पार... ।

धन्वन्या – (१) मरुभूमि के उत्पन्न जल (२) मरुदेश में होने वाली जल धाराएं

'शं न आपो धन्वन्याः'

अ. १.६.४, का.सं. २.१, विष्णु स्मृति ६५.५.

धन्वर्णाः– (१) गतियुक्त जल से पूर्ण नदी, (२) स्थान स्थान पर उत्तम ज्ञानवान् उपदेष्टा ।

'धन्वर्णसोनद्यस्वादो अर्णाः'

ऋ. ५.४५.२

धन्वायी – धनुष लेकर विचरने वाला ।

'नम इषुमद्भ्यों धन्वायिभ्यश्च वोनमः'

वाज.सं. १६.२२, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.४, १२३.९, का.सं. १७.१३.

धन्वासहा – यो धन्वा शत्रून् सहते (जो धनुष से शत्रु को वश में करता है) ।

'धन्वासहा नायते'

ऋ. १.१२७.३, साम. २.११६५.

धनुर्धर के समान आगे ही बढ़ता जाता है ।

धनिष्ठा– (१) अत्यन्त ऐश्वर्य से सम्पन्न (२) माता

'माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा'

ऋ. १०.७३.१, वाज.सं. ३३.६४, मै.सं. १.३.२०, ३७.१०, का.सं. ४.८, तै.ब्रा. २.८.३.५.

धनी– धनवाला ।

'वधीर्हि दस्युं धनिनं धनेनम्'

ऋ. १.३३.४

पीड़ाकारी धनैश्वर्ययुक्त मदमत्त पुरुष को भी अवश्य विनष्ट कर ।

धनु– धनुष ।

'धनोरधि विषुणक् ते व्यापन्'

ऋ. १.३३.४

हे प्रजाओं में अधर्म से घुसकर रहने वालों का विनाशक परमेश्वर (विषुणक्), वे तेरे धनुष पर ...।

धनुत्री – (१)सबको प्रसन्न करने वाली (२), धन, धान्य और बल को रखने वाली ।

' द्युभिर्हिन्वन्ति अक्तुभिः धनुत्रीः '

ऋ. ३.३१.१६

(३) सन्मार्ग में प्रेरण करने वाली ।

'दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः'

ऋ. ९.९३.१, साम. १.५३८, २. ७६८

धनुः– धवि (गत्यर्थक या वधार्थक) + उसि = धनुष् = धन्वन्ति अपनयन्ति अस्मात् इषवः (इससे बाण निकलते हैं) । अथवा घ्नन्ति अनेन (इससे मारते हैं) । अर्थ है– धनुष् ।

'तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः'

ऋ.८.७७.११, नि. ६.३३.

तेरा धनुष बहुवाणवर्षी, सुन्दर कर्मों का करने वाला तथा सुखकर है, ।

पुनः –

'धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम
धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रो रपकामं कृणोति
धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ।'

ऋ. ६.७५.२, वाज.सं. २९.३९, तै.सं. ४.६.६.१, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१३, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१७.

हम धनुष से शत्रुओं की गौएं जीते या जीतते हैं, धनुष से संग्राम जीतते हैं । (धनुषा आजिं जयेम्) । धनुष शत्रुओं की योजनाओं को सफल कर देता है । धनुष से अत्यन्त मत्त सेना भी जीतते हैं (धन्वना तीव्राः समदः) और धनुष से ही हम सारी दिशाएं और अपदिशाएं जीतते हैं । (धन्वना सर्वाः प्रदिशः जयेम) ।

धनुष्कार – धनुष आदि बनाने वाला शिल्पी ।

'हेत्यै धनुष्कारम्'

वाज.सं. ३०.७, तै.ब्रा. ३.४.१.३.

धनुष्कृत् – धनुष बनाने वाला
'नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद् भ्यश्च वो नमः'
वाज. सं. १६.४६, तै.सं. ४.५.४.२, मै.सं. २.९.४, १२३.९, का. सं. १७.१३.

धनूः– धनुषाकार रजो धर्म वाली नाड़ी
'धनूर्बृहत्यक्रमीत्'
अ. १.१७.४

धनेनः– धन + इन = धनेनः । ऐश्वर्य का स्वामी) ।

धमति– गच्छति (जाता है) । धम धातु गत्यर्थक है । स्तुति अर्थ में भी इसका प्रयोग निघण्टु में है ।
गति अर्थ में इसका प्रयोग में ।

धमनि– (सं.) – (१) गर्जना ।
'इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि'
ऋ. २.११.८
(२) नाड़ी । धम (गत्यर्थक) + नि । इसका अर्थ गल्दा किया गया है । 'गालपति असौ' यह नाड़ी शरीर में रस को पहुंचाती है) ।
'आगल्दा धमनीनाम्'
आप.श्रौ.सू. ८.७.१०, नि. ६.२४.
जो सोमरस धमनियों में जा (धमनीनाम् आ) स्वयं धमनी बन जाते हैं (गल्दा)
आधुनिक अर्थ – (१) नरकुल या नरकट, (२) जुलाहे का वस्त्र बुनने का एक यन्त्र जिसे करघा कहते हैं, (३) हारमोनियम का वह भाग जिससे हवा उत्पन्न की जाती है । (४) मानव शरीर की धमनि जो पीपे के समान होती है । (५) नस, (६) गला, (७) गर्दन ।

धमन्ती– धम (गत्यर्थक) + शतृ + ङीष् = धमन्ती । नीचे की ओर जाती हुई ।
'प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः'
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.
वे जल की ओर जाते हुए नदी तालाब में जाकर प्राणियों की रक्षा करते हैं ।
वाणी का अर्थ जल तथा पुरुहूत का अर्थ नदी है ।

धमित– जलाया हुआ ।
'ते बाहुभ्यां धमितम् अग्निमश्मनि'
ऋ. २.२४.७

धयति– पान करती है य देखती है ।
'धीरमधीरा धयति श्वसन्तम्'
ऋ. १.१७९.४
काम से अधीर लोपामुद्रा अपने धीर पर श्वास लेते हुए पति अगस्त्य को चित्त से पान करती या देखती है ।

धर्णसि– (सं) (१) धारण करने वाला (२) राज्य का कार्यभार धारण करने वाला, (३) सूर्य ।
'आ धर्णसि बृहद्दिवो रराणः'
ऋ. ५.४३.१३
'त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधावयम्'
ऋ. ५.८.४
'हरिर्षत धर्णसिः'
ऋ. ९.३७.२, ३८.६, साम. २.६२८, ६४३.
'कद्व ऋतस्य धर्णसि
कद् वरुणस्य चक्षणम्'
ऋ. १.१०५.६
तुम्हारे मूल सत् कारण, सत्य ज्ञान और बल वीर्य का धारण करन वाला कहां है ? सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर का साक्षात् दर्शन या ज्ञान कैसा है ?
(३) धैर्य विद्यादि का धारण करने वाला ।
'भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम्'
ऋ. १.१४१.११
धैर्य विद्यादि के धारण करने वाले क्रिया कुशल ज्ञानवान् सेवन योग्य सुखकर ऐश्वर्य युक्त स्वरूप को प्रदान करता है । (पपृचासि)

धर्णिः– (१) यः धरति' (जो धारण करता है) । अग्नि का विशेषण (२) प्रजाओं को धारण करने में समर्थ ।
'अग्निरीशे वसूनां
शुचिर्यो धर्णिरेषाम्'
ऋ. १.१२७.७
जो शुद्ध, निष्कपट, और इन समस्त प्रजाओं को धारण करने में समर्थ हो (धर्णिः) वही अग्रणी नायक राष्ट्रों, प्रजाओं और ऐश्वर्यों का स्वामी हो । अथवा अग्नि इन सभी का पवित्र धारक है ।

धर्तृ– धारयिता, धारण करने वाला । धृ + तृच् = धर्तृ ।
'पावीरवी तन्यतु रेक पादजो
दिवोधर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः
विश्वेदेवासः श्रृणवन् वचांसि मे
सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या'

ऋ. १०.६५.१३, नि. १२.३०
माध्यमिका ऐन्द्री वाणी (पावीरवी) अन्यों की वाणी का विस्तार करने वाली है (तन्यतुः) लिखा भी है-
'ता विश्वरूपाः पशवो वदन्ति'
वही दिव्या वाणी है । एक चरण वाला अज भी द्युलोक का धारण करने वाला (अजः एकपात् दिवः धर्ता) । कर्मों के साथ (धीभिः सह) हमारी इन बातों को (नः वचांसि) सिन्धुनदी (सिन्धु), समुद्र के जल (समुद्रियःआपः), सभी देवता (विश्वेदेवासः) अनेक प्रज्ञा से उत्साहित या अनेक पुत्री वाली सरस्वती भी (पुरन्ध्या सरस्वती) सुने (श्रृण्वन्) ।

धर्त्र- (१) धारण करने में समर्थ (२) चारों ओर दिशाओं को विजय करने में समर्थ वीरता वाला राजा ।
'धर्त्रमसि दिवं दृंह'
वाज.सं. १.१८
'धर्त्र चतुष्टोमः'
वाज.सं. १४.२३, मै.सं. २.८.४, १०९.८, का.सं. १७.४, २१.१. श.ब्रा. ८.४.१.२६.

धर्मकृत् - धर्म + कृ + क्विप् = धर्म कृत् । अर्थ है । (१) कृतधर्म , (२) जो धर्म करता है । (३) धर्म-निर्माता ।
'इन्द्राय साम गायत
विप्राय बृहते बृहत्
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे'
ऋ. ८.९८.१, अ. २०.६२.५. साम. १.३८८,२, ३७५. पंच.ब्रा. १३.६ .३, ऐ.आ. ५.२.५.२, आश्व. श्रौ.सू. ७.८.२, शा.श्रौ.सू. ९.५. ९,१२.१२.१२, १८.१३.१०. वै.सू. ४.१.१७, नि. ७.२.
ऐ उद्गाताओं, मेधावी, महान् कृत धर्मा, विद्वान् एवं अपनी स्तुति की अभिलाषा करने वाले इन्द्र के निमित्त (पनस्यवे) बृहत साम पढ़ो।
(४) जगत् के धारण करने योग्य प्रबन्ध को करने वाला परमेश्वर ।

धर्मणाम् अध्यक्षः- समस्त धर्मों का अध्यक्ष, साक्षी, द्रष्टाअग्नि, परमेश्वर ।
'विशां राजानमद्भुतम्
अध्यक्षं धर्मणामिमम्'
ऋ. ८.४३.२४

धर्मधृतः- (ब.व.) । एक वचन में (धर्मधृत्) धर्मधृत् । अर्थ-धर्म अर्थात् आत्मा को धारण करने वाले शरीर धारी वात, पित्त और कफ या सप्त धातु ।
'यत्रा कृण्वन् धर्मधृतो नमांसि'
अ. १.२५.१

धर्मन् - (न.) धृ + मनिन् = धर्मन् । (१) धारण करने वाला, पोषण करने वाला ।
'धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त'
ऋ. १०.८८.१, नि. ७.२५.
धारण, रक्षा या अविच्छेद के लिए सुखद अग्नि को (कर्म) हवि, अन्न या पुरोडाश से (स्वधया) बढ़ाते हैं ।
(२) जगद्धारक ।

धर्मवन्ता- द्वि.व. । धर्मयुक्त अश्विद्वय या स्त्री पुरुष

धर्मा- समस्त जगत् को धारण करने वाला ।
'पितुंनु स्तोषं महो धर्मणिम् तविषीम्'
ऋ. १.१८७.१, वाज.सं. ३४.७, नि. ९.२५.
मैं अगस्त्य अत्यन्त बल धारण करने वाले (महः तविषीं धर्माणम्) अन्न को (पितुम्) भजता हूं (स्तोषम्) ।
'धर्माभुवत् वृजन्यस्य राजा'
ऋ. ९.९७.२३

धर्माणि- धारण करने योग्य । यम नियमादि तपोमय आचरण ।
'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्'
ऋ. १.१६४.४३, ५०,१०.९०.१६, अ. ७.५.१, ९.१०.२५, वाज.सं. ३१.१६, तै.सं. ३.५.११.५, का.सं. १५.१२, मै.सं. ४.१०.३, १४८.१६ , ऐ.ब्रा. १.१६.३७, श.ब्रा. १०.२.२.२, तै.आ. ३.१२.७, नि. १२.४१.

धरीमन् - (१) धरन्ति सुखानि यस्मिन् व्यवहारे -दया. । (जिस व्यवहार में सुखों को धारण करते हैं)
(२) राष्ट्र को धारण करने का कार्य, (३) धारण करने का कार्य ।
'अयं जायत मनुषो धरीमणि'
ऋ. १.१२८.१, ऐ.ब्रा. ५.१२.४, कौ.ब्रा. २३.६, आश्व.श्रौ.सू. ८.१.९,
यह मननशील मनुष्य राष्ट्र के धारण करने के

कार्य में प्रसिद्ध हो ।

धरुण- धृ (धारण करना)+ उनन् = धरुण । 'धर्तुं शीलं यस्य '(धारण करना जिसका स्वभाव है । अर्थ- (१) अविनाशी स्थान-अप्रध्वंसी-सा. (२) धारक शक्ति ।

'आयोर्हस्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'

ऋ. १०.५.६, अ. ५.१.६

(३) जल जिससे सृष्टि का धारण होता है ।

'धीरा इत् शेकुः धरुणेषु आरभम्'

ऋ. ७.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.

बुद्धिमान् पुरुष जल बरसने पर (धीराः धरुणेषु) कृषि कर्म या वैदिक कर्म आरम्भ करते हैं (आरभं शेकु)

धरुणहरम्- (१) जिसमें धारक कुटिल हो, (२) आश्रय देने वाला आधार स्वरूप, कुटिल, टेढ़ा मेढ़ा स्थान जिसमें सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंचता हो-तम का विशेषण ।

'अपामतिष्ठत् धरुणहरं तमः'

ऋ. १.५४.१०

जलों के बीच ऐसा अन्धकार रहता है जो अश्रय देने वाले कुटिल टेढ़े मेढ़े स्थान में सूर्य के नहीं पहुंचने से पाया जाता है ।

धरुणी- विशाल खम्भों या धरणों से युक्त शाला ।

'धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः'

अ. ३.१२.३

धव- धू (कम्पन, धवन करना)+ णिच्, घञ् या अच् = धव । अर्थ है- (१) मनुष्य, (२) पति (धवः मनुष्यः पतिः वा) धवति धूयते वा (जो धवन करता है, या जो कम्पित किया जाय) ।

'धवः पुमान् नरे धूर्ते
पत्यौ वृक्षान्तरेऽपिच,

- मेदिनीकोष

आधुनिक अर्थ- (१) कांपना, कम्पन, (२) मनुष्य, (३) पति, (४) स्वामी, (५) धूर्त, दुष्ट, ठग, (६) एक प्रकार का वृक्ष ।

(२) धव नामक वृक्ष जिस का फूल उत्तम होता है, (३) सब दुःखों और पाप मलों का नाशक ।

'अश्वत्थः खदिरो धवः

अ. २०.१३१.१४

(४) बबूल का पेड़ ।

'अश्वत्थात्खदिरात् धवात्'

अ. ५.५.५.

धवीयान् - (१) कंपा देने वाला अग्नि (२) सबसे उत्तम पति-राजा ।

'सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयान'

ऋ. ६.१२.५

ध्रजीमान्- (१) बहुत बह से युक्त, ।

'तवचित्तं वात इव ध्रजीमान्'

ऋ. १.१६३.११, वाज.सं. २९.२२, तै.सं. ४.६.७.४

(२) शीघ्र गतिवाला

अहि र्धुनिः वातइव ध्रजीमान'

ऋ. १.७९.१, तै.सं. ३.१.११.४.

पुरुष मेघ के समान (अहिः) ऐश्वर्यदान में निष्पक्ष और वायु के समान वेगवान् एवं उग्र होकर शत्रुओं को कंपाने वाला हो (वात इव ध्रजीमान् धुनिः)

ध्वन्य- उत्तम ध्वनि करने वाला

'उतत्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टाः'

ऋ. ५.३३.१०

ध्वर- (१) हिंसा, (२) हिंसामय यज्ञ ।

ध्वरति- हिंसति (हिंसा करता है) । धृ (ध्वर्) धातु हिंसा करना अर्थ में आया है । इसी से 'अध्वर' शब्द बना है । अध्वर का अर्थ है वह यज्ञ जिसमें हिंसा न की जाय ।

ध्वराः- (१) हिंसा करने वाली सेना

'दुहं जिघांसन् ध्वरसम् अनिद्राम्'

ऋ. ४.२३.७

ध्वस्- ध्वस् (गिराना) । ध्वसन का अर्थ गिराने वाला मेघ है ।

ध्वसन- ध्वस् + ल्युट् = ध्वसन् । अर्थ है- उदकस्रसन मेघ, जल गिराने वाला मेघ

'मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता'

ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, नि. २.९.

माध्यमिका वाक् विद्युत् जल के बरसने तक मेघ या जल को बनाती है ।

ध्वसनि- ध्वसन । वर्ण का व्यत्यय आर्ष है । अर्थ है (१)मेघ' । (२) समस्त संसार को ध्वंस करने वाला परमात्मा, (३) प्रलय काल ।

'मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता'

ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, नि. २.९.

ध्वसन्ति- (१) अधोगन्तापापी, (२) शत्रु नगरों का

ध्वसंक ।
'याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतम्'
ऋ. १.११२.२३
जिन रक्षा साधनों से तुम शत्रु नगरों के ध्वंस करने वाले (ध्वसन्तिम्) और बहुत ऐश्वर्य देने वाले की रक्षा करते हो (पुरुषन्तिम् आवतम्) ।

ध्वस्रा – (१) नगरादि को ध्वस्त करने वाली नदी (२) शत्रुओं के किलों को तोड़ने वाली सेना, (३) खेदनाश करने वाली स्त्री या सन्मार्ग से चलने वाली अध्वस्रा ।
'ध्वस्रा अपिन्वत् युवतीःऋतज्ञाः'
ऋ. ४.१९.७

ध्वस्रिः– दुःखों को नाश करने वाला ।
'ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योः
आ सहस्राणि दद्महे'
ऋ. ९.५८.३, साम. २.४०.९

ध्वसयन् – (१) गिरता पड़ता बालक (२) नाश करता हुआ ।

ध्वसिर – नष्टभ्रष्ट, पराजित ।
'सं धूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षत
ऋ. ७.८३.३

ध्वस्मानः– विध्वंस करने वाला ।
'न ध्वस्मानः तन्वीरेप आधुः'
ऋ. ४.६.६, तै.सं. ४.३.१३.१.

धाणिका– (१) प्रजा को भरण पोषण करने वाली कणिका, (२) अन्न कणिका, (३) सर्वपोषक पृथिवी, ।
'शीर्ष्णा हरति धाणिकाम्'
अ. २०.१३६.१०, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.५.

धात्– मानो रिषे धात् । मेघ हमारे हिंसक को न दे ।

धाता – (१) राष्ट्र का सन्निधाता नामक अधिकारी
'धातारातिः सवितेदं जुषन्ताम्'
अ. ३.८.२, ७.१७.४, वाज.सं. ८.१७, तै.सं. १.४.४४.१, मै.सं. १.३.३८, ४४.४, का.सं. ४.१२, १३.९, १०. श.ब्रा. ४.४.४.९.
(२) धा + तृच् = धातृ । सभी जीवों का उत्पादित आदित्य, (३) विश्वकर्मा, (४) आत्मा, (५) प्रजापति, (६) ब्रह्मा, ।
'धाता विधाता परमोत संदृक्'
ऋ. १०.८२.२, वाज.सं. १७.२६, तै.सं. ४.६.२.१, ५.७.४.३, का.सं . १८.१, नि. १०.२६.
सभी जीवों का उत्पादयिता धाता अन्न आदि आजीविका का स्रष्टा (विधाता) तथा प्रकृष्ट संदृष्टा (परमासंदृक्) ।
आधुनिक अर्थ – ब्रह्मा, स्रष्टा, आत्मा, विष्णु का विशेषण, सप्तर्षियों की एक संज्ञा, विवाहिता स्त्री का उपपति ।
(६) वायु ।
'धातर्विधातः कलशानभक्षयम्'
ऋ. १०.१६७.३, नि. ११.१२.
हे वायु और हे मृत्यु । (धातः विधातः) मैं ने ऐश्वर्य कलाओं का भक्षण किया (कलशान् अभक्षयम्) ।
'धात्रे विधात्रे समृधे'
अ. ३.१०.१०

धातु– (१) पुष्टि कारक, ।
'अत्यं हविः सचते सद्य धातु'
ऋ. ५.४४.३
(२) धन (धारण या पोषण) + तुन् = धातु । हिरण्य आदि द्रव्य जिससे धारण या पोषण होता है ।
आधुनिक अर्थ- (१) द्रव्य, (२) मुख्य तत्व जैसे पृथ्वी, अप्, तेजस् , वायु और आकाश, (३) शरीर के मुख्य तत्व-रसा, सृक् , मांस, मेदस् अस्थि, मज्जा, शुक्र, कश, त्वच् और स्नायु (४) वात, पित्त, कफ, (५) सुवर्ण आदि द्रव्य, (६) क्रिया के धातु (७) आत्मा (८) पापात्मा (९) इन्द्रिय, (१०) रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ।

धान– अग्नि से पकाया विशेष पुष्टि कारक अन्न
'दिवे दिवे सदृशी रद्धिधानाः'
ऋ. ३.३५.३

धानाः– (१) भुने धान, (२) धारण पोषण करने वाली गौएं ।
'धानाः करम्भः सक्तवः'
वाज.सं. १९.२१
(३) लाजा, लावा ।
'धानानां न सं गृभाय'
ऋ. ८.७०.१२
(४) राष्ट्र को धारण करने योग्य सेना, (५) ऐश्वर्य युक्त , प्रजा ।

'हरिवते हर्यश्वाय धाना'
ऋ. ३.५२.७
(६) नित्य बहुवचनान्त और स्त्रीलिंग। इन्द्र के अश्वों के भाग के धाना कहते हैं। 'अस्य हर्योःभागः धानाः'
(७) अमरकोष में-
' धाना भृष्टयवे स्त्रियः '
(८) इन्द्र के घोड़ो का भाग ऋजीष भी कहलाता है। इन्द्र को ऋजीषी कहा है।
धाना भ्राष्टे हिता भवति (धाना भार में पकने के लिए डाली जाती है। या भार से निकाल. कर जो दूसरे पात्र में रखी जाती है, वह धाना है। (फले हिता भवन्ति)।
(९) काल को धारण करने वाली दिन रात या किरणें, (१०) आत्मा को धारण करने वाली नाड़ियां (११) समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाली प्रजाएं।
'नक्षत्राणां वा एतत् रूप यत् धानाः'
तै.सं.
'अहो रात्राणां वा एतत् रूपं यत् धानाः'
श.ब्रा. १३.२.१.४
आधुनिक अर्थ- भुना हुआ यव या चावल, भुना या पीसा अन्न, अन्न, दाना, कली धाना से ही दाना (जलपान) बना है।
'धानाः सोभानां इन्द्राद्धि च
पिव च वन्धां ते हरी धाना
उपऋजीषं जिघ्रताम् '
हे इन्द्र, खा इन धानों को और सोमों के रस भी पी और ये तेरे अश्व भी धाना को खावें तथा ऋजीष को भी सूंघें (ऋजीषं च उप जिघ्रताम्, आज भी घोड़ो को दाना देने की प्रणाली है।
(१२) उजले प्रकाशमान दिन, (१३) चावल, (१४) उज्ज्वल, नक्षत्र, (१५) पशु।
'पशवो वै धानाः' गो.ब्रा. ३७.४६
'यास्ते धाना अनुकिरामि'
अ. १८.३.६९, १८.४.२६, ४३.
(६) लोक को धारण करने में समर्थ गौए।
'कृष्ण धाना रोहिणी धेनवस्ते'
ऋ. १८.४.३४

धानावान् - (१) धारण पोषण करने वाली नाना गौओं या शक्तियों से युक्त।
'धानावन्तं करम्भिणम्'
ऋ. ३.५२.१, ८.९१.२, साम. १.२१०. वाज.सं. २०.२९, आश्व.श्रौ. सू. ५.४.२.
(२) भुना जौ वाला, (३) सूक्ष्म तत्व स्पष्ट हो जाने पर धाना है, (४) आधान संस्कार से युक्त पुत्र, (५) रक्षण पालन करने की शक्तिवाला।

धान्याकृत्- (१) धान्य की रक्षा करने वाला, (२) धान काटने वाला।
'वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः'
ऋ. १०.९४.१३

धामः- (१) स्थान।
'कदा ते मर्ता अमृतस्यधामे
यक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः'
ऋ. ६.२१.३.
हे बलवान्, तुझ अमर के स्थान में मनुष्य कभी यज्ञ के इच्छुक हो हिंसा नहीं करते।

धाम- (न) दाम,
'सर्वाधामानि मुञ्चतु'
अ. ७.८३.१
'धाम्नो धाम्नो राजन्
इतो वरुण मुञ्च नः।'
अ. ७.८३.२, वाज.सं. ६.२२, तै.सं. १.३.११.१, मै.सं. १.२.१८. २८.५, का.सं. ३.८, शां.श्रौ. ३.८.५.१०, आश्व. श्रौ.सू. ३.६.२४, शा.श्रौ.सू. ८.१२.११.
'को अस्या धाम कतिधा व्युष्टिः'
अ. ८.९.१०

धामच्छत् - (१) तेज धारण करने वाला सूर्य, (२) अग्नि, (३) सूर्यवत् राजा।
'धामच्छदग्नि रिन्द्रो ब्रह्मा'
वाज.सं. १८.७६, श.ब्रा. १०.१.३.८.

धामधाः - तेजों धारण सामर्थ्यों और लोकों को धारण करने वाला।
'त्वमिन्दो प्रथमो धामधाअसि'
ऋ. ९.८६.२८

धामन् - (१) धा + मनिन् = धामन् (जो धारण करता है-स्थान, रहने की जगह।
'आरात्रि पार्थिवं रजः
पितुरप्रायि धामभिः'
अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
(२) स्तोत्र - सा (३) तेज-दया.।

'पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः'
ऋ. ३.३.४, नि. ५.२.
बहुत मनोरथों वाला विद्वान् (पुरुप्रियः कविः)। अग्नि को स्तोत्रों से (धामभिः) स्तुति करता है। (भन्दते)-सा.। वह बहुप्रिय की कवि अपने तेजों से वेद का बखान करता है। दया.। पुनः

धामनी- (द्वि.व.) दोनों धारण करने वाले आकाश और पृथिवी (२) उत्तर और दक्षिण अयनों के तुल्य इह और पर, (३) प्राण और अपान, (४) जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्था।
'ताभ्यां विश्वस्य राजसि
ये पवमान धामनी'
ऋ. ९.६६.२.

धामधर्मन् - तेजों मय की धाम या पद और प्रत्येक धर्म या कर्त्तव्य।
'धामधर्मन् विराजति'
अ. २०.४९.३

धामसाच् - तेज को धारण करने वाला इन्द्र (सूर्य), परमेश्वर।
'धामसाचम् अभिषाचं स्वर्विदम्'
ऋ. ३.५१.२

धामहे - दधीमहि, धारयामः (धारण करें, पालन करें)। (धारण करना) के लेट् का रूप। शप् का लोप।
'उषस्तच्चित्रमाभर
असम्भ्यं वाजिनीवति
येन लोकं च तनय ञ्च धामहे'
ऋ. १.९२.१३, साम. २.१०८१, वाज.स. ३४.३३. आश्व. श्रौ.सू. ४.१४.२, नि. १२.६.
हे हविरूपी अन्न से युक्त उषा (वाजिनीवति उषः) हमारे लिए (अस्मभ्यम्) सुन्दर मनोहर उस धन को दे (चित्रंतम् आभर) जिससे पुत्र को (तोकम्) तथा पौत्र को (तनयम्) पालें पोसें (धामहे)

धामशः - धारण सामर्थ्य या ग्रहण शक्ति के अनुसार।
'तेषाभिष्टानि विहितानि धामशः'
ऋ. १.१६४.१५, अ. ९.९.१६, तै. आ. १.३.१, नि. १४.१९.

धायस् - (१) योद्धाति सर्वाणिं कर्माणि (जो सभी कर्मों को धारण करता है। (२) सबका पालन पोषण करने वाला पुरुरष।
'यो रातहव्योऽवृकम् धायसे'
ऋ. १.३१.१३
जिसे हव्य दिये जाते हैं, वह अग्नि या परमेश्वर अहिंसक तथा सबका पालन पोषण करने वाले के लिए.....।
'स्वः स्वाय धायसे'
ऋ. २.५.७
(३) कार्यभार को उत्तमरीति से धारण करने वाला अधीनस्थ पुरुष।
'धायोभिर्वायो युज्येभिरर्कैः'
ऋ. ६.३.८

धाय्यारूप- (१) यज्ञ में 'यज' इस प्रकार से कहना धाय्या नाम ऋचा पढ़ने के समान है, (२) धारण या ग्रहण करने योग्य पदार्थ का उत्तम रूप।
'यजेति धाय्यारूपम्'
वाज.सं. १९.२४.

धायि - धत्ति (धारण करता है)। धा धातु के कर्तृवाच्य में और लुङ् में च्लि का चिण् हो जाता है तथा युक् और अट् का आगम नहीं होता। अर्थ है ध्यान करता है, मन रखता है, धारण करता है।
'यादृश्मिन् धायि तमपस्यया विदत्'
ऋ. ५.४४.८, नि. ६.१५.
यजमान जिस कामना में मन रखता है उसे वह क्रिया या फल रूप से प्राप्त करता है।

धायुः - सब को धारण पोषण करने वाला।
'यस्मै धायु रदधामत्यांय'
ऋ. ३.३०.७

धारका - (१) ऐश्वर्य धारण करने में समर्थ प्रजा, (२) गर्भधारण करने में समर्थ स्त्री।
'निगल्गलीति धारका'
वाज.सं. २३.२२, श.ब्रा. १३.२.९.६.

धारयत्कवी- द्वि.व. (१) क्रान्त दर्शी प्रकाश को धारण करने वाला द्यावा पृथिवी (२) आत्म दर्शी विद्वानों को धारण करने वाले पतिपत्नी।
'ऋतावरी रजसो धारयत्कवी'
ऋ. १.१६०.१

धारपूत- (१) धारा का अर्थवाणी है (नि. १.११)। जिसकी धारा अर्थात् वाणी पवित्र हो-यस्य वाणी पूता। (-दया.)

धारयत् क्षितिः – (१) पृथ्वी को धारण करने वाली अदिति अर्थात् अविनाशी अखण्ड आकाश (२) निवास करने वाले प्राणियों और मनुष्यों को धारण करने वाली पृथिवी ।
'ज्योतिष्मती मदितिं धारयत् क्षितिम् '
ऋ. १.१३६.३

धारयन् – धारयन्ति, रखते हैं) ।
'देवा अग्नि धारयन् द्रविणोदाम् '
ऋ. १.९६.१-७, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१३, १५, नि. ८.२.
उस धन दाता अग्नि को (द्रविणो दाम्) दानादियुक्त ऋत्विज (देवाः) गार्हपत्य रूप में धारण करते हैं (धारयन्)
अथवा, इन्द्र आदि देव ही हविर्दाता अग्नि को हवि पहंचाने वाला बनाकर रखते हैं (धारयन्) विद्वान् लोग जिस धनदाता अग्नि को धारण करते हैं । (दया.)

धारयुः– (१) धारण युक्त, (२) धारा या वेदवाणी का स्वामी, (३) धारायुक्त सोमरस ।
'त्वं सोमासि धारयुः '
ऋ. ९.६७.१, साम. २.६७३
(४) राष्ट्र, विश्व या देह को धारण करने वाली शक्ति, आज्ञा या वाणी का स्वामी, (६) सोम

धारवाकः– (१) राष्ट्रधारक उपदेशक पुरुष, (२) शास्त्र वाक् का उपदेशक (दया.) ।
'धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे '
ऋ. ५.४४.५

धारा– (१) जल की धारा ।
'धारा उदन्या इव '
ऋ. २.७.३, का.सं. ३५.१२, आप.मं.पा. १.५.५, हि.गृ.सू. १.२०.५, २९.२.२.१.३.
(२)वाणी (नि. १.११)
'आदित्या सः शुचयो धारपूताः '
ऋ. २.२७.२
(३) धाराप्रवाह ।
'सृजो विधारा अव जानवं हन् '
ऋ. ५.३२.१, नि. १०.९
हे इन्द्र, तूने मेघ या वृत्र नामक दानव को मारकर उन्मुक्त जल धाराओं को छोड़ा ।
आधुनिक अर्थ – (१) नदीया जल की धारा (२) नीचे गिरते हुए जल की पंक्ति, (३) जोरों की वृष्टि, लगातार पंक्ति, (४) घड़े का छिद्र , (६) अश्व का पादप्रक्षेप, (७) किसी वस्तु का छोर (८) खड्ग या किसी अस्त्र की तीव्र धार, (९) पर्वत का किनारा या ढरकाऊ भाग, (१०) चक्का या चक्के की धार, (११) वाटिका की दीवाल या घेरा, (१२) उच्चतम बिन्दु, (१३) झुण्ड, (१४) प्रसिद्ध, (१५) रात्रि, (१६) हल्दी का पौधा । (१७) सादृश्य, (१८) कान का छोर

धारावराः– (१) मेघ की जलधारा को आवृत करने वाले मरुद्गण, (२) वाणी को धारण करने वालो या वाणियों की प्राप्ति के लिए अपने अधीन अवर अर्थात् नव शिष्यों को धारण करने वाले आचार्य, (३) धारा, स्वामी या नामक के अधीन रहने वाले वीर पुरुष ।
'धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजस्वः '
ऋ. २.३४.१, ऐ.ब्रा. ५.२.१५, कौ.ब्रा. २१.४, २२.५, तै.ब्रा. २.५.५.४.

धार्या – पात्र आदि में रखा जल ।
'धार्याभ्यः स्वाहा '
वाज.सं. २२.२५

धारुवत्सः– दूध पीने से वाले बालक ।
'वत्सो धारुरिव मातरम् '
ऋ. ४.१८.२

धावत्– (१) भागता हुआ, (२) युद्ध से पलायनमान
'यो धावद्भि र्हूयते यश्च जिग्युभिः '
ऋ. १.१०१.६

धावमानः – धाव + शानच् = धावमान । अर्थ– दौड़ता हुआ– सूर्य का विशेषण ।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठम्
उमुपेव दिवि धावमानम् ।
ऋ. ८.३.२१

धाः– (१) धारण कर (२) बना ।
'अथा नो धा अध्वरं देववीतौ '
ऋ. ३.१७.५
दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (देववीतौ) हमारे हिंसा रहित यज्ञ को (अध्वरम्) धारण कर (धाः) दया. । तदनन्तर हमारे यज्ञ को (अथा नःअध्वरम्) देवताओं के प्रसन्न कारक बना (देववीतौ धाः) ।

धासिः – (१) दूध पान करने वाला–बालक,

(२) किरणों द्वारा जलपान करने वाला सूर्य, (३) जगत् का धारक परमेश्वर ।
'प्रय आरुः शितिपृष्ठस्य धासेः'
ऋ. ३.७.१
(४) विद्यासुखधारक (५) प्राण गण का धारक आत्मा (७) अन्न जिससे शरीर का धारण पोषण होता है । (नि.. २७.)
'विदत् सरमा तनयाय धासिम्'
ऋ. १.६२.३
जिस प्रकार माता अपने पुत्र के लिए पोषक अन्न प्राप्त करती है ।

धासी- (१) धारण करने वाला सामर्थ्य (२) अन्न
'भूमिमातान् द्यां धासिनायोः'
ऋ. ६.६७.६

धास्युः- (१) जगत् को धारण करने का इच्छुक ।
'धास्युरेष नन्वेषो अग्निः'
अ. २.१.४

ध्मातः- फूला हुआ, विताड़ित, फूंक से भरा ।
'दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः'
ऋ. ७.८९.२

ध्यान- ध्या + ल्युट् = ध्यान । अर्थ-दर्शन'

ध्राजिः- (१) गति ।
'साकं वातस्य ध्राज्या'
ऋ. १०.९७.१३, वाज.सं. १२.८७, तै.सं. ४.२.६.४, मै.सं. २.७.१३,९४.८, का.सं. १६.१३.
(२) ध्रज् (गत्यर्थक) + इन = ध्राजि । बाहुलक नियम से । अर्थ - अस्त्र ।
'अग्नेर्वातस्य ध्राज्या
तान् विषूचो विनाशय'
अ. ३.१.५.२.३.
(३) ध्रज् + इञ् = ध्राजि ।
'ध्राजिरेकस्य ददृशो न रूपम्'
ऋ. १.१६४.४४, अ. ९.१०.२६, नि. १२.१२७.
अग्नि, वायु और आदित्य में एक वायु की सिर्फ गति (ध्राजिः) देखी जाती है- रूप नहीं ।
(४) निद्रावृति ।
'वातस्यानु ध्राजिं यान्ति'
ऋ. १०.१३६.२

ध्वान्त- (१) गिराने वाला अन्धकार (२) नीला मेघ ।
'ध्वान्तात् प्रपित्वात् उदरन्त गर्भाः'
ऋ. १०.७३.२, शां.श्रौ.सू. १४.४९.३.

ध्वांक्ष- (१) गीध जाति का पक्षी ...
'ध्वांक्षाः शकुनयस्तृप्यन्तु'
अ. ११.९.९
(२) काक ।
'लोम ध्वांक्षो अजीहिडत्'
अ. १२.४.८

धितावान् - (१) विभक्त करने योग्य धन को सुरक्षित रखने वाला- इन्द्र ।
'इन्द्र प्र णो धितावनं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः'
ऋ. ३.४०.३, अ. २०.६.३.
(२) धनधान्य से समृद्ध हितकारी (३) सेवन और धारने योग्य ज्ञानादि पदार्थों को धारण करने वाला अग्नि परमेश्वर ।
'श्रुष्टीवानम् धितावानम्'
ऋ. ३.२७.२, मै.सं. ४.११.२, १६३.३, का.सं. ४०.१४, तै.ब्रा. २.४.२.५.

धियं जिन्वः - ज्ञान और उत्तम कर्म द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने वाला ।
'धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः'
ऋ. ६.५८.२, मै.सं. ४.१४.१६, २४४.२, तै.ब्रा. २.८.५.४.

धियञ्जिन्वा- (द्वि.व.) (१) ज्ञान और कर्म दोनों को प्रेरणा देने वाले - प्राण और अपान, (२) स्त्री पुरुष, (३) अश्विद्वय ।
'धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू'
ऋ. १.१८२.१

धियन्धाः(ब.व.) । (१) कर्मणां धारयितारः (कर्मों का धारयिता), (२) दुर्ग के मत से - 'प्रज्ञानां यज्ञानां वा धारयिता (प्रज्ञाओं या यज्ञों का धारयिता) । धी का अर्थ-कर्म, प्रज्ञा या यज्ञ है और धा (धारणार्थक) से 'धाः' बना है ।
'नराशंसस्य महिमानमेषाम्
उप स्तोसाम यजतस्य यज्ञैः
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः
स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या'
ऋ. ७.२.२ वाज.सं. २९.२७, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१२, का.सं. ३७.४, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.७.
जो देवता सुन्दर कर्म या प्रज्ञावाले (ये सुक्रतवः) दीप्तिवाले (शुचयः) या दुर्ग के

अनुसार, निष्पाप तथा कर्मों, प्रज्ञाओं या यज्ञों के धारयिता हैं (धियन्धाः), वे पृथिवी आदि पञ्चभूत देव सौमिक तथा हवि मय हव्यों को (उभयानि हव्या) आस्वादित करते हैं . (स्वदन्ति) उनमें (एषाम्) हवि या स्तोत्रों से यज्ञैः) यजनीय अग्नि का (यजनस्य नराशंसस्य) महत्व (महिमानम्) हम निकट जाकर जानते हैं (उप स्तोषाम) या अग्नि की ही महिमा अधिक समझते हैं ।

धियसानः – ज्ञान और कर्म का सम्पादन करने वाला

'प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि'

ऋ. १०.३२.१, आप. मं. पा. १.१.१.

धिया – धि (धारण करना) + क = धिया । अर्थ– विज्ञान जिससे श्रुत का धारण किया जाय ।

धियाजू (जुर्) – ज्ञान, अनुभव बुद्धि या कर्म से वृद्ध पुरुष ।

'धिया जुरो मिथुनासः सचन्त'

ऋ. ५.४३.१५

धियापत् – (१) बुद्धिपूर्वक यत्न करने वाला (२) उत्तम कर्म और बुद्धि का ज्ञान का सम्पादन करने का इच्छुक विष्णु या व्यापक पुरुष ।

'प्र.वः पान्तमन्धसो धियापते
महे शूराय विष्णवे चार्चत'

ऋ. १.१५५.१

धियायु– (१) विज्ञान देने का इच्छुक गुरुओं से ज्ञान करने का इच्छुक ।

'विप्रासो वा धियायवः'

ऋ. १.८.६, अ. २०.७१.२.

जो विज्ञान को प्राप्त करने और और गुरुओं से ज्ञान लाभ करने के इच्छुक मेधावी पुरुष हैं वे भी आदर के योग्य हैं ।

(२) धारणशील बुद्धि को प्राप्त करने की इच्छा वाला ।

धियावसु– (१) कर्म का या ज्ञान का धनी (कर्म प्राप्य धननिमित्तभूताकर्म द्वारा प्राप्य धन का निमित्त भूत) (२) कर्म से प्राप्त होने वाला धन । धी कर्म, प्रज्ञां तथा यज्ञ का वाचक है । अतः यज्ञ का प्रज्ञा से प्राप्य धन, (३) कर्म से प्राप्य धन को देने वाला (४) कर्म योग में बसाने वाला–(दया.) ।

'पावका नः सरस्वती
वाजेभिर्वाजिनीवती
यज्ञं वष्टु धियावसुः'

ऋ. १.३.१०, साम. १.१८९,वाज.सं. २०.८४, मै.सं. ४.१०.१, १४२.८ , का.सं. ४.१६, तै.ब्रा. २.४.३.१, ऐ.आ. १.१.४.१६, नि. ११.२६.

शुद्ध करने वाली या जल से प्रक्षालित करने वाली या पवित्र व्यवहार बतलाने वाली (पावका) अन्न या हवि से युक्त कर्मवाली या ऐश्वर्य आदि देने वाली (वाजिनीवती) कर्म से प्राप्य धन को देने वाली (धियावसु) हमारे इस यज्ञ को (नः यज्ञम्) यजमानों द्वारा दत्त हवि या अन्न के निमित्त (वाजेभिः) आकर अपनावे या यज्ञ की कामना करे (वष्टु) या हवि को देवताओं के पास ले जाए ।

अन्य अर्थ– पवित्र व्यवहार को बतलाने वाली (पावका), अन्नादि ऐश्वर्य समृद्धि देने वाली (वाजिनीवती) कर्मयोग में बसानेवाली वेदवाणी (सरस्वती) अन्नादि ऐश्वर्यों के साथ हमारे प्रत्येक शुभ कर्म का संचालन करे (नः यज्ञं वष्टु) (५) समस्त कर्म और ऐश्वर्य वाला ।

'प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्'

ऋ. १.५८.९, ६०.५, ६१.१६, ६२.१३,९.,६४.१५, ८.८०.८, ९.९३.५. अ. २०.३५.१६, कौ.ब्रा. २२.२.

धियोषित – धिया इषित । उत्तम ज्ञान या कर्म द्वारा प्राप्त होने योग्य इन्द्र ।

'इन्द्रायाहिधियेषितः'

ऋ. १.३.५, अ. २०.८४.२, साम. २.४९७, वाज.सं. २०.८८, ऐ.आ. १. १.४.९.

धिष्– उत्तम बुद्धि , वाणी ।

'धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्'

ऋ. ४.२१.६

धिषण– हठधर्मी ।

'निःसालां धृष्णुं धिषणम्'

अ. २.१४.१

धिषणा– (१) धिष् (धारणार्थक) + व्यु + टाप् =धिषणा । पिबति, दधाति धारयति' अर्थात् इति धिषणा (जो अर्थों तात्पर्यो को पीती खाती या धारण करती है वह धिसणा अर्थात् वाणी) अर्थ– (१) वाणी, (२) माध्यमिका वाक् –सा. (३) पदार्थ विद्या–दया. (४) बुद्धि ।

'आपश्चमित्रं धिषणा च साधन'
ऋ. १.९६.१, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१३.
जिस विद्युत् रूप में वर्तमान अग्नि को मेघ में स्थित जल (आपः च) तथा माध्यमिका वाक् (धिषणा च) मित्र रूप से साधते या मानते हैं (मित्रं साधन्) ।
पदार्थ विद्या द्वारा (धिषणा) जल और वायु को (आप च मित्रं च) साधन करते हुए (साधन्) विद्वान् लोग...(-दया.) ।
(४) धी सदना = धिषणा । जो ज्ञान को देने वाली है - पदार्थ विद्या (५) धीसादिनी - धिषणा (जो ज्ञान को प्राप्त कराती है) ।
आधुनिक अर्थ - बुद्धि, स्तुति, प्रशंसा, पृथ्वी, प्याली कटोरी ।

धिषणे- द्वि.व. । (१) समस्त विश्व को धारण करने वाला आकाश और पृथ्वी, (२) नरनारी, (३) राजा प्रजा ।
'धिषणे निष्टतक्षतुः'
ऋ. ८.६१.२, अ. २०.११३.२, साम. २.५८४.

धिष्ण्य- धिषण्यः धिषणाभावः नेष्ट्रीयः, स्थानम् । अर्थ (१) जो धिषणा से हुआ है । (२) धिषणा पृथ्वी अर्थ में भी है अतः स्थान का वाचक है । नेष्ट्र का अर्थ यज्ञ-प्रदेश किया गया है । अमर कोश में भी- धिष्ण्यं स्थाने गृहे येऽग्नौ लिखा है ।
(३) वेदवाणी का ज्ञाता-(दया.) ।
आधुनिक अर्थ- (१) यज्ञ प्रदेश, (२) दैत्यगुरु शुक्र का एक नाम, (३) शुक्रग्रह, (४) शक्ति, बल, (५) गृह, (६) स्थान (७) आसन, (८) अग्नि, (९) नक्षत्र ।

धिष्ण्या अग्नयः- (१) देह के अपने अपने स्थान पर विराजमान प्राणादि अग्नियां
'या नग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः'
अ. २.३५.१, तै.सं. ३.२.८.३, मै.सं. २.३.८, ३६.१६.
(२) शरीर में वर्तमान रहने वाले ५ अग्नि अथवा धिषणा बुद्धि द्वारा प्रेरित होने वाले अग्नि (३) आधान के स्थान में विहरण करने वाले अग्नि आहवनीय गार्हपत्य और अन्वाहार्य पचन आदि, (४) सूर्य अग्नि एक ऋषि होकर एक मूर्धास्थान पर विराजता है । (५) दर्शनाग्नि, आहवनीयाग्नि होकर मुख से बैठता है । और शरीर अग्नि जठर में हवि प्राप्त करता है । वही दक्षिणाग्नि होकर हृदय में बैठता है, (६) कोष्ठाग्नि गार्हपत्य होकर हृदय में रहता है, (७) उससे नीचे प्रायश्चित्ती अग्नियां प्रजननांग में रहती हैं । ये पांचों शरीर धारण करने से और शरीर में विद्यमान रहने से धिष्ण्य हैं ।
'पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम'
अ. ७.६७.१, श.ब्रा. १४.९.४.५.

धिष्ण्या - द्वि.व. । उत्तम आधार वा धारण करने योग्य एवं बुद्ध विवेक से काम करने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष ।
'अहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः'
ऋ. १.१८१.३

धी - (१) कर्म ।
'यामथर्वा मनुष्पिता'
दध्यङ् धियमत्नत'
ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४.
जिस कर्म को अथर्वा ऋषि, मानव पिता मनु तथा अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ने किया ।
'धियं धियं सीषधाति प्रपूषा'
ऋ. ६.४९.८, वाज.सं. ३४.४२, तै.सं. १.१.१४, २, नि. १२.१८.
पूषा हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करें । (२) प्रज्ञा, (३) यज्ञ । आधुनिक अर्थ- बुद्धि, मस्तिष्क, विचार, भाव, उद्देश्य, भक्ति , स्तुति, (४) धारण शक्ति ।
'मनसे चेतसे धियआकूतये'
अ. ६.४१.१, कौ.सू. ५४.११.

धीजवः- ब.व. । एक वचन में धीजुः । अर्थ -बुद्धि के वेग वाले धीमान् पुरुष ।
'प्र त आशवः पवमान धीजवः'
ऋ. ९.८६.१

धीजवन- (१) संकल्प मात्र से जाने वाला मन
'अभी नरं धीजवनं रथेष्ठाम्'
ऋ. ९.९७.४९, साम. २.७७६.
(२) कर्म कुशल, (३) बुद्धि में गति देने वाला सोम ।
'पूषेव धीजवनोऽसि सोम'
ऋ. ९.८८.३

धीजवना- द्वि.व. । अश्विद्वय कर्म और बुद्धि में

तीव्र बुद्धि से ।
'धीजवना नासत्या'
ऋ. ८.५.३५.

धीजूः– उत्तम ज्ञान और कर्म द्वारा वेग वाली
'प्र त आश्विनी पवमान धीजुवः'
ऋ. ९.८६.४, साम. २.२३६.

धीतिः– धी + क्तिन् । अर्थ– (१) प्रज्ञा, (२) स्तुति की वाणी ।
'ऋतस्य धीतिः वृजिनानि हन्ति'
ऋ. ४.२३.८, नि. १०.४१.
ऋतदेव की स्तुति उदक दान द्वारा अकाल नष्ट करती हुई वर्जनीय अयशस्कर पापों को (वृजिनानि) नष्ट करती है (हन्ति) ।
(३) अग्निष्टोमादि अनुष्ठेय कर्म या व्यापारिक कर्म ।
'संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः'
ऋ. १.११०.४.
संवत्सर के बसन्तादि ऋतुं में 'अग्निष्टोमादि कर्मों से युक्त होते हैं या वर्ष भर व्यापारिक कर्मों से युक्त रहते हैं ।
(४) स्तुति रुपी कर्म । (५) अध्ययन (६) चिन्तन (७) मरण, (८) पोषण । (९) दुग्धपान कराने वाली माता
'इयंतेधीतिरिदमुते जनित्रम्'
अ. ११.१.११

धीति – (१) बुद्धिमती होती हुई (२) क्रियाशक्ति ।
'धीत्यग्रे मवसा संहि जग्मे'
ऋ. १.१६४.८, अ.९.९.८.

धीरः– (१) ध्यानबल, धीमान् , बुद्धिमान ।
'यत्रधीरा मनसावाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२, नि. ४.१०.
(२) ईश्वर का विशेषण ।
'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः
समाधीरः पाकमत्रा विवेश'
ऋ. १.१६४.२१. नि. ३.१२.
बुद्धिमान् अर्थ में प्रयोग–
'धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम्'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.
बुद्धिमान् पुरुष जल बरसने पर कृषि कर्म या वैदिक कर्म का आरम्भ करते हैं ।
(३) आदित्य मण्डल में स्थित पुरुष का विशेषण
'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्'
वाज.सं. ४०.१७, ईश. उप. १६.
(४) अति विशिष्ट बुद्धि से युक्त ।
आधुनिक अर्थ– साहसी, दृढ़, स्थिर, टिकाऊ, दृढ़मना, संयमी, गम्भीर, बलवान्, बुद्धिमान्, सदाचारी, शीलवान्, नम्र, मधुर स्वभाव, आलसी, उत्साही

धीरणः– (१) बुद्धि कौशल, कर्म कौशल से रक्षा करने वाला वीर, (२) ध्यान स्तुति में रमण करने वाला बुद्धिमान् पुरुष
'इन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः'
ऋ. ३.३४.८, अ. २०.११.८.
(३) धीर, विद्वान्, (४) ध्यान शील योगी

धीर्या– धीर पुरुष
पाक्या चित् वसवो धीर्याचित्'
ऋ. २.२७.११, तै.२.१.११.५, मै.सं. ४.१४.१४, २३८.१५

धीवत् – बुद्धिमान् ।
'धीवतो धीवतः सखा'
ऋ. ६.५५.३
(२) कर्मनिष्ठ ।
'इत्था धीवन्तमद्रिवः'
ऋ. ८.२.४०
हे वज्रधारी इन्द्र या राजन् , इस प्रकार से या सत्यवक्ता (इत्था) एक बुद्धिमान् या कर्म शील अतिथि को....।

धीवा – (१) बुद्धमान्, (२) कला कौशल में चतुर ।
'ये धीवानो रथकाराः'
अ. ३.५.६

धुङ्क्षा– (१) शत्रुओं को धुन डालने वाली सेना । (२) एक पक्षी ।
'धुङ्क्षाग्नेयी'
वाज.सं. २४.३१, वाज.सं. (का.) २६.३५, मै.सं. ३.१४.१२,१७५.१ ।

धुनयः– ब.व. । मरुतों या सैनिकों का विशेषण । अर्थधुन डालने वाले या कंपा देने वाले ।

धुनि– (१) अन्यों को त्रास देने वाला (२) दूसरों को त्रास देने की प्रवृत्ति ।
'स्वप्नेनाभ्युप्या चमुरिंधुनिंच'
ऋ. २.१५.९

(३) चलने वाली ।
(४) धु (कम्पनार्थक) + नि = धुनि । अर्थ – कम्पयिता, शत्रुओं को कंपाने वाला (कम्पयिता शत्रूणाम्) (५) इन्द्र या राजा का विशेषण ।
'धुनिः शिमीवाञ्छरुमांऋजीषी'
ऋ. १०.८९.५, तै.सं. २.२.१२.३, तै.आ. १०.१.९, नि. ५.१२.
(६) कम्पायमान ।
'अश्वमिवा धुक्षत् धुनिमन्तरिक्षम्
अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्'
ऋ. १०.१४९.१, नि. १०.३२.
जैसे धूलि धूसरित अश्व को सवार झाड़ता है । उसी प्रकार कम्पायमान अन्तरिक्ष में टिके मेघ को सविता झाड़ कर मानों प्रवाहित करता है ।
(७) नदी ।
'त्वं निदस्युं चुमुरिं धुनिं च'
ऋ. ७.१९.४, अ. २०.३७.४, तै.ब्रा. २.५.८.११.

धुनिमती आपः– (१) कांपती हुई जलधाराएं (२) शत्रु को कंपा देने वाले नायकों वाली प्रजाएं, (३) समस्त लोक और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु और आत्मा सहति लिंग शरीर ।
'त्वं धुतिरिन्द्र धुनिमतीः'
ऋ. १.१७४.९, ६.२०.९.

धुनिव्रतः– (१) शत्रुओं को कंपाने का कार्य करने वाला, (२) वायु ।
'धुनिव्रत मायिनं दातिवारम्'
ऋ. ५.५८.२
(३) सब जगत् को अपने कर्म से संचालित करने वाला–परमेश्वर (४) मरुत् ।
'धुनिव्रताय शवसे'
ऋ. ५.८७.१, साम. १.४६२.

धुनिः मही– चलने वाली पृथिवी ।
'स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्'
ऋ. २.१५.५, आश्व.श्रौ.सू. ९.८.४.

धुनी– शत्रुंको कंपा देने वाला सामर्थ्य ।
'सस्तो धुनी चुमुरी या हसिष्वम्'
ऋ. ६.२०.१३

धुनेतिः– शत्रुओं को कंपा देने वाला, आक्रमण करने वाला ।
'धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तः'
ऋ. ४.५०.२, अ. २०.८८.२

धुर्– (१) धुर् (वधार्थक) + क्विप् = धुर् । 'धूर्वन्ति ध्वन्ति उपक्षयन्ति कर्माणि अभिः इति धुरः (इन से कर्मों को नष्ट करते है अतः ये धुर हैं) ।
(२) धार् (धारण करना) + क्विप् = धुर् (आ का इ बाहुलक विधिसे)
(३) जुआठ भी धुर है । साऽपि विहन्ति वहं स्कन्धं अनडुहोः अश्वस्य वा (जुआठ बैलों या घोड़ो के कन्धे को काट डालता है), या जुआठ बैल या घोड़े को काबू में रखता है । (धारयति अनडुहौ अश्वं वा ।)
(४) अंगुलि । इससे अंगूठी आदि धारण करते हैं (अंगुल्याहि धार्यम् सुवर्णादि धारयन्ति)
(५) गाड़ी की धुरी । यह गाड़ी के चक्कों को धारण करती है ।
'दशाभीशुभ्यो अचर्ताजिरेभ्यो
दश धुरो दश युक्ता वहन्द्र्यः'
ऋ. १०.९४.७, नि. ३.९.
आधुनिक अर्थ – जुआ, जुए का वह अंश जो बैल के कन्धों पर रहता है, पतिओं को मिलाने वाली धुरी, बोझें, उत्तरदायित्व, शीर्षस्थानीय

धुर्याः– (१) धारक वायुगण, (२) सैन्यों और राष्ट्र को धारण करने में समर्थ पुरुष ।
'वातान् ह्यश्वान् धुर्यायुयुज्रे'
ऋ. ५.५८.७

धुर्यौ – द्वि.व. । शरीर के धारक प्राण और अपान ।
'इमौ भद्रौ धुर्याविभि'
साम. २.१००५, मै.सं. ४.२.५, २६.१७. तै.ब्रा. २.१४४.

ध्रुतिः– द्रुत वेग से जाना (२) दृढ़ता, (३) स्थिरता ।

ध्रुतिः सुरा– द्रुत गति से जाने वाले जल के समान आत्मा की सुरा अर्थात् सुख से रमण करने की प्रवृत्ति रजोगुणी काम ।
न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुति साः
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः'
ऋ. ७.८६.६
रूप जीव, (२) कूटास्थ ब्रह्म ।
'एजद् ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम्'
ऋ. १.१६४.३०

ध्रुवक्षेमा – (१) स्थिर रक्षण और कल्याण ।
'व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा'
ऋ. ५.७२.२.

(२) स्थिर चिति वाले नित्य कारण तत्व, (३) राष्ट्र में स्थिर रूप से निवास करने वाले प्रजागण ।
'ध्रुव क्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम्'
ऋ. ४.१३.३

ध्रुवक्षितिः– स्थिर जनपद वाली पृथिवीः (२) स्थिर निवास स्थान वाली स्त्री ।
'ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि'
वाज.सं. १४.१, तै.सं. ४.३.४.१, मै.सं. २.८.१, १०६.७, का.सं. १७.१, श.ब्रा. ८.२.१.४, १४.

ध्रुवच्युतः– (ब. व.) । वायुगण का विशेषण । अर्थ–ध्रुव अर्थात् स्थिर पदार्थों को भी हिलाने वाले
'मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतः'
ऋ. १.६४.११
वीर्य बलवर्धक, पूज्य, अपने बल से चलने वाले और स्थिर पदार्थों को भी हिलाने वाले वायु गण या वीर पुरुष ।

ध्रुवयोनिः– स्थिर ग्रह और स्थान वाली पृथिवी, (२) स्थिर आश्रय वाली पृथिवी ।

ध्रुवा– (१) यज्ञ के तीन स्रुवों – जुहू, उपभृत् और ध्रुवा में एक । (२) ये ब्रह्माण्ड में द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के तथा राष्ट्र में राजा, भृत्य और प्रजा के वाचक है ।
'घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना'
वाज.सं. २.६, वाज.सं. (का.) १.८., श.ब्रा. १.३.४.१४.

ध्रुवदिशा– अविचल पृथिवी की ओर ।
'येऽस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि
निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः'
अ. ३.२६.५

ध्रुवपद– (१) अविनाशी अन्तरिक्ष
(२) परामात्मा का आश्रय–(दया.) ।
'ध्रुवे पदे तस्थतु जागरूके'
ऋ. ३.५४.७.
(३) मेघ या वायु का स्थिर स्थान–अन्तरिक्ष
'गन्धर्वस्य ध्रुवेपदे'
ऋ. १.२२.१४

ध्रुवव्रत– नियत स्थिर स्थान से चला आता शाश्वत धर्म
'विद्वां अस्य व्रताध्रुवा वया इवानु रोहते'
ऋ. २.५.४, का.सं. ३८.१३, आप.श्रौ.सू. १६.१५.७,

ध्रुवस्– स्थिर होकर रहना ।
'आयत् सेदथुः ध्रुवसेन योनिम्'
ऋ. ७.७०.१

ध्रुवसद्– (१) ध्रुवराजधर्म में स्थित ।
'ध्रुवसदंत्वा नृषदं मनःसदम्'
वाज.सं. ९.२, श.ब्रा. ५.१.२.४.

ध्रुवा– (१) सदा स्थितिशील, कभी नाश न होने वाली पुनर्नवा ओषधि ।
'ध्रुवा सहस्रनाम्नीः'
अ. ८.७.८
(२) परमात्मा की स्थिर करने वाली अचल शक्ति ।
'ध्रुवादाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्'
अ. १८.४.५
(३) नीचे ।
'ध्रुवाया दिशःशालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः'
अ. ९.३.२९

ध्रुवादिक्– ध्रुवादिशा ।
'स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत्'
अ. १५.६.१

ध्रुवा विराट्– कान्तिपूर्ण विविध प्रकार से शोभा देने वाली ध्रुवा दिशा पृथिवी ।
'ध्रुवेयं विराट् नमो अस्त्वस्यै'
अ. १२.३.११.

धूतयः– (१) कंपाने वाले, वायु, मरुद्गण, (२) प्राण गण जो आत्मा के बल पर कर चरणादि को हिलाते हैं, (३) वीर गण जो शत्रुओं को कंपा देते हैं ।
'को वो वर्षिष्ठ आ नरो
दिवश्च ग्मश्च धूतयः'
ऋ. १.३७.६
'स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः'
ऋ. १.८७.३, तै.सं. ४.३.१३, ७. मै.सं. ४.११.२, १६८.५.

धूम– (१) धुआं, (२) शत्रु को कंपाने वाला बल ।
विधूमग्ने अरुषं मियेध्य
ऋ. १.३६.९, वाज.सं. ११.३७, तै.सं. ४.१.३.४, श.ब्रा. ६.४.२.९, तै.आ. ४.५.२.

हे मेधावी एवं संगति करने योग्य, तू रोष रहित धूम को उत्पन्न कर या शत्रुओं को कंपाने वाले बल को उत्पन्न कर ।

धूमकेतुः- (१) समस्त संसार को स्पन्दन या गति देने वाले सामर्थ्य से जानने योग्य ।
'धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः'
ऋ. १.२७.११, साम. २.१०१४
(२) अग्नि, (३) अग्नि, परिच्छद वाला वाणप्रस्थी, (४) पके केशों वाला, (५) ईश्वर जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है, (६) ईश्वर सत्ता का ज्ञापक । (७) धूम ही जिसका केतु हो । अग्नि, (८) अति अधिक दीप्ति से समस्त बन्धनों को तोड़ने वाला ।
'धूमकेतुः समिधा भा ऋजीकः'
ऋ. १०.१२.२, अ. १८.१.३०. नि. ६.४.

धूमगन्धिः- (१) धूएं की गन्ध वाला ।
अग्नि, (२) पर राष्ट्र को कंपा देने वाला बल
'मा त्वाग्नि र्ध्वनयीद् धूमगन्धिः'
ऋ. १.१६२.१५, वाज.सं. २५.३७, तै.सं. ४.६.९.२, मै.सं. ३.१६.१, १८३.१०, का.सं. (अश्व.) ६.५.
(३) विषैले धूम से पीड़ित करने वाली, (४) उत्तेजक गन्ध वाली ।

धूमशिखा- (१) धूएं की चोटियों वाली आग ।
'अग्निजिह्वा धूमशिखा'
अ. ११.९.१९

धूम्र - (१) धुआं, (२) कंपा देने वाला बल या बलवीर ।
'अजोधूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजम्'
वाज.सं. २१.२९, मै.सं. ३.११.२,१४१.२, तै.ब्रा. २.६.११.१.

धूम्रनीकाशः - धूमैले छाप वाली
'बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदाम्'
वाज..सं. २४.१८.

धूमरोहित- (१) धुँआ मिला लाल रंग (२) लाल नीला, (३) धूम्ररोहित रंग का पोशक पहनने वाला अधिकारी ।
'रोहिते धूम्र रोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्याः'
वाज.सं. २४.२, तै.सं. ५.६.११.१, मै.सं. ३.१३.३, १६९.१, का.सं. (अश्व.) ९.१.

धूमिन् (धूमी) - (१)धूम वाला अग्नि ।
'सम्यक् संयन्ति धूमिन'
ऋ. ५.९.५

धूर्तिः- (१) हिंसा स्वभाव ।
'किमु धूर्तिरभृत मर्त्यस्य'
ऋ. ८.४८.३, तै.सं. ३.२.५.४, का.श्रौ.सू. १०.९.७, शि.उप. ३.
(२) आक्षेप वचन, धूर्ततापूर्ण वचन ।
'मा नः शंसो अररुषोः धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य'
ऋ. १.१८.३, वाज.सं. ३.३०.का.सं. ७.२, श.ब्रा. २.३.४.३५, आप.श्रौ.सू. ६.१७.१२.
अदानशील पुरुष का नाशकारक कष्टप्रद आक्षेप वचन हमारे पास न पहुंचे ।
(३) धूर्त ।
'पाहि धूर्तेरराव्णः'
ऋ. १.३६.१५

धूर्वतिः- वधं करोति (वध करता है) । 'धूर्वी' धातु के लृट् प्र.पु . ए. व का रूप है ।

धूर्वन्- (१) धूर्तता करने वाला, छली (२) असत्य वादी, (३) हिंसक ।
'सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष'
ऋ. १०.८७.१२, अ. ८.३.२१.

धूर्षद् - धू + षद् । (१) यः धूर्षु हिंसके षु सीदति दया. (२) जल भार को अपने में धारण करने वाला-मेघ, (३) सत्यज्ञान या वेदज्ञान के मुख्य पद पर विराजने वाला वेदविद्या के मुख्य पद विराजने वाला वेदविद्या का धुरन्धर आचार्य
'घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदम्'
ऋ. १.१४३.७, आप.श्रौ.सू. ५.६.३.
(४) धुरा या राष्ट्र भार को वहन करने वाली धुरा पर विराजने वाला ।
'तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम्'
ऋ. १०.१३२.७

धूर्षदः- ब.व. । एक -वचन में धूर्षद् । अर्थ . (१) धुरन्धर गाड़ी के भार उठाने वाले वृषभ (२) वायुगण ।
'ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः'
ऋ. २.३४.४
ए व. में-(३) समस्त राष्ट्र भार को उठाने वाला (४)सब बलों और लेखों का धारक परमेश्वर ।
'द्युक्षं होतारं वृजनेषुधूर्षदम्'
ऋ. २.२.१.

धूर्षाहौ - द्वि.व. । पृथ्वी का भार धारण करने में

समर्थ ।
'उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू अवीरहजौ ब्रह्मचोदनौ'
वाज.सं. ४.३३, वाज.सं. (का.) ४.१०.४, तै.सं. १.२.८.२, श.ब्रा. ३.३.४.१२.

धृतदक्ष- उत्तम बल का धारण करने वाला ।
'अग्निधंवा धृतदक्षं दमूनसम्'
ऋ. १०.४१.३

धृतव्रता- ब.व.। (१) व्रतों नियमों को धारण करने वाले और उनमें स्थिर रहने वाले, (२) मित्रा वरुण का विशेषण । मित्रावरुण का अर्थ सूर्य और चन्द्रमा प्राण, अयात्, राजा मन्त्री, गृहस्थ तथा गृहपत्नी किया गया है ।
युंव दक्ष धृतव्रत
'मित्रा वरुण दूडभम्
ऋतुना यज्ञमाशाथे'
ऋ. १.१५.६
हे मित्रा वरुण, तुम दोनों सत्यधारक बल से (ऋतुना) शत्रुओं से नाश न होने वाले बल को एवं परस्पर संग से उत्पन्न प्रजापालन को व्याप्त होकर रहो ।

धृतव्रत - सब कार्यों को धारण करने वाला सूर्य या वरुण ।
'त्वया ह्यगने वरुणो धृतव्रतः
मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः'
ऋ. १.१४१.९
हे अग्ने, तेरे ही बल से सब कर्मों को धारण करने वाला सूर्य (धृतव्रतः) और उत्तम सुख को देने वाले (सुदानवः) ये दोनों और गमन शील प्राणों का नियामक वायु ये सब तीक्ष्ण होकर कार्य करते हैं (शाशद्रे) ।

धृषद् - (१) शत्रु को धर्षण करने वाला अस्त्र शास्त्र बल ।
'यथा जघन्थ धृषता पुराचित्'
ऋ. २.३०.४
(२) धृष् (धर्षण करना) + शतृ = धृषत् । अर्थ है-शत्रुओं का पराजय, (३) धृष्टता करता हुआ ।
'प्रतिश्रुताय वो धृषत्'
हुवे सुशिप्र मूतये'
ऋ. ८.३२.४
हे ऋत्विजों, इन्द्र के प्रति की गई अपनी प्रतिज्ञा के पालन के लिये (प्रति श्रुताय) आम लोगों को निमित्त (वः) सुन्दर तनू या नाक वाले इन्द्र को (सुशिप्रम्) अपनी और तुम्हारी रक्षा के लिये पुकारता हूँ (हुवे) ।
(४) धर्षण करने वाला बल
'रुजो विदृढा धृषता विरप्शिन्'
ऋ. ६.२२.६, अ. २०.३६.६

धृद्वर्ण- शत्रुओं को पराजित करने में प्रसिद्ध ।
'धृषद्वर्ण दिवे दिवे'
ऋ. १०.८७.२२, अ. ७.७१.१, ८.३.२२, वाज.सं. ११.२६, तै.सं. १.५.६.४, ४.१.२, ५ मै.सं. २.७.२, ७६.९, का.सं. १६.२, ३८.१२.

धृषद्वी (द्विन्) - शत्रु को धर्षण करने वाले बल से युक्त ।
'तेयामन्ना धृषद्विनः'
ऋ. ५.५२.२

धृषणः- सबको दबाने वाला सर्व विजयी ।
'धृषाणो धृषितः शवः'
अ. ६.३३.२, शां.श्रौ.सू. १८.३.२.

धृषित्- (१) अभिमानी विजेता ।

घृष्णु- (१) ढिठाई, ढीठ ।
'निस्सालां धृष्णुं धिषणम्'
अ. २.१४.१
(२) शत्रुधर्षक । धृष् + नु ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं
नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३.
हे द्रविणोद नामक अग्नि, हे शत्रुधर्षक, तू यज्ञ से सोम रस को खूब मिलाकर तथा पलट कर ऋतुओं के साथ पी ।
आधुनिक अर्थ- साहसी, बलवान् , निर्लज्ज, ढीठ ।
(३) शत्रुओं को धर्षित पराजित करने वाला सामर्थ्य ।
'ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसः'
ऋ. १.१६७.९.
(४) शरीर बल का नाशक रोग ।
'नेत् त्वा धृष्णु हरसा जर्हृषाणः'
ऋ. १०.१६.७, अ. १८.२.५८, तै.आ. ६.१.४.

धृष्णुया- दृढत्वादि गुणयुक्ता । धृष्णु + सु =

धृष्णुया । (सु का याच्)
'जयतामिव तन्यतुः
मरुतामिति धृष्णुया '
ऋ. १.२३.११

धृष्णुषेणः– शत्रुपराजयकारी सेना का स्वामी –इन्द्र ।
'पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः '
ऋ. ३.५४.१५

धृष्णवोजसः, धृष्णवोजाः – धर्षण या पराजय करने वाले बल से युक्त मरुत् ।
'धारावरा मरुतो धृष्णवोजसः '
ऋ. २.३४.१
'अधृष्टं धृष्णवोजसम् '
ऋ. ८.७०.३, अ. २०.९२.१८, साम. १.२४३, २.५०५.

धेना – (१) गर्जना, चीत्कार, (२) विद्या ।
'व्यस्य धारा असृजत् विधेनाः '
ऋ. ३.१.९
(३) धा (धारण करना) + शानच् = दधाना = धेना (अभ्यास के द का लोप और धा के आ का ए व्यत्यय द्वारा) । अर्थ है धारण करने वाली लोला या लोल, जिह्वोपजिह्विका ।
(४) आधसत्य दंष्ट्रा
'मादयस्व हरिभिर्येत इन्द्र
विष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तु
उशन् हव्यानि प्रतिनो जुषस्व । '
ऋ. १.१०१.१०
हे इन्द्र, घोड़ो के साथ तृप्त हो (इन्द्र हरिभिः मादयस्व) । जो तेरे सोमपान के लिये चौड़े हनू या सूंघने के लिए चौड़ी नासिकाएं तथा अन्न खाने के लिए उपजिह्विका या लोल हैं (शिप्रेधेना), उन्हें विवृत कर (विष्यस्व) । हे सुन्दर हनू वाला या सुन्दर नासिका वाला, तेरे अश्व तुष्ट होकर तुझे हमारे यहां लावें (त्वा आ वहन्तु) । तू भी हमारी कामना करता हुआ (उशन्) हमारे इन हव्यों को (नः हव्यानि) एक एक कर सेवन कर (प्रतिजुषस्व)
अथवा, सायण के अनुसार, उन से उदासीन न हो, या, दुर्ग के अनुसार, जिस श्रद्धा से तुझे हम हव्य देते हैं उसी श्रद्धा से तू उसका सेवन कर ।
(४) दूध की धारा वाली गौ, (६) जलों को धारण करने और पान कराने वाली मेघ की धारा ।
'ऋतस्य धेना अनयन्त सम्रुतः '
ऋ. १.१४१.२
दूध की धारावाली गौएं जिस प्रकार अपने वत्स को ही प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार जल को धारण करने और पान कराने वाली मेघ की धाराएं भी (ऋतस्य धेनाः) समान रूप से प्रवाहित होती हुई (सम्रुतः) उस महान् अग्नि के तेज रूप मूल कारण तक ले जाती है ।
(७) स्मृति ।
जनानां धेना अवचकशद्वाषा '
ऋ. १०.४३.६, अ. २०.१७.६

धेनु– धेट् (धयन करना, पीना) या धि (पीणनार्थक) + नु = धेनु । धय्यते पीयते असौ वत्से न (यह धेनु बछड़े द्वारा पीयी जाती है । अथवा–धिनोति तर्पयति असौ उदकेन पयसा वा (यह उदक या दूध से तृप्त करती है – बछड़े को पिलाती है । अर्थ (१) मेघ–नैरुक्त गौ ।
'धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् '
ऋ. ६.६३.८, नि. ६.२९.
हमें धेनु और अन्यत्र न हटने योग्य अन्न दो ।
(२) माध्यमिक वाक् मेघ
(३) तर्पयित्री आहुति तृप्त करने वाला आहुति, (४) शास्त्र , (५) धन ।

धेनुका – (१) दूध पिलाने वाली सच्ची माता ।
'सा प्रसूर्धेनुका भव '
अ. ३.२३.४, आप.मं.पा. १.१३.३, हि.गृ.सू. १.२५.१.

धेनुःगौः– दुधार गाय ।
'धेनुर्गौर्नवयोदधुः '
वाज.सं. २१.१९, मै.सं. ३.११.११, १५८.१३, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.४.

धेनुमती– (१) दुग्ध देने वाली गौओं और रसप्रद रश्मियों से पूर्ण पृथिवी ।
'इरावती धेनुमती हि भूतम् '
ऋ. ७.९९.३, वाज.सं. ५.१६, तै.सं. १.२.१३.२, मै.सं. १.२.९, १८.१९, श.ब्रा. ३.५.३.१४, तै.आ. १.८.२, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

(२) गौओं से पूर्ण समृद्धि
'इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै'
ऋ. १.१२०.९
(३) रसपान करने वाली गौ, वाणी तथा किरणों से युक्त द्यावापृथिवी '

धेनू – द्वि.व. । धेनु और वाणी ।
'ऋताय धेनू परमेदुहाते'
ऋ. ४.२३.१०

धेष्ठः– पालन पोषण और धारण करने वाला
'त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः'
ऋ. १.१७०.५

धेष्ठा– द्वि.व. । (१) उत्तमरीति से धारण करने में समर्थ – इन्द्र और अग्नि का विशेषण, (२) माता पिता ।
'ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा'
ऋ. ७.९३.१, तै.सं. १.१.१४.२, मै.सं. ४.११.१,१६०.१, का.सं. १३.१५, तै.ब्रा. २.४.८.४.

धैर्य– धैर्य, धीरता ।
'धैर्याय तक्षणम्'
वाज.सं. ३०.६, तै.ब्रा. ३.४.१.२.

धैवर– (१) धीवर, (२) बुद्धि में श्रेष्ठ पुरुष ।
'सरोभ्यो धैवरम्'
वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

धौतरी – शत्रुओं को कंपाने वाली सेना ।
'ससवान् स्तौलाभिः धौतरीभिः'
ऋ. ६.४४.७

धौती– (१) दौड़ती हुई, वेग से जाती हुई भूमि, नदी या लोक प्रजा
'यो धौतीनाम् अहिहन् आरिणक् पथः'
ऋ. २.१३.५.

न

न – (१) प्रतिषेधार्थक अव्यय, (२) उपमार्थीय, (३) किल के साथ भी इसका प्रयोग होता है जैसे 'नकिल' (४) सदृश, इव । (५) न चेत् (नहीं तो) (६) न इत् (भय में बोलने का ढंग) अर्थ है–नहीं तो ।
'हविभिरेके स्वरितः सचन्ते
सुन्वन्त एके सवनेषु सोमान्
शचीर्मदन्त उतदक्षिणाभिः
नेज्जिह्या यन्त्यो नरके पताम'
ऋ. खि. १०.१०६.१, नि. १.११.
कुछ लोक इस भूलोक से हवि आदि द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं, और कुछ यज्ञों में सोम बनाते हुए । पुनः कुछ स्तुतियों द्वारा देवों को तृप्त कर (शचीःमदन्तः) और कुछ दक्षिणा द्वारा । हम स्त्रियां तो इन उपायों को न कर अपने पति की परिचर्या कर ही स्वर्ग पा सकती हैं नहीं तो (न इत्) पति के प्रति कपट कर (जिह्या यन्त्यः) नरक में जायेंगी (नरके पताम) ।
सदृश अर्थ में प्रयोग–
'खलेन पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०.
जैसे खलिहान में धान्य –सहित पुआल रौंद देते हैं वैसे ही मैं अनेकों शत्रुओं को मार डालता हूँ ।
पुनः –
'अश्वं न त्वा वारवन्तम्
वन्दध्या अग्नि नमोभिः
सम्राजमध्वराणाम्'
ऋ. १.२७.१, साम. १.१७,२.९८४, नि. १.२०.
यज्ञों के सम्राट् स्वरूप तुझ अग्नि को स्तुतियों से प्रार्थना करने में हम प्रवृत्त हुए हैं जैसे बाल वाले अश्व को ।

नक्– (१) रात्रि, (२) नह् + क्विप् = नक् । अर्थ है–सम्बन्धी जन माता, पिता भाई आदि ।
'अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते'
ऋ. ७.७१.१, कौ.ब्रा. २६.११

नक्त– (१) अव्यक्त ।
'मूर्धाभुवो भवति नक्तमग्निः'
ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.
(२) एक ओषधि जो कुष्ठ और पलित रोग में प्रयुक्त होती है ।
'नक्त' से कलिकारी, गुग्गुलु, उलूक, प्रसहा, करंज, फंजी, तथा भार्ङ्गी नामक ओषधियों का ग्रहण होता है ।
कलिकारी (नक्तेन्दुपुष्पिका) कफ और वात का नाशक, रक्षोज बाल्य व्रण का नाशक है । उल्लू पक्षी का मांसादि विसर्ग कुष्ठ का नाशक है । करंज (नक्तमाल) या घृत करंज व्रण, प्लीहा, कृमिनाशक तथा त्वचा के रोगों को दूर करता

है । करंज के भी दो भेद हैं- उदकीर्ण और अंगार वल्लिका कण्डू, विचर्चिका कुष्ठ त्वचा रोग तथा व्रण (नासूर) आदि का नाशक है ।
(३) नपुंसक । अर्थ है रात्रि
रात में अग्नि भूलोक की मूर्धा हो जाता है । जिससे पूर्ण व्युत्पत्ति है ।

नक्ता- (१) रात्रि । अनक्ति भूतानि अव श्यायेन (तुषार से प्राणियों की क्लिन्न करती या घेर लेती है) । अञ्च् (क्लेदन, गति व्यक्ति, मुक्षण और कान्ति अर्थ में) + क्तन् + टाप् = नक्ता । दुर्ग के मत से 'अनक्ता' में अ का लोप करने से 'नक्ता' बना है । अथवा अव्यक्तवर्णा (जब वर्ण व्यक्त न हो) होने से रात्रि नक्ता कहलाई ।
न अक्ता न व्यक्ता अनक्ता (जो व्यक्त न हो वह अनक्ता है) । अनक्ता ही न 'क्ता' और 'नक्त' हुई 'दोषा च नक्तंञ्च रजनौ'-अमर । अंग्रेजी का night और लैटिन का noct इसी 'नक्त' से निकलते हैं । आधुनिक अर्थ (१) रात, (२) सिर्फ रात में भोजन करने का व्रत, (३) रात में ।

नक्तोषासा- (१) रात्रि और उषा, (२) रात्रि और दिन, (३) नक्त और उषस् नामक दो सभाएं, (४) स्त्री और पुरुष ।
'नक्तोषासा सुपेशसा
अस्मिन् यज्ञ उपह्वये
इदं नो बर्हिरासदे'
ऋ. १.१३.७,
इस यज्ञ में उत्तम सुखदायी रूप और ऐश्वर्य वाले रात और दिनों को उपयोग में लाऊं । राष्ट्र पक्ष में नक्त और उषसा दो सभाएं है । गृहस्थ पक्ष में- नक्त और उषस् स्त्री पुरुष हैं । वे उत्तम रूप वाले ऐश्वर्यवान् होकर यज्ञ में आवें ।

न्यक्रन्दयन्- नितरां क्रन्दनम् अकुर्वन् (सदा क्रन्दन किया) । अथवा - जोर से क्रन्दन कराया ।
'न्यक्रन्दयन् उपयन्त एनम्'
ऋ. १०.१०२.५, नि. ९.२३.
इस वृषभ को संग्राम में गए सैनिक उच्चशब्द के साथ शब्दायमान करते हैं ।

नाक - नी (नयनकरना) + आक = नाक (टि का लोप) अर्थ है (१) आदित्य । रसानां नेता (आदित्य रसों का नयन करने वाला है) भासां नेता (प्रकाश का हरण करने वाला), ज्योतिषां प्रणयः (प्रकाशक आदित्य जलों का रस खींच कर वर्षा देता है । प्रकाश देता है उसी के रश्मि जाल से जगत प्रकाशित होता है) (२) द्युलोक । विनाकमाख्यत् सविता वरेण्यः-वरणीय सविता द्युलोक को प्रकाशित करता है, (नाकम् व्याख्यात्) । आजकल- 'नास्ति अकं दुःखम् यत्र' (जहां दुःख नहीं है वह नाक है, ऐसी व्युत्पत्ति की जाती है) । नञ् + अ + क = नाक । अर्थ है- स्वर्ग, आकाश ।

नक्ति - रात ।
'अभित्वा नक्तीः उषसः ववाशिरे'
ऋ. २.२.२.

नकिः- (१) नैव किञ्चित् (कुछ नहीं तो) (२) कोई नहीं ।
'यं नु न किः पृतनासु स्वराजं
द्वितातराति नृतमं हरिष्ठाम्'
ऋ. ३.४९.२
पुनः-
'इमानूनु कवितमस्य मायां
महीं देवस्य नकि रादधर्ष
एकं यदुद्गा न पृणन्त्येनी
रासिञ्चती रवनयः समुद्रम्'
ऋ. ५.८५.६, नि. ६.१२
प्रकृष्ट प्रज्ञदेव वरुण का (कवितमस्य देवस्य) इव सर्वविदित महती माया को (इमां महीं मायाम्) कोई भी (नकिः) अभिभूत नहीं कर सकता (आदधर्ष ऊनु) जैसे (यत्) बहुत सींचने वाली भी (बह्वयःअपि आसिञ्चतीः) अर्थात् पूर्ण जल वाली भी प्रगतिशील नदियां (एनीः अवनयः) एक समुद्र को भी (एकम्) जल से (उद्गा) भर नहीं सकतीं (न पृणन्ति) ।

नकी- अ । अर्थ है । और न ।
' न की राया नैवथान भन्दना'
ऋ. ८.२४.१५, साम. २.८६१

न कीम् - अ. । अर्थ - और कोई नहीं ।
' न कीं वृधीक इन्द्र ते'
ऋ. ८.७८.४

नक्ष- धातु । (१) प्राप्त करना , (२) गति करना ।
'अग्निं नक्षन्तु नो गिरः'

ऋ. ८.१०३.१, साम. १.४७, २.८६५
(२) व्याप्त होना, (३) करना, (४) अनुष्ठान करना ।
'नक्षत् होता परिसदम् मिता यन्
ऋ. १.१७३.३

नक्षत्र– (१) नक्षत्र, (२) कभी नाशन होने वाली प्रजा ।
'तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम'
वाज.सं. १८.४०, तै.सं. ३.४.७.१, मै.सं. २.१२.२, १४५.४. का.सं. १८.१४, श.ब्रा. ९.४.१.९.
(३) नक्ष (गत्यर्थक) + अत्रन् = नक्षत्र । अर्थ है – तारा । ताराएं सदा चलती हैं (ताः. हिं नित्यमेव गच्छन्ति)
(४) पाणिनि के अनुसार 'न क्षीयते नक्षरति इति नक्षत्रम्' (जो क्षीण नहीं होता वह नक्षत्र है) । न + क्षर + अत्रन् = नक्षत्र (५) न इमानि क्षत्राणि (ये धन नहीं है । क्योंकि सूर्य रश्मि पाकर ही वेप्रकाशित होते हैं । (सूर्यरश्म्यनुवेधात् दीप्यमाना निसन्ति) । हिरण्यानीव भ्राजन्ते (हिरण्य की तरह चमकते हैं) । (६) निरुक्त में 'क्षत्' शब्द धनवाचक है । (नि. २.१०) । 'क्षद्' ग्रहणार्थक धातु है । परन्तु माधव के मत से यह धातु शकलीकरण (खण्ड करना) तथा हिंसा करना अर्थ में भी आया है । सुबोधिनीकार ने भी 'क्षद् गति हिंसनयोः कहा है ।
क्षद् + त्र = क्षत्र । अर्थ है– धन क्योंकि भोगार्थी इसका ग्रहण करते हैं या यह दरिद्रता नष्ट करता है या उसे खण्ड खण्ड करता है अथवा किसी नाशक या पापसे रक्षा करता है ।
'क्षतः नाशकात् कुतश्चित् पापात्
वा त्रायत इति क्षत्रम् धनम्'

नक्षत्रजाः– (१) पाप नक्षत्र में उत्पन्न बालक– (२) अस्खलित वीर्य ब्रह्मचारी से उत्पन्न बालक ।
'नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः'
अ। ६.११०.३

नक्षत्रदर्श– (१) नक्षत्रों को देखने वाला या दिखा देने वाला दूखीक्षण यन्त्र, (२) दूरदर्शी विद्वान्
'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

नक्षत्रराज– (१) नक्षत्रों में राजा चन्द्रमा, (२) निर्बलों का राजा ।
'तस्मै ते नक्षत्रराजः'
अ. ६.१२८.४

नक्षत्रशवाः– न + क्षत्र + शवस्' । अर्थ– क्षात्रबल तथा धनबल से रहित ।
'विशां नक्षत्र शवसाम'
ऋ. १०.२२.१०

नक्षत्राणिरूपम्– (१) समस्त नक्षत्र सूर्य के ही रूप हैं । (२) समस्त तेजोमय पदार्थ परमेश्वर के अंश हैं ।
'नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्'
वाज.सं. ३१.२२

नक्षत्रिय– नक्षत्रों में गति उत्पन्न करने वाला ग्रह उपग्रह ।
'नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२८, मै.सं. ३.१२.७,१६२.१४.

नक्षत्रिया– नक्षत्रों में विद्यमान शक्ति ।
'अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रियेयाः'
अ. २.२.४

नक्षद्दाभः– नक्षत्र + दाभ । प्राप्त या राष्ट्र में फैलते हुए शत्रु और सेना को नाश करने वाला ।
'नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठाम्'
ऋ. ६.२२.२, अ. २०.३६.२, नि. ६.३.

नक्षन् – नक्ष (गत्यर्थक) + शतृ = नक्षत्र । प्र.पु.ए.व. में रूप है । नक्षन् । अर्थ है – जाता हुआ ।
'अस्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्'
ऋ. १.६६.९.

नक्षमाण – नक्ष (सेवा करना) + शानच् = नक्षमाण । अर्थ है–सेवा करता हुआ ।
'तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणाः'
अ. १८.२.२९

नक्ष्य– नक्ष + यत् = नक्ष्य । अर्थ है । (१० प्राप्त होने योग्य, (२) शरण्य, (३) अग्नि
'नित्वा नक्ष्य विश्यते'
ऋ. ७.१५.७, साम. १.२६, साम.वि.ब्रा. २.६.११.

नक्षन्तः– (१) अनुष्ठान करते हुए ।
'आशेकुरित् सधमादं सखायः
नक्षन्त यज्ञम् क इदं वि वोचत्'
ऋ. १०.८८.१७, नि. ७.३०
यज्ञ में सखा रूप – ऋत्विज् मदान्वित करने वाले यज्ञ को करते हैं तथा सम्यक् रूप से

अनुष्ठान करते हुए (सखायः सधमादं यक्षम् आशेकुः नक्षन्तः)

नक्षमाण- व्याप्त होता हुआ ।
'संगोभिराङ्गिरसो नक्षमाणः'
ऋ. १०.६८.२, अ. २०.१६.२

नक्षमाणा- युक्त
'नक्षमाणा सहद्युभिः'
ऋ. ७.३१.८

नक्षसे- नक्ष धातु 'प्राप्त करना'अर्थ में आया है । अर्थ है-तू प्राप्त होता है या होती है ।

नकुल- (१) नेवला, ।
'यथा नकुलो विच्छिद्य'
अ. ६.१३९.५
(२) न कुत्सितं मलं लाति इति नकुलः शुद्धौषधप्रापकः (यह कुत्सित मल नहीं लाता है । शुद्ध और औषधि को प्राप्त कराने वाला है, नेवला (२) विषवैद्य ।
'आरण्योऽजो नकुलःशका ते पौष्णाः'
वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१२.१, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.३, का.सं. (अश्व.) ७.२.
'दिग्भ्यो नकुलान्'
वाज.सं. २४.२६, मै.सं. ३.१४.७, १७३.११.

नख- (१) बांधने योग्य शस्त्र (२) नख । 'नह्' धातु से सम्पन्न ।
'सुपर्ण इत्था नखमा सिषाय'
ऋ. १०.२८.१०
(३) न + खम् आकाशम् नखम्'

नग्न- न + ग्न (१) स्तुति वाणी से रहित, (२) वाणी पर स्थिर न रहने वाला -असत्यवादी
(३) निर्लज्ज, बेहया ।
'आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नम्'
ऋ. ४.२५.७

नग्नक- नंगा, निर्वज्र ।
'शायकादुत नग्नकात्'
अ. ८.६.२१

नग्नहुः- (१) दरिद्रों का पालक, (२) प्रजा का सुखकारक ।
'नराशंसेन नग्नहुम्'
वाज.सं. २०.५७, मै.सं. ३.११.३, १४३.१२, का.सं. ३८.८, तै.ब्रा. २.६.१२.१.
(३) नग्नं शुद्धं जुहोति गृह्णाति इति -दया. (विशुद्ध ज्ञान को ग्रहण करने वाला) (४) सुन्दर स्त्री को स्वीकार करने वाला ।
(५) नग्नाम् अन्येनानुपगतां कन्याम् अथवा नग्नशरीरे शुभलक्षणवतीं कन्यां जुहोति गृह्णाति यः सः ।
अर्थात् जो अन्य से अनुपगत कन्या को अथवा नग्नशरीर में शुभलक्षणवती कन्या को करता है ।
नग्निकां श्रेष्ठां यवीयसीमुप यच्छेत- मानव गृह्यसूत्रम् (नग्निका श्रेष्ठा युवती का उपभोग कर)
नग्न शरीरेऽपि शुभलक्षण वतीमिति अष्टावक्रः
(६) नग्न अर्थात् अकिञ्चन पुरुषों को अन्न वस्त्र देने वाला (यः नग्नान् जुहोति आदत्ते इति नग्न हुः ।-(दया.)
'महावीरस्य नग्नहुः'
वाज.सं. १९.१४

नग्नी- न + ग्ना (वाणी) + ई = नग्नी ।
'येन महा नग्न्या जघनम्'
अ. १४.१.३६, कौ.सू. १३९.१५.

न्यग्रोध- न्यक् + रुध् + अच् = न्यग्रोध । अर्थ है- नीचे की ओर मूल छोड़ने वाला वटवृक्ष
'यत्राश्वत्था न्यग्रोधाः'
अ. ४.३७.४
'भद्रान् न्यग्रोधात् पर्णात्'
अ. ५.५.५.
(२) विजित देशों में छावनी बनाकर रहने वाला विजयी राजा (३) वनस्पतिनामक अधिकारी ।
'न्यग्रोधश्चमसैः'
वाज.सं. २३.१३, तै.सं. ७.४.१२.१, का.सं.(अश्व.) ४.१.श.ब्रा. १३.२.७.३.

नघमार-(१) कुष्ठ नामक औषधि का एक नाम जो पुरुष को कभी मरने नहीं देता ।
'त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नघमारो नघारिषः'
अ. १९.३९.२

नघाय- (१) कुष्ठ औषधि का एकनाम । छपी पुस्तकों मं 'नघायु' पाठ है, परन्तु ग्रीफिथ 'नघाय' को ही शुद्ध मानते हैं । पैप्पलाद का भी यही मत है । शंकर पाण्डुरंग और ह्विटनी को 'नघायम्' पाठ में संदेह है ।
'नघायं पुरुषोरिषत'

अ. १९.३९.२, ३.४,

नघारिष- न + घ + अरिष । कुष्ठ नामक औषधि जो कभी अरिष्ट या रोग नहीं होने देता है ।

नघारिषा- (१) किसी प्रकार की हानि न पहुंचाने वाली ओषधि ।

'जीवलां नघारिषाम्'

अ. ८.२.६, ८.७.६

(२) न हन्ति इति नघा, नघा रुषा रोषो अस्यां सा । कभी प्राण पर आघात न करने वाली

न्यङ्कु - (१) न्यङ्कवति इति न्यङ्कु । (नीचे स्वर से शनैः शनैः भाषण करने वाला) । न्यङ् + कु ।

'पिद्वो न्यङ्कुः कक्कट स्तेऽनुमत्यै'

वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१७.१, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.४

(२) न्यङ्कु जाति का एक मृग ।

'आदित्यभ्ये न्यङ्कून्'

वाज.सं. २४.२७, मै.सं. ३.१४.९,१७४.३.

नचिकेता- (१) न चिकेत (जो नहीं जानता) (२) जिसके रोग दुःख दूर नहीं होते वह अल्पज्ञानी, (३) बद्धजीव ।

कठोपनिषद् में उक्त नाचिकेतोपाख्यान का यहीं मूल है ।

'एतमर्थं नचिकेताहमग्निः'

ऋ. १०.५१.४

न्यञ्च् - नि + अञ्च् + क्विप् = न्यञ्च् । प्रथमा एक वचन में 'न्यङ्' अर्थ है- नीचे जाता हुआ ।

'न्यङ्ङुत्तानमन्वेषि भूमिम्'

ऋ. १०.१४२.५

आदित्य विस्तृत रश्मि समूह से नीचे जाता हुआ (न्यङ्) । इस विस्तृत भूमि को (उत्तानाम्) आच्छादित करता है (अन्वेति) ।

न्यञ्चन- नि + अञ्च् + ल्युट् = न्यञ्चन् । अर्थ है- नित्य आना जाना ।

'अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनम्'

ऋ. ८.२७.१८

न्यञ्चनी- (१) सब रोगों को दबानेवाली, (२) समस्त शरीर में सुगमता से व्याप जाने वाली ।

'जबानां च न्यञ्चनी'

अ. ५.५.२.

न्यञ्ज् - नि + अञ्ज् । संग्रह करना

'यथा मक्षा इदंमधु
न्यञ्जन्ति मधावधि'

अ. ९.१.१७

न जीवो न मृतः- न जिन्दा न मरा - स्वप्न ।

'यो न जीवोऽसि न मृतो
देवानाममृतागर्भोऽसि स्वप्न'

अ. ६.४६.१

नड - (१) नरकुल, नरकट ।

'केशा नडाइव वर्धन्ताम्'

अ. ६.१३७.२,३

(२) वर्षा ऋतु में होने वाला एक तृण विशेष ।

'नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम्'

अ. ४.१९.१

'नडा इव सरसो निरतिष्ठन्'

ऋ. ८.१.३३

नड्वला- (१) वह भूमि जिसमें नड़ तथा सरकण्ड आदि उत्पन्न हों (२) दल दल भूमि ।

'न ड्वलाभ्यो शौष्कलम्'

वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

नद - सं. (१) समृद्ध करने वाला, (२) आज्ञापक

'नदं व ओदतीनाम् नदं यो युवतीनाम्'

ऋ. ८.६९.२, साम. २.८६२, ऐ.आ. १.३.५.२, ५.१.६.५.

(३) उपदेष्टा, (४) नदत् (जप करता हुआ)। (५) नद, नाला (६) वेदाध्ययन करने वाला ।

'नदस्य मा रुधतः काम आगत'

ऋ. १.१७९.४, नि. ५.२.

लोपामुद्रा कहती है - जप करते हुए, एवं इन्द्रियों पर संयम करते हुए (रुधतः) ब्रह्मचारी अगस्त्य के प्रति कामभावना मेर प्रति आई ।

(७) महानद ।

'नदं न भिन्नममुयाशयानम्'

ऋ. १.३२.८

जिस प्रकार जल धाराएं इस पृथ्वी के साथ सोए, प्रशान्त, टूटे तट वाले महानद को....तट तोड़ कर मिल जाती है ।

नदनिमा- (१) शब्द करने वाला चिरचिराने वाला जन्तु ।

'हतो नदनिमोत'

अ. ५.२३.८

नदनु- (१) गर्जन, ।
'यदा कृणोषि नदनुं समूहसि'
ऋ. ८.२१.१४, अ. २०.११४.२, साम. २.७४०.
(२) उपदेश करने वाला ।

नदनुमान् - (१) गर्जनशील, (२) उपदेष्टा, इन्द्र ।
'तुविम्रक्षो नदनुमां ऋजीषी'
ऋ. ६.१८.२, का.सं. १८.१७.

नद्ध- (१) नाधा हुआ, बांधा हुआ ।
'यत्ते नद्धं विश्ववारे'
अ. ९.३.२
(२) बन्धन, नाध ।
'नद्धानि वि चृतामसि'
अ। ९.३.१,४,५,

नदी- (१) शब्द करने वाला जल (२) राजा पर आघात होने से शब्द करने वाली प्रजा ।
'तस्मादा नद्यो नाम स्थ'
अ. ३.१३.१, तै.सं. ५.६.१.२, मै.सं. २.१३.१, १५२.८, का.सं. ३९.२
(३) स्त्री । नद् (ध्वनि करना) + अच् + ङीष् = नदी ।
'अद्या चिन्नू चित् तदपो नदीनाम्'
ऋ. ६.३०.३, नि. ४.१७.
आज भी और पहले भी नदियों का जल बहाना तेरा काम रहा,
(४) जल ।
'बुध्ने नदीनाम् रजासु षीदन्'
ऋ. ७.३४.१६, नि. १०.४४.
जलों के बांधने में । पुनः,
'समस्त नदीभिरुर्वशीवागृणातु'
ऋ. ५.४१.१९, नि. ११.४०.
रूपवती विद्युत् उर्वशी नाम से प्रसिद्ध माध्यमिका देवी हमें खूब जूलों से (नदीभिः) तृप्त करे (अभिगृणातु) ।

नदीतमा- (१) अतिशमेन अव्यक्त विद्यो पदेशिका-दया.
(२) उपदेश करने वालो में सबसे श्रेष्ठ,
(३) सरस्वती देवी ।
'अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति'
ऋ. २.४१.१६

नदीनांसुमतिः- (१) गुणों में सम्पन्न स्त्रियों की शुभधर्मबुद्धि, (२) समृद्ध प्रजाओं की सुसम्पत्ति ।
'अभक्तविप्रः सुमतिं नदीनाम्'
ऋ. ३.३३.१२

नदीपति- नदियों का पति- समुद्र ।
'प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये'
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.१०.

नदीवृत- (१)समस्त आकाश को घेरने वाला मेघ या वृत्र । (२) बहने वाली नदियों को बहाने वाला ।
'इन्द्रो यद् वृत्रम् अवधीत् नदीवृतम्'
ऋ. १.५२.२
सामर्थ्यवान् सूर्य, विद्युत् वायु या इन्द्र जब समस्त् आकाश को घेरने वाले, अतिवेग से नदियों को बहाने वाले मेघ को आघात करता है ।
अथवा इन्द्र जब वृत्रनामक असुर को मारता है.।

न्यदृष्ट- (१० अप्रत्यक्ष (२) तन्मय, तल्लीन
'न्यदृष्टा अलिप्सत'
ऋ. १.१९१.१.४, अ. ६.४२.२

नन - नम् (झुकना) + नक् = नन । अर्थ -(१) जो पिता के सामने झुकता है - पुत्र । नना का अर्थ माता या पुत्री है ।

नन्त्व - (१) नमनीय -दया(२) दबाने योग्य भीतरी और बाह्य शत्रु सैन्य ।
'यो नन्त्वानि अनमन्त्योजसा'
ऋ. २.२४.२

नना - (१) नम् (नवना) + नक् = नना । नन + टाप् = नना । अर्थ-माता । माता दूध पिलाने के निमित्त अपने अपत्य के प्रति झुकती है । (स्तन्यदानाद्युपकाराय नमति) (२) पितुः शुश्रूषार्थं दुहिता प्रह्वी भवति (पिता की शुश्रूषा करने के लिए दुहिता झुकती है । नम् + अच् + टाप् = नमा = नना । अंग्रेजी में Nun संन्यासिनी के अर्थ में आया है । वृद्धावस्था के कारण नव जाने से हिन्दी में भी 'नाना' और 'नानी शब्दों का प्रयोग है । वेदों में माता और पुत्री के अर्थों में प्रयोग मिलता है ।
'उपलप्रक्षिणीनना'
ऋ. ९.११२.३, नि. ६.६,
अंगिरस की उक्ति है । कहते हैं मेरी माता या

पुत्री चक्की चलाने वाली या पिसाई कर जीविका चलानेवाली थी ।

ननान्दा – ननद । न नन्दयति इति ननान्दा (जो भाभी को प्रसन्न नहीं करती अर्थात् उससे झगड़ती है) ।

'ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि'

अ. १४.१.४४.

'ननान्दरि सम्राज्ञीभव'

ऋ. १०.८५.४६, साम.मं.ब्रा. १.२.२०, आप.मं.पा. १.६.६.

ननाश– नश् (नष्ट होना) के लिट् प्रथम पु.ए. व. में रूप है । अर्थ है– अदृश्य हो गया, आखों से ओझल होगया ।

'महोजाया विवश्वतो ननाश'

ऋ. १०.१७.१, अ. १८.१.५३,नि. १२.११.

महान् आदित्य की जाया सरण्यू (त्वष्टा की दुहिता) विवाह होते ही यम और यमी को उत्पन्न कर अदृश्य हो गई (ननाश) अथवा, मध्यम देव यम की माता वह ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी गई । प्रभात होते ही सूर्य ज्योति सूर्य के समीप से छिटक कर सूर्य से दूर भाग गई ।

ननु– (१) प्रश्न में प्रयुक्त एक अव्यय यथा– ननु किलएवम् 'ऐसी बात है'

पहले न + नु से ननु बना, पीछे 'ननु' एक अलग अव्यय बन गया । आज भी प्रश्न की मुद्रा में कहते हैं न नु ? ह न ? प्रश्न के आदि में ही इसका प्रयोग होता है यथा –ननु समाप्तकत्यो गौतम ? क्या गौतम अपना कृत्य समाप्त कर चुके हैं । ?

(२) अवश्य, सचमुच, क्या ऐसीं बात नहीं है ? इन अर्थों में भी ननु का प्रयोग होता है । जैसे– यदाऽमेधाविनी शिष्या उप देशं मलिनयति तदाचार्यस्य दोषों ननु ?

'यदि मूर्ख शिष्या उपदेश को मलिन कर तो यह अवश्य आचार्य का दोष है ।

(३) अवधारण अर्थ में–

त्रिलोक नाथेन सदामखद्विषःत्वया नियम्या ननु दिव्य चक्षुषा

(४) सम्बोधनार्थक ओ ओह के अर्थ में प्रयोग– ननु मूर्खाः। पठितमेव युष्माभिः तस्मिन् काण्डे । ऐ मूर्खो तुमने तो उस काण्ड में पढ़ा ही है।

(५) प्रार्थना अर्थ में –

ननु मां प्राप्य पत्युरन्तिकम् 'कृपया मुझे पति के समीप पहुंचा ।

(६) संभल कर या शुद्ध बोलने में ।

'ननु विचिनोतु भवान्'

(७) शास्त्रार्थ के तर्क वितर्क में वाक्य के आरम्भ में ननु का प्रयोग किया जाता है ।

नप्त्यः– (१) नप्तृ शब्द का नप्त्य आदेश, नप्तरि भवः नप्त्यः । नप्तृ + यत् = नप्त्य । 'रीङ्तः ' से रीङ् और 'पस्येति च ' से इ का लोप । अर्थ है– (१) दौहित्र, नाती, पुत्री का पुत्र ।

'शादद्वह्नि दुहितुः नप्त्यं गात्'

ऋ. ३.३१.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.२, १९.४, गौ.ब्रा. २.५.१५, ६.१, नि . ३.४.

अपुत्र पिता जो अपनी कन्या को पुत्रप्राप्ति के लिए विवाह में देता है (वह्निः) यह कहता हुआ (शासत्) विवाह में देता है कि कन्या का पुत्र उसका होगा और वह कन्या के पुत्र को अपनाता है (गात्) ।

नप्तिनप्त्यः – (१) ब.व. । 'सप्त शुन्ध्युवः' 'सूर्य की सात किरणों का विशेषण है । अर्थ है–नहीं गिरने देने वाली । नत्र + पत् + इक् = नप्ति । बहुवचन में 'नप्त्यः' ।

'अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः
सूरो रथस्य नप्त्यः
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः'

ऋ. १.५०.९, अ. १३.२.२४, २०.४७.२१, आ.सं. ५.१३, का.सं. ९.१९, तै.ब्रा. २.४.५.४.

नपात् – (१) अगम्य ।

'यस्ते श्रृंगवृषो नपात्'

ऋ. ८.१७.१३, अ. २०.५.७, साम. २.७७, तै.ब्रा. २.४.५.१.

(२) अनन्तराया प्रजायाः नाम धेयम् (पिता के अनन्तर होने वाला पुत्र और अनन्तर अर्थात् पुत्र का पुत्र नपात् है) । अर्थ है – पौत्र, पोता

(३) न पातयति न पतति अनेन इति यह कुल को गिराता नहीं कुलक्रम की रक्षा करता है । या इसके चलने कुल नहीं गिरता कुलक्रम नहीं टूटता अतः वह नपात् हुआ ।

नञ् + पाति (ण्यन्त) नपात् (४) निर्णततमः नीचैः .नततमः (पुत्र पिता के समक्ष नत रहता है परन्तु पौत्र तो और भी नत या नत तम रहता है। अतः वह नपात् है। इसी से 'तनूनपात् का अर्थ 'आज्य' हुआ। तनू का अर्थ गौ है। दुग्ध गौ का पुत्र है और दुग्ध से बना आज्य गौ का पौत्र है, (५) शाकपूणि ने इसे अग्नि के अर्थ में लिया है। अन्तरिक्ष से आप्, आप् से ओषधि और ओषधि से अग्नि।

(६) स्वामी दयानन्द ने 'नपात्' का अर्थ-राष्ट्र को धर्म से नहीं गिराने वाला किया है। (७) सूर्य। जल से अग्नि और अग्नि से सूर्य है अतः सूर्य जल का पौत्र हुआ।

(८) नहीं पतित होने वाला विद्वान्। -(दया.)

'एहिवां विमुचोनपात्'

ऋ. ६.५५.१

प्रजाओं को अन्धकार से मुक्त करने वाला पूषक या विषयादिकों से विमुक्त विद्वान् (विमुचः) हे सूर्य या हे कभी पतित न हो वाला विद्वान्

नपात - (२) प्रजा तन्तु को न गिरने देने वाला पुत्र

'नपातं च विक्रमणं च विष्णोः'

ऋ. १०.१५.३, अ. १८.१.४५, वाज.सं. १९.५६, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५६.१६, का.सं. २१.१४.

नप्ता- (१) विवाह बन्धन में बांधने वाला, (२) जलों को बांधने वाला बल।

'आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्ती'

ऋ. २.३५.१४

(३) राजप्रबन्ध कर्ता, (४) सर्वप्रबन्धक एवं बन्धु परमेश्वर (५) पैजवन सुदास नामक राजा का विशेषण।

'द्वेनप्तुः देववतः शते गोः'

ऋ. ७.१८.२२

Nuptial का अर्थ विवाह सम्बन्धी।

नप्त्या - द्वि.व. । परस्पर सम्बद्ध पुरुष और प्रकृति।

'मा की रणस्य नप्त्या'

ऋ. ८.२.४२

नप्ति- (१) बन्धन -ग्रन्थि।

'मरुता मुग्रा नप्तिः'

अ. ९.१.३,१०

(२) सम्बद्ध शास्य और शासक जन।

'वयांसि नप्त्यो हितः'

ऋ. ९.९.१, साम. १.४७६,२.२८५.

नप्ती- (१) कभी नष्ट न होने देने वाली शक्ति।

'सूरो रथस्य नप्त्यः'

ऋ. १.५०.९, अ. १३.२.४, अ. २०.४७.२१, आ.सं. ५.१३, का.सं. ९.१९,तै.ब्रा. २.४.५.४.

नभ् - (१) टूटना।

'नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधिधन्वसु'

ऋ. १०.१३३.१-३,४-६,अ.२०.९५.२-४, साम. २.११५१-११५३, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४, १८९.९, तै.ब्रा. २.५.८.२.

(२) बांधना, (३) नाशकरना (४) हिंसक।

'स हो नभोऽविराणाय पूर्वी'

ऋ. १.१७४.८

पहले की शत्रु सेनाओं को विशेष युद्धादि के न करने के लिए (अविरणाय) पराजित कर।

नभनूः- (१) आकाश से आने वाली या किनारों (तटों) को तोड़ने वाली नदी, (२) शत्रुओं को मारने वाली सेना, (३) पुरुष को प्रेम में बांधने वाली।

'प्राग्रुवो नभन्वो न वक्वाः'

ऋ. ४.१९.७

नभन्ताम्- (१) नभ् हिंसा एवं अभाव अर्थ में प्रयुक्त है। लोट् प्र. पु. ब.व. का रूप है। अर्थ है- नष्टाः भवन्तु, हिंसिताः भवन्तु (नष्ट हो जाय)। (२) टूट जाय।

'नभन्तामन्यके समे'

ऋ. ८.३९.१-४०.११,४१,१-१०,४२.४-६, तै.सं. ३.२.११.३, नि. ५.२३,१०.५.

(और सभी शत्रु नष्ट हो जायँ)।

'नभन्तामन्य केषां ज्याका अधिधन्वसु। शत्रुओं के (अन्यकेषाम्) धनुषों पर चढ़ाई मौर्वी (अधिधन्वसु ज्याका) टूट जाय (नभन्ताम्)।

नभन्य- (१) पृथिवी या अन्तरिक्ष में हुआ। (दया.) (२) आकाश में व्याप्त वायु (३) अन्तरिक्ष स्थ मेघ, (४) द्युति करने योग्य प्रभु, (५) सम्बन्ध योग्य पुरुष।

'प्र क्रन्दनु र्नभन्यस्य वेतु'

ऋ. ७.४२.१

(६) न + भन्यः = नहन्यः किसी से भी परास्त

न होने वाला (७) किसी से भी न हनन करने योग्य ।

नभन्यं साम- (१) अज्ञान का नाश करने वाला, (२) अविनाशी ईश्वर की स्तुति करने वाला, (३) सूर्य के समान परमेश्वर से सम्बद्ध, (४) उत्त स्वर से आकाश भर में गूंजने वाला सामगाना ।

'गायत् सामनभन्यं यथा वेः'

ऋ. १.१७३.१, ऐ.ब्रा. ५.२०.१२, कौ.ब्रा. २४.५, २६.१६.

नभनु- (१) गर्जती जल धारा, (२) वज्र, (३) सेनापति का आज्ञा वचन ।

'प्रपर्वतस्य नभनूं रचुच्यवुः'

ऋ. ५.५९.७

नभस्- (१) चमकता अन्धकार, (२) आकाश प्रदेश ।

'द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः'

ऋ. २.४.६

(३) श्रावण मास ।

'उपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वा'

वाज.स. ७.३०

(४) आदित्य । आदित्य 'रसानां नेता आदत्ता (रसों का खींचने वाला है ।) अथवा 'भासां नेता' (सभी दिशाओं में प्रकाश पहुंचाने वाला है । अथवा 'ज्योतिषां प्रणयः (प्रकाशों का प्रणय है) (५) अथवा- भासन् से भन् (जो प्रकाशममय हो) हुआ और भन् का नभ हुआ । भा का भ और स् का लोप ।

अथवा-'न न भाति' (नहीं प्रकाश करता है यह बात नहीं है प्रकाश करने वाला ।

आधुनिक अर्थ- (१) आकाश, (२) वातावरण, (३) मेघ, (४)' ओष, तुषार, वाष्प, (५) आयु, (६) वर्षा या वर्षाऋतु (७) नाक, गन्ध, (८) श्रावण मास (९) कमल की जड़ के रेशे, (१०) थूक फेंकने का बर्तन ।

नमस्वन्- (१) परस्पर विनयशील, (२) अन्न का लाभ करने वाला कृषक जन, (२) विनयी ।

'नमस्वन्त इदु पवाकमीयुः'

ऋ. १.१६४.८

नभोजू- (१) वायु में वेग देने वाली, (२) आकाश में प्रेरणा देने वाला परमेश्वर ।

'नभोजुवो यन्निरवस्य राधः
प्रशस्तये महिना रथवते'

ऋ. १.१२२.११

क्योंकि वायु में वेग देने वाले आकाश में प्रेरणा देने वाले (नभोजुवः) निःशेष समस्त कारणों और रक्षण-सामर्थ्य वाले परमेश्वर की (निरवस्य) आराधना या उसके द्वारा दिया ऐश्वर्य (राधः) महान् सामर्थ्य से (महिना) रमणसाधनरूप देह को धारण करने वाले आत्मा के (रथवते) उत्तम प्रशासन या ज्ञान प्राप्ति के लिये होता है (प्रशस्तये) ।

नमयिष्णु- (१) झुकाने में समर्थ ।

'स्थिर चित् नभ यिष्णवः'

ऋ. ८.२०.१

नभाक - नभ् बांधना और नाश करना अर्थमें आया है । अर्थ - (१) प्रबन्ध कर्ता, , (२) शत्रु नाशक

नभाकवत् - नभाक + वतुप्= नभाकवत् । उत्तम प्रबन्ध कर्त्ता के सहित

'अभ्यर्च नभाकवत् इन्द्राग्नी यजसा गिरा'

ऋ. ८.४०.४

नभोजाः- (१) नभ में उत्पन्न, (२) आकाशवत् महान् प्रभु के बीच में उत्पन्न ब्रह्मज्ञ पुरुष

'नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि'

ऋ. १०.१२३.२

नभोरूपः- आकाश के समान वर्षा वाले हलके नीले रंग का ।

'नभो रूपाः पार्जन्याः'

वाज.सं. २४.३,६, मै.सं. ३.१३.४, १६९.६, ३.१३.७, १७०.२.

नमः- (१) आदरभाव, (२) वज्र, (३) सदुपयोग ।

'नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यः'

अ। ६.१३.३

(४) नवाने का उपाय (५) नमस्कार योग्य (६) ब्रह्म ।

'नम इदुग्रं नमआविवासे'

ऋ. ६.५१.८,

(७) अन्न, (८) दमन (९) नियम व्यवस्था ।

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो
ये केच पृथिवीमनु

वाज.सं. १३.६, तै.सं. ४.२.८.३, मै.सं. २.७.१५,९७.१, का.सं. १६.१५,श.ब्रा. ७.४.१.२८,

(१०) नमाने का साधन चाबुक आदि ।
'अश्वं न वाजिनं हिषेनमोभिः '
ऋ. ७.७.१
वज्र के अर्थ में-
'नमो अस्त्वरातये '
अ. ५.७.१,३.
(११) बलवीर्य ।
'नमो गन्धर्वस्य मनसे '
अ. १४.२.३५
(११) नम् + असुन् = नमस् । भक्तिभाव नमस्कार । प्रणामार्थक अव्यय ।
'पदं देवस्य नमसाव्यन्तः '
ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६,२०६.११, का.सं. १८.२०.तै.ब्रा. ३. ६.१०.२, नि. ४.१९.
अग्नि देव के पद को भक्तिभाव से देखते हुए....
अन्न के अर्थ में प्रयोगः-
एना वो अग्नि नमसा ऊर्जानपातमाहुवे ।
हे ऋत्विक यजमानो, इस अन्न से (एनां नमसा) आप लोगों के अन्न के नप्ता (ऊर्जा नपात्) अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ (आहुवे) । हे प्रजाजनो हमारे लिये (वः) इस अन्नादि से सत्कार पूर्वक बल का नाश न करने वाले (ऊर्जा नपात्) तेजस्वी उपदेशक को स्वीकार करता हूँ (अग्निम् आहुवे) ।
स्तुति अर्थ में-
'यत्रा चक्रु रमृता गातु मस्मै
श्येनो न दीयन् अदिति पाथः
प्रति वां सूर उदिते विधेम
नमोभि र्मित्रा वरुणो न हव्यैः '
ऋ. ७.६३.५
प्रथमार्द्ध का देवता सूर्य, द्वितीयार्द्ध का इन्द्रा वरुण । जिस अन्तरिक्ष में अमरधर्मा पूर्वकालीन देवों ने (अमृताः) इस सूर्य के लिए मार्ग बनाया (गातुं चक्रु) वह अन्तरिक्ष (पाथः) उस सूर्य को मार्ग देने के लिये शीघ्र उनका अनुगमन करता बाजपक्षी के समान चलता है (श्येनः न दीयन्) प्रन्वेति), अनुगमन करता है । हे मित्रा वरुणो, सूर्य के उदित होने पर (सूरे उदिते) या प्रातः सवन के समय तुम दोनों को (वाम्) स्तुतियों एवं हवियों से (नमोभिः उत हव्यैः) हम परिचर्या करें (प्रतिविधेम) ।
अन्य अर्थ - जब सूर्य की रश्मियां इन मनुष्यों के लिये गमन करती हैं और जब सूर्य श्येन की तरह बड़े वेग से गति करता हुआ अन्तरिक्ष में प्राप्त होता है तब सूर्योदय होने पर हे अध्यापक और उपदेशक (मित्रा वरुण) हम आप दोनों का नमस्कार से या उत्तम पदार्थों से सत्कार करते हैं ।

नम उक्तिः- (१) नमस्कार वचन, सत्कार सहित उत्तम गणस्तुति ।
'भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम '
१.१८९.१, वाज.सं. ५.३६,७, ४३ ४०.१६. तै.सं. १.१.१४.३, ४.४३.१, मै.सं. १.२.१३, २२.७. का.सं. ३.१,६.१०, श.ब्रा. ३.६.३.११, ४.३ .४.१२, तै.ब्रा. २.८.२.३, तै.आ. १.८.८.

नमस्यः- नमस् + यत् । नमस्कार करने योग्य ।
'पत्नी वन्तोनमस्य नमस्यन '
ऋ. १.७२.५
गृहपत्नियों से युक्त गृहस्थ नमस्करणीय पुरुष को नमस्कार करे (नमस्यन्) ।

नमस्यन्- (१) अन्न-प्राशन करता हुआ ।
'नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम '
अ. १.१२.२
(२) प्रार्थना करता हुआ ।
(३) नमस्यन्तु (नमस्कार करें) ।

नमसानः- नमस्कार पूर्वक पूजा करता हुआ ।
'यशस्विनं नमसाना विधेम '
अ. ६.३९.२

नमस्युः- (१) नमस्कार करने वाला भक्त, विद्यार्थी ।
'स इत् वने नमस्युभिर्वचस्यते '
ऋ. १.५५.४

नमस्वान् - (१) ज्ञानवान् पुरुष, (२) अन्न वाले पुरुष,
'नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः '
ऋ. १.१६४.८, अ. ९.९.८.

नमस्विन् - (१) नमस् + विनि = (नमस्वी) नमस्विन् । नमः प्रशस्तो वज्रः विद्यते यस्य सः (जिसे प्रशस्त वज्र हो वह नमस्वी है) ।
(२) नतमस्तक करने वाला ।
'तं घेमित्था नमस्विनः
उप स्वराजमासते '

ऋ. १.३६.७, ८.६९, १७.अ. २०.९२.१४, ऐ.ब्रा. १.२२.८, आश्व. श्रौ.सू. ४.७.४.
(३) उपासक
(४) नमस्कार करने वाला
'नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनम्'
ऋ. १.१६६.२

नम्या- (१) रात्रि । नि. १.१७. (२) शत्रु को दबा देने में समर्थ या विनय से झुकने वाला नमी है । तृतीय ए.व. में 'नम्या' है ।
'नम्या यदिन्द्र सख्या परावति
निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम्'
ऋ. १.५३.७, अ. २०.२१.७.
तू जिस कारण शत्रु को दबा लेने में समर्थ एवं तेरे समक्ष विनय से झुकने वाले मित्र से मिलकर (नम्या सख्या) कभी जीता न छोड़ने योग्य (नमुचिम्) सबसे प्रसिद्ध और प्रबलतम (नाम) मायावी शत्रु को (मायिनम्) दूर देश में ही (परावति) विनाश करता है (निबर्हयः) अथवा, रात्रि काल में माया करने वाली को मित्र ही सहायता से ....।

नमी- (१) विनयशील ।
'प्रमेनमी साप्य इषे भुजेभूत्'
ऋ. १०.४८.९
(२) शत्रु को दबा देने में समर्थ ।
'नम्या यदिन्द्र सख्या परावति'
ऋ. १.५३.७, अ. २०.२१.७
(३) आगे झुकने वाला (४) नम्र होकर रहने वाला ।
'प्रावन् नमीं साप्यं ससन्तम्'
ऋ. ६.२०.६

नमुचि - (१) अधर्म को न त्यागने योग्य, (२) जिसे दण्ड दिए बिना कभी न छोड़ा जाय, (३) एक दैत्य ।
'यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्राम्'
ऋ. २.१४.५
(४) न छोड़ने योग्य शत्रु ।
'अपां फेनेन नमुचेः
शिर इन्द्रो दवर्तयः'
ऋ. ८.१४.१३. अ. २०.२९.३, साम. १.२.११, वाज.सं. १९.७१, श.ब्रा. १२.७.३.४.
'निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम्'
ऋ. १.५३.७, अ. २०.२१.७.
(५) न विद्यते मुचिः मोक्षणं यस्य सः (कभी जीता न छोड़ने योग्य अवश्य वध करने योग्य) ।
(६) अपना संग न छोड़ने वाला ।
'अत्रा दासस्य नमुचेः शिरोयत्'
ऋ. ५.३०.७
(७) कर आदि न देने वाला (८) दुर्भिक्ष कालिक मेघ के समान प्रजा के निमित्त कुछ भी सुख और राष्ट्र भोग को प्रदान न करने वाला ।
'यमश्विना नमुचेरासुरादधि'
वाज.सं. १९.३४, मै.सं. ३.११.७,१५१.१, का.सं. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.३, तै.ब्रा. २.६.३.१, शां.श्रौ.सू. १५.१५.१३.

नमुरः- नहीं मरने वाला अमर ।
'भूयान् इन्द्रो न मुरात्'
अ. १३.४ (५) ४६

नमोवाक - नमः वचन करने योग्य ईश्वर प्रार्थना, स्तुति, ब्रह्मयज्ञ ।
'नमोवाके वषट्कारो ऽनुसंहितः'
अ। १३.४ (३) २६

नमोयुजानः- अन्न , ऐश्वर्य पद या सर्ववशकारी बल को अपने में धारण करने वाला परमेश्वर या अग्नि, ।
'नमो युजानं नमो वहन्तम्'
ऋ. १.६५.१

नमोवहन् - सबके पोषक अन्न और सबके भक्तिभाव को स्वीकार करता हुआ परमेश्वर या अग्नि ।

नमोवृक्ति- (१) नमनकारी दण्ड व्यवस्था (२) शासन व्यवस्था को भंग करने का अपराध, (३) नमस्य या पूजा में विच्छेद करना ।
'नमसः वृक्तिः नमो वृक्तिः
ये बर्हिषो नमो वृक्ति न जग्मुः'
ऋ. १०.१३१.२, अ. २०.१२५.२, वाज.सं. १०.३२,१९.६,२३.३८. तै.सं. १.८.२१.१,५.२.११.२, का.सं. १२.९,१४.३,३७. १८.मै.सं. १.११. ४,१६६.४, श.ब्रा. ५.५.४.२४, तै.ब्रा. २.६.१.३.

न्ययन - (१) नि + अयन । जल के लिए नीचे

आने का स्थान ।
'अपामिदं न्ययनम्'
ऋ. १०.१४२.७, अ. ६.१०६.२, वाज.सं. १७.७, तै.सं. ४.६.१.३, मै.सं. २.१०.१, १३१.१२. का.सं. १७.१७, श.ब्रा. ९.१.२.२८, आश्व.श्रौ.सू. २.१२.२, आप.श्रौ.सू. १७.१३.४, मा.श्रौ.सू. ६. २.४.
(२) आश्रय स्थान पृथिवी, (३) गृहस्थाश्रम

नयमानः अश्वः– सवार ले जाता हुआ अश्व ।
'क्रन्दत् अश्वो नयमानो रुदद्गौः'
ऋ. १.१७३.३

नर, नरा– (१) मनुष्य । नृत् (नर्तन करना) + अच् = नर (त का लोप) । नृत्यन्ति कर्मसु गात्राणि इतस्ततः विक्षिपन्ति (कर्मों को करने में अंगों को इधर उधर संचालित करता है) (२) नयति नरति वा नरः । नृ + अच् = नर, नेता, (३) अश्व (३) अश्वनी द्वय का विशेषण होने पर 'नरा' शब्द आया है । सांसारिक कार्यों को चलाने वाले द्यौ और पृथिवी भी नरा है । नर अश्व का वाचक है । अतः अश्वनी कुमारों को नरा कहा गया ।

नरक – (१) न्यरकम् –नीचैः गमनम् (नीचे की ओर जाना अधः पतन (२) नीचैः अस्मिन् अर्यते (नीचों के द्वारा इसमें अर्थात् नरक में जाया जाता है) । नि + ऋ (गत्यर्थक) + वुन् (अधिकरण में) = नरक (निका पृषोदरादिवत् न और ऋ का अर्) शकन्धु आदि शब्दों के समान पर रूप । नि का अर्थ नीचैः है । इसका लोप न होने पर न्यरक होता है । अर्थ है – नरक ।
'ते जिह्नायन्त्यो नरके पताम'
नहीं तो पति तो कपट का आचारण करती हुई हम नरक में गिर जायंगी ।

नरन्धिषः– (१) मनुष्यों का पालन पोषण करने वाला (२) प्रजापालक राजा ।
'पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२०, तै.सं. ७.३.१५.१, मै.सं. ३.१२.५, १६२.४, श.ब्रा. १३.१.८.६, तै.ब्रा. ३.८.११.२, तै.आ. ४.१६.१.

न्यर्थ– नि + अर्थ । निकृष्ट अर्थ , (२) नीचगति ।
'न भोजामम्रुर्न न्यर्थमीयुः'
ऋ. १०.१०७.८
(३) निश्चित प्रयोजन ।
'पात्राभिन्दाना न्यर्थान्यायन्'
ऋ. ६.२७.६
(४) निश्चितलक्ष्य ।
'ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णी'
ऋ. ७.१८.९

न्यर्पयतम् – 'नि + अर्प ' के लोट् म.पु. द्विवचन का रूप । नीचे रख दो नीचे दबाओ ।
'न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधम्'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.

नर्म– (१) कोमल वचनों का प्रयोग करना 'नर्म' है ।
'नर्माय रेभम्'
वाज.सं. ३०.६
(२) मनुष्योपयोगी ।
'अस्मान् त्रायस्व नर्माणि जाता'
अ. १९.४९.३

न्यर्बुद– दस अरब ।
'अर्बुदञ्च न्यर्बुदञ्च'
वाज.सं. १७.२,तै.सं. ४.४.११.३, मै.सं. २.८.१४,११८.१५,का.सं . १७.१०

न्युर्बुदिः– (१) दस लक्ष सेनाओं का अधिकारी ।
'ईशानश्च न्यर्बुदिः'
अ। ११.९.४

नरा – द्वि. व. । (१) नर नारी का वाचक (२) अश्विद्वय का वाचक ।
'तद्वां नरा नासत्या वनुष्यात्'
ऋ. १.१८२.८.

नरावृषा– (१) सब नायक वायुओं में जलों की बरसाने वाला सूर्य, (२) सब नायकों और पुरुषों में श्रेष्ठ राजा, (३) देह के नायक प्राणों में श्रेष्ठ जीव ।
'स यो वृषा नरां न रोदस्योः'
ऋ. १.१४९.२

नराशंस– (१) प्रजाओं के नेतापुरुष का गुण ।
'नराशंस स्तविष्यते'
अ. २०.१२७.१, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१०, शां श्रौ. सू. १२.१४.१.१.
(२) नराः अस्मिन् आसीनाः शंसन्ति (यज्ञ में आसीन पुरुष स्तुति करते हैं) । नर + आसीन + शंस् + घञ् = नराशंस (सीन का लोप) अर्थ

है यज्ञ, यह काथक्य मुनि का मत है । (३) शाक पूणि ने इसका अर्थ अग्नि किया है । अग्नि नरों से प्रसंश्य होता है (नरैः प्रशंस्यो भवति)

'नरा शंसस्य महिमान मेषाम्
उपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः '

ऋ. ७.२.२, वाज.सं. २९.२,७, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१२, का.सं. ३७.४, तै.ब्रा. ३.६.३.१,नि.८.७. उन देवताओं में (एषाम्) हवि या स्तोत्रों से (यज्ञैः) यजनीय अग्नि का (यजतस्य नराशंसस्य) महत्व (महिमानम्) हम निकट जाकर गाते हैं (उपस्तोषाम) या अग्नि की ही महिमा अधिक समझते हैं । (२) प्रजा और वाणी- ऐ.ब्रा. । प्रजा वै वरोवाक् । शंसः प्रजां चैव तत् वाचं च प्रीणाति प्रजां च वाचं च यजमाने दधाति' (३) जिससे नरों की प्रशंसा की जाती है । वह नराशंस है । (४) समस्त मनुष्यों की प्रशंसा और स्तुति करने योग्य परमेश्वर ।

'नराशंस सुधृष्टमपश्यं सुप्रथमस्तमम् '

नर्या - द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी या मातापिता का विशेषण ।

'उभा शंसा नर्या मामविष्ठाम् '

ऋ. १.१८५.९

नर्यापस् - (१) समस्त मनुष्यों के हितकारी कर्म या व्यापार करने वाला -परमेश्वर ।

'वृषभं नर्यापसम् '

ऋ. ८.९३.१, अ. २०.७.१, साम. १.१२५, २.८००, वाज..सं. २८.४, मै.सं. ३.११.२, १४२. ११, तै.ब्रा. २.६.७.२,

कर्म करने वाला ।

'ऋषभं नर्यापसम '

वाज.सं. २१.३८

'होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम् '

वाज.सं. २८.४.तै.सं. २.६.७.२.

नरिष्टा- (१) अहिंसिता, (२) कभी न दबने वाला सभा ।

'विद्म ते समे नाम
नारिष्टा नाम वा असि '

अ. ७.१२.२.

(३) स्वच्छन्द चेष्टा ।

'हसो नरिष्टा नृत्तानि '

अ. ११.८.२४

(४) नेता के पद पर स्थिति की प्राप्ति ।

'नरिष्ठायै भीमत्वम् '

वाज.सं. ३०.६, तै.ब्रा. ३.४.१.२.

नर्मिणी- (१) क्रीड़ी विलासाः विद्यन्ते येषां तेषाम् इयम् -दया. (क्रीड़ा विलास वाली) (२) नाना विलास योग्य सुखों से सम्पन्न पुरुषों की नारी (३) नाना विलासों से भरी पूरी नगरी ।

'आ यः पुरं नार्मिणी मदीदेत्
अत्यः कविः नभन्यो नार्वा '

ऋ. १.१४९.३, साम. २.११२४.

जिस प्रकार अश्व नाना विलास योग्य सुखों सम्पन्न पुरुषों की नगरी को सुशोभित करता है उसी प्रकार जो सर्वत्र जाने वाला (अत्यः) व्यापक अधिकार वान् क्रान्तदर्शी आकाश में व्यापक वायु के समान (नभन्यः न) बलवान् वेगवान् और किसी से भी परास्त या हत न होने वाला :...।

नलदः- खस ।

'कष्ठस्य नलदस्य च '

अ. ६.१०२.३

नलदी- (१) नलदी, मासी या जटा मासी, गंधमासी- विष, भूत, दाह और ज्वर के तथा पकड़ी आदि के नाशक है , (२) कान ।

'गुल्गुलूः पीला नलदी '

अ. ४.३७.३

नव- (१) स्तुति योग्य ।

'वैयश्व दशमं नवम् '

ऋ. ८.२४.२३, अ. २०.६६.२

(२) सद्य एव कुतश्चित् आ नीतं भवति (जोतत्क्षण ही कहीं से आनीत हो) ।

(३) णु (स्तुति अर्थ में) + अच् = नव नूयते स्तूयते (जिसकी स्तुति की जाय । नई चीज स्तुत्य होती है ।

(४) न वननीयः नवः (जो सेवनीय नहीं हो । नञ् + वन् + क्विप् = नवन् ।

नवकोशाः- (१) आत्मा के नवकोश जो उसका स्तम्भान करते हैं ।

'तस्येमे नवकोशाः '

अ. १३.४ (१) १०

नवग्वन्- नव + गम् + ड्व = नवग्व । अर्थ है .
(१) नवनीत गति वाला, कोमल गति वाला ।
'स्वरेण अद्रिं स्वर्योनवग्वैः '
ऋ. १.६२.४
ताप और प्रकाश देने वाला सूर्य नए कोमल ताप से प्रवेश करने वाली किरणों से मेघ को....
(२) नवगतिः अभिनवगमन युक्तः, सदा नूतनवत् प्रीति जनकः (नई गति वाला, नूतन होने से सदा प्रीतिजनक) । (३) नवनीतगतिः (मक्खन की तरह शुभ करने वाला) (४) नवनीतं प्रति यस्यमनसः गतिः इदं मम इति-जिस के मन की गति सदा नवनीत के प्रति हो कि यह मेरा ही है, (५) नव मासों में सत्र करने वाला- (६) स्तुत्य गति वाला -उव्वट (७) नवीन नवीन गति वाला -महीधर । नक्षद्दाम' (८) नवशिक्षित, (९) नई भूमि को प्राप्त (१०) नई चाल, युद्धगति या शिक्षा को सीखने वाला (११) नव स्तुतिवाणियों का उच्चारण करने वाला
'तमुनः पूर्वेपितरः नवग्वाः '
ऋ. ६.२२.२, अ. २०.३६.२
'अयात यन्त क्षितयोनवग्वाः '
ऋ. १.३३,६
जब नवशिक्षित, नई भूमि को प्राप्त या युद्ध गति या युद्ध शिक्षा को सीखने वाले (नवग्वाः) मनुष्य प्रमाण करते हैं (१२) नवागत ।
'तामन्वर्तिष्ये सखिभिः नवग्वैः '
अ. १४.१.५६

नवग्वाः - (१) प्रशस्त कर्मा या मक्खन की तरह शुभ कर्म करने वाले पितर या गृहस्थाश्रमी ।
'अयास्यो अंगिरसो नवग्वाः '
ऋ. १०.१०८.८
'अंगिरसो नः पितरो नवग्वाः
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः '
ऋ. १०.१४.६, अ. १८.१.५८, वाज.सं. १९.५०, तै.सं. २.६.१२.६, नि. ११.१९.
हमारे प्राणप्रिय ब्रह्मचारी, शुभ कर्म करने वाले पितर, स्थिरमति वानप्रस्थी तथा योगैश्वर्य सम्पादक तपस्वी संन्यासी (२) देर में नव मार्गों से गति करने वाले प्राणिगण (३) नूतन के समान प्रीतिजनक या नई नई गति वाले - (४) नवीन नवीन वाणी उत्तमोत्तम ज्ञानोपदेश या नवों प्राणों को वश में करने वाला
' ये अत्रयो अंगिरसो नवग्वाः '
अ. १८.३.२०

नवःचरुः- स्तुतियोग्य आचरण ।
'असिं सूनां नवं चरुम् '
ऋ. १०.८६.१८, अ. २०.१२६.१८

नवः ज्वारः- (१) नया सन्ताप, पीड़ा या थकान ।
'न नवज्वारो अध्वने '
ऋ. १.४२.८
हमारे जीवनमार्ग में कोई नया संताप न हो ।

नवजाः- (१) नव उत्पन्न बालक, (२) उदय होता हुआ सूर्य ।
'उदुस्वरुः नवजा नाक्रः '
ऋ. ४.६.३

नवगत्- (१) नवागता, नवोढा, नवविवाहिता ।
'वधूर्जिगाय नवगत् जनित्री '
अ. ३.१०.४, ८.९.११.
(२) नव रूप को धारण करने वाली नव वधू

नवति- (१) नब्बे की संख्या ।
'आशीत्या नवत्या याहि '
ऋ. २.१८.६

नवतिर्नव- (१) नौ नब्बे अर्थात् ९x९०= ८x१० (२) ज्ञान के आवरणकारी विघ्न
'जघान नवतीर्नव '
ऋ. १.८४.१३, अ. २०.४१.१, साम. १.१७९, २.२६३, मै.सं. २.१३.६, १५४.१०, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.१.
आत्मा की शक्ति प्राकृतिक तीन गुणों के भेद से तीन प्रकार की त्रिकालभेद से नौ प्रकार की, प्रभाव, मन्त्र और उत्साह इन तीन शक्ति भेद से २७ प्रकार की । सत्त्व, रज, तम, इन तीनों के समविषय भेद से ८१ प्रकार की, और दस दिशा भेद से ८१० प्रकार की हो जाती है । इतनी शक्तियों से आत्मा इतनी ही व्युत्थान वृत्तियों को नाश करता है ।

नवतिनव्या- (१) नाव से खेने योग्य नब्बे नदियां, (२) नब्बे वर्ष ।
'विते वज्रासो अस्थिरन्
नवतिं नाव्या अनु '
ऋ. १.८०.८

हे ऐश्वर्यवन् इन्द्र, तेरे शस्त्र अस्त्रबल नावों से खेए जाने वाली ९० नदियों को भी अपने शासन में रखने में समर्थ हो ।

नवतिःपुरः– (१) नब्बे पुर, इन्द्रिय भेद से १०, सत्त्व, रजस, तमस् भेद से ३० और अन्न मय, प्राणमय और मनोमय भेद से तीनों कोशों से ९० पुर हुए । एकादश इन्द्रियां और मान कर ९९ पुर कहे जाते हैं ।

'इन्द्राग्नी नवतिं पुरः
दासपत्नीरधूनुतम्'

ऋ. ३.१२.६, साम. २.९२६,१०५४, तै.सं. १.१.१४.१, मै.सं. ४.१०. ५,१५५.९, का.सं. ४.१५.

नवद्वारं पुण्डरीकम् – (१) नव द्वारों वाला कमल के समान यह शरीर ।

'पुण्डरीकं नवद्वारम्
त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्'

अ. १०.८.४३

नवद्वारा – नवद्वारों से युक्त यह शरीर रूपी पुरी

'अष्टा चक्रा नवद्वारा'

अ. १०.२.३१, तै.आ. १.२.७.२.

नवन् – (१) न वननीया (जिसका विभाग न हो सके) । नौ अंक अयुग्म है अतः इसका विभाग नहीं हो सकता । न + वन् + क्विप् = नवन् (२) नावाप्ता = न + अवाप्ता (रिक्ता होने से नवमी तिथि शुभ कर्मियों द्वारा नहीं प्राप्त की जाती) । नवमी के दिन कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता अतः यह अंक नवन् है (३) नव का अर्थ नवजात भी है ।

नवनवतिः– (१) निन्यानबे संख्या, (२) निन्यानबे वर्ष, (३) ९०x९ = ८१० प्रकृतिस्थ विकार (४) ८१० शत्रुसैन्य । शत्रु, मित्र उदासीन भेद से तीन, उनके मित्र और मित्रों के मित्र का प्रत्येक के तीन भेद होकर ९. उत्तम, मध्यम और अधम भेद से प्रत्येक के २७ भेद हुए । पुनः प्रत्येक के प्रभाव, उत्साह और मन्त्र भेद से ८१ और दस दिशा भेद से ८१०

'जघान नवतीः नव'

ऋ. १.८४.१३

नवनवतिः पुरः– निन्नयानबे देह के बन्धन ।

'नव यो नवतिं पुरः'

ऋ. ८.९३.२, अ. २०.७.२, साम. २.८०.१.

नवपदी – (१) अवान्तर दिशाओं में व्याप्त तथा प्रकृतिके आठ रूप – भूमि, आप, अनल, वायु, ख, बुद्धि, मन और अहंकार में पुरुष या जीवात्मा को जोड़कर नवरूपों में अभिव्यक्त ब्रह्म शक्ति (२) सात विभक्तियां, सम्बोधन और अव्यय भेद से नवपदी वाणी तथा नाभिभेद, कण्ठतालु आदि से उच्चरित वाणी ।

'अष्टापदी नवपदी बभूवुषी'

ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, १३.१.४२, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै. आ.१.९.४, नि. ११.४०.

'अपरेयमितस्त्वन्यां
प्रकृतिं विद्धि मे पराम्
जीवभूतां महाबाहो
ययेदं धार्यते जगत्'

गीता. ७.५

(३) नवपौरों या अधिष्ठानों से युक्त, (४) माध्यमिका वाक् गौरी का विशेषण । उसे एक पदी, द्विपदी, चतुष्पदी अष्टापदी और नवः पदी कहा गया है। माध्यमिका वाक जल बरसाती है । जब चारों दिशाओं चार अवानर दिशां तथा ऊपर की दिशा या सूर्य से एकात्म होकर जल बरसाती है । तो नवपदी कहलाती है,

'अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'

ऋ. १.१६४.४१, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ.१.९.४, नि. ११.४०.

नवप्राणाः– (१)नव प्राण –मुख से ऊपर कान, आंख, नाक, मुख से नाभितक मुख, जीभ और हाथ तथा नाभि से चरण या गुदा तक लिंग, गुदा और चरण ।

'नवप्राणान् नवभिः संभिमीते'

अ. ५.२८.१

नवभूमीः– नव भूमियां ।

'नवभूमीः समुद्राः'

अ. ११.७.१४

नवमान– (१) मान करने योग्य ।

'आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'

ऋ. १.१९०.१

(२) बहुमान्य, स्तुत्य ।

'गाथान्यः सुरुचो यस्यदेवाः
आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'

ऋ. १.१९०.१
जिस वैदिक ज्ञान के प्रदाता तेजस्वी एवं बहुमान्य विद्वान् के उपदेशों को दाता गृहस्थ सदा सुनते हैं । -(दया.)
जिस स्तुत्य बृहस्पति की स्तुतियां देवता और मनुष्य सुनाते हैं ।

नव्यम्- नव + यत् = नव्य । व के अ का 'यस्येतिच' से लोप । अर्थ है-स्तुत्य ।
'बृहस्पतिं वर्द्धया नव्यमर्कैः'
ऋ. १.१९०.१, नि. ६.२३.
स्तुत्य बृहस्पति या वेदज्ञ विद्वान् को स्तुतियों या अन्नों से (अर्कैः) बढ़ा ।
पुनः,
'तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः'
ऋ. १.६१.१३, अ. २०.३५.१३.

नवरत्नी- नवहाथ ।
'नवरत्नी रप मया अस्माकं ततः परि'
अ. १९.५७.५

नववास्त्व- (१) नवीन गृह या वस्त्र ।
'परानव वास्त्व मनुदेयम्
महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम्'
ऋ. ६.२०.११
(२) नवगृह में प्रवेश करने वाला ।
'अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथम्'
ऋ. १०.४९.६

नववृष- नवप्राणों से युक्त आत्मा ।
'यदि नववृषोऽसिसृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.९

नवसृक्ति- नव + सृज् + क्तिन् । अर्थ- (१) नौप्रकार की रचना वाली, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त , छन्द, ज्योतिष धर्मशास्त्र और मीमांसा ये नौ रचनाएं है ।
'नवसृक्ति मृतस्पृशम्'
ऋ. ८.७६.१२, अ. २०.४२.१, साम. २.३४०, ऐ.आ. २.३.६.४,५.
(२) स्तुत्य रचनावाली वाणी ।

नव्यस्- नवीन ।
'मक्षू सुम्नाय नव्यसे'
ऋ. ८.२७.१०
(नए सुख के लिए)

नव्यसी- नई । 'इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा' हे अग्नि, यह तेरी नई स्तुति है ।
अथवा, हे वनस्थ, यह वाण प्रस्थाश्रम सम्बन्धी तेरी नई इच्छा है । (२) नवीना (माता) (३) आनेवाली ।

नववास्तु- (१) अरण्य में निर्मित नया घर जिसे हो- डाकू (२) नया मकान या गृह बनवाने वाला, (३) नया भवन बनाने में कुशल ।
'अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथम्'
ऋ. १.३६.१८

नवा - नई ।
'कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके'
ऋ. ४.३२.२३, नि. ४.१५.
नई कन्याओं की तरह ।

नवाक्षर- (१) मुख्य प्राण के नव द्वारों में स्थित अक्षय सामर्थ्य (२) राजा के नौ प्रकार के अक्षय कोष ।
'मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतं स्तोममुदजयत्'
वाज.सं. ९.३३, तै.सं. १.७.११.१

नव्यान्- नवीन
'सनिं गायत्रं नव्यांसम्'
ऋ. १.२७.४, साम. १.२८,२.८४७, मै.सं. ४.९.११,१३२.११,तै.आ. ४.११.८ .
समस्त सुख प्रदान करने वाले उपदेश करने और गान करने वाले सदा नये नये ज्ञान को ।

नविष्ठ- (१) अतिस्तुत्य, (२) सदा नवीन, (३) अति रमणीय ।
'तं मे जगृभ्र आशसोनविष्ठम्'
ऋ. ५.३२.११
(४) अतिनूतन ।
'अस्तोषत स्वभानवो
विप्रा नविष्ठया मती'
ऋ. १.८२.२, साम. १.४१५, वाज.सं.३.५१, तै.सं. १.८.५.२, मै.सं. १.१०.३, १४३.१३, का.सं. ९.६, श.ब्रा. २.६.१.३८.
अपने तेज से चमकने वाले सूर्य आदि के समान तेजस्वी होकर मेधावी ज्ञानी पुरुष नयी से नयी वुद्धि से युक्त होकर ईश्वर की स्तुति करे ।

नविष्टि- (१) आरम्भ, ।
'वज्रिन्नपसो नविष्टौ'
ऋ. ८.२.१७, अ. २०.१८.२, साम. २.७०
(२) उत्तम से उत्तम पूजा का अवसर ।

नग्नः– (१) नग्नाः स्त्री यस्य सः स्त्री आदि से रहित ब्रह्म चारी, (२) वेदवाणी को त्याग न करने वाला विद्वान् (३) भक्तजन ।
'ऊधर्न नग्ना जरन्ते'
ऋ. ८.२.१२

नवीनोत्– उत्तम उपदेश ध्वनित होता है ।
'दिवो न यस्य विधतोवीनोत्'
ऋ. ६.३.७

नवीयाः– नवदीक्षाप्राप्त ।
'मन्म श्रुधि नवीयसः'
ऋ. १.१३१.६, अ. २०.७२.३

नवीयान् – सदा नवीन । ऋभु का विशेषण ।
'ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयान्'
ऋ. १.११०.७

नवेदसा– (द्वि.) । (१) अश्विद्वय, (२) रातदिन, (३) स्त्री पुरुष का विशेषण, (४) किसी प्रकार के ज्ञान और ऐश्वर्य को शेष न रखने वाले, (५) पूर्ण विद्वान्, (६) पूर्ण ऐश्वर्य वान् (७) पृथक् पृथक् धन न रखने वाले, (८) एक दूसरे से विशेष रूप से पूर्व अपरिचित एक ही ऐश्वर्य वाले (९) सूर्य चन्द्र ।
'त्रिश्चित् तो अद्या भवतं नवेदसा'
ऋ. १.३४.१
हे सूर्य चन्द्र, दिनरात या स्त्री पुरुष, हे किसी प्रकार के ज्ञान और ऐश्वर्य शेष न रखने वाले पूर्ण विद्वानों या ऐश्वर्यवानों आज के समान आप दोनों तीनों बार तीनों प्रकार से (त्रिः) अधिक सामर्थ्यवान् हो ।
मन, वाक्, कायतीन प्रकार से व्यापक रहने वालो, तुम दोनों तीनों प्रकार से विवाह द्वारा बद्ध हो जाओ ।

नवेदाः– न+वेदाः । (१) प्राप्त न करने वाला जिसके पास कुछ भी न हो ।
'भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः'
ऋ.५.१२.३.
(२) विलकुल न जानने वाला अबोध शिष्य, (३) निर्धन ।
'देवो भुवन् नवेदाम ऋतानाम्'
ऋ. ४.२३.४
(४) प्राप्त करने वाला ।
'नवेदसो अमृतानामभूम'
ऋ. १०.३१.३
'एषां भूत नवेदा म ऋतानाम्'
ऋ. १.१६५.१३, मै.सं. ४.११.३, १७०.३, का.सं. ९.१८.

नवेदा – (१) या अविद्या न विन्दति सा (अविद्या न जानने वाली) –दया. (२) लौकिक कुटिल, अधार्मिक, कुसंग और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ निष्पाप कुमारी या स्त्री ।
'शुचिभ्राजा उषसो नवेदाः'
ऋ. १.७९.१, तै.सं. ३.१.११.४.
कुमारी या स्त्री शुचि, पवित्र निष्कलंक आचरण के प्रकाश या कान्ति से सुशोभित, उषा बेला के समान हृदय को आह्लादित तथा पवित्र करने वाली, लौकिक कुटिल अधार्मिक कुसंग और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ (नवेदा) उत्तम यशवाला, नित्य उत्तम कर्म और ज्ञानों को प्राप्त करने की इच्छा वाली, कभी निकम्मा रहने वाली, सत्य व्यवहार करने वाली हो ।

नंश् – नाश ।
'घोषेव शंसम् अर्जुनस्य नंशे'
ऋ. १.१२२.५
पीड़ा कारी दुःख को नाश करने के लिए (अर्जुनस्य नंशे) जिस प्रकार वेदवाणी (घोषा) उत्तम उपदेश प्रदान करती है (शंसम्)

नश्यति– नष्ट होता है ।
'आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति'
ऋ. १०.९७.११, वाज.सं. १२.८५, तै.सं. ४.२.६.२, मै.सं. २.७. १३, ९३.१८, का.सं. १६.१३, नि. ३.१५.

नस् – (१) व्यापना ।
'सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि'
ऋ. २.१६.८
(२) नासिका ।
'सूकरस्त्वा खनन्नसा'
अ. २.२७.२, ५.१४.१

नसति – आप्नोति, व्याप्नोति (व्याप्त होता है) । नस् धातु व्यापन अर्थ में आया है । नभने और प्राप्ति अर्थों में इसका प्रयोग हुआ है ।

नसन्तः – व्याप्नुवन्ति' व्याप्त होती है ।
'घृतस्य धाराः समिधोनसन्तः'
ऋ. ४.५८.८, वाज.सं. १७.९६, का.सं. ४०.७,

आप.श्रौ.सू. १७.१८.१, नि. ७.१७.
(घृत की धारा समिधाओं में व्याप्त होती है ।

नंसन्ते – (१) नमन्ते, प्रह्वी भवन्ति (नवते हैं, नम्र होते हैं) । नस् धातु व्यापन एवं नमन अर्थ में आया है । आप्नोति कर्मा वा नमति कर्मा वा) (२) नंस धातु के लट् प.पु.ब.व.का रूप । अर्थ है– अनुगृहीत करते हैं ।
नम्र हो जाते हैं –दया । कुवित् नंसन्ते मरुतः पुनर्नःवे मरुत अनेकों बार (कुवित्) हमें जल दान द्वारा अनुगृहीत करते हैं (नंसन्ते) –
जो परमात्मा के सेवक करने पर हमारे प्रति अत्यन्त नम्र हो जाते हैं (नंसन्ते) –दया.

नस्वती– नस् + वतुप् + ङीष् । नाकवाली
'शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी'
अ। १०.१.२

न्ययनम् – नि + अयनम्, । जीवों का निम्न लोक या स्थिति में रहना ।
'यन्नियानम् न्ययनम्'
ऋ. १०.१९.४

न्यस्त – निश्चित रूप से स्थापित राजा ।
'वैकर्णयोर्जनान् राजान्यस्तः'
ऋ. ७.१८.११

नसोः यमः– (१) नासिकाओं में पहनाए जाने वाला नाथ या नथिया, (२) पशु आदि को नियन्त्रण करने वाला सारथि ।
'पृष्ठे सदो नसोर्यमः'
ऋ. ५.६१.२

न्यः– भीतर गति देने वाला वेद ।
'दृढो दृंहस्थिरो न्यः
ब्रह्म विश्वसृजोदश'
अ. ११.७.४

न्यरितका – (१) सब गुणों को दूर करने वाली ओषधि, (२) दौर्भाग्य लक्षणं नितरां अस्यन्ती शंखपुष्पिका ।
दुर्भाग्यलक्षण को एक दम से दूर कर देने वाली शंख पुष्पिका (३) जीवन रूप लता ।
'न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगं करणी मम '
अ. ६.१३९.१

नह – बांधना ।
'नह्यन्ति धरुणाय कम्'
ऋ. १०.६०.८

नह्न– नह् + ल्युट् = नहन ।
'वंशानां ते नहनानाम्'
अ. ९.३.४
(१) आत्मा को बांधने वाला कर्मबन्धन, (२) बन्धन, (३) कारागार बन्धन, (४) भोग बन्धन ।
'अश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्'
ऋ. १०.६७.३, अ. २०.९१.३, तै.सं. ३.४.११.३, मै.स. ४.१२.६, १९७.२, का.सं. २३.१२.

नहुष् – (१) शुभाशुभ कर्मबद्ध मनुष्य–दया । शुभ और अशुभ कर्मों में बंधा हुआ दया मनुष्य, (२) एक वैदिक राजा, (३) सबको एक सूत्र में बांधने वाला परम पुरुष ।
'सचा सनेम नहुषः सुवीराः'
ऋ. १.१२२.८
हम वीर पुरुष उस धन को साथ ही बांटे या भोगें ।

नहुष्टरः– (१) राष्ट्र का उत्तम प्रबन्धक (२) मनुष्यों को तारने वाला ।
'अहं समहा नहुषो नहुष्टरः'
ऋ. १०.४९.८

नहुष्य– (१) मनुष्योपयोगी ।
आदीं विश्वा नहुष्याणिजाता'
ऋ. ९.८८.२, साम. २.८२२.

नाक – नञ् + अक = नाक । जहां दुःख न हो वह नाक है । स्वर्ग, ।
'स्वर्गो वै लोको नाकः'
श.ब्रा. ६.३.३.१४
'तमु त्रिंश स्तोमं नाकमित्याहुः
न हि प्रजापतिः कस्मै चन अकम् ।'
तै.आ. २१.८.४
'अजो नाकमाक्रमतां तृतीयम्'
अ. ९.५.१,३
(२) छत्तीस विभागों का राजतन्त्र सुखप्रद होने से नाक है ।
'नाकः षट् त्रिंशः'
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.५, मै.सं. २.८.४, १०९.७, का.सं. १७.४, २०.१३. श.ब्रा. ८.४.१.२४.
(३) महान् एकान्त सुख आत्मा, (४) विराट् रूपी नाक ।

'तेह नाकं महिमानः सचन्त'
ऋ. १.१६४.५०, १०.९०.१६, अ. ७.५.१, वाज.सं. ३१.१६, तै.सं. ३ .५.११.५, मै.सं. ४.१०.३, १४९.१, का.सं. १५.१२, श.ब्रा. १०.२.२.२, तै.आ. ३.१२.७, नि. १२.४१.
उन भावी देवरूपी ऋषियों ने (ते) महात्मा होते हुए (महिमानः) उसी महान् एकान्त रूप आत्मा का सेवन किया या उससे तादात्म्य स्थापित किया (नांक सचन्त)। (५) सूर्य, (६) सुखयुक्त राष्ट्र।
'ये नाकस्याधिरोचने
दिवेदेवास आसते'
ऋ. १.१९.६

नाकसद् – (१) स्वर्ग में स्थित, (२) सब सुखो में स्थित।
'देवसदं नाकसदम्'
वाज.सं. ९.२

नाक्र – (१) नक्र अर्थात् घड़ियाल के शरीर के समान बनी नाव।
'नाक्रोमकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य'
वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१३.१, मै.सं. ३.१४.१६,१७६.१, का .सं. (आश्व.) ७.३.
(२) नक्रनामक जन्तु, घडियाल।
'वरुणाय नक्रान्'
वाज.सं. २४.२१

नाथ – स्वामी।
'विश्वे देवाममनाथं भवन्तु'
अ. ९.२.७

नाथविद् – ऐश्वर्यप्राप्त कराने वाला।
'अयं यज्ञो गातुविद् नाथविद् प्रजावित्'
अ. ११.१.१५

नाथित– (१) दुःखों से पीड़ित।
'स्तैमीन्द्रं नाथिता जोहवीमि'
अ. ४.२४.७, तै.सं. ४.७.१५.२, मै.सं. ३.१६.५, १९०.१३. का.सं . २२.१५.
(२) प्रार्थित, (३) ऐश्वर्यवान्।
'देवान् यन्ना थितोहुवे'
अ. ७.१०९.७
(४) संताप, पीड़ा, दीनता।
'अवतान्मा नाथितात्'
वाज.सं. ५.९, श.ब्रा. ३.५.१.२०.
(५) शत्रु को उपताप पैदा करने वाला।
'अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे'
अ. ३.१.२.
(६) धनादि की याचना करने वाला।
'उद्द्या मिवेत तृष्णजो नाथितासः'
ऋ. ७.३३.५

नाद्यः– (१) नदी के जल को वश में करने वाला, (२) उपदेश करने वाले विद्या सम्पन्न गुरु का प्रिय हितैषी।
'चनोदधीत नाद्यो गिरोमे'
ऋ. २.३५.१, मै.सं. ४.१२.४, १८७.१७, का.सं. १२.१५, आप.श्रौ. सू. १६.७.४.

नादेय – (१) नद नालों पर का अध्यक्ष।
'नमो नादेयाय च वैशन्ताय च'
वाज.सं. १६.३७
(२) नाद के साथ कार्य करने वाला।

नाध– नह् (बन्धनार्थक) + घञ् = नाध। नध जिससे बैल को हल में नाधा जाता है।

नाधमानस्य गातुः– स्तुतिशील पुरुष का मार्ग सूर्य।
'पृथिवीप्रोमहिषो नाधमानस्य गातुः'
अ. १३.२.४४

नाधमान– (१) पांच वर्षों के लिये हृदय में पश्चाताप करने वाला।
'यो ब्रह्मणो नाधमानस्यकीरेः'
ऋ. २.१२.६, अ. २०.३४.६.
(२) ऐश्वर्य की कामना करने वाला भक्त जन।
'अभिख्यानो मघवन् नाधमानान्'
ऋ. १०.११२.१०

नाधमानाः – याचमानाः (याचना करती हुई)। नाधृ (नाध) + शानच् = नाधमान्। 'नाधृ याञ्चोपतापै श्वर्याशीषु' अर्थात् नाधृ धातु याचना, उपताप ऐश्वर्य और आशीर्वाद अर्थों में आया है। प्रथमा ब. व. मे 'नाधमाना' रूप है। अर्थ – (१) लोगों की प्रज्ञा की जांच करने वाली सूर्य की रश्मियां।
'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ. (आंध्र.) १०.७३, आप. श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.

चलने वाली सूर्य की रश्मियां सूर्य के निकट गई। वे रश्मियां यज्ञ से प्रेम करती हुई (प्रिय मेधा) प्रकाशक होने के कारण सर्वद्रष्टा (ऋषयः) तथा लोगों की प्रज्ञा को जांचने वाली हैं (नाधमानाः)।

नाधित- नाधृ + क्त। अर्थ -(१) ऐश्वर्युक्त, (२) प्रार्थनाशील।
'युवं धेनुं शयवे नाधिताय
अपिन्वतम् अश्विना पूर्व्याय'
ऋ. १.११८.८
तुम दोनों अज्ञान निद्रा में (युवं शयने) सोनेवाले या शयु को और ऐश्वर्य युक्त या प्रार्थना शील उत्तम पुरुष से युक्त या पूर्व शुभ संस्कारों से युक्त पुरुष के लिए (नाधिताय) वेदवाणी को कामधेनु के समान (धेनुम्) ज्ञानरस देने वाली बना देते हो (अपिन्वतम्)
(३) अतिदुःखी, सतंप्त, (४) आशावान्
'यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत्'
ऋ. १.१८२.७

नानदत् - (१) हिनहिनाता हुआ, (२) तड़क या गर्जना करता हुआ, अश्व।
'नानंनद्भिः शाश्वसद्भिः धनानि'
ऋ. १.३०.१६
हिनहिनाते हुए घोड़ों से नाना ऐश्वर्यों का निरन्तर विजय करें।

नान्द्यः- (१) नन्दयितुं समर्धयितुं योग्यम् -शिल्पज्ञानम्- दया. (२) आनन्द प्रद सुख सामग्री को बढ़ाने वाला कार्य, (३) ऐश्वर्य (४) पुत्र आदि।
'त्रिनान्द्यं वहतमश्विनायुवम्'
ऋ. १.३४.४
आनन्दप्रद सुखसामग्री को बढ़ाने वाले कार्य को या ऐश्वर्य पुत्रादि या शिल्पज्ञान को भी बार बार प्राप्त करो या पति पत्नी को तीन बार प्रदक्षिणा द्वारा उद्वाह करो।
(५) अभिनन्दन, (६) हृदय को आनन्दयुक्त करना।
'अभिश्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे'
ऋ. १.१४५.४

नाना- अ. (१) नाना प्रकार से।
'नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा'
ऋ. १०.६७.१०, अ. २०.९१.१०, मै.सं. ४.१२.१, १७८.२
वि. (२) अनेक।
'नानाहनू विभृते संभरेते'
ऋ. १०.७९.१
वैश्वानर अग्नि की हनन समर्थ ज्वालाएं नाना रूप में रहकर भी (नानाहनू) एकत्र ही लकड़ियों को जलाती हैं।

नाना जातौ- (१) भिन्न भिन्न वंश में उत्पन्न (२) अपने अपने गुणों में प्रसिद्धि स्त्री पुरुष।
'नाना जाता वरेपसा'
ऋ. ५.७३.४

नानाधर्मा- अनेक धर्मों का पालक जन समुदाय
'नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्'
अ. १२.१.४५

नानाधीः- (१) नानाकर्मा, अनेकों कर्मों को करने वाला, (२) अनेकों तरह की चिन्ता करने वाला
'नानाधियो वसूयवः'
ऋ. ९.११२.३, नि. ६.६.
अंगिरस पुत्रों की उक्ति। वे अपने ही प्रति कहते हैं, हम अपनी जीविका के लिये नाना प्रकार के कर्म करते रहें और सदा धन की चाह में मस्त रहें।

नानान- अ. (१) पृथक् पृथक्।
'व्याघ्रौ कृत्वा नानानम्'
अ. १२.२.४३
(२) अनेक प्रकार की।
'नानानं वा उ नो धियः'
ऋ. ९.११२.१

नानासूर्याः- अनेकों सूर्य।
'सप्त दिशो नाना सूर्याः'
ऋ. ९.११४.३, तै.आ. १.७.४.

नानाहनू- (१) दो हनू अर्थात् जबड़ों वाला शिशु- दया. (२) नाना ज्वालाएं

नाभ- यज्ञ की उत्तर वेदी।

नाभाकः- नाभाक नामक ऋषि।
'नाभाकस्य प्रशस्तिभिः
(नाभाक ऋषियों की स्तुतियों से)

नाभि- सन्नहनात् (सम्यक् प्रकार से एकत्र नद्ध करना)। नह् धातु नाधना, जोडना और एकत्र बांधना अर्थों में आया है। (२) अभ्यास नद्ध

(अभि + आ + सम् + नह् + क्त) । अर्थात् नाभि चारों ओर से लेकर सम्यक् प्रकार से बांधा गया है । नाभि में शरीर की सभी नाड़ियां बद्ध रहती हैं । अर्थ है (१) नाभि, (२) गर्भ । इसी से 'सनाभि' शब्द ज्ञाति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । पुनः (३) यज्ञ की उत्तर वेदी

'त्वष्टा पोषाय विष्यत
राये नाभा नो अस्मयुः '

ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.

वैद्युताग्नि गौ आदि धन के लिए हमारी कल्याण-कामना करता हुआ यज्ञ की उत्तरी वेदी में हमारे पालन पोषण के लिये जल बरसावें ।

(४) नाभिभूत भूमि पर बरसने वाला द्युलोक का रस ।

'द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र '

ऋ. १.१६४.३३, नि. ४.२१.

मेरा द्युलोक पिता अर्थात् पालयिता या रक्षक है, यह उत्पादयिता है (जनिता) । इस द्युलोक में (अत्र) नाभि रूप में भूमि का रस रहता है ।

(५) कारण ।

आधुनिक अर्थ- नाभि, ठोढ़ी, कोई नाभि सा पदार्थ, केन्द्र, चक्के का मध्यभाग, प्रधान, मुखिया, प्रमुख राजा, एकक्षत्रिय घर, मृग की नाभि, कस्तूरी, ।

नाम- (१) अव्यय (२) सबसे प्रसिद्ध (३) प्रबलतमः (४) नमनकारी बल ।

'यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियम् '

ऋ. १.५७.३, अ. २०.१५.३

नामकरण- नाम क्रियते अनेन इति नाम करणम् (इससे नाम किया जाता है) । नाम + कृ + ल्युट् = नामकरण नाम करण+ सर्श् (संज्ञा प्रयोजक प्रत्यय)= नामकरण । अर्थ है (१) संज्ञा प्रयोजक । संज्ञा बनाने वाला शब्द । 'कंस' संज्ञाप्रयोजक प्रत्ययभूत शब्द है ।

उसी प्रकार 'ओ' भी नामकरण प्रत्यय है । जिसे 'गा' धातु में जोड़कर 'गौ' शब्द बनाया गया है ।

धस् + ईरन्, = उशीर, 'थु' प्रत्यय से मिथुन शिष् + व = शेव ।

नामग्राह- (१) नाम कहकर पुकारना, (२) गालीगलौज करना, बुरा नाम धरना ।

'देवैनसात् पित्र्यत् नामग्राहात् '

अ. १०.१.१२

नामथा- ठीक रूप से ।

'यो वै तां विद्यान्नामथा '

अ. ११.८.७

नामधः- (१) सर्वगुण सम्पन्न होने के कारण नामों को भी स्वयं धारण करने वाला ।

'यो देवानां नामधा एक एव '

ऋ. १०.८२.३, अ. २.१.३, वाज.सं. १७.२७, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.१०, का.सं. १८.१.

नामन् - 'नम' या ण्यन्त 'नामि' का औणादिक निपात 'नाम' है । अर्थ है- (१) नाम ।

'अरेपसा तन्वा नामभिःस्वैः '

ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३

तुम दोनों पाप-रहित यथा संकल्प अपने अपने नामों से स्तुत हुए, (२) 'सत्व प्रधानम् नाम' जिसमें लिंग वचन आदि का समावेश हो वह सत्व है । सीदति गच्छति लिंग संख्या दिकम् अस्मिन् इति सत्वम् । जिसमें आख्यात् या क्रिया प्रधान न होकर सत्व ही प्रधान हो वह नाम या संज्ञा है । किसी पदार्थ के नाम में उस गुण झुकाए जाते हैं ।

नमति आख्यात शब्दे गुण भावेन (जो आख्यात शब्द में गुण भाव से नवे) । अथवा 'नमयन्ति स्वयम् अर्थम् आख्यात शब्द वाच्ये गुणभावेन' इति नामानि (जो अपने अर्थ को आख्यातशब्द में ले जाय वह नाम है) । आख्यात के चार अर्थ हैं - भाव, काल, कारक और संख्या । इन चारों में भाव की प्रधानता रहती है । धातु का अर्थ ही भाव है - इसी से आख्यात को भाव प्रधान माना गया है । नाम के भी चार अर्थ हैं- सत्व, द्रव्य, संख्या और लिंग जिनमें सत्व प्रधान रहने से नाम को सत्वप्रधान कहा गया ।

(३) प्रसिद्ध । नाम शब्द 'प्रसिद्ध' अर्थ में प्रयुक्त एक अव्यय भी है ।

(४) स्तुति ।

नामानि- नानापदार्थ

'किविर्नामानि प्रवणे मुषायति '

ऋ. ५.४४.४

नारक – (१) नारक सम्बन्धी, (२) नीच योनि का कष्ट सहना ।

'नारकाय वीरहणम्'

वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

नारक लोक – (१) नरक, (२) निकृष्ट पुरुषों से, युक्त लोक, ।

'अधाहु नरिकं लोकम्'

अ. १२.४.३६

नारद – (१) मनुष्यों को आश्रय देने वाला पालक राजा ।

'अभि नारद मन्यते'

अ। ५.१९.९

(२) पुरुषों का हित कारक विद्वान्

'तामेतां विद्यात् नारदः सहदेवैरुदाजते'

अ. १२.४.२४.

नार्मर– (१) मनुष्यों को मारने वाला घातक कारण, (३) मनुष्यों का घातक, (३) शत्रुबल का नाशक ।

'यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे'

ऋ. २.१३.८

नार्य– नरों जीवों का स्वामी परमेश्वर ।

'आ नार्यस्य दक्षिणाः'

ऋ. ८.२४.२९

नार्षद कण्व– (१) नर अर्थात् नेताओं की परिषद् में बैठने वाला विद्वान् मेधावी, (२) अपामार्ग औषधि का प्रयोग–ब्राह्मण, यष्टि, कण्व और नार्षद नामक औषध मिलाकर किया जाता है ।

'कण्वेन नार्षदेन'

अ. ४.१९.२

(३) नृषद् पुत्र नार्षद् ऋषि जिसे अश्विनीकुमारों ने श्रवण शक्ति दी थी ।

(४) नृषद् अर्थात् राज्य कर्मचारी का पुत्र । (दया.)

'प्रवाच्यंतद् वृषणां कृतं वाम्
यन्नार्षदाय श्रवो अध्मधत्तम्'

ऋ. १.११७.८

हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय । तुमने जो नार्षद् ऋषिं को श्रवणशक्ति दी वह तुम लोगों का कृत्य सचमुच प्रशंसनीय है ।

हे बलवान् राजा तथा राजपुरुषो, तुम सब अपने राजकर्मचारियों की सन्तानों को ज्ञान तथा कर्म की शिक्षा दोगे तो वह कर्म सचमुच प्रशंसनीय होगा,(–दया.)।

नार्षद– (१) नृषद् + अण् = नार्षद् । अर्थ है बुद्धिमान का पुत्र (२) उपदेश करने वाला अध्यापक, (३) ज्ञानवान पुरुष, (३) प्राणरूप देह के नामकों पर अधिष्ठाता आत्मा, (५) नाना इन्द्रिय स्थानों में बैठते हुए आत्मा के विराजने का स्थान देह ।

'पुरू सदन्तो नार्षदो बिभित्सन्'

ऋ. १०.६१.१३

पुनः –

'युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम्
महः क्षोणस्या श्विना कण्वाय
प्रवाच्युं तद्वृषणाकृतं वाम्
यन्नर्षदाम श्रवो अध्यधत्तम्'

ऋ. १.११७.८

हे सुखों के वर्षण करने वाले, प्रमुख राज्य के भोक्ता पुरुषो, आप दोनों ज्ञानवान् पुरुष को दीप्ति से युक्त तेजस्विनीविद्या का दान करो (श्यावाम् रुशतीमदत्तम्) । उपदेश करने वाले अध्यापक या एक स्थान में गुरु के अधीन रहकर विद्याभ्यास करने वाले अन्तेवासी ब्रह्मचारी ज्ञानवान् पुरुष के लिए (नार्षदाय) महान् सामर्थ्य और तेज प्रदान करो और जो आप दोनों नाम तथा प्रजा के पुरुषों के ऊपर शासकरूप से विराजने वाले अध्यक्ष और आचार्य को (नार्षदाय), प्रवचन करने योग्य (प्रवाच्यं) सुसम्पन्न ज्ञान और यश करते हो वह भी तुम दोनों का ही श्रेष्ठ कार्य है ।

नारायासः– न + अरायः = नारायः । बहुवचन में नाराय + जस् = नारायासः (असुक् प्रत्यय जोड़कर) 'राय' का अर्थ धन है अतः 'अराय' का अर्थ निर्धन है । अतः 'नाराय' का अर्थ हुआ न निर्धन अर्थात् धनी ।

नाराशंस– अर्थ है . (१) मंत्र, (२)मनुष्य प्रशंसापाक मन्त्र । येन मन्त्रा प्रशंस्यन्ते (जिससे नरों की प्रशंसा की जाती है वे ही मंत्र नाराशंस है । नरा शंस् + अण् – नराशंस (३) भावयव्य नामक राजा को लक्ष्य कर जो मन्त्र कहा गया है वह नाराशंस है । (४) मध्यमस्थानीय देवता

नाराशंसी– (१) नरनारियों की इतिहास कथा
'नाराशंसीन्योचनी'
ऋ. १०.८५.६, अ. १४.१.७.
(२) मनुष्यों की स्तुति

नारि – स्त्री ।
इन्द्राणीमासु नारिषु
सुभगामहमश्रवम'
ऋ. १०.८६.११, अ. २०.१२६.११, नि. ११.३८
सभी स्त्रियों में मैं इन्द्रणी या आत्म सहचारिणी, आत्मा के के विरुद्ध कभी कार्य न करने वाली विदुषी स्त्री को सौभाग्य वाली सुनता हूँ ।

नारी – (१) स्त्री, (२) नेतापुरुषों की बनी सभा ।
'सक्थ्ना देदिश्यते नारी'
अ. २०.१३६.४, वाज.सं. २३.२९, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.१, ला. श्रौ.सू. ९.१०.६.
(३) नरों से युक्त पृथिवी, (४) नायकों से युक्त सेना ।
'वि वां चिकित्सत् ऋतचिद्ध नारी'
ऋ. ४.१६.१०

नावग्रु– (१) अविवाहित पुरुष ।
'जनियन्तिनावग्रवः'
अ. १४.२.७२

नावा– (१) दो नावों के समान स्त्रीपुरुष दोनों फलों के तारने वाले ।
'नावेव नः पारयतं युगेव'
ऋ. २.३९.४
(२) नौका
'सनः सिन्धुमिव नावया अतिपर्षा स्वस्तये ।'
ऋ. १.९७.८, अ. ४.३३.८, तै.आ. ६.११.२.
वह तू नौका से जैसे महानद पार किया जाता है, उसी तरह हमारे सुख शान्ति के लिए हमें पार करें ।

नाव्या – (१) नदी नौ + यत् + टाप् ।
'नवतिं नाव्या अति'
अ. ८.५.९
(२) वर्ष ।
'अवर्धत मध्य आनाव्यानाम्'
ऋ. १.३३.११, मै.सं. ४.१४.१२, २३५.७, तै.ब्रा. २.८.३.४.
इस मेघ का जल या शरीर नावों से पार उतरने योग्य बड़ी बड़ी नदियों के बीच में भी सब ओर से आकर बढ़ता है ।

न्याविध्यत् – निरविध्यत् – निरताड़यत् । तोड़ दिया– तोड़कर हटा दिया ।
'न्याविध्यदिलीबिशस्य दृढा'
ऋ. १.३३.१२, नि. ६.१९
इन्द्र ने मेघ या वृत्र के दृढ़ उदक रोकने वाले स्थानों को तोड़ दिया । राजा भूमि के अन्दर दुर्ग बनाकर रहने वाले शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों को तोड़े –(दया.) ।

नाष्ट्रा– (१) नाशकारिणी अविद्या ग्रन्थि
'या नाष्ट्रा अतितार्याः'
अ. ८.२.२७
(२) नाश करने वाली दुष्टास्वभाव की प्रकृतिवाली शत्रुसेना
'विश्वाभ्यो मा नाष्ट्रा भ्यस्यापहि'
वाज.सं. ३७.१२, तै.सं. १.८.१२.३, मै.सं. ४.९.३, १२४.५, श.ब्रा. १४.१.३.२४, तै.ब्रा. १.७.६.८, तै.आ. ४.५.४, पा.गृ.सू. २.६.३१.

नाः (नै) – नायक
'सचस्व नायम् अवसे अभीक'
ऋ. ६.२४.१०

नासत्या – (१) नासत्यौ अश्विनौ, 'औ' का 'आ' होकर 'नासत्या' हुआ । अर्थ है– अश्विनीद्वय तौ सत्यमेव ब्रूतः
'न कदाचिदपि असत्यम्'
वे सत्य ही बोलते हैं कदापि असत्य नहीं बोलने अतः नासत्या कहे गए । न + असत्यौ = नासत्यौ । दो नञ् से प्रकृत अर्थ में दृढ़ता आती है । (२) अश्विनी कुमार –सा. (३) सत्यशील प्रध्यापक और उपदेशक – ज.दे.श. ।
'तां अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने
श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम्'
ऋ. ७.३९.४, नि. ६.१३.
हे अग्नि, उन हमारे यज्ञ में अपने अपने अंश चाहने वाले उन विश्वे देवों को पूज और भग अश्विनी कुमारों एवं इन्द्र को भी पूज । (३) और्णवाय आचार्य के मत से सतौ का ही नासत्यौ हुआ है ।
(४)आग्रायण के मत से सत्यस्य प्रणेतारौ । (सत्य के प्रणेता हैं), अतः नासत्यौ कहे गए सत्य यज्ञ या उदक का वाचक है ।

(५) यास्क के अनुसार 'नासिका प्रभवौ बभूवतुः' नासिका से वे दोनों हुए अतः नासत्यौ कहलाये (६) ऐतिहासिक पक्ष वाले 'नासिवतुः' ऐसामाना हैं । (७) स्वा. दयानन्द ने सत्यधारी स्त्री पुरुष इसका अर्थ किया है । (८) नासिका गत प्राण और अपान वायु भी 'नासत्या ' है ।

न्यासदताम्– नि + आ + सदताम् । निरन्तर नियम पूर्वक रहे ।

'उषासानक्ता सदतां नियोनौ '

ऋ. १०.७०.६, अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३, २०२.५, का.सं. १६.२०., तै.ब्रा. ३.६.३.३. नि. ८.११.

उषा और रात्रि यज्ञ सृष्टि या गृह में (योनौ) नित्य नियम पूर्वक रहे (निसदताम्) । •

नासिका– (१) नस् (कौटिल्य अर्थ में) + ण्वुल् = नासिक । नासिक+ टाप् = नासिका । (२) नस् + अण् = नास, नास + कन = नासिक । नासिक + टाप् = नासिका (के ऽणः' से इकार) (३) निरुक्त के अनुसार नस् धातु नमना तथा प्राप्ति अर्थ में भी आया है । नाक टेढ़ी हैं या गन्ध प्राप्त करती है . अतः नासिका है । अर्थ है– (१) नाक ।

'अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम् '

ऋ. १०.१६३.१, अ. २.३३.१, २०.९६.१७. शां.श्रौ.सू. १६.१३.४, शां.गृ.सू. १.२१.३, अप.मं.पा. १.१७.१.

नाह– न + आह + नाह । अर्थ है – नहीं ।

नाहुष– (१) नहुष के वंश का, मनुष्य प्रजा ।

'करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि '

ऋ. ६.२२.१०, अ. २०.३६.१०.

(२) मनुष्य का कुल या धन, नहुष का कुल या धन ।

नाहुषा – परस्पर प्रेम बन्धन में बंधे मनुष्य के जोड़े ।

'पर्वन्या नाहुषा युगा '

ऋ. ५.७३.३

नाहुषी– (१) मनुष्यों की, (२) नहुष राजा की, (३) सुप्रबद्ध ।

'वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं
मन्द्रा चिकत् नाहुषीषु विक्षु '

ऋ. १.१००.१६

सुप्रबद्ध प्रजाओं के बीच (नाहुषीसु विक्षु) अस्त्र शस्त्र बरसाने में समर्थ बलवान् रथारोही महारथी को धारण करती हुई जानी जाती है ।

नि – नीच गति ।

'पुमां कुस्ते निमिच्छसि '

अ. २०.१२९.१४

(२) नित्य ।

'न्यैरयद् रथीतमः '

ऋ. ६.५६.३.

अतिशय रथों वाला या नृतम परमात्मा ' सदा कालचक्र चलाता है ।

नि.कः– नि + कः । अर्थ है – निश्चय ही करता है ।

'नि काव्या वेधसः शश्वतस्कः '

ऋ. १.७२.१, तै.सं. २.२.१२.१.

जो पुरुष धनादि सनातन जगत् के विधाता, ज्ञानवान् परमेश्वर को विज्ञान और कर्म के प्रतिपादक वेद मन्त्रों का या सृष्टि–नियमों का अच्छी प्रकार अभ्यास करता है । (शश्वतः वेधसः काव्या निकः) ।

निकर्तवे – अनादर और हिंसा न करने योग्य ।

'नकीमिन्द्रो निकर्तवे '

ऋ. ८.७८.५

निक्त– (१) अतिशुद्ध, ।

'अत्कं न निक्तंपरिसोमो अत्यत '

ऋ. ९.६९.४, साम. २.७२,२

(२) नहाया हुआ, (३) अभिषिक्त ।

'अश्वो न निक्तो नदीषु '

ऋ. ८.२.२, साम. १.४३०, २.६८२.

निक्रमण– कार्यों में प्रवृत्त होना या जाना ।

'मधुमन्मे निक्रमणम् '

अ. १.३४.३.

(२) घोड़ों की निश्चित चाल नियमपूर्वक पैरों को उठा उठाकर रखना, (३) चलना फिरना (४) निकलने का मार्ग ।

'निक्रमणं निषदनं विवर्तनम्
यच्च पड्वीशमर्वतः '

ऋ. १.१६२.१४, वाज.सं. २५.३८,तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१ , १८३.८, का.सं. (अश्व.) ६.५.

निक्ष– धा. । सर्प का दशना ।

'निक्ष दर्भ रापत्नान् मे '

अ. १९.२९.१

निकामः – (१) खूब कामना करता हुआ ।
'ईडे सखित्वं सुमतिं निकामः'
ऋ. ३.१.१५
(२) वि.– सर्वथा मनोहर ।
'हरिर्निकायो हरिरागभस्त्योः'
ऋ. १०.९६.३, अ. २०.३०.३
(३) कामना-रहित ।
'अपोरिरेच सखिभिः निकामैः'
अ. २०.७७.६
(४) अभिलाषा ।
'तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति'
अ. १५.११.२.
(५) प्रार्थना, कामना ।
'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु'
वाज.सं. २२.२२, तैसं. ७.५.१८.१, मै.सं. ३.१२.६,१६२.१०, का.सं. (अश्व.) ५.१४,श.ब्रा. १३.१.९.१०, तै.ब्रा. ३.८.१३.३ .
(६) नित्य की इच्छा
'यत्र कामा निकामाश्च'
ऋ. ९.११३.१०

निकाय– (१) शरीर की प्राणवायु की साधना, (२) समस्त प्रजा के शरीरों की रक्षा, (३) विशेष खाद्य पदार्थों का संग्रह, (४) वायु
'निकायश्छन्दः'
वाज.सं. १५.५, तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७, ११२.१, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.५.

निकारिणः– (१) गद्दी से उतार देने में समर्थ, (२) ज्ञान एवं कर्म समुच्चय से नाना जन्मों को नीचे करने वाले, (३) 'नितरां यज्ञ करणशील', भी इसका अर्थ किया गया है । परन्तु 'नि + कृ पद से बना यह पद नीचे उतारने के अर्थ प्रयुक्त हुआ है ।
'मात्वा निक्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः'
वाज.सं. २७.४, अ. ७.८२.३, तै.सं. ४.१.७.२, मै.सं. २.१२.५, १४८.१७, का.सं. १८.१६.

निक्रामण– 'न' नि + क्रामि (ण्यन्त) + ल्युट् । अर्थ (१) घोड़ों का कदम बढ़ाना, (२) सुरक्षित रूप से निकलने का मार्ग ।
'निक्रमणं निषदनं विवर्तनम्'
ऋ. १.१६२.१४, वाज.सं. २५.३८, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१, १८३.८, का.सं. (अश्व.) ६.५.

निकारी– (१) निरादर करने वाला, (२) निरन्तर कर्मशील ।

निकिल्बिष– निष्पाप ।
'कृत्वा देवैः निकिल्बिषम्'
ऋ. १०.१०९.७, अ. ५.१७.११

निकूलः– नीचा स्थान ।
'उत्कूल निकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम्'
वाज.सं. ३०.१४

निकृ – धा. । नि. + कृ । अर्थ है – (१) पद से हटाना, (२) निकालना । आज भी निकालना धातु का हिन्दी में प्रयोग है ।
'मा त्वा निक्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः'
वाज.सं. २७.४, अ. ७.८२.३

निकृत्वा– 'निकृत्वन्' शब्द का प्रथमा एक वचन में रूप । अर्थ है दुष्टों का जड़से छेदन करने वाला ।
'निकृत्वान्स्तपनास्तापयिष्णवः'
ऋ. १०.३४.७

निखातक– भीतर से खोदा हुआ, खोखला ।
'अलाबुकं निखातकम्'
अ. २०.१३२.२, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१७, शां.श्रौ.सू. १२.१८.१. १०.

निखाताः– (१) निकटती दृढ़ रूप से गड़े हुए । नि + खन् + क्त = निखात । ब.व. में निखाताः' (२) अपना घर जमाकर बैठे हुए, (३) जो पृथ्वी में गाड़ दिए गए हो ।
'ये निखाता ये परोप्ताः'
अ. १८.२.३४

निखात– नि + खन् + क्त । अर्थ है गड़ा हुआ खजाना
'निखातं चिद् यः पुरुसम्भृतं वसु'
ऋ. ८.६६.४

निगत– पूर्ण रूप से प्राप्त ।
'तमिदं निगतं सहः'
अ. १३.४.१२,२०.

निगम– (१) निघण्टु । निश्चयेन अधिकं वा निगूढार्था । एते परिज्ञाताः सन्तः मन्त्रार्थान् गमयन्ति बोधयन्ति इति निगमाः (निगम निश्चयपूर्वक निगूढ़अर्थ को अधिक स्पष्ट करते और परिज्ञात होने पर मन्त्रों के अर्थ का बोध

कराते हैं) ।
निगम को ही निघण्टु कहते हैं । 'ते निगन्तवः एव सन्तः निगमनात् निघण्टव उच्यन्ते इति औपमन्यवः' (अर्थों का निगमन कराने से ही निघण्टु कहे जाते हैं, यह औपमन्युओं का मत है ।
शब्द तीन प्रकार के होते हैं- (१) परोक्ष वृत्ति जिसकी क्रिया कही हो, (२) अपरोक्ष वृत्ति जिसकी क्रिया छिपी हो और (३) अतिपरोक्षवृत्ति जिसकी क्रिया अविज्ञात हो । परोक्ष या अतिपरोक्षवृत्ति वाले शब्दों का अर्थ प्रत्यक्ष वृत्ति वाले शब्द के सहारे जाना जाता है । या इसका निर्वचन किया जाता है । जैसे- 'निघण्टुवः' शब्द अतिपरोक्षवृत्तिवाला है क्योंकि इसकी क्रिया अविज्ञात है । इसका परोक्ष वृत्ति वाला शब्द 'निगन्तवः' है तथा 'निगमयितारः' प्रत्यक्ष वृत्ति वाला है । अतः वे निगम कराने वाले ही (निगमयितारः) 'निगन्तवः' और 'निघण्टवः' हुए । इसी प्रकार शब्दों का निगमन या स्पष्टीकरण ही निगम या निघण्टु है ।
(२) 'निघण्टु' शब्द 'आहनन् ' से बना है न कि 'निगमन ' से क्योंकि ये शब्द सम्यक मर्यादा के साथ बढ़े जाकर 'समाहताः' कहे जाते हैं । सम् + आ + हन् + क्त + जस् = समाहता :। इसी समाहताः से सम्पन्न होकर उपसर्ग के व्यत्यय से अध्याहार से तथा वर्ण की व्यापत्ति से, अपरोक्ष वृत्ति वाले शब्द बन जाते हैं और वे ही निघण्टु कहे जाते हैं अथवा शब्दों से समाहृत होकर वर्णव्य व्यय आदि से 'निघण्टु' बन जाते हैं ।

निगल्गलीति- गल श्रवणे (गल धातु श्रवणार्थक है) । अर्थ है श्रवण करता है ।
'निगल्गलीति धारका '
वाज.सं. २३.२२,श.ब्रा. १३.२.९.६.

निग्राभ- निग्रह, दण्ड ।
'निग्राभेणाधरां अकः '
वाज.सं. १७.६३, तै.सं. १.१.१३.१, ६.४.२, ४.६.३.४, मै.सं. १.१.१३, ८.१४. का.सं. १.१२, १८.३, श.ब्रा. ९.२.३.२१.

निगुत् - (१) नीची भ्रष्ट वाणी बोलने वाला दुष्टजन ।
'अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच्च '
ऋ. ९.९७.५४, साम. २.४५६.

निघण्टु- (१), निगम, निर्वचन । गूढ़ अर्थ वाले , अपरोक्ष वृत्ति वाले शब्दों का अर्थ निकालना ही निघण्टु या निगम है । निरूक्त पांच प्रकार के हैं- (१) वर्ण का आगम, (२) वर्ण का विपर्यय (३) वर्ण का विकार (४) वर्ण का नाश और (५) धातु के तद्वत् अर्थ का अतिशयता के साथ योग । वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ, धातोस्तदर्थातिशयेन योगः तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ।
वस्तुतः जगत् के सम्पूर्ण उन भाषाओं के शब्दों के निर्वचन की आवश्यता है जिनका मूल स्रोत वेद है । प्रत्येक शब्द में इतिहास छिपा हुआ है ।

निघनिघ्नत् - बाधा उत्पन्न करने वाले कण्टकों को शोधन करने वाला - इन्द्र, परमेश्वर ।

निचकार- झुका दिया, नीच कर दिया ।
'सा चित्तिभिः नि हिचकार मर्त्यम् '
ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, जै.ब्रा. २.२६०, नि. २.९.
उसमाध्यमिका वाक् विद्युत् ने चिट् चिट् आवाजों या वर्षा सम्बन्धी कर्मों से मनुष्य को डर से झुका दिया ।

निचक्रा - गाड़ी जिसमें नीचे चक्र (पहिया) लगे हों ।
'ययुर्निचक्रया नरः '
ऋ. ८.७.२९

निचाय्य- नि + चाय् (देखना) + ल्यप् = निचाय्य । चायृ पूजा निशामनयोः अर्थात् चाय् धातु पूजा और चाक्षुष ज्ञान में प्रयुक्त हुआ है । अर्थ है- (१) देखकर - (२) योग कर -(दया.)
'उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी
वित्तं मे अस्य रोदसी '
ऋ. १.१०५.१८, नि. ५.२१.
जैसे पृष्ठ रोगी बढ़ई ऊपर ही देखता है वैसे ही चन्द्रमा नक्षत्र को देखकर ऊपर ही देखता रहता है । अतः हे द्यावापृथ्वी, इस कुदशा में पड़े मुझे तुम दोनों ने जाना सा । ज़ैसे पृष्ठरोगी चित्रा नक्षत्र चन्द्रमा से योग करता है एवं अन्य नक्षत्र

भी योग करते हैं, हे स्त्री पुरुषो, तुम मेरी इस नक्षत्र विद्या को जानो ।

निचित– (१) सर्वत्र व्यापक।

'यः सोमप निचितो वज्रबाहुः '

ऋ. २.१२.१३, अ. २०.३४.१४.

(२) सुदृढ़ शरीर, (३) संचित ऐश्वर्यवान्, (४) संचित बलवान् ।

निचिर– निश्चयेन चिरन्तनः दया. अतिकाल से विद्यमान ।

'अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहः
अप्सु सिंहमिव श्रितम् '

ऋ. ३.९.४

निचिरा– द्वि.व.। खूब चिरायु, मित्रावरुण, (२) स्त्री पुरुष ।

'निचिन्मिषन्ता निचिरा निचिक्यतुः '

ऋ. ८.२५.९

निचिरौ– द्वि.व. । (१) अतिबद्ध, (२) चिरकाल से विद्यमान परमेश्वर और आचार्य या माता पिता । (३) प्राण और अपान ।

'प्रसुज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमः '

ऋ. १.१३६.१

अतिवृद्ध चिरकाल से विद्यमान परमेश्वर और आचार्य, माता और पिता को सबसे अधिक उत्तम आदर या अन्न प्रदान करो (बृहत् नमः)

निचुङ्कणः – नि + चुप् (मन्दगति के अर्थ में) + उणन् = निचुम्पुण । अर्थ है – (१) मन्द गतिवाला । यहां 'मुम् ' का आगम हुआ है (२) नीचैः क्वणनः (नीचे की ओर क्वणन करने वाला) । 'नीचैः' का 'निचु' और 'क्वण' का 'कुण' निपातन से हुआ है । निचुङकुण ही निचम्पुण है । (३) शान्तिपूर्वक यज्ञ करने वाला– दया. (४) दीक्षान्त स्नान, (५) शान्तिपूर्वक किया गया स्नान

निचुम्पुण – अर्थ (१) मन्द गतिवाला, (२) नीचे की ओर क्वणन अर्थात् गति करने वाला, (३) शान्तिपूर्वक यज्ञ करने वाला, (४) दीक्षान्त स्नान का नाम भी निचुम्पुण है, (५) शान्तिपूर्वक किया गया स्नान ।

'अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः '
अवदेवैः देवकृतमेनोऽयासिषम् अवमर्त्यैः मर्त्यकृतम् पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि '

वाज.सं. ३.४८, ८.२७, २०.१८, श.ब्रा. २.५.२.४७, ४.४.५.२२, १२.९.२.४, ला.श्रौ.सू. २.१२.९.

वरुण प्रधान कर्म के अन्त में जल के समीप अवभृथ नामक स्नान किया जाता है । इसी मन्त्र से दम्पति स्नान करते हैं ।

हे अवभृथ नामक यज्ञ जिसमें अवार्चन सोमपात्र जल के मध्य में रखे जाते हैं (अवभृथ), हे नीचे की ओर क्वणन करने वाले (निचुम्पुण), यद्यपि तू सदा गमन शील है (निचेरुः असि) तथापि तू सदा मन्द गति वाला हो (निचुम्पुण) क्योंकि तुझे पाकर ही अर्थात् शान्तिपूर्वक स्नान कर के ही अपने द्योतना इन्द्रियों से (देवैः) किए हुए हवि के प्रति पाप को (देव कृतम् एनः) इस जल में अवनीत कर सका, या डुबो सका (अनुयासितम्) तथा हमारे सहायक ऋत्विजों या मनुष्यों से (मर्त्यैः) यज्ञ दर्शन के निमित्त आए हुए मनुष्यों के प्रति फिर अवज्ञा या अपमान रूपी पाप को भी डुबो सका (मर्त्यैः मर्त्यकृतम् अवम्) । और हे देव अवभृथ नामक यज्ञ का या वरुण, (देव) अनेकों कर्मों के उपभोग तथा सन्तापों को देने वाले संसार को (पुरुराव्णः) बन्धन से (रिषः) रक्षाकर (रक्ष) । स्वामी दयानन्द का अर्थ – चुपचाप शान्तिपूर्वक किये जाने वाला यज्ञ (निचुम्पुण अवभृथ) तू पुण्य संचय कराने वाला है । (निचेरुः असि) । शान्ति पूर्वक यज्ञ करने वाला मैं (निचुम्पुणः) मन तथा वाणी आदि इन्द्रियों से (देवैः) मानसिक तथा वाचिक पाप को (देवं कृतम् एनः) दूर करूं (अव यासिषम्) और शरीरों से किए जाने वाले कायिक पाप को (मर्त्यैःमर्त्यकृतम्) नष्ट करूं । हे पूज्य प्रभो (देव), अनेक विधि दुःख देने वाले पाप से (पुरुराव्णः रिषः) मेरी रक्षा कीजिए (पाहि) । यहां अवभृथ अर्थात् स्नान रूपी यज्ञ अभिप्रेत है । शान्तिपूर्वक स्नान पाप को धोने वाला है। (२) 'निचुम्पुण ' का दूसरा अर्थ सोम है (नितान्त पृण ऋजीषरूपः सोमः) । सोमकल्क या सोम । निचमनेन पृणाति भक्षित, सन् (खाने पर प्रसन्न करता है नि + चम् + पृ = निचुम्पुणः (निपातन से चम् की उपधा का उ, पृ का पुम् और पृ

के अन्त में णक् ।
(३) समुद्र । निचमनेन पूर्यते (समुद्र उदक से भरता है) । नि + चम + ल्युट् = निचमन । निचम् + पृ + णक् = निचुम्पुण (पृ का पु) ।
(४) अवभृथ स्नान । नीचैः अस्मिन् क्वणन्ति (नीचैःशब्द से इसमें कर्म करते हैं) । अथवा 'नीचैःअस्मिन् यज्ञपात्राणि दधति' (दीक्षान्त स्नान के समय यज्ञ पात्रों को नीचे रखते हैं) । वे जल में नहीं रखे जाते (तानि हि तत्र अप्सु निधीयन्ते) । नीचैः' का 'निचु' हो जाता है । और शब्दार्थक क्वण या धारणार्थक 'धा' का 'पुण' निपातन से हो जाता है ।
(५) चुपचाप शान्तिपूर्ण किये जाने वाला यज्ञ-
(६) शान्तिपूर्वक यज्ञ करने वाला- दया.
(७) मन्द मन्द गति से चलने वाला । (८) नीचे स्वर से सभ्यता पूर्वक कहने वाला ज्ञानी पुरुष
(९) सोम रस की सीठी ।
'अपां जग्मिः निचुम्पुणः '
ऋ. ८.९३.२२, नि. ५.१८.
सोमरस की सीठी (निचुम्पुणः) जलों के बीच बह रही है ।
(१०) ऋजीष, सोमकल्क (११) जलों के अपने भीतर लेकर पूर्ण होने वाला, (१२) कर आदि लेकरपूर्ण होने वाला राजा, (१३) सब ऐश्वर्य अपने भीतर लेकर पूर्ण होने वाला-परमेश्वर ।

निचेताः- (१) उत्तम धन या ज्ञान का संग्रह करने वाला, (२) समूह कर्त्ता -दया. ।
'निचेतारो हि मरुतो गृणन्तम '
ऋ. ७.५७.२

निचेतारा - द्वि.व. । स्त्री पुरुष का विशेषण । अर्थ - (१) प्राप्त संपदाओं या ज्ञानों का अच्छी प्रकार संचय करने वाले, (२) संचयशील
' एष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः "
ऋ. १.१८४.२

निचेरुः - (१) भली प्रकार से संग्रह करने वाला ।
'निचेरुरसि निचुम्पुणः '
वाज.सं. ३.४८, ८.२७,२०.१८
(२) नि + चेरुः = निचेरुः । सदा गमन शील -सा.
(३) पुण्य का संचय करने वाला - दया. ।
(४) भोगों का भोक्ता ।
'प्र वां निचेरू ककुहो वशां अनु '
ऋ. १.१८१.५.
(५) गुप्तरूप से राजा के कार्य से सर्वत्र विचरने वाला ।
'नमो निचेरवे परिचराय '
वाज.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३,१२३,४ का.सं .१७.१२.

निजघ्निः- दुष्टोंया विघ्नों का विनाशक ।
'अथा निजघ्नि रोजसा '
ऋ. ९.५३.२, साम. २.१०६५.

निजुर् - नितरां हिंसक।
'त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य '
ऋ. २.२९.६, वाज.सं. ३३.५१, मै.सं. ४.१२.६,१९४.६.
निजूर्वथः-
खूब अच्छीतरह से दण्डित करो
'येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः '
ऋ. ७.१०४.४, अ. ८.४.४.

निर्जूर्वन्- वेद से जाता हुआ ।
'वातस्य मेडिंसचते निजूर्वन् '
ऋ. ४.७.११, का.सं. ७.१६.

निण्या - सत्य सिद्धान्त ।
'एतानि धीरो निण्या चिकेत '
ऋ. ७.५६.४
(२) छिपा हुआ जीव ।
'निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामिः '
ऋ. १.१६४.३७, अ. ९.१०.१५, नि. १४.२२.
(३) निर्णाम् 'येन असौ नीचैः नमति' जिससे यहां नीचे झुकता है ।
(४) झुकाने वाला या नीचे से जाने वाला मार्ग.। निणीतम्-निण्यम् । 'निः + ना + क्त' अथवा 'नि + नी' से निण्य हुआ है ।
(५) निम्नागत या नीचे गया हुआ ।
(६) अन्तर्हित (छिपा हुआ)
' वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापः '
ऋ. १.३२.१०, नि. २.१६.
(वृत्रासुर का शरीर अज्ञेय रूप से जल में छिपा हुआ है । मेघ के नीचे नीचे जल विचरण कर रहे हैं ।
(७) छिपा रहस्य ।
'क इमं वो निण्यं आ चिके

वत्सो मातृः जनयत स्वधाभिः '
ऋ. १.९५.४

निणिक्- (१) अतिशुद्ध, (२) बुद्धि को विभक्त करने वाला ।
'गुहाहितमुप निणिक् वदन्ति '
ऋ. ४.५.८

नितली- (१) नीचे नीचे फैलने वाली ओषधि जो केश को दृढ़ करती है । कौशिक और सायण ने केशों के रोग की निवृत्ति के लिए काकमाची, जीवन्ती और भृंगराज का प्रयोगलिखा है । राजनिघण्टु के अनुसार 'देवी' नामक ओषधि से मूर्वा, सृक्वा, सहदेयी, देवद्रोणी, केसर और आदित्य भक्ता नामक छः औषधियां ली जाती हैं । काकमाची से काकदानी ओषधि ली गई हैं । राजनिघण्टु के अनुसार यह 'केश्या' है ।

नित्य- (१) स्थायी, स्थिर ।
'नित्यस्य रायः पतयः स्याम'
ऋ. ४.४१.१०, ७.४.७, नि. ३.२.
(२) मुख्य, (३) आत्मीय, (४) स्वयं उत्पादित, (५) चिरस्थायी (६)जिसका नाश न हो, (७) पैतृक धन ।
आधुनिक अर्थ - चिरस्थायी, अपरिवर्तनशील, नियमित, निश्चित, आवश्यक , कर्तव्य, साधारण, नैमितिक का विरोधी, सदा, समुद्र ।

नित्य सूनुः- औरस पुत्र ।
'नित्यं न सूनुं मधु भिब्रत उप
क्रीडन्ति क्रीड़ा विदथेषु घृष्वयः '
ऋ. १.१६६.२

नित्यारित्रा - नित्य + अरित्रा । अर्थ (१) स्थिर अरित्रवाली नौका, (२) नित्य शत्रुओं से बचाने वाली सेना ।
'रथाय नावम् उत नो गृहाय
नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने '
ऋ. १.१४०.१२
हे अग्नि, रमण करने तथा घर पहुंचाने के लिये स्थिर अरित्र वाली तथा लंगर वाली नौका तू देता है । अथवा, हे राजन् , तू नित्य शत्रुओं से बचाने वाली (नित्यारित्राम्) चरणों वाली (पद्वतीम्) शत्रुओं को दूर हटा देने वाली, (नावम्) सेना को देता है ।

नित्यवत्सा- (१) नित्य मनोरूप वत्स के साथ जुड़ी हुई, (२) नित्य निवास करने वाली अविनाशिनी शक्ति ।
'अथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम् '
अ. ७.१०४.१

नितानाः- नीचे मूल की तरफ गई शाखाएं ।
'त्रयस्त्रिंशत् नितानाः '
अ. ६.१३९.१

नितिक्त- निर्बन्ध ।
'अधे देता न रमन्ते नितिक्ताः '
ऋ. १०.१११.९

नितिक्ति- खूब तीव्र, बलदायक अन्न ।
'नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति '
ऋ. ६.४.५

नितोदिनौ - द्वि. व. । मन और जीव जो मरण काल में निकलते समय समस्त शरीर में व्यथा उत्पन्न करने वाला हैं ।
'आतोदिनौ नितोदिनौ '
अ. ७.९५.३

नितोदी- (१) सबको हर प्रकार से पीड़ी देने वाला
'शाङ्कुरस्य नितोदिनः '
अ. ७.९०.३
(२) व्यथा देने वाला ।
'अक्षास इदं कुशिनो नितोदिनः '
ऋ. १०.३४.७

नितोश- (१) नितरां तोशयति इति नितोशा (जो सदा वध कता है वह नितोश है) । निघण्टु में 'तोश' धातु वधार्थक है, (२) शत्रुहन्ता राजा

नितोशनः - शत्रुओं का नाशक ।
'असमातिं नितोशनम् '
ऋ. १०.६०.२
(२) समस्त दुःखों और बाधाओं को नष्ट करने वाला ।
'नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् '
ऋ. ६.१.८, मै.सं. ४.१३.६, २०७.४, का.सं. १८.२०. तै.ब्रा. ३.६.१०.३.
(३) मारने वाला ।
'आ देवासो नितोशनासो अर्यः '
ऋ. ७.९२.४

निद्- (१) निन्दा । निद् + क्विप् । णिन्दि धातु निन्दार्थक है ।
'न स्तोतारं निदेकरः '

ऋ. ३.४१.६, अ. २०.२३.६.
(२)निन्दक ।
'दहा शसो रक्षसो पाह्यस्मान्
द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्'
ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.८, का.सं. ६.११.

निद- (१) अपने आप को नितरां सर्वथा दे देने वाला भक्त, (२ निन्दाकारी पुरुष, (३) निन्दनीय कर्म ।
'निंदनिदं पवमान नि तारिष'
ऋ. ९.७९.५

निदा- (१) निन्दितप्रजा, (२) निन्दा ।
'सत्वं नो अर्वन् निदायाः'
ऋ. ६.१२.६

निदान- ध्येय फल ।
'कासीत् प्रमाप्रतिमा किं निदानम्'
ऋ. १०.१३०.३

निदधे- निदधाति (रखता है) । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग है ।
'त्रेधानिदधे पदम्'
ऋ. १.२२.१७, अ. ७.२६.४, साम. १.२२२, २.१०१९, वाज.सं. ५.१५, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२.९,१८.१७,४.१.१२,१६.४, का.सं. २.१०, श.ब्रा. ३.५.३.१३, नि. १२.१९.
आदित्य सृष्टि में तीन प्रकार से अपना पद अर्थात् डेग रखते हैं (त्रेधा पदं निदधे) ।

निदहाति - निदहतु (निश्चय रूप से भस्म कर दे) । दह् धातु के लट् में आट् का आगम हुआ है ।

निदाता- रोकने वाला ।
'निदातारं नि विन्दते'
ऋ. ८.७२.५

निदित- (१) खूब कर्म के बन्धनों में बंधा हुआ, (२) निन्दित जीव ।
'शुनश्चित् शेपं निदितं सहस्रात्'
ऋ. ५.२.७, ऐ.ब्रा. ७.१७.१, शां.श्रौ.सू. १५.२३.

निदिता- निन्दक, निन्दा करने वाला ।
'उदिता यो निदिता वेदिता वसु'
ऋ. ८.१०३.११

निधन- (१) समस्त धन सम्पदा ।
'अध्रं पीबो मज्ञा निधनम्'
अ. ९.७.१८
(२) निधान, परम आश्रय (३) अतिथि के भोजन के बाद बचा हुआ उच्छिष्ट अन्न । आश्रय और निधान अर्थ में प्रयोग-
'निधनं भूत्याः प्रजाया पशूनाम्'
भवति य एवं वेद'
अ. ९.६.४५.
(४) सामगान का भाग, ।
'प्रतीहारो निधनम्'
ऋ. ११.७.१२.

निधनवन् - (१) यज्ञ में पंक्ति छन्द से उत्पन्न निधनवन् साम (२) शत्रु से हनन ।
'पंक्त्यै निधनवत्'
वाज. सं. १३.५८, तै.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.७.१९, १०४.१३, का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.१.२.८.

निधा- (१) जाल ।
'मुमुग्धि अस्मान् निधयेव बद्धान्'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१७, तैब्रा. २.५.८. ३, तै.आ.४.४२.३, तै.आ. (आंध्रः) १०.७३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१ , नि. ४.३.
(२) नि + धा + क = निधा, योहि बालमयः स्नायुमयः वा पाशसमूहः (बाल या स्नायु का बना पाश समूह) । निधा पाश्या भवति (निधा) बन्धना है ।
यत् निधीयते (चूंकि पक्षियों को फंसाने के लिये यह नीचे रखा जाता है) । 'निधि' से निधा बना है । नि + धा + कि = णिधि = निधा । अर्थ है- बन्धन ।
हे आदित्य । बन्धन में बंधे पक्षियों की तरह (निधया बद्धान् इव) हमें अपनी किरणों से मुक्त कर (मुमुग्धि) ।

निधाता- (१) समस्त संसार को नियम में धारण करने वाला, (२) प्रकृति के भीतर बीज निधाग करने या उत्पन्न कराने वाला - परमेश्वर ।
'उग्रं निधातुः अन्वायमिच्छन्'
ऋ. ५.३०.२

निधातुः- सं. । प्रथमा एक वचन में । अर्थ है- पाशों का जुए पर रखे जाने की क्रिया ।
'बिभीयादा निधातोः'
ऋ. १.४१.९, नि. ३.१६

जुएं पर पाशा रखने के समय डरते हैं ।
(२) चोरी का माल रखने वाला ।
(३) वीर्य निषेक करने वाला माता पिता ।
(४) अन्यायेन पर पदार्थानां स्वीकर्त्ता (अन्याय से दूसरे की चीज लेने वाला) ।

निधानम्- (१) निधान । नि + धा + ल्युट्
(१) जिसमें कुछ रखा जाय कोष ।
'चकारगर्भं सनितु निधानम्'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.
पालने पोसते बहनोई के गर्भ धारण के योग्य पुत्री को पिता बनावे ।
(२) नियोजन अश्वों का रथ मे जोता जाना भी निधान है -दया. (३) रथशाला ।

निधान्य- विशेष धन या धान्य के योग ।
ऋ. ८.७२.१८

निधानी - नि + धा + ल्युट् = निधान । निधान + ङीष् = निधानी । गर्भो निधीयते अस्याम् (इसमें गर्भ धारण किया जाता है) । गर्भ निधानी स्त्री का विशेषण है ।

निधि- नि + धा + कि = निधि । अर्थ है- (१) शेवधि, भण्डार । निधीयते अस्मिन् इति निधिः (इसमें कोई पदार्थ रखा जाता है) ।

निधिपति- कोष, खजाने का स्वामी ।
'निधीनां त्वां निधिपतिं हवामहे वसो मम्'
वाज.सं. २३.१९, तै.सं.७.४.१२.१, मै.सं. ३.१२.२०, १६६.१२, (आश्व.) ४.१, तै.ब्रा. ३.९.६.१

निधिनाः - पृथ्वी रूप राष्ट्र या धन का बालक -राजा ।
'पृथिवी ह्येष निधिः'
श.ब्रा. ६.५.२.३
'षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्'
अ. १२.३.३४,४१,

निधिमान् - कोश का स्वामी ।
'गृध्रेव वृक्षम् निधिमन्तमच्छ'
ऋ. २.३९.१

निध्रुविः- (१) स्थिर सबका धारक आत्मा ।
'अन्तर्देवेषु निध्रुविः'
ऋ. ८.२९.३
(२) नित्य, ध्रुव, स्थायी रूप से वर्तमान अग्नि ।
'यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा'
ऋ. ७.३.१, साम. २.५६९, का.सं. ३५.१, आप.श्रौ.सू. १४.१७.१.

निनम- विनय से स्वीकार करने का अवसर ।
'न पर्वता निनमे तस्थिवांसः'
ऋ. ३.५६.१

निनसै- निनंसै- नीचैर्नमाम-निनिमाम- निनमै (नीचे हो जाते हैं, नवाते हैं, थाह में हो जाते हैं) । नि + नंस के लेट् उत्तम पुरुष एक वचन में निनसैः 'सिस बहुलम्' से 'म्' का 'स' हो जाता है । नम् धातु नम्र होने के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

निनित्सु- (१) निन्दक पुरुष, निन्दा करने की इच्छा करने वाला ।
'विश्वात् रिरिक्षोरुत वा निनित्सो निनित्सोः'
ऋ. १.१८९.६
पुनः -
'आरेते शंसं कृणहि निनित्सोः'
ऋ. ७.२५.२

निशिशानः- खूब तीक्ष्ण करने वाला मनुष्य ।
'निशिशाना अतिथिमस्य योनौ'
ऋ. ७.३.५

निन्दिता- निन्द्रा करने वाला, ।
'न किरेषां निन्दिता मर्त्येषु'
ऋ. ३.३९.४

निपक्षतिः - दूसरी पसली ।
'सरस्वत्यै निपक्षतिः'
वाज.सं. २५.५, तै.सं. ५.७.२१.१.

निपत्ततः - पैर तक ।
'निशीर्षतो निपत्ततः'
अ. ६.१३१.१

निपात- उच्चानचेषु अर्थेषु निपतन्ति (जो शब्द ऊंच नीच अर्थों में प्रयुक्त हो जायें और वही मान भी लिया जाए और उसे निपात कहते हैं ।
नि + पत् + ण = निपात । ऐसे शब्द अनेक हैं । जैसे प्रपि, इव, न, चित्, नू, यथा, तथा, ननु इत्यादि ।

निपातभाज् - जिस देवता का अन्य देवों के साथ गौण रूप में वर्णन हो वह निपातभाक् है । जैसे 'सोमस्य राज्ञः' आदि मन्त्रों में विधाता, सोम, वरुण, बृहस्पति आदि अनेक देवताओं के साथ

किसी अन्य देवता का गौण रूप से वर्णन होने से निपातभाक् कह लायेगा ।

निपाद- (१) निश्चिताः निम्नाः वा पादाः यस्य- दया. (जिसके पाद नीचे हो-) (२) नीचे आते हुए मेघ (३) निम्न स्थान पर स्थित प्रजाजन
'समा भवन्तूद्वतो निपादाः '
ऋ. ५.८३.७, तै.सं. ३.१.११.६, का.सं. ११.१३.

निपाति- (१) सब प्रकार से रक्षा करता है ।
'कृत्वा निपाति वृजिनानि विश्वा '
ऋ. १.७३.२

निपुर् - (१) निकट का रहने वाला (२) बिना घर बार का
'परापुरो निपुरो ये भरन्ति '
अ. १८.२.२८, वाज.सं. २.३०, श.ब्रा. २.४.२.१५, आप.श्रौ.सू. २.६.२, शां.श्रौ.सू. ४.४.२, आप.श्रौ.सू. १.८.७, मा.श्रौ.सू. १.१.२.८, साम. मं.ब्रा. २.३.४.

निपूत- (१) अच्छी प्रकार पवित्र किया हुआ ।
'वने निपूतं वन उन्नयध्वम् '
ऋ. २.१४.९
(२) अत्यन्त पवित्र ।
'निपूतो अधिबर्हिषि '
ऋ. ८.१७.११, अ. २०.५.५, साम. १.१५९,२.७५.

निभञ्जन- न. । (१) आमर्दन, (२) पराजय, (३) कटजाना ।
'तस्य अनु निभञ्जनम् '
अ. २०.१३१.२

निभूयप- ब.व. । सबके नीचे सबका आश्रय होकर जो सब की रक्षा करे वह व्यापक शक्तिमान् प्रभु या राजा विष्णु ।
'विष्णवे निभूयपाय स्वाहा '
वाज.सं. २२.२०, तै.सं. ७.३.१५.१, मै.सं. ३.१२.५,१६२.६, का.सं (अश्व) ३.५, श.ब्रा. १३.१.८.८, तै.ब्रा. ३.८.११.२.

निमन्युः- हार्दिक क्रोध से रहित कामिनी
'मृदुर्निमन्युः केवली '
अ. ३.२५.४

निमित- (१) स्थिर रूप से ज्ञानवान् (२) खूब परिमित भाषण करने वाला, (३) अपने राज्यों और क्षत्रों को मापने वाला ।
'निमितासो यतस्रुचः '
ऋ. ३.८.७
(४) नियम में व्यवस्थित ।
'अनुव्रताय निमितेव तस्थुः '
ऋ. ३.३०.४
(५) बनाई गई ।
'ब्रह्मणा शालां निमिताम् '
अ. ९.३.१९
पुनः-
'भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा '
ऋ. ५.६२.७
निमिष्

निमिष् - (१) सूर्यास्त, (२) अज्ञानमय अन्धकार काल, (३) असावधा नता का अवसर, (४) निन्तब्ध रात्रि ।
'अनिशितं निमिषि जर्भुराणः '
ऋ. २.३८.८
(५) देखते ही पलक मारते मारते ।
'सखा सख्युः निमिषि रक्षमाणाः '
ऋ. १.७२.५

निमिषन्ति- सोते हैं । 'निमिष्' धातु सोना अर्थ में प्रयुक्त है ।
'न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते '
ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९.

निमिश्ल- (१) निमिश्र निःसक्त ।
'सुतइत त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे '
ऋ. ६.२३.१
(२) खूब कठोर ।
'इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्लः '

निमिश्ला- (१) निमिश्रा, (२) सब पदार्थों में गूढ़ रूप से रहने वाली विद्युत् (३) अच्छी प्रकार शुभ गुण विद्या आदि स्वभाव द्वारा अपने को मिलाने वाली -स्त्री ।
'शुभे निमिश्लां विदथेषु वज्राम् '
ऋ. १.१६७.६

निमिषत्- (१) निमेष उन्मेष करने वाला, (२) श्वास प्रति श्वास लेने वाला प्राणी ।
'ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतः '
अ. ९.२.२३

निम्रुच् - (१) नितरां गच्छन्ती (सदा चलने वाली (२) रात- दया. ।
'आ निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव '

ऋ. १.१५१.५

निमृग्र- (१) नितरां शुद्धि हेतुः (२) अतिशुद्ध करने वाला ।

'आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्नाः '

ऋ. २.३८.२

निमेघमानः- (१) मेघवत् ज्ञान की या शरों की वर्षा करता हुआ

'निमेघमाना अत्येन पाजसा '

ऋ. २.३४.१४

(२) नियम से प्रजा पर सुख वर्षा करने वाला राजा (३) मेघ, (४) इन्द्र

'निमेघमानो मघवन् दिवे दिवे '

ऋ. ८.४.१०

निमेष- (१) चमक, (२) रातदिन, (३) नियम से होने वाले मेष, आदि सूर्य की राशियां , (४) त्रुटि, (५) काष्ठा (६) विपल, पल, घटी, होरा याम, दिन, पक्ष,वर्ष आदि, (७) आत्मा के द्वारा नेत्रादि इन्द्रियों के निमीलन और उन्मीलन (८) जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा निरन्तर होने वाला उन्माद और विनाश (९) राजा के पक्ष में-छोटे बड़े कार्य

निम्रुक्- अ. । नीचे नीचे

'निम्रुक् ते गोधा भवतु '

अ. ४.३.६

निम्रोचन् - अस्तहोता हुआ सूर्य

'निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः '

अ. २.३२.१

नियता- स्त्री. वि. । नि + यम् + क्त + टाप् = नियता । अर्थ है- निबद्ध । दे. 'गौः'

'वृक्षो वृक्षे नियता मीमयद्गौः '

ऋ. १०.२७.२२, नि. २.६.

प्रत्येक धनुष में निबद्ध मौर्वी (वृक्षे वृक्षे नियता गौः) इन्द्र की भुजाओं से खींची जाकर शब्द करती है । (मीमयत्)

नियमी- धावा, आक्रमण करने वाला

'त्वेषं नियमिनं रथम् '

ऋ. १०.६०.२

नियव- नियम से किया हुआ मेल-संयोग

'गोषु युधो न नियवं चरन्तीः '

ऋ. १०.३०.१०

नियान- (१) नीचे जाने वाला मार्ग

'यत् ते नियानं रजसम् '

अ. ८.२.१०

(२) रथ

'इदं पूर्वमपरं नियानम् '

अ. १८.४.४४

(३) जीवों का नीचे जाना

'यन्नियानम् न्ययनम् '

ऋ. १०.१९.४

(४) निरयणं वर्त्म (सूर्य का दक्षिणायन मार्ग) । यह मार्ग सूर्य के लिए रात्रि है इसलिए इसे कृष्ण समझा गया है । नि उपसर्ग निर् के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । नि + या + ल्युट् = नियान = निर्याण = निरयण । निर्गच्छति अनेन (इस मार्ग से बाहर जाता है । यह व्याख्या दुर्ग की है ।

नियानम् ' का अर्थ है- सूर्य का अयन - दक्षिणायन और उत्तरायण मार्ग ।

नियुत् - (१) नियुध, (२) युद्ध कारिणी सेना या शक्ति

'सनो नियुद्भिः पुरुहूत वेधः '

ऋ. ६.२२.११, अ. २०.३६.११

(३) उवट के अनुसार यह उभय लिंग है । (४) अश्व, (५) नियुक्त पदाधिकारी, (६) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाली सेना (७) वेगवान् वायु, (८) अपने अधीन वेग से चलने वाला अश्व (९) सेना (१०) मृत्यु

'नियद् युवेथे नियुतः सुदानू '

ऋ. १.१८०.६.

'आ नो नियुद्भिः
शतिनी भिरध्वरम् '

ऋ. १.१३५.३, ७.९२.५, वाज.सं. २७.२८, मै.सं. ४.१४,२, १७.५, श.ब्रा. ५.१६.११, तै.ब्रा. २.८.१.२, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, ८.९.२.

'अध वायुं नियुतः सश्चतस्वाः '

ऋ. ७.९०.३, वाज.सं. २७.२४, मै.सं. ४.१४., २१७.३, तै.ब्रा. २.८.१.१.

(९) बड़वा, (१०) वायोः वाहनम् (वायु का वाहन) । इसी से वायु का नाम नियुत्वान् है । नि. + यम्, अथवा युज् + क्विप् = नियुत् (११) वायु का अश्व नियुत् माना गया है,

नियुत- (१) लक्ष, लाख सहस्रं दश कृत्वः

अयुतम् । दश कृत्व अयुतम् नियतम् (दस हजार का एक अयुत और दस अयुत का एक नियुत)
'अयुतं च नियुतं च'
वाज.सं. १७.२, मै.स. २.८.१४,११८.१५, का.सं. १७.१०.
'नियुतं राय ईमहे'
ऋ. १.१३८.३.
ऐश्वर्य के लक्षों की सम्पदा तुझ से मांगते हैं ।
(२) समस्त वेगों या बलों को प्राप्त ।
'याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा'
ऋ. ३.३५.१,७.२३.४, अ. २०.१२.४, वाज.सं. ३३.१८, तै.ब्रा. २.७.१३.१.
नि + यु + क्त = नियुत । युधातु मिश्रण तथा अभिश्रण अर्थ प्रयुक्त है । यहां मिश्रण अर्थ में प्रयोग है ।

नियुतः नरः-(१) नाना पदों पर नियुक्त (२) लक्ष्यों की संख्या में नायकगण ।
'अधानरोन्योहते
अध नियुत ओहते'
ऋ. ५.५२.११

नियुत्वाः- नियुक्त शिष्यों का (नियुत्वस्) स्वामी-गुरु ।
'अधा नियुत्व उभपस्य नः पिव'
ऋ. ८.१०१.१०

नियुद्रथः- (१) सहस्रों, लक्षों वेगवान् रथों या लोकों का स्वामी (२) महारथी सेनापति ।
'प्र दस्ता नियुद्रथः'
ऋ. १०.२६.१

नियुत्वान् - (१) सेनाओं का नियन्त, (२) वायु,
'नियुत्वान् वायवागहि'
ऋ. २.४१.२, वाज.सं. २७.२९, वाज.सं. (काण्व) २९.२९.
(३) लोकों को नियम में रखने वाला या उन्हें परस्पर मिलाने वाला- वायु या सूर्य का विशेषण ज.दे.श. (४) बड़वा को वाहन बनाने वाला वायु या पूषा ।
नियुत् (बड़वा) + वतुप् = नियुत्वत्
'वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान्'
ऋ. ७.३९.२, वाज.सं. ३३.४४, नि. ५.२८.
लोकों के कल्याण के लिए, लोकों को नियम में रखने वाला या उन्हें परस्पर मिलाने वाला या सायण के अनुसार बड़वा को वाहन बनाने वाला वायु एवं पूषा है ।

नियूय- नि + यु (बांधना जोड़ना) + ल्यप् = नियूय । अर्थ है- बांधकर, निबद्धकर ।
'वनस्पते रशनया नियूय'
ऋ. १०.७०.१०, मै.सं. ४.१३.७,२०९.१, का.सं. १८.२१, तै.ब्रा. ३.६.१२.१, आश्व.श्रौ.सू. ९.५.२.
हे वनस्पते, ज्वाला से निबद्ध कर...

नर्यः- नृभ्यो हितः(मनुष्यों का उपकारी) । नृ + यत् अर्थ (१) मनुष्यों के लिये कल्याण कारी परमेश्वर ।
'यस्येदिन्द्र पुरुदिनेषु होता
नृणां नर्यो नृतयः क्षपावान्'
ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१
जिस स्तोत्र के लिये मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा या शूरों में श्रेष्ठ शूर (नृणां नृतमा तथा मनुष्यों का उपकारी (नर्यः) सोम भागी (क्षपावान्) इन्द्र भी (इन्द्र इत्) नित्य यह स्तोत्र मेरा हो ऐसा कहता हुआ ललचता है । (पुरुदिनेषु होता)-
अथवा जिस वेद का (यस्य) नायकों में श्रेष्ठ नायक (नृणां नृतमः) मनुष्यों के लिये कल्याणकारी (नर्यः) और प्रलयरात्रि को करने वला (क्षपावान्) परमेश्वर ही (इन्द्रइत्) बहुत दिनों के व्यतीत हो जाने पर (पुरुदिनेषु) प्रलय के बाद प्रदाता है (होता)

निर्- एक अव्यय जिसका प्रयोग नञ् और वहि अर्थों में होता है जैसे निर्धन, निर्गमन ।

निरज- निः + अज । शत्रुओं को उखाड़ फेकना ।
'सुगान् पथो अकृणोन् निरजेगाः'
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.

निरव = निर् + अव । अर्थ है- निःशेष समस्त ज्ञानों और रक्षण सामर्थ्यों वाला परमेश्वर ।

निर्ऋत्य- अलग करना ।
'जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्वसित्'
अ. १०.२.२.

निर्ऋत्याः पुत्रः- (१) पाप- प्रवृत्ति का पुत्र स्वप्न
'निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः'
अ. १६.५.२.

निर्ऋति- (१) निरुद्ध ऋति अर्थात् सत्यगति या ज्ञानमय आचरण से शून्य अविद्या ।

'यत् ते देवी निर्ऋतराबबन्ध'
अ. ६.६३.१, तै.सं. ४.२.५.२ आप.श्रौ.सू. १६.१६.१,
(२) दुष्टों को दुःख देने वाला परमेश्वर, (३)दुःखदायिनी प्रकृति ।
'निर्ऋते निर्ऋत्या नः'
अ. १९.४४.४, कौ.सू. ४७.१६.
(४) चेतना से रहित जड़ प्रकृति ।
'बहुप्रजा निर्ऋति माविवेश'
ऋ. १.१६४.३२, अ. ९.१०.१०
(५) पाप की प्रवृत्ति ।
'आर्तिरवार्तिर्निर्ऋतिः'
अ. १०.२.१०
(६) निः + ऋतिः । आत्मा को नीचे ले जाने वाली पाप प्रवृत्ति ।
'अवामृक्षन् निर्ऋते ते मुखेन'
अ। ७.६४.२
(७) ऋति अर्थात् सम्यक् उपचार, लालन पालन और उत्तम शिक्षा के अभाव से होने वाला कष्ट ।
'क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या'
अ. २.१०.१
(८) महान् कष्ट ।
'स मातुर्योना परिवीतो अन्तः
बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश'
ऋ. १.१६४.३२, अ. ९.१०.१०, नि. २.८.
वह जीवात्मा माता के गर्भ में आकर उदर में उल्व और जरायु से परिवेष्ठित हो यथा समय उत्पन्न होकर अनेकों जन्म प्राप्त करने वाला (बहुप्रजाः) प्रकृष्ट दुःख को प्राप्त करता है (निर्ऋतिमाविवेश)
(९) पाप देवता ।
'देवाः कपोत इषिता यदिच्छन्
दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम'
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिम्
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे
ऋ. १०.१६५.१, अ. ६.२७.१,
कपोत निलयरा शान्ति के लिए अभिप्रेत घर में कपोत के आने पर इस मन्त्र से जाप किया जाता है । हे देवो, पाप देवता के निकट से आया हुआ कपोत (निर्ऋत्याः इषितः कपोतः) जिस धन आदि की कामना करता हुआ (यत् इच्छन्) हमारे इस घर में आया (इदम् आ जगाम) उस पाप से निवृत्ति पाने के लिये (तस्मा निष्कृतिम्) आप लोगों की हम अर्चना करते हैं (अर्चाम) अतः हमारे पुत्र पौत्र का कल्याण हो तथा चतुष्पद गौ आदि का भी कल्याण हो ।
(१०) पृथिवी । निविष्टानि रमन्ते अस्यां भूतानि इति निर्ऋतिः (इस पृथिवी में निविष्ट हो जीव बसते हैं अतः यह निर्ऋति है)। निर् + रम् = + क्तिन् = निर्ऋति (रम् का ऋ) । निर्ऋतिः निरमणात्
(११) पाप । ऋक्ष धातु का अर्थ गति, इन्द्रिय प्रलय तथा मूर्तिमान हैं । इन अर्थों से विपरीत कृच्छ्रापत्ति अर्थ में यहां ऋक्ष का प्रयोग हुआ है । कृच्छ्रापत्ति का अर्थ नारकीय दुःख है अतः निर्ऋति का अर्थ पाप है । नि + ऋक्ष् + क्तिन् निर्ऋति ।
(१२) निर्घृण । नियता ऋति. घृणा यस्याः सा (जिसकी घृणा चली गई हो । घृणा रहित निर्घण
ऋतिर्गतौ घृणायाञ्च
स्पर्द्धापाञ्च शुभे ऽपिच-रभस
(१३) नरक, (१४) अशुभ । निर्गता ऋतेः (शुभ से रहित)
आधुनिक अर्थ- विनाश, ह्रास, आपत्ति, प्रकृष्ट दुःख, शाप, मृत्युदेवी, नैर्ऋत्य कोण की अधिष्ठात्री देवी ।

निर्ऋथ- (१) मृत्य दण्ड ।
'द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्'
ऋ. ७.१०४.४, अ. ८.४.१४.
(३) अत्यन्त दुःख, (४) धन, सत्य, अन्न, ऐश्वर्य आदि से रहित कष्टमय जीवन ।

निरज- निरजनम् । निर + अज् (गति) । अर्थ है-
(१) निर्गमन, निकास ।
'सुगान् पथो अकृणोत् निरजेगाः'
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.
हे इन्द्र, तू ने जल के निर्गमन के लिये सुगम पथ बनाए ।

निरयण - (१) मूल प्रकृति 'बुध्न' से निकला व्यक्त जगत् ।
'पश्चात् निरयणं कृतम्'
ऋ. १०.१३५.६

निरवद्य- निर् + अवद्य । अर्थ निन्दनीय ।
'अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्'
ऋ. १.११५.६, वाज.सं. ३३.४२, मै.सं. ४.१४.४, २२०.११, तै.ब्रा. २.२.७.२
सूर्य के उदय के समान हे विद्वानो, आप लोग निन्दनीय पाप से सर्वथा मुक्त हो जाओ ।

निरष्ट- पराजित, परास्त ।
'वृषायुधो न वध्रयोनिरष्टाः'
ऋ. १.३३.६

निर्ऋथ - सर्वथा नाश करने वाला ।
'निर्ऋथो यश्च निस्वरः'
अ. १२.२.१४, तै.अ. २.४.१

निर्जभार- निर्जहार, निर्हृतवान् (निकाल दिया)। नि + हृ का लिट् प्र .पु. ए.व. का. रूप । हृ का भ आदेश ।

निर्जर्जल्य - (१) अत्यन्त जर्जर, (२) बेसुध, (३) मृत्यु ग्रस्त ।
'निर्ऋतिं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा'
वाज.सं. २५.२

निर्दहनी- जलाने वाली ।
'निर्दहनी या पृषातकी'
अ. १४.२.४८

निर्दाह - अत्यधिक दाह कारी रोग । निर् + दाह ।
'निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः'
अ. १६.१.३

निर्भक्त- (१) जिसे कोई भाग न मिले । निर् + भक्त ।
'ततो निर्भक्तो योऽस्मां द्वेष्टि'
वाज.सं. २.२५, श.ब्रा. १.९.३.१०,१२.
(२) फंसा हुआ ।
'निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम्'
अ. २.३५.२

निर्भज- बाहर करना । निर् + भज ।
'निरन्तरिक्षात् भजाम'
अ. १६.७.६

निर्भूति- (१) चेतना की बाह्य सत्ता ।
'निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः'
अ. १६.५.६

निर्मथित- (१) दो अरणियों के बीच मथा - अग्नि, (२) विशेष आलोकित ज्ञान, (३) शास्त्र का ज्ञाता विद्वान् ।
'निर्मथितः सुधित आ सधस्थे'
ऋ. ३.२३.१

निर्मायाः- (१) चेतना,-रहित इन्द्रियां (२) माया रहित ।
'निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्'
ऋ. १०.१२४.५

निर्याचन्- (१) मुक्त करने का प्रयत्न करता हुआ ।
'निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय'
अ. ६.१३३.३

निबधि- (१) शरीरस्थ सिरके बीच के भेजे का श्वेत भाग, (२) अच्छी प्रकार रोक लेने का उपाय, (३) निरन्तर ताड़न या प्रहार ।
'स्तनयित्नुं निर्बाधेन'
वाज.सं. २५.२, तै.सं. ५.७.१२.१, मै.सं. ३.१५.२,१७८.४, का.सं.(अश्व.) १३.२.

निर्हस्त- (१) हनन साधन या सामर्थ्य से रहित पुरुष ।
'निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तम्'
अ. ६.६५.२
(२) निहत्था, शस्त्ररहित
'निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः'
अ. ३.१.१,२.१

निर्ह्रय- विष को शरीर से बाहर करना । निर् + ह्रय । धातु ।
'ततस्ते निर्ह्रयामसि'
अ. ७.५६.३

निरामिन् - नित्य स्वंय ही रमण करने वाला विलासी पुरुष ।
'निरामिणो रिपवो ऽन्नेषु जागृधुः'
ऋ. २.२३.१६

निराल- निर् + आल । आल का अर्थ है बन्धन, अतः निराल' का अर्थ हुआ (१) निर्बन्ध, बन्धन रहित मुक्तजीव, (२) निराल नामक एक रोग ।
'बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल'
अ. ५.२३.४, ६.१६.३

निराविध्यत् - सम्प्राहरत् (सम्यक् प्रकार से प्रहार किया) । निर् + अविध्यत् = निराविध्यत् । यास्क के अनुसार 'अविध्यत्' के अ का आ हो गया है । विध् धातु के वेधन करने के अर्थ में आया है। उसी के लङ् में प्र. पु. ए.व.का

रूप 'अविध्यत्' है । अर्थ है – सम्यक् प्रकार से प्रहार किया ।

'निराविध्यत् गिरिभ्यः आ
धारयत् पक्वमोदनम्
इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ।'

ऋ. ८.७७.६, नि. ६.३४.

इन्द्र ने मेघों को लक्ष्य कर (गिरिभ्यः) अच्छी तरह से खींचे वज्र को (स्वाततम् बुन्दम्) चलाया (निराविध्यत्) और ऐसा कर पके विद्यत् और ऐसा कर पके भात, खीर या अन्न की उत्पत्ति के लिये आधार रूप जल स्थिर किया ।

निरिणानः– शत्रुओं का नाश करता हुआ

'निरिणानो विधावति'

ऋ. ९.१४.४

निर्णिज् – (१) सर्वस्व शोधियता (सबको शुद्ध करने वाला) सूर्य । निद् + णिज् + क्विप् = निर्णिज् ।

'स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते'

ऋ. १०.२७.२४, नि. ५.१९.

इस सूर्य का वह गमन (अस्य निर्णिजः स पादुः) श्रम से कभी मुक्त नहीं होता (न मुच्यते) ।

निरीणीते– विवृणुते (विवृत करती है) प्रकट करती है ।

निरिन्द्रिय– इन्द्रियों से रहित ।

'निरिन्द्रियाः अरसाः सन्तुसर्वे'

अ. ९.२.१०

निर्णीतः– (१) निर्णिक्तः– शोधितः प्रमाणनयाभ्याम् (जो प्रमाण और नीति से शोभित हो)। निर् + नी + क्त = निर्णीत (२) अन्तर्हित होकर भी जो निश्चित साहो (अन्तर्हितोऽपि अदृष्टोऽपि निश्चितः । यह निर्णीत या निण्य है ।

(३) अनिश्चित पदार्थ का निश्चित होना ।

निरुद्धा– नि + रुध् + क्त + टाप् । अर्थ है – (१) रोकी हुई ।

'निरुद्धा आपः पणिनेव गावः'

ऋ. १.३२.११, नि. २.१७.

जिस प्रकार पाणि असुर ने गाएं रोक रखी थीं उसी प्रकार रोके हुए अन्तरिक्ष में थमे हुए थे ।

निरुन्धानः – (१) रोकता हुआ । नि + रुध् + शानच् ।

'निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना'

ऋ. १.५३.४, अ. २०.२१.४

(२) इन्द्रियों को विषय विलासों से रोकता हुआ

(३) रोकने वाला ।

निरूहथुः– निर् + ऊहथुः अर्थ है– (१) निकाला (२) पहुंचाओं ।

'निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि'

ऋ. १०.३९.४

हे अश्विनीद्वय, तुम दोनों ने तुग्र के पुत्र युज्यु को समुद्र से निकाला ।

हे राजा तथा राजपुरुषो, तुम दोनों वैश्य वण को (तौग्र्यम्) व्यापार के लिये समुद्र के पार पहुंचाओ (अद्भ्यः परि निरूहथुः) ।

निरेक – (१) निर्भय, (२) बहुत जनों से बसा स्थान, (३) अक्षय कोष ।

'उतश्वेतं वसुधितं निरेके'

ऋ. ७.९०.३, वाज.सं. २७.२४, मै.सं. ४.१४.२, २१७.३, तै.ब्रा. २.८.१.१.

(४) एकान्त ।

'स्वरन्ति त्वा सुतेनरो
वसो निरेक उक्थिनः'

ऋ. ८.३३.२, अ. २०.५२.२, ५७.१५, साम. २.२१५.

(५) सर्वोत्तम पद या धन ।

'अनिरेकमुत प्रियम्'

ऋ. ८.२४.४

(६) शंकारहित सन्मार्ग ।

'स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके'

ऋ. ७.१८.२३

(७) निर्धन – (८) संदेह स्थान ।

'इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके'

ऋ. १.५१.१४

इन्द्र शोभनकर्मा यजमानों के निर्धन होने पर (सुध्यः निरेके) सेवा करते हैं ।

राजा सन्देह स्थलों में बुद्धिमानों का आश्रय लें (इन्द्रः निरेके सुध्यः अश्रायि) ।

निरेतवे– (१) निर् + एतवे । निरन्तर जाने के लिये ।

'वयो मातु निरेतवे'

ऋ. १.३७.९

पक्षीगण जिस वायु के कारण अन्तरिक्ष में आने जाने में समर्थ होते हैं ।

(२) बाहर निकलने के लिए ।
'गोभ्यो गातुं निरेतवे'
ऋ. ८.४५.३०

निलायम्- नि + लाय । छिपे रहना क्रिया विशेषण ।
'यो निलायं चरति'
अ. ४.१६.२

निलिम्पा देवाः- पृथ्वी से निपट जाने वाला देव ।
'निलिम्पा नाम देवाः'
अ. ३.२६.५

निवचन- (१) निश्चित वचन, (२) सत्य वचन ।
'अवोचाम निवचनानि अस्मिन्'
ऋ. १.१८९.८.
(३) निश्चय ही श्रवण और प्रवचन करने योग्य ।
'इदं वपुः निवचनम् जनासः'
ऋ. ५.४७.५

निवत्- (१) नम्र होना ।
'श्वघ्नीव निवता चरन्'
ऋ. ८.४५.३८
(२) नीचग, तिर्यक् (नीचगति वाला), (३) नीच योनिवाला । नि + अव (गत्यर्थक) + शतृ = निवत् (अव के अ का लोप)
यह शब्द प्रवत् के प्रतिकूल अर्थ वाला है । प्रकृष्ट कर्म वाला या ऊंची गति वाल प्रवत् है । (४) निम्न प्रदेश । (५) नीचा स्थान, (६) निम्न श्रेणी का पुरुष ।
'निवत्सु अपः स्वपस्य या नरः'
ऋ. १.१६१.११
नीचे के गहरे स्थानों में (निवृत्सुः) उत्तम कर्मों की इच्छा या परोपकार से प्रेरित होकर (स्वपस्यया) जल एकत्र करो (अपः) ।

निवना- (१) नीचे प्रदेशों की ओर जाती हुई जलधारा ।
'आस्मैरीयन्ते निवनेव सिन्धवः'
ऋ. १०.४०.९

निवरः- (१) सब कष्टों का निवारण करने वाला- प्रभु ।
'आदु मे निवरो भुवत्'
ऋ. ८.९३.१५

निवर्तः - संसार को नियम से चलाने वाला ।
'आ निवर्त निर्वर्तय'
ऋ. १०.१९.६,

निवर्तन- (१) आग का बुझ जाना (२) विद्याभ्यास के पथ से लौट जाना, (३) लौटना (४) अधर्म कार्यों से हटाना ।
'न तत् ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनम्'
ऋ. ३.९.२, साम. १.५३, मा.श्रौ.सू. ३.८.१, नि. ४.१४.
(५) लौटना, (६) गति प्रतिरोध ।
'न पुनरस्ति निवर्तनम्'
अ. ३.६.७
(६) पुल्लिंग में अर्थ है - जगत् को नियम में चलाने वाला ।
'आ निवर्तन वर्तय'
ऋ. १०.१९.८, तै.सं. ३.३.१०.१
(८) जीवों का इस संसार से लौटकर जाना ।
'आवर्तनं निवर्तनम्'
ऋ. १०.१९.४,५, अ. ६.७७.२
(९) निवर्तन्ति प्रतिगन्छन्ति अनेन इति निवर्तनम् (इससे होकर निवृत होते या लौटते हैं) । नि + वृत् + ल्टुट् । अर्थ है-मार्ग ।
'न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनम्
यद्दूरे सन्निहाभुवः'
ऋ. ३.९.२, साम. १.५३,मा.श्रौ.सू.३.८.१, नि. ४.१४
हे अग्नि, मैं तेरा माता (जल या कष्ट) के समीप रहना सहन नहीं कर सकता जिससे तू अदृश्य होता हुआ भी हमें प्राप्त होता है, (१०) निवृत्ति,

निवर्हयः -नाश करता है ।

निवात- प्रबल वायु के झकोरों से रहित स्थान ।
'निवात इद्वः शरणे स्याम'
अ. ६.५५.२

निबाधित- दुःखित, अत्यन्त खिन्न ।
'पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम्'
ऋ. १.११९.८

निवाढ़ - (१) नित्यं सुखानां प्रापयिता -(दया) । नित्य सुखों का प्रापक, (२) अज्ञानान्धाकर का नाशक, (३) गिरता हुआ , गिरा हुआ ।

निवाश- चीख ।
'निवाशा घोषाः संयन्तु'
अ. ११.९.११

निव्याधी- नियत् लक्ष्य पर ठीक ठीक निशाना

लगाने वाला ।
'नमः सहमानाय निव्याधिने'
वाज.सं. १६.२०, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२२.१६,का.सं. १७.१२.

निविद्- (१) सब प्रकार के उत्कृष्ट ज्ञान कराने वाली शक्ति ।
'प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा'
अ. ५.२६.४
(२) निविद नामक ऋचा, ।
(३) निखिल पदार्थों को प्राप्त करने वाला ज्ञानवान् पुरुष ।
'पदैराप्नोति निविदः'
वाज.सं. १९.२५
(४) ज्ञानमयी वाणी ।
'तान् पूर्वया निविदा हूमहेवयम्'
ऋ. १.८९.३, वाज.सं. २५.१६
(५) विशेष विद्या युक्त वाणी ।
'शंसन्ति के चित् निविदो मनानाः'
ऋ. ६.६७.१०
(६) पढ़ने- ज्ञान करने योग्य वेद वाणी (७) नित्य विद्या, गुह्य उपनिषद्, (८) गुरु विद्या ।
'तामनु त्वा निविदं जोहवीमि'
ऋ. १.१७५.६, १७६.६.

निविदः- ब.व. । वेद की वाणियां ।
'किमुष्विदस्मै निविदो भनन्त'
ऋ. ४.१८.७

निविद्धा- (१) पति से अच्छी प्रकार संगत स्त्री, (२) सूर्य से संगत पृथ्वी (३) पुरुष से संगत प्रकृति ।
'सा वीभत्सः गर्भरसा निविद्धा'
ऋ. १.१६४.८, अ.९.९.८.

निविष्ट- छावनी या बस्ती बनाकर बैठा हुआ ।
'निविष्टाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१३, का. सं. (अश्व.) १.१०.

निवृत- (१) किया गया, (२) चाहा गया (३) व्यक्त किया गया, (४) एकत्रित ।
'आपो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन्'
ऋ. १०.९८.६
(५) सब प्रकार से अपनाया हुआ, (६) विनीत, (७) उपवीत, (८) वासनाओं या अज्ञान से घिरा हुआ, (९) कष्टों से या अज्ञानों से घिरा हुआ ।

निवृत्र- निश्चित शत्रु ।

निवेशन- (१) पद, स्थान । नि + विश् + ल्युट् ।
'निवेशनात् हरिव आ जभर्थ'
ऋ. ४.१९.९
(२) घर, (३) स्थिति, (४) बसाना, (५) निवास ।
(६) सबको यथास्थान स्थापित करने वाला -सूर्य या परमेश्वर ।
'बृहत् सुम्नः प्रसवीता निवेशनः'
ऋ. ४.५३.६

निवेशनी- (१) निवास करने योग्य (२) पृथ्वी का विशेषण ।
स्योना पृथिवी भवानृक्षरानिवेशनी । हे पृथिवी, तू सुखदायिनी , निष्कंटक एवं निवास योग्य बना
(३) निन्द्रा में निवेशन कराने वाली रात्रि, (४) जगत् को अपने भीतर रखने वाली परमेश्वरी शक्ति ।
'ह्वयामि रात्रिं जगतो निवेशनीम्'
ऋ. १.३५.१

निवेष्यं- (१) गौ के बैठने के कुल्हा ।
'विधरणी निवेष्यः'
अ. ९.७.४
(२) राष्ट्र के भीतर व्यापक, (३) राजधानी में बना मुख्य भाग, (४) ध्येय पदार्थ ।
'निवेष्यं मूर्ध्ना'
वाज.सं. २५.२
(५) उत्तम वेष पहनाने और बनाने वाला
'निवेष्याय च नमः'
वाज.सं. १६.४४

निःशश- क्रि. । सर्वथा दण्डित कर, (२) परास्त कर ।
'पृथिव्या निःशशा अहिम्'
ऋ. १.८०.१, साम. १.४१०.
पृथिवी से कुटिलाचारी सर्प तथा मेघवत् अस्त्र वर्षी शत्रु को सर्वथा दण्डित कर' ।

निःशस्- निः + शसु (हिंसा करना) + क्विप् ।
अर्थ- (१) पूर्ण हिंसा, (२) निर्बल कर गिराने वाला-पाप ।

'अवशसा निःशसा यत् पराशसा'
अ. ६.४५.२,
(३) निराशा, (४) अनिच्छा ।
'यदाशसा निःशसा'
ऋ. १०.१६४.३

निशित– (१) तेज धार वाला अस्त्र ।
'युष्मभ्यं हव्या निशिता न्यासन्
ऋ. १.१७१.४

निशितः– तीव्रता ।
'यज्ञस्य वा निशितिम् वोदितिम् वा'
ऋ. ६.१५.११
(२) अतितीक्ष्ण बुद्धि ।
'समिधा यो निशिती दाशददितिम्'
ऋ. ८.१९.१४.

निशिशीतम्– क्रिः (१) खूब तीक्ष्ण दण्ड दो । (नि + शिशीतम्) '
'इतं नुदेथां निशि शीतमत्रिणः'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.१०४.१, का.सं. २३.११.

निशीर्षतः– सिर से लेर
'निशीर्षतो निपततः'
अ. ६.१३१.१

निशृम्भः– (१) नि + श्रथ + घञ् = निश्रथा । निर्गतः श्राथः शैथिल्यं यस्याः सा निश्रथा गतिः (जिसगति की शिथिलता निर्गत हो गई हो) । निश्रथा + हृ + उ = निश्रृम्भ (श्रथ का शृम् और 'हर्' के 'ह' का 'भ') । निश्रथया गत्या हरति इति निश्रृम्भ (अविथिलगति से हरने वाला) (२) अथवा– निर + श्रथ् + क्विप् = निश्रृथ् । निशृथ् + हर्र् = निश्रृम्भ निश्रथ्यहारी, (३) अविश्रामहरण – विश्राम लिए बिना हरण करने वाला, (४) अविश्रान्त, अश्व के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है । 'निश्रथया अशिथिलया दृढ़या गत्या हरन् (५) अशिथिल गति से ले जाता हुआ । (६) नित्य स्थिर, (७) सम्बद्ध ।
'निशृम्भास्ते जनश्रियम्'
ऋ. ६.५५.६, नि. ६.४.

निष्क्रीत– (१) सब प्रकार से स्वतन्त्र । निस् + कृ + क्त । (२) जो किसी से खरीदा न गया हो ।
'निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु'
अ. २.३४.१, तै.सं. ३.१.४.२, का.सं. ३०.८.

निषङ्गधिः– खड्ग का कोश, म्यान ।
'आभुरस्य निषङ्गधिः'
वाज.सं. १६.१०, तै.सं. ४.५.१.४, मै.सं. २.९.२, १२२.४, का.सं. १७.११.

निषङ्गी– (१) खड्ग या तरकश वाला ।
(२) निकृष्ट संगति वाला
'निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः'
ऋ. ३.३०.१५
(३) शस्त्रागार में अस्त्र शस्त्रों का पालक ।
'नमो निषङ्गिणे ककुभाय'
वाज.सं. १६.२०, वाज.सं. (का.) १७.२.४, मै.सं. २.९.३, १२३.२, का.सं. १७.१२.

निषत्नुः(१) गर्भाशय में स्थिर गर्भ ।
'निषत्नुंयः सरीसृपम्'
ऋ. १०.१६२.३, अ. २०.९६.१३,.
(२) गर्भाशय में जमता हुआ ।

निषत्तः– (१) निश्चित रूप से विदित ।
'त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तम्'
ऋ. ५.३२.५
(२) नि + षद् + क्त । निश्चित रूप से स्थित, (३) अन्तरिक्ष का विशेषण ।
'असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते'
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८, मै.सं. २.१०.३, १३४.७, का.सं. १८.१, नि. ६.१५.
सुविस्तृत एवं निश्चित रूप से स्थित अन्तरिक्ष में वायु या प्राण से प्रेरित माध्यमिक देव गण मेघ मरुत् आदि ।

निषत्तिः– (१) उच्चपद पर स्थिति ।
'काते निषत्तिः किमु नो ममत्सि'
ऋ. ४.२१.९, मै.सं. ४.१२.३, १८६.१४

निषद्– (१) सिंहासन पर बैठना (२) बैठना ।
'रणावा ये निषदि सत्ते'
ऋ. ६.२७.२
(३) नि + सद् + क्विप् । विराजना ।
'योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि'
ऋ. १.१०४.१
हे इन्द्र, तेरे विराजने के लिये (निषदे) स्थान या आसन बनाया जाता है (योनिः अकारि) ।

निषदन– (१) घोड़े को बैठाना, (२) सुरक्षित रूप से गुप्त बैठने का स्थान ।
'निक्रमणं निषदनं विवर्तनम्'
ऋ. १.१६२.१४, वाज.सं. २५.३८, तै.सं. ४.६.९.१,

मै.सं. ३.१६१ ,१८३.८, का.सं.(अश्व.) ६.५.
(३) निश्चिंत बैठना, (४) घोड़ो का नियमपूर्वक खड़ा होना, (५) घोड़े की पीठ पर सवार होना, (६) राज सभा आदि के अधिवेशन का स्थान, (७) उठना बैठना ।

निषद्वर- (१) राजसभा में विराजने वालों में सबसे श्रेष्ठ । नि + सद् + क्विप् = निषद् । निषद् + वर = निषद्वर' ।
'होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरम्'
वाज.सं. २८.४, तै.ब्रा. २.६.७.२.

निषदा- (१) समीप बैठकर प्राप्त करने योग्य उपनिषद्-ब्रह्मविद्या ।
'अभिस्वरा निषदा गा अवस्यवः'
ऋ. २.२१.५

निष्क- (१) सुवर्ण आदि का बना आभूषण (२) सम्पूर्ण (३) समस्त रूप (४) सुवर्ण मुद्रा ।
'अर्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम्'
ऋ. २.३३.१०, मै.सं. ४.९.४,१२४.१०, तै.आ. ४.५.७.
(५) नीचे दबा हुआ, (६) निश्चेष्ट, (७) सोने का मोहर जिसमें छाप दी रहती है ।
'निष्कमिव प्रतिमुञ्चत'
अ. ५.१४.३, १९.५७.५
'शतं निष्कान् दश स्रजः'
अ. २०.१२.३, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.३.

निष्कग्रीवः- (१) जिसके गर्दन में स्वर्ग का आभूषण हो,सोने के मोहरों का बना आभूषण पहनने वाला ।
'नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः'
अ. ५.१७.१४
'निष्कग्रीवो बृहदुक्थः'
ऋ. ५.१९.३

निष्कर्त्ता- निस् + कृ + तृच् = निष्कर्तृ । प्रथमा ए.व. में निष्कर्ता । अर्थ है - (१) ठीक कर देने वाला ।
'निष्कर्ता विह्रुतं पुनः'
अ. १४.२.४७, साम. १.२४४, मै.सं. ४.९.१२, १३४.१, पंच.ब्रा. ९.१०.१, तै.आ. ४.२०.२.

निष्कृत- (१) स्थान ।
'एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव'
ऋ. १०.३४.५
(२) सफलता ।
'भद्रा त एति निष्कृतम्'
ऋ. ८.८०.७
(३) घर
'सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः'
ऋ. ३.५८.९.
(४) सर्वसाधन सम्पन्न आश्रय, (५) शुद्ध ज्ञान, सुख ।
'देवानामेति निष्कृतम्'
ऋ. ३.६२.१३, तै.सं. १.३.४.२,
(६) पद ।
'वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम्'
ऋ. ९.१३.१, साम. २.५३७.
(७) उत्तमरीति से बनाया हुआ
'उत त्यं चमसं नवं
त्व ष्टुर्देवस्य निष्कृतम्'
ऋ. १.२०.६.
(८) निष्पन्न, निश्चित, (९)निश्चित रूप से उत्तम शोभा सम्पन्न प्रकाश, (१०) शस्त्रादि से निश्चित उत्तम शोभाजनक कार्य ।
'अहरहः निष्कृत माचरन्ती'
ऋ. १.१२३.९
नित्य निश्चित रूप से उत्तम शोभा- सम्पन्न, प्रकाश करती हुई उषा ।
अथवा, शास्त्रादि से निश्चित उत्तम शोभाजनक कार्य का आचरण करती हुई स्त्री ।
(११) जुआड़ियों का अड्डा जहां से सभी इतर पुरुष यत्नपूर्वक बाहर रखे जाते हैं ।
'एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव'
ऋ. १०.३४.५
इन जुआड़ियों के (एषाम्) अड्डे पर (निष्कृतम्) स्वैरिणी व्यभिचारिणी स्त्री के सदृश (जारिणीव) आ जाता हूँ । (एमीत्)

निष्कृतिः- (१) रोग दूर करने में अचूक ओषधि ।
'तस्य त्वमसि निष्कृतिः'
अ. ५.५.४
(२) पा यश्चित्, संताप शोधन करना ।
'निष्कृत्यै पेशस्कारीम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४
(३) रोगांश को बाहर निकालने वाली ओषधि
'अथो यूयं स्थ निष्कृतीः'

ऋ. १०.९७.९, वाज.स,. १२.८३.
(४) निस् + कृ + क्तिन् = निष्कृति । अर्थ है- निवृत्ति, मुक्ति, छुटकारा
'तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिम्'
ऋ. १०.१६५.१, अ. ६.२७.१,
उस पाप से निवृत्ति पाने के लिए आप लोगों की हम अर्चना करते हैं ।

निष्केवल्यउक्थ- (१) निष्कैवल्य भाव (२) एकमात्र राजा का ही बल, उसका सर्वोपरि ।
'निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु'
वाज.सं. १५.१३, तै.सं. ४.४.२.२, मै.सं. २.८.९, ११४.३, का.सं . १७.८, श.ब्रा. ८.६.१.८.

निष्कैवल्य- (१) एकयज्ञ, (२) मोक्षो पदेश ।
'मरुत्वतीयाश्च मे निष्कैवल्यश्च मे'
वाज.सं. १८.२०, तै.सं. ४.७.७.२, मै.सं. २.११.५, १४३.६, का.सं. १८.११.

निष्ट- बलवान् ।
'निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन'
ऋ. १.११७.१५
तब दोनों वीर्य निषेक करने और धारण करने में बलवान् होकर (निष्टम्) परस्पर रीति से युक्त होकर (सुप्रजा) गृहस्थ कार्य का निर्वाह करें (ऊहथुः) ।

निष्टक्वरी- खूब ज्वर को फैलाने वाली, काटने वाली मच्छर जाति ।
'दांसी निष्टक्वरीमिच्छ'
अ. ५.२२.६

निष्टप्ता- खूब संतप्त ।
'निष्टप्ता अरातयः'
वाज.सं. १.७.२९, श.ब्रा. १.१.२.२,३.१.४, आश्व.श्रौ.सू. २.३.९, कौ.सू. ३.९.
(२) निस्तप्ता । निश् + तप् + तृच् = निष्टप्तृ । प्र.ए. में रूप निष्टप्ता । अर्थ है - खूब पीड़ित करने वाला
'निष्टप्ता शत्रुंपृतनासु सासहिः'
ऋ. २.२३.११

निष्ट्वत्क्रासः-निस् + त्वत्क्रासः । वस्त्रहीन मनुष्य ।
'निष्ट्वत्क्रासश्चिदिन्नरः'
नि. १.१०,
वस्त्रहीन (निष्टवत्क्रासः) तथा बहुत सन्तति वाले ।

निष्पपिन् - विनिर्गतः सपः यस्य स निष्पयी (जिसका जननेन्द्रिय विनिर्गत हो । । निर् + सप + इनि = निष्पपिन् ।
अर्थ - (१) स्त्रीकामः पुंश्चलः (जो स्त्रियों का कामी हो) । (२) विनिर्गतसपः (जिसका जननेन्द्रिय विनिर्गत हो । शेप का सप हो गया है ।
'प्रतियत् स्या नीथादर्शिदस्योः
ओको नाच्छा सदनं जानतीगात्
अघस्मानो मघवञ्च कृतादित्
मानो मघेव निष्पापी परादाः'
ऋ. १.१०४.५
हे इन्द्र, जिस प्रकार (यत्) हमारी वह स्तुति, (स्या नीथा) शत्रु को नष्ट करने वाले तेरे निवास स्थान के सदृश हृदय में (दस्योः ओकः न) सम्मुख ही (अच्छा) अपना घर समझती हुई (सदनं जानती) चली जाती है (गात्) । वह जाना हम से देखा जाता है (प्रत्यदर्शि) । अर्थात् यह जानते हुए कि हमारी स्तुति आप के हृदय में पहुंच जाती है हम यह कहते हैं कि बार बार की स्तुति रूपी कर्म से पराङ्मुख न करें (मा परादाः) अर्थात् हमें अपनी स्तुति से विमुख कर नष्ट न करे जैसे लम्पट विषयी मनुष्य अपने धन को नष्ट करता है (निष्पपी मघा इव)
स्वा. दयानन्द का अर्थ- जो यह न्याय प्राप्त प्रजा दस्यु से घर की तरह सुरक्षित होती है (यत् स्मया नीथा दस्योः ओकः न प्रत्यदर्शि) वह राष्ट्र को अपना घर समझती हुई प्राप्त होती है (सदनं जानती अच्छगात्) अतः हे मघवन् राजन् (अध मघवन्) दुष्कृत कर्म से (चकृतात्) हमें (नः) रक्षा करें, परन्तु (इत्) जैसे व्यभिचारी मनुष्य धन नष्ट करता है (निष्प मघा इव) एवं दुर्व्यसनों में डालकर हमारा नाश न कीजिए । (नः मा परादाः) ।
(३) स्त्रिया सह नितरां समवेतः (स्त्री भोग का व्यसनी पुरुष ।
तू हमें अपने व्यसनों के कारण पराए हाथों मत दे डाल जैसे व्यसनी व्यसन में ही नाना धन नष्ट कर जाता है ।

निष्ट्य- निस् + स्त्य । (१) नीचों के समान संघ-रहित, (२) निस्सहाय ।

'माभूम निष्ट्या इव'
ऋ.८.१.१३, अ. २०.११६.१, वै.सू. ४०.७,४१.१२.
(३) निकृष्ट पुरुष ।
'सनाभिर्यश्च निष्ट्यः'
ऋ. १०.१३३.५, अ. ६.६.३.
(४) नीच स्वभाव का, nasty (५) नीच, हीन, (६) निर्वासित ((७) नीच वर्ण का, (८) निर्बल ।
'सजातो यश्च निष्ट्यः'
अ. ३.३.६

निष्ट्य - नि + स्थ्य । (१) छिपकर रहने वाला, (२) दूर रहने वाला ।
'यश्च निष्ट्यो जिघांसति'
साम. २.१२२२.

निष्षणः- बैठा हुआ ।
'निषण्णाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८, तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३, १६१.२, का.सं. (अश्व.) १.१०.

निषाद- नि + सद् + घञ् =निषाद अर्थ (१) वनों पर्वतों में रहने वाला ।
'नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२७, मै.सं. २.९.५, १२४.७.
(२) निषण्णम् अस्मिन् पापकम् (जिसमें पाप स्थित है) । अर्थ है- पापी, नीच, (३) मनुष्य का विशेषण पञ्चजन है, जिसका अर्थ या तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद है या पञ्च शब्द मनुष्य का द्योतक है, पञ्चमुख परमेश्वर का भाव यही है पांच जो कहे वही परमेश्वर का कथन है । इसी शब्द से पञ्चायत बना है । इसका यह भी भाव है कि सभी वर्णों की सम्मिलित सम्मत्ति पञ्च की सम्मति है । यही पञ्चायत या प्रजातन्त्र है ।

निष्षाट् - निस् + सह् + क्विप् = निष्षाह् । अर्थ है -(१) निश्चयपूर्वक अभिभूत करने वाला । इन्द्र का विशेषण ।
'अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाट्
अभी द्वा किमुत्रपः करन्ति'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०.
निश्चय पूर्वक शत्रुओं अभिभूत करने वाला मैं अकेले उन्हें जीत लेता हूं । भला दो या तीन क्या करेंगे । (२) सब विघ्नों पर विजय पाने वाला, (३) सबको व्यापता हुआ सूर्य या मेघ ।
'प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट्'
ऋ. १.१८१.६

निषिक्तपाः- अभिषिक्त माण्डलिकों या निषिक्त गर्भों का पालक दयालु परमेश्वर ।
'अच्छा विष्णुं निषिक्तपाम् अवोभिः'
ऋ. ७.३६,९ आप.श्रौ.सू. १३.१८.१.

निष्टिग्री- (१) गुप्त रूप से सब को वश करने का उपदेश करने वाली राजसभा ।
'निष्टिग्र्यः पुत्र माच्या वयोतये'
ऋ. १०.१०१.१२, अ. २०.१३७.२

निष्षिध् - (१) निषेधाज्ञा, (२) अनुशासन, (३) कार्य-साधन करने वाली सेना या चेष्टा (४) वेदाज्ञा ।
'पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु'
ऋ. ३.५१.५
(५) बुरे मार्गों और बुरे आचरणों का निषेध करने वाला ।
'विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा'
ऋ. १.१६९.२

निष्षिध्वरी- रोगों को दूर करने और सब मंगल करने वाली ओषधि
'निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापः'
ऋ. ३.५५.२२.

निष्ठित- खूब अच्छी तरह से स्थित ।
'कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसः'
ऋ. १.१८२.७

निष्ठुर - निष्टुर् । शत्रु का सर्वथा नाश करने में समर्थ ।
'प्र व उग्राय निष्टुरे'
ऋ. ८.३२.२७.

निषेचन- मूत्रस्राव ।
'पृथिव्यां ते निषेचनम्'
अ. १.३.१-५.

निः- सर्वत्र समर्थ ।
'प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत्'
ऋ. ८.७९.२

निः खिदन् - सब प्रकार से ताड़ित ।
'तां न शक्नोति निः खिदन्'
अ. ५.१८.७

निंस्- प्राप्त होना, प्रेम से ग्रहण करना, चुम्बन

करना ।

निंसते- प्राप्त होता है । प्रेम से ग्रहण करता है, चुम्बन करता है ।

'या अस्य धाम प्रथमं हनिंसते'

ऋ. १.१४४.१

जो कान्तिमती कन्या इसके सर्वोत्तम तेज आदि गुणों को प्रेम से ग्रहण करती है । अथवा, जो वाणियां इस उत्तम विद्वान् शिक्षक के सबसे उत्तम धारण करने योग्य ज्ञान को प्राप्त होती है ।

निस्पृक्- खूब स्नेह करने वाला ।

'यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्'

ऋ. १०.९५.९

निसर- शत्रु पर अभिसरन्, आक्रमण , चढ़ाई ।

'क्रोधाय निसरम्'

वाज.सं. ३०.१४, तै.ब्रा. ३.४.१.१०.

निस्वरः- (१) अन्यों को उपताप या पीड़ा ने देने वाली ।

'निर्ऋथो यश्च निस्वरः'

अ. १२.२.१४.

(२) निःशब्द, बिना आवाज किए चुपचाप ।

'नि पर्शा ने विध्यतं यन्तु निस्वरम्'

ऋ. ७.१०४.५, अ. ८.४.५.

'प्रनिस्वरं चातयस्व अभीवाम'

ऋ. ७.१.७.

निससत्थ - नियम से स्थिर रहता है ।

'महीमपारां सदने ससत्थ'

ऋ. ३.३०.९

निंसान- न. । चुम्बन, स्पर्श ।

'निंसानं जुह्वो मुखे'

ऋ. ८.४३.१०, का.सं. ७.१२.

निःसाला- (१) आवारागर्दी का स्वभाव ।

'निस्सालां धृष्णुं धिषणम्'

ऋ. २.१४.१

निःसृज् - (१) निरन्तर वेग से जाने वाला, (२) सब प्रकार के कार्यों का सम्पादन करने वाला, (३) सर्व प्रकार से आत्मोत्सर्ग करने वाला ।

'व्रजस्य साता गत्यस्य निःसृजः'

ऋ. १.१३१.३, अ. २०.७२.२, ७५.१.

वे सब प्रकार आत्मोत्सर्गकरने वाले, (निः सृजः) गौ के हितकारी बेड़े के समान आश्रयपद लोकों को शरण रूप से प्राप्त होने योग्य आश्रय के लाभ के लिए । (व्रजस्य साता)...

निह्- (१) घातक, (२) प्रजाघातक ।

'अतिनिहो अतिसृधः'

अ. २.६.५, वाज.सं. २७.६, तै.सं. ४.१.७.२, मै.सं. २.१२.५, १४९.४, का.सं. १८.१६.

(३) कामादि शत्रु, प्रजा नाशक शत्रु के प्रतिभट

निहाका - (१) हा, मरा आदि कष्टध्वनि कारक पीड़ा, (२) सान्निपातिक रोग ।

'साकं नश्य निहाकया'

ऋ. १०.९७.१३, वाज.सं. १२.८७,तै.सं. ४.२.६.४, मै.सं. २.७.१३ ,९४.८, का.सं. १६.१३.

(३) रोग को निःशेष दूर करने की प्रक्रिया ।

निहार- गिरवी, छाती ।

'निहारं च हरासि में'

वाज.सं. ३.५०, वाज.सं. (का.) ३.६.२, श.ब्रा. २.५.३.१९.

निहितम् - नि + धा + क्त । रखा हुआ ।

'यस्मिन् यशोनिहितं विश्व रूपम्'

नि. १२.३८.

जिस सूर्य में अनेकों प्रकार का जल रखा हुआ है ।

नीक्षण- नि + ईक्षण । निरन्तर ईक्षण, निरन्तर देख भाल करना

'यनीक्षणं मास्य चन्या उखायाः'

ऋ. १.१६२.१३, वाज.सं. २५.३६, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१,१८३.४, का.सं. (अश्व.) ६.४.

नीचायमानः- नीचैः अयमानः। अय (गत्यर्थक) + शानच् । नीचैः निचितं भवति (नीचे का अर्थ निचित होता है) । नि + चि + डैस् = नीचैः । 'नौदीर्घश्च' से नि कानी हुआ । अर्थ है- (१) नीचे नीचे जाता हुआ -सा. (२) नीचता की ओर जाने वाला -दया. ।

'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुं
नीचायमानं जसुरिं न श्येनम्'

ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४.

और इस दधि क्रावा इन्द्र को युद्धों में देखकर लोग शत्रु शत्रु चिल्लाते हैं जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर को देखकर लोग चिल्लाते हैं तथा नीचे नीचे उड़ते हुए पालतू बाज को

देखकर अन्य पक्षी क्रन्दन करते हैं (नीचायमानं जसुरिं श्येनं न)
और चोर की तरह (तायुं न) युद्धों से (भरेषु) वस्त्रतक चुरा लेने वाले (वस्त्रमथिं)नीचता की ओर जाने वाले (नीचायमानम्) तथा मुक्त किए बाज की तरह हिंसक (जसुरिं श्येनं न) जिस राजा को प्रजा या शत्रु कोसते हैं (अनुक्रोशान्ति) – (दया.)

नीचावया– (१) निकृष्ट उम्र को प्राप्त हुई (२) नीचे
'नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रा'
ऋ. १.३२.९
अन्तरिक्ष को ढंकने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करने वाली अन्तरिक्ष भूमि जल को नीचे (नीचावयाः) गिरा देती है ।

नीचासत्– नीच पक्ष में रहने वाला ।
'नीचा सन्तम् उदनयः परावृजम्'
ऋ. २.१३.१२

नीचीः– (अ.) नीचे, नम्र होकर ।
'आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः'
ऋ. ७.१८.१५
मेघ या असुर जल की तरह विलीन प्राय हो नीचे होकर अर्थात् नम्र होकर चलने लगे –सा. फेंके हुए जल के समान राजद्रोहियों को नीचे पहुंचा ।

नीचीन– (१) नीचे पड़ा हुआ सर्प ।
'नीचीनस्योपसर्पतः'
अ. ७.५६.५
(२) न्यक् अच्यत इति नीचीनम् (नीचे की ओर जिसकी गति हो) । न्यक् + अञ्च् + ख (इन्) । = नीचीन ।

नीचीनबारः– (१) नीचे की ओर मुख वाला मधुमक्खी का छत्ता ।
'सारघेव गवि नीचीनबारे'
ऋ. १०.१०६.१०
(२) नीचीनद्वार । न्यक् अच्यत इति नीचीनम् (नीचे की ओर जिस की गति हो । नीचीनः वारःयस्य स नीचीन्बारः (जिसका घर नीचीन हो) (३) अधोमुखी द्वार वाला (४) जिसका ढक्कन या मुख नीचे की ओर किया गया हो–मेघ का विशेषण ।
'नीचीनबारं वरुणः कवन्धं'
'प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्'
ऋ. ५.८५.३, नि. १०.४
सम्पूर्ण भूतजात या उदक के राजा वरुण ने (वरुणः) मेघ को अधोमुखकर (कवन्धं नीचीन बारम्) द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर मानों पसार दिया (रोदसीं अन्तरिक्षं प्रससर्ज)

नीचैः– नीचैः निचितं भवति (नीच शब्द का अर्थ निचित होता है) । नि + चि + डैसि = नीचैः 'नौदीर्घश्च' से नि का नी । अर्थ है– नीचा, एक अव्यय ।

नीड– पु. । अर्थ– (१) स्थान, (२) निलय ।
'आयोर्हस्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'
ऋ. १०.५.६, अ.५.१.६.
(३) पक्षियों के रहने का स्थान–घोसला ।

नीलंगु– नीड़ मे बैठने वाला एक छोटी जाति का पक्षी ।
'नीलंगोः कृमिः'
वाज.सं. २४.३०, तै.सं. ५.५.११.१, मै.सं. ३.१४.११, १७४.९, का.सं.(अश्व.) ७.१.

नीथ– (१) उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाला मार्ग, (२) सत्य व्यवहार, (३) उत्तम वचन ।
'नीथे नीथे मघवानं सुतासः'
ऋ. ७.२६.२, तै.सं. १.४.४६.१, आप.मं.पा. २.११.८.

नीथा– (१) स्तुति – (२) न्यायप्राप्त प्रजा–दया (३) नीति (४) ब्रह्म मार्ग (५) सामगान
'प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योः
ओको नाच्छा सदनं जानती गात्'
ऋ. १.१०४.५
हे इन्द्र, जिस प्रकार (यत्) हमारी वह स्तुति (स्यानीथा) शत्रु को नष्ट करने वाले तेरे निवास स्थान के सदृश (दस्योः ओकः न) हृदय में सम्मुख ही (अच्छा) अपना घर समझती हुई (सदनं जानती) चली जाती है (गात्)
जो यह न्याय प्राप्त प्र जा (स्या नीथा) दस्यु से (दस्योः) घर की तरह (ओकः न) सुरिक्षत दीखती है (प्रत्यदर्शि) वह राष्ट्र को अपना घर समझती हुई प्राप्त होती है (सदनं जानती अच्छा गात्) – (दया.)

नीथा विद् – (१) विनयाचारों और गुणों एवं

नीतियों का ज्ञाता ।
'नीथा विदो जरितारः '
ऋ. ३.१२.५, साम. २.९२५, १०५३, मै.सं. ४.११.१, १५९.७.
(२) सामगान या ब्रह्म मार्ग का ज्ञाता ।

नीनाह – (१) घोड़े की पीठ पर बंधी काठी आदि ।
'अश्वमिव नीनाहम् न '
अ. १९.५७.४

नीप्य– बहुत गहरे जलस्थानों का अध्यक्ष ।
'नमः काट्याय च नीप्याय च '
वाज.सं. १६.३७

नीपातिथि– (१) सन्मार्ग दिखाने वाला अतिथि, (२) अतिथिवत् पूज्य पुरुष (३) एक वैदिक ऋषि ।
'यथा नीपातिथिं धने '
ऋ. ८.४९.९.

नीरिणाति– जाती है ।
'लोपामुद्रा वृषणं निरिणाति '
ऋ. १.१७९.४.
कामाविष्ट लोपामुद्रा अपने पति अगस्त के पास जाती है ।

नीलग्रीवः– नीलास्यः 'नीलम् आस्यम् मुखम् प्रवृत्ति द्वारम् रागादिः = येषां तथोक्ताः' (३) नील ग्रीवा वाला –रुद्र (२) गले में नीलमणि बांधने वाला
'नीलग्रीवो विलोहितः '
वाज.सं. १६.७, तै.सं. ४.५.१.३, मै.सं. २.९.२, १२१.११, का.सं. १७.११.

नीलनख– नीलनख नामक सूक्त ।
'नीलनखेभ्यः स्वाहा '
अ. १९.२२.४.

नीलपृष्ठ– (१) सूर्य, (२) नीलवर्ण की पोशाक पहने हुआ, (३) नील मेघ के समान सौम्य ।
'प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेः '
ऋ. ३.७.३
(४) श्यामरूप मेघ, (५)मेघ के समान प्रचुर द्रव्य दान करने वाला (५) अपनी पीठ पर अन्यों के आश्रय देने वाला ।
'आवेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तम् '
ऋ. ५.४३.१२, मै.सं. ४.१४.४, २१९.११, तै.ब्रा. २.५.५.४.

नीलपृष्ठाः– (१) श्याम वर्ण की पीठ वाले (२) मेघ रूप में विद्यमान पवन (३) नीलवर्ण की पोशाक पहने, (४) कृष्ण मृगछाला पहने ।
'आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् '
ऋ. ७.५९.७

नीललोहित– (१) नीला और लाल अधपका पात्र ।
'यां चक्रुर्नीललोहिते
अ. ४.१७.४.
(२) नील रंग से मिश्रित रक्त आर्तव ऋतुधर्म ।
'नीललोहितं भवति '
ऋ. १०.८५.२८, अ. १४.१.२६.

नीलवान्– (१) नीडवान् , (२) आश्रयदाता परमेश्वर ।
'तवद्रप्सो नीलवान् वाशऋत्वियः '
ऋ. ८.१९.३१, साम. २.११७३.
(३) नील धुएं वाला–अग्नि ।

नीलशिखण्ड– (१) सिर पर नीला तुर्रा लगाकर चलने वाला, (२) आश्रय शरीर में मूर्धाभाग में स्थित ब्रह्मरन्ध्र–गत प्राण, (३) तमोगुण मयी और रजोगुणमयी प्रकृति ।
'नीलशिखण्डवाहनः '
अ. २०.१३२.१६
(४) मनोहर कान्तिमय ।
'नीलशिखण्ड कर्मकृत् '
अ. २.२७.६
(५) नीलकेश वाले रुद्र ।
'अस्त्रा नीलशिखंडेन '
अ. ११.२.७

नीलागलसाला – (१) नील + आगल साला । नील अन्धकारमय तामसआगल–सबकी संहारक –प्रचण्ड वेगवती ब्रह्मशक्ति, (२) सत्यविशेष की मञ्जरी ।
'नीलागलसाला '
अ. ६.१६.४

नीवार– बिना खेती किए उपजने वाला धान ।
'श्यामाकाश्च मेनीवाराश्च मे '
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२, मै.सं. २.११.४, १४२.१४२.३

नीव्या– (१) नामावलि या पंक्तियों में सुसज्जित सेना (२) प्राप्तव्य उद्देश्यों को लक्ष्य में रखने वाली ।
'सनीव्याभिर्जरितारयच्छ '

ऋ. ६.३२.४

नीवि- (१) शरीर का कटि भाग, (२) कटिभाग में पहने जाने वाला वस्त्र, धोती, लंगोटी, पायजामा आदि ।
'यां नीविं कृणुषे त्वम्'
अ. ८.२.१६
(३) एकत्र होने का स्थान ।
'सोमस्य नीविरसि'
वाज.सं. ४.१०, का.सं.२.३, श.ब्रा. ३.२.१.१५, आप.श्रौ.सू. १०.६.६.

नीविदः- (१) स्तुति करने योग्य इष्ट देव के विशेष गुण प्रदर्शक वेद की ऋचाएं ।
'चातुर्मास्यानिनीविदः'
अ. ११.७.१९

नीविभार्यौ- द्वि.व. । धन और स्त्री के गर्भ की रक्षा करने वाले राजा और पति ।
'भेषजौ नीविभार्यौ'
अ. ८.६.२०

नीषाड्- सर्वथा पराजित करने वाला ।
'शत्रूषाण् नीषाड भिमातिषाहः'
अ. ५.२०.११

नीहार- (१) नी + हृ + घञ् = नीहार । अवश्याय, तुषार-सा. (२) हारादि भोग्य पदार्थों से वर्जित ।
'उदारन् गच्छोत वा नीहारान्'
अ। ६.११३.२
(३) नीहारिका, कुहरा, (४) अज्ञानान्धकार ।
'नीहारेण प्रावृताजल्प्या च'
ऋ. १०.८२.७, वाज.सं. १७.३१, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३ ,१३५.२, का.सं. १८.१, नि. १४.१०.
(५) अंधकार, (६) अविद्यान्धकार ।

नु - (१) अनेकार्थ अव्यय (नु इति अनेक कर्मा,) (२) हेतु के अपदेश में यथा 'इदं नु करिष्यति' (कारण कि ऐसा वह करेगा) ।
हेतु दो प्रकार है -कारक और ज्ञापक (३) किसी प्रश्न का उत्तर कितने पर पुनः प्रश्न करने पर भी 'नु' का प्रयोग होता है । यथा-कथं नु करिष्यति (तो वह कैसे करेगा?। (४) उपमा अर्थ में यथा ।
'अक्षो नचक्र्योःशूर बृहन्
प्र ते महना रिरिचे रादेस्योः
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वयाः
व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः'
ऋ. ६.२४.३
हे बहुतों से आहूत शूरवीर इन्द्र, (पूरूहूत इन्द्र) तेरी चक्रों की धूरी के समान महान् महिमा द्यावा पृथिवी से अधिक है । तेरी पूर्वकाल में की हुई रक्षाएं विशेष प्रकार से बढ़ती हैं । (विरुरुहुः) जैसे वृक्ष की शाखाएं बढ़ती हैं (वृक्षस्य वयाःनु)
(५) प्रसिद्ध अर्थ में (६) निश्चयपूर्वक ।
'यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं
द्विता तरति नृतमं हरिष्टाम्'
ऋ. ३.४९.२
(७) शीघ्र ।
'नूचित् दधिष्वमेगिरः'
ऋ. १.१०.९.
हे इन्द्र, तेरी स्तुतियों को शीघ्र चित्त में धारें (नूचित् दधिष्व) । 'नूचित्' का अर्थ होता है पहले भी, ।

नुत्त -नुद् + क्त । पराजित, पछाड़ा गया ।
'नुत्ता धावत ब्रह्मणा'
अ. ८.८.१९

नुदोथाम् - नुद् धातु भगाना अर्थ में है, ऐसा भागना कि शत्रु को कहीं शरण न मिले । अंग्रेजी का Nude शब्द नुद् के भाव से मिलता जुलता है । अर्थ है - दूर भगाते रहो या भगा दो ।
'हतं नुदेथां निशिशीतमत्रिणः'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.

नुवन् - (१) बोलने चालने वाला, (२) चापलूसी करने वाला, (३) निन्दा करता हुआ ।
'समिन्द्रगर्दभं मृणनवन्तं पापयामुया'
ऋ. १२९.५ अ.२०.७४.५
अमुक अमुक पापमयी वाणी से निन्दा करने वाले, गधे के तुल्य स्वभाव वाले को दण्डित कर' ।

न्युप्ताःवभ्रवः- दाव पर फेंकते हुए पीले पीले जुए । के पाशे ।
'न्युप्ताश्च वभ्रवोवामक्रमतम्'
ऋ. १०.३४.५.
जब दाव पर फेंके हुए पीले रंग के पाश (न्युप्ताःवभ्रवः) शब्द करने लगते हैं (वाचम्

अक्रतम्) ।

नू – अ. (१) समान, तुल्य, सदृश ।
'तूर्वन्न यामन्नतेशस्य नूरणे'
ऋ. ६.१५.५, वाज.सं. १७.१०,तै.सं. ४.६.१.२, मै.सं. २.१०.१, १३१.१६, का.सं. १७.१७.
(२) निरन्तर
'नू ष्टुत इन्द्र नू गृणानः'
ऋ. ४.१६.२१,१७.२१, १९.११,२०.११, २१.११, २२.११, २३.११, २४.११.

नूच– (१) यह नियात पुराना और नया दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । (२) आज ।
'नूच पुराच सदनं रयीणाम्
जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेः
देवा अग्निं धारयत् द्रविणोदम्'
ऋ. १.९६.७, नि. ४.१७.
आज (नू च) और पहले भी (पुराच) सभी धनों के आवास स्थान (रयीणां सदनुम्) उत्पन्न एवं उत्पन्न होने वाले कार्यों का निवास (जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्) वर्तमान् प्राणियों एवं होने वाले प्राणियों का (सतश्च भवतश्च) बहुतों के रक्षक (भूरेःगोपाम्) धन के दाता (द्रविणोदाम्) अग्नि को (अग्निम्) देवों ने हवि वहन करने के लिये धारण किया (धारयन्) ।

नूचित्– (१) अव्यय । निश्चार्थक ।
'पुरां च्यौत्नाय शयथाय नूचित्'
ऋ. ६.१८.८
(२) पहले भी ।
'अध्याचिन्नू चित्तदपो नदीनाम'
(आज भी और पहले भी नदियों का जल बहाना ही तेरा कमा रहा) ।
(३) नहीं तो ।
'नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्'
ऋ. ६.३७.३, नि. १०.३.
नहीं तो इन्द्र का (वायोः) सोम रस (अमृतम्) कहीं फट न जाय (विदस्येत्) (४) भी ।
'यस्य ते नूचि दादिशम्'
ऋ. ८.९३.११
(५) कभी भी ।
'नूचिद्धि परिमम्नाथे अस्मान्'
ऋ. ७.९३.६

नूतन– (१) ईश्वर से उत्पन्न कार्य जगत्
(२) नवीन ।
'स पूर्व्यो नूतनमवि वासत्'
अ. ७.२१.१, साम. १.३७२.
'अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत'
ऋ. १.१.२, नि. ७.१६.
पुनः–
'कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने
संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनुवीर्यं शकत्
न पुराणो मघवन्नोत नूतनः'
ऋ. १०.४३.५, अ. २०.१७.५,
पाधनहारी धूर्त या जुआरी (श्वघ्नी) जैसे पूर्व पुरुषों का अर्जित धन (कृतम्) द्यूत् में (देव ने) ढूंढ़ता है, इन्द्र जैसे (यत्) सम्यक् प्रकार से वृष्टि देने वाले मेघ को(संवर्गं सूर्यम्) जीतता है, हे इन्द्र, तेरा सूर्य को विजित करने वाला वह बल (ते तत् वीर्यम्) तेरे सिवा कोई अन्य अनुकरण नहीं कर सकता (अन्य अनुन शकत्) और न (न उत) कोई वर्तमान कालीन मनुष्य ही (नूतनः) और न किसी पुरातन पुरुष ने ही (पुराणः) पहले किया ।
अन्य अर्थ– जिस तेज से धनपति परमेश्वर (मघवा) सूर्य को जीता हुआ है (यत् मघवा सूर्य जयत्) दुर्गुणों को हटाने वाले उस तेज को (संवर्गम्) जैसे जुआरी जुए में विजय को ढूढ़ता है (श्वघ्नी देवने कृतं न विचिनोति) एवं ममतारहित त्यागी ढूंढ़ता है । हे ऐश्वर्यशाली प्रभो (मघवन्), आप से भिन्न कोई उस तेज के अनुप्रदान में समर्थ नहीं । हे धनपते, न पहले किसी ने दिया न अब या आगे कोई दे सकता है । अतः आप ही उस बल को दें ।
पुनः–
'आश्येनस्य जवसा नूतनेन'
ऋ. १.११८.११
आप दोनों पक्षी के समान वेग से हमारे गृह पर नए रथ से आइए ।

नूनम्– (१) अवश्य,
'न नूनमस्तिनोश्वः'
ऋ. १.१७०.१, नि. १.६.
(२) निश्चय , (३) पद पूरण में भी इसका प्रयोग

होता है । (४) विचिकित्सा अर्थ में (नूनमिति विचिकित्सार्थी पदपूरञ्च) ।
पदपूरण में-
'प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम्
इदं नो वर्हिरासदे'
ऋ. १०.१८८.१
हे स्तोताओ, तुम इस सर्वव्यापी (अश्वम्) ज्वालाओं से चंचल या अन्नयुक्त (वाजिनम्) या अश्व के सदृश बलवान् अग्नि को हमारे इस कुशासन पर या यज्ञ में आकर बैठने के लिये (नः इदं बर्हिः आसदे) स्तुतियों से बढ़ा । (प्रहिनोत' नूनम्)
'निश्चय से ' के अर्थ में -
'नूनं तदस्य काव्यो हिनोति'
अ. ४.१.६

नृ (ना) - (१) नेता, मनुष्य, (२) ऋत्विज् ।
'अग्निं नरो दीधितिभिररण्यो
हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्'
ऋ. ७.१.१, साम. १.७२, २.७२३, का.सं. ३४.१९, ३९.१२, कौ.ब्रा. २२.७, नि. ५.१०.

नृचक्षसः- (१) सर्वनेता परमेश्वर को साक्षात् करने वाला । ' नृचक्षस् ' का षष्टी ए. व में रूप ।
ऋ. १०.१०७.४, अ. १८.४.२९

नृचक्षसौ- (१) देह के नायक आत्मा को ज्ञानादि के दर्शन कराने वाले प्राण अपान, (२) यम के दो दूत ।
'चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ'
ऋ. १०.१४.११, तै.आ. ६.३.१.

नृचक्षस्- (१) नृ + चक्षस् । अपने नायक या गुरु को सौम्य या उत्सुक दृष्टि से देखने वाला शिष्य, छात्र ।
'नृचक्षसे सुमृडीकाय वेधः'
ऋ. ४.३.३.
(२) मनुष्यों को उत्तम उपदेश करने वाला वचन ।
'नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः'
ऋ. २.२४.८
(३) सब मनुष्यों या जीवों का द्रष्टा सविता, परमेश्वर ।
'सवितारम् नृचक्षसम्'
ऋ. १.२२.७, वाज.सं. ३०.४, श.ब्रा. १०.२.६.६, तै.आ. १०.१०.२ ,
(४) राजा की राज सभा का सदस्य ।
'ये ते रात्रि नृचक्षसः'
अ. १९.४७.३, शा.श्रौ.सू. ९.२८.१०.
(५) प्रजा के हित पर सदा दृष्टि रखने वाला ।
'नृचक्षाः रक्षः परिपश्य विक्षु'
ऋ. १०.८७.१०, अ. ८.३.१०

नृजित्- (१) समस्त मनुष्यों को जीतने वाला , (२) सबसे बड़ा प्रधान नायक- इन्द्र ।
'सत्राजिते नृजिते उर्वराजिते'
ऋ. २.२१.१.

न्यृञ्जते- नि + ऋञ्जते । 'ऋञ्ज्' धातु व्यवस्थित करना, arrange, वश करना अर्थ में आया है । अर्थ है -वश में करे व्यवस्थित करे . लोट् के अर्थ में लट् का प्रयोग है ।
'योधोन शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते'
ऋ. १.१४३.५

नृणां नर्यः- (१) शरीर के नेता रूप प्राणगणों का नेता आत्मा(२) मानवों का नेता (३) मनुष्यों के बीच नेता बनने के योग्य ।
'नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्'
ऋ. १०.२०.१, अ. २०.७६.१

नृणां नृतमः- (१) मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा, (२) शूरो में श्रेष्ठ शूर (३) नायकों में श्रेष्ठ नायक-इन्द्र परमेश्वर ।
नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्
ऋ. १०.२९.१, २०.७६.१.
मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा, या शूरों में श्रेष्ठ शूर या नायकों में श्रेष्ठ नायक या कल्याणकारी सोमभागी या कालिरात्रि को बनाने वाला परमेश्वर (क्षपावान्) ।

नृत्- (१) हाथ पैर आदि की इच्छानुकूल चेष्टा ।
'को बाणं को नृतं दधौ'
अ. १०.२.१७

नृतमः- (१) नेतृतम, (२) अतिशयरूप से लोगों का रक्षिता, (३) पुरुष श्रेष्ठ परमात्मा या पिता ।
'अपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः'
ऋ. ३.१.१२
सन्तानों को गर्भ के सदृशधारण करने वाला, पुरुषश्रेष्ठ गुणों से महान् अग्नि या परमात्मा
(४) प्रशास्त मनुष्य । (५) नायकों में श्रेष्ठ नायक

परमात्मा ।

नृतमा ऊतिः- (१) मनुष्यों की रक्षा करने वाली योग्यता-सा. (२) प्रशस्त मनुष्य बनाने वाली रक्षा -दया. ।

'नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती
वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः '

ऋ. ६.१९.१०

हे राजमान इन्द्र, हमें तुझ से मनुष्यों या परिचारकों से युक्त (नृवत्) श्रवणीय यशों से युक्त (श्रोमतेभिः) सुन्दर भावनीय या संभजनीय (वामम्) एवं मनुष्यों की रक्षा करने की योग्यता से युक्त धन को (नृतमाभिरूती) परस्पर बांटते हैं (वंसीमहि) ।

हे तेजस्वी राजन्, आप की प्रशस्त मनुष्य बनाने वाली रक्षा से (नृतमाभिरूती) श्रवणीयतम उपदेशों के द्वारा (श्रोमतेभिः) मनुष्योचित प्रशंसनीय कर्म का सेवन करे (नृवत् वामं वंसीमहि) ।

नृत्त- न. । (१) विलास ।

'हसो नारिष्टा नृत्तानि '

अ. ११.८.२४

(२) नाय्य ।

'नृत्ताय सूतम् '

वाज.सं. ३०.६

नृतमानः- नाचता हुआ ।

'नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः '

ऋ. ५.३३.६

नृतिः-प्राप्ति - + नृ + क्तिन् ।

'नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् '

ऋ. १०.२९.२, अ. २०.७६.२.

नृतु - (१) समस्त संसार को अपनी शक्ति से नचाने वाला ।

'तवत्यं नर्यं नृतो अप '

ऋ. २.२२.४, साम. १.४६६.

(२) सब का नेता, विश्वसंचालक ।

'ईशे कृष्टीनां नृतुः '

ऋ. ८.६८.७

नृतू - नृत् + कू = नृतू । अर्थ - (१) नर्तक, (२) नाई ।

'अधिपेशांसि वपते नृतूरिव
अपोर्णुते वक्ष उस्रेव वर्जहम् '

ऋ. १.९२.४

नाई जिस प्रकार नाना केशों को काट देता है अथवा नर्तक जैसे नाना रूप बदल लेता है, उसी प्रकार वह प्रभात बेला भी नाना प्रकार के रूपों के धारण करती है । उसी प्रकार पूर्ववयस में वर्तमान कन्या यो योग्य पुरुष की कामना करने वाली नववधू नाना आभूषणों को धारण करें । उदय होने वाली उषा जिस प्रकार अन्धकार निवारक प्रकाश के विनाशक घोर अन्धकार को (वर्जहम्) दूर कर देती है । और गाय दूध देने वाले थन भाग को विशाल रूप में प्रकट करती है उसी प्रकार नवयुवती भी वक्षस्थल को प्रकट करती है ।

नृधूत- (१) मनुष्यों से धूत अर्थात् अभिषिक्त या झकझोरा हुआ सोम ।

'नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः '

ऋ. ९.७२.४

नृपतिः- (१) यष्टाओं या यज्ञकर्त्ताओं का पालक-अग्नि ।

'त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः '

ऋ. २.१.१, वाज.सं. ११.२७, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.११, नि. ६.१.

हे यष्टाओं के पालक अग्नि, तू मनुष्यों के द्वारा उत्पन्न किया जाता है ।

नृपती- द्वि.व. । (१) अश्विद्वय, (२) मनुष्य पति पत्नी, (३) विवाहित स्त्री पुरुष ।

'यो वां रथो नृपती अस्ति वोढा '

ऋ. ७.७१.४

नृपत्नी- (१) नेता पुरुषों का पालन करने वाली सेना, (२) नायक विद्वान् पति की पत्नी ।

'अभिनो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः '

ऋ. १.२२.११.

नृपाण- (१) सब मनुष्यों की पालन करने में समर्थ ।

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः '

अ. १९.५८.४

(२) नृ + पा + ल्युट् = नृपाण । नरः योद्धारः पीयन्ते उदकवत् यत्र (जिसमें जल की तरह नर या योद्धा पीए जाते हैं । अर्थ है-संग्राम, (३) तलवार । (४) कूपतुल्य संग्राम

नृपाता- (१) मनुष्यों का पालक ।

'अवृकतमो नरां नृपाता'
ऋ. १.१७४.१०

नृपाय्य- (१) मनुष्यों और प्राणों के पालन करने योग्य, (२) मनुष्यों को मान्य ।
'वर्ती रुद्रा नृपाय्यम्'
ऋ. २.४१.७, वाज.सं. २०.८१
(३) नरों का पालन करने वाला ।
'वर्तिर्याति नृपाय्यम्'
ऋ. ८.९.१८ अ. २०.१४२.३
(४) मनुष्यों की रक्षा करने वाला राज्य, (५) मनुष्य मात्र को पालन करने वाला गृह ।

नृपीति- मनुष्यों का पालन ।
'अनाधृष्टो नृपीतये'
ऋ. ७.१५.१४

नृपेशस्- (१) वीर पुरषों से बने स्वरूप को धरने वाली (२) आत्मा को रूपवान् करने वाली वासनाएं ।
'नृपेशसो विदथेषु प्रजाता'
ऋ. ३.४.५

नृमणा- (१) मनुष्यों पर अनुग्रह करने वालाअग्नि (२) विद्यार्थियों में संलग्न मन अध्यापक
'तृतीयमप्सु नृमण अजस्रम्'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै.स. २.७.९,८६.६, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २.११.२१.
तृतीय अग्नि मनुष्यों पर अनुग्रहशील(नृमणा) अन्तरिक्ष लोक में (अप्सु) विद्युत् के रूप में उत्पन्न हुआ । अथवा,
विद्यार्थियों में संलग्नमन विद्वान् (नृमणा) कर्मप्रधान बाणप्रस्थाश्रम में (अप्सु) तृतीय जन्म ग्रहण करता है ।

नृम्णः- पु. । सेनालक्षणम् बलम्नृन् मनुष्यान् प्रति यत् विशेषतः नतम् प्रह्वीभूतम् उपनतम् प्राप्तम्लम् (मनुष्यों के प्रति विशेषतः आया बल) । अर्थ (१) सैनिक बल- (२) बल - दया. ।
'नृम्णस्य न मह्ना स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२, मै.सं. ४.१२.३, १८६.५, का.सं. ८.१६, नि. १०.१०
हे असुरो या मनुष्यो, जो सैनिक बल के महत्व से जाने जाते हैं वही इन्द्र या परमेश्वर है । (३) योगबल, ।
'अनिमिषं नृम्णं पान्ति'
ऋ. ५.१९.२
जो प्रतिक्षण योगबल की रक्षा करते हैं वही इन्द्र या परमेश्वर है (४) धन-
'प्र वो महे मन्दमानायान्धसो
अर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य वस्य सुमुखं सहोमहि
श्रवो नृम्णंच रोदसी सपर्यतः'
ऋ. १०.५०.१, वाज.सं. ३३.२३, नि. ११.९.
हे स्तोताओ, तुम महान् अन्न के देने वाले (महे अन्धेसः) मोदयुक्त (मन्दमानाय) या स्तोताओं से स्तूयमान, सभी विभूतियों से युक्त या सबके बनाने वाले (विश्वानराय) मध्यम देव के लिए स्तुति करो (प्रार्चा) । सायण के अनुसार 'मुझ इन्द्र को स्तुति करो' ऐसा अर्थ है । जिस इन्द्र का सुमहत् बल (सुमखं सहः) तथा महान् यश (महिश्रवः) तथा सैन्य बल की स्तुति करते हुए तुम्हें (नृम्णं च वः) द्यौ और पृथिवी अभिनन्दित करती हैं (सपर्यतः) ।

नृम्णवर्धन- (१) राष्ट्र धन और शक्ति को बढ़ाने वाला ।
'एष स्य ते तन्वो नृम्ण वर्धनः'
ऋ. २.३६.५, अ. २०.६७.६
(२) ऐश्वर्य बढ़ाने वाला पुत्र या प्रजा ।

नृमादन- (१) मनुष्यों को आनन्द देने वाला ।
'यज्ञश्रियं नृमादनम्'
ऋ. १.४.७, अ. २०.६८.७

नृवत्- (१) शरीर के प्राणों और रश्मियों से युक्त सूर्य, (२) इन्द्र, (३) जीव ।
'महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राः'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, मै.सं. १.३.२५, ३८.१२. का.सं. ४.८, ऐ.ब्रा. ५.१८.१४, कौ.ब्रा. २१.४,२६.१२, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.४.
परिचारकों से युक्त - (४) मनुष्योचित- दया ।
'नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती'
ऋ. ६.१९.१०
(४) सैनिकादि अनेकों मनुष्यों से युक्त-दया.
'पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः'
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३

बहुत वीर वाले परिचारकों से युक्त एवं बहुत अन्न वाले धन का ।
(६) मनुष्यों का स्वामी ।
'भरद्वाजे नृवत इन्द्रसूरीन्'
ऋ. ६.१७.१४

नृवत्सखा- नायकों से युक्त सैन्यों का सखा अर्थात् परमसुहृत् ।
'नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः'
ऋ. ४.२.५, तै.सं. १.६.६.४, ३.१.११.१, मै.सं. १.४.३,५१.२, का.सं. ५.६,३२.६.

नृवाहण -नायक पुरुषों को पहुंचाने वाला- रथ ।
'अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणम्'
ऋ. २.३७.५, का.श्रौ.सू. १२.३.१३, आप.श्रौ.सू. २१.७.१७.

नृवाहसा- (१) मनुष्यों को देश देशान्तर पहुंचाने वाला ।
'शोणा धृष्णु नृवाहसा'
ऋ. १.६.२, अ. २०.२६.५, ४७.११,६९.१०, साम. २.८१९, वाज.सं. २३.६, तै.सं. ७.४.२०.१, मै.सं. ३.१६.३, १८५.७, तै.ब्रा. ३.९.४.३.

नृषद्- (१) राष्ट्र नायक जनों में प्राय ।
'ध्रुवसदं त्वा नृषदम् मनः सदम्'
वाज.सं. ९.२, श.ब्रा. ५.१.२.४
(२) नृषु नायकेषु सीदति इति (उत्तम व्यवहारों में पहुंचने वाला मनुष्य -दया. (३) बुद्धिमान्

नृषदः पुत्रः- (१) मनुष्यों के ऊपर विराजने वाले (२) मनुष्यों से अधिष्ठित राज्य का पुत्र या पुत्र के समान् रक्षक, (३) नृषद् का पुत्र कण्व ।
'उत कण्वं नृषद् पुत्रमाहुः'
ऋ. १०.३१.११

नृषदन- (१) प्रमुख पुरुषों की बैठक या सभा (२) मनुष्य और प्रजाओं के विराजने का स्थान, (३) नेतृपद ।
'युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः'
ऋ. १०.९२.७
(४) मनुष्यों के रहने योग्य स्थान ।
'अग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता'
ऋ. ७.७.५

नृषह्य- (१) शत्रु वर्ग के नेता का पराजय, (२) मनुष्यों का हित ।
'उच्छ्वैत्रेयो नृषह्याय तस्थौ'
ऋ. १.३३.१४
और तथापि भूमि या पशु का इच्छुक (श्वैत्रेय) शत्रु वर्ग के नेता को पराजय के लिये खड़ा रहे ।
अथवा, और तो भी सूर्य या पृथ्वी पुत्र मेघ मनुष्यों के हित के लिए (नृषह्याय) आकाश में विराजता है ।

न्यृष्ट- (१) व्याप्त । नि + ऋष्ट ।
'गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः'
ऋ. १०.१०८.७
(२) सबका आश्रय भूत ।
'कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टम्'
ऋ. १०.४२.२, अ. २०.८९.२.
(३) पूर्ण ।
'इन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम्'
ऋ. ४.१८.५.

न्यृष्टे- द्वि.व. । नि + ऋष्टे । अर्थ (१) खूब, पूर्णत व्याप्त , (२) निश्चित स्वरूप को प्राप्त -दया. (३) द्यावा पृथिवी ।
'उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे'
ऋ. ३.५५.२०

नृषा- मनुष्यों का स्वामी सोम ।
'गोषा इन्दो नृषाअसि'
ऋ. ९.२.१०, साम. २.३९५,का.सं. ३५.६.

नृषाच् - मनुष्यों का समवाय बनाकर रहने वाला ।
'दूर उपब्दो वृषणो नृषाचः'
ऋ. ७.२१.२

नृषाच- ब.व. । ये नृन् सचन्ति समवयन्ति-मरुतेः प्राणः (जो मनुष्यों को कर्म में संयुक्त करते हैं- प्राण) ।
(२) मनुष्यों का समवाय बनाने वाले ।
'स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु'
ऋ. १.५२.९

नृषाता- नृ + साता । मनुष्यों को विभक्त करने वाला ।
'शूरो नृषाता शवसश्चकानः'
ऋ. ७.२७.१, साम. १.३१८, तै.सं. १.६.१२.१, मै.सं. ४.१२.३, १८५.१.

नृषाह्य- (१) नायकोचित शत्रुदमन कारी बल ।
'प्र नृषाह्याय शर्मणे'
ऋ. ८.९.२०, अ. २०.१४२.५.

(२) शूर वीरों से सह्य संग्राम ।
'स सूनुभिर्न रुद्रेभिः ऋभ्वा
नृषाह्ये सासह्वां अमित्रान्'
ऋ. १.१००.५
वह पुत्रवत् प्रिय, शत्रुओं को रुलाने वाले, अति भयङ्कर विजय करने योग्य संग्राम में (नृषाह्ये) शत्रुओं को पराजित करने वाला (अमित्रान् सासह्वान्) ...

नृहा– मनुष्यों को मारने वाला ।
'आरे गोहा नृहा वधो वा अस्तु'
ऋ. ७.५६.१७

नेक्षण– न.। भोजन बनाते समय दाल आदि का चलाना । नेक्ष + ल्युट् ।
'सुग् दर्विर्नेक्षणमायवनम्'
अ. ९.६.१७

नेत्– अ. । (१) नहीं तो ।
'नेत् त्वा धृष्णु हरसा जर्हृषाणः'
ऋ. १०.१६.७, अ. १८.२.५८, तै.आ. ६.१.४.
(२) 'न' और 'इत्' -ये दोनों अनुपृष्ट होने पर एक साथ व्यवहृत होते हैं । किसी के द्वारा प्रश्न किए जाने पर प्रति वचन में इसका प्रयोग होता है । जैसे –'नचेत्' सुरां पिबन्ति (यदि सुरा न पीते हैं)
प्रश्न – तिष्ठन्ति गृहे वृषलाः? (घर में वृषल हैं ?)
उत्तर – तिष्ठन्ति (हैं)
प्र.– यदि तिष्ठन्ति किमिति नागच्छन्ति (यदि हैं तो आते क्यों नहीं ।
उन चेत् सुरां पिबन्ति (यदि सुरा न पीते हैं) ।

नेत्री– (१) नायिका, (२) मनुष्यों को काम में प्रवृत्त करने वाली उषा (३) सर्वश्रेष्ठ महिला ।

नेदीयः– अतिनिकट विद्यमान ।
'नेदीयसो वृषाकपे'
ऋ. १०.८६.२०, अ. २०.१२६.२०
(२) अन्तिक + ईयसु = नेदीयस् । निकटतर ।
'नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्'
ऋ. १०.१०१.३, अ. ३.१७.२, वाज.सं. १२.६८, तै.सं. ४.२.५.६, मै.सं. २.७.१२, ९१.१६, का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.५, नि. ५ .२८.
पका हुआ अन्न हंसुआ या अंकुश से भी निकटतर आ जाए ।

नेदीयान्– (१) समीप रहने वाला ईश्वर ।

नेमः – (१) नियन्ता, न्यायशील, (२) यम नियम का पालक, (३) कुछ जन ।
'अदिन्नेम इन्द्र यन्ते अभीके'
ऋ. ४.२४.४.
(४) अन्न, (५) झुकने वाला, स्वल्प बल वाला प्रजाजन ।
'नहितेपूर्तमक्षिपत्
भुवन्नेमानांवसो'
ऋ. ६.१६.१८, साम. २.५७, का.सं. २०.१४.
(६) अर्द्ध, आधा ।
'उत घानेमो अस्तुतः'
ऋ. ५.६१.८
(७) एक ।
'पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः'
ऋ. १०.२७.१८
(८) नी + मन् = नेम । एक अव्यय । अर्द्ध, आधा । नेम अपनीतः अपभज्य नीतः, पृथक् कृतः(विभाग कर पृथक् किया हुआ और लाया हुआ नेम है) ।

नेमधितः– (१) आधे ऐश्वर्य को धारण करने वाला
'युध्यन्तो नेमधिता पृत्सुशूर'
ऋ. ६.३३.४
(२) संग्राम में प्रयुक्त बल ।
'नेमधिता न पौंस्या
वृथे व विष्टान्ता'
ऋ. १०.९३.१३
(३) संग्राम में ।
'इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते'
ऋ. ७.२७.१, साम. १.३१८,तै.सं. १.६.१२.१, मै.सं. ४.१२.३,१८४.१७, ४.१४.५, २२१.११, कौ.ब्रा. २६.१५, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.११.

नेमन्– (१) लज्जा से विनीत कन्या ।
'तं गूर्तयो नेमन् इषः परीणसः'
ऋ. १.५६.२

नेमि– (१) सबको अपने सामने झुकाने वाला ईश्वर
(२) सूर्य ।
'नेमिं नमन्ति चक्षसा'
ऋ. ८.९७.१२, अ. २०.५४.३, साम. २.२८१.
(२) चक्के पर , चढ़ाए जाने वाला लोहे का हाल ।

'अरान्ननेमिः परिता बभूव'
ऋ. १.३२.१५, मै.सं. ४.१४.१३, २३७.१२, तै.ब्रा. २.५.१.३, ८.४.३.
(३) अनुशासन ।
'अत्रा विनेमि रेषाम्'
ऋ. ८.३४.३, साम. २.११५८.

नेव- न + इव । नहीं, नतो, न.
'नेव मांसेन पीबसि'
अ. १.११.४

न्वेव- शीघ्र ही ।
'तमिन्वेव समानासमानम्
अभिक्रत्वा पुनती धीति रश्याः'
ऋ. ४.५.७
हे यजमान्, तू उसी (तम् इत्) सभी के लिये एकरूप (समानम्) आदित्य को उनके अनुरूप स्तुति से (समाना धीतिः) तथा पवित्र करने वाले कर्म या ज्ञान से (पुनती क्रत्वा) शीघ्र ही (न्वेव) प्राप्त कर (अभ्यश्याः) ।
उसी समय गुण कर्मों वाले पति को (तम् नु समानम्) समान गुण कर्मों वाली कन्या तू (समाना) कर्म से अपने आप को बुद्धिमती होती हुई (धीती) प्राप्त कर (अभ्यश्याः) ।

नेष्ट्रम् - (१) यज्ञ में नेष्ट्रा के समान अन्यों को सन्मार्ग में ले चलने वाला कार्य, (२) नेत्र, (३) अग्नि ।
'तवनेष्ट्रम् त्वमग्निन् ऋतायतः'
ऋ. २.१.२, १०.९१.१०
(४) पु.में । यज्ञ, (५) पुष्टिप्रद णिजिर् (शौच और पोषण अर्थ में)+ त्रन् = नेष्ट्र ।
'नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः'
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३.
हे द्रविणोद नामक अग्नि, तू यज्ञ से (नेष्ट्रात्) सोम रस ऋतुओं के साथ पी ।
'उतनेष्ट्रात् अजुषत् प्रयोहितम्'
ऋ. २.३७.४.
हे इन्द्र, तूने नेष्ट्रा के यज्ञ से (नेष्ट्रात्) हितकारक अन्नरूप सोम या सेवन किया ।
(५) हवि का पुष्टि प्रद भाग -दया. । पुष्टि प्रद भाग से (नेष्ट्रात्) सेवन किया (अजुषत)- दया. ।
(६) णेष्ट्र (गत्यर्थक) + ष्ट्रन् = नेष्ट्र । नेता, (७) सत्व का नामक सूर्य
'नेष्ट्रात् ऋतुभिरिष्यत'
ऋ. १.१५.९, वाज.सं. २६.२२.

नेष्ट्रा- नायक
'उत नेष्ट्रात् अजुषत प्रयोहितम्'
ऋ. २.३७.४

नेष्टा- (१) सब पदार्थों को शुद्ध करने वाला । णिजिर् + तृच् = नेष्टृ । प्रथमा ए.व. में रूप है- नेष्टा (२) विवेकी ।
'ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना'
ऋ. १.१५.३, वाज.सं. २७.२१
हे सब पदार्थों को प्राप्त करने की शक्ति वाले, हे सब पदार्थों को शुद्ध करने वाले तू- सत्य ज्ञान के बल पर आनन्द रस का पान कर ।
(३) यज्ञ स्थान, (४) सोम यज्ञ कराने वाले सोलह ऋत्विजों में एक प्रधान ऋत्विज्

नैगुतः- (१) निम्न, विनीत वाणी बोलने वाले शिष्य जनों का स्वामी, गुरु (२) नीची भूमि के शत्रुओं का स्वामी, निगुत + अण् - नैगुत
'षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि
ऋ. ९.९७.५३, साम. २.४५५.

नैघण्टुक - निघण्टु + अण = नैघण्टु । नैघण्टु + कप् = नैघण्टुक (१) देवता का नाम । किसी ऋचा में अप्रधान या दोनों (प्रधान ओर अप्रधान) नैघण्टुक देवता है ।
प्रत्येक ऋचा का एक प्रधान देवता होता है । उसके सिवा जो और गौण देवता है जिससे शब्द के निर्वचन में सहायता मिलती है, वह नैघण्टुक देवता है ।
'अश्वं न त्वा वारवन्तम्' में प्रधान देवता अग्नि है और अप्रधान देवता अर्थात् नैघण्टुक अश्व है ।
नदी नैघण्टुक देवता के रूप में वर्णित है । प्रधान देवता का पद शायद ही इसे मिला हो । बहुलमासां नैघण्टुक वृतम् आश्चर्यमिव प्राधान्येन ।

नैचाशाखः- (१) नीचैः शाखः नीचाशाख (जिसकी वंश परम्परा नीच हो जाय) । नीची योनियों में उत्पन्न पुत्रादि को 'नैचाशाख' कहते हैं । नीच शाख + अण् =नैचा शाख ।
'नैचाशाखं मघवन् रन्धयानः'

ऋ. ३.५३.१४, नि. ६.३२.
हे इन्द्र, नीच योनि से उत्पन्न पुत्रादि का धन हमें दे या हमारे अधीन कर। कहा है- शूद्रावेदी पतत्यध (नैचाशाख धन पापपूर्ण होता है)।

नैतोशः- नितोश + अण् = नैतोश। नित्यवध करने वाला (नितरां तोशयति इति नितोशः) नितोश स्यापत्यं नेतोशः। नितोश का अपत्य ही नैतोश है (१) नैतोश नामक वधक।
'नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों नैतोश नामक वधक की तरह नाश करने वाले तथा शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले हो।

न्यैरयत् - नि + ऐरयत्। अर्थ - चलाया।
'उतादः परुषे गवि
सूरश्चक्रं हिरण्ययं
न्यैरयद् रथीतमः'
ऋ. ६.५६.३, नि. २.६.
अतिशय रथों वाला या नेतृतम (रथीतमः) प्रेरक परमात्मा ने (सूरः) आदित्य के लिये (परुषे गवि) सुवर्ण मय कालचक्र (हिरण्ययं चक्रम्) चलाया (न्यैरयत्)।

नैर्ऋत- निर्ऋति + अण = नैर्ऋत। अर्थ है - (१) पाप संम्बन्धी, अनाचार सम्बन्धी।
'चतुर्वीर्रं नैर्ऋतेभ्यः चतुर्भ्याः'
अ. १९.४५.५.

नैर्बाध्य- बाधा से रहित।
'नैर्बाध्येन हविषा'
अ. ६.७५.१

नैषाद- (१) निषाद या जंगली जाति का मनुष्य, (२) नीच धर्म से रहने वाला पुरुष, नि. + सद् + घञ् = निषाद्।
'ऋक्षीकाभ्यो नैषादम्'
वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.
विषाद + अण् = नैषाद्।

नो - अ.। नहीं
'नो यन्त्यधमन्तमः'
अ. ८.२.२४
'न नूनमस्ति नो श्वः'
ऋ. १.१७०.१, नि. १६.

न्योकस् - (१) नि + ओकस्। जिसका ओकस् अर्थात् निवास स्थान निश्चित हो, (२) दृढ़ दुर्ग का स्वामी।
'सुते सुते न्योकसे
बृहत् बृहत् एदरिः'
ऋ. १.९.१०, अ. २०.७१.१६.
शत्रु भी प्रत्येक अभिषेक में नियत स्थान बनाकर रहने वाले दृढ़ दुर्ग के स्वामी अपने से शक्ति में बड़े ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति के बड़े भारी बल का आदर पाता है।
ईश्वर के पक्ष में - सुखों का लिप्सु पुरुष प्रत्येक ऐश्वर्य की प्राप्ति में परमेश्वर के महान् बल की स्तुति करता है।

न्योकाः- (१) निश्चित निवास स्थान बनाकर रहने वाला।
'तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः'
ऋ. ५.४४.१४, १५, साम. २.११७६,११७७.

न्योचनी- (१) गृह-प्रवेश के समय कन्या के ओढ़ने योग्य ओढ़नी चादर या आभूषण।
'नाराशंसी न्योचनी'
ऋ. १०.८५.६, अ. १४.१.७.
(२) उत्तम सेविका, (३) उत्तम वस्त्र

न्योचर- नि + ओचर। शनैः शनैः जमते जाने वाला ज्वर
'बल्हिकेषु न्योचरः'
अ. ५.२२.५

नोदिव- न + उत् + इव। अर्थ न केवल।
'नोदिव दिवमस्पृशन्'
अ. ५.१९.१, तै.ब्रा. १.२५२.

नोधाः- (१) स्तुतिशील
'सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः'
ऋ. १.६१.१४, अ. २०.३५.१४.
(२) नोधा नामक ऋषि। नवनं स्तोत्रम् धारयति इति नोधा (जो स्तोत्र धारण करता है वह नोधा है। णु + ल्युट् = नवन् नवन् + धा + असुन = नोधस्।
'नोधा इवाविरकृतं प्रियाणि'
ऋ. १.१२४.४, नि. ४.१६.
उषाने नोधा ऋषि के समान अपना इष्टसाधन किया है या अपने उद्गीर्ण प्रकाश से लोगों का रूप प्रकाशित करती है।
आधुनिक अर्थ-नवधा, नव भागों में विभक्त

नोधा ऋषि ने देवता की स्तुति के लिए अनेकों मन्त्र बनाए। (३) नी + डो = नो , नो + धा + क्विप् । अर्थ- सेनानायक या सेनाध्यक्ष -दया. ।

न्योषतम् - नि + ओषतम् । लोट् म.पु. द्वि.व. । अर्थ - इतना सन्तापित करो कि नीचे दबे रहे'
'पराश्रृणीतम् अचितो न्योषतम्'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.

नौ - नुद् (प्रेरणार्थक) (अथवा नम (नवना) + डौ नौ । नुद् से डौ कर्म अर्थ में और नम् कर्त्ता अर्थ में होता है । प्रह्वीभवति नयति इति नौ (जो नवता है वह नौ है) । (१) नौका जल में नत होकर चलती है ।
अथवा प्रणोतव्या -पारगमनाय प्रकर्षेण प्रेरयितव्या (पार जाने के लिये नाव प्रकर्ष से प्रेरित की जाती है अतः वह 'नौ' है) (२) हम दोनों में अस्मद् शब्द का सप्तमी द्विचवन में रूप ।
'यज्ञन्योः कतरो नौ विवेद'
ऋ. १०.८८.१७, नि. ७.३०.
हम यज्ञ के नेताओं में कौन अधिक यज्ञ कर्म जानता है ।
नौका के अर्थ में -
'इयर्ति वाचमरितेवनावम्'
ऋ. २.४२.१, ९.९५.२.

नौधस् - ब्रह्म वर्चस् , ब्रह्मतेज
तं श्यैतञ्च नौधसञ्च'
अ. १५.२.२६.

प

पंक्तिराधस् - (१) जिसका अन्त पंक्ति अर्थात् धर्मात्म समूह के लिए हो या सभी के लिए हो, (२) जो धर्मात्माओं का सेवक हो (३) धर्मात्मा या वीर पुरुषों का सिद्धकारक, (४) अक्षर पंक्ति का ज्ञाता विद्वान् ।
'अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसम्
देवा यज्ञं नयन्तु नः'
ऋ.१.४०.३, सा.१.५६, वाज.सं. ३३.८९, ३७.७, मै.सं. ४.९.१,१२०. १०, श.ब्रा. १४.१.२,१५,तै.आ. ४.२.२,५.२.६,

पक्थ- (१) सुदास से लड़ने वाले दक्षजनों में एक । ये ही पक्थ इन दिनों पख्तून कहलाते हैं जिनमें अन्य वंशज भी शामिल हो गए हैं । अलिन, गन्धारि, वर्षाणि और भलानस भी आज पख्तूनों के रूप में मिलते हैं ।
कण्व पुत्र सोभारि ने ऋ. ८.२२.१० में अश्विद्वय की प्रार्थना में पक्थ का नाम लिया है । पुनः ऋ.७.१८. ७. में वसिष्ठ भी पक्थ का वर्णन करते हैं ।
(२) पाक करने योग्य-दिन
'पर्षत् पक्थे अहन्ना सप्त होतृन्'
ऋ. १०.६१.१
(३) परिपक्व ज्ञान और परिपक्व उम्रवाला ।
'आपक्थासो भलानसो भनन्त'
ऋ. ७.१८.७

पक्थदशव्रज- (१) दक्षमार्ग युक्त परिपक्व शरीर ।
'यथा पक्थे दशव्रजे'
ऋ. ८.४९.१०

पक्वभ्- पच् + क्त = पक्व । पका हुआ व्रीहि आदि । धान्य ।
'नेदीयइत् सृण्यः पक्वमेयात्'
ऋ. १०.१०१.३, अ. ३.१७.२, वाज.सं. १२.६८, तै.सं. ४.२.५.६, मै.सं. २.७.१२, ९१.१६, का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.५, नि. ५.२८.
पका अन्न हंसुआ या अंकुश से भी निकटतर आ जाय ।

पक्वअज- (१) परिपक्व ज्ञानी, अजन्मा आत्मा, (२) परिपक्व बकरा- पाण्डरंग ।
'अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति'
अ.९.५.१८

पक्वक - परिपक्व ज्ञान वाला ।
'कुहाकं पक्वकं पृच्छ'
अ. २०.१३०.६

पक्वा शाखा- (१) पकी हुई डाली (२) पुनःपुनः अभ्यस्त वेदशाखा ।
'पक्वा शाखा न दाशुषे'
ऋ. १.८.८, अ. २०.६०.४, ७१.४

पक्तौदन- (१) राष्ट्र के क्षात्रबल का परिपाक करने वाला राजा (२) पकाया भात ।
'पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम्'
अ. ११.१.१७

पक्ष– (१) परिग्रह अर्थ में प्रयुक्त भ्वादिधातु ।
'सपक्षन् महिषं मृगम्'
ऋ. ८.६९.१५, अ. २०.९२.१२

पक्ति– (१) परिपाक, (२) पकाना, (३) ज्ञान और तप की परिपक्वता ।
'आदित् पक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात्'
ऋ. ४.२४.५
(४) पकाने योग्य अन्न, बल, वीर्य, विद्या, ज्ञान, ।
'पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः'
ऋ. ४.२४.७
(५) पाक करने योग्य पदार्थ कार्य, (६) परिपक्व ज्ञान वाली संस्था ।
'अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः
पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्'
वाज. सं. २८.२३, वाज.सं. (का.) ३०.२.२३

पंक्ति– (१) एक वैदिक छन्द का नाम जिसमें पांच पद होते हैं . पंक्तिः पंचपदा । पंचपदाः परिणामस्य इति पंक्तिः (जिसका परिमाण पांच पद है वह पंक्ति छन्द) है । हरदत्त के अनुसार पद पाद का द्योदक है ।
पचन् + क्ति = पंक्तिः (अन् का लोप और चोः कुः से च् का क्)
(२) पांती, (३) परिपक्व या अभ्यस्त करने योग्य नाना कार्य ।
'पचन् पंक्तीरपिबः सोममस्य'
ऋ. ५.२९.११

पंक्तिश्छन्दः– (१) पंक्ति नामक एक वैदिक छन्द, (२) चालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालक ।
'पंक्तिश्छन्द इहेन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.१६, मै.सं. ३.११.११, १५८.७, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.२.

पंक्तिराधाः– (१) सेना की पंक्तियों को वश में करने में समर्थ वीर पुरुष ।
'अच्छावीरं नर्यं पंक्तिराधसम्'
ऋ. १.४०.३, साम. १.५६, वाज.सं. ३३.८९, ३७.७, मै.सं. ४.९.१, १२०.१०, श.ब्रा. १४.१.२, १५. तै.आ. ४.२.२, ५.२.६

पक्ष– (१) कक्षागृह ।
'या द्विपक्षा चतुष्पक्षा'
अ. ९.३.२१.
(२) अपना ।
'पक्षेभिरपि कक्षेभिः'
ऋ. १०.१३४.७

पक्षत्– पक्षति (स्वीकार करता है, अपनाता है) , 'पक्ष' धातु परिग्रहार्थक आदि है ।
'स पक्षन्महिषं मृगम्'
ऋ. ८.६९.१५, अ. २०.९२.१२

पक्षतिः– प्रथम पसली की हड्डी ।
'अग्नेः पक्षतिः'
वाज.सं. २५.४, तै.सं. ५.७.२१.१, मै.सं. ३.१५.४, १७८.१२, का.सं.(अश्व.) १३.११.

पक्ष्म– न (१) आंख की पपनी (पक्ष्मन्) (२) अपने पक्ष का ।
'पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवः
मैं. सं. ३.१५.१,१७८.१, वाज.सं. २४.१

पक्षा– द्वि.व. (१) पक्षौ (दो. पंख) । (२) आजू बाजू के दो सेना दल, (३) ग्रहण करने या अपनाने वाले बन्धुजन ।
'श्येनं पक्षेव वक्षतः'
ऋ. ८.३४.९
(४) दोनों पंख ।
'पक्षा वयो यथोपरि
व्यस्मे शर्म यच्छत'
ऋ. ८.४७.२

पक्ष्या – (१) पक्षों का हितकरने वाली भूमि, विद्यार्थियों का हित करने वाली विद्या (२) ग्रहण करने वाले ।
'सापक्ष्या नव्यमायुर्दधाना'
ऋ. ३.५३.१६

पक्षिणी– (१) पक्षों से युक्त आयुध ।
'परिहेतिः पक्षिणीनो वृणक्तु'
ऋ. १०.१६५.२, अ. ६.२७.२

पक्षिणीहेतिः – (१) पक्षों वाली सेना ।
'हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मान्'
ऋ. १०.१६५.३, अ. ६.२७.३.

पक्थी– (१) परिपाक करने वाली (२) तेजस्वीपुरुष ।
'दभीतिरिध्मभृति पक्थ्यर्के'
ऋ. ६.२०.१३

पक्षीप्लव – (१) पक्षों या पतवारों वाला जहाज, (२) वाम और दक्षिण पार्श्वों से युक्त शरीर ।

'युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषुप्लवम्
आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्यायकम्'
ऋ. १.१८२.५

पचत्- (१) पाचन करने वाला, (२) वीर्य, विद्या और बल को परिपक्व करने वाला (२) पाक करने वाला ।
'यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तम्'
ऋ. २.१२.१४, अ. २०.३४.१५

पचतः- (१) परिपक्व कर्म करने वाला, (२) पाक करने वाला (३) आत्मा को साधना द्वारा पचाने वाला मुमुक्षु ।
'मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान्'
ऋ. १.६१.७, अ. २०.३५.७
(४) परिपक्व किया हुआ ।
'पुरोडा अग्ने पचतः'
ऋ. ३.२८.२, आश्व. श्रौ.सू. ६.५.२५, नि. ६.१६.
(५) परिपाक या पीड़न करने का साधन ।
'वायुष्टा पचतैरवतु'
वाज.सं. २३.१३, श.ब्रा. १३.२.७.२.

पचता- (१) पच् + अचत् = पचत । अर्थ है- पक्व । विशेषण पद होकर ब.व. में प्रयुक्त है, पकाये गए या परिपक्व ।
'चनो दधिष्व पचतोत सोमम्
ऋ. १०.११६.८, नि. ६.१६.
हे इन्द्र या विद्वन् , इन परिपक्व अन्नों या फलों को पेट में धारण करें (पचता चनो दधिष्व) और सोमरस या दुग्ध को पीयें ।
पुनः-
'मेदस्तः प्रतिपचतागृभीत'
वाज.सं. २१.६०,
मेघ के प्रदेश से पकाए हुए पशु को प्रतिगृहीत किया ।
पुनः-
'पुरोडा अग्ने पचतः'
ऋ. ३.२८.२, आश्व. श्रौ.सू.६.५.२५, नि. ६.१५.
'तुभ्यं वा घा परिष्कृतः
तं जुषस्व यविष्ठ्य'
ऋ. ३.२८.२.
हे युवतम, या दुर्ग के मत से, मिश्र पितृसम अर्थात् मिलाने वालों में श्रेष्ठ अग्नि, पुरोडाश पका हुआ है (पुरोडाश पचतः) वह तेरे लिए अग्नि में परिष्कृत किया गया है । (तुभ्यं परिष्कृतः वा घ), तू उस पुरोडाश को खा (तं जुषस्व) ।
अन्य अर्थ- हे युवा के समान वसिष्ठ विद्वान् (यविष्ठ्य अग्ने) पकाया हुआ पुरोडाश आप के लिए परिष्कृत किया गया है (पुरोडाशः पचतः) । उसका सेवन कीजिए ।

पचत्य- (१) पचने में उत्तम, सुपाच्य अन्न ।
'पुरोडाशं पचत्यम्
'जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च'
ऋ. ३.५२.२

पचन्- (२) विद्या और बल का परिपाक करने वाला ।
यः सुन्वन्तम् अवति यः पचन्तम्'
ऋ. २.१२.१४, अ. २०.३४.१५

वज्र- (१) युद्ध-सा. (२) उपार्जन कर्म-दया. ।
'इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके
वज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः'
ऋ. १.५१.१४.
इन्द्र द्वार पर खड़े यूप की तरह शोभनकर्मा यजमानों या विद्वानों के निर्धन होने पर सेवा करते हैं जो इन्द्र युद्धों में (पज्रेषु) स्तोम या स्तोत्र की तरह निश्चल या प्रधान हो खड़े रहते हैं - सा. । राजा सन्देह स्थलों में विद्वानों का आश्रय लें तथा उपार्जन कर्मों में (पज्रेषु) प्रशस्त द्वारस्थ खंभे की तरह (दुर्यो न यूपः) घोड़ों, गायों, रथों तथा धनों से युक्त होकर ही नियामक राजा (प्रयन्ता इन्द्रः) समान ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है - दया.
(३) पाप से जीर्ण (पापेन जीर्णः) आजकल का 'पाजी' शब्द का 'पज्र' से साम्य विचारणीय है ।
(४) प्रसिद्ध । (५) प्रभूत

पज्रहोषिणा-द्वि.व.- (१) प्रार्जित होषिणौ प्रसिद्ध यागौ-दुर्ग । प्रसिद्ध याग-वाले (२) प्रसिद्ध स्तोत्रौ -सा. (प्रसिद्ध स्तोत्र वाले) । प्रज्र + होष + इनि = प्रज्रहोषिन् । द्वि.व. में पज्रहोषिणा । प्रसिद्धस्तोत्र वाले इन्द्र और अग्नि ।
'जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन'
ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.

हे प्रसिद्ध स्तोत्र वाले इन्द्र और अग्नि (पज्रहोषिणादेवा), जो अविज्ञातमलीन बात बोलते हैं उनका सोमरस तुम कदापि ग्रहण नहीं करते ।

इन्द्र और अग्नि यज्ञ के प्रचुरतम भाग के भागी हैं । यदिन्द्रश्च अग्निश्च भूयिष्टभाजौ देवानां तस्मात् ब्राह्मणश्च राजा च भूमिष्ट भाजौ मनुष्याणाम् ।

पज्र का अर्थ प्रभूत है और होष का अर्थ 'याग' प्रभूतः होषः अनयोरिति प्रभूत होषौ- पज्रहौषौ प्रभूत यागौ ।

पज्राः- (१) अपने धन को भोग प्रधान पापों या विलासों में लगाने वाले व्यसनी जन ।

'येत्वा देवो म्रिकं मन्यमानाः
पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः '
ऋ. १.१९०.५.

पज्रा- पज्र + टाप् = पज्रा । अर्थ- (१) व्यापने वाली विद्युत, (२) गन्त्री , जाने वाली या बलवती-स्त्री ।

'शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्रां '
ऋ. १.१६७.६

पज्रिम- पद् + रक् = पद्र = पज्र, पज्र + घ = पज्रिय । अर्थ (१) पदों में प्रसिद्ध होने वाला (२) ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में विद्यमान, (३) गतिशील कक्षीवान् नामक मुख्यप्राण (४) आकाश में गति करने वाला -सूर्य ।

'युवं नरा स्तुवते पज्रियाय
कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् '
ऋ. १.११६.७

हे सन्मार्ग पर ले जाने वाले शिक्षक, विद्वान् पुरुष या अश्विद्वय, तुम दोनों यथार्थ विद्याभ्यास कराने वाले, ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में विद्यमान (पज्रियाय) अश्व के समान कसे कसाए सदा कटिबद्ध या कक्ष में यज्ञोपवीत धारण करने वाले या अपनी कक्षा में उत्तम रहने वाले (कक्षीवते) बहुत अधिक ज्ञान धारण करने में समर्थ बुद्धि प्रदान करते हो (पुरन्धिम् अरदतम्) ।

प्राण और अपान दोनों कक्षीवान् नामक मुख्य प्राण को देह रूप पुर के धारण पोषण का बल प्रदान करते हैं । अथवा, आकाश में गति करने वाले सूर्य को आकाश और पृथिवी ब्रह्माण्ड पालन का सामर्थ्य देते हैं ।

पञ्च - डुपचष पाके भ्वादिः; पचि विस्तार वचने चुरादिः, पचि व्यक्तिकरणे भ्वादि (परिणाम, विस्तार और व्यक्तिकरण अर्थों में पच् धातु का प्रयोग हुआ है) । अर्थ है- (१) परिणाम स्वरूप विस्तृत या व्यक्तरूप पञ्चभूत ।

'बृहतः परिसामानि षष्ठान् पञ्चाधिनिर्मिता '
अ. ८.९.२.

(२) पांच सहायक साधन-उपाय -देश और काल की अनुकूलताएं ।

'यद्वा पञ्चक्षितीनाम अवः '
तत्सु न आभर '
ऋ. ५.३५.२, कौ.ब्रा. २३.२.

(३) पांच संख्या ।

पञ्च अध्वर्यवः- (१) पांच अध्वर्यु अर्थात् यज्ञ कर्त्ता, (२) देह को न मरने देने वाले पांच इन्द्रियां ।

'अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः '
ऋ. ३.७.७

पञ्चऋतवः - (१) पांच ऋतु, (२) गतिमान पांच प्राण,

'गां पञ्चनाम्नी मृतवोऽनुपञ्च '
ऋ. ८.९.१५, तै.सं. ४.३.११.४, मै.सं. २.१३.१०, १६.१.५, का.सं . ३९.१०, पा.गृ.सू. ३.३.५.

पञ्चक्षितयः- (१) पाँचों क्षिति (२) जीवों के निवास पृथिवी आदि पञ्चभूत, (३) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्र और निषाद ।

'इन्द्रः पञ्चक्षितीनाम् '
ऋ. १.७.९. अ. २०.७०.१५

(४) पांचों राष्ट्र वासी प्रजाजन ।

'यस्य विश्वानि हस्तयोः
पञ्च क्षितीनां वसुः '
ऋ. १.१७६.३, ६.४५.८

पञ्चकृष्टयः- (१) पांचों मार्गों से खींचने वाले पांचों इन्द्रियाँ ।

'अच्छान्त्सुः पञ्चकृष्टयः '
ऋ. १०.११९.६

पञ्चकृष्टिः पंचजन- (१) देव, मनुष्य, असुर, राक्षस और पितर अथवा (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और, निषाद । यह शब्द पञ्चजन का ही

पर्याय है और वैदिक समाज व्यवस्था का परिचायक है ।

'आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः '

सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान '

ऋ. ४.३८.१०, तै.सं. १.५.११, नि. १०.३१.

जिन दधिक्रा देवता या मेघों ने देव, मनुष्य, असुर, राक्षस, पितर या चार वर्ण और निषाद के लिए जल का विस्तार उसी प्रकार किया जिस प्रकार सूर्य ने प्रकाश का ।

पञ्चजनाः-ब.व.। (१) पांचजन, (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और निषाद , (३) गन्धर्व पितर, देव, असुर और राक्षस (४) ब्राह्मण ग्रन्थों में देव, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प तथा पितर को 'पञ्चजना' कहा गया है ।

सर्वेषां वा एतत्पञ्चजनानाम् उक्थं देवमनुष्याणाम् गन्धर्वाप्सरसाम् सर्पाणाञ्च पितृणाञ्च-ऐ.ब्रा.

(५) पञ्चजन की यह कल्पना अत्यन्त प्राचीन है और ऐतिहासिकों एव समाज शास्त्रियों के लिए विचारणीय है । मानव समाज का पञ्चजन में विभाग ऋग्वेद में स्पष्ट है । औपमन्यव आचार्य चार वर्णों एवं निषाद् को ही पञ्चजनाः कहते हैं । (गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि इत्येके । चत्वारः वर्णाः निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः)

(६) 'पाञ्चजनन्यया विशा' से भी 'पञ्चजनाः' शब्द प्रजामात्र का पर्याय है ।

'यत्पाञ्चजन्यया विशा

इन्द्रे घोषा असृक्षत

अस्तृणाद्बर्हणा विपः

अर्यो मानस्य सक्षयः ।

ऋ. ८.६३.७

जब पञ्चजनों के समुदाय रूपी प्रजाओं के साथ ऋत्विजों के द्वारा (पाञ्चजन्यया विशा) इन्द्र के अवर्षण करने पर स्तुतियाँ रची गई, (घोषाः असृक्षत) तब उन स्तुतियों से प्रसन्न हो समस्त जगत् का ईश्वर (अर्यः) मेघों का पिता या मेघों का क्षेप्ता (विपः) वह इन्द्र बड़े वज्र से (बर्हणा) मेघों को वर्षा के निमित्त मारा (अस्तृणात्) क्योंकि वह दर्प, बल और वीर्य का निवास (मानस्य क्षयः) है (७) यास्क ने भी 'मनुष्य' के पर्याय 'पञ्चजन ' की गणना की है । पांच उत्पन्न होने वाले तत्व ।

(८) इन पञ्चजनों को ही अदिति भी कहा गया है ।

'विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजनाः '

ऋ. १.८९.१०, अ. ७.६.१, वाज.सं. २५.२३

पञ्चदश - (१) राष्ट्र के १५ अंगों पर शासक-मुख्यराजा, ।

'अन्तर्यामात् पञ्चदशः '

वाज.सं. १३.५५, तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९, १०४.४, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ८.१.१८.

(२) पन्द्रहवां, (३) आत्मा, (४) तेज स्वरूप सूर्य

'पञ्चदिशः पञ्चदशेन क्लृप्ताः '

अ. ८.९.१५, तै.सं. ४.३.११.४, मै.सं. २.१३.१०, १६१.६, का.सं. ३९.१०, पा.गृ.सू. ३.३.५.

(५) राज्य के १४ विभागों के ऊपर पन्द्रहवां राजा है ।

'क्षत्रं पञ्चदशः '

ऐ.ब्रा. ८.४.

'अहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि '

अ. ११.१.१९

(६) दसइन्द्रियगत प्राण और पंच प्राण, अपान, उदान व्यान और समान ।

'उक्षणो हि मे पञ्चदश

साकं पचन्ति विंशतिम् '

ऋ. १०.८६.१४, अ. २०.१२६.१४

(७) पन्द्रहवें पद पर स्थिपूर्णन्द्र

'तीव्रं सुतं पञ्चदशं निषिञ्चम् '

ऋ. १०.२७.२

(८) चन्द्रमा ।

'चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि

घपञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्यते '

तै.सं. १.५.१०.५

'चतुर्दश ह्येवैतस्यां

करुकराणि वीर्यं पञ्चदशम् '

गो.ब्रा. २५.३

पञ्चदशाक्षर - (१) मेरु दण्ड के १४ मोहर और उनमें व्यापक पन्द्रहवां वीर्य मिलाकर १५ का समूह यह मेरुदण्ड, (२) राष्ट्र के १५ विभागों का अध्यक्षः (३) दसइन्द्रियाँ और ५ प्राण.

'आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशम् '

वाज.सं. ९.३४

पञ्चदशानि उक्था- (१) छन्दों की दृष्टि से १५ प्रकार के सूक्त ।
'सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था '
ऋ. १०.११४.८, ऐ.आ. १.३.८.६.
(२) देह में १५ अंग या उक्थ-५ कर्मेन्द्रियां और ५ ज्ञानेन्द्रियां और पञ्चभूत हैं । ब्रह्म के अनन्त होने से वेदवाणी भी अनन्त हैं और ज्ञानवती हैं । प्रति देह में वही ब्रह्म यज्ञ का स्वरूप है । वेदिगत यज्ञ तो उसका प्रतिनिधि मात्र है ।
'सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था
यावद् द्यावापृथिवी तावदित् तत्
सहस्रधा महिमानः सहस्रं
यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्'
ऋ. १०.११४.८

पञ्चदिशः- (१) पांच दिशाएं (२) शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियां ।
'पञ्चदिशाः पञ्चदशेन क्लृप्ताः '
अ. ८.९.१५

पञ्च दोहाः- पांच प्राण के पांच ग्राह्य विषय, (२) पांच प्रकृति के विकार भूत पञ्चभूत की पांच तन्मात्राएं-गन्ध आदि ।
'पञ्चव्युष्टीरनु पञ्चदोहाः '
अ. ८.९.१५

पञ्चधा- (१) पांचों प्रकारों के प्राणों को धारण करने वाला, (२) पांच गुणा ।
'सरस्वती तु पञ्चधा '
वाज.सं. ३४.११

पञ्चधनेवः - पांच ज्ञानेन्द्रिय रूप धेनुएं ।
'पञ्चास्मै धनेवः कामदुघा भवन्ति '
अ. ९.५.२५

पञ्चजन् - पांच की संख्या । पञ्च पक्तासंख्या स्त्रीनपुंसकेवविशिष्टा । पञ्चपृक्त अर्थात् मिली हुई संख्या है । और स्त्रीलिंग, पुल्लिंग तथा नपुंसक लिंग का प्रयोक एक सा है । जैसे -पञ्चस्त्रियः, पञ्चपुरुषाः, पञ्चकुलानि

पञ्चनद्यः - (१) दृशद्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, विपाशा और इरावदी नामक पांच नदियां-उवट (२) पांचों समृद्ध प्रजाएं -ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ।
(३) इन्द्रिय नलिकाओं में बहने वाली पांच प्रकार की वृत्तियां ।
'पञ्चनद्यः सरस्वतीम्'
वाज.सं. ३४.११.

पञ्चनवानिवस्त्रा - (१) पांच प्रकार के नए वस्त्र, (२) पांच कोश ।
'पञ्चरुक्मा पञ्चनवानि वस्त्रा'
अ. ९.५.२५

पञ्चनाम्नीगौः- (१) पांच नाम वाली गौ, (२) अध्याय में चितिशक्ति, (३) गन्धादि पांच गुणों के नाम धारण करने वाली पृथ्वी या आदित्य या गौ ।
'गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनुपञ्च '
अ.. ८.९.१५

पञ्चपदानि- (१) सीढ़ी के पांच पगदण्ड, (२) योग की पांच भूमियां या पांच यम ।
'पञ्चपदानि रूपो अन्वरोहम्'
ऋ. १०.१३.३

पञ्चदशवः-गौ, अश्व, पुरुष, अज और अवि (भेड़)
'तवेमे पञ्चशवोविभक्ताः
गावो अश्वाः पुरुषाः अजावयः '
अ. ११.२.९

पञ्चप्रदिशः- (१) पांच दिशाएं (२) गुरु आदि पांच शिक्षक-माता, पिता गुरु, आचार्य और सुहृद्
'या देवीः पञ्च प्रदिशः '
अ. ११.६.२२.
(३) आत्मा के अधीन पांच इन्द्रियां , (४) राजा के अधीन पांच प्रजाएं ।
'तवेमाःपञ्च प्रदिशो विधर्ममणि '
ऋ. ९.८६.२९
'दुह्रां मे पञ्चप्रदिशः '
अ. ३.२०.९
(५) पांच विद्वत्समितियाँ ।
'त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः '
अ. ३.४.२

पञ्चपाद- (१) पांचपैरों वाला बच्चा ।
'पञ्चपादादनङ्करेः '
अ. ८.६.२२
(२) पांच ऋतु सूर्य के पांच पाद-या चरण हैं, (३) ईश्वरीय शक्ति के पांच पाद अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और अहंकार, (४) पञ्च प्राण पांच

पाद हैं ।
'पञ्चपादं पितरं द्वादश्यकृतिम्'
अ. १.१६४.१२, अ. ९.९.१२.
(५) सूर्य, (६) संवत्सर जिसके पांच चरण- क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिवस, पक्ष या हेमन्त, शिशिर को एक मानकर पांच ऋतुएं ही पांच चरण हैं । (६) ज्ञान करने के पांच साधनों का स्वामी आत्मा ।

पञ्चप्रियाः- पञ्चमहामृत ।
'प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च'
ऋ. १०.५५.२

पञ्चभिः पराङ् - पांचों से अर्थात् पांच बहिर्मुख प्राणों से बाहर की ओर या पञ्चभूतों के बाहर की ओर ।
'पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वान्'
अ. १७.१.१७

पञ्चमानवाः - (१) पांच प्रकार के मनुष्य ।
'यथा यमाय हर्म्यम्
अपवन् पञ्चमानवाः'
अ. १८.४.५५, तै.आ. ६.६.२.
'तवेमे पृथिवि पञ्चमानवाः'
अ. १२.१.१५
(२) मानव जाति सम्बन्धी बसन्त आदि पांच ऋतुएं (३) पांच मानव अर्थात् शरीर गत प्राणों के समान समष्टि में पांच तन्व ।
'त्रयोदश भौवनाः पञ्चमानवाः'
अ. ३.२१.५

पञ्चयाम- पांचयमों वाला शरीर, देह के नियम में रखने वाले प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान के कारण शरीर पञ्चयाम है ।
'पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्'
ऋ. १०.५२.४, १०.१२४.१
(२) देह में पांच इन्द्रियों के समवाय से करने योग्य यज्ञ ।

पञ्चरश्मि- (१) पांच प्रकार की ऋतूत्पादक सूर्य किरणों से युक्त, संवत्सर, (२) प्राण, अपान उदान, व्यान और समान इन पांच प्रकार की प्रवर्तक शक्तियों से युक्त अथवा नाक, कान, त्वचा, आंख और रसना इन पांच ज्ञान प्रकाशक किरणों से युक्त शरीर ।
'तं जिन्वथो वृषणा पंचरश्मिम्'
ऋ.२.४०.३, मै.सं. ४.१४.१, २१५.२, तै.ब्रा. २.८.१.५.

पंचरात्रः- (१) पांच दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ ।
'चतूरात्रः पञ्चरात्रः'
अ. ११.७.११

पंचर्तु -पांच ऋतुएं । पञ्चर्तु रूप में संवत्सर की स्तुति की गई है । पंच + ऋतु= पंचर्तु । 'पञ्चर्तवः संवत्सरस्य' ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थों में आया है । हेमन्त और शिशिर को एक मानकर (हेमन्तशिशिरयोः समासनम्) पांच ही ऋतुएं मानी गई हैं ।
'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमानेः
तस्मिन् आतस्थुः भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षः तप्यते भूरिभारः
सनादेव न शीर्यते सनाभिः'
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.९.११, नि. ४.२७.

पंचवर्धयन्ती (१) पांच ज्ञानेन्द्रियों को बढ़ाती हुई वाणी (२) ब्राह्मणादि तथा निषाद इन पांचों को बढ़ाने वाली ।
(३) पिता, श्वसुर, भाई, देवर, और पुत्र पांचों को बढ़ाने वाली स्त्री ।
'पंच जाता वर्धयन्ती
वाजे वाजे हव्याभूत्'
ऋ. ६.६१.१२

पंचवृष- (१) पांच प्राणों से युक्त आत्मा ।
'यदि पंच वृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.५

पंचरुक्मा - (१) पांच रुचिकर, सुवर्ण रूप पांच प्रकार के भोग्य पदार्थ, (२) पांच रोचमान इन्द्रियां ।
'पंचरुक्मा पंचनवानि वस्त्रा'
अ. ९.५.२५

पंचवासांसि - (१) पांच वस्त्र, (२) पांच आच्छादक कोश ।
'वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति'
अ. ९.५.२६

पंञ्चवाही - पांचों प्राणों और पंचभूतों को वहन करने वाला परमात्मा या आत्मा ।
'पञ्चवाही वहत्यग्रमेषाम्'
अ. १०.८.८

पञ्चव्राताः- पांच प्रकार के मनुष्य संघ ।
'गिरायदी सबन्धवः
पञ्चव्राता अपस्यवः '
ऋ. ९.१४.२

पञ्चव्युष्टी- (१) पांच प्राण, (२) पांच प्रकृति के विशेष विकार पञ्चभूत ।
'पञ्चव्युष्टीरनु पञ्चदोहाः '
अ. ८.९.१५, तै.सं. ४.३.११.४ मै.सं. २.१३.१०, १६१.५, का.सं. ३९.१०, पा.गृ.सू. ३.३.५.

पञ्चशल - (१) सन्ताप करने वाले सर या शर (२) पञ्च प्राणों का कष्ट ।
'इत् त्वाहार्षं पञ्चशालादथो दशशलादुत '
अ. ८.७.२८

पञ्चसंदृशः- (१) पांच देखने वाली इन्द्रियां, (२) पांचों प्रकार के सम्यक् दृष्टिवाले तत्वज्ञ विद्वान्, (३) अच्छी प्रकार दिखलाने वाली पांचों प्रकार के प्रकाशक अग्नि (४) चार वेद और पांचवां आत्मानुभव, (५) निषाद सहित पांच वर्ण ।
'षडस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः '
ऋ. २.१३.१०,

पञ्चस्वसारः - पाचों प्रजाएं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, एवं चण्डाल ।
'द्विर्यं पञ्च स्वयशसं
स्वसारो अद्रिसंहतम् '
ऋ. ९.९८.६, साम. २.६८०.

पञ्चहोता - पाचों प्राणों द्वारा गृहीत ज्ञान को अपने में लेने वाली वाणी, (२) जिस वाणी को पांच जन स्वीकार करें, ।
'पृषद् योदिनः पञ्चहोताश्रृणोतु '
ऋ. ५.४२.१

पञ्चहोतारः- (१) ऋत्विक् आदि पांच होता, (२) पांच राजपद को धारण करने वाले अधिकारी, (३) देह के पंच होता-प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ।
'त्रिनोन यान् पञ्चहोतृन् अभिष्टये '
ऋ. २.३४.१४.

पंचाक्षर- (१) अविनाशी पंचभूत रूपी पांच सामर्थ्य (२) वायु के पांच अक्षय-स्वाभाविक उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन रूप पांच कर्म ।
'पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्चदिश उदजयत् '
वाज.सं. ९.३२.

पञ्चाङ्कुरि- (१) पाचों अंगुलियाँ जोड़कर शिकार करने वाला ।
'यस्त आस्यत् पञ्चाङ्कुरिः '
अ. ४.६.४

पञ्चापूप- पञ्च + अपूप ' (१) पांच मालपूए, (२) पांच विषयभोगों से युक्त भोक्ता ।
'पञ्चापूपं शितिपादम् '
अ. ३.२९.४,५

पञ्चार- पञ्च + अर = पञ्चार । (१) पांच ऋतुओं का संवत्सर, ऋतु ही अर मानी गई है । छः ऋतुओं को 'षडर' कहा गया है । पञ्चार चक्रे परिवर्तमाने
'तस्मिन् आतस्थु र्भुवनानि विश्वा
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः
सनादेव नशीर्यते सनाभिः । '
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.९.१०, नि. ४.२७.
पांच ऋतुओं के अर वाले बार-बार आने वाले उस संवत्सर नामक चक्र में (परिवर्तमाने तस्मिन्पञ्चारे चक्रे) सभीजीवस्थित हैं (भुवनानि आतस्थुः) उस काल चक्र में वर्तमान संवत्सर नामक अक्ष (तस्य अक्षः) प्रभूतभार वाला होने पर भी (भूरिभारः) पीड़ित या भग्न नहीं होता (न तप्यते) तथा वह चिरन्तन अक्ष (सनात् एव) समान नाभि या सदा एक सी नाभिवाला होने के कारण या सूर्य रुपी नाभि पात्र (सनाभि) कभी शीर्ण नहीं होता (नशीर्यहि) ।

पञ्चार चक्र - (१) पांच तत्व रूप अरों वाला चक्र, (२) संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर और अनुवत्सर इन पांच वर्षो के रूप में पांच अरों से युक्त काल चक्र, (३) पांच प्राणमय पांच अरों से बना चक्र -कर्त्ताआत्मा ।
'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने '
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.९.११, नि. ४.२७.

पञ्चाविः- (१) पांचों प्राणों एवं पांचों इन्द्रियों को वश में करने में समर्थ ।
'पञ्चाविर्वयो गायत्रीछन्दः
वाज.सं. ४.१०
(२) ढाई वर्ष का बैल ।

'पञ्चाविश्च में पञ्चावी च मे '
वाज.सं. १८.२६

पञ्चाविःगौः- षण्मास कालोऽविः (छः महीनों का काल अवि है) । अतः पञ्चअवि ढाई वर्ष हुआ । अर्थ ढाई वर्ष का बैल ।
'पञ्चाविर्गौ र्वयोदधुः '
वाज.सं. २१.१४, मै.सं. ३.११.११,१५८.३, का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.२.

पञ्चावी- ढाई वर्ष की गाय ।
पञ्चाशत् - पचास ।
'आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा '
ऋ. २.१८.५

पञ्चोक्षणः- पञ्च + उक्षणः । अर्थ- (१) पांच प्राण जो सुख देने वाले हैं । (२) अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत् और सूर्य मण्डल का प्रकाश-ये पांच जल बरसाने वाले पंचोक्षण हैं. -दया. (३) राजसभा के पांच नरश्रेष्ठ ।
'अमीये पंचो क्षणाः
मध्ये तस्थुः महोदिवः '
ऋ. १.१०५.१०
ये पांच जल बरसाने वाले अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत्, और सूर्य-प्रकाश महान् आकाश में विराजमान हैं । अथवा, ये जो पांच प्राण हृदया काश में विराजमान हैं ।
(४) पृथिवी में अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु, आकाश में सूर्य, दिशाओं में चन्द्रमा और आकाश में नक्षत्र-तैत्तिरीय (५) पृथिवी में अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु, दूर आकाश में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्र और जलों में विद्युत्-शांखायन ब्रा. ।
(६) अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और विद्युत्-सा.

पञ्चोदन- (१) पांच प्रकार के विषयों का ज्ञान जिसके पांच प्रकार के ओदन अर्थात् योग हैं ।
'पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिः '
अ. ४.१४.७

पञ्चौदन- (१) पांच ओदनों, पांच वीर्यों-पांच प्राणों से युक्त पुरुष ।
'यदा पञ्चा वतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह
बुद्धिश्च न विचेष्ठते तामाहुः परमां गतिम् '
कठ उप. ६.१०
(२) अज-पांच प्राणों से युक्त आत्मा, (३) पांच प्राणों से युक्त बकरा - पाण्डुरंग । यह अर्थ भ्रमात्मक एवं अशुद्ध है . ओदन शब्द रूपक है ।
'पञ्चौदनं ब्रह्ममेऽजं ददाति '
अ. ९.५.११,१२

पट्- पा (पीना), स्पश् (बांधना), या स्पृश् (स्पर्श करना) + अटि = पट् । धातु का प आदेश होता है । अर्थ है- (१) पान, (२) स्पर्श, (३) बन्धन, (४) गुणों का ग्रथन (सोमपानम् गुणस्य अशनम्, बन्धनम्, स्पर्शनम्) ।
'एवा महोअसुर वक्षथाय
वम्रकः पड्भिरूप सर्पदिन्द्रम्
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा
इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः '
ऋ. १०.९९.१२
वम्रकऋषि कहते हैं- हे बलवान् इन्द्र (असुर) इसी प्रकार से (एवम्) दूसरे कल्प में उत्पन्न वम्रक ऋषि ने (वम्रकः) स्तुति करने वाले महान् यजमान के लिये (वक्षथाय महः) सोमपानों या गुणगानों के द्वारा (पड्भिः) कल्पान्तरीण तुझी इन्द्र को (इन्द्रम्) उपसर्पण किया (उपसर्पत्) । इस प्रकार अनुसृत हो उसने (स इयानः) स्वस्त्ययन या कल्याण किया (स्वस्तिं करति) इस समय इस जन्म में वही वम्रक उसी तुझ इन्द्र को उन्हीं स्तुतियों से तेरा अनुसरण करता हूं- ऐसा समझ इस यजमान के निमित स्वस्त्यपन कर तथा अन्न एवं क्षीर आदि (इषं ऊर्जम्) तथा सुन्दर निवास स्थान (सुक्षितिम्) यह सब (विशम्) प्रत्यक्ष होकर तू दे (आभर) ।

पटर - (१) सूर्य, (२) आंख की पटर की इस शब्द से समानता विचारणीय है ।
'अर्वाङ् सुवर्णैः पटरै र्विभाति '
अ. १३.३.१६

पटूर- ऋग्वेद कालीन एक जनपद ।

पठर्वा- (१) पतत् अर्वा= पकर्वा (छान्दसठ और पृषोदरादिवत् सिद्ध) (२) पठतः ऋच्छति इति पठर्वा ।
अर्थ- (१) वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी सेनापति (२) पढने वाले विद्यार्थियों को प्राप्त होने वाला आचार्य ।
'याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मना

अग्निर्ना दीदेन् चितइद्धो अज्मन्ना'
ऋ. १.११२.१७
जिन साधनों से भुक्त पदार्थों को अपने भीतर धारण करने वाले पेट की सब कुछ पचा लेने वाली भाग की तरह वीर तथा धर्मात्मा राजा सब भुक्त अर्थात् अधीन देशों को महान् बल से चमकाता है और जिन साधनों से सञ्चित काष्ठों में लगे चिताग्नि के समान जलते हुए संग्राम में वीर भटो को अपने तेज से भस्म करने वाला, पठन शील विद्यार्थियों को प्राप्त करने वाला आचार्य या वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी सेनापति ।

पड्गृभिः- पैर पकड़ने वाला ।
'अहं सव्याय पड्गृभिम रन्धयम्'
ऋ. १०.४९.५

पड् - पैर
'अत्राण्यस्मै पड्भिः संभरन्ति '
ऋ. १०.७९.२

पड्बीश- (१) घोड़ो को पिछाड़ी से बांधना, (२) चरण आदि का बांधना, (३) वस्त्रादि क्रान्त का आच्छादन करना, (४) आचरण आदि का नियम बन्धन (५) पदाधिकार के योग्य नियुक्ति
(६) पैरों में बेड़ी
'अथो यमस्य पड्बीशात्'
ऋ. १०.९७.१६, अ. ६.९६.२, ७.११२.२, ८.७.२८, वाज.सं. १२.९०.
(७) पञ्जे में आजाना, (८) फांसे में फंसना ।
'मृत्योः पड्वीश आद्यति'
अ. १२.५ १५
(८) घोड़े के पैरों को अगाड़ पिछाड़ से बांधना ।
'यज्ञ पड्वीशमर्वतः'
ऋ. १.१६२.१४, वाज.सं. २५.३८, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१, १८३.८, का.स. (अश्व.)६.५.
(९) पैरों को जकड़ देने वाला रोग ।

पणयः- (१) सर्व व्यवहारसाधक प्राण गण ।
'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे'
ऋ. १०.१०८.४
(२) व्यापारीगण ।

पणति- (१) पूजयति (पूजा करता है) 'पण' धातु व्यवहार तथा स्तुति अर्थ में प्रयुक्त होता है ।
(२) व्यवहार करता है ।

पण्डगः- चूतड़ो के बल सरकने वाला ।
'अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः'
अ. ८.६.१६

पणिः - पणति व्यवहरति हि असौ (यह व्यवहार या व्यवसाय करता है) । पण् + इन् = पणिन् । अर्थ-व्यापारी पण् (पणन व्यवहार कर्म करना) + इ = पणि ।
'इन्द्रो विश्वां बेकनाटां अहर्दृश
उत क्रत्वा पणींरभि'
ऋ. ८.६६.१०, नि. ६.२६.
इन्द्र सभी दिन गिनने वाले सूदखोरों को (अहर्दृशः वेकनाटान्) और व्यापारियों को (पणीन्) कर्म से ही अभिभूत करते हैं ।
(२) पणि नामक असुर ।
'निरुद्धा आपः पणिनेव. गावः'
ऋ.१.३२.११, २.१७.
जिस प्रकार पणि असुर ने गाएं रोक रखी थीं उसी प्रकार जल अन्तरिक्ष में थमे हुए था ।
आधुनिक अर्थबाजार, कृपण, पापी
(३) कुव्यसनी, स्वार्थी
'तस्मिन् तं धेहि मां पणौ'
ऋ. ८.९७.२, अ. २०.५५.३
(४) देह में नमन व्यापार करने वाला प्राण ।
'अरोदयत् पाणि मागा अमुष्णात्'
ऋ. १०.६७.६, अ. २०.९१.६, मै.सं. ४.१४.५, २२२.६
(५) स्तुति योग्य प्रभु ।
'बडस्य.नीथा विपणेश्च मन्महे'
ऋ. १०.९२.३

पणेः भोजनम्- (१) उत्तम व्यवहार योग्य, स्तुतियों एवं उपदेश योग्य वेदज्ञान का पालन सामर्थ्य
(२) उत्तम व्यवहार कुशल सम्पन्न पुरुष ।
'सर्वेपणेः समविन्दन्त भोजनम्'
वे सभी स्तुतियोग्य उत्तम व्यवहार और उपदेश योग्य वेदज्ञान का पालन सामर्थ्य वाले हैं ।
अथवा, उत्तम व्यवहार कुशल सम्पन्न पुरुष के योग्य भोजन पाते हैं ।

पत् - जाना जाना, ।
'यः पत्यते वृषभोवृष्ण्यावान्'

ऋ. ६.२२.१, अ.२०.३६.१

पतङ्ग – (१) टिड्डी दल ।

'तर्दहै पतङ्ग है'

अ. ६.५०.२

(२) आत्मा ।

'पतङ्गो वाचं मनसाबिभर्ति'

ऋ. १०.१७७.२, तै.आ. ३.११.११, अश्वश्रौ.सू. ३.८.१, जै उप.ब्रा. ३.३६.१

(३) अति वेग से चलने वाला अश्व

'नासत्या भुज्युमूहथुः पतंगैः'

ऋ. १.११६.४, तै.आ. १.१०.३,

सदा सत्य विज्ञान वाले दो विद्वान् या अश्विद्वय समस्त राष्ट्र के पालक और भोक्ता स्वामी तथा भोग्ये ऐश्वर्य को (भुज्युम्) अतिवेग से चलने वाले अश्वों के कारण समान यन्त्र कलाओं से पार करें । अथवा,

नासिकागत प्राण अपान (नासत्या) वेग से चलने वाले अश्वों के समान मन सहित पांच इन्द्रियों से पार करते हैं ।

(४) अग्नि की ज्वाला से निकला ताप या स्फुलिग ।

(५) वेग से जाने वाला अश्वारोही (६) बाण ।

'तपूंसि अग्ने जुह्वा पतङ्गान्'

ऋ. ४.४.२. वाज.सं. १३.१०, तै.सं. १.२.१४.१, का.सं. १६.१५.(७) पतन पातनादि गुणों से प्रकाशित स्वयं गतिशील शील अन्यों का प्रेरक –अग्नि –दया. (८) परमेश्वर, (९) प्राण ।

'प्राणो वै पतङ्गः'

कौ.सू. ८.४.

'पंतन्निव हि अङ्गेषु
वाक् पतङ्गायधीयते'

ऋ. १०.१८९.३, अ. २०.४८.६ वाज.सं. ३.८. साम. २.७२८ आ.सं. ५.६, तै.सं १.५.३.१ मै.सं. १.६.१, ८५.११, श.ब्रा. २.१.४.२९.

पतत्रि– इतश्च ततश्च पतनशीलः पक्ष्यादि प्राणि जातम् (इधर उधर पतनशील पक्षी आदि जीव)। पतति अनेन इति पतत्रम् (इससे पतन करता है अतः अतः यह पतत्र या पंख है) ।

पत् + त्रन् = पतत्रम् । पतत्रमस्य अस्ति इति पतत्री (इसे पंख है अतः यह पतत्री है) । पतत्र + इन् (मतुप् अर्थ में) = पतत्रिन् ।

अर्थ– (१) पक्षी ।

'स पतत्रीत्वरं स्था जगत् यत्
श्वात्रभग्नि रकृणोतजातवेदाः'

ऋ. १०.८८.४, नि. ५.३.

उस जातवेदा अग्नि ने सरीसृप् आदि एवं स्थावर जगत् को शीघ्र बनाया ।

(२) जाने वाला (३) व्यापक ।

'अरेणुभिः जेहमानं पतत्रि'

ऋ. १.१६३.६, वाज.सं. २९.१७, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व) ६.३.

पतत्रिणी – (१) पत्तों वाली, पंखों वाली, शाखा पर चिपटे छिलकों वाली, शाखा पर चिपटे छिल कों वाली सिलिची लाक्षा नामक ओषधि ।

'सारा पतत्रिणी भूत्वा'

अ. ५.५.९

(२) वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाली, दाएं बाएं रहने वाली और पक्ष प्रतिपक्ष से विवाद करने वाली सभा के सदस्यों की श्रेणी, (३) शरीर के मिथ्या ज्ञान और अकर्म दोनों पत्री अर्थात् जीव को गिराने वाले हैं ।

'मा मामिमे पतत्रिणी विदुग्धाम्'

ऋ. १.१५८.४

ये अज्ञान और अकर्म रूपी पतत्रिणी मुझ जीव को दग्ध न करें ।

अथवा, मुझे सभा के सदस्यों की दो श्रेणियां विपरीत रूप से दोहन न करें ।

(३) रोग को शरीर से बाहर कर रक्षा करने वाली ओषधि ।

'सीराः पतत्रिणी स्थान'

ऋ. १०.९७.९, वाज.सं. १२.८३.

पतत्रिन् – (१) पाल वाली नौका या विभान ।

'सं वाताः सं पतत्रिणः'

अ. १.१५.१, १९.१.१.

पतन्ती– जाती हुई ।

'विद्युन्न या पतन्ती दविद्योत्'

ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.

जो माध्यमिका देवता उर्वशी विद्युत् के सदृश अन्तरिक्ष में जाती हुई चमकती है ।

पतयालू– नीचे दुराचार में गिरने वाली ।

'या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा'

अ. ७.११५.२

पतयिष्णु- (१) वेगवान् ,(२) विनाश शील ।
'तव शरीरं पतयिष्णु अर्वन्'
ऋ. १.१६३.१, वाज.सं. २९.२२, तै.सं. ४.६.७.४, का.सं. (अश्व.) ६.३.
(३) वेग से जाने में समर्थ ।

पतर- (१) वेग से चलने वाला अग्नि या तप्त पदार्थ, (२) ऐश्वर्य युक्त करने वाला ।
'पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः'
ऋ. २.२.४
(३) किरण, (४)गमनशील प्राण, (५) पक्षी ।
'यदेतशेभिः पतरैरथर्यसि'
ऋ. १०.३७.३

पतरा - दो पक्षी । द्वि.व. में प्रयोग ।
'पतरेव चचरा चन्द्र निर्णिक्'
ऋ. १०.१०६.८

पतरू- पतनशील, गिरता हुआ ।
'पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभे'
ऋ. १.१८२.७
गिरते हुए वानर को जैसे पत्ते ही संभालने के लिये पर्याप्त होते हैं ।

पत्तः- व्याप्त पुरुष ।
'पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति'
ऋ. १०.२७.१३

पत्तवे - (१) पहुंचने के लिये (२) अपमानित करने के लिये ।
'मा मातरम् अमुया पत्तवे कः'
ऋ. ४.१८.१

पत्नी- पत्नी का अर्थ है- पालने वाली, । 'पालयित्र्य आपः' (जल पालने वाले हैं) । अर्थ (१) जल ।
(२) स्त्री ।

पत्नीवन्तः सुताः - पत्नी का अर्थ जल है । अतः पत्नीवत् का अर्थ है - जलमय । 'पत्नीवन्तः सुताः' का अर्थ हुआ- (१) जलमय अभिसुत सोम रस -
'पत्नीवन्तः सुता इमे
उशन्तो यन्ति वीतये'
ऋ. ८.९३.२२, नि. ५.१८
ये जलमय अभिसुत सोम रस इस उद्देश्य से कि देवगण पीयें देवदाओं की ओर जाते हैं ।

पत्मन्- (१) मार्ग, (२) चाल चलन ।
'यातेव पत्मन् त्मना हिनोत'
ऋ. ७.३४.५

पत्मा- पतनशील ।
'व्रेशीनां त्वा पत्मन् आधूनोमि'
वाज.सं. ८.४८, श.ब्रा. ११.५.९.८.

पत्वा- वेग से आक्रमण करने या उड़ने में समर्थ
'सीदन वनेषु शकुनो न पत्वा
ऋ. ९.९६.२३

पत्संगिनी- पत् + संगिनी । पैरों में पड़ने वाली रस्सी ।
'पत्संगिनीरा समन्तु विगते बाहुवीये'
अ. ५.२१.१०

पत्सुतः शीः - पादों के तले सोने वाला । पाद् का पत्, सप्तमी अर्थ में तसिल् प्रत्यय ।
'तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव'
ऋ. १.३२.८.
उन जलों का धारक मेघ (तासाम् अहिः) वज्र से ताड़ित होकर पावों तले आ पड़ता है । (पत्सुतःशीः) ।

पति- (१) पाला , पालयिता (रक्षा या पालन करने वाला) (२) पालयिता जायनाम् (स्त्रियों का पालक) पति ।
'अन्यमिच्छस्व सुभगेपतिंयत्'
ऋ. १०.१०.१०, अ. १८.१.११, नि. ४.२०.
हे सुभगे, तू मुझ से किसी अन्य को अपना पति बना । (२) स्वामी मालिक ।
'क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं
धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतम्
ऋतस्य नः पतयो मृडयन्तु ।'
ऋ. ४.५७.२, तै.सं. १.१.१४.३, का.सं. ४.१५, ३०, ४. आप.मं.पा. २.१८.१८, नि. १०.१६.
हे क्षेत्रपति, तू मधुरजल के संघात की (मधुमन्तम् ऊर्मिम्) गौ के दूध के समान (धेनुः पय इव) हमारे लिए (अस्मासु) बरसा या दुह (धुक्ष्व) । मधु की तरह चूने वाले (मधुश्चुतम्) अतिपवित्र (सुपूतम्) घृत के समान (घृतमिव) जल को जल के स्वामी हमारे लिए दो (नः मृडयन्त) ।
पुनः,
'दीर्घायुरस्याः यः पतिः

जीवाति शरदः शतम्'
ऋ. १०.८५.३९. अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.२, नि. ४.२५.

पतिजुष्टा- (१) पति के प्रति प्रेम से बद्धस्त्री, (२) नायकगण से बनी प्रजा ।
'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी'
ऋ. १.७३.३

पतित्वनम् - पतित्व ।
'अस्मा अह्ने भवति तत् पतित्वनम्'
ऋ. १०.४०.९

पतिद्विट् - पति + द्विष् + क्विप् = पतिद्विट् । अर्थ-पति या बन्धु आदि पालक जनों से प्रीति न करने वाली स्त्री ।
'कुवित् पतिद्विषो यतीः'
ऋ. ८.९१.४

पतिरिष् - पति से द्वेष करने वाली स्त्री ।
'पतिरिषो न जनयो दुरेवाः'
ऋ. ४.५.५

पतिलोक- (१) पति का गृह ।
'शिवास्योना पतिलोके विराज'
अ. १४.१.६४
(२) मृत पति के निकट (३) पति का लोक, परलोक, ।
'इयं नारी पतिलोकं वृणाना'
अ. १८.३.१

पतिवेदन- (१) पति को प्राप्त कराने वाला बन्धुस्वरूप परमेश्वर ।
'अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्'
अ. १४.१.१७
'सुगन्धिं पतिवेदनम्'
वाज.सं. ३.६०, श.ब्रा. २.६.२.१४, आप.श्रौ.सू. ८.१८.३.
(२) पति की प्राप्ति, पति का वरण ।
'धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिदेवनम्'
अ. २.३६.२

पतिवेदनौ - पति के रूप में प्राप्त होने वाले ।
'जाता याः पतिवेदनौ'
अ. ८.६.१

पती - द्वि.व.। (१) गृहस्थ धर्म को निभाने वाले एक दूसरे के पालक पति पत्नी, (२) पति पत्नी के समान व संसार के प्रति अति प्रेम मय ।
'पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती'
ऋ. २.३१.४

पत्नी- (१) स्त्री ।
'पुनः पत्नीमग्निरदात्'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४, ९,१४,
पिता के द्वारा देने पर अग्नि ने पुनः पत्नी का दान दिया ।

पत्नीनां सदनम्- स्त्रियों के लिए गृह ।
'पत्नीनां सदनं सदः'
अ. ९.३.७

पत्नीवत्- सस्त्रीक्, स्त्रीयुक्त हो यज्ञकर्त्ता यजमान ।
'पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्'
ऋ. १.७२.५
पत्नीयुक्त पुरुष नमस्कार योग्य पुरुष को नमस्कार करें ।

पत्नीवान्- पत्नी या प्रजापालक शक्ति और ब्रीहि से युक्त ।
'पत्नीवन्तो वषट्कृताः'
ऋ. ८.२८.२

पत्नीशाल्- (१) पालन करने वाले राजा की राज सभा का भवन (२) यज्ञ की पत्नी शाला ।
'पत्नीशालं गार्हपत्यः'
वाज.सं. १९.१८

पत्नी संयाज- (१) पत्नी के साथ मिलकर यज्ञ करना, (२) पालन -शक्ति से प्रजाओं को सुख प्रदान करना ।
'शंयुना पत्नी संयाजान्'
वाज.सं. १९.२९

पतु- मार्ग, राजमार्ग ।
'आदित्यानां पत्वान्विहि'
वाज.सं. २२.१९, तै.सं. ७.१.१२.१, मै.सं. ३.१२.४, १६१.११, का.सं. (अश्व.) १.३, पंच.ब्रा. १.७.२, शं.ब्रा. १३.१.६.२,तै. ब्रा. ३.८.९.३, आप. मं. पा. २.२१.३०.

पत्सुतः- ज्ञान में निष्णात ।
'कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः'
ऋ. ८.४३.६, का.सं. ७.१६, शा.श्रौ.सू. ३.५.१०

पथ्य- पथों का अध्यक्ष ।
'नमः मृत्याय च पथ्याय च'
वाज.सं. १६.३७

पथां विसर्गः- (१) जीवन की समाप्ति (२) जहां अनेक मार्गों की सृष्टि नहीं होती वह परमात्मा का धाम
'आयोर्हस्कम्भे उपमस्यनीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'
ऋ. १०.५.६
(३) मार्गों का विविध दिशाओं में जाने का केन्द्र स्थान ।

पथ्या- पद्यते तत् मध्यमस्थानिभिः इति पन्था अन्तरिक्षम् (मध्यम स्थानीय उस पर चलते हैं । अतः यह पन्था या अन्तरिक्ष हुआ) ।
'यथायाम् भवापथ्या'
जो अन्तरिक्ष में हो वह पथ्या है । पन्था+ यत् = पथ्या, पथ्य + टाप = पथ्या । (१) अन्तरिक्ष में मेघ का निवास है अतः पथ्या का अर्थ मेघ है । (२) पथ पर धर्म मार्ग पर रहने वाली प्रजा ।
'पथ्या रेवती र्बहुधा विरूपाः'
अ. ३.४.७
(३) अन्नादि देने से हितकारिणी पृथिवी, (४) सदा सूर्य के साथ पतिपरायणा पत्नी की तरह रहने वाली पृथिवी, (५) स्व क्रान्ति पथ से विचलित न होने वाली (६) धर्मपथ से अति क्रमण न करने वाली ।
'सध्रीचीना पथ्या सा विषुसी'
ऋ. ३.५५.१५

पथ्या- (१) सन्मार्ग ।
'देवां अच्छा पथ्या का समेति'
ऋ. ३.५४.५
(२) पगडंडी ।
'विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः'
ऋ. १०.१३.१, अ. १८.३.३९, वाज.सं. ११.१५, तै.सं. ४.१.१.२ मै.सं. २.७.१.७४.२, का.सं. १५.११, श.ब्रा. ६.३.१.१७, श्वेत उप. २.५.
(३) मार्गवर्ती प्रजा, (४) उत्तम पथ योग्य, (५) धार्मिक शिष्टाचार ।
'अंगिरस्तमा पथ्या अजीगः'
ऋ. ७.७५.१
(६) धर्म मार्ग पर चलने वाली प्रजा ।
'आ या ह्यग्ने पथ्या अनुस्वाः'
ऋ. ७.७.२

पथ्याः रायः- सन्मार्ग से आने वाले ऐश्वर्य ।
'संजग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्'
ऋ. ६.१९.५

पथिकृत् - (१) मार्गदर्शक, (२) व्यवस्थापक, कानून बनाने वाला ।
'लोककृतः पथिकृतो यजामहे'
अ. १.८.३.२५-३५, ४.१६-२४.
(२) मार्ग बनाने वाला ।
'हि जिष्णुः पथिकृतःसूर्याय'
ऋ. १०.१११.३
(३) उत्तम मार्ग बनाने वाला -परमेश्वर ।
'त्वं नो गोपा पथिकृत् विचक्षणः'
ऋ. २.२३.६.
'उत दुर्गेषु पथिकृत विदानः'
ऋ. ६.२१.१२

पथिकृता- द्वि.व. । मार्ग बनाने वाले अग्निषोमा ।
'अग्निषोमा पथिकृता स्योनं'
अ. १८.२.५३

पथिन्- पत्, पद या पथि + इन् = पथिन् । पद्यते तत् (उस पर चला जाता है) । अर्थ (१) मार्ग ।
'मा पथो विदुक्षः'
(२) विषयानुप्रवेश मार्ग (३) इन्द्रिय । अंग्रेजी का Path शब्द से पथिन की समता विचारणीय है ।

पथिरक्षी- द्वि.व. । जीवन मार्ग की या काल की रक्षा करने वाले दिन रात का कुत्ते ।
'यमस्य यौ पथिरक्षीश्वानौ'
अ. ८.१.९
(२) यमलोक के मार्ग में रक्षा करने वाले दो सारमेय कुत्ते, (३) जीवन के मार्ग में रक्षा करने वाले प्राण और अपान वायु (४) यम के दो दूत ।
'चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ'
ऋ. १०.१४.११, अ. १८.१२, तै.आ. ६.३.१.

पथिरक्षिः- (१) मार्ग का रक्षक, (२) रुद्र, (३) मार्ग में चलने वाले यात्रियों का रक्षक ।
'ये पथां पथिरक्षयः'
वाज.सं. १६.६०, वाज.सं. (का.) १७.८.१४, तै.सं. ४.५.११.१, मै.सं. २.९.९.१२९.१, का.सं. १७.१६. मा.श्रौ.सू. ११.७.१.

पथिष्ठा- पथि + स्था । मार्ग में खड़ा ।

'स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम्'
अ. १४.२.६

पथीनां पतिः- (१) मार्ग और मार्गगामी यात्रियों का पालक (२) रुद्र, (३) मार्गाध्यक्ष ।
'पथीनां पतये नमः'
वाज.सं. १६.१७, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३, १२२.११, का. सं. १७.१२.

पथेष्ठा - (१) सन्मार्ग में स्थित ।
'आरे विश्वं प्रथेष्ठाम्'
ऋ. ५.५०.३
(२) मार्ग में स्थिति ।
'स्थागुं पथेष्ठामप दुर्मतं हतम्'
ऋ. १०.४०.१३

पथ्यास्वस्ति- (१) अन्तरिक्षस्थ कल्याणकारी मेघ, (२) पथ्या का अर्थ है-अन्तरिक्ष । स्वस्ति का अर्थ कल्याण या कल्याणकारी है ।

पद् - (१) चेतना सामर्थ्यरूप पद, (२) सूर्य की किरण ।
'वव्रि वसाना उदकं पदापुः'
ऋ. १.१६४.७, अ.९.९.५

पद - (१) डेग ।
'त्रेधा निदधे पदम्'
ऋ. १.२२.१७, अ. ७.२६.४, साम. १.२२२, २.१०,१९. वाज.सं. ५.१५ ,तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२.९, १८.१७, ४.१.१२, १६.४, का.सं. २.१०, श.ब्रा. ३.५.३.१३, नि. १२.१९.
आदित्य इस सृष्टि में तीन प्रकार से अपना डग (पदम्) रखते हैं (निदधे) -द्युलोक में सूर्यरूप में अन्तरिक्ष में विद्युत् के रूप में और पृथ्वी में अग्नि के रूप में ।

पदज्ञ- (१) जो प्राप्तव्य धर्ममोक्ष कामादि पदों का साधन जानता है (२) प्राप्तव्य पद का ज्ञाता ज्ञानी ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः
अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन्'
ऋ. १.६२.२, वाज.सं ३४.१७.
(३) आत्म स्वरूप का ज्ञाता, (४) ज्ञानयोग्य तत्व का ज्ञाता (५) प्राप्तव्य उत्तम पद को जानने वाला ।
'मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः'
ऋ. ३.५५.२

पदज्ञा- स्त्री । (१) अपने निवास स्थान को जाने वाली गौ ।गौ प्रायः अपने रहने की जगह को नहीं भूलती यह पदज्ञा है, (२) परम पद आनन्द धाम को जानने वाली चितिशक्ति ।
'पदज्ञास्थ रमतयः'
अ. ७.७५.२

पदनी - पदपंक्ति, ।
'विद्धस्य पदनीरिव'
अ. १.१.२.१३

पदपंक्ति- (१) गृहस्थ का पालन, (२) यह लोक ।
'पदपंक्तिश्छन्द्रः'
वाज.सं. १५.४,तै.सं. ४.३.१२.३, मै.सं. २.८.७,१११.१५, का.सं . १७.६.श.ब्रा. ८.५.२.४.

पदयोपन- पद अर्थात् देह का विलोपन ।
'मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन'
अ. १२.२.२९

पदयोपनी- पैरों को कष्ट देने वाली ।
'कूद्यं पदयोपनीम्'
अ. ५.१९.१२

पदवत् - पैरों वाला जीव ।
'पद्वत् विवेद शफवत् नमे गोः'
ऋ. ३.३९.६

पदवाय- (१) स्वरूप को दर्शाने वाला ।
'ब्रह्मपदवायम्'
अ. १२.५.४
(२) मार्गदर्शक ।
'अग्निर्वैनःपदवायः'
अ. ५.१८.१४

पदवी- (१) परम पद को प्राप्त कराने वाला ज्ञान ।
'श्रमयुवः पदव्यो धियन्धाः
तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः'
ऋ. १.७२.२
(२) प्रतिष्ठा ।
'अघ्न्ये पदवीर्भवः'
अ. १२.५.५८
(३) परमाणुओं में गति उत्पन्न करने वाला-परमेश्वर ।
'अभीक आसांपदवीरबोधि'
ऋ. ३.५६.४
(४) पगडंडी ।
'प्रणोदिवः पदवीर्गत्युरर्चन्'

ऋ. ३.३१.८

पद्घोष- पदाघात ।

'पद्घोषैश्छायया सह'

अ. ५.२१.८

पदया- (१) पैरों से जाने योग्य या सूर्य की किरणों से प्रकाशित होने योग्य भूमि, (२) सूर्य की किरणों से उत्पन्न उषा ।

'पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंषि'

ऋ. ३.५५.१४

(३) जाने योग्य गति ।

'यदा शवः पदयाभिःतित्रतोरजः'

ऋ. २.३१.२

(४) उत्तम चलने योग्य मार्ग, ।

'अरंहत पद्याभिः ककुद्मान्'

ऋ. १.१०२.७

(५) ज्ञान कराने वाले उत्तम क्रिया ।

पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनम्'

ऋ. २.३२.३

(६) क्रियामार्ग ।

'उतो पद्याभिर्जविष्ठः'

अ. २०.१३५.८, ऐ.ब्रा. ६.३५.१३, गो.ब्रा. २.६.१४, शां.श्रौ. सू.१२.१९.४.

पद्वत्- (१) चरणों वाली, गौ का विशेषण । अवसाय पद्वते रुद्र मृड । हे रुद्र, तू इस चरण-युक्त पथ में चल चल कर खाने वाली गौ की हिंसा न कर ।

(२) ज्ञान साधन या चरणों से युक्त जीव संसार ।

'पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते'

ऋ. १.१८५.२, मै.सं. ४.१४.७, २२४.११, तै.ब्रा. २.८.४.८.

पद्वती- (१) शुभचरणों वाली, सप्त पदी से युक्त कन्या ।

'कृत्वैषा पद्वती भूत्वा'

ऋ. १०.८५.२९, अ. १४.१.२५. आप.मं.पा. १.१७.७.

(२) स्थूला पायों वाली शाला ।

'हस्तिनीव पद्वती'

अ. ९.३.१७

(३) अच्छी लंगर वाली नौका (४) चरणों वाली सेना ।

'नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने'

ऋ. १.१४०.१२

(५) पद वाले जन्तु, (६) पाद, अध्याय चरण आदि से युक्त वाणी (७) प्रशंसित विभागों वाली क्रिया ।

'अपादेति प्रथमा पद्वतीनाम्'

ऋ. १.१५२.३, अ. ९.१०.२३.

जिस प्रकार पैरों वाले जन्तुओं से सबसे प्रथम पाद रहित उषा आती है उसी प्रकार चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभाग वाली वाणी से भी प्रथम चरणादि से रहित वाणी प्रकट होती है ।

पद्वतीनां प्रथमा- (१) एकपदी द्विपदी, चतुष्पदी, अष्टापदी तथा नवपदी ब्रह्मशक्तियों में से सबसे प्रथम विद्यमान अव्याकृत ब्रह्मशक्ति जिसे अपाद् कहते हैं ।

'अपादेति प्रथमा पद्वतीनाम्'

ऋ. १.१५.३, अ. ९.१०.२३

पदि- (१) पक्षी, (२) पथिक, (३) परिव्राजक । पदिः जन्तुर्भवति (पदि गमनशील होता है) । आकशेष्यवं नित्यमेव पद्यते (आकाश में यह सदा चला जाता है) ।

पदीष्ट- (१) प्राप्त हो, आवे ।

'पदीष्ट तृष्णया सह'

ऋ. १. ३८.६

तृष्णा के साथ अकाल, दुष्काल आदि के रूप में प्राप्त न हो ।

(२) जाए, चरण रखे ।

'अन्ति दूरे पदीष्ट सः'

ऋ. १.७९.११

पदे - आकाश और भूमि जो दो चरणों के समान हैं ।

'पदे इव निहिते दस्मे अन्तः'

ऋ. ३.५५.१५

पदेसिता - (१) पैरों में बंधी गौ, (२) ज्ञातव्य विषय में शब्दार्थ से बंधी वाणी ।

'यथाह त्यद् वसवो गौर्यचित्
पदि षिताममुञ्चतां यजत्राः'

ऋ. ४.१२.६, १०.१२६.८, तै.सं. ४.७.१५.७, मै.सं. ३.१६.५, १९२, ९. का.सं. २.१५, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१

पन– (१) स्तुति करना । (२) प्रशंसा करना
'मुहोमहानि पनयन्त्यस्य'
ऋ. ३.३४.६, अ. २०.११.६

पनयाय्य– अति प्रशंसनीय ।
'इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वाम्
सोमस्ये मद उरु चक्रुमाथे'
ऋ. ६.६९.५

पनस्यु– (१) स्तुतियोग्य, (२) ज्ञानदृष्टि से समाधिद्वारा दर्शनीय परमेश्वर ।
'धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे'
ऋ. ८.९८.१, अ. २०.६२.५
(३) पन (अर्चना,स्तुति),+ ल्युट् = पनन् = पनस् । अर्थ है स्तुति । पनस् + स + कयच् + उ = पनस्यु । अर्थ है । अपनी स्तुति की अभिलाषा करने वाला ।
कृतधर्मा विद्वान् एवं अपनी स्तुति की अभिलाषा वाले (पनस्यवे) इन्द्र के निमित्त बृहत् साम को पढ़ो ।
(४) स्तुति की कामना करने वाला ।
'पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः'
ऋ. ९.८९.१७, साम. २.५०३.

पन्न– पद् + क्त = पन्न । अर्थ–पराजित ।
'तेषां पन्नानाम् अधमा तमांसि'
अ. ९.२.९

पन्य– (१) स्तुत्य, (२) उत्तम ।
'पन्यंपन्यमित् सोतारः'
ऋ. ८.२.१५, साम. १.१२३, २.१००७, शां.श्रौ.सू. ९.१९.२.

पन्यस् – स्तुत्य व्यवहार ।
'उदावता त्वक्षया पन्यसा च'
ऋ. ६.१८.९,

पन्थाः– (१) पगडंडी, उपमार्ग ।
'वेत्थाहि वेधो अध्वनः
पथश्च देवाञ्जसा'
ऋ. ६.१६.३, साम. २.८२६, का.सं. ६.१०.श.ब्रा. १२.४.४.१

पनायत– पण (व्यवहार और स्तुति अर्थ में) के लोट् म.पु. ब.व. का रूप । अर्थ है– गुण गाओ, प्रशंसा करो । पन धातु प्रशंसा करने के अर्थ में आया है ।
'अभीशूनां महिमानं पनायत'
ऋ. ६.७५.६, वाज.सं. २९.४३, तै.सं. ४.६.६, २, मै.सं. ३.१६.३ , १८६.४, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१६.
घोड़े के वागों का गुण गान करो ।

पनाय्य – स्तुति योग्य
'पनाय्यमोजो समिन्वतम्'
ऋ. १.६०.५, कौ.ब्रा. १९.९.

पनितः– प्रशंसनीय, व्यवहारकुशल
'पनित आप्त्यो यजतः सदानः'

पनिता– व्यवहार, स्तुति और उपदेश करने वाला ।
'देवासो यत्र पनितार एवैः'
ऋ. ३.५४.९

पनिप्रत– (१) सब को ज्ञानोपदेश करने वाला ।
'शिशुंरिहन्ति मतयः पनिप्रतम्'
ऋ. ९.८५.११, ८६.३१.
(२) सदा क्रिया,शील, (३) नित्य प्रयोग में आने वाली ।
'उपप्रियं पनिप्रतम्'
ऋ. ९.६७.२९, अ.७.३२,१, कौ.ब्रा. ९.६, आश्व.श्रौ.सू. ४.१०.३.

पनिष्ठ – (१) सबसे अधिक व्यवहारोपयोगी और स्तुत्य ।
'पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन्'
ऋ. ३. १.१३

पनिष्पदा– पनिः + पदा । स्तुति करने तथा वाग् व्यापार करने में चतुर ।
'जिह्वा बद्धा पनिष्पदा'
अ. ५.३०.१६

पनीफनत्– पुनःपुनः गच्छति (बार बार जाता है) । फण् धातु गत्यर्थक है । इसी के यङ् लुगन्त लट् प्र.पु. ए.व. में 'पनीफगति' का वैदिक रूप 'पनीफनत' है ।

पनीयसी – (१) अतिस्तुत्य, (२) व्यवहार कुशल ।
'युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी'
ऋ. १.३९.२
हे वीर पुरुषो, तुम लोगों की बलवती सेना अति व्यवहार कुशल एवं प्रशंसनीय हो ।

पनीयाः– (१) व्यवहार में लाने योग्य (२) स्तुति योग्य ।
'उपो न शुभ्र आ भरा पनीयसे'
ऋ. १.५७.३, अ. २०.१५.३

पप्तता– पतत, गच्छत, जाओ गिरो, पत्लृ (गति अर्थ में) के लुङ् म. पु.ब.व. का रूप । च्लि का अङ् करने पर पुम् का आगम हुआ । दीर्घ आर्ष है ।

पप्रथानः– (१) अति विस्तृत, (२) विख्यात ।
'रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः'
ऋ. ४.५६.१, मै.सं. ४.१४.७, २२४.७, कौ.ब्रा. २३.३.
'मातेव यद् भरसे पप्रथानः'
ऋ. ५.१५.४

पपानः – पालन करता हुआ ।
'पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्'
ऋ. ६.४४.७

पप्रा– (१) पूर्ण करने वाला, (२) पूर्ण बल देने वाला ।
'पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः'
ऋ. १.६९.१
सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार (द्विवःज्योतिः न) परस्पर संगत भूमि और आकाश दोनों को (समीची) प्रकाश से पूर्ण करने वाला हो (पप्रा) । (३) पानीय शाला, पान शाला, जल पिलाने का स्थान ।
'समानी पप्रा सह वोऽन्नभागः'
अ. ३.३०.६

पपिः – (१) पीने वाला, (२) रक्षा करने वाला, (३) भोक्ता ।
'वध्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः'
ऋ. ६.२३.४

पपिरे– पिबन्ति (पीते हैं) लट् के अर्थ में लिङ् का प्रयोग ।

पपिवान्– (१) रसपान करने वाला सूर्य, (२) पी लिया –दया. । (३) पीता है ।
'सोमं मन्यते पपिवान्'
ऋ. १०.८५.३, अ. १४.१.३, गो.ब्रा. १.२९.९, नि. ११.४.
जिसे पीता है उसे ही सोम मानता है ।
(४) पीता हुआ ।
'जक्षिवांसः पपिवांसो मधूनि'
अ. ७.९७.३

पपिवांसः– 'पपिवान्' के प्र.ब.व. का रूप । वसुओं के विशेषण के रूप में प्रयुक्त । अर्थ पीते हुए या पीए हुए ।
'जक्षिवांसश्च पपिवांसश्च विश्वे'
वाज.सं. ८.१९.तै.सं. १.४.४४.२, मै.सं. १.३.३८,४४.११, का.सं. ४.१२, श.ब्रा. ४.४.४.११, नि. १२.४२.
हवियों को खाए तथा सोमरस को पीए हुए ।

पप्रिः– (१) पूरक ।
'मंहिष्ठारातिं स हि पप्रिरन्धसः'
ऋ. १.५२.३
वही अन्न, जीवन और ऐश्वर्यों को पूर्ण करने वाला है ।
(२) पालक ।
(३) पालक राजा ।
'इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वम्'
अ. १२.२.४७
(४) पालन करने और सब ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला ।
'बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा'
ऋ. २.२३.१०
(५) पूर्ण व्यापक परमेश्वर ।
'सनः पप्निः पारयाति'
ऋ. ८.१६.११, अ. २०.४६.२.
(६) सबका पालक इन्द्र परमेश्वर ।

पप्रितमः– सर्वोत्तम पालक–अग्नि परमेश्वर ।
'देवानामसि वह्नितमं सस्नितमं
पप्रितममं जुष्टतमं देवहूतमम्'
वाज.सं. १.८, मै.सं. १.१.५, ३.१, ४.१.५; ६.१२, का.सं. १.४, श.ब्रा. १.१.२.१२

पप्रिवत् – (१) पूर्ण करता हुआ (२) व्याप्त ।
'छायेव विश्वं भुवनं सिसक्षि
आ पप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्'
ऋ. १.७३.८
तू समस्त संसार को आकाश भूमि तथा अन्तरिक्ष को भी सब तरह से पूर्ण करता हुआ (आ पप्रिवान्) छाया के समान उनके भीतर व्याप्त है ।

पपुरिः– (१) पालक, (२) सूर्य का विशेषण ।
(३) पृ + किन् = पपुरि । पृ धातु 'पालन तथा पूरण करना' अर्थ में आया है । अर्थ है–समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीणयिता या पालक या तृप्त करने वाला सूर्य (४) पालक या

तृप्त करने वाला -दया.
'आदृगम हन् जनः किकिनौ लिट् च'
-पा. ३.२.१७१'
'पिपर्ति पपुरिर्नरा'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
हे द्यावापृथिवी या हे अश्विनीद्वय (नरा), समय आने पर पूरा करने वाला या प्राणयिता या पालक या तृप्त करने वाला (पपुरिः) सूर्य..... (५) पालन करने वाला (६) पल ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला
'ओजिष्ठं पपुरि श्रवः'
ऋ. ६.४६.५, अ. २०.८०.१, अ.सं. १.१.

पपुष्- पालक
'वर्धान ते पपुषो वृष्ण्यानि'
ऋ. १०.४४.२, अ. २०.९४.२

पप्तुः- गिरती है। लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग।
'वयोन पप्तू रघुया परिज्मन्'
ऋ. २.२८.४
पक्षियों की तरह रश्मियां गिरती हैं

पपृक्षेण्य- (१) सदा प्रश्न का विषय (२) पोषक
'पपृक्षेण्य मिन्द्रत्वे ह्योजः'
ऋ. ५.३३.६

पपृचानः - (१) निरन्तर प्रेम करने वाला
'अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसः'
ऋ. ९.७४.९
(२) संग या संपर्क करता हुआ
'भगमिव पपृचानास ऋञ्जते'
ऋ. १.१४१.६
जब संग या सम्पर्क करते हुए (पपृचानासः) कामना की एषणाओं में (दिविष्टिषु) ऐश्वर्य के समान सुखजनक भोग को (भगमिन) साधते हैं (ऋञ्जते)

पर्यगात्- परि + अगात्। आप को समर्पित है। आप को प्राप्त होता है। दे. 'ओमन्'
'परिध्रंसमोमना वां वयो गात्'
ऋ. ७.६९.४, मै.सं. ४.१४.१०,२३.६, तै.ब्रा. २.८.७.८. नि. ६. ४.
यह हविरूपी अन्न (वयः) दिन में (घ्रसम्) रक्षा के लिये (ओमना) आपको समर्पित है (वाम् पर्यगात्)

पर्वत- (१) पर्ववाला मास, (२) पर्वत, (३) प्राणिवर्ग को पालन करने वाला-जल, वायु, अग्नि आदि तत्व।
'यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम्'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११.

पराकः - दूरदेश।
'एषास्या युजाना पराकात्'
ऋ. ७.७५.४

पवते - (१) जाता (२) गति करता है।
'नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन'
ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०, कौ.ब्रा. २.७, नि. ७.२.
सोम इन्द्र के सिवा और किसी स्थान पर नहीं जाता (न पवते)। सोम यहां आत्मा का भी बोधक है।
परमेश्वर के बिना कोई भी लोक (किञ्चन धाम) गति नहीं करता (न पवते)।

पविः- पू + इ = पवि (विपुनाति विदलयति इति पविः (जो विदलित करता है वह पवि है।)। अर्थ (१) वज्र।
'सृकं संशायपविमिन्द्र तिग्मम्'
ऋ. १०.१८०.२, अ. ७.८४.३, साम. २.१२२३, वाज.सं. १८.७१, तै.सं. १.६.१२.५, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१५, का.सं. ८.१६.
हे इन्द्र, तू सरणशील (सृकम्) तीक्ष्ण वज्र को (तिग्मम् पविम्) सम्यक् प्रकार से तेज कर (संशाय)।
'उतस्मते परुष्ण्यामूर्णावसत शुन्ध्यवः
उतपव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा'
ऋ. ५.५२.९
हे मरुतो, जिन आप लोगों को कभी अन्तर्ध्यान और कभी प्रकट होने की शक्ति है (उतस्म) वे आप (ते) इरावती नाम्नी नदी में या अन्तरिक्ष की नदी में (परुष्ण्याम्) शुद्ध होने वाले या स्नान करने वाले (शुन्ध्यवः) विचित्र रूप से तिरोहित होकर रहते हैं (ऊर्णा वसत) और प्रकट होने के समय- आप लोगों के रथों के चक्के ही बल से पर्वत या मेघ को (अद्रिम्) छिन्न भिन्न करते हैं। आप की शक्ति की तो बात ही क्या।
(२) रथनेमि। रथ के साथ पवि के होने से पवि का अर्थ रथनेमि हुआ।
ब्राह्मण में भी-

'देवावै वृत्रस्य मर्म नाविदन् तं
मरुतः क्षुरपविना व्यसुः'
देवों ने वृत्र के रहस्य को नहीं समझा। उस वृत्र को मरुतों ने तीक्ष्ण धारवाले रथनेमि से छिन्नभिन्न किया।
अन्य अर्थ – वे मनुष्य पर्वों वाली भूमि अर्थात् पर्वत प्रदेश पर सुरक्षित (ऊर्णाः) तथा शुद्धता पूर्वक रहे और भोगों की नेमि के लिए (रथानां पव्या) पराक्रम से (ओजसा) पर्वत को तोड़ें
(४) वृक्षाकार पत्थर का अस्त्र भी पवि है (५) शल्य।
'पविः शल्यो भवति यज्ञे विपुनानि कायम्'

प्र – एक उपसर्ग जो धातुओं के पूर्व जोड़ा जाता है। वेद में उपसर्गों का प्रयोग धातु से अलग ही किया गया है। (२) प्रतापवान् (३) कहता हूँ, स्तुति कर –
'प्र प्रा वो अस्मे स्वयशोभिरुती'
ऋ. १.१२९.८
हे स्तोताओ, मैं आप से कहता हूं (प्र.वः) कि आप मेरे निमित्त (अस्मे) अपने यशों से युक्त रक्षा परायण इन्द्र की स्तुतियां करें (स्वयशोभिःऊतीः प्र.)।
हे प्रजाजनो, तुम्हारी और हमारी रक्षा के लिये (वः अस्मे ऊती) राजा अपने सामर्थ्य और प्रताप से प्रतापवान् हो (स्वयशोभिः प्र) –दया.
पुनः–
'प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ता
ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्येते
वयो न पप्तू रघुया परिज्मन्'
ऋ. २.२८.४.
विविध प्रकार से रसों, रश्मियों या रश्मि जाल में स्थित सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाला (विधर्ता) अदिति के पुत्र विवस्वान् सूर्य ने (आदित्यः) चारों ओर (सीम्) प्रकर्ष के साथ रश्मियों की सृष्टि की (प्रासृजत्)। वे सूर्य की रश्मियां (सिन्धवः) आदित्य मण्डल से निकलकर पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष लोक से चल लेकर (ऋतम्) सूर्यमण्डल की ओर जाती हैं (वरुणस्य यन्ति)। वे रश्मियां अपना-अपना कर्म करने से न थकतीं और न छोड़ती हैं (एते न श्राम्यन्ति न विमुञ्चन्ति), पक्षियों की तरह शीघ्र नीचे आतीं (वयः न पप्तुः) और लघु गति से चारों ओर उड़ती सी हैं (रघुया परिज्मन्)। सायण का अर्थ– वरुण ने नदियों के उपादानभूत उदक को या सत्य को सर्वतः सिरजा क्योंकि वरुण भी अदिति का ही पुत्र है। उस वरुण के जल से नदियां बहती हैं (वरुणस्य ऋतम् सिन्धवःयन्ति)। ये नदियां कभी थमतीं नहीं जैसे शीघ्र गामी पक्षी (रघुया वयःन) उड़ती हुई भूमि पर आती हैं (परिज्मन्)।
'रघुया' का अर्थ शीघ्रगामी और परिज्मन् का अर्थ पृथिवी है।
(४) प्रबोधयतम् (ज्ञानवान कर)
'प्रदक्षाय प्रचेतसा'
ऋ. ८.९.२०, अ. २०.१४२.५
(५) सब कार्य करने में समर्थ।
'प्र यद् इत्था महिना नृभ्यो अस्ति'
ऋ. १.१७३.६

प्रउग – (१) मुख के समान स्थान। त्रिकोण (३) यज्ञ में प्रउग आदि का अर्थ शंसनीऋचा है,
'छन्द किमासीत् प्रउगं किमुक्थम्'
ऋ. १०.१३०.३

प्रकंकत– (१) अति चंचल विषैला जीव, (२) वेगवान् (३) तीव्र वेदना देने वाला।
'सूचीका ये प्रकंकताः'
ऋ. १.१९१.७

प्रकरिता – (१) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (३) उत्तम ज्ञानादि प्रदान करने वाला
'मनुष्य लोकाय प्रकरितारम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८

प्रकलवित् – प्र + कल + विद् + क्विप् = प्रकलविद्। अर्थ है–
(१) प्रकृष्ट धूर्त, (२) कलाबाज (३) वणिक्, व्यापारी,
'स हि कलाश्चवेद प्रकलाश्च'
(वाणिक् कला और प्रकला दोनों जानता है)। मान, उन्मान तथा प्रतिमान आदि विषय कला है। वणिक् में ये सब गुण पाए जाते हैं। प्रकृष्ट अश्व गणित तथा रत्नादि की परीक्षा प्रकला

है ।
'दुर्मित्रासः प्रकलवित् मिमानाः
जहुर्विश्वानि भोजनानि सुदासे'
ऋ. ७.१८.१५, नि. ६.६.
दुष्ट कलाबान बनिए (दुर्मित्रासः प्रकलवित् मिमानाः) सुन्दरदान देने वाले यजमान या सुदास राजा को सभी प्रकार के भोजन या भोग्य धन दे ।

प्रकला – प्रकृष्ट अश्व गणित तथा रत्नादि की परीक्षा का नाम प्रकला है ।

प्रकाश – (१) उत्तम प्रकार की चाबुक, (२) प्रेरक बल ।
'विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो विन्दुः'
अ. ९.१.२१.

प्रकामः – (१) उत्तम कामना, (२) काम्य गृहस्थसुख ।
'प्रकामाय रजयित्रीम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.७.

प्रकामोद्य – प्रकाम + उद्य, (२) उत्तम इच्छाओं का कथन, यथेष्ट विषय पर विवाद या कथनोपकथन, (३) उत्तम कामनाओं से कार्य करने में उद्यत पुरुष ।
'प्रकामोद्यायोपसदम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.६.

प्रक्री – (१) एक प्रकार का सोम यज्ञ ।
'सद्यः क्रीः प्रक्री रुक्थ्यः'
अ. ११.७.१०
(२) औषधि जिसे बघछाला या मृगछाला से बदल कर बेचते हैं ।
राज निघण्टु में इसका नाम प्रकीर्य है जिसके ५ भेद हैं- करञ्ज, उदकीर्य, अंगारवल्ली, गुच्छक रञ्ज, रीठा करंज । ये विषनाशक एवं कुष्ठ, कण्डू, स्फोट तथा त्वचादोष दूर करते हैं ।
'प्रक्रीरसि त्वमोषधे'
अ. ४.७.६

प्रक्रीड – उत्तम मन को बहलाने वाला विनोद ।
'इन्द्रं प्रक्रीडेन'
वाज.सं. ३९.९, वाज.सं. (का.) ३९.८.

प्रक्रीड़ी – खूब खेलने वाला, विनोदी स्वभाव वाला ।
'वत्सासो न प्रक्रीडिनः पयोधाः'
ऋ. ७.५६.१६, तै.सं. ४.३.१३.७, मै.सं. ४.१०.५, १५५.७, का.सं . २१.१३.

प्रकेत – (१) उत्कृष्ट ज्ञान के साधन प्रस्तकालय, विद्यालय आदि, (२) उषा का प्रकाश ।
'प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्यान् जिन्व'
वाज.सं. १५.६
(३) अन्धकारावृत सभी पदार्थों का प्रकाशक । उषा का विशेषण ।
'चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा'
ऋ. १.११३.१, साम. २.१०,९९, नि. २.१९.
चयनीय या पूजनीय अन्धकारावृत सभी पदार्थों का प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक उषाकाल प्रकट हुआ ।
(४) प्रकेतन, प्रज्ञापक, सूचक जनाने वाला, (५) ज्ञान ।
'न रात्र्य अह्न आसीत् प्रकेतः'
ऋ. १०.१२९.२
प्रलय काल की स्थिति में रात या दिन का ज्ञान नहीं था अर्थात् काल की स्थिति नहीं थी ।
(६) प्र + अन्तर्भावित ज्यन्कितत् (ज्ञानार्थक धातु) + घञ् = प्रकेत निरुक्त के भाष्यकार कश्यप प्राजापति के अनुसार 'प्र + जन् + घञ् प्रकेत'

प्रकुपित पर्वत – ज्वालामुखी पर्वत ।
'यः पर्वतान् प्रकुपितान् अरम्णात्'
ऋ. २.१२.२, अ. २०.३४.३

प्रखाद– (१) उत्तम राष्ट्र का भोक्ता, (२) खा जाने वाला शत्रु, (३) अति भक्षक ।
'एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या
प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत्'
ऋ. १७.८.४

प्रखिदात् – बहुत पलित दीनों पर नियुक्त पुरुष ।
'नम आखिदते च प्रखिदते च'
वाज.सं. १९.४६, तै.सं. ४.५.९.२, मै.सं. २.९.८: १२७.३, का.सं. १७.१५

प्रखुद्– सबसे बढ़कर आनन्द लेने वाला आत्मा ।
'सुसत्यामिद्रवामस्यासि प्रखुदसि'
अ. २०.१३५.४

प्रगर्धिनी– लोलुप ।
'पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना'

ऋ. १०.१४२.४

प्रजाथ- (१) प्रजाथा ऋचाओं का पाठ, (२) उत्तम रूप से स्तुति करने योग्य ।
'प्रगाथा ये यजामहाः'
वाज.सं. १९.२४

प्रगाम- प्रकृष्ट गमन । पैगाम शब्द का मूल यही शब्द प्रतीत होता है ।

प्रघ्नत्- (१) उत्तम प्रहार करने वाला (२) उत्तम प्रकृष्ट मार्ग से उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाला ।
'पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव'
ऋ. ९.६९.२

प्रघासी- (१) उत्तम अन्न का भोजन करने वाला ।
'प्रघासिना हवामहे'
वाज.सं. ३.४४, श.ब्रा.२.५.२.२१, कौ.सू.५.५.१०
'स्वतवाश्च प्रघासी च'
वाज.सं. १७.८५, आप.श्रौ.सू. १७.१६.१८

प्रङ्- गमनार्थक धातु ।

प्रच्छत्- (१) अन्न, (२) प्रजा की सब ओर से रक्षा ।
'प्रच्छच्छन्दः'
वाज.सं. १५.५

प्रचर्षणी- द्वि.व. (१) सम्यक् सुखप्रापकौ - दया. (२) सर्वकार्य- व्यवहारों के प्रकृष्ट द्रष्टा इन्द्राग्नी, ।
'प्रचर्षणी मादयेथां सुतस्य'
ऋ. १.१०९.५

प्रच्यावयतु- ले जाय, पहुंचावे । सम्भवतः 'पहुंचाना' 'प्रच्यावन' का ही बिगड़ा रूप है ।
'पूषा त्वेत श्वयावथतु प्रविद्वान्'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१, आश्व.श्रौ.सू. ६.१०. १९, नि. ७.९.
हे मृतात्मा ! अव्यवहित ज्ञान एवं प्रत्यदर्शी आदित्य (विद्वान्) पूषा तुझे इस लोक से (इतः) उत्तम लोक में पहुंचावे (प्रच्यावयतु) ।

प्रचिकिताः- उत्कृष्टज्ञान वाला ।
'त्वं सोम प्रचिकितोमनीषा'
ऋ. १.१९.१, वाज.सं. १९.५२, तै.सं. २.६.१२.१, मै.सं. ४.१०.६, १५६.६, का.सं. २१.१४, ऐ.ब्रा. १.९.७, तै.ब्रा. २.६.१६, १, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२, ३.७.७, ४.३.२

प्रचिकित्सा- प्रकृष्ट विचार । खूब अच्छी तरह से सोचना विचारना ।

प्रच्छिद् - दूर तक छेदन भेदन करने में समर्थ पुरुष ।
'संशाय प्रच्छिदम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

प्रचित्रा- प्र + चित् + र + टाप् = प्रचित्रा । धी का विशेषण (१) कमनीय, (२) अद्भुत् विचित्र ।
'इन्द्र प्रचित्रया धिया'
ऋ. ८.६६.८, अ. २०.९७.२, साम. २.१०४२,
हे इन्द्र ! कमनीय स्तुतिरूपी कर्म से आ ।
हे राजन अद्भुत बुद्धि से या कर्म से यज्ञ की रक्षा के लिए आ ।

प्रच्युता- नष्ट ।
'यां प्रच्युतामनुयज्ञाः प्रच्यवन्त'
अ. ८.९.८

प्रचेतयति- (१) प्रज्ञापयति (प्रज्ञात कराता है), (२) बरसाती है - (३) बतलाता है, सुझाता है । (४) आविष्करोति (प्रकट करता है)
'महोअर्णः सरस्वती
प्रचेतपति केतुना'
ऋ. १.३.१२, वाज.सं. २०.८६, नि. ११.२७.
माध्यमिका वाक् सरस्वती अपनी प्रज्ञा से महान् जलराशि बरसाती है- वेदवाणी, कर्मयोग तथा ज्ञानयोग से महान् शब्द -सागर को बतलाती या सुझाती है ।-दया.

प्रचेता- प्र + चित् + असुन् = 'प्रचेतस्' । पु.ए.व.का रूप । (१) प्रकृष्ट चेतना का ज्ञान वाला । (२) अग्नि का विशेषण
'त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०.१.९, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.
इन्द्र का विशेषण ।
'तमु त्वा नूनमसुरं प्रचेतसम्
राधो भागमिवेमहे'
ऋ. ८.९०.६, साम. २.७६.२.
हे इन्द्र ! अवश्य ही हम सब बलवान् या प्रज्ञावान् या महा- प्राण (असुरम्) प्रकृष्ट चेतना वाले तुझ में (प्रचेतसम्) पैतृक भाग के सदृश (भागम् इव) धन (राधस्) याचते हैं ।

'ततः पाहित्वं नः प्रचेतः'
अ. ७.१०६.१

प्रचेति- उत्तम ज्ञान देने वाला ।
'तद्वां चेति प्रवीर्यम्'
ऋ. ३.१२.९, साम. २.१०४३, तै.सं. ४.२.११.१, मै.सं. ४.१०.४, १५२.१४, का.सं. ४.१५, तै.ब्रा. ३.५.७.३,

प्रचेतु- सबको चेताने वाला न्यायाधीश, (२) जिसमें आनन्द से चित्त प्रफुल्लित होता है ।
'तेन सत्येन जागृतमधि
प्रचेतुने पदे'
ऋ. १.२१.६

प्रचोदयन्ता- प्रचोदयमानौ प्रेरयन्तौ । प्रेरित करते हुए ।
अर्थ- (१) पूजा के लिए प्रेरणा करने वाले सूर्य और अग्नि - (२) शुभकर्मों की ओर प्रेरित करने वाले अग्नि और वायु ।
'प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२.८, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१२.
यज्ञकर्त्ता में पूजा के लिए प्रेरणा करने वाले तथा यज्ञो में स्तुति करने वाले (विदथेषु कारू) यज्ञों में शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाले (विदथेषु प्रचोदयन्ता) तथा अनेक कर्मों को सिद्ध करने वाले (कारू) अग्नि और वायु ।

प्रजज्ञिवान् - प्रमुख ।
'स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्'
ऋ. ३.२.११

प्रजनन - (१) मन्थन दण्ड के नीचे का काठ, (२) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का साधन-जननोन्द्रिय, (३) अपान नामक प्राण, (४) उत्तम प्रजा को उत्पन्न करने वाला राष्ट्र ।
'अस्ति प्रजननं कृतम्'
ऋ. ३.२९.१
(५) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाला वीर्य ।
(६) उत्तम फल जनक।
'इदं हविः प्रजननं मे अस्तु'
वाज.सं. १९.४८, मै.सं. ३.११.१०, १५६.१६, का.सं. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.२२, तै.ब्रा. २.६.३.५, शा.श्रौ.सू. ४.१३.१.

प्रजननवान् - (१) सन्तानोपादब की शक्ति से युक्त ।
'प्रजापतिं ते प्रजननवन्त मृच्छन्तु'
अ. १९.१८९

प्रजनू- (१) प्रजास (२) उत्पादक शक्ति ।
'शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमाः'
अ. ९.४.६

प्रजवः- उत्तम वेग ।
'वातस्येव प्रजवो नान्येन'
ऋ. ७.३३.८, नि. ११.२०

प्रजाहित- (१) छोड़ा गया, परित्यक्त ।
(२) शाखा -रहित ।
'वनानि न प्रजहितानि अद्रिवः'
ऋ. ८.१.१३, अ. २०.११६.१, पंच.ब्रा. ९.१०.१.
(३) बिना देख भाल किया हुआ ।

प्रजा- (१) जो उत्पन्न किया जाय (प्रजायते), (२) प्रज्ञा
'पुपोष प्रजाः पुरुधाअजानः'
ऋ. ३.५५.१९, नि. १०.३४.
(३) सन्तति ।
'इह प्रियं प्रजयाते समृध्यताम्'
ऋ. १०.८५.२७, अ. १४.१.२१, आश्व.गृ.सू. १.८.८, आप.मं.पा. १. ९.४.
हे वधू ! इस गृह में सन्तति से युक्त तेरा मंगल बढ़े ।
(४) सन्तति, उत्पन्न करने का -विशेष सामर्थ्य ।
'प्रजां त्वष्ट रधिनिधेह्यस्मै'
अ. २.२९.२

प्रजानती- उत्तम ज्ञान वती ।
'प्रजानतीव न दिशो मिनाति'
ऋ. १.१२४.३, ५.८०.४
उत्तम ज्ञानवती उषा अन्य दिशाओं का लोप नहीं करती ।
अथवा
स्त्री गुरुजनों के आदेशों को और उपदेशकों को नष्ट नहीं करती ।

प्रजानन् - (१) जानता हुआ या (२) उत्पन्न करता हुआ ।
'अपो यत्तूर्णेश्चरति प्रजानन्'

ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.
जो सूर्य या अग्नि कर्मों को जानता या जल उत्पन्न करता हुआ शीघ्रता से चलता है। (३) उत्तम ज्ञान वान् पुरुष।
'प्रजानन् इत् ता नमसा विवेश'
ऋ. ३.३१.५

प्रजापति – (१) प्रजानां पाता वा पातयिता वा (प्रजाओं का पालक) (२) एक वैदिक देवता, (३) प्राण वायु, (४) वायु।
'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परिताबभूव
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोअस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम्'
ऋ. १०.१२१.१०, अ. ७.८०.३, वाज.सं. १०.२०, २३.६५, वाज.सं.(का.) २९.३६, तै.सं. १.८.१४.२, ३.२.५.६, मै.सं. २.६.१२, ७२.४, ४.१४.१, २१५.९, का.सं. १५.८, श.ब्रा. १.६.१९, तै.ब्रा. २.८.१.२, ३.५.७.१, तै.आ.(आंध्र.) १०.५४, साम.मं.ब्रा. २.५.८, आप.मं.पा. २.२२.१९, नि. १०.४३.
हे प्रजापति, तेरे सिवा कोई (त्वत् अन्यः) इन सभी प्राणियों को (एतानि विश्वा जातानि) व्याप्त नहीं करता (न परिबभूव) तू ही उन सभी में व्याप्त है (ता)। इसी से कहता हूँ कि जिन कामनाओं से हम तुझे हवि देते है (यत्कामा ते जुहुमः) वह फल हमें दो (तत् फलम् नःअस्तु) और हमें दो (तत् फलम् नः अस्तु) और हम धनों के स्वामी बनें (वयं रयीणां पतयः स्याम)। (४) नाई।
'चिकित्सतु प्रजापतिः
दीर्घायुत्वाय चक्षसे'
अ. ६.६८.२

प्रजापति भक्षित– (१) प्रजापति या मातापिता द्वारा खाया गया, (३) उपयुक्त, (४) प्रजापतिद्वारा भक्षित।
'इन्द्रयीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य
मधुमत उपह्वत उपहूतस्य भक्षयामि'
वाज.सं. ३८.२८

प्रजायतेः दुहितरौ– (१) प्रजा के स्वामी राजा की दुहिता के समान हितकारिणी सभा और समिति।
'प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने'
अ. ७.१२.१, पा.गृ.सू. ३.१३.३.

प्रजावत्– प्रजा + वतुप् = प्रजावत्। अर्थ –(१) पुत्र = सहित।
'यं भद्रण शवसा चोदयासि
प्रजावती राधसाते स्याम'
ऋ. १.९४.१५, नि. ११.२४.
जिसे कल्याण –कारक बल से तथा पुत्र सहित धनसे प्रेरित करता है उसी प्रकार हम भी तेरे यजमान होवें।
(२) प्रजा से युक्त।
(हम प्रजावान् होवें)

प्रजावत् रयि– प्रजा के सहित अर्थात् भोगने वाले सन्तान से युक्त धन।
'ब्रह्म प्रजावदयिमश्वपस्त्यम्
पीतइन्द्रविन्द्रमस्मभ्यं याचतातात्'
ऋ. ९.८६.४१
प्रजा के सहित अर्थात् भोगने वाले सन्मान से युक्त अन्न, गो, हिरण्यादि धन तथा व्याप्त गृह या अश्व वाला घर (अश्वपस्त्यम्) हमारे लिये हे दीप्त सोम (इन्दो) तू पीया जाकर (पीतः) इन्द्र से मांग।
हे प्रकाशक परमेश्वर (इन्दो), प्राप्त किए हुए आप (पीतः) उत्तम प्रजा–सहित ब्रह्मज्ञान (प्रजावत् ब्रह्म) बल का भण्डार धन (अश्वपस्त्यं रयिम्) तथा तेजस्वी जीवात्मा को (इन्द्रम्) हमें प्रदान करें (अस्मभ्यं याचतात्)।

प्रजावत् वचः– (१) प्रजा की सम्मति से युक्तवाणी, व्यवस्था शास्त्र (२) प्रजा की हितकारी वाणी वेद।
'प्रजावता वचसा वह्निरासा
बोधि प्रयन्तर्जनितःवसूनाम्'
ऋ. १. ७६.४
हे राजन् या परमेश्वर, तू प्रजा की सम्मति से युक्त वाणी, व्यवस्था शास्त्र या प्रजा की हितकारिणी वाणी वेद से सब को ज्ञानवान् कर।

प्रजावत् शर्म – प्रजा अर्थात् सन्तति सहित कल्याण।
'प्रजावत् शर्म यच्छन्तु'
अ. १४.२.७३

प्रजावती इष् - (१) प्रजा से युक्त अश्व ।
'प्रजावती रिष आधत्तमस्मे'
ऋ.६.५२.१६.
हमें प्रजायुक्त अन्न दें ।

प्रजावती धन्दना - (१) सृष्टि -रचना विषयक स्तुति -ज.दे.श. (२) प्रजा अर्थात् सन्तान रूपी भल देने वाली स्तुति ।
'स धन्दना उदिपर्ति प्रजावतीः'
ऋ. ९.८६.४१, नि. ५२.
वह समस्त मनुष्य वर्ग सृष्टि रचना-विषयक स्तुति उच्चारण करना है ।
वह यजमान सन्तान रूपी फल देने वाली स्तुति करता है ।

प्रजावान्- प्रजाओं का स्वामी परमेश्वर -सूर्य ।
'उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्'
ऋ. ३.५६.३.

प्रजासनि - प्रजा देने वाला ।
'आत्म सनि प्रजासनि'
वाज.सं. १९.४८, मै.सं. ३.११.१०, १५६.१७, का.सं. ३८.२, तै.ब्रा. २.६.३.५, श.ब्रा. १२.८.१.२२, शा.श्रौ.सू. ४.१३.१, आप.श्रौ.सू. ६.११.५,

प्रज्ञान- दूरस्थ पदार्थों का ज्ञान ।
'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्'
वाज.सं. ३०.१०.तै.ब्रा. ३.४.१.४.

प्रजिनोषि - प्र + जि (प्रसन्न करना, तृप्त करना) + सिप् । लट् म.पु. ए.व. का रूप । अर्थ- तू प्रसन्न करती, तृप्त करती है ।
'प्र या भूमिं प्रवत्वति
मह्ना जिनोषि महिनि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.२, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१९.९, नि. ११.३७.

प्रजूति- महती वेगवती शक्ति ।
'मखस्य ते तविषस्य प्रजूतिम्'
ऋ. ३.३४.२, अ. २०.११.२

प्रणक् - प्र + नश् + क्विप् = प्रणक् । (१) नाश् करने वाला ।
'मानः शंसो अररुषो
धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य'
ऋ. १.१८.३, वाज.सं. ३.३०, का.सं. ७.२, श.ब्रा. २.३.४.३५, आप.श्रौ.सू. ६.१७.१२.
दानशील पुरुष का नाशक, कष्टप्रद वचन या उपदेश हमारे पास न पहुंचे ।

प्रणपात् - (१) अति अधिक अगम्य या शक्तिशाली ।
'प्रणपात् कुण्ड पाय्यः'
ऋ. ८.१७.१३, अ. २०.५.७, साम. २.७७, तै.ब्रा. २.४.५.१,
(२) उत्तम पुत्रवत् पालनीय ।

प्रणव- (१) ओंकार, (२) उत्कृष्ट प्रशंसनीय नवयुवक ।
'प्रणवैः शस्त्राणां रूपम्'
वाज.सं. १९.२५

प्रणी- उत्तम मार्ग पर जाने वाली या अन्यों को ले जाने वाली ।
(२) प्रकृष्ट नीति वाला -दया. ।
'इमा उते प्रण्यो वर्धमानाः'
ऋ. ३.३८.२

प्रणीतिः- (१) वेद प्रतिपादित उत्तम मार्ग ।
'प्रणीती रभ्यावर्त्तस्व'
अ. ७.१०५.१
(२) कृपा, (३) सुन्दरनीति- दया.
'तव प्रणीत्यश्याम वाजान्'
ऋ. ४.४.१४, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.५, का.सं. ६.११.
हे अग्नि, तेरी कृपा से हम अन्न खाते हैं-
हे राजन् , हम आप की सुनीति से बहुविध अन्नों का भोग करें ।
(४) प्रणाम ।
'तदश्याम तव रुद्रप्रणीतिषु'
ऋ. १.११४.२, तै.सं. ४.५.१०.२, का.सं. ४०.११.
हे रुद्र, हम तेरी उत्तम नीतियों अनुसार चले या तेरी स्तुतियों में मग्न रहें ।

प्रणीती- प्रेरणा, अनुज्ञा, सुन्दरनीति

प्रणुत्त- प्र + नुद्ध + क्त । पछाड़ा गया ।
'बृहस्पति प्रणुत्तानाम्'
अ. ८.८.१९

प्रणेता- (१) उत्तम नायक (२) वस्यु नामक मुख्य प्राण का प्रणेता आत्मा ।
'प्रणेतारं वस्यो अच्छा'
ऋ. ८.१६.१०, अ. २०. ४६.१, वै.सू. ४२.८.

(३) सब कार्यों का प्रवर्तक अग्नि, (४) सन्मार्ग में प्रजाओं को चलाने वाले ।
'त्वं वस्य वृषभ प्रणेता'
ऋ. २.९.२, तै.सं. ३.५.११.३, मै.सं. ४.१०.४, १५२.७, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. १.२८.३८.

प्रणेनीः – उत्तम उद्देश्यों की ओर ले जाने वाला
'प्रणेनी रुग्रो जरितारमूती'
ऋ. ६.२३.३

प्रणोद– प्रशिक्षिता ।
'ऋचा कपोतं नुदतं प्रणोदम्'
ऋ. १०.१६५.५, अ. ६.२८.१

प्रतक्वा– दुष्टों को खूब पीड़ा देने वाला, ।
'नभोऽसि प्रतक्वा'
वाज.सं. ५.३२, मै.सं. १.२.१२, २१.१४, का.सं. २.१३, पंच. ब्रा. १.४.३.

प्रतङ्क– (१) अतिकष्ट दायी ।
'प्रतङ्कं दद्रुषीणाम्'
अ. ५.१३.८
(२) दूसरे को पीड़ा देना, अत्याचार करना,
'यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्'
अ. ४.१६.२

प्रततामह– प्रपितामह ।
'एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु'
अ. १८.४.७५, वै.सू. २२.२२, कौ.सू. ८८.११.

प्रतद्वसू– (१) प्राप्त वसू (प्राप्त प्रत प्रतद्) । प्राप्त वसु येन स प्राप्तं वसुः (जिस ने धन प्राप्त किया हो) (२) धनों को पहुंचाने वाले ।
'इहत्या सधमाद्या
युंजानः सोमपीतये
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभिस्वर'
ऋ. ८.१३.२७,
हे इन्द्र, इस कर्म में (इह) उन दोनों अश्वों को (त्याहरी) जिन्हें ऋजीष और धान रुपी धन मिलते हैं (प्रतद्वसू) और जो साथ ही मत्त या प्रसन्न.रहते हैं (सह माद्या) सोमपान करने लिये (सोमपीतये) हमारे यहां आ (अभिस्वर) । अन्य अर्थ– हे राजन्, साथ रहकर आनन्द देने वाले (सधमाद्या) और धनों को पहुंचाने वाले (प्रतद्वसू) पालन तथा संहार के गुणों से अपने को युक्त करता हुआ (हरी युजानः) शान्ति के लिये (सोमपीतये) राष्ट्र में सर्वत्र विचरें (अभिस्वर) ।

प्रतन्वती– खूब बढ़कर फैलने वाली ओषधि ।
'प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि'
अ. ८.७.४.

प्रतर– (१) प्रकृष्ट । (२) अति उत्कृष्ट
'द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः'
ऋ. १.५३.११, १०. ८२.२,३, ११५.८, अ. ८.२.२, १२.२.३०, २०.२१.११ तै.आ. ६.१०.२.२, आश्व. गृ.सू. २.९.२.
(३) खूब अच्छी तरह वेगवान् ।
'अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्'
ऋ. १०.४२.१, अ. २०.८९.१, वै.सू. ३३.१९.
(४) दुःख सागर से तरने का साधन ।
'अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः'
ऋ. १०.१०.१, अ. १८.१. १
(५) शत्रु को पार करने वाला सैन्य, (६) भवसागर को पार करने वाला ज्ञानानुष्ठान ।
'साम्राज्याय प्रतरं दधानः'
ऋ. १.१४१.१३, का.सं. ७.१२, आप.श्रौ.सू. ५.९.१०.
साम्राज्य पद या सम्राज्ञ परम प्रभु के अद्वितीय वेद के लाभ के लिए शत्रुगण और भवसागर को पार करने वाले सैन्य और ज्ञानानुष्ठान को धारण करता हुआ (६) खूब अच्छी प्रकार दुःख संकट आदि से तरने और दूर जाने का साधन–नाव आदि, (२) संसार सागर में तरण का साधन स्त्री ।
'पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन'
ऋ. ५.३४.१

प्रतरण– प्र + तृ + ल्युट् = प्रतरण (१) कूदना, फांदना, (२) पैंतरा करना, (३) कूदने फानने वाला ।
(४) जीवन को दीर्घ करने वाला ।
'आयुषोऽसि प्रतरणम्'
अ. १९.४४.१
(५) सबको नौका के समान पार उतारने वाला ।
'क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः'
अ. १२.२.४९
'गयस्फानः प्रतरणः सुवीरः
अवीरहा प्रचरो सोम दुर्यान्'

ऋ. १.९१.१९, वाज.स. ४.३७, तै.सं. १.२.१०.१, का.सं. ११.१३, मै.सं. ४.१२.४, १८८.१२. ऐ.ब्रा. १.१३.२४, श.ब्रा. ३.३.४.३० .
धन तथा गौ आदि पशुओं को बढ़ाने वाला, दुःखों से प्रजा को पार उतारने वाला उत्तम वीरों से युक्त वीर पुरुषों का व्यर्थ नाश करने वाला न होकर (अवीरहा) तू हमारे घरों या द्वार वाले नगरों में अच्छी प्रकार जा ।
'त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि'
ऋ. २.१.१२
'वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि
ऋ. ७.५४.२, पा.गृ.सू. ३.४.७, आप.मं.पा. २.१५.२०, हि.गृ.सू. १.२८.१.
'नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च'
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२, मै.सं. २.९.८, १२६.१०. का. सं. १७.१२.

प्रतरणी- (१) दुःख से पार लगाने वाली ।
'सुङ्गली प्रतरणी गृहाणाम्'
अ. १४.२.२६
(२) प्रतरति यया - दया (३) गति शील गाड़ी (४) संसार मार्ग से तार देने वाली स्त्री ।
'तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम्'
ऋ. ५.४६.१

प्रतरीता- उत्पादक् ।
'प्रतरीतोषसो दिवः'
(२) देने या बढ़ाने वाला ।
'बृहस्पते प्रतरीता स्यायुषः'
ऋ. १०.१००.५

प्रतवसः- प्रकृष्ट बल वाले ।

प्रतवाः- प्रतवस् -प्रबल
'कद्वाताय प्रतवसे शुभं ये'
ऋ. ४.३.६, मै.सं. ४.११.४, १७२.१३, का.सं. ७.१६

प्रत्नः- (१) पुराण, (प्राचीन) ।
(२) पुरातन ।
'प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः'
अ. १८.३.२१

प्रत्नथा- प्रत्न + थाल = प्रत्नथा । (१) प्राचीनवत्, चिरन्तन की तरह, (२) पुरातन भृगु आदि ऋषियों की तरह ।
'तं प्रत्नथा पूर्वथाविश्वथेमथा'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२,का.सं. १.४.९.१, मै.सं. १.३.११,३४.४, का.सं. ४.३, कौ.ब्रा. २४.९, श.ब्रा. ४.२.१.९, नि. ३.१६ .
हे राजन् , सनातन धर्म की तरह (प्रत्नथा) प्राचीन राजाओं की तरह (पूर्वथा) सभी प्रजाओं की अनुमति के अनुसार (विश्वथा) तथा इस मन्त्रिमण्डल की सम्मति के अनुकूल (इमथा) उस अपने आप को (तम्) - दया. ।
हे सोम, तूने पुरातन भृगु आदि ऋषियों की तरह (प्रत्नथा) सब ऋषियों तथा ऋषिपुत्रों के मनोरथों को जैसे और पूर्ण किया उस तरह (विश्वधा) तथा वर्तमान कालीन ऋषियों एवं यजमानों की कामनाएं जैसे तूने पूर्ण की उस तरह (इमथा) उस यजमान को (तम्) ।
पुनः
(३) पूर्व से ही वर्तमान बीस ।
'शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते'
ऋ. २.१७.१

प्रत्नम् ओकः- सब से पुरातन आश्रय रूप परब्रह्म
'अनु प्रत्नस्यौकसः'
ऋ. १.३०.९, ८.६९.१८, अ. २०.२६.३, २०.९२.१५

प्रत्नधाम- पुरातन सूर्यादि लोक ।
'तदिद् रुद्रस्य चेतति
यह्वं प्रत्नेषु धामसु'
ऋ. ८.१३.२०

पत्नःपिता- प्राचीन रक्षक, विद्युत नामी वरुण का विशेषण ।
'पितैषा प्रत्नः अभिरक्षतिव्रतम्'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.
प्राचीन रक्षक वह विद्युत् नामक वरुण देव मरुत् प्रभति माध्यमिक देवों के कर्म की रक्षा करते हैं ।

प्रत्नमन्म- अनादिज्ञान वेद ।
'अग्नि प्रत्नेन मन्मना'
ऋ. ८.४४.१२, मै.सं. ४.१०.१, १४२.१५, ४.१०.५, १५४.११, का.सं. २.१४, ऐ.ब्रा. १.४.३, तै.ब्रा. ३.५.६.१, आश्व.श्रौ.सू. १.५.३५.

प्रत्नं मानम् - अति प्राचीन सनातन ज्ञान या सर्वनिर्माता प्रभु ।
'प्रत्नात् मानात् अधि आये समस्वान्'
ऋ. ९.७३.६

प्रत्नवत् - पुरातन विद्वानों के समान ।
'प्रत्नं प्रत्नवत् परितंस यध्यै'
अ. २०.३६.७

प्रतारिषत् - प्रवर्धयतु (बढ़ावे) । लोट् अर्थ में लट् का प्रयोग ।

प्रतारिषः- लिङ् के अर्थ में लट् का प्रयोग । लिङर्थे लोटि' से सिप् । अर्थ है-प्रवर्धय (बढ़ा) ।

प्रत्नग्रः- वृद्धजन । 'प्रत्न' का बहुवचन ।
'प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः'
ऋ. ४.२.१६, अ. १८.३.२१, वाज.सं. १९.६९,तै.सं. २.६.१२.४.

प्रत्यग्र - आगे बढ़ा हुआ भाग ।
'वृक्षा मध्यं प्रत्यग्रं श्रृणीहि'
ऋ. ३.३०.१७, नि. ६.३.

प्रत्यग्रभीष्टाम् - प्रति + अग्रभीष्टाम् । प्रतिगृहीत किया । 'गृह्' धातु के लुङ् प्र.पु. द्वि.व. का रूप ।

प्रत्यङ्- (१) प्रति + अञ्च् (गत्यर्थक) सत्यञ्च् । + क्विप् = । प्रथमा ए.व.में प्रत्यङ् । अर्थ - (१) प्रतिकूलगामी । जल का विशेषण ।
'पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति'
ऋ. १०.२७.१३.
आदित्य उस प्रतिकूल जाते हुए जल को ग्रहण कर स्वयं पी जाता है अर्थात् अपने मण्डल में स्थापित करता है (प्रत्यञ्म् अति) ।
(२) पूर्व दिशा ।
(३) प्रतिकूल दिशा से आने वाला ।
(४) प्रति पक्षी शत्रु (५) बाधक प्रतिपक्षी क्रोधादि व्युत्थान ।
'जहि प्रतीचो अनूचः पराचः'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३.१.४.

प्रत्यदर्शि- देखा जाता है ।
'प्रतियत् स्या नीथा दर्शि दस्थोः'
ऋ. १.१०४.५
जिस प्रकार वह स्तुति, देखी जाती है -सा. जो यह न्याय-प्राप्त प्रजा (नीथा) सुरक्षित देखी जाती है । - दया.

प्रत्यभिचरण- अपने विरुद्ध प्रतिद्वन्दी को लक्ष्य कर उस पर आक्रमण करने में समर्थ ।
'प्रत्यभिचरणोऽसि'
अ. २.११.२

प्रतारीः- प्रवर्द्धय (प्रवर्धित कर, बढ़ा ।
'सोम राजन् प्र ण आयूंषितारीः'
ऋ. ८.४८, नि. ४.७.
हे सोम ! हे स्वामिन् ! हमारी आयु को बढ़ा ।

प्रत्यातिष्ठन्ती- खूब मजबूती से जड़ जमाकर रहने वाली लता ।
'जयन्ती प्रत्यतिष्ठन्ती'
अ. ५.५.३

प्रत्याश्रावः- (१) यज्ञ में अस्तु श्रौषट् । इस प्रकार कहना प्रत्याश्राव है । (२) विद्यार्थी को विद्योपदेश की प्रत्याश्राव है ।
'प्रत्याश्रावोअनुरूपः'
वाज़.सं. १९.२४

प्रत्रास- खूब भय ।
'प्रत्रासेनाज्ये हुते'
अ. ५.२१.२

प्रत्वक्षसः- तीक्ष्ण शस्त्रों से शस्त्रुओं को खूब कांट छांट करने वाले ।
'प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनः'
ऋ. १.८७.१, ऐ.ब्रा. ४.३०.११, कौ.ब्रा. २०.२,

प्रत्वक्षाः- शत्रुबल - नाशक ।
'प्रत्वक्षसं वृषभं सत्य शुष्मम्'
ऋ. १०.४४.३, अ. २०.९४.३,
(२) अच्छी प्रकार शत्रुओं का छेदन भेदन करने वाला - मरुतों का विशेषण ।
'प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवो रवः'
ऋ. ५.५७.४.
(३) अति तेजस्वी ।

प्रत्वक्षाणः- उत्तम रीति से बनाता या गढता हुआ ।
'प्रत्वक्षाणो अति दिशा सहांसि'
ऋ. १०.४४.१, अ. २०.९४.१

प्रतान- फैलाव, विस्तार ।
'शतं तव प्रतानाः'
अ. ६.१३९.१

प्रति- (१) एक उपसर्ग । 'अभि' के विपरीत अर्थ का द्योतक जैसे अभिगत, प्रतिगत ।
'प्रतित्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।
मरुद्भिरग्न आगहि'
ऋ. १.१९.१, साम.१.१६, आश्व.श्रौ.सू. २.१३.२, वै.सू. २३.८, कौ.सू. १२७.७, नि. १०.३६.
हे अग्नि ! उस अंग वैल्कव्यरहित सुन्दर यज्ञ

के प्रति आकर (त्वं चारुं अध्वरं प्रति) सोम पान करने के लिए (गोपीथाय) तू प्रकर्ष के साथ बुलाया जाता है (प्रहूयसे)। तू मरुतों के साथ आ (मरुद्भिः आगहि)।
(२) प्रतिद्विन्द्वी। मुकाबले में आने वाला।
'नहित्वा कश्चन प्रति'
ऋ. ८.६४.२, अ. २०.९३.२, साम. २.७०५.

प्रतिकामम्- (१) इच्छानुकूल, (२) भरपेट।
'उशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु'
ऋ. १०.१५८, अ. १८.३.४६, वाज.सं. १९.५१.
(३) प्रेम का बदला।
'प्रतिकामाय वेत्तवे'
अ. २.३६.७

प्रतिकाम्य- (१) कन्या के प्रति अभिलाषा करने वाला वर।
'दधातु प्रति काम्यम्'
अ. ६.६०.३
(२) अभिलाषा करने के योग्य।
'यो वरः प्रतिकाम्यः'
अ. २.३६.५.६

प्रतिक्षियन्- विद्यमान।
'प्रतिक्षियन्त भुवनानि विश्वा
ऋ. २.१०.४, वाज.सं. ११.२३, तै.सं. ४.१.२.५,५.१.३.२, मै.सं. २.७.२.७६.३, का.सं. १६.२.१९.३, १९.३. श.ब्रा. ६.३.३.१९.

प्रतिक्रोश- (१) कलह का अवसर।
'प्रतिक्रोशेऽमावास्ये'
अ. ४.३६.३

प्रतिग्रहीता- (१) दान लेने वाला।
'नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता'
अ. ४.११.५
'मयोमह्यं प्रतिग्रहीत्रे'
वाज.सं. ७.४७, मै.सं. १.९.४, १३३.१५.२०, १३४.४, १०.१५, श.ब्रा. ४.३.४.२८, तै.ब्रा. २.२.५.४, शां.श्रौ.सू. ७.१८.१.
(२) धन या दान लेने वाला।
'कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते'
वाज.सं. ७.४८

प्रतिगृभाय- स्वीकार कर।
'प्रतिस्तोमं शस्यमानं गृभाय'
ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५.१७४.७, का.सं. ६.११.
हमारे कहे स्तोत्रों या प्रशंसनीय कार्यों को स्वीकार कर।

प्रतिध्नाना- छाती पीटती हुई।
'प्रतिध्नानाश्रुमुखी'
अ. ११.९.७

प्रतिचक्ष्य- परित्याग कर
'तेविद्वांसः प्रतिचक्ष्या नृता पुनः'
ऋ. २.२४.६

प्रतिचक्ष्या- प्रत्यक्ष, साक्षात्,।
'अस्मांभिरु नु प्रति चक्ष्याभूत्'
ऋ. १.११३.११,तै.सं. १.४.३३, तै.आ. ३.१८.१.
हमें भी वह उषा प्रत्यक्ष हो।

प्रतिच्यवीयसी- (१) पति के प्रति प्रेम से झुकने वाली।
'न यत् प्रतिच्यवीयसी'
ऋ. १०.८६.६ अ. २०.१२६.६
(२) पति के पास जाने वाली।

प्रतीचीन फल - (१) अपामार्ग (चिचिरा) जो अपने फलों को छूने वाले के प्रति लिपटा देता है।
(२) अपने शत्रुओं के विपरीत फल उत्पन्न करने वाले कार्यों को करने वाला।
'प्रतीचीन फलो हित्वम्'
अ. ७.६५.१

प्रतिजन - प्रतिकूल जन।
'ह्वयन्तु त्वा प्रतिजनाः'
अ. ३.३.५

प्रतिजानत् (१) व्यवहार जाने वाला (२) बालिग, वयस्क पुत्र, (३) प्रतिज्ञा करने वाला।
'अंशं न प्रतिजानते'
ऋ. ३.४५.४

प्रतिजुषस्व- एक एक कर सेवन कर दे।
'उशन् हव्यानि प्रतिनोजुषस्व'
ऋ. १.१०१.१०.
हे इन्द्र, हमारे हव्यों को श्रद्धा पूर्वक सेवन कर।

प्रतिजोषयेते- सेवते, प्रत्यासेवते। णिच् का प्रयोग यहां स्वार्थ में हुआ है। अतः अर्थ में भिन्नता नहीं आई है। अथ हैं - (१) सेवक करते हैं, (२) सेवा भाव से बढ़े।

प्रतिदधानः - धनुष पर बाण लगाने वाला।
'नम आतन्वानेभ्यः

प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२२, तै.सं. ४.५.३.२, मै.सं. २.९.४,१२३.१०, का. सं. १७.१३.

प्रतिदधौ- बरसाता या रखता है ।
'शीर्ष्णा शिरः प्रतिदधौ वरूथम्'
ऋ. १०.२७.१३.
आदित्य अपने रश्मिजाल से (शीर्ष्णा) ताप निवारक वृष्टि जल को (वरुथम्) समस्त संसार के सिर पर (शिरः) बरसता या रखता है (प्रतिदधौ) ।

प्रतिदीवा- (१) प्रतिपक्षी होकर विजय करने वाला -शत्रु ।
'आदिनवं प्रतिदीव्ने'
अ. ७.१०९.४
(२) प्रतिदिवन् । प्रतिपक्षी द्यूत का खिलाड़ी ।
'प्रतिदीव्नेदधत आकृतानि'
ऋ. १०.३४.६

प्रतिदुहीयात् - (१) प्रतिदुग्धाम्, ददातु (प्रदान् करे)।
'नूनं साते प्रतिवरं जरित्रे
दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी
ऋ. २.११.२१, नि. १७.
(२) प्रति पूरयतु - (प्रतिदोहन करे, प्रतिपूर्ण करे)
हे इन्द्र, तेरी वह पुत्र रूपी दक्षिणा धनधान्य से संयुक्त होती हुई (इन्द्र सा ते दक्षिणा मघोनी) स्तुतिशील यजमान को अभिमत अर्थ प्रदान करे (वरं प्रति दुहीयात्)

प्रतिदोषम् - प्रतिदिन रात ।
'अस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः'
ऋ. १.३५.१०, वाज.सं. ३४.२६.
अपने गुणों से स्तुति करने योग्य होता हुआ (गृणानः) सविता दिनरात विराजमान है ।

प्रतिधर्ता- (१) धारण करने वाला, (२) प्रतिकार करने वाला ।
'अग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता'
वाज.सं. १५.१०, तै.सं. ४.४.२.१, मै.सं. २.८.९, ११३.५, का.सं. १७.८, श.ब्रा. ८.६.१.५.

प्रतिधा- (१) प्रतिकूल रूप से धारण करना ।
'मा शकन् प्रतिधामिषुम्'
अ. ८.८.२०, ११.१०.१६.
(२) प्रतिधान, प्रहित, (३) प्रणिधान, ध्यान, (४) झोंका, (५) टिकाव, ।
'एकया प्रतिधापिबत्
साकं सरांसि त्रिशतम्
इन्द्रः सोमस्य काणुका'
ऋ. ८.७७.४, नि. ५.११.
इन्द्र एक ही प्रणिधान से या एक ही झोंके से एक साथ ही सोम रस के तीस सुन्दर बर्तनों को पी गए ।
अथवा,
कालाभिमानी इन्द्र कृष्ण और शुक्ल पक्ष के तीसों रातों को एक सा अनुभव करते हैं । अथवा, यह सूर्य एक टिकाव से पक्ष से तीस दिन रात में आई हुई चन्द्रमा की निर्मल रश्मियों को पीता है ।
(६) प्रतिधान, अमावास्या या प्रतिपदा की विपरीत स्थिति (६) विग्रह पूर्वक आक्रमण (८) सावधानता ।

प्रतिधातवे - प्रत्येक पदार्थ तक पहुंचने के लिये
'अपदे पादा प्रतिधातवेऽकः'
ऋ. १.२४.८, वाज.सं. ८.२३, तै.सं. १.४.४५.१, मै.सं. १.३.३९, ४५.४, का.सं. ४.१३, श.ब्रा. ४..४.५.५
उसने सूर्य की किरणों को प्रत्येक पदार्थ तक पहुंचने के लिये (प्रतिधातवे) अगम्य आकाश में (आपदे) अवकाश (पादा) बनाया ।

प्रतिधि- (१) प्रतिपालक ।
'स्तोमा आसन् प्रतिधयः'
ऋ. १०.८५.८, अ. १४.१.८
(२) आदरणार्थ प्रस्तुत पदार्थ, उपहार ।
(३) प्रतिनिधि ।
'प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवींजिन्व'
वाज.सं. १५.६, मै.सं. २.८.८, ११२.६.

प्रतिधीयमान- (१) वह पदार्थ जो किसी कर्म के फल फलस्वरूप दिया जाता है ।
'यामर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः'
ऋ. १.१५५.२, नि. ११.८
जो इन्द्र और विष्णु यज्ञशील मनुष्य को (या मर्त्याय) यज्ञ के पलस्वरूप (प्रतिधीयमानम् इत्) अन्नदेता है ।

(२) प्रतिक्षण धारण पोषणार्थ देने योग्य अन्नादि पदार्थ ।

प्रतिधुक पीयूषम् - (१) नवीन दुहा हुआ या प्रति दिन का दुहा हुआ दूध (२) प्रतिकल्प, प्रतिसर्ग में दोहन करने योग्य पीयूष-पयस् रस, प्राण या परम सूक्ष्म जगत् का मूल कारण भूत परमाणुरूप अपः

'वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूषः'

अ. ९.४.४, तै.सं. ३.३.९.२, मै.सं. २.५.१०, ६१.१८.

प्रतिधृष् - पराजित होना, पराजयः

'तिग्मा अस्य हनवोन प्रतिधृषे'

ऋ. ८.६०.१३

प्रतिनन्दन- प्रसन्न करने वाला ।

'आयतः प्रतिनन्दनम्'

अ. ७.३८.१

प्रतिपण- दूसरे के पदार्थ को स्वयं प्राप्त करने के लिये दर नियत करना ।

'प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु'

अ. ३.१५.४

प्रतिपत् - (१) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त करने में समर्थ अधिकारी, (२) प्राप्त कने योग्य पद, (३) श्री रूपा स्त्री, (४) श्री ।

'प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वा'

वाज.सं. १५.८

प्रति प्रस्थान- शत्रु के प्रति चढाई करने वाला अधिकारी ।

'आश्विनश्च मे प्रति प्रस्थानश्च मे'

वाज.सं. १८.१९, तै.सं. ४.७.७.१, मै.सं. २.११.५, १४३.४, का. सं. १८.११,

प्रतिपाण - प्रत्येक पदार्थ या रक्षा व्यापार करने में समर्थ परमेश्वर ।

'प्रतिपाणायक्षये'

अ. १९.५२.३

प्रतिप्राश- (१) हृदय में व्याप्त शोक, मोह, क्रोध आदि भावों को (प्राश) जीतने के लिये विपरीत भावना ।

'प्राशं प्रतिप्राशो जहि'

अ. २.२७.१-६

प्रतिभृत - (१) साक्षात् भेंट किया हुआ ।

'पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वः'

ऋ. १०.९६.१२, अ. २०.३२.२

(२) प्रत्येक मनुष्य से धारण करने योग्य ।

'या इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः'

ऋ. ४.२०.४

(३) एवज में बदले में दिया गया भरण पोषणार्थ पदार्थ ।

'हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः'

ऋ. ७.६८.१

प्रतिमा- (१) प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान कराने वाली बुद्धि ।

'प्रतिमाच्छन्द'

वाज.सं. १४.१८, तै.सं. ४.३.७.१, मै.सं. २.१३.१४, १६३.९, २.८.३, १०८.१२, ३.२.९, ३०.३, का.सं. १७.३, ३९.४.

(२) मापक साधक, (३)परिमाण, (४) प्रतिकृति, मूर्त्ति ।

'न तस्य प्रतिमा अस्ति'

वाज.सं. ३२.३

प्रतिमान - (१) सादृश्य, सदृश, मुकाबला करने वाला ।

(२) परिणाम करने वाला, (३) सबको मानने वाला, (४) सबसे अधिक बल शाली ।

'सत सतः प्रतिमानं पुरोभूः'

ऋ. ३.३१.८

(५) प्रतिमान भूतानि समानभूतानि द्रव्याणि (समान एक मान वाला पदार्थ) -

(६) यैः प्रतिमीयन्ते स्तोत्राणि तानि-दुर्ग (७) असुर या स्थान (८) उपमा

'प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि'

ऋ. १०.१२०.६, नि. ११.२१.

जो इन्द्र अनेकों असुरों को अभिभूत करता या उनके स्थानों पर अधिकार जमाता है (प्रसाक्षते)-सा. । जो अनेक उपमाओं को (प्रतिमा नामि) पाता है (प्रसाक्षते) ।

प्रतिमिता - प्रत्येक अंग में नापी हुई ।

'उपमितां प्रतिमिताम्'

अ। ९.३.१

प्रतिमुञ्चते - विराजता है, प्रतिबिम्बित होता है ।

'विश्वारूपाणि प्रति मुञ्चते कविः'

ऋ. ५.८१.२, वाज.सं. १२.३, तै.सं. ४.१.१०.४, मै.सं. २.७.८, ८४.१४, ३.२.१,१४.१५, का.सं.

१६.८, ऐ.ब्रा. १.२९.१४, कौ.ब्रा. ९.३, श.ब्रा. ६.७.२.४, आश्व.श्रौ.सू. ४.९.५, नि. १२.१३.
वह क्रान्तदर्शन मेधावी सविता (कविः) सभी रुपों में विराजते हैं (विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चतै)

प्रतिमुञ्चमानः– बदलने वाला, रूप बदलने वाला ।
'ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति'
वाज.सं. २.३०, श.ब्रा. २.४.२.१५, आश्व.श्रौ.सू. २.६.२, शां. श्रौ.सू. ४.४.२, आप.श्रौ.सू. १.८.७, कौ.सू. ८८.१, साम.मं.ब्रा. २.३.४.

प्रतिमान– न (१) प्रतिमान, (२) प्रत्येक पदार्थ का निर्माता (३) विश्व का प्रति निधि रूप (४) प्रत्येक पदार्थ में तद्रूप–परमात्मा ।
'यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव'
ऋ. २.१२.९, अ. २०.३४.९

प्रतियन्ति– लौट जाती हैं, लीन हो जाती हैं ।
'प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः'
ऋ. १.९२.१, साम. २.११०.५, नि. १२.७.
गमनशीला, आरोचमाना, सूर्यप्रकाश की निर्मात्री उषाएं सूर्य में ही लीन हो जाती है ।

प्रतिर– (१) वर्धय (बढ़ा) । (२) विशेषण होने पर 'प्रतिर' का अर्थ प्रतीर्ण दीर्घ होता है ।

प्रतिरते– प्र + तृ (वर्द्धनार्थक) के लट् प्र.पु.ए.व का रूप । अर्थ है– बढ़ाती है ।
'प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः
ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.
जल की ऊर्मियो से अन्न उत्पन्न कर उर्वशी (माध्यमिका वाक्) दीर्घ आयु बढ़ाती है । (दीर्घम् आयुः प्रतिरते) ।
पुनः
'प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः'
ऋ. १०.८५.१९, अ. ७.८१.२, १४.१.२४, तै.सं. २.४.१४.१, मै.सं. ४.१२.२, १८१.६, का.सं. १०.१२, नि. ११.६.
चन्द्रमा आयु को दीर्घ करता है ।

प्रतिरन्तु– प्रवर्द्धयन्तु (बढ़ावें) तिर् बढ़ाना अर्थ में आया है ।
'देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे'
ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२, २१७.९, नि. १२.३९.
पुनः
देव या सूर्य रश्मियां हमारी आयु को चिरजीवन के लिये प्रवर्द्धित करें ।

प्रतिरम् – प्रतीर्ण, दीर्घ ।
'तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः'
ऋ. ८.४८.१०, तै.सं. २.२.१२.३, मै.सं. ४.११.२, १६४.१०, का.सं. ९.१९.
उसके लिये तुझ इन्द्र से प्रतीर्ण आयु मांगता हूं–सा. । उससे दीर्घायु की प्राप्ति के लिए अन्नदाता प्रभु से (इन्द्रम्) याचना करता हूँ ।

प्रतिरव– (१) गुरु के कहे वचन को दुहराने वाला शिष्य, (२) प्रतिस्पर्द्धी ।
'स्वाहा प्रतिरवेभ्यः'
वाज.सं. ३८.१५, श.ब्रा. १४.३.२.३, कौ.सू. २६.७.४९.

प्रतिलोभयन्ती– प्रतिलोभयमाना, विमोहयन्ती (लुभाती हुई, विमुग्ध करती हुई) ।

प्रतिवव्रिः– प्रतिरूप, जल का वाष्पीय रूप ।
'विद्युत्भवन्ती प्रतिवव्रिमौहत'
ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, सै.ब्रा. २.२६०, नि. २.९.
ग्रीष्म ऋतु में वही विद्युत् सूर्य रूप से रश्मियों द्वारा बरसाये जस को वाष्प रूप में जलाशयों से ले लेता है ।

प्रतिवस्तोः– प्रतिदिन ।
'प्रतिवस्तो रहद्युभिः'
ऋ. १०.१८९.३, अ. ६.३१.३, २०.४८.६, साम. २.७२८, आ.सं. ५.६, वाज.सं. ३.८, का.सं. ६.१३, श.ब्रा. २.१.४.२९.

प्रतिविधेम– परिचर्या करें, पूजा करें ।
'प्रति वां सूर उदिते विधेम'
ऋ. ७.६३.५, गौ.ब्रा. २.३.१३.
हे मित्रावरुण, या अध्यापक 'और उपदेशक । हम सूर्य को उदित होने पर (सूरे उदिते) आप दोनों की पूजा करें ।

प्रतिबद्ध– खूब अपने लिये सावधान जीव ।
'प्रतिबुद्धा अभूतन'
ऋ. १.१९१.५, अ. ४.३७.३,४,

प्रतिवेदयन् – परिचय कराता हुआ ।
'यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः'

ऋ. १.१६२.४, वाज.सं. २५.२७, तै.सं. ४.६.८.२, मै.सं. ३.१६.१ ,१८२.३, का.सं. (अश्व.) ६.४.

प्रतिवेश - (१) पड़ोसी ।
'माते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम'
अ. ३.१५.८, १९.५५.१, २.७,
(२) धर्म -मर्यादा ।

प्रतिबोध- (१) बल, (२) उत्तम शिक्षा ।
'प्रतीबोधेन नाशय'
अ. ८.६.१५, १९.३५.३

प्रतिश्रव- प्रतिशब्द करने वाला ।
'नमःश्रवायच प्रतिश्रवाय च'
वाज.सं. १६.३४, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६, १२५.७, का.सं. १७.१४.

प्रतिशीवरी- सब को अपने ऊपर सुलाने वाली पृथिवी ।
'माहिंसीस्तत्र तो भूमे
सर्वस्य प्रतिशीवरि'
अ. १२.१.३४

प्रतिष्कुतः - (१) जो दूसरे से प्रति शब्दित हो-सा.
(२) जो धर्म मार्ग से स्खलित हो-दया. ।
'ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अंग'
ऋ. १.८४.७, अ. २०.६३.४, साम. १.३८९, २.६९१
सम्पूर्ण जगत् का स्वामी (ईशानः) दूसरे से अप्रतिशब्दित (अप्रतिष्कुत) इन्द्र हैं- सा.
जो शासन करने योग्य है (ईशानः) और जो कभी धर्म मार्ग से स्खलित नहीं होता । (अप्रतिष्कुतः) उसे ही राजा बनाना चाहिए । -दया.

प्रतिश्रुत- (१) प्रतिज्ञा-सा. (२) किसी का दुःखादि सुनना ।
'प्रतिश्रुताय वोधृषत्
हुवे सुशिप्रमूतये'
ऋ. ८.३२.४
हे ऋत्विज् , यजमानो, इन्द्र के प्रति की गई अपनी प्रतिज्ञा के पालन के लिये (प्रतिश्रुताय) आपलोगों की निमित्त (वः) सुन्दर तन या नाक वाले इन्द्र को (सुशिप्रम्) रक्षा के लिए (ऊतये) पुकारता हूँ (हुवे) -सा.
हे मनुष्यो, तुम्हारे दुःखों को सुनने के लिये (प्रतिश्रुताय) और तुम्हारी रक्षा के लिये (वः ऊतये) शत्रुओं को पालन करने वाले (धृषत्) और क्षिप्रकारी राजा को (सुशिप्रम्) मैं देता हूँ ।

प्रतिश्रुत्का- (१) प्रतिज्ञा की पूर्ति ।
'प्रतिश्रुत्काया अर्तनम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.
(२) प्रति प्रति श्राव्यतते यया क्रियया (प्रत्येक को घोषणा सुनाने को कार्य)
'प्रतिश्रुत्कायै चक्र वाकः'
वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१४.१, मै.सं. ३.१४,१७५.४, का.सं. (अश्व.) ७.४.

प्रतिष्कम् - (१) जिस कर्म से शत्रुओं को प्रति बद्ध किया जाय-युद्ध (२) शत्रुओं का मुकाबला ।

प्रतिष्ठा - बीच में बैठने के लिये चूतड़ ।
'के नोच्छलंखौमध्यतः कः प्रतिष्ठाम्'
अ. १०.२.१.
(२) सब को अपने भीतर स्थिर करने वाली पृथिवी
'ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्'
अ. १८.४.५
(३) खड़े होने की शक्ति, ।
'पादयोः प्रतिष्ठा'
अ. १९.६०.२, वै.सू. ३.१४, मा.श्रौ.सू. ५.२.१५.१०
(४) बत्तीस विभागों पर स्वयं तैतीसवां प्रवर्तक राजा ।
'प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः'
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.५ मै.सं. २.८.४, १०९.६, का.सं. १७.४, २०.१३, श.ब्रा. ८.४.१.२२.

प्रतिष्ठिः- (१) मुकाबले पर खड़ा होने वाला, (२) आश्रय ।
'न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः'
ऋ. ६.१८.१२

प्रतिष्ठिति- प्रतिष्ठा ।
'रथन्तरं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे'
वाज.सं. १५.१०, तै.सं. ४.४.२.१, मै.सं. ३.१६.४, १८७.१६, का.सं. २२.१४. आश्व.श्रौ.सू. ४.१२.२.

प्रतिसदृक्ष- (१) किसी अंश में समान पदार्थ , (२)मरुद्गण ।
'सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन'
वाज.सं. १७.८४,तै.सं. ४.६.५.६, मै.सं. २.११.१,

१४०.५, का.सं. १८.६.

प्रतिसदृङ- प्रत्येक पदार्थ इस अंश में समान है ।
'सदृङ् च प्रतिसदृङ् च'
वाज.सं. १७.८१, मै.सं. २.११.१,१४०.४, का.सं. १८.६.

प्रतिसरः- (१) शत्रुओं पर चढ़ाई करने में समर्थ, (२) एक यन्त्र जिससे शत्रुओं पर विजय होती है' ।
'प्रतीवर्तः प्रतिसरः'
अ. ८.५.४
(३) शत्रु के बाधक बल के मुकाबले में जाने में समर्थ ।
'स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि'
अ. २.११.२

प्रतिसर्य- (१) शत्रु पर चढ़ाई करने और उसे पीछा करने में समर्थ ।
'नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च'
वाज.सं. १६.३३, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६,१२५.५, का.सं. १७.१४.

प्रतिस्पाशन- (१) बाधा देने वाला, (२) पीड़ा कारी
'प्रतिस्पाशनमन्तितम्'
अ. ८.५.११.

प्रतिसुत्वा- (१) प्रतिपक्ष में अभिषेक को प्राप्त राजा, (२) पुत्रोत्पादन समर्थ पति ।
'प्रतीयं प्रतिसुत्वनम्'
अ. २०.१२९.२, ऐ.ब्रा. ६.३३.२, शा.श्रौ.सू. १२.१८.२.

प्रतिसूर्य- सूर्य का प्रतिरूपक ।
'देव त्वं प्रतिसूर्य'
अ. २०.१३०.१०

प्रतिहरण- प्रतिहार, प्रतिहरणविधि ।
'पुनःकृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि'
अ. ५.१४.८

प्रतिहर्यते- प्रतिकामयते (प्रतिकामना करती है) 'हर्य' धातु गति और कामना अर्थों में आया है ।
'इयं वो अस्मत् प्रतिहर्यते मतिः'
ऋ. ५.५७.१, नि. ११.१५
हे रुद्रो, यह हमारी स्तुति आप लोगों की कामना करती है ।

प्रतिहर्यन् - कामना करता हुआ ।
'प्रतिमन्यूरुचथानि हर्यन्'
ऋ. ४.२४.७

प्रतिहर्यामसि- प्रतिहयमिः । वेद में 'मस्' का 'मसि' हो जाता है । अर्थ है- हम कामना करते हैं ।
'प्रयस्वन्तः प्रतिहर्यामसि त्वा'.
ऋ. १०.११६.८
हे इन्द्र या विद्वन् ! हम अन्न वाले (प्रयस्वन्तः) तेरी कामना करते हैं (त्वां प्रतिहर्यामसि) ।

प्रतिह्वर- (१) आकाश में प्रत्यक्ष प्रतीयमान चक्राकार वृत्त मार्ग, (२) कुटल व्यवहार ।
'दिव एति प्रतिह्वरे'
ऋ. ६.६६.१४

प्रतिहिता- फेंकने के लिये तैयार वाण ।
'नमः प्रतिहितायै'
अ. ६.९०.३

प्रतीक - (१) प्रति + अञ्च + क्त = प्रतीक (निपातन से सिद्ध) अर्थ है । प्रत्यक्त, व्यक्ततर, अंग, प्रकाशाख्य दर्शन, (२) दुर्ग की व्युत्पत्ति प्रत्याञ्चितं प्रतिगतम् प्रकाशस्य (प्रकाश से आया पदार्थ अर्थात् प्रकाश के सम्मुख आया मुख आदि प्रतीक है)
(३) कोश में भी कहा है-
'अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनम्'
(४) प्रतीक का फलितार्थ मुख है । या आर्यसमाजी विद्वान् इसका अर्थ - प्रतिदर्शन, प्रत्यागमन या सुदर्शन करते हैं ।
(५) रूप ।
'यावन्यात्रमुषसोन प्रतीकं
सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः'
ऋ. १०.८८.१९., नि. ७.३१
हे मातरिश्वा, जितनी रात्रियाँ उषाओं का प्रतीक आच्छादित करती है या जितनी ही उषाएं रात्रियों में देखी जाती है ।
पुनः
आधुनिक अर्थ- (१) किसी ओर फेरा या घुमाया हुआ, (२) उल्टा, प्रतिकूल, विपरीत, संज्ञा होने पर (३) अंग, अवयव, (४) प्रतिमा मूर्ति , (५) मुख, (६) किसी पदार्थ का अगला भाग, (६) छन्द का प्रथम शब्द ।

प्रतीकाश - स्वरूप ।
'यस्य भीमः प्रतीकाशः'
अ. ९.८.६

प्रतीचिका- (१) विरुद्ध उठने वाली शत्रु सेना ।
'मा मा प्रापत् प्रतीचिका'
अ. १९.२.४

प्रतीची- प्रति + अञ्च् + क्विप् = पत्यञ्च, प्रत्यञ्च् + ङीष् = प्रतीची । अर्थ है '(1) अभिमुख, समक्ष, अभिमुख हुए ।
'उभे त्वष्टुर्बिभ्यतु जायमानात्
प्रतीची सिंहं प्रतिजोषयेते'
ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.८, २२७.५, तै.ब्रा. २.८.७.५, नि. ८.१५.
जायमान अग्नि से दोनों द्यौ और पृथिवी या उनके निवासी का अरणी से उत्पन्न करने वाले डर गए । अतः उस शक्तिशाली अग्नि की ओर (सिंह प्रतीची) सेवाभाव से बढ़े (प्रतिजोष) येताम्)
(२) विपरीतगामी ।
'प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु'
अ. ८.५.५.६,
(३) पूर्वाभियुव पुरुष के पीठ की दिशा -पश्चिम दिशा ।
'प्रतीच्यैदिशेस्वाहा'
वाज.सं. २२.२४, तै.सं. ७.१.१५,मै.सं.३.१२.८, १६३.५, का.सं. (अश्व.) १.६.

प्रतीचीदिक् - (१) पश्चिम दिशा, (२) ब्रह्मचर्य के पीछे आने वाला, गृहस्थाश्रम ।
'प्रतीचीदिशामिर्यामेद वरम्'
अ. १२.३.९

प्रतीचीन- (१) पराङ्मुख, पीछे ।
'प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत्'
ऋ. ३.५५.८
(२) अभिमुख समक्ष - (३) प्रजा के प्रतिचलने वाला दया. ।
'प्रतीचीनम् वृजनं दोहसे गिरा'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२, तै.सं. १.४.९.१, मै.सं. १.३.११.३४,५, का.सं. ४.३. श.ब्रा. ४.२.१.९.
हे सोम ! तू अभिमुख इन्द्र को तृप्त कर (प्रतीचीनम्) यजमान् क्रोध न दे (वृजनं दोहसे) -सा । हे राजन् ! प्रजा के प्रति चलने वाले (प्रतीचीनम्) बलदान् अपने को जिन प्रजाओं में रहकर बढ़ाते हो उस प्रजावर्ग को शिक्षा से पूर्ण करा (दोहसे गिरा) ।
(४) देह के भीतर आता हुआ प्राण ।
'प्रतीचीनाय ते नमः'
अ. ११.२.५, ४.८

प्रतिचीनफलः- (१) अपामार्ग नाकर ओषधि जिसका फलउसके डंठल पर उल्टे लगा रहता है - चिचिरा, (२) अपामार्ग विधान जो पहले दुःखकर पर पीछे सुखकर होता है ।
'प्रतीचीनफलस्वत्वम्'
अ. ४.१९.७
'प्रतीचीन फलो हित्वम्'
अ. ७.६५.१,

प्रतीति- प्रति + इति । अर्थ - (१) आक्रमण ।
'प्रतीत्या शत्रून् विगदेषु वृश्च'
ऋ. १०.११६.५

प्रतीवर्त- शत्रुओं से अभिमुख खड़ा होने वाला (२) एक यन्त्र ।
'प्रतीवर्तः प्रतिसरः'
अ. ८.५.४, साम. १.१.३

प्रतीत्यः- (१) प्रत्यक्ष में कान्तियुक्त ।
'ईडिष्वा हि प्रतीव्यं
यजस्व जातवेदसम्'
ऋ. ८.२३.१
(२) ज्ञेयतत्व, (३) आक्रमण करने योग्य ।
'इनोति च प्रतीव्यम्'
ऋ. ८.३९.५
(३) विरुद्ध ज्ञान वाला -बाधित ।
'प्रतीत्येन कृधुना तृपासः'
ऋ. ४.५.१४
(४) प्रसिद्धि करने वाला कर्म ।
'च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे'
ऋ. ७.६८.६

प्रतीप- विरुद्ध सुन्दर ।
'प्रतीपं प्रतिसुत्वनम्'
अ. २०.१२९.२, ऐ.ब्रा. ६.३३.२, शा.श्रौ.सू. १२.१८.२.

प्रतीवर्तः- शत्रुओं का मुख फेर देने में समर्थ ।
'अयमिद् वै प्रतीवर्तः'
अ. ८.५.१६.

प्रतिबोध- (१) सतर्क रहने को प्रवृत्ति, जागरुकता ।

'प्रतीबोधेन नाशय'
अ. ८.६.१५, १९.३५.३.
(२) प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान कराने वाला उपदेशक ।
'बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतम्'
अ. १.१.१३

प्रतीहार- सामगान का भाग ।
'प्रतीहारो निधानम्'
अ. ११.७.१२

प्रत्युष्ट - दग्ध
'प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अशतयः'
वाज.सं. १.७.२९, तै.सं. १.१.२.१, १,१०.१. तै.ब्रा. १.३९, श.ब्रा. १.१.२.२, ३.१.४, तै.ब्रा. ३.२.२.२, ४.३, ३.१.१.

प्रतूर्ति- (१) बड़ा संग्राम ।
'त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु'
ऋ. ८.९९.५, अ. २०.१०५.१, साम. १.३११, २.९८७, वाज.सं. ३३.६६, ऐ.ब्रा. ५.४.२२, आश्व.श्रौ.सू. ७.३.१९.४.३, शां.श्रौ.सू. १२.९.११, वै.सू. ३९.११.
(२) उत्तम क्रियाशक्ति ।
'देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः'
वाज.सं. ९.६, वाज.सं. (का.) १०.२.२, श.ब्रा. ५.१.४.६.
(३) अच्छी प्रकार शत्रुओं का नाश करना,
(४) सद्यः अनुष्ठाता - किसी कार्य को शीघ्र कर देने वाला -दया.
'असि प्रतूर्तये नृभिः'
ऋ. १.१२९.२
नायक पुरुषों द्वारा शत्रुओं को नाश करने में तू समर्थ होता है ।
(५) उत्तम रीति से शत्रु का दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाली सेना, (६) उत्तम एवं शीघ्र कार्य करने में कुशल प्रजा ।
'इमा अस्य प्रतूर्तयः
पदं जुषन्त यद् दिवि'
ऋ. ८.१३.२९

प्रतूर्वत्- (१) अतिशीघ्र कार्य करने में कुशल ।
'मित्रस्यहि प्रतूर्वतः
सुमतिरस्ति विधतः'
ऋ. ५.६५.४

प्रतृद्- (१) तीनों आश्रयों को अन्नादि देने वाला गृहस्थ, (२) खण्ड खण्ड कर वेद का अध्ययन करने वाला ब्रह्मचारी, (३) संशयो का छेत्ता ज्ञानी पुरुष ।
'आवो गच्छति प्रतृदो वसिष्ठः'

प्रतोद- (१) हण्टर चाबुक ।
'वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः'
अ. १५.२.७

प्रत्यौहत- प्रत्यसंहरति (प्रत्युप संहार करता है) । ऊह धातु सामर्थ्य से उपसंहार का वाचक है । अर्थ - (१) पुनः खींच लेता है या ले लेता है ।

प्रथ - (१) बढ़ना ।
'धर्मणे कं स्वधया प प्रथन्ते'
ऋ. १०.८८.१ नि. ७.२५
सुखकारक अग्नि को धारण, रक्षा या अविच्छेद के लिए (धर्मणे) अन्न, हवि एवं पुरोडाश से (स्वधया) बढ़ाते हैं (पप्रथन्त) (२) पथवसिष्ठ नामक वैदिक ऋषि, (३) विस्तृत ।
'प्रथश्च स यस्य सप्रथश्चनाम'
ऋ. १०.१८.१.१, अ.सं. २.५.ऐ.ब्रा. १.२१.२.

प्रथताम् - (१)बढ़े ।
'उरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः उरु प्रथताम्'
वाज.स. १.२२, श.ब्रा. १.२.२.८.
तेरा यजमान खूब बढ़े समृद्ध हो ।

प्रथमः- प्रकृष्टतमः प्रतमः प्रथमः (तका थ पृषोदरादि वत्) । अर्थ - (१) सबसे प्रथम श्रेष्ठ
'योहोतासीत् प्रथमो देवजुष्टः'
ऋ. १०.८८.४
(२) सर्वाधार ।
'योजात एव प्रथमोः मनस्वान्'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२, मै.सं. ४.१२.३, १८६.४, का.सं. ८.१६, ऐ.ब्रा. ५.२.१, कौ.शा. २१.४, २२.४.
जो परमात्मा (इन्द्र) सदा विद्यमान ही रहता है । जो सर्वाधार और चेतन है - दया. ।
(३) पहले के ।
'पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.
पहले के दोनों आह्वाता अपनी विद्या या कर्म के अनुसार देवयान या पितृयान से पृथक् हो जाते हैं । पुनः

प्रथमच्छद् – (१) सबसे प्रथम समस्त जगत् को व्यापने वाला विश्वकर्मा प्रभु ।
'प्रथमच्छदवरां आविवेशैः'
ऋ. १०.८१.१, वाज.सं. १७.१७.

प्रथम जनुष्– विस्तृत या प्राथमिक संसारोपत्ति ।
'प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः'
अ. ४.१.२.

प्रथमजा– प्रकृष्टतमः प्रथमः प्रथमः । प्रथम + जन् + ड = प्रथमज, प्रथमज + टाप् = प्रथमजा । अर्थ – (१) सब से प्रथम उत्पन्न होने वाली बुद्धि । सभी इन्द्रियों में पहले बुद्धि का ही प्रादुर्भाव हुआ । अतः बुद्धि का वाचक प्रथमजा है ।
(२) आत्मज्ञान ।
(३) सर्वश्रेष्ठ विकार– पञ्च तन्मत्राएं विषयग्राही इन्द्रियरूप ज्ञान साधन ।
'यदामागन् प्रथमजा ऋतस्य'
ऋ. १.१६४.३७, अ. ९.१०.१५.

प्रथमजायमान– हिरण्यगर्भ ।
'को ददर्शप्रथमं जायमानम्'
ऋ. १.१६४.४, अ. ९.९.४

प्रथमधास्यु– धारण पोषण करने वाला अनादि पुरुष ।
'धर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे'
अ. ४.१.२

प्रथमभाक्– प्रथम, पूज्यों का सेवन करने वाला ।
'प्रथमभाजं यशसं वयोधाम्'
ऋ. ६.४९.९, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१,

प्रथमंवयः– (१) प्रथम अवस्था, (२) ब्रह्मचर्य (३) प्रथम बल ।

प्रथमवास्य– प्रथम आश्रय ब्रह्म चर्याश्रम – में पहनने योग्य वस्त्र ।
'यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामम्'
अ. २.१३.५.

प्रथमशंख – प्रथं शंखसूक्त
'प्रथमेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.८

प्रथमा– (वि.द्वि.व.) (१) दैव्या होतारा अग्नि और आदित्य का अग्नि और वायु का विशेषण अर्थ है – मुख, बढ़कर (२) सर्वोत्तम स्त्रीपुरुष ।
'प्रथमा हि सुवाचसा'
ऋ. १.१८८.७.
'दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२ ,७, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.१२.
देवताओं के होता अग्नि और आदित्य जो मनुष्य होताओं से प्रथम अर्थात् बढ़कर हैं और जो सुस्तुत या सुन्दर स्तुतियुक्त है ।
दिव्य गुण सम्पन्न सुखकारण अग्नि और वायु जो मनुष्यजीवन के लिए मुख्य हैं (प्रथमा) और वाणी आदि इन्द्रियों को उत्तम बनाने वाले (सुवाचा) हैं ।

प्रथमः– (ब.व.) सब से पहले या प्रमुख । (२) मेघ या वायु
'देवाना माने प्रथमा अतिष्ठन्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.
देवताओं के निर्माण के समय सबसे ये माध्यमिक देव गण मेघ या वायु ही हुए

प्रथमा देवहूतयः – (१) पहले के देवों के आह्वाता ।
'पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.१९.७
पहले के देवों के आह्वाता (प्रथमा देवहूतयः) अपनी विद्या या कर्म के अनुसार देवयान या पितृयान से पृथक् हो जाते हैं ।

प्रथमानि धर्माणि – (१) सृष्टि की आदि में मुख्य ज्ञानयुक्त कर्म (२) प्रसिद्ध जगत् रुपी विकारों के धारक प्रजापति के प्राणरूप देव, (३) यजन शील, देव बनने वाले तथाविश्व की रचना करने वाले प्राण रूप ऋषियों के कर्म ।
'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्'
ऋ. १.१६४.४३, ५०, १०.९०.१६, अ. ७.५.१, ९.१०.२५, वाज.सं. ३१.१६, तै.सं. ३.५.११.५, का.सं. १५.१२, मै.सं. ४.१०.३, १४८.१६, ऐ.ब्रा. १.१६.३७, श.ब्रा. १०.२.२.२, तै.आ. ३.१२.७. नि. १२.४१.

प्रथस्व– प्रथ (बढ़ना) के लोट् म.पु.ए.व. का रूप । अर्थ–बढ़, विस्तीर्ण हो, फैल ।
'उरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः उरुप्रथताम्'
वाज.सं. १.२२, श.ब्रा. १.२.२.८.

प्रथस्वती– विस्तारवाली पृथिवी ।

'व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं'
वाज.सं. १३.१७

प्रथाना- प्रथ + शानच + टाप् = प्रथमा । बढ़ती हुई, वृद्धि को प्राप्त ।
'पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना'
ऋ. १.९२.१२
जिस प्रकार संग्रह शील वैश्य प्रजा (चित्रा) पशुओं को प्राप्त होकर (पशून्)वृद्धि को प्राप्त होती है ।

प्रति- विस्तार ।
'द्यौर्न प्रथि ना शवः'
ढ. १.८.५, ८.५६.१, अ. २०.७१.१, साम. १.१६६

प्रथमा - (१) विस्तृत क्षेत्र, (२) गृह, (३) राज्य आदि
'वरिमा च मे प्रथिमा च मे'
वाज.सं. १८.४, तै.सं. ४.७.२.१, मै.सं. २.११.२, १४१.२, का.सं. १८.७.

प्रदक्षिण- प्रदक्षिणा ।
'सर्वं प्रदक्षिणं कुरु'
अ. २.३६.६

प्रदक्षिणित् - (१) प्रदक्षिण + इत् = प्रदक्षिणित् । अर्थ है- प्रदक्षिण से ही
(२) प्रदक्षिणिदा -प्रदक्षिणित्-'सुपां सु लुक् से तृतीया का लोप । प्रदक्षिणाम् एति इति दाहिनी ओर, रख दिया जाने वाला ।
(३) दाहिनी ओर से घेरता हुआ ।
'प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम्'
ऋ. ३.३२.१५, अ. २०.८.३
(४) प्रदक्षिणा को प्राप्त होने वाला (५) आकाश में चक्कर लगाने वाला पक्षी, (६) दाहिने हाथ की ओर बैठा हुआ ।
'प्रदक्षिणिदभिगृणन्ति कारवः'
ऋ. २.४३.१.
(७) वेदी की प्रदक्षिण करती हुई ब्रह्मचारिणी ।
'प्रदक्षिणिद् देवतातिम् उराणः'
ऋ. ३.१९.२, ४.६.३.

प्रदर - (१) राष्ट्र के भीतर फटा दरार (२) पेट का भीतर भाग ।
'प्रदरान् पायुना'
वाज.सं. २५.७, मै.सं. ३.१५.९, १८०.६

प्रदिवः- (१) पूर्वेषु अहःसु (पूर्व दिनों में, पहले), (२) सकारान्त अव्यय । पुराण शब्द के पाठ में यह पढ़ा गया है ।
प्रगतानि दिनानि = प्रदिन = प्रदिवस् (न का वस्) अर्थ है- बीते दिन । वस्तुतः यह वान्त अव्यय है और 'अत्यन्त संयोगे द्वितीया' के अर्थ में व्यत्यय से प्रथमा है । अर्थ है-बीते दिन ।
'त्वं राजा प्रदिवः सुतानाम्'
ऋ. ३.४७.१, वाज.सं. (का.) २८.१०, तै.सं. १.४.१९.१, मै.सं. १.३.२२, ३८.२, का.सं. ४.८, नि. ४.८.
कल (प्रदिवः) जो सोम रस बनाए गए उनका भी तू राजा है ।
(३) जीवन के प्रारम्भ काल में -दया.
(४) द्योतमान- सा. ।
'अयं वो यज्ञऋभवोऽकारि
यमा मनुष्यवत् प्रदिवो दधिध्वे'
ऋ. ४.३४.३

प्रदिव- उत्कृष्ट व्यवहार वाला ।
'शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः'
ऋ. १.५३.२, अ. २०.२१.२

प्रदिश् - (१) प्रकर्षेण दिश्यमानः । प्र + दिश् + क्विप् = प्रदिश् । अर्थ -प्रदृश्यमान मन्त्र जिससे आह्वनीय अग्नि का प्रदिशन किया जाता है ।
(२) वेदोक्तिविधि (३) पूर्वदिशा ।
'अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि'
ऋ. १०.११०.११, अ. ५.१२.११, वाज.सं. २९.३६, मै.सं. ४.१३.५, २०५.६, का.सं . १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.२१.
पूर्वदिशा में (प्रदिशि) आह्वनीय अग्नि के रूप में वर्तमान (ऋतस्य होतुः) । इस अग्नि के...
(४) विधि, (५) विधि वाक्य (६) दिशा, (७) प्रतिदिशा, (८) प्रदेशः ।
'प्राचीनं बर्हिः प्रदिशापृथिव्या
वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्
व्युप्रथते वितरं वरीयो
देवेभ्यो आदितये स्योनम्'
ऋ. १०.११०.४, अ. ५.१२.४, वाज.सं. २९.२९
पूर्व दिशा में स्तीर्ण कुश (प्राचीनं बर्हिः) मंत्र द्वारा या विधि पूर्वक काटा या बिछाया जाता है (प्रदिशा प्रवृज्यते) । पूर्व या उत्तरमुख होकर

कुश काटना चाहिए (प्राग् उदग्वाबर्हि छिनत्ति) । पूर्वाह्न समय में कुश का काटना या बिछाना श्रेयस्कर होता है (वरीयः) तथा वेदी पर विविध प्रकार से विस्तीर्ण कर बिछाया जाता है (वितरं विप्रथते) और इस वेदी रूपी पृथ्वी पर बिछाने के लिये (अस्याः पृथिव्याः वस्तोः) और इस प्रकार देवों तथा वेदी के लिये सुखकर होता है (देवेभ्यः अदितये स्योनम्) । अन्य अर्थ - वस्तुओं को फैलाने वाला यज्ञाग्नि (बर्हिः) गृह की प्राची दिशा में (प्राचीनम्) वेदोपदिष्ट विधि के साथ (प्रदिशा) इस पृथ्वी के निवास के लिये (अस्याः, पृथिव्याः वस्तोः) पूर्वाह्न में (अह्नः अग्ने) स्थापित की जाती है (वृज्यते) और अत्युत्तम या प्रभूत यज्ञाग्नि अधिक विस्तृत होकर सम्पूर्ण वायुमण्डल में प्रख्यात होती है (वरीयः वितरं विप्रथते) तथा वह यज्ञकर्त्ता देवों के लिये और पृथिवी के लिये सुखकारी बनता है (देवेभ्यः अदितये स्योनम्)

पुनः-

'तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः'

ऋ. १.१६४.४२, अ. ९.१०.१९,११.५.१२. तै.ब्रा. २.४.६.११, नि. ११.४१.

प्रदीध्याना- दीप्तिमती उषा का विशेषण ।

'प्रदीध्याना जोषमन्याभिरति'

ऋ. १.११३.१०.

यह उषा दीप्तिमती होकर (प्रदीध्याना) आगे-आने वाली अन्य उषाओं से (अन्याभिः) अनुकरण की जाती है ।

प्रदुद्रद - खदेड़ने वाला ।

'प्रदुद्रदो मघाप्रति'

अ. २०.१३०.१२

प्रदृप्ति- भारीदर्प, घमण्ड, मोह ।

'नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः'

ऋ. ६.३.२.

प्रदोष- रात्रि के प्रारम्भ का समय ।

'प्रदोषं तस्करा इव'

ऋ. १.१९१.५.

प्रद्यौ- (१) अत्यधिक प्रकाश वाली,

(२) शुद्ध ज्ञान वाली,

(३) उत्तम कर्मफलों वाली,

(४) सात्विक ।

'तृतीयाह प्रद्यौरिति'

अ. १८.२.४८

(५) उत्कृष्ट,तेजोमय ज्ञान स्वरूप परब्रह्म

(६) उत्कृष्ट राजसभा ।

'यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नम्'

ऋ. ७.९८.२. अ. २०.८७.२

प्रधन - (१) प्रचुर धन देने वाला संग्राम ।

'आजा यमस्य प्रधने जिगाय'

ऋ. १.११६.२

सर्वनियामक राजा के प्रचुर धन देने वाले संग्राम में (यमस्य प्रधने) विजय कर ।

(२) प्रकीर्णनि अस्मिन् धनानि भवन्ति (संग्राम में धन प्रकीर्ण होते हैं)- इसमें प्रकृष्ट धन जीता जाता है अतः यह प्रधन है ।

'तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रम्
गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'

ऋ. १०.१०२.५, नि. ९.२३.

उस वृषय से युद्ध में मुद्गल ने या जितेन्द्रिय निरभिमानी या हर्ष शोक में समचित्त राजा ने धनापहारक शत्रु राजा को तथा लक्ष लक्ष गौओं को जीता ।

(३) उत्तम धन ।

'स्वर्मीढस्य प्रधनस्य सातौ'

ऋ. १.१६९.२.

प्रधन्या- (१) उत्तम धान्य योग्य भूमि, (२) उत्तम ऐश्वर्य विभूति से सम्पन्न ।

'आजुहोतिप्रधन्यासु सम्रि'

ऋ. १०.९९.४

प्रधन- (२) उत्कृष्ट धन सम्पन्न प्रभु, ।

'गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'

ऋ. १०.१०२.५, नि. ९.२४.

प्रधि- (१) लोहे का हाल ।

'यथाप्रधिर्यथोपधिः'

अ. ६.७०.३

(२) प्र + धा + कि = प्रधि । प्रधिः प्रहितः भवति (प्रश्लिष्ट होकर जो निहित है वह प्रधि है) । अर्थ है-परिधि । रभस ने कहा है-

'गण्डपुच्छः प्रधिः पुमान्'

अमरकोश में चक्र के अन्तिमभाग को अधि कहा गया है-'चक्रान्तः' प्रधिः' । चक्र की बाह्य

रेखा का नाम प्रधि है ।
'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं
त्रीणिनभ्यानि क उतच्चिकेतत्
तास्मिन् साकं त्रिशतान शंकवोः
पिताः षष्टिर्न चला चलासः '
ऋ. १.१६४.४८, नि. ४.२७.
मास रुपी बारह घेरे या परिधियां हैं, और वर्ष रूपी एक चक्का। उसमें ग्रीष्म, वर्षा तथा हेमन्त रुपी तीन नाभियां हैं (त्रीणि नभ्यानि) जैसे सूर्य के रथ चक्र के बारह परिधियाँ और नाभि रुपी तीन फलक हैं, उसी प्रकार काल चक्र के भी। इस चक्र के रहस्य को कोई विद्वान् पुरुष ही समझता है (क उ चिकते) । उस चक्र में साथ साथ शंकुओं के समान तीन सौ साठ दिनों के रूप में चक्र के आरे भी हैं (त्रिशताः षष्टिः न) जो चल और अचल दोनों हैं। दिनरात अस्थायी अर्थात् चलनशील है, परन्तु दिन के बाद रात और रात के बाद दिन का आयोजन अचल है। इसी से चलाचल कह गये हैं ।
(३) सर्वोत्कृष्ट धारक प्रभु ।
'उतप्रधिमुदहन्नस्य विद्वान् '
ऋ. १०.१०२.७

पधी – द्वि. व. । (१) रथ के ऊपर लगे लोहे के दो हाल, (२) प्रधि के समान स्त्री पुरुष ।
'नभ्येव न उपधीव प्रधीव '
ऋ. २.३९.४

प्रपणः– (१) अपने पदार्थ को दूसरे को हाथ बेचने के लिए उसका दर नीयत करना, (२) व्यापार विनिमय, लेन देन का व्यवहार ।
'शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च '
अ. ३.१५.४
'येन धनेन प्रपणं चरामि '
अ. ३.१५.५,६

प्रपित्वम् – आगेबढ़ना, प्रयाण अपवान ।
'अप्रपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् '
ऋ. ३.५३.२४.

पपथ– (१) प्रकृष्ट मार्ग, उत्तम मार्ग ।
'पूषात्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् '
ऋ. १०.१७.४, अ. १८.२.५५, तै.आ. ६.१.२.
'अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयः '
ऋ. १.१६६.९
तुम्हारे कंधों पर और मार्गों में उत्तम उत्तम खाने के पदार्थ हों ।
(२) अन्तरिक्ष ।
'स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा '
ऋ. १०.६३.१६, ऐ.ब्रा. १.९.७, नि. ११.४६.
स्वास्ति नाम्नी देवता जिसे देवगण कहा गया है या आर्यसमाजी व्याख्याताओं के अनुसार जो मेघ का वाचक है इस अन्तरिक्ष में श्रेष्ठ देवता है ।
उत्तम मार्ग के अर्थ में–
'प्रपथे पथामजनिष्ठ पूषा '
ऋ. १०.१७.६, अ. ७.९.१, मै.सं. ४.१४.१६, २४३.१३, तै.ब्रा. २ .८.५.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.८

प्रपथ्य – (१) उत्तम पथ्य, आहार, योग्य पोषक अन्न ।
'प्रपथ्याय स्वाहा '
वाज.सं. २२.२०.
(२) उत्तम मार्गों का अधिकारी
'नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च
वाज.सं. १६.४३, तै.सं. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८,१२६.८, का.सं. १७.१५.

प्रपथिन्तमः– सबसे उत्तम मार्ग में चलने वाला ।
'प्रपथिन्तमं परितं सयध्यै '
ऋ. १.१७३.७.

प्रपद– पंजा , (२) आगे का कदम ।
'पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् '
ऋ. १०.१६३.४, अ. २.३३.५, २०.९६.२१.

प्रपद् – पैर का अगला हिस्सा
'पार्ष्ण्योः प्रपदोश्चयत् '
अ. ६.२४.२
'अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् '
ऋ. ६.७५.७, वाज.सं. २९.४४, तै.सं. ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३, १८६.६, का.सं. (अश्व.) ६.१.

प्रप्र – खूब, अच्छी प्रकार ।
'प्र प्र वो अस्मे स्वयशोभिरूती
परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम् '
ऋ. १.१२९.८
ऐश्वर्यवान् इन्द्र या सेनापति अपने यशों, यशकारी कर्मों से तुम्हारे और हमारे दोनों की रक्षा के लिये और दुष्टों के विनाश के लिये (परिवर्गे) और तोड़ने फोड़ने के लिये (दरीमन्)

अच्छी प्रकार (प्र प्र) समर्थ हो (असत्) ।

प्रपा – प्र + पा । (१) मेघ, (२) मरुभूमि का प्याऊ, (३) उत्तम रक्षक ।
'धन्वन्निव प्रपा असित्वमग्ने'
ऋ. १०.४.१, तै.सं. २.५.१२.४.

प्रपित्व – प्राप्त–प्रपित्व (प्राप्त होना, निकट आना, आसन्न) । प्रपित्व के दो पर्याय हैं– प्रपित्व और अभीक ।
'प्रपित्वे प्राप्ते अभीकेऽभ्यक्ते'
अभी + अञ्च् + क्त = अभ्यक्त = अभीक
अर्थ – (१) आसन्न (२) सम्मुख गव, (२) पीने का समय प्राप्त होने पर ।
'आपित्वेनः प्रपित्वे तूयमागाहि'
ऋ. ८.४.३, साम. १.२५.२, २.१०७१, नि. ३.२० सोमपान का समय आने पर शीघ्र आ'
(३) प्राप्ति, प्राप्त होना ।
'वेषि प्रपित्वे मनुष्यो यजत्र'
ऋ. १.१८९.७

प्रपितामह– (१) पितामह का पिता ।
'पितामहान् विभर्ति पिन्वमानः'
अ. १८.४.३५
(२) पालकों के पालक का भी पालक शासक पुरुष ।
'प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः'
वाज.सं. १९.३६, का.सं. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.१७.

प्रपीता– हृष्टपुष्ट,तृप्त स्त्री ।
'घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीताः'
ऋ. ७.४१.७, अ. ३.१६.७, वाज.सं. ३४.४०.

प्रपूतनी– पवित्र और पुष्ट करने वाली अदिति पृथ्वी ।
'द्यौर्न भूमिः पयसा प्रपूतनि
ऋ. १०.१३२.६

प्रपूता– आचारआदि में पवित्र प्रभाव जनकवाणी ।
'ब्रह्मणां हस्तेषु पृथक् सादयामि'
ऋ. ९.१२२.५,१०.९.२७, ११.१.२.७.

प्रपृथक् – पृथक् पृथक् ।

प्रपृचती– (१) प्रकृष्ट पृंचती । अर्थ– सम्बन्ध से सकल विद्या सम्पर्क कारयित्री, (२) शब्दोच्चारण ।
'साधिकावायुः' नि. १–११
'वाचे तव पृपृञ्चती'
ऋ. १.२.३.

प्रप्रोथ– उत्कृष्ट कोटि का धनैश्वर्यादि प्राप्त करने वाली ।
'प्रप्रोथाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१३.

प्रफरी– (१) स्त्री, (२) चेतना शक्ति ।
'पीबरीं च प्रफर्व्यम्'
अ. ३.१७.३
(३) नवयुवती
'शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यम्'
अ. ५.२२.७

प्रफर्वीशूद्रा– नवयुवती काटने वाली कीट जाति ।

प्रभङ्ग– नाना प्रकार के कष्टों को नष्ट करने वाला
'प्रभङ्गं दुर्मतीनाम्'
ऋ. ८.४६.१९

प्रभङ्गी– (१) नष्ट कर देने वाला । (२) शत्रु को अच्छी प्रकार तोड़ देने वाला ।
'प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः'
ऋ. ८.६१.१८

प्रभर्ता– (१) शत्रुपर प्रहार करने वाला (२) उत्तम भरण पोषण करने में समर्थ ।
'प्रभर्ता रथं दाशुष उपाके'
ऋ. १.१७८.३
(३) सर्वोत्कृष्ट प्रजा का भरण पोषण करने वाला–इन्द्र, परमेश्वर ।
'प्रभर्ता रथं गव्यन्तम्'
ऋ. ८.२.३५

प्रभर्मन्– (१) प्रकर्ष के साथ भरण पोषण, (२) प्रकर्ष के साथ भरण पोषण करने वाला अच्छी प्रकार धारण करने का कार्य ।
'अवानो अग्न ऊतिभिः
गायत्रस्य प्रभर्मणि'
ऋ. १.७९.७, साम. २.८७४
हे परमेश्वर या अग्नि, तू हमें गान करने या स्तुति करने वाले पुरुष की रक्षा करने में समर्थ वेद ज्ञान के अच्छी प्रकार धारण करने के कार्य में (गायत्रस्य प्रभर्मणि) या पृथ्वी लोक के उत्तम रीति से भरण पोषण के कार्य में रक्षा साधनों

द्वारा (ऊतिभिः) रक्षाकर ।
(३) उत्तम ऐश्वर्य संग्रह करने वालों से युक्त राष्ट्र (४) उत्तम पदार्थों का संग्रह ।
'मध्वः प्रतिप्रभर्मणि'
ऋ. ८.८२.१

प्रभरा- (१) प्रभर, प्रहर, (प्रहार कर) । छन्द में हृ और गृह् धातुओं के 'ह्' का 'भ्' हो जाता है ।
'अस्मा इदुप्रभरा तू तुजानः'
ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१०, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.
हे इन्द्र या राजन् , तू आशुकारी है (तूतुजानः) या शीघ्रता करता हुआ वृत्र या दुष्टजन पर प्रहार कर (प्रभरा) ।

प्रभरे- उच्चारण करता हूँ ।
'अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा'
ऋ. १.१२६.१, नि. ९.१०.

प्रभवन् - (१) प्रभुता सम्पन्न ।
'आभवन् प्रभवन् भवन्'
अ. ३.२९.२
(२) सबका प्रभु होने वाला ।
'रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते'
ऋ. २.१३.४

प्रभा- (१) प्रकृष्टदीप्ति, (२) तीव्र अग्नि ।
'प्रभाया अग्न्येधम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

प्रभागपाद- (१) दीनारादि पाद, (२) दीनारआदि का चतुर्थांश । गणित में प्रभाग का अर्थ भाग का है। अतः (३) प्रभागपाद भाग के भाग का चतुर्थांश हुआ ।

प्रभ्राजमाना- (१) अतिशय तेज में प्रकाशमान ब्रह्मपुरी ।

प्रभ्वी- (१) सामर्थ्ययुक्त ।
'उतेव प्रभ्वी रुत संमितासः'
अ. १२.३.२७.
(२) उत्तम सामर्थ्यवाली प्रजा ।
'विराट् सम्राड् विभ्वीः प्रभ्वीः'
ऋ. १.१८८.८
(३) उत्कृष्ट बल पैदा करने वाली ।
'तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीः'
अ. १८.३.६९

प्रभुञ्जती- (१) प्रकृष्ट पालन वाली, (२) उत्तम भोग प्रदान करती हुई, (३) पति और सन्तानों को व्रत नियमादि का पान कराती हुई, (४) उषा या स्त्री का विशेषण ।

प्रभूती- (१) प्रचुर विभूतिमान्
'दीनेर्दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वा'
ऋ. ४.५४.३

प्रभूवरी- (१) प्रभु शब्दवाली ऋचा (२) प्रभूत बल और धन सामर्थ्यवाली ।
'विश्वा आशाः प्रभूवरीः'
वाज.सं. २३.३५, तै.सं. ५.२.११.१, का.सं. (अश्व.) १०.५.

प्रभूवसुः- (१) अधिक ऐश्वर्य वाला ।
'सत्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु'
ऋ. ७.२२.२,अ. २०.११७.२, साम. २.२७८
अति सामर्थ्य रूपधन वाला ।
'ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो'
ऋ. १.५७.४, अ. २०.१५.४; साम. १.३७३.
(३) सबको वास और आश्रय देने वाला इन्द्र या परमेश्वर ।
(४) प्रचुर धन वाली, बहुत प्रजाओं का स्वामी इन्द्र ।
'पुनानस्य प्रभूवसोः'
ऋ. ९.३५.६
'मापुत्रस्य प्रभूवसो'
ऋ. ८.४५.३६.
(५) प्रचुर ऐश्वर्य का स्वामी ।

प्रभूषत्- उत्तम सामर्थ्यवान् ।
'देवाँ अनुप्रभूषतः'
ऋ. ९.२९.१, साम.२.१११५, पंच.ब्रा. ६.१०.१७.

प्रभृत- (१) उत्तम पुष्टिकारक पदार्थ ।
'यद्धा घास्य प्रभृतमास्ये तृणम्'
ऋ. १.१६.२.८, वाज.सं. २५.३१, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१, १८२.११, का.सं. (अश्व.) ६.४.
(२) प्र + भृ + क्त = प्रभृत । भली प्रकार वेतन या वृत्ति पर नियत ।

प्रभृति- सं. । (१) सबसे उत्कृष्ट भृति, (२) उत्तम आजीविका धारण पोषण ।
सेमामविड्ढि प्रभृतिं ईशिषे'
ऋ. २.२४.१,
(३) भरण पोषण करने वाला साधन
'यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखञ्च'

अ. २.३५.५, १९.८५.५.

प्रभृथ- (१) अच्छा धारण किया हुआ स्थान -दया. (२) उत्तम प्रकार से सबका भरण पोषण करने वाला यज्ञ आदि कार्य (३) राजा, (४) पुरोहित, (५) आचार्य, (६) श्रेष्ठ पुरुष ।

'विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम्'

ऋ. १.१२२.१२.

उत्तम प्रकार से सबका भरण पोषण करने वाले यज्ञ आदि कामों में और राजा, पुरोहित, आचार्य आदि श्रेष्ठ पुरुषों में (प्रभृथेषु) अपने ऐश्वर्य का दान करो (वाजं सन्वन्तु) ।

(७) उत्तम रीति से भरण पोषण करने योग्य हरिजन

'भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः'

ऋ. ५.३३.५

(८) प्रकर्षेण संभृतः (सम्यक् प्रकार से रक्षित या एकत्रित) । प्र + भृ + क्त = प्रभृत = प्रभृथ । प्रचुर । दे. 'इडा 'प्रभृथस्य आपोः(प्रचुर मात्रा में एकत्रित जल से)

प्रम - उत्तम ज्ञान ।

'प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा'

ऋ. ९.७०.४.

प्रमगन्द- (१) 'मां गद' का अपत्य 'प्रमगन्द' है । मगन्दः कुसीदी । मगन्द सूद पर रूपया चलाने वाले को कहते हैं । मगन्द शब्द मागन्द से बना है । मागन्द का अर्थ हैः 'माम् आगमिष्यति इति च ददाति' (जितना देता हूं उससे दूना या तिगुना मेरे पास आयेगा ऐसा समझ कर जो दूसरे को द्रव्य देता है, वह 'मांगद' है) । 'म' 'ग' और 'द' का समन्वय । अर्थ है- (१) अत्यन्त कुसीदि कुलीन-बहुत ब्याज लेने वाले पुरुष के कुल में उत्पन्न (तदपत्यं प्रमगन्दोऽत्यन्तकुसीदि-कुलीनः)

(२) अथवा 'प्रमदक' ही 'प्रमगन्द' है । 'प्रमदक' विषयपरायण या प्रमादशील व्यक्ति को कहते हैं-जो यही एक लोक है दूसरा नहीं ऐसा समझ कर नास्तिक सा आचरण करता है (प्रमदको वा योऽयमेवास्ति न पर इति प्रेप्सुः)

(३) अथवा 'पण्डक' या 'पण्डुग''प्रमगन्द' है (पण्डकोवा पण्डकः पण्डुगः)

(४) 'प्रमगन्द' नपुंसक को भी कहते हैं । 'पंड' नपुंसक का पर्याय है । पण्ड ही पण्डक है । पण्डग वह है जो निर्वंश होकर नष्ट हो जाता है ।

दुर्ग के अनुसार पण्डग वह है जो स्त्री का रूप होने से अव्यक्त होकर रहता है। अतः प्रमगन्द का अर्थ नपुंसक और स्त्रीरूप वाला पुरुष या 'मडगड़ा' है । इन दोनों का धन सत्कार्य में लगाना ठीक नहीं ।

(४) जो अण्डकोष को निकलवा देता है वह प्रार्दक भी प्रमगन्द है । जो प्रजनन में समर्थ होने के लिये बढ़े हुए अण्डकोश को निकलवा दे वह भी प्रमगन्द है ।

(६) विषय परायण नास्तिक, (७) नपुंसक, (८) मडगड़ा (९) हिंजड़ा ।

'आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदः'

ऋ. ३.५३.१४, नि. ६.३२.

हे इन्द्र, ब्याज पर धन चलाने वाले, विषय परायण नास्तिक या नपुंसक या मड़गड़े का जो धन है उसे हमें दे ।

(१०) मगन्द शब्द में प्र उपसर्ग का सम्बन्ध प्रभव अर्थ लाने के निमित्त प्रयुक्त किया गया जान पड़ता है । प्रमगन्दः मगन्दात् प्रभूतः (मगन्द का सन्तान) ।

मगध शब्द की व्युत्पत्ति भी मगन्द से ही प्राप्ति होती है ।

(११) मुझे अधिक धन प्राप्त हो इस आशा से अन्यों को देने वाला, (१२) अपने धन को आमोद प्रमोद में खर्च करने वाला ।

प्रमतिः- (१) प्रकृष्ट मतिवाला, (२) अग्नि या परमेश्वर का विशेषण ।

'आपिःपिता प्रमतिः सोम्यानां
भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्'

ऋ. १.३१.१६.

हे अग्नि या परमेश्वर, तू सोम यज्ञ करने वाले या सोम्य पुरुषों के प्रापणीय है, पिता है, प्रकृष्ट बुद्धि वाला है, तथा दर्शनकारी सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष कराने वाला या तत्त्वदर्शी बनाने वाला है(ऋषि कृत्) है ।

(३) उत्कृष्ट ज्ञानवान्, (४) विद्वानों को प्रमुख रखने वाली सेना ।

(४) ज्ञानवान् पति या पुत्र से युक्त स्त्री ।

'सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया'
ऋ. १.५३.६, अ. २०.२१, ५, मै.सं. २.२.६, २०.५, का.सं. १०.१२ .
'पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम्'
अ. १८.३.३६

प्रमतिदेवी- उत्कृष्ट ज्ञान वाली देवी

प्रमद्- प्रसन्न ।
'प्रमदामर्त्यान् प्रयुनक्षिधीरः'
अ. १९.५६.१

प्रमद- (१) अत्यधिक हर्ष, (२) काम-वेग को उत्पन्न करने का कार्य ।
'प्रमदे कुमारी पुत्रम्'
वाज.सं. ३०.६

प्रमन्दनी- (१) प्रमोदिनी, (२) मल्लिका (पुष्प) जो गन्ध से पूर्ण होती है । यह कुष्ठ, विस्फोट, कण्डू विष और व्रण का नाशक है । (३) त्वचा ।
'औक्षगन्धिः प्रमन्दनी'
अ. ४.३७.३

प्रमनाः- (१) प्रकृष्ट, (२) उत्तम ज्ञानवान् ।
'मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे'
अ. २.२८.१

प्रमयुः- मरणोन्मुख ।
'मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथास्याः'
अ. ८.१.१६

प्रमर- मृत्यु को प्राप्त होने वाला ।
'एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ'
ऋ. १०.२७.२०

प्रमा- (१) परिमाण
'कासीत् प्रमा प्रतिया किं निदानम्'
ऋ. १०.१३०.३
(२) उत्कृष्ट ज्ञान कराने वाली प्रमाण वती बुद्धि ।
'माछन्दः प्रमाछन्दः'
वाज.सं. १४.१८, तै.सं. ४.३.७.१, मै.सं. २.८.३, १०८.११, २.१३.१४, १६३.८, ३.२.९, ३०.३, का.सं. १७.३, ३९.४, श.ब्रा. ८.३.३.५, आप.श्रौ.सू. १६.२८.१.

प्रमाद- (१) प्रमाद, (२) उत्तम कोटि का आनन्द
'यन्ति प्रमादमतन्द्राः'
ऋ. ८.२.१८, अ. २०.१८.३, साम. २.७१.

प्रमायुकः- प्रमा- प्रमाणधर्म, आयु-जीवनकाल । जिसकी आयु मरणधर्म वाली वह प्रमायुक है । प्रमायु + कप् = प्रमायुक (१) प्रमरणधर्म वाला
'प्रमायुको यजमानः'
(प्रमरण धर्म वाला यजमान)

प्रमार- (१) प्राण का घुट जाना, मृत्यु प्रथमेन प्रमारेण ।
'त्रेधा विष्वङ् विगच्छति'
अ. ११.८.३३

प्रमिनत्- (१) हिंसाकारी ।
'मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः'
ऋ. ४.३.१३.

प्रमिनती- (१) नाश करती हुई ।
'प्रमिनती मनुष्या युगानि
योषा जारस्य चक्षसाविभाति'
ऋ. १.९२.११.
उषा मनुष्यों के आयु के वर्षों को या स्त्री पुरुष आदि के बने जोड़ो को (मनुष्या युगानि) काल धर्म से नाश करती हुई अपने प्रेमी पुरुष के दर्शन से विशेष शोभा से खिल उठती है ।
(२) मान करती हुई, (३) निर्माण करती हुई ।
'अमिनती दैव्यानि व्रतानि
प्रमिनती मनुष्य युगानि'
ऋ. १.१२४.२

प्रमीली (प्रमीलिन्)- सदा अपनी आंखें मिचमिचाने वाला ।
'ऋक्षग्रीवं प्रमीलिनम्'
अ. ८.६.२.

प्रमुञ्चन् - दूर करता हुआ ।
'तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदत्'
ऋ. १.१४०.८०

प्रमुद् - (१) अति आह्लाद कारी ऐश्वर्य ।
'मुदः प्रमुद आसते'
ऋ. ९.११३.११
(२) रतिसुख, भोगविलास ।
'अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व'
अ. १०.१०.१२, अ. १८.१.१३.
(३) विनोदकारी कार्य
'प्रमुदे वामनम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६

प्रमूर्ण - मारा गया ।

'त्वया प्रमूर्णम् मृदितम्'
अ. १२.५.६१

प्रमृणत्- विनाश करता हुआ ।
'प्रते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३.१.४.

प्रमृमन्- (१) अच्छी प्रकार मारता हुआ । (२) मारता हुआ रोग ।
'रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन्'
अ. १६.१.२
(३) शत्रुदल को खूब कुचलता हुआ ।
'जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा'
ऋ. १०.१०३.६, अ. ६.९७.३, अ. १९.१३.६, साम. २.१२०४, वाज.सं. १७.३८, तै.सं. ४.६.४.२, मै.सं. २.१०.४, १३६.४, का.सं. १८.५.

प्रमृश- (न) उत्तम विचारशील ।
'नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च'
वाज.सं. १६.३६, तै.सं. ४.५.७.१, मै.सं. २.९.७, १२५.११, का.सं. १७.१४.

प्रमृशन्- पता लगाने वाला ।
'अनुजिघ्रं प्रमृशन्तम्'
अ. ८.६.६.

प्रमृषे - प्रमृष्यते, लुप्यते, प्रमृज्यते (लुप्त होता है) । मृष् धातु तितिक्षा अर्थ में आता है । कर्म वाच्य में 'त' प्रत्यय का लोप हुआ है (लोपस्त आत्मनेपदेषु पा. ७.१.४१) ।

प्रमोचन- जाल से दूर रहना, दूर रहना ।
'उन्मोचन प्रमोचने'
अ. ५.३०.२-४

प्रमोत- (१) प्र + मूङ् (बांधना) + क्त = प्रमोत्, अथवा प्र + मृङ् + क्त = प्रमोत । प्रबद्ध सर्वेन्द्रिय व्यापारः । मूकवधिरमिति यावात् (२) खूब बांधा हुआ (३) मूकवधिर कर देने वाला दर्द । मोट शब्द का मूल मोत ही है ।
'यः कृणोति प्रमोतम्'
अ. ९.८.४

प्रम्लोचन्ती- (१) दिन के समान प्रकाश करने वाली विद्युत आदि ।
(२) विज्ञान की शक्ति ।
'प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचनी चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१७, वाज.सं. (का.) १६.४.९,तै.सं. ४.४.३.१, का. सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१८.

प्रयक्ष- (१) उत्तम मैत्रीभाव और संगति का लाभ, (२) उत्तम दान प्रतिदान ।
'प्र सस्राति दीर्घमायुः प्रयक्षे'
ऋ. ३.७.१

प्रयक्षतम - अति पूजनीय ।
'तदु प्रयक्षतममस्य कर्म'
ऋ. १.६२.६, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४
इन्द्र या विद्युत का यही सब से पूजनीय कर्म है

प्रयज् - (१) प्रकृष्ट यज्ञ ।
'अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु'
अ. ५.२७.५

प्रयज्र- (१)प्र + यज् + युच् = प्रयज्यु । प्रतत या विस्तृत या प्रकृष्ट यज्ञ करने वाला । (२) सर्वोच्च प्रभु
'विश्ववाराभिरागहि प्रयाज्यो'
ऋ. ६.२२.११, अ. २०.३६.११

प्रयत्- वि. । (१) प्रयत्न साध्य ।
'वयं हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्'
वाज.सं. ८.२०,श.ब्रा. ४.४.४.१२.
हे अग्नि या तेजस्वी ब्रह्मचारी । इस प्रयत्न साध्य गृहस्थ यज्ञ में यहाँ इस यज्ञ को करने में समर्थ तुझ को ही होता बनाते हैं ।
(२) प्रैति प्रकृष्टं ज्ञानं ददाति इति प्रयत् । अर्थ- उत्तम ज्ञान देने वाला
'इन्द्रं प्रातर्हवामहे
इन्द्रं प्रयत्यध्वरे'
ऋ. १.१६.३.

प्रयतदक्षिणः- (१) बहुत दक्षिणा या दान देने वाला ।
'अथा नरः प्रयतदक्षिणासः'
ऋ. १०.१०७.३.
(२) उत्तम संपत् बल वीर्य से युक्त, (३) खूब दान दक्षिणा देने योग्य ।
'वीरं प्रयत दक्षिणम्'
ऋ. ६.५३.२.
(४) समस्त चित्त वृत्ति, क्रिया शक्ति और वीर्य को नियम में रखने वाला साधक ।
'त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं
वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः'

ऋ. १.३१.१५
हे अग्ने, परमेश्वर, विद्वान् , यज्ञकर्त्ता और यज्ञाग्नि जिस प्रकार दान दक्षिणा देने वाले धार्मिक पुरुष की रक्षा करता है और खूब दृढ़ता से सिला हुआ कवच जिस प्रकार युद्ध में मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार तू परमेश्वर अपनी समस्त चित्तवृत्ति, क्रिया शक्ति और वीर्य को अच्छी प्रकार नियम में रखने वाले साधक पुरुष को सभी प्रकार से रक्षा करता है ।

प्रयती- प्र + यम (दान करना) + क्तिन् = प्रयति । अर्थ है प्रदान । 'सुयां सु लुक्' से प्रयति का प्रयती, (पूर्व सवर्ण) तृतीया एक वचन में रूप है । अर्थ है - 'प्रयत्या प्रदानेन सह' अर्थात् दान के साथ साथ ।
'अथा सोमस्य प्रयती युवाभ्यास्
इन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्'
ऋ. १.१०९.२, तै.सं. १.१.१४.१, नि. ६.९.
इस लिए हे इन्द्राग्नी, या अध्यापक तथा उपदेशक, मैं तुम्हें सोम रस के साथ साथ बिलकुल नवीन स्तोत्र का उच्चारण करता हूँ या दुग्धादि उत्तम पदार्थों के प्रदान से आप के लिये नया नया सत्कार भेंट करता हूँ ।

प्रयत् यज्ञ- (१) प्रयत्नसाध्य यज्ञ या संग्राम, (२) परस्पर संगति से युक्त, समुदाय ।
'यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्'
ऋ. ३.२९.१६, अ. ७.९७.१, तै.सं. १.४.४४.२, मै.सं. १.३.३८, ४४.१४, का.सं. ४.१२.

प्रयत- (१) सुप्रसिद्ध, (२) अच्छी प्रकार नियत-मार्ग ।
'व्रजं न गावः प्रयता अपिग्मन्'
ऋ. ५.३३.१०.

प्रयति- प्र + यम (दानकरना) + क्तिन् = प्रयति । अर्थ है- (१) प्रदान, प्रकृष्ट दान ।
(२) प्रकृति से ऊंची शक्ति प्रयत्न करने वाला आत्मा ।
'स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्
ऋ. १०.१२९.५, वाज.सं. ३३.७४, तै.ब्रा. २.८.९.५.
(३) प्रयत्न, व्यापार, (४) चेष्टा, सामर्थ्य ।
'पूर्वामनु प्रयतिमाददे वः'
ऋ. १.१२६.५.
मैं आप लोगों के उत्कृष्ट प्रयत्नों को अपने अनुकूल धारण करता हूँ ।
(५) उत्कृष्ट यत्न, (६) समस्त जनों का सम्मिलित प्रयत्न या श्रम, (७) उत्तम नियमन या शासन व्यवस्था
'लोमानि प्रयतिर्मय'
वाज.सं. २०.१३, मै.सं. ३.११.८,१५२.९, का.सं. ३८.४, श.ब्रा. १२.८.३.३१, तै.ब्रा. २.६.५.८, आप.श्रौ.सू. १९.१०.२.

प्रयन्ता - प्र + यम् + तृच् = प्रयन्तृ । प्रथमा ए.व.में रूप प्रयन्ता । (दान करना, नियमन करना)
अर्थ - (१) दाता- (२) नियामक -दया. ।
'इन्द्र इन्द्रायः क्षयति प्रयन्ता'
ऋ. १.५१.१४.
इन्द्र ही धन के प्रकृष्ट दाता हैं अतः वे सर्वोपरि द्रष्टा या प्रभु हैं ।
इन्द्र ही नियामक राजा समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है- दया.
(३) उत्तम नियन्त्रण करने वाला परमेश्वर या राजा ।
'बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम्'
ऋ. १.७६.४.
हे उत्तम नियन्त्रण करने वाले, हे समस्त लोकों और बसने वाली प्रजाओं को उत्पन्न करने वाले, तू हमें ज्ञानवान् बना ।
'प्रयन्तासि सुश्चितराय वेदः'
ऋ. ७.१९.१, अ. २०.३७.१

प्रयम्यमान - (१) उत्तमरीति से यम नियमों का पालक विद्यार्थी (२) उत्तम नियमों में स्थित लोक या प्राण ।
'प्रयम्यमानान् प्रतिषूगृभाये'
ऋ. ३.३६.२, तै.ब्रा. २.४.३.१२.

प्रयस्- (१) अन्न, (२) आहुति ।
'प्रयो न हर्मिस्तोमं माहिनाय'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१.
(३) उत्तम मनोहर नदी का स्रोत, (४) मनोहर अन्नादि ऐश्वर्य ।
'प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त'
ऋ. २.१९.२.
(५) उत्तम तृप्ति कारक अन्न । पृ (तृप्त करना) से सिद्ध ।

'आपो न द्वीपं दधति प्रयांसि'
ऋ. १.१६९.३.
जैसे जल द्वीप को धारण करते हैं वैसे उत्तम अन्न आप को धारण करते हैं।
पुनः
(६) प्रीयमाण स्थान, (६) गन्तव्य स्थान, (८) प्राप्ति स्थान।
'अभि प्रयोनासत्या वहन्ति'
ऋ. १.११८.४, ६.६३.७.
हे विद्वानो, शिल्पिजनो, आप दोनों को वे गन्त स्थान पर (प्रयः अभि) ले जाते हैं (वहन्ति)।
(९) पुष्टि कर प्रीतियुक्त अन्न आदि पदार्थ।
'उत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम्'
ऋ. २.३७.४.
(१०) दूर तक जाने वाला तेज, (११) ज्ञानमय वेदमय वचन।
'तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनम्'
ऋ. १.१३२.३
सूर्य का जिस प्रकार दूर तक जाने वाला तेज (प्रयः) अतिदेदीप्यमान और अति पुरातन सनातन से चला आ रहा है (प्रत्नथा) उसी प्रकार हे गुरो, तेरा ज्ञानमय वेदमय वचन सदा से विद्यमान और अति प्रकाशमान हो।

प्रयस्ता- (१) सताई गई।
'विषं प्रयस्यन्ती तकमा प्रयस्ता'
अ. १२.५.३१
(२) खूब संतप्त, (३) प्रयास, उद्यम या प्रहार करती हुई।
'प्रयस्ता फेनमस्यति'
ऋ. ३.५३.२२

प्रयस्यन्ती- कष्ट उठाती हुई।
'विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता'

प्रयस्वन्ती- नाना प्रकार के तृप्ति कारी अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यों से युक्त।
'प्रयस्वती रीडते शुक्रमर्चिः'
ऋ. ३.६.३.

प्रयस्वान् - प्रयस् + वतुप् = प्रयस्वत्। अर्थ- (१) अन्न वाला।
'प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्'
ऋ. ३.५९.२, तै.सं. ३.४.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४६.१३, का.सं. २३.१२, आश्व.श्रौ.सू. ३.१२.९, ४.१.६, नि. २.१३.
हे आदित्य (मित्र) वह मनुष्य अन्न वाला (प्रयस्वान्) हो।
'प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा'
ऋ. १०.११६.८.
हे इन्द्र या विद्वन् हम अन्न वाले तेरी कामना करते हैं (त्वां प्रति हर्यामसि)।

प्रयाज- (१) मन्त्र के तीन भेद-प्रयाज, अनुयाज और उपयाज में एक प्रयाज मन्त्र यज्ञ का मुख्य भाग है। प्रयाज के बाद अनुयाज मन्त्र पढ़े जाते हैं। उपयाज मन्त्र प्रयाजों के सहयोगी हैं. इन सब मन्त्रों का उच्चारण कर सोमरस के सिवा अन्य पदार्थों की आहुति दी जाती है।
(२) प्रधान देव जिन्हें सर्व प्रथम आहुति दी जाती है।
'प्रयाजान् मे अनुयाजांश्च केवलान्'
ऊर्जस्वन्तं हविषोदत्तभागम्'
ऋ. १०.५१.८
(३) उत्तम यज्ञ, दान या सत्संग का अवसर
'नराशंसोनोऽवतुप्रयाजे'
ऋ. १०.१८२.२
(४) राष्ट्र का उत्तम अधिकार।
'प्रयाजेभिरनुयाजान्'
वाज.सं. १९.१९.

प्रयाण- प्र + या + ल्युट् = प्रयाण। अर्थ - (१) उदय।
'वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यः
अनु प्रयाणमुषसो विराजति'
ऋ. ५.८१.२, अ. ७.७३.६, वाज.सं. १२.३, तै.सं. ४.१.१०.४, मै. सं. २.७.८, ८४.१५, ३.२.१, १५.३, २.१.१५.२, का.सं. १६.८, श. ब्रा. ६.७.२.४, नि. १२.१३.
वरणीय सविता द्युलोक को भी (नाकम्) प्रकाशित करता है (व्याख्यात्) और उषा के उदय के बाद उदित होता है।
(२) पराक्रम पूर्वक किया गया गमन।
'यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुः'
ऋ. ५.८१.३, वाज.सं. ११.६, तै.सं. ४.१.१.२, मै.सं. २.७.१,७४.४, का.सं. १५.११, श.ब्रा. ६.३.१.१८.

प्रयामन् - उत्तम मार्ग।

प्रयाहि- प्र + या + हि । अर्थ है जा ।

प्रयियु - (१) प्रयायते, प्रगम्यते यत् तत् प्रयियु (धन) ।(२) अश्व आदि धन, (३) प्रचुर धन ।
उतमे प्रयियोर्वयियोः
सुवास्त्वा अधितुग्वनि'
ऋ. ८.१९.३७
और मेरे लिए अश्व आदि धन तथा वस्त्र का सुवास्तु नदी के तट पर दान किया - और नदी के तट पर रहने वाले (सुवास्त्वा अधि तुग्वनिः) ने मुझे प्रचुर धन और वस्त्र दिया (४) प्रयाण करने वाला सैन्य (५) शरीर में प्रयाण करने वाली आत्मा ।

प्रयुक् - उत्कृष्ट योगाभ्यास के लिए प्रवृत्त ।
'प्रयुग्भ्य उन्मत्तम्'
वाज.सं. ३०.८

प्रयुक्ति - (१) प्रयोग' ।
'ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु'
ऋ. १.१५१.८
सत्यज्ञान, धर्माचरण और ऐश्वर्य वाले तुम दोनों को (ऋतावान) ज्ञान के उत्तम प्रयोगों में भी (मनसः प्रयुक्तिषु).....
(२) उत्तम प्रयोग और क्रिया कौशल को जानने वाला ।

प्रयुज् - उत्तम प्रयोगों में कुशल पुरुष ।
'प्रयुञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति'
ऋ. १.१८६.९
(२) प्रयोग, (३) प्रयोजन, (४) योजना (५) विधान, (६) मेलजोल ।
'आयुजः प्रयुजोयुजः'
अ. ११.८.२५
(७) उत्तम रीति से जुतने वाला अश्व
'यूयं धूर्षु प्रयुजोन रश्मिभिः'
ऋ. १०.७७.५
(८) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करना ।
'क्षेमस्य च प्रयुजश्च
त्वमीशिषे शशीपते'
ऋ. ८.३७.५

प्रयज्यु- (१) प्रयोक्तुंयोग्य प्रयुक्त करने योग्य -दया. । (२) उत्तम विद्यादि देने वाला, (३) सत्संगति करने योग्य ।
'विपत्मनोनर्यस्यप्रयज्योः'
ऋ. १.१८०.२.

प्रयन्- (१) सूर्य के तुल्य उत्तम मार्ग से जाता हुआ ।
'प्रयन्तमित् परिजारं कनीनाम्
पश्यामसि नौपनिपद्य मानम्'
ऋ. १.१५२.४
कन्याओं के पति को हम लोग सदा उत्तम मार्ग से जाते देखें न कि नीच मार्ग से ।...

प्रयुञ्जती- (१) उत्तम प्रयोग करती हुई, (२) उत्तम मार्ग में प्रेरित करती हुई माता ।
'प्रयुञ्जती दिव एति 'ब्रुवाणा'
ऋ. ५.४७.१.

प्रयुत- दसलाख । वियुतमपि दश कृत्वोऽभ्यस्तम् प्रयुतम् (नियुत एक लाख है और नियुत का दसगुण प्रयुत दस लाख है) ।
'नियुतं च प्रयुतम् च'
वाज. सं. १७.२, तै.सं. ४.४.११.३, का.सं. १७.१०.

प्रयै - (१) प्राप्त करने के लिए ।
'प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्'
ऋ. १०.१०४.३, अ. २०.२५.७, ३३.२.
(२) गमना गमन के लिये (३) प्रयोग के लिये ।
पये देवेभ्यो महीः'
ऋ. १.१४२.६
जिस प्रकार बड़े बड़े द्वार विद्वानों और व्यवहारवान् पुरुषों के आने जाने के लिए (देवेभ्यः प्र ये) विविध प्रकार से खड़े किए जाते हैं (विश्रयन्ताम्) उसी प्रकार शत्रुओं का और बुरे कर्मों का कारण करने वाली (द्वारः) सत्याचरण को बढ़ाने वाली (ऋतावृधः) पूज्य स्त्रियाँ (महीः देवीः) अथवा अन्न और धन से प्रजा को समृद्ध करने वाली उत्तम उपजाऊ और रसमयी भूमियों (ऋतावृधःमहीः) विद्वानों को पाने और व्यवहारों के योग और विजयेच्छओं को प्रयोग के लिए विशेष रूप से प्राप्त हों ।

प्रयोता - (१) लादेने वाला, (२) दूर करने वाला ।
'स्वप्न श्च ने दनृतस्य प्रयोता
ऋ. ७.८६.६

प्ररिक्वा - सबसे बढ़कर - परमेश्वर ।
'स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च'
ऋ. १.१००.१५

प्ररुत् - (१) विशेष बल उत्पादक शक्ति ।
'या स्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहः'

अ. १३.१.९.

प्रेरक – (१) अतिरिक्त, शेष – (२) धन धान्य राज्य –दया. (३) बड़ा भारी शंकास्थान, संशयपूर्ण (४) संकटापन्न, (५) विपत्ति काल ।

'निते देष्णस्य धीमहि प्रेरके'

ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१

प्रेरचनम् – प्रचुर धन ।

'स्यादुत प्रेरचनम्'

ऋ. १.१७.६

हमारे पास प्रचुर धन है ।

प्रलाप– व्यर्थ बकवास ।

'आलापाश्च प्रलापाश्च'

अ. ११.८.२५

प्रलयन– (न)। शरीर में औषधि का लीन हो जाने वाला गुण ।

'असितं ते प्रलयनम्'

अ. १.२३.३, तै.ब्रा. २.४.४.१.

प्रवण– (१) प्रदेश ।

'सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवः'

ऋ. ९.६९.७

(२) नीचा स्थान ।

'रथ्वीरिव प्रवणे सम्मुरूतयः'

ऋ. १.५२.५

'तस्येदिमे प्रवणे सप्तसिन्धवः'

ऋ. १०.४३.३, अ. २०.१७.३

(३) नदी की ढाल, (४) परस्पर का आक्षेप, निन्दा या कलहवृत्ति ।

'क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे
हतेते स्यातां प्रवणे शिफायाः'

ऋ. १.१०४.३

कुत्सित अन्न खाने वाले दरिद्र की दो स्त्रियां जैसे (कुयवस्य योषे) नदी की ढाल में खड़ी या परस्पर की कलह वृत्ति के नीच व्यवहार में पकड़कर आपस में लड़ती और नष्ट हो जाती हैं (शिफायाः प्रवणे हतेस्याताम्) ।

(४) उत्तम रीति से बना योग्य रणस्थान या सभासदन

'युवोरहप्रवणे चेकिते रथः
यदश्विना वहथः सूरिमावरम्'

ऋ. १.११९.३

जब आप दोनों श्रेष्ठ विद्वान् धार्मिक तथा प्रतिष्ठित पुरुष को प्राप्त होते हो तब उत्तमरीति से सेवने योग्य रणस्थल और सभाभवन में (प्रवणे) भी आप दोनों का ही रथ विशेष रूप से कुशल जाना जाता है ।

प्रवत् – (१) प्रकृष्ट कर्म करने वाला ।

'परेयिवांसं प्रवतो महीरनु'

ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, मै.सं. ४.१४.१६, २४३.६, तै.आ. ६.१.१, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२, नि. १०.२०.

(२) प्रवण, (३) निम्न प्रदेश, । (४) प्रकृष्ट गति वाला मनुष्य ।

प्र + अव (गति अर्थ में) + शतृ = प्रवत् (अव के अ का लोप), (५) नीच मार्ग से भागने वाला, पलायन योग्य मार्ग । (६) प्रकर्ष प्राय ।

'त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपः'

ऋ. ७.३२.२७, अ. २०.७९.२, साम. २.८०.७, पंच.ब्रा. ४.७.६

(७) वेग से जाने वाली जल धारा (८) उत्तम आचार से रहने वाला ।

'समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे'

ऋ. २.१३.२.

प्रवतः नपात् – (१) प्रपातों या वेगों से उत्पन्न विद्युत् ।

'नमस्ते प्रवतो नपात्'

अ. १.१३.२,

(२) गिरे हुए सैनिकों को न गिरने देने वाला ।

'यूयं न प्रवतो नपात्'

अ. १. २६.३

प्रवत्वती– प्रवत् + मतुप् = प्रवत्वत् । प्रवत्वत् + ङीष् = प्रवत्वती= प्रवणवती, गमनवती । प्रङ (गत्यर्थक) के भाव में लट् से शतृ प्रत्यय कर प्रवत् बना है । अर्थ है–(१) चलने वाली (२) विद्युत् का विशेषण (३) नीचे पृथ्वी की ओर आने वाली विद्युत् –दया ।

'प्रयाभूमिं प्रवत्वति
महा जिनोषि महिनि'

ऋ. ५.८५.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.२, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९, नि. ११.३७.

हे महति या जल वाली (महिनि), हे चलने वाली (प्रवत्वति) जो तू इस प्रत्यक्ष भूमि को

(भूमिन्) महत्व से या जल से (महना) वर्षा देकर प्रसन्न करती है (प्रजिनोषि) ।
नीचे पृथिवी की ओर आने वाली (प्रवत्वति), महान् गुणों वाली या मेघ जलवाली (महिनि) जो तू वृष्टि कर्म के महत्त्व से (या महना) भूमि को तृप्ति करती है (भूमि प्रजिनोषि) -दया. (४) निम्न देश युक्ता - दया. (५) उत्तम जलों से युक्त हो झुकने वाली ।
'प्रववत्वतीयं पृथिवीमरुद्भ्यः'
ऋ. ५.५४.९

प्रवदः- उत्कृष्ट आज्ञा देने वाला ।
'संक्रन्दमः प्रवदो धृष्णुषेणः'
अ. ५.२०.९

प्रवद्यमन् - प्रकृष्टं याति यः स रथः (प्रकृष्ट गति से चलने वाला रथ) - दया ।
'प्रवद्यामना सुवृता रथेन'
ऋ. १. ११८.३

प्रवत्वान्- (१) नाना वेगों से युक्त रथ, (२) उत्तम वेग युक्त साधनों का स्वामी ।
'आवां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्'
ऋ. १.१८१.३

प्रवदिता- प्रवक्ता, उपदेशक ।
'यशसाऽस्या संसदोऽहं पवदितास्याम् ।'

प्रवन्तवे - (१) उत्कृष्ट पद या ऐश्वर्य दान करने के लिए ।
'पृतनासु प्रवन्तवे'
ऋ. १.१३१.५, अ. २०.७५.३
ऋ. १.१३१.५
(२) उत्तम ऐश्वर्य का विभाग करने के लिए
'चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तेव'
ऋ. १.१३१.५
तू संग्रामों में इनके हितार्थ उत्तम ऐश्वर्य का विभाग करने के लिए उनके हित योग्य कार्य विभाग नियत कर ।

प्रवपन्- सब लोगों में अन्न और जीवादि का बीज बोने वाली परमेश्वर ।
'इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम्'
ऋ. १०.११५.३

प्रवयाः- सबसे उत्कृष्ट बल शाली ।
'ईशानकृत प्रवया अभ्यवर्धत'
ऋ. २.१७.४

प्रवर्त्त- कान वा कुण्डल ।
'रात्री केशा हरितौ प्रवर्त्तौ'
अ. १५.२.५

प्रवर्तमानक - पला हुआ ।
'गिरेः प्रवर्तमानकः'

प्रवसथ- दूर का स्थान ।
ऋ. १.१९१.१६.
'मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म'
ऋ. २.२८.७, मै.सं. ४.१४.९, २२९.६.

प्रवसन् - परदेशी, प्रवासी ।
'येषामध्येति प्रवसन्'
अ. ७.६०.३, वाज.सं. ३.४२, आप.श्रौ.सू. ६.२७.३, ला.श्रौ.सू. ३.३.१, शां.गृ.सू. ३.७.२, हि.गृ.सू. १.२९.१.

प्रवा- (१) वायु का निरन्तर बहना ।
'व्रातस्य प्रवामुप वामनुवाति अर्चिः'
अ. १२.१.५१.
(२) द्विव । अश्विद्वय या सूर्य चन्द्रमा का विशेषण (३) अच्छी प्रकार पहुँचाने वाले ।
'तिस्र पृथिवीरूपरिप्रवा दिवः'
ऋ. १.३४.८
पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश पर पहुँचाने वाले आप दोनों ...।
(४) प्रतति, विस्तार, (५) राष्ट्र का कार्य चलाना, (६) प्रगति (७) फैलावट ।
'प्रवयाऽहनाऽहर्जिन्वा'
वाज.सं. १५.६

प्रवाच्य- (१) प्रवचनीय, (२) वर्णनीय । प्रशंसनीय ।
विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या । हे अश्विनीद्वय, तुम्हारे वे सभी कर्म (वां ता विश्वेत्) यज्ञों में प्रवचनीय हैं ।
'प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वाम्'
ऋ. १.११७.८
हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय, तुम दोनों का वह कृत्य सचमुच प्रशंसनीय है ।

प्रवाच्य जन्म - अच्छी प्रकार गुरु का उपदेश प्राप्त करने योग्य विद्या जन्म ।
'प्रवाच्यं वृष्णा दक्षसे महे'
ऋ. १.१५१.३

प्रवातेजाः - प्रचुर वात स्थाने काले वा ।

प्रावृषिजाताः प्रवातेजाः । प्रवाते + जन् + ड + अस् = प्रवातेजाः ।
प्रचुरवायु के स्थान में या वर्षाऋतु में उत्पन्न होने वाला ।
'प्रवातेजाः इरिणे वर्वृतानाः'
ऋ. १०.३४.१, नि. ९.८.
वर्षा ऋतु तथा सूखे स्थलों में बहुत पाए जाने वाले ।
(२) चतुष्पथ में कुत्सित कार्य करने वाले –
(३) प्रवणेज अर्थात् प्रवण (चतुष्पथ, चौराहे) में कुत्सित कर्म करने वाला । प्रवण + ईज् (गतिकुत्सा अर्थ में) + घ = प्रवणेज' ।
(४) नीच देश में उत्पन्न (५) प्रबल वात के सदृश बलवान् (६) मन के अधीन उत्पन्न (७) जूए के पाशे ।

प्रवाय्य – चिन्तनीय विषय ।
'मनसोऽनुप्रवाय्यम्'
ऋ. ६.१०५.१

प्रवावृजे– (१) प्रववृजे, प्रवृज्यते, प्रस्तीर्यते (बिछाया जाता है)
(२) प्रदान किया जाता है ।
'प्रवावृजे सुप्रयाबर्हिरेषाम्'
ऋ. ७.३९.२, वाज.सं. ३३.४४, नि. ५.२८.
सुन्दर बैठने या आने योग्य (सुप्रयाः) कुशासन (बर्हिः) बिछाया जाता है ।
इन मनुष्यों के लिए (एषां विशाम्) शुभागमनयुक्त वृद्धि प्रदान की जाती है (सुप्रयाः बर्हिः प्रवावृजे) ।

प्रवासः– उत्तम वस्त्र पहनने वाला ।
'प्रवासोन प्रसितासः परिप्रुषः'
ऋ. १०.७७.५

प्रवासा– द्वि.व.। प्रवासिनौर (दो प्रवासी), (२) जीवात्मा और परमात्मा ।
'प्र प्रवासेव वसतः'
ऋ. ८.२९.८

प्रवाहण– (१) नौका, (२) नौका के समान सब भार को उठाने वाला, (३) अग्नि ।
'विभूरसि प्रवाहणः'
वाज.सं. ५.३१, तै.सं. १.३.३.१, मै.सं. १.२.१२, २१.११, का.सं. २.१३, शां.श्रौ.सू. ६.१२.११, हि.गृ.सू. १.१६.२१.

प्रवाह्य– जल धारा का प्रयोग जानने वाला ।
'नमः सिकत्याय च प्रवाह्या चः'
वाज.सं. १६.४३, तैसं. ४.५.८.२, का.सं. १७.१५

प्रवाही– (१) आगे बढ़ने वाला (२) उत्तम अश्व आदि, सवारियों पर चढ़कर चलने वाला ।
'उष्ट्रा यस्य प्रवाहिणः'
अ. २०.१२७.२, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.२.

प्रव्राज– (१) मृत्यु –सा. (२) नदी का मार्ग–दया. ।
(३) उत्तम गन्तव्य मार्ग ।
'प्रवाजेचिन्नद्यो गाधमस्ति'
ऋ. ७.६०.७

प्रविक्त – परिशुद्ध ।
'भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते'
ऋ. ६.५०.५
जीवन मार्ग के परिशुद्ध होने पर बहुत जन कांपने लगते हैं ।

प्रवित्का– अच्छी प्रकार सुविभक्त भूमि ।
'कृष्टीरन्यो धारयति प्रवित्काः'
ऋ. ७.८५.३

प्रविद् – (१) उत्तम लाभ, (२) प्राप्ति (३) उत्तम ज्ञान प्राप्ति ।
'उतो पितृभ्यां प्रविदानुघोषम्'
ऋ. ३.७.६

प्रविद्ध– (१) फंसा हुआ, लगा हुआ ।
'अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम्'
ऋ. १.१८२.६

प्रविध्यन्तः देवाः– प्रबलता से ताड़ने वाले देवता ।
'प्रविध्यन्तो नाम देवाः'
अ. ३.२६.४

प्रसव– (१) प्र + सु + अच् = प्रसव (२) जन्म, (३) आज्ञा, ।
'तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः'
ऋ. ३.३३.६, नि. २.२६
अतः हम ऐसे इन्द्र या सूर्य की आज्ञा में या प्रसव में रहने वाली नदियाँ फैलती जाती हैं ।
'तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिम्
इन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु'
ऋ. १.१०२.१, वाज.सं. ३३.२९, तै.ब्रा. २.७.१३.४
(४) अन्न प्राप्ति कराने वाला चैत्र (५) वृद्धि कराने वाला शासक ।
'प्रसवाय स्वाहा'

वाज.सं. १८.२८, २२.३२, मै.सं. १.११.३; १६३.१७, १.११.८, १६९. २०, ३.४.२, ४६.१८, ३.१२.१२, १६४.१, का.सं. १४,१.८, ४०.४, श.ब्रा. ९.३.३.८.

प्रसवीता – (१) प्रसविता, (२) समस्त संसार को उत्तम रीति से उत्पन्न करने वाला–सूर्य, परमेश्वर ।
'बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनः '
ऋ. ४.५३.६

प्रसम्रणिः– खूब फैला हुआ ।
प्रसम्राणि मनुदीर्घाय चक्षस '
अ. ६.३९.१

प्रसहते – अभिभूत करता है, ।
'प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः '
ऋ. ५.२.७, अ. ८.३.२४, तै.सं. १.२.१४.७, का.सं. २.१५.
अग्नि अदेवनशील आसुरी मायाओं को अभिभूत करता है –
तेजस्वी पुत्र दुष्ट मार्ग में ले जाने वाली (रेवाः) राक्षसी मायाओं को पराभूत करता है –दया.

प्रस्कण्व – (१) कण्वस्य अपत्यः प्रस्कण्वः (कण्व का पुत्र प्रस्कण्व है) । प्र प्रभव का द्योतक है । एक वैदिक ऋषि (२) कण्व का अर्थ मेधावी भी है । अतः प्रस्कण्व का अर्थ मेधावी का पुत्र भी हुआ ।
'अङ्गिरस्वन्महिव्रत
प्रस्कण्वस्य श्रुधीहवम् '
ऋ. १.४५.३, नि. ३.१७.

प्रस्तर – (१) सर्वत्र विस्तार करने वाला परमेश्वर ।
'ऋषीणां प्रस्तरोऽसि
नमोऽस्तु दैव्याय प्रस्तराय '
अ. १६.२.६.
(२) उत्तम बिछा हुआ आसन ।
'इमं यम प्रस्तर मा हि रोह '
अ। १८.१.६
(३) आसन, (४) पत्थर, (५) यजमान ।
'यजमानो वै प्रस्तरः '
(६) क्षत्र ।
'क्षत्रं वै प्रस्तरः '
श.ब्रा. १.२.४.२०
(७) उत्तम रीति से राष्ट्र को विस्तृत करने में कुशल ।
'प्रस्तरेण परिधिना '
वाज.सं. १८.६३,तै.सं. ५.७.७.२, का.स. ४०.१३, श.ब्रा. ९.५.१.४८.

प्रस्तरेष्ठः– उत्तम आसन, आस्तरण या पद पर अधिष्ठित ।
'प्रस्तरेष्ठा परिधयाश्च देवाः '
वाज.सं. २.१८, वाज.सं. (का.) २.४.६, का.सं. १.१२, श.ब्रा. १.८.३.२५.

प्रस्नपिता– स्नान से शुद्ध हुई । प्रस्तावित
'यद् दुर्भगां प्रस्नपिताम् '
अ. १०.१.१०

प्रस्फर्व्या– खूब हृष्ट पुष्ट अंगों वाली कन्या ।
'अन्यामिच्छ प्रफर्व्याम्
ऋ. १०.८५.२२, श.ब्रा. १४.९.४.१८, ब्रा.आ. उप. ६.४.१८, आप.मं.पा. १.१०.१.

प्रस्रवण– (१) झरना, निर्झर
'पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् '
ऋ. ८.३३.१, अ. २०.५२.१, ५७.१४, साम. १.२६१, २.२१४.
(२) जल पूर्ण शब्द (३) श्रवण योग्यज्ञान ।
'विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ '
ऋ. १.१८०.८
(४) प्रवाहों का तट ।

प्रस्व– प्र + स्व = प्रस्व (१) उत्तम धनवाला, (२) उत्तम रीति से ओषधियों को उत्पन्न करने वाली भूमि प्रसू है ।
'अपांगर्भः प्रस्व आविवेश '
ऋ. ७.९.३

प्रस्वनित – प्रकृष्टतम् शब्द करने वाला – गर्जने वाला ।
'सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयः '
ऋ. १.४४.१२

प्रसाधन– संचालन करने वाला ।
'यो यज्ञस्य प्रसाधनः '
ऋ. १०.५७.२, अ. १३.१.६०, ऐ.ब्रा. ३.११.१८.

प्रस्थावा – (१) प्रधान पद पर स्थित पुरुष, (२) रणादि में प्रस्थान करने वाला, (३) आगे बढ़ने वाला ।
'प्रस्थावानो मापस्थाता समन्यनः '
ऋ. ८.२०.१, साम. १.४०१

प्रस्थावत् - प्रस्थान करने योग्य ।
'प्रस्थावद्रथवाहणम्'
ऋ. ३.१७.३, वाज.सं. १२.७१, तै.सं. ४.२.५.६, मै.सं. २.७.१२, ९१.१८, का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.११,व.ध.शा. २.३४.

प्रस्नाती- स्नान करती हुई ।
'प्रस्नातीरिवोह्राः'
ऋ. ८.७५.८, तै.सं. २.६.११.२, मै.सं. २.६.११.२, मै.सं. ४.११.६, १७५.५, का.सं. ७.१७

प्रस्वादाः - अति उत्कृष्ट स्वाद लेने वाला ।
'यस्य प्रस्वादसो गिरः'
ऋ. १०.३३.६

प्रसित- (१) नियमों में बद्ध, (२) नियम पालक ।
'प्रवासो न प्रसितासं परिप्रुषः'
ऋ. १०.७७.५

प्रसिति - प्र + सिञ् + क्तिन् = प्रसिति ।
(१) जिसमें जोर से बन्धन बांधा गया हो वह जाल, (२) प्रकृष्ट सेना ।
'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९ तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १०.५, १६.१५, ऐ.ब्रा. १.१९.८; कौ.ब्रा. ८.४, श.ब्रा. ७.४.१.३३. नि. ६.१२.
हे अग्नि देव, तेजः संघ, इस पृथ्वी को जाल की तरह बना दे । हे सेनापति, फैले हुए या जाल की तरह तू आपस में बल धारण कर ।
(३) प्रसितिः प्रसयनात् (जो प्रसित किया जाय) जाल, (४) छिन्न भिन्न एवं रुग्ण शत्रुओं से प्रकीर्ण मार्ग-सा. (२) बन्धन ।
'शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेः'
ऋ. ६.६.५.
शूरवीर योद्धा के छिन्न भिन्न रुग्ण शत्रुओं से प्रकीर्ण मार्ग के समान (शूरस्य प्रसितिःइव) या शूर पुरुष के बन्धन की तरह अग्नि का मार्ग (अग्नेः क्षतिः) दुर्वार्य है ।
आधुनिक अर्थ - जाल, बन्धन (६) उत्तम राज्य प्रबन्ध, व्यवस्था या धर्ममर्यादा ।
'पूर्वीश्चनः प्रसितयस्तरन्ति तम्'
ऋ. ७.३२.१३, अ. २०.५९.४
(८) उत्तम प्रबन्ध से युक्त पृथ्वी (९) सूत्र के समान परस्पर बंधी हुई सुप्रबद्ध सेना ।
'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १०.५, १६.१५, ऐ.ब्रा. १.१९.८, कौ.ब्रा. ८.४, श.ब्रा. ७.४.१.३३, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३, बौ.ध.शा. ३.६.६. नि. ६.१२.

प्रविवेशिथः- प्रविष्ट हुआ या प्रविष्ट है ।
'येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः'
ऋ. १०.५१.१.
हे अग्नि या विद्युत, जिस जरायु या आवरण से घिर कर तू जल में प्रविष्ट हुआ या पुष्टि है ।

प्रविष्टी- उत्तम प्रजा का ।
'प्रविष्टी मिन माविषुः'
अ. २०.१३६.४, वाज.सं. २३.२९, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.१.

प्रवीता- (१) उत्तम रीति से पति द्वारा संगत स्त्री, (२) अच्छी प्रकार कोई बोई हुई भूमि, (३) उत्तम ज्ञान से युक्त बुद्धि ।
'सद्यः प्रवीता वृषणं जजान'
ऋ. ३.२९.३,. वाज.सं. ३४.१४
(४) अच्छी प्रकार प्रेम में बंधी प्रजा या स्त्री ।

प्रवीयमाना- प्रजा उत्पन्न करती हुई ।
'प्रवीयमाण चरति
कुद्धा गोपतये वशा'
अ. १२.४.३७

प्रब्लीन- चारों तरफ से घिरा हुआ शत्रु ।
'प्रब्लीनो मृदितः शयाम्'
अ. ११.९.१९

प्रबुद्ध - अच्छी प्रकार जगा हुआ ।
'प्रबुद्धाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१९.२, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१६, का.सं. (अश्व.) १.१०.

प्रब्रुवाणः- प्र + ब्रू + शानच् = प्रब्रुवाण । प्रकर्ष के साथ गर्जन करता हुआ या बोलता हुआ ।

प्रवृक्त- (१) प्रवर्जित, इधर उधर जाने से रोका हुआ (२) प्रवृत्त ।
'विप्रुतं रेगमुदनि प्रवृक्तम्'
ऋ. १.११६.२४
जल में रोकी हुई या धर्मनाश में प्रवृत्त ।
(३) ऊंचे आसन को प्राप्त ।
'घर्मः प्रवृक्तः'

वाज.सं. ३९.५

प्रवृत् – (१) चेष्टा, प्रवृत्ति, (२) कार्य करने की शक्ति ।

'मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः '

ऋ. ३.३१.३

(३) तीनों गुणों के बरतने के लिये प्रवृत्ति रूपा स्त्री, (४) दूर देश में भी व्यवहार करने में समर्थ अधिकारी ।

'प्रवृदसि प्रवृते त्वा '

वाज.सं. १५.९, का.सं. १७.७, ३७.१७, तै.सं. ३.५.२.५, ४.४.१.३ , पंच.ब्रा. १.१०.९, गो.ब्रा. २.२.१४, वै.सू. २६.८.

प्रवृद्ध– (१) अति शक्तिशाली ।

'यद्वा प्रवृद्ध सत्यते '

ऋ. ८.९३.५, अ. २०.११२.२

(२) प्रकृष्ट बुद्धि से युक्त, (३) इन्द्र ।

'मापणि र्भूरस्यदधि प्रवृद्ध '

ऋ. १.३३.३.

हे प्रकृष्ट बुद्धि से युक्त इन्द्र, (प्रवृद्ध) हमें धन देते हुए तू (अस्मद् अधि) बनिया मत बन (मा आपणिःभूः) ।

(४) सबसे अधिक बढ़ा हुआ ।

'यानि करिष्या कृणहिप्रवृद्ध '

ऋ. १.१६५.९

प्रवृषा– (१) प्रवर्षिता, बरसाने वाला (२) अग्नि का विशेषण ।

'अधजिह्वा पापतीति प्रवृष्णः '

ऋ. ६.६.५.

और प्रवर्षिता अग्नि की ज्वाला लकड़ियों पर बार बार पड़ती है (पापतीति) ।

प्रवदेकृत् – उत्तम धनों और ज्ञान को प्राप्त करने वाला ।

'प्रवदेकृत् बहुधाग्रामघोषी '

अ. ५.२०.९

प्रवेपनी धुनिः– (१) वेग से चलने वाली नदी, (२) खूब कंपा देने वाली सैन्य शक्ति ।

'युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपनी
उदीं गव्यं सृजते सत्वर्भिनिः '

ऋ. ५.३४.८

प्रवोचम् – प्रव्रवीमि (बोलता हूं, वर्णन करता हूँ)

'अभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् '

ऋ. १.१६४.२६, अ. ७.७३.७, ९.१०.४, नि. ११.४३.

इसी से यह स्तुति (तत् उसु) कहता हूँ (प्रवोचम्) । यहां लङ् का प्रयोग वर्तमान अर्थ में किया गया है । 'अस्यति वक्ति' से च्लि का अङ् , 'वच् उम्' से उम् का आगम हुआ है ।

प्रवोचेयम् – (१) प्रकर्षेण वक्तं शक्तोभूयासम् (प्रकर्ष से बोल सकूं) । वच् धातु के आशीर्लिङ् में ।

(२) स्तुति करूँ या करता हूँ ।

'प्रतद्वोचेयं भव्यायेन्दवे '

ऋ. १.१२९.१, नि. १०.४२

मैं भव्य इन्द्र के लिए उनकी इष्टतम स्तुति करता हूँ ।

प्रवोढा– (१) अच्छी प्रकार वहन करने वाला, ढोने वाला, लाने वाला– अग्निजलादितत्व (२) उत्तम कार्य-निर्वाहक।

'स प्रवोढृन् परिगत्या दभीतेः '

ऋ. २.१५.४

प्रशर्ध– (१) उत्कृष्ट बल शाली ।

'असि प्रशर्ध तुर्वशे '

ऋ. ८.४.१, अ. २०.१२०.१, साम. १.२७९, २.५८१

प्रशंसामि – (१) स्तुति करता हूँ– (३) जपता हूँ ।

'प्रतत्ते अद्य शिपिविष्ट नाम
'अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् '

ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.६, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.

हे रश्मियों से आविष्ट विष्णु देव (शिपिविष्ट), तेरा वह शिपिविष्ट नाम श्रेष्ठ है (तत् ते नाम अर्यः) तेरे प्रज्ञानों या गुणों को जानता हुआ (वयुनानि विद्वान्) मैं आज तेरी स्तुति करता हूँ (अद्य प्रशंसामि) ।

हे तेज स्वरूप विष्णु परमेश्वर (शिपिविष्ट), विज्ञानों को जानता हुआ मैं वाचस्पति आज तेरे उस प्रसिद्ध नाम को जपता हूँ (तत् तेनाम प्रशंसामि) ।

प्रशस्ति– प्र + शस् + क्तिन् । प्रकृष्ट प्रशंसा या स्तुति ।

'नाभाकस्य प्रशस्तिभिः '

ऋ. ८.४१.२, नि. १०.५.

(नाभाक ऋषि की स्तुतियों से)

प्रशस्तिकृत् – (१) उत्तम स्तुतियों को प्रकट करने

वाली उषा, (२) स्तुति युक्त वचन रहने वाली स्त्री ।
'प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे ना व्युच्छा'
ऋ. १.११३.१९

प्रश्नविवाक - प्रश्नों को विविध प्रकार से कहने वाला विवेचक पुरुष ।
'मर्यादायै प्रश्नविवाकम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६.

प्रश्रवाः- (१) उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान से सम्पन्न पुरुष (२) उत्तम अन्नोत्पादक जल से पूर्ण -वायु ।
'प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ'
ऋ. ५.४१.१६

प्रसाक्षते- (१) अभिभूत करना या अधिकार जमाता है- (२) पाता है ।
'प्रसाक्षते प्रतिमानानि भूरि'
ऋ. १०.१२०.६, नि. ११.२१.
जो अनेक असुरों को अभिभूत करता है या उनके स्थानों पर अधिकार जमाता है । जो अनेकों उपमानों को पाता है ।

प्रशासन - उत्तम शासन ।
'युवं तासां दिव्यस्य प्रसासने
विशां क्षयथो अमृतास्य मज्मना'
ऋ. १.११२.३
उस उत्तम तेजस्वी अमरआत्मा के उत्तम शासन में जिस प्रकार में प्राण और अपान दोनों रहते हैं ।

प्रशास्त्र - (१) सबसे उत्तम सर्वोपरि प्रधान शासन ।
'तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि'
ऋ. २.१.२,१०.९१.१०,
(२) उत्तम प्रवचन देने वाला उपदेशक - विद्वान् ।
'प्रशास्त्रादापिबतं सोम्यं मधु'
ऋ. २.३६.६

प्रशास्ता - (१) सबसे मुख्य शासक ज्ञानोपदेष्टा (२) अग्नि ।
'त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः
प्रशास्ता पोता जनुषां पुरोहितः'
ऋ. १.९४.६

प्रशिष्- (१) समस्त प्रशासन ।
'आशिषश्च प्रशिषश्च'
अ. ११.८.२७
(२) उत्कृष्ट शासन ।
'उपासते प्रशिषं यस्य देवाः'
ऋ. १०.१२१.२, अ. ४.२.१, १३.३.२४, वाज.सं. २५.१३, तै.सं. ४.१.८.४, ७.५.१७.१, मै.सं. २.१३.२३,१६८.९, का.सं. ४०.१, नृसिंह.ता. उप. २.४.
(३) प्रकृष्ट शिक्षा ।
'तस्मिन् सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः'
ऋ. १.१४५.१

प्रविष्ट- अधिक शिष्ट, सुसभ्य, सुशिक्षित ।
'ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टाः'
अ. १२.३.२७

प्रष्टिः- (१) प्रश्नोत्तरादि विद्या जिससे प्रश्न या जिज्ञासा की जाय, (२) जिज्ञासा के कार्य में कुशल (३) राष्ट्र भार या सेनापति का पद भार उठाने वाला ।
'प्रष्टिर्वहति रोहितः'
ऋ. १.३९.६, ८.७.२८, अ. १३.१.२१.
रक्त वर्ण की उज्ज्वल पोशाक पहनने वाला (रोहितः) एवं उदय को प्राप्त होने वाला , पीठ से बोझ उठाने में समर्थ या राष्ट्र भार या सेनापति पद को उठाने वाला, जिज्ञासा कार्य में कुशल अति तेजस्वी मतिमान पुरुष उस पद को धारण करे ।
(४) वेगवान् अश्व ।
'प्रष्टिं धावन्तं हर्योः'
अ. २०.१२८.१५, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.२.
(५) वेगवान् वायु, (६) शीघ्र चालक (७) प्रश्न, (८) पूछे जाकर ।
'ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः
सहदेवो भयमानः सुराधाः'
ऋ. १. १००.१७
सधे हुए बड़ी शक्तियों या अश्वों का नायक (ऋज्राश्वः) भय सञ्चार के साधनों का ज्ञाता (भयमानः) युद्धार्थी सैनिकों के साथ रहने वाला (सहदेवः) यादवों के साथ रहने वाला इन्द्र, उत्तम धनों और उपायों का वेत्ता (सुराधाः) पूछे जाने पर या प्रश्नकिए जाने पर (प्रष्टिभिः)..

प्रष्टिमत् - (१) पूछकर काम करने का स्वभाव

वाला, (२) अधीन, (३) स्वतन्त्र इच्छा से रहित पुरुष ।
'दशरथान् प्रष्टिमतः'
ऋ. ६.४७.२४

प्रश्न – प्रश्न करने वाला ।
'आशिक्षायै प्रश्निनम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६.

प्रसक्त– उत्तम शक्ति से सर्वत्र व्यापक।
'इह प्रसक्तो विचयत् कृतं नः'
अ. ७.५०.३

प्रसक्षिणा– द्वि.व. । उत्तम रीति से विजय करने वाले ।
'हरी यस्य प्रसक्षिणा'
ऋ. ८.१३.१०

प्रसन्ना– द्वि. व. । (१) अश्विद्वय का विशेषण + (२) उत्तम सामर्थ्यवान्, मानयुत
'स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता'
ऋ. ६.६२.१

प्रससर्ज – पसार दिया ।
'प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्'
ऋ. ५.८५.३, नि. १०.४.
वरुण ने मेघ को अधोमुख कर रोदसी और अन्तरिक्ष में पसार दिया ।

प्रसर्त्राणः– बढ़ता हुआ ।
'प्रसर्त्राणो अनुबर्हिर्वृषा शिशुः'
ऋ. ५.४४.३

प्रसिति– प्र + सिञ् + क्तिन् = प्रसिति । अर्थ – (१) बन्धनागार, जेल ।
'माते भूम प्रसितौ हीडितस्य'
ऋ. ७.४६.४

प्रस्थित – (१) भेजा हुआ । (२) आगे रखा, परोसा हुआ ।
'आद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि'
ऋ. १०.११६.८, नि. ६.१६.

प्रस्थिताः – (१) प्रस्थित किए गए या उपस्थित किए गए हवि या फल ।

प्रसुप् – (१) प्रसूत–यास्क, (२) शत्रूणां प्रस्वापकाः हन्तारः (शत्रुओं को सुलाने या मारने वाला) (२) सोने वाला, (३) अन्त में कारण में मिल जाने वाला – (४) शत्रुओं को नष्ट कर भूमि में सुला देने वाला, (५) सुखप्रद ।
'मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते'
ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०.

प्रसुपाः – (ब.व.) । (१) सोम रस का विशेषण । (२) प्रसूत किये गए (३) प्रसुप्त हो जाने वाले (४) अन्त में कारण में मिल जाने वाले लोक लोकान्तर ।
'मत्सरासः प्रसुपः साक मीरते'
मदकारक प्रसूत किए सोम रस साथ ही इन्द्र के समीप जाते हैं (ईरते) । हर्ष कारक तथा प्रसुप्त होने वाले अर्थात् अन्त में अपने कारण में मिल जाने वाले (प्रसुपः) लोक लोकान्तर साथ साथ चलते हैं (साकम् ईरते) ।

प्रस्तुत – (१) प्रस्तोता से स्तुत किया गया सामभाग
'उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्'
अ. ११.७.५.

प्रस्तुतिः – (१) यथार्थ तत्व का वर्णन करने वाला, (२) यथार्थ तत्त्व ।
'प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिः
अयामि मित्रावरुणासुवृक्तिः'
ऋ. १.१५३.२
मैं यथार्थ तत्व को वर्णन करने वाले के समान ही उत्तम प्रयोग क्रिया कौशल को जानने वाला (प्रयुक्तिः) और उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोककर सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला होकर (सुवृक्तिः) आप दोनों के गृह को प्राप्त होऊं ।

प्रस्तुभानः– (१) गर्जना करता हुआ (२) अच्छी प्रकार अर्चित ।
'वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः'
ऋ. ४.३.१२

प्रस्फुरन् – तड़पता, तड़फड़ाता हुआ ।
'यदेभि प्रस्फुरन्ति व दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः'
ऋ. ७.८९.२

प्रसू – (१) फल (२) स्वयं उत्पन्न होने वाली नदी, (३) वृक्ष अन्नादि उत्पन्न करने वाली जल धारा (४) उत्तम फल फूल उत्पन्न करने वाली ओषधि, (५) अग्नि को उत्पन्न करने वाली ओषधि (६) माता ।
'यदीवर्धन्ति प्रस्वो घृतेन'
ऋ. ३.५.८
(७) पुत्र आदि उत्पन्न करने का सामर्थ्य ।
'सूश्च मे प्रसूश्च मे

वाज.सं. १८.७, तै.सं. ४.७.३.२, मै.सं. २.११.४, १४१.१५, का.सं. १८.८.

प्रसुता – निकली हुई ।
'गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता'
ऋ. ६.७५.११, वाज.सं. २९.४८, तै.सं. ४.६.६.४, मै.सं. ३.१६. ३, १८७.२, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. २.५., ९.१९.
इषु स्नायु, मज्जा या ज्या से (गोभिः) सन्नद्ध है और धनुष से छोड़े जाने पर (प्रसूता) गिरती है ।

प्रसूमती – नव पल्लव, नई शाखाएं, नई जड़ों को उत्पन्न करने वाली ओषधि ।
'पुष्पवतीः प्रसूमतीः'
अ. ८.७.२७, का.सं. १६.१३.

प्रसूवरी – (१) फलों से युक्त । (२) फलों से युक्त ओषधियां ।

प्रसृजति– करोति (प्रसर्जन करता है) । सृज् धातु निर्माण करना अर्थ में आया है ।

प्रस्तृणति – अच्छी प्रकार फैलने वाली ।
'प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुंगाः'
अ. ८.७.४

प्रस्तोकः – उत्तम स्तुति करने वाला ।
'प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र'
ऋ. ६.४७.२२

प्रहर्मि– देता हूँ ।
'अस्मा इदु प्रतवसे तुराय
प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१
उस बलवान्, फुर्तीले, पूज्य इन्द्र के लिए तृप्ति कर अन्न की तरह (प्रयो न) उचित स्तुति देता हूँ (प्रहर्मि) ।

प्रहर्य– अच्छी प्रकार प्रकट करना ।
'प्रपस्त्यमसुर हर्यतं गोः'
ऋ. १०.९६.११, अ. २०.३२.१

प्रहतम् – क्षिप्त करते हैं, प्रहार करते हैं ।
'यस्यामुशन्तः प्रहरामशेपम्'
ऋ. १०.८५.३७, पा.गृ.सू. १.४.१६, नि. ३.२१.
जिसमें हम कामुक जननेन्द्रिय क्षिप्त करते हैं ।

प्रहा – (१) पाशे पर आघात करने वाला अक्ष, (२) विघ्नकारी उपद्रव ।
'उतप्रहा मनिदीव्या जयाति'
ऋ. १०.४२.९, अ. ७.५०.६, अ. २०.८९.९
(३) प्रहार करने वाला, (४) जूए में पाशा मारने वाला ।

प्रहाय्य – दूत, गुप्तचर ।
'आसन् संकल्पाः प्रहाय्याः'
अ. १५.३.१०

प्रहावान् – प्रेरणा करने वाला, विजय प्राप्त करने वाला– इन्द्र परमेश्वर ।

प्रहासी – अट्टहास करने वाला ।
'आपाकेष्ठाः प्रहासिनः'
अ. ८.६.१४

प्रहिणोत – प्रहिणुत, प्रवर्धयत, प्रेरयत (१) स्तुति करो । प्रवर्धित करो, प्रेरित करो । प्र + हि (गति और वृद्धि अर्थ में) के लोट् म.पु.ब.व. का रूप । त का तन आदेश होने पर गुण होता है ।
'प्र नूनं जातवेदसम्
अश्वं हिनोत वाजिनम्
इदं नो बर्हिरासदे'
ऋ. १०.१८८.१, नि. ७.२०.
समस्त संसार में व्याप्त गतिशील अग्नि या वेदवेत्ता विद्वान् को इस आस्तीर्ण कुशासन पर बैठने के लिए प्रेरित करो (प्रहिणोत) ।
पुनः–
(२) बढ़ा, प्रेरित कर ।
हे स्तोताओ, तुम इस सर्वव्यापी ज्वालाओं से चंचल या अन्नयुक्त या अश्व के सदृश बलवान् अग्नि को स्तुतियों से प्रेरित कर (प्रहिनोत) ।

प्रहुतिः – सर्वोत्तम दान ।
'ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट्'
ऋ. ७.९०.२, मै.सं. ४.१४.२, २१६.६, आश्व.श्रौ.सू. २.२०.४, ३.८.१.

प्रहेता – (१) शत्रु को मार भगाने वाला ।
'प्रहेतारमप्रहितम्'
ऋ. ८.९९.७, अ. २०.१०५.३, साम. १.२८३.
(२) सब का प्रेरक ।

प्रहेतिः– उत्तम श्रेणी का अस्त्र ।
'पौरुषेयो वधः प्रहेतिः'
वाज.सं. १५.१५, तै.सं. ४.४.३.१, मै.सं. २.८.१०, ११४.१८, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१६.

प्रहोष – (१) उत्तम रीति से दान, प्रदान,

.(२) होता-दया. ।
'प्रहोषेचित् अररुषः'
ऋ. १.१५०.२
प्रहोषी - (१) उत्तम रीति से बल देने वाला, (२) उत्तम दानी ।
'सुदक्षस्य प्रहोसिणः'
ऋ. ८.९२.४, साम. १.१४५.
प्लक्ष - पिलखण का पेड़ ।
'भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठसि'
अ. ५.५.५
प्लव - (१) जहाज, (२) शरीर । (३) सर्वप्रवर्त्तक राजा ।
'अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वम्'
अ. १२.२.४८
(४) बत्तक।
'प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये'
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.१०.
प्सर - (१) भोजन, (२) अन्न ।
'महि प्सरः सुकृतं सोम्यंमधु'
ऋ. ९.७४.३
(३) यं प्सन्ति भुंजते स भोगः- (भोगने योग्य ऐश्वर्य या वैभव विस्तार, (४) स्वरूप ।
'महि प्सरो वरुणस्य'
ऋ. १.४१.७
वरुण या सर्वश्रेष्ठ राजा का भोगने योग्य ऐश्वर्य और वैभव विस्तार या स्वरूप बहुत बड़ा है ।
पयते- प्रप्यायते, आप्यायनं करोति, प्रकर्षे वर्द्धते (खूब बढ़ता है) । 'पा' या 'पी' 'धातु' बढ़ने या मोटाना अर्थ में है । अर्थ है- पुष्ट करते हैं ।
'मिमातिमायुं पयते पयोभिः'
ऋ. १.१६४.२८, अ. ९.१.८, १०.६, नि. ११.४२
पयस् - पा (पीना या पुष्ट करना) + असुन् = पयस् । पीयते हि तत् (वह पीया जाता है) अथवा, प्या + असुन् = प्यायस् = पयस् । तेन हि पीतेन वर्द्धन्ते प्राणिनः (दूध पीकर प्राणी बढ़ते हैं) । लोक में पीङ् (पीना) या पय (गमन) से 'असुन' प्रत्यय कर ' पयस्' बनता है ।
अर्थ - (१) पुष्ट करने वाला दुग्ध । (२) जल ।
पयस्या - द्वि.व. । (१) शुद्ध जल और पुष्टि कारक दुग्ध आदि पान करने वाले अश्विद्वय या स्त्रीपुरुष ।
'आवामश्वासः शु चयः पयस्पाः'
ऋ. १.१८१.२
पयस्फाति- दूध आदि की वृद्धि ।
'पयस्फातिं च धान्यम्'
अ. १९.३१.१०
पयस्वत् - पा + असुन् = पयस् , पयस् + वतुप् = पयस्वत् । अर्थ है- उदक वाला ।
पयस्वती- पयस् + ङीष् = पयस्वती (१) उदक वाली । द्विवचन में यहां प्रयोग है । (२) द्यावापृथिवी का विशेषण (३) जलवाली ।
'असश्चन्ती भूरिधारेपयस्वती'
ऋ. ६.७०.२, नि. ५.२.
एक दूसरे से असंश्लिष्ट, बहुत धारा वाली या बहुत जीवों को धारण कारण करने वाली एवं जल वाली द्यावापृथिवी ।
पयस्वान् - पुष्टिकारक अन्न, दुग्ध एवं पशु आदि समृद्धि से सम्पन्न ।
'पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिताः'
वाज.सं. २१.४२.
पयोधाः- दूध पीने वाला ।
'वत्साओ न प्रक्रीडिनः पयोधाः'
ऋ. ७.५६.१६, तै.सं. ४.३.१३.७, मै.सं. ४.१०.५, १५५.७, का.स. २१.१३.
पयोवृधा- द्वि. व.। (१) मातापिता के समान दूध और ज्ञान से बढ़ाने वाले ।
'उत सुत्ये पयोवृधा'
ऋ. ८.२.४२.
परः- (१) पारं परं भवति (पार ही पर है) । यत् अवनाय भवति तत् अवरम् (जो रक्षा के लिए होता है वह अवर है)। यत् अवराय न भवति तत् परम् (जो रक्षा के लिए नहीं है वह पर या पार दुर्गम होने से रक्षा के लिए नहीं होता) । इस कूल से उधर ही पार होता है (अवरस्मात् कूलात् परः) । वही पार पर है। (तदेव पारम् स्वार्थिनः)। अव + अरन् = अवर । पृ + अच् = परः ।
(१) दूसरा ।
'तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास'
ऋ. १०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४.
प्रलय काल की स्थिति में उस एक सत् ब्रह्म

से दूसरा कुछ नहीं था ।
आधुनिक अर्थ- अन्य, भिन्न, दूर, उस पार, आगे, उच्चतम, प्रमुखतम, सर्वोत्तम, प्रधान, परायण अर्थ में और शब्दों के साथ जोड़ा जाता है । पराया, शत्रु, शेष, अधिक, जैसे परशतम् (एक सौ से अधिक) अन्तिम, परमात्मा, सुन्दर स्वरूप, तत्पश्चात, लेकिन, नहीं तो, बहुत अधिक, पूर्णतः पश्चात् , भविष्य में (२) सबसे ऊंचा ।
'यमः परोऽवरोविवस्वान्'
अ. १८.२.३२.
(३) पालक, पूरक (४) उत्कृष्ट ।
'परि परो अभवः सास्युक्थ्यः'
ऋ. २. १३.१०
(४) दक्षिण, दाहिना ।
'परमक्ष्युतावरम्'
अ. १.८.३

परः अग्निः- (१) सूर्य अर्थात् अन्तरिक्ष अग्नि (२) वायु ।
'यत्रावदेते अपरः परश्च
यज्ञन्योः कतरो नौविवेद'
ऋ. १०.८८.१७, नि. ७.३०
जिस कर्म में यह पार्थिव अग्नि और वह सूर्य अर्थात् अन्तरिक्ष अग्नि वा वायु परस्पर विवाद करते हैं कि हमे दोनों यज्ञ करने के नेताओं में कौन अधिक यज्ञ कार्य जानता है।

परः अर्धः - (१) परमेश्वर का परम स्वरूप ।
'दिवआहुः परे अर्धे पुरीषिणम्'
ऋ. १.१६४.१२, अ. ९.९.१२, प्रश्न उप. १.११

परः परः- दूर रहकर ।
'यद्यजाया पचति त्वत् परः परः'
अ. १२.३.३९

परम - (१) निरतिशय, (२) परार्द्धस्थ परम अर्ध में स्थित, (३) आदित्य मण्डल ही परम पद है । वह परार्द्ध में स्थित है । (४) उत्कृष्ट ।
'सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.४१, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४. नि. ११.४०.
आधुनिक अर्थ - अत्यन्त दूर, अन्तिम, उच्चतम प्रधान, सर्वोच्च, सर्वोपरि, काफी, पूर्ण, अत्यन्त होने पर स्वीकृति सूचक जैसे ।
'परममित्युक्त्वा मुनिमण्डलं प्रतस्थे' (बहुत अच्छा कहकर मुनिमण्डली चली गई) ।
सत्य (५) परम तत्व, श्रेष्ठतत्व ।
'क्व स्विदस्याः परमं जगाम'
ऋ. ८.१००.१०, तै.ब्रा. २.४.६.११, नि. ११.२८.
इस माध्यमिका वाक् का परमतत्व कहां चला जाता है ।
मनुष्य इस वाणी के प्रभाव से उत्पन्न रस को कहां कहां पाता है ।

परमज्या- (१) परमज्या, (२) प्रधान वधिक, (३) कारण और बन्धन का नाशक ।
'परमज्या ऋचीषमः'
ऋ. ८.९०.१, अ. २०.१०४.३, साम. १.२६९, २.८४२.
(४) बड़ीज्या (डोरी) वाला इन्द्र ।

परमं पदम् - (१) परम पद जो विष्णु का निवास स्थान समझा जाता है (२) विष्णु लोक ।
'अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः'
परमं पदमवभाति भूरि'
ऋ. १.१५४.६, नि. २.७.
यहीं पर अति स्तुत्य या सब को गति देने वाले,कामना बरसाने वाले विष्णु का परम पद अत्यन्त सोहता है ।

परमः पाथः- (१) सबसे उत्कृष्ट पाथस्-अन्न, (२) पृथिवी आदि लोक, (३) परम पद, (४) परम सूक्ष्म जल, (५) पालक सैन्य बल ।
विष्णुर्गोपाः प्रथमं पाति पाथः'
ऋ. ३.५५.१०

परमं व्योम- (१) परम व्योम रूपी ऋ पा या प्रणव के अक्षर अ उ म, (२) ओम् अथात् ऋच् का वाचक । ओम् को ही परमव्योम कहा गया है, क्योंकि ओम् अविनाशी, सभी वेदों में व्याप्त एवं सर्वश्रेष्ठ है और इसमें विविध शब्द ओतप्रोत हैं । जिस प्रकार सभी देवता परम व्योम में व्याप्त हैं उसी प्रकार प्रणव में भी,
(२) आदित्य मण्डल जिसमें रश्मिरूपी सभी देवता विद्यमान हैं- ओम् है, (३) शरीर भी परम व्योम है जिसमें इन्द्रियां देवता अविनाशी आत्मा को पूजती हैं
अ + उ + म = ओम् । वि + ओम् = व्योम ।

'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधिविशो निषेदुः'
ऋ. १.१६४.३९, अ. ९.१०.१८, तै.ब्रा. ३.१०.९.१४, तै.आ. २.११.१, श्वे.उप. ४.८, नृसिंह पू.ता.उप. ४.२,५.२, नि. १३.१०.

परमं व्योमन् – (१) सबसे उत्कृष्ट विशेष रूप से सबके रक्षक और आकाश के समान निराकार और सर्व व्यापक परमेश्वर ।

परम सधस्थ– (१) परम एकत्र होने का स्थान ।
'उप प्रागात् परमं यत् सधस्थम्'
ऋ. १.१६३.१३, वाज.सं. २९.२४, तै.सं. ४.६.७.५, का.सं. (अश्व.) ६.३, श.ब्रा. १३.५.१.१७,१८.
(२) परम उत्कृष्ट ब्रह्मस्थान ।
'प्रियो देवानां परमे सधस्थे'
अ. १८.३.७, तै.आ. ६.३.१, ४.२.

परमा– उत्कृष्ट गुण वाली पृथ्वी ।
'मध्यमस्थां परमस्यामृत स्थः'
ऋ. १.१०८.९

परमादिक् – परमदिशा ।
'स परमां दिशमनु व्यचलत्'
अ. १५.६.१३.

परमा परावत्– दूर से दूर देश ।
'सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्
परावतं परमां गन्तवा उ'
ऋ. १०.९५.१४, श.ब्रा. ११.५.१.८, नि. ७.३.
आज तेरा शोभन पति पर्वत से गिर पड़े जिससे वह पुनः लौटने वाला न होकर दूर से दूर देश जाने के लिये महा प्रस्थान करे ।

परमा रजांसि– (१) दूर से दूर लोक प्रदेश (२) परम सर्वोत्कृष्ट ज्ञान ।
'न ते दूरे परमाचिद् रजांसि'
ऋ. ३.३०.२, वाज.सं. ३४.१९.

परमा सहक् – प्रकृष्ट संद्रष्टा, आदित्य विश्वकर्मा ।
'धाता विधाता परमोत संदृक्'
ऋ. १०.८२.२, वाज.सं. १७.२६,तै.सं. ४.६.२.१, ५.७.४.३, का.सं. १८.१, नि. १०.२६.

परमेष्ठिनी– (१) सर्वोपरि विद्यमान परमेश्वर में स्थित वाणीरूप दिव्य शक्ति ।
'इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता'
अ. १९.९.३

परमेष्ठी– (१) परमेश्वर का यह रूप ।
'परमेष्ठ्यभिधीतः'
वाज.सं. ८.५४
(२) परम उच्च पर स्थित ब्रह्मा, परमेश्वर , अग्नि ।
'आज्यस्य परमेष्ठिन्'
अ. १.७.२.

परशु– पर + शु । अनात्म पदार्थों को काटने में समर्थ ज्ञान रूप वज्र, (२) फरसा ।
'उज्जायतां परशुर्ज्योतिषासह'
ऋ. १०.४३.९, अ. २०.१७.९

परस्ताम् – सर्वथा ।
'मुह्यन्त्वद्याभूः सेनाः
अभित्राणां परस्ताराम्'
अ. ६.६७.१

परस्तात् – (१) परे, दूर देश में (२) ज्ञानेन्द्रियों या मन वाणी से अव्यक्त रूप में विद्यमान ।
'शयुः परस्तादध नु द्विमाता'
ऋ. ३.५५.६
(३) ऊपर की ओर, (४) ऊंची शक्ति ।
'स्वधा अयस्तात् प्रयतिः परस्तात्'
ऋ. १०.१२९.५, वाज.स. ३३.७४, तै.ब्रा. २.८.९.५,

परस्प – (१) दूसरों का पालन करने वाला, (२) दूसरों का पालन करना ।
'क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि'
वाज.सं. ३८.१९, श.ब्रा. १४.३.१.९.

परःपन्थाः– अन्य मार्ग ।
'परं मृत्योअनुपरेहि पन्थाम्'
ऋ. १०.१८.१, अ. १२.२.२१, वाज.सं. ३५.७, श.ब्रा. १३.८.३.४, तै.ब्रा. ३.७.१४.५, तै.आ. ३.१५.२, ६.७.३, तै.आ. (आंध्र) १०.४६, आप.श्रौ.सू. २१.४.१, आश्व.गृ.सू. ४.६.१०, साम.मं.ब्रा. १.१.१५, हि.गृ.सू. १.२८.१, नि. १०.७.
हे मृत्यो, तू अन्य मार्ग से पराङ्मुख होकर जा (परेहि) ।

परस्पाः – (१) परम पालन पोषण करने वाला –अग्नि ।
'त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पाः'
ऋ. २.९.२, तै.सं. ३.५.११.२, मै.सं. ४.१०.४,

१५२.७, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. १.२८.३७, कौ.ब्रा. ९.२.
(२) परम पालक इन्द्र परमेश्वर ।
'परस्या नो वरेण्यः'
ऋ. ८.६१.१५
(३) द्वि.व. । एक दूसरे की रक्षा करने वाले –मित्रावरुण, स्त्रीपुरुष, राजा आमात्य ।
'अक्रविहस्ता सुकृते परस्या'
ऋ. ५.६२.६
(४) परम पालक , शत्रओं से बचाने वाला ।
'यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा'
ऋ. ८.९.११, अ. २०.१४१.१

परस्फान– शत्रुओं से रक्षा करने वाला ।
'परस्फानो वरेण्यः'
अ. १९.१५.३

परस्याः परावत् – (१) द्युलोक के भी उस पार का स्थान । 'परा' द्युलोक का नाम है और द्युलोक से भी परा लोक परस्याः परावत है । पुराणों में इसे विष्णु लोक कहा गया है ।
'परावत आजगन्था परस्याः'
ऋ. १०.१८०.२, अ. ७.२६.२, ८४.३, साम. २.१२२३. वाज.सं. १८.७१, तै.सं. १.६.१२.४, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१४, का.सं. ८.१६.
हे इन्द्र या परमेश्वर, तू द्युलोक के भी उस पार के स्थान से (परस्या परावतः) आ (आजगन्थ) ।
(२) अतिदूर देश में ।
'यः परस्याः परावतः
तिरो धन्वातिरोचते'
ऋ. १०.१८७.२, ६.३४.३.
जो अग्नि आदित्य रूप में (यः) अति दूर देश में भी (परस्याः परावतः) रहकर तीर्णतम इस महान् अन्तरिक्ष को पार कर (तिरः धन्व अति) हम लोगों को प्रकाशित करते या प्रकाश देते हैं ।

प्रज्ञातारः – (१) प्रकृष्ट ज्ञान वाले । मरुद्गण या व्यापारिवर्ग का विशेषण ।
'प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः'
ऋ. १०.७८.२

परस्वत् – (१) पूर्णता प्राप्त पुरुष (२) पशुविशेष
'यावत् परस्वतः पसः'
अ. ६.७२.२

परस्वन्तः – पर + सु + अन्त । अन्तःस्थ परमेश्वर दूरस्थ है ऐसी भावना ।
'परस्वन्तं हतं विदत्'
ऋ. १०.८६.१८, अ. २०.१२६.१८.

परस्वान् – (१) मैं परमेश्वर से दूर हूँ ऐसा भाव, (२) परस्वान् नामक अश्व ।
'अत्यर्धर्च परस्वतः'
अ. २०.१३१.१९

पर्चः– सम्पर्क ।
'पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेः'
ऋ. ७.१००.२

पर्जन्य – (१) तृप् + क्विप् = तृप् = तर्पयिता, तृप्त करने वाला । जन + यत् = जन्य (जनेभ्यः हितः जन्यः) अर्थ है लोकोपकारक । तृप् च जन्यश्च च पर्जन्यः सर्वजनपद तर्पयिता (समस्त जीवों को तृप्त करने वाला) । वर्ण–विपर्यय से तृप् का पर हो जाता है।
पर + जन्य = पर्जन्य । अर्थ– (१) मेघ ।
'यत्पर्जन्यः स्तनयन्हन्ति दुष्कृतः'
ऋ. ५.८३.२, नि. १०.११.
यह मेघ अशनिपात द्वारा दुष्कृत करने वालों को नष्ट करें।
(२) पर– जेता जनयिता वा (प्रकृष्ट जेता या जनयिता) । पर् + जि (जय करना) अथवा जनि (उत्पन्न करना) + यत् = पर्जन्य (जिनके बाद अनङ्ग और 'जनि' के 'इ' का लोप (३) रसानां प्रार्जयिता (रसों का संचेता संचय करने वाला) जि के बाद अवङ् और जनि के इ का लोप) (४) रसानां प्रार्जयिता (रसों का संचेता या संचय करने वाला)। प्र + जि + यत् = पर्जन्य (प्र का पर)
आधुनिक अर्थ – मेघ, इन्द्र (५) सर्प विष की एक औषधि ।
'वातापर्जन्योभा'
अ. १०.४.१६

पर्जन्यक्रन्दयं – सब मेघों को भी गर्जन कराने वाला अग्नि, विद्युत्
'पर्जन्यक्रन्द्यं सहः'
ऋ. ८.१०२.५, तै.सं. ३.१.११.८, का.सं. ४०.१४.

पर्जन्यजिन्वत् – तृप् + क्विप् = तृप् । जन् + यत्

= जन्य (लोकोपकारक) । तृप् + जन्य = पर्जन्य (सर्वजनतर्पयिता)-मेघ या प्रकृष्ट जेता या जनयिता ।
अथवा - रसानां प्रार्जयिता (रसों का संचेता वा संचय करने वाला) । प्र + जि + यत् = पर्जन्य ।
पर्जन्य + जि + शतृ = पर्जन्य जिन्वत् । अर्थ है- (१) पर्जन्यं प्रीणयति (मेघ को प्रसन्न करने वाला) । 'जिवि' प्रेरणार्थक धातु है ।
'संवत्सरं शशयानाः
ब्राह्मण व्रतचारिणः
वाचं पर्जन्यजिन्वितां
प्रमण्डूका अवादिषुः '
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६.
वर्षा बरसाने के लिए इस मंत्र का जप किया जाता है । एक वर्ष तक (संवत्सरम्) बिना बोले बिल में सुप्त से पड़े हुए या वर्षा के लिये तपस्या करते हुए (शशमानाः) सदा बोलने में समर्थ होने पर भी (ब्राह्मणाः) बोली पर संयम रखने वाले (व्रत चारिणः) ये मेढ़क (मण्डूकाः) वर्षा ऋतु के आ जाने पर मेघ को प्रसन्न करने वाली वाणी (पर्जन्य जिन्वतां वाचम्) जोर से बोलते हैं (प्र अवादिषुः)।

पर्जन्य जिन्विता - (१) मेघ की स्तुति करने वाली वाणी, (२) आनन्द रस प्रदाता, प्रभु को प्रसन्न करने वाली वाणी ।
'वाचं पर्जन्य जिन्वताम् '
ऋ. ७.१०३.१.

पर्जन्यपत्नी - (१) मेघ द्वारा सींची जाने वाली पृथिवी ।
'भूम्यै पर्जन्य पत्न्यै '
अ. १२.१.४२.
(२) मेघ वत् सुखों की वर्षा करने वाले परमात्मा की पत्नीरूप वशा शक्ति ।
'वशा पर्जन्य पत्नी '
अ. १०.१०.६

पर्जन्यरेताः - (१) मेघ के जल से सींच कर वृद्धि पाने वाला (२) तृप्ति देने वाले प्रिय पुरुष की वीर्य धारण करने वाली ।
'इदं पर्जन्य रेतसे
इन्वै देव्यै बृहन्नमः '
ऋ. ६.७५.१५

पर्जन्यवृद्ध - (१) मेघवत् बड़े-बड़े शत्रुओं का विजेता, (२) मेघों से बढ़ने वाला ।
'पर्जन्यवृद्धं महिषम् '
ऋ. ९.११३.३

पर्ण - (१) पत्ता ।
'पर्णेभिः शकुनानाम् '
ऋ. ९.११२.२.
पक्षियों के पंख से जैसे कुशल कारीगर
'हिमेव पर्णा मुषिता वनानि '
ऋ. १०.६८.१०, अ. २०.१६.१०
(२) सूर्य
'सरौ पर्णभिवादधत् '
अ. ५.२५.१
(३) पलाश, ढाक का पेड़ ।
'भद्रान्यग्रोधात् पर्णात् '
अ. ५.५.५
(३) गिरे पत्तों का ठेकेदार
'नमः पर्णाय च पर्णशदाय च '
वाज.सं. १६.४६, मै.सं. २.९.८, १२७.१, का.सं. १७.१५.
(४) पंख ।
'चरित्रं हि वेरिवा च्छेदि पर्णम् '
ऋ. १.११६.१५

पर्णक - रक्षा तथा युद्धादि कार्य में कुशल पुरुष ।
'स्वनेभ्यः पर्णकम् '
वाज.सं. ३०.१६., तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

पर्णधि - (१) पर्णधि नामक वृक्ष जिस का पत्ता विष हरता है, (२) विषैला सरकण्डा ।
'प्राञ्जनादुत पर्णधेः '
अ. ४.६.५

पर्णमारी - (१) उत्तम ज्ञानवान् पालन करने वाला शिरोमणि पुरुष (२) उत्तम पालक यन्त्र, पत्तों का निर्मित ताबीज ।
'आयमगन् पर्णमणिः '
अ. ३.५.१.

पर्णय - यः पर्णानि प्राप्ताप्राप्तानि वस्तूनि याति स चौरः (प्राप्त या अप्राप्त वस्तुओं को चुराने वाला,) (२) प्रजा के पालक पुरुषों पर आक्रमण करने वाला ।
'त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीः '

ऋ. १.५३.८, अ. २०.२१.८
(३) पर्ण अर्थात् गतिशील रथों से प्रयाण करने वाला शत्रु ।

पर्णयहा – (१) पालक पुरुष का नाश करने वाला ।
'यत् पर्णयघ्न उतवा करञ्जहे'
ऋ. १०.४८.८

पर्णवी– (१) पत्तों से युक्त वृक्ष (२) किरणों से युक्त सूर्य ।
'पर्णवीरिव दीयते'
ऋ. ९.३.१, साम. २.६०६
(३) पक्षी के समान वेग से जाने वाले रथों से जाने वाला (४) पंखों से चलने वाला पक्षी, (५) मुमुक्षु, (६) राजहंस, (७) पक्षी, (८) आत्मा ।

पर्णशद – पत्तों का काटने वाला ।
'नमः पर्णाय च पर्णशदाय च'
वाज.सं. १६.४६

पर्फरीका – द्वि.व. । (१) पर्फरीकौ, शत्रूणां विदारयितारौ (शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले) (२) अश्विनी कुमारों का विशेषण,
'नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों नैतोश नामक वधक के समान नाश करने वाले एवं शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले हो ।
(३) प्रजाओं का पालन पोषण करने वाले अश्विद्वय (४) स्त्री पुरुष ।

पर्यगात् – सर्वव्यापक
'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्'
वाज.सं. ४०.८, ईश उप. ८.

पर्यखयाते – घर लेता है ।
'दधृग्विधक्ष्यन् पर्यखयाते'
ऋ. १०.१६.७

पर्यभूषन् – (१) पर्यगृहणात्, परिगृहीतवान् परिगृहीत किया) (२) राजपद से अलङ्कृत किया (३) पर्यरक्षत् (परिरक्षण किया)– दया. (४) आत्माक्रामत् प्रभावेण (प्रभाव से अतिक्रान्त किया) 'परि + भू' के लङ् प्र.पु.ए.व. का रूप (शप् और सिप बाहुलक नियम से) ।
'जातं यत्त्वा परिदेवा अभूषन्
महे भराय पुरुहूत विश्वे ।'
ऋ. ३.५१.८, कौ.ब्रा. २२.७.
हे बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र, सभी देवों तथा प्राणिमात्र ने तुझे अच्छी तरह से पालन पोषण या रक्षा के लिये परिगृहीत किया ।
हे निर्वाचित राजन्, राजा बनाए गए जिस तुझ को सब देवताओं ने राज्य पोषण के महान् कार्य के लिए राज-पद से अलंकृत किया है । –दया.

पर्यास्ताक्ष– जिसकी आखें फिरी हुई हो, जो सीधा न देख सके ।
'पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा'
अ. ८.६.१६

पर्वत– पर्व + तप् (मत्वर्थीय) = पर्वत । पर्ववान् पर्वतः (पर्वत पर्व वाला होता है ।)
शिला शिखर सम्बन्धिभिः असौ पर्ववान् भवति (शिला और शिखरों की सन्धियों से पर्वत पर्व अर्थात् जोड़ वाला होता है) ।
अर्थ – (१) पर्वत, (२) मेघों में भी पर्व-सन्धि रहती है ।
'महान्तमिन्द्र पर्वतं वियद्वः'
ऋ. ५.३२.२., साम. १.३१५, नि. १०.९.
हे इन्द्र, तूने महान् मेघ को उन्मुक्त किया ।
'बडित्था पर्वतानाम्
खिद्रं बिभर्षि पृथिवि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२. मै.सं. ४.१२.२, १८१.१, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९, नि. ११.३७.
हे पृथिवी अर्थात् विद्युत्, तू इस भूमि या अन्तरिक्ष में (इत्था) बल रखती है जिससे मेघ छेदे जा सकते हैं (खिद्रम् बलम्) ।
हे विद्युत्, तू सचमुच इस अन्तरिक्ष में (इत्था) मेघों का छेदक बल धारण करती है ।
'पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि' ।
प्र पर्वतानामुशती उपस्थात्
अश्वे इव विषिते हासमाने'
ऋ. ३.३३.१, नि. ९.३९.
ये पर्वत की गोद से आती हुई विपाशा और शुतुद्रि नदियां इस प्रकार वेग से चलती हैं– जैसे वाजिशा से छूटी घोडियां हिनहिनाती चलती हैं ।
(३) पूर्ण सामर्थ्यवान् परमेश्वर (४) पर्ववाला मास (५) पालन करने वाला शासक ।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम्
अ. २०.३४.११
'उदुग्रिया पर्वतस्य त्मनाजत्'
ऋ. १०.६८.७, अ. २०.१६.७
(६) पूर्ण ज्ञान देने वाला गुरु ।

पर्वतच्युत् – (१) मेघ से युक्त (२) जो मेघ से च्युत करता है, (३) प्रबल शत्रु को छिन्न भिन्न करने वाला ।
'इमां वाचमन जा पर्वत च्युते'
ऋ. ५.५४.१,

पर्वताः– पोरु वाले अंगों से स्थित हड्डियां ।
'आस्थाने पर्वता अस्थुः'
अ. ६.७७.१, अ. ७.९६.१

पर्वती– (१) पालन करने के बल से युक्त ।
'धिषणासि पर्वती'
वाज.सं. १.१९, श.ब्रा. १.२.१.१५

पर्वतीय – (१) पूर्ण ज्ञान देने वाले गुरु से प्राप्त ज्ञानाञ्जन, (२) पर्वत से प्राप्त अञ्जन, (३) पालन करने वाले राजा के पद पर अधिष्ठित
'चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनम्'
अ. १९.४५.३

पर्वतेष्ठ– (१) मेघ में स्थित विद्युत् (२) पर्वत में स्थित ।

पर्वन् – (१) पृ (पूरणार्थक) + वनिप् = पर्वन् । 'यः पूरयति' (जो पूर्ण करता है वह पर्व है) । प्री (प्रीरणार्थक) + वनिप् = पर्वन्, (प्री के ई का अ और र का आगम) । 'प्रीणयन्ति स्वाश्रयम् इति पर्वाणि (जो अपने आश्रय को प्रसन्न करते हैं वे पर्व हैं) ।
अर्थ– (१) पर्व, ग्रन्थि, गिरह, गाँठ, पोर । (२) हड्डी का जोड़ ।
'निर्मज्जानं न पर्वणोः जभार'
ऋ. १०.६८.९, अ. २०.१६.९

पर्शनः– (१) स्पर्श पाने वाला, (२) पीडित ।
'गिरयश्चिन्नि जिहते
पर्शनासो मन्यमानाः'
ऋ. ८.७.३४

पर्षः– (१) धान्य –सहित पुआल ।
'खले न पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०.
जैसे खलिहान में धान्य सहित पुआल को रौंद देते हैं वैसे ही मैं अपने शत्रुओं को एक ही साथ मसल डालता हूँ । (२) पुरुष । अंग्रेजी का Person शब्द पर्ष से मिलता जुलता है ।

पर्षणिः – (१) पार पहुंचा देने वाला ।
तं त्वा नावं न पर्षणिं
शूषस्य धुरि धीमहि ।
ऋ. १.१३१.२, अ. २०.७२.१
(५) पार करने वाला । पार + सन् + इन ।
पारवीर कर्म समाप्तौ,

पर्षत् – पार करे ।
'सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वाः'
ऋ. १.९९.१, अ. ७.६३.१, तै.आ. १०.२.१, महा.ना.उप. ६.२. नि. १४.३३.
वह अग्नि या परमेश्वर सभी दुर्गमनीय दुःखों से हमें पार करें (अति पर्षत्)।
(२) नष्ट करे ।
'स नः पर्षदति द्विषः'
ऋ. १०.१८७.१–५, अ. ६.३४.१–५, मै.सं. ४.१०.६,१८५.७, का.सं. २१.१३, ऐ.ब्रा. ५.२१.२०, ऐ.आ. ४.६,४.७, आश्व.श्रौ.सू. २.१८.३.
(वह हमारे शत्रुओं को नष्ट करें)

परा – (१) एक उपसर्ग, (२) उस पार जैसे 'परागत' लांघ गया । (३) पर + टाप् = परा । (४) परा और अपरा विद्या के भेद (५) द्युलोक ।
'परावत आजगन्था परस्याः'
ऋ. १०.१८०.२, साम. २.१२२३.
(१) ऊर्ध्व शरीर की नाड़ी, (२) बड़ी स्त्री ।
'तिष्ठावरे तिष्ठ परे'
अ. १.१७.२

पराकः – (१) दूर स्थित परमकर्त्ता आत्मा ।
'यस्येदं दूतीरसरः पराकात्'
ऋ. १०.१०८.३
(२) दूर स्थित ।
'सचस्वनः पराक आ
सचस्वास्तमीक आ'
ऋ. १.१२९.९
दूर देश में भी तू हमें प्राप्त हो (नः पराके आसच स्व) और अति समीप हमारे घरमें भी तू प्राप्त हो (अस्तमीके) (३) दूर ।
'आन्तादा पराकात्'

ऋ. १.३०.२१.
अति निकट या अति दूर से
पुनः दूर देश के अर्थ में-
'यन्नासत्या पराके'
ऋ. ८.९.१५, अ. २०.१४१.५
'एषास्या यजाना पराकात्'
ऋ. ७.७५.४

पराकात्तात् - पराकात् + तात्। दूर से भी दूर से
'पराकात्ताच्चिदद्रिवः'
ऋ. ८.९२.२७

पराके - (१) पराक्रान्ते, दूरे, दूरिस्थित (२) दूर देश -सा. (३) दूर, पृथक,
'तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके।'
ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.७, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.
जो तू सर्वगुण- सम्पन्न ईश्वर है उस एक महान् तथा इस अन्तरिक्ष से भी महान् तथा इस अन्तरिक्ष से भी दूर देश में बसने वाले को (तं त्वा तवसम् अस्य रजसः पराके क्षयन्तम्) मैं क्षुद्र या अमहान् (अतव्यान्) स्तुतियों से प्रणाम करता हूँ (गृणामि) -
इस पृथ्वी से (अस्य रजसः) दूर पृथक् रहते हुए तुझ को (पराके क्षयन्तम्) महाशक्तिशाली उस तुझ को (तव सम् तम्) भजता हूँ (तृणामि)
परागत - कहीं अन्यत्र गया हुआ
'यद्वो मनः परागतम्'
अ. ७.१२.४.

पराङ् - दूर देश से आक्रमण करने वाला।
'जहि प्रतीचो अनूचः पराचः'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३०.१.४

पराङ्गनाः- पूर्वबीते की चिन्ता करने वाला।
'मात्र तिष्ठः पराङ्गनाः'
अ. ८.१.९

पराचः - (१) पराञ्चनम्, पराङ् मुखगमनम् (पराङ् मुख होकर गमन करना) पर + अञ्च् + ल्युट् = पराञ्चन् = पराच ('पृषोदर' आदि के जैसा) (२) बहुत चलने वाला।
'दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः'
ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५
यह मार्ग दूरी पर है और बहुत चलने वालों के लिये भी दुस्साध्य है।
यह मार्ग बहुत दूरी पर है और पराङ् मुख चलने वाले से ही गम्य या प्राप्य है।

पराचीन - (१) दूर तक फैला हुआ, विशाल।
'पराचीन मुखा कृधि'
अ. ६.१०६.२, वाज.सं. १६.५३, तै.सं. ४.५.१०.५ मै.सं. २.९.९, १२८.६
(२) देह से बाहर जाता हुआ प्राण।
'पराचीनाय ते नमः'
अ. ११.४.८

पराचैः - पर + चि + डैसि = पराचैः। अर्थ - (१) दूर।
'युद्ध शूर वृषमानः पराचैः'
ऋ. १.६३.४
'आरेबाधेथां निर्ऋतिं पराचैः'
ऋ. ६.७४.२, तै.सं. १.८.२२.५, मै.सं. ४.११.२, १६५.१२, का.सं. ११.१२.
(२) अव्यय। दूर से ही।

पराजिता - पर + अजिता। शत्रु सेना से हारे बिना।
'पुनरेतु पराजिता'
अ. ३.१.६

पराञ्च् - (१) दूर गया, (२) दूर का शत्रु, (३) दूरगत चिरकालिक संस्कार।
'जहि प्रतीचो अनूचः पराचः'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३.१.४.

पराञ्चः - ब.व.। (१) दूरवर्ती (२) कारण रूप से स्थित पदार्थ (३) दूर के ग्रह आदि, (४) दूर लोक में स्थिति जीवगण जो ब्रह्म से दूर हैं।

परातरम् - खूब अच्छी तरह से।
'परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम्'
ऋ. १०.५९.१-४.

पराणुद् - (१) शत्रु का जिसमें नोदन हो युद्धस्थल, संग्राम।
'स्थिरा व सनवायुधा पराणुदे
वीळू उतप्रतिष्कभे'
ऋ. १.३९.२
आप लोगों के युद्ध करने के अस्त्र शत्रुओं को दूर हटा देने वाले संग्राम के लिये स्थिर अर्थात् सुदृढ़ हों और शत्रुओं को रोकने और मुकाबले पर डट जाने के लिए (प्रतिष्कभे) वे अस्त्र दृढ़

लें ।
(२) परे हटना ।
'स्थिराणि न पराणुदे'
ऋ. ८.१४.९, अ. २०.२८.३, २०.३९.४, ऐ.ब्रा. ६.७.८, गो.ब्रा. २.५.१३.

परादद्दि – (१) बहुत पराजय करने वाले, (२) बहुत देने वाला ।
'असि भूरि परा ददिः'
ऋ. १.८१.२, अ. २०.५६.२, साम. २.३५३.

परादान – जो दूसरों से लिया जाता है ।
'यद् दत्तं यत्परादानम्'
वाज.सं. १८.६४, श.ब्रा. ९.५.१.४९.

परादाः – पराङ्मुख को, नाश करे ।
'अधस्मा नो मघवन् चर्कृतादित्
मानोमघेव निष्षपी परा दाः'
ऋ. १.१०४.५.
हे मघवन् । बार-बार की गई हमारी स्तुति रूपी कर्म से (चकृतात्) हमें पराङ्मुख न करें (मा परादाः) जैसे लम्बा एवं विषयी मनुष्य अपने धन को नष्ट करता है (निष्षपी मघा इव)– अतः हे राजन्, दुष्कृत कर्म से (चकृतात्) हमें रक्षा करें, परन्तु जैसे व्यभिचारी मनुष्य धन नष्ट करता है (निष्षपी मघा इव) एवं दुर्व्यसनों में पड़वा कर हमारा नाश न कीजिए (नः मा परादाः) –दया. ।

परादै – त्याग देने योग्य ।
'अधाय भूम हरिवः परादै'
ऋ. ७.१९.७, अ. २०.३७.७, तै.सं. १.६.१२.६, मै.सं. ४.१२.३, १८३.२.

परानी – परा + नी । दूर एकान्त में ले जाना ।
'ये गोपतिं परानीय'
अ. १२.४.५२

परापरा – अति अधिक, बड़ी से बड़ी ।
'मो षु णः परा परा
निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्'
ऋ. १.३८.६.

परापरैता – परा + परा + एता । दूर दूर देशों में जाने वाला व्यापारी ।
'परापरैता वसुविद् वो अस्तु'
अ. १८.४.४८

पराभूत्याः पुत्र – अपमान का पुत्र स्वप्न ।
'पराभूत्या पुत्रोऽसि'
अ. १६.५.७

परायण – आयन अर्थात् घर में रहने वाला स्थान से दूर ।
'आपने से परायणे
दूर्वे रोहन्तु पुष्पिणीः'
ऋ. १०.१४२.८, अ. ६.१०६.१.

परायतिः – सबका प्राप्य स्थान ।
'सहस्रणीतिर्यतिः परायतिः'
ऋ. ९.७१.७

परायन – दूर देश को जाता हुआ ।
'परायतो निवर्तनम्'
अ. ७.३८.१

परायती – पूर्व की बीती हुई –उषा ।
'परायतीनामन्वेति पाथः
आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्'
ऋ. १.११३.८
पूर्वबीती हुई उषाओं के मार्ग का अनुसरण करती हुई आगे आने वाली उषाओं में से सबसे पहली है ।

परापुर् – (१) दूर देश का वासी ।
'परापुरो निपुरो ये भरन्ति'
अ. १८.२.२८, वाज.सं. २.३०, श.ब्रा. २.४.२.१५, आश्व.श्रौ.सू. २.६.२, शां.श्रौ.सू. ४.४.२, आप.श्रौ.सू. १.८.७, साम.मं.ब्रा. २.३.४.
(२) दूर दूर तक महल भवन बनाने वाला ।

पराभूत – (१) आत्मा से अतिरिक्त इन्द्रिय, मन और शरीर आदि कारणों द्वारा प्राप्त, (२) पराचीनेन पाणिना आहुतं प्रक्षिप्तम् ।
'स नोनियच्छात् वसुयत् पराभृतम्'
अ. ७.४१.२.

परामृश – (१) लोट प्र.ए.व. का रूप । छू, अंग को छू – (२) परामर्श कर –दया. ।
'उपोप मे परामृश'
ऋ. १.१२६.७, नि. ३.२०.
हे पतिदेव, मेरे अति निकट आ मेरे अंगों को छू ।
हे पतिदेव मेरे साथ भली भांति परामर्श कर –दया.

परामृष्टा – (१) कठोर स्पर्श को प्राप्त करती हुई ।
'मिथोयोधः परामृष्टा'

अ. १२.५.२४.

परायण – (१) परमस्थान, मोक्ष (२) पराङ्मुख गमन ।

'य उदानट् परायणम्'

ऋ. १०.१९.५, अ. ६.७७.२.

परायत् – जुआ खेलने के लिये अड्डे पर जाता हुआ पुरुष ।

'परायद्भ्योऽवहीये सखिभ्यः'

ऋ. १०.३४.५.

जुआ खेलने जाते हुए मित्रों को देखकर मैं अपने को उन से हीन समझने लगता हूँ (अवहीये) या (सायण के अनुसार) यह सोचने लगता हूँ कि मैं पहले पासा न फेंकूंगा ।

परायती – परलोक जाती हुई, (२) दूर जाती हुई ओषधि या पीछे प्राप्त हुई ओषधि ।

'परायती मातरमन्वचष्ट'

ऋ. ४.१८.३

'अथो हन्ति परायती'

ऋ. १.१९१.२.

परायणम् – परा + अयनम् (१) जीवों का दूर – परमपद को प्राप्त करना ।

'संज्ञानम् यत् परायण्'

ऋ. १०.१९.४

(२) परदेश जाना ।

'मधुमन्मे परायणम्'

ऋ. १०.२४.६, अ. १.३४.३.

(३) गृह का पिछला–पीछे का निकास ।

'आयने ते परायणे
दूर्वा रोहतु पुष्पिणी'

ऋ. १०.१४२.८, अ. ६.१०६.१

(४) कार्यों का समाप्ति तक पहुंचाना या पुनः अन्त ।

परावत् – (१) परमपद मोक्ष में स्थित परमेश्वर ।

'ये सोमासः परावति'

ऋ. ८.९३.६, ९.६५.२२, अ. २०.११२.३, साम. २.५१३, पंच.ब्रा. १४.५.९

(२) दूर का देश ।

'परावतश्च वृत्रहन्'

ऋ. ३.४०.८, अ. २०.६.८, मै.सं. ४.१२.३,१८४.९.

(३) परम ज्ञान की रक्षा करने वाली वेदवाणी ।

'बृहस्पते या परमा परावत्'

ऋ. ४.५०.३, अ. २०.८८.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.९.

परावत– परा + वति + परावत्, परावत् + अच् = परावत । अर्थ है– दूर से भी दूर ।

परावाक – (१) पराभव को कहने वाला दूत (२) प्रतिकूल या दूर करने का उपदेश ।

'परावाकाय ते नमः'

अ. ६.१३.२

परावृज– (१) दूर त्याग किया हुआ (२) अनाथ जिसे बन्धु बान्धव छोड़कर चले गए हों ।

'नीचा सन्तमुदनयः परावृजम्'

ऋ. २.१३.१२.

(३) यः परिवृणक्ति– (जो दूर करता है) –दया ।

'आविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक्'

ऋ. २.१५.७

(४) धर्म मार्ग से पराङ्मुख होने वाला ।

'याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजम्'
प्रान्धं श्रोणं चक्षसे एतवे कृथः'

ऋ. १.११२.८

जिन शक्तियों से समस्त सुखपूर्वक तुम दोनों तो धर्म मार्ग से प्राङ्मुख जाने वाले (परावृजम्) चक्षुहीन (प्रान्धन्) अज्ञानी या वधिर का (श्रोणम्) सम्यक् दर्शन करने योग्य और लंगड़े के चलने में अच्छी प्रकार समर्थ कर देते हो (एतवे कृप्यः) ।

पराशर – (१) दूर के शत्रुओं का नाशक इन्द्र ।

'पराशरत्वं तेषां'

अ. ६.६५.१

(२) परा + शृ + रक = पराशर पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे । (अतिजीर्ण वसिष्ठ का नप्ता (वसिष्ठ के पुत्र शक्ति के मरने पर पराशर उत्पन्न हुए) ।

अर्थ – (१) वसिष्ठ का पौत्र पराशर, (३) अड़तालीस वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारी का पुत्र (४) पराशीर्ण–वसिष्ठ– स्थविरः उसका पुत्र पराशर, (५) इन्द्र (इन्द्रोऽपि पराशरः) (६) उच्यते पराशयिताऽपि पराशरः – इन्द्र भी पराशर है, क्योंकि वह राक्षसों का श्रेष्ठ विनाशक है ।

'प्र ये गृहादममदुस्त्वाया
पराशरः शतमातुर्वसिष्ठः
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ता

अधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्'
ऋ. ७.१८.२१
हे इन्द्र, वसिष्ठ का नाती तथा शक्ति का पुत्र पराशर हुए। वे बहुतों के नष्ट करने वाले हुए (शतयातुः) या पराशर के पिता शतपातु, शक्ति और वसिष्ठ आदि जो ऋषि तेरे साथ घर पर जा घर जाकर सोम पीकर या यज्ञों में अत्यन्त प्रसन्न हुए (प्रअममदुः) वे पराशर आदि ऋषि (ते) तुझे भोजक या भोजी का संग नहीं बिसारते (भोजस्य सख्यं न मृषन्त) और इसी कारण से (अधा) विद्वानों के पास (सूरिभ्यः) सुन्दर दिन आते हैं (सुदिना व्युच्छान्) अर्थात् उन्हीं मनुष्यों की रात्रियां सुन्दर प्रभात वाली होती हैं।
अन्य अर्थ - हे राजन्, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी का पुत्र, सब दुर्गुणों का नाशक और आदित्य ब्रह्मचारी (पराशर शतयातुः वसिष्ठ) यदि तेरी नीति के कारण (त्वाया) गृहस्थाश्रम को पाकर अत्यन्त प्रसन्न रहे (गृहात् अममदुः) तो वे तुम राष्ट्रपालक के सुख को नहीं छोड़ते (भोजस्य सख्यं न मृषन्त) और इन विद्वानों के साथ मित्रता होने पर उनके साथ उत्तम दिन बिताते हैं (अधाता सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छन्)।
इन्द्र के अर्थ में पराशर शब्द का प्रयोग।
'इन्द्रोयातूनामभवत् पराशरः
हविर्मथीनामभ्या विवासताम्'
ऋ. ७.१०४.२१, अ. ८.४.२१, नि. ६.३०.
इन्द्र राजा यज्ञविध्वसंक (हविर्मथीनाम्)और धर्म कार्य को निर्वासित करने वाले आततायियों का (अभ्याविवासताम् यातूनाम्) सम्पूर्ण तया दमन करने वाला है(पराशरः अभावत्) और शक्ति शाली राजा या इन्द्र (शक्रः) जैसे कुल्हाड़ी वृक्ष को काट डालती है (यथा परशुः वनम्) और जैसे मुद्गर मिट्टी के पात्रों को तोड़ डालता है (पात्रा इव) एवं प्राप्त राक्षसों का नाश करता हुआ (सतः रक्षसः भिन्दन्)। सुख सम्पत्ति को पाता है (अभ्येति)।
(७) प्रबल विनाशक, (८) दुष्टों का हिंसक -दया. (९) पराशर नामऋषि।
'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः'
ऋ. ७.१८.२१, नि. ६.३०.

पराशस् - परा + शसु (हिंसा करना) + क्विप् = पराशस् (१) पराङ्मुख हिंसा।
(२) सत्कर्मों से दूर ले जाकर आत्मा का नाश करने वाला -पाप -।
'अवशसा निः शसा यत् पराशसा'
अ. ६.४५.२

परासः- (१) पालन करने में कुशल, (२) बाद में होने वाले।
'अधायथानः पितरः परासः'
ऋ. ४.२.१६, अ. १८.३.२१, वाज.सं. १९.६९, तै.सं. २.६.१२.४, ऐ.ब्रा. ७.६.४.

पारसः पितरः- (१) द्युलोक में रहने वाले पितर लोग।
(२) उत्तम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पितर लोग-दया.। आर्य समाजी विद्वान् पितरः का अर्थ प्रेतात्मा नहीं मानते।
'उदीरतामवर उत्परास:
उन्मध्यमाः पितरःसोम्यासः'
ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५७.४, ऐ.ब्रा. ३.३७.१३, नि. ११.१८.
जो निकृष्ट पितर पृथ्वी में आश्रित हैं वे ऊपरी लोक में आवें (अवरे पितरः उदीरताम्)। जो द्युलोक में स्थित हैं वे ऊपर उठें और मोक्ष पावें और जो मध्यस्थानाश्रयी हैं वे उत्तम लोक प्राप्त करें।
स्वामी दयानन्द अर्थ- प्रथम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पितर हमें शिक्षा प्रदान करें। उत्तम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पितर हमें शिक्षा प्रदान करें और मध्यम श्रेणी के पितर हमें शिक्षा प्रदान करें।
दिवंगत पितरों का कर्मानुसार अनेक लोगों में वास थियोसफीमत वाले भी मानते हैं।
यह ऋचा मननीय है।

पराहता- ताड़ित।
'मीढुष्मतीव पृथिवी पराहता'
ऋ. ५.५६.३

पर्ता- पालक, पूरक।
'तां अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वम्'
ऋ. ७.१६.१०
'पर्षितोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वम्'
ऋ. ६.४८.१०, साम. २.९७४

पर्याक्रियमाणा- पूर्णरूप से विकृत कर दी गई ।
'मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा'
अ. १२.५.३३.
पर्याकृता - पूर्णरूप से विकृत की गई ।
'क्षितिः पर्याकृता'
अ. १२.५.३३.
पर्याणद्ध- चारों तरफ सुसम्बद्ध रूप से बंधा हुआ । या पहना हुआ आभूषण आदि ।
'पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति'
अ. १४.२.१२.
पर्याभृत- प्राप्त किया गया ।
'सिन्धु तस्पर्याभृतम्'
अ. ७.४५.१
'वनस्पतिभ्यः पर्याभूतं सहः'
ऋ. ६.४७.२७, अ. ६.१२५.२, वाज.सं. २९.५३, का.सं. (अश्व.) ६. १.
पर्यायिणी- (१) पर्याय अर्थात् क्रम से कालों का ज्ञान कराने वाली यन्त्रकला या गणित विद्या (२) एक बार नर और एक बार नारी उत्पन्न करने वाली स्त्री ।
'संवत्सराय पर्यामिणीम्'
वाज.सं. ३०.१५, तै.ब्रा. ३.४.१.११
पर्याणिक - पर्याय सूक्त ।
'पर्यायिकेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.७
पर्यायी- समीप आने वाला ।
'नैनं घ्नन्ति पर्यायिणः'
अ. ६.७६.४.
पर्यावृत- परि + आ + वृत् = करवट बदलना ।
'यच्छयानः पर्यावर्ते'
अ. १२.१.३४.
पर्शान- (१) पास, कोंख ।
'नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम्'
ऋ. ७.१०४.५, अ. ८.४.५.
(२) विवेक शील पुरुष ।
'यत् पर्शाने पराभृतम्'
ऋ. ८.४५.४१, अ. २०.४३.२, साम. १.२०७, २.४२२.
(३) पार्श्व का बल समुदाय ।
परि - (१) पूर्ण सामर्थ्य वाला ।
'परित्रयः प्रदाकवः'
अ. २०.१२९.८, ९.शां.श्रौ.सू. १२.१८.८.
(२) समीप ।
'हृदयानजायते परि'
अ. ९.८.८
(३) ऊपर ।
'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.स. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१. का. सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २.११.२१.
यह जातप्रज्ञ अग्नि पहले द्युलोक के ऊपर (दिवःपरि) आदि के रूप में उत्पन्न हुआ (जज्ञे) या अग्रणी श्रेष्ठ मनुष्य सर्वप्रथम ज्ञान प्रकाश देने वाले ब्रह्मचर्याश्रम में उत्पन्न होता है । हिन्दी का 'पर' विभक्ति इसी 'परि' से निकला है । जैसे वृक्ष पर ।
(४) यहां ।
'अस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, द्वितीय अग्नि हम लोगों के यहां (अस्मत् परि) अग्नि रूप में उत्पन्न हुआ । पुनः
'अदितेर्दक्षो अजायत
दक्षाद्वदितिः परि'
ऋ. ८.३.१.४.
सन्ध्या के पश्चात् (अदितेः) सूर्य उत्पन्न हुआ (दक्षः अजायत) और सूर्य से (दक्षात् परि) सन्ध्या उत्पन्न हुई ।
अन्य अर्थ- अदिति से दक्ष और दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई -सा. (५) अव्यय । समान अर्थ में भी प्रयुक्त ।
'धक्षोर्न वाताः परिसन्त्यच्युताः'
ऋ. १०.११५.४
परिआसते- पयरिसते । घेर कर बैठते हैं ।
परिक्षित् - (१) प्रजा की रक्षा के लिए उनके चारों ओर रक्षक रूप से विद्यमान्, (२) अपने इर्द गिर्द प्रजा को बसाने वाला, (३) शत्रुओं का नाश करने वाला, (४) अग्निर्वै परिक्षित् । अग्नि र्हि इमाः प्रजा परिक्षियन्ति'
(अग्नि परिक्षित् है, अग्नि प्रजा के चारों ओर रक्षक है और अग्नि के चारों ओर समस्त प्रजा बसती हैं ।)
'आश्रृणोता परिक्षितः'

अ. २०.१२७.७, शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.१.
(५) सर्वतः निवसत -दया. (६) समीप साथ निवास करते हुए रात दिन (७) पतिपत्नी ।
'परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकः
अद्यौदुषाः शोशुचता रथेनः '
ऋ. १.१२३.७.

परिक्षव- चारों ओर से घृणा का भाव ।
'परिवादं परिक्षवम् '
अ. १९.८.४

परिक्षिता- (१) बालकों को ऊपर और साथ रहने वाले माता पिता, (२) दोषों का सब प्रकार से दूर करने वाले ।
'परिक्षिता पितरा संचरेते '
ऋ. ३.७.१
(३) एक अन्तरिक्ष में रहकर भी पृथक् रहने वाले द्यावापृथिवी (४) खूब ऐश्वर्य युक्त माता पिता ।
'परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी '
ऋ. १०.६५.८

परिकृत्यमानः- टुकड़े टुकड़े काटा जाता हुआ ।
'कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः '
अ. ४.१६.७, का.सं. ४.१६.

परिक्रोश- (१) रुलाने वाला व्यवहार, (२) प्रजा को रुलाने वाला, (३) सर्वत्र निन्दा फैलाने वाला दुष्टपुरुष ।
'सर्वं परिक्रोशं जहि '
ऋ. १.२९.७, अ. २०.७४.७.
सब प्रकार से प्रजा को रुलाने वाले सर्वत्र निन्दा फैलाने में दुष्ट पुरुष का विनाश कर ।
(४) निन्दा करने वाला ।

परिगधिता- परि + गध (आलिंगन करना) + क्त + टाप् = परिगधिता । (१) प्रगाढ़ रूप से आलिंगित ।
(२) सब तरह से संयुक्ता -दया. । गध् धातु को 'मिश्रीभाव' में स्वा. दयानन्द ने लिया है ।
'आगधिता परिगधिता '
ऋ. १.१२६.६, नि. ५.१५.
आलिंगित की गई प्रगाढ़ आलिंगन करने पर भी... सब कर्मों में मेरे साथ मिली हुई और सब तरह से संयुक्त रानी -दया.

परिचक्ष्यम् - (१) वर्जनीयम् परित्याज्यम् (२) प्रख्यातम्, प्रख्यापनीयम् (परित्याग करने योग्य या प्रख्यात) प्रतिपन्नरश्मि, या प्रकाश जगत्, 'अपरिचक्ष्य' का अर्थ 'अप्रकाश्य जगत ' है ।
'किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्
प्रयद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्
यदन्यरूपः समिथे बभूथ '
ऋ.७.१००.६, साम. २.९७५, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.५, नि. ५.८.
वसिष्ठ कहते हैं - हे विष्णो, तू जो अपना यह नाम मुझे बार बार कह रहा है कि मैं शिपि विष्ट हूँ (ते यत् प्रयत् ववक्षे शिपिविष्टेऽस्मि) अर्थात् शेप के संदृश तेज से निर्वेष्टित हूँ या शरीर में व्याप्त वीर्य की तरह सर्वत्र व्याप्त हूँ, अप्रतिपन्न रश्मि अनाच्छादित हूँ, वह नाम क्या परित्याज्य या प्रख्यात है (किं परिचक्ष्यं भूत)? वह नाम अच्छा नहीं है अतः हमसे (अस्मत्) अपना यह वैष्णवीरूप (एतत् वर्पः) मत छिपा (मा अपगूहः) क्योंकि अन्य रूप धारण कर (अन्यरूप) संग्राम में (समिथे) तू हमारा सहायक बना है (बभूथः) ।
अन्य अर्थ - हे परमेश्वर, क्या यही तेरा सामान्य रूप है जिसे तू बतलाता है कि शरीर में व्याप्त वीर्य की तरह मैं इस भूमंण्डल में व्याप्त हूँ या सूर्य रश्मियों के साथ इस भूमण्डल में प्रविष्ट हूँ ? नहीं तेरा अन्य रूप भी है । हे परमेश्वर, जिस अन्य रूप में संसार रूपी रंगस्थली में तू व्याप्त है उस रूप को हम से मत छिपा ।

परिचर- परिचारक, सेवक, भृत्य, नौकर ।
'यस्यामापः परिचराः समानीः '
अ. १२.१.९
'नमो निचेरवे परिचरायः '
वाज.सं. १६.२०, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.४, का.सं. १७.१२.

परिचित् - सब ओर से ज्ञान संग्रह करने वाला ।
'चितस्थ परिचितः '
वाज.सं. १२.४६, तै.सं. ४.२.७.४, का.सं. १.७, १६.११, ३१.६, ३८.१२, तै.आ. ४.५.५., ५.४.८, ६.६.२, आप.श्रौ.सू. १५.७.९, १६. १४.४, २०.९, १९.११.९.

परिजज्ञिरे - उत्पन्न हुए ।
'ते अग्नेः परिजज्ञिरे'
ऋ. १०.६२.५, नि. ११.१७
वे अंगिरस के पुत्र अग्नि से उत्पन्न हुए । वे संन्यासी वानप्रस्थाश्रम से (अग्नेः) उत्पन्न हुए (परिजज्ञिरे) ।
अग्नि वानप्रस्थाश्रम का भी वाचक है ।

परिजगन्वांसा - सर्वत्र गमन करने वाले - मित्रावरुण ।
'परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वाँसा स्वर्णरम्'
ऋ. ५.६४.१

परिजर्भुराण- शत्रुओं को पुनः पुनः दूर करता हुआ
'वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः'
ऋ. १.१४०.१०
संग्रामों में शत्रुओं को पुनः पुनः दूर करता हुआ ।

परिज्मन् - (१) परितः ज्मन् (चारों तरफ उठती या जाती हुई) (२) भूमि पर - । 'ज्मा' शब्द का अर्थ पृथ्वी मानकर परिज्मन् का अर्थ 'पृथ्वी पर' किया गया है ।
'वयो न पप्तू रघुया परिजन्मन्'
ऋ. २.२८.४.
लघुगति से चारों ओर जाती हुई या उड़ती चिड़ियों सी (रघुया परिजन्मन वयो न) सूर्य की रश्मियाँ नीचे गिरती हैं (पप्तुः) ।
जैसे शीघ्र गामी पक्षी उड़ती और भूमि पर आती है ।

परिज्रयः - ब.व. । एक वचन में रूप है - 'परिज्रि' । अर्थ है-(१) सर्वत्र गमन करने वाले वायुगण (२) सब देशों और स्थानों में जाने वाले विद्वान्, वीरजन ।
(३) सब ओर से पदार्थों को जीर्ण करने वाले -(दया.)
'भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः'
ऋ. १.६४.५
सर्वत्र गमन करने वाले वायुगण जल से भूमि को तृप्त करते हैं ।
सर्वत्र विचरण करने वाले वीरजन भूमि को अन्न एवं ऐश्वर्य आदि से सींचते हैं ।

परिजाः- ब.व.। (१) साथ साथ उत्पन्न होने वाली प्रवृत्तियाँ, दुष्परिणाम ।
'विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्तात्'
अ. १९.५६.६

परिजात- उत्पन्न ।
'पुमान् पुंसः परिजातः'
अ. ३.६.१.

परिज्मा- सर्वत्र गतिमान् सर्वाप्रकाम ।
'परिज्मा चित्क्रमते अस्य धर्मणि'
अ. ७.१४.४, आप.श्रौ.सू. ५.१८.२, शां.श्रौ.सू. ८.३.४.

परिज्माना- (१) चारों ओर घूमने वाले दो ग्रह- सूर्य, चन्द्र (२) अश्विद्वय, (३) स्त्रीपुरुष ।
'परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा'
ऋ. १०.१०६.३.

परिज्रिः- चारों ओर जाने वाला ।
'स्वरन्त्यापोऽवन्ता परिज्रयः'
ऋ. ५.५४.२

परितक्म्य- (१) परितः हर्ष निमित्त चारों ओर से सब प्रकार से हर्ष का निमित्त अग्नि -परमेश्वर
(२) चारों ओर से आक्रमण करने योग्य युद्ध ।
'यः शूरसाता परितक्म्ये धने'
ऋ. १.३१.६

परितक्म्या - परितकनम् परितः भ्रमणम् गमनं वा (सर्वत्र जानां या घूमना) ।
परि + तक (गमनार्थक) + मनिन् = परितक्मन् ।
परि + तक्मा + यत् = परितक्म्या) अर्थ है
(१) रात्रि । रात्रि सभी जगह जाती है ।
(२) तक्मा उष्ण अर्थ में भी लिया गया है । तक् + मनिन् = तक्मन् । उष्म गतिशील है । उभयतः तक्मा उष्णं यस्याः सा परितक्म्या रात्रिः (जिसके दोनों ओर उष्ण हो उसे परितक्म्या या रात्रि कहते हैं) ।
(३) अथवा रात के दोनों ओर उष्णा दिन रहते हैं । अतः वह परितक्म्या कही गई (तक्मनी उष्णभूते दिने पूर्वोत्तरे ते एवा रात्रि परिगृह्य वर्तेते) ।
(२) आगमन
'कास्मे हितिः का परितक्म्यासीत्'
ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५.
हे सरमे, वहां यह रात्रि थी, इस समय हमारे यहां आने की क्या जरूरत थी ।
हे वेदवाणी, हमारी ओर आने का क्या काम ?

यह हमारी ओर आगमन क्यों ?
(३) अर्द्धरात्रि के बाद का समय - (४) अविद्या रूपी अन्धकार ।
'युवोः श्रियं परियोषा वृणीत
सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् मे'
ऋ. ७.६९.४, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.५, तै.ब्रा. २.८.७.८.
(५) चारों ओर से कठिनाई से जाने योग्य भूमि ।
(६) सब तरफ से आपत्ति युक्त संग्राम बेला ।
(७) सुख-दुःख देने वाली प्रकृति ।
'सूरश्चिद् रथं परितक्म्यायाम्'
ऋ. ५.३१.११.

परितन्तु- (१) सब ओर से फैला हुआ, विस्तृत ।
'परित्वा परितन्तुना'
अ. १.३४.५.

परितंस- अलंकृत करना ।
'प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै'
ऋ. ६.२२.७, अ. २०. ३६.७

परितंसयध्यै- सब प्रकार से सुशोभित करने के लिए

परिदीयत् - जावे ।
'रथोयद्वां पर्यर्णासि दीयत्'
ऋ. १.१८०.१

परिदेहत् - सुजादे ।
'अष्ठीवन्तौ परिकुल्फौ च देहत्'
ऋ. ७.५०.२

परिद्वेषाः - परितः द्विषन् (सर्वतः द्वेष करने वाला) -सब प्रकार से द्वेष करने वाला । परि + द्विष् + असुन् = परिद्वेषस्'
'मानः समस्य दूढ्यः
परिद्वेषसो अंहतिः'
ऋ. ८.७५.९, तै.सं. २.६.११.२, नि. ५.२३.
मुझे परिद्वेषियों का वध या उत्पात चोट न पहुँचावे ।

परिधान - न । (१) शरीर ढंकने का वस्त्र
'यत् ते वासः परिधानम्'
अ. ८.२.१६
(२) सब प्रकार से धारण करने में समर्थ,
(३) सब प्रकार से धारण पोषण का पदार्थ ।
'उक्षाह यत्र परिधानमक्तोः'
ऋ. ३.७.६.

परिधि- (१) वृत्त के चारों ओर घूमने वाली, रेखा,
(२) मेघ का पटल ।
'अभिनद् वलस्य परिधींरिवत्रितः यत्रितः'
ऋ. १.५२.५.
(३) परितः वर्तमान । परि + धा + कि = परिधि । जो चारों ओर से घेरे रहे - घेरा ।
'अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम्'
ऋ. ३.३३.६, नि. २.२६.
(४) नगर का कोट ।
'परिधिर्मनुष्याणाम्'
अ. १२.२.४४.
(५) उत्तम सुरक्षा ।
'जीवातवे ते परिधिं दधामि'
अ. ८.२.९
(६) चारों ओर से रक्षा और पोषण करने वाला ।
'यजमानस्य परिधिरसि'
वाज.सं. २.३. वाज.सं.(का.) २.१.४, मै.सं. १.१.१२, ७.१०.११ .
(७) सीमा
'यं परिधिं पर्यधत्थाः'
वाज.सं. २.१७, तै.सं. १.१.१३.२, मै.सं. ४.१.१४, २०.५, का.सं. १.१२.३१,११, श.ब्रा. १.८.३.२२, तै.ब्रा. ३.३.९.५, आप. श्रौ.सू. ३.७.१२.
(८) राष्ट्र को सब ओर से धारण एवं रक्षा करने वाला (९) दिशा ।
'दिशः परिधयः'
(१०) लोक ।
इमे लोकाः परिधयः
'प्रस्तरेण परिधिना'
वाज.सं. १८.६३, तै.सं. ५.७.७.२,
(११) सब तरफ से रक्षा करने वाला परिवार का अग्रणी व्यक्ति ।
'अन्य स्तेषां परिधिरस्तु कश्चित्'
ऋ. १.१२५.७.
उन परिवार के रक्षकों में कोई सब तरफ से रक्षा करने वाला हो (परिधि) (१२) धारक रक्षक देह (१३) सांसारिक जीवन, (१४) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञानमय शास्त्र ।
'यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्'
ऋ. ७.३३.१२.

परिधेय - (१) रक्षा करने के लिए परिधि अर्थात् राज्य सीमाओं पर रखने योग्य, (२) रक्षार्थ रखने

योग्य ।
'प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः'
वाज. सं. २.१८, वाज.सं. (का.) २.४.६, का.सं. १.१२, श.ब्रा. १.८.३.२५.
(३) देवों का विशेषण ।

परिनृत्य – (१) इधर उधर नाचना, (२) अश्लील चेष्टा करना ।
'ये शालाः परिनृत्यन्ति'
अ. ८.६.१०

परियतिः– (१) अधिपति ।
'पथस्पथः परियतिं वचस्या
कामेन कृतो अभ्यानऽर्कम्'
ऋ. ६.४९.८, वाज.सं. ३४.४२, तै.सं. १.१.१४.२, श.ब्रा. १३. ४.१.१५, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.८, नि. १२.१८.
मार्ग मार्ग के अधिपति अर्चनीय पूषा को मनोवांछित फल की प्राप्ति से वशीकृत स्तोता स्तुति द्वारा प्राप्त करें ।
(२) शुद्ध मन होता ।
(३) सब स्थानों पर पालन करने वाला– विष्णु, राजा ।
'आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे
शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय ।'
वाज.सं. ५.५

परिप्रीत – अति प्रसन्न ।
'दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रम्'
ऋ. १.१९०.६.

परिपद् – (१) आ पड़ने वाली विपत्ति ।
'अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव'
ऋ. ८.२४.२४, अ. २०.६६.३, साम. १.३९६.
(२) चारों ओर चलने वाली पृथिवी ।
(३) पंजा ।
'अवरुद्धः परिपदं न सिंहः'
अ. १०.२८.१०

परिपन्थी– (१) बटमार, डाकू , चोर ।
'मा विदन् परिपन्थिनः'
ऋ. १०.८५.३२, अ. १२.१.३२, १४.२.११, आश्व.गृ.सू. १.८.६, शां.गृ.सू. १.१५.१४, साम. मं.ब्रा. १.३.१२, गो.गृ.सू. २.४.२, आप.मं.पा. १.६.१०.
(२) प्रतिकूल मार्ग पर चलने वाला (३) मार्ग से हटकर छिपने वाला और मार्ग में जाते हुए पर आक्रमण करने वाला ।
'अपत्यं परिपन्थिनम्
मुषीपाणं हुरश्चितम्
दूरमधि स्रुते रज'
ऋ. १.४२.३
परिपन्थी, चुराए धन को सेंध मारकर ले जाने वाले (मुषीवाणम्), नाना प्रकार के कुटिल चालों से या झपट कर दूसरे के पदार्थों को हर लेने वाले (हुरश्चितम्) इन तीन प्रकार के चोरों को मार्ग से दूर कर (स्रुते दूरम् अधि अज)
(४) हत्यादि करने के इच्छुक बटमार ।
'मात्वा परिपन्थिनो विदन्'
वाज.सं. ४.३४, तै.सं. १.२.९.१, श.ब्रा. ३.३.४.१४.
(४) शत्रु ।

परिप्रजातः– उत्तम रीति से विराजमान ।
'परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ
भुवो देवानां पिता पुत्रः सन्'
ऋ. १.६९.२.
हे अग्नि या विद्वन् , तू क्रतु से या विज्ञान या उत्तम कर्मों द्वारा ही ऊपर उत्तम रीति से विराज मान हो, और तू विद्वान् उत्तम पुरुषों का पुत्र शिष्य होकर (देवानां पुत्रः) अन्य विद्या के अभिलाषी शिष्यों का भी पिता तुल्य आचार्य परिपालक गुरु हो ।

परिप्रधन्वा – (१) पात्रों में प्रवेश कर ।
(२) दिशाओं उपदिशाओं में प्राप्त रहे ।
'परिसोम प्रधन्वा स्वस्तये'
ऋ. ९.७५.५.
हे सोम, कल्याण के लिये पात्रों में प्रवेश कर (परिप्रधन्वा)
हे जगदुत्पादक प्रभो (सोम) आप हमें सभी दिशाओं उपदिशाओं में प्राप्त रहें (परिप्रधन्वा) सोम पात्र में सोम के प्रवेश के लिए यह प्रार्थना है ।

परिपाणः – (१) समस्त संसार का परिपालक ।
'परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा'
अ. २.१७.७
(२) सब ओर से सुरक्षित ।
'परिपाणः सुमङ्गलः'

अ. ८.५.१, १६, १९.३४.७.
(३) सब ओर से रक्षा करने वाला ।
'परिपाणोऽसि जंगिड्'
अ. १९.३५.३
(४) मध्य आदि उत्तेजक पदार्थों का पान ।
'तनूपानं परिपाणं कृणवाना'
अ. ५.८.६, ११.१०.१७
(५) सब तरह से रक्षक ।
'परिपाणं पुरुषाणाम्'
अ. ४.९.२,

परिप्रुष् – उत्तम शुक्ल कर्मों से शुद्ध अन्तःकरण वाला ।
'प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः'
ऋ. १०.७७.५

परिप्लव– (१) तारा, (२) आकाश में स्वच्छन्द से विहार करने वाला उपद्रव करने वाला धूम केतु ।
'परिप्लवेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२९, तै.सं. १.८.१३.३, मै.सं. ३.१२.१०,१६३.१२, का.सं. १५.३.

परिपानम् – (१) सबकी रक्षा करने वाला पद ।
'विदुर्विषाणं परिपानमन्तिते'
ऋ. ५.४४.११

परिपूत– पवित्र या दीक्षित हुआ ।
'तुभ्यायं सोमः परियूतो अद्रिभिः'
ऋ. १.१३५.२.

परिभरमाणः – सब ओर परिपुष्ट करता हुआ ।
'परिवर्णं भरमाणो रुशन्तम्'
ऋ. ९.९७.१५

परिभूः – (१) सर्वत्र रखने वाला, (२) अग्नि या परमेश्वर, का विशेषण ।
'देवो देवान् परिभूर्ऋतेन'
ऋ. १०.१२.२, अ. १८.१.३०.
हे अग्नि, तू द्योतमान देव इन्द्रादि देवों के निकट हवि आदि ले जाने के कारण सर्वत्र रहने वाला है । (देवः देवान् परिभूः) अतः यज्ञ के साथ (ऋतेन) हवि ले जा ।
हे परमेश्वर, वैदिक ज्ञान के द्वारा (ऋतेन) आप हमें सुख पहुंचाइए (नः हव्यं वह) । वह परमेश्वर सर्वपूज्य देवों में विद्यमान है (देवः देवान् परिभूः)
(३) यः परितः भवति (सर्वत्र व्याप्त परमात्मा) ।
'अपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्'
ऋ. १.५२.१२
(४) अपनी किरणों द्वारा सर्वत्र व्यापक सूर्य (४) आत्मा ।
'सर्वान् लोकान् परिभूर्भ्राजमानः'
अ. १३.२.१०
(६) सर्वोपरि शासक (७) चारों ओर से प्रजा की परकोट आदि से रक्षा, (८) दिशा ।
'परिभूश्छन्दः'
वाज.सं. १५.४, तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७, १११.१३, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.३.

परिभूतमः– सर्वत्र व्यापक ।
'अग्निं होतारम् परिभूतमं महिम्'
ऋ. १०.९१.८, साम. २.३३४, का.सं. ३९.१३. तै.सं. ३.११.६.३, आप.श्रौ.सू. १६.३५.५.

परिभूतिः– (१) उत्तम सामर्थ्य ।
'त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिः'
विश्वानि परिभूतिभिः'
ऋ. ७.६६.१०

परिमृश– विनाश करने की इच्छा करना ।
'यस्ते गर्भं परिमृशात्'
अ. ८.६.१८

परिमन्युः– (१) अति क्रुद्ध, मन्यु से परिवेष्टित जिसे सर्वत मन्यु हो ।
'ऋषि द्विषे मरुतः परिमन्येव'
ऋ. १.३९.१०
वेद, वेदविद् या ऋषि के द्वेषी मनुष्यों के प्रति क्रुद्ध होने वाले मरुतो या मनुष्यो ।

परिमिता – (१) चारों ओर से पर्याप्त प्रमाण वाली शाला ।
'अथो परिमितामुत'
अ. ९.३.१

परियत्त – सब प्रकार से नियन्त्रित ।
'दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः'
ऋ. ७.८३.८

परिरथ्य – रथ के ऊपर का पर्दा ।
'वाक् परिरथ्यम्'
अ. ८.८.२२.

परिराप् – पाप से पूर्ण पुरुष ।
'बृहस्पते वि परिरापो अर्दयः'

ऋ. २.२३.१४

परिरायी- (१) बुरी सम्मति देने वाला ।
'वदन्ति परिरापिणः'
अ. १२.४.५१
(२) नाना प्रकार से बुरा भला कहने वाला, (३) बड़बड़ाने वाला ।
'पुरुषं परिरापिणम्'
अ.५.७.२.

परिरुजन् - सब प्रकार से देह को फोड़ने वाला रोग ।
'रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन्'
अ. १६.१.२.

परिवञ्चत् - परिवञ्चना करने वाला ठगने वाला ।
'नमो वञ्चते परिवञ्चते'
वाज.सं. १६.२१, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.३, का.सं. १७.१२.

परिवत्सर - (१) द्वितीय वर्ष ।
'अविजातां परिवत्सराय'
वाज.सं. ३०.१५.
(२) पंचयुगी के पांच वर्षों में दूसरा, (३) आदित्य ।
'आदित्यः परिवत्सरः'
तै.ब्रा. १.४.१०.१
'इदावत्सराय परिवत्सराय'
अ. ६.५५.३, कौ.सू. ४२.१७.
(४) चारों ओर बसने वाले शिष्यों से आवृत आचार्य ।
'ऋतेनाभिन्दन् परिवत्सरे वलम्'
ऋ. १०.६२.२.
(५) जिसके चारों ओर घेरकर शरण में आ बसते हैं । ईश्वर (६) अग्नि ।
'संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि'
वाज.सं. २७.४५

परिवत्सरीणम् - (१) वर्षभर ।
'हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्'
अ. ३.१०.५, साम.मं.ब्रा. २.२.१३, आपमं.पा. २.२०.३४, हि.गृ.सू. २.१४.४,
(२) अध्ययन काल का एक वार्षिक सत्र ।
'ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्'
ऋ. ७.१०३.८

परिवर्क्तम् - कभी त्याग न करो ।
'मा परिवर्क्तम् उतमा माति धक्तम्'
ऋ. १.१८३.४

परिवर्ग- (१) संग्राम, - (२) परिवर्जन-दया.
'परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनाम्'
ऋ. १.१२९.८
इन्दु दुर्मति शत्रुओं के संग्राम में - राजा दुर्जनों के परिवर्जन में -दया. ।
(३) विनाश ।

परिवर्ग्य- (१) परिवर्जनीय, छोड़ने योग्य
'द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वान्तम्'
अ. ९.२.१४

परिवर्तमान - बार बार आने वाला ।
'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने'
ऋ. १.१६४, १३. अ. ९.९.११, नि. ४.२७.
पांच ऋतुओं के अर वाले संवत्सर नामक चक्र में सभी जीव स्थित हैं ।

परिवर्तिः - परि + वृत् + इन् = परिवर्त्ति । अर्थ है- (१) परिवर्तनं कृत्वा आयातः, परिवर्तन कर आया हुआ, (२) सायण के मत से 'वर्तिस्' का अर्थ गृह है अतः 'परिवर्ति' का अर्थ ' अस्मत् गृहम्' (हमारे घर पर) है ।

परिवाद- (१) वर्जनीय वचन, निन्दा
'परिवादं परिक्षवम्'
अ. १९.८.४.

परिबाध् - (१) बाधा, विघ्न-कारी चेष्टा ।
'न वरन्ते परिबाधो अदेवीः'
ऋ. ५.२.१०, तै.सं. १.२.१४.७.
परिबाधः 'परिबाध' का ब.व. रूप । (१) पुरुषों को रात और राष्ट्र को पीड़ित करने वाला ।
'मा नः सोम परिबाधो
मारातयो जुहुरन्त'
ऋ. १.४३.८
उत्तम पदार्थों, पुरुषों और राजा और राष्ट्र को पीड़ित करने वाले मनुष्य हम पर बलात्कार न कर सकें । हे वेग से द्रुतगति से शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले, तू हमारे लिए युद्ध में हमें प्राप्त हो ।

परिबाधमानः- परिबाध + शानच् = परिबाधमान (१) निवारयन् (निवारण करता हुआ, निवारता हुआ, रोकता हुआ)

(२) चारों ओर से आघातों को काटता हुआ ।
'ज्याया हेतिं परिबाधमानः'
ऋ. ६.७५.१४, वाज.सं. २९.५१.तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८७.४, का.सं. (आश्व.) ६.१, नि. ९.१५.
ज्या से होने वाली हिंसा या चोट को रोकता हुआ

परिव्राजक – परि + व्रज + ण्वुल् = परिव्राजक । परिव्रजति परित्यज्य सर्वं रुदन्तं पुत्रादिक व्रजति इति परिव्राजकः (जो पुत्रादि को रोता छोड़ संन्यासी के रूप में सर्वत्र भ्रमण करता है वह परिव्राजक है) ।

परिवित्त – (१) अपने ज्येष्ठ भाई का अधिकार हड़पने वाला, (२) छोटा भाई जो बड़े भाई के विवाह के पहले अपना विवाह कर ले ।
'येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धः'
अ. ६.११२.३
(२) पर्याप्त धनवान् पुरुष (३) छोटे भाई के विवाहित होने पर अविवाहित बड़ा भाई ।
'आर्त्यै परिवितम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

परिविदान– (१) सब तरह से साधनों को प्राप्त करने वाला, (२) बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटा विवाहित भाई, (३) बड़े भाई की उपेक्षा कर दायभाग लेने वाला छोटा भाई –दया. ।

परिविष्ट – (१) परोसा हुआ अन्न (२) खूब चबाया हुआ ।
'दन्द्रिर्न जिह्वा परिविष्टमादत्'
ऋ. १०.६८.६, अ. २०.१६.६.
(३) घिरा हुआ ।

परिवीत – परि + वि + इ + क्त = परिवीत । अर्थ है– परिवेष्टित ।
'स मातुर्योना परिवीतो अन्तः'
ऋ. १.१६४.३२, अ. ९.१०.१०, नि. २.८.
वह जीवात्मा माता के गर्भ में परिवेष्ठित हो । (परिवीत)....
(२) सब ओर से सुरक्षित घर ।
'अर्वाचीनः परिवीतो निषीद'
ऋ. ४.३.२.
(३) सब प्रकार से विद्याओं को प्राप्त, (४) उपवीत धारी ब्रह्मचारी ।
'युवा सुवासाः परिवीत आगात्'
ऋ. ३.८.४, मै.सं. ४.१३.१, १९९.१३, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.२९, कौ.ब्रा. १०.२, तै.ब्रा. ३.६.१.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.१.९, आश्व.गृ.सू. १.२०.९, पा.गृ.सू. २.२.९.
(४) खूब सुरक्षित, (५) छिपा हुआ ।
'अविन्दद् दिवो निहितं गुहानिधिम्
वेर्न गर्भं परिवीतमश्मनि'
ऋ. १.१३०.३
पर्वतों में खूब सुरक्षित पक्षिणी के गर्भ अर्थात् अण्डे को जिस प्रकार शिकारी पुरुष खोज लेता है उसी प्रकार अनन्त शस्त्रास्त्र या शत्रुसेना के बीच छिपी निधि को प्राप्त करें ।

परिवीः– प्रजाओं की चारों ओर से रक्षा करने वाला ।
'परिवीरसि परित्वा दैवीर्विशो व्ययन्ताम्'
वाज.सं. ६.६, तै.सं. १.३.६.२, मै.सं. १.२.१४, २४.५, कां.सं. ३.३,२६.६, श.ब्रा. ३.७.१.२१.

परिवृक्ता – (१) पतित्यक्ता नारी ।
'परिवृक्ता च महिषी'
अ. २०.१२८.१०, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.५.
(२) त्यक्ता, छोड़ने योग्य ।
'परिवृक्ता यथा ससि'
अ. ७.११३.२
(३) दी हुई, (४) पृथक् रहने वाली ।
'परिवक्ते पति विद्यमानद्'
ऋ. १०.१०२.११

परिवृज – परि + वृज् + अच् । वर्जन का उपाय ।
'वज्रहस्त परिवृजम्'
ऋ. ८.२४.२४, अ. २०.६६.३, साम. १.३९६.
(३) परिक्रमा करने का मार्ग ।

परिवृढ – परि + वृह् + क्त = परिवृढ । परितः वृढः व्याप्तः (जो चारों ओर से व्याप्त हो) । अर्थ है– (१) ब्रह्म ।
'ब्रह्म परिवृढं सर्वतः'
ब्रह्म चारों ओर व्याप्त है ।
(२) जो महान् होता है वही सर्वत्र व्याप्त होता है (यद्धि महत् भवति तत् सर्वत्र व्याप्तं भवति)
(३) पाणिनिने प्रभु के अर्थ में 'परिवृढ' लिया है । प्रभु भी सर्वत्र व्याप्त है ।

परिवृणक्तु – छोड़ दे ।

'या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि
क्ष्मया चरति परिसा वृणक्तु नः'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७.
हे रुद्र, जो तेरे ज्वरादि रोग रूपी आयुध (या ते दिद्युत्) द्युलोक से छोड़कर (दिवः परिअवसृष्टा) पृथ्वी में उत्पन्न अन्न पानादि से मिश्रित हो सर्वत्र विराजमान है (क्ष्मया चरद्भि) वे अनुग्रह करें हमें छोड़ दें (नः परिवृणक्तु)।

परिवृणीत- (१) भजती है-सा. (२) ग्रहण करे।
'युवोः श्रियं परियोषा वृणीत
सूरोदुहिता परितक्म्या याम्'
ऋ. ७.६९.४, मै.सं. ४.१४.१०,२३०.५, तै.ब्रा. २.८.७.८.
हे अश्विद्वय, तुम दोनों के रथ या कान्ति को (युवोः श्रियम्) सूर्य की उषा नाम्नी दुहिता (सूरो दुहिता) तुममें अपने को मिश्रित करती हुई (योषा) अर्द्ध रात्रि के बाद सब प्रकार से भजती है (परिवृणीत)।
हे अध्यापक तथा उपदेशक, आप की विद्या लक्ष्मी तथा धर्मलक्ष्मी को (युवोःश्रियम्) अविद्यान्धकार के समय (परितक्म्यायाम्) स्त्री, पुत्र, एवं पुत्रियां सभी ग्रहण करें (योषा सूरः दुहिता परिवृणीत)।

परिवृत- छिपा हुआ।
'अपावृधि परिवृतं न राधाः'
ऋ. ७.२७.२

परीवृत - (१) ढका हुआ, (२) सब ओर से सुरक्षित।
'अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता
द्वार इषः परीवृताः'
ऋ. १.१३०.३.
जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् गृहपति ढंके हुए गृह के द्वारों को खोलता है उसी प्रकार इन्द्र या राजा सब प्रकार से सुरक्षित शत्रुओं को दूर से वारण कर देने वाली प्रेरणा करने योग्य सेनाओं को (द्वारः इष्यः) खोले।

परिवेशाः- (१) समीपवर्ती कीट।
'हतासः परिवेशसः'
अ. २.३२.५, अ. ५.२३.१२.
(२) बाहर का रक्षक, (३) एक कीट से मिलते जुलते अन्यकीट।

परिवेष - भोजन परोसना।
'यत्पुरा परिवेषात् खाद् माहरन्ति'
अ. ९.६.१२.

परिवेष्टा- (१) रसोई परसने वाला।
'यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः'
अ। ९.६.५१
(२) पाणि ग्रहण करने वाला।
'सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारोभूयास्म'
वाज.स. ६.१३, श.ब्रा. ३.८.२.३.
(३) सर्वत्र व्यापक, सब सुखों का दाता परमेश्वर।
'वार्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्'
वाज.सं. ३०.१२, १३, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

परिंश- (१) शरीर में सर्वत्र व्यापने वाला अंग।
'यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे'
ऋ. १.१८७.८, का.स. ४०.८

परिशक्तवे - बल द्वारा पराजय करने योग्य।
'न शक्रः परिशक्तवे'
ऋ. ८.७८.५

परिशद् - (१) चारों तरफ स्थित मेघस्थ जल, (२) चारों ओर घेर कर बैठी शत्रुसेना, (३) शत्रुओं की छावनी, (४) चारों ओर बैठा शिष्य जन।
'वि वज्रेण परिषदो जघान'
ऋ. ३.३३.७

परिषद्य- (न.)। परि + सद् + यत् = परिषद्य (परित्याज्य) अर्थ है। (१) त्याज्य।
'परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः'
ऋ. ७.४.७, नि. ३.२.
(२) पर्याप्त (३) परिषद् या जन सभा का धन।

परिषद्वा - चारों ओर वर्तमान।
'तदिन्न्वस्य परिषद्वा नो अग्मन्'
ऋ. १०. ६१.१३.

परिषन् - ऊपर बाहर एवं भीतर विद्यमान प्रभु।
'अस्मे वत्सं परिषन्तं न विन्दन्'
ऋ. १.७२.२
हम सभी में व्याप्त, बाहर भीतर एवं ऊपर विद्यमान प्रभु को चाहते हुए भी सभी नहीं पाते।

परिषस्वजाना - (१) परिष्वजमाना। परि + स्वज + शानच् + टाप् = परिष्वजाना। 'स्वज' का अभ्यास = द्वित्व-होना अनर्थक है (२)

आलिंगन करती हुई, (३) प्रिय संवाद करती हुई ।
'प्रिय सखायं परिषस्वजाना'
ऋ. ६.७५.३, वाज.सं. २९.४०, तै.सं. ४.६.६.१, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१४, का.सं. (आश्व.) ६.१, नि. ९.१८.
प्रिय सखा रूपपति का आलिंगन करती हुई ।

परिष्कन्द – (१) आगे पीछे चलने वाला सिपाही ।
'भूतञ्च भविष्यञ्च परिष्कन्दौ'
अ. १५.२.६
(२) सर्वत्र वीर्य –सेचन में समर्थ पुरुष, (३) विशेष छावनी , (४) स्कन्धावार ।
'भूम्ने परिष्कन्दम्'
वाज.सं. ३०.१३.

परिष्कृत– परि + कृ + क्त = परिष्कृत । अर्थ – (१) परिष्कार किया हुआ, सजाया हुआ ।
'परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्'
ऋ. १०.१०७.१०
परिष्कृत राजा प्रसाद की तरह सुन्दर (गृह) ।

परिष्कृता – (१) सुन्दर, (२) सुसज्जित ।
'दृढा नद्धां परिष्कृता'
अ. ९.३.१०

परिष्वजाते – परिष्वक्ष्यते (आलिंगन करेगा) वर्त्तमान के सामीप्य मे भविष्य अर्थ में लट् का प्रयोग ।

परिष्टिः– (१) सर्वतः अन्वेषणं यस्याः सा (जिसका सर्वत्र अन्वेषण हो)–दया.
(२) परीक्षा, (३) ज्ञानदर्शन
'भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम'
ऋ. १.६५.३.
उनकी परीक्षा करना और ज्ञान दर्शन सूर्य के समान स्पष्ट है और पृथ्वी के समान दृढ़ आश्रय हैं ।

परिष्टोभत– सब प्रकार से संभाले ।
'परि ष्टोभतत विंशतिः'
ऋ. १.८०.९
बीसों सब तरह से राज्य कार्य संभाले (परिष्टोभतः)'
अथवा, दस आभ्यन्तर और दस बाह्य प्राणगण जीव को संभालें ।

परिष्वज् – परि + स्वज् + क्विप् = परिष्वज् ।
'मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे'
ऋ. १०.४०.१०, अ. १४.४६, आप.मं.पा. १.१.६.

परिष्वञ्जस्य – (शाला में) चारों ओर सटा हुआ ।
'परिष्वञ्जल्यस्य च'
अ. ९.३.५.

परिष्वजीयसी – सूक्ष्म वस्तु के लिये भीतर व्यापक।
'ततः परिष्वजीयसी
देवता सा ममप्रिया'
अ. १०.८.२५.

परिष्ठा – परि + स्था । ऊपर टिका हुआ ।
'इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठाम्'
ऋ. ६.७२.३.

परिष्टिः – (१) सेवा आदर एवं पालन का कार्य ।
'मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टौ'
ऋ. ७.१९.७, अ. २०.३७.७,तै.सं. १.६.१२.५, मै.सं. ४.१२.३, १८३.२. आश्व.श्रौ.सू. २.१०.४.
(२) नाना वाञ्छनीय फलों की प्राप्ति ।
'अर्चन्तितो के तनये परिष्टिषु'
ऋ. १०.१४७.३
(३) सब ओर से प्राप्त हुआ ।

परिष्टिता– (१) परिस्थिता, (२) मेघ द्वारा किया हुआ धारण की हुई ' आपः' (जल) (३) शत्रुओं द्वारा घेरी हुई पृथिवी ।
'परिष्ठिता अहिना शूरपूर्वीः
ऋ. २.११.२, ७.२१.३.
(४) चारों ओर से खड़ी शत्रुसेना ।
'परिष्ठिता अतृणद् बद् वधानाः'
ऋ. ४.१९.८

परिष्टुभ्– (१) स्तुति, (२) शत्रुहिंसक शक्ति ।
'विश्वा अर्ष परिष्टुभः'
ऋ. ९.६२.२४, साम. २.४१३.
(३) सबको धारण करने वाला (४) सब विद्याओं का अध्ययन करने वाला ।
'सम्मिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः'
ऋ. १.१६६.११.

परिषूत– (१) सब प्रकार से उत्पन्न किए पदार्थ, (२) अधीन पुरुषों से प्राप्त पदार्थ, ।
(३) घेरा हुआ ।
'अनानुदः परिषूता ऋजिश्वना'
ऋ. १.५३.८, अ. २०.२१.८

परिषूतिः– (१) हिंसाकारी, (२) जन्म बन्धन वाला ।

'माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशत'
ऋ. ९.८५.८
(३) प्रसव किया ।
'युवं रेभं परिषूते रुरुष्यथः'
ऋ. १.११९.६
हे विद्वान् स्त्री पुरुषो, या अश्विनो, तुम दोनों उत्पन्न होते ही शब्द करने वाले बालक की प्रसव क्रिया के भी पूर्व (परिषूतेः) रक्षा करते हों (उरुष्यथः) ।

परिसंभृत – समस्त शरीर में प्रविष्ट–विष ।
'पृदाकोः परिसंभृतम्'
अ। ७.५६.१

परिसर्गासः– (ब.व.) परिसृताः तन्त्वययवाः (सूत्र) अर्थात् विस्तृत वस्त्र में व्याप्त छोटे छोटे अवयवों को परिसर्ग कहते हैं ।
'तन्तुं ततं परिसर्गास आशवः'
ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०
जैसे विस्तृत वस्त्र में छोटे छोटे अवयव (परिसर्गासः) व्याप्त रहते हैं उसी प्रकार सोमरस इन्द्र में व्याप्त रहते हैं ।
(अथवा)
विस्तृत ब्रह्मरुपी सूत्र में (ततं तन्तुम्) फैले हुए लोक लोकान्तर (आशवः सर्गाः) हैं ।
(२) चमसेषु व्याप्ताः सृज्यमाना सोमाः (चमसों में चारों ओर से लगे सोम ।

परिस्तरण– बिछावन ।
'परिस्तरणः मिद्धविः'
ऋ. ९.६.२.

परिस्रव– वृष्टि कर, चू ।
'इन्द्रायेन्दो परि स्रव'
ऋ. ८.९१.३, ९.१०६.४, ११२.१–४, ११३.१–११, ११४.१–४, साम. १.५६७, जै.ब्रा. १.२२०, नि. ६.६, ९.२.
हे ऐश्वर्य धाम प्रभो, (इन्दो) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृष्टि कर (परिस्रव) ।
अथवा, हे सोम, (इन्दो) इन्द्र के लिए (इन्द्राय) तू चू (परिस्रव)

परिसृष्ट – (१) सब प्रकार से परिपूर्ण गर्भ (२) पति द्वारा गर्भ में आहित वीर्य ।
'परिसृष्टं धारयतु'
अ। ८.६.२०

परिस्पृध् – स्पर्द्धा करने वाला ।
'नुदस्व याः परिस्पृधः'
ऋ. ९.५३.१, साम. २.१०६४

परिस्रुच् – (१) बहने वाली,, (२) आज्ञा में चलने वाली ।
'परिस्रुचो बबृहाणंस्याद्रेः'
ऋ. ५.४१.१२.

परिस्रुत – न. । (१) सब ओर से प्राप्त मक्खन (२) सब प्रकार से अभिषित (३) परिस्रुत नामक सोम ।
'दधिमन्थां परिस्रुतम्'
अ. २०.१२७.९, शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.३,
'पुनाति ते परिस्रुतम्'
ऋ. ९.१.६, वाज.सं. १९.४, श.ब्रा. १२.७.३.११, का.श्रौ.सू. १९.२.८.

परिस्रुत – (१) स्रवण करने वाले पदार्थ जैसे घी, दूध, मक्खन, शहद आदि ।
'एमां परिस्रुतः कुम्भः'
अ. ३.१२.७.
(२) अभिषेक जलादि सेचन ।
'शशमानः परिस्रुता'
वाज.सं. २०.६५, मै.सं. ३.११.३, १४४.११, तै.ब्रा. २.६.१२.४.
(३) एक प्रकार का सोम (४) सब देशों से प्राप्त राज्य लक्ष्मी ।
'परिस्रुत परिषिच्यते'
वाज.सं. १९.१५
(५) सब ओर से बहने वाली जल धारा ।
'त्वामायः परिस्रुतः
परियन्ति स्वसेतवः'
ऋ. ८.३९.१०

परिहव – वर्जन करने योग्य संघर्ष ।
'अनुहवं परिहवम्'
अ. १९.८.४, आप.मं.पा. १.१३.५, नक्षत्र कल्प २६.४.

परिहस्त – (१) अपने हाथों का सहारा देने वाला पति, पत्नी का हाथ ग्रहण करने वाला (२) हाथ में पहनाया कंकण (परिसर) ।
'परिहस्तो अभूदयम्'
अ. ६.८१.१

परिहित – परि + धा + क्त = परिहित अर्थ – (१) पहना हुआ, (२) फैला हुआ, (३) दृढ़ता से बंधा ।
'शुष्णस्यंचित् परिहितं यदोजः
दिवस्परि सुप्रथितं तदादः '
ऋ. १.१२१.१०.
मेघ का जो ओज आकाश या सूर्य पर दृढ़ता से बंध कर उसे ढक लेता है उसको भी तू छिन्न भिन्न करता है (तद् आदः) ।
(अथवा)
शोषणकारी का जो बल भूमि पर फैला हुआ हो उसे तू छिन्न भिन्न कर ।

परिहिता– (१) सुरक्षित ।
'स्वधया परिहिता '
अ. १२.५.३.

परिह्रुता– अपने अधिकार से च्युत कर दी गई ।
'अस्वगता परिह्रुता '
अ. १२.५.४०.

परिह्रुत् – कुटिलता से रहित ।
'परिह्रुतेदना जनः '
युष्मादत्तस्य वायति '
ऋ. ८.४७.६

परिह्रुति – (१) कुटिलता, (२) कुटिल चाल ।
'तिरोमर्तस्य कस्यचित् परिह्रुतिम् '
ऋ. ९.७९.२
'न तं मर्तस्य नशते परिह्रुतिः '
ऋ. ७.८२.७

परीणश– परि + नश् + क = परीणश । (१) सब प्रकार से लुप्त कर देने वाला, मिटा देने वाला, सर्वनाशक ।
'मा नो अस्मिन् मघवन् पृत्स्वंहसि
नहि ते अन्तः शवसः परीणशे '
ऋ. १.५४.१.

परीणस् – (१) शुभनासिका वाली स्त्री ।
(२) परितो नासिका येषाम् कुक्कुरवत् इष्टानिष्टवस्तुघ्राण परा (चारों तरफ नाक वाला) अतिसावधान । (३) कुक्कुर के समान इष्ट तथा अनिष्ट वस्तु को सूंघने वाला ।
'वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः '
ऋ. १.१३.३.७, अ. २०.६७.१, आश्व.श्रौ.सू. ८.१.२, वै.सू. ३१. २७.
(४) बहुत –दया. ।
(५) बहुत ऐश्वर्य ।
'त्वं न इन्द्र राया परीणसा '
ऋ. १.१२९.९
हे विद्वन् , बहुत से ऐश्वर्य से युक्त होकर । (परीणसा)
पुनः–
'प्र नो राया परीणसा '
ऋ. ५.१०.१, साम. १.८१, कौ.ब्रा. २१.३.
(६) महान् ।
'विदमा पुरा परीणसः '
ऋ. ८.२१.७.

परीणाह– (१) परि + नह् + घञ् = परीणाह । चौतरफी घेरा (२) राष्ट्र का तेजस्वी स्वामी ।

परीत्त – (१) सुरक्षित, (२) व्याप्त ।
'श्येने वात उतयोऽचरत् परीत्तः '
अ. ६.९२.२.

परीमण्– सर्वश्रेष्ठ पद ।
'नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि '
ऋ. ९.७१.३.

परीवाप– (१) हविष्य, (२) पृथ्वी पर अन्न आदि बीजों का आवपन ।
'परीवापः पयो दधि '
वाज.सं. १९.२१.

परीवृत– परिवर्ति ।
'विश्वा यद् गोत्रा सहसा परीवृता '
ऋ. २.१७.१.

परीशास– (१) परिशास, चारों ओर से चुभने वाली बर्छी आदि (२) चारों ओर से चोट पहुंचाने वाला ।
'रिश्यस्येव परीशासम् '
अ. ५.१४.३.

पर्णी– (१) पत्तों वाला, वृक्ष (२) पालक, (३) पूरण, (४) दूर देशों तक गमन साधन वाला ।
'पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनः '
ऋ. ९.८२.३, साम. २.६६७.
(५) पंखों वाला बाण ।
'यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनः '
ऋ. ६.४६.११
(६) उत्तम रथ और वाहन का स्वामी ।

परुक्षुः – सर्ववशकारी परमेश्वर ।

'वि राय और्णाद् दुरः पुरुक्षुः'
ऋ. १.६८.१०
सर्ववशकारी परमेश्वर (पुरुक्षु) आनन्द कर्मफलों का स्वामी हो कर ऐश्वर्यों और द्वारों को खोल देता है ।

परुष् – (१) अंग, (२) तेजस्वी भास्वान्, (३) पर्व सन्धि, ग्रन्थि , गाँठ, गिरह ।
'सन्धिर्वा पर्व परुषी'
(४) औपमन्यव आचार्य के मन से परु, का अर्थ 'भा' (दीप्ति) है। और परुष्मान् का अर्थ दीप्तिमान् (ग्रन्थि वाला) है ।
परुष् + मतुप् = परुष्यत् = परुष (मत् का लोप) ।
आधुनिक अर्थ – गिरह, (२) सन्धि, (३) अंग, (४) स्वर्ग, (५) पर्वत ।

परुष– (१) कठोर शस्त्र या पुरुष ।
'परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु'
अ. ८.८.४.
(२) शरीर के पोर पोर में बसा हुआ ज्वर ।
'यः परुषः पौरुषेयः'
अ. ५.२२.३.
(३) पर्ववाला या प्रकाश वाला आदित्य ।
'उतादः परुषे गवि
सूरश्चक्रं हिरण्ययम्
त्यैरयत् रथीतमः'
ऋ. ६.५६.३, नि. २.६
और प्रेरक सूर (सूरः) तथा अतिशय रथों वाला या नेतृतम (रथीतमः) पर्ववाले या प्रकाश वाले आदित्य के लिए (परुषेगवि) सुवर्णमय (हिरण्ययम्) उसके रथ कालरूपी चक्र को नित्य चलाता है (अदः चक्रं न्यैरयत्) ।

परुषः गौः – (१) पर्ववाला या प्रकाश वाला आदित्य – (२) अहोरात्रादि पर्वोंवाले ।
सर्वप्रेरक (सूरः) तथा रथिक श्रेष्ठ जिसके सूर्य चन्द्र आदि सभी लोकरथ हैं (रथीतमः) वह पोषक परमात्मा उस सुदूरवर्ती, (अदः) अहोरात्रादि पर्वों वाले या प्रकाशमान सूर्य में (परुषे गवि) स्वर्णसदृश चमकीले रथ को नियम से चला रहा है (हिरण्ययं चक्रं नि ऐरयत्) ।

परुषवार– (१) परुष नामक छोटी दाम (दर्भ) की जाति जिसे राज-निघण्टु में 'खर' कहा गया है । पित्तो ल्वण दाह विष आदि का नाशक है, (२) परुष अर्थात् पोर वाल नड़ (नल) ।
नलः स्यादधि को वीर्यः शस्यते रस कर्मणि ।
परुषक, तरुणव, तरुण, या कर्तृक भी इसके नाम हैं ।
'भूतग्रह विषघ्नं च
व्रणक्षत विरोपणम्
अश्वस्य वारः परुषस्य वारः'
अ. १०.४.२.

परुषाह्वः– परुष या कठोर शस्त्रों या पुरुषों का सामना पाने में समर्थ वीर ।
'परुषा नमून् परुषाह्वः कृणोतु'
अ. ८.८.४.

परुष्णी– (१) एक नदी, (२) पर्ववती, भास्वती, कुटिल गामिनी–नि. (३) प्रतिपर्व पीठ के मोहरों में से नीचे तक जाने वाली शरीर की नाड़ी जो वर्ण में चमकीली और कुटिल मार्ग से से गई है । (४) पालन कर्त्री, (५) पालन साधनों से युक्त तेजस्विनी, राष्ट्र रक्षा या राजनीति ।
'उतस्य ते परुष्ण्याम्'
ऋ. ५.५२.९
(६) परुष् (ग्रन्थि) + न (मतुप् अर्थ में) ङीष् = परुष्णी । पर्व वाली । नदी भी टेढ़ी मेढी चाल वाली होती है । अतः जहाँ जहां वह फिरती है । वहीं उसका पूर्व हुआ । परुष्णी नामक नदी जो इरावती नदी का पूर्व नाम है ।
'शुतुद्रि स्तोयें सचता परुष्ण्या'
१०.७५.५, तै. आ. १०.१.१३, महा. ना.उप. ५.४, नि. ९.२६,
(७) कुटिल गामिनी नदी –दुर्ग (८) पर्वों वाला पर्वत प्रदेश ।
इरावती परुष्णी त्याहुः'
(९) पर्ववती, ग्रन्थियुक्त, (१०)भास्वती , प्रकाश वती, परुष का अर्थ 'भास्' भी है । (११) पर्वों वाली भूमि ।
'उतस्म ते परुष्ण्याम्
ऊर्णा वसत शुन्ध्यवः'
ऋ. ५.५२.९.
हे मरुतो, आप इरावती नाम्नी नदी में (परुष्ण्याम्) शुद्ध होने वाले या स्नान करने

वाले (शुन्ध्यवः) विचित्र रूप से तिरोहित होकर रहते हैं (ऊर्णाः वसत) ।
और वे मनुष्य (ते) पर्वों वाली भूमि या पर्वत प्रदेश पर (परुष्ण्याम्) सुरक्षित (ऊर्णाः) तथा शुद्धता पूर्ण निवास करें (वसत) । (११) ऊन का वस्त्र जो पर्व पर उष्ण रहता है, (१२) स्थान पर शत्रु को सन्ताप देने वाली नाना पर्व अर्थात् विभागों से युक्त सेना और प्रजा ।
'श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णाम्'
ऋ. ४.२२.२
(१३) दिन, मध्याह्न बेला, (१४) पोर पोर या अंग अंग में निवास करने वाली ज्ञान वाहिनी चित् कुण्डलिनी सुषुम्ना आदि नाड़ी ।
'परुष्णीषु रुशत् पयः'
ऋ. ८.९३.१३, आ.सं. २.१.
(१५) झुकाव पर बहती हुई जल धारा ।
'मधु परुष्णी शीपाला'
अ. ६.१२.३.
(१६) गौ, (१७) पर्व पर पर उष्ण देह की नाड़ी ।

परुस् – (१) पोर, अंग ।
'परुष्परुरनुघुष्या विशस्त'
ऋ. १.६२.१८, वाज.सं. २५.४१, तै.सं. ४.६.९.३, का.सं. (अश्व.) ६.५.
प्रत्येक पोरु को बार बार अभ्यास कर विविध प्रकार से शिक्षित करो ।

परुष्परु – (१) शरीर के पोर पोर में ।
'परुष्परुराविवेश यो अस्य'
अ. १.१२.३
(२) पोर पोर अंग अंग ।

परुम्नंस– (१) पोरुओ को तोड़ने वाला, उन में प्रबल पीड़ा उत्पन्न करने वाला–खांसी ।
'अस्थिभ्रंसं परुम्नंसम्'
अ. ६.१४.१

परुस्वान् – (१) मृग की एक जाति ।
'ईशानाय परस्वत आलभते'
वाज.सं. २४.२८, मै.सं. ३.१.४.१०,१७४.५.

पर्युक्ता – सब प्रकार से विवेचित, प्रवचन या प्रयोग की हुई ओषधि ।
'ब्राह्मणेन पर्युक्तासि'
अ. ४.१९.२.

पर्यूढा– ढंकी हुई ।
'श्रद्धया पर्यूढा'
अ. १२.५.३

पर्शु– (१) पसली की हड्डी
'उपसदः पर्शवः'
अ. ९.७.६
(२) स्पृश्, + शुन् = पर्शु, ।
'परान् श्रृणाति हिनस्ति इति पर्शुः ।
पार्श्व की हड्डी ।
(३) कुएं का ईंट –सा. (४) बाह्य आपदा, विपत्ति –दया. ।
'सं मा तपन्त्यभितः
सपत्नीरिपर्शवः'
ऋ. १.१०५.८, १०.३३.२, नि. ४.६.
मुझे ये कुएं के ईंट या विपत्तियां उसी प्रकार से संतप्त कर रही हैं जैसे सपत्नियाँ। यास्क ने 'पर्श' के लिए 'आधी' और बाह्यदुःख के लिए पदार्थ पर्शु शब्द प्रयुक्त किया है।
आधुनिक अर्थ – कुल्हाड़ी, पसली की हड्डी ।
(५) सर्वत्र स्पर्श करने वाली सह चारिणी बुद्धि या विचार शक्ति (६) पुरुषी की पार्श्ववर्तिनी सहचारिणी प्रकृति ।
'पर्शुर्ह नाम मानवी'
ऋ. १०.८६.२३, अ. २०.१२६.२३.
(७) मननशील आत्मा की कर्मशक्ति (८) पर्शुः पश्येतेः रकारोपजनः अकारलोपः। पर्शुः स्पृशतेः । नि. ४.१४.
(९) सर्वद्रष्टा, सर्वस्प्रष्टा, सर्वव्यापक प्रभु, (१०) शत्रु छेदन करने में समर्थ ।
'सहस्रं पर्शवा ददे'
ऋ. ८.६.४६

पयुह्यमाना – परि + उह्यमाना । अर्थ है– विवाहित होकर ।
'यमस्यमाता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश'
ऋ. १०.१७.१, अ. १८.१.५३, नि. १२.११.
वह यम की भाविनी माता (सरण्यू) विवाहित हो (पर्युह्यमाना) यम और यमी को उत्पन्न कर महान् आदित्य की भार्या अदृश्य हो गई है ।
अथवा
मध्यम देव यम की माता वह ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी गई । प्रभात होते ही

सूर्य की ज्योति सूर्य के पास से छिटककर दूर भाग गई ।

परेणअवः- परम परमेश्वर से उतर कर विराजमान आत्मा ।
'अवः परेण पितरं यो अस्य'
ऋ. १.१६४.१८, अ. ९.९.१८.

परेमा (परेमण्) - परमता ।
'अरं शक्र परेमणि'
साम. १.२०९

परेतः- वह रोगी जो सीमा से परे चला गया हो ।
'यदि क्षितायुर्यदि वा परेतः'
ऋ. १०.१६१.२, अ. ३.११.२, २०.९६.७.

परेयिवान् - परा + इ (गमनार्थक) + क्वसु = परेयिवस्) अर्थ है- (१) पर्यागतवान् (प्राप्त कराया) (२) कर्मानुसार स्वर्गादि स्थानोंको पहुंचाने वाला ।
'परेयिवांसं प्रवतोमहीरनु'
ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, मै.सं. ४.१४.१६, २४३.६, आश्व.श्रौ .सू. २.१९.२२, नि. १०.२०.
प्रकृष्टकर्म वाले मनुष्यों, देवों एवं नीच योनिवाले प्राणि वर्गों को अपने कर्मानुसार स्वर्गादि स्थान पहुंचाने वाले वैवस्वत यम को ।

परेहि- पराङ्मुख हो कर जा ।

पर्येता (१) मुकाबला करने वाला, सामना करने वाला ।
'न किरस्य सहन्त्य
पर्येता कयस्यचित्'
ऋ. १.२७.८, साम. २.७६६.
हे सहनशील, इस ज्ञान वान् युद्ध विद्या कुशल सेनापति का मुकाबला करने वाला कोई नहीं है ।
(२) कष्ट देने वाला ।

पर्येति - परि + एति = पर्येति । परितः एति वेष्टयति (परि वेष्टन करता है, घेर लेता है)।

परोप्ताः- (१) जो दूर में अपनी सन्तान उत्पन्न करते हैं, (२)जो दूर देश में युद्ध क्षेत्र में कट गए हैं ।
'ये निखाताः ये परोप्ताः'
अ. १८.२.३४

परोमात्र- सब मात्रा पर परिमाणों से परे अतिसूक्ष्म और अनन्त ।
'परोमात्रमृचीषमम्'
ऋ. ८.६८.६

पलक्षी- (१) श्वेत ऊन वाली, (२) अति चंचल आखों वाली स्त्री ।
'लोहितोर्णी पलक्षी'
वाज.सं. २४.४,

पलद- घास फूस ।
'संदंशानां पलदानाम्'
अ. ९.३.५

पलस्ति जमदग्नयः- वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध आत्माग्नि को प्रज्वलित करने वाले तेजस्वी पुरुष या जमदग्नि वंश वाले ।
'यां मे पलस्ति जमदग्नयोददुः'
ऋ. ३.५३.१६

पल्पूलन- मूत्र ।
'यदस्याः पल्पूलन्'
अ. १२.४.९.

पल्प- मांस भक्षी ।
'पल्प बद्ध वयो इति'
अ। २०.१२९.१५
'पलालान् उपलाल्यौ शकुं कोकम्'
अ. ८.६.२.

पलाली- यव के ऊपर का तुष ।
'यवस्य ते पलाल्या'
अ. २.८.३

पलाश- (१) पल + अश् + अण् (कर्म में) = पलाश । पलं मांसम् अश्नाति प्रायेण पर्णाशिनः निर्मांसाः भवन्ति (पल मांस को खाते हैं, प्राय पत्ते वाले पत्ते का नाम पलाश पड़ा) ।
(२) पलाशानि यस्मिन् स पलाशः
(जिसमें सुन्दर पत्ते हों वह पलाश है) पलाश नामक वृक्ष ।
(३) पराशीर्णमलः दीप्तिमान् (जिस में मल न हो, जो दीप्तियुक्त हो वह पलाश है)
(४) पलाशं पर्णम् पलाशं पलाशनात् पलाश पत्ता है, पलाश शब्द मांस के अशन से बना है) । पत्ते के अर्थ में-
'यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे
देवै संपिबते यमः।
अत्रानो विश्पतिः पिता
पुराणाँ अनु वेनति'
ऋ. १०.१३५.१, तै.आ. ६.५.३, नि. १२.२९.

जिस सुन्दर पत्ते वाले वृक्ष में (यस्मिन् सुपलाशे वृक्षे) या सुखकर स्थान में आदित्य (यमः) रश्मियों के साथ चलते हैं (देवैः संपिबते) इस मण्डल में (अत्रा) प्रजाओं के पालक अधिपति या पिता (विश्पतिः पिता) हमें पुण्य कर्मों या विद्या में वहां के पुराने वाशिन्दों के सदृश प्रेम पूर्वक रखे (पुराणान् अनु वेनति) ।
'यम का अर्थ यम होने से पितृलोक में हमें रखें' ऐसा अर्थ होगा ।

पलिक्नी- (१) श्वेतकेशा, वृद्धा, मलकिनी या मलकिनी का सादृश्य विचारणीय है ।
'पलिक्नीरित युवतयो भवन्ति'
ऋ. ५.२.४.
(२) वह स्त्री जिसे उम्र के पूर्व ही पलित आ जाय ।
'संवत्सराय पलिक्नीम्'
वाज.सं. ३०.१५, तै.ब्रा. ३.४.१.११

पलितः- (१) पालयिता (पालन करने वाला) (२) पल (गत्यर्थक) + क्त = पलित । पल धातु का 'पाल' धातु से विनिमय हो जाता है । 'पल' 'धातु' 'रक्षा करना' अर्थ में है । पालयति (रक्षा करता है) का निपातन से 'पलित' हो जाता है । अतः 'पलित' का अर्थ 'पालन करता है' हुआ ।
(३) पके केशों वाला, (४) प्रकाश, वृष्टि आदि के दान से सबका नाशक सूर्य ।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
तस्यभ्राता मध्यमोऽस्त्यश्वः'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.
स्वर्ग में चमकने वाले, आरोग्यार्थियों के सेवनीय तथा पालक उस आहवनीय या ग्रहोपग्रहों के आहर्त्ता आदित्य का मध्यमस्थानी सर्वव्यापक वायु या मेघवर्ती अशनि भाई के समान है ।
(५) पालक या पूर्ण परमेश्वर ।
'निवेवेति पलितोदूत आसु'
ऋ. ३.५५.९
(६) परमपुराण, (७) वृद्धज्ञानी-दया. ।
'दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि'
ऋ. १.१४४.४
(८) सर्वव्यापक परम पुराण, परम वरणीय आत्मा, (४) सर्वदाता सूर्य ।

पलीजक- श्वेताबालवाला पलितरोगी
'मलिम्लुचं पलीजकम्'
अ. ८.६.२.

पव- गत्यर्थक धातु ।

पवमानः- (१) एक देह से अन्य देह में जाने वाला- आत्मा (२) विषय इन्द्रिय देहादि संघात से निःसङ्ग (३) परिशुद्ध ।
'विपश्चिते पवमानाय गायत'
ऋ. ९.८६.४४, साम. २.९६५, तै.ब्रा. ३.१०.८.१.

पवमानः देवः- (१) पवित्र करने वाला ।
सोमरस- (२) तेजस्वी शान्त विद्वान् ।
'एष देवो रथर्यति
पवमानो दशस्यति'
ऋ. ९.३.५, साम. २.६०९,
यह पवित्र करता हुआ सोम देव यज्ञ में आने के लिये रथ की कामना करता है तथा और देवों के निमित्त अपना दान चाहता है ।
परमेश्वर की कामना वाला यह तेजस्वी शान्त विद्वान् (पवमानः देवः) सुख प्रदान करता है । (दशस्यति)

पवस्त- वस्त्र, छाज ।
'पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन्'
अ. ४.७.६

पवस्वत- घी, दूध, मक्खन से भरपूर ।
'ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः'
अ. ७.६०.२

पवा- पवित्र करने वाली ।
'उत न एना पवया पवस्व'
ऋ. ९.९७.५३, साम. २.४५५.

पव्या- (१) रथचक्र की रेखा -दया. (२) रथ की चक्रधारा ।
'उत पव्या रथानाम्'
ऋ. ५.५२.९, नि. ५.५.

पवि- रथ की चक्रधारा ।
'पव्या रथस्य जङ्घनन्तभूम'
ऋ. १.८८.२.
वीर विद्वान्गण रथ की चक्र धारा से भूमि को पीड़ित करते हैं ।

पवित्र- (१) कुश या कम्बल का बनाया छनना ।
'पूतं पवित्रेणाज्यम्'

अ. ६.११५.३, वाज.सं. २०.२०, मै.सं. ३.११.१०, १५७.१२, का.सं. ३८.५, श.ब्रा. १२.९.२,७, तै.ब्रा. २.४.४.९, ६.६.४.
(२) यज्ञ में सोम रस छानने के लिए दशापवित्र नामक वस्त्र खण्ड ।
'शूर्यं पवित्रम्'
अ. ९.६ (१) १६
(३) प्र + त्रन् = पवित्र । 'प्र' धातु का अर्थ है 'पवत्र करना' । जो शुद्ध करता है वह पवित्र है । अर्थ है- मन्न जिसमें शुद्ध करने की शक्ति है ।
'येन देवा पवित्रेणात्मानं पुनते सदा
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः'
ऋ.खि. ९.६७.४, साम. २.६५.२, तै.ब्रा. १.४.८.६
ऋत्विज् तथा यजमान जिसमें मन्त्र से (येन पवित्रेण) सदा अपने को पवित्र करते हैं (सदा आत्मानं पुनते) वैसे ही सामर्थ्य वाले प्रखर मन्त्र से (तेन सहस्र धारेण) पवमान देवता वाली ऋचाएं हमें पवित्र करें (वः पुन्तु) । पवमान सोम का नाम है, क्योंकि सोम भी पवित्र करता है ।
(४) रश्मिकिरण भी पवित्र करता है ।
'रश्मयः पवित्रमुच्यन्ते'
(५) जल ।
'शतपवित्रताः स्वधया मरन्ती
देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः
ता इन्द्रस्य मिनन्ति व्रतानि
सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवत्जुहोत'
ऋ. ७.४७.३, नि. ५.६.
बहुत जलों वाली (शतपवित्राः) स्वकार्यभूत अन्न से (स्वधया) मानवों को मत्त करती हुई (मदन्तीः) द्योतमान या दानादि गुणों से युक्त (देवीः) इन्द्रादि देवों के मार्ग अन्तरिक्ष में भी जाती है । (देवनामपि पाथः यन्ति) ऐसी वे देवियाँ (ताः) इन्द्र के यज्ञादि कर्मों को नष्ट नहीं करतीं (इन्द्रस्य व्रतानिन मिनन्ति) । हे ऋत्विजो, आप उन नदियों के लिए (सिन्धुभ्यः) घृत मिश्रित हव्य दो (घृतवत् हव्यं जुहोत । (६) अग्नि, (७) वायु, (८) सूर्य, और (९) इन्द्र भी पवित्र है ।
अग्निः पवित्रमुच्यते । वायुः पवित्रमुच्यते । सोमः पवित्रमुच्यते । सूर्यः पवित्रमुच्यते । इन्द्रः पवित्रमुच्यते । अग्निः पवित्रः समा पुनातु । वायुःसामः सूर्य इन्द्रः (पवित्राः ते मा पुनन्तु) । पुनः-
'पूतं पवित्रेणाज्यम्'
अ. ६.११५.३, वाज.सं. २०.२०, मै.सं. ३.११.१०,१५७.१२, का.सं. ३८.५, श.ब्रा. १२.९.२.७.
तै.ब्रा. २.४.४.९, ६.६.४.

पवित्रवन्तः - पवित्र + वतुप् = पवित्रवत् । अर्थ है- (१) रश्मियुक्त, (२) उदकयुक्त (३) माध्यमिक देवगण का एक पर्याय । (४) रश्मियुक्त मरुत् आदि देवगण ।
'पवित्रवन्तः परिवाचमासते'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.
रश्मियुक्त मरुत् आदि देवगण (पवित्रवन्तः) माध्यमिक देववाणी विद्युत् संज्ञक वरुणदेव को (वाचम्) घेरकर बैठते हैं, (परिआसते) ।

पवित्रवन्ता- शरीर को शोधन करने वाले बल से युक्त प्राण और अपान ।
'पवित्रवन्ता चरतः पुनन्त'
ऋ. १०.२७.१७

पवित्रवान् - (१) पवित्र आचार और वेदज्ञान से युक्त पुत्र ।

पविता- (१) सत्यासत्य का विवेक करने वाला ।
'वैश्वानरः पविता मा पुनातु'
अ. ६.११९.३

पवि - पवित्र व्यवहार-दया. (२) क्रम (३) पवित्र, मार्ग (४) वाणी , (५) बल ।
'अनु वामेकः पविरावर्वर्त'
ऋ. ५.६२.२, मै.सं. ४.१४.१०.,२३१.१३, तै.ब्रा. २.८.६.६.

पविष्टः- अत्यन्त पवित्र करने वाला ।
'इन्दुः पविष्ट चेतनः'
ऋ. ९. ६४.१०, साम. १.४८१.

पवीता - पविता, पवित्र करने वाला सोम ।
'पवीतारः पुनीतन'
ऋ. ९.४.४., साम. २.४००.

पवीनसः- पूतिगन्ध से युक्त, सड़ी नाक वाला ।
'पवीनसात् तङ्गल्वात्'
अ. ८.६.२१.

पवीर- पवि + र (मतुप् के अर्थ में) = पवीर । दीर्घ आर्ष है । अर्थ है (१) आयुध नो पवि अर्थात् वज्र या पत्थर का बना हो ।
'तद्वत् पवीरमायुधम्'
(२) शल्यवान् ।

पवीरवः- (१) बड़ा बड़ा जनपद ।
'अतितस्थौ पवीरवान्'
ऋ. १०.६०.३
(२) वज्रध्वनि ।
'प्रशस्तयेयवीरवस्य मह्ना'
ऋ. १.१७४.४.

पवीरवान् - पवीर + वतुप् = पवीरवत् । प्रथमा एक वचन में 'पवीर वान्' रूप है । अर्थ (१) इन्द्र । इन्द्र की ध्वनि 'पावीरवी' है जिसे माध्यमिका वाणी कहते हैं ।
'पावीरवी च दिव्या वाक्
यो जनान् महिषाँ इव
अतितस्थौ पवीरवान्
उता पवीरवान्युधा'
ऋ. १०.६०.३
जो इन्द्र अतिमहान् असुरों के भी (महिषान् इव) हराकर (युधाअति) ठहरे हुए हैं (तस्थौ) चाहे वे आयुध लिए हो या निरायुध हों (पवीर वानं उत अपवीर वान्) ।

पशव्यम् - (१) पशुसमूह, (२) सब ओर से फैला दोपायों चौपायों का हितकारी संसार ।
'तवेदं विश्वमभितः प्रशव्यम्'
ऋ. ७.९८.६, अ. २०.८७.६, मै.सं. ४.१४.५, २२१.१५, तै.ब्रा. २.८.२.६.
(३) पशु अर्थात् इन्द्रियों से देखने योग्य, (४) पशु अर्थात् द्रष्टा जीवों के भोगने योग्य, (५) दर्शनीय ।

पश्यत् - द्रष्टा, ज्ञानवान् ।
'पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः'
ऋ. १.१६४.१६
द्रष्टाज्ञानी ही आखों वाला है ।

पश्यत- (१) दर्शनीय (२) द्रष्टा ।
'नमस्ते अस्तु पश्यत'
अ. १३.४, ४८, ५५.

पश्वः इष्टिः - (१) सम्यक् दर्शन करने वाले विद्वान् का सखा, (२) रथ में पशु का जोड़ना ।
'तद्वां नरावश्विना पश्व इष्टी
रथ्येव चक्रा प्रतियन्ति मध्वः'
ऋ. १.१८०.४.

पश्वयन्त्रः- (१) देखने वाले यन्त्रों से युक्त (२) नाना यन्त्रों का साक्षात्कार करने वाला, (३) देखने वाली इन्द्रियों को अपने अधीन नियन्त्रित करने वाला, (४) नाना देखने को दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों से युक्त, (५) पशु के समान यन्त्र बनकर या यन्त्रादि रखकर रहने वाला ।
'पश्वयन्त्रासो अभिक्षरमर्चन्'
ऋ. ४.१.१४.

पश्चा - पीछे ।
'पश्चा मृधो अपभवन्तु विश्वाः'
ऋ. १०.६७.११, अ. २०.९१.११.
'न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा'
ऋ. २.२७.११, तै.सं. २.१.११.५, मै.सं. ४.१४.१४, २३८.१४.
'पश्चा स दध्या यो अघस्य धाता'
ऋ. १.१२३.५.
जो पाप को पोषण करने वाला है उसे पीछे कर ।

पश्चात् - पीछे ।
'मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्'
ऋ. १.११५.२, अ. २०.१०७.१५, मै.सं. ४.१४.४, २२०.६, तै.ब्रा. २.८.७.१.
जैसे विकट काल में पुरुष अपने अनुरूप रुचिकर प्रेम पात्री स्त्री के पीछे सूर्य भी चलता है ।

पश्चात्सद् - पश्चिम भाग में विराजने वाला ।
'विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३५., श.ब्रा. ५.२.४.५.

पश्चातात् - (१) पीछे से ।
'पाहिपश्चातादुत् वा पुरस्तात्'
ऋ. ८.४८.१५.
(२) पश्चिम से ।
'आ पश्चाता न्नासत्या पुरस्तात्'
ऋ. ७.७२.५, ७३.५, आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१.

पश्चादोष- पीछे से दोष देना ।
'पश्चादोषाय ग्लाविनम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

पश्विष् - पशु + इष् + क्विप् = पश्विष् ।

अर्थ-पशुओं का चाहने वाला कृषक ।
'अनर्विशे पश्विषे तुराय'
ऋ. १.१२१.७
दृश् + उश् = पशु । दृश् का पश् और य का लोप । (१) जो घ्राण से ही भक्ष्य पदार्थों को समझ या देख लेता है । वह पशु है । (पश्यति असौ स्वतो घ्राणेन भक्ष्यान्)
(२) लोक में पश (बन्धनार्थक) + उ = पशु । पश्यते बन्ध्यते असौ दाम्ना (यह रस्सी से बांधा जाता है) ।
(३) पशु पांच हैं- गौ, अश्व, पुरुष, अजा और अवि ।
'तवेमे पञ्च पशवो विभक्ताः
गावो अश्वाः, पुरुषाः अजावयः'
अ. ११.२.९.
पुनः-
'न सायकस्य चिकिते जनासो
लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः
ना वाजिनं वाजिना हासयन्ति
न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति'
ऋ. ३.५३.२३.
यह ऋचा वसिष्ठ द्वेषिणी है ।
'तप का क्षय, न हो, इस शाप से निवृत्त मौनी विश्वामित्र को वसिष्ठ के आदमी बांध कर लाए । इस पर विश्वामित्र उन लोगों से कहते हैं- ऐ लोगो (जनासः), मन्त्र बल से नाश करने वाली विश्वामित्र की शक्ति का तुझे ज्ञान नहीं है (सायकस्य न चिकिते) । इसी से मेरी तपस्या का क्षय न हो इस लोभ से मौन व्रतधारी मुझे (लोधम्) पशु समझ (पशु मन्यमानः) । मूर्ख को वागीश या विद्वान् हास्यास्पद नहीं करते (अवाजिनम्) वाजिना न हासयन्ति), अर्थात् बुद्धिमान् मूर्ख से स्पर्धा नहीं करते और गधे को घोड़े के सामने नहीं लाते (गर्दभम् अश्वान् पुरः न नयन्ति), अतः वसिष्ठ की मेरे साथ स्पर्द्धा ठीक नहीं है ।
स्वा. दयानन्द का अर्थ-जो क्षत्रिय तपोलुब्ध ब्राह्मण को तत्वदर्शी समझ युद्ध में नहीं पकड़ते (लोधं पशु मन्यमानाः न नयन्ति), सबल से निर्बल को नहीं लड़ाते (वाजिनम् अवाजिनम् न हासयन्ति), जो घोड़े के सामने गधे को नहीं ले जाते उन्हें ही राजा शस्त्रास्त्रों का अधिकारी जाने (सायकस्य चिकिते) ।
(४) रूप दिखाने वाला - किरण ।
'त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः
पशून् विश्वान् समानजे'
ऋ. १.१८८.९
(६) सर्वद्रष्टा प्रभु
'हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते'
ऋ. ९.८६.४३, अ. १८.३.१८, साम. १.५६४, २.९६४

पशुतृप् - (१) पशुओं को घास आदि से तृप्त करने वाला, (२) इन्द्रिय रूप पशुओं को भोग विलासों से तृप्त करने वाला
'अवराजन् पशुतृपं न तायुम्
सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्'
ऋ. ७.८६.५.

पशुपति- (१) धनुर्धारी पशुपति, ।
शिव का एक पयभि ।
'पशुपतिरेनमिश्वासः'
अ। १५.५.८.
(२) दर्शन शील इन्द्रियों का, भृत्य के समान शरीर के काम करने वाले अंगों का पालक आत्मा
'पशुपतेः पुरी तत्'
वाज.सं. ३९.९.

पशुपा- (१) पशुओं का पालक ग्वाला ।
(२) विद्वानों का पालक राजा ।
'उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरम्'
ऋ. १.११४.९, आश्व.श्रौ.सू. ४.११.६.

पशुमत् - पशुयुक्त । पशु + मतुप् ।

पशुमत् यूथः- (१) पशुओं का यूथ ।
(२) पशु तुल्य कर्मचारी वर्ग या सैनिक वर्ग -दया. ।
'श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्'
ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४.
ऐसे इन्द्र को हम धन एवं पशुओं के यूथ का लक्ष्य कर प्रार्थना करते हैं ।
जिस राजा की पशुतुल्य कीर्ति या धन को या पशुतुल्य कर्मचारी वर्ग या सैनिक वर्ग को कोसते हैं ।

पशुमान् - पशु से युक्त ।

'प्रजावान्नः पशुमां अस्तु गातुः '
ऋ. ३.५४.१८.

पशुरक्षि- पशुओं का रक्षक ।
'आजा यूथेव पशुरक्षि रस्तम् '
ऋ. ६.४९.१२.

पशुबन्ध - पशु अर्थात् द्रष्टा परमात्मा को हृदय में बन्धन द्वारा किया जाने वाला सोम याग ।
'पशुबन्धास्तदिष्टयः '
अ. ११.७.१९

पशुष् - (१) बन्धक , बांधने वाला -दया.
(२) पशुओं को सब प्रकार की पुष्टि देने वाला गोपालक ,(३) समस्त प्राणियों का परिपोषक और व्यवस्थापक ।
'उषर्बुधे पशुषे नाग्नये
स्तोमो बभूत्वग्नये । '
ऋ. १.१२७.१०
प्रातः जागने वाले (उषर्बुधे) और योग दशा में विशोका के उदय में ज्ञान का विषय होने वाले (उषर्बुधे) पशुओं को सब प्रकार की पुष्टि देने वाले गोपालक या समस्त प्राणियों का परिपोषक और व्यवस्थापक (पशुषे) के लिए होवें ।
(४) पशु ।
'यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् '
ऋ. ५.४१.१.

पशुसनि - पशुदेने वाला ।
'पशुसनि लोकसन्यभयसनि '
वा.सं. १९.४८, मै.सं. ३.११.१०, १५६.१७, श.ब्रा. १२.८.१.२२.

पशुसाधनी- पशुओं को वश में करने वाली ।
'या ते अष्ट्रा गो ओपशा
आघृणे पशुसाधनी '
ऋ. ६.५३.९

पशूनां पतिः - (१) पशुओं का पालक, (२) रुद्र ।
'पशूनां पतये नमः '
वाज.सं. १६.१७, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३, १२२.१०, का.सं. १७.१२.

पष्ठवाट् - पीठ से बोझा उठाने वाला बैल, हाथी, गधा, घोड़ा आदि ।
'पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मे '
वाज.सं. १८.२७, का.सं. १८.१२.

पष्टौही - पीठ से बोझा उठाने वाली गौ, गधी, घोड़ी आदि ।

पसः- (१) प्रजननांग
'यथा पसस्तायादरम् '
अ. ६.७२.२.
(२) राज प्रबन्ध, (३) जननेन्द्रिय ।
'यदास्थूलेन पससा '
अ. २०.१३६.२, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.३.
'धनुरिवा तानया पसः '
अ. ४.४.६, ६.१०१.२.

पस - 'सप' का वर्ण व्यत्यय से 'पस' । 'षप्' धातु समवाय अर्थ में प्रयुक्त है । अर्थ है-(१) संघ बनाकर बैठने वाला । (२) सुसम्बद्ध, सुप्रबद्ध (३) राष्ट्र का राज्य प्रबन्ध (४) संगति ।
'आहन्ति गभेपसः '
वाज.सं. २३.२२, श.ब्रा. १३.२.९.६.

पस्त्य - पत् + य = पस्त्य । अर्थ है । (१) पतन, (२) गृह ।

पस्त्या - वसन्ति अस्मिन् । पततेः वा संगत्यर्थो वा इतिमाधवा(१) उत्तम गृह वाली भूमि (२) गृहों में निवास करने वाली प्रजा, (३) राष्ट्रभूमि, (४) सुसंगत सुव्यवस्थित सेना ।
'प्र प्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थित
अन्तर्वावते क्षयं दधे । '
ऋ. १.४०.७.
दानशील पुरुष ही (प्र प्रदाश्वान्) गृहों में निवास करने वाली प्रजाओं, राष्ट्र भूमियों और सुसंगत, सुव्यवस्थित सेनाओं से (पस्त्याभिः) प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है (अस्थित) । भीतर गति करने वाले वायु से युक्त या भीतर आने वाले नाना ऐश्वर्यों से युक्त पदार्थों से पूर्ण निवास योग्य गृह को (अन्तर्वावत् क्षयम्) धारण करता है । (५) प्रजा, (६) आश्रय भूत प्रकृति विकृति ।
'स जायत प्रथमः पस्त्यासु '
ऋ. ४.१.११.

पस्त्या अदितिः- साक्षात् गृह स्वरूप अदिति, पृथ्वी या माता ।
'प्रपस्त्यामदितिम् सिन्धुमर्कैः '
ऋ. ४.५५.३.

पस्त्यावत् - (१) गृह के समान (२) उत्तम प्रजा से

सम्पन्न ।
'स्तृणाना सो बर्हिः पस्त्यावत्'
ऋ. २.११.१६
(३) पस्त्या + वतुप् = पस्त्यावत् गृहवान्, गृह का स्वामी ।
'उतश्रुतं वृषणा पस्त्यावतः'
ऋ. १.१५१.२
आप दोनों स्त्री पुरुष उस गृह के स्वामी की वाणी की आज्ञा का श्रवण करो ।
(४) जल धाराओं से युक्त मेघ, (५) निवास गृहों से युक्त ।
'क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः'
ऋ. ४.५४.५
(६) उत्तम प्रजा से सम्पन्न या नाना गृह भवनों से समृद्ध नगर या देश ।
'आर्जीके पस्त्यावति'
ऋ. ८.७.२९

पस्पशानः- देखता हुआ ।
'गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त'
ऋ. १०.१०२.८

पस्पशे - करता है ।
'विष्णोः कर्माणि पश्यत
यतो व्रतानि पस्पशे ।'
ऋ. १.२२.१९, अ. ७.२६.६, साम. २.१०२१., वाज.सं. ६.४, १३.३३ , तै.सं. १.३.६.२, मै.सं. १.२.१४, २३.१८, का.सं. ३.३, १६.१६ .श.ब्रा. ३.७.१.१७, ७.५.१.२५.
इस विष्णु के सृष्टि आदि कर्मों को देखो जिसके अनुग्रह से जीव अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता है ।

पस्पृधान- (१) स्पर्धा करता हुआ ।
'प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानम्'
ऋ. १.६१.१५.
तेज में सूर्य से स्पर्धा करने वाले तथा आश्व के समान निर्भिक ।
'सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत'
ऋ. १.११९.३.
एक दूसरे से स्वर्धा करते हुए एकत्र होते हैं ।
(२) अधिक होने के लिए स्पर्धा करने वाला ।
'पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ'
ऋ. २.१९.४

प्रहा- मारने वाला ।
'उत प्रहामतिदीवा जयति'
अ. ७.५०.६

पाकः - पच् + घञ् = पाक । अर्थ है- (१) प्रत्यक्ष प्रज्ञ, सम्यक् दर्शन, (२) सम्यक् दर्शन ईश्वर, (३) तत्वदर्शी, (४) जिसकी प्रज्ञा शक्ति प्रखर हो ।
'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः
समाधीरः पाकमत्राविवेश'
ऋ. १.१६४.२१, नि. ३.१२.
(५) पच् + घञ् = पाक । विपक्व ।
'तं पाकेन मनसापश्यमन्तितः'
ऋ. १०.११४.४, ऐ. आ. ३.१.६.१५, नि. १०.४६.
उस सुपर्ण नामक वायु को मैं निकट ही विपक्व प्रज्ञा से (पाकेन मनसा अन्तितः) देखता हूं ।
आधुनिक अर्थ - रसोई बनाना, जलाना, अन्न् का पचाना, पकना, परिपक्व, पूर्णविकास, पूर्ति पूर्णता, फल, परिणाम कृतकर्मों का फल भोग, अन्न, घाव का पकना, बाल का पकना, गृह अग्नि, उल्लू पक्षी, बद्धा, इन्द्र द्वारा मारा गया एक राक्षस ।

पाकत्र - (१) न्यून ज्ञान ।
'यत्पाकत्रा मनसा दीन दक्षाः'
ऋ. १०.२.५, कौ.ब्रा. २६.६, तै.ब्रा. ३.७.११.५, आप. श्रौ.सू . ३.१२.१.
(२) परिपक्व ज्ञान वाले तपस्विजनों के अधीन ।
'पाकत्रा स्थन देवाः'
ऋ. ८.१८.१५.

पाकदूर्वा- पकी दूब ।
'पाकदूर्वा व्यल्कशा'
ऋ. १०.१६.१३.

पाकबलिः- परिपक्व वीर्य वाला ।
पाकबलिः
अ. २०.१३१.१२.

पाकशंसः- (१) परिपक्व, दृढ़ सत्य वचन कहने वाला, (२) ठोंस पक्की बात कहने वाला ।
'ये पाकशंसं विहरन्त एवैः'
ऋ. ७.१०४.९

पाकस्थामा- (१) पाकस्थामा नामक एक राजा । (२) महाबली, (३) परमेश्वर का

विशेषण-(दया.) । (४) परिपक्व बल वाला परमेश्वर ।
यं मे दुरिन्द्रो मरुतः
पाकस्थामा कौरयाणः '
ऋ. ८.३.२१.
इन्द्र और मरुतों ने जो दान मुझे दिया वैसा ही सदा शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले (कौरयाणः) पाकस्थामा नामक राजा ने दिया (पाकस्थामा) ।
महाबली (पाकस्थामा) सबको गति देने वाला (कौरयाणः) और सबके जीवनाधार वायु के स्वामी परमेश्वर (मरुतः इन्द्र) जिस सूर्य वृष्टि आदि पदार्थ समूह को मुझे देने वाला है (यम् मे दुः) (-दया.) ।

पाकसुत्वा - (१) आत्म ज्ञान का परिपाक करने वाला, (२) आत्म ज्ञान रूपी रस का सवन करने वाला (३) सोमरस बनाने वाला ।
'पिबामि पाक सुत्वनः '
ऋ. १०.८६.१९, अ. २०.१२६.१९.
(४) विपाक् या कर्मफल का स्वामी प्रभु

पांक्त - (१) पंक्ति बनाकर चलने वाला पक्षी ।
'अन्तरिक्षाय पांक्त्रान् '
वाज.सं. २४.२६, मै.सं. ३.१४.७, १७३.११.
(२) पांचों जनों का हिताकारी ।
'पांक्ताय त्रिणवाय शाक्वराय '
वाज.सं. २९.६०

पांक्तं छन्दः- (१) पंक्ति छन्द, (२) दसों दिशाओं को बल, (३) पांचों जनों का बल (४) पांच स्वतन्त्र प्राणों से युक्त पुरुष- आत्मा ।
'पांक्तेन त्वा छन्दसा सादयामि '
वाज.सं. १३.५३, मै.सं. २.७.१८,१०३.१३, श.ब्रा. ७.५.२.६१.
'पांक्त छन्दः पुरुषो बभूव '
अ. १२.३.१०.

पाक्य- (१) विद्या योगाभ्यासेन परिपक्व धीः -(दया.)
'विद्या और योगाभ्यासेन परिपक्व बुद्धि वाला । (२) परिपक्व विज्ञान वाला ।
'विपृच्छामि पाक्यान्न देवान्
वषट्कृतस्याभ्द्भुतस्य दम्रा '
ऋ. १.१२०.४.
हे दुःखों के विनाश करने वाले, आप दोनों परिपक्व विज्ञान वालों से ही इस अद्भुत आश्चर्यकारी वषट्कार, यज्ञ आहुति या आदान प्रदान, सृष्टि गत सर्ग और प्रलय के विषय में (अद्भुतस्य वषट्कृतस्य) विविध प्रश्न पूछता हूँ (विपृच्छामि) ।

पाकारु- (१) पकने वाला फोड़ा ।
'पाकारोरसि नाशनी '
वाज.सं. १२.९७

पाक्या- परिपक्व ज्ञान वाला ।
'पाक्याचिद् वसवो धीर्याचित् '
ऋ. २.२७.११, तै.सं. २.१.११.५, मै.स. ४.१४.१४, २३८.१५.

प्राघर्मसत् - उत्तम तेज को धारण करने वाला ।
'द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् ऋतावरी '
ऋ. ६.७३.१, अ. २०.९०.१.

पाजः - पा + जुट् + असुन् = पाजस् । इससे अपनी या दूसरे से रक्षा होती है । अर्थ है (१) तेजः संघ । 'पातेर्वले जुट् च' से पाजसम्' बना है । (२) बल ।
'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम् '
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९.
हे सेनापति, तू फैले जाल की तरह (पृथ्वीम् प्रसितं न) बल धारण कर - दया. ।
हे अग्निदेव, तेजः संघ इस पृथ्वी को जाल के सदृश बना ।

पाजस्य - न. (१) गौ का पेट ।
'क्ष्येनः क्रोडों अन्तरिक्षम् पाजस्यम् '
अ. ९.७.५.
(२) उदर का मध्य भाग ।
'पाजस्यात् जज्ञे यज्ञः '
अ. १०.१०.२०
(३) पाद, खड़े होने का स्थान ।

पाजसी - द्वि. व. । (१) बलवती (२) द्यावाक्षाया का विशेषण ।

पाञ्चजन्य- (१) पाँचोजन (२) पांचों इन्द्रिय और पाँचों भूतों समान रूप से उपासनीय परमेश्वर ।
'पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिइन्धते '
अ. ४.२३.१.
(४) पांचों जनों - ब्रहण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र

एवं निषाद (चाण्डाल) । अथवा गन्धर्व, अप्सरा, असुर, देव और राक्षस, अथवा अध्यापक, उपदेशक, सभाध्यक्ष, सेनापति और जनाध्यक्ष के बीच शासक ।
'चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यः'
ऋ. १.१००.१२
(५) पांचों जनों का हितकर ।
'पांचजन्यः पुरोहितः'
ऋ. ९.६६.२०, वाज.सं. २६.९, साम. २.८६.९, वाज.सं. (का.) २९.३९, मै.सं. १.५.१,६६.१०. तै.आ. २.५.२, आप.श्रौ.सू. ५.१७ .२.

पाञ्चजन्यः पुरोहितः- (१) अग्नि, (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद्, या देव, मनुष्य गन्धर्व, अप्सरा, सर्प और पितर, या पांच इन्द्रियों का समान रूप से हितकारी समस्त कार्यों के पूर्व हृदय और समस्त विश्वसृष्टि के पूर्व जगत् में साक्षी रूप से स्थित परमेश्वर ।
'अग्नि ऋषिः पवमानः
पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।

पाञ्चजन्यः रैः- पांचों जनों का हितकारी धन ।
'आविश्वतः पाञ्चजन्येन राया'
ऋ. ७.७२.५, ७३.५.

पाञ्चजन्या- पञ्चजन + ण्यत् = पाञ्चजन्य । पाञ्चजन्य + टाप् = पाञ्चजन्या । अर्थ (१) पञ्चजन समुदाय लक्षणा, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र तथा निषाद पञ्चजन हैं । इन्हीं का समुदाय जनता या प्रजागण हैं । इसी से - 'पाञ्चजन्या विशः' कहा गया है ।

पाञ्चजन्या कृष्टि- पांचजनों में उत्पन्न मनुष्यादि प्रजा ।
'अधिश्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु'
ऋ. ३.५३.१६.

पाञ्चजन्या विट् - (१) पांचों-जनों ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र एवं निषाद, या देव, यक्ष, किन्नर, रक्षः और गन्धर्वों से बनी प्रजाए (२) पञ्चजनों के समुदाय वाली प्रजा ।
'यत्पाञ्चजन्यया विशा'
ऋ. ८.६३.७, ऐ.ब्रा. ५.६.८. कौ.ब्रा. २३.१, आश्व. श्रौ.सू. ७.१२.९, नि. ३.८.
प्रजा के विशेषण के रूप में पञ्च जन शब्द का प्रयोग वेदों में प्रचुर है । यास्कने पञ्च जनों का प्रयोग मनुष्य के पर्याय में किया है ।
'यत्पाञ्चजन्यया विशा
इन्द्रे घोषा असृक्षत'
ऋ. ८.६३.७
जब पञ्चजनों के समुदाय रूपी प्रजाओं के साथ ऋत्विजों के द्वारा इसी प्रकार की स्तुतियाँ वर्षा के लिए रची गई ।

पाटा - (१) दीप्ति मती आत्मशक्ति, (२) विवेकख्याति रूप प्रत्यक् चेतना शक्ति ।
'पाटामिन्द्रो व्याश्वात्'
अ. २.२७.४

पाणि- पण (व्यवहार, स्तुति या पूजा अर्थ में) + इण् (कारण अर्थ में) = पाणि । अर्थ -तिस से कार्य किया जाय या पूजा की जाय ।
(२) कर, हाथ ।

पाणिघ्न- हाथ से तबला आदि बजाने वाला ।
'वीणावादं पाणिघ्नम् तूणवध्मं तान्नृत्ताय'
वाज.सं. ३०.२०

पात- पा (रक्षा करना) के लोट् म.प्र. व.व. का रूप । अर्थ है- रक्षा करो ।
'यूयं पात स्वस्तिभिः सदानः'
ऋ. ७.१.२०, २५. ३.१०, ७. ७,८, ९.६, ११.५, १२.३, १३.३, १४.३, १९.११, २०.१०,
हे देव, आप आशीर्वाद से सदा हमारी रक्षा करें ।

पातल्य- गिरने वाला, मर्यादा से च्युत होने वाला ।
'इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोः'
ऋ. ३.५३.१७

पात्र- न. । (१) पात्र ।
'वराय ते पात्रं धर्मणे तना'
ऋ. १०.५०.६.
हे इन्द्र, अपनी श्रेष्ठ कामना के लिए तुझे सोम रसपूर्ण पात्र तथा धन देता हूँ, (तना) (२) रक्षा का साधन ।
'मृणीहि विश्वा पात्राणि'
अ. ६.१४२.१
(३) पालन सामर्थ्य ।
'अनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा'
ऋ. १०.४४.५, अ. २०.९४.५.
(४) पा (पीना) + ष्ट्रन = पात्र । पात्रं पानात् पीयते हि तेन (इस से पीया जाता है अतः पात्र

है)
'पात्रान्तु कुलयो र्मध्ये
पर्णे नृपतिमन्त्रिणि
योग्य भाजनयो र्यज्ञ
भाण्डे नाट्या नुकर्त्तरि ।' -हेम
(५) कच्चा पात्र (६) पालन करने योग्य बच्चा ।
(७) पीने का बर्तन, घड़ा आदि ।
'मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि'
ऋ. १.१०४.८.
'ओषः पात्रं न शोचिषा'
ऋ. १.१७५.३, साम. २.७८४.
(८) शत्रु के बचाव का साधना ।
'पात्राभिन्दाना न्यर्थन्यापन्'
ऋ. ६.२७.६

पात्रहस्त- (१) हाथ में पात्र लिया हुआ, (२) परसने वाला ।
'यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः'
अ. ९.६.५१.

पात्नीवत- (१) पात्नी वत यज्ञ, (२) एक प्रकार का राज्याधिकारी ।
'पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्
वाज.सं. १८.२०

पात्री- थाली आदि पात्र ।
'इमां पातृममृते नासमङ्ग्धि'
अ. ३.१२.८.

पाथ्- पान करने योग्य जल, (२) उत्तम अन्न, (३) उत्तम पालन का उपाय ।
'पाथो देवेभ्यः सृज'
ऋ. १.१८८.१०

पाथ- (१) अन्न ।
'उपावसृज त्मन्या समञ्जन्
देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि'
ऋ. १०.११०.१०, अ. ५.१२.१०, वाज.सं. २९.३५, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१३, का.सं. १६.२०.तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१७.
हे अग्ने, आत्मा से, जीव से या स्वयं (त्मन्या) अन्न तथा आज्य आदि हवि ऋतु के अनुसार सम्मुख कर जनों के लिए निकट आकर दो । अथवा हे अग्ने, तू स्वयं अपने को अभिव्यक्त कर ऋतु के अनुकूल देवजनों के अन्न तथा आज्य आदि हवि को बना ।
(२) पत् + असुक् = पायस् (उपधा की वृद्धि, 'त' 'थ')। 'पतस्य च' । 'पतति इतिपाथः (जो पतनशील है वह पाथस है) । अर्थ है- 'अन्तरिक्ष' 'पाथोऽरिक्षं पथा व्याख्या तम्' ।
(३) जल । 'उदकमपि पाथ उच्यते पानात्' (उदक को भी पाथस् कहते हैं । इसकी व्युत्पत्ति पा (रक्षार्थक धातु से) है । पा + असुन् पाथस् । उदके थुट्च । उदकञ्च अन्नञ्च लोकान् पाति इति पाथ उच्यते (उदक और अन्न को पाथस कहा जाता है क्योंकि ये लोक की रक्षा करते हैं ।
'आचष्ट आसां पाथो नदीनाम्
वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः'
ऋ. ७.३४.१०, नि. ६.७.
अनेक चक्षुवाले (सहस्रचक्षा) उद्दूर्ण या ओजस्वी (उग्रः) वरुण इन नदियों का जल (आसां नदीनां पाथः) देखता है (अभिपश्यति) ।
अन्य अर्थ - हे राजन् , जैसे अनन्त प्रकाश वाला तेजस्वी सूर्य (सहस्र चक्षाः) इन नदियों के जल को खींचकर फिर उन्हीं में बरसा देती है उसी प्रकार अपने राज्य में सर्वत्र दृष्टि रखने वाले प्रतापी और अविद्यान्धकार दूर करने वाले इन प्रजाओं से कर लेकर उन्ही में खर्च करने की आज्ञा देते हैं (आचष्टे) ।
पुनः अन्तरिक्ष के अर्थ में -
'श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः'
ऋ. ७.६३.५, नि. ६.७
वह अन्तरिक्ष (पाथः)उस सूर्य को मार्ग देने के निमित्त शीघ्र बाज पक्षी के समान (श्येनःन) चलता हुआ (दीयन्) उनका अनुकरण करता है (अन्वेति) ।
अथवा, जब सूर्य की तरह बड़े वेग से गति करता हुआ अन्तरिक्ष में प्राप्त होता है ।

पाथ्य - (१) समस्त ज्ञानों का ज्ञाता ।
'तमु त्वा पाथ्यो वृषा'
ऋ. ६.१६.१५, वाज.सं. ११.३४, तै.सं. ३.५.११.४, ४.१.३.३, ५.१. ४.४.मै.सं. २.७.३, ७७.८, ४.१०.३, १४८.३, का.सं. १५.१२, १६.३, १९.४, श.ब्रा. ६.४.२.४, वै.सू. ५.१४.

पाथ्यःवृषा- (१) जल युक्त मेघ, (२) धर्म पथ पर

आरुढ़ बलवान् प्रबन्ध कुशल पुरुष ।
(३) अध्यात्म में प्राण ।

पाद् – (१) पद्यते अनेन इति (इससे चला जाता है) – पैर ।
'कदामर्तमराधसं पदाक्षुम्पमिव स्फुरत्'
ऋ. १.८४.८, अ. २०.६३.५, साम. २.६.९३, नि. ५.१७.
(२) रश्मियं चरण, (३) पादस्था नीय भूमि ।
'पत्तो जगारे प्रत्यञ्चमत्ति'
ऋ. १०.२७.१३
आदित्य रश्मिरूपी चरणों से या पादस्थानीय भूमि से (पत्तः) जल ग्रहण करता या निगलता है(जगार) (४) पशु पाद प्रकृति (पशु का चरण ही पद की प्रकृति है) पाद का ही नाम पद है ।
(५) दीनार का भाग भी पाद पद कहा जाता है । (प्रभाव पादः)
(६) प्रभागपादसामान्यात् इतराणि पदानि । प्रभाग पाद की तरह और पदार्थों के भी चार चरण या पाद होते हैं । जैसे ग्रन्थ के पद, क्षेत्र के पद ।
(७) आहवनीय स्थान ।
'पदं व्यवसित त्राण स्थान
लक्ष्माङ्कित वस्तुषु'
–अमरकोष
'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः
श्रवस्यवः श्रव आपन्तमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि
भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ'
ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६, २०६.१२, का.सं. १८.२०.तै.ब्रा. ३. ६.१०.२.
जो देव या अग्नि के आहवनीय स्थान को (देवस्य पादम्) नमस्कार, स्तुति या मन्त्र से (नमसा) देखते या मानते हुए (व्यन्तः) अन्न या यज्ञ चाहने वाले (श्रवस्यवः) दूसरों से अनुपयुक्त यश प्राप्त करते हैं (अपृक्तम् आपन्), हे अग्नि, वे भी (ते) स्तुत्य अग्नि के दर्शन के लिए (भद्रायां संदृष्टौ) अपने को रमाते हैं (रणयन्त) और तेरे यज्ञ योग्य नामों को या स्तोत्रों को धारण करते हैं वे भी अग्नि को पाते हैं ।
(८) वेद के चार पाद–चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीय । केवल अध्ययन करना या मुख द्वारा उच्चारण मात्र चर्चा है । उस अध्ययन का उपदेश करने वाला गुरु श्रावक है । उसका अध्येता अर्थात् शिष्य चर्चक हैं और श्रवण करने योग्य वेद का समाप्त करना श्रवणीयपाद है । इन चार पादों से ऋग्वेद का अध्ययन होता है ।
(९) पद + घञ् = पाद । यत् उत्पद्यते स्थानादि तत्सरूपम् पांसौ अन्यत्र वा तत् पदम् (चलते समय धूलि आदि में उखड़ा पदिचह्न) ।
(१०) अवकाश ।

पादगृह्य– (१) चरणों से पकड़ कर ।
'यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य'
ऋ. ४. १८.१२.
'प्रतं क्षिणां पर्वते पादगृह्य'
ऋ. १०.२७.४

पाद्र– (१) प्रयत्नशील पुरुष (२) यदु का वंशज ।
'नि तुर्वशं नि याद्रं शिशीहि'
ऋ. ७.१९.८, अ. २०.३७.८.

पादि– पैर तले दबाना । पद् + णिच् ।
'अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मत्'
अ. १३.१.३१

पादुः– पद् + उण् = पादु । अर्थ (१) गमन, (२) कर्म –दया. (३) सरणि, पद्धति ।
'सपादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते'
ऋ. १०.२७.२४, नि. ५.१९.
इस आदित्य का वह गमन (सपादुः) कभी श्रम से (निर्णिजः) विराम नहीं लेता (नमुच्यते) ।
(४) ज्ञानमय चेतनामय स्वरूप (५) ज्ञानप्रकाश –व्यापार ।

पान्तम् – पीने लायक सोमात्मक हवि, या दुग्ध, घृत आदि रस ।
'हविष्पान्तमजरम् स्वर्विदि'
ऋ. १०.८८.१, ऐ.ब्रा. ५.८.११, कौ.ब्रा. २३.३, नि. ७.२५.
पीने योग्य सोमात्मक या दुग्ध घृतादि रस का बना स्वच्छ हवि (२) पा + अनीयर = पानीय = पान्त (पृषोदरादिवत्)। पानीय, पानार्ह, पीने योग्य ।
'प्रवः पान्तमन्धसे धियायते'
ऋ. १.१५५.१.

पान्ता- (१) रक्षक-दया. (२) पानकर - ।

पाषी - (१) शिला, पाषाण, (२) आकाश, (३) भूमि ।

'उप त्रितस्य पाष्योः अभक्त यद् गुहायदम्'

ऋ. ९.१०२.२, साम. २.३६४.

पाप - (१) पा (पीना) + प = पाप। (पानी विषिभ्यः पः) । पाता अपेयान्तम् (अपेय पदार्थों को पीने वाला) । अपेयानि अलेहलानि विषयप्रसक्तः विवति (विषयप्रसक्तः अलेहलानि (विषयप्रसक्तपुरुष अपेय पदार्थों को पीता है अतः वह पाप कहा गया है) ।

(२) पापत्यमानोऽवाङेव पतति इति पापः (जो कर्मों से पुनः नरक में गिराया जाय वह पाप या पापी है) । 'पापत्यभान' का ही पाप हो गया । (पृषोदरादिवत्) । (३) 'पा' धातु के यङ्लुङन्त रूप 'पापत्यति' का 'पा' और 'प' प्रत्य मिलकर पाप बना है ।

(४) अपेयों अर्थात् अरक्षणीयों की रक्षा करने वाला जिसकी रक्षा नहीं करनी चाहिए उसकी भी रक्षा करने वाला पाप है ।

(५) यङ्लुङन्त 'पत्' धातु से 'पाप' शब्द की सिद्धि की गई है ।

पापकृत् - पापाचरण करने वाला ।

'भवाशर्वा वस्यतां पापकृते'

अ. १०.१.२३.

पापकृत्वन् - पाप करने वाला ।

'पाप कृत्वानमागमम्'

अ. १९.३५.३.

पापत्व- (१) पाप कार्य ।

'न पापत्वाय रासीय'

ऋ. ७.३२.१८, अ. २०.८२.१

(२) पाप कर्म की वृद्धि ।

पापतीति - पुनः पुनः पतति, (बार -बार गिरती या पड़ती है) ।

'अधजिह्वा पापतीति प्रवृष्णः'

ऋ. ६.६.५

और प्रवर्षि अग्नि की ज्वाला लकड़ियों पर बार बार पड़ती है ।

पाप्मन् - पाप ।

'पाप्मने क्लीबम्'

वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

पापाः - पाप परायण पुरुष ।

'येत्वा देवो म्रिकं मन्यमानाः
पाप भद्रमुपजीवन्ति पज्राः'

ऋ. १.१९०.५

हे बृहस्पति, जो पाप परायण तथा धनी होकर भी धन को भोग प्रधान पापों में लगाकर जीर्ण हो (पापाः पज्राः) वे तुझ कल्याणकारी (भद्रम्) एवं तेजस्वी (म्रिकम्) का अपमान करते हुए (मन्यमानाः) अपने ही लिए जीते हैं । (उपजीवन्ति)

पाया - पापकारिणी प्रवृत्ति ।

'यद्वा चेरिम पापया'

अ. ७.६५.२

पापासः- पाप + अच् (मतुप् अर्थ में) = पाप अर्थ है- पापी । पाप + जस् = पापासः ।

पाप्मा - (१) दुःखदायी चर्मरोग ।

'पाप्मा भ्रातृत्येण सह'

अ. ५.२२.१२.

(२) एक रोग जो दूसरे को मारने के लिए कच्चे बर्तन में रख कर किया जाता है और जिसके जल जाने पर फट् फट् आवाज होती है, (३) बारूद के समान कोई विस्फोटक पदार्थ ।

'अमाकृत्वा पाप्मानं
यस्तेनान्यं जिघांसति'

अ. ४.१८.३

(४) घातक प्रयोग, टोना ।

पापिष्ठाः- पाप से युक्त प्रवृत्तियाँ ।

'तासां पापिष्ठा निरितः प्रहिण्मः'

अ. ७.११५.३

पापी - पाप जनक बुरी प्रवृत्तियाँ ।

'या पापीस्ता अनीनशम्'

अ. ७.११५.४.

पापी लक्ष्मी - पाप कारिणी, कलंक दायिनी, दुष्टाचारिणी ।

'प्र पतेतः पापि लक्ष्मि'

अ. ७.११५.१

प्राक्त :- (१) आगे से ।

'प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तः'

अ. ८.४.१९

'प्राक्तो अपाची मनयंतदेनाम्'

अ. १८.३.३.

(२) पूर्व ।
'प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तात्'
ऋ. ७.१०४.१९.

प्रार्घर्मसत्- सर्वोत्कृष्ट तेजः स्वरूप में विद्यमान ।
'द्विबर्हज्मा प्रार्घर्मसत् पितानः'
ऋ. ६.७३.१, अ. २०.९०.१

प्राङ्- (१) उच्च योनि में जाने वाला जीव ।
'अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः'
ऋ. १.१६४.३८, अ. ९.१०.१६, ऐ.आ. २.१.८.११, नि. १४.२३.
(२) पूर्वदिशा ।

प्राङ् तिष्ठन् - इन्द्र ।
'इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन्'
अ. ९.७.२०

प्राच्य विष- (१) प्राची दिशा के देशों के जन्तुओं और ओषधियों के विष (२) शरीर में फैलने वाला विष जो उसी स्थान पर सूजन कर दे प्राच्य है, (३) बहुत तीव्र विष ।
'अरसं प्राच्यं विषम्'
अ. ४.७.२.

प्राचाजिह्व- (१) दुग्ध देने के पहले जिसकी जिह्वा हो, - शिशु -(दया.) ।
(२) आगे जीभ निकालने वाला बालक, (३) प्राची दिशा में प्रीति प्रकट करने वाला सूर्य, (४) मुख्य उत्तम वाणी से युक्त ।
'प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतम्'
ऋ. १.१४०.३
आगे जीभ निकालने वाले, गिरते पड़ते शीघ्र ही फिसल जाने वाले बालक को ।
अथवा
प्राची दिशा में प्रीति प्रकट करने वाले, अन्धकार को नाश करते हुए, अति शीघ्रता से गति करने वाले सूर्य को, अथवा, मुख्य उत्तम वाणी से युक्त शत्रु को नाश करने वाले, शीघ्र ही शत्रु को सिंहासन से उखाड़ देने वाले सखा या संघ शक्ति को ।

प्राचामन्यु- (१) सर्वोत्कृष्ट ज्ञान से ज्ञान शाली - इन्द्र, परमेश्वर ।
'प्राचामन्यो अहंसन'
ऋ. ८.६१.९

प्राची - (१) प्रातः काल सूर्य जिस दिशा को प्रथम स्पर्श करता है ।
'प्राच्यै दिशे स्वाहा'
वाज.सं. २२.२४, तै.सं. ७.१.१५.१, मै.सं. ३.१२.७, १६२.१४, ३.१२.८, १६३.४, का.सं.(अश्व.) १.६.
(२) उत्तम प्रमयुक्त, ज्ञानवान् पूजनीय, (३) उत्तम प्रकाश से युक्त ।
'प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि'
ऋ. २.२.७, तै.सं. २.२.१२.६, मै.सं. ४.१२.२,१८०.९.
(४) प्र + अञ्च् + ङीष् = प्राची । अर्थ - प्रवृद्धा, (५) पूर्वकालीन, (६) महती ।
'धाता दधातु दाशुषे
प्राचीं जीवा तुमक्षिताम्'
अ. ७.१७.२.
धाता हवि देने वाले, या दानी या यज्ञशील पुरुष को अक्षुण्ण, प्रवृद्ध या पूर्वकाल के तुल्य जीविका दे ।
'प्राची जीवातु' से पूर्वकालीन जीविका का स्मरण होता है । प्राची का यह प्रयोग वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय है ।

प्राचीककुभ- (१) प्राची अर्थात् पूर्व दिशा, (२) जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व से उत्तम रूप से प्रकट होने वाले आर्जवी भाव अर्थात् विकृति भाव ककुप् ककुभिनी भवति, ककुप् कुब्जं कुजतेः उब्जतेर्वा ।
कुजि स्मेय करणार्थः उब्जिरार्जवे भावे आर्जवीभावः प्रवृत्तिः प्रहृता वा ।
'दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः'
ऋ. ७.९९.२.

प्राचीनं ज्योतिः - (१) आहवनीय अग्नि, -
(२) पूर्व दिशा की ज्योति सूर्य अर्थात् पूर्वदिशा । (३) प्राचीन पुरातन, सनातन से प्राप्त वेदमय ज्ञानमय ज्योति ।
'प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.स. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२.८, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६३.४, नि. ८.१२.
आहवनीय अग्नि को (प्राचीनं ज्योतिः) प्रदिश्यमान मन्त्र से (प्रदिशा) प्रदिशन करते हुए (दिशन्ता) सूर्य और अग्नि ।

वेदोक्त विधि के अनुसार (प्रदिशा) प्राचीन ज्योति हो अर्थात् पूर्व की ओर होकर (प्राचीनं ज्योतिः दिशन्ता)

प्राचीन पक्षः- सरल पक्षों से युक्त इषु - काम बाण ।
'प्राचीन पक्षा व्योषा'
अ. ३.२५.३

प्राचीन रश्मिः - (१) आगे बढ़ने वाली रश्मियों से युक्त अग्नि, (२) प्रकट रश्मियों से युक्त ।
'प्राचीन रश्मिमाहुतं घृतेन'
ऋ. १०.३६.६

प्राचीनं बर्हिः- (१) पूर्वदिशा में स्तीर्ण बिछाया हुआ, कुश-सा. (२) वस्तुओं को फैलाने वाला गृह की प्राची दिशा में यज्ञाग्नि ।
'प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः'
ऋ. १०.११०.४, अ. ५.१२.४, वाज.सं. २९.२९, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.९.
पूर्वदिशा में स्तीर्ण कुश (प्राचीनं बर्हिः) मन्त्र द्वारा या विधि पूर्वक काटा या बिछाया जाता है ।
अथवा वस्तुओं को फैलाने वाला ।
गृह की प्राची दिशा में यज्ञाग्नि स्थापित किया जाता है ।

प्राचीनोपवीत- दक्षिण स्कन्ध या यज्ञोपवीत धारण करने वाला ब्रह्मचारी ।
'तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे'
अ. ९.१.२४.

प्राची प्रदिश्- (१) पूर्व दिशा, (२) सूर्य द्वारा प्रकाशित प्रदेश जिसमें रहने की वेदों में कामना की गई है।
'प्राचीं प्राचीं प्रदिशमारभेथाम्'
अ. १२.३.७

प्राचैः- उत्कृष्ट पद ।
'प्राचै र्देवासः प्रणयन्ति देवयुम्'
ऋ. १.८३.२, अ. २०.२५.२.

प्राजापत्य- प्रजापति विषयक ।
(१) अनुवाक, (२) प्रजापति या राजा के स्वरूपं वाला ।
'प्राजापत्याभ्यां स्वाहा'
अ. १९.२३.२६
(३) प्रजापति के विशेष गुणों को दिखलाने वाला ।
'अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः'
वाज.सं. २४.१, तै.सं. ५.५.२३.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१०, का.सं. (अश्व.) ८.२.
(४) पुत्रोत्पत्ति का कार्य ।
'कृणोमि ते प्राजापत्यम्'
अ. ३.२३.५.
(५) प्रजापति अर्थात् राजा द्वारा रक्षणीय ।
'अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः'
वाज.सं. ३०.२२.

प्राजापत्य यज्ञ- जिस प्रकार प्रजापति सबको अन्न देकर प्राजापत्य यज्ञ करता है उसी प्रकार अतिथि सत्कार प्राजापत्य यज्ञ है ।
'प्रजापत्योवा एतस्य यज्ञः'
अ. ९.६.२८

प्राञ्च् (प्राक्) - पूर्व दिशा । प्र + अञ्च् + क्विप् = प्राञ्च ।
'राजा वृक्षं जंघनत् प्रागपागुदक्'
ऋ. ३.५३.११

प्राञ्चः तन्तवः - आसन्दी का लम्बा लपेट- नीवार आदि ।
'ऋचः प्राञ्चस्तन्तवः'
अ. १५.३.६.

प्राञ्जन- प्रलेय ।
'प्राञ्जनादुत पर्णधेः'
अ. ४.६.५

प्राणः- सर्वशरीरगामी वायु ।
'आयुर्नप्राणो नित्यो न सूनुः'
ऋ. १.६६.१.

प्राणत् - (१) जीता हुआ, सांस लेता हुआ ।
'यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः'
ऋ. १.१०१.५
(३) प्राण क्रिया करता हुआ, प्राणश्वास त्यागता हुआ ।
'नमस्ते प्राण प्राणते'
अ. ११.४.८

प्राणतिः- प्राण लेने वाली चेतना शक्ति ।
'अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनाम्'
अ. ८.९.९

प्राणथ- प्राणरूप ।

'यो देवानां चरसि प्राणथेन'
वाज.सं. ११.३९, मै.सं. २.७.४,७८.८, ३.१.५,७.२, का.सं. १६.४, श.ब्रा. ६.३.४.

प्राणदा- प्राण का देने वाला जठराग्नि ।
'प्राणदा अपानदा व्यानदाः'
वाज.सं. १७.१५, तै.सं. ४.६.१.४, मै.सं. २.१०.१, १३२.१३, श. ब्रा. ९.२.१.१७.

प्राणदवान् - प्राण देने वाले वायु, सूर्य, जल , आदि का स्वामी परमेश्वर ।
'यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव'
अ. ४.३५.५.

प्राणन- प्राण लेना, सांस लेना, जीना ।
'विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे'
ऋ. १.४८.१०
हे उषा, तुझ पर ही विश्व का प्राण लेना और जीना निर्भर है ।

प्राणपाः - प्राणों का पालक ।
'प्राणपा मे अपानपाः'
वाज.सं. २०.३४.

प्राणसंशित- प्राणों की शक्तियों में सुशिक्षित ।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा
प्राणसंशितः पुरुषतेजाः'
अ. १०.५.३५

प्राणायनः- प्राण से उत्पन्न प्राणों का आश्रय वसन्त ।
'वसन्तः प्राणायनः'
वाज.सं. १३.५४, तै.सं. ४.३.२.१. मै.सं. २.७.१९,. १०३.१५, का.सं. १६.१९.श.ब्रा. ८.१.१.५.

प्राणाह- ऊपर से बांधा हुआ ।
'प्राणाहस्य तृणस्य च'
अ. ९.३.४

प्रातः - (१) प्रभात बेला, (२) जीवन का प्रथम भाग ब्रह्मचर्याश्रम, ।
ततः सूर्योजायते प्रातरुध्यन् वैश्वानर अग्नि ही प्रातः काल उदित हो सूर्य हो जाता है ।
(३) प्र + अत + ऊरन् । प्रकृष्टम् अतति गच्छति इति प्रातः - (दया.) ।
(जो प्रकृष्ट रूप से व्यापक हो चलता है वह प्रातः है)
'ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्'
ऋ. ५.१.२, साम. २.१०९७, मै.सं. २.१३.७, १५५.१८

प्रातर्जित् - प्रातः अर्थात् अन्धकार को जीतने वाला भग नामक आदित्य ।
'प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम'
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.२५.
हम उष उग्र अन्धकार को जीतने वाले भगनामक आदित्य को बुलाते हैं ।
सूर्योदय से पूर्वकालीन आदित्य का नाम भग है जो प्रातः कालीन अन्धकार को दूर करता है ।

प्रातर्दनिः- शत्रुओं को अच्छी प्रकार छिन्न भिन्न करने वाल- सैन्य बल का स्वामी ।
'प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठः'
ऋ. ६.२६.८

प्रातर्यावा - प्रातः काल ही अपने कार्य पर दत्त चित्त होने वाला विद्वान् ।
'आसीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा
प्रातर्यावाणो अध्वरम्'
ऋ. १.४४.१३, वाज.सं. ३३.१५, तै.ब्रा. २.७.१२.५.
मित्र अर्यमा तथा तथा प्रातः काल ही उपस्थित होने वाले विद्वान् आसन पर ही बिराजें ।
अथवा,
अवध्य एवं अहिंसनीय तथा तिरस्कार नहीं करने योग्य उच्च आदरणीय, उच्च पद को प्राप्त होकर सबका स्नेही (मित्र) न्यायाधीश (अर्यमा) और प्रातः काल ही अपने कार्य पर उपस्थित होने वाले (प्रातर्यावाणः) जन बड़े बड़े पदों पर और आसनों पर विराजे (बर्हिषि आसीदन्तु) ।

प्रातर्यावाणा -द्वि. व. (१) प्रातः शीघ्र ही सब कार्यों और उपदेशों को प्राप्त करने वाले स्त्री पुरुष (२) अश्विद्वय
'पातर्यावाणा रथ्येव वीरा'
ऋ. २.३९.२
(३) प्रातः काल आने वाले, (४) कार्य के प्रारम्भ में उपस्थित होने वाले ।
'प्रातयवाणा प्रथमा यजध्वम्'
ऋ. ५.७७.१, मै.सं. ४.१२.६, १९६.१, कौ.ब्रा. ८.६, तै.ब्रा. २.४.३.१३.

प्रातर्यावा विप्रः- (१) सबसे पूर्व उद्देश्य पर पहुँचने (२) वाला धनादि पूरक उत्तम मतिमान, ब्राह्मण ।

'विप्रेभिर्विप्र सन्त्य
प्रातर्यावभिरांगहि'
ऋ. ५.५१.३.

प्रातरित्वन् – प्रातरागायिन्। प्रातः + इ (गत्यर्थक) + क्वनिप् = प्रातरित्वन् (तुक् का आगम और इट् का अभाव)।
प्रातः काल आने वाला।
'यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो
मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति'
ऋ. १.१२५.२, नि. ५.१९.
क्योंकि रात में आते हुए तुझे राजा ने धनदान द्वारा अपने यहां इसी तरह से रोक लिया जैसे रस्सी में बांध पक्षी को रोक लिया जाता है।
पुनः।
(२) प्रातः काल का उठने वाला
'प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति'
ऋ. १.१२५.१

प्रातर्युजा – (१) प्रातः काल में मिलने दिन रात्रि (२) सूर्य चन्द्र (३) सूर्य पृथिवी, (४) स्त्री पुरुष

प्रातःसवन– (१) प्रातः काल का सवन (२) वसु ब्रह्मचर्य का अवसर।
'अग्निः प्रातः सवने प्रात्वस्मान्'
अ. ६.४७.१, तै.सं. ३.१.९.१, मै.सं. १.३.३६, ४२.८, ४.७.७, १०.२.४, का.सं. ३०.६,७, का.श्रौ.सू. ९.३.२१, आप. श्रौ.सू. १२.२९.१३.

प्रातःसाव– (१) प्रात् काल का सवन या यज्ञ, (२) जीवन का प्रथम काल ब्रह्मचर्याश्रम।
'प्रातः सावे धियावसो'
ऋ. ३.२८.१

प्राता– (१) व्यापिका –दया. (२) पूर्ण पात्र होकर।
'अपि प्राता निषीदति'
ऋ. ७.१६.८

प्रातिरत् – प्र + अतिरत्। (१) बढ़ाया – (२) छोड़ दिया।
'अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्
वितिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्।
सं वज्रेणा सृजद् वृत्रमिन्द्रः
प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः'
ऋ. १.३३.१३, मै.सं. ४.१४.१३.२३७.१५, तै.ब्रा. २.८.४.४.,
इस इन्द्र का (अस्य) शत्रुओं का साधयिता या साधक वज्र (सिध्मः) शत्रुओं को लक्षित कर गया (शत्रून् अभि अजिगात्) इन्द्र ने भी उस तीक्ष्ण वर्षा प्रवर्तक अस्त्र से (तिग्मेन वृषभेण) वृत्रासुर या मेघों के नगरों को (पुरः) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न किया (वि अभेत्)। तब इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्रासुर या मेघ को मारा (वज्रेण वृत्रम् समसृजत्)। वृत्र ने भी बार बार भिध्यमान हो (शाशदानः) अपनी इस बुद्धि को कि 'जल नहीं दूँगा' छोड़ दिया।
सायण के अनुसार – वज्र चला वृत्र को मारते हुए इन्द्र के हर्षित हो अपनी बुद्धि को और भी बढ़ाया (स्वां मतिं प्रातिरत्)।

प्रान्ध– एकदम अन्धा।

प्राय– ऊँची स्थिति।
'ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन'
अ. ४.२५.२

प्राममदुः– प्र + अममदुः। अत्यन्त प्रसन्न हुए।
'प्र ये गृहादममदुस्त्वाया'
ऋ. ७.१८.२१.
जो गृहस्थाश्रम से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

प्रायणः – विशेष रूप से जाता हुआ
'प्रायणाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१३.१, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१७, का.सं. (आश्व.) १.४, तै.ब्रा. ३.८.१७.१, आप.श्रौ.सू. २०.६.२, ११.२.

प्रायश्चित्ति– प्रायश्चित की विधि।
'प्रायश्चित्तिं यो अध्येति'
अ. १४.१.३०
(२) बिगड़े कार्य और पापाचरण को सुधारना
'प्रायश्चि त्यै स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१२.

प्रायन् – चले जाते हैं।
'पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.

प्रायणीय – (१) उत्कृष्ट पद की प्राप्ति, (२) प्रायणीय नामक यज्ञ
'प्रायणीयस्य तोक्मानि'
वाज.सं. १९.१३.

प्रायास– उत्तम कोटि का परिश्रम।
'प्रायासाय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११.

प्रायु- (१) दूर देश में जाता हुआ (२) मृत्यु को प्राप्त होता हुआ ।
'ऊर्ध्वास्तस्थुर्मुषीः प्रायवे पुनः'
ऋ. १.१४०.८
स्त्रियां दूर देश में जाते या मरते पति के लिये मरने को तत्पर हो जाती हैं ।

प्रायोगा - बड़ों से सत्कार्यों में प्रयुक्त स्त्री पुरुष या अश्विद्वय ।
'प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः'
ऋ. १०.१०६.२

प्रार्थ- प्रबल ।
'अभूदु प्रार्थस्तक्मा'
अ. ५.२२.९

प्रार्पणः- प्रकृष्ट दाता ।
'मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः'
१०.४५.५, वाज.सं. १२.२२, तै.सं. ४.२.२.३, मै.सं. २.७.९, ८६.११, का.सं. १६.९, आप.मं. पा. २.११.२७.

प्रावण- (१) उत्तम सैन्य दल, (२) प्रजाजन, (३) अधीनस्थ विनयशील सहायक मार्ग, (४) उत्तम योग्य पदार्थ ।
'प्रावणभिः सजोषसः'
ऋ. ३.२२.४, वाज.सं. १२.५०, तै.सं. ४.२.४.३, श.ब्रा. ७.१.१. २५, ३.२.८. य. १२.५०
(५) उत्कृष्ट सम्पत्तियों का लाभ कराने का साधन ।

प्रावन् - प्र + अवन् । उत्तम रीति से रक्षा किया या करते हैं । लट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग है ।
'प्रावन् वाणीः पुरूहूतं धमन्तीः'
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.
जल नीचे की ओर जाते हुए नदियों या तालाबों में जा प्राणियों की रक्षा करते हैं ।

प्रावादिषुः- प्र + अवादिषुः = प्रावादिषु अर्थ है- जोरों से बोलते हैं । मेढ़की को बोली के सम्बन्ध में कथित । लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग है ।
'वाचं पर्जन्यजिन्वतां
प्र मण्डूका अवादिषुः'
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.४५.१३, नि. ९.६.
मेघ को प्रसन्न करने वाली वाणी मेढ़क जोरों से बोलते हैं (प्रावादिषुः) ।

प्रावृट् - वर्षाकाल ।
'तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम्'
ऋ. ७.१०३.३.

प्रावृत् - मढ़ना ।
'त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत्'
अ. ११.८.१५.

प्रावृत- (१)सुशोभित । (२) घेरा हुआ ।
'यन्मिर्णिजा रेक्णसाप्रावृतस्य'
ऋ. १.१६.२.२, वाज.सं. २५.२५, तै.सं. ४.६.८.१, मै.सं. ३.१६.१, १८१.९, का.सं. (अश्व.) ६.४.

प्रावृषीण- वर्षाकालीन ।
'यन्मण्डूकाः प्रावृषीणंवभूव'
ऋ. ७.१०३.७.

प्रावेपः- (१) खूब कांपने और कंपाने वाला भावोत्पादक ।
(२) मनुष्य को इधर उधर नचाने वाला -पाप ।
(३) जुए का पाश ।
'प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति'
ऋ. १०.३४.१, नि. ९.८.

प्रावेपाः- ब.व.। वि.। प्रवेपिन,प्रकर्षेण । प्रकृष्टो वेपः प्रवेपः स अस्य अस्ति इति प्रवेप + इन + प्रवेपिन ।
यहां प्रवेप + अण् = प्रावपे (प्रवपे से उत्पन्न पदार्थ । प्रवेप अर्थात् प्रकर्ष से कांपने वाले वृक्ष से उत्पन्न ' प्रवेपिन्' ही 'प्रावेप' है ।

प्राश् - प्रश्नकर्त्ता ।
'प्राशिमामुत्तरं कृधि'
अ. २.२७.७.

प्राश- प्र + आश । उत्तम रीति से व्यापक आत्मा, (२) प्रबल रूप से हृदय मे व्यापने वाले शोक, मोह, क्रोध ।
'प्राशं प्रति प्राशो जहि'
अ. २.२७.१.

प्राशव्य - (१) उत्तम भोजन करने योग्य पदार्थ ।
'प्रति प्राशव्याँ इतः'
ऋ. ८.३१.६

प्राश्वम् - प्र + अश्नवम् । अर्थ है । व्याप्त हो ।
'प्र ते सुम्ना नो अश्नवम्'
ऋ. ८.९०.६, साम. २.७६२.
हे इन्द्र, हमें तेरे सुख व्याप्त हों ।

प्राशिता- भोग करने वाला ।
'आर्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः'
अ. ११.१.२५,३२.

प्राशु- (१) हवन, शीघ्र (२) उत्तम मार्ग से जाने वाला ।
'प्राशुःहवने शीघ्रः झटिति
समुद् यच्छमानो भवति
न नूनं ब्रह्मणामृणम्
प्राशूनामस्ति सुन्वताम्'
ऋ. ८.३२.१६.

प्राशुषाड् - शीघ्रगामी शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'सुप्राव्यः प्राशुषाडेषवीरः'
ऋ. ४.२५.६

प्राश्रृंग- हिंसा-साधन अस्त्रों के लिए हुआ ।
'प्राश्रृंगा माहेन्द्राः'
वाज.सं. २४.१७.

प्रासह् - (१) उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय करने वाला, (२) अति सहनशील ।
'सखायं विश्वायुं प्रासहं युजम्'
ऋ. १.१२९.४
समस्त उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले या दीर्घायु (विश्वायुम्) उत्तम रीति से शत्रुओं को पराजित करने वाले ।
(प्रासहम्) सब के सहायक (युजम्)

प्रासहारयि- सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य ।
'द्युम्नस्य प्रासहारयिम्'
ऋ. ५.२३.१, तै.सं. १.३.१४.६.

प्रासावीत् - प्रसुवति, अभ्यनुजानानि, वर्तमान अर्थ में लुङ् का प्रयोग । अर्थ है । (१) सृष्टि करता है ।
'प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे'
ऋ. ५.८१.२, वाज.सं. १२.३, तै.सं. ४.१.१०.४, मै.सं. २.७.८, ८४.१४, ३.२.१,१५.१, का.सं. १६.८, श.ब्रा. ६.७.२.४. नि. १२.१३.
वह सविता द्विपद तथा चतुष्पद दोनों के लिए कल्याण की सृष्टि करता है (भद्रं प्रासावीत्)

प्रासृजत् - प्रकर्ष के साथ सृष्टि की ।
'प्र सीमादित्यो असृजत् विधर्ता'
ऋ. २.२८.४,
विविध प्रकार से रसों, रश्मियों या रश्मिजालों में स्थित सम्पूर्ण जगत् का धारण करने वाला (विधर्ता) आदित्य ने प्रकर्ष के साथ रश्मियों की सर्वत्र सृष्टि की (सीम प्रासृजत्) ।
वरुण ने नदियों के उपादान भूत उदक की या सत्य की सर्वतः सृष्टि की ।

प्राह्लादि- (१) प्रह्लाद से उत्पन्न विरोचन (२) प्रभूत शब्द करने वाली विशेष दीप्तियुक्त विद्युत् ।
'तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्सः'
अ. ८.१०.४.२.

प्राहित- योग्य कार्य में नियुक्त ।
'मरुद्भिरग्नः प्राहितो न आगन्'
अ. २.२९.४

प्लायोगिः- (१) प्रायोगिः (प्रयोग कुशल) (२) उत्तम उद्यम से (प्रयस्) ज्ञान पूर्वक जाने वाला ।
'अधप्लायोगिरतिदासदन्यान्'
ऋ. ८.१.३३

प्लाशिन् - पेट में स्थित भोजन पाचक तिल्ली आदि यन्त्र ।
'प्लाशिभ्यो विवृहामि ते'
ऋ. १०.१६३.३, अ. २०.९६.१९, आप.मं.पा. १.१७.३.

प्लाशि- (१) छोटी आंत ।
'क्षुत् कुक्षिरिश वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः'
अ. ९.७.१२.
(२) शिश्न जो मूत्रादि बहाता है, (३) प्राशिः उत्तम पदों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कर भोगने वाला वैश्य, (४) समस्त पदार्थों का संग्रहीता
'प्लाशिर्व्यक्तः शतधारउत्सः'
वाज.सं. १९.८७,का.सं. ३८.३,

प्लाशी- (१) शरीर में स्थित पेट के भीतरी अन्न रस प्राप्त करने वाली नाड़ी ।
'गिरीन् प्लाशिभिः'
वाज.सं. २५.८, तै.सं. ५.७.१६.१, का.सं. (अश्व.) १३.६.

प्सा- खाना, ।
'वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन्'
अ. १०.३.१४

पायन - पानम् (जल का पीना) ।
'क्षरन्नापो न पायना रायै
सहस्राय तृष्यते गोतमस्य'

ऋ. १.११६.९
प्यासे प्राणी वर्ग और ओषधि वर्ग को पिलाने के लिए और पृथिवी के स्वामी के अनेक ऐश्वर्य धन धान्य उत्पन्न करने के लिए जल धाराएं फूट निकलती हैं ।

पायव – ब.व. । ए.व. ये रूप है । पायु । अर्थ है– पवित्र करने वाले ।
'पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः '
अ. ६.३.२.

पायु– (१) रक्षक (२) सुरक्षित, (३) पालन कर्त्ता ।
'पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये '
ऋ. १.८९.५
रक्षक, रक्षित एवं कभी विनष्ट न होने वाला सबका पोषक पूषा हमारे ऐश्वर्यों की वृद्धि तथा कल्याण के लिए ही ।
(४) पा + उण् = पायु । पालकारी साधन ।
'त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिः
मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य '
ऋ. १. ३१.१२.
हे ज्ञानवान् परमेश्वर, अग्नि, तू ऐश्वर्य युक्त हम लोगों को हमारे सन्तानों के शरीरों की अपने पालन कारी साधनों से रक्षा कर (५) गुदा भाग ।
'पायुं ते शुन्धामि '
वाज.सं. ६.१४, श.ब्रा., ३.८.२.६.

पारः – संकटों से पार करने वाला, तारक ।
'अरमयः सुदुघाः पार इन्द्र '
ऋ. ५.३१.८.

पारयन्ती– पारि + शतृ + ङीष् = पारयन्ती । अर्थ– (१) पार लगाती हुई, (२) विजय दिलाती हुई । 'ज्या' के विशेषण के रूप में इसका प्रयोग हुआ है ।
'ज्या इयं समने पारयन्ती '
ऋ. ६.७५.३, वाज.सं. २९.४०, तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१५, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१८.
यह ज्या धनुर्धारी को युद्ध मे जिताने वाली है ।

पारयिष्णु– (रोगों से) पार लगाने वाली ओषधि

पारस्वत– पूर्णपुरुष का ।
'यावदङ्गीनं पारस्वतम् '
अ. ६.७२.३

पार्जन्यः– (१) मेघ के समान सुखों का प्रदाता । (२) मेघों में विचरण करने में समर्थ ।
'सुपर्णः पार्जन्यः '
वाज.सं. २४.३४, तै.सं. ५.५.२१.१.मै.सं. ३.१४.१५,१७५.९, का.सं. (अश्व.) ७.११.

पार्थव– बड़े भारी राष्ट्र का स्वामी ।
'दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् '
ऋ. ६.२७.८

पार्थ्यः– विस्तृत शक्ति का स्वामी ।
'सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः '
ऋ. १०.९३.१५

पार्थिवी– पृथ्वी की ।
'दिव्या पार्थिवीरिषः '
ऋ. ८.२५.६.

पार्य – (१) पालन करने वाला, (२) पार उतारने वाला ।
'यंते काव्य उशनामन्दिनं दात्
वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् '
ऋ. १.१२१.१२.
सब के हर्ष दायक शत्रु–नाशक संग्राम में पालन करने वाले और उससे पार उतारने वाले (पार्यम्) शत्रु के वर्जन या धारण करने में समर्थ जिस शास्त्रास्त्र या सैन्य बल को (वज्रम्) मेधावी पुरुषों द्वारा शिक्षित पुत्र या शिष्य (काव्य उशना) सर्व वशीकार में समर्थ, वशी पुरुष तुझ को (ते) प्रदान करता है तू उसे सदा तीक्ष्ण कर । (३) संकट आदि से पार करने का कार्य ।
'दिविच स्मैधि पार्ये न इन्द्र '
ऋ. ६.१७.१४.
(४) नदी के दूसरे तट पर लगा कास, (५) पालन करने योग्य (६) दूरवासी जन ।
'पार्याणि पक्ष्माणि अवार्या इक्षवः '
वाज.सं. २५.१, मै.सं. ३.१५.१, १७८.१.
(७) पार करना, अतिक्रमण करना, पराजय करना ।
'कविर्यदहन् पार्याय भूषात् '
ऋ. ४.१६.११.
क्रान्तदर्शी हे इन्द्र या राजन्, जिस दिन (यत् अहन्) तू आपत्ति को निवारने या शत्रुओं को

पार करने उनसे रक्षा करने की इच्छा करता है । (पार्याय) उसी दिन उन शत्रुओं का अतिक्रमण करता है (भूषात्) (८) पार लगाने वाला ।

'स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः'

ऋ. ३.३२.१४., तै.सं. १.६.१२.३, मै.सं. ४.१२.३, १८२.११, का. सं. ८.१६,३८.७.

(९) परा विद्या का विज्ञ ।

'नमः पार्याय'

वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२., मै.सं. २.९.८, १२६.९, का.सं. १७.१५.

(१०) पालन करने योग्य ।

'यत् पार्या युनजते धियस्ताः'

ऋ. ७.२७.१, साम. १.३१८, तै.सं. १.६.१२.१.मै.सं. ४.१२.३, १८४.१७, कौ.ब्रा. २६.१५.

पार्यःक्रतुः - परम स्थान प्राप्त करने वाला कार्य यज्ञादि ।

'तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय'

ऋ. १०.२७.१६

पार्यधन- (१) मोक्ष रूप, उत्कृष्ट धन, (२) शत्रुओं का धन । पाराः शत्रवः तत्रभवं जनम् ।

'अवा नः पार्येधने'

ऋ. ८.९२.९, साम. २.९९४.

पार्वतेयी- पर्वत या मेघ की कन्या विद्युत् या वृष्टि ।

'पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु'

वाज.सं. १.१९.

पार्श्व- स्पृश् + शुन् + पर्शु । स्पृश् + श्वण् = पार्श्व । 'स्पृशेः श्वण् शुनौ पृच' । अथवा - पर्शु + णल् = पार्श्व । अर्थ है (१) पर्शूना समूहः (पसलियों का समूह) (२) पर्शुमयम् अङ्गम् (छाती के दोनों ओर के भाग जिससे पसली की हड्डियाँ आच्छादित रहती हैं) ।

'होता यक्षदश्विनौ छागस्य
हविष आत्ता पार्श्वथः श्रोणितः शिवामतः।
उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवा श्विना जुषेता ँ हवि होतर्यज'

वाज.सं. २१.४३

पशुहवि मंत्र का शेष भाग है । मैत्रा वरुण कहते हैं- अग्नि (होता) अश्विनीद्वय या कर्म की पूजा करे (अश्विनौ यक्षत्) वे दोनों छाग की हवि खायें (छागस्यहविः आत्ताम्) और छाती के अगल बगल पंजरी से (पार्श्वात्), कटि प्रदेश से (श्रोणितः) बाहु प्रदेश से (उत् सादतः) इस प्रकार अंग अंग से (अङ्गादङ्गात्) अवदान धर्म से रखे इन अंगों को (अवतीनाम्) ही (एव) वे अश्विद्वय हवि को सेवन करें (हविः जुषेताम्) इस हवि को पा, वे सुख देते हैं (करतः) अतः हे होता, तू भी उसकी पूजाकर (यज) ।

पार्षद्वाणः - पार्षद् + वाण । वाणी या वेद वाणी का सेवन करने वाला विद्वान् ।

'पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समस्मदयत्'

ऋ. ८.५१.२.

पारावत - कबूतर ।

'अह्नो पारावतानालभते'

वाज.सं. २४.२५, मै.सं. ३.१४.६, १७३.९.

पारावतघ्नी- ऊर्मिभिः पारञ्च अपारञ्च उभेऽपि हन्ति (लहरों से पार और अपार दोनों को काटती है) । अर्थ है- (१) नदी, पार अपार को तोड़ने वाली (२) सरस्वती नदी के विशेषण के रूप में प्रयुक्त ।

'पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः'

ऋ. ६.६१.२, मै.सं. ४.१४.७, २२६.१०. का.सं. ४.१६, नि. २.२४.

पार अपार को तोड़ने वाली सरस्वती नदी को सुप्रवृत्त कर्मों या स्तोत्रों से परिचारित करें ।

(३) सायण ने इसका अर्थ-दूर देश में रहने वाले वृक्षादिकों को भी नष्ट करने वाली (परावति दूरदेशे विस्यमानद्यपि वृक्षा देः हन्त्री) - किया है ।

अमर कोष में -

'पारावादे परार्वाची तीरं' ....ऐसा कहा है ।

पारावार + हन् + टक् + ङीष् = पारावतघ्नी (उपधा का लोप, ह का घ) ।

पारावत = पारावार । पर = पार । अवर = अन्तर ।

(४) परब्रह्मस्वरूप 'अवत' अर्थात् प्राप्तव्य पद तक पहुँचाने वाली- वहाँ तक का ज्ञान देने वाली-सरस्वती ।

प्रार्चा - स्तुति करो ।

पार्थिव- पृथ्वी से प्राप्त होने वाला अन्न, सुवर्ण आदि धन ।

'यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा'

ऋ. २.१४.११.

पार्थिवंरजः- पृथ्वी लोक ।

'आरात्रि पार्थिवं रजः
पितुर प्रायि धामभिः'

अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.

हे रात्रि,तू अन्तरिक्ष के साथ साथ पृथ्वी लोक को अन्धकार से व्याप्त कर देती है ।

पार्थिवं वसु - (१)अन्तरिक्ष का धन, पृथिवी शब्द में अन्तरिक्ष का भी वाचक है ।

'अध्वर्यवोयोदिव्यस्य वस्वो
यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा'

ऋ. २.१४.११.

हे अध्वर्ययो, जो इन्द्र द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी के धन का राजा है ।

पार्ष्णि -ऐंडी ।

'पार्ष्ण्योः प्रपदोश्च यत्'

अ. ६.२४.२.

'पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्'

ऋ. १०.१६३.४, अ. २.३३.५, २०.९६.२०.

(२) पार्ष्णि ग्राह या पीछे से आक्रमण करने वाली शत्रु सेना ।

'पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद

ऋ. १.१६२.१७, वाज.सं. २५.४०.तै.सं. ४.६.९.२. का.सं. (अश्व.) ६.५.

'पदा प्रविध्य पार्ष्ण्या'

अ. ८.६.१७

पार्ष्णी- (१)घोड़े को एंडी देने की क्रिया, (२) पीठ से पीछे से आक्रमण करने वाली सेना ।

'पार्ष्ण्या वा कशया व तुतोद'

पारुष्ण- पारुष्ण नामक पक्षी ।

'अग्नये गृहपतये पारुष्णान्'

वाज.सं. २४.२४,मै.सं. ३.१४.५, १७३.८.

पार्ष्टेय - पृष्ट देश के मोहरों में पसिलयां में उत्पन्न होने वाले नासुर या राजयक्ष्मा आदि का क्रिमि ।

'अथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्'

अ. २.३१.४.

पालित्य - केशों का पकना ।

'जरा खालत्यं पालित्यम्'

अ. ११.८.१९

पाव - पूञ् + घञ् = पाव । अर्थ है - पवित्र कारक व्यवहार ।

'पावकाः न सरस्वती'

ऋ. १.३.१०, साम. १.१८९, वाज.सं. २०.७८, मै.सं. ४.१०.१, १४२.७, ४.१-३. १५०.४.११.२. १६६.२, का.सं. ४.१६.

पावक - पु + ण्वुल = पावक । (१) पवित्र करने वाला, (२) सूर्य (३) अग्नि ।

'येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां अनु
त्वं वरुण पश्यसि
विद्यामेषि रजस्पृथ्वहा
मिमानो अक्तुभिः
पश्यन् जन्मानि सूर्य'

ऋ. १.५०.६,७.

यहां सूर्य के लिए पावक और वरुण दोनों संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है । (४) अग्नि की ज्वाला, जो वृष्टि आदि के द्वारा जगत् को पवित्र करती है ।

'सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः
पावकेभि र्विश्वमिन्वेभिरायुभिः'

ऋ. ५.६०.८

हे सर्वजनोपकार के वैश्वानर अग्नि, हे आनन्दित करने वाला (मन्दसानो) तू समूह रूप में आश्रित (गणश्रिभिः) पावक वृष्टि देने वाली (पावकै) जगत् मात्र को तृप्त करने वाली (विश्वम् इन्वेभिः) आयुष्प्रद (आयुभिः) ज्वालाओं से सोमरस का पान कर (सोमं पिब)

पावकवर्चाः- (१) पवित्र करने वाले बल वाला अग्नि स ।

'पावक वर्चाः शक्रवर्चाः'

ऋ. १०.१४०.२, साम. २.११६७, वाज.सं. १२.१०७, तै.सं. ४.२.७.३. मै.सं. २.७.१४, ९५.१४, का.सं. १६.१४, श.ब्रा. ७.३.१.३० .

(२) पवित्र करने वाले तेज से युक्त - अग्नि

पावकवर्णः- (१)अग्निवत् तेजस्वी ।

'पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितः'

ऋ. ८.३.३., अ. २०.१०४.१, साम. १.२५०, २.९५७, वाज.सं. ३३.८१ .

(२) अग्निवत् तेजस्वी तथ पवित्र करने वाला शरीर ।

पावकशोचिस् – पावक दीप्तिः (जिस का शोचिस् पवित्र करने वाला है) ।

'शीरं पावकशोचिषं
ज्यष्ठो यो दमेष्वा
दीदाय दीर्घश्रुत्तमः'

ऋ. ८.१०२.११.

देवों में मुख्य (ज्येष्ठः) विद्वत्तम (दीर्घश्रुत्तमः) जो अग्नि (यः) यजमानों के गृहों में आदीप्त किया जाता है (दमेषु आदीदाय) उस सभी प्राणियों में प्रविष्ट हो सोने वाले या व्याप्त (शीरम्)तथा करने वाले एवं दीप्ति धारण करने (पावक शोचिसम्) अग्नि की स्तुति करता हूँ। अग्नि का अर्थ परमेश्वर भी किया गया है ।

(२) पवित्र करने वाले अग्नि के तेज के समान तेज धारण करने वाला ।

'पावकशोचे तव हि क्षयं परि'

ऋ. ३.२.६, ऐ.ब्रा. १.२२.९, आश्व. श्रौ.सू. ४.७.४.

(३) पाप निवारक सर्वशोधक ज्ञान शोधक ज्ञान ज्योति का स्वामी ।

'अर्चा पावक शोचिषे'

ऋ. ५.२२.१

पावका – (१) शुद्ध करने वाली । (२) जल से प्रक्षालित करने वाली –दुर्ग ।

(३) पवित्र व्यवहार बतलाने वाली– दया. ।

'पावका नःसरस्वती'

ऋ. १.३.१०, साम. १.१८९, वाज.सं. २०.८४.

शुद्ध करने वाली, या पवित्र व्यवहार बतलाने वाली जल से प्रक्षालित करने वाली, या पवित्र व्यवहार बतलाने वाली सरस्वती या वेदवाणी ।

पावकाजुहू– (१) अति पवित्र करने वाली, (२) आहुति या गर्भाधान करने योग्य या प्रेमोपहार देने के पात्र रूप पत्नी, (३) पवित्र कारक , शरीर शोधक अन्न ग्रहण करने वाली शक्ति ।

'पावकया जुह्वा वह्निरासा
अग्ने यजस्व तन्वं तव स्वाम्'

ऋ. ६.११.२.

पावमानम् – सामवेद का पाव मान काण्ड ।

'ऐन्द्राग्नं पावमानम्'

अ. ११.७.६.

पावमानी – (१) पवित्र करने वाली वेदमाता ।

'प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्'

अ. १९.७१.१.

(२) पावमान सोम की ऋचा (३) अन्त करण को पवित्र करने वाली ज्ञान ऋचा ।

'यः पावमानीरध्ये त्यृषीभिःसंभृतंरसम्'

ऋ. ९.६७.३१, साम. २.६४८.

(४) पवमान सोमसम्बन्धी ऋचा ।

'पावमानीर्योअध्येति'

ऋ. ९.६७.३२, साम. २.६४९, तै.ब्रा. १.४.८.४.

पावीरवी– पवि + र = पवीर । एक आयुध, इन्द्र का वज्र । पवीर + वतुप् = पवीर वत् । इन्द्र । पवीरवतः इन्द्रस्य वाणी पावीर वी । (१) इन्द्र की वाणी पावीरवी है ।

(२) अन्तरिक्ष में होने वाली ध्वनि, जिसे माध्यमिका ऐन्द्री वाणी कहते हैं ।

'पावीरवी तन्यतुरेकपादजः'

ऋ. १०.६५.१३, नि. १२.३०.

माध्यमिका ऐन्द्री वाणी (पावीरवी) अन्यों की वाणी का विस्तार करने वाली है (तन्यतुः) लिखा भी है ।

'तां विश्व रूपाः पशवो वदन्ति'

ऋ. ८.१००.११, मै.ब्रा. २.४.६, १०. पा.गृ.सू. १.१९.२, नि. ११.२९.

(यह वाणी विज्ञान माननीय है)

मेघ का गर्जन या विद्युत् की कड़क ही पावीरवी है ।

(३) आचार आदि को पवित्र करने वाली कन्या ।

'पावीरवी कन्या चित्रायुः'

ऋ. ६.४९.७, तै.सं. ४.१.११.२, मै.सं. ४.१४.३, २१९.३, का.सं. १७.१८.

पाशः– (पु.) पश् (बन्धनार्थक) + घञ् = पाश । (जिससे बान्धा जाय (तेन पश्यते) अर्थ है– रज्जु, रस्सी ।

'उदुत्तमं वरुण पाशमस्तम्
अवाधमं विमध्यमं श्रथाय'

ऋ. १.२४.१५, अ.७.८३.३, १८.४.६९, वाज.सं.

१२.१२.
हे आदित्य (वरुण) तू मेरे ऊपर वाले, निचले तथा बिचले बन्धन को ढीला कर या खोल (अवश्रथय) ।
आधुनिक अर्थ – रस्सी, बन्धन जाल, वरुण का अस्त्र, द्युत क्रीड़ा में फेके जाने वाला पाश, किसी बीने गए पदार्थ की कोर ।

पाशद्युम्न– (१) जिसने धन यश पाया हो– दया. (२) धन के पाश में फंसा वैश्यवर्ग ।
'पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्'
ऋ. ७.३३.२

पाशयति– 'पश्' धातु के प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ पाश में बांधता है । पाश + यत् + टाप् = पाश्या । अर्थ– (१) पाशसमूह, निधा (निधा पाश्याभवति) (२) बालमय या स्नायुमय पाश समूह जिसे पक्षी आदि फंसाने के लिए पृथ्वी पर बिछाया जाता है (यो हि बालमयः स्नायुमयो या पाश समूह पक्ष्यादि गहणार्थः प्रकृतः स पाश्या इत्यु च्यते) ।
आधुनिक अर्थ – (१) जल, (२) रज्जुओं का समूह ।

पाठय– पिष्लृ (पोसना) + ण्यत् = पाष्य । अर्थ है– पोषण योग्य ।
'वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः'
ऋ. १.५६.६

पास– रक्षा करना ।
'आयु र्विश्वायुः परिपासतित्वा'
ऋ. १०.१७.४, अ. १८.२.५५, तै.आ. ६.१.२.

पांसव्य– मिट्टी ढोने वाला ।
'नमः पांसव्याय च रजस्याय च'
वाज.सं. १६.४५, तै.स. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८, १२६.१३. का.सं. १७.१५.

पास्त्य– गृहों में बसी प्रजा का हितकारक ऐश्वर्य ।
'आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता'
ऋ. ४.२१.६

पांसु– (१) पादेः सूयन्ते (पैरों से उत्पन्न की जाती है। (२) गिरकर सो जाने वाली (पन्नाः शेरते,) (३) पिंशनीयाः भवन्ति (चूर्ण करने लायक होती है) । पाद + सू + क्विप् = पांसु । पन्न + रीङ् + उ = पांसु, (४) पसि (नाशन अर्थ में) + उ = पांसु । दूर करने योग्य मिट्टी । (५) धूलि ।
'शिला भूमिरश्मा पांसुः'
ऋ. १२.१.२६.

पांसुर– (१) परमाणुओं से पूर्ण आकाश ।
'समूढमस्य पांसुरे'
ऋ. १.२२.१७, अ. ७.२६.४, वाज.सं. ५.१५, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२.९,१८.१८, ४.१.१२, १६.५, का.सं. २.१०,श.ब्रा. ३.५.३.१३, नि. १२.१९.
इस जगत् के भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह कारण परमाणुओं से पूर्ण आकाश में स्थापित करता है । (२) धूलिमय (३) पाद + सू + क्विप् = पांसुः । अथवा, पन्न + शीङ् + उ = पन्नशु = पांसु । पसि + उ = पांसु (दूर करने योग्य मिट्टी) ।
पादेः सूयन्ते (पैरों से धूलि उत्पन्न होती है) । पांसु + र = पांसुर । अर्थ है – धूलियुक्त । वेद में अन्तरिक्ष का विशेषण है ।
सर्वभूतवृद्धिहेतु अन्तरिक्षः (४) प्यायी + उरक् = प्यायुर = पांसुर । पांसुल मिट्टी वाला स्थान है ।
(५) मलीन अन्तरिक्ष ।
इस आदित्य के तीन डगों में एक पद (अस्य) मलीन अन्तरिक्ष में (पांसुरे) अन्तर्हित है (समूढम्) ।

पांसुल– (१) प्रशान्तरेणुओं वाला अन्तरिक्ष– दया. (२) धूलियुक्त (३) लोकों को धारण करने वाला बल ।
(४) भूम्यादि लोकमय पांसु से युक्त ब्रह्माण्ड–महीधर ।

पाहि – पीजिए ।
'वायवायाहि दर्शत
इमे सोमा अरङ्कृताः
तेषां पाहि श्रुधी हुवम्'
ऋ. १.२.१, नि. १०.२.
दर्शनीय वायुओ, ये सोम सुसंस्कृत हैं । हमारा आह्वान् सुनें तथा उन सोमरसों में अपना अंश पियें ।

पिक – कोयल ।
'कामाय पिकः'
वाज.सं. २४.३९, मै.सं. ३.१४.२०,१७७.२.

पिङ्ग– 'पिंजि' ।

पिजिवरणे अदादि, पिजि + अच् = पिङ्ग (कुत्व) ।
अर्थ – (१) वरण करने योग्य, सम्पन्न भूमि, मकान आदि से सुप्रतिष्ठित (२) उत्तम वाग्मी पुरुष ।
'बजः पिङ्गो अनीनशत्'
अ. ८.६.६

पिङ्गलिका– (१) गौरवर्ण की सुन्दर रूपवती ।
'कुमारिका पिंगलिका'
अ. २०.१३६.१४

पिंगा– (१) मधुरध्वनि करने वाली वाणी ।
'पिंगा परि चनिष्कदत्'
ऋ. ८.६९.९, अ. २०.९२.६.
(२) उत्तम मनोहर शब्द बोलने में चतुर कविमण्डली या (३) वादित्र मण्डली (४) पीतवर्ण वा झनझनाती डोरी ।

पिजवन – (१) जु (गत्यर्थक) + ल्युट् = जवन, अपि + जवन, = पिजवन (आचार्यभागुरी के मत से 'अपि' के 'अ' का लोप ।) पिजवन वह है जिसकी गति स्पर्धनीय हो ।
(२) जिसकी गति की शीघ्रता से अन्य गति वालों की गति नहीं मिल सके । (अमिश्रीभाव गतिःवा) । 'अपि' का अर्थ 'अमिश्रीभाव' और 'जु' धातु गमनार्थक है। अपि + जु + ल्युट् = अपिजवन = पिजवन (अभिश्रीभूत गमन) ।
(३) एक राजा का नाम जिस के पुत्र सुदास हुए ।

पिठी – (१) हिंसाकारिणी शक्ति, (२) दुष्ट पुरुषों को कष्ट देने वाली ।

पिठीनस् – हिंसा कारिणी शक्ति को नाक के समान धारण करने वाला शक्ति शाली नायक पुरुष ।
'त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्'
ऋ. ६.२६.६.

पिण्ड – शरीर रूप पिण्ड ।
'ता ता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ'
ऋ. १.१६२.१९, वाज.सं. २५.४२, तै.सं. ४.६.९.३, का.सं. (अश्व.) ६.५.

पितरः– (१) जलों को पान करने वाले सूर्य के किरण, (२) पालक जन, (३) मृत पितर ।
'अधा यथा नः पितरः परासः'
ऋ. ४.२.१६, अ. १८.३.२१, वाज.सं. १९.६९, तै.सं. २.६.१२.४, ऐ.ब्रा. ७.६.४
(४) पालक मा बाप, गुरु, आचार्य, (५) पितृतुल्य जन, (६) रात्रि ।
'रात्रिः पितरः'
श.ब्रा. २.१.३.१.
(७) ओषधि लोक ।
'अथो ओषधिलोको वै पितरः'
श.ब्रा. १३.८.१.२०.
(८) प्रजाएं ।
'यमो वैवस्वतो राजा इत्याह
तस्यपितरो विशः'
श.ब्रा. १३.४.३.६, आश्व.श्रौ.सू. १०.७.२, शां.श्रौ.सू. १६. २.४–६.
'क्षत्रं वै यमः विशः पितरः'
श.ब्रा. ७.१.१.४
(९) पालक प्राण गण, (१०) अवान्तर दिशाएं ।
'अवान्तर दिशो वै पितरः'
श.ब्रा. १.८.१.४०
'होता जनिष्ट चेतनः
पिता पितृभ्य ऊतये'
ऋ. २.५.१
(११) पितृ शब्द का बहुवचन (१२) स्थविर वृद्ध जन, (१३) मर्त्य, (१४) घर के स्वामी । त इम आसत इति एव ।
'स्थविरा उपसमेता भवन्ति,
तानुपदिशति यजूंषि वेदः'
श.ब्रा. १३.४.३.६.
'मर्त्याः पितरः'
श.ब्रा. २.१.३.४.
(१५) देवगण ।
'देवाः वा एते पितरः'
गो.ब्रा. ३.१.२४.
(१६) तीन प्रकार के पितर हैं, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् और सामवन्त ।
'त्रयाः वै पितरः । सामवन्तः
बर्हिषदः अग्निष्वात्ताः ।'
श.ब्रा. ५.५.४.२८.
(१७) ओषधियाँ ।
'यान् अग्निरेव दहन् स्वदयति
ते पितरोऽग्निष्वात्ताः'
श.ब्रा. २.६.१.७.

'ये वै अयज्वानो गृहमेधिनः
ते पितरो अग्निष्वात्ताः'
तै.ब्रा. १०.४.७.६.
'अथ ये दत्तेन पक्वेन
लोकं जयन्ति ते पितरो बर्हिषदः'
श.ब्रा. २.६.१.७.
(१८) छः ऋतुएं (१९) प्राण, (२०) सूर्य, (२१) मृत्यु के उपरान्त जीवात्मागण ।
'ये वै यज्वानः ते पितरो बर्हिषदः ।
ते.ब्रा. १.६.८.६
'तद्ये सामेनेजानाः ते पितरःसोमवन्तः'
श.ब्रा. २.६.१.७.
'अथो ओषधि लोको वै पितरः'
श.ब्रा. १३.८.१.२०.

पितरौ- (१) दो अरणि, (२) द्यौ और पृथिवी, (३) माता पिता ।
'उदीरथ पितरा जार आभगम्'
ऋ. १०.११.६, अ. १८.१.२३.
हे अग्नि (जार) जिस प्रकार (आ) सूर्य पृथ्वी के रस के प्रति अपने को प्रेरित करता है, उसी प्रकार अरणियों के प्रति द्यौ और पृथिवी के प्रति (पितरौ) प्रेरित कर (उदीरय) ।
जैसे अन्धकार विनाशक सूर्य (जारः) द्यावा पृथिवी को (पितरौ) ज्योति पहुंचाता है (भगम्) उसी प्रकार ऐ विवाहित पुरुष, तू माता पिता को सुख पहुँचा (पितरौ उदीरय) ।
(४) ईश्वरोपासक मुमुक्षु जन, (५) वेदज्ञ विद्वान्, (६) गृहस्थी जन (७) अवर, पर और मध्यम तीन प्रकार पितर हैं, (८) सौम्य, अवृक्त और ऋतज्ञ तीन विशेषण हैं । (९) पृथिवी पर शासन करने वाले अधिकारी वर्ग ।

पित्त- (१) पवित्र करने वाला या पालन करने वाला ।
'अग्ने पित्तमपामसि'
अ. १८.३.५, वाज.सं. १७.६, तै.सं. ४.६.१.२, मै.सं. २.१०.१, १३१.१०, का.सं. १७.१७, श.ब्रा. ९.१.२.२७.
(२) पित्त, (३) पित्त के समान पालनकारी, पवित्र कारी गुरुजन ।
'मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम्'
वाज.सं. १९.८५, मै.सं. ३.११.९, १५३.१२, का.सं. ३८.३, तै. ब्रा. २.६.४.३.

पित्ररस- (१) पालक परमेश्वर का ज्ञान प्रकाश, (२) प्राप्त करने योग्य रस रूप आत्मा ।
'महेयत् पित्र ईं रसं दिवे कः
अवत्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान्'
ऋ. १.७१.५
मनुष्य जब सब से बड़े पालक परमेश्वर के ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करने के लिये प्राप्त करने योग्य साक्षात् रस रूप आत्मानन्द का सम्पादन करता है तब वह ज्ञानवान् होकर (चिकित्वान्) परमेश्वर का स्पर्श करता हुआ (स्पृशत्यन्) अर्थात् उसका योगाभ्यास द्वारा आनन्द लेता हुआ बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

पित्र्य- (१) पैतृक, पिता से प्राप्त ।
'भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः'
ऋ. ८.४८.७, का.सं. १७.१९, नि. ४.७.
हम सोम रस का या सृष्ट जगत् का भोग उसी प्रकार करें जैसे पिता से प्राप्त सम्पत्ति ।
(२) मित्रों का भी हितकारी, (३) मित्रों में सर्वश्रेष्ठ-अग्नि ।
'दूतो जन्येव मित्र्यः'
ऋ. २.६.७

पित्र्यसख्य - पिता पितामहादि से चला आता हुआ सौहार्द भाव ।
'युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि'
ऋ. ६.७२.२

पित्व- (१) अन्नादि खाद्यफल, (२) पद स्थान, (३) मान, आदर ।
'येभिःसपित्वं पितरो नं आसन्'
ऋ. १.१०९.७
जिन सूर्य-रश्मियों से जीवों के पालक ओषधिगण तथा कृषक गण समान रूप से अन्नादि खाद्य फल उत्पन्न करते हैं ।
अथवा,
ज्ञान के प्रकाश से मिलकर हमारे पालक गुरुजन समान पद स्थान मान आदर सत्कार प्राप्त करते हैं ।

पित्वस् - (न.) । अन्न ।
'पित्वो भिक्षेत् वयुनानि विद्वान्'
ऋ. १.१५२.६

पिता - पा (पालन करना) + तृच् = पितृ (इ का

आगम) । प्रथमा ए.व . में पिता । अर्थ - (१) पिता (२) पालयिता, (३) द्युलोक, (४) आदित्य, (५) इन्द्र, (६) पर्जन्य, मेघ (७) अदिति ।

'यामथर्वा मनुष्पिता
दध्यङ् धियामत्नतः '

ऋ. १.८०.१६

जिस कर्म को अथर्वा, मानवपिता, मनु और दध्यङ् ने किया ।

'द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र '

ऋ. १.१६४.३३, नि. ४.२१.

द्युलोक मेरा पिता है । अर्थात् पालयिता या रक्षक है, वह उत्पन्न करने वाला है ।

मेघ के अर्थ में -

'अत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्

ऋ. १.१६४.३३, अ. ९.१०.१२, नि. ४.२१.

इस अन्तरिक्ष में (अत्र) पर्जन्य अर्थात् मेघ (पिता) दूर निहित पृथ्वी पर (दुहितुः) सर्वोत्पादन समर्थ वृष्टि का जल (गर्भम्) बरसाता है (आधात्) ।

पालक सूर्य के अर्थ में -

'पिपर्ति पुपुरिर्नरा
पिता कुटस्य चर्षणिः '

ऋ. १.४६.४.

हे अश्विनीद्वय, या हे द्यावापृथिवी, (नरा) समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीणयिता, पालक या तृप्त करने वाला (पपुरिः) सम्पूर्ण जगत् का पालक पितृस्थानीय (पिता) अच्छे बुरे कर्मों का द्रष्टा (कुटस्य चर्षणिः) सूर्य

पिता उग्रः- पालक सांढ ।

'द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा
उग्रः पितेव जारयायि यज्ञैः '

ऋ. ६.१२.४.

वृक्षों का भक्षयिता (द्रवन्नः) वनों का संभजन करने वाला अग्नि (वन्वन्) अपने कर्म से (क्रत्वा) अनाश्रित घूटे सांढ की तरह (नार्वा पिता उग्र इव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है । (यज्ञैः जारयायि) ।

पितामह- (१) पिता का पिता (२) पालक का भी पालक ।

'पितामहेभ्य स्वधायिभ्यः स्वधानमः '

वाज.सं. १९.३६., का.स. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.७.

पित्र्या- (१) विवाह कर्त्ता, अर्थात् पति के माता पिता की हितकारिणी-स्त्री, (२) मातापिता और पत्नी के पालक गुरुजन में स्थित ।

'सेयमस्मे सनजा पित्र्याधीः '

ऋ. ३.३९.२

पित्र्या राष्ट्री - (१) पिता आदि से ज्ञान रूप में प्राप्त संसार (राष्ट्र) की स्वामिनी परमात्मशक्ति ।

'इयं पित्र्या राष्ट्र्ये त्वग्रे '

अ. ४.१.२, गो.ब्रा. २.२.६, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३.

(२) पिता आदि से प्राप्त शक्ति ।

राष्ट्री का अर्थ राष्ट्र पालन करने की शक्ति रूप लाठी ।

पित्र्यवती- पालक पिता वाली कन्या ।

'परिष्कृतास इन्दवो
योषेव पित्र्यवती '

ऋ. ९.४६.२

पितु - (१) अन्न के समान पालक औषधि ।

'पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् '

ऋ. १.१८०.१.

(२) 'मा' (पीना या रक्षा करना) अथवा 'प्या' (वृद्धि करना) + तु (कर्त्ता या कर्म में) = पितु । धातु के बाद 'इ' का अन्तादेश । अर्थ - अन्न । अन्न रक्षि तव्य भी होता है । और रक्षा भी करता है, पीने योग्य बनाया जाता है या भोक्ता को पुष्ट करता, बढ़ाता या प्यायित करता है ।

'उतास्मा अभवः पितुः '

अ. ४.६.३

पितुकृत्तर - अधिक अन्न उपजाने वाला ।

'अग्नेश्चिदर्च पितृकृत्तरेभ्यः '

ऋ. १०.७६.५

पितुः यमः- (१) पिता का वीर्य, (२) सूर्य का जल ।

'पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति माता '

ऋ. ७.१०१.३

पितु भाक्- (१) जो अन्न खा चुका होता है । (पितुभाज्) है ।

'नरश्च ये पितु भाजो व्युष्टौ

ऋ. १.१६४.१२.

(२) अन्नादि को प्राप्त करने वाला, (३) हवि

आदि करने वाला कृषक, (४) अन्नादि पालन सामर्थ्य को धारण करने वाला ।
'उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन्'
ऋ. १.१२४.१२, ६.४६.६,
हे उषा, तेरे विशेष रूप से प्रकट हो जाने पर (ते व्युष्टौ) जिस प्रकार पक्षीगण अपने घोसलों से (वयः चित् वसतेः) उड़ जाते हैं (उत् अपप्तन्) उसी प्रकार अन्नादि प्राप्त करने वाले (पितुभाज) कृषक भी हो।

पितृभृत् – अन्नादि पालक साधनों को धारण करने वाली प्रजा ।
'आ उत्वा पितुभृतः'
(२) अन्न धारण करने वाला ।
'पितृभृतो न तन्तुमित्'
ऋ. १०.१७२.३.
(३) 'पा' अथवा 'प्या' + तु = पितु । पितु + मतुप् = पितुमत् ' । अर्थ है- प्रशस्त हवि या अन्न से युक्त ।
'प्रमन्दिने पितुमदर्चता वचो
यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।'
ऋ. १.१०१.१
हे स्तोताओं, स्तोतव्य इन्द्र के लिए (मन्दिने) हवि रूपी अन्न से युक्त स्तोत्र का उच्चारण करो (पितुमत् प्रार्चत) । जिस इन्द्र ने (यः) ऋजिश्वा नामक राजा के साथ (ऋजिश्वना) कृष्ण नामक असुर की गर्भिणी स्त्रियों को (कृष्ण गर्भाः) मारा था, जिसने ऋजुगामी वज्र से काले मेघ के जल रूपी गर्भों को नीचे गिराया (ऋजिश्वना कृष्ण गर्भाः निरहन्) ऐसे मनोरथ पूर्ण करने वाले (वृषणम्) दाहिने हाथ से वज्र धारण करने वाले (वज्र दक्षिणम्) मरुतों के साथ रहने वाले (मरुत्वन्तम्) इन्द्र को अपनी रक्षा चाहने वाले (अवस्यवः) हम मैत्री स्थापन करने के निमित्त (सख्याय) आह्वान करते हैं (हवामहे)

पितुमत् वचः – अन्न से युक्त स्तोत्र ।
'प्रमन्दिने पितुमदर्चतावचः'
ऋ. १.१०१.१, साम. १.३८०, ऐ.ब्रा. ५.२०.१६, कौ.ब्रा. २६.१६, नि. ४.२४.

पितुमान् – (१) अन्नजल आदि प्राण पालक पदार्थों से युक्त ।
'सदासुगः पितुमां अस्तुः पन्थाः'
ऋ. ३.५४.२१, का.सं. १३.१५, आश्व. श्रौ.सू. २.५.६.
(२) अन्नादि साधनों वाला परमराजा, (३) उत्तम अन्न खाने वाला, (४) अन्न से भरा गृह आदि ।
'रण्वः संदृष्टौ पितमां इव क्षयः'
ऋ. १.१४४.७, १०.६४.११.

पितुमती- पा अथवा 'प्या' + तु = पितु । पितु + मतुम् + ङीष् = पितुमती । अन्न युक्त ।

पितुमती ऊर्ज- (१) अन्न युक्त बल –दया.
(२) अन्नयुक्त आज्य (३) अन्न युक्त रसात्मक क्षीरादि ।

पितुःधाम- (१) पितरों का स्थान, (२) मेघों का स्थान-अन्तरिक्ष ।

पितुः- नपात् – पिता के वंश को न गिरने देने वाला वंश ।
'पितुर्नपातमा दधीत वेधाः'
ऋ. १०.१०.१, अ. १८.१.१, साम. १.३४०.

पितुरसुः- उत्पादक बीज पर पिता के जीवन का अंश आत्मा ।
'मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम्'
अ. ७.२.१.

पितुष्पिता- (१) पिता का पिता, (२) जगत् पालक रश्मि समूह का पिता, अर्थात् आदित्य । (२) ज्ञानी अल्प वयस्क भी वृद्ध मनुष्य का पिता है – दया. ।
'कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत
यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत्'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, तै.आ. १.११.५, नि. १४.२०.
(३) ज्ञानी जो परमेश्वर की पुरुष और स्त्री शक्तियों को जानता है ।

पितुः योनिः- पिता का घर ।
'पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश'
ऋ. ५.४७.३, वाज.सं. १७.६०, तै.सं. ४.६.३.४, मै.सं. २.१०.५, १३७.१४, का.सं. १८.३, श.ब्रा. ९.२.३.१८.

पितुषणिः- अन्न दाता ।
'किल्बिषस्पृत् पितुषणिर्हर्येषाम्'

ऋ. १०.७१.१०

पितृणामधिपतिः- (१) पितरों का स्वामी यम (२) पालक प्राणों का अधिपति ब्रह्मचारी, (३) शासकों का अधिपति, (४) किरणों या ऋतुओं का स्वामी सूर्य ।
'यमः पितृणामधिपतिः स मावतु'
अ. ५.२४.१४.

पितृणां कविः- पितरों या पालकों में सबसे अधिक प्रज्ञावान् क्रान्तदर्शी ।
'पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम्'
अ. १८.३.६३.

पितृणां श्रवणम् - (१) पितरों का धन एवं यश, (२) कुलक्रम से प्राप्त ऐश्वर्य एवं यश ।
'सान्ते ददातु श्रवणं पितृणाम्'
मै.सं. ४.१२.६, १९५.९, आश्व.श्रौ.सू. १.१०.८, शां.श्रौ.सू. ९.२८.३, नि. ११.३३.
वह कुहू अर्थात् अमावास्या या गम्भीर गृहपत्नी हमें कुल क्रमागत ऐश्वर्य एवं यश दे ।

पितृभ्यः परिददत् - पितरों को समर्पित करें - पितरों के पास पितृलोक में ले जाएं ।
'स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यः'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१, नि. ७.९.
हे मृतात्मा, वह आदित्य तुझे दक्षिणायन चन्द्रलोक में, उत्तरायण पितृलोक में ले जाए (स त्वा एतेभ्यः पितृभ्यः परिददत्) ।
मृतात्मा को आदित्य ही पितृलोक में पहुँचाते हैं ।

पितृमत् यमः- (१) पितरों से युक्त यम (२) प्रजापालक पुरुषों से युक्त राजा ।
'यमाय पितृमते स्वधा नमः'
अ. १८.४.७४

पितृमत् सोम- राष्ट्र के पालक पितृगुणों से युक्त सर्वप्रेरक सोम राजा ।
'सोमाय पितृमते स्वधानमः'
अ. १८.४.७२, आश्व.श्रौ.सू. २.६.१२, हि.गृ.सू. २.१०.७.

पितृयाण - (१) पितरों का मार्ग (२) शासकों का बनाया नियम ।
'प्रहिणोमि पथिभिः पितृयाणैः'
अ. १२.२.१०

पितृभ्यः- पितरों को या पितृलोक में ।
'स त्वैतेभ्यः परिददत् पितृभ्यः'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.४, नि. ७.९.

पितृलोक - (१) पितरों का लोक जहां वे मृत्यु के बाद मृतात्मा के रूप में विराजते हैं।
(२) पिता का घर
'पितृलोकात् पतिं यतीः'
अ. १४.२.५२

पितृबन्धु- मां बाप और परिवार ।
'छित्यस्य पितृबन्धु'
अ. १२.५.४३,

पितृवित्तः- पिता से प्राप्त धन ।
'रयिर्नयः पितृवित्तो वयोधाः'
ऋ. १.७३.१
पिता से प्राप्त धन जिस प्रकार सन्तान को सुखमय जीवन प्रदान करता है ।

पितृश्रवणः- माता पिता के समान प्रार्थनाओं को हितसे श्रवण करने वाला ।
'सादन्यं विदथ्यं सभेयं
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मैः'
ऋ. १.९१.२०, वाज.सं. ३४.१०, मै.सं. ४.१४.१, २१४.३,
(२) पिता या पालक गुरुजनों के उपदेश का श्रवण करने वाला,
(३) पितरों का यश कीर्त्ति फैलाने वाला ।

पितृषद् - (१) पिता के घर में रहने वाली कन्या ।
'जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्ताम्'
अ. १४.२.२३.
(२) पिता माता पर आश्रित कन्या ।

पितृषदन - पितरों का सदन यमलोक ।
'शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः'
अ. १८.४.६७

पित्र्यैनस- माता पिता के प्रति किया पाप ।
'देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात्'
अ. १०.१.१२

पित्रोः पुत्रः- (१) वायु और आकाश का पुत्र अग्नि -दया. ।
(२) माता पिता का पुत्र ।
'स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्'
ऋ. १.१६०.३.

पित्रोः पूर्वः पुत्र- - (१) माता पिता से पूर्व विद्यमान पुत्र (२) सूर्य और पृथिवी दोनों को पूर्व विद्यमान पालक प्रभु ।
'पुत्रो यत् पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट'
ऋ. १०.३१.१०

पिद्वः- पी (गत्यर्थक) धातु से सम्पन्न । टुक् का आगम हुआ है । अर्थ-ज्ञानवान् पुरुष ।
'पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै'
वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१७.१, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.४.

पिधानम् - ढक्कन ।
'पर्णो राजा पिधानं चरूणाम्'
अ. १८.४.५३.

पिनती- नाश करती हुई ।
'उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन'
ऋ. १०.१०८.११

पिन्वत् ऋतु- (१) बढ़ाने वाली हेमन्त ऋतु (२) अज पञ्चौदन का एक रूप ।
'एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः'
अ. ९.५.३४

पिन्वतम् - दो ।
'धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम्'
ऋ. ६.६३.८, नि. ६.२९.
हमें धेनु तथा अन्यत्र नहीं होने योग्य अन्न दो ।

पिन्वती- बढ़ी हुई, तृप्त करने वाली शक्ति ।
'पिन्वतीपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते'
अ. ९.५.३४

पिन्वमानः- (१) पीता हुआ ।
'घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः'
वाज.सं. २९.१, तै.सं. ५.१.११.१, मै.सं. ३.१६.२,१८३.१२, का.स. (अश्व.) ६.२.
हे अग्ने, तू मधुर घृत को पीता हुआ (२) प्रसन्न ।
'प्रपितामहान् पिन्वमानः'
अ. १८.४.३५

पिन्वमाने - द्वि.व. । (१) स्नेहों द्वारा एक दूसरे को सींचते बढ़ाते या निषेक करते हुए स्त्री पुरुष (२) शुतुद्रि (सतलज) और विपाशा (व्यास) नदियाँ
'समाराणे ऊर्भिभिः पिन्वमाने'
ऋ. ३.३३.२

पिनाक- विष् (पीसना) धातु से सम्पन्न । 'प्रतिपिनष्टि अनेन इति पिनाकम्' (इससे शत्रुओं को मारते हैं) । अर्थ है (१) दण्ड, डंडा ।
रम्भः पिनाक इति दण्डस्य नामनीभवतः'
(दण्ड के पर्याय रम्भक और पिनाक हैं)
'एष रुद्र ते भागस्तं जुषस्व
तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहि
अपिततधन्वा पिनाकहस्तः कृत्तिवासः'
तै.सं. १.८.६.२.
हे भगवन् रुद्र, यही तेरा भाग है । उस पाथेय को लेकर (तेन अवसेन) मूजवान् नामक पर्वत के उस पर (मूजवतः परः) हाथ में पिनाक नामक दण्ड से (पिनाकहस्तः) धनुष पर बाण चढ़ा (अवततधन्वा) जा (अतीहि) और हमारे शत्रुओं का संहार कर ।
महीधर ने 'पिनाकहस्त' के स्थान में पिनाकवासः पाठ माना है ।
आधुनिक अर्थ - शिव का धनुष ।

पिनाक हस्तः- हाथ में पिनाक नामक दण्ड धारण किए हुए । रुद्र का विशेषण ।

पिपर्तन- पूर्ण करो ।
'यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना
अरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन'
ऋ. १.१६६.६.
हे उग्रमरुतो, सुन्दर बुद्धि वाले गण (सुचेतुना) सदा साथ रहने वाले (अरिष्टग्रामाः) आप हमारी बुद्धि पूर्ण करें (यूयं पिपर्तनु) ।
हे संघ शक्ति से सम्पन्न तेजस्वी विद्वान् , आप हमारी शिक्षा को (सुमतिम्) विज्ञान से (सुचेतना) पूर्ण करो (पिपर्तन) ।

पिपर्ति - 'प्री' (प्रसन्न करना, तृप्त करना) या 'पृ' (पूरा करना) का लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है प्रसन्न करता है तृप्त करता है ।
'पिपर्ति पपुरिर्नरा'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
हे अश्विनीद्वय या सांसारिक कार्य भार के चलाने वाले द्यावा पृथिवी (नरा) समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीणयिता पालक या तृप्त करने वाला (पपुरिः) सूर्य जल से प्रसन्न या तृप्त करता है ।

पिप्पक – एक छोटा पक्षी ।
'कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै'
वाज.सं. २४.४०, तै.सं. ५.५.१९.१, मै.सं. ३.१४.२१, १७७.५, का.सं. (अश्व.)७.९.

पिप्पल– (१) पीपल वृक्ष, (२)किए हुए पाप पुण्य आदि का फल जिसे जीव भोगता है ।
'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति'
ऋ. १.१६४.२०, अ. ९.९.२०.मुण्डक. उप. ३.१.१, नि. १४.३०.
(३) मेघस्थ जल, (४) ऐश्वर्यवान् शत्रु ।
'रुशत् पिप्पलं मरुतो विधूनुथ'
ऋ. ५.५४.१२.

पिप्पली– पिप्पली नामक औषधि जो वात रोग तथा क्षिप्त रोग में बहुत प्रभावशाली है (सायण के मत से पिप्पली आदि सोंठ, मिर्च, पीपली, उस, 'व्योष' में पठित ओषधि का ग्रहण उचित है । ग्रीफिथ ने इससे 'पीपल की गुलरी' माना है। राजनिघण्टु में लिखा है–
'अश्वत्थी लघुपत्री स्यात्
पत्रिका ह्रस्व पत्रिका
पिपल्लिका वनस्था च
क्षुद्रा चाश्वत्य सन्निभः'
अश्वत्थी पिप्पलिका मधुर, कषाय, रक्तपित्तनाशक, विषदाहनाशक और गर्भिणी के लिये हितकारी है ।
इसके अतिरिक्त पिप्पली तृषा, ज्वर, उदर रोग, आमरोग, वातरोग, श्वास रोग, कास, श्लेष्मा और क्षय का भी नाशक है ।
वेद में प्रदर्शित गुण कटु गुण पिप्पली के प्रतीत होते हैं । इसका मूल पिप्पलीमूल है । वह वात, श्वेष्मा और कृमि का नाशक है। श्रेयसी और गजपिप्पली नामक इसके दो भेद हैं जो श्लेष्मा और वायु का नाश करते हैं, माता का दूध बढाती है। सामान्यतः पिप्पली सर्व रोग नाशक रसायन है ।

पिपीलिका– पिल + कि = पिपीलि (लिट् के ऐसा पिल् का द्वित्व) । उपधा का दीर्घ ।
पिपील + क (स्वार्थ में) + टाप् = पिपीलिका (पुनः पुनः पेलति गच्छति इति पिपीलिका) बार बार पिलती अर्थात् जाती है । अतः यह पिपीलिका है। हिन्दी में इसे पिपरी कहते हैं ।
'पिपीलिकावटश्वसः'
अ. २०.१३५.३

पिपीलिकामध्या– एक छन्द जिसका मध्यवर्ती पाद चींटी की कमर की तरह अन्य पार्श्ववर्ती पादों की अपेक्षा अक्षरों में बहुत छोटा हो । उष्णिक पिपीलिकामध्य छन्द में ११ + ६ + ११= २८ अक्षर होते हैं ।

पिप्युषी– दूध आदि से बढ़ाने वाली माता ।
'शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः'
ऋ. १.१८६.५.
(२) पिलाने वाली माता ।
'तदाहना अभवत् पिप्युषी पयः'
ऋ. २.१३.१
(३) स्वयं परिपुष्ट, अन्यों के ज्ञान, बल, चारों पुरुषार्थों की वृद्धि करने वाली ।
'दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम्'
ऋ. २.३२.३.
(४) पुष्ट करने वाली ।
'गामश्वं पिप्युषी दुहे'
ऋ. ८.१४.३, अ. २०.२७.३, साम. २.११८६

पिप्रत् – पालन करता हुआ ।
'प्रजामृतस्य पिप्रतः'
ऋ. ८.६.२, अ. २०.१३८.२, साम. २.६५९

पिप्रती– (१) पूर्णरूप धारण करते हुए द्यावा पृथिवी या स्त्री पुरुष ।
'तरन्ती पिप्रती ऋतम्'
ऋ. ४.५६.७, साम. २.९४८.
(२) प्रसन्न होती या करती हुई स्त्री
'जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे'
ऋ. ८.१२.३१

पिपिष्वती– (१) बहुत अवयवों वाली ।
(२) मेघों में जल को छिन्न भिन्न कर पीसने वाली (३) प्रत्येक अंग पीस डालने वाली सेना
'त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती'
ऋ. १.१६८.७.

पिपील– कीड़ा मकोड़ा ।
'पिपीलः सर्प उतवाश्वापदः'
ऋ. १०.१६.६, अ. १८.३.५५, तै.सं. ६.४.२.

पिप्रु – (१) अपना ही पेट भरने वाला (२) तत् नामक दैत्य ।

'यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्राम्'
ऋ. २.१४.५
(३) न्याय को पूर्ण करने वाला (४) फैला हुआ ।
'त्वं पिप्रुं मृगयुं शूशुवांसम्'
ऋ. ४.१६.१३.
(५) अपने ही को निरन्तर भरने पूरने वाला स्वार्थी पुरुष ।
'त्वं पिप्रोर्नृभणः प्रारुजःपुरः'
ऋ. १.५१.५
हे मनुष्यों को वश में करने वाले या मनुष्यों द्वारा आदरणीय, या मनुष्यों की चित्त वृत्ति जानने वाले या उनके हितों में मनोयोग देने वाले (नृमणः), तू अपने ही को निरन्तर भरने पूरने वाले शत्रु के दुर्गों को (पिप्रोः पुरः) तोड़ फोड़ डाल (प्रारुजः) (५) पेटू ।
'यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम्' '
ऋ. १.१०१.२.
(६) पालन और ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाला ।
'अरन्धयौ वैदथिनाय पिप्रुम्'
ऋ. ५.२९.११.
(७) अपना धन भरने वाला
'वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः'
ऋ. ६.८.१८.

पिपीषत्- पान और पलिन की इच्छा करने वाला इन्द्र ।
'प्रत्यस्मै पिपीषते'
ऋ. ६.४२.१, साम. १.३५२,२.७९०.

पिब्दनः- (१) गुप्त शब्द करने वाला (२) गुप्त पुरुष ।
(३) पीसकर नष्ट कर देने योग्य (४) समझ में न आने वाली अप्रकट या कूट भाषा बोलने वाला अपने से भिन्न भाषाभाषी ।
'विश्वासुनो विथुरा पिब्दना वसो'
ऋ. ६.४६.६, अ. २०.८०.२.
(५) पीड़ित करने योग्य दुष्टजन ।
'एष वसूनि पिब्दना'
ऋ. ९.१५.६.

प्रिय- 'पृ' धातु से सिद्ध । अर्थ - (१) प्रिय बोलने वाला, (२) इष्ट पदार्थ, ।
'नोधा इवारकृतप्रियाणि'
ऋ. १.१२४.४, नि. ४.१६.
उषा ने नोधा ऋषि के समान इष्ट साधन किया है । पुनः,
(३) उत्तम कथा, स्तुति उपदेश आदि से प्रसन्न होने वाला
'कद्ध नूनं कधप्रियः'
ऋ. १.३८.१, ८.७.३१.

प्रियआत्मा - (१) प्रिय शरीर, (२) प्रिय पुत्र, (३) आत्मा ।
'मा त्वा तपत् प्रिय आत्मा पियन्तम्'
ऋ. १.१६२.२०, वाज.सं. २५.४३, तै.सं. ४.६.९.३, का.सं. (अश्व.) ६.५.

प्रियङ्गु- प्रियङ्ग नामक क्षुद्रधान्य ।
'प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे'
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२.

प्रियजात् - उत्पन्न बालक के समान प्रजाओं को तृप्त करने वाला ।
'नहिमन्युः पौरुषेयः
ईशेहिवः प्रिय जात'
ऋ. ८.७१.२.

प्रियधाम- प्रियस्थान ।
'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे'
ऋ. ५.४८.१,
सुखकारक प्रिय स्थान के लिए हम याचना करते हैं ।

प्रियपति- प्रियपति, (२) पालक ।
'प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे'
वाज.सं. २३.१९, मै.सं. ३.१२.२०,१६६.११, का.सं. (अश्व.) ४.१.

प्रियप्राण- छठा प्राण ।
'योऽस्यषष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पाश्वः'
अ. १५.१५.६.

प्रियमेधवत् - (१) सूक्ष्म मनोहर बुद्धिवाला ।
(२) प्रिममेधा ऋषि के समान ।
'प्रियमेधवदत्रिवत्
जातवेदो विरूपवत'
ऋ. १.४५.३, नि. ३.१७.

प्रियमेधस् -(१) प्रिया अस्य मेधाः (जिसे यज्ञप्रिय हो) । प्रिय + मेध + असुन् (२) एक वैदिक ऋषि ।
(३) जिसे धारणावती बुद्धि प्रिय हो ।

(४) दुर्ग के अनुसार 'मेधा' यज्ञ का वाचक है। अमर कोष में 'मेधा' धारणावती बुद्धि को कहा गया है।

'धीः धारणावती मेधा'

(५) यज्ञ से प्रेम करने वाली सूर्य की रश्मियाँ।

'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः'

ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ. (आंध्र) १०.७३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.

चलने वाली सूर्य की रश्मियाँ (वयः सुपर्णाः) सूर्य के निकट गईं (इन्द्रम् उपसेदुः)। वे रश्मियाँ यज्ञ से प्रेम करने वाली (प्रियमेधाः) प्रकाशक होने से सर्वद्रष्टा (ऋषयः) तथा लोकों की प्रज्ञा को जांचने वाली है (वाधमानाः) (५) यज्ञ या पवित्र आत्मा को प्रिय रूप से प्राप्त करने वाला साधक पुरुष।

'प्रियमेधासो अर्चत'

ऋ. ८.६९.८, अ. २०.९२.५, साम. १.३६२ यज्ञप्रिय, (७) सत्संगप्रिय (८) अन्नार्थी

'प्रियमेधासो अस्वरन्'

ऋ.८.३.१६, अ. २०.१०.२, ५९.२, साम. २.७१४.

प्रियरथ- (१)सुन्दर, (२) अति प्रिय रथ स्वरूप आत्मा।

'श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः
सद्यः पुष्टिं निरुन्धनासो अग्मन्'

ऋ. १.१२२.७

जिस प्रकार लोग गमन करने वाले रथ में पोषण कारी धन सम्पत् और अन्नादि रखकर और उस की रक्षा करते हुए आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार पिता, गुरु और उपदेशक आदि प्रिय शिष्यों को कुमार्गों से रोकते हुए (निरुन्धानासो) जितेन्द्रिय होकर प्राप्तव्य (पज्रे) गुरूपदेश से श्रवण करने योग्य रमणीय (श्रुतरथे) और अति प्रिय रस स्वरूप आत्मा में (श्रुतरथे) पोषण सामर्थ्य को धारण करते हुए (पुष्टि दधानाः) शीघ्र ही गमन करते हैं।

प्रियवादी- मधुर भाषी।

'प्रियाय प्रियवादिनम्'

वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७.

प्रियावत् - प्रियतम।

'प्रियां प्रियावते हर'

अ. ४.१८.४.

प्रियासखाया- (१) ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग, (२) दो प्रिय मित्र।

क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः

श.ब्रा.

बर्हि विश प्रजाएं हैं और राजा के दो प्रिय क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ग हैं।

'प्रिया सखाया विमुचोपबर्हिः'

ऋ. ३.४३.१

प्रियोम्रियः- युवति वधू से प्रेम करने वाला।

'प्रियोम्रियस्य वृषभस्य रेतिनः'

ऋ. १०.४०.११

पियानः- परिपूर्ण भरापूरा, तृप्त।

'यदीमृतस्य पयसा पियानः
नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः'

ऋ. १.७९.३

जिस प्रकार आकाश को पूर देने वाले जल के वाष्प मय रूप से (पयसा) खूब भरपूर तृप्त होकर (पियानः) वायु इस मेघ को या जल को अन्तरिक्ष के धूलि कणों से युक्त (रजिष्ठै) मार्गों से (पाथिभि) ले जाता है (नयन्)।

पियारु - पी (हिंसा अर्थ में) + आरु (शील अर्थ में) = पियारु। अर्थ-जिसका हिंसा करना शील या स्वभाव हो वह पियारु है।

दिवादिगणीय पीङ् धातु पानार्थक है पर यहां पर हिंसा अर्थ में आया है।

(१) हिंसक।

'अभिवृत्रं वर्धमानम् पियारुम्
अपादमिन्द्र तवसाजघन्थ'

ऋ. ३.३०.८, वाज.सं. १८.६९.

हे इन्द्र चारों ओर से बढ़ते हुए (अभिवर्धमानम्) हिंसक वृत्र या मेघ या दुष्ट जन को (वृत्रम्)।

(२) देवपीयु, (३) देवहिंसक (४) देवता की पूजा न करने वाला, (५) यज्ञविमुख (६) नास्तिक, (७) ज्ञान रस का पान करने वाला।

'बृहस्पते चयस इत् पियारुम्'

१.१९०.५, नि. ४.२५.

पिल् - गत्यर्थक धातु ।

पिलिप्पिला - (१) सुन्दर, शोभावती (२) पालन करने वाली राष्ट्र श्री ।
'श्री वै पिलिप्पिला'
पुनः-
'कास्विदासीत् पिलिप्पिला'
वाज.सं. २३.११,५३.तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९, १६६.५.

पिश्- हाथी ।
'पिशाइव सुपिशो विश्ववेदसः'
ऋ. १.६४.८
समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी (विश्ववेदसः) सुदृढ़ शरीर वाले (सुपिशः) हाथी के समान (पिशा इव) गम्भीर वेदी हो ।

पिशंग- पीला ।
'तेऽरुणेभिः वरं मा पिशङ्गैः
शुभे कं रथतूर्भिरश्वैः'
ऋ. १.८८.२.

पिशङ्गभृष्टि- (१) पीतवर्णेन पाको यस्य सः -दया. । पीले रंग के प्रकाश से भुन जाने वाला (२) पीत वर्ण के तेजस्वी पुरुषों द्वारा पीड़ित होने वाला ।
'पिशंगभृष्टिमम्भृणम्'
ऋ. १.१३३.५

पिशङ्गरातिः- (१) सुन्दर दान वाले इन्द्र -परमेश्वर ।
'पिशङ्गराते अभिनः सचस्व'
ऋ. ५.३१.२.
हे सुन्दर दान वाले इन्द्र, हमारे सम्मुख आ (नः अभि सचस्व) ।
(२) सुवर्ण का दान देने वाला (३) कर रूप सुवर्ण एवं परिपक्व धान्य लेने वाला ।

विशङ्गरूपः- (१) पीत वर्ण का धन सुवर्ण (२) तेजोमय आत्मा ।
'पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे'
ऋ. ८.३३.३, अ. २०.५२.३, ५७.१६, साम. २.२१६.
(३) अग्नि के समान तेजो रूप ।
'पिशङ्गरूपो नभसो वयोधाः'
अ. ९.४.२२.
(४) सूर्य या सुवर्ण के समान पीला, उज्ज्वल काञ्चन गौर, (५) सूर्य ।
'पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः'
ऋ. १.१८१.५
(६) उज्ज्वल, पीले रंग का, (७) तेजस्वी

पिशङ्गसूत्र- दृढ, खूब बटा हुआ रस्सा ।
'पिशङ्गे सूत्रे खृगलम्'
अ. ३.९.३

पिशङ्गामला- अत्युज्ज्वल प्रकाश ।
'पिशङ्गा वसते मला'
ऋ. १०.१३६.२

पिशङ्गाश्वाः- (१) पीले घोड़ों वाले (२) मरुतों का विशेषण ।
'पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः'
ऋ. ५.५७.४.

पिशङ्गिलाः - समस्तरूपों को निगल जाने वाली ।
'अहोरात्रे वै विशंमिले'
श.ब्रा. १३.२.६.१६.
'कास्विदासीत् पिशङ्गिला'
वाज.सं. २३.११, ५३,तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९,१६६.५, का.सं. (अश्व.) ४.७, श.ब्रा. १३..२.६.१७, तै.ब्रा. ३.९.५. ३.

पिशाच- कच्चे मांस पर गीध की तरह पड़ने वाला पुरुष ।
'पिशाचेभ्यो बिदलकारीम्'
वाज.सं. ३०.८.

पिशाच क्षयण- दूसरों के मांस के लोभी हिंसक क्रूर पुरुषों का नाशक ।
'पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं
मे दाः स्वाहा'
अ. २.१८.४.

पिशाचचालन- मांसभोजी क्रूर पुरुषों का नाश करने का सामर्थ्य ।

पिशाचि- (१) यः पिशति (पीसने या दुःख देने वाला) -दया.
(२) देह के अवयव में व्याप्त (३) रक्त को चूसने वाला रोगकारी कारण, (२) खण्ड खण्ड होने वाला शत्रु सैन्य ।

पिशानः - सुशोभित करता हुआ ।
'आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः'
ऋ. ७.५७.३

पिशित- दूषित मांस ।
'मोच्छिषः पिशितं च नः'

अ. ६.१२७.१

पिशुन- पिश् (अवयव करना) + उनन् = पिशुन । अर्थ है - (१) पिंशति इति पिशुनः (बात को इधर उधर करने वाला, बढ़ा चढ़ाकर कहने वाला, भेद बुद्धि करने वाला) चुगलखोर । वेद में इसका पर्याय 'किमीदिन्' है ।
(२) अपराधों को तुरत सूचित करने वाला ।
'वैरहत्याय पिशुनम्'
वाज.सं. ३०.१३,तै.ब्रा. ३.४.१.७.

पिषती- पीसीजाती हुई ओषधि ।
'अथो पिनष्टि पिंषती'
ऋ. १.१९१.२

पिष्ट- पिष् + क्त = पिष्ट । अर्थ है- रूप ।

पिष्टतमा - (१) अति कुटी पिसी, (२) विचार, विवेक या तर्क द्वारा निर्धारित ।
'पिष्टतमया रभिष्टतमया'
वाज.सं. २१.४६.
(३) पिष् + क्त = पिष्ट, पिष्ट + तमप् + टाप् = पिष्टतमा । अर्थ है- सुरूपतमा, अत्यन्त रूपवती, (४) दृढ़ एवं सुरूप ।
'वनस्पते रशनया नियूय
पिष्टतमया वयुनानि विद्वान्'
ऋ. ८.२.२८
हे वनस्पते, अत्यन्त दृढ़ एवं सुरूप ज्वाला से निबद्ध कर अपने अधिकार में प्रयुक्त प्रज्ञानों को जानता हुआ ।

पीठसर्पी- सिंहासन या मुख्यासन पर विराजने वाला ।
'पृथिव्यै पीठ सर्पिणम्'
वाज.सं. ३०.२१.

पीतः - पिया जाकर, प्राप्त हुआ ।
'पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात्'
ऋ. ९.८६.४१
हे प्रकाशक परमेश्वर (इन्दो), प्राप्त हुआ तू (पीतः) हमें (अस्मभ्यम्) तेजस्वी जीवात्मा को प्रदान करें (याचतात्) ।
हे पिया हुआ सोम (पीतइन्दो), तू इन्द्र से हमारे लिए (अस्मभ्यम्) जाँच (याचतात्) -सा.

पीति - पी + क्तिन् = पीति । (१) परम सेवा (२) पीना, पान करना, (३) सेवन करना ।
'कामीहि वीरः सदमस्य पीतिं
जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि'
ऋ. २.१४.१.
यह तेजस्वी इन्द्र कामनावान् है । वह इसे ही चाहता है अतः इस वर्षा करने वाले को सदा इस अन्न रस का सेवन करा ।
(३) पा + क्तिन् = पीति । अर्थ है पाना ।
'अभित्वा पूर्वपीतये
सृजामि सोम्यं मधु'
ऋ. १.१९.९, नि. १०.३७.
पहले पीने के लिये सोममय मधुर रस को चारों ओर से बना रहा हूँ ।
(५) आदान शक्ति, (६) पालन शक्ति ।
'प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्याम्'
ऋ. १०.१०४.३, अ. २०.२५.७, ३३.२. आश्व.श्रौ.सू. ६.४.१०, आश्व.श्रौ.सू. १०.१०४.३
(७) 'ओप्यायी' वृद्धि अर्थ में आया है । 'प्यायी' का 'पी' होकर क्तिन् प्रत्यय से 'पीति' हुआ है । अर्थ है- वृद्धि ।
'दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि'
ऋ. ७.९८.२, अ. २०.८७.२

पीथः- (१) पान, पीना, ।
'गोपीथाय प्रहूयसे'
ऋ. १.१९.१, साम. १.१६.
सोमरस या दुग्ध पान के लिये हे अग्नि, तू आहूत होता है ।

पीप्याना - (१) पापयमाना (स्तन पिलाती हुई) 'पीङ्' या 'पी' धातु के लिट् में 'कानाच्' प्रत्यय जोड़ा गया है। पीपी + आन = पीप्यान । दूधपिलाती हुई स्त्री ।
'निते नंसे पीप्यानेवयोषा'
ऋ. ३.३३.१०,नि. २.२७.
जैसे स्त्री बालक को दूध पिलाने के लिये झुक जाती है उसी प्रकार हम तेरे लिये झुक जाते हैं ।

प्रीः- पूर्ण अर्थ का प्रकाश करने वाली (वेदवाणी) ।
'पृञ्चन्तीर्वर्चसाप्रियः'
अ. २०.४८.२

प्लीहा- शरीरस्थ प्लीता ।
'उपलान् प्लीहा'
वाज.सं. २५.८, मै.सं. ३.१५.७, १७९.१४.

प्लीहाकर्ण- तीव्र गति से भीतर प्रवेश करने वाली।
'प्लीहाकर्णः शुण्डाकर्ण'
वाज.सं. २४.४, मै.सं. ३.१३.५, १६९.९.
पीयका- प्राण हिंसा करने वाली व्याधि।
'कुम्भीका दूषीकाः पीयकान्'
अ. १६.६.८
पीयत्- विनाशकारी।
'यदावलस्य पीयतो जसुं भेत्'
ऋ. १०.६८.६, अ. २०.१६.६.
पीयु- हिंसक। पी (हिंसा करना) + यु = पीयु।
पीयूष- (१) रस, (२) आपः (३) सौर्य रस जिससे अनेक लोकों की रचना हुई है।
पयः पीयूषम् - वाज.सं.
रसो वै पयः-श.ब्रा. ४.४.४.८.
आपो हि पयः कौ.सू. ४.४. सौर्यं पयः
'वत्सो जरायु प्रतिधुक पीयूषः'
अ. ९.४.४, तै.सं. ३.३.९.२
(४) हिंसक पुरुषों को नाश, करने वाला बल या ज्ञान।
'अंशोःपीयूषम् अपित्वो गिरिष्ठाम्'
ऋ. ३.४८.२
(५) (न)। पातुं योग्यम् -दया.। (पीने योग्य) (६) अमृत (७) माता का दुग्ध
'अंशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम्'
ऋ. २.१३.१
पीला- (१) पीलु नामक ओषधि जो विष नाशक है, (२) चक्षु।
'गुल्गुलूः पीला नलदी'
अ. ४.३७.३
पीलु- अन्न।
'श्यामाकं पक्वं पीलु च'
अ. २०.१३५.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.५.
पीलुमती- (१) मिट्टी के कणों वाली पृथिवी, (२) पालन साधन वृक्षादि से हरी भरी पृथिवी (३) कर्मफलों से युक्त राजसी।
'पीलुमतीति मध्यमा'
अ. १८.२.४८
पीव - (१) प्ये (वृद्ध्यर्थक) + क्वनिप् = पीव (सम्प्रसारण और दीर्घ)। अर्थ है (१) बल, (२) पीव (२) अति बलवान, पुष्ट।
'उताहमद्मि पीव इत्'
ऋ. १०.८६.१४, अ. २०.१२६.१४.
'वाताये पीव इद्भव'
ऋ. १.१८७.८-१०,का.सं. ४०.८.
पीवर- बलवान्।
'कुसं पीवरो नवत्'
अ. २०.१३६.१२.
पीवरी- खूब अधिक मात्रा में।
'पीवरीमिषं कृणुहीन इन्द्र'
साम. १.४.५५, ऐ.आ. ५.२.२.१७.
पीवरी इष् - (१) अति हृष्ट पुष्ट सेना (२) अति हृष्ट पुष्ट अन्न सम्पदा।
'वहतं पीवरीरिषः'
ऋ. ८.५.२०
पीबस् - मेदा, चर्बी।
'अभ्रं पीबो मज्जा निधनम्'
अ. ९.७.१८.
'नेव मांसे न पीबसि'
अ. १.११.४.
पीवस्वती - (१) पुष्ट करने वाली, (२) प्राण दायक जल, (३) दूध से प्राण या पुष्टि देने वाली माता।
'पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्तुः'
ऋ. १०.१६९.१, तै.सं. ७.४.१७.१.
गायें पुष्टिकारक, प्राणदायक तथा जीव को तृप्त करने वाला जल पीयें (४) हृष्ट पुष्ट।
पीवसा- द्वि.व.। (१) मित्रावरुण अथवा स्त्री पुरुषा का विशेषण (२) हृष्टपुष्ट, मोटे ताजे।
'युवं वस्त्राणिवीवसा वसाथे'
ऋ. १.१५२.१, मै.सं. ४.१४.१०, २३१.७, कौ.ब्रा. १८.१३, तै.ब्रा. २.८.६.६, आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१, आश्व.गृ.सू. ३.८.९.
पीबस्पाक - मेद तक को पका डालने वाला विष।
'पीबस्पाकमुदारथिम्'
अ. ४.७.३.
पीवा- प्रबल, हृष्ट पुष्ट।
'अग्नये पीवानम्'
वाज.सं. ३०.२१.
पीवानः- स्थूल, सबका पोषक, वृद्धिशील।
'पीवानं मेषमपचन्त वीराः'
ऋ. १०.२७.१७
पीवोपवसन - (१) आहार व्यवहार द्वारा पुष्टि करने

वाला (२) पुष्टि कारी आवरण में सुरक्षित, (३) स्थूल पक्की पोशाक पहनने वाला (४) दृढ़ता से निवास करने वाला ।

पींष - पिश, पिष, पीष - सब को चूर्ण करने वाला हाथी ।
'सिंहस्य राज्युशती पींषस्य'
अ. १९.४९.४

पुच्छधि- 'पुच्छवत् आधीयत इति पुच्छधिः'
पुच्छ के समान जिस अंग को धारण किया है वह पुच्छधि है ।
'किमु ते पुच्छधावसत्'
अ. ७.५६.८

पुञ्जिकस्थला- पुञ्जरूप होकर स्थान में विद्यमान सेना ।
'पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१५, श.ब्रा. ८.६.१.१६.

प्रञ्जिष्ठ- प्रञ्जों का अधिष्ठाता ।
'नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२७, मै.सं. २.९.५,१२४.७.

पुण्डरीकवान् - कमलों से युक्त ह्रद ।
'ह्रदो वा पुण्डरीकवान्'
अ. ६.१०६.१.

पुण्यगन्धा- (१) विराट् प्रकृति ।
'तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्तु
पुण्यगन्ध एहीति'
अ. ८.१० (५) ५.
(२) उत्तम गन्ध वाली शुभ लक्षणास्त्री ।
'स्त्रियोयाः पुण्यगन्धाः'
ऋ. ७.५५.८, अ. ४.५.३

पुण्यगन्धि- पुण्य गन्ध वाला ।
'तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति'
अ. ८.१० (५) ८

पुण्यजन- पुण्यात्मा लोग ।
'देवान् पुण्यजनान् पितृन्'
अ. ८.८.१५, ११.९.२४.
पुत्रः - (१) पुत्र, (२) रश्मियों से उत्पन्न जल -सा. । दे. 'अन्ध' । (३) पुरु त्रायते । (पिता का उनके लिये अनेकों पापों से त्राण करता है, (४) 'निपाणात् पुत्रः' (निश्चित रूप से नित्य पिता को श्रद्धापूर्वक मन से तृप्त करता है) । नि + पृ + त्रक् = पुत्र (निका लोप, 'पृ' का पु) (५) पुं. नरकः ततः त्रायत इति पुत्रः (पुं नामक त्रायण इति पुत्रः (पुं नामक नरक में जाने से बचाता है अतः पुत्र है)
पुम् + त्रक् = पुत्र ।
'कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत
यस्ता विजानात् सपितुष्पितासत्'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, तै.आ. १.११.५, नि. १४.२०.
जो स्त्री पुरुष रूपी स्त्रियों का विद्वान् पुत्र (जल) है, वही इस पुरुष होने वाले तत्व को जानता है ।
जो अल्प वयस्क पुत्र मेधावी हो वह इस सत्य कथन को समझता है । जो इन तत्वों को समझता है, वह पिता का पिता अर्थात् पितृवत् पूज्य है - दया. ।

पुत्रक - बहुत जनों और ज्ञानों की रक्षा करने वाला ।
'अर्चन्तु पुत्रका उत
पुरं न धृष्णवर्चत'
ऋ. ८.६९.८, अ. २०.९२.५.

पुत्रकृथ- (१) पुत्र, उत्पन्न करने वाला ।
'स्वस्ति नः पुत्र कृथेषु योनिषु'
ऋ. १०.६३.१५, ऐ.ब्रा. १.९.४.
(२) पुत्र उत्पन्न करना ।
'पुत्र कृथेन जनयः'
ऋ. ५.६१.३.

पुत्रविद्य - पुत्र की प्राप्ति ।
'तास्त्वापुत्रविद्याय'
अ. ३.२३.६

पुत्रिणा - पुत्र वाले पति पत्नी ।
'पुत्रिणा ता कुमारिणा'
ऋ. ८.३१.८, आ. मं.पा. १.११.१०

पुनती- (१) पवित्र करती हुई -दया. (२) पवित्र करने वाला कर्म ।
'अभिक्रत्वा पुनती धीतिरश्याः'
ऋ. ४.५.७.
पवित्र करने वाले कर्मयाज्ञान से (पुनतीक्रत्वा) आदित्य को प्राप्त कर (अभ्यश्याः)
कर्म से अपने आप को पवित्र करती हुई (क्रत्वा पुनती) और बुद्धिमती होती हुई (धीतिः) समान गुण कर्म वाले पति को प्राप्त कर (अभ्यश्याः)

–दया.
(३) सत्यासत्य, धर्माधर्म का चलनी या सूप के समान विवेक करती हुई ।
'वैश्वदेवी पुनती देव्यागात्'
वाज.सं. १९.४४, मै.सं. ३.११.१०,१५६.५, का.सं. ३८.२, तै. ब्रा. १.४.८.२.

पुनते – पवित्र करते हैं ।
'येन देवाः पवित्रेण
आत्मानं पुनते सदा'
साम. २.६५.२, तै.ब्रा. १.४.८.६, नि. ५.६.
जिस मन्त्र से (येन पवित्रणे) ऋत्विज् तथा यजमान (देवाः) सदा अपने को पवित्र करते हैं (आत्मानं सदा पुनते) ।

पुनन्ता– शरीर को निरन्तर पवित्र करने वाले प्राण अपान ।
'पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता'
ऋ. १०.२७.१७

पुनन्तु– पवित्र करें ।
'पावमानीः पुनन्तुनः'
सा. २.६५.२
पवमान देवता वाली ऋचाएं ।
(पावमानीः) हमें (नः) पवित्र करें (पुनन्तु) ।

पुनः– अ. । फिर ।
'पुनः पत्नीमग्निरदात्'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४,९,१४.
(२) बार बार ।
'कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः'
ऋ. ७.५८.५, नि. ४.१५.
वे मरुत अनेकों बार जलदान द्वारा अनुगृहीत करते हैं (नंसन्ते) ।
हे ईश्वरभक्त , सेवा करने पर हमारे प्रति अत्यन्त नम्र हो जाते हैं (कुवित् नंसन्ते) –दया.

पुनःपुनः – बार बार ।
'पर्यागारं पुनः पुनः'
अ. २०.१३२.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१८.१८.

पुनर्णवः– पुनः पुनः नया होने वाला आत्मा ।
'पुनरागा पुनर्णवः'
ऋ. १०.१६१.५, अ. ८.१.२०,२०.९६.१०.

पुनर्भुवा– (१) पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले रात्रि और दिन ।
'सनाद् दिवं परिभूमा विरूपे
पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेयैः'
ऋ. १.६२.८.
रात्रि वाले अन्धकार से बने रूपों से और दिन कान्तिमान रूपों से एक दूसरे के पीछे क्रम से आती जाती है और दोनों अनादि काल से पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले होकर (पुनर्भुवा) अपने आगमनों एवं व्यवहारों से सूर्य और पृथिवी की सेवा करते हैं या परिक्रमा करते हैं या उन पर आश्रित रहते हैं ।
(२) वे सैनिक जो तितर बितर होने के बाद पुनः सन्नद्ध हो गए हों ।
'विष्वक् पुनर्भुवा मनः'
अ. १.२७.२

पुनर्भू – (१) पुनर्विवाह करने वाली स्त्री ।
समान लोको भवति पुनर्भुवा परः पतिः'
अ. ९.५.२८
(२) या विवाहित पति मरणान्तरं नियोगने पुनः सन्तानोत्पादिका भवति–दया. (३) प्रतिदिन पुनः पुनः नए वेष में प्रकट होने वाली उषा या कुलवधू ।
'उच्चा व्यख्यद् युवतिः पुनर्भूः'
ऋ. १.१२३.२

पुनर्मघः – (१) पुनः पुनः नाना सम्पत्तियों का स्वामी ।
'पुनर्मघत्वं मनसा चिकित्सीः'
अ. ५.११.१
(२) कर्मफल एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न आत्मा ।
'सं सुनुर्भवत् स भुवत् पुनर्मघः'
अ. ७.१.२

पुनःसर– बार बार प्रत्येक वस्तु में और बार बार काट लेने पर भी हरा कर देने वाला वीर्य ।
'यो अन्धोयः पुनः सरः
भगो वृक्षेषु आहितः'
अ. ६.१२९..२

पुनः सरा– (१) बार बार रोगी के मलमूत्र को बाहर करने वाली अर्थात् विरेचक ओषधि अपामार्ग, (२) बार बार शरीर में प्रवेश करने वाली मात्रा में कई बार दी जाने वाली ओषधि ।
'सहमानां पुनस्सराम्'
अ. ४.१७.२

पुनरायनम् – (१) लौटकर पुनः आना, (२) मोक्ष के बाद पुनः जन्म ग्रहण करना ।
'मधुमत्पुनरायनम्'
ऋ. १०.२४.६.

पुनर्वसू– (१) पुनर्वसु नामक नक्षत्र ।
'पुनर्वसू सूनृता चारू पुष्यः'
अ. १९.७.२.
(२) द्वि.व. । पुनः पुनः नये नये धन को कमाने वाले, (३) पुनः पुनः राष्ट्र में बसने वाले, (४) अग्नि और सोम, (५) जीव और मन भी देह में पुनः पुनः बसने से पुनर्वसू हैं ।
'अग्नीषोमा पुनर्वसू
अस्मे धारयते रयिम्'
ऋ. १०.१९.१

पुनर्हन् – फिर से बार बार दण्डित करने वाला– मारने वाला ।
'कुमार देष्णा जयता पुनर्हणः'
ऋ. १०.३४.७

पुनानः– (१) पवित्र करता हुआ, ।
(२) पूयमानः (पवित्र किया जाता हुआ) । सोम रस बनाने के सम्बन्ध में प्रयुक्त, (३) प्राप्त । परमात्मा के सम्बन्ध में प्रयुक्त ।
'नृभिः पुनानः अभि वासयाशिरम्'
ऋ. ९.७५.५
हे सोम, ऋत्विजों से पवित्र किया जाता हुआ तू (नृभिः पुनानाः) क्षीर आदि में मिल जा (आशिरम् अधिवासय)
हे परमात्मन्, मनुष्यों से प्राप्त हुए आप (नृभिः पुनानः) हमें अपने आश्रम में निवास कराइए (आशिरम् अभिवासय) ।

पुपुष्वान् – करता हुआ ।
ऋचां त्वः स्वकीय देवताओं की ऋचाओं का (ऋचाम्) यथाविधि कर्मों में उपभोग करता हुआ (पोषं पुपुष्वान्) रहता है (आस्ते) ।

पुपोष– पोषयति (पोसता है) । वर्तमान अर्थ में लिट् का प्रयोग ।

पुमान्– (१) पुमान् पुरुष (२) पूर्ण ज्ञानी, (३) समस्त पदार्थों में व्यापक (४) सबको बढ़ाने वाला, (५) सबसे महान् ।
'पुमानन्तर्वान् स्थविरःपयस्वान्'
अ. ९.४.३
(६) पु + मतुप् ।
'हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्
पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः'
ऋ. ६.७५.१४, वाज.सं. २९.५१, तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८७.५, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१५.
हस्तघ्न सब प्रकार से पुरुष की रक्षा करे जैसे प्रज्ञानों का ज्ञाता विद्वान् ।
(६) पुमान् पुंसमना भवति (स्त्री की अपेक्षा अधिक मन वाला पुरुष होता है) ।
पुस् (पुरुषार्थ करना) से पुमान् तू बना है । जिसे पौरुष या बल हो वह पुमान् है ।
(८) पुरुमनस् = पुमस् । यास्काचार्य 'पुमस्' शब्द ही मानते हैं ।
(९) पुंस् (अभिवर्द्धनार्थक) धातु से पुंस् बना क्योंकि पुरुष अभिवर्द्धन शील हैं । पुंस् + मतुप् = पुमत् ।
उणादि कोष में पा (क्षणार्थक + डुमसुन् = पुंस सिद्ध हुआ है) क्योंकि मनुष्य सबका रक्षक है ।
'स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, तै.आ. १.११.४, नि. १४.२०.

प्रुष् – (१) सींचना ।
'इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते'
ऋ. १०.२३.४, अ. २०.७३.५
(२) जल बरसाया ।
'यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति'
ऋ. १.१६८.८.
(३) जलाना ।
'घृतेन पाणी अभिप्रुष्णु ते मखः'
ऋ. ६.७१.१, कौ.ब्रा. २०.४.

प्रुष्णत्– (१) स्थूल बूंदों से सींचता हुआ या नदी ताल आदि को भरता हुआ मेघ, (२) प्रजा को धन धान्य से पूर्ण करता हुआ ।
'प्रुष्णते स्वहा'
वाज.सं. २२.२६, तै.सं. ७.५.११.२, का.सं. (अश्व.) ५.२.

प्रुषायत् – आकर्षण करता हुआ ।
'स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायत्'
ऋ. १..१२१.२

वह सूर्य आकाशस्थपिण्डों को आकर्षण करता हुआ बल से थामता है ।

प्रुष्वा- (१) जलबिन्दु का फुहारा ।
'शं ते प्रुष्वाव शीयताम्'
अ. १८.३.६०
(२) मेघ के स्थूल बिन्दु, सेचन करने वाली धारा, (३) प्रजा को समृद्ध करने वाली शक्ति ।
'प्रुष्वाभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२६, का.सं. (अश्व.) ४.२.४) वृक्षों को सींचने वाले फुहार ।
'प्रुष्वा अश्रुभिः'
वाज. सं. २५.९, मै.सं. ३.१५.८,१८०.२.

प्रुषितप्सुः- प्रुषित + प्सुः । स्निग्ध या परिवक्व रूप वाला, (२) दृढ़ शरीर वाला, (३) अग्नि सूर्यादि से पुषित, (४) परिपक्व घृतादि से सेवित अन्न का भोजन करने वाला (५) स्निग्ध, परितप्त वा तपस्वी देहवाला ।
'तूतु जानो महमेते ऽश्वेभिःप्रुषित प्सुभिः'
ऋ. ८.१३.११.

प्लुषिः- एक जन्तु ।
'वाचं प्लुषीन्'
वाज.सं. २४.२९, मै.सं. ३.१४.८, १७४.१.

प्लुषी- द्वि.व.। दाहक-काटने पर दाहकारी जीव ।
'द्वाविति प्लुषी इति'
ऋ. १.१९१.१.

प्सुर्- (१) रूपवान (२) सुन्दर भूमि (३) देहवान् प्राणी ।
'अभिप्सुरः पुषायति'
ऋ. १०.२६.३
(४) प्सान्ति इति प्सवः अश्वा' अर्थ है- घोड़ा ।
'वहन्त्वरुणप्सवः'
ऋ. १.४९.१

पुर् - (१) पालन करने वाली पुरी या नगरी के चारों ओर लगी परकोट या परिवा ।
'प्राच्यां, त्वादिशि पुरा संवृतः
स्वाधायामा दधामि'
अ. १८.३.३०

पुरः - अ. । पुरस्तात् । अग्रे- प्रत्यक्ष । (१)सामने , आगे ।
'रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरः'
ऋ. ६.७५.६, वाज.सं. २९.४३.तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३. १८६.३, का.सं. (अश्व.) ६.१.नि. ९.१६.
रथ में बैठे अश्वों को आगे बढ़ाता जाता है
(२) सब से आगे ।
'एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना'
ऋ. १.१६२.३, वाज.सं. २५.२६, तै.सं. ४.६.८.१, मै.सं. ३.१६. १, १८१.११, का.सं.(अश्व.) ६.४.

पुरएत - (१) आगे आगे चलने वाला ।
'विद्वान् पथ पुरएत ऋजु नेषति'
ऋ. ५.४६.१.

पुरएता- (१) अग्रणी, (२) पथप्रदर्शक ।
'अदब्धाः सु पुरएता भवानः'
ऋ. १.७६.२, आप.श्रौ.सू. २४.१२.१०.
(३) सबसे पूर्व विद्यमान परमेश्वर ।
'अदाभ्यः पुरएता'
ऋ. ३.११.५, साम. १.९०.६, तै.ब्रा. २.४.८.१.
'बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु'
अ. १७.८.१, तै.सं. १.२.३.३, ३, १.१.४, कौ.ब्रा. ७.१०, आश्व.श्रौ.सू. ४.४.२, शां.श्रौ.सू. ५.६.२.

पुरन्ध्या - (१) अनेक प्रज्ञा से उत्साहित या अनेक पुत्री वाली (२) सरस्वती का विशेषण ।
'विश्वेदेवा सः श्रृण्वन् वचांसि मे
सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या'
ऋ. १०.६५.१३
सभी देवता और अनेक प्रजा से उत्साहित या अनेक पुत्री वाली सरस्वती भी सुनें ।

पुरन्धि- (१) पुरां धी । (पुरां दारयितृतमः) (१) पुरों का दारयिता इन्द्र । पुर् + दृ + क्विप् = पुरन्धि । पुर् का पुरम् और वर्ण विपर्यय से दृ का धि (२) पुर् का अर्थ मेघौघ भी है । मेघौघों के दारण करने वाले इन्द्र हैं ।
(३) वरुण भी पुरन्धि हैं क्योंकि वे मेघों को आवृत करते हैं । (४) बहुधी, बहुकर्मा, बहुत बुद्धि का कर्म करने लगा । 'भग' जिसे इन्द्र या वरुण भी कहते हैं ।
"पुरन्धिः बहुधीः तत् कः पुरन्धिः । भगः । पुरस्तात् तस्य अन्वादेशः इति एकम् , इन्द्र इत्यपरम् । स बहुकर्म तमः । पुरांच दारमितृतमः । वरुण इत्य परः । तं प्रज्ञया स्तौति । (५) इन्द्र (६) जीवात्मा या आत्मा ।
'ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने

श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम्'
ऋ. ७.३९.४
हमारे यज्ञ में अपने अपने अंश चाहने वाले (उशतः) विश्वेदेवों को पूज तथा भग, अश्विनी कुमारों एवं इन्द्र को भी।
(७) बहुकर्मतम, (८) बुद्धिमान् देव (९) अतिबुद्धि वाला।
'जरुथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम्'
ऋ. ७.९.६, नि. ६.१७.
हे अग्नि, धन प्राप्ति के लिए बहुकर्मतम तुझे (पुरन्धि) वसिष्ठ ने पूजित किया।
अथवा,
हे अग्नि, तू परुषभाषी राक्षस गण को मार (जरुथंहन्) धनवान् यजमान के लिए (राये) बुद्धिमान् देवगण की पूजा कर (पुरन्धि यक्षि)
अथवा,
हे नायक विद्वान् बहुत बुद्धि वाले आपके प्रति (पुरंन्धि त्वाम्) धनाढ्य मनुष्य (वसिष्ठः) आदर भाव को पहुँचाता हुआ (जरुथं हन्) धर्मधन की प्राप्ति के लिए (राये) आप की संगति करता है। (यक्षि) (१०) बहुत बुद्धि वाला, बुद्धिमान् –सा. (११) माध्यमिका वाक् भी पुरन्धि है (१२) सायण के अनुसार सरस्वती पुरन्धि है, क्योंकि वह बहुत बुद्धि वाली है।

पुरन्धि – (१) प्रचुरधन देने वाला इन्द्र।
'अत्रा पुरन्धिरजहादरातीः'
ऋ. ४.२६.७, नि. ११.२.
यहां प्रचुर धन देने वाले इन्द्र ने शत्रुओं को मारा।

पुरन्धी – बहुत से शास्त्रों को धारण करने वाली बुद्धि।
'स राये स पुरन्ध्याम्'
ऋ. १.५.३, अ. २०.६९.१, साम. २.९२. जै.ब्रा. १.२२६,

पुरयः– (१) अग्रणी, (२) पुर या नगर का नियन्ता–नगराध्यक्ष।
'उत्तमऋजे पुरयस्य रध्वी'
ऋ. ६.६३.९

पुरःसदः– ब.व.। (१) आगे जाने वाले, (२) पुरों में रहने वाले प्रजा गण, (३) शरीरों में रहने वाले जीव।
'पुरः सदः शर्मसदो न वीराः'
ऋ. १.७३.३, ३.५५.२१.
(४) उच्च पदों पर स्थित नायकगण।

पुरःसद् – (१) आगे रहने वाला (२) दिशा में नियुक्त राष्ट्र रक्षक।
'अग्नि नेत्रेभ्यो देवेभ्यः'
पुरःसद्भ्यः स्वाहा।'
वाज.सं. ९.३५.श.ब्रा. ५.२.४.५.

पुरःसर– आगे चलने वाला हरकारा।
'कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरौ'
अ. १५.२.८.

पुरस्तात् – आगे, पूर्व।
'उत् पुरस्तात् सूर्य एति'
ऋ. १.१९१.८, अ. ५.२३.६.

पुर्वणीक – पुरु + अणीक। अर्थ है (१) बहुत सी सेनाओं से युक्त, (२) बहुत से बलों और ज्ञानोपदेश के मुखों या वचनों से युक्त परमेश्वर।
'रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि'
ऋ. १.७९.५, साम. २.९१२, वाज.सं. १५.३६, तै.सं. ४.४.४.५, मै.सं. २.१३. ८,१५७.१२, का.सं. ३९.१५.
हे पुर्वणीक, तू हमारे लिए उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त ज्ञान का प्रकाश कर।

पुरा– पहले, पूर्व, प्राचीन काल में।
'जीवान्नो अभिधेतन
आदित्यासः पुरा हथात्
कद्धस्थ हवनश्रुतः'
ऋ. ८.६७.५, नि. ६.२७.

पुराचित् – पहले के समान।
'निष्म मावते वहथा पुराचित्
ऋ. ६.६५.४.

पुराजः– (१) पूर्वकाल में उत्पन्न।
'आहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः'
ऋ. १.११८.३, ३.५८.३.

पुराजाः– (१) पूर्ववत् जन्म लेने वाला जीव।
'अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजाः'
ऋ. १०.५.५.
(२) सबसे पुरातन या पूर्व उत्पन्न, वयोवृद्ध
'नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजम्'
ऋ. ३.३१.१९

पुराजाः- द्वि.व. । पुरु + जा । सब के आगे अग्रणीवत् चलने वाले अश्विद्वय ।
'पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा'
ऋ. ७.७३.१, का.सं. १७.१८.

पुरुणः- (१) पुरा नवं भवति (पहले का पदार्थ) । जो पहले से चला आता हो, प्राचीन, प्रत्न, प्रदिव, प्रवयाः, प्राक्नम्, प्रत्नम्, ये सब प्राण के पर्यायवाची हैं ।
(२) पुरातन पुरुष, पूर्व कालीन पुरुष ।
'न पुराणो मघवन् नोतनूतनः'
ऋ. १०.४३.५, अ. २०.१७.५.
हे इन्द्र या परमेश्वर, तेरे उस बल का या तेज का अनुकरण न तो किसी वर्तमान कालीन और न प्राचीन पुरुष ने ही किया है ।

पुराणवत् - पुराना ।
'अपि वृश्च पुराणवत्'
ऋ. ८.४०.६, अ. ७.९०.१.

पुराणवित् - सृष्टि के पूर्व के पदार्थों का यथार्त, यथार्त ज्ञान को जानने वाला ।
'स मन्येत पुराण वित्'
अ. ११.८.७.

पुराणम् ओकः- पुराना घर ।
'पुराणमोकः सख्यं शिवः वाम्'
ऋ. ३.५८.६, आश्व.श्रौ.सू. ९.११.१९, शा.श्रौ.सू. १५.८.२१.

पुराण्योः सद्मनः केतुः- (१) सनातन से चले आए आकाश और भूमि के बीच कर्म व्यवहारों को जानने और जनाने वाला सूर्य, (२) राजसभा और प्रजाजन सभा के बीच ध्वजा के समान तेजस्वी उच्च पद पर स्थित पुरुष ।
'पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तः'
ऋ. ३.५५.२.

पुरां दर्मा - देहादि पुरों और नाना लोकों को भी प्रलय या मोक्षावसर में तोड़ने वाला ।
'मूरा अमूरं पुरां दर्माणम्'
ऋ. १०.४६.५.

पुरां दर्म- (१) पुरों को विदीर्ण करने वाला सूर्य, (२) इन्द्र (३) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाला ।
'पुरां दर्मो अयामजः'
ऋ. ३.४५.२, साम. २.१०६९

पुरानारी- (१) पूर्वकाल में समस्त विश्व के नायक परमेश्वर के अधीन रहने वाली प्रकृति ।
'संहोत्रं स्म पुरानारी
समनं वाव गच्छति'
ऋ. १०.८६.१०, अ. २०.१२६.१०

पुराषाट् - (१) शत्रुओं को विजय करने वाला- इन्द्र ।
'यद्वा वानपुरुतमं पुराषाट्'
ऋ. १०.७४.६, ऐ.ब्रा. ३.२२.२, ६,४.२९.१४.

पुरीकय- विशाल कछुए की कठोर त्वचा वाला जानवर ।
'शिशुमारा अजगराः पुरीकयाः'
अ. ११.२.२५.

पुरीतत्- (१) हृदय की नाड़ी ।
'पशुपतेः पुरीतत्'
वाज.सं. ३९.९.
(२) आंत ।
'येतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत्'
अ. ९.७.११,
'अन्तरिक्षं पुरीतता'
वाज.सं. २५.८, वाज.सं. (का.) २७.११, तै.सं. ५.७.१६.१ मै.सं. ३.१५.७,१७९.१२, का.सं. (अश्व.) १३.६.

पुरीष- (१) महान्, (२) परिपूर्ण, (३) अविकाल, अनन्त, अखण्ड सामर्थ्य और ऐश्वर्य ।
'अवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात्'
ऋ. १०.२७.२१
(४) सर्वपोषक अन्न ।
'द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२.२
(४) पृ + ईषन् = पुरीष । सब का पोषक पालपिता का पूरयिता । 'पृ' धातु पालन और पूरण अर्थ में आया है ।
'शृ पृभ्यांकिच्च' से ईषन् प्रत्यय ।
अर्थ - पूरा करने वाला ।
'पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सोनाम'
वाज.सं. १४.४, तै.सं. ४.३.१२.१, मै.सं. २.८.१,१०७.१, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.२.१.७. हे इष्टके, तू अप्स अर्थात् रस नामक पृथ्वी की पूरयित्री है। (६) पोषक रस - (७) पालक । वायु और आदित्य (द्वा) ओषधियों के पोषक

रस (पुरीषम्) तथा जल को (बृबूकम्) पृथ्वी से आदित्य मण्डल में ले जाते हैं (बहतः)। आधुनिक अर्थ - विष्ठा, पाखाना, मल, कूड़ा करकट।
(८) ऐन्द्र, (९) दक्षिणा, (१०)नक्षत्र, (११) देव, (१२) वयस् (१३) प्रजा (१४) पशु, (१५) पुरीतत् (१६) मांस।

पुरीषवाहणः- ऐश्वर्य को वहन करने वाला।
'अग्नेः पुरीष वाहणः'
वाज.सं. ११.४४, तै.सं. ४.१.४.२, मै.सं. २.७.४, ७९.२. का.सं. १६.४, श.ब्रा. ६.४..४.३.

पुरीष्य- (१) जो श्री अर्थात् लक्ष्मी का प्राप्त हो
पुरीष्य इति वै तमाहुः यः श्रियं गच्छति।
श. २.१.१.१७
(२) अग्नि का विशेषण।
'अयमग्निः पुरीष्यः'
वाज.सं. ३.४०, आश्व.श्रौ.सू. २.५.१२, शां.श्रौ.सू. २.१५.४.
(३) समस्त प्रजाओं को पालन करने में समर्थ।
'अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमः'
वाज.सं. ११.१६,तै.सं. ४.१.२.५, ५.१.२.४,मै.सं. २.७.२,७५.८, ३.१.३.४.१३, का.सं. १६.१, १९.२, श.ब्रा. ६.३.३.३.

पुरीषा- (१) अन्यों को पुष्ट करने वाले स्त्री पुरुष।
'मेषे वेषा सपर्या पुरीषा'
ऋ. १०.१०६.५

पुरीष्यासः-(१) अन्न, ऐश्वर्य, पृथिवी, इन्द्रादिपद, विद्वान प्रजाजन, पशु आदि से सम्पन्न, (२) पुरीतत नाड़ी तक पहुंचने वाले, (३) मांसतक में व्यापक।
'पुरीष्य इति वैतमाहुः यः श्रियं गच्छति।'
श.ब्रा. २.१.१.७.
'ऐन्द्रं हि पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.३.७.
'दक्षिणाः पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.४.१५.
नक्षत्राणि पुरीषम्
श.ब्रा. ८.७.४.१४.
'देवाः पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.४.१७.
'वयांसि पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.४.१३.
'प्रजा पुरीषम्'
श.ब्रा.८.७.४.१६.
'मांसं पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.४.१९.

पुरीषिणी- (१) पुरों की इच्छा करने वाली (२) जल वाली।
'मावः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिणी'
ऋ. ५.५३.९

पुरीषिन् - (१) ब्रह्माण्ड रूप पुर में विद्यमान परमपुरुष (२) वृष्टि के उदक के सम्पन्न सूर्य
दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्
ऋ. १.१६४.१२,अ. ९.९.१२, प्रश्न उप. १.११
(३) पुरवासी।
प्रजा वै पशवः पुरीषम
तै. सं. २.६.४.३.
'पुरीष्य इति वै तमाहुः
यः श्रियं गच्छति'
श.ब्रा. २.१.१.७
'पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तात्'
अ. ११.१.३२.
(४) संवत्सर, (५) सूर्य पुराणां सहितानाम् पदार्थानाम् ईषितो-मिलावट को अलग कराने वाला (६) वर्षा द्वारा जल बरसाने वाला (७) सर्वशक्ति सम्पन्न, (८) ब्रह्माण्ड रूप पुर का संचालक परमेश्वर।
'दिवआहुः परे अर्धे पुरीषिणाम्'
ऋ. १.१६४.१२, अ. ९.९.१२.

पुरु - (१) बहुत। पृ (पूरणार्थक धातु) से सिद्ध।
'पुरुत्वा दाश्वान् वोचे
अरिरग्ने तव स्विदा'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७., नि. ५.७.
हे अग्ने, तुझे बहुत दान देने वाला मैं तेरा ही सेवक तुझे पुकारता हूँ। या अनेक वरदान मांगता हूँ।
(२) पूर्ण करने वाला। (३) ऋग्वेद कालीन एक जन। ऋग्वेद के समय इसकी कई शाखाएं हो चुकी थीं। ये पुरु पुरुष्णी (रावी) के पूर्व रहते थे। भरत और कुशिक पुरु की ही शाखाएं हैं। कुशिक के नेता विश्वामित्र सुदास के समर्थक थे। भरतों की ही शाखा तृत्सु थी।

वध्यश्व, दिवोदास और सुदास । तीनों पितामह, पिता और पुत्र थे । दिवोदास सुदास को भरत भी कहा जाता था । दाशराज्ञ युद्ध में पुरुओं ने भरतों के शत्रुओं का साथ दिया था । भरतों के द्वारा पुरुओं की पराजय में वसिष्ठ का भी हाथ था (ऋ.७.८.४) दिवोदास के पुत्र परुच्छेप ऋषि ने दिवोदास को पुरु कहा है । पुरुओं के तीन राजा - पुरुकुत्स, तत्पुत्र दस्यु और तत्पुत्र कुरु श्रवण ऋग्वेद में मिलते हैं ।
(४) प्रचुर मात्रा में, बहुत ।
'पुरुवारं पुरुत्मना'
ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.
(५) सबको पूर्ण करने वाला परमेश्वर ।
'स्योनां मे सीद पुरुः'
अ. १९.६१.१.

पुरुकुत्स - (१) पुरुकुत्स नामक यजमान ।
(२) कृषक-दया. ।
'यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२.
हे इन्द्र, तूने स्तुतिशील पुरु कुत्सके लिए (यूने पुरुकुत्साय) धन सम्पादित किया (वृत्रं रन्धीः) ।
राजन्, तूने पुरुषार्थी कृषक के लिए कष्टों को दूर किया ।
(३) बहुत से शास्त्रास्त्रों का स्वामी (४) बहुत से शत्रुओं को उखाड़ फेकने वाला राजा ।
'पुरोवज्रिन् पुरुकुत्सायदर्दः'
ऋ. १.६३.७

पुरुक्षु- (१) बहुत सी अन्न समृद्धि से युक्त
'पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः'
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३.
(२) बहुतों से प्रशंसित ।
'तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुम्'
ऋ. २.४०.४, तै.ब्रा. २.८.१.५.
(३) भली प्रकार बसाने वाला ।
'रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम्'
ऋ. ७.८४.४.

पुरुकृत् - (१) बढ़ाने वाला ।
'पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामसि'
ऋ. ८.६१.६, अ. २०.११८.२, साम. २.९३०.
(२) बहुत से कामों सुखों और प्रजाओं को भी उत्पन्न करने वाला-इन्द्र, परमेश्वर ।
'शचीव इन्द्र पुरुकृत् द्युमत्तम'
ऋ. १.५३.३, अ. २०.२१.३.
(३) भोक्ता जीव के समस्त कामनाओं को पूर्ण एवं उनका पालन करने वाला परमेश्वर, (४) इन्द्रियों को पूर्ण करने वाला ।

पुरुकत्वा - (१) बहुत से कर्म करने वाला विद्वान् पुरुष ।
'मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय'
ऋ. ६.३२.३.

पुरुकुत्स- (१) बहुत से वज्रों का विद्युत् से युक्त वायु, (२) बहुत से शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राष्ट्र ।
'यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२.

पुरुगूर्त- जिसके लिए बहुत से लोग उद्यम किया करते हैं - इन्द्र ।
'पुरुहूतोयः पुरुगूर्तऋभ्वा'
ऋ. ६.३४.२

पुरुजा- (१) सर्व प्रथम उत्पन्न अग्नि, (२) सनातन परमात्मा -दया. ।

पुरुणामन् - (१) बहुत से नामों वाला ।
'पुरुणामन् पुरुष्टुत'
ऋ. ८.९३.१७,साम. १.१८८,.
(२) बहुत प्रकार से वशी करण साधनों से सम्पन्न ।
'पुरुणामानमेकजम्'
अ. ६.९९.१

पुरुणीथा- (१) पुरुन् नयति + भया सा पुरुणीथा- धर्मनीति- दया. (२) बहुस्तोत्र ।
(३) बहुस्तुत - यास्क (४) बहुत स्तोत्रों से यहाँ इस शब्द को तृतीयान्त माना गया है, (५) धर्मनीति के द्वारा (तृतीयान्त)
'पुरुणीथा जातवेदो जरस्व'
ऋ. ७.९.६.
हे बहुस्तुत अग्नि, (पुरुणीथा), हमारे दिए हुए इस हवि को सर्वतो भाव से ग्रहण कर (आजरस्व) ।
अथवा,
हे अग्नि ! बहुत स्त्रोतों से देवों की स्तुति कर ।
अथवा,

हे मनुष्यों मात्र को शिक्षा देने वाला विद्वान् (जातवेदाः), धर्मनीति के द्वारा (पुरुणीथा) दुःखों को दूर कीजिए (जास्व) ।
(५) बहुत सी वाणियों, मार्गों या उपायों से सम्पन्न ।

पुरुतम- सब में श्रेष्ठ ।
'मरुतां पुरुतममपूर्व्यम्'
ऋ. ५.५६.५.

पुरुतमा- द्वि.व. । (१) अश्विद्वय, (२) बहुतों में उत्तम ।
'पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा'
ऋ. ७.७३.१, का.सं. १७.१८.

पुरुत्मा- (१) इन्द्रियों के बीच आत्मा, (२) सबमें रहने वाला इन्द्र परमेश्वर ।
'श्रवस्कामं पुरुत्मानम्'
ऋ. ८.२.३८
(३) अनेक रूपों वाला ।

पुरुत्रा - (१) पुरु + त्रा = पुरुत्रा । बहुधा, बहुत प्रकार से ।
'पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्'
ऋ. ६.४७.२९. अ. ६.१२६.१, वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६, मै.सं. ३.१६.३, १८७.८, का.सं. (अश्व.) ६.१., नि. ९.१३.
हे दुन्दुभिः, तेरे शब्द को स्थावर तथा जंगम जगत् (विष्ठितं जगत्) बहुत प्रकार से (पुरुत्रा) जान जाय (मनुताम्) ।
(२) आत्मा को भोग्य सुखों द्वारा प्रसन्न करने वाली इन्द्रियों या बहुत पदार्थों में ।
'विमेपुरुत्रा पतयन्ति कामाः'
ऋ. ३.५५.३

पुरुदत्र- (१) नाना दानयोग्य धनों का स्वामी -इन्द्र ।
'अभिप्रमन्द पुरुदत्र मायाः'
ऋ. ६.१८.९

पुरुद्रप्साः- (१) बहुत प्रकार के बलों, वीर्यों को धारण करने वाले, (२) बहुत जल धारण करने वाले मरुत् ।
'पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवः'
ऋ. ५.५७.५

पुरुदमासः- ब.व. । (१) इन्द्रियों को दमन करने वाले, (२) बहुत से घरों वाले धनाढ्य ।
'वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना'
अ. ७.७३.१

पुरुदंससा- अनेक कर्म सिद्ध करने वाले ।

पुरुदिनेषुहोता- (१) बहुत दिन नित्य यह स्तोत्र मेरा हो, ऐसा कहने वाला -इन्द्र ।
(२) बहुत दिनों के व्यतीत हो जाने पर प्रलय के बाद वेदों का प्रदाता परमेश्वर ।
'यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषुहोता'
ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१
जिस स्तोत्र के लिए इन्द्र भी, यह स्तोत्र सदा मेरा है, ऐसा कहने वाला है ।
जिस वेद का बहुत दिनों के व्यतीत हो जाने पर प्रलय के पश्चात् (पुरुदिनेषु) परमेश्वर ही प्रदाता है (इन्द्र इत् होता) ।

पुरुद्रुह - बहुतों के साथ द्रोह करने वाला ।
'पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानाम्'
ऋ. ३.१८.१.

पुरुधः- (१) बहुत से लोकों को धारण करने वाला- परमेश्वर सूर्य ।
'उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्'
ऋ. ३.५६.३.
(२) बहुत से ज्ञानों धनों को धारण करने वाला ।
'देवानां दूतः पुरुध प्रसूतः'
ऋ. ३.५४.१९

पुरुधप्रतीकः- (१) बहुतों को धारण करने वाले के प्रति प्राप्त होने वाला -दया ।
(२) बहुतों को धारण पोषण करने के सामर्थ्य से प्रसिद्धि प्राप्त ।
'महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः'
ऋ. ३.४८.३
(३) बहुत प्रकार के स्थावरे जंगमों को धारण करने वाले सामर्थ्य से युक्त सूर्य (४) बहुतों को धारण करने में समर्थ ज्ञान और बल से सुखरूप ।
'ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः'
ऋ. ३.७.३.

पुरुधा- (१) पुरु + धा = पुरुधा । अनेक प्रकार से (२) नाना रूप ।
'पुपोष प्रजाः पुरुधा जनाना'
ऋ. ३.५.५.१९, नि. १०.३४.
त्वष्टा सविता ने ही नाना रूप प्रजाओं को

जन्माता एवं पोषता है ।

पुरुनिष्ठ - (१) अनेक प्रकार श्रद्धा या स्थानों वाला -दया. (२) इन्द्रियों के बीच निष्ठावान् जितेन्द्रिय ।
(३) पालनीय प्रजाजनों को बीच स्थिर ।
'युवा कविः पुरुनिष्ठ ऋतावा'
ऋ. ५.१.६, तै.सं. १.३.१४.१, मै.सं. ४.११.१, १६२.५.

पुरुनिष्षः- बहुतों से स्थित इन्द्र ।
'शुचिरसि पुरुनिष्ठाः'
ऋ. ८.२.९

पुरुनिष्षि- (१) जो अनेकों शास्त्रों एवं मंगलों का सदा सेवन करे, (२) पुष्कल शास्त्रों को पढ़ाने वाला, (३) धर्मयुक्त कर्मों में विचारने वाला (४) अनेक अज्ञानादि दोषों को दूर करने में समर्थ आचार्य या परमेश्वर ।
'उक्थमिन्द्राय शंस्यं
वर्धनं पुरुनिष्षिधे'
ऋ. १.१०.५
अनेक शास्त्रों का ज्ञान कराने अथवा अनेक अज्ञानादि दोषों को दूर करने में समर्थ ज्ञान वाणी का उपदेश करने वाले आचार्य को प्रसन्न करने के लिए मान आदर बढ़ाने वाला वचन कहना चाहिए ।

पुरुनृम्ण- (१)बहुत ऐश्वर्य वाला इन्द्र, परमेश्वर, भगवान् ।
'पुरुनृम्णाय सत्वने'
ऋ. ८.४५.२१

पुरुपन्थाः - (१) बहुतों को नाना प्रकार के जीवनोपाय रूप मार्ग देने में समर्थ, (२) बहुतों को वृत्ति देने वाला -राजा, (३) बहुत से मार्गों से सम्पन्न देश या देश का राजा ।
'अश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्'
ऋ. ६.६३.१०

पुरुप्रजात- इन्द्रियों में नाना रूप होकर प्रकट हुआ- प्राण ।
'विदत् पुरु प्रजातस्य गुहा यत्'
ऋ. १०.६१.१३

पुरुप्रशस्तः- बहुतों से प्रशंसित ।
'पुरुप्रशस्ते अमतिर्न सत्यः'
ऋ. १.७३.२

पुरुप्रियः- (१) अनेक मनोरथों वाला ।
(२) बहुतों का प्रिय परमेश्वर या अग्नि ।
'पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः'
ऋ. ३.३.४, नि. ५.२.
वह बहुतों का प्रिय कवि तेजों से वेद का बखान करता है - दया. ।
ऐसे अग्नि को अनेक मनोरथों वाला (पुरुप्रियः) आत्मदर्शी विद्वान् (कविः) अनेक प्रकार के नामों या स्तोत्रों से स्तुति करता है (धामभिः भन्दते) ।

पुरुपुत्रा- बहुत पुत्रों वाली या बहुत पुरुषों का त्राण करने वाली पृथ्वी ।
'सकृत् स्वं ये पुरुपुत्रां महीम्'
ऋ. १०.७४.४, वाज.सं. ३३.२८.

पुरुपेशा- (१) बहुत सी रूपवती स्त्रियाँ (२) नाना रूप की ओषधियाँ, (३) बहुत से सुवर्ण वाली ऐश्वर्य -सम्पन्न प्रजा ।
'भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः'
ऋ. २.१०.३.

पुरुप्रैषाः- ब.व. । (१) मरुतों का विशेषण ।अर्थ (२) बहुतों को बरसाने वाले, (३) बहुत से ऐश्वर्यों के लिए उत्कट इच्छा वाले ।
पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः'
ऋ. १.१६८.५

पुरुभुजा- द्वि.व. । पुरुभुजौ । (१) बहुभोजी, (२) बहु पालक (३) अश्विदय का विशेषण ।
'पुरुहिवां पुरुभुजा देष्णम्'
ऋ. ६.६३.८
हे बहुभोगी या बहुपालक अश्विनी कुमारो, तुम दोनों का दातव्य धन बहुत है (पुरु देष्णम्)
(४) स्वा. दयानन्द ने इस शब्द को राजा और राजपुरुषों का विशेषण माना है ।
(५) अनेक खाने पीने के पदार्थों को देने वाले अग्नि और जल ।
'पुरुभुजा चनस्यतम्'
ऋ. १.३.१
(६) बहुत सी प्रजाओं और राष्ट्रों को पालने वाले (७) बहुत योद्धा वीरजनों से युक्त ।

पुरुभू- (१) बहुत अधिक संख्या में शिष्य प्रशिष्यों द्वारा वद्ध हो जाने वला गुरु ।
'हिरण्ययेन पुरुभू रथेन'

ऋ. ४.४४.४, अ. २०.१४३.४.
(२) बहुत से जनों में भूमियों के बीच राजा के तुल्य ।
'दक्षाय रायः पुरुभूषुनव्यः '
ऋ. ९.९४.३

पुरुभूतमा (१) बहुत से प्रजाजनों में उत्तम सामर्थ्यवान् ऐश्वर्य पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले, (२) बहुतों से उत्तम आश्रय रूप मित्रा वरुण ।
'इहत्या पुरुभूतमा
पुरू दसांसि बिभ्रता '
ऋ. ५.७३.२.
(३) बहुतों के प्रति सद्भावना करने वाले अश्विद्वय (४) स्त्रीपुरुष ।
'इहत्या पुरुभूतमा
देवा नमोभिरश्विना '
ऋ. ८.२२.३

पुरुभोजनाः- (१) बहुत से भोग्य पदार्थों को देने वाला, (२) बहुत प्राणियों को पालन करने वाला ।
'गिरिंन पुरुभोजसम् '
ऋ. ८.८८.२, अ. २०.९.२, ४९.५, साम. २.३६.
(३) नाना भोग्य पदार्थों से सम्पन्न ।
'इन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् '
ऋ. ३.३४.९, अ. २०.११.९
(४) बहुत से भोग्य ऐश्वर्यों से समृद्ध -ईश्वर ।
'दत्राणि पुरुभोजसः '
ऋ. ८.४९.२ अ. २०.५१.२, साम. २.१६२.
(५) बहुत से प्रजाओं को पालन करने वाली ।
'पुनानोअर्कं पुरुभोजसं नः '
ऋ. ७.९.२

पुरुमन्तू- द्वि.व. । (१) बहुतों से मान आदर करने योग्य, (२) अति अधिक ज्ञानशील (३) अश्विद्वय, ।
'वसूरुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता '
ऋ. १.१५८.१
प्रजाओं को बसाने और स्वंय भी राष्ट्र और गृह में बसने वाले (वसू) दुःखों को दूर करने, उत्तम उपदेशों को देने और ५४ वर्ष का ब्रह्मचर्य करने वाले (रुद्रा), परस्पर बढ़ते और अधीनों की वृद्धि करते हुए (वृधन्ता), बहुतों से मान आदर करने योग्य स्त्री पुरुष , माता पिता अध्यापक उपदेशक ।

पुरुश्चन्द्र- (१) पुष्कल सुवर्णदियुत -दया. । बहुत सुवर्णादि से युक्त (२) बहुतों को सुखी करने में समर्थ, (३) बहुत से उत्तम प्रजा सन्तान आदि वाला लोक ऐश्वर्य या धन ।
'वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः '
ऋ. २.२.१२.

पुरुमन्द्रा- द्वि.व. । (१) बहुत से मनुष्यों को सुखी, प्रसन्न, आनन्दित करने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष ।
'पुरुमन्द्रा पुरूवसू '
ऋ. ८.५.४,८.१२.

पुरुमायः- (१) अनेक निर्माण कारिणी शक्तियों से युक्त ।
'सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् '
ऋ. ६.२२.१. अ. २०.३६.१.
(२) बहुत अधिक बुद्धि से बनाया हुआ, (३) बहुत सी आश्चर्य कारिणी घटनाओं को करने वाला -रथ, शरीर ।
'आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवम् '
ऋ. १.११९.१
(४) बहुत सी प्रजाओं से सम्पन्न ।
'सं सहसे पुरुमायो जिहीते '
ऋ. ३.५१.४.

पुरुमाय्यः - (१) बहुत मतिमान, (२) बहुतों में आज्ञापक इन्द्र ।
'वाजेषु पुरुमाय्यम् '
ऋ. ८.६८.१०

पुरुमित्र- (१) बहुत से मित्र राजाओं से सहायवान् राजा (२) बहुत मित्रों वाला (३) विशेष हर्ष से युक्त ।
'न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् '
ऋ. १.११७.२०,१०.३९.७.

पुरुमीढ- (१) पुरूणि मीढानि अपत्यानि धनानि वा यस्य ।
अति अधिक पुत्रों और धनों से युक्त
'कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः '
अ. १८.३.१५
(२) बहुतों को ज्ञान से सेचन करने वाला विद्वान् ।

'अग्नि राये पुरुमीढ श्रुतं नरः'
ऋ. ८.७१.१४, अ. २०.१०३.१, साम. १.४९
(३) बहुतों को दान देने वाला (४) बहुत से ऐश्वर्य से स्वयं समृद्ध ।
'युवां गोतमः पुरुमीढो अत्रिः'
ऋ. १.१८३.५.
(५) बहुत धनों का दाता (६) बहुत सींचा हुआ, (७) ज्ञान सम्पन्न पुरुष ।

पुरुमेधः- (१) बहुत से शत्रुओं का नाश करने वाला, (२) बहुत यज्ञ करने वाला ।
'पुरुमेधश्चित् तकवे नरं दात्'
ऋ. ९.९७.५२, साम. १.५४१, २.४५४.

पुरुयोजना- ब.व.। (१) बहुत से योजन, (२) बहुत से योजन अर्थात् योगों से बने पदार्थ ।
'यदाशुभिः पतसि योजना पुरु'
ऋ. २.१६.३.

पुरुरथः- (१) बड़े रथ वाला, आदित्य (२) बहुरंहणः रथः । 'रथ'शब्द रंह (गमनार्थक) से अच् प्रत्यय कर रथ बना है । (३) बहुत चलने वाला ।
'अतूर्तपथाः पुरुरथो अर्यमा
समहोता विषु रूपेषु जन्मसु'
ऋ. १०.६४.५, नि. ११.२३.
आदित्य सदा नियमपूर्वक पंथ वाले, अत्यन्त गति या बड़े रथ वाले, अन्धकार के नाशक तथा सात किरणों वाले हैं । वे दक्षिणायन और उत्तरायण के कारण विषम रूप जन्मों में प्रवृत्त रहते हैं ।
(४) बहुरंहणः (बहुत रथों वाला आदित्य का विशेषण ।

प्रसखाः- (१) पुरु अनेक विधं स्तनयित्नु शब्दं भृशं करोति यः स पुरुरवाः (अनेक प्रकारसे गर्जन करने वाला पुरुरवा है)। पुरु + रु (शब्द करना) + असुन् = पुरुरवस्। (२) पुरुरवा नामक उर्वशी का पति, (३) विद्युत, (४) घनघोर घटा वाला मेघ जो बराबर गरजता है (बहुधा रोरूयते स्तनयति) (५) माध्यमिक देव, (६) प्राण (प्राण एवहि पुरुरवाः)
'महे यत्त्वा पुरुरवो रणाय
अवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः'
ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७.
हे पुरुरवा, देवों ने तुझे महान् युद्ध के लिए तथा मेघ वध के लिए जो बढ़ाया, इसीलिये नदियाँ या देवस्त्रियां तुझे बढ़ाती है ।
आधुनिक अर्थ-पुरुरवा नामक एक राजा जो बुध और इला के पुत्र थे । और चन्द्रवंश के प्रवर्तक थे । मित्र और वरुण के शाप से जब उर्वशी पृथ्वी लोक में आई तब पुरुरवा से उसे प्रेम हो गया, परन्तु पीछे वह स्वर्ग चली गई । पुरुरवा इससे बहुत दुःखी हुए । उर्वशी पांच बार उनके पास आई और उन से पांच पुत्र उत्पन्न हुए। विक्रमोर्वशीय में कथा इससे भिन्न है।

पुरुरावन् - (१) कर्मों का उपभोग तथा सन्तानों को देने वाला संसार ।
(२) अनेक प्रकार से दुःख देने वाला-रुलाने वाला ।
'पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि'
वाज.सं. ३.४८, ८.२७, श.ब्रा. २.५.२.४७, ४.४.५.२२,१२.९.२.४, ला. श्रौ.सू. २.१२.९.
हे देव, अवभृथ नामक यज्ञ या वरुण, (देव), अनेकों कर्मों के उपभोग तथा सन्तापों को देने वाले संसार के (पुरुराव्णः) बन्धन से (रिषः) रक्षा कर (पाहि) ।
हे पूज्य प्रभो, अनेक विधि दुःख देने वाले पाप से (पुरुराव्णरिषः) मेरी रक्षा कर (पाहि) -दया.

पुरुरूप - (१) नाना रूपों या पदार्थों को बनाने वाला-परमेश्वर स्रष्टा ।
'त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२०.तै.सं. ७.३.१५.१, मै.सं. ३.१२.५,१६२.५, का. सं. (अश्व.) ३.५ श.ब्रा. १३.१.८.७, तै.ब्रा. ३.८.११.२.
(२) नाना रुचिकर रूपों वाला अग्नि ।
'बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतम्'
ऋ. ५.८.२

पुरुवर्पस् - (१) बहुत रूपों वाला परमात्मा या इन्द्र (२) अग्नि, वायु, आदित्य, विष्णु,मित्र, वरुण आदि अनेक रुपों वाला ।
'स्तुषेष्यं पुरुवर्पसमृभ्वम्'
ऋ. १०.१२०.६, नि. ११.२१.
स्तुत्य तथा बहुत रूपों वाला इन्द्र या परमात्मा को ।

पुरुवसु- (१) बहुतों को बसाने वाला (२) अग्नि ।
'त्वंनरां शर्धोअसि पुरुवसुः '
ऋ. २.१.५.
(३) बहुत से लोकों या जनों में बसा हुआ इन्द्र, परमेश्वर ।

पुरुवारः- (१) प्रचुर (२) सभी मनुष्यों से वर्णीय -दया. ।
(२) बहुत देशान्तरों को आवृत करता हुआ, (२) बहुत बार ।
'पुरुवारम् पुरुत्मना
त्वष्टा पोषायविष्यतु '
ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.
वैद्युताग्नि हमारे पालन पोषण के लिय स्वयं संचित जल को प्रचुर मात्रा में बहुत देशों को आवृत करता हुआ बरसावे ।
(४) बहुत से प्रजाजनों से वरण करने योग्य
(५) बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाला ।
'युवं पेयवे पुरुवारमश्विना '
ऋ. १.११९.१०
हे स्त्री पुरुषो, हे राजप्रजा वर्गों, हे राष्ट्र के नायक पुरुषों आप दोनो उत्तम आसन को प्राप्त करने वाले (पेदवे) के लिए बहुत से प्रजाजनों से वरण करने योग्य और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाले (पुरुवारम्)....

पुरुवारपुष्टिः- (१) जिससे बहुत वरणीय पुष्टि होती हो-वायु-दया. ।
(२) बहुत से अभिलाषा करने योग्य ऐश्वर्यों और काम सुखों की सम्पत्ति को देने वाला परमेश्वर या राजा ।
'स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिः
विदद्गातुं तनयाय स्वर्विदत् '
ऋ. १.९६.४

पुरुवीरः- (१) बहुत वीरों से युक्त (२) अतिवीर ।
'पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः '
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३.
बहुत वीरवाले, परिचारकों से युक्त एवं बहुत अन्नयुक्त धन का । अथवा,
अतिवीर सैनिकादि अनेक मनुष्यों से युक्त तथा भली प्रकार बरसाने वाले राजा रुपी धन का ।

पुरुश्चन्द्र - (१) बहुतों का आह्लादक, उत्साहवर्धक, सुखशान्ति दाता (२) सुवर्णादित ऐश्वर्यों वाला, ।
'स नो महां अनिमानः
धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः '
ऋ. १.२७.११.साम. २.१०१४.
'सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभि द्युभिः '
ऋ. १.५३.५, अ.२०.२१.५, मै.सं. २.६.६, २०.४, का.सं. १०.१२.

पुरुशाकः- (१) महान् शक्तिशाली परमेश्वर (२) महान् शक्तिशाली ।
'सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः '
अ. १३.३.१५.
(३) बहुत शाकादि उत्पन्न करने वाला,
(४) इन्द्रिय गणों की शक्ति वाला आत्मा ।
'तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे '
ऋ. ३.३५.७
(४) बहुत शक्तियों का स्वामी ।
'व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् '
ऋ. ७.१९.६, अ. २०.३७.६.
'शचीवतस्ते पुरुशाक शाकाः '
ऋ. ६.२४.४.

पुरुशाकतमा - (१) अश्विद्वय का विशेषण, (२) बहुत सी शक्तियों से सम्पन्न अश्विद्वय, (३) स्त्री पुरुष ।
'ता वल्गूदस्रा पुरुशाकतमा '
ऋ. ६.६२.५

पुरुष- (१) पुरि + शी + खच् = पुरिशय = पुरुष (निपातन से सिद्ध) । पुरिशेत इति पुरुषः (शरीर या बुद्धि में शयन करने वाला या अधिष्ठान करने वाला आत्मा) ।
(२) पुरि + सद् (बैठना, वास करना) घञ् = पुरिषाद = पुरुष । पुरुषः पुरिषादः (शरीर या बुद्धियों में विषयोपलब्धि के लिए रहने वाला) आत्मा (३) पृ (पूरणार्थक) + कुषन् = पुरः कुषन् = पुरुष । पूर्णम् अनेन पुरुषेण जगत् इति पुरुष । परमात्मा सर्वव्यापी है और इससे सम्पूर्ण जगत् पूर्ण है अतः वह पुरुष है ।
(४) पूरयति अन्तः इत अन्तः पुरुषः (जो अन्तः को पूर्ण करता है । वह आत्मा ही पुरुष है ।
(५) मनुष्य । मनुष्य का पुरुषत्व इसी में है कि वह उन्नति करे - पूर्णता प्राप्त करे ।
(६) पर्वन् + उषच् (मनुष्य अर्थ में) = पुरुष

(वन् का लोप वाहुलक नियम से)
(७) औपमन्यव आचार्य के मत से पर्वन् + मतुप् = पुरुष है ।
'यस्मापरं नापरमस्ति किञ्चित्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः
तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।'
तै.आ. १०.१०.३, महा.ना.उप. १०.४, नि. २.३.
जिससे परे कोई पदार्थ नहीं, जिससे न कुछ छोटा है, न बड़ा, जो एक द्युलोक में वृक्ष की तरह स्तब्ध खड़ा है, उसी पुरुष से यह सम्पूर्ण जगत् पूर्ण है ।
(८) हिंसक, (९) चोर पुरुष, ।
'व्याघ्रः पुरुषो वृकः'
अ. ४.३.१.
(१०) जीवात्मा, चेतन ।
'पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश'
वाज.सं. २३.५२, श.ब्रा. १३.५.२.१५, आश्व.श्रौ.सू. १०.९२, शां.श्रौ.सू. १६.६.४, वै.सू. ३७.२, ला.श्रौ.सू. ९.१०.१२.
(११) सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्ड देहो विराडाख्योयः पुरुषः (सभी प्राणियों का समष्टि रूप ब्रह्माण्डमय शरीर वाला, विराट् नामक पुरुष)
(१३) सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वर-दया. ।
(१४) नाना इमे वै लोकाः पूः । अयमेव पुरुषः योऽयं पवते । सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुषः- श.ब्रा. । (ये नाना लोक ही पुर है, यही पुरुष है जो इनमें व्याप्त है- इनमें वह शयन करता है, इसीसे वह पुरुष है) ।

पुरुषजीवनी- पुरुष शरीर को जीवन प्रदान करने वाली या प्राणधारण करने में समर्थ ओषधि ।
'उग्राः पुरुषजीवनीः'
अ. ८.७.४

पुरुषजीवन- पूर्ण जीवन प्राप्त करने वाला आंजन
'भद्रं पुरुष जीवनम्'
अ. १९.४४.३

पुरुषता- पुरुषों में, जनता के बीच लोगों में ।
मानो वर्हिः पुरुषता निदेकः
ऋ. ७.५.७५.८

पुरुषत्रा- पुरुषों को बीच ।
'मा नो निकः पुरुषत्रा नमस्ते'
ऋ. ३.३३.८

पुरुषत्वत् - बहुत से पुरुषों से युक्त ।
दीनैर्दक्षैः प्रभूतीपुरुषत्वता'
ऋ. ४.५४.३, तै.सं. ४.१.११.१, मै.सं. ४.१०.३, १४९.१६.

पुरुषत्वता- पुरुषार्थ ।
'न तस्यविद्म पुरुषत्वता वयम्'
ऋ. ५.४८.५.

पुरुष तेजाः- आत्मा के समान तेजस्वी ।
'प्राण संशितः पुरुषतेजाः'
अ. १०.५.३५

पुरुषन् - पुरुष बनता हुआ ।
'वत्साः पुरुषन्त आसते'
अ. २०.१३४.२, शां.श्रौ.सू. १२.२३.१.

पुरुषन्ति- बहुत ऐश्वर्यों का देने वाला ।
'याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावतम्'
ऋ. १.११२.२३.

पुरुषन्त्यौ - बहुत ऐश्वर्यों देने वाले आत्मा परमात्मा ।
ध्वस्तयोः पुरुषन्त्योः
आ सहस्राणि दद्यहे'
ऋ. ९.५८.३, साम. २.४०९.

पुरुषमृग- (पुरुषों को अपने उपदेश, आचार, व्यवस्था द्वारा पवित्र करने वाला, (२) पुरुष विश्वानर ।
'पुरुषमृगश्चन्द्रमसः'
वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१५,१ मै.सं. ३.१४.१६, १७५.१२, का .सं. (अश्व.) ७.५.

पुरुष रेषणः- (१) पुरुषों का विनाश करने वाला -अग्नि, (२) मृत्यु का रौद्र संहार ।
'शान्तः पुरुष रेषणः'
अ. ३.२१.९

पुरुषवध- पुरुष की हत्या ।
'सर्वेपुरुष वधाः'
अ. १२.५.१४

पुरुषवाक् - पुरुष वाणी बोलने वाली सारिका ।
'सरस्वत्यै शारिः पुरुष वाक्'
वाज.सं. २४.३३, तै.सं. ५.५.१२.१, मै.सं. ३.१४.१४,१७५.६, का.सं. (अश्व.) ७.२.

पुरुषव्याघ्र - पुरुषों में व्याघ्र के समान शूरवीर.

पुरुष ।
'पुरुष व्याघ्राय दुर्मदम्'
वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.

पुरुषहविः – (१) पुरुष मेघ यज्ञ में पुरुष की हवि, (२) आत्मा की हवि अर्थात् परमात्मा के प्रति समर्पण ।
'यत् पुरुषेण हविषा
देवा यज्ञमतन्वत'
ऋ. १०.९०.६, अ. ७.५.४, १९.६.१०, वाज.सं. ३१.१४, तै.आ. ३.१२ .३.
पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत । अतिष्ठेयं सर्वाणि भूतानि अहमेवे दं सर्वं स्याम् इति । स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं यज्ञ क्रतुं अपश्यत् । तम् आहरत् । तेनायजत । तेनेष्ट्वा व्यतिष्ठत् । अतितिष्ठतिसर्वाणि भूतानि
'इदं सर्वं भवति'
श.ब्रा. १३.५.६.१
(३) मन्त्र के पुरुष शब्द का अर्थ अश्वरूप हवि है ।
'अथ स पुरुषो ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते'
तै.ब्रा. ३.४.१.१.
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि रूप में बहुतसे पुरुष पशु हैं । उनमें यज्ञ विस्तार का वर्णन किया गया है ।
गीता में भी–
'श्रेयान् द्रव्य मयात् यज्ञात्
ज्ञानयज्ञः परन्तप'
गी. ४.३३.

पुरुष्यः– पुरुषों का हितकारी
'उतोषा ते पुरुष्या इदासन्'
ऋ. ७.२९.४

पुरुषाद– पुरुष + अद् + विद् = पुरुषाद
'अदोऽनन्ने' पा. ३.२.६८, से कर्त्ता मे हेतु , ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ में विट् प्रत्यय होता है।
(१) 'यः पुरुषान् जनान् अदति (जो पुरुषों को खाता है वह पुरुषाद है) ।
(२) अथवा पुरुषों को खाने के लिये शत्रुओं के प्रति आक्रमण करने वाला ।

पुरुषाद् – (१) मनुष्यों को भी खा जाने वाला सिंह, व्याघ्र आदि पशु
'सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति'
अ. १२.१.४९
(२) देह पुर में वसे जीव को खाने वाले
'सतोवयः प्रपतान् पूरुषादः'
ऋ. १०.२७.२२, नि. २.६.

पुरुषी– मानव स्त्री
'पर्जन्यः पुरुषीणाम्'
ऋ. ७.१०२.२, तै.ब्रा. २.४.५.६, तै.आ. १.२९.१.

पुरुषेषिता – (१) कुसंगी दुष्ट पुरुषों से प्रेरित पीड़ा व्याधि
'यदिवा पुरुषेषिताः'
अ. २.१४.५.

पुरुसम्भृत– (१) खान जिसमें प्रचुर धन भरा हो, (२) इन्द्रियों या बहुत सी प्रजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से धारित
'निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतंवसू'
ऋ. ८.६६.४

'पुरुस्पृत् – पुरु + स्पृत् (१) बहुतों से स्पृहणीय
'महत्तन्नाम गुह्य पुरुस्पृक्'
ऋ. १०.५५.२, शां.श्रौ.सू. १८.१.८.

पुरुस्पृह् – (१) बहुतों का इच्छित प्रजाओं को चाहने योग्य ऐश्वर्य
'रयिं समुद्रादुत वा दिवस्परि
अस्मे धत्तम् पुरुस्पृहम्'
ऋ. १.४७.६.
(२) बहुतों से स्पृहा करने वाल
'पावकासः पुरुस्पृहः
द्वारो देवीरसश्चतः'
ऋ. १.१४२.६

पुरुहन्मा – (१) बहुत कष्टों का या बहुतों का नाशक, (२) बहुत पदार्थों का ज्ञाता
'इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे'
ऋ. ८.७०.२, अ. २०.९२.१७,१०५.५ साम. २.८४.
(३) बहुत कष्टों का या बहुतों का नाशक

पुरुहूत – (१) पुरु + हू + क्त = पुरुहूत । पुरुभिः हूतः (बहुतों से स्तुत या आहूत, (२) इन्द्र का एक नाम ।
'उताभ्यो पुरुहूत श्रवोभिः'
ऋ. ३.३०.५
(३) पार्थिव उदक, (४) नदी, तालाब आदि जिसमें वर्षा का जल चारों ओर से बहकर आता

है ।
'सुगान् पथो अकृणोन्निरजेगाः
प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः '
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.
हे इन्द्र, तूने जल के निर्गमन के लिए सुगम मार्ग बनाए और वे जल भी उन मार्गों से नीचे जाते हुए नदियों में जा प्राणियों की रक्षा करते हैं ।
(५) देवताओं के रक्षार्थ आहूत इन्द्र, (६) निर्वाचित राजा- दया. ।

पुरूची - (१) पुरुणि सुखानि अञ्चती (बहुत सुखों की देने वाली)
(२) बहुत से पदार्थों और देशों तक पहुंचाने वाली ।
'अश्विना परि वामिषः पुरूची '
ऋ. ३.५८.८
(३) सर्व व्यापक वाणी ।
'हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरूची '
अ. १०.२.७.
(४) बहुत से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला प्रजाजन ।
'शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीः '
ऋ. १०.१८.४; अ. १२.२.२३; वाज.सं. ३५.१५; श.ब्रा. १३.८.४.१२; तै.ब्रा. ३.७.११.३; तै.आ. ६.१०.२; आप.श्रौ.सू. ९.१२.४; १४.२२.३; आप.मं.पा. २.२२.२४.
(५) बहुत ऐश्वर्य पूर्ण ।

पुरूतम - बहुत सी प्रजाओं में सबसे श्रेष्ठ ।
'पुरुतमं पुरूणाम् '
ऋ. १.५.२; ६.४५.२९; अ. २०.६८.१२; साम. २.९१; जै.ब्रा. १.२२६.

पुरूरवाः - (१) पुरुरवा नामक राजा जो ऊर्वशी का प्रेमी था, (२) अनेक सैन्यदल के प्रति आज्ञा करने वाला से नायति ।
'पुरुरवः पुनरस्तं परेहि '
ऋ. १०.९५.२; श.ब्रा. ११.५.१.७.

पुरूरुणाः - पुरु + उरुणा । (१) बहुत प्रकार का महान और उत्तम ।
'पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण '
ऋ. ५.७०.१; साम. २.३३५; पंच.ब्रा. १३.२.४; आश्व.श्रौ.सू. ७.२.२.

पुरूवसुः - (१) इन्द्रियों में बसने वाला आत्मा ।
'संधाता संधिं मधवा पुरूवसुः '
ऋ. ८.१.१२; अ. १४.२.४७; साम. १.२४४; मै.सं. ४.९.१२: १३४.१; पंच.ब्रा. ९.१०.१; तै.आ. ४.२०.१; का.श्रौ.सू. २५.५.३०; आप.मं.पा. १.७.१.
(२) बहुतों से लोकों में बसने और बहुतों को बसाने में समर्थ ।
'पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः '
ऋ. ६.२२.४; अ. २०.३६.४.

पुरूवृत् - समस्त शरीर में घूमने वाला-रक्त ।
'पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः '
अ. १०.२.११

पुरोगवः - (१) अग्रगामी ।
'इन्द्र ऐतु पुरोगवः '
अ. १२.१.४०
(२) पुरोहित, आचार्य ।
'सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः '
ऋ. १०.५८.८; अ. १४.१.८
(३) आगे बढ़ना ।
'यज्ञानेतरसं पुरोगवायः '
अ. २०.१३५.७
(४) आगे चलने वाला, (५) समक्ष वाणी को प्रकट करने वाला ज्ञानवान् पुरुष ।
'अग्निरासीत् पुरोगवः '
ऋ. १०.८५.८, अ. १४.१.८

पुरोगवाः- रथ में आगे जोते बैल
'पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य '
अ. १८.४.४४

पुरोगवी- (१) वाणी को आगे फेंकने वाली जिह्वा ।
'जिह्वा वाचः पुरोगवी '
ऋ. १०.१३७.७, अ. ४.१३.७.

पुरोगाः- पुरस् + गम् + विट् = पुरोग । 'विडवनोः' से आत्व । (१) पुरोगामी, (२) मुख्य, अग्रणी, (३) अग्नि का एक पर्याय ।
'अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः '
ऋ. १०.११०.११, अ.५.१२.११,वाज.सं. २९.३६, मै.सं. ४.१३.५,२०. ५.५, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.२१.
अग्नि देवताओं में मुख्य या अग्रणी हुआ ।
'पुरोगा अग्नि र्देवानाम् '
ऋ. १.१८८.११

पुरोऽनुवाक्या - अथर्ववेद के प्रकरण ।

'ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः'
वाजः सं. २०.१२, २७,श.ब्रा. १२.८.३.३,

पुरोडाश- (१) आदरपूर्वक सामने रखा हुआ भोजन या ऐश्वर्य ।
'वीहि शूर पुरोडाशम्'
ऋ. ३.४६.३, अ. २०.२३.३, का.सं. २६.११, तै.ब्रा. २.४.६.२, नि. ४.१९.
(२) पुरः दाश्यते दीयत इति पुरोडाशः (जो सामने भोजन के लिये प्रस्तुत किया जाता है वह पुरोडाश है) ।
यह सुन्दरतम सात्त्विक भोजन है । आजकल के प्रचलित पूडी, पूरी आदि शब्द इसी पुरोडाश का बिगड़ा रूप है ।
(३) पशु
पशुर्वै पुरोडाशः'
पशु ही पुरोडाश हैं ।
(४) ब्राह्मण, (५) आत्मा, (६) मस्तिष्क
'आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः'
तै.ब्रा. ३.२.२.७
'एत् पुशेडाशमेव कूर्मं भूत्वा सर्पन्तम्'
श.ब्रा. १.६.२.३
'स एष उभयाच्युत आग्नेयोऽष्टाकपालः पुरोडाशो भवति'
श.ब्रा. १.६.२.५.
हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि
अ. १८.४.२
(७) काम करने के पूर्व ही दिया गया पेशगी बयाना ।
'पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्याम्'
वाज.सं. २१.५९, वाज.सं. (का.) २३.५८.
(८) प्रकाश, (९) सुसंस्कृत अन्न ।
'पुरोडाशेन सविता जजान'
वाज.सं. १९.८५, वाज.सं. (का.) २१.८५, मै.सं. ३.११.९, १५३.११, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.३,

पुरोडा- आगे रखा हुआ ।
'पुरोडा अग्ने पचतः'
ऋ. ३.२८.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.५.२५, नि. ६.१६.

पुरोडाशवत्सा - पुरोडाश अर्थात् अन्न को बछड़ा बनाने वाली वशा -गौ ।
'पुरोडाशवत्सा सुदुघा'
अ. १२.४.३५

पुरोडाशौ- (१) आकाश और द्युलोक
'क्रोडौ ते स्तां पुराडाशौ'
अ. १०.९.२५

पुरोधा- पुरोहित का कार्य ।
'अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम्'
अ. ५.२४.१-१७

पुरोभूः- सब से पूर्व और सब के आगे होकर रहने वाला अग्रणी नायक।
'सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूः'
ऋ. ३.३१.८

पुरोयावा- आगे चलने वाला
'पुरोयावान् माजिषु'
ऋ. ५.३५.७, ८.८४.८, तै.सं. ३.५.११.५, मै.सं. ४.१०.३, १४८.१४, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. १.१६.३३.

पुरोयुधा- द्वि.व. । (१) इन्द्रापर्वता का विशेषण । इन्द्रापर्वत का अर्थ है- इन्द्र और पर्वत, आचार्य और पिता । पुरोयुधा का अर्थ- (१) सब से आगे जाकर युद्ध करने वाले, (२) पूर्व अवस्था- बाल्य काल में ताड़न करने वाले आचार्य और पिता । (३) आगे बढ़कर लड़ने वाले इन्द्र वरुण ।
'युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा'
ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३. श.ब्रा. ४.६.९.१४, आश्व.श्रौ.सू. ८.१३.२३, वै.सू. ३४.१, आप.श्रौ.सू. २१.१२.९.
'पुरोयोधा भवतं कृष्ट योजसा'
ऋ. ७.८२.९

पुरोयोध- आगे बढ़कर प्रहार करने वाला योद्धा ।
'पुरोयोधश्च वृत्रहा'
ऋ. ७.३१.६, अ. २०.१८.६

पुरोरथ - रथ के सामने ।
'प्रौष्ठस्मै पुशेरथमिन्द्राय शूषमर्चत'
ऋ. १०.१३३.१, अ. २०.९५.२, साम. २.११५१, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४, १८९.७, तै.ब्रा. २.५.८.१
हे स्तोताओं, प्रकृष्ट तथा प्रशस्त स्तुतियों से इस इन्द्र के रथ के सामने खड़े होकर इसके बल की स्तुति करो ।

पुरोरुच्- सूर्य के आगे चलने वाली दीप्ति ।

'पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधानः'
वाज.सं. २०.३६, मै.सं. ३.११.१,१३९.१२, का.सं. ३८.६, तै.ब्रा . २.६.८.१.

पुरोहितः- (१) सब के पूर्व विद्यमान् सूर्य , (२) सर्वोपरि साक्षी ।
'महना देवानामसुर्यः पुरोहितः'
ऋ. ८.१०१.१२, अ. २०.५८.४, साम. २.११३९, वाज.सं. ३३.४०.
(३) पुरोहित, (४) सबके सामने अध्यक्ष या मार्ग दर्शक ।
(४) मुख्य भाग पर नियत ।
'स संनयः सविनयः पुरोहितः'
ऋ. २.२४.९
'अग्निमीडे पुरोहितम्'
ऋ. १.१.१, आ.सं. ३.४, तै.सं. ४.३.१३.३, मै.सं. ४.१०.५, १५५.१, का.सं. २.१४, गो.ब्रा. १.१.२९, आश्व.श्रौ.सू. २.१.२६, शां.श्रौ.सू. ६.४.१, १४.५२.१, आश्व.गृ.सू. ३.५.६, शां.गृ.सू. ४.५.७, नि. ७.१५.
(६) परमात्मा या अग्नि का विशेषण ।
'यद्देवापिः शन्तनवेपुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७

पुरोहितिः- आदरपूर्वक भली वस्तुओं की भेंट
'इयं देव पुरोहितिर्युवभ्याम्'
ऋ. ७.६०.१२, ६१.७

पुरोहिते - पुरोहित के तुल्य एक दूसरे के कार्य का साक्षी, द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष ।
'उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते'
ऋ. ६.७०.४

पुलस्तिः- बड़े बड़े भारी पदार्थों को उठाने वाले यन्त्रों का निर्माता ।
'नमः कपर्दिने च पुलस्तये च'
वाज.सं. १६.४३, वाज.सं. (का.) १७.७.२, तै.सं. ४.५.९.१

पुल्वघः - पु.वि. (१) बहुत खाने वाला । पुरु + घस् + क्विप् (ताच्छील्यविशिष्ट कर्त्ता अर्थ में) = पुल्वघ (धातु में अट् का आगम) ।
'संज्ञापूर्व को विधि रनित्यः' इस परिभाषा से उपधा का दीर्घ नहीं हुआ । अर्थ है - बह्वादी
(२) सर्व संहारक - ज. दे.श.
'क्व स्य पुल्वघो मृगः
कमगं जनयोपनः'
ऋ. १०.८६.२२, अ. २०.१२६.२२, नि. १३.३.
सूर्य के अस्त हो जाने पर लोग विस्मित होकर कहते हैं-बहुत खाने वाला, सततगामी लोगों को मोहने वाला कहाँ गया ?
ऊर्ध्वगामी मुक्तात्मा के ब्रह्म धाम जाने पर प्रश्न -
तब तेरा वह सर्व संहारक तथा अन्तर्धान होने वाला (पुल्वघः मृगः) जनों को मोहने वाला स्वरूप कहाँ चला जाता है ?
(३) सन्तत गमनः (सदा चलने वाला) (सूर्य का विशेषण)
(४) पुरु + अघ = पुल्यघ ।
अतिपापभागी

पुलुकाम - पुरुकामः पुरु कामयते, बहुकामवान् भवति (बहुत कामना वाला) । र, ल की समानता प्रसिद्ध है ।
'इमं नु सोममन्तितः
हृत्सु पीतमुपब्रुवे
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु
पुलकामो हि मर्त्यः'
ऋ. १.१७९.५
अगस्त्य और लोपामुद्रा का संवाद सुन अन्तेवासी ब्रह्मचारी पाप का प्रायश्चित करने के लिए कहता है । शौनक के अनुसार इस के जाप से पापों से मुक्ति तो मिलती ही है मनुष्य की सभी कामनाएं भी सिद्ध होती हैं ।
'इमंनु सोममित्यते द्वे
ऋचौ प्रयतो पुमान् सर्वान्
कामान् अवाप्नोति पापेभ्यश्च प्रमुच्यते'
मैं समीप में वर्तमान (अन्तितः) पीए जाते हुए (पीतम्) अपने हृदय प्रदेशों में अवस्थित (हृत्सु) इस सोम को (इमं सोमम्) सर्वतः (सीम्) शीघ्र (तु) निकट जा हृदय से प्रार्थना करता हूँ (उप ब्रुवे) कि जो गुरुजनों के काम प्रलाप के श्रवण से हुए पाप को हम ने किया है (चकृम) उसे यह सोम ऐसा परिमार्जित करे कि हमें सुख हो (सुमृडतु), क्योंकि मनुष्य बहुत कामना वाला होता है अर्थात् वह स्वभावतः थोड़ा कर्म कर बहुत कामनाओं की पूर्ति चाहता है और अवश

हो पाप कर्म कर डालता है । यह सोम पीया जाकर वह पाप दूर करे ।

पुंश्चली- नारी

'श्रद्धा पुंश्चली'

ऋ. १५.२.५

पुंश्चलू- पुरुषों में अतिचंचल स्वभाव वाला पुरुष या स्त्री ।

'कामाय पुंश्चालूम्'

वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

पुष्कर - (१) पोषति भूतानि अवकाशदानेन पुष्णाति (अवकाशदान द्वारा जीवोंको पोषता है) । अर्थ है अन्तरिक्ष । अंग्रेजी का sky शब्द 'पुष्कर' का ही बिगड़ा रूप प्रतीत होता है । जैसे पुष्कर -ष्कअ - स्काय sky (२) जल कलश - सा. (३) जलम्, उदकम्

उदकं पुष्करं पूजाकरं पूजयितव्यमिदम् (जल का नाम भी पुष्कर है क्योंकि जल से पूजा की जाती है, या जल पूजनीय है) ।

(४) 'वपुष्करं वा' (पुष्कर वपुष्कर अर्थात् शरीर को पुष्ट करने वाला है । सुन्दर गन्ध के ग्रहण से शरीर पुष्ट होता है) ।

पुष् (पोषणार्थक) + करन् = पुष्कर । यहां पुष् धातु में णिच् निहित है ।

'विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त'

ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४.

जल या स्खलित वीर्य को सूर्य की किरणें या विश्वेदेवों ने अन्तरिक्ष या जल कलश में रख दिया ।

(५) सबको पुष्ट करने वाला अन्तरिक्ष, (६) सूर्य या (७) मेघ

'त्वामग्ने पुष्करादधि
अथर्वाः निरमन्थत'

ऋ. ६.१६.१३, साम. १.९, वाज.सं. ११.३२, १५.२२, तै.सं. ३.५.११.३ , ४.१.३.२, ४.४.१, मै.सं. २.७.३, ७७.४, का.सं. १६.३, वै.सू . ५.१४, श.ब्रा. ६.४.२.२.

आधुनिक अर्थ- नीलकमल, हाथी, जिह्वा का अन्तिम छोर, नगाड़े के चमड़े का वह स्थान जहाँ बजाने वाले चोट देते हैं, तलवार का फल, तलवार की म्यान, बाण, वायु, आकाश, वातावरण, पिंजड़ा, जल, मद , नृत्य कला, युद्ध, संघ, अजमेर का पुष्कर क्षेत्र, तालाब, झील, एक प्रकार का सर्प, एक प्रकार का नगाड़ा, सूर्य, एक प्रकार का मेघ, कृष्ण का एक विशेषण, शिव का एक विशेषण, ब्राह्मण के सात भागों में एक भाग ।

पुष्करपर्ण - पुष्कर का पत्ता ।

पुष्करपर्णं पचम्

अ. ८.१० (५) ६.

पुष्करस्रक् - पुष्टिकर पदार्थों के द्वारा बने शरीर वाला ।

'कुमारं पुष्करस्रजम्'

वाज.सं. २.३३, आश्व. श्रौ.सू. २.७.१४, शां.श्रौ.सू. ४.५.८, आप.श्रौ.सू. १.१०.११, कौ.सू. ८९.६, साम.मं.ब्रा. २.३.१६

पुष्करस्रजा- द्वि.व.। पुष्टि करने वाले और सर्जन करने वाले मूल कारण- वीर्य और रज ।

'गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा'

अ. ५.२५.३

पुष्करसादः- (१) तालाब को बनाने वाला, (२) पुष्ट करने वाला, (३) दीर्घ दुर्गों को बनाने वाला, (४) वीवर नामक जन्तु जो गृह बनाने में चतुर होता है ।

'कलविङ्को लोहिताहिः
पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्राः'

वाज.सं. २४.३१

पुष्करिणी- (१) पुष्ट करने वाली शक्ति, (२) कमल से भरी पोखरी ।

'उपत्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः'

अ. ४.३४.५-७

'भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म'

ऋ. १०.१०७.१०, नि. ७.३.

दाता के लिए पुष्करिणी के सदृश गृह मिलता है ।

(३) पुष्ट करने वाली जलभरी थैली, (४) गर्भ डिम्बा ।

'यथा वातः पुष्करिणीं
समिंगयति सर्वतः'

ऋ. ५.७८.७, बृ.आ. उप.६.४.२२.

पुष्ट- (१) वेतनादि से पुष्ट भृत्य जन ।

'अर्यः पुष्टेषु मत्सखा'

ऋ. १०.८६.१, अ. २०.१२६.१, शां.श्रौ.सू.

१२.१३.२, वै.सू. ३२.१७, नि. १३.४.
(२) पुष्टि
'मयि पुष्टं पुष्ट पतिर्दधातु'
अ. ७.१९.१, १९.३१.६,मै.सं. २.१३.२३,१६९.५, का.सं. १३.१५.१६, ४०१, तै.आ. (आंध्र) १०.६७.२
(३) पुष्ट, (४) कल्याण,पुष्टि ।
'देवानां पुष्टे चकृया सुबन्धुम्'
ऋ. १.१६२.७, वाज.सं. २५.३०, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१, १८२.५, का.सं. (अश्व.) ६.४.
उस अश्व को विप्र ऋषि देवताओं के कल्याण तथा पुष्टि के लिये बनावे ।
(४) पोषण कार्य

पुष्टपति- (१) नाना प्रकार के पुष्टि कारक पदार्थों का स्वामी पूषा-परमेश्वर ।
'यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टः'
ऋ. खि. ७.९६.१, अ. ७.४०.१, तै.सं. ३.१.११.३, मै.सं. ४.४०.१, १४२.१४, का.सं. १९.१४, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, शा.श्रौ.सू. ६.११.८.
(२) पोषण क्रिया का स्वामी-परमेश्वर ।
'मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु'
अ. १.७.१९.१, १९.३१.६.

पुष्टानां पतिः- (१) हृष्ट पुष्ट बालकों के पिता या पालक, (२) रुद्र, (३) पशुओं का पालक-रुद्र ।
'पुष्टानां पतये नमः'
वाज.सं. १६.१७, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३, १२२.१०, का.सं. १७.१२

पुष्टावान् - (१) हृष्टपुष्ट पशु का स्वामी ।
'पुष्टावन्तो यथा पशुम्'
ऋ. ८.४५.१६, साम. १.१३६
(२) पुष्टि कारक पदार्थ घास दान आदि को हाथ में घास दान आदि को हाथ में लिए हुआ ।

प्रुषित - (१) स्निग्ध, (२) अतिअधिक दाहकारी -अग्नि ।
'अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते'
ऋ. १.५८.२

पुष्टिः- (१) पुष्ट करना ।
'ऊर्जव्यस्य पुष्टिः'
(अन्नों की पुष्टि के लिये)।
(२) सुख को बढ़ाने वाली ।
'पुष्टिर्नरण्वा क्षितिर्न पृथ्वी'
ऋ. १.६५.५.
(३) पोषणकारी शक्ति ।
'पुष्ट्या सह जज्ञिषे'
अ. १९.३१.९
(४) हृष्ट पुष्ट जीव ।
'सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति'
ऋ. २.१२.५, अ. २०.३४.५

पुष्टिमत् - पुष्टिकारक ।
'अर्यो वा पुष्टिमद्वसु'
ऋ. १०.८६.२, अ.२०.१२६.३

पुष्टिम्भर- पोषणकारी सम्पदा अन्न, पशु आदि को धारण करने वाला ।
'कथामहे पुष्टिम्भराय पूष्णे'
ऋ. ४.३.७

पुष्टिवर्धनः- (१) पुष्टि बढ़ाने वाला (२) अन्न आदि पुष्टिकारक समृद्धि को बढ़ाने वाला ।

पुष्टिवर्धना- (१) राष्ट्र की पुष्टि बढ़ाने वाले - इन्द्राग्नी (२) सेनापति और ग्रामणी
'इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना'
वाज.सं. २१.२०, मै.सं. ३.११.११, १५८.१४, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.४

पुष्प- (१) पुष् (विकास अर्थ में) + क्त = पुष्प पुष्पं पुष्यतेः, पुष्प पुष् धातु से बना है । अर्थ है - फूल
(२) विकसित करने वाला ।
'सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्'
अ. १९.४४.५
आधुनिक अर्थ- फूल, मासिक स्राव, आंख का एक रोग, कुबेर का विमान, वीरता , प्रेम की भाषा में नम्रता ।

पुष्पवती- (१) फूलों से युक्त ओषधि
ओषधीः प्रतिमोदध्वं
पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
ऋ. १०.९७.३, वाज.सं. १२.७७.
'पुष्पवतीः प्रसूमतीः'
अ. ८.७.२७, का.सं १६.१३.

पुष्पा- एक औषधि ।
'पुष्पां मधुमतीमिह'
अ. ८.७.६

पुष्पिणी- फूलने वाली ओषधि ।
'अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः'

ऋ. १०.९७.१५, वाज.सं. १२.८९, तै.सं. ४.२.६.४.

पुष्यः- पुष्य नामक नक्षत्र ।
'पुनर्वसू सूनृता चारु पुस्यः'
अ. १९.७.२

पुष्यस्- (१) पुष्ट करना ।
'प्रवाजेभिस्तिरत पुष्यसेनः'
ऋ. ७.५७.५
(२) पुष्ट होना ।
'द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा'
ऋ. ५.५०.१, वाज.सं. ४.८,११.६७,२२.२१.

पुंसः- ब.व. (१) परमेश्वर के पुरुष रूप, जैसे- अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि (२) सूर्य की रश्मियां जो पुरुषवत् वीर्ययुत जल पृथ्वी पर बरसती हैं । (३) प्राण ।
'स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, नि. १४.२०.

पुंसवन- प्रमान् के उत्पन्न होने का विधान ।
'तत्र पुंसवनं कृतम्'
अ. ६.११.१

पूः - (१) सब मनोरथों का पूरक अग्नि ।
'परित्वाग्ने पुरं वयम्'
ऋ. १०.८७.२२, अ. ७.७१.१, ८.३.२२, वाज.सं. ११.२६, तै.सं. १.५.६.४, ८.५, ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.८, का.सं. १६.२, १९.३, ३८.१२, श.ब्रा. ६.३.३.२५.

पूतदक्ष- (१) पवित्र करने में दक्ष,
'मित्रं हुवे पूतदक्षम्
वरुणं च रिशादसम्'
ऋ. १.२.७, साम. २.१९.७, वाज.सं. ३३.५७
पवित्र करने में दक्ष मित्र को या उदजन वायु को बुलाता हूँ । तथा धातुओं को मुर्चा द्वारा खाने वाले ओषजन वायु को (दिशादशम् वरुणम्) मैं ग्रहण करता हूँ ।
(२) पवित्र करने में दक्ष उदजन वायु । 'मित्र' का विशेषण ।
उदजन और ओषजन वायु के योग से ही जल निर्माण होता है ।
(२) पवित्र करने वाला ।
'ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षान्'
ऋ. ६.५१.९

पूतुद्रुः- (१) शरीररूप वृक्ष को सदा पवित्र करने वाला- जीवात्मा (२) सर्वारिष्ट निवर्तकः रक्षा
'मण्युपादानभूतः वृक्षविशेषः'
(सब अरिष्टों का निवारक रक्षा मणि स्वरूप एक वृक्ष)
(३) महान् ब्रह्माण्डमय वृक्ष को पवित्र करने वाला- परमेश्वर ।
(४) वृक्ष रूप ब्रह्म ।
'ऊर्ध्वमूलो अवाक् शाखः
एषोऽश्वत्थः सनातनः
पूतुद्रुर्नाम भेषनम्'
अ. ८.२.२८

पूतभृत्- सोम रखने का पात्र ।
'पूत भृश्च म आधवनीयश्च मे'
वाज.सं. १८.२१

पूतबन्धनी - (१) पवित्र गुणों से गुंथी बुद्धि ।
'यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी'
ऋ. ५.४४.९

पूति- 'पूयी' (विशरण और दुर्गन्ध अर्थ में) आया है । पू + क्ति = पूति । अर्थ -
(१) विशरण-तितर बितर करना ।
'पूतिं सेनां कृणोत्वमूम्'
अ. ८.८.२.

पूतिधान्या- पवित्र धन धान्य से युक्त शाला-भवन ।
'बृहच्छन्दाः पूतिधान्या'
अ. ३.१२.३.

पूतिरज्जुः - पूयी विशरणे दुर्गन्धे च (पू धातु विशरण और दुर्गन्ध अर्थ में आया है) ।
अर्थ- (१) विस्फोट उत्पन्न करने वाला पदार्थ,
(२) जीर्ण रस्सी ।
'पूतिरज्जु रुपध्मानी'
अ. ८.८.२

पूत्रिम- पवित्र ।
'हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव'
अ. ६.१२४.३

पूयमान- अभिषिक्त
'विश्वासरद् भोजना पूयमानः'
ऋ. ९.८७.६

पूर्ण- (१) भरा हुआ, व्याप्त ।
'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्'
तै.आ. १०.१०.३, महा.ना उप. १०.४, नि. २.३.

उस पुरुषं से यह सब कुछ पूर्ण भरा या व्याप्त है ।
(२) पूर्णता, धन पुत्र आदि सुख से भरापूरा ।
'पूर्णञ्च मे पूर्णतरञ्च मे'
वाज.सं. १८.१०, तै.सं. ४.७.४.२, मै.सं. २.११.४, १४२.१, का.सं. १८.९.

पूर्णतर- अधिकाधिक ऐश्वर्य वृद्धि ।

पूर्णवन्धुर- पूर्णरूप से बन्धा हुआ या स्नेह बन्धन में बन्धा हुआ ।
'प्र नूनं पूर्णवन्धुरः
स्तुतो याहिवशाँ अनु'
ऋ. १.८२.३, मै.सं. १.१०.३, १४२.१२, तै.सं. १.८.५.१, का.सं. ९.६.

पूर्त- (१) आत्मा को पूर्ण बनाने की साधना
'विद्धि पूर्तस्य नो राजन्'
अ. ६.१२३.५
(२) कूप तालाब आदि बनवाना
'दक्षिणेष्टं पूर्तञ्च'
अ. ११.७.९
(३) पूर्ण करने वाला बल ।
'नहि ते पूर्तमक्षिपत्
भुवन्नेमानां वसो'
ऋ. ६.१६.१८
(४) उपकार, (५) पालन के लिए बनवाया गया कूप, तड़ाग आदि ।

पूर्तिकामः- (१) समस्त संसार रूप यज्ञ को पूर्ण करने की अभिलाषा वाला परमेश्वर, (२) पूर्ण करने की अभिलाषा वाला ।
'को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः'
अ. ७.१०३.१

पूर्धि- पिपूर्हि, पूरय (पूर्ण कर) । पृ (पूर्ण करना) के लोट् म.पु. ए.व.का रूप ।
'अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुः'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, तै.ब्रा. २.५.८.३, का.सं. ९.१९., ऐ.ब्रा. ३.१९.१४, कौ.ब्रा. २५.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ. (आंध्र) १०.७३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.
हे आदित्य ! इस चक्षुरोधक अन्धकार को (ध्वान्तम्) दूर कर (अप ऊर्णुहि) तथा प्रकाश के चक्षु को पूर्ण कर (चक्षुःपूर्धि) ।

पूर्पति- पुर या नगर का स्वामी ।
'मित्रायुवो ने पूर्पतिं सुशिष्टौ'
ऋ. १.१७३.१०

पूर्भित्तमः - (१) शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों का भेदन करने में अतिकुशल (२) जीवों के पुर रूप देह बन्धनों का भेद न करने वाला परमेश्वर-इन्द्र ।
'पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदम्'
ऋ. ८.५३.१

पूर्भिद् - पुर् + भिद् + क्विप् = पूर्भिद्, (१) इन्द्र का विशेषण ।

पूर्भिदय- नगरों को तोड़ने आदि का कार्य ।

पूर्याण - (१) पुर अर्थात् नगर को जाने वाला मार्ग, (२) मार्ग,
'प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैः'
अ. १८.१.५४

पूर्वः अग्निः - सब से पूर्व और सब से पूर्ण ज्ञानी, (२) अग्रणी प्रवर्त्तक परमेश्वर, (३) पूर्व दिशा से निकलने वाला सूर्य ।
'अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निः'

पूर्वकामकृत्वा- (१) मनुष्य की पूर्व की अभिलाषाओं को योजनाओं को काट जलने वाला-ज्वर, (२) पूर्ण कार्य वीर्य बल को काट डालने वाला ।
'नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने'
अ. ७.११६.१

पूर्वकृत्- (१) पूर्वविद्यमान अन्धकार को नष्ट करने वाला, (२) पूर्व ही शत्रु पर आक्रमण करने वाला, (३) पूर्वबलवान् शत्रु का नाशक ।
'पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधानः'
वाज.सं. २०.३६, मै.सं. ३.११.१,१३९.१२, का.सं. ३८.६, तै.ब्रा . २.६.८.१

पूर्वकृत्वरी- पूर्व से ही शत्रुओं का नाश करने योग्य बनाई हुई भूमि ।
'तं नो भूमेरन्धय पूर्वकृत्वरि'
अ. १२.१.१४

पूर्वगत्वा- पूर्वगामी आदर्श पुरुष
'एष स्य वां पूर्व गत्वेव संख्ये'
ऋ. ७.६७.७

पूर्वचित् (पूर्वचित्ताः) - (१) परिचित, (२) पूर्व प्राप्त, (३) विज्ञानवान् (४) पूर्वकाल के ज्ञाता (५) पूर्व के राजाओं के कार्यों को बनाने वाले ।
'मा त्वा निक्रन् पूर्वचितो निकारिणः'

अ. ७.८२.३, वाज.सं. २७.४, तै.सं. ४.१.७.२, मै.सं. २.१२.५, १४८.१७, का.सं. १८.१६

पूर्वचित्ति - (१) पूर्व ज्ञान की प्राप्ति, (२) पूर्व निर्धारित समझौता ।

'तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये'

ऋ. ८.३.९. अ. २०.९.३, ४९.६

(३) पूर्णज्ञानी, (४) सबसे पूर्व कार्य कर्त्ता, (५) पूर्ण संसार को बनाने वाला - परमेश्वर ।

'श्रुधि स्वयावन् सिन्धो पूर्वचित्तये'

ऋ. ८.२५.१२

(६) पूर्व का ज्ञान, (७) पूर्ण ज्ञान ।

'इतं न पूर्वचित्तये'

ऋ. ९.९९.५

(८) सबसे पूर्व स्मरण करने योग्य स्थिति ।

'का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः'

वाज.सं. २३.११, ५३, तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९, १६६.४, का.सं.(अश्व.) ४.७, श.ब्रा. १३.२.६.१४.

(९) पूर्ण ज्ञान वाला, (१०) पूर्व विद्यमान् पदार्थों का ज्ञान (११) पूर्व विद्यमान चेतनावान् आत्मा ।

'होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे'

ऋ. ८.१२.३३

(१२) सब से पूर्व मान आदर (१३) पहला चयन

'मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये'

ऋ. १.१५९.३.

माता पिता दोनों और ज्ञान कराने वाले आचार्य जन को अधिक पूज्य जानें (१४) पूर्व के विद्वानों और विजय शील राजाओं द्वारा संचित ज्ञान (१५) पहले से ही समस्त बातों की जानकारी ।

'इडे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये

ऋ. १.११२.१, ऐ.ब्रा. १.२१.१३, कौ.ब्रा. ८.६

(१८) पूर्वोक्त मुख्य पुरुषों को उचित रीति से चेताना, बतलाना, (१९) पूर्व के गौरव को पुनः प्राप्त करना, (२०) राज्यैश्वर्य की वृद्धि ।

'व्रतान्यस्थ सश्चिरे
पुरूणि पूर्वचित्तये,

ऋ. १.८४.१२, अ. २०.१०९.३, साम. २.३५७. मै.सं. ४.१२.४, १९०.१. का.सं. ८.१७.

विदुषी प्रजाएं राज्यै एश्वर्य की वृद्धि के लिए अथवा पूर्वोक्त मुख्य पुरुषों को उचित रीति से बतलाने के लिये या पूर्वकालीन गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिये (पूर्वचित्तये) अपने राजा के बहुत से नियमों, विधानों और कर्तव्यों को धारण करें ।

(२१) एक अप्सरा का नाम, (२२) पूर्व प्राप्त देशों में धन संग्रह-करने वाली (२३) पूर्व ही समस्त कर्त्तव्य का निर्धारण करने वाली ।

'उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसौ'

वाज.सं. १५.१९, वाज.सं. (का.) १६.४.९, तै.सं. ४.४.३.२, मै.सं. २.८.१०, ११५.६, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.२०.

पूर्वज- पूर्व उत्पन्न

'नमः पूर्वजाय चापरजाय च'

वाज.सं. १६.३२, तै.सं ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६, १२५.३, का.सं. १७.१४

पूर्वजावरी- (१) सबसे से पूर्व उत्पन्न होने वाली द्यावा पृथिवी, (२) सन्तानों से पूर्व उत्पन्न होने वाले माता पिता ।

'परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी'

ऋ. १०.६५.८

पूर्वतम- विनिगीषु पुरुषों में सब से श्रेष्ठ- इन्द्र ।

'पूर्वतमं सदेवानाम्'

अ. २०.१२८.१६

पूर्वतरा- पूर्व प्रकट होने वाली खिलती हुई उषा ।

'ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्
व्युच्छन्ती मुषसं मर्त्यासः'

ऋ. १.११३.११, तै.सं. १.४.३३.१, तै.आ. ३.१९.१.

जो पूर्व प्रकट होने वाली खिलती हुई उषा देखते हैं, वे सुख को प्राप्त होते हैं ।

पूर्वथा- (१) पूर्व + थाल् = पूर्वथा । अर्थ है - पूर्ववत्, पहले की तरह ।

'यामथर्वा मनुष्पिता
दध्यङ् धियमत्नता'

ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४.

पुनः -

'तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथा
इन्द्र उक्था समग्मत
अर्चन्ननु स्वराज्यम्'

ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४

(२) प्राचीन राजाओं की तरह (३) प्राचीन कालीन ऋषियों की तरह । (४) पूर्वकाल में ।

'अकृन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा'
ऋ. १.९२.२, साम. २.११०६.
उषाएं पूर्व दिशा में प्रकाश करती हैं ।
अथवा,
कन्याएं जीवन के पूर्वकाल में अनेक ज्ञानों और कार्यों का सम्पादन करें ।
(६) पूर्व के दिशा में ।
'पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः'
ऋ. ५.८०.६
(७) पूर्व के समान, (८) पूर्व प्रचलित रीति के अनुसार ।
'नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यम्'
ऋ. १.१३२.४
इस प्रकार नवीन रीति और पूर्व प्रचलित रीतिं से भी जो प्रवचन करने योग्य है ।

पूर्वपाः- पूर्वकाल का अनुभवी पालक या दान करने वाला ।
'सुतस्य पूर्वपा इव'
ऋ. ८.१.२६, साम. २.७४३.

पूर्वपाप्य- (१) पूर्व ही पालन करने का आदर भेंट का दिया जाना, (२) पूर्व पालन का पूर्व आयु का रक्षण पोषण का भार ।
'वृष्णे न पूर्वपाय्यम्'
ऋ. ८.३४.५

पूर्वपीतिः - (१) पहले पीना या पहले पीने के लिए ।
'अभिःत्वा पूर्वपीतये'
ऋ. १.१९.९, ८.३.७, अ. २०.९९.१, साम. १.२५६, २.९२३, ऐ.ब्रा. ४.२९.१३, ५.१८.२१. ऐ.आ. ५.२.२.२, आश्व.श्रौ.सू. ५.१५.२, शां. श्रौ.सू. ७.२०.३, वै.सू. ३९.६, नि. १०.३७.
(२) पूर्वरीति से प्राप्ति या पान करना, (३) पहले प्राप्त करना या पीना ।

पूर्वपेय- पूर्वपुरुषों से प्राप्त करने योग्य उत्तम पद ।
'सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु'
अ. १२.१.३.

पूर्वभाक् - पूर्वपुरुषाओं से उपार्जित ज्ञान को प्राप्त करने वाला
'प्रशंसन्ति कवयः पूर्वभाजः'
ऋ. ५.७७.१, मै.सं. ४.१२.६, १९६.२, तै.ब्रा. २.४.३.१३

पूर्वयावा - (१) सबसे प्रथम सत् रूप में प्राप्त होने योग्य, (२) अग्रणी
'विशां दैवीनामुत पूर्वयावा'
ऋ. ३.३४.२, अ. २०.११.२

पूर्ववत् - (१) पहले की भांति, (२) अपने से पूर्व विद्यमान गुरु, माता पिता और पूज्य पुरुषों से युक्त
'ययातिवत् सदने पूर्वच्छुचे'
ऋ. १.३१.१७

पूर्वस्मात् अपरः- मुख्य पद से दूसरा
'त्वोतो वाज्य ह्वयोऽभि पूर्वस्मादपरः
प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात्'
ऋ. १.७४.८

पूर्वसू- पूर्वसन्तान उत्पन्न करने वाली माता
'स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम्'
ऋ. २.३५.५

पूर्वहूतिः- पूर्व + हू + क्तिन् = पूर्वहूति ।(१) पहला आह्वान् -सा. (२) आरम्भ -ज.दे.श.
'विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ'
ऋ. ७.३९.२, वाज.सं. ३३.४४, नि. ५.२८.
रात के बाद (अक्तोः) उषा के आगमन काल में (उषसः) पहले ही आह्वान् में (पूर्वहूतौ) -सा. ।
रात के चले जाने पर तथा उषा के आरम्भ होने पर (उषसः पूर्वहुतौ) ज.दे.श.
(३) सबसे पहले आह्वान्, नामस्मरण ।
'विष्णु मगन् वरुणं पूर्वहूतिः'
अ. ७.२५.१, २
(४) जिस गृह में विद्यावृद्धों का आह्वान होता है । -दया.
'ओषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ'
ऋ. १.१२३.२

पूर्व्य- (१) सबसे मुख्य, सबसे पूर्व होने वाला । (२) पूर्व + यत् = पूर्व्य, सनातन, पूर्वकाल से चला आता हुआ, (३) मुख्य-सा.
'अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः
अहं धनानि संजयामि शश्वतः
मां हवन्ते पितरं न जन्तवो
अहं दाशुषे विभजामि भोजनम्'
ऋ. १०.४८.१
' मैं इन्द्र धन का मुख्य, असाधारण या सनातन

स्वामी हूं, (अहं वसुनः पूर्व्यः पतिः भुवम्) । मैं बहुत शत्रुओं का धन एक साथ ही जीतता हूँ (अहं शश्वतः धनानि संजयामि) । मुझे ही जीव पिता के समान पुकारते हैं (मां जन्तवः पितरः न हवन्ते) । मैं हवि देने वाले यजमान को भोजन देता हूं (अहं दाशुषे भोजनं विभजामि) ।

(४) सबसे पूर्व विद्यमान (५) पूर्ण

'रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्'

ऋ. ८.३.७, अ. २०.९९.१, साम. १.२५६,२.९२३.

(६) अपने से पूर्व विद्यमान विद्या और वयस में वृद्ध पुरुष का हितकारी ।

'त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूः
वरिवस्यन्नुशने काव्याय'

ऋ. ६.२०.११

पूर्व्यःपतिः- (१) पूर्वकालीन पालक अग्नि -सा. (२) जगत् का मुख्य मालिक परमेश्वर -दया. ।

'उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्'

ऋ. १.१५३.४

और हमारे इस यजमान के पूर्व कालीन पालक अग्नि दाता बनें (दन्) -सा.

और इस जगत् का मुख्य मालिक परमेश्वर इन पदार्थों को हमें दें (न दन्) -दया.

'अहं भुवं वसु नः पूर्व्यस्पतिः'

ऋ. १०.४८.१, ऐ.ब्रा. ५.२१.६, कौ.ब्रा. २२.४, २६.१६.

मैं ही धन का मुख्य, असाधारण या सनातन स्वामी हूँ ।

पूर्व्यं ब्रह्म- (१) पूर्ण या पुरातन ब्रह्म (२)वेद का उपदेश

'युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः'

ऋ. १०.१३.१, अ. १८.३.३९, वाज.सं. ११.५,तै.सं. ४.१.१.२, मै.सं. २.७.१, ७४.२, का.स. १५.११, ऐ.ब्रा. १.२९.२, श.ब्रा. ६.३.१.१७, श्वेत उप. २.५. आश्व. श्रौ.सू. ४.९.४.

'अस्तावि मन्म पूर्व्यं
ब्रह्मेन्द्राय वोचत'

ऋ. ८.५२.९, अ. २०.११९.१, साम. २.१०२७.

पूर्व्यं व्योम - (१) पूर्व विद्यमान एवं विद्या बल में पूर्ण विशेष रूप से सब की रक्षा करने वाला (२) पूर्व का क्षितिज ।

'सत्या काशिरं पूर्व्ये व्योमनि'

ऋ. ९.७०.१

पूर्व्यस्तुति - पूर्वपुरुषों से प्राप्त उत्तम ज्ञानोपदेश

'इयं वामस्य मन्मनः
'इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः'

ऋ. ७.९४.१, साम. २.२६६, का.सं. १३.१५.

पूर्वा- (१) पूर्वभूत, पहले की हुई ।

'कतरा पूर्वाकतरापरायोः'

ऋ. १.१८५.१, ऐ.ब्रा. ५.१३.१०, कौ.ब्रा. २३.८, ऐ.आ. १.५.३.४, नि. ३.२२.

(२) धनैश्वर्य से पूर्ण प्रजा

'प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः'

ऋ. १.१०४.४

पूर्वा उषसः- (१) पूर्व काल की अनादि परम्परा से होने वाली उषाएं

(२) पूर्व या उपासक को प्रिय लगने वाली कान्ति या ज्ञानदीप्तियाँ

'उषसः पूर्वा अधयद् व्यूषुः'

ऋ. ३.५५.१

पूर्वापरम्- एक दूसरे के आगे पीछे

पूर्वापरं चरतो माययैतौ

ऋ. १०.८५.१८, अ. ७.८१.१, १३.२.११, १४.१.२३, मै.सं. ४.१२.२, १८१.३, तै.ब्रा. २.७.१२.२, ८.९.३.

पूर्वाफल्गुन्यो- द्वि.व.। पूर्वा फल्गुणी नामक नक्षत्र

पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्तः

अ. १९.७.३

पूर्वाभूमिः- सृष्टि की पूर्व भाविनी

'कारण रूप दशा
ये त आसीत् भूमिः पूर्वा'

अ. ११.८.७

पूर्वायुष् - पूर्व + आ + पुष । अपने पूर्वज जन को पुष्ट करने वाला अर्थात् वंश वृद्धि करने वाला गृहस्थाश्रम

'पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहम्'

ऋ. ८.२२.२

पूर्वाषाढ़ा- पूर्वासाढ़ा नामक नक्षत्र

'अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढ़ाः'

अ. १९.७.४

पूर्वासी - (१) पहले से आसन वृत्ति से बैठा हुआ पुरुष (२) अपने राज्य में जमे रहना आसन

कहलाता है। (३) सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, और द्वैधीभाव ये छः अंग हैं, (४) जो राजा आक्रमण न कर स्वयं अपने राज्य में जमा रहता है वह आसन कहलाता है।

पूर्व्यानाभिः- (१) पूर्व का कोई बांधने वाला कारण, (२) पूर्व का दिया वचन
'सं यद् ददे नाभिः पूर्व्यावाम्'
ऋ. ७.५६.२२, अ. २०.१४३.५

पूर्व्या निविद् - (१) पुरातन वेदवाणी
'सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु'
ऋ. २.३६.६

पूर्वीआपः - (१) पूर्व उत्पन्न आप्त बन्धुजन, (२) पूर्व विद्वानों से प्राप्त एवं सुपरीक्षित आप्त विद्याएं
'आपो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः'
ऋ. ३.१.११

पूर्वीइष् - (१) समृद्ध अन्न
'पूर्वीरिषो बृहतीरादेअर्घाः'
ऋ. ६.१.१२, मै.सं. ४.१३.६, २०७.१४, का.सं. १८.२०. तै.ब्रा. ३.६.१०.५.
(२) पूर्व प्राप्त जल, (३) प्रथम मन से चाही वस्तु (४) इष्टतम धारा, (५) पूर्ण सम्पन्न प्रजा
'पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्'
ऋ. १.१८१.६

पूर्वी ऊतयः- पूर्वकाल में की गई रक्षाएं।
'व्यूतयो रुरुहुरिन्द्रपूर्वीः'
ऋ. ६.२४.३.
हे इन्द्र, तेरी पूर्वकाल में की गई रक्षाएं वृक्ष की शाखाओं की तरह बढ़ती हैं।

पूर्वीः उषसः- (१) पूर्वकालीन उषाएं (२) सदा से चली आ रही उषाएं
'पूर्वीरुषसः शरतश्च गूर्ताः'
ऋ. ४.१९.८

पूर्वीगीः- अभिप्राय या तत्व ज्ञान से पूर्ण वाणी
'गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीः'
ऋ. १०.२९.५, अ. २०.७६.५

पूर्वी द्यौःक्षाः- (१) सनातन से चले आए आकाश और भूमि (२) सनातन से चली आने वाली ज्ञान प्रकाश युक्त और भूमि की प्रजाएं

पूर्वीधारा - (१) पूर्व एवं ज्ञानपूर्ण पूर्वाचार्यों की उपदिष्ट सनातन सत्य ज्ञानमयी वेदवाणी
'ऋतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः'
ऋ. ५.१२.२.

पूर्वीः निष्षिधः- (१) सनातन से चली आई वेदादि शास्त्रों से प्रतिपादित निषेध आज्ञाएं (२) अनुशासन और कार्यों को साधन करने वाली सेनाएं या चेष्टाएं, (३) सनातन वेद आज्ञाएं
'पूर्वीरस्य निष्षिधोः मर्त्येषु'
ऋ. ३.५१.५.

पूर्वीः शतं पुरः - (१) पहले से ही विद्यमान सैकड़ो नगरियां। पलने के स्थान या अड्डे
'अध्वर्यवोयः शतं शम्बरस्य
पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वी'
ऋ. २.१४.६

पूर्वी शरदः- (१) आयु के पूर्व के वर्ष
'पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा'
ऋ. १.१७९.१
(२) पुरातन वर्ष, (३) पूर्व पूर्व विद्यमान हिंसाकारिणी सेनाएं
'किं स ऋधक् कृणवद्यं सहस्रम्
मासो जभार शरदश्च पूर्वीः'
ऋ. ४.१८.४

पूर्वीशुरुधः- पूर्वकालीनजल।
'ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः'
ऋ. ४.२३.८, आश्व.श्रौ.सू. ९.७.३६. नि. ६.१६, १०.४१
मध्यम ऋतदेव के ही पूर्व कालीन जल हैं।

पूर्वीश्चन - पूर्व से ही की गई
'पूर्वीश्चन प्रसितपस्तरन्ति तम्'
ऋ. ७.३२.१३, अ. २०.५९.४

पूर्वीसु पूर्व्यः- पूर्व विद्यमान प्रजाओं में सर्वप्रथम सत्कार योग्य -इन्द्र
'उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यम्
हवन्ते वाजसाजये'
ऋ. ५.३५.६

पूर्वेऋषयः- पूर्व कालीन ऋषि जन।
'न भूमना ऋषयः पूर्वे जीतारः'
स्तुति करने वाले पूर्वकालीन ऋषियों ने जिस प्रकार वर्षा, साहस्त्रिक सत्र से सृष्टि की

पूर्वे पितरः - (१) पूर्व विद्यमान पालक
(२) पूर्वभूत पितर लोग
'मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः'

ऋ. ३.५५.२

पूरु – पृ (पूरणार्थक एवं कामनार्थक) + उ = पूरु । अर्थ – (१) वर्षा की कामना करने वाला प्राणी ।

'प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचम्
यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।'

ऋ. १.५९.६, नि. ७.२३

मैं वर्षा बरसाने वाले वैश्वानर अग्नि या विद्युत की महिमा कहता हूँ जिसे वर्षा चाहने वाले सेवते हैं ।

(२) मनुष्य । वह पालनीय पूरणीय या वर्धनीय है ।

(३) देवराज यज्वा ने निघण्टु व्याख्या में लिखा है कि भोजदेव ने इसे पवनार्थक 'पुञ्' कु प्रत्यय कर सिद्ध किया है ।

(४) भोज के अनुसार पूरु का अर्थ 'पवित्र' है ।

(५) प्रपूर्ण, सुख या पालन करने वाला

'अंहो राजन् वरिवः पूरवे कः'

ऋ. १.६३.७

प्राप्तव्य राष्ट्र के पालन के लिए (अंहोः पूरवे)..... (६) वैदिक काल का एक राज परिवार (७) प्राण मात्र पर आजीविका करने वाला (८) अन्यों का प्राणप्रद पदार्थ देने वाला, (९) सबको विद्यादि से प्रपूर्ण करने वाला उच्च कोटि का पुरुष । (१०) पूरुओं का कुल

'यत् पूरौ कच्च वृष्ण्यम्'

ऋ. ६.४६.८

मनुष्य के अर्थ में –

'विश्वानि पूरो रप पर्षि वह्निः
आसा वह्निर्नो अच्छ'

ऋ. १.१२९.५

मनुष्यों के सब दुःखों को दूरकर (पुरोः विश्वानि अप) और समीप रहकर या अपने प्रमुख पद से (ग्रासा) या मुख द्वारा आज्ञा या उपदेश द्वारा (आसा) पालन कर (पर्षि) ।

पूरवः– (१) आत्मशक्ति को पूर्ण करने वाले इन्द्रियगण, (२) पुर वासी जन, (३) पुरुवंशी

'विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः'

ऋ. १.१३१.४, अ. २०.७५.२

पूरुष– पुरुष

'अनृतमाह पूरुषः'

अ. १९.४४.८

पूल्य– न. । फुल्ली, खील जिससे आहुति दी जाती है,

'पूल्यान्यावपन्तिका'

अ. १४.२.६३

पूषक – पोषक शक्ति

'अदूहमित्यां पूषकम्'

अ. २०.१३१.१८

पूषण– (१) सूर्य, (२) ओषधिआदि को पुष्ट करने वाला चन्द्र लोक (३) पृथिवी, (४) अन्न,

पूषण्वत्– (१) सब को पुष्ट करने वाली पृथिवी का स्वामी इन्द्र, परमेश्वर

'पूषण्वते ते चकृया करम्भम्'

ऋ. ३.५२.७

(२) जिसमें पोषण करने वाले गुणहो, (३) पोषक साधनों और पोषक वर्गों का स्वामी ।

'पूषण्वते मरुत्वते
विश्वदेवाय वायवे'

ऋ. १.१४२.१२

पूषण्वान् – (१) पृथ्वी को धारण करने वाला, (२) पोषक अन्न सम्पत्ति और प्रजाओं के पोषक अधिकारियों से युक्त, (३) पुष्टि कारक भूमि और अन्नों से युक्त

'सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्'

वाज.सं. २१.१५, मै.सं. ३.११.११, १५८.४, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.२.

पूषरातयः(१) मरुद्गण का विशषेण (२) जिन्हें पूषण अर्थात् सूर्य से दान मिलता है वे मरुद्गण (३) स्वामी से वेतनादि प्राप्त करने वाले वीर पुरुष ।

'इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणाः
देवासः पूषरातयः'

ऋ. १.२३.८, २.४१.१५.

पूषर्या– द्वि.व. । परिपुष्ट

'वंसगेव पूषर्या शिम्बाता'

ऋ. १०.१०६.५

पूषा – पुष् + कनिन् = पूषन् (निपातन से सिद्ध । (१) एक वैदिक देवता, (२) यत् रश्मिपोषं पुष्यति तत् पूषा (जब सूर्य तेज से अपूर्ण हो रश्मियों से पुष्ट होता है तब उसे

'पूषन' कहते हैं) । पूषा देव
वामंवामं त आदुरे
देवो ददात्वर्यमा
वामं पूषा वामं भागे
वामं देवः करूडती
ऋ. ४.३०.२४, नि. ६.३. ।
(३) सूर्य ।
'आजासः पूषणं रथे
निशृम्भास्ते जनश्रियम्'
देवं वहन्तु बिभ्रतः ।
ऋ. ६.५५.६, नि. ६.४.
सूर्य की क्षिप्त प्रक्षिप्त होने वाली एवं कभी विश्राम न लेने वाली किरणें प्राणियों के आश्रमभूत सूर्य को द्युलोक रूपी रथ में धारण करती हुई सर्वत्र पहुंचा रही हैं ।
(४) पूर्वाह् कालीन सूर्य पूषा है ।
(५) आदित्य के अर्थ में प्रयोग के लिए
'पूषा त्वेतश्चयावयतु प्रःविद्वान्'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१. आश्व श्रौ.सू. ६.१०.१९, नि. १०.९.
अव्यवहित ज्ञान एवं प्रत्यक्षदर्शी आदित्य (विद्वान् पूषा) तुझे इस लोक से (त्वा इतः) उत्तम लोक में ले जाय (प्रच्या वयतु) ।
पुनः –
'शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यत्
विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि
विश्वाहि माया अवसि स्वधायो
भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ।'
ऋ. ६.५८.१
हे पूषन् , तेरा शुक्लवर्ण एक दिन होता है (तो शुक्रम अत्यन्त्) जो यज्ञ करने के योग्य है (यजेतम्) तथा तेरा दूसरा कृष्ण वर्ण रात होता है (अन्यत्) जो भगांश होने से अयज्ञीय है । इस प्रकार तू नाना रूपों में दिन रात होता है (अहनी असि) जैसे द्युलोक प्रकाश और अप्रकाश भेद से दो प्रकार का होता है । (द्यौरिव) और तू द्यु के समान सर्वव्यापी है और हे अन्नमय (स्वधावः) जितनी प्रज्ञाएं हैं सबको तू ही देता या पालता है (विश्वा हि मायाः अवसि) इस प्रकार तुझ आदित्य का स्तुत्य दान इस यज्ञ कर्म में सुलभ हो ।
(६) सर्व पोषक परमात्मा, (७) राजा, (८) राष्ट्र के सभी मार्गों पर चुंगी ग्रहण करने वाला, (९) राष्ट्र का अधिकारी , (१०) कोषाध्यक्ष, (११) अन्नपति, (१२) गृहपति (१३) राष्ट्र के करों का संग्रह करने वाला
'पूषा भगं भगपतिः'
श.ब्रा. ११.४.३.१५
'योषा वै सरस्वती वृषा पूषा'
श.ब्रा. २.५.१.११.
'प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा
ऋ. १०.१७.६, अ. ७.९.१०, मै.सं. ४.१४.१६, २४.३.१३, तै.ब्रा. २.८.५.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.८.

पृक्ष – (१) पृथ्वी पर अन्न आदि नाना भोग्य पदार्थ, (३) विरुद्धस्वभाव के जनों और पंच भूतों का परस्पर सम्पर्क – संगति
'पृक्षो वहतमश्विना'
ऋ. १.४७.६
'पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवत्'
ऋ. २.१.१५
(२) जो पूछा जाय – प्रश्न – दया.
(३) प्रश्न करने योग्य ज्ञान रहस्य (४) सेचन करने वाला, (५) जीवन प्रद, (६) सुव्यवस्थित करने वाला, (६) सर्वत्र संगत, (८) सर्वत्र व्यापक प्रभु ।
'तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि'
ऋ. १.१२७.५
(९) परस्पर का संग, अनुराग, प्रेम
'यत्तिष्ठथः क्रतुमन्ता नु पृक्षे'
ऋ. १.१८३.२.
(१०) सम्पर्क करने योग्य, (११) भोग्य प्रद ऐश्वर्य, (१२) अपने से सम्पर्क करने वाला – सुसम्बद्ध
'प्रखादः पृक्षः अभिमित्रिणो भूत्'
ऋ. १.१७८.४

पृक्ष् – (१) सुख और पुष्टि को देने वाला अन्न, (२) अन्न आदि पुष्टि कारक पदार्थ
'युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते'
ऋ. ४.४४.२, अ. २०.१४३.२

पृक्षयाम – (१) प्रश्नों का यम नियम –दया.
(२) प्रश्न करने योग्य ज्ञान रहस्यों के निमित्त यम नियमों का आचरण करने वाला ब्रह्मचारी

'स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिः
गवां शता पृक्ष यामेषु पज्रे'
ऋ. १.१२२.७
हे वरुण या गुणों में उत्कृष्ट, पापों से निवारक। तथा मित्र स्नेह वान् मैं आप दोनों की स्तुति करता हूँ, क्योंकि सैकड़ो गौओं और भूमियों के समान उपकार करने वाले या अमूल्य सैकडों ज्ञान वाणियों का (गवांशता) प्रश्न करने योग्य ज्ञान-रहस्यों के निमित्त यमनियमों का आचरण करने वाले ब्रह्मचारियों में (पृक्षयामेषु) तुमलोगों का दान ही श्रेष्ठ दान है।

पृक्षः वप्रः - (१) जीव का सेवन करने योग्य स्वरूप जो सन्तान उत्पन्न करने में मूल कारण है। जीवाणु, जीवात्मा, (२) बाल्य काल का पोषणीय देह
'पृक्षो वपुः पितुमान् नित्य आशये'
ऋ. १.१४१.२
जीवात्मा की तीन दशाएं हैं। इसके सेवन करने योग्य स्वरूप जो सन्तान उत्पन्न करने में भूल कारण हैं उसे (पृक्षो वपुः) उत्तम अन्न खाने वाला या वीर्य पालक पुरुष (पितुमान्) सदा स्थिर होकर (नित्यः) धारण करता है। (आशये)।
अथवा,
अन्नादि साधनों वाला रक्षक (पितुमान्) इस पुरुष के पोषजीय देह को (पृक्षः वपुः) बाल्य काल में पुष्ट करते हैं।

पृक्षस् - येन पृंक्ते स (जिससे सम्पर्क करता है)।
पृची + असुन् = पृक्षस्।
अर्थ - (१) विद्या -सम्पर्क,
'त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम्'
ऋ. १.३४.४
तुम दोनों तीन बार हमें अक्षय जलों के समान विद्या सम्पर्क प्राप्त कराओ या अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।
(२) सेवन करने योग्य, (३) पोषण करने योग्य,

पृथुध - (१) प्र + क्षुध् + क्विप् = प्रक्षुध्। प्रकर्षेण क्षोधितुं भोक्तुमिष्टः - दया.
(२) अन्नादि के द्वारा पुष्ट होने वाला, (३) पृक् + सु + धा = पृक्षुध्। सम्पर्क द्वारा उत्तम रीति से निषेक द्वारा धारण कराने वाला
'आ पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहिति'
ऋ. १.१४१.४
जो लताओं पर लगने वाले फूल के समान अन्नादि के द्वारा पुष्ट होने वाले या सम्पर्क द्वारा उत्तम रीति से निषेकसंस्कार द्वारा धारण कराने वाले रूप से बीज को जन्म देने वाले पुरुष के (पृक्षुधः वीरुधः) गृहों में या गृहजीवों या जायाओं में (दंसु) गर्भ रूप से वृद्धि प्राप्त करता है।

पृच् - (१) सम्पर्क बनाए रखने वाला,
'पृञ्चन्ति सु वां पृचः'
ऋ. ५.७४.१०
(२) प्राप्त करना
'गव्या पञ्चन्तो अश्वया मधानि'
ऋ. ७.६७.९

पृच्छ्य - पूछने योग्य, प्रश्न करने योग्य,
'आपृच्छ्यो विश्पतिः विक्षु वेधाः'
ऋ. १.६०.२
वह समस्त प्रजाओं का पालक और न्याय विधान का कर्त्ता (वेधाः) प्रजाओं के बीच में (विक्षु) न्याय निर्णय आदि पूछने योग्य हैं।

पृच्छ्यमाना - द्वि.व.। (१) अन्नों से आज्ञाग्रहणार्थ या संदेहत्रि निवारणार्थ पूछे जाने वाले इन्द्राग्नी
'पृच्छ्यमाना सखीपते'
ऋ. ८.४०.३

पृञ्चन्ता- द्वि.व.। (१) अच्छी प्रकार संगठित करते हुए, (२) सुखों को कराने वाले
'इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानवे'
ऋ. १.४७.८

पृञ्चन्ति - संयुक्त करते हैं।

पृणत् - पालक, परिपूरक
'भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा'
ऋ. १.१६८.७

पृणन् - (१) आश्रित जन, (२) समाज की रक्षा करने वाला
'पृणन्तो अक्षिताः सन्तु'
अ. ६.१४२.३
(३) आश्रित जन या समाज का पालक, (४) भरण पोषण करने वाला
'मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्'
ऋ. १.१२५.७

दूसरे भरण पोषण करने वाले पुरुष (पृणन्तः) दुःख या दुखस्था प्राप्त करने वाले पापा चरण को (दुरितम् एवः) न करें ।

पृणन्नापिः- पृणन् + आपिः । इच्छा पूर्त्ति करने वाला बन्धु

'पृणन्नापरिपृणन्तममिष्यात्'

ऋ. १०.११७.७

पृत् - (१) सेना, (२) संग्राम ।

'यमग्ने पृत्सु मर्त्यम्
अवा वाजेषु यं जुनाः'

ऋ. १.२७.७, साम. २.७६५, वाज.सं. ६.२९, तै.सं. १.३.१३.२, मै.सं. १.३.१, ३०.१, का.सं. ३०.९, श.ब्रा. ३.९.३.३२.

हे परमेश्वर, अग्ने, विद्वन् , जिस मनुष्य को तू सेनाओं के बीच में से बचाता या अधिक तेजस्वी बनाता और संग्रामों के बीच में जिसे प्रेरित करता है (यं जुनाः) ।

'चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरम्'

ऋ. १.६४.१४

'पृत्सु तूर्षु श्रवः सु च'

अ. २०.१९.७

पृतन्यत् - (१) सेना द्वारा आक्रमण करने वाला

'इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः'

अ. १९.४६.२

'सासह्याम पृतन्यतः'

ऋ. १.८.४, ८.४०.७, ९.६१.२९, अ. २०.७०.२०, साम. २.१२९, तै. सं. ३.५.३.२, का.सं. ४.४.

(२) सेवा की इच्छा वाला

'अभिष्याम पृतन्यतः'

ऋ. २.८.६, ९.३५.३, . ७.९३.१.

(३) युयुत्समान्, युद्ध की इच्छा करता हुआ ।

(४) सेना लेकर आक्रमण करे,

'यो नः पृतन्यादेण तंतमिद्धतम्'

ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३, श.ब्रा. ४.६.९.१४, वै.सू. ३४.१, आप श्रौ.सू. २१.१२.९.

पृतना - (१) युद्ध ।

'यं नु नकिः पृतनासु स्वराज
द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्'

ऋ. ३.४९.२

(२) संघ ।

'दीर्घं प्रयज्यु'

पृतनासे ही platoon पलटन हो गया है ।

(३) सेना की एक टुकड़ी जिसमें २४३ गज, २४३ रथ, ७२९ अश्व और १२२५ पदाति (पैदल) हो (४) काम्य पदार्थों से पूर्ण लोक

पृतनासु प्रवन्तवे

ऋ. १.१३१.५, अ. २०.७५.३

पृतनाज् - पृतनानां सेनानां विजेता पृतनाज् । पृतना + जि = पृतनाज् (सेनाओं का विजेता) ।

'अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं
स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम'

ऋ. १०.१७८.१,. अ. ७.८५.१.

अप्रतिहत वज्रप्रहार, सेनाओं के विजयिता, शीघ्र चलने वाले तार्क्ष्य को इस कार्य में अपने कल्याण के लिए हम बुलाते हैं ।

पृतन्यु- (१) संघ की अभिलाषा करने वाला शत्रु -सा. (२) सेना युक्त शत्रु -दया.

'वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्'

ऋ. १.३३.१२.

हे इन्द्र, संघ की अभिलाषा करने वाले शत्रु को मार -सा.

हे राजन् । सेना के साथ आने वाले शत्रु को मार - दया. (३) युद्धेच्छुः (४) सेना द्वारा युद्ध करने वाला शत्रु

पृतनाज्य - (१) पृतना + अज + यत् = पृतनाज्य । पृतनां सेनानाम् अजनम् गमनम् यत्र (जहां सेनाओं का गमन होता हो) ।

(२) जल

'जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु'

ऋ. ७.९९.४

पृतनाजित् - सेनाओं द्वारा संग्राम में विजय करने वाला

'पृतनाजितं सहमानमग्निम्'

अ. ७.६३.१, तै.आ. १०.२.१, महा.ना.उप. ६.६.

'पृतनाषाडमर्त्यः'

ऋ. १.१७५.२, साम. २.७८३

पृतनाषाट् - शत्रु सेना को पराजित करने वाला

'आ वीरं पृतनाषहम्'

ऋ. ८.९८.१०, अ. २०.१०८.१, साम. १.४०५, २.५१९.

पृतनाषाह्य - (१) संग्रामों और शत्रु सेनाओं को

पराजित करने वाला बल
'पृतनाषाह्याय च'
ऋ. ३.३७.१, अ. २०.१९.१, वाज.सं. १८.६८.
(२) परसेना विजयी सेना, सर्वोत्तम विजेता
(३) सेनाओं को पराजित करने में समर्थ -इन्द्र

पृत्सुति- सम्पर्क कारकाणां सुतयः ऐश्वर्य -प्रापिका सेना ।
पृची + क्विप् = पृत् (वर्णत्यत्यय संत्) । पृत् + सु + क्तिन् = प्रत्सुति)
अर्थ- (१) ऐश्वर्य प्राप्त करने वाली सेना
'अभितिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम्'
ऋ. १.११०.७
हमलोग ऐश्वर्य और अभिषेकादि के विरोधी (असुन्वताम्) या यज्ञ विरोधियों की सेनाओं का मुकाबला करें (पृत्सुतीः अभितिष्ठेम)
(२) सर्वसाधारण के प्रति प्रेरणा और दान शीलता, (३) वीर सेना -दया.
'मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना'
ऋ. १.१६९.२.
(४) सब प्राणियों के पालक अन्न की उत्पत्ति, (५) सेनादि का संचालन
'अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति'
ऋ. १०.३८.१

पृत्सुती - सेना
'अभिष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम्'
ऋ. ५.४.१, तै.सं. १.४.४६.३, का.सं. ७.१६.

पृथक् - अ. । प्रथ के सम्प्रसारण रूप पृथ + अजि = पृथक् । भिन्न पदार्थ और पदार्थों को छोड़ विस्तृत होता है । अतः वह पृथक् है (यत् प्रथति) अर्थ है-विलग
यह एक अव्यय है
'पृथक् प्रायन प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.
'प्रजीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक्'
ऋ. २.१७.३
(२) सब से अधिक

पृथक् सूक्त - अथर्ववेद का १८ वां काण्ड
'पृथक् सहस्राभ्यां स्वाहा'
अ. १९.२२.१९

पृथवानः - विस्तत बला वाला
'प्रतद् दुःशीमे पृथवाने वेने'
ऋ. १०.९३.१४

पृथि- (१) विशाल राष्ट्र, (२) विशाल राष्ट्र का स्वामी, (३) विशाल बुद्धि ।
'याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतम्'
ऋ. १.११२.१५

पृथिव्यां गूढः- (१) भूगर्भ में छिप कर रहनेवाला शत्रु, छिपा शत्रु
'गूढः पृथिव्या मोत् सृपत्
अ. ६.१३४.२

पृथिव्याः परः अन्तः - (१) पृथ्वी का दूसरा छोर -वेदि अर्थात् यज्ञवेदि, (२) ज्ञानवान् सर्ववेत्ता और सब पदार्थों का लाभ कराने वाला परमेश्वर जो प्रकृति रूप पृथिवी का परम् सर्वोत्कृष्ट पालक और पूरक 'अन्तः' अर्थात् उसमें व्यापक, चेतन है ।
(३) आकाशवायु विदन्ति शब्दान् यस्याम् सा आकाशवायुरूपा -दया.
'इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः'
ऋ. १.१६४.३५,अ.९.१०.१४, वाज.सं. २३.६२, श.ब्रा. १३.५.२.२१, आश्व.श्रौ.सू. १०.९.३, सा.श्रौ.सू. ९.१०.१४.

पृथिव्याम् एकादशदेवाः- (१) पृथिवी की ग्यारह दिव्य शक्तियाँ, (२) स्वामी दयानन्द के अनुसार पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति ही ग्यारह दिव्य शक्तियाँ हैं ।
'ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ'
अ. १९.२७.१३

पृथिव्याः योजना- (१) पृथ्वी के साथ योग रखने वाले या कोश योजन आदि भाग, (२) पृथ्वी से युक्त प्राणी
'अष्टौ व्यख्यात् ककुभः पृथिव्याः
त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्'
ऋ. १.३५.८, वाज.सं. ३४.२४.

पृथिव्या वृषभः- पृथ्वी लोक का सर्वश्रेष्ठ सुखवर्षक नरपति
'वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः'
ऋ. ८.५७.३, . २०.१४३.९

पृथिवी- प्रथ् + षिवन् = पृथिव ; पृथिव + ङीष् = पृथिवी । प्रथ् धातु प्रख्यानार्थक है ।
शाकटायन के अनुसार 'प्रथनात् पृथिवी' हुआ

है। पृथ् अर्थात् विस्तृत होने से यह पृथ्वी कही गई है। इसे किसने विस्तृत किया तथा विस्तारयिता ने किस आधार पर होकर इसे रखा (व एनाम् अप्रथयिष्यत् क्रिमाधारश्च)।
अर्थ- (१) पृथिवी।
'मित्रोदाधार पृथिवीमुतद्याम्'
ऋ. ३.५९.१, तै.सं. ३.४.११.५.का.सं. २३.१२, ३५.१९. तै.ब्रा. ३.७.२.४, आप.श्रौ.सू. ९.२.६, नि. १०.२२.
मित्र ही पृथिवी और स्वर्ग को धारण या रक्षा करते हैं। (२) फैली हुई।
कुणुष्व पाजः प्रसितिनं पृथ्वीम्'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १०.५, १६.१५, ऐ.ब्रा. १.१९.८, कौ.ब्रा. ८.४, श.ब्रा. ७.४.१.३३, आश्व श्रौ.सू. ४.६.३, नि. ६.१२.
हे सेनापति। तू फैले हुए जाल के सामने अपने में बल धारण कर दया.। (३) विद्युत।
'वडित्था पर्वतानां
खिद्रं बिभर्षि पृथिवि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.१, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९, नि. ११.३७
हे विद्युत् (पृथिवि), तू मेघों को छोड़ने वाला बल (खिद्रं बल्) रखती है (बिभर्षि)। -सा. हे विद्युत्। सचमुच (बल्) मेघों को छेदने का बल रखती है।
(४) माध्यमिका देवता अन्तरिक्ष भी पृथिवी है।
(५) खाद
'पृथिवीं त्वा पृथिव्यामावेशयायि'
अ. १२.३.२२; १८.४.४८,
(६) अपान वायु
'अप्रथयन् पृथिवीं मातरं वि'
ऋ. १०.६२.३.

पृथिवी प्रः - समस्त पृथिवी को नाना पदार्थों से पूर्ण करने वाला
'पृथिवी प्रो महिषो नाधमानस्य गातुः'
अ. १३.२.४४.

पृथिवी संशितः- पृथ्वी की शक्तियों से सुशिक्षित
'पृथिवी संशितोऽग्नितेजाः'

पृथिवीषद् - पृथिवी पर विराजने वाला पिता
'स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्यः'
अ. १८.४.७८, आप.श्रौ.सू. १.९.६, कौ.सू. ८७.८, गो.गृ.सू. ४. ३.१०.हि. गृ.सू. २.१२.४.

पृथिविष्ठाः- पृथिवी पर विद्यमान
'ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासः'
ऋ. ७.१८.२३

पृथिविसद् - भूमण्डल पर प्रतिष्ठित
'पृथिविसदं त्वा ऽन्तरिक्षसदम्'
वाज.सं. ९.२

पृथी - (१) विस्तृत भूमि का रक्षक
'पृथी यद्वां वैन्यः सादनेषु'
ऋ. ८.९.१०, अ. २०.१४०.५,
(२) बड़े भारी ऐश्वर्य या राज्य का स्वामी

पृथु - पृथ् + कु = पृथु। विस्तृत, महान्।
'उरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, मै.सं. १.३.२५, ३८.१३, का.सं. ४.८. कौ.ब्रा. २१.४, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.५,
यह अन्धकार -निवारक, विस्तृत सूर्य कर्म कर्त्ता मनुष्यों से सुकृत हो।
'अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे
सिन्धूनां रथः धिया युयुज्र इन्दवः'
ऋ. १.४६.८

पृथुच्छर्दिः- विस्तृत पालनकारी शरण
'प्रास्यै यच्छतमवृकं पृथुच्छर्दिः'
ऋ. ८.९.१,अ. २०.१३९.१

पृथुज्रयः - अति विस्तृत शक्ति वाला
'पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः'
ऋ. ४.४४.१, अ. २०.१४३.१

पृथुज्रयाः- प्रथजवः - पृथुजवः - बहुवेगः (बहुत वेग वाला) पृथु + ज्रि + आसुन् = पृथुज्रयसः
'ज्रयस्' का अर्थ वेग है।
अर्थ है - (१) तीव्र वेग से जाता हुआ, अतिवेगवान्।
'इनतमः सत्वभिर्योह शूषैः
पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः'
ऋ. ३.४९.२
वह प्रसिद्ध ईश्वर तम अतिसमर्थ, वहु सत्व संयुक्त बलों से अतिवेगवान् दुष्ट जनों की आयु या भोजन को नष्ट भ्रष्ट करता है। (२) वेग से

दूसरे को जीतने वाला

पृथुज्रयी- बड़े-बड़े लोगों से भी वेग या शक्ति पैदा करने वाला

'पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती'

ऋ. १.१६८.७

पृथुजाघना - (१) विशाल जंघों या नितम्ब वाली, (२) विस्तृत व्यापक शक्तिवाली प्रकृति

'पृथुष्टो पृथुजाघने'

ऋ. १०.८६.८, अ. २०.१२९.८

पृथुग्मा- परिमाण में बहुत बड़ा

'पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै'

ऋ. १०.९९.१

पृथुगिरिः- (१) भारी मेघ, (२) पर्वतवत् शरीर पिण्ड

'त्रिशोकाय गिरिं पृथुम्'

ऋ. ८.४५.३०

पृथुपर्शुः- (१) बड़े बड़े हल फावड़ा आदि लेकर चलने वाला कृषक, (२) फरसा लिए सैनिक

'प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः'

ऋ. ७.८३.१

पृथुप्रगमा - (१) रथ, यान, तोपखाना आदि विस्तृत लश्कर सहित आगे बढ़ने वाला, (२) बड़े यान से जाने वाला

स धा नः सूनुः शवसा पृथप्रगामा सुशेवः'

ऋ. १.२७.८, साम. २.९८५.

पृथु प्रगाण- (१) बड़े बड़े शब्द करने वाला मेघ, (२) विस्तृत उत्तम उपदेश करने वाला

'पृथु प्रगाणमुशन्त मुशानः'

ऋ. ३.५.७

पृक्षप्रयुज्- (१) शुभ गुणों से आर्द्र हो प्रकृष्ट यज्ञ करने वाला - दया.

(२) अन्नों को अच्छी प्रकार देने वाला

(३) सर्वरस सेचक परमेश्वर की उत्तम पूजा करने वाली उत्तम वाणी

पृथुपाजस् - (१) विस्तीर्ण बल (बहुत बलवान्)

'वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो
रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे'

ऋ. ३.३.१

(२) महान् तेज

'उपो न जारः पृथु पाजो अश्रेत्'

ऋ. ७.१०.१

'वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यः'

ऋ. ३.२.११.

पृथुपाणि- (१) विस्तृत बाहुवाला। (२) विस्तीर्णः पाणिरिव किरणाः यस्य स-दया. सूर्य, (३) अति विस्तृत ज्ञान, व्यवहार वाला

'प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति'

ऋ. २.३८.२

पृथुबुध्न- (१) आकाश, (२) सूर्य, (३) महान् प्रबन्धक

'दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः राभावान्'

ऋ. ४.२.५, तै.सं. १.६.६.४, ३.१.११.१, मै.सं. १.४.३, ५१.३, १.४.८.५६.९, का.सं. ५.६; ३२.६.

(४) विशाल मूल वाला

'ग्रावारि पृथुबुध्नः'

वाज.सं. १.१४, श.ब्रा. १.१.४.७.

(५) बड़े आश्रय या बड़े मूल भाग वाला, (६) उलूखल (ओखल) का विशेषण

'यत्रग्रावा पृथुबुध्नः ऊर्ध्वः भवति सोतवे'

ऋ. १.२८.१

'अध यदेषां पृथु बुध्नास एताः'

ऋ. १.१६९.६

'उरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र'

ऋ. १०.४७.३, मै.सं. ४.१४.८, २२७.७, तै.ब्रा. २.५.६.१

पृथुबुध्नग्रावा - विशाल आधार वाला ओखल

'अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः'

अ. १२.३.१४

पृथुष्टुः- विशाल केश पाश वाली

'पृथुष्टो पृथुजाघने'

ऋ. १०.८६.८, अ. २०.१२६.८

पृथुष्टुका- (१) विस्तीर्ण जघना (२) पृथु केशस्तुका वा स्त्यै + डुक् = स्तुक्। स्त्य + डुक् = ष्टुक् अर्थ है - संघात (Stock) पृथु बृहत् केशस्य संघातः यस्याः सा पृथुष्टुका (जिसके केशों का संघात बृहत् हो वह पृथुष्टुका है)।

यास्क ने स्तुक् को संघातार्थक माना है; किन्तु यह केश समूह के लिये प्रयुक्त होता है। जांघ में भी मांस का अधिक संग्रह होने से स्तुक् नाम पड़ा है।

विस्तीर्ण केश कलाप वाली, (२) विस्तीर्ण जंघा वाली, (३) अतिशय पूजनीया।

'सिनीवालि पृथुष्टुके'
ऋ. २.३२.६, अ. ७.४६,१, वाज.सं. ३४.१०, तै.सं. ३.१.११.३, मै.सं. ४.१२.६, १९५.४, का.सं. १३.१६, वै.सू. १.१४, साम.मं.ब्रा. २.६.२, नि.' ११.३२.
हे विस्तीर्ण जघन, विस्तीर्ण केश कलापे, या अतिपूजनीय दृष्टचन्द्रा अमावास्या या ऋतुगम्या स्त्री (सिनीवालि)।
(४) बहुत पुत्रों वाली, (५) बहुतों से प्रशंसित, (६) विशाल मध्य भाग वाली, (७) उत्तम कामना वाली, (८) द्युलोक के प्रति सदा खुली रहने वाली, (९) पृथु संयमित केश भारास्तुक। स्तक का अर्थ केश भी है और पुत्र भी।
(१०) सभा, पृथ्वी और स्त्री तीनों अर्थों में गृहीत। स्वामी दयानन्द ने स्त्री परक अर्थ किया है,
(११) अल्प चन्द्र कला युक्त चन्द्रमा की अधिष्ठात्री देवता

पृदाकवः - पृत् + आकवः।
अर्थ - (१) सेना संग्रामों में आज्ञा देने वाले, (२) मनुष्यों को आदेश देने वाले
'पृदाकवः'
अ. २०.१२९.९, शां.श्रौ.सू. १२.१८.८.

पृदाकु - पृत् = (१) वाणी का सेवन करने वाला
'पृदाकू रक्षिता'
अ. ३.२७.३, तै.सं. ५.५.१०.१, आप.मं.पा. २.१७.१५.
(२) अजगर
'माहिर्भूर्मा पृदाकुः'
वाज.सं. ६.१२, ८.२३, श.ब्रा. ४.४.५.३, आप.श्रौ.सू. १३.१८.७.
'शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे'
वाज.सं. २४.३३, मै.सं. ३.१४.१४, १७५.७

पृदाकुसानु - (१) पृत् + आकु + सानु। पृत् -संग्राम के अवसरों पर सन्मार्ग बतलाने वाला और उन्नति पद पर स्थित (२) इन्द्र, परमेश्वर
'पृदाकुसानुर्यजतो गवेषणः'
ऋ. ८.१७.१५

पृशन्- (१) परस्पर लड़ने भिड़ने योग्य,
'मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे'
ऋ. ९.९७.५४, साम. २.४५६.

पृशन्यन् - स्पर्श करता हुआ

पृशनायुः- परस्पर-स्पर्श संपर्क या प्रेम चाहती हुई
'ता अस्य पृशनायुवः'
ऋ. १.८४.११, अ. २०.१०९.२, साम. २.३५६, मै.सं. ४.१२.४, १९०.२.

पृशनी- (१) शास्त्रादि वर्षण करने वाली सेना
'द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः'
ऋ. १०.७३.२
(२) सम्पत्ति
'न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे'
ऋ. १०.६१.८

पृश्नि - (१) प्र + अश् (व्याप्ति अर्थ में) + नि = पृश्नि। अर्थप्रोज्ज्वलवर्णः आदित्यः। एवम् आदित्यम् प्राश्नुते व्याप्नोति (प्रोज्ज्वलवर्ण आदित्य को यह व्याप्त करता है)
(२) कुछ विद्वान् स्पृश + नि = पृश्नि, ऐसी व्युत्पत्ति करते हैं। इस अर्थ में पृश्नि सदा रसों को लेने वाला है (स हि नित्य कालमेव आदानेन रसानां संस्पर्ष्टा भवति)।
(३) स्पृश् धातु नाश करना अर्थ में भी आया है। सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों की ज्योति का नाशक है; क्योंकि आदित्य के संस्पर्श से ही उनकी ज्योति विवष्ट हो जाती है। (संस्पर्ष्टा भासं ज्योतिषाम्)।
(४) अथवा दीप्ति से यह सर्वतः स्पृष्ट होता है। (संस्पृष्टो भासा इति वा)। यहां 'स्पृश् + नि' में 'नि' कर्म वाच्य में होगा।
(५) द्युलोक। द्युलोक भी ज्योतियों तथा पुण्यवान् लोगों से स्पृष्ट होता है। (संस्पृष्टा ज्योतिभिः पुण्य कृद्भिश्च)।
'ससस्य चर्मन्नधिचारु पृश्नेः
अग्रेरूप आरुपितं जबारू'
ऋ. ४.५.७
सृष्टि की आदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथ्वी के निकट से (रुपः) निश्चल द्युलोक के ऊपर (ससस्य पृश्नेः अधि) चलने के निमित्त (चर्मन्) आदित्य आरोपित हुआ (आरुपितम्) जैसे द्युलोक में (पृश्नेः अग्रे) आरोपणकर्त्ता परमात्मा का (रूपः) आदित्य मण्डल आरोपित है उसी प्रकार वीर्य पति के शरीर में आरोपित है।
(६) नाना वर्ण की, (७) हृष्टपुष्ट।

'सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः'
ऋ. १.८४.११, ८.६९.३, अ. २०.१०९.२, साम. २.३५६, वाज.सं. १२.५५, तै.सं. ४.२.४.४, ५.५.६.३, मै.सं. २.८.१, १०६.५, ३.२.८., २८.१५, ४.१२.४, १९०.२, का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.७.३.२१. तै.ब्रा. ३.११.६.२.
(८) सर्प की एक जाति, चितकबरा साँप
'कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्रो'
अ.५.१३.५
(९) चित्र विचित्र वर्ण वाला
'पृश्निस्तरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः'
वाज.सं. २४.४, तै.सं. ५.६.१२.१, मै.सं. ३.१३.५, १६९.८, का.सं. (अश्व.) ९.२.
(१०) प्रश्नोत्तर और समाधान करने में कुशल,
(११) पीला मेढ़क
'पृश्निरेको हरित एक एषाम्'
ऋ. ७.१०३.६
(१२) अन्तरिक्ष -दया.

पृश्निगर्भा - पृश्नि का अर्थ आदित्य है और उस का गर्भभूत जल है क्योंकि जल रश्मियों के गर्भ में आठ मास रहता है (पृश्नेः गर्भभूताः रश्म्यवर्णताः परिपक्वाः मासांष्टकेन संभृताः अपः)। अर्थ - (१) जल।
'अयं वेगश्चोदयत् पृश्निगर्भाः'
ऋ. १०.१२३.१, वाज.सं. ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१०, ३४.१, का.सं. ४.३. ऐ.ब्रा. १.२०.२; ३.३०.३, कौ.ब्रा. ८.५; श.ब्रा. ४.२.१.८;१०, आश्व. श्रौ.सू. ४.६.३, ५.१८.५, १०.३९.
यह वेन नामक मध्यमस्थानीय देव (विद्युत्) आदित्य की रश्मियों में रहने वाले जलों को (पृश्निगर्भा) वर्षाऋतु में पृथ्वी की ओर प्रेरित करता है।
(२) नाना सूर्यों को अपने गर्भों गर्भ में लेने वाली -आपः

पृश्निगावः- ब.व.। (१) सूर्य से उत्पन्न नाना रंग की किरणें
(२) नाना वर्ण के बैल
(३) भूमि रूप गौएं
'पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः
श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च'
ऋ. ७.१८.१०

पृश्निगुः- (१) अन्तरिक्षे गन्ता (विमान द्वारा अन्तरिक्ष में जाने वाला) दया.
(२) नाना प्रकार की गौओं का पालक
'याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतम्'
ऋ. १.११२.७

पृश्नि निप्रेषित - (१) पृथिवी पर या अन्तरिक्ष से प्रेरित, (२) विद्वान् पुरुषों द्वारा खेत में चलाया गया बैल
(३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों से प्रेरित या शासित

पृश्निमातरः- (१) मरुद्गण जो पृश्नि अर्थात् अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं, (२) राजा से बनाए गया पृथ्वी माता से उत्पन्न सैनिक गण, (३) प्राण गण
'उग्रा हि पृश्नि मातरः
ऋ. १.२३.१०
(४) जल सेचन में समर्थ मेघों के उत्पादक वायु, (४) अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले वायु (६) रसों को अपने भीतर ले लेने में समर्थ पृथ्वी से उत्पन्न ओषधियाँ
'यदा वः पृश्निमातरः
पर्जन्यां रेतसावति'
अ. ८.७.२१
(७) पृथ्वी को अपनी माता मानने वाले,
(८) मेघों के उत्पादक, (९) अन्तरिक्ष में उत्पन्न
'पृषदश्वाःमरुतः पृश्निमातरः'
ऋ. १.८९.७, वाज.सं. २५.२०, का.सं. ३५.१, आप.श्रौ.सू. १४. १६.१.

पृश्निपर्णी- (१) पृश्निपर्णी नाम की ओषधि जो कुष्ठ आदि रोगों को मूल से नष्ट करने वाली है। सायण इसे चित्रपर्णी और कात्यायन श्रौत सूत्र कार भाष्यकर्त्ता ने माषपर्णी कहा है। कुछ लोग इसे 'लक्ष्मणा' कहते हैं जो पुत्र जननी है। पृष्टिपर्णी, श्वपुच्छी, कलशी, धावनी, गुहा, श्रृगाल, विश्वा, श्रृगालपुच्छी, सिंह पुच्छी आदि भी इसके नाम हैं।
यह कटु उष्ण, अम्लतिक्त अतिसार, कास, वातरोग, ज्वर, उन्माद, व्रण और दाह को नाश करती है।

पृश्निपुत्राः - (१) सूर्य के पुत्र वायु (२) पृथ्वी के पुरुषों के पालक (३) तेजस्वी राजा और अन्न

दात्री भूमि और निष्पक्षपात गुरु और सेक्ता पिता के पुत्र
'पृश्नेःपुत्राः उपमासो रभिष्ठाः '
ऋ. ५.५८.५, मै.सं. ४.१४.१८, २४७.१५, तै.ब्रा. २.८.५.७.

पृश्निबाहुः- पीले चितकबरे रंग की बाहुओं वाला मेढ़क
'वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु '
अ. ४.१५.१२

पृषत् - (१) त्वचा से जल बहाने वाला और दर्द करने वाला रोग,
(२) श्वेतकुष्ठ
'निरितो नाशया पृषत् '
अ. १.२३.२, ३; तै.ब्रा. २.४.४.१,२,

पृषती- (१) विचित्रा मेघ माला, -स्कन्दस्वामी
(२) देह में चेतना रस और आनन्द का सेचन करने वाली रक्तनाड़ी, (३) नाना रंगवाली घोड़ी
(४) शत्रुपर शस्त्र वर्षा करने वाली सेना
(५) जलबिन्दु पंक्ति
'उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वम् '
ऋ. १.३९.६
(६) चित्रवर्णा प्रकृति, (७) समृद्ध प्रजा
'दिवं देवः पृषतीमाविवेश
अ. १३.१.२४
(८) पालन या पूर्ण करने वाली शक्ति, (९) आत्मा को पूर्ण करने वाली शक्ति
'यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋषिभिः '
अ. २०.६७.४
(१०) आनन्द रस बरसाने वाले आत्मा और मन । प्राण और अपान
'हरी ते युञ्जा पृषती अभूताम् '
ऋ. १.१६२.२१, वाज.सं. २५.४४, तै.सं. ४.६.९.४, का.सं. (अश्व .) ६.५.
(११) जल सेचन करने वाली घटा
'यत् प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैः '
ऋ. ५.५८.६
(१२) विचित्र वर्ण के बिन्दु (१३) छींट वाली पोषाक पहनने वाली स्त्री
'पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः '
वाज.सं. २४.२, मै.सं. ३.१३. ३,१६९.४, का.सं. (अश्व.) ९.२.

पृषद् योनिः- (१) मेघ , (२) सुख वर्षणकारी अन्तरात्मा में उत्पन्न वाणी, (३) परिषद् या जूरी से उत्पन्न वाणी
'पृषद् योनिः पञ्चहोता श्रृणोतु '
ऋ. ५.४२.१.

पृषदश्वः- (१) मेघ रूप अश्वों वाला, (२) मृग के समान शीघ्रगामी अश्वों वाला वीर पुरुष .
'स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणः '
ऋ. १.८७.४

पृषदश्वाः- (१) हृष्ट पुष्ट अश्व वाले मरुद्गण, (२) पुष्ट अश्वों के समान तीव्रगामी, (३) महान् आकाश में व्यापनेवाले मरुत्
'पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः '
ऋ. १.८९.७, वाज.सं. २५.२०
(४) सिञ्चन किए जलाग्नि से वेगपूर्वक जाने वाले, (५) हृष्ट पुष्ट अश्व वाले सैन्यजन
'यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ '
ऋ. ७.४०.३

पृषदश्वा मरुतः- (१) जल सेचन करने वाले व्यापक मेघों से युक्त वायु
'पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः '
जल सेचन करने वाले व्यापक मेघों से युक्त, जल सेचन में समर्थ मेघों के उत्पादक वायुगण ।

पृषदश्वासः- एक वचन में पृषदश्व अर्थ - (१) स्थूल हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले (२) वर्षणशील मेघों से युक्त मरुत्
'पृषदश्वासो अनवभ्रराधसः '
ऋ. २.३४.४; ३.२६.६
(३) हृष्ट पुष्ट अश्वों से युक्त
'पृषदश्वासोऽवनयो न रथाः '
ऋ. १.१८६.८

पृषादाज्य - (१) दधिघृतादि भोज्य पदार्थ
'सम्भृतं पृषदाज्यम् '
ऋ. १०.९०.८, अ.१९.६.१४, वाज.सं. ३१.६, तै.आ. ३.१२.४.

पृषध्र - जल सेचक मेघ को धारण करने वाला
'पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनि '
ऋ. ८.५२.२.

पृषत् - (१) नाना फल देता हुआ (२) अन्तरात्मा या अन्न से सिञ्चन करने वाला

'पृषन्तं सृप्रमदब्ध मूर्वम्'
ऋ. ४.५०.२, अ. २०.८८.२.

पृष्टः - (१) व्यापक, (२) पूछा जाने वाला, (३) आश्रद् लेने योग्य
'पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्
पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश'
ऋ. १.९८.२, वाज.सं. १८.७३, तै.सं. १.५.११.१, मै.सं. २.१३.११; १६१.१४, का.सं. ४.१६; ४०.३ तै.ब्रा. ३.११.६.४.
(४) स्पृश् + थक् = पृष्ठ । सभी अंगों से संस्पृष्ट है । 'संस्पृष्टमंगैः' ।

पृष्ठयज्वा - (१) यः पृष्ठेन यजति -दया.
(२) अपने पीछे आने वाले शिष्यों को ज्ञान का दान करने वाला, (३) पीठ पीछे भी गुरु जनों का आदर सत्कार करने वाला
'घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने'
ऋ. ५.५४.१

पृष्ठबन्धु - (१) यः पृष्ठान् जनान् उत्तरणे बध्नाति -दया.
(जो प्रश्न पूछने वालों को उत्तर द्वारा बांध देता है - विद्वान्)
(२) प्रश्न करने वाले शिष्य का बन्धुरूप आचार्य -ज.दे.श.
(३) जिज्ञासु जीव का बन्धु परमेश्वर
(४) पृष्ट अर्थात् कर्मफल देने में बन्धुवत् स्नेह वान्
'त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो
ऋ. ३.२०.३, तै.सं. ३.१.११.७, मै.सं. २.१३.११, १६२.४

पृष्ठवाड्गौ - (१) पृष्ट से भार उठाने वाला बैल, (२) अपने ऊपर राष्ट्र भार लेने वाला पुरुष
'पृष्ठवाड् गौर्वयो दधुः'
मै.सं. ३.११.११; १५८.९

पृष्ठय - (१) वर्षण करने योग्य
(२) पृष्ट में विद्यमान
'पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन'
ऋ. ४.३.१०
(३) पीछे दिया हुआ, (४) आनन्द सेचक-अन्न
'समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन'
ऋ. ४.२०.४

पृषातक - घृतविन्दु
'अलाबूनि पृषातकानि'
अ. २०.१३५.३

पृषातकी- स्पर्श से दुःख देने वाली
'निर्दहनी या पृषातकी'
अ. १४.२.४८

पृष्ट्या- पीठ पीछे बंधी गाड़ी
'राजाश्वः पृष्ट्यामिव'
अ. ६.१०२.२

पृष्ट्यामय- पीठ का रोग,
'बलासं पृष्ट्यामयम्'
अ. १९.३४.१०

पृष्ट्यामयी- स्पश् + क्तिन् = पृष्टिं (पीठ) । (पृष्टि + आमय = पृष्ट्यामय । अर्थ - पीठ का रोग । पृष्ट्यामय + इन् = पृष्ट्यामयिन् । अर्थ-पृष्टक्लेशः । पीठ का रोगी -सा. ।
(२) चित्रा नक्षत्र का विशेषण । चित्रा नक्षत्र में अनेक धब्बे रहते हैं । इसी से उसे पृष्ट्यामयी कहते हैं-दया.

पृष्ठि - (१) स्पृश् + क्तिन् = पृष्टि, पीठ ।
(२) पंसुली
'पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरम्'
वाज.सं. २०.८, मै.सं. ३.११.८,१५२.५, का.सं. ३८.४, तै.ब्रा. २.६.५.५.(३) पीठ देने वाला सहकारी
'तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि'
ऋ. १०.८७.१०, अ. ८.३.१०
(४) पीठ का मोहर
'देवानां पत्नीः पृष्टयः'
अ. ९.७.६.
(५) सर्वस्पर्शकारी (६) मर्मवेधी कार्य
'पृष्टीरपि शृणीमसि'
अ. २.७.५

पृष्टिवाह् - पीठ पर लादकर चलने वाला अश्व ।
'अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथः'
अ. १८.४.१०

पृश्निबाहु- तेजस्वी बाहुवाला
'भवश्च पृश्निबाहुश्च'
अ. ८.८.१७

पेत्व- (१) परिपालक प्रभु
'पेत्वस्तेषामुभयादम्'

अ. ५.१९.२
(२) भेड़, (३) एक बलकारी ओषधि
'अजस्य पेत्वस्य च'
अ. ४.४.८
(४) अति वेग से जाने वाला सवार
'वारुणः कृष्ण एक शितिपात् पेत्वः'
वाज.सं. २९.५८, तै.सं. ५.५.२४.१, का.सं. (अश्व.) ८.३.
(५) अश्व सैन्य, (६) पालक बल, (७) प्रापण प्राप्त कराने वाला -दया.
'सिंह्यं चित् पेत्वे ना जघान'
ऋ. ७.१८.१७

पेदु- (१) गमन्
'नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्'
ऋ. १.११७.९, ७.७१.५.
(२) दूर या विजयार्थ जाने वाला वीर पुरुष, (३) पेदु नामक एक राजा
'युवं श्वेतं पेदव इन्द्र जूतम्
अहिहनमश्विना दत्तमश्वम्'
ऋ. १.११८.९
(४) ज्ञान करने वाला, कर्मफल प्राप्त करने वाला जीव
'युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वम्'
ऋ. १०.३९.१०
(५) दूर देश जाने वाला

पेपिशाने - द्वि.व, वि.। (१) रूप से अपने को सजाती हुई उषाएं या (२) सायं प्रातः
'छन्दः पक्षे उपसा पेपिशाने'
अ. ८.९.१२

पलेति- गच्छति (जाता है)।
'पिल्' धातु गत्यर्थक है

पेत्वौ- द्वि.व. । (१) अश्विद्वय का विशेषण, (२) मेघ
'वसातिपुस्म चरथ
असितौ पेत्वाविव'
नि. १२.२.
हे अश्विद्वय ! तुम रातों में चलते हो क्योंकि तुम काले मेघ की तरह हो।

पेष्ट्र - जो अंग पीस गया हो
'अस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि'
अ. ४.१२.२.

प्रेङ्ख- (१) झुला, (२) परम उत्तम गन्तव्य पद
'प्र प्रेङ्ख ईखयावहै शुभेकम्'
ऋ. ७.८८.३
(३) उत्तम गति से जाने वाला-सूर्य
'दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम्'
ऋ. ७.८७.५

प्रेणि - (१) शत्रुनाश के लिये प्रेरणा करने में समर्थ, (२) प्रेरक, (३) आज्ञापक (४) प्रेरक आत्मा
'याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतम्'
ऋ. १.११२.१०
जिन उपायों से क्रियाओं सहित राष्ट्र पर वश करने वाले अश्व सेनाओं के स्वामी (अश्व्यम्) सबके आज्ञापक सेनापति को (प्रेणिम्) प्राप्त होते हो।
अथवा
जिन उपायों से सब के वशी प्राणों के पति (अश्वयम्) प्रेरक आत्मा को प्राप्त होते हो। (प्रेणिम आवतम्)

प्रेणी - प्रियतमा पत्नी
'इदं यत् प्रेण्यः शिरः
दत्तं सोमेन वृष्ण्यम्।'
अ. ६.८९.१

प्रेता - आगे आगे जाने वाला शिष्य या गुरु
'नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन्'
ऋ. १.१४८.५
स्थिर ध्रुव उसके आगे आगे जाने वाले शिष्य या गुरु उसकी रक्षा करें।

प्रेति- प्र + इति = प्रेति।
(१) मृत्यु
'अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः'
ऋ. १.३३.४
अयज्ञशील, अधार्मिक परस्पर संगति न करने वाले, परस्पर, द्रोही, राजा को न देने वाले (अयज्वानः) तथा दूसरों का माल हड़पने वाले क्षुद्र भोगी, स्वल्प ऐश्वर्य वाले अल्प धनी दरिद्र (सनकाः) विविध रूप से भी आक्रमण करें तो मरण को प्राप्त हो (प्रेतिम् ईयुः)।
(२) प्रेरणा, शास्त्र प्रेरणा, (३) उत्तम विज्ञानयुक्त पुरुष
'प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्व'
वाज.सं. १५.६

प्रेतीषणिः (१) प्रेति + इषणि । प्राप्त पदार्थों को देने या चाहने वाला - अग्नि, (२) उत्तम पद को प्राप्त करने की सदा इच्छा करने और अन्यों को प्रेरणा करने वाला
'प्रेतीषणि मिषयन्तं पावकम्'
ऋ. ६.१.८

प्रेनिः- वज्र
'मेनिः शतवधा हि सा'
अ. १२.५.१६

प्रेव- पराची इव, पराङ्मुखी इव
पराङ्मुखी के सदृश ।

प्रेष् (षः)- (१) प्रेषित आज्ञा, (२) राज्य प्रबन्ध की व्यवस्था
'तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचः'
ऋ. १.३९.११
इस अग्नि की प्रेषित आज्ञाएं चमक उठें ।
(३) प्रेरक आज्ञा
'एष्टा रायः प्रेषे भगाय'
वाज.सं. ५.७, तै.सं. १.२.११.१; ६.२.२.६,का.सं. २४.९.श.ब्रा. ३.४.३.२१, शां.श्रौ.सू. ५.८.५, आप.श्रौ.सू. ११.१.१२.

प्रेषत् - (१) तृप्ति करता है, (२) उत्तम मार्ग मे चलावे (प्रेषतु)
'प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिः'
ऋ. १.१८०.६

प्रेष्ठ- (१) अतिप्रिय
'वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठाः'
ऋ. १.१६७.१०, आश्व.गृ.सू. २.६.१४.
(२) सबसे अधिक प्रिय अग्नि, (३) परमात्मा
'प्रेष्ठः श्रेष्ठः उपस्थसत्'
ऋ. १०.१५६.५, साम. २.८८१
पुनः-
'पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठः'
ऋ. ५.४३.,७, मै.सं. ४.९.३.१

प्रेषा- (१) प्रेरणा, (२) यः प्रकृष्टम् इष्यते बोधसमूहः -दया.
(३) प्रेरक
'ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिः'
ऋ. १.६८.५
हे परमेश्वर, सर्वव्यापक सर्व ज्ञानमय, अनादि सत्य स्वरूप तेरी ही ये समस्त उत्तम कोटि की प्रेरणाएं हैं-आनन्दरस का पान भी अथवा तू सत्य व्यवस्था का प्रेरक और धारक है ।

प्रेष्ठौ- द्वि.व. । अश्विद्वय का विशेषण या स्त्री पुरुष का विशेषण
'कदु प्रेष्ठाविषां रयीणाम्'
ऋ. १.१८१.१

प्रेषित - (१) भेजा हुआ, (२) उत्तम इच्छा से युक्त (प्र + इषित) ।
श्रुष्टी वे व प्रेषितो वामबोधि'
ऋ. ७.७३.३

प्रेहि- आगे बढ़
'प्रेह्यभीहि धृष्णुहि'
ऋ. १.८०.३, साम. १.४१३
आगे बढ, प्रमाण करशत्रुओं के सामने बढ़, और उन्हें परास्त कर ।

प्रेरवः- जलों को पान करने वाली सूर्य की रश्मियाँ
'नरो हितमवःमेहन्ति पेरवः'
ऋ. ९.७४.४, का. सं. ३५.६

पेरु - (१) समस्त दुःखों से पार उतारने वाला
'शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु
ऋ. ७.३५.१३, अ. १९.११.३
(२) सर्वपालक, (३) राष्ट्रपति (४) जल और अग्नि से युक्त महानौका, (५) पार करने वाला
(६) पालक आत्मा
'युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुः'
ऋ. १.१५८.३
(७) पूरक -दया. (८) मेघ, (९) पालक, (१०) अर्द्धाङ्ग सुप्रसन्न पूरकपति
'प्र या वाजं न हेषन्तं
पेरुमस्यसि अर्जुनि'
ऋ. ५.८४.२, तै.सं. २.२.१२.३.

पेरुक - उत्तम प्रजापालक राष्ट्र
'सुमीढे शतं पेरुके च पक्वा'
ऋ. ६.६३.९

पेशन- उत्तम
'स तु वस्त्राण्यध पेशनानि'
ऋ. १०.१.६

पेशनी- पोरु एवं नाना अवयवों से युक्त
'केनांगुलीः पेशनीः केनखनि'
अ. १०.२.१

पेशल- अतिसुन्दर

'सरस्वती मनसा पेशलं वसु'
वाज.सं. १९.८३, मै.सं. ३.११.९; १५३.७, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा . २.६.४.२.

पेशस् – (१) पिश् + असुन् = पेशस् । पेश इति रूपनाम (पेशस् का अर्थ रूप है) । पिश् धातु अवयव अर्थ में और भट्टोजि दीक्षित के अनुसार 'दीपन करना' अर्थ में भी है । जैसे
'त्वष्टा रूपाणि पिंशतु'
ऋ. १०.१८४.१, अ. ५.२५.५, श.ब्रा. १४.९.४.२०, त्वष्टा रूपों को विकसित करें ।
(२) धन
'पेशो मर्या अपेशसे'
ऋ. १.६.३, अ. २०.२६.६; ४७.१२; ६९.११, साम. २.८२०, वाज.सं. २९.३७, तै.सं. ७.४.२०.१, मै.सं. ३.१६.३; १८५.८, का.सं. (अश्व.) ४.९.

पेशस्करी – (१) सुवर्ण को तपा-तपा कर शुद्ध करने की शैली, (२) रूप बनाकर बैठने वाली व्याभिचारिणी स्त्री –दया.
'निष्कृत्यै पेशस्कारीम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

पेशस्वती – रूपवती
'होता यक्षत् पेशस्वतीः'
वाज.सं. २८.३१, तै.ब्रा. २.६.१७.५.

पेशिता– पिंश् (नाशने) + तृच् = पेशितृ । प्र.ए.व. में 'पेशिता'
अर्थ – (१) प्रत्येक अवयव का ज्ञान कराने वाला, (२) शत्रुओं को पीस डालने वाला
'देवलोकाय पेशितारम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

पेष्ट्र –,रोटी,
'शुने पेष्ट्रमिवावक्षामम्'
अ. ६.३७.३

पेषी– (१) पति के पास जाने वाली स्त्री, पति से संगता, (२) दूध पान कराने वाली स्त्री,
(३) दानशील
'पेषी विभर्षि महिषी जजान'
ऋ. ५.२.२

पैङ्गराज– 'पिजिः भाषार्थः'
(पिजि धातु भाषण करना अर्थ में प्रयुक्त है) , पिजि धातु से ही पैङ्ग बना है । अर्थ – (१) उत्तम उपदेश, अध्यापन कार्य एवं उत्तम सूक्त पद्यादि कहने वालों में श्रेष्ठ
'वाचस्पतये पैङ्गराजः'

पैजवन– पिजवन + अण् = पैजवन् । पिजवन् का अपत्य पैजवन है । पिजवन् का अर्थ स्पर्द्धनीयगति । अर्थ है– (१) पिजवन नामक ऋषि का पुत्र । (२) स्पर्धा करने योग्य, (३) वेग, गति । आचार व्यवहार करने वाले अनुकरणीय चरित्रवान् पुरुष का पुत्र
(४) वेगयुक्त –दया.
(५) पैजवन नामक एक वैदिक राजा
'अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानम्'
ऋ. ७.१८.२२.

पैजवन सुदास – (१) एक वैदिक राजा (२) चरित्र वान्पुरुष का उत्तम दानशील पुत्र (३) सर्वाति शायी सर्वप्रदप्रभु ।

पैतृमत्य– उत्तम पितामह वाला
'ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं
पैतृमत्यमृषिमार्षेयम्'
वाज.सं. ७.४६, वाज.सं. (का.) ९.२.६,श.ब्रा. ४.३.४.१९.

पैद्व– (१) सुखेन प्रापकः–दया. । सुख से प्राप्त कराने वाला (२) सुखपूर्वक स्थानान्तर पहुंचाने में समर्थ साधन, (३) अपने प्राप्तव्य पद को पहुंचा हुआ कृतकत्य आत्मा
'तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्
पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः'
ऋ. १.११६.६
वह तुम दोनों का बहुत बढ़ा कीर्त्तिजनक दान है । उसी से वेग से जाने वाला साधन सुख से स्थानान्तर पहुंच ने में समर्थ होता है ।
(४) अश्व
'पैद्वो न हि त्व महिनाम्नाम्'
ऋ. ९.८८.४
(५) पैद्वनामक, द्रव्य जो कसर्णील नामक सर्प का विनाश करता है । श्वेतसर्प और काले सर्प का भी विनाशक है । यह रथर्वी और पृदाकू नामक सर्प का भी नाशक है । (६) करवीर, गिरिकर्णिक अश्व क्षुरक या अश्वगन्धा नामक ओषधि, (७) केशव के मत से पैद्व एक जन्तु है जो तलिणी कहलाता है जो पीले रंग का चिटकने दार होता है । इसके भय से सर्प नहीं

आता ।

प्रैणानः- (१) सबको प्रेरित या तृप्त करता हुआ
'मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानः'
ऋ. ५.२७.३

प्रैष - (१) उत्तम आज्ञा कर्म (२) भृत्य
'प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोति'
वाज.सं. १९.१९

प्रैषयुः- इष्यते सर्वैः विज्ञापते यत् तत् याति प्राप्नोति स प्रैषपुः -दया.
प्र + इष् + क = प्रैष, प्रैष + या + कु = प्रैषयु
अर्थ - (१) उत्तम ज्ञानों और प्राप्तव्य परम पद को प्राप्त करने में कुशल, (२) बाण चलाने में सिद्ध हस्त, (३) लक्ष्य वेध में चतुर
'प्रैषयुर्न विद्वान्'
ऋ. १.१२०.५

प्रैष्य- एक देश से दूसरे देश में भेजा जाने वाला
'प्रैष्यं जनमिव शेवधिम्'
अ. ५.२२.१४

प्रैषा- प्रकृष्ट उत्तम मानस इच्छा
'प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा'
अ. ५.२६.४

पोत्र- पूञ् (पवित्र करना) + त्रन् = पोत्र (१) पवित्र करने वाला, (२) पोता का यज्ञ -सा. (३) हवि का सुगन्धिप्रद भाग - दया.
'अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्त'
ऋ. २.३७.४
इन्द्र होता के यज्ञ से सोमरस पीकर हृष्ट हुआ, -सा.
हवि के वृष्टि प्रद भाग से पान करे सुगन्धि प्रद भाग से पान करे ।
-दया. ।
'पोत्रात् यज्ञं पुनीतन'
ऋ. १.१५.२
(४) शुद्ध आत्मा, (५) पवित्र कर्त्तव्य
'पोत्रादा सोमं पिबता दिवोनरः'
ऋ. २.३६.२, अ. २०.६७.४
(६) यज्ञवत् पवित्र कार्य (७) अग्नि
'तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियम्'
ऋ. २.१.२; १०.९१.१०
(८) सबको पवित्र करने वाला
'मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः'
अ. २०.२.१
(९) पवित्र करने वाला कर्म
'वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानाम्'
ऋ. १०.२.२, आप.श्रौ.सू. २४.१३.३.

पोता - (१) पवित्र करने वाला । अग्नि परमेश्वर ।

पोप्रुथत् - 'प्रुथ' धातु फनफनाना अर्थ में है । अर्थ है - (१) नथुने फुन फुनाता हुआ अश्व
'शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय'
ऋ. १.३०.१६
इन्द्र सदा नथुने फुनफुनाते घोड़ों से विजय प्राप्त करें ।

प्रो - प्र. + उ । आगे । अंग्रेजी का pro शब्द आगे के अर्थ में आया है । जैसे project
'प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतम्'
ऋ. ९.८९.१६, साम. १.५५.७; २.५०,२, पंच ब्रा. १४.३.४.

प्रोक्षणी- (१) दिव्य जल, (२) आनन्दधारा, ज्ञान (३) सोम विन्दुरस
'एवमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिः'
अ. ५.२६.६

प्रोक्षित - (१) अभिषिक्त
'देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितम्'
वाज.सं. २२.१९,तै.सं. ७.१.१२.१, मै.सं. ३.१२.४; १६१.१०, का.सं. (अश्व.) १.३, श.ब्रा. १३.१.६.२, ४.२.१६; तै.ब्रा. ३.८.९.३.

प्रौढः- विवाहित पुरुष

प्रोथत् - स्वयं सब पदार्थों को स्वतः प्राप्त कराने वाला
'प्रोथेते स्वाहाः'
वाज.सं. २२.७., तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३; १६०; १३, का .सं. (अश्व.) . १.१०

प्रोथन् - सर्वत्र व्याप्त
'इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम्'
ऋ. १०.११५.३

प्रोथमानः- सर्वत्र व्यापक होता हुआ
'इनोन प्रोथमानो यवसे वृषा'
ऋ. १०.११५.२

प्रोष्ठ- (१) आंगन, (२) उत्तम भवन

प्रोष्ठपदा- प्रोष्ठपदा नामक नक्षत्र
'आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म'

अ. १९.७.५.

प्रोषु- प्र + उ + सु = प्रोषु' प्रकृष्ट और प्रशस्त ।
प्रौष्ठस्मै पुरोरथम् इन्द्राय शूषमर्चत ।
ऋ. १०.१३३.१, २०.९५.२, साम. २.११५.१, तै.सं. १.७.१३.५, मै. सं. ४.१२.४, १८९.७, तै.ब्रा. २.५.८.१.
हे स्तोताओ, प्रकृष्ट तथा प्रशस्त स्तुतियों से (प्र उ सु) इस इन्द्र के आगे खड़े होकर (पुरोरथ) इसके बलकी स्तुति करो (शूषम् अर्चत) ।

प्रोष्ठेशवा - (१) आंगन या उत्तम भवन में सोने वाली
'प्रोष्ठेशया बह्वेशया'
ऋ. ७.५५.८, अ. ४.५.३
(२) झूले में सोने की अभ्यासिनी, (३) मुखभाग में रखने वाली वाणी

पोषः- (१) पालन पोषण ।
'त्वष्टा पोषाय विष्यतु'
ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.
वैद्युताग्नि हमारे पालनपोषण के लिये जल बरसावें ।
(२) पुष्प + अच = पोष । उपभोग ।
'ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्'
ऋ. १०.७२.११, नि. १.८.
एक होता (त्वः) यज्ञकाल में स्वकीय देवताओं की ऋचाओं का (ऋचाम्) यथाविधि कर्मों में उपभोग (पोषम्) करता हुआ (पुपुष्वान्) रहता है । (आस्ते) ।
(३) सर्व पोषक -अग्नि
'विभुः पोषं उत त्मना'
ऋ. ५.५.९, तै.सं. ३.१.११.२

पोषयित्नु- पोषि (ण्यन्त पुष्)+ इष्णुच् = पोषयित्नु ।
अर्थ - (१) पोषण करने वाला
'गामश्वं पोषयित्न्वा'
ऋ. ४.५७.१, तै.सं. १.१.१४.२, मै.सं. ४.११.१; १६०.४; का.सं. ४.१५, आप.मं. पा. २.१८.४७, नि. १०.१५.
इस पोषण करने वाले गौ और अश्व को ऐसी आज्ञा दें ।

पोषयिष्णु - पोषण करने वाला
'अयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः'
अ. ३.१४.६

पोष्य- पोषण करने योग्य, वृद्धि करने योग्य
'आवहन्ती पोष्या वार्याणि'
ऋ. १.११३.१५, आश्व. श्रौ.सू. ६.१४.१८.

पोष्या- पोषण करने योग्य स्त्री
'ममेयमस्तु पोष्या'
अ. १४.१.५२

पोष्यावत् - अपने अधीन पोष्य स्त्री, पुत्र, भृत्य परिजन याचक अतिथि आदि का स्वामी
'अभिवो अर्चे पोष्यावतो नॄन्'
ऋ. ५.४१.८

पौञ्जिष्ठ - (१) केवट, मल्लाह,
'पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम्'
अ. १०.४.१९
(२) काष्ठ खण्डों के पुञ्जों पर बैठकर नदी पार करने वाला, (३) बड़े पशुओं की खालों की मशक बनाकर उस पर तैरने वाला पुरुष
'नदीभ्यः पौञ्जिष्ठम्'
वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.

पौतक्रत- पवित्र ज्ञान और पवित्र कर्म करने वाला परमेश्वर
'दश मह्यं पौतक्रतः'
ऋ. ८.५६.२

पौत्रअध- पुत्र की हत्या रूप पाप
'मा दंपती पौत्रमघं निगाताम्'
अ. १२.३.१४

प्रौढ प्राण - द्वितीय प्राण
'योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढोनामा'
अ. १५.१५.४

पौर- (१) पूर्ण करने वाला
'पौरो अश्वस्य पुरुकृत् गावम्'
ऋ. ८.६१.६, अ. २०.११८.२, साम. २.९३०
(२) पुर निवासी जन
'पौर पौराय जिन्वथः'
ऋ. ५.७४.४
(३) पुर रूप शरीर में रहने वाला आत्मा, (४) ब्रह्माण्ड में रहने वाला परमेश्वर

पौर्णमास- (१) समस्त संसार का रचयिता
'पौर्णमासं यजामहे'
अ. ७.८०.२

पौर्णमासी- (१) पूर्ण रूप से समस्त जगत् को अपने भीतर मापने या बनाने वाली महती शक्ति,

(२) पूर्णिमा तिथि
'उन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय'
अ. ७.८०.१, तै.सं. ३.५.१.१, तै.ब्रा. ३.१.१.१२,

पौरुकुत्सि- (१) बहुत शत्रुनाशक शस्त्रास्त्र धारण करने वाला - त्रसदस्य नामक वैदिक राजा
'प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः'
ऋ. ७. १९.३, अ. २०.३७.३
(२) पुरु कुत्स का पुत्र (३) बहुत से शास्त्रों का धारक सैन्य का नायक

पौरुकुत्स्य- (१) अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला, (२) एक वैदिक राजा जो अपने दानों के लिये प्रसिद्ध था।
(३) बहुत से सैन्य समुदाय या शास्त्रधर सैनिकों का अध्यक्ष
(४) पुत्र कुत्स का पुत्र
'उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेः'
ऋ. ५.३३.८

पौरुषेय- (१) सामान्य लोगों की स्तुति या निन्दा की कथा
'अपक्रामन् पौरुषेपात्'
अ. ७.१०५.१

पौरुषयेक्रविष- पुरुष का मांस
'यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते'
ऋ. १०.८७.१६, अ. ८.३.१५, कौ.सू. ११२.१.

पौरुषेयवध- पुरुषों का पुरुषों द्वारा वध
'पौरुषेयोवधः प्रहेतिः'
वाज.सं. १५.१५, तै.सं. ४.४.३.१, मै.सं. २.८.१०; ११४.१८, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१६.

पौरुषेयी- पुरुष के व्यवहार योग्य पदार्थों को लेने देने की विधि
'नियो गृभं पौरुषेयीमुवोच'
ऋ. ७.४.३

पौल्कस- पुल्कस नामक घृणित पदार्थ के साथ व्यवहार करने वाला पुरुष
'बीभत्साये पौल्कसम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

पौस्यं - (१) पुरुषार्थ बल।
'भूरि चकर्थ युज्येरस्ये
समानेभिर्वृषभ पौंस्योभिः'
ऋ. १.१६५.७, मै.सं. ४.११.३; १६९.३, का.सं. ९.१८.नि. ६.७.
(२) यौवन,
'स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये'
ऋ. १.५६.३, नि. ६.१४.
वह क्षिप्रकारी या शत्रु वध के लिए शीघ्र संभजन करने वाला इन्द्र (गुतुर्वणिः) या स्वा. दयानन्द के अनुसार शीघ्र प्रदाता महात्मा तेजस्वी पुरुष पौरुष या अनवद्य यौवन में (अरेणुपौंस्ये) महान् है।
(३) पुरुषत्व के योग्य यौवन काल।

पौरुण- पृथ्वी के हित के लिए प्रवृत्त
'पौष्णो विष्यन्दमाने'
वाज.सं. ३९.५

पौस्य धनु- ब्रह्मचर्य रूप धनुष
'धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम्'
ऋ. ९.९९.१, साम. १.५५१.

फ

फट् - (१) फटने की ध्वनि, फट जाना, विनाश
(२) तन्त्र में इसका प्रयोग होता है।
'बहुलाः फट् करिक्रति'
अ. ४.१८.३

फर्वर- पूर्ण करने योग्य कार्य
'उष्ठारेव फर्वरेषु श्रयेथे'
ऋ. १०.१०६.२

फल् - (१) फट कर दो भागों में टूटा खुर (२) स्त्री पुरुष दो मूर्तियों में हुए प्रजापति,
(३) कर्मफल भोगने के लिये शरिरस्थ जीव
'फलित्यभिष्ठितः'
अ. २०.१३५.१, शां.श्रौ.सू. १२.२३.२.

फलव- व्यर्थ, निस्सार
'अनिरेण वचसा फलग्वेन'
ऋ. ४.५.१४.

फलिग- (१) शस्त्रास्त्र से युक्त, अंग छेदन करने वाला सशस्त्रास्त्र
'वलं रुरोज फलिगं रवेण'
ऋ. ४.५०.५, अ. २०.८८.५, तै.सं. २.३.१४.४, मै.सं. ४.१२.१, १७८.५, का.सं. १०.१३.
(२) मेघ, (३) फलयुक्त सशस्त्र सैन्य से आक्रमण करने वाला
'य उद् नः फलिगं भिनत्'

ऋ. ८.३२.२५
(४) फलीनां गमयिता -मेघः
'सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र '
ऋ. १.६२.४
हे शक्तिशाली ऐश्वर्यवान् इन्द्र या राजन्, जिस प्रकार सूर्य वेग से जाने वाली रश्मियों से (सरण्युभिः) मेघ को (फलिगम्) ....

फलिनी- फल वाली ओषधि
'याः फलिनीर्या अफला '
ऋ. १०.९७.१५, वाज.सं. १२.८९.तै.सं. ४.२.६.४, मै.सं. २.७.१३; ९४.११, का.सं. १६.१३
'फलिनी रफला उत '

फलीकरण- छिलका
अ. ८.७.२७
'कन्नु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् '
अ. ११.३.६

फल्गुनी- एक नक्षत्र, पूर्वाफाल्गुनी उत्तर फाल्गुनी
'मघासु हन्यते गावः
फल्गुनीषु व्युह्यते '
अ. १४.१.१३

फल्गूः- स्वल्प बल वाली
'फल्गू र्लोहितोर्णी पलक्षी '
वाज.सं. २४.४

फाणि - (धा) सचालित करना
'योव्यतीं रफाणयत् '
ऋ. ८.६९.१३, अ. २०.९२.१०

फारिवार- अति अधिक उत्तम आयु
'भगेविता तुर्फरी फारिवारम् '
ऋ. १०.१०६.८

फाल- हल का फार
'कृपन्नित् फाल आशितं कृणोति '
ऋ. १०.११७.७

फालात् जातः - (१) शत्रुनाशक सामर्थ्य से सामर्थ्यवान् (२) फाल से बनाया गया मणि-यन्त्र तावीज
'फालात् जातः करिष्यति '
अ. १०.६.२

फेन - (१) झाग, जल प्रवाह के घर्षण से उठने वाला फेन
'फेनमस्यन्ति बहुलांध बिन्दून् '
अ. १२.३.२९.
(२) स्य यायते वर्द्धते इति फेनः -दया.
'अपां फेनेन नमुचेः '
ऋ. ८.१४.१३, अ. २०.२९.३, साम. १.२११, वाज.सं. १९.७१, श. ब्रा. १२.७.३.४.
(३) चक्रवृद्धि ब्याज से प्राप्त धन
'अवत्मना भरते केतवेदाः
अवत्मना भरते फेनमुदन् '
ऋ. १.१०४.३

फेन्य- फेन मय दुग्ध आदि का सेवन करने वाला
'नमः शष्पाय च फेन्याय च '
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२

* *
* * *
* *

वैदिक कोश
भाग ३

ब

बकुर – भास्करः भयङ्कर भास मानः द्रवति वृत्ति वा । पृषोदर आदि की तरह भास्कर भयङ्कर भासमान या द्रवण से 'बकुर' शब्द बना है । अर्थ है – (१) सूर्य, (२) वर्षाजल, (३) प्रताप, (४) ज्योति ।
'अभि दस्युं बकुरेणा धमन्ता'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६
जैसे सूर्य अपनी प्रवर ज्योति से रोगों का नाश करते या द्यावापृथिवी वर्षा जल से दुर्भिक्ष दूर करते एवं तुम दोनों (राजा और राज पुरुष या अश्विनी कुमार) अपने प्रताप से दुष्टों का विध्वंस करते हो ।

बज– (१) उत्तम गम्य, तेजस्वी ।
'बजः पिङ्गो अनीनशत्'
अ. ८.९.६
(२) गत्यर्थक धातु । अंग्रेजी में budge धातु भी इसी अर्थ में प्रयुक्त है ।

बज– (१) श्वेत सर्षप, उजला सरसों जो 'दुर्णामा' कुष्ट ओषधि की दवा है । –सा.
(२) अभिगमनीय सुन्दर पुरुष –ज.दे.श.
बजं दुर्णामचातनम्'
अ. ८.६.३

बट् – सचमुच
'बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि'
ऋ. ८.१०१.१२, अ. २०.५८.४, साम. २.११३९, वाज.सं. ३३.४०

बडा– सत्य कर के ।
'नह्यन्यं बडा करम्
मर्डितारं शतक्रतो'
ऋ. ८.८०.१

बण्ड – बडि (विभाजन कर्म में) + अच् = बण्ड । अर्थ । (१) विभाजन, (२) निर्वीर्य, नपुसंक –सा.
(३) लड़ाका, (४) परस्पर फूट डालने वाला
(५) चुंगल चोर –ज. दे.श.
(६) भग्न अंगों वाला–ह्विटनी
बण्डेन यत् सहासिम
अ. ७.६५.३

बण्डा– फटी कटी अंगहीन गौ
'बण्डया दह्यन्ते गृहीः'
ऋ. १२.४.३.

बत – अनेकार्थक निपात । अर्थ है–खेद, अनुकम्पा (खेदानुकम्पयोः) अनुकम्पनीय दयनीय ।
बतो बतासि यम
ऋ. १०.१०.१३, अ. १८.१.१५, नि. ६.२८.

बत – खेद अर्थ में प्रयुक्त अव्यय, (२) संज्ञा होने पर इसका अर्थ निर्बल होता है ।
'बतो बतासि यम
नैव ते मनो हृदयं चाविदाम'
ऋ. १०.१०.१३; अ. १८.१.१५; नि. ६.२८.
हे यम, तू निर्बल है । तू सचमुच अनुकम्प्य है (बत असि) । मुझे तेरे मन या हृदय का पता नहीं है ।

बदर– बेर का फल
'सक्तूनां रूपं बदरम्'
वाज.सं. १९.२२

बदर– (१) झाड़ियों उद्यानों की रक्षा करने वाले बेर का बौधा । (२) हिंसाकारी शस्त्रों का प्रहार करने वाले सेनाबल ।
'बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः'
वाज.सं. २१.३०,३१; मै.सं. ३.११.२:१४१.५; १४१.८; तै.ब्रा. २.६.११.२

बद्ध– (१) बध् + क्त = बद्ध । बंधा हुआ । दे. 'चक्षुष्' ।
'मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्'
ऋ. १०.७३.११; साम. १.३१९; का.सं. ९.१९; ऐ.ब्रा. ३.१९.१७; तै .ब्रा. २.५.८.३; तै.ब्रा. ४.४२.३; आप.श्रौ.सू. ६.२२.१; नि. ४.३.
हे आदित्य, बन्धन में बंधे पक्षियों की तरह हमें अपनी किरणों से मुक्त कर (अस्मान् निधया

बद्धान् इव मुमुग्धि)। (२) लग्न। दे. 'अरम्णात्'
'अश्वमिवाधुक्षद् धुनिमन्तरिक्षम्
अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्'
ऋ. १०.१४९.१; नि. १०.३२.
जैसे सवार घोड़े की धूल झाड़ देता है उसी प्रकार सविता अगम्य कम्पायमान अन्तरिक्ष में लग्न मेघ को मानों प्रवाहित करता है।

बद्धक – बंधा हुआ।
'बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्'
अ. ६.१२१.४; तै.आ. २.६.१.

बद्धकमोचन– बद्ध अवस्था से मुक्त अवस्था की प्राप्ति।
'प्रैतु बद्धकमोचनम्'
अ. ६.१२१.३

बद्बधानः– (१) खूब सुप्रबद्ध।
'त्वमर्णवान् बद्बधानां अरम्णाः'
ऋ. ५.३२.१; साम. १.३१५; नि. १०.९
तू ने जलवाला होकर बंधे हुए मेघों को उन्मुक्त किया।
(२) वध आदि करने वाली सेना।
'परिष्ठिता अतृणद् बद्बधानाः'
ऋ. ४.१९.८

बधिर – बध् + इरच् = बधिर। बधिरः बद्ध क्षोत्रः (जिसके कान बद्ध हो गये हैं। अर्थ–बहरा। दे. आततर्द।
'ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द
कर्णा बुधानः शुचमान आयोः'
ऋ. ४.२३.८; नि. १०.४१
ऋतदेव का अत्यन्त मध्य श्लोक बोधित करता हुआ (बुधानः) तथा चमकता हुआ (शुचमानः) मनुष्य के बधिर कानों को भी (बधिरा कर्णा) छेद डालता है (आततर्द) 'बधिरा' बधिरस्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'सुपां सुलुक्' से सु का लोप होकर केवल ङ (अ) रह जाता है। (२) प्राणियों के प्राण का बध करने या बांधने वाला (३) बहुश्रुत
'अपानक्षासो बधिरा अहासत'
ऋ. ९.७३.६
– बध् + किरच् = बधिर। बध्यते शब्द श्रवणात् निरुध्यते श्रोत्रयस्य इति। सुनने से वञ्चित हो जाता है, कान बन्द हो जाता है, अतः बधिर है।

बध्यमान– (१) देहबन्धन में फंसा आत्मा, (२) बलि किया जाने वाला पशु –सा.
'ये बध्यमानमनु दीध्याना'
अ. २.३४.३

बन्ध– (१) बन्धन स्थान, (२) कारागार।
'राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि'
अ. १०.५.४४.
(३) बन्धु, (४) शरीर की क्रियाशक्ति को बांधने वाला–आत्मा।
'बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्'
अ. १९.५६.२

बन्धपाश– कर्मबन्धन का फन्दा।
'अयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान्'
अ. ६.६३.२; अ. ६.८४.३

बन्धुक्षिद् – बन्धु के समान विद्या सम्बन्ध से अधीन रहने वाला शिष्य।
'बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः'
ऋ. १.१३२.३

बन्धुः – (१) पृथ्वी का विशेषण। पृथ्वी बन्धुरूपिणी माता है। दे. 'उत्तान'।
'बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्'
ऋ. १.१६४.३३; अ. ९.१०.१२; नि. ४.२१
यह बन्धुरूपिणी बड़ी पृथ्वी मेरी माता है।

बन्धु– बन्धु + उ = बन्धु। बन्धु सम्बन्धनात् (बन्धु बाधता है) सम्बन्ध जोड़ता है।

बन्धुता – (१) भाईपन, (२) सम्बन्ध।
'महो रुजामि बन्धुता वचोभिः'
ऋ. ४.४.११; तै.सं. १.२.१४.४; मै.सं. ४.११.५; १७३.१५; का.सं. ६.११.

बन्धुपृच्छा – द्वि.व.। सब मनुष्यों को बन्धु के तुल्य जानकर उनके सुख दुःख पूछने वाले।
'नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा'
ऋ. ३.५४.१६

बन्धुर – बांधने वाला।
'वध्रि कृण्वन्तु बन्धुरः'
अ. ३.९.३
'रथस्य बन्धुरम्'
अ. १०.४.२

बन्ध्वेष् – बन्धु + इष्। (१) परम बन्धु वृष्टि और अन्न को उत्पन्न करना (२) बन्धुवत् चाहना।

'प्र ये तो बन्ध्वेषे गां वोचना सूरयः '
ऋ. ५.५२.१६.

बप्स – धा. । भोजन करना । हिन्दी का 'भकोसना' धातु 'बप्स' का ही अपभ्रंश है ।

बप्सत् – (१) भोजन करने वाला ।
'उप स्रक्वेषु बप्सतः '
ऋ. ८.७२.१५; साम. २.८३२.
(२) खाता हुआ ।
'उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप
ऋ. ७.५५.२

बप्सता– द्वि.व. । खाने वाले
'हरी इवा धासि बप्सता '
ऋ. १.२८.७, नि. ९.३६.
नाना प्रकार के जौ चने आदि अन्नों को खाने वाले परस्पर संगत और वेग से जाने वाले घोड़े.....

बप्सती – द्वि.व. । वप्सत् (खाता हुआ) । का नपुंसक में प्रथमा द्विवचन का रूप ।
'असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः'
ऋ. १०.७९.१; नि. ६.४
वैश्वानर अग्नि की ज्वालाएं बिना चबाए खाती हुई प्रचुर लकड़ी और हवि खाती है । – सा. बच्चे के दोनों जबड़े बिना चतुर खाते हुए प्रचुर दुग्ध खा जाते हैं । –दया.

बब्धाम् – (१) खायें । दे. 'धाना' ।
'बब्धां ते हरी धानाः '
नि. ५.१२.
तेरे अश्व धाना अर्थात् ऋजीष (सोम की सीठी) खायें ।

बबृहाणः– सदा वृद्धिशील
'परि स्रचो बबृहाणस्यादेः
ऋ. ५.४१.१२

बभ्रवः – ब.व.। ए. व. का रूप बभ्रु । अर्थ – (१) पीले रंग के जूए के पाश ।
'न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचामक्रत'
ऋ. १०.३४.५
जब जुए पर फेकें पीले पाश शब्द करने लगते हैं ।

बभ्राणः – (१) पुष्ट करता हुआ ।
'बभ्राणः सूनो सहस्रो व्यद्यौत् '
ऋ. ३.१.८

बभ्रि – वि.। (१) रोकने वाला–दुर्ग (२) धारण पोषण करने वाला – दया. ।
'अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनाम् '
ऋ. ३.१.१२; नि. ६.१७.
संग्राम में दुर्ग के समान रोकने वाला या धारण पोषण करने वाला ।
(३) प्रजा का धारण पोषण करने वाला ।
'बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् विमृड्ढि '
अ. ११.१.३१.

बभ्रु – (१) सूर्य की एक जाति–(२) पीला,
(३) गोधूमी ।
'कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्रो '
अ. ५.१३.५
(४) पिङ्गलवर्णा अश्वा (घोड़ी) (५) बभ्रु का अर्थ– विशाल,
(६) नकुल (७) कृशानु
(८) अज, (९) शूलधारी एक मुनि तथा (१०) पिंगल है ।
'बभ्रुर्विशाले नकुले कृशानावजे
मुनौ शूलिनि पिशाचे च–विश्वकोश '
(११) स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ उपदेशिका या अध्यापिका किया है । जहां पूर्वाचार्यों ने 'इन्द्राश्वौ' का अर्थ ' इन्द्र के घोड़े' किया है, वहीं स्वा. दयानन्द ने 'राजा के आप्त अध्यापक तथा उपदेशक ' किया है ।
(१२) पीली ओषधि । दे. 'ओषधि' ।
'मनै नु बभ्रूणामहं
शतं धामानि सप्त च '
ऋ. १०.९७.१; वाज.सं. १२.७५; तै.सं. ४.२.६.१; मै.सं. २.७.१३ : ९३.२; का.सं. १३.१६; १६.१३; श.ब्रा. ७.२.४.२६; नि. ९.२८.
पीली ओषधियों के (बभ्रूणाम्) १०७ नामों को (शतं सप्त च धामानि) जानता हूं (मनै नु) या शरीर के १०७ स्थानों को जानता हूँ ।
(१३) बभ्रु नामक रोग–सा.
(१४) सबको धारण पोषण करने वाला प्राण ।
'बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च '
अ. ५.२३.४; अ. ६.१६.३

बभ्रुक – (१) बभ्रुक नामक पक्षी ।
'बभ्रुकान् अवान्तर दिशाभ्यः '
वाज.सं. २४.२६; मै.सं. ३.१४.७: १७३.१२.

बभ्रुकर्ण – (१) भूरे कान वाला कीट ।
'बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च'
अ. ५.२३.४; ६.१६.३.
(२) बभ्रुकर्ण नामक रोग, –सा.
(३) प्राणमय साधनों से सम्पन्न जीव ।

बभ्रुधूत – (१) भरण पोषण करने वाले स्वामी से प्रेरित या भयभीत, (२) विद्वानों से पवित्रित –दया. ।
'यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्'
ऋ. ५.३०.११

बभ्रुनीकाशः – भूरे वस्त्र वाला ।
'धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणां सोमवताम्'
वाज.सं. २४.१८

बभूवान् – होकर ।
'अधा निविद्ध उत्तरो बभूवान्'
ऋ. ४.१८.९

बभ्रू – द्वि.व. । (१) पीले रंग की घोड़ियाँ–सा. ।
(२) विद्या धर्म को धारण करने वाली तथा अविद्या और अधर्म को हरने वाली अध्यापिका तथा उपदेशिका –दया ।
दे. 'अर्भक' 'कनीनिका'
'कनीनकेव विद्रधे
नवे द्रुपदे अर्भके
बभ्रू यामेषु शोभेते'
ऋ. ४.३२.२३; नि. ४.१५
हे इन्द्र, पीले रंग की घोड़ियाँ (बभ्रू) यज्ञों में (यामेषु) छिद्र की हुई पादुका में (विद्रधे द्रुपदे) नव जात छोटी छोटी कठपुतलियों की तरह (नवे अर्भके कनीनके इव) शोभती हैं (शोभेते) –सा. ।
अथवा, यह अध्यापिका तथा उपदेशिका (बभ्रूः) गढ़ी हुई नवीन पादुकाओं पर (विद्रधे नवे द्रुपदे) छोटी लड़कियों की तरह (अर्भके कनीनके इव) नियमों पर आरूढ़ हो (यामेषु) शोभती हैं (शोभेते) । –दया. ।
(४) पीली वर्दी पहनने वाला ।
'बभ्रूः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः'
अ. ६.९३.१

बभ्रू– (१) धर्म धरन्ती (धर्म धारण करती हुई) – दया.
(२) समस्त प्राणियों को भरण पोषण करती हुई औषधि, –ज.दे.श. (३) राजा और राष्ट्र का भरण पोषण करने वाली समृद्ध प्रजा या पक्व अन्नादि से समृद्ध भूमि
'भूषन् न योऽधि बभ्रूषु नम्नते'
ऋ. १.१४०.६
सूर्य जिस प्रकार प्रकट होकर ही (भूषन्) समस्त प्राणियों को भरण पोषण करने वाली ओषधियों में प्रविष्ट हो जाता है (नम्नते) अथवा अग्नि ओषधियों में व्याप्त होकर .....
या, नायक पुरुष उत्पन्न होकर राजा और राष्ट्र का भरण पोषण करने वाली समृद्ध प्रजाओं और भूमियों के बीच में अपने को सिंहासन पर अधिकृत करता हुआ (भूषन्) अध्यक्ष रूप से प्राप्त होता है ।

बभ्रुवुषी – (१) होती हुई । दे. 'गौरी' ।
'अष्टापदी नवपदी बभ्रुवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.४१; तै.ब्रा. २.४.६.११; तै.आ. १.९.४; नि. ११.४०
उत्कृष्ट अन्तरिक्ष में माध्यमिका वाक् गौरी दिशाओं एवं चार अवान्तर दिशाओं से एकात्म हो अष्टापदी और ऊपर की दिशा या सूर्य से भी एकात्म हो नवपदी होती हुई बहुत जल बरसाने वाली बन जाती है ।
(५) पोषण करने वाली पीतवर्ण की एक ओषधि जिसमें वशीकरण का गुण है ।
'बभ्रु कल्याणि सं नुद'
अ. ६.१३९.३

बभ्रिः – (१) धारण करने वाला ।
'बभ्रिर्वजं पपिः सोमं ददिर्गाः'
ऋ. ६.२३. ४

बभ्लुश– राज्य का भरण पोषण करने वाला
'नमो बभ्लुशाय व्याधिने'
वाज.सं. १६.१८, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३; १२२.११, का. सं. १७.१२.

बम्भारिः – पाप का शत्रु
'स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे
हस्त सुहस्त कृशानो'
वाज.सं. ४.२७, तै.सं. १.२.७.१, श.ब्रा. ३.३.३.११.

बर्हणा– (वि) (१) बढ़ी हुई –सा. (२) बहुत मात्रा

में -द.
'रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा'
ऋ. १.१६६.६
मरुतों की हेति पशुओं को मारती है (रिणाति) जैसे सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त (सुधिता) एवं बढ़ी हुई हिंसा भावना (बर्हणा) पशुओं को -सा.
विज्ञान में विद्युत् बहुत मात्रा में (बर्हणा) सुस्थापित की हुई (सुधिता) पशुओं की तरह (पश्व इव) ले जाती है (रिण्याति) -दया.

बर्हणा - (१) ब्रह्म, (२) बृह् (वृद्ध्यर्थक या हिंसार्थक) + ल्युट् = बर्हण । बर्हण + सु = बर्हणा (सु का आ) । अर्थ - परिवृद्धि । (३) परिहिंसा (४) बसने और कर्मफल भोगने योग्य लोक (५) वृद्धि शील प्रजा ।
'इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश'
ऋ. ३.३४.५; अ. २०.११.५

बर्हणावत् - (१) वृद्धि से युक्त, (२) हिंसा से युक्त, (३) वर्धनशील ।
'सुपारासो वसवो बर्हणावत्'
ऋ. ३.३९.८.
(३) बहु विधं वर्धनं विध्यते यस्य स. - (वर्धनशील) ।
'प्राचीनेन मनसा बर्हणावता'
ऋ. १.५४.५

बर्हणावत् मनः - (१) हिंसायुक्त मन-सा. । (२) उदार हृदय -दया. । दे. 'रोरुवत्' ।
'प्राचीनेन मनसा बर्हणावता
यदद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि'
ऋ. १.५४.५.
हे इन्द्र, जिस कारण तू प्राचीन हिंसा वाले मन से युक्त हो आज भी ग्रीष्म में अपना कर्म करता है-सा.
हे राजन्, सनातन वेद के द्वारा (प्राचीनेन) उदार हृदय से बर्हणावता मनसा) तू राज्य करता है- दया. ।

बर्हन् - 'बृह्' धातु से सम्पन्न । अर्थ है- बृहत् बड़ा । दे. ' पञ्चजना '
'अस्तृणाद् बर्हणा विपः'
ऋ. ८.६३.७
मेघों के पिता या क्षेप्ता इन्द्र के (विपः)बड़े वज्र से (बर्हणा) मेघों को मारा (अस्तृणात्) ।

बर्हिषद् - बृह् (वृद्ध्यर्थक) + इसि = बर्हिस् । (१) बढ़ा हुआ कुश, (२) अग्नि को जो पदार्थों को फैलाता या बढ़ाता है, । बर्हिः + सद् + क्विप् = बर्हिषद् । अर्थ है- (१) यज्ञ में बैठने वाला, (२) विस्तृत आसन पर बैठने वाला, (३) उन्नति करने वाला ।
'बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वाक्'
ऋ. १०.१५.४, अ. १८.१.५१, वाज.सं. १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४.१०.६: १५६.१२; का.सं. २१.१४; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२.
हे यज्ञ में बैठने वाले पितरो, हम अर्वाचीनों की आप रक्षा करें ।
(५) राज सिंहासन पर बैठने वाला - दया. (५) कुशासन पर बैठने वाला -सा.
'ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२, तै.सं. १.४.९.१, का.सं. ४.३, श.ब्रा. ४.२.१.९.
ज्येष्ठ कुशासन पर बैठने वाले एवं सूर्य के समान दीख पड़ने वाले (स्वर्विदम्) इन्द्र को...सा.
हे राजन्, आप में वृद्ध राजसिंहासन पर बैठने वाले एवं सुख पहुंचाने वाले अपने आप को.....दया.

बर्हिषदः पितरः- (१) यज्ञ में बैठने वाले पितर ।

बर्हिष्ठा- (१) आकाशस्थ, (२) कुशासन पर रखा हुआ ।
'बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम्'
ऋ. ३.४२.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.९.२१.

बर्हिस्- (१) प्रभूत । (२) कुश, (३) वृद्धि । (४) यज्ञ । (५) पशु, ऐ.ब्रा । पशवो वै बर्हिः पशूनेव तत् प्रीणाति पशून् यजमाने दधाति ।
(६) धान्य के समान बीजभूत एवं शम दम आदि से वृद्धिशील आत्मा ।
'सं बर्हि रक्तं हविषा घृतेन'
अ। ७.९८.१; वाज.सं. २.२२; श.ब्रा. १.९.२.३१.
(७) प्रजा, (८) लोक,
प्रजा वै वर्हिः-कौ.ब्रा. ५.७.
'क्षत्रं वै प्रस्तर विश इतरं बर्हिः'
श.ब्रा. १.३.४.१०.
'नवं बर्हिरोदनायस्तृणीत'

अ. १२.३.३२.
(९) धान्य ।
'बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यते'
ऋ. १.८३.६; अ. २०.२५.६

बर्हिष्य– (१) प्रजाओं के संगृहीत उत्तम पदार्थों के योग्य उत्तम पुरुष (२) उत्तम आसन के योग्य ।
'बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु'
ऋ. १०.१५.५; . १८.३.४५; वाज.सं. १९.५७; तै.सं. २.६.१२.३.
(३) यज्ञ सम्बन्धी

बर्हिष्मती– सुखवृद्धि करने वाली ।

बर्हिस् – बृह् (वृद्ध्यर्थक) + इसि = बर्हिस् । अर्थ – (१) अग्नि जो पदार्थों को फैलाता या बढ़ाता है । (२) यज्ञ, (३) आसन, (४) कुश दे. बर्हिषद् (५) वस्तुओं को फैलाने वाला यज्ञाग्नि–ज.दे.श. ।
'प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः'
ऋ. १०.११०.४, अ. ५.१२.४, वाज.सं. २९.२९, मै.सं. ४.१३.३; २०२.१, का.सं. १६.२०.तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.९.
गृह की प्राची दिशा में वस्तुओं को फैलाने वाला यज्ञाग्नि वेदोपदिष्ट विधि के साथ.....
सायण ने यहां बर्हि का अर्थ कुश ही दिया है ।

बल – = भृ + अच् = भर = बल । अर्थ – धारण और पोषण करने वाला

बट् – (१) सत्यम् (सचमुच) – दया. (२) यथाभूत, (३) बल–सा.
'बडित्था पर्वतानाम्
खिद्रं बिभर्षि पृथिवि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.१ का.सं. १०.१२; आप.मं.पा. २.१८.९; नि. ११.३७
हे पृथ्वी अर्थात् विद्युत् , तू इस भूमि या अन्तरिक्ष में (इत्था) मेघ छेदने वाला बल (खिद्रम्) धारण करती है (बिभर्षि) – दया.
आधुनिक संस्कृत में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता । अंग्रेजी का but 'किन्तु' के अर्थ में प्रयुक्त होता है । तथापि बट् का सम्बन्ध but से असंदिग्ध है ।

बलग– गुप्त हिंसा प्रयोग ।

बलदेव – बलदान करना ।
'स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि'
ऋ. १०.८३.५

बलदाः – बल देने वाला– इन्द्र परमेश्वर ।
'त्वं हि बलदा असि'
ऋ. ३.५३.१८
'य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे'
अ. ४.२.१; १३.३.२४; वाज.सं. २५.१३; तै.सं. ४.१.८.४.: ७.५.१७.१

बलविज्ञायः– (१) सब बलों को विशेष रूप से जानने योग्य,
'बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः'
ऋ. १०.१०३.५; अ. १९.१३.५; साम. २.१२०३; वाज.सं. १७.३७; तै.सं. ४.६.४.२; मै.सं. २.१०.४: १३६.२; का.सं. १८.५.
(२) अपने और पराए के सेना बल के भली प्रकार जानने वाला ।

बल्बज– एक प्रकार का घास, दर्भ
'यं बल्बजं न्यसथ'
अ. १४.२.२२.
'उपस्तृणीहि बल्बजम्'
अ. १४.२.२३

बल्बजस्तुका – मूंज की सी गुच्छों वाली वनभूमि
'शतं मे बल्बजस्तुकाः'
ऋ. ८.५५.३

बलाक – (१) बगुला ।
'वायवे बलाकाः'
वाज.सं. २४.२२; मै.सं. ३.१४.३; १७३.३
(२) बल से जाने वाली सेना ।
'सौरी बलाका'
वाज.सं. २४.३३; तै.सं. ५.५.१६.१; मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६;

बलाशनाशनी– कफ का बलनाशक रोगों को नष्ट करने वाली ओषधि
'अथो बलाशनाशनीः'
अ. ८.७.१०

बलास– (१) शरीर का बल नष्ट करने वाला श्लेष्मा रोग–दम्मा
'बलासं सर्वं नाशय'
अ. ६.१४.१
(२) कफ
'बलासं कासमुद्युगम्'

अ. ५.२२.११
(३) कफ से उत्पन्न गिलटी रोग
'यौ ते बलास तिष्ठतः'
अ. ६.१२७.२
(४) बल नाशक कफ रोग ।
'नाशयित्री बलासस्य'
वाज.सं. १२.९७
(५) बलनाशक ।
'बलाशं पृष्ट्मयामयम्'
अ. १९.३४.१०

बलासी – श्लेष्मा, दम्मा का रोगी
'निबलासं बलासिनः'
ऋ. ६.१४.२

बलि– (१) कर ।
'बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि'
ऋ. ७.१८.१९

बलिहार – बलि + हार । कर देना,
'बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव'
अ. ११.१.२०

बलिहृत्– (१) बलि अर्थात् कर देने वाला ।
'विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः'
ऋ. ७.६.५; तै.ब्रा. २.४.७.९
'विशो बलिहृतस्करत्'
ऋ. १०.१७३.६: का.सं. ३५.७.
'यथा प्राण बलिहृतः'
अ. ११.४.१९

बल्हिक – (१) बली पुरुष, (३) बल्हिक नामक जनपद ।
'तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः'
अ. ५.२२.५

बल्बूथ– बलशाली'
'शतं दासे बल्बूथे
विप्रस्तरुक्ष आददे'
ऋ. ८.४६.३२, शां.श्रौ.सू. १८.१४.५.

बष्कय– (१) द्रष्टव्य – दया ।
(२) सत्य स्वरूप ।
'वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्
वि तत्निरे कवय ओतवा उ'
ऋ. १.१६४.५; अ. ९.९.६
अन्तर्दर्शी विद्वान् देखने योग्य (बष्कये) उत्तम पुत्र के निमित्त (वत्से) उसकी देह रचना के लिए ही (ओत वै उ) सातों घटक धातुओं को विविध रूप से विस्तृत करते हैं (वितत्निरे)
अथवा,
सत्य स्वरूप (बष्कये) स्तुत्य, सब में बसे या सब को बसाने वाले आत्मा में (वत्से) विद्वान् जन सातों सोम और पाक यज्ञों को विस्तृत करते हैं ।

बष्किहा – हिसंकों को भी मारने वाला रक्षक
'मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान्'
वाज.सं. २४.१६, मै.सं. ३.१३.१४; १७१.७, आप.श्रौ.सू. २०.१४. १०

बस्तः– (१) अपने गुरु के दोष को आध्यापन करने वाला विद्यार्थी,
(२) गुरु के अधीन रहने वाला विद्यार्थी
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्'
ऋ. १.१९१.१३
गुरु के अधीन रहने वाला विद्यार्थी (बस्तः) अति शीघ्रता से ज्ञान मार्ग पर लाने वाले आचार्य को (श्वानम् बोधयितारम्) करें ।

बस्तवासी, बस्तवासिन् – चमड़ा ओढ़ने वाला ।
'अरायान् बस्तवासिनः'
अ. ८.६.११.

बस्ताभिवासिन् – भेड़ बकरे के समान बलबलाने वाला सैनिक जो भेडिया होकर शत्रु पक्ष में घुस जाते हैं ।
'अथो बस्ताभिवासिनः
अ. ११.९.२२

बस्रि– अर्थ – (१) वस्तुस्तम्भन, सुख का रुकना –दया. (२) शीघ्र, (३) सुखनाशक
'उभा ता बस्रि नश्यतः'
ऋ. १.१२०.१२
वे दोनों शीघ्र ही या सुख नाशक होने से नष्ट हो जाते हैं ।

बह्वन्ना – (१) बहुत अन्नों या फलों से युक्त – वनस्पति वृत्ति ।
'बह्वन्नामकृषीवलाम्'
ऋ. १०.१४९.६

बर्हिर्बिल– शरीर के बिलों से बाहर ।
'निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्'
अ. ९८.१३-१८

बह्लिक – बल्ख देश का वेदकालीन नाम ।

बहु– (अ) बहुत ।

'वित्तेर मस्व बहु मन्यमानः'
ऋ. १०.३४.१३

बहुकारः- बहुत कार्य करने में समर्थ ।
'बहुकार श्रेयस्कर भूयस्कर'
वाज.सं. १०.२८; श.ब्रा. ५.४.४.१४;

बहुचारी- बहुत चलने वाला ।
'बहुचारी भविष्यसि'
अ. ११.३.४६

बहुधा- अनेक प्रकारों से ।
'विश्वा अपश्यत् बहुधा ते अग्ने,
जातवेदस्तन्वो देव एकः'
ऋ. १०.५१.१

बहुप्रजाः- वि. । (१) अनेक अनेक जन्म प्राप्त करने वाला जीवात्मा ।
'स मातुर्योना परिवीतो अन्तः
बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश'
ऋ. १.१६४.३२; अ. ९.१०.१०; नि. २.८.
वह जीवात्मा माता के गर्भ में आ उदर में उल्व जरायु से परिवेष्टित हो यथासमय, उत्पन्न हो अनेकों जन्म प्राप्त करने वाला (बहुप्रजाः) प्रकृष्ट दुःख को (निर्ऋतिम्) प्राप्त करता है । (आविवेश) ।
(२) नाना लोकों को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर ।

बहुपाय्य- (१) बहुत से वीर पुरुषों द्वारा रक्षा करने योग्य ।
'व्यचिष्ठे बहुपाय्ये'
ऋ. ५.६६.६
(२) बहुतों का पालक,
(३) बहुतों से भोग्य ऐश्वर्य ।
'पुंत्रो न बहुपाय्यम्'
ऋ. ८.२७.२२

बहुल- (१) नाना प्रकार का ,
'ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं'
अ. ८.५.१९
(२) वि. । बहूनि सुखानि लाति प्रयच्छति (जो बहुत सुखों को देता है) । (३) बहुत ।
'तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाः'
ऋ. १.५४.९
(४) बड़ा ।
'मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते'
अ. ७.५२.२
'पृथ्वी पृथ्वी बहुला न उर्वी'
ऋ. १.१८९.२; मै.सं. ४.१०.१; १४२.२; तै.सं. १.१.१४.४; श.ब्रा. २.८.२.५; तै.आ. १०.२.१

बहुलान्तः- (१) बहुत से ऐश्वर्य जन समूहादि से सम्पन्न ।
'तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम्'
ऋ. १०.४२.८; अ. २०.८९.८
(२) प्रभूत बल और सत्य ज्ञान को धारण करने वाला, (३) अन्धकारमयी, मोह-रात्रि का नाश करने वाला ।

बहुलाभिमानः- (१) बहुत आत्मा समान का धारण करने वाला, (२) इन्द्र, (३) राजा ।
'मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः'
ऋ. १०.७३.१; वाज.सं. ३३.६४.

बहुले - (द्वि.व.) (१) द्यावापृथिवी या माता पिता का विशेषण । अर्थ-बहु + ले = बहुत से पदार्थों को ला देने वाले
'उर्वी पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते'
ऋ. १.१८५.७, मै.सं. ४.१४.७; २२५,१, तै.ब्रा. २.८.४.८

बहुवादी- बहुत अधिक बोलने वाला ।
'अन्याय बहुवादिनम्'
वाज.सं.

बहुसाकम् - अ. । (१) बहुत जान, एकत्र कर ।
'तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो
बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम्'
ऋ. २.२४.४; नि. १०.१३
उसी मेघ को सूर्य की सभी रश्मियाँ पीती हैं और वर्षा काल में आकाश में उठते हुए मेघ को (उत्सम् उद्रिणम्) बहुत जल मिलकर देती हैं ।

बहुसूवरी- (१) बहुत सम्मान उत्पन्न करने वाली।
'सुषूमा बहु सूवरी'
ऋ. २.३२.७ अ. ७.४६.२; तै.सं. ३.१.११.४; मै.सं. ४.१२.६; १९५.६; का.सं. १३.१६
(२) बहुत से पुत्रों को उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री,
(३) बहुत प्रकार राष्ट्रीय प्रेरणाओं की आज्ञा देने वाली राज सभा ।

ब्रध्नः- (१) सबको अपने साथ बांधने वाला, (२) आत्मा, (३) आकर्षण सामर्थ्य से बांधने वाला सूर्य ।

'युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं'
ऋ. १.६.१; अ. २०.२६.४.४७; १०; ६९.९; साम. २.८१८; वाज.सं. २३.५ ; तै.सं. ७.४.२०.१; मै.सं. ३.१२.१८; १६५.९
(४) प्राण, इन्द्रिय और यज को एक बांधने वाला योगी ।
'ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन्'
अ. ७.२२.२; साम. १.४५८; आप.श्रौ.सू. २१.९.१५;
'अयं ब्रध्नस्य विष्टपि'
अ. १३.१.१६.

ब्रध्नस्य विष्टपः- (१) तैंतीस विभागों का प्रवर्तक शासक स्वयं चौंतीसवा ब्रध्न का विष्टप है ।
'ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः'
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.५; मै.सं. २.८.४: १०९.७; का.सं. १७.४: २०.१३;
(२) संसार को बांधने वाले ब्रह्म का परम तेज ।

ब्रवीति- ब्रू (शब्द करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप ।
हिन्दी का बोलना, धातु 'ब्रू' से ही बना है ।

ब्रह्म- (१) श्वेत कुष्ट को नष्ट करने वाली एक जड़ी, भ्राङ्गी, कांजी, ब्रह्मसुवर्चला ।
'दूष्याकृतस्य ब्रह्मणा'
अ. १.२३.४
ब्राह्मी यष्टि भी इसी का एक नाम है ।
(२) ब्रह्म विषयक सूक्त, (३) ब्रह्म ।
'ब्रह्मणे स्वाहा'
अ. १९.२२.२०; २३.२९; ४३.८; वाज.सं. ३९.१३; ऐ.ब्रा. ६.२२.२, ४; तै.ब्रा. ३.१.५.६; १२.२.४
(४) बृह् + मनिन् = ब्रह्म । ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है ।
(५) धन, (६) अन्न, (७) वेद (८) ब्राह्मण (९) महान् ब्रह्माण्ड

ब्रह्मकार - धन, अन्न और वेद का ज्ञान करने में कुशल पुरुष ।
'इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकाराः'
ऋ. ६.२९.४

ब्रह्मकिल्विष- (१) परमात्मा की रचना का विषय ।
'तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्विषे'
ऋ. १०.१०९.१; अ. ५.१७.१
(२) ब्राह्मणों के प्रति अपराध

ब्रह्मकृत् - (१) अन्न, धन और वेद द्वारा स्तुति करने वाला ।
'इमे हिते ब्रह्मकृतः'
ऋ. ७.३२.२; साम. २.१०२६
(२) ब्रह्मयज्ञ करने वाला वेद का विद्वान् ।
(३) धन, अन्न और ज्ञान को उत्पन्न करने वाला ।
'देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन'
ऋ. ७.९.५; मै.सं. ४.१४.११; २३३.२; तै.ब्रा. २.८.६.४
(४) ब्राह्मणों द्वारा शिक्षित (५) धन द्वारा वशीकृत ।
'ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन'
ऋ. ३.३२.२

ब्रह्मकृति- (१) धन ऐश्वर्य उत्पन्न करने की साधना । (२) ब्रह्मज्ञान का प्रयत्न और साधन ।
'यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठः'
ऋ. ७.२८.५
(३) संसार परमेश्वर की कृति ।
'ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणः'
ऋ. ७.२९.२; ऐ.ब्रा. ४.३.३; को.ब्रा. २६.११; आप.श्रौ.सू. ६. २.६.

ब्रह्मगवी- (१) ब्राह्मणों द्वारा शासित की गई पृथ्वी ।
'तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतः'
अ. १२.५(१) ६
(२) ब्रह्मशक्ति, (३) विद्या, (४) ब्राह्मण रूप गौ ।
'ब्रह्मगवी पच्यमाना
यावत् साभि विजङ्गहे'
अ. ५.१९.४

ब्रह्मचारी- (१) महान् ब्रह्माण्ड में विचरने वाला परमेश्वर ।
'ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः'
ऋ. १०.१०९.५; अ. ५.१७.५

ब्रह्मचोदनी- ब्रह्मविद्या और धन की ओर प्रेरित करने वाली ।
'यां पूजन् ब्रह्मचोदनी
मारां बिभर्ष्याघृणे'
ऋ. ६.५३.८

ब्रह्मचोदनौ- द्वि.व. । ब्रह्म विज्ञान या वेद विज्ञान को उन्नत करने वाले ।

'अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ'
वाज.सं. ४.३३

ब्रह्मजाया- महान् विश्व को जन्म देने वाली प्रकृति ।
'सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायाम्
पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः'
ऋ. १०.१०९.२; अ. ५.१७.२
(२) ब्रह्म की जाया भूत पृथिवी (३) राष्ट्र सभा ।

ब्रह्मज्य - (१) वेद और वेदज्ञों का विनाशक ।
'सा ब्रह्माज्यं देवपीयुम्'
अ. १२.५.१५
(२) ब्राह्मण का विनाशकारी ।
'राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य'
अ. ५.१९.७

ब्रह्मजुष्ट- ब्राह्मणों द्वारा अनुमोदित ।
'सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टम्'
अ. २.३६.२

ब्रह्मजूतः- ब्रह्म + जू + क्त = ब्रह्म जूत । (१) ब्राह्मणों से संगति करने वाला । (२) महान् शक्ति से सम्पन्न
'ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानः'
ऋ. ३.३४.१, अ. २०.११.१
ब्राह्मणों से संगति करने वाला तथा शरीर से पुष्टांग....

ब्रह्मजूता- ब्रह्म ज्ञानियों से सेवित,
'ब्रह्मजूतां ऋषिष्टुताम्'
अ. ६.१०.८.२

ब्रह्मज्येय- ब्राह्मणों के प्रति अत्याचार ।
'ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन्'
अ. १२.४.११

ब्रह्मणवर्चः- (१) ब्राह्मण का तेज, (२) विद्वानों का बल ।
'सामे ब्राह्मणवर्चसम्'
अ. १०.५.३७

ब्रह्मणःपिता- इस जगत् का पिता विराट् ।
'विराजमाहुः ब्रह्मणः पितरम्'
अ. ८.९.७

ब्रह्मण्यत् - (१) धर्मपूर्वक धन चाहने वाला ।
(२) ब्रह्म का साक्षात्कार चाहने वाला ।
'ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात्'
ऋ. ४.२४.२

ब्रह्मण्यन् - (१) अन्न की आकांक्षा करने वाला कृषक (२) ब्रह्मज्ञान का इच्छुक (३) बृहत् ऐश्वर्य का इच्छुक ।
'ब्रह्मण्यन्तः शंस्य राध ईमहे'
ऋ. २.३४.११
(४) धन की कामना करने वाला ।
(५) वेदज्ञान का इच्छुक ।
'ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः'
ऋ. २.१९.१

ब्रह्मण्वती- वेदज्ञान से युक्त ।
'मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीम्'
अ. ६.१०८.२

ब्रह्मणा वावृधाना- वेदज्ञ ब्राह्मणों और विद्वानों को बढ़ाने वाली पृथिवी ।
'क्षमां भूमिं ब्रह्मण वावृधीनाम्'
अ. १२.१.२९

ब्रह्मतेजा- वेद या अथर्व वेद के मन्त्रों के समान तेजस्वी ।
'यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः'
अ. १०.५.३१

ब्रह्मद्रविण- (१) ब्राह्मण रूप धन (२) वेद या अन्न रूप धन ।
'वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम्'
वाज.सं. १०.१०.

ब्रह्मद्विष्- ब्रह्म + द्विष + क्विप् = ब्रह्मद्विष् । अर्थ -(१) ब्राह्मण द्वेषी, (२) ब्राह्मण का द्वेषी, (३) वेद-विरोधी, (४) नास्तिक, (५) यज्ञविरोधी, ।

ब्रह्मन् - व्युत्पत्ति तथा अर्थ के लिए - बृह् + मनिन् = ब्रह्मन् । अर्थ -(१) ब्राह्मण, (२) ब्रह्म का साधक ।
'ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत
उद्वंशमिव येमिरे'
ऋ. १.१०.१, साम. १.३४२, २.६९४, तै.सं. १.६.१२.३. कौ.ब्रा. २४.७, नि. ५.५.
हे शतक्रतो इन्द्र या परमात्मा, ब्राह्मण यज्ञकर्म में ध्वजा के समान स्तुतियों से तेरी महिमा बढ़ाते हैं ।
(३) वेद ।
'हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम्'
ऋ. १०.३०.११, नि. ६.२२.

धनों की प्राप्ति के लिए ब्रह्म को प्रवृत्त करो या वेद को जाने ।
(४) धन ।
'इन्द्राय ब्रह्माणि राततमा'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१, ऐ.ब्रा.६.१८.५,
इन्द्र के लिए दातव्य धनों को देता हूँ (राततमा ब्रह्माणि) (५) अन्न
'तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथा
इन्द्र उक्थ्या समग्मत
अर्चन्ननु स्वराज्यम्'
ऋ. १.८०.१६.
वे अन्न और स्तोत्र पहले की भांति इन्द्र के पास आवे क्योंकि इन्द्र ने वृत्रादि असुरों को मार कर अपना आधिपत्य प्रकट किया है और अपना राज्य शास्त्रीय रीति से चलाते हैं ।
(६) अन्न दाता जल ।
'उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः'
ऋ. ७.३३.११,नि. ५.१४.
हे अन्न जल, तू विद्युत् के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ
(७) वसिष्ठ–सा.
हे वसिष्ठ, तू उर्वशी के मन से उत्पन्न हुआ ।
(८) वैद्य ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत्'
ऋ. १०.१६२.२, अ. २०.९६.१२,
उस मांसस्नेही कृमि को अग्नि वैद्य के साथ मिलकर नष्ट करें ।
(९) कर्म–सा ।
'स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीः
विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यम्
पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात्'
ऋ. ९.८६.४१
वह यह यजमान (म) सर्वायुपरिणत वय या अप्रतिहत बुद्धिवाला होकर (विश्वायुः) प्रजा अर्थात् सन्तजिरूप फल देने वाली (प्रजावतीः) सब प्रकार की (विश्वाः) सुपुष्ट (सुभरा) स्तुतियों को (भन्दनाः) नित्यप्रति (अहर्दिवि) प्रेरित करता है (उदियर्ति) । प्रजा के सहित या भोगने वाले सन्तान से युक्त (प्रजावत्) अन्न (ब्रह्म) गोहिरण्यादिधन (रयिम्) तथा व्याप्त गई या अश्ववाला घर (अश्वयस्त्यम्) हमारे लिए (अस्मभ्यम्) हे दीप्त सोम (इन्दो) पीए जाकर (पीतः) तू इन्द्र से मांग (इन्द्रं याचतात्) ।
अन्य अर्थ– हे पावक सोम परमात्मन् ! यह समस्त मनुष्य वर्ग (स विश्वायुः) अहर्निश (अहर्दिवि) सभी उत्तम गुणों को धारण करने वाली (सुभरा) सृष्टि रचना विषयक तेरी स्तुतियों का उच्चारण करता है (प्रजावतीः भन्दनाः उदियर्ति) । हे प्रकाशक परमेश्वर (इन्दो), प्राप्त किए हुए आप (पीतः) उत्तम प्रजा सहित ब्रह्म ज्ञान (प्रजावत् ब्रह्म) बल के भण्डार तथा तेजस्वी जीवात्मा को (इन्द्रम्) हमें प्रदान करें (अस्मभ्यं याचतात्) ।
ब्रह्म परिवृढं भवति सर्वप्राणिभिः यत् तत् अन्नम् (अन्न जो सभी प्राणियों से परिवृढ़ होता या उपजाया जाता है) । अन्न सदा भुक्त होने पर भी घटता नहीं या इस से प्राणी बढ़ते हैं (सर्वदाभुज्यमातमपि अनुपक्षीयमाणत्वात् स्वभावतो वा परिवृद्धम् सर्वस्य जगतः भणात् ।)
(१०) सर्वज्ञ, सर्वविद्य, वेदत्रयी का ज्ञाता (ब्रह्म सर्वविद्यः सर्व वेदितुमर्हति) ।
(११) ब्रह्मा परिवृढः श्रुततः (वेद के अनुसार ब्रह्म ही नेता या परिवृढ़ है । प्रभौ परिवृढ़ पा.७.२.२१ से निपात । अमर कोष में भी कहा है ।
'प्रभु परिवृढोऽधिपः'
(१२) सर्वव्यापी ब्रह्मा 'ब्रह्म परिवृढं सर्वतः' यहां वृह् धातु व्याप्ति अर्थ में आया है । वेदान्तियों का ब्रह्म और वेदों का ब्रह्म दोनों ही परिवृढ़ और सर्व व्यापी है ।
उपनिषदों में ब्रह्म की विवेचना विविध प्रकार से की गई है । जैसे – (१) अन्तमेव ब्रह्म, (२) जलमेव ब्रह्म, (३) प्राणा एव ब्रह्म (४)ओमेव ब्रह्म इत्यादि
(१३) धन, ऋक् , यजुः, अथर्व और साम वेद भी धन ही है ।
आधुनिक अर्थ –(१) सर्वव्यापी ब्रह्म, (२) ऋचा, स्तुति, (३) शास्त्र, (४) वेद, (५) ओम् (६) ब्राह्मण जाति, (७) ब्रह्म शक्ति, (८) तपस्या (९) ब्रह्मचर्य, (१०) पतिव्रत्य (११) सुन्दरम्, (१२) मोक्ष, (१३) ब्रह्मविद्या, अध्यात्म शास्त्र, (१४) वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थ (१५) धन

पुल्लिंग होने पर अर्थ - (१) ब्रह्मा, विधि, स्रष्टा, (२) ब्राह्मण, (३) भाव (४) ब्रह्म नामक, ऋत्विज् (५) वेदत्रयी या ज्ञाता, (६) सूर्य (७) बुद्धि (८) सात ऋषियों का एक विशेषण मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ये ही सात प्रजापति हैं (९) बृहस्पति का एक नाम, (१०) शिव का एक नाम

ब्रह्मणस्पति - ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा (ब्रह्म, अन्न या धन का पालक । ब्रह्मणस्पति वर्षा द्वारा औषधियों का पालन करता है । अर्थ है- (१) माध्यमिक देव-इन्द्र , (२) परमात्मा ।

'अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिः
मधुधारमभि यमोजसातृणत् '

ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.

मन्थर के समान कठोर मुख वाले भूमि की ओर आते जल धारा वाले जिस मेघ को ब्रह्मणस्पति इन्द्र ने बल से अभिहत किया ।

(३) वेदपति परमेश्वर-दया.

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते '

ऋ. १.१८.१; साम. १.१३९; वाज.सं. ३.२८; तै.सं. १.५.६.४; मै. सं. १.५.४; ७०.१३, का.सं. ७.२.९, श.ब्रा. २.३.४.३५, नि. ६.१०.

ब्रह्मप्रिय - ईश्वर या वेद जिस का प्रिय हो

'ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव '

ऋ. १.८३.२, अ. २०.२५.२

जैसे वर स्वयम्वर में जाकर कन्या की अभिलाषा करते हैं उसी प्रकार वे भी मिलकर वेदज्ञान, परमेश्वर और ऐश्वर्य से पूर्ण उनके प्रिय विद्वान् पुरुष को प्रेमपूर्वक प्राप्त करते हैं, उनकी सेवा सुश्रूषा करते है ।

ब्रह्मप्रियः- वेद और वेदज्ञ ब्राह्मणों का प्रिय ।

'ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव '

ऋ. १.८३.२; अ. २०.२५.२

'ब्रह्मप्रियं पीपयन् सस्मिन्नूधन् '

ऋ. १.१५२.६

ब्रह्मभाग- वेदज्ञ का भाग

'ये मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोः '

ऋ. १४.२.४२

ब्रह्मयुज् - (१) ब्रह्म में युक्त लीन योगी । (२) अन्न वेतनादि पर नियुक्त ।

'ब्रह्मयुजोहरय इन्द्र केशिवः '

ऋ. ८.१.२४; साम. १.२४५; २.७४१

(३) महान् ऐश्वर्य एवं अन्न से युक्त, उत्तम पद पर नियुक्त , (५) वेद का अभ्यास और परमात्मा में योगाभ्यास करने वाला ।

'ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः '

ऋ. १.१७७.२

ब्रह्मयुजा- द्वि.व.। महान् शक्ति आत्मा के साथ युक्त होने वाले प्राण और अपान ।

'ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि '

ऋ. ३.३५.४; अ. २०.८६.१; ऐ.ब्रा. ६.२२.४; कौ.ब्रा. २९.४; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.६.

ब्रह्मयुजा हरी- पर ब्रह्म के साथ योग द्वारा और युक्त होने वाले प्राण और अपान ।

'आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी '

ऋ. ८.१७.२; अ. २०.३.२; ३८.२; ४७.८; साम. २.१७; मै.सं. २.१३.९; १५८.१०

ब्रह्मयोग- वेद का विज्ञानमय उपाय ।

'ब्रह्मयोगैर्वा युनज्मि '

अ. १०.५.१ स

ब्रह्मलोक - (१) सबको बांधने वाले परम बंधु रूप परम तेजोमय स्वरूप में आश्रय पाने वाला ब्रह्मज्ञानी (२)महान् परमेश्वर पद

'मह्यं दत्त्वा व्रजंत ब्रह्मलोकम् '

अ. १९.७१.१

ब्रह्मवनिः - ब्राह्मणो को वृत्ति देने वाला

'ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि '

वाज.सं. १.१७,१८;५.२७;६.३

ब्रह्मवर्चस -(१)ब्रह्मवर्चस, (१) वीर्यरक्षा (३) वेदज्ञान की वृद्धि

'ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि '

वाज.सं. २०.३

ब्रह्मवर्चसी - (१) ब्रह्मवर्चस्वी, (२) वीर्यवान्

'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम '

वाज.सं. २२.२२; वाज.सं. (काण्व) २४.३०; तै.सं. ७.५.१८.१; मै.सं. ३.१२.६;१६२.७; तै.ब्रा. ३.८.१३.१;१८.५.

'ब्रह्मवर्चसी उपजीवनीयो भवति '

अ. ८.१०.१६

ब्रह्मब्रह्म - (१) सब प्रकार का ब्रह्म ज्ञान (२)सब प्रकार का अन्न

'ब्रह्म ब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः

ऋ. ९.७७.३

ब्रह्मवादी – वेद का उपदेष्टा, ब्रह्मवादी
'इति ब्रह्मवादिनो वदन्ति'
अ.१५.१ (१).८

ब्रह्मवाह् – (१) अन्न सम्पादन करने वाली क्रिया, (२) ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाली क्रिया, (३) ऋक्, यजुः और सामवेद के स्वर सौष्ठव से युक्त, (४)अन्न या हदि वहन करने में समर्थ
'इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्ते
आ बर्हिः सीद'
ऋ. ३.४१.३ अ.२०.२३.३

ब्रह्मवाहाः – (१) महान् धन, ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को धारण करने वाला, (२) ब्रह्मवेद को धारण करने वाला विद्वान्। (३) ब्रह्म अर्थात् वेद के विद्वान् ब्राह्मणों के ज्ञान बल से वहन करने योग्य या धारण करने योग्य क्षत्रिय, (४) वेद के विद्वानों को धारण करने वाला।

ब्रह्मवृद्धौ– ब्रह्म का वेदज्ञान से परिपुष्ट दो प्रकार की अग्नि।
'ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ'
अ. १२.१.४९

ब्रह्मशंसित– ब्रह्म अर्थात् वेद के ज्ञान से तीक्ष्ण।
'तिग्महेती ब्रह्मशंसिते'
अ. ८.३.२५

ब्रह्मशंसिता– ब्रह्म, या धनैश्वर्य की प्राप्ति, के लिए अति तीक्ष्ण सेना।
'अवसृष्टा परापत्
शरव्ये ब्रह्मशंसिते'
ऋ. ६.७५.१६; अ. ३.१९.८; साम. २.१२१३; वाज.सं. १७.४५; तै.सं. ४.६.४.४

ब्रह्मशुंभित – ब्रह्म-परमेश्वर द्वारा शुद्ध किया हुआ।
'यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः'
अ. ४.२४.४

ब्रह्महत्या– (१) वेदज्ञान के विनाश का निवारण, (२) महान् ऐश्वर्य की हत्या अर्थात् प्राप्ति का उपाय।
'ब्रह्महत्यायै स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१३; तै.सं. १.४.३५.१; तै.आ. ३.२०.१; मा.श्रौ.सू. ९.२.५

ब्रह्मा– (१) प्रजा वृद्धि करने वाला पति।
'अग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता'
ऋ. ७.७.५
(२) वृद्धि शील जीव।
'उर्वश्या ब्रह्मयन् मनसोऽधिजातः'
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४
(३) ब्रह्मा, (४) वेदज्ञपुरुष,
'चतुःश्रृंगोऽवमीद् गौर एतत्'
ऋ. ४.५८.२; वाज.सं. १७.९०; मै.सं. १.६.२; ८७.१६; का.सं. ४०.७; तै.आ. १०.१०.२
(५) यज्ञ का ब्राह्मण, (६) ब्रह्म ज्ञान।
'मोषु ब्रह्मेव तन्द्रयुः'
ऋ. ८.९२.३०; अ. २०.६०.३; साम. २.१७६.
(६) होता आदि सोलह ऋत्विजों में चार प्रधान हैं – होता, उद्गाता, ब्रह्मा और अध्वर्यु
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्
ऋ. ८.२.२४
एक सर्वज्ञ ब्रह्म (त्वः ब्रह्म) तरह-तरह के कर्त्तव्य कर्म के सम्बन्ध में (जाते-जाते) ज्ञान देने वाली बात या आत्म विज्ञान (विद्याम्) कहता है (वदति)।

ब्रह्माग्निः– ब्रह्मोपासना।
'व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो'
वाज.सं. ४.११

ब्रह्माणः– (१) ब्राह्मण, (२) यज्ञकर्त्ता
'सोमं यं ब्रह्मणोविदुः
न तस्यास्तीति कश्चन'
ऋ. १०.८५.३, अ. १४.१.३, नि. ११.४
जिस सोम को ब्राह्मण या यज्ञकर्त्ता जानते हैं उसे कोई यज्ञ विमुख पान नहीं करता।

ब्रह्माहुतौ– ब्रह्म वेदज्ञ विद्वान् द्वारा आहुति दिए गए दो प्रकार की अग्नि।
'ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ'
अ. १३.१.४९

ब्रह्मी– ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली वेदवाणी।
'अभि ब्रह्मीरनूषत'
ऋ. ९.३३.५; साम. २.२२०

ब्रह्मौदन– (१) ब्राह्मणशक्ति।
'ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः'
अ. ११.१.३
(२) ब्रह्मरूप शक्ति।
'ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि'
अ. ४.३५.७

बाकुर- (१) तेजस्वी, प्रकाशमान सूर्य, (२) सूर्यवत् प्रकाशमान
'धमन्ति बाकुरं दृतिम्'
ऋ. ९.१.८, जै.ब्रा. २.३.९१

बाढ - बह् + घञ् = बाढ। (१) गुरुद्वारा दिए और शिष्य द्वारा प्राप्त किए जाते समय।
'बाढे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती'
ऋ. १.१८१.७
(२) प्रशस्त बल - दया.।
(३) उत्तम कर्म-ज.दे.श.। दे. 'बाढ़ सृत्वा' 'विसृष्टराति'

बाढ सृत्वा- (१) उत्तम कर्मों का करने वाला, (२) प्रशस्त बल से चलने वाला-दया.। (प्रशस्त वलेन सरति)।

बाध् - बाधा, रुकावट, रोकना
'भराम्याङ्कूषं बाधे सुवृक्ति'
ऋ. १.९१.२, अ. २०.३५.२.
मैं शत्रुओं को ताड़ना करने और रोकने के लिए (आङ्कूषं बाधे) उत्तम रीति से जाने वाले या शत्रु का वर्जन करने वाले यान आदि वाहन और स्तुति योग्य मान और आदर पद को प्रदान करूँ।

बाधित- पीड़ित, खण्डित वंश वाला।
'ते वायवे मनवे बाधिताय'
ऋ. ७.९१.१; मै.सं. ४.१४.२: २१६.१२.

बार्हत- शक्तिशाली पुरुष।
'बार्हतैः सोम रक्षितः'
ऋ. १०.८५.४; अ. १४.१.५

बार्हत् - (१) बृहती अर्थात् वेद वाणी का ज्ञाता विद्वान् (२) वेद और ब्रह्म का उपासक
'बार्हतैः सोम रक्षितः'
ऋ. १०.८५.४, अ. १४.१.५.

बार्हत्सामा- जाया, स्त्री।
'वि जिहीष्व बार्हत्सामे'
अ. ५.२५.९

बार्हस्पत्य - (१) बृहत् महान् लोकों का स्वामी -परमेश्वर,
(२) बृहस्पति का पुत्र ऋषभ।
'बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तु मातान्'
अ. ९.४.१.

बाल - (१) बालक, बच्चा। बालो बलवर्ती भर्तव्यो भवति (बालक दूसरे के बल से भर्तव्य अर्थात् पालनीय होता है)।
(२) अम्बा अस्मै अलं भवति (बालक के लिए अम्बा ही पर्याप्त है)।
(३) अम्बा अस्मै बलं भवति (अम्बा ही बालक का बल है)। (४) बालो वा प्रतिषेधः व्यवहितः (अबल से ही बल हो गया)।(५) औषधि,
'बालेभ्यः शफेभ्यः
रूपायाघ्न्ये ते नमः'
अ. १०.१०.१

बाल् - (१) वर्षा का शब्द।
'वर्षेणोक्षन्तु बालिति'

बाष्कल- ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक।
अ. १८.२.२२

बाह्वङ्क, बाहुवङ्क- (१) बाहु के समान रूप वाला अस्त्र।
(२) सायण के अनुसार बाहुवंक पाठ है जिसका अर्थ बाहुओं को बांधने वाला है।
'उरुग्राहेर्बाह्वङ्कैः'
अ. ११.९.१२

बाहु- पु.। (१) हाथ, बांह।
'उप बर्बृहि वृषभाय बाहुम्'
ऋ. १०.१०.१०; अ. १८.१.११; नि. ४.२०
'अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुम्'
ऋ. ६.७५.१४; वाज.सं. २९.५१; तै.सं. ४.६.६.५; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.४; का.सं. (अश्व.) ६.१; आश्व.गृ.सू. ३.१२.११; नि. ९.१५.
हे हाथ में बांधे जाने वाला हस्तघ्न, तू प्रकोष्ठ में चारों तरफ इसी प्रकार लिपटा हुआ है जैसे सर्प अपने शरीर से अपने को लपेट देता है।

बाहुक्षद् - (१) बाहु से नाश करने वाला (२) बाधित या पीड़ित करने वाले साधनों से दूसरों का नाश करने वाला।
'बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान्'
ऋ. १०.२७.६

बाहुच्युता- परमेश्वर की बाहुओं से प्रेरित की हुई पृथ्वी।
'बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि'
अ. १८.३.२५-२८; ३०-३५

बाहुजूत- बाहुबलशाली।
'युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतः'
ऋ. ५.५८.४

बाहुता- दो बाहु
'ता बाहुता न दंसना रथर्यतः'
ऋ. ८.१०१.२

बाहुमान् - बांधने, पीड़ा करने में पूरा सामर्थ्यवान्
'प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान्'
अ. १.७.४

बाहुवृक्तः- बाहुबल से छेदन भेदन करने में समर्थ ।
'बाहुवृक्तः श्रुतवित् तर्यो वः सचा'
ऋ. ५.४४.१२

बाहुशर्धी- (१) बाहुबल से शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्धी'
ऋ. १०.१०३.३; अ. १९.१३.४; साम. २.१२०१; वाज.सं. १७.३५; तै.सं. ४.६.४.१; मै.सं. २.१०.४: १३५.१४; का.सं. १८.५.

बाह्वोजाः- बाहुबल वाला ।
'इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसः'
ऋ. १.१३५.९

ब्राह्म- ब्रह्म सम्बन्धी ।
'रुचं ब्राह्मं जनयन्तः'
वाज.सं. ३१.२१; तै.आ. ३.१३.२

ब्राह्मण- (१) विष चिकित्सा के लिए एक औषधि । ब्राह्मणी ब्राह्मण कन्द गृष्टि नामक ओषधि है जो विष, पित्त और कफ को दूर करने वाला है । विष्वक् सेना वाराही, कौमारी, ब्रह्मपत्री, त्रिनेत्र और अमृत आदि इसी के नाम हैं । राज निघण्टु में लिखा है-वाराही तिक्त कटुका विषपित्तकफा पहा कुष्ट मेघ कृमिहरा वृष्या वल्या रसायनी
'ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमः'
अ. ४.६.१.
(२) ब्रह्म और वेद का ज्ञाता ब्राह्मण ।
'ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः'
ऋ. ६.७५.१०; वाज.सं. २९.४७; तै.सं. ४.६.६.३; मै.सं. ३.१६.३ : १८६.१५; का.सं. (अश्व.) ६.१.

ब्राह्मि- ब्रह्म अथवा वेद द्वारा प्रतिपादित ।
'नमो रुचाय ब्राह्मये'
वाज.सं. ३१.२०; तै.आ. ३.१३.२.

ब्राह्मणाः- (१) सदा बोलने से समर्थ मेढक का विशेषण ।
'संवत्सरं शशयाना
ब्राह्मणा व्रतचारिणः'
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६.
एक वर्ष तक सुप्त या तपस्या करते हुए (शशयाना) बोलने में समर्थ होने पर भी (ब्राह्मणाः) बोली पर संयम रखने वाले (व्रतचारिणाः) मेढक....
(२) होता, (३) ब्रह्मविद् (४) ब्राह्मण की जाति ।

बिठ - भी (भयार्थक) + ठ = भीठ = विठ । अर्थ है । (१) अन्तरिक्ष , (२) गुण

बिन्दुः - वीर्य
'हिरण्ययो बिन्दुः'
अ. ९.१.२१

बिभर्षि - भृ (भरण करना, धारण करना के म.पु.ए.व. का रूप) अर्थ धारण करती है ।
'खिद्र बिभर्षि पृथिवि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२; १८१.१ का.सं. १०.१.२. आप मं. पा. २.१८.९, नि. ११.३७
हे विद्युत् ! तू मेघों को छेदने वाला बल धारण करती है ।

बिभ्यत् - डरता हुआ ।
ऋणा वा बिभ्यद्धनमिच्छमानः
अन्येषामस्तमुप नक्त मेति'
ऋ. १०.३४.१
ऋणग्रस्त जुआड़ी धन की इच्छा से दूसरों को घर रात में चोरी के लिए जाता है ।

बिभ्रत् - धारण करता हुआ ।

बिभ्रती- धारण करती हुई ।
'आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०
जलों को धारण करती हुई ।

बिभीवान्- भयकारक साधन वाला ।
'आवर्तो न शश्रवाणो बिभीवान्'
ऋ. १०. १०५.३

बिलम् - (१) खेत की हराई ।
'यवः पक्वः परो बिलम्'
अ. २०.१२७.१०

बिल्म - (१) प्रदीप्त साधन (२) चीरने योग्य काष्ठ ।
'सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैः'

ऋ. २.३५.१२
(३) बेल वृक्ष,
(४) शत्रु भेदन में समर्थ ।
'महान् वै भद्रो बिल्वः '
अ. २०.१३६.१५; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.८

बिल – (१) घर, लैटिन में Villa
'त्सरन् विषक्तं बिल आससाद '
अ. १२.३.१३.
(२) (न) मर्म, (३) सूक्ष्म भेद
'बिलं विष्यामि मायया '
अ. १९.६८.१

बिष्कला– विस (प्रेरणा अर्थ में) + कला । (१) गर्भ या गर्भ सदृश बालक (२) बालक को बाहर फेंकने वाली माता ।
'अव त्वं बिष्कले सृज '
अ. १.११.३

बिस– कमल ।
बिसं मृणालमब्जादि–अमरकोष
'नाण्डीकं जायते बिसम् '
अ. ५.१७.१६

बिसखा– बिसं खनति इति बिसखा (कमल को खनने वाला) ।
बिस + खन् + विट् = बिसखा
'जनसन खन क्रमगमो विट् '
पा. ३.२.६७
से विट् और 'विटचनाः' से आत्व
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः '
ऋ. ६.६१.२, मै.सं. ४.१४.७ : २२६.९, का.सं. ४.१६, तै.ब्रा. २. ८.२.८, नि. २.२४.
यह सरस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से (तविषेभिः शुष्मेभि ऊर्मिभिः) पहाड़ों की चोटी को कमल खनने वालों की तरह (बिसखा इव) काटती है (अरुजत्) ।

बीजः – बीज ।
'कृते योनौ वपतेह बीजम् '
ऋ. १०.१०१.३; अ. ३.१७.२; वाज.सं. १२.६८; तै.सं. ४.२.५.५; मै.सं. २.७.१२: ९१.१५; का.सं. १६.१२,श.ब्रा. ७.२.२.५.
जोतने के बाद खेत में बीज बोओ ।

बीभत्सा – बीभत्स क्रिया ।
'बीभत्साये पौल्कसम् '
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.४.

बीभत्सुः – (१) भोगविलासादि में ग्लानि करने वाला साधक ।
'बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुः '
ऋ. १०.१२४.९

बीभत्सुः – (१) बन्धन चाहती हुई स्त्री (२) पृथिवी, (३) प्रकृति
सा बीभत्सुर्गभरसा निविद्धा '
ऋ. १.१६४.८, अ. ९.९.८.

बीरिटः– भियो वा भासो वा तति (भय या भास् –प्रकाश जहां तना हुआ है वह अन्तरिक्ष) ।
'बीरिटमन्तरिक्षम् '
भीः अस्मिन् तन्यते इति भीतननम्
(इस में भय तना हुआ है । अतः यह भीतनन है) भीतनन से बीरिट हुआ है । निरालम्ब होने से सभी आकाश से डरते हैं ।
'नक्षत्रादीनां भासः अत्रतन्यते
तत् एतत् भास्तननम्' (नक्षत्रादिकों का प्रकाश इसमें रहता है अतः यह भास्तनन है । 'भास्तनन' से ही 'बीरिट' हो गया है ।
'आ विश्पतीव बीरिट इयाते '
ऋ. ७.३९.२, वाज.सं. ३३.३४, नि. ५.२८.
अन्तरिक्ष में (बीरिटे) प्रजाजनों के पालक एवं रक्षक की तरह (विश्पती इव) वायु और आदित्य आते हैं (आ इयाते) ।

बुद्बुदयाशुः– जल के बुलबुले के समान नष्ट हो जाने वाला ।
'सर्वे बुद्बुदयाशवः '
ऋ. १०.१५५.४; अ. २०.१३७.१

बुध्न – (१) बध् + नक् = बुध्न । बद्धाः अस्मिन् धृता आप इति बध्नः अन्तरिक्षम् । (इस में जल बंधे रहते हैं अतः यह अन्तरिक्ष है) ।
(२) बन्धन, (३) शरीर । शरीर में भी प्राण बंधे रहते हैं । (४) शिर – इसमें प्राण या ज्ञानेन्द्रिय बंधें रहते हैं ।
आधुनिक अर्थ – (१) नौका, (२) बर्तन का पेन्दा, (३) पेड़ की जड़, (४) निम्नतम भाग, (५) शिव का एक विशेषण । बुध्न्य भी शिव का विशेषण है । (६) बांधने वाला केन्द्र
'नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषाम् '
ऋ. १.२४.७
इन सबों को बांधने वाला केन्द्र ऊपर ही है ।

बुध्न्य – (१) बुध्ने भवः बुध्न्यः । बुध्न + यत् = बुध्न्य । बुध्न का अर्थ अन्तरिक्ष है । अन्तरिक्ष में निवास करने वाला मेघ ।
(बुध्न्मन्तरिक्षम् तन्निवासात्)

बुध्न्यवसु– (१) अन्तरिक्ष में छाया अन्धकार (२) भृत्यादि को कार्य में बांधने वाला ऐश्वर्य
'आ देवो ददे बुध्न्या वसूनि'
ऋ. ७.६.७.

बुध्न्य– (१)जीवों में स्थित मेघ, (२) सबके परम मूल में स्थिति सर्वाश्रय परमेश्वर ।
'उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः'
ऋ. १.१८६.५

बुध्न्या– आधार भूत आकाश में प्रकट होने वाली ।
' स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः '
अ. ४.१.१; ५.६.१; साम. १.३२१; वाज.सं. १३.३; मै.सं. २.७. १५,९६.१२ का.सं. १६.१५; ३८.१४, श.ब्रा. ७.४.१.१४; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.५.

बुध्न – बांधना, बांध ।
'बुध्ने नदीनां रजस्सु सीदन्'
ऋ. ७.३४.१६, नि. १०.४१
नदियों या जलों के बांधने के लिए ।
– (२) मूल प्रकृति ।
'पुरस्ताद् बुध्न आततः'
ऋ. १०.१३५.६
(३) अन्तरिक्ष ।
'अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे' .
ऋ. ७.३४.१६; नि. १०.४४
हे स्तोता, जलजात इन्द्र को स्त्रोतों से तू स्तुति करता है ।
आधुनिक अर्थ–नौका, बर्तन का पेन्दा, पेड़ की जड़, निम्नतम भाग, शिव का एक विशेषण ।

बुधानः– बुध (ण्यन्त) के लट् में कानच् प्रत्यय करने से 'बुधान' हुआ है । अर्थ है– बोधित करता हुआ ।
'कर्णा बुधानः शुचमान आयोः'
ऋ. ४.२३.८, नि. १०.४१.

बुन्द – बुन्द इषुर्भवति, बुन्दो वा भिन्दोवा भयदो वा, भासमानो द्रवति इति वा
अर्थ – (१) बाण,
(२) दुष्टों को भेदन करने वाला आयुध,
(३) भयप्रद सैन्य
'आ बुन्दं वृत्रहा ददे'
ऋ. ८.४५.४, साम. १.२१६
बुन्द शक इषु का वाचक है । यह या तो 'बुन्द' से या 'भिन्द' से या भयद से या भासमान' से या 'द्रवत्' से हुआ है ।
'साधुर्बुन्दो हिरण्ययः'
ऋ. ८.७७.११, नि. ६.३३.
बाण सोने का बना और शत्रुओं का साधक है (साधुः)
(४) वज्र ।
'इन्द्रो बुन्दं स्वाततम्'
ऋ. ८.७७.६, नि. ६.३४.
इन्द्र ने अच्छी तरह से खींचे वज्र को चलाया (स्वाततम् बुन्दम् निराविध्यत्) ।
देवराज के अनुसार 'बुन्द' वज्र का वाचक है । बृङ् (संभजन) + दन् = बुन्द (धातु का बुन हो जाता है ।) भिद् + दन् = बुन्द । बुन्द भय होता है । बुन्द छूटने पर चमकता है । बुन्द धनुष से मानो द्रवता है । इन अनेक अर्थों में बुन्द' की व्युत्पत्ति की गई है । भिदिर' + घञ् = भिन्द = बुन्द, भास् + द्रव = भिन्द – बुन्द्र भास् + द्रव = बुन्द ।

बुसम् – जल ।
'आविः स्वः कृणुते गृहते बुसम्'
ऋ. १०.२७.२४; नि. ५.१९
वह आदित्य सदा जगत् को प्रकाशित करता है (स्वः आदिः कुरुते) तथा अपनी रश्मियों से जल को छिपाता है ।

बुस्– ब्रू (शब्द कर्मक) या 'भ्रस्त + स = बुस । अर्थ है उदक, जल । जल के बिना मुख सूख जाने से मनुष्य बोल नहीं सकता है । जल गिरने के समय शब्द करता है ।
अथवा – भ्रंस + अच् = बुस
बुस अर्थात् उदक मेघ से गिरता है । या आदित्य बुस को वर्षाते हुए मेघ से गिराते हैं ।

ब्रुवाणः– बोलता हुआ । 'ब्रू' के लट् में 'शानच्' प्रत्यय कर 'ब्रुवाण' बना है ।

बृबुः– (१) संशयोच्छेदक विद्वान् (२) काट काट कर नए पदार्थ बनाने वाला शिल्पी (३) शत्रुओं का उच्छेदक वीर ।
'अधिबृबुः पणीनाम्'
ऋ. ६.४५.३१;

बृबूकम् – जल ।
'द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम्'
ऋ. १०.२७.२३; नि. २.२२.
आदित्य और वायु ये दो औषधियों के पोषक रस को (पुरीषम्) एवं जल को (बृबूकम्) इस पृथ्वी से आदित्य मण्डल में ले जाते हैं । (वहतः) ।

बृहत् – (१) विविध व्यवहारों का नियमन (२) बड़े राष्ट्रका प्रबन्ध, (३) यह लोक
बृहच्छन्दः
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७, १११.१६, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.८.२.५.

बृबूक – ब्रू (शब्द करना) + ऊक् = बृबूक । ब्रू का निपातन से ' बृब्रू' हो गया है । अथवा – भ्रंस् + ऊक् = बृबूक् (निपातन से) । अर्थ है जल । जल गिरने के समय शब्द करता है या जल मेघ से गिरता है ।

बृबदुक्थ – (१) बृबत् + उक्थ = बृबदुक्थ ।
'बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये
ऋ. ८.३२.१०, साम. १.२१७, नि. ६.१७.
(२) वच् + कथन = उक्थ । बृबत् का महत् अर्थ में निपातन हुआ है और ह का व हो गया है । बृहत् महत् उक्थं शस्त्रं साम विशेषः यस्य स्तुतौ स बृहदुक्थः (जिसकी स्तुति की ऋचा बड़ी है) ।
(३) अथवा – वक्तव्यम् उक्थम् अस्मै (इस के लिये स्तोत्र कहना चाहिए) । ब्रू + अति = बृबत्, बृबत् + उक्थ = बृबदुक्थ
(४) विद्वान् –दया.
(५) महदुक्थ (बड़ी ऋचा) या जिस के लिए ऋचा कही जाय वह बृबदुक्था है । 'वक्तव्यम् अस्मै उक्थम्'
'बृबदुक्थं हवामहे
सृप्रकरस्नमूतये ।
साधु कृण्वन्तमवसे'
ऋ. ८.३२.१०
हम स्तुत्य या बृहदुक्थ वाले इन्द्र का आह्वान् करते हैं । हम रक्षा के लिए दीर्घ बाहु पसारे हुए (सृप्र करस्नम्) पुनः लोकरक्षा के लिए कल्याण कारी (अवसे साधु कृण्वन्तम्) या अन्न के निमित्त (अवसे) स्तुत्य या बृहदुक्थ वाले इन्द्र को स्वामी दयानन्द के अनुसार विद्वान् को (बृहदुक्थम्) आह्वान् करते हैं ।

बृहत् – बह् + अति = बृहत् । सब ओर बढ़ा हुआ (परिवृढं भवति) सर्वतः व्याप्तम् (सर्वत्र व्याप्त) । अर्थ – (१) महत् , ऊर्जित, प्रभूत, (२) ब्रह्म ब्रह्म सर्वत्रव्याप्त है । 'बृहत् इति महत् नाम धेमम्' '(बृहत् महत् का नाम है) (३) महान् , बड़ा ।
'कवि शस्तो बृहता भानुनागा
हव्या जुषस्व मेधिर'
ऋ. ३.२१.४, मै.सं. ४.१३.५; २०४.१५; का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.१२.१५; तै.ब्रा. ३.६.७.२.
हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवान् अग्ने तू बृहत् प्रकाश के साथ आकर हव्यों का भोग कर ।
(२) बृहत् नामक साम ।
'इन्द्रामिद् गाथिनो बृहत्'
ऋ. १.७.१; अ. २०.३८.४; ४७. ४; ७०.७, साम. १.१९८;२. १४६, तै. सं. १.६.१२.२. मै.सं. २.१३.६, १५४.१५, का.सं. ८.१६; ३९,१२.
हे उद्गाताओ (गाथिनः), तुम बृहत् नामक साम से (बृहत्) इन्द्र का ही अनुष्ठान करो ।

बृहत् क्षय – (१) बड़ा भारी निवास योग्य सभा भवन, (२) राष्ट्र
'क्षयं बृहन्तं परिभूषति द्युभिः
ऋ. ३.३.२

बृहत् गिरयः – (१) गुणों में बड़े, (२) पर्वत या मेघ के समान सुखों की धारा बहाने वाले वायुगण
'बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः'
ऋ. ५.५७.८; ५८.८

बृहच्छन्दाः – बड़ी लम्बी चौड़ी छतों से ढंकी शाला ।
'धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः'
अ. ३.१२.३

बृहच्छवस् – (१) महायशस्वी,
(२) महद्धवि ।

बृहच्छेप – प्रदीप्ताङ्ग ।
'बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार'
अ. ११.५.१२

बृहत् – (१) पैष्ठय, (२) द्यौ, (३) स्वर्ग, (४) प्राण, (५) क्षत्र, (६) अहः
'तं बृहच्च रथन्तरं च आदित्याश्च

विश्वे च देवा अनुव्यचलन्'
अ. १५.२.२.
(७) महान् तत्व
'बृहद् बृहत्या निर्मितम्'
अ. ८.९.४

बृहत्केतुः – (१) बहुत प्रकाश वाला या बड़ी धूमध्वजा वाला अग्नि, (२) बड़े ज्ञान या ध्वजा वाला ।
'बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतम्'
ऋ. ५.८.२.

बृहत् गर्त – (१) बड़ा भारी सूर्य, (२) मेघ, (३) बड़ा भारी सभापति का पद, (४) महान् रथ
'बृहन्तं गर्तमाशाते'
ऋ. ५.६८.५; साम. २.८१७

बृहत् पलाश – (१) बड़े ज्ञानसम्पन्न पुरुषों सें सम्पन्न राजशक्ति (२) बड़े पत्तों वाली
'बृहत्पलाशे सुभगे'
अ. ६.३०.३

बृहत् सत्य – महान् सत्य ।
'सत्यं बृहद् ऋतुमुग्रं दीक्षा तपः'
अ. १२.१.१; मै.सं. ४.१४.११: २३३.८

बृहत्सामा – बड़ा विशाल, आदित्य ब्रह्मचारी ।
'ये बृहत्सामानमाङ्गिरसम्'
अ. ५.१९.२

बृहत्सुम्नः – बड़े भारी सुख एवं आसन का स्वामी–सूर्य परमेश्वर
'बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनः'
ऋ. ४.५३.६

बृहती – (१) बड़ी (२) दूर रहती हुई रात्रि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त
'दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठसे'
ऋ. खि. १०.१२७.१; अ. १९.४७.१; वाज.सं. ३४.३२; नि. ९.२९
हे रात्रि, दूर रहती हुई भी तू स्वर्ग के भवनों को भी अन्धकार से व्याप्त करती है ।

बृहती – (१) वाणी ।
'पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत'
ऋ. ८.५२.९; अ. २०.११९.१; साम. २.१०२७
(२) बृहद् स्थूल प्रकृति ।
'बृहत् बृहत्या निर्मितम्'
अ. ८.९.४

बृहतीआपः – (१) शक्तिशाली प्रकृति की व्यापक तन्मात्राएं–सूक्ष्म कारणावयव,
(२) जलवत् । राष्ट्र में व्यापक प्राप्त प्रजाएं ।
'आपो हयद् बृहतीर्विश्मायन्'
ऋ. १०.१२१.७; वाज.सं. २७.२५; वाज.सं. (का.) २९.३४

बृहतीछन्दः – (१) बृहती छन्द (२) ३६ वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालक ।
'बृहती छन्द इन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.१५; मै.सं. ३.११.११:१५८.५; का.सं. ३८.१०; तै.ब्रा. २.६.१८.२

बृहतीदिक् – सर्वोपरि दिशा, विशाल ऊर्ध्वा दिशा, बृहती दिशा
अधि पत्न्यसि बृहती दिक्
वाज.सं. १४.१३; अ. १५.१४; तै.सं. ४.३.६.२, ४.२.२.मै.सं. २.८.३:१०८.९; २.८.९: ११४.६; का.सं. १७.३; ८, २०.११; श.ब्रा. ८.३.१.१४; ६.१.९
'स बृहतीं दिशमनुव्यचलत्'
अ. १५.१ (६) १० ।

बृहदर्की – (१) बड़ी स्तुति के योग्य परम अर्धनाभि ब्रह्मशक्ति, (२) बृहत् अर्क वाली ब्रह्मतेजो रूपा, तुरीय, पाद, अमात्र, चतुर्थपाद शिव, परमशक्ति. आदि नाम से भी इसे पुकारते हैं ।

बृहद्रावा – (१) विशाल गति वाला, (२) बड़ो को भी प्राप्त होने वाला, (३) ऐसा स्वप्न, जिसमें रोगी बहुत बोले ।
'बृहद्रावासु रम्योऽधिदेवान्'
अ. १९.५६.३

बृहद्भा – (१) बड़े भारी तेज से युक्त वैश्वानर सूर्य (२) ज्ञान प्रकाश से युक्त ।
'कथा दाशेमाग्नये बृहद् भाः'
ऋ. ४.५.१

बृहद्भानुः – (१) बड़े तेजों और दीप्तियों से अति तेजस्वी परमेश्वर (२) अग्नि ।
'उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः'
ऋ. १.२७.१२; साम. २.१०१५

बृहदुक्षा – बड़े भारी राज्य कार्य को उठाने में समर्थ ।
'दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः'
ऋ. १०.६९.७

बृहद्दिव – बृहत् अद्योतमानश्च बृहद्दिवः (बड़ा चमकता हुआ) । विद्युत् सहित उदक समूह अर्थात् बिजली से चमकता हुआ मेघ'

बृहद्रथ– (१) विशाल यान – दया ।
'यत्रा रथस्य बृहतो निधानम्'
ऋ. ३.५३.५,६,
(२) बड़े रथ या रमण साधन वाला (३) बड़े रथ से सेना से बलवान्
'अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथम्'
ऋ. १.३६.१८
(४) बड़ा भारी वेग ।
'प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रथे'
ऋ. १.५७.१; अ. २०.१५.१; कौ.ब्रा. ३०.९;
(२) बहुत धन वाला

बृहद्वय – सबसे बड़ा बल ।
'कि स्विदासीत् बृहद्वयः'
वाज.सं. २३.११,५३, तै.सं. ७.४.१८.१; मै.सं. ३.१२.९: १६६.४; का.सं. (अश्व.) ४.७.श.ब्रा. १३.२.६.१५

बृहद्दिवः – (१) सूर्य वत् बड़े भारी तेज को धारण करने वाला, (२) सूर्य
'आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणः'
ऋ. ५.४३.१३
(३) बड़ा भारी ज्ञान, और प्रकाश,
(४) बड़ी कामना वाला ।

बृहद्दिवा – (१) बड़ी भारी कामना से युक्त (२) संसार रचने के प्रबल संकल्प से युक्त, (३) अति तेजस्वी, (४) बड़ा क्रियावान् परमेश्वर
'इडाभगो बृहद्दिवोत रोदसी'
ऋ. २.३१.४

बृहद्रेणुः – बहुत से हिंसक वीर पुरुषों का स्वामी ।
'बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणाम्
एकः कृष्टीनामभवत् सहावा'
ऋ. ६.१८.२; का.सं. ८.१७

बृहन्तित्रीणि – विशाल तीन गुण–सत्व, रज और तम्
'यानि त्रीणि बृहन्ति
येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम्'
अ. ८.९.३

बृहती – बृहत् + ङीष् = बृहती (बडी), द्वि.व.।
(१) उषासानक्ता का विशेषण
(२) अपने गुणों से महान् उषा और रात्रि
(३) चिरकाल तक रहने वाली उषा और रात्रि ।
'दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे'
ऋ. १०.११०.६; अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३: २०२.६; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.११.
द्युलोक से उत्पन्न, परस्पर सम्मिश्र अपने गुणों से महती तथा सुन्दर शोभा से युक्त उषा और रात्रि, (३) बृहती नामक छन्द । बृहती परि वर्हणात् । अनुष्टुप् छन्द से यह बृहती चार अक्षरों से बड़ी रहती है अतः यह बृहती है। अनुष्टुप् में ८–८ अक्षरों के चार चरण और बृहती के चतुर्थ चरण में चार अधिक अक्षर के रहने से ३६ अक्षर हो जाते हैं ।

बृहन्ता– (द्वि.व.) इन्द्र के बाहुओं का विशेषण । अर्थ बड़े–बड़े लम्बायमान ।
'ऋष्वा ते इन्द्र स्थविरस्य बाहू
उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता'
ऋ. ६.४७.८; तै.ब्रा. २.७.१३.४.
हे इन्द्र ! हम तुझ महान् वृद्ध या ज्ञानवयोवृद्ध के दर्शनीय, लम्बायमान, रक्षक या अश्रय देने वाले बाहुओं की सेवा करें या उन्हें प्राप्त करें ।

बृहस्पतिः – बृहतः पाता वा पालयिता वा (इस महान् जगत् का रक्षक या महान् उदधि या अन्य बृहत् जलाशयों से जल लेकर पान करने वाला जल शोषक) । बृहत + पतिः = बृहस्पतिः । 'पारस्पकर प्रभृतीनि च संज्ञायाम्' (पा. ६.१.१५७) तथा 'तत् बृहतोः कर पत्योः चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च', से सुट् और त् का लोप) ।
पा (पीना या पालन करना) + डति = पति । (डित् प्रत्यय के कारण 'पा' के 'आ' का लोप)
अर्थ– (१) बृहस्पति देवता –सा. (२) वेदपति परमेश्वर –दया. ।
'बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत्'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२.
(३) वेदज्ञ विद्वान् –दया. ।
'अनर्वाणं वृषणं मन्द्रजिह्वम्
बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः'
ऋ. १.१९०.१, नि. ६.२३.
(४) सूर्य ।
'बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि'

ऋ. १०.१६७.३, नि. ११.१२.
और सूर्य (बृहस्पतेः) तथा चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा के आश्रय में रहकर (अनुमत्याः शर्मणि)
आधुनिक अर्थ – (१) देवताओं का गुरु
(२) एक ग्रह,
(३) बृहस्पति आचार्य
(४) इन्द्र

बृहस्पति – (१) वाणी का पालक आत्मा
'बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृदयः'
अ. १६.३.५
(२) बृहस्पति ग्रह
ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल के ५० वें सूक्त में गुरु के सम्बन्ध में स्वतन्त्र कल्पना है । तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी
'बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः
तिष्यं नक्षत्रमपि संबभूव'
तै.ब्रा. ३.१.१

बृहस्पति आत्मा – वाणी का पालक आत्मा ।
'बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृदयः'
अ. १६.३.५

बृहस्पति प्रसूता – (१) बृहस्पति के प्रसूत ओषधि, (२) विद्वान् व्यक्ति से दी गई दवा ।
'बृहस्पति प्रसूता अस्यै संदत्त वीर्यम्'
ऋ. १०.९७.१९

बृहस्पति पुरोहिताः – (१) जिसमें पुरोहित बृहस्पति हो, (२) वेदज्ञ विद्वान् को अपना महामात्य पुरोहित बनाने वाले ।
'बृहस्पति पुरोहिता देवस्य सवितुः सवे'
वाज. सं २०.११

बृहस्पतिसुतः – बृहस्पति अर्थात् बड़े विद्वान् का पुत्र । पति को उद्देश्य कर कहा गया है ।
बृहस्पतिसुतस्य देव सोम ते
वाज.सं. ८.९

बेकनाट– द्वि + एक = द्वेक = बेक । बेकेन नायति इति बेकनाटः
अर्थ – (१) बेक कहकर ब्याज पर रुपया चलाने वाला । द्वि शब्देन एक शब्देन च नाटयति इति बेकनाटः (जो दो एक दो एक कहकर मानों नाटक करता है) द्वि का बे और एक का क मिलाकर बेक बन गया । अर्थ है– कुसीदी 'बेकनाटाः खलु कुसीदिनो भवन्ति द्विगुण कारिणो वा द्विगुण दायिनो वा द्विगुणं कामयन्त इति वा ।' बेकनाट ब्याजजीवी हैं जो सदा एक का दो करने के फेर में ही रहते हैं । नट् + घञ् = नाट । द्वेकयोः नाटा तद्वान् (दो एक का नाटक करने वाला) ।
(लैटिन में द्वि का bi हो गया है अथवा–द्विगुण का 'वि' और 'कृ' या 'क' का 'क' लेकर 'विक' बना उसके आगे नरवाची नाट शब्द रख कर बेकनाट बना ।
ब्याज लेने वाला सूदखोर ।
'इन्द्रो विश्वान् बेकनाटां अहर्दृशे'
ऋ. ८.६६.१०, नि. ६.२६.
इन्द्र समस्त सूदखोरों तथा व्यापारियों को कर्म से ही अभिभूत करते हैं ।

बैन्द – लाभ उठाने वाला बीन नामक जाति जो तालों से मछली आदि फंसाते हैं ।
'वैशन्ताभ्यो बैन्दम्'
वाज.सं. ३०.१६

बोध – ज्ञान का बोध कराने वाल गुरु ।
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षताम्'
अ. ८.१.१३.

बोधतु – जाने ।
'श्रृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना
ऋ. २.३२.४, अ. ७.४८.१, तै.सं. ३.३.११.५, मै.सं. ४.१२.६: १९४.१६, का.सं. १३.१६; साम.मं.ब्रा. १५.३, आप.मं.पा. २.११.१०, नि. ११.३१
सुमना राका हमारी प्रार्थना सुने और हमारा अभिप्राय स्वयं सुने ।

बोधयन्ती – जानती हुई (२) उषा का विशेषण ।
'अघसन्न ससतो बोधयन्ती'
ऋ. १.१२४.४; नि. ४.१६
गृहस्वामिनी की तरह सोतों को जगाती हुई (उषा) ।

बोधयिता – बोध कराने वाला
गुरु, आचार्य ।

बोधिन्मनसा – ज्ञानयुक्त चित्तवाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष ।
'बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता'
ऋ. ५.७५.५

बोधिन्मना – बोधित् + मनाः । ज्ञान से युक्त चित्तवाला ।
'बोधिन्मना इदस्तु नः'
ऋ. ८.९३.१८

भ

भक्त – (१) परम भजन करने योग्य परमेश्वर, (२) भजन करने वाला भक्त (३) बंटा हुआ, ।

भक्षः– भक्षण । भक्ष + अच् ।

'सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः '

ऋ. १०.३४.१, नि. ९.८.

भक्षत– (१) विभजन्ते (बांटते हैं) –सा. । भज् (भाग करना) का आर्ष– प्रयोग (२) विभक्षमानाः (विभाग करते हुए)–ज.दे.श.

यहां 'भक्षत' शब्द आख्यात् होकर नाम के रूप में प्रयुक्त हुआ है और 'सुपां सु लुक्' से जस् विभक्ति का लोप हो गया है । (३) भजो, भोगो,

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत

ऋ. ८.९९.३; अ. २०.५८.१, साम. १.२६७; २.६६९, वाज.सं. ३३.४१, नि. ६.८.

जैसे सूर्य में समाश्रित रश्मियाँ सूर्य में स्थित जलों का विभाग करती हैं उसी प्रकार हे मनुष्यो ! तुम इन्हें या परमात्मा के सभी दिए धनों का उपभोग करो ।

भक्षि – दे. ।

'राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह '

ऋ. ७.४१.२; अ. ३.१६.२; वाज.सं. ३४.३५; तै.ब्रा. २.८.९.८, आप. मं. पा. १.१४.२, नि. १२.१४.

जिस भगदेव से राजा भी मुझे धन दे– ऐसी प्रार्थना करते हैं ।

भक्षीमहि– हम भोगें ।

'इषिरेण ते मनसा सुतस्य
भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः '

ऋ. ८.४८.७, का.सं. १७.१९, नि. ४.७.

हम अभिसुत सोम रस को या सृष्ट जगत् को तेरे प्रति सर्वात्म भाव से उसी प्रकार भोग करें जैसे पैतृक सम्पत्ति का ।

भगः – भज् (सेवार्थक) + घञ् = भग । भज्यते सेव्यते भोगार्थिभिः (भोगार्थियों से सेवित होता है) । अर्थ है – (१) भग नामक देव ।

वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूडती ।'

ऋ. ४.३०.२४, नि. ६.३१.

पूषा इष्ट पदार्त दे, भग इष्ट पदार्थ दे और करूडती देव इष्ट पदार्थ दे ।

(२) धन, ऐश्वर्य, ।

'आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तम् '

ऋ. ३.३०.१९; तै.ब्रा. २.५.४.१.

हे इन्द्र ! हमें तू द्युतिमान धन दे । (३) आदित्य जिस का काल सूर्योदय से पूर्ववर्ती है ।

'श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम् '

ऋ. ७.३९.४, नि. ६.१३.

(४) ज्योति ।

'उदीरय पितरा जार आ भगम् '

ऋ. १०.११.६.

हे अग्नि ! जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी के रस के प्रति अपने को प्रेरित करता है वैसे ही तू अरणियों के प्रति या द्यौ और पृथिवी के प्रति प्रीति कर ।

जैसे अन्धकार का विनाशक सूर्य (भगः) द्यावा पृथिवी को ज्योति पहुंचाती है उसी प्रकार से विवाहित पुरुष ! तू माता पिता को सुख पहुंचा । (५) सौभाग्य, सौन्दर्य (६) स्त्री–योनि (७) धर्म । धर्म भजनीय अर्थात् सेवनीय है। (८) भजनीय अन्तरिक्ष, (९) भूमि का रस, (१०) ख, आकाश धर्म के अर्थ में –

'श्रद्धयाग्निः समिध्यते
श्रद्धया हूयते हविः
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि
वचस्या वेदयामसि '

ऋ. १०.१५१.१

श्रद्धा अर्थात् आस्तिकय वृद्धि से अग्नि अर्थात् गार्हयत्य अग्नि की पूजा की जाती है या उसे दीप्त किया जाता है । (श्रद्धया अग्निः समिध्यते); श्रद्धा से ही पुरोडाश आदि हवि अग्नि में प्रक्षिप्त किया जाता है । कहा भी है–

'ना श्रद् दधानस्य हविर्जुषन्ते देवाः '

कौ. सू. ७३.१८

भगधेय धर्म का प्रधान अंग शिर के सदृश यह श्रद्धा है । मूर्धा और मन्त्रगत वचन से ही (वचस्या) घोषित करता हूँ कि श्रद्धाहीन पुरुष के लिए धर्म नहीं है (वेदयामसि) ।

(१०) सूर्योदय से पूर्ववर्ती काल भग है । 'तस्य कालः प्राक् उत्सर्पणात्' । आदित्य के १२ नामों में भग एक है । भग को इसी से अन्धा कहते हैं; क्योंकि वह अनुदित सूर्य है । ब्राह्मण में इस का उल्लेख इस प्रकार है –

"प्रशस्ति ने इसे प्रकाश-रहित बताया । गोपथ ब्राह्मण में लिखा है:- तस्मादाहुः अन्धो वै भगः' भग प्रातः कालीन अन्धकार का अपहर्ता है । आधुनिक अर्थ - (१) आदित्य के १२ रूपों में एक, (२) आदित्य, (३) शिव का एक रूप, (४) सौभाग्य (५) सम्पत्ति, (६) ऐश्वर्य, (७) प्रसिद्धि (८) सौन्दर्य, (९)प्रेम, (१०) कामक्रीड़ा (११) स्त्रीयोनि , (१२) धर्म, (१३) प्रयत्न (१४) निष्कामता (१५) सुन्दर, (१६) बल, (१७) सर्वव्यापित्वः (१८) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र
(११) अदिति का पुत्र
'तस्याः अंशश्च भगश्चाजायेताम्'
तै.सं. १.१.९.२
'अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमा'
अ. ९.४.२.
(१२) सेवन करने योग्य अन्न
'उदेनं भगो अग्रभीत्'
अ. ८.१.२

भगत्ति - सेवनीय उत्तम ऐश्वर्य
'वहा भगत्ति मूतये'
ऋ. ९.६५.१७, साम. २.१८५.

भगभक्त - सेवनीय पदार्थों का यथा योग्य विभाग करने वाला
'भगभक्तस्य ते वयम्
उदशेम तवावसा'
ऋ. १.२४.५.
हे प्रभो ! ऐश्वर्यों के विभाग करने वाले तेरे ही हम रक्षण, पालन और ज्ञान-सामर्थ्य से उन्नत उत्कृष्ट पर को प्राप्त करें ।

भगवत्तम- सबसे श्रेष्ठ ऐश्वर्य-सम्पन्न भगवान्
'नृणां च भगवत्तमः'
अ. २.९.२

भगवती - भग् + वतुप् + ङीष् । ऐश्वर्यवती, (२) प्रभूत दूध देने वाली गौ, (३) प्रभूत जल देने वाली माध्यमिका वाक्
'सूयवसाद् भगवती हि भूया'
ऋ. १.१६४.४०; अ. ७.७३,११; ९.१०.२०; ऐ.ब्रा. १.२२..१३; ५.२७.६; ७.३.३, कौ.ब्रा. ८.७.

भगवान् - (१) सर्व ऐश्वर्यों का स्वामी प्रभु ।
'भग एव भगवाँ अस्तु देवाः'
ऋ. ७.४१.५, अ. ३.१६.५, वाज.सं. ३४.३८; तै.ब्रा. २.५.५.१; ८.९.८.
(२) ऐश्वर्यवान्, भग जैसे स्वामी वाला
'उतेदानीं भगवन्तः स्याम'
ऋ. ७.४१.४; अ. ३.१६.४; वाज.सं. ३४.३७, तै.ब्रा. २.८.९.८; आप.मं.पा. १.१४.४.

भगस्य स्वसा - (१) सूर्य की बहन उषा, सूर्य के समान उत्पन्न होने वाली, (२) सुख तथा सेवने योग्य ऐश्वर्यों को स्वयं प्राप्त करने या कराने वाली कुलवधू
'भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः'
उषः सूनृते प्रथमा जरस्व'
ऋ. १.१२३.५

भगी (भगिन्)- ऐश्वर्यवान्
तेन मा भगिनं कृणु'
ऋ. ६.१२९.२, ३.

भगेविता - ऐश्वर्य के बल पर रक्षा करने वाले
'भगेविता तुर्फरी फारिवारम्'
ऋ. १०.१०६.८

भङ्गुरावत् - (१) नगर गृहादि को तोड़ने वाला । (२) व्रतादि को नष्ट करने वाला
'हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः'
ऋ. ७.१०४.७
(३) विघ्नकारी पुरुष
विषेण भङ्गुरावतः
प्रति ष्म रक्षसो दह
ऋ. १०.८७.२३, अ. ८.३.२३.

भद्र - (१) भज् + रन् = भद्र (निपातन से सिद्ध) । भजनीयं भूतानाम्'
(प्राणियों का सेवनीय) ।
अभिद्रवणीयं भवति (अभिगमनीय है) । अर्थ है- कल्याणमय, कल्याण कारक ।
(२) अथवा भू + रम् के योग से भद्र बना है । भवत् रमयति इति वा - यस्य हि तत् भवति स रमते (जिससे कल्याण होता है वही रमता है) । भू + रम् + ड = भद्र (निपातन से)
(३) कल्याण रूप जो पुरुष हैं उसका भाजन वाला ही भद्र है (भाजन वत् वा) । कल्याण का पात्र । भाजनम् अस्य इति भाजन वत् भद्रम् तैः तद्वत् भवत् भद्रम् (पृषोदरादिवत्)
(४) भाजयिता, यथायोग्य ।
(५) भन्दनीय, स्तुत्य । भद्र + रन् = भद्र
'अपि भद्रे सौमनसे स्याम'
ऋ. ३.१.२१; ५९.४;६.४७.१३; १०.१४.६;,

१३१.७;, अ. ६.५५.३, ७. ९२.१; १८.१.५८, २०.१२५.७; वाज.सं. १९.५०;२०.५२.
आधुनिक अर्थ- (१) सुन्दर, (२) कल्याण प्रद, (३) सज्जन (४) प्रभाव, (५) दयालु (६) आनन्ददायक (७) स्तुत्य, (८) सौभाग्य (९) सुवर्ण, (१०) लौह, (११) बैल (१२) एक प्रकार का हस्ती, (१३) पाखण्डी, धूर्त (१४) शिव का एक नाम, (१५) मेरु पर्वत का एक नाम, (१६) एक प्रकार का कदम्ब ।

भद्रजानिः- (१) सुखकरी स्त्री वाला पुरुष, (२) सुखकरी पदार्थों को पैदा करने वाला
'मर्यासो भद्रजानयः '
ऋ. ५.६१.४

भद्रपाप- भला बुरा
'भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः '
अ. १२.१.४८

भद्रम् भद्रम् - अति सुखकरक
'भद्रं भद्रं न आ भर
इषमूर्जं शतक्रतो '
ऋ. ८.९३.२८; साम. १.१७३.

भद्रवाच्य - सुखकारी कार्य का उपदेश
'भद्रवाच्याय प्रेषितः '
वाज.सं. २१.६१

भद्रव्रातः- कल्याण कारी जन समूहों का नायक
'भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षाम् '
ऋ. १०.४७.५, मै.सं. ४.१४.८; २२७.१४.

भद्रश्रुत- कल्याणकारी शब्दों को सुनने वाला
'भद्रश्रुतौ कर्णौ '
अ. १६.२.४.

भद्रशोचिः - (१) कल्याण कारी कान्ति या तेज से सम्पन्न
'ऊर्जो नपाद्भद्रशोचे '
ऋ. ८.७१.३.
(२) कल्याणकारी तेज वाला-अग्नि
'वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे '
ऋ. ५.४.७
(३) सुखमय मार्ग का प्रकाशक
'वयं देव हविषा भद्रशोचे '
ऋ. ७.१४.२

भद्रहस्ता- द्वि.व.। (१) सर्व दुःखहारी शत्रु और दुराचारी और कष्टों के नाशक उपायों से युक्त स्त्री पुरुष, (२) दानादि से भद्र हस्ता स्त्री पुरुष
'तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी '
ऋ. १.१०९.४

भद्रा- (स्त्री) भद् + र + टाप् । कल्याण दायिनी
'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि '
ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०.
वचन में ही यह कल्याण दायिनी लक्ष्मी निवास करती है ।
'भद्रा इन्द्रस्य रातयः '
ऋ. ८.६२.१-६; ७-९.१०-१२,९९.४; अ. २०.५८.२, साम. २.६७०; तै. सं. ७.४.१५.१.
'देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम् '
ऋ. १.८९.२; वाज.सं. २५.१५; मै.सं. ४.१४.२; २१७.७; नि. १२. ३९.

भद्राह - भद्र + अह । मंगलदायक दिन
'भद्राहमस्मै प्रायच्छन् '
अ. ६.१२८.१

भन्दते- स्तौति (स्तुति करता है), बखान करता है ।
'पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः '
ऋ. ३.३.४, नि. ५.२.
वह बहुप्रिय (प्ररुप्रियः) कवि अपने तेजों से (धामभिः) वेद का बखान करता है (भन्दते) ।

भन्ददिष्टि- भन्दत् + इष्टि । कल्याणकारी दान, सत्संग आदि से युक्त
'तवसे भन्ददिष्ट ये '
ऋ. ५.८७.१

भन्दना - भन्द (स्तुति करना) + ल्युट् + टाप् = भन्दना । अर्थ है (१) स्तुति, भजन -
'स भन्दना उदियर्ति प्रजावती '
ऋ. ९.८६.४१, नि. ५.२.
वह यजमान स्तुतियों को करता या प्रेरित करता है ।
(२) कीर्ति
'उदानंश शवसा न भन्दना '
ऋ. ८.२४.१७; अ. २०.६४.५; साम. २.१०३५.

भन्दनायत् - (१) अपना कल्याण चाहने वाला, (२) स्तुतिशील पुरुष
'जहि शत्रूँ रभ्या भन्दनायतः '
ऋ. ९.८५.२

भन्दमाने - द्वि. व. । (१) नक्तोषासा (रात दिन) या (२) माता पिता, (३) या, स्त्री पुरुष का

विशेषण, (४) सब को सुख देने वाले, सबके कल्याण कारक, एक दूसरे को सुख देने वाले
'आ भन्दमाने उपाके
नक्तोषासा सुपेशसा'
ऋ. १.१४२.७

भन्दिष्ठ- (१) सबसे अधिक सुखकारी तथा कल्याण कारी-परमेश्वर
प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
ऋ. १.९७.३; अ. ४.३३.३; तै.आ. ६.११.१.
जो हमारे विद्वान् पुरुष हैं उनमें आप ही सब से अधिक सुखकारी एवं कल्याण कारी हैं ।
(२) अति कल्याण प्रिय
'आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि'
ऋ. ५.१.१०; मै.सं. ४.१.४; १७२.६, का.सं. ७.१६; तै.ब्रा. २.४.७.९.

भसत् - चमकने वाला, तेजस्वी
'भसदश्वो न यसमान आसा'
ऋ. ६.३.४

भंगुरावत् - (१) राष्ट्र को तोड़ फोड़ डालने वाला
'हन्तारं भंगुरावतः'
ऋ. १०.८७.२२; अ. ७.७.१; ८.३.२२; वाज.सं. ११.२६; मै.सं. २.७.२; ७६.९; का.सं. १६.२; ३८.१२.
(२) प्रजापीड़क
'विषेण भङ्गुरावतः'
ऋ. १०.८७.२३; अ. ८.३.२३.

भंसस् - (१) योनि
'भंससोप हन्मसि'
अ. ८.६.५.

भंसत् - (१) उपस्थ प्रदेश, योनि
'भंससो विवृहामि ते'
ऋ. १०.१६३.४; अ. २.३३.५; २०.९६.२०.

भयमानः- (१) भयभीत होता हुआ ।
'पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.
बिजली से मारे जाने के पूर्व ही भयभीत हो मेघ तितर बितर हो गया ।
(२) उभय मानः - अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों में गर्जता हुआ मेघ

भयस्थ - (१) भय का स्थान, (२) संसार
'अस्मिन् भयस्थे कृणुतमु लोकम्'
ऋ. २.३०.६.

भरण्य- भरणी नामक नक्षत्र पुञ्ज
'आ मे रयिं भरणय आवहन्तु'
अ. १९.७.५

भरत- (१) अर्पित करो । भृ (भरणार्थक) यहां अर्पणार्थक है । लोट् मध्यम, पुरुष ब.व. का रूप है ।
'तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु नः'
ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६.८; नि. १०.६.
तीक्ष्ण आयुध वाले रुद्र को स्तुतियाँ अर्पित करो और वे हमारी स्तुतियाँ सुनें ।
(२) (सं.) आदित्य ।
यो पृथिव्यादिस्थान् प्राणिनः शुभैः गुणैः विभर्ति स भरतः ।
जो पृथ्वी आदि स्थानों के प्राणियों को शुभ गुणों से भरण पोषण करता है वह भरत है ।
(३) भरण पोषण करने वाला - आत्मा (४) भरण पोषण करने वाला - ईश्वर
'आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः'
ऋ. २.३६.२, अ. २०.६७.४

भरतस्य सूनवः - (१) भरण पोषण करने वाले आत्मा के पुत्र-प्राण गण, (२) भरण पोषण योग्य चराचर जगत् के प्रेरक प्राण, (३) भरण पोषण करने वाले ईश्वर के पुत्र -योगी जन (४) भरत के पुत्र
'आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः'
(५) समस्त संसार का भरण पोषण करने वाले सूर्य से उत्पन्न या सब के पालक मेघ को संचालित करने वाले वायु गण (६) राष्ट्रपति राजा के पुत्र

भरति- चुराता है ।
'यो अघ्न्याया भरति क्षीर मग्ने'
ऋ. १०.८७.१६, अ. ८.३.१५

भरः- (१) भृ (भरण करना) + अच् = भर । अर्थ- (१) बल, बलवन्तो हि भ्रियन्ते धनिभिः अन्यथा विकुर्वाणः सन् दुःसाध्यो भवति (बलवान् को धनी पालते हैं अन्यथा वे अनर्थ करते हैं) ।
(२) अथवा हृ (हरण करना) + अच् = भर (हृग्रहोर्भश्छन्दसि) ।
'भ्रियन्ते यत्र योद्धारः इति भरः (जहां योद्धाओं का भरण किया जाता है) ।
(३) अथवा - ह्रियन्ते हि यत्र योद्धणाम् आयूंसि धनानि च इति भरः (जहाँ योद्धाओं की आयु

हरी जाति या उनका धन घर जाता है) । युद्ध
'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुम्
अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु'
ऋ. ४.३८.५
और इस दधिक्रावा इन्द्र को युद्धों में (एवं भरेषु) देखकर शत्रु चिल्लाने लगते हैं (अनुक्रोशन्ति) जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर को देखकर लोग चिल्लाते हैं ।
(४) पालन पोषण या रक्षा
'महे भराय पुरुहूत विश्वे'
ऋ. ३.५१.८
अच्छी तरह से पालन पोषण या रक्षा के लिए हे बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र । सभी देवताओं तथा प्राणिमात्र ने .... ।
हे निर्वाचित राजन् ! राजपोषण के महान् कार्य के लिए ...
(५) अन्न, वायु, जल आदि पदार्थ
आधुनिक अर्थ – (१) भरण पोषण, (२) भार, बोध, (३) संग्रह, अधिक परिमाण, (४) ढेरी, (५) तौल की एक मात्रा

भरद्वाज – भरणात् भरद्वाजः । विरूपो नानारूपो महिव्रतो महाव्रत–निरुक्त (१) एक ऋषि का नाम । शब्द रत्नावली में भरद्वाज को अगन्ता (नहीं चलने वाला) अर्थात् अजगर वृत्ति वाला ऋषि कहा गया है ।
(२) हेमचन्द्र ने भरद्वाज को बृहस्पति का पुत्र कहा है । (३) उन्हें विरूप या विश्वरूप भी कहते हैं । (४) सप्तर्षियों में एक (५) भरत् + वाजः = भरद्वाजः । ज्ञान और बल धारण करने वाला –दया. (६) भरद्वाज ही भारद्वाज है । (७) अन्नादि से भरण पोषण करने वाला (८) पुष्ट और वेगवान् अश्वों का स्वामी ।(९) राष्ट्र का द्रष्टा और संचालक प्राण के समान भरद्वाज
पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः
वाज.सं. १३.५५; मै.सं. २.७.१९;१०४.५; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.९.
(१०) धनादि से भरण पोषण करने का कार्य
'भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्'
ऋ. ६.१७.१४
(११) अन्न और बल का धारण करने वाला, (१२) अन्नोत्पादक विद्वान् (१३) मन (मनो वै भरद्वाजःऋषिः)
यो वै मनः विभर्ति सो अन्नं वाजं विभर्ति । तस्मात् मनो भरद्वाज ऋषिः ।
मन शरीर में रहकर समस्त प्राणों को धारण करता है । वह आत्मा की घृताची शक्ति को जानता है ।
'तां त्वा भरद्वाजो वेद'
अ. १९.४८.६

भरन्ती– हरन्ती । लाती हुई। हरती हुई सम्पादन करती हुई ।
हृ + शतृ + ङीष् = भरन्ती (ह का म्)
'भरन्ती मे अप्या काम्यानि'
ऋ. १०.९५.१०; नि. ११.३६
अन्तरिक्ष में उत्पन्न (अप्या) मेरे कमनीय जलों को (काम्यानि) लाती हुई (भरण्ती) माध्यमिका वाक् उर्वशी –सा.

भरमाण – (१) धारण करता हुआ
'उपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः'
ऋ. १.१४८.२
(२) राष्ट्र के कार्यभार को धारण करता हुआ
'अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत'
ऋ. १.१३५.३, ६.
अध्वर्युओं या अविनाश्य राष्ट्र के संचालक पुरुषों सहित राष्ट्र के कार्यभार को धारणा करते हुए (भरमाणाः) (३) लेता हुआ
'वहमाना भरमाणा स्वा वसूनि'
अ. ७.९७.४

भरहूतिः– (१) भरेषु हूतिः । पालक पुरुषों के बीच सर्व श्रेष्ठ पालक कहलाना, (२) भराय संग्रामाय हूतिः (शत्रुओं को संग्राम के लिए ललकारना) । (३) संग्राम शत्रु को ललकारना
'रत्नं दधाति भरहूतये विशे'
ऋ. ५.४८.४

भरत्रि– भरणपोषण करने का साधन
'अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैः'
ऋ. ३.३६.७

भरिभ्रत् – धारण करता हुआ
'इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रत्'
ऋ. १०.४५.७; वाज.सं. १२.२४; तै.स. ४.२.२.२; मै.सं. २.७.९; ८६.१४; का.सं. १६.९; आप.मं.पा. २.११.२५

भरीमन् – भरण पोषण करने वाला पदार्थ
'पिपृतां नो भरीमभिः'

ऋ. १.२२.१३; वाज.सं. ८.३२; १३.३२; तै.सं. ३.३.१०.२; ५.११.३; ४.२.९.३; मै.सं. २.७.१६; १००.९; का.सं. १३.९; १६.१६; ३९.३; श.ब्रा. ४.५.२.१८.

भरूजा- (१) भ्रस्ज् + अङ् = भरूजा । बाहुलक नियम से रेफ तथा उपधा का ऊम् । अर्थ है - शृगाल
(२) भ्रस्ज (पाक अर्थ में) + अङ् = भरूजा । अर्थ है-भुंजनेवाला, भरभूंजा

भरूजा- (१) कपटकारिणी, (२) क्षुद्र वचनों से हृदय को पीड़ा देने वाली स्त्री (३) चुगलखोरी, पिशुनता
'भरूजि पुनर्वो यन्तु'
अ. २.२४.८

भर्गस् - (१) पापों को भून डालने वाला, (२) समस्त कर्म बन्धनों को भस्म कर डालने वाला तेज, (३) सर्व शत्रु तापक तेज, (४) अन्न
भर्गो देवस्य धीमहि
ऋ. ३.६२.१०; साम. २.८१२; वाज.सं. ३.३५; २२.९; ३०.२; ३६.३; तै.सं. १.५.६.४; ४.१.११.१; मै.सं. ४.१०.३; १४९.१४. श.ब्रा. २.३.४.३९; १४.९.३.१२
'वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः
कर्माणि धियः तदु ते ब्रवीमि
प्रचोदयन् सविता याभिरेति
गो.ब्रा. १.१.३२

भर्ग- भृस्ज् + ञ् = भर्ग । अर्थ है - (१) तेज (२) पदार्थों को परिपक्व करने वाला ताप
'बडित्था तत् वपुषे धायि दर्शतम्
देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि'
ऋ. १.१४१.१; शां.श्रौ.सू. १८.२३.१४
अग्नि का पदार्थों को परिपक्व करने वाला ताप ही समस्त पदार्थों को दिखलाने और प्रकाशित करने वाला है (दर्शतम्) । वही तेज शरीर की रक्षा पोषण और बुद्धि के लिये भी धारण करने योग्य है (धायि) । यह बात इस प्रकार से (इत्था) सर्वथा सत्य हैं (बट्) वह तेज जिस कारण से (यतः) बल या शक्ति से (सहसः) उत्पन्न होता है । पापों को भून डालने वाला तेज ।

भर्गस्वती - चमत्कार युक्त, ओजस्विनी
'यथा भर्गस्वतीं वाचम्'
अ. ६.६९.२

भर्ता- भृ + तृच् (१) पति, (२) पालक
'भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः'
ऋ. ५.५८.७

भर्मन् - भृ + मनिन् = भर्मन् ।
(१) अधिक करना या अधिक करने वाला, (२) पोषक,
'तस्य भर्मणे भुवनाय देवा'
धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त'
ऋ. १०.८८.१; नि. ७.२५.
उस हवि को अधिक करने के लिए या जगत्पोषक बनाने के लिए (तस्य भर्मणे) तृप्ति कारक बनाने या सुगन्धि प्रद करने के लिए (भुवनाय) उस सुखद अग्नि को (कम्) देवता या विद्वान् लोग हवि, अन्न या पुरोडाश से (स्वधया) बढ़ाते हैं (अपप्रथन्त) ।

भर्वति- (१) अत्ति (खाता है) । 'भर्व' धातु खाना अर्थ में आया है ।
(२) नाश करता है
'अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति'
ऋ. १.१४३.५
(३) पालन करता हुआ

भर्वन् - (१) जल्पता हुआ, (२) पालन करता हुआ (३) खाता हुआ, (४) नाश करता हुआ
'पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन्'
ऋ. ६.६.२, तै.सं. १.३.१४.४.

भर्त्री- भरणपोषण करने वाली
'भर्त्री हि शश्वतामसि'
अ. ५.५.२

भरिभ्रत् - (१) पुष्ट करता है । (२) विविध प्रकार से धारण करता है ।
'वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वाम्'
ऋ. २.४.४.

भरीमन् - (१) भरण पोषण करने वाला साधन, गुण, (२) अन्न
'पिपृतां नो भरीमभिः'
ऋ. १.२२.१३; वाज.सं. ८.३२; १३.३२; तैसं. ३.३.१०.२; ५.११.३; ४.२.९.३; मै.सं. २.७.१६; १००.९; का.सं. १३.९; १६.१६; ३९.३; श.ब्रा. ४.५.२.१८; ७.५.१.१०.
वे दोनों भरण पोषण करने वाले साधनों से हमें

पालन करे या अन्नों से पोषण करें ।

भरेषुजा- भर + इषु + जन (१) भरण पोषण करने और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (२) धनाढ्य वैश्यों और बलशाली क्षत्रियों का उत्पादक (३) संग्रामों में प्रसिद्ध कुशल योद्धा (४) राज्य -सामग्री के साधक वाणों को बनवाने वाला -दया.

'भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसम्'

जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ।

ऋ. १.९१.२१, वाज.सं. ३४.२०; मै.सं. ४.१४.१; २१४.५; तै.ब्रा . २.४.३.८; ७.४.१,

राज्य के भरण पोषण करने और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, धनाढ्य वैश्यों और बलशाली क्षत्रिय लोगों के उत्पादक, संग्रामों में प्रसिद्ध कुशल योद्धा (भरेषुजाम्) उत्तम निवास स्थान और उत्तम भूमि के स्वामी (सुक्षितिम्), उत्तम यशों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से युक्त (सुश्रवसम्) विजय करते हुए (जयन्तम्) तेरे विजय के साथ ही हम भी प्रसन्न हों ।

भल- (अ.) (१) भली प्रकार

'सर्वे भल ब्रवाथ'

अ. ७.५६.७

सायण ने 'भलब्रवाथ' एक शब्द माना है (भलब्रवाथ इत्येकं पदं सह इति योग विभागात् तिङन्तेन समासः -सा.) । पद पाठ में इसे दो पद माना गया है ।

(२) जीव

'भद्रं भल त्यस्या अभूत्'

ऋ. १०.८६.२३; अ. २०.१२६.२३;

भलान- ऋग्वेद के जनों में एक । वसिष्ठ ने ऋ ७.१८.७ में पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी और शिव का उल्लेख किया है ।

भलानाः, भलानस् - (१) उत्तम नासिका वाला (२) भल + अनस् । उत्तम रथ पर स्थित

'आ पक्थासो भलानसो अनन्ताः'

ऋ. ७.१८.७

भव - (१) धनुर्धारी भव, शिव का एक पर्याय

'भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्'

अ. १५.५.१

(२) सामर्थ्यवान्, (३) सब कार्यों का उत्पादक

'शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय'

अ. ६.९३.२

भवत् - (१) होने वाला प्राणी ।

'सतश्च गोपां भवतश्च भूरेः'

ऋ. १.९६.७

वर्तमान् प्राणियों एवं होने वाले प्राणियों, बहुतों के रक्षक (भूरेः गोपाम्) अग्नि को

भवद्वसु- सब उत्पन्न होने वाले चर अचर पदार्थों में बसने वाला परमेश्वर

'भवद्वसुरिद्वसुः'

अ. १३.४.५४

भव्य- सुन्दर ।

'प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे'

ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२.

भव्य इन्द्र के लिए में इष्टतम स्तुति करता हूँ ।

भवासि - भव । अर्थ है हो ।

भवाशर्वौ - द्वि.व. । (१) भव और शर्वः । उत्पादक और संहारक परमेश्वर या शिव के दो रूप ।

'भवाशर्वौ मृडतं माभियातम्'

अ. ११.२.१; कौ.सू. ५०.१३; ५१.७.

(३) सर्वोत्पादक और सर्वविनाशक शक्तियाँ

'भवाशर्वौ मृडतम् शर्म यच्छतम्'

अ. ८.२.७

'भवाशर्वौ मन्ये वां तस्य वित्तम्'

अ. ४.२८.१

भवित्र- भविष्य , आगे होने वाला

'शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः'

ऋ. ७.३५.९, अ. १९.१०.९

भवित्वा - ब. व, वि. । भावी पदार्थ और कार्य

'स ना ता काचिद् भुवना भवित्वा

ऋ. २.२४.५

भवीयस् - प्रभूत्, प्रचुर

'तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा

ऋ. १.८३.१; अ. २०.२५.१

भष - (सं) । बड़ी ऊंची आवाज से बोलने वाला

'घोषाय भषम्'

वाज.सं. ३०.१९; तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

भस- भर्त्सन दीप्तयोः 'जुहोत्यादि' भस धातु भर्त्सना और दीप्ति अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

भर्त्सनं परुष भाषणम् । दीप्तिः द्युति क्रोधाभिव्यञ्जनम् । परुष भाषण करना, दीप्ति करना, क्रोध दिखलाना

'यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति'

अ. ९.२.२

भसत्– (१) स्त्री का प्रजनन अंग
'भसन्मे अम्ब सक्थि मे'
ऋ. १०.८९.७ अ. २०.१२६.७
(२) लिंग, तेजोमय, वीर्यवान् अंग, (३) प्रकाशक
'आदित्यै भसत्'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७; १७९.११.
'पायुर्मेऽपचितिर्भसत्'
वाज.सं. २०.९. मै.सं. ३.११.८; १५२.७, तै.ब्रा. २.६.५.५

भसथः– भक्षमथः (खाते हो)।
'न देवा भसथश्चन'
हे इन्द्र और अग्नि! तुम, जो मलिन बात बोलता है, उसका सोम ग्रहण नहीं करते निघण्टु में 'भस' धातु भक्षण अर्थ में आया है।

भस्म– कान्तिजनक जाठर अग्नि
'वैश्वानरं भस्मना'
वाज.सं. २५.८; तै.सं. ५.७.१६.१; मै.सं. ३.१५.७; १७९.१५; का. सं. (अश्व.) १३.६.

भस्मन् – (१) भस्म
'प्रसद्य भस्मना योनिम्'
वाज.सं. १२.३८; तै.सं. ४.२.३.३; मै.सं. २.७.१०; ८८.१०; का. सं. १६.१०; श.ब्रा. ६.८.२.६.
'सं भस्मना वायुना वेविदानः'
ऋ. ५.१९.५

भस्मा– ब.व. । (१) तेजस्वी उत्तम पद (२) तेजस्विनी सेना
'कार्द भस्मा कु धावति'
अ. २०.१३६.१४

भस्मान्त– शरीर जिसका अन्त भस्म है।
'भस्मान्तं शरीरम्'
श.ब्रा. १४.८.३.१; बृ.आ.उप. ५.३.१.

भ्यस्– आत्मनेपदी धातु। डरना या कांपना।
'यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेताम्'
ऋ. २.१२.१; अ. २०.३४.१; तै.सं. १.७.१३.२.
जिसके बल से या सामर्थ्य से द्यौ और पृथ्वी डर गयी या कांप उठी।

भ्रक् (ज्) – (१) चमचमाता हुआ धन आदि, (२) दमकता हुआ वीर्य।
'म्लापयामि भ्रजः शिश्नम्'
अ. ७.९०.२

भ्रजः– (१) अग्नि, (२) अग्नि विद्या विद्युत द्वारा प्रकाश उत्पादन
'भ्रजश्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५. २.५.

भ्रम – (१) अग्नि की मोड़दार लपट
'अग्नेरिव भ्रमा वृथा'
ऋ. ९.२२.२
(२) भ्रमणशील
'तव भ्रमास आशुया पतन्ति'
ऋ. ४.४.२; वाज.सं. १३.१०; तै.सं. १.२.१४.१; मै.सं. २.७.१५; ९७.९; का.सं. १६.१५.

भ्रमासः– ब.व. । ए. व. में भ्रम अर्थ – (१) भ्रमणशील किरण, (२) शस्त्रास्त्र या सैनिक गण।

भा – (१) दीप्ति, (२) अग्नि।
'भायै दार्वाहारम्'
वाज.सं. ३०.१२; तै.ब्रा. ३.४.१.८.

भाऋजीक– ऋजुभा, प्रसिद्धभा (प्रसिद्ध या सरल अकुटित प्रकाश वाला)। अर्थ है (१) अग्नि ऋजुका अकुटिता अप्रतिहता प्रसिद्धा भा दीप्तिः यस्य स ऋजुकभा (जिसकी दीप्ति सीधी हो)। 'ऋजुकभा' से ही 'ऋजीक' हो गया है जो अग्नि का नाम है। (२) अथवा –भासःऋजीकं स्थानम् = भाऋजीकम् - प्रख्यातदीप्ति (३) सदा प्रकाशमान, (४) विद्या रूपी दीप्ति को प्राप्त कराने वाला परमात्मा या पिता –दया.
(५) सम्पूर्ण दीप्ति का स्थान –परमेश्वर
'दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः'
ऋ. ३.१.१२
जो पुत्र के लिए दर्शनीय एवं प्रकाशमान या विद्यादिप्ति को प्राप्त कराने वाला है।
पुनः –
'देवो देवान् परिभूर्ऋतेन
वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान्
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको
मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान्
ऋ. १०.१२.२; अ. १८.१.३०.
हे भगवन् अग्नि! तू द्योतमान देव इन्द्रादि देवों के निकट आह्वान् तथा हवि आदि ले जाने के कारण सर्वतः रहने वाला है (परिभूः), अतः यज्ञ के साथ (ऋतेन) हवि ले जा (हव्यं वह)। तू देवों में या मनुष्य होताओं में श्रेष्ठ है (प्रथमः),

अपने सम्पूर्ण अधिकारों का ज्ञाता है (चिकित्वान्) । धूमकर्ता, धूमरूपी ध्वजा वाला या धूम से विदित होने वाला है (धूमकेतुः), सन्दीपन इन्धन से प्रसिद्ध दीप्ति वाला है (भा ऋजीकः), स्तुत्य है या देवों का मोदक आह्वाता है (मन्द्रः होता), नित्य है (नित्यः) और बुद्धि के अधिदेवता के रूप में (वाचा) मनुष्य की अपेक्षा अत्यन्त यष्टा है (यजीयान्) ।

अथवा, हे अग्नि परमेश्वर, वैदिक ज्ञान के द्वारा (क्रतेन) आप हमें सुख पहुंचाइए (नः हव्यं वह) । यह परमेश्वर सर्वपूज्यदेवों में विद्यमान (देवः देवान् परिभूः) अनादि (प्रथमः) और सर्वज्ञ है (चिकित्वान्) । जैसे धूप अग्नि का ज्ञापक है (धूमकेतुः) यह परमेश्वर अपने तेज से (समिधा) सम्पूर्ण दीप्तियों का स्थान है (भा ऋजीकः) एवं आनन्दधन प्रदाता (मन्द्रः होता) है । नित्य तथा वेदवाणी के द्वारा (नित्यो वाचा) उत्तम ज्ञानप्रदाता है (यजीयान्) ।

(६) दीप्ति से प्रकाशमय और ऋजस्व भाव

भागः - भज् + घञ् = भाग (१) अंश, हिस्सा ।

'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति'

ऋ. १.१६४.२१; अ. ९.९.२२; नि. ३.१२;

'प्रतिभागं न दीधिम'

ऋ. ८.९९.३; अ. २०.५८.१; साम. १.२६७; २.६६.९; वाज.सं. ३३.४१; नि. ६.८

(२) पैतृक भाग ।

'तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं
राधो भागमिवेमहे'

ऋ. ८.९०.६; साम. २.७६.२,

हे इन्द्र ! अवश्य ही हम उस बलवान या प्रज्ञावान् या महाप्राण या प्रकृष्टचेतना वाले तुझ से पैतृक भाग की तरह (भागम् इव) धन (राधः) जांचते हैं (ईमहे) ।

भागदुघ - कर रूप से राजा का भाग एकत्र करने वाला

'स्वर्गाय लोकाय भागदुघम्'

वाज.सं. ३०.१३; तै.ब्रा. ३.४.१.८.

भागदेय- सेवनीय अंश

'इमानि वां भागधेयानि सिस्रत'

ऋ. ८.५९.१

भागधेय - अपना अपना सेव्य अंश

'यत्र देवा दधिरे भागधेयम्'

ऋ. १०.११४.३

(२) भोग, (३) जीवन, (४) भाग्य

'मा सो अन्यद् विदत भागधेयम्'

अ. १८.२.३१

'माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यम्'

अ. १२.२.५३

(५) भजन

'अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयम्'

अ. ६.१११.१

भागधेयी- भागधारण करने वाली

इन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ

वाज.सं. ६.२४; तै.सं. १.३.१२.१; ६.४.२.६, श.ब्रा. ३.९.२.१४; १५.

भाग विभक्ता- कर आदि का विभाग करने वाला राजा (१) इन्द्र

भाजयुः- (१) न्यायपूर्वक विभाग करने वाला, (२) अग्नि का विशेषण (३) ज्ञान प्रदान करने वाला, (४) भजन, सेवन करने की आकांक्षा करने वाला

'त्वमंशो विदथे देव भाजयुः'

ऋ. २.१.४

भात्वक्षस्- (१) तेजोमात्र से बलशाली सूर्य, (२) दीप्ति के स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष

'भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवः
अग्ने रेजन्ते असससन्तो अजराः'

ऋ. १.१४३.३

तेजो मात्र से बलशाली सूर्य के (भात्वक्षसः) कभी नष्ट न होने वाले किरण भी (अससन्तः) सदा वेगवान् प्रवाहों के समान (सिन्धवः) सूर्य से बढ़ने वाले होते हैं । वे अन्धकारमयी रात्रि बेला को लांघ कर प्रकाशित हुआ करते हैं ।

अथवा,

दीप्ति के स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (भात्वक्षसः) अविनाषी (अजराः) सदा वेग से बढ़ने वाली सरिताओं के समान वेग से गति करने वाले ज्ञान प्रवाह (सिन्धवः) कभी न सोते हुए (अससन्तः) जागरण शील पुरुषों के समान ही उज्ज्वल गुरु के प्रकाश देने वाले गुरु या शिष्य को भी पार कर प्रकाशित होते हैं (अति रेजन्ते) ।

भान्तः – चन्द्रमा के समान १५ कलाओं से युक्त राजा ।
'भान्तः पंचदशः'
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.२; मै.सं. २.८.४; १०.९.३; का.सं. १७.४; श.ब्रा. ८.४.१.१०

भानु– 'भा' धातु से सिद्ध । अर्थ (१) प्रकाश (२) प्रकाशवान्
'कविशस्तो बृहता भानुनागा
हव्या जुषस्व मेधिर'
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५; २०४.१५; का.सं. १६.२१; ऐ.ब्रा . २.१२.१५; तै.ब्रा. ३.६.७.२.
हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवान् अग्ने, तू बृहत् प्रकाश के साथ आकर हव्यों का भोग कर ।
(३) सूर्य ।
'पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते'
ऋ. १.९२.१; साम. २.११०.५; नि. १२.७
(४) दीप्तिमान् पदार्थ –किरण
'श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२; १६७.१५; का.सं. ८.१७.

भाम– (१) उग्रता
'स्वेन भामेन तविषो बभूवान्'
ऋ. १.१६५.८, मै.सं. ४.११.३;१६९.५; का.सं. ९.१८; तै.ब्रा. २.८३.६;
अपनी उग्रता से बलवान् होकर (२) क्रोध ।

भामितः– क्रोध और मन्यु वाला, उत्साही । रुद्र का विशेषण
'वीरान्मानो रुद्र मामितो वधीः'
ऋ. १.११४.८; तै.सं. ३.४.११.३;४.५.१०.३; मै.सं. ४.१२.६;१९२.१७; का.सं. २३.१२,
हे रुद्र ! तू क्रोध और मन्यु से आविष्ट हो हमारे वीर को मत मार ।

भामिन् – (मी) – (१) प्रशस्तः क्रोधः विद्यते यस्य (जिसमें प्रशस्त क्रोध हो) दुष्टों के प्रति भाम या क्रोध करने वाला अग्नि या परमेश्वर ।
'देवजुष्टोच्यते भामिने गीः'
ऋ. १.७७.१
(२) तेजस्वी
'शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्'
ऋ. १.८४.१६; अ. १८.१;६, साम. १.३४१; तै.सं. ४.२.११.३; मै. सं. ३.१६.४; १९०.४, नि. १४.२५.
(३) क्रोधयुक्त
'मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीः'
वाज.सं. १६.१६

भारत– (१) समस्त संसार का भरण पोषण करने वाला –अग्नि, परमेश्वर ।
'उदग्ने भारत द्युमत्'
ऋ. ६.१६.४५, साम. २.७३५
(२) मनुष्यों का हित कारक
(३) सबका पालक पोषक –अग्नि
त्वं नो असि भारताऽग्ने
ऋ. २.७.५

भारतः अग्नि– (१) सब मनुष्यों का हितकारी अग्नि, तेजस्वी पुरुष या प्रभु (२) प्रजा हितैषी तेजस्वी राजा
'तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसत्'
ऋ. ४.२५.४

भारतजन – (१) भारती वाणी का उपासक विद्वान् (२) मनुष्यों का समूह
'विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्'
ऋ. ३.५३.१२.

भारती– (१) प्रजापालक राजाओं की वाणी । भरत का अर्थ राजा है । (२) यजुर्वेद
'होत्रा मरुत्सु भारती'
ऋ. १.१४२.९
(३) भरतः आदित्यः तस्य स्वभूता दीप्तिः –द्युस्थानी भारती (आदित्य की द्यु स्थानीय दीप्ति) । भरत + अञ् = भारत; भारत + ङीष् = भारती ।
भरतः आदित्यः तस्य भा, इला च ।
आदित्य से उत्पन्न दीप्ति, आदित्य ज्योति ।
'आ नो यज्ञं भारती तूयमेतु'
ऋ. १०.११०.८; अ. ५.१२.८; वाज.सं. २९.३३; मै.सं. ४.१३.३; २०२,९; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१३.
आदित्य से उत्पन्न ज्योति हमारे यज्ञ में शीघ्र आवे ।
आधुनिक अर्थ – वाणी, सरस्वती, संस्कृत प्राय भाषा जिसे नट प्रयोग में लाते हैं ,
'भारती संस्कृत प्राया
वाग्व्यापारो नटाश्रयः'
(४) सब शास्त्रों को अपने में धारण करने वाली स्त्री
'आ भारती भारतीभिः सजोषाः'

ऋ. ३.४.८; ७.२.८.
(५) मनुष्यों की या सूर्य की दीप्ति के समान सब तत्व के प्रकाशित करने वाली वाणी
'त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा'
ऋ. २.१.११

भारद्वाज – (१) एक ऋषि का नाम भरणात् भारद्वाजः (भरण से भारद्वाज हुआ) ।
(२) भारत् + वाजः । ज्ञान को धारण करने वाला
'भारद्वाज सुमतिं याति होता'
ऋ. ६.५१.१२
(३) ज्ञानमय आनन्द आत्मा
'यौ भारद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरम्'
अ. ४.२९.५

भार्म्यश्व– भृम्यश्वस्य पुत्रः (भृम्यस्व का पुत्र) । भृम्यश्व + अण् = भार्म्यश्व । भृ + मिङ् = भृमि (भ्रमण करने वाला या अनवस्थायी) । भृमि + अश्व = भृम्यश्व । भृमयः अस्य अश्वाः (इसके अश्व अनवस्थायी हैं) ।
अथवा – असौ अश्वान् बिभर्ति (यह अश्वों को पोसता है) ।
अथवा – भर्तव्यः अश्वः यस्य (जिस का अश्व भर्तव्य है वह भृम्यश्व है) ।

भार्मा (भार्मन्) – भरण पोषण करने योग्य राष्ट्र या या शरीर
'समाने अधि भार्मन्'
ऋ. ८.२.८

भार्वरः – (१) सब का पालक पोषक –सूर्य (२) समस्त राष्ट्र को भरण पोषण करने वाला ।
'सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः'
ऋ. ४.२१.७

भावः – आत्मा

भावयुः– (१) आत्मा की इच्छा करने वाला (२) भक्ति भाव से युक्त उपासक
'यं ते सुनोति भावयुः'
ऋ. १०.८६.१५; अ. २०.१२६.१५

भाव विकार– कारणात्मा भावः (कारण ही भाव है) ।
तद्विकारा एव हि द्रव्यगुण कर्म भावेन अवस्थिताः सन्तः
नामाख्यातोपसर्ग निपातैः
अभिधीयन्ते (भाव के विकार ही द्रव्य, गुण और कर्म भाव से अवस्थिति हो नाम आख्यात, उपसर्ग और निपात नाम से कहे जाते हैं) ।
वार्ष्यायणि के अनुसार छः भाव विकार हैं । – (१) जायते, (२) अस्ति, (३) विपरिणमते, (४) वर्धते (५) अपक्षीयते तथा (६) विनश्यति
अर्थात् – जन्म लेना, रहना, विपरिणाम, वृद्धि, अपक्षय, और विनाश इन्हीं छः भाव विकारों में और विकार भी आ जाते हैं ।

भाव्य – (१) भावयव्य नामक ऋषि, (२) भावयव्य नामक एक राजा (३) आत्म तत्व इच्छुक राजा भावतेन अर्जवेन असौ सर्वार्थान् यवयति अनुतिष्ठयति इति भावयव्यः (अर्जन द्वारा जो सभी अर्थों को अनुष्ठित करावें वह भावयव्य हैं) । भावयव्य से ही भाव्य हुआ है । भाव + यु + यत् = भावयव्य = भाव्य ।
लौकिक अर्थ – भावी, होनहार, भवितव्यता ।

भवित्र– उत्पत्तिस्थान, भुवन
'शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः'
ऋ. ७.३५.९, . १९.१०.९

भास् – भा (चमकना) + असुन् । अर्थ–दीप्ति, आभा ।
'स चित्रेण चिकितं रंसु भासा'
ऋ. २.४.५, नि. ६.१७
वह अग्नि अपनी विचित्र आभा से युक्त हो द्युलोकादि अथवा अग्निहोत्र जैसे स्थानों में (रंसु) जाना जाता है । (चिकिते)–सा.
वह विद्वान् अद्भुत तेज के साथ (चित्रेण भासा) रमणीय स्थानों में (रंसु) निवास करता है (चिकिते) – दया.

भासद – नितम्ब कटि भाग में स्थित गुदा या उपस्थ प्रदेश
'अग्नीषोमयोर्भासदौ'
वाज.सं. २५.५; मै.सं. ३.१५; ४,१७९.१
'यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदात्'
ऋ. १०.१६३.४; अ. २०.९६.२०; आप.मं.पा. १.१७.४.

भास्वती – (१) उत्तम कान्ति वाली । उषा का विशेषण ।
'भास्वती नेत्री सूनृतानाम्'
ऋ. १.९२.७; ११३.४
(२) प्रकाशवती, नाना प्रकाशों से पूर्ण करने वाली –उषा

भासाकेतुः– ज्ञान दीप्ति से सब पदार्थों का ज्ञान कराने वाला–अग्नि
'भासा केतुं वर्धयन्ति'
ऋ. १०.२०.३

भ्राजत् जन्मा– तेजस्वी शरीर वाला
'भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः'
ऋ. ६.६६.१०, मै.सं. ४.१४.११; २३३.१

भ्राजते– भ्राज् (शोभना, चमकना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप। अर्थ चमकता है, शोभता है।
'गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः'
ऋ. १.५६.३.
पर्वत श्रृंग की तरह चमकता है।

भ्राजदृष्टयः– भ्राजत् + ऋष्टि = भ्राजदृष्टि। ब.व. मे भ्राजदृष्टयः। अर्थ –(१) चमचमाते बिजली से युक्त मरुद्गण (२) चमचमाते शस्त्र वाले वीर सैनिक
'अध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः'
ऋ. २.३४.५.

भ्राजन्ती उखा– (१) चमकती हुई हंड़िया, (२) बारूद से भरा बम आदि
'मोखा भ्राजन्ती अभिवित्त जघ्रिः'
ऋ. १.१६२.१५; वाज.सं. २५.३७; तै.सं. ४.६.९.२; मै.सं. ३.१६.१; १८३.१०.
हे राष्ट्र, अश्व या अश्वसैन्य! तुझे कभी बारूद से बम आदि जैसा अस्त्र उद्विग्न न करें।
(३) विस्फोट पदार्थों से फटने वाली विशेष घातक कृत्यो (४) तेज और क्रोध से प्रदीप्त होती हुई पृथिवी

भ्राजः– (१) शत्रुओं को भूंज डालने वाला,
'शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि'
अ. २.११.५, १७.१.२०.
(२) तेजोमय

भ्राजदृष्टिः – (१) अति तेजस्वी ज्ञान दृष्टि वाला
'अजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः'
ऋ. १.३१.१; वाज.सं. ३४.१२.
मरण धर्मा विद्वान् मनुष्य अति तेजस्वी ज्ञान दृष्टि वाले हो जाते हैं।

भ्राजस् – भ्राज् + असुन् = भ्राजस्। अर्थ है – दीप्तिमान्।
'अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्म वक्षसः'
ऋ. १०.७८.२, नि. ३.१५

भ्राजाङ्गारिः – शस्त्रास्त्रों से शोभायमान
'स्वान भ्राजाङ्गारे बम्भारे
हस्त सुहस्त कृशानो'
वाज.सं. ४.२७; तै.सं. १.२.७.१; श.ब्रा. ३.३.३.११

भ्रात्र– भाईपन, बन्धुता, भ्रातृत्व
'त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्'
ऋ. २.१.९

भ्राता बलास– ज्वर को भ्रष्ट कर जाने वाला कफ
'तक्मन् भ्रात्रा बलासेन'
अ. ५.२२.१२.

भ्रातृ – 'ह–' (हरना) या 'भृ (भरण करना) + तृच् = भ्रातृ। अर्थ हैं। (१) भागहर्ता (हिस्सा लेने वाला) (२) भर्तव्य (भरण करने योग्य)
भ्राता पिता के धन से पोसा जाता है. (३) वायु। वायु वृष्टि के लिये रसों से भरा जाता है।

भ्रातृव्य– शत्रु
'अभ्रातृव्यो अनात्वम्'
ऋ. ८.२१.१३; अ. २०.११४.१; साम. १.३९९; २.७३९
भ्रातृव्यस्य वधाय
वाज.सं. १.१७, १८.
वृश्चतेऽस्याप्रियोभ्रातृव्यो य एवं वेद'
अ. ८.१०.(३).२

भ्रातृव्यक्षयण– भ्रातृत्व भाव के विनाश कारी शत्रु का नाश करने वाला
'भ्रातृव्य क्षयणमसि भ्रातृव्य
चातनं मे दाः स्वाहा'
अ. २.१८.१

भ्रातृव्यचातनं – शत्रुनाशक बल
'भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा'

भ्राशयन् – खूब चमकता हुआ
'नि तिग्मानि भ्राशयन् भ्राश्यानि'
ऋ. १०.११६.५

भ्राश्य– खूब चमकलने वाला।

भिक्षमाणा– याचना करती हुई
'परावतः सुमतिं भिक्षमाणाः'
ऋ. १.७३.६

भिद् – फूट डालने वाली या स्वयं फूटने वाली। भिद् + क्विप् = भिद्।
'भिनत् पुरो न भिदो अदेवीः'
ऋ. १.१७४.८

भिन्दानः – भेदता हुआ। भिद् + शानच्।

'पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन्'
ऋ. ६.२७.६

भिन्दुः- भेदक
'पुरां भिन्दुर्युवा कविः'
ऋ. १.११.४; साम. १.३५९; २.६००; आश्व श्रौ.सू. ७.८.३.
परमेश्वर मुमुक्षु जनों के देहरूप पुरों को तोड़ने वाला, नाना पदार्थों को मिलाने या अलग करने में समर्थ (युवा) तथा क्रान्तिदर्शी है ।

भियस् - भय । भी (डरना) धातु से सम्पन्न ।
'अकृण्वत भियसा रोहणं दिवः'
ऋ. १.५२.९
'भियसमा धेहि शत्रुषु'
ऋ. ९.१९.६

भिल्म - भिद् + म = भिल्म (१) वेदानां भदेनम् (वेदों की शाखा प्रशाखा करना) (२) भासनम् (प्रकाशन) (३) विल्मम् ।
भिद् + = भिल्म = विल्म । अथवा, भास् + म = भिल्म । वर्णव्यव्य से सिद्ध
"साक्षात् कृतधर्माणः ऋषयो बभूव । ते अवरेभ्यः अस्तक्षात् कृतधर्मेभ्यः उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादु । उपदेशाय ग्लायनो अवो विल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थ समाम्ना क्षिषुः । वेदञ्च वेदाङ्गा नि च ।"
अर्थात् -ऋषियों ने तपोबल से धर्म का साक्षात्कार किया । उन्होंने अपने और शिष्यों को जिन्हें धर्म का साक्षात्कार नहीं हुआ था मन्त्रों द्वारा उपदेश दिया । इन शिष्यों को भी चिन्ता हुई कि आगे के विद्वान् वेदमन्त्रों का शब्दार्थ तथा भेद या शाखा प्रशाखा (विल्मम्) कैसे समझेंगे और इसी उद्देश्य से निघन्टु का निर्माण किया । इतना ही नहीं ब्राह्मण तथा और वेदान्तों का भी प्रणयन किया ।

भिषक् - (१) वैद्य, (२) यज्ञ का भेषज कर्म करने वाला (यज्ञस्य भेषजकृत)
'कारुरहं ततो भिषक्'
ऋ. ९.११८.३; नि. ६.६.
मैं चाटुकार था और मेरे पिता या पुत्र वैद्य ।
(३) चार ऋत्विजों में एक ब्रह्मा को भी 'भिषज्' कहते हैं ।
स हि सर्वं त्रय्या विद्यया भिषज्यति (वह सभी को त्रयी विद्या का ज्ञाता होने से औषधि देता है) । दुर्ग कहते हैं कि ब्रह्मा प्रायश्चित नामक रोग के उत्पन्न होने पर दवा करते हैं (स हि प्रायश्चित रोगे उत्पन्ने यज्ञस्य भेषजं करोति) ।
पुनः- भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्र एवं विद् ब्रह्मा भवति ।

भिषज्यन् - पीड़ाएं दूर करता हुआ
'यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्'

भिषजा- द्वि.व. । रोग दूर करने वाले आश्विद्वय -स्त्रीपुरुष
'युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित्'
ऋ. १०.३९.३
'युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिः'
ऋ. १.१५७.६

भी - भय. ।
'न त्वा भीरिव विन्दति'
ऋ. १०.१४६.१; तै.ब्रा. २.५.५.६; नि. ९.३०.

भीमः - भी (भय करना)+ मक् = भीम । विभ्यति अस्मात् (इससे भय खाते हैं अतः यह भीम है) अर्थ है-भयङ्कर इन्द्र का विशेषण । इन्द्र दुष्टों का दमन करने के कारण भीम है ।
'मृगो न भीमः कुचरः गिरिष्ठाः'
ऋ. १.१५४.२; १०.१८०.२; अ. ७.६२.३; ८४.३; साम. २.१२२३; वाज.सं. ५.२०; १८.७१; श.ब्रा. ३.५.३.२३; ९.५.२.५.
इन्द्र व्याघ्र या सिंह के समान भयङ्कर (भीमः) कुत्सित गामी या कुत्सित चरण या सर्वत्रगामी (कुचरः) तथा पर्वत निवासी है (गिरिष्ठाः)

भीमयुः- (१) भयप्रद (२) भयप्रद होकर प्रमाण करने वाला
'दुध्रो गौरिव भीमयुः'
ऋ. ५.५६.३

भीमल- भयङ्कर । भीतिप्रद पुरुष
नरिष्ठायै भीमलम्'
वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२.

भीमसंदृक् - भयङ्कर दर्शन वाला
'तान् वर्ध भीमसंदृशः'
ऋ. ५.५६.२

भीमाविलिप्ती- (१) उग्र वशा -गौ (२) पृथिवी जिसका शासन निर्लिपृता से राजा करें ।
'तासां विलिप्त्यं भीमाम्

उदा कुरुत नारदः '
अ. १२.४.४१

भीरु– भयभीत, कायर
'यः शूरेभिः हव्यः यश्च भीरुभिः '
ऋ. १.१०१.६

भीष् – भय ।
'शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषां अद्रिवः '
ऋ. १.१३३.६
विद्युत् के भय से (भीषा) पृथिवी के समान अन्तरिक्ष भी चमकता है ।
'रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा '
ऋ. ७.२१.३.
'द्यावा रेजते पृथिवी च भीषा '
ऋ. ८.९७.१४

भीष्मः– भी + मक् = भीष्म । धातु के बाद षुक्– अर्थ–भयङ्कर । विभ्यति अस्मात् इति भीष्मः (इससे डरते हैं अतः यह भीष्म है) ।

भुक् – 'भुज् + क्विप् । (१) भोक्ता, (२) जीवात्मा
'भुगित्यभिगतः '
अ. २०.१३५.१; गो.ब्रा. २.६.१३. आश्व. श्रौ.सू. ८.३.२२.
(३) भोग, सुख की प्राप्ति ।
(४) भोग्य पदार्थ
'या इन्द्र भुज आभरः '
ऋ. ८.९७.१, अ. २०.५५.२; साम. १.२५४; ऐ.आ. ५.२.४.२.

भुज्म– पालन करने वाला
'गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु '
ऋ. १.६५.५
परमेश्वर पर्वत के समान सबको पालन करने वाला है ।

भुज्मा– (१) सबका पालन परमेश्वर
'गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते '
ऋ. ८.५०.२, अ. २०.५१.४.
(२) नाना भोग्य पदार्थों से सम्पन्न

भुज्यु – (१) पालक, भोक्ता पुरुष आत्मा
(२) भुजा का अवलम्ब चाहने वाला
'उत त्यं भुज्युमश्विना सखायः '
ऋ. ७.६८.७

भुञ्जती – रक्षा करने वाली
'एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनाम् '
ऋ. १०.८९.१७

भुरण्यति– भुरण धातु क्षिप्र गमन और सायण के अनुसार धारण पोषण अर्थों में प्रयुक्त है ।
भुरण + यु = भुरण्यु । अर्थ है,
(१) क्षिप्रगति वाला मनुष्य (२) धारक पोषक सूर्य ।
भुरण्यति का अर्थ है– क्षिप्र गच्छति (शीघ्र जाता है) या सूर्य के समान आचरण करता है ।

भुरण्यन् – (१) क्षिप्रं गच्छन् । शीघ्र चलने वाला ।
भुरण् धातु गत्यर्थक है । भुरण् + शतृ = भुरण्यत् (यगन्त लट् में) ।
(२) सायण ने इस का अर्थ – इस लोक का पोषक या धारक सूर्य किया है । उन्होंने 'भुरण' धातु को धारण और पोषण अर्थ वाला माना है (भुरण धारण पोषणयोः) । (भुरण्यु की तरह जो आचरण करता है वह भुरण्यन् है) । अर्थात् भुरण्यु पक्षी के समान जो शीघ्र देवलोक में ले जाय वह सूर्य ।
(३) मरणशील, मर्त्यलोक कालीन
'येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जना अनु त्वं वरुण पश्यसि '
ऋ. १.५०.६, अ. १३.२.२१, अ. २०.४७.१८
निवारक आदित्य (वरुण) तू जो अनुग्राहिणी दृष्टि से (येन चक्षसा) पुण्यवान् मनुष्यों को (जनान्) पुण्यवान् लोगों को देवयान मार्ग से क्षिप्रगति से जाते हुए (अनुभुरण्यन्तम्) देखता है (पश्यसि) इसी से हम तेरी स्तुति करते हैं ।

भुरणा – द्वि. व. । पालन पोषण करने में समर्थ स्त्री पुरुष या राजा रानी या अश्विद्वय ।
'वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता '
ऋ. १. ११७.११

भुरण्यु – भुरण् (क्षिप्रगति) + क्यु = भुरण्यु । अर्थ– क्षिप्रगति वाला शकुनि – पक्षी (२) अथवा भूरिनयु (जो भूरि मार्ग को प्राप्त करावे) से भुरण्यु हुआ है ।
भू + क्रि = भूरि, नयति प्रापयति इति नयुः ।
भूरि + नयु = भूरिनयुः = भुरण्युः ।
भुरण्युः शकुनिः भूरिम् अध्वानं नयति स्वर्गस्य लोकस्यापि बोढा तत्संपाती भुरण्युः । भूरि + णीञ् + क्यु = भुरण्यु । बहुत मार्ग चलने वाला
(३) सूर्य रश्मि जो सूर्यास्त के समय तीव्र गति

से द्युलोक में चली जाती है । (४) पालक धारक – सूर्य । सायण ने 'भुरण्' धातु को धारण और पोषण अर्थों में माना है । भुरण् + क्यु = भुरण्यु ।

भुरण्यू – द्वि.व. । (१) भरण पोषण करने वाले माता पिता ।
'राधः सुरेत स्तुरणे भुरण्यू '
ऋ. १.१२१.५
(२) सन्तानों के पालन पोषण करने वाले स्त्री पुरुष
'इति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू '
ऋ. ६.६२.७

भुरण्यौ – द्वि.व.। (१) पोषक धारक अश्विद्वय । भृ (भरण पोषण अर्थ में) अथवा भुरण् (पालन धारण अर्थ में) + क्यु = भुरण्यु । द्वि.व. में भुरण्यु = भुरण्यौ ।
(२) सबका पालन करने वाले या आशुकारी स्त्री पुरुष
'वने न वायोन्यधायि चाकन् '
शुचिर्वां स्तोमो भुरण्या वजीगः '
ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१
हे पोषक या धारक अश्विनीद्वय, वन में जैसे पक्षी द्वारा वृक्ष पर रखा हुआ बच्चा भय या उत्सुकता से देखता हुआ (चाकन्) रहता है उसी प्रकार नीड़ रूपी हममें स्थित तुम्हारा पवित्र स्तोत्र (वां शुचिः स्तोमः) अन्य दोनों के निकट जाता है (अजीगः)। – सा.
हे सबके पालन करने वाले या आशुकारी स्त्री पुरुषो (भुरण्यौ), जैसे इधर उधर देखने वाला या भोजनादि की इच्छा करता हुआ पशु-पक्षी किसी वन में रखा हुआ रहता है, उसी प्रकार सुपर्ण परमेश्वर-पुत्र वेद तुम्हें वन में स्थापित किया हुआ प्राप्त होता है । ज.दे.श.

भुरमाण – (१) भृ + शानच् = भुरयाण (उत्व) । अर्थ है, पुष्टि कारक –दया.
(२) सबका भरण पोषण करने वाला
'युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतम्
ऋ. १.११९.४
आप दोनों विद्वान् और वेगवान् अश्वारोहियों से युक्त (विभिःगतम्) सबक के पालक (भुज्युम्) और सबके भरण पोषण करने वाले (भुरमाणम्) नायक को.....

भुर्वणि– भृञ् + क्वणि = भुर्वणि । यः विभर्षि (जो पालन पोषण करता है) । अर्थ है (१) पति, (२) सूर्य, (३) सभाध्यक्ष ।

भुर्वन् – (१) जलों के धारण और आहरण करने का कार्य, (२) भरण पोषण का कार्य,
'अपामिषन्त भुर्वणि '
ऋ. १.१३४.५
जलों के धारण आहरण या प्रजाओं के भरण पोषण के कार्य में (भुर्वणि) प्रेरणा करते रहें (इषन्त) ।

भुरिक् – (१) बाहु, पालनशील बाहु (२) समस्त राष्ट्र (भुरिज्) को भरण पोषण करने वाला
'समी रथं न भुरिजोरहेषत '
ऋ. ९.७१.५
(३) धारक पोषक – दया.
'रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोः '
ऋ. ४.२.१४
(४) कैंची
' क्षुरो न भुरिजोरिव '
अ. २०.१२७.४ शां.श्रौ.सू. १२.१५.१.१.
बाहु के अर्थ में
'सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरम् '
ऋ. ८.४.१६

भूरिषाट् – (१) बहुत भार सहने वाला (२) बहुत शीत, आतपादि सहने वाला
'स ईं रथो न भूरिषाडयोजि '
ऋ. ९.८८.२, साम. २.८२२.

भुवद्वसु – (१) सम्पत्ति शाली, (२) धनों को उत्पन्न करने वाला ।

भुवन – (१) भवनानि भूतानि (प्राणि वर्ग)
(२) जगत् ।
(३) भावन, उत्तम तृप्ति कारक ।
(४) उदक जल । भूतं भुवनम् इति उदकनामसु पठितम् (भुवनस् उदक का पर्याय है) ।
लोक प्राणि जगत् के अर्थ में–
'यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः '
ऋ. १.१६४.२, अ. ९.९.२, १३.३.१८, नि. ४.२७.
जिस काल के गाल में सभी प्राणी अप्राणी विनष्ट हो जाते हैं ।
जल के अर्थ में ।

'नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना'
ऋ. १.१४३.४
पृथिवी की नाभि में जल के बल से (भुवनस्य मज्मना)।
(५) लोक, जीव।
'य इमे द्यावापृथिवी जनित्री
रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा'
ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९, वाज.सं. २९.३४, मै.सं. ४.१३.३: २०२.११, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१४
जिस त्वष्टा में सभी जीवों को उत्पन्न करने वाली इन द्यौ और पृथिवी को तथा समस्त जीवों और लोकों को रूपों से अवयव युक्त किया।

भुवनपतिः– भुवनों का स्वामी
'भुवनपतये स्वाहा'
वाज.सं. २.२, तै.सं. २.६.६.३, मै.सं. ३.८.६, १०३.७, का.सं. २५.७, ३५.८, श.ब्रा. १.३.३.१७.

भुवनस्य गोपाः– सम्पूर्ण प्राणियों का रक्षक – पूषा या आदित्य,
'पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वान्
अनष्टपशुर्भुनवस्य गोपाः'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१, नि. ७.९.
हे मृतात्मा ! अव्यवहित ज्ञान एवं प्रत्यक्षदर्शी (विद्वान्) सम्पूर्ण प्राणियों के रक्षक (भुवनस्य गोपाः) अविनश्वर पशु भक्त या जिसके रहते पशु नष्ट नहीं होते या निरन्तर प्रकाशवान् आदित्य (अनष्ट पशुः पूषा) तुझे (त्वा) इस लोक से (इतः) उत्तम लोक को पहुंचावे (प्रच्यावयतुः)।

भुवनस्यनाभिः – (१) समस्त संसार का आश्रय – यज्ञ, (२) परमोपास्य परमेश्वर
'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः'
ऋ. १.१६४.३५, अ. ९.१०.१४, वाज.सं. २३.६२.

भुवनस्य रेतः – उत्पन्न होने वाले देह या विश्व का मूल कारण कर्मफल या प्रकृति
'प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतः'
अ. २.३४.२
भुवनस्य पंक्तिः भुवन, ब्रह्माण्ड को पकाने या परिपक करने वाली ब्रह्मशक्ति
'सहस्राक्षरा भुवनस्य पंक्तिः'
अ. ९.१०.२१

भुवना– ब.व. (वि.)। भूतकालिक
'सना ता का चिद् भुवना भवीत्वा'
ऋ. २. २४.५

भुवन्ति – (१) भूमि का विस्तार करने वाला (२) कृषि के लिये अनुपयुक्त भूभाग को कृषि के लिए उपयोगी बनाने वाला
'नमो भुवन्तये वारिवस्कृताय'
वाज.सं. १६.१९, तै.सं. ४.५.२.२, मै.सं. २.९.३, १२२.१५, का.सं. १७.१२.

भुवनेष्ठा– सब भुवनों मे स्थित परमात्म शक्ति
'प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः'
अ. ४.१.२.

भुवपतिः–पृथ्वी का स्वामी
'भुवपतये स्वाहा'
वाज.सं. २.२, श.ब्रा. १.३.३.१७

भुवम् – अस्मि। हूँ।
'अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः'
ऋ. १०.४८.१, ऐ.ब्रा. ५.२१.६, कौ.ब्रा. २२.४, २६.१६
मैं इन्द्र धन का मुख्य, असाधारण सनातन स्वामी हूँ (वसुनः पूर्व्यः पतिः भुवम्)।

भुवः – भू (भूलोक या भूतजात) के षष्ठी एक वचन का रूप। अर्थ– (१) भूलोक का, (२) भूतजात का (३) वातावरण, (४) अन्तरिक्ष लोक, (५) भूः भुवः स्वः नामक व्याहृतियों में द्वितीय (६) भुव नामक अग्नि जो सबका मूल कारण है।
'अयं पुरो भुवः
तस्य प्राणो भौवायनः'
वाज.सं. १३.५४
आधुनिक अर्थ – (१) पृथ्वी, (२) संसार, (३) पृथ्वीधन, भूखण्ड, (४) पदार्थ, (४) विषय, (६) प्रतिपाद्य विषय, (७) एक का वाचक, (८) ज्यामितिक रेखा का आधार (९) तीन व्याहृतियों में प्रथम

भुवे– 'भू' शब्द के चतुर्थी ए.व. का रूप। अर्थ– (१) भूलोक के लिए, (२) प्राणी वर्ग के लिए

भूः – भूलोक। भू धातु से सिद्ध। पृथ्वी पर ही सब कुछ उत्पन्न होता है।
'मूर्धाभुवो भवति नक्तमग्निः

ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.
रात में अग्नि भूलोक की मूर्धा रूप है ।
'भूर्जज्ञ उत्तानपदः '
ऋ. १०.७२.४
उत्तानपाद् से भूमि उत्पन्न हुई

भूत्- भवति (होता है) । लुङ् के अर्थ में लट् का प्रयोग हुआ है । अट् का अभाव है ।

भूतकृत् - (१) प्राणियों को उत्पन्न करने वाली, (२) पंचभूतों को पैदा करने वाली
'यत्र गा असृजन्त
भूतकृतो विश्वरूपाः '
अ. ३.२८.१
(३) समस्त सत्य पदार्थों का उपदेश करना - ऋषि
'स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव '
अ. ६.१३३.४
(४) उत्पन्न पदार्थों का भोग करने वाला, (५) पंचभूतों की साधना करने वाला
'यामृषयो भूतकृतः '
अ. ६.१०८.४
(६)समस्त सत्य पदार्थों का उत्पादक ऋषि

भूतन - भवत (होओ) । 'बहुलं छन्दसि' से शप् का लोप और 'तप् तनप् तन धनाश्च' पा. ७.१.४५ से त का तन आदेश'।

भूतपतिः- समस्त प्राणियों और पंचभूतों की शक्तियों का पालक पति और वश करने वाला परमेश्वर
'भूतपतिर्निरजतु '
अ. २.१४.४

भूतस्य पतिः- स्थावरजंगमात्मक जगत का पति-पालक ईश्वर हिरण्यगर्भ ।
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
ऋ. १०.१२१.१, अ. ४.२.७, वाज.सं. १३.४, २३.१, २५.१०.का.सं. १६.१५,२०.५, ४०.१, श.ब्रा. ६.४.१.१९, १३.५.२.२३.
सृष्टि के पूर्व परमात्मा से हिरण्य- गर्भ उत्पन्न हुआ, वह अद्वितीय जन्म लेते ही स्थावर जंगमात्मक जगत् का पति, पालक या ईश्वर हुआ ।

भूतसाधनी - समस्त प्राणियों को अपने वश करने वाली - पृथ्वी
'सप्त संसदो अष्टमी भूतसाधनी '
वाज.सं. २६.१

भूतः- (१) स्थावर एवं जगम रूप जगत् ।
(२) उपमार्थक
'इत्था धीवन्तमद्रिवः
काण्वं मेधातिथिम् ।
मेषोभूतोऽभियन्नयः '
ऋ. ८.२.४०
हे वज्रधारी इन्द्र ! (अद्रिवः) इस प्रकार से (इत्थम्) बुद्धिमान् या कर्मनिष्ठ (धीवन्तम्) काण्व मेधातिथि नामक ऋषि के पास आह्वान् सुनते ही जाता हुआ (काण्वं मेधातिथिम् अभियन्) रूप या भेंड की तरह (मेषः भूत) आह्वान् का उत्तर दिए बिना ही तू उनके पास पहुंच गया (अयः) ।
अन्य अर्थ - वज्रिन् राजन् , सत्य वक्ता (इत्था) कर्मशील (धीवन्तम्) मेधावी (काण्वम्) तथा संगति के योग्य अतिथि को (मेधातिथिम्) भेंडे की तरह (मेषः भूतः) प्राप्त होते हुए (अभियन्) आवश्यक सामग्री पहुंचा (अयः)।

भूतांशः - समस्त प्राणियों में व्यापक प्रभु
'आ भूतांशो अश्विनोः काममप्राः '
ऋ. १०.१०६.११

भूति- (१) समस्त ऐश्वर्य
'भूतञ्च मे भूतिश्च मे '
वाज.सं. १८.१४, तै.सं. ४.७.५.२, मै.सं. २.११.५, १४२.९, का.सं. १८.१०.
'भूत्यै जागरणं '
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४
(२) जीवन का आश्रय, (३) सुखभूमि
'भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जनाः '
अ. ६.८४.१, तै.सं. ४.२.५.३.

भूतु - भवतु (हो) ।
'युवाभ्यां भूत्वश्विना '
ऋ. ८.५.१८, २६.१६
हे अश्विनीद्वय, वह सोम तुम्हें प्रियकर हो ।
'स भूतु यो ह प्रथमाय धायसे
ओजो मिमानो महिमानमातिरत् '
ऋ. २.१७.२

भूमन् - भू + मनिन् = भूमन् । अर्थ है - (१) भूमि, (२) महान् यज्ञ, (३) महान् तपश्चरण ।

'ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना'
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८. तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.६, का.सं. १८.१
जैसे पूर्वकालीन स्तुतिकर्त्ता ऋषियों ने वार्षसाहस्रिक यज्ञ से सृष्टि की। अथवा, परमात्म भक्तों के समान पूर्वकालीन ऋषियों ने महान् तपश्चरण से जैसे.....
पृथ्वी के अर्थ में प्रयोग-
'यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम'
ऋ. ५.८५.३, नि. १०.४
जैसे पढ़ाने वाला (वृष्टिः) पृथ्वी को (भूम) यव बोने के लिए (यवं न) तरह तरह से सींचता है (व्युनत्ति)।
(४) बहुत, बहुत सी प्रजा, बहुत सेना
'भूम्ने परिष्कन्दम्'
वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७.
(५) बहुत भारी संख्या
'गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानम्'
अ. १९.३१.४
(६) महान् - दया.
(७) कारणभूत - सा.

भूम्य - भूमिषु साधुः। भूमि का उच्च भाग, उच्चप्रदेश
'विभूम्या अप्रथम इन्द्रसानु'
ऋ. १. ६२.५
हे ऐश्वर्यवन्! तू भूमि के उच्च भाग, उत्तम प्रदेश को विस्तृत कर

भूमा - ब्र.व। (१) बहुत, बड़े बड़े
'श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ
भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रवित्के'
ऋ. ६.५०.५
तुम हमारा आह्वान सुनकर जब आते हो तो मार्ग में अर्थात् अन्तरिक्ष में बहुत जीव कांपने लगते हैं।
अथवा,
उपदेश का श्रवण कर जब तुम सब क्रियाएं करते हो तब जीवन मार्ग के परिशुद्ध होने पर बड़े बड़े शत्रुसैन्य तुम से कांपते हैं।
(२) (सं.) ए.व.। अधिकता, प्रचुरता
'अन्नस्य भूमा प्ररुषस्य भूमा'
अ. ५.२८.३

भूमि - (१) भूमि, पृथिवी। आधुनिक अर्थ - पृथ्वी, भूभाग, अधित्यका भूमि, स्थान, पृथ्वी धन, कथा, भवन की संतह, चेष्टा, पात्र, विश्वास भूमि, इयत्ता, सीमा, जिह्वा
(२) जब जगत का उत्पादक प्रकृति
'स भूमिं विश्वतो वृत्वा
अत्यतिष्ठत् दशांगुलम्'
ऋ. १०.९०.१

भूमिगृह - (१) जिसका भूमि ही गृह हो, (२) खाक में मिल जाना।
'मा नु भूमि गृहो भुवत्'
अ. ५.३०.१४

भूमिज - भूमि + जन् + ड = भूमिज। अर्थ - (१) भूमि का पुत्र अंगार, कुज, मंगल

भूमि दृंहः - (१) भूमि को दृढ़ करने वाला दर्भ। (२) राज्य को दृढ़ करने वाला।
'भूमि दृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः'
अ. १९.३३.२

भूयस्करः - अति अधिक समृद्धि का कर्त्ता
'बहुकार श्रेयस्कर भूयस्कर'
वाज.सं. १०.२८, श.ब्रा. ५.४.४.१४

भूयान् - अधिक।
'भूयानिन्द्रो नमुरात्'
अ. १३.४.४६

भूयाः - भव (हो)।

भूयो भूयः - भविष्य में
'भूयोभूयःश्वः श्वः'
अ. १०.६.५-१७

भूरिदावरी - बहुत से ऐश्वर्य देने वाली
'विद्मा ह्यस्य वीरस्य
भूरिदावरीं सुमतिम्'
ऋ. ८.२.२१

भूर्जय- भूलोक को या जन्मग्रहण रूप भवबन्धन को विजय करने वाला
'प्र भूर्जयो पथापथा'
अ. १८.१.६१, साम. १.९२

भूर्जयन् - भुवनों को वश में करने वाला
'प्र भूर्जयन्तं महां विपोधाम्'
ऋ. १०.४६.५, साम. १.७४

भूर्यासुति- भूरि + आसुति। बहुत से अन्नों का स्वामी- प्रभु, इन्द्र
'वृत्रहा भूर्यासुतिः'

ऋ. ८.९३.१८, साम. १.१४०.

भूर्णयःस्पशः– (१) समस्त संसार को भरण पोषण करने वाले या धर पकड़ करने वाले सब के चरित्रों को देखने वाले नियमरूप दूत
'तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः'
अ. ५.६.३, का.सं. ३८.१४
'अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः'
ऋ. ९.७३.४, आप.श्रौ.सू. १६.१८.७.

भूर्यक्षाः – भूरि + अक्षाः । (१) बहुत आंखों वाले । 'आदित्यासः' का विशेषण, (२) दूतादि रूप चक्षुओं वाले, (३)बहुत से अध्यक्षों के स्वामी राजा
'अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः'
ऋ. २.२७.३

भूरि – भूरि इति बहुवो नामधेयम् । प्रभवति इतिसतः 'भूरि' बहुत का वाचक है । इससे होता है अतः यह भूरि है ।
बहुधाऽपि दीयमानम् एतत् प्रभवति (अनेक प्रकार से देने पर भी यह बढ़ता ही है ।
भू + क्रिन् = भूरि । अंग्रेजी के very शब्द का 'भूरि' शब्द से सम्बन्ध विचारणीय है ।
अर्थ – बहुत, अनेक, अच्छी तरह से । दे. 'अनिन्द्र'
'खलेन पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०
खलिहान में (खले) धान्य सहित पुआल के समान अनकों शत्रुओं को एक ही साथ कुचल डालता हूँ ।

भूरिकर्मा – (१) बहुत अधिक कर्म करने वाला – परमेश्वर (२) राजा
'भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे'
ऋ. १.१०३.६

भूरिजन्मा – (१) नाना जन्मों का स्वामी (२) बहुत से पदार्थों का जन्म दाता
'अस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे'
ऋ. १०.५.१

भूरिलोक – बहुत पुत्रो वाला ।

भूरिदात्रः – प्रचुरदान करने वाला, प्रचुरदाता ।
'भूरिदात्र आ पृणद्रोदसी उभे'
ऋ. ३.३४.१, अ. २०.११.१
हे प्रचुरदान करने वाले इन्द्र या राजन् ! (भूरिदात्र) आप द्युलोक तथा पृथ्वीलोक को जैसे सूर्य पालन करता है वैसे ही प्रजाओं का पालन करें (आ पृणत्) ।

भूरिदावत्तरा – (१) अतिशयेन बहुधनस्थ दाता (प्रत्येक धन को अतिशय रूप से देने वाला) ।
भूरि + दा + वनिप् = भूरिदावत्, भूरिदावत् + तरप् = भूरिदावत्तर ।
बहुत अधिक दान देने वाले इन्द्राग्नी का विशेषण । द्वि.व. में यह प्रयोग है ।
'अश्रावं हि भूरिदावत्तरा वाम्'
क्योंकि मैंने तुम्हें बहुत दान करने वाला सुना है ।

भूरिदावा – बहुत दान देने वाला ।
'भूरिदाव्न आविदं शूनमापेः'
ऋ. २.२७, २८.११, २९.७.

भूरिधनः– बहुत धनी, धनाढ्य
'उपहूताः भूरिधनाः'
अ. ७.६०.४, आप.श्रौ.सू. ६.२७.३, हि.गृ.सू. १.२९.१.

भूरिधारा– बहुत धारावाली

भूरिधारे – द्वि.व. । द्यावापृथिवी का विशेषण । बहुत धारावाली या बहुत जीवों को धारण करने वाली ।
'असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती'
ऋ. ६.७०.२, नि. ५.२.
परस्पर संश्लिष्ट नहीं होती हुई, बहुत धारा वाली, या बहुत जीवों को धारण करने वाली तथा जलवाली द्यौ और पृथिवी ।

भूरिपर्वस्– (१) बहुत रूपों वाला– परमात्मा या अग्नि ।
(२) पार्थिव वैद्युत आदि रूपों वाला अग्नि–सा.
(३) अनेक रूपों वाला परमेश्वर –दया.
'आ विवेश रोदसी भूरिपर्वसाः'
ऋ. ३.३.४
पार्थिव वैद्युत आदि अनेक रूपों में वर्तमान् अग्नि ने द्यौ और पृथिवी में प्रवेश किया है । –सा.
परमेश्वर द्यौ और पृथिवी में अनेक रूपों में वर्तमान है । –दया.

भूरिपोषिन् – बहुतों का पालन पोषण करने वाला ।
'तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयम्'

ऋ. ३.३.९

भूरिभारः– बहुत भार वाला
'तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः'
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.९.११.
उस काल चक्र में वर्तमान संवत्सर नामक अक्ष प्रभूत भार वाला होने पर भी (भूरिभारः) पीड़ित या भग्न नहीं होता (न तप्यते)।

भूरिमूल– (१) लम्बी जड़ वाला दर्भ (२) बहुत से मूलरूप आश्रयों पर स्थित पुरुष
'अयं यो भूरिमूलः'
अ. ६.४३.२

भूरिरेतस् – (१) जिसमें बहुत से जल हो– अन्तरिक्ष–दया. (२) बहुत वीर्य या बहुत वीर्य वाला
'अग्निद्यावापृथिवी भूरिरेतसा'
ऋ. ३.३.११, तै.सं. १.५.११.१
(३) बहुत से लोकोत्पादक वीर्य के सात प्राम–सामर्थ्यों से युक्त –काल
'सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः'
अ. १९.५३.१

भूरि रेतसा– द्वि.व.। बहुत वीर्यशाली (२) सहस्रों प्राणियों को उत्पन्न करने वाली दोनों उषाएं प्रातः और सायम्
'केतुमती अजरे भूरिरेतसा'
अ. ८.९.१२, मै.सं. २.१३.१०, १६०.४, का.सं. ३९.१०

भूरिवारः – (१) सहस्रों कष्टों का कारण करने वाला, (२) बहुतों से वरणीय
'सुखं रथं सुषदं भूरि वारम्'
ऋ. ८.५८.३

भूरिवारा – (स्त्री)। बहुत प्रकार के सुख धनादि को चाहती हुई स्त्री
'इमा उ ते मनवे भूरिवाराः'
ऋ. ३.५७.४

भूरिवृत्राः– (१) बहुत से विघ्न, (२) बहुत से विघ्नकारी दुष्ट पुरुष
'वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे'
ऋ. ८.९०.४

भूरिश्रृंगाः– ब.व.। (१) जिन्हें बहुत श्रृंग या दीप्ति हों, बहुत सींगों वाली (२) बहुत दीप्ति वाली दे. 'अयासः'।
(भूरि श्रृंगाः दीप्तयः यासांताः)

भूरिस्थात्रा– (१) बहुत शक्ति प्रदान करने वाली
'भूरिस्थात्रां भूर्या वेशयन्तीम्'
ऋ. १०१२५.३, अ. ४.३०.२
(२) नाना पदार्थों में स्थित होकर उनका त्राण करने वाली राष्ट्री परमेश्वरी शक्ति

भूर्णिः– भ्रम् + नि = भूर्णि। अर्थ (१) भ्रमणशील – सिंह – सा. (२) भृ + नि = भूर्णिः। धारण कर्ता – ज.दे.श.
'भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधम्'
ऋ. ८.१.२०, साम. १.३०७, नि. ६.२४.
जैसे श्रृगालादि वन्यजीव भ्रमणशील सिंह को (भूर्णिं मृगं न) क्रोधित नहीं करता (माचुक्रुधम्)–सा.
सबके धारण कर्ता आप को (भूर्णिम्) सिंह के समान क्रोधित न करूँ (मा चुक्रुधम्)।

भूर्णिःभृगः– (१) भ्रमण शील सिंह। भूर्णि शब्द को कुछ विद्वान् इन्द्र का विशेषण समझ धारण कर्ता अर्थ करते हैं।

भूषण– (१) प्रकट होता हुआ, (२) व्यापक होता हुआ, (३) उत्पन्न होता हुआ।

भूषात् – (१) अतिक्रमण करता है, सामर्थ्यवान् होता है।
'कविर्यदहन् पार्याय भूषात्'
ऋ. ४.१६.११
हे इन्द्र या राजन्! तू क्रान्तदर्शी जिसी दिन (यत् अहन्) आपत्ति को निवारने, या शत्रुओं को पार करने या दुःख सागर में पार होने के लिये इच्छा करता है उसी दिन उन शत्रुओं का अतिक्रमण करता है या सामर्थ्यवान् होता है (पर्याय भूषात्)।

भ्रू – भौं
'पन्थानं भ्रूभ्याम्'
वाज.सं. २५.१

भ्रूण– (१) गर्भ, (२) अङ्कुर
'सर्वा भ्रूणान्यारुषी'
ऋ. १०.१५५.२

भ्रूणहा– (१) भ्रूणघाती पुरुषष (२) वाधायन ने 'भ्रूण' का अर्थ 'कल्पप्रवचनाध्यायी' माना है। कल्प प्रवचन–सहित सांगवेद का विद्वान् भ्रूण है और उसको मारने वाला 'भ्रूणहा' है।

'भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व'
अ. ६.११२.३, ११३.२

भृगवा– (१) पापों को भून डालने वाला–अग्नि, (२) पाप को भून डालने वाला ज्ञान –प्रकाश
'भृगवानं विशेविशे'
ऋ. ४.७.४

भृगवाणः– (१) पदार्थ विद्या से अनेक पदार्थों को व्यवहार में लाने वाला –दया. (२) भुनने वाला –अग्नि –ज.दे.श।
'आ दूत्यं भृगवाणो विवाय'
ऋ. १.७१.४
वह भुनने वाला तीव्र अग्नि को रूप के में होकर (भृगवाणः) तापक्रिया को प्रकट करता है ।

भृगुः– भ्रस्ज् (पाक अर्थ में) + उ । ('पथिम्रदि भ्रस्जां सम्प्रसारणं स लोपश्च – उ.) = भृगु । र् का साम्प्रसारण ऋ, स का लोप और ज् का ग । अर्चिषि भृगुः सम्बभूव । (भृगु नामक ऋषि ज्वाला से उत्पन्न हुए) । ज्वाला बुझ जाने पर जो अङ्गार थे उनसे अंगिरा उत्पन्न हुए (अंगरेषु अंगिराः) ।
भृगुः भृज्यमानः न देहे । प्रजापति ने अपना वीर्य अग्नि में डाल दिया । अग्नि में विशेष रूप से परिपक्व होने पर वह वीर्य देह रूप में परिणत हुआ और अत्यन्त तेजस्वी होने से भृगु कहलाया ।
स्वा. दयानन्द नें भृगु का अर्थ तपस्वी किया है क्योंकि तपस्वी कष्टों में अच्छी तरह भुना रहता है ।
अर्थ – (१) भृगु नामक अथर्व वंश वाले ऋषि –सा. । भृगु और अंगिरा अथर्वाणः कहलाए हैं, (२) जमदग्नि ऋषि का एक नाम, (३) तपस्वी, वाणप्रस्थी ।
'अंगिरसो नः पितरो नवाग्वाः
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः'
ऋ. १०.१४.६, अ. १८.१.५८, वाज.सं. १०.५०, तै.सं. २.६.१२.६, नि. ११.१९
पुनः–
'यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं
नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्नि तं गीर्भिर्हिनुहिस्व आ दमे
य एको वस्वो वरुणो न राजति'
ऋ. १.१४३.४
भृगुपुत्र या पाप भर्जक तपस्विजन (भृगवः) सर्वज्ञ या सर्वधन जिस अग्नि को (विश्ववेदसं यम्) वेदी को उत्तरवेदी में (नाभा) भूतजात के (भुवनस्य) बल या निमित्त से (मज्मना) या उदक के हविरूप बल से अधिप्रेत सिद्धि के लिए सामने लाया (आ ईरिरे) उस अग्नि को (तम् अग्निम्)अपने घर में (स्वेदमे) स्तुतियों से (गीर्भिः) सम्मुख हो (आ) प्राप्त कर या प्रेरित कर (हिनुहि) जो अग्नि अकेले (यः एकः) सूर्य के समान (वरुणो न) गवादि धन का स्वामी है (वस्वःराजति) ।
स्वामी दयानन्द ने भृगु का अर्थ तपस्वी तथा अग्नि का अर्थ परमात्मा किया है । अतिपरिपक्व ज्ञान वाला, अपने सुदीर्घ अनुभव से ज्ञान को परिपक्व करने वाला ज्ञानी ।
(४) एक महर्षि जो भृगुओं के पूर्व पुरुष कहे गए हैं । (५) प्रथम मनु के द्वारा सृष्ट दश ऋषियों में एक (६) शुल्क
पौराणिक कथा इस प्रकार है–
एक बार जब ऋषियों में विवाद हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव में कौन पूज्य है, तो भृगु ही तीनों की परीक्षा के लिए भेजे गए । जब वे ब्रह्मा के पास पहुंचे तब ब्रह्मा ने उनका सम्यक् सत्कार नहीं किया अतः ब्रह्मा को भृगु ने शाप दे दिया कि तू कभी पूज्य नहीं होगा ।
जब वे शिव के निकट पहंचे तो शिव पार्वती जी के साथ प्रेममग्न थे । उन्हें शाप दिया कि शिव के लिंग की ही पूजा होगी ।
जब वे विष्णु के पास पहुंचे तो उन्हें सोते देखा भृगु ने उनकी छाती पर कस के लात मारी । विष्णु ने उठकर पूछा कि ऋषिवर के पैर में चोट तो नहीं लगी । और पैर सहलाने लगे । भृगु ने विष्णु की इस दयालुता और उदारता से ही उन्हें ही सर्वोत्तम देव समझा ।
दूसरी कथा – भृगु ने ब्रह्मा के निकट जाकर जान बूझकर प्रणाम आदि नहीं किया । ब्रह्मा के बहुत क्रुद्ध होने पर उन्होंने उनसे क्षमा प्रार्थना की । पुनः शिव के पास पहुंच भी उन्होंने वैसा ही किया । इस पर शिव क्रोधाग्नि से भभक उठे । उन्हें भी प्रार्थना द्वारा शान्त किया ।

आधुनिक अर्थ – (१) जमदग्नि ऋषि का एक नाम, (२) शुक्र का नाम, (३) शुक्र ग्रह, (४) चट्टान (५) पर्वत के ऊपर की समतल भूमि, (६) कृष्ण का नाम,

'कण्वा इव भृगवः सूर्या इव'

ऋ. ८.३.१६, अ. २०.१०.२, ५९.२, साम. २.७१३, मै.सं. १.३.३९, ४६.७, आप.श्रौ.सू. १३.२१.३.

भृङ्गा– भ्रमर, भौंरा

'श्रोत्राय भृंङ्गाः'

वाज.सं. २४.२९, मै.सं. ३.१४.८.१७४.२.

'यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवः'

अ. ९.२.२२

भृत्या– भरण पोषण की क्रिया

'य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात्'

ऋ. १.८४.१६, अ. १८.१.६, साम. १.३४१, तै.सं. ४.२.११.३, मै. सं. ३.१६.४, १९०.५, नि. १४.२५.

भृति– (१) भरण पोषण , (२) वेतन, वृत्ति,

भृम – (१) भरण पोषण में समर्थ

'वेदा भृमं चित् सनिता रथीतमः'

ऋ. ८.६१.१२

(२) भ्रम, भूल

'मा ते अस्मान् दुर्मतयो भृमाञ्चित्'

ऋ. ७.१.२२

भृमल– भौंरा जाति का एक कीट जिसे भेमा भी कहते हैं ।

'हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये'

अ. १२.१.४६

भृम्यश्व– (१) भृ + मिङ् = भृमि । अर्थ है । भर्त्तव्य पालनीय । यहां मिङ् प्रत्यय कर्म में हुआ है ।

'भृमयः अस्य अश्वाः'

(इसके अश्व अनवस्थायी हैं) ।

अथवा – 'विभर्ति असौ अश्वान्' (यह अश्वों का पालन करता है अर्थात् – अश्व रखने या पोसने वाला ।(२) भ्रम् + इन् = भ्रमि । ऐसी व्युत्पत्ति करने पर अर्थ होगा – घोड़े को फेरने वाला (अश्वस्य भ्रामयिता) ।

(३) भृम्यश्व नामक एक राजा (४) जिसके अश्व सदा चलने फिरने वाले हों ।

(४) जो अनेक अश्वों का धारण करने वाला है ।

भृमि – भ्रम् + इन् = भृमि । 'भ्रमेः सम्प्रसारणञ्च' से भ्र के र का ऋ । अर्थ है (१) भरमने वाला – अग्नि ।

(२) दुर्ग ने इसका अर्थ – 'त्वदधीन एव संसार मोक्षश्च' (तेरे ही अधीन संसार और मोक्ष है) ऐसा किया है ।

(३) सायण ने इसका अर्थ– भ्रामक या कर्म निर्वाहक किया है ।

(४) स्वामी दयानन्द के अनुसार इस का अर्थ 'भ्रमणशील' प्रजा है ।

'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः
इममध्वानं यमगामदूरात्
अपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां
भृमिरस्यृषि कृन्मर्त्यानाम्'

ऋ. १.३१.१६

हे अग्नि ! हमारी इस व्रतलोमिनी हिंसा या मरण रूपिणी संसृति को (नः इमां शरणिम्) तू क्षमा कर या मार्जन कर (मीमृषः) तथा अग्निहोत्रादि रूपी तेरी सेवा का त्याग कर जो हम दूरदेशी मार्ग पर भटक कर आ गए हैं । उसे भी तू क्षमा कर (दूरात् यम् इमम् अध्वानम् अगाम) क्योंकि तू सोमयज्ञ करने वाले मनुष्यों के प्रापणीय या व्यापयिता है (सोम्यानां मर्त्यानाम् आपिः), पालक पिता तथा प्रकृष्ट मति वाला है (प्रमतिः असि) । इतना ही नहीं, तू संसार में भ्रमयिता, भ्रामक या कार्य निवाहक है अर्थात् तेरे बिना संसार नहीं चल सकता (भृमिः) । और तू दर्शन कारी अर्थात् पदार्थों को प्रत्यक्ष करने वाला है (ऋषिकृत्) । अतः तू सभी विज्ञानों के प्रकाश से हमें अनुगृहीत करे– देवयान पथ से जाकर हमें मोक्ष दें ।

स्वा.दयानन्द का अर्थ – हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप हमारी इस मृत्यु को परिमार्जित करो (नः इमां शरणिं मीमृषः) और इस संसार मार्ग को (इमम् अध्वानम्) जिसे हमने आप से दूर होकर प्राप्त किया है (यं दूरात् अगाम), हम से हटावो । आप प्राप्त हो (आपिः), पिता हो (पिता), प्रकृष्ट बुद्धि वाले सौम्य जनों को तथ्यदर्शी बनाने वाले हो (सोम्यानां मर्त्यानाम्) एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नायक हों ।

(४) धारक सूर्य, (६) भरण पोषण करने वाली स्वामी (७) भ्रमण शील विद्वान् (८) परिव्राजक

'भृमिं चित् यथा वसवो जुषना'
ऋ. ७.५६.२०
(९) भ्रम, संशय, (१०) मेघ
'भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत'
ऋ. २.३४.१, तै.ब्रा. २.५.५.४.

भृष्टिः- (१) तेज, प्रकाशं
'सामद्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः'
ऋ. ४.५.३
(२) पर्वत श्रृंग ।
'गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः'
ऋ. १.५६.३
वह इन्द्र पौरुष में पर्वत श्रृंगार की तरह चमकता है ।-सा.
शीघ्र प्रदाता, महान् तेजस्वी पुरुष अक्षीण यौवन में पर्वत शृंग की तरह चमकता है - दया. ।

भृष्टिमत् - (१) पापों को भून डालने वाला अज्ञान -नाशक प्रकाश, (२) जलाने वाला अस्त्र (३) प्रशंसनीय नीतिवाली न्याय भावना से युक्त
'वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन
नि त्वमिद्र प्रत्यानं जघन्थ'
ऋ. १.५२.१५

भेकुरिः- (१) प्रकाश करने वाला नक्षत्र, (२) ज्ञान दीप्ति करने वाली
'तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम'
वाज.सं. १८.४०, तै.सं. ३.४.७.१, मै.सं. २.१२.२; १४५.४, का. सं. १८.१४, श.ब्रा. ९.४.१.९.

भेजानः- सेवन करता हुआ
'भेजानासः सुवीर्यम्'
ऋ. १०.१५३.१, अ. २०.९३.४

भेद- विदलीभूत प्रदेश ।

भेषज- (१) दवा, ओषधि,
'दिवानक्तं न भेषजैः'
वाज.सं. २१.३६, मै.सं. ३.११.२: १४२.६, तै.ब्रा. २.६.११.६.
(२) भे + षज । भय का सादन करने वाला कर्म -सा.
(३) भेषजमय हाथ- दया.
'ऊर्ध्वं जिगातु भेषजम्'
ऋ.खि. १०.१९१.५; मै.सं. ४.१३.१०: २१३.१; श.ब्रा. १.९.१.२७; तै.ब्रा. ३.५.११.१; तै.आ. १.९.७: ३.१.
भय का सादन करने वाला कर्म ऊपर जाय-सा.
हे ईश्वर ! आप का भेषजमय हाथ हमारे ऊपर रखा रहे - दया.

भेषजाः - ब.व. । (१) ओषधियां ।
'सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.६
.हे स्वप्न वचन या वातावरण में आविष्ट या वातावरण को धारण करने वाले रुद्र (स्वपि वात), तेरी सहस्रों ओषधियाँ (२) पथ्य, भोजन । (३) भय सादयितृकर्म (भय दूर करने वाला कर्म भी भेषज है)
(४) भेषजनम् - परमात्मा का हाथ ।

भेषजी- (१) रोगों को दूर करने वाली
'आप इद् वा उ भेषजीः'
ऋ. १०.१३७.६, अ. ३.७.५, ६.९१.३

भ्रेष्- (धा.) च्युत होना
'नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन्'
ऋ. ७.२०.६

भोज् - यः भुज्यते (जो खाया जाता है) - अन्न,

भोजः - (१) राजा या दानी । भुज् + अच् = भोज
(२) भोजन आदि द्वारा सत्कार करने वाला
'न भोजा मम्रुर्न न्यर्थकीयुः'
ऋ. १०.१०७.८
'किमङ्गत्वा मघवन् भोजमाहुः'
ऋ. १०.४२.३, अ. २०.८९.३
'भोज्यायाश्वं सं मृजन्त्याशुम्'
ऋ. १०.१०७.१०
राजा या दानी के लिए (भोजाय) परिचारक शीघ्र गामी अश्व (आशुम् अश्वम्) अलंकृत करते हैं (संमृजन्ति) । (२) भोजक, भोगी, (३) स्रष्टा, पालक,
'न ते भोजस्य सख्यं मृषन्त'
ऋ. ७.१८.२१
वे ऋषि तुम् भोजक या योगी का संग नहीं बिसारते ।
या, तुझ स्रष्टा पालक का संग नहीं छोड़ते ।
(३) पृथ्वी का भोक्ता पालक - इन्द्र
'सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम्'
ऋ. २.१४.१०, ६.२३.९.

भोजन - पु (१) पालक परमेश्वर (२) भोक्ता आत्मा,

(३) भोक्ता और पालक राजा
'स्तविष्यामि त्वामहं
विश्वस्यामृते भोजन'
ऋ. १.४४.५, नि. ६.२३
(४) (नः) भुज् + ल्युट् = भोजन। भोज्य पदार्थ, भोजन, (४) भोग्य धन।
भुज्यते यैः यानि वा (जिन से भोजन किया जाता है या जिन से खाया जाता है)।
'दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमानाः
जहुर्विश्वानि भोजनानि सुदासे'
ऋ. ७.१८.१५
दुष्ट कलाबाज बनिए, सुन्दरदान देने वाले यजमान या सुदास राजा को सभी भोजन या धन देवें।
(४) बल, अन्न, धन

भोजनौ - द्वि.व.। परिपालक। भुज् धातु पालनार्थक भी है।
'दातुः पितृष्विह भोजनौ मम'
अ. १८.४.४९

भोजस्- (१) भुज् + असुन्। अर्थ -पालन, (२) भोग
'त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे
महो नृम्णस्य धर्मणाभिरज्यसि'
ऋ. १.५५.३
हे इन्द्र या राजन्! जिस प्रकार मेघ को सूर्य, विद्युत या वायु समस्त प्रजाओं के पालन के लिए (महो नृम्णस्य भोजसे) आघात करता है। उसी प्रकार तू.....

भोज्या - (१) स्त्री -सा.
(२) साहाय्य - दया.
'ददाति मह्यं यादुरी
यासूनां भोज्या शता'
ऋ. १.१२६.६
जो बहुत रंगवाली स्त्री सौ सौ संभोग मुझे देती है। -सा.
मेरी पत्नी प्रयत्न शीलों में अधिक प्रयत्न शीला होती हुई (यासूनां यादुरी) मुझे राज्य-पालन सम्बन्धी अनेक साहाय्य देती है।

भोगः- (प्र.) (१) भोज्य पदार्थ।
'यदा ते मर्तो अनु भोगमानट्'
ऋ. १.१६३.७, १०.७.२, वाज.सं. २९.१८, तै.सं. ४.६.७.३, नि. ६.८
जब मनुष्य तेरे आगे तेरा भोज्य पदार्थ रखता है।
(२) शरीर।
'अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुम्'
ऋ. ६.७५.१४, वाज.सं. २९.५१, तै.सं. ४.६.६.५, वै.सं. ३.१६.३, १८७.४, नि. ९.१५.
हे धनुर्धारी के हाथ में बांधे जाने वाला प्रकोष्ठ (हस्तघ्न), तू प्रकोष्ठ के चारों ओर उसी प्रकार घेरे रहता है जैसे सर्प अपने को अपने शरीर से (अहिरिव भोगैः)।
(३) सर्प का फणि।
'भोगोभिः परिवारय'
अ. ११.९.५

भौमी- भूमि के भीतर तत्वों को प्राप्त करने वाला
'श्वाविद्भौमी'
वाज.सं. २४.३३, मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६.

भौवायन् - भुव नामक अग्नि से उत्पन्न प्राण
'तस्य प्राणो भौवायनः'
वाज.सं. १३.५४, तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९: १०३.१५, का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.१५

म

मकक- हीन आचार वाला पुरुष, मक्कार, धूर्त
'मककान् नाशयामसि'
८.६.१२

मकर- मगर, घड़ियाल
'नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य'
वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१३.१, मै.सं. ३.१४.१६:१७६.१

मक्ष- मक्सी
'मधौ न मक्ष आसते'
ऋ. ७.३२.२, साम. २.१०२.२६

मक्षा- मधुमक्खी
'यथा मक्षा इदं मधु'
अ. ९.१.१७

प्रक्षकृत्वा- शत्रुओं का नाशक इन्द्र, परमेश्वर
'उग्रबाहुर्प्रक्षकृत्वा पुरन्दरः'
ऋ. ८.६१.१०

मक्षिका- माशति शब्दयति रोषं

करोति वा सा मक्षिका । मश शब्दे रोष करणे च । मश् + सिकन् (हनि मशिभ्यां सिकन्)
(१) मक्खी, (२) शिक्षा या उपदेश या रोष का कार्य करने वाली सभा या सेना
'यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश'
ऋ. १.१६२.९, वाज.सं. २५.३२, तै.सं. ४.८.६, मै.सं. ३.१६.१: १८२.१४
(३) उपदेश या शिक्षा का कार्य करने वाली विद्वत्सभा (४) रोष का कार्य करने वाली सेना –ज.दे.श.

मक्षु – शीघ्र ।
'प्रणः पूर्वस्मै सुविताय वोचत
मक्षु सुम्नाय नव्यसे'
ऋ. ८.२७.१०
हे देवो, पूर्व के हुए तथा नए सुविधा एवं सुख के लिये हमें शीघ्र वचन दें (मक्षु प्रावोचत) ।

मक्षुंगमा– अति वेग से जाने वाली
'मक्षुंगमाभिरूतिभिः'
ऋ. ८.२२.१६

मक्षू– शीघ्र
'प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्'
ऋ. १.५८.९, ६०.५, ६१.१६, ६२.१३.६३.९, ६४.१५, ८.८०.१०, ९.९३.५, अ. २०.३५.१६, कौ.ब्रा. २२.२.

मक्षूमक्षू– अति शीघ्र
'मक्षू मक्षू कृणुहि गोजितो नः'
ऋ. ३.३१.२०

मक्षूतम – अतिशीघ्रकारी, अति कुशल पुरुष
'मक्षूतमस्य रातिषु'
ऋ. ८.१९.१२
'मक्षूतमेभिरहभिः'
ऋ. ९.५५.३, साम. २.३२७

मक्षूयु – शीघ्रकारी अश्व, साधन या विद्वान् ।
'मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना'
ऋ. ७.७४.४

मख – महेः ख प्रत्ययः हलोपश्च । यद्वा मख (गतौ) + घ = मख । अर्थ– (१) त्रुटि रहित यज्ञ छिद्र प्रतिषेध सामर्थ्यात । छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मा इति प्रतिषेधः । मा + ख = मख, छिद्र रहित ।
'एष वै मखः य एष तपति'
श.ब्रा. १४.१.३.५
'स एव मखः स विष्णुः । तत
इन्द्रो मखवान् अभवत् ।
मखवान् ह वै तं मघवान्
इत्याचक्षते परोऽक्षम्'
श.ब्रा. १४.१.१.१३
अर्थ – (१) पूजनीय पद, (२) संग्राम, (३) एकत्र होने या प्राप्त होने का स्थान (४) यज्ञ, त्रुटि रहित पूर्ण व्यवस्था यज्ञ हैं, (५) विष्णु, (६) व्यापक शक्तिमान, परमेश्वर, (७) सूर्य, (८) तेजस्वी राजा, (९) व्यापक राष्ट्र
'देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः'
वाज.सं. ३७.४, श.ब्रा. १४.१.२.१०
'मख' और 'मखि' (गत्यर्थक धातु) + अच् = मख'
(१०) सर्वव्यापक, (११) सर्वज्ञ, (१२) एक मात्र वेद्य, (१३) पूजनीय
'मखस्य ते तविषस्य प्रजूतिम्'
ऋ. ३.३४.२; अ. २०.११.२
मेह + अच् = मख (निपातन से) । दानशील ही महान् और महनीय होता है । आधुनिक अर्थ यज्ञ ही है ।
यज्ञ सफलता के साथ समाप्त हो । पुनः–
'प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय
मारुताय स्वतवसे भरध्वम्
ये सहांसि सहसा सहन्ते
रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः'
ऋ. ६.६६.९; तै.सं. ४.१.११.४; मै.सं. ४.१०.३: १५०.९; का.सं. २०.१२; तै.ब्रा. २.८.५.५; नि. ३.२१.
हे अग्नि ! तेरे सहायक ऋत्विज और तू मिलकर शब्द करते (गृणते) शीघ्रता करने वाले (तुराय) अपने बल से बली (स्वतवसे) मरुद्गण के लिए (मारुताय) दर्शनीय अन्न (चित्रम् अर्कम्) दो (प्रमरध्वम्) । जो मरुत शत्रु के बलों को (सहांसि) अपने बल से (सइस) परास्त करते हैं (सहन्ते) और जिन महान् मरुतों से (येभ्यः मखेभ्यः) पृथिवी भय से कांपती है (पृथिवी रेजते) ।
अन्य अर्थ – हे प्रजापुरुषों उप देष्टा (गृणते) आशुकारी (तुराय) अपने सामर्थ्य से युक्त

(स्वतवसं) मनुष्यों के लिए हितकारी (मारुताय) सर्वोत्तम अन्न दो (चित्रम् अर्कम् प्रभरध्वम्) । हे राजन् ! जो स्वसामर्थ्य से (ये सहसा) विरोधिनी शक्ति का सहन करते हैं (सहांसि सहन्ते)और जिन के यज्ञ कर्मों से (मखेभ्यः) पृथ्वी कांपती है (पृथिवी रेजते) उनका भली भांति सत्कार करो । .

मखस्यन् – मख अर्थात् यज्ञ का सम्पादन करता हुआ, (२) ज्ञानयज्ञ का सम्पादन करता हुआ
'ससानमर्यो युवभिः मखस्यन्'
ऋ. ३.३१.७

मखस्युः – यज्ञ का प्रति पादक
'तिस्रो वाचः मखस्युवः'
ऋ. ९.५०.२; साम. २.५५६

मगधः – (१) मगध देश का वासी
(२) दोषयुक्त कुपथ्यकारी
'अंगेभ्यो मगधेभ्यः'
अ. ५.२२.१४

मगन्दः– (१) कुसीदी–व्याज पर धन चलाने वाला, (२) विषय परायण नास्तिक प्रमदक जो इस लोक के सिवा अन्य लोक का अस्तित्व नहीं मानते, (३) नपुंसक, हिंजड़ा, या मडगड़ा
'आ नो भर प्रभगन्दस्य वेदः'
ऋ. ३.५३.१४; नि. ६.३२.
जो व्याज पर धन चलाने वाले, विषय परायण नास्तिक 'नपुंसक का धन (प्रभगन्दस्य वेदः) उसे हे इन्द्र ! हमें दें (नः आ भर) ।
(४) द्रव्य को ही सर्वस्व समझने वाला ।
'मगद' शब्द 'म + ग + द' से बना है.।
'माम् आगमिष्यति इति
एवम् अनुचिन्त्य परेभ्यो
धन ददाति स मगदः'
अर्थात् मेरे पास दुगुना तिगुना होकर धन आयेगा ऐसा सोचकर जो दूसरे को धन देता है, वह मगन्द है । 'माम्' का 'म' गमिष्यति का 'ग' और 'ददाति का 'द' मिलकर मगद हुआ, (५) वस्तुतः अध्यात्मवाद न मानने वाला आधिभौतिक वादी मगन्द है । इसी मगद से मगध शब्द बना है, क्योंकि यहां बौद्ध धर्म का प्रचार होने से यहां के लोग 'मगधाः' कहे जाते हैं ।

मगुन्दया दुहितरः– आनन्द और सुख का क्षय करने वाली दुर्वासना की कन्या रूप बुरी आदतें
'निर्वोमगुन्दया दुहितरः'
अ. २.१४.२.

मगुन्दी – मध अर्थात् आनन्द या सुख का क्षय करने वाली कुवासना ।

मघा– मह् + घ = मघ । मह्यते इति धनम् । (जो दिया जाता है , वह धन है) । अर्थ है–मघानि । 'शेश्छन्दसि बहुलम्' से 'शि' विभक्ति का लोप ।

मघ– मंह + घ = मघ (घञअर्थे क विधानम् –पा. ३.३.५८) । न का लोप और ह का घ'। मह्यते दी यते इति मघं धनम् (जो दिया जाता है, वह मघ अर्थात् धन है) ।
अर्थ – (१) धन, ऐश्वर्य । (२) धरा, (३) प्रकाश
'तेभिरिन्द्र चोदय दातवे मघम्'
ऋ. ९.७५.५; नि. ४.१५.
हे सोम ! उन समूह रसों से तू इन्द्र को धन देने के लिए प्रेरित कर । –सा.
हे जगदुत्पादक परमात्मन् ! उन महान् उपदेशक वेदों के द्वारा हमारे आत्मा को (इन्द्रम्) धन दान के लिए प्रेरित करें ।

मघत्ति – (१) उत्तम धन का दान
'छंदयन्ति मघत्तये'
ऋ. ५.७९.५
(२) पूज्य धन का लेना
'प्रममर्ष मघत्तयेः'
ऋ. ८.४५.१५
'उदू षु मह्यै मघवन् मघत्तये'
ऋ. ८.७०.९

मघदेय – दातव्य ऐश्वर्य
'ये राया मघदेयं जुनन्ति'
ऋ. ७.६७.९.
पुनः –
'आ च्यावय मघदेयाय शूरम्'
ऋ. १०.४२.२; अ. २०.८९.२

मघवत् – मघ + वतुप् = मघवत्, धन और ऐश्वर्य से युक्त । इन्द्र या परमेश्वर का एक नामा
'इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे
यत्संगृभ्णा मघवन् काशिरित्ते'

ऋ. ३.३०.५; नि. ६.१.
(२) विद्युत् ।
'तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ
धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम्'
ऋ. १०.१६७.३; नि. ११.१२
हे विद्युत् (मघवन्), हे वायु (धातः) तथा हे मृत्यु (विधातः), मैंने तेरी स्तुति में वर्तमान रहकर ऐश्वर्य कलाओं का भक्षण किया (सोमस्य कलशान् अभक्षयम्) ।
(३) धरा का स्वामी । मघ का अर्थ धरा भी
(४) धनपति परमेश्वर –दया. ।
(५) प्रकाशवान्

मघवत्व – महान् ऐश्वर्य
'न मघवन् मघवत्तस्य विद्य'
ऋ. ६.२७.३

मघवा– (१) प्रकाशवान् सूर्य
'रूपं रूपं मघवा वोभवीति
मायाः कृण्वानः तन्वं परिस्वाम्'
ऋ. ३. ५३.८
(२) मघा नक्षत्र का संयोग करता हुआ सूर्य
'स इद्रायो मघवा वस्व ईशते'
ऋ. १०.४३.३
(३) इन्द्र, परमेश्वर

मघा – मघा नामक नक्षत्र जिसमें विवाद निषिद्ध है ।
'मघासु हन्यते गावः'
अ. १४.१.१३.
'अयनं मघा मे'
अ. १९.७.२

मघोनी – मघ + मतुप् + ङीष् = मघोनी (व का उ)। धन धान्य से पूर्ण ।
'नूनं साते प्रतिवरं जरित्रे
दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी'
ऋ. २.११.२१, नि. १.७
हे इन्द्र ! तेरी वह पुत्र रूपी दक्षिणा धनधान्य से युक्त होती हुई स्तुतिशील यजमान को अभिमत अर्थ प्रदान करे (जरित्रं वरं प्रति दुहीयात्)

मंगल – (न.)(१) अंग + र (मतुप् अर्थ में) = अंगल = मंगल (अ का म) ।(२) मञ्ज + र + मंगल । जो पापों का मंजन करे वह मंगल है ।
(३) गृ (निगलना) + अच् = गर् = गल । धातु के पूर्व ममट् और अनुस्वार का आगम होने से मंगल शब्द बना । भावी अनर्थों और विघ्नों को निगल जाने वाला ।
(४) मंगयति गमयति सुखम् (जो सुख की ओर पहुंचावे वह मंगल है) । मङ्ग (गत्यर्थक) + अलच् = मंगल ।
आज भी मंगल के निमित्त दधि, दूर्वा एवं अक्षत का प्रयोग किया जाता है ।
(५) मां गच्छतु (मेरे पास आवे) । इस अर्थ में –
मां + गम् + डलच् = मंगल (मा की उपधा ओ का अ) (६) गृ (स्तुति अर्थ में) + अच् = मंग । र् का ल् और गृ के पूर्व मट् । म में अनुस्वार आकार पद सर्वण हो 'ङ' हुआ ।
यत् स्तुत्य भवति (जो स्तुत्य होता है, अथवा यत् गिरति भक्षयति अनर्थान्–जो अनर्थों को निगल जाता है, वह मंगल है) ।
'कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण
इयर्ति वाचमरितेव नावम्
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि
मा त्वा का चिदभिमा विश्व्या विदत्'
ऋ. २.४२.१
कपिञ्जल नामक पक्षी बार बार बोलता हुआ भावी बात का इस प्रकार से संकेत करता है, जैसे नाव का कर्णधार नाव को प्रेरित करे । हे शकुनि ! तू सुमंगल दायक हो । तेरे पास कोई भी विश्व का विघ्न न प्राप्त हो ।

मंगलिका – स्वस्ति वाचन एवं शान्ति पाठ–परक सूक्त
'मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२३.२८

मज्ज– (१) मत् + ज्ञान । (आत्मज्ञान) ।
'निर्मज्जानं न पर्वणो जभार'
ऋ. १०.६८.९, अ. २०.१६९
(२) मज्जति शुन्धति इति मज्जा । मज्जा । राष्ट्र का कण्टक शोधन करने वाला,
'शमस्थभ्यो मज्जभ्यः'
वाज.सं. २३.४४, तै.सं. ५.२.१२.२, का.सं. (अश्व) १०.६.

मज्ज – मज्जा

'मज्मभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१०, तै.सं. ७.३.१६.२, का.सं. (अश्व) ३.६.

मज्मन् – (१) बल ।
'नाभां पृथिव्या भुवनस्य मज्मना'
ऋ. १.१४३.४.
जल के बल से (भुवनस्य मज्मना) पृथ्वी की नायित्री (२) निमित्त ।

मट्टट– अटपट बोलने वाला, बड़बड़ाने वाला
'उरुण्डा च मट्टटाः'
अ. ८.६.१५

मणत्सक – मननशील को शक्ति देने वाला
'आमणको मणत्सकः'
अ. २०.१३०.९

मण्ड– मद् अथवा मुद् + क = मुण्ड (नम् का आगम और द का ड) अर्थ है – जल । जल मादक या मोदक होता है ।
आधुनिक अर्थ – (१) किसी तरल पदार्थ के ऊपर तैल सा जमा हुआ पदार्थ, भात का मांड़ (३) दूध का मक्खन, (४) सार पदार्थ

मणि– (१) मणि, ताबीज, (२) शत्रुस्तम्भकारी, (३) सार्वत्यमणि –सा. ग्रीफिथ ।
'अयं मणिः सपत्नहा सुवीराः'
अ. ८.५.२
(४) किसी पदार्थ को अभिमन्त्रित कर उसकी गुट्टिका बना कर हाथ आदि में बाँधा जाता है । यही मणि कहलाता है ।
(५) मणि (शब्दार्थक) + इन् = मणि । मणति शब्दयति इति – दया . । अर्थात् जो उपदेश दे वह मणि है । फलतः उपदेशक, शिक्षा देने वाला, मार्ग दर्शक नेता, शिरोमणि, गुरु आदि मणि हैं ।
(६) मनु (ज्ञानार्थक) दिवादि मन (स्तम्भे) चुरादि, और मनु (अवबोधने) तनादि में इन् प्रत्यय जोड़कर मणि बनाते हैं । अर्थ हुआ–जो ज्ञानवान् हो, जो थामे, जो शत्रुओं का स्तम्भन करे, राज्य आदि का भार अपने ऊपर ले दूसरे को ज्ञान करावे, बुद्धि दे वह मणि है । (६) लोक में मण्डनार्थक 'मडि' धातु से इन् प्रत्यय कर मणि मना । ओषधि आदि भी धारण द्वारा रोगादि दूर करने में समर्थ है । यन्त्र, मननशील राष्ट्र–स्तम्भनशील
'तेन बध्नामि त्वा मणे'
अ. ३.५.८

मणि– मणियों का आभूषण बनाने वाला
'रूपाय मणिकारम्'
वाज.सं. ३०.७.तै.ब्रा. ३.४.१.३.

मणिग्रीव – (१) जिसकी ग्रीवा में मणि (यन्त्र, ताबीज आदि) हो, (२) मननशील मन द्वारा समस्त ग्राह्य ज्ञानों को लेने वाला–आत्मा ।
'हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णः
तन्न विश्वे वरिबस्यन्तु देवाः'
ऋ. १.१२२.१४
विश्वेदेव–विनयशील योद्धा या विद्वान् मिलकर कान में सुवर्ण का कुण्डल पहने (हिरण्यकर्णम्) और गले में मणियों की माला पहने (मणिग्रीवम्) उत्तम नायक पुरुष का वह उत्तम जल अर्घ्य, पाद्य, आचमन और अभिषेक आदि से योग्य जल प्रदान कर उसकी सेवा करें ।
अथवा तेजोमय हित और रमणीय साधनों और प्राणों से युक्त मननशील मन द्वारा समस्त ग्राह्य ज्ञानों को लेने वाले आत्मा की सभी प्राणी सेवा करें ।

मणिच्छद् – मणियों से भूषित वस्त्र पहलने वाला ।
'अमणिकाः मणिच्छदः'
अ. २०.१३०.९

मणिवाल– मणि के समान नीले बालों वाला
'मणिवालस्त आश्विनाः'
वाज.सं. २४.३, तै.सं. ५.६.१३.१, मै.सं. ३.१३.४; १६९.५.

मण्डूक– मजूका मज्जनात्
मदतेर्वा मोदति कर्मणः मण्डतेरिति
वैयाकरणाः मण्ड एषायोक इति वा ।
मण्डो मदेर्वा सुदेर्वा । नि. ९.६
मण्डूक शब्द–मजूका से बना । मजूका मज्जन से बना । मद या मोद धातुओं से भी इस शब्द की व्युत्पत्ति की गई है । वैयाकरण 'मण्ड' धातु से ही इस की व्युत्पत्ति मानते हैं । मण्डूकों का मण्ड ही ओक अर्थात् घर है । मण्ड मद या मुद से बना है ।
नि. ९.६

अर्थ- (१) मेढ़क (२) ज्ञान आनन्द में मग्न ब्रह्मचारी

'प्र मण्डूका अवादिषुः'

ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६.

(३) श्योनाक नामक वृक्ष

(४) मण्डूकपर्णी (मजीठ) ब्राह्मणी ।

शीतज्वर की ओषधि में मण्डूक के शरीर के भीतरी विष का प्रयोग बतलाया गया है जैसे सर्प-विष सर्प -दंश के लिये

'इमं मण्डूकमभ्येति अव्रतः'

अ। ७.११६.२

(५) मद्, मस्ज, या मन्द + ऊक् = मण्डूक ।

'वाचं पर्जन्यजिन्विताम्
प्रमण्डूका अवादिषुः'

ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६.

मेघ को प्रसन्न करने वाली (पर्जन्यजिन्विताम्) वाणी को (वाचम्) मेढ़क (मण्डूका) जोरों से बोलते हैं (प्रावादिषुः) ।

पुनः -

'मण्डूका इवोदकात्
मण्डूका उदकादिव'

ऋ. १०.१६६.५

जैसे जल के अभाव में मेढ़क निर्वचन हो जाते हैं, उसी प्रकार आप मेरे बिना न होवें ।

अन्य व्युत्पत्ति- 'मन्दूक' या 'मञ्जूक' का ही निपातन द्वारा 'मण्डूक' बना ।

अथवा-मड् (भूषित करना) + ऊकञ् = मण्डूक (तुम का आगम्) । अथवा 'मण्ड' (जल) + ओक = मण्डूक । मण्डूक का स्थान जल ही है । मण्डूक सदा प्रमुदित रहते हैं । या जल में मग्न रहते हैं । अथवा ईश्वर द्वारा यह विविध प्रकार से मण्डित रहता है । या जल में ही पड़ा रहता है ।

मण्डूकी - (१) मेढ़की, (२) आनन्द रस में निमग्न चित्तवृत्ति ।

'उपप्रवद मण्डूकि'

अ. ४.१५.१४, नि. ९.७.

(३) आनन्द करने वाली, तृप्त करने वाली, भूमि को सुभूषित करने वाली कला कौशल की समृद्धि (४) आनन्द दायिन्ती विद्वत्सभा

'मण्डूकि ताभि रागहि'

वाज.सं. १७.६, तै.सं. ४.६.१.२, मै.सं. २.१०.१.,१३१.१०, का.सं. १७.१७, श.ब्रा. ९.१.२.२७.

(५) पुत्रैषणा की तृप्तिकारिणी स्त्री ।

(६) मद्, मस्ज् या मन्द + ऊक = मन्दूक या मञ्जूक = मण्डूक। मड् (भूषित करना) + ऊकञ् = मण्डूक । मण्ड (जल) + ओक (स्थान) = मण्डूक । मण्डूक + ङीष = मण्डूकी । अर्थ - मेढ़क की माता, मेढ़क पत्नि, (६) तैरने वाली मण्डूक जाति

'उपप्रवद मण्डूकि
वर्षमा वद तादुरि
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व
विगृह्य चतुरः पदः'

अ. ४.१५.१४,

हे मण्डूकी ! मेरे निकट आकर खूब बोल और वर्षा आने की सूचना दे । हे तैरने वाली या समस्त शरीर में विस्तृत उदर वाली (तादुरी) तालाब में अपने चारों पैरों को पसार और तैर । अन्य अर्थ - हे तैरने वाली मण्डूक जाति ! जैसे ज्ञान रूपी ह्रद में तैरने वाली प्रफुल्लवदना प्रजा सर्वांग रूप में उत्तम काल को बतलाने वाली होती है उसी प्रकार तू वर्षा को बोधन कराती है । और जिस प्रकार वह प्रजा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदों को प्राप्त कर वेद रूपी ह्रद में तैरती है उसी प्रकार तू अपने चारों पैरों से तालाब में तैरती है ।

मण्डूर - लौह विशेष, फौलाद

'मण्डूर धाणिकी'

ऋ. १०.१५५.४, अ. २०.१३७.१

मण्डूर धाणिकी - लौह कणों को धारण करने वाली-तोप

'यद्ध प्राचीर जगन्तोरो
मण्डूरधाणिकीः'

ऋ. १०.१५५.४, अ. २०.१३७.१.

मण्डूर एक लोह विशेष है और धाणिका गोली, धानी या दाना है । लोहे की धाना छर्रे वाली तोप है ।

मण्डूरिका- (१) सब को अति आनन्दित करने वाली राज सभा

मतवचस्त - द्वि.व. । (१) अभिमत प्रियवाणी बोलने

वाले स्त्री पुरुष (२) अश्विद्वय का विशेषण ।

मनवान् – ज्ञानवान जीव

'अयं मतवान् शकुनो यथा हितः '

ऋ. ९.८६.१३,

मतस्न – (१) गुर्दा । **kidney**

'यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः '

ऋ. १०.१६३.३,

(२) हृदय के दोनों पार्श्वों में स्थित फुस्फुस

'चक्रवाकौ मतस्नाभ्याम् '

वाज.सं. २५.८, मै.सं. ३.१५.७, १७९.१३,

'शर्वं मतस्नाभ्याम् '

वाज.सं. ३९.८., तै.सं. १.४.३६.१, तै.आ. ३.२१.१.

मतस्ने – द्वि.व. स्त्री । गुर्दे (२) आनन्द से सबको स्नान कराने वाले,

(३) तृप्तिकारक ज्ञान से हृदय पवित्र कराने वाले अध्यापक और उपदेशक, (४) आनन्द में रहने वाले स्त्रीपुरुष

'मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् '

वाज.सं. १९.८५., मै.सं. ३.११.९: १५३.१२, का.स. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.३,

मत्य – मल स्तम्भे (दिवादि) शत्रुओं का स्तम्भनकारी सामर्थ्य, दण्ड या वज्र

'तृणेद्ध्वनान् मत्यं भवस्य '

अ. ८.८.११.

मत्सखा – (१) मेरा मित्र (मम सखा सखाभूतः) (२) जिसे सभी अपना सखा समझते हैं । (सर्वोऽपि यं मन्यते ममायं सखा), (३) हर्ष में जो मित्र हो (मदन सखा) (४) जो मेरे सखा हैं, उसके सखा (ये नः सखायः तैः सह) । (५) सभी के सखा रूप सूर्य ।

'वि हि सोतोरसृक्षत
नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिः
अर्यः पुष्टेषु मत्सखा
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः '

ऋ. १०.८६.१, अ. २०.१२६.१, नि. १३.४.

आदित्य जब प्रतिदिन सभी जीवों के लिए किरणें बिखेरते हैं (सोतो व्यसृक्षत) तब वे किरणें अपने स्रष्टा आदित्य को ही अपना प्रकाशक नहीं समझतीं (इन्द्रं देवं न अमंसत) । जिन रश्मियों के सोम से पुष्ट होने पर (यत्र पुष्टेषु) सभी के सखा रूप (मत्सखा) चर एवं अचर के स्वामी (अर्यः) सूर्य (वृषाकपिः) सोमपान से हर्षित हुए (अमदत्)। हे आदित्य ! तू सबसे बढ़ कर है ।

मत्सत् – मादयताम् (मदयुक्त हो, आराम करे), आनन्दित हो, मस्त हो ।

'माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः '

ऋ. ५.४०.४, अ. २०.१२.७.

मत्सर – मद् + सा । उत्तम तृप्तिकारक (कृध् मदिभ्यः कित्) । तृप्य तृप्यन्ति अनेक देवता इति मत्सरः

'समन्धांस्यग्मत मत्सराणि '

ऋ. ७.७३.४

इस से देवता तृप्त होने हैं अतः यह मत्सर है । अर्थ है – सोमरस, सोममद लाने वाला है, अतः यह मत्सर कहलाया ।

'गोभिः श्रीणीत मत्सरम् '

ऋ. ९.४६.४, नि. २.५,

हे ऋत्विजो ! दूध से (गोभि):सोमरस को (मत्सरम्) मिला (श्रीणीत) ।

(२) लोभ । मत्सर इति लोभ नाम । एनेन अभिमतः भवति (मत्सर लोभ का नाम है क्योंकि लोभ से आविष्ट हो पुरुष धन के आभिमुख्य में मत्त हो जाता है) ।

मत्सरासः– ब.व.। सोमरस का विशेषण (१) मदकारक, (२) हर्ष कारक लोक लोकान्तर

'मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते '

ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०.

मदकारक (मत्सरास) प्रसूत किल गए (प्रसुपः) सोमरस साथ ही जाते हैं (ईरते) – सा. ।

ये हर्ष कारक प्रसुप्त हो जाने वाले अर्थात् अन्न से कारण शरीर में मिल जानेवाले (प्रसुपः) लोक लोकान्तर साथ ही चलते हैं (साकम् ईरते) ।

मत्सरिन्तमः – समस्त प्रजाजनों को अन्न, बल धनादि से पूर्ण तृप्त एवं सुप्रसन्न करने वाला

'इन्द्राय मत्सरिन्तमः

ऋ। ९.६३.२; ९९.८

मत्स्य – (१) मछली

'मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्

अ. २०.१६.८

सूखे जल में मछली फंसाने वाला जैसे मछली को देखता है ।
'अद्भ्यो मत्स्यान्'
वाज.सं. २४.२१, मै.सं. ३.१४.२; १७३.१.
(२) अति प्रसन्न चित्त
'राये मत्स्यासः निशिता अमीव'
ऋ. ७.१८.६
(३) मधु + स्यन्द = मत्स्य (निपातन से) । मधु का अर्थ जल है और स्यन्द गत्यर्थक है । अथवा मद् + भस् + य = मत्स्य । मधौ स्यन्दन्ते, माध्यन्ते ऽन्योनयं मक्षणाय इति वा (जल में चलते हैं इस से मत्य्य नाम पड़ा या मत्स्य परस्पर एक दूसरे को खाने में हर्षित रहते हैं, अतः मस्त्य हैं) ।

मति – मन् + क्तिन = मति । अथवा मति + मतुप् (१) स्तम्भ करने वाली मुट्ठी जो रथ में लगायी जाती है । (२) मनन, (३) भजन ज्ञान पूर्वक मन प्रेरणा, (४) उत्तम विचार योग्य बुद्धि (५) मतिमान्
'स इष्टिभिः मतिभी रंह्योभूत्'
ऋ. २.१८.१
(६) तत्व विचार करने वाली मननशक्ति
'मत्यै श्रुताय चक्षसे'
अ. ६.४१.१
(६) स्तुति ।
'इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिः'
ऋ. ५.५७.१, नि. ११.१५.
हे रुद्रो ! हमारी यह स्तुति (मतिः) आप लोगों की कामना करती है ।
(७) देवता ।
समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनाम्
वाज.सं. २९.१, तै.सं. ५.१.११.१; मै.सं. ३.१६.२: १८३.१२; का.सं.(अश्व) ६.२; श.ब्रा. १३.२.२.१४; तै.ब्रा. ३.९.४.८; आप.श्रौ.सू. २०.१७.३; नि. ३.२०.
हे अग्नि देव ! समिद्ध होकर तू देवताओं के गृह हवि पहुंचाते हुए (मतीनां कृदरं अञ्जन्)
(८) रीति नीति – (९) ज्ञान या वाणी स्वरूप परमेश्वर
'अयं सहस्रमा नो दृशे
कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि'
अ. ७.२२.१

मत्सि – अतिहर्षयुक्त
'मत्स्यपायि ते महः
ऋ. १.१७५.१; साम. २.७८२, आश्व.श्रौ.सू. ८.५.१२, शां.श्रौ.सू. ११.११.१६; १२.४.९; १८.११.२

मतीनां साधनः– मनोरथों या बुद्धियों का साधक । पूषा का विशेषण

मतीविद् – (१) विद्वान् के प्रति देने योग्य दान, (२) विद्वान्
'प्रदेवाय मतीविदे'
वाज.सं. २२.१२

मतुथा – मनन शील विचारवान् पुरुष
'पदं यदस्य मतुथा अजीजनन्'
ऋ. ९.७१.५

मथव्य – मथन करने वाला चित्त को हर्ष देने वाला
'मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध'
अ. २.३५.२

मथ्र – शत्रुओं का मथन करने वाला
'मथ्रा नेमिं नि वावृतुः'
ऋ. ८.४६.२३

मथिन् – मथने वाला
'मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः'
ऋ. १.१८१.५

मथी – यः दुष्टान् मथ्नाति (जो दुष्टों को मथता है) – दया.
महि स्तोतृभ्यो मघवन् त्सुवीर्यम्
'मथीरुग्रो न शवसा'
ऋ. १.१२७.११

मद– मद् + घञ् = मद । अर्थ है (१) मदनीय, बलवर्द्धन् (२) जोश, (३) आनन्द ।
'पिबा सोममनुष्वधं मदाय'
ऋ. ३.४७.१, वाज.सं. ७.३८, वाज.सं. (का.) २८.१०; तै.सं. १.४.१९.१; मै.सं. १.३.२२:३८.१; का.सं. ४.८; नि. ४.८.
तू मद के लिए अन्न खाने के बाद सोमरस पी ।
(४) जैत्र (जीतने वाला) । सायण ने इसका अर्थ हर्ष किया है ।

मद् – तृप्ति कारक
'मदा मासरेण'
वाज.सं. २१.४२

मदच्युत् – (१) मद को तोड़ने वाला, इन्द्र का विशेषण ।
'इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतम्'
ऋ. १.५१.२

मदच्युता हरी – (१) हर्षवर्षण करने वाले हरणशील प्राण और अपान (२) आनन्द के साथ गति करने वाले दो अश्व
'युक्ष्वा मदच्युता हरी'
ऋ. १.८१.३, अ. २०.५६.३

मदन्ती – मत्त करती हुई तृप्ति करती हुई । नदियों का विशेषण ।
'शतपवित्राः स्वधया मदन्तीः'
ऋ. ७.४७.३, नि. ५.६.
बहुतों जलों वाली (शतपवित्रा) स्वकार्यभूत अन्न से (स्वधया) मानवों को मत्त या तृप्त करती हुई नदियाँ .....

मदवृद्धः – (१) स्वयं अपने हर्ष को बढ़ाने वाला, (२) मद से वृद्ध (३) तेजस्वी–सूर्य का विशेषण (४) कोष–सम्पन्न राजा ।

मद्यः – हर्षजनक, मदकारक
'पिपीडे अंशुर्मद्यो न सिन्धुः'
ऋ. ४.२२.८
(२) सोमरस . (३) ज्ञान, (४) आभ्यन्तर आनन्द
'सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ'
ऋ. ६.६८.१०, अ. ७.५८.१

मदरवती – मदकारी ओषधि
'वि ते मदं मदावति'
अ. ४.७.४

मदाहनः – मत् + आहनस् = मदाहनः । 'मत्' का अर्थ है मेरे सिवा (मां विहाय) और 'आहनस्' का अर्थ है, असभ्य या असह्य भाषण से मर्म भेदन करने वाला चोट पहुंचाने वाला । यमी के सम्बन्ध में इस शब्द का प्रयोग किया गया है ।
(आहन्यत इव यया असौ यम इति आहनाः)। जिससे यम मानों आहत होते हैं, अतः वह यमी आहनः है । इस शब्द का रूढ़ि है– (१) वञ्चक (२) सम्मोहक (३) शत्रुओं का आमने–सामने हनन करने वाला ।

मद्याविद् – सुखी प्रजा –दया.
(२) मादयित्री या मदनीय प्रजा –सा.
'उत वां विक्षु मद्यास्वन्धः'
ऋ. १.१५३.४,
हे मित्र और वरुण, या स्वामी दयानन्द के अनुसार, हे उपदेशक तथा अध्यापक, आप की सुखी प्रजाओं में (मध्या सुविक्षु) यह अन्न गायं तथा उत्तम जल नित्य बढ़े (अन्धःगावः देवीः आपश्च पीपयन्तः)

मद्र्यक् – मेरे प्रति । मत् + र्यक ।
'वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चम्'
ऋ. ७.२४.३

मदानां पतिः – हर्ष जनक, तृप्ति कारक ऐश्वर्यों और अन्नों का मालिक
'उप नो हरिभिः सुतं
याहि मदानां पते'
ऋ. ८.९३.३१, साम. १.१५०; २.११४०, कौ.ब्रा. २३.७.

मदावती– सर्षप की माता, हर्ष से सम्पन्न प्रकृति शक्ति
'मदावती नाम ते माता'
अ. ६.१६.२

मद्वा– हर्ष कारक
'इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतः'
ऋ. ९.८६.३५

मद्वान् – हर्ष और आनन्द का सेवन करने वाला आत्मा
'इन्द्राय मद्वने सुतम्'
ऋ. ८.९२.१९, अ. २०.११०.१, साम. १.१५८, २.७२.ऐ.ब्रा. ४.६.९, गो.ब्रा. २.५.३, पंच.ब्रा. ९.२.७, आश्व.श्रौ.सू. ६.४.१०, शां.श्रौ.सू. ९.१०.१; १८.६.२.

मदिन्तमः– (१) अति आनन्द दायक
'इन्द्राय सु मदिन्तमम्
सोमं सोता वरेण्यम्'
ऋ. ८.१.१९
(२) अति हर्षदायक सोम (३) परमेश्वर
'आ प्यायस्व मदिन्तम
सोम विश्वेभिरंशुभिः'
ऋ. १.९१.१७, वाज.स. १२.११४; का.सं. ३५.१३.

मदिनामा– (१) अत्यन्त सन्तुष्ट रहने वाली प्रजा
'मदिन्तमानां त्वा पत्मन् आधूनोमि'
वाज.सं. ८.४८; श.ब्रा. ११.५.९.८.

मदिन्तरः – अत्यधिक आनन्द प्रद
'एदु मध्वो मदिन्तरम्'
ऋ. ८.२४.१६; अ. २०.६४.४, साम. १.३८५;२. १०३४ पंचब्रा. २१.९. १६; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.२; शां.श्रौ.सू. १२.२५.६.

मदिर – आनन्द प्रद
'अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये'
ऋ. १.१६६.७

मद्रिक् – (१) मेरे समीप
'याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्'
ऋ. ६.३१.५
(२) समस्त कामनाओं को प्राप्त कराने और स्वयं करने वाला
'स्तुतः श्रवस्यन्नवसोपमद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ्'
ऋ. १.१७७.१
(३) आत्मवशी, (४) हमें प्राप्त
'हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक्'
ऋ. १.१७७.३

मदुधः– ज्ञान रूप मधु का संचय करने वाला
'मधोरस्मि मधुतरो मदुधात् मधुमत्तरः'
अ. १.३४.४

मद्गु– (१) छोटा हंस
'मित्राय मद्गून्'
वाज.सं. २४.२२, मै.सं. ३.१४.३; १७३.३.
(२) जल काक, (३) जल और स्थल दोनों स्थानों में विहार करने वाला यान
'प्लवो मद्गुः'
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५;१७५.१०.

मदुघ – (१) महुआ नामक वृक्ष– सा. (२) मुलैठी – ज.दे.श. (३) तृप्ति कारक पदार्थ
'आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य'
अ. ६.१०२.३

मदू – आनन्दित करने वाला
'इदं मह्यं मदूरिति'
अ. २०.१३१.१०

मदेमदे – प्रत्येक हर्ष के अवसर पर, प्रत्येक पदार्थ में
'मदेमदे हि नो ददिः'
ऋ. १.८१.७, अ. २०.५६.४, मै.सं. ४.१२.४: १८९.१५, का.सं. १०.१२, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.
प्रत्येक हर्ष के अवसर पर, प्रत्येक पदार्थ में हमें तू दे।

मदेरू – (द्वि)। एक वचन में मदेरु। बलातिशयेन मत्तः (अतिशय बल से मत्त) मद् धातु से सम्पन्न। अर्थ है – (१) मत्त, (२) स्तुत्य।
'उदन्यजेव जेमना मदेरू'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो! तुम दोनों चन्द्रमा या रत्न के समान विजयशील एवं मदमत्त हो।

मध्य– बीच।
'अमेहयन् वृषभं मध्यआजेः'
ऋ. १०.१०२.५; नि. ९.२३.
वृषभ से संग्राम में बरसवाया या वृषभ ने मूत्रपुरीषोत्सर्ग विश्राम के लिए किया।

मध्यन्दित – मध्यान्ह् काल
'भद्राहं नो मध्यन्दिने'
अ. ६.१२८.२

मद्यम् – (वि)। मद् + यत् = मद्य। मदं करोति असौ (यह मद करता है अतः मध्य है)। अर्थ –मादक मद करने वाला, आनन्द प्रद
आमत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः'
ऋ. २.१४.१
सोम भरे पात्रों से आनन्द प्रद अन्न को सिञ्चित करो।

मध्यम – (१) मंझला भाई, मध्य + म। मध्ये भवः (मध्य में हुआ) (२) मध्यमस्थानीय नमो मध्यनाय वायु
'नमो मध्यमाय च'
वाज.सं. १६.३२, तै.सं. ४.५.६१, मै.सं. २.९.६: १२५.४,

मध्यमःअश्नः – (१) मध्यस्थानीय वायु, (२) मेघमध्वर्ती अशनि। दे. 'अश्न'
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.

मध्यमकोश – (१) बीच का खजाना, (२) अन्तरिक्ष का मेघ, (३) मनोमय कोश। प्रथम कोश अन्नमय और अन्तिम आनन्दमय है।
'विकोश मध्यमं युव'
ऋ. ९.१०८.९, साम. १.५७९; २.३६१

मध्यमःभ्राता– (१) सब सृष्टि के भीतर विद्यमान

भरणपोषण समर्थ, (२) परमेश्वर का मध्यम भ्राता कर्मफल -भोक्ता जीव, (३) सूर्य का मध्य भ्राता सर्व व्यापक पाप, (४) भरण पोषण में समर्थ पृथिवी आदि लोकों में प्रसिद्ध
'तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.
(५) सब सृष्टि के भीतर विद्यमान भरण पोषण में समर्थ अग्नि

मध्यमःभ्राता अश्नः - (१) बीच के भाई के समान सबको खा जाने वाला (अश्नः) अग्नि, (२) भरणपोषण करने वाला बीच में रहने वाला मंझले भाई के समान अन्नादि खाने वाला जाठर अग्नि, (३) बीच अन्तरिक्ष में स्थित वायुवत् व्यापक वृष्टि के लिए रश्मियों से सोखे जल का अपहरण करने वाला, (४) कर्मफलों का भोक्ता जीव ही मध्यमभ्राता है क्योंकि वह देह का भरणपोषण करता है और देह के बीच में रहता है ।

मध्यम वाट् - बीच मार्ग में ही रह जाने वाला - रथ
'मा वो रथो मध्यमवाड़ृते भूत्'
ऋ. २.२९.४

मध्यमशीः - (१) अन्तरिक्ष में व्यापक वायु (२) शरीर में व्यापक प्राण, (३) मध्यम राजा
'उग्रो मध्यमशीरिव'
ऋ. १०.९७.१२, अ. ४.९.४, वाज.सं. १२.८६, तै.सं. ४.२.६.४, मै .सं. २.७.१३: ९४.६; का.सं. १६.१३.
(४) मध्यस्थ

मध्यमा - (१) बीच में स्थित सर्वव्यापक रूप में वर्तमान ब्रह्मशक्ति
'निरायच्छसि मध्यमे'
अ. २०.१३३.३; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.३.
(२) मध्यमस्थान, (३) मध्यम कोटि का शरीर
'या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा'
ऋ. १०.८१.५; वाज.स. १७.२१; तै.सं. ४.६.२.५; मै.सं. २.१०.२, १३३.१०, का.सं. १८.२.
(४) शरीर के मध्यम भाग की नाड़ी (५) मझली स्त्री
'उत त्वं तिष्ठ मध्यमे'
अ. १.१७.२
(६) मध्यमगुण की पृथिवी
'मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः'
ऋ. १.१०८.९

मध्यमाः पितरः - (१) मध्यम स्थानाश्रयी पितर लोग - सा.
(२) मध्यम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पिता-दया.
'उदीरतामवर उत् परासः
उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः'
ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५७.४ ऐ.ब्रा. ३.३७.१३, नि. ११.१८.
मृत्यु के बाद अपने कर्मानुसार पितर कई लोकों में रहते हैं । उन्हीं पितरों के उत्तम लोक में जाने के लिए यह प्रार्थना है ।
थियोसोफिस्ट इस सिद्धान्त को मानते हैं । आर्य-समाजी विद्वान् पितर का अर्थ विद्वान् पुरुष मानते हैं । यह ऋचा विचारणीय है ।

मध्यमेष्ठा - मध्यस्थ
'सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि'
अ. ३.८.२

मध्या - मध्य + ङि (सप्तमी प्रथमा में) = मध्या । 'सुपां सुलुक' से 'ङि' का 'डा' हो गया है । अर्थ है । मध्य में या मध्य से ।
'मध्या कर्तोर्विततं सं जभार'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२: १४७.१; तै.ब्रा. २.८.७.१; नि. ४.११.
सूर्य ने किए जाते हुए कर्मों के मध्य में क्रियाशील जगत् से अपने विस्तृत रश्मि जाल को खींच लिया (विततं संजभार) ।

मध्यायु - मध्यस्थ होने का इच्छुक

मध्वद् - (१) मधु अर्थात् आत्म ज्ञान रस का उपभोग करने वाला (२) जल ग्रहण करने वाली सूर्य की किरण (३) मधु खाने वाला
'यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णाः'
ऋ. १.१६४.२२; अ. ९.९.२१.

मध्वदः सुपर्णाः- (१) जल ग्रहण करने वाले रश्मिगण, (२) मधुर कर्मफल के भोक्ता जीवगण ।

मध्यवर्णस् - मधुर जल वाला । मधु + अर्णस् ।

'मध्वर्णसो नद्यश्चतस्त्रः'
ऋ. १.६२.६
मधुर जल से पूर्ण चारों दिशाएं

मध्वः दृष्टिः – (१) मधुर अन्नादि की प्राप्ति, (२) रथ के चक्कों में मधु घृतादि चिकने पदार्थों का लगाना।
'रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः'
ऋ. १.१८०.४

मधु – (१) संसार,
'स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रम्'
अ. ७.३.१
(२) चैत्र मास,
'उपयामगृहीतोऽसि मधवे'
वाज.सं. ७.३०
(३) मद् (हर्ष और ग्लेपन अर्थों में) + उ = मधु (द् का ध् पृषोदरादिवत्) अर्थ है–मादक (४) धम्। (शब्द करना) + उ = मधु।
(५) मधु।
'मध्वा समञ्जन् त्स्वदया सुजिह्व'
ऋ. १०.११०.२; अ. ५.१२.२; वाज.सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३.३; २०१.१०, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६.
हे सुन्दर जिह्वा या ज्वाला वाले अग्नि! हवि को मधुर रस से मिलते हुए स्वादिष्ट बना।
(६) सोम रस।
'आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिम्'
ऋ. ३.४७.१, वाज.स. ७.३८, वाज.स. (का.) २८.१०, तै.सं. १.४.१९.१, मै.सं. १.३.२२, २८.२, का.सं. ४.८, नि. ४.८.
हे इन्द्र! तू पेट में सोम रस की धारा या संघात को आसिञ्चित कर।
(७) जल।
'पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि'
ऋ. ४.३८.१०, तै.सं. १.५.११.४, नि. १०.३१.
वह दधिक्रा देव या मेघ इन स्तुतियों को मध अर्थात् जल से युक्त करें।
'अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यत्'
ऋ. १०.६८.८; अ. २०.१६.८; नि. १०.१२
बृहस्पति ने मेघ से दबाए या छिपाए जल को देख लिया
(८) पृथ्वी आदि लोक जिस से सुख मिलता है।
(९) बृहदारण्यक में सृष्टि विद्या के अर्थ में 'मधुविद्या' का प्रयोग किया गया है।
आधुनिक अर्थ – मधुर, आनन्ददायक, मधु, पुष्प का पराग, मदकर, मद, जल, शर्करा, माधुर्य
(१०) प्राण, (११) ओषधि का रस, (१२) अन्न, (१३) स्वर्ग लोक का रूप, (१४) मधुर पदार्थ
प्राणो वै मधु
श.ब्रा. १४.१.३.३०
ओषधीनां वा एष परमो रसः यन्मधु
श.१.५.४.१८
परमं वा एतदन्तादयं यन्मधु
तै.आ. १३.११.१७
महत्यै वा एतत् देवतायै रूपम् यन्मध्र
तै.ब्रा. ३.८.१४.२.
मधु प्रमुष्य स्वर्गस्य लोकस्य रूपम् यन्मधु
श. ब्रा. ८.४.१.३.
सर्वं वा इदं मधु यदिदं किञ्च
श. ब्रा. ३.७.११.१४
(१५) ऋग्वेद की ऋचाएं भी मधुर हैं।
'येभ्यो मधु प्रधावति
ताँश्चिदेवापि गच्छतात्'
ऋ. १०.१५४.१, अ. १८.२.१४, तै.आ. ६.३.२.
(१६) वसन्त ऋतु, (१७) ज्ञानमय वेद
'गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे'
ऋ. ८.२१.५; साम. १.४०७

मधुकशा– (१) अमृतमयी, (२) परम रसमयी, (३) सर्वोपरि शासक व्यापक ब्रह्म शक्ति
'दिवस्पृथिव्याः अन्तरिक्षात्
समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे'
अ. ९.१.१.

मधुकूला – जिनके कूलों तक शहद भरा हुआ हो।
'घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः'
अ. ४.३४.६

मधुकृत् – मधुमक्षिका
'यथा मधु मधुकृतः'
अ. ९.१.१६

मधु मधु मधु– (१) कर्म, उपासना और ज्ञान, (२) शरीर में स्थित प्राण, उदान और ध्यान, (३) ब्रह्म बल, क्षात्र बल और धन बल

'दिवः संस्पृशस्पाहि मधु मधु मधु'
वाज.सं. ३७.१३

मधुकोश – धन और ज्ञान हुआ अक्षय कोश ।

मधुजाता – पृथिवी से उत्पन्न ओषधि
'इयं वीरुत् मधुजाता'
अ. १.३४..१, ७.५६.२,

मधुजिह्वः – (१) अग्नि (२) मधुजिह्वा अथवा मधुरवाणी बोलने वाला विद्वान् ।
'मधुजिह्वं हविष्कृतम्'
ऋ. १.१३.३, साम. २.६९.९

मधुदोघ – (१) मधुर जल वाल मेघ (२) मधुर ऋङ् मय ज्ञान रस वाला
'या एतद् दुह्रे मधुदोघ मूधः'
ऋ. ७.१०१.१.

मधुधा – (१) मधु – आदित्य को धारण करने वाली उषा, (२) पति के निमित्त मधुपर्क को लाती हुई मधुर वचनों और मधुर गुणवाणी स्वाभाव को धारण करती हुई या उत्तम जल को धारण करती हुई स्त्री
'ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्'
ऋ. ३.६१.५

मधुधार – (१) जलधारक मेघ, (२) अन्नादि सुख जनक भोग्य पदार्थों का धारक
'मधुधारमभि यमोजसातृणत्'
ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.
जिस जलधारा वाले मेघ को बल से अभिहत किया ।

मधुन्तमा – मधुर स्वभाव वाली प्रजा
'मधुन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि'
वाद.सं. ८.४८; वाज. (का.) ८.२२.२, श.ब्रा. ११.५.९.८

मधुप – जल या मधु पीने वाला
'मध्वः पिबतां मधुपेभिरासभिः'
ऋ. १.३४.१०; ४.४५.८३
हे सत्य स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उत्तम अन्न जल के उपयोग करने वाले मुखों से (मधुर्येभिः आसभिः) मधुर अन्न का उपभोग करो ।

मधुपाणिः – मधुरमधु, मधुविद्या, ब्रह्मविद्या, वेद का प्रवचन करने वाला
'अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यम्'
ऋ. १०.४१.३

मधुपृक् – (१) जीवन रूप अमृत से युक्त जल
'तीव्रो रसो मधुपृचम्'
अ. ३.१३.५; तै.सं. ५.६.१.३; मै.सं. २.१३.१: १५२.१७, का.सं. ३५.३; ३९.२.
(२) अन्न से संपर्क रखने वाला (३) भोग्य पदार्थ का भागी
'मधुपृचं धनसा जोहवीमि'
ऋ. २.१०.६

मधुपेय – (१) उत्तम रस का पान, (२) वेदज्ञान का रसपान,
'आ यातं मधुपेयमश्विना'
ऋ. १०.४१.३
(३) मधुरगुणों से युक्त उपभोग योग्य पदार्थ, (४) बल पूर्वक उपभोग्य राष्ट्र

मधुणौ – (१) भ्रमर, (२) भौरों के समान मधुवत् मधुर ज्ञान अन्न जलादि पदार्थों का उपभोग और संग्रह करने वाले स्त्री पुरुष
'वाजायेट्टे मधुपाविषे च'
ऋ. १.१८०.२

मधुभागः – अन्न का भाग ग्रहण करने वाला राजा
'मधुभागो मधुना सं सृजाति'
अ. ६.११६.२.

मधुमत् घर्म – जलों की वृष्टि सहित घाम, (२) अन्न से युक्त घृत, (३) वृष्टि सहित सूर्य ताप (४) शत्रु पीड़ा का बल सहित तेज
'युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये'
ऋ. १. १८०.४

मधुमती – मधुर रस से युक्त ।
'अपां नपान्मधुमतीरपो दाः'
ऋ. १०.३०.४; अ. १४.१.३७; नि. १०.१९.
तू मधुर रस से युक्त वृष्टिजलों को दे ।

मधुमन्मक्षिका – मधुमक्खी
'उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे'
ऋ. १.११९.९

मधुमान् – (१) मधुर प्रकृति वाला पुरुष, (२) मधुमय
'मधुमान् भवति मधुमदरस्याहार्यं भवति'
अ. ९.१.२३.
(३) मधु + मतुप् = मधुमत् । अर्थ है प्रिय, (४) जलयुक्त सूर्य या ऊर्मि का विशेषण

मधुमान् ऊर्मिः – (१) जलमय तरंग (२) तेजोमय शक्तिमय ऊपर गति करने वाला सूर्य, (३) जल से भरा मेघ, (४) ज्ञानमय शब्दमय शास्त्र
'समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारत्'
ऋ. ४.५८.१; वाज.सं. १७.८९; मै.सं. १.६.२: ८७.१३; का.सं. ४०.७, ऐ.ब्रा. ५.१६.७, कौ.ब्रा. २५.१, तै.आ. १०.१०.२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, नि. ७.१७.

मधुपू – (१) अन्न द्वारा प्रजा का पालन या पवित्र करने वाला, (२) मधु के समान प्रजा पालक
'उद्पूरसि मधुपूरसि'
ऋ. १८.३.३७

मधुला – (१) मधु देने वाला ओषधि (२) विष वैद्य
'मधु त्वा मधुला चकार'
ऋ. १.१९१.१०-१३
(३) आनन्द रस को प्राप्त कराने वाली
'मधु मे मधुलाकरः'
अ. ५.१५.१
(४) मधु + ला
'मधुश्चुत् मधुला मधुः'
अ. ७.५६.२

मधुवचाः – (१) मधुर वचन बोलने वाली
'पिता माता मधुवचाः सुहस्तः
भरे भरे नो यशसा वविष्टाम्'
ऋ. ५.४३.२
(२) वेद रूपी मधुर वाणी वाला –परमेश्वर
'अग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा'
ऋ. ४.६.५; ७.७.४

मधुवर्णः– (१) मधु के समान चिकना, (२) सुन्दर रंग वाला
'हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः'
ऋ. ५.७७.३; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

मधुवाहन् रथ – (१) मधुर सुखप्रद अन्न आदि या मधुर सुख और वेग आदि का धारण करने वाला रथ (३) स्त्री और पुरुष दोनों का रमणसाधन आनन्द प्रद शरीर।
'प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम्'
ऋ. १०.४१.२.

मधु वृध् – मधुर अन्नादि से वृद्धि पाने वाला देह
'उताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम्'
ऋ. १०.७५.८

मधुशाखः – (१) मधुर शाखाओं से युक्त (२) ज्ञानमय वेद शाखाओं से युक्त
'मधुशाखः सुपिप्पलः'
वाज.सं. २८.२०

मधुश्चुत् – (१) ज्ञान को प्रदान करने वाला
मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः
वाज.सं. २१.४२
(२) मधुर रस को चु आने वाली
'मधुश्चुत् मधुला मधूः'
अ. ७.५६.२.

मधुषुद् – (१) मधुरभाषी, (२) मधु और मननीय ज्ञान का प्रदाता
'ग्रावेव सोता मधुषुद् यमीडे'
ऋ. ४.३.३.

मधुसंकाश – मधुर मधु के समान
'अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे'
अ. ७.३६.१.

मधुषुत्तम – मधुर रस अन्न अभिषेक आदि उत्पन्न करने में सबसे उत्तम
'अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः'
ऋ. ३.५८.९.

मधुहस्त्य – मधुर अन्नादि उपभोग्य सुखदायी पदार्थों को अपने हाथ में या वश करने में कुशल
'कविर्हि मधुहस्त्यः'
ऋ. ५.५.२

मधू – (१) मधु, (२) मधुक ओषधि (३) शहद –ज.दे.श.
'मधुश्चुत् मधुला मधूः'
अ. ७.५६.२
यह सर्पदंश चिकित्सा में विहित है। राज निघण्टु में लिखा है–
छर्दि हिक्वा विषश्वास कास शोषातिसार जित्।
वमन, हिचकी, विषवेग, सांस, दमा, खांसी, तपेदिक और अतिसार का नाशक मधु है। वेद ने इसे सर्प-विषहारी बताया है।

मधूयुवा – द्वि.व.। (१) मधुर पदार्थों को परस्पर मिलाने वाले, (२) जल तेज और अन्न के मिश्रण और विश्लेषण करने वाले – मित्रावरुण
'मध्व ऊ षु मधुयुवा'

ऋ. ५.७३.८
(३) जल अन्नवत् परस्पर मिलने वाले स्त्री पुरुष
'शमू षु वाँ मधूयुवा
अस्माकमस्तु चर्कृतिः'
ऋ. ५.७४.९

मधूलक – अत्यधिक मधुर, ज्ञानामृत ।
'जिह्वामूले मधूलकम्'
अ. १.३४.२

मनऋङ्गा – द्वि.व. । मननशील विद्वानों के तुल्य सन्मार्ग पर चलने वाले
'मनऋङ्गा मनन्या न जग्मी'
ऋ. १०.१०६.८

मनन्या – द्वि.व. । मनन शील दो पुरुष

मनःसद् – मन में प्रतिष्ठित
'ध्रुवसदं नृषदं मनः सदम्'
वाज.सं. ९.२.

मनसा सन्नद्धः – मननशील मनोरूप अन्तःकरण से अच्छी प्रकार बन्धा हुआ जीव
'निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि'
ऋ. १.१६४.३७

मनत्यति – क्यङन्त 'मनस्य' धातु के प्रथम पुरुष ए.व. में । अर्थ है– (१) मनस्वी भवति (मनस्वी होता है) । (२) प्रहृष्यति (प्रहर्षित होता है) (३) प्रशस्त मनाः भवति (प्रशस्त मन वाला होता है) ।
हिन्दी का 'मनसाना' धातु इसी का समानार्थक है ।

मनः – (१) शास्त्र मनन, चिन्तन, (मनस्) (२) प्रजापति आत्मा.
'शतमनश्छन्दः'
वाज.सं. १५.४
(३) मनः शक्ति
'मनसे चेतसे धिय आकूतये'
अ. ६.४१.१.
(४) मन् + असुन् = मनस् । मननशील (५) मन, (६) प्रज्ञा
'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०
जिस यज्ञ या सभा में ध्यानवान या धीमान् पुरुष शुद्ध मन या प्रज्ञा से वचन बोलते हैं ।
'उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः'
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४.
आधुनिक अर्थ – मन, हृदय, बुद्धि, न्यायशास्त्र का मनस् नामक द्रव्य, अन्तरात्मा, दिल, conscience, विचार, कल्पना, इच्छा, उद्देश्य, प्रभृत्ति, चेष्ट, मानसरोवर झील अंग्रेजी का mind मनस् का ही बिगड़ा रूप है ।

मनस – (सं.पु.) उत्तम चित्तवान्, मननशील
'स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिः'
ऋ. ५.४४.१०

मनसा जविष्ठा – मन से भी अधिक वेग वाले प्राण अपान वायु
'ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा'
ऋ. ५.२.३.

मनस्तेजाः – मन के समान तेजस्वी
'दिक्शंसितो मनस्तेजाः'
अ. १०.५.२८

मनसस्पतिः – अन्तः करण को गिराने वाला पाप संकल्प
'अपेहि मनसस्पते'
ऋ. १०.१६४.१; अ. २०.९६.२३;

मनस्पाप – मानसिक पाप
'परोपेहि मनस्पाप'
अ. ६.४५.१

मनस्केत – मन् द्वारा चिन्तन करने योग्य विषय
'यथा मनो मनस्केतैः'
अ. ६.१०५.१

मनस्मयम् अनः – संकल्प का बना मानस रथ
'अनो मनस्मयं सूर्या
रोहत् प्रयती पतिम्'
ऋ. १०.८५.१२; अ. १४.१.१२

मनस्वान् – मनस् + वतुप् = मनस्वत् । प्रथमा एक वचन में मनस्वान् रूप है । अर्थ (१) मेधावी –सा. (२) चेतन
'यो जात एव प्रथमो मनस्वान्'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१; तै.सं. १.७.१३.२; मै.सं. ४.१२.३: १८६.४, का.सं. ८.१६, ऐ.ब्रा. ५.२.१, कौ.ब्रा. २१.४; २२.४; नि. १०.१०
जो जन्मते ही देवों में प्रधान और मेधावी हुए –सा.
जो सदा विद्यमान ही रहता, जो सर्वाधार और चेतन है–दया.

(३) मनस्वी

मन्तवै – मनाव्य, मानने योग्य,
मन् + तवै (तव्य के अर्थ में) = मन्तवै ।

मन्त्रश्रुत्य – मन्त्र और श्रुति के अनुसार
'मन्त्रश्रुत्यं चरामसि'
ऋ. १०.१३४.७, साम. १.१७६.

मनायु – ज्ञान का इच्छुक
'मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः'
ऋ. ४.२५.२

मनीषा – (स्त्री) । मन् + असुन् = मनस् । मनस् + ईषा = मनीषा । अर्थ है (१) मनः पूर्विका स्तुति, मनोयोग पूर्वक स्तुति, (२) प्रज्ञा, (३) महत्वाकांक्षा
'प्र सिन्धुमच्छा महती मनीषा
अवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः'
ऋ. ३. ३३.५; नि. २.२५
मैं कुशिकपुत्र बड़ी महत्वाकांक्षा से अपनी रक्षा का इच्छुक हो शतद्रु के समक्ष जोर देकर बुलाता हूँ ।
(४) श्रद्धा , प्रियातिशय बुद्धि
अमन्दसोमान् प्रभरे मनीषया
(५) इच्छा, (६) स्तुति,
'इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा'
ऋ. १०.४.६

मनु – मन् + उ = मनु ।
(१) मानव मात्र का पिता – सा.
'यामथर्वा मनुष्पिता
दध्यङ् धियमत्नत'
ऋ. १.८०.१६; नि. १२.३४.

मन्तु – (१) प्रशस्त ज्ञान । (२) मननशील, विचारवान् (३) आदर मन करने वाला
'युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः'
ऋ. १.१५२.१; मै.सं. ४.१४.१०; २३१.७; तै.ब्रा. २.८.६.६

मन्तुमस् – ज्ञानी, उत्तम ज्ञान एवं (मन्तुमाः) मनन सामर्थ्य वाला
'आ तत्ते दस्र मन्तुमः
पूषन्नवो वृणीमहे
येन पितृनचोदयः'
ऋ. १.४२.५
हे दुष्टों के नाश करने वाले, हे उत्तम ज्ञान और मनन सामर्थ्य वाले, हे पूषन् या प्रजापोषक राजन् ! जिस शासन बल से तू माता पिता के समान प्रजा के पालक अधिकारी पुरुषों को प्रेरित करता है, हम तेरे उस प्रजा के रक्षण तथा व्यवहार को चाहते हैं ।
'शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः'
ऋ. १०.१३४.६; साम. २.४४१.

मन्यु – (प्र.) । मन् + युच् = मन्यु । मन् धातु का अर्थ दीप्त करना, क्रोध करना या वध करना है । मन्यन्ति अस्मात् इषवः (मन्यु से वाण अवदीप्त हो शत्रुओं को हिंसित करते हैं) ।
क्रोध में मनुष्य आपे से बाहर हो जाता और मर्यादा खो बैठता है ।
मन्यु से मनुष्य दुराधर्ष रहता है । अर्थ है– (१) वायु, (२) मनस्वी, (३) क्रोध, (४) मरुत्वान् ।
'त्वया मन्यो सरथ मारुजन्तः'
ऋ. १०.८४.१; अ. ४.३१.१; तै.ब्रा. २.४.१.१०, नि. १०.३०.
(५) मन की वह शक्ति जिससे मनुष्य विजय प्राप्त करता है, (६) इच्छा–शक्ति, (७) मनस्विता ।
'विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवः'
ऋ. १०.८४.५; अ. ४.३१.५; नि. ६.२९
हे मन्यु ! तू परमात्मा की ही तरह विजयी और अप्रतिहत शासन है ।
(८) मन्युनामक देवता ।
'अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४. ३१.२; नि. १.१७
हे मन्यु ! अग्नि के समान ज्वलित होकर हमारे शत्रुओं को पराजित करो (सहस्व) ।
आधुनिक अर्थ – क्रोध, चिन्ता, आपत्ति, दयनीय दशा, यज्ञ अग्नि, शिव का एक नाम
'मन्युरसि मन्युं मयि धेहि'
में ईश्वर को मन्यु कहा गया है ।
यह शब्द क्रोध से भिन्न शक्ति का वाचक है । मन्युवान् विजयी होता है । क्रोधी अवक्षिप्त वचन बोलता है । मन्यु अन्तरिक शक्ति का बोधक है ।

मन्त्र – मननात् मन्त्रः (मनन से मन्त्र हुआ) । अथवा 'मननात् त्रायत इति मन्त्रः' (जो मनन करने से रक्षा करता है वह मंत्र है) । 'मनि' धातु गुप्त

परिभाषण अर्थ में भी आया है । और इससे भी मन्त्र भी व्युत्पत्ति की गई है । मन्त्र में गुप्त पदार्थों या विद्याओं का वर्णन है ।
मन्त्र का मनन अध्यात्म, अधिदेव और अधियज्ञ के उपासक करते हैं । अर्थ है - (१) मन्त्र
'स्तुता मन्त्राः कवि शस्ता अवन्तु'
ऋ. ६.५०.१४, वाज.सं. ३४.५३; मै.सं. १.६.२; ८८.१३; आप.श्रौ. सू. ५.१९.४; नि. १२.३३.
पूर्व ऋषियों द्वारा स्तुत एवं मेधावियों द्वारा प्रशंसित मन्त्र रक्षा करें ।
(२) वैदिक ऋचा को भी मन्त्र कहते हैं । छन्द में रहने पर ऋच् , गद्य में रहने पर यजुस् और छन्दोबद्ध रहने पर भी गाने के उद्देश्य से मन्त्र सामन है (३) मन्त्र से वैदिक संहिता का भी बोध होता है ।
(४) जादू टोना भी मन्त्र ही है, (५) देवता विशेष की स्तुति करने के लिए भी मन्त्र विशेष होता है, जैसे - 'ऊं नमः शिवायः' 'ऊं नमो भगवते वासुदेवाय' ।
(६) सम्मति, राय, विचार, उपदेश योजना, प्रहिता (७) रहस्य, षड्यन्त्र (८) सं. - मननशील- विचार वान्
'सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान्'
ऋ. १.१५२.२

मन्त्रकृत् - (१) वेद मन्त्रों का द्रष्टा ऋषि । सायण ने 'कृत्' का अर्थ ऐतरेय ब्राह्मण के उद्धरण के भाष्य में यों किया है-
ऋषिरतीन्द्रियार्थ द्रष्टामंत्र कृत् करोति धातु स्तत्र दर्शनार्थः ।
(ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय अर्थों का द्रष्टा मन्त्रकृत है) । 'करोति' धातु का अर्थ यहां देखना है । ऋग्वेद में एक स्थान पर मन्त्र कृत् शब्द का प्रयोग है ।
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः
कश्यपोद्वर्द्धयन् गिरः
सोमं नमस्य राजानं
यो जज्ञे वीरुधां पतिः
इन्द्रायेन्दो परि स्रव'
ऋ. ९.११४.२
(२) पुनः तै.ब्रा. १३.३.२४ में-शिशुर्वा अङ्गिरसां मन्त्र कृताम् मन्त्र कृदासीत् ।
(३) तै. आरण्यक ४.१.१ में
नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यः
(४) मन्त्रकृता वृणीतै (यथर्षि मन्त्र कृतो वृणीत इति विज्ञायते) ।
आप.श्रौ.सू.
(४) तान् होवाच काद्रवेय सर्पः ।
(६) ऋषिर्मन्त्रकृत् । ऐ.ब्रा. ६.१.

मन्त्रश्रुत्य - वह बात जो मन्त्र और श्रुति से अनुमोदित हो
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि
ऋ. १०.१३४.७

मन्थ - (१) मट्ठा,
'क्षीरे मामन्थे यतमो ददम्भ'
अ. ५.२९.७
(२) सत्तू का बना घोल
'सवासिनौ पिबतां मन्थमेतम्'
अ. २.२९. ६
(३) सब दुःखों को मथ देने वाला आनन्द रस
'मन्थस्त इन्द्र शं हृदे'
ऋ. १०.८६.१५; अ. २०. १२. १२६.१५.
'यं ते मन्थं यमोदनम्'
अ. १८.४.४२

मन्था - छाछ
'दधिमन्थां परिस्तुतम्'
अ. २०.१२७ (३).९ शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.३.
(२) मथनी, रही जिस से दूध दही महा जाता है ।
'यत्र मन्थां विबध्नते
रश्मीन् यमितवा इव'
ऋ. १.२८.४
अश्वों को वश करने के लिए जिस प्रकार सारथि रासों को जोड़ता है और जहां लोग इधर दही को मथन करने वाली रही को रस्सी से बांधते हैं ।

मन्थिपाः - शत्रुओं का मंथन करने वाला
'देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्तु'
वाज.सं. ७.१७; मै.सं. १.३.१२: ३४.१०; ४.६.३: ८२.६; का.सं. ४.४; २७.८; श.ब्रा. ४.२.१.१४; तै.ब्रा. १.१०.१२; आप.श्रौ. सू. १२.२२.१; मा.श्रौ.सू. २.४.१.६.
'मन्थी मन्थि शोचिषा निरस्तः'

वाज.सं. ७.१८; तै.सं. ६.४.१०.४; का.सं. ४.४; श.ब्रा. ४.२.१. १९; तै.ब्रा. १.१.१.२; आप.श्रौ.सू. १२.२२.८.

मन्थी – (१) शत्रुओं का मथन करने वाला ।
'क्षीर श्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः '
वाज.सं. ८.५७
(२) वाणी विस्तार से उत्पन्न हृदय मन्थन करने की शक्ति (३) ऐड नाम स्तम से उत्पन्न मन्थिग्रह
'ऐडान्मन्थी '
वाज.सं. १३. ५७.
(४) मथनी ।
'शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना '
ऋ. ९.४६.४
हे ऋत्विजो, मथनी से घृत निकालो (मन्थिना शुक्रागृभ्णीत) ।

मन्दमाने – (१) सुखकारक, एक दूसरे का कल्याण करने वाले रातदिन – स्त्री पुरुष '
'आ भन्दमाने उषसे उपाके '
ऋ. ३.४.६

मन्दयुः – प्रसन्न करता हुआ
'प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता '
ऋ. १.१७३.२

मन्दमानाय – मोदमानाय, हृष्यमाणाय, स्तूयमानाय, शब्दमानाय (प्रसन्न, हर्षित, स्तूयमान या शब्दायमान होने वाले के निमित्त) । मोदयुक्त प्रसन्न ।
'प्र वो महे मन्दमानायान्धसः '
ऋ. १०.५०.१, वाज.सं. ३३.२३, ऐ.आ. १.५.२.१, ५.३.१.२; नि. ११ .९
मोहयुक्त इन्द्र या परमेश्वर की स्तुति करो ।

मन्दसानः – (१) उत्तम स्तुतियुक्त
'येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः '
ऋ. २.३०.५,
(२) सदा प्रसन्न करता हुआ
'मन्दसान इमा आपः '
ऋ. १.१३१.४; अ. २०.७५.२
(३) अति हर्षित
'मन्दसानः सहस्त्रिणम् '
ऋ. ८.९३.२१
(४) मोदमानः (५) आनन्दित करने वाला । (६) मन्द + असानच् = मन्दसानस् । अर्थ है– सर्वानन्दकारक
'मन्दसानः सुतं पिब '
ऋ. १.१०.११

मन्दसानुः – आनन्दित करने वाला – अग्नि का विशेषण ।
'सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः '
ऋ. ५.६०.८; नि. ८.२
हे आनन्दित करने वाला सर्वजनोपकारक अग्नि ! समूह रूप में आश्रित ज्वालाओं से (गणश्रिभिः) सोम रस पी ।

मन्दसाना – स्तुति करती हुई । गुणानुवाद करती हुई
'सा मन्दसाना मनसा शिवेन '
अ. १४.२.६;

मन्द्र – मन्द् + रक् = मन्द्र; अथवा मद् + रक् = मन्द्र । अर्थ है । स्तुत्य ।

मन्द्रजिह्व – (१) आनन्दयुक्त प्रीतिजनक वचन वाला परमेश्वर
'पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् '
ऋ. ४.५०.१; अ. २०.८८.१, मै.सं. ४.१२.५; १९३.४, का.सं. ९.१९.
(२) मदनजिह्वः मोदनजिह्वः, मदयितृ घोषः (जिसकी जिह्वा प्रसन्न करने वाली हो, जिसकी स्तुति रूपी ध्वनि लोगों के लिए आनन्ददायिनी हो) ।
(३) जिह्वा का अर्थ स्तुति भी है । अतः मन्दजिह्व का अर्थ आनन्ददायिनी स्तुति करने वाला हुआ ।
(४) मन्द + र = मन्द्र प्रशंसित या आनन्दप्रद मधुर वाणी वाला ।
(५) सुन्दर स्तुति या जिह्वा वाला –सा.
(६) सुन्दर वाणी वाला विद्वान् – दया.
'अनर्वाणं वृषभ मन्द्रजिह्वं
बृहस्पतिं वर्द्धया नव्यमर्कैः '
ऋ. १.१९०.१; नि. ६.२३.

मन्द्रजिह्वा – वि.,द्वि.व. । (१) अति हर्ष करने वाली, (२) उत्तम वाणी वाले
'मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणि '
ऋ . १.१४२.८
अति हर्ष को उत्पन्न करने वाले, उत्तम वाणी वाले (मन्द्रजिह्वा), निरन्तर उद्यमशील और

अध्ययनशील.....

मन्द्रयुः - आनन्द की कामना करने वाला

'प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः '

ऋ. ९.८६.१७; साम. २.५०३

मन्म - (१) स्तुति

'मन्म श्रुधि नवीयसः '

. १.१३१.६; अ. २०.७२.३

(२) योग्य करने योग्य

'नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् '

ऋ. १०.९६.११; अ. २.३२.१.

मन्मन् - (१) समझते हुए, (२) आत्म मंनन, आत्म चिन्तन ।

'कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः '

ऋ. १०.१३८.१

कृषकों के कृषि कर्म आवश्यक समझते हुए .. दुर्ग । परमात्मा के स्तोता के लिए (कुत्साय) पाप नाशक श्रेष्ठ कर्मों को (अह्यः दँसयः) बतलाते हुए उदय होते हो ।-ज.दे.श. ।

मन्मशः - मनन करने योग्य मन्त्र से

'यदिन्द्र मन्मशस्त्वा

नाना हवंत ऊतये '

ऋ. ८.१५.१२

मन्यमानः - विचार आदर और मान करने योग्य - परमात्मा

'नू चिन्नु ते मन्यमानस्य '

ऋ. ७.२२.८; . २०.७३.२

मना - निपात से सिद्ध 'मन्' धातु से बना शब्द । अर्थ है - जिस से सब कुछ याञ्चा की जाय । गौ का विशेषण । गो शब्द पृथिवी, गौ, वाणी आदि का वाचक है ।

चिदसिमनासि धीरसि '

राजक्रयणी गोस्तुति में यह ऋचा कही गई है । 'चित्त' गौ का वाचक है । गौ में सभी भोग्य पदार्त संचित है । अतः वह 'चित्' हुई । उसी प्रकार गौ मना है, धी है । गौ से सभी कुछ जांचा जाता है, अतः वह मना है । गौ सब कुछ धारण करती है, अतः वह धी भी है ।

मनामहे - (१) याचामहे (हम याचना करते हैं) । वेद में 'मन्यामहे ' का रूप 'मनामहे ' होता है । (१) सायण के अनुसार इसका अर्थ है- स्तवामः (हम स्तुति करते हैं ।) (२) मत्वा च उपास्महे । (मानकर उपासना करते हैं) ।

'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे

स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्

आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ

अपो वृणाना वितनोति मायिनी '

ऋ. ५.४८.१

हम सुखकर एवं अपने बल से स्थित (स्वक्षत्राय) अपनी महिमा से यशस्वी (स्वयश से) तथा महान् (महे) प्रिय विश्वदेवों के स्थान के लिए (प्रियाय धाम्ने) स्तुति या याचना करते हैं (मनामहे) जो मध्यमा वाक् (यत्) मध्यमा वाक् के वास स्थान अन्तरिक्ष लोक के (मन्यस्य रजसः) ऊपर (आ) मेघ में अवस्थित (अभ्रे) जलों की चारों ओर बांटती हुई या घेरती हुई (अपः आ वृणाना) तथा प्रज्ञावती होकर (मायिनी) वर्षा रूप में विस्तृत होती है (वितनोति) ।

मनायत् - मननशील पुरुष

'यजस्व वीर प्र विहि मनायतः '

ऋ. २.२६.२

मनायुः - प्रशंसा की कामना करने वाला

'प्रति मनायोः उचथानि हर्यन् '

ऋ. ४.२४.७.

(२) मान या ज्ञान का इच्छुक मननशील स्तुति कर्ता (३) ज्ञानरूप परमेश्वर

'विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः '

ऋ. १.९२.९

मनावसू - (१) मन और ज्ञान को वसु अर्थात् धन रूप से देखने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष, (२) ज्ञान के धनी

'कूष्ठो देवावश्विना

अद्या दिवो मनावसू '

ऋ. ५.७४.१

मन्दासः- (१) तृप्त (२) दूसरों को तृप्त करने वाला

'मन्दानः शिप्र्यन्धसः '

ऋ. ८.३३.७; अ. २०.५३.१; ५७.११; साम. १.२९७.

(३) प्रसन्न होता हुआ ।

'तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्य '

ऋ. ५.३२.६

अभिसुत सोम रस से प्रसन्न होता हुआ उस

वृत्र का या पुत्रतुल्य प्रजाजन को आनन्द देने वाला राजा उस चोर व्यभिचारी आदि को.....
पुनः –
'मन्दान इन्द्रो अन्धसः'
ऋ. १.८०.६

मन्द्रा – मन्दना, हषकारी, लोकस्य तर्पयित्री। मन्द अथवा मद् + रक् + टाप् = मन्द्रा'
'यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि
राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा'
ऋ. ८.१००.१०, तै.ब्रा. २.४.६.११, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; नि. ११.२८.
जब माध्यमिका वाक् शब्दरूपी गर्जन लक्षण वाली अविज्ञातार्थ ध्वनि करती, अन्तरिक्ष लोक या माध्यमिक देवों की ईश्वरा तथा लोक को प्रसन्न करने वाली वर्षा बरसाने लगती है।
अथवा,
जब अविज्ञात अर्थों को बतलाने वाली, विद्वान् लोगों की स्वामिनी प्रसन्नता देने वाली दिव्य वाणी प्राप्त होती है।
(२) स्तुति से प्राप्त होने वाली
(३) जल से हर्षित करने वाली वाक् का विशेषण।
'सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना'
ऋ. ८.१००.११; तै. ब्रा. २.४.६.१०; नि. ११.२९

मन्दाजनी – अति हर्ष उत्पन्न करने वाली
'मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि'
ऋ. ९.६९.२, साम. २.७२१.

मन्दानः – परम आनन्द प्राप्त करने वाला
'वसोर्मन्दानमन्धसः'
ऋ. ८.८८.१; अ. २०.९.१; ४९.४; साम १.२३६; २.३५; वाज.सं. २६. ११;

मन्दू – द्वि.व.। मन्द् + उ = मन्दु (नुम् का आगम्) अथवा मद् + उ = मन्द्र। अर्थ–(१) प्रदिष्णु मद वाला (१) इन्द्र और मरुत् का विशेषण (३) नित्य प्रसन्न
'मन्दू समानवर्चसा'
ऋ. १.६.७; अ. २०.४०.१; ७०-३; साम. २.२००; नि. ४.१२.
तुम दोनों नित्य प्रसन्न एवं समान दीप्ति वाले हो।

मन्धाता – (१) मुझे धारण या रक्षा करेगा इस प्रकार राजा द्वारा स्वीकृत प्रजा गण
'मन्धातुर्दस्युहन्तमम्'
ऋ. ८.३९.८
(२) ज्ञान को धारण करने वाला विद्वान् मेधावी।
'मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा'
ऋ. १०.२.२.

मन्मन् – मद् (स्तुति अर्थ में) + मनिन् = मन्मन्। अर्थ है (१) स्तुति, स्तोत्र, (२) मननीय अर्थ जात (३) कर्म, (६) मनमाना धन।
'उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म
देवानामाशा उपवीत पृष्ठः'
ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.४;
मुझे मनमाना धन आवे (मन्म उपप्रागात्)। यह इच्छा मेरे मन में स्वयमेव आई। सुन्दर पीठ वाला घोड़ा देवताओं की इच्छा पूर्ण करने के लिए आये।
अभिप्रेत पदार्थ के अर्थ में –
'मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्
देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः'
ऋ. १०.११०.२; अ. ५.१२.२; वाज.सं. २९.२६; मै.सं. ४.१३.३; २०१.११, का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.६.
हमारे अभिप्रेत पदार्थों को अपने कर्मों या बुद्धि से समृद्ध करता हुआ हमारे इस अहिंसित अध्वर को देवताओं की ओर प्रवृत्त कर।
स्तुति के अर्थ में –
'तमू षु समना गिरा
पितृणां च मन्मभिः'
ऋ. ८.४१.२; नि. १०.५
मैं उसी वरुण को समान वाणी तथा पितरों की स्तुतियों से स्तुति करता हूँ।
प्रज्ञा या कर्म के अर्थ में –
हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति
ऋ। १.१२९.६; नि. १०.४२
जो अन्नवाला इन्द्र हमारी प्रज्ञाओं को आकर्षित करता है।
(७) मन – दया. (८) मननीय अर्थ –सा.
(९) अन्य प्रवृत्ति –
मनु + मनिन् (मनु के उ का लोप) = मन्मन्।

'मनु' धातु अवबोधन अर्थ में आया है । अतः मन्मन् का अर्थ अवबोधन कराने वाला प्रज्ञान हुआ ।

मन्मना – मननीय वाणी
युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः
ऋ. १.१५१.६

मन्मसाधनः – (१) मननशील, (२) विज्ञानसाधक,
'कविर्होता यजति मन्मसाधनः '
ऋ. १.१५१.७
बुद्धिमान् दाता या क्रान्तदर्शन होता विद्या या विज्ञान का साधक हो यज्ञ करता है ।

मन्यथाः – देखें, मानें, समझें ।
मा मे दभ्राणि मन्यथाः '
ऋ. १.१२६.७; नि. ३.२०
हे पतिदेव, मेरे छोटे छोटे रोओं को आप मत देखें (दभ्राणि मा मन्यथाः) –सा.
हे पतिदेव, मेरे सामर्थ्यों को कम न समझिए ।

मन्दिः –. आनन्दप्रद, सोम रूप काविशेषण । 'आ सृज तन सुते मन्दि मिन्द्राय मन्दिन्'
हे अध्वर्युवो, सोमरस तैयार हो जाने पर आनन्द प्रद सोम रस को आनन्दमय इन्द्र के सम्मुख होकर प्रस्तुत करो ।

मन्दिनः सोमासः – (१) सुप्रसन्न सैनिकों को प्रेरणा करने वाले नेता पुरुष , (२) सौम्य स्वभाव वाले मुक्त पुरुष
'सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः '
ऋ. १०.४३.४; अ. २०.१७.४

मन्दिष्ट – (१) अतिशयेन मन्दिता, (२) विद्वानों के बीच सब से मुख्यतम विद्वान्, (३) इन्द्र का विशेषण
'मन्दिष्ट यदुशने काव्य सचां '
इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति
ऋ. १.५१.११

मन्यमानः – पूजा करता हुआ, श्रद्धा से मानता हुआ ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चित्
राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह
ऋ. ७.४१.२; अ. ३.१६.२; वाज.सं. ३४.३५; तै.ब्रा. २.८.९.८; आप.मं.पा. १.१४.२; नि. १२.१४.
जिस भग (आदित्य) को दरिद्र भी (आध्रःचित्) पूजा करते हैं (मन्यमानः) क्योंकि सूर्य के उदय से काल बीता जाता है । राजा भी जिस देव को 'मुझे यह धन दे ' ऐसा कहता है (भागं वक्षि) ।

मन्यमानाः भृमयः – जाती गई भ्रमण की क्रियाएं
इमा उ वां भृमयो मन्यमानाः '
ऋ. ३.६२.१; आश्व.श्रौ.सू. ७.९.२.

मन्वानाः – ब.व. । मन् + शानच् = मन्वान । ब.व. में 'मन्वानाः । अर्थ है– (१) मानते हुए दुर्ग, (२) मनन करते हुए ज.दे.श.
तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः
ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् '
ऋ. १०.१३८.१
हे इन्द्र, तेरे सख्य में वर्तमान अश्वों ने मेघ में जल को समझते हुए मेघ को विदीर्ण किया–दुर्ग ।
हे सूर्य, तेरे सख्य में वर्तमान नेता विद्वान् (वह्नयः) सत्य रूपी प्रभु को मनन करते हुए (ऋतं मन्वानाः) आन्तरिक शत्रु के बल को विदीर्ण करते हैं ('वलं व्यदर्दिरुः)

मन्या – (१) गण्डमाला
'संयन्ति मन्या अभि '
अ. ६.२५.१
(२) राष्ट्र का मान करने वाली राजसभा (२) मन्या नाम की धमनी (४) मनन करने की विज्ञान क्रिया
'चित्तँ मन्याभिः '
वाज.सं. २५.२; तै.सं. ५.७.१४.१; मै.सं. ३.१५.२: १७८.६; का. सं.(अश्व.) १३.४

मनीषा – (१) स्तुति, (२) अभिलाषा
'भुवदग्ने शंतमा का मनीषा '
ऋ. १.७६.१; का.सं. ३९.१४
हे प्रभो ,'कौन सी स्तुति या अभिलाषा अति सुख कारिणी है (शंतमा) ।

मनीषिन् – मेधावी । मनसः ईषिन् । मनस् + ईषा = मनीषा; मनीषा + इनि = मनीषिन् ।
'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि
तानि विदुः ब्राह्मणा ये मनीषिणः
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति '
ऋ. १.१६४.४५ अ. ९.१०.२७

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों में सभी वाणियों के चार पाद परिमित हैं । (वाक् चत्वारि, पदानि परिमितानि) । उन पादों का रहस्य (तानि) वेदज्ञ ब्राह्मण तथा मेधावी पुरुष (ब्राह्मणाः मनीषिणः) जानते हैं (विदन्ति) । उन चारों पादों में तीन (त्रीणि) गुहा में निहित अर्थात् रखी या छिपी हुई हैं (गुहा निहिताः) । वे इधर उधर नहीं होतीं (न इङ्गयन्ति) । वहिन के चतुर्थ चरण या पाद को (वाचं तुरीयम्) मनुष्य उच्चारित करते हैं ।

कुछ विद्वानों के मत से चार पाद-भूः, भुपः, स्वः और ओम् हैं । सप्रणव व्याहृतियों के सभी वाक् परिमित हैं ।

(कतमानि तानि चत्वारि पदानि ? ओंकारों महा व्याहृतयश्च इत्यार्षम्) ।

मन्दी – मद् (स्तुति अर्थ में) + घञ् = मन्द, मन्द + इनि = मन्दिन् । (प्रथमा एक वचन में मन्दी) । अर्थ है- (१) स्तुति से तृप्त, (२) प्रसन्न चित्त – इन्द्र का विशेषण ।

मन्दी मदाय तोशते

सोमरस या दुग्ध पीकर प्रसन्नचित इन्द्र या गोस्वामी तेज धारण करने के लिए (मदाय) निर्बलता दूर करता है (तोशते) ।

(३) देवों को प्रसन्न करने वाला (देवानां स्तोत्रेण हर्षकः) (४) स्तुति करने वाला है (मन्दः स्तवः अस्य इति मन्दी) ।

तरत् स मन्दी धावति
धारा सुतस्यान्धसः
तरत् स मन्दी धावति'

ऋ. ९.५८.१

जो स्तोत्र से देवताओं को प्रसन्न करने वाला है (मन्दी) वह तरता है अर्थात् पापों से मुक्त होता है (स तरत्), तथा अभिसुत भक्षणीय सोमरस की धारा से (सुतस्य अन्धसः धारा) ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है या उन्नति करता या अच्छी गति पाता है (धावति) ।

मनुः – (१) शत्रुओं को स्तम्भित और राष्ट्र को व्यवस्थित करने में समर्थ पुरुष (२) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करना ।

मनुजात – (१) मन्त्रपूर्वक धारण किया हुआ, (२) मनन या दृढ़ संकल्प से बना हुआ

'अभि त्वा मनुजातेन
दधामि मम वाससा'

अ. ७.३७.१

(३) मननशील मनुष्य से उत्पन्न, (४) ज्ञानवान् मनन शील

यजा स्वध्वरं जनं
मनुजातं घृतप्रुषम्'

ऋ. १.४५.१

उत्तम यज्ञशील, अहिंसक और ज्ञानवान मननशील आचार्य आदि की शिक्षा प्राप्त कर निष्णात हुए, घृत दुग्धादि के साथ अन्नादि पदार्थों का सेवन करने वाला तथा विधिपूर्वक जलों और ज्ञानों द्वारा स्नात हुए स्नातक विद्वान् पुरुष को भी ऐश्वर्य प्रदान कर तथा उनका सत्संग कर ।

मनुताम् – मन् धातु के लोट् प्र.पु.ए. व. का रूप । मन्यताम्, जानातु ।

'पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्

ऋ. ६.४७.२९; अ. ६.१२६.१; वाज.सं. २९.५५; तै.सं. ४.६.६.६; मै.सं. ३.१६.३; १८७.८; का.सं. (अश्व.) ६.१. नि. ९.१३.

हे इन्द्र, स्थावर और जंगम जगत् तेरे शब्दों को बहुत प्रकार से मान जाय ।

मनुप्रीतः – मनुष्यों से प्रेम करने वाला

'मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः'

ऋ. १०.६३.१

मनुर्हित – (१) मनुष्यों का हितकारी

'मनुर्हितम् सदमिद् राय ईमहे'

ऋ. ३.२.१५

(२) मननशील पुरुषों द्वारा धारित- अग्नि

'ईडे गिरा मनुर्हितम्'

ऋ. ८.१९.२१

मनुष्य – मन + उषन् = मनुष्य । यास्क ने मनुष्य शब्द को मनु या मनुष्य का अपत्य कहा है । अर्थ – (१) मनुष्य ।

'इषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा'

ऋ. १.११७.२१; नि. ६.२६

हे दर्शनीय राजा एवं राजपुरुषो ! या अश्विनीद्वय तुम मनुष्य के लिए भरपूर अन्न पैदा करते हुए.....

(२) मननशील मनुष्य
'तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा'
ऋ. २.२.५

मनुष – षकारान्त प्रातिपदिक । अर्थ– मनुष्य ।
'अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम्'
ऋ. ६.७०.२
हे द्यावापृथिवी ! हमें सन्तानोत्पादक वीर्य देवें जो मनुष्यों के लिए कल्याण कारक है । अथवा, इस संसार के राजा सूर्य पृथिवी मनुष्यों के लिए हितकर जल हमारे लिये बरसावें ।
(२) स्वर्ग, (३) यष्टा, यज्ञ कर्त्ता,

मनुष्य – (१) मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति (समझ बूझकर कार्य करता है अथवा कर्मों को संलग्न करता है, अतः वह मनुष्य है) ।
(२) स्कन्दस्वामी 'मनुष्य' शब्द को द्विधातुक मानकर 'मन् + सीव ' धातुओं से बना हुआ मानते हैं ।
(३) मनस्य मानेन सृष्टा (प्रसन्न मनया प्रशस्त मन वाले प्रजापित से मनुष्य सृष्ट हुए) ।
(४) मनोः अपत्यं मनुषः व ('मनुष्य' का अर्थ मनु या मनुष् का अपत्य है) । मनुष् + यत् = मनुष्य ।
(५) पाणिनि ने 'मनोर्जातावञ् यतौ षुक् च ' पा.४.१.१६१ से मनु से उत्पन्न मनुष्य है । इस अर्थ में मनु + यत् = मनुष्य कहा है । अर्थ – (१) यज्ञ करने वाला, चिन्तनशील, मनन शील (३) विवेकी पुरुष ।
'चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्'
ऋ. ६.४७.१६; नि. ६.२२.
इन्द्र यज्ञ विमुख या बुरे कर्म से धन कमाने वाले या व्यापार करने वाले मनुष्यों को (विशः) दण्ड देता या छकाता है (चोष्कूयते) तथा मननशील विवेकी यज्ञ करने वाले यज्ञशील पुरुषों को पुण्य लोक पहुंचाता है ।
(४) आदित्य रोगादिकों को नाश करता है । यास्क ने मन धातु को वधार्थक माना है । मन् + उ = मनु ।

मनुष्यजा – मनुष्यों द्वार एवं विचार पूर्वक परस्पर योगों या यन्त्रों से बनाई ओषधि ।
'दैवीर्मनुष्यजा उत
अ. ११.४.१६

मनुष्यराज – मनुष्य स्वभाव का राजा
'मनुष्यराजाय मर्कटः'
वाज.सं. २४.३०

मनुष्यवत् – मनुष् + वतुप् = मनुष्यवत् । अर्थ (१) मनुष्य की तरह –सा . (२) मननशील – दया.
'अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि
यमा मनुष्वत् प्रदिवो दधिष्वे'
ऋ. ४.३४.३
'मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्'
ऋ. ७.११.३
(४) मनन शील पुरुषों से युक्त
'मनुष्वदग्ने अंगिरस्वदंगिरः'
ऋ. १.३१.१७
शरीर व्याप्त प्राण वायु के सदृश (अंगिरस्वत्) या अग्नि के समान तेजस्वी वायु के समान समस्त संसार के अंग अंग में व्याप्त .....
अथवा,
हे अग्नि या परमेश्वर, तू मनन शील मनुष्यों से युक्त होकर..

मन्तुमाः – ज्ञानवान्
'ब्रवाम दस्र मन्तुम'
ऋ. ६.५६.४

मन्युः – (१) ज्ञानवान् प्रभु
'मन्युरिन्द्रो मन्युरेवा स देवः'
ऋ. १०.८३.२; अ. ४.३२.२, मै.सं. ४.१२.३: १८६.६; तै.ब्रा. २.४.१.११

मन्युइन्द्र – ज्ञानदीप्त, विवेक और असह्य तेज या प्रताप से युक्त मन्यु स्वरूप इन्द्र
'इन्द्रेण मन्युना वयमभिष्याम पृतन्यतः'
अ. ७.९३.१

मन्युभी – (१) क्रोध आदि अन्तः शत्रुओं और अभिमानियों का नाश करने वाला परमेश्वर । बड़े को देखकर अल्प बल वाले का क्रोध उतर जाता है । सौम्य, न्यायशील और विद्वान् भी सामादि उपायों से क्रोध को दूर करता है । परमेश्वर मन्यु है अत उस पर किसी का क्रोध नहीं चलता ।
'ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युभीरसि'
ऋ. २.२३.४

मन्युमत् – क्रोधयुक्त
'तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः'

ऋ. ७.१०४.३

मन्युमत्तम – (१) अत्यन्त प्रकाशमय (२) अति मनन शील

'अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः'

अ. ७.२२.२

मन्युमीः – (१) क्रोध द्वारा शत्रुओं को मारने वाला, (२) अभिमानी शत्रु का नाशक

(३) अपना क्रोध नष्ट करने वाला

'स मन्युमी समदनस्य कर्ता'

ऋ. १.१००.६

वह क्रोध द्वारा शत्रुओं को मारने वाला या अपने क्रोध को मन्द कर संग्राम करने वाला है ।

मन्दू – द्वि.व. । आनन्द देने वाले

'मन्दू समानं वर्चसा'

ऋ. १.६.७; अ. २०.४०.१; ७०.३; साम. २.२००; नि. ४.१२

लट् के अर्थ में लोट् का प्रयोग

मनै – जानता हूँ, मानता हूँ (मन्ये, जाने) । मन् धातु के उत्तम पुरुष एक वचन का रूप ।

'मनै न बभ्रूणामहं
शतं धामानि सप्त च'

ऋ. १०.९७.१; वाज.सं. १२.७५; का.सं. १३.१६; १६.१३; श.ब्रा. ७.२.४.२६; नि. ९.२८.

पीली औषधियों के १०७ नाम या शरीर के १०७ मर्म स्थानों को मै जानता हूँ ।

'म्ना' धातु अभ्यास अर्थ में आया है । अभ्यास से ज्ञान होता है । अतः म्रा धातु ज्ञानार्थक भी है ।

मनोजवः – मनस् + जु + अच् = मनोजव । अर्थ – (१) मन का वेग, (२) प्रज्ञा, ज्ञान, (३) मन् का गम्य प्रदेश, जहां मन जा सके वह भी मनोजव है (४) मन की गति के समान जिसकी गति हो (मनसो जव इव जवो यस्य स मनोजवः)

'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोज वेष्वसमा बभूवुः'

ऋ. १०. ७१.७, नि. १०.९

आँख और कान में समान होने पर भी सखा या छात्र मन के वेग या ज्ञान में असमान होते हैं ।

मनोजवाः – मनस् + जव + असुन् = मनोजवस् । अर्थ – मन के वेग से मन्द (२)उत्तम ज्ञान संकल्प के वेग से युक्त

'मनोजवा अयमानः'

ऋ. ८.१००.८;

मनोजाताः देवाः – मन से प्रकट होने वाले इन्द्रियगण

'ये देवा मनोजाता मनोयुजः'

वाज.सं. ४.११, तै.सं. १.२.३.१; मै.सं. १.२.३; ११.१८; का.सं. २.४; श.ब्रा. ३.२.२.१८.

मनोजुः– (१) मनोवेग से चलने वाला, (२) मन से प्राप्त होने योग्य

'मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन'

ऋ. ६.२२.६; अ. २०.३६.६

मनोतरा – द्वि.व. । (१) ज्ञान और कर्मों को मनोबल द्वारा प्रेरणा करने और मनोबल से ही उनके ज्ञान और क्रिया को स्वयं प्राप्त करने और कराने वाले प्राण और अपान ।

'मनोतरा रयीणाम्'

(२) मनन या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने वाले – अश्विद्वय या स्त्री पुरुष

'मनोतरा रयीणाम्'

ऋ. १.४६.२, ८.८.१२, साम. २.१०७९

(३) परस्पर एक से एक बढ़िया उत्तम मन या चित्त वाले स्त्री पुरुष (४) अश्विद्वय का विशेषण

'या दस्रा सिन्धुमातरा
मनोतरा रयीणाम्
धिया देवा वसुविदा'

ऋ. १.४६.२; साम. २.१०७९

जो ये दोनों एक दूसरे के दुःखों को नाश करने वाले (दस्रा) या एक दूसरे के प्रति दर्शनीय सूर्य चन्द्र, सिन्धु या आकाश से उत्पन्न हुए (सिन्धुमातरा) या सिन्धु के समान गम्भीर माता पिता से उत्पन्न, परस्पर एक से एक बढ़िया उत्तम मन वाले (मनोतरा) कर्म, उद्योग और प्रज्ञा के बल से (धिया) ऐश्वर्य धन या ज्ञान को प्राप्त करने वाले (वसुविदा हैं ।

मनोता – (१) ज्ञान और मन को अपने में बांधने वाला, (२) मन के समान अति वेग से जाने में समर्थ

'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता'

ऋ. ६.१.१, मै.सं. ४.१३.६; २०६.५; का.सं

१८.२०; ऐ.ब्रा. २.१०. २; तै.ब्रा. ३.६.१०.१; शां.श्रौ.सू. ५.१९.१३; मा.श्रौ.सू. ५. २.८.३६
(३) आज्ञापक प्रवक्ता
'त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता'
ऋ. २.९.४
(४) सबके मन का ज्ञाता (५) मनों का आकर्षक
(६) अन्तः करण में ओतप्रोत आत्मा
'धिया मनोता प्रथमो मनीषी'
ऋ. ९.९१.१; साम. १.५४३

मनोधत् – मन को वश करने और ज्ञान को धारण करने वाला
'मनोधृतः सुकृतः तैक्षतध्याम्'
ऋ. ३.३८.२

मनोः नपातः – (१) मननशील मनुष्य और चित्त को न गिरने देने वाले कर्म (२) मननशील मनुष्य के कर्म, (३) ज्ञान से उत्पन्न कर्म
'मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे'
ऋ. ३.६०.३

मनोमुट् – मनोमुह् के प्र.ए.व. का रूप । अर्थ – (१) मन मुग्ध करने वाली–मोहने वाली
'अक्षकामा मनोमुहः'
अ. २.२.५

मनोयुज् – यः मनसा युज्येत (मन अर्थात् इच्छानुसार रथ में जुड़कर चलने वाला अश्व या अश्वारोही भृत्य) ।
'आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुजः'
ऋ. १.५१.१०

मनोयुजः – ब.व.। (१) मन के बल से योग समाधि करने वाले (२) मन से युक्त शरीर को वहन करने वाले प्राण गण, (३) मन को लगाने वाले या चित्त से राजा को सन्मार्ग पर लगाने वाले विद्वज्जन
'घृतपृष्ठा मनोयुजो
ये त्वा वहन्ति वह्नयः'
ऋ. १.१४.६

मनोवाता – ज्ञान के द्वारा प्रेरित
'मनोवाता अधनु धर्मणि ग्मन'
ऋ. ३.३८.२

मनोर्वृधः – ज्ञान का वर्धक
'हन्ता दस्योर्मनोवृधः पतिर्दिवः'
ऋ. ८.९८.६; अ. २०.६४.३; साम. २.५९९

मनोहा – (१) मन का नाशक रोग
'प्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनदूषिः'
अ. १६.१.३
(२) चित्त या मननशक्ति पर आघात पहुंचाने वाला–अपस्मार उन्माद आदि रोग
'मनो हनं जहि जातवेदः'
अ. ५.२९.१०

ममक – मननशील ज्ञानवान् पुरुष
'पितुर्यत पुत्रोममकस्य जायते'
ऋ. १.३१.११
जैसे पुत्र उत्पादक पिता का होता है वैसे ही मनन शील ज्ञानवान् पुरुष का शिष्य पुत्र के समान होता है । मानव गण , परमेश्वर और वेदचतुष्टयी, आचार्य और विद्या दोनों का पुत्र है ।

ममत् – हर्षयुक्त
'ममच्चन त्वायुवतिः परास'
ऋ. ४.१८.८

ममन्दुषी – प्रसन्नचित्त स्त्री
'उत मेऽरपद् युवतिर्ममन्दुषी'
ऋ. ५.६१.९

ममसत्यः – (१) मेरा वचन सत्य है, तुम्हारा नहीं इस प्रकार के विवाद का अवसर
'त्वां जना ममसत्येषु इन्द्र'
ऋ. १०.४२.४; अ. २०.८९.४
(२) मेरा पक्ष सच्चा, मेरा पक्ष सच्चा इस प्रकार अपने अपने प्रक्ष को दृढ़ बनाने का कलह

मम्रुषी – (१) पति के विरह में मरती हुई, (२) मरने के उद्यत होती हुई स्त्री ।
ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः
ऋ. १.१४०.८

ममृवान् – (१) मरता हुआ पुरुष
'रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः'
ऋ. १.११६.३; तै.आ. १.१०.२
जैसे कोई मरता हुआ पुरुष (ममृवान्) जीवन रक्षा के लिए धन का त्याग कर दे (रयिम् अवाहाः) (२) प्राण त्याग करने वाला
'उदैरयतं ममृवां समश्विना'
ऋ. १०.३९.९

मयः – (न.) । सुख ।

मयस्कर – सुखप्रद ।
'नमः शंकराय च मयस्कराय च'
वाज.सं. १६.४१, तै.सं. ४.५.८.१; मै.सं. २.९.७; १२६.२; का. सं. १७.१५

मयु – (पु.) । (१) हिंसक जंगली पशु
'मयुं ते शुगृच्छतु'
वाज.सं. १३.४७, मै.सं. २.७.१७: १०२; का.सं. १६.१७; श.ब्रा. ७.५.२.३२.
(२) उत्तम आज्ञा देने वाला पुरुष, (२) गान, संगीत का ज्ञाता
(३) वाक्
'मयुः प्रजापत्यः'
वाज.सं. २४.३१; तै.सं. ५.५.१२.१; मै.सं. ३.१४.१२; १७४.११, का.सं. (अश्व.) ७.२.

मयूख – (१) खूंटा (१) किरण, कील
'दाधर्व पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा'
ऋ. ७.९९.३; वाज.सं. ५.१६; मै.सं. १.२.९; १९.१; का.सं. २.१० ; श.ब्रा. ३.५.३.१४; तै.आ. १.८.३.

मयूर – (१) मोर ।
(२) मयु अर्थात् वाक् को उत्पन्न करने वाला मुख्य प्राण

मयूरोमा हरिः – (१) मयूर के रोवों के समान चित्रविचित्र हरित नील किरण, (२) मयूर रोम के रंग का घोड़ा (३) मोर के पंख के समान रोएं लगाए वेगवान् मनष्य (४) मयु अर्थात् वाक् को उत्पन्न करनेवाला मयूर मुख्य प्राण का नाम है । उस मुख्य प्राण के रोम के समान आत्मा मयूर रोमा है । (४) सूर्यादि अनन्त लोक मयूररोमा हरि हैं ।

मयूर शेय्या – द्वि.व. । घोड़ों या पुरुषों का विशेषण । मयूर के चिह्न के समान सिर पर सम्मानदि सूचक कलंगी धारण करने वाले ।

मयूरशेप्याहरी – मयूर के पंखों के समान वर्ण वाले दुःखहारी या हरण शील प्राण और अपान वायु
हरी मयूर शेप्या
ऋ. ८.१.२५; साम. २.७४२

मयोभव – सुख के साधन उपस्थित करने वाला
'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च'
वाज.सं. १६.४१

मयोभुवा – द्वि.व. । सुख प्रद सूर्य और पवना, (२) सुखों के मूल उत्पादक
'एह देवा मयोभुवा
दस्रा हिरण्यवर्तनी
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये'
ऋ. १.९२.१८; साम. २.१०८५
जिस प्रकार सुखप्रद सुख और पवन (मयोभुवा) प्रकाश और पदार्थों का उपभोग प्रदान करने के लिए (सोमपीतये) प्रातःबेला को प्रकट करने वाली किरणों को (उषर्बुधः) हमें प्राप्त कराते हैं, उसी प्रकार दान आदि उत्तम गुणों वाले (देवाः) सुख के मूल उत्पादक (मयो भुवा) बाधक कारणों को नाश करने वाले हित और प्रिय मार्ग में चलने वाले होकर (हिरण्यवर्तनी) उत्तम पदार्थों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराने के लिए (सोमपीतये) प्रातः काल चेतन या जागृत होने वाले विद्वानों को (उषर्बुधः) प्राप्त करावें (वहन्तु) ।

मयोभूः– मयः + भू । 'मयः भवति अस्मात् इति मयोभूः' । (जिससे सुख हो वह मयोभू है) । अर्थ है– (१) सुखकारक
'मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा'
ऋ. १०.१६९.१; तै.सं. ७.४.१७.१; का.सं. (अश्व.) ४.६; तै. ब्रा. ३.८.१८.३ आप.श्रौ.सू. २०.१२.२; आश्व.गृ.सू. २.१०.५.
वायु इन गायों के सामने होकर बहे ।
'आपो हि ष्ठा मयोभुवः'
ऋ. १०.९.१, अ. १.५.१; साम. २.११८७; वाज.सं. ११.५०; ३६.१४; तै.सं. ४.१.५.१
हे नलो, यतः तुम सुख कारक हो ।

मरते – म्रियते (मरता है) । 'व्यत्ययो बहुलम्' - पा. ३.१.८५. से यहां विकरण नामक अव्यय होता है ।

मरायी – शत्रुमारक
'रेवान् मराय्येधते
ऋ. १०.६०.४

मरायु – (१) मरणशील शरीर
'ता मे जराय्वजरं मरायु'
ऋ. १०.१०६.६; नि. १३.५
(२) मृ + अच् = मरा, मर् + टाप् = मरा, मरा + यु = मरायु । अर्थ है– मरणशील
अतः हे 'अश्विनीकुमारो, तुम जरायु तथा मरण शील को अमर करो ।

मरीची – व्यर्थ आशा वाली मरु मरीचिका तुल्य तृष्णा
'यत् ते मरीचीः प्रवतः
मनो जगाम दूरकम्'
ऋ. १०.५८.६

मरीचिः – सूर्य की किरण
मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः'
ऋ. १०.१७७.१

मरीमृश – बार बार गुह्यांगों को स्पर्श करने वाला
'जम्भयन्तं मरीमृशम्'
अ. ८.६.१७

मरुत् – (१) मध्यमस्थानी देवता । मरुतः मितराविणः मित रोचिनः, महत् द्रवन्ति इति वा (मरुत् सुश्लिष्ट रूप से ध्वनि करते हैं, सुश्लिष्ट रूप से द्रवते हैं या अत्यन्त द्रवते हैं, अतः वे मरुत् कहे गए) । कुछ लोगों ने मित का अर्थ अत्यन्त किया है । मित का 'म' और रु (रवना) या रुच् (शोभना) का रुत् होकर मरुत् बना है । (२) अथवा 'महत् द्रवन्ति' से 'मरुत्' बना है । महत् का 'म्' और द्रु का 'रुत्' वर्णविपय से हुआ है ।
(३) वि.। अर्थ–अग्नि की ज्वाला ।
'अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिः ऋक्वभिः
सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः'
ऋ. ५.६०.८
हे वैश्वानर अर्थात् सर्वजन हितकर्ता अग्नि, शोभायमान (शुभयद्भिः), प्रशस्त (ऋक्वभिः) तथा परिमित प्रकाश वाली (मरुद्भिः) ज्वालाओं से सोम रस पी ।
(४) वायु, मरुद्गण, मरुत् अनेक हैं अतः नित्य बहुवचनान्त में इसका प्रयोग होता है । (५) निरुक्त में मरुतों को मध्यम स्थायी देवगणों में प्रथम स्थान दिया गया है । (तेषां मरुतः प्रथम गामिनो भवन्ति) । भेद द्वारा वायु ही मरुत् नाम से बहुवचन के भागी होते हैं (वायुरेव हि भेदेन अपेक्ष्यमाणः मरुदभि–धानो बहुवचनभाक् भवति) ।
मरुतों की संख्या ४९ है
(शुक्रज्योतिश्च चित्र ज्योतिश्च इत्येवमाद्यः सप्तसप्तका (४९) देवगणाः मारुतेषु गणेषु सप्त कपालेषु अग्नौ पुराणे च एत एव प्रसिद्धाः) ।
मध्यमा वाक् स्त्रियः सर्वाः
पुमान् सर्वश्च मध्यमः
गणाश्च सर्वे मरुतो
गणभेदाः पृथक् कृतेः
ब्राह्मणो में वर्णों की उत्पत्ति बतलाते हुए लिखा हैं –
'सनैष व्यभवत् । स विशम सृजत । यान्येतानि देव जातानि गुणशः आख्यायन्ते वस्त्वो, रुद्राः आदित्या विश्वेदेवाः मरुत इति ।
(६) वैश्य । ये वैश्य मितरावी या मितभाषी होते हैं । व्यापार में सदा एक सत्य बात बोलते हैं, झूठ कभी नहीं कटते ।
मा (मानार्थक) + रु (शब्द करना) + क्विप् = मारुत् = मरुत् । मरुत् माप से प्रीति करने वाले हैं । अथवा, मा + रुच् + क्विप् = मरुत् ।
अथवा, महत् + द्रव् + क्विप् = मरुत् । ये बहुत चलते हैं । इसी से वैश्य की उत्पत्ति उरुओं से बतलाई गई है ।
स्वामी दयानन्द मरुत् का अर्थ मरणशील मनुष्य या वैश्य या वणिक् वर्ग मानते हैं ।

मरुतःइन्द्रः – (१) सबके जीवनाधार वायु का स्वामी परमेश्वर दया ।
'यं मे दुरिन्द्रो मरुतः'
सबके जीवनधार वायु को स्वामी परमेश्वर ने जिसे मुझे दिया है । – दया.
मरुतों तथा इन्द्र ने जो दान मुझे दिया है –सा.

मरुत्तमा – (१) समस्त शत्रु मारक वीर भटों में और विद्वानों में सर्व श्रेष्ठ (२) द्वि.व. । मुख्य प्राण और अपान
'इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा'
ऋ. १.१८२.२

मरुत्वत् शिशुः – (१) सात मरुतों से युक्त, सात शिरोगत प्राणों से युक्त इस शरीर में शयन करने वाला शिशु नाम आत्मा
'सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते'
ऋ. १०.१३.५; अ. ७.५७.२
पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः
अपां शिशुः मातृतमास्वन्तः
'सुदेवो असि वरुण यस्य,
ते सप्त सिन्धवः'
ऋ. ८.६९.१२; अ. २०.९२.९, मै.सं. ४.७.८,

१०४.११, नि. ५.२७
इन्द्रोऽस्मान् अरदद् वज्रबाहुः
अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम्
ऋ. ३.३३.६
सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद् धृत्या मूर्छवत् । तमभ्यतपत्, तस्याभि तप्तस्य मुखं निरभिद्यत् मुखात् वाक्, वाचोऽ ग्निः । नासिके निरभिद्येताम् नासिकाभ्याम् प्राणः, प्राणाद् वायुः । अक्षिणी निरभिद्येताम् । अक्षीभ्यां चक्षुषी, चक्षुष आदित्यः । कर्णौ-निरभिद्येताम्-इत्यादि समस्त प्रकरणों में 'शिशु आत्मा 'और 'अपां शिशुः' का आध्यात्म वर्णन है ।
अपं वाव शिशुः योऽयं मध्यमः प्राणः (आत्मा) । तमेताः सप्त अक्षितयः उपतिष्ठते ।
पुनः-
अर्वाग्विलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः
तास्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्
तस्यासत ऋषयः सप्ततीरे
वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना

मरुत्वती - (१) मनुष्य के व्यवहारों को सिद्ध करने वाला अपः (जल) - दया. (२) मनुष्यों में विद्यमान जीवों को तृप्त करने वाला अपः (जल)- ज.दे.श. (३) मनुष्य आदि प्रजाओं और वीर भटों से बनी (४) बलवान् मनुष्यों वाली
'सृजा मरुत्वतीरव
जीवधन्या इमा अपः '
ऋ. १.८०.४
'तं त्वा मरुत्वती परि '
ऋ. ७.३१.८
मनुष्यों के व्यवहारों को सिद्ध करने वाली और मनुष्यों में विद्यमान जीवों को तृप्त करने वाली जलधाराओं को आकाश से नीचे गिराता है ।

मरुत्वतीय उक्थ्य - (१) वायु के समान वीर भटों के नामक का सेना बल (२) राष्ट्रीय गान, (३) मरुत् सम्बन्धी उक्थ्य
'मरुत्वतीयमुक्थ्यमव्यथायै '
वाज.सं. १५.१२; तै.सं.४.४.२.२; मै.सं. २.८.९.; ११३.१६; सं. १७.८; श.ब्रा. ८.६.१.७.

मरुत्वती विश् - प्राणों से या 'मरुत् 'विद्वानों वीरों या वैश्य जनों से यक्त प्रजा
'उतोमरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः '
ऋ. ८.१३.२८

मरुत्वान् - मरुत् + वतुप = मरुत्वत् । (१) मरुतों या सैनिकों से युक्त इन्द्र । मरुत् का अर्थ वायु और मरणशील मनुष्य भी है ।
'मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय
पिबा सोममनुष्वधं मदाय '
ऋ. ३.४७.१; वाज.सं. ७.३८
हे मरुतो या सैनिकों से युक्त वर्षा बरसाने वाला इन्द्र, तू रण तथा मद के लिए अन्न खाने के बाद सोम रस का पान कर ।
(२) मनुष्यों का साथी-दया. ।

मरुत्सुसचा - मरुतों के साथ रहने वाली -माध्यमिका वाक् -विद्युत् ।
आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती
सचा मरुत्सु रोदसी
ऋ. ५.५६.९
जिस मेघ में जलों को धारण करती हुई (सुरणानि बिभ्रती), मरुतों के साथ रहने वाली (मरुत्सु सचा) रुद्र या वायु की पत्नी माध्यमिका देवी अर्थात् विद्युत् निवास करती है (आतस्थौ)

मरुतां पिता - (१) मनुष्यों, वीर पुरुषों, विद्वानों और वैश्यों तथा उत्तम शिष्यों का पालक,
(२) मरुतों का पिता रुद्र
'आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु '
ऋ. २.३३.१; ऐ.ब्रा. ३.३४.४; तै.ब्रा. २.८.६.९; आश्व.श्रौ. सू. ३.८.१
(३) वीर वायु के समान बलवान् आलस्य रहित पुरुषों या शिष्यों का रक्षक
'इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः '
ऋ. १.११४.६

मरुद्गण - (१) प्राण गण के साथ वर्तमान आत्मा
(२) मरुत्
'हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः '
ऋ. ९.६६.२६; साम. २.६६.१

मरुन्तेत्रः - (१) वायु के समान तीव्र चढ़ाई करने वाले सेनापति के अधीन वीर पुरुष
'ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ;
वाज.सं. ९.३६; वाज.सं. (का.) ११.१.२; श.ब्रा.

५.२.४.६

मर्क – (१) समस्त अंगों में चेष्टा करने वाला प्राण वायु, (२) राष्ट्र में विशेष प्रेरणा देने वाला उत्तेजक पुरुष, (३) देह- निर्माण
'उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा'
वाज.सं. ७.१६.
(२) समस्त जगत् को शोधन करने वाला
'सूरश्च मर्क उपरो बभूवान्'
ऋ. १०. २७.२०

मर्कट – वानर
'मनुष्यराजाय मर्कटः'
वाज.सं. २४.३०

मर्च – (१) बालों को काटना, साफ करना
'यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा'
अ. ८.२.१७, आश्व.गृ.सू. १.१७.१६, पा.गृ.सू. २.१.१९; आप मं. पा. २.१.७, हि.गृ.सू. १.९.१६
(२) पीड़ित करना
'उत वा यो नो मर्चयादनागसः'
ऋ. २.२३.७
(३) दुगना ।

मर्चयति – ठगता है, कहता है । मर्चा धातु ठगना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।
'अरातीवा मर्चयति द्वयेन'
ऋ. १.१४७.४
'मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन'
ऋ. १.१४७.५
एक मनुष्य दूसरे को दोनों प्रकार के वचनों से कहता है ।

मर्ज – (१) मांजना, साफ करना
'अग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः'
ऋ. ७.३.५
(२) रहना, वर्तमान रहना । अंग्रेजी का merge धातु विलयन होने के अर्थ में है ।

मर्जयन्तः – मृस्ज् (गत्यर्थक) के ण्यन्त लट् के शतृ प्रत्यय कर 'मर्जयत्' बना है । ब.व. में रूप 'मर्जयन्तः' है । अर्थ- (१) रहते हुए । मर्ज + शतृ = मर्जयन्, मर्जयन् + जस् = मर्जयन्तः ।
'उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः'
ऋ. ७.३९.३; नि. १२.४३
जो विस्तृत अन्तरिक्ष में शुभ धन देने वाले देवता हैं ।

मर्ज्य – अभिषेचनीय, मर्जन या शुद्ध करने योग्य सोमरस
'एतं मृजन्ति मर्ज्यम्'
ऋ. ९.१५.७; ४६.६; साम २.६१८; शां.श्रौ.सू. ७.१५.७

मर्डिता – (१) सुख देने वाला
'मघवन्नस्ति मर्डिता'
ऋ. ८.६६.१३
न देवेषु विविदेमर्डितारम्'
ऋ। ४.१८.१३
(२) कृपालु
'न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डिता'
ऋ. १.८४.१९, साम. १.२४७,२.१०७३, वाज.सं. ६.३७, पंच.ब्रा. ८ .१.५; श.ब्रा. ३.९.४.२४; नि. १४.२८.

मर्त – मृ + यत् = मर्त्य = मर्त, अर्थ- (१) मनुष्य
'कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्'
ऋ. १.८४.८; अ. २०.६३.५; साम. २.६९३; नि. ५.१७
(२) गृहस्थ ।
'गाथान्यः सुरुचो यस्य देवाः
आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'
ऋ. १.१९०.१
हिन्दी का 'मर्द' 'मर्त' का ही अपभ्रंश है ।
आधुनिक अर्थ – (१) मनुष्य, (२) मरणशील जीव, (३) पृथ्वी, मर्त्यलोक
(३) विद्यार्थी – दया.

मर्तभोजनम् – (१) मरणशील प्राणियों का भोजन
'आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः'
ऋ. ७.३८.२
(२) मनुष्यों को पालन करने और भोग करने योग्य ऐश्वर्य
'यो अर्यो मर्तभोजनम्
परादर्दाति दाशुषे'
ऋ. १.८१.६
(३) मनुष्यों का भोग्य पदार्थ
'रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनम्'
ऋ. १.११४.६
हे अमृत, हमारे लिए मनुष्यों के भोगने योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर (मर्तभोजनम् रास्व) ।

मर्त्य – मृ + यत् = मर्त्य (त का आगम) । अर्थ

है- मरणशील मनुष्य ।

'या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः '

ऋ. १.१५५.२

जो इन्द्र और विष्णु मनुष्य या यजमान के लिए यज्ञ के फलस्वरूप (प्रति धीयमानम् इत्) भोजन या अन्न को (असनाम्) हवि पहुंचाने वाले अग्नि के द्वारा (अस्तु कृशानोः) प्रस्तुत करते हैं (उरुष्यथः) ।

पुनः -

चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादाः
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्यां आ विवेश '

ऋ. ४.५८.३;

अग्नि यज्ञात्मा है । अतः इस ऋचा में यहां की स्तुति होने पर भी अग्नि ही देवता माने गये हैं ।

(१) इस यज्ञ के ऋक्, यजुः, साम और अथर्वन् नामक चार श्रृंग हैं, यज्ञ के तीन सवन ही तीन पाद हैं, प्रायण और उदयन या ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्य इनके दो सिर हैं, क्योंकि यज्ञ में इष्टि और सोम की ही प्रधानता रहती है, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, और जगती नामक सात छन्द ही इसके सात हाथ हैं । पुनः यज्ञ, मंत्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीन बन्धनों से बन्धा हुआ है । यज्ञ से अनेक कल्प मिलते हैं । अतः यह फलों का वर्षिता या वृषभ है । यह सवन, क्रम से ऋक्, यजुः और साम के मन्त्रों की ध्वनि से सदा ध्वनि करता है । (रोरवीति) । इस प्रकार यज्ञात्मा महानुभाव देव ने ही (महो देवः) मनुष्यों में (मर्त्यान्) यज्ञ के लिए प्रवेश किया (आविवेश) -सा.

(२) कुमारिल कृत तन्त्र वार्तिक के अनुसार यह मन्त्र सूर्य की स्तुति है । चार श्रृंग दिन के चार भाग हैं, तीन पाद तीन ऋतु-शीत, ग्रीष्म और वर्षा । दो शीर्ष दोनों छः छः महीनों के अयन, सात हाथ सूर्य के सात घोड़े, त्रिधा बद्ध-प्रातः मध्याह्न और सायं सवन (तीनों सवन से सोम रस खींचा जाता है) । वृषभ वृष्टि का मूल कारण प्रर्वतक, रोरवीति मेघ का गर्जन और महादेव बड़े देवता सूर्य हैं ।

(३) सायण ने भी इसे सूर्य पक्ष में इस प्रकार लगाया है - चार श्रृंग हैं चारों दिशाएं । तीन पाद हैं तीन वेद, दो शीर्ष हैं रात और दिन । सात हाथ सात ऋतु वसन्तादि छः पृथक् पृथक् और सातवां साधारण । त्रिधा बद्ध पृथिवी आदि तीन स्थानों में अग्नि आदि रूप से स्थित । अथवा ग्रीष्म, वर्षा और शीत इन तीन कालों में बद्ध । वृषभ वृष्टि करने वाला , रोरवीति अर्थात् वर्षा द्वारा शब्द करता है । महादेव बड़ा देवता ।

'मर्त्यान् आविवेश' - अर्थात् नियन्ता ने आत्मा रूप से सभी जीवों में प्रवेश किया ।

(४) शाब्दिकों के मत से इस मन्त्र में शब्द रूप ब्रह्म का वर्णन है । जिसे पतञ्जलि ने महाभाष्य में बतलाया है (पस्पशाह्निक पृ.१२) ।

चार श्रृंग है चारों प्रकार के शब्द - नाम, आख्यात्, उपसर्ग और निपात । उद्योत के मत से चार श्रृंग हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी । तीन पाद तीनों काल हैं - भूत, भविष्य और वर्तमान । दो शीर्ष दो तरह के शब्द नित्य और अनित्य अर्थात् व्यङ्ग्य और व्यञ्जक (प्रदीप) । सात हाथ हैं सात विभक्तियाँ त्रिधाबद्ध हृदय, कण्ठ और मूर्धा-इन तीनों स्थानों मे बद्ध वृषभ वर्षण करने वाला । महादेव-शब्दब्रह्म, मर्त्यान् आविवेश-मनुष्यों में प्रवेश किया ।

मर्त्यकृत - (१) मनुष्यों के प्रति किया गया अपमान रूपी पाप -सा.

(२) शरीरों के किए जाने वाला कायिक पाप-दया. । मर्त्य का अर्थ यहां शरीर माना गया है ।

'अव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम् '

वाज.सं. ३.४८.

यज्ञ के ऋत्विज् आदि से यज्ञ दर्शन के निमित्त आए मनुष्यों के प्रति अपमानादि रूपी पाप को... सा.

शरीरों से किए कायिक पाप को - दया .

मर्त्यत्व - मनुष्योचित

विश्वा हि मर्त्यत्वना
अनुकामा शतक्रतो '

ऋ. ८.९२.१३

मर्त्यत्रा – (१) मनुष्यों के बीच में
'विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा'
ऋ. १.१६९.२
'उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते'
ऋ. १.१२३.३

मर्त्येनसयोनिः – मरणशील अनित्य देह के साथ रहने वाला जीव
'अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः'
ऋ. १.१६४.३०, ३८.अ. ९.१०.८, १६, ऐ. आ. २.१.८.१२; नि. १४.२३.

मर्त्येक्ति – मनुष्यों से विजयेच्छा करने वाला
'युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित'
ऋ.१.३९.८

मर्ध – नाश करना, हिंसा करना
'नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति'
ऋ. ७.५९.४

मर्म – (१) रहस्य, (२) मर्मस्थान
'देवावै वृत्रस्य मर्मनाविदन्'
(देवताओं ने वृत्र का रहस्य नहीं समझा)।

मर्माविधम् – मर्मविद्ध सैनिक
'मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु'
अ. ११.१०.२६

मर्मृज्यमाना – (१) अच्छी प्रकार आभूषण धारण करती हुई (२) रजोधर्म के बाद स्नानादि से शुद्ध स्त्री
'मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः'
ऋ. २.३५.४; तै.सं. २.५.१२.२; मै.सं. ४.१२.४: १८८.५

मर्मृजेन्य – (१) सजाने योग्य, अलंकारों से भूषित, करने योग्य
'मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रिः'
ऋ. १.१८९.७
(२) सब पदार्थों को स्वच्छा करने वाला –अग्नि
(३) व्यवहारों द्वारा विवेकशील
(४) दुष्टों से राज्य को कण्टक शून्य करने वाला
'मर्मृजेन्य श्रवस्यः स वाजी'
ऋ. १.१८९.७

मर्यः – मृ (मरना) + यत् = मर्य
'मर्यो मनुष्यो मरणधर्मा'
अर्थ – (१) मनुष्य, (२) पिता या भाई।
'मर्यायेव कन्या शश्वचै ते'
ऋ. ३.३३.१०; नि. २.२७
जैसे कुमारी पिता या भाई के लिए झुक जाती है।

मर्या – (१) मर्यादा। 'मर्यादा' के 'दा' का लोप कर 'मर्या' रह गया है।
'मर्यादाभिधानं वास्यात्'
(२) वह मनुष्य जिसकी विवाहिता स्त्री जीवित हो।
मर्यैः आदीयते (मनुष्यों द्वारा अपना पराया का प्रविभाग करने के निमित्त जिसका ग्रहण किया जाय वहीं 'मर्यादा' है)। 'दा' का लोप कर मर्या शब्द रह गया है। मर्या का सीमा अर्थ में आज भी प्रयोग है।
'को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत'
ऋ. ८.४५.३७; तै.आ. १.३.१; नि. ४.२.
यह कौन सी मर्यादा है कि अहिंसित सखा सखा से बोले या छेड़े।

मर्यश्री – (१) मनुष्यों के लिए श्री अर्थात् शोभा या लक्ष्मी उत्पन्न करने वाला अग्नि (२) मनुष्य के समान कान्ति वाला, (३) मनुष्यों से सेवनीय, (४) साधारण मनुष्यों से आश्रय करने योग्य
'मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निः'
ऋ. २.१०.५; वाज.सं. ११.२४; तै.सं. ४.१.२.५; ५.१.३.३; मै.सं . २.७.२; ७६.६ का.सं. १६.२; श.ब्रा. ६.३.३.२०
(४) मनुष्यों के बीच विशेष शोभा वान्।

मर्यादा – मर्य + आङ् + दा + अङ् = मर्याद्।
मर्याद् + टाप् = मर्यादा
मर्यैः मनुष्यैः आदीयते गृह्यते स्वपर विषयं प्रविभागार्थम्। (जिसका स्वकीय और परकीय विषयों के प्रविभाग के लिए मनुष्यों के द्वारा ग्रहण किया जाय वह मर्यादा है)।
(२) मर्यादिनः विभागः मर्यादा (दो मर्याओं का विभाग मर्यादा है)।
मर्या का अर्थ वह अलग किया हुआ भू भाग है जिसमें किसी की स्वत्ता स्थापित है और जिससे अधिक भूमि पर उसका अधिकार नहीं है।
(३) संश्रितायाः भूमे आदेः प्रविभागकारिणी या

भूमिः सा मर्यादा (संश्रित भूमि तथा आदि को विभक्त करने वाली भूमि का नाम मर्यादा है) ।
'मर्याच आदिश्च मर्यादः '
यह रूढ़ि संज्ञा है
(४) अमरकोश में 'मर्यादाधारणास्थितिः' ऐसा कहा गया है ।
(४) सीमा बोधक एक अव्यय । उस सीमा पर जो कुछ भी विभाग को सूचित करने के लिए चिह्न रूप में रखा जाय वह मर्यादा है ।
मर्या सीमार्थेऽव्ययः तत्र दीयते या (सा मर्यादा ।
मर्या + दा + अङ् = मर्याद; मर्याद् + टाप् = मर्यादा ।
'विषीव्यति देशौ इति सीमा ' (जो देशों को विभक्त करे वह सीमा या मर्यादा है) ।
मर्या + आदि + क = मर्याद । अपनी भूमि का अन्त मर्या है और दूसरे की भूमि का प्रारम्भ आदि है । अतः दोनों भूमियों की सीमा ही 'मर्यादा' है ।
(६) न्याय अन्याय की व्यवस्था का निर्णय
'मर्यादायै प्रश्न विवाकम् '
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६

मलग – धोबी
'ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा '
अ. १२.३.२१

मल्वः – (१) मलिन हृदय वाला, दुष्ट चित्त वाला
'मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति '
अ. ४.३६.१०
(२) तुच्छ पदार्थ, मलवा
'मल्यं बिभ्रती गुरुभृत् '
अ. १२.१.४८
'अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः '
अ. ५.१८.७

मलिम्लुक् – (१) मलिन स्वभाव । चोर,
'मलिम्लुचं पलीजकम् '
अ. ८.६.२
(२) मार पीट का दूसरे का धन हरण करने वाला दुष्ट पुरुष
'मलिम्लुचाय स्वाहा '
वाज.सं. २२.३०, मै.सं. ३.१२.११: १६३.१७; का.सं. ३५.१०; आप. श्रौ.सू. १४.२५.११

मलिम्लुः – (१) मलिन कार्य वाला दुष्ट, (२) हत्या करने वाला
'द्रंष्टाभ्यां मलिम्लून् '
वाज.सं. ११.७८
(३) चोर , डाकू
'यो मलिम्लुरुपायति '
अ. १९.४९.१०

मशक – (१) छोटा छोटा मच्छड़
'चक्षुषे मशकान् '
वाज.सं. २४.२९; मै.सं. ३.१४.८; १७४.१.

मशकजम्भनी – मच्छड़ आदि विषैले कीटों का नाश करने वाली
'अथो मशकजम्भनी '
अ. ७.५६.२

मशर्शारः – (१) यो मशान् दुष्टान् शब्दान् हिनस्ति दुष्टों का नाश करने वाला राजा)
(२) अज्ञान– नाशक आत्मा

मष्मष – (धा.) विनष्ट करना
'सर्वान् निमष्मषाकरम् '
अ. ५.२३.८

मस्मस (धा.) – पीस डालना, मसल डालना
'सर्वं तं मस्मसा कुरु '
वाज.सं. ११.८०; तै.सं. ४.१.१०.३; श.ब्रा. ६.६.३.१०.

मंस – (१) प्रहार करना, (२) उद्योग करना
'वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः '
ऋ. ७.३४.३

मस्तिष्क – (१) मस्तक में स्थित भूरे रंग का भाग, मस्तिष्क
अशनिं मस्तिष्केन
ऋ. १०.१६३.१
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्कात्
ऋ. १०.१३६.१

मंसीमहि – हम प्रार्थना करते हैं ।
'मंसीमहि त्वा वयम्
अस्माकं देव पूषन् '
ऋ. १०.२६.४

मंसीय – मन्ये, जाने (मानता हूं, जानता हूँ) । लट् के अर्थ में लिङ् का प्रयोग ।

मसूर – मसूरी नामक अन्न
'गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे '
वाज.सं. १८.१२; तै.सं. ४.७.४.२; मै.सं. २.११.४:

१४२.४; का. सं. १८.९.

मह् – (१) महान् ।

'महो व्रजान् गोमतो देव एषः'

ऋ. ६.७३.३, अ. २०.९०.३; का. सं. ४.१६; ४०.११, तै.ब्रा. २.८ .२.८; आप.श्रौ.सू. १७.२१.७.

'महे यत्त्वा पुरूरवो रणाय
अवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः'

ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७.

हे पुरुरवा, तुझे देवों ने महान् युद्ध के लिए तथा मेघ वध के लिए जो बढ़ाया इस लिए तेरे पास आकर नदियां या देवस्त्रियाँ तुझे बढाती हैं ।

(२) महस् का अर्थ 'महतः' (महान् का) किया गया है । यह मह् के ङस् का रूप है ।

'त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति
इतीदं विश्वं भुवनं समेति
यमस्य माता पर्युह्यमाणा
महो जाया विवस्वतो ननाश'

ऋ. १०.१७.१; नि. १२.११.

विश्वकर्मा (त्वष्टा) अपनी दुहिता सरण्यू का विवाह करते हैं (दुहित्रे वहतुं कृणोति) । इस हेतु से (इति) यह समस्त भूतजात दर्शनार्थ एकत्र है (विश्वं भुवनं समेति) । तब (अथ) यम की माता सरण्यू (यमस्य माता) यम और यमी को उत्पन्न कर (पर्युह्यमाना)महान् विवस्वान देव की (महः विवस्वतः) स्त्री वह सरण्यू (जाया) उन अपत्यों को विवस्वान् को समर्पित कर स्वयं अश्व का रूप धारण कर अन्तर्ध्यान हो गई (ननाश) और उत्तरकुरु प्रदेशों में चली गई । नैरुक्त पक्ष में अर्थ – उषा के तमोभाग का मध्यम देव त्वष्टा दूर देश में भेजी प्रकाश रूपिणी दुहिता का विवाह विवस्वान् अर्थात् आदित्य से हो रहा है । इस हेतु प्रभात हुआ जानकर सभी जीव अपने अपने कर्तव्य कर्म में लग जाते हैं । मध्यम देव यमलोक की माता या द्युलोक की जो ही माता है वही स्त्री है । क्योंकि पति ही स्त्री में पुत्र रूप से प्रविष्ट हो उत्पन्न होता है । वह उषा की तपरूपिणी जाया महान् आदित्य का प्रकाश पाते ही हटायी जाकर मानों विलीन हो जाती है ।

(३) देने वाला । मह् + क्विप् = मह्

'प्र वो महे मन्दमानायान्धसः'

ऋ. १०.५०.१; वाज.स. ३३.२३; ऐ.आ. १.५.२.१; ५.३.१; नि. ११.९

तुम महान् उत्पन्न को देने वाले मोदयुक्त इन्द्र की या परमेश्वर की स्तुति करो ।

मह – वि. । (१) महान् । मह् + अच् = मह् ।

'तोदस्येव शरण आ महस्य'

ऋ. १.१५०.१; साम. १.९७; नि. ५.७

हे अग्ने, जैसे महान् भूखण्ड के बिल में चारों और से जल आकर भी बिल को नहीं भरता उसी प्रकार अनेकों यजमानों के हवियों से भी तू नहीं ऊबता ।

'महो अर्णः सरावती
प्राचेतयति केतुना'

ऋ. १.३.१२; वाज.स. २०.८६; नि. ११.२७.

(२) तेज या प्रकाश –सा.

'महः क्षोणस्याश्विना कण्ठाय'

ऋ. १.११७.८; नि. ६.६

हे अश्विनी कुमारो, तुमने क्षीण दृष्टि से एक ही स्थान पर रहने वाले कण्व को तेज या प्रकाश दिया । –सा. (३) उदक । मह इति उदकनाम, ।

महत् अक्षरम् – (१) बड़ा भारी अविनाशी सामर्थ्य, (२) बड़ा भारी अविनश्वर ब्रह्म का ज्ञान

महद् वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः

ऋ. ३.५५.१

महस् ,महः – (न.) (१) यश, कीर्त्ति, (२) महत्वपूर्ण कार्य, (३) आनन्द , प्रसन्नता

'वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने'

ऋ. १०.४३.७, अ. २०.१७.७.

'महसे वीणा वादम्'

वाज.सं. ३०.१९

महत्काण्ड – बडे बड़े काण्ड वाला सूक्त

'महत्काण्डाय स्वाहा'

अ. १९.२३.१८

मंह – (धा.) । अर्थ – देना

'सहस्रेणेव मंहते'

ऋ. ८.५०.१; अ. २०.५१.३

मंहति – ददाति (देता है) । मंह धातु दानार्थक है

मंहनेष्ठः – मँहन + स्थः (पूज्य पद पर विराजने वाला)

'क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः'
ऋ. १०.६१.१; कौ.ब्रा. २३.८

मंहमान – (१) तमो नाशक परमेश्वर
(२) देने वाला इन्द्र परमेश्वर
'अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे'
ऋ. ८.२४.२२; अ. २०.६६.१.

महद्देवाः – (१) महान् परिमाण वाले देवता – सा.
(२) महान् विद्वान् –दया.
'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः'
ऋ. १.२७.१३; ऐ.ब्रा. ७.१६.८; आश्व.श्रौ.सू. १.४.९; शां.श्रौ .सू.१५.२२; आप.श्रौ.सू. २४.१३.३; नि. ३.२०.
यहां परिमाण भेद से तथा शक्ति और तेज के तारतम्य से देवों का भेद अभिप्रेत है ।

महन् – मह इति उदक नाम । मानेन अन्यान् जज्ञति इति शाकपूणिः (परिणाम से अन्यों को अति क्रमण करता है) ।
मंहनीयः = पूजनीयः भवति (महान् पूजनीय होता है) ।
अर्थ– (१) महत्व ।
'नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.१; अ. २०.३४.१; तै.सं. १.७.१३.२; मै.सं. ४.१२.३; १८६.५; का.सं. ८.१६; नि. १०.१०.
जो सैनिक बल या बल के महत्व से जाने जाते हैं, हे मनुष्यो, या असुरो, वही इन्द्र या परमात्मा है ।
(२) जल ।
'मह्ना जिनोषि महिनि'
ऋ. ५.८४.१; तै.सं. २.२.१२.२; मै.सं. ४.१२.२; १८१.२, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९; नि. ११.३७
हे जलवाली विद्युत् ! (महिनि) तू जल से (मह्ना) पृथ्वी को तृप्त करती है (जिनोषि) ।

महयत् – उपासना करने वाला
'शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे'
ऋ. ७.३२.१९, अ. २०.८२.२; साम. २.११४७; कौ.ब्रा. २२.४

महयाय्य – महान्
'त्वां देवा महयाय्याय वावृधुः';
ऋ. १०.१२३.७

महः अर्णः – (१) महान् समुद्र –सा. (२) महान् शब्द सागर –दया. ।
'महो अर्णः सरस्वती
प्र चेतयति केतुना
धियोविश्वा वि राजति'
ऋ. १.३.१२; वाज.सं. २०.८६, नि. ११.२७
माध्यमिका वाक् सरस्वती अपनी प्रज्ञा से महान् जल राशि बरसाती है या वेदवाणी कर्मयोगी तथा ज्ञान तथा योग से महान् शब्द सागर को बतलाती तथा संसार के समस्त यज्ञ सम्बन्धी या कर्म सम्बन्धी ज्ञानों को उत्पन्न करती है ।

मह्मन् – (१) सामर्थ्य
'येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि'
अ. १०.२.६

महस्पथ – (१) महान् मार्ग
'कदर्यम्णो महस्पथा
अति क्रामेम दूढ्यः'
ऋ. १.१०५.६
सूर्य के समान तेजस्वी, सब दुष्टों के नियन्ता, कठिनता से चिन्तनीय, बुद्धि के अगम्य परमेश्वर को किस महान् उपदेशमय मार्ग से प्राप्त करें ।

महस्वान् – (१) तेज से युक्त ।
'महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः'
अ. ४.२५.६
(२) बड़ा भाग्यशाली आदर और अधिकार को प्राप्त
'महस्वन्तो मदा मासरेण'
वाज.सं. २१.४२.

महयमान – अलंकृत करता हुआ
'सधस्थानि महयमान ऊती'
ऋ. ३.२५.५

महा – महान्
'इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानम्'
ऋ. २.११.९

महाकुल – उत्तम कुल में उत्पन्न
'न निन्दिम चमसं यो महाकुलः'
ऋ. १.१६१.१

महागण – बड़े गणों में बढ़े गए सूक्त आदि ।
'महागणेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.१७

महागय – (१) अति स्तुति योग्य, (२) विशाल गृह वाला, (३) धनैश्वर्यवान् (४) बड़ी प्रज्ञावाला
'तमीमहे महागयम्'
ऋ. ९.६६.२०, साम. २.८६९, वाज.सं. २६.९, मै.सं. १.५.१; ६६. ११.
(४) महाप्राण, (६) महान् गृह के समान आश्रय

महाग्रामः – बड़ा जनसंघ
'महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा'
ऋ. १०.७८.६

महादेव – (१) देव देव, महादेव
'स रुद्रः स महादेवः'
अ. १३.४.४.
(२) जाठर अग्नि ज्वाला से युक्त पित्त
'महादेवस्य यकृत्'
वाज.सं. ३९.९
(३) यज्ञात्मा महानुभाव अग्नि, (२) जल बरसाने वाला सूर्य, (३) शाब्दिकों के मत से शब्द ब्रह्म ही महादेव है।
'महो देवो मर्त्यां आ विवेश'
ऋ. ४.५८.३; वाज.सं. १७.९१; मै.सं. १.६.२; ८७.१८, का.सं. ४०.७; गो.ब्रा. १.२.१६; तै.आ. १०.१०.२; नि. १३.७

महाधनः – (१) बहुत व्यय कराने वाला समर
'इन्द्रं वयं महाधने'
ऋ. १.७.५; अ. २०.७०.११; साम. १.१३०; तै.ब्रा. २.७.१३.१; शां.श्रौ.सू. ९.२६.३.
(२) महाधन आदि दिलाने वाला –संग्राम या कार्य
हम इन्द्र को महाधन देने वाले संग्राम में तथा छोटे कार्य में भी स्मरण करते हैं।
'अस्माकं बोध्यविता महाधने'
ऋ. ६.४६.४; ७.३२.२५
'नास्य वर्ता न तरुता महाधने'
ऋ. १.४०.८
संग्राम में इस के सामने रहने वाला (वार्ता) और न इसे पराजित कर इससे बढ़ने वाला ही है (तरुता न)।

महान्, महत् – (१) मानेन अन्यान् जहाति –शाकपूणिः। मह् (पूजार्थक) से महत् शब्द बना है। 'महत्' के प्रथमा ए.व. का रूप। मंहनीयः भवति इति महान्।
शाकपूणि के मत से 'जो मान से औरों को पीछे छोड़ देता है वह महान् है'।
'स तुर्वणिर्महां अरेणु पौंस्ये'
ऋ. १.५६.३; नि. ६.१४
वह क्षिप्रकारी या शत्रुवध के लिए शीघ्र संभजन करने वाला इन्द्र (तुर्वणि) पौरुष या संग्राम में (पौंस्ये) महान् है। –सा.।
अथवा वह शीघ्र प्रदाता महात्मा तेजस्वी पुरुष (तुर्वणिः) अक्षीण यौवन में चमकता है।– दया.

महान् आत्मा – (१) इन्द्र। इनके अनेक नाम हैं हंस, धर्म, यज्ञ, वेनः, भूमि, विभु, प्रभु, शम्भु, वधकर्मा, सोमभूतस्, भुवनम्, भविष्यत्, महत्, आपः, व्योम, यशः, मंह, स्वर्णीकम्, स्मृतीकम्, सतीनम्, गहनम्, गभीरम्, गह्वरम् कम, अन्नम, हविः, सद्म, सदनम्, ऋतम् योनिः, ऋतस्य योनिः, ख, सत्यम्, नीरम्, रयिः, सत्, पूर्णम्, सर्वम् अक्षितम्, बर्हिः, नाम, सर्पिः, आपः, पवित्रम अमृतम्। इन्द्रः, हयः, स्वः, सर्गाः। शम्बरम्, अम्बरम्, वियत्, व्योम, धन्वः, अन्तरिक्षम्, आकाशम्, अपः, पृथिवी भूः, स्वयम्भू, अध्वा, पुष्करम्, समुद्रः तपः, तेजः, सिन्धुः, अर्णवः, नाभिः, ऊधः, वृक्षः, तत्, यत्, विप्, ब्रह्म, वरेण्य, आत्मा

महानग्न – सर्वाङ्ग सुन्दर विद्वान्
'महानग्नी महानग्नम्'
अ. २०.१३६.११; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.४.

महानग्नी – (१) सर्वाङ्ग सुन्दर स्त्री, (२) राजसभा
'महानग्न्युलूखलाम्'
अ. २०.१३६.६; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.७

महानाम्नी – (१) महानाम्नी नामक वेदवाणी, (२) बड़ी यशस्विनी
'महानाम्न्यो रेवत्यः'
वाज.सं. २३.३५
(२) सामवेद का महानाम्नी नामक आर्चिक
'महानाम्नीर्महाव्रतम्'
ऋ. ११.७.६

महापद – बड़ा भारी राजपद
'अभीवृतेव ता महापादेन'
ऋ. १०.७३.२

महामनस् – (१) महान् स्तम्भन बल
(२) बड़ा ज्ञानवान् पुरुष

'केन महामनसा रीरमान'
ऋ. १.१६५.२; मै.सं. ४.११.३: १६८.९; का.सं. ९.१८.

महामुरु – दृढ़ मूलवाला
'त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुम्'
ऋ. १.५७.६. अ. २०.१५.६

महायम – महान् नियन्ता, महायम
'स उ एव महायमः'
अ. १३.४.५

महाय्य – पूज्य
'तं वो महो महाय्यमिन्द्रम्'
ऋ. ८.७०.८

महावटूरि – (१) वट् (वेष्टित् करना) + ऊरि = वटूरि । अर्थ– महावेष्टित – दया.
(२) अत्यन्त लपेटने या घेरने वाला शत्रुसेना बल (३) लपेटने वाला बड़ा हाथी के सूंड़ या पैर के समान शक्ति
(४) महारणयुक्त
'छिन्धि वटूरिणा पदा
महावटूरिणा पदा'
ऋ. १.१३३.२
लपेट लेने वाले हाथी के सूंड़ या पैर से भी बड़ी शक्ति से घेर कर छिन्न भिन्न कर ।
हिन्दी का 'बटोरना ' धातु 'बटूरि' से ही बना है ।

महावध – (१) विशाल प्रमाण में मार काट
'विश्वं विभाय भुवनं महावधात्'
समस्त भुवन महावध से डर जाता है ।
(२) पर्जन्य । 'महावधः यस्य स महावधः पर्जन्यः ' (जिसका वध महान् है) – मेघ
(३) मेघ का अधिष्ठाता मध्यम देव वायु

महाव्रत – महत् वृहत् व्रतं यस्य स महाव्रतः (वहान् व्रत वाला महाव्रत का ही महिव्रत हुआ है) ।

महाव्रतः – (१) महासैन्दयदला का स्वामी, (२) बड़े बड़े व्रतपालकों या लोक संघों का स्वामी
'महाव्रतस्तुति कूर्मिर्ऋघावान्'
ऋ. ३.३०.३

महावीर – अत्यन्त बलवान् ।

महाबुध्न – बड़े मूल वाला
महाबुध्न इव पर्वतः
अ. १.४१.१

महावृष – (१) अधिक वर्षा का प्रदेश, (२) बलवान् पुरुष, (३) महावृषा नामक जनपद
'ओको अस्य महावृषाः'
अ. ५.२२.५

महावैलस्थ अर्मक – बड़े भारी गढ़ो से युक्त ऊंचे नीचे खड्डो से भरा, दुःखदायी स्थान,
'महावैलस्थे अर्मके'
ऋ. १.३३.३

महावैश्वदेव – महावैश्वदेव नामक यज्ञ
'ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे'
वाज.सं. १८.२०; तै.सं. ४.७.७.२; मै.सं. २.११.५: १४३.५; का. सं. १८.११.

महास्य – बड़े बड़े मुख वाला– रुद्रगण
'इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः'
अ. ११.२.३०

महासूक्त – वेद का बड़ासूक्त
'सूक्तेन महा नमसा विवासे'
ऋ. ६.५२.१७

महाहस्ती – बड़े हाथों वाला इन्द्र
'महाहस्ती दक्षिणेन'
ऋ. ८.८१.१

महि – महान्
'धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम्'
ऋ. ६.१९.१०
मुझे महान्, रमणीय एवं स्थूल धन हमें दे ।

महि – मंह् + क्विप् = मह् – महिमहत् । अर्थ – महान् । महान यश ।
'इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि'
ऋ. १०.५०.१; वाज.सं. ३३.२३; नि. ११.९

महिकेरु – कृ + उण् = केरु (इ का ए) । महयो महान्तः केरवः । शिल्प विद्या साधकाः येषां ते महिकेरवः । अर्थ–बड़े बड़े कार्यों को करने वाला विद्वान या शिल्पी
'महिकेरव ऊतये
प्रियमेधा अहूषत'
ऋ. १.४५.४
बड़े बड़े कार्यों को करने वाले विद्वान् एवं शिल्पी गण और सबको सन्तुष्ट करने वाली मनोहर बुद्धियों से युक्त पुरुष भी....स्वीकार करें,

महित्व – महान् सामर्थ्य

'ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा'
ऋ. १.१६४.२५; अ. ९.१०.३

महित्वनम् – महान् सामर्थ्य
'आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनम्'
ऋ. ५.५५.४

महित्वम् – मंह् + क्विप् = मह् = महि, महि + त्व = महित्व । अर्थ – माहात्म्य ।
'मूरा अमूरं न वयं चिकित्वः'
महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से'
ऋ. १०.४.४; नि. ६.८.

महित्वा – (१) तृ ए. का रूप । महत्व से – सा. (२) महत्त्वों को । महित्व के द्वि. ब. व का रूप ।
'आविर्विश्वानि कृणुते महित्वा'
ऋ. ५.२.९; . ८.३.२४; तै..सं. १.२.१४.७; का.सं. २.१५
अग्नि समस्त लोकों के जीवों को अपने महत्व से प्रकट करता है । –सा.
तेजस्वी पुत्र अपने अनेक महत्वों को आविष्कृत करता है । – दया.

महिप्रिया – (१) बहुत अधिक प्रिय, सुख देने वाली तथा प्रजा एवं पति को तृप्त करने वाली स्त्री
'प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिया'
ऋ. १.१५१.४

महिन् – (उदक) इनि = महिन् । अर्थ है- उदकवान् (जल वाला) ।

महिनावान् – बड़े भारी बल सामर्थ्य का स्वामी- इन्द्र, परमेश्वर ।
'इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावान्'
ऋ. ३.३९.४

महिनी – (१) महती, (२) जलवाली विद्युत् का विशेषण
'प्र या भूमिं प्रवत्वति
मह्ना जिनोषि महिनी'
ऋ. ५.८४.१; तै.सं. २.२.१२.२; मै.सं. ४.१२.२: १८१.२; का.सं. १०.१२; आप.मं.पा. २.१८.९; नि. ११.३७.
हे जलवाली या महती विद्युत् (महिनी), नीचे पृथ्वी की ओर आने वाली (प्रवत्वति) तू जल से या महत्व से वर्षा द्वारा भूमि को तृप्त करती है (प्रजिनोषि) ।

महिमघः – (१) जिसे बहुत धन हो, (२) महान् एवं पूजनीय उत्तम धन अर्थात् श्रेष्ठ विधि से धन या विद्या का स्वामी पिता या गुरु
'अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः'
ऋ. १.१२०.८

महिमन् – (पु.) महिमा, महत्ता
'अभीशूनां महिमानं पनायत'
ऋ. ६.७५.६: वाज.सं. २९.४३; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८६.४; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१६.
अश्वों की रश्मियों की महिमा गाओ या वर्णन करो ।

महिरत्न – (१) 'पूज्यैः गुणैः रमणीयः' दया. । (पूज्य गुणों से रमणीय) (२) भूमि रत्न के स्वामी, (३) बड़े रत्नों का स्वामी
'भगं न कारे महिरत्न धीमिहि'
ऋ. १.१४१.१०
हे महिरत्न, सब उत्तमकार्यों में (कार) ऐश्वर्य वत् सेवनीय एवं बल के कारण स्तुति योग्य हम तुझे ही जानें ।

महिव्रतः – (१) महान् व्रत वाला । महा. व्रत से ही महिव्रत बना हैं । अर्थ है- महाकार्य करने वाला ।
'अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्'
ऋ. १.४५.३; नि. ३.१७

महिवृध् – (१) बड़े ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली
'प्र वो महे महिवृधे भरध्वम्'
ऋ. ७.३१.१०; अ. २०.७३.३; पंच.ब्रा. १२.१३.१९; आश्व.श्रौ.सू . ७.११.३४; शां.श्रौ.सू. १२.३.८; १८.१७.६.
(२) बड़ो को बढ़ाने वाला

महिश्रवः – बड़ा भारी श्रवण करने योग्य वेद का ज्ञानोपदेश
'अस्मे धेहि जातवेदो महिश्रवः'
ऋ. १.७९.४; साम. १.९९; २.९११; वाज.सं. १५.३५; तै.सं. ४.४.४. ५; मै.सं. २.१३.८: १५७.१०; का.सं. ३९.१५.
हे समस्त धर्मों को जानने वाले परमेश्वर, तू हमें बड़ा भारी श्रवण करने योग्य वेद या ज्ञानोपदेश प्रदान कर ।

महिषः – (१) महान् शक्तिमान् (२) सर्वव्यापक

'अपामुपस्थे महिषो ववर्द्ध'
ऋ. १०.८.१; अ. १८.३.६५; साम. १.७१; तै.आ. ६.३.१
(३) पृथ्वी को प्रकाश देने और उसका रस लोने वाला महान् सूर्य
'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मः'
ऋ. २.२२.१; अ. २०.९५.१; साम. १.४५७; २.८३६; कौ.ब्रा. २७.२ ; शां.श्रौ.सू. १५.२.१; तै.ब्रा. २.५.८.९
(४) मंह् (पूजार्थक) + इषन् = महिष । अर्थ है-पूजनीय, महान् (५) माध्यमिक देव गण वायु आदि (६) मरुद्गण ।
'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत'
ऋ. ६.८.४; नि. ६.२६; कौ.ब्रा. २१.३,
अन्तरिक्ष में मरुद्गण ने अग्नि को पकड़ा ।
(७) बड़ा यज्ञ - सा. ।
'शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनम्'
ऋ. ८.७७.१०; मै.सं. ३.८.३; ९५.१४.
सैकड़ों बड़े बड़े यज्ञों एवं चरु आदि से सिद्ध ओदन को इन्द्र ने दिया - सा. । सैकड़ो प्रशस्त पदार्थों एवं दूध में पकाए चावल को इन्द्र ने दिया ।
(८) महान् असुर ।
'यो जनान् महिषाँ इव
अतितस्थौ पवीरवान्'
ऋ. १०.६०.३
जो इन्द्र अति महान् असुरों को भी (महिषान् इव) युद्ध से हारकर (युधा अति) ठहरे हुए हैं (तस्थौ) (९) भैंस ।

मंहिष्ठ - (१) महान्
'मंहिष्ठो मत्सदन्धसः'
ऋ. ४.३१.२; अ. २०.१२४.२; साम. २.३३; वाज.सं. २७.४०; ३६.५; मै.सं. २.१३.९: १५९.६; ४.९.२७: १३९.१३; का.सं. ३९.१२; तै.आ. ४.४२.३; आप.श्रौ.सू. १७.७.८.
'प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये'
ऋ. १.५७.१; अ. २०.१५.१; कौ.ब्रा. ३०.९; गौ.ब्रा. २.४.१६; वै.सू. २५.७.
(३) मंह + इष्ठ = महिष्ठ । प्रशस्यतम, प्रपूजित, ।

मंहिष्ठरातिः - अति उत्तमदानशील
'इन्द्रं तमह्वे स्वयस्यया धिया
मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः'
ऋ. १.५२.३

महिष्वणिः - महि + स्वन् + इ = महिष्वणि । अर्थ -घोर शब्द कारी मेघ
'यज्ञं महिष्वणीनाम्'
ऋ. ८.४६.१८

महिष्वान् - उत्तम परिणाम जनक
'न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम्'
ऋ. ७.६८.५

महिषाविशः - बड़े भारी ऐश्वर्यों को देने वाली प्रजाएं
'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत
विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्'
ऋ. ६.८.४; नि. ७.२६.

मही - इयमेव मही । इयं वा अदितिर्मही- पृथिवी नाम । वाङ् नाम गो नाम च ।
अर्थ- (१) पृथिवी, (२) वाक्, (३) गो, (४) सामवेद, (४) उत्तम दान आदि देने वाली, (५) वृद्धा, (६) पूज्य शिक्षक- समिति (७) महती सेना,
'अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनाम्'
ऋ. ३.१.१२; नि. ६.१७
(८) स्थान ।
'परेयिवांसं प्रवतो महीरनु'
ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९; मै.सं. ४.१४.१६: २४३.६; तै.आ. ६. १.१; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२; नि. १०.२०
अपने अपने कर्मानुसार प्रकृष्ट कर्म करने वालों को स्वर्गादि स्थान पहुंचाने वाले वैवस्वत यम को
(९) महती ।
कब इन्द्र के बल महान् और अदृष्ट हैं । (१०) पृथ्वी का एक विशेषण ।
बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्'
ऋ. १.१६४.३३; अ. ९.१०.१२; नि. ४.२१.
बन्धुरूपिणी यह बड़ी पृथ्वी मेरी माता है ।
(११) अन्तरिक्ष ।
'महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र'
ऋ. ८.९०.६; साम. २.७६२; नि. ५.२२.
हे इन्द्र, अन्तरिक्ष रूपी तेरा गृह (ते मही शरणा) यश के समान (कृत्तिःइव) विस्तृत है ।

महोजाया – बड़ी भारी उत्पादक शक्ति–प्रकृति
'महोजाया विवस्वतो ननाश'
ऋ. १०.१७.१; अ. १८.१.५३, नि. ९२.११.

महीधमनि – बड़ी से बड़ी धमनी आदि नाड़ी
'तिष्ठादिद्धमनिर्महीं'
अ। १.१७.२

महीयुः – (१) मान सत्कार आदर की आकांक्षा करती हुई
'महामिन्दुं महीयुवः'
ऋ. ९.६५.१; साम. २.२५४
(३) महत्वयुक्त प्रजा चाहने वाला
'विपामग्रे महीयुवः'
ऋ. ९.९९.१; साम. १.५५१

महीलुका – पृथ्वी आदि लोगों को प्रजा रूप से धारण करने वाली वशा– परमात्मा शक्ति
'स्वधाप्राणा महीलुका'
अ. १०.१०.६

महेनदी – (१) महानदी के समान बड़ा भारी शब्द करने वाली (२) परुष्णी नदी का विशेषण
'सत्यमित् त्वा महेनदि'
ऋ. ८.७४.१५

महेन्द्र – महा + इन्द्र । (१) महान् ऐश्वर्यवान् प्रकाश (२) इन्द्र, परमेश्वर
'महेन्द्र एत्यावृतः'
अ. १३.४.२–७,९

महेमतिः – (१) बड़े भारी राष्ट्र को संचालन करने या बड़ा फल प्राप्त करने के लिए बड़ी भारी मति बुद्धि या संकल्प वाला
'तूतुजानो महेमते
अश्वेभिः प्रषितप्सुभिः'
ऋ. ८.१३.११
(२) महायति
'आ नो याहि महेमते'
ऋ. ८.३४.७

महोन्माना – बड़े विशाल परिमाण में फैली हुई ।
'या महती महोन्माना'
अ. ५.७.९

मा – (१) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ
'त्री यच्छता महिषाणामघो माः'
ऋ. ५.२९.८
(२) ज्ञान कराने वाली प्रज्ञा
'मा छन्दः प्रभा छन्दः'
वाज.सं. १४.१८; तै.सं. ४.३.७.१; मै.सं. २.८.३: १०८.१२; २.१३.१४: १६३.८; ३.२.९: ३०.३; श.ब्रा. ८.३.३.५.
(३) माम् (मुझे) 'अस्मद्' शब्द के द्वि.ए.व. का रूप
(४) (अ.) नहीं, निषेधात्मक शब्द ।
'मा मे दभ्राणि मन्यथाः'
ऋ. १.१२६.७; नि. ३.२०
हे पतिदेव, मेरे छोटे छोटे रोओं को मत देख (दभ्राणि मा मन्यथाः) सा.
हे पतिदेव, मेरे सामर्थ्यों को कम न समझ – दया.
(४) लुङ् में मा के साथ अट् का लोप होता है । जैसे मा कार्षीः मा हार्षीः ।
'या चिदन्यद् वि शंसत
सखायो मा रिषण्यत
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते
मुहुरुक्था च शंसत'
ऋ. ८.१.१; . २०.८५.१; साम. १.२४२: २.७१०
ऐ मित्र स्त्रोताओ, इन्द्र के स्तोत्र के सिवा और किसी स्तोत्र का उच्चारण न करो, अन्य की स्तुति से अपनी हिंसा न कर । सोम रस प्रस्तुत होने पर वर्षिता इन्द्र की ही स्तुति कर (सुते इन्द्रमित् स्तोता) । सभी स्तोता एवं होता एकत्र हो (सचा) इन्द्र की ऋचाएं बार बार कह (उक्थाः मुहुः शंसत) ।
पुनः –
'देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत
विश्वे देवास इह वीरयध्वम्
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिः
मा रधाम द्विषते सोम राजन्'
ऋ. १०.१२८.५
ऐ षट्संख्यक उर्वी नाम्नी देवियो, (द्यौः, पृथिवी, अहः, रात्रि, अप और ओषधियाँ) आप से हम धन आदि जो भी जांचे उसे आप हमारे लिए विस्तीर्ण करें । हे विश्व देवो, आप भी हमारे अंग बनकर इस धनादि दान में पराक्रम दिखावें (इह वीरवध्वम्) । या हमें वीर पुत्र देवें और पुत्रादि रूपी प्रजा से परित्यक्त न होवें (प्रजा या मा हास्महि) और न शरीर से वियुक्त

होवें (या तनुभिः) । हे राजन् सोम, हम शत्रुओं के वश में न जावें (मा रधाम द्विषते सोम राजन्) ।

माकिः - कभी नहीं
'अग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत्'
ऋ. ४.४.३; वाज. सं १३.११; तै. सं. १.२.१४.२; मै.सं. २.७.१५; ९७.१२; का. सं. १६.१५

माकी - द्वि.व. । उत्पन्न करने वाले
'माकी रणस्य नप्त्या'
ऋ. ८.२.४२

माकीना - मेरी
'पूषन् माकीनया धिया'
ऋ. ८.२७.८

माकीम् - (अ.) कभी नहीं, नहीं, मत, निषेधात्मक अव्यय
'माकीं ब्रह्मद्विषो वनः'
ऋ. ८.४५.२३; अ. २०.२२.२; साम. २.८२.

मागध - (१) स्तुतिपाठक ।
'श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधः'
अ. १५.२.५
(२) मगधदेश का वासी,
(३) गवैया
'अतिक्रुष्टाय मागधम्'
वाज.सं. ३०.५; तै.ब्रा. ३.४.१.१.

माघोन- (१) धनवान् पुरुष का इन्द्र या प्रभु का दान
'आविरभून्महि माघोनमेषाम्'
ऋ. १०.१०७.१,
(२) धन का स्वामी बनाने वाला
'यदिन्द्र राधो अस्ति ते
माघोनं मघवत्तम'
ऋ. ८.५४.५

माण्डूक- ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक ।

मात् - मास, महीना
'माद्भिः शरद्भिः दुरो वरन्तवः'
ऋ. २.२४.५

मातरः- (१) मातापिता लोग
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्'
ऋ. ३. ३१.२
यद्यपि मातापिता लोग पुत्र पुत्री दोनों को ही पुत्र रूप से या सन्तान रूप से उत्पन्न करते हैं ।

मातरा - (१) निर्माण करने वाले मातापिता (२) गुरु और गुरु पत्नी (३) माता पिता
'प्र मातरा रास्पिनस्यायोः'
ऋ. १.१२२.४
परमात्मा स्तुति में या सुख रस के सदा पान करने वाले पुत्र या शिल्प को (रास्पिनस्य) आयोः) निर्माण करने वाले माता पिता या गुरु और गुरु पत्नी.....
'क्षोणी शिशुं न मातरा'
ऋ. ८.९९.६; अ. २०.१०५.२; साम. २.९८८; वाज.सं. ३३.६७.

मातरा गावौ - प्रसूता दो गाएं । विपाशा और शुतुद्रि नदियों की उपमा रूप में प्रयुक्त ।
'गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
विपाशा और शुतुद्रि नदियाँ पतिते जल पूर्ण हो इस प्रकार बहती हैं जैसे प्रसूता गाएं अपने बछड़े को चाटने के लिए दौड़ती हैं ।

मातरिभ्वरि - अपने निर्माता प्रभु के आश्रय में रहकर अपने को प्रकट करने वाली जगत् की महान् शक्तियाँ
'स्वसारो मातरिभ्वरी ररिप्राः'
ऋ. १०.१२०.९; अ. २०.१०७.१२.
(२) माता, जगन्निर्माता में गति करने वाली चितिशक्ति और मनन शक्ति

मातरिश्वनः प्रथमः - अन्तरिक्ष में रहने वाले गतिशील वायु से भी प्रथम विद्यमान सूक्ष्म अग्नि
'त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वनः'
ऋ. १.३१.३

मातरिश्वा, मातरिश्वन् - (१) मातरिश्वसिति गच्छति इति मातरिश्वा । अर्थ-वायु ।
वायु अन्तरिक्ष में चलता है या श्वास लेता है । अथवा - 'मातरि आशु अनिति गच्छति इति मातरिश्वा' । मातरि + शु + अन् = मातरिश्वन् । शु और आशु शब्द समानार्थक है ।
'यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं
सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः'
ऋ. १०.८८.१९
हे मातरिश्वा, जितनी ही रात्रियाँ उषा का

प्रतीक आच्छादित करती हैं या जितनी ही उषाएं रात्रियों से देखी जाती है ।

मातरौ – मातापिता

मातृशब्द कोषः छान्दसः

'गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे'

ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९

मातलिः – (१) ज्ञान का संग्रह करने वाला जीव (२) इन्द्र का सारथि

'यन्मातली रथक्रीतम्'

अ. ११.६.२३; कौ.सू. ५८.२५

मातली – (१) इन्द्र, जीव,

'मायाया मातली परि'

अ. ८.९.५

(२) ज्ञानों को प्राप्त कराने वाला

'मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिः'

ऋ. १०.२४.३ अ. १८.१.४७; तै.सं. २.६.१२.५ मै.सं. ४.१४.६: २४३.४; ऐ.ब्रा. ३.३७.११; आश्व.श्रौ.सू. ५.२०.६.

मातवै– मा + तवै । अर्थ (१) सर्व लोक के ज्ञान के लिए –यास्क (२) निश्चय दिलाने के लिए –दया.

'मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ'

ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; नि. ११.४२

माध्यमिका वाक् गौ निश्चय दिलाने की लिए भूलोक के पृष्ठरूपी मूर्धा को सूंघती है । दया. (३) मापने के लिए

माता – (१) माता, (२) सर्वज्ञ, (३) सर्वविधाता ब्रह्म

'मातुर्मात्राधि निर्मिता'

अ. ८.९.५

मा + तृच् । माता, (५) निर्माण करने वाला जगन्नियन्ता परमेश्वर ।

'कायमानो वना त्वं
यन्मातृरजगन्नपः'

ऋ. ३.९.२; साम. १.५३; नि. ४.१४;

पुनः –

'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्'

ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६.

यदि ये माताएं, कुल बढ़ाने वाली सन्तति उत्पन्न करें ।

(६) सूर्य प्रकाश का निर्माण करने वाली उषा ।

'प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः'

ऋ. १.९२.१; साम. २.११०५; नि. १२.७

गमनस्वभावा, आरोचमाना सूर्यप्रकाश की निर्मात्री उषाएं सूर्य में ही लीन हो जाती हैं । (७) माध्यमिका वाक् विद्युत् को भी माता कहा गया है क्योंकि वह जल का निर्माण करती है ।

'तं माता रेढि स उ रेढि मातरम्'

ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. १०.४६

उस वायु को माध्यमिका वाक् चाहती है (रेढि) और वह वायु भी माध्यमिका वाक् को चाहती है । अर्थात् वे एक दूसरे के आश्रय से जीते हैं ।

(८) पृथ्वी, औषध्यादि निर्मात्री पृथिवी ।

'बन्धुर्मेमाता पृथिवी महीयम्'

ऋ. १.१६४.३३; अ. ९.१०.१२; नि. ४. २१.

बन्धुरूपिणी यह बड़ी पृथिवी मेरी माता है ।

(९) सन्तान उत्पन्न करने वाली माता – जननी (१०) अन्तरिक्ष । 'मातान्तरिक्षं निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि' (अन्तरिक्ष माता है , क्योंकि इसी के सभी जीवों का निर्माण होता है) ।

'एतत् हि अवकाश दानेन
भूतानां विशिष्टमुपकारं करोति'

(अवकाश दान द्वारा उत्पन्न होने वाले जीवों को अन्तरिक्ष अत्यन्त उपकार करता है) । (११) सर्वभूत निर्मात्री अदिति

मात्या – मति से उत्पन्न होने वाली वाणी

'वाङ् मात्या'

वाज.सं. १३.५८

मात्रमापरः – समस्त जगत् को बनाने वाली प्रकृति से भी परे उत्कृष्ट विष्णु

'परो मात्रया तन्वा वृधानः'

ऋ. ७.९९.१

मात्रा– मीयते अनेन इति मात्रा (इससे मान किया जाता है अतः यह मात्रा है) । मा + ष्ट्रन् + टाप् = मात्रा । अर्थ – (१) परिणाम की इकाई, मान, प्रमाण ।

'यत्रस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः'

ऋ. १०.७१.११; नि. १.८

और एक उद्गाता (त्वः) यज्ञ में क्या क्या होना चाहिए तथा वेदी कैसी बनायी जाना चाहिए (यज्ञस्य मात्राम्) सम्पादित करता है

(विमिमीते) ।
मात्रं त्ववधृतौ स्वार्थे
कार्त्स्न्ये मात्रा परिच्छदे
अक्षरावयवे द्रव्ये
मानेऽल्पे कर्ण भूषणे
काले वृन्ते च....-हैम '
(२) जगत् को निर्माण करने वाली सर्ग कारिणी शक्ति,
'प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः '
ऋ. ३.४६.३
(३) परम सूक्ष्म प्रकृति
'बृहती परिमात्रायाः '
अ. ८.९.५
(४) परिमाण, जीवन के सौ वर्ष की अवधि
'इमां मात्रां मिमीमहे '
अ. १८.२.३८; कौ.सू. ८५.३,१२
(५) निर्माण करने के लिए सूक्ष्म अवयव
'सं मात्राभिर्ममिरे ये मुरुर्वी '
ऋ. ३.३८.३
(६) मात्रा, परिमाण,
'गोस्तु मात्रा न विद्यते '
वाज.सं. २३.४८; आश्व.श्रौ.सू. १०.९.२; शां.श्रौ.सू. १६.५.२.
आधुनिक अर्थ – (१) मात्र – संज्ञाओं में जोड़ने के लिए एक प्रत्यय जिसका अर्थ परिमाण है । (२) मापजोख की एक इकाई, (३) किसी वस्तु का परिमाण, (४) ज्योंही, जब, निष्ठा प्रपयान्त क्रिया से मिला रहता है जैसे विद्धमात्र, (६) ठीक माप, (७) क्षण, (८) अणु, (९) मार्ग, (१०) अल्प भाग, (११) गिनती, (१२) मूल्य, (१३) द्रव्य, (१४) छन्द की मात्रा, (१४) तत्व, (१५) अधिभूत, (१६) नागरी लिपि की शिरो रेखा (१७) कर्णभूषण, (१८) भूषण ।

मात्स्य – (१) एक पक्षी । वाचस्पत्य और शब्द कल्पद्रुम महाकोशों के अनुसार मात्स्य रंग (मच्छरंग) जलपक्षी है । गोध, काक, मच्छ रंग, पारावल, आदि रोग कारक पदार्थ का ज्ञान करना चाहिए
'यं वायसो यं मात्स्यः '
अ. १९.३९.९

मातुर्गर्भ – माता के पेट में गर्भ रूप से प्रकट होने वाला आत्मा
'मातुर्गर्भं पितुर सुं युवानम् '
अ. ७.२.१

मातृतमा – (१) उत्तमज्ञान वाली, (२) उत्तम माता के स्वभाव या रूप वाली
'अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासम् '
ऋ. ३.३३.३

मातृतमानदी – (१) उत्तम माताओं के समान अतिशय हितकारी ऐश्वर्य से सम्पन्न उत्तम उपदेश देने वाली आप्त प्रजा, (२) नदियों के समान ममता से अश्रु बहाने वाली उत्तम माता
'न मा गरन् नद्यो मातृतमाः '
ऋ. १.१५८.५

मातृमृष्टा – (१) माता द्वारा अच्छी प्रकार स्नान, अनुलेप, अलंकार, उत्तम शिक्षा द्वारा सुशोधित और सुशोभित कन्या
(२) विदुष्या मात्रा सत्यशिक्षा प्रदानेन शोधिता इव – दया. (विदुषी माता के द्वारा सत्य शिक्षा प्रदान से शोधित कन्या)
'सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा '
ऋ. १.१२३.११

मातृबन्धु – माता के कुल के बन्धु
परा भावयति मातृबन्धु
अ. १२.५.४३

मादयस्व – तृप्त हो ।
'मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र '
ऋ. १.१०१.१०
हे इन्द्र, घोड़ो के साथ तृप्त हो और जो तेरे ....

मादयिष्णु – (१) दूसरों को हर्षित करने वाला
'सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः '
अ. ७.७७.३; तै. सं. ४.३.१३.४

माधन – वैशाख मास
'उपयामगृहीतोऽसि माधवाय '
वाज. सं. ७.३०

माध्यन्दिनसवन – (न.) (१) मध्याह्न कालीन सवन-बलि वैश्वदेव होम, (२) २४ से ३६ वर्ष तक की आयु तक ब्रह्मचारी का काल
'माध्यंदिने सवने जातवेदः '
ऋ. ३.२८.४; आश्व. श्रौ. सं. ५.४.६
माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः '
ऋ. ५.४०.४; अ. २०.१२.७

इन्द्र माध्यन्दिन सवन में सोम पीकर मस्त हो।

माध्वी – (द्वि.व.। (१) मधुर ज्ञान का मधुकरों के समान सेवन करने वाले,(२) मधुर वचन बोलने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष

'माध्वी मम श्रुतं हवम्'

ऋ. ५.७५.१-९; साम. १.४१८; २.१०८३-५

(३) अमृतमयी मधुविद्या अर्थात् आत्म विद्या से युक्त सनातन से वर्तमान प्राण और अपान

(४) मधुर ऋग्वेद, मधुविद्या (५) उपनिषद् ज्ञान या आनन्दप्रद अन्नादि के योग्य

'हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः'

ऋ. ७.६७.४

(६) मधुरूप आत्मा को धारण करने वाले प्राण और अपान अश्विद्वय

'माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती'

अ. ७.७३.४; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४; शां.श्रौ.सू. ५.१०.२१.

(७) मधु पीने वाले – मधुपायी। अश्विद्वय का विशेषण।

'स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च'

ऋ. ६.६३.८

हे मधुपायी अश्विद्वय, तुम्हारे स्तोता भी हैं और स्तुति कर्त्ता भी (८) मधुर।

(९) मधु और सोम मिश्रित पेय वाले अश्विनीद्वय। (१०) मधुर रम्य और उत्तम फल जनक

'अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु'

ऋ. १.१८४.४

माधूची – (१) मधु अर्थात् ब्रह्म विज्ञान प्राप्त करने शिक्षक और शिष्य

'मधु माधूचीभ्याम्'

वाज.सं. ३७.१८; मै.सं. ४.९.६: १२६.१२; श.ब्रा. १४.१.४.१३.

मान – (१) सत्कार

'उतेमाशु मानं पिपर्ति'

अ. २०.१३५.८; ऐ.ब्रा. ६.३५.१४; गो.ब्रा. २.६.१४; शां.श्रौ. सू. १२.१९.४.

(२) मा + ल्युट् = मान। अर्थ-विमान, (३) निर्माण, (४) सृष्टि काल।

(५) प्रक्षेप कारी वायुगण, (६) विचारवान्, ज्ञानवान् (७) मानवीय

'येन मानासश्चितयन्त उस्राः'

ऋ. १.१७१.५

(८) अपना मान करने वाला (९) ज्ञान करने वाला, (१०) उत्तम शिष्य

'त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या
रदा मरुद्भिः शुरुधो गो अग्राः'

ऋ. १.१६९.८; मै.सं. ४.१४.१३: २३७.२

मानवस्यत् – (१) समस्त मनुष्यों को अपनी प्रजा बनाने की इच्छा करने वाला, (२) समस्त मनन शील पुरुषों को अपनाने वाला

'मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते
रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः'

ऋ. १.१४०.४

समस्त मनुष्यों को अपनी प्रजा बनाने की इच्छा करने वाले (मानवस्यते), शत्रुओं को स्तम्भन और राष्ट्र को व्यवस्थित करने में समर्थ प्रधान पुरुष के लिए (मनवे) एक दम भाग छूटने को तत्पर (मुमुक्ष्वः) अति वेग से दौड़ने वाले (रघुद्रुवः) रथ को खींचकर डालने वाले (कृष्णसीतासः) और तीव्र गामी (जुवः) घोड़े.... अथवा, समस्त भ्रमणशील पुरुषों को अपनाने वाले ज्ञान स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए (मनवे), अपने को संसार बन्धन से मुक्त करने की इच्छा करने वाले, पर्याप्त भोग कर खिन्न हो भटकने वाले (रघुद्रुवः), भूमि पर हल चलाने वाले कृषकों के समान कर्षण या तपस्या द्वारा अपने कर्मबन्धनों को अन्त करने वाले.....

मानवीपर्शुः – (१) मननशील पुरुष की सहचारिणी बुद्धि,

(२) परम पुरुष की पार्श्ववर्तिनी स्त्रीतुल्य प्रकृति

'पर्शुर्ह नाम मानवी
साकं ससूव विंशतिम्'

ऋ. १०.८६.२३; अ. २०.१२६.२३

मानसः ग्रीष्मः – मानस से उत्पन्न ग्रीष्म

'ग्रीष्मो मानसः'

वाज.सं. १३.५५; तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९: १०४.३; का. सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.८

मानस्कृत – विचार पूर्वक कर्म करने वाला

'वपुषे मानस्कृतम्'

वाज.सं. ३०.१४; तै.ब्रा. ३.४.१.१०

मानस्यक्षयः – दर्प, बल या वीर्य का निवास इन्द्र या परमेश्वर का विशेषण
'अर्यो मानस्य स क्षयः'
ऋ. ८.६३.७
समस्त जगत् का ईश्वर (अर्यः) एवं दर्प, बल या वीर्य का निवास....

मानस्य पत्नी – (१) मान, माप का पालन करने वाली शाला, (२) मान पालन करने वाली सद्गृहिणी
'मानस्य पत्नी उद्धिता तन्वे भव'
अ. ९.३.६
'इदं मानस्य पत्न्या
नद्धानि वि चृतामसि'
ऋ. ९.३.५
(३) मान, प्रतिष्ठा का पालन करने वाली धर्मपत्नी (४) शाला
'मानस्य पत्नि शरणा स्योना'
अ. ३.१२.५

मान्द – (१) सबको आनन्दित करने वाला
'मान्दा स्थ राष्ट्रदाः'
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.१४

मान्यमानः – (१) मान्य पुरुषों का सत्कार करने वाला, (२) अभिमान करने वाला
'देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थ'
ऋ. ७.१८.२०

मानसः – (१) ज्ञानवान्, (२) माननीय पुरुष
'यद् वां मानास उचथमवोचन्'
ऋ. १.१८२.८

मान्थालः – (१) मथन कर सार भाग प्राप्त करने वाला, (२) एक जन्तु
'आखुः कशो मान्थालस्ते पितृणाम्'
वाज.सं. २४.३८

मान्दार्य – (१) मुझे यह वीर काट डालेगा इस प्रकार का भय शत्रुओं को देने वाला, (२) सब को हर्ष देने वाला
'मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः'
ऋ. १.१६५.१५; १६६.१५; १६७.११; १६८.१० वाज.सं. ३४.४८; मै.सं. ४.११.३: १७०.७; का.सं. ९.१८
(३) स्तोतुमर्हः, उत्तम गुण कर्मस्वभावः–दया. (स्तुति योग्य, उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव वाला,) (४) सबको हर्षित करने वाला सर्वश्रेष्ठ

मानुषप्रधनः – मनुष्यों के हितार्थ उत्तम धनों का संग्रह करने वाला
'यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः'
ऋ. १.५२.९

मानुषयुग – मनुष्यों चित जीवन का वर्ष
'पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा'
ऋ. १.१४४.४

मानुषायुगाः – मनुष्य के स्त्री पुरुष रूप जोड़े
'स हि यो मानुषा युगा
सीदद्धोता कविक्रतुः'
ऋ. ६.१६.२३

मापश्यम् – नः । ओषधि को विशेषण । ऐसी ओषधि जिससे पति मुझे ही देखता रहे ।
'मांपश्यमभिरोरुदम्'
अ. ७.३८.१

मामतेय – (१) ममता के भाव से अपनाया हुआ
'ये पायवो मामतेयं ते अग्ने'
ऋ. १.१४७.३; ४.४.१३; तै.सं. १.२.१४.५; मै.सं. ४.११.४: १७४. ३ का.सं. ६.११
(२) ममता करने वाला आत्मा

मामहन्ताम् – मह् (बढ़ाना) पूजा करने का यङ्लुङन्त अन्य पुरुष बहुवचन का रूप । अर्थ बढ़ावें ।
'तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्'
ऋ. १.९४.१६; ९५.११; ९६.९; ९८.३; १००.१९; १०१.११; १०२.११; १०३.८; १०५.१९; १०६.७; १०७.३; १०८.१३; १०९.८; ११०.९; १११.५,१११.२५; ११३.२०; ११४.११; ११५.६; ९.९७.५; वाज.सं. ३३.४२; ३४.३०.
उस आत्मशक्ति को प्राण, अपान वायु आदि बार बार बढ़ावें – दया. । हमारे उस वचन को.....बार बार पालन करे या पूजे ।

माया – (१) परम ज्ञानमयी विधात्री शक्ति, (२) धात्री शक्ति
'माया ह जज्ञे मायायाः'
अ. ८.९.५
(३) प्रभु की निर्माण शक्ति
'पूर्वापरं चरतो माययैतौ'
ऋ. १०.८५.१८; अ. ७.८१.१; १३.२.११; १४.१.२३; मै.सं. ४.१२.२: १८१.३; तै.ब्रा. २.७.१२.२; ८.९.३.

(४) कृति, निर्माण । मा धातु से सिद्ध ।
'मायामू तु यज्ञियानामेताम्'
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७
इसे लोग देवताओं की माया समझते हैं ।
(४) प्रज्ञा, विज्ञान । (६) भ्रान्ति ।

मायिन् – (१) मायावी शत्रु – सा. (२) प्रज्ञावान् वर – दया.
'येन शुष्णं मायिनमायसो मदे'
ऋ. १.५६.३
जिस बल से इन्द्र सबके शोषक (शुष्णाम्) मायावी शत्रु को (मायिनम्) ...सा.
जिस से उस बलवान् या प्रज्ञावान् वर को स्त्री.....-दया.
(३) मायावी, छली
'यद्ध त्यं मायिनं मृगम्'
ऋ. १.८०.७; साम. १.४१२
जिस बल से तू उस मायावी, छली, इधर उधर भागते या आक्रमण करते हुए हिंसक शत्रुओं यां परस्वापहर्ता को ।

मायिनी – (द्वि.व.) । (१) बुद्धिमान् माता पिता
(२) (स्त्री ए.व.) । मायाविनी या प्रज्ञावती-सा.
(३) मध्यमा वाक् का विशेषण (४) बुद्धिपूर्वक नीति कर्मों को करने वाली ।

मायु – (१) निर्माण करने वाली शक्ति (२) वाक् शक्ति
'अश्वस्यं ब्रध्नं पुरुषस्य मायुम्'
अ. १९.४९.४
(३) उच्च स्वर
'अश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ'
अ. ६.३८.४; का.सं. ३६.१५; तै.ब्रा. २.७.७.१.
(४) मा (प्रक्षेपण या निर्माण अर्थ में) + उण् = मायु (आदि में वृद्धि और अन्त में युक्)। मिनोति स्वतेजः सर्वत्र प्रक्षिपति इति मायुः। (आदित्य अपने तेज को सर्वत्र फेंकता है अतः मायु है) । अर्थ- आदित्य
(५) माति सर्वभूतानि इति मायुः (जो सभी भूतों का निर्माण करता है) ।
(६) मेघ, जल ।
'अयं स शिङ्क्ते ये गौरभीवृता
मिमाति मायुं ध्वसनावधिश्रिता'
ऋ. १.१६४.२९
यह वह मेघ अव्यक्त ध्वनि करता है जिससे मेघ से जल निकलने के समय तक मेघ में रहती हुई विद्युत् नाम्नी माध्यमिका वाक् व्याप्त होकर मेघ बनाती या जल बरसाती है ।
'मियाति मायुं पयते पयोभिः'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१.८; १०.६; नि. ११.४२
(६) शब्द, (८) काकुद्
'मायुः काकुद्'
(८) मनुष्य, (९) जीवन
'नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः'
ऋ. ४.६.११
(१०) ज्ञान की कामना वाला
'सद्यो दिदिष्ट मायवः'
ऋ. १०.९३.१५
(११) गौ की हुंकार
'गवामह न मायुर्वत्सिनीनाम्'
ऋ. ७.१०३.२

मायू – द्वि.व.। ए.व. में मायु । अर्थ–गर्जन कराने वाले
'त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू'
अ. १८.४.४.

मार्गार – (१) जल जन्तुओं का शत्रु
'पाराय मार्गारिम्'
वाज.सं. ३०.१६

मार्जाल्यः – (१) संशोधक–अग्नि –दया.
(२) सबको शोधने वाला सूर्य, (३) अन्यों को ज्ञान दीक्षा आदि से पवित्र करने वाला
'मार्जाल्यो मृज्यते स्वेदमूनाः'
ऋ. ५.१.८

मार्जालीय – (१) शोधन करने वाली अग्नि ।
'शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः'
वाज.सं. ५.३२

मार्डीक – (१) सुख देने वाला राज्य
'कस्ते देवो अधि मर्डीक आसीत्'
ऋ. ४.१८.१२
(२) आरोग्य कारक
'मार्डीकं धेहि जीवसे'
ऋ. १.७९.९; साम. २.८७६; मै.सं. ४.१०.६: १५६.३; का.सं. २.१४ ; तै.ब्रा. २.४.५.३; आप.श्रौ.सू. ८.१४.२४

(३) सुखदायक
'मार्डीकमिन्द्रा वरुणा नियच्छतम्'
ऋ. ७.८२.८
(४) सुखसाधक ऐश्वर्य
मार्तवत्स – मृत बालक का जन्म
'अप्रजास्त्वं मार्तवत्सम्'
अ. ८.६.२६
मार्त्यव – मृत्यु का अधिष्ठाता अन्तक, (२) मृत्युदण्डकारी
'तामन्तको मार्त्यवोऽधोक'
अ. ८.१० (४) ७
मार्ताण्ड – मृत + आण्ड । (१) अण्डों से उत्पन्न पक्षिगण, (२) मृत अर्थात् भिन्न अण्डे से उत्पन्न पक्षी, (३) सूर्य के आश्रय पर जीने वाला
'विश्वो मार्ताण्डो व्रजमापशुर्गात्'
ऋ. २.३८.८
(४) जड़ तत्व का बना अण्ड या जीवित देह
'प्रजायै मृत्यवे त्वत्
पुनर्मार्ताण्डमाभरत्'
ऋ. १०.७२.९; तै.आ. १.१३.३
मार्ष्टि – मृज् (गति शुद्धि अर्थों में प्रयुक्त) के लट् प्र.पु.ए. व.का. रूप । अर्थ गच्छति (जाता है) ।
मारुत – (१) मारने वाले शत्रुओं का स्वामी
'मारुतः क्रथन्'
वाज.सं. ३९.५
मरुत् + अण् = मारुत । मरुत्संयुक्त – मरुतों के साथ ।
(३) मनुष्यों के लिए हितकारी (४) मरुत् सम्बन्धी, (४) मानुषिक बल
(६) वैश्य, क्योंकि वैश्य मितभाषी होते हैं ।
(७) मा (मानार्थक) + रु (शब्दार्थक) + क्विप् = मारुत् = मरुत । वैश्य मापने के प्रेमी होते हैं । अथवा, 'महत् + द्रव् + क्विप् = महद्रव = मरुत्
(८) मरुद्गण ।
मारुतगण – (१) वायुवत् बलवान् शत्रु मारक वीरों का यूथ, (२) सामान्य मनुष्य
'आदित्यान् मारुतं गणम्'
ऋ. १.१४.३; ६.१६.२४; वाज.सं. ३३.४५.
(३) मरुत् सम्बन्धी प्राणगण
'तस्यैष मारुतो गणः'
अ. १३.४.८
मारुतं धाम – (१) मरुतों का स्थान –सा. (२) मानुषिक तेज –दया.
'विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२
प्रिय मरुतों के स्थान की प्राप्ति के लिए –सा. ।
प्रिय मानुषिक तेज की प्राप्ति के लिए –दया. ।
मारुतःरथः– (१) मरुतों के साथ मेघ, (२) मरुतों का रथ मेघ । मेघ गति शील है –
'रंहणः' अतः वह रथ कहा गया है । बिना मरुतों की सहायता से मेघ चलता नहीं अतः मेघ को मारुत रथ भी कह सकते हैं–जिसका रथ मरुत् है ।
'रथं नु मारुतं वयं
श्रवस्यमा हुवामहे'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०
हम आत्रेय अन्न देने वाले एवं मरुत् रुपी रथं वाले या मरुतों के साथ गति शील मेघ को बुलाते हैं ।
मारुतं शर्ध – (१) वायु का प्रबल वेग
'स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिः'
ऋ. १.१२७.६
मारुताश्व – (१) वायु के समान चलने वाले अश्वों या अश्व सैन्यों का स्वामी – इन्द्र
'उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः'
ऋ. ५.३३.९
मारुतीः विशः – प्राणों से प्रणिता प्रजाएं
'यदा ते मारुतीर्विशः'
ऋ. ८.१२.२९
मावत् – मेरे सदृश ।
मास् – मा (मापना) + असुन् = मास् । अर्थ (१) महीना, (२) मापने वाला या माप, (३) काल को मापने वाला मास । मास से काल मापा जाता है ।
(४) मासाः मानात् (इन से संवत्सर का मान किया जाता है अतः ये मास कहे जाते हैं) ।
(५) अथवा, 'मस् (परिमाण अर्थ में) मस्यते परिमीयते अयम् अनेन वा' (इस से परिभाषा जाना या निकाला जाता है) (६) मा + सस् = मास्
मास – (१) मास, (२) व्यापक विद्वान्

'मासा आच्यन्तु शम्यन्तः'
वाज.सं. २३.४१

मासः – (ब.व.) । (१) वर्ष के १२ महीने, (२) जगत् को बनाने वाली शक्तियाँ (३) राष्ट्र का निर्माण करने वाली प्रजाएं
'किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्रम्'
'मासो जभार शरदश्च पूर्वीः
ऋ. ४.१८.४

मासकृत् – मासानाम् अर्द्धमासानां च कर्त्ता । शाकल्य ने इस का पदच्छेद 'मा + सकृत्' किया है । अर्थ है मां सकृत् एकवारम् एव (मुझे एक बार ही)
(२) दूसरी व्युत्पत्ति है- मास + कृत् । मास का अर्द्धमास बनाने वाला चन्द्रमा ।
अरुणो मा सकृद् वृकः
पथा यन्तं ददर्श हि'
ऋ. १.१०५.१८; नि. ५.२१
आरोचन – और नक्षत्रों से अधिक चमकने वाला मासों तथा आर्द्धमासों का कर्त्ता चन्द्रमा आकाश मार्ग से आते हुए नक्षत्र को देखता है । कूप में गिरे कुत्स ही यह उक्ति है कि हे चन्द्रमा, तू तारों को देखता ऊपर जा रहा है, पर मुझे तो (मा) एक बार भी नहीं देखता (सकृत्) ।

माश्चत्व – युद्धकाल
'माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे'
ऋ. ९.९७.५४

माष – (१) उड़द, अरहर आदि
'माषाश्च मे तिलाश्च मे'
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२; मै.सं. २.११.४: १४२.२; का. सं. १८.९
(२) मष् + घञ् = माष । अर्थ – हिंसा

माषाज्य – (१) मघ (हिंसार्थक) से माष हुआ है । आज्य का अर्थ है आजि का साधन शास्त्र । माषाज्य का अर्थ है हिंसक शस्त्र ।
यदाज्यैः देवा जयन्त
आयन् तत् आज्यानाम् आज्यतम्
'यदाजिमायन् तत् आज्यानाम् आज्यत्वस्
'आज्यानि शस्त्राणि स्तोत्राणि'
तै.आ. ७.२.१.
'तं माषाज्यं कृत्वा प्रहिणोमि'
अ. १८.२.५४
(२) मष् हिंसार्थ भ्वादि माषः हिंसा । आज्य – वज्र आदि । माष + आज्य = माषाज्य । अर्थ- उड़द की बड़ी – सा.
(३) घातक हिंसक वज्र का अस्त्र –ज.दे.श.
'आज्येन वै देवा सर्वान कामान् अप्ययन्'
कौ.सू. १४.१
'वज्रो वा आज्यम्'
श.ब्रा. १.३.२.३७

मांस – (१) मांस, (२) उत्तम अन्न (३) उत्तम रस (४) पुरीष, (५) सादन, (६) अन्न, (७) रसीला पदार्थ
'मांस वै पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.६.२.१४.
'मांसं सादनम्'
श.ब्रा. ८.१.४.५.
'एतदु ह वैपरमम् अन्नादयं यन्मात्तम्' श.ब्रा. ११.७.१.३
'अन्नम् उपशोर्मांसम्'
श.ब्रा. ७.५.२.४२
'अपूपवान् मांसवांश्चरुरेहु सीदतु'
अ. १८.४.३०
'यथा मांसं यथा सुरा'
अ. ६.७०.१
(४) मन को रुचि देने वाला रुचिकर पदार्थ – घी, मलाई फल आदि
'स य एवं विद्वान् मांस मुपसिच्योपहरति'
अ. ९.६.४३
(४) मा + ल्युट् = माननम् = मांसम् (बाहुलक से औणादिक स) । अथवा – मन् (मानना) + स = मानस = मांस (मने दीर्घश्च से 'स' का आदेश और 'म' का दीर्घ) ।
मांसं माननं वा (जो मान्य होता है उसके लिए मांस प्रस्तुत किया जाता है अतः इसका नाम मांस पड़ा) ।

मानसं वा – सुमनसा उपादी यत इति मानसम् (सुन्दर मन से इसका उपादान किया जाता है । अतः यह मानस या मांस हुआ) । मनस् + अण् = मानस = मांस
मनः अस्मिन् सीदति इति वा (इस मांस में सभी का मन चला जाता है या सभी का मन ललच कर भ्रष्ट हो जाता है, ऐसा अर्थ भी कुछ लोग

करते हैं) । शरीर के लिए मांस अत्यन्त आवश्यक है अतः सभी इसकी कामना करते हैं । अतः मन् धातु से मांस हुआ । मनु का निर्वचन - मां + सः = मांसः । अर्थात् इस जन्म में मनुष्य जिसका मांस खाता है, अगले जन्म में वह उसी का मांस खाता है ।

मांस भक्षयिताऽमुत्र
यस्य मांसमिहादम्यहम्
एतन्मांसस्य मांसत्वम्
प्रवदन्ति मनीषिणः
मनु. ५.५५

मांस जम्भनी - मांस शोषक या मांस में फैलने वाले कीटाणुओं का नाशक
'एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः'
अ. ५.२९.१४

मांस्पचनी - (१) मांसानि पचन्ति यस्यां सा (जिसमें मांस पकाए जाते हैं) । दया. (२) मन को अच्छे लगने वाले नाना अन्नों और फलों का परिपाक करने वाली उखा (३) देहगत मांसादि वा परिपाक करने वाली उखा रूपी यह देह (४) मनन योग्य मन की गति के पात्र- उत्तम विचारों को पापिक्व करने वाली उखारूप मस्तिष्क ।
'यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखायाः'
ऋ. १.१६२.१३; वाज.सं. २५.३६; तै.सं. ४.६.९.१; मै.सं. ३.१६. १: १८३.४
(४) मांस अर्थात् मन को अच्छे लगने वाले नाना पदार्थों के परिपक्व करने वाली पृथिवी या बटुआ (५) उवट के मत में मांस पकाने की हंड़िया (६) मांस आदि देह गत धातुओं को अन्न रस से परिपक्व या दृढ़ करने वाला देह रूप पात्र

मांसभिक्ष - मांस अर्थात् मन को लुभाने वाले अन्न आदि पदार्थों की भिक्षा, (२) मन को प्रिय लगने वाले पदार्थों की भिक्षा
'ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासते'
ऋ. १.१६२.१२; वाज.सं. २५.३५; मै.सं. ३.१६.१:१८२.९
(३) मांस की भिक्षा, (४) मनन करने तथा मन को उत्तम प्रतीत देयोग्य ज्ञान और बल अथवा उसके देह की भिक्षा-याचना, (६) मन को लुभाने वाले अन्न, ऐश्वर्य आदि और सैन्य के देह रक्तादि की याचना

मासर- (१) परिपक्व औषधि रस, (२) अन्न, (३) मासिक वेतन बद्ध भृत्य
'अस्थि मज्जानं मासरैः'
वाज.सं. १९.८२; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.२
(४) धान और सावाँ चावल के भातों का तथा शष्य (धान का नया पौधा) तथा लाज (लावा) आदि पदार्थों का मिश्रित रूप मासर है , (५) राज्य कर्मचारी को दिया जाने वाला सुखप्रद वेतन (मांस मासं दीयते यत् तत् मासरम्) (६) येन मासेषु रमन्ते- दया. (जिससे मासों में रमण करते हैं) ।
'आतिथ्यरूपं मासरम्'
वाज.सं. १९.१४

मांसवान् चरु - (१(मांस अर्थात् गूदे वाला चरु । मांस का अर्थ-पुरीष, सादन, अन्नाद्य, अन्न, रसीला, गूदेदार पदार्थ, सर्वश्रेष्ठ अन्नखाद्य
'मांसं वै पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.५.२.१४
'मांसं सादनम्'
श.ब्रा. ८.१.४.५
'एतदु ह वै परमं अन्नाद्यम्'
श.ब्रा. ११.७.१.३
'अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु'
अ. १८.४.२०

मास्म - मत । मा के साथ स्म का प्रयोग ।
'मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये'
ऋ. १०.२७.२४
हे अन्तरात्मन् ! तू आदित्य के इस प्रकार के उपकारों को मत छिपा या मत भूल (मा स्म अप गूहः) ।

मासि मासि - प्रत्येक अर्द्धमास या दर्शपौर्णमास में ।
'अहरहर्जयते मासिमासि'
ऋ. १०.५२.३; नि. ६.३५
यह अग्नि प्रतिदिन तथा प्रत्येक अर्द्धमास अर्थात् दर्शपौर्णमास में उत्पन्न होता है ।

माहना - बड़े भारी सामर्थ्य से

'याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्'
ऋ. १.३२.८
जिन जल धाराओं को (याः चित्) मेघ (वृत्र) बड़े सामर्थ्य से थामे रहता है। (पर्यतिष्ठत्)।

माहिन् – (१) पूज्य, महत्वगुण विशिष्ट
'पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः'
ऋ. १.५६.६
(२) महानुभावता, बड़प्पन,
'अपः क्षोणी सचते माहिना वाम्'
ऋ. १.१८०.५
बड़े होने के कारण नदी आदि पृथ्वी में ही आश्रय पाते हैं। उसी प्रकार आप्त जन आप दोनों की महानुभावता से सूर्य और पृथ्वी के समान स्तुति के योग्य आप दोनों को प्राप्त हो।
(३) महान् आदरणीय
'इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्ति'
ऋ. ३.३६.९; तै.सं. १.७.१३.३; का.सं. ६.१०.

माहिनः – (१) गुणों से महान्
'प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय'
ऋ. १.६१.१; अ. २०.३५.१
(२) पूज्य, महान्, सामर्थ्यवान्
'कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्'
ऋ. १.१६५.३; वाज.सं. ३३.२७; मै.सं. ४.११.३; १६८.१०, का.सं. ९.१८.
'पूषा अविष्टु माहिनः'
ऋ. १०.२६.१,९
(३) इन्द्र का विशेषण।
'अस्मा इदु प्र तवसे तुराय
प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय'
ऋ. १.६१.१; अ. २०.३५.१
इस बलवान् फुर्तीले एवं पूज्य इन्द्र के लिए (तवसे तुराय माहिनाय) तृप्तिकरक अन्न की तरह (प्रयोन) स्तुति अर्पित करता हूँ (प्र हर्मि)।
(४) मह् (पूजा अर्थ में) + इनण् = माहिन। सबसे अधिक महान् पूजनीय – इन्द्र

माहिना – (१) बहुत महत्वपूर्ण, (२) सत्कार करने योग्य
'इडा येषां गण्या माहिना गीः'
ऋ. ३.७.५
(३) अति उत्तम तेजस्विनी परमेश्वरी शक्ति
'विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः'
ऋ. ५.४५.८

माहिनावान् – बहुत से महान् सामर्थ्यों का स्वामी
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्'
ऋ. ३.५६.३

माहिष – भैंसा
वरुणाय महिषान्
वाज.सं. २४.२८

माही – (१) बहुत बड़ा। 'माहिन्' का प्रथमैक वचन में रूप'
'उक्थैरिन्द्रस्य माहिनम्
वयो वर्धन्ति सोमिनः'
ऋ. ८.६२.१

माहेन्द्र – (१) महेन्द्र का (२) महान् राजा का
'प्राश्रृङ्गा माहेन्द्राः'
वाज.सं. २४.१७

म्लान – बनाया हुआ
'शतं चर्माणि म्लातानि'
ऋ. ८.५५.३

मिक्ष, मेक्ष – चलना
'मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्'
अ. ७.१०२.१

मितद्रुः – (१) मितमार्ग वाला, (२) शोभन गति वाला, बाजी का विशेषण। (३) परिमित गति से जाने वाला
'शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु
देवताता मितद्रवः स्वर्काः'
ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६.
इस यज्ञ में (देवताता) आह्वानों या स्तोत्रों के किए जाने पर (हवेषु) मित मार्गवाले भी शोभनगति वाले (मितद्रवः) या शोभन अन्न, सुन्दर अर्चा या सुन्दर दीप्ति वाले (स्वर्काः) वाजि नाम देवता हमारे लिए कल्याण-कारक हों।
(३) परिमित परिज्ञात गतिवाला (४) सब पदार्थों में, समान रूप से व्यापक, परमेश्वर
'परि त्मना मितद्रुरेति होता'
ऋ. ४.६.५
(५) परिमित भय वाला
'त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः'
ऋ. ७.७.१

मितः – मिथः परस्पर

'सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्'
ऋ. १०.१८.१२; अ. १८.३.५१; तै.आ. ६.७.१

मितक्षुः – (१) परिमित जानु वाला, (२) सभ्यता पूर्वक पैर सिकोड़ कर बैठने वाला, (३) परिमाण से कदम बढ़ाने वाला, (४) विवेकी पुरुष
'मितज्ञवो वरिमन् आ पृथिव्याः'
ऋ. ३.५९.३; मै.सं. ४.१०.२: १४६.१५; तै.ब्रा. २.८.७.५

मितमेधा – परस्पर सत्संगति युक्त रक्षा
'मितमेधाभिरूतिभिः'
ऋ. ८.५३.५; साम. १.२८२,

मित्र – (पु.) प्रजाओं को मारने बचाने वाला (२) स्नेह करने वाला, स्नेह से सब की रक्षा करने वाला
(३) सूर्य ।
'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः'
ऋ. ३.५९.१; का.सं. २३.१२,३५;१९ आश्व.श्रौ.सू. ३.११.१२ नि. १० .२२.
(४) सर्प विष की एक औषधि
'मित्रश्च वरुणश्च'
अ. ३.२२.२; १०.४.१६; तै.आ. १.१३.३
(५) अर्यमा वरुणः – योगियों के तीन भेद, (६) सूर्य के समान प्रज्ञालोकवान् मित्र, (७) भूतजय करने वाला इन्द्रिय संविद् द्वारा स्थित प्रज्ञ अर्यमा और विशाल आकाश रूप समुद्र के समान शान्त शुद्ध चित्त सत्य का अनुभवी योगी वरुण है ।
'पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः'
ऋ. ८.९४.५; साम. २.११३६
(७) मृत्यु से बचाने वाला अन्न, जल और वायु
'मित्रो गृणाति वरुणः'
ऋ. ८.१५.९; अ. २०.१०६.३; साम. २.९९७
(८) मित्रः प्रमीतेः मरणात् त्रायत इति मित्रः (मित्र मृत्यु से रक्षा करता है) । प्रमीति + त्रै + ड = मित्र (प्रमीति का मित् और त्रै का का त्र) । मित्र अर्थात् सूर्य सभी को वर्षा द्वारा मृत्यु से बचाता है । अर्थ है – सूर्य
संमिन्वानः द्रवति (सम्यक् प्रकार से या समन्ततः सदा वर्षा बरसाता हुआ अन्तरिक्ष लोक में द्रवता है) । मि 'धातु प्रक्षेपण अर्थ में भी आया है । या 'मिवि' सेचने '
'सेचनार्थक 'मि' के लट् में 'आनश्' जोड़कर 'मिन्वान' बना है ।
मिवि + द्रु + रक् = मित्र अथवा मि + द्र +ड = मित्र । (पृषोदरादिवत्)
अथवा – 'मिद्' (स्नेहार्थक) + त्रन् = मित्र ।
'सर्व ह्यसौ उदकेन स्नेहयुति (मित्र अर्थात् सूर्य सभी को उदक से स्निग्ध करता है) ।
अथवा – मानार्थक 'मा + त्रन्' = मित्र ।
(९) स्वामी दयानन्द ने मित्र का अर्थ मापक किया है । अंग्रेजी का meter का अर्थ भी ऐसा ही है । जैसे Thermometre (धर्म – मित्र) ताप मापक । Barometre - भार मित्र – भारमापक यन्त्र । अतः मित्र hydrogen अर्थात् उद जन वायु का नाम है । यह वायु सब से हल्की है और यह तौल मान की मात्रा या इकाई है । वरुण Oxygen या ओषजन वायु है । यह वायु वरणीय है । स्वामी दयानन्द इसी से 'मित्रावरुण' का अर्थ उदजन और ओषजन (Hydrogen और Oxygen) वायु मानते हैं ।
(१०) यास्क ने भी मित्र का अर्थ वायु दिया है ।
(११) शब्द करता हुआ मित्र, । सूर्य
'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः'
(शब्द करता हुआ मित्र कृषकों को कृषि कार्य में प्रवृत्त करता है) । (१२) प्राण वायु –दया.
'तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः'
ऋ. १.९४.१६; ९५.११; ९६.९; ९८.३
उस आत्म शक्ति को प्राण, अपान, अन्तरिक्ष, सिन्धु, पृथिवी और सूर्य बढ़ावें । (१३) आदित्य । अदिति का पुत्र एक वैदिक देवता ।
'प्र स मित्र मर्तो प्रयस्वान्'
ऋ. ३.५९.२; तै.सं. ३.४.११.५; मै.सं. ४.१०.२: १४६.१३; का.सं . २३.१२; आश्व.श्रौ.सू. ३.१२.९; ४.११.६; नि २.१३.
हे आदित्य (मित्र) वह मनुष्य अन्न वाला हो ।
(१४) स्वा. दयानन्द ने मित्र का अर्थ मंत्री और वरुण का अर्थ चुना हुआ राजा किया है ।
आधुनिक अर्थ – सूर्य, आदित्य जो वरुण के साथ रहते हैं ।

मित्रमहः – (१) मित्रवान् सब का आदर करने वाला, (२) अग्नि, (३) मित्र, (४) प्राण और सूर्यवत् तेजस्वी
'तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्'
ऋ. २.१.५

'मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः – (१) दिन और रात्रि का प्रकाशक सूर्य, (२) मित्र और श्रेष्ठ पुरुष का पथ- प्रदर्शक
'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवः'
ऋ. ७.६३.१

मित्रातिथेः नपात् – मित्र स्नेही और अतिथिवत् गृह पर आने वाले को नीचे न गिराने वाला
'अधि पुत्रोपमश्रवः
नपान्मित्रातिथेरिहि'
ऋ. १०.३३.७

मित्रधित – सर्वस्नेही ही प्रभु का दिया या बनाया पदार्थ
'यथा यथा मित्रधितानि संदधुः'
ऋ. १०.१००.४

मित्रधिति – (१) दुःखों को दूर करना और सुखों को प्राप्त करना (२) स्नेही मित्रजनों का पालन
'दुहीयन् मित्रधितये युवाकु'
ऋ. १.१२०.९
दुःखों को दूर करने सुखों को प्राप्त करने तथा स्नेही मित्रजनों का पालन करने के लिए ये सब गौएं, भूमिएं और माताएं अपना दूध, अन्न और स्नेह प्रदान करती हैं ।

मित्रधेय – मित्रता को बचाए रखना
'मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व'
अ. २.६.४; वाज.सं. २७.५; तै.सं. ४.१.७.२; मै.सं. २.१२.५: १४९.२; का.सं. १८.१६.

मित्रपति – मित्रों का पालक
'त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः'
ऋ. १.१७०.५

मित्रयुजः देवाः – सूर्य के साथ लगे किरण
'रिशादसो मित्रयुजो न देवाः'
ऋ. १.१८६.८

मित्रमहस् – मित्रों को पूजने वाला या मित्रों का पूज्य ।
मित्राणि मह्यति यः सः । अथवा, मित्रैः मह्यतेयः सः । मित्र + मह् + असुन् = मित्रमहस्
'दहाशसो रक्षसो पाह्यस्मान्
द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्'
ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५: १७४.८: का.सं. ६.११.
(२) अग्नि का वाचक ।
'आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१; वाज.सं. २९.२५; मै.सं. ४.१३.३: २०१.९; का.सं . १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.५
हे मित्रों के स्तुत्य (मित्रमहः) तथा चेतनावान् (चिकित्वान्) देवताओं को बुला या उन्हें हवि पहुंचा (च आवह) ।
(३) सूर्य, (४) स्नेहवान् मित्रों का आदर करने वाला सूर्यवत् तेजस्वी राजा
अच्छा नो मित्रमहो देव देवान्
ऋ. ६.२.११; १४.६
'स नो मित्रमहस्त्वम्'
ऋ. ८.४४.१४; साम. २.१०६३
अग्नि के अर्थ में –
'यद् देवानां मित्रमहः पुरोहित'
ऋ. १.४४.१२

मित्र्य – सर्वस्नेही ब्राह्मणगण
'अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा'
ऋ. ५.८५.७

मितासद्य – (१) परिमित उत्तम गणित विज्ञान और शिल्प विज्ञान और शिल्प विज्ञान के नियमों से माप कर बनाया गया घर, (२) परिमित स्थान
'नक्षद्धोता परि सद्म मिता'
ऋ. १.१७३.३

मन् – (१) मनुष्य, (२) मननशील, (३) शत्रुस्तम्भनकारी पुरुष
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता'
ऋ. १.१७३.२

मित्रा – द्वि.व. । (१) परस्पर स्नेह वान् स्त्री पुरुष, (२) मित्रा वरुण, (३) प्राण अपान वायु
'आयद् वामीयचक्षसा
मित्र वयं च सूरयः'
ऋ. ५.६६.६

मित्राग्नि – (१) प्राण और अग्नि, (२) नासिका गत प्राण और जठराग्नि, (३) राजा और आयुध

मित्रायु – मित्रता चाहने वाला

'मित्रायुवो न पूर्यतिं सुशिष्टौ'
ऋ. १.१७३.१०

मित्रावरुण – द्वि.व.। (१) घृत और जीरा जो सर्पः दंश में औषधि रूप में दिये जाते हैं ।
'आ मां मित्रा वरुणेह रक्षतम्'
ऋ. ७.५०.१
राजनिघण्टु में लिखा हैः–
'गोघृतं वातपित्त विषापहम्
जीरक शुक्ल कृमिघ्नी विषहन्त्री च'
(२) संस्कृत रूप है–मित्रावरुणौ । अर्थ है– मित्र और वरुण नामक देवता, (३) मित्र और वरुण नामक वायु जो जल उत्पन्न करते हैं । (४) मित्र hydrogen और वरुण oxygen वायु है । जिन्हें जोड़कर सूर्य रश्मियाँ मेघ निर्माण करती हैं ।
(५) दिन और रात ।
'दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते
राजाना मित्रावरुणा विवाससि'
ऋ. १०.६४.५, नि. ११.२३
हे अदिति या सन्धिबेला, तू आदित्य के जन्मरूपी व्रत में या उदय अस्त रूपी कर्म में दिन और राज रूपी राजाओं में व्याप्त रहती है ।
(६) मंत्री और चुना हुआ राजा – दया.
उदजन और ओषजन वायु के अर्थ में –
'मित्रं हुवे पूतदक्षम्
वरुणं च रिशादसम्
धियं घृताचीं साधन्ता'
ऋ. १.२.७; साम. २.१९७; वाज.सं. ३३.५७; ऐ.आ. १.१.४.५.
पवित्र करने में चतुर उदजन और जंग द्वारा धातुओं को खाने वाले (रिशादसम्) ओषजन वायु को (वरुणञ्च) मैं ग्रहण करता हूँ (हुवे) । ये दोनों वायु मिलकर जल–निर्माण कार्य को करने वाले हैं (घृताचीं धियं साधन्ता) ।
(७) आदित्य और वरुण, (८) यास्क ने भी मित्र का अर्थ वायु किया है । मित्र और वरुण नामक वायुओं को विद्युत् द्वारा मिलाने से वर्षा होती है ।
(९) प्राण और अपान वायु, (१०) सूर्य ओर चन्द्रमा, (११) गृहस्थ और गृह पत्नी ।
'मित्रावरुण दूडभम्
ऋतुना यज्ञमाशाथे'
ऋ. १.१५.६

मित्रावरुणनेत्रः – (१) न्यायाधीश और नगर की पुलिस के अध्यक्ष के अधीन विद्वान् और वायु के समान तीव्र चढ़ाई करने वाले सेनापति के अधीन वीर पुरुष ।(२) प्राणोदना की तरह वेगवान् नेता वाला, (३) मरुत् के तुल्य वेग वान् नेतावाला राजपुरुष
'ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३६, वाज.सं. (का.) ११.१.२; श.ब्रा. ५.२.४.६.

मित्रावरुणावन्ता – द्वि.व. । (१) मित्र वरुण या ब्राह्मण क्षत्रिय राजाओं से युक्त (२) अश्विद्वय
'मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता'
ऋ. ८.३५.१३

मित्रावरुणै – द्वि.व. । (१) ईश्वर के दो रूप । एक सत्य वादियों से प्रेम करने वाला और दूसरा पापियों का दमन करने वाला, (२) न्यायाधीश और दण्डाधीश, (३)मित्र और वरुण नामक देवता
'मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ'
अ. ४.२९.१

मित्रिन् – (१) मित्रवर्ग
'अमित्रान् मोत मित्रिणः'
अ. ११.९.२१
(२) मित्र वाला, (३) सहायवान् मित्र
'प्रखादः पृक्षे अभि मित्रिणो भूत्'
ऋ. १.१७८.४

मित्रियः – (१) स्नेही मित्र होने योग्य
'प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियः'
ऋ. ८.१९.८
(२) मित्र का किया हुआ (३) स्नेह वश किया हुआ
'मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः'
अ। २.२८.१
(४) स्नेह–पूर्ण
'अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण'
ऋ. ७.६०.१; १४.२.१२

मित्रेरु – मित्र हिंसक
'जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरून'

ऋ. १.१७४.६

मिथती – हिंसा करती हुई – सेना

'आभिस्स्पृधो मिथतीररिषण्यन्'

ऋ. ६.२५.२; मै.सं. ४.१४.१२: २३५.३; तै.ब्रा. २.८.३.३.

मित्रास्पृध्या – परस्परं मत्सु संग्रामेषु भवा सेना – दया. ।परस्पर स्पर्धा से लड़ने वाली सेना ।

मिथुन – (१) छिद्र ,

'मिथुनं कर्णयोः कृधि'

अ. ६.१४१.२

(२) मिनोति श्रयति कर्मा, थु इति नामकरणः, थ कारोवा नयतिः परोवनिः वा, समाश्रिता अन्योन्यं नयतः वनतः वा, मनुष्यमिथुनौ अपि एतस्मात् एव मेथन्तौ अन्योन्यं वनतः इतिवाः ' (मि धातु श्रवण अर्थ में और थु नामकरण प्रत्यय या थकार से परे 'नी' या 'वन' धातु आता है, तब 'मि + न + थु' होकर मध्य का अन्त में और अन्त का मध्य में विपर्यय कर मिथुन शब्द बनता है । अर्थ है– (१) समाश्रित हो एक दूसरे की ओर जाना मिथुन है । काल भी एक दूसरे से परस्पर संयुक्त हो समाश्रित होता है ।

(३) 'मिथ' धातु का संगमन करना अर्थ है । 'वन' धातु का अर्थ कामना करना है । मनुष्य संगमन करते हुए एक दूसरे की कामना करते हैं । इस प्रकार 'मिथ + वन' का मिथुन हुआ (व का उ) इस । मत से दो धातुओं के योग से मिथुन बना है । अर्थ है–जोड़ा (३) मेघ (मेघा और हिंसा) से संग मनार्थक 'वन्' धातु मिलाकर मिथुन होता है । ये एक दूसरे का ताडन करते हुए सेवते हैं ।

(४) रात और दिन का जोड़ा – दया. (५) जोड़े नामों वाला द्यौ और पृथिवी –सा.

'उत स्वसारा युवती भवन्ती
आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम'

ऋ. ३.५४.७

अपनी अपनी परिधियों में घूमते हुए सूर्य और पृथिवी दिन और रात के जोड़े बनाते हैं । – दया.

दो बहनों के समान युवतियाँ सी द्यौ और पृथ्वी परस्पर अन्तर पर बोलती हैं । –सा.

मिथुनत्व – (१) परमपुरुष के साथ विराट् प्रकृति का होना, (२) मैथुन भाव, (३) एक भाव, (४) जगत् की उत्पत्ति का कार्य

'को विराजो मिथुन त्वं प्र वेद'

अ. ८.९.१०; मै.सं. २.१३.१०:१५९.१६

मिथुना – मिथुनौ (दम्पत्ति भाव से रहने वाला जोड़ा)

'अजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः'

ऋ. १०.१७.२; अ. १८.२.३३; नि. १२.१०

मिथुनासः – मिथुन का प्रथमा बहुवचन । वैदिक रूप । अर्थ – दिन रात के जोड़ा ।

'आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः'

ऋ. १.१६४.११; अ. ९.९.१३

हे आदित्य, तेरे इस चक्र में दिन रात रूपी जोड़ो के रूप में सात सौ बीस पुत्र हैं ।

मिथुया – (१) मिथ्या, झूठ का पक्ष

'न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्'

ऋ. ७.१०४.१३; अ. ८.४.१३

मिथू – (१) व्यर्थ, झूठमूठ, निष्प्रयोजन ।

'छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः'

ऋ. १.१६२.२०; वाज.सं. २५.४३; तै.सं. ४.६.९.४; का.सं. (अश्व) ६.५.

(२) असत्य वादी

'स यो न मुहे न मिथू जनोभूत्'

ऋ. ६.१८.८

मिथूकृत – संसर्ग से उत्पन्न शरीर ।

'प्र ते रथं मिथूकृतम्'

ऋ. १०.१०२.१; शां.श्रौ.सू. १९.११.२

मिथूदृशा – द्वि.व. । (१) उषासानक्ता का विशेषण । (२) एक दूसरे को स्नेह देखने वाले, (३) एक दूसरे के गुणों को दर्शाने वाले

'उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशा'

ऋ. २.३१.५

(४) विषयासक्ति से एक दूसरे को देखने वाले स्त्री पुरुष

'निष्षापया मिथूदृशा'

ऋ. १.२९.३; अ. २०.७४.३.

(४) मिथ्या दृष्टि से युक्त स्त्री पुरुष (६) दुःख से मिले विषय सुख को ही वास्तविक सुख मानने वाले, (७) परस्पर प्रेम से मिथुन होकर सुसंगत होकर देखने वाले ।

मिथोयोध – परस्पर युद्ध करने वाला सिपाही ।
'मिथोयोधः परामृष्टा'
अ। १२.५.२४

मिनन्ति – हिंसा करते हैं ।
' कदा ते मर्ता अमृतस्य धाम
इयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः '
ऋ. ६.२१.३
कब मनुष्य तुझ अमर के धाम में यज्ञ के इच्छुक कभी हिंसा नहीं करते । (२) नष्ट करती हैं ।
'ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि'
ऋ. ७.४७.३
वे नदियाँ इन्द्र के यज्ञादि कर्मों को (इन्द्रस्य व्रतानि) नष्ट नहीं करतीं (न मिनन्ति) ।

मिनानः – (१) तौलने वाला वणिक् । आज भी मेनन उपाधि मद्रास में हैं ।
'दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमानाः
जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे'
ऋ. ७.१८.१५
दुष्ट कलाबाज तौलने वाले वणिक् जन सुन्दर दान देने वाले यजमान या सुदास राजा के लिए विविध प्रकार से भोजन देवें ।

मिनीमसि – हम तोड़ते हैं ।
'प्र देव वरुण व्रतं ।
मिनीमसि द्यवि द्यवि'
ऋ. १.२५.१; तै.सं. ३.४.११.६; मै.सं. ४.१२.६: १९७.१०
हे परमेश्वर, जो भी व्रत हम दिन प्रतिदन तोड़ा करते हैं ।

मिनोति – श्रयति (श्रयण लेता है) । 'मि' धातु श्रयण लेना अर्थ में आया है । लट् प्र.पु. ए.व. का यह रूप है ।

मिमाति – निर्मिमीते, निर्वर्तयति, करोति, (निर्माण करता है, निवर्तन करना है, करता है) ।

मिम्यक्ष – 'अक्ष' धातु का यङ्लङ्न्त रूप । अर्थ है-जल्द-जल्द चलती है या बार बार मिलकर एकता प्राप्त करती है-सा. (२) जानती है-दया.
'मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी'
ऋ. ६.५०.५
हे मरुतो, जिन तुम लोगों के साथ रुद्र की पुत्री माध्यमिका वाक् जल्द जल्द चलती है, अथवा बार बार मिलकर एकता प्राप्त करती है । -सा. अथवा जिनमें दिव्य गुण सम्पन्ना रानी राज्य कर्म जानती हैं ।

मिमानः – (१) देता हुआ ।
'ओ जो मिमानो विमृधो नुदस्व'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२
हे मन्यु ! हमें बल देकर (ओजो मिमानः) शत्रुओं को (मृधः) संग्राम से भगा (विनुदस्व) । (२) हिंसा करता हुआ ।
'दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमानाः'
ऋ. ७.१८.१५; नि. ६.६.

मिमाना – (वि,द्वि.व.) । मिमानौ, निर्मिमानौ, उत्पादयन्तौ (निर्माण या उत्पादन करते हुए या निर्माता) ।
मा + शानच् = मिमान । द्विवचन में मिमानौ । वैदिक रूप है 'मिमाना' ।
अर्थ है – (१) निर्माण करने वाले सूर्य और अग्नि या (२) अग्नि और वायु ।
'मिमाना यज्ञं मनुष्यो यजध्यै'
ऋ. १०.११०.७; अ. ५.१२.७; वाज.सं. २९.३२; मै.सं. ४.१३.३: २०२.७; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१२.
मनुष्य की पूजा के निमित्त (मनुषो यजध्यै) यज्ञ का निर्माण करने वाले सूर्य और अग्नि (यज्ञं मिमाना) ।
(२) अग्नि और वायु – ज.दे.श. ।

मिमाय – निर्मिमीते (बनाते हैं) । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग । माङ् धातु मान या निर्माण अर्थ में आया है ।

मिमिक्षतम् – सेचन करो ।

मिमिक्षुः – वृष्टि करने वाला ।
'गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारम्'
ऋ. ३.५०.३.

मियेध – (१) शत्रु हनन का कार्य संग्राम (२) मेघ अर्थात् ज्ञान रूप पवित्र यज्ञ, (३) परस्पर संगति या मैत्री भाव
'यत्त्वा होतारमनजन् मियेधे'
ऋ. ३.१९.५
(४) सत्संग करने वाला
आसानेभिर्यजमानो मियेधैः'
ऋ. ६.५१.१२
(४) पवित्र यज्ञ

'उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे'
ऋ. ७.१.१७

मियेध्य – डुमिञ् + केध्यच् = मियेध्य । अर्थ – (१) अग्नि द्वारा अन्तरिक्ष में पदार्थों का प्रक्षेप, (२) यज्ञकर्त्ता यजमान, (३) हस्तक्रिया कुशल विद्वान्, (४) प्रजापति पद के योग्य राजा (४) ऋत्विक् (६) उपासना करने योग्य ईश्वर.
'वसिष्वा हि मियध्य
वस्त्राण्यूर्जां पते
सेमं नो अध्वरं यज'
ऋ. १.२६.१
हे यज्ञ कर्त्ता यजमान, ऋत्विक्, प्रजापति पद के योग्य राजन्, उपासना करने योग्य परमेश्वर, हे अन्नों, बलों, पराक्रमों और समस्त परम रसों के परिपालक (ऊर्जांपते) तू वस्त्रों को धारण कर (वस्त्राणि वसिष्व) और हमारे हिंसा रहित यज्ञ रूप कर्म कर ।
(७) मेघार्ह । (८) अग्नि का विशेषण ।
'वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य'
ऋ. १.३६.९; वाज.सं. ११.३७; तै.सं. ४.१.३.४; मै.सं. २.७.३: ७७.१६; ४.९.३; १२३.१२; का.सं. १६.१३; श.ब्रा. ६.४.२.९; तै. आ. ४.५.२.

मिषन् – मिष् (स्पर्द्धा करना) + शतृ = मिषन् । स्पर्द्धमानः (सदा स्पर्द्धा करता हुआ) । (२) आंखें निमीलित करता हुआ भूलोक–दया. (३) तरसता हुआ सूर्य – यास्क ।
'गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तम्'
ऋ. १.१६४.२८, अ. ९.१०.६; ऐ.ब्रा. १.२२.२; आश्व.श्रौ.सू. ४. ७.४; नि. ११.४२

मिह् – (१) मेघ, (२) शस्त्र वृष्टि करने वाला सैन्य
'मिहं वसान उपहीमदुद्रोत'
ऋ. २.३०.३
(३) जल वृष्टि करने वाली विद्युत
'न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिं च'
ऋ. १.३२.१३
जिस जल वृष्टि और अव्यक्त शब्द करने वाली विद्युत को भी मेघ चारों ओर फेंकता है वह भी सूर्य तक नहीं पहुंचती है ।

मी – (धा.) । गति करना ।
'यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे'
अ. ४.२४.४.

मीढ – संग्राम ।
'स ज्ञामिभिर्यत् समजाति मीढे
ऋ. १.१००.११
वह बन्धुवर्गों से मिलकर जब युद्ध में शत्रुओं को उखाड़ फेंकता है ।

मेढ – प्रजननाङ्ग
मेढ्रं ते शुन्धामि'
वाज.सं. ६.१४; श.ब्रा. ३.८.२.६.

मीढ्वान् – (१) मेघ के समान ज्ञान का वर्षण करने वाला, (२) बरसाने वाला
'यथा नो मीढ्वान् स्तवते सखा तव'
ऋ. २.२४.१
(३) वृष्टि द्वारा सेचक
'मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात्'
ऋ. १.२७.२; साम. २.९८५
मेघ के समान प्रजाओं पर सुख और शत्रुगण पर शस्त्र आदि बरसाने वाला वीर्यवान् पुरुष हमारा प्रेरक आज्ञापक अभिषेक युक्त राजा हो ।

मीढुष् – (१) समस्त संसार में जीवन सेचन करने वाला । मिह (बरसाना) + उष् = मीढुष् ।
'महिव्रतस्य मीढुषः'
अ. १३.३.१
(२) सर्वदाता
'अरं दासो न मीढुषे कराणि'
ऋ. ७. ८६.७
(३) सुखों का वर्षण करने वाला
(४) जल बरसाने वाला मेघ
'मित्राय वोचं वरुणाय मीढुषे'
ऋ. १. १२९.३; १३६.६.

मीढुषःमरुतः – (१) मनोरथों को बरसाने वाले मरुत् – सा.
(२) भक्त मनुष्य–दया. ।

मीढुषः – (ब. व.) । ए.व. का रूप मीढुष् है । अर्थ– (१) मनोरथों को बरसाने वाले मरुत् –सा. (४) परमात्मा के भक्त या सेवक – दया. ।
'तां आ रुद्रस्य मीढुषो विवासे'
ऋ. ७.५८.५
मैं उन मनोरथों को बरसाने वाले रुद्र के पुत्र मरुतों की परिचर्या करता हूँ (आ विवासे) – सा. । मैं दुःख भंजक परमात्मा के (रुद्रस्य) सेवक मनुष्यों की सेवा करता हूँ (मीढुषः

आविवासे) – दया.

मीढुष्टम – (१) वृक्ष तथा उद्यान् आदि के सेचन में समर्थ
(२) रुद्र
'नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च'
वाज.सं. १६.२९; वाज.सं. (का.) १७.४.३; तै.सं. ४.५.५.१; मै. सं. २.९.५: १२४.११; का.सं. १७.१४
'मीढुष्टम शिवतम'
वाज.सं. १६.५१; वाज.सं. (का.) १७.८.५; तै.सं. ४.१०.४; मै. सं. २.९.९: १२७.१५; का.सं. १७.१६.
(४) प्रेसेत्कृतम्, (५) अति सेवनीय (६) सुखों ज्ञानों और ऐश्वर्यों को बरसाने वाला
'कद् रुद्राय प्रचेतसे'
मीढुष्टमाय तव्यसे ।
वोचेम शन्तमं हृदे'
ऋ. १.४३.३
उत्तम ज्ञान से युक्त (प्रचेतसे), सुख ज्ञान और ऐश्वर्यों को प्रजा पर बरसाने वाले (मीढुष्टमम्) । बहुत बड़े बल शाली (तव्यसे) हृदय में विराजमान (हृदे), दुष्टों को रुलाने वाले राजा (कद् रुद्राय) परमेश्वर तथा उत्तम उपदेश देने वाले आचार्य को प्रसन्न करने के लिए शान्ति दायक वचन बोलें ।

मीढुष्मती – (१) सेक्ता वीर्यप्रदः स्वामी यस्याः – दया.
(जिसका स्वामी वीर्य प्रद हो)
(२) वर्षा करने वाले मेघ से युक्त मेघमाला, (३) ज्ञान, वर्षा और ऐश्वर्य की वर्षा करने में समर्थ प्रजा पोषक स्वामी की प्रजा ।
'मीढुष्मती व पृथिवी पराहता'
ऋ. ५.५६.३ ;

मीढुष्मान् – (१) उत्तम सेचन करने वाला, (२) प्रजा को बढ़ाने वाले गुणों से युक्त
'मीढुष्मन्तो विष्णुर्मृडन्तु वायुः'
ऋ. ६.५०.१२

मीमयत् – मीमयति, शब्दं करोति (शब्द करता है) । मी धातु शब्द कर्मा अर्थात् शब्द करना अर्थ में आया है ।

मीमयति – शब्द करता है ।

मीमांसमानः – (१) विवेचना करता हुआ ।
'पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः'
अ. ९.१.३
(२) जो स्वयं शंका कर रहा हो ।
'न द्विषतोऽन्नमश्नीयात्
न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य'
अ. ७.६ (२) ७

मीमांसित – (१) शंका का पात्र, सन्देह पात्र पुरुष
'न द्विषतोऽन्नमश्नीयात्
न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य'
अ. ९.६ (२) ७

मीमृषः – (१) 'मृष्' (मर्षण करना, क्षमा करना, मार्जन करना) के लोट् म.पु. ए.व का रूप । अर्थ–क्षमा कर, मार्जन कर या परिमार्जित कर ।
(२) दूर का ।
'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः'
ऋ. १.३१.१६; अ. ३.१५.४; ला.श्रौ.सू. ३.२.९; आश्व.गृ.सू. १. २३.२५
हे अग्नि, हमारी इस व्रत–लोभ रूपिणी हिंसा या मारण रूपिणी संसृति को क्षमा कर या मार्जन कर ; –सा.
हे परमेश्वर, तू हमारी इस मृत्यु को परिमार्जित कर । – दया .
हे अग्नि, परमेश्वर, हमारी इस नाश करने वाली अविद्या या हिंसा भावना को दूर कर ।

मीयमान – मापे जाने योग्य ।
'सुमिती मीयमानः'
ऋ. ३.८.३; मै.सं. ४.१३.१: १९९.५; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २. २.८; तै.ब्रा. ३.६.१.१.

मीवान् – (१) हिंसक, (२) घातप्रतिघात में कुशल
'कुमारेण च मीवता'
वाज.सं. २८.१३; तै.ब्रा. २.६.१०.१

मुक्षी – मुञ्ज ।

मुक्षीजा – (१) मुढ्ज की रस्सी
'मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९.
जैसे मुञ्ज की रस्सी से (मुक्षीजया) वेगवान् अश्व को बांधते हैं (उत्सिनाति)
(२) मुक्षीजा मोचनात् च सयनात च तननात् च (मुच्, सि और तन क्रियाओं के योग से 'मुक्षीजा' पद बना है । इस की सिद्धि पृषोदरादि शब्द की तरह की गई है) ।
अवमुच्यते पक्षिणः पादे, सीयते बध्यते हि तथा

पक्षी, अथवा सा मुक्षीजा पक्षिणः बधार्थे तन्यते ।
मृगपक्ष्यादि बन्धनरज्जुः (मृग पक्षी आदि को बांधने की रस्सी मुक्षीजा है) ।
मुच + सि + तन् = मुक्षीज । तन् का इज हो गया है ।
मुच्यमाना सती बन्धनं जयति (पक्षी मुक्त किए जाने पर बन्धन पर जय पाता है) । पक्षी को पालने वाला पक्षी का पैर बांध कर छोड़ देता है । इसी रस्सी को मुक्षीजा कहते हैं ।

मुख्या – मुख में विद्यमान ।
'वि ते मुख्यां नयामसि'
अ. ६.४३.३

मुग्ध वैनं शिन – (१) मोह में प्राप्त होकर विनष्ट होने वाला, (२) कार्त्तिक मास, (३) नाशवान् पदार्थों या आचरणों में लिए पुरुष ।
'मुग्धाय वैनं शिनाय स्वाहा'
वाज.सं. ९.२०; १८.२८; श.ब्रा. ५.२.१.२

मुग्धःदेवाः – (१) परमात्मा से मुग्ध दिव्य पुरुष, (२) मूढ़ देवता– सा .
'मुग्धा देवा उत शुनायजन्त'
अ. ७.५.५.

मुच्यते – मुक्त होता है, छुटकारा पाता है, मुच् धातु के कर्म वाच के प्र.पु.ए. व का रूप । दे. 'कृणुते'
'स पादुरस्य निर्णिज्रो न मुज्यते'
ऋ. १०.२७.२४; नि. ५.१९
इस आदित्य का गमन (स अस्य पादुः) श्रम से (निर्णिजः) मुक्त नहीं होता (न मुच्यते) ।

मुञ्ज – (१) शर औषदि, काश के चार प्रकार हैं । काश, मुञ्ज, मृदुदर्भ और शर
'अन्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत्'
अ. १.२.४
काशः स्वादू रसे तिक्तः
विपाके वीर्यतो हिमः
तर्पणो बलवद् वृष्यः
श्रम शोषभयापहः
काशद्वयं च पिताम्र
कृच्छ्रजित् मधुरं हिमम्
मुञ्ज के गुण –
मुञ्जोऽनुष्णो विसर्पाम्र
मूत्र वस्त्वक्षि रोगनुत्
वाणाह्वो मधुरः शीतः
पित्तदाहतृषापहः ।
दर्भ के गुण –
यज्ञमूलं हितं रुच्यम्
मधुरं पित्त नाशनम्'
रक्तज्वर तृषाश्वास
कामल दोष शोषकृत्
दर्भौ द्वौ च गुणे तुल्यौ
तथापि च सितोऽधिकः ।
(२) विमुच्यते इषीकपा (इषीका या सींक से वह नियुक्त किया जाता है, निकाला जाता है इसी से इसका नाम मुञ्ज हुआ) ।
इष् (गत्यर्थक) + ईकक् = ईषक् । मुच् + क = मुञ्ज (क् का ज् और नुम् का आगम बाहुलक नियम से) ।

मुञ्जनेजन – (१) मुञ्जों से शुद्ध किया हुआ, (२) रोगों से छुड़ाने और शुद्ध कर देने वाला ओषधि रस ।
'इदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्'
ऋ. १.१६१.८

मुद् – (स.)मुद् + क्विप् । (१) सबको मोद देने वाला, सबको हर्षप्रदान करने वाला ।
'तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम'
वाजसं. १८.३८; तै.सं. ३.४.७.१,
(२) हर्षदायिनी सम्पदा
'मुदः प्रमुद आसते'
ऋ. ९.११३.११

मुद्ग – (१) मूंग, एक दहलन अन्न ।
'मुद्गाश्च मे खश्वाश्च मे'
वाज.सं. १८.१२; तै.सं. ४.७.२; मै.सं. २.११.४: १४२.४; का.सं . १८.९.

मुद्गल – (१) आनन्दमयी दशा में लीन होने वाला जीवनमुक्त (२) आनन्द धन योगी
'यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलम्'
अ. ४.२९.६
(३) आनन्द प्राप्त करने वाला विद्वान्
'गवां मुद्गल प्रधने जिगाय'
ऋ. १०.१०२.५; नि. ९.२३
(४) मुद्गवान् मुद्गलिकः वा, मदनं गिलति इति वा, मदङ्गिलः वा । मुद्ग + ल (मत्वर्थक) मुद्गलः मुद् + गिल + क = मुद्गल । पृषोदरादिवत् ।

अर्थ- मुद्गर जिसे योद्धा अखाड़े में भांजते हैं, (२) मुद्ग की विद्या वाला, (६) मुद्गप्राय भोजन करने वाला मुद्गल है, (७) मदन या काम देव को मिल जाने वाला भी मुद्गल है । (८) मद को ही गिल जाने वाला, (९) मद या इर्ष को गिल जाने वाला (१०) निर्वृत्त सर्वेन्द्रियार्थ- जो सभी इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त हैं वह मुद्गल है, (११) भार्म्यश्व का पुत्र मुद्गल ऋषि -सा. (१२) सात्विक अन्न खाने वाला, जितेन्द्रिय , निरभिमान या हर्ष शोक में समचित्त राजा - ज.दे.श.

'तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रम्'

गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'

उस सांढ से मैं मुद्गल ने सुन्दर लक्ष लक्ष गाएं युद्ध में जीतीं । -सा.

उस सांढ़ से सात्विकान्न भोजी, जितेन्द्रिय, निरभिमान या हर्ष शोक में समचित्त राजा ने (मुद्गलः) धनापहारक या प्रजाभक्षक शत्रु राजा को (सूभर्वम्) तथा लक्ष लक्ष गाएं युद्ध में जीतीं ।

मुद्गलानी - (१) सुखजनक साधनों को प्राप्त करने वाली सेना ।

'रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ'

ऋ. १०.१०२.२

मुद्र - मुद् + र । आनन्द जनक

'यद्वो मुद्रं पितरः सोम्यं च'

अ. १८.३.१९

मुद्रा - (१) मुद् + र + टाप् (मर्यादा) ।

मुनिकेश - (१) मुनि के समान जटा वाला

'उद्धर्षिणं मुनिकेशम्'

अ. ८.६.१७

मुनेःमूलम् - (१) मुनि अर्थात् तेजस्वी अग्नि का मूल अर्थात् प्रतिष्ठा स्थान-आग्नेय तत्व (२) तीव्र जलन पैदा करने वाला पदार्थ (३) सम्भवतः मुनि नामक कोई औषधि कौशिक सूत्र में गण्डमाला की चिकित्सा के लिए विहित । तीखी शलाका (शर) से गण्डमाला के फोड़ों को फोड़कर उनका रक्त निकालना, प्रातः काल गर्म जल से धोना, काली ऊन को जलाकर उसे घी में मिलाकर मलहम बनाकर लगाना । कुत्ते से चटाना, गले पर से गन्दा खून निकालने के लिए गोह या जोंक लगाना, सेंधा नमक पीसकर उन पर छिड़कर कर मिट्टी लगाकर मलना, तांत के गण्डमाला के नसों को बांधना ।

मुमुक्षु - (१) एक दम भाग छूटने को तत्पर अश्व, (२) अपने को संसार - बन्धन से मुक्त करने की इच्छा करने वाला ।

मुमुग्धि - भृशं मुञ्च (बार बार मुक्त कर) । मुच् धातु के यङन्त म. पु. ए.व. का रूप ।

'मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्'

ऋ. १०.७३.११; साम. १.३.१९; का.सं. ९.१९; ऐ.ब्रा. ३.१९.१७; तै.ब्रा. २.५.८.३; तै.आ. ४.४२.३; आप.श्रौ.सू. ६.२२.१; नि. ४.३

हे आदित्य, बन्धनों में बंधे पक्षियों की तरह (निधया बद्धान् इव) हमें अपनी किरणों से युक्त कर (मुमुग्धि) ।

मुमुचानः - (१) मुक्त होने वाला का टूटने वाला फल या खूंटे से घूटने वाला पशु

'द्रुपदादिव मुमुचानः'

अ. ६.११५.३; वाज.सं. २०.२०; मै.सं. ३.११.१०: १५७.११; का.सं. ३८.५; श.ब्रा. १२.९.२.७; तै.ब्रा. २.४.४.९; ६.६.३; आप. श्रौ.सू. १९.१०.५.

मुर् - शत्रुमारक - बली पुरुष ।

'न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरः'

ऋ. ८.६६.२; साम. २.३८

मुष् - चोर

'समीं पणेरजति भोजनं मुषे'

ऋ. ५.३४.७

मुष्क - (१) मुष् + क । (२) मुख (खण्डनार्थक) + क = मुष्क (षत्व छान्दस) । मोचनात् वा इति निरुक्तम् । प्रषेर्वा । षस्य मः छान्दस ।

अर्थ - (१) शत्रुओं या अज्ञान का खण्डन करने वाला

(२) बन्धन से छुड़ाने वाला (३) पुष्टि करने वाला क्षात्र या ब्रह्म बल ।

'मुष्काविदस्या एजतः'

अं. २०.१३६.१; वाज.सं. २३.२८; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.२

(४) अण्डकोष, (५) उत्पादक अंग

'अरायानस्या मुष्काभ्याम्'

अ. ८.६.५

मुष्कभारः – (१) परिपुष्ट, (२) सामर्थ्यवान्
'प्रमुष्कभारः श्रव इच्छमानः'
ऋ. १०.१०२.४

मुष्कयोर्बद्धः – (१) अण्डकोषों में बद्ध (२) लंगोट बद्ध ब्रह्मचारी (३) गर्भाशयादि स्थानों में बंधा हुआ ।
'किमु त्वावान् मुष्कयोर्बद्ध आसते'
ऋ. १०.३८.५; तै.ब्रा. १.२२८

मुष्कर – (१) कमल का नाल ।
'क्षिणोमि मुष्करं यथा'
अ. ६.१४.२

मुषायत् – (१) अचानक ले जाता हुआ ।
'मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान्'
ऋ. १.६१.७; अ. २०.३५.७
(२) अपहरण करता हुआ

मुष्काबर्ह – बैलों के अण्डकोशों को तोड़ देना, कुटवा देना या कटवा देना ।
'मुष्काबर्हो गवामिव'
अ. ३.९.२

मुषित – नष्ट हो गया हुआ ।
'हिमेव पर्णा मुषिता वनानि'
ऋ. १०.६८.१०; अ. २०.१६.१०

मुष्टिः – (१) दुःख से छुड़ाने वाला सुसंगठित राष्ट्र, (२) शत्रुनाशक शस्त्रबल, (३) मुट्ठी, (४) राष्ट्र (राष्ट्रंमुष्टिः) (५) शासन ।
'गभे मुष्टिमतं सयत्'
वाज.सं. २३.२४; तै.सं. ७.४.१९.४; श.ब्रा. १३.२.९.७; तै. ब्रा. ३.९.७.५; आश्व.श्रौ.सू. १०.८.१०; शां.श्रौ.सू. १६.४.१ .
(६) मुष्टिः मोचनात् वा, मोषणात् वा मोहनात् वा । मुच्, मुष् या मुह् धातु से 'मुष्टि' शब्द बना है । इसमें क्या छिपा हुआ है ऐसा पूछकर मुट्ठी को लोग खोलते या बन्द करते हैं अतः यह मुष्टि है (मुच्यते ह्यसौ किमस्त्यपिहितेऽत्रेति केनचित् पृष्टे सति) मुच् + क्तिन् = मुष्टि ।
परधन हरण करने में मुट्ठी का उपयोग किया जाता है अतः यह मुष्टि हुआ (तेन हि मुष्यते पर धनम्) । मुष् + क्तिन् = मुष्टि ।
मुट्ठी में क्या रखा है यह जानने के लिए सभी उत्सुक या मुग्ध रहते हैं अतः इसे मुष्टि कहा गया (तत्र हि मुह्यतिपरः किमेतत् मुष्टौ) मुह् + क्तिन् = मुष्टि । क्तिच् प्रत्यय भी किया जाता है । मुच् के च् का या मुह् के ह् का ष पृषोदरादिवत् हुआ है ।
क्तिन् प्रत्यय कर्म, करण या अधिकरण अर्थ में हुआ है ।

मुष्टिहत्या – (१) मुट्ठी या मुक्के से हत्या, (२) चित्त वृत्ति को विषयों में हर ले जाने वाली या आत्मा के स्वरूप को संप्रमोष या विस्मरण करा देने वाली तामस तृष्णा को मारना ही मुष्टि हत्या है ।
'नि येन मुष्टिहत्यया
नि वृत्रा रुणधामहै'
ऋ. १.८.२; अ. २०.७०.१८
(३) बाहुयुद्ध ।

मुष्टिहा – (१) मुक्कों से मारने वाला ।
'शकम्भरस्य मुष्टिहा'
अ. ५.२२.४
(२) चोरी आदि को नष्ट कर देने वाला, (३) मुट्ठी के समान संघ बनाकर रहने वाले पांचों प्रजाओं द्वारा शत्रु को दण्डित करने वाला
'युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतः'
ऋ. ५.५८.४

मुषीवान् – (१) स्तेय कर्मण भित्तिं भित्वा दृष्टिमावृत्य परपदार्थपहर्त्ता (सेन्ध मारकर चोरी से दूसरे की चीज लेने वाला) ।

मुसल – मुहुसरम् मुसलम् (जो बार बार अन्न के प्रति चलता है) । मुहु + सृ + अलच् = मुसल (मुरल –उरल –मुसल–कुवल आदि के सदृश) । मुहु का मुस और सृ के स का लोप हो गया है ।

मुह – मोह ।
'स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्'
ऋ. ६.१८.२

मुहुक – (१) बार बार कार्य करने वाला सहकारी, (२) बार बार जगत् को बनाने वाला विकृति युक्त कारण ।
'यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति'
ऋ. ४.१७.१२
(३) युद्ध
'कस्मिञ्चच्छूर मुहुके जनानाम्'
ऋ. ४.१६.१७

मुहुः - मुहुः मूढ इव कालः । जो समय मूढ़ के समान अव्यक्त ही चला जाता है । मुह् + उस् मुहुष् अथवा मुहुः । यह अव्यय है। (२) यावत् आभीक्ष्णञ्च इति - यास्क । अर्थात् जब तक आभीक्ष्ण है तब तक मुहुः है । काल बार बार आता है और चला जाता है । सम्मुख आए समय को आभीक्ष्ण या अभिक्षण कहते हैं । इसी से बिगड़ कर 'अभी' बना है ।

'मुहुरुक्था च शंसत'

ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१; साम. १.२४२; २.७१० परमात्मा के प्रशस्त गुण कर्मों का बार बार गान करो ।

मुहुर्गी - (१) बार बार गर्जन करने वाला, (२) बार बार सेना और अधीन रथों की आज्ञाएं देने वाला ।

'मुहुर्गीरेतो वृषभः कनिक्रदत्'

ऋ. १.१२८.३; का.सं. ३९.१५.

बार बार गर्जन करने वाला बैल या साँढ़ जिस प्रकार गरजता और वीर्य को गौओं में स्थापन करता और बार गर्जन करने वाला मेघ जल को भूमियों पर बरसाता है....

मुहूर्त - (१) मुहूर्तम् एवैः अयनैः अवनैः वा (मुहूर्त अयन तथा अवन अर्थों में बना है) । इ (जाना) + ल्युट् = अयन । अव (कान्त्यर्थक) + ल्युट् = अवन, इ (गत्यर्थक) + अच = एव । मुहूर्त वह है जो गमन शील हो या रक्षा करने वाला हो या सुन्दर हो ।

(२) मुहुः + ऋतुः = मुहूर्तः (बार बार आने वाला काल) । मुह + उस् = मुहुः ऋ (गत्यर्थक) + तु = ऋतु, मुहुः + ऋतु = मुहूर्त । अर्थ - क्षण, समय का एक भाग, शुभसमय ज्योतिष में ४८ मिनट का एक मुहूर्त माना गया है । किञ्चित काल

(३) घड़ी भर, (४) मुहुः + ऋतम् = मुहूर्त । बार बार ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान

'ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः'

ऋ. ३.३३.५

मूक - (१) गूंगा ।

'अनन्ताय मूकम्'

वाज.सं. ३०.१९; तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

मूजवत् - (१) मूजवान् नामक पर्वत जहाँ सोमलता का होना वेद में लिखा है । मूजवान, शब्द मुञ्जवान् से हुआ है । इस पर्वत पर मुञ्ज (झलास) प्रचुर मात्रामें पाया जाता है । अत: मुञ्ज + वतुप् = मुञ्जवत् बना । 'मुञ्जैः तद्वान्' (मुञ्जों से भरा) पृषोदरादिवत् सिद्ध ।

'तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहि'

तै.सं. १.८.६.२; मै.सं. १.१०.४: १४४.१४; १.१०.२०: १६०.१५; का.सं. ९.७; ३६.१४; ला.श्रौ.सू. ५.३.१२.

हे रुद्र, उस पाथेय के साथ (तेन अवसेन) मूजवान् पर्वत के उस पार मूजवतः पर जा (अतीहि) ।

मूजवान् - (१) मूंज वाला प्रदेश, (२) मूजवान् पर्वत, (३) कमजोर देह धारी

'ओको अस्य मूजवन्तः'

अ. ५.२२.५

मूत्र - मुच्यते यत् तत् मूत्रम्

उणादि - ४.१६३

अर्थ - मूत्र, त्यागने योग्य पदार्थ ।

'रेतो मूत्रं वि जहाति'

वाज.सं. १९.७६, मै.सं. ३.११.६: १४९.४; का.सं. ३८.१; तै. ब्रा. २.६.२.२.

मूर - (१) मूर्च्छाकारी विचार ।

'याघं मूरमादधे'

अ. १.२८.३; ४.१७.३

(२) मुह् + क्त = मूढ़ = मूर । मूर्ख, अज्ञानी ।

'मूरा अमूर न वयं चिकित्वः -
महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से'

ऋ. १०.४.४; नि. ६.८

हम विद्यार्थी मूढ़ हैं, हम जगत्पिता की महिमा नहीं जानते । हे अमूढ़ मित्र वनस्थ आप उसका महत्व जानते हैं । अथवा, हे अमूढ़ चेतनवान् अग्नि, हम मूढ़ भला तेरा माहात्म्य क्या जानें । तू ही अपना माहात्म्य जानता है । (३) मृत्यु । मृङ् (प्राण त्याग करना) से मूर बना है । आप्टे ने मृत्यु अर्थ ही स्वीकार किया है ।

मूरदेव - (१) मरने मारने वाला

'परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि'

ऋ. १०.८७.१४; अ. ८.३.; १०.५.४९

(२) मारक व्यापाराः राक्षसाः -सा.

(मारने वाले राक्षस)

(३) मूलेन औषधेन दीव्यन्ति परेषां हननाय क्रीडन्ति
(४) अथवा, मूढ़ाः कार्याकार्यविभागबुद्धि शून्याः सन्तो ये दीव्यन्ति -सा. ।
हिंसक राक्षस या विष औषधों से दूसरों को मार कर मजा लूटने वाले का विवेक रहित ही जूआ खेलने वाले ।
(४) मूर्ख देवों को पूजने वाले
(६) मूढ़ होकर व्यसनों में क्रीड़ा करने वाले
'आ जिह्वया मूर देवान् रभस्व'
ऋ. १०.८७.८; अ. ८.३.२.
(७) मृत्यु की पीड़ा देने वाला ।
'विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु'
ऋ. ७.१०४.२४; अ. ८.४.२४

मूर्ण - तोड़ दिया गया ।
'मूर्णा मृगस्य दन्ताः'
अ. ४.३.६

मूर्धा - (१) शिरोवत् प्रधानभूत, सिर के सदृश जो प्रधान है, मूर्धा ।
'मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निः'
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७.
रात में अग्नि भूलोक का मूर्धा रूप होता है । आधुनिक अर्थ- ललाट, भौंह, सिर, प्रधानभूत, चोटी, शीर्ष, नेता मुखिया, आगे, सामने
(२) मूर्तम्, अस्मिन्, धीयत इति मूर्धा । मूर्त + धा + कनिन् = मूर्धन् (इसमें प्राणिमात्र उप निबद्ध होकर रखा है, अतः यह मूर्धन् है) । मूर्तधा से ही मूर्धा हुआ । जैसे सिर कट जाने से प्राणी अवश्य मृत्यु का भागी होता है । उसी प्रकार अग्नि के अभाव में सभी मर जायेंगे । अनिवार्य होने से भूलोक का मूर्धा माना गया है । अर्थ है- अग्नि, मूर्धा

मूल - (१) आदिकारण
'नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यः'
अ. ६.१३.३
(२) मूल नामक नक्षत्र
'ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम्'
अ. १९.७.३
(३) मूलं मोचनात् वा मोषणात् वा मोहनात् वा (मूल शब्द मुच् , मुष् या मुह् धातु से बना है) । मुच्, मुष् , मुह् + लक् = मूल । धातु का मू भाव । जड़ उखाड़ी जाती है (मुच्यते), जड़ पृथ्वी से रस चूसती है (मुष्णाति) तथा जड़ मूढ़ के समान बलवान् होती है (मूढ़ भवति) ।

मूलकृत् - (१) अपनी जड़ आप ही काटने वाला
'यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानः'
अ. ४.२८.६

मूलबर्हण - (१) मूल नक्षत्र जिसमें उत्पन्न बालक मूल का ही नाश करता है-सा.
(२) नाभि में बालक की लगी नाड़ी का काटना -ज.दे.श.
'मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्'
अ. ६.११०.२; ११२.१

मूलबर्हणी - (१) मूल का नाश करने वाली ।
'मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा'
अ. १२.५.३३

मूषः - मुष् (चुराना) + क्विप् = मुष् । मूस अन्न चुराता है । मूष् शब्द बहुवचनान्त है । अर्थ है- मूस ।
'मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः'
ऋ. १.१०५.८; १०.३३.३; नि. ४.६.
मुझे मानसिक चिन्ताएं या कामनाएं (आध्यः) उसी प्रकार खाए जाती है जैसे मूस मैला सूत्र, घी लगी पूंछ या अपना जननेन्द्रिय ।

मूषिक - मूष् (स्तेय) + किकन् = मूषिक । अर्त- (१) मूस, (२) चोर ।

मृक्तवाहस् - (१) शुद्ध विद्या का ग्रहण करने वाला, (२) ज्ञान कर्म में निष्ठजीव ।
'द्वितीय मृक्तवाहसे'
ऋ. ५.१८.२

मृक्षतम् - दूर करो ।

मृक्ष - अतिशुद्ध - इन्द्र
'यः शक्रो मृक्षो अश्व्यः'
ऋ. ८.६६.३; शां.श्रौ.सू. १८.८.१५.

मक्षिणी - (१) शुद्ध प्रजा, (२) योग भूमि, (३) विशुद्ध भूमि ।
'देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु'
ऋ. १०.९८.६

मृग - (१) सिंह, (२) ज्ञानी जनों द्वारा खोजने योग्य, (३) परम पवित्र पावन परमेश्वर ।
'द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान्'

ऋ. ७.८७.६
(४) मृग ।
'स प्रक्षन्महिषं मृगम्'
ऋ. ८.६९.१५; अ. २०.९२.१२
(५) इधर उधर भागने वाला या आक्रामक हिंसक पशु या शत्रु, (६) मन (७) हिरण ।
'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तः'
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.२; नि. ९.१९.
यह इषु अर्थात् बाण सुन्दर पंख आच्छादित करता है तथा इसका दांत मृग के सिंह जैसा होता है । (अस्य दन्तः मृगः) (९) मृज् (गत्यर्थक) + घ = मृग । यहां बाहुलक से वृद्धि नहीं हुई है । 'चुजोः कः' से ज् का ग् ।
नित्यं ह्यसौ मार्ष्टि गच्छति (यह सदा चलता है अतः मृग है) ।
(१०) सिंह और व्याघ्र के अर्थ में प्रयोग-
'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः'
ऋ. १.१५४.२; १०.१८०.२; अ. ७.२६.२; ८४.३; साम. २.१२२३; वाज. सं. ५.२०; १८.७१; तै.सं. १.६.१२.४; मै.सं. १.२.९: १९.१२; ४.१२.३: १८३.१४; का.सं. २.१०; ८.१६; श.ब्रा. ३.५.३.२३; ९.५. २.५.
हे इन्द्र, तू सिंह व्याघ्र के समान भयंकर (मृगो न भीमः) हिंसक होने के कारण.कुत्सित गमन या कुत्सित चरण या सर्वत्रगामी एवं पर्वत निवासी है (गिरिष्ठाः)

मृगदन्तः - मृग या सिंह के जैसा दांत ।

मृगयः - (१) शुद्ध या स्वामी प्रभु का अन्वेषक ।
'निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनः'
ऋ. ८.३.१९

मृगण्युः - मृगया करने वाला ।
'युवां मृगेन वारणा मृगण्यवः'
ऋ. १०.४०.४

मृगयस् - (१) प्राणी -दया. (२) जल एवं खाद्य अंश ढूंढने वाला प्राणी ।
'धन्वान् वा मृगयसो वितस्थुः'
ऋ. २.३८.७

मृगयक् - मृगो का शिकारी ।
'नमः श्वनिभ्यो मृगयुरभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२७; मै.सं. २.९.५: १२४.७ का.सं. १७.१३

मृगय - व्याधा
'भृत्यवे मृगयुम्'
वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१.३

मृगशिरः - मृगशिरा नक्षत्र ।
'अस्तुभद्रं मृगशिरः शमार्द्रा'
अ. १९.७.२

मृगःहस्ती - (१) शुद्ध श्वेत हाथी (२) हाथी पशु ।
'मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः'
ऋ. ४.१६.१४

मृगाणां माता - (१) वनस्थ वृत्ति वनमृगों की माता तुल्य है, (२) आत्मज्ञान की खोज करने वाले गुणों अर्थात् तत्वान्वेषियों के लिए माता स्वरूप वनस्थ वृत्ति ।
'प्राहं मृगाणां मातरम्
अरण्यानिमशंसिषम्'
ऋ. १०.१४६.६

मृच् - मृचि (हिंसार्थक) + क्विप् = मृच् । अर्थ (१) विनाशकारी साधन ।
'मा नो मृचा रिपूणाम्'
ऋ. ८.६७.९

मृजानः - पवित्र करता हुआ ।
'कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रम्'
अ. १८.३.१७

मृड - (१) दया कर, हिंसा न कर ।
'अवसाय पद्वते रुद्र मृड'
ऋ. १०.१६९.१; तै.सं. ७.४.१७.१; नि. १.१७.
हे रुद्र, तू इस चरण वाले, चल चल कर घास चरने वाली गौ पर दया कर ।
(२) सं. । सबको सुखी करने वाला दयालु प्रभु ।
'मृडा सुक्षत्र मृडय'
ऋ. ७.८९.१-४

मृडति - प्रयच्छति (प्रदान करता है) मृड धातु दानार्थक है । दया और पूजा अर्थों में भी यह धातु आया है । (मृडयति रूप दानकर्मा पूजाकर्मा वा) उपदया का अर्थ रक्षा करना है ।

मृडाति - मृडातु । बल तथा धन से संस्कृति युक्त करे । मृड् धातु का लोट् अर्थ में लट् प्र. पु.ए.व. में प्रयोग ।
'स नो मृडाती दृशे'

ऋ. ४.५७.१; अ. ७.१०९.१; तै.सं. १.१.१४.२; मै.सं. ४.११.१; १६०.४; का.सं. ४.१५; आप.मं.पा. २.१८.४७; नि. १०.१५.
वह क्षेत्रपति हमें इस प्रकार के लाभ तथा सुख भोग के लिए बल तथा धन से संस्कृत या युक्त कर ।

मृडयत्तम् – सब से अधिक सुख देने वाला –अग्नि ।
'सोमाहुतो जरसे मृडयत्तमः'
ऋ. १.९४.१४

मृडयन्तु – प्रयच्छन्तु, रक्षन्तु, पूजयन्तु (दें, रक्षा करें, पूजा करें) ।

मृडयाकु – (१) सबको सुख देने वाला ।
'क्वस्य ते रुद्र मृडयाकुः'
ऋ. २.३३.७
(२) दयाशील ।
'सुशेवो नो मृडयाकुः'
ऋ. ८.७९.७

मृडीक – (१) उत्तम सुख ।
'वि मृडीकाय ते मनः
रथीरश्वं न सन्दितम्
गीर्भिर्वरुण सीमहि'
ऋ. १.२५.३
हे वायु, जैसे रथी थके घोड़े को पुचकारता है उसी प्रकार हम भी सुख के लिए तेरे हृदय या ज्ञान को स्तुतियों से बांधते हैं (सीमहि) ।

मृण – उच्छेद करना ।
'सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन्'
अ. ५.२३.६

मृन्मयी – मिट्टी की बनी ।
'मृन्मयीं योनिमग्नये'
वाज.सं. ११.५९; तै.सं. ४.१.५.४; मै.सं. २.७.६: ८१.५; का.सं . १६.४; श.ब्रा. ६.५.२.२१.

मृतभ्रज् – नष्टवीर्य, नष्टतेजाः ।
'वरुणाय मृतभ्रजे'
अ. ४.४.१

मृतस्य स्वधा – मृत गत देह का निज कर्मफल ।
'जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिः'
ऋ. १.१६४.३०; अ. ९.१०.८

मृत्यु – (१) आदित्य (स एष आदित्यो मृत्यः) ।
श.ब्रा. १०.५.१.१.
(२) अग्नि ।
अग्निर्मृत्युः
कौ.सू. १३.३
योऽग्निर्मृत्युः सः
जै.ब्रा.
(३) आदित्य के समान प्रकाशमान ज्ञानी पुरुष ।
(४) अज्ञान बन्धन से मुक्त करने वाला आचार्य ।
'मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि'
अ. ६.१३३.१
(५) बन्धन से मुक्त करने वाला परमात्मा –यम ।
'तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे'
ऋ. १०.१६५.४; अ. ६.२८.३; ६३.२; ८४.३
(६) मृ + च्यु + उ = मृत्यु । मारयति इति मृत्युः । जो मारता है वह मृत्यु है । मध्यम प्राण मृत्यु है (माध्यमो हि प्राणः मृत्युः) । मध्यम प्राण शरीर को अन्य प्राणों से वियुक्त करता है । अतः उसका नाम मृत्यु है । कहा भी है– प्राणम् अनुक्रामन्तम् सर्वेप्राणाः अनुक्रामन्ति ।
(७) मृ + त्युक् = मृत्यु । 'मृ' में 'णि' अन्तर्भूत है (युजि मृङ्भ्यां युक् त्यकौ)
(८) मृतं च्यावयति इति वा शत बलाक्ष्यो मौग्दल्यः ।
मुद्गल का अति बलवान् इन्द्रियों वाला पुत्र मौद्गल्य है ।
(९) मृत्यु वह है जो मरणासन्न, उपक्षीण आयु या उपक्षीण कर्म करने वाले पुरुष को प्रच्युत करता है । वह आदमी जो मरणासन्न है मृत (मृ + क्त) है । क्षीणायु या क्षीण संस्कार पुरुष मृत है । उसे ही मृत्यु मारती है । वह मृत्यु शरीर का मध्यम प्राण है जो ऊर्ध्व श्वास व्यक्ति को मारता है । मृत + च्यु + उ = मृत्यु (निपातन से) ।
अथवा मृत्य मृत प्राणी को और किसी योनि में ले जाती है ।
परं मृत्यो अनु परे हि पन्थां
यस्ते स्व इतरो देव यानात्
चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि
मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्
ऋ. १०.१८.१; वाज.सं. ३५.७; श.ब्रा. १३.८.३.४.

पुत्र कामना वाले आज्य होम में स्थालीपाक विधान के समय षड़ाहुति में इसका प्रयोग होता है।

अर्थ है -

हे सभी को मारने वाली मृत्यु, तू अन्य मार्ग से पराङ्मुख होकर (परं पन्थं अनु च परे हि) जो तेरा अपना देवमार्ग से भिन्न पितृयान है (यः ते देवयानात् इतरः) उस मार्ग से जिससे देवयान में स्थित हम तुझ से अनामृष्ट रहे तुम चक्षु वाले तथा सुनने वाले अर्थात् अप्रतिहत विज्ञान वाले मारक को मैं कहता हूँ (चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि) कि तू हमारी दुहिता, दौहित्र या सन्तनि को मत मार (नः प्रजां मा रीरिषः) और पुत्र और पौत्रादिकों को भी न मार (न उत वीरान्)।

मृत्युदूत् - (१) मृत्यु अर्थात् प्राण- विच्छेद की पीड़ा देने में समर्थ वीर पुरुष। (२) यमराज का दूत- सा.।

'नयतामून् मृत्युदूताः'

अ. ८.८.११.

मृत्युपाश - (१) मृत्युकारक विषाद, (२) दरिद्रता, (३) पीड़ा, श्रान्ति, थकान, (४) मूर्छा आदि।

'मृत्युपाशैरमी सिताः'

अ. ८.८.१०

मृत्युबन्धु - (१) मृत्यु समम का बन्धु (२) मृत्यु के तुल्य मारक दण्ड कर्ता और बन्धुवत् प्रिय।

'यथेमेतद् भवसि मृत्युबन्धुः'

ऋ. १०.९५.१८

(३) मृत्यु का बन्धु- मनुष्य।

'ये चिद्धि मृत्युबन्धवः
आदित्या मनवः स्मसि'

ऋ. ८.१८.२२

मृद् - मर्दन करने की क्रिया।

'मृदं बस्वैः'

वाज.सं. २५.१; तै.सं. ५.७.११.१; मै.सं. ३.१५.१: १७७.७; का .सं. (अश्व.) १३.१.

मृदितः - मारा गया, कुचला गया शत्रु।

'प्रब्लीनो मृदितः शयाम्'

अ. ११.९.१९

मृदु - म्रद् + उ = मृदु (पथि म्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च) म्रद् धातु मर्दन अर्थ में आया है। मृदु का अर्थ कोमल है।

मृदूदर - मृदु + उदर। (१) ऋदूदर सोम (२) मृदुः उदरेषु इति वा (जो उदरों में मृदु हो)।

मृध् - (१) नाश कारिणी शत्रु -सेना (२) युद्ध।

'विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो मृधः'

ऋ. २.२३.१३

(३) शत्रु।

'व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत्'

अ. १३.१.५

(४) दुःखदायिनी विपत्ति।

'पथा मृधो अप भवन्तु विश्वाः'

ऋ. १०.६७.११; अ. २०.९१.११

(५) हिंसक, युद्ध करने वाला मृध् + क्विप् = मृध्। मृध् धातु हिंसा तथा युद्ध करने के अर्थों में आया है।

'वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व'

ऋ. १०.१८०.२; अ. ७.८४.३; साम. २.१२.२३; वाज.सं. १८.७१.

हे इन्द्र, तू शत्रुओं को विशेष रूप से ताड़ित कर (विताढि) तथा हिंसकों या युद्ध करने वालों को (मृधः) विशेष रूप से तिरस्कृत कर (विनुदस्व)।

शत्रु के अर्थ में।

'आजो मिमानो वि मृधो नुदस्व'

ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२

हे मन्यु, हमें बल देकर (ओजः मिमानः) संग्राम से शत्रुओं को भगा (मृधः विनुदस्व)। संग्राम के अर्थ में प्रयोग-

'नि दुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत्'

ऋ. १.१७४.७

मृधस् - (१) तिरस्कार, (२) संग्राम।

'आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि
आ चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयम्
अयं सुतः सुमुख मा मृधस्कः'

ऋ. २.१८.४

हे इन्द्र, आप दो चार या छः अश्वों से युक्त रथ से सोमपान के लिए इस यज्ञ में आवें। यह सोम चुलाया हुआ है। हे सुमुख, आप किसी से युद्ध न करें (मृधः मा कः)।

'सुत' का अर्थ 'यज्ञ', 'सोमपेयं का 'ऐश्वर्य पाना' और ' मृधस्' का अर्थ तिरस्कार भी किया

गया है ।

मृध्र – (१) मधुर ।
'दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः
ऋ. १.१७४.२; नि. ६.३१
हे इन्द्र, इन दानशील मनुष्यों को (दनः विशः) मधुरभाषी बना (मृध्रवाचः) –सा. ।
हे राजन्, कर प्रदाता प्रजाओं को (दनो विशः) शिक्षा द्वारा मधुर वाणी वाला बनाइये (मृध्रवाचः) –ज.दे.श.।

मृध्रवाक् – (१) दिल दुखाने वाली बात बोलने वाला, (२) मृदु वाणी बोलने वाला ।
'यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः '
ऋ. १०.२३.५; अ. २०.७३.६
(३) दूसरों को पीड़ा देने वाली असत्य वाणी बोलने वाला ।
'न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः '
ऋ. ७.६.३
(४) बड़ी बड़ी वाणी वाली, (५) उद्यमयुक्त बलवती वाणी वाली ।

मृन्मयगृह – (१) मिट्टी का बना घर (२) मृत् + मयट् = मृन्मय । मृत्यु से आक्रान्त शव तुल्य, (३) अवश्य ग्रहण करने योग्य या आत्मा को पकड़े हुआ शरीर ।
'मोषु वरुण मृन्मयं
गृहं राजन्नहं गमम् '
ऋ. ७.८९.१

मृशन्ती – (१) सम्पर्क, सन्धि या स्पर्श करती हुई –विराट्
'विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजम् '
अ. ८.९.९

मृषन्त – मृषन्ति । छोड़ते हैं, बिसारते हैं । 'मृष् ' धातु छोड़ना, बिसारना, त्यागना, अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अंग्रेजी का miss धातु मृष् से मिलता जुलता है ।
'न ते भोजस्य सख्यं मृषन्त '
ऋ. ७.१८.२१
वे तुझ भोजक, भोगी या भ्रष्टा पालक को नहीं छोड़ते...

मृष्ट – सहिष्णु तितिक्षु, – अग्नि ।
'मृष्टोऽसि हव्यसूदनः '
वाज.सं. ५.३२.

मृषा – व्यर्थ । अव्यय है ।
'न मृषाश्रान्तं यदवन्ति देवाः '
ऋ. १.१७९.३; श.ब्रा. १०.४.४.५.

मृषाश्रान्त – व्यर्थ परिश्रम से श्रान्त होने वाला थकने वाला ।

मेक – अंग, बनावट । अंग्रेजी शब्द make भी संज्ञा के अर्थ में इसी अर्थ में प्रयुक्त है ।
'न मेथेते न तस्थतुः सुमेके '
ऋ. १.११३.३; साम. २.११०१

मेखला – (१) ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के पूर्व कटि से पहने जाने वाला पदार्थ । यह मुञ्ज आदि की बनी होती है ।
(२) इसके बांधने से आयु बढ़ती है ।
'वीरघ्नी भव मेखले '
अ. ६.१३३.२
'दीर्घायुत्वाय मेखले '
अ. ६.१३३.५

मेघ – (१) जल बरसाने वाला मेघ ।
'मेघाय स्वाहा '
वाज.सं. २२.२६; तै.सं. ७.५.११.१; का.सं. (अश्व.) ५.२.
(२) गिरि । 'असौ अन्तरिक्षे समुद्गीर्णो भवति' (मेघ के समान गिरि भी अन्तरिक्ष में समुद्गीर्ण है) ।
(३) वृत्र । तत् कः वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः (तो कौन वृत्र है ? मेघ) ।
(४) मिह् (सेचनार्थक) + घञ् = मेघ । 'असौ सिञ्चति' (यह सींचता है) ।
(५) उपल । उपर उपलो मेघो भवति । मेघ का अर्थ पर्वत और पर्वत का अर्थ मेघ है । उपल शब्द पर्वत और मेघ दोनों का वाचक है । 'उपरता आप इति वा ' । मेघ में जल आकर रत हो जाते हैं । अतः मेघ को 'उपरत' या 'उपर' कहा गया ।

मेधसाति – लाभ, कृषि आदि की प्राप्ति ।
'मेधसाता वाजिनमह्वये धने '
ऋ. १०.१४७.३

मेधा – पवित्र ज्ञान समझने और प्रकट करने वाली प्रतिभा ।
'स मे श्रद्धां च मेधां च '
अ. १९.६४.१; शां.गृ.सू. २.१०.३

मेडि – (१) ज्ञान वाणी ।
'मेडिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे'
ऋ. ३.२६.९
(२) संगति,
'वातस्य मेडिं सचते निजूर्वन्'
ऋ. ४.७.११; का.सं. ७.१६
(३) मिलाने वाला (४) स्वर मेलन रूप वाक् ।
'साम्नो मेडिश्च तन्मयि'
अ. ११.७.५

मेढ्र – मिह + ष्ट्रन = मेढं । अर्थ (१) मूत्रेन्द्रिय ।
'अपि नह्याम्यस्य मेढ्रम्'
अ. ७.९५.३

मेथ – धा. । संग करना । अंग्रेजी का mate धातु इसका समानार्थक है ।

मेथति – आक्रोशतिकर्मा (मिथ धातु आक्रोशार्थक है) ।
चतस्रः पन्त्यः अश्वम् अभिमेथन्ति
यह वाक्य प्रसिद्ध है । लोक में भी शाला को मेथनक कहते हैं (शालः मेथनकः) । शाला को लोग सदा गालियाँ देते हैं । और वह भी लोगों को गालियाँ दिया करता है ।
'मिथ्' का अर्थ मिलना (mix), समझना, चोट पहुंचाना और मारना भी है ।

मेथेते – (द्वि.व. प्र.पु.)। अर्थ–संग नहीं करते । 'मेथ' धातु संग करना अर्थ में आया है ।
'न मेथेते न तस्थतुः सुमेके
नक्तोषासा समनसा विरूपे'
ऋ. १.११३.३; साम. २.११०१
रात दिन (नक्तोषासा) सुन्दर अंगों वाले होकर भी (सुमेके) परस्पर संग नहीं करते (न मेथेते) और न ठहरते हैं (न तस्थतुः) । वे समान मन वाले होकर भी (समनसा) एक दूसरे से भिन्न रूप वाले (विरूपे) हैं ।

मेथामसि – मेथामः (मारें) ।
'न पूषणं मेथामसि'
ऋ. १.४२.१०
हम सब के पोषक पुरुष को न मारें ।

मेथिः – (१) शत्रुओं को विनाशक (२) दण्डकारी ।
'इमं मेथिमभि संविशध्वम्'
अ. ८.५.२०
(३) परस्पर का संग (४) मैथुन ।
'शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तद्मं'
अ. १४.१.४०

मेदन – (१) स्नेह या मिलन कारण ।
'घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम्'
ऋ. १०.६९.२

मेदस् – 'मिदृ मेदृ मेधाहिंसनयोः भ्वादि' ।
'मेदो वै मेधः'
श.ब्रा. ३.८.४.६.
अर्थ– (१) व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक जन्तु, (२) हिंसा कारी पुरुष, (३) अन्न (४) ब्रीहि, यव ।
'मेदसां पृथक् स्वाहा'
वाज.सं. २१.४०
'मेधाय इति अन्नायेत्येतत्'
श.ब्रा ७.५.२.३२.
तेमेधं (देवाः) खनन्त इव अन्वीयुः तम् अन्वविन्दन् ताविमौ ब्रीहियवौ । मेधो वा आज्यम् । तै.ब्रा. ३.१.१२.१.
(३) आज्य,
(४) मिद् (स्नेहन अर्थ में) + असुन् = मेदस्
मेदस्तु वया वसे – अमर कोष
जो स्निग्ध करता है वह मेद है । मेदा ।
'तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः
स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य'
ऋ. ३.२१.४
(हे कर्मिष्ट अग्ने, तेरे लिए मेदा और घृत के कण टपक रहे है) । (५) स्निग्ध पदार्थ, (६) चर्बी । आधुनिक अर्थ– चर्बी, एक मिश्रित जाति, सर्प, राक्षस, घृत ।

मेदस्तः – मेदस् + तसिल् = मेदस्तः । मेदसा प्रदेशेन (चर्बी वाले अंग से) ।

मेद्यन्तु – तृप्त हों । 'सिद्ध' धातु तृप्त्यर्थक है ।
'मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे'
ऋ. २.३७.३; नि. ८.३
हे द्रविणोद नामक अग्ने, तेरे वे घोड़े जिससे तू चलता है, तृप्त हों ।

मेदनी – 'मेदृ, मेधृ हिंसनयोः' भ्वादि मिदि स्नेहने ।
अर्थ – (१) बुद्धिप्रद, (२) रोग नाशक , (३) स्निग्धगुण युक्त पौष्टिक औषधि ।
'मेदिनीर्वचसो मम'
अ. ८.७.७

मिदा स्नेहने दिवादिः । मिदा स्नेहने भ्वादि
(४) पृथिवी ।

मेदी – (१) बलवान् ।
'स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना'
अ. ६.६५.३
(२) मित्र
'इन्द्र मेद्यहंतव'
अ. ५.८.९
'भूमे सूर्येण मेदिना'
अ. १२.१.३३

मेध – (१) अन्न । सात प्रकार के अन्न हैं– हुत, प्रहुत, पयः, मनः, वाक्, प्राण । इन्हें प्रजापति ने अपनी मेधा ज्ञान– शक्ति से उत्पन्न किया ।
'सप्तमेधान् पशवः पर्यगृह्णन्'
अ. १२.३.१६
(२) हिंसाकारी वर्ग
'उत मेधं श्रृतपाकं पचन्तु'
ऋ. १.१६२.१०; वाज.सं. २५.३३; तै.सं. ४.६.८.४; मै.सं. ३.१६. १: १८२.१३

मेधपति– (१) यज्ञ या पवित्र पुरुषों का पालक ।

मेधसातिः – (१) अन्नलाभ, (२) यज्ञ, (३) संग्राम ।
'मेधसाता सनिष्यवः'
ऋ. ७.९४.६; साम. २.१५२; तै.सं. १.७.८.२
(४) सत्संग, (४) दान की प्राप्ति ।
'विप्रासो मेधसातये'
ऋ. ८.३.१८
(६) यज्ञ का लाभ, (७) पवित्र कर्म का लाभ (८) शत्रु हिंसन का लाभ, (९) परस्पर सत्संग का लाभ ।
'यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातये
अपका सन्तमिषिर प्रणयसि'
ऋ. १.१२९.१

मेध्य – मेधों के विज्ञान जानने वाला ।
'नमो मेध्याय च विद्युत्याय च'
वाज.सं. १६.३८; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२५.१३; का. सं. १७.१५.

मेध्य – पवित्र ।
'एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः'
अ. १८.४.५२

मेधा – (१) आत्मा को धारण करने वाली चितिशक्ति ।
'त्वं नो मेधे प्रथमा
गोभिरश्वेभि रा गहि'
अ. ६.१०८.१
(२) आत्म ज्ञान को धारण करने वाली परम बुद्धि ।
'यां मेधां देवगणाः
पितरश्चोपासते
वाज.सं. ३२.१४.
(३) धारणवती धी, वह बुद्धि जिसमें धारणा करने वाली शक्ति हो ।
मतौ धीयते मतिधा (जो बुद्धि में धारणा की जाय वह मतिधा है) । मतिधा = मद्धा = मेधा ।

मेधाकारः – ज्ञान और सन्मति देने वाला ।
'मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनम्'
ऋ. १०.९१.८; साम. २.३३४; का.सं. ३९.१३; तै.ब्रा. ३.११.६.३; आप. श्रौ.सू. १६.३५.५

मेधातिथि – (१) ऋतम्भरा प्रज्ञा–सिद्ध आत्मा, (२) धारणा वती बुद्धि से युक्त तीव्र ज्ञानी पुरुष, (३) मेधातिथि नामक ऋषि, काण्व मेधातिथि ।
'यौ मेधातिथिमवथो यौ गविष्ठिरम्'
अ. ४.२९.६
(४) संगति के योग्य अतिथि – ज.दे.श.

मेधावी – मेधा + विनि = मेधाविन् । मेधया तद्वान् भवति (मेधा से मेधा वाला होता है) । अथवा 'अभेदेन तृतीया' से 'धान्येन धानवान्' की तरह 'मेधया मेधावी' होता है । अर्थ है– बुद्धि मान् ।

मेध्यातिथि – (१) अन्नादि से सत्कार करने योग्य अतिथि या अतिथिवत् पूज्य पुरुष, (३) एक वैदिक ऋषि ।
'यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिम्'
ऋ. ८.४९.९
(३) मेध्यैः अतिथिभिः युक्तः (पूज्य अतिथियों वाला गृहस्थ) (४) शिष्यों से युक्त अध्यापक ।
'यं कण्वं मेध्यातिथिर्धनस्पृतम्'
ऋ. १.३६.१०
(५) व्यापक प्रभु या अतिथि का उपासक ।
'काण्वं मेध्यातिथिम्'
ऋ. ८.२.४०;

मेधिर – मेध + इरच् । अर्थ – (१) यज्ञवान् – दुर्ग. (२) अग्नि का विशेषण,

'कविशस्तो बृहता भानुनागाः
हव्या जुषस्व मेधिर'
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५; २०४.१५; का.सं. १६.२१.
हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवान् या मेधावी विद्वान् (अग्ने), तू बृहत् प्रकाश के साथ आ और हव्यों का भोग्य कर।
(३) मेधावी। दया. (४) प्रज्ञावान्, (५) धनवान्।
पुनः-
'इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः
इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम्
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणाम्
इन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः'
ऋ. १०.८९.१०
परमेश्वर द्युलोक का स्वामी है। पृथ्वी का स्वामी है, जल का स्वामी है, पर्वतों का अधिपति है। परमेश्वर महान् से महान् आत्माओं का राजा है और वही मेधा-सम्पन्न पुरुषों का (मेधिराणाम्) शासक है। प्राप्त वस्तु के संरक्षण के लिए वह स्तुत्य है (क्षमे) और अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए आह्वातव्य है।

मेन - मि + न = मेन। अर्थ है- प्रक्षेप्य।
'भगेन मेने परमे व्योमन्'
ऋ. १.६२.७

मेनका - (१) मेनका च सहजन्या च द्यावापृथिवी श.ब्रा.- ८.८.१.१७
मेनका और सहजन्या नामक दो सहयोगियों में एक, (२) जिसे सभी मानें वह विद्वानों की सभा मेनका है, (३) जन समुदाय की संघ शक्ति सहजन्या है, (४) द्यौ (५) मेनका नाम्नी।
'मेनका च सहजन्याचाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१६; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११.४.१७; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१७

मेन्य - (१) ज्ञेय -दया. (२) मध्यमा वाक् -सा.
'आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आ
अपो वृणाना वितनोति मायिनी'
ऋ. ५.४८.१
जो मध्यमा वाक् के वासस्थान अन्तरिक्ष के ऊपर (यत् मेन्यस्य रजसः आ) मेघ में (अभ्रे) स्थित जलों को (अपः) ढंकती हुई (आवृणाना) मायाविनी या प्रज्ञावती हो (मायिनी) वर्षा बरसाती है। - सा.
सर्वतोज्ञेय अन्तरिक्ष लोक के मेघ में (आ मेन्यस्य रजसः अभ्रे) जैसे जल को बरसाती हुई (यत् अपः वृणाना) उसे वृष्टि द्वारा फैलाती है (वितनोति) वैसे ही बुद्धिपूर्वक नीति कर्मों को बरती हुई (मायिनी) सर्वत्र फैलाती है- दया.

मेना - (१) मैना नामक पक्षी। (२) ग्ना, स्त्री। मेना ग्ना इति स्त्रीणाम् (मेना और ग्ना ये स्त्री के वाचक हैं)।
'मेनाः मानयन्ति एनाः' (शुभ कृत्यों में पुरुष स्त्रियों की पूजा या सत्कार करते हैं। अतः वह मेना कही गई)।
(३) मान (पूजार्थक) + घञ् = मेना (उपधा का ए)।
(४) अथवा, मान + इनच् = मेन। अंग्रेजी का Women शब्द मेना से मिलता जुलता है।
आ प्र द्रव हरियो मा वि वेनः
पिशङ्गराते अभि नः सचस्व
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्ति
अमेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ'
ऋ. ५.३१.२
हे अश्व वाला इन्द्र (हरिवः), हमारे सम्मुख आ (आ प्र द्रव), हम से निरपेक्ष न हो (वि वेनःमा)। हे सुन्दर दान करने वाला इन्द्र (पिशङ्गरते), हमारे सम्मुख आ (नः अभिसचस्व)। तुझ से बढ़कर और कोई देवता नहीं है (त्वत् अन्यत् नहि अस्ति)। हे धनी इन्द्र (वस्यो इन्द्र), तू अस्त्रीक स्तोताओं को भी (अमेनांश्चित्) प्रजनन कर्म में समर्थ या स्त्री युक्त करता है (जनिवतः चकर्थः)। अतः हम तेरी आशंका करते हैं।
(३) सर्वमाननीय वेदवाणी।
'आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः
ऋ. १०.१११.३

मेनिः - (१) आयुध।
'मेन्या मेनिरसि'
अ. २.११.१
(२) अस्त्र द्वारा फेंका गया साधन, (३) निवारक अस्त्र।

मेने - द्वि.व.। एक वचन में मेना (१) एक दूसरे

का मान करने वाली देवस्त्रियाँ या स्त्री पुरुष (२) मेना नामक दो पक्षियों के समान-अश्विद्वय का विशेषण ।
'मेने इव तन्वा शुम्भमाने'
ऋ. २.३९.२

मेम्यत् - (१) सबको आज्ञा करता हुआ ।
'सुप्राड्जो मेम्यद्विश्वरूपः'
ऋ. १.१६२.२; वाज.सं. २५.२५; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१: १८१.१०; का.सं. (अश्व.) ६.४
(४) सब बाधक शत्रुओं का नाश करता हुआ ।

मेय - मापने योग्य ।
'अभीशुना मेया आसन्'
अ. ६.१३७.२

मेष - (१) सूर्य, (२) आत्मा ।
'मेष इव वै सं च वि चोर्वच्यसे'
अ. ६.४९.२; का.सं. ३५.१४; आप.श्रौ.सू. १४.२९.३
(३) मिष् + अच् = मेष । सबको चेतना देने वाला - सूर्य ।
'मेषं विप्रा अभिस्वरा'
ऋ. ८.९७.१२; अ. २०.५४.३; साम. २.२८१
(४) भेंड़ (५)प्रतिस्पर्द्धों से टक्कर लेने वाला पुरुष, (६) ज्ञानरूपी जलों का वर्षक विजयी स्पर्धालु मस्तकबल से जीने वाला विद्वान् पुरुष । (७) आनन्दप्रदाता आत्मा ।
'पीवानं मेषमपचन्त वीराः'
ऋ. १०.२७.१७
(८) रूप ।
'मेषो भूतोऽभि यन्नयः'
ऋ. ८.२.४०; नि. ३.१६.
रूप या भेड़ की तरह (मेषः भूतः) जाता हुआ (अभियन्) तू पहुंच गया (अयः) । पाणिनि ने 'मिष्' धातु को स्पर्द्धा अर्थ में लिया है । भूत शब्द के साथ युक्त होकर 'मेष' उपमार्थक हो जाता है ।
भेड़ के अर्थ में प्रयोगः-
शं नः करत्यर्वते
सुगं मेषाय मेष्ये
नृभ्यो नारिभ्यो गवे'
ऋ. १.४३.६
(७) इन्द्र । इन्द्र सुखों या जलों का वर्षण करने से मेष है ।
'अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्वियम्
इन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्'
ऋ. १.५१.१
(८) स्पर्द्धक, प्रतिस्पर्धी, विद्वान्-दया.
'शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानम्
ऋजाश्वं तं पितान्धं चकार'
ऋ. १.११६.१६
जो प्रजा के मा बाप के समान पालक पर बैठकर भी (पिता) राजा चोर सरकार बनाए और उसे दृढ़ रखने के लिए सैकड़ों प्रतिस्पर्धी विद्वान् सभासदों को भी (शतं मेषान्) शासन करने में समर्थ सरल स्वभाव के पुरुष को (ऋजाश्वम्) अन्धकार में रखे (अन्धं चकार) और उसे पीड़ित करे तो....

मेषी - (१) भेंड़ी ।
'सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोः'
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२: १६८.११
(३) भेंड़ी के समान श्वेत वस्त्रधारी सरस्वती नामक विद्वान् पुरुष (३) पर शक्ति से प्रेरित होने वाली ब्रह्म बीज से निषिक्त-ब्रह्म की शक्ति से वीर्यवती प्रकृति ।
'प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः'
ऋ. ९.८६.४७

मेहत्नु - (१) नाड़ी जिससे आत्मा शरीर से मूत्र बनने और निकलने की व्यवस्था करता है ।
'मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे'
ऋ. १०.७५.६

मेहन - (१) मूत्रनाड़ी, मूत्रेन्द्रिय ।
'प्र ते भिनद्मि मेहनम्'
अ. १.३.७
'मेहनाद्वनंकरणात्'
ऋ. १०.१६३.५; अ. २०.९६.२१
(२) मंह + ल्युट् = मेहन (बाहुलक से अ का इ) । मंह् धातु दान और वृद्धि अर्थों में आया है ।
मेहन + सु = मेहना । 'सुपां सुलुक्' से सु का आकार । अर्थ है- दातव्य धन (४) वर्धनीय । शाकल्य 'मेहना' को एक पद और गार्ग्य इसे तीन पदों से बना मानते हैं । यास्क ने दोनों अर्थों को मान्यता दी है ।

(५) गार्ग्य के अनुसार 'मे + इह + न' से 'मेहना' बना है, जिसका अर्थ है- मेरे यहां नहीं हैं ।
(६) मिह् + ल्युट् = मेहन । बढ़ने वाला ।
'यद्रिन्द्र चित्र मेहना'
ऋ. ५.३९.१; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.३; शां.श्रौ.सू. ११.११.१५; नि . ४.४.
हे इन्द्र, जो तेरा पूजनीय धन बढ़ने वाला है ।

मेहनावत् - (१) जिससे प्रशस्त वर्षा हो- सूर्य, (२) सुखों की वृष्टि और वृद्धि करने वाला ।
'विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतः'
ऋ. २.२४.१०

मेहनावान् - (१) उदारता से देने योग्य धन (मेहना) से सम्पन्न -इन्द्र ।
'व्यानशी रोदसी मेहनावान्'
ऋ. ३.४९.३

मेहनाःपर्वतासः - (१) वर्षाकारी मेघ (२) मे + हनाः । मेरा इसमें कुछ नहीं इस प्रकार की त्याग भावना वाले निःसंग पर्वतवत् अचल प्रजा पालक जन ।
'अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासः'
ऋ. ८.६३.१२; वाज.सं. ३३.५०

मेहन्ती - मूत्र करती हुई ।
'राजयक्ष्मो मेहन्ती'
अ. १२.५.२२

मैघी - (१) मेघ सम्बन्धी ऋचा (२) सब पर सुख बरसाने वाला ।
'मैघीर्विद्युतो वाचः'
वाज.सं. २३.३५

मैत्र - (१) प्रजा के प्रति स्नेहवान् (२) भरण पोषण से रक्षा करने वाला ।
'मैत्रः शरसि संताय्यमाने'
वाज.सं. ३९.५

मैत्रावरुण - (१) मित्र और वरुण का पुत्र वसिष्ठ-सा. (२) मित्र और वरुण नामक वायुओं से उत्पन्न जल-ज.दे.श.।
'उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ'
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४.
हे वसिष्ठ, या वासकतम जल, तू मित्र और वरुण से या भित्र और वरुण नामक वायुओं से उत्पन्न हुआ है ।
(३) मित्र और वरुण-प्राण और अपान दोनों का स्वामी-जीव

मैत्रावरुणी - मित्र (न्यायाधीश) और वरुण (दुष्टों का कारक) सम्बन्धी ।
'पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः'
वाज.सं. २४.२; मै.सं. ३.१३.३: १६९.४

मैनाल - (१) हिंसक जन्तुओं का नाश करने वाला ।
'विषमेभ्यो मैनालम्'
वाज.सं. ३०.१६; तै.ब्रा. ३.४.१.२

मो - (१) निषेधार्थक अव्यय ।
'मो षु देवा अदः स्वः
अव पादि दिवस्परि'
ऋ. १.१०५.३
वह परला सूर्य या पारलौकिक सुख (अदःस्वः) आकाश में अन्तरिक्ष से भी परे हैं (दिवः परि) । वह कभी नीचे न गिरे (मो अव पादि) ।

मोकी - (सं.) । मुच् + अच् + ङीष् । अर्थ (१) रात्रि । (२) सब बाधाओं से मुक्त करने वाली -मुक्ति ।
'अनुव्रतं सवितुर्मोक्यागात्'
ऋ. २.३८.३

मोघम् - (अ.) (१) व्यर्थ, झूठमूठ, अनृत, असत्य ।
'यो मा मोघं यातुधानेत्याह'
ऋ. ७.१०४.१५; अ. ८.४.१५.
जिसने मुझे झूठमूठ व्यर्थ ही राक्षस कह दिया ।

मोद - सं. । (१) प्रसन्नता, (२) सुगंध ।

मोषथाः - मोषथः । (१) निरुदक करते हो -सा. । (२) धीरे धीरे सार खींच लेते हो - दया. ।
'अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसम्'
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः'
ऋ. ५.५४.६
हे वृष्टि के विधाता मरुतो, (वेधसः) आप लोगों का गण या बल (शर्धः) शोभता है जिस गण या बल से (यत्) (अभ्राजि) जलयुक्त मेघ को (अर्णसं वृक्षम्) निरुदक् करते हो (मोषथा) जैसे घुन (कपना इव) वृक्ष को चाट जाते हैं । -सा. हे विद्वान् मनुष्यो, तुम्हारा उत्साह (शर्धः) प्रदीप्त होता है (अभ्राजि) जो कि तुम (यत्) जैसे बींधने वाले छोटे छोटे कृमि वृक्ष को धीरे धीरे हर लेते हैं (वेधसः कपनाः वृक्षम् इव) एवं शब्द

सागर वेद को (अर्णसम्) धीरे धीरे ग्रहण कर लेते हो । -दया.

मोह - मूर्च्छा ।
'श्रमस्तन्द्रीश्च मोदश्च'
अ.८.८.९

म्रोक - (१) धन अहरण कर छिप जाने वाला चोर, (२) काम ।
'म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु'
अ. २.२४.३

मौजवत - (१) (ए.व.वि.) । मुञ्जवत् + अण् = मौञ्जवत् । मुञ्जवति भवः मौजवतः । अर्थ मुञ्जवान् पर्वत पर होने वाला-सोम. ।
'सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः'
ऋ. १०.३४.१; नि. ९.८
मुञ्जवान् पर्वत पर सोम का होना इससे सूचित होता है ।

मौजवतः सोमः - मुञ्जवान् पर्वत पर उत्पन्न सोम ओषधि

मौञ्ज - मुञ्ज में रहने वाला विषैला जीव ।

मौनेय - मननशील अन्तः करण का स्वामी-आत्मा ।
'उन्मदिता मौनेयेन
वातॉं आ तस्थिमा वयम्'
ऋ. १०.१३६.३

य

यक्न - (१) यकृत्, कलेजा ।
'यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः'
ऋ. १०.१६३.३; अ. २०.९६.१९; आप.मँ.पा. १.१७.३
'पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना'
वाज.सं. ३९.८

यकः - जो ।
'यके सरस्वतीमनु'
ऋ. ८.२१.१८

यका - या (जो) ।
'यकासकौ शकुन्तिका'
वाज.सं. २३.२२; श.ब्रा. १३.२.९.६; ५.२.४.

यकांशलोकका - जीवन के किस अंश में लोक लगा हुआ है ।
'उयं यकांशलोकका'
अ. २०.१३०.२०

यकृत् - यजति इति यकृत् । यज् + ऋतन् । यथा + कृत् -दया. (छेदनार्थक) + क्विप् = यकृत् । बाहुलक नियम से यथा का 'य' मात्र रह जाता है । 'यथा कथा च कृत्यते' मृदु होने से यकृत् जैसे तैसे सुविधा से अप्रयास ही काट दिया जाता है अतः यह यकृत कहलाया ।
अर्थ है - कलेजा ।
'चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत्'
अ. ९.७.११.
'महादेवस्य यकृत्'
वाज.सं. ३९.९
(२) समस्त प्रजाओं को सत्कर्म में लगाने वाला, दानशील विद्वान् धार्मिक पुरुष । (३) राष्ट्र का भीतरी घटक और उपकारक अंग
'यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्'
वाज.सं. १९.८५

यक्ष - न. । (१) उपासनीय देव ।
'यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति'
अ. ८.९.८
(२) आदर सत्कार, (३) संगति ।
'मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गाः'
ऋ. ४.३.१३.

यक्षति - (१) पूजा करना चाहता है -सा. (२) दान दे.-ज.दे.श. ।
'इयक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति'
ऋ. १०.११.६; अ. १८.१.२३.
क्योंकि (इ) यह यजमान देवताओं की पूजा करना चाहता है ।
(यक्षति) -सा.
चाहने वाले को (हर्यतः) दान दे. (यक्षति)

यक्षदृश् - पूज्य जनों का दर्शन करने वाला ।
'यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः'
ऋ. ७.५९.१६; तै.सं. ४.३.१३.७; मै.सं. ४.१०.५: १५५.६; का.सं . २१.१३.

यक्षन् - यज्ञ करने का इच्छुक ।
'कदा ते मर्ता अमृतस्य धाम
इयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधानः'
हे बलवन्, यज्ञ के इच्छुक मनुष्य कभी तुझ अमर के धाम में हिंसा नहीं करते ।

यज्ञभृत् – (१) उपासना करने वालों का पालन पोषण करने वाला, (२) यक्षों का पालन पोषण करने वाला बृहस्पति ।

यक्षम् – सब इन्द्रियों का सुसंगत व्यवस्था करने वाला –मन ।

'यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानाम्'

वाज.सं. ३४.२.

यक्ष्मः – पु. (१) यक्ष्मा रोग ।

'आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति'

ऋ. १०.९७.११; वाज.सं. १२.८५; तै.सं. ४.२.६.२; मै.सं. २.७. १३; ९३.१८; का.सं. १६.१३; नि. ३.१५.

यक्ष्मारोग का आत्मा नष्ट हो जाता है ।

(२) पूजनीय अतिथि ।

'यक्ष्मा यन्ति जनां अनु'

अ. १४.२.१०

यक्ष्मनाशनी – (१) रोग नाशक, (२) स्वच्छ ।

'अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः'

अ. ३.१२.९; ९.३.२३

यक्ष्यमाण – यज्ञ करने वाला ।

'यन्मानुषान् यक्ष्यमाणां आजीगः
तद् देवेषु चकृषे भद्रमप्नः'

ऋ. १.११३.९

हे उषे, जो तू यज्ञ करने वाले मनुष्यों को व्यापती है, प्रेरित करती है वह तू देवताओं या बुद्धिमान पुरुषों में सुखकारी (भिद्रम्) कार्य को (अप्नः) करती है (चकृषे) ।

यक्ष्यमाणा – संगत होती हुई ।

'पत्नी यक्ष्यमाणा'

अ. २०.१३५.५

यक्षि – यज् (पूजा करना, संगति करना, दान करना आदि, अर्थों में प्रयुक्त) से सम्पन्न । अर्थ– (१) पूजित किया, (२) पूजाकर –सा. (३) संगति करता है –ज.दे.श.

'त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठः
जरूथं हन् यक्षि राये पुरन्धिम्'

ऋ. ७.९.६.

हे अग्ने, वसिष्ठ ने बहुकर्ममतम तुझ को संदीप्त कर धन प्राप्ति के लिए स्तोत्र द्वारा पूजित दिया (यक्षि) ।

अथवा, हे अग्ने, तुझे वसिष्ठ प्रदीप्त करते हैं (वसिष्ठ समिधानः), तू परुष भाषी राक्षस गण को मार (जरूथं हन्) तथा धनवान यजमान के लिए बुद्धिमान देवगण की पूजा कर (यक्षि) –सा.

अथवा, – हे हमारे नायक विद्वान् , विद्या ज्योति को प्रदीप्त करता हुआ धनाढ्य मनुष्य बहुत बुद्धि वाले आप के प्रति (त्वां पुरन्धिम्) आदर भाव को पहुंचाता हुआ धर्म धन की प्राप्ति के लिए आप की संगति करता है ।

यक्षी – पूजा करने वाले भक्त प्रजाजनों का स्वामी ।

'मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम'

ऋ. ७.८८.६

यक्ष्मोधा – यक्ष्मा रोग, केशों को रखने वाला रोग ।

'यक्ष्मोधामन्तरात्मनः'

अ. ९.८.९

यक्षु – (१) गंगा यमुना के बीच का कोई आर्य–भिन्न देश, (२) दान देने और आदर करने वाला ।

'पुरोडा इत् तुर्वशो यक्षुरासीत्'

ऋ. ७.१८.६

यज्ञ – (१) प्रख्यातं यजतिकर्मा इति नैरुक्ताः (यजन कर्म ही जो लोक में विख्यात है यज्ञ है) ।

(२) यज् + नङ् = यज्ञ ।

'इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान्'

ऋ. ५.४.५; अ. ७.७३.९; मै.सं. ४.११.१: १५९.३; का.सं. २.१५; तै.ब्रा. २.४.१.१; नि. ४.५.

(३) यज्ञ, (४) अग्नि, (५) प्रजापति ।

'याञ्च्यो भवति इति वा'

(इसमें लोग अन्नादि की याचना करते हैं । अतः यह यज्ञ है) । या, यजमान ही यज्ञ द्वारा वर्षा आदि की याचना करते हैं । अथवा, देवगण ही यजमानों से हवि आदि की कामना करते हैं ।

श्रुति में कहा है –

'ककुद्दोषणी शलाका दोषणी याचते महादेवः'

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यह वाक्य है:–

'यतो वै देवानाम् अन्नं सम्भूतम्
समभावयन् इति ह विज्ञायते'

इस यज्ञ से अन्नादि की याचना सिद्ध है ।

यज् से नङ् प्रत्यय अधिकरण अर्थ में आया है ।

यजुभिः उन्नः भवति इति वा (मन्त्रों से जो छिन्न हो जाय वह यज्ञ है) ।
यजुष् + उन्न = यज् + न = यज्ञ,
बहु कृष्णाजिन इति औपमन्यवः-औपमन्यव आचार्य के मत से जो यज्ञ में विशिष्ट साधक है वह कृष्णाजिन ही है । अतः इस लक्षण से उपलक्षित कर्म यज्ञ है ।
अजिन + इ = अज् + न + प = अज् + न = यज्ञ ।
'यजूंषि एनं नयन्ति इति वा'
(मन्त्र ही यज्ञ को आरम्भ से अन्त तक सफलता प्राप्त करते हैं । अतः मंत्र लक्षण से यह यज्ञ कहा गया है) ।
(६) यज्ञस्थली -यास्क ।
(७) ब्रह्म । (८) अग्नि
अग्नि के अर्थ में यज्ञ का प्रयोगः -
'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः'
ऋ. १.१६४.५०; १०.९०.१६; अ. ७.५.१; वाज.सं. ३१.१६; तै.सं. ३.५.११.५; मै.सं. ४.१०.३: १४९.१; का.सं. १५.१२; श.ब्रा. १०.२.२.२.
ज्ञान और कर्म का समुच्चय करने वाले यजन शील देव बनने वाले (साध्याः) तथा विश्व की रचना करने वाले प्राण रूप ऋषि स्थावर जंगम भाव समापन्न हविर्भूत अग्नि से (यज्ञेन) सर्व देवता रूप आदित्य आदि के रूप में अग्नि की ही पूजा करते हैं (यज्ञम् अयजन्त) । उस समय उसी प्रकार के ज्ञान युक्त कर्म ही मुख्य थे (तानि धर्माणि प्रथमा नि आसन्) । उन भावी देवरूपी ऋषियों ने (ते) महात्मा होते हुए (महिमानः) उसी महान् एकान्त सुख आत्मा का सेवन किया या उससे तादात्म्य स्थापित किया (नाकं सचन्त) ।
'अग्निः पशुरासीत्, तमातभन्त
तेन अयजन्त इति ब्राह्मणम्'
अग्नि पशु था, उसे पूर्व ऋषियों ने प्राप्त किया -उसी से यज्ञ किया । तानि धर्माणि प्रथमान्यासन (वे ही धर्म या, कर्म सर्वमुख्य या सर्वप्रथम हुए) । ते ह नाकं महिमानः समसेवन्तः (उन ऋषियों ने महात्मा रूप में होते हुए अपना ही सेवन किया) । ये देवगण द्युस्थानी थे ऐसा निरुक्त कारों का कथन है । पहले देवों का ही युग था (पूर्वं देव युगमित्याख्यानम्) ।
साध्य कौन हैं ? द्युलोकवासी सप्तर्षि या विश्वेदेव, प्राण या रश्मियाँ ?
ऐतिहासिक पक्ष - प्रजापति के प्राणरूप देवों ने मानस- संकल्प द्वारा (देवाः यज्ञेन) प्रजापति की पूजा की (अजयन्त) । उस पूजा से प्रसिद्ध जगत् रुपी विकारों के मुख्य धारक हुए (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) । जिस विराट् प्राप्ति रूपी नाक में पुरातन विराट् के उपासक एवं साधक देव रहते हैं (यत्र पूर्वे साध्याः देववाः सन्ति) उस विराट् रूपी स्वर्ग को (नाकम्) वे उपासक महात्मा (तेह महिमानः) प्राप्त करते हैं (सचन्त) ।
(९) आत्मा, (१०) समाधि द्वारा ईश्वर के साथ संगति लाभ करने वाला, (११) पूज्य यज्ञरूप परमेश्वर ।
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ'
अ। ७.९७.५, वाज.सं. ८.२२.
(१२) परस्पर संगत हुए प्राणों के परस्पर आदान, प्रतिदान भय व्यवस्थित जीवनमय यज्ञ ।
'इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान्'
ऋ. ५.४.५ अ.७.७३.९; मै.सं. ४.११.१: १५९.३; का.सं. २.१५; तै.ब्रा. २.४.१.१; नि. ४.५.
(१३) सब को परस्पर मिलाए रखने वाला परमेश्वर
'देवासो यज्ञमत्नत'
ऋ. ८.१३.१८; ९२.२१, अ. २०.११०.३; साम. २.७४.
स (सोमः) तायमानो जायते । सयात् जायते तस्मात् यज्ञः । यज्ञोह वै नाम एतत् यत् यज्ञः-श.ब्रा.
'यज्ञो वैविशः । यज्ञेहि सर्वाणि
भूतानि विष्टानि'
श.ब्रा. ८.७.३.२१.
'वाग् यज्ञस्येति'
श.ब्रा. १२.८.२.४.
'सत्यं यज्ञेन'

वाज.सं. २०.१२; का.सं. ३८.४; श.ब्रा. १२.८.३.३०; तै.ब्रा. २.६.५.७.

यज्ञनी – (१) यज्ञ का नेता, यज्ञ का प्रधान अग्नि ।
'यत्रा वदेते अवरः परश्च
यज्ञन्योः कतरो नौ विवेद'
ऋ. १०.८८.१७
जिस कर्म में यह पार्थिव अग्नि और वह सूर्य या आन्तरिक अग्नि या वायु परस्पर यह विवाद करते हैं कि हम दोनों यज्ञ के नेताओं में कौन अधिक यज्ञ कर्म जानता है ।
(२) यज्ञ + नी + क्विप् = यज्ञनी । त्रिविध यज्ञों का नेता अग्नि ।
'ऋतुना यज्ञनीरसि'
ऋ. १.१५.१२

यज्ञपति – (१) यज्ञ का स्वामी, यजमान
'तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये
ऋ. खि. १०.१९१.५; तै.सं. २.६.१०.२; श.ब्रा. १.९.१.२६; तै.ब्रा. ३.५.११.१; तै.आ. १.९.७; ३.१; आश्व.श्रौ.सू.१.१०.१; आश्व.गृ.सू. ३.५.९; शां.गृ.सू. ४.५.९; नि. ४.२१
हम शंयु से प्रार्थना करते हैं कि यज्ञ का देवों के प्रति गमन हो तथा यजमान का देवों के प्रति गमन हो । – सा.
हम उस सदाचारी शान्त विद्वान् को अपने यज्ञ में आने की और यज्ञपति के समीप पधारने की याचना करते हैं – दया.
उरु ते प्रजापतिः प्रथताम्
तेरा यजमान खूब बढ़े
(२) प्रजापालक, (३) राष्ट्र का पालक राजा ।
'देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय'
वाज.सं. ९.१; ११.७; ३०.१ श.ब्रा. ५.१.१.१४, १६; ६.३.१.

यज्ञप्रीः – यज्ञ या राष्ट्र को प्रसन्न या अनुरञ्जित करने वाला ।
'वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः'
वाज.सं. २७.३१.

यज्ञमन्मा – (१) पूज्य प्रभु का मनन करने वाला, (२) आचार्य गुरु या राजादि का मान करने वाला,(३) सत्संगादि ज्ञान करने वाला, (४) यज्ञमय जीवन वाला ।
'प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते'
ऋ. ७.६१.४

यज्ञर्त – यज्ञ में पूजनीय ।
'यज्ञर्तो दक्षिणीयः'
अ. ८.१०.७

यज्ञवनस् – (१) सत्संग मैत्री दान और यज्ञ को देने वाला, (२) सब प्रजाओं का दाता और स्वीकर्ता परमेश्वर ।
'ज्येष्ठं यज्ञवनसम्'
ऋ. ४.१.२.

यज्ञबन्धुः – (१) यज्ञों का बन्धु अग्नि, (२) उत्तम दान, सत्संग और मैत्रीभाव द्वारा सब का बन्धु ।
'स चेतयन् मनुषो यज्ञबन्धुः'
ऋ. ४.१.९

यज्ञवाहस् – (१) मित्रभाव, सत्संग, कर आदि देकर राजा प्रजा सा सम्बन्ध करने वाला, (२) उपास्य प्रभु या आत्मा की प्राप्ति करना, (३) यज्ञीय होम का वहन करना ।
'वर्चोधा यज्ञ वाहसे'
ऋ. ३.८.३; २४.१; वाज.सं. ९.३७; मै.सं. ४.१३.१: १९९.५; का. सं. १५.१२; श.ब्रा. ५.२.४.१६.

यज्ञवाहसः – ब.व.। यज्ञस्य निवर्तकाः देवाः (यज्ञनिवर्तक देव)
'यज्ञं यद् यज्ञवाहसः'
अ. ६.११४.२

यज्ञवाहसा – द्वि.व. । हुत द्रव्यों को वहन करने वाले सूर्य चन्द्रमा ।
'ऋतुना यज्ञवाहसा'
ऋ. १.१५.११; तै.ब्रा. २.७.१२.१, आप.श्रौ.सू. २१.७.१६.

यज्ञश्री – (१) यज्ञ की शोभा बढ़ाने वाला ।
'यज्ञश्रियं नृमादनम्'
ऋ. १.४.७; अ. २०.६८.७

यज्ञसंशित – यज्ञ के विज्ञान में सुशिक्षित ।
'यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजा'
अ. १०.५.३१

यज्ञस्यनेता – यज्ञ का नामक सूर्य ।
'आ यस्मिन् सप्त रश्मयः
तता यज्ञस्य नेतरि'
ऋ. २.५.२

यज्ञस्य पक्षौ – (१) यज्ञ के पंख स्वरूप अग्नि और सोम, (२) आत्मा और परमेश्वर ।

'यज्ञस्य पक्षा वृषयः कल्पयन्तः'
अ. ८.९.१४

यज्ञस्य मात्रा – यज्ञ में क्या होना चाहिए तथा कैसी किस प्रमाण में वेदी बनाई जानी चाहिए। इत्यादि बातें।
यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः'
ऋ. १०.७१.११; नि. १.८.
एक अध्वर्यु (त्वः) यज्ञ में क्या क्या होना चाहिए तथा किस मात्रा में वेदी बनाई जानी चाहिए इत्यादि बातों को (यज्ञस्यमात्राम्) सम्पादित करता है। (विमिमीते)।

यज्ञस्य रथ्यः – विश्वरथ का संचालक।
'यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम्'
ऋ. १०.९२.१, ऐ.ब्रा. ४.३२.६; कौ.ब्रा. १९.९; २२.२.

यज्ञसाध् – (१) यज्ञ को साधने वाला (२) रुद्र का एक विशेषण (३) प्रजापालन रूप उत्तम कर्म का साधक।
'त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधम्
वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे'
ऋ. १.११४.४
(४) यज्ञ साधन करने वाला अग्नि।
(५) अध्यापन या ज्ञानदान करने वाला विद्वान्।
'तं यज्ञसाधमपिवात यामः'
ऋ. १.१२८.२

यज्ञसाधः – (१) यज्ञैः विज्ञानादिभिः साधितुं शक्यः (यज्ञों या विज्ञानों से साधने योग्य परम पुरुष), (२) महान् ब्रह्मरूप यज्ञ को वश करने वाला।
'तमीडत प्रथमं यज्ञसाधम्'
ऋ. १.९६.३

यज्ञस्यसाधनः – यज्ञ का साधन अग्नि, (२) संग्राम करने का साधन, (३) संग्राम का विजय करने वाला।
'विप्रोयज्ञस्य साधनः'
ऋ. ३.२७.८; साम. २.८२८; आप.श्रौ.सू. ९.३.२०

यज्ञानां पिता – (१) यज्ञों का एक –परमेश्वर या अग्नि।
'पिता यज्ञानामसुरो विपश्चिताम्'
ऋ. ३.३.४.
यज्ञों का रक्षक तथा विद्वान् स्तोताओं के मध्य में प्रज्ञा वाला (यज्ञानां पिता) या तत्ववेत्ताओं का प्राण दाता (विपश्चिताम् असुरः)।
(२) सब श्रेष्ठ कर्मों, सद्व्यवहारों, सत्संगों, पूज्य पुरुषों और सब आत्माओं का पिता पालक, (३) अग्नि।

यज्ञायत् – (१) यज्ञादि करने वाला, (२) परस्पर सत्संग चाहने वाला राष्ट्र।
'यज्ञायते वा पशुषो न वाजान्'
ऋ. ५.४१.१; मै.सं. ४.१४.१०: २३१.१०; कौ.ब्रा. २३.३.

यज्ञायज्ञा – (१) यज्ञ, (२) मिलकर करने योग्य उपासना, (३) युद्ध यज्ञ, सत्संग आदि कार्य।
'यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिः'
ऋ. १.१६८.१
(४) प्रत्येक यज्ञ में या सग्राम में या सभा में।
'यज्ञायज्ञा वो अग्नये'
ऋ. ६.४८.१; वाज.सं. २७.४२; साम. १.३५; २.५३; मै.सं. २.१३.९ : १५९.१०; का.सं. ३९.१२; ऐ.ब्रा. ३.३५.६; आप.श्रौ.सू. १७. ९.१.

यज्ञायज्ञिय – पशु, अन्नाद्य, वामदेव्य पिता, शान्ति, भेषज, प्रजबन, प्राजापत्य प्राण, यजमान लोक, अमृतलोक, स्वर्ग, अन्तरिक्ष।
'तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यम्'
अ. १५.२.१०

यज्ञासाह – महान् यज्ञ को धारण करने वाला अग्नि।
'यज्ञासाहं दुव इषे'
ऋ. १०.२०.७

यज्ञियः – यज्ञ + घ = यज्ञिय।
'यज्ञर्त्विग्भ्यां घ खञौ'। अर्थ (१) यज्ञ–सम्पादक, (२) चारों आश्रयों के यज्ञों के सम्पादक हे 'अर्थवन्'।
'तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्'
ऋ. १०.१४.६, अ. ६.५५.३; १८.१.५८; वाज.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.६; ५.७.२.४; का.सं. १३.१५; नि. ११.१९.
(३) यज्ञार्ह।
'आ वामुपस्थमद्रहा
देवाः सीदन्तु यज्ञियोः'
ऋ. २.४१.२१; मै.सं. ३.८.७: १०५.७; नि. ९.३७.
हे द्यावा पृथिवी, तुम दोनों के निकट यज्ञार्हदेव सन्निहित हो।

(४) देवता ।
'माया मू तु यज्ञियानामेताम्'
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७
लोग इसे देवताओं की माया समझते हैं ।
(५) यज्ञकर्त्ता । (६) उपासनीय, पूजनीय, आदरणीय माता, पिता या, गुरु ।
'अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानाम्'
अ. १९.४२.४; तै.सं. १.६.१२.४.

यज्ञियपावकः – (१) यज्ञाग्नि ।
'शुद्धाभवन्तो यज्ञियासः पावकाः'
नि. ६.१२

यज्ञिया – (१) यज्ञ रूपिणी । (२) यज्ञमय परमेश्वर की उत्पादिका शक्ति पूर्णिमा –पूर्ण ब्रह्मशक्ति ।

यज्ञिया तनू – यज्ञ के योग्य शरीर ।
'इयं ते यज्ञिया तनूः'
वाज.सं. ४.१३; वाज.सं. (का.) ४.५.५; श.ब्रा. ३.२.२.२०; आप. श्रौ.सू. १०.१३.९.

यज्ञियानिनामानि – (१) परमात्मा के अनेक नाम जैसे मित्र वरुण, अर्यमा आदि ।
'नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि
भद्रायान्ते रणयन्त संदृष्टौ'
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६: २०६.१२; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२
जो परमान्या के अनेक नामों को धारण करते हैं वे भद्र संदर्शन में रमण करते हैं । अर्थात् उन्हें अभद्र के दर्शन नहीं होते ।
(२) यज्ञयोग्य नाम या स्तोत्र

यज्ञियानौ – (१) यज्ञमयी नौका ।
'न ये शेकुर्यज्ञियां नावामारुहम्'
ऋ. १०.४४.६; अ. २०.९४.६; नि. ५.२५.
जो यज्ञरूपी नौका चढ़ न सके ।

यज्ञियासः – यज्ञिय + जस् = यज्ञियासः । अर्थ है– यज्ञार्ह देवता, यज्ञ के अधिकारी ।

यच्छतम् – यम् (देना) के लोट् म.पु.ब.व. का रूप । अर्थ–नियच्छतम् , दत्तम । दो ।

यज्ञित् – यद्यपि । दे. 'उलूखलक' ।
'यज्ञिद्धि त्वं गृहे गृहे उलूखलक युज्यसे'
ऋ. १.२८.५; आप.श्रौ.सू. १६.२६.१; नि. ९.२१.
हे ओखल, यद्यपि तू घर में काम में लाया जाता है (गृहे गृहे युज्यसे) ।

यज – पूजाकर । दे. 'आवक्षत्'

यजतः – (१) यजनीय । दे. 'धियन्धाः' ।
'उपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः'
ऋ. ७.२.२; वाज.सं. २९.२७; मै.सं. ४.१३.३: २०१.१२; का.सं. ३७.४; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.७.
हम यजनीय नराशंस अर्थात् अग्नि का महत्व (यजतस्य) हवि या स्तोत्रों से (यज्ञैः) निकट जाकर गाते हैं (उपस्तोषामः) ।
(२) यज्ञिय, (३) यज्ञिमधूम के ऐसा कृष्ण रंग ।
(३) बाहर आने या प्रसव कर देने योग्य गर्भ ।
दे. 'अनाकृत' ।
'वि यदस्थाद् यजतो वातचोदितः
ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः'
ऋ. १.१४१.७

यजतं शुक्रम् – यज्ञ करने योग्य शुल्क वर्ण अर्थात् दिन । दे. 'पूषा' ।
'शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यत्'
ऋ. ६.५८.१; साम. १.७५; तै.सं. ४.१.११.२; मै.सं. ४.१०.३: १५०.४; ४.१४.१६: २४३.१०; का.सं. ४.१५; ऐ.ब्रा. १.१९.९; नि. १२.१७.
हे पूषन् , तेरा शुल्कवर्ण एक दिन होता है जो यज्ञ करने के योग्य है (यजतम्) ।
'भरते मर्योमिथुना यजत्रः'
ऋ. १.१७३.२

यजत्र – (१) दानशील (२) ईश्वरोपासक, यजनशील, यजमान, सत्संगति के योग्य पुरुष, (३) सेवक, (४) ध्यानवान् ।
'भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः'
ऋ. १.८९.८; साम. २.१२२४; वाज.सं. २५.२१; मै.सं. ४.१४.२: २१७.११; का.सं. ३५.१; तै.आ. १.१.१; २१.३; आप.श्रौ.सू. १४. १६.१.

यजता सरस्वती – (१) दान देने और सत्संग से प्राप्त होने योग्य वाणी, पूजनीय सरस्वती ।
'सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम्'
ऋ. ५.४३.११; तै.सं. १.८.२२.२; मै.सं. ४.१०.१: १४२.९; का.सं. ४.१६.

यजता – द्वि.व.। यज्ञ करने वाले परस्पर संगत स्त्री पुरुष ।
'त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे
परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्'
ऋ. १.३४.७

हे शान्ति और तेज से युक्त स्त्री पुरुषो, यज्ञ करने वाले , परस्पर संगत आप दोनों प्रतिदिन तीन धातुओं के बने शरीर का पृथ्वी पर ब्रह्म चारी रहकर तीन बार या तीन दिनों तक शयन करो ।

'अक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ अधः शायिनौ स्याताम् । अतः ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं सवत्सरम् वा ।

आश्व. गृ सू. ९.१०.१२.

यजत्रा – सत्संग, मैत्री करने वाली यज्ञशील स्त्री ।

'ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः '

ऋ. ३.५७.४

यजते – द्वि.व. । (१) 'उषासानक्ते ' का विशेषण । अर्थ (१) यज्ञ की सम्पादकयित्रियाँ या पूज्य –सा. (२) यज्ञ करने के योग्य प्रातः और सायं –ज.दे.श. । दे. 'उपाके' ।

'आ सुष्वयन्ती यजते उपाके '

ऋ. १०.११०.६; अ. ५.१२.६; २७.८; वाज.सं. २९.३१; मै.सं. ४.१३ .३: २०२.५; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.११.

सुन्दर रीति से चलने वाली या परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई या मुस्कुराती हुई (सुष्वयन्ती) यज्ञ की सम्पादयित्रियाँ या पूज्य या यज्ञ करने योग्य उषा और रात्रि या प्रातः सायं ।

(३) पूजा करता है या यज्ञ करता है । (४) परस्पर संगत द्यावापृथिवी या स्त्रीपुरुष ।

'उरूची विश्वे यजते निपातम् '

ऋ. ४.५६.४

यजथ – (१) पूजा–सा. (२) परमेश्वर प्राप्ति । दे. 'रुशत् '

यजध्यै–यज् + शध्यैन् = यजध्यै । अर्थ – यजमान । यष्टुम् (यज्ञ या पूजा करने के लिए) तुम् अर्थ में 'शध्यैन' प्रत्यय होता है । दे. 'कारु'

याजमान – यज् + शानच् = यजमान । यज्ञ करने वाला ।

'यजमानाय शिक्षिते '

वाज.सं. २८.१५

यजस् – (१) संगतिकारक, (२) यज्ञपरक ।

'इन्द्राग्नी यजसा गिरा '

ऋ. ८.४०.४

यज्वनाम् अभिजिताःस्वर्गा – यज्ञशील पुरुषों द्वारा प्राप्त विविध सुख

'ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः '

अ. १२.३.६

यज्वरी – (१) शिल्पविद्या – सम्पादन हेतु अग्नि और जल ।

'अश्विना यज्वरीरिषः '

ऋ. १.३.१; कौ.ब्रा. १४.५; ऐ.आ. १.१.४.७; आश्व.श्रौ.सू. ४.१५.२; शां.श्रौ.सू. ६.६.१; ७.१०.१२.

(२) देवपूजा या यज्ञकरने वाली प्रजा ।

'विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा '

ऋ. १०.४१.२

यजामहाः – (१) 'यजामहे' ऐसा कहने वाले (२) यज्ञ दान आदि करने वाले, (३) आचारवान् ।

'प्रगाथा ये यजामहाः '

वाज.सं. १९.२४

यज्वा – यज्ञशील ।

'यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् '

ऋ. २.२६.१

यजिष्ठ– सबको मिलाने या शक्ति देने में समर्थ अग्नि, (२) सब को संगत करने और सब को भृति आदि देने वाला । दे. 'अपां सधस्थ' (३) वृष्टि, अन्न आदि देने वाला । अग्नि, (४) दानशील (५) यज्ञ करने वाला अग्नि ।

'यजिष्ठ होतरा गहि '

ऋ. २.६.६

यजीयान् – (१) यष्टृतरः, अतिशयेन यष्टा (मनुष्य होता से बढकर यष्टा अर्थात् अग्नि) । यज् + ईयसु = यजीयान् । अर्थ– (१) प्रवीणतम यज्ञकर्ता । दे. 'अपिशत् ' ।

'तमद्य होतरिषितो यजीयान्
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् '

ऋ. १०.११०.९; अ. ५.१२.९; वाज.सं. २९.३४; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१४.

हे प्रवीणतम यज्ञकर्ता विद्वान् , उस त्वष्टा देव को तू पूज ।

यजुः – यज् + उस् = यजुष् । यजुः यजतेः (यज् धातु से यजुष् बना है) । तेन हि विशेषतः इज्यते (यजुर्वेद से ही विशेषतः यज्ञ किया जाता है ।

अतः वह यजुः कहा जाता है) । अर्थ - (१) मंत्र, (२) यज्ञविधि, (३) यजुर्वेद ।
'यजो ह वै नामैतद् यत् यजुरिति'
श.ब्रा. ४.६.७.१३

यजुरा - द्वि.व. । (१) अश्विद्वय (२) पूज्य होकर रहने वाले स्त्री पुरुष ।
'पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्ठम्'
ऋ. १०.१०६.३
यजुर्वेदस्य षडशीतिभेदाः
यजुर्वेद के ८६ भेद हैं । उनमें चरकों के १२ हैं जैसे - चरक, आह्वरक, कठ, प्राच्य, प्राच्यकठ, कपिष्ठल कठ, चारायणीय वारायणीय, वार्तान्निवीय, श्वेताश्वतर, औपमन्यव, पातण्डिनीय, मैत्रा यणीय ।
मैत्रायणीय के छः भेद-मानव, वराह, दुन्दुभ, छागलेय, हारिद्रवीय, श्यामायनीय ।
तैतियों के दो भेद-औखेय, खाण्डिकेय ।
खाण्डिकेयों के ५ भेद-कालेत, शाय्यायनी, हैरण्यकेशी, भारद्वाजी, आपस्तम्बी ।
वाजसनेय शाखा के मानने वाले विद्वानों के १५ भेद - वाजसनेय, जाबाल, बोधायन, काण्व, माध्यन्दिनीय, शाफेय, तापनीय, कपोल, आवटिक, परमावटिक, पाराशर, वैणेय, अद्ध और बौधेय ।

यज्यु - (१) यज्ञकर्ता । यज् + युच् = यज्यु । दे. 'दीर्घप्रयज्यु' (२) होमादि शिल्पविद्या - साधक विद्वान्, (३) यज्ञशील, (४) उपासक
'त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरः'
ऋ. १.३१.१३
हे परमेश्वर अग्नि, तू यज्ञशील पुरुष का रक्षक अन्तर्यामी है ।

यजूंषि - 'एष यन्नेवेदं सर्वं जनयति, एतं यन्त मिदमनु प्रज्ञायते । तस्माद् वायुरेव यजुः । अयमेवा काशो जूः । यदिदमन्तरिक्षम् । एतं हि आकाशमनु जवते ।
तदेत् यजुर्वायु श्चान्तरिक्षं च यच्च जूश्च । तस्मात् यजुः । श.ब्रा. १०.३.५.२
इयै त्वा ऊर्जे त्वा । वायवे स्थ । देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठ तमाय कर्मणे । इत्येयमादि कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । गो.ब्रा. १.२७
मन एव यजूंषि
श.४.६.७.५.
यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम्
तै.ब्रा. ३.१२.९.२

यत् - (अ.) जब । दे. 'अविचेतन' ।
यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि
राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा'
ऋ. ८.१००.१०; तै.ब्रा. २.४.६.११; नि. ११.२८.
जब माध्यमिका वाक् शब्द रूपी गर्जन लक्षण वाली अविज्ञातार्थ ध्वनि करती, माध्यमिका देवी की ईश्वरा तथा लोक को प्रसन्न करने वाली वर्षा बरसाने लगती है ।
जब अविज्ञान अर्थों को बतलाने वाली, विद्वान् लोगों की स्वामिनी, प्रसन्नता देने वाली दिव्य वाणी प्राप्त होती है ।
(२) यावत्कालम् - जब तक (३) जो (सर्वनाम) ।
(४) यतः (क्योंकि) जिसका से । दे- 'अगोह्य' ।
(५) यत्नवान् । यत्नशील ।
'ददृचा सनिं यते'
ऋ. ५.२७.४
'ऋधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा'
ऋ. ७.६१.३

यत् अहन् - जिसी दिन ।
'कविर्यदहन् पार्याय भूषात्'
ऋ. ४.१६.११

यतङ्करः - (१) बांधने वाला, (२) यत्नशील ।
'वेतीद्वस्थ प्रयता यतंकरः'
ऋ. ५.३४.४

यतते - संयतते, संगच्छते (साथ साथ प्रयत्न करना है या जाता है) । यत् धातु यत्न करने के अर्थ में आता है । यहां अर्थ हैं - चलता है , प्रयत्न करता है । दे. 'कम' ।
'वैश्वानरो यतते सूर्येण'
ऋ. १.९८.१; वाज.सं. २६.७; तै.सं. १.५.११.३; मै.सं. ४.११.१ : १६१.४; का.सं. ४.१६; नि. ७.२२,२३.
वैश्वानर अग्नि प्रातः उदय लेने वाले सूर्य के साथ चलता है ।

यतन् - वश करता हुआ ।
'चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्'

ऋ. ५.४८.५

यतमः – जो, जो कोई ।
'इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने'
ऋ. १०.८७.८; अ. ८.३.८
'घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात्'
अ. ४.११.५
'क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भ'
अ. ५.२९.७

यतयः – विशेष यत्न, गति बल देने वाले तेजोमय सूर्यादि लोक ।
'यद्देवा यतयो यथा
भुवनान्यपिन्वत'
ऋ. १०.७२.७

यतरत् – दो में से जो, जो भी
'तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयः'
ऋ. ७.४.१२; अ. ८.४.१२.

यतस्रुक् – (१) स्रुच् के समान इन्द्रियों को वश करने वाला, (२) यज्ञार्थ स्रुवा का प्रयोग करने वाला– ग्रहण करने वाला ।
'दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक्'
ऋ. ४.२.९
(३) जिसके हाथ में स्रुक, अर्थात् घृताधार पात्र हो, (४) हवन करने वाला, यज्ञ करने वाला
(५) संयत वीर्य वाला जितेन्द्रिय ।
'समिद्धो अग्न आ वह
देवाँ अद्य यतस्रुचे'
ऋ. १.१४२.१
(६) प्राणों और इन्द्रियों पर संयम करने वाला ।
'निमितासो यतस्रुचः'
ऋ. ३.८.७
(७) स्त्री पुरुषों लोकों और इन्द्रियों को दमन करने वाला ।
'यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यम्'
ऋ. ३.२.५

यतस्रुचा – साधन और उपसाधनों से युक्त परस्पर सम्मिलित अध्यापक तथा उपदेशक,
(२) स्त्री पुरुष, (३) गुरुशिष्य, (४) राजा प्रजा आदि जोड़े
'यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः'
ऋ. १.८३.३; अ. २०.२५.३; ऐ.ब्रा. १.२९.११.
जो दोनों परस्पर सम्मिलित स्त्री पुरुष, गुरुशिष्य राजा, प्रजा, आदि जोड़े तेरी सेवा या आशा का पालन करते हैं ।
(५) यता उद्यता स्रुचा स्रुग्वत् पयोः तौ–दया.।
(६) स्रुचा को हाथ में स्थिर करते हुए अध्वर्यु ।
'यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा'
ऋ. १.१०८.४
स्रुचा को पकड़े तथा कुशासन बिछाते हुए अध्वर्यु ।
(७) वीर्य या अपने प्राणों की रक्षा करने वाले स्त्री पुरुष ।

यत्र – अ. । यत् शब्द से । अर्थ–जहाँ ।
'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०

यत्रकामम् – जहाँ जहां इच्छा हो ।
'यत्रकामं भरामसि'
अ. ९.३.२४.

यता – (१) संयत, (२) नियमों में रहने वाली ब्रह्म चारिणी ।
'यता सुजूर्णी रातिनी घृताची'
ऋ. ४.६.३

यतानः – यत्न करता हुआ ।
'हंसा इव श्रेणिशो यतानाः'
ऋ. ३.८.९
'लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः'
ऋ. ५.३३.१०

यतिः – (१) सर्व नियन्ता, बलवान् ।
'सहस्रणीतिर्यतिः परायती'
ऋ. ९.७१.७
(२) अव्यय । जितना ।
'अनुपूर्वं यतमानाः यतिष्ठ'
ऋ. १०.१८.६

यतिधा – जितने प्रकार का ।
'तां नो विधेहि यतिधा सखिभ्यः'
अ. ८.९.७

यती – (१) चलती हुई (२) विद्युत
वृष्टी द्यावो यतीरिव
ऋ. ५.५३.५
(३) घरों से पृथक् होकर रहने वाली स्त्री ।
'कुवित् पतिद्विषो यतीः'
ऋ. ८.९१.४

यत्सीम् – यत् + सीम् । अर्थ– (१) जैसे – दया.

(२) जब-सा. । दे ' अश्विना' ।
'आस्रो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य'
ऋ. १.११७.१६; नि. ५.२१.
जब या जैसे तुम दोनों ने वृक के मुख से या आदित्य के मुख से वर्तिका या उषा को छुड़ाया । (३) जैसे ही ।
(४) जो कुछ ।
'यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृडतु'
ऋ. १.१७९.५

यतुनः - (१) गमनशील-सा. (२) प्रयत्न शील-दया. (३) सूर्य का विशेषण । दे. 'अविदत्'
'ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुना'
ऋ. ५.४४.८
अत्यन्त प्रवृद्ध, गमनशील या प्रयत्न शील सूर्य के प्रज्ञापक कर्म से -

यत्पुर् - प्रयत्नसाध्य नगर । दे. -दया. ।
'सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त्
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
विस्तृत प्रयत्न साध्य नगरियों को (सप्त यत्पुरः) कल्याणप्रद (शर्मदर्त् बनाया) -दया. ।
सायण ने 'यत्' का अर्थ 'यतः' किया है । अर्थ देखें. 'दन्' में ।

यथा - जिस प्रकार । यत् + था ।
'आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति
पुरा जीवगृभो यथा'
ऋ. १०.९७.११; वाज.सं. १२.८५; तै.सं. ४.२.६.२;मै.सं. २.७.१३: ९३.१८; का.सं. १६.१३; नि. ३.१५.
यक्ष्मा रोग का आत्मा दवा देने के पूर्व ही नष्ट हो जाता है । जैसे जीव मारने वाले के द्वारा जीव के मारे जाने के पूर्व ही दैव योग से जीव मर जाय ।

यथाचित् - जिस प्रकार ।
'यथाचित् पूर्वे जरितार आसुः'
ऋ. ६.१९.४
'यथाचिद् विशो अश्व्यः'
ऋ. ८.४६.२१.

यज्ञयदी - उपासन यज्ञ का अग्ररूप वशा- परमात्म शक्ति ।
'यज्ञपदीराक्षीरा'
अ. १०.१०.६.

यथापरु - शरीर का प्रत्येक जोड़, सन्धि ।
'यथापरु तन्वं सं भरस्व'
अ. १८.४.५२.

यथापुरा - पूर्ववत्, पहले के जैसा ।
'नेषि णो यथा पुरा
अनेनाः शूर मन्यसे'
ऋ. १.१२९.५
पूर्व काल के समान ही तू (यथा पुरा) स्वयं अपराध और पाप से रहित (अनेना) हमें सन्मार्ग पर चला । तू सब कुछ जानता है (मन्यसे) ।

यथा भागम् - अपने अपने भाग के अनुकूल ।
'यथाभागमावृषायिषत'
वाज.सं. २.३१.

यथायथा - जैसे जैसे ।
'यथायथा पतयन्तो वियेमिरे'
ऋ. ४. ५४.५

यथावशम् - (१) अभिलाषा या इच्छा के अनुसार ।
'यथावशं तन्वः कल्पयाति'
ऋ. १०.१५.१४; अ. ७.१०४.१, १८.३.५९; वाज.सं. १९.६०.
(२) वश, अधिकार और विशेष जितेन्द्रियता के अनुसार ।
'ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशम्'
ऋ. २.२४.१४; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.१२; तै.ब्रा. २.८.५.२.
(३) यथाशक्ति
'यथावशं तन्वं कल्पयस्व'
ऋ. १०.१५.१४.
(४) स्वच्छन्द रूप से ।
'स्यन्दमाना यथावशम्'
अ. ३.१३.४; तै.सं. ५.६.१.३; मै.सं. २.१३.१: १५२.१३.
'यथावशं तन्वं चक्र एषः'
ऋ. ३.४८.७; ऋ. ७.१०१.३

यथाविद् - (१) यथावत् ज्ञान या ऐश्वर्य की प्राप्ति ।
'इन्द्रिमर्च यथाविदे'
ऋ. ८.६९.४; अ. २०.२२.४; ५१.१; ९२.१; साम. १.१६८, २३५; २. १६१, ८३९.
(२) यथावत् श्रम के अनुसार द्रव्य की प्राप्ति
(३) ज्ञान और आनन्द का लाभ ।

'नाभा यज्ञस्य संदधुर्यथाविदे'
ऋ. ८.१३.२९

यथास्थाम – अपने अपने स्थान पर ।
'यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव'
अ. ७.६७.१

यद्धनाम – यत् + ह + नाम । जो कुछ भी । दे. 'अयोः' ।
'विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम'
ऋ. १.१८५.१; नि. ३.२२.
जो कुछ भी है सब आत्मा से विभृत है ।

यदि – अगर । दे. 'जामि' । यत् + इ ।
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६
यदि ये माताएं कुल को बढ़ाने वाली सन्तति (पुत्र या पुत्री) उत्पन्न करती हैं ।
'देवी यदि तविषी त्वावृधोतये'
ऋ. १.५६.४

यदीम् – यत् + ईम् । जब भी ।
'यदीमेनां उशतो अभ्यवर्षीत्'
ऋ. ७.१०३.३

यदु – (१) यती + उ + यदु । (१) दूसरे का धन मारने के लिए यत्नशील (२) एक वैदिक राजा (३) ऋग्वेद का एक जन ।
पिता पुत्र दिवोदास और सुदास को यदु और तुर्वशों से संघर्ष करना पड़ा था । तुर्वश और यदु सहयोगी थे । अगस्त्य ने इन दोनों के लिए ऋ. १.१७४.९ मंगल कामना की है । सव्य अंगिरस ने भी ऋ. १.५४.६ में कण्व के पुत्र वत्स ऋ ८.७.१८ में इसका उल्लेख किया है । यदुओं और तुर्वशों के पुरोहित कण्व थे । वसिष्ठ सुदास की मंगल कामना करते हैं ।
'त्वमपो यदवे तुर्वशाय'
ऋ. ५.३१.८; अश्व.श्रौ.सू. ९.५.२.

यद्ते – यदा + इत् । जभी । दे. 'अभूताम्' 'आत्'
'यदेदेनमदधुर्यज्ञियासः
दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्'
ऋ. १०.८८.११, मै.सं. ४.१४.१४: २३९.१७, नि. ७.२९
जभी यज्ञार्ह देवों ने द्युलोक में प्रातः काल सूर्य को अग्नि को स्थापित किया ।
'यदेदयुक्त हरितः सधस्तात्'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२; नि. ४.११.

यदा – जब । दे. 'अभूताम्' ।
'यदा चरिष्णू मिथुनावभूताम्'
ऋ. १०.८८.११
जब साथ साथ चलने वाले सूर्य और वैश्वानर एक जोड़े के समान प्रादुर्भूत हुए ।

यन् – (१) या + शतृ = यत् । प्र.ए.व.में 'यन्' । अर्थ–जाता हुआ । दे. 'अरुण' 'भासकृत्' 'वृक'
'अरुणो मा सकृद् वृकः
पथा यन्तं ददर्श हि'
ऋ. १.१०५.१८; नि. ५.२१.
(२) इस लोक से उस लोक को जाने वाला –सा. (३) ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरुकुल जाने वाला छात्र –दया. । दे. 'कपन'।
'चक्षुरिव यन्तमनुनेषथा सुगम्'
ऋ. ५.५४.६
हे मरुतो, तुम इस लोक से उस लोक को जाने वाले को शोभन मार्ग बताओ (यन्तं सुगम् अनुनेषथा) जैसे आखें राह बताने में अनुग्रह करती है (चक्षुः इव) –सा. ।
हे वेद विद्या प्राप्त मनुष्यो, आप विद्या के लिए प्राप्त हुए हमारे पुत्रों को ज्ञान–दर्शक मार्ग बताइए । – दया.

यन्त्र – यम् + त्रल् = मन्त्र । यम अर्थात् नियन्त्रण करने का साधन ।
यम् + त्रन् = यन्त्र । दे 'अरम्णात्'
'सविता यन्त्रैः पृथ्वीमरम्णात्'
ऋ. १०.१४९.१; नि १०.३२
सविता ने वृष्ट्यादि साधनों तथा वायवीय पाशों से पृथ्वी को संयत कर स्थिर किया ।

यन्ता – (१) नियामक, व्यवस्थापक (२) बृहस्पति का विशेषण ।
'ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता'
ऋ. २.२३.२९, २४.१६; वाज.सं. ३४.५८; मै.सं. ४.१२.१: १७८.७; ४.१४.१०: २३०.९; तै.ब्रा. २.८.५.१.
(३) समस्त संसार को नियम में रखने वाला परमेश्वर ।
'यन्तासिधर्ता'

वाज.सं. २२.३; मै.सं. ३.१२.१: १६०.१; श.ब्रा. १३.१.२.३

यन्तारा – (१) यन्तारौ – सूर्य के दो अयन (२) ऋतु के नियन्ता दो मास ।

'द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः'

ऋ. १.१६२.१९

यन्त्री – (१) नियमकारिणी शक्ति ।

'यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवाऽसि धरित्री'

वाज.सं. १४.२२.

यन्तुरः – (१) नियन्ता ।

'अग्निमीडिष्व यन्तुरम्'

ऋ. ८.१९.२; साम. २.१०३८

(२) सब को नियम में रखने वाला अग्नि, (३) उत्तम नियन्ता ।

'अग्निं यन्तुरमप्तुरम्'

ऋ. ३.२७.११

यभ – धा. । मैथुन करना ।

'यभ मामद्ध्योदनम्'

अ. २०.१३६.११

यम – (१) व्यवस्थापक, (२) मय, शिल्पी ।

'तत्र यमः सादना ते कृणोतु'

अ. १८.३.५२

(३) यम् + अच् = यम । यच्छति इति यमः । जो जीवों को प्राणों से उपरत करता है । वह यम है । (यम-यति उपरमयति जीवितात् सर्व भूतग्रामम् इतियमः) ।

(४) देवराज के अनुसार 'यच्छति प्रयच्छति स्तोतृभ्यः कामान् इति यमः मध्यम स्थानः वायुः रति (स्तोताओं को अभीष्ट पदार्थ जो देता है । वह यम अर्तात् मध्यमस्थायी वायु है) ।

(५) स्वर्ग नरक का देने वाला यम-सा. ।

'वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा दुवस्य'

ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९; ३.१३; मै.सं. ४.१४.१६: २४३.७; तै. आ. ६.१.१; नि. १०.२०.

प्राणियों को अपने अपने कर्मानुसार स्वर्ग नरक पहुंचाने वाले विवस्वान् के पुत्र यम राजा को हवि से पूज ।

(६) आदित्य, -सा. (७) शुद्ध वायु । दे. 'आदधिरे', 'किः' 'पलाश'

'अयं यो होता किरु स यमस्य'

ऋ. १०.५२.३; नि. ६.३५.

अग्नि आदित्य का या शुद्ध वायु का कर्त्ता है (यमस्य किःउ)

(८) सायं कालीन अस्तंगत आदित्य को भी यम कहा गया है ।

(९) पितृपति यम ।

'यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे
देवैः संपिबते यमः
अत्रा नो विश्पतिः पिता
पुराणाँ अनु वेनति'

ऋ. १०.१३५.१

(१०) प्राण । यह जीवन प्रदान करता है । (११) अग्नि । ' अग्निरग्नि यम उच्यते' जैसे –

'जातः यमः जनित्वं यमः
यमः कनीन जारः'

अग्नि कन्याओ के कन्यात्व को नष्ट करता है । कन्या के चार पति अर्थात् संरक्षक हैं –

'सोमः प्रथमो विविद
गन्धर्वो विविद उत्तरः
तृतीयो अग्निष्टे पतिः
तुरीयस्ते मनुष्यजा'

ऋ. १०.८५.४०

सोम, उत्पादक पिता, गन्धर्व देववाणी को धारण कराने वाला, अग्नि विवाहाग्नि और मनुष्य जातीय पति ।

(१२) अन्धकार । (१३) योग के आठ यमों में प्रथम ।

अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता अस्तेयमिति पञ्चैते यमाख्यानि व्रतानि योगशास्त्र के दश यमः-

ब्रह्मचर्य दया क्षान्ति दानं सत्यम कल्कता
अहिंसा स्तेय माधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः'

या.स्मृ. ३.३.१३

आ नृशंस्यं दया दया सत्यमहिंसा क्षान्ति-रार्जवम्

प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मार्दवञ्च

(१४) मृत्यु का देवता यम यमादश ।

(१५) सूर्य का पुत्र मृत्यु या यम

(१६) जोड़ा ।

आधुनिक अर्थ- (१) संयम, (२) आत्मसंयम (३) कोई धार्मिक अनुष्ठान, (४) योगशास्त्र के

१० प्रकार के यम, (५) मृत्यु देवता यम, (६) सूर्य का पुत्र यम (७) साथ उत्पन्न होने वाला भ्राता ।
(१७) युगल रूप में उत्पन्न बालक ।
'ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य'
अ. ६.११०.२
(१८) विवाह बन्धन में बंधा पुरुष
(१९) वैवस्वत यम
'यमस्य मा यम्यं काम आगन्'
ऋ. १०.१०.७; अ. १८.१.८

यमदूत – (१) बन्धन करने वाला या बंधन से पीड़ा पहुंचाने वाला नियुक्त पुरुष, (२) यमराज का दूत जो मृतात्मा को ले जाता है ।
'यमदूता अपोम्भत'
अ. ८.८.११
(३) विवस्वान् सूर्य के उत्पन्न काल के निरन्तर गतिशील परिवर्तनशील खण्ड दिन, मास, पक्ष ऋतु, वर्षा आदि ।
'वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतान्'
अ. ८.२.११.

यमन् – सर्वनियामक ।
'इयं ते राण्मित्रायं यन्तासि यमन'
वाज.सं. १८.२८

यमनी – नियम व्यवस्था को करने वाली ।
'यन्त्र्यसी यमनी'
वाज.सं. १४.२२; तै.सं. ४.३.७२; मै.सं. २.८.३: १०.९.१; का.सं. १७.३; श.ब्रा. ८.३.४.६; १०.

यमनेत्र – नियन्त्रण कर्त्ता नेता वाला, (२) युद्ध विजयी वीर पुरुष ।
'यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३५, श.ब्रा. ५.२.४.५.

यमर्यमा – काम क्रोध आदि पर वश, करने वाला ।
'सजोषसो यमर्यमा'
ऋ. १०.१२६.१ साम. १.४२६.

यमराज – (१) सर्व नियन्ता, सबका राजा परमेशवर ।
'अपरिपरेण यथा यमराज्ञः पितृन् गच्छ'
अ. १८.२.४६

यमःराजा – पितरों का राजा यम । दे. 'अनुपस्पशान' 'वैवस्वत'
'यमं राजानं हविषा दुवस्या'
ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९; ३.१३ मै.सं. ४.१४.१६: २४३.७; तै.आ. ६. १.१; नि. १०.२०.

यमराट् – (१) यमराज, । (२) नियन्ताराजा ।
'यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः'
ऋ. १०.१६.९; अ. १२.२.८; वाज.सं. २५.१९.

यमराज्य – यम का राज्य, नियन्ता का राज्य,
'ये समानाः समनसः
पितरो यमराज्ये'
वाज.सं. १९.४५.

यमयोः – (१) दिन रात के जोड़ो में, (२) भोग्य भोक्ता सम्वण्ध से बद्ध युगल जीव और प्रकृति दोनों में, (४) प्राण अपान के जोड़ों में ।
'त्वं यमयोरभवो विभावा'
ऋ. १०.८.४

यमस्य करणः – (१) नियामक प्राणात्मा का करण अर्थात् कार्य –स्वप्न । ज. दे.श.।
'देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्थ करणः'
अ. ६.४६.२; १६.५.६.
(२) प्राण हरण रूप यम का व्यापार करने वाला
(३) यम, मृत्यु को बांध लेने वाले का साधन स्वप्न ।
'ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः'
अ. १६.५.१.

यमस्य जातम् अमृतम् – (१) यमनियम में निष्ठ सर्वनियन्ता परमेश्वर के प्रसिद्ध या प्रकाशित, सब दुःखों से रहित, अमृतमय मोक्ष सुख, (२) यम विनयम पालनरूप ब्रह्मचर्य का प्रकट अविनाशी वीर्य ।
'यमस्य जातममृतं यजामहे'
ऋ. १.८३.५; अ. २०.२५.५
हम यम नियम में निष्ठ, सर्व नियन्ता परमेश्वर के प्रसिद्ध या प्रकाशित सब दुःखों से रहित अमृतमय मोक्ष दुःख को प्राप्त करते हैं ।
अथवा,
यम नियम पालनरूप ब्रह्मचर्य का प्रकट अविनाशी वीर्य हम प्राप्त करते हैं ।

यमस्यमाता – (१) त्वष्टा (विश्वकर्मा) की पुत्री सरण्यू जिसका आदित्य से विवाह हुआ और उसी के यम और यमी उत्पन्न हुए–सा.
(२) मध्यम देव यम की माता ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी हुई । यह

आध्यात्मिक अर्थ है । दे. 'कृणोति'
'यमस्य माता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश ।
ऋ. १०.१७.१; अ. १८.१.५३; नि. १२.११.
वह यम की भाविनी माता त्वष्टा की पुत्री सरण्यू विवाहिता हो (पर्युह्यमाना माना) यम और यमी को उत्पन्न कर महान् आदित्य की भार्या अदृश्य हो गई । -सा.
मध्यम देव यम की माता वह ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी गई । प्रभात होते ही सूर्य की ज्योति सूर्य के पास से छिटकर दूर भाग गई ।
(३) सर्वनियन्ता की जगत् निर्मात्री प्रकृति ।

भयस्यश्वानौ - (१) यम के दो कुत्ते (२) परमात्मा के दिन और रात्रिरूपी निरन्तर गतिशील कुत्ते ।
'यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ'
अ. ८.१.९

यमस्यषट् - (१) संयम में रहने वाले जीव के मनसहित छः इन्द्रियाँ, (२) काल रुप संवत्सर की छः ऋतुएं
'अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य'
अ. ८.९.२३

यमस्य सभासदः - (१) इस तपस्वी शरीर के भीतर व्यापक प्राण, (२) राष्ट्र के नियामक राजा के सभासद् ।
'यमस्यामी सभासदः'
अ. ३.२९.१

यमसानः - यम अर्थात् संयम का सेवन करने वाला ।
'भसदश्वो न यमसान आसा'
ऋ. ६.३.४

यमस् - (१) यम अर्थात् नियन्त्रण करने वाले नियमों को बनाने वाली अथवा नियामक पुरुषों को आज्ञा में चलाने वाली राजसभा (२) जुड़वां जनने वाली स्त्री ।
'यमाय यमसूम्'
वाज.सं. ३०.१५
(३) संयमवान् ब्रह्मचारियों को उत्पन्न करने और विद्या धाराओं से स्नान कराने वाला आचार्य, (४) राष्ट्र प्रबन्धकर्ता यम है उसके ऊपर शासक सभा यमसू है ,
(५) सूर्य चन्द्रादि जोड़ो को उत्पन्न करने वाला-परमेश्वर
'यमा चिदत्र यमसूरसूत'
ऋ. ३.३९.३

यम्यः - नियन्ता सारथि के वश अश्व
'नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः'
ऋ. ५.४४.४

यमा - द्वि.व. । (१) यम नियम से रहने वाले जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष (२) अश्विद्वय ।
'अजेव यमा वरमा सचेथे'
ऋ. २.३९.२

यस्या - द्वि.व. । (१) रात्रि और उषा जो यम अर्थात् सूर्य से उत्पन्न हो प्राणियों को जागृति और विद्रा में बांधती है, (२) सर्वनियन्ता परमेस्वर के अधीन रहने वाली ।
'नाना चक्राते यम्या वपूंषि'
ऋ. ३.५५.११

यमितवै - निग्रह करने के लिए । दे. 'मन्था' ।
'यत्र मन्थां विबध्नते
रश्मीन् यमितवा इव'
ऋ. १.२८.४

यमिष्ठ - (१) अति कुशल नियन्ता ।
'यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते'
ऋ. १.५५.७
हे इन्द्र, जो नियन्त्रण करने में कुशल (यमिष्ठासः) रथियों के साथ बैठने वाले सारथि लोग- ।

यमी - यम + इन् = यमिन् अथवा यम + ङीष् = यमी ।
अर्थ - (१) यम की बहन -सा. (२) माध्यमिका वाक् - दुर्ग ।दे. 'अध' ।
अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वाम्
परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तव
अधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्'
ऋ. १०.१०.१४
हे यमी, तू किसी अन्य वर को ढूंढ और उससे भोग कर जैसे लता वृक्ष से मिली रहती है । तू उसके मन में प्रवेश कर और वह तेरे मन में और इस प्रकार सुन्दर भोगादि सुख कर ।
दुर्ग ने यम को माध्यमिका देव और यमी को

माध्यमिक वाक् उषा माना है ।
ऐतिहासिक और आध्यात्मिक पक्ष में यमी का अर्थ भिन्न भिन्न है । यम और यमी भाई बहन समझे गए हैं । शब्द कल्पद्रुम आदि कोषों में यमुना नदी को यम भगिनी और यमी कहा गया है । यमी का पर्यायवाची यमुना भ्राता बताया गया है । दीपावली तीसरे दिन भ्रातृ द्वितीय (भाई दूज) मनाया जाता है। यम यमी को पति पत्नी के वाचक मानना भूल है । यम और यमी सगोत्र भाई बहन हैं । सगे नहीं ।
ऋग्वेद का यम यमी सूक्त पठनीय है ।

यमुना – प्रयुवति गच्छति इति यमुना ।
(प्रकर्ष से अपना जल दूसरी नदी में मिश्रित कर जाती या बहती है अतः यमुना है) ।
अथवा, (२) प्रवियुतं गच्छति इति वा (तरंगों से स्तिमित होकर जो चलती है वह यमुना है) ।
यु धातु मिश्रण और उपमिश्रण दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है ।
अर्थ– (१) यमुना नाम्नी नदी
'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'
ऋ.१०.७५.५. तै.आ. १०.१.१३; नि. ९.२६.
आधुनिक अर्थ– यमुना नदी जिसे यम की स्वसा कहा गया है ।
(२) नियन्त्रण करने वाली सेना (३) राष्ट्रीनीति, (४) यम नियमान्विता क्रिया – दया.
'यमुनायामधि श्रुतम्
उद् राधो गव्यं मृजे'
ऋ. ५.५२.१७
(५) पशुओं को नियन्त्रण करने वाली नीति, (६) नियन्त्रण करने वाला जल, (७) नियन्ता ।
'आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च'
ऋ. ७.१८.१९
(८) शरीर की पिंगला नाम की नाड़ी जो देह के समस्त अंगों को सुव्यवस्थित करती और संयम से रखती है ।

यय्य – दूर देश में जाने और पहुंचाने देने वाला रथ ।
'अर्वाञ्चमद्य युय्यं नृवाहणम्'
ऋ. २.३७.५; कौ.सू. १२.३.१४; आप.श्रौ.सू. २१.७.१७

ययातिवत् – (१) ययाति राजा के समान –सा. (२) प्रयत्नवान् –दया. (३) वायु के समान समस्त संसार के अंग अंग में व्यापक –ज.दे.श. (४) क्रियाशील
'मनुष्वदग्ने अंगिरस्वदंगिरः'
ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे'
ऋ. १.३१.१७
हे अग्नि के समान तेजस्विन्, हे अंगिरः, सूर्य के समान प्रकाश वाले वायु के समान समस्त संसार में अंग अंग में व्यापक हे शुचि, तू मननशील पुरुषों से युक्त होकर.....

ययाथ– याहि (जा) । लोट् के अर्थ में लिट् का प्योग । दे 'अनस्' ।

ययिः – (१) जाने वाला ।
'उग्रो वां ककुहो ययिः'
ऋ. ५.७३.७
(२) वेग से गम न करने वाला– मेघ ।
'उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजत्'
ऋ. १.५१.११
वेग से गमन करने वाले मेघ को (यमिम्) वायु या विद्युत् (उग्रः) अपने आघात से टकरा कर उसके जलों को (अपः) प्रवाह रूप से (स्रोतसा) बहा देता है (निर् असृजत्) ।

यमिनी – (१) नियम कारिणी, नियामक परमेश्वरी शक्ति, (२) प्रकृति, (३) जोड़ा बनी प्रकृति, (४) राजव्यवस्थापिका सभा ।
'यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः'
अ. ३.२८.१

यमी – (१) विवाह बन्धन में बंधी स्त्री (२) विवस्वान् की पुत्री यमी ।
यम यमी के सम्बन्ध में वेद के भाष्यकारों में बहुत मतभेद है । वस्तुतः यम यमी विवाहित स्त्री पुरुष का ही द्योतक है ।
'यमस्य मा यम्यं काम आगन्'
ऋ. १०.१०.७; अ. १८.१.८.

ययी (ययिन्) – वेग से प्रयाण करने वाला ।
'सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः'
ऋ. १०.७८.७

ययुः – शत्रुओं पर विजय करने के लिए प्रयाण करने वाला ।
'ययुर्नामासि'
वाज.सं. २२.१९, तै.सं. ७.१.१२.१; मै.सं.

३.१२.४: १६१.१०; श .ब्रा. १३.१.६.१; तै.ब्रा. ३.८.९.२; आप.मं.पा. २.२१.२९.

यंसन् – प्रयच्छन्तु , ददतु (देवें) । यम् (दानार्थक) के लोट् प्र. पु.ब.व. का रूप ।

यव – (१) यव, (२) राष्ट्र, (३) प्रजा ।
'विट् वै यवः राष्ट्र यवः'
दे. 'सूयवसाद्'
(४) यु + अच् । यव नामक अन्न । यह शरीर को जुटाता है, पुष्ट करता है अतः यव कहलाया दे. 'अभिधमन्ता' ।
'यवं वृकेणाश्विना वयन्ता'
ऋ. १.११७.२१; नि. ६.२६.
(५) शरीर इन्द्रिय आदि संघात को मिलाए रखने वाला आत्मा ।
'इमं यवमष्टायोगैः'
अ. ६.९१.१
(६) अग्नि (७) अग्रणी पुरुष (८) सोम (९) ज्ञानवान् आचार्य ।
'अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः'
अ. ९.२.१३.
(१०) शत्रुओं को दूर करने में समर्थ ।
'यवोऽसि'
वाज.सं. ५.२६; ६.१ तै.सं. १.३.१.१; २.२.; ६.१; मै.सं. १.२.११: २०.१५; १.२.१४: २३.१०; का.सं. २.१२, ३.३; श.ब्रा. ३.६.१.११; ७.१४; तै.आ. ६.१०.२; आप.श्रौ.सू. ७.९.१०; ११.१२.५; कौ.सू. ८२.१७.

यव्य – (१) यव आदि उपजाने योग्य खेत (२) शत्रुनाशक वीरों का उत्पादक राष्ट्र (३) यव का बना ।
'गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहा
इषं वरमरुण्यो वरन्त'
ऋ. १.१४०.१३
भूमि और इन्द्रियों को हितकारी (गव्यम्) और यवादि के योग्य क्षेत्र को प्राप्त कर (भव्यं यन्तः) वृष्टि और उत्तम अन्न को (इषम् वरम्) प्रदान करते हैं (वरन्त) ।
अथवा,
गौओं के दुग्ध के समान भूमि से प्राप्त ऐश्वर्य और वेदवाणी से प्राप्त ज्ञान को (गव्यम्) और यवादि अन्नोपयोगी क्षेत्र और शत्रुनाशक वीरोत्पादक राष्ट्र को प्राप्त होते हुए बहुत दिनों तक (दीर्घाहा) प्रजा को सन्मार्गों में प्रेरक (इषम्) वरणीय उत्तम पदाधिकार को (वरम्) प्राप्त करें ।
'यव्ये गव्ये एतदन्नमत्त'
वाज.सं. २३.८

यवमणि – (१) शाप, क्रूरदृष्टि, पिशाच आदि के भय निवारण के लिए यवमणि का प्रयोग किया जाता है । कौशिक और सायण आदि के अनुसार यह 'जौ' का बनाया ताबीज है ।
'अग्निर्यवः इन्द्रोयवः सोमोयवः
यव या वानों देवाः यावयन्त्येनम्'

यवमत् – यवादि अन्न से युक्त । दे. 'शम्ब' ।

यवमान् – यवादि की खेती करने वाला ।
'कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चित्'
ऋ. १०.१३१.२; अ. २०.१२५.२; वाज.सं. १०.३२; १९.६; २३.३८; तै .सं. १.८.२१.१; ५.२.११.२; मै.सं. १.११.४: १६६.३; २.३.८: ३६ .३; ४.८.९: ११८.१६; का.सं. १२.९; १४.३; ३७.१८; श.ब्रा. ५.५.४.२४; १२.७.३.१३; तै.ब्रा. २.६.१.३.

यवयावा – भगा देने में समर्थ । 'यु' धातु योग और वियोग अर्थों में आया है ।
'यवयावानो देवाः यावयन्त्वेनम्'
अ. ९.२.१३.

यवयावानः – मन को साथ लेकर चलने वाले ।

यवयुः – अन्नादि का इच्छुक ।
'त्वामिद्यवयुर्मम कामः'
ऋ. ८.७८.९

यवस – घास तृण ।

यवस प्रथम – (१) यव गेहूं आदि जाति के अन्नों में से सबसे उत्तम (२) शत्रुओं को नाश करने में सबसे श्रेष्ठ, (३) सबसे उत्तम यव आदि प्राप्त करने वाला ।
(४) मिश्रण, अमिश्रण, उचित अंश के ग्रहण करने और हानिकारिक अंश के त्याग में श्रेष्ठ ।
'यवस प्रथमानां सुमत्क्षराणाम्'
वाज.सं. २१.४३.

यवसादः – चोर के समान कर्मफल भोगने ।
'सं यद्वयं यवसादो जनानाम्'
ऋ. १०.२७.९

यवाद् – यव + अद् + क्विप् = यवाद् । (१) यव

या अन्न खाने वाला, (२) नाना भोगों को भोगने वाला जीव ।
'अहं यवाद उर्वज्रे अन्तः '
ऋ. १०.२७.९

यवानः – पृथक् करता हुआ ।
'यवानो यतिस्वभिः कुभिः '
अ. २०.१३०.७

यवाशिर् – (१) मिलाने और विभाग करने अर्थात् संयोग और विभाग करने से मिश्रित ।
'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्कः '
ऋ. २.२२.१; अ. २०.९५.१; साम १.४५७; २.८३६; कौ.ब्रा. २७.२; शां.श्रौ.सू. १५.२.१; तै.ब्रा. २.५.८.९.
(३) यव आदि अन्न और शत्रुओं के नाशक सेनाबलों के आश्रय पर विद्यमान ।
'यवाशिरं च नः पिब '
ऋ. ३.४२.७; अ. २०.२४.७
(३) यव आदि से मिला, (४) अन्नादि के बल से शत्रुओं का नाशक ।
'यवाशिरो भजामहे '
ऋ. १.१८७.९ का.सं. ४०.८
(५) यो यवान् अश्राति – दया. । यव आदि औषधि पर आश्रित रहने वाला ।
(६) यव आदि अन्नों से गृहीत, (७) अन्न से मिश्रित सोमरस ।

यव्यागीः – शत्रु को दूर कर देने वाली वाणी ।
'महश्चिद् यस्य मीढुषो यव्या
हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः '
ऋ. १.१७३.१२; वाज.सं. ३.४६; श.ब्रा. २.५.२.२८.

यव्यावती – शत्रुओं को दूर करने में कुशल पुरुषों से बनी सेना ।
'यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या '
ऋ. ६.२७.६

यविष्ठः – युवन् + इष्ठ = यविष्ठ (१) सबसे बड़ा या सामर्थ्यवान् (२) सब में रमने वाला या सब से पृथक् परमात्मा (३) पदार्थों को मिलाने वाला या पदार्थों में मिलने वाला अग्नि, (४) जल कणों को पृथक् करने वाला अग्नि, (५) बलशाली, (६) अत्यन्त युवा ।
'यविष्ठ दूत नो गिरा '
ऋ. २.६.६

यविष्ठ्य – (१) युवतम (२) मिश्रयितृतम (मिलाने वालों में श्रेष्ठ) – दुर्ग ।
(३) अग्नि का विशेषण (४) युवा समान वसिष्ठ विद्वान् – दया. । दे. 'पज्र'
'तं जुषस्व यविष्ठ्य '
ऋ. ३.२८.२
(५) पदार्थों को मिलाने और फाड़ने वाला परमेश्वर, (६) पूज्यतम ।
'तजुषस्व यविष्ठ्य '
अ. १९.६४.३; वाज.सं. ११.७३; ७४; तै.सं. ४.१.१०.१; मै.सं. २. ७.७: ८३.८; १०, का.सं. १६.७; श.ब्रा. ६.६.३.५; ६.
(६) युवा पुरुषों में सर्वोत्तम बलवान् ।
'तव क्रत्वा यविष्ठ्य '
ऋ. ३.९.६

यवी – (१) संयोग विभाग करने वाली गति, (२) अपने से कम अवस्था वाली ।
परा शुभ्रा अयासो यव्या
साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः '
ऋ. १.१६७.४.

यवीयुध् – शत्रुनाशक प्रहारक बल ।
'सहस्रेणेव सचते यवीयुधा '
ऋ. ८.४.६

यशः – (१) जल । दे. 'ऊर्ध्वबुध्न ' ।
'यस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम् '
नि. १२.३८.
जिस सूर्य में (यस्मिन्) अनेकों प्रकार के जल (विश्वरूपं यशः) रखा हुआ है (निहितम्) ।
(२) यश, बड़ाई, । दे. 'ऋचीषम' ।
'मित्रो न यो जनेष्वा
यशश्चक्रे असाम्या '
ऋ. १०.२२.२
जो इन्द्र मित्र के सदृश जनों में यश फैलाते हैं ।
(३) अन्न, (४) धन ।

यशसः – यशः अस्य अस्ति इति यशसः । यशस्वी – दया. ।

यशस्तमः – (१) सबसे अधिक यशस्वी ।
'अहमस्मि यशस्तमः '
अ. ६.३९.३; ५८.३
(२) जल से युक्त, (३) अति प्रचुर अन्न देने

वाला ।
'यशस्तमस्य मीढुषः '
ऋ. २.८.१

यशस्वती – यशवाली स्त्री या कुमारी । दे. 'नवोदा'
'यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः '
ऋ. १.७९.१; तै.सं. ३.१.११.५.

यशसा – (१) अन्न या धन से – सा. (२) यशस्वी–दया. । दे. 'राष्पिन् ' ।

यशाः – यशस्वी ।
'यशा इन्द्रो यशा अग्निः '
अ. ६.३९.३; ५८.३

यष्टवे – यज् + तवेन् = यष्टवे । अर्थ है– यज्ञ करने के लिए । 'तवेन्' प्रत्यय 'तुमुन्' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।
'अद्या नूनं च यष्टवे '
ऋ. १.१३.६
आज अवश्य यज्ञ करने के अवसर में.....

यंसत् – देवें । यम् (यच्छ) के लोट् प्र.पु. ए.व. रूप । दे. 'ईषु'
'तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् '
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.३; नि. ९.१९.
उस युद्ध में इषु हमें कल्याणमय शरण या विजय देवें ।

यह्वः – यज् + वन् = यह्व (वन्नन्त निपात) । य का ह आदेश । विशेषण । अर्थ है – (१) गुणों से महान् (२) अग्नि, परमात्मा, (४) पिता ।
'अपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः '
ऋ. ३.१.१२.
दे. 'आजुह्वान ' ।
'त्वं देवानामसि यह्व होता '
ऋ. १०.११०.३; अ. ५.१२.३; वाज.सं. २९.२८; मै.सं. ४.१३.३; २०१.१५; ४.१४.१५: २४२.७; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.८.
(६) पूजनीय, (७) महान् , (८) बड़ा पक्षी का बच्चा ।
'यह्वा इव प्रवया मुजिहानाः '
ऋ. ५.१.१; अ. १३.२.४६; साम. १.७३; २.१०९६; वाज.सं. १५.२४; तै.सं. ४.४.४.२; मै.सं.२.१३.७: १५५.१५

यह्वती – यह्व (आचार अर्थ में) + शतृ + ङीष् = यह्वती । महत इव आचरन्ती । अर्थ है- (१) महती, विशाल ।
'ते सेधन्ति पथो वृकं
तरन्तं यह्वतीरपः '
ऋ. १.१०५.११
वे सूर्य की किरणें क्रान्ति मार्गों पर गति करती हुई विशाल समुद्र के जलों पर भी पड़ती हैं ।
(२) महान् आप्त जन (३) व्यापक शक्तियाँ (४) सबका उत्पादक व्यापक प्रभु ।
'यत्रामूर्मह्वतीरापः '

यह्वी – (१) बड़ी नदी, (२) जल धारा, (३) महती ।
'स्वयमत्कैः परिदीयन्ति यह्वीः '
ऋ. २.३५.१४.
(४) गुणों से बड़ी, (५) उत्तम कन्या ।
'दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः '
ऋ. ३.१.६.

यहुः – यज् + उ = यहु । ज् का ह् । अर्थ + (१) महान् , ।
'विश्वेत इन्द्र पृतनायवो यहो '
ऋ. ८.४.५.
(२) पुत्र । दे. सहसो यहुः '

याच – धा. । परस्मैपदी । अर्थ देना ।
'यदुदकं याचति अपः प्रणयति '
अ. ९.६ (१) ४

याचन् – प्रार्थना करता हुआ । जांचता हुआ । दे. 'गल्दा' ।
'सदा याचन्नहं गिरा '
ऋ. ८.१.२०; साम. १.३०७; नि. ६.२४.
सदा मैं स्तुति द्वारा तेरी प्रार्थना करता हुआ ।

याचिषत् – याचेत् (याचना करते हैं) । लट् में सिप् का आगम हुआ । है । अर्थ–याचता है या जांचा । दे. 'गल्दा '
'क ईशानं न याचिषत् '
ऋ. ८.१.२०; साम. १.३०७; नि. ६.२४.
समर्थ से कौन नहीं जांचता है ?

याच्छ्रेष्ठा – यात् + श्रेष्ठा । शत्रु–हिंसा के कार्य में सबसे उत्तम ।

याज्या – (१) पृथिवी ।
'इयं याज्या '
श.ब्रा. १.७.२.११
(२) अन्न ।

'अन्नं वै याज्या'
कौ.सू. १५.३
गौ.ब्रा. ३.३.२२,
(३) प्रति ।
प्रतिर्वै याज्या
पुण्यै व लक्ष्मीः'
ऐ.ब्रा. २.४.
'याज्याभिर्वषट्कारान्
वाज.सं. १०.२०
(४) यज्ञों में आहुति काल में पढ़ने योग्य ऋचा ।
(५) वृष्टि ।
'वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव'
ऐ.ब्रा. २.४
'पुरोनुवाक्या याज्याभिः'
वाज.सं. २०.१२; मै.सं. ३.११.८: १५१.११; श.ब्रा. १२.८.३.३०

यात् – (१) जाने वाला यात्री ।
'आवोऽवचिः क्रतवो न याताम्'
ऋ. ६.४८.१
(२) जितना ।
'यादेव विद्य तात् त्वा महान्तम्'
ऋ. ६.२१.६

यात्द्यावा – आए दिन ।
'यान्नु द्यावस्ततन् यादुषासः'
ऋ. ७.८८.४

यातम् – पहुंचना, पहुंच ।
'नहि स्थूरि ऋतुथा यातमस्ति'
ऋ. १०.१३१.३; अ. २०.१२५.३

यातयज्जनः – (१) दुष्टों को पीड़ा देने वाले पुरुषों का स्वामी, (२) समस्त राष्ट्रवासी जनों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला अर्यमा या न्यायकारी पुरुष ।
'अर्यमा यातयज्जनः'
ऋ. १.१३६.३
(३) प्रजाजनों को अपने कार्य में लगाने वाला–सूर्य मित्र ।
'यातयज्जनो गृणते सुशेवः'
ऋ. ३.५९.५; तै.ब्रा. २.८.७.६.

याता – आक्रमणकारी ।
'अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र'
ऋ. १.३२.१४
मेघ पर या मेघ के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले किसको तू देखता है ।

यातुः – (१) यातयितव्य, यातना देने योग्य, (२) राक्षस ।
यात् + उ= यातु,
अथवा (३) या (जाना) + तु = यातु । नित्य चलने वाला या राक्षस, (४) यज्ञ में विघ्नकर्त्ता दे. 'अपि' ।
'न यातव इन्द्र जूजवर्नः'
ऋ. ७.२१.५
हे इन्द्र ! राक्षस हमारा यज्ञ भ्रष्ट न करें ।
'नैऋतः यातु रक्षसी
(५) आततायी, दे. 'पराशर'
आधुनिक अर्थ– यात्री, हवा, समय, राक्षसः ।

यातुचातन – पीड़ा जनक दुष्ट जनों का नाशक ।
'तदङ्ग यातुचातनम्'
अ. १.१६.२

यातुजम्भन – समस्त मानस और शारीरिक पीड़ाओं को रोकने वाला– अञ्जन या ज्ञानाञ्जन ।
'यातुजनम्भनमाञ्जन'
अ. ४.९.३

यातुजूः – (१) पीड़ा देने वाला शत्रु (२) पीड़ा पहुंचाने वाला ।
'अव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम्'
ऋ. ४.४.५; १०.११६.५; वाज.सं. १३.१३; तै.सं. १.२.१४.२; मै. सं. २.७.१५: ९७.१६; का.सं. १६.१५.
(३) प्रयाण करने में अतिवेग से जाने वाला, (४) चढ़ाई करने के निमित्त वेग से आने वाला ।

यातुधानः – (१) राक्षस । दे. 'अद्य'
'अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि'
ऋ. ७.१०४.१५; अ. ८.४.१५; नि. ७.३.
यदि मैं राक्षस होऊं तो आज ही मर जाऊं ।
(२) 'यातु' अर्थात् मृत्यु देहावसान रूप कष्ट को लाने वाला–पीड़ादायक रोग ।
'नमस्ते यातुधानेभ्यः'
ऋ. ६.१३.३
(३) कुटिल मार्गों से धन प्राप्त करने वाला, ठग, चोर लुटेरा, राक्षस ।

'यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्'
वाज.सं. ३०.८

यातुधानी – (१) पीड़ा देने वाली कुटिल चाल चलने वाली जीवजाति ।
'अदृष्टान् सर्वाञ्जम्भयन्
सर्वाश्च यातुधान्यः'
ऋ. १.१९१.८

यातुमत् – (१) प्रजापीड़क ।
'नूनं सृज दर्शनिं यातुमद्भ्यः'
ऋ. ७.१०४.२०, अ. ८.४.२०

यातुमती – (१) जिसमें बहुत यातु अर्थात् आक्रमण कारी या हिंसक हो– सेना ।
(२) पीड़ा देने वाले शस्त्रास्त्रों से सजी शत्रु सेना, (३) अन्यों को पीड़ा देने वाले उपायों को करने वाला दुष्ट ।
'शीर्षा यातुमतीनाम्'
ऋ. १.१३३.२
पीड़ा देने वाले शस्त्रास्त्रों से सजी शत्रु सेनाओं के सिर भागों या प्रमुख सेनानायकों और मुख्य बलवान् दलों को (शीर्षा).....

यातुमान् – पीड़ाकारी ।
'अशनिं यातुमद्भ्यः'
ऋ. ७.१०४.२५; अ. ८.४.२५

यातुमावत् – (१) यातुमावतः इति सायणः (२) यातुऽअमावतः इति दयानन्दः । यातुऽमावतः इति पदपाठः'
अर्थ – (१) पीड़ादायक पुरुषों का स्वामी । दे. 'रक्षस्वी'

यातुमावान् – (१) यान साधनों अश्वादि का स्वामी, (२) यातु + मावान् – प्रमाण या पीड़ा देने में मेरे समान बल वाला ।
'न यं यावा तरति यातुमावान्'
ऋ. ७.१.५.

याथातथ्यतः – यथार्थरूप से, ठीक ठीक ।
'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्'
वाज.सं. ४०.८; ईश.उप. ८.

यादमानः – (१) याचमानः, प्रर्थित ।
'शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः'
ऋ. ३.३६.१
(२) निरन्तर आता हुआ ।
'समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः'
ऋ. ६.१९.५
(३) यत्न करता हुआ ।
'अमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः'
ऋ. ७.७६.५

यादस् – (१) जलजन्तु, (२) जल ।
'यादसे शाबल्याम्'
वाज.सं. ३०.२०

याद्वः – मनुष्य ।
'नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीहि'
ऋ. ७.१९.८; अ. २०.३७.८

याद्वःपशुः – (१) मनुष्यों का हितकारी पशु, (२) यत्नवान् मनुष्यों के बीच कुशल तत्वदर्शी ।
'यो अस्ति याद्वः पशुः'
ऋ. ८.१.३१.

याद्राध्य – (१) यात् + राध्य । जल जन्तुओं से सेवनीय, (२) गतिमान जंगम प्राणियों से सेवनीय, (३) शरण में आने वाले शिष्य या प्रजागण से आराधनीय ।
'याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यम्'
ऋ. २.३८.८

यादुरी – यती (प्रयत्न करना) + उरन् = मादुर यादुर + ङीष् = यादुरी । अर्थ – (१) बहुत रेत वाली स्त्री –सा. (२) प्रयत्नशीला – दया. । दे. 'आगधिता' ।
'ददाति मह्यं यादुरी
याशूनां भोज्या शता'
ऋ. १.१२६.६
जो स्त्री (भोज्या) मुझे रेतवाली सौ संभोग देती है ।

यादृक् – यत् + दृश् = यादृश्, अर्थ – (१) जैसा । दे. 'अविदत्' ' धायि' ।
'यादृश्मिन् धायि तमपस्यया विदत्'
ऋ. ५.४४.८, नि. ६.१५
यजमान जिस कामना में मन रखता है उस कामना को क्रिया रूप से या फल रूप से प्राप्त करता है ।

यादृश्मिन् – यादृशे (जिस प्रकार में) दे. 'धायि'

यानम् – फल प्राप्ति कराने वाला । दे. 'अध्वर' ।
'तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्'
मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व'
ऋ. १०.११०.२; अं. ५.१२.२; वाज.सं. २९.२६;

मै.सं. ४.१३.३: २०१.१०; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.६
हे अग्ने, यज्ञ के इन फल प्राप्ति कारक हवि रूप भागों को मधु रस से मिलाते हुए स्वादिष्ट बना ।

यामः – यम् + घञ् = याम (१) यज्ञ । दे. 'अर्भक'
'कनीनकेव विदधे नवे द्रुपदे अर्भके
बभ्रू यामेषु शोभेते'
ऋ. ४.३२.२३; नि. ४.१५.
हे इन्द्र, दो पीली घोड़ियाँ यज्ञों में विद्ध (यामेषु विद्रधे) पादुकाख्य स्थान में अधिष्ठित (द्रुपदे) नई कन्याओं की तरह सोहती है ।(२) दुर्ग ने इसका अर्थ अजिस्थान, युद्धस्थान, बन्धनस्थान एवं मन्दुरा किया है । (३) याम बन्धन को कहते हैं । अ ग्रेजी में jam रुकावट के अर्थ में आया है । हिन्दी में भी जाम लग जाना इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है ।
(४) रथ । येन गच्छति (जिस से जाया जाता है) ।
'विभुर्वां याम उत रातिदश्विना'
ऋ. १.३४.१
तुम लोगों का रथ और दान सामर्थ्यवान् हो । आधुनिक अर्थ – निमन्त्रण, संयम, सहन, पहरा देने वाला प्रहरी, दिन का अष्टम भाग । यज्ञ अर्थ में अब इस शब्द का प्रयोग नहीं है ।
(५) प्रहर ।
'स यामनि प्रति श्रुधि'
ऋ. १.२५.२०
वह तू प्रति प्रहर प्रत्येक मनुष्य या जन्तु के कष्टों को श्रवण करता है ।
(६) आना जाना, (७) मेघों को या मेघ के जलों को एकत्र करने वाला– वायु का गमन ।
'चित्रो वोऽस्तु यामः'
ऋ. १.१७२.१
(८) राजनियम, (९) क्रूर कर्म–सा.
(१०) यामं धनम्, बीजमयं धनम्–ग्रीफिथ
(११) नियम, व्यवस्था ।
'यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे'
अ. ६.११६.१
(१२) यम नामक अधिकारी का ।
'कर्णा यामाः'
वाज.सं. २४.३; मै.सं. ३.१३.४: १६९.६
(१३) गमन, प्रयाण, (१४) परस्पर वैवाहिक बन्धन, (१५) राज्यप्रबन्ध ।
'कुत्राचिद् याममश्विना दधाना'
ऋ. ७.६९.२; मै.सं. ४.१४.१०: २२९.१४; तै.ब्रा. २.८.७.७.
(१६) गमन करने में समर्थ रथ ।
'अस्मिन् यामे वृषण्वसू'
वाज.सं. ११.१३; तै.सं. ४.१.२.१; मै.सं. २.७.२: ७५.३; का.सं . १५.१; श.ब्रा. ६.३.२.३.

यामकोशाः – (१) मार्ग के कोश– दया. (२) लम्बे लम्बे खड्गवाले, (३) बड़ा कोश–खजाना, (४) बड़ा दान, ।
'इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्'
ऋ. ३.३०.१५

यामन् – (१) व्यवस्थित राष्ट्र, (२) संसार मार्ग ।
'शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि'
ऋ. ७.३२.२६; अ. १८.३.६७; २०.७९.१; साम. १.२५९; २.८०६; तै. सं. ७.५.७.४; का.सं. ३३.७; ऐ.ब्रा. ४.१०.३
(३) यामनि, (प्रति प्रहर) (४) इस संसार में ।
'यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्'
ऋ. १.३३.२
वह परमेश्वर भक्तों द्वारा प्रति प्रहर या इस संसार में हव्य है ।
(४) युद्ध के लिए यात्रा । दे. 'करा'
'प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि'
ऋ. १.१३८.२
वेग से गमन करने के निमित्त (यामनि) जैसे वेग से जाने वाले अश्व को (अजिरम्) लिया जाता है ।
(४) दिन ।
'यामन्यामन्नपयुक्तं वहिष्ठम्'
अ. ४.२३.३

यामनि यामनि – (१) प्रत्येक यम निमय में अभ्यस्त, (२) विवाह कृत्य ।
'पूषा यामनि यामनि'
ऋ. ९.६७.१०

यामश्रुत – (१) यामाः श्रुताः येन–दया. (२) प्रति प्रहर श्रवण करन वाला (३) यम नियमों का पालन करता हुआ, (४) वेदादि का गुरु मुख

से श्रवण कर चुकने वाला ।
'दाना सचेत सूरिभिः
यामश्रुतेभिरञ्जिभिः '
ऋ. ५.५२.१५

यामहूतमा – द्वि.व. । संयमशील पुरुषों को आदरपूर्वक गुरुरूप से स्वीकार करने वाले ।
'ता यामन् यामहूतमा
यामन्ना मृडयत्तमा '
ऋ. ५.७३.९

यामहूतिः – (१) उपरमाह्वान रूप कर्म – दया.
(२) लोगों पर नियन्त्रण करने वाले सेनापति की आज्ञा ।
'श्रोतारो यामहूतिषु '
ऋ. ५.६१.१५

याम्य – (१) बांधने और राष्ट्र के नियमन में समर्थ
'नमो याम्याय च क्षेम्याय च '
वाज.सं. १६.३३; तै.सं. ४.५.६.१; मै.सं. २.९.६: १२५.५; का. सं. १७.१४.

यामि – याचामि (याचे), ईमहे, यामि यादि धातु याञ्चा अर्थ में प्रयुक्त किए गए हैं ।
निरुक्त में वर्ण लोप वाले शब्दों की गणना में 'यामि' का भी उल्लेख है (अथापि वर्णलोपो भवति तत् त्वा याभि इति) ।
यहां याचामि से यामि हो गए हैं । याचामि में आत्मने पद का व्यत्यय भी है ।
'तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः
तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः
अहेडमानो वरुणेह बोध्युः
उ शंस मा न आयुः प्र मोषीः '
ऋ. १.२४.११
शुनः शेप ने इस त्रिष्टुप् से वरुण को प्रसन्न किया ।
हे वरुण, जिस प्रकार प्रौढ़ स्तोत्र से स्तुति करता हु आ (ब्रह्मण वन्दमानः) कोई यजमान हवियों द्वारा आयु की प्रार्थना करता है (तत् आशास्ते) उसी प्रकार मैं तुझ से आयु की याचना करता हूँ (त्वा तत् यामि) । तू भी इसी कर्म में समाहूत होकर (इह) अत्यन्त आदृत हुआ समझ (अहेडमानःबोधि) । हे बहुतों से प्रशंसित (उरुशस्) हमारी आयु न चूस (नः आयुः मा प्रमोषीः) ।

यामुन – (१) यम नियम साधन से योग रूप में उत्पन्न ज्ञान,
(२) आंजन के दो भेदत्रैककुद और यामुन में एक ।
'यदि यामुनमुच्यसे '
अ. ४.९.१०

यावत् – (अ.) जितना । दे. 'इलीविश' ।
'यावत्तरो मघवन् यावदोजः '
ऋ. १.३३.१२
हे इन्द्र, जितनी तुझ में शक्ति हो और जितना ओज हो । –सा. । हे ऐश्वर्यवान् राजन्, जितना तेरा शारीरिक बल है (यावत् तरः) और जितना आत्मिक बल है (यावत् ओजः) –दया. ।

यावती – जितना ।
'यावतीः कियतीश्चेमाः '
अ. ८.७.१३

यावद् द्वेषा – (१) समस्त अप्रीति कारक द्वेषादि कर्मों को दूर करने वाली उषा या स्त्री । दे. 'ऋतपा' ।

यावन्मात्रम् – जितना ही । दे. 'अवर' ।
'यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं
सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः '
ऋ. १०.८८.१९; नि. ७.३१.
हे मातरिश्व, जितनी ही रात्रि या उषा का प्रतीक आच्छादित करती हैं या जितनी ही उषाएं रात्रियों में देखी जाती है ।

यावा – पैरों से जाने वाला ।
'न यं यावा तरति यातुमावान् '
ऋ. ७.१.५.

याव्या – नदी ।
'वार्ण त्वा याव्याभिः '
ऋ. ८.९८.८: अ. २०.१००.२; साम. २.६१.

याशुः – (१) संभोग –सा. (२) प्रयत्नशील –दया. दे. 'आगधिता' ।
'ददाति मह्यं यादुरी
याशूनां भोज्या शता '
ऋ. १.१२६.६
जो स्त्री (भोज्या) बहुत रेत वाली सौ संभोग देती है– –सा.
जो मेरी पत्नी प्रयत्नशीलों में अधिक प्रयत्न शीला होती हुई मुझे राज्य–पालन –सम्बन्धी

अनेकों साहाय्य प्रदान करती हैं (भोज्या शता ददाति) ।

याहि – (१) संगच्छ (संगमन कर मैथुन कर)–सा. (२) साधारण अर्थ–जा । दे. 'आहनस् ' ।

युः – (१) या (प्रापण अर्थ में) + कु = यु । अर्थ है– गमन, गमयिता (जाता हुआ या ले जाने वाला) (२) रथ का विशेषण,
(३) उपासना के कर्म को प्राप्त भक्तों से उपसित परमेश्वर ।
'न योरुपब्दिश्व्यः
श्रृण्वे रथस्य कञ्चन
यदग्ने यासि दूत्यम् '
ऋ. १.७४.७
हे अग्नि, जब तू दूत कर्म को प्राप्त होता है तब तू अत्यन्त बलकारी हो जाता है (अश्व्यः) । तेरे जाते हुए रथ का (यो रथस्य) शब्द (उपब्दिः) क्या सुनाई नहीं पड़ता (न श्रृण्वे कञ्चन)? अथवा,
हे प्रभो, जब तू भक्तों से उपासित होता है (युः) तब सब दुखों को दूर करने वाले रमणयोग्य रस स्वरूप तेरा अति समीप होकर प्राप्त करने योग्य अज्ञान का नाशक, भक्तों का पालक, भोक्ता आत्मा का (रथस्य) हितकारी शब्द (उपब्दिः) क्या नहीं सुनाई देता है ?
(४) दुःखदायी ।
'स्वैः स एवैरिरिषीष्ट युर्जनः '
ऋ. ८.१८.१३

युक् – (१) गृह–कार्य में दक्ष, (२) समस्त कार्यों में सहयोग देने वाली, (३) सावधान रहने वाली स्त्री (४) राज्य कार्य में सहयोग देने वाली प्रजा ।
'युजो युज्यन्ते कर्मभिः '
वाज.सं. २३.३७; तै.सं. ५.२.११.१; मै.सं. ३.१२.१२: १६७.७

युक्त – समाधि में स्थिति योगी ।
'त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च '
अ. ८.९.७

युक्तग्रावा – (१) प्राणों को योग में लगाता हुआ, (२) सोम चुलाने के लिए ग्रावा (पत्थर) को लगाया हुआ,
(३) शस्त्र वान् , क्षत्रिय ।
'युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः '
ऋ. २.१२.६, अ. २०.३४.६
(४) ग्रावा अर्थात् उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों का सत्संग करने वाला, (५) शस्त्रास्त्र के बांधने में वीर सैनिक ।

युक्ता – द्वि.व. । विवाह बंधन से संयुक्त स्त्री पुरुष । दे. ' शिशुमार ' ।

युक्ताश्वरयि – (१) अश्व जोड़कर ले जाया जाने वाला धन ।
'प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वम् '
ऋ. ५.४१.५

युक्ताःषट् – (१) पदों पर नियुक्त छः अमात्य, (२) मन चक्षुआदि छः इन्द्रियाँ, (३) छः ऋतुएं ।
'उतो स मह्यमिन्दुभिः
षड्युक्तां अनु सेषिधत् '
ऋ. १.२३.१५
राजा ऐश्वर्यों द्वारा (इन्दुभिः) अपने पदों पर नियुक्त छः अमात्यों को मुझ यजमान के लिए अपने अनुकूल चलावें (अनु सेषिधत्) ।
अथवा, सूर्य छः ऋतुओं को अपने अनुकूल चलावें । या जीव मन चक्षु आदि छः इन्द्रियों को अपने अनुकूल चलावें ।

युगः – (१) जूआ, जो हम जोतने के समय बैलों की गरदन पर रखा जाता है । दे. 'इत् ' 'युनक्त'
'वियुगा तनुध्वम् '
वाज.सं. १२.६८

युगस्यरवः – (१) पतिपत्नी की युगल जोड़ी का गृह ।
'खे युगस्य शतक्रतो '
ऋ. ८.९१.७; अ.१४.१.४१,
(२) युग नामक यान विशेष का अवकाश । युग वह यान है जिस में वर और कन्या ही बैठ सकते हैं । पाणिनी ने भी 'युग्यं च पत्रे' में निपातन द्वारा 'युग्य' पद वाहन अर्थ में साधा है । (३) शरीर के जोड़े इन्द्रियों का छिद्र ।

युगा – रथ के जूओं के समान स्त्री पुरुष ।
'नावेव नः पारयतं युगेव '
ऋ. २.३९.४

युच्छ् – प्रमाद करना ।
'न यो युच्छति तिष्यो यथादिवः '
ऋ. ५.५४.१३

युज् (युक्) - युज् + क्विप् = युज् । अर्थ- (१) सखा, मित्र सम्बन्धी । दे. 'आश्रुकर्ण' ।
'कृष्वा युजश्चिदन्तरम्'
ऋ. १.१०.९
मेरी बातों को सुनकर मित्र या सम्बन्धी की तरह (युजः वित्) हृदयंगम करें । (अन्तरं कृष्व) । (२) सहयोगी, साथी ।
'त्वया प्रति ब्रुवे युजा'
ऋ. ७.३१.६; अ. २०.१८.६
(३) सहायक ।
'बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा'
ऋ. २.२३.१०

युज्यः - युज् + यत् = युज्य । (१) संयुक्त -सा. (२) सहयोगी । दे. 'अस्मे'
'भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे'
ऋ. १.१६५.७; मै.सं. ४.११.३; १६९.३; का.सं. ९.१८.
यह उक्ति मरुतों की है ।
हे वृषभ् इन्द्र, तू ने अनेकों वीरता के कार्य किए परन्तु वह सब हम लोगों की सहायता से तथा संयुक्त बल से (युज्येभिः पौंस्येभिः) -सा.
हे राजन् ! आप हम सहयोगियों एवं समान चित्त वालों से मिलकर पुरुषार्थों के द्वारा बहुत उत्तम राज्य पालन करते हो ।- दया.
(३) युज्य का अर्थ मेल खाने योग्य भी हो सकता है । और तब 'युज्येभिः समानेभिः' का अर्थ समान बल वाले एवं मेल खाने योग्य हम लोगों के सहयोग से किया जा सकता है ।
(४) संयोग से प्राप्त होने वाला और रथादि संचालन कार्य में लगाने योग्य बल, (५) योग-समाधि से प्राप्त होने वाला बल, (६) सहकारी शस्त्रास्त्र बल ।
'त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवः'
ऋ. १.५२.७; मै.सं. ४.१२.३; १८५.३.
जिस प्रकार मेघ के अवयव अवयव को सूक्ष्म कणों से छेदन भेदन करने में समर्थ सूर्य या विद्युत् (त्वष्टा) संयोग से प्राप्त होने वाले और रथादि संचालन कार्यों में लगाने योग्य बल को बढ़ाता है (युज्यं शवः वावृधे) ।
अथवा - सब सृष्टि का रचयिता परमेश्वर, योग समाधि से प्राप्त होने वाले बल को बढ़ाता है ।
(६) परस्पर सहयोग से होने वाला ।
'भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे'
ऋ. १.१६५.७; मै.सं. ४.११.३: १६९.३; का.सं. ९.१८.
(८) सदा साथ रहने योग्य, (९) समाधि द्वारा प्राप्त करने योग्य ।
'युज्यो मे सप्तपदः सखासि'
अ. ५.११.९
(१०) सत्संग से प्राप्त होने वाला ।
'यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति'
ऋ. ७.२२.२; अ. २०.११७.२
(११) मित्र भाव, (१८) उत्तम पद पर नियुक्त, करना ।
'प्र पूषणं वृणीमहे
युज्याय पुरूवसुम्'
ऋ. ८.४.१५.

युजानः - (१) समाधान करता हुआ (२) अपने में रखता हुआ । दे. 'नमोयुजानः' ।

युज्या - (१) योग्य, (२) सत्संग ।
'तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे'
ऋ. ८.९०.२; अ. २०.१०४.४; साम. २.८४३

युञ्जा - द्वि.व.। (१) परस्पर संयुक्त योग द्वारा एकाग्रचित्त आत्मा और मन, प्राण, अपान, (२) दो घोड़े । दे. 'पृषती' ।

युजिष्ठः - (१) अतिशयेन यष्टा, अत्यन्त यजन शील, (२) देवों का अतिमात्र यष्टा अग्नि ।

युतद्वेषाः - (१) जिसका परस्पर का द्वेष भाव दूर हो गया हो, (२) जिस का शत्रु दूर हो गया हो ।
'इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिः
युतद्वेषसः समिषा रभेमहि'
ऋ. १.५३.४; अ. २०.२१.४
विद्युत् के बने अस्त्र से (इन्द्रेण) प्रजा के नाशक अत्याचारी डाकू लोगों को (दस्युम्) भयभीत करते हुए (दरयन्तः) तथा उन्हें मारते काटते हुए और अति वेगवान् द्रुत गामी वीरों द्वारा शत्रुओं को दूर कर के या ज्ञानवान् उत्तम विद्वानों द्वारा परस्पर के द्वेष भावों को दूर कर के (इन्दुभिः युतद्वेषसः) अन्नों द्वारा या प्रबल इच्छा से या प्रबल सेना से (इषा) युद्ध आदि

कार्य प्रारम्भ करें (संरभेमहि) ।
अथवा, जलों और अन्नों के एक साथ उपयोग द्वारा परस्पर के द्वेष के भावों को दूर कर (समिषा) संगठित हो कार्य आरम्भ करें (रमेमहि) ।
(३) परस्पर सब द्वेषों से रहित ।

युत्कारः – युत् + कारः । युद्ध करने वाला ।
'युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना'
ऋ. १०.१०३.२; साम. २.१२००; वाज.सं. १७.३४; तै.सं. ४.६.४.१; मै.सं. २.१०.४: १३५.११; का.सं. १८.५

युध् – (१) योद्धा, सैनिक ।
'युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया'
ऋ. १.५३.७; अ. २०.२१.७
तू शत्रु पर प्रहार करने वाले वीर पुरुष से (धृष्णु या युधा) योद्धा शत्रु को ही (युधम्) जा पकड़ता है ।
(२) प्रहार शक्ति, (३) युद्ध, (४) योग (५) कष्ट का अनुभव ।
'युधेदापित्वमिच्छसे'
ऋ. ८.२१.१३; अ. २०.११४.१; साम. १.३९९; २.७३९
'शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत'
ऋ. २.१७.२.

युध्म – (१) यः युध्यते (योद्धा) ।
'सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते'
ऋ. १.५५.२
(२) वेग से प्रहार या धक्का लगाने वाला विद्युत् ।
'युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराजः'
ऋ. ३.४६.१; मै.सं. ४.१४.१४: २३८.७; ऐ.ब्रा. ५.५.२; कौ.ब्रा . २२.८; शां.श्रौ.सू. १८.१९.६.
(३) दुष्टों पर विपत्ति तथा वज्र का प्रहार करने वाला, (४) युद्ध शाली–इन्द्र परमेश्वर ।
'च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः'
ऋ. २.२१.३
'स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा'
ऋ. ६.१८.२; का.सं. ८.१७.

युधां पतिः – (१) योद्धाओं क्षत्रियों का स्वामी, (२) योगियों का पालक प्रभु ।
'सोमस्यांशो युधां पते'
अ. ७.८१.३

युध्यामधि – (१) युधि + आमधि । जो संग्राम में रोग पकड़ता है – शत्रु– दया.
(२) युद्ध में पीड़ा दायक (३) युध्या + मधि (मदि) । युद्ध का मतवाला ।
'नि युध्यामधिमशिशादभीके'
ऋ. ७.१८.२४

युधि – युद्ध ।
'यदीदहं युधये सन्नयानि'
ऋ. १०.२७.२

युधिगमः – १) युद्ध में जाने वाला साहसी सैनिक ।
'स्वस्त्या च युधिंगमः'
अ. २०.१२८.११; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.६.

युधेन्य – युद्ध करने योग्य साधन ।
'प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि'
ऋ. १०.१२०.५; अ. ५.२.५; २०.१०७.८

युनक्त – जोतो । यु (मिलाना) धातु के लोट् म.पु.ब.व. का रूप । दे . 'इत्'
'युनक्तं सीरा वि युगा तनुध्वम्'
ऋ. १०.१०१.३; वाज.सं. १२.६८; श.ब्रा. ७.२.२.५.
हे देवो, हलों को जोतो (सीरा युनक्त) तथा जुआठों को विस्तृत करो (युगा वितनुध्वम्) ।

युपित – निःशंक खड़ा ।
'याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे'
अ. ४.२५.२

युयवन् – (१) दूर करे । यावयन्तु,
'अपमिश्रयन्तु, पृथक् कुर्वन्तु (पृथक् करें) 'यु' धातु मिश्रण और अभिश्रण दोनों अर्थों में आया है ।
दे. 'देवताति'
'सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः'
ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२: १६२.११; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.५.२२; नि. १२.४४
रोगों को दूर करें ।

युयुजानः – (१) योगाभ्यास द्वारा समाहित करने वाला – परमेश्वर, (२) समाधान करता हुआ अग्नि ।
'दूत ईयसे युयुजान ऋष्व'
ऋ. ४.२.२.
(३) नाना प्रकार का योग अर्थात् सन्धि आदि

करने वाला ।
'ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्'
ऋ. ५.४०.८

युयु – मोहना । दे. 'योपन 'जनयोपन' ।

युयुजानसप्ती – द्वि.व.। (१) अश्विद्वय का विशेषण । (२) योग में जाने वाले रथादि यन्त्रों में जुड़ने वाले वायु, विद्युत् (३) वेगवान् अश्वादि को अपने रथ में जोड़ने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष, (४) अपने सातों प्राणों से युक्त मन को योग द्वारा एकाग्र करने वाले ।
'उप भूषतो युयुजानसप्ती'
ऋ. ६.६२.४

युयूषन् – यु + सन् + शतृ = युयूषन्, अर्थ है– (१) सेवनेच्छुक (२) प्राप्त करने का इच्छुक –दया. । दे. 'गध्य', 'ऋज्रा' ।
'ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्'
ऋ. ४.१६.११; नि. ५.१५.
हे इन्द्र, तू सीधे या सुन्दर सोमरस राजपथ से (ऋज्रा) ग्रहणार्ह सोमरस को (गध्यम्) अन्न की तरह सेवनेच्छुक हो (वाजं न युयूषन्) जाता है ।
अथवा – हे राजन्, ग्राह्यबल की तरह (गध्यं वाजं न) सत्याचरण की प्राप्ति की इच्छा रखता हुआ (ऋज्रा युयूषन्) तू जाता है (यासि) – दया.

युवजानिः – युवती स्त्री का पति ।
'महाँ इव युवजानिः'
ऋ. ८.२.१९; साम. १.२२७

युवत् – (१) युवावस्थापन्न, (२) सत्यासत्य विवेकी ।
'सं यदोजो युवते विश्वनाभिः'
ऋ.य ५.३२.१०

युवतयः – ब.व.। । (१) दूर दूर तक फैली दिशाएं, (२) मिलने वाली जलधाराएं ।
'युवतयः' दारा के समान बहुवचन है और पति के लिए एकवचन है ।
'यमिन्धते युवतयः समित्था'
ऋ. २.३५.११.

युवतिः – (१) मिश्री भवन्ती (युक्त होती या मिश्रित होती हुई) । यह शब्द भी 'यु' धातु से बना है । (२) ब्रह्म से मिलाने वाली ब्रह्म विद्या । दे. 'अमूर' ' विश्पति'
'रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्'
ऋ. १०.४.४.
(प्रजा पालक होते हुए आचार्य ब्रह्म से मिलाने वाली ब्रह्मविद्या का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं)– ज.दे.श.
गार्हपत्य अग्नि जार की तरह मानों आहुति रूपी युवति का बार बार आस्वाद लेते रहते हैं ।
(३) मिलती हुई या छूटती हुई ।
'सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्चकृष्टीः
सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिः
न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम्'
ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.२०; नि. १०.२९
जो तार्क्ष्य (यः) सभी उपयुक्त अवसर पर (सद्यश्चित्) बल से (शवसा) पांच प्रकार के मनुष्यों के निमित्त जल विस्तीर्ण करते हैं (पञ्चकृष्टीः अपः ततान) जैसे सूर्य वर्षा ऋतु में अपनी ज्योति से जल विस्तारते हैं
(सूर्य इव ज्योतिषा) क्योंकि इस तार्क्ष्य की गति को कोई रोक नहीं सकता (न स्म वरन्ते) ठीक उसी प्रकार जैसे धनुष से छूटी तथा अपने लक्ष्य की ओर जाती हुई या लक्ष्य से मिलती हुई सिरकी को कोई रोक नहीं सकता (युवतिः शर्यां न) ।
(४) अति बलवती विद्युत् । (५) युवती कन्या ।
'आस्थापयन्त युवतिं युवानः'
ऋ. १.१६७.६
(६) सदा जवान, सदा स्थिर रूप से सगंत, निरन्तर सृष्टि उत्पन्न करने में समर्थ प्रकृति, स्त्री ।
'इषिरा योषा युवतिर्दमूनाः'
अ. १९.४९.१

युवती – द्वि.व. । (१) युवितियों सी द्यौ और पृथिवी–सा. ।
(२) सामने तथा पीछा होते हुए सूर्य और पृथिवी ।
'उत स्वसारा युवती भवन्ती'
ऋ. ३.५४.७

युवद्वयः – (१) यौवनावस्था, चढ़ती जवानी ।
'तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वयः'

ऋ. १.१११.१
ऋयु अथवा विज्ञान सहित क्रिया उत्पन्न करने में कुशल पुरुष अपने पालक माता पिताओं के सुख के लिए सेवा योग्य बनायें ।

युवद्रिक् - तुम दोनों के ऊपर आश्रित ।
'श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक्'
ऋ. ४.४३.७; अ. २०.१४३.७

युवन् - 'यु' धतु से सम्पन्न । युवा, (२) पुरुषार्थी-दया. । यु + क्वनिप् (३) स्तुति शील -सा. । दे. 'दन्' 'रन्धीः' ।
'यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२.
हे इन्द्र, तू ने स्तुति शील पुरुकुत्स के लिए धन सम्पादित किया -सा. ।
हे राजन् ! तू ने पुरुषार्थी कृषक के लिए कष्ट नष्ट किया (वृत्रं रन्धीः) ।
(४) यु (मिश्रीकरण) + क्वनिप् = युवन् प्रयौति कर्माणि (जो कर्मों को मिश्रित करता है या सम्पन्न करता है वह युवा है) । दे. 'चरथाय' ।
(५) यस्मिन् वयसि यस्य वा अस्थीनि युवन्ति जिस वय में या जिसकी हड्डियाँ पुष्ट होती हैं वह युवा है ।
आधुनिक अर्थ-नवयुवक, स्वस्थ, सुन्दर ।
अंग्रेजी का you शब्द भी यु धातु से बना प्रतीत होता है ।

युवन्युः - जवानों का दलपति ।
'रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः'
ऋ. ५.४२.१५

युवभ्यो देवेभ्यः - (१) युवक देवताओं के लिए - सा. (२) युवक विद्वानों के लिए - दया. । दे. 'अर्भक' ।
'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः
नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः
यजाय देवान् यदि शक्नवाम
मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः'
ऋ. १.२७.१३;
शक्ति और तेज के तारतम्य से देवताओं का भेद अभिप्रेत है ।

युवम - तुम दोनों you । दे. 'जरथ' ।
'युवं च्यवानं सनयं यथा रथम्'
ऋ. १०.३९.४; नि. ४.१९
हे अश्विनी द्वय, या राजा, तथा राज पुरुषो, तुम दोनों पुराने रथ को जैसे शिल्पी नया कर देता है वैसे ही वृद्ध च्यवन ऋषि को या वृद्ध उपदेशक को नया ....

युवमानः - (१) प्राप्त करता हुआ, (२) संयोजक, (३) भेदक, (४) आत्मा का विशेषण । दे. 'अघ' ।

युवयु - आप दोनों के हितार्थ ।
'इमा ब्रह्माणि युवयुन्यग्मन्'
ऋ. ७.७०.७; ७१.६.

युवशा - युव + श = युवश । अर्थ - (१) युवा विद्यार्थियों को समीप रखने वाला-दया.
(२) बलवान् पुनर्युवा-ज.दे.श. ।
'धेनुःकर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा'
ऋ. १.१६१.३
(२) युवा या युवती
'स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यानाम्'
ऋ. ८.३५.५

युवा - (१) सदा नया, (२) अजर अमर (३) देह, इन्द्रिय और उनके सामर्थ्यों को मिलाने वाला-आत्मा (४) गर्भ में डिम्ब से स्वयं मिथुनित होने वाला ।
'मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम्'
अ. ७.२.१

युवाकु - यु (मिश्रण और अभिश्रण अर्थों में) + आकु = युवाकु । अर्थ - (१) एक दूसरे से मिली या पृथक् क्रियाओं को सिद्ध करने वाला, (२) लड़ाकू ।
'युवाकु हि शचीनां
युवाकु सुमतीनाम्'
ऋ. १.१७.४
हम उत्तम बुद्धियों, शक्तियों और वेदवाणियों के साथ अपने को मिलाए रखें और उत्तम मनन करने वाले विद्वानों के साथ सत्संग करें ।
(३) यः यावयति मिश्रयति सर्वाभिः विद्याभिः सह जनान् - दया । (जो लोगों को सभी विद्याओं से मिलाता है) (४) मिलाने वाला ।
'प्रार्चद् दयमानो युवाकुः'
ऋ. १.१२०.३
तुम दोनों का सच्चा प्रिय पुरुष या सबको विद्योपदेश से मिलाने वाला (युवाकुः) उपदेष्टा

पुरुष सब पर दयालु होकर (दयमानः) तुम दोनों का सत्कार करे (प्रार्चत्) ।
(४) तुम दोनों को चाहता हुआ ।
'अर्वोर्वा नूनमश्विना युवाकुः '
ऋ. ७.६७.४

युवानः – 'युवन्' शब्द का बहुवचन । (१) युवा रुद्र, (२) शरीर में रसों को मिलाने वाले प्राण वायु, (३) युवा सैनिक ।
'युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनः '
ऋ. १.६४.३

युवायु – (१) तुम दोनों को चाहता हुआ ।
'युवायवोऽति रोमाण्यव्यया '
ऋ. १.१३५.६
ये सब राजा और सेनापति तुम दोनों को हृदय से चाहते हुए (युवायवः) कभी समाप्त होने वाले (अव्यमाः) उच्छदेन या काट गिराने योग्य शत्रुओं को (रोमाणि) पार कर जाने में समर्थ हो (अति) ।

युवायुज् – (१) युवाभ्यां युज्यते यः सःरथः (पशुओं से जोड़ा रथ)– रथ , (२) प्रजाओं के परस्पर प्रेम और इच्छापूर्वक मिलकर एक हो जाने वाला आनन्ददायक गृहस्थ रूप रथ–ज.दे.श. ।
'युवोरश्विना वपुषे युवायुजम्
रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् '
ऋ. १.११९.५
हे स्त्री पुरुषो, आप दोनों के ही परस्पर प्रेम और इच्छापूर्वक मिलकर एक हो जाने वाला (युवा युजम्) बलपूर्वक धारण करने योग्य, (शर्ध्यम्) रमणकारी आनन्ददायक गृहस्थ रूप रथ को (रथम्) इस गृहस्थ तत्व के विषय में उपदेश करने में कुशल विद्वान् , आचार्य और पुरोहित तुम दोनों को उत्तम रीति से बीज वपन द्वारा सन्तान उत्पन्न करने के लिए (वपुषे) विवाहित करते हैं (येमतुः) ।
(अथवा),
तुम दोनों को ही जुड़ने वाले बलपूर्वक संग्राम करने योग्य रथ को आज्ञाकारी दो उपदेशक सारथी ही शत्रुओं को खण्ड खण्ड कर देने के लिए ही (वपुषे) ।

युवावत् – (१) यौवन वाला, बलशाली । दे. 'सिन'। (१) तुम दोनों की रक्षा करने वाला (३) तुम दोनों को चाहने वाला ।
'युवावते न तुज्या अभूवन् '
ऋ. ३.६२.१

युष्मयन्ती – आप दोनों स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों को बतलाने वाली वाणी ।
'इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः '
ऋ. २.३९.७

युष्माकोतिः – आप लोगों की रक्षा शक्ति ।
'युष्माकोती रिशादसः '
ऋ. ७.५९.९; तै.स्. ४.३.११.३; मै.सं. ४.१०.५; १५४.८; का.सं. २१.१३.

युष्माः देवाः – स्वरूप से भिन्न भिन्न ज्ञान प्रकाशक और ग्राह्य विषय के अभिलाषी इन्द्रियगण–प्राण ।
'युष्मांश्च देवान् विश आ च मर्तान् '
ऋ. ४.२.३.

युष्मावत् – आप लोगों के सदृश ।
'मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म '
ऋ. २.२९.४

युष्मोतः – आप लोगों से रक्षित ।
'युष्मोतः विप्रो मरुतः शतस्वी '
७.५८.४

युश्मेषित – तुम लोगों को जीतने की इच्छा वाला ।
'युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित '
ऋ. १.३९.८

यूथः – यु (मिश्रणार्थक धातु) + थल् = यूथ (जिसमें छोटे बड़े सभी एकत्र होते हैं वह यूथ हैं) । अर्थ– (१) समूह । दे. 'इडा '
'यूथस्य माता '
मेघ समूह की निर्यात्री इडा (माध्यमिका वाक्) अर्थात् विद्युत् । पुनः, दे. 'इडा' ।
(२) विकृतिगण, प्राकृतिक विकार रूप महत् आदि पदार्थ, (३) ताराओं का यूथ ।
'क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् '
ऋ. १.१६४.१७; अ. ९.९.१७; १३.१.४१.
(४) इन्द्रिय गण ।

यूथस्यमाता – मेघसमूह की निर्मात्री । इडादेवी (माध्यमिका वाक् विद्युत्) । दे. 'इडा', 'यूथ' ।
'अभि न इडा यूथस्य माता
स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु '

ऋ. ५.४१.१९; नि. ११.४९
मेघ समूह की निर्मात्री (यूथस्य माता) रूपवती विद्युत् उर्वशी नाम से प्रसिद्ध जो माध्यमिका देवी इडा है (उर्वशी इडा) वह हमें जलों से खूब सन्तुष्ट करें (नदीभिःस्मत् अभिगृणातु) ।

यूथ्य – (१) समूह में बसने वाला ।
'सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचा'
ऋ. १०.२३.४; अ. २०.७३.५
(२) यूथपति, (३) यूथ में सर्वश्रेष्ठ ।
'शिशीते यूथ्यो वृषा'
ऋ. ९.१५.४; साम. २.६२.१

यूपव्रस्क – (१) स्तम्भ के लिए काठ काटने वाला, (२) शत्रुओं का नाशकारी, (३) शत्रुओं को मोहित करने वाला । (४) प्रजाओं के बीच स्तम्भ के समान सर्वाश्रय, (५) सूर्य के समान तेजस्वी राजा ।
'यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाः'
ऋ. १.१६२.६; वाज.सं. २५.२९; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.८
(६) यज्ञ के यूप के गढ़ने वाला (७) शत्रुनाशक राजा या उसके बल अधिकार को बताने वाला ।

यूपवाहः – (१) यज्ञयूप को वहन करने वाला, (२) शत्रुनाशक राजा को अपने ऊपर धारण करने वाला ।
'यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाः'
(३) स्तम्भ ढोने वाला ।

यूयवत् – 'यु' धातु का अर्थ मिलाना और पृथक् करना है । पृथक् करोति (अलग करता है) । लकार का व्यत्यय आर्ष है ।
दो जोष्ट्री देवियों में एक (अन्या) आप के पापों को (आद्या द्वेषांसि) दूर करती है (यूयवत्) । पुनः, दे. 'जोष्ट्री' ।

यूयुविः – सब शत्रुओं को दूर करने वाला ।
'द्विषो युयोतु यूयुविः'
ऋ. ५.५०.३

यूष (यषन्) – (१) शरीर में पक्वाशय में स्थिर पक्वरस, (२) जल ।
'आपो यूष्णा'
वाज.सं. २५.९
'या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि'
ऋ. १.१६२.१३; वाज.सं. २५.३६; तै.सं. ४.६.९.१; मै.सं. ३.१६. १: १८३.४;

येमानः – (१) संयमन या नियन्त्रण करने वाला या करता हुआ ।
'नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये'
ऋ. ९.७५.३; साम. २.५२.
(२) इन्द्रियों को नियम में रखने वाला ।
'गा येमानं परिषन्तमद्रिम्'
ऋ. ४.१.१५.
(३) नियन्त्रण में रखने वाला, (४) नियम पूर्वक पालन करने वाला ।
'ऋतं येमान ऋतमिद् वनोति'
ऋ. ४.२३.१०

येवाष – (१) एक प्रकार का रोग– कृमि, (२) सरक सरक कर चलने वाला ।
'येवाषासः कष्कषासः'
अ. ५.२३.७

येषन् – (१) अंग अंग में फैलाने वाला, (२) उबलता हुआ ।
'प्र त्वा चरुमिव येषन्तम्'
अ. ४.७.४

येषन्ती – (१) उबलती हुई, (२) आगे बढ़ती हुई ।
'उखा चिदिन्द्र येषन्ती'
ऋ. ३.५३.२२

येष्ठ – चलने में सब से उत्तम रथ ।
'आ वां रथो रथानाम्
येष्ठो यात्वश्विना'
ऋ. ५.७४.८

येष्ठा – (१) अपने लक्ष्य की ओर जाने में उत्तम ।
'यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः'
ऋ. ७.५६.६

येष्ठौ – द्वि.व.। अति नियम में रहने वाले अश्विद्वय का स्त्री पुरुष ।
'आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै'
ऋ. ५.४१.३

योः – अप्राप्त रोगों को दूर ही से निवारण करना ।
'शं यो रभि स्रवन्तु नः'
ऋ. १०.९.४; अ. १.६.१; साम. १.३३; वाज.सं. ३६.१२; का.सं. १३ .१५; ३८.१३; तै.ब्रा. १.२.१.१; २.५.८.५; तै.आ. ४.४२.४; आप.श्रौ.सू. ५.४.१.

योक्त्र– (१) बांधने वाला । (२) आत्मा को बांधने

वाला देह ।
'वि योक्त्रं वि नियोजनम्'
अ. ७.७८.१
(३) युज् + ष्ट्रन् = योक्त्र । अर्थ है- मिलाने वाली अंगुली । दे 'अवनि' ।
'दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो
दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः'
ऋ. १०.९४.७
(४) वृष आदि के गले में युगबन्धन का नाम भी योक्त्र है ।
'आबन्धोः योत्रं योक्त्रम्'
-अमर
(५) निन्दित कार्य ।
'आपो योक्त्राणि मुञ्चत'
ऋ. ३.३३.१३; अ. १४.२.१६
(६) बन्धन ।
'समाने योक्त्रेरेणि सह वो युनज्मि'
अ. ३.३०.६
(७) आचार्य द्वारा बांधी हुई मेखला आदि रज्जु,
(८) परस्पर संयोग का प्रेमबन्धन ।

योक्ता - योग करने वाला योगी ।
'योगाय योक्ताराम्'
वाज.सं. ३०.१४; तै.ब्रा. ३.४.१.१०

योग - (१) अलम्य वस्तु का लाभ ।
'योगं प्रपद्ये क्षेमं च'
अ. १९.८.२
(२) शकट, (३) सम्बन्ध । दे. 'ऊधस्'
'ऋतस्य योगे विष्यध्वमूधः'
ऋ. १०.३०.११; नि. ६.२२.
सोम रखने के यज्ञरूपी ऊध को यज्ञ के शकट में नियुक्त करो -सा. ।
यज्ञ के सम्बन्ध में (ऋतस्य योगे) अज्ञानता को छोड़ो (ऊधः विष्यध्वम्) -ज.दे.श.।

योगक्षेम - जो प्राप्त न हो उसकी प्राप्ति और प्राप्त हुए की रक्षा ।
'योगक्षेमो नः कल्पतम्'
वाज.सं. २२.२२; तै.सं. ७.५.१८.१; मै.सं. ३.१२.६: १६२.११; श.ब्रा. १३.१.९.१०; तै.ब्रा. ३.८.१३.३.

योगः योगः - (१) प्रत्येक संग्राम
(२) प्रत्येक योग-समाधि
'योगे योगे तवस्तरम्'
ऋ. १.३०.७; अ. १९.२४.७; २०.२६.१; साम. १.१६३; २.९३ वाज.सं. ११.१४; तै.सं. ४.१.२.१; ५.१.२.१ मै.सं. २.७.२: ७५.५; ३.१.३:३.२१ ; का.सं. १६.१; १९.२; श.ब्रा. ६.३.२.४; आप.श्रौ.सू. १६.२.३ ।

योग्य - समाधि द्वारा प्राप्त करने योग्य ब्रह्म ।
'त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यञ्च'
अ. ८.९.७

योगे योगे - प्रत्येक ऐश्वर्य -प्राप्ति के अवसर पर । दे. 'तवस्तरम्' 'योगः योगः' ।

योजनम् - (न.) मिलाने वाली अंगुली । दे. 'अवनि'
'दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो
दशयोक्त्रेरेभ्यः दशयोजनेभ्यः'
ऋ. १०.९४.७
लौकिक अर्थ - (१) चार कोस का एक योजन,
(२) जोड़ना ।
'चतुष्कोश्याञ्च योगे च -मेदनी

योजन - (१) सदा योगदेने वाला, (२) योजन
'कति स्वित् ता वि योजना'
ऋ. १०.८६.२०; अ. २०.१२०.२०
(३) लगाना-दया. ।
'आरे यस्य योजनम्'
ऋ. १.१९१.१०

योजि - (१) जो जोड़कर बनाया जाय-रथ ।
'प्राता रथो नो योजि सस्त्रिः'
ऋ. २.१८.१

योतवे - यु (दूर करना) + तवे । अर्थ- दूर करना ।
'विदुर्द्वेषांसि योतवे'
ऋ. ८.१८.५

योतु - प्राप्त होने योग्य धन ।
'अदेव ईशे पुरुहूत योतोः'
ऋ. ६.१८.११

योधानः - (१) युद्ध करता हुआ । दे. 'अष्टा' ।
'द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम्'
ऋ. १.१२१.८

योधीयान् - सबसे अधिक युद्ध करने वाला ।
'प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान्'
ऋ. १.१७३.५

योन्य - (१) जल से पूर्ण, योनि अर्थात् गृहवत्

देहमय ।
'यः कृन्तदिद् वि योन्यम्'
ऋ. ८.४५.३०

योना – योनौ (योनि में) ।
'सुपां सु लुक्'
– पा. ७.१.३९ से 'ङि का 'आ' । दे. 'इत्' ।

योनि – अभियुत एनां गर्भः (इस योनि से गर्भ अभियुत रहता है) । 'यु' धातु मिश्रण अर्थ में आया है । अर्थ है– (१) गर्भाशय । दे. 'अमीवा' ।
'यस्ते गर्भममीवा
दुर्णामा योनिमाशये' ।
ऋ. १०.१६२.२; अ. २०. ९६.११; नि. ६.१२.
(२) अवकाश । दे. 'आगात्' ।
'एवा रात्र्युषसे योनिमारैक्'
ऋ. १.११३.१; साम. २.१०९९; नि. २..१९
उसी प्रकार रात ने उषा के लिए अपने अपर भाग (चतुर्थ प्रहर) रूपी अवकाश की कल्पना की ।
पुनः – दे. 'इत्' ।
'स मातुर्योनि परिवीतो अन्तः'
ऋ. १.१६४.३२; अ. ९.१०.१०; नि. २.८.
वह जीवात्मा माता के गर्भ में जरायु से परिवेष्टित हो....
(३) अन्तरिक्ष । यह सभी जीवों के निर्माण तथा आशम का स्थान है । दे. 'उत्तान' ।
'उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तः'
ऋ. १.१६४.३३; अ. ९.१०.१२; नि. ४.२१.
उत्तान, ऊपर तने सभी प्राणियों के भोगसाधन द्यौ और पृथिवी की के बीच में सभी जीवों के निर्माण तथा आश्रय का स्थान अन्तरिक्ष है (योनिः) ।
(४) यज्ञस्थान, (५) सृष्टि, (६) गृह । दे. 'उपाके'
'उषासानक्ता सदतां नियोनौ'
ऋ. १०.७०.६; ११०.६; अ. ५.१२.६; वाज.सं. २९.३१; मै.सं. ४.१३.३; २०२.५; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.११.
उषा और रात्रि यज्ञ, सृष्टि या गृह में नियमपूर्वक नित्य रहे ।
(७) स्त्री योनि । यह स्त्री योनि भी इसी स्नायु से परियुत रहती है ।
योनि शब्द स्त्रीलिंग और पुलिंग दोनों में प्रयुक्त है ।
(८) क्षेत्र, खेत, (९) २४ विभागाध्यक्षों का प्रवर्त्तक राजा ।
'योनिश्चतुर्विंशः'
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.४; मै.सं. २.८.४: १०९.५; का.सं. १७.४: २०.१३; शै.ब्रा. ८.१.१८.
(१०) पलंग, (११) रथ, (१२) एकत्र होने की सभा आदि स्थान ।
'आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे'
ऋ. १०.१८.७; अ. १२.२.३१; १८.३.५७; तै.आ. ६.१०.२.

योनिप्राण – पञ्चप्राण ।
'योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम'
अ. १५.१ (१५) ७

योपन – युयु (विमुग्ध करना) + ष्यु = योपन । अर्थ मोहने वाला रूप । दे. 'जनयोपन' ।

योयुवतिः – सर्वत्रमेल सत्संग रखने वाली प्रजा ।
'नदं योयुवतीनाम्'
ऋ. ८.६९.२; साम. २.८६२; ऐ.आ. १.३.५.३; ५.१.६.५.

योषन् – स्त्री । दे. 'दोहस्'

योषणा – स्त्री ।
'वधूयुरिव योषणाम्'
ऋ. ३.५२.३; ६२.८; ४.३२.१६.

योषणे – द्वि.व. । 'उषासानक्ता' का विशेषण । (१) परस्पर संमिश्र उषा और रात्रि– सा. (२) शुभ कर्मों को संयुक्त करने वाली उषा और रात्रि –ज.दे.श. । दे. 'उपाके' ।
'दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे'
ऋ. १०.११०.६; अ. ५.१२.६: वाज.सं. २९.३१; मै.सं. ४.१३.३: २०२ .६; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३.
द्युलोक से उत्पन्न परस्पर संमिश्र या शुभकर्मों को मिलाने वाली (दिव्ये योषणे) गुणों से महती या दीर्घकाल तक रहने वाली (महती) सुन्दर शोभायुक्त या महान् सुख को देने वाली रोचिष्णु उषा और रात्रि....

योषा – (१) योषा यौतेः । मिश्रणार्थक 'यु' धातु से 'स' प्रत्यय कर 'उ' का गुण और 'स' का 'ष'

और टाप् का योषा बना है ।
यु + स + टाप् = योषा । स्त्री अपने को पुरुष से मिलाती है (सा हि मिश्रयति आत्मान पुरुषेण साकम्) ।
श्रुति में भी विवाह संस्कार के समय ऐसा वाक्य है –
'अङ्गानि ते अङ्गैः सन्दधानि,
अस्थीनि ते अस्थिभिः सन्दधानि'
(तेरे अंगों में अपने अंगों को मिलाऊं और तेरी हड्डियों से अपनी हड्डियों को मिलाऊं) ।
(२) भेदनीति की वाणी ।
'रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथुज्रयः'
ऋ. १.१०१.७
भेदनीति की वाणी जैसा महान् शत्रु संहारक बल बढ़ाती है ।

र

रक्षमाणः – रक्षा करता हुआ । दे. 'रिरिक्वान्' ।
रक्षस् – (१) रक्षा करने वाला, (२) अन्न का आवरण– छिलका, ।
husks 'रक्षस्' का ही अपभ्रंश है ।
'पूतः पवित्रैरपहन्तु रक्षः'
अ. १२.३.१४
(३) रक्षा करने का साधन, (४) करने योग्य पदार्थ ।
'अस्त्रा रक्षांसि'
वाज.स. २५.९; मै.सं. ३.१५.८: १८०.२
(४) राक्षस । 'रक्षि तव्यम् अस्पात्' (इससे शरीर की रक्षा करनी चाहिए) ।
'रहसि क्षणोति इति वा'
वह एकान्त में हिंसा करता है अतः राक्षस है । अथवा 'रात्रौ नक्षते ति वा (वह रात में चलता है अतः वह राक्षस है) ।
रक्ष (पालनार्थक) + असुन् = रक्षस् ।
पाक्ष (गत्यर्थक) + असुन् = रक्षस् । दे. 'अनागस्' ।
'वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसः'
ऋ. ५.८३.२; नि. १०.११.
मेघ वृक्षों एवं राक्षसों का वध करते हैं ।
(५) रोग के कृमि भी राक्षस हैं क्योंकि वे भी रात में अधिक कष्ट देते हैं ।
'वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निः
आविर्विश्वानि कृणुते महि त्वा
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः
शिशीते श्रृंगे रक्षसे विनिक्षे'
ऋ. ५.२.९; अ. ८.३.२४; तै.सं. १.२.१४.७; का.सं. २.१५; नि. ४. १८.
यह अग्नि महान् तेज से दीप्त है और इस प्रकार समस्त लोकों और जीवों को अपने महत्व से (महित्वा) प्रकट करता है । आसुरी मायाओं को (अदेवीः मायाः) अभिभूत करता है (प्रहसते) तथा अपनी दुस्तर्य ज्वालाओं को राक्षसों के विनाश के लिए (रक्षसे विनिक्षे) और तीक्ष्ण बनाता है (शिशीते) जैसे बैल तटों को ढाहता हुआ अपनी सींग तेज करता है (श्रृंगम्) ।
'दुरेवाः अदेवीः मायाः'
का अर्थ दुष्ट मार्ग में ले जाने वाली अदेवी माया' भी किया गया है ।
अन्य अर्थ– वह तेजस्वी पुत्र (अग्निः) महान् ज्योति से दीप्त होता है, अनेक प्रकार के महत्वों को आविष्कृत करता है, दुष्ट मार्ग में ले जाने वाली राक्षसी माया को पराभूत करता है (दुरेवाः अदेवीः मायाः प्रसहते) तथा राक्षसों को मारने के लिए अपने प्रभाव तथा प्रताप को तीक्ष्ण करता है (रक्षसे विनिक्षेश्रृंगे शिशीते) ।
रक्षास्विन् – (१) रक्षस् + विन् = रक्षस्विन् । अर्थ –दुष्ट राक्षसों पुरुषों या रोगों से युक्त । दे. 'घृताहवन्' 'दीदिवा' (२) राक्षसों या दुष्टजनों का स्वामी ।
'प्रति ष्म रिषतो दह
अग्ने त्वं रक्षस्विनः'
ऋ. १.१२.५
हे अग्नि या सूर्य या तेजस्वी, तू दुष्ट पुरुषों या राक्षसों से युक्त (रक्षस्विनः) शत्रु संघों को या जीवन– नाशक दुष्ट रोगों से युक्त पदार्थों को जला, तपकर या भस्म कर ।
'नेह भद्रं रक्षस्विने'
ऋ. ८.४७.१२
(३) राक्षसों का सहायक, (४) अन्यों के कार्यों में विघ्न डालने वाले का सहायक ।

'दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम्'
ऋ. ७.९४.१२
(४) रक्षस् या दुष्ट जनों का सरदार ।
'अनाधृष्टं रक्षस्विना'
ऋ. ८.२२.१८
(१) दुष्ट राक्षस आदि का सहायक ।
'रक्षस्विनः सदमित् यातु मावतः
विश्वं समत्रिणं दह'
ऋ. १.३६.२०

रक्षस्विनी – (१) विघ्नों से पूर्ण, (२) राक्षसों या बाधकों से उपेत
'विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः'
अ. ६.२.२.
(३) कार्य में विघ्न डालने वाली । दुष्टाचारिणी स्त्री ।
'अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु'
अ. ७.११४.२

रक्षसे – रक्षसः (राक्षस का) । षष्ठी के अर्थ में यहां चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है । दे. 'रक्षस्'
'शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे'
ऋ. ५.२.९
(राक्षस के विनाश के लिए)

रक्षाः – राक्षस ।
'यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह'
ऋ. ७.१०४.१६; अ. ८.४.१६

रक्षिता – (१) रोकने वाला (२) रखने वाला ।
'इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानाम्'
ऋ. १०.६७.६; अ. २०.९१.६
(३) रक्षक । दे. 'अप्रायु' ।
'अप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे'
ऋ. १.८९.१; वाज.सं. २५.१४; का.सं. २६.११; कौ.ब्रा. २०.४; नि. ४.१९.

रक्षोयुज् – (१) विघ्न कारी पुरुषों का सहयोगी, (२) रक्षक का सहयोगी ।
'रक्षोयुजे तपुरघं दधात'
ऋ. ६.६२.८

रक्षोहत्य – राक्षसों या दुष्ट पुरुषों का नाश ।
'रक्षोहत्याय वज्रिवः'
ऋ. ६.४५.१८

रक्षोहणा – द्वि.व. । विघ्नकारी पुरुषों या राक्षसों का नाश करने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष ।
'रक्षोहणा सम्भृता वीडुपाणी'
ऋ. ७.७३.४

रक्षोहन् – दुष्ट, राक्षस स्वभाव विघ्नकारी पुरुषों का नाशक ।
'रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम्'
ऋ. २.२३.३, का.सं. २६.११

रक्षोहा – (१) सब रोगों का नाशक
'रक्षोहामीवचातनः'
ऋ. १०.९७.६; अ. १.२८.१; १९.४४.७; वाज.सं. १२.८०; तै.सं. १.४.४६.२; ४.२.६.२; मै.सं. २.७.१३: ९३.१२; का.सं. १६.१३; ३८.१२; आप.श्रौ.सू. १६.६.७.
(२) राक्षसों का नाशक । इन्द्र का विशेषण । दे. 'अस्मदाविद्'
'रक्षोहा मन्म रेजति'
ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२.
जो राक्षसों को मारता हुआ हमारी प्रजाओं को आकम्पित करता है ।

रक्षोहा ब्रह्माः – एक वैदिक ऋषि ।

रक्षोहाविप्र – वैद्य का नाम ।
'विप्रःस उच्यते भिषक्
रक्षोहामीवचातनः'
ऋ. १०.९७.६; वाज.सं. १२.८०; तै.सं. ४.२.६.२; मै.सं. २.७.१३ : ९३.१२; का.सं. १६.१३.
वह विषक् विप्र है जो रोग को दूर करता है । (अमीव चातनः) ।

र्यक् – सम्मुख ।
'अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्याः'
ऋ. ४.२२.८

रघट् – (१) रघु + अट् + क्विप् = रघट् । छोटी उड़ान वाला पक्षी, (२) अर + घट = रघट् । अति वेग से चलने वाला पक्षी ।
'दिव्या या रघटो विदुः'
अ. ८.७.२४

रघ्वी – (१) सदा कर्म करने में कुशल प्रजा (२) वेगवती नदी ।
'उत म ऋज्रे पुर यस्य रघ्वी'
ऋ. ६.६३.९
'रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः'
ऋ. १.५२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८५.४

अति वेग से बहने वाली नदियाँ (रघ्वीः) जैसे नीचे स्थान में (प्रवणे) बह जाती हैं (सस्रुः)।

रघु – (१) लघु। रघुया का अर्थ लघुगति से किया गया है, (२) सायण ने 'रघु' का अर्थ शीघ्रगामी किया है। दे. 'प्र'।

'वयो न पप्तू रघुया परिजन्मन्'

ऋ. २.२८.४

सूर्य की रश्मियाँ पक्षियों की तरह लघुगति से चारों ओर उड़ती सी शीघ्र नीचे आती हैं (रघुया परिज्मन् पप्तुः)।

जैसे शीघ्रगामी पक्षियाँ उड़ती और भूमि पर आती हैं वैसे ही ये नदियाँ कभी थकती नहीं ....सा.।

रघुजाः – (१) वेग में प्रसिद्ध अश्व, (२) वेग उत्पन्न करने वाले यन्त्र।

'मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना'

ऋ. ९.८६.१

रघुपत्वानः – ब.व.। (१) शीघ्रगामी वायु गण के झकोरे।

'रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः'

ऋ. १.८५.६; अ. २०.१३.२; ऐ.ब्रा. ६.१२.९; गो.ब्रा. २.२.२२

शीघ्रगामी वायु की तरह वीर पुरुषों, आप लोग अपने बाहुबल से अच्छी प्रकार आगे बढ़ें (बाहुभिः प्रजिगात)।

रघुन्दुः – (१) तीव्र वेग से जाने वाला अश्व या अश्वारोही।

'समर्वन्तो रघुद्रुवः'

ऋ. ५.६.२; साम. २.१०८९; वाज.सं. १५.४२; वाज.सं. (का.) १६.५ .३०; मै.सं. २.१३.७: १५७.१

(२) बहुत गति से दौड़ने वाली, (३) पर्याप्त भोग भोग कर उनसे खिन्न हो उनसे भागने वाला।

दे. 'मानवस्पत्'

रघुद्रू – शीघ्रता से दौड़ने वाला अश्व। दे. 'रघुद्रु'

रघुपत्मजंहाः – (१) लघु तुच्छ पदार्थ के प्रति गिरने के व्यसन को छोड़ने वाला, (२) वेग से सुदूर मार्गों में जाने में समर्थ।

'वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः'

ऋ. ६.३.५; मै.सं. ४.१४.१५: २४०.१२

रघुमन्यु – (१) स्वल्प क्रोध वाला। क्रोध रहित, (२) ज्ञान की तीव्र भावना वाला पुत्र या शिष्य।

'प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धः
यज्ञं रुद्राय मीढुषे भरध्वम्'

ऋ. १.१२२.१

ऐ क्रोधरहित या ज्ञान की तीव्र भावना वाले पुत्रो या शिष्यो (रघुमन्यवः) तुम्हारे दुःखों को दूर करने वाले पिता या गुरु के प्रति उनकी पालना करने वाले अन्न आदि को (पान्तम् अन्धः) तथा उचित सत्कार को (यज्ञम्) श्रद्धापूर्वक भेंट रूप में लाया कर (प्रभरध्वम्)।

रघुयामा – लघु अर्थात् प्रशस्त यम नियमों का विधाता।

'रघुयामा पवित्र आ'

ऋ. ९.३९.४; साम. २.२५०

रघुवर्तनि – (१) लघु अर्थात् शीघ्र वेग से युक्त –रथ, (२) स्वल्प छोटे मार्ग से जाने में समर्थ रथ।

'आ नूनं रघुवर्तनिं
रथं तिष्ठाथो अश्विना'

ऋ. ८.९.८; अ. २०.१३०.३

रघुयत् – अति वेग से गमन करने वाला पिण्ड।

'गुहा रघुष्यद् रघुयद् विवेद'

ऋ. ४.५.९

रघुष्यद् – अति वेग वाला।

'आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदः'

ऋ. १.८५.६; अ. २०.१३.२; ऐ.ब्रा. ६.१२.९; गो.ब्रा. २.२.२२; आश्व.श्रौ.सू. ५.५.१९

रघुष्यदः – (१) अति वेग से जाने वाले वायु या वीर पुरुष।

'गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः'

ऋ. १.६४.७

रघुष्यद् हरिण – अतिवेग से दौड़ने वाला हरिण।

'हरिणस्य रघुष्यदः
अधि शीर्षाणि भेषजम्'

अ. ३.७.१

रजतनाभिः– काबेरक – रजत में बंधा हुआ पृथ्वी में गड़े खजाने का मालिक कुबेर।

'तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक्'

अ. ८.१०.(५) ११

रजतनाभी – सुवर्णचान्दी आदि धन स्वे सबको

बांधने वाले ।
'पौष्णौ रजतनाभी'
वाज.सं. २९.५९, तै.सं. ५.५.२४.१;

रजतपात्र – चांदी सोना का पात्र ।
'आसीद् रजतपात्रं पात्रम्'
अ. ८.१० (४) ६

रजता – (१) राग से युक्त स्त्री (२) धर्मैश्वर्य से सम्पन्न ।
'रजता हरिणी सीसाः'
वाज.सं. २३.३७; तै.सं. ५.२.११.१; मै.सं. ३.१२.२१: १६७.७

रजनी – (१) कुष्ट और पलित रोग में प्रयुक्त एक औषधि–हरिद्रा (हल्दी), दारुहरिद्रा उदकीर्ण रोचना, शिशपा, वन बीजपुर, यूथिका, मूर्वा ये सभी पीता कहालती हैं । ये त्वचा दोष, कण्डू, कुष्ट आदि के नाशक है ।

रजस् – रजःरजतेः ज्योतिः रज उच्यते । रज् + असुन् = रजस् । अर्थ है– (१) ज्योति, (२) रजःलोक । दे. 'अक्तु' ।
'विद्यामेषि रजस्पृथु'
ऋ. १.५०.७, अ. १३.२.२२, २०.४७.१९, नि. १२.२३
(३) लोक । 'लोकाः रजांसि उच्यन्ते' (लोकों को भी रज कहा जाता है) । दे. 'अद्याचित्'
'त्वया दृढानि सुक्रतो रजांसि'
ऋ. ६.३०.३
हे इन्द्र, तू ने लोकों को दृढ़ किया । लोकों में पुण्य प्राप्त करने वाले जाते हैं ।
(४) उदक, जल । 'उदकं रज उच्यते' (रज उदक का नाम है) । उदक अपने स्नेह नामक गुण से लोगों को अनुरंजित करता है । माधव के मत से रज् धातु गत्यर्थक है । 'लोकेषु प्राणिनः रज्यन्ते (लोकों में पुण्य करने वाले प्राणी जाते हैं ।
जल के अर्थ में प्रयोगः–
'रजःसुसीदन्'
(जल में रहते हुए) ।
'रजसो विमाने'
(जल के निर्माता अन्तरिक्ष में) (५) अन्तरिक्ष । दे. 'अरुषी' 'अर्ध' 'अञ्जते' ।
'पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते'
ऋ. १.९२.१; साम. २.११०५; नि. १२.७
उषा अन्तरिक्ष के पूर्वार्द्ध में सूर्य को व्यक्त करती है ।
(६) जगत् । इस अर्थ में स्वा. दयानन्द ने 'रजस्' शब्द का ग्रहण किया है । दे. 'क्षयन्' ।
'क्षयन्तमस्य रजसः पराके'
ऋ. ७.१००.५; साम. २.९७६; तै.सं. २.२.१२.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.७; का.सं. ६.१०; नि. ५.९
इस जगत् से दूर पृथक् रहते हुए उसे ।.....
सायण ने यहां 'रजस्' का अर्थ अन्तरिक्ष किया है ।
(७) 'असृगहनी रजसी उच्येते' (रुधिर और दिन का भी वाचक रजस् शब्द है)।
'रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवः'
ऋ. ५.६३.५; तै.ब्रा. २.४.५.४; नि. ४.१९
(८) द्यौ और पृथिवी को भी रजसी कहते हैं ।
(९) रजोधर्म ।
'मासि मासि रजोह्यासां
दुष्कृतान्यपकर्षति' ।
(स्त्रियों को रुधिर प्रतिमास आन्तरिक दोषों को निकाल फेंकता है) ।
अन्य उदाहरणः –
'या ते अग्ने रजः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा'
वाज.सं. ५.८; श.ब्रा. ३.४.४.२४
'भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता'
ऋ. १०.८.६; वाज.सं. १३.१५; १५.२३; तै.सं. ४.४.४.१; मै.सं. २.७.१५:९८.२; का.सं. १६.१५; कौ.ब्रा. १२.७; श.ब्रा. ७.४.१.४२; १३.४.१.१३; तै.ब्रा. ३.५.७.१.
आधुनिक अर्थ – (१) धूलि, (२) पुष्परज (३) अणु, (४) सूर्य किरणों में दृश्यमान रजः कण (५) कृष्य भूभाग, (६) अन्धकार, (७) रजोगुण (८) मासिक स्राव (ऋतु धर्म) (९) अन्तरिक्ष लोक ।
(१०) आकाश में फैली हुई धूलि, (१) आकाश में फैला सूर्य प्रकाश ।
'अवः पश्यन्ति विततं यथा रजः'
ऋ. १.८३.२; अ. २०.२५.२

रजयित्री – (१) हृदय को रंगने वाली स्त्री, अनुरागिणी, प्रेमिका ।
'प्रकामाय रजयित्रीम्'

वाज.सं. ३०.१२; तै.ब्रा. ३.४.१.७.

रजस – (१) राजस, रजोगुण का बना हुआ ।
'यत् ते नियानं रजसम्'
अ. ८.२.१०
(२) एक प्रकार का जलप्राणी ।
जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि'
अ. ११.२.२५

रजसः अन्तौ – (१) समस्त संसार के अन्त, छोर (२) स्त्री के रजो भाव की दोनों सीमाएं, (३) लोकों के दोनों अन्त- (४) दोनों मूल कारण- रज और वीर्य (५) पुत्र और पुत्री ।
'वि चक्रमे रजसस्यात्यन्तौ'
ऋ. ५.४७.३; वाज.सं. १७.६०; तै.सं. ४.६.३.४; मै.सं. २.१०.५: १३७.१५; का.सं. १८.३; श.ब्रा. ९.२.३.१८

रजसस्पतिः – समस्त लोकों का पालक ।
'शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः'
ऋ. ७.३५.५; अ. १९.१०.५

रजस्य – सूक्ष्म धूल का व्यापार करने वाला ।
'नमः पांसव्याय च रजस्याय च'
वाज.सं. १६.४५; तै.सं. ४.५.९.१; मै.सं. २.९.८; १२६.१३; का. सं. १७.१५.

रजसी – (१) द्यौ और पृथिवी । दे. 'अहवन्' ।
वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः'
ऋ. ६.९.१; नि. २.२१.
रात और दिन, द्यौ और पृथिवी के प्रति अपनी अपनी प्रवृत्ति से बार बार आते रहते हैं ।

रजसो विमानः – (१) अन्तरिक्ष का धारक विशेष रूप निर्माता वायु,
(२) प्रजा लोकों के बीच विशेष ज्ञान और मान आदर से युक्त (३) समस्त लोक समूह का विशेष निर्माता ।
'अर्क स्त्रिधातू रजसो विमानः'
ऋ. ३.२६.७; वाज.सं. १८.६६; मै.सं. ४.१२.५: १९२.१०; नि. १४. २
(४) जल का निर्माता अन्तरिक्ष । दे.'जरायु'।
'ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने'
ऋ. १०.१२३.१, वाज.सं. ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१०:३४.१, का.सं. ४.३, श.ब्रा. ४.२.१.८, १०, नि. १०.३९
जल के निर्माता अन्तरिक्ष में स्थित मेघ रूपी जरायु में गर्भवत विराजमान विद्युत्
'गंभीर शंसो रजसो विमानः'
ऋ. ७.८७.६

रजसःवृषभः – (१) अन्तरिक्ष से वर्षा करने वाला । मेघ ।
'वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः'
ऋ. ८.५७.३; अ. २०.१४३.९

रजस्तुरः – (१) रजोभाव का नाशक ।
'साधारणं रजस्तुरम्'
ऋ. ९.४८.४; साम. २.१९०
(२) समस्त लोक लोकान्तरों का संचालक ।
'अश्वं न स्तोममपुरं रजस्तुरम्'
ऋ. ९.१०८.७; साम. १.५८०; २.७४४.

रजस्तुर – (१) लोकों और धूलियों को वेग से चलाने वाला वायु, (२) लोगों को चलाने वाला विद्वान् । (३) राजसभा तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति से शीघ्र कार्य कारी पुरुष
रजस्तुरं तवसं मारुतां गणं
ऋजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये
ऋ. १.६४.१२
(४) समस्त लोकों का प्रेरक अग्नि ।
'रजस्तूर्विश्वचर्षणिः'
ऋ. ६.२.२.
(५) रजः + तुर् । जल और पृथ्वी दोनों पर चलने वाला रथ, (६) रजोगुण को दूर करने वाला ।
'अनवसो अनभीशू रजस्तूः'
ऋ. ६.६६.७

रजिः – (१) राजसभा में लिप्त ।
'नम्रं मर्याकरो रजिम्'
अ. २०.१२८.१३; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.१.
(२) सैन्यपंक्तिः (३) सेना की नाक या अग्रणी होकर रहने वाली राज्यशक्ति ।
'त्वं रिजं पिठीनसे दशस्यन्'
ऋ. ६.२६.६
(४) रज्जु, रस्सी, (५) स्तुति ।
'रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोः'
ऋ. १०.१००.१२

रजिष्ठ – अति धर्मात्मा
'मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः'
ऋ. ७.५१.२

(२) अति तेजस्वी, शुद्ध ।
'वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः '
ऋ. ८.१०१.१०
(३) रजस् + इष्ठ = रजिष्ठ । दे. 'रजस्' । रजिष्ठ का अर्थ है- उत्तम दिनों का निर्माण करने वाला, (४) तेजस्वितम, (५) ऋतुतम, (६) रजस्वलतम, (७) प्रविष्टतम ।
'देवेभ्यो वनस्पते हवींषि
हिरण्यवर्ण प्रदिवस्ते अर्थम्
प्रदक्षिणि द्रशनया नियूय
ऋतस्य वक्षि पथिभी रजिष्ठैः '
मै.सं. ४.१३.७: २०८.११; का.सं. १८.२१; तै.ब्रा. ३.६.११.३; नि. ८.१९.
हे वनस्पते अग्ने, प्रतप्तज्वालायुक्त या पीतवर्ण (हिरण्यवर्ण) इन हवियों को ज्वाला रूपी जिह्वा से सम्यक् प्रकार से लेकर (नियूय) देवताओं के निकट ऋजुतम मार्ग से ले जाता हुआ (रजिष्ठैः ऋतस्य पथिभिः प्रदक्षिणत्), या दुर्ग के मत से जलमय सुखद मार्गों से देवताओं के निमित्त ले जा (देवेभ्यः वृक्षि) यह तेरा प्राचीन कर्म ही तुझे कहता हूं (ते प्रदिवः) ।
अन्य अर्थ- पितृयज्ञ में अतिथि यज्ञ के पंखों वाले गार्हपत्य अग्नि (हिरण्यवर्ण वनस्पते), अपने से प्रतिगृहीता को दाहिनी ओर रखकर दिए जाने वाली दक्षिणा रज्जु से बंधकर (प्रदक्षिणित् दशनया नियूय) यज्ञ के ऋजुतम मार्गों से उत्तम दिनों के निर्माण करने वाले मार्गों से (ऋतस्य रजिष्ठैः पथिभिः) माता पिता आदि और विद्वानों के लिए हविओं को प्राप्त कर (देवेभ्यः हवींषि वक्षि) । हे गार्हपत्याग्नि, तेरा यह प्रयोजन सनातन है जिसे हम तुम्हें कह रहे हैं (ते अर्थम् प्रदिवः) ।
(८) ऋजु + इष्ठ = रजिष्ठ । अति ऋजु, सरल ।
'त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् '
ऋ. १.९१.१
हे सोम उत्पादक परमेश्वर, तू अति ऋजु सरल मार्ग की ओर ले जाता है ।
(९) धूलिकणों से युक्त । दे. 'पियानः ' ।
'नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः '
ऋ. १.७९.३

रजिष्ठा - (१) अति सरल ।
'रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोः '
ऋ. १०.१००.१२

रज्जु - सृज् (विसर्ग अर्थ में) + उ = सर्जु = रस्जु = रज्जु । अर्थ है - जो सिरजा जाय । रज्ज शब्द का ही पुनः वर्ण विपर्यय से जुर और जोर बन गया है ।

रज्जुसर्ज - लम्बी रस्सी बनाने वाला ।
'दिष्टाय रज्जुसर्जम् '
वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१.३.

रजेषित - गर्दभों, ऊंटों या लोक से बने प्रजाजनों से प्राप्त होने योग्य ।
'अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितम् '
ऋ. ८.४६.२८

रजोयुक् - (१) लोकों का प्रेरक, (२) प्रकृति के रजोगुण से योग करने वाला,
'यस्येदमा रजोयुजः '
अ. ६.३३.१;

रण - (१) रण, (२) रमण योग्य शरीर ।
'स्थिरो रणाय संस्कृतः '
ऋ. ८.३३.९; अ. २०.५३.३; ५७.१३; साम. २.१०४८
(३) रम् (रमण करना) + अच् = रण । रमन्ते अस्मिन् योद्धारः (रस रण में योद्धा रमते हैं) । अर्थ है संग्राम, युद्ध । दे. 'अनुष्वधम् '
'मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय
पिबा सोम मनुष्वधं मदाय '
ऋ. ३.४७.१; वाज.सं. ७.३८; तै.सं. १.४.१९.१; मै.सं. १.३. २२: ३८.१; का.सं. ४.८; नि. ४.८.
हे मरुतों या सैनिकों से युक्त वर्षा बरसाने वाला इन्द्र, तू रण तथा मद के लिए अन्न खाने के बाद या अन्न के सहित सोमरस का दान कर । पुनः, दे. 'अवर्धन्' ।
(४) रमणीय, सुन्दर । दे. 'ऊर्ज्'
आपो हि ष्ठा मयोभुवः
ता न ऊर्जे दधातन
महे रणाय चक्षसे '
ऋ. १०.९१.१; अ. १.५.१; साम. २.११८७; वाज.सं. ११.५०; ३६.१४; तै.सं. ४.१.५.१; ५.६.१.४; ७.४.१९.४; मै.सं. २.७.५: ७९.१७; ४.९.२७: १३९.४; का.सं. १६.४; ३५.३; नि. ९.२७.
हे जलो, तुम सुखदायक हो, वे तुम हमारे

भोजनार्थ अन्न के लिए (न ऊर्जे) अनुग्रह करो और महान् (महे) तथा सुन्दर (रणाय) ज्ञान के लिए (चक्षसे) भी अनुग्रह करो ।
आधुनिक अर्थ – रण, संग्राम, रणभूमि ।

रणयन्त – रमयन्ति । रमाते हैं । दे. 'पर' ।
'भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ'
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६: २०६.१२; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा.३. ६.१०.२
वे तुझ अग्नि या परमेश्वर के सम्यक् दर्शन के लिए अपने को रमाते हैं ।

रणयन्ति – रमण करते हैं । दे. 'अमृक्त'

रण्यजित् – रमणीय या रण से प्राप्त ऐश्वर्य का विजेता ।
'विश्वजित् सोम रण्यजित्'
ऋ. ९.५९.१

रण्यवाक् – रमणीय वाणी वाला विद्वान् ।
'प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते'
ऋ. ३.५५.७

रण्य – (१) सजाया (२) रमण्यीय ।
'आबेधू रण्याय कम्'
अ. ९.३.६

रण्या – रण + यत् = रण्य । द्वि.व. में 'रण्यौ' का वेद में 'रण्या' होता है । बाहुओं के विशेषण के रूप में इसका प्रयग हुआ है । अर्थ है–(१) रमणीय, (२) आपत, पीन, (३) रणार्ह । दे. 'उभ' ।

रण्व – (१) अग्रणी, नामक । दे. 'क्षेम'
'दाधार क्षेममोको न रण्वः'
ऋ. १.६६.३
(२) रमणीय ।
'रण्वः संन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः'
ऋ. १.१४४.७; १०.६४.११

रण्व संदृक् – (१) सम्यग्दर्शना उषा, (२) रमणीय, सौम्य दृष्टि या सौम्यलोचना स्त्री ।
'प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक्'
ऋ. ३.६१.५
(३) उत्तम कान्ति से चमका हुआ अग्नि, (४) रम्य रूप से दीखने वाला, (५) रम्य पदार्थों को दिखलाने वाला– अग्नि ।
'त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्'
ऋ. ७.१.२१; आश्व.श्रौ.सू. ४.१३.७

रज्वसंदृश – रमणीय और दर्शनीय –अग्नि ।
'उप त्वा रण्वसंदृशम्'
ऋ. ६.१६.३७; साम. २.१०५५; मै.सं. ४.११.२: १६३.६; का.सं. ४०. १४.

रण्वा – (१) रमणीय, सुन्दर प्रिय, सुख प्रद ।
'अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः'
ऋ. २.४.४.
(२) यः सुखं प्रापयति – दया. । सुख देने वाला ।
'पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी'
ऋ. १.६५.५
जो अग्नि विद्युत्, राजा या परमेश्वर शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के सुख को बढ़ाने वाली पुष्टि के समान सुख देने वाला है । भूमि के समान सबको अपने में आश्रय देने वाला है ।

रण्वित – द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष का विशेषण, (२) नाना शब्दों से गुञ्जित , (३) रमणीय शब्दों को बोलती हुई ।
'उषासानक्ता वय्येव रण्वित'
ऋ. २.३.६

रत्न – रम् + रक् = रत्न । अर्थ है– (१) रमणीय, (२) रत्न । दे. 'अस्मे' ।
'अस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि'
ऋ. ७.२५.३; नि. ५.५.

रत्नधा – (१) रमणीय धन देने वाला सविता –सा. (२) सूर्यादि रमणीय पदार्थों का कर्त्ता । दे. 'अमति'

रत्नधातमः – (१) रम् + रक् = रत्न, रत्न + धा + क्विप् = रत्नधा । रत्नामि दधाति इति रत्नधाः (जो रत्न धारण करता है वह रत्नधा है) । रत्नधा + तमप् = रत्नधातमः (अतिशयेन रत्नधा इति रत्नधातमः) ।
(२) सायण के अनुसार अतिशयेन रत्नानां धारयिता पोषयिता वा (रत्नों का अतिशय धारक या पोषक) ।
(३) यास्क ने 'रमणीयानां धनानां दातृतमः' (रमणीय धनों का सबसे उत्तम दाता) ऐसा अर्थ किया है ।
(४) स्वामी दयानन्द ने इसका आधिभौतिक अर्थ– कृत्रिमहीरा का प्रदाता और आध्यात्मिक

अर्थ सूर्य, चन्द्र आदि रत्नों का उत्तम दाता अर्थात् परमेश्वर किया है ।
(५) रत्नों का धारण करने वाला
(६) यज्ञफलरूप रत्नों का धारण करने वाला । अग्नि या परमात्मा का विशेषण ।
'होतारं रत्नधातमम्'
ऋ. १.१.१; तै.सं. ४.३.१३.३; मै.सं. ४.१०.५: १५५.२; का.सं. २.१४; गो.ब्रा. १.१.२९; नि. ७.१५.

रत्नधेय – (१) रत्न या उत्तम धन की प्राप्ति । (रत्नों का देना ।
'एष वां भागो निहितो रत्नधेयाय'
अ. ६.१४०.२
(२) रमणीय, मनोहार ।
'विभातीनां सुमना रत्नधेयम्'
ऋ. ४.१३.१
'सनाद्धि को रत्नधेयानि सन्ति'
ऋ. १०.७८.८

रत्निनी – (१) उत्तम रमणीय गुणों से अलंकृत, (२) रत्नों से जुड़ी लड़ी के समान वाणी ।
'वाचं वाचँ जरितू रत्निनीं कृतम्'
ऋ. १.१८२.४

रथ – रस, वीर्य ।
'इन्द्रस्य प्रथमो रथः'
अ. १०.४.१; कौ.सू. १३९.८
(१) रंह् (गत्यर्थक) + कथन् = रथ (ह् और न का लोप) । रंहति गच्छति अनेन इति रथः (इससे मनुष्य चलता है अतः यह रथ है)
(२) स्थिरतः वा स्यात् विपरीतस्य ('स्थिर' शब्द को ही विपरीत कर के 'रथ' बन गया है) । स्थिर + घ = रथ (स् और इ का लोप) ।
(३) रममाणः आस्मित् तिष्ठति (रमण करता हुआ मनुष्य इसमें बैठता है) । 'रम + स्था' से रथ बना ।
(४) रम + कथन् = रथ (बाहुलक से म का लोप) ।
(५) रस (शब्द करना) + कथन = रथ ।
(२) जो चलता है वह रथ है । दे. 'अनस्' ।
'ययाथ दूरादनसा रथेन'
ऋ. ३.३३.१०; नि. २.२७.
हे स्तुतिकर्ता विश्वामित्र, तू दूर से आया है अतः शकट या रथ से जा ।
(३) शरीर । दे. 'अभ्यधीताम्' ।
'युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः'
ऋ. १०.४.६
(४) मेघ । मेघ भी रंहणशील –गतिशील है । अतः यह रथ है । दे. 'आहुवेम' ।
'रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०.
हम अन्न देने वाले मरुतों के साथी मेघ को या मरुत् रूपी रथ वाले गतिशील मेघ को बुलाते हैं ।
आधुनिक अर्थ – गाड़ी, रण में चलने वाला रथ, पैर, अंग, शरीर ।
(५) यान । दे. 'दक्षिणावत्' ।
'यत्रा रथस्य बृहतो निधानम्'
ऋ. ३.५३.५,६.
जहाँ बड़े बड़े रथों का निधान है ।

रथकार – रथ बनाने वाला ।
'मेधायै रथकारम्'
वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२.

रथक्रीत – इन्द्रिय रसों के परित्याग के बदले में प्राप्त ।
'यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम्'
अ. ११.६.२३, कौ.सू. ५८.२५.

रथगृत्स – (१) रसों के संचालन में परम बुद्धिमान, (२) कुशल ।
'तस्य रथ गृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१५; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०; ११४.१३; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१६

रथचर्षण – (१) रथ खींचने का स्थान, रमण योग्य गृहस्थ का राज्य कार्य को उठाने का समय ।
'यो ह वां मधुनो दृतिः
आहितो रथचर्षणे'
ऋ. ८.५.१९

रथजित् – (१) रमण साधन या वेगों पर वश करने वाला पुरुष, (२) काम वेग को वश में रखने वाला ।
(३) आत्मसाधक जितेन्द्रिय योगी ।
'रथजितां रथजितेयीनाम्'
ऋ. ६.१३०.१

रथजूति – शरीर में रथ का वेग लाने वाला आंजन का विशेषण ।

'रथ जूतिमनागसम्'
अ. १९.४४.३

रथतुः – रथ के वेग से चलने वाला ।
'तेनोऽवन्तु रथतूर्मनीषाम्'
ऋ. १०.७७.८

रथतूर् – ये रथान् तूर्वन्ति शीघ्रं गमयन्ति ते रथतूरः । रथ को शीघ्र चलाने वाले-अश्व ।
'शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः'
ऋ. १.८८.२
रथों को वेग से ले जाने वाले अश्वों से या यन्त्रों से उत्तम शोभाप्राप्त करने के लिए (शुभे) श्रेष्ठ सुखकारी प्रजापालक राजा को प्राप्त होते हैं ।

रथन्तर – (१) पृथिवी, (२) वाक्, (३) ब्रह्मवर्चस्, (४) ऋग्वेद, (५) देवरथ, (६) अन्न, (७) अग्नि (८) प्रजनन, (९) रथन्तर, (१०) परोक्ष, (११) वैरूप ।
'तं बृहच्च रथन्तरं च'
अ. १५.१ (२) २
(१२) रथों के मार्गों का निर्माण और प्रबन्ध, (१३) यह लोक ।
'रथन्तरं छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७: ११२.१ का. सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.५.
(१३) रसतम, (१४) अपान ।
'रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्'
ऋ. १.१६४.२५; अ. ९.१०.३
'रसतमं ह वै तद् रथन्तरमित्या
चक्षते परोऽक्षम्
श.ब्रा. ९.१.२.३६
अयं पृथिवी लोको रथन्तरम्
ऐ.ब्रो.
वां रथन्तरम्
तै.ब्रो.
ब्रह्म वै रथन्तरम्
ऐ.ब्रो.
अपानो रथन्तरम्
तै.ब्रो.
प्रजननं वै रथन्तरम्
तै.ब्रो.
(१५) रथों के बल पर शत्रु संकट से पार करने वाला क्षात्र बल ।
'गायत्रेण रथन्तरम्'
वाज.सं. ११.८; तै.सं. ३.१.१०.१; ४.१.१३ मै.सं. २.७.१: ७४.१०; ३.१.१:२.६ का.सं. १५.११; श.ब्रा. ६.३.१.२०; कौ.सू. ५.७.
(१६) अन्तरिक्ष, (१७) अधिक वेगवान् या शक्तिमान् ।

रथप्रा – (१) रथ से आने वाला, (२) महान् ऐश्वर्यवान् सर्व वरणीय ब्रह्माण्ड में व्यापक प्रभु ।
'बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्'
ऋ. ६.४९.४; वाज.सं. ३३.५५; मै.सं. ४.१०.६: १५८.२ तै.ब्रा. २.८.१.२.

रथप्रोत – जो सदा रथ पर ही चढ़ कर युद्ध करता है ।
'तस्य रथप्रोतश्चामरथश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१७; मै.सं. २.८.१०: ११४.२० का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.११.८

रथमुख – रथ का वह भाग जिसमें घोड़े जुड़ते हैं ।
'अग्नी रथमुखम्'
अ. ८.८.२३.

रथयुः – रथ + यु (मतुप् या कामना अर्थ में) = रथयु । अर्थ-(१) रथवान् रथवाला । इन्द्र का विशेषण । दे. 'अश्वयु' ।
'अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुः
इन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्त'
ऋ. १.५१.१४; नि. ६.३१.
(२) रथ की कामना करने वाला ।

रथर्य – (१) व्यायाम, (२) देह रूप रथ से प्राप्त होना ।
'यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि'
ऋ. १०.३७.३

रथर्यति – रथं हर्यति – रथर्यति । हर्य धातु गति और कान्ति अर्थ में आया है । 'रथं हर्यति' से ही 'रथर्यति' बन गया है । अनुस्वार और ह का लोप हो गया है । अर्थ है- (१) रथ की कामना करता है (रथं कामयते) (२) रथम् आत्मनः इच्छति (अपने लिए रथ चाहता है) । इस अर्थ में रथ + कपच् + तिप् = 'रथर्यति' हुआ है । 'रथ का इच्छुक' इस अर्थ में 'रथर्यति' नाम है और 'रथ की कामना करता है' इस अर्थ में

आख्यात है ।
'एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति
आविष्कृणोति वग्वनुम्'
ऋ. ९.३.५; साम. २.६०९
यह निकलता हुआ तथा सुन्दर सोम रस (एषः पवमानः देवः) हमारे यज्ञ में आने के लिए रथ की कामना करता (रथर्यति) और आकर देवों के निमित्त अपना दान चाहता है (दशस्यति) तथा मुझे 'देवताओं को दो' ऐसी वाणी का प्रकाश करता है (वावनुम् आविष्करोति) -सा. ।
अन्य अर्थ - यह रमणस्थान परमेश्वर की कामना करने वाला (एषः रथर्यति) पवित्र तथा तेजस्वी शान्तविद्वान् (पवमानः देवः) सुख प्रदान करता है (दशस्यति) और वेदवाणी से संभजनीय ज्ञान को प्रवाहित करता है (वग्वनुम् आविष्करोति) ।
(२) परमेश्वर की कामना वाला ।

रथर्वी - फणि वाला सर्प ।
'पैद्वो रथर्व्याः शिरः
सं बिभेद पृदाक्वाः'
अ. १०.४.५

रथवत् - (१) रमण-साधन शरीर को धारण करने वाला- आत्मा, (२) रथ वाला । दे. 'नभोजू' ।

रथवाहण - रथ और घोड़ा आदि ऐश्वर्य ।
'प्रस्थावद् रथवाहणम्'
अ. ३.१७.३; वाज.सं. १२.७१; तै.सं. ४.२.५.६; मै.सं. २.७.१२; ९१.१८; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.११.

रथवाहन - रथ को चलाने योग्य उपकरण ।
'रथवाहनं हविरस्य नाम'
ऋ. ६.७५.८; वाज.सं. २९.४५; तै.सं. ४.६.६.३; आप.श्रौ.सू. २० .१६.१८.

रथवीति - (१) रथ के द्वारा गमन, (२) रथ से प्राप्त होने वाला- आने वाला ।
'सुतसोमे रथवीतौ'
ऋ. ५.६१.१८
'एष क्षेति रथवीतिः
मघवा गोमतीरनु'
ऋ. ५.६१.१९

रथस्पति - (१) रथों का स्वामी, (२) सेना का स्वामी, (३) महारथी नेता ।
'एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः'
ऋ. ५.५०.५

रथस्पृक् - रथ + स्पृश् + क्विप् = रथस्पृश् । प्रथमा एकवचन में रथस्पृक् अर्थ- रथ में लगा ।
'ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वाः'
ऋ. १०.९५.८

रथस्यखः - (१) रमण करने योग्य शरीर की इन्द्रियाँ ।
'खे रथस्य खेऽनसः'
ऋ. ८.९१.७; अ. १४.१.४१; तै.ब्रा. १.२२१.
(१) रथ का अवकाश, (४) रमण योग्य इन्द्रियों का छिद्र ।

रथस्य निधानम् - (१) रथशाला - या. । (२) वेगवान् यन्त्राश्व का नियोजन- दया. । दे. 'दक्षिणावत्'।
'यत्रा रथस्य बृहते निधानम्'
ऋ. ३.५३.५,६
जहाँ रथ शाला है-यास्क ।
जहां यन्त्राश्वों का नियोजन या विमोचन होता है - दया.।

रथस्वनः - जिसके रथ में अद्भुत शत्रुभयकारी शब्द निकलता है ।
'तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१६; तै.सं. ४.४.३.१; मै.स. २.८.१०; ११४.१६ का. सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१७.

रथ्यः - (१) रथ में जोते जाने वाला अश्व । दे. 'आसस्त्राणाशः ।
'इन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः'
ऋ. ६.३७.३; नि. १०.३
रथ में जोते जाने योग्य घोड़े ।
(२) रथ की धुरी । दे. 'आहनस्' ।
'तेन वि वृह रथ्येव चक्रा'
ऋ. १०.१०.८; अ. १८.१९
हे यमी, तू उससे विवाह कर जैसे रथ के दो पहिए एक ही धुरी पर रहते हैं ।
(३) रथ का भार उठाने में समर्थ रथ की धुरी ।
'आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुः'
ऋ. १.३५.६
रथ का भार उठाने में समर्थ रथ की धुरी जिस रथ पर चढ़ने वाले का भार सहन करता है उसी

प्रकार वायु के आश्रय पर सूक्ष्म जलों के समान जीवगण (अमृता) स्थिर हैं ।

रथ्यचक्र – (१) रथ योग्य चक्र, (२) रथ के चक्र के समान बना चक्रव्यूह ।
'नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्'
ऋ. १.५३.९; अ. २०.२१.९

रथ्यः सप्तिः – (१) रथ का घोड़ा, (२) रथ रूप शरीर में विद्यमान देह से देहान्तर जाने वाला जीव ।
'सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः'
ऋ. २.२१.७

रथ्या – (१) उत्तम देह और आत्मा से युक्त ।
'बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता'
ऋ. ५.७५.५
(२) द्वि.व. । रथ में लगे दो अश्वों के समान स्त्री पुरुष या दो नदियाँ –शुतुद्रु और विपाशा ।
'अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः'
ऋ. ३.३३.२

रथ्यासः – रथ + यत् = रथ्य । ब.व. में रथ्य + जस् = रथ्यासः रथ में जुते जाने वाले अश्व । 'अञ्जसे रसुक्' से जस् का असुक् हो जाता है । दे. 'आसस्राणासः' ।

रथिणी इष् – रथ वाहनों से युक्त सेना ।
'इन्द्र ता रथिनीरिषः'
ऋ. १.९.८; अ. २०.७१.१४

रथिर – (१) रमणीय ज्ञान वाला, (२) रथ का स्वामी, (३) रमणीय स्वरूप या रसस्वरूप परमेश्वर ।
'सुदानुं देवं रथिरं वसूयवः'
ऋ. ३.२६.१
(४) रथारोही, (५) रमणयोग्य शरीर धारी ।
'रथिरासो हरयो ये ते अस्त्रिधः'
ऋ. ८.५०.८
(६) रथ सैन्य के संचालन का स्वामी ।
'सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त'
ऋ. ७.७.४.
(७) रमण योग्य रथ अर्थात् शरीर को वश करने वाला ।
'सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयः'
ऋ. १०.७६.७
(८) महारथियों के बीच रमण करने वाला महारथी
'अनु देवान् रथिरो यासि साधन्'
ऋ. ३.१.१७

रथिरा – (१) रथ पर विराजमान अश्विद्वय या (२) सहयोगी स्त्रीपुरुष ।
'यो ह स्य वां रथिरा वत्स उस्राः'
ऋ. ७.६९.५; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.३ का.सं. १७.१८; तै.ब्रा. २.८.७.८

रथीतमः – अतिशय रथों वाला या नृतम् परमात्मा । दे. 'उत्', 'न्यैरयत्' ।
'सूरश्चक्रं हिरण्ययम्
न्यैरयद् रथीतमः'
ऋ. ६.५६.३
अतिशय रथों वाला या नृतम (रथीतमः) प्रेरकपरमात्मा (सूरः) आदित्य के लिए सुवर्णमय कालरूपी चक्र को (हिरण्य चक्रमे) चलाता है (न्यैरयत्) ।

रथीः – (१) गमयिता, (२) प्राप्त कराने वाला । दे. 'आघृणि' ।
'रथीर्ऋतस्य नो भव'
ऋ. ६.५५.१
हे पूषन्, सूर्य या हे विद्वन् , आप हमारे यज्ञ के गमयिता या सत्य विद्या के प्राप्त कराने वाले हो (ऋतस्य रथीः) ।

रथीतमा – द्वि.व.। (१) उत्तम महारथी, (२) देह में आश्रित प्राण और अपान ।
'दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा'
ऋ. १.१८२.२

रथीतर – अतिशयेन रथयुक्तो योद्धा (रथी जिससे बढ़कर दूसरा न हो) ।
'नकिष्ट्वद् रथीतरः'
ऋ. १.८४.६

रथेष्ठः – रथ में स्थित ।
'रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः'
ऋ. २.१७.३

रथेचित्रः – जिसके रथ में चित्र विचित्र रचना और युद्धार्थ विचित्र उपकरण हो ।
'तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१६; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११४.१६ का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१७.

रथेशुभ् – रथ पर शोभने वाला । दे. 'क्रीड़' ।

रथोपस्थ – (१) रथ का उपस्थ, (२) रथी के बैठने का स्थान ।
'परिवत्सरो रथोपस्थः'
अ। ८.८.२३

रथौजाः – (१) रथों के द्वारा पराक्रम करने में कुशल ।
'तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१५; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११४.१३ का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१६.

रद् – धा. । काटना, खोदना । दे. 'किविर्दत्' जिसमें 'रदति' का अर्थ काटना या खोदना कहा गया है ।

रदति – (१) काटता है – सा. (२) खोदता या खनता है – दया. । दे.' क्रिविर्दती' ।
'यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती'
ऋ. १.१६६.६; नि. ६.३०.
जब आप की काटने वाली हेति, मेघ समूह को इस प्रकार काटती हैं–सा.
जिस विज्ञान में (यत्रा) तुम्हारे काटने वाले दांतों वाली विद्युत् (वः क्रिविर्दती विद्युत्) खोदने का काम करती है (रदति) । –दया. ।

रदन्ता – (१) प्रदान करते हुए– अश्विद्वय या विद्वान् स्त्री पुरुष ।
(२) भूमि से खनकर प्राप्त करते हुए ।
'वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता'
ऋ. १.११७.११
पालन पोषण करने में समर्थ (भुरणा) मेधावी ज्ञानवान् पुरुष का ब्राह्मण को (विप्राय) अन्न (वाजम्) प्रदान करते हुए (रदन्ता) आप दोनों....
अथवा,
रजत, रत्न आदि ऐश्वर्य और अन्त को भूमि से खनकर प्राप्त करते हुए...।

रदावसु – (१) शत्रु कर्षण करने वाला प्रजा का स्वामी, (२) धनों का दाता – इन्द्र ।
'स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो'
ऋ. ७.३२.१८; अ. २०.८२.१; साम. १.३१०; २.११४६

रदित – (१) दाँत गड़ाया गया, (२) सांप का दांत से काटना, (३) शत्रु द्वारा मारा जाना ।
'रदिते अर्बुदे तव'
अ. ११.९.७, ८,९,१०, ११,१३, १४,१५

रध् – धा. । वश में होना ।
'द्विषंश्च मह्यं रध्यतु'
अ. १७.१.६
(२) हिंसा करना । दे. 'दन'
जिसमें 'रन्धीः' का अर्थ 'नाश कीजिए' किया गया है ।
(३) सम्पादन करना–सा.
(४) वश में जाना–सा. ।
(५) हिंसा और रोधन करना । –दीक्षित ।(६) रहना ।

रध्यति – (१) वशं गच्छति (वश में जाता है), (२) हिंसति (हिंसा करता है) (३) संराधन करता है । दे. 'रध्', 'रधान', 'आभर' ।

रध्र – (१) आराधन करने वाला उपासक (२) दुष्टों को दण्ड करने वाला दयनीय वीर पुरुष ।
'यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य'
ऋ. २.१२.६; अ. २०.३४.६
(३) धनाढ्य
(४) दृढ़ (५) वश करने योग्य, (६) प्रबल, (७) समृद्धिमान् ।
'इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति'
ऋ. ७.५६.२०
(८) आराधन या साधन करने वाला ।
'रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ'
ऋ. २.३०.६

रध्रचोदः – (१) आगे आए बाधक हिंसकों को दूर करने वाला, (२) उत्तम ऐशवर्यवान् समृद्ध पुरुषों को भी प्रेरणा करने वाला इन्द्र परमेश्वर ।
'रध्रचोदः श्नथनो वीडितस्पृथुः'
ऋ. २.२१.४

रध्रचोदनः – (१) वपूरगामियों को सन्मार्ग में चलाने वाला ।
'अनानुदं वृषभं रध्रचोदनम्'
ऋ. १०.३८.५; जै.ब्रा. १.२२८
(२) अपने वशीभूत अधीन व्यक्तियों को उत्तम शिक्षा देने वाला ।
'किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः'
ऋ. ६.४४.१०

रध्रतुर – (१) हिंसकों को नाश करने वाला ।
'अरध्रस्य रध्रतुरो बभूव'
ऋ. ६.१८.४

रधाम - (१) रध (रहना) धातु के आशीर्लिङ् उ.पु.ब.व. का रूप । अर्थ है हम रहें । दे. 'मा'
'मा रधाम द्विषते सोम राजन्'
ऋ. १०.१२८.५; अ. ५.३.७; तै.सं. ४.७.१४.२; आप.मं.पा. २.९.६;
हे राजन् सोम, हम शत्रुओं के वश में न जाने पावें (द्विषते मा रधाम) । हिन्दी का 'रहना' धातु 'रध' धातु का ही बिगड़ा रूप है ।
दीक्षित का अर्थ-द्विषतेतदर्थं मार धाम परिपक्वा हवनार्हा मा भूम । (शत्रुओं के लिए परिपक्व हवन के योग्य हम न होवें) ।
(२) वशं गच्छेम (वश में जावें) । दिवादिगणीय 'रध्' धातु वश करना अर्थ में है ।
(३) दीक्षित के मत से 'रध्' धातु हिंसा और रांधना अर्थ में है (हिंसा संराध्योः) । (४) यास्क ने इसे गमनार्थक ही माना है ।

रन् - (१) देता हुआ .
'युवं ह्यास्तं महो रन्'
ऋ. १.१२०.७
आप दोनों बड़े भारी पूजनीय ज्ञान और रक्षक एवं ऐश्वर्य को देने योग्य होओ ।

रन्त - (१) रमन्ते (रहते हैं) । दे. 'अर्वाक्' ।
'ज्मया अत्रः वसवो रन्तदेवाः'
ऋ. ७.३९.३; नि. १२.४३.
जो पृथिवी में बसने वाले देवता यहां हैं ।
(३) अरमन्त- (रमण किया या रमे)
पुनः दे. 'उरुज्रि' ।
'बहुलं छन्दसि' से शप् का लोप और अट् का अभाव ।

रन्त्यः - रमणीय । (२) रमण करने, योग्य ।
'कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूत्'
ऋ. १०.२९.३; अ. २०.७६.३
'वसन्त इन्नु रन्त्यः'
आ.सं. ४.२.
(३) सुख देने वाला ।

रन्ता - स्त्री. । रमण करने योग्य, रमणीय ।
'इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे'
वाज.सं. ८.४३, श.ब्रा. ४.५.८.१०.

रन्तिः - (१) रमण करने वाला (२) सुप्रसन्न प्रजाजन सुखी ।
'श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च'
ऋ. ७.१८.१०
(३) चित्त की प्रसन्नता, (४) (रमण) ।
'इह रन्तिरिह रमताम्'
वाज.सं. २२.१९; श.ब्रा. १३.१.६.२.
'स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत्'
ऋ. ९.१०२.५

रन्ती - समस्त क्रीड़ा, चेष्टा, व्यापार करने वाली चिति शक्ति ।
'सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी'
साम. २.१००४; तै.ब्रा. २.१४४.

रन्धय - साधय (साध या वश में कर) । रध् धातु वश करना अर्थ में तथा रांधना-पाक बनाना अर्थ में आया है । दे. 'रधाम' । अर्थ- (१) दे. (२) अधिकार में कर । दे. 'आभर' ।
'नैचाशाखं मघवन् रन्धयानः'
ऋ. ३.५३.१४; नि. ६.३२.
हे मघवन्, तू हमें नीच योगी से उत्पन्न पुत्रादि का धन (नैचाशाखम्) धन दे (रन्धय नः) । दे. 'रध्यति', 'रध' ।

रन्धिः - (१) विनाश, (२) वशीकर -दया
'भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्'
ऋ. ७.१८.१८

रन्धीः - (१) सम्पादित किया-सा. । (२) रौंदा नष्ट किया-दया. । दे . 'दन्' ।
'यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.३
हे इन्द्र, तूने स्तुतिशील पुरुकुत्स के लिए (यूने पुरुकुत्साय) धन सम्पादित किया (वृत्रं रन्धीः) सा. । हे राजन्, तूने पुरुषार्थी कृषक के लिए (यूने पूरुकुत्साय) कष्ट को नष्ट किया (वृत्रं रन्धीः) ।

र्यक् - अ.। (१) सामने-सा. । (२) प्राप्त होने वाला । -दया. । दे . 'अमिन' ।
'अस्मद् र्यग् वावृधे वीर्याय'
ऋ. ६.१९.१; वाज.सं. ७.३९; तै.सं. १.४.२१.१; मै.सं. १.३.५; ३८.१३; का.सं. ४.८; श.ब्रा. ४.३.३.१८; तै.ब्रा. ३.५.७.५.
हमारे सामने या हमें प्राप्त होने वाला सूर्य बल के लिए बढ़ते हैं ।

रप् - (१) लप, बोलना ।

'ऋता वदन्तो अनृतं रपेम'
ऋ. १०.१०.४
(२) उपदेश करना ।
'रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ'
ऋ. १.१७४.७

रपः – (१) स्त्री पर बलात्कार सम्बन्धी पाप ।
'अप कृत्यामयो रपः'
वाज.सं. ३५.११; श.ब्रा. १३.८.४.४

रपस् – (१) पाप वाची अव्यय ।
'रपोरिप्रम् इति पापनामनी भवतः'
(रपस् और रिप्र पाप के नाम हैं)
'बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वाक्
इमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्
त आ गतावसा शन्तमेन
अथा नः शं योररपो दधात'
ऋ. १०.१५.४; वाज.सं. १९.५५; मै.सं. ४.१०.६: १५६.१३. का.सं. २१.१४; नि. ४.२१.
हे यज्ञ में बैठने वालो, हे पितरो, हम इस पीढ़ी वाले अर्वाचीनों की रक्षा आप करें (अर्वाक् ऊती) । हम लोगों ने आप लोगों के लिए (नः) इन हवियों को तैयार किया है (इमा हव्या चकृम) । अतः आप उन्हें ग्रहण करें या आस्वादें । आस्वादन कर वे आप सुखतम रक्षा करने वाले बनकर आवें (शतमेन अवसा आगत) और हमें (अथ नः) रोग और भय से रहित (शंयोः) और पापहीन करें (आपः दधात) ।

रप्श – स्तुति करना, आज्ञा देना ।
'वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिः'
ऋ. ४.२०.५

राशदूधन् – (१) गर्जता हुआ अन्तरिक्ष वाली, (२) बड़े बड़े दूध से भरे थनों वाली (३) व्यक्त उपदेश करने वाली वाणी ।
'इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिः'
ऋ. २.३४.५

रप्सुदा – (१) उत्तम रूप प्रदान करने वाला सूर्य ।
'मही यज्ञस्य रप्सुदा'
ऋ. ८.७२.१२; साम. १.११७; २.९५२ वाज.सं. ३३.१९,७१
(२) उत्तम यश बल देने वाला ।

रफ – पीड़ा देना ।

रफित – पीड़ित, दुःखित जीव । रफ (पीड़ा देना) + क्त = रफित ।
'अन्नवान्त्सन् रफितयोपजग्मुषे'
ऋ. १०.११७.२

रभस – (१) वेगवान् – अग्नि (२) कार्य करने वाला ।
'व्यचिष्ठमन्नैः रभसं दृशानम्'
ऋ. २.१०.४; वाज.सं. ११.२३; श.ब्रा. ६.३.३.१९
(३) अति कार्यकुशल ।
'वृको न रभसो भिषक्'
वाज.सं. २१.३८; मै.सं. ३.११.२: १४२.१३; तै.ब्रा. २.६.११.७
(४) बलवान् ।
'अधैनं वृका रभसासो अद्युः'
ऋ. १०.९५.१४
(५) गृह ।
'आसीना ऊर्ध्वं रभसं विमिन्वम्'
ऋ. ३.३१.१२.
(६) सर्वकर्ता प्रभु ।
'श्लोक यन्त्रासो रभसस्य मन्तवः'
ऋ. ९.७३.६

रभस् – बल, वेग ।

रभस्वत् – (१) उद्योग शील । रभस् + वतुप् ।
'इन्द्र राये रभस्वतः'
ऋ. १.९.६; अ. २०.७१.१२
(२) बलवान् । दे. 'सुतुक्'

रभ्यस् – रभ् + असुन् + ईयसु = रभ्यस । अर्थ –
(१) अति रभीयान् पुरुषार्थी–दया. ।
(२) अति वेगवान् ज.दे.श. ।
'पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः'
ऋ. १.१२०.४
आप दोनों सहनशील, शत्रु पराजयकारी (सह्यस) और अति वेगवान् शीघ्रकारी हम सबकी (रभ्यसः) रक्षा करो (पातम्) ।

रभिः – दृढ़ ।
'हिरण्ययी वां रभिः ईषा अक्षो हिरण्ययः'
ऋ. ८.५.२९.

रभिष्ठाः – (१) अति अधिक बल से कार्य प्रारम्भ करने वाले, (२) वेगवान् बलवान् (३) मरुद्गण का विशेषण ।
'पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः'
ऋ. ५.५८.५; मै.सं. ४.१४.१८: २४७.१५,

तै.ब्रा. २.८.५.७

रभिष्ठा – स्त्री. । (१) खूब दृढ़ता से बांधने वाली ।
'अभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया'
वाज.स. २१.४६

रभोदा – (१) बलप्रद, (२) ज्ञानप्रद ,
'तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदाभ्'
ऋ. ६.२२.५; अ. २०.३६.५

रम्भिणी – (१) उत्तम गृहस्थ कार्यों को आरम्भ करने वाली, (२) प्रेमालिंगन करने वाली स्त्री, (३) बलवती अस्त्रादि शक्ति, (४) वाणी ।
'ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे'
ऋ. १.१६८.३

रम् (रंसु) – रम् + विच् = रम् । (१) रमणीय पदार्थ । 'रंसु' रम् शब्द के सप्तमी बहुवचन का रूप है । अर्थ है– रमणीय पदार्थों में ।
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तः
शिरभ्यो नामिमीत वर्णम्
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा
जजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत्'
ऋ. २.४.५; नि. ६.१७
जिसका महत्व (यत् अभ्वम्) मेरे स्पृहणीय हविदाता (मे वनदः) सदा गाते हैं (आपनन्त) वह अग्नि (सः) मेधावियों के निमित्त, या सायण के अनुसार, हमारे रूप की कामना करने वाले ऋत्विजों के लिए (उशिरभ्यः) नर या प्रार्थना को हिंसित नहीं करता (वर्णं न अमिमीत) तथा वह अपनी विचित्र आभा से युक्त हो (चित्रेण भासा) द्युलोकादि या अग्निहोत्र जैसे रमणीय स्थानों में (रंसु) जाना जाता है (चिकेत) और जो अग्नि बार बार जीर्ण होकर भी तरुण सा हो जाता है (जुजुर्वान् मुहुः आयुवाभूत्) ।
अन्य अर्थ – हे प्रशस्त पदार्थों के दाता मनुष्यो (वनदः), यतः तुम मेरे उपदिष्ट कर्मों में स्थिर रहते हुए अपने से बड़े विद्वान् का सत्कार करते हो (यत् में अभ्वम् अमनन्त) अतः वह विद्वान् तुम इच्छुकों के (उशिरभ्यः) वर को (वर्णम्) नहीं टालता (न अमिमीत) और जो जीर्णावस्था को प्राप्त करता हुआ (जुजुर्वान्) भी युवा की तरह पुरुषार्थी होता है (मुहः आ युवा भूत्) वह विद्वान् अद्भुत तेज के साथ (सं चित्रेण भासा) रमणीय स्थानों में (रंसु) निवास करता है (चिकिते) ।

रमतिः – (१) आनन्द विनोद, (२) अनुकूल प्रवृत्ति, (३) अनुग्रह ।
'मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु'
अ. ६.७३.२,३
(४) सर्वत्र आनन्द से रहने वाली रमने वाली गौ ।
'पदज्ञा स्थ रमतयः'
अ. ७.७५.२;

रमध्वम् – विराम करो । दे. 'अच्छ' ।

रम्जाति – रम् धातु के लट् प्र.पु.ए.व.का रूप । लोक में 'रम्' क्रीड़ा अर्थ में आया है । परन्तु यास्क ने इसे संयमन अर्थ में लिया है । अर्थ है– (१) नियन्त्रण करता है ।
निघण्टु २.२०.३४ में इसे वधार्थक धातु माना गया है । परन्तु निमन्त्रण से वध की प्रायः तुल्यता है ।
सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णात् (सविता ने यन्त्रों से पृथिवी को नियन्त्रित किया) ।
रम् धातु में 'श्ना' प्रत्यय व्यत्यय नियम से जोड़ा गया है । दे. 'अदर्दः' ।

रम्ब – लम्ब, लटकना ।
'न सेशे यस्य रम्बते'
ऋ. १०.८६.१६; अ. २०.१२६.१६

रम्भः – (१) रम्भः पिनाकमिति दण्डस्य (रम्भ और पिनाक ये दोनों दण्ड के नाम हैं) –यास्क
(२) 'रम्भ आरयन्त एनम्' स्खलित न होने के लिए लोग दण्ड को धारण करते हैं अतः यह रम्भ कहा गया है) ।
रभ्यते अयम् इति रम्भः (इसका आश्रय लिया जाता है) । रभ् + घञ् = रम्भ (अकर्त्तरि च कारक संज्ञायाम्) ।
मोदिनी कोष में –
'रम्भाः कदल्यप्सरसोर्ना वणौ वारणान्तरे –ऐसा कहा है । यहाँ वेणु दण्ड का ही वाचक है, क्योंकि मनु ने 'वैणवीं धारयेत् यष्टिम् सदोकञ्च कमण्डलुम्' ऐसा कहा है ।
रम्भ (आश्रय लेना) + अच् = रम्भ (मभ् का आगम) । जिसका आश्रय लिया जाय । अर्थ है (१)लकुटी, डंडा । दे. 'आ' ।

'आ त्वा रम्भं न जिव्रयः'
ऋ. ८.४५.२०; नि. ३.२१.
जैसे वृद्ध लकुटी का सहारा
लेते हैं वैसे ही मैं तेरा सहारा लेता हूँ।
(२) आश्रय, आधार, अवलम्ब।

रम्भी – (१) समस्त विश्व का निर्माता। (२) आरम्भ करने वाला, (३) उत्तम कर्म करने वाला जीव (४) क्रिया कुशल, (५) उद्योगी।
'रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यम्'
ऋ. २.१५.९

रयि – रीयत इति रयिः (जो दिया जाता है वह रयि अर्थात् धन है)। दे. 'नू च'। आज भी 'राय' शब्द धनवान् या राजा की उपाधि है। रा (दानार्थक धातु) से रयि हुआ है।

रयिदौ – द्वि. व.। (१) ऐश्वर्य या धन देने वाले।
'युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणाम्'
ऋ. ३.५४.१६

रयिषाच् – (१) ऐश्वर्यों से सम्पन्न। (२) जो धन के साथ सम्पर्क करता है– दया.
'नासत्या रयिषाचः स्याम'
ऋ. १.१८०.९

रयिषाट् – (१) सब ऐश्वर्य बल को विजय करने वाला।
'इयर्ति वाचं रयिषाडमर्त्यः'
ऋ. ९.६८.८
(२) बल वीर्य एवं दैहिक विभूतियों को अपने वश में करने वाला जीवात्मा, (३) ऐश्वर्य को वश में करने वाला।
'होता निषत्तो रयिषाडमर्त्यः'
ऋ. १.५८.३
समस्त ग्राह्य भोग्य रूप आदि विषयों का ग्रहण करने वाला (होता) शरीर के भीतर धारण किया जाकर (निषत्तः) मृत्यु रहित (अमर्त्यः) बल, वीर्य एवं दैहिक विभूतियों को वश में रखने वाला जीवात्मा।

रयिष्ठा – (१) धन और प्राणों में अधिष्ठाता रूप में स्थित, (२) धन बल की प्रतिष्ठा, (३) धनवान् देश में रहने वाला सरस्वान् देवता (४) रस-सागर ईश्वर।
'आ नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति'
अ. ७.३९.१

रयिष्ठान – (१) शरीर का धन स्वरूप प्राण में जिसकी स्थिति है– जीव (२) धन ऐश्वर्य में जिसकी स्थिति है वह इन्द्र।
'रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि'
ऋ. ६.४७.६; अ. ७.७६.६

रयिस्थान – (१) शरीर के धनस्वरूप रयि अर्थात् प्राण में जिसकी स्थिति हो–जीव। दे. 'रयिष्ठान'। (२) ऐश्वर्य का आश्रय

रयीयन् – (१) ऐश्वर्य की कामना करने वाला।
'अयमु वां पुरुतमो रयीयाम्'
ऋ. ३.६२.२

रराट – (१) ललाट (२) शिरोभाग, (३) मुख्य भाग
'विष्णो रराटमसि'
वाज.सं. ५.२१; तै.सं. १.२.१३.३; ६.२.९४; मै.सं. १.२.९:१९. १०; ३.८.७: १०५.११ का.सं. २.१०; २५.८; श.ब्रा. ३.५.३.२४; आप.श्रौ.सू. ११.८.१

रराणः– रा (दानार्थक)+ कानच्। (व्यव्यय से लिट् में) = रराण। देता हुआ। दे. 'अदीधेत्।
'देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणः'
ऋ. १०.९८.७; नि. २.१२
सायण ने इसका अर्थ 'रममाणः' किया है जिसका अर्थ है– रमण करता हुआ

रराणत्– आनन्द युक्त हुआ, प्रसन्न चित्त

रराण– सदा दान देने वाली स्त्री
'निरस्मभ्यमनुमती रराण'
अ. १.१८.२

रराव्सु– ऐश्वर्य का दाता
'स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो'
ऋ. ७.३२.१८; अ. २०.८२.१; साम. १.३१०; २.११४६

रराव– (१) दानशील
'न्यराती रराव्णाम्'
ऋ. ८.३९.२

ररिवाँ, ररिवान् – रा (दानार्थक)+ क्वसु = ररिवास्। (१) दान देने की इच्छा से युक्त–सा.। दाना भिप्राय युक्तः।
(२) निरन्तर विद्या प्रदान करता हुआ – दया.। दे. 'अज'
'अहेडमानो ररिवाँ अजाश्व'
ऋ. १.१३८.४; नि. ४.२५
दान देने की इच्छा से युक्त या निरन्तर विद्या

प्रदान करते हुए हे पूषन् या क्रियाशील इन्द्रिय वाले विद्वान्, हम पर क्रुद्ध न होता हुआ हमारे समीप आ।
'रीवाँ' शब्द रयिवान्, रैवान् या ररिवान् का ही बिगड़ा रूप है।

ररुष् – रा (दान देना) + क्वसु = ररुष्। अर्थ है–(१) दान देने वाला। दे. 'अररुष्'
'मा नः शंसो अररुषः'
ऋ. १.१८.३; वाज.सं. ३.३०; का.सं. ७.२; श.ब्रा.२.३.४.३५; आप. श्रौ.सू. ६.१७.१२.
अदान शील पुरुष का कष्टप्रद वचन हमारे पास न पहुंचे।

रवथः– (१) उपदेश
'बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते'
ऋ. ९.८०.१
(२) महान् घोष करने वाला
'दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्'
ऋ. १.१००.१३
महान् घोष करने वाला (रवथः) सूर्य के तेज के समान चमकने वाला अमित शक्तिशाली वज्र।

रशना– अश् + अशच्। अश्नुते व्याप्नोति इति रशना। अर्थ है–(१) रस्सी, (२) व्यापक शक्ति, (३) व्यवस्था या अधिकार।
'या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य'
ऋ. १.१६२.८; वाज.सं. २५.३१; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१: १८२.१०; का.सं. ६.४
'यदीं गणस्य रशनामजीगः'
ऋ. ५.१.३; साम. २.१०९८
दूसरी व्युत्पत्ति – रश् (बांधना) + युच् + टाप् = रशना। रशीति बन्धनार्थो धातुः सौत्रः। बन्धन्ति बन्धनीयं, बध्यत आभिः इति वा (बांधता है या इससे बन्धनीय पदार्थ बांधे जाते हैं)। अर्थ है –रस्सी। (२) अंगुलि। दे. 'अभ्यधीताम्'
'रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्'
ऋ. १०.४.६; नि. ३.१४
(दसों अंगुलियों से पकड़े) (३) ज्वाला, (४) जिह्वा। दे. 'अमृत'।
'वनस्पते रशनया निसूया'
ऋ. १०.७०.१०; मै.सं. ४.१३.७;२०९.१; का.सं. १८.२१; तै.ब्रा. ३.६.१२.१; आश्व.श्रौ.सू. ९.५.२; नि. ८.२०
हे वनस्पते, ज्वाला से निबद्ध कर ....।
(५) भोजदेव ने इस प्रकार व्युत्पत्ति की है– अश्नुवते कर्माणि इति रशना (जो कर्मों को व्याप्त करता है वह रशना है)।
(६) देवराज ने इसका अर्थ अंगुलि, योत्क्र तथा रश्मि किया है (अंगुलयो योत्क्राणि रश्मयश्च इति देवराज यज्वानः)

रशनायमाना– श्रृंखला के समान पूर्व के आती हुई वंश परम्परा।
'येदं पूर्वागन् रशनायमाना'
अ. १४.२.७४

रश्मि– (१) विवेकी पुरुष
'रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व'
वाज.सं. १५.६; श.ब्रा. ८.५.३.३
(२) रशि (रश्) + मि = रश्मि।
अथवा – यम् + इन् = रश्मि (य का रश्)। अथवा –'बध्नाति उदकम्' (उदक को बांधता है) अथवा, 'बध्यते तैः उदकम्' (उन से उदक बांधा जाता है) अथवा 'अश् (व्याप्त्यर्थक) + मि = रश्मि ('अशेरश् च' से अश् का रश् आदेश।
अर्थ है – (२) गौ। सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यते (सभी रश्मियां गौ हैं)–यास्क
मेदिनीकोश में भी–
गौः स्वर्गे च वलीवर्दे रश्मौ च कुलिशे पुमान् स्त्री सौरभेयी दृक् वाणादि भूवप्स भूम्नि च (३) किरण, (४) प्रग्रह (लगाम)
किरण प्रग्रहौ रश्मिः
– अमर कोष
रश्मिः समनात् (रश्मि शब्द संयमन या आदान से बना है)।
(५) पाश, बन्धन, रस्सी। दे. 'अभीशु' (६) उपभोग्य पदार्थों का संग्रहकारी पुरुष
'अंशुश्च मे रश्मिश्च मे'
वाज.सं. १८.१९; तै.सं. ४.७.७.१; मै.सं. २.११.५;१४३.२; का.सं. १८.११.
आधुनिक अर्थ = डोर, रस्सी, लगाम, लगाम, चाबुक, किरण।

रस्– धा. शब्द करना।

रसति- शब्दं करोति (ध्वनि करता है) । रस् धातु शब्द कर्मा है ।

रसा- (१) शरीर की वह नाड़ी जिससे समस्त शरीर में रस व्यापता है ।
'सु सत्वा रसया श्वेत त्या'
ऋ. १०.७५.६
(२) पृथिवी, (३) नदी
'याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुः'
ऋ. १.११२.१२
जिन उपायों से पृथ्वी या नदी को (रसाम्) जल प्रवाह से (उद्नः क्षोदसा) पूर्ण कर देते हो (पिपिन्वथुः)।
(४) रस् (शब्द करना) + अच् + टाप् = रसा । अर्थ है-नदी, जल । जल भी शब्द करता है । दुर्ग ने यास्क के -'कथं रसानि तानि उदकानि इति वा' का अर्थ यों किया है-'अपि नाम स्वादूनि ? (क्या वे स्वादिष्ट हैं) । 'कथं रसा' का अर्थ उन्होंने नहीं किया है जिस का अर्थ है- किस स्वाद के जल वाली यह है । दे. 'अस्मेहिति'

रसाः- ब.व.। दे. 'रस' । (१) सोम रस । दे. 'असक्रा'।
'रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन्'
ऋ. ६.६३.८
हे अश्विद्वय, तुम्हारे लिए सोमरस भी हैं जो तुम्हारे दान को लक्ष्य कर दिए गए हैं ।

रसाय्यः- (१) ज्ञान-रस के तृप्त शिष्य, (२) रस से पूर्ण
'रसाय्यः पयसा पिन्वमानः'
ऋ. ९.९७.१४; साम. २.१५७

रसार्शि - नाना जलों से अभिषिक्त, (२) यः रसम् अश्नाति दया. (जो रस पीता है)
(३) बल को धारण करने वाला (४) उत्तम जलादि का उपभोक्ता राष्ट्र
'रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य'
ऋ. ३.४८.१

रसी- रस + इनि । रसयुक्त अन्न
'परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिः'
ऋ. ८.१.२६; साम. २.७४.३

रंसु- (१) रमणीय स्वरूप
'स चित्रेण चिकिते रंसु भासा'
ऋ. २.४.५; ि ६.१७

रंसुजिह्वः- (१) रम्य मधुर वाणी बोलने वाला, (२) रमणीय ज्वाला या किरण वाला-अग्नि, सूर्य ।
'होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः'
ऋ. ४.१.८

रहसू- एकान्त में सन्तानोत्पत्ति करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री ।
'आरे मत् कर्त रहसूरिवागः'
ऋ. २.२९.१

रंह - गमन करता, प्राप्त करना
'स रंहत उरुगायस्य जूतिम्'
ऋ. ९.९७.९

रंहति- (१) रंह् (गत्यर्थक) के लट् प्र.पु. एक वचन का रूप । अर्थ है-जाता है

रंहमाणा- वेगवती नदी
'रंहमाणा व्यव्ययं
वारं वाजीव सानसिः'
ऋ. ९.१००.४

रंहय- (१) रंह् + यत् । गमन करने योग्य-रथ, (२) प्राप्त करने योग्य
'स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत्'
ऋ. २.१८.१
(३) वेग से जाने वाला
'अस्मभ्यं दस्म रंह्या'
ऋ. ४.१.३

रंहिः- (१) वेगवती शक्ति
'यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदः'
अ. १८.२.९
(२) वेगवान्
'गोषाः शतसा न रंहिः'
ऋ. १०.९४..३
(३) रंह (गत्यर्थक) + कि = रंहि । दे. 'युवति'

रहु - अधर्मत्यायी । दे. 'रहूगणाः'

रहूगणाः- (१) अधर्म को त्यागने वाले और शत्रु से अपने देश को छुड़ा देने वाले (२) अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले, (३) अधर्म युक्त प्राणियों के समूह को त्यागने वाले ।
'अवोचाम रहूगणा
अग्नये मधुमद्वचः'
ऋ. १.७८.५

रा - धा. । देना, लाना

'अस्मे रयिं रासि वीरवन्तम्'
ऋ. २.११.१३
हिन्दी का 'ला' धातु 'रा' से ही बना है । अर्थ है 'लाकर दे' । देखिए-'रास्व' ।

राक्षस- रहसि क्षिणोति इति राक्षसः (जो एकान्त मे घात करता है या जो प्रकट में तो किसी आश्रम में है, परन्तु अप्रकट रूप में आश्रम धर्म का नाश करता है) । दे. 'रक्षस्'

राका- (१) जो अनुमति सभा से ऊपर श्रेणी की १६ या २० अमात्यों से युक्त रहती है, (२) वाम राजसभा (३) पूर्ण चन्द्र वाली पूर्णिमा, (४) षोड़श कलायुक्त रूपवती स्त्री
'राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे'
ऋ. २.३२.४; अ. ७.४८.१; तै.सं. ३.३.११.५; मै.सं. ४.१२.६:१९४. १६; का.सं. १३.१६; नि. ११.३१.
(५) रा (दानकर्मा) + क + टाप् = राका । अर्थ है-पूर्णिमा । मैं सुन्दर आह्वान् वाली पूर्णिमा को सुन्दर स्तुति से पुकारता हूँ । पूर्णिमा हविर्दान के लिए होती है अतः उसका नाम 'राका' पड़ा (हविर्दान निमित्तं हि सा भवति) । ' राति ददाति अस्मिन् हविः अग्नौ ऋत्विक्' (ऋत्विक् इस दिन अग्नि में हवि देते हैं) ।
(६) चतुर्दशी का अन्तिम एक प्रहर और पूर्णिमा का आठ प्रहर - यही नौ प्रहर चन्द्रमा की पूर्ण कला है । इनमें प्रथम दो प्रहर जिनमें कला पूर्ण रहती है, अनुमति और अन्तिम ७ प्रहर राका कहलाती है ।
(७) दानशीला पत्नी-दया.। मैं प्रेमपूर्वक लाने योग्य दानशील पत्नी को आदर पूर्वक अपने समीप बुलाता हूँ ।
आधुनिक अर्थ- (१) पूर्णिमा का दिन विशेषतः रात, (२) पूर्णिमा की अधिष्ठात्री देवी, (३) कन्या जिसके मासिक धर्म का आरम्भ हुआ हो, (४) खुजली ।

राज्, राट् - राज् + क्विप् = राज् । अर्थ है- (१) राट्, रातमान, दीप्यमान । दे. 'अश्विनी'

राज- उपार्जन करना, पैदा करना ।
'ये सहस्रमराजन्'
अ. ५.१८.१०

राजकः- (१) छोटा राजा, (२) स्वप्रकाश आत्मा
'चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु
ऋ. ८.२१.१८

राजकृता- (१) राजाओं की बनी सेना (२) राजाओं द्वारा प्रयुक्त कृत्या
'शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता'
अ. १०.१.३

राजन्य- (१) राजा, (२) क्षत्रिय
'राजन्ये दुन्दुभावायतायाम्'
अ. ६.३८.४
(३) राजा का पुत्र
'आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्'
वाज.सं. २२.२२; मै.सं. ३.१२.६:श.ब्रा. १३.१.९.२
'क्षत्राय राजन्यम्'
वाज.सं. ३०.५; तै.ब्रा. ३.४.१.१

राजन्ती- द्वि.व.। (१) द्यावापृथिवी का विशेषण, (२) भुवन को दीप्त करती हुई । दे. 'अशश्वन्ती
'राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी'
ऋ. ६.७०.२
इस भुवन को दीप्त करती हुई द्यावापृथिवी...

राजपुत्रा- (१) राजा को पुत्रवत् अपने अधीन रखने वाली-राजसभा, न्यायसभा, जनसभा (२) अदिति जिसके राजा पुत्रवत् हैं ।
'पिपर्तु नो अदिती राजपुत्रा'
ऋ. २.२७.७

राजपुरुष- राज्ञः पुरुषः राजपुरुष (जिस पुरुष का स्वामी राजा है) ।

राजयक्ष्म - राजयक्ष्मा ।
'अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्'
ऋ. १०.१६१.१; अ. ३.११.१; २०.९६.६

राजवध - राजा का आयुध ।
'नमो राजवधेभ्यः'
अ. ६.१३.१.

राजसूयः - (१) राजा रूप से प्रेरक शत्रु नाशक सेनापति । (२) दर्भ ।
'अपामग्निर्वीरुधां राजसूयाम्'
अ. १९.३३.१
(३) एक यज्ञ ।
'राजसूयं वाजपेयम्'
अ. ११.७.७.

राज्य - राजा के पद के योग्य.
'हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः'

ऋ. ७.६.२.

राजा – राज (दीप्त्यर्थक) + कनिन् = राजन् । प्रथमा ए. व. में राजा । अर्थ – (१) स्वामी, जो अत्यन्त दीप्त एवं शोभायमान हो, (२) राजा । दे. 'अनुपस्पशान, 'यम', 'वैवस्वत' ।

'यमं राजानं हविषा दुवस्य'

ऋ. १०.१४.१; मै.सं. ४.१४.१६: २३४.७ नि. १०.२०.

(३) आदित्य । दे. 'अहन्' ।

'वैश्वानरो जायमानो न राजा अवातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि'

ऋ. ६.९.१; नि. २.२१.

राज में अग्नि के समान उत्पन्न होता हुआ अंधकारों को दूर करता है । पुनः, दे. 'प्रतारी' । आधुनिक अर्थ – राजा, प्रधान, राजपुरुष, क्षत्रिय, युधिष्ठर, इन्द्र, चन्द्रमा ।

(४) सबका स्वामी, (५) तेज, पराक्रम न्याय, विद्या और प्रभाव से दीप्यमान ।

'त्वं राजेन्द्र ये च देवाः'

ऋ. १.१७४.१; शां.श्रौ.सू. १४.२५.५

राजाना – (१) उत्तम गुणों और तेजों से प्रकाशमान, (२) एक दूसरे को अनुरञ्जन करने वाले । दिन रात (३) सूर्य चन्द्र, (४) राजा प्रजा, (५) आत्मा परमात्मा ।

'त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि'

ऋ. ३.३८.६

(६) सर्वलोकेश्वरौ– राजमानौ 'राजानौ' का ही वेद में राजाना' रुप होता है । दे. 'अतूर्तपन्थाः'

राजाश्व – अश्वों में राजा ।

'राजाश्वः पृष्ट्यामिव'

अ. ६.१०२.२

राजासन्दी – (१) राजा के बैठने के लिए आसन ।

'आसन्दी रूपं राजासन्द्यै'

वाज.सं. १९.१६

राजतम – (१) अति प्रेम से देने योग्य ।

'इन्द्राय ब्रह्माणि राततमा'

ऋ. १.६१.१; अ. २०.३५.१; ऐ.ब्रा. ६.१८.५.

(२) दातव्यधन । दे. 'ओह' ।

मैं इन्द्र के दातव्य धनों को देती हूँ ।

रातहव्य – (१) अन्न आदि का दानशील पुरुष ।

'को वामद्या करते रातहव्यः'

ऋ. ४.४४.३; अ. २०.१४३.३

(३) रातानि दत्तानि हव्यानि येन यस्मै वा (जो हव्य देता है या जिनके लिए हव्य दिया जाता है) ।

'यो रातहव्योऽवृकाय धायसे'

ऋ. १.३१.१३

जो रातहव्य अग्नि या परमेश्वर, अहिंसक एवं सबको पालन पोषण करने वाला ।

रातहविः – (१) जो हवि देता है, (२) क्षेत्र में अन्न डालने वाला कृषक ।

'जनाय रातहविषे महीमिषम्'

ऋ. २.३४.८

रातिः – (१) शिष्यों को प्रदान करने योग्य प्रवचन ।

'वि रातिं मर्त्येभ्यः'

ऋ. ८.९.१६; अ. २०.१४२.१

(२) दानशील (३) दानाध्यक्ष नामक राष्ट्र का अधिकारी, (४) दानशील अर्यमा– सा. ।

'धाता रातिः सवितेदं जुषन्ताम्'

अ. ३.८.२; ७.१७.४ वाज.सं. ८.१७; तै.सं. १.४.४४.१; मै.सं. १.३.३८: ४४.१ का.सं. ४.१२; १३.९,१० श.ब्रा. ४.४.४.९

(५) रा + क्तिन् । दे. 'अनर्शरातिः' ।

'भद्रा इन्द्रस्य रातयः'

ऋ. ८.६२.१–१२; ९९.४ अ. २०.५८.२; साम. २.६७०; तै.सं. ७.४. १५.१.

परमात्मा का दान कल्याण कारक होता है ।

(३) धन । दे. 'अस्मे'

'सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु'

ऋ. ७.२५.३

नाना प्रकार की प्रशंसनीय कामनाएं और धन हों ।

पुनः दे. 'उपसेदिम्'

रातिनी – (१) रा + क्त + इनी । दिए होम या नाना पदार्थों से युक्त घृताची ।

'अच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम्'

ऋ. ३.१९.२

(२) सुख देने वाली, (३) बहुतों के दिए दानों या अशिषों को प्राप्त करने वाली ।

'यता सुजूर्णी रातिनी घृताची'

ऋ. ४.६.३

रातिषाच् – (१) दान आदि सत्कर्मों में स्थिति पुरुष ।
'त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे'
ऋ. २.१.१३; तै.ब्रा. २.७.१२.६.
(२) दान योग्य वृत्ति या भृति द्वारा सहस्रों को बंधने वाला धनाढ्य राजा ।
'ता नो रासन् रातिषाचो वसूनि'
ऋ. ७.३४.२२.
(३) अनेकानेक दान देने वाला ।

रातिषाचः – ब.व.। ए.व. में रातिषाच्। (१) दक्षिणा के दान और प्राप्ति के लिए एकत्र होने वाले दाता और प्रतिगृहीता ।
'शमभिषाचः शमु रातिषाचः'
अ. १९.११.२

रातिसाच् – (१) दान देने या ग्रहण करने वाला ।
'इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः'
अ. १८.३.२०

रामी – रात्रि
'उषा न रामीररुणैरपोर्णुते'
ऋ. २.३४.१२.

रात्रि – (१) समस्त प्राणियों को रमण कराने वाली, (२) समस्त प्राणियों को जीवन देने वाली समष्टि प्रकृति, (३) सोम, (४) वरुण, (५) वारुणी, (६) क्षत्र का रूप रात्रि है (७) प्रजा की पालक राज्य व्यवस्था (८) राज्यशक्ति, (९) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाली ।
सोम रात्रिः – श.ब्रा. ३.४.४.१५.
'यो राजसूयः स वरुणसवः'
तै.ब्रा. २.७.९.१.
'राज्ञ एव राजसूयम्'
श.ब्रा. ५.१.१.१२
'स राजसूयेन इष्ट्वा राजा इति नाम अधत्त'
गो.ब्रा. ५.५.८
'ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः'
तै.ब्रा. ३.९.१४.३
'आ रात्रि पार्थिवं रजः'
अ. १९.४७.१
(१) रा (दानार्थक) + त्रिप् = रात्रि । त्रिप् अधिकरण अर्थ में हुआ है । प्रदीयन्तेऽस्यामवश्यायाः (रात में ओस गिरते हैं अतः वे रात मिले दान हुए हैं) ।
अथवा – रात्रि उलूक आदि जीवों को रमण करते हैं अतः यह रात्रि है (प्ररमयन्ति भूतानि नक्तञ्चराणि) ।
अथवा– रात्रि जीवों को कार्य करने से रोकती है अतः रात्रि है । (उपरमयति इतराणि) ।
(१०) रात दे. 'अप्रायि' ।
'आ रात्रि पार्थिवं रजः
पितुरप्रायि धामभिः'
ऋ.रिव. १०.१२७.१; अ. १९.४७.१; वाज.सं. ३४.३२; नि. ९.२९.
हे रात्रि, तू अन्तरिक्ष के साथ पृथिवी लोक को अन्धकार से व्याप्त कर देती है ।

रात्रि केतु – चन्द्रमा ।
'रात्रिः केतुना जुषताम्'
वाज.सं. ३७.२१; ३८.१६ मै.सं. ४.९.८: १२८.१४ श.ब्रा. १४.२ .१.१,२.४१.

रात्री – (१) प्रलय रात्रि, (२) तमोमयी निद्रा, (३) मूर्छा ।
'रात्री जगदिवान्यद्धंसात्'
अ. ६.१२.१.
(४) रमण, आनन्द, (५) हर्ष प्रदान करने वाली स्त्री ।
'आगन् रात्री संगमनी वसूनाम्'
अ. ७.७९.३
(६) रात्रि । दे. 'आत्' ।
'आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२; १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२: नि. ४.११.
तुरत ही (आत्) रात्रि सभी को लिए (सिमस्मै) अन्धकार (वासः) फैला देती है (तनुते) ।
(७) रा + त्रिप् = रात्रि, रात्रि + ङीष् = रात्री ।
द३ऽ१पष्टि८R०

राथजितेयी – (१) रमण साधनों या वेगों पर वश करने वाली स्त्री
(२) काम वेगों पर वश करने वाली स्त्री, (३) आत्म-साधक योगी की ध्यानवृत्ति ।
'रथजितां राथजितेयीनाम्'
अ. ६.१३०.१

राथन्तर – रथ, बल या आत्मज्ञान से तरण करने वाला ।

'अग्नये गायत्राय राथन्तरायाष्टाकपालः'
वाज.सं. २९.६०

राध्य – आराधना करने योग्य ।
'एवा ते राध्यं मनः'
ऋ. ८.९२.२८; अ. २०.६०.१; साम. १.२३२; २.१७४

राध्यः – रथ समूहों का स्वामी ।
'एष स्य राध्यो वृषा'
वाज.सं. २३.१३; श.ब्रा. १३.२.७.५

राद्धिः – (१) फल की प्राप्ति ।
'राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिः'
अ. ११.७.२२
(२) कर्म-सिद्धि .
'राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिः'
अ. १०.२.१०

राधः – (१) राध् (संसिद्धि, रांधना) । + असुन् = राधस् । अर्थ है- (१) धन (धन से ही सभी कार्य सिद्ध होते हैं । या धन की सहायता से हम भोजन रांधते हैं अतः राधस् का अर्थ धन हुआ) ।
'राध इति धननाम'
'राध्नुवन्ति अनेन'
(२) अथवा राध् (आराधना करना) + असुन् = राधस् । धन की आराधना की जाती है । अतः यह 'राधस्' कहलाया ।
'राधस्तन्नो विदद्वसो
उभयाहस्त्या भर'
ऋ. ५.३९.१; साम. १.३४५; २.५२२, नि. ४.४.
हे प्राप्त धन इन्द्र, वह धन हमें दोनों हाथों से लाकर दे ।
दे. 'अन्तगस्त्व' ।
'प्रजावताराधसा ते स्याम'
ऋ. १.९४.१५; नि. ११.२४

राध – धन । दे. 'निवहिस्'
'स्तोत्रं राधानां पते'
ऋ. १.३०.५; अ. २०.४५.१; साम २.९५०

राध्य – (१) सिद्ध करने वाला, साधक ।
'बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या'
ऋ. २.२४.१०
(२) श्रेष्ठ, प्राप्तव्य धन । दे. 'अश्विष्टिमत्'

राधे – द्वि.व. । अनुराधा नक्षत्र ।
'राधे विशाखे सुहवानुराधा'
अ. १९.७.३.

राधोदेय – उपासना या आराधना का उपहार देने वाल ।
'राधोदेयाय सुन्वते'
ऋ. ८.४.४; साम. २.१०७२

रान्द्रय – हर्षजनक ।
'रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः'
ऋ. ६.२३.६

रामः – (१) रमण करने योग्य ।
'प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु'
ऋ. १०.९३.१४
(२) कृष्ण वर्ण, (३) शूद्र । दे. 'रामा' (4) काला पशु ।
'अधोरामः सवित्रः'
वाज.सं. २९.५८; तै.सं. ५.५.२२.१
(सविता के लिए काला पशु) ।
इन दिनों 'राम' शब्द का प्रयोग शूद्र की उपाधि के लिए किया जाने लगा है ।

रामयन् – रमाया । दे. 'तुर्वणि' ।
'दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि'
ऋ. १.५६.३
दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला (दुध्रः) इन्द्र ने दुष्टों को कारागृहों में (आभूषु) रमाया (रामयन्) –सा.
विद्या से पूर्ण कर (दुध्रः) प्रसन्नता से रमण कराने वाला शोभायमान (आभूषु) –दया.

राम्य – (१) ब्रह्म में रमण करने वाला तत्व ज्ञानी, (२) रमण करने योग्य प्रजा ।
'आविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम्'
ऋ. ३.३४.३; अ. २०.११.३; वाज.सं. ३३.२६
(३) उत्पन्न करने वाला स्तुति पाठक ।

रामा – (१) सर्व रमणकारिणी परम दिव्या परमात्म शक्ति ।
'अथो अव्यां रामायाम्
शीर्षक्तिमुपबर्हणे'
अ. १२.२.९
(२) कृष्णजातीया स्त्री, काली स्त्री, (३) शूद्रा लिखा भी है –
अग्निं चित्वा न रामामुपेयात् रामा रमणाय उपेयते न धर्माय कृष्ण जातीया । एतस्मात्

सामान्यात् ।
'अग्निहोत्र कर कृष्णा स्त्री अर्थात् शूद्रा से संगमन न करें । शूद्रा संगमन के लिए न कि धर्म के लिए है । सामान्यतः राम शब्द कृष्ण का वाचक है ।
इसी से 'अधस्तात् रामः' का अर्थ 'अधस्तात् कृष्णः' (अत्यन्त काला) किया गया है ।
पुनः-
'अधोरामः सवित्रे' का अर्थ हुआ- 'काला पशु सविता के लिए'
अधस्तात् का अर्थ 'अत्यन्त' है क्योंकि सूर्य के नीचे ढलने पर अन्धकार होता है (अधस्तात् बेला या तमः भवति) ।
आधुनिक अर्थ - (१) सुन्दरी, नवयुवती, प्रियतमा, स्त्री, शूद्रा स्त्री ।
(४) कुष्ठ और पलित रोगों में काम आने वाली एक ओषधि-आरामशीतला, गृहकन्या, रोचना और लक्ष्मणा भी इसके नाम हैं । गृहकन्या या घृतकुमारी पित्त, कास, श्वास और कुष्ठ का नाशक है ।
आरामशीतला दाहदोष, विस्फोट और व्रण का नाशक है ।

रामायणी - (१) 'रामा' नामक रक्तनाडी में छिपी रहने वाली गण्डमाला ।
'असूतिका रामायणी'
अ. ६.८३.३

राम्या - (१) रात्रि, (२) रमण करने योग्य स्त्री ।
'या भानुना रुशता राम्यासु'
ऋ. ६.६५.१
'स इधान उषसो राम्या अनु'
ऋ. २.२.८

रायत् - (१) भोंकने तथा भयङ्कर चीत्कार करने वाला कुत्ता या शत्रु ।
'जम्भयतमभितो रायतः शुनः'
ऋ. १.१८२.४

रायः - (१) उत्तम ऐश्वर्य, (२) लौकिक मणि, (३) मुक्ता आदि पदार्थ ।
'रयिश्च मे रायश्च मे'
वाज.सं. १८.१०; तै.सं. ४.७.४.१; मै.सं. २.११.४:१४१.१८;का. सं. १८.९.

रायस्कामः - (१) धन और ऐश्वर्य की कामना करने वाला ।
'तमु त्वा गोतमो गिरा
रायस्कामो दुवस्यति'
ऋ. १.७८.२

रायस्पोष - धन समृद्धि को बढ़ाने वाला ।
'रायस्पोषमौन्दिदम्'
ऋ.खि. १०.१२८.२; वाज.सं. ३४.५०; हि.गृ.सू. १.१०.६; आप.मं. पा. २.८.१.

रायस्पोषवनिः - धनैश्वर्य से पुष्टि देने वाली ।
'सिंह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा'
वाज.सं. ५.१२; श.ब्रा. ३.५.२.१२

रारण - रराण, रमे, (रमण करता हूँ) । यह 'रण्' धातु 'रम्' धातु की तरह रमणार्थक है । वर्ण और काल के व्यत्यय से 'रारण' बना है । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग है ।
'नाहमिन्द्राणि रारण
सख्युर्वृषाकपेर्ऋते
यस्येदमप्यं हविः
प्रियं देवेषु गच्छति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः'
ऋ. १०.८६.१२; अ. २०.१२६.१२; तै.सं. १.७.१३.२; का.सं. ८.१७; नि. ११.३९
इन्द्र अपने से विभक्त शक्ति इन्द्राणी के प्रति कहते हैं-
हे इन्द्राणी, मैं अपने मित्र वृषाकपि के बिना सुख का अनुभव नहीं करता या नहीं रमता (न रराण) जिस वृषाकपि को उद्दिष्ट कर यह प्रीतिकर जल से संस्कृत चरु, पुरोडाशादि हवि सभी देवता बड़ी श्रद्धा से ग्रहण करते हैं (हविःदेवेषु गच्छति) ।
अर्थात्, मेरा सखा मनुष्य वृषाकपि नहीं अपितु स्वयं विष्णु है (हरविष्णू वृषाकपी) । यह बात मैं इन्द्र जो सब से बढ़कर हूँ कहता हूँ । मैं वृषाकपि से भिन्न नहीं रह सकता ।

रारन्धि - (१) संयत कर या संयमी बना । दे. 'असुनीति' ।
'रारन्धिनः सूर्यस्य संदृशि'
ऋ. १०.५९.५; नि. १०.४०
हे प्राण वायु, हमें संयत कर जिस से हम सूर्य का दर्शन करते रहें ।
(२) भृशं रन्धय, संसाधय, वशे गमय (खूब

रांध, खूब साध, खूब वश में ला) ।
रध् धातु हिंसा, संराधन और वश करना अर्थ में आया है ।
'रध हिंसा संराध्योः'
दे. 'असुनीति'
(३) रमण कर ।
'सोम रारन्धि नो हृदि'
ऋ. १.९१.१३
हे सोम, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर या शुक्र, तू हमारे हृदय में रमण कर (रारन्धि) ।

रारहाण – (१) शीघ्र भ्रमणशील (अश्व) रंह् 'गत्यर्थक' धातु से सम्पन्न । दे. 'जू' ।
'आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयः'
(२) ज्ञान प्रदान न करता हुआ-आचार्य ।
'अश्वासो न रथ्यो रारहाणाः'
ऋ. १.१४८.३

रावा – आज्ञा देने वाला ।
'रावासि गभीरमिममध्वरं कृधि'
वाज.सं. ६.३०.

राशि – (१) समूह ।
'वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम्'
ऋ. ४.२०.८
(२) राशि, (३) जनसंघ का प्रतिनिध ।
'वसो राशि रजाश्व'
ऋ. ६.५५.३

राष्टि – प्रकाशित होता है ।
'प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः'
ऋ. १.१०४.४
शूरवीर राजा धनैश्वर्यों से पूर्ण समृद्ध प्रजाओं के साथ (पूर्वाभिः) राज्य करता है और राष्ट्र में प्रकाशित होता है (राष्टि) और खूब अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है (प्रतिरते) ।

राष्ट्रदा – (१) राष्ट्र को देने में समर्थ प्रजा या जनता ।
'वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदाः'
वाज.स. १०.२; श.ब्रा. ५.३.४.५

राष्ट्रदिप्सु – राष्ट्र या जनपद पर घात लगाने वाला ।
'ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः'
अ. १०.३.१६

राष्ट्रभृत् – (१) अपराधी पुरुषों से बचाकर राष्ट्र का पालन करने वाली संस्था ।
'उग्रं पश्ये राष्ट्रभृत् किल्विषाणि'
अ. ६.११८.२
(२) राष्ट्र का रक्षक ।
'उग्रं पश्या राष्ट्र भृतो ह्यक्षाः'
अ. ७.१०९.६

राष्ट्रभृत्य – राष्ट्र का भरण पोषण ।
'अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय'
अ. १९.३७.३

राष्ट्री – वि. । (१) ईश्वरा, (२) स्वामिनी । दे. 'अविचेतन'
'यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि
राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा'
ऋ. ८.१००.१०; तै.ब्रा. २.४.६.११; नि. ११.२८
जब माध्यमिक वाक् शब्द रूपी गर्जन लक्ष्ण वाली अविज्ञातार्थ ध्वनि करती है माध्यमिक देवों की इश्वरा तथा लोक को प्रसन्न करने वाली वर्षा बरसाने लगती है ।
अथवा,
जब अविज्ञात अर्थों को बतलाने वाली, विद्वान् लोगों की स्वामिनी, प्रसन्नता देने वाली दिव्य वाणी प्राप्त होती है ।
(३) राष्ट्र की स्वामिनी शक्ति ।
'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्'
ऋ. १०.१२५.३; अ. ४.३०.२.

रास् – धा. । प्रदान करना ।
'अन्नं पूर्वा रासतां में अषाढा'
अ. १९.७.४.

रासत् – (१) रास् + शतृ = रासत् । अर्थ-देता हुआ अथवा, (२) रासतु ददातु (दे) । दे. 'रा' (दानार्थक धातु के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप) । 'सिमं बहुलं लेटि' से सिप् का आगम ।
रास् धातु देना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । दे. 'अभ्यानट्'
'स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्राः
धियं धियं सीषधाति प्र पूषा'
ऋ. ६.४९.८; वाज.सं. ३४.४२; तैसं. १.१.१४.२; नि. १२.१८
वह पूषा धर्म्य या अभियूजित आगमन वाले धनों को देता हुआ हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करें ।

रासभ – (१) मार्गोपदेश करने वाला ।

'उपास्थाद् वाजी धुरि रासभस्य'
ऋ. १.१६२.२१; वाज.सं. २५.४४; तै.सं. ४.६.९.४.
(२) शब्द और दीप्ति से युक्त अग्नि ।
'युञ्जाथां रासभं युवम्'
वाज.सं. ११.१३; तसं. ४.१.२.१; ५.१.२.१; मै.सं. २.७.२: ७५ .३; ३.१.३: ३.१४; का.सं. १६.१; १९.२; श.ब्रा. ६.३.२.३; आप. श्रौ.सू. १६.२.२.
(३) शब्दकारी, (४) यन्त्राग्नि, (५) अश्व, (६) मुख्य प्राण । (७) शब्दायमान-दया.
(८) अन्तर्नाद करने वाला परम उपदेष्टा आत्मा, (९) उपदेष्टा, आज्ञापक (१०) गर्दभ ।

रासमाना - प्रदान करती हुई ।
'वसूनि नो वसुदा रासमाना'
अ. १२.१.४४.

रास्ना - बागडोर ।
'अदित्यै रास्नासि'
वाज.सं. १.३०; ११.५९; ३८.१,३; तै.सं. १.१.२.२; ४.१.५.४; मै .सं. १.१.२: २.२; १.१.३: २.७; २.७.६: ८१.३; ३.१.७:८.१९; ४.१.२: ३.१४.; ४.९.७: १२७.५; का.सं. १.२; १६.५; १९.६; ३१.१; श.ब्रा. १.३.१.१५; ६.५.२.१३; १४.२.१.६; ८; तै.ब्रा. ३.२.२.७ ; तै.आ. ४.८.१; ५.७.१; आप.श्रौ.सू. १.४.१०; १२.७; १५.९.३; १६.५.१.

रास्पिन्, रास्पिन - (१) रापिन् रासिन् (रास्पिन नो रास्पी रपत्तेः वा रसतेः वा) । रप् या रस् धातु से रास्पिन् बना है । यह यास्क का मत है ।
रप् + घञ्, रस् + घञ् = रास । राप में 'स' का और रास के बाद 'प' का आगम होने से रास्प बना । अर्थ है- (१)उदक, (२) स्तोत्र
रास्प + इनि = रास्पिन् (उदकवान्) ।
रस् धातु ध्वनि अर्थ में आया है । उदक और शब्द दोनों ध्वनि युक्त हैं । अतः रास्पी का अर्थ हुआ (१) मेघ, (२) स्तोता ।
उनके मन से जो रमणशील या रसनशील है वह रास्पी है ।
रास्पिन् + अच् (मत्वर्थीय) = रास्पिन । अर्थ है-(१) मेघवान् (२) स्तोता सम्बन्धी (३) वक्ता दया. ।
'उत त्या मे यशसा श्वेतनायै
व्यन्ता यान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वम्
प्र मातरा रास्पिनस्यायोः'
ऋ. १.१२२.४
वे अश्विनीद्वय भी (उत त्या) मेरे अन्न या धन से तृप्त (मे यशसा) श्वेत्या उषा का काल आने पर (श्वेतनायै) पुरोडाश का भोजन करे (व्यन्ता) तथा सोमरस का पान करे (पान्ता) । ऐ मेधावी ऋत्विजो (उशिजः), उन अश्विनों का आह्वान करें (आहुवध्यै) और आप लोगों से मैं यह भी निवेदन करता हूँ (वः प्र) कि आप अपां नपात् नामक देव को भी इसमें भागी बनावें (अपां नपातम् कृणुध्वम्) तथा सर्वभूत निर्मात्री द्यौ और पृथ्वी को भी भागी बनावे (प्रमातरा) ।
प्रकृष्ट ध्वनि युक्त वृष्टयुदक वाले मेघ की स्तुति करने वाले के पुत्र की प्राप्ति के निमित्त या मेघवान् इन्द्र की प्राप्ति के लिए (रास्पिनस्य आयोः) ।
स्वा.दयानन्द का अर्थ-वे यशस्वी तत्वदर्शी रक्षक और माता की तरह स्नेह करने वाले अध्यापक तथा उपदेशक (मातरा) मेरे और तुम्हारे लिए प्रदीप्त विद्या को (मे वः श्वेतनायै) देने के लिए (हुवध्यै) प्रवृत्त हो (प्र) । हे विद्याभिलाषी मनुष्यो, (औशिजः) वक्ता मनुष्य की (राष्पिनस्य आयोः) सन्तानों का संरक्षण तुम भली भांति करो (प्रकृणध्वम्) ।

रास्पिरः (१) यः दानानि स्पृणाति -दया. (२) धनैश्वर्य को पूर्ण करने वाला वैश्य जन ।
'विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन्'
ऋ. ५.४३.१४

रास्व - प्रदान कर । दे. 'मर्तभोजन'
'रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनम्'
ऋ. १.११४.६

रि - धा. । परे हटाना, पार करना ।
'शुभा यासि रिणन्नपः'
अ. १३.१.२१.

रिक् - तरफ ।
'न घा त्वद्रिगप वेति मे मनः'
ऋ. १०.४३.२; अ. २०.१७.२.

रिक्तकुम्भ - (१) खाली घड़ा, (२) खाली घड़े के समान निस्सार बांस, (३) क्षुद्र पुरुष, (४) तुच्छ बात ।
'सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान्'

अ. १९.८.४

रिक्थम् – रिचिर, (रिच्) + थ = रिक्थ। जिसका पृथक् करण हो वह रिक्थ है। द्रव्यं वित्तं .... *रिक्थमृक्थं धनं वसु–अमर*
अंग्रेजी में riches धन का वाचक है।
अर्थ है– (१) धन, (२) पैतृकधन। दे. 'जामि')
'न जामये तान्वो रिक्थमारैक्'
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६.
बहन के लिए बेटा पैतृक धन न दे।

रिख – लिख।
'आरिख किकिरा कृणुः
ऋ. ६.५३.७,८

रिणन् – (१) व्यापता हुआ, (२) गति देता हुआ।
' यद् देवस्य शवसा
प्रारिणा असुं रिणन्नपः '
ऋ. २.२२.४; साम. १.४६६
देदीप्यमान सूर्य या अग्नि तत्व के बल से, (देवस्य शवसा) प्राण या वायु तत्व को (असुम्) गति देता हुआ (रिणन्) जल तत्व में गति उत्पन्न करता है (अप्रः प्र अरिणाः)।
अथवा,
अग्नि तत्व के बल से जलों में व्याप कर प्राण तत्व को प्रकट करता है।
अथवा,
मेघ के विद्युत या तेज के बल से वृष्टि द्वारा जल को लाकर समस्त जीवों को जल प्राप्त कराता है।
(३) आते हैं – दुर्ग, (४) ले जाता हुआ–ज.दे.श.
'रि' धातु आना, लाना, या ले जाना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।
हिन्दी के लेना और लाना का मूल 'रि' धातु ही है।
दे. 'कुत्स,' दशस्यन्' दंसयः
'यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः
कुत्साय मन्वन्नह्यश्च दंसयः '
ऋ. १०.१३८.१
जिस मेघ के विदीर्ण होने पर (यत्रा) माध्यमिक देव उषा (उषसः) मेघ में स्थित जलों को देती है (अह्न अपः दशस्यन्) और वे जल पृथ्वी पर कृषक के कृषि कर्म को सफल करने के लिए (कुत्साय दंसयःमन्मन्) आते हैं (रिणन्) – दुर्ग।
हे सूर्य, तू मनुष्य के लिए उषा काल को उदय करते हुए (उषासः दशस्यन्) और ओस जल को ले जाते हुए (अपः रिणन्) परमात्मा के स्तोता के लिए (कुत्साय) आत्ममन से (मन्मना) एवं पाप नाशक श्रेष्ठ कर्मों को जतलाते हुए (अह्न दंसयश्च)। – ज.दे.श.

रिणाति – (१) मारता है–सा. (२) ले जाता है–दया.। दे. 'क्रिविर्दती '
'रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा '
ऋ. १.१६६.६
मरुतों का आयुध पशुओं को (पश्वः) उस तरह से मारता है(रिणाति) जैसे सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त (सुधिता) बढ़ी हुई हिंसा भावना (बर्हणा) पशुओं को –सा.।
विज्ञान में विद्युत बहुत मात्रा में सम्पादित की हुई (बर्हणा सुधिता) पशुओं की तरह ले जाती है (पश्व इव रिणाति) – दया.।

रिणीतम् – चलाओ, पालन करो।
'सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् '
ऋ. १.११७.११
प्रजावर्ग को पालन करने वाली नीति को (निश्पलाम्) सत्य स्वभाव न्यायी हो अच्छी तरह चलाओ (संरिणीतम्) या पालन करो। –दया.।

रित् – सब ओर जाने वाली गाड़ी।
'यदिन्द्रो अनयद् रितः '
ऋ. ६.५७.४; साम. १.१४८.; का.सं. २३.११.

रिप् – कष्ट,
'रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः '
ऋ. ७.६०.९
(२) पृथिवी, (३) पाप।
'पाति प्रियं रिप्रो अग्रं पदं वेः '
ऋ. ३.५.५; ४.५.८
(४) पाता। दे. शुचन्।
(४) माता।
'रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः '
ऋ. १०.७९.३
भूमि के निम्न प्रदेश में (रिप उपस्थे) बार बार लताओं का आस्वादन करते हुए (रिरिह्वांसम्)... देखा –सा.।

माता की गोद में दूध पीते हुए बालक को (रिप्रः उपस्थे अन्तः रिरिह्वांसम्) ।

रिप्र – (१) प्राप्त, (२) क्रूर कर्म ।
'यदत्र रिप्रं रसिनः सुतस्य'
वाज.सं. १९.३५; का.सं. ३८.२; श.ब्रा. १२.८.१.५; तै.ब्रा. २.६.३.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.९.५.
(३) लिप्त, लिपटा हुआ ।
'यद्वास्वरौ स्वधितौ रिप्रमस्ति'
वाज. सं. २५.३२; ऋ. १.१६२.९;

रिप्र – रिप् + र = रिप्र = (१) दुःख देने वाला (२) यज्ञ, (३) मल, (४) भाव, (५) पाप ।
रपो रिप्रम् इति पापनामनी भवतः
'विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः'
ऋ. १०.१७.१०; अ. ६.५१.२; वाज.सं. ४.२; मै.सं. १.२.१: १०.२; ३.६.२: ६१.८; का.सं. २.१; श.ब्रा. ३.१.२.११.
रिप्रमधेध्यम् (जो अमेध्य है वह रिप्र है) ।

रिपु – रिप् + उ = रिपो । (१) पापी, शत्रु ।
'अन्तिचित् सन्तमह
यज्ञं मर्त्यस्य रिपोः'
ऋ. ८.११.४
'न यं रिपवो न रिषण्यवः
गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति'
ऋ. १.१४८.५
जिस प्रकार काष्ठादि के गर्भ में लगे अग्नि को बड़े आन्धी के झकोरे भी नहीं नष्ट कर सकते उसी प्रकार जिस ब्रह्मचारी को सावित्री के गर्भ में या विद्या के ग्रहण काल में विद्यमान अग्निस्वरूप तेजस्वी को न भीतर शत्रु (रिपवः) और न हिंसा करने वाली (रिषण्यवः) आत्मा की नाशक प्रवृत्तियां (रेषणाः) विनाश करें (रेषयन्ति) ।

रिप्रवाह – (१) पापों को फैलाने वाला या धारण करने वाला पुरुष ।
'यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः'
ऋ. १०.१६.९; अ. १२.२.८; वाज.सं. ३५.१९
(२) पाप ढोने वाला पुरुष ।

रिफि – (१) विनाश करना ।
'सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती'
अ. ३.२८.१

रिफ् – (१) युद्ध (२) निन्दा, (३) हिंसा
अंग्रेजी का rift शब्द 'रिफ्' धातु से सम्बन्ध रखता है जिसका अर्थ मनमुटाव, झगड़ा होता है । दे. 'अरेपस्'

रिफती – विनाश करती हुई । दे. 'रिफ' ।

रिप् – (धा.) । स्तुति करना ।
'उषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः'
ऋ. ७.७६.७

रिरिक्वान् – (१) त्याग करने वाला, (२) देह या करादि धन का त्यागी ।
'रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम्'
ऋ. ४.२४.३
'रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः
सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः'
ऋ. १.७२.५
मित्र मित्र के लिए जैसे देखते ही (निमिषि) अपने शरीर तक को आलिंगन द्वारा त्याग देता है ('रिरिक्वासः) ।

रिरिक्षुः – हिंसाकारी शत्रु ।
'विश्वाद् रिरिक्षोरुत वा निनित्सोः'
ऋ. १.१८९.६

रिरिचे – (१) अधिक होता है, बढ़ जाता है । 'रिच्' धातु के लिट् प्र.पु.ए.व. में लट् के अर्थ में प्रयोग । दे. 'तु' ।
'प्र ते महना रिरिचे रोदस्योः'
ऋ. ६.२४.३
तेरी महिमा द्यौ और पृथिवी से अधिक है ।

रिरिह्वान् – बार बार आस्वादन करता हुआ । दे. 'शुचन्तम्' 'रिप्' ।

रिश् – (१) स्वाद लेना । दे. 'रिशन्ताम्' । (२) हिंसार्थक धातु । दे. 'रिशादस' 'रिशा' ।

रिशन्ताम् – स्वाद लें । दे. 'अवस'
'ऊर्जस्वती रोषधीररिशन्ताम्'
ऋ. १०.१६९.१; तै.सं. ७.४.१७.१.
बलदायिनी औषध तृणों का घूम घूम कर गायें स्वाद लें ।

रिश्य – हिंसक जन्तु ।
'रिश्यस्येव परीशासम्'
अ. ५.१४.३

रिष्यपदी – मृग की तरह पैरों से चंचल ।
'रिष्यपदीं वृषदतीम्'
अ. १.१८.४.

रिशा – (१) जंग, (२) हिंसक, (३) आयुध। 'रिक्ष' धातु–हिंसार्थक है। जंग भी धातु को नष्ट करता है। दे. 'आप्य'।
(४) रोग, (५) रोग, । दे. 'रिशादस्'

रिशादस् – (१) रिश (हिंसार्थक) के ण्यन्त में 'रेशयत् आसिन्' का रिशादस् हो गया। 'रेशयदासिन्' (रेशयतां हिंसयितृणाम् असिता) (१) हिंसकों को मारने वाला। दे. 'आप्य'।
'अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसः
देवासो अस्त्याप्यम्'
ऋ. ८.२७.१०; नि. ६.१४.
हे हिंसकों को मारने वाले देवो, आप लोगों की जाति समान है और आप में बन्धुत्व है (आप्यम्)।
(२) धातुओं को या जंग लगाकर खाने वाला ओषजन वायु जिसे वरुण कहा गया है।
(३) वरुण देवता का विशेषण जो वरुण हिंसकों को मारने वाला समझा गया है।
दे. 'मित्र'।
'मित्रं हुवे पूतदक्षं
वरुणञ्च रिशादसम्
ऋ. १.२.७; साम. २.१९७; वाज.सं. ३३.५७.
(४)दुर्ग के मत से इसका अर्थ आयुधों को चलाने वाला है (रेशयत आयुधानि ये अस्यान्ति ते) (४) कुछ विद्वान् यास्क के 'रेशयासिनः' को 'रेशयदारिणः' पढ़ते हैं। और इसका अर्थ हिंसकों को विदीर्ण करने वाला करते हैं।

रिशादा – हिंसा या प्राणापहरण करने वाले कारणों के विनाशक प्राण और अपान मित्रावरुण।
'मित्र एनं वरुणो वा रिशादाः'
अ. २.२८.२

रिष् – (१) नष्ट होना।
'नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन्'
ऋ. ७.२०.६
(२) हिंसक। दे. 'अहिर्बुध्न्य'।
'मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धात्'
ऋ. ५.४१.१६; ७.३४.१७; नि. १०.४५.
अन्तरिक्षस्थ मेघ हमारे हिंसक को न दें।
(३) रिष् + क्विप् = रिष्। अर्थ है– पाप–दया. (४) बन्धन–सा.। दे. 'निचुङ्कुण' 'पुरुरावन्'
'पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि'
वाज.सं. ३.४८; ८.२७;श.ब्रा. २.५.२.४७; ४.४.५.२२; १२.९.२.४.
हे पूज्यप्रभो, मुझे अनेक प्रकार संताप देने वाले पाप से (पु रुराव्णः रिषः) रक्षा कर– दया.। हे अवभृथ स्नान या हे वरुण, मुझे संतापदायी संसार के (पुरुराव्णः) बन्धन से (रिषः) रक्षाकर (पाहि)
(४) रेषण, हिंसक। (५) शत्रुओं का घातक आक्रमण।
'यं बाहुतेव पिप्रति
पान्ति मर्त्यं रिषः अरिष्टः सर्व एधते'
ऋ. १.४१.२
जिस वीर या धर्मात्मा पुरुष की बाहुएं जिस प्रकार शरीर की रक्षा करती हैं उसी प्रकार प्रबल सेनादल पालन करते हैं और घातक शत्रु के आक्रमण से (रिषः) बचाते हैं (पान्ति) वह किसी प्रकार हिंसित या पीड़ित न होकर सब अंगों सहित बढ़ता है (अरिष्टः सर्व एधते)।

रिषण्यत – दुःखी बनाओ। दे. 'उक्थ'
'सखायो मा रिषण्यत'
ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१; साम. १.२८२; २.७१०; कौ.ब्रा. २३.७.
हे मनुष्यो, अपने आप को दुःखी मत बनाओ।

रिषण्यु – हिंसा करने वाली, नाश करने वाली। दे. 'रिपु'।
'न यं रिपवो न रिषण्यवः'
ऋ. १.१४८.५;

रिषत् – हिंसक शत्रु। दे. 'घृतहवन' 'दीदिवाः'।
'घृताहवन दीदिवः
प्रति ष्म रिषतो दह'
ऋ. १.१२.५;

रिषयधी – (१) हनन करना,
(२) नाश, दे. 'जूर्णि'

रिषयध्यै – मारने या वध करने के लिए।
'स्वयं सा रिषयध्यै'
ऋ. १.१२९.८
जो शक्ति या सेना हमें हिंसित करने के लिए।

रिष्ट – (१) चोट खाया हुआ अंग।
'यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तम'
अ. ४.१२.२.

(२) लकड़ी ।
'तक्षा रिष्टं रुतं भिषक्'
ऋ. ९.११२.१
(३) रिष् + क्त = रिष्ट । अर्थ-टूटा पदार्थ ।
नानानं वा उ नो धियो
वि व्रतानि जनानाम्
तक्षा रिष्टं रुतं भिषक्
ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छति
इन्द्रायेन्दो परि स्रव'
ऋ. ९.११२.१
हम लोगों के विभिन्न कर्म हैं (नः जनानाम् विव्रतानि) और बुद्धियां भी भिन्न भिन्न हैं (वा उधियः नानानम्) । जैसे बढ़ई टूटे पदार्थ को, वैद्य रोगी को ओर ब्राह्मण यज्ञकर्त्ता को चाहता है वैसे ही हो ऐश्वर्यधाम (इन्दो) ऐश्वर्य के लिए (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वर्षा कीजिए (परिस्रव) ।

रिह् - धा. । प्राप्त करना, पूजा करना स्तुति करना चाटना, अर्चना करना ।
'क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते'
ऋ. ९.८६.४३; . १८.३.१८; साम. १.५६४; २.९६४

रिहन्ति - अर्चयन्ति, पूजयन्ति, स्तुन्वन्ति (अर्चना, पूजा या स्तुति करते हैं) । रिह् धातु स्तुति, रजा या अर्चा अर्थों में आया है ।
यास्क ने - रिहन्ति, लिहन्ति स्तुन्वन्ति, वर्धयन्ति, पूजयन्ति इति वा ऐसा कहा है ।
'शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति'
ऋ. १०.१२३.१; वाज.सं. ७.१६; तै.सं. १.४.८.१; मै.सं. १.३.१०: ३४.२; का.सं. ४.३; श.ब्रा. ४.२.१.१०; नि. १०.३९.
मेधावी विप्र इस मध्यस्थानीय विद्युत् को शिशु के सदृश स्तुति करते हैं ।
आजकल रेहना-(रन्दा देना), रेह (एक प्रकार की मिट्टी जिससे कपड़ा साफ किया जाता है) और रेहल जिस पर पुस्तकें रखी जाती हैं - इन शब्दों का रिह् धातु से सम्बन्ध विचारणीय है ।

रिहाणे - रिह् (चाटना) + शानच् + टाप् = रिहाणा । द्वि.व. में 'रिहाणो' (१) दो गायों का विशेषण ।
'गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
शुभ्र प्रसूता दो गाएं जिस प्रकार अपने बछड़े को चाटने की लालसा से दौड़ती हैं ।
(२) उत्तम भोजनादि का स्वाद लेते हुए,
(३) चाटते हुए,
(४) परस्पर आलिंगन या प्रेमादि करते हुए स्त्री पुरुष ।

रीत्यापा - (१) जल प्रवाह कराने वाले वायु और विद्युत्, (२) ज्ञान, गति और ऐश्वर्य की प्राप्ति करने वाले मित्रावरुण ।
'वृष्टिद्यावा रीत्यापा'
ऋ. ५.६८.५; साम. २.८१७; मै.सं. ४.१३.९: २१२.२; श.ब्रा. १.९ .१.६; तै.ब्रा. ३.५.१०.२;

रीति - री + क्तिन् । (१) धारा ।
'तामस्य रीतिं परशोरिव प्रति'
ऋ. ५.४८.४
(२) बहती नदी, (३) रीति, (४) गति, (५) नीति,
'महीव रीतिः शवशासरत् पृथक्'
ऋ. २.२४.१४; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.१३; तै.ब्रा. २.८.५.२.

रीरधः - प्रेरित कर । दे. 'जिहीडान' 'हत्नु' 'हणान')
'मा नो वधाय हत्नवे
जिहीडानस्य रीरधः'
ऋ. १.२५.२
हे वरुण, अज्ञान में अनादर करने वाले पुरुष के वध करने और किसी पर आघात पहुंचाने के लिए हमें मत प्रेरित कर ।

रीरिषत् - नष्ट करो ।
'मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः'
ऋ. १.८९.९; वाज.सं. २५.२२; मै.सं. ४.१४.२: २१७.४; का.सं. ३५.१; गो.ब्रा. १.४.१७; श.ब्रा. २.३.३.६; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१; आप.म.पा. २.४.३; हि.गृ.सू. १.४.१३.
हमें उस आयु तक पहुंचाने के लिए (आयुःगन्तोः) बीच बीच में हमारी आयु को नष्ट मत होने दो (मा रीरिषत) ।

रीरिषः - हिंसा करें । दे. 'क्ष्मा' ।
'मा न स्तोकेषु तनयेषु रीरिषः'
ऋ. ७.४६.३; नि. १०.७.
मेरे पुत्र पौत्र रूपी सन्तानों में हिंसा न करें ।

रीषत् – (१) हिंसा करने वाला जीव ।
'मा रीषते सहसावन् परा दाः '
ऋ. १.१८९.५;
(२) हिंसा करने वाला व्याघ्रादि पशु ।
'पाहि रीषत उत वा जिघांसतः '
ऋ. १.३६.१५

रीषन् – एक दूसरे को मारने वाला ।
'द्रुहे रीषन्तं परिधेहि राजन् '
ऋ. २.३०.९

रुक्म – रुच् + म = रुक्म ।
अर्थ
– (१) सुपर्ण –सा. (२) प्रताप–दया । दे. 'जञ्झती'
'आ रुक्मैरा युधा नरः '
ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत '
ऋ. ५.५२.६
वृष्टि के नेता (नरः) महान् मरुतों ने (ऋष्वा मरुतः) सुवर्ण–निर्मित आयुधों तथा शक्तियों को मेघों के प्रति छोड़ा (रुक्मैः आयुधा ऋष्टीः असृक्षत) । – सा. ।
हे बड़े मनुष्यो (ऋष्वानरः), अपने प्रतापों से शस्त्रों एवं अस्त्रों का निर्माण करो (रुक्मैः आयुधा ऋष्टीः आ असृक्षत)– दया. ।
(३) रुचिकर ।

रुक्म प्रस्तरण – सुनहले बिछौने से सजा हुआ ।
'रुक्म प्रस्तरणं वह्नम् '
अ. १४.२.३०

रुक्म वक्षसः – रुच् + मनिन् = रुक्म । अर्थ–सुवर्ण, रुचिकर । रुक्मवक्षस् का अर्थ है – (१) सुवर्ण की छाती वाला या रुचिकर छाती वाला । यह शब्द मरुतों के विशेषण के रूप में बहु वचन में ही प्रयुक्त हुआ है ।
सायण ने इसका अर्थ –
'रुक्मालङ्कृत वक्षस्काः '
(सुवर्ण से अलंकृत वक्षवाला) किया है ।
(१) रुचिकर छाती वाले मरुद्गण का विशेषण । दे. 'वातासः'
'अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसः '
ऋ. १०.७८.२; नि. ३.१५.
जो मरुद्गण (ये) दीप्तिमानता से सुन्दर (भ्राजसा) तथा रुचिर छाती वाले (रुक्म वक्षसः) है...

रुकमवक्षसः मरुत – दीप्तिमान विद्युत को धारण करने वाले वायुगण ।
'यद् युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसः '
ऋ. २.३४.८

रुक्मी – प्रशस्त कर्म या गुणों से युक्त ।
'रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु '
ऋ. १.६६.६

रुक्ष – (१) कान्तिमान, (२) उत्तम पद पर आरूढ़ ।
'वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् '
ऋ. ६.४.७

रुग्ण – भंग होना ।
'विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेः '
ऋ. ३.३१.६; वाज.सं. ३३.५९; मै.सं. ४.६.४: ८३.१०; का.सं. २७. ९; तै.ब्रा. २.५.८.१०; आप.श्रौ.सू. १२.१५.६.

रुच् – (१) प्रीति, (२) दीप्ति ।
'गोश्वश्वेषु या रुचः '
वाज.सं. १३.२३; १८.४७; तै.सं. ४.२.९.४; ५.७.६.३; मै.सं. २. ७.१६: ९९.१; का.सं. १६.१६

रुचानः – (१) कान्ति से चमकता हुआ –सूर्य, (२) गुरु ।
'अयं रोचयदरुचो रुचानः '
ऋ. ६.३९.४

रुचिः – (१) क्रान्ति, (२) ईश्वर ।
'रुचिरसि रोचोऽसि '
अ. १७.१.२१.

रुजाति – रुज् (भग्न करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । दे. द्यावापृथिवी ' ।
'श्रृणाति वीडु रुजति स्थिराणि '
ऋ. १०.८९.६
इस परमात्मा का मन्यु मेघ वृन्दों या कठोर चेताओं को (स्थिराणि) भग्न करता है । (रुजति) ।

रुजन् – रुग्णान् कुर्वन् (रुग्ण करता हुआ) । 'रुज शतृ = रुजत् । रुज धातु रोगी करना या पराजय करने के अर्थ में आया है । अतः अर्थ है– (१) पराजय करता हुआ (२) रुग्ण करता हुआ ।

रुजाना – रुज् (रुग्ण करना, भग्न करना, पराजय करना) + शानच् (वेद में व्यत्यय से) + टाप् = रुजाना । (१) 'रुजाना नद्यो भवन्ति' (रुजाना नदियों का नाम है) नदी तटों को भग्न

करती है । लोक में रुजती होता है । रुज + शतृ + ङीष् = रुजती ।

'अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे
महावीरं तुविबाधमृजीषम्
नातारीदस्य समृतिं वधानाम्
सं रुजानाः पिपिष इन्द्र शत्रुः '

ऋ. १.३२.६

वृत्रासुर, मेघ या असुर ने (इन्द्रशत्रुः) दुर्मद, मदमत्त या वचन मात्र से वीर (दुर्मदः) योद्धा रहित के सदृश (अयोद्धा इव) महा विक्रान्त (महावीरम्) अनेक शत्रुओं को बाधित करने वाले (तुविबाधम्) इन्द्र को (ऋजीषम्) पुकारा (आजुह्वेहि) और इस प्रकार प्रभावशाली इन्द्र के प्रहारों का (अस्य वधानाम्) संगम, समागम या लेखा, जोखा न कर सका (समतिं न अतारीत्) तथा उनके प्रहारों से विशीर्ण हो नदियों को मानों पीस का चूर्णचूर्ण कर दिया (रुजानाः संपिपिष) । इन्द्र द्वारा मारा जाकर वृत्रासुर ने अपने शरीर के विस्तार से नदियों को उद्वेलित कर दिया ।

वृत्र का अर्थ मेघ भी है । अन्य अर्थ- यदि कोई घमण्डी अयोद्धा की तरह निर्बल शत्रु (दुर्मदः अयोद्धा इव) महावीर अनेकों का सामना करने वाले (महावीरं तुवि बाधम्) प्रयत्नशील राजा को (ऋजीषम्) ललकारता है (आजुह्वे) । वह इसके प्रहारों की मार को (अस्य वधानां समृतिम्) नहीं सह सकता (न अतारीत्) और वह नदियों की तरह नाश करने वाला राजा (रुजानाः इन्द्र शत्रुः) उसे कुचल डालता है (संपिपिषे) ।

रुत् - रु + क्विप् = रुत् (तुक् का आगम) अर्थ - (१) रोग, (२) शब्द करने वाला जो शब्द करता है वह रुत् है ।

(३) रोगी ।

'तक्षारिष्टं रुतं भिषक्'

ऋ. ९.११२.१

रुदत् - रोता हुआ ।

'त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च'

ऋ. १.३३.७

हे इन्द्र, तू इन रोने वालों एवं भोग विलासी पुरुषों को (जक्षतः) ।

रुद्र - (१) शिव का एक पर्याय ।

(२) ब्रह्म का उपदेश करने वाला आचार्य, (३) शब्द ब्रह्म रूप से सबके हृदय में व्यापक, (४) सबको अन्त काल में रुलाने वाला (५) सब पर करुणा से दया करने वाला, (६) रुत् अर्थात् संसार का दुःख का विनाशक ।

'रुद्रं जलाष भेषजम्'

ऋ. १.४३.४; अ. २.२७.६

(७) रु + क्विप् = रुत् (तुक् का आगम) रुत् + रा + क = रुद्र । रुत् सत् राति ददाति दुःखम् इति रुद्रः (जो रवता हुआ , गर्जन करता हुआ या सनयित्नु शब्द करता हुआ वर्षा का जल देता है वह रुद्र है) ।

(८) रुद्रो रवति (जो रवता है वह रुद्र है) ।

(९) रोरूयमाणः द्रवित इति वा (मेघ के उदर में स्थित हो अत्यन्त रव करता हुआ जो द्रवता है वह रुद्र है) । रोरूयमाण + द्रु + ड = रुद्र (रोरुयमाण का रु और द्रु का द्र)

(१०) रोदयते वा (रुलाता है) । अतः रुद्र कहलाया । रोदि + रक् = रुद्र (रोदि) के 'णि' का लोप । रुद्र शत्रु कूलों को रुलाता हे । अथवा रुद् + रक् = रुद्र (बाहुलक से)

(११) रुद्र नामक देवता । दे. 'अवस'

'अवसाय पद्वते रुद्र मृड'

ऋ. १०.१६९.१; तै.सं. ७.४.१७.१; नि. १.१७

(हे रुद्र, तू इस चरण युक्त पथ में चल चल कर चरने वाली गौ की हिंसा न कर) ।

पुनः, दे. 'आयुध '।

'इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः'

ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६८; नि. १०.६

स्थिरधन्वा रुद्र के लिए इन स्तुतियों को अर्पित कर ।

(१२) दुःख भंजक परमात्मा -दया. । पुनः, दे. 'कुवित्'

'ताँ आ रुद्रस्य मीढुषो विवासे'

ऋ. ७.५८.५

मैं उन मनोरथों को बरसाने वाले रुद्र के पुत्र मरुतों की अभिमुख हो परिचर्या करता हूँ-सा.। हम उस दुःख भंजक परमात्मा के (रुद्रस्य) सेवक मनुष्यों की (मीढुषः) सेवा करते हैं (आविवासे)- दया. ।

(१३) ज्वरादि व्याधि रूपी आयुध वाले तथा वातावरण में आविष्ट या वातावरण को धारण करने वाले (स्वपिवातः) रुद्र की कल्पना की गई है । दे. 'क्ष्मा'
'या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि'
ऋ. ७.४६.३; नि. १०.७
(१४) अग्नि । अग्निरपि रुद्र उच्यते (१५) वैश्य । दे. 'मरुत्'
(१६) मरुतों को भी रुद्र कहा गया है । दे. 'आरुद्रासः'।
(१७) रोग के अर्थ में भी यजुर्वेद में रुद्र का प्रयोग हुआ है ।
शतरुद्रियाणाम्
(१८) इन्द्र ने पिता प्रजापति को बाण से छेदा । उसकी अनुचिन्ता कर वह रोया । रुलाने के कारण ही इन्द्र रुद्र कहलाया ।
(इन्द्रः किल पितरं प्रजापतिं चिच्छेद, तम् अनुशोचन् अरुदद् तत् रुद्रस्य रुद्रत्वम्) ।

रुद्रवर्तनी – (१) प्राण ही जिसके मार्ग हो ।
'आ यातं रुद्रवर्तनी'
ऋ. १.३.३; वाज.सं. ३३.५८; ऐ.आ. १.१.४.८
(२) अश्विद्वय का विशेषण, (३) शरीर में ११ रुद्रों अर्थात् प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन संचार करने वाले विद्वान् स्त्री पुरुष
'तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी'
वाज.सं. १९.८२; मै.सं. ३.११.९: १५३.५ का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६. ४.१.
(४) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति के समान या दुःख दूर करने वाले वैश्य के समान कार्य व्यवहार करने वाले स्त्री पुरुष (५) अश्विद्वय
'यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी'
ऋ. ८.२२.१; १०.३९.११

रुद्रस्यमरुतः– (१) रुद्र के पुत्र मरुत सा.।
(२) दुःख भंजक परमात्मा के भक्त –सा. दे. 'कुवित्' ''मीढुषः'।
'तॉं आ रुद्रस्य मीढुषो विवासे'
ऋ. ७.५८.५
मैं उन रुद्र के मनोरथ बरसाने वाले पुत्र मरुतों की परिचर्या करता हूँ । –सा. ।
मैं उस दुःख भंजक परमात्मा के सेवक जनों की सेवा करता हूँ – दया. ।

रुद्रस्य मूत्रम्– (१) रोगहारी तीव्र द्रव्य का स्तर भाग–आसव (२) रुद्र का मूत्र–सा. ।
'रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः'
अ. ६.४४.३

रुद्रस्य सूनुः– (१) रुद्र का पुत्र, (२) जीव का प्रेरक प्राणवायु (३) शत्रु दल को रुलाने वाले संग्राम के अथवा वीर सेना पति के पुत्र, (४) कारण रूप वायु से उत्पन्न प्राण । (५) ज्ञानोपदेश का दाता विद्वान् ।

रुद्रहूतिः– रुद्र या दूसरे को रुलाने वाले वीर को बुलाने वाला
'स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये'
वाज.सं. ३८.१६; श.ब्रा. १४.२.२.३८

रुद्रा – द्वि.व.। (१) शब्द करने वाले–अग्नि और वायु, (२) दुष्टों को रुलाने और मर्यादा का पालन करने वाले उत्तम वचन बोलने वाले स्त्री पुरुष ।
'वर्ती रुद्रा नृपाप्यम्'
ऋ. २.४१.७; वाज.सं. २०.८१
(३) सबको रुलाने वाले दुष्ट पीड़क शासकों द्वारा सेवित पृथ्वी, (४) वेद द्वारा उपदेष्ट्री । ब्रह्मशक्ति ।
'आदित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि'
वाज.सं. ४.२१.
(५) दुःखों को दूर करने, उत्तम उपदेशों को देने और ५४ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन करने वाले दुष्टों को रुलाने वाले–सेना पति, (६) सभापति, (६) अश्विद्वय, (७) मातापिता, (८) पुरुष, (९) अध्यापक उपदेशक । दे. 'पुरुमन्तू ।

रुद्राणां माता – (१) रुद्रों या दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुषों को दूध पिलाकर पुष्ट करने वाली गौ, (२) रुद्रों की माता ।
'माता रुद्राणां दुहिता वसूनाम्'
ऋ. ८.१०१.१५; तै.आ. ६.१२.१; आश्व.गृ.सू. १.३४.३२; साम.मं. ब्रा. २.८.१५; पा.गृ.सू. १.३.२७; आप.मं.पा. २.१०.९.

रुद्रासः – (१) रुद्रगण । रुद्र देव के सिवा 'रुद्रासः' का प्रयोग रुद्रों के गण का परिचायक है । जैसे इन्द्र के साथ मरुतों का रहना वेदों में हम देखते हैं, उसी प्रकार इन्द्र के साथ रुद्रों के आने का भी वर्णन है । दे. 'आगन्तन' ।

'आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसः
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन'
ऋ. ५.५७.१; नि. ११.१५.
हे रुद्रो, इन्द्र के साथ समान प्रेम के साथ, सोने के रथ पर चढ़े, यथा शास्त्र किए जाते हुए यज्ञ के लिए आओ ।

रुद्रिय – रुद्र + घ = रुद्रिय । अर्थ है । (१) रोगोत्पादक, (२) रुद्र-सम्बन्धी । रुद्र का अर्थ रोग भी है । दे. 'रुद्र' ।

रुद्रियासः – रुद्र + घ + जस् = रुद्रियासः । रुद्र का अर्थ जीव है । अतः 'रुद्रिय' का अर्थ है । (१) जिलानेवाले वायुगण या (२) जीव के प्राण वायु ।

रुधत् – (१) रुका हुआ, (२) वीर्यनिरोध करने वाला ।
'नदस्य मा रुधतः काम आगन्'
ऋ. १.१७९.४; नि. ५.२.
(३) रुध् (निरोध करना, रोकना) + शतृ = रुधत् । इन्द्रियों पर संयम करने वाला-ब्रह्मचारी (रेतसः इन्द्रियग्रामस्य वा निरोद्धा) । (४) संरुद्ध प्रजनन (५) जितेन्द्रिय ।
दे. 'आगत' 'नद' ।
लोपामुद्रा कहती है-जप करते हुए ब्रह्मचारी अगस्त्य के प्रति काम भावना मेरे प्रति आई ।

रुधि – (१) पाप करने से रोकने वाला नियम, व्यवस्था मर्यादा, (२) ध्यान को सेतु, बांध, बाड़, खाई, परकोट । दे. 'रुधिक्रा' ।

रुधिक्रा – रुधि का अर्थ है- (१) प्रजाओं को पाप से रोकने वाला नियम या व्यवस्था, (२) जल का सेतुबांध, बाड़, खाई, परकोट आदि को भी लांघ जाने वाला, (२) इस नाम का दैत्य -सा.
'यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्राम्'
ऋ. २.१४.५.

रुप् – (१) रोपने वाला,(२) ज्ञानांकुर बीज को रोपने वाला गुरु, (३) अंकुरवती भूमि, बीजोत्पादक भूमि, (४) सन्तति उत्पादिका स्त्री ।
(५) रुप, (रोपण करना) रोपना, आरोपण करना) + क्विप् = रूप् आरोपण कर्त्ता पर मात्मा -दया.
(६) जिस पर सब कुछ आरोपित होता है । पृथ्वी-सा. । दे. 'जबारु' 'सस' 'पृश्नि'
'ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेः
अग्रे रुप आरुपितं जबारु'
ऋ. ४.५.७
जिस आदित्य का दीप्तिमान मण्डल (चारु जबारु) सृष्टि केआदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथ्वी के निकट से (रुपः) निश्चल द्युलोक के ऊपर (पृश्ने : अधि) चलने के निमित्त (चर्मन्) आरोपित हुआ (आरुपितम्) -सा. ।
जिस सोते हुए पति के भी शरीर पर (ससस्य चर्मन् अधि) सुन्दर ऊर्ध्व रेतस्त्व आरोपित हो (चारु जबारू आरोपितम्) जैसे द्युलोक के आरोपणकर्त्ता परमात्मा का (पृश्नेः अग्रे रुपः) आदित्य मण्डल आरोपित है (चारु जबारु) - दया. ।

रुप – (१) सीढ़ी, (२) उत्तम पद पर चढ़ने का साधन रूप योग मार्ग।
'पञ्च पदानिरुपो अन्वरोहम्'
ऋ. १०.१३.३.
(३) बीज से उत्पन्न होने वाला पुरुष ।
'त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहत्'
अ. १८.३.४०

रुमः – (१) उपदेश और श्रुति -सम्पन्न ज्ञानी पुरुष, (२) ब्राह्मण ।
'यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे'
ऋ. ८.४.२; अ. २०.१२०.२; साम. २.५८२.
(३) ऋग्वेदालीन एक देश (४) उपदेष्टा, (५) रमणीय, (६) ब्राह्मण का स्वभाव ।

रुरु – रुरु नामक मृग ।
'रुद्रेभ्यो रुरून्'
वाज.सं. २४.२७; मै.सं. ३.१४.९: १७४.३

रुरुक्वान् – रुचिमान, शोभने वाला ।
'सूरो न रुरुक्वान् शतात्मा'
ऋ. १.१४९.३; साम. २.११२४.

रुरुचानः – कान्ति से चमकने वाला ।
'रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महाम्'
ऋ. ३.२.३; कौ.ब्रा. २५.९

रुरुशीर्ष्णी – (१) मृग के समान अग्रमुख वाली इषु या बाण की डंडी (२) प्रमुख नेताओं को अपने शिरोमणि पद पर नियुक्त करने वाली सेना ।
'आलाक्ता या रुरुशीर्ष्णी'
ऋ. ६.७५.१५

रूरु – निरन्तर उपदेश करने वाल ।
'रुरू रौद्रः '
वाज.सं. २४.३९; तै.सं. ५.५.१९.१; मै.सं. ३.१४.२०: १७७.२; का.सं. (अश्व.) ७.९

रुवण्यु – (१) सुशब्दायमान– दया.
(२) उत्तम उपदेष ज्ञान ज.दे.श.
'आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै '
ऋ. १.१२२.५
मै औशिज–उशिज का पुत्र या विद्याप्रेमी गुरु तथा माता पिता का पुत्र या शिष्य–आपलोगों के उत्तम उपदेश और ज्ञान का (रुवण्युम्) उपदेश देने के लिए (हुवध्यै) ।

रुवन् – उपदेश देता हुआ ।
'प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तम् '
ऋ. ५.४२.१४.

रुश् – (१) चमचमाना, श्वेत वर्ण का प्रकाश देना । दे. 'अनूची' 'रुशद्वत्सा' 'रुशती' ।
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात् '
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०.
रुशत् (२) हिंसा करना ।

रुशत् – रुश् + शतृ = रुशत् । दीप्तिमान ।
'अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः '
ऋ. १.११५.५; अ. २०.१२३.२; वाज.सं. ३३.३८; मै.सं. ४.२२०.१०; तै.ब्रा. २.८.७.२.
(२) रुच् । दीप्ति अर्थ में + अति = रुशत् (गुण का अभाव और च् का श्) । अर्थ है – वर्ण विशेष (३) ज्वाला से निकलने का प्रकाश (ज्वलनाविर्भूत प्रकाशरूपः वर्ण विशेषः) – देवराज ।
(४) हिंसार्थक रुश् + शतृ = रुशत् । अर्थ –वज्र । दे. ' आगात् '
(५) श्वेत प्रकाश करता हुआ ।
'अबोधि होता यजथाय देवान्
ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरास्थात्
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो
महान् देवस्तमसो निरमोचि '
ऋ. ५.१.२; साम. २.१०९७; मै.सं. २.१३.७: १५६.१
यह होम निष्पादक अग्नि यष्टव्य देवों को पूजने के लिए (यजथाय) प्रबोधित किया जाता है (अबोधि) । वह अग्नि प्रातः काल सुन्दर मन से (प्रातः सुमनाः) उद्दीप्त होता है (ऊर्ध्वः अस्थात्) । उस समय उस उद्दीप्त अग्नि का ज्वाला रूपी दीप्तबल (समिद्धस्य रुशत् पाजः) दर्शनीय होता है (अदर्शि) । इस प्रकार महान् अग्निदेव अन्धकार से मुक्त होते हैं (निरमोचि) ।
अन्य अर्थ– शुद्ध मन वाला यज्ञकर्त्ता (सुमनाः होता) ऊपर की ओर गति करने वाले अग्नि के समान उन्नति की ओर जाता हुआ परमेश्वर प्राप्ति के लिए (यजथाय) दिव्य भावों को जानता है (देवान् अबोधि) और प्रातः काल परमेश्वर का उपस्थान करता है (प्रातः अस्थात्) । तब उस देदीप्यमान विद्वान् का तेजस्वी रूप वर्ण और बल दिखाई देता है (समिद्धस्य रुशत् पाज अदर्शि) तथा दुःख से छूट जाता है ।

रुशत्पशुः – (१) दीप्तियुक्त तेजस्वी उत्तम पशुसम्पदा से युक्त (२) तेजस्वी अंगों वाला पुरुष, (३) तेजस्वी किरणों वाली उषा ।
'अभूदुषा रुशत्पशुः '
ऋ. ५.७५.९; ऐ.ब्रा. २.१८.१०,१२; कौ.ब्रा. ११.६; का.श्रौ.सू. ९ .२.२४; आप.श्रौ.सू. १२.५.१

रुशती – (१) श्वेत वर्णा, दीप्ता, (२) उषा का विशेषण । दे. ' अनूची '
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात् '
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०
श्वेतवर्णा, दीप्त सूर्य रूपी वता वाली उषा आई ।
(३) लक्ष्मी – दया.
(३) ज्वलित रूप श्री या दीप्ति वर्णा स्त्री–सा. दे. ' अश्विना' ।
'युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम् '
ऋ. १.११७.८.
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों ने कुष्ठ रोग के कारण कपिश वर्ण वाले श्याव नामक ऋषि या राजा को ज्वलित रूप श्री या दीप्तवर्णा स्त्री दी –सा. ।
हे राजा तथा राजपुरुषो, तुम उत्तम गृह के प्रापक विद्वान् को लक्ष्मी दो – दया. ।

रुशद्रोहिणी – (१) गहरे रंग की बढ़ने वाली लता । दे. 'रोहिणी' ।

रुशद्वत्सा – दीप्तवर्ण सूर्य रूपी वत्स वाली उषा ।

दे; 'अनूची,' 'रुशती' ।
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात्'
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०

रुशदूर्मि- (१) रुशन्त्य ऊर्मयः ज्वालाः यस्य स जीवः (दीप्ति वाली ज्वाला से युक्त जीव (२) अग्नि ।
'कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर'
ऋ. १.५८.४
हे जीवात्मन् , तेरा प्राप्त करने योग्य (ते एम) परमपद अत्यन्त आकर्षण करने वाला हृदयग्राही है ।
अथवा,
हे अग्ने, तेरा मार्ग कृष्ण है ।

रुशन् - उछलता हुआ ।
'चरन् वत्सो रुशन्निह'
ऋ. ८.७२.५

रुशम - (१) शत्रुओं की नाशकारिणी सेना का दल ।
'आ रुशमेषु दद्महे'
अ. २०.१२७.१; आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१०;शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.१.
(२) हिंसाकारी क्षत्रिय पुरुष (२) वेद कालीन एक देश का नाम, (४) रोगों का शान्ति कारक ।
'शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपम्'
ऋ. ८.३.१२.
(५) हिंसक, (६) क्षत्रिय का स्वभाव ।
'यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे'
ऋ. ८.४.२; अ. २०.१२०.२; साम. २.५८२
(७) सर्व-नियन्ता परमेश्वर ।
'तिरश्चिदर्ये रुशमे परीरवि'
ऋ. ८.५१.९; साम. २.९५९; वाज.सं. ३३.८२
(८) शत्रुहिंसक सैन्य, (९) तेजस्वी वीर पुरुष ।
'भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्'
ऋ. ५.३०.१२

रुह् - (१) उच्चस्थान, पद (२) आरोहण शील जीव
'रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह'
अ. १३.१.४.
'रुहो रुरोह रोहितः'
अ. १३.३.३६
(३) प्ररोह, अङ्कुर ।
'सहस्रमुत वो रुहः'
ऋ. १०.९७.२; वाज.सं. १२.७६; तै.सं. ४.२.६.१; मै.सं. २.७.१३ : ९३.३ का.सं. १६.१३; श.ब्रा. ७.२.४.२७.

रूपका - (१) नाना रूपों और व्यूहों वाली सेना ।
'रूपका उतार्बुदे'
अ. ११.९.१५

रूपधेय - रूप ।
'त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेद'
अ. २.२६.१

रूपम् - (१) रुच् (दीप्ति अर्थ में) + पन् = रूप । अर्थ- (१) रूप । दे. 'अजीगः' ।
'अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यम्'
ऋ. १.१६३.७; वाज.सं. २९.१८; तै.सं. ४.६.७.३.
(२) रुचिकर सुन्दर रूपवान् (३) रुद्र का विशेषण ।
'दिवो वराहमरुष कपर्दिनम्
त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे'
ऋ. १.११४.५
(४) रूपं रोचतेः (रुच् धातु से सम्पन्न । दीप्यमान, प्रकाशक (५) रूप्यते प्रज्ञापय्यते एभिः रूपाणि (रूपों से पदार्थ जाने जाते हैं) । दे. 'कवि' ।

रूपाणां त्वष्टा - (१) रोचमान, तेजस्वी पदार्तों एवं जीव जन्तुओं का निर्माता ।
'त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्'
अ. ९.४.६.

रूपाणि - गृहस्थी का धन और पशु आदि सम्पत्ति ।
'विश्वा रूपाणि पुष्यत'
अ. ७.६०.७; १३.२.१०

रूर - (१) पीड़ादायक ज्वर, (२) अग्नि । 'अग्निर्वै रूरः' ।
'यत् त्वं शीतोऽथो रूरः'
अ. ५.२२.१०
(३) तप देकर उत्पन्न होने वाला । ज्वर जिसे हुडु भी कहा जाता है । दे. 'हुड्' ।
'नमो रूराय शोचिषे कृणोमि'
अ. १.२५.४

रूपशः - (१) प्रत्येक भिन्न भिन्न रूप, (२) प्रति देह में प्रत्येक रूप ।

'स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः'
ऋ. १.१६४.१५.
(२) शेष बचा खुचा ।

रेक्णस् – धन । रिच् + असुन् = रेक्णस्' । (नुट्, गुण, च का आदेश) ।
'यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य
रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति'
ऋ. १.१६२.१; वाज.सं. २५.२५; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१ : १.१८१.९
दे. 'अचेतन'
'परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः'
ऋ. ७.४.७; नि. ३.२
उदक सम्बन्ध रहित मनुष्य का धन त्याज्य है ।
(२) रेक्ण. इति धन नाम– यास्क
'रिच्यते प्रयतः' (धनी जब मरने लगता है तो यह धन रिक्त रह जाता है) । अर्थात् इसी लोक में रह जाता है । (३) सन्तान ।

रेक्णस्वती – (१) उत्तम ऐश्वर्य और वीर्य वाली ।
'रेक्णस्वत्यभि यावाममेति'
ऋ. १०.६३.१६; नि. ११.४६.
(२) धन वाली या जल से धन वाली स्वस्ति या देवगोपा नाम्नी देवता का विशेषण ।
आर्यसमाजी विद्वानों ने स्वस्ति या देवगोपा का नाम मेघ माना है । दे. 'देवगोपा'
वह धनवाली या जल से धन वाली है (रेक्ण-स्वती) जो हमें स्पृहणीय पदार्थों को या जलों को देती है (या वामम् अभ्येति) या जो मेघ प्रशस्त, ज्वालों को धारण करता है (वामम् अभ्येति) ।

रेकु – (१) संशयास्पद, (२) सबसे अतिरिक्त, (३) सर्वातिशयी ।
'गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य
रेकुपदं न निदाना अगन्म'
ऋ. ४.५.१२.

रेकुपद – शंकास्पद स्थान ।
'रेकु पदमलकमा जगन्थ'
ऋ. १०.१०८.७

रेज – (१) प्रकट होना । अंग्रेजी का raise धातु यहां विचारणीय है ।
'स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः'
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९.
(२) गत्यर्थक ।

रेजति – रेजयति, आकम्पयति ।
रिज धातु गत्यर्थक है । दे. 'अस्मदानिद्'
'हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति'
ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२.
जो अन्नवाला इन्द्र हमारी प्रज्ञाओं को आकर्षित करता है ।
'रिज' धातु और अंग्रेजी का rise धातु प्रायः समानार्थक है ।

रेजन्ते – रेज (कांपना) के लट् प्र.पु. बहुवचन का रूप । अर्थ । (१) कांपते हैं । दे. 'अभ्यर्धयज्वन्' 'भूमा' ।
'भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते'
ऋ. ६.५०.५
जीवन मार्ग के परिशुद्ध होने पर बड़े बड़े शत्रु सैन्य कांपने लगते हैं ।
अथवा,
तब अन्तरिक्ष में बहुत जीव कांपने लगते हैं ।

रेजमानः – कांपता हुआ ।
'गिरींरज्ञान् रेजमानां अधारयत्'
ऋ. १०.४४.८; अ. २०.९४.८

रेणु – (१) रजो रेणु, धूलि, (२) रमणीय स्वरूप, (३) गुणवती ।
'इयर्ति रेणुं बृहदर्हिरिष्वणिः'
ऋ. १.५६.४
पूज्य और शत्रुओं का विवेक करने वाला (अर्हरिष्वणिः) अथवा वेगवान् धनापहारी पुरुषों को अपने प्रताप से रुलाने वाला बड़े उद्योग से उत्तम रजो रेणु के समान गुणवती तुझे प्राप्त हो ।

रेणुककाटः – (१) रेणुक + काट । धूल से भरा शुष्क कुंआ,
(२) नीरस पुरुष
'न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते'
ऋ. ६.२८.४; अ. ४.२१.४; का.सं. १३.१६; तै.ब्रा. २.४.६.९; आश्व.श्रौ.सू. ६.१४.१८; ९.५.२.
(३) अव्यय । ऐसा अश्व का वेग जिससे उड़ी हुई धूल से कूप आदि भी भर जाय ।
'अपार्वाणं रेणुककाटं नुदन्ताम्'
वाज.सं. २८.१३; तै.ब्रा. २.६.१०.१.
(३) पैरों से धूल उड़ा लेने वाला हिंसक जीव,

लकड़बग्घा (४) कसाई, (५) समस्त संसार को तोड़ फोड़ कर रजः रूप में बदल देने वाला प्रलयकारी यम ।

रेतः – (१) सन्तानोत्पादक वीर्य, (२) जल, दे. 'असष्चन्ती'

'अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम्'

ऋ. ६.७०.२

हे द्यावापृथिवी, हममें वह सन्तानोत्पादक वीर्य दें जो मनुष्यों के लिए कल्याण कारक हो ।

अथवा,

इस संसार के राजा सूर्य पृथिवी के मनुष्यों के लिए हितकारी जल दें ।

रेतोधा – (१) रेतस् धारण करने वाला तत्व ।

'रेतोधा आसन् महिमान आसन्'

ऋ. १०.१२९.५; वाज.सं. ३३.७४; तै.ब्रा. २.८.९.५

(२) प्रकृति में अपना वीर्य धारण कराने वाला परमेश्वर, (३) जल बरसाने वाला सूर्य ।

'स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम्'

ऋ. ३.५६.३; ७.१०१.६

रेभ – (१) व्यर्थ कोलाहल करने वाला, पागल के समान बेकने वाला ।

'तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे'

ऋ. १०.८७.१२; अ. ८.३.२१.

(२) स्तुतिशील विद्वान् ।

'वच्यस्व रेभ वच्यस्व'

अ. २०.१२७.४; गो.ब्रा. २.६.१२; शां.श्रौ.सू. १२.१५.१.१

'समीं रेभासो अस्वरन्'

ऋ. ८.९७.११; अ. २०.५४.२

(३) विद्याओं का उपदेश करने में कुशल ।

'अनुपश्चात् कवयो यन्ति रेभाः'

ऋ. १.१६३.१२; वाज.सं. २९.२३; तै.सं. ४.६.७.५;

(४) स्तोता- दया. । स्तुतिशील-ज.दे.श. ।

'याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्यः
उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे'

ऋ. १.११२.५

हे विद्वान् आचार्य और शिक्षित पुरुषो, मातापिता और योग्य स्त्री पुरुषो, आप दोनों जिन रक्षा आदि उपायों और ज्ञानवाणियों से (याभिः) स्तुतिशील (रेभम्) सब प्रकार से अपनाए हुए विनीत एवं उपवीत (निवृतम्) अथवा सब कष्टों अज्ञानों या दुःखों से घिरे हुए (सितम्) शुद्धाचारी अभिवादनशील पुत्र और शिष्य को परमज्ञानमय परमेश्वर या परमसुख का दर्शन करने के लिए (स्वर्दृशे) उत्तम पद की ओर प्रेरणा करते हैं (उद्वन्दनम् ऐरयतम्) ।

अथवा – हे प्राण और अपान, वासनाओं से या अज्ञान से घिरे (निवृतम्) कर्मबन्धनों में बंधे (सितम्) स्तुति कर्त्ता उपासक आत्मा को (रेभम्) परमात्मा के दर्शन के लिए ऊपर उठाते हैं ।

राजा और सेनापति प्रार्थना करने वाले शत्रुओं के कारागार में बंधे पुरुष को उबारते हैं ।

(५) नवजात शब्द करता हुआ बालक भी रेभ है । दे. 'परिषूति' ।

'युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथः'

ऋ. १.११९.६

रेरिह् – (१) चाटने वाला, (२) नीच, लोभीपुरुष ।

'क्रव्यादमुत रेरिहम्'

अ. ८.६.६

रेरिहन् – (१) चरता हुआ, (२) घास आदि को दग्ध करता हुआ अग्नि (३) चाटता हुआ बालक (४) आस्वादन करता हुआ ।

दे. 'अधीवास'

रेरिहाणा – (१) स्पर्श करती हुई, (२) चाटती हुई ।

'ऊर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा'

ऋ. ३.५५.१४.

(३) द्वि.व. । उत्तम सुखास्वाद करती हुई ।

'अन्तरू षु चरतो रेहिहाणा'

ऋ. ६.२७.७.

रेवत् – (१) ऐश्वर्यवान् आत्मा ।

'गोदा इद् रेवतो मदः'

ऋ. १.४.२; अ. २०.५७.२; ६८.२; साम. २.४३८

रेवती – (१) रेवती नामक ऋचा, (२) धनधान्य, सम्पन्न ।

'महानाम्न्यो रेवत्यः'

वाज.सं. २३.३५.

(३) खेती नामक नक्षत्र ।

'आ रेवती चाश्वयुजौ भगं मे'

ऋ. १९.७.५.

(४) धन ऐश्वर्य से युक्त स्त्री या प्रजा ।

रेवतीर्नः सधमादः

इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः '
ऋ. १.३०.१३; अ. २०.१२२.१; साम. १.१५३; २.४३४; तै.सं. १.७.१३.५; २.२.१२.८; ४.१४.४; मै.सं. ४.१२.४:१८९.५; का.सं. ८.१७.
हमारी ऐश्वर्य शालिनी स्त्रियाँ अन्नों से युक्त होकर ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र में (इन्द्रे) राजा या परमेश्वर के आश्रय में रहकर हमारे साथ सुख और आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली हों।

रेवान् – रयिमान्, धनवान्,

रेषण – (१) आंधी का झकोर, (२) आत्मा की नाशक प्रवृत्ति। दे. ' रिप'।

रेषय – नाश करना। दे. 'रिपु'

रेष्मच्छिन्न – प्रचण्ड वायु से टूटा हुआ तृण।
'रेष्मच्छिन्नं यथा तृणम् '
अ. ६.१०२.२

रेष्म्य – हिंसाकारी प्रबल अंधड़ के समय उचित उपाय जानने वाला।
'नमो वात्याय च रेष्म्याय च '
वाज.सं. १६.३९; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२५.१४; का. सं. १७.१५.

रेष्मा – (१) सिर में लगा आघात आदि (३) हिंसक।
'रेष्माणं स्तुपेन '
वाज.सं. २५.२; मै.सं. ३.१५.२: १७८.७;
(३) बवण्डर, आन्धी।
'रेष्मा प्रतोदः '
अ. १५.२.७
(४) रेषको वातात्मको वायुः –सा. (प्रचण्ड वायु)।

रेढि– चाहता है। रिह (चाहना) + तिप् = रेढि। दे. 'आविवेश'।
'तं मातारेढि स उ रेढि मातरम् '
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.१६.५; नि. १०.४६
माध्यमिका वाक् उस वायु को चाहती है और वायु भी जलनिर्मात्री विद्युत् को चाहता है।

रै – (पु.)। (१) धन। दे. 'अचेतन'।
'नित्यस्य रायः पतयः स्याम '
ऋ. ४.४१.१०; ७.४.७; नि. ३.२.
पुनः दे. 'प्रतारीः' 'तुरीय'।

रैभ्या – (१) उपदेश देने वाले विद्वान् पुरुषों की शिक्षा, (२) रैभी नामक ऋचा।
'रैभ्यासीदनुदेयी '
ऋ. १०.८५.६; अ. १४.१.७.

रैवतः – (१) रेवतीषु पशुषु भवः – दया. (२) धनसम्पन्न, (३) पशु सम्पत्ति से सम्पन्न।
'वरा इवेद् रैवतासो हिरण्यैः '
ऋ. ५.६०.४
(४) धनाढ्य राष्ट्र, (५) त्रयस्त्रिंशस्तोम से उत्पन्न रैवत पृष्ट
'त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वरैवते '
वाज.सं. १३.५८, ते.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.१७.१९: १०४.१४

रैवत्य – (१) धनवान् पुरुषों का, (२) धनी के समान।
'रैवत्येन महसा चारवः स्थन '
ऋ. १०.९४.१०

रोकः – (१) रुचि, (२) प्रकाश,।
'आमवत्सु तस्थौ न रोकः '
ऋ. ६.६६.६.
'दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोकाः '
ऋ. ३.६.७

रोग – (१) शरीर को तोड़ने वाला ज्वर, अतिसार आदि।
'एवा रोगं चाम्रावं च '
अ. १.२.४

रोचः – रुच् + अच् = रोच। अर्थ (१) कान्तिवान्।
'रुचिरसि रोचोऽसि '
अ. १७.१.२१.

रोचति – (१) ज्वलति (रुचता है, ज्वलित होता है)।
'रुशत् इतिवर्णनाम रोचतेः ज्वलतिकर्मणः –यास्क।
रुशत् का अर्थ वर्ण है।

रोचते – प्रकाशित करता हुआ या प्र ाश देता है। दे. 'धन्वन् '।
'तिरो धन्वातिरोचते '
ऋ. १०.१८७.२; अ. ६.३४.३; नि. ५.५.
आदित्य महान् अन्तरिक्ष को (तिरः धन्व) पार कर (अति) हमें प्रकाशित करता या प्रकाश देता है।

रोचन – शरीर को सुन्दर बनाने वाला। उबटन

आदि पदार्थ ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि '
अ. १४.१.३८

रोचना – ब.व. । (१) तेजस्वी प्रजागण (२) नक्षत्र ।
'रोचन्ते रोचना दिवि '
ऋ. १.६.१; अ. २०.२६.४; ४७.१०; ६९.९; साम. २.८१८; वाज.सं. २३.५; तै.सं. ७.४.२०.१; मै.सं. ३.१२.१८: १६५.१०; ३.१६.३: १८५.५; तै.ब्रा. ३.९.४.२; आप.मं.प. १.६.२.

रोचनस्था – (१) प्रकाश में विद्यामान ।
'केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् '
ऋ. ३.२.१४

रोचनाकरः – (१) प्रकाश या कीर्त्ति फैलाने वाला ।
'दूरे पारे रजसो रोचना करम् '
ऋ. १०.४९.६

रोचमानः – रुच् + शानच् = रोचमान । अच्छा लगने वाला ।
'दिवोरुचः सुरुचो रोचमानाः '
ऋ. ३.७.५

रोचसे – दीप्यसे (दीप्त होता है) । 'रुच' धातु से म.पु.ए.व. का लट् में । दे. 'चित' ।

रोद – पीड़ा ।
'आद् रोदमघमावयम् '
अ. ८.६.२६.

रोदसी – (१) द्यावा पृथिव्यौ (द्यौ और पृथिवी) (२) स्वर्ग और पृथिवी लोक । दे. 'अपार' ।
'इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे '
ऋ. ३.३०.५; नि. ६.१.
हे इन्द्र, इन दूर पार में स्थित स्वर्ग और पृथ्वी को....
(३) रुद्र + असुन् = रोदस् । रोदस् + ङीष् = रोदसी । यह शब्द आद्युदात्त और स्त्रीलिंग द्विवचनान्त है । नपुंसक द्विवचनान्त और अव्यय के रूप में भी माना गया है ।
(४) माधव के अनुसार अन्तोदात्त रोदसी शब्द रुद्र की पत्नी का वाचक है ।
(५) मध्यम स्थानी रुद्र की विभूति माध्यमिका वाक् पत्नी मानी गई है । (६) क्षीरस्वामी के अनुसार 'रोदस्यौ रोदसी चले' (रोदसी और रोदस् दो शब्द हैं) । पहला ईकारान्त और दूसरा सान्त । पहले का द्विवचन 'रोदस्यौ' और दूसरे का ' रोदसी' है । ईकारान्त रोदसी द्युलोक और भूलोक का वाचक है ।
दूसरा, रोदस् 'रुध् + असुन् ' से व्युत्पन्न है और 'ङीष्' जोड़कर स्त्रीलिंग में रोदसी बना है । द्युलोक और पृथ्वी से सभी जीव रुद्र हैं । (आभ्यां हि विविधं रुद्धानि सर्वभूतानि) ।
'रुद् + असुन् ' से रोदस् मानने से रुद्र के समान रोदसी को भी भयङ्करी और रुलाने वाली मानना पड़ेगा । द्युलोक की भयङ्करता की कल्पना विविध प्रकार से की जा सकती है । शीतप्रधान देशों में कुहासे की प्रचुरता सर्वविदित है । दिन रात अन्धकार में ओस का गिरना रोना ही तो है । आकाश के भयङ्कर गर्जन और पृथिवी के अनेक संकट क्या दुःखद नहीं है ?
रोदसी शब्द एक रहस्यमय शब्द है । (७) रुद्र को मरुतों का पिता माना गया है अतः रोदसी मरुतों की माता और रुद्र की पत्नी हुई । यदि रुद्र वायु का वाचक है तो रोदसी वायु की पत्नी अर्थात् माध्यमिका देवी या विभूति हुई । दे. 'आहुवामहे '
(८) स्त्री पुरुष–दया. । दे. 'अरुण' 'उज्जिहीते' निचाय्य'
'उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामसी
वित्तं मे अस्य रोदसी '
ऋ. १.१०५.१८
जैसे पीठ का रोगी बढ़ई ऊपर ही देखता है जैसे चन्द्रमा भी नक्षत्र को देखकर भी ऊपर ही देखता है, नीचे नहीं, अतः हे द्यावापृथिवी, मेरी इस दशा को तुम जानो –सा.
जैसे पीठ का रोगी चित्रा नक्षत्र चन्द्रमा से योग करता है एवं अन्य नक्षत्र भी योग करते हैं–हे स्त्री पुरुषो, तुम मेरी इस नक्षत्र विद्या को जानो ।
(९) रुद्र की पत्नी । दे. 'अश्विनी'
'आ रोदसी वरुणानी श्रृणोतु '
ऋ. ५.४६.८; ७.३४.२२; अ. ७.४९.२; मै.सं. ४.१३.१०: २१३.११; तै.ब्रा. ३.५.१२.१; नि. १२.४६.
रुद्रं की पत्नी तथा वरुण की पत्नी सुनें ।
(१) रोदसी को अव्यय भी माना गया है । विश्व कोष में लिखा है–रोदश्च रोदसी चापि दिविभूमौ पृथक् पृथक् । सह प्रयोगेऽप्यनयोः रोदः स्यादपि

रोदसी ।
(११) रुद्र दुष्टों को रुलाने वाली राष्ट्र के दमनकारी विभाग के अध्यक्ष की स्त्री ।

रोदसी देवी – (१) रुद्र की पुत्री माध्यमिका वाक् – सा.
(२) दिव्यगुण सम्पन्ना रानी –दया.
दे. 'अभ्यर्धयज्वन् '
'मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवीः '
सिषक्ति पूजा अभ्यर्धयज्वा '
ऋ. ६.५०.५
हे मरुतो, जिन तुम लोगों के साथ रुद्र की पुत्री माध्यमिका वाक् जल्द जल्द चलती है अर्थात् बार बार मिलकर एकता प्राप्त कराती है तथा जिन तुमको अभिवृद्धदान पूषा अपनी रश्मियों से सेवते हैं ।
अथवा – जिनमें दिव्य गुण सम्पन्न रानी राजकर्म जानती है और प्रबुद्ध सुखप्रदाता पोषक राजा प्रजा की सेवा करता है ।

रोदिसिप्रा – (१) द्यावापृथिव्योः आपूरयिता (द्यौ और पृथिवी को चारों और से पूर्ण करने वाला) ।
(२) रोदसी + प्रा + क्विप् = रोदसीप्रा । रोदसी द्यौ और पृथिवी का संयुक्त नाम है । यह शब्द अग्नि के विशेषण रूप से प्रयुक्त हुआ है ।
(३) आदित्य जो द्यौ और पृथिवी का आपूरक है । दे. 'अजीजनत् ' ।
'अजीजनत् शक्तिभी रोदिसिप्राम् '
ऋ. १०.८८.१०; नि. ७.२८
(४) अग्नि ।

रोदस्योःगर्भः – (१) द्यावापृथिवी के बीच गर्भवत् गुप्त अग्नि, (२) दोनों अरणियों के बीच गुप्त अग्नि ।
'स जातो गर्भो असि रोदस्योः '
ऋ. १०.१.२; वाज.सं. ११.४३; तै.सं. ४.१.४.२; ५.१.५.३; मै.सं. २.७.४: ७८.१५; ३.१.५: ७.९; का.सं. १६.४;-१९.५; श.ब्रा. ६ .४.४.२.

रोधचक्रा – (स्त्री) । (१) रोधाः चक्राश्च यस्यां सा नदीः (तटों और भवरों वाली नदी) ।
(२) चक्र अर्थात् कर्तापन का निरोध करती हुई स्तुति ।
'समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः '
ऋ. १.१९०.७

रोधचक्र – (१) इन्द्रिय-संयम करने वाला विद्यार्थी ।

रोधन – (१) रोकने वाला, (२) स्तम्भ करने वाला–सूर्य । दे. ' वनधिति' ।

रोधना – (स्त्री.) । (१) रुकावट, (२) नियम, व्यवस्था, (३) शत्रु को रोकने वाली सेना ।
'विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यम् '
ऋ. २.१३.१०

रोधस्वती – रोधस् + वतुप् + ङीष् = रोधस्वती । अर्थ – (१) तटों वाली नदी (२) समृद्ध एवं चारों ओर घेरों से घिरी नगरी ।

रोधसी – रुध् + असुन् = रोधस् । रोधस् + ङीष् = रोधसी । रोधसी द्यावा पृथिव्यौ विरोधनात् । रोधः कलम् निरुणद्धि स्रोतः (रोध नदी के जल को रोकता है) । कूलम् रुजतेः विपरीतात् (रुज् को विपरीत करने से कूल हुआ है) ।
द्यौ और पृथिवी विशेष या विविध जीवों को सृष्टि में टिकाती है । अतः वे रोधसी हैं । अर्थ रोदसी, द्यौ और पृथिवी । दे. ' रोदसी' ।

रोपणा – (१) मूर्च्छा उत्पन्न करने वाली ।
'यक्ष्मासो रोपणास्तव '
अ. ९.८.१९

रोपणाका – (१) घाव आदि दूर का व्रण भरने वाली रोहिणी नामक ओषधि ।
'रोपणाकासु दध्मसि '
ऋ. १.५०.१२; अ. १.२२.४; तै.ब्रा. ३.७.६.२२; आप.श्रौ.सू. ४. १५.१.
(२) शरीर को पोषण करने वाली लेपन योग्य ओषधि, । दे. 'शुक' ।

रोपी – पीड़ा ।
'शतं रोपीश्च तक्मनः '
अ. ५.३०.१६

रोपुषी – (१) विष हरने वाली ।
'विषस्य रोपुषीणाम् '
ऋ. १.१९१.१३

रोम – (१) ब्रह्मचर्य काल में गृहीत मृगाजिन, (२) कम्बल, (३) रोम से आवृत देह –बन्धन
'तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः '
ऋ. ९.९७.११; साम. २.३७०

रोमण्वत् – रोमन् + वतुप् = रोमण्वत्अर्थ है– (१)

रोआंदार, (२) रोमकूपः । दे. 'हसना' ।

रोमण्वन्तौ भेदौ – (१) रोमयुक्त दो खण्ड अर्थात् युवति का गुप्तांग ।

'शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ'

ऋ. ९.११२.४; नि. ९.२

रोमन् – रोआं ।

रोमश – (१) मूछों वाला मुख, (२) तेजस्वी किरणों से युक्त सूर्य ।

(३) रु (शब्द करना) । रौति शब्दयति इति रोम तेनयुक्त (उपदेशकारी प्रवचन) ।

(४) लूयत इति रोमतत् श्यति नाशयति इति रोमशम् ।

अंधकारों को काटने वाला

(५) विघ्नों या जन्म मरण के बन्धनों को काटने वाला ।

'सेदीशे यस्य रोमशम्'

ऋ. २०.८६.१६; अ. २०.१२६.१६

रोमशा – (१) वह स्त्री जिसके अंगों में रोएं उग आए हों–प्रौढ़ा वयस्का स्त्री । दे. 'उप' ।

'सर्वाहमस्मि रोमशा
गन्धारीणामिवाविका'

ऋ. १.१२६.७

मेरे सर्वांग में रोएं हो गए हैं । जैसे गन्धार देश की भेड़ियों में अविका जाति की भेड़ी को ।

रोरुवत् – रोरूयमाणः (स्तनयित्नु शब्द करता हुआ) ।'रु' (शब्द करना) के यङ् लुङन्त में 'कानच्' प्रयत्न कर 'रोरूयमाण' बना है । वैदिक रूप है – 'रोरुवत्' जो 'शतृ' प्रत्यय जोड़कर बना है ।

'नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि
शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद् वना
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता
यद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि'

ऋ. १.५४.५

हे इन्द्र, जो तू मेघ को मार बार बार स्तनयित्नु शब्द करता हुआ (यत् रोरुवत्) शब्द कारी वायु के ऊपर (श्वसनस्य मूर्धनि) रसों के शोषक (शुष्णस्य चित्) अपनी किरणों से आम्र आदि को मृदु बनाने वाले भगवान् आदित्य को, मण्डल के ऊपर (व्रन्दिनः) जलों को (वना) आवर्जित करता या रोकता है (निवृणक्षि) अतः तू अवश्य ही जल को नीचे बरसा तथा पुनः उसे ऊपर उठा शक्तिमत्ता का परिचय देता है । सायण ने वायु और सूर्य की किरणों से जो वृष्टि का जल पुनः सूर्य के ऊपर जाता है वह क्रिया इन्द्र के द्वारा सम्पन्न होती है–ऐसी व्याख्या की है ।

जिस कारण (यत्) तू प्राचीन हिंसा वाले मन से युक्त हो (प्राचीनेन बर्हणावता मनसा) आज भी ग्रीष्म में (अद्याचित्) अपना कर्म करता है (कृणवः) अतः तुझ से बढ़कर कौन है ? (त्वा परि) ।

दुर्ग ने 'प्राचीनेन' का अर्थ 'तस्मिन् कर्मणि अदीनेन अभिमुखेन' (उस कर्म में अदीन एवं अभिमुख से) किया है ।

'प्राचीनेन बर्हणावता मनसा' का अर्थ विचारणीय है । प्राचीन का अर्थ अन्यत्र भी धन के विशेषण के रूप में किया गया है ।

स्वा. दयानन्द का अर्थ – हे राजन्, जिस प्रकार शब्दकारी आकाश में (श्वसनस्य मूर्धनि) रसों को सुखाने वाले तथा फलादि को पकाकर मृदु करने वाले सूर्य की किरणें अन्धकार को दूर करती हैं (शुष्णस्य व्रन्दिनः) एवं तू ताड़न से दुष्टों को रुलाता हुआ (रोरुवत्) पापान्धकर को दूर करता है (निवृणक्षि) और यतः सर्वदेव सनातन वेद के द्वारा (प्राचीनेन) उदारहृदय से (बर्हणवता मनसा) राज्य करता है (कृणवः) अतः कौन तुझ से बढ़कर है (कः त्वापरि) ।

रोरुवत – युद्ध में रोता कराहता हुआ सैनिक ।

'मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु'

अ. १९.१०.२६

रोष् – घात करना, भंग करना ।

'सो अस्य कामं विधतो न रोषति'

ऋ. ८.९९.४; अ. २०.५८.२

वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भीड़ की कामना को भग्न नहीं करता ।

रोह – रुह् + अच् = रोह । अर्थ– (१) जन्म ।

'स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु'

अ. १३.१.१३.

(२) उन्नत पद ।

'तेन रोहमायन्नुपमेध्यासः'

अ. ४.१४.१; वाज.सं. १३.५१; मै.सं. २.७.१७;

१०३.३; का.सं. १६.१७; श.ब्रा. ७.५.१.३६

रोहणः – (१) आकाश में उदय होने वाला सूर्य । दे. 'स्वश्चन्द्र'

रोहिणी – टूटे फटे अंगों की चिकित्सा के लिए एक ओषधि ।
'रोहण्यसि रोहणी'
अ. ४.१२.१.

रोहिच्छयावा – रोहित् + श्यावा । (१) लाल और नीली अग्नि ज्वाला, (२) लाल पोशाक वाली और श्याम वर्ण के अस्त्र शस्त्रों युक्त सेना । दे. 'द्युक्षा' ।

रोहिणी – (१) उन्नति शील प्रकृति या प्रजा ।
'अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य'
अ. १३.१.२२.
(२) लाल रंग की गण्डमाला ।
'कृष्णैका रोहिणी द्वे'
अ. ६.८३.२
(३) प्राणों का परिवर्धन करने वाली इड़ा नाड़ी, (४) उषा ।
(५) रक्त वर्ण की गौ, (६) उड़ाने वाली औषधि ।
'त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च'
ऋ. ८.९३.१३; आ.सं. २.१.
(७) रोहिणी नक्षत्र ।
'सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी च'
अ. १९.७.२.
(८) बढ़ने वाली लता, (९) प्रजा, (१०) सन्तति ।
'आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः'
पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु'
ऋ. १.६२.९
सूर्य कच्ची कोमल लताओं में पकने योग्य रस को प्रदान करता है और सब रसों को आकर्षण करने वाली गहरे रंग की लताओं में (रुशत् रोहिणीषु) अतिदीप्ति कारक रस प्रदान करता है ।

रोहित् – (१) पुरुष का संग तज कर पुत्र सन्तानादि से फूलने फलने वाली लता स्वभाव की स्त्री-मृगी ।
'रोहित्कुण्ड्णाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां'
वाज.सं. २४.३७; तै.सं. ५.५.१६.१; मै.सं. ३.१४.१८; १७६.७
(२) मृग, (३) वृद्धिशील प्रजा ।
'शार्दूलाय रोहित्'
वज.सं. २४.३०; मै.सं. ३.१४.११: १७४.८

रोहित – (१) लालरंग की पोशाक में सजा हुआ राजा, (२) समस्त संसार का बीज वपन करने वाला रजोभाव से युक्त उत्पादक परमात्मा, (३) आत्मा, (४) सर्वोत्पादक सूर्य ।
'यो रोहितो विश्वमिदं जजान'
अ. १३.१.१; तै.ब्रा. २.५.२.१
'आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह'
अ. १३.१.१५.
(५) रोहिता नामक मृग ।
'क्रमस्वर्श इव रोहितम्'
अ. ४.४.७; ६.१०१.३
(६) वृद्धिशील , (७) तेजस्वी, (८) शरीर में उत्पन्न होने वाली जीव ।
'तुरीयमिद् रोहितस्य
पाकस्थामानम्'
ऋ. ८.३.२४.
(८) वृक्षारोपण करने वाला ।
'नमो रोहिताय स्थपतये'
वाज.सं. १६.४९; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३: १२२.१४; का. सं. १७.१२.

रोहिता – (१) रक्तवर्ण तेजस्वी प्राण, अपान वायु ।
'अत्या वृधस्रू रोहिता घृतस्रू'
ऋ. ४.२.३
(२) लाल रंग के घोड़ो के जोड़े, (३) अग्नि की लाल किरणें
'श्यावा रथं वहतो रोहिता वा'
ऋ. २.१०.२
(४) एक दूसरे के प्रति अनुराग से रक्त, (५) सन्तापादि से वृद्धि को प्राप्त स्त्री पुरुष ।
'घृतस्रुवा रोहिता धुरि धिष्व'
ऋ. ३.६.६.

रोहिताङ्गिः – लाल वर्ण का ।
'अग्नयेऽनीकवते रोहिताङ्गिरनड्वान्'
वाज.सं. २९.५९; तै.सं. ५.५.२४.१

रोहिताहरी – (१) लाल अश्व, (२) अन्नादि से पुष्ट प्राण अपान, (३) वृद्धिशील अनुरक्त स्त्री पुरुष ।
'हरी ऋक्षस्य सूनवि

आश्वमेधस्य रोहिता'
ऋ. ८.६८.१५

रोहिदश्व – (१) लालवर्ण की ज्वाला वाला अग्नि, (२) रक्त वर्ण के वेगवान् घोड़ो वाला या अग्नि आदि साधनों वाला सूर्य ।
'रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा'
ऋ. ४.१.८.
(३) होरित् + अश्व । रक्तवर्ण का अश्व अर्थात् व्यापक तेज वाला –अग्नि ।
'रोहिदश्व शुचिव्रत'
ऋ. ८.४३.१६
(४) रोहिता अश्वा वेगादयो गणा यस्य (वेग आदि गुण युक्त या रोहित अश्व वाला राजा), (५) अग्नि का विशेषण ।
'तान् रोहिदश्व गिर्वणः
त्रयस्त्रिंशतमा वह'
ऋ. १.४५.२; कौ.ब्रा. २०.४
(६) लाल अश्वों का स्वामी ।
'ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुः'
ऋ. १०.७.४

रौहिण – (१) संसार, (२) क्रम से अपनी जड़ फैलाने वाला शत्रु (३) रोहणशील मेघ–दया.
'यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुः'
ऋ. २.१२.१२; अ. २०.३४.१३.
(४) वट वृक्ष, (५) संसार रूप वट वृक्ष (६) रोहिण, अर्थात् वट वृक्ष के समान दृढ़ मूलो पर स्थिर राजा ।
'त्वं रौहिणं व्यास्यः'
अ. २०.१२८.१३; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.१

ल

लक्ष – लक्ष्य ।
'श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमादत्'
अ. २०.३४.४.

लक्षण – लक्ष (दर्शन और अंकन अर्थ में) + ल्युट् = लक्षण । जो देखा या अंकित किया जाय वह लक्षण है ।

लक्ष्म – लक्ष + मनिन् = लक्ष्म । अर्थ – (१) चिह्न, (२) नाम
'अकर्तामश्विना लक्ष्म
तदस्तु प्रजया बहु'
अ. ६.१४१.२
'कृणुतं लक्ष्माश्विना'
अ. ६.१४१.३

लक्ष्मण्य – राजमुद्रा चिह्न से अंकित ।
'लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः'
ऋ. ५.३३.१०

लक्ष्मी – (१) सब के बीच में परमेश्वर को व्यापक और शक्तिमान् दिखाने वाली शक्ति ।
'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'
वाज.सं. ३१.२२.
(२) उत्तम लक्षणों वाली ।
'निर्लक्षम्यं ललाभ्यम्'
अ. १.१८.१
(३) लक्ष् (दर्शन और अंकन अर्थों में) + ल्युट् = लक्षण । लक्ष्मीः लाभात् वा लक्षणात् वा लप्स्यनात् वा, लाञ्छनात् वा लषतेर्वास्यात्, प्रेप्सा कर्मणे लग्यतेर्वा स्यात, आश्लेष कर्मणः लज्जतेर्वा स्यात्, श्लाघा कर्मणः–यास्क ।
लक्ष्मी शब्द (१) लक्ष (देखना) धातु से बना है । क्योंकि लक्ष्मीवान् की ओर सभी देखते हैं, या (२) लभ् धातु से बना है क्योंकि लक्ष्मीवान् सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं या (३) लाञ्छन से बना है क्योंकि सभी लक्ष्मी को अंकित या वाञ्छित करते हैं या (४) अभिलाषार्थक लष् धातु से बना है क्योंकि लक्ष्मी की अभिलाषा सभी करते हैं, या (५) लग् आश्लेषणार्थक धातु से बना है, क्योंकि लक्ष्मी का सभी अलिंगन करते हैं, या (६) लज्ज धातु से बना है, जिस का अर्थ अश्लाघा या अपमान है, क्योंकि लक्ष्मीवान् पुरुष अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते (७) स्वभाव दर्शाने वाली प्रवृत्ति ।
'रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः'
अ. ७.११५.४
व्युत्पत्ति– (क) लभ् + ई = लक्ष्मी (लभ् का लक्ष् मुट्) (ख) लक्ष् + ई = लक्ष्मी (मुट्) (ग) लाञ्छ + ई = लक्ष्मी (लक्ष् आदेश और मुट्) । (घ) लष् + ई = लक्ष्मी (ष से कुट् मुट्) (ङ) लग् + ई (कर्त्ता) = लक्ष्मी (श्यन्) (च) लज्ज् + ई = लक्ष्मी (लज्ज् का लक्ष्),(छ) लक्ष्म + ङीष् = लक्ष्मी ।

अर्थ - (१) सम्पत्ति, (२) लक्ष्मी नाम्नी देवता,
'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि'
ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०.
यह कल्याण दायिनी लक्ष्मी वचन में ही बसती है ।
(३) प्रज्ञा,
आधुनिक अर्थ - सौभाग्य, समृद्धि, धन, सफलता, श्री, सौन्दर्य, कान्ति धन की अधिष्ठात्री देवी राजशक्ति सामाज्य , वीरपत्नी ।

लग - संग तथा गति अर्थ में प्रयुक्त धातु । दे. 'लगते'

लगते - लग (संग अर्थ में गति अर्थ में) के लट् प्र.पु.ए.व. में 'लगति' रूप भी होता है ।

लङ्ग - गत्यर्थक धातु है ।

लङ्गति - लगि (गत्यर्थक) धातु के प्र.पु.ए.व. में रूप ।

लज्ज, लज्जते - अश्लाघा अर्थ में 'लज्ज' धातु आया है । 'लज्जते ' लट् के प्र.पु.ए.व. में होता है । अर्थ है-लजाता है, श्लाघा या प्रशंसा नहीं करता है ।

लप्स्य - पाने की इच्छा करना, उत्कण्ठा करना । लट् प्र.पु. ए.व.में 'लप्स्यति' होता है । दे. 'लक्ष्मीं' ।

लपित - व्यर्थ झूठमूठ (२) चुगलखोर, (३) व्यर्थ बकवास ।
'ये मा क्रोधयन्ति लपितः'
अ. ४.३६.९

लम्ब - लटकना । लह् प्र.पु.ए.व.में 'लम्बते' (लटकता है) होता है । लम्ब धातु से भी 'लाङ्गूल' शब्द बना है ।

लम्बचूड़ - लम्बते चूड़ा यस्य स लम्ब चूडः । लम्बी शिखा वाला ।

लयः - कुषि आदि की बाधाओं का विनाश ।
'सीरं च मे लयश्च मे'
वाज.सं. १८.७; तै.सं. ४.७.३.२; मै.सं. २.११.४: १४१.१५; का.सं. १८.८.

ललाट - माथा,
'मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटम्'
अ. १०.२.८

ललाम - सबसे सुन्दर ।

ललामगुः - (१) सुन्दर उत्तम वाणी से युक्त विद्वान्, (२) सुन्दर गति वाला ।
'यद् देवासो ललामगुम्'
अ. २०.१३६.४; वाज.सं. २३.२९; श.ब्रा. १३.५.२.७; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.१; १६.४.६.
(३) ललाम सुख के लिए जाने और परिश्रम करने वाला-उवट (ललामं सुखं कर्तुम् गच्छति इति ललामगुः) ।

ललामी - (१) शिरोवत् उपरिभागः प्रशस्तो यस्याः सा (जिसका ऊपरी भाग सिर के समान प्रशस्त हो)- दया.
(२) उत्तम व्यापक साधनों से युक्त, (३) पौरुष युक्त वीरपुरुषों से बनी सेना दे. । 'द्युक्ष' ।
'रोहिच्छ्या सुमदंशुर्ललामीः'
ऋ. १.१००.१६
(४) स्त्रियों में रत्नभूत, सुन्दर
'निर्लक्ष्म्यं ललाम्यम्'
अ. १.१८.१

लब - लवा पक्षी । lark
'सोमाय लबानलभते'
वाज.सं. २४.२४; मै.सं. ३.१४.५: १७३.७

लवइन्द्र - (१) ऋग्वेद के दशममण्डल के ११९ वें सूक्त का देवता (१) जीवात्मा - ज.दे.श. ।
(३) लव रूप में स्थित इन्द्र -सा.

लषति - अभिलषति (अभिलाषा करता है) । दे. 'लक्ष्मी' ।

लाक्षा - (१) सिलाची, (२) लाह नामक ओषधि पीले वर्ण और पार्श्वों पर सूक्ष्म रोम वाली होती है तथा वट, पीपल पाकड़ पलाश आदि पेड़ों पर पाई जाती है ।
'अपामसि स्वसा लाक्षे'
अ. ५.५.७

लांगन - (१) हल, ।
'शुनं कृषतु लांगलम्'
ऋ. ४.५७.४; अ. ३.१७.६; तै.आ. ६.६.२
(२) अन्न का पालक, (३) खेत में कुटिलता से चलने वाला हल ।
'लाङ्गलं पवीरवत्'
अ. ३.१७.३; वाज.सं. १२.७१; तै.सं. ४.२.५.६; मै.सं. २.७.१२: ९१.१७;का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.११;वै.सू. २८.३१; आप. श्रौ.सू. १६.१९.२.
(४) लगि + कल = लाङ्गल (जो चलाया जाता

है) । लगि गत्यर्थक है ।
लग् + अलच् = लाङ्गल । लव + अलच् = लाङ्गल (पृषोदरादिवत्) । अर्थ है वृक (वृको लाङ्गलः भवति) । (संगति), लविलम्ब (लटकना) धातुओं से भी लाङ्गल शब्द बनता है । 'लाङ्गलं लङ्गतेः ' ।
लांगूलं लगतेः लङ्गतेः लम्बतेः वा – यास्क
लांगूल (पूंछ) की तरह हल भी पीछे खींचा जाता है । (५) पूंछ । पूंछ पीठ के पीछे लटकती रहती है ।

लाज – लज् या लजि (भर्जन) + घञ् = लाज । लाज् धातु भी भर्जन और भर्त्सन अर्थ में आया है। अतः लाज् + घञ् = लाज । लाजा लाजतेः । अर्थ है–भृष्ट धान्य, भुंजा हुआ धान्य, लावा । अमरकोष में भी कहा है–
'लाजाः पुं भूम्नि चाक्षताः '
आधुनिक अर्थ – लाज का अर्थ भीगा अन्न और लाजा का अर्थ भूंजा अन्न है ।

लाजाः – दीप्त्यर्थक राज् धातु से सम्पन्न । अर्थ – (१) प्रफुल्लित व्रीहि, (२) प्रसन्न प्रजाएं । (३) समृद्ध विभूतियाँ, (४) लावा ।
'लाजाः सोमांशवो मधु '
वाज.सं. १९.१३.

लाजी – लाजिन् शाचिन् इत्येतत्, लाजाः दीप्रयो अस्य सन्ति इति लाजी । इसमें दीप्ति है, अतः यह लाजी है । अर्थ – (१) राजी, (२) प्रकाशों से प्रकाशवान् –परमेश्वर ।
'भूर्भुवः स्वर्लाजीन् '
वाज.सं. २३.८

लाञ्छन – लाञ्छ + ल्युट् = लाञ्छन । लाञ्छन से ही लक्ष्मी शब्द बना है । दे. 'लक्ष्मी' ।

लायः – (१) लक्ष्य, (२) सदा ग्रहण करने योग्य ।
'अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् '
ऋ. १०.४२.१; अ. २०.८९.१; वै.सू. ३३.१९.
(३) हृदय को लगाने वाला बाण ।

लिबुजा – लि + भज् + क्विन् = लिभज् , लिभज् + टाप् = लिभजा = लिबुजा । अर्थ– लता । दे. **'यमी'** ।
'अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां
परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् '
ऋ. १०.१०.१४
हे यमी, तू किसी अन्य वर को ढूंढ़ और उससे योगकर, जैसे लता वृक्ष से मिली रहती है । लता वृक्ष में लिपटती छिपती और बैठती जाती है ।
लिबुजा व्रततिः भवति लीबते विभजन्ति इति (लिबुजा लीन एवं विभक्त होती है अतः लिबुजा का अर्थ व्रतति है) ।
'लिभजा' से 'लिबुजा' निपातन से हुआ है ।

लोक – (१) दर्शनीय, (२) उत्तम उपकार, (३) उत्तम जन्म ।
'कर्त्ता सुदासे अह वा उ लोकम् '
ऋ. ७.२०.२
(४) आदित्य की आत्मा, (५) शरीर । दे. 'अप्रमादम् ' ।
'सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः '
वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७
सूर्य के अस्त हो जाने पर उनकी सात रश्मियाँ आदित्य की आत्मा में लीन हो जाती है ।
अथवा
जीव के सो जाने पर इन्द्रियाँ शरीर में सो जाती हैं ।

लोककृत् – (१) प्रजाओं की व्यवस्था करने वाला, (२) लोकसंग्रही ।
'लोककृतः पथिकृतो यजामहे '
अ. १८.३.२५–३५; १८.४.१६–२४.
(३) लोककर्त्ता या स्थानकर्ता–इन्द्र परमेश्वर । दे. 'चित् ' ।
'अभीके चिदु लोककृत्
सङ्गे समत्सु वृत्रहा '
ऋ. १०.१३३.१; अ. २०.९५.२; साम. २.११५१; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.४; १८९.८; तै.ब्रा. २.५.८.२.
सामने आए संग्राम काल में (अभीके सङ्गे) तथा संग्रामों में (समत्सु) अभिपूजित लोककर्त्ता या स्थान कर्त्ता इन्द्र (लोककृत् चित्) वृत्र या विघ्नों का वध या नाश करने वाला होगा (वृत्रहा उ) ।
(४) साक्षात् करने वाला (५) डरने वाला ।

लोककृत्नु – (१) लोकों का रचयिता ।
'उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् '
ऋ. ८.१५.४; अ. २०.६१.१; साम. १.३८३; २.२३०

लोकसनि – लोक या आत्मा को बल, कान्ति और तेज प्रदान करने वाला ।
'पशुसनि लोकसन्यभयसनि'
वाज.सं. १९.४८; मै.सं. ३.११.१०: १५६.१७; का.सं. ३८.२; श. ब्रा. १२.८.१.२२; तै.ब्रा. २.६.३.५.

लोकसंमित – (१) लोक से समान जाना गया– आत्मा ।
'अविं लोकेन संमितम्'
अ. ३.२९.३–५

लोग – (१) लोक समाज ।
'इमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्'
ऋ. १०.१८.१३; अ. १८.३.५२; तै.आ. ६.७.१.
(२) लोक, जनसमूह ।

लोध – (१) लोब्धा, लोभ के वश में हुआ , लुब्ध ।
'लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः'
ऋ. ३.५३.२३; नि. ४.१४.
(२) लुभ् + क्त = लब्ध = लोध (व का लोप, उ का ओ– पृषोदरादिशब्दों के समान) । दे. 'पशु' ।

लोप्य – (१) घास आदि काटने वाला ।
'नमो लोप्याय चोलप्याय च'
वाज.सं. १६.४५; तै.स. ४.५.९.१; मै.सं. २.९.८: १२६.१३; का. सं. १७.१५.

लोपामुद्रा – (१) इच्छा के कारण अपने को छिपाने की चेष्टा में ही सुख प्रतीत करने वाली स्त्री, (२) लोप + आ + मुद् + रा = लोपामुद्रा । अर्थ–छिपे स्थान पर प्रियतम से अति प्रमोद पूर्वक रमण करने के लिए उत्सुक स्त्री (३) एक वेद कालीन स्त्री, (४) लोप एव समन्तात् प्रत्ययकारिणी यस्याःसा.–दया. ।
'लोपामुद्रा वृषणं नीरिणाति'
ऋ. १.१७९.४
(५) ब्रह्मचर्य की मर्यादा तोड़ने वाली (६) एक अप्सरा जिससे अगस्त्य मोहित हुए थे । (७) अगस्त्य की पत्नी । दे. 'आगत्'

लोमशवक्षणा – (१) पार्श्वों पर सूक्ष्म रोम वाली – (२) सिलाची, लाक्षा ओषधि ।
'शुष्मे लोमशवक्षणे'
अ. ५.५.७

लोपाश – (१) लो + पाश = लोहपाश, (२) लोहे के बने पाश के समान दृढ़
'लोपाश आश्विनः'
'वाज.सं. २४.३६; मै.सं. ३.१४.१७: १७६.३
(३) रोयाशः (४) तृणचारीपशु ।
'लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः'
ऋ. १०.२८.४; नि. ५.३

लोमन् – लूञ् (छेदना) + मनिन् = लोमन् । यत् लूयते तत् लोम (जो लून किया जाता है वह लोम है) ।
अथवा ली (लीन होना) + मनिन् = लोमन् । लोम शरीर में लीन रहता है ।

लोमवत ह्रद् – (१) शैवाल युक्त तालाब के समान सलिलमय प्रकृति तत्व ।
'अन्तर्लोमवति ह्रदे'
अ. २०.१३३.६; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.६.

लोष्ट – रुज् (भङ्ग करना) धातु के अविपर्यय से तन् प्रत्यय कर लोष्ट बना ।
कूलं रुजतेः विपरीतात् लोष्टो अविपर्ययात् (कूलशब्द रूज् धातु को उलट कर और लोष्ट 'रुज्' का विपर्यय किए बिना बनाया गया है) ।
रुज् + तन् = लोष्ट । लोष्ट भग्नदिया जाता है (भज्यते हि. सः) यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसक दोनों हैं ।
अमरकोष में इसे नपुंसक कहा गया है–
'लोष्टानि लोष्टकः पुंसि'
परन्तु वोपालित ने –
'लेष्टुः शण्ढेऽपि लोष्टः स्यात्' में इसे पुल्लिंग माना है ।
अर्थ– (१) मिट्टी की ढेर या ढेला,

लोह – (१) लोहा, (२) जन्मलाभ, संसार में जन्म लेना ।
'उष्णे लोहे न लिप्सेथाः'
अ. २०.१३४.५
(३) लाल लोहा, कान्तिसार आदि ।
'श्यामञ्च मे लोहञ्च मे'
वाज.सं. १८.१३; तै.सं. ४.७.५.१; मै.सं. २.११.५: १४२.७; का. सं. १८.१०.

लोहित – (१) रुधिर विकार से उत्पन्न लाल चकत्तों वाला रोग ।
'लोहितस्य वनस्पते'
अ. ६.१२७.१

लोहितक्षीरा – (१) रोग के कारण रुधिर के समान दूध देने वाली गौ
'शं गावो लोहितक्षीराः'
अ. १९.९.८

लोहितवासस् – (१) जिसका वस्त्र लाल हो ।. 'जग्मयः' का विशेषण । दे. 'अभ्राता' ।
'अमूर्या यान्ति जामयः
हिरा लोहितवाससः'
अ. १.१७.१; नि. ३.४.
(२) जिसमें रक्त का निवास हो ऐसी नाड़ी, (३) रजस्वला स्त्री ।

लोहितास्य – रुधिर से मुंह लाल किए हुआ ।
'दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्'
अ. ८.६.१२

लोहिताहिः – (१) लोहित अर्थात् लोहादि के बने पदार्थों को आघात करने वाला लोहकार–लोहार (२) लाल सर्प जो गृह निर्माण में चतुर होता है ।
'कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करं सादस्ते त्वाष्ट्राः'
वाज.सं. २४.३१; मै.सं. ३.१४.१२: १७५.१

लोहितोर्णी – लाल ऊन पहनने वाली ।
'फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षीताः सारस्वत्यः'
वाज.सं. २४.४; तै.सं. ५.६.१२.१; मै.सं. ३.१३.५:१६९.८

लोहिनी – लालवर्ण की गण्ड माला ।
'अपचितां लोहिनीनाम्'
अ. ७.७४.१

लौक्याः – (१) समस्त लोकों में विद्यमान प्रजाएं
'लौक्या उच्छिष्ट अयत्ताः'
अ. ११.७.३
(२) लोक में विद्यमान प्राणी ।
'लौक्याश्च मासाश्च'
अ. १५.६.१७

व

वक्त्व – (१) अध्यापन या प्रवचन करने योग्य उपदेश वाक्य, (२) उपदेश करने योग्य शिष्य ।
'विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्'
ऋ. ३.२६.९

वक्तुः – (१) गर्वित ।
'मा नो निदे च वक्तवे'
ऋ. ७.३१.५; अ. २०.१८.५.
(२) बकवास करने वाला, (३) अपशब्द भाषी ।

वक्मन् – वच् + मनिन् = वक्मन् । अर्थ–(१) प्रवचन, उपदेश ।
'स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मनि'
ऋ. १.१३२.२

वक्मराजसत्यः – (१) वचन में सदा सत्य से चमकने वाला, (२) सदा सत्यभाषी ।
'ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः'
ऋ. ६.५१.१०

वक्म्यः – वक्तुं योग्यः (वर्णन करने योग्य) ।
'प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषाम्'
ऋ. १.१६७.७

वंक्रि – (१) पसली की हड्डी, (२) कुटिल गति ।
'चतुस्त्रिंशद वाजिनो देवबन्धोः
वंक्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति'
ऋ. १.१६२.१८; वाज.सं. २५.४१; तै.सं. ४.६.९.३

वक्वः – वक्ता
'ऊर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः'
ऋ. १०.१४८.५

वक्वन् – वक्ता । दे. 'अनाकृत' ।
'इन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः'
६.२२.५; अ. २०.३६.५

वक्वरी – (१) वच् + वरी । ज्ञानोपदेश करने वाली वाणी । दे. 'वक्वन' ।
(२) द्वि.व.। प्रशंसिते । सूर्यमण्डल तथा भूमण्डल–दया. ।
(३) एक वचन में रूप है–'वक्वरि' । अर्थ है बकने वाला ।
बकरी शब्द का मूल सम्भवतः वकरी ही हो ।
'हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते'
ऋ. १.१४४.६

वक्वा – (१) वक्रगति से जाने वाला । (२) व्यूहादि से वक्रगति से चलने वाली सेना, (३) वक्र, सुन्दरगति वाली स्त्री,
(४) मधुरवचन बोलने वाली ।
'प्राग्रुवो नभन्वो न वक्वाः'
ऋ. ४.१९.७

वक्षणा – (१) जगत् को धारण करने वाली दिशा,

(२) वहन और धारण करने में समर्थ सेना (३) वचन योग्य वाणी ।
'महि ज्योतिर्निहितं वक्षणासु'
ऋ. ३.३०.१४
(४) नदी,
(५) जल बहाने की नाली ।
'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम्'
यानि चकार प्रथमानि वज्री
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द
प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्'
ऋ. १.३२.१; अ. २.५.५; आ.सं. ३.११; मै.सं. ४.१४.१३: २३७.८; तै.ब्रा. २.५.४.२.
वज्री इन्द्र ने मुख्य कर्मों को किया । उन कर्मों का मैं प्रकर्ष से वर्णन करता हूँ । मेघ को हत किया (अहिः अहन्) । तत्पश्चात् (अनु) जलों को बहाया (अपः ततर्द) तथा पर्वतों की नदियों को (वक्षणाः) प्रकर्ष से काटा (प्राभिनत्) ।
स्वा. दयानन्द का अर्थ – मैं विदारक सूर्य की तरह शत्रुमर्दन राजा के पराक्रमों को कहता हूँ। किरणों के द्वारा सूर्य ने जिन कर्मों को करता या किया है उसी प्रकार वज्रधारी राजा को भी राजधर्म के मुख्य कर्मों को करना चाहिए । सूर्य मेघ का दमन करता, जल बरसाता तथा दूर दूर तक फैले प्रवाह को पिघलाता है । उसी प्रकार राजा भी शत्रुओं का दमन कर शान्ति, सुख और लक्ष्मी की वर्षा करें ।
(६) कटि या कुक्षि के भाग
'आ ते ददे वक्षणाभ्यः'
अ. ७.११४.१

वक्षणेस्था – (१) बीच में स्थित, । (२) आज्ञा और राज्य कार्य को धारण करने के कार्य में स्थित ।
'सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः'
ऋ. ५.१९.५

वक्षति – वहतु (पहुंचे) । दे. 'जूर्णि' ।
क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति
ऋ. १.१२९.८; नि. ६.४.
शत्रुओं द्वारा छोड़ी शक्ति या भेजी सेना हमारे पास न पहुंचे (न वक्षति) ।

वक्षथ – (१) कार्य भार को उठाने या धारण करने का सामर्थ्य
'अनूनेन बृहता वक्षथेन'
ऋ. ४.५.१
(२) रोष, तेज, (३) वचनोपदेश ।
'सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषाम्'
ऋ. ७.३३.८; नि. ११.२०
(४) ज्योति, (५) स्तुति कर्त्तादि. 'पट' ।
(५) धारण करने, ढोने का सामर्थ्य ।
'चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथः'
ऋ. १०.११५.१; साम. १.६४; कौ.ब्रा. २१.३

वक्षस् – वह् (सोना) + असुन् = वक्षस् (सक् का आगम, ह् का ज् और पुनः ष) ।
अथवा–वक्ष् (संघात अर्थ में) + असुन् = वक्षस् । (१) अस्थि पञ्जर का संघात या समूह, (२) छाती । वक्ष काम में ही ऊढ़ अर्थात् प्रवेशित है (इदमपि इतरत् वक्षः एतस्मादेव अध्यूढं काये) ।
(३) प्रकाश–दया. । सायण ने इसका अर्थ छाती ही किया है । दे. 'अदमन्' ।
'उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षः'
ऋ. १.१२४.४; नि. ४.१६.
उषा आदित्य से छाती के समान या आदित्य के प्रकाश से अश्लिष्ट दीख पड़ती है ।

वक्ष्यन्ती – वच् + स्य (लृट् में) + शतृ + ङीष् = वक्ष्यन्ती । कथ्यिन्ती ।
अर्थ – कुछ कहती हुई । दे. 'अधिधन्वन्'
'वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णम्'
ऋ. ६.७५.३; वाज.सं. २९.४०; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१४; का.सं. (अश्व). ६.१; नि. ९.१८

वक्षि – वह् (ढोना, खींचना) के लेट् म.पु.ए.व.में 'सिप्' कर वक्षि रूप हुआ है । अर्थ है खींच ले चल, ढो । दे. 'रजिष्ट' ।

वक्षी – (१) ज्वाला, (२) सेना । दे. 'वक्षणेस्था'
'सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः'
ऋ. ५.१९.५

वग्नु – (१) वचन । उपदेश ।
'वग्नुमियर्ति यं विदे'
ऋ. ९.१४.६
(२) वच् + नु । शब्द, मेढ़क की बोली, (३) उत्तम उपदेश ।
'मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति'
ऋ. ७.१०३.२

उत्तम उपदेश के अर्थ में -
'अर्वाचीनं सुते मनः
ग्रावा कृणोतु वग्नुना'
ऋ. १.८४.३; साम. २.३७९; वाज.सं. ८.३३; तै.सं. १.४.३७.१; का .सं. ३७.९; श.ब्रा. ४.५.३.९.
उत्तम वचनोपदेशों को देने वाला वाग्मी पुरुष (ग्रावा) उत्तम वचनोपदेशों से (वग्नुना) तेरे चित्त को अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य कार्य की ओर आकर्षित करें ।

वग्वन - वाणी द्वारा सेवन करने योग्य सुख ।
'ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः'
ऋ. १०.३२.२

वग्वनु - वच् + वनु = वग्वनु (१) मुझे देवताओं को दो ऐसी वाणी-सा. (२) वेदवाणी से संभजनीय ज्ञान- ज.दे.श. ।
दे. 'रथर्यति' ।
'आविष्कृणोति वग्वनुम्'
ऋ. ९.३.५; साम. २.६०९
सोमरस यज्ञ में आकरः 'मुझे देवताओं को दो' ऐसी वाणी का प्रकाश करता है (वग्वनुम् आविष्कृणोति)- सा. ।
तेजस्वी शान्त विद्वान् (पवमानः देवः) वेदवाणी से संभजनीय ज्ञान को प्राप्त करता है (वग्वनुम् आविष्कृणोति) - ज.दे. श. ।

वध - टिड्डी आदि जन्तु ।
'यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः'
अ. ९.२.२२

वधापति - कृषि नाशक जन्तुओं का पति ।
'तदपिते वधापते'
अ. ६.५०.३

वंक्रि - अंग ।
'वङ्क्रीरश्वस्यं स्वधितिः समेति'
ऋ. १.१६२.१८; वाज.सं. २५.४१; तै.सं. ४.६.९.३.

वङ्कु - (१) धन की कामना करने वाला । 'वङ्कु' शब्द धन के अर्थ में आया है । अंग्रेजी के **bank** शब्द से 'वङ्कु' का साम्य विचारणीय है ।
'यया वाणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्'
ऋ. ५.४५.६
(२) कुटिल गतिवाला ।
(३) अति वेगवान् ।
(४) इन्द्र का विशेषण ।
'इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति'
ऋ. १.५१.११
अतिवेगवान् इन्द्र, सभापति या राजमन्त्री (वंकू इन्द्रः) अति कुटिल मार्गों से दौड़ने वाले अश्वों पर तथा कुटिल चालों के चलने वाले शत्रुओं पर भी अपना अधिकार जमा लेता हैं । (वङ्कुतरा अधितिष्ठति)
(४) कुटिल, टेढ़ा, शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाला, (६) रुद्र का विशेषण । दे. 'यज्ञसाध' ।

वङ्कुतरा - द्वि.व. । (१) कुटिल मार्ग पर चलने वाले अश्व । दे. 'वङ्कु' ।

वङ्कू - द्वि.व. । ए.व. में 'वङ्कु' । अर्थ (१) वक्रगति से जाने वाले (२) वक्र गति से देह में व्यापक प्राण अपान वायु ।
'वङ्कू वातस्य पर्णिना'
ऋ. ८.१.११

वङ्गृद - (१) जाने के मार्गों या मर्यादाओं का विनाशक ।
(२) विषादि देने वाला, (३) दुष्ट व्यवहार का उपदेश देने वाला - दया. ।
(३) टेढ़ी चालों, कुटिल व्यवहारों को बतलाने या चलने वाला ।
'त्वं शतावङ्गृदस्याभिनत् पुरः
अनानुदः परिषूता ऋजिश्वना'
ऋ. १.५३.८; अ. २०.२१.८
तू टेढ़ी चालों, कुटिल व्यवहारों को बतलाने या चलाने वाले (वङ्गृदस्य) और अपने अनुकूल उचित पदाधिकारों को न देने वाले दुष्ट शत्रु पुरुष के (अनानुदः) सैकड़ो दुर्गों को (शतापुरः) रुधे हुए कुत्ते के समान आज्ञाकारी, वशवर्त्ती सेना बल द्वारा (ऋजिश्वना) घेर कर तोड़ डाल (अभिनत्) और अधीन पुरुषों से प्राप्त पदार्थ की रक्षा कर (परिषूता) ।

वच् - वाच्, वाणी । दे. 'रथर्यति' ।

वचस् - (१) वच् + असुन् = वचस् । अर्थ - जो बोला जाय, वचन, बात । दे. 'अनस्' ।
'आ ते कारो श्रृणवामा वचांसि'
ऋ. ३.३३.१०; नि. २.२७.
(२) स्तुति । दे. 'अर्वन'
'पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि'

ऋ. ४.३८.१०; तै.सं. १.५.११.४; नि. १०.३१.
वह दधिक्रा देव या मेघ इन स्तुतियों को मधु अर्थात् जल से युक्त करे ।
विश्वे देवासः श्रृणवन् वचांसि मे
ऋ. १०.६५.१३; नि. १२.३०

वचस्यते – स्तुति की जाती है । दे. 'नमस्यु' ।

वचस्या – (१) वचन, वेदवाणी और गुरु प्रवचन के योग्य
(२) अध्ययन, अध्यापन और ऊहापोह आदि क्रिया ।
'उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्याम्'
ऋ. २.३५.१; मै.सं. ४.१२.४: १८७.१७; का.सं. १२.१५; आप.श्रौ.सू. १६.७.४.
(३) शब्द करने या गरजने वाली, (४) विद्युत गर्जना ।
'अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या'
ऋ. २.१०.६
(५) वच् + असुन् = वचस्, तृतीया ए.व. में 'वचसा'- वचस्या ।अर्थ–वचन से, स्तुति से ।
(६) संज्ञा होने पर अर्थ है–स्तुति । दे. 'अभ्यानट् 'परिपति' ।
'पथस्पथः परिपतिं वचस्या
कामेन कृतो अभ्यानडर्कम्'
ऋ. ६.४९.८; वाज.सं. ३४.४२; तै.सं. १.१.१४.२; नि. १२.१८.

वचस्यु – (१) शास्त्रोपदेश का इच्छुक, (२) ज्ञानोपदेश के वचनों की इच्छा करने वाला ।
'अददा अर्भां महते वचस्यवे
कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते'
ऋ. १.५१.१३
हे राजन्, जैसे बड़े गुणों से युक्त एवं ज्ञानोपदेश के वचनों की इच्छा करने वाले (वचस्यवे) उत्तम सिद्ध हस्तांगुलियों वाले (कक्षीवते) प्रवीण क्रिया, कुशल शिष्य को (सुन्वते) । आचार्य थोड़ी ही विवेचना कारिणी अथवा छेदन भेदन करने की शिल्पविद्या का (वृचयाम्) उपदेश देता है (अददा) ।
(३) उत्तम वाणी बोलने वाला (४) वेदवाणी का इच्छुक ।
'ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे'
ऋ. १.१८२.३

वच्य– धा. । अभ्यास करना,
'आ वच्यस्व महिप्सरः'
ऋ. ९.२.२; साम. २.३८८.

वच्यमान– (१) कहा गया, (२) प्रेरित, (३) उपदेश किया गया ।
'प्र कारवो मनना वच्यमानाः'
ऋ. ३.६.१; मै.सं. ४.१४.३: २१८.११; कौ.ब्रा. १२.७; तै.ब्रा. २.८.२.५; आश्व.श्रौ.सू. ३.७.५.

वच्यमाना– (१) उत्तम वचनों से प्रशंसित स्त्री, (२) उच्यमाना ।
'इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमाना'
ऋ. ३.३९.१

वचोविद् – परस्पर बातचीत का ज्ञान कराने वाली ।
'वचोविदं वाचमुदीरयन्तीम्'
ऋ. ८.१०१.१६

वचोयुजा– (१) वाणियों से परस्पर अभियोग करने वाले दो वकील ।
'वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम्'
ऋ. ६.२०.९
(२) द्वि.व. । वाणी के साथ चलने वाली । (३) वाणी के साथ योग देने वाले ।
'य इन्द्राय वचोयुजा
ततक्षुर्मनसा हरी'
ऋ. १.२०.२
जो इन्द्र के लिए वाणी के साथ चलने वाले दो वेगवान् अश्वों को निर्माण करते या जीवात्मा के लिए वाणी के साथ योग देने वाले प्राण अपान वायु की रचना करते हैं ।
(४) वाणी या वाक् शक्ति से बंधे हुए प्राण और अपान ।
'संमिश्ल आ वचोयुजा'
ऋ. १.७.२; अ. २०.३८.५; ४७.५; ७०.८; साम. २.१४७; आ.सं. २.३; मै.सं. २.१३.६: १५५.३; का.सं. ३९.१२; तै.ब्रा. १.५.८.२.

वचोविद् – (१) स्तुतिवचन कहने में चतुर, वाग्मीपुरुष, (२) भक्ति का मर्म समझने वाला ।
'सोम गीर्भिष्टा वयं
वर्धयामो वचोविदः'
ऋ. १.९१.११; मै.सं. ४.१०.१;१४२.१७; का.सं. २.१४; पंच.ब्रा. १.५.७; तै.ब्रा. ३.५.६.१.

वज्र- वृजि + रक् = वज्र । स हि वर्जयति प्राणैः प्राणिनः (वज्र प्राणियों को प्राणों से वर्जित या वियुक्त करता है अतः वज्र है) ।
अर्थ - (१) वज्र-सा. (२) पराक्रम-दया. दे. 'इलीविश' ।
'वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्'
ऋ. १.३३.१२
हे इन्द्र, संघ की अभिलाषा करने वाले शत्रु को (पृतन्युं शत्रुम्) मार (अवधि) -सा. ।
हे ऐश्वर्यवान् राजन्, पराक्रम से (वज्रेण) सेना के साथ आक्रमण करने वाले शत्रु को (पृतन्युं शत्रुम्) मार (अवधीः) -दया.
(३) खड्ग । दे. 'कियेधस्' ।
'अस्मा इन्दु प्र भरा तूतुजानाः
वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः'
ऋ. १.६१.१२; अ. २०.३५.१२; मै.सं. ४.१२.३; १८३.१०; का.सं. ८.१६; नि. ६.२०.
हे राजन् या इन्द्र, इस मेघ वृत्र या दुष्टजन पर शीघ्र वज्र या खड्ग का प्रहार कर क्योंकि तू आशुकारी (तूतुजानः) अनेक गुण -सम्पन्न (कियेधाः) तथा सर्वस्थायी है ।
(४) वीर्य ।
'वीर्यं वै वज्रः' वीर्य ही वज्र हैं
श.ब्रा. ७.५.२.२४

वज्रदक्षिण- (१) दक्षिण हस्त में वज्र धारण करने वाला इन्द्र ।
(२) अविद्या नाश के लिए ज्ञानरूपी वज्र को देने वाला । विद्वान् । -दया. ।
'अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे'
ऋ. १.१०१.१; साम. १.३.८०
दाहिने हाथ में वज्र धारण करने वाले (वज्रदक्षिणम्) मरुतों के साथ रहने वाले (मरुत्वन्तम्) इन्द्र को अपनी रक्षा चाहने वाले (अवस्यवः) हम मैत्री को लिए आह्वान करते हैं (हवामहे) । -सा.
हम जिज्ञासु जन (अवस्यवः) ज्ञानामृत बरसाने वाला (वृषणम्) ज्ञानरूपी वज्र को देने वाले (वज्रदक्षिणम्) तथा प्रशस्त मनुष्यों से सहायता सम्पन्न (मरुत्वन्तम्) आचार्य को स्वीकार करते हैं (हवामहे) ।

वज्रभृत्- वज्रधारी इन्द्र या वीरपुरुष । दे. 'दस्युहा'

वज्रबाहुः- (१) जिस के हाथ में वज्र हो, (२) इन्द्र का एक नाम । दे. 'अपाहन्' ।
'इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहुः'
ऋ. ३.३३.६; नि. २.२६

वज्रापवसाध्य - वज्र + आपवसाध्य । वज्र रूप जल से साधने योग्य प्राणगण ।
'वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन्'
अ. २०.४८.३

वज्रिन् - वृजि + रक् = वज्र, वज्र + इनि = वज्रिन् ।
(१) वज्रधारी इन्द्र । दे. 'आशिर' ।
'इन्द्राय गाव आशिरं
दुदुह्रे वज्रिणे मधु'
ऋ. ८.६९.६; अ. २०.२२.६; ९२.३; साम. २.८४१; तै.ब्रा. २.७.१३.४
गौओं ने वज्री इन्द्र के लिए बार बार दूध दिया ।
(२) पराक्रमी परमात्मा (३) पापों से निवृत्त करने वाले ज्ञान वज्र का धारक इन्द्र । दे. 'ऋचीषमम्'
'इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य
स्तवे वज्र्यृचीषमः'
ऋ. १०.२२.२
इस यज्ञ में आज हम लोगों से (अस्मे) वज्रहस्त, ऋचा के समान गुणों वाला (ऋचीषमः) विख्यात् इन्द्र स्तुत किए जाते हैं ।

वञ्च्- (१) चलना, (२) ठगना, वञ्चना करना
'त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि'
अ. १०.८.२७

वञ्चत् - (१) वञ्चना करने वाला ।
'नमो वञ्चते परिवञ्चते'
वाज.सं. १६.२१; तै.सं. ४.५.३.१; मै.सं. २.९.३: १२३.३; का.सं. १७.१२.
(२) भ्रमण करने वाला ।
'छिन्नपक्षाय वञ्चते'
अ. २०.१३५.१२; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.५.

वञ्चति- प्राप्त होती है ।
'आहलगिति वञ्चति'
वाज.सं. २३.२२, २३; श.ब्रा. १३.२.९.६

वट्- वेष्टनार्थक धातु, बटोरना, बटोरा जाना (२) सूत कातने में जहाँ रूई सिमिट जाती है उसे वट पड़ना कहते हैं । दे. 'वटूरि'

वटश्वस- (१) वट की कोपल ।

'पिपीलिकावटश्वसः'
अ. २०.१३५.३

वटूरि – (वेष्टनार्थक धातु) + ऊरि = वटूरि । अर्थ (१) वेष्टित –दया. (२) चारों तरफ से घेर लेने वाला वेगवान् सेना बल–ज.दे.श. ।
(३) बटोर लेने वाला ।
(४) लपेट लेने वाला हाथी का पैर या सूंड
'छिन्धि वटूरिणा पदा'
ऋ. १.१३३.२
लपेट लेने वाले हाथी के पैर या सूड़ के समान चारों तरफ से घेर लेने वाले सेनाबल से (वटूरिणा) चारों ओर से घेर कर उसे काट ।

वणिक् – (१) व्यापारी ।
'तुलायै वाणिजम्'
वाज.सं. ३०.१७; तै.सं. ३.४.१.१४.
(२) व्यवहारशील वैश्य, वणिक्
'याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे'
दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्'
ऋ. १.११२.११
जिन उपायों से, हे उत्तम रीति से दान देने वाले विद्वान् अश्विनो या शिल्पियो (सुदानू) विद्वान् पुरुष के सन्तानों के लिए या औशिज के लिए, व्यवहारशील वैश्य के लिए (वणिजे) दीर्घकाल तक गुरुओं से उपदेश श्रवण करने वाले बहुत ज्ञान वाले धनादि के स्वामी के लिए (दीर्घश्रवसे) धन और ज्ञान का अक्षय कोश वर्षण करते हैं (मधु कोशो अक्षरत्) ।
(३) पण्य + निजिर् (निज्) + क्विप् = वणिज् (ण्य का ण्येप तथा प् का व् पृषोदरादिवत्) । पणिः वणिकः भवति । वणिक् पण्यं नेनेक्ति (पणि वणिक् का नाम है, यह व्यवहार करता है अतः पणि है) ।
वणिक पण्य अर्थात् बाजार में बिकने वाले पदार्थ को बिकने लायक शुद्ध बनाता है इसी से इसका नाम 'वणिज्' पड़ा । अर्थ– बनिया । व्यापारी लोक में 'पणिज्' का वणिज् हो गया है ।

वत्– उपमा में 'वत्' का प्रयोग होता है ।
'वदिति सिद्धोपमा'
ब्राह्मणवत, वृषलवत् । दे. 'प्रियमेधस्'

वत– धा. । प्राप्त करना ।
'अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम'
ऋ. ७.३.१०; ४.१०

वत्स– (१) बछड़ा । दे. 'अमीसेत्'
'गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तम्'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; ऐ.ब्रा. १.२२.२; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४; नि. ११.४२.
माध्यमिक वाक् औरक अर्थात् मेघ नित्य गौ के लिए तरसते बछड़े के समान सूर्य को देख पर भोंकती है – यास्क ।
मेघ वृष्टिजल के अभाव से निमीलिताक्ष पृथ्वी को देख भोंकता है । –दया.
(२) राष्ट्र में बसी प्रजा ।
(२) गुरुकुल वासी विद्यार्थी
'वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र'
ऋ. ६.२४.४
(४) वद् + स = वत्स विद्या का उपदेश ।
(५) ब्रह्मचर्य वास काल का गुरु ।
'वत्सो वां मधुमद् वचः'
अशंसीत् काव्यः कविः'
ऋ. ८.८.११.
(६) बालक, (७) बसा हुआ संसार ।
'अन्यान्या वत्समुप धापयेते'
ऋ. १.९५.१; वाज.सं. ३३.५; तै.ब्रा. २.७.१२.२.
(८) स्तुति, अभिवादन योग्य, परमपूज्य परमेश्वर ।
'अबन्धनश्चरति वत्स एकः'
ऋ. ३.५५.६
(९) सर्वाच्छादक, सर्वव्यापक स्तुत्य प्रभु ।
'वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्'
ऋ. १.१६४.५; अ. ९.९.६
(१०) मेघ, (११), जीव ।
'अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यत्'
ऋ. १.१६४.९; अ. ९.९.९
(१२) पुत्र, (१३) स्तुत्य,
(१४) सब में बसा या सभी को बसाने वाला आत्मा । दे. 'वष्कय'

वत्सतरी– बहुत छोटी उम्र की कन्या ।
'वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः'
वाज.सं. २४.५,९; मै.सं. ३.१३.६: १६९.१३; ३.१३.१०: १७०.९

वत्सपः– (१) बच्चों का पालन करने वाला, (२)

बड़ी उम्र का बूढ़ा (३) संवर्त रोग से पीड़ित (४) हीन पुरुष ।
'अलिंश उत वत्सपः '
अ. ८.६.१.

वत्स प्रचेतसा- वत्स अर्थात उपदेष्टावत् उत्तम ज्ञानी गुरु के अधीन रहकर उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त करने वाले अश्विद्वय ।
'धीभिर्वत्स प्रचेतसा '
ऋ. ८.८.७

वत्सर - (१) एक वर्ष ।
'वत्सराय विजर्जराम् '
वाज.सं. ३०.१५; तै.ब्रा. ३.४.१.११
(२) सबको आनन्द प्रसन्न रखने वाला ऐश्वर्य प्रदाता अग्नि, परमेश्वर ।
'वत्सरोऽसि '
वाज.सं. २७.४५.; मै.सं. ४.९.१८: १३५.७; श.ब्रा. ८.१.४.८; तै.ब्रा. ३.१०.४.१; तै.आ. ४.१९.१.

वत्सानां पिता - (१) प्रकृति के आगे उत्पन्न होने वाले पञ्चभूत आदि विकृति रूपों के या प्राणियों के आवास हेतु लोकों या मुक्तजीवों का जनक और पालक परमेश्वर, (२) बछड़ों का पिता- सांढ़ ।
'पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानाम् '
अ. ९.४.२,४; तै.सं. ३.३.९.२; मै.सं. २.५.१०: ६१.१६; ४.२.१०: ३३.१७; का.सं. १३.९

वत्सिनी - (१) बछड़े वाली गौ (२) नियम पूर्वक ब्रह्मचर्य करने वाले शिष्यों से युक्त वेदवाणी ।
'गवामह न मायुर्वत्सिनीनाम् '
ऋ. ७.१०३.२

वत्सौ - (१) विराट् सलिल के दो वत्सवत् जीव और ब्रह्म, (२) सूर्य और विद्युत् - ग्रीफिथ
'वत्सौ विराजः सलिलादुदैताम् '
अ. ८.९.१

वदतः- वद् (बोलना) + शतृ + ङस् = वदतः ।
अर्थ -'वदत् ' के षष्ठी ए.व. का रूप ।
दे. 'जोषवाकम् '
अर्थ-बोलते हुए का

वदन् ब्रह्मा - उपदेश देने वाला वेदज्ञ ब्राह्मण ।
'वदन् ब्रह्मा वदतो वनीयान् '
ऋ. १०.११७.७

वद्या- (१) वन्दना करने योग्य । (२) सब मनुष्यों को उपदेश करने वाला ।
'वद्मा हि सूनो अस्यद्यसद्वा '
ऋ. ६.४.४; तै.सं. १.३.१४.७

वध्- (१) हिंसा-साधक आयुध । दे. 'अस्मे'
'जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य '
ऋ. ४.२२.९; ७.२५.३
हे इन्द्र या राजन् , तू हिंसक मनुष्य के (वनुषः मर्त्यस्य) हिंसा साधक आयुध को नष्ट कर (वधः जहि) ।
(२) आघातकारी विद्युत् आदि ।
'इन्द्रो अस्या अववधर्जभार '
ऋ. १.३२.९
सूर्य अन्तरिक्ष रूप मेघ की उत्पादक भूमि पर आघातकारी विद्युत् आदि का प्रहार करता है (अस्याः वधः अवजभार) ।

वध - वध् + अच् = वध । (१) हत्या । दे. 'अप्रचेतस् '
'सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य '
ऋ. १०.११७.६; तै.ब्रा. २.८.८.३
(२) हिंसक, (३) इन्द्र का विशेषण ।
'अनानुदो वृषभो दोधतो वध '
ऋ. २.२१.४
दे. 'अस्मदा निद् '
'वधैरजेत दुर्मतिम् '
ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२.
वह इन्द्र दुष्ट बुद्धि वालों को वध द्वारा जीते ।
'वीडोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधः '
ऋ. १.१०१.४
जो इन्द्र या राजा यज्ञ विरोधी का हन्ता है ।
(३) अस्त्र शस्त्रादि साधन ।
'अथो ये विश्यानां वधाः '
अ. ६.१३.१.

वधक- वध् (संयमन अर्थ में) बन्धन अर्थ में - भ्वादि ।
अर्थ - (१) बांधने वाला, (२) शस्त्रधारी वधक ।
'हन्त्वेनान् वधको वधैः '
अ. ८.८.३;४

वधत्मा - (१) संहारकारी विद्युत् या अस्त्र ।
'महीवद्यौर्वधत्मना '
ऋ. १०.१३३.५; अ. ६.६.३

वधत्र- वध करने का साधन ।
'त्वं शुष्णस्यावतिरो वधत्रैः '
ऋ. ८.९६.१७; अ. २०.१३७.११

वधना- शत्रु को दण्ड देने और नाश करने वाली नीति या सेना ।
'इन्द्रावरुणना वधनाभिरप्रति '
ऋ. ७.८३.४

वधर्यन्ती- शस्त्रास्त्रों और विद्युत् की विद्या ।
'वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीत् '
ऋ. १.१६१.९
आप में एक शस्त्रास्त्रों और विद्युत् की विद्या का प्रवचन करे ।

वधस्नः - (१) वध दण्डादि से राष्ट्र को शुद्ध, स्वच्छ, निष्कण्टक करने वाला राज्य भृत्य, न्यायाधीश, शासक, (२) वधकारी शस्त्रों से शत्रुकण्टकों को साफ करने वाला सैन्य ।
'यो देह्यो अनमयद् वधस्नैः '
ऋ. ७.६.५; तै.ब्रा. २.४.७.९;
(३) शस्त्र
'क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः '
ऋ. ५.४१.१३
(४) शत्रुवध के अनन्तर स्नान करने वाला ।
'वधैर्वधस्नवींखय '
ऋ. ९.५२.३
(५) प्रहार,
'विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः '
ऋ. १.१६५.६; मै.सं. ४.११.३; १६९.२; का.सं. ९.१८; तै.ब्रा. २.८.३.५.

वध्र्यश्व- (१) अश्व अर्थात् वेग से जाने वाले प्रवाह को रोकने या उसको और अधिक बढ़ाने वाला, ।
(२) इन्द्रिय रूप अश्वों को बांधकर संयम से रहने वाला, (३) इन्द्रिय बल को बढ़ाने वाला वीर्यवान् पुरुष ।
'दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे '
ऋ. ६.६१.१; मै.सं. ४.१४.७: २२६.४; का.सं. ४.१६.
(४) वधकारी अश्व सैन्य रथादि का नायक, (५) अग्नि ।
'घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनम् '
ऋ. १०.६९.२
(६) आत्मा, वध्रि + अश्व (७) जितेन्द्रिय, (८) एक ऋषि ।
'यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वम् '
अ. ४.२९.४

वधानां सभरः- शस्त्रास्त्रों की लड़ाई ।
'अमित्री सेना समरे वधानाम् '
अ. ११.१०.२५

वध्रिः- (१) दण्डनीय, (२) शासन में प्रबद्ध ।
'वध्रिर्विषगिरिः कृतः '
अ. ४.६.७.
(३) वृध + रिक = वध्रि । अर्थ-बड़ी हुई शक्ति-दया. (४) बधिया बैल ।
'वृषेव वध्रीरभि वष्ट्योजसा '
ऋ. २.२५.३
(५) वन्ध + क्रिन् = वध्रि । वध्यते यः स वध्रिः (जो बांधा जाता है वह वध्रि है) । बधिया, (४) नपुंसक ।
'वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् '
ऋ. १.३२.७
जिस प्रकार बधिया नपुंसक बैल बलवान साँढ़ के मुकाबले पर आना चाहता हुआ बहुत से स्थलों पर विविध प्रकार से परास्त होता हुआ.....

वध्रिमती- (१) वशीभूत इन्द्रियों से युक्त जितेन्द्रिय स्त्री ।
'युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतम् '
ऋ. १०.३९.७
(२) वध् + रिक् = वध्रि । अर्थ है-बंधुआ, नपुंसक । वध्रि + मतुप् + ङीष् = वध्रिमती । अर्थ है- नपुंसक पति वाली स्त्री (३) यहां लक्षणा से अर्थ है- राजसभा (४) बढ़ी हुई शक्ति से सम्पन्न राजसभा ।
(५) वृध् + रिक् = 'वध्रि' । दयानन्द ने इसका अर्थ 'बढ़ी हुई' किया है ।
'श्रुतं तच्छासुरिव बध्रिमत्या '
हिरण्य हस्तमश्विनावदत्तम्
ऋ. १.११६.१३
हे अश्व दल के स्वामी या अश्विद्वय ! (अश्विना) आप दोनों गुरु के उपदेश के समान अथवा शासक राजा के समान (शासुः) बढ़ी हुई शक्ति से सम्पन्न उस राजसभा के उस

शासन को श्रवण करो (वध्रिमत्याः श्रुतम्) । आप दोनों उसको हित और रमणीय हाथ अर्थात् अवलम्ब अथवा सुवर्णादि धन को रखने वाले वैश्य वर्ग को या सुवर्ण के समान कान्तिमान हनन् साधन से या बल के स्वामी तेजस्वी पुरुष को (हिरण्यहस्तम्) आश्रयरूप से प्रदान करो (अवदत्तम्) ।

वध्रिवाक् – (१) हिंसायुक्त वचन बोलने वाला, (२) निर्बल वाणियों वाला , (३) वृद्धिकारक उत्तम विद्वान् ।
'अरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः '
ऋ. ७.१८.९

वधूदर्श– वधू को देखने के लिए आया हुआ पुरुष ।
'ये पितरो वधूदर्शाः '
अ. १४.२.७३

वधूपथ– (१) नववधू का मार्ग ।
'स्योनं कृण्मो वधूपथम् '
अ. १४.१.६३

वधूमत् षट् अश्वाः– (१) वधू अर्थात् शत्रु का वध करने, उनको कम्पित कर देने वाली छः अश्वसैन्य का सेनापति ।
(२) वहन करिणी प्राण या चेतनाशक्ति से युक्त चक्षु आदि पांच और छठा मन (३) देधधारक शक्ति से युक्त पांच इन्द्रिय और मन ।
'षडश्वां आतिथिग्वे
इन्द्रोते वधूमतः '
ऋ. ८.६८.१७

वधूमन्ता द्वारथा– (१) राज्यभार को वहन करने वाली विशेष शक्ति से युक्त दो रथ या रथवान् नायक, (२) शरीर और लिंग शरीर रूप दो बन्धुओं से युक्त रथ ।
'द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः '
ऋ. ७.१८.२२

वधूमान् – (१) हिंसा करने वाली शत्रुनाशक शक्ति, (३) वधूयुक्त ।
'वधूमन्तो द्विर्दश '
अ. २०.१२७.२; शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.२.

वधूयुः– (१) वधू या स्त्री की कामना करने वाला ।
'वधूयुरिव योषणाम् '
ऋ. ३.५२.३; ६२.८; ४.३२.१६.
(२) जगत् को वहन करने वाली ईश्वरी शक्ति का स्वामी ।
'अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि '
ऋ. ९.६९.३
(३) कन्या की कामना करने वाला वर ।
'यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोः '
अ. १४.२.४२

वनक्रक्ष – (१) तेज भोग्य ऐश्वर्यों एवं लोकों में व्यापक, (२) काष्ठों में अग्नि के तुल्य व्यापक ।
'वनक्रक्षमुदप्रुतम् '
ऋ. ९.१०८.७; साम. १.५८०; २.७४४.

वनं करण– जल पैदा करने वाला मूत्रेन्द्रिय ।
'महेनाद् वनङ्करणात् '
ऋओ. १०.१६३.५; अ. २०.९६.२१;

वनद– (१) जलदाता मेघ, (२) ज्ञानप्रद गुरु, (३) स्तोता ।
'आ यन्ये अभ्वं वनदः पनन्त '
ऋ. २.४.५.
(३) वन का अर्थ स्पृहणीय या प्रशस्त पदार्थ है । बहुवचन में प्रयोग है । अर्थ है– स्पृहणीय हवि को देने वाले यजमान – सा. ।
(२) प्रशस्त पदार्थों को दाता मनुष्य–दया. ।
जिसका महत्व (यत् अभ्वम्) मेरे स्पृहणीय हविदाता सदा गाते हैं । –सा.
हे प्रशस्त पदार्थ के दाता मनुष्यो, (वनदः)यतः तुम मेरे उपदिष्ट कार्यों में स्थित रहते हुए अपने से बड़े विद्वान् का सत्कार करते हो (यत् मे अभ्वम् आपनन्त) ।

वनधिति– (१) सेवन करने योग्य वृष्टि जलों को धारण करने में समर्थ –सूर्य (२) सेवनीय ऐश्वर्यों को धारण करने वाला राजा ।
'स्विध्मा यद् वनधितिरपस्यात्
सूरो अध्वरे परि रोधना गोः '
ऋ. १.१२१.७
उत्तम दीप्तिवाला (स्विध्मा) और सेवन करने योग्य वृष्टिजलों को धारण करने में समर्थ (वनधितिः) अन्तरिक्ष के सब ओर (परि) रश्मि समूह या पृथिवी के स्तम्भन आदि के कार्य करता है ।

वनना – (१) काष्ठ आदि, (२) ज्ञान का याचक
'उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपत् '
ऋ. ९.८९.४०

वनम् (१) जंगल । दे. 'एजति' ।
'यथा वातो यथा वनं
यथा समुद्र एजति'
ऋ. ५.७८.८; नि. ३.५.
जैसे वायु, जैसे वन और समुद्र दिन दिन गति का स्यन्दन करता या कांपता है ।

वनर्गुः (१) सुन्दर वाणी वाला । वन + गम + डु = वनर्गु (रुट् का आगम) ।
(२) वनगामी । 'वने गन्तुशीलं यस्य स वनर्गुः'

वनर्गू– दे. 'वनर्गु' । (१) द्वि.व. (१) वन में विचरण करने वाले ।
(२) चोरों के विशेषण के रूप में व्यवहृत' । दे. ' अभ्यधीताम् ' ।
'तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू
रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्'
ऋ. १०.४.६; नि. ३.१४.
(३) ग्राह्य पदार्थों तक पहुंचने वाली बाहुएं (४) सैन्य ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र (५) हिंसनीय शत्रुदल में जाने वाली दो सेनाएं ।

वनर्षद् – वन + सद् + क्विप् = वनर्षद (रुक् का आगम) (१) जलों पर विहार करने वाला –
'श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः'
ऋ. २.३१.१
(२) वन में रहने वाला, (३) तपस्वी, (४) संविभक्त धनों ऐश्वर्यों या गृहों में निवास करने वाला, (५) रश्मियों में स्थित सूर्य, (६) जलों से अभिषिक्त ।
'वनर्षदो वायवो न सोमाः'
ऋ. १०.४६.७; वाज.सं. ३३.१; तै.ब्रा. २.७.१२.१.
वन में विचरने वाला –
'श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवः
वनर्षदो वायवो न सोमाः'
ऋ. १०.४६.७ वाज.सं. ३३.१; तै.ब्रा. २.७.१२.१
(७) ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले परम रमणीय राज्य पद पर विराजने वाला ।
'तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम्'
ऋ. १०.१३२.७

वनस्– न. । दूध दूहने का पात्र ।
'आ याहि वनसा सह
गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः'
ऋ. १०.१७२.१; साम. १.४४३

वनसद् – जंगल में रहने वाला दावाग्नि ।
'वनसदे वेट्'
वाज.सं. १७.१२; तै.सं. ४.६.१.४; श.ब्रा. ९.२.१.८

वनस्पतिः– (१) महान् वृक्ष, वट, गूलर, पाकड़ आदि,
(२) प्रजाजनों को आश्रय देने वाला पुरुष, (३) वृक्ष–समूहों के समान सैनिकों का सेनापति, (४) अग्नि ।
'अग्निर्वै वनस्पतिः'
कौ.ब्रा. १०.६
(५) प्राण ।
'प्राणो वै वनस्पतिः
कौ.ब्रा. १२.७
'देवो देवैर्वनस्पतिः'
वाज.सं. २१.५६; ५६; २८.२०; मै.सं. ३.११.५; १४७.१५
(३) वन का स्वामी । दे. 'अरिषण्यन् ' 'वीडयस्व '।
'अरिषण्यन् वीडयस्व वनस्पते'
ऋ. २.३७.३; नि. ८.३.
हे वनस्पते, तू हिंसा की कामना न करता हुआ अपने को दृढ़ कर ।
(७) खदिर (खैर) का यूप, (८) पलाश का यूप –सा. (९) गार्हपत्य अग्नि –दया. । दे. 'क्षय' ।
'अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः
वनस्पते मधुना दैव्येन'
ऋ. ३.८.१; मै.सं. ४.१३.१; १९९.२; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २. २.४; तै.ब्रा. ३.६.१.१; नि. ८.१८.
हे खदिर या पलाश का यूप (वनस्पते), तुझे अध्वर्युजन (देवयत्नः) देवसम्बन्धी घृत से (दैव्येन मधुना) प्रकाशित करते हैं (अञ्जन्ति) – सा.
हे गार्हपत्य अग्नि, (वनस्पते) अपने में देव भाव की कामना करते हुए (देवयन्तः) तुझे हिंसारहित बलि वैश्व देव यज्ञ में (त्वाअध्वरे) मिष्टान्न और घृत के साथ (मधुना दैव्येन) प्रकाशित करते हैं (अञ्जन्ति) – दया.
(१०) वनानां पतिः वनस्पतिः (वनों का पति) । पारस्कर आदि शब्दों के समान 'सुट्' का आगम । (११) वनानां पाता पालयिता (वनों का पालक)

(१२) द्रविणोदस नामक अग्नि के विशेषण के रूप में इस का प्रयोग हुआ है । अतः वनस्पति का अर्थ अग्नि है । अग्नि वृक्षों के अन्दर रहता हुआ भी जलाता नहीं अपितु बढ़ाता ही है ।
'वनस्पते रशनया नियूया'
ऋ. १०.७०.१०; मै.सं. ४.१३.७: २०९.१; का.सं. १८.२१; तै.ब्रा. ३.६.१२.१; आश्व.श्रौ.सू. ९.५.२; नि: ८.२०.
हे वनस्पते, ज्वाला से विवद्ध कर ।
(१३) वृष्टि जल की रक्षा करने वाला ।
'वीड़यस्वा वनस्पते'
हे वृष्टिजल की रक्षा करने वाला द्रविणोद नामक अग्नि ! तू दृढ़ हो । (१३) यज्ञ का यूप । कात्थक्य आचार्य के मत से अग्नि, शाकपूणि के मत से 'गार्हपत्य अग्नि'
'वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन'
ऋ. १०.११०.१०; अ. ५.१२.१०; वाज.सं. २९.३५; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१४; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१७.
गार्हपत्य अग्नि (वनस्पति) दक्षिणाग्नि (शमिता) और आहवनीय अग्नि (देवः अग्निः) ये तीनों मिष्ट और घृत के साथ (मधुना घृतेन) हवि का आस्वादन करावे (हव्यं स्वदन्तु) (१४) शमिता नामक देवता (१५) आहवनीय अग्नि-शाकपूणि (१६) गार्हपत्य अग्नि । वन का अर्थ गृह होने से वनस्पति का अर्थ गृहपति अर्थात् 'गार्हपत्य अग्नि' हुआ ।
(१७) प्राण । 'प्राणमेव तत् प्रीणाति ।
'प्राणं यजमानो दधाति
प्राणो वै वनस्पतिः'
ऐ.ब्रा.
(१८) रथ । रथ वनस्पति से ही बनता है ।
(१९) एक बड़ा जंगली पेड़ जिसमें फूल के बिना ही फल निकलता है । (२०) वृक्ष (२१) सेवन योग जल आदि पदार्थों का पालक पर्जन्य ।
'उच्छ्रयस्व वनस्पते'
ऋ. ३.८.३; वाज.सं. ४.१०; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २.२.६; कौ.ब्रा. १०.२; तै.ब्रा. ३.६.१.१; श.ब्रा. ३.२.१३.५; आश्व.श्रौ.सू. ३.१.९; शां.श्रौ.सू. ५.१५.३; आप.श्रौ.सू. ११.९.१३
(२२) किरणों का पालक- सूर्य (२३) राष्ट्रैश्वर्यों के विभागों का भोक्ता, (२४) प्रजाजनों का पालक, (२५) विद्या की याचना करने वाले शिष्यों का पालक आचार्य ।
(२६) महान् वृक्ष के समान सब को अपनी छत्र छाया में रखने वाला -राजा ।
'वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्'
अ. १२.३.१५

वनस्य स्तूपः- विभक्त का सर्वत्र पहुँचाने योग्य तेज का समूह । दे. 'अबुध्न'
'अबुध्ने राजा वरुणो वनस्य'
ऊर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः'
ऋ. १.२४.७

वन्दध्यै- (१) स्तुति करने के लिए ।
'अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै'
ऋ. ३.४.३.
(२) प्रार्थना करते हैं ।
'वन्दध्या अग्निं नमोभिः'
ऋ. १.२७.१; साम. १.१७; २.९८४
हम स्तुतियों से अग्नि की प्रार्थना करते हैं ।

वन्दम् - (१) वन्दन नामक विष बेल । सायण तथा शंकर पाण्डुरंग ने 'वन्दना' पाठ माना है ।
'अभिचरकन्द वन्दनेव वृक्षम्'
अ. ७.११५.२
(२) वन्द + ल्युट् = वन्दन, स्तुति, (३) स्तुति योग्य । (४) वन्दना करने वाला ।

वन्दनम् - देह को जकड़ने वाला विष ।
'यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवत्'
ऋ. ७.५०.२

वन्दन श्रुत् - (१) स्तुति और अभिवादन को प्रेम से श्रवण करने वाला, प्रार्थना सुनने वाला परमेश्वर, इन्द्र ।
'अर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि'
ऋ. १.५५.७

वन्दनाः- ब. व. । (१) वन्दनशील ।(२) हां में हां मिलाने वाले चापलूस, खुशामदी ।
'न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः'
ऋ. ७.२१.५
और न ये खुशामदी ही हमारे यज्ञ में आवें ।

वन्दनेष्ठाः – स्तुति प्रार्थना और उपासना में विद्यमान ।
'असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठाः '
ऋ. १.१७३.९

वन्दमानः– वन्दना करता हुआ ।
'एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः '
ऋ. १०.१४९.५; नि. १०.३३.
उसी प्रकार मैं अर्चन् नामक हिरण्यस्तूप का पुत्र या रक्षा के लिए वन्दना करता हुआ .....

वन्द्यः– वन्द् + यत् = वन्द्य । वन्दनीय ।
'आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च '
ऋ. १०.११०.३; अ. ५.१२.३; वाज.सं. २९.२८; मै.सं. ४.१३.३: २०१.१४; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.८.

वन्य– वनाध्यक्ष
'नमो वन्याय च कक्ष्याय च '
वाज.सं. १६.३४; तै.सं. ४.५.६.१; मै.सं. २.९.६: १२५.७; का. सं. १७.१४.

वन्वत्– समस्त ऐश्वर्य को उचित रूप से विभाग करने वाला–इन्द्र, परमेश्वर ।
'अभिभुवेऽभिभंगाय वन्वते '
ऋ. २.२१.२

वन्वन्– (१) छिन्न भिन्न करता हुआ ।
'गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः '
ऋ. २.४.९
(२) वन (संभजन अर्थ में) + शतृ = वन्वन् अर्थ–वनों का संभजन करता हुआ अग्नि का विशेषण । अग्नि वन को जलाता हुआ वन का संभजन करता जाता है ।
'द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा
उस्त्रः पितेव जारयायि यज्ञैः '
ऋ. ६.१२.४
वृक्षों का भक्षयिता (द्रवन्नः) वनों का संभजन करता हुआ अग्नि (वन्वन्) अपने कर्म से (क्रत्वा) अनाश्रित् स्वतन्त्र अर्थात् छूटे सांढ़ के सदृश (नार्वा पिता उस्त्र इव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है (यज्ञैः जारयायि) ।

वन्ता – (१) विभाग करने वाला (२) सेवन करने वाला भोक्ता ।
'रायो वन्तारो बृहतः स्याम '
ऋ. ३.३०.१८; का.सं. ८.१७

वना – (१) वरण करने वाली नवयुवति ।
'वना जजान सुभगा विरूपम् '
ऋ. ३.१.१३
(२) नपुंसक, ब.व. । एक वचन में वन का अर्थ है– जंगल । (३) काष्ठवन ।
'कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः '
ऋ. ३.९.२; साम. १.५३; नि. ४.१४.
(४) कमनीय, सुन्दर ।
'वन' धातु सहायता, पूजा, ध्वनि और कामना अर्थों में आया है । वन की सुन्दरता से सभी वन को चाहते हैं ।
(५) जल ।
(६) वन धातु हिंसार्थक भी है । वन में हिंसा भी होती है । द्विवचन बहुवचन 'शि' विभक्ति का 'डा' हो जाता है । वनानि का वैदिक रूप 'वना' है । अर्थ है–वनों को (वनानि)
वन + घञ् (कर्म में) = वन । संज्ञापूर्वक होने से वृद्धि का अभाव ।
वनं प्रस्रवणे गेहे
पुनासे ऽमासि कानने
(७) कमल या अन्य पौधों का एकत्र उपज, (८) गृह, (९) एकत्र उपज, (१०) काष्ठ (११) जंगली (जब वन किसी अन्य शब्द का पूर्व पद रहता है) ।
आधुनिक अर्थ – जंगल, समूह, यूथ ।

वनानां गर्भः – सेवन योग्य ऐश्वर्यों को वश करने वाला–परमेश्वर, (२) वनस्पतियों के बीच छिपा या सेवनीय पदार्थों का भोक्ता जीव, (३) वनस्पतियों में स्थित अग्नि ।

वन्दा – स्तुति करने योग्य रात्रि ।
'वर्ये वन्दे सुभगे सुजाते '
अ. १९.४९.३

वन्दारु – (१) प्रशंसनीय, (२) वन्दनीय ।
'वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे '
ऋ. ५.१.१२; वाज.सं. १५.२५; तै.सं. ४.४.४.२; मै.सं. २.१३.७: १५५.१६; का.सं. ७.१२; तै.ब्रा. १.२.१.९; आप.श्रौ.सू. ५.५.८
'वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने '
ऋ. १.१४७.२; वाज.सं. १२.४२; तै.सं. ४.२.३.४ मै.सं. २.७.१०: ८८.१६; का.सं. १६.१०; श.ब्रा. ६.८.२.९.

वन्वानः – सेवन या अभ्यास करता हुआ ।

वन्धुर – बन्धन विशेष ।
'क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीडाः '
ऋ. १.३४.९

वनिः – (१) देने वाला,
'यो रायो वनिर्महान् '
ऋ. १.४.१०; ८.३२.१३; अ. २०.६८.१०;
(२) वृत्ति, कमाई, (३) भाग ।
'मा वनिं व्यथयीर्मम '
अ. ५.७.२

वनिन् – (१) विद्युत युक्त प्राणों को प्राप्त जीव,
(२) वन में स्थित वृक्ष ।
'तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे '
ऋ. १.५८.४
हे अग्ने, जिस प्रकार वन में स्थित वृक्षों के प्रतितू महावृषम् के समान उनको खा लेता है, उसी प्रकार तू आत्मा भी नाना सुखप्रद पदार्थों की कल्पना करता है ।
(३) भोग्य ऐश्वर्य या वेतन को प्राप्त करने वाला,
(४) सब पदार्थों की पृथक् पृथक् करने वाला वायु ।
(५) भजन करने वाला भक्त ।
'इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे '
ऋ. ८.३.५; अ. २०.११८.३; साम. १.२४९; 2.937
'अभि द्युम्नानि वनिनः '
ऋ. ३.४०.७; अ. २०.६.७.
(६) वन में उत्पन्न वृक्ष, (७) उदक वाला मेघ,
(८) सेना समूह से युक्त शत्रु ।
'तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि
परश्वेव नि वृश्चसि '
ऋ. १.१३०.४

वनिष्ठः – (१) ज्ञान ऐश्वर्य आदि को उदारता से संविभाग करने वाला ।
'द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः '
ऋ. ७.१०.२

वनिष्ठु – (१) स्थूल आंत, (२) याचना ।
'पूषणं वनिष्ठुना '
वाज.सं. २५.७; मै.सं. ३.१५.९: १८०.४
'उग्रं देवं वनिष्ठुना '
वाज.सं. ३९.८
(३) कूल्हा जिसमें स्थूल आंतें रहती हैं, (४) कटि का चूतड़ भाग, (५) भोक्ता ।
'कुम्यो वनिष्ठर्जनिता शचीभिः '
वाज.सं. १९.८७; मै.सं. ३.११.९: १५३.१५; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.३.
(५) स्थूल आंत
'वनिष्ठोर्हृदयादधि '
ऋ. १०. १६३.३; अ. २.३३.४; २०.९६.१९; आप.मं.पा. १.१७.३.
(६) भक्ति में निष्ठा रखने वाला ।
वनिष्ठा नावागृह्यन्ति '
अ. २०.१३१.९
(७) गुदा या बड़ी आंत ।
'क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः '
अ. ९.७.१२.

वनीयान् – अति उत्तम रीति से सेवा करने योग्य ।
'पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् '
ऋ. ५.७७.२; मै.सं. ४.१२.६: १९५.१७; तै.ब्रा. २.४.३.१३; नि. १२.५
'वदन् ब्रह्मा वदतो वनीयान् '
ऋ. १०.११७.७

वनीवा – प्रार्थना से युक्त ।
'वनीवानो मम दूतास इन्द्रम् '
ऋ. १०.४७.७; मै.सं. ४.१४.८: २२७.९

वनुयाम – हन्म (मारें, हम मारें, वध करें) । 'मनुष्य' धातु वध करना अर्थ में भी आया है । स्कन्द स्वामी के अनुसार कण्वादि वन् धातु से 'यक्' प्रत्यय कर 'वनुष्य' बना है । यद्यपि वन धातु याचना अर्थ में पठित है तथापि भ्वादि गण में यह हिंसा अर्थ में पठित है ।
'यदिन्द्राग्नी जना इमे
विह्वयन्ते तना गिरा ।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयम्
सासह्याम पृतन्यतो
वनुयाम वनुष्यतो
नभन्तामन्यके समे '
ऋ. ८.४०.७
हे इन्द्र और अग्नि, जब ये लोग धन के निमित्त परस्पर एक दूसरे का वचन से आह्वान करते हैं (गिरा विह्वायन्ते) तब तुम दोनों हमारे लोगों के पक्ष में हो (अस्माकेभिः नृभिः) हम नाभाक वंश वाले तुम दोनों के साथ युद्धेच्छु हो (वयं

पृतन्यवः) बार बार शत्रुओं को पराजित करें (सासह्याम) तथा मारने वालों को (वनुष्यतः) हम मारें (वनुयाम) और सभी परपक्ष वाले दुष्टजन नष्ट हो जाएं (अन्यके समे नभन्ताम्) ।

वनुयामा – प्राप्त हो ।
'वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः'
ऋ. १.७३.९

वनुष् – (१) नाना ऐश्वर्यों की अभिलाषा करने वाला ।
'ऋतस्य योगे वनुषः'
ऋ. ३.२७.११
(२) हिंसक । दे. 'अस्मे' 'वंध्' ।
'जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य'
ऋ. ४.२२.९; ७.२५.३
हे इन्द्र, तू हिंसक मनुष्य के हिंसा साधक आयुधों को नष्ट कर ।
(३) सेवनीय ज्ञान ।
'ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय'
ऋ. ४.४४.३; अ. २०.१४३.३
(४) शत्रु का नाशकारी ।
'प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्'
ऋ. १०.९६.१; अ. २०.३०.१
(५) कर्मफल सेवन करने वाला जीव ।
'जजस्तमर्यो वनुषामरातीः'
ऋ. ४.५०.११; ७.९७.९
(६) भजन करने योग्य ।
(७) सेवने वाला, (८) मारने वाला ।
(९) संविभाजक-दया. (१०) सेवन करने वाला, (११) ज्ञान और ऐश्वर्य देने वाला,
'प्रप्रेत् ते अग्ने वनुषः स्याम'
ऋ. १.१५०.३
ऐसे सेवन करने वाले तथा ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले (वनुषः) तेरे अधीन रहकर हम उत्तम पद को प्राप्त हों (प्र प्रःइत् स्याम) ।

वनुष्यत् – (१) हिंसा करने वाला, (२) याचनाशील ।
'इन्धानो अग्नि वनवद् वनुष्यतः'
ऋ. २.२५.१; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.१५; तै.ब्रा. २.८.५.२.
(३) मारने वाला । दे. 'वनुयाम'
(४) आततायी, दुष्टजन ।

वनुष्यति – हन्ति (मारता है) । दे. 'वनुयाम' । 'वन' धातु का अर्थ हनन या जिघांसा का भाव निकलता है ।

वन्धुरा – (१) जुए में लगे दो काठ (२) परस्पर बन्धुता से युक्त ।
'आ वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे'
ऋ. ३.१४.३

वन्धुरषेठा – (१) बन्धन युक्त प्रेम सम्बन्ध या प्रबन्ध में स्थित ।
'आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठाः'
ऋ. ३.४३.१; ऐ.ब्रा. ६.१९.१०; कौ.ब्रा. २०.२; गो.ब्रा. २.६.२; ऐ.आ. ५.३.१.२; शां.श्रौ.सू. १८.१९.६

वनेजाः – (१) मातृ-गर्भ, जलों या शुक्रों में प्रकट आत्मा ।
'विषूचो अश्वान् युयुजे वनेजाः'
ऋ. १०.७९.६
(२) वन में उत्पन्न (३) काष्ठ में उत्पन्न अग्नि, (४) किरणों से उत्पन्न सूर्य, (५) उत्तम सेवनीय ऐश्वर्य में उत्पन्न
'कुत्राचिद् रण्वो वसतिर्वनेजाः'
ऋ. ६.३.३

वनेनती – (१) भक्ति से झुक जाने वाली ।
'आय वनेनती जनी'
अ. २०.१३१.८

वनेभ्यः – वृक्षादि समूहों से उत्पन्न अग्नि या विद्युत् जिसे दावानल कहते हैं
'त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यः'
ऋ. २.१.१; वाज.सं. ११.२७; तै.सं. ४.१.२.५; मै.सं. २.७.२; ७६.११; का.सं. १६.२; नि. ६.१.

वप् – धा. । (१) बनाना ।
'अवपन् पञ्च मानवाः'
अ. १८.४.५५; तै.आ. ६.६.२.
(२) काटना ।
'अदितिः श्मश्रुं वपतु'
अ. ६.६८.२
(३) वप्ता काटना ।
'वप्ता वपसि केशश्मश्रु'
अ. ८.२.१७
(४) जलना, यास्क ने वप् धातु को दहनार्थक माना है ।

वप – सं. । (१) केश, दाढ़ी काटने वाला नाई, (२) बीज वपन करने वाला किसान ।
'शुभेवपम्'
वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१३

वपत् – 'वप्' धातु के म.पु.ब.व.का रूप । अर्थ-बोओ ।
'कृते योनौ वपते ह बीजम्'
ऋ. १०.१०१.३; अ. ३.१७.२; वाज.सं. १२.६८; तै.सं. ४.२.५.५; मै.सं. २.७.१२: ९१.१५; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.५
जोतने के बाद (योनौ कृते) खेत में (इह) बीज बोओ (बीजं वपत)

वपते – दहति (जलता है) । 'वप्' धातु बीज बोने के अर्थ में आया है, परन्तु वेद में 'दाहना' अर्थ में भी इसका प्रयोग देखा जाता है ।
यास्क ने वप् धातु को दहनार्थक माना है । क्योंकि सूर्य बीज को इसी हेतु बनाते हैं कि वह बोने योग्य हो जाय । पृथ्वी भी जब तक सूर्य से तप्त नहीं होती तब तक उर्वरा नहीं होती । सूर्य अग्नि का ही एक रूप हैं ।।
'त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते
संवत्सरे वपत एक एषम्'
ऋ. १.१६४.४४; अ. ९.१०.२६; नि. १२.२७
तीन केश वाले देवता हैं-अग्नि, वायु और आदित्य । ये ऋतु के अनुकूल लोक पर अनुग्रह करते हैं । उनमें एक पृथ्वी स्थानीय अग्नि संवत्सर के अन्त में पृथ्वी को दाहता (वपते) है ।

वपन्ता – (१) वपन्तौ । दहन्तौ (१) अर्पण करते हुए या देते हुए (२) बोते हुए (३) वप् (बोना) । वप् (बोना) + शतृ + औट् = वपन्तौ –वपन्ता । वेद में 'आ' आ । अश्विनीद्वय का विशेषण । दे . 'अभिधमन्ता'
'यवं वृकेणाश्विना वपन्ता'
ऋ. १.११७.२१; नि. ६.२६

वपनी – वह भूमि जिसमें बीज वपन किया जाता है ।
'त्वमस्या वपनी जनानाम्'
अ. १२.१.६१; कौ.सू. १३७.१४.

वपा – (१) छेदन भेदन शक्ति । (२) सर्वोत्पादक शक्ति । दे. 'वपोदर' ।
(३) बीज वपन करने योग्य भूमि (४) शत्रुओं का खण्डन करने वाली सेना ।
'वह वपां जातवेदः पितृभ्यः'
वाज.सं. ३५.२०; आश्व.गृ.सू. २.४.१३; शां.गृ.सू. ३.१३.३; कौ.सू. ४५.१४; ८४.१; आप.मं.पा. २.२०.२८.
(५) उच्छेदन करने वाली शक्ति (६) परस्पर खण्डन मण्डन करने की शक्ति, (७) दूसरे की यश कीर्त्ति उच्छिन्न करने की शक्ति, (८) बीज वपन शक्ति, (९) स्नेह, (१०) प्रेममयी शक्ति (११) शाखा, (१२) लक्ष्मी, (१३) कृषि सम्पत्ति
'होता यक्षदश्विनौ छागस्य
वपाया मेदसो जुषेतां हविः'
वाज.सं. २१.४१

वयावत् – शाखायुक्त वृक्ष
'वयावन्तं स पुष्यति
क्षयमग्ने शतायुषम्'
ऋ. ६.२.५

वपावान् – (१) लक्ष्मी वान्, (२) कृषि सम्पत्ति वाला (३) विस्तृत बुद्धिमान् ।
'गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन्'
वाज.सं. २०.३७; मै.सं. ३.११.१: १३९.१५; का.सं. ३८.६; तै.ब्रा. २.६.८.१.
(४) बीजोत्पादक शक्ति से युक्त सूर्य, (५) अज्ञानवत् शत्रु को नाश करने की शक्ति से युक्त, (६) सन्तान परम्परा से युक्त, (७) पुत्रवत् । प्रजा और उत्तम सेना पैदा करने की शक्ति से युक्त पुरुष
'वपावन्तं नाग्निना तपन्तः'
ऋ. ५.४३.७; मै.सं. ४.९.३: १२३.१३; तै.आ. ४.५.२.

वप्ता – वप् + तृच् = वप्ता । प्रथमा ए.व. में रूप । वप्ता । अर्थ (१) बीज बोने वाला । कृषक ।
'वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम'
ऋ. १०.१४२.४
(१) कोटा काटने वाला नापित, नाई ।
'वप्ता वपसि केशश्मश्रु'
अ. ८.२.१७

वप्सस् – (१) उत्तम रूपवान् पुरुष ।
'उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीः'
ऋ. १.१८१.८

वपुष् – (१) शरीर । वप् (बोना) + उष् = वपुष् (२) जो उत्पन्न किया जाय । (३) शत्रुओं को खण्ड खण्ड कर देना । (४) सन्तान उत्पन्न करना । दे. 'युवायुज्'
'युवोरश्विना वपुषे युवायुजम्'
ऋ. १.११९.५

वपुष्टरा – द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष का विशेषण । (२) सुन्दर शरीर वाले, (३) रूप लावण्य युक्त ।
'ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा'
ऋ. २.३.७

वपुष्यन् – (१) रूप संवारता हुआ, (२) तेज बढ़ाता हुआ ।
'देवासो अग्नि जनिमन् वपुष्यन्'
ऋ. ३.१.४

वपुष्यः – (१) उत्तम शरीर धारण करने वाला ।
'स्यार्होयुवा वपुष्यो विभावा'
ऋ. ४.१.१२

वपुष्या – (१) देह में उत्पन्न होने वाली, (२) बीज वपन तथा सन्तान वृद्धि के निमित्त ।
'वपुर्वपुष्या सचतामियं गीः'
ऋ. १.१८३.२

वपुष्ये – द्वि.व. । ए.व. में 'वपुष्या' । अर्थ – (१) रूप से प्रसिद्ध, (२) उत्तम शरीर के डील डौल वाले महान् पति पत्नी , (३) माता पिता ।
'सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी'
ऋ. १.१६०.२

वपुस्तरः – (१) बीज वपन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ, (२) रूपवान् पदार्थों में अति कान्ति मान् ।
'इन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः'
ऋ. ९.७७.१; साम. १.५५६.

वपोदर – (१) स्थूल, दृढ़, इन्द्र (२) वपा + दर । छेदन भेदन की शक्ति को धारण करने वाला ।
'तुविग्रीवो वपोदरः'
ऋ. ८.१७८; अ. २०.५.२

वम्रक – वम (वमन करना) + रक् = वम्नः । वम्र + क = वम्रक । वम्र का अर्थ है–दीमक । तपस्या करते करते जिसके शरीर में दीमक लग जाय उसे वम्रक कहते हैं ।

वम्रिः – स्वल्प उम्र की देवी कन्या ।
'देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः'
वाज.सं. ३७.४; श.ब्रा. १४.१.२.१०.

वम्री – वम् + रक् + ङीष् = वम्री । अर्थ है– (१) दीमक । वम्र्यो वमनात् (उदक उगलने से दीपक वम्र है) । वम्र + ङीष् = वम्री । दे. 'उपजिह्विका'
'वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं
निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ
व्यन्धो अख्यदहिमाददाना
निर्भूदुखच्छित समरन्त पर्व'
ऋ. ४.१९.९
प्रशस्त घोड़ों वाले राजा या इन्द्र, (हरिवः) पाप रूपी दीमकों के खाए हुए (वम्रीभिः अदानम्) राज पुत्र को (अग्रुवः पुत्रम्) घर से निकाल दो (निवेशनाद् आ जभर्थ), क्योंकि पापधारी राजकुमार अन्धा होता है (अहिम् आददानः अन्धः व्यख्यते) और ऐसा करने से धर्म मार्ग को छिन्न भिन्न कर डालता है । तथा राष्ट्र और धर्म का पालक रमण करता है (पर्व समरन्त) ।
(२) छोटी छोटी लहर ।

वर्पणीतिः – (१) नाना रूपों का व्यूह करने और चलाने में चतुर सेना पति ।
'प्रमायिनाममिनाद् वर्पणीतिः'
ऋ. ३.३४.३; अ. २०.११.३; वाज.सं. ३३.२६

वय् – दीर्घ जीवन वाला ।
'एषा चासीष्ट तन्वे वयाम्'
ऋ. १.१६५.५; १६६.१५; १६७.११; १६८.१०; वाज.सं. ३४.४८; मै. सं. ४.११.३: १७०.८; का.सं. ९.१८.

वय – पु. । शाखा,
'वया इदन्या भुवनान्यस्य'
ऋ. २.३५.८

वयस् – (१) अन्न, (२) आयु ।
'वयो दात्रे भूयात्'
का.सं. ९.९.
दाता को अन्न या आय हो ।
(३) पक्षी । वी (गत्यर्थक) + असुन् = वयस् । दे. 'अश्वपर्ण' 'वर्षिष्ठा'
'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४.

हे सुकर्मा (सुमायाः), अत्यन्त अन्न को देखकर जैसे पक्षी आते हैं वैसे ही तुम आओ ।
(४) जीवन की प्रगति – आयु, (५) जीवन में प्रगति देने वाला अन्न आयु के अर्थ में प्रयोगः–
'बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९.
इसे परमात्मा लम्बी आयु दे ।
आधुनिक अर्थ – आयु, जीवन का कोई भाग, यौवन, पक्षी, काक ।

वयः वयः – प्रत्येक प्रकार का अन्न और बल ।
'रूपं रूपं वयो वयः'
अ. १.२२.३; अ. १९.१.३; का.सं. ८.१४.

वयः शय – जीवन को समाप्त करने वाला काल ।
'आ नो वयो वयः शयम्'
साम. १.३५३

वयस्कृत – (१) अन्न का उत्पादक, प्रयोग, (२) अग्नि ।
'वयस्कृच्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.३ मै.सं. २.८.७: ११२.३; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.६.

वयस्कृत् – (१) जीवन देने वाला ।
'भवा वयस्कृद् उत नो वयोधाः'
ऋ. १०.७.७; का.सं. २.१५
(२) जो वयोवृद्धावस्था पर्यन्त विद्या सुख युक्त आयु देता है । (३) जीवन, बल और ज्ञान का देने वाला–परमेश्वर, अग्नि (४) उत्पादक वीर्य, (५) ज्ञानदाता आचार्य ।
'त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम्'
ऋ. १.३१.१०

वयस्वत् – दीर्घजीवन और बल का उत्पादक ।
'रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः'
ऋ. २.२४.१५; ५.५४.१३; मै.सं. ४.१२.१: १७८.९; तै.ब्रा. २.८.५.३.

वयःसुपर्णाः – (१) चलने वाली सूर्य की रश्मियाँ। 'वयः' का अर्थ पक्षियाँ भी है ।
'सुपर्णाः सुपतनाः' रश्मियों का बाधक है । क्योंकि रश्मियाँ सूर्य से बहुत सुन्दर रीति से निकलती है ।
'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्'
ऋ. १०.७३.११; साम. १.३१९; का.सं. ९.१९; ऐ.ब्रा. ३.१९.२; तै.ब्रा. २.५.८.३; तै.आ. ४.४२.३; आप.श्रौ.सू. ६.२२.१; नि. ४.३.
चलने वाली सूर्य रश्मियाँ सूर्य के निकट गई ।

वय्य – (१) वस्त्र बुनने वाला । (२) ज्ञाता । वयर (गत्यर्थक) + यन् = वय्य ।
(३) रक्षा करने योग्य ।
'तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्'
ऋ. ४.१९.६
(४) तन्तु के समान शिष्य परम्परा या पुत्र परम्परा बनाए रखना, (५) तन्तु । सन्तानक–दया. ।
'तुर्वीतये च वय्याय च स्तुतिम्'
ऋ. २.१३.१२
(५) यो वयते जानाति इति (जो जानता है) । ज्ञाता, ज्ञानयुक्त (६) कान्तियान, (७) तेजस्वी ।
'त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो'
ऋ. १.५४.६

वया – वी (गत्यर्थक) + अच् = वय, वय + अप = वयम । अर्थ– (१) शाखा । वयः शाखाः 'वेतेः वातायनाः भवन्ति ।
'वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा
सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि
वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः'
ऋ. ६.७.६
अमर नित्य वैश्वानर
अग्नि के प्रज्ञापक कर्मरूपी दर्शन या तेज से अन्तरिक्ष के भी जो समुच्छित मेघ या नक्षत्रों के स्थान निर्मित किए गए हैं (दिवः सानूनि विमितानि) और उसी वैश्वानर अग्नि के मूर्धा या धूम के मेघ रूप में परिवर्तत होने पर (तस्य इत् उ मूर्धनि) सभी जल रहते हैं (विश्वा भुवनानि अधि) तथा शाखा के समान बहने वाली या सात नदियाँ पृथ्वी पर आई (वया इव सप्त विस्रुहः विरुरुहुः) ।
अग्नि के धूम से मेघ बनते हैं, अतः अग्नि ही मेघों का निर्माता हुआ और मेघ से ही जल निकाल कर पृथ्वी नदी रूप में अवतीर्ण हुई ।
(२) ब.व. में 'वयाः' । अर्थ शाखाएं ।
'वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वयाः'
ऋ. ६.२४.३; नि. १.४.
हे पुरुहूत, वृक्ष की शाखाओं के समान तेरी

रक्षाएं बढ़ती हैं ।
(३) शाखा के तुल्य आश्रय करने योग्य प्रकृति ।
'पश्यन्नन्यस्या अतिथिं वयायाः '
ऋ. १०.१२४.३

वयाकी अल्प बल वाला ।
'वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः '
ऋ. ५.४४.५

वय्या - वस्त्र बुनने वाली ।
'उषासानक्ता वय्येव रण्विते '
ऋ. २.३.६

वयित्री - बुनने वाली, तन्तुवाय की लड़की । यह शब्द अपना इतिहास रखता है ।
ताना तानने वाले लड़कों को 'अपस् ,' कातने वाली स्त्रियों को 'ग्ना' और बुनने वाली लड़कियों को वेद में वयित्री कहा गया है । आज का प्रचलित बेटी शब्द वयित्री का ही बिगड़ा रूप है । दे. 'ग्ना' ।
ग्नास्त्वा कृन्तन् अपसोऽतन्वत
वयित्र्योऽवपम् वरुणस्त्वा नयतु '
मै.सं. १.९.४: १३४.८
वस्त्र को लक्ष्यकर अध्यात्म वेत्ता पा पुरोहित कहता है- हे वस्त्र ! तुझे स्त्रियों ने काता, (ग्नाः अकृन्तन्), कुविन्द के छोटे छोटे लड़कों ने (वयित्र्यः) बुना (अवयन्) और तब जल देवता वरुण या कृषक (वरुणः) मुझ अध्यात्म वेत्ता को (बृहस्पतये) इसे मेरे लिए लावे (आनयतु) ।

वयियुः - (१) तन्तुओं का ज्ञान वितान करने वाला-तन्तु वाय (२) शरीर में प्रज्ञा तन्तु का इच्छुक-आत्मा ।
'उत मे प्रयियोर्वयियोः '
ऋ. ८.१९.३७
(३) ऊयते यत् तत् वयियु वस्त्रम् (जो बुना जाता है वह वयियु अर्थात् वस्त्र है) । वस्त्र । दे. 'सुवास्तु' ।

वयुनवत् - (१) प्रकाश वान्, (२) प्रज्ञानवान्, (३) कान्तियुक्त । दे. 'वयुन'
'सूर्येण वयनवत् चकार '
ऋ. ६.२१.३; शां.श्रौ.सू. १४.२४.५; नि. ५.१५.
परमात्मा ने सूर्य के द्वारा प्रकाशवान् किया ।

वयुनम् - (१) सर्वोत्तम शरीर ।
'अभूदिदं वयुनमो षु भूषता '
ऋ. १.१८२.१
(२) वी (गत्यर्थक) + उनन् = वयुन । प्रज्ञान विज्ञान या कान्ति हो । दे. अमृत ।
'वनस्पते रशनया नियूय
ऋ. १०.७०.१०
हे वनस्पते, अत्यन्त दृढ़ एवं सुरूप ज्वाला से निबद्ध कर अपने अधिकार में प्रयुक्त प्रज्ञानों को जानता हुआ ।
(३) वी + न = वेन, अथवा पूजनार्थक अज + उनन = वयुन (अन् का वी आदेश) । कान्ति प्रकाश । दे. 'अवयुन' ।
'स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्
सूर्येण वयुनवच्चकार '
ऋ. ६.२१.३; नि. ५.१५.
उसी परमात्मा ने अन्धकार फैलाया तथा सूर्य के द्वारा जगत् को प्रकाश मान किया (वयुनवत् चकार) ।
अथवा,
उसी परमात्मा को सूर्य की कान्ति की तरह वेद द्वारा ज्ञान प्रकाश किया ।
(४) इशारा, संकेत । दे. 'उरण'
'आ वयुनेषु भूषति '
ऋ. ८.६६.८; अ. २०.९७.२; साम. २.१०४२.
इन्द्र का कुत्ता प्रशस्त मार्गों या प्रज्ञानों में इन्द्र के अनुकूल आचरण करता हैं -सा.
राजा कुत्ता संकेतों पर (वयुनेषु) आक्रमण करता है ।

वयुनशः - (१) ज्ञान शक्ति के अनुसार ।
'होतः वयुनशो यज '
ऋ. ६.५२.१२

वयोधाः - (१) ज्ञान वान् और दीर्घायु पुरुष, (२) जीवन धारक अध्ययन ।
'वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्व '
वाज.सं. १५.७
(३) वीर्यबल और अन्न को धारण करने वाला,
(४) उत्तम प्रजनन शक्ति वाला ।
'पिशङ्ग रूपः सुभरो वयोधाः '
ऋ. २.३.९; तै.सं. ३.१.११.२; मै.सं. ४.१४.८; २२७.१; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. १३.४.२; शां.गृ.सू. ५.८.२.
(५) यः जीवं दधाति (सुखमय जीवन प्रदान

करने वाला ।
'रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः'
ऋ. १.७३.१
(३) अन्न और ऐश्वर्य धारण करने वाला ।
'वयोधा अमराहतः'
अ. १८.४.३८
(७) अन्न को अपने भण्डार में सञ्चित कर रखने वाला ।
'शतयोनिर्वयोधाः'
अ. १९.४६.६
(८) समस्त अन्न कर्मफल का धारण करने वाला, (९) अन्न धारण करने वाला -सूर्य ।
'सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः'
अ. ७.४१.२

वयोधेय - अन्न, बल और ज्ञान की प्राप्ति ।
'वयोधेयाय जागृहि'
ऋ. १०.२५.८

वयोधै - दीर्घ आयु धारण करने के लिए ।
'सत्यामाशिषं कृणुता वयोधैः'
ऋ. १०.६७.११; अ. २०.९१.११

वयोनाधः - (१) जीवन को देह के साथ बांधने वाला प्राण (२) राष्ट्र में जीवन, जागृति एवं विज्ञानों द्वारा सबको जीवनप्रद व्यवस्था में बांधने वाला विद्वान् ।
'सजूर्दिवैः वयोनाधैः'
वाज.सं. १४.७

वर - वृ + अच् । (१) श्रेष्ठ, सुन्दर, अभिमत, वरणीय ।
'अथा यजाते वर आ पृथिव्याः'
ऋ. ३.५३.११.
तब सुन्दर स्थान में वह (राजा) यज्ञ करें ।
(२) अभिमत अर्थ है ।
'नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी'
ऋ. २.११.२१; नि. १.७.
हे इन्द्र, तेरी वह पुत्ररूपी दक्षिणा धन धान्य से सम्पन्न होती हुई (इन्द्र सा ते दक्षिणा मघोनी) स्तुतिशील यजमान को (जरित्रे) अभिमत अर्थ प्रदान करे (वरं प्रतिदुहीयात्) (३) वरण करने योग्य सृष्टि का प्रवर्त्तक कारण ।
'त आसं जन्यास्ते वरा'
अ. ११.८.२
(४) रुकावट ।
'न यो वराय मरुतामिव स्वनः'
ऋ. १.१४३.५
जो मरुतों के शब्द के समान रोका नहीं जा सकता ।

वरण - वरुण नामक वृक्ष जो यक्ष्मा का महौषधि है । वरुण, वरुण और जीरक इसके तीन भेद हैं-शुक्ल जीरक, कृष्ण जीरक और बृहत्पाली । बृहत्पाली जीर्ण ज्वर का भी नाशक है । कृमि का तो सभी है ।
वरुण तमाल वृक्ष का भी नाम है । वह सुगंध होने से कदाचित् यक्ष्मा रोग को भी दूर करता हो ।
वरणाख्यो वनस्पति वनानाम् अधिपतिः वृक्षः'
'वरुणो वारयाता अपं देवो वनस्पतिः'
ऋ. ६.८५.१; १०.३.५.

वरत्रा - (१) उत्तम रक्षा कारिणी शक्ति ।
'वरत्रायां दार्वानह्यमानः'
ऋ. १०.१०२.८
(२) रस्सा, रस्सी ।
'त्रेधा बद्धो वरत्रया'
अ. २०.१३५.१३; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.३.
(३) वासना ।
'शुनं वरत्रा बध्यन्ताम्'
ऋ. ४.५७.४; अ. ३.१७.६; तै.आ. ६.६.२.
रस्सी के अर्थ में -
'यथायुगं वरत्रया
नह्यन्ति धरुणाय कम्'
ऋ. १०.६०.८
(४) बैल को शकट में जोड़ने की पट्टी ।
'आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः'
अ. ११.३.१०

वरन्ते - वारयन्ति, वारयितुं शक्नुवन्ति (वारण करते हैं)

वरशिखः - उत्तम शिखा वाला इन्द्र ।
'येना वधीर्वरशिखस्य शेषः'
ऋ. ६.२७.४

वरस् - (१) दुःख वारक श्रेष्ठ पदार्थ ।
'युयूषतः पर्युरू वरांसि'
ऋ. ६.६२.१.

(२) आवृत या घेरा हुआ स्थान ।
'वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे'
ऋ. ४.२१.८

वर्चः – (१) २१ विभागाध्यक्षों पर स्वयं २२ वां होकर विराजने वाला राजा ।
'वर्चो द्वाविंशः'
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.३ मै.सं. २.८.४: १०९.४; का.सं. १७.४; २०.१३; श.ब्रा. ८.४.१.१६.
(२) तेज ।
'पुनः पत्नीमग्निरदात्
आयुषा सह वर्चसा'
ऋ. १०.८५.३९; . १४.२.२; आप.मं.पं. १.५.४.
पिता द्वारा दान देने के बाद अग्नि पुनः आय और तेज के साथ दान देते हैं ।
(३) सामर्थ्य, बल ।

वर्चस्य – तेज ब्रह्मचर्य और ।
विद्याध्ययन का हितकारी ।
'आयुष्यं वर्चस्यम्'
वाज.सं. ३४.५०

वर्चस्वत् – उत्तम तेज और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त ।
'इदं हिरण्यं वर्चस्वत'
वाज.सं. ३४.५०

वर्जहः – अन्धकार वर्जनं प्रकाशं हन्ति । (अन्धकार वर्जक प्रकाश का विनाशक घोर अन्धकार) ।

वर्ण – (१) किसी बात को स्वीकार करा देना ।
'वर्णायानुरुधम्'
वाज.सं. ३०.९; तै.ब्रा. ३.४.१.४
(२) आङ् + वृज् + नन् = वर्ण (रपर, गुण, बाहुलक, नियम से आ का लोप) ।
आवृणोति आश्रयम् इति वर्णः (जो आश्रय का आवरण करता है – वह वर्ण है) । अर्थ है–रंग ।
'दे. अनूची'
'समानबन्धू अमृते अनूची
द्यावा वर्णं चरत आमिनाने'
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०
उषा और रात्रि जिनके समान रूप सूर्य बन्धु हैं जो अमर है तथा जो एक दूसरे का अनुकरण करती है प्राणियों का या अपना अपना रंग बदलती प्रकाशमान अन्तरिक्ष मार्ग से चलती है ।
(३) वस्त्र दान को ही वर्णदक्षिणा कहते हैं । अतः वस्त्र के अर्थ में भी वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है । वस्त्र शरीर को आवृत करता है ।
(४) जाति, आश्रय
आधुनिक अर्थ – रंग, रंगसाजी, सौन्दर्य, जाति, अक्षर, शब्दमात्रा, प्रसिद्धि, यश, प्रसंसा, वस्त्र, पोशाक, बाह्य आकृति, आवरण, गीतक्रम, हाथी का घर, गुण, धन, धार्मिक कृत्य, अज्ञात गुण, पीलावर्ण, रंगीन सुगंध ।

वर्तनि – बार बार लौट करने वाला मार्ग ।
'पर्येका चरति वर्तनिं गौः'
ऋ. ३.७.२.

वर्तनी – (१) वर्तते वया क्रियणा सा सत्कार क्रिया–दया. । (२) जिससे प्रजाजन रक्षित रहे वह क्रिया ।
(३) मार्ग में बाधक ।
'तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी'
ऋ. १५३.८; अ. २०.२१.८

वर्तवे – वृ + तवे = वर्तवे । वरण करने लिए ।
'ऋभुक्षणं न वर्तवे'
ऋ. ८.४५.२९

वर्तस् – आंख की पलक ।
'द्यावापृथिवी वर्तोभ्याम्'
वाज.सं. २५.१; मै.सं. ३.१५१.१; १७७.९

वर्त्मन् – वृत् + मनिन् । मार्ग । दे. 'अभ्राता' ।
'अभ्रातर इव योषाः
तिष्ठति हतवर्त्मनः'
नि. ३.४.

वर्त्र – बन्ध, बांध ।
'वर्त्रं वेशन्त्या इव'
अ. १.३.७

वर्ध – वृद्धि ।
'अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू'
ऋ. १०.१२.४; अ. १०.१.३१

वर्धन – बढ़ाने वाला ।
'तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि'
ऋ. ७.२२.७; अ. २०.७३.१.

वर्धना – बढ़ाने वाला ।
'ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना'
ऋ. १.५२.७; मै.सं. ४.१२.३: १८५.२

हे परमेश्वर, जितने भी वेदमन्त्र या बड़े पृथिवी, आकाश आदि पदार्थ हैं सब तेरी महिमा बढ़ाने वाले हैं ।

वर्धन्तु – वृध् (बढ़ना–यहां पर अर्थ है बढ़ाना) के लोट् प्र.पु. ब.व में । दे. 'गिर' ।

'तमिद्वर्धन्तु नो गिरः'

ऋ. ८.९२.२१; ९.६१.१४; अ. २०.११०.३; साम. २.७४, ६८६; नि. १.१०.

हमारी स्तुतियाँ उस सोम को बढ़ावें ।

वर्धयन्ती – बढ़ाती हुई ।

'देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्ती'

ऋ. १.७१.१

देवों या विद्वान् पुरुषों और अपने से उत्पन्न हुए पुत्रों से उत्तम ज्ञान और अन्न से (प्रयसा) पढ़ाती हुई (वर्धयन्ती) ।

वर्धसे – बढ़ता है । दे. 'इमथा' ।

'आशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे'

ऋ. ५.४४.१; वाज.सं. ७.१२; तै.सं. १.४.९.१; मै.सं. १.३.११: ३४.५; श.ब्रा. ४.२.१.९.

हे सोम जिन क्रियाओं से तू बढ़ता है–सा.

हे राजन् , जिन प्रजाओं से तू बढ़ता है...दया.

वर्ध्न – बांध, रस्सी ।

'त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्'

अ. १४.१.६०

वर्पणीतिः – (१) रूप को प्राप्त कराने वाला । परमेश्वर, चलाने में निपुण ।

'प्रमायिनाममिनाद् वर्पणीतिः'

ऋ. ३.३४.३; अ. २०.११.३; वाज.सं. ३३.२६.

वर्पस् – (१) नाना रूप के प्राणियों से युक्त राष्ट्र ।

'अनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः'

ऋ. ५.४८.४

(२) वृञ् + असुन् = वर्पस् (पुट् का आगम्)। रूप वह है जो किसी पदार्थ को आवृत करता है । अतः 'वर्प' रूप कहा गया । (वर्प इति रूप नाम, वृणोति इति सतः) ।

अर्थ–रूप ।

'मा वर्पो अस्मदप गूह एतत्'

ऋ. ७.१००.६; साम. २.९७५; तै.सं. २.२.१२.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.५; नि. ५.८.

हे परमेश्वर, जिस अन्य रूप में संसार रूपी रंगस्थली में तू व्याप्त है उस वैष्णवी रूप को हम से मत छिपा (अस्मत् वर्पस् मा अपगूह) ।

वर्मन् – (१) कवच ।

'वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः'

ऋ. १.३१.१५

जैसे दृढ़ता से सीया हुआ कवच युद्ध में मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार तू रक्षा करता है ।

(२) रक्षक ।

'इन्द्रस्य वर्मासि'

अ. ५.६.१३; का.सं. ३८.१४; आप.श्रौ.सू. १६.१८.८.

'स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु'

ऋ. ६.७५.१; वाज.सं. २९.३८; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.११.

'वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः'

ऋ. १०.७८.३

वर्वर्ति – 'वृत्' के लट् प्र.पु.ए.व.में यङन्त रूप । अर्थ है–बार बार घूमता है ।

'वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य'

ऋ. १.१६४.११; अ. ९.९.१३

कालचक्र अन्तरिक्ष के चारों तरफ घूमता रहता है ।

वर्ष – (१) मेघ ।

'सर्गा वर्षस्य वर्षतः'

अ. ४.१५.४

वर्षनिर्णिज् – (१) वर्षों तक शुद्ध आचरण से अपने को शुद्ध करने वाले जलों से अभिषिक्त – मरुतों का विशेषण (२) वर्षा द्वारा जगत् को धोने वाला मरुत् ।

'वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजः'

ऋ. ५.५७.४

वर्षनिर्णिजः – (१) वर्षाद्वारा शुद्ध करने वाले वायु गण, (२) शस्त्र वर्षण द्वारा राष्ट्र के शोधक ।

'ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः'

ऋ. ३.२६.५; तै.ब्रा. २.७.१२.४.

वर्षमेदाः – वर्षा के जल से परिपूर्ण होने वाली पृथिवी ।

'नमोऽस्तु वर्षमेदसे'

अ. १२.१.४२

वर्षवृद्ध – (१) आयु में बड़ा, अनुभवी

'प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेतु'

वाज.सं. १.१६; तै.सं. १.१.५.२; मै.सं. १.१.७: ४.१; ४.१.७: ८.१६; का.सं. १.५.; ३१.४; श.ब्रा. १.१.४.२०; तै.ब्रा. ३.२.५.१०; आ.श्रौ.सू. १.२०.६.
(२) वर्षा से बढ़े हुए , सींक का बना सूप ।
'वर्षवृद्धमुपयच्छ शूर्पम्'
अ. १२.३.१९

वर्षवृद्धा – (१) वर्षा से बढ़ी हुई, (२) सुखादि वर्षण करने में सबसे अधिक बलशालिनी राजशक्ति ।
'बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि'
अ. ६.३०.३

वर्ष्मन् – (१) वर्षणकारी मेघ ।
'वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत्'
ऋ. ४.५४.४
(२) वृष्टि, सेचन, (३) रूप ।
'वर्ष्मन् दिवो अधि नाभा पृथिव्याः'
ऋ. ३.५.९

वर्ष्य – (१) वर्षा न होने पर जल का उचित प्रबन्ध करने में या अति वृष्टि को दूर करने में समर्थ ।
'नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च'
वाज.सं. १६.३८; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२५.१३; का.सं. १७.१५.
(२) वृष्टि करने वाला, (३) शस्त्रवर्षी वीर भटों से बना सैन्य
'यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः'
ऋ. ५.८३.३
'तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतः'
ऋ. १०.९१.५; साम. २.३३२; पंच.ब्रां. १३.२.१.

वर्ष्यदूत – वर्षा का दूत, शीतल वायु ।
'आविर्दूतां कृणुते वर्ष्यां अह'
ऋ. ५.८३.३

वरानवित्ति – द्रव्य लाभ का नतीजा ।
'अनागमिष्यतो वरानवित्तेः
संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान्'
अ. १६.६.१०

वराह– (१) वराहो मेघो भवति वराहारः (वराह मेघ का नाम है क्योंकि वह श्रेष्ठ आहार अर्थात् उदक का आहरण करता है) । ब्राह्मण में भी लिखा है–
वरमाहारमहार्षीः
'अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यः
महः पितुं पपिवां चार्वन्ना
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान्
विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता'
ऋ. १.६१.७; अ. २०.४५.७; नि. ५.४.
वृष्टि द्वारा सकल जग के निर्माता इस महान् यज्ञ के अवयवभूत (मातुः महः अस्ता) प्रातः सवनादि तीनों सवनों में (सवनेषु) सोमरूपी अन्न को (पितुम्) शीघ्र ही (सद्यः) पी लिया (पपिवान्) तथा सुन्दर सर्वव्यापी विष्णु या प्राणरूप में सब जीवों में व्याप्त (विष्णुः) असुरों के चिरसञ्चित परिपक्व धन को (पचतम्) अपहरण करते हुए (मुषायत्) शत्रुओं को अभिभूत करने वाले (सहीयान्) शत्रुओं को भक्षण करने वाले वज्र को (अद्रिम्) प्रक्षिप्त करने वाले (अस्ता) इन्द्र ने देखते देखते (तिरः) मेघ को प्रताड़ित किया (वाहं विध्यत्) ।
(२) शूकर (सूअर) । इतरो वराह एतस्मादेव
(३) वराह नामक एक असुर –दुर्ग
'शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनम्
वराहमिन्द्र एमुषम्'
ऋ. ८.७७.१०
इन्द्र सैकड़ो यज्ञ (शतं महिषान्) , चरु आदि से सिद्ध ओदन एवं श्रेष्ठ वराह लाया । –सा.
इन्द्र सभी क्षीरपाक ओदन और बड़े यज्ञों को लाया तथा वराह नामक असुर को मारा – दुर्ग सेनापति चोरों के निवास स्थान पर्वत प्रदेशों को जीतकर (एमुषं वराहम्) अनेक प्रशस्त पदार्थों (शंत महिषान्) एवं दूध में पकाए चावल आदि सभी वस्तुओं को लाया । – ज.दे.श.
(४) स्वामी दयानन्द ने मेघ के अर्थ में 'वराह' शब्द को लिया है । वृहति मूलानि । वरं वरं मूलं बृहति इति वा (यह जो दूसरे प्रकार का सूअर नायक है या जो सुन्दर मूलों को उखाड़ता है) ।
(५) अङ्गिरसों का विशेषण । अङ्गिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते (अङ्गिरस भी वराह कहे जाते हैं, क्योंकि वे सात्विक अन्न सेवी हैं) ।
'स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिः
गोधायसं वि धनसैरदर्दः
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः
घर्मस्वेदभिर्द्रविणं व्यानट्'

ऋ. १०.६७.७; अ. २०.९१.७; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.११; तै.ब्रा. २.८.५.२.

उस बृहस्पति ने सत्यवादियों या यथार्थ बल रखने वाले (सत्येभिः) सखाओं (सखिभिः) दीप्तिमान (शुचद्भिः) विविध धन रखने वाले (विधनसैः) बरसाने वाले (वृषभिः) वरणीय उदक के आहारों को लाने वाले या, घाम के स्वेदों से या दीप्त आगमनों से या बरसते हुए जलों से या यज्ञ के स्वाद लेने वाले या सायण के अनुसार यज्ञ में जाने वाले या यज्ञ में भाग लेने वाले अङ्गिरसों के साथ (वराहैः घर्म स्वेदिभिः) गौ, वाणी या जलों के धारक इस मेघ को (गोधायसम् ईम्) विदीर्ण किया (अदर्दः) तथा जल लाया (द्रविणम् आनट्) । ये अङ्गिरस १२ क्यों है विचारणीय है । स्वा. दयानन्द ने अङ्गिरस का अर्थ तेजस्वी पुरुष दिया है । इस ऋचा में अङ्गिरस का नाम नहीं है तथापि इस सूक्त में है ।

अन्य अर्थ – (१) वह वेदज्ञाता (ब्रह्मणस्पतिः) सत्यवादी मित्र (सत्येभिः सखिभिः) पवित्र (शुचिद्भिः) त्यागी (विधनसैः) बलवान् (वृषभिः) सात्विक अन्नसेवी (वराहैः) तथा यज्ञों से स्वेदयुक्त (घर्मस्वेदिभिः) अङ्गिरस लोगों के साथ वेद पति परमेश्वर का (गोधायसम्) आदर करता है (अदर्दः) तथा आत्मबल प्राप्त करता है (द्रविणं व्यानट्) ।

(६) माध्यमिक देवगण जैसे मरुत् और रुद्र आदि भी वराह कहे जाते हैं (अथाप्यते माध्यमिक देवगण वदाहव उच्यन्ते) ।

व्युत्पति-(क) वरस्य- उत्कृष्टस्य शत्रोः हन्ता (उत्कृष्ट शत्रु का हन्ता) (ख) उत्कृष्टस्य वृष्टयु-दकस्य आहर्ता (उत्कृष्ट वृष्टि का आहर्ता) (ग) उत्कृष्टानां देवानाम् आह्वाता (उत्कृष्ट देवों का आह्वाता), (घ) वरस्य हविषो भक्षयिता (सुन्दर हवि का भक्षण करने वाला) ।

वर + आङ् + हन्, ह, हू.हु, (मारना, हरण करना, बुलाना भोजन करना) + उ = वराह । पृषोदरादिवत् सिद्ध ।

वरहाः– (१) मरुतों का विशेषण ।

'एतत् त्यन्न योजनमचेति
सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमोवः
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्
विधावतो वराहून्'

ऋ. १.८८.५

हे मरुद्गण, यह सूक्त साध्य स्तोत्र (एतत् योजनम्) अन्य उत्कृष्ट स्तोत्र के समान ज्ञात होता है (त्यत् न अचेति) जिस इस सूक्त रूप स्तोत्र को (यत्) आप लोगों के लिए (वः) हिरण्यचक्र वाले रथ पर आरूढ़ या रमणीय कर्मों से युक्त (हिरण्यचक्रान्) लौहमयी चक्रधाराओं से युक्त या ऋष्टि नामक दश निशाने वाले अस्त्र विशेष को (अयो दंष्ट्रान्) विविध प्रकार से प्रवर्तित करते हुए (विधावतः) उत्कृष्ट शत्रुओं को मारने वाले या उत्कृष्ट जल देने वाले या उत्कृष्ट देवताओं को आह्वान करने वाले या सुन्दर हवि को खाने वाले (वराहून्) मरुतों को सम्यक् प्रकार से जानते हुए (पश्यन्) गौतम ऋषि ने (गोतमः) उच्चारित किया (सस्वर ह) ।

स्वा. दयानन्द का अर्थ – हे राजपुरुषो, यह शुभदिन और पवित्र बुद्धि का योग (एतत् योजनम्) उस पूर्व मन्त्रोक्त की तरह (व्यत् न) तुमने भली प्रकार जान लिया (अचेति) क्योंकि (यत्) चमकीले चक्रों वाले (हिरण्यचक्रान्) लौह निर्मित आयुधों से युक्त (अयोद्रंष्टान्)- सात्विक आहार सेवी (वराहून्) इतस्ततः जाने वाले (विधवतः) तुम पुरुषों को देखकर वेदवेत्ता ब्राह्मण ने (गोतमः) तुम्हें उपदेश दिया है (सस्वः) । (८) रुद्र को भी वराह कहा गया है ।

'दिवो वराहमरुषं कपर्दिनम्'

ऋ. १.११४.५

(९) पर्वत । पर्वत से मूल धन मनुष्य निकालते हैं ।

आधुनिक अर्थ – सूअर, भेंड़ा, साँड़, घटा, मगर, घड़ियाल, सूअर के रूप में सजाई सेना-वराही । वराहावतार, तौल का एक विशेषण, वराहमिहिर ज्योतिषी, वराह पुराण । (१०) सु + आहत । उत्तम रीति से वशीकृत प्रत्याहार द्वारा दमन किया गया प्राण ।

'ब्राह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः'

ऋ. १०.६७.७; अ. २०.९१.७; मै.सं. ४.१४.१०:

२३०.११; तै.ब्रा. २.८.५.१; नि. ५.४.
(११) श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त, स्तुति शील, धर्ममेघ रूप सुसमाहित आत्मा ।
'विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता'
ऋ. १.६१.७; अ. २०.३५.७; नि. ५.४.
मेघ के अर्थ में –
'वराहेण पृथिवी संविदाना'
अ. १२.१.४८

वराहु– दे. 'वराह' । मरुतों का विशेषण । 'वराहु' ही 'वराह' है ।

वराहयुः– (१) वायु की कामना करने वाला, (२) वरहा की कामना करने वाला, (३) उत्तम कहाने योग्य पदार्थों का अधिकारी ।
'श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुः'
ऋ. १०.८६.४; अ. २०.१२६.४

वर्ता– (१) निवारण करने वाला, रोकने वाला ।
'न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति'
ऋ. ४.२०.७
(२) वृ + तृच् = वर्तृः । प्र.ए.व. में वर्ता ।
'वपरिवर्तयिता, (३) रहने वाला ।
'नास्य वर्ता न तरुता महाधने'
ऋ. १.४०.८
बड़े-बड़े संग्राम में भी (महाधने) न कोई इसके मुकाबले पर रहने वाला (न वर्ता) और न कोई उसे परास्त कर उससे बढ़ जाने वाला ही होता है (न तरुता) ।
(४) वशकारी ।
'न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः'
ऋ. ५.२९.१४
(५) बाधक ।
'न ते वर्तासिराधसः'
ऋ. ८.१४.४; अ. २०.२७.४

वर्या– वरण करने योग्य रात्रि ।
'वर्ये वन्दे सुभगे सुजाते'
अ. १९.४९.३

वर्षा– वृष् + अच् + टाप् = वर्षा । वर्षा ऋतु (वर्षति आसु पर्जन्यः) वर्षाऋतु में मेघ बरसता है ।

वर्षाहू – (१) वर्षा को लाने वाला काल, (२) मेढ़क ।
'वर्षाहूर्ऋतूनाम्'
वाज.सं. २४.३८; मै.सं. ३.१४.१९: १७६.९

वर्ष्मा – वृष् + मनिन् = वर्ष्मन् । प्र.ए. में वर्ष्मा अर्थ-वृष्टि कारक सामर्थ्य (२) समस्त लोकों के बन्धन या नियन्त्रण का सामर्थ्य ।
'वर्ष्माणं दिवो अकृष्णोदयं सः'
ऋ. ६.४७.४
(३) चोटी, ऊंची ध्वजा ।
'वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते'
अ. २०.१२७.२; शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.२.
(४) वर्ण, (५) देह, (६) भोग साम-
'वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै'
अ. ७.१४.३; का.सं. ३७.९; तै.ब्रा. २.७.५.१; आश्व.श्रौ.सू. ४.१०.१; शां.श्रौ.सू. ५.१४.८

वर्ष्या– वर्षा के जल ।
'अपो दिव्या असृजद् वर्ष्या अभिः'
ऋ. १०.९८.५; नि. २.११.
उस देवादि ऋषि ने दिव्यवर्षा के जल बरसाए ।

वर्ष्याः– ब.व. । वर्षा से प्राप्त जल धाराएं ।
'शमु ते सन्तु वर्ष्याः'
अ. १९.२.१; तै.आ. ६.४.१.

वरिमत् – (१) बहु स्थूलता, (२) विशालता ।
'यावदिदं भुवनं विश्वमस्ति
उरुव्यचा वरिमता गभीरम्'
ऋ. १.१०८.२
(३) विस्तार ।
'यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा'
अ. ४.६.२
(४) पृष्ठ ।
'यत् पृथिव्याः वरिमन्ना स्वंगुरिः'
ऋ. ४.५४.४

वरिमा– श्रेष्ठता, महत्त ।
'वरिमा च मे प्रथिमा च मे'
वाज.सं. १८.४; तै.सं. ४.७.२.१; मै.सं. २.११.२: १४.१.२; का.सं. १८.७
'अयं स यो वरिमाणं पृथिव्याः'
ऋ. ६.४७.४
'दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथे'
ऋ. १.५५.१; ऐ.ब्रा. ५.१९.३
(२) सब पदार्थों से अधिक श्रेष्ठता ।
'वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै'
अ. ७.१४.३

वरिवः- (१) गुरुजन आदि की सेवा (२) अन्तरिक्ष
'वरिवश्छन्दः'
वाज.सं. १५.४,५; तै.सं. ४.३.१२.२,३: ५.३.५.४ मै.सं. २.८.७: १११.१२; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.३,५; आप.श्रौ.सू. १७. ३.४.
(३) परिचरण। दे. 'पुरु' (४) सर्वोत्तम ऐश्वर्य।
'युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार'
ऋ. ३.३४.७; अ. २०.११.७

वरिवस्कृत- (१) सेवादि कर्म करने वाला।
'नमो भुवन्तये वारिवस्कृताय'
वाज.सं. १६.१९; तै.सं. ४.५.२.२; मै.सं. २.९.३: १२२.१५; का. सं. १७.१२.
(२) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला इन्द्र।
'एष इन्द्रो वरिवस्कृत्'
ऋ. ८.१६.६

वरिवस्यत् - परिचर्या करता हुआ -सा.

वरिवस्यातः- (१) वरि वस्यत् (पूजा करता हुआ) के द्वितीया ब.व. का रूप। अर्थ है-पूजा करते हुए हम लोगों को।
(२) परिपूजित कर-ज.दे.श.।
'उभे यथा नो अहनी सचाभुवा
सदः सदो वरिवस्यात उद्भिदा'
ऋ. १०.७६.१
जिससे (यथा) परिचर्या करते हुए हमें (वरि वस्यतः नः) साथ ही उत्पन्न (सचाभुवा) दोनों द्यौ और पृथिवी (उभे अहनी) घर घर या सभी यज्ञगृहों में (सदःसदः) उद्भेदक धन से पूर्ण करें- सा.।
जिससे हमारे दोनों दिनरात (उभे अहनी) घर घर हमारे अनुकूल होते हुए (सचाभुवा) अपने आविर्भाव से (उद्भिदा) हमारे प्रत्येक गृह को परिपूजित करें (सदः सदः वरिवस्यतः)।

वरिवोधा- (१) वरिवः सुखसेवनं दधाति यः स रथः (सुख सेवन धारण करने वाला रथ)- दया.
(२) धनैश्वर्य को धारण और प्रदान करने वाला-ज.दे.श. (३) सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला शरीर।
'श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः'
ऋ. १.११९.१

वरिवोधातमः- श्रेष्ठ ऐश्वर्य को धारण करने वाला।
'परिवोधातमो भव'
ऋ. ९.१.३; साम. २.४१,

वरिवोवित् - (१) धनवान्, ऐश्वर्यवान् (२) इन्द्र, (३) सेवा कर्म का ज्ञाता।
'वरिवोवित् परिस्रव'
ऋ. ९.६१.१२; साम. २.२३; वाज.सं. २६.१७

वरिवोवित्तर- (१) अति पूजनीय धन लाभ करने वाला।
'स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य'
ऋ. ८.४८.१

वरिवोविद्- (१) धनादि का दाता।
'भवन्तु वरिवोविदः'
ऋ. ८.२७.१४; वाज.सं. ३३.९४.
(२) धन समृद्धि को प्राप्त करने वाला।
'धिष्ण्या वरिवोविदम्'
ऋ. २.४१.९; वाज.सं. २०.८३
(३) धनैश्वर्य प्राप्त करने वाला दमन सामर्थ्य।
'वृत्रघ्ना वरिवोविदा'
ऋ. १.१७५.५

वरिवोदा- जीवन देने वाला जठराग्नि।
'वर्चोदा वरिवोदाः'
वाज.सं. १७.१५; तै.सं. ५.४.५.३; का.सं. १७.१७; २१.७; श.ब्रा. ९.२.१.१७; तै.आ. ४.७.४

वरिष्ठ - वर + इष्ठ = वरिष्ठ। सर्वश्रेष्ठ।
'तद् वार्यं वृणीमहे
वरिष्ठं गोपयत्यम्'
ऋ. ८.२५.१३; नि. ५.१.
हम उस वरणीय धन या ज्ञान का वर्णन करते हैं जो सर्वोत्तम तथा आप लोगों का रक्षणीय हो।
अथवा,
हम उस श्रेष्ठतम, अतिविस्तृत तथा रक्षा के योग्य ज्ञान का वर्णन करते हैं जिसका.....

वर्चिन् - (१) तेजस्वी, (२) शस्त्रास्त्रों से युक्त प्रतिद्वन्दी पुरुष, (३) दैत्य।
'यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रम्'
ऋ. २.१४.६

वर्ति- (१) गृह।
'वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम्'
ऋ. ८.९.११; अ. २०.१४१.१,
(२) लोकयात्रा, (३) अपनी स्थिति।
'ता वर्तिर्यातं जमुषा विपर्वतम्'

ऋ. १०.३९.१३
(४) सत्ता ।
'वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च'
ऋ. १.१८३.३; ६.४९.५.
(५) मार्ग । वृत्ति + ई = वर्ति ।
'त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने'
ऋ. १.३४.४
हे स्त्रीपुरुषो या अश्विद्वय, आप दोनों व्यवहार करने एवं चलने योग्य उत्तम मार्गों को तीन बार अर्थात् बार बार आओ जाओ ।
(६) वर्तमान ।
'तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम्'
ऋ. १.११७.२
हे उत्तम नायक विद्वान् जनो, उसी रथ से हमारे गृह पर भी आया करो ।

वर्तिका- (१) बटेरी, चटेक नामक पक्षी की स्त्री-सा. ।
'याभिर्वर्तिका ग्रसिताममुञ्चतम्'
ऋ. १.११२.८; आप.श्रौ.सू. १५.८.१२.
जिन शक्तियों से ग्रस्त बटेर को तुम दोनों ने बचाया ।
अथवा,
ठगों की शिकार बनी बटेरी के समान अतिदीन प्रजा को ठगों और शत्रुओं से छुड़ाते हो ।
(२) संग्राम में वर्तमान सेना -दया.
(३) उषा,
अजोहवीदश्विना वर्तिका वाम्'
ऋ. १.११७.१६; नि. ५.२१.
हे अश्विद्वय, तुम दोनों को बटेरी ने पुकारा । हे उषा, तुम दोनों दिन और रात (अश्विना) को पुकारती है ।
अथवा,
संग्राम में वर्तमान सेना (वर्तिका) तुम दोनों का आह्वान करती है ।
(४) प्रजा-दया.
शतपथ ब्राह्मण में 'विट् वै शकुन्तिका' कहते हुए प्रजा को शकुन्तिका वत लाया है ।

वर्षिमा- (१) ज्ञान, (२) अनुभव, (३) आयु, (४) पद की वृद्धि ।
'वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे'
वाज.सं. १८.४

वर्षिष्ठ- (१) बसने वाला ।
'वर्षिष्ठानि परीणसा'
ऋ. ८.७७.९
(२) अति सुखकारक ।
'सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके'
वाज.सं. १.२२.
(३) अति प्रचुर मात्रा में विद्यमान ।
'तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतः'
ऋ. ३.१६.३
(४) सब से महान्, सबके प्रति आनन्द वर्षण करने वाला- परमेश्वर, (५) उत्तम प्रकाशमय सूर्य -सा.
'वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः'
अ. १९.४९.२

वर्षिष्ठं ऋतम् - (१) खूब बरसाने वाला जल, (२) सबसे अधिक बल स्वरूप सत्यमय ज्ञानमय आत्मा ।
'ऋतं वर्षिष्ठमुपगाव आगुः'
ऋ. ३.५६.२

वर्षिष्ठं रत्नम् - (१) प्रचुर वृष्टि से युक्त रमणीय दृश्य, (२) वृद्धियुक्त चिरकालिक रमणीय जीवन की प्रचुर सुखदायक बल वीर्य (३) अतिशय रमण करने योग्य चिरकाल में विद्यमान पुराण पुरुष ब्रह्मतत्व ।
'वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिः'
ऋ. ३.२६.८

वर्षिष्ठ क्षत्रा- अति बल शाली प्रचुर वर्षा लाने वाले वीर्य जलादि से युक्त
'वर्षिष्ठ क्षत्रा उरुचक्षसा नरा'
ऋ. ८.१०१.२

वर्षिष्ठा - (१) वर्ष + इष्ट + टाप् = वर्षिष्टा इष (अन्न) का विशेषण । दे. 'आपप्तत'
'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४
हे सुप्रज्ञ मरुतो (सुमायाः), अतिमहान् अर्थात् प्रचुर अन्न, (वर्षिष्ठया इषा) से उपलक्षित पक्षियों की तरह (वयोन) शीघ्र आओ ।
(२) खूब जल वृष्टि से बढ़ी हुई अन्न सम्पत्ति ।
(२) बहुल + इष्टन् + टाप् = वर्षिष्ठा, बहुत अधिक ।

वरीमन् – (१) वरण करने का अवसर ।
'अकारि वामन्धसो वदीमन्'
ऋ. ६.६३.३
(२) वरण करने योग्य किरण (३) वरण करने योग्य उपाय, श्रेष्ठ उपाय ।
'इन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिः'
ऋ. १.१३१.१
महान् आकाश वरण करने योग्य किरणों से अन्धकारनाशक सूर्य के समक्ष झुकते हैं ।
'उरु प्रजया अमृतं वरीमभिः'
ऋ. १.१५९.२

वरीयः– अ. । (१) सर्वथा, एकदम ।
'वरीयो यावया इतः'
अ. ७.६५.१.
(२) वि. । श्रेयान्, उरुतर, बहुतर । उरु + ईयसुन = वरीयस् (उरु का वर आदेश) ।

वरीयसी– अतिश्रेष्ठ, वरण करने योग्य बड़ी भारी ।
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी
ऋ. १.१३६.३
महान् पराक्रम शाली पुरुष के लिए ही यह अतिश्रेष्ठ वरण करने योग्य भूमि दीख पड़ती है ।

वरीवर्जयन्ती– फटकारती हुई ।
'सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती'
अ. १२.५.२२

वरीवृत – गोलमटोल गाँठ के समान गर्भ से निकलने वाला बच्चा ।
'परिपाहि वरीवृतात्'
ऋ. ८.६.२२.

वर्ची– (१) बलवान् तेजस्वी ।
'शतं वर्चिनः सहस्रं च साकम्'
हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्'
ऋ. ७.९९.५; तै.सं. ३.२.११.३; मै.सं. ४.१२.५: १९२.५
(२) तेजोमय मेघ ।
'उदव्रजे वर्चिनं शम्बरञ्च'
ऋ. ६.४७.२१.

वर्मी– (१) लोहे का कवच धारण करने वाला ।
'नमो वर्मिणे च वरूथिने च'
वाज.सं. १६.३५; तै.सं. ४.५.६.२; मै.सं. २.९.६: १२५.२; का.सं. १७.१४.
(२) कवच धारी शूरवीर ।
'यद् वर्मी याति समदामुपस्थे'
ऋ. ६.७५.१; वाज.सं. २९.३८; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१०
(३) कवच पहने योद्धा

वर्षीयान् – बड़ा । वर्ष + ईयसु = वर्षीयस् । प्र.ए.में वर्षीयान् ।
'इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्'
वाज.सं. २३.४८; आश्व.श्रौ.सू. १०.९.२; शां.श्रौ.सू. १६.५.२.

वरुण – (१) वृ + उनन् = वरुण । रश्मि जाल से आच्छादित करने वाला रोग विनाशक आदित्य का एक वैदिक नाम । दे. 'आदित्य' । अन्येषामपि देवतानाम् आदित्य प्रवादाः स्तुतयः भवन्ति (अन्य देवताओं की स्तुति से भी आदित्य की स्तुति की जाती है) ।
'उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्'
ऋ. १.२४.१५; अ. ७.८३.३
हे, आदित्य, तू मेरे ऊपर वाले बन्धन को (उत्तरं पाशम्) हम से ऊपर खींचकर ढीला कर (उत्) ।
(२) माध्यमिक वाक् –विद्युत् । दे. 'आरभ'
'महःसमुद्रं वरुणस्तिरो दधे'
ऋ. ९.७३.३; तै.आ. १.११.१; नि. १२.३२.
महान् विद्युत् नामी वरुण (महः वरुणः) जब आदित्य को (समुद्रम्) मेघ जाल से तिरोहित कर देते हैं (तिरोदधे) ।
(३) सूर्य के अर्थ में वरुण का प्रयोगः– दे. 'ऋक्ष'
'अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि
विचाकशच्चन्द्रमानक्तमेति'
ऋ. १.२४.१०; ३.५४.१८; तै.आ. १.११.२
सूर्य के ये अहिंसित एवं आश्चर्यमय कर्म हैं कि दीप्तिमान चन्द्रमा रात में आकाश में आते हैं ।
(४) वरुण मेघजाल से आकाश को आवृत करता है । (५) वरणीय परमात्मा –दया. । सूर्य के अर्थ में प्रयोग –
'येना पावक चक्षसा
भुरण्यन्तं जनाँ अनु
त्वं वरुण पश्यसि'
ऋ. १.५०.६; अ. १३.२.२१; २०.४७.१८; आ.सं.

५.११; वाज.सं. ३३. २२; नि. १२.२२-२५
(६) एक वायु । मित्र और वरुण के योग से जल उत्पन्न होता है । प्रायः मित्र के साथ वरुण का साथ रहता है जैसे मित्रावरुण (७) प्राणवायु ।
'तन्नो मित्रो वरुणे मामहन्ताम्'
ऋ. १.९४.१६; ९५.११; ९६.९ ; ९८.३; १००.१९; १०१.११; १०२.११; १०३.८ ; १०५.१९; १०६.७; १०७.३; १०८.१३; १०९.८; ११०.९; १११.५; ११२.२५; ११३.२०; ११४.११; ११५.६; ९.९७.५८
उस आत्मा शक्ति को प्राण अपान आदि बढ़ावें-दया. ।
(८) मेघ या जल का देवता ।
(९) ओषजन वायु (Oxygen) ।
(१०) चुना हुआ राजा ।
(११) मित्र का अर्थ मन्त्री और मित्रा वरुण का अर्थ राजा और मंत्री भी किया गया है ।
आधुनिक अर्थ-आदित्य, पश्चिम दिशा का स्वामी वरुण, समुद्र, आकाश मण्डल
(२) वरुण नामक विषहारी ओषधि ।
'मित्रश्च वरुणश्च'
अ. ३.२२.२; १०.४.१६; तै.आ. १.१३.३
(३) सबको आवरण करने वाला । मेघ ।
'मित्रो गृणाति वरुणः'
अ. २०.१०६.३

वरुणतेजाः- (१) वरुण के समान तेजस्वी, (२) स्वयंवृत राजा के समान तेजस्वी ।
'अप्सुसंशितो वरुणतेजाः'
अ. १०.५.३३

वरुणध्रुत- (१) वरुण या श्रेष्ठजनों से विनाशित दण्डित (२) श्रेष्ठ पुरुषों से धारित ।
'रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः'
ऋ. ७.६०.९

वरुणपुत्र- कफ से उत्पन्न ज्वर ।
'यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः'
अ. १.२५.३

वरुणशेषाः- (१) श्रेष्ठ दुःखकारक पुरुष का पुत्र, (२) श्रेष्ठ पुत्र वाला ।
'अनेहसस्त्वोतयः
सत्रा वरुणशेषसः'
ऋ. ५.६५.५

वरुणस्य जामिः- (१) वरण करने योग्य अन्धकार को वारण करने वाले सूर्य की जामि अर्थात् भगिनी उषा, (२) सबको आवरण करने वाले रात्रि रूप अन्धकार की कन्या -उषा (३) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष का अपत्य उत्पन्न करने वाली पुत्री-कन्या, (४) दुःखों से वारण करने वाले भ्राता की भगिनी ।
(५) वरुण की भगिनी-उषा ।
'भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः
उषः सूनृते प्रथमा जरस्व'
ऋ. १.१२३.५

वरुणस्य धर्मा- (१) राजा या श्रेष्ठ परमात्मा का धर्म धारण व्यवस्था या राजनियम ।
'तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा'
अ. ६.१३२.१-५

वरणमणि- (१) वरण करने या मुख्य रूप से चुनने योग्य श्रेष्ठतम राजतिलक द्वारा अभिषेक करने योग्य (२) शत्रुका तरण करने वाला पुरुष शिरोमणि, (३) शत्रुओं का वारण करने वाले मणित-बीज ।
'अयं मे वरणो मणिः
सपत्नक्षयणो वृषा'
अ. १०.३.१

वरुण्प- (१) वह रोग जिसमें बहुत प्यास लगे या जो रोग रात्रिकाल में बढ़े ।
'अथो वरुण्यादुत'
ऋ. १०.९७.१६; अ. ६.९६.२; ७.११२.२; वाज.सं. १२.९०.
(२) दमन करने योग्य असत्य भाषणादि अपराध ।

वरुणानी - वृ + उनन् = वरुण । वरुण + आनुक् + ङीष् = वरुणानी ।
(१) वरुण की पत्नी-सा. ।
(२) समुद्र ।
'आ रोदसी वरुणानी श्रृणोतु'
ऋ. ५.४६.८; ७.३४.२२; अ. ७.४९.२; मै.सं. ४.१३.१०: २१३.११; तै.ब्रा. ३.५.१२.१; नि. १२.४६.
रुद्र की पत्नी (रोदसी) तथा वरुण की पत्नी (वरुणानी) सुनें ।
(३) आत्मा की शक्ति, (४) चिति शक्ति जिससे

स्वप्न निकलता है ।
'वरुणानी ते माता'
अ. ६.४६.१

वरणावती – (१) वरणा नामक ।
ओषधि जिससे विष दूर होता है ।
'वारिदं वारपातै
वरणावत्यामधि'
अ. ४.७.१
धन्वन्तरि राजनिघण्टु के अनुसार 'वरा' ही वरणा है । पान, बन्ध्या, कर्कोटकी, विडङ्ग, हरिद्रा, काकमाची, और उसके दोनों भेद काकजेघा और चूड़ामणि, और वरा के गण में ही हैं ।
इसके अंश से युक्त जल से विषनाशक होता है । पृथ्वी भी वरा है । मिट्टी के प्रलेप से भी सर्प आदि के विष दूर होते हैं ।

वरुत्री– (१) रक्षा करने वाली विद्या –दया. (२) उपद्रवों को धारण करने वाली –सा. ।

वर्धुः– बढ़ाने वाला ।
'वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हाः'
ऋ. १.७१.६

वरूता– (१) अपनाने वाला और विभाग कर रखने वाला ।
'को वस्त्राता वसवः को वरूता'
ऋ. ४.५५.१; शां.श्रौ.सू. १७.८.९
(२) विपत्तियों से बचाने वाला ।
'त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीः'
ऋ. २.२०.२
(३) वरिता, स्वीकर्ता,
(४) रक्षा करने वाला ।
'महश्चिदसि त्यजसो वरूता'
ऋ. १.१६९.१; कौ.ब्रा. २६.१२.

वरूत्री– (१) शत्रुओं से वारने वाली सेना ।
'अस्मान् वरूत्रीः शरणैरवन्तु'
ऋ. ३.६२.३

वरूथः– (१) घर के समान सब को शरण देने वाला, (२) विपत्तियों और आक्रमणों का वारक ।
'वरूथः सर्वस्मा आसीत्'
अ. २०.१२८.१२
(२) वृ + ऊथ = वरूथ । ताप निवारक वृष्टि जल या उत्तम जल ।
'शीर्ष्णा शिरः प्रतिदधौ वरूथम्'
ऋ. १०.२७.१३.
आदित्य अपने शिरः स्थानीय रश्मिजाल से (शीर्ष्णा) ताप निवारक वृष्टि जल या उत्तम जल को (वरूथम्) समस्त संसार के सिर पर बरसाता या रखता है (शिरः प्रतिदधौ) ।

वरूथ्यः– (१) उत्तम गृह में निवास करने वाला, (२) उत्तम सेना संघों का हितैषी, (३) उत्तम रक्षा साधनों से सम्पन्न ।
'उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः'
ऋ. ५.२४.१; साम. १.४४८; २.४५७; वाज.सं. ३.२५; १५.४८; २५.४७; तै.सं. १.५.६.३; ४.४.४.८; मै.सं. १.५.३: ६९.९; का.सं. ७.१, ८; श.ब्रा. २.३.४.३१; कौ.सू. ६८.३१.
(२) गृहोचित् धनधान्यादि सुख, (२) दुःख वारण में समर्थ साधन ।
'विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहे'
ऋ. ८.४७.३

वरूथ्यं छर्दिः– शीत, आतप वर्षा आदि से वरण करने वाला दृढ़ गृह ।
'छर्दिर्यद्वाँ वरूथ्यं सुदानू'
ऋ. ६.६७.२

वरूथी– (१) गृह, प्रासाद आदि का स्वामी ।
'नमो वर्मिणे च वरूथिने च'
वाज.सं. १६.३५; तै.सं. ४.५.६.२; मै.सं. २.९.६ १२५.२; का. सं. १७.१४.

वर्वृतानः– (१) उत्पन्न हुआ, (२) ले जाने वाला ।
'प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः'
ऋ. १०.३४.१; नि. ९.८

वर्वृताना– (१) पुनः पुनः वर्तमानाः बार–बार होती हुई ।
वृत् धातु के लिट् में कानच् और टाप् जोड़कर बना है ।
(२) बहुत पाई जाने वाली, या, (पुल्लिंग में) में बहुत पाए जाने वाले ।
वर्षा ऋतु, सूखे स्थल, शून्य या मरुभूमि में बहुत पाए जाने वाले । 'हर्रे' ।

वरेण्य – वृत् + एण्य = वरेण्य । वरणीय
'विनाकमारव्यत् सविता वरेण्यः
वह सविता वरणीय है और द्युलोक को भी

दिखलाते या प्रकाशित करते हैं (नाकम् व्यारव्यत्) ।

वरेण्य क्रतु- (१) सब से गुण वरण करने योग्य ज्ञान और कर्म से युक्त

'वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये'

अ. ६.२३.१

वरेयुः- सत्कार्य में लगा पुरुष ।

'वरेयवो न मर्या घृतप्रुषः'

ऋ. १०.७८.४

वर्चोधा - तेज का धारण करने वाला ।

'सूरिरसि वर्चोधा असि'

अ. २.११.४

वल- (१) शत्रुनगरों को घेरने में समर्थ,

(२) बलवान् पुरुष ।

(३) विद्युत् आघात् करने वाला । आकाश में व्यापक मेघ ।

(४) संरक्षा संवारण करने योग्य विदयार्थी ।

'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः'

ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.

(५) वृ (आच्छादना) + अप = वल (र का ल् कपिल आदि के समान) । व्रियते अनेन दिश = आकाशावा इति वलः मेघः (इस बल से आकाश आवृत रहता है) ।

अर्थ- (१) मेघ ।

'वल' धातु से भी यह शब्द निष्पन्न हो सकता है ।

'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः
पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'

ऋ. ३.३०.१०

हे इन्द्र, या राजन्, जो यह आकाश में आच्छादित , इधर उधर मड़राता हुआ (व्रजः) या अन्तरिक्ष में गोष्ठ भूत पका हुआ मेघ (अ-लातृणः) पूर्ण ही भयभीत होकर (गोः हन्तो पुरा भयमानः) ढीला पड़ जाता या इधर उधर विश्लिष्ट हो जाता है (व्यार).....।

(२) आन्तरिक शत्रु ।

'तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः
ऋतं वन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्'

ऋ. १०.१३८.१

हे सूर्य, तेरे सख्य में विद्यमान नेता विद्वान् (वह्नयः) सत्य स्वरूप प्रभु का मनन करते हुए (ऋतं मन्वानाः) आन्तरिक शत्रुबल को (वलम्) विदीर्ण किया (व्यदर्दिरुः) ।

दुर्ग ने वल का अर्थ मेघ, ऋत का अर्थ जल और वह्नि का अर्थ 'अश्व' किया है ।

(३) शक्ति, (४) वल नामक असुर

(५) नगर पुर आदि को घेरने वाला शत्रु ।

मेघ के अर्थ में प्रयोग -

'भिनद् वलस्य परिधींरिव त्रितः'

ऋ. १.५२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८५.५

जिस प्रकार सूर्य और वायु मेघ के पटलों को (वलस्य परिधीः) ऊपर, अण्डे और तिरछे तीनों प्रकारों से (त्रितः) छिन्न भिन्न कर देता है । (अभिनत्) ।

(६) तामस आवरण ।

'इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानाम्'

ऋ. १०.६७.६; अ. २०.९१.६

(७) अन्तः करण को घेरने वाला अज्ञान

'अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्'

ऋ. ८.१४.८; अ. २०.२८.२; २०.३९.३ साम. २.९९१; ऐ.ब्रा. ६.७.६; गो.ब्रा. २.५.१३.

घर लेने वाला अन्धकार ।

'बिभेद वलं नुनुदे विवाचः'

ऋ. ३.३४.१०; अ. २०.११.१०; मै.सं. ४.१४.५: २२२.१०.

वलग - गूढ़ हिंसा प्रयोग ।

'इतमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे
निष्ट्यो यममात्यो निचखान'

वाज.सं. ५.२३.

वलगा - (१) वलगाः पीड़ार्थे भूमेरधो बाहुप्रदेशे निरवन्यमानाः असि केशादि वेष्टिता विष वृक्षादि-निर्मिताः पुत्तल्यो वलगा इत्युच्यन्ते -सा. (भूमि में एक हाथ भर नीचे खोदकर उसमें हड्यों और केशों से लिपटी जहरीले विषवृक्ष आदि की बनी पुतली वलगा है)- सा. ।

(२) शत्रुओं को मारने का प्रयोग विशेष जैसे देवता, पिशाची, कृत्या ।

वलगी- (१) गुप्त यन्त्रणा करने वाला, (२) वलगा नामक भूमि के अन्दर किया जाने वाला । प्रयोग ।

'कृत्याकृतो वलगिनः'

अ. १०.१.३१.

वलंरुजः- (१) मेघ को आघात करने वाला सूर्य, (२) वल को मारने वाला- इन्द्र, (३) घेरने वाले शत्रु को प्रबल आक्रमण से तोड़ फोड़ देने वाला ।

'वृत्रखादो वलंरुजः'

ऋ. ३.४५.२; साम. २.१०६९

व्यल्कशा - बड़ी बड़ी शाखाओं वाली ।

'शाण्डदूर्वा व्यल्कशा'

अ. १८.३.६

वल्ग - ललकारना, (२) तप्तजल का खौलना -खदकना,

'उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः'

अ. १२.३.२९

(३) अतिथि सत्कार करना

(४) गति करना ।

'आच्छीभं समवल्गत'

अ. ३.१३.२.

वल्गत्- (१) गमन करता हुआ, (३) उत्तम उपदेश करने वाला । पुरुष ।

'वल्गते स्वाहा'

वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३: १६०.१४.

वल्श- (१) अंकुर, (२) शाखा । branch से वल्श की समानता विचारणीय है ।

'वनस्पते शतवल्शो विरोह'

ऋ. ३.८.११; तै.सं. १.३.५.१; ६.३.३.३ मै.सं. १.२.१४: २३.९; का.सं. ३.२,२६.३; तै.ब्रा. १.२.१.५; आप.श्रौ.सू. ५.२.४; ७.२.८

वल्ह - पूछना ।

'एतद्ब्रह्मन्नुपत्वा वल्हामसि त्वा

वाज.सं. २३.५१; आश्व.श्रौ.सू. १०.९.२; शां.श्रौ.सू. १६.६.३; ला.श्रौ.सू. ९.१०.११.

वल्मीक - दीमक का बना ढेर ।

'वल्मीकान् क्रोमभिः'

वाज.सं. २५.८

वल्गुः -मधुर वचन ।

'जुष्टा वरेषु सुमनेषु वल्गुः'

अ. २.३६.१

ववक्षिथ - 'वच्' या 'वह्' धातु के सनन्त म.पु.ए.व.में अभ्यास (द्वित्व) होने से 'ववक्षिथ' बना है । यहाँ एकवचन के स्थान में बहुवचन तथा 'क्ष' के अ का 'इ' व्य व्यत्यय से हुआ है ।

'अति विश्वं ववक्षिथ'

ऋ. १.८१.५; साम. १.३१२.

ववक्षे- पुनःपुनः ब्रूषे (तू बार बार कहता है) । दे. 'परिचक्ष्य' ।

'अ यद्ववक्षे शिपिविष्टोऽस्मि'

ऋ. ७.१००.६; साम. २.९७५; तै.सं. २.२.१२.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.४; नि. ५.८.

तू जो अपना यह नाम बार बार कहता है (प्र यत् ववक्षे) कि मैं शेप के सदृश तेज में निविष्ट हूँ (शिपिविष्टोऽस्मि) या शरीर में व्याप्त वीर्य की तरह मैं इस भूमण्डल में व्याप्त हूँ ।

ववन् - विद्वान् जन ।

'अग्निर्वव्ने सुवीर्यम्'

ऋ. १.३६.१७

अग्नि विद्वान् जन को उत्तम बल दे ।

ववन्वान् - सब का दाता प्रभु ।

अथो अयुक्तं युजद् ववन्वान्'

ऋ. १०. २७.९

ववर्जुषी- (१) सब दोषों से रहित प्रजा (भृंश दोषान् वर्जयन्ती)-दया . ।

ववर्तत्- सर्वत्र व्याप्त ।

'आ च यज्ञियो ववर्तत्'

अ. २०.५५.१

ववव्रुष्- (१) आवरणकारी अन्धकार ।

'ववव्रुषश्चित् तमसो विहन्ता'

ऋ. १.१७३.५

वव्रः- (१) चारों ओर से घिरा,

(२) कारागार, (२) कूप,

(३) गड्ढा ।

'इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तः'

ऋ. ७.१०४.३; अ. २.४.३;

(४) व्यापक ।

'असिन्वं वव्रं महयाददुग्रः'

ऋ. ५.३२.८

(५) आवृत स्थान, (६) गौओं का बाड़ा, (७) आवृत अन्तः करण, (८) सुगुप्त ।

'अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तः'

ऋ. ४.१.१३.

कूप के अर्थ में -

'स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि'
ऋ. १.५२.३
जेल, आवृतस्थान या गड्ढे के अर्थ में –
'वव्रमनन्तमवसापदीष्ट'
ऋ. ७.१०४.१७; अ. ८.४.१७;
(९) व्रज् + ड = वव्रः (द्वित्व)। सद्यः गन्ता – दया.।
(१०) सदा चलने वाला वायु 'वव्रासो न'।
(११) वायुओं और प्राणों के समान जीवन की वृद्धि के लिए निरन्तर देश देशान्तर में भ्रमण करने वाला।
(१२) मरुतों का विशेषण। 'वावर' और 'व व्र' शब्द की समानता विचारणीय है।
'वव्रासो न ये स्वजाः'
ऋ. १.१६८.२

वव्रि– वृञ् + कि = वव्रि। वव्रिः इति रूपनाम (वव्रि रूप का नाम है)।
'तत् हि स्वाश्रयम् आवृणोति'
(रूप अपने आधार को आवृत करता है अतः वव्रि है)। अर्थ है– (१) रूप।
सुन्दर बाल रखने का नाम 'वावरी' है जिस की समानता 'वव्रि' शब्द से स्पष्ट है।
(२) आहवनीय अग्नि नाम का विशेषात्मा जिसे घर में आहुति के लिए रखते हैं। –सा.
(३) वरण किया हुआ, आचार्य।
'शये वव्रिश्चरति जिह्वया दन्'
ऋ. १०.४.४
आहवनीय अग्नि नाम का विशेषात्मा इस परिमित स्थान में आहुतियों को खाता हुआ जलता रहता है।
अथवा,
वरण किया हुआ आचार्य आश्रम में वाणी द्वारा शिक्षा देते हुए विचरते हैं।

वव्रिवान् – घेरने वाला, विघ्नकारी
'अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसम्'
ऋ. २.१४.२

वव्रिवासाः– रूप विनाशक या ऊपर के दिखाए वस्त्र से सजा हुआ।
'आ श्रेषं वव्रिवाससम्'
अ. ८.६.२.

ववृतीय– लगाऊं।
'अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान्'
ऋ. १.१८६.१०

वश– (१) To wish कामना करना।
'वशैश्च मक्षू जरन्ते'
ऋ. ८.८१.९
'यथा वशन्ति देवा स्तथेदसत्'
ऋ. ८.२८.४
(२) वश करने योग्य राष्ट्रजन।
'याभिर्वशं दश व्रजम्'
ऋ. ८.८.२०
(३) जीवन को वश या स्थिर करने वाला सोम, परमेश्वर या शुक्र।
'त्वं च सोमनो वशो
जीवातुं न मरामहे'
ऋ. १.९१.६

वंश– (१) वने + शीङ् + अच् = वनेशय = वनशय = वंश।
(२) वन् (संभजन) + श्रू = वंश। पृषोदरादिवत्। 'वंशो वनशयो भवति वननात् श्रूयत इति वा'। (बांस मानों वन में सोया रहता है अथवा पोर गिरह गांठों के द्वारा बांस से विभक्त रहता है इसी से वंश कहलाया)। अर्थ– (१) बांस, (२) ध्वजा।
'ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत
उद्वंशमिव येमिरे'
ऋ. १.१०.१; साम. १.३४२; २.६९४; तै.सं. १.६.१२.३; नि. ५.५.
हे शतक्रतो! ब्राह्मण तुझे ध्वजा की तरह स्तुति के द्वारा बढाते हैं।
आधुनिक अर्थ – वंश, कुल परिवार, समान पदार्थों का समूह, बांस की ग्रन्थि, एक प्रकार का ईख, रीढ़, शाल वृक्ष, लम्बाई नापने का एक परिमाण।
(२) बांस के अर्थ में प्रयोग –
'वंशानां ते नहनानाम्'
अ. ९.३.४
ध्वजादण्ड के अर्थ में प्रयोग।
'क्रतेन स्थूणामधि रोह वंश'
अ. ३.१२.६

वशनी– (१) वश करने में समर्थ, (२) वश में जाने योग्य।

'अथा देवानां वशनीर्भवाति'
ऋ. १०.१६.२; अ. १८.२.५; तै.आ. ६.१.४.

वंशवर्ती- बांस पर नाचने वाला ।
'अन्तरिक्षाय वंशवर्तिनम्'
वाज.सं. ३०.२१; तै.ब्रा. ३.४.१.१७

वशा- (१) वीर्य धारण करने में समर्थ गौ, (२) सुन्दर मनोहर गौ
'उक्षा च मे वशा च मे'
वाज.सं. १८.२७; तै.सं. ४.७.१०.१; का.सं. १८.१२;
(३) उत्तम पृथिवी, (४) दिव्यवाणी, (५) उत्तम स्त्री ।
'वशाभिरुक्षभिः'
ऋ. २.७.५
(६) संसार को वश करने वाली परमात्मा शक्ति ।
'वशं सहस्रधाराम्'
अ. १०.१०.४
(६) परमेश्वर की सर्व वशकारिणी ज्ञानमयी शक्ति ।
(८) वशा रूप गौ-सा.
(९) पृथिवी जिसका शासन प्रजा के हाथ में है ।
'यदि हुतां यद्यहुताम्'
अ. १२.४.५३.
(१०) कामना करने योग्य उत्तम पुत्रादि पदार्थ ।
'प्र वां निचेरुः ककुहो वशामनु'
ऋ. १.१८१.५

वशान्न - वशा + अन्न । (१) समस्त संसार को समष्टि व्यष्टि रूप से वश करने वाली चेतना शक्ति को ही अपना अन्न अर्थात् मानस भोजन बनाने वाला योगी जन ।
'उक्षान्नाय वशान्नाय'
ऋ. ८.४३.११; अ. ३.२१.६; २०.१.३; तै.सं. १.३.१४.७; मै.सं. २.१३.१३: १६३.४, का.सं. ७.१६; ४०,५; ऐ.ब्रा. ६.१०.५; कौ. ब्रा. २८.३;
(२) वशा अन्न (३) यथेच्छ भोजन करने वाला-जीवात्मा (४) सर्ववशकारिणी शक्ति का अन्नवत् उपभोग करने वाला ।
'उक्षान्नाय वशान्नाय
सोमपृष्ठाय वेधसे'
ऋ. ८.४३.११; अ. २०.१.३; ३.२१.६
(५) वशा अर्थात् पृथिवी जिसका अन्त है-परमेश्वर
(६) जिसका अन्न सब को वश करने में समर्थ है ।

वशायाः पुत्रः- (१) सर्ववशकारिणी ब्रह्मशक्ति का पुत्र (२) वश करने वाली पृथिवी या राष्ट्र के पुरुषों को कष्टों से त्राण करने में समर्थ राजा ।
'वशायाः पुत्रमायन्ति'
अ. २०.१२०.१५

वशा-शमन- (१) बन्ध्या गौ का शमन- मारना, (२) पृथ्वी की शक्ति की उपासना ।

वशि- पूर्णवशी ।
'वशिं भगमिन्द्र'
वाज.सं. २८.३३

वशी- (१) अपराधीन, स्वतन्त्र (२) इन्द्र का विशेषण
(३) स्वा. दयानन्द के अनुसार राजा का विशेषण ।
'वशी य आरिवः कर्मणि कर्मणिस्थिरः'
ऋ. १.१०१.४
जो इन्द्र या राजा अपराधीन, स्वतन्त्र है, जो सर्व के आधारभूत मर्यादित मार्ग की तरह है या जिसके पास स्तोता स्तुतियों के द्वारा जाते हैं । (आरितः), (या स्वा. दयानन्द के अनुसार) जो वेदानुकूल चलने वाला राजा है-जो प्रत्येक कर्म में स्थिर है.....

वशीय - वश करने में समर्थ ।
'अस्मादेतमध्न्यौ तद् वशीयः'
अ. १८.४.४९

वषट्- (१) सत्कार पूर्वक ।
'वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि'
ऋ. ७.९९.७; १००.७; साम. २.९७७; तै.सं. २.२.१२.४; का.सं. ६.०; आश्व.श्रौ.सू. ३.१३.१४.
(२) वहन कार्य -
'वषट् ते पूषन्नस्मिन् सूतौ
अर्यमा होता कृणोतु वेधाः'
अ. १.११.१
(३) दान दिया जाना, (४) आत्म-समर्पण ।
'वषट् हुतेभ्यः वषडहुतेभ्यः'
अ. ७.९७.७

वषट्कार- (१) वाक् वै वषट् कारः । वाग् रेतः । रेत एव एतत् सिञ्चति (२) षट् इति । ऋतवो वैषट् , तद् ऋतुष्वेव एतत् रेतः सिच्यते तदृतव रेतः सिक्तमिमाः प्रजा प्रजनयन्ति । तस्मादेव वषट् करोति ।
श.ब्रा. १.७.२.२१.
(३) यो धाना सो वषट् कारः-ऐ.ब्रा. (४) त्रयो वै वषट् काराः वज्रो धामच्छद् रिक्तः । स यदेवोष्णैः वलं वषट् करोति स वज्रः । अथो यः समः सन्ततो निर्हाणच्छत् स धामच्छत् अथ येन वषट् पराध्नोति स रिक्तः गो.ब्रा.
(५) वज्रो वै वषट् कारः-ऐ.ब्रा. (६) एते एव वषट् कारस्य प्रियतमे तनू यदाजश्च सहश्च-कौ.ब्रा., ऐ.ब्रा.
तस्य एतस्य ब्रह्म यज्ञस्थ चत्वारो वषट् कारा-यत् वातो वाति , यत् विद्योतते । यत् स्तनयति, यदवस्फूर्जति-श.ब्रा.
अर्थ - (१) शरीर में वाणी, प्राण और अपान, (२) वीर्य सेचन, (३) छः ऋतुओं में सूर्य बलाधान करता है । यह उसका वषट् कार है, (४) सूर्य स्वतः वषट् कार है, (५) धाता होना, वीर्य आधान करने में समर्थ होना वषट् कार है, (६) ब्रह्म, धामच्छद् और रिक्त वषट्कार के तीन स्वरूप है । (७) ओजः और सहः पराक्रम-शत्रुदमनकारी बल से दोनों वषट्कार के दो रूप हैं । (८) ब्रह्म यज्ञ के चार वषटकार है- वायु का वेग से चलना, विजली का चमकना, गर्जना और कड़कना । (९) यज्ञ में स्वाहा करने वाला ।
'याज्याभिर्वषट्कारान्'
वाज.सं. १९.२०

वषट्काराः - स वै वौक् इति करोति । वाक् वै वषट्कारः वाक् रेताः । रेत एतत् सिञ्चति । षट् इति ऋतवः । ऋतवो वै षट् । ऋतुष्वेव एतत् रेतः सिच्यते । योधाता स एव वषट् कारः।
श.ब्रा. १.७.२.२१.
'वषट्कारैः वषट्कारा'
वाज.सं. २०.१२.

वषट्कृत - (१) स्वाहाकार आदि यज्ञ ।
'इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट् कृतम्'
अ. ९.५.१३.
(२) उत्तम सत्कार से युक्त ।
'पत्नीवन्तो वषट् कृताः'
ऋ. ८.२८.२
(३) क्रिया निष्पादित, शिल्पविद्याजन्य (क्रिया द्वारा निष्पादित शिल्प विद्या से हुआ कर्म) ।
(४) वषट्कार, (५) यज्ञ,
(६) आहुति या आदान प्रदान,
(७) सृष्टिगत सर्ग और प्रलय (८) दान शील ।
'इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट् कृतम्'
ऋ. १.१६२.१५; अ. ९.५.१३; वाज.सं. २५.३७; तै.सं. ४.६.९.२; मै.सं. ३.१६.१: १८३.११
तब इसे प्राप्त हुए, समृद्ध, सुन्दर, सबको प्रिय दानशील, परिश्रमी, विद्वान् राष्ट्र और राष्ट्रपति को.....
(९) छः हिस्सों में किया गया । सष्ठांश कर ।
'पिबेन्दु स्वाहा प्रहुतं वषट् कृतम्'
ऋ. २.३६.१

वषट्कृति- सत्कार, हवन ।
'सेमां वेतु वषट् कृतिम्'
ऋ. ७.१५.६

वषट् कृति आहुति - (१) वह आहुति जिसमें उत्तमोत्तम क्रिया की जाय, (२) पांचों भूत एवं अहंकार महत् युक्त छः विकारों की आहुति ।
'य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिम्'
ऋ. १.३१.५
जो परमेश्वर या अग्नि स्वयं पांचों भूत और अहंकार महत् युक्त छहों विकारों की आहुति को अपने भीतर ग्रहण करता है ।

वष्कयवत्स- सत्यस्वरूप जगत् का आच्छादक प्रभु ।

वष्टि- चाहता है । वश् + तिप् । वश् ' धातु से ही wish हुआ है ।
'जुहोत पृष्णे तदिदेष वष्टि'
ऋ. २.१४.१
(वह इसे ही चाहता है) ।

वष्टु- कामना करे, अपनावे, संचालन करे ।
'यज्ञं वष्टु धियावसुः'
ऋ. १.३.१०; साम. १.१८९; वाज.सं. २०.८४; मै.सं. ४.१०.१; १४२.८; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा. २.४.३.१; ऐ.आ. १.१.४.१६; नि. ११.२६.

कर्मयोग में बसाने वाली या कर्म से प्राप्य धन को देने वाली (धियावसुः) सरस्वती या वेदवाणी हमारे यज्ञ की कामना करे, अपनावे या हमारे प्रत्येक शुभ कर्म का संचालन करें ।

वः – आप के लिए (युष्मभ्यम्) ।
'इमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्'
ऋ. १०.१५.४; अ. १८.१.५१; वाज.सं. १९.५५; तै.सं. २.६.१२.२; मै.सं. ४.१०.६; १५६.१२; का.सं. २१.१४.
हे यज्ञ में बैठने वाले पितरो, आप के लिए हमने ये हव्य तैयार किए हैं इन्हें आप चखें ।

वस्– (१) बसने वाला – प्रजानन ।
'वसां राजानं वसतिं जनानाम्'
ऋ. ५.२.६.
(२) आच्छादित करना ।
'अयं वस्ते गर्भं पृथिव्याः'
अ. १३.१.१६.

वंस – देना ।
'अग्निर्नो वंसते रयिम्'
साम. १२२; तै.सं. ४.६.१.५; का.सं. १८.१.

वंसगः– (१) वृषभ के समान सुन्दर मनोहर गति से चलने वाला नर पुंगव, नर श्रेष्ठ ।
'धरुणोऽसि वंसगोऽसि'
अ. १८.३.३६
(२) सत्यासत्य विवेकी पुरुषों के बीच स्थित,
(३) उत्तम आचारवान
(४) बैल, वृषभ
'यूथे न साह्वां अववाति वंसगः'
ऋ. १.५८.५
(६) सेवनीय समस्त पदार्थों या लोकों में व्यापक ।
(७) उत्तम गति वाला हृष्टपुष्ट बैल
'वृषा यूथेवं वंसगः'
ऋ. १.७.८; अ. २०.७०.१४; साम. २.९७२.

वसति– (१) वासस्थान, ग्राम ।
'वसश्च मे वसतिश्च मे'
वाज.सं. १८.१५; तै.सं. ४.७.५.२; मै.सं. २.११.५; १४२.११; का.सं. १८.१०
'वयो न वसतीरुप'
ऋ. १.२५.४
(२) वस् + अति = वसति । अर्थ है स्थावर आहुति ।

वसत्या– वसति + टाप् = वसत्या । 'वसति' के तृतीय ए.व.का रूप । अर्थ है –वास स्थान से, (२) स्थावर ओषधि की आहुति से ।

वसते– आच्छादित करती है । 'वस् ' धातु आच्छादित करना अर्थ में आया है ।
'यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं
सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः'
ऋ. १०.८८.१९; नि. ७.३१.
हे मातरिश्वा !जितना ही रात्रि या उषा, का प्रतीक आच्छादित करती हैं या जितनी ही उषाएं रात्रियों से देखी जाती हैं ।

वसन्त – (१) वसन्त ऋतु ।
'वसन्तो अस्यासीदाज्यम्'
ऋ. १०.९०.६; अ. १९.६.१०; तै.आ. ३.१२.३
(२) सब प्राणियों को बसाने वाला–परमात्मा ।
'वसन्त इन्नु रन्त्यः'
आ.सं. ४.२.

वसव्य– (१) बसे प्राणिजनों एवं लोक के हित के लिए, (२) द्रव्यों में ।
'अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः
समर्थयस्व बहुते वसव्यम्'
ऋ. २.१३.१३
(३) वसु + यत् = वसव्य । गृह में बसने वाले के लिए हितकारी ऐश्वर्य ।
'अग्निरीरो वसव्यस्य'
ऋ. ५.५५.८; का.सं. ७.१६.
(२) ऐश्वर्य ।
'धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः'
ऋ. ६.१३.४;
'उभयं ते न क्षीयते वसव्यम्'
ऋ. २.९.५

वसवा– (१) सबको आच्छादित करने वाला ।
'वसवानं वसू जुवम्'
ऋ. ८.९९.८

वसवानः– (१) बसाता हुआ, (२) वसुपति के समान रहता हुआ ।
'स न एनीं वसवानो रयिं दाः'
ऋ. ५.३३.६
(३) स्वगुणैः सर्वान् आच्छादयन् (अपने गुणों से आच्छादित करता हुआ) (४) सबको बसाता

हुआ ।
(५) सब धनों की लादने वाला, (६) बसी प्रजाओं को अपनी छत्रछाया में रखने वाला ।
'त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः'
ऋ. १.१७४.१
(७) बसे हुए प्रजाजनों को चाहने वाला ।
'वसवान वसुः सन्'
ऋ. १०.२२.१५

वसर्हा- (१) वासहेतूनाम् अर्हकः
(२) बसने और आच्छादन करने योग्य गृह वस्त्रादि से आदर करने वाला पिता
(३) अपने समीप बसने वाले शिष्यों को आदर से रखने वाला और उनके द्वारा आदरणीय-गुरु ।
'ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा'
ऋ. १.१२२.३; तै.सं. २.१.११.१; का.सं. २३.११.
बसने और आच्छादन करने योग्य, गृह वस्त्रादि से आदर करने वाला (वसर्हा) उद्यमी या अन्न देने वाला (परिज्मा) पिता या गुरु या अग्नि हमें हर्षित करें (ममत्तु) ।

वस्तः- दिन ।

वस्त्रदाः- वस्त्रदान करने वाले ।
'ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदाः
ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः'
ऋ. ५०.४२.८

वस्त्रमथिः-वस्त्रमाथी, वस्त्रापहर्ता (वस्त्र लेकर भागने वाला चोर) ।
'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुम्
अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु'
ऋ. ४.३८.५; नि. ४.२४.
और इस दधिकावा इन्द्र को देखकर युद्धों में बैरी चिल्लाने लगते हैं (एनं भरेषु अनुक्रोशन्ति) जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर देखकर लोग चिल्लाते हैं (वस्त्रमथिं तायुं क्षितपो न)
और युद्धों में (भरेषु) वस्त्र तक चुरा लेने वाले चोर की तरह जिस राजा को प्रजा या शत्रुजन (क्षितपः) कोसते हैं (अनुक्रोशन्ति) ।

वस्न- (१) मूल्य ।
'भूयसा वस्नमचरत् कनीयः'
ऋ. ४.२४.९
(२) व्यापार, (३) वेतन ।
'यच्च वस्नेन विन्दते'
अ. १२.२.३६

वस्नयन्ता- द्वि.व. । (१) रहना- वसना चाहते हुए- मेघ और जल । (२) अच्छादन वस्त्र एवं निवासादि चाहने वाले ।
'अहन् दासा वृषभो वस्नयन्ता'
ऋ. ६.४७.२१

वस्न्य- वस्त्र ।
'अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य'
ऋ. १०.३४.६

वस्म- वस् + मनिन् । (१) आच्छादित करने वाला अन्धकार, (२) बसने योग्य, (३) घर ।
'अवव्यन्नसितं देववस्म'
ऋ. ४.१३.४; मै.सं. ४.१२.५; १९४.१; का.सं. ११.१३
'प्र यद् वयो न पप्तन्वस्मनस्परि'
ऋ. २.३१.१

वस्य- (१) अत्युत्तम वास स्थान
(२) उत्तम ऐश्वर्य ।
'अस्मान् तांश्च प्र हिनेषिवस्य आ'
ऋ. २.१.१६; २.१३
(३) सबको बास देने वाला, (४) सब का शरण रूप रमेश्वर । (५) श्रेष्ठ ।
'वस्यो अस्ति पिता च न'
ऋ. ७.३२.९; अ. २०.८२.२; साम. २.११४७.
(६) २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी-दया ।
(७) गृहस्थ रूप में बसे हुओं में श्रेष्ठ
वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्
इन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्
ऋ. १.१०९.१

वस्यम् - (१) ऐश्वर्यवान्, (२) सबसे श्रेष्ठ ।
'अथा नो वस्यसः कृधि'
ऋ. ९.४.१-१०; साम. २.३९७-४०६
(३) अति श्रेयस्कर ।
'अहनाहना नो वस्यसावस्यसो दिहि'
ऋ. १०.३७.९
'अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा'
ऋ. ८.२०.१८
'कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः'
ऋ. २.१७.८
(४) वसु + ईयसुन् = वस्यस् । अत्यन्त अधिक

धन ।
'उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्'
ऋ. १.३१.१८
तू हमें उत्तम धन (वस्यस्) एवं ऐश्वर्य प्राप्त करा ।

वस्यसी- उत्तम धन-सम्पन्न स्त्री ।
'पुंसो भवति वस्यसी'
ऋ. ५.६१.६

वस्त्र- (१) आच्छादक प्रकाश, (२) वस्त्र, (३) दोषों का आच्छादक यशः पठ
'तुभ्यमुषासः शुचयः परावति
भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु'
ऋ. १.१३४.४
(४) वस् (आच्छादनार्थक) + ष्ट्रन = वस्त्र ।

वस्यु- (१) अत्युत्तम जीवनोपयोगी ऐश्वर्य ।
'आनिनाय तमु वः स्तुषे'
ऋ. ८.२१.९; अ. २०.१४.३; साम. १.४००

वसा- (१) शरीर में स्थित अंग प्रत्यंग (२) मांस के प्रत्येक परमाणु में बसा जीवन का कारण स्वरूप जीवन शक्ति ।
'शीनं वसया'
वाज सं. २५.९; मै.सं. ३.१५८: १८०.२

वसाति- (स्त्री) । रात्रि ।
'वसातिषुस्म चरथः'
नि. १२.२.
हे अश्विद्वय, तुम दोनों रातों में चलते हो ।

वसानाः- (१) रखती हुई - सूर्य की किरणें ।
'अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति'
ऋ. १.१६४.४७; अ. ६.२२.१; ९.१०.२२; १३.३.९; मै.सं. ४.१२.५: १९३.७; का.सं. ११.९; १३; नि. ७.२४.
सूर्य की किरणें जलों को अन्तरिक्ष में रखती हुई सूर्यलोक में चली जाती है ।
(२) पहनती हुई ।

वसाव्या- बसने वाली प्रजा ।
'वसा व्यमिन्द्र धारयः सहस्रा'
ऋ. १०.७३.४

वस्नाः-विक्रय करने योग्य पदार्थ ।
'वस्नेव विक्रीणावहा'
वाज.सं. ३.४९; तै.सं. १.८.४.१; मै.सं. १.१०.२: का.सं. ९.५; श.ब्रा. २.५.३.१७; आश्व.श्रौ.सू. २.१८.१३.

वस्यान् अधिक श्रेष्ठ ।
'वस्याँ इन्द्रासि मे पितुः'
ऋ. ८.१.६; साम. १.२९२

वस्याः- 'वस्यस्' का प्रथमा एक वचन में रूप । धन से सम्पन्न ।
'कुविन्नो वस्यसस्करत्'
ऋ. ८.९१.४

वसिष्ठ- (१) सब प्राणों में मुख्य रूप से बसने वाला प्राण ।
'वसिष्ठ ऋषिः प्रजापति गृहीतया'
वाज.सं. १३.५४.
(२) वसिष्ठ नामक ऋषि, (३) धनाढ्य मनुष्य ।
ज.दे.श.
'त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठः'
ऋ. ७.९.६
हे अग्नि, तुझे वसिष्ठ संदीप्त करते हैं- सा. ।
हे हमारे नायक विद्वान्, विद्याज्योति को प्रदीप्त हुआ धनाढ्य पुरुष .....
(४) वस् + इष्ठन् = वसिष्ठ । वसु + इष्ठन् - वसिष्ठ । वासकतमम जल - दया. ।
उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ-हे वासकतम जल या वसिष्ठ, तू मित्र या वरुण या तन्नामक वायुओं से उत्पन्न हुआ है । (५) ४८ वर्षों तक ब्रह्मचारी से रहने वाला आदित्य ब्रह्म चाहा । (६) बसने वाले बस्ती के निवासियों में सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठित ।
'अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः'
अ. १८.३.४६
(६) व्रत में अच्छी तरह से स्थित पुरुष ।
'इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठः'
ऋ. ७.२३.१; अ. २०.१२.१; साम. १.३३०

वसिष्ठ अग्निः- (१) शरीर में सबसे मुख्यरूप में बास करने वाला मुख्य प्राण ।
स एव वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुच्यते - आथर्वण प्रश्नोपनिषद्
ते ह इमे प्राणाः अहं श्रेयसे विवद्मानाः ब्रह्म जग्मः । तद् होचुः को नो वसिष्ठ इति तद् होवाच । यस्मिन् वः उत्क्राने इदं शरीरं पापीयो मन्यते स वा वसिष्ठ इति ।
बृहदारण्यकोपनिषद्

वसिष्ठ हनु-- समस्त प्रजा को बसाने वाले लोगों में सबसे श्रेष्ठ, शत्रु को हनन करने वाले साधनों से सम्पन्न ।
'वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम्'
वाज.सं. ३९.८

वसिष्ठाः- (१) उत्तम वसु, (२) विद्वान् गृहस्थ, (३) ब्रह्मचारी गण ।
'प्रति त्वा स्तोमैरीडते वसिष्ठाः'
ऋ. ७.७६.६
(४) पूर्ण ब्रह्मचारी, (५) गुरुकुल वासी उत्तम कर्म करने वाले, (६) प्राणों से श्रेष्ठ जीवगण ।
'स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः'
ऋ. ७.३३.८; नि. ११.२०

वस्ति- (१) शरीर की वस्ति ।
'अपो वस्तिना'
वाज.सं. २५.७
(२) शरीर का मूत्र स्थान- मूत्राशय '
'वस्तिर्न शेपे हरसा तपस्वीः'
वाज.सं. १९.८८; मै.सं. ३.११.९: १५४.३; का.सं. ३८.३; तै. ब्रा. २.६.४.४.
(३) आच्छादनार्थक 'वस् + तिप् = वस्ति' (लट् प्र.पु.ए.व.) आच्छादयति (आच्छादित करता है । (४) मूत्राशय
'यद्वास्तावधि संश्रुतम्'
अ. १.३.६
'आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च'
अ. ११.८.२८

वस्तिबिल- मूत्रकोष्ठ का छिद्र ।
'विषितं ते वस्तिबिलम्'
अ. १.३.८

वंसीमहि- (१) हम परस्पर बांटते हैं (२) सेवन करें । -दया.
'वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः'
ऋ. ६.१९.१०
श्रवणीय यशों से युक्त (श्रोमतेभिः) सुन्दर या याचनीय या संभजनीय धन को परस्पर बांटते हैं(वंसीमहि) -सा. ।
श्रवणीयतम उपदेशों के द्वारा (श्रोतमेभिः) प्रशंसनीयं कर्म का सेवन करें (वामं वंसीमहि) -दया. ।

वसीयः - अत्यिधिक धन धान्य समृद्धि ।
'वसीयश्च मे यशश्च मे'
वाज.सं. १८.८; मै.सं. २.११.३: १४१.१०

वस्वी- (१) राष्ट्र में बसने वाली प्रजा ।
'वस्वीरनु स्वराज्यम्'
ऋ. १.८४.१०-१२; अ. २०.१०९.१-३ साम. १.४०९; २.३५६; ३५७; मै. सं. ४.१२.४: १९०.१,३; ४.१४.१४: २३८.६; का.सं. ८.१७.
(२) घर को बसाने वाली पत्नी ।
'वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः'
ऋ. ५.४१.६
(३) अध्यापक, उपदेशक के अधीन बसने वाली शिष्य-मण्डली । '
'वस्वीरू षु वां भुजः'
ऋ. ५.७४.१०
(४) शरीर में वास करने वाले जीवों को बसाने वाली पृथ्वी ।
(५) लोकों में व्यापक ब्रह्मशक्ति ।
'वस्व्यसि'
वाज.सं. ४.२१; तै.सं. १.२.५.१; ६.१.८.१; मै.सं. १.२.४: १३.८; ३.७.६: ८२.१५; का.सं. २.५; २४.४; श.ब्रा. ३.३.१.२; का.श्रौ.सू. ७.६.१६; आप.श्रौ.सू. १०.२२.११; मा.श्रौ.सू. २.१.३ .३८.
प्राणरूप वसुओं की स्वामिनी-चितिशक्ति
'सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी'
साम. २.१००४; तै.ब्रा. २.१४४.

वसु- (१) वस् + उ = वसु । (१) वसु नामक देवगण, बहुवचन में वसवः (२) बसने वाला । रहने वाला, (३) जहाँ बसा जाय - पृथ्वी ।
'ज्मया अत्र वसवो रन्त देवाः'
ऋ. ७.३९.३; नि. १२.४३
जो पृथ्वी के देवता इस लोक में रहने वाले हैं (वसवः) ।
(४) धन ।
'यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वः
मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९
क्योंकि तुझे राजा ने ऋषिकुल से आते देख रात में धन देकर तुझे रख लिया जैसे रस्सी से पक्षी को बांध लिया जाता है ।
(५) गृहस्थ ।
'आ याह्यग्ने वसुभिः सयोगाः'

ऋ. १०.११०.३; अ. ५.१२.३; वाज.सं. २९.२८; मै.सं. ४.१३.३: २०१.१४; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.८.
हे अग्ने, तू वसुओं के साथ प्रेम के साथ आ-सा. ।
हे यज्ञाग्नि, तू गृहस्थों से एक साथ (सजोषाः) संवनीय हैं .
(६) वसु नामक ब्रह्मचारी (८) सर्वपालक परमात्मा -दया.
'अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुना
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा
सजोषसा उषसा सूर्येण च
सोमं पिबतमश्विना '
ऋ. ८.३५.१
हे अश्विनीद्वय, अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, आदित्यों, रुद्रों एवं वसुओं के साथ हो प्रीति से युक्त हो इस सोम रस का पान करो ।
अन्य अर्थ - सबसे प्रीति करने वाले स्त्री पुरुषो, तुम अग्नि, वायु, जल, परमात्मा, आदित्य, रुद्र, वसु ब्रह्मचारियों उषा काल एवं सूर्य के साथ रहते हुए ऐश्वर्य पान करो ।
(९) वसवो यत् विवसते सर्वम् । (जो यह सब विभाग से अवस्थित है- आकाश, पाताल पृथ्वी-उसे वसुगण आच्छादित करते हैं) ।
(१०) गवादि धन ।
(११) अग्नि-अग्निः वस्तुभिः वासव इति समाख्या तस्मात् पृथिवी स्थाना ।
(१२) आठ वसु हैं- अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ और चन्द्रमा । ये आठ ही आकाश, पाताल एवं पृथ्वी को वासित या आच्छादित करते हैं ।
(१३) वसुओं से अर्थात् धनों से युक्त वासव है । वासव और वसु समान अर्थ वाले हैं । इन्द्र
'इन्द्रो वसुभिः वासव इति समाख्या तस्मात् मध्यस्थानी ।'
मध्यस्थानी इन्द्र भी वासव है ।
(१५) द्युस्थानी आदित्य की रश्मियां भी वसु हैं ।
वासव आदित्यरश्मयः
विवासनात् तस्मात् द्युस्थानाः '
(आदित्य की रश्मियाँ अन्धकार दूर करने के कारण वसु हैं) ।
(१६) आठ प्राण ।
'गोभिरश्वेभिर्वसुभिन्यृष्टः
ऋ. १०.१०८.७
(१७) गुरु के अधीन रहने वाला अन्तेवासी विद्यार्थी '
'वसुष्कुविद् वसुभिः काममावरत् '
ऋ. १.१४३.६
वह गुरुओं के अधीन रहकर (वसुः) अन्य अन्ते वासियों के साथ रहकर (वसुभिः) अपने अभिलाषा करने योग्य ज्ञान को (कामम्) प्राप्त करे (आवरत्) या काम को दूर करें ।
आधुनिक अर्थ - धन, रत्न, सुवर्ण, जल, कोई पदार्थ, एक प्रकार का लवण, ओषधि की जड़, देवताओं का एक वर्ण जिसकी संख्या आठ है- आप, ध्रुव, सोम, पर, अनल, अनिल, प्रत्यूष , प्रभास, (आप के स्थान पर कहीं कहीं अह की गणना की गई है) । आठ, कुबेर, शिव, अग्नि, वृक्ष, झील, तालाब, बागडोर, लगाम, जुआठ का बन्धा, किसी पदार्थ रोकने के लिए कोई साधन, प्रकार किरण ।

वसुक्र - (१) धन से क्रीत वेतन भोगी राजपुरुष, (२) वसुक्र नामक एक ऋषि ।

वसुक्रमत्नी- (१) वेतनभोगियों से बने सैन्य या राष्ट्र को पालन करने की व्यवस्था, (२) वसुक्र ऋषि की पत्नी ।

वसुजित्- समस्त प्राणियों और उनके बसने के लोकों को जीतने वाला ।
'वसुजिति गोजिति संधनाजिति '
अ. १३.१.३७

वसुत्वनम् - (१) ऐश्वर्य युक्त कीर्ति ।
'श्रवः सुरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् '
ऋ. ७.८१.६; ८.१३.१२.
(२) बसाना, शरण देना ।
'वसुत्वनाय राधसे '
ऋ. ८.१.६; साम. १.२९२

वसुता- वसा देने वाला सामर्थ्य ।
'वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम् '
ऋ. ६.१.१३; मै.सं. ४.१३.६: २०७.१५; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.५

वसुताति- (१) धन, (२) वेदज्ञानरूपी धन ।
(३) समस्त बसने वाली जीवों और बसने योग्य लोकों का विस्तारक परमेश्वर ।
'द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्
विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम्'
ऋ. १.१२२.१२
जिन श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों के या श्रेष्ठ पुरुषों के आश्रय पर आप सब लोग नाना ऐश्वर्यों को भोगते हैं, उन से उत्तम प्रकार सब का भरण पोषण करने वाले अनेक यज्ञ आदि कामों में और राजा पुरोहित आचार्य आदि श्रेष्ठ पुरुषों में (प्रभृथेषु) अपने ऐश्वर्य का दान किया करो ।

वसुत्ति- जीवनोपयोगी वेतन, वृत्ति या धन ।
'त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये'
ऋ. ८.६१.७

वसुदा- (१) धन देने वाली ।
'अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि'
ऋ. ८.९९.४; अ. २०.५८.२; नि. ६.२३.
हे स्तुति करने वाला , तू पुण्य दान देने वाले, एवं धन देने वाले इन्द्र या परमात्मा के समीप जाकर स्तुति कर ।
(२) धन धान्य देने वाली पृथिवी ।
'वसूनि नो वसुदाः रासमाना'
अ. १२.१.४४.

वसुदानः- ऐश्वर्य का दाता,
'वसोर्वसोर्वसुदान एधि'
अ. १९.५५.४

वसुदावा- उत्तम ऐश्वर्य देने वाला-अग्नि ।
'वसुपते वसुदावन्'
ऋ. २.६.४; वाज.सं. १२.४३; श.ब्रा. ६.८.२.९.

वसुदेय- (१) दातव्य धन
अथा मनो वसुदेयाय कृष्व'
ऋ. १.५४.९
(२) द्रव्य देने में समर्थ जन
'इषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः'
ऋ. ६.३९.५
(३) जीवों को आजीविका देने वाला परमेश्वर ।
'स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये
नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः'
अ. १३.४.२६

वसुधानः- (१) जिसमें धन रखा जाता है ।

वसुदानः- बहुत धन वितरण करने वाला ।
'यस्तेङ्कशो वसुदानः'
अ. ६.८२.३

वसुधिती- (१) बसने वाले लोकों को धारण करने वाले दिन रात (२) ऐश्वर्यों को धरण करने वाले दिन रात, (३) ऐश्वर्यों को धारण करने वाले, (४) पदार्थों को धारण करने वाली द्यावापृथिवी- दया. ।
'अनुकृष्णे वसुधिती जिहाते'
ऋ. ३.३१.१७
(५) सबको बसाने वाले राष्ट्र धारण करने में समर्थ- अश्विद्वय या स्त्री पुरुष, राजा रानी, सेना सेनापति ।
'वसुधिती अवितारा जनानाम्'
ऋ. १.१८१.१
'देवी जोष्ट्री वसुधिती'
वाज.सं. २८.१५; ३८; तै.ब्रा. २.६.१०.२

वसुधीती- (१) वसुधान्यौ वसूनां, निधान भूते, धारयित्र्यौ (धन की निधि रूपिणी, धारण करने वाली) (२) महीधर ने इसका अर्थ ' जिससे वसु का धारण हो' ऐसा किया है (वसुनो धीतिः धारणं याभ्याम् ते)

वसुधेय- (१) कोश योग्य ऐश्वर्य ।
'वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज'
वाज.सं. २८.१७
(२) धन ।
'वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु'
वाज.सं. २१.४८-५८; २८.१३,१८,३६,४१; का.सं. १९.१३; २०.१५; तै.ब्रा. २.६.१०.१,५
(३) प्रतिविशिष्टेन धनेन साधितः (विशेष धन से साधित यद्ध)
'देवी जोष्ट्री वसुवने वसुधेयस्य वीताम्'
मै.सं. ४.१०.३: १५१.३; ४.१३.८: २१०.३; का.सं. २०.१५; तै.ब्रा. ३.६.१४.१; आश्व.श्रौ.सू. २.१६.१२; शां.श्रौ.सू. ३.१३. २७
दो जोषयित्री देवियाँ विशेष धन से सम्पादित यज्ञ के अंश को पीयें ।

वसुपतिः- (१) धन का स्वामी -राजा (२) इन्द्र ।
'तमा पृण वसुपते वसूनाम्'
ऋ. ३.३०.१९; तै.ब्रा. २.५.४.१.

हे वसुओं के स्वामी इन्द्र, हमारी उस कामना को पूर्ण कर – सा. ।
हे धनों के स्वामी राजन् आप उन्हें पूर्ण करें ।

वसुपत्नी– वसु अर्थात् आत्मा की पालिका या पत्नी रूप चिति शक्ति ।
'हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनाम्'
ऋ. १.१६४.२७; अ. ७.७३.८; ९.१०.५; ऐ.ब्रा. १.२२.२; नि. ११.४५

वसुमत् – ऐश्वर्य से पूर्ण ।
'आ न उप वसुमता रथेन'
ऋ. १.११८.१०

वसुमान् पर्वत– (१) धन रत्न पूर्ण पर्वत ।
(२) २४ वर्षों तक ब्रह्मचर्य और प्राणों और वीर्य का पालक एवं व्रतपालक शिष्य ।
'आ चा विशद् वसुमन्तं वि पर्वतम्'
ऋ. २.२४.२

वसुरोचिः– धन प्रजादि की कान्ति से सम्पन्न ।
'सहस्रं वसुरोचिषः'
ऋ. ८.३४.१६

वसुवनः– (१) धनाभिलाषी .
'वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु'
वाज.सं. २१.४८–५८; २८.१३; १८,३६,४१
(२) धन का संविभाजन वन (संभजनार्थक) + अप = वन । वसुनः वननम् वसुवनम् ।
मजदूरों को खेत काटने के बाद जो मजदूरी दी जाती है उसे भी वन कहते हैं ।
'आन्या वक्षद्वसु वार्याणि
यजमानाय वसुवने'
वाज.सं. २८.१५; तै.ब्रा. २.६.१
दो जोषयित्री देवियों में एक धन संभजन करने के लिए (वसु वनाय) यजमान के लिए वरणीय धन लाती या देती है ।
(३) धन का निधान ।

वसुवनिः – आवास योग्य अन्न, वस्त्र, धारण आदि का बांटने वाला गृहपति ।
'ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः'
अ. ७.६०.१; वाज.सं. ३.४१
(२) समस्त वास करने वाले जीवों और लोकों के भजन करन योग्य ।
'स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्-कारोऽनु संहितः'
(२) अपने में बैठने वाले को ले जाने में समर्थ रथ ।
'प्रति प्रियतमं रथं
वृषणं वसुवाहनम्'
ऋ. ५.७५.१; साम १.४१८; २.१०९३

वसुवित्– (१) धन प्रापक, धन प्राप्त कराने वाला
(२) बसने वाले प्रजाजनों के लिए ऐश्वर्यों का लाभ कराने वाला ।
'परापरैता वसुविद् वो अस्तु'
अ. १८.४.४८

वसुविदा– द्वि.व. । धन ऐश्वर्य या ज्ञान को प्राप्त कराने वाले अश्विद्वय या स्त्रीपुरुष ।

वसुश्रवाः– (१) शिष्यों द्वारा गुरुवत् आदर के साथ सुनने योग्य, (२) ऐश्वर्यों से यशस्वी अग्नि ।
'वसुरग्निर्वसुश्रवाः'
ऋ. ५.२४.२; साम. २.४५८; वाज.सं. ३.२५; १५.४८; २५.४७; तै.सं. १.५.६.३; ४.४.४.८; मै.सं. १.५.३: ६९.११; का.सं. ७.१; श.ब्रा. २.३.४.३१.

वस्तु– (१) वस् (आच्छादन, वसन्त) + तुन् = वस्तु । जिससे आच्छादन किया जाय या जहाँ वास किया जाय या जो आच्छादन करे या वस्तुतः रहे– जिसका अस्तित्व हो वह वस्तु है ।
(२) दिन । (३) आच्छादन, वसन, (४) बसना, रहना,
आधुनिक अर्थ – वर्तमान पदार्थ, सत्य, पदार्थ, द्रव्य, धन, सम्पत्ति, उपकरण, जिसमें कोई पदार्थ बनाया जाय । सत् पदार्थ, नाटक की कथा वस्तु, किसी काव्य की कथा वस्तु, योजना, रूप रेखा ।
(५) सुखपूर्वक निवास ।
'अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदः
भूरि च्यवन्त वस्तवे'
ऋ. १.४८.२
सुख से निवास करने के लिए (वस्तवे) अश्वों अश्वारोहियों से युक्त सेना और गौ आदि से युक्त सम्पदाएं तथा समस्त उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली भूमियाँ बहुत अधिक संख्या में प्राप्त की जाँय ।

वस्यु– (१) धनी । (२) इन्द्र का विशेषण ।
'नहि त्वदिन्द्र वस्य अन्यदस्ति'

ऋ. ५.३१.२
हे धनी इन्द्र (वस्यो इन्द्र) तुझ से बढ़कर कोई देवता नहीं है ।

वसू- द्वि.व. । राष्ट्र या गृह में बसने या औरों को बसाने वाले अश्विद्वय, माता पिता, स्त्रीपुरुष, अध्यापक, उपदेशक, सभापति और सेनापति ।
'ता नो वसू सुगोपा स्यातम्'
ऋ. १.१२०.७

वसूजू- सब जीवों ऐश्वर्यों और लोकों का प्रेरक दाता-इन्द्र ।
'वसवानं वसूजुवम्'
ऋ. ८.९९.८

वसूया- (१) प्राण, प्रजा, ऐश्वर्य उत्तम लोक या निवास प्राप्ति की इच्छा ।
(२) शिष्य बनकर गुरु के अधीन रहने की इच्छा, (३) ब्रह्मचारी बनने की इच्छा ।
'कया मती कुत एतास एते
अर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया'
ऋ. १.१६५.१

वसूयुः- (१) परमेश्वर और आचार्य के अधीन विद्वान, (२) पुत्र कलत्रादि की कामना वाला, (३) लोकों की स्वामिनी शक्ति ।
'नि या देवेषु यतते वसूयुः'
ऋ. १.१८६.११
(४) वसु अर्थात् २४ वर्ष के ब्रह्मचारी युवा पुरुष को चाहने वाली कन्या, (५) अपने बसाने वाले प्रभु और नाना धनों की कामना करने वाली प्रजा ।
'उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः'
ऋ. ७.१.६; तै.सं. ४.३.१३.६
(५) धन की कामना करने वाला -सा.
(६) सर्वनिवासक प्रभु की कामना करने वाला-ज.दे.श.
'सुनीथासो वसूयवः'
नि. ४.१९
सुन्दर स्तुति वाले तथा धनैषी -सा.
सुनीति पर चलने वाले तथा सर्वनियामक प्रभु की कामना करने वाले (वसूयवः) ।
(७) वसु + यु (मतुप् अर्थ में) = वसूयु । धनयुक्त धन वाला, धनी ।
'अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुः'
ऋ. १.५१.१४ नि. ६.३१.
(८) अन्तेवा सी ब्रह्मचारी छात्रों की कामना करने वाले ।
'गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम्'
ऋ. ४.४४.१; अ. २०.१४३.१
(९) इच्छार्थक कयजन्त - वसुय + उ = वसूयु = अथवा वसु + युस् । धन की इच्छा करने वाला ।
'नानाधियो वसूयवः'
ऋ. ९.११२.३; नि. ६.६.
अंगिरस पुत्र की उक्ति है-हम जीविका के लिए अनेक कर्म करते रहे तथा धन कैसे मिले नित्य सोचते रहें ।

वस्ते- वस् (आच्छादित करना) के लट् पु.प्र.व. का रूप । अर्थ- आच्छादित करता है ।
'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तः'
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३: १८७.२; नि. ९.१९.
इषु अर्थात् बाण सुन्दर पंख को आच्छादित करता है तथा इसका दांत, मृग के सिंह को जैसा होता है ।

वसोः कबन्धः - बसने वाले अखिल जगत् का शरीर भाग या ज्ञानमय सुखमय, शक्तिमय बन्धन सामर्थ्य ।
'वस्तेः कबन्धमृषभो बिभर्ति'
अ. ९.४.३.

वसोष्पति- वसोः पतिः । (१) प्राणियों के वास अर्थात् जीवन के सम्पादक पदार्थों या वसु अनोवासी शिष्यों का पालक आचार्य, (२) प्राणपालक परमात्मा ।
'वसोष्पते नि रमय'
अ. १.१.२; नि. १०.१८

वस्तोः - (१) वस् + तोसन् (भाव लक्षण में) = वस्तोः । अर्थ-बसने के लिए, (२) स्थान ।
'कुह वस्तोरश्विना'
ऐ अश्विद्वय या स्त्रीपुरुषो, तुम्हारा वासस्थान कहाँ है । (३) आच्छादन ।
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः
वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्'
ऋ. १०.११०.४; अ. ५.१२.४; वाज.सं. २९.२९; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा.

३.६.३.२.
पूर्वदिशा में स्तीर्ण कुश मन्त्र द्वारा या विधिपूर्वक काटा या बिछाया जाता है (प्रदिशा वृज्यते)। इस वेदी रूपी पृथ्वी पर कुश को आच्छादित करने के लिए (अस्या पृथिव्या वस्तोः).....सा.
गृह की पूर्व दिशा में यज्ञग्नि (प्राचीनं बर्हिः) वेदोपदिष्ट विधि के साथ (प्रदिशा) इस पृथ्वी के निवास के लिए (अस्याः पृथिव्याः वस्तोः) पूर्वाह्न में (अह्नाम् अग्रे) स्थापित किया जाता है (वृज्यते)। (४) रहने के लिए।
'सिंहो न दमे अपंसि वस्तोः'
ऋ. १.१७४.३

वस्यो भूय- (१) अति अधिक ऐश्वर्य वान् होना।
'वस्यो भूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिसीय वसुमान् भूयासं वसुं मयि धेहि'
अ. १६.९.४.

वस्तोः वस्तोः- दिन प्रति दिन।
'वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि'
अ. १०.४०.१

वह- (१) एक स्थान से स्थानान्तर में भेजना, (२) गति करने की शक्ति (३) विश्वभार।
'यत्रैष वह आहितः'
अ. ४.११.८
'इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन'
अ. ४.११.७
(४) भार उठाने में समर्थ स्कन्धदेश।
'इन्द्र स्वपसा वहेन'
वाज.सं. २५.३; तै.सं. ५.७.१४.१; मै.सं. ३.१५.३: १७८.८

वहतः- (१) ढोने वाला रथादि पदार्थ (२) दूर तक ले जाने वाला तरंग रूप किरण।
'स्तभूयमानं वहतो वहन्ति'
ऋ. ३.७.४

वहतु- (१) दहेज,
'पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः'
ऋ. १०.३२.३
(२) रथादि उठाने वाला बैल
(३) शरीर में बल देने वाला घृत दुग्ध आदि,
(४) गाड़ी आदि
गावो यच्छासन् वहतुं न धेनवः।
ऋ. १०.३२.४
(५) वह् + अतु = वहतु। अर्थ वहन, (६) विवाह।
'स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व'
ऋ. १०.८५.२०; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८
हे सूर्ये, पति के लिए सुन्दर विवाह कर।
'त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति'
ऋ. १०.१७.१; अ. ३.३१.५; १८.१.५३; नि. १२.११.
विश्वकर्मा अपनी दुहिता सरण्यू का विवाह करते हैं - सा.।
अन्धकारमय उषा का मध्यम भाग त्वष्टा ने अपनी ज्योति रूपिणी दुहिता का विवाह आदित्य से किया।
आधुनिक अर्थ - बैल
(७) भार, (८) सृष्टिरूप भार।

वहतू - द्वि.व.। (१) कार्य या गृहस्थाश्रम का भार धारण करने वाले वर वधू, (२) यजमान पुरोहित।
'उभा कृण्वन्तौ वहतू मियेधे'
ऋ. ७.१.१७

वहमाना- धारण करती हुई, ढोती हुई।
'भद्रा नाम वहमाना उषासः'
ऋ. १.१२३.१२
सुन्दर रूप धारण करती हुई उषाएं।
अथवा,
सुन्दर स्वभाव विनय या ख्याति धारण करती हुई कन्याएं।

वह्य- (१) रथ आदि। (२) इधर उधर हिला सकने योग्य सेज।
'रुक्मप्रस्तरणं वह्यम्'
अ. १४.२.३०
(३) दान करने का साधन,
'वह्यं श्रान्ता वधूरिव'
अ. ४.२०.३

वह्यशीवरी- (१) पाल की आदि में सोने वाली, (२) पैरों में विद्यमान नाड़ी।
'नारीर्या वह्यशीवरीः'
अ. ४.५.३

वहिष्ठ - (१) जलादि वहन करने वाला किरण।
'वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुम्'
ऋ. ४.१३.४

(२) दूर देश तक गाड़ी को हांककर ले जाने वाला गाड़ीवान्
(३) वायु का विशेषण । वायु भी चीजों को दूर दूर तक ले जाता है ।

वह्नि- (१) सब जगत् को उठाने वाला (२) इन्द्र का विशेषण । (३) जगत् को धारण तथा संचालन करने वाला ।
'तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे'
ऋ. २.२१.२
(४) वह + नि = वह्निन, कुल को बढ़ाने वाली सन्तति पुत्र या पुत्री ।
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्'
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६.
यदि ये माताएं, कुल को बढ़ाने वाली सन्तति (पुत्र या पुत्री) उत्पन्न करती हैं,।
(५) अश्व भी ढोता है ।
'मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिररीयसे'
ऋ. २.३७.३; नि. ८.३
हे द्रविणोदा नामक अग्नि, तेरे अश्व जिनसे तू चलता है तृप्त होवें ।
(६) बैल ।
'उभे धुरौ प्रतिवह्निं युनक्त'
ऋ. १०.१०१.१०
दोनों धुराओं में बैल जोत (सोम रस चुराने के लिए) ।
(७) अपुत्र पिता जो कन्या को अन्य कुल में भेजता है । -सा.
अपुत्र यः पिता कन्याम् अन्य कुलं प्रापयति स वह्निः ।
'शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गात्'
ऋ. ३.३१.१; ऐ.ब्रा. ६.१८.२: १९.४; गो.ब्रा. २.५.१५; ६.१; नि. ३.४.
अपुत्र पिता अपनी कन्या को अन्य कुल में यह कहते हुए देता है कि कन्या से उत्पन्न पुत्र मेरा होगा और वह कन्या के पुत्र को अपनाता है (नप्त्यं गात्) (८) ज्वाला ।
(९) अग्नि । अग्नि देवताओं के पास हवि पहुंचाता है ।
(१०) नेता विद्वान् । (११) अश्व-दुर्ग ।
'तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः
ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्'
ऋ. १०.१३८.१
हे इन्द्र, तेरे इन सखारूप अश्वों ने (तव त्य सख्येषु वह्नयः) इसमें जल है ऐसा समझते हुए (ऋत मन्वानाः) मेघ को विदीर्ण किया (वलम् व्यदर्दिरु) - दुर्ग ।
हे सूर्य, तेरे सख्य में विद्वान् नेता विद्वान् सत्य स्वरूप प्रभु का मनन करते हुए (ऋतं मन्वानाः) आन्तरिक शत्रुबल को (वलम्) विदीर्ण करता है (व्यदर्दिरुः) ।
(१२) विवाहिता पुरुष ।
'विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखः'
ऋ. १०.११.६; अ. १८.१.२३.
यह अग्नि सुन्दर कर्म की इच्छा करने वाले यजमान के लिए (स्वपस्यते) देवताओं की प्रार्थना करता है (विवक्ति)-सा. ।
अथवा,
विवाहित पुरुष (वह्निः) सुन्दर वचन बोले (विवक्ति) तथा शुभ कर्म करे (स्वपस्यते) ।
आधुनिक अर्थ - अग्नि, पाचक रस, पित्त, पाचन शक्ति, बुभुक्षा ।

वह्नितम - (१) सर्वोत्तम भार उठाने वाला -अग्नि, परमेश्वर ।
'देवानामसि वह्नितमम्'
वाज.सं. १.८; मै.सं. १.१.५: ३.१; ४.१.५: ६.१२; का.सं. १.४; श.ब्रा. १.१.२.१२.

वहीयस् - ढोकर ले जाने में समर्थ अश्व आदि ।
'दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे'
ऋ. १.१०४.१
रातदिन प्राप्त करने योग्य समीप में ढोकर ले जाने में समर्थ (वहीयसः) ।

वह्नी- द्वि.व.। (१) अग्निवत् तेजस्वी अश्विद्वय, (२) गार्हस्थ्य धर्म को अच्छी प्रकार उठाने में समर्थ स्त्रीपुरुष, (३) विवाहित स्त्रीपुरुष ।
'उप त्या वह्नी गमतो विशं नः'
ऋ. ७.७३.४
(३) रथ के घोड़े, (५) आत्मा के वाहक प्राण अपान वायु ।
'इमौ युनज्मि ते वह्नी'
अ. १८.२.५६; तै.आ. ६.१.१; कौ.सू. ८०.३४.

वह्नेशयः- रथ आदि में सोने वाली ।
'प्रेष्ठो शया वह्नेशयाः'

ऋ. ७.५५.८; अ. ४.५.३.

व्यंग- वि + अंग । (१) विविध अंग, अवयव, कुल, प्रजा (२) विविध प्रकाश के कण (३) अश्वरथ, पदाति आदि विविध सेनाएं ।
'व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ'
ऋ. ३.७.४
(४) अंगों में विकार दिखाता हुआ, छटपटाता हुआ । (५) काले नाग से काटा हुआ पुरुष -सा. (६) विचित्र शरीर का सर्प -ज. दे.श।
'अयं यो वक्रो विपरुर्व्यंगः'
अ। ७.५६.४
(७) शरीर को विकृत करने वाला । ज्वर
'व्यङ्ग भूरि यावय'
अ. ५.२२.६

व्यचः- (१) कीर्ति, (२) राष्ट्र का प्रसार, (३) विविध शिल्प (४) आदित्य ।
'व्यचश्छब्दः'
वाज.सं. १५.४; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७: १११.१३; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.३.
(५) व्यापक ।
'अव्यसश्च व्यचसश्च'
अ. १९.६८.१

व्यचस्वती- व्यचस् व्यापनम् तद्वान् व्यचस्वान् । अर्थ है- (१) व्यापनशील या महान् ।
स्त्रीलिंग में 'व्यचस्वती'
रूप है । अर्थ है -व्यापन शीला- व्याप्ति वाली । अंटाने वाली , काफी चौड़ी (२) द्वार रूपी देवता का विशेषण-सा.
(३) अनेक प्रकार के यज्ञों में वर्तमान अग्नि का विशेषण । (४) शाकपूणि ने इसे अग्निज्वाला का विशेषण माना है ।
'व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्ताम्'
ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३: २०२.३; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१०.
व्याप्तिवाली , काफी चौड़ी (द्वार रूपी देवी) या अग्नि की ज्वालाएं रूपी द्वारा चौड़ी होकर (उर्विया) रहें (विश्रयन्ताम्) ।
(५) व्यक्त रूप वाली ।
'व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि'
वाज.सं. १३.१८

व्यचस्वन्ता- (१) दूर दूर तक फैलने वाले सूर्य चन्द्र, (२) मेघ वायु (३) एक दूसरे के विपरीत विरुद्ध जाते हुए ।
'व्यचस्वन्ता यदि वितन्त सैते'
ऋ. ६.२५.६

व्यच्यमान- विद्यमान ।
'व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये'
वाज.सं. १३.४९; का.सं. १६.१७; श.ब्रा. ७.५.२.३४; तै.आ. ६.६ .१.

व्यचिष्ठ- (१) अति विस्तृत
व्यचिष्ठे बाहुपाय्ये'
ऋ. ५.६६.६
(२) खूब फैलने वाला- अग्नि ।(३) विविध रूप से व्यापक
व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम्'
ऋ. २.१०.४; वाज.सं., ११.२३.

व्यजरम् - वि + अजरम् । (१) प्रत्येक पदार्थ को विच्छिन्न कर दूर दूर तक फेंक देने का फैला दे वाला । अग्नि, ज्वाला ।
'दीदियुषो व्यजरम्'
ऋ. ८.२३.४

व्यञ्च्- (१) विविध वस्तुओं को अञ्चित करने वाला-विविध पदार्थ ।
'समुद्रो न व्यचो दधे'
ऋ. १.३०.३
जैसे समुद्र विविध पदार्थों को धारण करता है ।
(२) विविध प्रकार का सत्कार ।
'उरुव्यचा जठरे या वृषस्व'
ऋ. १.१०४.९; अ. २०.८.२

व्यञ्जन- वि + अञ्जन । (१) विशेष चमकने वाला, (२) प्रकाश का साधन, (३) ज्ञान, (४) नाना खाद्य पदार्थ, (५) उत्तम गण ।
'आ नो भर व्यञ्जनम्'
ऋ. ८.७८.२

व्यतिः- (१) विशेष बलवान्, (२) बलयुक्त साधनों वाला ।
'यो व्यतीं रफाणयत्'
ऋ. ८.६९.१३; अ. २०.९२.१०; ऐ.ब्रा. ४.४.४; आश्व.श्रौ.सू. ६.२.९; शां.श्रौ.सू. १८.१९.१०
(३) विविध विषयों में जाने वाला इन्द्रियरूप प्राण ।

(४) विशेषेण प्राप्त बल –दया. (विशेष बल शाली पुरुष)
'चक्रं न वृत्तं व्यतींरवीविपत्'
ऋ. १.१५५.६
वह ब्रह्मचारी हाथ में रखे चक्रास्त्र के समान (वृत्तं चक्रं न) चक्र व्यूह को तथा विशेष बलशाली पुरुषों को भी कंपा दे । (व्यतीः अवीवियत्) ।

व्यथमाना– (१) चलायमान, (२) तरल पदार्थों से बनी, भूकंपों से कांपती हुई पृथिवी ।
(३) उपद्रव कारियों से पीड़ित ।
'यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहत्'
ऋ. २.१२.२; अ. २०.३४.२

व्यथमाना पृथिवी– (१) जोर से गति करती हुई पृथिवी, (२) शत्रुभय से पीड़ित प्रजा ।

व्यथिः – (१) व्यथादायी ।
'अग्रे मा किष्टे व्यथिरा दधर्षीत्'
ऋ. ४.४.३; वाज.सं. १३.११; तै.सं. १.२.४.२; मै.सं. २.७.१५: ९७.१२. का.सं. १६.१५.

व्यथित– व्यथा, कष्ट, शत्रुओं द्वारा आक्रमण ।
'अवतान्मा व्यथितात्'
वाज.सं. ५.९; श.ब्रा. ३.५.१.३०

व्यदनि– वि + अदन्ति । एकदम खा जाते हैं ।
'मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः'
ऋ. १.१०५.८; १०.३३.३; नि. ४.६.

व्यदर्दिरुः– वि + अदर्दिरुः । विदीर्ण किया ।
'तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः
ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्'
ऋ. १०.१३८.१
हे इन्द्र, तेरे सख्य में वर्त्तमान तेरे अश्वों ने मेघ में जल समझ कर मेघ को विदीर्ण किया–दुर्ग । हे सूर्य तेरे सख्य में वर्तमान नेता विद्वान् (वह्नयः) सत्य स्वरूप प्रभु का मनन करते हुए (ऋतं मन्वाना) आन्तरिक शत्रुबल को (बलम्) विदीर्ण किया (व्यदर्दिरु) ।

व्यद्वर– (१) 'विविधम् अदनशीलाः' । खास कर खेती को खा जाने वाला बड़ा जीव ।
'य आरण्या व्यद्वरा'
अ. ६.५०.३

व्यद्वरी– (१) एक दूसरे को खा जाने वाली, (२) भोगप्रिया नारी ।
'क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी'
अ. ३.२८.२

व्यून्– (१) उपभोग, रक्षण और प्राप्ति करता हुआ ।
'गोमदश्वाद् रथवद् व्यन्तः'
ऋ. ७.२७.५
(२) देखता हुआ ।
'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः'
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६: २०६.११; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२; नि. ४.१९.
पूज्य अग्नि के पद को भक्ति भाव से देखते हुए .....(३) प्राप्त होता हुआ, (४) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ ।

व्यनक्– (१) विविध शक्तियों के रूप में प्रकट होने वाला परमेश्वर, (२) विविध विज्ञानों के प्रकट करने वाले विद्वान् ।
'प्रति श्रोणः स्थाद् व्यनगचष्ट'
ऋ. २.१५.७

व्यनत् – वि + अनत् । सांस लेता हुआ, प्राण वाला, प्राणी ।
'अव्यनच्च व्यनच्च सस्त्रि'
ऋ. १०.१२०.२; अ. ५.२.२; २०.१०७.५; साम. २.८३४; ऐ.आ. १.३.४.७

व्यन्तः– (१) पश्यन्तः, जानन्तः (देखते या जानते हुए) 'वि' धातु ज्ञानार्थक है ।
'पदं देवस्य नमसा व्यंन्तः'
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६; २०६.११; का.सं. १८.२०; नि. ४.१९
देव या अग्नि के आहवनीय स्थान को देखते या जानते हुए (व्यन्तः) ।

व्यन्तु– (१) कामयन्ताम् (इच्छा करें) कामना करें, खावें पीवें, (२) सायण ने –
'पिवन्तु सवतम् आज्यम् , भक्षयन्तु एतत् हविः ऐसा अर्थ किया है ।
'उतग्नाः व्यनतु देवपत्नीः'
ऋ. ५.४.६.८; अ. ७.४९.२; मै.सं. ४.१३.१०; २१३.१०; नि. १२.४६ .
और स्त्रियाँ भी कामना करें या खायें पीयें ।

व्यभिनत् – (१) छिन्न भिन्न किया, (२) कुचल डाले ।
'वि श्रृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः'
ऋ. १.३०.१२

व्यमिमीत- वि + अमिमीत । वर्तमान । अर्थ में लङ् का प्रयोग विशेषेण निर्मिमीते । निवर्तयति, उत्पादयति (विशेष प्रकार से निर्माण करता, उत्पादन करता है) ।
'सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम्'
ऋ. १०.११०.११; अ. ५.१२.११; वाज.सं. २९.३६; मै.सं. ४.१३.५; २०५ .५; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.२१.
अग्नि उत्पन्न होते ही यज्ञ, सम्पादित करने लगता है ।

व्ययनम् - वि + अयनम् । विविध लोक या प्राप्तियोग्य पद ।
'य उदानड् व्ययनम्'
ऋ. १०.१९.५; अ. ६.७७.२

व्ययुः- छिन्न भिन्न किया ।
'तं मरुतः क्षुर पविना व्ययुः'
नि. ५.५.
उस वृत्र को मरुतों ने तीक्ष्ण धार वाले पवि से छिन्न भिन्न किया ।

व्यदर्यत्- (१) विविधम् अदर्यति (विविध प्रकार से पीड़ित करता है) । 'अर्द' धातु गत्यर्थक है परन्तु यहाँ पीड़ा देना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।
(२) वि + अर्दयत् । विदीर्ण किया ।
यस्य त्रितो व्योजसा
'वृत्रं विपर्वमर्दयत्'
ऋ. १.१८७.१; वाज.सं. ३४.७; का.सं. ४०.८; नि. ९.२५
जिसके प्रभाव से (यस्य ओजसा) तीनों लोकों में अप्रतिहत इन्द्र ने (त्रितः) वृत्र या मेघ को (वृत्रम्) खण्ड खण्ड कर (विपर्वम्) विदीर्ण किया (व्यर्दयत्) ।

व्यल्कशा- वि + अल्कशा । अर्थ (१) विविध शाखायुक्त (२) वेद विद्या ।
'पाकदूर्वा व्यल्कशा'
ऋ. १०.१६.१३; तै.आ. ६.४.१.

व्यश्नुवी- (१) विविध अंगों में व्यापक, (२) वीर्य, (३) वीर्यवत्, बलवान् पुरुष ।
'व्यश्नुविने स्वाहा'
वाज.सं. २२.३२.

व्यश्व- वि + अश्व । (१) विविध विद्याओं में पारङ्गत ।
(२) जितेन्द्रिय पुरुष ।
'आ नार्यस्य दक्षिणा
व्यश्वां एतु सोमिनः'
ऋ. ८.२४.२९
(३) विशेष या विविध अश्वों या विद्वानों का स्वामी (४) विविध विद्याओं में निष्णात ।
(४) एक वैदिक ऋषि
'यद्वां कक्षीवां उत यद् व्यश्वः'
ऋ. ८.९.१०, अ. २०.१४०.५
(५) विविध अश्व सेना का स्वामी (६) विविध कर्मों का भोक्ता (७) अश्व हित रथ वाला (८) विविध अश्वारोही जनों का स्वामी ।
'याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतम्'
ऋ. १.११२.१५
जिन साधनाओं से अश्वरहित रथवाले असहाय पुरुष को या अश्वारोहियों के स्वामी को या अति विस्तृत राष्ट्र के स्वामी की (पृथिम) सेवा परिचर्या करते हो ।

व्यश्वत् - विनीत अश्व वाला ।
'स्तुहीन्द्रं व्यश्ववत्'
ऋ. ८.२४.२२; अ. २०.६६.१; आ.श्रौ.सू. ७.८.२.

व्यंस - (१) एक दैव्य ।
(२) वि + अंस । विविध अंसों अर्थात् प्रजापीड़क उपायों वाला दुष्ट ।
'यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्'
ऋ. २.१४.५

व्यंसम् - वि + अंसम् । स्कन्ध से शरीर को आत्मा करना । (२) स्कन्ध को छिन्न भिन्न कर मारना ।
'अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम्'
ऋ. १.३२.५; मै.सं. ४.१२.३; १८५.९; तै.ब्रा. २.५.४.३;
क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त है ।

व्यस्तकेशी- बाल बिखेरी हुई ।
'मा त्वा व्यस्त केश्यः'
अ. ८.१.१९

व्यसृक्षत- वि + असृक्षत । अर्थ है- बिखेरता है ।
'वि हि सोतोरसृक्षत'
ऋ. १०.८६.१; अ. २०.१२६.१; नि. १३.४
आरित्यजव जीवों को सृष्टि के लिए (सोतो) किरणें बिखेरता (व्यसृक्षत) ।

व्र – (१) सब का आवरण करने वाला आकाश।
'व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि'
अ. ११.७.३

व्रज– (१) व्रज् (रहना, इधर उधर घूमना) + अच् = वज्रः। मेघ का विशेषण। अन्तरिक्ष में रहने वाला मेघ। (२) इधर उधर मंडराने वाला मेघ।
'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः
पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.
(३) गोष्ठ – गौओं का वास स्थान।

व्रजक्षित्– गौ आदि पशुओं के समूह में निवास करने वाला।
'व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा'
वाज.सं. १०.४

व्रज्य– गोशालाओं का अध्यक्ष।
'नमो व्रज्याय च गोष्ठाय च'
वाज.सं. १६.४४

व्रजिनी– (१) वर्तन क्रिया– वर्तन योग्य क्रिया। (२) गमन करने योग्य पद्धति।
'अपा वृत व्रजिनीरुत् स्वर्गात्'
ऋ. ५.४५.१

व्रत– वृ + अतच् = व्रत। व्रतमिति कर्मनाम वृणोति इति सतः (व्रत कर्म को कहते हैं और वह वृत धातु से बना है)। शुभ या अशुभ कर्म कर्त्ता को आवृत करता है, अतः वह व्रत है। (२) जो वारण कर्त्ता है वह व्रत है क्योंकि अन्न रस होकर शोणित रूप से शरीर को आच्छादित करता है।

व्रतचारी– व्रत का आचरण करने वाला ब्राह्मण।
'ब्राह्मण व्रतचारिणः'
अ. ४.१५.१३

व्रतचारिणः – ब.व। कृत बोक् संयमाः – जो मौन व्रत धारण करे (२) कर्म विशेष का अनुष्ठान करने वाले (३) मेढकों का विशेषण।
'ब्राह्मणा व्रतचारिणः'
अ. ४.१५.१३

व्रतति'-
व्रततेरिव गुष्पितम्'
ऋ. ८.४०.६; अ. ७.९०.१
(२) प्र + तन् + क्तिन् = प्रतति = व्रतति। यह शब्द निरुक्त के अनुसार त्रिधातुज है। वृ + शो तन् धातुओं से बना है। लता अवरण करती अन्य पौधे पर शयन करती और फैलती है।

व्रतपति– (१) व्रतों का पालन करने वाला (२) कर्मों का आचार्य
'व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तः'
अ. ७.७४.४

व्रतपा– (१) व्रतों, धर्म नियमों का पालक पुरुष, (२) सूर्य।
'ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि'
ऋ. १.८३.५; अ. २०.२५.५
उसके बाद व्रतों का पालक कान्तिमान सूर्य संसार में प्रकट होता है।

व्रन्द– (१) निन्दित मनुष्य।
(२) धातु होने पर मृदु होना अर्थ है।

व्रन्दति– मृदु भवति, मृदु होता है। 'व्रन्द' धातु मृदु होना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

व्रन्दिन् (व्रन्दी)– (१) व्रन्द (कोमल करना) + इन् = व्रन्दिन्। अर्थ है – कोमल कर्त्ता।
(२) अभ्र को कोमल बनाने वाला –सूर्य।
(३) निन्दित मनुष्यों का संघ बना कर रहने वाला। bandit
'यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषत्'
ऋ. १.५४.४

व्रयस् – (१) त्याग, (२) विघ्न वर्जन का बल।
'आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि'
ऋ. २.२३.१६

व्रव– (२) बृहस्पति। (२) वेदज्ञाता विद्वान्।

व्लङ्ग– (१) पैतरा, (२) मारने वाला अस्त्र शस्त्र।
'अभिव्लैङ्गैरपावपः'
ऋ. १.१३३.४

वा – धातु। (१) वायु का बहना।
'वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः'
अ. १२.१.५१.
(२) अव्यय। अर्थ–अथवा, विकल्प,
(३) वा इति विचारणार्थे
'हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा
कुवित्सोमस्यापामिति'
ऋ. १०.११९.९; नि. १.४
अभी इस पृथिवी को मैं (हन्त इमां पृथिवीम् अहम्) इस अन्तरिक्ष लोक में या इस द्युलोक में अथवा दाहिने कन्धे पर या साएं कन्धे पर

रख लूं (इह वा निदधानि) क्योंकि (इति) अनेकों बार (कुवित्) सोम रस का मैंने पान किया है (सोमस्य अपाम्) ।

वाकू - (१) गौ (२) वाणी, (३) धेनु (४) मेघ (५) गर्जन, (६) विद्युत्, (७) वेद (८) सिनीवाली, (९) पृथ्वी (१०) बुद्धि, (११) राष्ट्र शक्ति (१२) अन्तरिक्ष, (१३) विराट (१४) विश्वकर्मा, (१५) रानी, (१६) ऋग्वेद (१७) अग्नि, (१८) प्रजापति, (१९) परमेश्वर, (२०) वायु, (२१) यज्ञ, (२२) वज्र , (२३) स्त्री ।

'त्रैष्टुभेन वाकम्'

अ. ९.१०.२

त्रैष्टुभ्, से वाक् प्राप्त किया जाता है, परिमित तथा ज्ञान किया जाता है, अन्तरिक्ष से वायु परिमित है, प्राण से वायु उत्पन्न होती है, मन के भावों को वाणी परिमित करती है वायु से वाक् या शब्द उत्पन्न होता है, राजा से राष्ट्र शक्ति परिमित है, राष्ट्र शक्ति से पृथ्वी शासित है, और द्यौ से पृथिवी परिमित है ।

वाक - पकी फुंसी ।

'वाका अपचितामिव'

अ. ६.२५.१-३

वाक् देवी - वाणी ।

'देवीं वाचमजनयन्त देवाः'

ऋ. ८.१००.११; तै.ब्रा. २.४.६.१०; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; नि. ११.२९

माध्यमिक देवों ने वाक् देवी को उत्पन्न किया है ।

वाकस्य वक्षणिः - प्रवचन योग्य वेद को धारण प्रवचन करने और मनुष्यों तक पहुंचने वाला- इन्द्र, परमेश्वर ।

'इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः'

ऋ. ८.६३.४

वाग्वी - विद्वान् , वाग्मी ।

'वाग्वीव मन्त्रं प्रभरस्व वाचम्'

अ. ५.२०.११

वागाम्भृणी- (१) वेदवाणी का प्रदाता परमात्मा, (२) अम्भृण नामक ऋषि की दुहिता वाक् जिसने अपनी आत्मा की स्तुति की । (३) एक मन्त्र के ऋषि भी वागाम्भृणी है ।

'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहम्
आदित्यैरुत विश्वदेवैः
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्मि
अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा'

ऋ. १०.१२५.१; अ. ४.३०.१

मैं ग्यारह रुद्रों से तादात्म्य कर लोक में रमती हूँ, एवं आठ वस्तुओं, बारह आदित्यों, १० विश्वदेवों के साथ तादात्म्य भाव रखती हूँ । मैं ही मित्र और वरुण को धारण करती हूँ । इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनों को भी धारती हूँ ।

वाघत्- वह् + अति = वाघत् (बाहुलक नियम से उपधा की वृद्धि)' अथवा- वह् + णिच् + शतृ = वाहयत् = वाघत् । वहन्ति हवींषि ग्रन्थार्थान् वा (हवि या ग्रन्थों के अर्थों को जो वहन करे वह वह 'वाघत्' है) ।

अर्थ - (१) ढोने यो ढोवाने वाला विद्यार्थी या व्यापारी । (२) यज्ञानुष्ठाता, मेधावी

(३) व्यापारी (४) सायण के अनुसार 'ऋत्विज्' और सामर्थ्य से तद्वान् अर्थात् ऋभु गण है, परन्तु यास्क इस अर्थ को नहीं मानते हैं ।

'विष्ट्वी शमी तरणि त्वेन वाघतः'

ऋ. १.११.४; नि. ११.१६

कर्मों को या यज्ञों को (शमी) कर या व्याप्त कर (विष्टी) क्षिप्रकारिता के साथ (तरणित्वेन) यज्ञानुष्ठता मेधावी या व्यापारी....

(५) स्तुति करने वाला ।

'इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः'

ऋ. ३.३७.२; अ. २०.१९.२

(६) ऋत्विज्

'उप ब्रह्माणि वाघतः'

ऋ. १.३.५; अ. २०.८४.२; साम. २.४९७; वाज.सं. २०.८८

(६) ऋत्विज,

(७) वाक् + हन् = वाघत् । वाणी द्वारा दोषों का नाश करने वाला और शास्त्रों और उत्तम उपायों को धारण करने वाला- विद्वान्

'इन्द्र कृणन्तु वाघतः'

ऋ. ३.३७.२; अ. २०.९.२

वाघतः- 'वाघत्' का बहुवचन रूप । विद्वान् ज्ञान धारक, वाग्मी ।

'ना न्यस्त्वच्छूर वाघतः'

ऋ. ८.७८.४

वाघतां वयुनम् - (१) मेधावी ऋत्विजों का प्रज्ञानस्वरूप 'वांघतां विमानम्' 'वाघत्' 'वयुन'

(२) विद्वानों से मान्य ।

'विमानमग्निर्वयुनञ्चवाघताम्'

ऋ. ३.३.४

बुद्धिमानों से मान्य (वाघतां विमानम्) और प्रशस्य (वयुनम्) अग्नि या परमेश्वर ।

वाच् - वच् क्विप् = वाच् । वचन, वाणी, (२) ज्ञान, (३) मुख ।

'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'

ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०

जिस यज्ञ या सभा में ध्यानवान् या धीमान पुरुष मन या प्रज्ञा से शुद्ध वचन बोलते हैं ।

(४) स्कन्दस्वामी ने 'वाक् इन्द्रिय' अर्थ में भी 'वाच्' शब्द का प्रयोग किया है ।

(५) माध्यमिका वाणी, (५) वाक् स्वरूप परमेश्वर ।

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि
तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः'
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति ।
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति'

ऋ. १.१६४.४५; अ. ९.१०.२७; श.ब्रा. ४.१.३.१७; तै.ब्रा. २.८.८.६; नि. १३.९

(९) वेद वाणी के अर्थ में-

'उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्'

ऋ. १०.७१.४; नि. १.१९

कोई एक पुरुष पढ़कर तथा मन से पर्यालोचन कर (पश्यन्) वेद की वाणी नहीं समझता (वाचं न ददर्श) ।

वाचः अग्रे- शरीर में वाणी शक्ति अपने के भी पूर्व विराजने वाला आत्मा ।

'अग्रे वाचो अग्रियो गोषुगच्छति'

ऋ. ९.८६.१२; साम. २.३८३.

वाचः अग्रः- वाणी का उत्पत्ति कारण, निदान स्वरूप वाणी से भी पूर्व विद्यमान वाणी का मूल स्वरूप आत्मा ।

'धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रम्'

अ. ७.१.१; शां.श्रौ.सू. १५.३.७

वाचः परमं व्योम- (१) वेदवाणी का परम रक्षास्थान ब्रह्मा-महा ज्ञानवान् प्रभु, (२) बुद्धि और वाणी का आश्रय ब्रह्मा ।

'ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम'

ऋ. १.६४.३५; अ. ९.१०.१४; वाज.सं. २३.६२;

वाचमीं खयः- (१) स्तुतिकर्ता ।

'समुद्रो वाचमीं खयः'

ऋ. ९.१०१.६; अ. २०.१३७.६; साम. २.२२४.

(२) उत्तम ज्ञान वाणियों का उपदेष्टा ।

(३) वाचम + ईखयः । वाणी को देने वाला, आज्ञापक ।

'तं गीर्भिर्वाचमीं खयम्'

ऋ. ९.३५.५

वाचः भाग- वाणी या वेदवाणी या परम ब्रह्ममय वेद वाणी का प्राप्त करने योग्य सार ।

'आदिद् वाचो अश्वब्रुवे भागमस्याः'

ऋ. १.१६४.३७; अ. ९.१०.१५

वाचस्पति- (१) वाचः पाता वा पालयिता वा तस्यैषा भवति, (२) प्राणात्मा इन्द्र ।

वाचस्पतये पवस्व वृष्णो
अंशुभ्यां गभस्तिपूतः

वाज.सं. ७.१; मै.सं. १.३.४: ३१.७; श.ब्रा. ४.१.१.९

हे सोम ! प्राणात्मा इन्द्र के लिए (वाचस्पतये) अपने को पवित्र कर (पवस्व), तू आदित्य की रश्मियों से (वृष्णः अंशुभ्याम्) पवित्र है तथा अभिभूत होने से पूर्व भी तू सूर्य की किरणों से पवित्र है (गभस्ति पूतः) ।

'पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्'

अ. १.१.२

अपने को अपगत प्राण समझ कर पापी प्राणात्मा वाचस्पति के प्रति कहता है- 'हे प्राण (वाचस्पते), सभी इन्द्रियों की वृति के दीपक मन के साथ पुनः आ (दैवेन मनसा पुनः एहि) और आकर हे अन्न और धन के स्वामी (वसोष्पते), मुझ में ही (मयि एव) मेरे इस शरीर को (मम तन्वम्) नियम के साथ भोग (निरामय) अर्थात् इस शरीर को मत छोड़ ।

आधुनिक अर्थ - देवगुण बृहस्पति, वाणी का देवता ।

(३) प्राण ।

'प्राणो वाचस्पतिः श.ब्रा. ६.३.१.१९
"प्रजापतिर्वै वाचस्पतिः '
श.ब्रा.
(५) दश प्राणों का मुख्य होता ।
'वाचस्पतिर्होता दशहोतृणाम् '
तै.ब्रा. ३.१२.५.२.
(६) यज्ञ का पति ।
'वाग्वैयज्ञः
(७) सब इन्द्रियों में ओत प्रोत वाणी
वाग् इति सर्वे देवाः ।
(८) ऊपर के छः प्राणों का होता
वाग् होता षट्होतृणाय् ।
तै.ब्रा. ३.१२.४.२.
(९) मन का स्वामी
वाग् इति मनः
जै.ब्रा. ४.२१.११
वाणी मन का प्रकट रूप है । वाणी प्रजापति से गर्भ ग्रहण करती है ।
'वाचस्पतिर्बाला
तेषा तन्वो अद्य दधातु मे '
अ. १.१.१

वाचः परमं व्योम- वाणी या वेद ज्ञान का परम आश्रय स्थान ।
'पृच्छामि वाचः परमं व्योम '
ऋ. १.१९४.३४; अ. ९.१०.१३; वाज.सं. २३.६१; तै.सं. ७.४.१८.२; का.सं. आ. ४.७; तै.ब्रा. ३.९.५५.

वाचः प्रथमः- मन्त्र वर्णात्मक वाणियों का उत्कृष्ट बल ।
'तदद्य वाचः प्रथमं मसीय '
ऋ. १०.५३.४; आश्व.श्रौ.सू. १.२.१; ४.९; आप.श्रौ.सू. २४.१३. ३.
मन्त्र वर्णात्मक वाणियों से उत्कृष्ट बल मैं मानता हूँ ।

वाच्यः हेमन्तः- वाणी से उत्पन्न हेमन्त, शरद् काल की चन्द्र ज्योति से बाद तीव्र गर्जन कारी वाणी रूप मेघ और उसके बाद हेमन्त उत्पन्न होता है ।
हेमन्तो वाच्यः
वाज.सं. १३.५८; तै.सं. ४.३.२.३; मै.सं. २.७.१९: १०४.१२; का .सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.८

वाचायजीयान् - (१) वाणी के अधिदेवता के रूप में मनुष्य की अपेक्षा अत्यन्त यष्टाअग्नि, (२) वेदवाणी के द्वारा उत्तम ज्ञान प्रदाता परमेश्वर -ज.दे.श.
'मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् '
ऋ. १०.१२.२; अ. १८.१.३०
(३) वाणी से सम्बन्ध सत्कार करने वाली ।

वाचा स्तेन- (१) वाणी द्वारा छलकर चोरी करने वाला ।
'वाचास्तेनं शख ऋच्छन्तु मर्मन् '
ऋ. १०.८७.१५; अ. ८.३.१४.

वाचो विसर्जन- वेद आदि वाणियों के विस्तार करने का स्थान ।
'अग्नेस्ततूरसि वाचो विसर्जनम् '
वाज.सं. १.१५; तै.सं. १.१.५.२; का.सं. १.५; ३१.४; ३२.७; श.ब्रा. १.१.४.८; तै.ब्रा. ३.२.५.७.

वाज- उत्तम सुखमय लोक, स्वर्ग
वाजो वै स्वर्गो लोकः
तै.ब्रा.
'अनमीवानुत्तरेभि वाजान् '
अ. १२.२.२६
(२) वेगवान् अश्व, (३) यान
'सं वाजेभिः पुरश्चन्द्रैरभिद्युभिः '
ऋ. १.५३.५; अ. २०.२१.५; मै.सं. २.६.६: २०.४; का.सं. १०.१२.
(३) ए.व. (पु.) । ज्ञान सम्पादक, (४) श्रेष्ठ बलवान्-दया . (५) ऋभु -सा.
'प्र वोऽच्छा जुजुषाणा सो अस्थुः
अभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः '
ऋ. ४.३४.३
(३) अन्न, (७) हवि, (८) ऋभुओं के लिए भी 'वाजाः' का प्रयोग हुआ है । (९) बल ।
wise शब्द वाज का समानार्थक है ।
(१०) विभ्वा और वाज ओंकार वाची प्रणवस्वरूप परमात्मा के पुत्र माने गए हैं ।
(११) ऋभु वैश्य, विभ्वा क्षत्रिय और वाज ब्राह्मण का वाचक है ।
आधुनिक अर्थ - पंख, पक्ष, बाण का पंख, युद्ध, ध्वनि,
नपुंसक में-माखन, घृत, श्राद्ध में दिया चावल, पिण्ड, भोजन, स्तुति, मन्त्र, ऋचा

अन्न के अर्थ में प्रयोगः
'तव प्रणीत्यश्याम वाजान्'
ऋ. ४.४.१४; तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५: १७४.५; का.सं . ६.११.
तेरी कृपा से हम अन्न खाते हैं । (१२) अन्न निमित्त यज्ञ है ।
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा
'आङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्'
ऋ. १०.१४९.५
हे सविता, जिस प्रकार अङ्गिरस के पुत्र हिरण्यस्तूप ने इस अन्न निमित्त यज्ञ में तुझे आमन्त्रित किया ।

वाजगन्ध्य- (१) वाजेन अन्नेन मिश्रायितव्यम् (अन्न से मिश्रित करने योग्य) । 'गन्ध' धातु अर्दनार्थक है, परन्तु यहां मिश्रण अर्थ में आया है ।
गन्ध + यत् = गन्ध्य । कुछ विद्वान् गृह् + ण्यत् = गन्ध्य कहते हैं । गृह् का गन्ध आदेश हो जाता है ।
अर्थ - (१) अन्नगृह, (२) बल वर्धक, 'वाजाय वलाय गृह्यम्' (जिसे बल के लिए ग्रहण किया जाय) ।
'ते सखायः पुरुरुचम्
यूयं वयं च सूरयः
अश्याम वाजगन्ध्यं
सनेम वाजपस्त्यम्'
ऋ. ९.९८.१२; साम. २.१०३०.
हे स्तोता, तथा ऋत्विज् रूपी मित्रो ! आप और हम मेधावी यजमान साथ हो आगे या सामने शोभते हुए (पुरुरुचम्) इस अन्नगृह को व्याप्त हों (वाजगन्ध्यम् अश्याम)। या, सायण के अनुसार, अन्न मिश्रित सोमरस का पान करें तथा अन्निमिश्रित सोम को सदा परस्पर बांटकर पीयें (वाजपस्त्यम् सनेम) ।
(२) शत्रु से शत्रु को नाश करने के सामर्थ्य से युक्त ।

वाजजठरः- (१) अन्न को पेट में पचाने वाला, (२) ऐश्वर्य को अपने वश कर रोकने वाला ।
'घर्मो न वाजजठरः'
ऋ. ५.१९.४

वाजजित्- संग्राम जीतने वाला ।
'वाजिनो वाजजितो वाजं सरिष्यन्तः'
वाज.सं. ९.९; श.ब्रा. ५.१.४.१५; तै.सं. १.७.८.४; आप.श्रौ. सू. १८.४.१४.
अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा
सरिष्यन्तं वाजजितं सम्मार्ज्मि'
वाज.सं. २.७; श.ब्रा. १.४.४.१५; वै.सू. २.१३.

वाजद्रविणा- ज्ञान को बढ़ाने वाली । वेदवाणी ।
'वाजद्रविणासो गिरः'
ऋ. ८.८४.६; साम. २.९०.१

वाजदा- (द्वि.व.) । (१) अन्न और ऐश्वर्य देने वाले (२) पालने और संग्राम में शत्रुओं को नाश करने वाले-इन्द्रवायू ।
'मदाय वाजदा युवम्'
ऋ. १.१३५.५

वाजदावत् (वाजदावा)- (१) अन्न, ऐश्वर्य या विज्ञान देने वाला -उपदेशक
भूयाम वाजदाव्नम्
ऋ. १.१७.४
हम अन्न ऐश्वर्य या ज्ञान देने वाले उपदेशकों के बीच में रहें ।
(२) नाना ऐश्वर्य देने वाला । इन्द्र परमेश्वर ।
'वाजदावा मघोनाम्'
ऋ. ८.२.३४.

वाजपतिः- ऐश्वर्य का स्वामी ।
'सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम्'
वाज.सं. १८.३४; मै.सं. २.१२.१: १४४.११; का.सं. १८.१३.

वाजपस्य - पत + यत् = पस्त्य । अर्थ है-गृह ।
(१) वाजपतनम्, अन्नगृह सोम वा (अन्न रखने का घर) ।
(२) अन्न मिश्रित सोमरस (३) देवराज ने-वाजः अन्नम् पस्त्यं गृहम् ,पस्त्यं गृहं, वाजश्च पस्त्यञ्च परमम् एतत् अन्नाद्यम् अस्माकम् इति मन्यमाना । यस्मिन् देवाः पतन्ति तम् । सोम उच्यते ।
अर्थात् वाज अन्न है । पस्त्य गृह है । अतः अन्न और घर समझ जिसमें देव आवे वह सोम रस-ऐसा देवराज ने कहा है ।
(४) बलवर्द्धक, बुद्धि -दया.
(५) ऐश्वर्य से सम्पन्न गृह वाला ।
'सनेम वाजपस्त्यम्'
ऋ. ९.९८.१२; साम. २.१०३०

(५) गृह में अन्न और ऐश्वर्य का संयम करने वाला ।
'अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यः '
ऋ. ६.५८.२; मै.सं. ४.१४.१६; २४.२; तै.ब्रा. २.८.५.४.

वाजप्रमहः- (१) जो विज्ञानों या विद्वानों से पूजा जाय -दया.
(२) ऐश्वर्यवान् राजा (३) विज्ञावान् पुरुषों द्वारा पूजनीय परमेश्वर मा सा ते अस्मत् सुमतिर्वि दसत्
वाज प्रमहः समिषो वरन्त '
ऋ. १.१२१.१५
वह तेरी कृपा से हुई सुमति नष्ट न हो । हे अन्नों और ऐश्वर्यों की उत्तम कोटि को देने वाले तथा विज्ञानियों से पूज्य परमेश्वर (वाजप्रमहः) हमारी समस्त कामनाएं और इष्ट प्रजाएं (समिषः) तुझे एकत्र होकर वरण करें (वरन्त) ।

वाजप्रसूता - (१) सूर्य के गमन से उत्पन्न -उषा ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि
वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् '
ऋ. १.९२.८

वाजपेय- एक यज्ञ ।
'राजसूयं वाजपेयम् '
अ. ११.७.७

वाजपेशस्- (१) विज्ञान युक्त रूप वाली बुद्धि, (२) अन्न और सुपर्णादि से युक्त धारण शक्ति ।
'कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् '
ऋ. २.३४.६

वाजम्भरः- (१) अन्न, युद्ध, ऐश्वर्य और ज्ञान धारण करने में समर्थ
त्वद्राजी वाजम्भरो विहायाः
ऋ. ४.११.४
(२) बल वीर्यधारक मन, (३) आत्मा से पुष्ट होने वाला प्राण या देह ।
'अग्निः समि वाजंभरं ददाति '
ऋ. १०.८०.१

वाजय- बलवान् बनाना ।
'तमिन्द्रं वाजयामसि '
ऋ. ८.९३.७; अ. २०.४७.१; २०.१३७.१२; साम. १.११९; २.५७२; मै.सं. २.१३.६: १५५.७; ४.१०.५: १५५.१३; ४.१२.३: १८५.६; का.सं. ३९.१२;

वाजयन्- (१) स्तुति करता हुआ । दे. 'आत्मन् ' ।
'यदिमा वाजयन्नहम् '
ऋ.१०.९७.११; वाज.सं. १२.८५; मै.सं. २.७.१३: ९३.१७
जब मैं इन स्तुतियों ओषधियों की स्तुति करता हुआ ।
(२) अश्व के समान आचरण करने वाला, (३) प्रचुर अन्न उत्पन्न करने में समर्थ ।
'वाजयन्निव नू रथान् '
ऋ. २.८.१

वाजयन्नी धी- (१) सकलानां विद्यानां प्रदायिका बुद्धिः -दया. (२) ज्ञान और ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाली बुद्धि ।
'स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् '
ऋ. १.१०९.१; तै.ब्रा. ३.६.८.२.
वह मैं आप दोनों को ज्ञान और ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाली बुद्धि को प्राप्त करूं तथा अनुकूल कार्य करूं ।

वाजयु- (१) वेगवान् ।
'रथं देवासो अभिविक्षु वाजयुम् '
ऋ. २.३१.२
(२) संग्राम की कामना करने वाला (३) अन्न को ढो लेना चाहने वाला, (४) वेग से जाने की इच्छा वाला, (४) ऐश्वर्य चाहने वाला ।
'प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् '
ऋ. २.२०.१
(६) अन्न, ज्ञान, बल वेग आदि की कामना करने वाला ।
'त्वं न इन्द्र वाजयुः '
ऋ. ७.३१.३; साम. २.६८

वाजरत्ना- (१) ऐश्वर्य, बल वीर्यरूपी धन वाली ।
'सेयमस्मे सुमतिर्वाजिरत्ना '
ऋ. ४.४३.७; अ. २०.१४३.७
(२) वीर्य और ज्ञान से अति रमणीय ।
'कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् '
ऋ. १०.४२.७; अ. २०.९८.७; मै.सं. ४.१४.५: २२२.४; तै.ब्रा. २.८.२.७
(३) ज्ञान रत्ना, धन रत्ना
(४) अन्न ऐश्वर्य ज्ञान आदि रमणीय पदार्थों

को उत्पन्न करने वाला कर्म ।
'कदा धियः करसि वाजरत्नाः'
ऋ. ६.३५.१

वाजवती– ऐश्वर्य और अन्नादि देने वाली भूमि ।
'राये चनो मिमीतं वाजवत्यै'
ऋ. १.१२०.९

वाजबन्धुः– राष्ट्र में ऐश्वर्य और अन्नादि वेतनों पर बंधा नियुक्त पुरुष ।
'न युष्मे वाजबन्धवः'
ऋ. ८.६८.१९

वाजश्रवाः– (१) बल और ऐश्वर्य को अन्न के समान भोगने वाला, (२) युद्धों में प्रसिद्ध कीर्त्तिमान्
'वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिसः'
ऋ. ३.२.५

वाजसन– (१) वेद ज्ञान रूपी वाज को प्राप्त करने वाला । अथवा (२) दूसरों का ज्ञान प्रदान करने वाल ।

वाजसनिः– (१) ऐश्वर्य ज्ञान, संग्राम आदि का दाता और संविभाग करने वाला – इन्द्र, परमेश्वर ।
'वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरम्'
ऋ. ३.५१.२
(२) बल और धन देने वाला ।
'वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरम्'
ऋ. १०.९१.१५; वाज.सं. २०.७९; मै.सं. ३.११.४: १४६.१२; का.सं. ३८.९; तै.ब्रा. १.४.२.२; आप.श्रौ.सू. १९.३.२.

वाजसनये– 'वाजसन' अर्थात् वेदज्ञान करने का कराने वाले का शिष्य । 'विश्वरूप वाजसन'

वाजसा– अन्नबल, ज्ञान, ऐश्वर्य देने वाली–बुद्धि ।
'अश्वासां वाजसामुत'
ऋ. ६.५३.१०; साम. २.९४.३

वाजसातमा– वाज + सन् + विट् = वाजसा, वाजसा + तमप् + टाप् = वाजसातमा ।
अर्थ – 'वाजानाम् अन्नानाम् सातमा संभक्ततमा, (अन्नों को शुद्ध करने वाली, छांटने वाली) ।
(२) सायण ने इस शब्द का अर्थ यों किया है– वाजं सनोति इति वाजसा तत् अतिशयनिकः तमम् (जो अन्नदान करे वह वाजसा है उसीसे अतिशयार्थक 'तमप्' प्रत्यय लगाकर 'वाजसातप' बना है । 'टाप्' लगाने पर 'वाजसातमा' रूप हुआ ।
अर्थ–अन्नों को अत्यन्त देने वाली ।
(३) द्वि.व.। स्त्रीपुरुष का विशेषण । उत्तम ऐश्वर्य का संगत हो उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष ।
'आयजी वाजसातमा
ता ह्युह्वा विजर्भृतः'
ऋ. १.२८.७; नि. ९.३६
(४) अत्यन्त बल को देने वाले इन्द्र और अग्नि, प्राण और अपान, आत्मा और अन्तः करण, परमात्मा और जीवात्मा, राजा और सेनापति, गुरु और शिष्य ।
'इन्द्राग्नी वाजसातमा'
ऋ. ३.१२.४; साम. २.१०५२

वाजसाति – (१) बलवीर्य ।
'बृहते वाजसातये'
अ. १४.२.७२
(२) अन्न–संभजनम्
(अन्नदान, अन्नसंविभाग) ।
'देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः
प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये
याः पार्थिवासो या अयामपि व्रते
ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत'
ऋ. ५.४६.७; अ. ७.४९.१; मै.सं. ४.३.१०; २१३.८; तै.ब्रा. ३.५.१२.१; नि. १२.४५.
जो इन्द्र आदि देवों की पत्नियां हम से हवि या स्तुति की कामना करने वाली हैं (उशतीः) वे हम से हवि या स्तुति स्वीकृत कर हमें रक्षा करें या अन्न दान से प्रहर्षित करें तथा हमारे सन्तानोत्पत्ति के निमित्त (नः तुजवे) अन्नदान या अन्न संविभाग के लिए (वाजसातये) प्रकृष्ट रूप से हमारी रक्षा करें (प्रातन्तु) । वे देवियाँ जो पृथ्वी पर निवास करने वाली (याः प्रार्थिवासः) जो उदक बरसाने में संलग्न अन्तरिक्षों में रहने वाली (याः अपां व्रते) हैं वे सभी सुन्दर आह्वान् सुनाने वालीं हमारे लिए शरण, कल्याण तथा गृह सुख या ऋण दें (शर्म गृहं यच्छत) ।

(३) संग्राम, (४) शक्ति की प्राप्ति ।
'भरेषु वाजसातये'
ऋ. ३.३७.५; अ. २०.१९.५
(५) ज्ञानप्राप्ति, (६) ऐश्वर्य प्राप्ति (७) देह में अन्न को अंग अंग में विभक्त करने की क्रिया, (८) ऐश्वर्य और ज्ञान की प्राप्ति और विभाग ।
'अत्यो न वाजसातये चनोहितः'
ऋ. ३.२.७; वाज.सं. ३३.७५

वाजिन् – (१) विज् (भय और चलना अर्थ में) + णिनि (ताच्छील्य अर्थ में) = वाजिन्, 'विज्' के 'इ' का बहुलमाभीक्ष्ण्ये से 'आ' हो गया है । अर्थ है– वेजनवान् भयवान्, चलनवान्, नित्य चलनशील देखने वाले को भय देने वाला–अश्व ।
'ओविजि' धातु भय और चलन अर्थ में आया है ।
'उतस्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति'
ऋ. ४.४०.४; नि. २.२८
पुनः
'रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरः'
ऋ. ६.७५.६; वाज.सं. २९.४३; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८६.३; नि. ९.१६
(२) अन्न वान्, अन्न वाला (३) बहुत अन्न खाने वाला–अश्व, वाज का अर्थ अश्व भी है ।
(४) गतिमान् ।
आधुनिक अर्थ – अश्व, बाण, पक्षी, यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता को मानने वाला ।
(५) वाज + इन् = वाजन् । बलवान् ।
'त्यमू षु वाजिनं देवजूतम्'
ऋ. १०.१७८.१; अ. ७.८५.१; साम. १.३३२; ऐ.ब्रा. ४.२०.२२; २९.१६; ३१.१५; ५.१.२२; ४.२३; ७.९; १२.१८; १६.२९; १८.२५; २०.१२ ; कौ.ब्रा. २५.८; नि. १०.२८
हम उस प्रसिद्ध भयदाता, बलवान् देवों के साथ आए...

वाजिन– (१) अन्न बल और संग्राम का स्वामी ।
'सोमस्य रूपं वाजिनम्'
वाज.सं. १९.२३
(२) ए.व. । विद्वान् ।
'उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु'
ऋ. १०.७१.५; नि. १.२०
वेदार्थ रूपी अमृत रस को स्थिरता पूर्वक पान करने को स्थिर पीत कहते हैं । ऐसे विद्वान् को विद्वानों के मध्य में भी कोई नहीं हरा सकता ।
(३) वाचः इनः वाजिनः । वाक्पतिः ।
'अरं हितो भवति वाजिनाय'
ऋ. १०.७१.१०; ऐ.ब्रा. १.१३.१४

वाजिनी– (१) अन्नवती, (२) सरस्वती (३) वेदवाणी का विशेषण ।
(४) उषा ।

वाजिनीवत् – सेवाबल से युक्त सेनापति ।
'यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते'
अ. १८.३.५४

वाजिनीवती– (१) हवि रूपी अन्न से युक्त, (२) उषा का विशेषण ।
'उषस्तश्चित्रमा भर
अस्मभ्यं वाजिनीवति'
ऋ. १.९२.१३; साम. २.१०८१; वाज.सं. ३४.३३; नि. १२.६
हे हविरूपी अन्न से युक्त उषा, हमारे लिए सुन्दर मनोहर उस धन को दे ।
(३) अन्न समृद्धि वाली, (४) अन्नादि ऐश्वर्य वृद्धि करने वाली (५) उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाली नाना क्रियाओं से युक्त मंगल क्रियाओं को करने वाली नववधू ।
युक्ष्वा हि वाजिनीवति
अश्वां अद्यारुणां उषः'
ऋ. १.९२.१५

वाजिनीवसु– (१) संग्राम कारिणी सेना को बसाने वाला (२) अन्न, ऐश्वर्य आदि का उत्पादन करने वाली पृथ्वी रूप धन का स्वामी इन्द्र ।
'जठरे वाजिनीवसो'
ऋ. ३.४२.५; अ. २०.२४.५
'अर्वद्भिर्यो हरिभीर्वाजिनीवसुः'
ऋ. १०.९६.८; अ. २०.३१.३

वाजिनीवसू– (१) वेग, बल, ऐश्वर्य और संग्राम करने की शक्ति क्रिया या सेना वाजिनी है । वाजिनी को बसाने या धारण करने वाले स्वामी, (२) वेगवती क्रिया को बसाने वाला शिल्पी–दया.।

'अथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू'
ऋ. २.३७.५; आप.श्रौ.सू. २१.७.१७; मा.श्रौ.सू. ७.२.२.

वाजिनीवान् – (१) प्रशस्तवेदक्रिया युक्तः (२) ज्ञान और अन्न रूप सम्पत्ति का देने वाला पिता या गुरु ।
'जनो यः प्रज्ञेभ्यो वाजिनीवान्
अश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः'
ऋ. १.१२२.८
जो स्वामी बलवानों को (पज्ञेभ्यः) ज्ञान और अन्न रूप सम्पत्ति का देने वाला है (वाजिनीवान्) और मुझ पुत्र या शिष्य के लिए (मह्यम्) सन्मार्ग पर चलने वाला है (सूरिः) मैं उस इन्द्रियों के स्वामी और शरीर रथ के स्वामी की स्तुति करता हूँ (अश्वावतः रथिनः)
(३) ज्ञान कर्म मय बल को भी रखने वाली बुद्धि का स्वामी (४) चिति शक्ति का स्वायी आत्मा ।
'यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्'
अ. ४.३८.५

वाजिनेयः– (१) ज्ञान से युक्त माता पिता या आचार्य का पुत्र (२) बलवती सेना के योग्य ।
'त्वां वाजी हवते वाजिनेयः'
ऋ. ६.२६.२

वाजी– (१) भयदाता,
'आ नो वाज्यभी षाडेतु नव्यः'
ऋ. ७.४.८; नि. ३३.
हमें शत्रुजेता एवं भयदाता नवजात शिशु हो ।
(२) गतिमान् ।
'सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा'
ऋ. ४.३८.१०; तै.सं. १.५.११.४; नि. १०.३१.
सहस्रों सैकड़ो अर्थात् प्रचुर उदकों का दाता वह दधिक्रा देव या मेघ जो गतिवान् एवं अरण शील है ।
(३) अग्नि या वेदवेत्ता का विशेषण ।
'प्र नूनं जातवेदसम्
श्वं हिनोत वाजिनम्
इदं नो बर्हिरासदे'
ऋ. १०.१८८.१
समान जगत् को व्याप्त करने वाले, गतिशील अग्नि या वेदवेत्ता विद्वान्, को कुशासन पर बैठने के लिए प्रेरित करो ।
(४) वाजिनामक देवता ।
'शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु'
ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२: १६२.१०; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.५.२२; आश्व.श्रौ.सू. २.१६.१४; नि. १२.४४.
वाजि नामक देवता या अश्व हमारे आह्वानो या स्तोत्रों के किए जाने पर कल्याणकारी हों ।

वाणी– (१) वाणवत् शत्रुनाशक सेना (२) उत्तम स्तुति, (३) याचना , (४) प्रार्थना करने वाली प्रजा ।
'इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव'
ऋ. ७.३१.१२; साम. २.११४५

वातीकृतनाशनी– वात के द्वारा उत्पन्न रोगों वो नाश करने वाली । विषाणका नाम की ओषधि- अजश्रृंगी
'पितृणां मूलादुत्थिता
वातीकृतनाशनी'
अ. ६.४४.३

वाजीरासभः– (१) वेगा वाला शब्दकारी संचालक शक्ति, (२) यन्त्राग्नि, (२) अश्व, (४) मुख्य वेगवान् प्राण ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य'
ऋ. १.३४.९
वेगवाले शब्दकारी या यन्त्राग्नि या अश्व के समान संचालक शक्ति का त्रिवृत् रथ से कब योग हुआ ?
अथवा, मुख्य वेगवान् प्राण का देह में कब योग होता है ?

वाट् – (१) राज्य भार वहन करने वाला पद ।
'तस्मै स्वाहा वाट्'
वाज.सं. १८.३८–४३.
(२) मूत्र स्राव का शब्द, (३) बलपूर्वक ।

वाण– (१) सेवनीय, (२) शत्रुओं का नाशक, (३) भोक्ता आत्मा ।
'दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम्'
ऋ. ९.९७.८
(४) आज्ञा, (५) ऐश्वर्य ।
'दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम्'
ऋ. ४.२४.९

(६) देने और सेवन करने योग्य ऐश्वर्य, (७) शब्दमय ज्ञानमय ज्ञानरस, (८) वाण ।
गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणाम्
रथे कोशे हिरण्यये ।
ऋ. ८.२०.८
वन + धञ् = वाण ।

वाणी- (१) यजुर्वेद की ऋचाएं ।
'इन्द्रं वाणीरनूषत'
ऋ. १.७.१
हे अध्वर्युवो ! आप भी यजुर्मयी वाणियों से शब्टीः) इन्द्र की ही स्तुति करें ।
(२) वत् (वहना) + इञ् = वाणी । अर्थ -जल ।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजेगाः
प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ।
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.
हे इन्द्र, जल के (गाः) निर्गमन के लिए (निरजे) सुगम मार्ग तू ने बनाए (सुगान् पथः अकृणोत्) और मेघ से सुन्दर जल निकाल कर (वाणीः) उन भागों से नीचे की ओर जाते हुए प्राणियों की रक्षा करते हैं (प्रावन्) ।
(३) स्वामी दयानन्द ने वाणी का अर्थ वेद वाणी कर वेद- प्रसार करने का अर्थ किया है ।
वननीया संभजनीया आपः
अथवा,
आपो वा वहनात् वाचो वा वदनात् (जल बहता है और वाच् बोली जाती है) । (४) यास्क ने इस शब्द का अर्थ जल और वाणी दोनों किया है (५) दुर्ग ने केवली 'वाच्' अर्थात् वाणी ही अर्थ किया है और कहा है कि विदीर्ण मेघ से जब जल बहता है तो प्रसन्न हो लोग कहने लगते हैं 'जल बरसा जल बरसा' ।

वाणीची- वाणी ।
'रथे वाणीच्याहिता'
ऋ. ५.७५.४

वात- (१) सर्प की एक ओषधि ।
'वाता पर्जन्योभा'
अ। १०.४.१६
(२) वा (गति और गन्धन अर्थ में) + तन = वात । जो चलता या गन्ध फैलाता है । वायु ।
'मयोभूर्वातो अभि वातूस्राः'
. १०.१६९.१; तै.स. ७.४.१७.१; तै.ब्रा. ३.८.१८.३; आप.श्रौ.सू. २०.१२.२.
(गायों के सामने होकर बहा)
आधुनिक अर्थ- वायु , वार्यु देवता, शरीर के तीन वायुओं में एक, गठिया रोग ।
(३) गठिया रोग, (४) प्राण

वातचोदित - प्रबल प्राण वेग से प्रेरित-गर्भस्थ, जीव् ।

वातगोप- वायु और प्राण से सुरक्षित ।
'उतान्तरिक्षमुरु वातगोपम्'
अ. २.१२.१

वातजा- वात के प्रकोप से उत्पन्न रोग ।
'यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मः'
अ. १.१२.३

वातजूतः- (१) वा युनाजूतः प्राप्त र्वगः (वायु के वेग से तीव्र होकर) (२) प्राणों द्वारा वेगवान् आत्मा ।
'वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते'
ऋ. १.५८.४
वायु के वेग से तीव्र होकर अग्नि जैसे तृणों और कोष्ठों में (अतसेषु) विविध प्रकार से फैलता है (वितिष्ठते), उसी प्रकार आत्मा भी प्राणों द्वारा वेगवान् गतिमान पृथिवी आदि लोकों में विविध रूपों को धार कर विविध रूपों में स्थित है ।

वाततेजाः- प्रचण्ड वायु के समान तेजस्वी ।
आशासंशितो वाततेजाः
अ. १०.५.२९

वातपत्नी- (१) जिसका अधिपति वायु है, जो उत्तम शुद्ध वायु से युक्त है- दिशा ।
वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे'
अ. २.१०.४; तै.ब्रा. २.५.६.२; हि.गृ.सू. २.४.१; आप.मं.पा. २.१२.८.

वातप्रमी- (१) या वायु प्रमिणति -दया. । (२) ज्ञानवायु पुरुष से उपदेश की हुई
(२) ज्ञान तत्व का उपदेष्टा
'वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः'
ऋ. ४.५८.७; वाज.सं. १७.९५; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८ .१.
(४) वायु के समान तीव्र गति वाला ।

वातपू- (१) वायु द्वारा प्रजा का पालन या पवित्र करने वाला, (२) वायुवत् प्रजापालक ।

'मधुपूरसि वातपूरसि'
अ. १८.३.३७

वातभ्रजाः, वातभ्रजस्, वातभ्रज, वातव्रजाः – (१) वात अर्थात प्रचण्ड वायु से मथित, (२) गर्भस्थ अपान वायु द्वारा कम्पन करता हुआ–गर्भस्थ शिशु ।
ह्विटनी (Whitney) ने 'वातभ्रजः' पाठ माना है । वेबर ने 'वातव्रजा' और सायण ने 'वातव्रजाः' पाठ माना है ।
'वातभ्रजः' इति ह्विटनी कृतपाठः । वातव्रजा इति वेबर कामितः, 'वातव्रजाः' इति सायणाभिमतः।
'वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्टया'
अ. १.१२.१

वातमाया– प्राण के बल पर गति करने वाला–आत्मा ।
'चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमायाः'
अ. १३.२.४२.

वातरशनाः– प्राण मात्र का भोजन करने वाले मुनि ।
'मुनयो वातरशनाः'
ऋ. १०.१३६.२

वातरंहाः(१) प्राणों या मरुत् के वेग से गतिमान आत्मा, (२) वायु के वेग से जाने वाला रथ ।
'त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः'
ऋ. १.११८.१
(३) वायु के वेग से युक्त अश्व यन्त्रादि ।
'मनोजवा अश्विना वातरंहाः'
ऋ. ५.७७.३

वातस्य अश्वा– 'वातस्य अश्वौ' –वायु के बने दो अश्व–प्राण और अपान ।
'त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा'
ऋ. १०.२२.५

वातस्वनः– प्राणवायु द्वारा समस्त जीवों को प्राण देने वाला अग्नि ।
'हुवे वातस्वनं कविम्'
ऋ. ८.१०२.५; तै.सं. ३.१.११.८; मै.सं. ४.११.२: १६७.३

वातस्वनाः – वायु के समान प्राण के बल पर ध्वनि करने वाला ।
'वातस्वनसः श्येना अस्पृधन्'
ऋ. ७.५६.३

वात्यः– वायु विद्या का ज्ञाता ।
'नमो वात्याय च रेष्म्याय च'
वाज.सं. १६.३९; का.सं. १७.१५.

वाताप्य– (१) प्राण के बल से प्राप्त होने योग्य –सोमरस ।
(२) वेगवान् वायु के वेग से प्राप्त होने वाला अति शीघ्र गामी– अश्वबल ।
(३) वात अर्थात् प्राणों के निरोध द्वारा प्राप्य ब्रह्मतत्व ।
'दीर्घं सुतं वाताप्याय'
ऋ. १०.१९५.१; साम. १.२२८
(४) वात + आप्य । वायु या प्राण के समान प्राप्त करने योग्य, (५) जल वायु के समान सुख और शान्ति देने वाला ।
'पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम्'
ऋ. ९.९३.५; नि. ६.२८
(६) वातः एतत् आप्यायति । वाताप्यम् उदकं भवति (इसे वायु आप्यपित करता है, वाताप्य का अर्थ उदक है) ।
'नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तम्'
पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम्
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः
प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्'
ऋ. ९.९३.५
हे इन्द्र, हे सोम (इन्दो) तू सम्पूर्ण पी लिए जाने पर भी (विश्वः पुनानः) हमारे लिए पुत्र पौत्रों से युक्त धन (नृवन्तं रयिम्) शीघ्र (नु) दे या बना (उपमास्व) तथा चयनीय वृष्टि जल (चन्द्रम् वाताप्य) तेरे द्वारा वर्द्धित हो (प्रतारि) अथवा चयनीय या वर्धनीय जल पा द्रवीभूत हो। तू सम्पूर्णतः पूर्ण हो जल पाकर और बढ़कर स्तोता की आयु बढ़ा (वन्दितुः आयुः प्रतारि) तथा इस प्रकार धन बढ़ा (रयिम् उपमास्व) जिससे प्रज्ञा या कर्म से धनी इन्द्र (धिया वसुः) प्रातः काल ही (प्रातः) शीघ्र (मक्षु) आवे (जगम्यात्) ।
अन्य अर्थ – हे जगदुत्पादक प्रभो, हमें पवित्र करते हुए आप (पुनानः) हमारे लिए प्रशस्त मनुष्यों से युक्त धन (नः नृवन्तं रयिम्) और सब के आह्लादक वृष्टि जल का शीघ्र निर्माण कर (विश्वश्चन्द्रम् वाताप्यम् नु उपमास्व) । तथा

तेजस्विन्, अपने भक्त की आयु को बढ़ा। इस आयु वृद्धि के लिए मनुष्य कर्मधारी और ज्ञानधारी होता हुआ (धियावसः) प्रातःकाल शीघ्र ईश्वर की उपासना करे (प्रातः मक्षु जगम्यात्)।

वातापि- वात अर्थात् प्राण से बलवान् होने वाला।
'वातापे पीव इद्भव'
ऋ. १.१८७.८-१०

वातासः- वायु। मरुतों का वाचक। मरुत् शब्द का बहुवचन में ही प्रयोग हुआ है।
'अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसः
वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः
सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते'
ऋ. १०.७८.२
अग्नि के समस्त (अग्निःन) दीप्तिमान होने से सुन्दर (भ्राजसा युक्तः) रुचिकर छाती वाले) (रुक्मवक्षसः) मरुतों की स्तुति करता हूँ। वे वायु के समान (वातास इव) स्तोताओं को अपने अनुग्रह से युक्त करने वाले (स्वयुजः), शीघ्र चलने वाले (सद्य ऊतयः), प्रकृष्ट ज्ञान वाले (प्रज्ञातारः) प्रशस्त नीतियों से युक्त (सुनीतयः), मुखियों के समान (ज्येष्ठाः न), यज्ञ के लिए प्रयत्न शील यजमान के लिए (ऋतंयते) सुन्दर सुख वाले बन्धुओं के समान (सुशर्माणः न) सौम्य होवें (सोमाःसन्तु)।

वातीकार- वायु की पीड़ा।
'वातीकारस्य वातजेः'
अ. ९.८.२०

वातीकृत- तीव्र वात से उत्पन्न रोग।
'वातीकृतस्य भेषजीम्'
अ. ६.१०९.३;

वातोपधूत- आग से भभका हुआ अग्नि।
'वातोपधूत इषितो वशां अनु'
ऋ. १०.९१.७; मै.सं. ४.११.४: १७३.१

वाध् - पीड़ा।

वाधूय- वधू-सम्बन्ध, विवाह।
'स इद् वधूयमर्हति'
ऋ. १०.८५.३४; . १४.१.२९

वाधूयं वासः- वधू को देने योग्य वस्त्र।
'वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम्'
अ. १४.२.४१; ४२.

वानस्पत्य - (१) वनस्पति से पूर्ण जंगल।
'वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः'
अ. १४.२.९
(२) वनस्पति का बना मूसल, (३) मूसल के समान राजकीय तेज से सम्पन्न राजा।
'वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीः'
अ. १२.३.१८
(४) वनस्पति, वृक्ष या लकड़ी का बना पदार्थ।
'वनस्पतीन् वानस्पत्यान्'
अ. ८.८.१४; ११.९.२४

वानस्पत्यग्रावा - (१) काठ का बना कूटने का साधन-मूसल (२) सूर्य के व्रत पालक तेजस्वी उपदेष्टाजन।
'वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत'
अ. ३.१०.५

वाना- द्वि.व.। विभाग करते हुए।
'अग्राद्वाना नमसा रातहव्या'
ऋ. ६.६९.६

वापी- (१) बीजवपन, द्वारा खेतों को बोने वाला कृषक।
'वापीनामभिशस्ति पा उ'
अ. १९.२४.६

वापुषः- (१) वपुष् अर्थात् शरीर देने वाला पिता। इसी शब्द से बिगड़ कर आज बापू, बाबू या बाप शब्द बना है।
'पृक्षः कृणोति वापुषः'
ऋ. ५.७५.४

वाम् - (१) युवाम् (तुम दोनों को)। (२) युवयो (तुम दोनों का)।
'इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति'
ऋ. १.१५५.२; नि. ११.८
हे इन्द्र और विष्णु, आप दोनों के समागम को (वाम्) सोमपीती यजमान (सुतपा) पूजित या वर्णन करता है (उरुष्यति)।

वामः- वन् + मक् (कर्म में) = वाम (न् का अ) अर्थ है (१) वननीय संभजनीय, (२) सेवनीय, (३) धन।
'वामंवामं त आदुरे
देवो ददात्वर्यमा'

ऋ. ४.३०.२४; नि. ६.३१.
हे आदरणीय यजमान ! तुझे सूर्य इष्टधन देवे ।
(२) चमकने वाला, (३) आरोग्यार्थियों का सेवनीय, (४) प्रशंसा ।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
तस्या भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः '
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; नि. ४.२६
इस स्वर्ग में चमकने वाले, आरोग्यार्थियों के सेवनीय तथा पालक उस आह्वनीय आदित्य के मध्यम स्थानी सर्वव्यापक भ्राता के समान वायु है ।
अथवा,
इस प्रशस्त पालक तथा ग्रहोपग्रहों के आहर्ता सूर्य का मेघ मध्यवर्ती अशनि दूसरा भाई है ।
(४) प्रशंसनीय
'वंसीमही वामं श्रोमतेभिः '
ऋ. ६.१०.१०

वामदेव- (१) वामः वननीयो देवः । द्योतको वोधो यस्य सः
(२) सुन्दर देव परमेश्वर का उपासक ।
'अवन्तु न कश्यपो वामदेवः '
अ. १८.३.१५
(३) उत्तम रीति से सेवन करने योग्य पदार्थों का दाता, (४) उत्तम ज्ञानों का प्रकाशक या दानी ।
'भुवोऽविता वामदेवस्य धीनाम् '
ऋ. ४.१६.१८

वामदेव्य- (१) जीव द्वारा अधिष्ठित संसार- स्थावर, 'जंगम' (२) पिता वामदेव्यम् पुत्राः पृष्टानि ।
(३) शान्तिर्वामदेव्यम्
(४) प्रजननं वै वामदेव्यम्
श.ब्रा. ५.१.३.१२.
(५) वायुरु प्राणः
श.ब्रा. ९.१.२.३८
(६) पशवः (७) विराट् रूप गौ के चार स्तन कल्पित हैं- बृहत् , रथन्तर, यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य। बृहत् (द्यौ) से अन्न, रथन्तर अर्थात् रस तमा पृथिवी है । 'रसतमं हि वै रथन्तरम् इत्याचक्षते परोक्षम् -श.ब्रा.
'इयं वै पृथिवी रथन्तम् '
तीसरा स्तन 'यज्ञायज्ञिय' पशु और अन्नादि खाने वाले जीव हैं जिससे यज्ञ उत्पन्न हुआ । वामदेव्य चौथा स्तन है ।
अन्तरिक्षं वै वामदेव्यम्
उससे जलों की वर्षा हुई ।
'अपो वाम देव्यं यज्ञम् '
अ. ८.१० (२) १०

वामन- (१) अति सुन्दर हृदय ग्राही पुरुष, (२) वामन भगवान् ।
'वैष्णवो वामनः '
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२: १६८.१३
(३) बौना -छोटे कद का पुरुष ।
'प्रमुदे वामनम् '
वाज.सं. ३०.१०; तै.ब्रा. ३.४.१.६

वामनीतिः- सुखकारक नीति वाला ।
'भवा सुनीतिरुत वामनीतिः '
ऋ. ६.४७.७

वामः पलितः होता- (१) उत्तम आहुति देने वाला वृद्ध पुरुष (२) सेवनीय पालक प्रेरक सबसे अधिक सनातन । एवं सर्वत्र प्रकाश द्वारा व्यापक सूर्य, (३) समस्त विश्व को वमन कर देने या रखने वाला अपने में उगल देने या रचने वाला (वामः) सर्वपालक, व्यापक, संचालक पुण्य पुरुष (पलित) तथा अपने में समस्त विश्व को ले लेने वाला (होता) परमेश्वर (४) सब पदार्थों का सेवन करने वाला ज्ञानवान् या वृद्ध अन्न आदि का भोजन करने वाला देहधारी जीव ।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः '
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; ऐ.आ. १.५.३.७; ५.३.२.१४; शां.श्रौ.सू. १८.२२.७; नि. ४.२६.

वामभाक्- उत्तम पुत्रों को प्राप्त करने वाला ।
'अया धिया वामभाजः स्याम '
ऋ. ६.७१.६; वाज.सं. ८.६; तै.सं. १.४.२३.१; २.२.१२.२; मै.सं. ४.१२.२: १८०.१४; श.ब्रा. ४.४.१.६: आप.श्रौ.सू. ६.२३.१.
(२) सुन्दर पदार्थों का उपभोक्ता, (३) सुख पूर्वक भोग करने वाला (४) उत्तम कर्म और ऐश्वर्यादि गुणों को धारण करने वाला ।
'सखायस्ते वामभाजः स्याम '
ऋ. ३.५५.२२

वामी – अति सुन्दरी ।
'वामीरिष आ वहतं सुवीराः'
ऋ. ३.५३.१; साम. १.३३८; का.सं. २३.११.

वाय- (१) वि + अण् = वायु । वि का अर्थ पक्षी है ।
'वेः पुत्रः वायः' (वि अर्थात् पक्षी का पुत्र वाय है) । अर्थ हुआ-पक्षिशावक (२) वञ्चित होना ।
'न ता वाजेषु वायतः'
ऋ. ८.३१.६

वायत – (१) विज्ञानवान् । तेज और रक्षा से युक्त वर्ग ।
'पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्'
ऋ. ७.३३.२

वायव्य – (१) सभी देवताओं के सोमपात्रों का सामान्य नाम, (२) जिन पात्रों में वायु का संचार हो वह वायव्य है, (३) सोम पान करने के लिए पात्र bowl शब्द की वायव्य से समानता विचारणीय है ।
'वायव्यानि पात्राणि'
अ. ९.६(१).१७
(४) वायु के समान तीव्र प्रचण्ड और बलदान ।
'वायव्यः श्वेतः पुच्छे'
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२: १६८.१३
(५) सोम और सौत्रामयी यज्ञों में प्रयुक्त वायव्य नामक पात्र । (६) वायुवत् तीव्र वेगवान् सैनिक ।
'वायव्यैर्वायव्यानि आप्नोति'
वाज.सं. १९.२७
(३) वायव्य आदि पात्र ।
'वायव्यानि च मे'
वाज.सं. १८.२१; मै.सं. २.११.५; १४३.८; का.सं. १८.११.
(८) वायव्य दिशा ।

वायस् – (१) पक्षिशावक, चिड़िया का बच्चा ।
(२) पक्षी ।
'वने न वायो न्यधायि चाकन्'
ऋ. ८.१०.२९.१; अ. २०.७६.१; ऐ.ब्रा. ६.१९.१०; ऐ.आ. १.५.२.५; ५.३.२.२; शां.श्रौ.सू. १८.१.६; नि. ६.२८.
हे पोषक या धारक अश्विद्वय, जैसे वन में (वने न) पक्षी द्वारा वृक्ष पर रखा हुआ बच्चा (वायस् न्यधायि) भय या उत्सुकता से देखता हुआ (चाकन्) ।
अथवा,
जैसे इधर उधर दौड़ता हुआ या भोजन की इच्छा करता हुआ पशुपक्षी (चाकन् वायस्) किसी वन में रखा हुआ रहता है (वने न्यधायि) ।

वायस- (१) अति वेग से गमन करने वाला, (२) ज्ञान और बल में सब से महान्
'दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तम्'
ऋ. १.१६४.२२
(२) काग, (३) एक राजा का नाम ।
'यं वायसो यं मात्स्यः'
'अ. १९.३९.९

वाय्या- (१) तन्तु- सन्तान रूप से उत्तम सन्ततिओं को उत्पन्न करने वाली, (२) शिष्य रूप से संततिवत् उत्पन्न बालक को भी वाय्य कहा जाता है ।
'सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते'
ऋ. ५.७९.१-३; साम. १.४२१; २.१०९०-१०९२

वायु- (१) क्रियाशील-परमेश्वर का विशेषण ।
'शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदम्'
ऋ. १०.१०७.४; अ. १८.४.२९
(२) वा (गत्यर्थक) + उण् = वायु (युक् का आगम) । अथवा वी + उण् = वायु (ई की वृद्धि) अथवा इ (गत्यर्थक) + उण् = वायु (व का आगम) । अर्थ- वायु । वायु सदा गतिशील है (३) मध्यम स्थानी देवता । वायुः वातेः वा इते वा स्यात् गतिकर्मणः । एतेः इति स्थौलाष्ठीविः अनर्थकः वकारः तस्यैषा भवति (वायुवा धातु से या इ धातु से बना है-ऐसा स्थौलाष्ठीवि आचार्य का मत है) ।
(३) इन्द्र ।
'नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्'
ऋ. ६.३७.२; नि. १०.३
नहीं तो कहीं इन्द्र का (वायोः) सोमरस (अमृतम्) घट ना जाय (विदस्यत्) ।
'वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वा
गन्धर्वाः सप्तविंशतिः
ते अग्रेऽश्वमयुञ्जन्
ते अस्मिञ्जवमादधुः'

वाज.सं. ९.७; तै.सं. १.७.७.२; मै.सं. १.११.१: १६२.१; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.४.८
हे अश्व, वायु भी तुझे और मन भी तुझे और ये सत्ताईस गन्धर्व भी तुझे इस रथ में जोतते हैं। वे ही जोतने की कला में विज्ञ हैं। उन्होने ही पूर्वकाल में अश्व जोता और उन्होने ही इसमें गति प्रदान की। अतः हे अग्नि, इस अश्व को वे ही जोतें और रस में गति प्रदान करें। -दुर्ग

वायुकेशाः गन्धर्वाः- (१) वायु में खुले अनावृत केसों वाला वेदवाणी का धारक विद्वान् (२) भूमिधारक शासक या (३) वायुकेश गन्धर्व जिसे मन द्वारा जाता है।
'व्रते गन्धर्वा अपि वायुकेशान्'
ऋ. ३.३८.६
(४) आत्मा में प्राण गण वायु केश हैं। वे व्याप्त आत्मा के केशों के समान हैं। वे प्राण वाणीधारक एवं शरीर धातु होने से गन्धर्व हैं।
(५) वायु में व्यापक केश अर्थात् किरणों वाले सूर्यादि भूमि के धारक होने से गन्धर्व हैं।
(६) जिसका वायु के समान प्रकाश हो-दया.

वायुतेजाः- (१) वायु के समान पराक्रमी।
'अन्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः'
अ. १०.५.२६

वाः (वार्) - (१) जल जिसे विद्युत ने वरण किया, जिसमें विद्युत ने आश्रय लिया।
द्रोण्यश्वासः ईरते घृतं वाः
ऋ. १०.९९.४
(२) प्रजा जिसे उच्छृंखल देख राजा व्यवस्था द्वारा रोक देता है।
'तस्माद् वार्नाम वो हितम्'
अ. ३.१३.३
'वार्ण त्वा यव्याभिः'
ऋ. ८.९८.८; अ. २०.१००.२; साम. २.६१
(३) रोग निवारण उत्तम जल।
'वार्ध्यः स्वाहा'
वाज सं. २२.२५

वार- वृ + घञ् = वार। अर्थ (१) बाल।
'अश्वं न त्वा वारवन्तम्'
बालयुक्त अश्व के समान तुझ अग्नि को.....
(२) आवरण करने वाला किरण या ज्वाला।
(३) घेरने वाला शत्रु,
(४) आवरण कारी दोष,
(५) घेरने वाला प्रिय शिष्य'
'अत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान्'
ऋ. २.४.४.
(६) आवरण करने वाला प्राकृत जगत्।
'य इन्दुर्वारमाविशत्'
ऋ. ९.३८.५; साम. २.६२७

वारण- (१) हाथी। ण्यन्त वृ + ल्युट् = वारण,' वारयिता
दान मृगो न वारणः
ऋ. ८.३३.८; अ. २०.५३.२; ५७.१२; साम. २.१०४७; कौ.ब्रा. २४.८; शां.श्रौ.सू. ११.१२.४
(२) शत्रुओं को धारण करने वाला।
'वृकश्चिदस्य वारण उरामथिः'
ऋ. ८.६६.८; अ.-२०.९७.२; साम. २.१०४२; नि. ५.२१
इस इन्द्र का कुत्ता भी शत्रुओं का वारण करने वाला है और भेड़ों का शिकारी होकर भी (उरामथिः)....-सा.
इस राजा का कुत्ता शत्रुओं का निवारण करने वाला (वारणः) और भेड़ो का हांकने वाला हो-ज.दे.श.।

वारणी- (१) हथिनी, (२) सेना, (३) अपराध रोकने वाला दण्ड।
'उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव'
अ. ५.१४.११

वारणीकृत्या- (१) अपराधों को रोकने वाली पीड़ा, (२) किसी अनिष्ट को रोकने वाली कृत्या।

वारवत् - (१) बाल से युक्त, (२) अश्व का विशेषण।
'अश्वं न त्वा वारवन्तम्
वन्दध्या अग्निं नमोभिः'
ऋ. १.२७.१; साम १.१७; २.९८४
हे अग्नि, हम तुझे स्तुतियों से (नमोभिः) प्रार्थना करते हैं जैसे बाल वाले अश्व को (वारवन्तम् अश्वं न)। वालाः दंश निवारणार्थीः भवति (केशों से दंश निवारित किए जाते हैं)।
(३) अश्व, (४) अग्नि,
(५) शत्रुओं को धारण करने वाले सेनादि साधनों से युक्त -राजा।

वार्य- अभिलषणीय ऐश्वर्य ।
'विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्'
ऋ. १.८१.९; ५.६.६; अ. २०.५६.६

वार्कार्या- (१) जल प्राप्त करने की क्रिया (२) दुःखों को वारण करने वाली वेद विद्या ।
'इमां धियं वार्कार्यां च देवीम्'
ऋ. १.८८.४

वार्षागिराः- (१) वृषस्य उत्तमस्य गीर्भिः निष्पन्नाः पुरुषाः (उत्तम विद्वान् की वाणियों से प्रशंसित पुरुष) -दया. ।
(२) उत्तम विद्वानों की वाणियों के वक्ता विद्वान् -ज.दे.श.
वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः'
ऋ. १.१००.१७
उत्तम विद्वानों की वाणियों से बना विद्वान् (वार्षागिराः) शत्रु को वश करने के उपायों का (राधः) उपदेश करें (अभिगृणन्ति) ।

वारितिः- (१) जलों का स्थान -मेघ (२) शत्रुओं को वारण करने वाली सेना ।
'देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्'
वाज.सं. २८.२१; तै.ब्रा. २.६.१०.५.

वारः मन्त्रः- (१) वरणीय श्रेष्ठ मन्त्र (२) विचार (३) राष्ट्रचालक मन्त्री गण ।
'मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन्'
ऋ. ७.७.६

वार्त्रघ्न- विघ्न एवं शत्रुओं का नाशक बल ।
'इन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि'
वाज.सं. १०.८; श.ब्रा. ५.३.५.२७

वार्त्रहत्य- (१) नगरों को घेरने वाले शत्रुओं को हनन करने वाला बल ।
'वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च'
ऋ. ३.३७.१; अ. २०.१९.१; वाज.सं. १८.६८; तै.ब्रा. २.५.६.१
(३) बढ़ते हुए और सत्कर्म से रोकने वाले, विघ्नकारी या नगरों को घेरने वाले, (४) शत्रुओं या दुष्ट पुरुषों का हनन करने वाला ।

वारिती- संकटों और शत्रु के आक्रमणों का निवारण करने वाली सेना ।
'देवं बर्हिर्वारितीनाम्'
वाज.सं. २१.५७; २८.२१; ४४; मै.सं. ३.११.५: १४८.१; ४.१३.८: २१०.१८; २११.२; का.सं. १९.१३;

वार्षिक - वर्षाकाल में होने वाला ज्वर ।
'ग्रैष्मं नाशय वार्षिककम्'
अ. ५.२२.१३

वार्षिकी- वर्षा का जल ।
'शिवा नः सन्तु वार्षिकीः'
अ. १.६.४

वार्षिकौ मासौ- वर्षाऋतु के दो मास
'वार्षिकौ मासौ गोप्तारौ'
अ. १५.४.८

वार्ध्रीनसः- (१) नाक में नकेल लगाने वाला-ऊंट, (२) अपने इन्द्रियों का निग्रह करने वाला ।
'उष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्यै'
वाज.सं. २४.३९; मै.सं. ३.१४.२०: १७७.१

वार्षीजगती- वर्षा से उत्पन्न जगती ।
'जगती वार्षी'
वाज.सं. १३.५६; तै.सं. ४.३.२.२; मै.सं. २.७.१९: १०४.७; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.२.

वारुण- वरुण नामक पद का पुरुष ।
'बभ्ररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः'
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.११.१; मै.सं. ३.१३.३: १६९.१; का. सं. (अश्व.) ९.१.

वाल- (१) वार, (२) समस्त रोगों का वारण करने वाला ।
'चप्पं न पायुर्भिषगस्य वालः'
वाज.सं. १९.८८; मै.सं. ३.११.९: १५४.३; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.४
(३) न. । वृ (वरण करना, स्वीकार करना) + वनिप् = वाल । वृण्वन्ति देवाः तत्र हवींषि (देवता उस दिन हवि ग्रहण करते हैं अतः पर्व का नाम वाल पड़ा) । वालं पर्व वृणोतेः वाल का अर्थ पर्व है, यह वृ धातु से बना है । (४) हैम ने वाल शब्द का अर्थ-
'पर्वप्रस्तारोत्सवयोः
ग्रन्थौ विषुवदादिषु
दर्श प्रतिपत्सन्धौ च
तिथि ग्रन्थ विशेषयोः'
किया है ।

वालाः- अर्थ -केश । वाला देश निवारणार्थ भवन्ति । (दंश निवारण के लिए वाल हैं) ।

वाली - उत्सव मनाने वाली

वावशती – हम्भारव करने वाली ।
'कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत्'
अ. २०.८८.५

वावशान– वश् (कान्त्यर्थक) + शानच् = वावशान, अथवा, वाश् + शानच् = वावशान । उपधा का ह्रस्व व्यत्यय से । अर्थ है-(१) भृशं कामयमानः ।
(बार बार या बहुत कामना करता हुआ) (२) कान्तिमान, (३) शब्दापसान (४) वेदोपदेष्टा विद्वान् –दया. ।
'सप्त स्वसूररुषीर्वावशानः
विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशे कम्
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा
इच्छन् वव्रिमविदत् पूषणस्य'
ऋ. १०.५.५
अपने अधिकारों या सब करता अत्यन्त कामना शीघ्र या शब्दायमान (वावशानः) आरोचमान या सुशोभित (अरुषीः) सप्तसंख्यक वहनों या अरणशील ज्वालाओं को (सप्तस्वसृः) मरकर यज्ञ से (मध्वः) ऊपर की ओर ले गए (उज्जभार) अर्थात् अग्नि यज्ञ में अपनी ज्वालाओं से प्रज्वलित हो गए जिससे सभी पद पदार्थों का सुख पूर्वक दर्शन हो सके (कं दृशे) तथा सभी देवताओं से सर्व प्रथम उत्पन्न उस अग्नि ने (पुराजाः) अपनी ज्वालाओं को अन्तरिक्ष में नियमित किया (अन्तरिक्षे अन्तःयेमे) अर्थात् अग्नि सर्वत्र प्रदीप्त हो गया और यजमानों की कामना करता हुआ (इच्छन्) अग्नि ने पार्थिव लोक के रूप को स्पष्ट किया या प्रदान किया (अविदत्) ।
यहाँ आदित्यात्मा अग्नि अभिप्रेत है । सूर्य ही सात किरणों को प्रदीप्त करता है और प्रातः काल उदय होते समय मानों समुद्र से निकलता है (मध्वः उज्जभार) और अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में स्थित हो पृथ्वी पर वृष्टि रूप में प्रकट होता है ।
अन्य अर्थ-कान्तिमान या वेदोपदेष्टा (वावशानः) तथा सृष्टि विद्या के ज्ञाता अग्रणी परमेश्वर ने (मध्वः विद्वान्) अप्रकाशमान सात बहनों को (अरुषीः सप्तस्वसृः) अर्थात् स्वयं प्रकाशमान न होने वाले सोम आदि सात ग्रहों को सूर्य के लिए (दृशे) उत्तम रीति से धारण किया है (उज्जभार) । सनातन परमात्मा ने (पुराजाः) इच्छा करते हुए उन सप्तग्रहों को सौरमण्डल के अन्तरिक्ष में यन्त्रित किया (अन्तः अन्तरिक्षे येमे) और उन्हें पोषक सूर्य का प्रकाश प्रदान किया (पूषणस्य वप्रिम् अविदत्) ।

वावशान्ना– वृश् (इच्छा करना) । (१) बार बार इच्छा करती हुई–दया. । वश् (यङ् लुगन्त में) + शानच् = वावशान । अतवा 'वाश् + शानच् = वावशान' । वावशान + टाप् = वावशाना ।
(२) कान्तिमाना, (३) शब्दायमाना, (४) वेदोपदेश करने वाली विदुषी, (५) प्यार करती हुई ।
'सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना
निमाति मायुं पयते पयोभिः'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; नि. ११.४२
माध्यमिका वाक् नीचे जाते हुए सूर्य को देख बार बार उसकी कामना करती हुई शब्द करती तथा जल से पूर्ण रहती और लोगों को भी पूर्ण करती है–यास्क ।
चलने वाले रस हरण शील भूलोक रूपी वत्स को प्यार करती हुई शब्द करती है तथा जल रुपी दुग्ध से पृथ्वी को परिपुष्ट करती है । –दया. ।

वावशाना आपः– (१) कामना करने वाले लिंग शरीर, प्राण, वायु जल, (२) सुन्दर जल धाराएं, (३) सकाम प्रजाजन ।
'अहमपो अनयं वावशानाः'
ऋ. ४.२६.२

वावसानः– वस् + अनश – वावसान । आच्छादक मेघ ।
'आजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन्'
ऋ. १.५१.३
संग्राम में (आजौ) आच्छादन करने वाले मेघ के (वावसानस्य) अच्छिन्न मेघ को (अद्रिम्) जिस प्रकार वायु नचाता है (नर्तयन्) ।

वावसाना – द्वि. व. । (१) रात दिन का विशेषण या अश्विद्वय का विशेषण । रहने वाले ।
'वावसाना विवस्वति
सोमस्य पीत्या गिरा
मनुष्वच्छं आ गतम्'

ऋ. १.४६.१३
सूर्य के आधार पर (विवस्वति) रहने वाले (वावसाना) दिन और रात्रि, जल और वायु के उपयोग द्वारा शान्तिदायक तथा शुभप्रद होते हैं। उसी प्रकार विविध शिष्यों के स्वामी या आचार्य के अधीन नित्य नियम से रहने वाले स्त्रीपुरुष कन्या और कुमार दोनों वीर्य के पालन और वेद वाणी के अभ्यास द्वारा (सोमस्य पीत्या गिरा) मननशील ज्ञानी होकर (मनुष्वता) जनता के लिए कल्याण कारी होकर (शंभू) अपने घरों को आवें (आगतम्)।

वावहिः- (१) सब को अपने में आश्रित रूप में धारण करने वाला आत्मा , परमेश्वर या राजा।
'सप्त पश्यति वावहिः'
ऋ. ९.९.६

वावाता- (१) उत्तम पुण्य सुगन्ध युक्त स्त्री, (२) पति का प्रेम पात्र स्त्री।
'वावाता च महिषी'
अ. २०.१२८.११; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.६
(२) नाश करती हुई वाणी या सेना।
'सं ते वावाता जरतामियं गीः'
ऋ. ४.४.८; तै.सं. १.२.१४.३; मै.सं. ४.११.५; १७३.८; का.सं. ६.११
(३) हिंसक प्रबल शत्रु (४) निरन्तर सांसारिक योगों का सेवन करने वाला जीव।
'वावातुर्यः पुरन्दरः'
ऋ. ८.१.८
(५) द्वि.व.। (वि.)। वेग से जाने वाले।
'उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी'
ऋ. ८.४.१४.

वावृजे- (१) बिछाया जाता है-सा. (२) प्रदान किया जाता है-ज.दे.श.
'प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषाम्'
ऋ. ७.३९.२; वाज.सं. ३३.४४; नि. ५.२८
सुन्दर बैठने या आने योग (सुप्रयाः) कुशासन (बर्हिः) बिछाया जाता है (प्रवावृजे) -सा.। शुभागमनयुक्त (सुप्रयाः) वृद्धि (बर्हिः) इन प्रजाओं के लिए (एषाम्) प्रदान की जाती है (प्र वावृजे)-ज.दे.श.

वावृधानः- वृध (यङ् लुङन्त में) + शानच् = वावृधानः। अर्थ (१) बढ़ता हुआ, हृष्ट पुष्ट होता हुआ।
'ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानः'
ऋ. ३.३४.१; अ. २०.११.१
ब्राह्मणों से संगति करने वाला (ब्रह्मजूतः) तथा शरीर से पुष्टांग (२) मेघ या वृत्र का विशेषण।
'असूर्ये तमसि वावृधानम्'
ऋ. ५.३२.६
रात के अन्धकार में वृद्धिशील वृत्र या मेघ को पुनः-
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः
स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास
इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु'
ऋ. १०.८१.६; वाज.सं. १७.२२; साम. २.९३९; तै.सं. ४.६.२.६; मै.सं. २.१०.२: १३३.१७; का.सं. १८.२; २१.१३; नि. १०.२७.
हे विश्वकर्मा! इस हवि से बढ़ता हुआ (हविषा वावृधानः) अर्थात् विश्व कर्मत्व प्राप्त करता हुआ तू स्वयं पृथ्वी और द्युलोक में व्याप्त हो (यजस्व) और तेरी उपासना से विमुख तेरे सपत्न या समान पतित्व की कामना करने वाले पुरुष तेरी इस महिमा को न समझ सकने के कारण मुग्ध होवें और हमारे सर्वाधार स्वामी मघवा सर्वत्र अप्रतिहत ज्ञान और मेधावी हो।

वावृध्वान् - सदा वृद्धिशील।
'वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे'
ऋ. ८.९८.८; अ. २०.१००.२; साम. २.६१

वावृधे- (१) वर्धेथा (तुम बढ़ो) -दुर्ग (२) यास्क ने प्र.पु.ए.व. का ही रूप माना है। सायण का भी यही मत है।
यह लोट् में यङ् लुङन्त का रूप है।

वावृधेन्य- नित्य बढ़ने वाला।
'अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम्'
ऋ. ८.२४.१८; अ. २०.६४.६; साम. २.१०३६.

वाश्- धातु। (१) ज्ञानोपदेश ग्रहण करना, मन्त्र पाठ करने वाला।
'सं विद्युता दधति वाशति त्रितः'
ऋ. ५.५४.२.

वाशः - सं.। (२) कान्ति से युक्त अग्नि (२) कान्तिमान।
'तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्वियः

ऋ. ८.१९.३१; साम. २.११३१
(३) जनों को अपने वश में करने वाले ।
'वाशा स्थ राष्ट्रदाः '
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.१६

वाश्यमाना- (१) शुद्ध करती हुई ।
'वाश्यमानाभि स्फूर्जति '
अ. १२.५.२०

वाश्र - (१) माता को पुकारने वाला बछड़ा ।
'उत त्वाग्ने ममस्तुतो
वाश्राय प्रतिहर्यते '

वाश्राआपः- छम छम करती हुई जल धाराएं ।
'वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु '
अ. ४.१५.१.

वाश्रासः- ब.व.। वाश्र के प्रथमा बहुवचन में । अर्थ -मेघ
उदीरयन्त वायुभिः ।
'वाश्रासः पृश्निमातरः '
ऋ. ८.७.३

वाशी- (१) वाक् । नि. १.११ (२) समीचीन -सा.
(३) सब जगत् को वश करने वाली, (४) जगत् की सृष्टि करूँ - ऐसी कामना करने वाली,
(५) जगत्स्रष्टा विधाता की शक्ति ।
'प्राची वाशी वा सुन्वते मिमीत इत् '
ऋ. ८.१२.१२.
(७) शस्त्र प्रयोग ।
'ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः '
ऋ. ५.५३.४
(८) वाशीति वाङ् नाम, वाश्यत इति सत्याः (वाशी का अर्थ है- वाक्) । वाक् (शब्द करना) + इञ् (कर्म में) + ङीष् = वाशी ।
अंग्रेजी का voice शब्द यहां विचारणीय है ।
(९) सुन्दर स्तुति-सा.
(१०) वाणी-दया.
(११) बंसुला । वाश् (शब्द करना) + इञ् = वाशि, वाशि + ङीष् = वाशी ।
बंसुला के अर्थ में प्रयोग-
'वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः '
ऋ. १०.१०१.१०; नि. ४.१९
इस सोम को अयः शिलासार भूत बंसुला से काट या व्यापन समर्थ स्तुति में संस्कृत कर ।
(१२) छुरी, चाकू,

वाशीमन्तः- (१) सुन्दर स्तुतियों से युक्त मरुत - सा. (२) वाग्मी पुरुष ।
'ते वाषीमन्त इष्मिणो अभीरवः '
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२: १६८.१; का.सं. ८.१७
वे मरुत् सुन्दर स्तुतियों से युक्त (वाशीमन्तः) हवि या स्तुति के निकट जाने वाले या इच्छा वाले या प्रत्यक्ष रूप से सभी पदार्थों को देखने वाले तथा भय रहित हैं-सा. ।
वे पुरुष वाग्मी (वाशीमन्तः) क्रियाशील, आप्तकाम या तत्व दर्शी (इष्मिणः) एवं निर्भय है -दया. ।

वासतेव- (१) ग्रह में बसने योग्य, उत्तम अतिथि ।
'यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद'
अ. ८.१०.७

वासन्तिक - (१) वसन्तकालीन ।
'वासन्तिकमिव तेजनम् '
अ. २०.१३६.३
(२) प्राणायन अर्थात् वसन्त से उत्पन्न वासन्ती गायत्री ।
(३) सब को बसाने वाले तत्व से उत्पन्न प्राणों की रक्षा करने वाली गायत्री शक्ति ।
'गायत्री वासन्ती '
वाज.सं. १३.५४; तै.सं. ४.३.२.१; मै.सं. २.७.१९: १०३.१५; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.५

वासन्तौ मासौ- वसन्त ऋतु के दो मास ।
'वासन्तौ मासौ गोप्तारौ '
अ. १५.४.२

वासर- (१) द्वि + सृ (चलना) + अच = द्विसर = वेसर (द्वि वा वे) वासर । जो शीत और उष्ण से रात्रि और दिन सदा चलते रहते हैं वे वासर हैं, (२) वि + वासि (वस धातु का ण्यन्त) + अरच् = वाचर । वासर शीत को विनष्ट करते हैं । वसन्त ऋतु में शीत विनष्ट हो जाता है अतः वसन्त ऋतु के दिन वासर कहे जाते हैं । अथवा गमनानि विसृतानि विस्तृतानि सन्ति इति हेतोः वासराणि उच्यन्ते । वसन्त ऋतुओं के दिन विस्तीर्ण होते हैं, अतः वे वासर हैं । 'विस्तीर्ण' से ही पृषोदरादिवत् वासर हो गया है ।
अर्थ है- दिन ।

सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारीः
अहानीव सूर्यो वासराणि
ऋ. ८.४८.७; नि. ४.७.
हे सोम, हे स्वामिन्, हमारी आयुओं को उसी प्रकार बढ़ा जैसे सूर्य दिनों को बढ़ाते हैं ।
(२) जगत् का आच्छादन करने वाला ।

वासरी- (१) दिन भर चर कर पुनः घर पर आई गाय, (२) सब को आच्छादन करने वाली सब को अपने भीतर बसाने वाली पृथ्वी, (३) रस युक्त हरी त्वचा से आच्छादित सोमलता, (४) व्यापक प्रकाश वाले सूर्य की दीप्ति ।
'तां वां धेनुं न वासरीम्
अंशुं दुहन्त्यद्रिभिः '

वासव- इन्द्र । 'वसुभिः उपास्यमानः' । (वसुओं से उपास्यमान') - सा.
(२) धन ऐश्वर्य का स्वामी ।
'वासवस्य शतक्रतोः '
अ. ६.८२.१

वासः- (१) वस्त्र, (२) शरीर रूप जीव का चोला ।
'एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन् '
अ. १८.२.५७; कौ.सू. ८०.१७
(३) दिन
(४) आच्छादन करने वाला बल ।
'दधामि मम वाससा '
अ. ७.३७.१
वेस् (गत्यर्थक) + असुन् = वेसस् = वासस् । अन्धकार
'आद् रात्री वाससस्तनुते सिमस्मै '
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२; नि. ४.११
तुरत ही (आत्) रात्रि (रात्री) सभी के लिए (सिमस्मै) अन्धकार (वासः) फैलादेती है । (तनुते) । वस्त्र के अर्थ में ।
'देवि दक्षिणो बृहास्पतये वासः '
अध्यात्म तत्व वेत्ता या पुरोहित को वस्त्र दक्षिणा के साथ दो । (६) वासर दिन

वासः वल्पूली- वास उपसेवायाम् चुरादिः । पल्पूल प्रक्षालनच्छेदनयो पल्पूल लवन पवनयाः।
(१) कपड़ा शुद्ध करने वाली धोबिन, (२) उपसेवनीय अंगों और पदार्थों को भी स्वच्छ रखने वाली स्त्री।
'मेधाय वासः पल्पूलीम् '
वाज.सं. ३०.१२; तै.ब्रा. ३.४.१.७.

वास्तव्य - (१) वास्तुविद्या, (२) गृह निर्माण का ज्ञाता ।
'नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च '
वाज.सं. १६.३९; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२६.१; का.सं. १७.१५

वासिता- रजोगन्ध से युक्त गौ ।
'अभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव '
अ. ५.२०.२

वासी - बंसुला जिससे लकड़ी छिली जाती है ।
'तक्षा हस्तेन वास्या '
अ. १०.६.३.

वास्तु- (नः) वस् + तुन् = वास्तु (वसेस्तुन् णिच्च) । वास्तुः वसतेः निवास कर्मणः । निवासार्थक वस् धातु से 'वास्तु' बना है । अर्थ-(१) जहां वास किया जाता है- गृह (२) अन्तरिक्ष ।
अमीवहा वास्तोष्पते
विश्वा रूपाण्याविशन्
सखा सुशेव एधि नः '
ऋ. ७.५५.१; मै.सं. १.५.१३: ८२.१२; कौ.सू. ४३.१३; पा.गृ.सू. ३.४.७; आप.मं.पा. २.१५.२१; नि. १०.१७
'ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै '
ऋ. १.१५४.६; का.सं. ३.३; नि. २.७
हे दम्पति युगल, तुम दोनों के लिए हम प्रसिद्ध सुखदायक निवासस्थान में विचारने की कामना करते हैं ।
आधुनिक अर्थ- गृह बनाने का स्थान । गृह ।
'अग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम् '
अ. ९.२.९
'मैषामग्ने वास्तुभून्मो अपत्यम् '
अ. ७.१०.८.१

वास्तुप- गृहों, महलों एवं राजप्रसादों की रक्षा का विज्ञान जानने वाला ।
'नमो वास्तव्याय च
वास्तुपाय च '
वाज.सं. १६.३९

वास्तेयी - वस्ति अर्थात् मूत्राशय में जमा होने

वाला मूत्रजल ।
'आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च'
अ. ११.८.२८

वासोदः- वस्त्र या गृहादि का आश्रय देने वाला ।
'वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः'
ऋ. १०.१०७.२

वासोवायः- (१) वस्त्र बुनने वाला (२) समस्त प्राणियों के रहने योग्य जगत् पट को बनाने वाला ।
'वासोवायोऽवीनाम्'
ऋ. १०.२६.६

वास्तोष्पतिः- (१) वास्तोः पविः (गृह का स्वामी), (२) अन्तरिक्ष का स्वामी, (३) गृह की रक्षा करने वाला स्वास्थ्य प्रद वायु ।
(४) अन्तरिक्ष का पालक वायु जिस जिस पदार्थ में प्रवेश करता है उसी का रूप धारण करता है । वह वायु ब्रह्म मूहूर्त में बहता है ।
(१) गृह, निवास स्थान आदि का पालक पुरुष, (६) इन्द्र का एक नाम, (७) वास्तु अर्थात् शरीर रूप गृह का स्वामी आत्मा इन्द्र ।
'वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः'
ऋ. ५.४१.८
'वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्'
ऋ. ७.५४.१; तै.सं. ३.४.१०.१; मै.सं. १.५.१३: ८२.१३; आश्व.गृ.सू. २.९.९; शां.गृ.सू. २.१४.५; कौ.सू. ४३.१३; साम.मं.ब्रा. २.६.१; पा.गृ.सू. ३.४.७; आप.मं.पा. २.१५.१८

वाह् - (१) कार्यों को प्रथम ऊपर लेने वाला, (२) हल चलाने वाला बैल
इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन्
ऋ. ३.३०.२०; तै.ब्रा. २.५.४.१.

वाह- वह् + घञ् = वाह । अर्थ (१) प्रवाह (२) अश्व, सवारी ।
'यथायं वाहो अश्विना'
अ. ६.१०२.१.
कद् वाहो अर्वागुण मा मनीषा'
ऋ. १०.२९.३; अ. २०.७६.३

वाहः- 'वाह' का.ब.व.रूप । (१) हल चलाने वाले बैल, (२) इन्द्रियगण (३) अश्व
'शुनं वाहाः शुनं नरः'
ऋ. ४.५७.४; अ. ३.१७.६; तै.आ. ६.६.२

वाहस- (१) प्राप्त कराने वाला ।
'विप्रा ऋतस्य वाहसा'
ऋ. ८.६.२; अ. २०.१३८.२ साम. २.६५९
(२) वाहनों को साथ रखने वाला (३) एक पक्षी
'अतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे'
वाज.सं. २४.३४; मै.सं. ३.१४.१५: १७५.९

वाहस्- (१) पहुचा देने वाला अग्नि, (२) उत्तम उद्देश्यों तक पहुंचा देने वाला नायक
'अभि प्रयांसि वाहसा'
ऋ. ३.११.७; साम. २.९०७; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.१.

वाहिष्ठ- (१) सबसे अधिक सुख प्राप्त करने वाला, (२) अत्यन्त भार या उत्तरदायित्वा वाला पद ।
'यद्वाहिष्ठं तदग्नये'
वाज.सं. २६.१२
(३) वोढृतमः - अतिशय वहन करने वाला, (४) आह्वाताओं में उत्तम ।
'वाहिष्ठो वां हवानाम्
स्तोमो दूतो हुवन्नरा'
ऋ. ८.२६.१६; आश्व.श्रौ.सू. ४.१५.२; नि. ५.१.
हे अश्विद्वय, जो आह्वाताओं में उत्तम स्तोम है वही तुम दोनों को (वाम्) बुलाता हुआ (हुवत्) तुम्हें प्रियकर हो ।
अथवा,
हे पुरुषार्थी स्त्री पुरुषो, (नरा) प्रार्थनीय ज्ञान तथा धर्मादिकों का उत्तम प्रापक और अनर्थनिवारक वेद तुम्हें प्रदान किया है ।
(हवानां वाहिष्ठःदूत वाम् स्तोमः हुवत्) । वह सदा तुम्हारे लिए विद्यमान् रहे (युवाभ्यां भूतु) ।

व्याकल्प- विविध प्रकार से समर्थ बनाना ।
'तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि'
अ. १२.२.३२.

व्याकृ- विविध प्रकार से पुष्ट करना ।
'व्याकरोमि हविषाहमेतौ'
अ. १२.२.३२.

व्याख्यात् - वि + आख्यात् । विख्यापयति, विदर्शयति (दिखलाता या प्रकाशित करता है) ।
'विवाकमाख्यत् सविता वरेण्यः'
वह सविता वरणीय है तथा द्युलोक को दिखलाता तथा प्रकाशित करता है ।

व्याघ्र- बाघ । वि + आङ् + घ्रा + कन् = व्याघ्र ।

व्याघ्रो व्याघ्राणात् व्यादाय हन्ति इति वा अर्थात् व्याघ्र शब्द व्याघ्राण (सूघंना) से बना है या बाघ मुख को फाड़ कर हनन करता है ।

व्याघ्रजम्भन- व्याघ्र को वश में लाना ।
'आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्'
अ. ४.३.७

व्याघ्रप्रतीक- व्याघ्रवत् बलवान् ।
'व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून्'
अ. ४.२३.७

व्याघ्रलोम- व्याघ्र का लोभ ।
'मुखे श्मश्रूणि न्वं व्याघ्रलोम'
वाज.सं. १९.९२; मै.सं. ३.११.९: १५४.१०; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.५.

व्याघ्राह- (१) वह दिन जिस दिन वीर युद्ध में व्याघ्र के समान पराक्रम दिखलाते हैं, (२) व्याघ्रवत् क्रूर दिन -सा.
'व्याघ्रोऽहन्यजनिष्ट वीराः'
अ. ६.११०.३

व्याघ्रौ- चीरने फाड़ने वाले दो दाँत ।
'यौ व्याघ्राववरूढौ
जिघत्सतः पितरं मातरं च'
अ. ६.१४०.१

व्यात्त- वि + आत्त । खुला हुआ ।
'व्यात्तं न सं यमत्'
अ. ६.५६.१; अ. १०.४.८
'अश्विनौ व्यात्तम्'
वाज.सं. ३१.२२; तै.आ. ३.११.२

व्याधी- शिकारी पुरुष ।(व्याधिन्) ।
'नमो बभ्लुशाय व्याधिने'
वाज.सं. १६.१८; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३: १२२.११; का. सं. १७.१२.

व्यान - व्यान नामक वायु ।
'व्यानो यज्ञेन कल्पताम्'
वाज.सं. २२.३३; तै.सं. १.७.९.२; ४.७.१०.२.

व्यानदा- (१) व्यानवायु को देने वाला, (२) व्यापक बल रखने वाला ।
'प्राणदा अपानदा व्यानदाः'
वाज.सं. १७.१५; तै.सं. ४.६.१.४; मै.सं. ३.१०१: १३२.१३; श.ब्रा. ९.२.१.१७

व्यानशिः- विविध प्रकार से व्यापने वाला ।
'व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः'
ऋ. ९.८६.५; साम. २.२३८

व्यानशी- वि + आनशी (१) विशेष रूप से व्यापक, (२) सबके हृदय में बसा हुआ, (३) सर्व प्रिय ।
'व्यानशी रोदसी मेहनावान्'
ऋ. ३.४९.३

व्याप्ति- नाना मनोरथों के अनुरूप फल प्राप्त करना ।
'राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिः'
अ. ११.७.२२

व्याम- (१) फैला हुआ हाथ ।
'व्यामेनानुमेयाः'
अ. ६.१३७.२
(२) विशेष रूप से
'यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे'
अ. १८.४.७०

व्याम्य- सब के प्रति विशेष रूप से रहने वाले ।
'यः समाम्यो वरुणो यो व्याम्यः'
अ. ४.१६.८

व्यायन- (१) नीचे का स्थान, (२) तामस लोक । (नितरां नीचीनं गमनम्)

व्यार- वि + ऋ के लिट् प्र.पु. एक वचन का रूप । अर्थ- (१) इधर उधर विश्लिष्ट हो गया, छिन्न भिन्न हो गया । मेघ के सम्बन्ध में प्रयुक्त ।
'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः'
पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२

व्याल - (१) सर्पवत् विष रूप से शरीर में फैल जाने वाला ज्वर ।
'तक्मन व्याल वि गद्'
अ. ५.२२.६
(२) सर्प ।

व्यावः- व्यावृणोत् विवृतान् अकरोत् (विवृत किया फैलाया)।
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्
वि सीमतः सुरुचो वेन आवः
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च वि वः'
अ. ४.१.१; ५.६.१; साम. १.३२१; वाज.सं. १३.३; तै.सं. ४.२.८.२; मै.सं. २.७.१५: ९६.११; का.सं. १६.१५; कौ.ब्रा. ८.४; श.ब्रा. ७.४.१.१४;

१४.१.३.३; तै.ब्रा. २.८.८.८; तै.आ. १०.१.१०; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.५.
आदित्य नामक ब्रह्म पूर्व दिशा में उदय लेता हुआ (ब्रह्म प्रथमं पुरस्तात जजानम्) कमनीय और मेधावी है (वेनः) । वह आदित्य अत्यन्त रुचने वाली किरणों को सभी दिशाओं में फैलाता है (ससुरुचः सीमतः विश्रायः) । इस जगत् के (अस्य) अवकाश भूत् (उपमा) अन्तरिक्ष की दिशाओं को (बुध्न्या विष्ठाः) एवं व्यक्त (सतः) तथा अव्यक्त वायु आदि पदार्थों का (असतः च) आविर्भाव किया (योनिम् वि वः) ।

व्राः- (१) घेरने वाले जन ।
'मृगं न व्रा मृगयन्ते'
ऋ. ८.२.६; नि. ५.३.
(२) वात्याः । वृ + क + जस् = व्राः । वरितारः अन्वेष्टारः मृगादीनाम् । व्रात्यस्थानीयाः लुब्धकादयः 'व्र' का बहुवचन रूप ।
(मृग आदि फंसाने वाले बहेलिए) ।

व्रा - स्त्री -ए.व. । (१) वाणी । (२) या व्रियते सा (प्रकट होने वाली । -दया.
(३) परमेश्वर को वरण करने और उसको संभजन कीर्तन करने वाली वाणी ।
'तज्जानतीरभ्यनूषत व्राः'
ऋ. ४.१.१६

व्राज- (१) गन्तव्य गृह -सा.
(२) गुरु गृह ।

व्राणा- (१) ब.व. । वि. (१) रुके हुए जल
(२) गौओं का बाड़ा ।
'गा न व्राण अवनीरमुञ्चत्'
ऋ. १.६१.१०; अ. २०.३५.१०
जैसे ग्वाला गौओं को बाड़े से मुक्त करता है । उसी प्रकार वीर पुरुष या राजा घिरी हुई भूमियों-भूमिवासिनी प्रजाओं को शत्रु के बन्धन से युक्त करें ।

व्रात- (१) व्रताचरण करने वाला (२) शिष्य गण,
(३) प्राण ।
'अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुः'
ऋ. १.१६३.८; वाज.सं. २९.१९; तै.सं. ४.६.७.३; का.सं. (अश्व.) ६.३.
(४) सैन्य दल, (५) व्रत पालक लोक संघ ।
'महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋग्मावान्'
ऋ. ३.३०.३

व्रातपति - (१) संघपालक, (२) कुलपति ।
'नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२५; तै.सं. ४.५.४.१; मै.सं. २.९.४: १२३.१६; का.सं. १७.१३.

व्रातं व्रातम् - प्रत्येक सैन्य दल में ।
'व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः'
ऋ. ३.२६.६; ५.५३.११

व्रातसाहः- (१) वीर समूहों को भरा पराजय करने में समर्थ ।
'सतो वीरा उरवो व्रातसाहाः'
ऋ. ६.७५.९; वाज.सं. २९.४६; तै.सं. ४.६.६.३; मै.सं. ३.१६.३: १८६.१४; का.सं. (अश्व.) ६.१.
(२) शत्रु सैन्य बल को पराजित करने वाला ।

व्रात्य - (१) यह शब्द प्रैषवाची या भृत्यवाची है,
(२) मनु ने उपनयन संस्कार से हीन द्विज को व्रात्य कहा है-
सावित्रात् पतिता व्रात्याः
(३) मनुष्यों को हिताकरी ।
'गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम्'
वाज.सं. ३०.८; तै.ब्रा. ३.४.१.५
(४) व्रतों का एकमात्र उपास्य परमेश्वर ।
'व्रात्य आसीदीयमानः'
अ. १५.१.१.
(५) जो यज्ञादि क्रिया का अधिकारी नहीं है,
(६) उपनयन आदि संस्कारों से हीन पुरुष- शंकरपाण्डुरंग
(७) महानुभाव देवताओं का प्यारा,
(८) ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के तेजों का मूल,
(९) देवों का देव- शंकर पाण्डुरंग यह अर्थ- परस्पर विरोधी है ।
(१०) विशेष प्रायश्चित के बाद उपनीत होने वाला पुरुष जो अनार्य से आर्य बन जाता था वह व्रात्य है ।
(११) आर्यों से बहिष्कृत जत्थे का सरदार जो ब्राह्मणों के शासन से मुक्त और ब्राह्मणों के मार्ग पर न चलने वाला है-ग्रिफिथ ।
(१२) उपनयनहीन गुरुमन्त्र से भ्रष्ट द्विजाति -मनु
(१३) ताण्डय ब्राह्मण में व्रात्यस्तोम के पाठ से व्रात्य को शुद्ध कर यज्ञाधिकारी बनाने का

विधान है ।
(१४) व्रात्य नामक सूक्त ।
'व्रात्याभ्यां स्वाहा'
अ. १९.२३.२५

व्रात्यब्रुवः - व्रात्य न होकर भी जो अपने को 'व्रात्य हूँ' ऐसा कहता है ।
'अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवः'
अ. १५.१३.११.

व्राधत् - (१) विरोधी-दया. (२) बड़ा मनुष्य-ज.दे.श. ।
'स व्राधवो नहुषो दंसुजूतः'
ऋ. १.१२२.१०
वह बड़े बड़े मनुष्यों में भी महान् हो जाता है (बाधता नहुष) जो कि अपनी इन्द्रियों का दमन कर उनके द्वारा प्ररित होता है दंसुजूतः) या विनाश करने वाले वीरों से प्रेरित होता है ।
(३) बढ़ता हुआ, उमड़ता हुआ ।
'स सव्येन यमति व्राधतश्चित्'
ऋ. १.१००.९
वह बढ़ते या उमड़ते हुए बड़े बड़े शत्रुओं को भी (व्राधतः चित्) अपनी बाईं भुजा से (सव्येन) वश करे (यमति) ।
(४) बढ़ता हुआ गुण ।
'नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम्'
ऋ. १०.४९.८

व्राज- गोल बांधकर डाका आदि मारना ।
'उदस्थुर्व्राजमत्रिणः'
अ. १.१६.१

व्राधन्तमः- (१) अति शयेन वर्धमानः -दया. (नित्य वृद्धि को प्राप्त होने वाला) ।
'महो व्राधन्तमो दिवि'
ऋ. १.१५०.३

वि - धा. । बुनना, weave
या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे'
अ. १४.१.४५.
(२) विग्रहार्थक अव्यय जैसे विगृह्णाति (विग्रह)
(३) विशेष अर्थ का प्रतिपादक है ।
(४) सं. । पक्षी । विरित शकुन्ति नाम । वि (गत्यर्थक) + डि = वि । 'वेतोः डिच्च' से इण् और डित् होने से वि के इ का लोप ।
(५) गन्ता (चलने वाला) । वि + डि = वि ।
(६) अभीष्ट फलदाता । (७) अभीष्ट फल दायक -यज्ञ का विशेषण । -सा.
'वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वान्'
ऋ. ४.७.८
हे अग्नि, तू अभीष्ट फलदायक यज्ञ के दूत कर्मों को जानता है । स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ अन्यय 'अध्वरस्य इत्यानि वेः' किया है और 'आप यज्ञ के अनर्थ निवारक कर्मों को जानते हैं' ऐसा अर्थ किया है ।
(१) विग्रहार्थक अव्यय- विगृह्णाति (विग्रह करता है) ।
अपगृह्णाति (अपग्रह करता है) ।
पक्षी के अर्थ में 'वि' का प्रयोग- विरिति शकुनिनाम (वि पक्षी का नाम है) । वि + डि = वि (इण् और डित् होने से वि के इ का लोप)।
गन्ता के अर्थ में - वि + डि = वि. ।
बुनना धातु के अर्थ में वि का प्रयोग -
'वयित्र्योऽवयन्'
पंच.ब्रा. १.८.९
हे वस्त्र, तुझे कुविन्द की बेटियों ने (वयित्र्यः) बुना (अवयन्) (८) व्यापक कान्तिमान प्रकाश स्वरूप है ज्योतिर्मय आत्मा, (९) कान्ति मय अग्नि ।
'प्रियं रक्षन्तो निहितं पदं वेः'
ऋ. ३.७.७
(१०) कान्तिमान तेजस्वी ।
'विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे'
ऋ. १०.११.४; अ. १८.१.२१.
(११) वेगवान
(१२) संसार के सुखों का भोक्ता ।
'भरद् यदि विरतो वेविजानः'
ऋ. ४.२६.५
(१३) वेगवान् अश्व ।
'यद्वां रथो विभिष्पतात्'
ऋ. १.४६.३; ८.५.२२; साम. २.१०८०

विककर- शिशिर ऋतु में पाए जाने वाला पक्षी विशेष ।
'शिशिराय विककरान्'
वाज.सं. २४.२०; का.सं. (अश्व.) १०.४;

आप.श्रौ.सू. २०.१४.५.

विकट- वि + कटि (गत्यर्थक) + घञ् = विकट । औपमन्यव आचार्य के मत से,
वि + कुट् (कौटिल्य गति) + घञ् = विकट
(१) औपमन्यव आचार्य के मत से विकट का अर्थ है- विकृत गमन, (विकटः विक्रान्तगतिः इति औपमन्यवः) ।
(२) विकृताङ्गी । 'कुटितेः वा स्यात् विपरीतस्य विकटितो भवति' । विकुटित या कुब्ज को भी विकट कहते हैं ।
आधुनिक अर्थ- भयङ्कर

विकटा - (१) वि + कटि (गत्यर्थक) + घञ् + टाप् = विकटा । अर्थ है । विक्रान्त गति वाला -औपमन्यव ।
स्त्रीलिंग में अर्थ है विक्रान्त गति वाली, (२) विकृत अंगों वाली । वि + कुट् + घञ् + टाप् = विकटा ।
'अरायि काणे विकटे'
ऋ. १०.१५५.१; नि. ६.३०

विकङ्कती - कंघी ।
'अथो विकङ्कतीमुखाः'
अ. ११.१०.३

विकङ्कतीमुख- कंघी के समान मुख वाला त्रिषन्धि नामक बाण ।

विकस्त- विकसित ।
'उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्'
वाज.सं. ११.३९; मै.सं. २.७.४: ७८.७; का.सं. १६.४; श.ब्रा. ६.४.३.४.

विकसुक- विशेष रूप से प्रकाशमान् विराट्, अग्नि ।
'संकसुको विकसुकः'
अ. १२.२.१४; मै.सं. ४.१४.१७: २४६.१३

विक्षर- (१) विशेष प्रवाह ।
'एषा त्वं कासं प्र पत
समुद्रस्यानु विक्षरम्'
अ. ६.१०५.३
(२) ऋग्वेद कालीन एक देश ।

विक्षरन्ति- विविधं क्षरन्ति, प्रवर्षन्ति (विविध प्रकार से क्षरते बरसते हैं) ।

विक्रान्ता- विभक्त ।
'सोदक्रामत् सान्तरिक्षे
चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत्'
अ. ८.१० (२) १.

विकिरिः- (१) विकिर इषु का पर्याय है -उवट
(२) विविध किरि अर्थात् घात आदि उपद्रव- महीधर ।
(३) सूकर के जैसा महीधर सोने वाला या विशिष्ट किरि की निष्ठा करने वाला-दया. ।

विकिरिद्रः(१) विकिरीन् इषून् द्रावयति इति विकिरिद्रः-उवट
विकिरि अर्थात् शरों की बौछारों से शत्रुओं को मार भगाने वाला (२) रुद्र ।
'विकिरिद्र विलोहित'
वाज.सं. १६.५२
(३) विविधं किरिं घाताद्युपद्रवं द्रायति नाशयति-महीधर
(४) विशेषेण किरिः सूकर इव द्रायति शेते विशिष्टं किरिं द्राति निन्दति वा इति विकिरिद्रः -दया ।

विक्लिन्दु- छाजन नामक रोग जो गौ के पैर के स्थान से उत्पन्न होता है ।
'विक्लिन्दुर्नाम विन्दति'
अ. १२.४.५

विक्षिणत्क - गुप्त रूप से सब तरफ शत्रुदेश में व्याप जाने वाली ।
'नमो विक्षिणत्केभ्यः'
वाज.सं. १६.४६; श.ब्रा. ९.१.१.२३

विक्षिपः- (१) शत्रुओं को तितर बितर करने वाला राजा, (२) मरुत ।
'सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा'
वाज.सं. १७.८६; ३९.७

विक्षिप्- विविध दिशाओं में शत्रुओं पर शस्त्र फेंकने वाला ।

विकृत्यमान - विविध रूपों से अंग अंग काटी जाती हुई ।
'वैरं विकृत्यमाना'
अ. १२.५.२८

विकृति- वेद संहिता की आठ प्रकार की विकृतियाँ है-जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और धन ।

विकृन्त- जंगल आदि काटने वाला ।
'विकृन्तानां पतये नमः'

वाज.सं. १६.२१

विकेशः - बालों को विकृत का देने वाला ।
'यस्ते मदोऽवकेशो विकेशः '
अ. ६.३०.२

विकेशी- (१) क्लेश हटाने वाली ।
'यामाहुस्तारकैषा विकेशी '
अ. ५.१७.४; कौ.सू. १२६.९
(२) एक दूसरे के केशों को नोचने वाली ।
'अधा मिथो विकेश्यः'
अ. १.२८.४

विक्लेदीयसी- (१) विदेष रूप से पसीजने वाली, (२) जल छोड़ने वाली गण्डमाला ।
'लवणाद् विक्लेदीयसीः '
७.७६.१

विखनस् - विशेषेण खन्यते यः सः विखनाः । (जो विशेष रूप से खना जाय) ।
अर्थ - कुण्ड, अग्नि स्थान, ब्रह्म ।

विखाद - विविध प्रकार से मनुष्यों का नाश करने वाला संग्राम ।
'तं विखादे सस्रि श्रुतं नरम् '
ऋ. १०.३८.४

विगद- (१) संग्राम ।
'प्रतीत्या शचून् विगदेषु वृश्च '
ऋ. १०.११६.५
(२) विषय ज्वर ।
'तक्मन् व्याल विगद् '
अ. ५.२२.६

विग्र- (१) विविधं गृणाति अर्थात् इति देवराजः । (विविध अर्थों को जो बताता है वह विग्र है) ।
विग्रहइति मेधावि नाम -नि. ३.१४
(२) विशेष रूप से गले से नीचे उतारने योग्य खूब चबाया खाद्यान्न (३) विद्वान् पुरुष ।
'ता विग्रं धेथे जठरं पृणध्यै '
ऋ. ६.६७.७
अंग्रेजी के vicar शब्द की 'विग्र' से समानार्थता विचारणीय है ।

विगाम् (१) विविध प्रशंसायुक्त-दया. (२) विशेष गमन या उपाय -ज.दे. श.
(३) पिता, पुत्र और पौत्र तीन रूपों में ब्रह्मचारी का गृहस्थ होने पर व्यापना विगाम है ।
'यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभिः उरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे '
ऋ. १.१५५.४
जो ब्रह्मचारी पृथिवी अर्थात् स्त्री से उत्पन्न सब सन्तानों को उत्तम दीर्घ जीवन धारण कराने के लिए (जीवसे) पिता, पुत्र और पौत्र तीनों रूपों में व्यापता है ।
अथवा,
जो विविध गमन या उपायों से (विगामभिः) अति प्रशंसित जीवन की रक्षा और धारण करने के लिए (जीवसे) पृथिवी के समस्त पदार्थों और जीवों और प्राणियों को अति उत्तम रीति से क्रमण कर जाता है ।

विगाह - (१) युद्ध में पर सैन्यों को मन्थन करने वाला, (२) सर्व व्यापक -अग्नि या परमेश्वर ।
'विगाहं तूर्णि तद्विषीभिरावृतम् '
ऋ. ३.३.५; का.सं. ७.१२; आप.श्रौ.सू. ५.१०.४; मा.श्रौ.सू. १.५.२.१४.

विग्रीव- (१) ग्रीवा रहित
'विग्रीवां छायया त्वम् '
अ. ४.१८.४
(२) झुकी गर्दनवाला
'विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु '
ऋ. ७.१०७.२४; अ. ८.४.२४

विघनिना- विशेष रूप से आघात करने वाले-इन्द्राग्नी, वायु और विद्युत् या सूर्य और विद्युत् ।
'उग्रा विघनिना मृधः
इन्द्राग्नी हवामहे '
ऋ. ६.६०.५; साम. २.२०४; वाज.सं. ३३.६१, का.सं. ४.१५.

विघ्नानः- नाश करता हुआ । विघ्न डालता हुआ ।
'मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् '
अ. ६.३२.३; अ. ८.८.२१.

विच् - धा. । विवेक करना ।
'कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् '
ऋ. १०.१०.६; अ. १८.१.७

विचक्रमे - (१) विविध प्रकार से क्रमण करता है । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग है ।
'इदं विष्णुर्वि चक्रमे '
ऋ. १.२२.१७; अ. ७.२६.४; साम. १.२२२; २.१०१९; वाज.सं. ५.१५; तै.सं. १.२.१३.१; मै.सं.

१.२.९: १८.१७; १.८.९: १३०.१२; ४.१.१२: १६.४; ४.१२.१: १७९.३; का.सं. २.१०; ऐ.ब्रा. १.१७.७; २५.९

आदित्य (विष्णुः) इस विभागों में विभक्त सृष्टि में (इदम्) विविध प्रकार से भ्रमण करता है (विचक्रमे) ।

(२) विविध रूप से रचता है ।

'इदं विष्णुर्वि चक्रमे
त्रेधा नि दधे पदम्
समूढमस्य पांसुरे'

इस प्रत्यक्ष एवं जानने योग्य जगत् को परमेश्वर विविध प्रकार से रचता है और सबको तीन प्रकार से स्थिर करता है। इस जगत् के भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी (अस्य समूढम्) वह कारण परमाणुओं जो पूर्ण आकाश में (पांसुरे) स्थापित करता है ।

विचक्ष्- (१) विशेष रूप से देखना या दिखलाना । (२) नेत्रहीन, (३) सत्य दर्शन ।

'तस्मा अक्षी नासत्या विचक्षे'

ऋ. १.११६.१६

उस नेत्रहीन को (विचक्षे) ज्ञान नेत्र प्रदान करे (अक्षी)- ज.दे.श. ।

विचक्षण- दूरदर्शी ।

'प्र ते बभ्रू विचक्षण
शंसामि गोषणो नपात्'

ऋ. ४.३२.२२

हे दूरदर्शी तथा वेद वाणी को भजने वाला राजन् (वि चक्षण गोषणः) मैं तेरी विद्या धर्म को धारण करने वाली तथा अविद्या तथा अधर्म को हरने वाली अध्यापिका तथा उपदेशिका (ते बभ्रू) प्रशंसा करता हूँ (प्रशंसामि) ।

विचक्षते - वि + चक्ष = अनुग्रह करना । अनुग्रह करते हैं ।

'त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते'

ऋ. १.१६४.४४; अ. ९.१०.२६; नि. १२.२७.

तीन केश वाले देवता-अग्नि, वायु और आदित्य ऋतु ऋतु के अनुकूल लोक पर अनुग्रह करते हैं ।

विचयिष्ठः- खूब अधिक दूर करने वाला-इन्द्र, परमेश्वर ।

'पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहः'

ऋ. ४.२०.९; का.सं. २१.१३

विचरन्ति- विचरण करते हैं ।

विचर्षणिः- (१) विशेष रूप से सब का दृष्टा ।

'शतक्रतो विचर्षणे'

ऋ. ८.९८.१०; अ. २०.१०८.१

(२) वि + कृष् + अनि = विचर्षणिः । विलेखन स्वभावः कृषकः ।

(३) विशेष रूप से सबको आकृष्ट करने वाला- सूर्य ।

'हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिः'

ऋ. १.३५.९; वाज.सं. ३४.२५

(४) सर्वद्रष्टा इन्द्र या परमात्मा ।

'जेता शत्रून् विचर्षणिः'

ऋ. २.४१.१२; अ. २०.२०.७; ५७.१०; तै.ब्रा. २.५.३.२.

इन्द्र शत्रुओं का विजेता तथा सर्वद्रष्टा है ।

विचष्टे- (१) अनुग्राह्यतया विपश्यति (अनुभूत से चारों ओर देखता है) ।

'स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे'

ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. १०.४६.

(२) कहता है या कहा है ।

'तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः'

ऋ. १०.३४.१३

ऐसा ही स्वामी सविता ने मुझ से कहा है ।

विच्छन्दस् - वेदो में छन्द, अतिच्छन्द और विच्छन्द होते हैं । प्रत्येक सात है- कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, सुकृति, अति कृति, और और उत्कृति ।

विच्छन्दा- (१) बिना छन्दप की, स्थावर, (२) त्यागी ।

'विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः'

वाज.सं. २३.३४; मै.सं. ३.१२.२१: १६७.६

विचाकशत् - (१) विवेक पूर्ण देखता हुआ ।

'अयमेमि विचाकशत्'

ऋ. १०.८६.१९; अ. २०.१२६.१९,

(२) दीप्तिमान् ।

'विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति'

ऋ. १.२४.१०; तै.आ. १.११.२

दीप्तिमान् चन्द्रमा रात में आकाश में आते हैं ।

विचिरिणी - (१) पृथिवी, (२) विचार करने वाली स्त्री, (३) राजसभा ।

'स्तोमासत्वा विचारिणि'
ऋ. ५.८४.२

चतयत् - (१) प्रदीप्त करता हुआ -सा. (२) विशेष रूप से चिन्तन करता हुआ-दया.
'जुहुरे वि चितयन्तः'
ऋ. ५.१९.२; नि. ४.१९
हे अग्नि, जो तुझे प्रदीप्त करते हुए (विचितयन्तः) तुझे पुकारते या आह्वान् करते हैं। -सा.
जो मनुष्य अग्रणी परमेश्वर का विशेष रूप से चिन्तन करते हुए (विचितयन्तः) आत्म त्याग करते हैं (जुहुरे) -दया.
(३) विशेष रूप से चेतना करते हुए-जानते हुए।

विचित्तः- विशेष रूप से संज्ञानवान्
'विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन्'
अ. १३.२.३१.

विचिन्वत्कः- विविध उपायों से शत्रुओं का विनाश करने में कुशल।
'नमो विचिन्वत्केभ्यः'
वाज.सं. १६.४६; तै.सं. ४.५.९.२; मै.सं. २.९.९: १२७.४; का.सं. १७.१६; श.ब्रा. ९.१.१२३.

विचिन्वन् - विवेचना करता हुआ।
'विचिन्वन् दासमार्यम्'
ऋ. १०.८६.१९; अ. २०.१२६.१९

विचिनोति- ढूंढता है।
'कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५; नि. ५.२२.
जैसे परधनहारी, धूर्त या जुआरी (श्वघ्नी) जुए में (देवने) पूर्व पुरुषों का अर्जित धन (कृतम्) ढूंढता है (विचिनोति)।

विच्युत- विशेष रूप से चलाया हुआ।
'रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः'
ऋ. २.१७.३

विचृत्- (१) मूल नक्षत्र -सा.
(२) विशेष रूप से परस्पर मिले दो बालक।
'ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य'
अ. ६.११०.२
(३) विमुक्त, बन्धनमुक्त।
'कृण्वन् संचृतं विचृतमभिष्टये'
ऋ. ९.८४.२
(४) बन्धनादि से मुक्त।
'विचृताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७

विचृत्त- (१) गठा हुआ।
'पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः'
ऋ. २.२७.१६

विचृतौ- (१) विशेष रूप से सम्बद्ध प्राण और अपान वायु, (२) मूल नक्षत्र-सा.।
'उदगातां भगवती'
विचृतौ नाम तारके'
अ. २.८.१; ६.१२१.३
(३) विविध रोगों के विनाशक। प्राण और अपान वायु, (४) देवयान और पितृयान नामक दुःख नाशक पन्थ, (५) अविद्या और विद्या।

विचेतत् - (१) विशेष दृष्टि या ज्ञान वाला। (२) अच्छे या विशिष्ट ज्ञान से युक्त।
पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः'
ऋ. १.१६४.१६; अ. ९.९.१५; तै.आ. १.११.४; नि. ५.१; १४.२०
जो अच्छे ज्ञान वाला नहीं है वह अन्धा है।

विचेताः(१) ज्ञान चेतन से रहित जड़ अग्नि, (२) विशेष चेतनायुक्त (३) विविध ज्ञानों से युक्त।
'श्रियं वसानो अमृतो विचेताः'
ऋ. २.१०.१
(४) विविध ज्ञानों से युक्त अग्नि परमेश्वर।
'ऋतावानं विचेतसम्'
ऋ. ४.७.३

विज्- (१) भय देना।
(२) सं। इतस्ततः चलन पक्षी इधर उधर उड़ने वाली चिड़ियां
(३)भय से उद्विग्न प्राणी।
'श्वघ्नीव कत्नुर्विज आमिनाना'
ऋ. १.९२.१०

विज- उद्वेग जनक, सिंह।
'सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति'
ऋ. २.१२.५; अ. २०.३४.५

विजयुषा, विजयुष् - विजयुषौ। द्वि.बु.,वि.। (१) अश्विना का विशेषण। (२) विजयी होते हुए-स्वा. दया.। (३) सायण ने 'विजयुष' शब्द मानकर रथ के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है।

'वि जयुषा यमथुः सान्वद्रेः'
ऋ. १.११७.१६
विजयी होते हुए पहाड़ के शिखर पर जाओ-दया .
रथ से मेघ की ऊंचाई या वृष्टि करने की इच्छा से तुम दोनों अश्विनीकुमार गए - सा.

विजर्जरा- रोगादि कारणों से विशेष जर्जर स्त्री ।
'वत्सराय विजर्जराम्'
वाज.सं. ३०.१५; तै.ब्रा. ३.४.१.११

विजर्भृतः- विहियेते (विहार करते हैं या ऊपर उठते हैं । वि + हृ के यङ् लुगन्त कर्मवावाच्य में लट् प्र. पु.द्वि.व का रूप । सायण ने इसे कर्तृवाच्य में माना है और अर्थ किया है-
'उच्चै मुहुः मुहुः विहारं कुरुतः'

विजञ्जपः- जय करने वाला, ऊं' का जप करने वाला-दया. ।

विज्य- 'ज्या' अर्थात् डोरी से रहित धनुष ।
'नित्यं धनुः कपर्दिनः'
वाज.सं. १६.१०; तै.सं. ४.५.१.४; मै.सं. २.९.२: १२२.३; का.सं. १७.११.

विजातः - नाना शक्तियों से प्रादुर्भूत
महान् मही अस्कभायद् वि जातः'
अ. ४.१.४

विजानि - भार्या से रहित राष्ट्र सभा के शासन से रहित ।
'विजानिर्यत्र ब्राह्मणः'
अ. ५.१७.१८

विजामन्- (१) पेट, (२) नाभि के नीचे पेडू । अंग्रेजी का abdomen शब्द इसी विजामन् का भ्रष्ट रूप है ।
'विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः'
अ. ७.७६.२
(३) विविध पीड़ा का उत्पत्ति स्थान रूप पेट
'यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवत्'
ऋ. ७.५०.२

विजामाता - योहि गुणैः हीनतया समाप्ता जामातृभावो भवति स बहुधनदानेन कन्यापितृन् आराध्य आत्मानं रोचयति ।
अयोग्य निर्गुण जामाता जो श्वसुर को द्रव्य देकर विवाह करता है-क्रीतापति ।
'अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां
विजामातुरुत वा घा स्यालात्'
ऋ. १.१०९.२; तै.सं. १.१.१४.१; का.सं. ४.१५; नि. ६.९
हे इन्द्राग्नी, या अध्यापक और उपदेशक, मैंने सुना है, तुम क्रीतापति और स्याल से भी जो अपनी बहन को दान देता है तुम बढ़कर दान देने वाले हो ।

विजामिः - विपरीत बन्धु, शत्रु ।
'स नो अजामीरुत वा विजामीन्'
ऋ. १०.६९.१२

विजावती- नाना प्रकार के प्राणियों को जन्म देने वाली-शालाग्रह ।
'विजावति प्रजावति
वि ते पाशांश्चतामसि'
अ. ९.३.१३,१४

विजावा - विविध सन्तानों और ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध ।
'स्यान्नः सुनुस्तन्नयो विजावा'
ऋ. ३.१.२३; साम. १.७६; वाज.सं. १२.५१; तै.सं. ४.२.४.३; मै.सं. २.७.११: ९०.२; का.सं. १६.११; श.ब्रा. ७.१.१.२७; आप.मं.पा. १.७.२

विज्ञान- विशिष्ट ज्ञान ।
'विज्ञानं वासोऽहरुष्णीहं'
अ. १५.२.५

विजृम्भ - विशेष रूप से खुलना ।
'सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भमते'
ऋ. १०.८६.१६; अ. २०.१२६.१६

विजृम्भमाणः- जंभाई लेता हुआ ।
'विजृम्भमाणाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३; १६०.१६

विजेन्य- विशेष विजय कराने वाला या दिलाने वाला ।
'यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यम्
दिवोदासाय महि चेति वामवः'
ऋ. १.११९.४
हे अश्विद्वय, या वीर्यवान् स्त्रीपुरुषो, आप दोनों विशेष जय दिलाने वाले प्रयत्न करें (विजेन्यान् यासिष्टम्) । आप लोगों की रक्षा दिवोदास या ज्ञान प्रकाश देने वाले पुरुष के लिए बड़ी भारी समझी जाती हैं ।

विजेष- विजय ।

विजेषकृत् – विजय कर्त्ता ।
'विजेहषकृदिन्द्र इवानवब्रवः'
ऋ. १०.८४.५; अ. ४.३१.५; नि. ६.२९
हे मन्यु, तू परमात्मा की तरह विजय कर्ता है ।

विजेहमानः– विविध प्रकार से प्रयोग करता हुआ
'विजेमानः परशुर्न जिह्वाम्'
ऋ. ६.३.४.

विजोषाः – विशेष प्रेम युक्त ।
'याभिर्बभ्रुं विजोषसम्'
ऋ. ८.२२.१०

विट् द्रविणम् – वैश्यरूप धन ।
'वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम्'
वाज.सं. १०.१२

विततम् – विशेष रूप से तत–फैला हुआ । विस्तीर्ण (रश्मिजाल) ।
'मध्या कर्तोर्विततं सं जभार'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.१; तै.ब्रा. २.८.७.१; नि. ४.११
किए जाते हुए कर्मों के मध्य में ही सूर्य ने अपने विस्तीर्ण रश्मिजाल को खींच लिया ।

विततता – वि + तन् + क्त + टाप् = विततता । तानी हुई । चढ़ाई हुई ।

विततध्वर– जिसका यज्ञ सदा चलता रहता है ।
'विततध्वर आहुतयज्ञक्रतुर्य उपहरति'
अ. ९.६.२७

विततता किरणौ – पीस पीस कर ।
फेंकने वाले चक्की के दो पाटों के समान विस्तृत आकाश और पृथिवी ।
'विततौ किरणौ द्वौ'
अ., २०.१३३.१; गो.ब्रा. २.६,.१३; आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१८; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.१; वै.सू. ३२.२१.

वितन्तसाय्यः– विविध प्रकार के शत्रुओं का नाशकारी और राष्ट्र सम्पत्तियाँ
'वितन्तसाय्यो अभवत् समत्सु'
ऋ. ६.१८.६
(२) विशेष रूप से एकाग्रचित्त से ध्यान करने योग्य ।
'यज्ञो वितन्तसाय्यः'
ऋ. ८.६.२२; ६८.११
(३) सब का विजय करने वाला – इन्द्र ।
'भरे वितन्तसाय्य'
ऋ. ६.४५.१३
(४) अति विस्तृत महान् ।

वितर्वोति– फैलाता है ।
'अपो वृणाना वितनोति मायिनी'
ऋ. ५.४८.१
मायायिनी मध्यमावाक् (विद्युत्) जलों को मेघ में ढकती हुई फैलाती है ।

वितरम् – (१) विकीर्णतरम्, विस्तीर्णदपि विस्तीर्णतरम्–(विस्तीर्ण से भी विस्तीर्ण), विविध प्रकार से–सा. (३) अधिक विस्तृत होकर, –ज.दे.श. ।
'व्यु प्रथते वितरं वरीयः'
ऋ. १.१२४.५; १०.११०.४; अ. ५.१२.४; वाज.सं. २९.२९; मै.सं. ४.१३.३: २०२.२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.९
कुश वेदी पर विविध प्रकार से विस्तीर्ण कर (वितरम्) बिछाया जाता है (विप्रथते) । पूर्वाह्न समय में कुश का काटना श्रेयस्कर होता है (वरीयः) ।
अव्युत्तम या प्रभूत यज्ञाग्नि (वरीयः) अधिक विस्तृत होकर (वितरम्) सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त होता है (विप्रथते)
(४) अच्छी प्रकार से, **In a better way (5)** संज्ञा अर्थ में विशेष रूप से वारक ब्रह्मज्ञान ।
'सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व'
ऋ. ४.१८.११; ८.१००.१२; तै.सं. ३.२.११.३; मै.सं. ४.१२.५: १९२.७
'अच्छी तरह से' के अर्थ में –
'भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ'
ऋ. १.१२३.११
ऐ उषा, तू मंगल देने वाली होकर अन्धकार को खूब दूर कर ।
अथवा,
हे कन्या, तू मंगल आचार वाली होकर खूब अपने उत्तम गुणों को प्रकट कर ।

वितरित्रता– विविधतया अतिशयेन तरितुम् इच्छन्तौ (विविध प्रकार ते वितरण करने की इच्छा करने वाले–स्त्री पुरुष) ।
'समानमर्थं वितरित्रता मिथः'
ऋ. १.१४४.४

परस्पर समान अर्थ या कमनीय पदार्थ को परस्पर वितरण करते हैं ।

वितर्तुर – वि + गृ + अच् (उत्व) = वितर्त । अर्थ– विविध नौका आदि से चलने लायक ।
'अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे
श्रद्धेकमिन्द्र चरतो वितर्तुरम्'
ऋ. १.१०२.२; तै.ब्रा. २.८.९.२
सत्यज्ञान को धारण करने के लिए (श्रद्धे) सूर्य चन्द्रमा दोनों प्रकाश मान होकर नाना प्रकार से आते जाते हुए (वितर्तुरम्) गति कर रहे हैं । (चरतः) ।

वितर्तुराणः– विविध प्रकार से विनाश करता हुआ ।
'वितर्तुराणो अपरेभिरेति'
ऋ. ६.४७.१७

वितस्ता– नञ् + विदग्धा = वितस्ता (नञ् का लोप) । विदग्धा शब्द का तस्ता शब्द से विपर्यय । अथवा 'विवृद्धा ' से 'वितस्ता' हुआ ।
वितस्ता उस नदी का नाम है जो अविदग्धा अर्थात् वैदेहक नामक अग्नि से और नदियों के समान विदग्ध नहीं हुई ।
अथवा जो विस्तीर्ण है या जिसका तट अत्यन्त विस्तीर्ण है । व्यास नदी का वैदिक नाम ।
'असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाः
आर्जकीये श्रृणुह्या सुषोमया'
ऋ. १०.७५.५; तै.आ. १०.१.७३; नि. ९.२६
वितस्ता एवं असिक्वी के साथ मरुद्वृधा तथा सुषोमा के साथ आर्जीकीया नदी सुनो ।
(२) विदग्धा, विवृद्धा, महाकूला –नि. ।
शरीर की एक नाड़ी जो देह में ताप तथा दाह धारण करती है और जो बहुत व्यापक हो त्वचा भर में व्याप्त है ।

वित्त– (१) विद् (प्राप्त्यर्थक) + क्त = वित्त । (न.) धन ।
'वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः'
ऋ. १०.३४.१३
हे जुआरी, जुआ छोड़ कर कृषि से प्राप्त धन को बहुत समझता हुआ मग्न रहा ।
'वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे'
वाज.सं. १८.१४; तै.सं. ४.७.५.२; मै.सं. २.११.५: १४२.९; का.सं. १८.१०.

वित्तधः – वित्त धारण करने वाला धनाढ्य पुरुष ।
'श्रेयसे वित्तधम्'
वाज.सं. ३०.११; तै.ब्रा. ३.४.१.९

वित्तनामिः – (१) नववधू को प्राप्त करने वाला पुरुष । (२) धन को अपनी स्त्री के समान पालने वाला धनाढ्य पुरुष ।

वित्तम् – जानीतम् (आप सब जानें समझें) विद् (ज्ञानार्थक) के लोट् म. पु. ब.व. में ।

वित्पति– वित्तपति, राजा ।
'यन्त्यवाताय वित्पति'
अ. २०.१३६.३

वित्वक्षणः– (१) विद्युत के जैसा विविध प्रकार से शत्रुओं को छेदन भेदन करने वाला, (२) वि + त्वक् + सनः = वित्वक्षणः । अर्थ– विविध या विशेष वस्त्रादि आवरणों को पहनने वाला, (३) विविध विद्याओं का रहस्य खोल कर बतलाने वाला ।
'वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजः'
ऋ. ५.३४.६

वितारीत् – वितीर्ण करे ।

वित्तायनी – वित्त, धन, ऐश्वर्य आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाली–पृथ्वी ।
'वित्तायनी मेऽसि'
वाज.सं. ५.९; तै.सं. १.२.१२.१; ६.२.७.२; मै.सं. १.२.८: १७.८; ३.८.५: ९९.१५; का.सं. २.९.; श.ब्रा. ३.५.१.२८; आप.श्रौ.सू. ७.३.१४; मा.श्रौ.सू. १.७.३.१५

विताढि– विताड्ढि । अर्थ – विशेष प्रकार से ताड़ित कर ।
'वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व'
ऋ. १०.१८०.२; अ. ७.८४.३; साम. २.१२२३; वाज.सं. १८.७१; तै.सं. १.६.१२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८३.१५; का.सं. ८.१६.
हे इन्द्र, शत्रुओं को विशेष प्रकार से ताड़ित कर (विताढि) तथा हिंसक एवं युद्ध करने वालों को (मृधः) विशेष रूप से तिरस्कृत कर (वि नुदस्व) ।

वितिष्ठते – विविध रूपों से स्थित है ।

वित्त– आगे होने वाली प्राप्ति ।
'वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे'

वाज.सं. १८.१४; तै.सं. ४.७.५.२; मै.सं. २.११.५: १४२.९; का.सं. १८.१०

वितृतीय- दो दिनों का अन्तर देकर आने वाला ज्वर ।

'तृतीयकं वितृतीयम्'

अ. ५.२२.१३

वित्से- वेत्सि (जानता है) ।

विथुर- (१) व्यथा वाला, व्यथित, पीड़ित ।

'वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः'

अ. १६.६.११

(२) पीड़ा देने वाला ।

'विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो'

ऋ. ६.४६.६; अ. २०.८०.२

(३) शिथिल जल ।

'यच्च्यावयथ विथुरेव संहितम्'

ऋ. १.१६८.६

'करन् सुषाहा विथुरं न शवः'

ऋ. १.१८६.२; मै.सं. ४.१४.११: २३२.४; तै.ब्रा. २.८.६.३.

'त्वमेषां विथुरा शवांसि'

ऋ. ६.२५.३

'अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा'

ऋ. ८.९६.२; मै.सं. ३.८.३: ९५.७; का.सं. ९.१९

विथुरा- शीत ज्वर पीड़ित का या -दया. ।

'प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते
भूमिर्यामेषु यद्ध युज्जते शुभे'

ऋ. १.८७.३; तै.सं. ४.३.१३.७; मै.सं. ४.११.२: १६८.४

विथुरौ- जीव के व्यथा दायी आत्मा और मन या प्राण ।

'उदस्य श्यावौ विथुरौ'

अ. ७.९५.१.

विद्- ज्ञान । विद् + क्विप् =

विद् शक्ती वा यत् ते चकृमा विदा वा ।

ऋ. १.३१.१८

हे अग्नि, हम जो कुछ भी तेरे निमित्त शक्ति से और ज्ञान से करें.....।

(२) विद्वान् ।

दृढा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे'

ऋ. १.१२७.४

जैसे विद्वान् पुरुषों को लोग आदर पूर्वक अन्नादि देते हैं उसी प्रकार अग्नि या राजा को दृढ़ बलवान् धनैश्वर्य दें ।

(३) वर्तमान ।

'राय आ कुहचिद्विदे'

ऋ. ७.३२.१९; अ. २०.८२.२; साम. २.११४७

(४) प्राप्ति, पाना ।

विदत् - अविदत् । जानता या प्राप्त करता है । लट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग ।

'यत् सीमुपह्वरे विदत्'

ऋ. ८.६९.६; अ. २०.२२.६; ९२.३; साम. २.८४.१; तै.ब्रा. २.७.१३.४.

जिसे वह सदा (सीम्) समीप में (उपह्वरे) प्राप्त करता है (विदत्) ।

विदत्र- विद् + अत्रन् = विदत्र । विद् धातु जानना और प्राप्त करना अर्थों में आया है । अर्थ - (१) ज्ञान, (२) धन ।

'अग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः'

ऋ. ७.६.२३

वह आदित्य या अग्रणी परमेश्वर हे मृतात्मा, तुझे सुन्दर ज्ञान या धन वाले देवों के पास या देवलोक में पहुंचावें ।

विदत्रिय- (१) धनवाला, (२) ज्ञानवाला ।

विदथ- जीवन का ज्ञानमय अनुभव ।

'अथ जिर्विर्विदथमा वदासि'

अ. ८.१.६; १४.१.२१.

विदथ्य- (१) ज्ञान परिषद् और संग्राम में कुशल ।

'यः सभेयो विदथ्यः'

अ. २०.१२८.१

(२) ज्ञान, सत्संग, यज्ञ या युद्ध में कुशल

'सादन्यं विदथ्यं सभेयं'
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै'

ऋ. १.९१.२०, वाज.सं. ३४.२१; मै.सं. ४.१४.१: २१४.३

(३) ज्ञान, सत्संग, यज्ञ आदि के योग्य ज्ञाता,

(४) ज्ञान और संग्राम कार्य में कुशल ।

'इमं महे विदथ्याय शूषम्'

ऋ. ३.५४.१; ऐ.ब्रा. १.२८.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१७.७

(५) यज्ञ, संग्राम, यश और श्री के लाभ के योग्य ।

'यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट्'

ऋ. ८.२१.२

विदथा- (१) ज्ञानपूर्वक, (२) बुद्धि के समक्ष ।

'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति'

ऋ. १.१६४.२१; अ. ९.९.२२; नि. ३.१२.

जिस मण्डल में या जिस देह में सूर्य की रश्मियाँ या इन्द्रियाँ जल का भाग या विषय रस को लेकर सदा सर्वत्र तपती रहती है या आत्मा को समर्पित करती है ।

विदथ्या- ज्ञान या धन देने में श्रेष्ट ।

'सभावती विदथ्येव सं वाक्'

ऋ. १.१६७.३

(२) संग्राम में हुई

विदद्वसुः- (१) सम्पत्तिवान् ।

'विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्'

ऋ. ३.३४.१; अ. २०.११.१; नि. ४.१७

सम्पत्तिवान् एवं शत्रुओं को हनन करने वाला इन्द्र या राजा (२) समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला प्रभु । (३) लब्धधन (जिसे धन मिला हो या जिसने धन पाया हो) (४) प्राप्त धन । (५) इन्द्र का विशेषण । परमात्मा का ही सब धन है ।

'राधस्तन्नो विदद्वसो
उभयाहस्त्या भर'

ऋ. ५.३९.१; साम. १.३४५; २.५२२; पंच.ब्रा. १४.६.४; नि. ४.४.

हे प्राप्त धन इन्द्र, वह धन तू हमें दोनों हाथों से लाकर दे ।

(६) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाला।

'तरोभिर्वो विदद्वसुम्'

ऋ. ८.६६.१; साम. १.२३७; २३७; गो.ब्रा. २.४.३; पंच.ब्रा. ११.४.५; १५१०४; ऐ.आ. ५.२.४.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.१६.२; ७४.४.

विदधाति- करोति (करता है ।

विदधति - दान करता है ।

बिदलकारी - विरुद्धदल खड़ाकर देने वाली मांस पिण्ड पर गिद्धों के समान आपस में फूट डाल देने वाली नीति ।

'पिशाचेभ्यो बिदलकारीम्'

वाज.सं. ३०.८

विदस्येत् - घट जाय । दे. आसम्राणासः ।

'नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्'

ऋ. ६.३७.३; नि. १०.३

नहीं तो कहीं इन्द्र का (वायोः) सोमरस (अमृतम्) न घट जाय (विदस्तेत्) ।

विद् मन् - जानना, ज्ञान प्राप्त करना ।

'कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्'

ऋ. १.१६४.६

विद्मनापस् - (१) अपने कर्म को जानने वाली-अमावस्या का विशेषण, (२) कुहू, (३) गम्भीर पत्नी ।

'कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसम्
अस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि'

अ. ७.४७.१

इस गृहस्थ यज्ञ में मैं साधुकर्मकारिणी तथा अपने कर्तव्यों को जानने वाली आदरपूर्वक बुलाने के योग्य गृहपत्नी को स्वीकार करता हूँ या अमावास्या को बुलाता हूँ ।

(४) जिसका कर्म विज्ञान से युक्त है ।

तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसः'

ऋ. १.१११.१; ऐ.ब्रा. ४.३२.५; कौ.ब्रा. २०४.२२.२

(५) समस्त उचित कर्त्तव्यों को जानने वाली राजा की कुहू नामक अन्तरंग सभा ।

तव व्रते कवयो विद्मनापसः'

ऋ. १.३१.१; वाज.सं. ३४.१२

विद्यत् - (१) विशेषरूप से विद्यमान, (२) विविध खण्डन मण्डन करने वाला, (३) विविध शस्त्र अस्त्र से खण्डन करने वाला ।

'विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम्'

वाज.सं. २६.४

विदयमानः- (१) विविध प्रकार से हनन करने वाला या करता हुआ, इन्द्र या राजा का विशेषण । दय धातु हनन करना अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है ।

'विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्'

ऋ. ३.३४.१; २०.११.१; नि. ४.१७

सम्पत्तिमान् तथा शत्रुओं का हनन करने वाला इन्द्र या राजा ।

विद्रध- (१) गिल्टी आदि रोग

विद्रधस्य बलासस्य,

अ. ६.१२७.१

(२) गिल्टियों का सूजन ।

'विसल्यस्य विद्रधस्य'
अ. ९.८.२०
(३) वि + दृभ् (भय, हिंसा) + क = विद्ध । पृषोदरादि शब्दों के समान् ऋ कार् । अर्थ – छेदा हुआ, विद्ध
कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके
'बधू यामेषु शोभते'
ऋ. ४.३२.२३; नि. ४.१५.
हे इन्द्र, दो पीली घोड़ियां यज्ञों में विद्ध पादु काख्य स्थान में अधिष्ठित नई कन्याओं की तरह सोहती है ।
अथवा,
यह अध्यापिका तथा उपदेशिका (बधू) गढ़ी हुई नवीन पादुकाओं पर (विद्रधे नव द्रुपदे) छोटी लड़कियों की तरह (अर्भके कनीनिके इव) यम नियमों पर आरूढ़ हो (यामेषु) शोभती हैं । (४) विकुषिताधोभागः (जिसका अधोभाग विकुषित हो) ।

विद्रव– अलग हो ।

विद्रवन्ति– पृथक् पृथक् होकर दौड़ते या भागते हैं ।
'यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति'
ऋ. ६.७५.११
जिस संग्राम में मनुष्य एक साथ हो या पृथक् पृथक् दौड़ते या भागते हैं (संद्रवन्ति च विद्रवन्तिच) ।

विदा – बुद्धि ।
'शरीरमस्य सं विदाम्'
अ. ५.३०.१३

विदानः– (१) ज्ञानवान्, विद्वान् ।
'न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः'
ऋ. १.१६५.९; वाज.सं. ३३.७९; मै.सं. ४.११.३: १६९.७; का.सं. ९.१८.
(२) ठीक ठीक जानता हुआ ।
'विदानो अह्नवाय्यम्'
ऋ. ८.४५.२७

विदाने – द्वि.व. । (१) नाना विद्याओं को जानने वाले स्त्री पुरुष, (२) रात दिन
'उषासानक्ता पुरुधा विदाने'
ऋ. १.१२२.२

विदाय्यः– ज्ञान करने वाला
यन्ता नकिर्विदाय्यः'
ऋ. १०.२२.५

विद्मा, विद्मन् – विद् + मनिन् = विद्मन् । अर्थ – ज्ञान का बल ।
'अग्निर्हि विद्मना निदः
देवो मर्तमुरुष्यति'
ऋ. ६.१४.५.

विद्या– (१) विद् (जानना या प्राप्त करना) + यत् + टाप् = विद्या । अर्थ – (१) ज्ञान देने वाली बात या आत्म, विज्ञान ।
'ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्'
ऋ. १०.७१.११; नि. १.८
एक सर्वज्ञ ब्रह्मा (ब्रह्मा) यज्ञ में तरह तरह के कर्तव्य कर्म के सम्बन्धों में (जाते जाते) ज्ञान देने वाली बात या आत्म विज्ञान कहता है (विद्याम् वदति) ।
(२) पारलौकिक ज्ञान देने वाली विद्या । लौकिक ज्ञान जिसे लोक संग्रह किया जाता है तथा जीविका पार्जन चलता है अविद्या है और पारलौकिक ज्ञान विद्या है ।
(३) शास्त्राभ्यास, (४) सम्यक् तत्व दर्शन ।
'य उ विद्यायां रताः'
वाज.सं. ४०.१२; ईश.उप. ९

विद्वान् वृत्रः– (१) अन्न प्राप्त करने वाला मेघ, (२) विद्वान् तथा विघ्नकारी शत्रु ।
'यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्
प्र तं जनित्री विदुष उवाच'
ऋ. २.३०.२

विद्वान् – विद् (जानता) + क्वसु = विद्वसु । प्रथमा एक वचन का रूप है – विद्वान् ।
अर्थ–ज्ञाता ।
'तमद्य होतरिषितो यजीयान्
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्'
ऋ. १०.११०.९; अ. ५.१२.९; वाज.सं. २९.३४; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१४.

विद्धि– विद् (जानना) के लोट् म.पु. ए.व.का रूप । अर्थ है– जान, समझ, ।
'सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि.'
ऋ. १०.२७.१४;
अतः तू उसके उपकारों को जान ।

विदुक्षः- विदूदुषः विदूषितान् भ्रष्टान् (विदूषितों या भ्रष्टों का ।

विदुक्ष् - विदूषित, भ्रष्ट ।

विदुष्टरा- द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी ।
या स्त्री पुरुष का विशेषण
(२) अति विद्वान् ।
'दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टरा'
ऋ. २.३.७

विदुष्टरः- (१) विद्वत्तर । विद्वत् + तरप् = विद्वत्तर= विदुष्टर । - सा.
(२) विद्वानों को तारने वाला-दया. ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणः
विदुष्टरो दिव आरोधनानि'
ऋ. ४.७.८
हे अग्नि, आप पुराण एवं अल्प हवि को बहुत करने वाले (प्रदिवः उराणः) निकट से स्वर्ग के मार्गों से (दिवः आरोधनानि) देवताओं को हवि देने जाते हैं । (ईयसे) -सा.
अन्य अर्थ-
अनर्थ निवारक (दूतः) सनातन (प्रदिवः) विश्वकर्मा (उराणः) और विद्वानों को तारने वाले (विदुष्टरः) आप द्युलोक को नियम में रखने वाले कर्मों से (दिवः) आरोध नानि) । प्राप्त किए हो (ईयसे)-दया. ।
(२) विद्वानों में श्रेष्ठ ।
'प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः'
ऋ. १.३१.१४
तू परिपक्व ज्ञान का भली प्रकार उपदेश करता है । (पाकं प्रशास्सि) और विद्वानों में श्रेष्ठ होकर (विदुष्टरः) प्राची आदि दिशाओं तथा नाना विद्याओं के उपदेष्टा आचार्यों पर भी शासन करता है (दिशः प्र) ।
(४) अधिक विद्वान् ।
'देवान् यक्षि विदुष्टरः'
ऋ. १.१०५.१३
पुनः-
'वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः'
ऋ. २.१६.४

विद्युतः- (१) बाहुओं में पहनने वाले चमकीले आभूषण ।
'अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः'
ऋ. ५.५४.११
(२) विशेष चमकने वाले शस्त्र अस्त्र ।

विद्युतःज्योतिः - विद्युत् की ज्योति के तुल्य दीप्ति मात्र जीव ।
'विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानम्
मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा'
ऋ. ७.३३.१०

विद्युत्य- विद्युत् के विकास में कुशल ।
'नमो मेध्याय च विद्युत्याय च'
वाज.सं. १६.३८; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७; १२५.१३; का.सं. १७.१५

विद्युतस्ताः- (१) विद्युत् + हस्ताः । हाथ में विद्युत रखने वाला मरुत्, (२) विशेष चमकीले शस्त्र या आभूषण हाथ में रखने वाले ।

विद्युद्रथ- (१) विद्युत से चलने वाले रथ का स्वामी, (२) विद्युत् के समान रमणीय स्वरूप वाला ।
'विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्नि'
ऋ. ३.१४.१
(२) विद्युत् शक्ति से युक्त रथ वाला, (३) विद्युत् के समान वेग से जाने वाला ।
'विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तः'
ऋ. ३.५४.१३

विद्युन्मत्- (१) बिजली युक्त मेघ (२) तारयन्त्रादि विद्युत जिसमें रहे- विमान आदि ।
'आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैः'
ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४.
हे विद्वान् पुरुषो या मरुतो, विद्युत् वाले मेघों सहित, सूर्य के पालन सामर्थ्यों और गमन वेगों वाले उत्तम किरणों से युक्त ...आओ (३) विशिष्ट दीप्ति युक्त, (४) विद्युत् के सदृश आयुध

विद्युन्महसः- (१) विद्युत् विद्या में जो महान् हो-दया. । (२) विद्युत् की कान्ति से चमकने वाले-वायु ।
(३) विशेष द्युति से चमकने वाले ।
'विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवः'
ऋ. ५.५४.३; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७,

विदेव- विविध देशों का विजय करने वाला ।
'विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते'
अ. २०.१३६.१४

विदेश्य – सब देश में विशेष रूप से रहने वाला ।
'यः संदेश्यो वरुणो यो विदेश्यः'
अ. ४.१६.८

विद्रे- विद् (प्राप्त करना) + रक् = विद्र । अर्थ है-प्राप्त करने के लिए -सा.
'विद्रे प्रियास्य मारुतस्य धाम्नः'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२: १६८.१; का.सं. ८.१७.
प्रिय मरुतों के स्थान की प्राप्ति के लिए (प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः विद्रे) -सा.
मानुषिक प्रिय तेज प्राप्त करते हैं . दया. ।

विद्वेषणः- (१) विरुद्ध आचरण करने वाले पुरुषों का द्वेषी इन्द्र (२) द्वेषभावों से रहित ।
'विद्वेषणं संवननोभयंकरम्'
ऋ. ८.१.२; अ. २०.८५.२; साम. २.७.११

विद्वेषाः – परस्पर के द्वेष से रहित स्त्रीपुरुष ।
'विद्वेषसमनेहसम्'
ऋ. ८.२२.२

विद्योतमान- (१) विविध विद्युतों को उत्पन्न करने वाला मेघ प्रकाशमान, (३) विविध विद्याओं को प्रकाश देने वाला पुरुष ।
'विद्योतमानाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२६; तै.सं. ७.५.११.१; का.सं. (अश्व) ५.२.

विधक्षत- नाना प्रकार से संतप्त करता हुआ ।
'दधृग् विधक्षन् परीङ्खयाते'
अ. १८.२.५८

विधक्ष्यन् – विपरीत पायादि को दग्ध करना चाहता हुआ ।
'दधृग्विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाते'
ऋ. १०.१६.७

विधत्- (१) परिचर्या करता हुआ ।
'सो अस्य विधतो न रोषति'
ऋ. ८.९९.४; अ. २०.५८.२;
वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भक्त की कामना को भंग नहीं करता ।
(२) विशेष विशेष कार्य या राजसेवा करने वाला पुरुष ।
'होतेव सद्य विधतो वि तारीत्'
ऋ. १.७३.१
होता या सुखप्रद दाता विशेष विशेष कार्य या राज सेवा करने वाले पुरुष को आश्रय अर्थात् रहने का घर देवे (विधतः सद्य वितारीत्) (३) सेवा स्तुति करने वाला (४) कार्य करने वाला (५) मन, प्राण आदि ।
'त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यम्'
ऋ. २.१.५
(६) विविध लोकों को धारण करने वाला,-सूर्य (७) विशेष शिल्प रचना करने वाला पुरुष, (८) विविध विविध रीति से धारण करने वाला-
वर आ सूर्येव विधतो रथं गात्
ऋ. १.१६७.५

विधन् – (१) विशेष उपाय करता हुआ (२) परिचर्या करता हुआ ।
'इयं विधन्तो अपां सधस्थे'
ऋ. २.४.२; १०.४६.२
(२) सेवा करने वाला ।
'सत्योऽविता विधनम्'
ऋ. ८.२.३६

विधनस्- (१) बहुत धनवाला-सा. (२) त्यागी-दया. ।
'गोधायसं विधनसैरदर्दः'
ऋ. १०.६७.७; अ. २०.९१.७; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.१०; तै.ब्रा. २.८.५.१.
बृहस्पति ने विशेष धन रखने वाले आङ्गिरसों के साथ गौ, वाणी या जलों के धारण मेघ को विदीर्ण किया ।

विधमा- वह स्त्री जो क्रोध की धोकनी रूप हो, अति चण्डी ।
'गोषेधां विधमामुत'
अ. १.१८.४

विधरणी- लोगों को पृथक् पृथक् स्थापित करने वाली शक्ति ।
कृष्णाद्रं विधरणी निवेष्यः ।
अ. ९.७.४

विधर्ता – वि + धृ + तृच् = विधर्तृ । प्रथमा एक वचन में रूप विधर्ता । अर्थ है- विधारयिता, विशेष रूप से धारण करने वाला, (२) आदित्य का विशेषण, (३) समस्त सृष्टि को अपने अनुग्रह से घायल करने वाला ।
'प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवम

'वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता'
ऋ. ७.४१.२; ३.१६.२; वाज.सं. ३४.३५; तै.ब्रा. २.८.९.७; आप.मं.पा. १.१४.२; नि. १२.१४.
(४) मृत्यु । यह सभी प्राणियों का धारण करने वाला है । (५) विविध उपायों से धारण करने वाला स्वरूप ।
'यस्य द्विता विधर्तरि'
ऋ. ८.७०.२; अ. २०.९२.१७; १०५.५; साम. २.२८४

विधर्म – नाना प्रकार का धारक कर्म
'मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम्'
अ. १६.३.२

विधर्मणि ज्योतिः– विशेषधर्म वाले आत्मा में ज्योति रूप से विद्यमान परमेश्वर ।
'कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि'
साम. १.४५८; अ. ७.२२.१.

विधर्मन् – (१) विशेष रूप से धारण करने वाला–अन्तरिक्ष ।
'विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि'
ऋ. १.१६४.३६
(२) विविध धर्मों को धारण करने वाला यज्ञ या उपासना, (३) विविध धर्मों से युक्त शासनकार्य ।
'क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि'
ऋ. ३.२.३

विधवा– वि + धनव + टाप् = विधवा । विधवना = विधवा = विधावना = विधना अर्थ–(१) गत भर्तृका स्त्री (जिसका पति मर गया हो) । विधवा विधातृका भवति, विधवनात् वा विधावनात् वा इति चर्मशिराः । अपिवा धव इति, मनुष्यनाम, तद्वियोगात् विधवा ।
अर्थात् 'विधवा' धाता पोष्टा या पति से हीन, या भर्ता के मरने से जो विशेष रूप जहां तहां धाती या घूमती फिरती है । यह चर्मशिरा आचार्य का मत है । अथवा धव का अर्थ मनुष्य है या पति है । उससे वियुक्त विधवा है । अंग्रेजी का Widow शब्द इसी 'विधवा' शब्द से बना है । जैसे–विधवा, विद्व विडव ।
'कस्ते मातरं विधवामचक्रत्'
ऋ. ४.१८.१२

विधा– राष्ट्र शरीर का विधाता आप्त पुरुष ।
'सजूर्विधाभिः'
वाज.सं. १४.७

विधाता– (१) सृष्टि के आदि में कानून देने वाला ।
'धात्रे विधात्रे समृधे'
अ. ३.१०.१०; १९.३७.४
(२) वि + धा + तृच् = विधातृ । अन्न आदि आजीविका का स्रष्टा –आदित्य,
(३) इन्द्रियों के विषयों का स्रष्टा–आत्मा ।
'धाता विधाता परमोत संदृक्'
ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; तै.सं. ४.६.२.१; ५.७.४.३; का.सं. १८.१; नि. १०.२६
सभी जीवों का उत्पादयिता, अन्न आदि आजीविका का स्रष्टा ।
अथवा,
अपनी शक्ति का धाता तथा तद् भोग्य विषयों का विधाता ।
(४) मृत्यु । धाता का विपरीत धाता का अर्थ वायु किया गया है तथा विधाता का मृत्यु (५) एक मध्यमस्थानी देवता जिसे विधि या ब्रह्मा कहते हैं ।

विधु– (१) विशेष प्रकार की पीड़ा ।
'हृदयस्य च यो विधुः'
अ. ९.८.२२.
(२) धौंकनी के समान प्राण धारण करने वाला जीव ।
'विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे'
अ. ९.१०.९; वै.सू. ४०.७; ४१.१२
(३) विविध चेष्टा करने वाला ।
'विधुं दद्राणं समने बहूनाम्'
ऋ. १०.५५.५; साम. १.३२५; २.११३२; मै.सं. ४.९.१२: १३३.१०; ऐ.आ. ५.३.१.२; तै.आ. ४.२०.१; नि. १४.१८

विधूत– (१) शत्रुओं को परास्त कर चुका हुआ, (२) पाप मल से रहित ।
'विधूताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९३; मै.सं. ३.१२.३: १६१.४; का.सं. (अश्व.) १.१०.

विधूचान्– धूनता हुआ ।
'विधून्वानाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.३; मै.सं. ३.१२.३:

१६१.४; का.सं. (अश्व.) १.१०.

विधूपायत्- विविध प्रकार से सन्ताप देता हुआ ।
'तद्वै ततो विधूपायत्'
ऋ. ४.१९.६

विधृति- विशेष रूप से लोकों को धारण पालने करने की शक्ति
विधृतिं नभ्या
वाज.सं. २५.९; मै.सं. ३.१५.८: १८०.१

विधृते- (१) विशेष रूप से प्रकाशमान (२) विविध रूप से जलों को धारण करने वाली द्यावा पृथिवी (३) विभिन्न प्रकार से ज्ञान और भौतिक तेज से प्रकाशित होने वाले जीव और प्रकृति ।

विधेय- परिचरेय (परिचर्या, पूजा करते हैं) । पाणिनियों ने 'विध' धातु को विधान अर्थ में प्रयुक्त किया है । 'धा' धातु दानार्थक है । इन्हीं दोनों धातुओं के लिङ् उत्तमपुरुष ब व. का रूप है ।
'कस्मै देवाय हविषा विधेम'
ऋ. १०.१२१.१-९; अ.४.२.१-८; वाज.सं. १२.१०२; १३.४; २३.१,३; २५.१०-१३; २७.२५, २६; ३२.६,७.
उस प्रजापति को हम हवि से परिचर्या करते हैं ।

विनङ्गसः- विविध काम्य पदार्थों को ग्रहण करने वाला क्षत्रिय वीर ।
'अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगसः'
ऋ. ९.७२.३

विनद्धा- खुली हुई, बन्धन रहित ।
'विनद्धा गर्दभीव'
अ. १०.१.१४

विनयः- (१) विनीत, विनयशील ।(२) राज्य कर्म को विविध रीति से चलाने में समर्थ ।
'सं संनयः स विनयः पुरोहितः'
ऋ. २.२४.९

विनंशी आन्त्यायन - (१) विविध प्रकार से विनाश को प्राप्त होने वाला, (२) अन्तिम, चरम, निम्न कोटि तक पहुंच राजा, (३) मार्गशीर्ष (५) हिम शीत द्वारा सबका विनाशक, (५) सबके अन्त में स्वयं शेष रह जाने वाला ।
'विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहा'
वाज.सं. ९.२०; १८.२८; श.ब्रा. ५.२.१.२

विनिक्त- (१) विस्तृत, (२) परिशुद्ध, ।

विनिक्ष, विनिक्षे- विविक्षणाय, विहिंसनाय । क्षण् (हिंसार्थक धातु) + ड = क्ष । वि + नि + क्ष = विनिक्ष = विशेष प्रकार से हिंसा करने वाला ।
'विनिक्षाय' के स्थान । में 'विनिक्षे' का प्रयोग आर्ष है । अर्थ- विनाश के लिए ।
'शिशीते श्रृंगे रक्षसे विनिक्षे'
ऋ. ५.२.९; तै.सं. १.२.१४.७; नि. ४.१८.
अग्नि अपनी ज्वालाओं को राक्षसों के विनाश के लिए तीक्ष्ण करता है । जैसे बैल अपने सीगों को -सा.
तेजस्वी पुत्र राक्षसों को मारने के लिए अपने प्रभाव तथा प्रताप को तीक्ष्ण करता है । -दया.

विनिर्हत- जिसमें बहुत लोग मारे जाते हैं ।
'मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते'
अ. ७.५२.२.

विनुद्- (१) विशेषतया प्रेरक -दया. (२) विविध प्रेरणा ।
'विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते'
ऋ. २.१३.३

विनुदस्व- भगा दे । वि + नुद् धातु के लोट् म.प्र.ए.व. का रूप ।
'ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२.
हे मायु, हमें बल देकर (ओजः मिमानः) शत्रुओं को (मृधः) भगा (विनुदस्व) ।

विन्दु- भिद् + उ = विन्दु (भ का व) । जो भेदन करता है वह विन्दु है ।

विन्धे- विन्दामि (जानता हूँ) ।
'न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्'
ऋ. १.१७.७; अ. २०.७०.१३; नि. ६.१८.
मैं यह नहीं जान पाता हूँ (न विन्धे) कि इस इन्द्र की स्तुति की समाप्ति कब होती है (अस्य सुष्टुतिम्) ।

विप् - मेधावी पुरुष, विद्वान् ।
'अर्यो विपो जनानाम्'
ऋ. ८.१.४; अ. २०.८५.४
'विपामग्रे महीयुवः'
ऋ. ९.९९.१; साम. १.५५१

विपत्मन् - (१) विशेषण गमनशील-दया.

(२) विविध विद्या एवं विज्ञानों से युक्त ।
'युवमत्यस्याव नक्षथो यत्
विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः '
ऋ. १.१८०.२

विप- (१) मेघों का पिता या मेघों का क्षेप्ता इन्द्र का विशेषण । vapour और 'विप' की समानता विचारणीय है ।
'अस्तृणाद्बर्हणा विपः '
ऋ. ८.६३.७
मेघों का पिता या क्षेप्ता (विपः) उस इन्द्र ने बड़े वज्र से (बर्हणा) मेघों को मारा (अस्तृणात्) ।

विपथवाह- रथ लाने वाला घोड़ा ।
'मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ '
अ. १५.२.७

विपथा- (१) नानामार्ग, (२) नाना मार्गों में चलने वाला रथ ।
'भूतं भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् '
अ. १५.२.६

विपथि- (१)विविधाः विरुद्धाः वा पन्थानः यस्य विविध या विरुद्ध मार्गों वाला-दया. ।
(२) विशेष मार्ग वाला ।
'आपथयो विपथयः '
ऋ. ५.५२.१०

विपन्या- विशेष रूप से गुणों का वर्जन करने वाली वाणी ।
'प्र वोचाम विपन्यया '
ऋ. १०.७२.१

विपन्यु- नाना प्रकारसे स्तुति करने वाला ।
'तद् विप्रासो विपन्युवः
जागृवांसः समिन्धते '
ऋ. १.२२.२१; साम. २.१०२३,
उस परमेश्वर के स्वरूप को विविध प्रकार से स्तुति करने वाले जागरूक पुरुष ही प्रकाशित करते हैं ।

विपर्वम् - (क्रि.वि.) । विगत सन्धि बन्धनं कृत्वा (पर्व पर्व अर्थात् गाँठ गांठ काट कर) ।
'यस्य त्रितो व्योजसा
वृत्रं विपर्वमर्दयत् '
ऋ. १.१८७.१; वाज.सं. ३४.७; का.सं. ४०.८; नि. ९.२५
जिसके प्रभाव से तीनों लोकों में अप्रतिहत इन्द्र या परमेश्वर (त्रितः) ने वृत्रासुर या मेघ को खण्ड खण्ड काट कर (विपर्वम्) विदीर्ण किया (व्यर्दयत्) ।

विपरु- (१) सन्धि स्थानों में नाना प्रकार की चेष्टा करने वाला सर्पदष्ट पुरुष-सा. (२) नाना पोरुओं वाला सर्प-ज.दे.श. ।
'अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गः '
अ. ७.५६.४

विपश्यत्- विपरीत शत्रुभाव से देखने वाला ।
'सर्वस्मै च विपश्यते '
अ. १९.३२.८

विपश्चित् - (१) ज्ञान और कर्म का संचय करने वाला मेधावी, आत्मा ।
'विपश्चिते पवमानाय गायत '
ऋ. ९.८६.४४; साम. २.९६५; तै.ब्रा. ३.१०.८.१
(२) समस्त ज्ञानों और कर्मों को जानने वाला परमेश्वर ।
'धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे '
ऋ. ८.९८.१; अ. २०.६२.५
(३) सूर्य,
(४) रोहित ।
'विपश्चितं तरणिं भ्राजमानम् '
अ. १३.२.४
(४) विपः + चित् । ब्रह्मवेला, तत्ववेत्ता ज.दे.श.
'ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चित् '
अ. ८.९.३
(६) विद्वान् स्तोता -सा.

विपश्चिताम् असुरः - (१) विद्वान् स्तोताओं के मध्य में प्रज्ञावाला -सा.
(२) तत्व वेत्ताओं का प्राण दाता ।
'पिता यज्ञानामसुरो विपश्चिताम् '
ऋ. ३.३.४
यज्ञों का पालयिता (यज्ञानां पिता) तथा विद्वान् श्रोताओं के मध्य में प्रज्ञादाता या तत्व वेत्ताओं का प्राणदाता (विपश्चिताम् असुरः)-अग्नि या परमेश्वर ।

विप्र- (१) जगत् को विशेष प्रकार से विविध पदार्थों से पूर्ण करने वाला-परमेश्वर ।
'इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् '
ऋ. ८.९८.१; अ. २०.६२.५; साम. १.३८८;

२.३७५; पंच.ब्रा. १३.६.३; ऐ.आ. ५.२.५.२; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.२; शां.श्रौ.सू. ९.५.९; १२.१२.१२; १८.१३.१०; वै.सू. ४१.१७; नि. ७.२
(२) विविध रूप से कामनाओं को पूर्ण करने वाला-आंजन ।
'विप्रं भेषजमुच्यसे'
अ. १९.४४.१
(३) विविध ऐश्वर्य और ज्ञानों से पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने वाला (४) ब्राह्मण, (५) बुद्धिमान पुरुष ।
'विप्रेभिरस्तु सनिता'
ऋ. १.२७.९; साम. २.७६७
ब्राह्मणों या बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा अन्न ऐश्वर्य और ज्ञान समस्त प्रजाओं में विभक्त करने वाला होता (सनिता अस्तु) ।
(६) वि + प्रा (पूरणार्थक) + अच् = विप्र । विविध प्रकार से सत्कामनाओं को पूर्ण करने वाला- विप्र, ऋत्विक् यजमान,।
'मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम्'
ऋ. १०.२६.४; नि. ६.२९
मनोरथों या बुद्धियों के साधक तथा मेधावियों को अपनी गुणवत्ता से आकम्पित करने वाले या ब्राह्मणों के प्रेरक पूषा को.....।

विप्रऋषिः -
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति
ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.५; का.सं. (अश्व.) ६.४.
इस अश्व को विप्र ऋषि मोदित करें ।

विप्रमन्मा - विद्वान् मेधावी का मननयोग्य ज्ञान ।
'विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः.'
ऋ. ६.३९.१

विप्रराज्य- विप्रों या विद्वानों का शासक ।
'सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवः
यज्ञेषु विप्रराज्ये'
ऋ. ८.३.४; अ. २०.१०४.२; साम. २.९५८; वाज.सं. ३३.८३.

विप्रजूत- विप्रों द्वारा अर्चित ।
'विप्रजूतः सुतावतः'
ऋ. १.३.५; अ. २०.८४.२; साम. २.४९७; वाज.सं. २०.८८.

विप्रथते- (१) विविधमेव वेद्यां प्रथितं भवति (विविध प्रकार से वेदी पर प्रथित होता है) । अर्थ बिछाया जाता है-सा. ।
(२) सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त होता है ।
'व्यु प्रथते वितरं वरीयः'
ऋ. १.१२४.५; १०.११०.४; अ. ५.१२.४; वाज.स. २९.२९; मै.सं. ४.१३.३; २०२.२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.९

विप्रः न जातवेदाः- (१) ब्राह्मण के समान वेदज्ञ क्षत्रिय -दया. ।
(२) ब्राह्मण के समान जातप्रज्ञ या मेधावी अग्नि-सा.
'अग्नि होतारं मन्ये दास्वन्तम्
वसुं सूनुं सहसो जातवेदसम्'
विप्रं न जातवेसम् ।'
ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; साम. १.४६५; २.११६३; वाज.सं १५.४७; तै.सं. ४.४.४.८; मै.सं. २.१३.८: १५८.३; का.सं. २६.११; ३९.१५
मैं विप्र के अग्रणी वेदज्ञ क्षत्रिय को अग्रणी या राजा मानता हूँ (अग्निं मन्ये) - दया. ।
मैं विप्र के समान मेधावी अग्नि की पूजा करता हूँ (अग्निं मन्ये) -सा.

विप्रवाहसा- द्वि.व.। (१) अश्विद्वय का विशेषण ।
(२) विविध ऐश्वर्यों और विद्याओं से अपने को पूर्ण करने वाले शिष्यों को धारण करने वाले ।
को वामद्य पुरूणाम्
'आ वव्ने मर्त्यानाम्'
ऋ. ५.७४.७

विप्रवीरः- (१) उत्कृष्ट वीर, विप्रों में वीर ।
'भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षाम्'
ऋ. १०.४७.५; मै.सं. ४.१४.८: २२७.१४

विपा- द्वि.व. । (१) विविध प्रकार से पालन करने वाले- मित्रावरुणा ।
'वरुणाय विपा गिरा'
ऋ. ५.६८.१; साम. २.४९३
(२) स्त्री.ए.व.। विशेष रूप से पालन करने वाली वेद वाणी ।
(३) वाक्
(४) विशेष पालकशक्ति ।
'एष देवो विपा कृतः'
ऋ. ९.३.२; साम. २.६१०

विपाका– (१) विविध फलों को पकाने वाली, (२) विविध गुणों से परिपक्व ।
'त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती'
ऋ. १.१६८.७

विपाट्– (१) विपाटनात् वा विपाशनात् वा पाशा अस्यां व्यापश्यन्त वसिष्ठस्य मूमूर्च्छत् तस्मात् विपाट् उच्यतेनि. (१) विपाशा नाम की नदी जिसे आज व्यास कहते हैं ।
(२) शरीर की नाड़ी जहां विपाटन होता है और जिसके फटने से प्राण देह को त्याग देते हैं ।
'विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
विपाशा और शुतुद्रि नदियाँ जल से पूर्ण वेग से बहती हैं ।
(३) अपने तटों को तोड़ती फोड़ती
(४) एक दूसरे के पाशफन्दों , ऋणादि बन्धनों को दूर करने वाले स्त्रीपुरुष
(५) प्रजा बन्धनों को छुड़ाने वाले सेना और सेनापति
(६) देह में उत्तम वसु अर्थात् जीव के पाशों को छिन्न भिन्न करने वाले प्राण, अपान या आत्मा परमात्मा ।

विपाशा– नदी । नदी का नाम विपाशा इस लिए पड़ा कि यह भूमि को तीव्र वेग से काटती है । विपाट् विपाटनात् वा विपाशनात् वा, विप्रापणात् वा । वि + ण्यन्त पट् (भेदनार्थक) + क्विप् = विपाट् ।
अर्थ – (१) इसमें पाशों अर्थात् बन्धनों से मुक्ति मिलती है ।
(२) वि + पाश् + क्विप् = विपाट् । इसमें उदक का प्रवाह होता है ।
(३) वि + पट् + क्विप् = विपाट् । कहा जाता है कि वसिष्ठ ने विश्वामित्र के शाप से पुत्रों के मरण से दुःखी हो अपने को बांधकर उरुज्रिरा नदी में छोड़ दिया । फिर इस नदी के उग्र प्रवाह के बल से उनके बन्धन खुलने से यह नदी विपाशा कही गई ।

विपाशिन्– वि.न.। वि + पाश + इन् = विपाशिन् ।
अर्थ – (१) बंधनों से मुक्त,
(२) मेघ का विशेषण । जब मेघ बरस कर पृथ्वी पर आ जाता है उस समय वह बन्धन मुक्त हो जाता है ।
(३) विपाशा नदी के तट पर पड़ा हुआ-सा. ।
'एतदस्या अनः शये
सुसंपिष्टं विपाश्या'
ऋ. ४.३०.११; नि. ११.४८
यह उषा का आश्रयभूत मेघ (अनः) वायु से संचूर्णित हो तथा सभी बन्धनों से रहित हो (विपाशि) सोया हुआ है (आशये) ।
अथवा,
इस उषा का इन्द्र द्वारा संचूर्णित शकट (अनः) विपाशा नदी के तीर पर (विपाशि) पड़ा हुआ है (आशये) ।

विप्राणाम् आधवः– (१) मेधावियों की गुणवत्ता को आकम्पित करने वाला या ब्राह्मणों का प्रेरक पूषा देव ।

विपिपानः– (१) विशेष रूप से पान करता हुआ ।
'वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्'
ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३
(२) ओषध, रसाना विविधं पानं कर्तुं शीलं यस्य सः-दया. । विविध ओषधादि रस का पालक पुरुष,
(३) विविध विद्याओं के ज्ञान रस को पान करने वाला शिष्य....ज.दे.श. ।
'याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतम्
कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः'
ऋ. १.११२.१५
जिन उपायों से वमन करने वाले और विविध ओषधि रसों के पालक या विविध विद्याओं के ज्ञान रस को पान करने वाले शिष्य की रक्षा करते हो और जिन उपायों से धनराशियों को गिनने में कुशल पुरुष की (कलिम्) तथा धन को अपनी स्त्री के समान पालने वाले धनाढ्य पुरुष की या नववधू को प्राप्त करने वाले पुरुष की (वित्तजानिम्) रक्षा करते हो ।
(४) विशेष रूप से रक्षा करता हुआ,
(५) वि + विपानः । विविध प्रकार से रसों को अपने भीतर पालन करने वाला ।
'श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेः'
ऋ. १.२२.४; साम. २.११४८; ऐ.ब्रा. ५.४.१९

विपिपाना– द्वि.व. । नानाकर्मों से रक्षा करने वाले ।
'विपिपाना शुभस्पती'

ऋ. १०.१३१.४; अ. २०.१२५.४; वाज.सं. १०.३३; का.सं. १७.१९; ३८.९; श.ब्रा. ५.५.४.२५; तै.ब्रा. १.४.२.१; आप.श्रौ.सू. १९.२.१९

विपुट् - विशेष पूर्णरूप करने वाला । शरीर का वसा आदि धातु ।
'मरीचीर्विपुड्भिः'
वाज.सं. २५.९; मै.सं. ३.१५.८: १८०.१

विप्रुत- विप्रवमाण, चलाई हुई, विचलित ।
'विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तम्
उन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण'
ऋ. १.११६.२४
विप्लव अर्थात् धर्मनाश में प्रवृत्त सन्मार्ग से विचलित राजा को (उदनि प्रवृक्तम् विप्रुतं रेभम्) उसी प्रकार उन्नत करें जैसे सोमरस को यज्ञ पात्र में से स्रुवा से निकाला जाता है ।

विपृक् - (१) पाप से पृथक् रखने वाला पुरुष, (२) विविध विषयों का विवेक करने वाला ।
'विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त'
वाज.सं. १९.११; वाज.सं.(का.) १०.१.६; २१.११; का.सं. ३७.१८; श.ब्रा. १२.७.३.२२; तै.ब्रा. १.३.३.६; २.६.१.५; आप.श्रौ.सू. १८.७.१

विपृक्त- (१) स्वरूपेण सम्पर्क रहितः -दया.
(२) विशेष प्रकार से स्नेहवान, और विद्या सम्बन्ध से सम्बद्ध (३) विपरीत मार्ग से दूर रखने वाला ।
'असि सोमेन समया विपृक्तः'
ऋ. १.१६३.३; वाज.सं. २९.१४; तै.सं. ४.६.७.१; का.सं. ४०.६
तू अपने प्रेरणा करने वाले आचार्य और योग्य शिष्य के सदा साथ विशेष प्रकार से स्नेह वान् और उसे विपरीत मार्ग से परे रखने वाला ही....।
(४) संयुक्त ।

विपृक्वत् - विपृक् + वत् । पापदि को दूर करने वाले वीर या विद्वान् पुरुष से युक्त ।
'ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्'
ऋ. ५.२.३

विपोधा- नाना ज्ञानों और कर्मों को धारण करने वाला ।
'प्रभूर्जयन्त महाँ विपोधाम्'
ऋ. १०.४६.५; साम. १.७४

विभक्ता- (१) नाना प्रकार के ऐश्वर्य का विभाग करने वाला-परमेश्वर । (२) सविता ।
'विभक्तारं हवामहे'
ऋ. १.२२.७; वाज.सं. ३०.४; श.ब्रा. १०.२.६.६
(३) जलों को कणों में विभाग करने वाला सूर्य ।
'विभक्तासि चित्रभानो
सिन्धोरूर्मा उपाक आ'
ऋ. १.२७.६; साम. २.८४८
(४) धन बांटने वाला ।
'भगो विभक्ता शवसावसा गमत्'
ऋ. ५.४६.६

विभजस्व- विभाजन कर, बांट ।
'हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेदः'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२
हे सेनापति ! तू शत्रुओं को मार कर धन (वेदम्) विभाजित कर (विभजस्व) ।

विभञ्जनुः- शत्रुओं के बल को तोड़ डालने वाला ।
'विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौः'
ऋ. ४.१७.१३

विभजामि - बांटता हूँ ।
'अहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्'
ऋ. १०.४८.१
मैं हवि देने वाले यजमान को या दानी को भोजन देता हूँ ।

विभ्वः- सामर्थ्यवान् पुरुष ।
'विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि'
ऋ. ७.४८.२

विभ्वतष्ट- (१) परमेश्वर से उत्पादित
(२) महान् सामर्थ्य से बना हुआ बलवान् पुरुष ।
'यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टम्'
ऋ. ३.४९.१
(३) मेधावियों में तीव्र प्रज्ञा -दया.
(४) मेधावी पुरुषों द्वारा उपदेश, ताड़ना, शिक्षा, विषयादि द्वारा तैयार किया गया, (५) मेधावियों के बीच तीव्र प्रज्ञा युक्त ।
'विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः'
ऋ. ५.५८.४

विभ्वतष्टा- अधिक शक्तिशाली शिल्पियों से बनाई गई - नदी ।
'वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः'

ऋ. ५.४२.१२

विभाती- (१) सूर्य प्रभा से दीप्तिमती उषा, (२) विशेष विद्या और कान्ति से चमकती स्त्री या कन्या ।

'विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत्'

ऋ. १.११३.१५

'अच्छा वो देवी उषसं विभातीम्'

ऋ. ३.६१.५

विभाव- (१) विशेष कान्ति से युक्त अग्नि,

(२) आचार्य ।

'स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम्'

ऋ. १.१४८.१; मै.सं. ४.१४.१५: २४.१.१

विभावरी- (१) विशेष तेज से सम्पन्न रात्रि ।

'अहस्तुभ्यं विभावरि'

अ. १९.४८.२; ५०.७

(२) विशेष भा अर्थात् तेज से युक्त, तेजस्विनी उषा

(३) परमेश्वरी शक्ति का विशेषण ।

'कं नक्षसे विभावरि'

ऋ. १.३०.२०

हे तेजस्विनी, तू किस मनुष्य को प्राप्त हो सकती है ? सुखमय परमेश्वर को ही प्राप्त है ।

'महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो'

ऋ. १०.१४०.१; साम. २.११६६; वाज.सं. १२.१०६; तै.सं. ४.२.७.२; मै.सं. २.७.१४: ९५.१२; का.सं. १६.१४; श.ब्रा. ७.३.१.१९

(४) विशेष गुणों से प्रकाशमान स्त्री ।

विभावसु- वि + भा + वसु । (१) अपने विशेष प्रकाश से सबको बसाने और सर्वत्र स्वयं बसने वाला अग्नि ।

(२) व्यापक परमात्मा ।

विभावा- (१) विविध पदार्थों को प्रकाशित करने वाला विशेष कान्ति से प्रकाशमान ।

'विभुर्विभावा सख आ सखीयते'

ऋ. १०.९१.१; अ. १९.५२.२

(२) विशेष दीप्तिमान, परमेश्वर

(३) विविध विद्याओं के प्रकाश से युक्त-दया.

'स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा'

ऋ. ४.१.१२.

(४) विशेष कान्तिमान अग्नि ।

'आद् रोचते वन आ विभावा'

ऋ. १.१४८.४

'त्वं यमयोरभवो विभावा'

ऋ. १०.८.४

विभ्राष्टि- (१) आज्य (हवि) का गिरा हुआ स्वल्प भाग-सा.

(२) तेजस्विता-दया.

'घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा
आजुह्वानस्य सर्पिषः'

ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; वाज.सं. १५.४७; का.सं. २६.११; ३९.१५.

अग्नि चारों ओर से डाले जाने वाले (आजुह्वानस्य) सर्पणशील (सर्पिषः) घृत के (घृतस्य) विलोपन से दीप्त आज्य के गिरे हुए अल्प भाग को (विभ्राष्टिम्) अपनी ज्वाला से (शोचिषा) खा लेता है (अनुवष्टि) । -सा.

अन्य अर्थ,

जो भली प्रकार तपाकर स्वच्छ किए हुए आहूयमान घृत की दीप्ति से राज्य में तेजस्विता की कामना करता है (विभ्राष्टिम् अनुवष्टि) ।

(३) अग्नि की विविध देदीप्यमान ज्वाला ।

(४) विभ्रंश आज्य का गिरा हुआ स्वल्प भाग -सा.

(५) तेजस्विता -दया.

विभु , विभ्वा- (१) विभु = सर्वव्यापक । विभु + सु = विभ्वा (सोर्डा) । अर्थ-सर्वत्र व्यापक । उषा का विशेषण ।

'चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा'

ऋ. १.११३.१; साम. २.१०९९; नि. २.१९

पूजनीय या चयनीय, सभी पदार्थों का प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक उषा काल आया ।

(२) वि + भू + डुन् = विभु । यास्क ने इस शब्द का अर्थ-विभूततमम्' 'विस्तीर्णतमम्' किया है । 'ऋभु' 'विम्वा' और 'वाज' ये तीनों ॐ कार वाची प्राजापत्य परमेश्वर के तीन पुत्र हुए ।

विशेषेण भाति इति विभ्वन् । 'ऋभु' वैश्य का, 'विभ्वन्' क्षत्रिय का तथा वाज ब्राह्मण का वाचक है ।

(३) 'विभ्वन्' शब्द का प्रथमा एक वचन में 'विभ्वा' रूप है । व्यापक परब्रह्म ।

'रथ इव बृहती विभ्वने कृता'

ऋ. ६.६१.१३

विभ्वासह्- बड़ों बड़ों को पराजित करने वाला ।
'होतर्विभ्वासहं रयिम्'
ऋ. ५.१०.७

विभिन्दती- फोड़ती हुई, शत्रुदल में फूट डालती हुई ।
'विभिन्दती शतशाखा'
अ. ४.१९.५

विभिन्दु- (१) भेद डालने वाला -रथ या रथ सेना ।
(२) विशाल कष्टों को तोड़ने वाला बलवीर्य अथवा,
(३) गृहस्थ के परस्पर रमणसाधन ।
(४) विविध दुःखों और अज्ञानों का नाशक ।
'शिक्षा विभिन्दो अस्मै'
ऋ. ८.२.४१

विभीतकः, विभीदक- वि + भिद् + ग्वल् (कर्म में) = विभीदक । बाहुलक से उपधा इ का दीर्घ । विभीदक से दस्त होता है । यही विभेदन है (विभीदको विभेदनात्) । 'विभीदक्' से ही 'विभीतक' हुआ है (कोष्ठ्यस्य विभेत्ता) । अर्थ है - (१) हर्रे ।
(२) जुआ, द्यूत ।
'विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्'
ऋ. १०.३४.१; नि. ९.८
हर्रे मेरे लिए जगाने वाला तथा मन को आच्छादित करने वाला या वश करने वाला है ।
आजकल इसे विभीतक, विभीत, विभीतकी या विभीता भी कहते हैं ।
'विभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तजुत्
उष्णवीर्यं हिमस्वर्शं भेदनं कफनाशनम्'
इसका नाम असवृक्ष भी है, हर्रे के फल को अक्ष भी कहते हैं ।

विभीदक - (१) बहेड़े के वृक्ष से उत्पन्न जुए का गोटा,
(२) विविध प्रकार से शरीर और आत्मा को तोड़ देने वाला विषय ।

विभीदकमन्यु- (१) वह मन्यु -क्रोध जिससे सभी प्राणी भय खाते हैं,
(२) असत्य से भय दिलाने वाला कारण ।
'सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः'
ऋ.७.८६.६

विभीषणः- विशेष रूप से भीषण इन्द्र ।
'इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणः'
ऋ. ५.३४.६

विभ्वी- (१) प्रचुर,
'तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीः'
अ. १८.३.६९; ४.२६; ४३.
(२) राष्ट्र भर में फैली हुई । प्रजा ।

विभुः- (१) सर्वव्यापक, विविध रूपों में सृष्टि कर्ता ।
'विभुर्विभावा सख आ सखीयते'
अ. १९.५२.२
'विभुवे स्वाहा'
वाज.सं. २२.३०; का.सं. ३५.१०; तै.ब्रा. ३.१०.७.१; आप.श्रौ.सू. १४.२५.११.
(४) बलवान्, महान् बली ।
(५) सामर्थ्यवान् ।
'विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि'
ऋ. ७.४८.२

विभुक्रतुः(१) बहुत सामर्थ्यवाला (२) अधिक प्रज्ञावान् ।
'पित्रे मात्रे विभुक्रतुम्'
ऋ. ८.६९.१५; अ.य २०.९२.१२

विभ्युषी- डरती हुई ।
'अयोषा अनसः सरत्
संपिष्टादह विभ्युषी'
ऋ. ४.३०.१०; नि. ११.४७
जब वायु से छिन्न भिन्न होते उषा देखती है तब वायु से डर जाती है ।

विभूतद्युम्न- अत्यधिक तेज, ऐश्वर्य अन्न और यश से सम्पन्न-सूर्य, विष्णु ।
'विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः'
ऋ. १.१५६.१; तै.ब्रा. २.४.३.८.

विभूतराति- प्रचुर दानशील ।
'विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषम्'
ऋ. ८.१९.२; साम. २.१०३८

विभूति- विविध सम्पदा ।
'विभूतिरस्तु सूनृता'
ऋ. १.३०.५; अ. २०.४५.२; साम. २.९.५०
यह उत्तम सत्यज्ञान से पूर्ण विविध सम्पदा है ।

विभृत - विविध द्रव्य धारक वायु ।

विभृतमातरिश्वा - विशेष बल को धारण करने वाला या विविध प्रजाओं का पालक, नली आदि के द्वारा विशेष उपाय से धारण किया जाकर वायु ।
'मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा
गृहेगृहे श्यतो जेन्यो भूत्'
ऋ. १.७१.४
विशेष बल का धारक या विविध प्रजाओं का पालक पोषक नली आदि द्वारा विशेष उपाय से धारण किया हुआ वायु इस अग्नि को मथता है तब वह घर घर में श्येत होकर प्रकट होता है ।

विभृत्रा- (१) विविध प्रकार से प्रजाओं का भरण पोषण करने में कुशल, (२) विशेष धारण करने वाली ।

विभुमत्- ऐश्वर्य युक्त ।
'विभुमद्भयो भुवनेभ्यो रणं धाः'
ऋ. ८.९६.१६; अ. २०.१३७.१०; साम. १.३२६

विभूः- (१) विविध गुणों से युक्त -उदार
'विभूर्मात्रा प्रभूः पित्रा'
वाज.सं. २२.१९; तै.सं. ७.१.१२.१; मै.सं. ३.१२.४: १६१.८: श.ब्रा. १३.१.६.१; ४.२.१५; तै.ब्रा. ३.८.९.१; १७.१; आप.श्रौ.सू. २०.५.९; ११.१; मा.श्रौ.सू. ९.२.१.

विभूतद्युम्ना- प्रभूत ऐश्वर्य वाला परमेश्वर इन्द्र ।
'विभूतद्युम्नश्चयवनः पुरुष्टुतः'
ऋ. ८.३३.६

विभूप्राण - चतुर्थ प्राण ।
'योऽस्य चतुर्थप्राणो विभूर्नाम'
अ. १५.१५.६

विभूवसुः- विभु + वसु = विभूवसु । अर्थ-बड़े बड़े लोकों में व्यापक ।
'इन्द्रस्य वज्रो वृषभो वृषभो विभूवसुः'
ऋ. ९.९२.७

विभृत्र- (१) विविध उपायों से भरण पोषण किया हुआ ।
(२) विविध रूप में विचारने वाला
(३) विविध पदार्थों को पुष्ट करने वाला-अग्नि ।
(४) विविध विज्ञानों को धारण करने वाला,
(५) विविध विद्यार्थियों एवं प्रजाओं का पालक पोषक ।
'उतारुषाह चक्रे विभृत्रः'
ऋ. २.१०.२
(६) भरण पोषण योग्य, (७) विशेष प्रकार से पोसने वाला-दया. (८) विशेष रूप भृति द्वारा रक्षित राज पुरुष ।
'आ पुत्रा न मातरं विभृत्राः'
ऋ. ७.४३.३

विभृत्वा- (१) सर्वत्र विहार करने वाला । (२) प्रजा को विशेष रूप से भरण पोषण करने में समर्थ ।
'चमूषच्छूयेनः शकुनो विभृत्वा'
ऋ. ९.९६.१९; साम. २.५२७

विमद- (१) प्रज्ञान धन रूप आत्मा, (२) मदरहित, अप्रमादी पुरुष ।
'यौ विमदमवथः समवध्रिम्'
अ. ४.२९.४
(३) विशेष आनन्द
'याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुः'
ऋ. १.११२.१९
'ससेन चिद् विमदायावहो वसु'
ऋ. १.५१.३
विविध प्रकार के हर्षों और सुखों को प्राप्त करने के लिए ऐश्वर्य प्राप्त कर ।

विमध्य- विकलमध्यम, आधे से कुछ कम-सा.
'जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम्'
ऋ. १०.१७९.२; अ. ७.७२.२

विमन्यवः- विविध प्रकार की बुद्धियाँ ।
'परा हि मे विमन्यवः
पतन्ति वस्यइष्टये
वयो न वसतीरुप'
ऋ. १.२५.४
पक्षी जिस प्रकार अपने रहने की जगहों के प्रति उड़ आते हैं उसी प्रकार हे वरुण, मेरी विविध प्रकार की बुद्धियाँ सब से श्रेष्ठ वास देने वाले सबके शरण रूप तुझे प्राप्त करने के लिए तेरे समीप तक पहुंचती है ।

विमन्युकः- क्रोध रहित ।
'अयं दर्भो विमन्युकः'
अ. ६.४३.१

विमनाः- (१) विभूतमनाः, सर्वप्रज्ञानः
(२) अप्रतिहत प्रज्ञान वाला आदित्य, का

परमात्मा
'सर्वत्र अप्रतिहतं प्रज्ञानं यस्य सः ।
यहाँ 'मनस्' शब्द प्रज्ञान अर्थ में लिया गया है ।
(३) विविध मन्त्रों का स्वामी (४) विशेष संकल्प वाला विश्वकर्मा ।
'विश्वकर्मा विमना आद्विहायाः '
ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; मै.सं. २.१०.३: १३४.३; का.सं. १८.१; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; नि. १०.२६.

विमंहत्- विविध ऐश्वर्य देने वाला ।
'जरितृभ्यो विमंहते '
ऋ. ८.४५.१२

विमहस् - (१) विशेष तेज से सम्पन्न ।
'मरुतो यस्य हि क्षये
पाथा दिवो विमहसः '
ऋ. १.८६.१; अ. २०.१.२; वाज.सं. ८.३१; तै.सं. ४.२.११.२; श.ब्रा. ४.५.२.१७.
(२) वायु,
(३) विद्वान् पुरुष ।
(४) विशेष रीति से आदर सत्कार करने योग्य ।

विमहसः- 'विमहस्' का ब.व. रूप । अर्थ-विशेष सामर्थ्य वाले मरुत् ।
'विष्वर्धसो विमहसः '
ऋ. ५.८७.४

विमही- (१) विशेष रूप से बड़ी शक्ति (२) विशेष भूमि ।
'इन्द्रमिद् विमहीनाम् '
ऋ. ८.६.४४

विमुच- (१) अन्धकार से युक्त करने वाला पूषा-सा।
(२) विषयादिकों से विमुक्त विद्वान् - ज.दे.श. ।
'एहि वां विमुचो न पात् '
ऋ. ६.५५.१
हे प्रजाओं को अन्धकार से मुक्त करने वाला पूषन्, या विषयादिकों से विमुक्त विद्वान् ,हे सूर्य (नपात्), या कभी पतित न होने वाला, आ ।

विमान- (१) निर्माता ।
अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाः ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने '
ऋ. १०.१२३.१; वाज.सं. ७.१६; तै.सं. १.४.८.१; मै.सं. १.३.१०:३४.१; का.सं. ४.३; श.ब्रा. ४.२.१.८,१०; नि. १०.३९.
यह वेन नामक मध्यमस्थानीय देव (विद्युत्) गर्भ के जरायु के सदृश वेष्टक अर्थात् मेघरूपी जरायु में प्रकाशमान गर्भ सा स्थित (ज्योतिः जरायुः) जल के निर्माता अन्तरिक्ष में (रजसो विमाने) वर्तमान् हो आदित्य की रश्मियों में रहने वाले जलों को (पृश्निगर्भा) वर्षाऋतु में पृथ्वी की ओर प्रेरित करता है (चोदयत्) ।
(२) मान्य ।
(३) कर्मों का साधन,
(४) विशेष रूप से मान्य,
(५) पार करने वाला विमान ।
'विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् '
ऋ. ३.३.४

विमिमीते- अत्यर्थ नाना प्रकार निर्मिमीते (नानाप्रकार से निर्माण या सम्पादित करता है) ।
'यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः '
ऋ. १०.७१.११; नि. १.८
और एक अध्वर्यु (त्वः) यज्ञ में क्या क्या होना चाहिए और कैसी किस मात्रा में बेदी बनायी जानी चाहिए (यज्ञस्य मात्राम्) इत्यादि कार्य सम्पादित करता है (विमिमीते) ।

विमुच् - खोल देने योग्य ।
'वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति '
अ. ६.११२.३

विमृग्वरी- नाना प्रकार से पवित्र करने वाली पृथिवी ।
'विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि '
अ. १२.१.२९

विमृधः - नाना प्रकार से युद्ध करने में समर्थ ।
'ओजस्वान् विमृधो वशी '
अ. ८.५.४.

विमोक - जल धारा बरसाने वाला मेघ ।
'विमोकश्च मार्द्रयविश्च मा हासिष्टाम् '
अ. १६.३.४.

विमोक्ता- दुःखों से मुक्त करने वाला
'क्षेमाय विमोक्तारम् '

वाज.सं. ३०.१४; तै.ब्रा. ३.४.१.१०

विमोचन- अश्वों को रथ से छुड़ाना ।
(२) दुःखों से छुड़ाने वाला -इन्द्र
(३) बन्धनों से छुड़ाने वाला ।
'रास्व रायो वियोचन'
ऋ. ८.४.१६
(४) खोलना, ढीला करना, (५) घोड़े को खोलने का स्थान-अस्तबल ।
(६) यन्त्रीय अश्व का विमोचन-दया.
'यत्रा रथस्य बृहतो निधानम्'
विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत्'
ऋ. ३.५३.६
जहां रथशाला (रथस्य निधानम्) तथा अश्वों का विमानगृह है (दक्षिणावत् वाजिनः विमोचनम्) । -यास्क
जहां विशाल यान के (बृहतः रथस्य) वेगवान् यन्त्राश्व का (वाजिनः) सप्रयोजन (दक्षिणावत्) नियोजन (निधानम्) और विमोचन होता है (विमोचनम्)- दया.

वियत्- (१) दिन, (२) दुष्टों का संयमन ।
'वियच्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७: १११.१६; कासं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.५.

वियन्ता- द्वि.व. । विशेष रूप से बद्ध जीव और शरीर ।
'ता शश्वन्ता विषूचीता वियन्ता'
ऋ. १.१६४.३८; अ. ९.१०.१६; ऐ.आ. २.१.८.१३; नि. १४.२३

वियम- जिसका बन्धन खोल दिया जाय ।
'यत् संयमो न वि यमः'
अ. ४.३.७

वियातः- वि + यात् + श् = वियातः (जो यातना देता है) । यह प्रयोग चारों वेदों में नहीं मिलता ।

वियास- विविध अंगों का श्रम ।
'वियासाय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११; तै.सं. १.४.३५.१; का.सं. (आश्व.) ५.३; तै.आ. ३.२०.१

वियुक्- विशेष रूप से जुड़ी हुई दिव्य शक्तियाँ जिन से आत्मा देह का धारण करता है ।
'वियुग्भिर्वाय इह ता विमुञ्च'
अ. ७.४.१

वियुते- द्वि.व. । वि + यु + क्त = वियुत । द्यौ और पृथिवी दोनों विमिश्रीभूत अर्थात् एक दूसरे से मिले हुए हैं । या वियुक्त हैं । अतः वे 'वियुते' हैं ।
अर्थ - (१) अलग अलग वर्तमान द्यौ और पृथिवी । (२) सूर्य और पृथिवी दया.
'समान्या वियुते दूरे अन्ते'
ऋ. ३.५४.७; नि. ४.२५

वियोता - विविध प्रकार के संकटों से छुड़ाने वाला ।
'वि यदुच्छान् वियोतारो अमूराः'
ऋ. ४.५५.२

विर् (वीः)- (१) व्यापक -दया.
(२) पालक या प्राप्त करने वाला-ज.दे.श. ।
'कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसत्'
ऋ. १.१४३.६
अति विनीत विद्यार्थी हमारे बहुत से उत्तम बचनों के पालक और प्राप्त करने के इच्छुक हों ।

विरदा- विरद्, विलिख, छिन्धि । 'वि + रद' के लोट म.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है - विदीर्ण कर, रौंद दे।
'गोर्न पर्व वि रदा निरश्वा'
ऋ. १.६१.१२; अ. २०.३५.१२; मै.सं. ४.१२.३; १८३.११; का.सं. ८.१६; नि. ६.२०
हे इन्द्र, तू तिर्यग् गामी वज्र से मेघों को उसी प्रकार विदीर्ण कर (विरदा) जैसे हिंसक पशुओं के जोड़ों को (गोः पर्व न) । -सा.
सूर्य जैसे तिरछी चाल से (तिरश्चा) मेघ के जोड़ो को (गोः पर्व) विदीर्ण करता है उसी प्रकार हे राजन् , तू दुष्टों को विदीर्ण कर ।
(२) दुर्ग ने वर्ण विपर्यय मान कर इसे 'विदर' अर्थात् 'विदारय' अर्थ किया है । 'विरदा' का प्रयोग छान्दस है ।

विरप्शः- महान् विष्णु ।
'मध्वश्चोतन्त्यभितो विरप्शम्'
ऋ. ४५०.३; ७.१०१.४; अ. २०.८८.३

विरप्शिन् - (१) रप् (रप् और लप् धातु व्यक्त वचन के अर्थ में आए हैं ।) + शक = रप्श । अर्थ है, बोलने वाला ।

विविधं रपन्ति इति विरप्शाः (जो विविध प्रकार से बोलता या स्तुति करता है वह वह विरप्श है) ।
विरप्श + इनि (मत्वर्थीय) = विरप्शिन् । जिसे अनेकों स्तोता हो वह-इन्द्र ।
विविधं रप्शं स्तुतिः यस्य स विरप्शिन् ।
(३) विरावणशीलः (जो युद्ध में विशेष प्रकार से भयङ्कर हुंकार करता है) - दुर्ग
(३) भुजा स्फालनेन युद्धार्थं शत्रूणाम् आह्वानकारी (भुजास्फालन द्वारा शत्रुओं का आह्वान करने वाला)-सा. ।
(४) दुष्टों को रुलाने वाला-दया.
'महाँ अमत्रो विजने विरप्शी
उग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः
नहां विव्याच पृथिवीं चनैनं
यत् सोमासो हर्यश्वममन्दन्'
ऋ. ३.३६.४; नि. ६.२३.
जो यह इन्द्र अत्यन्त सामर्थ्यवान्, अपरिमित मात्राओं से युक्त (अमत्रः) वेलोपलक्षित युद्ध में (वृजने) स्तोताओं से स्तुत किया जाता हुआ या भुजा स्फालन द्वारा शत्रुओं का आह्वान् करने वाला है (विरप्शी), उसका उग्रबल (उग्रं शवः) एवं घर्षण शील ओज (घृष्णु ओजः) सर्वत्र विस्तृत है (पत्यते), ऐसे इन्द्र को यह विस्तीर्ण भूमि भी व्याप्त नहीं करती (पृथिवी चन न विव्याच अहं) और द्युलोक भी नहीं जब (यत्) जब सोमरस इन्द्र को मत्त करता है (अमन्दन्) ।
अन्य अर्थ - पूज्य दुराधर्ष एवं दुष्टों को रुलाने वाला राका (महान् अमत्रः विरप्शी) युद्ध में उग्रबल और इच्छुक पराक्रम प्राप्त करता है । (शवः धृष्णम् ओजः पत्यते) और यतः बलपराक्रम रूपी वीर्य से युक्त राजा को (हर्यश्वम्) सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रसन्न रखते हैं (सोमासः अमन्दन्), अतः इसे सम्पूर्ण पृथिवी में स्थित कोई भी नहीं छल सकता (एनं पृथिवीचन न अह विव्याच) ।
स्वा. दयानन्द ने हर्यश्व का अर्थ 'बल और पराक्रम से युक्त' किया है ।
(५) गुणों और कर्मों में महान् -
रुद्र, मरुत् या सैनिक ।
'संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः'
ऋ. १.६४.९
(६) महान् परमेश्वर ।
'आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनम्'
ऋ. १०.११५.३
(७) महान् घर्षणशील
'रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन्'
ऋ. ६.२२.६; अ. २०.३६.६
(८) विविध विद्याओं का उपदेश करने वाली वाणी ।
'विरप्शी गोमती मही'
ऋ. १.८.८; अ. २०.६०.४; ७१.४
(९) सर्वपदार्थ ज्ञाता ।
(१०) अधीनों को विविध रूप से आज्ञा और उपदेश करने वाला ।

विरव- विशेष शब्द ज्ञान ।
'बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य'
ऋ. १०.६८.८; अ. २०.१६.८; नि. १०.१२

विराट् - (१) वाक् पृथिवी, अन्तरिक्ष, प्रजापति, मृत्यु और साध्यों का अधिराजा-इन नामों से विराट् परमेश्वर का ग्रहण है ।
'विराड् वाग् विराट् पृथिवी
विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव
तस्य भूतं भव्य वशे कृणोतु
स मे भूतं भव्यं वशे'
अ. ९.१०.२४
(२) विविध पदार्थों, नाना सूर्यादि लोकों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड ।
'ततो विराडजायत'
वाज.सं. ३१.५; वाज.सं. (का.) ३५.५
(३) विविध गुणों कर्मों से प्रकाशमान सूर्य ।
'विराट् सम्राड् विभ्वीः
प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः'
ऋ. १.१८८.५
(४) प्रकाशमान ब्रह्माण्ड रूप महान् शरीर ।
'तस्माद्विराउजायत'
ऋ. १०.९०.५; तै.आ. ३.१२.२.

विराट् छन्दः- (१) विराट् छन्दः (२) चालीस वर्षों का अखण्ड ब्रह्मचारी ।
'विराट् छन्द इहेन्द्रियम्'

वाज.सं. २१.१९; मै.सं. ३.११.११; १५८.१३; का.सं. ३८.१०; तै.ब्रा. २.६.१८.४.

विराट् वाक्- सदर्थों का प्रकाश करने वाली वाणी-वेदवाणी ।
'यामाहुर्वाचं कवयो विराजम्'
अ. ९.२.५

विराट्सलिल- विराट् अर्थात् नाना रूपों में प्रकट होने वाली प्रकृति रूप सलिल अर्थात् सर्वव्यापक पदार्थ ।
'वत्सौ विराजः सलिलादुदैताम्'
अ. ८.९.१

विराज्- वि + राज् + क्विप् = विराज् । विराजनात् वा विराधनात् वा विप्राणनात् वा विराजनात् सम्पूर्णाक्षरा । विराधनात् ऊनाक्षरा । विप्राणनात् अधिकाक्षरा ।
अर्थात् 'विराज' शब्द 'राज्' धातु से क्विप् प्रत्यय कर बनता है । अथवा 'राध्' से (वि + राध् + क्विप्) बना है । या गत्यर्थक 'प्रु' धातु से (वि + प्रु + क्त + टाप् = विप्रुता) । विप्रुता इव हि सा स्वरूपात (वह अपनेस्वरूप से बढ़ी रहती है) । या विप्राणन से विराज् बना है । प्राणन का अर्थ भी गति ही है ।
यह एक वैदिक छन्द है जो या तो सम्पूर्ण अक्षरों वाला (विराजन) या न्यून अक्षरों वाला (विराधन या विगत ऋद्धि) या अधिक अक्षरों वाला (विप्राणन से) होता है ।

विराजति- (१) उदित होता है ।
'अनु प्रयाणमुषसो वि राजति'
ऋ. ५.८१.२; अ. ७.७३.६; वाज.सं. १२.३; तै.सं. ४.१.१०.४; मै.सं. २.७.८:८४.१५; ३.२.१:१५.३; का.सं. १६.८; श.ब्रा. ६.७.२.४; नि. १२.१३
सविता उषा के उदय लेने के बाद उदय होता है) ।
(२) विशेषेण दीपयति (विशेष प्रकार से दीप्त करता है ।
(३) उत्पन्न करती है ।
(४) प्रकाशित करता है ।
'धियो विश्वा विराजति'
ऋ. १.३.१२; वाज.सं. २०.८६; नि. ११.२७
माध्यमिका वाक् सरस्वती समस्त यज्ञसम्बन्धी तथा कर्म सम्बन्धी ज्ञानों को उत्पन्न करती है । वेदवाणी सम्पूर्ण सत्य विद्याओं को प्रकाशित करती है ।

विराजःवत्सः- विराट् प्रकृति का व्यापक आच्छादक परम शक्तिमान ब्रह्म ।
'वत्सः कामदुघो विराजः'
अ. ८.९.२

विराधन- चूक, विपरीत गमन ।
'यस्या नास्ति विराधनम्'
अ. ११.१०.२७

विराषाट् - (१) वीर पुरुषों को भी पराजित करने में समर्थ (२) सूक्ष्मजलों के समान वायु में स्थित जीव गण को सहने वाला वायुलोक
(३) यम ।
'एका यमस्य भुवने विराषाट्'
ऋ. १.३५.६
तीन द्यौ - सूर्य, अग्नि और विद्युत् या वायु में एक यम अन्तरिक्ष में हैं जो सूक्ष्म रूप में स्थित जीवों को सहता है ।
अथवा,
आकाश, अन्तरिक्ष, और पृथिवी में एक अर्थात् पृथिवी नियन्ता राजा के शासन में है ।

विरिष्ट- विशेष रूप से प्राप्त क्षति, चोट ।
'यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टम्'
अ. ७.५७.१

विरुक्मत् (१) विविध कान्ति वाला मेघ ।
'तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः'
ऋ. १.८५.३
वायु अपने में विविध कान्ति वाले मेघों को (विरुक्ततः) धारण करते हैं ।
(२) विशेष कान्ति से युक्त ।
'स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता'
ऋ. १.१२७.३; साम. २.११६५

विरुक्मान्- विशेष कान्तिमान् ।
'रथो विरुक्मान् मनसा युजानः'
ऋ. ६०.४९.५

विरुद्र- (१) विशेष गर्जन शील मेघ, (२) विविध उपदेशों से युक्त ।
'विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ'
ऋ. १.१८०.८

विरुरुहुः- बढ़ती हैं । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग हुआ है ।

'व्यूतयो रुरुहरिन्द्र पूर्वी'
ऋ. ६.२४.३
हे इन्द्र ! तेरी पूर्वकाल में की गई रक्षाएं (पूर्वी ऊतयः) बढ़ती हैं (वृक्ष की शाखाओं की तरह (वृक्षस्य वयाः नु) ।

विरुपः- (१) एक वैदिक ऋषि ।
'प्रियमेधवत् अत्रिवत्
जातवेदो विरूपवत्
अङ्गिरस्वत् महिव्रत
प्रस्कण्वस्य श्रुधीहवम्'
ऋ. १०.४५.३
(२) अनेक रूपों वाला ।
(३) वर्ण एवं रूप में भिन्न ।

विरूपाः- ब.व । (१) भिन्न भिन्न कर्मों से नाना रूप वाले ।
'विरूपाः सन्तो बहुधैक रूपाः'
अ. २.३४.४; तै.सं. ३.१.४.२; का.सं. ३०.८; तै.आ. ३.११.११, १२;
(२) विविध रूप की गौएं ।
'विरूपास्तिलवत्सा उपतिष्ठन्तु त्वात्र'
अ. १८.४.३३

विरूपास-ऋषयः- (१) नाना रूप के ऋषि
(२) ऋषि नायादर्शी एवं तत्वदर्शी ही कहलाते हैं ।
'विरूपास इत् ऋषयः'
ऋ. १०.६२.५; नि. ११.१७

विरूपे- (१) भिन्न, रूप वाली रात्रि और उषा ।
(२) प्रकाश अन्धकार से विविध रूपों वाली- उषसा रात दिन ।
'उत स्मयेते तन्वा विरूपे'
ऋ. ३.४.६

विरोके- (१) विविध विशेष रुचि
(२) विशेष प्रकार से दीप्त सूर्य
(३) अभिप्रीत प्रदीपन
'सं दूतो अद्यौत् उषसो विरोके'
ऋ. ३.५.२

विरोकी - (१) विविध दीप्ति और कान्ति से युक्त ।
'अग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः'
ऋ. १०.७८.३

विरोचमान- विशेष तेज से तेजस्वी

विरोहत् - जिसका शरीर विशेष प्रकार से पुष्ट हो रहा है ।
'यथा स्म ते विरोहतः'
अ. ४.४.३

विलायकः- विविध भागों में लाने वाला ।
'मनसोऽसि विलायकः'
वाज.सं. २०.३८

विलिगी- विपरीत रीति से चिपटने वाली जोंक ।
'आलिगी च विलिगी च'
अ. ५.१३.७

विलिष्ट - (१) त्रुटि कमी ।
'अनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्'
वाज.सं. २.२४;८.१४; तै.सं. १.४.४४.२; श.ब्रा. १.९.३.६; ४.४.३.१४; ४.८; तै.आ. २.४.१; शां.श्रौ.सू. ४.११.६
(२) विपरीत, विरोधी,
(३) अनिष्ट जनक ।
'विलिष्टं सूदयन्तु ते'
वाज.सं. २३.४१

विलीढी- कुछ न कुछ सदा चाटने वाली स्त्री ।
'विलीढ्यं ललाम्यम्'
अ. १.१८.४

विलोहित- (१) विलोहित नामक ज्वर ।
'विलोहितो अधिष्ठानात्
शक्नो विन्दति गोपतिम्'
अ. १२.४.४
(२) वह रोग जिसमें विकृत रुधिर बहे
कर्णशूलं विलोहितम्
अ. ९.८.१
(३) विशेष रूप से लाल वस्त्र धारण करने वाला ।
(४) विशेष लोहित रूप से इन्द्रिय विजयी अभ्यासी पुरुष ।
'नीलग्रीवो विलोहितः'
वाज.सं. १६.७; तै.सं. ४.५.१.३; मै.सं. २.९.२: १२१.१; का.सं. १७.११.

विवक्षण- (१) राष्ट्र में विशेष अधिकार पद को धारण करने वाला ।
'विवक्षणा अनेहसः'
ऋ. ८.४५.११
(२) विविध स्कन्धों वाला वृक्ष, (३) विविध प्रकार से कथनोपकथन करने एवं धारण करने

योग्य, (४) विविध लोकों को उठाने वाला ।
'गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे'
ऋ. ८.२१.५; साम. १.४०७;
(५) विशेष रूप से वहन करने योग्य, (६) विशेष वचन योग्य पद या ज्ञान ।
'विवक्षणस्य पीतये'
ऋ. ८.१.२५; ३५.२३; साम. २.७४२

विवक्षसे- ववक्षिथ विवक्षस इत्येते । वक्तेः वा वहतेः वा सांभ्यास्सत् (ववक्षिथ' या 'विवक्षसे' ये दोनों 'वत्' या ' वट्' धातु से द्वित्व कर बने हैं) । अर्थ है-तू वहन करने की इच्छा करता है ।
'शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे'
ऋ. १०.२१.१; आश्व.श्रौ.सू. ७.११.१४; १७

विवक्ति- (१) प्रार्थना करता है - सा. (२) सुन्दर वचन बोले ज.दे.श . ।
'विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखः'
ऋ. १०.११.६; अ. १८.१.२३
अग्नि (वह्निः) सुन्दर कर्म की इच्छा करने वाले यजमान के लिए (स्वपस्यते) देवताओं की प्रार्थना करता है (विवक्ति) ।
विवाहित पुरुष (वह्निः) सुन्दर वचन बोले (विवक्ति) तथा शुभ कर्म करें (स्वपस्यते) - ज.दे.श. ।

विवक्षिथ- अर्थ है- बोलने या वहन करने की इच्छा करने हो ।

विवक्वान् - विविध विद्याओं का उपदेष्टा ।
'स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान्'
ऋ. ७.६७.३

विवध- (१) वि + वध । विविध हनन साधन, अस्त्रशस्त्र का संग्रह, (२) अन्तरिक्ष
विवधश्छन्दः
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; श.ब्रा. ८.५.२.५.

विबन्धु- विशेष बन्धन करने वाला -परलोक ।
'यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु'
अ. १८.२,५७

विवर- (१) विवर, (२) मुख्यपथ, (३) संग्राम भूमि ।
'अग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः'
ऋ. १.११२.१८
जिन उपायों से आप दोनों सूर्य की किरणों के प्रकाश और जल को प्रकट करने में (गो अर्णसः) सूर्य और विद्युत् के समान अथवा ज्ञान वाणियों का विशद ज्ञान करने कराने के लिए गुरु शिष्य के सामने पृथिवी के ऐश्वर्य को विविध प्रकार से प्राप्त करने के लिए मुख्य पद पर या संग्राम भूमि में आगे बढ़ते हो ।

विवर्तन- (१) घोड़े का लेटना, (२) विविध प्रकार के राजकोष कारबार का स्थान ।
'निक्रमणं निषदनं विवर्तनम्'
ऋ. १.१६२.१४; वाज.सं. २५.३८; तै.सं. ४.६.९.१; मै.सं. ३.१६.१: १८३.२

विवर्तमानः - लोटता ।
'विवर्तमानाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.३; मै.सं. २.१२.३: १६१.३

विवरुणा- वरुण अर्थात् जल से रहित ओषधि ।
'उन्मज्चन्तीर्विवरुणाः'
अ. ८.७.१०

विवर्तेते - द्वि.व.। बारी बारी से आते हैं ।
'वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः'
ऋ. ६.९.१; नि. २.२१.
दिन और रात पृथ्वी और द्यौ लोकों के प्रति बारी बारी से अपनी अपनी अनकूलता से ज्ञातव्य प्राप्त कर्मों से (वेद्याभिः) घूमते रहते हैं ।

विववर्थ- विविध प्रकार से दूर करता है ।
'त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ'
ऋ. १.९१.२२; आ.सं. ३.३; वाज.सं. ३४.२२; मै.सं. ४.१४.१: २१४.१०; का.सं. १३.१५; तै.ब्रा. २.८.३.१

विवव्री मिथुना- (१) विपरीत रूप वाले मिथुन नक्षत्र ।
(१) विविध रूप वाले नर नारी के जोड़े ।
'वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री'
ऋ. १०.९९.५

विवर्तन- (१) विविध प्रकार की चेष्टा करना (२) घोड़ों की नाना प्रकार की चाल ।

विवः- वि + वृ के लङ् म.पु.ए.व. में । व्यवृणोः विवृतवान् असि । अर्थ है-विवर किया, छिद्र किया या मेघों को छिन्न भिन्न किया ।

विवस्वत्- अन्तर्भावित णि वाले । वि + वस् + विच् + मतुप् = विवस्वत् । तमसः विवासन क्रियया (अन्धकार दूर करने से विवस्वत् कलहाए हैं) । अर्थ है-(१) आदित्य ।
'आ दूतो अग्निमभरद् विवस्वतो
वैश्वानरं मातरिश्वापरावतः'
ऋ. ६.८.४; नि. ७.२६
सुदूरवर्ती आदित्य से उस वैश्वानर अग्नि का वायु अपहरण करता है ।

विवस्वत् मनु- (१) विवस्वत् मनु, (२) विविध प्रजाओं का स्वामी मुख्य व्यवस्थापक राजा के पद पर विराजमान है - ज.दे.श. ।
'यथा मनौ विवस्वति'
ऋ. ८.५२.१

विवस्वती- (१) सूर्य की उत्तम प्रभा (२) विविध रस, ऐश्वर्यों और प्रजाजनों से बनी सेना ।
'विवस्वत्या महि चित्रमनीकम्'
ऋ. ३.३०.१३

विवस्वतोजाया- आदित्य की भार्या सरण्यू जो त्वष्टा विश्वामित्र की दुहिता थी और जिस से यम और यमी की उत्पत्ति हुई । पौराणिक कथा के अनुसार आदित्य के समीप से भागकर सरण्यू अपने पिता त्वष्टा के यहां चली गई परन्तु त्वष्टा ने पुनः आदित्य के यहाँ उसे भेज दिया । इस पर सरण्यू बड़वा का रूप धरकर उत्तर कुरू चली गई । आदित्य भी अश्व रूप में पीछा करते उत्तर कुरू जाकर बड़वा रूप धारिणी सरण्यू से मिले । दोनों के संयोग से जो रेत निकला उसे सरण्यू ने नासिका में धारण किया और उसी से नासत्यौ (अश्विनौ) उत्पन्न हुए। (२) आध्यात्मिक अर्थ-आदित्य की जाया रात्रि है जो सूर्योदय होते ही भाग जाती है ।
'महो जाया विवस्वतो ननाश'
ऋ. १०.१७.१; अ. १८.१.५३; नि. १२.११.
महान् आदित्य की जाया अदृश्य हो गई ।

विवस्वान् - (१) विविध वसुलोकों का स्वामी ।
'यमः परोऽवरोः विवस्वान्'
अ. १८.२.३२.

विहुत्- (१) जुहोति स्वीकरोति यया सा- दया. । (जिससे हवन करता या स्वीकार करता है) ।

विव्रत- विविध कर्म ।

विव्रता- द्वि.व.। (१) विविध व्रतों और शीलों का पालन करने वाले, (२) उत्तम व्यवहारों के प्रवर्तक ।

विवाक् - (१) विविध भाषाओं या वाणियों का ज्ञाता, (२) नाना देशवासी ।
'त्वं हीन्द्रावसे विवाचो
हवन्ते चर्षण्यः शूरसातौ'
ऋ. ६.३३.२
(३) विपरीत बोलने वाला ।
'यो वाचा विवाच'
अ. २०.७३.६
(४) विविध प्रकार का वाक् व्यवहार, शास्त्रार्थ ।
'पुरूतमं पुरूणाम्
स्तोतृणां विवाचि'
ऋ. ६.४५.२९
(५) विविध वेदवाणी (६) मिथ्या वाणी या कष्टदायी वचन कहने वाला ।
'बिभेद वलं नुनुदे विवाचः'
ऋ. ३.३४.१०; अ. २०.११.१०; मै.सं. ४.१४.५; २२२.१०
(७) विविध वेदवाणियों से स्तुति करने योग्य इन्द्र ।
'इरज्यन्त पच्छुरुधो विवाचि'
ऋ. ७.७३.२; अ. २०.१२.२.
(८) विपरीत या विधि वाणी बोलने वाला ।
'यो वाचा विवाचो मृधवाचः'
ऋ. १०.२३.५; अ. २०.७३.६
(९) विविध प्रकार की वाणी की आज्ञा (१०) विविध वाणियों के प्रयोग करने का अवसर अर्थात् संग्राम या स्तुति काल ।
'हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि'

विवाचनी- विविध वचनों को बोलने वाली ।
'अहमुग्रा विवाचनी'
ऋ. १०.१५९.२; आप.मं.पा. १.१६.२.

विवाचाः- भिन्न भिन्न भाषाओं एवं वाणियों को बोलने वाला जन समुदाय ।
'जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसम्'
अ. १२.१.४५.

विवावदत्- नाना प्रकार के ज्ञानोपदेश करता हुआ ।

'गोषेति विवावदत्'
अ. ९.४.११.

विवासति– परिचरति (परिचरण करता है) ।

विवाससि– परिचरसि, सर्वतः व्याप्नोसि (तू सर्वत्र व्याप्त होता है, परिचरण करता है ।

विवासेम– परिचरेम (परिचर्या करें) ।

विव्याधी– विशेष रूप से अस्त्रादि से प्रहार करने वाला ।
'मा नो विदन् विव्याधिनः'
अ. १.१९.१

विवक्वान् – (१) विविक्त, प्रकटमुक्त–दया.
(२) विवेकी ।
'प्र मे विविक्वाँ अविदन्ममीषाम्'
ऋ. ३.५७.१

विविच– (१) पदार्थों को पृथक् पृथक् विश्लिष्ट करने वाला– अग्नि, (२) सत् असत्, अर्थ अनर्थ, धर्म अधर्म का विवेक करने वाला ।
'होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम्'
ऋ. ५.८.३; तै.सं. ३.३.११.२; जै.ब्रा. १.६.४; श.ब्रा. १२.४.४.३; मा.श्रौ.सू. ५.१.२.१७

विविड्ढि– वि + धा + हि । अर्थ है –कर, विधान कर या जान ।
'जराबोध तद् विविड्ढि'
ऋ. १.२७.१०; साम. १.१५; २.१०१३; आश्व.श्रौ.सू. ९.११.४; नि. १०.८.
हे अग्नि, जो यह स्तुति मुझ से की जा रही है उसे जान ।
अथवा,
हे स्तुति से जगाए जाने वाले या हे देवों को होता रूप में होकर जगाने वाले अग्नि (जराबोध), यज्ञानुष्ठान की सिद्धि के लिए देवयजन रूप कर्तव्य को (तत्) कर ।

विविध्यन्ती– शत्रुओं को विधने वाली सेना ।
'नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२४; तै.सं. ४.५.४.१; मै.सं. २.९.३: १२३.१४; का.सं. १७.१३

विविद्वान् – विविध उपायों से प्राप्त करता हुआ ।
'महिक्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वान्'
ऋ. ३.३१.१५; तै.ब्रा. २.७.१३.३.

विविक्ति– विवेक ।
'विविक्त्यै क्षत्तारम्'
वाज.सं. ३०.१३

विविञ्चन्ति– पृथक् पृथक् कर देते हैं ।
'वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्'
ऋ. १.३९.५; तै.ब्रा. २.४.४.३

विविचि– न्यायपूर्वक विवेक करने वाला ।
'प्रवीरमुग्रं विविचं धनस्पृतम्'
ऋ. ८.५०.६

विवृत्– (१) खुले हृदय की स्त्री (२) विविध दशाओं, प्रजाओं और कार्यों में व्यवहार करने में समर्थ ।
'विवृदसि विवृते त्वा'
वाज.सं. १५.९

विवृत्त – (१) पांसे पलटता हुआ ।
'विवृत्ताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.३; मै.सं. ३.१२.३: १६१.३
(२) ४८ विभागों का प्रवर्त्तक राजा ।
'विवृत्तोऽष्टाचत्वा रिंशः'
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.४.५; श.ब्रा. ८.४.१. २५.

विवृक्णा– वि + वृश्च + क्त = विवृक्त । वेद में 'त' का 'ण' होने से विवृक्ण् । ब.व. में 'विवृक्णाः'
'स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा'
ऋ. १.३२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८५.१०; तै.ब्रा. २.५.४.३; नि. ६.१७
जैसे कुठार से (कुलिशेन) बिलकुल छिन्न भिन्न (विवृक्णा) वृक्ष की शाखाएं हों (स्कन्धांसि इव) ।

विवृश्चत् – छिन्न भिन्न करें ।
'विवृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः'
ऋ. १.६१.१०; अ. २०.३५.१०

विवृह– (१) दोष से रहित ।
'यमीर्यमस्य विवृहादजामि'
अ। १८.१.१०
(२) धा.। समूल नाश करना ।
'वि वृहामो विसल्पकम्'
अ. ६.१२७.३
(३) विवाह कर ।
'अन्येन मदाहनो याहि तूयं
तेन वि वृह रथ्येव चक्रा'
ऋ. १०.१०.८; अ. १८.१९; नि. ५.२.

हे बातों से मर्माहित करने वाली यमी, मेरे सिवा किसी अन्य के पास जा और उसके साथ विवाह कर (विवृह) ।

विवेद- जानाति (जानता है) ।

विवेनः - निरपेक्ष हो ।

'आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः'

ऋ. ५.३१.२

हे अश्ववाले इन्द्र, हमारे सम्मुख आ (आ प्रद्रुव) । हम से निरपेक्ष न हो (मा विवेनः)

विवेनतम् - वेन (कामना करना) के लोट् म.पु. द्वि.व. का रूप । अर्थ है-विगत काम हो ।

'नासत्या मा वि वेनतम्'

ऋ. ५.७५.७; ७८.१

हे प्रत्यक्षभूत नासत्य देवो, तुम दोनों विगत काम मत हो (मा विवेनतम्) ।

विवोचत् - विवक्ष्यति (कहेगा) । भविष्यत् अर्थ में लुङ् का प्रयोग हुआ है । यहाँ अट् का अभाव आर्ष है।

विबोधन- विविध ज्ञानों का साधन-मन, इन्द्रिय आदि ।

'अदाद् रायो विबोधनम्'

ऋ. ८.३.२२

विश् - विश् + क्विप् = विश् । प्र.ए.व में रूप है- विट् ।

अर्थ - (१) प्रजा । (२) यज्ञविमुख पुरुष (३) अधर्म द्वारा धनोपार्जन करने वाला व्यापारी ।

'चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्'

ऋ. ६.४७.१६; नि. ६.२२

इन्द्र या परमात्मा यज्ञ विमुख या अधर्म से द्रव्य कमाने वाले पुरुषों को (विशः) दण्ड देता है (चोष्कूयते) तथा यज्ञ करने वाले या विवेक वान् पुरुषों को (मनुष्यान्) पुण्यलोक में पहुंचाता है ।

आधुनिक अर्थ - (१) वैश्य, (२) प्रजा, (३) मनुष्य ।

विंशति- (१) पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, चार अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) और यह पूर्ण देह ।

'साकं पचन्ति विंशतिम्'

ऋ. १०.८६.१४; अ. २०.१२६.१४

(२) सूक्ष्म आभ्यन्तर तत्व और १० बाह्य स्थूल शक्तियाँ (३) २० वैकारिक तत्व ।

५ स्थूल भूत, ५ सूक्ष्मभूत, ५ कर्मेन्द्रिय और ५ ज्ञानेन्द्रिय ।

'द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च'

अ. ७.४.१; मै.सं. ४.६.२: ७९.६; तै.आ. १.११.८; आश्व.श्रौ.सू. ५.१८.५.

(४) द्विरावृत्ता दश द्विर्दश ।

(दो बार आवृत दस बीस है) । विंशतिः द्विर्दशतः (दो बार दस से बीस बना है) ।

'द्वि त्रि चतुर्भ्यः सुच्'

पा. ५.४.१८.

से द्वि का द्विः' और 'दश' से 'तसि' प्रत्यय कर 'दशतः' बना है ।

'पंचदशतौ वर्गे वा' पा. ५.१.६०

से 'दशत्' निपातन और 'द्वयोः दशतोः विन् शतिश्च' से द्वि का 'वित्' और दस का 'शति' होकर 'विंशति' वना है ।

अथवा - द्विदशन् + ति = द्विदशति = विंशति = विंशतिः । अर्थ है-बीस संख्य (५) १० आभ्यन्तर और १० बाह्य प्राण ।

संख्या के अर्थ में -

'आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङ्'

ऋ. २.१८.५

(६) प्रकृति के बीस विकार, जिसे मनन शील आत्मा की 'पर्शु' नामक कर्मशक्ति उत्पन्न करती है ।

(७) कार्योन्मुख सत्व, रजस्, तमस्, महत्तत्व, अहंकार, पांच स्थूलभूत, पांच सूक्ष्मभूत, चार अन्तःकरण और समष्टि देह में बीस विकार हैं ।

विशफ - (१) बिना सुर वाले पशु या बिना चरण वाले जैसे-सर्प आदि ।

'कर्शफस्य विशफस्य'

अ. ३.९.१

विशरीक- नाना प्रकार से पीड़ा देने वाला ।

'आशरीकं विशरीकम्'

अ. १९.३४.१०

विशल्य - बाणों से रहित तरकस ।

विशल्यो बाणवां उत'

वाज.सं. १६.१०

विशस्- विशेष प्रकार का उपदेश ।
पुनः स्तोमो न विशसे'
ऋ. १०.१४३.३

विशंसत- (१) स्तुति करो, उच्चारण करो ।
'मा चिदन्यद् वि शंसत'
ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१; साम. १.२४२; २.७१०; कौ.ब्रा. २३.१०; पंच.ब्रा. १५.१०.२; ऐ.आ. ५.२.४.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.१२.९; २१; ७.४.२; शां.श्रौ.सू. १२.३.२२; १८.८.११; वै.सू. ३१.१८; ४०.११; नि. ७.२.
ऐ मित्रो, परमेश्वर के सिवा और किसी के स्तोत्र का उच्चारण मत करो ।
(३) पूजा करो ।

विससन- (न.) रजस्वला होने के समय शरीर का फटना ।
'आशसनं विशसनम्'
ऋ. १०.८५.३५, अ. १४.१.२८; आप.मं.पा. १.१७.१०
(२) कन्या में पाई जाने वाली विशेष ढिठाई ।

विशस्ता- काल का विभाग करने वाला वर्ष-वत्सर ।
'एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता'
ऋ. १.१६२.१९; वाज.सं. २५.४२; तै.सं. ४.६.९.३; मा.श्रौ.सू. ९.२.४

विश्पतिः- (१) विश् (प्रजा) + पा + डति = विश्पतिः । विशां प्रजानां पालयिता (प्रजाओं का पालक) । मनुष्यों का पालक अग्नि,
(२) जार जो परस्त्री भोग करता है,
(३) प्रजा पालक ।
'रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्'
ऋ. १०.४.४.
मनुष्यों का पालक होकर अग्नि मानों आहुति रूपिणी युवती का बार बार आस्वाद लेता है ।
अथवा,
प्रजापालक होते हुए आचार्य ब्रह्म से मिलाने वाली ब्रह्मविद्या का निरन्तर आस्वादन करते हैं ।
(४) प्रजापालयिता सूर्य । दे 'अश्न' ।
अपश्यं विश्पति सप्तपुत्रम्'
प्रजाओं के पालयिता, सर्पण शील रश्मिरूपी पुत्रों से युक्त आदित्य को देखता हूँ ।

विश्पती- द्वि.व. । विश्पति का प्रथम द्विचवन में रूप । अर्थ है-(१) वायु और पूषा (सूर्य) क्योंकि ये दो प्रजापालक हैं ।
'आ विश्पतीव बीरिट इयाते'
ऋ. ७.३९.२; वाज.सं. ३३.४४; नि. ५.२८
अन्तरिक्ष में (बीरिटे) प्रजाजनों के पालक एवं रक्षक के रूप में वायु और पूषा (विश्पती) आते हैं (आ इयाते) ।

विश्पत्नी- (१) प्रजाओं की पालिका, (२) अपने में प्रवेश या संवेश अर्थात् सहवास करने वाले पति की पत्नी-धर्मपत्नी ।
'तस्यै विश्पत्न्यै हविः
सिनीवाल्यै जुहोतन'
ऋ. २.३२.७; अ. ७.४६.२; तै.सं. ३.१.११.४; मै.सं. ४.१२.६: १९५.७; का.सं. १३.१६
(३) सार्वजनिक सभा, (४) पृथिवी, (५) स्त्री, (६) गर्भ में प्रविष्ट प्रजा को भली भांति पालन करने में समर्थ स्त्री, (७) भीतर प्रविष्ट आत्मा या प्राण गण को पालिका या ग्राह्य विषयों तक जाने वाली बुद्धि या चेतना, (८) मन्थन दण्ड का विश्पत्नी नामक काष्ठ ।
'एतां विश्पत्नीमा भराग्निम्'
ऋ. ३.२९.१

विश्पला - विशः प्रजाः पाति अनेन इति विश्पला- प्रजापालिनी सेना विश्पं लाति या सा विश्पला ।
प्रजाओं के पालक को अपने ऊपर प्रभु रूप में स्वीकार करने में विशालसेना ।
'याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यम्
सहस्रमीढ आजावजिन्वतम्'
ऋ. १.११२.१०
जिन उपायों से ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाली (धनसाम्) कभी न मारी जाने वाली (अथर्व्यम्) प्रजाओं के पालक को अपने ऊपर प्रभु रूप में मानने वाली विशाल सेना या सेनापति को (विश्पलाम्) सहस्त्रों सुखों को प्राप्त कराने वाले संग्राम में (सहस्रमीढे आजौ) तृप्त करते हो (अजिन्वतम्) ।
पुनः-
'युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः'
ऋ. १०.३९.८

विश्पलावसू- (१) प्रजाओं को पालने वाले धन बल से सम्पन्न, (२) प्रजाओं को पालने और बढ़ाने वाले-अश्विद्वय (३) स्त्री पुरुष (४) अध्यापक उपदेशक (५) प्राण, अपान ।
'धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू'
ऋ. १.१८२.१

विश्य- (१) वैश्य, प्रजाजन में उत्तम धनवान् वैश्य
'अथो ये विश्यानां वधाः'
अ. ६.१३.१
(२) प्रजाओं में विद्यमान वैश्य जन ।
'रुचं विश्येषु शूद्रेषु'
वाज.सं. १८.४८; तै.सं. ५.७.६.४; मै.सं. ३.४.८: ५६.४
(३) प्रत्येक प्रजा का हितकारी परमेश्वर ।
'विश आ क्षेति विश्यो विशंविशम्'
ऋ. १०.९१.२

विश्रयन्ताम् - रहें -सा. (२) सेवन करें, ज.दे.श.
'व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्ताम्'
ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३; २०.२.३; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.६,नि. ८.१०.
व्याप्ति वाली, काफी चौड़ी द्वार या अग्नि ज्वालाएं या अनेक प्रकार के यज्ञों में वर्तमान अग्नि चौड़ी होकर रहें या हमें सेवन करें । (उर्विया वि श्रयन्ताम्) ।

विश्रयाते- विविध प्रकार से आश्रय लेती है ।
'या न ऊरु उशती विश्रयाते'
ऋ. १०.८५.३७
जो यह कामयमाना कामिनी विविध प्रकार से उरुओं का आश्रय लेती है (उरु विश्रयाते) ।

विश्व- विश्व धातु से सिद्ध । (१) जिसमें सभी प्राणी रहते हैं-विश्व, (२) समस्त प्राणिमात्र ।
'तद् विश्वमुप जीववति'
ऋ. १.१६४.४२; तै.ब्रा. २.४.६.१; तै.आ. १०.११.१
उस जल से समस्त प्राणि मात्र जीता है ।
(३) यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थः'
ऋ. १.१६४.२; अ. ९.९.२; १३.३.१८; नि. ४.२७
जिस काल में समस्त प्राणी अप्राणी मृत्यु प्राप्त करते हैं ।
(४) सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत् ।
'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः'
ऋ. १०.८६.१-२३; अ. २०.१२६.१-२३; का.सं. ८.१७; वै.सू. ३२.१७ ; नि. ११.३८,३९; १२.९,२८; १३.३,४
इन्द्र सबसे बढ़कर हैं-सा. यह आत्मा सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत् से बढ़कर है- ज.दे.श. ।
(५) भूतजात ।
आधुनिक अर्थ - संसार (६) समस्त नगर में प्रवेश करने वाला (७) देह में प्रवेश करने वाला आत्मा ।
'विश्वो ह्यन्यो अरि राजगाम'
ऋ. १०.२८.१; शां.श्रौ.सू. १८.४.७; ५.७

विश्वक- (१) विश्वस्य अनुकम्पकः दया. । सर्व हितकारी ।
(२) समस्त ।
'ता वां विश्वको हवते तनूकृथे'
ऋ. ८.८६.१-३

विश्वकद्रः- (१) कुद्राण + अङ् + टाप् = कद्रा । अर्थ है -कुत्सित गति । श्वभिः सह कद्रा । (कुत्तों के साथ कुत्सित गति या कुत्तों की सी कुत्सित गति) । विविधाः श्वकद्राः यस्य स विश्वकद्रः (वह पुरुष जो कुत्तों का जीवन व्यतीत करता हो) ।
तत् अस्मिन् अस्ति इति । विश्वकद्रः (अर्थात् जिसमें कुत्सित गति और कुत्सिततर गति दोनों हो वह विश्वकद्र' है) ।
(२) कुत्ता । श्वैव विश्वकद्राः
(३) शुनां कद्राः शवकद्राः विविधाः श्वकद्राः यस्य (कुत्तों की गति का नाम 'श्वकद्रा' है, जिसमें कुत्तों की विविध, गतियां वर्त्तमान हो वह ' विश्वकद्रा' है) ।
(४) कुत्तों की जितनी प्रकार की गतियाँ है वे सभी इसमें हैं - कुत्ता । लौकिक अर्थ-
..विश्वकद्रः त्रिषु खले ध्वान्तखेट शुनोः पुमान् ।
(५) अमर कोष में भी कहा है-श्वा विश्वकद्रुः मृगया कुशलः । ' द्रा' धातु कुत्सा गति का द्योतक है ।
'द्राति इति गति कुत्सना'
वीति चकद्र इति श्वगतौ भाष्यते (वि और चन्द्र कुत्तों की गति का पर्याय) है ।
कु + द्रा = कद्रा (कु का कत्) । 'विश्वकं

द्रवति' या ' विश्वं क्रन्दति' (सभी और दौड़ता या सभी का आह्वान् करता है) ।

विश्वकद्राकर्ष- विश्वकद्रम् आकर्षित (कुत्ते को खींचता है) । जो पैर में विकल से मृगया के पीछे चलने वाले श्वा (कुत्ते) को खींचता है । विश्वकद्र + अच् (मतुप् अर्थ में)= विश्वकद्र । अर्थ - खुशामदी । चापलूस या भिखमंगो को विश्वकद्र कहते हैं । उसी को खींचने वाला राजपुरुष विश्वकद्रा कर्ष है ।

विश्वकर्मा- (१)प्रकाश,वृष्टि आदि का कर्त्ता आदित्य, (२) प्रति शरीर में क्षेत्रफल रूप से वर्तमान परमात्मा ।

'विश्वकर्मा विमना आद्विहाया '

ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; मै.सं. २.१०.३:१३४.३,आश्व.श्रौ सू. ३.८.१; नि. १०.२६

प्रकाश, वृष्टि आदि का कर्त्ता आदित्य (विश्वकर्मा) अप्रतिहत प्रज्ञान् वाला (विमना) सर्वत्र व्याप्त एवं महान् (आद् विहायाः) ।

अथवा

प्रति शरीर में क्षेत्रज्ञ रूप में विद्यमान परमात्मा (विश्वकर्मा) सर्व प्रज्ञान महान्, पुण्य पाप के फलों का आपयिता (आद्विहायाः) । (३) धाता, (४) विधाता, (५) परमसंद्रष्टा, (६) सर्वप्रामि कर्त्ता प्राणवायु (९) सर्व सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर । आधुनिक अर्थ - विश्वकर्मा नामक देवता ।

(८) सर्वस्य कर्त्ता -

'यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा '

ऋ. १०.८१.२; वाज.सं. १७.१८; मै.सं. २.१०.२: १३३.७

(९) समस्त जगत् का कर्त्ता इन्द्र परमेश्वर ।

'विश्वकर्मा विश्वदेवो महां असि '

ऋ. ८.९८.२

विश्वकर्माऋषिः- (१) सब का द्रष्टा संचालक विश्वकर्मा प्रजापति ।

'विश्वकर्म ऋषिः '

वाज.सं. १३.५८; श.ब्रा. ८.१.२.९

विश्वकृत् - संसार का रचयिता ।

''वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः '

अ. ६.४७.१; मै.सं. १.३.३६:४२.८; का.सं. ३०.६

विश्वकृष्टयः- (१) सब प्रकार की कृषियों को उत्पन्न करने के कारण मरुत् ।

(२) समस्त विश्व को सद्गुणों से अपनी ओर आकर्षण करने वाले ।

'अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टयः '

ऋ. ३.२६.५; तै.ब्रा. २.७.१२.३

विश्वकृष्टिः- (१) समस्त मनुष्य, प्रजा ।

'अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीः '

ऋ. १.१६९.२

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र, तेरे समस्त मनुष्य प्रजाओं को उत्तम कार्य में प्रेरित करें ।

(२) सब मनुष्यों का हितकारी, सब का नेता, संचालक, समस्त मनुष्यादि प्रजाओं का स्वामी ।

(३) बहुतों से संचालन करने योग्य ।

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिः '

ऋ. १.५९.७; ३.१.९.१; का.श्रौ.सू. ९.३.२१.

विश्वगूर्त - (१) सर्वस्तुत्य ।

'इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसम् '

ऋ. ८.७०.३; अ. २०.९२.१८; साम. १.२४३; २.५०.५

(२) सबका उपदेष्टा परमेशवर इन्द्र, (३) समस्त ऐश्वर्यों कोअपने वश में कर लेने वाला, (४) सब की स्तुतियों का पात्र ।

'स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः '

ऋ. १.६१.९; अ. २०.३५.९; तै.सं. २.४.१४.२; मै.सं. ४.१२.२: १८१.१२; का.सं. ८.१७

विश्वगूर्ती- सब प्रकार के उद्यम करने में लगे स्त्री पुरुष ।

'स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति '

ऋ. १.१८०.२

विश्वगोत्र्य- (१) समस्तजनों का बन्धु, (२) समस्त श्रोत्र या वंश के प्रति एक समान ।

'वानस्पत्यः संभृत उस्त्रियाभिः विश्वागोत्र्यः '

अ. ५.२१.३

विश्व चन्द्रः- समस्त संसार को आह्लाद देने वाला ।

'अहमेता मनवे विश्वचन्द्राः
सुगा अपश्चकार वज्रबाहुः '

ऋ. १.१६५.८; मै.सं. ४.११.३: १६९.६; का.सं. ९.१८; तै.ब्रा. २.८.३.६

विश्वचया- (१) सब प्रकार के रोगों को संचय करने वाली निद्रा आलस्य (२) विश्व का चमन

करने वाला प्रभु ।
'बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया.अपश्यत्'
अ. १९.५६.२

विश्वचर्षणिः- (१) समस्त प्रजा का दुष्टा (५) रक्षा के निमित्त सब पर दृष्टि रखने वाला । परमेश्वर या राजा ।
'स वाजं विश्वचर्षणिः
अर्वद्भिरस्तु तरुता'
ऋ. १.२७.९; साम. २.७६७
वह समस्त प्रजाओं का द्रष्टा रक्षार्थ सब पर दृष्टि रखने वाला तुरंग बलों से संग्राम को पार करने वाला ।

विश्वजन्यः(१) समस्त जनों का हितकारी ।
'तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्यः'
ऋ. १०.६७.१; अ. २०.९१.१
(२) विश्व + जन + यत् 'विश्वस्मैं जनाय हितम्' सर्वजनहितकारक सूर्य ।
'उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यम्'
ऋ. ७.७६.१; नि. ११.१०
अमृतत्वसाधक सर्वजनहितकारक (विश्वजन्यम्) सूर्य (ज्योतिः) ऊपर उठता है । (उत् उ) ।
हितकारी के अर्थ में -
'सत्रा मदासस्त विश्वजन्याः'
ऋ. ६.३६.१; ऐ.ब्रा. ५.८.३

विश्वजन्या- (१) समस्त जनों की हितकारिणी वाणी ।
'वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम्'
ऋ. ३.५७.६
(२) पैदा करने वाली मेघमाला । (३) समस्त ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली ।
'त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या
रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः'
ऋ. १.१६९.८; मै.सं. ४.४.१३: २३७.२
पुनः-
'त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्याम्'
ऋ. ७.१००.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

विश्वजनीन - समस्त जनों का हितकारी ।
'राज्ञो विश्वजनीनस्य'
अ. २०.१२७.७; गो.ब्रा. २.६.१२; शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.१.
'जनाद् विश्वजनीनात्'
अ. ७.४५.१; कौ.सू. ३६.२५.

विश्वजित्- (१) एक वैदिक यात्रा ।
'विश्वजिच्चाभिजिच्च यः'
अ. ११.७.१२
(२) सर्वविजयी राजा, (३) परमेश्वर,
'विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि'
अ. ६.१०७.३
(४) समस्त विश्व को जीतने वाला इन्द्र ।
'विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते'
ऋ. २.२१.१; कौ.ब्रा. २५७; २६.१६; शां.श्रौ.सू. १८.१७.३

विश्वतः- (१) सर्वतः सर्वदा ।
'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो
अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः'
ऋ. १.८९.१; वाज.सं. २५.१४; का.सं. २६.११
(२) सब प्रकार से ।
घहसघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्
पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः'
ऋ. ६.७५.१४; वाज.सं. २९.५१; तै.सं. ४.६.६.५; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.५; का.सं. (अश्व). ६.१; नि. ९.१५.
हस्तघ्न धनुर्धारी को सब प्रकार से रक्षा करे जैसे सभी प्रज्ञानों के ज्ञाता विद्वान् ।
(३) सर्वतः ।
'यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि'
ऋ. १.९४.७
हे अग्नि, तू सर्वतः शोभन दर्शन एवं समान रूप में देखा जाता है ।

विश्वतस्पाणिः(१) जिसके सर्वत्र हाथ है - परमेश्वर, सूर्य ।
'विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः'
अ. १३.२.२६

विश्वतस्पृथ- सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर, सूर्य ।

विश्वतस्पृथु- सब प्रकार से विस्तृत ।
'गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः'
ऋ. ८.९८.४; अ. २०.६४.१; साम. १.३९३; २.५९७

विश्वतुर्- (१) सब शत्रुओं का नाशक (विश्वतूः) (२)सेवकों को शीघ्र से शीघ्र कार्य करने में समर्थ ।

'सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि'
ऋ. १.४८.१६
हे उषा, तू हमें समस्त शत्रुओं के नाशक एवं सेवकों को शीघ्र से शीघ्र कार्य करने में समर्थ धन और प्रकाश तेज प्रभाव से युक्त कर (विश्वतुरा द्युम्नेन)।
(३) सब प्रकार से नाश करने वाला।
'अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि'
ऋ. ८.९९.५; अ. २०.१०५.१; साम. १.३११; २.९८७; वाज.सं. ३३.६६
(४) सब शत्रुवर्ग का नाशक (५) समस्त विश्व का चालक

विश्वतूर्ति- (१) समस्त जनों को अति शीघ्र ले जाने या कार्य करने वाली, (२) स्वयं शीघ्र कार्य करने वाली सरस्वती या अर्द्धाङ्गिनी।
'इडा देवी भारती विश्वतूर्तिः'
ऋ. २.३.८; वाज.सं. २०.४३; मै.सं. ३.११.१: १४०.११; का.सं. ३८.६; तै.ब्रा. २.६.८.४
(३) समस्त कार्यों को बिना विलम्ब अति शीघ्रता से करने में समर्थ।

विश्वतोदावा- (१) सबका संहार करने वाला। या (२) सबको दान करने वाला,
'विश्वतो दावन्विश्वतो न आ भर'
साम. १.४३७; ऐ.आ. ५.२.२.१३; शां.श्रौ.सू. १८.१५.५.

विश्वतोधारः यज्ञः- (१) सब ओर से सबको धारण करने वाला यज्ञ (२) यज्ञस्वरूप प्रभु।

विश्वतोधीः- (१) सर्वतोभावी बुद्धि या प्रतिभा वाला, (२) सर्वगामी कर्म-सामर्थ्य से सम्पन्न।
'विश्वतोधीर्न ऊतये'
ऋ. ८.३४.६

विश्वतोमुख- (१) सब ओर मुख वाला परमेश्वर-सूर्य।
'यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखः'
अ. १३.२.२६; मै.सं. २.१०.२: १३३.८; का.सं. १८.२
(२) सब ओर से प्रकाशमान सूर्य
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन्'
अ. १९.२७.७
(३) सर्वतोमुख अपामार्ग (चिचिरा)
(४) सर्वशरीर में व्याप्त होने वाला -प्राण।
'त्वया तद् विश्वतोमुख'
अ. ७.६५.२
(५) सर्वव्यापी तथा अन्तर्यामित्व के कारण सर्वोपदेष्टा - दया.।
'त्वं हि विश्वतोमुख'
ऋ. १.९७.६

विश्वतोवीर्या- सब प्रकार के बलों वाली।
'वीरुद् वो विश्वतोवीर्या'
अ. ६.३२.२

विश्वथा- विश्व + थाल् (स्वार्थ में) = विश्वथा।
(१) विश्वेषामिव, सर्वेषां ऋषीणां ऋषिपुत्राणां वा इव।
(सभी ऋषियों या ऋषि पुत्रों के सदृश), (२) सभी की अनुमति के अनुकूल या सभी प्रजाओं की अनुमति के अनुकूल -दया. (३) सभी ऋषियों के मनोरथों को जैसे पूर्ण किया उसी तरह-सा.
'तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथ'
ऋ. ५.४४.१; वाज.सं. ७.१२; तै.सं. १.४.९.१; मै.सं. १.३.११: ३४.४; का.सं. ४.३; कौ.ब्रा. २४.९; श.ब्रा. ४.२.१.९; नि. ३.१६.
(४) सम्पूर्ण संसार के सदृश, (५) सर्वस्व के तुल्य

विश्वदर्शत- (१) सबका दर्शनीय।
'दर्शं नु विश्वदर्शतं
दर्शं रथमधि क्षमि'
'एता जुषत मे गिरः'
ऋ. १.२५.१८
इस पृथ्वी पर सबके दर्शनीय (विश्वदर्शत) रथ पर चढ़े महारथी महाराजा या सूर्य के समान तेजस्वी परम रसस्वरूप आनन्दमय परमेश्वर को पुनः पुनः दर्शन करने के लिए इन वेदवाणियों का सेवन कर।
(२) विश्व का द्रष्टा, सब को दर्शनीय सूर्य।
'तरणिर्विश्वदर्शतः'
ऋ. १.५०.४; अ. १३.२.१९; २०.४७.१७; आ.सं. ५.९; वाज.सं. ३३.३६; तै.सं. १.४.३१.१; मै.सं. ४.१०.६: १५८.१२; ४.१२.४: १९०.१२; का.सं. १०.१३; तै.आ. ३.१६.१; आश्व.श्रौ.सू. ९.८.३; शां.श्रौ.सू. ३.१८.६; आप.श्रौ.सू. १६.१२.१.

(३) सब प्रकार से और सब के लिए दर्शनीय।
'गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः'
ऋ. १०.१४६.५

विश्वदानीम् – अ. । सदैव निरन्तर ।
'अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीम्'
ऋ. १.१६४.४०; अ. ७.७३.११; ९.१०.२०; का.श्रौ.सू २५.१.१९; आप.श्रौ.सू. ९.५.४; १५.१२.३; नि. ११.४४.
'तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम्'
अ. १८.३.५४
'विश्वदानीं सुमनसः स्याम'
ऋ. ६.५२.५

विश्वदाव्यः– समस्त जगत् में वन में अग्नि के समान, कर्मबन्धन के दाहक रूप में विद्यमान–वैश्वानर अग्नि ।
'वैश्वानर उत विश्वदाव्यः'
अ. ३.२१.३; का.सं. ४०.३

विश्वदृष्टः– (१) सब की दृष्टि में आने वाला (२) स्वयं सब कुछ देखने वाला ।
'अदृष्टा विश्वदृष्टाः' '
ऋ. १.१९१.५,६

विश्वदेवः– (१) सब किरणों का स्वामी सूर्य ।
'दृढो नक्षत्रो उत विश्वदेवः'
ऋ. ६.६७.६
(२) सब देवों का देव, (३) सब का दाता, (४) सबका प्रकाशक– इन्द्र परमेश्वर ।
'विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि'
ऋ. ८.९८.२; २०.६२.६; साम. २.३७६

विश्वदेव्य– (१) पृथिव्यादि विश्वदेवों में हुआ अग्नि–दया.
(२) सब दिव्य पदार्थों में व्यापक,
(३) सब ज्ञानेच्छु विद्यार्थियों के हितकारी आचार्य
(४) सब देवों का आश्रय ।
'प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्यः'
ऋ. १०.९२.१३

विश्वदेवनेत्र – (१) ऋतुओं के समान नेता वाला राजपुरुष । (२) विद्वान् प्रजा या प्रजापति को प्रमुख मानने वाला ।
'विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात् सद्भ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३५; श.ब्रा. ५.२४.५.

विश्वदेववान् – (१) समस्त देवों में युक्त बृहस्पति, (२) समस्त विद्वान् पुरुषों से युक्त वेदज्ञपुरुष ।
'बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु'
अ. १९.१८.१०

विश्वदेव्यः– समस्त विजयी, व्यवहार कुशल, अपने चाहने वाले तथा विद्वान् पुरुषों में सर्व श्रेष्ठ और उनका हितकारी (२) विश्वदेवों का
'एषच्छागःपुरो अश्वेन वाजिना'
पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः
ऋ. १.१६२.३; वाज.सं. २५.२६; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१ : १८१.११; का.सं. (अश्व.) ६.४. छाग का अर्थ जयदेव शर्मा ने शत्रुओं का छेदन करने वाला शस्त्रविद्या और युद्ध में निपुण तथा राष्ट्र को भिन्न भिन्न भागों में बांटने वाला किया है । इस शब्द का दूसरा अर्थ बकरा भी है ।
(३) समस्त देवों या विद्वानों का हितकारी ।
'आसवं विश्वदेव्यम्'
वाज.सं. २२.१४

विश्वदोहस्– (१) समस्त ऐश्वर्यों का दोहन करने वाली, (२) सब के लिए दूध देने वाली गौ ।
'धेनूरिव मनवे विश्वदोहसः
जनाय विश्वदोहसः'
ऋ. १.१३०.५
समस्त ऐश्वर्यों को दोहन करने वाली दुधार गौओं के समान मननशील प्रजाजन के लिए सब प्रकार के ऐश्वर्यों को पूर्ण समृद्ध करने वाली गौ ।
'धेनुं च विश्वदोहसम्'
ऋ. ६.४८.१३

विश्वध– (१) सब प्रकार से ।
'त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्याः'
ऋ. १.१७४.१०
(२) समस्त राष्ट्र को धारण करने वाला इन्द्र, परमेश्वर ।
'त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै'
ऋ. १.६३.८
हे समस्त राष्ट्र को या सब को धारण करने वाले (विश्वध) तू इस पृथ्वी पर अपने को अन्न के समान (ऊर्जं न) समर्पित कर (क्षरध्यै) ।

विश्वधा– (१) विश्व को धारण करने वाला (२)

आत्मा को धारण करने वाला जीव । विश्व का अर्थ आत्मा भी है ।
'मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे'
ऋ. १.१४१.६
आत्मा को धारण करने वाला जीव (विश्वधा) स्तुति योग्य, (शंसम्) उत्तम मरणशील देह को (मर्तम्) धारण पोषण के लिए (धायसे) प्राप्त करता है ।

विश्वधायः– (१) समस्त विश्व तथा जीवगण का धारक पोषक–परमेश्वर ।
'देवो न यः पृथिवीं विश्वधायाः'
ऋ. १.७३.३
अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसम्'
ऋ. २.१७.५
'इमां च नः पृथिवीं विश्वधायाः'
ऋ. ३.५५.२१

विश्वधाया – विश्व की पोषिका समस्त प्रजाओं को धारण करने वाली पृथिवी ।
'अदितिरसि विश्वधाया
विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री'
वाज.सं. १३.१८; तै.सं. ४.२.९.१; मै.सं. २.८.१४: ११७.१६; का.सं. ३९.३; श.ब्रा. ७.४.२.७

विश्वधावीर्य – सब प्रकार के वीर्यवाली ओषधि ।
'तक्मानं विश्वधावीर्य'
अ. ५.२२.३; १९.३९.१०
(२) सब प्रकार के वीर्य को धारण करने वाला वैद्य ।

विश्वधेना– सब को तृप्त करने वाली ।
'प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः'
ऋ. ४.१९.२

विश्वनाम्नी– (१) परमेश्वर को प्राप्त होने वाली चितिशक्ति (२) अनेकनामों वाली गौ। गौ के अनेक नाम कहे गए हैं ।
'संहिता विश्वनाम्नीः'
अ. ७.७५.२
'चित् असि, मनासि, धीरसि,
रन्ती रमतिः, सूनुः, सूवरी,
इत्युच्चैरूपह्वयै सप्तमनुष्य गवीः'
– आप.श्रौ.सू.
इडे रन्तेऽदिते सरस्वति प्रिये प्रेयसि महि विथुते इत्येतानि ते अघ्न्ये नामानि ।
– तै.ब्रा.
'इडे, रन्ते, हव्ये, काम्ये, चन्द्रे, ज्योते, अदिति, सरस्वति, महि, विश्रुति
एता ते अघ्न्ये नामानि'
वाज.सं. श.ब्रा. ४.५.८.१०

विश्वप्स्न्यः– (१) समग्र रूपों में व्याप्त अग्नि आदि तत्व ।
'रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत्'
ऋ. ७.४२.६
(२) विशेष उत्तम रूप वाला ।
'अभियद् वां विश्वप्स्न्यो जिगाति'
ऋ. ७.७१.४
(३) समस्त विश्व का पालन ।
'विश्वप्स्नाय प्रभरन्तभोजनम्'
ऋ. २.१३.२
(४) सब प्रकार का ।
'विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन्'
ऋ. ८.९७.१५

विश्वपिश् – (१) नाना रूपों का ।
'याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन'
ऋ. ७.७५.६
(२) सर्वांगसुन्दर जन (३) संसार का अवयव भूत–मरुत् वायु ।
'आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः'
ऋ. ७.५७.३

विश्वपेशस्– (१) समस्त सुन्दर रूपों से युक्त, (२) नाना रूपों का ।
'सं नो राया बृहता विश्वपेशसा'
ऋ. १.४८.१६
हे उषा के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाली विदुषी स्त्री ! तू हमें बड़े अधिक परिमाण वाले नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से हमारी वृद्धि कर ।

विश्वभराः– समस्त विश्व का भरण भोषण करने वाला, अग्नि–परमेश्वर ।
'होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्'
ऋ. ४.१.१९

विश्वभानु– सब तेजों और प्रकाशों को धारण करने वाला ।
'मरुत्सु विश्वभानुषु'
ऋ. ४.१.३; ८.२७.३

विश्वभ्राट् – समस्त विश्व का प्रकाशक सूर्य ।
'विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृशः'
ऋ. १०.१७०.३; साम. २.८०५; कौ.ब्रा. २५.५.

विश्वं भुवनम् – समस्त प्राणिमात्र ।
'स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे'
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. ४६.
वह वायु समस्त प्राणिमात्र को अनुग्रह की दृष्टि से देखता है ।

विश्वभृत– सब का भरण पोषण करने वाला ।
'विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा'
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.२०

विश्वभेषजः– (१) सब रोगों एवं पीड़ाओं की एक मात्र ओषधि शंख ।
'शंखो नो विश्वभेषजः'
अ. ४.१०.३
(२) सब रोगों को नष्ट करने वाला ओषधि कुष्ठ ।
'स कुष्ठो विश्वभेषजः'
अ. १९.३९.५; ८
(३) महौषधि, (४) ब्रह्मचर्य
'अयं नो विश्वभेषजः'
अ. २.४.३

विश्वभेषजी – (१) समस्त कष्टों का निवारण करने वाली ।
'आभारिषं विश्वभेषजीम्'
अ. ६.५२.३
(२) समस्त दुःखों को दूर करने वाला– जल का विशेषण ।
'आपश्च विश्वभेषजीः'
ऋ. १.२३.२०; तै.ब्रा. २.५.८.६; आप.श्रौ.सू. ८.८.७.

विश्वभोजः– (१) समस्त विश्व या राष्ट्र का पालन करने वाला ।
'पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजाः'
ऋ. ५.४१.४
(२) समस्त भोग्य पदार्थों का आश्रयभूत –पृथिवी ।
'ध्रुव आरोह पृथिवीं विश्वभोजसम्'
अ. १८.४.६.

विश्वभोजसा – द्वि.व. । समस्त विश्व के पालक –जल और अग्नि तत्व ।
'स योजते अरुषा विश्वभोजसा'
ऋ. ७.१६.२; साम. २.१००; वाज.सं. १५.३३; तै.सं. ४.४.४.४

विश्वभोजाः – (१) समस्त विश्व का पालन करने वाला या सबके भोजन करने योग्य–अन्न ।
'इषं च विश्वभोजसम्'
ऋ. ६.४८.१३
(२) समस्त विश्व को अन्न देने वाला सामर्थ ।

विश्वम्भर– समस्त संसार का भरण भोषण करने वाला–परमात्मा ।
'विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा'
अ. २.१६.५

विश्वभरा– विश्व को भरण पोषण करने में समर्थ ।
'पुरीष्योऽसि विश्वभराः'
वाज.सं. ११.३२; तै.सं. ४.१.३.२; श.ब्रा. ६.४.२.१.

विश्वमनाः– (१) सर्वव्यापक, (२) कामना न करने वाला, (३) विशव में निमग्न मन वाला ।
'दामानं विश्वचर्षणे
अग्नि विश्वमनो गिरा'
ऋ. ८.२३.२

विश्वमिन्वः– यः सर्वं विज्ञानम् इन्वति –व्याप्नोति (विश्वव्यापी अधिकार) । (२) सर्वज्ञानमय ।
'इन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय'
अ. २०.३५.४; ऋ. १.६१.४
(३) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाला (४) सब प्रकार की बाधाओं और बाधक शत्रुओं का नाशक ।
'धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वः'
ऋ. २.४०.६; मै.सं. ४.१४.१: २१५.५; तै.ब्रा. २.८.१.६

विश्वमिन्वा– विश्वं हविः + इन् (व्याप्ति अर्थ में प्रयुक्त) + अण् = विश्वमिन्व । 'हवि' धातु के इ का इत् होने से नुम् ।
(१) सर्वस्य प्रीणयत्र्य (सब को प्रसन्न करने वाली)
(२) सारे जगत् को चलाने वाली गतिशील या सेनादि निवारक यज्ञाग्नि ।
(३) सभी यज्ञों की सामग्रियों के द्वार से होकर जाने देने वाली,
(४) द्वार या अग्नि ज्वाला का विशेषण ।
'देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वाः'

ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३; २०.२०२.४; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१०
यज्ञ मण्डल की द्वार रूपी देवियाँ या अग्नि ज्वालाएं रूपी द्वार, तुम सभी को प्रसन्न करने वाली या सभी यज्ञ की सामग्रियों को द्वार से होकर जाने वाली हो या अनेक गुणों वाली एवं सारे जगत् को चलाने वाली गति शील या रोगादि विनाशक हो ।

विश्वमिन्वे- द्वि.व. । एक वचन में 'विश्वमिन्वा' । अर्थ-(१) समस्त विश्व को अन्नादि से सन्तुष्ट, प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले-रोदसी द्यावा पृथिवी, (२) स्त्री पुरुष
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे
ऋ. ३.३८.८

विश्वमेजय- विश्वम् + एजय । विश्व का संचालक प्रभु ।
'पवस्व विश्वमेजय'
ऋ. ९.३५.२; ६२.२६

विश्वयत्- (१) विविधरूपों में फैलने वाला, (३) विविध प्रकार से शोथ प्रकट करने वाला रोग (३) विषादि पदार्थ (४) विश्व को बनाने वाला प्रधान प्रकृति तत्व ।
'कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गन्'
ऋ. ७.५०.१

विश्वरूप- (१) नाना विधरूपः (नाना रूपों वाला) । (२) सर्वरूपः (सभी रूपों वाला)
(३) अग्नि, (४) सूर्य
'स ओषधीः पचति विश्वरूपाः'
ऋ. १०.८८.१०; नि. ७.२८
(५) अनेक प्रकार का । (६) सभी जीवों का त्वष्टा सविता नामक मध्यम देव का विशेषण ।
'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः'
ऋ. ३.५५.१९; १०.१०.५; अ. १८.१.५; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. १३.४.२; नि. १०.३४.

विश्वरूपः त्वाष्ट्र- (१) देहमय विश्वरूप (२) आत्मा के रूप से युक्त देह ।
'त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनाम्'
ऋ. १०.८.९

विश्वरूप वाज- पूर्ण वेदमय ज्ञान ।
'यदा वाजमसनद्विश्वरूपम्'
ऋ. १०.६७.१०; अ. २०.९१.१०; मै.सं. ४.१२.१: १७८.१

विश्वरूप - (१) समस्त विश्व को रूप देने वाली, ब्रह्माण्ड का कर्ता विश्वरूप परमात्मा (२) नाना रूपों में उत्पन्न सृष्टि ।
'विश्वरूप्यं त्रिसु योजनेषु'
ऋ. १.१६४.९; अ. ९.९.९

विश्वरूपा - (१) नाना प्रकार से सब पदार्थों को बनाने वाली गृहपत्नी ।
'विश्वरूपां सुभगाम्'
अ. ६.५९.३
(२) अनेक रूपों वाली पृथिवी-दया. ।
(३) सब प्रकार की प्रजा ।
(४) सब संसार के पदार्थों को प्रकट करने वाली वेदवाणी ।
'बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत'
ऋ. १.१६१.६
(५) सभी प्रकार के प्राणी ।
'ताव विश्वरूपाः पशवो वदन्ति'
ऋ. ८.१००.११; तै.ब्रा. २.४.६.१०; पा.गृ.सू. १.१९.२; नि. ११.२९
उस वाणी को सभी प्रकार के जीव बोलते हैं ।
(६) जो विश्व में दर्शनीय व्यक्ति है ।
'ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपाः'
अ. २.३४.४; ३.१०.६; तै.आ. ३.११.११, १२; आश्व.श्रौ.सू. २.२.१७; आप.श्रौ.सू. ६.५.७; मा.श्रौसू. १.६.१.१५; साम.मं.ब्रा. २.२.१४; हि.गृ.सू. २.१७.२
(७) सब प्रकार से सब अंगों में रूपवती कन्या ।
'कन्यानां विश्वरूपाणाम्'
अ. २.३०.४

विश्वव्यचा- (१) संसार में फैला हुआ (२) जगत् प्रसिद्ध ।
'विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्'
अ. १२.३.१९; ५३.
(३) सर्वव्यापक आकाश ।
'विश्वव्यचाश्चर्मौषधयः'
अ. ९.७.१५
(४) समस्त विश्व में फैलने वाला अधिकारी ।

'अयं पश्चाद् विश्वव्यचाः'
वाज.सं. १३.५६; १५.१७; तै.सं. ४.३.२.२; ४.३.१; ५.२.१०.४; मै.सं. २.७.१९: १०४.६; का.सं. १६.१९; २०.९; श.ब्रा. ८.१.२.१; ४.२; ६.१.१८.

विश्ववारः- (१) विश्वं वृणीते संभाजयति (संसार को अनेक प्रकार सिद्ध करने वाला परमेश्वर)।
(२) सबसे वरण करने योग्य।
'तं त्वां वयं विश्ववरा
आ शास्महे पुरुहूत'
ऋ. १.३०.१०
(३) सर्वस्पृहणीय (४) सब दुःखों को वारण करने वाला महान् विद्या धन।
'अस्मे प्रयन्धि मघवन् ऋजीषिन्'
'इन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः'
ऋ. ३.३६.१०; पा.गृ.सू. १.१८.५;
हे धनवाला, सोमरस वाला या सरल स्वभाव वाला विद्वान् या इन्द्र, सर्वस्पृहणीय प्रचुर धन या सब दुःखों को दूर करने वाले महान् विद्याधन को हमें दें।
(५) सबसे वरण करने योग्य (६) सब कष्टों का वारक -अग्नि या परमेश्वर।
'समक्तुभिरज्यते विश्ववारः'
ऋ. ३.१७.१; तै.ब्रा. १.२.१.१०; आप.श्रौ.सू. ५.६.३

विश्ववारा - (१) सभी उत्तम गुणों से अलङ्कृत पत्नी।
'तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे'
अ. ७.२०.४; ७९.१
(२) सब कष्टों को कारण करने वाली युद्ध कारिणी शक्ति
विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो'
ऋ. ६.२२.११; अ. २०.३६.११
(३) समस्त गुणों से सम्पन्न शुभांगी।
(४) सब में वारण करने या सेवन करने योग्य-उषा
(५) सब उत्तम पदार्थों में या सुखों को चाहने वाली स्त्री।

विश्वविद्- (१) जगत् के सब पदार्थों का ज्ञाता।
(२) सब पदार्थों का ज्ञान कराने वाला।
'त्वं समुद्रो असि विश्ववित् कवे'
ऋ. ९.८६.२९

विश्वविद् वाक् - समस्त संसार का ज्ञान कराने वाली वाणी।

विश्ववेदस्- (१) विश्व का धन, (२) सर्वधन, (३) सर्वज्ञ,
(४) अग्नि।
'यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसम्'
ऋ. १.१४३.४
जिस विश्वधन अग्नि को भृगओं ने प्रेरित किया।
(५) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी।
'स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः'
ऋ. १.८९.७; साम. २.१२२५; वाज.सं. २५.१९; मै.सं. ४.९.२७: १४०.१; का.सं. ३५.१; तै.आ. १.१.१; २१.३; १०.१.९; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१.

विश्वशम्भुः - (१) विश्व का कल्याण करने वाला अग्नि।
'अग्निं च विश्वशंभुवम्
आपश्च विश्वभेषजीः'
ऋ. १.२३.२०
वह सोम ही जलों में समस्त जगत को सुख शान्ति देने वाले अग्नि को भी जलों के भीतर बतलाता है और जलों को ही समस्त दुःखों को दूर करने वाला बतलाता है।
(२) सब का कल्याण करने वाला।
'विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा'
ऋ. १०.८१.७; वाज.सं. ८.४५; १७.२३; तै.सं. ४.६.२.६; मै.सं. २.१०.२; १३३.१९; का.सं. १८.२; २१.१३, ३०.५; शा.ब्रा. ४.६. .५.

विश्वशम्भुना- द्वि.व.। विश्व का कल्याण करने वाले द्यावा पृथिवी या पति पत्नी।
'तेहि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवा'
ऋ. १.१६०.१; ऐ.ब्रा. ४.१०.११; ३२.४; कौ.ब्रा. १९.९; २०.३; २१.२.२२.२; २५.९; आश्व.श्रौ.सू. ६.५.१८; शां.श्रौ.सू. १८.२२.५

विश्वशम्भू- सबके लिए सुखशान्ति, का उत्पन्न स्थान।
'वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः'
अ. ६.४७.१; का.सं. ३०.६

विश्वश्चन्द्रः- (१) सर्वाह्लादक, (२) सर्वचयनीय, (३) वर्धनीय जल का विशेषण होकर आया है।

विश्वश्चन्द्रा- (१) सबको आह्लादित करने वाली,

(२) सब प्रकार के धन सुस्वादि से समृद्ध विद्या या प्रजा ।
'प्र सध्रीचीरसृजद् विश्वश्चन्द्राः '
ऋ. ३.३१.१६

विश्वशारदः- (१) समस्त आयु भार लगा हुआ दुःख, रोग या शत्रु ।
'तक्मानं विश्वशारदम् '
अ. ९.८.६; १९-३४.१०
(२) सब वर्षों या ऋतुओं में होने वाला ज्वर ।

विश्वश्रुष्टिः- (१) श्रु + क्तिन् = श्रुष्टि । विश्वाः = श्रुष्टयः त्वरिता गतयः यस्य सः ।
(२) सब श्रवण योग्य उपदेशों का जानने वाला, (३) समस्त राज्य कार्यों का कर्त्ता, (४) समस्त अन्न धन आदि का स्वामी ।
'विश्वश्रुष्टिः सखीयते '
ऋ. १.१२८.१
समस्त श्रवण योग्य उपदेशों का जानने वाला विद्यार्थी को अपना सखा या मित्र बना लेता है ।
अथवा,
समस्त राज्य कार्यों का कर्त्ता समस्त अन्न या धन आदि का स्वामी होकर सबका मित्र होना चाहे ।

विश्वस्यदूतः- (१) सभी का दूत- अग्नि । अग्नि देवताओं का हवि पहुंचाता है अतः वह विश्व दूत है ।
(२) विश्व का उपदेशक-
'प्रिय चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं
विश्वस्य दूतममृतम् '
ऋ. ७.१६.१; साम. १.४५.; २.९९; वाज.सं. १५.३२; तै.सं. ४.४.४.४; मै.सं. २.१३.८:१५७.४; का.सं. ३९.१५
प्रिय अत्यन्त चेतना वाले, पर्याप्त बुद्धि वाले, यज्ञ को सुशोभित करने वाले, सभी के दूत एवं अमर धर्म, वाले अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ ।
अथवा,
हितकर, आर्य, हिंसा रहित शुभकर्म करने वाले संसार को अनर्थों से बचाने वाले विश्व के उपदेशक को (विश्वस्यदूतम्) स्वीकार करता हूँ ।

विश्वस्य भुवनस्य राजा- (१) सम्पूर्ण भूतजात या उदक का राजा, वरुण या परमात्मा ।
'तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा
यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम '
ऋ. ५.८५.३; नि. १०.४
समस्त भूतजात, या उदक के राजा वरुण ने मेघ को रोदसी और अन्तरिक्ष में पसार दिया जैसे पटाने वाला भूमि को तरह तरह से यव बोने के लिए सींचता है (वृष्टः यवं न भूम व्युनत्ति) ।

विश्वसामा- (१) समस्त विश्व में समान रूप से व्यापक-सूर्य, (२) सबके प्रति समान रूप से न्यायी राजा ।
'संहितो विश्वसामा सूर्यः '
वाज.सं. १८.३९; तै.सं. ३.४.७.१; मै.सं. २.१२.२; १४५.३; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.८.
(२) समस्त सामों, गायनों को जानने वाला, (३) समस्त पुरुषों द्वारा किए प्रार्थना वचनों को स्वीकार करने वाला । (३) सबके प्रति प्रिय मधुर वचनों का प्रयोग करने वाला ।
'प्र विश्वसामन् अत्रिवत् '
ऋ. ५.२२.१

विश्वसुविद् - (१) समस्त उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली -भूमि ।

विश्वसू- समस्त धनों को धारण और उत्पन्न करने वाली पृथिवी ।
'विश्वस्वं मातरमोषधीनाम् '
अ. १२.१.१७

विश्वसौभगः- (१) समस्त ऐश्वर्यों से युक्त ।
'त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः '
ऋ. १.१५७.३; साम. २.१११०
'अधा नो विश्वसौभग
हिरण्यवाशीमत्तम
धनानि सुषणा कृधि '
ऋ. १.४२.६
हे समस्त श्रेष्ठ सुखप्रद ऐश्वर्यों के स्वामी ! हे सब से अधिक हित और प्रिय वाणी बोलने वाले परमेश्वर या सुन्दर सुवर्ण और लोहादि धातु से बने शास्त्रों से सम्पन्न राजन् या उत्तम वाणी से युक्त विद्वान् , तू हमें सुख और शान्ति प्रदान करने वाले धन और ऐश्वर्य प्रदान कर (सुषणा धनानि कृधि) ।

विश्वह- नित्य, प्रतिदिन ।
'वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः '
ऋ. २.१२.१५; अ. २०.३४.१८
'सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम '
ऋ. ७.२१.९

विशाखा- शाखाओं से रहित या नाना शाखाओं वाली ओषधि ।
'अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखाः '
अ. ८.७.४

विशाखे- द्वि.व.। विशाखा नक्षत्र ।
'राधो विशाखे सुहवानुराधा '
अ. १९.७.३

विशाल- (१) वस्त्र, (२) तम्बू, (३) यह लोक ।
'विशालं छन्दः '
वाज.सं. १५.५; १४.९; तै.सं. ४.३.५.१; १२.३; मै.सं. २.८.२: १०८.४; २.८.७:११२.३; का.सं. १७.२,६;श.ब्रा. ८.२.४.२; ५.२.६
'सद्यः काव्यानि वडधत्त विश्वा '
ऋ. १.९६.१; मै.सं. ४.१०.६; १५७.१२
शीघ्र अनेक विज्ञानों को (विश्वा काव्यानि) यथार्थ रूप से (वट्) धारण करता है (अधत्त) ।

विश्वागोत्राः- (१) समस्त गोत्र अर्थात् नाना बीज, (२) परमात्मा के उत्पादक शक्ति के अंकुर जो बीजों के समान गौ अर्थात् भूमि में सुरक्षित रहते हैं ।
'विश्वायद् गोत्रा सहसा परीवृता '
ऋ. २.१७.१

विश्वाङ्ग्य- समस्त शरीर में पीड़ा उत्पन्न करने वाला ।
'विश्वाङ्ग्यं विसल्यकम् '
अ. ९.८.५

विश्वातन्वः- सम्पूर्ण अंग ।
'विश्वा अपश्यद्बहुधा ते अग्ने
जातवेदस्तन्वो देव एकः '
ऋ. १०.५१.१
हे जातप्रज्ञ अग्नि (जातवेदः अग्ने), तेरे सम्पूर्ण अंग बहुत प्रकार से दीख पड़ते हैं (बहुधः), किन्तु एक प्रजापति ने ही तुझे देखा (एकः देवः अपश्यत्) ।
अथवा
हे विद्युत् अग्नि ! (जातवेदः अग्ने) तेरे सम्पूर्ण अंगों को (विश्वातन्वः) कोई बड़ा वैज्ञानिक (एकः देवः) अनेक साधनों से (बहुधा) देखता है (अपश्यत्) ।

विश्वाद्- (१) सब पदार्थों का भक्षक-अग्नि (२) समस्त पदार्थों को अपने भीतर लेने वाला-अग्नि परमेश्वर ।
'अग्निष्टत् विश्वाद् अगदं कृणोतु '
ऋ. १०.१६.६; अ. १८.३.५५; तै.आ. ६.४.२.
(३) अ. । सब प्रकार से (४) प्रलय काल में सब को ग्रस्त करने वाला ।
'यो देवो विश्वात् '
अ. ३.२१.४
'विश्वादं पुरुवेपसम् '
ऋ. ८.४४.२६

विश्वाप्सु- (१) समानं रूपं गुणा यस्य स (२) समस्त रूपों से युक्त अग्नि । (३) समस्त ज्ञानों और कर्मों और नाना रूप पदार्थों को जानने वाला आचार्य ।
'होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् '
ऋ. १.१४८.१; मै.सं. ४.१४.१५: २४०.१४

विश्वाभू- (१) सर्वस्य भावयितृ (सबका भावयिता) (२) सबको उत्पन्न करने वाला । इन्द्र या परमेश्वर । (३) सब में व्यापक ।
'विश्वानराय विश्वाभुवे '
ऋ. १०.५०.१
सब के नेता तथा सब को उत्पन्न करने वाले इन्द्र या परमात्मा को....
(३) सर्वप्रकार विभूतियुक्तः (सब प्रकार की विभूतियों से युक्त) ।
विश्व + भू = विश्वाभू (दीर्घ छान्दस है) ।

विश्वाभूता- (१) समस्त नक्षत्र ।
(२) पंचभूत ।
'अन्तरिक्षेण पतति विश्वाभूतावचाकशत् '
अ. ६.८०.१

विश्वायु- (१) सर्वायु (२) परिणतवयः (वृद्ध)
(३) अप्रतिहत बुद्धि
(४) समस्त मनुष्य वर्ग
(५) समस्त संसार का जीवन स्वरूप परमेश्वर ।
'स भदना उदियर्ति प्रजावतीः
विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि '

ऋ. ९.८६.४१;
वह सर्वायु, परिमत वय या अप्रतिहत बुद्धि यजमान या समस्त मनुष्य वर्ग (विश्वायुः) सन्तान रूपी फल देने वाली या सृष्टि रचना विषयक तेरी स्तुतियों का उच्चारण करता है ।
(५) सबको आयु दीर्घ जीवन देने वाला सूर्य, (६) सर्व मनुष्यों का स्वामी, (७) सबके जीवन का रक्षक ।
'आयुः विश्वायुः परिपातु त्वा'
अ. १८.२.५५

विश्वावसु- समस्त जनों का स्वामी ।
'उत्तिष्ठेतो विश्वावसो'
अ. १४.२.३३; श.ब्रा. १४.९.४.१८;

विश्व्या- (१) विश्व + यत् + टाप् । विश्वसम्बन्धी, (२) विश्वतः ।(३) सर्वतः ।
'मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत्'
ऋ. २.४२.१; वि. ९.४.
(४) सर्वसाधरण से आने वाला ।

विश्वेत् - सभी । 'विष्णु' ।
'विश्वेत् ता विष्णुराभरत्'
ऋ. ८.७७.१०
इन्द्र उन सभी धनों को लाया ।

विश्वाच्- (१) विविध गति वाला शत्रुमण्डल,
'जातं विश्वाचो अहतं विषेण'
ऋ. १.११७.१६
आप दोनों सब तरफ फैली शत्रु सेना के रखे पदार्थों के विष के समान घातक और दूषक पदार्थ से विविध दिशाओं में फैले प्रजाजन को बचाते हो और बच्चे तक को अपने व्यापक राज्य प्रबन्ध से व्याप्त करते हो ।
अथवा,
विविध देशों में व्याप्त अन्धकार के प्रभाव को व्यापक तेज से विनष्ट करते हो ।
(२) विश्व + अञ्च + क्विप् = विश्वाञ्च । विविधगति युक्त विश्वाञ्च् नामक राक्षस ।
(३) विषयगति युक्त दस्यु मण्डल (४) चारों ओर दौड़ने वाला मेघ ।
'जातं विश्वाचो अहतं विषेण'
ऋ. १.११७.१६
विविध गतियुक्त विश्वाञ्च् नामक राक्षस के अपत्य को तुम दोनों ने विष देकर मारा ।
विविधगतियुक्त दस्युमण्डल के अन्न पानादि को विष से नष्ट करो ।
चतुर्दिक् मंडराने वाले मेघ के जल से समस्त प्राणि वर्ग को सुख प्राप्त कराओ ।

विश्वाची- (१) या विश्वम् अञ्चति ।
(२) समस्त जनों की बनी सभा ।
'आ विश्वाची विद्यामनक्तु'
ऋ. ७.४३.३
(३) समस्त जनों को विषय में बांधने वाली व्यवस्था,
(४) एक अप्सरा ।
'विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापः'
वाज.सं. १५.१८; तै.सं. ४.४.३.२; मै.सं. २.८.१०:११५-३, का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१९

विश्वानरः- (१) विश्वे एनं नराः नयन्ति (इस कर्म करने वाले अग्नि का सभी उपयोग करते हैं) । विश्व + नर + अप् (कर्म में) ।
(२) अपि वा विश्वानर एवस्यात् (अथवा कोई विश्वानर ही हो) ।
(३) विश्वानि भूतानि प्रतिऋतः गतः प्रविष्टः (जो समस्त प्राणियों में प्रविष्ट हो) ।
(४) विश्वान् जन्तून् अरः (समस्त प्राणियों में गत) । विश्वान् + ऋ + अच् = विश्वानर (छान्दस नियम से उपपद् विभक्ति का लोप नहीं हुआ है) ।
अर्थ - (१) प्राण, (२) सर्वसञ्चालक धनञ्जय, (३) सब का नेता ।
'विश्वेषां वरः विश्वानरः'
(४) सूर्य ।
'विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः'
ऋ. ८.६८.४, साम १.३६४; नि. १२.२१
मैं स्वज्योति प्रकाशित (अनानतस्य) बल के पति या रक्षा करने वाले सूर्य को बुलाता हूँ ।
(५) मध्याह्नोत्तर कालीन आदित्य
'विश्वानरः सविता देवो अश्रेत्'
ऋ. ७.७६.१; नि. ११.१०
'विश्वानराय विश्वाभुवे'
ऋ. १०.५०.१
(६) समस्त मनुष्यों से बना हुआ ।
'विश्वानरस्य वस्पतिम्'
ऋ. ८.६८.४; साम. १.३६४, ऐ.ब्रा. ४.३१.६;

५.१८.१०; कौ.ब्रा. २०.३; आश्व.श्रौ.सू. ७.६.४; नि. १२.२१.

विश्वान्न- (१) सब प्रकार का अन्न ।
'विश्वान्नं बिभ्रती शाले'
अ. ९.३१६

विश्वाप्रवत् - समस्त अधोलोक ।
'विश्वा रोधांसि प्रवतिश्च पूर्वीः
द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन् रेजत क्षाः'
ऋ.४.२२.४

विश्वामित्र- (१) सबका स्नेही, (२) आत्मा का स्नेही
'विश्वामित्रेभिरध्यते अजस्रः'
ऋ. ३.१.२१

विश्वामित्राः- सबके मित्र लोग ।
'विश्वामित्रा अरासत'
ऋ. ३.५३.१३

विश्वामित्रऋषिः- शरीर का श्रोत्र (२) विश्वामित्र ऋषि ।
'विश्वामित्र ऋषिः'
वाज.सं. १३.५७; मै.सं. २.७.१९; १०४.११; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.६;

विश्वापुष् - (१) समस्त विश्वास का पोषण । करने वाला (२) सब को पुष्ट करने वाला ऐश्वर्य ।
'पुंसःपुत्राँ उत विश्वापुसं रयिम्'
ऋ. १.१६२.२२; वाज.सं. २५.४५; तै.सं. ४.६.९.४

विश्वायु पोषस् - समस्त प्राणियों के जीवन और आयुओं की वृद्धि और पुष्टि करने वाला ।
'आ नो अग्ने सुचेतुना
रयिं विश्वायुपोषसम्
मार्डीकं धेहि जीवसे'
ऋ. १.७९.९; साम. २.८७६; मै.सं. ४.१०.६; १५६.२; का.सं. २.१४; तै.ब्रा. २.४.५.३; आ.श्रौ.सू. ८.१४.२४.
हे अग्नि या परमेश्वर । तू हमें ज्ञान, विज्ञान के साथ (सुचेतुना) समस्त प्राणियों के जीवनों और आयु की वृद्धि और पुष्टि करने वाले तथा सबको सुख देने वाले (मार्डीकम्) ऐश्वर्य (रयिम्) दे (धेहि) ।

विश्वायुवेपाः- विश्व + आयु + वेपाः (१) समस्त मनुष्यों को कंपाने वाला विद्वान् पुरुष (२) समस्त मनुष्यों को चलाने वाला-अग्नि, परमेश्वर
'अग्निं विश्वायुवेपसम्'
ऋ. ८.४३.२५

विश्वापसुः- (१) विश्व में व्यापक (२) विश्वरूप धन का स्वामी (३) जगत् का आच्छादक, (४) सबको बसाने वाला ।
(५) प्रवेश योग्य गृहस्थ में बसने वाला वर ।
'विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीडे'
ऋ. १०.८५.२१;

विश्ववारा- (१) सब ओर से सुरक्षित शाला-मकान ।
'शालाया विश्ववारायाः'
अ. ९.३.१

विशिक्षु- (१ विविध विद्याओं को सिखाने वाला, (२) सूर्य विधि उपायों से दण्ड द्वारा दमन करने वाला ।
'त्व विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः'
ऋ. २.१.१०

विशिखः- वि + शिख । (२) विषम प्रयोग करने वाला पुरुष ।
'सहस्रधामन् विशिखान्'
अ. ४.१८.४
(२) चूड़ाकर्म के उपरान्त मुण्डित बालक, (३) विशेष तीक्ष्ण शिखा वाला बाण ।
'कुमारा विशिखा इव'
ऋ. ६.७५.१७; साम. २.१२१६; वाज.सं. १७.४८; तै.सं. ४.६.४.५.

विशिशिप्र- प्रजाओं में विद्यमान ज्ञानी, तेजस्वी सुमुन सौम्य पुरुष ।
'यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय'
ऋ. ५.४५.६

विशिष- नाना प्रकार से विशेष रूप से कही हुई आज्ञा ।
'संशिषो विशिषश्च याः'
अ. ११.८.२७

विश्रिता - (१) विविधैः आप्तैः श्रिता सेविता । (विविध विद्वानों से सेविता । वाणी का विशेषण) ।
'बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीः'
ऋ. १.११७.१

आप का दान प्रजा की सुख वृद्धि करने वाला हो और वाणी विविध विद्वानों द्वारा सेवित करने योग्य हो ।

विश्रित- विविध प्रकार और रूपों में स्थित (जल) ।
प्रतिगृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः '
ऋ. १.५५.२
सूर्य विविध प्रकार और रूपों में स्थिति जलों को (विश्रिता) नाना रोकने वाले कारणों या किरणों द्वारा (वरीमभिः) अथवा अत्यधिक शक्तिशाली किरणों से अपने में ले लेता है (प्रतिगृभ्णाति) ।

विश्रृंगी- (१) विशिष्ट शिखायुक्त दीप्तिमान मेघ-सा.
(२) विशिष्ट रूप से सिर उठाए हुआ शत्रु-दया.
'वि श्रृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः
ऋ. १.३३.१२; नि. ६.१९
इन्द्र ने विशिष्ट शिखर युक्त दीप्तिमान् मेघ को छिन्न भिन्न किया । -सा.
राजा विशेष सिर उठाए शत्रु को कुचल डाले-दया. ।

विश्वेअमृताः - समस्त अमृतजीवगण ।
'धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन्'
ऋ. ४.१.१०

विश्वेत् - विश्व + इत् । सभी ।
'विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या'
हे अश्विद्वय, तुम्हारे वे सभी कर्म (वाम् ता विश्वेत्) यज्ञों में प्रवचनीय हैं (प्रवाच्याः) ।

विश्वेदेवाः- ब.व. । (१) विश्वदेव अर्थात् सभी देवगण -सा. (२) सूर्य की किरणें -दया.
'विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त'
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४
विश्वदेव या सूर्य की किरणों ने तुझे स्खलित वीर्य या जल का कलश या अन्तरिक्ष में रखा ।
'सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः'
ऋ. ७.३९.४
विश्वेदेव यज्ञों में समानस्थान पर आते हैं । (सधस्थ अभिसन्ति) ।
(३) विद्वज्जन-दया.

विष् - (१) करणार्थक धातु, (२) व्यापनार्थक धातु ।

विष- (१) व्याप्त होने योग्य समस्त प्रकृति के परमाणुओं में व्याप्त परमेश्वर (२) सेवा करता हुआ ।
'ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः'
ऋ. १०.१०९.५; अ. ५.१७.५

विषक्त- वि + सच् + क्त । अकेला, एकान्त में ।
'त्सरन् विषक्तं बिल आससाद्'
अ. १२.३.१३

विषक्ता- (१) विस्तृत, (२) हिंसाशील, (३) राजद्रोही (४) विपरीत हुई पृथिवी, राष्ट्रभूमि या सेवा ।

विषगिरिः- विष की खान, संखिया आदि की खान ।
'वध्रिर्विषगिरिः कृतः'
अ. ४.६.७

विषण- सर्वव्यापक परमात्मा । विष् (व्यापना) + नु = विष्णु । अथवा -पद क्रमणेन भुवनत्रयं वेवेष्टि व्याप्नोति स विष्णुः ।
(जो पद क्रमण से तीनों भुवनों में व्याप्त होता है वह विष्णु है) ।

विषदूषण- विष निवारण का उपाय ।
'सचित्ता विषदूषणम्'
अ. ६.१००.१

विषदूषणी- विषों का नाश करने वाली ।
'उग्रा या विषदूषणीः'
अ। ८.७.१०

विषदूषणी वाक् - विष को दूर करने वाली वाणी ।
'वाचं विषस्यदूषणीं
तामितो निरवादिषम्'
अ. ४.६.२

विषधान- (१) विष रखने का स्थान ।
'यस्ते विषधानः'
अ. २.३२.६

विषपुष्प- विष का पुष्ट प्रबल अंश ।
'विषस्य पुष्पमक्षन्'
ऋ. १.१९१.१२

विषम्- (न) (क) वि + स्ना + ड = विष (ण का लोप) । स्नाति अनेन विशेषण (इससे विशेष प्रकार से स्नान करते हैं) ।
(ख) वि + सच् (सेचन और सेवन अर्थों में) ।

+ ड = विष । तत् हि स्नानपानावगाहनार्थिभिः सेव्यते (जल स्नान, पान एवं अवगाहन करने वालों के द्वारा सेवन किया जाता है । अतः यह विष कहलाया । (ग) दुर्ग ने-'सर्वत्र हि अति शयेन यत् सक्तम्' (जो सर्वत्र अतिशय रूप से सक्त है) - ऐसी व्युत्पत्ति की है ।
अर्थ है-(१) उदक,जल (२) विष -यास्क,
'जातं विष्वाचो अहतं विषेण'
ऋ. १.११७.१६

विषवती- विराट् का एक रूप ।
'सर्पा उपह्वयन्त विषवत्येहीति'
अ ८.१०.(५) १३

विषस्यपात्रम् - पान करने कका आधार यह देह
'केशी विषस्य पात्रेण
यद्रुद्रेणापिबत् सह'
ऋ. १०.१३६.७

विष्कन्ध- (१) ऐसे पशु जिनके कन्धे विशेष रूप से उठे हुए हों ।
'वध्रि विष्कन्धम्'
अ. ३.९.२
(२) षड्यन्त्र, (३) सेना बल ।
'नैनं विष्कन्धमश्नुते'
अ. ४.९.५
(३) विशेष सेना का दस्ता ।
'इदं विष्कन्धं सहते'
अ. १.१६.३
(४) सेना का पृथक् पृथक् निवेश या रास्ता ।
(५) कन्धों की फूटन ।
'विष्कन्धं येन सासहे'
अ. १९.३४.५
(६) रक्त शोषण रोग
'विष्कन्धादभिशोचनात्'
अ. २.४.२

विष्कन्धदूषण- (१) प्रबल शत्रुओं या हिंसक जीवों को वश करने में समर्थ (२) एक मणि- ताबीज यन्त्र ।
'मणिं विष्कन्धदूषणम्'
अ. २.४.१; . ३.१०.६
(३) विष्कन्ध (स्कन्ध की पीड़ा) नामक रोग का नाशक जङ्गिड़ नामक ओषधि,
(४) शत्रुओं की छावनियों का नाशक ।
'अग्रे विष्कन्धदूषणम्'
अ. १९.३५.१
(५) शरीर का रस सोखने वाले रोग को हटाने वाला वीर्य ।

विष्कभ्नन् - विविध उपायों से थामता और दृढ़ करता हुआ ।
'विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री'
ऋ. ३.३१.१२

विष्टःचमसः- परसास हुआ थाल ।
'भद्रासि रात्रो चमसो न विष्टः'
अ. १९.४९.८

विष्टप् - (१) सूर्य ।
'नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः'
अ. १८.४.४.
(२) विशेष तप अर्थात् तेज ।
'अयं ब्रध्नस्य विष्टपि'
अ. १३.१.१६
(३) वि + ष्टभ् (प्रतिबन्ध अर्थ में) + क्विप् = विष्टप् । भ् का प् व्यत्य द्वारा । आदित्य ।
'विष्टप् आदित्यो भवति' (विष्टप् आदित्य है । क्योंकि वह पृथ्वी और अन्तरिक्ष के रसों में आविष्ट है या वहां की ज्योति में आविष्ट है या वहां की ज्योति में अभिमुख हो प्रविष्ट है) । (आविष्टो रसान् आविष्टो भासं ज्योतिषाम्) । अथवा यही दीप्ति से आविष्ट है (आविष्टो भासा इति वा) ।
वि + विश् + क्विप् = विष्टप् (बाहुलक नियम से) । जो आविष्ट हो वह विष्टप् है ।

विष्टप- (१) विशेष ताप, (२) विशेष तापकारी बल,
(३) तेजस्वी पद ।
'ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारम्'
वाज.सं. ३०.१२
(४) ताप दुःखादि से रहित सुखयुक्त ।
'उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपम्'
गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
ऋ. ८.६९.७
विशेष तापकारी के अर्थ में -
'न्यर्बुदस्य विष्टपम्
वर्ष्माणं बृहतस्तिर'
ऋ. ८.३२.३

विष्टप गृह – (१) विविध तपस्याओं से युक्त (२) आविष्ट या उपविष्ट पुरुष की रक्षा करने वाले त्रिविध तापादि रहित शरण ।
'उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं
गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
अ. २०.९२.४

विष्टपा – वितपा, तप-रहित या संताप रहित ।
'इमानि त्रीणि विष्टपा'
ऋ. ८.९१.५; जै.ब्रा. १.२२१

विष्टम्भ – विशेष स्तम्भ, आश्रय ।
'विष्टम्भो धरुणो दिवः'
ऋ. ९.२.५
(२) विष्टम्भन, (२) यज्ञ आदि प्रतिबन्धन योग, (३) विविध उपायों से धनों का स्तम्भन, संग्रह करने वाला विभाग ।
'विष्टम्भेन वृष्टया वृष्टिं जिन्व'
वाज.सं. १५.६

विष्टम्भन्ती – विविध उपायों से प्रजाओं को वश करने वाली राजशक्ति या परमेश्वरी शक्ति ।
'अन्तरिक्षस्य धर्त्री विष्टम्भनीं
दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्'
वाज.सं. १४.५

विष्टम्भाः – स्तम्भन करने वाले आत्मा के नवकोश ।
'विष्टम्भा नवधा हिताः'
अ. १३.३.१०

विष्पट् – विविध उपायों से बाधक ।
'अभिह्रुतामसिं हि देव विष्पट्'
ऋ. १.१.८९.६

विष्पर्धस् – (१) परस्पर स्पर्धा या द्वेष से रहित, (२) नाना स्पर्धा वाला, (३) एक दूसरे से बढ़कर रहने की अभिलाषा वाला ।
'विष्पर्धसो नारां न शंसैः'
ऋ. १.१७३.१०

विष्पुलिंगका – विष खा जाने वाले छोटे पक्षियों की जातियां ।
'त्रिःसप्त विष्पुलिंगकाः'
ऋ. १.१९१.१२

विष्यतु – बरसावे ।
'त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु'
ऋ. १.१४२.१०; नि. ६.२१.
वैद्युताग्नि हमारे पालन पोषण के लिए जल बरसावे ।

विष्यध्वम् – वियुक्त करो, छोड़ो ।
'ऋतस्य योगे विष्यध्वमूधः'
ऋ. ७.२६.१
सोम रखने के यज्ञपात्ररूपी ऊध को यज्ञ के शकट में वियुक्त करो । –सा.
यज्ञ के सम्बन्ध में अज्ञानता को छोड़ो–ज.दे.श.

विष्यन्दमानः – विशेष रूप से वेग से गमन करता हुआ ।
'पौष्णो विष्यन्दमाने'
वाज.सं. ३९.५

विष्यस्व – विवृतकर, चौड़ा करा मुंह खोलने के अर्थ में प्रयुक्त ।
वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने
ऋ. १.१०१.१०; नि. ६.१७
हे इन्द्र, तू अपनी हनू या नासिका (शिप्रे) तथा उपजिह्विका (धेने) को विवृत कर ।

विष्वक् – (१) सर्वतः सब प्रकार से ।
'धनेव विष्वग्वि जह्यराणम्'
ऋ. १.३६.१६
आघात करने वाले कच्चे घड़े आदि या हथौड़े से लोहे को पीटा जाता है । उसी प्रकार प्रदान शील कृपणों का सब प्रकार से (विष्वक्) विनाश कर (विजहि) ।
(२) सब ओर
'असंदितो वि सृज विष्वगुल्फाः'
ऋ. ४.४.२.
'वज्रिन् विष्वग्यथा वृह'
ऋ. ८.४५.८

विष्वद्रयक् – सब ओर से जाने वाला ।
'मा ते मनो विष्वद्रयग्वि चारीत्'
ऋ. ७.२५.१; तै.सं. १.७.१३.२; मै.सं. ४.१२.३: १८६.३, का.सं. ८.१६

विषा – विषैली लता ।
'विषा विषातक्यसि'
अ. ७.११३.८

विषाणका – एक ओषधि ।
अजश्रृंगी, प्रावर्तकी, श्रृंगी, वृश्चिकाली, सावला और रोहिणी ।
अजश्रृंगी और आवर्तकी हृदय रोग, वातरोग

और रक्तार्ष परगुण कारी है ।
'विषाणका नाम वा असि'
अ. ६.४४.३

विषरणा – वि + साना (सुपाम् आत्वम्) विषाणा । अर्थ मुक्त करता हुआ, बन्धन छुड़ाता हुआ ।
'विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मत्'
अ. ६.१२१.१

विषाणन – सींग
'स क्षेत्रियं विषाणया'
अ. ३.७.१; आप.श्रौ.सू. १३.७.१६

विषाणी – (१) ऋग्वेद के जनों में एक ।
ऋ. ७.१८.७–८ में वसिष्ठ ने पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी और शिव का उल्लेख किया है ।
(२) सींग वाला, (२) हाथ में सींग के समान शस्त्र रखने वाला ।
'आलिनासो विषाणिनः शिवासः'
ऋ. ७.१८.७

विषातकी– हृदय के द्वेष रूप विष से पर्वत को आंतकित करने वाली ।
'विषा विषातक्यसि'
अ. ७.११३.२

विषासहिः – (१) विशेष रूप से शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ ।
अभ्यासाक्षि विषासहिः
ऋ. १०.१५९.१; आप.मं.पा. १.१६.१
विषासहिं सहमानम्
अ. १७.१.१–५; कौ.सू. ९९.३
(२) विशेष रूप से विजय करने वाला ।
'आशामाशां विषासहिः'
अ. १२.१.५४
(३) नाना प्रकार के शत्रुओं के आक्रमणों एवं दैवी विपत्तियों को सहने में समर्थ ।
'अभिराष्ट्रो विषासहिः'
ऋ. १०.१७४.५; अ. १.२९.६
(४) विषासहि नाम का सूक्त (अथर्व वेद का काण्ड १७) ।
'विषासह्यै स्वाहा'
अ. १९.२३.२७

विषासही – विविध प्रकार से शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'तीणो राजा विषाहिः'
अ. १९.३३.४

विष्टान्त – विश् + क्त + अन्त = विष्टान्त । जिसका अन्त एक दूसरे में प्रविष्ट हो, गूंथा हुआ हो ।
'नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता'
ऋ. १०.९३.१३

विष्टारपंक्ति – (१) प्रजोत्पादन, (२) प्रजापालन, (३) दिशाएं ।
'विष्टार पंक्तिश्छन्दः'
वाज.सं. १५.४

विष्ठा – सब लोकों को विशेष रूप से स्थिति देने वाली ।
'स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः'
अ. ४.१.१,५.६.१,साम. १.३२१, वाज.सं. १३.३; मै.सं. २.७.१५; ९६.१२, का.सं. १६.१५; ३८.१४; श.ब्रा. ७.४.१.१४, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.५
(२) विशेष आश्रय ।
'कत्यस्य विष्ठाः क्रत्यक्षराणि'
वाज.सं. २३.५७, श.ब्रा. १३.५.२.१९
(३) नाना प्रकार से व्यापक आत्मा ।
'अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि'
अ. ७.३.१; तै.सं. १.७.१२.२; मै.सं. १.१०.३: १४३.१०; का.सं. ९.६: १४.३; ३३.४; ३६.१३

विष्टारी – (१) सर्वत्र विस्तृत, (२) ब्रह्माण्ड रूप में विराट् देह कर फैला हुआ यज्ञमय प्रजापति ।
विष्टारी जातस्तपसोऽधियज्ञः'
अ. ४.३४.१

विष्टारी ओदन – (१) महान् विश्वव्यापी प्रजापति, (२) भात
'विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति'
अ. ४.३४.३,४

विष्णापू – विष्लृ + नक् = विष्ण, आप्लृ + ऊ = आपू । विष्णु + आपू = विष्णापू । अर्थ है–(१) विद्वान् का बोध, (२) व्यापक ज्ञान शील विद्वानों से प्राप्त होने वाला ज्ञान, (३) व्यापक परमेश्वर तक पहुंचाने वाला ज्ञान ।

विषित – वि + सित । (१) सभी बन्धनों से रहित– प्रभु
'तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः'
ऋ. १०.२७.१४

(२) खुलकर मूत्र के निकलने योग्य वास्तिबिल (मूत्र कोष्ठ का छिद्र) ।
'विषितं ते वस्तिबिलम्'
अ. १.३.८

विषित अर्ध – (१) सूर्य और ब्रह्माण्ड पहले अपने विषितरूप में थे अर्थात् ये पृथक् पृथक् पिण्ड और लोकों में नहीं बंटे थे । (२) अव्यक्त रूप
'पूर्वेअर्धे विषिते ससन्तु'
अ. ४.१.६

विषितस्तुका – (१) विविध प्रकार से किरणों को बांधती हुई सूर्य की किरण , (१) विविध प्रकार से अपने केशों को बांधती हुई, (३) विविधता सिता बद्धा स्तुका स्तुतिः यया (विविध प्रकार से स्तुति को बांधने वाली ।
'विषितस्तुका रोदसी नृमणाः'
ऋ. १.१६७.५

विषितस्तुप – (१) विशेषण सितः बद्धस्तूपः रश्मीनां समुच्छ्वयो यस्य सः (जिस की रश्मियां विशेष प्रकार से बंधी हों । सूर्य का विशेषण) । (२) नाना स्तुत्य गुणों को प्रकट करता हुआ ।
'पुरस्ताद् विषितस्तुपः'
अ. ६.६०.१

विषितो – वि + सि + क्त = विषित ।
द्वि.व. में रूप 'विषिते' । विषित + टाप् = विषिता, बन्धनसुक्ता । घोड़ियों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त ।
'अश्वे इव विषितो हासमाने'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
विपाशा और शुतुद्रि नदियां इस प्रकार पर्वत से निकल कर बहती है जैसे वाजिशाला से छूटी दो हिनहिनाती हुई घोड़ियां ।

विष्टि – वेतन ।
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः
समानेन योजनेना परावतः'
ऋ. १.९२.३; साम. २.११०७
कर्म करने वाले अधीनभृत्यों को (अपसः) जिस प्रकार वेतनों द्वारा सत्कार करते हैं, उसी प्रकार समान योग द्वारा अर्थात् गुण, शरीर, बल और विद्या आदि में समान पुरुष के साथ संयुक्त करने से ही दूर देश से प्राप्त करने योग्य स्त्रियों का सत्कार करें ।

विष्ठित – (१) विविध रूप से व्याप्त ब्रह्म
'यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्'
ऋ. १०.११४.८; ऐ.आ. १.३.८.९
(२) वि + स्था + क्त = विस्थित = विष्ठित । विशेषेण स्थितम् (विशेष प्रकार से स्थित) ।
अर्थ – (१) स्थावर जगत्,
'पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितां जगत्'
ऋ. ६.४७.२९; वाज.सं. २९.५५,तै.सं. ४.६.६.६; मै.सं. ३.१६.३: १.८७.८; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१३
हे दुन्दुभ, तेरे शब्द को स्थावर और जंगम जगत् बहुत प्रकार से जान जाय ।
(३) विशेष मान आदर पूर्वक स्थित ।

विष्ठिर् – (१) यः विशेषेण तरति–ऋतुः–दया ।

विष्टिर – विशेष प्रकार से या विविध प्रकार से विस्तृत करने वाला । सम्यक् विस्तारक ।
'स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति'
ऋ. १.१४०.७

विष्पित – (१) विप्राप्त = विष्पित । अर्थ – (१) विप्राप्त या इधर- उधर विस्तीर्ण या जो सर्वत्र प्राप्त हो (२) अथवा व्याप्त्यर्थक विष् + क्त = विष्पित (प का आगम) दुःख । दुःख भी विविध प्रकार से व्याप्त होता है ।
इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याः
चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति
पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन्'
ऋ. ७.६०.७
ये मित्र और वरुण द्युलोक से आकर आदरवान् (दिवः आनिमिषा) प्राणियों के पाप पुण्य जानते हुए (चिकित्वांस) अचेतयमान प्राणी को (अचेतसम्) कर्मानुसार पृथिवी लोक से (पृथिव्याः) इस लोक में लाते हैं (नयन्ति) । इसी से कहता हूं कि इस प्रकृष्ट गमन अर्थात् मृत्यु के उपस्थित होने पर (प्रव्राजे) यदि संसार सागर से पार करने योग्य हमारा कर्म है (गाधं नः अस्ति) तो वह कर्म इस ससार मार्ग से विप्राप्त पुरुष को नदी के ऐसा उस पर ले जाय (नद्याः चित् पारं पर्षत्) ।
अन्य अर्थ- ये मित्र वरुण तथा अर्यमा विद्वान्

(इमे चिकित्वांसः) द्युलोक तथा पृथिवी लोक की विद्या को निरन्तर अशिक्षिता विद्यार्थी को प्राप्त कराते हैं (दिवः पृथिव्याः अनिमिषा अचेतसं नयन्ति) । और जैसे नदी मार्ग पर जहां नदी का गाधस्थान होता है, जहां जल थोड़ा होता है, वहां मनुष्यों को पार निकाल दिय जाता है । उसी प्रकार से हमारी जीवन यात्रा के मार्ग में (प्रव्राजेचित् नद्याः गाधम् अस्ति) हमें ये विद्वान् इस दुःख से पार उतारें (नः अस्य विस्पितस्य पारं पर्यत् ।

(३) दूर दूर तक फैला हुआ ।

विष्टी – द्वि.व.। एक दूसरे में प्रेम पूर्वक आविष्ट स्त्री पुरुष , सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं ।

'ऋभवो विष्ट्यक्रत'

ऋ. १.२०.४

ऋभु या सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले तेजस्वी विद्वान् स्त्री पुरुष एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं ।

विष्टीमी – (क) वि + स्तीम + इन् = विष्टीमी ।

(ख) वि + ष्टि + मा + इन् = विष्टिमिन् ।

'विविधाः स्तीमाः आर्द्रीभूताः पदार्थाः यस्मिन् अथवा विष्टीयिनम् विष्टीः कर्माणि वेतनानि वा मिनोति मातिं मन्यते विवेचयति वा, शब्दयति वा स विष्टीमी ।'

अर्थ – (१) विशेष दयालुता के भावों से युक्त पुरुष, (२) विशेष प्रजा के विविध कर्मों का विवेचक न्यायाधीश ।

'प्र विष्टीमिनमाविषुः'

अ. २०.१३६.४; वाज.सं. २३.२९; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.१

विष्ट्री – विष्ट्वा । क्त्वा प्रत्यय करने पर ई का आगम हुआ है । अर्थ है-(१) व्याप्य । व्याप्त होकर, कर के ।

विष्ट्री शमी तरणित्वे वाघतः'

ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६

कर्मों या यज्ञों को (शमी) क्षिप्रकारिता के साथ (तरणित्वेन) करने वाले मेधावी यज्ञानुष्ठाता या ढोने वाले या व्यापारी (वाघतः) ।

यास्क ने 'विष्ट्वी' का अर्थ कृत्वा (कर के) ही माना है । सायण ने भी इसे 'कृत्वा' अर्थ में लेते हुए कहा है विष्ट्वी- यद्यपि एतत् कर्म नाम तथाप्यत्र क्रिया पर व्याप्य- कृत्वा इत्यर्थः । (यद्यपि विष्ट्वी कर्म का वाचक है तथापि यहां पर क्रिया अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और इस का अर्थ व्याप्त होकर या करके है) ।

विषुः – (१) प्रजाओं में घुसकर अधर्माचरण करने वाला, (२) अधर्म से धर्मात्मा को दुःख देने वाला ।

विषुण – विषम, सब ओर फैला अतिविषम व्यवहार ।

'द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तम्'

ऋ. ८.९६.१४; अ. २०.१३७.८

विषुणक् – (सम्बोधन में) प्रजा में अधर्म से घुस कर रहने वाले पुरुष का नाशक परमेश्वर-विषुणक्

धनोरधि विषुणक् ते व्यापन्

ऋ. १.३३.४

हे प्रजाओं में घुसकर अधर्म से रहने वाले पुरुष का नाशक, वे अयज्ञशील परधनहारी मृत्यु प्राप्त करें ।

विषुणः – (१) सब ओर से जाने में समर्थपरमेश्वर या आत्मा ।

'बभ्रुरेको विषुणः सुनरो युवा'

ऋ. ८.२९.१,ऐ.ब्रा. ५.२१.१३

(२) विस्तृत मैदान, (३) सब तरफ ।

'द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तम्'

ऋ. ८.९६.१४; अ. २०.१३७.८

(४) विविध विद्याओं से सम्पन्न ।

सखायस्ते विषुणा अग्न एते'

ऋ. ५.१२.५

(५) विस्तृत, फैला हुआ, (६) विरोधी ।

'स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोः'

ऋ. ७.२१.५; नि. ४.१९

जो विघ्नकारी जीवों को रोकने वाला हो वही यज्ञ में आवे ।

असुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः

ऋ. ५.३४.६

(७) 'विषम' से ही 'विषुण' प्रषोदरादिवत् हो गया है । अर्थ है-विषम ।

(८) विघ्नकर्त्ता ।

(९) यज्ञविध्वंसक,

(१०) व्यापक,

(११) सामर्थ्यवान् ।
'घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः '
ऋ. ४.६.६, तै.सं. ४.३.१३.१.

विषुरूप – (१) विषमरूपः (२) नाना रूपः (विषम रूपों वाला या नाना रूपों वाला सूर्य) (३) सूर्य की विषुवत् रेखा के सिद्धान्त से उत्तरायण और दक्षिणायन गति के कारण विषम रूप वाला सूर्य-दुर्ग ।
'अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा
सप्त होता विषुरूपेषु जन्मसु '
ऋ. १०.६४.५; नि. ११.३३.

विषुरूपा – (१) रूपवती, (२) बहुत प्रजा आदि से सम्पन्न स्त्री ।
'सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति'
ऋ. १०.१०.२; अ. १८.१.२.३४

विषुरूपे – द्वि.व. । (१) तम और प्रकाश से विपरीत रूप वाली दिन और रात्रि, (२) भिन्न भिन्न स्वभाव की या विशेष सुन्दर रूपवान् पति पत्नी ।
'विषुरूपे अहनी सं चरेते '
ऋ. १.१२३.७

विषुरूपे अहनी – नाना रूपों में दिन रात का होना ।
'विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि '
ऋ. ६.५८.१; साम. १.७५; तै.सं. ४.१.११.३; मै.सं. ४.१०.३; १५०.४; का.सं. ४.१५; नि. १२.१७
हे पूषन्, तू नाना रूपों में दिनरात होता है जैसे द्युलोक प्रकाश और अप्रकाश के भेद से दो प्रकार का होता है ।

विष्टुतिः – (१) विष्टुति नामक ऋचाएं जिससे विशेष स्तुति की जाती हैं , (२) आदरणीय पुरुषों की विशेष स्तुति ।
'ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः '
वाज.सं. १९.२८

विष्ण – विषन् + नक् = विष्ण । अर्थ – विद्याव्यापी । विद्वान् ।

विष्णु – सर्वतः रश्मिभिः प्रविष्टो भवति । रश्मियों से सर्वथः प्रविष्ट रहता है अतः आदित्य विष्णु है ।
(२) वि + अश् या विष धातु से विष्णु शब्द बना है ।
(३) मध्याह्नकालीन आदित्य
(४) इन्द्र का विशेषण,
(५) व्यापन शील परमात्मा,
(६) उत्तम गुणों का प्राप्त किया हुआ ।
'विश्वेत्ता विष्णुराभरत् '
ऋ. ८.७७.१०; मै.सं. ३.८.३: ९५.१३
व्यापनशील इन्द्र उन सभी धनों को लाया ।
आदित्य के अर्थ में प्रयोग–
'इदं विष्णुर्ति चक्रमे '
ऋ. १.२२.१७; अ.७.२६.४; साम. १.२२२; २.१०.९; वाज.सं. ५.१५.
यह आदित्य इस सृष्टि में जो विभाग में विभक्त है (इदम्) विविध प्रकार से क्रमण करते हैं (विचक्रमे) ।
(७) व्यापक राष्ट्र
विष्णों, श्नप्त्रे रथः विष्णोः स्यूरसि
वाज.सं. ५.२१,तै.सं. १.२.१३.३; का.सं. २.१०.२५.८; श.ब्रा. ३.५.३.२५; का.श्रौ.सू. ८.४.२१; आप.श्रौ.सू. ११..८.१.५; मा.श्रौ.सू. २.२.२.३२
(८) राज्य शासन रूप यज्ञ, (९) व्यापक राज्य का व्यवस्था, (१०) यज्ञ ।
'अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा '
वाज.सं. ५.१; मै.सं. १.२.६: १६.३, ३.७.९: ८८.८,का.सं. २.८.८; श.ब्रा. ३.४.१.९
(११) व्यापक तेज, (१२) व्यापक सामर्थ्य
(१३) सर्वव्यापक आकाश, (१४) आत्मा, वीर्य,
(१४) श्रोत्र
'पातु नो विष्णुरुत द्यौः '
अ. ६.३.१.
(१४) व्यापक जल ।
'विष्णोः शर्मासि '
वाज.सं. ४.१०,तै.सं. १.२.२.२; मै.सं. १.२.१: १०.३, १.२.२.: १०.१७; ३.६.६:६८.३; का.सं. २.३,२३.३, श.ब्रा. ३.२.१.१७, मा.श्रौ.सू. २.१.१.३१, २.५.

विष्णुना सुतम् – व्यापक पर परमेश्वर के संग प्राप्त ब्रह्मानन्द रस ।
'सोममपिबत् विष्णुना सुतं यथावशात् '
अ. २०.९५.२

विष्णुवन्ता – विष्णु या व्यापक सामर्थ्यों से युक्त अश्विद्वय या स्त्री पुरुष

'अंगिरस्वन्ता उतविष्णुवन्ता'
ऋ. ८.३५.१४

विस्फुरन्ती – विस्फुरन्त्यौ (विस्फुरित होती हुई)। वि + स्फुर + शतृ + ङीष्, = विष्फुरन्ती। द्विवचन में 'औङ्' के स्थान मे 'वाच्छन्दसि' विकल्प से पूर्व सवर्ण होता है।

विषूचिका – (१) विविध प्रकार की सूचना करने वाली संस्था (२) विविध ज्ञानों को देने वाली
या व्याघ्रं विषूचिका
उभौ वृकं च रक्षति
वाज.सं. १९.१०, मै.सं. ३.११.७:१५०.१४; का.सं. ३७.१८; श.ब्रा. १२.७.३.२१. तै.ब्रा. २.६.१.५

विषूची – () विविध गतियों वाली (२) सब तरफ जाने और व्यापने वाली शक्तियां।
'स सध्रीचीः स विषूचीर्वसावः'
ऋ. १.१६४.३१; १०.१७७.३; अ. ९.१०.११; वाज.सं. ३७.१७; मै.सं. ४.९.६: १२६.४; श.ब्रा. १४.१.४.१०; ऐ.आ. २.१.६.९; तै.आ. ४.७.१; ५.६.५; नि. १४.३.
(३) सब पदार्थों में व्यापक आकाश।
'सध्रीचीना पथ्या सा विषूची'
ऋ. ३.५५.१५
(४) विपरीत अराजक दिशा से जाने वाली।
'असुन्वामिन्द्र संसदं'
विसूचीं व्यनाशयः'
ऋ. ८.१४.१५; अ. २०.२९.५

विषूचीन – (१) नाना प्रकार की पीड़ाएं देने वाला दुष्ट पुरुष।
'विषूचीनान् वि नाशय'
अ. ८.६.१०
(२) नाना प्रकार का कष्ट देने वाला रोग।
'विषूचीनमनीनशत्'
अ. ३.७१; अपा.श्रौ.सू. १३.७.१६

निषूचीना – (१) नाना प्रकार की गति करने वाले जीव और देह
'ता शश्वना विषूचीना वियन्ता'
ऋ.१.१६४.३८ अ. ९.१०.१६; ऐ.आ. २.१.८.१३; नि. १४.२३

विषूचुः – धन के लिए एक दूसरे का विरोधी।
'सखा सखायमतरद् विषूचोः'
ऋ. ७.१८.६

विषूवत् – (१) फैलने वाला, (२) स्वंय उत्पन्न और विविध पदार्थों को उत्पन्न करने वाला।
'विषूवता पर एनावरेण'
ऋ. १.१६४.४३; अ. ९.१०.२५
(२) विषुः व्याप्तिः यस्य सः अर्थ– व्याप्ति वाला, फैल जाने वाला।
'स्वादोरित्था विषूवतः
मध्वः पिबन्ति गौर्यः'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; मै.सं. २३८.५
सूर्य की किरणें (गौर्यः) स्वादिष्ट एवं सूक्ष्म होकर ऊपर फैलने वाली वाष्पमय जल को (विषूवतः) पान कर लेती हैं (पिबन्ति)।
(३) व्याप्त तेज वाला सूर्य, (४) विस्तृत राज्य वाला राजा।

विषूवती – शिखरवाली शाला–मकान।
'सहस्राक्षं विषूवति'
अ. ९.३.८.

विषूवान् – 'विषुवान्' अर्थात् 'गवाम् अपन' मासों के दोनों के छः मासों के दोनों पूर्व और उत्तर पक्षों के बीच में एक विशस्तोम नामक सोम याग।
उपहव्यं विषूवन्तम्'
अ. ११.७.१५

विषूवृत् – (१) नाना प्रकार से देह में घूमने वाला
(२) विषुवत् वृत्त पर अतिक्रमण् करने वाला –सूर्य
को अस्मिन् आपोव्यदधात् विषूवृतः'
अ. १०.२.११
(३) सब प्रकार से नाश करने वाला।
'विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः'
ऋ. १०.४३.३; अ. २०.१७.३

विषूवृत – (१) सर्वत्र वर्तने वाला, (२) विशेष रूप से विविध सुखों को उत्पन्न करने वाला होकर आने वाला–रथ या संवत्सर (३) समस्त योनियों और लोकों में विद्यमान या अद्भुत रूप से और विविध रूपों के सुखों को देने वाला या विविध रूप से सुख पूर्वक–वर्तन या चेष्टा करने वाला देह।
'विषूवृतं मनसा युज्यमानम्'
ऋ. २.४०.३; मै.सं. ४.१४.१; २१५.२; तै.ब्रा. २.८.१.५.

विष्णोःक्रमः – परमेश्वर के चरण चिन्हों पर चलने वाला ।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः'
अ. १०.५.२४

विष्णोःपत्नी – (१) व्यापक सार्वभौम राजा की या हृदय में व्यापक प्रियतम पति की पालिका राजसभा
(२) 'ना विष्णु, पृथिवीपतिः' वेद राजा को विष्णु कहता है ।
'विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि'
अ. ७.४६.३

विष्णोःशर्म – व्यापक जल का आश्रय पृथिवी
'विष्णोः शर्मासि'
वाज.सं. ४.१०

विस – विस् + क = विस । अर्थ है – मृणाल, कमल की डंठल । विस् धातु भेदन कर्म या वृद्धि करना अर्थ में आया है (विसं विष्य तेः भेदन कर्मणः वृद्धि कर्मणः वा) ।
विस् धातु प्रेरण्यर्थक भी है, परन्तु धातुओं की अनेकार्थता के कारण यहां भेदन अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।
मृणाल की डंठल सदा बढ़ती है ।
मृणाले तु विसं विशम् ।
आधुनिक अर्थ– कमल के रेशे । कमल को रेशे वाली डंठल ।

विसखा – विस + खा । कमल का मूल उखाड़ने वाला ।
'इयं शुष्मेभि र्बिसिखा इवारुजात्'
ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७; २२६.९; का.सं. ४.१६.; तै.ब्रा. ८.२.८. नि. २.२४

विसर्ग – (१) विविध प्रकार का सर्ग जल– (२) विविध प्रकार के अध्याय, काण्ड
'तमा घर्मा अश्नुवते विसर्गम्'
ऋ. ७.१०३.९

विसर्जन – वि + सर्जन । विशेष निर्माण, विशेष स्थान ।
'अवतस्य विसर्जने'
ऋ. ८.७२.११

विसर्पक-विसल्पक – त्वचा पर फैलने वाला विसर्प नामक कुष्ठ रोग ।
'विसल्पकस्योषधे'
अ. ६.१२७.१

विसर्मा – विनाशशील ।
'विसर्मा कृणुहि वित्तमेषाम्'
ऋ. ५.४२.९

विसल्प – नाना प्रकार का फैलने वाला रोग ।
'विसल्पस्य विद्रधस्य'
अ. ९.८.२०

विसल्यक – (१) विसर्पक, विशेष रूप से फैलने वाला, एक्जिमा आदि रोग ।
'अङ्गभेदो विसल्यकः'
अ. १९.४४.२
(२) नाना प्रकार से रंगने वाला टीसने वाला कान का दर्द ।
'कर्णशूलं विसल्यकम्'
अ. ९.८.२

विसस्रे – विस्रंसयति, विवृणोति प्रकाशयति, (विशेषरूप से स्पष्ट करती है) ।
'उतोत्वस्मै तन्वं वि सस्रे'
ऋ. १०.७१.४; नि. १.१९
किसी को यह वेदवाणी, वाणी के शरीर आत्मा तत्व का भाव को विशेष रूप से स्पष्ट कर देती है (विसस्रे) ।

विष्पर्धत् – (१) विविध प्रकार की स्पर्धा करने वाला, (२) नाना ऐश्वर्यों का इच्छुकजीव ।
उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम्'
ऋ. ८.२३.२

विष्पर्धसः – ब.व. । विशेष स्पर्धा से युक्त –मरुत् ।
'विष्पर्धसो विमहसः'
ऋ. ५.८७.४

विष्पर्धाः – (१) विविध वास्तुनिर्माण (२) यह लोक ।
'विष्पर्धाश्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.३; मै.सं. २.८.७: ११२.३; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.६.

विस्रस् – (१) विविध प्रकार का नाशकारी विष ।
'खृगलेव विस्रसः पातमस्मान्'
ऋ. २.३९.४
(२) शिथिल
'ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रात्'
ऋ. ८.४८.५

विस्रसः – ब.व. । विविध दिशाओं से आने वाले ।
'अरसाः सप्त विस्रसः'
अ. १९.३४.३

विस्रस्त – विनाश प्राप्त भाग ।
'सं ते मांसस्य विस्रस्तम्'
अ. ४.१२.३.

विसान – विशेष रूप से भोगने योग्य पद ।
'विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते'
ऋ. ५.४४.११

विसार – (१) दूर करना, (२) विविध दिशाओं में फैलना या आक्रमण करना ।
'हिरण्यकेशो रजसो विसारे'
ऋ. १.७८.१; तै.सं. ३.१.११.४; ऐ.ब्रा. ७.९.४, आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७, आप.श्रौ.सू. १९.२७.१०

विष्ठित् – विविध प्रकार से स्थित ।
'रजांस्यनु विष्ठिताः'
ऋ. १.१८७.७

विस्फुरन्ती – द्वि.व. । विस्फुरन्त्यौ (छटकती हुई) धनुष की कोटियों का विशेषण ।
'आर्त्नी इमे विस्फुरनती अमित्रान्'
ऋ. ६.७५.४; वाज.सं. २९.४१; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१७; का.सं.(अश्व.) ६.१ नि. ९.४०
ये धनुष की कोटियां छटकती हुई शत्रुओं का नाश करें ।

विस्रुह् – वि + स्रव् + क्विप् = विस्रव । व का हा और धातु का दीर्घ बन कर विस्रुह बना है । अर्थ है– जल । 'विस्रुहः आपो भवन्ति विस्रवणात्' (विस्रुह का अर्थ जल है विस्रवण के कारण) ।
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा
सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना
तस्येदु विश्वा भुवनादि मूर्धनि
वया इव रुरुहः सप्त विस्रुहः'
ऋ. ६.७.६
नित्य वैश्वानर अग्नि के कर्म से (अमृतस्य वैश्वानरस्य केतुना) तथा दर्शन या तेज से (चक्षसा) द्युलोक से भी जो समुच्छ्रित स्थान अर्थात् नक्षत्र या मेघ बने हैं (दिवः सानूनि विमितानि) तथा उसी वैश्वानर अग्नि के ऊपर विराजमान धूम के मेघ के रूप में परिणत होने पर (तस्य इत् ऊ मूर्धानि) समस्त भूत एवं भावमितृ जल रहते हैं (विश्व भुवनानि अधि) अथवा वैश्वानरात्मक पर ब्रह्म के ऊपर सभी भूत जात बसते हैं । तथा शाखाओं के सदृश सर्पणशील या सात जल नदी रूप में बहते हैं (वयाः सप्त विस्रुहः विरुरुहुः) । अग्नि से ही आहुति द्वारा सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ।
अन्य अर्थ – अमर तथा सर्व व्यापक परमेश्वर के (अमृतस्य वैश्वा नरस्य) प्रताप और सामर्थ से (चक्षसा केतुना) द्युलोक के उच्चस्थान निर्मित हैं (दिवः सानूनि विमितानि) और उसी के अधिष्ठातृत्व में (तस्य इत उ मूर्धनि) सब लोग अधिष्ठित हैं (भुवनानि अधि) और उसी के प्रताप से संर्पणशील जल (सप्त विस्रुहः) नदियों के रूप में विश्व की शाखाओं की तरह (वयाः इव) चारों ओर दिशाओं में प्रादुर्भूत हैं ।

विस्रुहा – (१) यः रोगान् हन्ति (रोग हरने वाला)–दया.
(२) रोग की तरह शत्रुओं का नाशक
'मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः'
ऋ. ५.४४.३

विसृजस्व – खोल, चौड़ाकर ।
'विसृजस्वधेने'
हे इन्द्र, सोमपान के निमित्त अपनी उपजिह्विका या लोल को (धेने) विवृत कर ।

विस्तृत् – (१) विविध भागों या प्रकारों से चलने वाली सेना या प्रजा,
(२) विविध छोटा नाला ।
'अतर्पयो विसृत उब्जा ऊर्मीन्'
ऋ. ४.१९.५

विसृप् – योद्धाओं को नाना चालों से युक्त –युद्ध
'पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्'
वाज.सं. १.२८; तै.सं. १.१.९.३; का.सं. १.९; २५.५; श.ब्रा. १.२.५.९; तै.ब्रा. ३.२.९.१३.

विसृष्टधेना – (१) नाना शासनाज्ञा से युक्त पृथिवी,
(२) विविध उत्तम वाणी बोलने वाली स्त्री ।
(३) विविध विद्यायुक्त वाणी
'विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिः'
ऋ. ७.२४.२

विसृष्टरातिः – (१) जिससे विविध दान दिया हो–

दया. (२) जो संसार में विद्या आदि का दान देता है ।
'विसृष्टरातिर्याति बाढसृत्वा'
ऋ. १.१२२.१०
जो विद्या आदि का दान करता है (विसृष्ट राति) और जो उत्तम कर्मों का करने वाला होकर (बाढ़ सृत्वा) या प्रशस्त बल से चलने वाला होकर विचरता है (याति) ।

विहरति – (१) भोग करता है, (२) पृथक् करता है ।
'यस्त ऊरू विहरति'
ऋ. १०.१६२.४; अ. २०.९६.१४

विहरन् – (१) दूर करता हुआ, (२) विचरता हुआ ।
'वहिष्ठोभिर्विहरन् यासि तन्तुम्'
ऋ. ४.१३.४; का.सं. ११.१३; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७; आप.श्रौ.सू. १६.११.१२
'ये पाकशंसं विहरन्त एवैः'
ऋ. ७.१०४.९; अ. ८.४.९.

विहल्ह – (१) नाना प्रकार के सर्वत्र व्यापक –परमेश्वर । (२) सर्षप का पिता ।
'विहल्हो नाम ते पिता'
अ. ६.१६.२

विहव – (१) विविध उपदेश प्रदान से युक्त स्वाध्याय काल– (२) विशेष रूप से आह्वान करने का संग्राम काल
'वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणाः'
ऋ. ३.८.१०

विहव्य – विशेष हवनीय या आद से स्तुति करने योग्य ।
'राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीत्'
अ. २.६.४, वाज.सं. २७.५; तै.सं. ४.१.७.२; मै.सं. २.१५.५: १४९.३, का.सं. १८.१६

विह्वयन्ते – आह्वान करते हैं ।

विहव्यज्ञ – हव्य रहित यज्ञ ।
'अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे'
अ. ७.५.४.

विह्वयामहे – विविध प्रकार से (हम) स्तुति करते हैं ।
वाघद्भिर्विह्वयामहे'
ऋ. १.३६.१३; साम. १.५७, वाज.सं. ११.४२, तै.सं. ४.१.४.२; का.सं. १५.१२; १६.४; मै.सं. २.७.४: ७८.१४; ऐ.ब्रा. २.२.१७; श.ब्रा. ६.४.३.१०; तै.ब्रा. ३.६.१.२.

विहायस् – प्रबल या महान् नि–
'ये ते मदा आहनसो विहायसः'
ऋ. ९.७५.५; नि. ४.१५.
हे सोम, जो तेरे शत्रुओं को मारने वाले (आहनसः) प्रबल या महान् रस हैं (विहायसःमदाः) –सा.
हे जगदुत्पादक प्रभो, जो आपके उपदेशक (आहनसः) महान् आनन्दप्रद वेद हैं । (विहायसः मदाः) ।–ज.दे.श.
आधुनिक अर्थ – आकाश, वातावरण ।

विहायाः – (१) विशेष विशेष विविध विद्याओं का दान करने वाला, (२) विरक्त, सर्वत्यागी, (३) आकाशवत् व्यापक परमेश्वर ।
'ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः'
ऋ. ३.३६.२, तै.ब्रा. २.४.३.१२.
(४) आकाशवत् व्यापक ।
'येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः'
अ. १०.९२.१५

विहुत्मति – (१) प्रजा का विशेषण । जिसमें 'विहुत्मति' अर्थात् विशेषता से होम करने वाला विचारशील मनुष्य हो–दया (२) विविध ग्राह्य पदार्थों से सम्पन्न और सुसमृद्ध प्रजा ।
'उतो विहुत्मतीनां
विशां ववर्जुषीणाम्'
ऋ. १.१३४.६
तू विविध ग्राह्य पदार्थों से सम्पन्न और सब दोषों से रहित प्रजाओं का भी पालन और उपभोग करने में समर्थ है ।

विह्नु – कुटिल मार्गी सर्प ।
'विह्नुत आन्त्रैः'
वाज.सं. २५.७; मै.सं. ३.१५.९: १८०.४

विहुत – (१) विपरीत रूप से मुड़ा हुआ, (२) विच्छिन्न
'इष्टकर्त्ता विहुतं पुनः'
ऋ. ८.१.१२; २०.२६, का.सं.सू. २५.३०
(३) कुटिलभाव

विहृदय – विरुद्ध हृदयता ।
विहृदयं वैमनस्यम्'

अ. ५.२.१.१

वी – (१) खाना ।
'वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा'
अ. ६.८३.४
(२) सन्तति उत्पन्न करना ।
प्रवीयमाना चरति'
अ. १२.४.३७
'वीतं पातं पयस उस्रियायाः'
(गाय का दूध खाओ और पियो) ।
'वीहि शरा पुरोजाशम्'
(३) सं. । विविध बलों या स्वामी, (४) तेजस्वी, (५) रक्षक (६) वीर
'ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः'
ऋ. ६.२४.२

वीक्षित – विशेष रूप से साक्षात् किए हुआ ।
वीक्षिताय स्वाहा
वाज. सं. २२.८

वीची – वि + अञ्च् + ङीष् = वीची । अर्थ है– (१) विज्ञान, (२) विश्वय ।

वीडयति – वील और व्रील धातु संस्तम्भ अर्थात् दृढ़ीकरण अर्थ में है । वील तिश्चं व्रीऽयतिश्च संसम्भकर्मणि ।
'तद् देवानां देवतमाय कर्त्वम्
अश्रथ्नन् दृढ़ाव्रदन्त वीडिता
उद् गा आयदभिनद् ब्रह्मण वलम्
अगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः'
ऋ. २.२४.३
इन्द्रादि देवों में देवतम अर्थात् अत्यन्त दानादि गुणों से युक्त बृहस्पति का वह कर्तव्य कर्म (देवानाम् आय तत् कर्त्वम्) जिसने दृढ़ मेघ में वलों के या असुरों के सामर्थ्य को विश्लिष्ट या पराभूत किया (दृढ़ा अश्रथ्नन्) तथा जिससे सस्तम्भित, सन्नद्ध या दर्पित असुर कुल मृदुबल गए (व्रीडिता अवदन्त) तथा उस बृहस्पति ने वल नामक असुर से चुराई गायों को (गाः), या दुर्ग के मत से, जलों को देवों के प्रति मोड़ा (उदानता) और आत्मीय यन्त्र से (ब्रह्मणा) वल नामक असुर या मेघ को छिन्नभिन्न किया (वलम् अभिनत्) । उस के उपरान्त वल के द्वारा उत्पादित अन्धकार को विद्युत् से अदृश्य कर दिया (तमः अगूहत्) और सूर्य को (स्वः दिखलाया (व्यचक्षयत्) ।

वीड़ास्व – दृढ़ीभाव (दृढ़ हो) । 'वीड' धातु स्तुति तथा दृढ़ करना अर्थ में प्रयुक्त है ।
'अरिषण्यन् वीडयस्वा वनस्पते'
ऋ. २.३७.३; नि. ८.३
हे वनस्पते, हिंसा की कामना न करता हुआ तू अपने को दृढ़ कर आज भी किसी कार्य के लिए वीड़ा उठाना, का प्रयोग किया जाता है ।

वीड्वंग – वीडु + अंग । स्थिर दृढ़ शरीर वाला ।
'स्थिरोभाव वीड्वंगः'
वाज.सं. ११.४४, तै.सं. ४.१.४.२, ५.१.५.४, मै.सं. २.७.४: ७९.१; ३.१.६: ७.१५; का.सं. १६.४; १९.५; श.ब्रा. ६.४.४.३; आप.श्रौ.सू. १६.३.१०,

वीडित – (१) विविध प्रजाओं से प्रशंसित – इन्द्र,
(२) दृढ़ीभूत इन्द्र ।
'अक्षवीडो वीडितवीडयस्व'
ऋ. ३.५३.१९
(३) वीर्यवान् । बलवान् ।
'रथ्रचोदः श्रथनो वीडितस्पृथुः'
ऋ. २.२१.४
'अच्युता चिद् वीड़ित खोजः'
ऋ. ६.२२.६, अ. २०.३६.६
(४) सेना बल

वीड्वी – शक्तिशाली ।
'वीड्वीर्यामानवर्द्धनयन्'
वाज.सं. २८.१३; तै.ब्रा. २.६.१०.१.

वीडु – (१) विर्यवान् –इन्द्र ।
'अक्ष वीडो वीडित वीडयस्व'
ऋ. ३.५३.१९
(२) २ बलवान्स दर्पित शत्रु ।
'वीडोश्चिदिन्द्रो या असुन्वतो वधो'
'मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे'
ऋ. १.१०१.४
जो इन्द्र दर्पित शत्रु तथा यज्ञ विरोधी का हन्ता है उस मरुतों से युक्त इन्द्र को अथवा सखा बनाने के लिए हम आह्वान् करते हैं ।

वीडुजम्भः – बलवान् हिंसाकारी
सैन्य बल से युक्त ।

वीडुद्वेषाः – बलवान् शत्रुओं को भी दबाने वाला ।
'वीडुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः'
ऋ. २.२४.१३

वीडुपत्मन् – (१) वलेन पतनशीलः (वेग से गिरने वाला) – दया. (२) बलवान् चक्रों या पैरों वाला रथ–ज.दे.श. ।
वीडुपत्मभिराशुहेमभिर्वा
देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
ऋ. १.११६.२
हे अश्विनो, सेना के नासिका या मुख्य स्थान पर स्थित भी असत्य न देखने वाले चक्षुओं के समान अध्यक्ष पुरुषो, आप दोनों बलवान् चक्रों या पैरों वाले (वीडुपक्तभिः) शीघ्र गतिशील रथों से (आशुहेमभिः)
युद्ध विजिनीषु पुरुषों की वेगवती सेनाओं से शत्रुसेनाओं को छिन्न भिन्न करते हो (देवानां जूतिभिः शाशदाना) ।

वीडुपाणिः – (१) बलवान् हाथों वाला (२) बलवान् सैन्य बल को अधीन करने वाला ।
'यत्र वाजी तनयो वीडुपाणिः '
ऋ. ७.१.१४; तै.ब्रा. २.५.३.३

वीडुहरः – बलवानों का संहारक ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूः '
ऋ. १०.१०९.१; अ. ५.१७.१

वीडुहराः – परमात्मा के वीर्य या शक्ति को धारण करने वाले तीन तत्व–सूर्य, वायु और जल ।
'वीडुहरास्तप उग्रो मयोभूः
आपो देवीः प्रथमजा ऋतेन '
ऋ. १०.१०९.१; अ. ५.१७.१

वीडुहर्षी – (१) वीर्य के मद से अतिप्रसन्न, (२) गर्वीला वीर ।
'उग्रस्य चिद् दमिता वीडुहर्षिणः '
ऋ. २.२३.११

वीणावाद – वीणा बजाने वाला
महसे वीणावादम् ।
वाज.सं. ३०.१९; तै.सं. ३.४.१.१३

वीत – प्राप्त ।

वीततम – (१) अत्यन्त कामना युक्त, (२) खूब ज्ञान प्रकाशक, सुन्दर खूब ज्ञान प्रकाशक, सुन्दर ग्राह्य ज्ञान ।
'इमो अग्ने वीततमानि हव्या '
ऋ. ७.१.१८; तै.सं. ४.३.१३.६; मै.सं. ४.१०.१: १४३.६; का.सं. ३५.२; ऐ.ब्रा. १.६.५.

वीतपृष्ठ – (१)वीता व्याप्ताः पृष्टाः विद्या सिद्धान्ताः येन (जिसमें विद्या के सिद्धान्त व्याप्त हो) (२) यज्ञोपवीतधारी ।
'देवानामाशा उपवीत पृष्ठः '
ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.४; का.सं. (अश्व) ६.४.

वीतपृष्टाः हरितः – कान्ति युक्त रूप वाली जल रहने वाली मेघ मालाएं वायु या किरणें, (२) घोड़े ।
'अयुक्त यद्धरितो वीतपृष्टाः '
ऋ. ५.४५.१०
(३) कमनीय स्वरूप वाले ज्ञानप्राप्त पुरुष, (४) कर्म करने में कुशल विद्यार्थिनी कन्याएं, यज्ञोपवीत धारी ब्रह्मचारी

वीतम् – अश्नीतम् (तुम खाओ) ।

वीतम् पातम् – खाओ पीओ ।
'वीतं पातं पयस उस्रियायाः '
ऋ. १.१५३.४; अ. ७.७३.५; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४; शां.श्रौ.सू. ५.१०.१८, नि. ४.१९
आप दोनों उपदेशक और अध्यापक, दुग्ध के बने खीर आदि पदार्थों का भोजन करें । (उस्रियायाः पयसः) –दया. ।
आप दोनों (मित्र और वरुण) गाय का दही खाओ और पीओ । सा–

वीतवारः – चमकते हुए बालों वाला, अंग्रेजी के white शब्द का 'वीत' शब्द से चमकता अर्थ में मिलान करें ।
'वीतवारास आशवः '
ऋ. ८.४६.२३

वीताम् – पिवेताम् (पीवें), कामयेताम् ।
'वसुवने वसुधेयस्य वीताम् '
वाज.सं. २८.१४–१७,३७–४०
जो जोषयित्री देवियां विशेष धन से संम्पादित का अंश पीवें ।

वीतराधा – (१) कान्ति, तेज, एवं रक्षण–सामर्थ्य से सम्पन्न
(२) शक्ति का धनी
(३) शक्ति से कार्य सिद्ध करने में समर्थ ।
'ईशानं वीतिराधसम् '
ऋ. ९.६२.२९

वीतहव्य – पवित्र अन्न प्राप्त करने वाला प्राप्त ।
'त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यम् '

ऋ. ७.१९.३; अ. २०.३७.३

वीतिः – (१) वी + क्तिन् = वीति । अर्थ –भोजन, पान,

'पत्नीवन्तः सुतां इमे
उशन्तो यन्ति वीतये'

ऋ. ८.९३.२२; नि. ५.१८

वीतिहोत्रः – (१) उत्तम गुणों से व्याप्त विद्याओं, रक्षाओं और तेजों को स्वयं धारण करने या कराने वाला, (२) अग्नि

अग्न इडा समिध्यसे
वीतिहोत्रो अमर्त्यः'

ऋ. ३.२४.२

वीथः – (क्रः) (१) तुम पसन्द करते हो–सा. (२) शामिल होते हो –दया.

'उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरम्'

ऋ. १.१५१.७

उसी शोभनयज्ञ यजमान को उपलक्षित कर (तम् उप) तुम प्राप्त करते हो (गच्छथः अह) तथा उसके यज्ञ को पसन्द करते हो (अध्वरं वीथः) –सा. ।

उसके पास आप दोनों अध्यापक तथा उपदेशक जाते हैं (अह तम् उपगच्छथः) और उसके यज्ञ में शामिल होते हैं (अध्वरं वीथः) –दया.

वीध्य – (१) विविध प्रकाशों के विज्ञान में कुशल ।

'नमो वीध्राय चातप्याय च'

वाज.सं. १६.३८; का.सं. १७.१५; मै.सं. २.९.७: १२५.१४

वीध्र – (१) विशेषेण इन्ध्यते दीप्यते तद् वीध्रम् –स्वभाव शुद्धः द्यौः, विविधम् इन्धते (२) आकाश, (३) स्वभावतः शुद्ध आत्माकाश ।

'वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तम्'

अ. ४.२०.७

वीरः – (१) वि + ईर + अच = वीर । विविध प्रकार से गति या संचालन उत्पन्न करने वाला विद्युत् । (२) वीर ।

क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रम्

ऋ. ५.३०.१; कौ.ब्रा. २१.३; २४.५; २६.१२

(३) विविध लोकों पदार्थों को विविध रूप से चलाने वाला परमेश्वर ।

'सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यम्'

ऋ. २.१३.११

(४) वि + ईर (णिजन्त) + अच् = वीर, णि का लोप । ईर् धातु क्षेप, गति और कम्पन अर्थों में प्रयुक्त होता है ।

वीरः वीरयति अमित्रान् (वीर शत्रुओं को विविध प्रकार से 'ईरयति' अर्थात् प्रेरित करता, कंपाता या मारता है . अतः वह वीर है) ।

(५) गत्यर्थक वि + रक् = वीर । गच्छत्येव असौ अभिमुखं शत्रून् (यह शत्रुओं का सामना करता है) ।

(६) विक्रान्त्यर्थक वीर + अच् = वीर । वीर विक्रान्त होकर पराक्रमी बनता है । अतः वह वीर कहलाया ।

(७) पुत्र ।

'अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः'

ऋ. ७.१०४.१५; अ. ८.४.१५; नि. ७.३.

और वह दशा वीरों से वियुक्त हो ।

वीरक – वीर्ययुक्त पुरुष ।

असौ य एषि वीरकः'

ऋ. ८.९१.२; तै.ब्रा. १.२२०

वीरकुक्षिः – वीर पुत्र को गर्भ में धारण करने वाली स्त्री ।

'अग्निर्नारीं वीर कुक्षि पुरंधिम्'

ऋ. १०.८०.१

वीरध्नी – वीर पुरुष गामिनी

'वीरघ्नी भव मेखले'

अ. ६.१३३.२

वीरपस्त्य – (१) जिसके घर में वीर हो–दया. (२) पुत्र तुल्य प्रजाओं का पालक ।

'नृमणा वीरपस्त्यः'

ऋ. ५.५०.४

वीरेपेशाः – (१) वीरस्त्य, अग्नि ।

'अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशाः'

ऋ. १०.८०.४; तै.सं. २.२.१२.६.

(२) वीरों का स्वरूप या वीरों के योग्य सुवर्ण आदि धन ।

'त्वदेति द्रविणं वीरपेशाः'

ऋ. ४.११.३; का.सं. २१.१४

वीरपोष– वीर पुरुषों या पुत्रों की सम्पत्ति,

'गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि'

अ. १३.१.१२; मा.श्रौ.सू. ३.१.२८

वीरयध्वम् – (१) पराक्रम दिखायें, (२) वीर पुत्र दें ।
'विश्वे देवास इह वीरयध्वम्'
ऋ. १०.१२८.५; अ. ५.३.६; तै.सं. ४.७.१४.२; श.ब्रा. १.७.४.२२ ; आप.मं.पा. २.९.६
ऐ विश्वदेवो, आप हमारे अंग भाव बनकर धनादि दान में पराक्रम दिखायें या हमें वीर पुत्र दें (विश्वे देवासः इह वीर यध्वम्) ।

वीरया– वीराः । वीर ।
'प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वाम्'
ऋ. ७.९०.१; वाज.सं. ३३.७०; ऐ.ब्रा. ५.२०.८; कौ.ब्रा. २६.८.

वीरयुः– (१) वीरों का स्वामी ।
'वीरयुः शवसस्पते'
ऋ. ९.३६.६
(२) वीरों को चाहने वाला ।
'एवा ह्यसि वीरयुः'
ऋ. ८.९२.२८; अ. २०.६०.१; साम. १.२३२; १७४; कौ.ब्रा. २३.२; पंच.ब्रा. ११.११.३; आश्व श्रौ.सू. ७.८.२; शां.श्रौ.सू. १०.६.१४; १२.९१.१; वै.सू. ३१.२६; ४०.१४; ४१.७; ८.१६; ४२.१.

वीरवक्षण– (१) वीर पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य, (२) वीरों के द्वारा धारण ।
'ता अत्नत वयुनं वीर वक्षणम्'
ऋ. ५.४८.२

वीरवाद्– (१) वीरों को पीठ पर ले जाने वाला– अश्व, पुत्रों के लालन पालन का भार उठाने वाले स्त्री पुरुष ।
'ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहः'
ऋ. ७.४२.२

वीरवाः– वीरों का स्वामी ।
त्वया वीरेण वीरवः
ऋ. ९.३५.३

वीरषुष्मा – (१) जिसमें वीर योद्धाओं का बल हो (२) पुरुषों तथा शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ सेना ।
'सं देव्या प्रमत्या वीर शुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि'
ऋ. १.५३.५; अ. २०.२१.५; मै.सं. २.२.६: २०.५; का.सं. १०.१२
विजय करने वाली (देव्या) उत्कृष्ट ज्ञानवान् विद्याओं को प्रमुख करने वाली एवं शत्रुओं को अच्छी प्रकार थामने वाली (प्रमत्या) पुरुषों तथा शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ बल से युक्त (वीर शुष्मया) भूमि और सेनापति की आज्ञा को ही मुख्य लक्ष्य रखने वाला (गो अग्रया) और अश्वों और अश्वारोही वीरों तथा शीघ्रगामी यान वाली सेना से (अश्वावत्या) प्रबल होकर हम भली प्रकार शत्रुओं से संग्राम करें ।
गृहस्थ पक्ष में – उत्तम बुद्धि वाली स्त्री, वीर्यवान् पति या पुत्र के बल से युक्त उत्तम वाणी तथा गौ आदि पशु सम्पदा का पालन करने वाली अश्वादि पशुओं के उपभोग जानने वाली स्त्री के सहित गृहस्थ कर्म सम्पन्न करें ।

वीरहा– पुत्रों और वीर्यवान् पुरुषों को नाश करने वाला ।
'नारकाय वीरहणम्'
वाज.सं. ३०.४ तै.ब्रा. ३.४.१.१

वीर्य– (१) उत्पादक सामर्थ्य ।
'साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः'
ऋ. २.२२.३; साम २.८३७
(२) वि + ईर् + यत् = वीर्य । जो विशेष प्रकार से गति दे ।
(न) वीरता का कर्म ।
'याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय'
ऋ. १०.३०.४; अ. १४.१.३७; नि. १०.१९
जिनका पान कर इन्द्र वीर कर्मों के लिए बलवान् होते हैं ।
आधुनिक अर्थ– बल, शक्ति , साहस, वीरता, ओज, दृढ़ता साहस, प्रभाव, उत्पादक वीर्य सौन्दर्य, गौरव ।

वीर्यवत्तरः – औरों से अधिक बलवान् ।
'इहैधि वीर्यवत्तरः'
अ. १८.४.३८

वीर्त्सा– वि + ईर्त्सा । (१) विशेष ऋद्धि को प्राप्त करने की इच्छा प्रलोभन या लालच
'नमो वीर्त्साया असमृद्धये'
अ. ५.७.१

वीर्यावत्– बलवान् ।
'ब्रह्मणा वीर्यावता'
अ. ४.३७.११; १०.१.१४, तै.आ. १.९.७

वीर्यावती– (१) वीर्यवाली पत्नी, (२) अपनी शान्ति की रक्षा करने वाली जितेन्द्रिय पत्नी ।
'एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति'
अ. ६.१३९.५
(३) बल वाली ।
'वीरुधां वीर्यावती'
अ. ४.३७.५

वीर्यवान् – वीर्यवान् पुरुष ।
'याभिरिन्द्रो ववृधे वीर्यावान्'
अ. १४.१.३७

वीरिट्– वेञ् (तन्तु सन्तान अर्थ में तथा गति अर्थ में) + इन् = वि । डित् होने से टि का लोप होने से 'वि' रह गया ।
गत्यर्थक 'वय' धातु से असुन् प्रत्यय कर वयस् (पक्षी) का ही 'वि' हो जाता है । (पृषोदरादिवत्) ।
तुदादि में 'इल' धातु का गति और क्षेपण अर्थों में पाठ है, परन्तु यास्क ने ईर् धातु को भी गत्यर्थक माना है । र् ल् की समानता है । अतः इर + इटक = इरीट (कित होने से गुण नहीं हुआ) ।
अथवा 'भांसि नक्षत्राणि इरन्ति अस्मिन् (इसमें नक्षत्र चलते हैं, अतः 'वीरिट' कहलाया) ।
भास् + क्विप् = वि (पृषो–दरादिवत्) । अर्थ है–नक्षत्र ।

वारिणी– (१) वीर पुरुष को वरण करने वाली स्त्री ।
'उताहमस्मि वीरिणी'
ऋ. १०.८६.९, अ. २०.१२६.९
(२) इन्द्र पानी, इन्द्राणी, –सा. (३) वीरांगना । (४) वीर्यवान् । आत्मारूप वीर पति वाली (५) वीर्यवान्, प्राणरूप पुत्रवाली ।

वीरुत् – (१) विशेष रूप से नित्य बढ़ने वाली लता (२) ब्रह्मविद्या, (३) वीर्य को जन्म देने वाली स्त्री
'इयं वीरुन्मधुजाता'
अ. १.३४.१; ७.५६.२
(४) विविध प्रकार की रोग पीड़ाओं को रोकने वाली ओषधि ।
'वीरुधः पारयिष्णवः'
ऋ. १०.९७.३
(५) वि + रुह् + क्विप् = वीरुध् । 'वि' का 'वी' और ह का ध् । अथवा – वि + रुह् + वु = विरुह् । विरह् का ही वीरुध् हो गया ।
अथवा वि + रुध् + क्विप् = वीरुध् । यह अनेकानेक रोगों को रोकती है ।
(२) विविधं रोहन्ति (विविध रूप से उपजाता है ।
ओषधीः प्रति मोदध्वं
पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीः
वीरुधः पारयिष्णवः'
ऋ. १०.९७.३
हे ओषधियो, (ओषधीः) हमारे प्रति या इस रुग्ध के प्रति प्रसन्न हो (प्रतिमोदध्वम्) तुम पुरुषों से युक्त (पुष्पवतीः) फलों से युक्त (प्रसूवरीः), बड़वा के समान (अश्वाः इव) एकत्र हो रोगों के जीतने वाली (सजित्वरीः) पुरुषों को रोगों से पार लगाने वाली ओषधियां हों (पारयिष्णवः) वीरुधः ।
आधुनिक अर्थ – फैलाने वाली लता, लता प्रतानिनो वीरुत् ।
शाखा, अंकुर, काटे जाने पर उपजने वाला पौधा, लता जड़ी बूटी
(७) विशेष रूप से रोकने वाली वीरुध् लता, (८) बढ़ते हुए शत्रुओं को विशेष रूप से रोकने वाला ।
'अपामग्निर्वीरुधां राजयसूयम्'
अ. १९.३३.१
(९) लताओं पर लगने वाली फूल, (१०) विशेष रूप से बीज को जन्म देने वाला । पुरुष ।

वीरुधां पञ्चराद्यानि – लताओं एवं ओषधियों की पांच श्रेणियां–दर्भ, भांग, यव, सहपान, ओषधि
पञ्चराज्यानि वीरुधाम्
सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
अ. ११.६.१५

वीरुधां राजा – ओषधियों का राजा सोम ।
'अश्वत्था दर्भो वीरुधाम्
सोमो राजामृतं हविः'
अ. ८.७.२०

वीरेण्यः– वीरों का नायक–सेनापति ।
'वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिः'

ऋ. १०.१०४.१०

वीहि- वी (भक्षणार्थक) के लोट् म.प्र. ए.व.का रूप। अर्थ है- भक्षण। (ख)

इमां ब्रह्म ब्रह्मवाहः
क्रियन्त आवर्हिः सीद
वीहि शूर पुरोडाशम्।

३.४१.३; अ. २०.२३.३; का.सं. २६.१२; तै.ब्रा. २.४.६.२.

यज्ञ कहता है कि इन्द्र, ये ऋक् यजुः साम के स्वर सौष्ठव से युक्त या अन्न या हवि वहन करने में समर्थ स्तोत्र किए जाते हैं (इमा ब्रह्मवाहः ब्रह्म क्रियन्ते)। अतः आसन पर आकर बैठें (बर्हिः आसीद)।

हे समर्थ इन्द्र (शूर), हमारे दिए इस पुरोडाशम् नामक हवि को (पुरोडाशम्) खा (ब्रीहि)।

व्रीहि- धान्य। साठी चावल आदि

'व्रीह्यश्च मे यवाश्च मे"

वाज.सं. १८.१२

व्युच्छान् - बिताते हैं।

'अधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्'

ऋ. ७.१८.२१

और उन विद्वानों के साथ होने से उत्तम दिन बीतते हैं (व्युच्छान्)।

व्युत- (१) निवारण, खुला, विस्तृत, विविध तन्तु सन्तानों से बना हुआ।

'उरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः'

ऋ. ३.५४.९

(२) विशेष रूप से बुना हुआ वस्त्र।

इसी 'व्युत' का अपभ्रंश बेल बूटा किया हुआ वस्त्र है।

'स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना'

ऋ. १.१२२.२

वह कवच को योद्धा के समान (स्तरीःन) विशेष रूप से बने हुए वस्त्र को (व्युतम्) पहनता हुआ (वसाना)....

व्युद्यते- वि + उद्यते। खूब खींची जाती है।

'आदिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते'

ऋ. १.१६४.४७; अ. ६.२२.१; ९.१०.२२; मै.सं. ४.१२.५:१९३.८; का .सं. ११.१३; नि. ७.७.२४

तब जल से पृथिवी खूब सिक्त हो जाता है।

व्युनत्ति- वि + उनत्ति = व्युनत्ति। अर्थ-तरह तरह से पटाता है या विशेष रीति से पढ़ाता है।

'यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम'

ऋ. ५.८५.३; नि. १०.४

जैसे पटाने वाला (वृष्टिः) यव बोने के लिए वृष्टि भूमि को (भूम) तरह तरह से पटाता है (व्युनत्ति)।

व्युन्दन- (१) पृथिवी को गीला करने वाला।

'अदित्यै व्युन्दमसि'

वाज.सं. २.२; श.ब्रा. १.३.३.४

व्यमृकेश - विशेष रूप से केश कटा कर रखने वाला संन्यासी।

'नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च'

वाज.सं. १६.२९, तै.सं. ४.५.५.१

व्युब्ज- विशेषरूप से प्रकाशित करना।

'मित्रः प्रातर्व्यब्जतु'

अ. ९.३.१८

वुरीत- चाहो।

'विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्'

ऋ. ५.५०.१; वाज.सं. ४.८; ११.६७; २२.२१, तै.सं. १.२.२.१; ४.१.९.१; ६.१.२.५; मै.सं. १.२.२:१०.१५; २.७.७:८२.१०; ३.६.५:६५.९, का.सं. २.२; १६.७; श.ब्रा. ३.१.४.१८; ६.६.१.२१.

वुवुधानः- (१) जागता हुआ, (२) निरन्तर बहुत ज्ञान करता हुआ।

व्युष्टि- (१) विविधा वसतिः -दया.

'व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्'

ऋ. १.१७१.५

(२) विविध वशकारिणी शक्ति

को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः

अ. ८.९.१०

(३) वि + उछी + क्ति = व्युष्टिः। अथवा, वि + उश् + क्तिन् = व्युष्टिः। अर्थ है-उच्छेद, पूर्णरूप से विनाश।

'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टौ
अयः स्थूण मुदिता सूर्यस्य'

ऋ. ५.६२.८

हे मित्र और वरुण, तुम दोनों उषा के उच्छेद काल में तथा सूर्य के उदय काल में (उषसः व्युष्टौ सूर्यस्य उदितौ) हिरण्यमय लोहे के स्थूण वाले रथ पर चढ़ते हो (हिरण्यरूपम् अपः स्थूणम्)।

(४) प्रादुर्भाव, (५) विभाग ।
'आ व ऋञ्जस ऊर्जा व्युष्टिषु'
ऋ. १०.७६.१; नि. ६.२१.
हे पत्थरो, तुम्हें अन्नवती या सारवती उषाओं के विभागों में चारों ओर से अलङ्कृत करता हूँ -सा. ।
हे मनुष्यो, बलदायिनी उषाओं के प्रादुर्भूत होने पर हृदय मन्दिर को सजाने के लिए (ऋञ्जसे)
(६) विशेष पादभावों को दहन करने की शक्ति ।
'व्युष्ट्यै स्वाहा'
वाज.सं. . २२.३४; तै.सं. ७.२.२०.१; मै.सं. ३.१२.१५: १६४.१४; का.सं. (अश्व.) २.१०; तै.ब्रा.३.१.६.३; ८.१६.४; १८.६; आप. श्रौ.सू. २०.१२.१०; मा.श्रौ.सू. ९.२.२.

व्यूर्ण्वती- अन्धकार को दूर करती हुई उषा ।
'व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोधि'
ऋ. १.९२.११
उषारात्रि को अन्धकार दूर करती हुई (व्यूर्ण्वती) आकाश के दूर दूर भागों को (अन्तान्) या प्रकाशित कर देती हैं (अबोधि) ।

वृक- (१) वृ + कक् = वृक (सुवृभूशुषि मुषिभ्यः कक्) अर्थ है- स्पष्ट ज्योतिष्क होने से स्पष्ट ।
(२) अथवा विकृतज्योतिः विक्रान्तज्योति से ही वृक हो गया है । विकृत या विक्रान्त का वृक हो गया है । ज्योति का लोप हो गया है ।
(३) वृजीधातु वर्जन और आवरण अर्थों में आया है । वृङ् धातु संभजनार्थक है । इन दोनों धातुओं से वृक बना है ।
(४) भेड़िया-सा. (५) आदित्य-यास्क और दया. ।
आदित्योऽपि वृकउच्यते यदा वृक्ते (आदित्य का भी वृक नाम है क्योंकि वह अन्धकार को विनष्ट करता है या जगत् को आकाश द्वारा आवृत्त करता है या उदकों को संभक्त करता है अर्थात् रश्मियों से खींच लेता है) ।
(५) कुत्ते, सियार,
'अधैनं वृका रभासासो अद्युः'
ऋ. १०.९५.१४; श.ब्रा. ११.५.१.८
इसे कुत्ते सियार वेगवान् हो खायें । (६) लाङ्गूल हल । विकर्तनात् । स हि भूमिं विकृन्तति (हल भूमि को काटता है) ।
यवं वृकेणाश्विना वपन्ता'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६
हे राजा और राज पुरुषो, या अश्विनी कुमारो जैसे कृषक हल से यव होते हैं उसी प्रकार तुम दोनों.....।
(६) चन्द्रमा । वृकः चन्द्रमा भवति विहत ज्योतिष्को वा ।
'अरुणो मा सकृद् वृकः
पथा यन्तं ददर्श हि'
ऋ. १.१०५.१८; नि. ५.२१
आरोचन मासों तथा अर्द्धमासों का कर्ता चन्द्रमा आकाशमार्ग ऐसे जाते हुए नक्षत्र को देखता है ।
(८) कुत्ता । श्वाऽपि वृक उच्यते । विविध मसौ कृन्तति (कुत्ता भी, वृक है क्योंकि यह अनेकों भेड़ आदि को काटता है) । वि + कृद् + = वृक ।
'वृकश्चिदस्य वारण उरामथिः'
ऋ. ८.६६.८; अ. २०.९७.२; साम. २.१०.४२, नि. ५.२१
इस इन्द्र का कुत्ता भी शत्रुओं का वारयिता है । (अस्य वृकः चित् वारणः) जो भेड़ो का शिकारी होकर भी (उरामथिः) - सा. । इस राजा का कुत्ता शत्रुओं को निवारण करने वाला भेड़ो को रोकने वाला हो (वारणः उरामथिः) ।
(९) चोर .दया.।
'जम्भयन्तोऽहिवृकं रक्षांसि'
ऋ. १.३८.७; वाजं.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२:१६२.११; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ६.१.५.२२; नि. १२.४४
हनन करने वाले शत्रु या सर्प चोर तथा राक्षसों को मारते हुए ।
आधुनिक अर्थ- वृक (पकड़ना) + अच् = वृक, भेड़िया, श्रृंगाल, काक, उल्लूपक्षी, लुटेरा, क्षत्रिय, अनेक सुगंधित द्रव्यों का मिश्रण, (१०) वृकासुर नामक राक्षस, एक वृक्ष, जठराग्नि ।
(१०) वज्र । वृकइति व्रज नाम विकक्तनात्
'एवा वृक आदाने इत्युपलक्षणकः'
वृणकृर्वा पृगोदरादि त्वात
वृणोतेर्वा औणोदिकः कः

वृजो वर्जने (अदाक्षिः) इत्यतः औणादिकः कः नकारमकार लोपश्च ।
यद्वा वृणक्तेः वधकर्मणः । विपूर्वक कस्य कृन्ततेर्वा पृषोदरादित्वात् निपातनम् ।
'दाना मृगो न वारणः'
ऋ. ८.३३.८; अ. २०.५३.२; ५७.१२; साम. २.१०४७; कौ.ब्रा. २४. ८; शां.श्रौ.सू. ११.१२.४
श्व अपि वृक उच्यते विकर्तनात् आदित्योऽपि वृक उच्यतचे यदा वृङ्के। - नि .

वृकताति- (१) वज्रवत् कठोर, (२) भेड़िए या चोर के समान प्रजाघातक ।
'यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यः'
ऋ. २.३४.९

वृकद्वास्- (१) छिन्नभिन्न द्वार, (२) विशेष तेजस्वी द्वार पर खड़ा, (३) शास्त्रबल के मुख व्यूह द्वारों पर स्थित वीर ।
'वृकद्वरसो असुरस्य वीरान्'
ऋ. २.३०.४

वृक्क - (१) गुर्दा जिससे मूत्र स्रवता हो ।
'दिवं वृक्काभ्याम्'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७:१७९.१३
(२) रोगों को दूर करने वाला
(३) शत्रु वर्जक राजा
'पीवो वृक्क उदारथिः'
ऋ. १.१८७.१०; का.सं. ४०.८

वृक्णः- (१) बन्धनों को काटने वाला (२) शत्रुओं और कण्टकों का छेदन करने वाला ।
'ये वृक्णासो अधि क्षमि'
ऋ. ३.८.७
(३) वि. । तोड़ा हुआ ।
'संवत्सरे वृक्णमपि रोहति'
अ. ८.१०.(३).२

वृक्तबर्हिः - (१) ऋत्विक्, (२) शिल्प ।
'नासत्या वृक्तबर्हिषः'
ऋ. १.३.३; वाज.सं. ३३.५८

वृक्तबर्हिषः- (१) कुशकाशादि को बढ़ाने वाली जल धाराएं, (२) यज्ञ कर्त्ता जिनके यज्ञ में कुशासन बिछा रहता है । (३) प्रजाओं की वृद्धि करने वाले राजा ।
'आपो न वृक्तबर्हिषः'
ऋ. ८.३३.१. अ. २०.५२.१, ५७.१४, साम. १.२६१.२.२१४.
(४) घास आदि से रहित स्वच्छ जल ।

वृक्ष- (१) वृक्ष के समान शरणप्रद (२) धनाढ्य, (३) शरणयोग्य वृक्ष नामक अधिकारी ।
'नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः'
वाज.सं. १६.१७,४०; तै.सं. ४.५.२.१; ८.१. मै.सं. २.९.३; १२२. ९; २.९.७; १२६.४,
(४) धनुष् ।
'वृक्षे वृक्षे नियता मीमयद्गौः'
ऋ. १०.२७.२२; नि. २.६.
प्रत्येक धनुष में निबद्ध मौर्वी (वृक्षे वृक्षे नियता गौः) इन्द्र की भुजा से आकृष्ट हो शब्द करती है (मीमयत्) (४) पृथ्वी में जड़ जमाकर रहने वाला वृक्ष ।
'ते वृक्षाः सहतिष्ठन्ति'
अ. २०.१३१.११
(६) वृत्वा सां तिष्ठन्ति-नि.
'अग्रे वृक्षस्य क्रीड़तः'
वाज.सं. २३.२५; वाज.सं. (का.) २५.२७; श.ब्रा. १३.५.२.५; आश्व.श्रौ.सू. १०.८.१०.११; शां.श्रौ.सू १६.४.१.
(७) वृश्च (छेदना) + सक् = वृक्ष । वृक्षो व्रश्चनात् (छेदन करने से यह कहा गया क्योंकि इन्धनादि के लिए वृक्ष काटा जाता है) । अर्थ-वृक्ष ।
धनुष के अर्थ में व्युत्पत्ति - 'वृत्वा क्षां तिष्ठति, (धनुष् राष्ट्रभूमि को वरण कर स्थित होता है) ।
वृ + क्षा ।
पेड़ (तरु) के अर्थ में प्रयोग -
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसः'
ऋ. ५.८३.२; नि. १०.११
मेघ वृक्षों एवं राक्षसों का वध करते हैं ।
(८) मेघ ।
अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।'
ऋ. ५.५४.६
हे वृष्टि के विधाता मरुतों (वेधसः मरुत) आप लोगों का गण या बल (शर्धः) शोभता है (अभ्राजि) जिससे (यत्) जलयुक्त मेघ को (अर्णसम्वृक्षम्) निरुदक करते हो (मोषथा) ।

वृक्षकेश- (१) पर्वत जिसके वृक्ष ही केश हैं, (२) लम्बी जटा धारण करने वाला जटिल, (३)

वृक्षवत् काटने योग्य केशों को अन्त कर देने वाला ज्ञान वृद्ध गुरुजन ।
'द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः '
ऋ. ५.४१.११

वृक्षसर्मी- (१) वृक्षों पर सरकने वाला जीव ।
'यावतीर्वघावृक्ष सर्प्यो बभूवुः '
अ. ९.२.२२

वृक्षाः - (१) पेड़ (२) भूमि को वश कर बैठे हुए भूपति ।
'वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः '
ऋ. ८.४.२१

वृक्ति- (१) स्तुति-सा. (२) शुद्धि -दया.

वृक्षि- क्रि । काटो, वञ्चित करो ।
'यजाम देवान् यदि शक्नवाम
मा ज्यायसः शंसमावृक्षि देवाः '
ऋ. १.२०.१३; आप.श्रौ.सू. २४.१३.३.
हे श्रेष्ठ देवो, हम कम पढ़े लिखे भी देवगणों की प्रार्थना करते हैं । इस प्रकार हम स्तुति कर्ताओं को यज्ञ बल से आप वञ्चित न करें ।

वृकी- वृक् (आदान अर्थ में) + क = वृक, अथवा वृ (आवरण करना) + क = वृक, अथवा कृत् (संशब्यनार्थक) + उ= वृक । वृद्धं कीर्तियति (जोर से बोलता है) इति वृद्धकः = वृक । वृक + ङीष् = वृकी । अर्थ है- श्रृगाली सियारिन । 'वृद्धवाशिन्यपि वृकी उच्यते (उच्च शब्दों में स्वर करने वाली भी वृकी कही जाती है) ।
'शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानम्
ऋज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष
आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वम् '
ऋ. १.११६.१६; नि. ५.१.
वृषागिर का पुत्र ऋज्राश्व नामक राजर्षि थे । उनके समीप अश्विद्वय के वाहनभूत गर्दभ वृकी होकर खड़ा था । उसने इसके आहरण के लिए एक सौ एक पौरजनों के भेड़ों को काटकर उसे दिया । इस प्रकार पौरजनों के अहित में प्रवृत्त पुत्र को देख पिता ने शाप द्वारा नेत्रहीन कर दिया । उससे स्तुत हो अश्वनीद्वय ने यह विचार कर कि उनके ही वाहन के लिए उसने आखें खोईं इसे आंखें दीं । इसी का इसमें वर्णन है ।
ऋज्राश्व नामक राजर्षि ने शत संख्यक भेड़ों को (शतं मेषान्) वृकी के लिए दिया (वृक्ये) इस प्रकार देते देख (तं चक्षदानम्) उस ऋज्राश्व को (ऋज्राश्वम्) पिता ने कुपित हो शाप से अन्धा बना दिया (पिता अन्धं चकार) । हे दर्शनीय अश्विनीद्वय वैद्यो, (दस्रौ नासत्या भिषजौ) उन पिता के शाप से द्रष्टव्य पदार्थों के प्रति गतिहीन (अनर्वन्) आंखों को (अक्षी) उस नेत्रहीन ऋज्राश्व को (विचक्षे तस्मै) उन दोनों ने पुनः दिया (आधत्तम्) ।
अन्य अर्थ - भेड़िनी के लिए अनेक भेड़ों को देने वाले (वृक्ये शतं मेघान् चक्षदानम्) इस सधे हुए घोड़े वाले शिकारी को (ऋज्राश्वम्) पालक राज्य नजरबन्द करे (पिता अन्धं चकार) । सर्वदा सत्यभाषी (नासत्या) अज्ञान नाशक (दस्रा) तथा अध्यात्म रोगों के चिकित्सक अध्यापक एवं उपदेशक (भिषजा) कारागार में पड़े उस कैदी को (तस्मै) सत्य दर्शन के लिए ज्ञान नेत्र प्रदान करा (विचक्षे अक्षी आधत्तम्) जिससे वह ऐसी हिंसा करने वाला न रहे । (अनर्वन्) ।

वृक्कौ - शरीर के दो गुर्दे
स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम् '
अ. ७.९६.१

वृचया - (१) विवेचनकारिणी विद्या, (२) छेदन भेदन करने की शिल्प विद्या ।

वृचीवत्- (१) अज्ञाननाशक विद्या वाला शिष्य, (२) प्रजोच्छेदक शक्ति से युक्त दुष्ट पुरुष, (३) अविद्य को छेदन करने वाली इच्छा से युक्त विद्यार्थी ।
'वृचीवता यत् हरि यूपीपायाम् '
ऋ. ६.१.२७.४
(४) शत्रुच्छेदक शस्त्र वाला ।
'वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः '
ऋ. ६.२७.६

वृजध्यै- वर्जन करने के लिए ।
'परियत् ते महिमानं वृजध्यै '
ऋ. ३.३१.१७

वृजन- मार्ग ।
'जरयन्ती वृजनं पद्वदीयते '
ऋ. १.४८.५

(२) वर्जन योग्य, (३) हिंसक ।
'मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यः '
ऋ. ७.३२.२७; अ. २०.७८.२; साम. २.८०७; पंच.ब्रा. ४.७.५.
(४) पाप निवारक बल, (५) पाप से निवृत्त करने वाला श्रेयोमार्ग-ज्ञान ।
'वृजनेन वृजिनान् संपिपेष '
ऋ. ३.३४.६; अ. २०.११.६

वृजन्य- बल
'धर्मा भुवद् वृजन्यस्य राजा '
ऋ. ९.९७.२३

वृजनी- (१) बलवती शक्ति ।
(२) वृजनेन बलेन इति सायणः ऋग्वेदभाष्ये, बल कारिणी भिरिति अथर्व भाष्ये (सायण ने ऋग्वेद में 'वृजनी' का अर्थ ' वृजन से' किया और अथर्व वेद में 'कारिणी' अर्थ किया है) ।
'अरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम '
अ. ७.४०.७
(३) बाह्य वाधाओं को वर्जन करने वाली गर्भाशय की नाड़ी, (४) दिशा, (५) आपः (६) कारण परमाणु जिनमें हिरण्य गर्भ विराट् आश्रित रहता है ।
'अतिष्ठद् गर्भो वृजनीषु अन्तः '
ऋ. १.१६४.९; अ. ९.९.९
गर्भाशय की नाड़ियों में गर्भ स्थिति रहता है या दिशाओं के बीच अन्तरिक्ष में मेघ जल से गर्भित होकर ठहरता है या प्रकृति की परमेश्वरी शक्ति पर संयुक्त होने के बाद हिरण्यगर्भ विराट् कारण परमाणुओं में आश्रित होता है । (७) जल, (८) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु (९) आदित्य की रश्मि

वृज्यते - वृज् (निवास करना, बसना) का कर्मवाच्य लट प्र.पु.ए.व. में । स्थापित किया जाता है ।
(२) बिछाया जाता है ।
'वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् '
ऋ. १०.११०.४; अ. ५.१२.४; वाज.सं. २९.२९; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१, का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.९
दिन के पूर्वाह्ण में (अह्नाम् अग्रे) इस वेदी के आच्छादन के लिए (अस्याः वस्तोः) कुश बिछाया जाता है (वृज्यते)- सा. ।
इस पृथ्वी के निवास के लिए पूर्वार्द्ध में (अह्नाम् अग्रे) यज्ञाग्नि स्थापित किया जाता है (वृज्यते) ज.दे.श. ।

वृज्या- वर्जने योग्य पीड़ा ।
'परि णो हेती रुद्रास वृज्याः '
ऋ. २.३३.१४

वृजिन- (१) पापाचारी
वृजिनेन वृजिनान् सं पिपेष
ऋ.३.३४.६; अ. २०.११.६
(३) त्याग देने योग्य पाप या पापी
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति '
ऋ. ७.१०४.१३; अ. ८.४.१३
'ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति '
ऋ. ४.२३.८; नि. १०.४१
मध्यम ऋत देने की स्तुति उदक दान द्वारा अकाल नष्ट करती हुई वर्जनीय अयशस्कर पापों का विनाश करती है (वृजिनानि हन्ति) ।
आधुनिक अर्थ -दुष्ट, कुटिल, वक्र, बाल, घुंघराला बाल, पाप, विपत्ति ।

वृजिनवर्तनिः- (१) 'वृजिनं वर्तनिः यस्य ' समवाय या संघ से बने युद्ध में जाने योग्य मार्ग से जाने वाला वीर पुरुष, (२) काम क्रोधादि के संघ में फंस कर पाप मार्ग से जाने वाला पुरुष ।
'त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं
सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे '
ऋ. १.३१.६

वृञ्जस् - नाश
'मरुत्वन्तं न वृञ्जसे '
ऋ. ८.७६.१

वृणानः- सबसे उत्कृष्ट रूप में वरुण या स्वीकार करता हुआ ।
'वृणानो दैव्यं वचः '
अ. ७.१०५.१

वृत्- (१) गुरु को घेकर बैठने वाली शिष्य पंक्ति, (२) घेरने वाली सेना ।
'अयं वृत्तश्चातयते समीचीः '
ऋ. ४.१७.९
(३) व्यवहार
'कया शचिष्ठया वृत्ता '
ऋ. ४.३१.१; अ,. २०.१२४.१; साम. १.१६९; २.३२, वाज.सं. २७.३९ ; ३६.४; तै.सं. ४.२.११.२;

मै.सं. २.१३.९: १५९.५; ४.९.२७: १३९.१२; का.सं. ३९.१२ तै.आ. ४.३२.३; आप.श्रौ.सू. १७.७.८.

वृत- (१) यज्ञ के लिए वरण किया हुआ ।
'यद्देवापिः शन्तनवेपुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७; नि. २.१२.
(२) आवरण कारी, (३) आत्मा को घेरने वाला तामस आवरण
'वयं जयेमत्वया युजा वृतम्'
ऋ. १.१०२.४; अ. ७.५०.४

वृतञ्चय- (१) विद्यमान धन का संचय करने वाला । (२) ऋत सत्य का एक मात्र पुञ्ज, (३) सत्य मय या बढ़ते शत्रु की लक्ष्मी को फूल के समान चुन लेने वाला ।
वृतञ्चयः सहुरिर्विक्ष्वारितः
ऋ. २.२१.३

वृत्र- वृञ् (वारणार्थक), वृतु (रहना) या वृधञ् (बढ़ना) + क्त्र = वृत्र । वृत्रं वृणोतेः वा वर्ततेः वा वर्धतेः वा अर्थात् वृत्र शब्द का वारणार्थक वृवर्तनार्थक वृत् या वर्धनार्थक वृध धातु से बना है । मेदिनी कोष में-
'वृत्रो रिपौ घने ध्वान्ते'
शैलभेदे च दानदे ।
ऐसा लिखा है ।
वस्तुतः वृत्र के अनेकों अर्थ किए गए हैं और इस शब्द को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद भी है । निरुक्तकार कहते हैं-
'यत् अवृणोत् तत् वृत्रस्य वृत्रत्वम् इति विज्ञायते, यत् अवर्धत इति वृत्रस्य वृत्रत्वम् इति विज्ञायते ।
अर्थात् वृत्र ने अन्तरिक्ष या उदक को अपनी महत्ता से घेर लिया । पर इन्द्र से मारे जाने पर वृत्र अर्थात् मेघ वृष्टि रूप में निकलकर वर्तमान् हुआ या यह अत्यन्त बढ़ गया यही इसकी वृत्रता है ।
अर्थ - (१) वृत्र नामक असुर, (२) मेघ,
'तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ता । त्वाष्ट्रोऽसुर इति ऐतिहासिकाः ।
'वृत्रस्य निण्यं वि चररन्त्यापः'
ऋ. १.३२.१०; नि. २.१६.
(३) नदियों की परिधि जो पानी को घेर रहती है ।
अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् । (४) जलों का द्वार बन्द करने वाला जल प्रवाह रोकने वाला ।
'अपां बिलमपिहितं मदासीत्
वृत्रं जघन्वां अप तद् ववार'
ऋ. १.३२.११; नि. २.१७.
जलों का घर जो बन्द था उसे जल प्रवाह निरोधक वृत्र को इन्द्र ने मारा और बन्द द्वारा को खोल दिया ।
(५) दुष्टजन, (६) विघ्नकर्ता ।
'अस्मा इदु प्रभरा तु तूजानः ।
वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः'
ऋ. १.६१.१२; अ. २०.३५.१२; मै.सं. ४.१२.३: १८३.१०; का.सं. ८ .१६; नि. ६.२०.
हे राजन् या इन्द्र, इस वृत्र या मेघ या दुष्ट जन पर वज्र या खड्ग शीघ्र से चला, क्योंकि तू आशुकारी अनेक गुणसम्पन्न् (क्रियेधाः) तथा सर्व समर्थ या भूमपति (ईशानः) है ।
(६) अपां त ज्योतिषां च मिश्रीभावकर्मणः वर्ष कर्म जायते, तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णाः भवन्ति (मेघों में उदर स्थित जल तथा विद्युत के मिश्रीभाव कर्म से वर्षा होती है । मरुतों से आविष्ट विद्युत ही इन्द्र है) । विद्युत के संयोग से उत्पीड़ित होकर मेघ से जल निकलता है। इस क्रिया की कल्पना युद्ध से की गई है । यह वस्तुतः युद्ध नहीं है । इन्द्र का कोई शत्रु भी नहीं है । कहा भी है-
'अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे'
ऋ. १०.१३३, २. अ. २०.९५.३; साम. २.११५.२; नि. १.१६.
(७) अहिवत्तु खलु मन्त्र वर्णा ब्राह्मण वादाश्च भी मेघ का नाम है । उदक मध्य स्थानी देवता है । ब्राह्मण गन्थों में वृत्र नामक असुर की उद्भावना की गई है ।
(८) विवृद्धया शरीरस्य स्रोतांसि निवारयाञ्चकार, (शरीर के विस्तार से जल के स्रोतों को वृत्र ने इन्द्र के साथ जलक्रीड़ा करते समय रोकदिया) ।
तस्मिन् हते प्रसस्यन्दिर आपः (वृत्र के इन्द्र द्वारा मारे जाने पर जल वह चले) ।

(९) शत्रु ।
ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याय
विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि
वाजो अस्मां अवतु वाजसातौ ।
इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्'
ऋ. ७.४८.२; का.सं. २३.११
हे ऋभुओ, हम आप महती दीप्ति वालों के साथ (वयं ऋभुभिः) हो स्वयं महती दीप्ति वाले बन जाते हैं (ऋभुः) तथा आप महान् बल वालों के साथ स्वयं महान् बल वाले बन जाते हैं (विभुभिः विभ्वः) । आप लोगों के बल से (व. शवसा) शत्रुओं की शक्ति को हम पराभूत करते हैं (शंवासि अभि स्याम्) तथा वज्र नामक ऋभुदेव (वाजः) संग्राम में (वाजसातौ) हमारी रक्षा करें (अस्मान् अवहु) और हम इन्द्र से युक्त हों (इन्द्रेण युजः) । वृत्र अर्थात् शत्रु को हनें अर्थात् मारें (वृत्रं तरुषेम) ।
अन्य अर्थ - सत्य से प्रकाशित विद्वानों द्वारा (ऋभुभिः) सत्यवक्ता हम तुम झूठों पर विजय प्राप्त करें (ऋभुः वः अभिस्याम) । बलवानों द्वारा (विभ्वः) हमं बलवान् (बिम्बः) पराक्रम से (शवसा) शत्रुओं के पराक्रम को मन्द करें । ज्ञानी पुरुष (वाजः) संसार रूपी संग्राम में (वाजसातौ) हमारी रक्षा करें (अस्मान् अवन्तु) और परमेश्वर के साथ युक्त हो (इन्द्रेण युजा) हम पाप को नष्ट करें (वृत्रं तरुषेम)-ज.दे.श. ।
(१०) पाप. (११) जल ।
आधुनिक अर्थ- इन्द्र से मारे गए एक अक्षर का नाम, अंधेरा, मेघ, शत्रु, ध्वनि, पहाड़ ।
स्वामी दयानन्द ने वृत्र का अर्थ मेघ माना है । जल और विद्युत के मिलने से वृष्टि होती है । विद्युत रूपी वज्र का मेघ पर प्रहार ही वर्षा का कारण है । ऐतिहासिकों के असुर अर्थ को स्वामी जी नहीं मानते हैं । कहीं कहीं वत्रहा का अर्थ शत्रुओं का नाश करने वाला ही किया गया है ।

वृत्रखाद- (१) मेघों को स्थिर करने वाला सूर्य, (२) बढ़ते शत्रु को अपने बाधक बल से उसे खा जाने वाला ।
(३) मेघ को किरणों से छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य ।
'वृत्रखादो वलंरुजः'
ऋ.३.४५.२; साम. २.१०६९

वृत्रताः वृत्रः - (१) संसार को अत्यन्त आवृत करने वाला मेघ । (२) वृत्र नामक असुर ।
'अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम्'
ऋ. १.३२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८५.९, तै.ब्रा. २.५.४.३.
इन्द्र ने संसार को अत्यन्त आवृत्त करने वाले मेघ को या वृत्र नामक असुर को छिन्नस्कन्ध कर (व्यंसन्) मार डाला ।
(३) अत्यन्त पापी-दया. ।
जब राजा अत्यन्त पापी को बहुत वध करने वाले खड्ग से गर्दन काट देता है । दया.

वृत्रतूर्य - (१) मेघों का आघात (२) जलों का वेगवत् प्रवाह (३) शत्रुओं और विघ्नों का नाश करने का कार्य ।
'प्रेम ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ'
ऋ. ८.३७.१; ऐ.ब्रा. ५.८.१; कौ.ब्रा. २३.२; श.ब्रा. १३.५.१. १०
(४) वृत्र या शत्रु के नाशकारी संग्राम का अवसर ।
'अन्विन्द्रं वृत्र तूर्ये'
ऋं. ८.७.२४
(५) वृत्र का नाश, (६) विघ्न का नाश (७) संग्राम जहां शत्रुओं का वध होता है ।
'भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये'
ऋ. २.२६.२; ८.१९.२०; साम. २.९१०; वाज.सं. १५.३९; आप.श्रौ. सू. १४.३३.६; मा.श्रौ.सू. ६.२.२.
'श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये'
ऋ. ६.१३.१; आ.श्रौ.सू. ५.२३.९
(८) वृत्र या घेरा डालने वाले को वध करने वाला संग्राम ।
'युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये'
वाज.सं. १.१३, तै.सं. १.१.५.१; मै.सं. १.१.४:२.१३, का.सं. १.११; श.ब्रा. १.१.३.८; तै.ब्रा. ३.२.५.४, ३.६.१.
(९) मेघ और अन्धकार आदि आवरणकारी पदार्थों को नष्ट करने का कार्य (१०) मेघों को हिंसित करने वाला संग्राम
'त आदित्या आ गता सर्वतातये
भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः'

ऋ. १.१०६.२;
हे सूर्य के किरण अथवा अखण्ड अविनाशी अग्नि आदि तत्व दिव्य शक्ति और तेज संयुक्त एवं बल देने वाले होकर, मेघ और अन्धकार आदि आवरणकारी पदार्थों के नाश के कार्यों में सब सुखजनक और शान्ति जनक हो ।

वृत्रतमुचि– ज्ञान का आवरणकारी अमोच्य वासनारूप बन्धन ।
'अहं च वृत्रं नमुचिमुताहन्'
ऋ. ७.१९.५; अ. २०.३७.५

वृत्रपुत्रा– जिसका वृत्र अर्थात् मेघ पुत्र हो – पृथिवी या अन्तरिक्ष ।
'नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रा'
ऋ. १.३२.९
जब अन्तरिक्ष को ढंक लेने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करने वाली अन्तरिक्ष भूमि भी जल को नीचे गिरा देती है ....।

वृत्रहणा– (१) वृत्र अर्थात् मेघ पर प्रहार करने वाले विद्युत और सूर्य (२) शत्रु प्रहार करने वाले इन्द्र और अग्नि, (३) (द्वि.व.) अज्ञान को हनन करने वाले इन्द्र और अग्नि, प्राण- अपान, आत्मा और अन्तः करण, परमात्मा और जीवात्मा, राजा सेनापति, गुरु शिष्य ।
'तोशा वृत्रहणा हुवे'
ऋ. ३.१२.४; साम. २.१०५२; गो.ब्रा. २.३.१५; आश्व.श्रौ.सू. ५ .१०.२८

वृत्रहन्तमः– (१) शत्रुओं को खूब दण्डित करने वाला ।
'य इन्द्र वृत्रहन्तमः'
ऋ. ८.४६.८; ९२.१७
(२) नगर को रोकने के वाले शत्रुओं को मारने वालों में सर्वश्रेष्ठ (३) विद्यानाशकों में सर्वश्रेष्ठ (४) इन्द्र (४) अज्ञाननाशक, परमेश्वर ।
'बृहदिन्द्राय गायत
मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
ऋ. ८.८९.१; साम. १.२५८, वाज.सं. २०.३०; तै.ब्रा. २.५.८.४; वै.सू. ३०.१६.

वृत्रहा– आवरण कारी प्रकृतिमय सलिल को गति देने वाला ।
'जनुषः परि वृत्रहा'
ऋ. ८.६६९; अ. २०.९७.३

वृता– वरण की गई सहचरी स्त्री
समान्या वृतया विश्वया रजः
ऋ. ५.४८.२

वृत्रा– (१) वृद्धिशील महान् ब्रह्माण्ड, (२) मेघस्थ जल, (३) चक्रगति से विवर्तनशील सूर्यादि लोक और नीहार मण्डल (४) विघ्न बाधा ।
'एको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः'
३.३०.४

वृद्धवथः– दीर्घजीवी ।
'उपक्षेति वृद्धवयाः सुवीरः'
ऋ. २.२७.१३; तै.सं. २.१.११.४; मै.सं. ४.१४.१४: २३९.५

वृत्रहत्य – वृत्र या विघ्न या ज्ञान के विघ्न रूप वृत्र का नाश करने में समर्थ बल ।
'वृत्रहत्येन वृत्रहा'
अ. १८.१.३८

वृत्रहथ– (१) वृत्र या विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का हनन करने वाला, अज्ञानों का नाशक ज्ञान ।
'ईशे वृत्रहथानाम्'
ऋ. ३.१६.१; साम. १.६०

वृत्रहन् – वृत्र + हन् + क्विप् = वृत्रहन् (१) वृत्र असुर को मारने वाला इन्द्र, (२) चारों ओर से आच्छादित करने वाले विघ्न को दूर करने वाला परमात्मा, (३) मेघ को वितीर्ण कर वर्षा बरसाने वाला ।
'एको दृढ़मवदो वृत्रहा सन्'
ऋ. ३.३०.५

वृत्रहा इन्द्रः – मेघों को आघात करने वाला सूर्य या विद्युत् ।
'आ वृत्रहेन्द्रचर्षणिप्राः'
ऋ. १.१८६.६

वृत्वी– वृत्वा (घेर कर)
अपो वृत्वीं रजसो बुध्नमाशयत्'
ऋ. १.५२.६
'मेघ या वृत्र जलों को अपने भीतर घेर कर या थामकर (वृत्वी) आकाश के (रजसः) ऊपर के तल में (बुध्नम्) फैल जाता है (आशयत्) ।

वृथक् – (१) नाना प्रकार का ।
'यतन्ते वृथगग्नयः'
ऋ. ८.४३.४; वाज.सं. ३३.२
(२) पृथक्, अलग अलग

वृथगग्नयः- पृथक् -पृथक् जीव ।
'एतेत्ये वृथगग्नयेः '
ऋ. ८.४३.५

वृथा- अनायास
'त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवे
अच्छा समुद्रमसृजो रथां इव '
ऋ. १.१३०.५
मेघ जिस प्रकार अनायास ही नदियों को समुद्र की ओर बढ़ा देता है (नद्यः समुद्रं वृथा), उसी प्रकार हे इन्द्र, तू भी गमन करने के लिए (सर्तवे) रथों के समान संग्राम करने वाले वीर पुरुषों को भी तैयार कर ।

वृथाषाट्- (१) अनायास ही शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ इन्द्र या सेनापति ।

वृद्धमहाः- वृद्धों का आदर करने वाला ।
'कृत ब्रह्मेन्द्रा वृद्धमहाः-'
ऋ. ६.२०.३

वृद्धश्रवाः- (१) वृद्धंश्रवः अन्नं वा सृष्टौ यस्य (सृष्टि में जिसका विस्तृत यश या अन्न हो) - परमेश्वर इन्द्र (२) बढ़े हुए बहुत अधिक ज्ञान और अन्नादि सम्पत्ति का स्वामी ।
'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः '
ऋ. १.८९.६; साम. २.१२२५; वाज.सं. २५.१९; मै.सं. ४.९.२७: १४०.१; का.सं. ३५.१; तै.आ. १.१.१; २१.३.१०.१.९; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१; मा.श्रौ.सू. ४.३.४.३.
(३) बहुत अधिक ज्ञान, यश और धन से युक्त आचार्य , राजा, परमेश्वर ।

वृद्धशोचिः- (१) अति तेजस्वी पुरुष, (२) अग्नि ।
'सख्ये वृद्धशोचिषः '
ऋ. ५.१६.३

वृद्धसेना- जिनका सैन्यबल खूब बढ़ा हो ।
'उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः '
ऋ. १.१८६.८

वृद्धायु- (१) अपनी वृद्धि चाहने वाला, (२) महान् को चाहने वाला, (३) दीर्घायु
'वृद्धायुमनु वृद्धयो
जुष्टा भवन्तु जुष्टयः '
१.१०.१२; वाज.सं. ५.२९, तै.सं. १.३.१.२; मै.सं. १.२.११:२१ .५; का.सं. २.१२; श.ब्रा. ३.६.१.२४; आप.मं.पा. १.२.६.
वृद्धि को प्राप्त होने वाली (वृद्धयः) सेवन करने योग्य वाणियां तुझ महान् को ही लक्ष्य कर चाहने वाले को (वृद्धायुम्) अति प्रीतिकर हो (जुष्टम्) ।

वृद्धि- (१) उन्नति, बढ़ोत्तरी ।
'वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे
वाज.सं. १८.४; तै.सं. ४.७.२.१; मै.सं. २.११.२: १४१.२; का. सं. १८.७.
(२) वृद्धि को प्राप्त होने वाली वाणी ।

व्यृद्धि- (१) वि + ऋद्धि । अर्थ -ऋद्धि अर्थात् सम्पत्ति का नाश ।
'व्यृद्धया अपगल्भम् '
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.१४.
(२) घोर असमर्थता
'सेदिरुग्रा व्यृद्धिः '
अ. ८.८.९

वृध्- (१) बढ़ाने वाला ।
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधम् '
ऋ. ३.१६.२
(२) वृद्धि ।
'अस्माकमिद् वृधे भव '
ऋ. १.७९.११
'वृधे च नो भवतं वाजसातौ '
ऋ. १.३४.१२; ११२.२४, वाज.सं. ३४.२९.
हे अश्विनो या स्त्रीपुरुषों, तुम दोनों हम लोगों के बीच में ज्ञान प्राप्ति, बलप्राप्ति और ऐश्वर्य प्राप्ति के कार्य में हमें बढ़ाने के लिए सदा तत्पर रहो ।

वृधः- बढ़ाने वाला ।
'असुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः '
ऋ. ५.३४.६
'असि दभ्रस्य चिद्वृधः '
ऋ. १.८१.२; अ. २०.५६.२; साम. २.३५३
'यूयं हि ष्ठा नमस इद् वृधासः '
ऋ. १.१७१.२

वृधसू- (द्वि.व) शरीर की वृद्धि करने वाले प्राण अपान वायु

वृधसानः- वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ।
'कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने '
ऋ. ४.३.६; मै.सं. ४.११.४: १७२.१३; का.सं. ७.१६.

वृधसाना- (स्त्री) । (१) वर्धमान प्रजा -दया.
(२) बढ़ती हुई नाना लोकों की प्रजा ।
वृधानः- (१) सबसे बढ़ा, (२) समस्त जगत् को बढ़ाने वाला- विष्णु
'परोमात्रया तन्वा वृधानः '
ऋ. ७.९९.१; मै.सं. ४.१४.५; २२१.५, तै.ब्रा. २.८.३.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१
वृधीकः- बढ़ाने वाला ।
'नकीं वृधीक इन्द्र ते '
ऋ. ८.७८.४
वृन्त- गर्भाधानी का मूल
'वृन्तादभि प्रसपतिः '
अ. ८.६.२२
वृन्द- वृङ् (संभजन करना) + दन् = वृन्द या वुन्द (वृ का वुन) । ब और व के अभेद से बुन्द भी हो गया । अथवा भिद् + दन + बुन्द ।
अथवा भी और 'भास्' + दन = बुन्द ।
वृन्दं बुन्देन व्याख्यातम् (वृन्द की व्याख्या बुन्द से ही हो गई) वृन्दारक की व्याख्या भी वही है ।
अर्थ है- (१) संघ, शत्रु का विदारंण करता है । आधुनिक अर्थ- समूह, यूथ, प्रचुर संख्या, ढेरी, वृन्दा नामक वन जो मथुरा में है ।
वृन्दारक- वृङ् (संभजन करना), भिद् (भेदन करना), भास् (चमकना) + दत् = वृन्द, वृन्द + आरक = वृन्दारक । अर्थ है - संघ ।
वृन्दारक और वृन्दारिका का भी यही अर्थ है । आधुनिक अर्थ- बहुत महान्, विख्यात्, सर्वोत्तम आनन्ददायक, आकर्षक, सुन्दर, माननीय, वृन्दारक देवता, किसी का प्रधान, सर्वोपरि ।
वृन्दारका - संघ ।
वृन्दारिका - संघ ।
वृश्च - टूटना
'समूलो यश्च वृश्चते '
अ. ६.१३६.३
वृश्चत् वनः - वनों को काट डालने में समर्थ अग्नि या परशु आदि ।
'वृश्चद्वनं कृष्णयायं रुशन्तम् '
ऋ. ६.६.१
वृश्चिक - बिच्छू
'वृश्चिकस्यारसं विषम् '
ऋ. १.१९१.१६
बिच्छू का विष निर्बल है ।
वृषकर्मा- (१) प्रजाओं पर सुखो तथा शत्रुओं पर अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करने वाला, (२) जल वर्षा करने वाला इन्द्र ।
'वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः '
ऋ. १.६३.४
(३) धाराएं बरसाने वाला मेघ ।
'स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः'
पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः '
ऋ. १.१३०.१०
वृषखादयः- ब.व.। मरुतों, रुद्रों या वीदों का विशेषण । अर्थ । बलवद्धक अन्न जल खाने वाले ।
'अनन्तशुष्मा वृषखादयो नराः '
ऋ. १.६४.१०
वृषगणाः- (१) बलवान् जन, (२) बलवान् प्राणगण ।
'अमादस्तं वृषगणा अथासुः '
ऋ. ९.९७.८; साम. २.४६७.
वृषच्युत- (१) मेघ से गिरा जल, (२) बलवान् सर्वप्रबन्धन वृत्तिदाता पुरुष से प्रेरित ।
'वृषच्युता मदासो गातुमाशत '
ऋ. ९.६९.७
वृषजूति- (१) मेघों को लाने वाला, (२) बैलों को उत्तम रीति से जोतने वाला ।
'वृषजूतिर्हि जज्ञिये '
ऋ. ५.३५.३
वृषण- (१) कामानां वर्षिता, (२) विष्णु के विशेषण के रूप में प्रयोग ।
(३) उत्तम गुणों वाला ।
वृषणत्वच्- (१) बरसाने वाला, समस्त पृथिवी को आच्छाद करने वाला वातावरण, (२) जल छिड़कने वाला चमड़े का मशक, (३) वर्षणशील मेघ
'दस्मोहि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचम् '
ऋ. १.१२९.३
हे इन्द्र, तू ही निश्चय से दर्शनीय, सर्वद्रष्टा, अथवा शत्रुओं का नाशक है (दस्मः हि स्म) जिस प्रकार कई पुरुष चमड़े की बनी मशक

को भरता है और जिस प्रकार वायु सूर्य किरणों से खीचे हुए जल से समस्त पृथिवी को आच्छादन करने वाले शीत मेघ को पूर्ण करता और बरसा देता है ।

वृषणश्व- बलवान् अश्व वाला -रथ
'वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना'
ऋ. ८.२०.१०
(२) वृषणो वृष्टि हेतवो यानगमयितारो वा अश्वाः यस्य (जिसे वृष्टिदाता यानगमयिता अश्व हो) ।
(३) वेगवान् बलवान् अश्वों का स्वामी, (४) शिल्पविद्या की इच्छा करने वाला ।
'मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो'
ऋ. १.५१.१३

वृषण्यन्ती- काम से प्रेरित युवती ।
'वृषण्यन्तीव कन्यला'
अ. ५.५.३

वृषण्वत् रथ- शस्त्र वर्षण करने में समर्थ रथ या रथारोही महारथी ।
'वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथम्'
ऋ. १.१००.१६
मुख्य मुख्य केन्द्र स्थानों पर (धूर्षु) शस्त्र वर्षण करने में समर्थ बलवान् रथारोही महारथी को (वृषण्वन्तं रथम्) धारण करती हुई (बिभ्रती) सेना ।

वृषणा- द्वि.व । वृषणौ । (१) एक दूसरे को बांधने वाले अखण्डित तपस्वी ब्रह्मचर्य के पालक स्त्री पुरुष ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयः ।
ऋ. २.१६.५
(२) अश्विद्वय का विशेषण ।
(३) मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय -सा.
(४) बलवान् ।
राजा और राज पुरुष -दया.
'प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वाम्'
ऋ. १.११७.८
हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय, तुम्हारा वह कृत्य सचमुच प्रशंसनीय है-सा.
हे बलवान् राजा या राजपुरुषो, तुम्हारा वह कृत्य सचमुच प्रशंसनीय है ।-दया.

वृषत्व- काम्यपदार्थ, सुख, विद्या धन आदि का वर्षण कर्म
'त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा'
ऋ. १.९१.२; मै.सं. ४.१४.१:२१.४७ तै.ब्रा. २.४.३.८; ऐ.आ. १.२.१.८.

वृषदञ्जयः- (१) वृषद् + अञ्जयः । बरसते मेघों से प्रकट होने या मेघों के साथ आने वाले मरुत् ।
(२) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले, (३) प्रबन्ध कारक विशेष स्वरूप का पोशाक पहनने वाले ।
'प्रति वो वृषदञ्जयः'
ऋ. ८.२०.९

वृषधूत- ज्ञानरूप जल का सेचन करने वाले गुरु द्वारा अज्ञान रहित किया गया ।
'इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः'
ऋ. ३.३६.२; ४३.७; तै.ब्रा. २.४.३.१२.

वृषन्तमः- सब से अधिक जल वर्षण् करने वाला (२) मरुत्वान् इन्द्र ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैः'
ऋ. १.१००.२
वह अपने सखा रूप प्रकाशों से हो सब से अधिक जल वर्षण करने वाला है ।

वृषनाभिः - सुदृढ़चक्र नाभिवाला
रथेन वृषनाथिना
ऋ. ८.२०.१०

वृषपर्वा- वर्षणशील मेघ के समान शिष्यों को पूर्ण और पालन करने वाला गुरु ।
'ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः'
ऋ. ३.३६.२; तै.ब्रा. २.४.३.१२

वृषप्रभर्मा- (१) इन्द्र, (२) बलवान् प्रबन्धकर्त्ता और शस्त्र वर्षी वीर पुरुषों का भारण पोषण करने वाला, (३) जो वर्षण शील मेघ को नित्य भरण पोषण करता है । सूर्य-दया. ।
वृष प्रभर्मा दानवस्य भामम्
ऋ. ५.३२.४

वृषप्रयावा - (१) बलवान् पुरुषों या अश्वों के साथ भ्रमण करने वाला (२) राष्ट्रपति या सेनापति ।
'हव्या वृसप्रयाव्णे'
ऋ. ८.२०.९

वृषप्सुः- वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट शरीर वाला ।
'महि त्वेषा अमवन्तो वृष प्सवः'
ऋ. ८.२०.७

वृषभः– वृष (सेचनार्थक) + अभच् (ऋषि वृषिभ्यां कित्) =वृषभ । अथवा वृह् (उद् यमन अर्थ में) + अभच् = वृषभ (बाहुलक नियम से ह का ष) । यास्क ने वृह् धातु को वर्षणार्थक माना है ।
अर्थ है– (१) गौ । निरुक्तकार ने कहा है–
'वृषभ प्रजां वर्षति इति वा,
अति वृहति रेत इति वा (तद् वृष कर्मणा । वर्षणात् वृषभः – तस्य एषा भवति ।'
अर्थात् प्रजोत्पत्ति के निमित्त योनि में रेत बरसाता है । या योनि में सिक्त रेत में अपने को बढ़ाता है । इसी से वृष (बरसाता) कर्म से वृषभ हुआ ।
(२) बलवान् पुरुष ।
'उपबर्हि वृषभाय बाहुम्'
'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्'
ऋ. १०.१०.१०; अ. १८.१.११; नि. ४.२०
हे सुभगे, तू मेरे सिवा किसी अन्य पति की कामना कर और इसी के लिए अपने बाहु का तकिया बना ।
(३) बरसाने वाला वृष्टिकर्त्ता मेघ, (४) श्रेष्ठ ।
'अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वम्
बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः'
ऋ. १.१९०.१; नि. ६.२३.
स्वतन्त्र श्रेष्ठ, सुन्दर वाणी वाले वेदज्ञ विद्वान् को अन्नों से पोषण कर ।
स्वतन्त्र बरसाने वाले, सुन्दर जिह्वा का स्तुति वाले बृहस्पति को स्तुतियों से बढ़ा–सा ।
(४) वैश्वानर अग्नि,
(५) विद्युत् जो वर्षा बरसाती है ।
'प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचम्'
ऋ. १.५९.६; नि. ७.२३.
वर्षा बरसाने वाले वैश्वानर अग्नि या विद्युत् का वर्णन करता हूँ ।
आधुनिक अर्थ – साँढ, कोई पुरुष पशु, सर्वश्रेष्ठ, वृष राशि, हाथी का काठ ।

वृषभरः उत्तम बलयुक्त
'उक्थशुष्मान् वृषभरान् त्स्वप्नसः'
ऋ. १०.६३.३; मै.सं. ४.१२.१: १७७.८

वृषभस्यनीडः– वृष्टि अन्नादि का दाता– सूर्य, (२) सूर्य का परम मूल ।
'आयोयुवानो वृषभस्य नीडे'
ऋ. ४.१.११

वृषभान्न – (१) सुखों को देने वाला अन्न, (२) सुख पूर्वक परमेश्वर का आनन्द रूप अन्न ।
'वृषभान्नाय वृषभाय पातवे'
ऋ. २.१६.५

वृषमणाः– वृषेषु शूरवीरेषु मनः यस्य (जिस का शूरवीरों में मन हो) –दया. (२) शूरवीरों के समान उदार मन वाला
(३) शूरवीरों की व्यवस्था जानने वाला–उनकी वृद्धि में दत्त चित्त ।
'यद्ध शूर वृषमणः पराचैः
वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट्'
ऋ. १.६३.४

वृषव्रातासः – ब.व. । (१) वर्षणशील मेघ के समूहों से युक्त वायुगण (२) शस्त्रास्त्र बरसाने वाले मनुष्य ।
'वृषव्रातासः प्रषृतीरयुग्ध्वम्'
ऋ. १.८५.४
वर्षणशील मेघ के समूहों में युक्त होकर वायु वर्षणशील मेघ मालाओं को (पृषतीः) एकत्र करते है ।

वृषस्तुभ् – सर्व सुखदाता की स्तुति करने वाला ।
'वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः'
ऋ. १०.६६.६

वृष्ण्य – (१) पुरुषों में होने वाला उत्पादक बल, (२) बल
'विश्वतः सोम वृष्ण्यम्'
ऋ. १.९१.१६; ९.३१.४ वाज.सं. १२.११२, तै.सं. ३.२.५.३; ४.२.७.४; मै. सं. २.७.१४: ९६.६; का.सं. १६.१४; पंच.ब्रा. १.५.८: श.ब्रा. ७.३.१.४६, कौ.सू. ६८.१०.
पुरुष में होने वाला उत्पादक बल प्राप्त हो ।
'प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज'
ऋ. १.१०२.४; अ. ७.५०.४

वृष्णः अशुः – आदित्य की रश्मि ।
वाचस्पतये पवस्व वृष्णो
अशुभ्यां गभस्तिपूतः'
वाज.सं. ७.१; मै.सं. १.३.४: ३१.७; श.ब्रा. ४.१.१.९.

वृषण्वसू – (१) इन्द्र और बृहस्पति (२) राजा और

सेनापति जो धन ऐश्वर्य का वर्षण करते हैं । (३) बलवानों का वास देने वाले, (४) परमेश्वर और विद्वान् आचार्यों ।
'अस्मिन् यज्ञे मन्दसानां वृष्ण्वसू'
ऋ. ४.५०.१०; अ. २०.१३.१, गो.ब्रा. २.४.१६
(५) अश्विद्वय का विशेषण, (६) वीर्य से चक पुरुष और पुरुष को अपने आश्रय पर बसाने वाला स्त्री ।
'तच्छ्रवथो वृषण्वसू
अत्रिर्वामा विवासति'
ऋ. ५.७४.१
(७) उत्तम प्रबन्ध से युक्त कल पुर्जों को धारने वाले, (८) वृषण अर्थात् अण्डकोषों से युक्त बलवान् घोड़े ।

वृषणा – द्वि.व.। (१) अश्विद्वय या स्त्रीपुरुष का विशेषण (२) बलवान् वीर्य के सेचक स्त्री पुरुष (३) बलवान्

वृषण्वान् – (१) मेघ के समान शस्त्रवर्षी (२) वीरों का स्वामी, (३) बलवान् वीर्यवान्
'प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान्'
ऋ. १.१७३.५
(४) बलवान प्राणों का स्वामनी, (५) बैल वाला ।
'रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः'
ऋ. १.१८२.१
(६) बरसाने वाला, (७) वृष्टिदाता वायु ।
'ममत्तु वातो अपां वृषण्वान्'
ऋ. १.१२२.३; तै.सं. २.१.११.१; का.सं. २३.११.

वृषदती – बैल के समान दांतों वाली अर्थात् खाते रहने वाली स्त्री ।
'रिश्यदीं वृषदीम्'
अ. १.१८.४

वृषदेश – (१) तीक्ष्ण प्रकृति वाला विडाल (२) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट दिखाई देने वाला ।
'उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे'
वाज.सं. २४.३१, मै.सं. ३.१४.१२: १७४.११

वृषन्धि – बलवान् पुरुषों को धारण करने वाला चतुर बल
'वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्'
ऋ. ४.२२.२

वृषपत्नी – (१) सुखों की वर्षा करने वाले जीवात्मा की पत्नी रूप प्राण शक्तियाँ ।
'वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे'
ऋ. ८.१५.६; अ. २०.६१.३; साम. २.२३२

वृषपाण – (१) ये वृषन्ति पोषयन्ति ते वृषाः सोमादयः पदर्थाः तेषां पानम् (सोमादि पदार्थों का पान) पोषण करने से सोम वृष कह गया है ।
– दया.
(२) बलकारी ऐश्वर्यों, रसों या पदार्थों का पान
'आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि'
ऋ. १.५१.१२
(३) वर्षा का जल ही जिस का पान हो–उद्भिद् का विशेषण–दया. (४) वीर्योत्पादक पान योग्य रस–सोमरस (५) वीर्यवर्धक रस .पान करने वाला ।
वृषन्निद्र वृषपाणास इन्दवः
इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदः'
ऋ. १.१३९.६

वृषपाणि – (१) शकट में लगा बैल, (२) बलवान् शस्त्रवर्षी जो हाथों में धनुष लिए हों । (३) मेघवत् वर्ण ।
'तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयः
अश्वा रथेभिः सह वाजयन्त'
ऋ. ६.७५.७; वाज.सं. २९.४४, तै.सं ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३: १८६.५, का.सं. (अश्व.) ६.१.

वृषमणाः – (१) वृषमना, वीर्य सेचन अर्थात् पुत्रोत्पादन करने में चित्त देने वाला, गृहस्थ बनाने का अभिलाषी, पुत्रैषणावान् (२) बरसाने वाला वायु–पर्जन्य
'सचायदीं वृषमणा अहंयुः'
ऋ. १.१६७.७

वृषमण्यु – (१) सुखपूर्वक परमेश्वर को मानने वाले ।
'समानमेकं वृषमण्यवः पृथक्'
ऋ. १.१३१.२; अ. २०.७२.१

वृषमन्यु – (१) सब ऐश्वर्यों का वर्षक मानता हुआ, (३) महावृषण के समान क्रोध से प्रतिस्पर्धा शील वीर पुरुष

वृषरथ – (१) बैलगाड़ी, (२) बलवान् अश्वों से युक्त रथ, (३) वर्षणकारी मेघों में गमन करने वाला मरुत् (४) मेघ रूप रथ वाला मरुत् (४)

आनन्दवर्धक मेघ में रमण करने वाला-इन्द्र । आचार्य विद्वान् ।
'ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः'
ऋ. १.१७७.२

वृषरश्मि - (१) प्रबन्ध करने में समर्थ रश्मियों या नगरों वाला उत्तम प्रबन्धक (२) नियम मर्यादाओं से सम्पन्न (३) बलवान् शस्त्रास्त्र वर्षण कुशल रथ आदि सैन्यों का स्वामी ।
'वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः'
ऋ. ६.४४.१९

वृषलः - (१) मूढ़, (२) अधार्मिक, (३) शूद्र ।
'सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद'
ऋ. १०.३४.११
(४) वृष + अशील = वृषल । जो धार्मिक स्वभाव का न होकर कामी हो, (५) बैल के स्वभाव का नीच या कामी पुरुष । मनु का निर्वचन इस प्रकार है -
वृषो हि भगवान् धर्मः
तस्य यः कुरुते ह्यलम्
वृषलं तं विदुर्देवाः
तस्माद् धर्मं त लोपयेत् ।
धर्मच्युत ही वृषल है ।

वृषव्रत - प्रबन्ध के योग्य व्रत में नियुक्त पुरुष
'एष वृषा वृषव्रतः'
ऋ. ९.६२.११

वृषशिप्र - (१) बरसने मेघ के स्वरूप वाला जलप्रद मेघ, (२) बलवान् प्रमुख नेता वाला ।
'दासस्यचिद् वृषशिप्रस्य मायाः'

वृषसवः - (१) बलवान् प्राणों द्वारा उत्पन्न
'प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्'
ऋ. १०.४२.८; अ. २०.८९.८
(२) बलवान् पुरुषों और अश्वों का संचालक ।

वृषसेनः - बलवान् हृष्ट पुष्ट सेना से युक्त ।
'वृषसेनोऽसि राष्ट्रदाः'
वाज.सं. १०.२; श.ब्रा. ५.३.४.६

वृष्णः अश्वस्यरेतः - सर्वव्यापक सूर्य के समान सब उत्पादक भूमियों के भोक्ता परमेश्वर का उत्पादक वीर्य जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है-सर्वोत्पादक सर्व सर्व प्रेरक सूर्य ।
(२) अन्नादि ओषधि वर्ग उस सूर्य का सार रूप है ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः
ऋ. १.१६४.३५; अ. ९.१०.१४; वाज.सं. २३.६२, ला.श्रौ.सू. ९.१०.१४

वृष्ण्य - (१) बल ।
'सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यम्'
अ. ४.४.४.
(२) बलवान् ।
'महां असि महिष वृष्ण्येभिः'
ऋ. ३.४६.२

वृषा - (१) वीर्य सेचन में समर्थ ओषधि विशेष- वृषमेधा, मुस्ता (मोथा) ऋषभ, एन्द्री, दधिमुखी, वासा, मूसाकानी या आखुपर्णी, धान्या माष, विदारिका, बालिका और आमलकी आदि ओषधियां वृषा के वर्ग में ली गई है । ये वीर्यवर्धक हैं ।
'वृषा शुष्मेण वाजिना'
अ. ४.४.२

वृषाकपायी - वृषाकपि + ङीष् = वृषाकपायी । निगम कहता है - 'सविता सूर्यं प्रायच्छत् सोमाय राज्ञे प्रजापतये वा' - ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है ।
(१) सविता ने चन्द्रमा को अपनी ज्योति दी सूर्यास्त के बाद आदित्य ही वृषाकपि कहे जाते हैं और इनकी ज्योति जो चन्द्रमा की ज्योत्स्ना है वृषाकपायी है, (२) आदित्य उषा को प्रजापति के लिए देता है । (३) उदयकालीन आदित्य की प्रभा सूर्या है ।
आधुनिक अर्थ - लक्ष्मी, गौरी, शची, अग्नि की स्त्री स्वाहा, उषा, सूर्य की स्त्री सूर्या ।
(३) आनन्द रस के वर्षण से हृदय को रोमाञ्चित करने वाले साधक पुरुष की जननी-सत्व भूमि प्रकृति ।
'वृषाकपायि रेवति'
ऋ. १०.८६.१३; अ. २०.१२६.१३; नि. १२.९

वृषाकपि - (१) वृष्टि करने वाला या जगत् को संचालन करने वाला ।
'यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा'
ऋ. १०.८६.१; अ. २०.१२६.१; शां.श्रौ.सू. १२.१३.२; वै.सू. ३२.१७, नि. १३.४.
(२) आदित्य,
'पुनरेहि वृषाकपे'

ऋ. १०.८६.२१; अ. २०.१२६.२१; नि. १२.२८
हे आदित्य, तू पु आः अर्थात् उदय ले ।
(३) वृष् (बरसाना) + कप् (गमनार्थक) + इन् = वृषाकपि । यह द्विधातुज शब्द पृषोदरादिवत् सिद्ध है । अर्थ है -इन्द्र । आदित्य का ही वाचक इन्द्र या वृषाकपि शब्द हुआ । अस्त होता हुआ आदित्य वृषाकपि है ।
'यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन'
ऋ. १०.८६.२२; अ. २०.१२६.२२; नि. १३.३.
हे भगवन् वृषाकपे, इन्द्र, आदित्य, जब तू उत्तर से प्रदक्षिणा करता हुआ अस्त हो जाता है ।
(४) एक वैदिक ऋषि, (५) इन्द्र का मित्र ।
'नाहमिन्द्राणि रारण
सख्युर्वृषाकपेर्ऋते'
ऋ. १०.८६.१२; अ. २०.१२६.१२; तै.सं. १.७.१३.२, का.सं. ८.१७; नि. ११.३९
(६) धर्मश्रेष्ठ । महाभारत में भी लिखा है-
'कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च
धर्मञ्च वृष उच्यते ।
तस्मात् वृषाकपिं प्राह
काश्यपो मां प्रजापति ।
अथ यत् रश्मिभिः अभिप्रकम्पयन् एति तत् वृषाकपिः भवति (अर्थात् आदित्य ही जब अपनी रश्मियों को उप संहृत कर लोगों को कंपाते हुए अस्त होते हैं तब तुषार गिरता है - अतः वे वृषाकपि कहे गए हैं) ।
सायण ने 'वर्षकत्वात् अभीष्ट देशगमतात् च वृषाकपिः ' ऐसा कहा है ।
पुनरेति वृषाकपे
सुविता कल्पया वहै
य एष स्वप्ननंशनः
अस्तमेषि यथा पुनः
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः
ऋ.१०.८६.२१
हे वृषाकपि, जो यह उदय लेकर सभी की निद्रा होने वाला आदित्य है वह तू ही फिर कृप्त मार्ग से अस्त होता है जो तू सम्पूर्ण जगत् का स्वामी और सब से बढ़ चढ कर है वह तू पुनः उदय ले जिससे हम प्रवृत्त शुभकर्म को तेरे हेतु करें ।
आधुनिक अर्थ , सूर्य विष्णु, इन्द्र, आदित्य ।
(७) प्राणों के ऊपर सुखों का वर्षण करने वाला तथा उनमें कम्पन या स्पन्द रूप से स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला आत्मा, (८) प्राण, (९) जीव, (१०) सेनापति ।

वृषाक्ष, वृषाक्षु - (१) बलवान् इन्द्रियों वाला (२) भूमि को घेर कर व्यापने वाला वृक्ष ।
'त्वं वृषाक्षुं मघवन्'
अ. २०.१२.१३; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.१

वृषायुध् - बलवान् से लड़ने वाला
'वृषायुधो न वध्नयो निरष्टाः'
ऋ. १.३३.६
जैसे बलवान् से लड़ने वाले नपुंसक बलहीन पुरुष (वध्नयः) परास्त हो जाते हैं (निरष्टाः) ।

वृषाहरिणः - नर हरिण ।
'अनु त्वा हरिणो वृषा'
अ. ३.७.२

वृष्णाः - वृष्टि के कारण स्वरूप सूर्य की किरणें
'या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; साम. १.४०९; मै.सं. ४.१४.१४: २३८.६
सूर्य के साथ ही रहने वाली (सयावरीः) एवं वृष्टि के कारणभूत (वृष्णा) सूर्य की किरणें सूर्य की शोभा के लिए (शोभसे) प्रकाशित होती हैं ।

वृष्ण्यावत् - वर्षा कर्म वाला मेघ ।
'उतानागा ईषते वृष्ण्यावतः'
ऋ. ५.८३.२; नि. १०.११
मेघ से अनपराधी भी भागते हैं ।

वृष्ण्यावान् - (१) समस्त बलवीर्यों से युक्त ।
'यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्'
ऋ. ६.२२.१, अ. २०.३६.१
(२) वीर्य संचय में समर्थ पुरुष
'वृषासि वृष्ण्यावान्'
अ. ५.२५.८; कौ.सू. ४०.१४

वृष्टि - वृष् + क्तिन् = वृष्टि । (१) जल पटाने वाला कृषक ।
'यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम'
ऋ. ५.८५.३; नि. १०.४
जैसे बरसने वाला (वृष्टिः) यव बोने के लिए भूमि को (यवं भूत न) तरह तरह से पटाता है (व्युनत्ति) ।
'आविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्'

ऋ. १.११६.१२
जैसे घोर शब्द कारी विद्युत् वृष्टि को प्रकट करती है ।

वृष्टिद्यावा – (१) जलवृष्टि और दीप्ति से युक्त वायु और विद्युत् ।
'वृष्टिद्यावा रीत्याणा'
ऋ. ५.६८.५

वृष्टिवनिः – (१) सुखप्रद ऐश्वर्य विभूति, (२) जल वृष्टि का अंश
'देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणः'
ऋ. १०.९८.६; नि. २.१२.
(३) वृष्टि प्रदान करने वाला
'स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये'
वाज.सं. ३८.६; श.ब्रा. १४.२.१.२१
(४) वृष्टि + वन (याचना) इन् (छन्दसि वन सन रक्षिमयाम्) = वृष्टिवनिः । अर्थ है – वृष्टि का याचक (६) वृष्टि का इच्छुक ।
यद्देवपिः शन्तनवे पुरोहितः
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२

वृष्टिहव्य – (१) हव्य या अन्नादि ग्राह्य पदार्थों की वृष्टि करने वाला प्रभु, (२) ऋषि रूप स्तुत वृष्टि हव्य ऋषि
'इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्राः'
ऋ. १०.११५.९

वृद्धन्ता – स्वयं बढ़ने और दूसरों को बढ़ाने वाले स्त्री पुरुष, मातापिता, अध्यापक उपदेशक, अश्विद्वय

वेट् – (१) मान सत्कार, (२) उच्च आसन अधिष्ठात् पद, (३) उच्च पद का अधिकार ।
'नृषदे वेट्'
वाज.सं. १७.१२; तै.सं. ४.६.१.३,५.४.५.१, मै.सं. २.१०.१: १३२.३; का.सं. १७.१७; २१.७; श.ब्रा. ९.२.१.८,९; आप.श्रौ.सू. १७.१३.६.

व्येती – (१) विशेष रूप से श्वेत प्रकाशवाली उषा, (२) हरिणी के समान विशेष रूप से उत्तम चक्षु वाली स्त्री ।
'एषा व्येनी भवति द्विबर्हाः'
ऋ. ५.८०.४

वेणु – वीणा नामक वादन यन्त्र ।
'शतं वेणूञ्शतं शुनः
ऋ. ८.५५.३

वेतस – वयति तन्तून् सन्तनोति इति ।
वेतसः प्रजननाङ्गम्'
– दया. ।
'उप ज्मन्नुप वेतसेऽव तर नदीष्वा'
वाज.सं. १७.६; तै.सं. ४.५.१.१; मै.सं. २.१०.१: १३१.९; का.सं. १७.१७; श.ब्रा.९.१.२.२७

वेतसुः – (१) वेतस दण्ड के समान उद्धत् ।
'अहं पितेव वेतसूं रभिष्टये'
ऋ. १०.४९.४
(२) राज्य को वश में करने के लिए शासन दण्ड
'स वेतसुं दशमायं दशोणिम्'
ऋ. ६.२०.८
(३) वेदकालीन एक देश

वेत्तवे – प्राप्त करने के लिए
'प्रतिक्रमाय वेत्तवे'
अ. २.३६.७

वेति – गच्छति (जाता है) । 'वी' धातु गत्यर्थक है ।

वेपी – क्रिया शक्ति से युक्त ।
'इन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नूगीः'
ऋ. ६.२२.५; अ. २०.३६.५

वेद – (१) धन
तेषां नो वेद आ भर
ऋ. १.८१.९; अ. २०.३६.६
(२) वेद, (३) पुरुष, (४) दर्भमुष्टि ।
वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्ति
अ. ७.२८.१
(५) विद् (प्राप्त करना, जानना) + अच् = वेद
वेदेन वै दैवाः असुराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त । तद् वेदस्य वेदत्वम् (वेद से देवों ने असुरों का प्राप्य धन प्राप्त किया है अतः यह वेद है) । अर्थ – ज्ञान, धन । (६) वेदिदेवोभ्यो विलायत
तां वेदेनान्वविन्दन्
वेदनेवेदिं विविदुः पृथिवीम्'
का.सं. ३१.१४; तै.ब्रा. ३.३.९.१०; आप.श्रौ.सू. २.१.३; मा.श्रौ.सू. १.२.४.५.
(देवों से वेदि छिप गई । उसे वेद से प्राप्त किया) ।
(७) आयुरस्मिन् विद्यतेऽनने वा आयुर्विन्दति

इत्यायुवेदः सुश्रुत सू. १.१४
(८) आयुर्वेदयति इति आयुर्वेदः चरक ३०.२०
(९) विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति , विचारयन्ति सर्वे मनुष्या सर्वाः सत्यविद्याः यै र्येषु वा ते वेदाः –दया.
विद् धातु ज्ञान, सत्ता, लाभ, विचारण आदि धातुओं से कारण और अधिकरण अर्थ में अच् प्रत्यय कर वेद सिद्ध किया गया है ।
(१०) विद् (जानना) धातु के लट् प्र.पु. ए.व. में रूप । अर्थ–जानता है ।
'य ईं चकार न सो अस्य वेद'
ऋ. १.१६४.३२; अ. ९.१०.१०; नि. २.८
जो यह गर्भ करता है वह इसका तत्व नहीं जानता (न सो अस्य वेद) ।

वेदन – (१) धन ।
'यस्या गृधद्वेदने वाज्यक्षः'
ऋ. १०.३४.४

वेदन्त – दुःख ।
'शत्रूयतामधरा वेदनाकः'
ऋ. १.३३.१५
शत्रुवत् आचरण करने वालों को निकृष्ट कोटि की वेदना है ।

वेदयाता – वेदमय ज्ञानों को भी उत्पन्न करने वाली परमेश्वरी शक्ति
स्तुतामया वरदा वेदमाता
अ. १९.७१.१

वेदस् – विद्या आदि धन ।
'पूषा नो यथा वेदस्तमसद् वृधे'
ऋ. १.८९.५; वाज.सं. २५.१८
वह सब पोषक पूषा हमारे धनों और ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिए हो (वेदसां वृधे असत्) ।

वेदसस्परि – ज्ञान और धन प्राप्ति के काल तक ।
'विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि'
ऋ. २.१७.६

वेद्य – वेद एव वेद्याः । स्वार्थे यत् । विदन्ति वा येभ्यः अन्येजनाः वेद यन्ति वा अन्यान् ते वेदाः त एव वेद्याः । वेद्यम् एषामस्ति इति वा ।
अर्थ – (१) विद्वान् (२) वेदसम्बन्धी
अहस्ता यद् अपदी वर्धतक्षाः
'शचीभिर्वेद्यानाम्
ऋ. १०.२२.१४
(३) ज्ञान को धारण करने और कराने में उत्तम ।
'प्र वेधसे कवये वेद्याय'
ऋ. ५.१५.१
(४) ज्ञान करने योग्य परमेश्वर
'श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय'
अ. १९.३.४.

वेद्या – विद् (सत्ता अर्थ में) + यत् + टाप् = वेद्या ।
(१) जिस वाणी से हाँ हाँ के द्वारा अस्तित्व को कहा जाता है, (२) खुशामदी बात, चापलूसी ।
'न वन्दनाः शविष्ठ वेद्याभिः'
ऋ. ७.२१.५
(३) अनुकूलता से ज्ञातव्य या सहज प्रवृत्ति
'वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः'
ऋ. ६.९.१०; नि. २.२१.
दिन और रात, द्यौ और पृथिवी (रजसी) के प्रति अपनी अपनी प्रवृत्तियों से घूमते रहते हैं ।

वेदिः – (१) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली देवी ।
'स्वर्यद् वेदिं सुदृशीकमर्कैः'
ऋ. ४.१६.४; अ. २०.७७.४
(२) यज्ञ की वेदि
'स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम्'
ऋ. २.३.४
(३) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली विदुषी स्त्री या भूमि ।
'अव वेदिं होत्राभिर्यजेत्'
ऋ. ७.६०.९
(४) विद् (प्राप्त करना) सन्तान प्राप्त करने का साधन रूप स्त्री ।
'योषा वै वेदिः वृषा अग्नि'
श. १.२.५.१२
'परिस्तृणीहि परिधेहि वेदिम्'
अ. ७.९९.१
(४) ज्ञानमय और सबको प्राप्त करने वाली, (६) सत्ता स्वरूप प्रभु शक्ति, (७) परमेश्वरी शक्ति
'इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः'
ऋ. १.१६४.३५; अ. ९.१०.१४ वाज.सं. २३.६२; श.ब्रा. १३.५.२.२१. आश्व.श्रौ.सू. १०.९.३; ला.श्रौ.सू. ९.१०.१४.

वेदिषद् – (१) वेदि या भूमि रूप वेदी में प्रतिष्ठित।
'होता वेदिषदतिभिर्दुरोणषद्'
ऋ. ४.४०.५; वाज.सं. १०.२४, १२.१४; वाज.सं. (का.) ११.७.४; १३.१.१५; तै.सं. १.८.१५.२, ४.२.१.५, मै.सं २.६.१२: ७१.१४; का.सं. १५.८; १६.८; ऐ.ब्रा. ४.२०.५; श.ब्रा. ५.४.३.२२; ६.७.३.११; तै.आ. १०.१०.२; नि. १४.२९
(२) सर्वव्यापक ईश्वर।
'इदा हि ते वेविषतः पुराजाः'
ऋ. ६.२१.५
(३) यज्ञ भूमि में विद्यमान्।
'अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः'
वाज.सं. २.२९
(४) वेदी में स्थिर होने वाला अग्नि (५) सब पदार्थों का लाभ कराने वाली पृथ्वी पर राजा रूप से विराजने वाला।
'वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते'
ऋ. १.१४०.१; कौ.ब्रा. २५.९

वेदिष्ठः– (१) सबसे अधिक दयालु (२) वेदनावान्
(३) सबसे बढ़कर दाता
'यो वेदिष्ठो अव्यथिषु'
ऋ. ८.२.२४

वेदीयान् – (१) प्राप्त करता हुआ।
'गौराद् वेदीयां अपवानमिन्द्रः'
ऋ. ७.९८.१; अ. २०.८७.१
(२) ज्ञानवान् तेजस्वी, (३) ऐश्वर्यवन्, (४) बलशाली।

वेदुमय – ज्ञानमय पुरुष।
'इरावेदुमयं दत'
अ. २०.१३०.१६

वेधस् – विश्व का विधाता इन्द्र परमेश्वर।
'अषाढ़ाय सहमानाय वेधसे'
ऋ. २.२१.२; ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६.८; ३.१.२.२; नि. १०.६.

वेधसः – ब.व.। (१) कर्ता, कर्मयोगी (२) मेधावी, (३) विद्वान् पुरुष।
'सप्तिं मृजन्ति वेधसः'
ऋ. ९.२९.२; साम., २.१११६
(४) देह का कार्य करने वाले इन्द्रियगण, (५) गृहकार्य सम्पादन करने वाले भृत्य गण, (६) यज्ञ कार्य करने वाले ऋत्विक् गण।
'दस्रा मदन्ति वेधसः'
अ. ७.७३.२

वेधस्तमः – (१) सबसे अधिक बुद्धिमान् एवं कर्म करने तथा विधान् या निर्माण कार्य में कुशल, (२) अग्नि।
'अग्निं वेधस्तम ऋषिः'
ऋ. ६.१४.२
'अग्ने वेधस्तम प्रियम्'
ऋ. १.७५.२

वेदसा – द्वि.व.। विद्वान् स्त्री पुरुष, अश्विद्वय।
'असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीः'
ऋ. १.१८१.७

वेधाः, वेधस् – विध् + असुन् = वेधस्। अर्थ– (१) विधान कर्ता, (२) सृष्टि कर्ता, रुद्र का विशेषण
(३) वृष्टि के विधाता। मरुद्गण (४) बींधने वाले दया.–सा.
'अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः'
ऋ. ५.५४.६
हे वृष्टि के विधाता मरुतो, (वेधसः मरुतः) आप लोगों का गणनाबल (शर्धः) शोभता है (अभ्राजि) जिससे (यत्) जल युक्त मेघ को (अर्णस वृक्षम्) निरुदक करते हो (मोषथा) –सा.
हे विद्वान् मनुष्यो, (मरुतः) तुम्हारा उत्साह (शर्धः) प्रदीप्त होता है (अभ्राजि) जो कि तुम (यत्) जैसे बींधने वाले छोटे छोटे कृमि (वेधसः कपनाः) वृक्ष को धीरे धीरे हर लेते हैं (वृक्षम् इव) एवं शब्द–सागर वेद को (अर्णरुम्) धीरे धीरे ग्रहण कर लेते हो (मोषथा)– दया.।
आधुनिक अर्थ – विधाता, सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा, दक्ष प्रजापति विष्णु, शिव, सूर्य, अर्क नामक पौधा, विद्वान्।

वेनः – (१) ज्ञानी, विचारवान्।
'समुद्रा दूर्मिमुदियर्ति वेन'
ऋ. १०.१२३.२; ऐ.ब्रा. १.२२.८; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४
(२) तेजस्वी, (३) रक्षक।
'अभि वेना अनूषत'

ऋ. ९.६४.२१
(३) कान्त्यर्थक वेन धातु से 'थ' प्रत्यय कर सिद्ध ।
अर्थ-विद्युत्
(४) कान्त मध्यम स्थानीय देव
'अथं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाः '
ऋ. १०.१२३.१; वाज.सं. ७.१६; तै.सं. १.४.८.१; मै.सं. १.३.१०: ३४.१; का.सं. ४.३; ऐ.ब्रा. १.२०.२: ३.३०.३; कौ.ब्रा. ८.५; शं.ब्रा. ४.२.१.८; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; ५.१८.५; नि. १०.३९
यह वेन नामक कान्त मध्यमस्थानी देव (अयं वेनः) आदित्य कीं रश्मियों से रहने वाले जलों को (पृश्निगर्भा) पृथ्वी की और प्रेरित करता है (चोदयत्) ।
(४) समान वायु । यह नाभिस्थान में रहता है और अन्नरस का परिपाक करता है । समान वायु पाचन करने के कारण प्रिय है अतः यह वेन है ।
(५) प्रिय, (६) विद्वान् मेधावी ज्ञानवान् के अर्थ में -
'वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत् '
वाज.सं. ३२.८
(७) (धा.) । कमना करना । (८) बजना
'हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा '
ऋ. १०.१२३.६; अ. १८.३.६६; साम १.३२०; २.११९६, तै.ब्रा. २.५.८.५; तै.आ. ६.३.१.
नाना कामना करने वाला ।

वेनत् - नाना कामना करने वाला ।
विदा कामस्य वेनतः'
ऋ. १.८६.८; साम. २.९४४

वेनम् - कामना करता हुआ ।

वेनन्ता - द्वि.व. । 'वेनृ ' धातु बजाना अर्थ में है । वादित्रवादकौ (बाजा बजाने वाले) । (२) कामा करते हुए ।
तदित् समानमाशाते
वेनन्ता न प्र युच्छतः
धृतव्रताय दाशुषे ।
ऋ. १.२५.६
समस्त व्रतों नियमों की बागडोर को धारण करने वाले दानशील स्वामी को प्रसन्न करने के लिए उसकी अभिलाषा के अनुसार गान वाद्य को समान रूप से प्रयोग करते हैं और प्रमाद नहीं करते ।

वेन्य - (१) सबसे चाहने योग्य ।
'इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनः '
ऋ. २.१४.१०
(२) काम करने वाला ।
'उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः'
ऋ. १०.१४८.५

व्येनसा - वि + एनसा । द्वि.व. ।
अपराधों से रहित शुद्ध चरित्र वाले वर वधू ।
'मादुष्कृतौ व्येनसा
अघ्न्यौ शूनमातरम् '
ऋ. ३.३३.१३

वेना - (१) वेगवती गति, (२) क्रान्ति, (३) कामना । (४) कामनाशील ब्रह्मचारिणी कन्या ।
'गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा '
ऋ. १.५६.२
जैसे कामनाशील ब्रह्मचारिणी स्त्रियां (वेना) विवाह के समय बड़े साहस से (तेजसा) शिला खण्ड पर पैर रख देती हैं (गिरिम् अधरोह) ।

वेनी - चाहती हुई ।
'तस्य वेनीरनुव्रतम् '
ऋ. ८.४१.३

वेपते - वेप (कांपना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है-कांपता हूँ या कांपे ।
'असुरो वेपते मती '
असुर यज्ञ कर्म में प्रकम्पित हृदय में होकर रहे-सा.
अथवा,
बुद्धिमान् गृहस्थ (असुरः) मनन द्वारा (मती) पापादिकों से कांपें (वेपते) । - ज.दे.श ।

वेपथुः - संचलन ।
'महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे '
अ. १२.१.१८

वेपस् - गति , वेग,
'न वेपसा तन्यता
इन्द्रं वृत्रो वि षीभयत् '
ऋ. १.८०.१२
न वेग और न गर्जन से ही वृत्र या मेघ इन्द्र या विद्युत को डरा सकता है ।

वेपिष्ठ - (१) कम्पनशील, (२) सबसे उत्तम वेदमन्त्र उपदेशादि का उच्चारण करता हुआ, (३) शत्रुओं को कंपा देने वाला ।
'वेपिष्ठो अंगिरसां यद्ध विप्रः
मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ'
ऋ. ६.११.३

वेपी -सत्कर्म सहित और भक्तिभाव से कांपती हुई
'इन्द्र वेपी वक्वरी यस्य नू गीः'
ऋ. ६.२२.५; अ. २०.३६.५

वेय - (१) तसर के साथ मिलाकर बुनने वाला पदार्थ, (२) पुत्र

वेविजानः - (१) कंपाता हुआ, (२) उद्विग्न होता हुआ ।
'भरद् यदि विरतो वेविजानः'
ऋ. ४.२६.५
(३) सर्वत्र व्यापता हुआ
'स मध्व आयुवते वेविजान इत्'
ऋ. ९.७७.२

वेविदानः - (१) निरन्तर ज्ञान-सम्पादन करने वाला ।
(२) प्राप्त करता हुआ
'ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः'
ऋ. ३.५४.४

वेविषाणाः - विश् धातु से सम्पन्न । (१) विलीन प्राय जाल का विशेषण, -सा. (२) फैले हुए-'तृत्सवः' का विशेषण -ज.दे.श. ।
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणाः
आपो न सृष्टा अधवन्त नीची ।.
ऋ. ७.१८.१५; नि. ७.२.
ये मेघ या असुर इन्द्र से विदीर्ण या छिन्न भिन्न होकर (इन्द्रेण तृत्सवः) या युद्ध के लिए संगत होकर भी जल के सदृश के लिए संगत होकर भी जल के सदृश विलीन प्राय हो नीचे होकर चलने लगे ।
(वेविषाणाः आपो न नीचीः अध वन्त) -सा.
ये सारे राष्ट्र में फैले हुए दुष्ट हिंसक क्षत्रिय (ऐते वेविषाणाः तृत्सवः) राजा के साथ मिलकर (इन्द्रेण) जो राजद्रोही हैं उन्हें (दुर्मित्रासः) फेंके हुए जल की तरह (सृष्टा आपः न) नीचे पहुंचा दे (नीचीः अधवन्त) ।

वेश - (१) पड़ोसी ।
'मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः'
ऋ. ४.३.१३.
(२) सबके प्रवेश योग्य सभा स्थान, गृह या राष्ट्र में आने वाला वैश्य वर्ग या निकट वर्ती पड़ोसी ।
'वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा'
ऋ. ५.८५.७
(३) प्रवेश करने वाला
(५) अन्तः प्रविष्ट आत्मा
'अहं वेशं नम्रमापवेऽकरम्'
ऋ. १०.४९.५

वेशन्ता - बावड़ी, तालाब ।
'अप्रपाणा च वेशन्ता'
अ. २०.१२८.८, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.३.

वेशन्ती - जल से भरा तालाब ।
'वर्त्रं वेशन्त्या इव'
अ. १.३.७

वेश्य - विश् + मनिन् = वेश्मं । अर्थ है - गृह
'भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्यं
ऋ. १०.१०७.१० नि. ७.३
दाता के लिए ही पुष्करिणी के सदृश गृह मिलता है ।
(२) वेश अर्थात् उत्तम पद पर या देह में प्रविष्ट।
'शततमं वेश्यं सर्वताता'
ऋ. ४.२६.३

वेश्यः - (१) कीटों के प्रवेश करने का स्थान ।
'हतासो अस्य वेशसः'
अ. २.३५.५; ५.३२.१२.
(२) सेवक, (३) अन्तरंग पुरुष, (४) भीतरी आश्रय स्थान (५) मुख्य जीव

वेश्या - भीतर दुर्ग आदि में भी प्रवेश करने वाली सूची व्यूह आदि के आकार की तीक्ष्ण सेना ।
'अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चपिण्डः'
ऋ. ७.१८.१७

व्रेशिः - आवृत स्थानपर शमन करने वाली प्रजा ।
'व्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि ।
वाज.सं. ८.४८, श.ब्रा. ११.५.९.८,

वेषण - सेवन, प्राप्ति ।
'अव स्म यस्य वेषणे
स्वेदं पथिषु जुह्वति'
ऋ. ५.७.५

वेषत् – (१) व्याप्त करता या होता हुआ वायु, (२) सर्वत्र सुख सौभाग्य द्वारा व्याप्त ।
प्रेवद् वेषद् वातो न सूरिः
ऋ. १.१८०.६

वेषन्ती – (१) हृदय में व्यापने वाली पत्नी (२) राष्ट्र भर में फैली हुई प्रजा (३) व्यापक सत्य वाली वेदवाणी ।
'एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैः
वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः '
ऋ. १.१८१.६

वेष्य – व्यापक शक्ति ।
'विष्णोर्वेष्योऽसि '
वाज.सं. १.३०, श.ब्रा. १.३.१.१७

वेसर – (१) अहः, दिनम् । (२) सूत कातने का एक यन्त्र, (२) आधुनिक खच्चर, (४) दुराग्रही वेद में वासः शब्द 'तमः' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

वेहत् – (१) जिस गौ को बच्चा नहीं होता है वह वेहत् है, वन्ध्या गौ
वेहतं मा मन्यमानः
अ. १२.४.३७
(२) विशेष रूप से या विशेष विशेष साधनों से शत्रुओं का नाशक पुरुष ।
'इन्द्राय स्वपस्याय वेहत् '
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.१२:१६८.१३
(३) दुष्टों के षड्यन्त्रों को भी गर्भ में ही विविध उपायों से नाश करने वाली राजा की नीति ।
'वशा वेहद् वयो दधुः '
वाज.सं. २१.२१; मै.सं. ३.११.११: १५९.१९ ; का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.४
(४) गर्भघातिनी गौ
ऋषभश्च मे वेहश्च मे '
वाज.सं. १८.२७, तै.सं. ४.७.१०.१; का.सं. १८.१२.

वैकङ्कत – (१) वज्र, (२) विराट् यज्ञ, (३) प्राण, प्रजापति यां प्रथमाहुतिमुजुहोत् स हुत्वा यत्र न्यमृष्ट ततो विकङ्कतः समभवत् ।
वज्रो वै विकङ्कतः '
श.ब्रा.

वैकर्ण – (१) विविध कानों वाला, (२) राज सभा के दो पक्ष वैकर्ण से कहे जाते हैं । (३) विविध कर्णों में हुआ-दया.
'वैकर्ण्ययोर्जनान् राजान्यस्तः
ऋ. ७.१८.११

वैकुण्ठ – (१) परमात्मा का परम पद (२) ऋग्वेद दशम मण्डल के ४२ वें सूक्त का ऋषि ।
परमात्मा उस परम पद में कुण्ठित गति से विगत होता है । उस विकुण्ठ नामक परम पदों में स्थित होने से परमात्मा वैकुण्ठ कहलाता है ।

वैखानस – (१) 'विखननात् वैखानसः' । व्युदुह्य अग्नि तस्मिन् अग्निस्थाने यः उत्पन्नः स विखननात् वैखानसः अभूत्, (अग्नि को विखनन कर उस स्थान में उत्पन्न होने से वैखानस हुए । जैसे भरण से भारद्वाज) (२) विखनसं तपसा प्राप्नोति इति वैखानसः वाणप्रस्थः ।
यह कल्पद्रुम का निर्वचन है । (३) स्वा. दयानन्द ने विखनस् का अर्थ ब्रह्म किया है, क्योंकि ब्रह्म हिरण्मय पात्र से ढंके रहने के कारण विशेष प्रयत्न से खोजा जाता है ।

वैतरणः – विशेष रूप से पार उतारने वाला ।
'स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा '
ऋ. १०.६१.१७

वैतस – (१) बेंत की सी वृत्ति, (२) प्रबल के सामने विनय से झुकने और दुर्बल को देखकर सिर उठा देने वाला नायक
'दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन '
ऋ. १०.९५.४
(३) न नाश होने वाला ज्ञानमय प्रकाश
(४) वेतसो वितस्तं भवति अर्थात्, वेतस वितस्त या विततन या वितस्तिमित होता है । अर्थ है-पुरुष लिंग, शिश्नदण्ड । लिंग स्त्री के अनुस्मरण के पूर्व उपक्षीणतर रहता है ।
वितस्त से ही वैतस बना है ।
त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेन
उत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि
पुरूरवोऽनु ते केतमायं
राजा मे वीर तन्वस्तदासीः '
ऋ. १०.९५.५
पुरूरवा के यह कहने पर कि – जामत, ठहर-उर्वशी ने कहा- हे पुरूरवा, तू ने तीन

रात, या सायण के अनुसार तीन बार मुझे शिश्नदण्ड से ताड़ित किया (पुरूरव त्रिः स्म माह्नः वैतसेन श्नथयः) और मेरे मन में जो कुछ लालसा थी वह सब तू ने सपत्नियों के साथ पूरा किया है (उतस्म मे अव्यत्यै पृणासि)। अतः मैं तेरी हूँ और तेरे घर पर (केतम्) चित्त से अनकूल हो अनुगमन किया (अनुआयम्)। तथा, हे वीर, उस समय तू (वीर तदा) मेरे शरीर का राजा बना रहा (मे तन्वः राजा आसीः) पर अब तू वैसा अनुरक्त नहीं है इसी से मैं जा रही हूँ।

वैतहव्य – (१) दान योग्य पदार्थों का स्वंय भोक्ता, (२) असुर
वैतहव्याः पराभवन्।
अ. ५.१८.१०, १९.१

वैदथिन – (१) संग्राम, (२) धन तथा ज्ञान को प्राप्त करने वाला
'अरन्धयो वैदथिनाय पिप्नुम्'
ऋ. ५.२९.११
(२) यज्ञवान्, (३) विज्ञानवान् (४) ऐश्वर्य वान्।
'ऋजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः'
ऋ. ४.१६.१३

वैद्युत – विद्युत से उत्पन्न या उत्पन्न होने वाला।
'शबला वैद्युताः'
वाज.सं. २४.१०, मै.सं. ३.१३.११:१७०.१०, आप.श्रौ.सू. २०.१४.६

वैन्यः – (१) विद्वानों का हितकारी, (२) कान्तियुक्त आत्मा।
'पृथ्वी यद्वां वैन्यः सादनेषु'
ऋ. ८.९.१०; अ. २०.१४०.५
(३) तेजस्वी, (४) यश का इच्छुक

वैन्यपृथ्वी – नाना काम्य पदार्थों का स्वामी, (२) महान् राजा
'तां पृथ्वी वैन्योऽधोक्'
अ. ८.१०.११

वैवश्व – (१) विगत इन्द्रियरूप अश्वों वाला (२) जितेन्द्रिय, पुरुष, (३) साधारण पुरुष, (४) अश्वरहित पदाति।
'वैयश्व दशमं नवम्'
ऋ. ८.२४.२३; अ. २०.६६.२

वैयाघ्र – (१) नाना प्रकार का गन्ध देने वाला।
वैयाघ्रो मणिर्वीरुधाम्'
अ. ८.७.१४
(१) व्याघ्र के स्वभाव वाला पुरुष
'व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे'
अ. ४.८.४

वैयाघ्रमणि – (१) विविध विशेषण वा आघ्रीय त इति व्याघ्रः। स एव वैयाघ्रः। स चासौ मणिश्चेति (नाना प्रकार का गन्ध देने वाला रोगस्तम्भन गुटिका या जड़ी)।
(२) तपेदिक, सिरदर्द आदि रोगों में निरन्तर सूंघने के लिए विशेष ओषधि रसों की शीशी या पापों का प्रयोग (३) प्लेग आदि के समय फिनाइल आदि गोलियों को जेब में रखने आदि का प्रयोग किया जाता है। पूर्वकाल में ऐसी औषधियों को कपड़े में बांधकर गले या बाजू में बांध लिया जाता है।
'वैयाघ्रो मणिर्वीरुधाम्'
अ. ८.७.१४

वैरदेय – (१) कलह का कार्य, (२) वीर्य (वैर) द्वारा पुत्रोत्पत्ति का कार्य
'स वैरदेय इत् समः'
ऋ. ५.६१.८

व्यैरयत् – (१) विविध प्रकार से कंपा देता है।
'वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः'
ऋ. १.५१.११
अपने बल को बढ़ाकर (दृंहिता) राष्ट्र के शोषण करने वाले शत्रु के गढों या दुर्गों को (शुष्णस्य पुरः) विविध प्रकार से कंपा देता है (वि ऐरयत्)।

वैरहत्य – वैर के कारण हत्या करने का कार्य
'वैरहत्याय पिशुनम्'
वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७

वैराज – (१) एक विंशस्तोम से उत्पन्न वैराज नामक साम, (२) विविध तेजों से राजवान् शरीर, (३) एक विंशराजा से उत्पन्न विविध राष्ट्र के कार्य
एक विंशद् वैराजम्.
वाज.सं. १३.५७, तै.सं. ४.३.२.२, मै.सं. २.७.१९: १०४.१०, का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.१.२.५
(४) प्रजापति

'तं वैरूपं च वैराजं च'
अ. १५.२.१८

वैराजाः देवाः – (१) प्रतीची के देवता (२) विशेष प्रकार से प्रकाश मान देव या विद्वान्।
'वैराजा नाम देवाः'
अ। ३.२६.३

वैरूप – (१) वाक् (२) पशु (३) दिशा
'तं वैरूपं च वैराजं च'
अ. १५.२.१८
(४) विविधरूपों, रूचि एवं कान्ति वाला, (५) नाना विद्याकलाओं में निपुण विद्वान्।
'यम वैरूपैरिह मादयस्व'
ऋ. १०.१४.५; अ. १८.१.५९; तै.सं. २.६.१२.६; मै.सं. ४.१४.१६. २४२.१४
'विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो'
वैरूपेभ्यो द्वादशकपालः'
वाज.स. २९.६०; तै.सं. ७.५.१४.१; मै.सं. ३.१५.१०: १८०.९ का.सं. (अश्व.) ५.१०.
(६) विविध जीव सृष्टि, (७) वैरूप नामक पृष्ठ, (८) राज्य की विविध रचना
'सप्तदशात् वैरूपम्'
वाज.सं. १३.५६, तै.सं. ४.३.२.२, मै.सं. २.७.१९: १०४.८ का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.२

वैरूपं साम – (१) विविध प्रकार की प्रजा का विविध बल, (२) घोष
'वैरूपं साम प्रतिष्ठित्यै'
वाज.सं. १५.१२; तै.सं. ४.४२.२; मै.सं. २.८.९: ११३.१७; का.सं. १७.८; श.ब्रा. ८.६.१.७.

वैल – (१) गिरने का स्थान, (२) गढ़ा (३) कूप अंग्रेजी का well शब्द वैल का ही अपभ्रंश है।

वैलस्थान – (१) गिरने या पराजित होने का स्थान, (२) बिल या गढ़ावाला स्थान, कूप।
वैलस्थानं परितृढा अशेरन्'
ऋ. १.१३३.१
गिरने या पराजित होने के स्थान पर ही या गढ़ो या कूपों में ही (वैलस्थानम्) वे मारे गए लोग (तृढाः) भूमिपर सोयें (अशेरन्)।

वैलस्थानक – बड़े भारी गढ़ो में युक्त ऊंचे नीचे खड़ो से भरा स्थान है
(२) बिल के समान बना कैदखाना।
'वैलस्थानके अर्मके'
ऋ. १.१३३.३
जिस प्रकार पीड़ादायी व्यक्तियों को दुःखदायी छोटे से बिल के समान बने कैदखाने में डाल दिया जाता है।

व्यैलब – नाना प्रकार के शब्द करने वाला
'भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः'
अ. १२.१.४१

वैदिदश्वि – (१) विददश्व का अपत्य (२) विददश्व का अर्थ है–
'यः अश्वान् विन्दति'।
अतः 'वैददश्वि' का अर्थ है अश्वों या इन्द्रियों को अपने वश में करने वाला जितेन्द्रिय।
'वैददश्विर्यथाददत्'
ऋ. ५.६१.१०

वैवस्वतः – विवस्वान् का पुत्र–यम
वैवस्वतं संगमनं जनानाम्
यमं राजानं हविषा दुवस्य'
ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९, ३.१३, मै.सं. ४.१४.१६: २४३.७; तै.आ. ६.१.१; नि. १०.२०
प्राणियों को अपने कर्मानुसार स्वर्ग नरक पहुंचाने वाले यम राजा को हवि से पूज।

वैवस्वत – (१) विवस्वान् सूर्य से उत्पन्न काल, (२) यम–सा.
'वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतान्'
अ. ८.२.११.

वैवस्वतमनु – (१) वैवस्वत मनु, (२) विविध प्रकार से प्रजाओं को बसाने वाला मनीषी पुरुष ज.दे.श.
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्
अ. ८.१० (४) १०

वैबाधप्रणुत्त – विविध पीड़ाओं से विनष्ट
'न वैशाधप्रणुत्तानाम्'
अ. ३.६.७

वैशन्त – (१) राष्ट्र में प्रविष्ट, (२) प्रजा का हितकारी।
'तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम्'
ऋ. ७.३३.२
(३) ताल तलैयाओं का अध्यक्ष
'नमो नादेयाय च वैशन्ताय च'
वाज.सं. १६.३७.

वैशन्ता – छोटे छोटे ताल तलैया ।
'वैशन्ताभ्यो बैन्दम्'
वाज.सं. ३०.१६

वैश्य – (१) वैश्यवर्ण
'मरुद्भ्यो वैश्यम्'
वाज.सं. ३०.५; तै.ब्रा. ३.४.१.१.

वैश्वकर्मण – (१) विश्वकर्मा रूप से उत्पन्न मन ।
'तस्य मनो वैश्वकर्मणम्'
वाज.सं. १३.५५; तै.सं. ४.३.२.१; मै.सं. २.७.१.९: १०.४.३, का.सं. १६.१९: श.ब्रा. ८.१.८.८
(२) अग्नि, (३) विश्वकर्मा राज्य के उत्तम कर्मों के प्रवर्थक राजा पद पर विराजमान ।
'तदग्निर्वैश्वकर्मणः'
वाज.सं. १८.६४,६५, तै.सं. ५.७.७.२,३; का.सं. ४०.१३, श.ब्रा. ९.५.१.४९,५०
(४) विश्वकर्मा के अधीन
'बहुरूपा वैश्वकर्मणाः'
वाज.सं. २४.१७; मै.सं. ३.१३.१५:१७१.१०; आप.श्रौ.सू. २०.१४. १२.

वैश्वदेव – समस्त दिव्य शक्तियों में सूक्ष्म रूप से विद्यमान् आत्मा
'वैश्वदेवमसि'
वाज.सं. ४.१८; ५.३०, मै.सं. १.१.११: ६.१४. १.२.४:१३.३, श.ब्रा. ३.२.४.१४, ६.१.२६, शां.श्रौ.सू. ४.८.२; ला.श्रौ.सू २.३.७, का.श्रौ.सू. ८.६.१४.

वैश्वदेवाग्निमारुते – (१) किरण मार्ग और वायु सम्बन्धी व्याख्यान (२) वैश्वदेव और अग्निमारुत
'वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै'
वाज.सं. १५.१४, श.ब्रा. ८.६.१.९

वैश्वदेवी – (१) समस्त शासकों और विद्वानों की महासभा, (२) समस्त स्त्रियों में अधिक विद्या सम्पन्न विदुषी आचार्याणी, (३) वेदवाणी
वैश्वदेवी पुनती देव्यागात्
ऋ.खि. ९.८६.२; वाज.सं. १९.४४, मै.सं. ३.११.१०:१५६.५, का.सं. ३८.२, तै.ब्रा. १.४.८.२.
(४) समस्त देवों या विद्वान् पुरुषों के उपयोग की ओषधि ।
'ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीः'
अ. ८.७.४
(५) विश्वदेव + अण् = वैश्वदेव । वैश्वदेव + ङीष् = वैश्वदेवी ।
'वैश्वदेवीं सूनृतामारभध्वम्'
नि. ६.१२.
सत्यवाणी बोलना शुरु करो ।

वैश्वव्यचसं चक्षुः – सूर्य का बना हुआ व्यापक परमेश्वर का चक्षु
'तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसम्'
वाज.सं. १३.५६, तै.सं. ४.३.२.२. मै.सं. २.७.१९:१०४.६, का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.२.

वैशालेय तक्षक – विषवती विराट् का वत्स
'तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीत्'
ऋ. ८.१० (५) १४

वैश्वानर – (१) विश्वान् नरान् नयति (सभी नरों को सभी प्रवृत्तियों में यह ले जाती है । अतः वैश्वानर कहलाया) ।
(२) नरति नयति इतिनरः (ले जाता है । अतः नर हुआ) । नृ + अच् = नर । विश्वेषां नरः विश्वानरः (नरे संज्ञायाम्–पा. ६ .३.१२९ से पूर्व पद का दीर्घ) । कर्म अर्थ में भी बाहुलक से अच् प्रत्यय होता है ।
(३) अथवा 'विश्वेनराः एंन नयन्ति' (अग्नि को सभी नर सभी कर्मों में प्रयुक्त करते हैं । अतः अग्नि वैश्वानर कहलाया) । कर्म में नृ + अप् = नर ।
(४) अपि वा विश्वानर एवस्यात् प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानिः तस्य वैश्वानरः (विश्वानर ही वैश्वानर है) । विश्वानर सभी नरों में गत या व्याप्त है अतः विश्वानर कहलाया है । (५) अयमेयाग्निः विश्वानरः इति शाकपूणिः (शाकपूणि के मत से यह पार्थिव अग्नि ही वैश्वानर है न कि मध्यम या सूर्य ।)
(६) विश्वानरौ एते उत्तरे ज्योतिषी वैश्वानरीऽयं ताभ्यां जायते (मध्यम और उत्तम अग्नि विश्वानर है और वैश्वानर अग्नि वह है जो इन इन दोनों अग्नियों से उत्पन्न होता है ।) निरुक्त ।
(७) अथापि वैश्वानरीयो द्वादश-कपालोभवति । एतस्य हि द्वादश विधं कर्म । अथापि ब्राह्मणं भवति । असौ वा आदित्योऽग्निः वैश्वानर इति ।

(अर्थात् वैश्वानरीय सर्वत्र बारह कपालों वाला होता है। प्रत्येक कपाल मास का द्योतक है। बारह महीनों में बारह प्रकार के कर्म किए जाते हैं। अतः वैश्वानर अग्नि सूर्य का वाचक है। ब्राह्मण ग्रन्थों का उदाहरण यही बतलाता है।)

(८) निवित् आकृति विशिष्ट यन्त्र है। यह निवित्त सौर्य वैश्वानरी कहलाता है। इससे ज्ञात होता है कि वैश्वानर सूर्य ही है न कि पार्थिव अग्नि या माध्यमिक वैद्युताग्नि है (अथापि निवित् सौर्य वैश्वानदी भवति)।

(९) छान्दोभिक् सूक्त भी सौर्य वैश्वानरी कहलाता है (अर्थात् छन्दोभिकं सूक्तं सौर्यवैश्वानर भवति।)

'दिवि पृष्टो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहत्
क्ष्मया वृधान ओजसा चनो हितो
ज्योतिषा बाधते तमः'

वाज.सं. ३३.९२

द्युलोक में स्थित हो सूर्य शोभता है। वह कारण भूत पृथ्वी के द्वारा बढ़ता हुआ अपने प्रकाश से अन्धकार नष्ट करता है तथा बल तेज और वर्षा द्वारा अन्न उपजाने के लिए हित हो (ओजसा चनो हितः)।

(१०) हविष्यानीय सूक्त का नाम भी सौर्य वैश्वानर सूक्त है। इससे भी वैश्वानर सूर्य का ही द्योदक हुआ.(अथापि हविष्यानीयं सूक्तं सौर्य वैश्वानरं भवति)।

'विश्वस्मा अग्निनं भुवनाय देवाः
वैश्वानरं केतुमह्नामकुर्वन्'

ऋ. १०.८८.१२

इन्द्रादि देवों ने समस्त भुवन के लिए वैश्वानर अग्नि नामक देव को दिनों का प्रज्ञापक अर्थात् कर्त्ता बनाया।

शाकपूणि ने जो वैश्वानर अग्नि को पार्थिव अग्नि माना है उसका कारण निम्नलिखित है-

'कथं वा अयम् एताभ्यां जायते इति। यत्र वैद्युतं शरणमभिहन्ति यावदनुपप्तो भवति। मध्यम धर्मैव तावत् भवति, उदकेन्धनं शरीरो पशमनः। उपांदीयमान एव अयं संमध्यते उदको शमनः शरीर दीप्तिः'।

अर्थात् वैद्युत अग्नि घर जलाता है और तब तक मनुष्यों के द्वारा स्पृष्ट नहीं होता जब तक वह मध्यम स्थानी है। वह मध्यमस्थानी अग्नि पार्थिव होकर उदक या काष्ठ से उपशान्त होता है। अतः यह पार्थिव अग्नि मध्यमस्थानी विश्वानर से होकर वैश्वानर कहलाया। ये उत्तर ज्योति विद्युत और सूर्य विश्वानर हैं और पार्थिव अग्नि वैश्वानर है। विश्वानर का अपत्य वैश्वानर यह पार्थिव अग्नि है।

यह वैश्वानर अग्नि आदित्य से निम्नलिखित प्रकार से उत्पन्न होता है-

'उदीत्रि प्रथम समावृत आदित्ये, कं सं वा मणिं वा परिमृज्य प्रतिस्वरे यत्र शुष्कगोमयम् असं स्पर्शयन् धारयति तत् प्रदीप्यते सोऽयम् एव सम्पद्यते'।

अर्थात् उत्तर दिशा में आदित्य के आने पर रांगा और ताम्बे से कांस तथा सूर्यकान्त मणि के प्रतिशोधन के बाद प्रतितप्त करने पर जिस किसी शुद्ध स्थान में गोबर या करसी रहता है उसे ही छूकर दीप्त कर देता है। उस गोबर से उत्पन्न होकर वही अग्नि पार्थिव कहलाता है। इसी प्रकार आदित्य से कांस या मणि में और कांसे या मणि से गोबर में प्रकट हो अग्नि वैश्वानर कहलाया। अतः शाकपूणि के अनुसार विश्वानर का अर्थ आदित्य और विद्युत अग्नि है और वैश्वानर का अर्थ पार्थिव अग्नि है।

वैश्वानरस्य सुमनौ स्याम
राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे
वैश्वानरौ यतते सूर्येण'

ऋ. १.९८.१

हे दीप्यमान तथा सभी के लिए आश्रयणीय या सर्वजनहितकारी अग्नि (राजा युवनानाम् अभि श्रीः वैश्वानरः), यहां उत्पन्न होकर (इह जातः) इस सम्पूर्ण वस्तु जगत् को प्रकाशित करता है (इदं विश्वं विचष्टे) और सूर्य के साथ संगत होता है (सूर्येण सह युतः) अर्थात् सूर्य के सदृश ताप और प्रकाश देता है। हम उस अग्नि की कल्याणी विद्या में वर्तमान (हो वैश्वानरस्य सुमनौ स्याम) अथवा उस अग्नि की स्तुति में हों।

यदि सूर्य वैश्वानर होता तो अन्य उत्तमोतम

सूक्त जो भग, भूषण, विष्णु, सूर्य और विश्वे देवा के नाम से विख्यात हैं, उन में विशेषण रूप से भी तो वैश्वानर शब्द का प्रयोग होता परन्तु ऐसा हुआ नहीं ! (अथ यानि एतानि औत्तमिकानि सूक्तानि भागानि वा सावित्राणि वा सौर्याणि वा पौष्णानि वा वैष्णवानि वा वैंश्वदेवानि वा तेषु वैश्वानरीयाः प्रवादाः अभविष्यन्) ।

अग्नि ही वैश्वानर है, इसके अन्य भी प्रमाण हैं, यथा –

(१) आग्नेयेष्वेत सूक्तेषु वैश्वानरीयाः प्रवादाः भवन्ति । अग्निकर्मणा च एवं स्तौति इति । वहसि इति दहसि इति पचसि इति (अर्थात् वैश्वानर का कर्म वहन करना, पकाना तथा जलाना कहा गया है) ।'

(२) वर्षा का कर्म वैश्वानर का बताया गया है । अतएव उसे माध्यमिक देव क्यों न माना जाय इस पर कहा गया है कि पार्थिव अग्नि भी वर्षा देता है । जैसे –

'समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति
दिवं जिन्वन्त्यग्नयः '

ऋ. १. १६४.५१

यह प्रसिद्ध उदक एक रूप का है । ग्रीष्म कालीन दिनों में (अहोभि) रश्मियों द्वारा ऊपर भी जाता है (उत् च एति) तथा वर्षा के दिनों में वह जल नीचे भी आता है (अव च) । रसों को लेने वाले मेघ (पर्जन्या) वर्षा देते हुए भूमि को प्रसन्न करते हैं तथा आहवनीय अग्नि आहुति से हुई वर्षा द्वारा आदित्य आदि द्युलोक में रहने वाले देवों को प्रसन्न करता है । अर्थात् पृथिवी लोक से अग्नि ऊपर हवि को जल रूप में भेजता और मेघ ऊपर से नीचे पुनः जल बरसाता है ।

(११) परमेश्वर –दया, । परमेश्वर ही सभी नरों का नायक है । (१२) अग्नि या विद्युत यन्त्र यानों में प्रयुक्त होकर मनुष्य को यत्र तत्र ले जाता है । (१३) राजा भी नेता है अतः वैश्वानर है । (१४) विद्वान् भी मनुष्यों का नेता होने से वैश्वानर है । (१४) सूर्य भी पृथ्वी आदि लोकों को चालाता है, अतः वैश्वानर है ।

(१६) यास्क ने वैश्वानर शब्द को विद्युत् का ही पर्याय माना है । (१७) ब्राह्मण ग्रन्थों में वैश्वानर को ही पृथिवी संवत्सर और ब्राह्मण कहते हैं ।

पृथ्वी वैश्वानरः संवत्सरो विश्वानरः

(१८) निर्वचन का होना, एक वाक्य में भिन्न विभक्ति से व्यपदिष्ट किया जाना, औत्तमिक सूक्तों में वैश्वानर शब्द का अप्रयोग, आदित्य कर्मों से स्तुति का न पाया जाना, आग्नेय सूक्तों में वैश्वानर का प्रयुक्त होना और अग्नि कर्म से स्तुति का पाया जाना वैश्वानर शब्द को अग्नि सिद्ध करता है ।

(१९) सर्वहितकारी जज, मजिस्ट्रेट धमध्यिक्ष ।

'वैश्वानराय प्रति वेदयामि '

अ. ६.११९.२

(२०) समस्त पुरुषों का हिताकारी, (२१) समस्त पुरुषों में व्यापक विराट्

'वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः '

अ. ६.४७.१; का.सं. ३०.६

वैश्वानरः अग्निः – (१) सर्वजन हितकारी विद्युत्–दया. (२) वर्षा बरसाने वाला वैश्वानर अग्नि –सा.

(३) वृत्रासुर या मेघ को मारने वाला ।

'वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वान् '

ऋ. १.५९.६; नि. ७.२३

सर्वजनहितकारी विद्युत् के अनावृष्टि रूपी दस्यु का नाश करती हुई मेघ को विदीर्ण करती है । –दया.

'वैश्वानर अग्नि ने रस सुखाने वाले या राक्षसों को मारा' ।

वैश्वानर अर्णव – समस्त नरों या असत्य का महासागर

'मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवात् '

अ. १.१०.४

वैश्वानरज्येष्ठाः – समस्त लोकों में व्यापक ब्रह्म जिनमें सबसे श्रेष्ठ हैं वे अग्नि ।

'वैश्वानर ज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यः '

अ. ३.२१.६

वैश्वानरी सूनृता – ईश्वर सम्बन्धी वाणी, वेद ।

'वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वम् '

अ. ६.६२.२

वैष्टप – (१) तीन विशेष रूप से तपने तपाने वाले या सर्वथा ताप रहित शान्तिपूर्ण लोक, (२) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।
'त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान्'
अ. १९.२७.४

वैष्णव – (१) राष्ट्ररूपी यज्ञ से सम्बन्ध करने वाला, (२) विष्णु सम्बन्धी
'वैष्णवमसि विष्णवे त्वा'
वाज.सं. ५.२१, तै.सं. १.२.१३.३, मै.सं. १.२.९:१९.११,
(३) वैष्णव, (४) सर्वव्यापक सामर्थ्यवान् पद
'वैष्णवो वामनः'
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२: १६८.१३

वैष्णवी – (१) वैष्णवी शक्ति (१) परस्पर संगति कारिणी राष्ट्रनीति रूप विशाल वाणी
'रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीम्'
वाज.सं. ५.२३, मै.सं. १.२.१०:१९.१७, ३.८.८:१०६.१०, का.सं. २.११; २५.९; श.ब्रा. ३.५.४.८.

वैष्णव्यौ – स्त्री पुरुष दोनों प्रकार की प्रजाएं।
'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ'
वाज.सं. १.१२; १०.६; श.ब्रा. १.१.३.१,५.३.५.१५, तै.ब्रा. ३.७.४.११, शां.गृ.सू. १.८.१४, गो.गृ.सू. १.७.२२.

वोचच् – ब्रूहि (बोल)।

वोचे – ह्वयामि, ब्रवीमि पुकारता हूं, कहता हूँ वरदान मांगता हूँ।
'पुरु त्वा दाश्वान् वोचे'
ऋ. १.१५०.१, नि. ५.७
हे अग्नि, मैं दाता तुझे बहुत पुकारता या तुझ से वरदान मांगता हूँ।

वोचेयम् – वेदयम् (बोलूं)

वोढा – ढोने वाला।

व्योदन – (१) अन्त, (२) विशेष, दयार्द्र भाव से पूर्ण रसवत् सुख।
अस्य वृष्णो व्योदन
उरु क्रमिष्ट जीवसे
ऋ. ८.६३.९

व्योमन् – (१) विविध ज्ञानों का रक्षा स्थान।
'महो ज्योतिषः परमे व्योमन्'
ऋ. ४.५०.४; अ. २०.८८.४; मै.सं. ४.१२.१: १७७.४; का.सं. ११.१३, तै.ब्रा. २.८.२.७
(२) अधिकरण एकवचन का रूप। व्योमनि अन्तरिक्ष में व्योमन् + ङि = व्योमन् (ङि विभक्ति का लोप)।
(३) वि + ओमन् = व्योमन्। आकाश।
'अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.१०.२१, १३.१.४२, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४; नि. ११.४०
(४) व्यक्त (वि +अवन्। दुर्ग ने इसकी व्याख्या यों की है–
"विभक्तानां भूतानां यत् परमम् अवनम् एकम् सर्वभावानाम् अविभक्त एक आत्मा यः तदात्मना एव भूतानां सलिलनिर्माण द्वारेण सर्वमिदं निर्मिमीत इति"
(विभक्त भूतों या भावों का एक आत्मा रूप अन्तरिक्ष जिसमें सलित का निर्माण कर सब कुछ सिरजता है)।
(५) ओम–प्रणयः। विविधं शब्द जातम् अस्मिन् ओतम् इति व्योमन् (जिसमें विविध शब्द जात ओत प्रोत है)। वि + ओमन् = व्योमन्।
'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत् तद् विदुस्त इमे समासते'
ऋ. १.१६४.३९;
आधियज्ञ, आधिदैव और आध्यात्म अर्थों में क्रमशः ऋच् का अर्थ ओम, आदित्य और आत्मा है। शाकपूणि ने ऋच् का अर्थ ओम् किया है।
ऋचाओं के प्रणव रूप ओम् अक्षर में जो सर्वत्र ऋचाओं में व्याप्त है और जिसमें सभी देवता वास करते हैं। जैसे 'अ' में पृथिवी, अग्नि ऋग्वेद और पृथ्वीलोक निवासीः 'उ' में अन्तरिक्ष, वायु, यजुर्वेद तथा लोक–निवासी और 'म' में द्यौः, आदित्य, सामवेद तथा द्यु लोक निवासी रहते हैं। ऊंकार एवेदं सर्वम्। जो ओम् अक्षर को इस विभूति से युक्त नहीं समझ पाता वह इन मंत्रों से क्या कर सकता है। जो इस अक्षर को जानते हैं, इस परिज्ञान

से युक्त रहते हैं और आत्मज्ञ होते हैं ।
मन्त्रों में देवता वास करते हैं । और मंत्र वर्णों में और वर्ण प्रणव में । अतः प्रणव ही सर्व देवमय हुआ ।
शाकपूणि के पुत्र के मत से आदित्य ही ऋच हैं, क्योंकि ऋच् वही है जो अर्चनीय है । आदित्य की रश्मियाँ ही देवता हैं । उसी प्रकार ऋच् के अक्षर हैं ।
आध्यात्म अर्थ में ऋच् शरीर हैं, क्योंकि शरीर से ही इन्द्रियों की अर्चना की जाती है । इन्द्रियाँ ही देवता है जो इस शरीर रूपी ऋच् में अधिष्ठित हैं ।

व्योमसद् - विमानादि के द्वारा आकाशादि के अधिकार में स्थित ।
'अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदम्'
वाज.सं. ९.२.; श.ब्रा. ५.१.२.५

व्योषा - वि + ओषा । नाना प्रकार से हल के तड़पाने वाली-काम बाण ।
प्राचीनपक्षा व्योषा
अ. ३.२५.३.

श

शक - शकाः सचन्ते समवायेन वर्तनो, शक्नुवन्ति इति वा ।
अर्थ - (१) मधुकक्षिका, (२) मधु, (३) समवाय बनाकर रहने वाला शक्तिशाली पुरुष ।
बैलगाड़ी का नाम शकट
'आरण्योऽजो नकुलः शक्म ते पौष्णाः'
वाज.सं. २४.३२; तै.सं. ५.५.१२.१; मै.सं. ३.१४.१३:१७५.३;

शकट - (१) सनैः + तक = शतक - शकत् - शकट । (२) शब्द + तक = शकट
अर्थ है-बैलगाड़ी
शकट शकृदितं भवति
शनकै तकति इति वा
शब्देन तकति इति वा
बैलगाड़ी का नाम शकट
इसलिए पड़ा कि वह बैल के गोबर से युक्त रहता है । या इसलिए कि वह 'शनकैः' धीरे धीरे चलता है । अथवा इस लिए कि वह शब्द करता हुआ चलता है ।
कहीं शकृत् अट भी पाठ है ।
आधुनिक अर्थ -गाड़ी, बैल गाड़ी, सेना की एक प्रकार की पंक्ति, एक गाड़ी, बोझ, कृष्ण द्वारा मारा गया एक असुर, तिनिश नामक राक्षस का नाम

शकटी - गाड़ी ।
'शकटीरिव सर्जति'
ऋ. १०.१४६.३; तै.ब्रा. २.५.५.७

शकधूम - शकस्य शकृतः सम्बन्धी धूम यस्मिन् अग्नौ स शकधूमः अग्निः ।तद् अभेदात् ब्राह्मणस्य अभिधीयते ।
(१) अपनी शक्ति से सबको कंपाने वाला पुरुष । (२) सायण के मत से वह अग्नि शकधूम है जिसमें शकृत् (गोबर) सम्बन्धी धूम हो ।
'शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानम् अकुर्वत'
अ. ६.१२८.१

शकधूमजः - (१) शक्तिमान् (२) तामसः (३) बड़बड़ाने वाला ।
'खलजाः शकधूमजाः'
अ. ८.६.१५

शकन् - (१) मल, विष्ठा
'विलोहितो अधिष्ठानात्
शक्नो विन्दति गोपतिम्'
अ. १२.४.४.
(२) लीद (३) शक्ति, अधिक सामर्थ्य ।
'अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना
धूपयामि देवयजने पृथिव्याः'
वाज सं. ३७.९, श.ब्रा. १४.१.२.२०
'स इच्छक्ना संज्ञायते'
अ. २०.१२९.१२

शकपिण्ड - (१) शरीरस्थ विष्ठा का पिण्ड, (३) शक्तिमान पिण्ड, (३) शक्ति का संघ
'कूश्मान् शकपिण्डैः'
वाज.सं २५.७, वाज.सं. (का.) २७.१०; मै.सं. ३.१५.९; [illegible].६

शकपूत - (१) शकपूत नामक एक वैदिक ऋषि, (२) शक्ति से अभिषिक्त-पुरुष
अस्मिन् स्वे तच्छकपूत एनः'

ऋ. १०.१३२.५

शकमय – शक्तिमान्

'शकमयं धूममारादपश्यम्'

ऋ. १.१६४.४३, अ. ९.१०.२५

शकम्भर – शक्ति को धारण करने वाला बलदान पुरुष

शकम्भरस्य मुष्टिहा

अ. ५.२२.४

शकमय धूम– (१) शक्तिमय संसार को गति देने वाला परमेश्वर ।

शंकर – (१) कल्याण करने वाला (२) शंकर शिव ।

'नमः शंकराय च मयस्कराय च'

वाज.सं. १६.४१, तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७: १२६.५; का.सं. १७.१५

शकल्येषि – न. वि. । शकल्य + इषि । शरीर के रग रग में व्याप्त होकर थर थर पैदा करने वाला ज्वर

'शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम्'

अ. १.२५.२

शकबलि – शक्तिशाली पुरुष

शकबलिः

अ. २०.१३१.१३

शक्म – शक्ति से करने योग्य

'मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्मधीरः'

ऋ. २.३८.४

शुक्रवर्चाः, शुक्रवर्चस् – बल और तेज वाला अग्नि

'पावक वर्चाः शुक्रवर्चाः'

ऋ. १०.१४०.२, साम. २.११६७, वाज.सं. १२.१०७, तै.सं. ४.२.७.३, मै.सं. २.७.१४: ९५.१४, का.सं. १६.१४, श.ब्रा. ७.३.१.३०.

शक्रा – मक्खी

'इहो शकेव पुष्यत'

अ. ३.१४.३

शक्राः – द्वि.व. । (१) शक्ति मान् स्त्री पुरुष, (२) अश्विद्वय

'अर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा'

ऋ. २.३९.३

शक्रः, शक्राः – (१) शक्तिशाली आत्मा (२) इन्द्र, (३) शक्तिशाली राजा ।

'शक्राः' शक्तिशाली योगीजन के अर्थ में आया है ।

'यच्छक्रा वाचमारुहन्'

अ. २०.४९.१

सायण ने 'शक्र' का अर्थ इन्द्र किया है । और स्वा. दयान्द ने शक्तिशाली ।

अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति

ऋ. ५.३४.३; नि. ६.१९

इन्द्र सनातन धर्म से दूर, आत्ममण्डन परायण, विषयोपभोग परायण धर्मरहिता अनेक उपायों से अपने धन को पढ़ाने वाले को बार बार नष्ट करते हैं ।

शक्वरिः – शक्तिशालिनी सेना

'अङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे
यज्ञेय कल्पन्ताम्'

वाज.सं. १८.२२

शक्वरी – शक् + वनिप् (करण में) + ङीष् = शक्वरी । 'वनो रेच' पा–४ .१.७ से ङीष् और र का आर ।

'शक्वर्यः ऋचः शक्नोतेः

अर्थ– (१) शक्वरी नाम्नी ऋचा जिससे शक्ति बढ़ती है । 'तत् यत् आभिः वृत्रं अशकत् हन्तुम् तत् शक्वरीणां शक्वरीत्वम् इति विज्ञायते । अर्थात् ऋचाओं से स्तुत हो इन्द्र ने वृत्र को मारा यही शक्वरी का शक्वरीत्व है ।

(२) शक्तिशाली मन्त्र या ऋचा,।

'गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु'

ऋ. १०.७१.११; नि. १.८.

एक (त्वः) उद्गाता शक्तिशाली मन्त्रों में (शक्वरीषु) देवताओं का गुण गान करता है (गायत्रं गायति) ।

शक्वा – शक्तिशाली ।

'शाक्वराय शक्वने'

शक्ति – शक् + क्तिन् = शक्ति । अर्थ – कर्म

'स्तोभेन हि दिवि देवासो
अग्निमजीजनत् शक्तिभी रोदिसिप्राम्' ।

आधुनिक अर्थ – शक्ति, योग्यता बल, राजकीय शक्तिः, काव्यशक्ति, देवी का एक नाम, अस्त्र भेद, बर्छा, भाला, हेतु या कारण में फल उत्पन्न करने की शक्ति, शब्द की अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना शक्ति ।

शक्ति कानना – शक्त की खान ।

शक्तिका ननास्वचम् ।
अ. २०.१३६.५

शकुन – शक्नोति उन्नेतुम् आत्मानम् । शक्नोति नदितुम् इति वा, शर्वतः शंकरोऽस्तु इति वा । शक् + उनि = शकुनि । अर्थ– (१) पक्षी
'पर्णेभिः शकुनानाम्'
ऋ. ९.११२.२
(पक्षियों के पंखों से ....)
(क) शक् (सकना) + उनि = शकुनि
शकुनि अपने को ऊपर उठा सकता है या शब्द कर सकता है या चल सकता है या कल्याण कारी होता है ।
(ख) शक् + क्विप् = शक्, शक् + उत् + नी + इन् = शकुनि (उत् के त् का लोप) ।
(ग) नद या नक धातु से भी 'शकुनि ' शब्द सिद्ध होता है ।
(घ) अथवा पृषोदरादिवत् 'शकर' से ही शकुनि बना है ।
'सुमंगलश्च शकुने भवासि'
ऋ. २.४२.१, नि. ९.४
आधुनिक अर्थ– पक्षी, गृध्र, चील, मुर्गा, गान्धार के राजा, सुबल का पुत्र तथा धृतराष्ट्र की स्त्री गान्धारी का भ्राता ।
(२) शक्तिशाली, (३) विद्या प्रदान करने में समर्थ, (४) पक्षीवत् दूर–दूर शक्ति तक भ्रमण करने वाला विद्वान्, (५) ऊपर उठाने में उपदेश करने में और शत्रुनाश करने में समर्थ (६) शकुनि नामक पक्षी ।
(७) एक शक्तिशाली पक्षी
'कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै'
वाज.सं. २४.४०, मै.सं. ३.१४.२१:१७७.५

शकुनिसाद – (१) पक्षी का पैर जमा कर बैठना, (२) शक्तिशाली पुरुष के समान और जमाकर बैठना की शक्ति, (३) पक्षियों को पकड़ने का साधन जाल
बृहस्पति शकुनि सादेन
वाज.सं. २५.३; तै.सं. ५.७.१४.१; मै.सं. ३.१५.३:१७८.८; का.सं. (अश्व.) १३.४.

शकुन्तिका – (१) पंख वाली चिड़ियां (२) कपिञ्जली
'इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम्
ऋ. १.१९१.११
(३) शक्नोति इति शकुनः–शकुन्तः–शकुन्ति–शकुनिः दया.
शक्ति सम्पन्न प्रजा (४) प्रजोत्पत्ति में समर्थ स्त्री
'यकासकौ शकुन्तिका'
वाज.सं. २३.२२; श.ब्रा. १३.२.९.६; ५.२.४.

शंकु – शंकु, खूंटी, ।
'तस्मिन् साकं त्रिशता न शंकवः
अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः'
ऋ. १.१६४.४८; नि. ४.२७
उस काल में चक्र में एक साथ ही वर्ष के ३६० दिनों के रूप में खूंटियाँ ठोकी गई हैं जो दिन और रात चल और अचल दोनों हैं । दिन रात अस्थायी होने से चलनशील और एक के बाद दूसरे के नियमित रूप से आने से अचल हैं ।

शकुन – शकुनि नामक मछली
गोशफे शकुलाविव'
अ. २०.१३६.१; वाज.सं. २३.२८, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.२, ला.श्रौ.सू. ९.१०.५.
(२) खुर का खण्ड ।

शकृत् – गोमय (गोबर)
शकृद् दासी समस्यति
अ. १२.४.९

शंख – (१) सुख का अभिलाषी या कल्याण-स्वरूप आत्मा (शम् + ख), (२) शंख
शंखेनामीवानमतिम्
अ. ४.१०.३

शंखध्मः – शंख बजाने वाले ।
'अवरस्पराय शंखध्मम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

शग्धि – (तू) करने में समर्थ है ।
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च
शिशीहि प्रास्युदरम्'
ऋ. १.४२.९

शग्मः – सुखकारक
शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः'
ऋ. ७.६०.५
'तत्रा रथमुप शग्मं सदेम'
ऋ. ६.७५.८; वाज.सं. २९.४५, तै.सं. ४.६.६.३', का.सं. (अश्व.) ६.१.
'पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः'

ऋ. १.१३०.१०

शग्मा – द्वि .व. । (१) प्राण अपान का विशेषण, (२) शक्ति युक्त,
'शग्मा वक्षतः सखायम्'
ऋ. ८.२.२७

शग्म्य – (१) सुख निमित्त, सुखपरक, सुखी-सा ।
'सं शग्म्येन मनसा दधन्वे'
ऋ. ३.३१.१, नि. ३.४.
अपुत्र पिता अपनी पुत्री को दायाद को विवाह में देता हुआ, यह सोचकर कि उस कन्या के पुत्र से वह पुत्रवान् होगा सुखी मन से अपने मन को आश्वासन करता है (संदधन्वे) ।
शम् कल्याण या सुख का वाचक है । निरुक्त कार ने शग्म्य की व्युत्पत्ति नहीं की है । सम्भवतः शम् कल्याणं गमयति यत् तत् शग्म्यम् (जो सुख प्राप्त करता है) ।
(२) सबको शान्ति सुख पहुंचाने वाला, (३) अग्नि, परमेश्वर
'त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयः'
ऋ. २.१.६, तै.सं. १.३.१४.१, तै.ब्रा. ३.१.१.२.१.

शङ्गयी – शम् + गयी । (१) शान्तिदायक, प्राणों या गृह तक में शान्तिदायक, (२) शान्ति का गृह
'इडावतीं शङ्गयीं जीरदानुम्'
ऋ. ९.९७.१७

शङ्गु – गौओं के लिये कल्याण और सुख को प्राप्त करने वाला
'नमः शङ्गवे च पशुपतये च'
वाज.सं. १६.४०, तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७: १२६.२, का.स. १७.१५.

शचिष्ठः – (१) सबसे अधिक बुद्धि, शक्ति और वाणी से युक्त, ज्ञानमय (२) सर्वशक्तिमान् वाक्यस्वरूप इन्द्र-परमेश्वर ।
'कया तच्छण्वे शच्या शचिष्ठः'
ऋ. ४.२०.९; का.सं. २१.१३

शचिष्ठा – (१) अति शक्तिशालिनी (२) प्रज्ञा
'कया शचिष्ठया वृता'
ऋ. ४.३१.१, अ. २०.१२४.१, साम. १.१६९; २.३२ वाज.सं. २७.३९; २६.४, तै.सं. ४.२.११.२, मै.सं. २.१३.९: १५९.५; ४.९.२७:१३९; १२, का.सं. ३९.१२, तै.आ. ४.३२.३; आप.श्रौ.सू. १७.७.८.

शची – (१) कर्म, (२) वाक्, (३) स्तुति, शची कर्म नाम है ।
'विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिः'
ऋ. १.१६४.४४; नि. १२.२६
तीन केशी – अग्नि, वायु और आदित्य में एक आदित्य वर्षा आदि कर्मों के द्वारा (शचीभिः) संसार का उपकार करता है (अभिचष्टे) ।
स्तुति के अर्थ में –
हविर्भिरेके स्वरितः सचन्ते
सुन्वन्त एके सवनेषु सोमान् ।
शचीर्मदन्त उत दक्षिणाभिः
नेजिह्मायन्त्यो नरके पताम
ऋ. १०.१२७.१; नि. १.११
नारद के द्वारा वञ्चना करने के निमित्त विप्रलम्भित असुरपत्नियां कहती हैं – कुछ लोग हवियों या यज्ञों के द्वारा स्वर्ग जाते हैं, कुछ लोग यज्ञों में सोम का अभिषवण कर, कुछ स्तुतियों से (शचीः) देवों को तृप्त कर (मदन्तः) और दक्षिणा द्वारा । हम तो पतियों की सेवा कर ही स्वर्ग जाती हैं । नहीं तो कुटिल गामिनी हो नरक में चली जायं ।
आधुनिक अर्थ- इन्द्राणी ।

शचीपतिः – (१) समस्त शक्तियों का स्वामी सूर्य, (२) शचीपति इन्द्र ।
'वृत्रस्येव शचीपतिः'
अ. ६.१३४.१, १३५.१

शचीवत् – (१) उत्तम बुद्धि, उत्तम कर्म या उत्तम वाणी वाला-इन्द्र या परमेश्वर
(२) शची अर्थात् इन्द्राणी से युक्त इन्द्र-सा.
'शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम'
ऋ. १.५३.३; अ. २०.२१.३
(३) शची + वतुप् । कर्मिष्ट, कर्मवान् , शक्तिमान् अग्नि का विशेषण ।
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः'
स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य'
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५: २०४.१४, का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.१४, तै.ब्रा. ३.६.७.२,
हे अग्ने, तेरे लिए भेद और घृत के कुण्ड टपक रहे हैं ।

शचीवसु – शक्ति का धनी
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो'

ऋ. ८.६०.१२

शचीवसू – (१) उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म को अपने भीतर और शिष्यों के भीतर बसाने वाले, (२) ज्ञान और कर्म के धनी स्त्री पुरुष अश्विद्वय ।

'अयं वामद्रेऽवसे शचीवसू'

ऋ. ७.७४.१; साम. १.३०४, २.१०३.

शचीवाः – (१) शचीपति, (२) वाणियों का स्वामी इन्द्र ।

'शिप्रिन्नृषीवः शचीवः'

ऋ. ८.२.२८

शण – (प्र) । (१) अन्न, (२) सन, सनई ।

'शणश्चमा जङ्गिश्च'

अ. २.४.५.

शण्ड – (१) बल, (२) प्रजनन, (३) काम ।

'उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैषते'

वाज.सं. ७.१२.

शण्डिक – शत्रु, (२) शत्रुसेना –दया.

(३) शान्ति को भंग करने वाली सेना ।

'इन्द्रोहन्ति वृषभं शण्डिकानाम्'

ऋ. २.३०.८

शत – (न) । (१) सौ वर्ष का जीवन

शताय स्वाहा

वाज.सं. २२.३४, तै.सं. ७.२.११.१, १२.१, १३.१, १४.१, १५.१, १६.१, १७.१, १८.१, १९.१, २०.१, मै.सं. ३.१२.१५:१६४.१२, का.सं. २.१–१०, तै.ब्रा. ३.८.१५.३, १६.२.

(२) दश दशन् = शद् = शत (दशदशतः शतम्) दशशब्द के नित्य अर्थ में निपातन द्वारा 'शत' होता है । अर्थ है – एक सौ

जीवाति शरदः शतम्

ऋ. १०.८५.३९; अ. १४.२.२; ६३; नि. ४.२५

सौ शरद् या वर्ष जीवें, शत का ही बिगड़ा रूप सौ है । लैटिन में शत का ही cent हो गया है । फारसी में इसका रूप 'सद' हो गया है ।

शतम् एकञ्च मेषान् – (१) एक सौ एक वर्ष मेष राशि का योग करना सूर्य का एक वर्ष भोगना कहा गया है । इसी कारण १०१ मेष का १०१ वर्ष ग्रहण किया गया है ।

– ज.दे.श.

(२) १०१ भेड़ों को

जारः कनीन इव चक्षदानः

ऋजाश्वः शतमेकं मेषान्

ऋ. १.११७.१८

ऋज अर्थात् धर्ममार्ग पर चलने वाला (ऋजाश्वः) इन्द्रियों का स्वामी जितेन्द्रिय राजा सदा सूर्य के समान देदीप्यमान होकर १०१ वर्षों तक प्रकाशमान होकर प्रजा को भरण पोषण के लिए आज्ञा दें जिस प्रकार जरावस्था तक पहुंचने वाला युवा जितेन्द्रिय होकर युवती कन्या का १०१ वर्ष तक सुखपूर्वक भरण पोषण करता है ।

शतं कंसाः – सैकड़ो कांस के बर्तन या कांस के बर्तन के समान शिष्य

'शतं कंसाः शतं दोग्धारः'

अ. १०.१०.५

शतक्रतुः – (१) सौ यज्ञों का कर्ता इन्द्र, (२) अनेक कर्मों का कर्ता–परमात्मा –दया.

'ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत

उद् वंशमिव येमिरे ।'

ऋ. १.१०.१, साम. १.३४२, २.६९४, तै.सं. १.६.१२.३, कौ.ब्रा. २४.७, नि. ५.५

(३) प्रचुर ज्ञान वाला विद्या प्रदाता उपदेशक दया.

'स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी'

ऋ. १.१०५.८, १०.३३.३, नि. ४.६.

शतक्रतू – द्वि व. । (१) अश्विद्वय का विशेषण, (२) सैकड़ो कर्मों और प्रज्ञाओं से युक्त

शतकाण्ड – (१) बहुत से काण्ड या पोरुओं से युक्त दर्भ, (२) सैकड़ो बाणों से युक्त (३) अभिलाषणीय पदार्थों से सम्पन्न ।

'शतकाण्डो दुश्च्यवनः'

अ. १९.३२.१

शचचक्रः – सौ वर्ष की आयु करने वाला वीर्यरूप सोम

शतचक्रं योऽ ह्यो वर्तनिः

ऋ. १०.१४४.४

शतग्विन् – सैकड़ो गौओं या बाणों से युक्त

'रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम्'

ऋ. १.१५९.५

आ न इन्द्रो शतग्विनम्'

ऋ. ९.६५.१७, ६७.६

शततमः दिवोदासः- सौवें वर्ष में वर्तमान् प्रकाशदाता सूर्य के समान तेजस्वी ।
(२) सौवां प्रकाशदाता
शततमं वेश्यं सर्वताता
दिवोदासमतिथिग्वं यदावम्
ऋ. ४.२६.३

शततेजा- सैकड़ो तेजों से युक्त
'इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजाः'
वाज.सं. १.२४, तै.सं. १.१.९.१, मै.सं. १.१.१०:५.१२, का.सं. १.९; ३१.८. श.ब्रा. १.२.४.६, तै.ब्रा. ३.२.९.१.

शतदन्- सैकड़ो दातों वाला कंघी
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः '
अ. १४.२.६८

शतद्वसु- (१) जिसमें असंख्य वसु या ऐश्वर्य हो- रथः -दया. (२) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाला (३) सौ वर्षों तक वास करने योग्य शरीर ।
'सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुम् '
ऋ. १.११९.१
सहस्र ध्वजाओं से युक्त, सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से युक्त पूर्ण, सैकड़ो ऐश्वर्य वाले रथ को, अथवा
सैकड़ो ज्ञानतन्तुओं से युक्त नाना भोग योग्य सामर्थ्यों या भोक्ता आत्मा और इन्द्रियां से सम्पन्न (वनिनम्) एक सौ वर्ष तक वास करने योग्य शरीर...

शतदातु - सैकड़ो की संख्या में दान देने वाला ।
'आ तू न इन्दो शतदात्वश्वयम् '
ऋ. ९.७२.९
(२) बहुत ऐश्वर्य देने वाला (४) बहुत ऐश्वर्यों का स्वामी
'तदातु वीरं शतदायमुकश्यम्
ऋ. २.३२.४; अ. ७.४७.१; ४८.१.; तै.सं. ३.३.११.५, मै.सं. ४.१२.६: १९५.१; का.सं. १३.१६, साम. मं.ब्रा. १.५.६, आप.मं. ११.१०, नि. ११.३१.
बहुत धन पैदा करने वाला (शत दायम्) वीर और प्रशंसनीय पुत्र (वीरम् उक्थ्यम् ददातु) ।

शतदुरः- सैकड़ों द्वारों वाला प्रभु
'अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदः '
ऋ. १०.९९.३
(२) सैकड़ों दरवाजों वाला भवन, (३) भूलभूलैया वाला गढ़ या व्यूह
(४) सैकड़ो आवरणों वाला मेघावयव ।

शतं दोग्धारः - सैकड़ो वशाज्ञान को दोहने वाले गुरुजन
'शतं कंसाः शतं दोग्धारः '
अ. १०.१०.५

शतधन्य- सैकड़ों धनों से युक्त ऐश्वर्य ।
'शतधन्यं चम्वोः सुतस्य '
ऋ. ४.१८.३

शतधार- (१) सैकड़ो धाराओं से बरसने वाला-मेघ, (२) सैकड़ो वेद वाणियों से सम्पन्न ।
'शतधारमुत्समक्षीयमाणम् '
ऋ. ३.२६.९
(३) सैकड़ो का परिपोषक परमेश्वर ।
'शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदम् '
ऋ. १०.१०७.४; अ. १८.४.२९

शतधार ओदन- (१) सैकड़ों जीवों की रक्षा करने वाला ।
(२) पतिपत्नी का ब्रह्मचर्य पालन द्वारा वीर्य रक्षा करते हुए रहना ।
'यं वां पिता पचति यं च माता
रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः
स ओदनः शतधारः स्वर्ग
उभे व्याप नभसी महित्वा ।
अ. १२.३.५.

शतनीय- (१) अनेक प्रकार के विषय भोगों की ओर ले जाने वाला (२) सहस्त्रों चित्तों तथा ज्ञानी पुरुषों का स्वामी
'सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा '
ऋ. १.१००.१२
(३) शत वर्षों में व्यतीत करने योग्य जीवन शतैः प्राप्तव्य -दया. (सैकड़ो से पाने वाले योग्य)
'जयावेदत्र शतनीथमाजिम् '
ऋ. १.१७९.३

शतपत्रः- (१) शतदलकमल, (२) शतदल कमल के समान उज्ज्वल निस्संग (३) सैकड़ों ऐश्वर्यों से पूर्ण बृहस्पति
'स हि शुचिः शतमत्रः स शुन्ध्युः '
ऋ. ७.९७.७

शतपत्रिका- अनेक पत्तों वाली

शतपद् - (१) शतं नमनशीलाः पाद वेगाः यस्मिन् (जिसमें गमनशील सैकड़ो चरणों का वेग हो)- दया. ।
(२) सौ वर्ष जीने वाला ।
'त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः '
ऋ. १.११६.४
छः अश्वों अर्थात् यन्त्र वाले सैकड़ो परों की गति वाले तीन प्रकार के रथों से .....।
अथवा, मन सहित पंच इन्द्रियों वाले , सौ वर्ष जीने वाले, शैशव, यौवन और नई बुढ़ौती रूपी रथों से ...

शतपर्वा- (१) सैकड़ो पोरुओं वाला ।
'वज्रेण शतपर्वणा '
ऋ. १.८०.६; ८.६.६, ७६.२, ८९.३, अ८.५.१५, १२.५.६६, २०.१०७.३, साम. १.२५७, २.१००२, वाज.सं. ३३.९६.
(२) जिस वज्र या अस्त्र में असंख्यात पर्व हो, (३) जिसमें असंख्य कर्म हो, (४) सैकड़ो अंगों वाला शस्त्रास्त्र, बल ।
'अधि सानौ नि जिघ्नते
वज्रेण शतपर्वणा '
ऋ. १.८०.६

शतपर्वा वज्र- (१) सैकड़ो पर्वों वाला, अपरिमित बल वाला, सैकड़ो टुकड़ो वाला वज्र, (२) शत्रुबल का निवारक साधन, (३) सेना बल यहां वज्र सेना का वाचक है -ज.दे.श. ।

शतपवित्राः - (१) सैकड़ों रश्मियों से पवित्र-आपः (जल) (२) सैकड़ो उत्तम संस्कारों से पवित्राचरण वाली ।
'शतपवित्राः स्वधयामदन्तीः '
ऋ. ७.४७.३; नि. ५.६
(३) सैकड़ों प्रकार से पवित्र करने वाले जल
'शतं आपः शतपवित्रा भवन्तु '
अ. १४.१.४०, आप.मं.पा. १.१.१०
(४) बहुत जलों वाली नदी, पवित्र का अर्थ जल भी है ।
बहुत जलों वाली (शतपवित्राः) स्वकार्यभूत अन्न से (स्वधया) मानवों को मत्त करती हुई (मदन्तीः) नदियां....

शतभिषक् - शतभिषा नामक नक्षत्र ।
'आमेमहच्छतभिषग्वरीय '
अ. १९.७.५

शतभुजिः- सैकड़ों का पालक या पालिका ।
'पूर्भवा शतभुजिः '
ऋ. ७.१५.१४.

शतभुजिन् - (१) असंख्य सुखों का -दया. (२) सैकड़ों को पालने वाला ।
'शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् '
ऋ. १.१६६.८

शतम् अक्षराणि - (१) जीवन के सौ वर्ष, (२) सैकड़ो दिनरात संवत्सर के अक्षर तत्व हैं ।
'षडस्य विष्ठाः शतमक्षराणि '
वाज.सं. २३.५८, श.ब्रा. १३.५.३.१९

शतमश्वाः - सौ व्यापन शील हृदयगत नाड़ियां
'शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः '
अ. १३.२.६,७

शंतमा- अतिसुखकारिणी ।
'भुवदग्ने शंतमा का मनीषा '
ऋ. १.७६.१, का.सं. ३९.१४

शतमानम् - सौ वर्ष की आयु
इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुः '
वाज.सं. १९.९३, मै.सं. ३.११.९:१५४.१४, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.६,

शतमूति - शतम् + ऊति । (१) अनेकों की रक्षा करने वाला, (२) अनेक प्रकार की सेना आदि रक्षा के साधनों से सम्पन्न इन्द्र, राजा या सेनापति ।
'प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु '
ऋ. १.१३०.८
वह अनेक प्रकार के रक्षा साधनों से सम्पन्न सब शत्रुओं को उखाड़ देने वाले संग्रामों में अच्छी प्रकार रक्षा करें (प्रावत्) ।

शतयाजम् - सैकड़ों यज्ञ ।
'शतयाजं स यजते '
अ. ९.४.१८

शतयातुः- (१) एक ऋषि, (२) सैकड़ों वीरों को साथ लेकर चलने वाला,
(३) सैकड़ों को दण्डित करने वाला ।
(४) सब दुर्गुणों का नाशक (५) बहुतों को नष्ट करने वाला (६) पराशर का विशेषण । पराशर ने रक्षोघ्न यज्ञ किया था ऐसा कहा गया है ।

(७) अथवा-पराशर के पिता शक्ति ही शतयातु कह गए।
'प्र ये गृहादममदुस्त्वाया
पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः'
ऋ. ७.१८.२१.
हे इन्द्र, वसिष्ठ का नाती पराशर, पराशर का पिता शतयातु शक्ति और वसिष्ठ आदि ऋषि जो तेरे साथ (त्वाया) घर पर घर जा (गृहात्) सोम पीकर या यज्ञों में अत्यन्त प्रसन्न हुए।
अन्य अर्थ,
हे राजन्, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी का पुत्र (पराशरः) सब दुर्गुणों का नाशक (शतयातुः) और आदित्य ब्रह्मचारी (वसिष्ठः) यदि तेरी नीति के कारण (त्वाया) गृहस्थाश्रम को पाकर (गृहात्) अत्यन्त प्रसन्न हुए (य अममदुः)।

शतयामा- (१) सैकड़ों पुरुष से चलने योग्य।
'सोमः कलशे शतयामना पथा'
ऋ. ९.८६.१६; अ. १८.४.६०; साम. १.५५७; २.५०२
(२) सैकड़ों प्रकार से जाने योग्य, (३) सौ वर्षों तक भोगने योग्य।

शतयोनि- (१) अपरिमित सैकड़ों पदार्थों का कारण और आश्रय, (२) अनेक कार्यों का कारण भूत परमेश्वर।
'सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः'
अ. ७.४१.२
(३) सैकड़ों आश्रयस्थानों का स्वामी वरुण (४) शत वरुण
शतयोनिरेव वरुणाः
श.ब्रा. १२.९.१.१४
जिसके अधीन सौ प्रजा के स्वयं नेता हों।

शतदा- द्वि.व.। शत + रा। (१) सैकड़ों धन देने वाले स्त्री पुरुष-अश्विद्वय।
(२) सुखं शीतलकरम्
(जल से भी बढ़कर शीतलतर होता है)।
नीम्बू का नाम 'सन्तरा' है जो 'शतरा' का ही अर्थ रखता है।

शतर्चाः- शत + अर्चस् (१) सैकड़ों दीप्तियुक्त पदार्थों से पूर्ण -पृथिवी
'वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा'
ऋ. ७.१००.३; मै.सं. ४.१४.५; २२१.९ तै.ब्रा. २.४३.५

शतरुद्रिय- (१) सैकड़ों रुद्र नामक पदाधिकारियों द्वारा प्राप्त करने योग्य (२) रुद्रों के निमित्त लेने योग्य, (३) सैकड़ों दुष्टों को रुलाने वाले वीर सेनापति के अधीन, (४) सेनापति पद के योग्य, (५) सैकड़ों प्राणों के स्वरूप में प्रकट, (६) सैकड़ो ज्ञानस्तुतियों को देने वाला
'शतरुद्रियाणामग्निश्वात्तानाम्'
वाज.सं. २१.४३.

शतवत् - सौ सौ शिष्यों वाला
'एते वदन्ति शतवत् सहस्रवत्'
ऋ. १०.९४.२

शतवत् सहस्रम् - (१) सौ गुणा एक सहस्र-एक लक्ष
'तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रम्
गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'
ऋ. १०.१०२.५; नि. ९.२३.
उस वृषभ से सुन्दर एक लक्ष गाएं मैं मुद्गल ने संग्राम में जीता।-सा.
उस वृषभ से सात्विकान्नभोजी जितेन्द्रिय राजा ने (मुद्गलः) युद्ध में (प्रधने) लक्ष गाएं तथा प्रजाभक्षक पर धनापहारक शत्रुराजा को जीता।
(२) एक सहस्र और एक सौ, एक सौ से युक्त सहस्र, ग्यारह सौ।

शतवधा- सैकड़ो प्रकार से वध करने वाली।
'मेनिः शतवधा हि सा'
अ. १२.५.१६

शतवल्शः- (१) सौ अंकुरों वाला बांस आदि काटने पर सैकड़ों शाखाओं में फूटने वाला वट आदि।
'वनस्पते शतवल्शो वि रोह'
ऋ. ३.८.११, तै.सं. १.३.५.१, ६.३.३.३. मै.सं. १.२.१४; २३.९; का.सं. ३.२.; २६.३; तै.ब्रा. १.२.१.५, आप.श्रौ.सू. ५.२.४, ७.२.८, मा.श्रौ.सू. १.८.१.१२.

शतवल्शा- सैकड़ों शाखा वाली
त्वं शमि शतवल्शा वि रोह'
अ. ६.३०.२

शतव्रजा- (१) सैकड़ों मार्गों से जाने वाली-नदी (२) जलधारा (३) सैकड़ो अर्थों का अवगम कराने वाली वाणी।

'शतव्रजा रिपुणा नावचक्षे'
ऋ. ४.५८.५; वाज.सं. १७.९३, का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१.
(४) सैकड़ों कार्यों को चलाने वाली राजाज्ञा।

शतब्रध्न- सैकड़ों आश्रमों और बन्धन मर्यादाओं वाला
'शतब्रध्न इषुस्तव'
ऋ. ८.७७.७

शतवाजा- सैकड़ों अन्न, बल, ज्ञान वेगादि से युक्त इच्छाशक्ति, प्रेरणा, सेना या अन्न।

शतवार- (१) सैकड़ों शत्रुओं का वारण करने में समर्थ सेनापति, (२) एक ओषधि जिसे आज कदाचित् शतावर या शतावरी कहते हैं, (३) एकमणि
शतवारो अनीनशत्
अ. १९.३६.१,३
इस ओषधि के मूल से पीड़ा, काण्ड से राजयक्ष्मा और कुष्ट आदि त्वचा रोग दूर होते हैं। यह गन्ध या वायु द्वारा लग जाने वाली बीमारियों को और कुत्तों द्वारा फैल जाने वाले रोगों को भी दूर करती है।

शतवाही- सहस्रों कार्य करने में समर्थ
'नास्य जाया शतवाही'
अ. ५.१७.१२.

शतावान्- सैकड़ों ऐश्वर्यों और सैकड़ों वीरों का स्वामी।-इन्द्र
'वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा'
ऋ. ६.४७.९

शतविचक्षण - (१) सैकड़ों गुण दिखाने वाली ओषधि।
'बह्वीः शतविचक्षणाः'
ऋ. १०.९७.१८; अ. ६.९६.१, वाज.सं. १२.९२, ऐ.ब्रा. ८.२७.५; साम.मं.ब्रा. २.८.३,
(२) सैकड़ों रोगों से दूर करने में जिस औषधि का वर्णन हो।

शतवृष्ण्य- अपरिमित बलों से युक्त।
'पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्'
अ. १.३.१.

शतशारदः- (१) सौ वर्षों का जीवन।
'अस्पार्षमेनं शतशारदाय'
ऋ. १०.१६१.२; अ. ३.११.२; २०.९६.७
(२) सौ वर्ष जीवन देने वाली औषधि
'तन्म ऋतं पातु शतशारदाय'
ऋ. ७.१०१.६
'सहस्राक्षेण शतशारदेन'
ऋ. १०.१६१.३; अ.२०.९६.८
'दीर्घायुत्वाय शतशारदाय'
अ. १.३५.१; ३.५.४;४.१०.७; ५.२८.१; ६.११०.२; ८.५.२१; १२.२.६ ; १४.२.७५; १८.४.५३; मै.सं. २.३.४: ३१.१० का.सं. ४०.३

शतं शरदः- एवै शरद् ऋतु अर्थात् सौ वर्ष। ऋग्वैदिककाल में शरत् शब्द ही वर्ष का द्योतक था क्योंकि शरद् से ही वर्ष का अन्त समझा जाता था। पीछे वर्षा ऋतु वर्ष का अन्त समझा जाने लगा।
'अस्मे शतं शरदो जीवसे धाः'
ऋ. ३.३६.१०

शतशल्या - सैकड़ों फल वाला वाण, (२) सैकड़ो व्याधियों वाला शरीर।
'शतशल्यामपब्रवत्'
अ. ६.५७.१

शतशाखा- (१) सैकड़ों शाखा वाला अपामार्ग ओषधि (२) शत्रुनाशक अपा मार्ग विधान।
'विभिन्दती शतशाखा'
अ. ४.१९.५

शतं - सप्त च धामानि - (१) १०७ स्थान, (२) शरीर के १०७ मर्मस्थान (३) ओषधियों के १०७ नाम
'मनै नु बभ्रूणामह
शतं धामानि सप्त च'
ऋ. १०.९७.१; वाज.सं. १२.७५, तै.सं. ४.२.६.१, मै.सं. २.७.१३ :९३.२; का.सं. १३.१६; १६.१३, श.ब्रा. ७.२.४.२६; नि.९.२८.
मैं पीली ओषधि के १०७ नाम या शरीर के १०७ मर्म स्थान को जानता हूँ।

शतस्वी- (१) सैकड़ों धनों का स्वामी, (२) सैकड़ों को अपना बन्धु बनाने वाला।
'युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी'
ऋ. ७.५८.४

शतसाः- (१) सैकड़ों सुखों का दाता।
'गोषाः शतसा न रंहिः'
ऋ. १०.९५.३

(३) सैकड़ों ज्ञान देने वाला ।
'इदं वचः शतसाः संसहस्रम्'
ऋ. ७.८.६
(३) सैकड़ों अर्थात् प्रचुर उदकों का दाता दधिक्रा नामक देवता या मेघ का विशेषण ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा
पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि'
ऋ. ४.३८.१०; तै.सं. १.५.११.४, नि. १०.३१.
जो दधिक्रा देव या मेघ सहस्रों सैकड़ों उदकों का दाता है, जो गतिमान एवं अरणशील है, हमारी स्तुतियों का जल संभक्त करें ।

शतसा- (१) शतसानिनी, बहुविधा, सैकड़ों प्रकार का । शत + सन् + विट् (शील अर्थ में) + आ = शतसा ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिः'
ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.३१, नि. १०.२९,
इस तार्क्ष्य की अनेकों प्रकार की गति है ।

शतसेय- (१) शतसंख्या से परिमित आयु की पूर्ति, (२) सैकड़ों ऐश्वर्यों की प्राप्ति
'इमां धियं शतसेयाय देवीम्'
ऋ. ३.१८.३; ३.१५.३,

शतहस्त- (१) सैकड़ों हाथों वाला (२) सैकड़ों श्रमीजनों का स्वमी ।
'शतहस्त समाहर'
अ. ३.२४.५

शतहायन- सौ वर्षों की आयु वाला ।
'जरसा शतहायनः'
अ. ८.२.८

शतामघः- सहस्रों ऐश्वर्य वाला ।
'सहस्रोतिः शतामघः'
ऋ. ९.६२.१४

शतं हिमाः - (१) सौ हिमऋतु, सौ वर्ष
'शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम'
अ। १२.२.२८, नि. ६.१२.

शतहिमा- स्त्री । सौ वर्षों की आयु वाली ।
'तवमिडा शतहिमासि दक्षसे'
ऋ. २.१.११

शतात्मा- (१) सौ वर्षों तक जीने वाला
शतात्मा चन जीवति ।
ऋ. १०.३३.९
(२) सैकड़ों स्थानों में व्याप्त सूर्य, (३) सैकड़ों प्रजाजनों और भृत्यों को आत्मा के समान प्रिय ।
'सूरो न रुरुक्वान् शतात्मा'
ऋ. १.१४९.३, साम. २.११२४.

शतानीक - (१) सैकड़ो बलों और सेनाओं का स्वामी ।
'शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया'
ऋ. ८.४९.२; अ. २०.५१.२; साम. २.१६२
(२) सैकड़ो अनीक बल सामर्थ्यों और आयु के शत वर्षों तक जीने वाला शरीर
'शतानीकाय सुमनस्यामानाः'
अ. १.३५.१; वाज.सं. ३४.५२.

शतामघ्नः- सैकड़ों ऐश्वर्यों वाला इन्द्र परमेश्वर
' न शताय शतामघ'
ऋ. ८.१.५; साम. १.२९१.
'सहस्रोते शतामघ'
ऋ. ८.३४.७
सैकड़ों प्रकार की दुर्गति ।
'शतापाष्ठां नि गिरति'
अ. ५.१८.७

शतारित्रा- (१)सैकड़ों अरित्रों से युक्त जलयान, (२) संकट से पार जाने के सैकड़ों उपायों से युक्त नाव या धर्मसभा ।
'शतारित्रां स्वस्तये'
अ. १७.१.२५,२६, वाज.सं. २१.७, तै.सं. १.५.११.५, का.सं. २.३ , साम.मं.ब्रा. २.५.१४

शतारित्रा नौः - (१) सौ अरित्रों वाली नौका, (२) सैकड़ों प्राणियों को त्राण करने और समस्त संसार को प्रेरणा और संचालन करने में समर्थ ईश्वरीय शक्ति ।
(३) शतवर्षजीवी शरीर ।
'यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तम्
शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्'
ऋ. १.११६.४
विद्यावान् शिल्पवान् पुरुष या अश्विद्वय सैकड़ों चक्षुओं वाली अथवा अनेक चक्षुओं वाली नाव पर बैठे हुए ऐश्वर्य भोक्ता स्वामी तथा ऐश्वर्य को घर लाते हैं ।
अन्य अर्थ,
शतवर्षजीवी देह पर बैठे हुए कर्मफल भोक्ता आत्मा को प्राण और अपान (अश्विना) या गुरु और परमेश्वर परमशरण मोक्ष तक पहुंचाते हैं

(अस्तम्) ।

शतावय - सैकड़ों अवि-अर्थात् भेड़ों का धन ।
'उत गव्यं शतावयम्'
ऋ. ५.६१.५

शताश्रि- (१) सैकड़ों पर आश्रित (२) सैकड़ों का नाश करने वाला अस्त्र
'सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम्'
ऋ. ६.१७.१०

शताश्व- (१) सौ घोड़ों से युक्त ।
'स्थूरं राधः शताश्वम्'
ऋ. ८.४.४९; नि. ६.२२.
स्थूल से घोड़ो से युक्त धन को ....
(२) सैकड़ों घोड़े -सा.
(३) प्रचुर पराक्रम-दया.
(४) वीर्य

शतिनी- (१) सैकड़ों उत्तम कार्यों वाली शक्ति, (२) जिस क्रिया में सैकड़ों गतियां हो ।

शत्रि - दुःखों का नाश करने वाला ।
'शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः'
ऋ. ५.३४.९

शत्रु- शातयति इति शत्रुः (रुशातिभ्यां क्रुन्) । (क) शात + क्रुन् = शत्रु । बाहुलक नियम से सिद्ध (ख) अथवा, शम् + क्रुन् = शत्रु, (ग) शद् + क्रुन् = शत्रु । अर्थ है - शमयिता, शातयिता, दुःख देने वाला शत्रु ।
'किं मां निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः'
ऋ. १०.४८.७; नि. ३.१०
सभी असमर्थ या ईश्वर में विश्वास न करने वाले शत्रु क्या निन्दा कर सकते हैं ।

शत्रुतूर्य- शत्रु का नाश ।
'शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्'
ऋ. ६.२२.१०, अ. २०.३६.१०

शत्रूयत् -. (१) शत्रु + कयच् + शतृ = शत्रूयत् । शत्रुत्वं कामयमानः (शत्रुत्व की कामना करता हुआ) ।(२) शत्रुवत् आचरण करने वाला ।
'शत्रुयतामधरा वेदनाकः'
ऋ. १.३३.१५
शत्रुवत् आचरण करने वालों के लिए निकृष्ट कोटि की पीड़ा (अधरा वेदना) ।

शतोति- (१) शत + ऊति । सैकड़ों दीप्तियुक्त बिम्ब, (२) सैकड़ों रक्षा साधनों से या उत्तम भोगों से युक्त
रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम्'
ऋ. ६.६३.५

शतौदना - (१) प्रजापतिवर्गा ओदना-
श.ब्रा. १३.३.६.७
(२) सैकड़ों वीर्य वाली और शत्रुओं का नाश करने वाली शक्ति
(३) जिस शक्ति में सैकड़ों प्रजापालक पुरुष विद्यमान हो , वह साम्राज्य शक्ति शतौदना है ।
(४) यह पृथ्वी शतौदना गौ है ।
'अथैष गोसवः स्वराज्यो यज्ञः
तै.ब्रा.
स्वराज्य प्राप्त करने का विशाल यज्ञ गोसव या 'गोमेध है ।
'इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना'
अ. १०.९.१

शन्तनु- (१) एक वैदिक राजा (२) शान्ति का विस्तार । शम् + तनु ।
'यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितः'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२.
'शन्तनुः कनीयान् अभिषेचयाञ्चके ' अर्थात् कनिष्ठ भ्राता होते हुए भी शन्तनु ने अपने को अभिषिक्त किया । देवापि ने तप कर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया (देवापिः तपः प्रतिपदै) । व्युत्पत्ति-शं तनोऽस्तु इति वा,. शम् अस्मै तन्वा अस्तु इति वा । अर्थात् , शरीर का कल्याण हो- ऐसा आशीर्वाद दिया जाता है । या ऐसी कामना की जाती है ।
(३) शन्तनु नामक वैदिक राजा जिसके पुरोहित देवापि ने वृष्टि कामयज्ञ होता का काम किया था-सा. । (४) राष्ट्र के लिए शान्ति की इच्छा रखने वाला राजा । ज.दे.श.- दे 'अदीधेत्' ।
'यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७

शन्तमः- (१) अत्यन्त कल्याण कारक ।
'त आ गता वसा शंतमेन'
ऋ. १०.१५.४, अ. १८.१.५१, वाज.सं: १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४.१०.६:१५६.१३; का.सं. २१.१४.
वे आप अत्यन्त कल्याण कारक रक्षण के साथ

आवें ।
(२) अति शान्तिदायक
'आ शंतम शन्तनाभिरभिष्टिभिः '
ऋ. ८.५३.५; ऋ.खि.७.३४.५; साम. १.२८२.

शन्तमा- शान्तिकारी ।
'अच्छा मही बृहती शंतमा गीः '
ऋ. ५.४३.८

शन्ताति- शान्ति देने वाला उपाय ।
'आ त्वागमं शन्तातिभिः '
ऋ. १०.१३७.४; अ. ४.१३.५

शन्ताती- शम् + तातित् = शन्ताति । (१) सुखकर्ता (द्वि.व.) - अश्विद्वय का विशेषण (३) शान्ति और सुख देने वाले ।
'याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे '
ऋ. १.११२.२०

शन्तिवा - (१) शान्ति कारिणी कल्याण कारिणी ।
'वाचं वदतु शन्तिवाम् '
अ. ३.३०.२
(२) शान्ति सम्पन्न पृथिवी
'शन्तिवा सुरभिः स्थोना '
अ. १२.१.५९

शपति- स्पृशति (छूता है) । शप् धातु स्पर्श करना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

शपथयावनी - ओषधि के अंशों के सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम पथ अर्थात् उनका सूक्ष्म गति या प्रवेश कर मिलना (२) रोगी के आक्रोश कष्ट और चीत्कारों को दूर करने वाली ।
'सत्यजितं शपथयावनीम् '
अ. ४.१७.२.

शपथयोपनी - निन्दायुक्त वचनों का मूल नाश करने वाली
'वीरच्छपथयोपनी '
अ. २.७.१

शपथ्य - (१) वह रोग जिसमें मनुष्य बकझक करे, अटपट बोले ।
'मुञ्चन्तु मा शपथ्यात् '
ऋ. १०.९७.१६; अ. ६.९६.२; ७.११२.२, ११.६.७; वाज.सं. १२.९०
(२) दूसरे के प्रति दुर्वचन बोलने से उत्पन्न ।

शपथीयत्- पर निन्दा कारी
'शपथः शपथीयते '
अ. ५.१४.५; १०.१०.५

शपन - कुवचन ।
'या शशाप शपनेन '
अ. १.२८.३; ४.१७.३.

शप्ता- शाप देने वाला, कठोर वचन बोलने वाला
शप्तारमत्र नो जहि
अ. ६.३७.२

शफ- (१) खुर, (२) अश्व, (३) आक्रोश, आह्वान् (४) ललकारने वाला सैन्य (५) समवेत शब्दों या वर्णों से बना पद
'ये पत्वभिः शफानाम् '
ऋ. ५.६.७
(६) आठवां भाग
'यथा कलां यथा शफम् '
ऋ. ८.४७.१७; अ.६.४६.३
(७) शम् फणति इति शफः । शम् + फण् + ड = शफ । अर्थ - कल्याणप्रद व्यवहार -दया. ।
(८) शान्ति दायक आदेश करने वाला ज्ञान वचन
इमा शफानां सनितुर्निधाना
ऋ. १.१६३.५; वाज.सं. २९.१६, तै.सं. ४.६.७.२; का.सं. ४०.६
ये तुझे शान्ति का ज्ञान प्रदान करने तथा तेरी सेवा करने योग्य उपास्य गुरु के (सनितुः) कल्याणकारी वचनों के निधान हैं ।

शफच्युत- (१) खुर से निकली धूलि ।
'शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्याम् '
ऋ. १.३३.१४
अश्वों के खुरों से उठा धूलि पटल आकाश में फैल जाय तो.....

शफवत् - खुरों वाला जीव ।
'पद्वद् विवेद शफवन्नमे गोः '
ऋ. ३.३९.६

शफारुज् - (१) निन्दा और कुत्सित वचनों से पीड़ा देने वाला ।
'शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् '
ऋ. १०.८७.१२. अ. ८.३.२१.९
(२) खुरों से चोट पहुंचाने वाला
येनारुजासि मघवञ्शफारुजः '
ऋ. १०.४४.९, अ. २०.९४.९

(३) शफारुज् प्रजाजनों को गालियों और निन्दा वचनों से पीड़ित करने वाला ।
'शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान्'
अ. ८.३.२१.

शफौ- (१) दो खुर (२) सुर के समान परस्पर मिलकर रहने तथा वेग से जाने वाले स्त्री पुरुष- अश्विद्वय
'शफाविव जर्भुराणा तरोभिः'
ऋ. २.३९.३

शबल- (१) बल को प्राप्त करने वाला तीव्र गतिमान यन्त्र ।
'शबला वैद्युताः'
वाज.सं. २४.१०; मै.सं. ३.१३.११: १७०.१०; आप.श्रौ.सू. २०.१४.६
(२) कच्चा पक्का
'आमे सुपक्वे शबले विपक्वे'
अ. ५.२९.६

शब्दिनः- शब्द करने वाले दुःखदायी कारण ।
महान्तो ये च शब्दिनः'
अ. १९.३६.३

शम् - (१) शान्तिदायक
'शमापो अभयं कृतम्'
(२) शम् + क्विप् = शम् । सुख । (३) सुखकर (४) कल्याण
'मन्यासै शं च नस्कृधि'
वाज. ३४.८; तै.सं. ३.३.११.४; मै.सं. ३.१६.४:१८९.१०; का.सं. १३.१६, आश्व. श्रौ.सू. ४.१२.२; शां.श्रौ.सू. ९.२७.२; नि. ११:३० ।
और हमारा कल्याण कर ।
आधुनिक अर्थ- शम् धातु का अर्थ शान्त होना, रुक जाना, समाप्त हो जाना है । प्रेरणार्थक होने पर नाश करना, शान्त करना, रोकना, पराजित करना, बुलाना, प्यास बुझाना, अव्यय होने पर कल्याण, सुख, स्वास्थ्य, मंगल कामना करने में प्रयुक्त ।

शंताति- कल्याणकारी ।
'तदाञ्ज नत्वं शंताते'
अ. १९.४४.१

शंभविष्ठ- (१) सबसे अधिक शान्ति सुख देने वाला ।
'यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः'
ऋ. ५.४२.७
उत स्तुतो मघवा शंभविष्ठः'
ऋ. १.१७१.३

शंभविष्ठा- द्वि.व. । शान्ति एवं कल्याण उत्पन्न करने वाले स्त्री पुरुष या अश्विद्वय ।
'हस्ताविव तन्वे शम्भविष्ठा'
ऋ. २.३९.५

शमल- (१) मालिन, (२) कलंक जनक घृणित कार्य ।
'यद् दुष्कृतं यच्छमलम्'
अ. ७.६५.२, १४.२.६६
'यद् रिप्रं शमलम्'
अ. १२.२.४०

शमः - (१) शान्ति तपस्विजन (२) शान्ति ।

शमः वृषभः- (१) शान्तिदायक जल को बरसाने वाला मेघ (२) अत्याचार आदि शमन करने वाला पुरुष

शम्नाति - हिनस्ति (हिंसा करता है । शम् धातु हिंसार्थक भी है ।

शम्बः- (१) शान्ति का साधन तप, (२) शत्रुशमन करने का साधन
'उग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन'
ऋ. १०.४२.७; अ. २०.८९.७; मै.सं. ४.१४.५;२२२.३, तै.ब्रा. २.८.२.७; नि. ५.२४.
(३) जाल-रश्मि । 'शम्ब' (संबन्धन अर्थ में) + अच् = शम्ब । जिससे मछुआ मछली आदि फंसाते है - जाल
'शम्बीव नावमुदकेषु धीरः'
अ. ९.२.६

शम्भवः - प्रजाओं को शान्ति प्राप्त कराने वाली ।
'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च'
वाज.सं. १६.४१

शम्भविष्ठा- द्वि.व. । (१) कल्याण करने में समर्थ स्त्री पुरुष-अश्विद्वय, (२) अति सुखकारक ।
'प्रत्यवर्ति दाशुषे शम्भविष्ठा'
ऋ. ५.७६.२, साम. २.११०३

शम्भु- (१) सुख कारक ।
(२) शिव का एक नाम

शम्भू - (१) प्रजाओं को शान्ति सुख देने का उपाय, (२) उद्यान तड़ाग आदि का विशेषण (३) द्यौ, द्युलोक

शम्भूश्छन्दः
वाज.सं. १५.४, तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७:१११.१३, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.३,

शम्य- (१) शान्त गुणों से युक्त, (२) शम दम से सम्पन्न आप्त पुरुष
'उद्ध ऊर्मिः शम्या हन्तु'
ऋ. ३.३३.१३, अ. १४.२.१६

शम्या- स्त्री । (१) काष्ठ दण्ड, लकड़ी का दंडा ।
'ते ते भिनद्मि शम्यया'
अ. ६.१३८.४
(२) शत्रुओं को शमन करने वाली राजशक्ति
'शम्या ह नाम दधिषे'
अ. १९.४९.७
(३) शान्ति युक्त वाणी ।
'शम्यया परि धावति'
अ. २०.१३६.१०; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.५
(४) कर्म कुशल स्त्री

शम्ब- (क) शम् + वन् = शम्ब । (ख) शात् + वन् + शम्ब (पृषोदरादिवत्) । अर्थ (१) वज्र । शम्ब इति वज्रनाम शमयतेर्वा शातयते वा (शम्ब वज्र का वाचक है जो 'शमु' या 'शात' धातु से 'वन्' प्रत्यय कर बना है । वज्र शत्रु को परास्त करता या कष्ट देता है ।
'आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरम्
उग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र
कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम्'
ऋ. १०.४२.७; अ. २.८९.७; मै.सं. ४.१४.५: २२२.४; तै.ब्रा. २०.८.२.७.
हे बहुतों से आहूत इन्द्र, तेरा जो उग्र वज्र है (यः उग्रः शम्बः) उस वज्र से शत्रु को हमारे निकट से दूर भगा (तेन शत्रुम् आरात् दूरम् अपबाधस्व) और हमारे लिए यव एवं पशुओं के रूप में धन दे (अस्मे यवमत् गोमत् धेहि) तथा मुझ स्तोता या आस्तिक के लिए (जरित्रे) ज्ञान रत्नविद्या प्रदान कीजिए (वाजरत्नां धियं कृधि)।
आज भी 'bomb' शब्द का प्रयोग 'शम्ब' के अर्थ में होता है ।

शम्बर- (१) विद्वानों में करने योग्य ज्ञान राशि, वेद या ब्रह्मचर्य, (२) चन्द्रमा, (३) जल, (४) अच्छी प्रकार से गोपनीय ज्ञान राशि, (५) वेद, (६) ब्रह्मज्ञान मय आवरक शब्द ब्रह्म
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम्
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११
जो चालीसवें वर्ष के बाद पालन शक्ति एवं पूर्णज्ञान से युक्त विद्वानों में करने योग्य ज्ञानराशि वेद को या ब्रह्मचर्य के पूर्णबल को प्राप्त कराता है । -ज.दे.श.
जो चन्द्रमा को चालीसवें वर्ष में पुनः उसी स्थान में कर देता है ।
(७) संवर + अच् = शम्बर । मेघ ।
'अधूनोत् काष्ठा अवशम्बरं भेत्'
ऋ. १.५९.६; नि. ७.२३.
विद्युत् या वैश्वानर अग्नि के जलों को प्रवाहित किया और मेघ को विदीर्ण किया ।
'संवर' धातु वारणार्थक है ।
(८) चन्द्रमा, (९) शम्बर नाम्नी पहाड़ी जाति, (१०) जल को वर्षा के रूप में बरसाने से रोक रखने वाला बाधक पदार्थ, (११) ब्रह्मचर्य का पूर्णबल, (१२) शान्तिप्रदान करने वाला सबके वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ स्वरूप, (१३) शत्रुगण और प्रजावर्ग को शमन करने वाला । शान्तिदायक बल ।
'यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम्'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११
सूर्य जैसे पर्ववाले मासों में वर्तमान चन्द्रमा को चालीसवें वर्ष में पुनः पूर्व स्थान में ही पाता है ।
(१४) शम्ब + अरन् = शम्बर
(१५) शस्त्र अस्त्रधारी प्रबल सुसंबद्ध सुदृढ़ शत्रु,
(१६) आत्मा को घेर लेने वाला
'यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम्'
ऋ. १.१०१.२
जो इन्द्र राजा या आचार्य मेघ, सुदृढ़ शत्रु तथा आत्मा को घेर लेने वाले आवरण को नष्ट करता, जो पेट तथा अव्रती को नष्ट करता है....(पिप्रुम् अव्रतम् अहन्) ।

शम्बरहत्य - (१) शान्ति सुख के नाशक दुष्ट पुरुषों को नष्ट करने का कार्य,

(२) शम्बर को नष्ट करने का कार्य
(३) युद्ध जिसमें बल की हत्या होती है ।

शमि – (१) कार्य
'व्यानट् तुर्वणे शमि'
ऋ. ८.४५.२७
(२) काम करने वाला, (३) शान्तिदायक

शमित – शम् + इत । महान् सुख शान्ति प्रदान करने वाला ।
'शमिताय स्वाहा'
अ. १९.४२.२

शमिता – (१) कल्याण करने वाला
अधिमुश्चापापश्च उभौ देवानां शमितारौ ।
तै.ब्रा. ३.६.६.४
मृत्युस्तदभवद् धाता शमितोग्रो विशांपतिः'
तै.ब्रा. ३.१२.९.६
(अध्यक्ष, निष्पाप राजा, प्रजापालक, दुष्टों को दण्ड देने वाला पृथ्वी के शमिता हैं–
जो विभाग कर प्रजा को बांटते और खेती करते हैं ।) ।
'ये ते देवि शमितारः
पक्तारो ये च ते जनाः'
अ. १०.९.७
(२) तीन अग्नियों में एक–दक्षिणाग्नि का वाचक । अन्य दो अग्नि हैं–गार्हपत्य और आहवनीय । गार्हपत्य को वनस्पति और अग्नि देव भी कहते हैं ।
'वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन'
ऋ. १०.११०.८, अ. ५.१२.१२; वाज.सं. २९.३५; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१४; का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१७.
गार्हपत्य अग्नि (वनस्पतिः) दक्षिणाग्नि (शमिता) और आहवनीय अग्नि (देवः अग्निः) मिष्ट और घृतके साथ (मधुना घृतेन) हवि का आस्वादन करावे (हव्यं स्वदन्तु) ।

शमितारा – (१) दो शान्तिपूर्ण कार्य करने वाले बाहु ।
सोमस्य या शमितरा सुहस्ता'
ऋ. ५.४३.४

शमी – (१) कर्म, (२) उत्तम कर्म निष्ठा वाला
आ त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः
ऋ. ४.२२.८
त्वां भ्रात्राय शम्या शम्या तनूरुचम्'
अ. २.१.९
(३) सेमल का पेड़, (४) शत्रुओं को शमन करने वाली शक्ति (५) शान्त उद्वेगरहित धीर स्त्री ।
'शमीमश्वत्थ आरूढ़'
अ. ६.११.१
(६) शम् + इन् + ङीष् = शमी । शम्यन्ति अनमा अनिष्टानि (इससे अनिष्ट शान्त होते हैं । अतः यह शमी है,) यज्ञ, (७) व्यापार कर्म ।
'विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतः'
ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६
कर्मों, यज्ञों या व्यापार कर्मों को क्षिप्र कारिता से कर मेधावी, यज्ञा धिष्ठाता या व्यापारी वर्ग.... (वाघतः), अथवा ज्ञान विज्ञान से युक्त वाणी को धारण करने वाले, शान्तिदायक कर्मों का आचरण करने वाले, (शमी) सत्यज्ञान से सूर्यवत प्रकाशित होने वाले ।
(८) शान्तिदायक साधना
'शमीभिर्यज्ञमाशत'
ऋ. १.२०.२
वे शान्तिदायक साधनाओं से सर्वोपास्य परमेश्वर के स्वरूप को (यज्ञम्) प्राप्त करते हैं (आशत) । आधुनिक अर्थ–शमी वृक्ष, सेमल का पेड़ ।
(९) शान्तिदायक कर्मों का आचरण करने वाला ।
(१०) शान्ति युक्त साधना ।
इच्छाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया'
ऋ. १.८३.४; अ. २०.२५.४
(११) शमी वृक्ष जिसकी लकड़ी से आग उत्पन्न होती है ।

शमीध्वम् – शमयध्व । म् 'संज्ञायतं (वध करो) ।
'अध्रिगो शमीध्वं सुशमि
शमीध्वं शमीध्वमध्रिगो'
मै.सं. ४.१३.४:२०४.३, का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.७.११, तै. ब्रा. ३.६६.४, आश्व.श्रौ.सू. ३.३.१, शां.श्रौ.सू. ५.१७.१०, कौ.सू. ६९.६, नि. ५.११.

शमीनहुषी – कर्मों द्वारा बद्ध स्त्री पुरुष ।
'धिया शमीनहुषी अस्य बोधताम्'
ऋ. १०.९२.१२

शम्बी – शम्ब (संबन्धन अर्थ में) + इनि + शम्बिन्। केवट, धीवर, मल्लाह, मछुआ।
'शम्बीव नावमुदकेषु धीरः'
अ. ९.२.६

शय – (१) सोया हुआ।
शयो इह इव
अ. २०.१३१.१६
(२) शी (सोना) + अच् = शय। सोने का स्थान, सेज,
(३) आश्रम,
(४) अग्नि रखने का स्थान।
'शये वव्रिश्चरति जिह्वायदन्'
ऋ. १०.४.४.
वरण किए हुए आप (वव्रिः) वाणी द्वारा शिक्षा देते हुए (जिह्वया दन्) आश्रम में (शये) विचर रहे हैं (चरति) ज.दे.श.।
आहवनीय अग्नि नाम का तेरा विशेषात्मा (वव्रिः) हस्तपरिमित स्थान में (शये) हवियों को खाता हुआ जाता रहता है।

शर्यात् – (१) एक वैदिक राजा, (२) हिंसक पुरुषों पर चढ़ाई करने वाला, (३) शरों और शस्त्रास्त्रों सहित चढ़ाई करने वाला सेना पति –ज.दे.श.।
'याभिः शर्यातमवथो महाधने'
ऋ. १.११२.१७
जिन साधनों से संग्राम में शर्यात को या हिंसक पुरुषों पर चढ़ाई करने वाले की रक्षा करते हो।

शयते – शेते (सोता) 'शी' धातु के लट् पु पु. ए.व. में 'शयते' रूप होता है।
'अहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः'
ऋ. १.३६.५
छिन्न बाहु मेघ या वृत्रासुर (अहिः) जल रूप में पृथ्वी के निकट संम्पर्क में आ (पृथिव्याः उपपृक्)पृथ्वी पर सोता है (शयते)।

शयथ – (सं.)। सुखपूर्वक शयन
'पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्'
ऋ. ६.१८.८

शयाण्डकः – शयन से सुख कराने वाला
'शार्गः पृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः'
वाज.सं. २८.३३, मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६

शया – (१) अव्यक्त रूप में व्यापक दिशा, (२) शान्त जलादि पदार्थ, (३) सोती हुई पत्नी (४) प्रसुप्त या शान्तभाव से विद्यमान प्रजा, (५) प्रसुप्त अव्यक्त प्रकृति विकार।
'शये शयासु प्रयुतो वनानु'
ऋ. ३.५५.४

शमानः – (१) सोया हुआ पड़ा हुआ
'त्वं चिदित्था कत्पयं शयानम्'
ऋ. ५.३२.६; नि. ६.३
इस प्रकार से या अन्तरिक्ष में (इत्था) सुखकर जल वाले मेघ में पड़े हुए या सोए हुए वृत्र को भारा –सा.
सुखकारी जल देने वाले मेघ को (कत्पयम्) जो अन्तरिक्ष में पड़ा हुआ है (इत्था शयानम्) सूर्य छिन्न भिन्न कर देना चाहिए। –दया.।

शयानः दानुः – (१) सोता हुआ दानु (२) मर्मच्छेदी हृदय में अव्यक्त रूप से रहने वाला अज्ञान (३) छिपा भीतरी और बाहरी शत्रु।
'दानुं शयानं स जनास इन्द्र'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११

शंयु – (१) शान्ति वचन, (२) प्रजा सुख कारक शान्ति कर्म
'शंयुना पत्नी संयाजान्'
वाज.सं. १९.२९
(३) शम् + यु = शंयु। कल्याण की कामना करने वाला।
'अथा नः शं योररपो दधात'
ऋ. १०.१५.४; वाज.सं. १९.५५, मै.सं. ४.१०.६: १५६.१३; का.सं. २१.१४, नि. ४.२१.
और हमारे लिए आप कल्याण कारी का पापाभाव या धर्मनिष्ठा दें।
(४) बृहस्पति के पुत्र शंयु ऋषि (५) सदाचारी शान्त विद्वान् – दया.।
'तच्छं योरावृणीमहे
गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये'
ऋ.खि.१०.१९१.१५, तै.सं. २.६.१०.३, मै.सं. ४.१३.१०:२१२.१४, श.ब्रा. १.९.१.२७, तै.ब्रा. ३.५.११.१, तै.आ. १.९.७; ३.१, नि. ४.२१.
हम उस सदाचारी शान्त विद्वान् के अपने यज्ञ में आने को और यज्ञपति के समीप पधारने की याचना करते हैं–दया.।
हम शंयु के निकट यह प्रार्थना करते हैं कि यज्ञ

का देवों के प्रति गमन हो (गातुं यज्ञाय) और यजमान का देवों के प्रति गमन हो (गातुं यज्ञपतये) ।

शयु - (१) शिशु

'दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गाम्'

ऋ. ६.६२.७

(२) शान्ति चाहने वाला

(२) शिशुवत् अज्ञानी

अपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना

ऋ. १०.३९.१३

शीङ् (शयन करना) + उ = शेयु । सब के भीतर प्रसुप्त सत्ता रूप से विद्यमान परमेश्वर (५) जगत् को प्रलय में शान्त प्रसुप्त रूप से सुला देने वाला (६) शत्रुओं को समर में सुलाने वाला ।

'द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे'

ऋ. १.३१.२

(७) सुख से सोने वाला, (८) सब को शान्ति दायक सुख से शयन कराने वाला राजा ।

'याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये

याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः'

जिन साधनाओं से सुख से सोने वाले प्रजाजन को या सबको शान्तिदायकसुख से शयन कराने वाले राजा को (शयुम्) विविध दुःखों से रहित मननशील पुरुष और पति राजा को (अत्रये मनवे) जाने के मार्ग, विज्ञान भूमि आदि प्राप्त कराते हो (मातुम् ईषथुः) ।

शंयु - सुखंयुः । शम् + युस् = शंयुः। शम् सुख का वाचक है । अर्थ है - सुख चाहने वाला । शम् का अर्थ सुख और यु का अर्थ दुःख से मुक्ति देने वाला या भय को दूर करने वाला किया गया है ।

शयुत्रा - शयु + त्रा = शयुत्रा । शीङ् + उ= शयु । (१) साथ सोने वाला, (२) यजमान -सा. (३) परम प्रिय साथी, मित्र संगी -ज.दे.श.

'को वा शयुत्रा विधवेव देवरम्

मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ'

ऋ. १०.४०.२, नि. ३.१५.

हे स्त्री पुरुषो, या अश्विद्वय, जैसे विधवा देवर से और स्त्री पति से मिल सन्तान उत्पन्न करती है उस तरह कौन यजमान वेदी पर पूजा करने के लिए तुम्हें सम्मुख करता है ?

अथवा,

उसी तरह तुम्हारा, परमप्रिय मित्र कौन है, जिससे मिल तुम धार्मिक सामाजिक या व्यावहारिक कृत्य करते हो ।

(४) सोते हुओं के रक्षक अश्विद्वय या युवा स्त्री पुरुष का राष्ट्र के सम्मुख पालक,

(५) सोने का स्थान,

(६) आश्रम, आश्रय-ज.दे.श. ।

'दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा'

ऋ. १.११७.१२

ज्ञान विज्ञान युक्त, सूर्य के समान प्रकाशमान मेधावी परमेश्वर के रचे वेद में ज्ञान को अथवा तेजोमय वीर्य, ब्रह्मचर्य को कभी नष्ट न करते हुए (दिवो नपाता) बलवान् वीर्य-सेचन में समर्थ युवा स्त्री पुरुषों (वृषणा), आप दोनों किस शयन स्थान पर या आश्रय में (शयुत्रा) अथवा, न्याय प्रकाश और राजसभा को स्थिर रखने वाले (दिवो नपाता) राष्ट्र के प्रमुख पालक किस आश्रय पर...

शये - शेते (सोता है) ।

शंयोः - शम् (रोगों का शमन) + क्विप् = शम्, यु (पृथक् भाव में) ङोसि -योस । शम् + योस् = शंयोस् । अर्थ है । (१) भयों को दूर करने वाला, कल्याणकारी, भयहारी ।

'शमनं रोगाणां यावनं भयानाम्'

शर - (१) शरनामक ओषधि, (२) शत्रुघातक बाण, शर के दो भेद हैं- एक पतला और दूसरा मोटा ।

'शरद्वयं स्यात् मधुरं सतिक्तं

कोष्णं कफभ्रान्ति मदा पहानि

बलं च वीर्यं च करोति नित्यं

निषेदितं वातकरञ्च किञ्चित्'

अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम्'

अ. १.२.३

(३) सरकण्डे के समान विषैला जीव, (४) सरकण्डा ।

'शरासः कुशरासः'

ऋ. १.१९१.३

(५) शृ (हिंसार्थक) + अच् = शर । अर्थ बाण या कोई हिंसक अस्त्र ।

शरण – (१) शत्रु नाशक साधन (२) अस्त्र और शस्त्र
'अस्मान् वरूचीः शरणैरवन्तु'
ऋ. ३.६२.३
(३) शृ + ल्युट् = शरणे ।
'विलं हि विदारितं भवति (विल विदारित होता है) ।(४) गृह–सा.
'तोदस्येव शरण आ महस्य'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७; नि. ५.७
हे अग्ने, जैसे महान् भूखंड के बिल में चारों ओर से जल आकर भी बिल को नहीं भाता उसी प्रकार अनेक यजमानों के हवियों से भी तू नहीं ऊबता ।
गृह में अर्थ में 'शरण' शब्द के प्रयोग के लिए देखें 'कृति' ।
आधुनिक अर्थ – रक्षा, साहाय्य, शरणं आश्रय, गृह, चोट पहुंचाना, मारना, बध करना ।

शरणा – द्वि.व. । 'शरणौ' का वैदिक रूप । (१) इन्द्र के बाहुओं का विशेषण । (१) रक्षक, आश्रय देने वाले
ऋष्वात इन्द्र स्थविरस्य बाहू
उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ।
ऋ. ६.४७.८; तै.ब्रा. २.७.१३.४; नि. ७.६.
हे इन्द्र या राजन, तुझ महान् वृद्ध या ज्ञानवयोवृद्ध के (ते स्थविरस्य) दर्शनीय (ऋष्वा) बृहत् (बृहन्ता) रक्षक या आश्रय देने वाले (शरणा) बाहुओं की हम सेवा या उप स्थान करते या उन्हें हम प्राप्त करें ।(३) शरण + टाप् = शरणा । अर्थ – गृह ।
'महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र'
ऋ. ८.९०.६, साम. २.७६२, नि. ५.२२.
हे इन्द्र, तेरा अन्तरिक्ष रूपी गृह (मही इव ते शरणा) यश के समान है (कृत्तिः इव) ।

शरणि – (१) पीड़ा थकान
'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः'
ऋ. १.३१.१६, अ. ३.१५.४, ला.श्रौ.सू. ३.२.७; आश्व.श्रौ.सू. १.२३.२५.
(२) हिंसा और क्रोध के भाव उत्पन्न करने वाली वाणी ।
'विते हनव्यां शरणिम्'
अ. ६.४३.३
(३) व्रत लोक रूपिणी हिंसा, (४) मरणरूपिणी संसृति, –सा. (५) मृत्यु–सा.
'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः'
हे अग्नि, हमारी इस व्रतलोप रूपिणी हिंसा या मारण रूपिणी संसृति को (नः इमां शरणिम्) तू क्षमा कर या, मार्जन कर (मीमृषः) । –सा. हे ज्ञान रूप परमेश्वर (अग्ने), आप हमारी इस मृत्यु को परि मार्जित करें –दया.
(६) शृ + अनि = शरणि । अविद्यादिदोष-हिंसिका विद्या या विद्या नाशिनी अविद्या । (७) हिंसा भावना ।
'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः'
हे परमेश्वर, हमारे नाश करने वाली इस वर्तमान अविद्या या हिंसा भावना को दूर कर ।

शरद् – शृ (हिंसार्थक) + अदि = शरद् । शरत् श्रृता अस्याम् ओषधयो भवन्ति शीर्णा आप इति वा (अर्थात् शरत् काल में ओषधियाँ पकती हैं या वर्षाकाल का प्रचुर जल शरत् काल में सुख या विशीर्ण हो जाता है अतः यह शरद् है) निरुक्त ।
अर्थ – (१) शरद् ऋतु, (२) वर्ष । वेदों में शरद् ऋतु से ही वर्ष का बोध होता है । आर्यों के शीतप्रधान देश में रहने का यह सूचक है ।
'दीर्घायुरस्या यः पतिः'
जीवाति शरदः शतम्'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२; आप.मं.पा. १.५.४, नि. ४.२५.
इसका जो पति है दीर्घायु हो और सौ वर्ष जीवे ।
शरत् स्त्री वत्सरेऽप्यृतौ
– मेदिनी कोष
आधुनिक अर्थ – (१) शरद ऋतु जिसमें आश्विन और कार्तिक परिगणित है । (२) वर्षा

शरद्वान् – (१) जिसमें शरद् ऋतुएं हो– सूर्यमण्डल, –दया. (२) प्रति ऋतु का स्वामी (३) शरद् आदि उत्तम रमण योग्य ऋतुओं का स्वामी (४) सौ वर्ष जीने वाला–शरद्वान् वृषभ अर्थात् आत्मा ।
'प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट्'
ऋ. १.१८१.६

शरभ – हिंसक पशु, व्याघ्र आदि ।

'शरभमारण्यमनु ते दिशामि'
वाज.सं. १५.५१, तै.सं. ४.२.१०४, मै.सं. २.७.१७:१०३.३, का.सं. १६.१७, श.ब्रा. ७.५.२.३६.
(२) एक वैदिक ऋषि, (३) सुख
'अपावृणोः शरभाय ऋषि बन्धवे'
ऋ. ८.१००.६
(४) व्याघ्र
'शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः'
अ. ९.५.९

शरव्या – (१) बाण बनाने की क्रिया, (२) लक्ष्य पर पहुंचने की क्रिया ।
'कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै'
वाज.सं. २४.४०, मै.सं. ३.१४.२१:१७७.५
(३) बाणों की प्राप्ति
'शरव्यायै इषुकारम्'
वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१.३.
(४) बाण के तुल्य पीड़ा जनक
'मन्योर्मनसः शरव्या जायते या'
ऋ. १०.८७.१३; अ. ८.३.१२; १०.५०.४८
(४) दूर तक बाण फेंकने में कुशल सेना ।
'शरव्ये ब्रह्मसंशिते'
ऋ. ६.७५.१६; अ. ३.१९.८; साम. २.१२१३, वाज.सं. १७.४५.
(६) तीक्ष्ण बाण के समान क्रोध की ज्वाला

शर्कु – हिंसक स्वभाव वाला ।
'पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं'
अ. ८.६.२.

शर्कोट – कर्कोट नामक भयंकर महानाग ।
'अरसस्य शर्कोटस्य'
अ. ७.५६.५; कौ.सू. १३९.८

शर्ध – (१) शत्रुनाशकारी शस्त्रास्त्रों का धारक, (२) बलस्वरूप (३) अग्नि का विशेषण ।
'त्वं नरां शर्ध असि पुरूवसुः'
ऋ. २.१.५
(४) बल की वृद्धि ।

शर्धत् – (१) कुत्सित निन्दित वाणी बोलने वाला, (२) निन्दित कर्म करने वाला ।
'यः शर्धते नानु ददाति शृध्याम्'
ऋ. २.१२.१०, अ. २०.३४.१०
(३) विनाश करने वाला पुरुष, (४) (क्रिया) – उत्सहताम् (साहस करें, उत्साह करें) ।

शर्धन् – उत्साह करता हुआ ।
'प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः'
ऋ. ७.३४.१८

शर्ध – (धा) । उत्साह करना, साहस करना ।

शर्धनीति – (१) बल अर्थात् सेना बल का अग्रणी होकर ले चलने वाला, (२) इन्द्र ।
'इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः'
ऋ. ३.३४.३, अ. २०.११.३, वाज.सं. ३३.२६.
शत्रु हिंसक बल का प्रयोग करने वाला ।

शर्धम् – उत्साह कर । शर्धत् उत्सहतामिति निरुक्ते ।
'अग्ने शर्ध महते सौभगाय'
ऋ. ५.२८.३, अ. ७.७३.१०; वाज.सं. ३३.१२, मै.सं. ४.११.१:१५९. ५; का.सं. २.१५,तै.ब्रा. २.४.१.१; ५ २.४; आश्व.श्रौ.सू. २. ११.९: १८.१७: आप.श्रौ.सू. ३.१५.५.

शर्धस् – (१) बल गुण, (३) उत्साह
'अभ्राजि शर्धोमरुते यदर्णसम्'
ऋ. ५.५४.६
हे मरुतो, तुम्हारा बल, गुण या उत्साह शोभता है ।

शर्धस्तर – अत्यन्त बलशाली ।

शर्ध्य – (१) बलपूर्वक धारण करने योग्य गृहस्थ धर्म (२) बल पूर्वक संग्राम करने योग्य रथ ।

शर्म – (१) कल्याण । यच्छानः शर्म सप्रथः । हे पृथ्वी , हमें सब ओर चौड़ी बन कर कल्याण दे ।(२) घर, आश्रय
'बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि'
ऋ. १०.१६७.३; नि. ११.१२
और सूर्य तथा चंतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा के आश्रय में रहकर .. ..ज.दे.श. ।
बृहस्पति एवं अनुमति के यहां गृह में वर्तमान –सा. ।

शर्मदर्त् – (१) कल्याणप्रद – दया. (२) सायण ने 'दर्त् का अर्थ ' दीर्ण किया' ऐसा किया है ।

शर्मन् – शृ + मनिन् = शर्मन् । अर्थ–(१) शरण, (२) सुख ।
'शर्मन् , शब्द का ही बिगड़ा रूप **German** है । मनु ने ब्राह्मणों के लिए शर्मन् की उपाधि विहित की है ।

शर्मयन्ती – सुख देने वाली
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
ऋ. ९.४१.६

शर्मरिणा – परब्रह्म में शरीर प्राप्त करने वाले ब्रह्मज्ञानी ।
'त्वमिन्द्र शर्मरिणाः '
अ. २०.१३५.११, गो.ब्रा. २.६.१४, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.४; आश्व.श्रौ.सू. ८.३.२७, कौ.सू. ३२.३०

शर्मसदः – (१) देह रूप गृहों में रहने वाले जीव ।
'पुरः सदः शर्मसदो न वीराः '
ऋ. १.७३.३; ३.५५.२१.

शर्मसद् – एक ही शरण या आश्रम में रहने वाला ।
'पुरःसदःसर्म शदो न वीराः '

शर्य – (१) शत्रुहिंसक (२) बाणादि अस्त्र शस्त्रों को चलाने में कुशल सैनिक–
(३) हिंसितुं ताड़यितुम् अर्हः यन्त्रः (हिंसा करने में समर्थ यन्त्र) –दया.
'शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरम् '
ऋ. १.११९.१०
शत्रुहिंसक बाणदि शस्त्रास्त्रों को चलाने में कुशल (शर्यैः) वीर योद्धाओं से सूर्य के सम्मान तेजस्वी (अभिद्युम्) संग्रामों में पराजित न होने वाले सैन्य वर्ग को ।

शर्यणा – (१) उत्तम सेना ।
'सुषोमे शर्यणावति '
ऋ. ८.७.२९
(२) चेतना ।
'तद् विदच्छर्यणावति '
ऋ. १.८४.१४, अ. २०.४१.२, साम. २.२६४, तै.ब्रा. १.५.८.१.
(३) अन्तरिक्ष ।

शर्यणावत्– (१) शर अर्थात् बाण धनुषादि शस्त्रास्त्र में कुशल जनों से समृद्ध जनपद, (२) शरकाण्ड (सरकण्डा, सिर की) वाली भूमि जिसमें सोमलता उत्पन्न होती है ।
अयं ते शर्यणावति
सुषोमायामधि प्रियः '
ऋ. ८.६४.११
(३) पापादि को नाश करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष (४) सब संकटों को दूर करने वाला शक्तिमान् प्रभु
'उतेन्द्र शर्यणावति '
ऋ. ८.६.३९
(४) चेतना सम्पन्न मस्तक या हृदय, (६) आकाश

शर्यणा – (१) बाणों द्वारा मारने वाला धनुर्धर (२) शर्य अर्थात् बाणों से मारने योग्य दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाला अग्नि ।
'आदेदिशानः शर्यहेव शुरुधः '
ऋ. ९.७०.५
'य उग्र इव शर्यहा '
ऋ. ६.१६.३९; साम. २.१०५७, तै.सं. २.६.११.४, ऐ.ब्रा. १.२५.८ ; आश्व.श्रौ.सू. ४.८.८.

शरारु – (१) व्याघ्र के समान हिंसाकारी मृत्यु
'शरारुरभि मन्यते '
ऋ. १०.८६.९; अ. २०.१२६.९; नि. ६.३१.
(२) सब विघ्न बाधाओं का नाश करने वाला आत्मा ।
(३) शृ + आरु (ताच्छील्य अर्थ में) = शरारु । अर्थ– संशिशरिषुः संशर्तुमिच्छन्, शरीरं तित्यक्षिषुः (शरीरत्याग करने का इच्छुक) (४) मारने की इच्छा करने वाला ।
निरुक्त में संशिशीषु से ही 'शरारु' शब्द का बनना माना गया है। (४) मूर्ख, (६) मृत्यून्मुख (६) शोख, शरूर, (८) मारने की इच्छा रखने वाला ।
'अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते '
इन्द्रपत्नी कहती है– यह मूर्ख मृत्युन्मुख नहुष मुझे अबला समझ रहा है –सा.
मुझे मारने की इच्छा रखने वाला मनुष्य मुझे अवीरा समझता है । ज.दे.श.

शर्या – (क) शृ + यत् = शर्य, शर्य + टाप् = शर्या, (ख) अथवा सृज्–सर्जा–शर्या । अर्थ – (१) बाण, बाण सरकन्डे का बना हुआ होता है ।
(२) शर्या – अंगुलयस्ते भवन्ति । सृजन्ति कर्माणि (शर्या अंगुलियां का नाम है,) अंगुलियां कर्मों को करती हैं) ।
शर्या बाण को भी कहते हैं क्योंकि इससे हिंसा करते हैं ।
(३) सींक, । सिरकी ।
'न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् '

ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.३१; नि. १०.२९
धनुष से छूटी तथा अपने लक्ष्य की ओर जाती हुई सिरकी को जैसे (युवतिं शर्याम् न) कोई रोक नहीं सकता (न स्म वरन्ते) ।
(३) इषु या बाण के अर्थ में प्रयोगः-
अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथ
उत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम् '
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः '
ऋ. ९.११०.५; साम. २.८५७
हे अभिसवन करने वालो, (अभि) उस सोम का मन्त्र तथा ग्रावा से बार बार अभिहनन कर (हि श्रवसा अभि ततर्दिथ) जैसे कोई धनुष धारण करता हुआ (भरमाणः) हाथों में अवस्थित बाणों से किसी को मारे (गभस्त्योः शर्यभिः न) और इस प्रकार सोम को तैयार करते हुए आप रात में पर्युषित मन्त्रपूत जल से आप्यायित कर नित्य प्रति जहाँ से जल निकाला जाता हो ऐसे किसी जनपान अर्थात् पनघट या पतनशाला की भांति
(उत्सं न काञ्चि जनपानम्) अक्षीण अर्थात् प्रचुर रूप में प्रस्तुत कर (अक्षितम्) ।
अन्य अर्थ-जैसे कोई परोपकारी सज्जन किसी न सूखने वाले कूप को (जनपानम्) मनुष्यों के जलपानार्थ बनाता है एवं हे जगदुत्पादक पावक प्रभो, निश्चय ही (हि) आप प्रभूत अन्न के निमित्त से (अभभिश्रवसा) मेघ का निर्माण करते हो (उत्सम् अभिततर्दिथ) और जैसे परोपकारी सज्जन बाहुओं की अंगुलियों से (गर्भस्त्योः शर्याभिः) तृषार्त को जल देता है वैसे आप सूर्य के रश्मि बाणों से वृष्टि द्वारा जल देते हो ।
(४) वायु ताड़नाख्या क्रिया -दया.
'अस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून्'
ऋ. १.१४८.४
(५) सर्वदुःखहिंसक- इन्द्र या राजा ।

शर्व - (१) भुक्त अन्न को सूक्ष्म सूक्ष्म अणु कर सर्वत्र अंगों में पहुंचाने वाला जाठर बल (२) महादेव शिव का एक नाम
'शर्वस्य वनिष्ठुः '
वाज.सं. ३९.९.
(३) हिंसाकारी, (४) रुद्र का नाम ।
'शर्वा अधः क्षमा चराः '
वाज.सं. १६.५७, तै.सं. ४.५.११.१, मै.सं. २.९.९:१२८.१३, का.सं. १७.१६
बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः '
अ. ६.९३.१
(५) धनुर्धारी शर्व, शिव का एक पर्याय ।
'शर्वभिष्वासमनुष्ठातारम् '
अ. १५-१ (५)-४

शर्वरी - (१) महान् प्रलय काल ।
'अह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु '
अ. ७.८०.४

शर्वा- हिंसक पुरुष ।
'तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः '
अ. ८.३.५.

शर्दिः - (१) शरण देने वाला, (२) बलवान् ।
'शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः '
अ. १८.३.१६

शरीतु - विनाश ।
'इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोः '
ऋ. ३.५३.१७

शरीर - शृ + ईरन् । = शरीर ।शरीरं श्रृणातेः शम्नातेः वा' (शरीर हिंसार्थक 'श्रृ' धातु या विनाशार्थक 'शमु' धातु से बना है) ।
शरीर विनाशशील तथा नित्य शीर्ष होने वाला है ।
अर्थ - (१)शरीर, (२) जीवात्मा ।
(३) मेघ-दया. । मेघ का भी शरीर नष्ट हो जाता है ।

शरु - (१) नारवे ।
'वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः '
ऋ. ६.२७.६
(२) हिंसक, (३) शिकारी ।
'अध यदेषां सुदिने न शरुः '
ऋ. १.१८६.९
(४) बाण, (५) शासनदण्ड (६) नाश करने वाला । प्रायश्चित्त (७) पश्चाताप (८) शासन वज्र ।
'अमन्यमानाञ्छर्वाजघान् '
ऋ. २.१२.१०; अ. २०.३४.१०
(९) शस्त्र
'यं देवा शरुमस्यथ '
अ. ६.६५.२

(१०) शत्रुओं को सन्ताप देने वाली, जलाने वाली, हिंसा करने वाली शक्ति, (११) बाण, धार या शस्त्र ।
'मरुत ऋञ्जती शरुः'
ऋ. १.१७२.२
(११) शृ (हिंसार्थक) + उ = शरु । अस्त्र, खड्गादि आयुध, हिंसा

शरुध् – जल । शृ (झरना) धातु से सिद्ध ।
'ऋतस्य हि क्षुरुधः सन्ति पूर्वीः'
ऋ. ४.२३.८; आश्व.श्रौ.सू. ९.७.३६; नि. ६.१६; १०.४१
मध्यम ऋतदेव के ही पूर्व कालीन जल हैं ।

शरुमत् – शृ + उ = शरु; शरु + मतुप् = शरुमत् । अर्थ – आयुधवान् हिंसा, खड्गादि आयुध से युक्त ।
'धुनिः शिमीवाञ्छमाँ ऋजीषी'
ऋ. १०.८९.५; तै.सं. २.२.१२.३; तै.आ. १०.१.९; नि. ५.१२.

शल् – (१) शरीरान्तर्गामी आत्मा, (२) शरीर के शीर्ण होने पर आप ही निकल जाने वाला आत्मा । यह शब्द अंग्रेजी के soul का पूर्व रूप है ।
'शलित्यपक्रान्तः'
अ. २०.१३५.१

शल्मलिः – (१) सेमर का वृक्ष, (२) राजा की कीर्त्ति फैलाने वाला अधिकारी ।
'शल्मलिर्वृद्धया'
वाज.सं. २३.१३, तै.सं. ७.४.१२.१, श.ब्रा. १३.२.७.४.
(३) 'शल्मलिः सुशरा भवति शरवान् वा' (अर्थात् शल्मलि कोमल होने से सुहिंस्य या काटने योग्य होता है या यह स्वयं अपने कांटो से चढ़ने वाले को कांटे चुभाकर हिंसा करता है) । शृ (हिंसार्थक) से 'शल्मलि' बना है ।
(ख) शन्नमल-अपगत मल-शल्मल-शल्मलि जिसमें तनिक भी मल न हो वह शल्मलि है ।
(३) शल्मलि या सेमर की लकड़ी का बनाया रथ ।
'सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपम्'
ऋ. १०.८५.२०; साम.मं.ब्रा. १.३.११; आप.मं.ब्रा. १.६.४; नि. १२.८.
(४) शाल्मलि वर्ग का वृक्ष ।
'यच्छमलौ भवति यन्नदीषु'
ऋ. ७.५०.३

शल्य – (१) पत्र या साहिल का कांटा ।
'शल्याद् विषं निरवोचम्'
अ. ४.६.५
(२) काँटा, (३) सूई ।
'शल्य इव कुल्मलं यथा'
अ. २.३०.३
(४) दुःख
'तासो शल्यमसिस्रसन्'
अ. ७.१०७.१

शल्यक – कांटेदार-जंगली चूहा, साहिल, ।
'हिये शल्यकः'
वाज.सं. २४.३५; मै.सं. ३.१४.१६:१७६.२

शलालका – सलाई, शलाका, मापदण्ड ।
'इयत्तिका शलालका'
अ. २०.१३०.२०

शलुन – (१) वेगवान् (२) शरीर में प्रवेश कर जाने वाला रोग कीटाणु ।
'अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन'
अ. २.३१.३

शव – (१) कम्बोज देश का एक गत्यर्थक धातु । संज्ञा होने पर शव का अर्थ –(२) उदक, (३) बल (४) आर्यावति में शव का अर्थ मुर्दा है क्योंकि शव गत या गया हुआ है ।

शबल – दिन ।
'अहर्वै शवलः-कौ. सू.
'श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितो'
अ. ८.१.९

शवस् – (१) बल रूप से शरीर में रहने वाला आत्मा ।
'तस्मिछवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते'
अ. ११.८.३४
(२) बल ।
'यं भद्रेण शवसा चोदयासि'
ऋ. १.९४.१५; नि. ११.२४
जिस यजमान को कल्याण कारक बल से प्रेरित करता है ।
शाबास, शाबसी आदि फारसी शब्दों का भी मूल शबस् ही है ।

शवसःनपात् – बलवीर्य का पतन या स्खलन न होने देने वाला ब्रह्मचारी विद्वान् ।
'युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः'
ऋ. १.१६१.१४

शवसस्पतिः – (१) बल का पालक,
(१) इन्द्र या परमात्मा का वाचक ।
'आत्मा रम्भं न जिव्रयः'
रम्भा शवसस्पते'
ऋ. ८.४५.२०; नि. ३.२१.
हे बल के पालक इन्द्र, हम तेरा आश्रय उसी प्रकार लेते हैं जैसे वृद्ध पुरुष लकुटी का ।

शवसानः – बलशाली, इन्द्र ।
'न यस्य ते शवसान'
ऋ. ८.६८.८
(२) बलवृद्धि का इच्छुक ।
'आङ्गूष्यं शवसानाय साम'
ऋ. १.६२.२, वाज.सं. ३४.१७
(३) बलशाली उपाय
'स व्राधतः शवसानेभिरस्य'
ऋ. १०.९९.९
(४) अधिक बल वाला, अपने को बलवान मानने वाला–इन्द्र
शवस् उदक और बल का वाचक है । बलमिव आचरन् । बल के समान आचरन करता हुआ इस अर्थ में आचरणार्थ क्विप् प्रत्यय कर लट् में शानच प्रत्यय लगाकर 'शवसान्' बना है । = शवसान ।
आज कल शवसान का अर्थ श्मसान है ।

शवसाना – बलपूर्वक ऐश्वर्य का भोग करने वाले – 'इन्द्राग्नी'
'ता सनसी शवसाना हि भूतम्'
ऋ. ७.९३.२.

शवसी – (१) बलवती सेना ।
'प्रति त्वा शवसी वदत्'
ऋ. ८.४५.५.
(२) बलवान्
'ब्रह्म यत् पासि शवसिन्नृषीणाम्'
ऋ. ७.२८.२

शेवार – सुख की प्राप्ति ।
'शेवारे वार्या पुरु
देवो मर्ताय दाशुषे'
ऋ. ८.१.२२.

शविष्ठः– (१) सर्वशक्तिमान् पराक्रमी ।
'धिया शविष्ठ आ गमत्'
ऋ. ८.६१.१; अ. २०.११३.१, साम. १.२९०; २.५८.३
(२) शवस् + इष्ठव् = शविष्ठ ।
'भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठ'
ऋ. १.१६५.७; मै.सं. ४.११.३:१६९.४, का.सं. ९.१८
हे बलिष्ठ इन्द्र, हम मरुतों ने तुझ से भी बढ़कर कार्य किए हैं ।
अथवा,
हे पराक्रमी राजा, हम प्रजाजन आप के सहयोग से हम पुरुषार्थ द्वारा जो भी कामना करते हैं पूर्ण करते हैं ।
'तना च ये मघवानः शविष्ठा'
ऋ. १.७७.४
अद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठाम्'
ऋ. ६.२२.२, अ. २०.३६.२

शवीरा – शु (गत्यर्थक) + ईरन् = शवीरः । शवीर + टाप् = शवीरा । अर्थ –(१) देशान्तर प्रापिका गति ।
अथवा – बलेन ईर्यते या सा शवीरा सैकड़ो वीर पुरुषों से पूर्ण ।
'आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया'
गोमद् दस्रा हिरण्यवत्'
ऋ. १.३०.१७
हे सूर्य और पृथ्वी, आकाश और पृथिवी, दिन रात्रि, प्राण अपान या राष्ट्र में वाचक शक्ति और अधिकार वाले, दुःखों और दरिद्रता के नाश करने वाले आप दोनों अश्वों वाली अश्वारोहियों से बनी सैकड़ो वीर पुरुषों से पूर्ण, इच्छानुकूल प्रेरित सेना से (अश्वावत्या शवीरं या इषा) सर्वत्र प्रयाण करो जिससे राष्ट्र गवादि पशु और उत्तम भूमि वाला और सुवर्ण आदि धनों से युक्त हो ।
(२) शव (गत्यर्थक) + अन् + टाप् = शवीरा । वेगवती ।
'नरा शवीरया धिया'
ऋ. १.३.२

शश – (१) शशक, (२) सबको क्षीण करने वाला

काल ।
'शश आस्कन्दमर्षति'
वाज.सं. २३.५६
(३) चंचल चित्तवाला ।
'कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै'
वाज.सं. २४.३८; मै.सं. ३.१४.१९:१७६.१०
'यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान्'
अ. ५.१७.४

शशमान – (१) ऊंची गति करने वाला ।
'यः शंसन्तं यः शसमानमूती'
ऋ. २.१२.१४; २०.३; अ. २०.३४.१५.
(२) स्तुति करता हुआ –सा.
(३) सत्कार करता हुआ –दया.
'यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति'
ऋ. १.१५१.७; नि. ६.८.
हे मित्रावरुण, जो यजमान तुम्हारी स्तुति करता हुआ तुम्हें हवि आदि देता हो (दाशति) –सा.। हे अध्यापक तथा उपदेशक, जो बुद्धिमान दाता (कविः होता) और पञ्च महायज्ञों को करता है और आप का सत्कार करता है और आप का सत्कार करता हुआ (शशमानः) भोग्यादि पदार्थ देता है– दया. ।
(४) धर्म मर्यादा को लांघ कर चलने वाला,
(५) लुप्त गति अर्थात् सब धर्मों को लांघकर संन्यास मार्ग से जाने वाला
(६) शम का नित्य अभ्यासी, तपः साधना से युक्त ।
'ये अग्रवः शशमानाः परेयुः'
अ. १८.२.४७

शशयः – (१) खशयः, आकाश में व्यापक मेघ ।
'दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे'
ऋ. ३.५७.२
(२) अति प्रशंसनीय ।
'महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं'
ऋ. ८.५४.८
(३) सुख की नीद सुलाने वाला ।
'यस्ते स्तनः शशये मयोभूः'
ऋ. १.१६४.४९; वाज.सं. ३८.५; मै.सं. ४.९.७:१२७.७; ४.१४.३: २१९.८; ऐ.ब्रा. १.२२.२, श.ब्रा. १४.२.१.१५;९.४.२८; तै.आ. ४.८.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.७.६; ४.७.४.

शशया – (१) व्यापक दिशा, (२) निश्चित रहकर शयन करने वाली कन्या ।
'सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः'
ऋ. ३.५५.१६

शशयानः – (१) शिश्यान, सुप्तइव स्थितः (सुप्त पड़ा हुआ) (२) तपस्या करता हुआ ।
'संवत्सरं शशयानाः
ब्राह्मणा व्रतचारिणः'
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६
एक वर्ष तक सुप्त पड़े हुए या तपस्या करते हुए (संवत्सर शशयाना) सदा बोलने में समर्थ होने पर भी (ब्राह्मणाः) बोली पर संयम रखने वाले (व्रतचारिणः) ।

शशयुः – (१) शान्तिदायक, (२) अति गूढ़ रहस्यमय
'यस्ते स्तनः शशयुर्योमयोभूः'
अ. ७.११.१
(३) सोया हुआ ।
'नीचा यच्छशयुर्मृगः'
अ. ४.३.६

शश्रमाणा – निरन्तर श्रमशील स्त्री, गृहपत्नी या गृहपति ।
'पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा'
ऋ. १.१७९.१

शश्रमाणः – (१) श्रम करने वाला । उद्योगी पुरुष ।
'न शश्रमाणो बिभीवान्'
ऋ. १०.१०५.३
'इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणः'
ऋ. ४.१२.२.

शश्वचैः – (१) आलिंगन करने के लिए, (२) सहयोग के लिए
'मर्यायेव कन्या शश्वचै ते'
ऋ. ३.३३.१०

शश्वान् – (१) सनातन या चिरकाल से एक ही दशा में रहने वाला पुरुष ।
'अति वायो ससतो याहि शश्वतः'
ऋ. १.१३५.७
(२) अनादि कारण ।
'यच्छिद्धि शश्वता तना
देवंदेवं यजामहे
त्ये इद् धूयते हविः'

ऋ. १.२६.६
जब कभी अन्नादि विस्तृत भेद ज्ञान से विद्वान् या देवता का सत्कार करते हैं तो वह सत्कार हे परमेश्वर तुम में हवि के समान आहूत होता है ।
(२) शश्वत् इति विचिकित्सार्थीयो भाषायाम् (लोकभाषा में शश्वत् विचिकित्सा अर्थ में आया है) । वेद में इसका प्रयोग अन्य अर्थों में पाया जाता है ।
(३) 'एवम्' के पहले या पीछे भी शश्वत् का प्रयोग होता है । जैसे 'शश्वदेवम्' एवं 'शश्वत्'
....शश्वत् स्यात् आत्म प्रश्ने च मंगले
'पुराकल्पे सदार्थे च पुनरर्थे च दृश्यते'
- मेदिनी कोश ।
(४) दीर्घायु ।
'अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्'
वाज.सं. ३.३६.१०; पा.गृ.सू. १.१८.५
हे हनूवाले इन्द्र, हमारे लिए आप दीर्घजीवी (शश्वत) वीर पुत्र दें ।
(५) प्रचुर, बहुत ।
'अहं धनानि सं जयामि शश्वतः'
ऋ. १०.४८.१; ऐ.ब्रा. ५.२१.६
मैं इन्द्र शत्रुओं के प्रचुर धनों को (शश्वतः धनानि) एक साथ जीतता हूँ (संजयामि) ।
आधुनिक अर्थ - सदा, पुनः पुनः ।

शश्वत्कृत्रः - (१) शश्वत्कर्त्ता - सा. ।
'शश्वत् कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः'
ऋ. ३.५४.१, ऐ.ब्रा. १.२८.६

शश्वती - (१) अनन्त काल तक रहने वाली -उषा का विशेषण ।

शश्वती आपः - (१) चिरकाल से बहने वाले जल, (२) कर्म बन्धन ।
'त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपः'
ऋ. ७.३२.२७; अ.२०.७९.२; साम. २.८०.७, पंच.ब्रा. ४.७.६.

शश्वरीनारी - सदातनी नर अर्थात् आत्मा की सहयोगिनी बुद्धि ।
'शश्वती नार्यभिचक्ष्याह'
ऋ. ८.१.३४

शश्वतीमाता - (१) निरन्तर बहने वाला जल, (२) निरन्तर स्थायी माता, (३) नित्य जगत् -निर्माण करने वाली शक्ति-प्रकृति ।
'तं शश्वतीषु मातृषु
वन आ वीतमश्रितम्'
ऋ. ४.७.६

शश्वत्तमा - शाश्वतिकतमा-बार बार आने वाली-उषा ।
'अघसन्न ससतो बोधयन्ती
शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम्'
ऋ. १.१२४.४; नि. ४.१६.
अन्न बांटने वाली गृहस्वामिनी की तरह सोने वालों को जगाती और चर कर नित्य लौटने वाली गौ आदि के लिए बार बार आने वाली उषा है ।

शश्वन्ता - द्वि.व. (वि.) । परस्पर सदा साथ रहने वाले आत्मा और मनोमय सूक्ष्म देह ।
'ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता'
ऋ. १.१६४.३८; अ. ९.१०.१६; ऐ.आ. २.१.८.१३. नि . १४.२३.
परस्पर सदा साथ रहने वाले (शश्वन्ता) और सभी लोकों में साथ हो जाने वाले (विषूचीना) आत्मा और मनोमय सूक्ष्म देह विविध लोकों को प्राप्त करते हैं ।

शश्वान् - नित्य नियम पूर्वक कार्य करने वाला ।
'शश्वां अपो विकृतं हित्व्यागात्'
ऋ. २.३८.६

शशीयसी - अतिशयेन दुःख प्लावयन्ती (समस्त संकटों से पार करने वाली स्त्री) -दया.
'उत त्वा स्त्री शशीयती'
ऋ. ५.६१.६

शष्प - (१) शष्पते हन्यत इति शष्पम् बालतृणं कान्तिक्षयो वा - दया. (२) नया उगा धान्य, (३) शत्रुहनन का साधन
दीक्षायै रूपं शष्पाणि .
वाज.सं. १९.१३

शष्प्य - घास तृण आदि पर गुजर करने वाला ।
'नमः शष्प्याय च फेन्याय च'
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२.

शष्पिञ्जरः - (१) सूखे घास के समान शत्रु को जलाने वाली दीप्ति से युक्त तेजस्वी पुरुष, (२) रुद्र का नाम, (३) घास या चराने का प्रबन्धकर्ता ।

'नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते'
वाज.सं. १६.१७; का.सं. १७.१२.

शस् – (१) शासन, अनुशासन ।
इषमश्याम वसवः शसा गोः'
ऋ. ५.४१.१८

शस् – (१) स्तुति कर्ता, (२) प्रशंसा कर्ता, महिमा गाने वाला । शस् + क्विप् = शस् ।
'यजाम देवान् यदि शक्नवाम
मा ज्यायसः शंसमा वृक्षिदेवाः'
ऋ. १.२७.१३; आप.श्रौ.स. २४.१३.३.
अर्भक, महत्, आशाः, ज्यायसः आदि भेद देवों के किए गए हैं । स्वा. दयानन्द ने देव का अर्थ विद्वान् माना है ।

शंस – (१) शास्त्र वक्ता, (२) प्रशंसनीय परमेश्वर ।
'शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तुः
ऋ. ७.३५.२, अ. १९.१०.२
(३) प्रशंस्त उपदेश ।

शंसत – गुणगान करो ।
'मुहुरुक्था च शंसत'
ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१, साम. १.२४२, २.७१०.
परमात्मा या इन्द्र प्रशस्त गुण, कर्म का बार बार गान करो (मुहुः उक्था च शंसत) ।

शंसन् – स्तुति या ज्ञानोपदेश करने वाला ।
'यः शंसन्तं यः शसमानमूती'
ऋ. २.१२.१४; २०.३. अ.२०.३४.१५

शंसय – विख्यात् कर ।

शंसपा – शंशपा नामक वृक्ष ।
'भगेन मा शांशपेन'
अ. ६.१२९.१

शसन – न. । (१) शासन कार्य ।
'उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा'
ऋ. १.१६३.१२, वाज.सं. २९.२३, तै.सं. ४.६.७.४, क.सं.(अश्व.) ६.३; श.ब्रा. १३.५.१.१७,१८, आश्व.श्रौ.सू. १०.८.७

शंसम् – (१) शान्तिदायक मेघ आदि, (२) उपदेश करने योग्य उत्तम वेद वचन ।
'पुरू यच्छंसममृतास आवत'.
ऋ. १.१६६.१३

शस्मन् – (१) शस् + मतुप् = शस्मत् । अर्थ– 'स्तवनीय, प्रशंसनीय –दया.
(२) शासन करने के लिए ।
'अधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः'
ऋ. १.११९.२
जिस प्रकार रथ पर चढ़ते ही सभी दिशाएं या दूर देश भी प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार शासन करने के निमित्त उपदेशक गुरुजन भली प्रकार प्राप्त हों ।

शसमानः – (१) ऊंची गति करने वाला ।
'यः शंसन्तं यः शसमानमूती'
ऋ. २.१२.१४; २०.३; अ. २०.३४.१५.
(२)वि. । शसमानः स्तुवत् (शंसा या स्तुति करता हुआ) ।
(३) शंस् + चानश् = शस्यमान (अनुनासिक का लोप) । इन्द्र या राजा का खड्गधारी ।
'धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी'
ऋ. १०.८९.५; तै.सं. २.२.१२.३; तै.आ. १०.१.९; नि. ५.१२.

शस्त – अनुशासित ।
'अथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम्'
ऋ. ३.५३.३

शस्त्र – (१) स्तुतियुक्त मन्त्र (२) शस्त्रधारी पुरुष ।
'प्रणवैः शस्त्राणां रूपम्'
वाज.सं. १९.२५

शस्यमान – (१) कहा जाता हुआ–सा.
(२) प्रशंसनीय –दया.
'प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय'
ऋ. ४.४.१५; तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५:१७४.७; का.सं. ६.११.
हे अग्नि, तू हमारे कहे स्तोत्रों को स्वीकृत कर–सा. ।
हे राजन्, हमारे प्रशंसनीय कार्यों को आप स्वीकार करें । – दया. ।

शस्यमाना – सखियों के द्वारा पति के गुणों के सम्बन्ध में कही जाती हुई कन्या ।
'वि जागृविर्विदथे शस्यमाना'
ऋ. ३.३९.२

शंसा – (१) प्रशंसनीय कामना, (२) स्तुति ।
'सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु'
ऋ. ७.२५.३
हे इन्द्र, नाना प्रकार की प्रशंसनीय कामनाएं हों या आए हुए आप के लिए सहस्रों स्तुतियों हो

तथा धन हो ।
(३) द्वि.व. । द्यावापृथिवी या माता पिता का विशेषण । अर्थ-स्तुति योग्य ।
'उभा शंसा नर्या मामविष्ठाम्'
ऋ. १.१८५.९

शंस्ता - (१) सात ऋषिजों में एक प्रशस्ता नामक ऋत्विज् (२) उत्तम प्रशंसक (३) सन्मार्ग का उपदेष्टा ।
'ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः'
ऋ. १.१६२.५; वाज.सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६.१: १८२.६; का.सं. (अश्व.) ६.४.

शस्तोक्थ - विद्वान् वेदों का ज्ञाता ।
'यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त इष्टयजुष
स्तुतस्तोयस्य शस्तोक्थस्य'
वाज.सं. ८.१२, श.ब्रा. ४.४.३.११,

श्नम्नन्ते - दूर करते हैं, हिंसा करते हैं ।
'देवासो मन्युं दासस्य श्नम्नम्'
ऋ. १.१०४.२
देवगण या दानशील अन्नादि के दाता विद्वान् (देवासः) अपने अधीन सेवक जन के (दासस्य) क्रोध या उद्वेग् को (मन्युम्) सदा दूर करते रहें (श्नम्नन्ते)।

श्नथन - दुष्टों को शिथिल करने वाला । इन्द्र का विशेषण ।
'रथ्रचोदः श्नथनो वीडितस्पृथुः'
२.२१.४

श्नथयः - अताड़यः (ताड़ित किया) ।

श्नथ - (१) ताड़ित करना (२) शिथिल करना । 'श्नथयः' (३) चूर्ण करना

श्नथिता - (१) शिथिल करने वाला ।
'इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः'
ऋ. १.५७.२, अ. २०.१५.२.
(२) सब पदार्थों को चूर्ण करने वाला

श्नप्तर - मुख्य भाग ।
'विष्णोः श्नप्तरे स्थः'
वाज. ५.२१; का.सं. २.१०; श.ब्रा. ३.५.३.२४; का.श्रौ.सू. ८.४.१९; आप.श्रौ.सू. ११.८.४

श्मन् - 'श्म शरीरम्' (श्म शरीर का वाचक है) । अर्थ 'शरीर' ।

श्मशा - शु अश्नुत इति वा, श्म अश्नुत इति वा ।
(क) श्म + अश् + टाप् = श्मशा । (शकन्धु के ऐसा) ।
(ख) अश् (व्याप्त्यर्थक) + अच् = अश, शु (आशु) + अश = श्वस = श्मस् । उ का व और व का म पृषोदरादिवत् ।
अर्थ - (१) कुल्या, (२) शरीर की नाड़ी, (३) नदी, क्योंकि यह शीघ्र फैल जाती है । (४) नहर (शु + अशूङ्) ।
'कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ
अव श्मशा रुधद्वाः
दीर्घं सुतं वाताप्याय'
ऋ. १०.१०५.१
हे इन्द्र, यह मेरा स्तोत्र सर्वतोभाव से (आ) कामना करते हुए इस यजमान के निमित्त (हर्यते) तीन बार अभिसुत सोम रस के प्रति (दीर्घं सुतम्) पीने के लिये रोकेगा (अवारुधत्) जैसे नदी जल को या शरीर की नाड़ी शरीर का रस रोकती है (श्मशा वा) ।
अन्य अर्थ - हे सर्ववासक परमेश्वर (वसो), आप वेदाध्ययन की कामना करने वाले मुझको (स्तोत्रं हर्यते) जैसे शरीर गत नाड़ी (श्मशा) रुधिर को रोकती है (वाः अवारुधत्) एवं वीर्य को रोकने की शक्ति प्रदान करेंगे जिससे दीर्घायु पुत्र (दीर्घं सुतम्) प्राणादि वायुगणों से बढ़ा हुआ होता है (वाताप्याय) ।
अन्य अर्थ - हे राजन् ,जब कभी जल रुक जाये (वाः अवारुधत्) अनावृष्टि हो जाये तब वेद प्रेमी (स्तोत्रं हर्यते) पुत्रवत् महान् प्रजावर्ग को (दीर्घं सुतम्) जल प्रदान करने के लिए (वाताप्याय) नहर खुदवाये (श्मशा) ।

श्मशान - श्मशानम् श्मशयनम् (श्म के शमन के स्थान) । श्म का अर्थ शरीर है । श्मशयन से ही श्मशान बना है ।

श्मश्रु - श्म + श्रि । (१) दाढ़ी मूंछ का बाल ।
'आदित्याँ श्मश्रुभिः'
वाज.सं. २५.१
'मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम'
वाज.सं. १९.९२, मै.सं. ३.११.९:१५४.१०. का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.५.
(३) श्मश्रि-श्मश्रु । श्मनि श्रितं भवति । (लोम शरीर में श्रित रहता है) । श्म का अर्थ शरीर

है । अर्थ है- लोम, रोम, रोआं ।
(४) जीव, श्मशु शरीररेषु श्रूयन्त इति श्मश्रवः जीवाः

श्मश्रुषुश्रितः - (१) श्मसु शरीरेषु श्रूयन्त इति श्मश्रवो जीवाः (शरीरों में विद्यमान जीवों या मूछों वाले वीर पुरुषों में आश्रय करने योग्य)
(२) जीवों का वीर पुरुषों द्वारा सेवित,
(३) युद्ध कालों में आश्रय करने योग्य ।
'यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः'
ऋ. ८.३३.६

श्मसि - उश्मसि- (हम सदा कामना किया करें) ।
'उत वः शंसमुशिजामिव श्मसि'
ऋ. २.३१.६

श्रत् - (१) सत्य, (२) विद्वान् ।

श्रत्तम - विद्वानों में श्रेष्ठ । श्रत् + तम । श्रत् का अर्थ सत्य तथा विद्वान् है ।

श्रथ्नानः - बांधता हुआ ।
'स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्'
अ. १४.१.५७

श्नथित - शिथिलीकृत, ढीला, शिथिल, लिपटा, हुआ,
'अवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः'
ऋ. १.११६.२४
प्रजाओं के बीच अपने कार्यों मे शिथिल हुए राष्ट्र को जल में बहती हुई नाव के समान....
अथवा,
जरायु से बंधे, गर्भगत जलों में लिपटे बालक को...

श्रद्धा - credo लैटिन प्रति रूप-श्रध् (विश्वास या प्रतीति करना) धातु से निष्पन्न-डा. फतहसिंह ।
श्रध् धातु डा. फतह सिंह के मत से 'शिरस् + धा' से बना है । अतः श्रद्धा का अर्थ है प्रतीति मात्र में मानसिक और दैहिक दोनों प्रकार से अपने मस्तक को रखना ।
सद्ध (नीचे को ओर जाने वाली), श्रृद्ध (निष्कासिता) ।
(३) देवताओं के अस्तित्व और मानव जीवन में उनके सक्रिय हस्तक्षेपों पर विश्वास ।
(४) यजुर्वेद संहिता १९-७७ में श्रद्धा को सत्य और अश्रद्धा को असत्य कहा गया है । (५) भाग्य की परम विधात्री शक्ति (ऋ.१०.१५१.१) ।
(५) श्रत् + धा । सत्यज्ञान धारण करने का सामर्थ्य ।
'स मे श्रद्धां च मेधां च'
अ. १९.६४.१, शां.गृ.सू. २०.१०.३
(६) श्रत् + धान । श्रद्धा श्रद्धानात् जिसमें श्रत् अर्थात् सत्य हो-जो सत्य का आधान हो वह श्रद्धा है । धर्म, अर्थ काम और मोक्ष में अविपर्यय बुद्धि ही श्रद्धा है ।
(७) श्रत् + धा । सत्य को धारण करने वाली बुद्धि ।
'श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधिजाता'
अ. ६.१३३.४

श्रद्दधानः - (१) सत्यस्वरूप को धारण करने वाला -परमेश्वर ।
'स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः'
ऋ. १.१०३.३
(२) श्रद्धावान्, (३) सत्य को धारण करने वाला ।
'एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते'
अ. ६.१२२.३; १२.३.७

श्रद्धामनस्यः - (१) सत्य धारण से युक्त चित्त वाला (२) श्रद्धालु पुरुष ।
'श्रद्धामनस्या श्रृणुते दभीतये'
ऋ. १०.११३.९

श्रद्धामनाः - (१) सत्य को धारण करने की इच्छा वाला (२) श्रद्धा से युक्त मन वाला ।
'श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम्'
ऋ. २.२६.३; तै.सं. २.३.१४.४; मै.सं. ४.१४.१०: २३१.३; तै. ब्रा. २.८.५.३

श्रद्धेय - (१) सत्य रूप से धारण करने योग्य, (२) श्रद्धा योग्य ।
'श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि'
ऋ. १०.१२५.४; अ. ४.३०.४

श्रमयुः - परिश्रमी, तपस्वी ।
'श्रमयुवः पदव्यो धियन्धाः
तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः.'
ऋ. १.७२.२

श्रव - बाजा आदि बजाने वाला ।
'नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च'
वाज.सं. १६.३४, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६:

१२५.७; का.सं. १७.१४

श्रवण – (पु.) । (१) श्रवण नामक नक्षत्र ।

'श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्'

अ. १९.७.४

(२) (न.) । धन, (३) यश

'सा नो ददातु श्रवणं पितृणाम्'

मै.सं. ४.१२.६: १९५.९; आश्व.श्रौ.सू. १.१०.८; शा.श्रौ.सू. ९ .२८.३; नि. ११.३३

वह कुहू अर्थात् अमावास्या या गम्भीर गृहपत्नी हमें पितरों का एवं कुल क्रमागत् ऐश्वर्य एवं यश का दान करें ।

श्रवणीयपार – अध्ययन करने योग्य ऋग्वेद को समाप्त कर देना ही 'श्रवणीय पार' कहा जाता है ।

श्रवत् – सुन ले ।

'आ घा गमद् यदि श्रवत्'

ऋ. १.३०.८, अ. २०.२६.२; साम. २.९५.

वह यदि सुन ले तो अवश्य आवे ।

श्रवयन् – श्रवण करने या कराने की इच्छा करता हुआ ।

श्रवस् – न. । श्रु (सुनना) + असुन् = श्रवस् ।

(क) श्रूयते हि अन्नं वर्ण्यमानम् (अन्न का वर्णन सुना जाता है) ।

(ख) अथवा, श्रूयते लोके ख्यायते अनेन इति श्रवस् (लोक में मनुष्य इससे ख्यात होता है अतः यह श्रवस् है) ।

अर्थ – (१) अन्न, (२) धन, (३) कीर्ति, यश जो सुना जाता है ।

'उताभये पुरुहूत श्रवोभिः'

ऋ. ३.३०.५

(४) प्रख्यात आत्मा ।

'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः
श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्'

ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६: २०६.११, का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२.

जो पूज्य अग्नि के अमृत पद को देखते हुए सर्वप्रसिद्ध परमात्मा की इच्छा रखने वाले (श्रवस्यवः) उस प्रख्यात आत्मा को प्राप्त करते हैं (श्रवः आपन्) ।

(५) श्रवण शक्ति–सा. (६) विद्या श्रवण, ज्ञान–दया.

'प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां
यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम्'

ऋ. १.११७.८

हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय, तुम दोनों का वह कृत्य सचमुच प्रशंसनीय जब नार्षद् ऋषि को तुम दोनों ने श्रवण शक्ति दी ।–सा.

हे बलवान् राजा तथा राजपुरुष, आप के जो वर्णनीय विद्याश्रवण और कर्म हैं उस ज्ञान और कर्म की शिक्षा राज कर्मचारियों के पुत्रों को विशेषतया दें ।

(७) नया पुराना अन्न,

(८) सोमरस ।

'अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुः'

ऋ. ६.३७.३; नि. १०.३

नया पुराना अन्न या सोमरस (श्रवः) लावें (अभिवहेयुः) । धन के अर्थ में प्रयोग–

'श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्'

ऋ. ४.३८.५; नि. ४.२४

ऐसे इन्द्र की हम धन एवं पशुओं के यूथ का लक्ष्य कर प्रार्थना करते हैं ।–सा.

जिस राजा की पशुतुल्य कीर्ति या धन को या पशुतुल्य कर्मचारी वर्ग या सैनिक वर्ग को कोसते हैं–सा।....दया.

श्रवस्कामः – श्रवणीय अभिलाषा और संकल्प वाला–इन्द्र, परमेश्वर ।

'श्रवस्कामं पुरुत्मानम्'

ऋ. ८.२.३८

श्रवस्य – (१) श्रवणीय राज्य कार्य सुनने के लिए सभासद् ।

'एकं च यो विंशतिश्च श्रवस्य'

ऋ. ७.१८.११

(२) श्रुति अर्थात् वेदज्ञान से युक्त ।

'उदुब्रह्माण्यैरत श्रवस्या'

ऋ. ७.२३.१; अ. २०.१२.१; साम. १.३३०; ऐ.ब्रा. ६.१८.३; २०.७ कौब्रा. २९.६; गो.ब्रा. २.४.२; ६.१.२; ऐ.आ. ५.२.२.३; वै.सू. २२.१३.

कर्म । श्रु + असुन् = श्रवस् । श्रवस् + यत् = श्रवस्य ।

'अकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा'

ऋ. १०.४४.६; अ. २०.९४.६; नि. ५.२५.

जिसने श्रवणीय दुस्कर कर्म किए ।

(५) श्रवण करने योग्य,
(६) शब्दकारी,
(७) वेदज्ञान में कुशल विद्वान् ।

श्रवस्यत् – श्रवस् + शतृ = श्रवस्यत् (१) अन्न धन की इच्छा करता हुआ –सा.
'श्रवस्यतामजाश्व'
ऋ. १.१३८.४; नि. ४.२५.
हे अजाश्व, तू हमें अन्न धन देने की इच्छा कर ।
(२) धनवान् ।

श्रवस्युः – (१) अन्न को उत्तम बनाने वाला–अग्नि ।
'मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी'
ऋ. २.१०.१
(२) यश समृद्धि का अभिलाषी ।
'अहूमहि श्रवस्यवः'
ऋ. ६.४५.१०; ८.२४.१८; अ. २०.६४.६; साम. २.१०३६.
(३) श्रु + असुन् = श्रवस्, श्रवस् + कपच् = श्रवस्थ, श्रवस्य + उ = श्रवस्यु । अन्न तथा यश की इच्छा करने वाला, यश का इच्छुक ।
'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः
श्रवस्यवःश्रव आपन्नमृक्तम्'
त्र. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६:२०६.११; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२.
जो पूज्य अग्नि के अमृत पद को भक्ति भाव से देखते हुए सर्व प्रसिद्ध परमात्मा की इच्छा रखने वाले उस प्रख्यात् आत्मा को प्राप्त करते हैं ।
(३) अन्न देने वाला मेघ, ।
'रथं मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०
हम मारुत रूपी रथ वाले या मरुतों से युक्त गतिशील एवं अन्न दाता मेघ को (श्रवस्युम् मारुतं रथम्) शीघ्र (नु) बुलाते हैं । (आहुवामहे) ।

श्रवाय्य– (१) श्रवण करने योग्य ।
'रयिं सोम श्रवाय्यम्'
ऋ. ९.६३.२३, साम. २.५८६
(२) स्तुत्य, कहने सुनने लायक । (३) आश्चर्यकारी, ।
'वाजो अस्ति श्रवाय्यः'
ऋ. १.२७.८; साम. २.७६६
इसका बलवीर्य जगत् में कहने सुनने लायक प्रशंसनीय अथवा आश्चर्यकारी है ।
'सनः पृथु श्रवाय्यम्
अच्छा देव विवासिसि'
ऋ. ६.१६.१२; साम. २.१२; तै.ब्रा. ३.५.२.२.

श्रविष्ठ – (१) श्रुतिवान्, (२) ब्रह्मज्ञानवान्, (३) ऐश्वर्यवान्, (४) विश्रुतयोगी पुरुष ।
'वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः'
अ. १९.३९.२

श्लक्ष्ण – चिकना पदार्थ ।
'अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशत्'
अ. २०.१३३.६; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.६

श्लक्ष्णा – स्नेहवाली ।
'श्लाक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायाम्'
अ. २०.१३३.५; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.५.

श्लक्ष्णिका –घृतादि के स्पर्श से स्निग्ध स्त्री,

श्वकिष्किन् ,श्वकिष्की – कुत्तों की चाल चलने वाला ।
'अरायांश्चकिष्किणः'
अ. ८.६.६
'श्वघ्नी व कृत्नुर्विज आमिनाना'
ऋ. १.९२.१०
कुत्तों की सहायता से मृगों को मारनेवाला व्याघिनी या कुकुर आदि पशुओं को मारने वाली भेड़ियों के समान (श्वघ्नी इव) पोरू पोरू काटने वाली (कृत्नुः) भय से व्यथित प्राणियों को (विजः) कालक्रम से विनाश करती हुई (आमिनाना). ..।
(३) जुआखोर, (४) कुत्ते का शिकारी ।
'श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमादत्'
ऋ. २.१२.४; अ. २०.३४.४
(५) अपना द्रव्य नष्ट करने वाला, (६) अपने आश्रित जन को मारने वाला, (७) अपने भविष्य को नाश करने वाला जुआखोर ।
'श्वघ्नीय निवता चरन्'
ऋ. ८.४५.३८
(८) स्व + हन् + मिनि (भूत अर्थ में) = श्वघ्नी = श्वघ्नी । हन् की उपधा का लोप, ह् का घ् और 'स' काश् व्यत्यय । अर्थ है– परधनहारी, धूर्त, जुआरी ।

'कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५; नि. ५.२२.
जैसे परधनहारी, धूर्त या जुआरी जुए में (देवने) पूर्व पुरुषों का अर्जित धन ढूंढता है (कृतं वि चिनोति)।
'कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले'
अ. ७.५०.६
(९) अपने भविष्य का नाश करने वाला।

श्वञ्च – धा.। उत्साह उत्पन्न करना, प्राप्त करना, ले जाना।
'उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु'
ऋ. १०.१८.१२; अ. १८.३.५०

श्वन् – (१) शु + अप् + कनिन् = श्वन्, (२) शव (गत्यर्थक) + कनिन् = श्वन्। अर्थ है– (१) कुत्ता। कुत्ता बहुत चलता है। आशु या शु समानार्थक है। (ग) श्वस् (वधार्थक) + कनिन् श्वन् (कुत्ता शिकारी होता है।
'श्वाक्काक इति कुत्सायाम्'
(श्वा और काक शब्द कुत्सा का द्योतक है)। जो कुत्तों सा आचरण करता है वह भी श्वा कहलाता है।

श्वन्वती – (१) कुत्तों के समान स्वामिभक्त सेना।
'श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे'
अ. ११.९.१५
(२) कुत्ते के दोष गुण, कर्म और स्वभाव वाली स्त्री, (३) कुत्ते द्वारा फैलने वाला रोग।
'शतं च शश्वन्वतीनाम्'
अ. १९.३६.६
(४) कुत्तों को साथ लिए आने वाली मांस भक्षिणी स्त्री। (५) श्वन्वती नाम्नी अप्सराएं।

श्वनिः – कुत्तों को साधने वाला–सिखलाने वाला।
'नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२७; मै.सं. २.९.५: १२४.७; का.सं. १७.१३.

श्वनी – कुत्ता पालने वाला शिकारी।
'अन्तकाय श्वनिनम्'
वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१.३.

श्वः – () आने वाला कल।
'श्वश्च सर्वतातये'
ऋ. ६.५६.६
'अद्य जीवानि मा श्वः'
अ. ५.१८.२
(२) श्वः उपाशंसनीयः कालः (श्वः के लिए प्राणी अभिप्राय वश आशंसा करता है)। –आगामी दिन।
'न नूनमस्ति नो श्वः'
ऋ. १.१७०.१; नि. १.६

श्वःश्वः – भविष्य में।
'भूयो भूयः श्वः श्वः'
अ. १०.६.५–१७

श्वपद् – कुत्ते के से नखों वाला मांसाहारी जन्तु।
'व्याघ्रः श्वपदामिव'
अ. ८.५.११; १९.३९.४

श्वभ्रा – गढ़ा।
'परिश्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम्'
ऋ. २.२७.५

श्वयातुः – (१) कुत्ते के समान चाल चलने वाला, (२) पागल कुत्ते के समान अन्यों को निष्प्रयोजन काटने वाला, (३) परुषभाषी, गुर्राकर डराने वाली।
'एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातवः'
ऋ. ७.१०४.२०; अ. ८.४.२०
(४) कुत्तों को साथ लिए चलने वाला, (५) टुकड़खोर, (६) पागल कुत्तों के समान प्रजा को फाड़ खाने वाला प्रजापीड़क।

श्ववर्त – (१) कल तक वर्तमान (२) एक दिन तक जीने वाला कीट।
'ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः
श्ववर्तेभ्यो अधारयम्'
अ. ९.४.१६

श्वशुरः – (१) शूरवीर नायक।
'सा वसु दधती श्वसुराय'
ऋ. १०.९५.४
(२) शु आशु अश्नोति आप्नोति इति श्वसुरः। (क) शु + अश् + हरन् = श्वसुर (शावशेराप्तौ) (ख) सु + आशित = श्वसुरः (ग) सुखेन शीघ्रं वा प्राप्यत इति श्वशुरः।
अतिशीघ्र, सर्वप्रथम प्राप्त होने वाला नायक
'ममेदह श्वशुरो ना जगाम'
ऋ. १०.२८.१
(३) स्त्री या पति का पिता।

श्वसथ – श्वास ।
'वृत्रस्यत्वा श्वसथादीषमाणाः '
ऋ. ८.९६.७; साम. १.३२४, ऐ.ब्रा. ३.२०.१; तै.ब्रा. २.८.३.५; शां.श्रौ.सू. १३.१२.३.४,

श्वसन् – (१) सांस लेता हुआ ।
'धीरमधीरा झपति श्वसन्तम् '
ऋ. १.१७९.४
काम से अधीर लोपामुद्रा अपने धीर पर श्वांस लेते हुए पति को चित्त से पान करती या देखती है ।

श्वसन – (१) श्वस् + युच् = श्वसन् । पुं. । अर्थ – (१) वायु, ।
'श्वसनः स्पर्शनः वायुः '
– अमरकोष
(२) वायु का स्थान अन्तरिक्ष

श्वसीवान् – समस्त प्राणियों को प्राण देने वाले पवन से युक्त
'अध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः '
ऋ. १.१४०.१०
और वर्षणशील मेघस्थ
(वृषभः) विद्युत् रूप अग्नि (दमूनाः) समस्त प्राणियों को प्राण देने वाले पवन से युक्त होकर (श्वसीवान्) ।
अथवा,
बड़ा साँढ़ (वृषभः) महा प्राण से युक्त होकर (श्वसीयान्) ।
अथवा,
स्वयं दात्तचित्त जितेन्द्रिय राजा शत्रुओं के दमन में दत्त चित्त होकर (दमूनाः)

शाक – शक्तिशाली ।
'शाक्मना शाको अरुणः सुपर्णः '
ऋ. १०.५५.६; साम. २.११३३; शां.श्रौ.सू. १८.१.७.

शाक्मना – (१) अपनी ही शक्ति से सर्व शक्तिमान् । (२) महती शक्ति

शाक्वर – (१) शक्तिशालियों के ऊपर विराजने वाला विष्णु, (२) राजा ।
'तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय '
वाज.सं. ५.५.
(३) त्रिनव स्तोम से उत्पन्न शाक्वर और रैवत नामक दो पृष्ठ , (४) शक्तिशाली राष्ट्र ।
'त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वर रैवते '
वाज.सं. १३.५८, तै.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.१७.१९: १०४.१४; का.सं. ४.१६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.८.
(४) शक्तिशाली ।
'शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः '
अ. ९.१.९
'पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो
राजन्य अमिक्षाव्रतो वैश्यः'
(६) शक्वरी का अर्थ ऋचा है । अतः शाक्वर का अर्थ है ।– ऋचा सम्बन्धी ज्ञान, वैदिक ज्ञान–दया.

शाकल – ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक ।

शाकिन् , **शाकी** – शक्तिमान् ।
'शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरम् '
ऋ. ३.५१.२
क्रीड़ी च शाकी चोजेषी
वाज.सं. १७.८५
'शाकी भव यजमानस्य चोदिता '
ऋ. १.५१.८
तू यजमान या कर देने वाले या तेरा आदरमान करने वाले राष्ट्रवासी जन का आज्ञापन होकर शक्तिमान् होकर (शाकी भव) रह ।

शाखा – 'खे शेते' (आकाश में सोती है अतः शाखा है) (१) डाली ।
'पक्वा शाखा न दाशुषे '
ऋ. १.८.८, अ. २०.६०.५, ७१.४
(२) 'खेशयाः' से पृषोदरादिषत् शाखा बना है ।
(३) शक् + ण (कर्त्ता में) = शाखा (क् का ख्) । शक्नोतेः वा (शक् धातु से भी शाखा शब्द बनता है) ।
(२) पुत्र पौत्रादि की परम्परा ।

शांखायन – ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक ।

शाङ्कुर – (१) कील के समान सबके दिल में चुभने वाला, (२) पुरुष लिंग से युक्त ।
'शंकुर एव शांकुः –सा.
'शांकुरस्य नितोदिनः '
अ. ७.९०.३

शाचिगुः – (१) शक्तिशाली बैलों, अश्वों, धनुषों और वाणियों वाला– इन्द्र, राजा, विद्वान्, परमेश्वर ।
'शाचिगो शाचिपूजन'

अयं रणाय ते सुतः'
ऋ. ८.१७.१२; अ. २०.५.६, साम. २.७६
(२) शक्तिशाली पृथ्वी आदि लोकों का स्वामी इन्द्र (३) शक्ति से गमन करने वाला ।
(४) शची के बुलाने पर या सोमादि यज्ञ में बुलाने पर आने वाला इन्द्र -सा.
(५) बुद्धि पूर्वक वाणी वाला ज.दे.श.।

शाचिपूजन - (१) व्यक्तवाणी द्वारा पूजने योग्य ।
(२) यज्ञ में बुलाकर पूजे जाने वाला-सा. (३) विद्या का सत्कार करने वाला-ज.दे.श.
(४) शक्तिशाली पुरुषों से भी पूजने योग्य इन्द्र
(५) शक्ति द्वारा पूजनीय ।

शाची - शाचाः शक्तयो अस्य शन्ति इति शाची
(१) शक्ति से शक्तिमान् ।
'शाचिन् यव्ये गव्य एतदन्नमत्त'
वाज.सं. २३.८

शांड - (क) शं ददाति इति शांडः (ख) स्यति अन्तं करोति वा शत्रूणाम् । शां + ड = शांड ।
अर्थ - (१) प्रजा को शान्तिदायक (२) शत्रुओं को अन्त करने में वीर समर्थ पुरुष
'शांडो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्'
ऋ. ६.६३.९

शाण्डदूर्वा - बड़ी दूब ।
'शाण्डदूर्वा व्यल्कशा'
अ. १८.३.६

शातपन्ता - (१) सैकड़ो व्यवहारों को करने वाले स्त्री पुरुष, (२) अश्विद्वय ।
'मित्रेव ऋता शतरा शातपान्ता'
ऋ. १०.१०६.५

शातवनेय - (१) शतानि असंख्यातानि, वनयः संभक्तयः येषां ते शतवनयः तैः निवृतम् जगत् (संस्वर जिस में सैकड़ो संविभाग है) । (२) बहुत से सहायकों से चलाने योग्य सैकड़ो ऐश्वर्यों के स्वामियों से पूर्ण राष्ट्र या जगत् ।
'शातवनेये शतिनीभिरग्निः
पुराणीथे जरते सूनृतावान्'
ऋ. १.५९.७
वह सैकड़ो उत्तम कार्यों वाली शक्तियों से युक्त (शक्तिनीभिः) ज्ञानवान् अग्रणी (अग्निः) शुभ सत्य वाणी तथा ज्ञान और अन्नसम्पदा से सम्पन्न (सूनृतावान्) बहुत से सहायकों से लाए जाने योग्य सैकड़ो ऐश्वर्यों के स्वामियों से पूर्ण राष्ट्र और जगत् में (शान्तिवनेये) स्तुति किया जाता है ।

शाद - (१) काटने की क्रिया, (२) छेदनकारी शास्त्रबल ।
'शादं दद्भिः'
वाज.सं. २५.१; मै.सं. ३.१५.१: १७७.७; का.सं. (अश्व.) १३.१; श.ब्रा. १३.३.४.१.

शान्तमः - शन्तमः । अत्यन्त कल्याण कारक ।
'त आ गतावसा शंतमेन'
ऋ. १०.१५.४. अ. १८.१.५१, वाज.सं. १९.५५; तै.सं. २.६.१२.२; मै.सं. ४.१०.६: १५६.१३; का.सं. २१.१४
वे आप अत्यन्त कल्याण कारक रक्षण के साथ आवें ।

शाप - (१) जल, (२) ललकारता हुआ शत्रु ।
'प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति'
ऋ. १०.२८.४
(३) शाप, आक्रोशवचन
'शापं सिन्धूनामकृशष्णोदशस्तीः'
ऋ. ७.१८.५

शाबल्या - शबल वर्ण अर्थात् मलिन कार्य करने वाली जाति ।
'यादसे शाबल्याम्'
वाज.सं. ३०.२०

शाम्बंर वसु - मेघ से बरसा जल ।
'शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म'
ऋ. ६.४७.२२

शामुल्य - शरीरस्थ मल, शमन करने योग्य मानस दुर्भाव या मलिनता ।
'परादेहि शामुल्यम्'
ऋ. १०.८५.२९; १४.१.२५,

श्याम - (१) श्याम लोह ।
'श्यामञ्च मे लोहञ्च मे'
वाज.सं. १८.१३, तै.सं. ४.७.५.१, का.सं. १८.१०
(२) रात
'रात्रिः श्यामः'
कौ.सू. २.९.
(३) श्यैङ् (गत्यर्थक) + मक् = श्याम । ऐ का आ । 'श्यामं श्यायतेः' अर्थात् श्याम शब्द सम्पर्क से उत्पन्न होता है ।

श्यामा – (१) सरूपा नाम्नी ओषधि जो कुष्ठ की उत्तम ओषधि है । गुडूची, कस्तूरी, नील पुनर्नवा, नीलिनी पिफली, रोचना, वट पत्री और हरिद्रा श्यामा वर्ग की हैं ।
'श्यामा सरुपङ्करणी'
अ. १.२४.४

श्यामाक – सावाँ- चावल ।
'श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे'
वाज.सं. १८.१२; तै.सं. ४.७.४.२; मै.सं. २.११.४: १४२.३
'यथा श्यामाकः प्रपतन्'
अ. १९.५०.४
'श्यामाकं पक्वं पीलु च'
अ. २०.१३५.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.५.

श्याम्बु – (१) जल सहित नदी, (२) समुद्र और मेघ से उत्पन्न कुष्ठ नामक औषधि
'त्रिः शाम्बुभ्यो अंगिरेभ्यः'
अ. १९.३९.५

श्रायाः – (१) सिंहनाद सुनाने वाले, (२) स्थिरता से सब का आधार भूत, (३) गुणों से प्रसिद्ध ।
'श्राया रथेषु धन्वसु'
ऋ. ५.५३.४

श्याव – (१) श्याम रंग ।
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वम्'
ऋ. १०.६८.११; अ. २०.१६.११
(२) श्यैङ् (गत्यर्थक) + अण् = श्याव । कुष्ठ रोग के कारण कपिश रंग (३) श्याम नामक ऋषि या राजा जिसे अश्विनी कुमारों ने कुष्ठ रोग से मुक्त किया था –सा.
(४) प्रापक –दया.
'युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम्'
ऋ. १.११७.८
हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों ने कुष्ठ रोग से कपिश वर्ण वाले श्याम नामक ऋषि या राजा को ज्वलित रूपश्री या दीप्तवर्णा स्त्री दी–सा. ।
हे राजा तथा राजपुरुषो, आप उत्तम निवास के प्रापक विद्वान् को लक्ष्मी प्रदान करें । (रुशतीम् अदत्तम्) । (३) सूर्य किरण रूपी अश्व निघंटु

श्यावक – (१) गतिमान, (२) वैश्य का स्वभाव ।
'यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे'
ऋ. ८.४.२, अ. २०.१२०.२; साम २.५८२.
(३) विद्वान्
'शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपम्'
ऋ. ८.३.१२.
(४) इधर उधर जाने वाला व्यापारी –वैश्य

श्यावदत् – काले मलिन दाँतों वाला ।
'श्यावदता कुनखिना'
अ. ७.६५.३

श्यावा – (१) जमुनी रंग के किरण
(२) अश्व का जोड़ा
श्यावा रथं वहतो रोहिता नः
ऋ. २.१०.२
(३) ब.व. । समस्त लोकों में पहुंचने वाले, (४) प्राप्त होने वाले किरण (५) ज्ञान करने योग्य ।
'वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्'
ऋ. १.३५.५; तै.ब्रा. २.८.६.२
समस्त लोकों में पहुंचने वाले, श्वेत किरणों वाले सूर्य विविध रूप से प्रकाशित होते हैं ।
अथवा
ज्ञान करने योग्य (श्यावाः) शुद्ध विशद ज्ञान कराने वाले छन्दों के चरणों से युक्त (शितिपादः) परमात्मा मनुष्यों के विविध ज्ञानों का प्रकाश करते हैं ।

श्यावाश्वः – (१) श्याम वर्ण शिखा वाला अश्व, (२) श्यावश्वों का स्वामी
'प्र श्यावाश्व धृष्णुया ।
अर्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः'
ऋ. ५.२१.१
(३) ज्ञानवान आत्मा वाला (४) श्याव वर्ण अश्व वाला
(५) प्रदीप्त किरणों वाला सूर्य
'श्यावाश्वस्ते सविस्तोममानशे'
ऋ. ५.८१.५
(६) एक वैदिक ऋषि, (७) बलवान्, दृढ़ जितेन्द्रिय पुरुष, (८) श्यावरंग के अश्व वाला
'श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा श्रुणु'
ऋ. ८.३६.७
(९) श्याव अश्व वाला–रुद्र (१०) दिन और रात्रि रूप दो अश्वों वाला
'श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तम्'
अ. ११.२.१८
(११) ज्ञान में सिद्ध अश्व अर्थात् इन्द्रियों वाला

कुशल पुरुष (१२) मन ।
'यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वम्'
अ. ४.२९.४
(१३) दानशील इन्द्रियों से सम्पन्न ।
'श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः'
अ. १८.३.१५

श्याव्या – (१) अज्ञानयुक्त प्रजा (२) सम्पन्न समृद्ध सेना (३) रात्रि का अन्धकार ।
'यमङ्क्यन्तमानयन्नभूरं श्याव्याभ्यः'
ऋ. ६.१५.१७

श्यावी – (१) कृष्णवर्ण की रात्रि (२) तपोमयी राजसभा से संवलित प्रकृति (३) पृथिवी ।
'श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ'
ऋ. ३.५५.११
(४) काले लाल रंग की गौ
'दश श्यावीनां शता'
ऋ. ८.४६.२२
(५) अल्पकृष्ण वर्णा, कुछ अन्धकार की अंधियाली लिए हुई ।
'स्वसारः श्यावीमरुषीमजुस्रन्
चित्रमुच्छन्ती मुषसं न गावः'
ऋ. १.७१.१
किरणें जिस प्रकार अन्धकार के आवरण को दूर करती हुई कुछ कुछ अन्धकार से अंधियारी और कुछ कुछ ललाई लिए हुए उषा काल को प्राप्त होती है, उसी प्रकार स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाली भूमियां तथा उस पर रहने वाली प्रजाएं (स्वसारः) या विद्वान् जन ज्ञान से सम्पन्न आगे बढ़ने वाले, कान्तिमात्र, तेजस्वी संग्रह करने योग्य अद्भुत ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले शत्रुओं को जला डालने वाले राजा या विद्वत्सभा को प्राप्त हो ।

शारद – शरद् काल में होने वाला ज्वर ।
'सदन्दिमुत शारदम्'
अ. ५.२२.१३

शारदी – (१) वर्ष । सायण ने शरद् शब्द को वर्ष का वाचक मान शारदी का अर्थ वर्ष किया है ।
(२) शरद् आदि छः ऋतुओं के अनकूल-दया.
'सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दत्'
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
विस्तृत प्रयत्नसाध्य नगरियों को (सप्त यत्पुरः) कल्याणपद (शर्मदत्) बनाया । दया. ।
सात वर्षों तक (सप्तशारदीः)
मेघ के पुरों को (पुरः) प्रजाओं के कल्याण लिए (शर्म) दीर्ण किया (दर्त) स्व. ।

शारदीपुर् – (१) शरद् या वर्षों द्वारा मापी जाने वाली देह रूपी पुरी, (३) युद्ध यात्रा काल में खड़ी की गई शत्रुओं की गढ़ी ।
(४) शरद् ऋतु में सुख देने वाला स्थान ।
'सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दत्'
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
(४) शरद् काल में वायुमण्डल में पूर्ण होने वाली जल- धाराए, (६) शरद् अर्थात् युद्ध यात्रा काल में उपयोगी नगर ।
'पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः'
ऋ. १.१३१.४, अ. २०.७५.२
जिस प्रकार सूर्य शरद काल में वायु मण्डल में पूर्ण होने में वाली जल-धाराओं को जल वर्षा रूप में नीचे बरसाता है (शारदीः पुरः अवातिरः) ।
अथवा,
जब तू शरद अर्थात् युद्ध यात्रा के समय के उपयोगी नगरियों को नीचे गिरा देता है ।

शारदौ मासौ – शरदृतु के दो मास-आश्विन् और कार्तिक ।
'शारदौ मासो गोप्तारौ'
अ. १५.४.११.

शारदी अनुष्टुप – शरद् ऋतु से उत्पन्न अनुष्टुप छन्द जो छन्दों में सर्वप्रिय है ।
'अनुष्टुप् शारदी'
वाज.सं. १३.५७; तै.सं. ४.३.२.२; मै.सं. २.७.१९: १०.१०; का. सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.५.

शारिः – सारिका, मैनी ।
'सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक्'
वाज.सं. २४.३३, तै.सं. ५.५.१२.१; मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६; कां.सं. (अश्व.) ७.२

शारिशाका – मधुमक्षिका ।
'शारिशाकेव पुष्यत'
अ. ३.१४.५

शारी – (१) शरों की गति दया. (२) बाणों की पंक्ति ।

(३) शरधारी,
(४) शत्रुहन्ता सेना ।
'याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये'
ऋ. १.११२.१६
जिन साधनाओं से बाणों की पंक्तियों या शूरधारी या शत्रुहन्ता सेनाओं को (शारीः) किरणों से ओतप्रोत सूर्य या प्रजाओं के शासन मर्यादाओं को बांधने वाले शासक पुरुष की रक्षा करते हो और शत्रुओं की तरफ चलाते हो (आजतम्) ।

शार्ग – (१) सारग– सार पदार्थों तक पहुंचने वाला
(२) शारग– शर–समूहों के सहित जाने वाला ।
(३) शार्ङ्ग– श्रृंग के बने या उनके समान हिंसाकारी धनुष आदि शास्त्रों को धारण करने वाला शस्त्रधर ।
'शार्गः सृजयः श्याण्डकस्ते मैत्राः'
वाज.सं. २४.३३, मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६

शार्दूल – सिंह ।
'शार्दूलाभ रोहित्'
वाज.सं. २४.३०; मै.सं. ३.१४.११: १७४.८

शार्यात – (१) शृ + ण्यत् + अत + अच् = शार्यात । यो वीरसमूहं शरितुं हिंसितुं योग्यान् निरन्तम् अतति (जो हिंसा करने योग्य वीर समूह के पास निरन्तर जाता है वह शार्यात है) ।
'शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे'
ऋ. १.५१.१२.
(२) शरों, शत्रुहिसंक शस्त्रों के द्वारा प्रयाण करने योग्य संग्राम आदि का अवसर ।
'यथा शार्याते अपिबः सुतस्य'
ऋ. ३.५१.७; वाज.सं. ७.३५; तै.सं. १.४.१८.१; मै.सं. १.३.१९: ३७.५; का.सं. ४.८; श.ब्रा. ४.३.३.१३.

शाला – (क) शल (गत्यर्थ) + णिच् + अच = शाल ।
(ख) शृ + घञ् + ल (छान्दस) = शाल ।
अर्थ – (१) आवारा गर्द (२) इधर उधर घूमने वाला (३) हिंसक ।
'ये शालाः परिनृत्यन्ति'
अ. ८.६.१०
(४) गृह, भवन ।
'इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालाम्'
अ. ३.१२.१; पा.गृ.सू. ३.४.४; हि.गृ.सू. १.२७.२
शालाया देव्या द्वारम्'
अ. १४.१.६३

शालापति – गृहपति ।
'शालापतये च कृण्मः'
अ. ९.३.१२

शालुड – अर्थ–लुब्धा, व्यभिचारी'
तुण्डेलमुत शालुडम् ।
अ. ८.६.१७

श्वा – (१) गतिशील प्राण, (२) कुत्ता ।
'मुग्धा देवा उत शुनायजन्त'
अ. ७.५.५.

श्वात्रः – अति क्षिप्रकारी ।
'श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवः'
ऋ. १०.४६.७; वाज.सं. ३३.१; तै.ब्रा. २.७.१२.१.

श्वात्रम् – (१) शीघ्र ।
श्वात्रमर्का अनूषत'
ऋ. ८.६३.५
(२) आशु + अत + रक् = श्वात्र । आशु का वर्ण विपर्यय । श्वात्रयिति क्षिप्रनाम । आशु अतनं भवति' अर्थ–क्षिप्र , जो शीघ्र चला जाता है (अतति) ।
'श्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः'
ऋ. १०.८८.४; नि. ५.३.
(३) धन, (४) आशुयावी, आशु गामी ।

श्वात्रभाक् – (१) धनादि से समृद्ध
'श्वाभाजा वयसा सचते सदा
ऋ. ८.४९; साम १.२७७

श्वात्र्य – (१) शुद्ध, ।
'त्वां गिरः श्वात्र्य आ ह्वयन्ति'
ऋ. १०.१६०.२; अ. २०.९६.२
(२) उत्तम धन सम्पन्न (२) उत्तम धन–सम्पन्न ।
'प्रायोगेव श्वत्र्या शासुरेथः'
ऋ. १०.१०६.२
(३) शीघ्र अपने अभिप्राय को बतलाने वाली वाणी ।

श्वान्तः– (१) महान् आत्मा ।
'अनु श्वान्तस्य कस्य चित् परेयुः'
ऋ. १०.६१.२१
(२) शान्त परिपक्व ज्ञान वाला–
आचार्य, (३) स्वान्त अर्थात् समीप आया हुआ

शिष्य, (४) श्रान्त ।
'अभिश्वान्तं मृशते नान्धे मुदे'
ऋ. १.१४५.४

श्वाना – द्वि.व. । (१) दाएं बाएं चलने वाले दो कुत्ते, (२) दो कुत्तों के समान रक्षकवत् स्त्रीपुरुष । (३) अश्विद्वय ।
'श्वानेव नो अरिषण्या तनूनाम्'
ऋ. २.३९.४

श्वापदः – (१) कुत्ते के समान पंजे वाला,
(२) कुत्ता, (३) गीदड़,
(४) सिल्ली,
(५) सिंह व्याघ्र जन्तु ।
'पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः'
ऋ. १०.१६.६; अ. १८.३.५५; तै.आ. ६.४.२.

श्वावित् – (१) साहिल, (२) केवल विषय रस के लिए भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला जीव ।
'श्वावित् कुरु पिशङ्गिला'
वाज.सं. २३.५६
साहिल के अर्थ में–
'श्वाविद्भौमी'
वाज.सं. २४.३३; मै.सं.. ३.१४.१४: १७५.६

शाशदाना – द्वि.व. । (१) छिन्न भिन्न करने वाले अश्विद्वय ।
'देवानां वा जूतिभिः शाशदना'
ऋ. १.११६.२
विजिगीषू पुरुषों की वेगवती सेनाओं से या देवों की सेनाओं से शत्रु सेनाओं को छिन्न भिन्न करने वाले (शाशदाना) अश्विद्वय या सेनाध्यक्षो ।
(२) स्त्री. ए.व.। अपना स्वरूप प्रकट करती हुई स्त्री या उषा ।
'कन्येव तन्वा शाशदाना'
ऋ. १.१२३.१०
(३) नाश करने वाली स्त्री ।
'उत स्त्रियं मायया शाशदानाम्'
ऋ. ७.१०४.२४; अ. ८.४.२४

शाशद्रे – तीक्ष्ण होकर कार्य करते हैं ।
'मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः'
ऋ. १.१४१.९

शांशप– शंशमा नामक वृक्ष के समान वृद्धिशाली ।
'भगेन मा शांशपेन'
अ. ६.१२९.१

शाश्वसत् – निरन्तर सांस लेने वाला –अश्व ।

शास् – (१) शासन करने वाला, (२) शास्त्र ।
'शासामुग्रो मन्यमानो जिघंसति'
ऋ. २.२३.१२; का.सं. ४.१६

शासः – (१) शास भारद्वाज नामक वैदिक ऋषि
(२) विश्व का शासक इन्द्र ।
'शास इत्था महां असि'
ऋ. १०.१५२.१; अ. १.२०.४; शां.श्रौ.सू. १८.१८.४; शां.गृ.सू. ४ .६.५; ६.५.६
(३) आज्ञा, हूकूमत ।
'रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति'
ऋ. १.५४.७

शासत् – (१) प्रशास्ति, ज्ञापयति (शासन करता है, जनाता है) । शास् + शतृ = शासत् ,
(२) शासन करता हुआ, कहता हुआ ।
'शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गात्'
ऋ. ३.३१.१; ऐ.ब्रा. ६.१८.२; १९.४; गो.ब्रा. २.५.१५; ६.१; नि . ३.४.
अपनी कन्या को विवाह में देने वाला अपुत्र पिता (वह्निः) यह कहता हुआ कन्यादान करता है (शासत्) कि कन्या से उत्पन्न पुत्र उसका होगा और वह पुत्री से उत्पन्न पुत्र को अपनाता है (दुहितुः नप्त्यम् गात्) ।

शासदान – शाशदानः, शाशदयमानः पुनः पुनः असुरान् तत् पुराणिना शातयन् (पुनः पुनः, असुरों को या उनेक पुरों को नष्ट करता हुआ) । 'शद्लृ' धातु शादनार्थक है । इसी से कर्मवाच्य में यङ्लुगन्त प्रत्यय कर लट् अर्थ में शाशस्य–मान' हुआ है । वेद में इसी का 'शाशदान' रूप मिलता है ।
(२) बार बार दमन करता हुआ –दया.
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्
वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
'सं वज्रेणासृद् वृत्रमिन्द्रः
प्र स्वां मतिमितरच्छाशदानः'
ऋ. १.३३.१३; मै.सं. ४.१४.१३; २३७.१३; तै.ब्रा. २.८.४.४
इस इन्द्र का साधक वज्र (सिध्मः). शत्रुओं को लक्षित कर गया था (शत्रून् अभि अजिगात्) ।

इस इन्द्र के इस श्रेष्ठ या वर्षा बरसाने वाले वज्र से (तिग्मने वृषभेण) वृत्रासुर या मेघ के पुरों को विविध प्रकार से नष्ट किया (पुरः वि अभेत्) तब उस इन्द्र ने अपने वज्र से उस वृत्र या मेघ को संसृष्ट किया (वज्रेण वृत्रं समसृजत्) । वह मेघ बार बार भेदित किए जाने पर या तंग किए जाने पर या सताए जाने पर (शाशदानः) जल न देने का अपना विचार त्यागा (स्वां मति प्रातिरत्) ।

सायण ने इसका अर्थ यों किया है- इन्द्र ने वज्र को संयोजित कर बार बार सताते हुए वृत्र को हिंसित कर अपनी मति को हर्ष से प्रवर्द्धित किया ।

स्वा. दयानन्द का अर्थ-इस राजा का सधा हुआ सैन्य समूह (सिध्मः) शत्रुओं पर आक्रमण करता है, तीक्ष्ण पराक्रम से (तिग्मेन वृषभेण) शत्रुदुर्गों को (पुरः) तोड़ता है (वि अभेत्) और वज्र से पापी शत्रु को संयुक्त करता है (वज्रेण वृत्रं समसृमत्) एवं बार बार शत्रु का दमन करता हुआ (शाशदानाः) अपनी रीति नीति को फैलाता है (स्वां मतिं प्रतिरत्) (३) काटने वाला ।

'सा क्षाम तान् बहुभिः शाशदानाम्'

ऋ. ७.९८.४; अ. २०.८७.४

(४) बार बार भिद्यमान । शश धातु भेदनार्थक है ।

इन दिनों भी 'मैं 'शाशत्' सह रहा हूँ' का प्रयोग प्रचलित है । शासन शब्द बहुत प्रकार की यातना अभिप्रेत है ।

शाशनी इडा - (१) मानव गण को शिक्षा देने वाली वेद विद्या ।

'इडामकृण्वन् मनुषस्य शासनीम्'

ऋ. १.३१.११

वे ही स्तुति करने वाली या स्तुति करने योग्य वेद विद्या को (इडाम्) मननशील मानव गण को शिक्षा करने वाली बतलाते हैं ।

शास्य - (१) शासन करने योग्य (२) 'शास' अर्थात् शास्त्र आदि धारण करने में कुशल ।

'अभिपित्वे मनवे शास्यो भूः'

ऋ. १.१८९.७

शासृ - शासक, परमेश्वर ।

'अस्य शासुरुभयासः सचन्ते'

ऋ. १.६०.२

इस शासक परमेश्वर की शरण में धनी और गरीब दोनों जाते हैं ।

श्रात - परिपक्व, पका ।

'यदि श्रातं जुहोतन'

ऋ. १.१७९.१; अ. ७.७२.१; आप.श्रौ.सू. १३.३.४; मा.श्रौ.सू. ४ .५.४

श्रान्तसदौ - द्वि.व. । थककर बैठे हुए ।

'गावौ श्रान्तसदाविव'

अ. ७.९५.२

श्रायन्तः - श्रिञ् + शतृ = श्रायत् (इ की वृद्धि) । श्रायत् + जस् = श्रायन्तः । अर्थ है- समन्तात् आश्रिताः (चारों ओर से आश्रित) । 'श्रियन्त' का श्रापन्तः' समाश्रित ।

'श्रायन्त इव सूर्यम्
विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत'

ऋ. ८.९९.३; अ. २०.५८.१; साम. १.२६७; २.६६९; वाज.सं. ३३.४१; नि. ६.८

जैसे सूर्य में समाश्रित रश्मियाँ सूर्य को भजती हैं, उसी प्रकार इन्द्र अर्थात् परमेश्वर के सभी धनों को भजो ।

श्रावक - ऋग्वेद के चार पाद हैं- चर्चा, श्रावक, चर्चक, और श्रवणीय । अध्ययन और उच्चारण मात्र चर्चा है । अध्येता शिष्य चर्चक है, अध्यापक गुरु श्रवखक है और श्रावण करने योग्य वेद को समाप्त करना श्रवणीय पाद है ।

शिंक् - (१) बछड़े की ध्वनि, (२) गर्जन ।

'अयं स शिंक्ते येन गौरभीवृता'

ऋ. १.१६४.२९; अ. ९.१०.७; नि. २.९.

शिक्य - मकान में बांधे जाने वाला छीका सिकहर ।

'यानि तेऽन्तः शिक्यानि'

अ. ९.३.६

'स एति शिक्याकृतः'

अ. १३.४.८

शिक्याकृत - छींका का सिकहर में रखा हुआ ।

शिक्वः - चतुर ।

'यत् त्वा शिक्वः परावधीत्'

अ. १०.६.३

शिक्वन् - शीकृ + क्वनिप् । (१) सेचन करने

वाला, (२) सेवन करने योग्य ।
'स शुक्रेभिः शिक्वभीरेवदस्मे'
ऋ. २.३५.४
(३) कीलक, बन्धन आदि, **shackle,** (४) जीव की उत्पत्ति के लिए निषेक आदि संस्कार भी शिक्वन् है ।
'रथो न यातः शिक्वभिः कृतः
द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते'
ऋ. १.१४१.८.
जिस प्रकार रथ या विमान रज्जुओं और कीलक के बन्धनों से तैयार किया जाकर अपने ही अंगों से आकाश और भूमि पर गमन करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा भी निषेक आदि संस्कारों द्वारा उत्पन्न और संस्कृत होकर इस पृथ्वी पर आता और कर चरण आदि अवयवों और योग-साधन के प्राणयाम आदि उपायों से तेजोमय कमनीय परमेश्वर को प्राप्त करता है ।

शिक्वस् - (१) दीप्तियुक्त अग्नि, (२) प्रकाशमान, शक्तिशाली ।
'वना वृश्चन्ति शिक्वसः'
ऋ. ६.२.९, तै.सं. ३.१.११.६

शिक्वाः - (१) बलवान् ।
'रुद्रं वोचन्त शिक्वसः'
ऋ. ५.५२.१६

शिक्ष - (१) समर्थ ।
'दातुं चेच्छिक्षान् स स्वर्ग एष'
अ. ६.१२२.२; तै.आ. २.६.२
(२) धातु दान करना ।
'सहस्रेणेव शिक्षति'
ऋ. ८.४९.१; अ. २०.५१.१; साम. १.२३५, २.१६१

शिक्षति - देता है । शिक्ष (देगा) । के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप ।
'यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन'
ऋ. ३.५९.२; तै.सं. ३.४.११.५; मै.सं. ४.१०.२: १४६.१३; का.सं . २३.१२; नि. २.१३.
हे आदित्य, वह अन्नवान् होता है जो तुझे (ते) निर्वपण प्रोक्षण आदि कर्म से चरु या हवि आदि देता है ।

शिक्षा - शिक्ष धातु के लोट म.पु. ए.व. का रूप । अर्थ है-शिक्षा पूर्ण कर, या सिखा ।
'शिक्षा स्तोतृभ्यो मातिधग् भगो नः'
ऋ. २.११.२१, नि. १.७
हे इन्द्र, हम स्तोताओं के मनोरथ पूर्ण कर (स्तोतृभ्यः शिक्षा), हमें छोड़ औरों को धन न दे या हमें देने के बाद जो रिक्त रहे उसे आप को दे तथा हमें ऐश्वर्य दे (मातिधक् नः भगः) ।

शिक्षानरः - (१) सब मनुष्यों का शिक्षक, दण्डनायक -इन्द्र, परमेश्वर ।
'शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्'
ऋ. ४.२०.८
(२) समस्त मनुष्यों को अभिमत दान देने वाला ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शणः'
ऋ. १.५३.२; अ. २०.२०.२
तू शिक्षा देने वाले नायक आचार्य के समान आदिगुरु है । तू काम अर्थात् सत् संकल्पों को कृशन करने वाला यथोचित विवेकी है ।

शिक्षु - (१) दानशील -इन्द्र ।
'शिक्षो शिक्षासि दाशुषे'
ऋ. ८.५२.८
(२) शिक्षा प्राप्त करने वाला ।
'उत शिक्षः स्वपत्यस्य शिक्षोः'
ऋ. ३.१९.३; तै.सं. १.३.१४.६; मै.सं. ४.१४.१५: २४०.९

शिखण्डिनः - (१) मोर आदि पक्षी (२) चूड़ामणि या काकमाची के पौधे यथा चूड़ीमणि वीर्योष्णा विषबैषम्य जन्तुघ्नी रोगग्राम भयाय ।
'महावृक्षाः शिखण्डिनः'
अ. ४.३७.४

शिखण्डी - (१) शिखण्ड धारण करने वाला रुद्र (२) सेनापति ।
'सहस्रध्निं शतवाधं शिखण्डिन्'
ऋ. ११.२.१२

शिखा - चोटी ।
'केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा'
वाज.सं. १९.९२; मै.सं. ३.११.९: १५४.११; का.सं. ३८.३; तै. ब्रा. २.६.४.६

शिखी - (१) ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने वाला ब्रह्मचारी ।
'शिखिभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.१५

शिग्रुः - शिज् (अव्यक्त शब्द बोलना) + रुक् =

शिग्रु । अर्थ – (१) अव्यक्त शब्द करने वाला, (२) अन्यों को न पता चलने वाले संकेत शब्द (code Language) बोलने वाला ।
(३) अस्पष्ट भाषा भाषी,
(४) विदेशी ।
'अजासश्च शिग्रवे यक्षवश्च'
ऋ. ७.१८.१९

शिङ्क्ते – शिजि (अव्यक्त ध्वनि) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ अव्यक्त शब्द करता है ।
'योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन्'
ऋ. ६.७५.३; वाज.सं. २९.४०; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१५; का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१८.
स्त्री की तरह अव्यक्त शब्द करती है ।

शिङ्गि – प्राप्त करने योग्य, कीर्त्ति जनक पदार्थ ।
'शिङ्गीनि कोश्याभ्याम्'
वाज.सं. ३९.८

शिञ्जार – (१) मधुर शब्द कहने वाला वाद्य (बाजा) (२) गान-प्रिय कवि, (३) उत्तम उप देष्टा ।
'अत्रं शिञ्जारमश्विना'
ऋ. ८.५.२५

शिताम – (१) शिताम पद से बाहु, यकृत, योनि और मेदस् का बोध होता है । यह अदन्त शब्द है ।
'दोः शितामः भवति दोः'
शितामः अर्थात् बाहु है ।
(२) योनिः शितामं इति शाकपूणिः (शाकपूणि के मत से योनि ही शिताम् है) । योनि का तात्पर्य है-गुद । गुद पुरीष से व्याप्त रहता है (विषितो भवति) ।
(३) श्यामतो यकृत् इति तौटिकिः (तौटिकि के मत से यकृत् श्याम है और श्यामतः से ही शिताम बन गया है । अतः शितामत् यकृत् का वाचक है) । (४) शिति मांसतः भेदस्त इति गा लवः (गालव के मत से शिवामत् शितिमांस अर्थात् श्वेत मांस से निकला है । मेदस् का मांस श्वेत रंग का होता है । 'शितिमां सतः' से ही शितामत हो गया है ।
'छागस्य हविष आत्ताम्
पार्श्वतः श्रोणितः शितामतः'
वाज.सं. २१.४३

शिवामतः – शिताम + तसिल् = शितामतः । अर्थ बहुप्रदेश से ।

शिति – शो (तनू करणार्थक) + क्तिन् = शिति (शो के ओ' का इ) । अर्थ है – मेदस् –मेदा । मेदा में ही विवेक रहता है और उसी के तेज से मेदा स्वच्छ रहता है । अतः शिति शब्द मेदा का वाचक हुआ है ।
आधुनिक अर्थ – स्वच्छ, कृष्णवर्ण, देवदार वृक्ष ।

शितिकक्ष – कक्ष, अर्थात् कांख या बगल में श्वेत चिह्न वाला (२) श्वेत कोख वाला कीट ।
'शितिकक्षोऽञ्जिसक्थः'
वाज.सं. २४.४

शितिकण्ठः – श्वेत कण्ठ वाला-रुद्र ।
'नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च'
वाज.सं. १६.२८; तै.सं. ४.५.५.१; मै.सं. २.९.५: १२४.१०

शितिङ्गः – तेजस्वी ।
'अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गः'
अ. ११.५.१२

शितिपदी – श्वेत स्वरूप वाली विद्युत् शक्ति ।
'शितिपदी संपतत्
अमुत्राणाममूः सिचः'
अ. ११.१०.२०

शितिपाद् – (१) श्वेत् चरण, श्वेताश्व, शुक्लस्वरूप, उज्ज्वलरूप, तीक्ष्ण प्रकृति सेना का पालक, (२) ज्ञान या प्रकाश का पालक आत्मा
'दत्तः शितिपात् स्वधा'
अ. ३.२९.१

शितिपादः – (१) श्वेत किरणों वाला सूर्य- (२) शुद्ध ज्ञान कराने वाले छन्दों के चरणों से युक्त परमात्मा
(३) जिसके अंश शुद्ध हो-किरण ।

शिविपृष्ठ – (१) पीत पर श्वेत वस्त्र वाला ।
'उन्नत शितिबाहुः
शिति पृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः'
वाज.सं. २४.७; तै.सं. ५.६.१४.१, मै.सं. ३.१३.८: १७०.३; का. सं. (अश्व.) ९.४.

(२) सूक्ष्म प्रश्न करने वाला ।-दया.
(३) तीक्ष्ण स्पर्श वाला अग्नि ।
(४) नीलपृष्ठ-सूर्य
(५) ज्ञानमय स्वरूप परमेश्वर ।
'प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेः '
ऋ. ३.७.१

शितिभ्रू - भ्रुवों पर श्वेतचिह्न वाला पुरुष ।
'शितिभ्रुवो वसूनाम् '
वाज.सं. २४.६; मै.सं. ३.१३.७: १७०.१

शितिरन्ध्रः - श्वेत चिटकनों वाला ।
'शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः
समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः '
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.१३.१; मै.सं. ३.१३.३: १६९.३; का.सं. (अश्व.) ९.३.

शितिबाहुः - बाहु भाग पर श्वेत पात्र पहनने वाला ।
'शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः
समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः '
वाज.सं. २४.२

शिथिर - शिथिल ।
'सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देव '
ऋ. ५.८५.८
'जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम् '
अ. १०.२.३

शिथिरां - (१) काम करने में शिथिल (२) अल्प शक्ति वाला ।
'अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् '
ऋ. ६.५८.२, मै.सं. ४.१४.१६: २४४.३, तै.ब्रा. २.८.५.४

शिप्र - (१) उष्णीष (पगड़ी) -सा. । आशा भी शफा पगड़ी के लिये प्रकट होता है ।
'पीत्वी शिप्रे अवेपयः '
ऋ. ८.७६.१०; साम. २.३३८; अ. २०.४२.३; वाज.सं. ८.३९; तै.सं. १.४.३०.१; श.ब्रा. ४.५.४.१०

शिप्रा - (१) सुवर्ण या लोहे की बनी सिर पर रखने की पगड़ी ।
'शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः '
ऋ. ५.५४.११,
(२) लोह आदि का बना शिर बचाने का टोप, टोपी
'शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः '
ऋ. ८.७.२५
(३) हनू या नासिका शिप्रे हनू नासिके वा । सृपी (गत्यर्थक) + रक् = सृप्र, सर्प, सर्पिस, । यास्क के मत से शिप्र भी इसी प्रकार बना है । सृ का शि बाहुलक नियम से बना है ।
'वि ष्यस्य शिप्रे वि सृजस्व धेने '
ऋ. १.१०१.१०; नि. ६.१७
हे इन्द्र, अपने हनू या नासिका को विस्तृत कर ।

शिप्रिणीवान् - शक्ति का स्वामी इन्द्र ।
'वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् '
ऋ. १०.१०५.५

शिपिविष्टः विष्णुः - समस्त पशुओं में व्यापक रूप से अथवा शक्ति रूप से किरणों से तेजरूप से विद्यमान् तेजस्वी (२) सर्वोत्पादक प्रभु ।
'विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा '
वाज.सं. २२.२०; मै.सं. ३.१२.५: १६२.५; शां.ब्रा. १२.६.१.१२; १३.१.८.८

शिपिविष्ट - शिपि + विष्ट = शिपिविष्ट । अर्थ-(१) रश्मियों से आविष्ट विष्णुदेव -सा.
'प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि '
ऋ. ७.१००.६ साम. २.९७५; तै.सं. २.२.१२.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.४, नि. ५.८.
(२) तेजः स्वरूप विष्णु-परमेश्वर (३) रश्मियों से घिरा आदित्य -दया.
'प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नाम
अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
ऋ. ७.१००.५
हे रश्मियों से आविष्ट विष्णु देव (शिपिविष्ट), तेरा वह शिपिविष्ट नाम श्रेष्ठ है (तत् ते नाम अर्यः) यह स्मरण कर तथा तेरे प्रज्ञानों या गुणों को जानता हुआ मैं (वयुनानि विद्वान्) आज तेरी स्तुति करता हूँ। (अद्य प्रशंसामि) ।- सा.
हे तेजः स्वरूप विष्णु परमेश्वर, विज्ञानों को जानता हुआ वाचस्पति आज में तो उस प्रसिद्ध नाम ॐ को जपता हूँ ।
-दया.
(४) शेप के समान तेज से निर्वेष्टित विष्णु, (५) आचार्य औपमन्यव के मत से शिपिविष्ट नाम निन्दित अर्थ का वाचक है । जैसे सम्पूर्ण शरीर में वीर्य व्याप्त है उसी प्रकार निःशेषतम

वेष्टित परमेश्वर है ।
शेप + निर् + वेष्ट = शेप । शेप इ वेष्ट = शिपिविष्ट । शेप का कुत्सितार्थ पुरुषलिंग है । यास्क ने शिपि का अर्थ रश्मि किया है और शिपिविष्ट का अर्थ 'रश्मियों के साथ सर्वत्र प्रविष्ट ' किया है । शिपिभिः आविष्टः शिपि विष्टः ।
'नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च '
वाज.सं. १६.२९; तै.सं. ४.५.५.१; मै.सं. २.९.५: १२४.११; का.सं. १७.१४
(६) स्वा-दयानन्द ने शिपिविष्ट का अर्थ 'शिपिषु पशुषु पालकत्वेन विष्टाय वैश्य प्रभृतये ' ऐसा किया है । अर्थात् शिपि का अर्थ पशु (पशु धातु के वर्ण-विपर्यय से और शिपिविष्ट का अर्थ वैश्य हुआ) । अंग्रेजी का **sheep** शब्द भेड़ी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।
(७) पशुओं में लगा हुआ धनाढ्य वैश्य ।

शिपि - (१) पश् धातु के वर्ण विपर्यप से शिपि हुआ है - दया. अर्थ-पशु (२) रश्मि-सा. (३) तेज-दया. ।
(४) वैश्य -दया.
'शिपिषु पशुषु पालकत्वेन
विष्टः शिपिविष्टः ' ।
रश्मिवाची गो शब्द भी गत्यर्थक धातु से बना है ।
(५) उपस्थेन्द्रिय, पुरुष-लिंग सृप् (गत्यर्थक) से 'शिपि' शब्द बनाया जा सकता है ।
(६) यज्ञ, पशु ।
'पशवो वै शिपिः
यज्ञो वै शिपिः '
श.ब्रा.

शिपिविल्लुक - एक प्रकार का गो कीट । मूलभाग जघन भाग से वसा को पकड़ने वाला ।
'एजत्वाः शिपविल्लुकाः '
ऋ. ५.२३.७

शिप्रिणी - (१) ज्ञान से युक्त स्त्री
अस्माकं शिप्रिणीनाम्
'सोमपाः सोमपाव्नाम् '
ऋ. १.३०.११

शिप्री, शिप्रिन् - शिप्र + इन् = शिप्रिन् । प्रथमा ए.व. में शिप्री । शिप्र का अर्थ-(१) सुन्दर मुख, मुकुट, उष्णीष, दाढ़ आदि है । अतः ' शिप्रिन्' का अर्थ उष्णीषी (मुकुट वाला या पगड़ी वाली) हुआ । सायण ने इसका अर्थ इन्द्र किया है ।
(२) जयदेव शर्मा ने इस शब्द को राजा का विशेषण माना है ।
'शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे '
ऋ. ७.२५.३
हे सुन्दर मुख वाले या मुकुटधारी राजन् , या हे उष्णीषी इन्द्र (शिप्रिन्) कल्याणकारी दान करने वाले यजमान के प्रति या (सायण के अनुसार) सुदास् राजा के प्रति मेरी सैकड़ों रक्षाएं या रक्षा करने की क्रियाएं हों ।
(३) शिप्र का अर्थ हनू भी है और इन्द्र के विशेषण के रूप में इस का प्रयोग हुआ है ।
'अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् '
ऋ. ३.३६.१०; पा.गृ.सू. १.१८.५
(४) प्रशस्त कपोल और नाक वाला (५) सुमुख-दया.

शिफा - शिञ् (निशान अर्थ में) + फक् + टाप् = शिफा । अर्थ है । (१) नदी (२) कलह वृत्ति
'हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः '
ऋ. १.१०४.३
वे दोनों स्त्रियां नदी की ढाल में या कलह वृत्ति के नीच व्यवहार में पड़कर (शिफायाः प्रवणे) नष्ट हो जाती है (हते स्याताम्) ।

शिभ्र - (१) गर्व, (२) श्वेत वर्ण-सा. ।
'म्लापयामि भ्रजः शिभ्रम् '
अ. ७.९०.२

शिम्बलम् - (१) सेमर का वृक्ष शाखा पुष्प या पत्र ।
'शिम्बलं चिद् वि वृश्चति '
ऋ. ३.५३.२२

शिम्बाता - एक दूसरे को सुख प्राप्त कराने वाले-अश्विद्वय,
(२) स्त्री पुरुष ।
'वंसगेव पूषर्या शिम्बाता '
ऋ. १०.१०६.५

शिमी - (१) कर्म, (२) प्रहार ।
'त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः '
ऋ. १.१५५.२; आश्व.श्रौ.सू. ६.७.९: नि. ११.८

हे इन्द्र तथा विष्णु ! इष्ट प्रदान करने वाले या प्रहरणादि कर्म वाले आप दोनों के (शिमीवतोः) इस प्रकार (इत्था) प्रदीप्त समागन करे (त्वेषम् समरणम्) ।

शिमीवत् – (१) क्रियाशक्ति से युक्त

'शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून्'

ऋ. १.८४.१६; अ. १८.१.६; साम. १.३४१; तै.सं. ४.२.११.३; मै. सं. ३.१६.४: १९०.४; नि. १४.२५

(२) शिमी + वतुप् = शिमीवत् । शिमी का अर्थ है– क्रम या प्रहार । अतः शिमीवत् का अर्थ है – इष्ट प्रदान कर्म वाला या प्रहरणादि कर्म वाला । इस शब्द का प्रयोग द्विवचन में इन्द्र और विष्णु के विशेषण के रूप में किया गया है ।

'त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः'

'इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति'

ऋ. १.१५५.२

हे इन्द्र तथा विष्णु ! इष्ट प्रदान कर्म वाले आप दोनों के (शिमीवतोः वाम्) इस प्रकार प्रदीप्त समागम को (इत्था त्वेषं समरणम्) हुतशिष्ट सोमपीती यजमान (सुतपा) पूजित या वर्णन करता है (उरुष्यति) ।

(३) शम् + इन् = शिमिन् , अथवा शक + इन् = शिमिन् । शिमि +ङीष् = शिमी । इससे अनिष्ट शान्त होता है या इससे अभिमत सिद्ध कर सकते हैं ।

शिमि + वतुप् = शिमीवत् । अर्थ है–कर्मवत् कर्मठ

'धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी'

ऋ. १०.८९.५, तै.सं. २.२.१२.३; तै.आ. १०.१.९, नि. ५.१२.

शिम्यु – लुक छिप कर प्राणियों के प्राणों को नष्ट करने वाला हत्यारा ।

'दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैः
हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत्'

ऋ. १.१००.१८

सर्व दुःख हिंसक (शर्वा) इन्द्र या राजा (पुरुहूत) पृथिवी पर प्रजा को नाश करने वाले दुष्ट पुरुषों को (दस्यून्) तथा लुक छिपकर प्राणियों के प्राणों को नष्ट करने वाले हत्यारों को (शिम्यून्) आक्रमणों से (एवैः) अच्छी प्रकार नष्ट कर दें (निर्वहीत्) ।

शिरस् – (१) शी + असुन् = शिरस् । श्रृ + असुन् = शिरस् । अनुशयन्त सर्वाणि इन्द्रियाणि यत् तत् (जिसमें सभी इन्द्रियां स्थित है अर्थात् सिर) ।

(२) शीर्ष

(३) आदित्य । यह प्राणियों में अनुप्रविष्ट होकर स्थित है (अनुशेते सर्वाणि भूतानि इति शिरः) ।

शिरिणा – (१) रात्रि (२) शत्रु–पीड़ित प्रजा ।

'शिरिणायां चित् अक्तुना महोभिः'

ऋ. २.१०.३

शिरिम्बिठ – शिरिम्बिठो मेघेः । शीर्यते विठे । विठम् अन्तरिक्षम् ।

(१) अर्थात् शिरिम्बिठ मेघ का नाम है, क्योंकि मेघ अन्तरिक्ष में शीर्ण होता है ।

(२) भरद्वाज का पुत्र भारद्वाज भी शिरिम्बिठ है (अपि वा शिरिम्बिठो भारद्वाजः) ।

'भारद्वाज ने अलक्ष्मी से युक्त हो, भर मुंह पानी में खड़ा 'अरापि काणे..'

मन्त्र जपकर अपनी दरिद्रता दूर की थी ।

'शिरिम्बिठस्य सत्वभिः
तेभिष्ट्वा चातयामसि'

ऋ. १०.१५५.१; नि. ६.३०

दरिद्रता से पीड़ित हो दरिद्रता दूर करने के लिए मन्त्र जाप द्वारा कहते हैं ।

हे दरिद्रते ! तुझे शिरिम्बिठ ऋषि के उन प्रसिद्ध जलरूपी सत्वों से हम नष्ट कर देंगे ।

आर्यसमाजी विद्वान् शिरिम्बिठ का अर्थ मेघ मानते हैं । मेघ से ही दुर्भिक्ष दूर किया जाता है ।

(३) राजा । वीरिट या विठ का दूसरा अर्थ गण है ।

विठस्य शत्रुगणस्य शिरिः हननं येन स शिरिम्बिठः राजा

शत्रुगण का राजा द्वारा हनन किया जाता है । राजा प्रभूत अन्न का धारण करता है । अतः उसे भरद्वाज भी कहा गया है ।

शिरिम्बिठ भारद्वाज – (१) एक वैदिक ऋक्,

(२) आकाश मे छिन्न भिन्न हो जाने वाला मेघ भी शिरिम्बिठ है ।

शिला – चट्टान ।

'शिलाभूमिरश्मा'
अ. १२.१.२६

शिव – (१) कल्याणकारी प्रभु, (२) शिव ।
'समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः'
अ. ८.९.२२
(३) शिष् + व (नामकरण प्रत्यय) = शिव । व ष में स्थिति हो जाता है अर्थात् ष का लोप हो जाता है । अर्थ है – सुख । शेव का अर्थ भी सुख है । शेव इति सुखन्तम् ।
शिष्यतेः वकारः नाम करणोऽनास्थान्तरो पलिङ्गी विभाषितगण शिवम् इति अपि अस्य भवति – निरुक्त
आधुनिक अर्थ – कल्याण, शिव देवता ।
(४) ऋग्वेद के जनों में एक ।
'आ पक्थासो भलानसो भनन्ताऽलिनासो विषाणिनः शिवासः'
ऋ. ७.१८.७
में वसिष्ठ ने पक्थ, भलान, अलिग, पिषाणी और शिव नामक जनों का उल्लेख किया है । शिव देश सिन्धु के इस पार झेलम से पश्चिम था । इसके नाम का अभिलेख शोर कोट में मिला है । सुदास के प्रतिद्विन्द्वी दश राजाओं में शिवि एक था ।
सुदास के शत्रुओं में शिम्यु, शिवि, मत्स्य, वैकर्ण, कवष, देवक, मन्यमान चापमान कवि, सतुक, उचथ, श्रत, वृद्ध, मन्यु, पृथु ।

शिवतम – (१) अतिशय कल्याण कारी ।
'मीढुष्टम शिवतम'
वाज.सं. १६.५१; वाज.सं. (का.) १७.८.५; तै.सं. ४.५.१०.४; मै.सं. २.९.९: १२७.१५; का.सं. १७.१६.
'ते शिवतमा असाम'
ऋ. १.५३.११
तेरे हम अत्यन्त कल्याणकारी होवें ।

शिवतमा – कल्याणकारिणी ।
'तां पूषन् शिवतमामेरयस्व'
ऋ. १०.८५.३७; अ. १४.२.३८
हे पूषन् , कल्याणकारिणी इस योनि को बीज-ग्रहण के लिए सुपुष्ट करो ।

शिवतरः – अधिक मंगलकारी ।
'नमः शिवाय च शिवतराय च'
वाज.सं. १६.४१; तै.सं. ४.५.८.१; मै.सं. २.९.७; १२६.५; का.. १७.१५

शिवशंकल्प – शुभ कल्याणमय संकल्प वाला –मन
'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'
वाज.सं. ३४.१-६

शिवाः – (१) कल्याणकारी मानस प्रवृत्तियाँ ।
'शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नियच्छ'
अ. ७.११५.३
(२) कल्याण कारिणी विद्युत् या कर्ममनी,

शिवाभिमर्शन – वैद्य का हाथ जिसका स्पर्श भी कल्याण कारक है ।
'अयं शिवाभिमर्शनः'
ऋ. १०.९०.१२; अ. ४.१३.६

शिशय – (१) श्रुति तीक्ष्ण करने वाला,
(२) उत्तम शासक
'शिशीहि मां शिशयं त्वा श्रृंणोमि'
ऋ. १०.४२.३; अ. २०.८९.३
(३) अति सूक्ष्मरूप से विद्यमान ।

शिश्न (श्ना) – हिंसार्थक श्नथ् + घञ् = शिश्न थ का लोप श का द्वित्व) ।
शिश्नं श्नथतेः ? (अर्थात् हिंसार्थक श्नथ धातु से शिश्न शब्द बना है) ।
शिश्न से स्त्री योनि का हनन किया जाता है, अतः शिश्न पुरुष लिंग का वाचक हुआ । अर्थ है– प्रजनन लिंग ।
'भगं योनिः द्वयोः शिश्नो मेढ्रोमेहनशेपसी'
(२) आस्वात् सूत्रे अन्न के रस से लिपटा हुआ सूत्र)
(३) घी लगी पूंछ, मैला सूत्र ।
'मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः'
ऋ. १.१०५.८; १०.३३.३; नि० ४.६.
मुझे मानसिक चिन्ताएं या कामनाएं उसी प्रकार से खा रही हैं जैसे मूस मैले सूत्र, घी लगी पूंछ या अपना जननेन्द्रिय.. .

शिश्नदेव – (प्र.) शिश्नं देवः यस्य (जो विलासिता एवं विषय वासनाओं को ही सब कुछ समझता है) ।
विलासी, विषयी, अब्रह्मचारी, व्यसन शील,
'मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः'
ऋ. ७.२१.५; नि. ४.१९

जो कथित मनुष्य रूप धारी विलासी एवं अब्रह्मचारी व्यसनी जीव हैं वे हमारे यज्ञ में न आवें ।

(२) शिश्ने न प्रकीर्णाभिः स्त्रीभिः साकं दीव्यन्ति क्रीड़न्ति इति शिश्नदेवाः (जो अनेकों स्त्रियों से शिश्न द्वारा रण करते हैं वे शिश्न देव हैं ।) ।

शिश्रथः – क्रि. । शिथिल कर दें ।

'राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि'

ऋ. १.२४.१४; तै.सं. १.५.११.३; मै.सं. ४.१०.४: १५३.११; ४.१४.१७: २४६.८; का.सं. ४०.११

हे वरुण परमेश्वर, मेरे किए पापों को तप द्वारा शिथिल कर दें ।

शिश्वरी – शिशुवाली माता ।

'वत्सं सं शिश्वरीरिव'

ऋ. ८.६९.११; ९.६१.१४; अ. २०.९२.८ साम. २.६८.६

जैसे शिशु वाली माताएं अपने बच्चे को बढ़ाती हैं ।

शिशानः – अति तीक्ष्ण ।

'आशुः शिशानो वृषभो न भीमः'

ऋ. १०.१०३.१; अ. १९.१३.२; साम. २.११९९, वाज.सं. १७.३३; तै .सं. ४.६.४.१, वाज.सं. १७.३३.तै.सं. ४.६.४.१, मै.सं. २.१०. ४; १३५.९; का.सं. १८.५; श.ब्रा. ९.२.३.६

शिशिर – 'शृ' अथवा 'शम्' (हिंसार्थक) + किरच् = शिशिर (निपातन से) । इस ऋतु में पकी ओषधियों को दावाग्नि नष्ट करता है अतः यह शिशिर कहलाया ।

यह छः ऋतुओं में एक है । माघ और फाल्गुन मिला कर शिशिर होता है ।

निरुक्त में कहा है-शिशिरं जीवनाय (शिशिर जीवन के निमित्त है । इस ऋतु में हेमन्त का शीत कम हो जाता है ।

कुछ विद्वानों का मत है कि इस ऋतु में धान्य आदि अन्नों की प्रचुरता रहती है अतः यह शिशिर है ।

निष्ट त्क्राः सश्चिन्नरो
भूरितोका वृकादिव ।
विभ्यस्यन्तो ववाशिरे
शिशिरं जीव नायकम्

नि. १.१०

यह ऋचा कहां की है ठीक नहीं कहा जा सकता है । शीत से संतप्त वस्त्रहीन तथा बहुत सन्ततिवाले दरिद्र पुरुष की यह उक्ति है ।

वस्त्रहीन (निष्ट्वत्क्रासः) एवं बहुत पुत्र वाले (भूरितोका) कोई मनुष्य (चित् इत् नरः) भेड़िया के सदृश, भयानक रीति से भयभीत (वृकादिव विभ्यस्यन्तः) जीवन के लिए (जीवनाय) बार बार शिशिर ऋतु की कामना करते हैं ।

'कम्' का प्रयोग पादपूरण के लिए है ।

हेमन्त की बर्फीली रातों के बाद शिशिर में होने वाले सुख की कल्पना विचारणीय है ।

शिश्लिक्ष – धा. । स्नेह उत्पन्न करना ।

'अशिश्लिक्षुं शिश्लिक्षते'

अ. २०.१३४.६

शिशीति – दान देता है ।

'शिञ' निशाने । 'शिशीति' दानकर्मा ।

शिम् धातु दानार्थक है ।

शिशीते – तीक्ष्ण करता है । 'शो' धातु तनूकरण अर्थ में आता है । व्यत्यय से शप् का 'श्लु' 'ओ' का 'इ' आत्मने पद ।

'शिशीते श्रृंगे रक्षसे विनिक्षे'

ऋ. ५.२.९; अ. ८.३.२४; तै.सं. १.२.१४.७; का.सं. २.१५; नि. ४.१८

जैसे बैल तटों को ढाहता हुआ अपने सींगों को तेज करता है उसी प्रकार अग्नि राक्षसों के विनाश के लिए (रक्षसे विनिक्षे) अपनी दुस्तर्ण ज्वालाओं को तीक्ष्ण बनाता है । – सा.

तेजस्वी पुत्र राक्षसों को मारने के लिए अपने प्रभाव एवं प्रताप को तीक्ष्ण करता है ।–दया.

शिशीही – प्रतिष्ठापद, देहि (प्रतिष्ठापित कर दे) ।

शिञ्' (दानार्थक) के लट् म पु. ए.व. रूप ।

विद्मा सखित्वमुत शूरभोज्यम्
'आ ते ता वज्रिन्नीमहे
उतो समस्मिन्नाशिशीहि
नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति'

ऋ. ८.२१.८

हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले इन्द्र, आप के सख्य भाव को हम जानते हैं और आपके धन को भी हम जानते हैं (उत उ भोज्यम्) । अतः हे वज्रधारी इन्द्र (वज्रिन्), हम तेरे उस धन

और सख्य की याचना करते हैं (ते ता आ ईमहे) और हे सबको बसाने वाले इन्द्र (उतो वसो) और हे सुन्दर हनु वाले (सुशिप्र) हमें जो युक्त सभी पुरुषों में प्रतिष्ठापित कर (गोमति वाजे आशिशीहि) ।

शिशु – (१) सर्व व्यापक प्रभु
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम्'
ऋ. ९.८५.११; ८६.३१
(२) प्रशंसनीय,
(३) शासन कुशल पुरुष ।
'शिशुं मृजन्ति आयवो न वासे'
ऋ. ५.४३.१३
(४) बालक । शश + उ = शिशु । शिशु प्रशंसनीय होता है । अतः शिशु है ।
अर्थ –नवजात बालक
(५) अथवा दानार्थक शीशी + इ = शिशु । शिशु को माता की गोद में रखने के लिए दिया जाता है ।
(६) पृथ्वी पर पड़ने वाला जल ।

शिशुकः, शुशुक – इस नाम वाला मृग, हिरनौटा
'आशुङ्गः शिशुको यथा'
अ. ६.१४.३

शिशुमती – (१) गौ, (२) घोड़ी, (३) स्त्री ।
'वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या'
ऋ. २.४३.२
(४) पृथ्वी पर पड़ने वाले जल की धारा,
(५) बालकों से युक्त माता, (६) प्रजावती स्त्री,
(७) अश्वों से युक्त सेना ।
'अवास्या शिशुमतीरदीदे'
ऋ. १.१४०.१०
जलधाराओं को गिराकर (शिशुमती अवास्य) स्वयं चमकता है (अदीदेः) ।
अथवा वृषभ गौवों पर पकड़कर (शिशुमतीः अवास्य) उनको प्रजावती करता है और उनके बीच सुशोभित होता है ।
अथवा,
शत्रुसेनाओं को अपने नीचे कर (अवास्य) बालकों से युक्त प्रजाओं या अश्वों से युक्त सेनाओं को (शिशुमतीः) प्रकाशित कर (अदीदेः) ।

शिशुम्नन्तः सखायः – भीतर अन्तः करण में व्यापक परमेश्वर रूप शिशु से युक्त –भक्त ।
अचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखाय,
ऋ. ८.१००.५

शिंशु – (१) धर्मोल्लंघयिता,
(२) दुष्ट, (३) दुःख ।

शिशुमारः – (१) धर्मोल्लंघिनः शत्रून् मारयति येन स रथः (जिस से धर्मोल्लघंन करने वाले शत्रुओं को मारते हैं वह रथ) – दया ।
(२) दृष्ट शत्रुओं का नाश करने वाला–ज.दे.श. ।
(३) दुःखों का नाशक
'रेवदुवाह सचनो रथो वाम्
वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ।'
ऋ. १.११६.१८
तब तुम दोनों को (वाम्) परस्पर आश्रित रथ (सचनः) मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने वाला (वृषभः) और दुष्ट शत्रुओं का नाश करने वाला (शिशुमारः) होकर संयुक्त हुए आप दोनों को (युक्ता) धारण करता है ।
अथवा,
तब तक एक दूसरे के सब अंगों से पूर्ण (सचनः) गृहस्थ रूप रमण का साधन रथ एक दूसरे से विवाह बन्धन में बंधे हुए आप दोनों को (युक्ता) धारण कर वह गृहस्थ रूप रथ सुखों का वर्षक और दुःखों का नाशक हो (वृषभः शिशु मारः) ।
(४) घड़ियाल, मगर
'समुद्राय शिशुमारानालभते'
वाज.सं. २४.२१; मै.सं. ३.१४.२; १७३.१
शिंशुमारा अजगरा पुरीकयाः'
अ. ११.२.२५

शिशू – (१) स्वच्छ, निष्कपट व्यवहार वाले वर वधू ।
'शिशू क्रीड़न्तौ परियातो अध्वरम्'
ऋ. १०.८५.१८; अ. ७.८१.१ मै.सं. ४.१२.२:१८१.३
(२) अन्तरिक्ष में रमने वाले सूर्य और चन्द्र ।

शिशूल – बच्चा
'शिशूला न क्रीड़यः सुमातरः'
ऋ. १०.७८.६

शिंशपा – सीसम वृक्षः (२) सीमसम के समान दृढ़ रथसेना ।

'ओजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम्'
ऋ. ३.५३.१९
(३) अति निन्दाजनक वचन (४) शिशुओं को पालन करने वाले माता पिता और आचार्य ।
(५) तीनों वेद विद्याएं (६) वाणी, कर्म और मन (६) परम सुप्त सत्ता को पालन करने वाली तीन अनादि शक्तियाँ ।
'यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः'
अ. २०.१२९.७; शां.श्रौ.सू. १२.१८.७

शिष्ट – (१) शिष्ट विद्वान्, सुसंस्कृत ।
'शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवः'
ऋ. ८.५३.४
(२) शिक्षित, शासित ।
'इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः'
अ. २.२९.४; ३.५.४.
(३) मन और इन्द्रियों को वश करने वाला विद्वान् ।
'शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः'
अ. ५.२६.४

श्रितः – (१) सब से सेवा करने योग्य (२) सबको आश्रय देने वाला
(३) जिसको आश्रय दिया जाना ।
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितः
यः पृणानि स ह देवेषु गच्छति'
ऋ. १.१२५.५
जो पुरुष अन्यों को धन, अन्न तथा ज्ञान से परिपूर्ण करता है और सबको प्रसन्न और सुखी करता है वह सबसे सेवा करने योग्य और सब को आश्रय देने वाले होने से आश्रय किया जाता है । वह सूर्य के समान जहाँ जरा भी दुःख और क्लेश नहीं होता ऐसे लोक या परमानन्द स्वरूप परमेश्वर के आश्रय पर विराजता है ।

श्रिता – आश्रित, लगी हुई, (२) मेघ में व्याप्त विद्युत रूपी माध्यमिका वाक् का विशेषण ।
'मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता'
ऋ. १.१६४.२९; अ. ९.१०.७; जै.ब्रा. २.२६०; नि. २.९.
विद्युत् मेघ में व्याप्त हो जब तक वर्षा होती रहती है । मेघ या जल बनाती है ।

श्रियस् – (न) । (१) सेवन –सा. (२) सुख सेवन –दया.
'श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२: १६७. १५; का.सं. ८.१७
प्राणियों के सेवन के लिए (श्रियसे) वे मरुत् जल बरसाना चाहते हैं (कम् संमिमिक्षिरे) । –सा.।
सुख भोगने वाले विद्वान् पुरुष सुख सेवन के लिए दीप्तिमान् विद्युत् आदि पदार्थों से (भानुभिः) सुख सेवन की कामना करते हैं । (संमिमिक्षिरे)– दया. ।

श्वित्न्य – श्वेतवर्ग युक्त तेजस्वी चरित्रवान् ।
'सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः'
ऋ. १.१००.१८
तेजस्वी, चरित्रवान् श्वेत वर्ण के मित्र वर्गों से मिलकर भूमि के क्षेत्र का अच्छी प्रकार विभाग करें (सनत्) ।

श्वित्र – कौड़िया नामक सर्प ।
'पैद्वः श्वित्रमुतासितम्'
अ. १०.४.५

श्वित्रा – (१) वर्ण कर्त्री भूमि, (२) श्वेत वर्ण का यश या धन देने वाली वसुन्धरा ।

श्वित्यङ् – (१) वृद्धि को प्राप्त, उन्नत ।
'श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दाः'
ऋ. ७.३३.१

श्वित्यञ्चः – ब.व.। श्विति + अञ्च, उज्ज्वल यश या समृद्धि को प्राप्त ।
'श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनः'
ऋ. ७.८३.८

श्वित्र्य – 'श्वित्रा' का अर्थ भूमि है अतः 'श्वित्र्य' का अर्थ हुआ – (१) भूमि का आवरण (२) पृथ्वी का हितकारी
'क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्'
ऋ. १.३३.१५
हे परमेश्वर, जिस प्रकार खेत को जोतने के लिए (क्षेत्रजुषे) कृषक पृथ्वी के हितकारी बैल को (श्वित्र्य गाम्) खेत में चलाता है और सूर्य जिस प्रकार खेतों में अन्न उपजाने के लिए भूमि के हितकारी किरणों को फेंकता है उसी प्रकार तू रण क्षेत्रों में विजय के लिए भूमि के हितजनक प्रबन्ध और शासन में समर्थ नर पुंगव को भेज ।

श्विति – श्वेत वर्ण ।

श्वितीच् – शुद्ध, स्वच्छ, उज्ज्वल, वेष कान्ति रूप को धारण करने वाला ।
'प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे'
ऋ. २.३३.८

श्वितीचि – (१) श्वेतपदार्थ चान्दी-रजत, मुक्ता आदि का संचय करने वाला, (२) यश या शुभ चरित्र का संचय करने वाला ।
'श्वितीचय श्वात्रासो भुरण्यवः'
ऋ. १०.४६.७; वाज.सं. ३३.१; तै.ब्रा. २.७.१२.१

श्वितीची – (१) या श्वितिं श्वेतवर्णम् अञ्चति –दया. ।
उषा, (२) शुद्ध पवित्र कर्म करती हुई स्त्री ।

शीकायत् – (१) सेचन करता हुआ, फुहार छोड़ता हुआ, फुहार छोड़ता हुआ मेघ (२) सुखकारी ।धन, धान्य, उपकार और सद्वतन से प्रजा पर सुख सेचन करता हुआ ।
'शीकायते स्वाहा'
वाज.सं. २२.२६; तै.ब्रा. ७.५.११.२; का.सं. (अश्व.) (श्वेत वर्ण से युक्त-उज्ज्वल)

शीध्र – शीघ्र कार्य करने में चतुर
नमः शीध्राय च शीभ्याय च
वाज. सं. १६.३१; तै.सं. ४.५.५.२.

शीत – (१) शीत ज्वर
'नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने'
अ. ७.११६.१
(२) शीत काल, (३) बड़ा हुआ ।
(४) शीड़ श्यङ् वृद्धौ । वृद्धिकारी ।
'शीते वाते पुनन्निव'
वाज.सं. २३.२६; २७.तै.सं. ७.४.१९.२; मै.सं. ३.१३.१: १६८.२; का.सं. (अश्व.) ४.८; श.ब्रा. १३.२.९.५; तै.ब्रा. ३.९.७.२; आश्व.श्रौ.सू. १०.८.१२; १३ शां.श्रौ.सू १६.४.२; वै.सू. ३६. ३१; ला.श्रौ.सू. ९.१०.३,४

शीतःवातः – (१) शीतल वायु, (२) बढ़ता हुआ वात
(३) वृद्धि कारी पवित्र पदार्थ
(४) परिपुष्ट ऐश्वर्य ।

शीतह्रदा – शीतल तालाबों से युक्त शाला, घर
'शीतह्रदा हि नो भुवः'
ऋ. खि. १०.१४२.१, अ. ६.१०६.३

शीतिका – () शीतगुण वाली एक ।
'शीतिके शीतिकावति'
ऋ. १०.१६.१४; अ. १८.३.६०; तै.आ. ६.४.१; आश्व.गृ.सू. ४.५.४.
(२) शीतल स्वभाव वाली

शीतिकालीन – (१) शीतगुण वाली लता से युक्त भूमि ।
(२) शान्ति दायक प्राणियों से युक्त,
(३) शीतल वचन बोलने वाली ।

शीन – न. । वनस्पतियों और प्राणियों की वृद्धि करने वाली शीलतला ।
'शीनं वसया'
वाज.सं. २५.९; मै.सं. ३.१५.८: १८०.२

शीभम् – अ. । शीघ्र, शीघ्र ही ।
'शीभं समवल्गत'
अ. ३.१३.२.
'शीभं राजन् सुपथा याह्यर्वाङ्'
ऋ. १०.४४.२; अ. २०.९४.२
'प्रकृते ध्वनयो यन्तुशीभम्'
अ. ५.२०.७
(३) अति शीघ्रता से
'यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधयायासि शीभम्'
अ. १३.२.३.
'आ वक्षणाः पृणाध्वं यात शीभम्'
ऋ. ३.३३.१२

शीभ्य – चुस्ती से करने योग्य कर्म में कुशल ।
'नमः शीध्राय च शीभ्याय च'
वाज.सं. १६.३१

शीभम् – शीघ्र ।
'प्र यात शीभमाशुभिः'
ऋ. १.३७.१४
हे वीरो और विद्वान् पुरुषो, आप लोग बड़े शीघ्र जाने वाले यान आदि साधनों से शीघ्र ही जाओ ।

शीपाल – शैवाल, सेवार ।
'उद्नः शीपालमिव वात आजत्'
ऋ. १०.६८.५; अ. २०.१६.५

शीपाला – शैवाल (सेवार) से युक्त शान्त गम्भीर नदी ।
'मधु परुष्णी शीपाला'
अ. ६.१२.३

शीर – (१) विद्युत् रूपेण सर्वत्र शयानः–दया.

(विद्युत् रुप से सर्वत्र सोता हुआ ।)
(२) सुप्त के समान अति शान्त,
(३) व्यापक परमेश्वर
(४) शीङ् + रक् = शरीर, अथवा –अश् + रक् = शीर (अश् का शी बाहुलक नियम से) ।
अर्थ – अनुशायी, आशी, सब भूतों में अवस्थित
(५) सभी प्राणियों में प्रविष्ट हो सोने वाला–अग्नि–सा.
(६) सभी के हृदयों में अवस्थित परमात्मा –दया.
'शीरं पावकशोचिषम्'
ऋ. ३.९.८; ८.४३.३१; १०२.११; नि. ४.१४.
उन सभी प्राणियों में प्रविष्ट हो सोने वाले (शीरम्) तथा पवित्र करने वाली दीप्ति के धारक अग्नि या परमात्मा को .. ।
आधुनिक अर्थ – एक बड़ा सर्प

शीरशोचिष – (१) सुप्त ज्योति वाला अग्नि, (२) दीप्तिमान अग्नि
गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
ऋ. ८.७१.१४, . २०.१०३.१; साम. १.४९
'अच्छा नः शीरशोचिषम्'
ऋ. ८.७१.१०; साम. २.९०४; आश्व. श्रौ.सू. ४.१३.७; ८.१२.६; शां.श्रौ.सू. १०.१२.१६; १४.५५.२
(३) व्यापक प्रकाश वाला
(३) शील स्वभाव से तेजोमय

शीर्ष – सिर ।
'परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्र
अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः'
ऋ. १.३३.५
हे इन्द्र, वे अयज्ञशील असंगठित पुरुष यज्ञशील संगठित पुरुषों के साथ स्पर्धा करते हुए सदा तुझ से अपने सिर अवश्य फेर लेते हैं ।

शीर्षक्ति – (१) सिर का रोग
'मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनम्'
अ. १.१२.३
(२) सिर में व्यापक
'शीर्षक्तिं शीर्षामयम्'
अ. ९.८.१
'शीर्षक्तिमुपबर्हणे'
अ. १२.२.१९,२०

शीर्षण्य – शिरोभाग में उत्पन्न होने वाला दाद खाज और पीनस रोगों का उत्पादक क्रिमि ।
'अन्वान्त्रयं शीर्षण्यम्'
अ. २.३१.४
(२) सिर में स्थित
'यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्कात्'
ऋ. १०.१६३.१; अ. २.३३.१; २०.९६.१७; पा.गृ.सू. ३.६.२; आप.मं .पा. १.१७.१
(३) सिर सम्बन्धी ।
'सर्वं शीर्षण्यं ते रोगम्'
अ. ९.८.१–५

शीर्षण्वती – सिरों वाली ।
'शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी'
अ. १०.१.२.

शीर्षतः जातः – (१) सिर से उत्पन्न बालक, (२) सिरोभाग में प्रकट होने वाला आत्मा ।
'शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम्'
ऋ. १०.८८.१६

शीर्षन् – (१) सिर (२) विचार ।
'आ शीर्ष्णः शमोप्यात्'
अ. १.१४.३
(३) शिरः स्थानीय रश्मिजाल '
'शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्'
ऋ. १०.२७.१३
आदित्य अपने शिर स्थानीय रश्मि जाल से (शीर्ष्णा) ताप निवारक वृष्टि जल या उत्तम जल को (वरूथम्) समस्त संसार के शिरपर (शिरः) बरसाता है (प्रतिदधौ) या रखता है ।
(४) सूर्य ।
'शीर्ष्णा शीर्ष्णोपवाच्यः'
ऋ. १.१३२.२

शीर्षण्या रशना – (१) घोड़े के सिर पर बंधी रस्सी या चर्मपिट्टी
या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
ऋ. १.१६२.८; वाज.सं. २५.३१, तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं.३.१६.१; १८२.१०; का.सं. ६.४
(२) अश्व सैन्य के मुख्य सर्वत्र राष्ट्र में व्यापक सर्जन कारिणी व्यवस्था ।

शीर्षलोक – सिर का रोग ।
'शीर्षलोकं तृतीयकम्'
अ. १९.३९.१०

शीर्षामय – (न.) । शिर का रोग ।

शील – शील, स्वभाव, रहने की प्रक्रिया ।
'शीलाञ्जनीकारीम्'
वाज.सं. ३०.१४; तै.ब्रा. ३.४.१.१०

श्री – (१) सबको आश्रय देने वाली परमेश्वरी शक्ति ।
'शीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'
वाज.सं. ३१.२२; वाज.सं. (का.) ३५.२२.
(२) वरिपक्व करना ।
'सोमं श्रीणान्ति पृश्नयः'
ऋ. १.८४.११; ८.६९.३; अ. २०.१०९.२; साम. २.३५६; वाज.सं. १२. ५५; तै.सं. ४.२.४.४; ५.५.६.३; मै.सं. २.८.१; १०६.५; ३.२.८: २८.१५; ४.१२.४: १९०.२; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.७.३.२१; तै. ब्रा.३.११.६.२.
(३) रथ जिस पर आश्रय लिया जाता है, (२) कान्ति, (४) विद्या रूपी लक्ष्मी या धन रुपी लक्ष्मी ।
'युवोः श्रियं परि योषा वृणीत
सूरो दुहिता परितक्म्यायाम्'
ऋ. ७.६९.४; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.५;तै.ब्रा. २.८.७.८
हे अश्विनीद्वय तुम्हारे रथ या कान्ति सूर्य की उषा नाम्नी दुहिता (सूरः दुहिता) तुममें अपने को मिश्रित करती हुई (योषा) युद्ध रात्रि के बाद (परितक्म्यायाम्) सब प्रकार से भजती है (परिवृणीत) –सा. ।
हे अध्यापक या उपदेशक, आप की विद्या लक्ष्मी तथा धर्मलक्ष्मी को (युवोः श्रियम्) अविद्यान्धकार के समय (परितक्म्यायाम्) स्त्री पुत्र और पुत्रियां सभी ग्रहण करें (योषा, सूरः, दुहिता परिवृणीत) । –ज.दे.श. ।

श्रीणन् – परिपक्व करता हुआ ।
'श्रीणन्नुप स्थाद् दिवं भुरण्युः'
ऋ. १.६८.१
जिस प्रकार सूर्य सबका पालक पोषक होकर ओषधियों को परिपक्व करता है....।

श्रीणानः – आश्रय लेता हुआ
अन्तः पवित्र
उपरि श्रीणानः'
ऋ. ८.१०१.९; वाज.सं. ३३.८५

श्रीणीत – श्री धातु मिश्रण अर्थ में भी गृहीत है । अर्थ है – मिलाओ ।
'गोभिः श्रीणीत मत्सरम्'
ऋ. ९.४६.४; नि. २.५
हे ऋत्विजो, दूध से (गोभिः) सोमरस (मत्सरम्) मिलाओ (श्रीणीत) ।

शु – (१) आशु (शीघ्र), क्षिप्र । अंग्रेजी का Soon शब्द 'शु' से बना मालूम होता है ।
आशु इति च शुति च क्षिप्रनामनी भवतः
(आश और शु दोनों क्षिप्र के वाचक हैं) ।

शुक् – (१) सन्ताप कारी क्रोध ।
'यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु'
वाज.सं. १३.४७–५१; मै.सं. २.७.१; १०२.१२,१४, १७; १०३.१.४; २. १०.१: १३१.४; ३.३.५: ३७.१३; का.सं. १६.१७; १७.१७; २१.७; श.ब्रा. ७.५.२.३२–३६; ९.१.२.१२, शां.श्रौ.सू. ८.१२.११.
(२) शुच् (दीप्त्यर्थक) + क्विप् = शुक् । दे. 'आशुशुक्षणि' (आशु शुक्षणि का अर्थ–
(१) अति शीघ्रं क्षणोषि शत्रून (शत्रुओं को अति शीघ्र नष्ट करता है) ।
(२) आशु शुचा क्षणोषि (शीघ्र ही दीप्ति से नष्ट करते हो) ।
(३) जो दीप्ति से शीघ्र नष्ट कर देता है ।
(४) आशु शुचा सनोति (जो शीघ्र दीप्ति संभक्त करता है) । आशु + शुच् + सन् + इन् = आशु शुक्षणि– अग्नि ।

शुक – (१) सुग्गा, तोता ।
'शुकेषु मे हिरमाणं
रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे
हरिमाणं नि दध्मसि'
ऋ. १.५०.१२ अ.१.२२.४
हम अपनी देह के सुख और बल को अपहरण करने वाले रोग को (हरिमाणम्) तोते के समान किए गए नाना वृक्षों से युक्त प्रदेशों में भ्रमण आदि कार्यों द्वारा (शुकेषु) और शरीर को पोषण करने वाली लेप करने योग्य ओषधियों द्वारा (रोपणाकासु) उन ओषधियों के बल पर वश में करें और दुःख पीड़ा को हरने और स्वतः द्रवरूप एवं देह के मलों को बहाकर निकाल देने वाले

पदार्थों के बल से भी (हारिद्रवेषु) अपने शरीर के रोगों को दूर करें ।
शुक, रोपणाका और हारिद्रव ये ओषधियों के विशेष वर्ग हैं ।

शुकबभ्रु – हरा भूरा, हरे भरे, रंग की पोशाकवाला ।
'बभ्रुरणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः'
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.११.१; मै.सं. ३.१३.३: का.सं. (अश्व) ९.१.

शुक्र – (१) ज्येष्ठ मास ।
'उपयामगृहीतोऽसि शुक्राय'
वाज.सं. ७.३०
(२) शुच् + रक् = शुक्र, अर्थ–घृत ।
'शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना
ऋ. ९.४६.४
ऐ ऋत्विजो, मथनी से (मन्थिना) घृत निका लो (शुक्रा गृभ्णीत) ।
(३) लोकहित रंग
(४) वीर्य ।

शुक्रदुघ – (१) जल दोहक संघ (२) श्वेत कान्ति का यश या धन दुहने, वाला राजा
'मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोः'
ऋ. ६.३५.५

शुक्रयः – वीर्य रक्षा करने वाला ब्रह्मचारी ।
'तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यः'
वाज.सं. ६.२७

शुक्रपिश – (१) तेजस्वी रूप वाली शोभा ।
'अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने'
ऋ. १०.११०.६; अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१; मै.सं. ४.१३.३: २०२.६; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.११.
(२) शुच् + क्रन् = शुक्र; अथवा – शुच् + क्विप् = शुक् । शुक् + रक् = शुक्र । अर्थ है– तेजस्वी ज्वाला युक्त ।
पेश इति रूप नाम ।
पिश् (अवभव अर्थ में) + असुन् = पेशस् । अर्थ है जो विकसित है ।
शुक्रपिश् का अर्थ हुआ शुक्र रूप वाली, सुन्दर रूप वाली, पिश् रूप या चेहरा का वाचक है । शुक्ररूपिर्णा शोभा स्थापित करती हुई या शुभ्रवर्ण्य लक्ष्मी को धारण करती हुई ।

शुक्रपूतपाः– शुद्ध पवित्र रीति से प्राप्त ऐश्वर्य का पालक सूर्य ।
'दानाय शुक्रपूतपाः'
ऋ. ८.४६.२६

शुक्रवर्णा – (१) शुद्ध वर्ण वाली, (२) विशुद्ध अक्षरोच्चारण से युक्त, (३) शुद्ध ज्ञान स्वरूप निर्मल, प्रज्ञा, वाणी या कर्म (४) शुद्ध वर्णा स्त्री
'शुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम्'
ऋ. १.१४३.७; तै.ब्रा. १.२.१.१३; आप.श्रौ.सू. ५.६.३

शुक्रवासाः – (१) शुक्र प्रकाश को धारण करती हुई उषा ।
(२) उज्ज्वल वस्त्र धारण करती हुई युवती,
(३) शुद्ध वीर्य धारण करने वाली ।
'व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः'
ऋ. १.११३.७

शुक्रशोचिष्, शुक्रशोचीः – (१) शीघ्र वेग का उत्पादक तेज से युक्त अग्नि,
(२) वीर्य –रक्षा के तेज से तेजस्वी ।
'रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषम्'
ऋ. २.२.३

शुक्रःवसानः – (१) शुद्धकान्ति युक्त वस्त्र धारण करता हुआ । (२) सूक्ष्म जलों को धारण करने वाला मेघ, (३) पुण्य कर्मों को धारण करने वाला ब्रह्मचारी ।
'शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः'
ऋ. ३.८.९

शुक्रसद्मा – (१) जल या तेज का आश्रय (२) ओष और प्रकाश फैला देने वाली उषा, (३) उत्तम गृह बनाकर रहने वाली ।
'शुक्रसद्मनामुषसामनीके'
ऋ. ६.४७.५

शुक्रा – (१) शुद्ध अन्तः करण वाली शुद्धाचार युक्त ।
'प्र शुक्रैतु देवी मनीषा'
ऋ. ७.३४.१; मै.सं. ४.९.१४: १३४.११; ऐ.ब्रा. ५.५.१०:कौ.ब्रा. २२.९; पंच.ब्रा. १.२.९; ६.६.१०; तै.आ. ४. १७.१
(२) कान्तिमती उषा या कुलांगना
'शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची'

ऋ. १.१२३.९
श्वेतवर्ण से युक्त उज्ज्वल (शिवतीची) कान्तिमती उषा (शुक्रा) काले अन्धकार के बीच से प्रकट होती है (कृष्णात् अजनिष्ट) ।
अथवा,
स्वयं शुद्ध पवित्र कर्म करती हुई कान्तिमती स्त्री चाहे वह हीन कर्म करने वाले कुल से भी उत्पन्न हुई हो तो....

शुक्रौ – (१) वीर्य और रज, (२) शुद्ध चित्त और कान्ति युक्त वर कन्या ।
'शुक्रावनड्वाहावस्ताम्'
ऋ. १०.८५.१०; अ. १४.१.१०

शुक्लपिंगाक्ष – श्वेत पीला सूर्यरूप चक्षु ।
'अह्ने शुक्लं पिंगाक्षम्'
वाज.सं. ३०.२१; तै.ब्रा. ३.४.१.१७

शुक्लानि – श्वेत कुष्ठ के चिह्न ।
'परा शुक्लानि पातय'
अ. १.२३.२.

शुक्वन् – शुक् + वनिप = शुक्वन् । अर्थ– शक्तिशाली ।

शग्मा – उत्तम सुख करने हारी ।
'शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः'
अ. १४.२.१७

शुङ्ग – ओषधि का सरकना फूटना ।
प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेक शुङ्गाः
अ. ८.७.४

शुचः – कान्तिमान् आत्मा ।
'शुचायाश्च शुचस्य च'
ऋ. १०.२६.६

शुचत् – पवित्र । शुच् + शतृ = शुचत् ।
प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्
कुमारो न वीरुधः सर्प दुर्वीः
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तम्
रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः'
ऋ. १०.७९.३
इस पृथ्वी का अग्नि सभी जीवों की निर्मात्री पृथ्वी की (मातुः) बहुत लताओं (उर्वी वीरुधः) तथा उनके प्रकृष्ट मूत की भावना करता हुआ (प्रतरं गुह्यम् इच्छन्) उन्हें जलाने जाता है (प्रसर्यत्) । जैसे बच्चा माता का स्तन पान करने के निमित्त हाथों को स्तनों की ओर बढ़ाता है (कुमारो न) उसी भूमि के निर्झर प्रदेश में (रिपः उपस्थे) । बार बार लताओं का आस्वादन करते हुए (रिरिह्वांसम्) एवं भीतर रहकर भी दीप्त होते देखा (अन्तः शुचन्तम् अविदत्) जैसे आठ महीनों तक सोते हुए विद्युत को वर्षाऋतु में पक्व होकर चमकते हुए हम देखते हैं (पक्वं ससं न) ।
अन्य अर्थ – हृष्टपुष्ट अग्नि स्वरूप तेजस्वी बच्चे (कुमारः) माता के प्रकृष्ट स्तन्यपान करने की कामना करता हुआ (यातुः प्रतरं गुह्यं इच्छन्) पृथ्वी जन्य (ऊर्वीः) अन्नों को ओषधियों के समीप (वीरुधः) नहीं जाता (नप्रोप सर्पत्) एवं माता की गोद में (रिपः उपस्थे) दूध पीते हुए बच्चों को (अन्तः रिरिह्वांसम्) पिता प्रकटित विद्युत् की तरह शोभायमान पाता है (पक्वं ससं न शुचन्तम् अविदत्) ।

शुचन्तिः – पवित्र कारक ।
'याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदम्
तप्तं घर्ममोम्यावन्तमन्त्रये'
ऋ. १.११२.६
जिन उपायों से प्रजाजनों के हृदयों को और नगरों को निवास भूमि को शुद्ध करने और प्रकाश से जगमगा देने वाले जनों को (शुचन्तिम्) ऐश्वर्यों को दान देने वाले उत्तम समरके अध्यक्ष को (धनसाम् सुसंसदम्) सन्तप्त पुरुष या ऐश्वर्यवान् पुरुष को (तप्तम्) सुरिक्षित करते हो ।

शुचन् – सत्य न्याय का कार्य व्यवहारों में पवित्र शुद्ध एवं ईमानदार ।
'अद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः'
ऋ. ४.२.१५

शुचमानः – शुच् + शानच् = शुचमान । अर्थ । दीप्यमान चमकता हुआ ।
'ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द'
कर्णा बुधानः शुचमान आयोः'
ऋ. ४.२३.८; नि. १०.४१
ऋतदेव का अत्यन्त महान् श्लोक अर्थात् स्तुति वाणी बोधित करता तथा चमकता हुआ (शुचमानः) मनुष्य के बधिर कानों को भी छेद डालती है (आयोः बधिरा कर्णा आततर्द) ।

शुचयत् – प्रज्ज्वलित, पवित्र ।

'युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरंगैः'
ऋ. १०.४.६
प्रज्ज्वलित अंगों या पवित्र इन्द्रियों से अरणियों में जुटे ज्वालाओं या रथ रूपी शरीर को उसकी पूर्ति के लिए संयुक्त करें ।

शुचा – अत्यन्त शुद्ध, सत्वगुण से युक्त, कान्तिमती प्रकृति ।
'शुचायाश्च शुचस्य च'
ऋ. १०.२६.६

शुचि – (१) आषाढ़ मास ।
'उपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वा'
वाज.सं. ७.३०
(२) शुच् + इन् = शुचि-अग्नि, (३) आदित्य, (४) दीप्त (५) पवित्र ।
'त्वं नृणां नृपते जायसे शुचि'
ऋ. २.१.१; वाज.सं. ११.२७; तै.सं. ४.१.२.५; मै.सं. २.७.२: ७६.१०; तै.सं. (आंध्र) १०.७६; नि. ६.१.
हे यष्टाओं के पालक अग्नि, तू मनुष्यों के द्वारा दीप्त रूप से उत्पन्न किया जाता है ।
आधुनिक अर्थ –
शुचिर्ग्रीष्माग्नि श्रृंगारे आषाढे शुद्ध मन्त्रिणि ज्येष्ठे च पुंसि धवले शुद्धेऽनुपहते त्रिषु – मेदिनीकोष
(६) निष्पाप । नैरुक्तों ने 'निषिक्त मस्मात् पापकम् (इस से पाप निकाल रखा है) – ऐसा अर्थ किया है ।
(७) आशु तुन्ना इव द्रवति इति वा (यह शीघ्र ही विद्वान् के सदृश द्रवती है) ।

शुचि ऊधः – (१) पवित्र कान्तिमान् प्रभात, (२) पवित्रस्तन मण्डल ।
'शुच्यूधो अतृणन्न गवाम्'
ऋ. ४.१.१९

शुचिक्रन्द – शुद्ध निर्दोष वचन कहने वाला ।
'शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानाम्'
ऋ. ७.९७.५; का.सं. १७.१८.

शुचिजन्मा – शुद्ध जन्म वाला जीवात्मा, (२) अग्नि ।

शुचिजिह्व – (१) पवित्र सत्य वाणी बोलने वाला, (२) अग्नि ।
'सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः'
ऋ. २.९.१; वाज.सं. ११.३६; तै.सं. ३.५.११.२; ४.१.३.३; मै.सं . २.७.३: ७७.१४; का.सं. १६.३; ऐ.ब्रा. १.२८.३५; श.ब्रा. ६.४ .२.७

शुचिदन् – (१) शुद्ध स्वच्छ दांतों से शुशोभित ।
'हिरिश्मश्रुः शुचिदन्'
ऋ. ५.७.७
'सं यो वनो युवते शुचिदन्'
ऋ. ७.४.२

शुचिप्रतीक – (१) शुद्धपवित्र स्वरूप वाला । शोभनमुख, (२) सौम्य शिष्य (३) पवित्र प्रतीति देने वाला । –दया.
अग्नि या शिष्य का विशेषण ।
'शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे'
ऋ. १.१४३.६
उस शुद्ध पवित्र स्वरूप सौम्य शिष्य को आचार्य इस प्रज्ञा और कर्म से (अपा धिया) उपदेश करें (गृणे) ।

शुचियाः – शुद्ध चरित्रवान् निष्पाप, निर्दोष, निरपराध एवं ईमान दार की रक्षा करने वाला...वायु ।
'आ वायो भूष शुचिया उप नः'
ऋ. ७.९२.१; वाज.सं. ७.७; तै.सं. १.४.४.१: ३.४.२.१, मै.सं. १.३.६: ३२.९; का.सं. ४.२; १३.११,१२; ऐ.ब्रा. ५.१६.११; कौ.ब्रा. २६.१५; श.ब्रा. ४.१.३.१८; आश्व.श्रौ.सू. २.२०.४; ३.८.१; ८.९.२

शुचिपेशस् – (१) शुद्धि पवित्र स्वरूप वाला (२) शुद्ध कान्तिमय तेज को धारण करने वाली ज्वाला या बुद्धि ।
'ऊर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम्'
ऋ. १.१४४.१

शुभिभ्राजा – पवित्र निष्कलंक आचार के प्रकाश से सुशोभित कुमारी या स्त्री ।
'शुचिभ्राजा उषसो नवेदाः'
ऋ. १.७९.१; तै.सं. ३.१.११.४

शुचिबन्धुः – (१) शुद्ध पवित्र नियम बन्धनादि से युक्त, (२) तेज से अन्यों को सतमर्यादाओं में बांधने वाला ।
'महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः'
ऋ. ९.९७.७; साम. १.५२४, २.४६६

शुचिव्रता – (१) पवित्रव्रत के पालक, (२) देह में

सदा युक्त बनाए रखने वाले प्राण, अपान ।
'दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता'
ऋ. १.१८२.१

शुचिव्रते – द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी का विशेषण (२) सुन्दर कर्मों वाली ।
'घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते'
ऋ. ६.७०.२
सुन्दर निर्मित, सुन्दर कर्मों वाली द्यावापृथिवी लोकहित के लिए जल देती है ।

शुचिषत् – (१) शुद्ध ब्रह्म में विद्यमान् योगी, (२) पवित्रस्थान में बैठा हुआ ।
'सोममद्भ्यो व्यपिबत्
छंदसा हंसः शुचिषत्'
वाज.सं. १९.७४; कौ.ब्रा. ३८.१; तै.ब्रा. २.६.६.१.
(३) शुद्ध आचरण और व्यवहार में विराजमान ।
'हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसत्'
ऋ. ४.४०.५; वाज.सं. १०.२४; १२.१४; तै.सं. १.८.१५.२; ४.२.१. ५; मै.सं. २.६.१२: ७१.१४; ३.२.१: १६.१; ४.४.६: ५७.३; का.सं. १५.३; १६.८; ऐ.ब्रा. ४.२०.५; श.ब्रा. ५.४.३.२२; ६.७.३.११; तै.आ. १०.१०.२: ५०.१

शुचिष्मः – (१) शुद्ध व्यवहार वाला (२) शुद्ध कान्ति वाला ।
'ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः'
ऋ. ६.६.४

शुण्ठाकर्ण – शुष्क काष्ठ से बने अथवा छोटे उपकरण वाला ।
'प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः'
वाज.सं. २४.४

शुतुद्रिः – (१) अति वेग से बहती हुई नदी, (२) शुतुद्रि नाम की नदी
(३) एक दूसरे के शोकों को दूर करने वाले,
(४) अति शीघ्र एक दूसरे के प्रेम से द्रवित या कष्टों से व्यथित होने वाले स्त्रीपुरुष,
(५) शीघ्र वेग से जाने वाले सेना और सेनापति शुतुद्रि, शुद्राविणी, क्षिप्र द्राविणी तुन्नेव द्रवति, आशुशुक् द्राविणी वा । शु शीघ्रं नुदति व्यथयति तुद्यते व्यथिता भवति इति वा ।
(६) शोक मृत्यु भयादि दूर करने वाले प्राण और अपान या आत्मा और परमात्मा
'विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
शुतुद्रि शब्द क्षिप्रदविणी से बना है । (७) सतलज नदी
'शुतुद्रि स्तोमं सचता पुरुष्ण्या'
ऋ. १०.७५.५; तै.आ. १०.१.१३; नि. ९.२६

शुतुद्री – शुद्राविणी, क्षिप्रद्रविणी, आशुतुन्ना इव द्रवति नि (१) एक नदी सतलज
(२) शरीर की एक नाड़ी जो वेग से गति करती चलती है ।

शुद् – (१) प्रजा को पीड़ा देने वाला अल्प बल का पुरुष, क्षुद्र ।
'रोदन्तं शुद्धमुद्धरेत्'
अ. २०.१३६.१६

शुद्ध – शुद्ध ।
'इन्द्र शुद्धो हि नो रयिम्'
ऋ. ८.९५.९; साम, २.७५४

श्नुष्टि – श्नुसु अदन आदाने इत्येके (श्नुसु धातु भोजन करना अर्थ में है) । श्नुस् + क्तिन् = श्लुष्टि है । अर्थ – भोग की प्राप्ति
आरभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिम् ।
अ. ८.२.१

श्रुति – (१) उपदेश श्रवण, (२) लोक वृत्त का श्रवण –वहां क्या हो रहा है ।
(३) कहां कहां हो रहा है इसकी जानकारी ।
'संसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्व'
वाज.सं. १५.७
(४) गुरूपदेश द्वारा प्राप्त वेदज्ञान (५) श्रवण शक्ति ।
'मत्यै श्रुताय चक्षसे'
अ. ६.४१.१

श्रुतऋषिः – (१) ज्ञानदर्शी गुरु, (२) शिष्यों द्वारा श्रवण करने योग्य, (३) ऋषिजनों की प्रार्थनाओं का श्रवण करने वाला ।
'श्रुतऋषिमुग्रमभियातिषाहम्'
ऋ. १०.४७.३; मै.सं. ४.१४.८: २२७.८

श्रुतम् – श्रृणुताम्, । श्रु (सुनना) के म.प्र. द्वि.व.का रूप ।
'माध्वी मम श्रुतं हवम्'
ऋ. ५.७५.१–९; साम. १.४१८; २.१०९३–५

हे मधु एवं सोम मिश्रित पेय पीने वाले (माध्वी) अश्विद्वय, तुम हमारी पुकार (हवम्) सुनो (श्रुतम्) ।

श्रुतः – प्रसिद्ध, ख्यात् , इन्द्र का विशेषण ।
'इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य '
स्तवे वज्र्यृचीषम '
ऋ. १०.२२.२
ऋचा के समान गुणों वाला (ऋचीषमः) वज्रहस्त इन्द्र (वज्री) सभी दिशाओं में विख्यात (श्रुतः) इस यज्ञ में हमसे स्तुत किए जाते हैं (स्तुवे) ।

श्रुतरथ – (१) प्रसिद्ध महारथी, इन्द्र ।
'यूने समस्मै क्षितयो नमन्ताम्
श्रुतरथाय मरुतो दुवोया '
ऋ. ५.३६.६
(२) गुरूपदेश रूप रथ,
(३) गुरूपदेश से श्रवण करने योग्य
(४) रमणीय ।

श्रुतर्य – श्रुत + अर्य = श्रुतर्य (शकन्धु शब्द के जैसा पर रूप) । (१) श्रुतानि अर्याणि विज्ञान शास्त्राणि येन सः (जिसने विज्ञान शास्त्रों को सुना समझा हो) ।
(२)वेदोपदेश का स्वामी
(३) वाणी का स्वामी
(४) श्रोत्र का स्वामी ।
'याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतम् '
ऋ. १.११२.९
जिन शक्तियों से तुम दोनों विज्ञान शास्त्रों के सुनने जानने वाले अतिविद्वान् या कुत्स को या गुरु भाव से श्रवण करने योग्य वेदोपदेश के स्वामी, वाणी के स्वामी, श्रोत्र के स्वामी, शरीर के नायक अन्य प्राणों के स्वामी आत्मा को सब प्रकार से रक्षा करते हो (नर्यम् आवतम्) ।

श्रुतर्वा –श्रुत + अर्वा = श्रुतर्वा । शकन्धुवत् पर रूप । अर्थ–प्रसिद्ध अश्वारोही जन ।
'यस्य श्रुतर्वा बृहन् '
ऋ. ८.७४.४

श्रुतवित् – गुरु से उपदिष्ट ज्ञान को जानने वाला ।
'बाहुवृक्तः श्रुतवित् तर्यो वः सचा '
ऋ. ५.४४.१२

श्रुतस्य प्रियाः – ब्रह्मवेद ज्ञान के प्यारे ।
'प्रियाःश्रुतस्य रूप भूयास्म '
अ. ७.६१.१

श्रुत्कर्ण – (१) अभ्यर्थना करने वाले के वचनों को श्रवण करने वाला,
(२) गुरुओं द्वारा बहुश्रुत कर्णों वाला, (३) बहुत विद्वानों को अपने अधीन रखने वाला ।
'श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः '
ऋ. १.४४.३; साम. १.५०, वाज.सं. ३३.१५; तै.ब्रा. २.७.१२.५
(४) विद्वानों का उपदेश सदा कानों में धारण करने वाला ।
'श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमम् '
ऋ. १.४५.७
(५) श्रवण करने वाले सावधान कानों वाला ।
'श्रवच्छुत्कर्ण ईयते वसूनाम् '
ऋ. ७.३२.५
(६) प्रार्थनाओं को सुनने वाला परमेश्वर
'श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय '
अ. १९.३.४; का.सं. ३५.१; आप.श्रौ.सू. १४.१७.१
(७) कान से सुनने वाला ।

श्रुतसेन – शूरता में विख्यात सेना वाला ।
'नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च '
वाज.सं. १६.३५; तै.सं. ४.५.६.२; मै.सं. २.९.६; १२५.२; का.सं. १७.१४; मा.श्रौ.सू. ११.७.१.

श्रुत्य – (१) वेदार्थ ज्ञान में निष्ठ ।
'अग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम् '
ऋ. १०.८०.१
(२) श्रवणीय, कीर्त्तियोग्य, वेदवर्णित ।
'अपत्य साचं श्रुत्यं दिवेदिवे '
ऋ. २.३०.११
'त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि '
ऋ. १.३६.१२
तू श्रवण करने योग्य अति, अद्भुद् युद्ध और ऐश्वर्य का राजा है ।
(३) कीर्तिजनक
'यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र '
ऋ. १.१६५.११; मै.सं. ४.११.३; १६९.१२; का.सं. ९.१८.
(४) प्रसिद्ध,
(५) श्रवण या गुरूपदेश द्वारा प्राप्त करने योग्य,
(६) वेद ज्ञानमय ऐश्वर्य

श्रुतामघः – (१) श्रुतमघ, जो उत्तम धन से प्रसिद्ध हो
'उद्घेदभि श्रुतामघम्'
ऋ. ८.९३.१; अ. २०.७.१; साम. १.१२५; २.८००; गो.ब्रा. २.३.१४; ऐ.आ. ५:२.३.२; आश्व.श्रौ.सू. ९.११.१५; शां.श्रौ.सू. १८.२.२; वै.सू. २१.२; ३३.२

श्रुति – श्रवण द्वारा प्राप्त करने योग्य वेद
'इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद'
ऋ. १०.१११.३; कौ.ब्रा. २५.४;५:६

श्रुधी – सुनें ।
'तेषां पाहि श्रुधी हवम्'
ऋ. १.२.१; मा.श्रौ.सू. २.३.१.१६; नि. १०.२
हमारा आह्वान् सुनें तथा उन सोम रसों में अपना भाग पीयें ।

श्रुधीयत् – अन्न, वृत्ति, रोजगार, चाहने वाला
'श्रुधीयतश्चिद् यतथो महित्वा'
ऋ. ६.६७.३; मै.सं. ४.१४.१०:२३१.६

शुद्धवालः – शुद्ध श्वेत बालों वाला
'शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः'
वाज.सं. २४.३; तै.सं. ५.६.१३.१:१६९.५; का.सं. (अश्व.) ९.३

शुन – शु (अन्तरिक्ष) में जो चलता है वह शुन है । (शौ नयति गच्छति इति शुनः) । अर्थ है–वायु,
'अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे'
ऋ. ४.१८.१३
(२) सुख स्वरूप, (३) कुत्ते के समान लोभी आत्मा, (४) 'शुन' का अर्थ है कुत्ते का

शुनम् – अ.। सुखपूर्वक
'शुनं वाहाः शुनं नरः'
ऋ. ४.५७.४; अ. ३.१७.६

शुन्ध्यु – (१) शुद्ध आचारवान्
'ऊर्णा वसत शुन्ध्यवः'
ऋ. ५.५२.९
(२) विमतियों का शोधन करने वाला, (३) शोध लगाने वाला
'अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव'
ऋ. ८.२४.२४; अ. २०.६६.३; साम. १.३९६
(४) प्रवर्तक, गति देने वाला, चलाने वाला
'अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः'
ऋ. १.५०.९; अ. १३.२.२४; अ. २०.४७.२१; आ.सं. ५.१३; का.सं. ९.१९;११.१; तै.ब्रा. २.४.५.४
(५) शुन्ध् (शौध कर्म में) + क्यु = शुन्ध्यु । शुन्ध्युः आदित्यो भवति । तमांसि शोध यति । शोधनात् अर्थात् शोधन करने से शुन्ध्यु । सूर्य अन्धकार का शोधन करता है ।
(६) शकुनि नामक एक श्वेत रंग का पक्षी–सा. अमर कोष में–
'तेषां शिशेषा हारीतो
मृदुः कारण्डवः प्लवः'
शकुरिरपि शुन्ध्यु रुच्यते'
(७) जल ।
आपोऽपि शुन्धव एव उच्यन्ते शोधनात् एव (ज़ल भी शोधन करने से ही शन्ध्यु है) ।
(८) शुद्ध

शुनःशेपः – शुनः विज्ञानवतः इव शेपः विद्या स्पर्शः यस्य सः (अत्यन्त ज्ञान वाले विद्याव्यवहार के लिए प्राप्त विद्वान्) ।
'शुनः शेपो यमह्वद् गृभीतः,
सो अस्मान् राजो वरुणो मुमोक्तु'
ऋ. १.२४.१३
सुखार्थी और उत्तम विद्वान् (शुनः शेपः) बन्धन में बन्धकर (गृभीतः) जिस परमेश्वर का स्मरण करता है (यम् अह्वत्) वह प्रकाशमान, सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर हम बद्धजीवों को अन्धकार से मुक्त करें ।
(२) सुख को प्राप्त करने वाला
'शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्रात्'
ऋ. ५.२.७; ७.१७.१; शां.श्रौ.सू. १५.२३

शुनहोत्र – (१) सुख देने वाला स्थान और कार्य
'अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम'
ऋ. २.१८.६
(२) विद्वान् वृद्धों का दान–दया.
(३) विज्ञान और सुखों का देने वाला विज्ञान वृद्ध और धन सम्पन्न पुरुष
'शुनहोत्रेषु मत्सरः'
ऋ. २.४१.१४

शुनासीरा – द्वि.व.। (१) वायु और आदित्य, (२)प्राण और अपान
'शुना सीरेह स्म मे जुषेथाम्'
अ. ३.१७.७

शुनासीरीय – (१) शुनाक्षीर का, (२) कृषि विभाग का
'उक्ता सञ्चारा एताः शुनासीरीयाः'
वाज.सं. २४.१९

शुनासीरौ – (१) सुखस्वामिभृत्यौ कृषीवलौ –दया. (२) शुन–सुखप्रद अन्नादि पदार्थ और सीर (हुत) का स्वामी क्षेत्रपति और भृत्य (३) भर्तव्य स्त्रीपुत्र सेवकादिजन, (४) सूर्यवायु (५) सुखपूर्वक हल चलाने वाले कृषक स्त्री पुरुष
'शुनासीराविमां वाचं जुषेथाम्'
ऋ. ४.५७.५; तै.आ. ६.६.२; आश्व.श्रौ.सू. २.२०.४; नि. ९.४१

शुनी – (१) शुनी, (२)प्रभा,
(३) वेदवाणी,
(४) चितिशक्ति
'शुन्याश्च चतुरक्ष्याः'
अ. ४.२०.७

शुनेषित – सुख से प्राप्त होने वाला
'अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितम्'
ऋ. ८.४६.२८

शुप्ति – (१) शयन, (२) भोगविलास
'स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत'
ऋ. १. ५१. ५
जो सब कुछ अपने भोग विलास में ही या सोने में ही (शुप्तौ) फूंक देते हैं (अनुहुत)।

शुभ् –शुभ, कल्याण
'नरः शभेव पन्थाम्'
ऋ. १.१२७.६
जिस प्रकार लोग अपने कल्याण के लिए मार्ग ग्रहण करते हैं।

शुभ – (१) सुन्दर, (२) जल
'रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखम्
शूरो न मित्रावरुणा गर्विष्ठिषु
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो
दिवैः सम्राजा पयसा न उक्षतम्'
ऋ. ५.६३.५
हे मित्रा वरुण वायुओ, हिरण्य समान सूर्य की रश्मियां जल प्राप्ति के लिए (शुभे) शूर कारीगर की तरह (शूरः न) तुम्हें सुखकारक मेघ रथ के रूप में प्रयुक्त करती हैं (सुखं रथं युयुजे) । उन सूर्य–रश्मियों के मेल होने पर (गविष्ठिषु) उत्तम जल और द्विजलियां (चित्रारजांसि तन्यवः) इधर उधर विचरती हैं (विचरन्ति) तथा जल रूप में दृश्यमान मित्रावरुण वायु (सम्राजा) अन्तरिक्ष के जल के द्वारा (दिवः पयसा) हमेव सींचते हो (नः उक्षतम्) ।

शुन पृष्ठः – (१) सुखप्रद पीठ वाला अश्व, (२) समस्त सुखों का आश्रय
'अश्वो न वाजी सुन पृष्ठो अस्थात्'
ऋ. ७.७०.१

शुभयत् – शोभायमान । अग्नि–ज्वाला के विशेषण के रूप में प्रयुक्त ।
'अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः'
ऋ. ५.६०.८; ऐ.ब्रा. ३.३८.१३; कौ.ब्रा. १६.९; आश्व.श्रौ.सू. ५.२०.८
हे सर्वजनहितकारी वैश्वानर अग्नि (वैश्वानर अग्नि) तू परिमित चमकने वाली (मरुद्भिः) शोभायमान (शुभयद्भिः) तथा प्रशस्त (ऋक्वभिः) ज्वालाओं से सोमरस पी ।

शुभंयः –शुभ कल्याण कारी मार्ग में चलने या चलाने वाला
'कद् वाताय प्रतवसे शुभंये'
ऋ. ४.३.६; मै.सं. ४.११.४:१७२.१३; का.सं. ७.१६

शुभंयात् – शुभ धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वाला
'शुभंयातामनुरथा अवृत्सत्'
ऋ. ५.५५.१–९; तै.सं. २.४.८.२; का.सं. ११.९;३०.४

शुभंयाया – (१) जलवृष्टि करने वाला वायु–मारुत, (२) शुभ धर्म मार्ग पर चलने वाला,(३) जल के आश्रय पर गति करने वाला प्राण
'शुभंयावाप्रतिष्कुतः'
ऋ. ५.६१.१३

शुभंयावानः – (१) शुभस्य प्रापकाः मरुतः (उत्तम सुख प्राप्त कराने वाले वायुगण) ।

'शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः '
ऋ. १.८९.७; वाज.सं. २५.२०; का.सं. ३५.१; आप.श्रौ.सू. १४.१६ .१
(२) शुभ कल्याण मार्ग पर गमन करने वाले,
(३) प्रजा के कल्याण के लिए गमन करने वाले

शुभंयुः –शोभन गुणों को धारण करने वाला
'शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् '
ऋ. १०.७८.७

शुभस्पती – (१) शुभः + पती । उत्तम व्रतों कर्मों के पालक एवं शोभायुक्त पतिपत्नी
(२) अश्विद्वय
'अस्मां अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती '
ऋ. ८.२२.४
(३) शोभा के स्वामी वर और वधू
'यदयातं शुभस्पती '
ऋ. १०.८५.१५; अ. १४.१.१५
'विपिपाना शुभस्पती '
ऋ. १०.१३१.४; अ. २०.१२५.४; वाज.सं. १०.३३; का.सं. १७.१९; ३८.९; श.ब्रा. ५.५४.२५; तै.ब्रा. १.४.२.१; आप.श्रौ.सू.१९.२ .१९.
(३) शुभगुणों के प्रकाश को पालने वाले
'द्रवत्पाणी शुभस्पती '
ऋ. १.३.१
(४) शुभगुणों और आभरणों के धारक स्त्री पुरुष ।
'त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती '
ऋ. १.३४.६
(५) शोभा युक्त पदार्थों के स्वामी–प्रतिपत्नी
'सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती '
अ. १४.२.६

शुभ्रखादयः – (१) शुभ दीप्ति वाले मरुद्गण, वायु, गण, (२) स्वच्छ भोजन और स्वच्छ खड्ग आदिवाले
'प्र धन्वान्यैरयत् शुभ्रखादयः '
ऋ. ८.२०.४

शुभ्रयामा – (१) शुभ्र शुक्ल पक्ष की रात्रि,
(२) भासमान चमकते प्रहरों वाला दिन या उषा
(३) अर्थों को भासित करने वाले विस्तार या पद सन्निवेश से युक्त वाणी,
(४) शुद्ध प्रकाशित पुण्यमय निर्दोष नियम प्रबन्ध से युक्त पृथिवी, (५) भासमान अलंकृत वधू
'आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामा '
ऋ. ३.५८.१

शुभ्रयावाना – शुभ्र, शुद्ध, शोभायुक्त, शिष्टसम्पन्न, पवित्र मार्ग से जाने वाले जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष या अश्विद्वय
'वहेथे शुभ्रयावाना '
ऋ. ८.२६.१९

शुभ्रशस्तनः – सबसे अधिक शोभायमान
'शुभ्रोभिन शुभ्रशस्तमः'
ऋ. ९.६६.२६; साम. २.६६१

शुभ्र – वि. । शुभ् + रक् = शुभ्र । अर्थ –(१) सुन्दर धन प्राप्त कराने वाला, (२) कल्याण युक्त
'उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः '
ऋ. ७.३९.३; नि. १२.४३
जो शुभ धनों को देने वाले देवता विस्तृत अन्तरिक्ष में वर्तमान हैं ।

शुभानः – (१) शुभ मंगल कामना करने वाला हितैषी पुरुष
'सं पृच्छसे समराणः शुभानैः '
ऋ. १.१६५.३; वाज.सं. ३३.२७; मै.सं. ४.११.३:१६८.११; का.सं. ९.१८
(२) शुभवचन–दया. (३) उत्तम उपाय
हमें उत्तम उपायों से उपदेश कर ।

शुभ्रिः – (१) पदार्थों का भासन कराने वाली
'ता अर्षन्ति शुभ्रियः '
अ. २०.४८.२
(२) शोभन सुखप्रद, उत्तम ऐश्वर्य
'गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ '
ऋ. १.२९.१–७; अ. २०.७४.१–७; का.सं. १०.१२; तै.ब्रा. २.४.४.८
हे अधिक ऐश्वर्य वान, (तुवीमघ) आप हमें वाणी पशु, इन्द्रिय, भूमि और अश्व आदि वेग से जाने वाले साधनों और हजारों शोभा जनक सुखप्रद पदार्थों में विख्यात और सम्पन्न करें ।

शुम्भ् – (१) प्रकट करना,

'गिरः शुम्भाभि कण्ववत्'
ऋ. ८.६.११; अ. २०.११५.२; साम. २.८५१
(२) वर्णन करना
'इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे'
ऋ. ८.७०.२; अ. २०.९२.१७; १०५.५; साम. २.२८४

शुम्भति – शोभा पाता है, शोभित करता है ।
'दाता राधांसि शुम्भति'
ऋ. १.२२.८

शुम्भनी – द्वि.व.। शोभादायक द्यावा पृथिवी का विशेषण
'शुम्भनी द्यावापृथिवी'
अ. ७.११२.१; १४.२.४५

शुम्भमाना – शुम्भ + शानच् + टाप् = शुम्भमाना । अर्थ है-अभिनव यौवना ।
'भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना'
ऋ. १०.१०७.१०
राजा या दानी के लिए (भोजाय) अभिनवयौवना (शुम्भमाना) कन्या मिलती है (कन्या आस्ते) ।
(२) शुशोभिषमाणा शोभयितुम् इच्छान्त्य (शोभने की इच्छा करती हुई-स्त्री) ।
'पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः'
ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३; २०२.२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१०
जैसे शोभायमान स्त्रियां पतियों के लिए मैथुनार्थ...

शुरुध् – शु + रुध् + क्विप् (१) अज्ञान को शीघ्र रोकने वाली (२) शत्रु को शीघ्र रोकने वाली सेना,
(३) शीघ्र क्षुधा को निवारण करने वाला अन्त
'ऋजस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः'
ऋ. ४.२३.८; आश्व.श्रौ.सू. ९.७.३६
(४) शीघ्र गतिशील प्राणों को रोकने वाला योगी
'इरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि'
ऋ. ७.२३.२; अ. २०.१२.२
(५) शुच् + रुध् + क्विप् = शुग्रुध् = शुरुध् । अर्थ = गड़ा हुआ धन
(६) आप् (जल) । शुरुध आपो भवन्ति शुचं संरुधन्ति (शुरुध् जल का नाम है क्योंकि जल शुच् अर्थात् ताप को रोकता है या दीप्ति या शोक को रोकता है) ।
'स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्राः'
धियं धियं सीषधाति प्र पूषा'
ऋ. ६.४९.२; वाज.सं. ३४.४२; तै.सं. १.१.१४.२; नि. १२.१८
यह पूषा धन या अभिपूजित आगमन वाले धनों को देता हुआ हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करे ।
(७) दुःखदायी क्षुधा पीड़ा आदि रोकने वाला अन्नादि औषधि
(८) प्राप्तव्य सुख
'व्यानुषक् रुछुधो जीवसे धाः'
ऋ. १.७२.७
प्रजाओं के जीवन धारण करने के लिए ओषधियों अन्नों और उपायों को

शुल्क – ऐश्वर्य की वृद्धि
'महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विषे'
ऋ. ७.८२.६

शुशुक्वानः, सुशुक्वानः – (१) उत्तम रीति से शुद्ध कान्ति युक्त
'सुशुक्वानः सुध्व एवयामरुत्'
ऋ. ५.८७.३
'उत प्रिये सदन आ शशुक्वान्'
ऋ. १.१८९.७
(२) शुच् + क्वसु । देदीप्यमान-यास्क
(३) शुचि या तेजस्वी- दया.
'अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वान्'
ऋ. १.१६९.३
जैसे देदीप्यमान् अग्नि अनुपक्षीण काष्ठ की ओर जाता है - यास्क
हे विद्वन्, आप अन्न जल प्राप्ति के लिए अत्यन्त शुचि या तेजस्वी हो । -दया.
(४) सभी पदार्थों को प्रकाशित करने वाले सूर्य का प्रकाश
(५) ज्ञान प्रकाश का प्रकाशक आचार्य
'शुक्रः शुशुक्वां उषो न जारः'

ऋ. १.६९.१
शुद्ध कान्तिमान प्रभात बेला को अपने उदय और प्रवेश से जीर्ण करने तथा समाप्त करने वाले सूर्य के समान निरन्तर तेजस्वी सब पदार्थों को यथार्थ रूप से प्रकाशित करने वाला विद्वान्-पुरुष ।

शुशुक्वन् - अति देदीप्यमान, अति प्रकाशमान ।
'तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनम्'
ऋ. १.१३२.३

शुशुलूक - छोटा उल्लू

शुशुलूकयातुः - (१) छोटे उल्लू के समान चाल चलने वाला
(२) अप्रत्यक्ष में कर्णकटु बोलने वाला
'उलूकयातुं शुशूलूकयातुम्'
ऋ. ७.१०४.२२; अ. ८.४.२२
(३) छोटे उल्लू के समान अतिकर्कश बोलकर डराने वाला,
(४) गरीबों का उत्पीडक

शुश्रूषमाणः - सेवा करता हुआ
'शुश्रूषमाणाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.२; मै.सं. ३.१२.३.१६१.४; का.सं. (अश्व). १.१०

शुषण् - सूखता हुआ
'अस्येदेव शवसा शुषन्तम्'
ऋ. १.६१.१०; अ. २०.३५.१०

शुष्क - सूखा, बलदायक,
'आर्द्रादा शुष्कं मधुमद् दुदोहिथ'
ऋ. २.१३.६

शुष्ककण्ठ - सूखा कण्ठ
'अपः शुष्ककण्ठेन'
वाज.सं. २४.२; मै.सं. ३.१५.२:१७.८.६

शुष्क्य - शुष्क पदार्थों से व्यवहार करने वाला
'नामः शुष्क्याय च हरित्याय च'
वाज.सं. १६.४५; तै.सं. ४.५.९.१; मै.सं. २.९.८:१२६.१२; का.सं. १७.१५

शुष्कास्या - शुष्क मुखड़ा वाली कामिनी
'शुष्कास्याभि सर्प मा'
अ. ३.२५.४
'अथो शुष्कास्या चर'
अ. ६.१३९.२,४

शुष्ण - (१) एक दैत्य-सा.(२) प्रजा का रक्त शोषण करने वाला
'यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्'
ऋ. २.१४.५
(३) प्राणों का शोषण करने वाला
(४) क्षुत् पिपासा आदि कष्ट
'यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णम्'
अ. २०.३४.१७
(५) रसानां शोषयिता (रसों का शोषक)-आदित्य ।
बलवान् ।
'वि श्रृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः'
ऋ. १.३३.१२; नि. ६.१९
'विशिष्ट शिखर युक्त तथा दीप्तिमान् (विश्रृङ्गिणम्) एवं बलवान् मेघ को (शुष्णम्) इन्द्र ने छिन्न भिन्न किया (अभिनत्) । -सा. ऊंचा सिर उठाए हुए (वि-श्रृङ्गिणम्) बलवान् शत्रु को (शुष्णम्) राजा कुचले (व्यभिनत्) ।

शुभ्रशस्तम - अतिशुभ्रस्वरूप
'शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः'
ऋ. ९.६६.२६; साम. २.६६१

शुष्मः - (१) शरीर को सुखा देने वाला बालक का रोग
'यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मः'
अ. १.१२.३
(२) शुष् (शोषण करना) + मन् = शुष्म । अर्थ है-शोषण । स्कन्द स्वामी ने 'शुष् + मनिन्' का ही बाहुलक नियम से इन का लोप कर शुष्म होना बतलाया है । माधव ने शुषि (प्रीणनार्थक) से 'शुष्म' की व्युत्पत्ति की है ।
(३) बल समर्थ्य ।
'यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेताम्'
ऋ. २.१२.१; अ. २०.३४.१; तै.सं. १.७.१३.२; मै.सं. ४.१२.३: १८६.५; का.सं. ८.१६; नि. ३.२१; १०.१०
जिसके सामर्थ्य से द्यौ पृथ्वी डर गए या कांप उठे ।
'इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीमां तविषेभिरूर्मिभिः'

ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७; २२६.९; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा. २. ८.२.८; नि. २.२४
यह सरस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से पहाड़ो की चोटी को कमल खंनने की तरह काटती है ।

शुष्णहत्य – (१) प्रजा के धनों और प्राणों को अत्याचारों द्वारा शोषण करने वाले दुष्टों के विनाश का अवसर
(२) संग्राम जिसमें बल की हत्या होती है–दया.
'त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथ '
ऋ. १.५१.६
तू प्रजा के धनों और प्राणों को अत्याचारों द्वारा शोषण और रक्त शोषण करने वाले दुष्टों के विनाश करने के अवसरों में (शुष्ण हत्येषु) या संग्राम में वज्र (कुत्सम्) धारण कर ।

शुष्मा – (१) बलकारी औषध, (२) बला
'उच्छुष्मौषधीनाम् '
अ. ४.४.४

शुष्मिन्तमः – (१) शोषणकारी तीव्र ताप से युक्त पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ–अग्नि (२) सबसे अधिक तीव्र ताप वाला
'शुष्मिन्तमो हि ते मदः '
ऋ. १.१२७.९; १७५.५
(३) शत्रुओं का सबसे अधिक शोषण करने वाला, (४) अति बलशाली
'शुष्मिन्तमं न ऊतये '
ऋ. ३.३७.८; अ. २०.२०.१; ५७.४; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.३; वै.सू. २७.२५;३१.२२.

शुष्मी – (१) बलवान्
'शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे '
ऋ. ७.२३.५; अ. २०.१२.५
(२) बलिष्ठ सेना वाला,
(३) इन्द्र का एक विशेषण
'शुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा '
ऋ. ५.४.४०; अ. २०.१२.७; तै.सं. १.७.१३.४
'स वाजस्य श्वसः शुष्मिणस्पतिः'
ऋ. १.१४५.१

श्रुष्टि – (१) शीघ्रता
'श्रुष्टिं चकुर्भृगवो द्रुह्यवश्च '
ऋ. ७.१८.६
'गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नः '
ऋ. १०.१०१.३; वाज.सं. १२.६८; तै.सं. ४.२.५.६; मै.सं. २.७.१२:९१.१६; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.५
स्तुति द्वारा जिसकी हम याचना करते हैं वे ओषधियां शीघ्र (श्रुष्टिः) पल भर से युक्त (सभरा) हों । (२) श्रुष्टी इति क्षिप्र नाम, आशु + अष्टि । अश् (व्याप्त्यर्थक) + क्तिन् + ङीष्, अथवा शु + अष्टी = श्वष्टी = श्रुष्टि (श्व के व का स) । शु का अर्थ क्षिप्र और अष्टी का अर्थ व्यापन है ।
(३) सुख ।
(४) क्षिप्रकारी ।
(५) श्रवण योग्य उपदेश,
(६) राज्य कार्य,
(७) अन्नधन ।
(८) अन्न आदि
(९) श्रवण करने योग्य ज्ञान
'अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या '
ऋ. १.१६६.१३
(१०) श्रुति
'यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति '
ऋ. १.१७८.१
(११) अ.। शीघ्र ।
(१२) पक्व अन्न
(१३) सुखकारी समृद्धि
'अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै '
ऋ. २.१४.९

श्रुष्टिमत् – अन्न, समृद्धि और सुख सामग्री से युक्त
'कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् '
ऋ. १.९३.१२

श्रुष्टी – अतिशीघ्र, अविलम्ब
'श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः'
ऋ. २.३.९; तै.सं. ३.१.११.२; मै.सं. ४.१४.८: २२७.१
'श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम् '
ऋ. ७.३९.४; नि ६.१३.
भग, अश्विनी कुमारों तथा इन्द्र को अविलम्ब

पूज ।

श्रुष्टीवत् – यथार्थ विद्या का सेवन करने वाला विद्वान्

'श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः '

ऋ. १.४५.२

हे अग्नि या ज्ञानयुक्त राजन्, विविध प्रकार से शास्त्रों के ज्ञाता (विचेतसः) विद्या के दाता विद्वान् (श्रुष्टीवान्तः) भक्तिपूर्वक दान देने वाले यजमान या शिष्य के लिए ही उत्तम विद्या आदि को प्राप्त करें ।

श्रुष्टीवा – (१) दूत, (२) श्रुतिवचनों का ज्ञाता, (३) वसिष्ठ का विशेषण

'श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि '

ऋ. ७.७३.३

श्रुष्टीवरी – सुखदायिनी ।

'श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः '

ऋ. १०.३०.११; नि. ६.२२.

हे सोममिश्रित जल (अरयः) तुम ऋत्विजों से उत्सिक्त होकर हमारे लिए सुखकारक बनो (अस्मभ्यं श्रुष्टीवरीः भूतन)–सा.।

हे आप्त देवियो, हमार लिए सुख कारिणी बनो (श्रुष्टीवरीः भूतन) ।

श्रुष्टीवान् – (१) व्याप्ति वाले चरु से युक्त जन, (२) व्याप्ति वाले, रमण करने वाले आकाश विद्युत् आदि दिव्य पदार्थ, (३) अतिशीघ्र कार्य करने वाले सेवक जन

'अध स्मा ते परि चरन्त्यजर
श्रुष्टीवानो नाजर, '

ऋ. १.१२७.९

शूकार – शीघ्रकारी

'शूकाराय स्वाहा '

वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७..१.१३.१; मै.सं. ३.१२.३:१६१.१; का.सं. (आश्व.) १.४.

शूकृतः – (१) शीघ्रता करने वाला

'शूकृताय स्वाहा '

वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१३.१; मै.सं. ३.१२.३:१६१.१; का.सं. (अश्व.) १.४.

(२) शीघ्रता से कार्य करने वाला, (३) अविवेक से कुपथ पर पैर रखने वाला

'यत्ते सादे महसा शूकृतस्य '

ऋ. १.१६२.१७; वाज.सं. २५.४०; तै.सं. ४.६.९.२; का.सं. (अश्व) .६.५.

(४) शीघ्र निष्पादित –दया.

शूघनः – तीव्र गतिवाली धारा से युक्त

'सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासः '

ऋ. ४.५८.७; वाज.सं. १७.९५; का.सं. ४०..७; आप.श्रौ.सू. १७. १८.१

शूघना – वेग से निकलती हुई

'सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासः '

शूद्र – (१) शूद्रवर्ण, (२) शीघ्रता से द्रुत गति से जाने वाला, (३) श्रम शील पुरुष

'तपसे शूद्रम् '

वाज.सं. ३०.५; तै.ब्रा. ३.४.१.१

शूद्रकृता – (१) शूद्रों की बनी सेना–ज.दे.श.

(२) शूद्रों द्वारा की गई कृपा

'शूद्रकृता राजकृता '

अ. १०.१.३

शून – (१) शून्य, निस्सार

(२) बड़ा दुःख

'मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि '

ऋ. १०.३७.६

(३) सुख युक्त, सम्पन्न,

(४) शून्यगृह

'मा शूने अग्ने नि षदाम नृणाम् '

ऋ. ७.१.११

'भूरिदाव्न आविदं शूनमापेः '

ऋ. २.२७.१७; २८.११; २९.७

(४) उन्नति, वर्धन, बढ़ती (५) सुख सेवादि कार्य

'मा सोम्यस्य शंभुवः
शूने भूम कदाचन '

ऋ. १.१०५.३

हम हितकारी शान्तिकारी गुरु के मुख से सुख सेवादि कार्य में कभी आलस्य न करें ।

(६) सुख

'अघ्न्यौ शूनमारताम् '

ऋ. ३.३३.१३

शून्यैषी – गृह को शून्य करना चाहने वाली

'शून्यैषी निर्ऋते याजगन्ध'
अ. १४.२.१९

शूर – शु (गत्यर्थक) + क्रनि = शूर (शु के उ का दीर्घ)।
शूरः शवतेः गतिकर्मणः (शूर शब्द गत्यर्थक 'शु' धातु से बना है)।
अर्थ है– (१) शूरण, (२) आदित्य, (३) विक्रम शील
आधुनिक अर्थ – वीर, योद्धा, सिंह, भल्लूक, सूर्य, शालवृक्ष, श्रीकृष्ण के पितामह का नाम।

शूरगामः – शूरवीर समूहों का स्वामी
'शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान्'
ऋ. ९.९०.३; साम. २.७५९

शूरणासः – शूरण का बहुवचन। (१) 'शूरण' का अर्थ आदित्य है।(२) विक्रमशील।

शूरपत्नी – (१) शूरवीर पुरुषों को पालन करने वाली,
(२) शूरपति वाली सेना
'अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीः'
ऋ. १.१७४.३.

शूरपुत्रा – शूरवीर उत्पन्न करने वाली –पृथिवी
'हुवे देवीमदितिं शूरपुत्राम्'
अ. ३.८.२

शूरसाति – (१) शूरवीरों से प्राप्त करने योग्य संग्राम
'नरश्चिद् वां समिथे शूरसातौ'
ऋ. ३.५४.४
(२) वीर पुरुषों के विभाग करने योग्य संग्राम
'संयद् विशोऽयन्त शूरसातौ'
ऋ. ६.२६.१
(३) शूरों से सुख पूर्वक भोगने योग्य युद्ध भूमि
'यः शूरसाता परितक्म्ये धने'
ऋ. १.३१.६
पुनः–
'तमूतयो रणयञ्छूरसातौ'
ऋ. १.१००.७
रक्षा करने वाले वीरों पुरुष या रक्षा, उत्तम ज्ञान, तेज आदि सद्गुण (ऊतयः) उस वीर पुरुष को शूरवीरों के योग्य संग्राम में (शूरसातौ) हर्षित करते हैं (रणयन्)।
(४) शूरवीर पुरुषों की प्राप्ति
'वयं धनां शूरसाता भजेमहि'
ऋ. १.१५७.२; साम. २.११०९

शूर्त – विमर्दित, दण्डित
'त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम्'
ऋ. १.१७४.६
सन्तानों या मनुष्य प्रजा के इस धन को जिसके वे स्वामी नहीं हैं उठाते हुए वे विमर्दित या दण्डित किए जांए।

शूर्प – (१) शूप
'शूर्पं पवित्रः'
अ. ९.६ (१).१६
(२) षो (प्रक्षेपणार्थक) + श = स्य। स्यति प्रक्षिपति तुषान् इति स्यम।
शूर्पम् अशनपवनम्'
(भोजन को फटककर पवित्र करने वाला सूप)। अशु (भोजन करना) + पूञ् = शूर्प (पृषोदरादिवत्)। अथवा हिंसार्थक शृ + तृ = सूर्प (बाहुलक नियम से)। ऋकार, उ तथा दीर्घ शूर्प शरमय होता है।
'वर्षवृद्धमुपयच्छ शूर्पम्'
अ. १२.३.१९

शूल – न.। पीड़ा जनक शूल
'अभिशूलं निहतस्यावधावति'
ऋ. १.१६२.११; वाज.सं. २५.३४; तै.सं. ४.६.८.४; मै.सं. ३.१६.१:१८२.१६; का.सं. (अश्व.) ६.५.
(२) पीड़ा देने वाला शत्रु (३) हल आदि

शूशुजानः – (१) चमकता हुआ
'जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः'
ऋ. १०.३४.६
(२) बढ़ता हुआ
'अदेवयून् तन्वा शूशुजानान्'
ऋ. १०.२७.२

शूशुवत् – यो ज्ञापयति वर्धयति वा (वृद्धि करने वाला)।
'स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनः'
ऋ. १.५४.७

शूशुवान् – (१) बल में बढ़ने वाला
'त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसम्'

ऋ. ४.१६.१३
(२) समस्त सुखों का दाता महापुरुष
'सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसम्'
ऋ. १.६४.१५
(३) राष्ट्र को व्यापने वाला पुरुष –इन्द्र
'अषाढेन शवसा शुशुवांसम्'
(४) सदा बढ़ने वाला, फैलने बढ़ने वाला,
'ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसः'
ऋ. १.१६७.९

शूशुवानः – वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ।
'हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः'
ऋ. ७.२०.२

शूष – (१) सुख, (२) बल
'उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः'
ऋ. ५.४१.७
(२) उत्पन्न संसार, (३) ऐश्वर्य, (४) राष्ट्र रूप ऐश्वर्य (५) राष्ट्र शक्ति ।
'शूषस्य धूरि धीमहि'
ऋ. १.१३१.२; अ. २०.७२.१
(६) बल, सत्व
'इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः'
ऋ. ३.४९.२
अतिसमर्थ बहु सत्वयुक्त बलों से ...।
(७) सुख का स्तुति ।
'सास्माकेभिरेतरी न शूषैः
'अग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः'
ऋ. ६.१२.४.
जातधन या जातप्रज्ञ अग्नि हमारे सुख कारक स्तोत्रों में (अस्माकेभिः शूषैः) हमारे यज्ञ (दमे) अतिथि या याचक के सदृश (एतरी न) स्तुत किए जाते हैं (आ स्तवे) ।

शूष्य – शूष् + यत् = शूष्य । बलयुक्त ।
'अर्चा दिवे बृहते शुष्यं वचः'
ऋ. १.५४.३

श्रृंग – (१) अज श्रृंगी नामक ओषधि, (२)सींग
'अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलात्'
अ. ४.६.५
(३) काम वासना
'श्रृंग उत्पन्न
अ. २०.१३०.१३
(४) सींगा नामक एक बाजा
(५) अज्ञान नाशक ज्ञान, (६) मूल कारण
'श्रृंगं धमन्त आसते'
अ. २०.१२९.१०; शां.श्रौ.सू. १२.१८.९
सींग के अर्थ में –
'शिशीते श्रृंगे रक्षसे निनिक्षे'
ऋ. ५.२.९; अ. ८.३.२४; तै.सं. १.२.१४.७; का.सं. २.१५; नि. ४ .१८
(७) श्रिञ् + गन् = श्रृंग, श्रृ (हिंसार्थक) + गम् + डट् = श्रृंग, शयु (हिंसार्थक) + ग = श्रृंग (अ क ऋ व्यत्य से) ।
श्रृंग से हिंसा करते हैं या श्रृंग सिर पर श्रित रहता है । इसे द्विधातुक भी माना गया है ।
'शरणाय उद्दतम् इतिवा'
'शिरसो निर्गतम् इति वा'
अर्थात् श्रृंग हिंसा के लिए निकला है या रक्षा के लिए सिर से निकला है ।
(८) शिरस् (मस्तक या आदित्य) + गम् + ड = श्रृंग । शिरस् का श्रृं और म का आगम । अर्थ – आदित्य से निकलने वाला तेजस् ।
(९) देवराज ने श्रृंगाणि' का अर्थ 'तेजांसि' माना है ।
आधुनिक अर्थ – शिखर, सींग, भवन का सिरा–ऊंचाई, चन्द्रमा का श्रृंग, सींगा नामक बाजा, प्रेम की परम सीमा, चिन्ह

श्रृंगवृषः नपात् – हिंसाकारी बाणों की वर्षा करने वाला, प्रबल सेना को न गिरने वाला
'यस्ते श्रृंगवृषो नपात्'
ऋ. ८.१७.१३; अ. २०.५.७; साम. २.७७; तै.ब्रा. २.४.५.१.

श्रृंगवृष – लोक संहारक तथा सरल सुखों का वर्षक ।

श्रृंगा – द्वि.व.। (१) दो सींग, (२) दो गिरि शिखर, (३) गिरि शिखरों के समान दो स्त्री पुरुष वरवधू या अश्विद्वय
'श्रृंगेव नः प्रथमा गन्तुमर्वाक्'
ऋ. २.३९.२

श्रृंगी – (१) हिंसाकारी सेना दल, (२) सींग वाला

पशु,
(३) शिखा युक्त,
(४) दीप्तिमान् मेघ का विशेषण
(५) ऊंचा शिर उठाने वाला शत्रु
'वि श्रृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः '
ऋ. १.३३.१२; नि. ६.१९.

श्रृण्वत् – (१) सदा सुनता हुआ-मृत्यु का विशेषण ।
'चक्षुष्मते श्रृण्वते ब्रवीमि '
ऋ. १०.१८.१; अ. १२.२.२१; वाज.सं. ३५.७; श.ब्रा. १३.८.३.४; तै.ब्रा. ३.७.१४.५; तै.ब्रा. ३.७.१४.५; तै.आ. ३.१५.२; ६.७.३; तै.आ. (आ.) १०.४६; आप.श्रौ.सू. २१.१; नि. ११.६.
हे मृत्यु ! तुम आंख वाले, सदा सुनने वाले से कहता हूँ ।

श्रृणाति – (१) हिनस्ति (हिंसा करता है) । श्रृ धातु हिंसार्थक है, (२) शान्त होता है, (३) ठंढा होता है । (४) शीर्ष करता है ।
'यदस्य मन्युरधिनीयमानः
श्रृणानति वीडु रुजति स्थिराणि '
ऋ. १०.८९.६
जो इस इन्द्र का परमात्मा का मन्यु अभिमानियों पर आकर शान्त होता या उन्हें शीर्ण करता है ।
(५) श्रृण्वन्तु (सुने) । लोट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग ।

श्रृण्वन् – (१) प्रजाओं की पुकार सुनने वाला
'श्रृण्वन्तमुग्रमूतये समस्तु '
ऋ. ३.३०.२२; अ. २०.११.११; साम. १.३२९; का.सं. २१.१४; तै. ब्रा. २.४.४.३.
(२) श्रृ + शतृ । सुनता हुआ
'उत त्वः शृण्वन् न श्रृणोत्येनाम् '
ऋ. १०.७१.४; नि. १.१९
कोई इस वाणी को (त्वः एनाम्) सुनता हुआ भी (श्रृण्वन्) नहीं सुनता (न श्रृणोति) ।
(३) श्रृण्वन्तु (सुने) । लोट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग ।

श्रृण्वे – सुनता हूँ ।
'श्रृण्वेवीर उग्रमुग्रं दमायन् '
ऋ. ६.४७.१६
सुनता हूं, इन्द्र वीर है क्योंकि वह शत्रु के प्रति उग्र शत्रुओं का दमन करने वाला है (दमायन्) ।

श्रृणोतु – सुने ।
'तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु नः '
ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६.८; नि. १०.६
तिग्म आयुधवाले रुद्र को स्तुतियां अर्पित करो और वे हमारी स्तुतियां सुनें ।

श्रृत – श्रृ + क्त । (१) परिपक्व अन्न
'हविषा श्रृतेन '
वाज.सं. १९.८९
(२) पकाया हुआ दुग्धादि

श्रृतपाः – (१) परिपक्व फल का पान या भोग करने वाला
दर्शन्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान् '
ऋ. १०.२७.६
(२) परिपक्व दुग्धादि उत्तम पदार्थों को पीने वाला
'अर्धं वीरस्य श्रृतपा मनिन्द्रम् '
ऋ. ७.१८.१६

श्रृतपाक – (१) श्रृतश्चासौ पाकश्च । अति संस्कार द्योतनार्थम् द्विरुक्तिः । (जो खूब पकाया या सिद्ध किया गया है) ।
'उत मेधं श्रृतपाकं पचन्तु '
ऋ. १.१६२.१०; वाज.सं. २५.३३; तै.सं. ४.६.८.४; मै.सं. ३.१६.१; १८२.१३
(२) अत्यन्त अधिक सन्ताप

श्रृतात्वक् – शीर्ण करने वाली आग्नेय त्वचा-अग्नि जिससे मृतात्मा का दाह संस्कार किया जाता है ।
'श्रृतमजं श्रृतया प्रोर्णुहि त्वचा '
अ. ४.१४.९;

श्रृध्या – (१) निन्दित वाणी, शब्दकुत्सा
'यः शर्धते नानुददाति श्रृध्याम् '
ऋ. २.१२.१०; अ. २०.३४.१०.
(२) सहनशील, (३) सहायता

शेकुः – शक्नुवन्ति (सकते हैं) । लट् (वर्तमान) अर्थ में लिट् का प्रयोग अर्थ है ।
'धीरा इत् शेकुः धरुणेषु आरभम् '
ऋ. ९.७३.३; तै.आ. १.११.१; नि. १२.३२.

बुद्धिमान् पुरुष जल बरसने पर कृषि कार्य या वैदिक कर्म का प्रारम्भ कर सकते हैं ।

शेप – (१) कामसम्बन्धी मद (२) दुराचार करने का बल (३) पुरुष लिंग

'यथा शेपो अपायातै '

अ. ७.९०.३

(४) शप् (स्पर्श करना) + घञ् = शेप

शेपः शपतेः स्पृशति कर्मणः (इससे स्त्री योनि का स्पर्श किया जाता है अतः यह शेप है)। शप् धातु आक्रोश अर्थात् शाप देने के अर्थ में भी आया है, परन्तु यास्क ने स्पर्श अर्थ में भी इसका ग्रहण किया है । अर्थ है- जननेन्द्रिय ।

'यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् '

ऋ. १०.८५.३७; अ. १४.२.३८; नि. ३.२१.

जिस योनि में हम कामुक हो जननेन्द्रिय क्षिप्त करते हैं ।

(५) सूर्य की किरणें

'शेपति हिनस्तिः दुःखम् इति शेपः ' (जो दुःख को नष्ट करता है वह शेप है) ।

शेपहर्षणी – (१) प्रजातन्त्र इन्द्रिय में हर्ष अर्थात् पुष्टि उत्पन्न करने वाली ओषधि (२) ज्ञानवान् आत्मा को जागृत करने वाली कर्मदाहक ज्ञान वाली ।

'ओषधिं शेपहर्षणीम् '

अ. ४.४.१

शेरभ – (१) हत्यारा पुरुष, (२) हिंसा का भाव

'शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः '

अ. २.२४.१

शेवधि – (१) धरोहर, धातीः

'यथा शेवधिर्निहितः'

अ. १२.४.१४

(२) निधि, भण्डार

'विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम
गोपाय मां शेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकाया नृजवेऽयताय
न मा ब्रूयाः वीर्यवती तथा स्याम् '

– विद्यासूक्त ।

विद्या ने ब्राह्मण उपदेशक या आचार्य से यों कहा–हे ब्राह्मण, अनधिकारीजन को मुझे न दे । मेरी रक्षा कर मैं तेरी निधि हूं । मेरे प्रति या तेरे प्रति असूया करने वाले तथा जो शिष्य शिष्ट एवं ऋजु स्वभाव का न हो या जो असंयत एवं ब्रह्मचारी न हो उसे मुझे न देना क्योंकि निर्बल हो जाऊंगी । अन्यथा मैं बलवती बनी रहूंगी ।

शेवधिया – निधि की रक्षा करने वाला

'दासः शेवधिया अरिः '

ऋ. ८.५१.९; साम. २.९५९; वाज.सं. ३३.८२.

शेवल – शयन करने वाले बालक पर आवरण करने वाला जरायु

'अवैतु पृश्निः शेवलम् '

अ. १.११.४;

शेव्य – (१) सुखयितुं योग्यः (२) सुखदाता विष्णु, परमेश्वर

'भवा मित्रो न शेव्यः घृतासुतिः '

ऋ. १.१५६.१; तै.ब्रा. २.४.३.८; आश्व.श्रौ.सू. ८.१२.७;

शेवा – अति सुख एवं कल्याणमयी

'युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा '

अ. ८.९.२२

शेवृध् – सुखों को बढ़ाने वाला

'यस्मिन् रायः शेवृधासः '

ऋ. ३.१६.२

शेवृधः – (१) 'शेवृध् ' का बहुवचन । सुख बढ़ाने वाले–मरुतों का विशेषण ।

'जिगाति शेवृधो नृभिः '

ऋ. ५.८७.४

(२) एक वचन में 'शेवृध' का अर्थ है–हिंसा के कार्य सबसे आगे बढ़ने वाला,

(३) लोभ

'शेवृधक शेवृध '

अ. २.२४.२

(४) शान्तिमय प्रभु में शक्ति से बढ़ने वाला

'स शेवृधो जात आ हर्म्येषु '

ऋ. १०.४६.३

शेवृधक – (१) हिंसा के कार्य में सब से आगे बढ़ने वाला, घातक

(२) सर्प के स्वभाव वाला (३) लोभ

'शेवृधक शेवृध '

अ. २.२४.२

श्येत – (१) श्वेत वर्ण का
'श्येतः श्येताक्षः'
वाज.सं. २४.३; तै.सं. ५.६.११.१;
(२) शुद्ध चरित्र वाला
'यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे'
ऋ. ७.४.३.
(३) प्राप्त (४) श्वेत
'गृहे गृहे श्येतो जेन्यो भूत्'
ऋ. १.७१.४
गृह गृह में श्वेत शुभ्र वर्ण का होकर प्रकट होता–प्रकाशित होता है ।
अथवा,
घर घर में प्राप्त हो विजय का हेतु बनता है ।

श्येताक्षः – आंख पर श्वेत वर्ण वाला
'श्येतः श्येताक्षः ते रुद्राय पशुपतये'
वाज.सं. २४.३; मै.सं. ३.१३.४:१६९.५

श्येन – (१) ज्ञान स्वरूप प्रभु, (२) बाज, (३) बाज के समान वीर पुरुष
'अधा मे श्येनो मध्वाजभार'
ऋ. ४.१८.१३
(४) शंसनीयगतिः सूर्यः
'श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः'
अ. ७.४१.२
(५) श्येन शंसनीयः गच्छति (श्येन द्रुत गति से चलता है) । श्यङ् (गत्यर्थक) + इनच् = श्येन । श्येन नामक पक्षी (६) इन्द्र भी शंसनीय गति वाला है ।
'आदाय श्येनो अभरत् सोमम्'
ऋ. ४.२६.७; नि. ११.२.
इन्द्र ने सोम लेकर पान किया ।

श्येनपत्वा – (१) श्येनवत् पत्वा (श्येन के समान गिरन वाला) ।
पत् + वनिप् = पत्वन्
(२) ज्ञानकर्ता, (३) गतिमान् आत्मा
'आ वां रथो अश्विना श्येन पत्वा'
आप दोनों का वह रथ बाज के समान वेग से जाने वाला है (श्येनपत्वा) ।

श्येनभृत – (१) उत्तम आचारवान् (२) निष्ठ गुरुओं द्वारा पालित
'अथा भर श्येन भृत प्रयांसि'
ऋ. ९.८७.६

श्येनस्य पुत्रः – (१) श्येन का पुत्र (२) प्रशंसनीय गुरु का पुत्र
'श्येनस्य पुत्र आभरत्'
ऋ. १०.१४४.४

श्येनाभृत – (१) बाज के द्वारा लाया हुआ, (२) बाज के समान आक्रमण द्वारा बलपूर्वक प्राप्त
'सोमः श्येनाभृतः सुतः'
ऋ. १.८०.२

श्येनी – (१) श्वेत वर्ण की गौ
'एनीः श्येनीः सरूपाः विरूपाः'
अ. १८.४.३३
(२) श्वेत फुंसी वाली स्फोट
(३) अत्यन्त शुभ्रा श्येन वर्णा
'एन्येका श्येन्येका कृष्णैका'
अ. ६.८३.२

श्येनीपती – (१) विविध वर्णों की स्वामिनी प्रकृति
'श्येनीपती सा'
अ. २०.१२९.१९

श्येनीवर्तनी – (१) काले रंग का मार्ग जो आग लगने से बन जाता है, (२) बुद्धिमती माता जो बालक के पीछे-पीछे चलती हुई (३) वेग से जाने वाली सेना और सदा उसके अनुकूल जलने वाली और वार्ता वृत्ति से जीवन व्यतीत करने वाली वैश्य प्रजा ।
'श्येनी सचते वर्तनीरह'
ऋ. १.१४०.९

श्रेणि – श्रिञ् (सेवार्थक) + नि = श्रेणि । श्रेणि + ङीष् – श्रेणी श्रेणिः श्रयतेः समाश्रिताः भवन्ति (श्रेणि शब्द श्रि धातु से बना है, जो समाश्रित है वही श्रेणि है) ।
श्रेणि + ङीष् = श्रेणी । अर्थ है–पंक्ति ।

श्रेणिदन् – (१) प्रजाओं या सेनाओं के पंक्तिबद्ध दलों को वेतन, भृति या अन्नादि देने वाला
'भ्राजते श्रेणिदन्'
ऋ. १०.२०.३

श्रेणिशः – पंक्तिबद्ध ।

पंक्ति बांधकर ।
'हंसा इव श्रेणिशो यतानाः'
ऋ. १.१६३..१०; ३.२.९; वाज.सं. २९.२१; तै.सं. ४.६.७.४; नि. ४.१३.

श्रेयः – कल्याण कारी, मुक्ति का सुख
'श्रेयश्च मे वसीयश्च मे'
वाज.सं. १८.८

श्रेयस्कर – कल्याण कर्त्ता, प्रजा का कल्याण कर्ता
'बहुकार श्रेयस्कर'
वाज.सं. १०.२८; श.ब्रा. ५.४.४.१४

श्रेयःकेतः – श्रेय श्रेष्ठ पद का ज्ञान कराने वाला
'श्रेयः केतो वसुजित् सहीयान्'
अ. ५.२०.१०

श्रेष्ठतमा – सबसे उत्तम–उषा या स्त्री
'इहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ'
ऋ. १.११३.१२

श्रेष्ठवर्चाः – सर्वोत्तम तेज से युक्त
'ते हि श्रेष्ठवर्चसः त उ नः'
ऋ. ६.५१.१०

श्रेष्ठा – सबसे उत्तम ।
'स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा'
ऋ. १०.६२.१६; ऐ.ब्रा. १.९.७; नि. ११.४६.
अन्तरिक्षों में स्थित स्वस्ति नाम्नी देवता जो देवगोपा या मेघ का वाचक है अन्तरिक्ष में सबसे उत्तम देवता है ।

श्वेत – (१) करवीर, (२) अश्वक्षुरक नामक ओषधि जो सर्पविष को दूर करती है ।
'अवश्वेतपदा जहि'
अ. १०.४.३.
(३) श्वित् + घञ् = श्वेत (४) सततं गन्तुं प्रवृद्धः
(५) अति अधिक वेग से आक्रमण करने वाला सैनिक

श्वेतअश्व – (१) श्वेत घोड़ा, (२) अतिबलशाली मार्गगामी साधन,
(३) शुक्र व्यापक अनादि सिद्ध आनन्दमय ब्रह्म ।

श्वेतता – (१) दीप्ति (२) उषा का विशेषण

श्वेतना – श्वेत करना, उज्ज्वल करना
'उत त्या मे यशसा श्वेतनायै
व्यन्ता यान्तौशिजो हुवध्यै'
ऋ. १.१२२.४
जो दोनों माता पिता या गुरु और गुरु पत्नी ज्ञान से (यशसा) जगत् को उज्ज्वल करने के लिए (श्वेतनायै) भोजन ग्रहण करते (व्यन्ता) और जलपान करते हैं (पान्ता) उन दोनों का भी मैं औशिज–उशिज या तेजस्वी पिता का पुत्र या गुरु का शिष्य (औशिज) अत्यन्त अधिक आदर करता हूँ (हुवध्यै) ।

श्वेतयावरी – (१) हिमाच्छादित पर्वत से चलने वाली नदी, (२) श्वेत शुल्क विशुद्ध प्रभु से आने या उस तक पहुंचा देने वाली वेदवाणी, (३) सदाचार मार्ग से जाने वाली स्त्री
'उत स्या श्वेतयावरी
वाहिष्ठा वां नदीनाम्'
ऋ. ८.२६.१८

श्वेता – अति गतिशील घोड़ी
'ये त्वा श्वेता अजैश्रवसः'
अ. २०.१२८.१६

श्वेत्या – (क) ण्यन्त श्विता (वर्णार्थक) + यत् = श्वेत्या, (ख) श्वित् + घञ् = श्वेत, श्वेत + यत् + टाप् = श्वेत्या ।
अर्थ – (१) श्वेतवर्णा वाली उषा का विशेषण।
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात्'
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०
श्वेतवर्णा दीप्ता एवं सूर्या रूपी वत्स वाली उषा आई ।
(२) शरीर की वह नाड़ी जिससे दुग्धवत् रस पाकाशय से छाती में आकर रक्त में मिलता है ।
'सुसर्त्वा रसया श्वेत्या व्या'
ऋ. १०.७५.६

शेष – (१) छोटा से छोटा पदार्थ (२) शासन करने वाला
'वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषः'
ऋ. ६.२७.५
(३) शिष् + अच् = शेष । अपत्य, सन्तान, पिता की मृत्यु के बाद पुत्र ही शेष रह जाता

है ।
आधुनिक अर्थ - जो शेष हो, फल, अन्न, निष्कर्ष, मृत्यु, शेषनाग, जूठा अन्न

शेषण - वशीकरण
'यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणञ्च'
अ. ७.१०९.५

शेषस् - (१) पुत्र,
'मा शेषसा मा तनसा'
ऋ. ५.७०.४
(२) धन
'स्व जन्मना शेषसा वावृधानम्'
ऋ. ७.१.१२.

श्यैतं साम - पशु
'तं श्यैतं च नौधसं च'

शैप्या - वीर्य ।
'अमुष्मै शैप्यावते'
अ. ७.११३.१

शैप्यावत् - शैप्या + वतुप् । (१) भोगसाधन युक्त, (२) वीर्यवान् पति

शैलूष - नर जो नाना भाव विकारों को दर्शाता हुआ गाता है ।
'गीताय शैलूनषम्'
वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२०

शैशिरौमासौ - शिशिर ऋतु के दो मास
'शैशिरौ मासौ गोमारौ'
अ. १५.१ (४).१७

श्वैत्रेय - (१) श्वेत वर्ण के यश का इच्छुक राजा (२) सूर्य (३) मेघ
'उच्छैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ'
ऋ. १.३३.१४
और श्वेतवर्ण के यश या धन देने वाली वसुन्धरा का इच्छुक राजा (श्वैत्रेयः) शत्रु के नेता गणों को पराजित करने के लिए (नृषाह्ययाय) खड़ा रहे ।
तो भी सूर्य या मेघ (श्वैत्रेयः) मनुष्यों को हित के लिए (नृषाह्याय) आकाश में विराजता है ।

शोक - (१) एक अंग विशेष में तापकारी ज्वर
'यदि शोको यदि वाभिशोकः'
अ. १.२५.३
(२) शुच् + अच् = शोक । अर्थ -शोक ।
'अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैः'
ऋ. १०.१०३.१२; अ. ३.२.५; साम. २.१२११; वाज.सं. १७.४४; नि. ९.३३.
(३) दुःख पीड़ा ।

शोच् - (१) तेज
'शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशेमयः'
ऋ. ८.६०.६

शोचत् - शुद्ध विचार करने वाला
'शोचते स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११

शोचति - दीप्यति (चमकता है) । शुच् दीप्त्यर्थक धातु है ।

शोचिष् - शुच् (दीप्त्यर्थक) + इषच् = शोचिष् । अर्थ-दीप्ति, ज्वाला ।
'घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा'
ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; वाज.सं. १५.४७; का.सं. २६.११; ३९.१५
अग्नि अपनी ज्वाला से घृत से दीप्त आज्य के गिरे अल्पभाग को भी खा जाता है । -सा. राजा घृत की दीप्ति से राज्य में तेजस्विता की कामना करता है (विभ्राष्टिम् अनुवष्टि) ।

शोचिष्केशः - (१) दीप्तिमय केशों या किरणों से युक्त अग्नि (२) दीप्ति युक्त तेजस्वी स्वरूप से युक्त
'शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः'
ऋ. ३.१७.१; तै.ब्रा. १.२.१.११; आप.श्रौ.सू. ५.६.३
(३) शोचीषि केशाः रश्मयः दीप्तयः यस्य स सूर्य (सूर्य जिसकी रश्मियां ही केश या दीप्ति है) ।

शोचिष्ठः - (१) शुचि + इष्ठ = शोचिष्ठ । अत्यन्त दीप्तिमान् - अग्नि ।
'तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः'
ऋ. ५.२४.४; साम. २.४५९; वाज.सं. ३.२६; १५.४८; २५.४७; तै.सं. १.५.६.३; ४.४.४.८; मै.सं. १.५.३:६९.१०; का.सं. ७.१; श.ब्रा. २.३.४.३१; मा.श्रौ.सू. ६.२.२; कौ.सू. ६८.३१
(२) शुद्ध स्वरूप-दया.

शोचिष्मान् - (१) ज्वालाओं से युक्त अग्नि, (२)

तेजस्वी
'अग्निः शोचिष्माँ अतसा न्युष्णन्'
ऋ. २.४.७

शोण – (१) लाल रंग का, (२) अतिगति शील
'उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः'
ऋ. ५.३३.९
(३) तीव्र, (४) बुद्धिमान्,
'शोणा धृष्णू नृवाहसा'
ऋ. १.६.२; अ. २०.२६.५; ४७.११; ६९.१०; साम. २.८१९; वाज.सं. २३.६; तै.सं. ७.४.२०.१; मै.सं. ३.१६.३;१८५.७; तै.ब्रा. ३.९.४.३;

शोभस् – शोभा
'या इन्द्रेण सयावरीः
वृष्णा मदन्ति शोभसे'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; साम. १.४०९; मै.सं. ४.१४.१४:२३८.६
सूर्य के साथ रहने वाली किरणें (सयावरीः) जो वर्षा बरसाने वाली है, सूर्य की शोभा के लिए (शोभसे) प्रकाशित होती है।

शोभिष्ठ – शुभ् (शोभन्त) + इष्ठ = शोभिष्ठ। (१) अत्यन्त शोभायमान, (२) सूर्य का विशेषण।
'विश्वेषां त्मना शोभिष्ठम्'
ऋ. ८.३.२१.
(सभी धनों में अत्यन्त शोभायमान)।

शोशुचत् – देदीप्यमान, चमकता हुआ
'अद्यौदुषाः शोशुचता रथेन'
ऋ. १.१२३.७

शोशुचानः – देदीप्यमान। यङन्त शुच् + शानच् = शोशुचाना

श्च्योयतति – स्रवति (स्रवता है, चूता है)।

श्रोण – (१) चरण आदि से हीन (२) श्रवण शील, (३) सहुश्रुत
'प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे'
ऋ. १०.२५.११
(४) श्रोता
'प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणोभूत्'
ऋ. ८.७९.२
(४) बधिर, बहरा,
(५) उपदेश विहीन पुरुष
'प्रान्धं श्रोणः श्रावयन् सास्युक्थ्यः'
ऋ. २.१३.१२
(६) शोण, कान्तिमान, तेजस्वी (७) श्रोता –दया. (८) सबकी प्रार्थना सुनने वाला,
(९) श्रवणशील, बहुश्रुत
'प्रति श्रोण स्थाद् व्यनगचष्ट'
ऋ. २.१५.७
(१०) बधिर पुरुष।

श्रोणा – (१) श्रवण करने योग्य, (२) श्रवणीय प्रसिद्ध गुणों से युक्त (३) उत्तम भूमि (४) सूखी या सेचने योग्य पृथ्वी
'श्रोणामेक उदकं गाम वाजति'
ऋ. १.१६१.१०

श्रोणि – (१) कटिभाग।
'अंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी'
वाज.सं. २०.८
(२) नितम्ब, चूतड़
'यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदात्'
ऋ. १०.१६३.४; अ. २०.९६.२०

श्रोणितः – श्रोणि + तसिल् = श्रोणितः (१) कटिप्रदेश से
'छागस्य हविष आत्ताम् पार्श्वतः
'श्रोणितः शितामतः'
वाज.सं. २१.४३
हे अश्विद्वय, छाग की हवि पंजरी से (पार्श्वतः) कटिप्रदेश से (श्रोणितः) और बाहुप्रदेश से (शितामतः) खावें।

श्रोणीप्रतोदी – स्त्रियों के संग दुर्व्यवहार करने वाला
'स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिनः'
अ. ८.६.१३

श्रोत्र – (१) कान से सुनने योग्य ब्रह्म ज्ञान, (२) कान
'सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन'
अ. १८.२.५९;६०
(३) श्रवण शक्ति
श्रोत्रं कर्णयोः
अ. १९.६०.१; वै.सू. ३.१४

श्रोत्रपाः – श्रोत्रों का पालक

'चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे'
वाज.सं. २०.३४

श्रोता – श्रृणुत (सुनो) । बहुलं छन्दसि से शप् का लोप हो गया है। दीर्घ छान्दस है ।

श्रोत्रिय – वेद का विद्वान् ब्राह्मण
'एष वा अतिथिर्यच्छोत्रियः'
अ. ९.६ (२) ७

श्रोतु – (१) श्रृणोतु (सोवे) (२) श्रवण
'श्रोतु नः श्रोतिरातिः सुश्रोतुः
सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ।
ऋ. १.१२२.६
हमारे वचनों को उत्तम श्रवणशील पुरुष अर्थात् पिता, गुरु या उपदेशक (सु श्रोतुः) और कान देकर सुनने वाली उपदेशिका (श्रोतिरातिः) सुने (श्रोतु) जैसे जलों से (अद्भिः) सिन्धु उत्तम खेतों को सींच देता है उसी प्रकार हमारे हृदय क्षेत्रों को उपदेशामृत से सींचिए ।

श्रोतुराति – (१) कान देकर सुनने वाली उपदेशिका–ज.दे.पा.
(२) श्रवणं रातिः दानं यस्य सः–दया.

श्रोमत – (१) उत्तम पुरुषों से श्रवण करने योग्य वचन, (२) श्रवणीय
'वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः
ऋ. ६.१९.१०
'केनो नु कं श्रोमतेन शुश्रुवे'
ऋ. ८.६६.९; अ. २०.९७.३
(३) प्रशंसा कीर्ति युक्त, (४) कीर्ति
'उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम्'
ऋ. १.१८२.७
(५) श्रवण करने योग्य आश्चर्यजनक कार्य ।
यह शब्द 'श्रु' धातु से बना है ।
(६) श्रवणीय यशों से युक्त (धन)–सा.।
(७) श्रवणीयतम उपदेश–दया.।
'वंसीमहि वामं श्रोतमेभिः'
ऋ. ६.१९.१०
हम सुन्दर याचनीय या संभनीय एवं श्रवणीय गुणों से युक्त धन परस्पर बांटते हैं–सा. ।
हम श्रवणीयतम उपदेशों के द्वारा (श्रोतमेभिः) प्रशंसनीय कर्म का सेवन करें (वामं वंसीमहि) – दया.

श्रोषमाण – उत्तम उपदेश, आज्ञा या ज्ञान श्रवण करता हुआ ।
'वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणाः'
ऋ. ३.८.१०

श्लोक – (१) समस्त पदार्थों का दर्शन कराने वाला ज्ञानमय वेद ।
'वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः'
अ. १८.३.३९
(२) स्तुति वचन ।
'ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द'
ऋ. ४.२३.८; नि. १०.४१.
ऋतदेव का स्तुतिवचन बहरे कानों को छेद देता है ।
(३) श्रु (सुनना) + कन् = श्लोक (गुण और र् का ल्) अर्थ है–स्तुति प्रशंसा गति जो श्रवणीय होता है ।
'श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः'
ऋ. १०.९४.१; नि. ९.९
हे ऋत्विजो, इन्द्र के लिए श्रवणीय घोष आप करें ।

श्लोककृत् – कीर्ति बढ़ाने वाला ।
'श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी'
अ. ५.२०.७

श्लोकयन्त्र – श्लोक अर्थात् वेदमय ज्ञान से अपनों को नियन्त्रित और व्यवस्थित करने वाला
'श्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः'
ऋ. ९.७३.६

श्लोक्य – वेद मन्त्रों तथा शास्त्र की व्याख्या करने में कुशल
'नमः श्लोक्याय चावसान्याय च'
वाज.सं. १६.३३; तै.सं. ४.५.६.१; का.सं. १७.१४

श्लोकी – (१) स्तुति योग्य
'द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः'
ऋ. ८.९३.८; अ. २०.४७.२; १३७.१३; साम. २.५७२; मै.सं. २.१३.६ :१५५.१०; का.सं. ३९.१२; तै.ब्रा. १.८.३.
(२) कीर्तिमान

श्लोणा – लंगड़ी लूली गौ

'श्लोणया काटमर्दति'
अ. १२.४.३.

शौचद्रथः – (१) कान्ति युक्त रथ वाला सूर्य,
(२) तेजस्वी, शुद्ध आत्मा वाला,
(३) रमणीय
'या सुनीथे शौचद्रथे'
ऋ. ५.७९.२; साम. २.१०९१

शौरदेव्यः – शूर और विजिगीषु
'कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यः'
ऋ. ८.७०.१५

शौष्कल – (१) शोषण करने वाला, (२) सुखा डालने वाले उपायों में विज्ञ पुरुष ।
'नड्वलाभ्यः शौष्कलम्'
वाज.सं. ३०.१६; तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

शौष्कास्य – मुख का सूख जाना
'शौष्कास्यमनु वताम्'
अ. ११.९.२१

श्रौषट् – (१) हविर्दात्री-दया. । (२) श्रवण, (३) वेद का श्रवण-ज. दे.श.।
'अस्तु श्रौषट् पुरो अग्नि धिया दधे'
ऋ. १.१३९.१; साम. १.४६१
वेद का श्रवण हो । मैं अपने आगे कर्म और प्रज्ञा या धारण क्रिया से सहित अग्नि से या ज्ञानवान् ज्ञानमार्ग में आगे से चलने वाले आचार्य को उपदेष्टा आचार्य के रूप में स्थापित करूं ।

श्रौत्रीशरद् – संवत्सर रूपी प्रजा पति का शरद् ऋतु ही श्रौत्र है अतः यह श्रौत्री शरद है ।
'शरच्छौत्री'
वाज.सं. १३.५७; तै.सं. ४.३.२.२; मै.सं. २.७.१९; १०४.९; का.सं. १६.१९;श.ब्रा. ८.१.२.५

ष

षट् – षह् (मर्षण अर्थ में) + क्विप् = षट् । षट् पञ्च को अभिभूत कर आता है अतः वह षट् है ।
अर्थ –छः ।
'देवी षडुर्वीरुरु कृणोत'
ऋ. १०.१२८.५;
ऐ छः उर्वी देवियो, आप से हम धन आदि जो कुछ मांगें उसे आप विस्तीर्ण करें (नः उरु कृणोत) ।

षट् उर्वी – (१) छः बड़ी शक्तियां (२) पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन आत्मा की छः बड़ी शक्तियां हैं ।
(३) छः महान् दिव्य शक्तियां –द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और ओषधि ।
'दुह्रामुर्वीर्यथाबलम्'
अ. ३.२०.९
(४) छः विशाल चराचर लोक सृष्टि, (५) प्रकृति की छः विकृतियां, (६) छः बड़ी प्रजा संस्थाएं या राजा प्रकृतियां, (७) प्रकृति के पांच भूत, पांच विकृति और महत्तत्व, (८) पांच इन्द्रियां तन्मात्रा और मानस पक्ष की (९) राजा के स्व पक्ष की षट् प्रकृतियां, (१०) षट् गुण, (११) द्वादशः राजचक्र स्वपक्ष, पर पक्ष के छःछः सुहृदादि ।
'अयं षडुर्वीरिमिमीत धीरः'
ऋ. ६.४७.३
(१२) छः बड़ी शक्तियां –द्यौ, पृथिवी, आप, ओषधि-गण, उर्क, सूनृतावाणी अर्थात् सूर्य, भूमि जल, वनस्पति, अन्न और वाणी
'षडुर्वीरिकमिद् बृहत्'
ऋ. १०.१४.१६; अ. १८.२.६; का.सं. ४०.११; तै.आ. ६.५.३; आप.श्रौ.सू. १७.२१.८

षट् उर्वी देवीः – छःउर्वी देवियां, द्यौ, पृथिवी, अहः, रात्रि, अपः और औषधियां ।
ऐ छः उर्वी देवियो, आप से हम जो कुछ भी मांगे उसे विस्तृत करें ।
'देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत'
ऋ. १०.१२८.५

षट् ऋषयः – (१) ज्ञानद्रष्टा कान, आंख और नाक के दो प्राण जो देवज कहलाते हैं । (२) छः ऋतुएं दो मासों की बनती हैं
'षडिद् यमा ऋषयो देवजा इति
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९
(३) छः ऋषि

'षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे'
अ. ८.९.७

षट् त्रिंशत् चत्वारि – छत्तीस और चार अर्थात् चालीस मास ।
वैदिक ज्योति में तीन वर्षों का भी गुण माना गया है । इस युग के छत्तीस मास होते हैं । सौर वर्ष के बराबर चान्द्र मासों को करने के लिए एक युग में लगभग चार चान्द्र मास और शामिल किए जाते हैं और तब चालीस मास होते हैं ।
'षट् त्रिंशाश्च चतुरः कल्पयन्तः'
ऋ. १०.११४.६

षटपक्षा – छः पक्षों या कमरों वाली शाखा
'षट्पक्षा या निमीयते'
ऋ. ९.३.२१.

षट् याद् – छः चरणों वाला अग्नि
अग्निः षट् पादः तस्य पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः एव ओषधि वनस्पतय इमानि
भूतानि पादाः
गो.ब्रा. ५.२.९
अग्नि षट्पाद है । इसके चरण पृथिवी, द्यौ, अन्तरिक्ष, ओषधि , वनस्पतियां और भूत हैं ।
'द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे'
अ. १३.२.२७

षट् भाराः – (१) सबके भार अर्थात् पालक पोषक ऋतु, (२) विषयों को हरण करने और ज्ञानों के धारण साधन पात्र–इन्द्रियां और मन
'षड् भारां एको अचरन् बिभर्ति
ऋ. ३.५६.२

षट् भूताः – छः भूत अर्थात् सत् पदार्थ
'षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य'
अ. ८.९.१६

षड् यमाः – (१) दो दो मासों बने ऋतु (२) छः जोड़े प्राण
'षडिद् यमा ऋषयो देवजा इति'
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९
दो दो मास के बने ऋतुओं को ऋषि रूप से उत्पन्न बताते हैं (देवजा) ।
(३) दो कान, दो नाक, दो आंखें, दो रसना और वाणी, दो हाथ और दो पांव भी छः यम हैं ।

षट्योगः – (१) छः प्राणों के साथ योग करने वाला
'षड्योगं सीरमनु साम साम'
अ. ८.९.१६
(२) शम, दम, उपरति,
तितिक्षा, श्रद्धा और मुमुक्षत्व
'षड् योगेभिरचर्कृषुः'
अ. ६.९१.१.

षट्रजांसि – (१) छः लोक, (२) मुख्य प्राण के सिवा छः गौण प्राण, (३) छः ऋतु
'वि. यस्ततम्भ षडिमा रजांसि'
ऋ. १.१६४.६; अ. ९.९.७
(४) तीन भूमि और तीन द्यौ (५) पांच इन्द्रिय और मन, (६) संवत्सर की छः ऋतुएं
(७) सत्य लोक को छोड़ भू आदि छः लोक

षड् रात्र – छः दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ
'षड्रात्रश्चोभयः सह'
अ. ११.६.११.

षट् विष्ठाः – (१) अध्यात्म यज्ञ के छः आश्रय–पांच प्राण और मन या आत्मा, (२) छः ऋतुएं संवत्सर के छः आश्रय हैं, (३) राष्ट्र के छः अमात्य
'षडस्य विष्ठाः शतमक्षराणि'
वाज.सं. २३.५८; वाज.सं. (का.) २३.५८; श.ब्रा. १३.५.२.१९

षट् विष्टिरः – (१) छः ऋतुएं, (२) छः विस्तृत दिशाएं, (३) द्यौ, पृथिवी, दिनरात्रि, आपः और औषधि (४) छः अमात्य
'षडस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः'
ऋ. २.१३.१०

षडक्ष – (१) छः ऋतु रूप (२) आंखों वाला संवत्सर (३) मन सहित छः इन्द्रियों वाला देह
'षडक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्'
ऋ. १०.९९.६

षडक्षर – (१) सूर्य के छः अक्षय बल, (२) राजा के छः सामर्थ्य–सन्धि, विग्रह, यान, आसन संश्रय और द्वैधीभाव

षड्द्यावापृथिवी – छः प्रकार की द्यावापृथिवी ।
'षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः '
अ. ८.९.१६

षडर – षट् + अर = षडर । छः ऋतुओं को संवत्सर के छः अर माने गए हैं और इसी रूप में संवत्सर की स्तुति की गई है । अतः ' षडर शब्द संवत्सर का वाचक हुआ ।
अर का अर्थ है चक्र का अर (spokes)
'पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं
दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं
सप्त चक्रे षडर आहुरर्पितम् '
ऋ. १.१६४.१२; अ. ९.९.१२; प्रश्न.उप. १.११.
हेमन्त और शिशिर को एक मानकर पांच ऋतु रूप पांच चरणों से युक्त (पञ्चपादम्) सबके पालक या उत्पादक (पितरम्) बारह महीनों की बारह आकृतियां रखने वाले (द्वादशाकृतिम्) जलयुक्त (पुरीषिणम्) संवत्सर को द्युलोक के परम अन्तरिक्ष रूपी स्थान में (दिवः परे अर्धे) स्थित आदित्य के निमित्त अर्पित कहा गया है (अर्पितम् आहुः) । पुनः ये ऊपर जो और सात सप्तर्षि हैं (अथ इमे अन्ये सप्त) या सप्त चक्र युक्त आदित्य हैं उस सर्वभूतों के द्रष्टा आदित्य को (विचक्षणम्) संवत्सर नामक छः अरों वाले चक्र में (षडरे चक्रे) अर्पित समझते हैं (अर्पितम् आहुः) । अर्थात् कुछ लोग आदित्य को दक्षिणायन उत्तरायण गतियों के कारण कालाधीन होने से संवत्सर के अधीन मानते हैं और कुछ संवत्सर को ही आदित्य के अधीन मानते हैं (अन्ये पुनः) ।
अन्य अर्थ – पांच ऋतुओं वाले पांच पादों से युक्त (पंच पादम्) बारह मासों के कारण बारह आकृतियों से युक्त (द्वादशाकृति) दिन के पिता संवत्सर को (दिवः पितरम्) दूसरे अर्ध भाग में (परे अर्धे) जल उत्पन्न करने वाला कहते हैं (पुरीषिणम् आहुः) और ये दूसरे विद्वान् (अथ इमे अन्ये) सब प्राणियों को आराम देने वाले (उपरे) अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र रूपी सात चक्रों वाले (सप्त चक्रं) तथा छः ऋतुओं के कारण छः अरों वाले संवत्सर में (षडरे) मनुष्य का निवास बतलाते हैं (विवक्षणम् अर्पितम् आहुः) ।

षडश्वाः – (१) पांच चक्षु आदि इन्द्रियां और छठा मन, (२) छः अश्व सैन्य के सेनापति ।
'षडश्वां आतिथिग्व
इन्द्रोते वधूमतः '
ऋ. ८.६८.१७

षडशीतय – (१) – छः अस्सी अर्थात् ४८० प्रलय में बचे रहने वाले दिव्य गुण पदार्थ, (२) सौर मण्डल में विचरने वाले ग्रह, उपग्रह धूमकेतु, तथा राशिचक्र के मुख्य नक्षत्र और तारागण
'यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः '
अ. ११.३.२१.

षडह – षट् + अह । समस्त ब्रह्माण्ड, पुरुष देह
'षडु सामानि षडहं वहन्ति '
अ. ८.९.१६

षडुर्वी – (१) छः प्रकार की विशाल पृथिवी
'यडाहुर्दावापृथिवीः षडुर्वी '
अ. ८.९.१६
(२) छः बड़ी दिशाएं
'मह्यं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु '
अ. ९. २.११.

षड्वृषः – (१) छः प्राणों से युक्त आत्मा
'यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि '
अ. ५.१६.६

षण् – (धा.) । दान, देना, विभाग करना

षष्ठ – (१) षस् (वस्ति स्वपने) + क्त = षष्ठ (अर्थ–सर्वव्यापक, लीन, सर्वव्यापक निगूढ़ शक्ति)
'षष्ठात् पञ्चाधिनिर्मिता '
अ. ८.९.४
(२) छठा

षष्ठम् अहः – देवायतनं वैषष्टमहः–कौ. ब्रा. २३.५
'प्रजापत्यं वै षष्ठमहः–कौ.ब्रा. '
पुरुषो वै षष्ठमहः । अन्नं षष्ठमहः – कौ.ब्रा.
'षष्ठं अहः । देवों का प्राणों का, विद्वानों का मुक्तजीवों का आयतन अर्थात् आश्रय स्थान है । वह प्रजापति का रूप है । वह पुरुष परम

पुरुष है । वह सबका अन्त परम चरण धाम है । अर्थात् प्रलय काल में वही शेष है ।
'उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः '
अ. ८.९.६

षष्टिः सहस्रानवतिः – छः हजार नब्बे पुरुषों का बना चक्रव्यूह
'षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम् '
अ. २०.१२७.१; आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१०

षष्टि – साठ
'आ षष्ट्या सप्त्या सोमपेयम् '
ऋ. २.१८.५

षिञ् – धा.। बान्धना, भोजनकरना अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है । 'असिन्वत् ' जिसका अर्थ –अच्छी तरह से नहीं खाता हुआ या ' बिना संचूर्ण किए' किया गया है ।

ष्कुञ् – व्युदसन (तंग करना, छकाना) ।

ष्टुक – ष्ट्यै (संघात अर्थ में) + हुक = ष्टुक । अर्थ है– (१) केशों के संघात –यास्क (२) जांघ –जांघ में भी मांस का संघात रहता है । stock शब्द का ष्टुक से साम्य विचारणीय है ।

ष्नु – प्रस्रवण अर्थ में । अंग्रेजी का snow शब्द 'ष्नु' धातु से ही निर्मित है, snow ((बर्फ) भी स्रवता है ।

षोड़शकला – इहैवान्तः शरीरे सोम्य
'स पुरुषो यस्मिन् एताः
षोड़श कलाः प्रभवन्ति–प्रश्नोपनिषद् '
(१) शरीर की सोलह कलाएं–प्राण, श्रद्धा, खं, वायु, ज्योति, आपः, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म , लोक और नाम । 'परिद्रष्टा आत्मा की ये १६ कलाएं उसके आश्रय पर हैं और उसी में लीन हो जाती हैं । '
'इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः '
अ. ३.२९.१

षोड़शाक्षर – (१) ब्रह्मचारिणी का सोलह वर्षों का अखण्ड ब्रह्म चर्य, (२) राजा के सोलह सदस्य, (३) वेदवाणी की सोलह शक्तियां, (४) ब्रह्मशक्ति की सोलह कलाएं
'षाडेशाक्षरेण षोड़शं स्तोममुदजयत् '
वाज.सं. ९.३४

षोडशी – (१) षोडश नामक स्तोत्र वाला षोडशी याग
'षोडशी सप्तरात्रश्च '
अ. ११.७.११
(२) 'षोडशिन् ' के प्रथम पुरुष एक वचन में रूप । सोलहों एकवचन में रूप । सोलहों कलाओं से सम्पन्न, (३) सोलहों पदाधिकारियों रूपी शक्तियों से युक्त राजा, (५) १६ महामात्यों से युक्त राजा
'इन्द्राय त्वा षोडाशिने '
वाज.सं. ८.३३
षोडशी सम्राट की पारिभाषा–
'यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा,
प्रजापतिः प्रजया संरराणः
त्रीणिं ज्योतींषि सचते स षोडशी '
वाज.सं. ८.३६; ३२.३; तै.ब्रा. ३.७.९.५; आप.श्रौ.सू. १४.२.१३
(७) सोलहों कलाओं से युक्त
(८) सोलह अमात्यों या राजाओं से युक्त राजपरिषद्
'षोडशी शर्म यच्छतु '
वाज.सं. २६.१०; वाज.सं. (का.) २८.११; तै.सं. १.४.४१.१; तै.आ. १०.१.१०; महा. ना.उप. २०.११. वाज.सं. २६.१०;
(९) प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक ये १६ अंश और कलाएं समष्टि रूप से परमात्माओं और व्यष्टि रूप में जीवात्मा में विद्यमान होने से षोडशी हैं ।

षोढायुक्ता पञ्चपञ्चा – (१) छः छः लग कर भी पांच पांच हो जाने वाले,
(२) मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रियां छः है किन्तु पांच ज्ञानेन्द्रियां ही ज्ञान करने के लिए हैं,
(३) छः ऋतु हैं, परन्तु हेमन्त शिखिर मिला देने से पांच ही रह जाते हैं,
(४) जोड़े जोड़े इन्द्रियां और पांच प्राण ।
'षोढा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति '
ऋ. ३.५५.१८

स

स – सर्वनाम । अर्थ –स्व, अपना
'ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन् ऊधन्'
ऋ. १.१५२.६
अन्न के प्रिय दुग्धाभिलाषी बालक को (ब्रह्मप्रियम्),अपने स्तन पर (सत्मिन्, ऊधन्) उसको हृष्ट पुष्ट करती हैं (पीपयन्) ।

स्फ्य – सं. । शकट का स्थान space
'खलः पात्रं स्फ्या वंसावीषे अनूक्ये'
अ. ११.३.९

स्म – (अ) । (१) प्रायः
'यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम्'
ऋ. २.१२.५; अ. २०.३४.५
(२) खलु, एक अव्यय (३) लट् लकार में 'स्म' जोड़ने पर अर्थ भूत काल में हो जाता है ।
(४) शीघ्र–दया.।

स्य – धा.। अर्थ– खोलना
'ईशानो वि ष्या दृतिम्'
अ. ७.१८.१; मै.सं. १.३.२६:३९.१२; का.सं. ११.९

स्व – सं.। धन
'काणया दीयते स्वम्'
अ. १२.४.३
(२) सर्वनाम । अपना
अरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः । पाप रहित यथा संकल्प अपने अनेक नामों से तुम दोनों (अश्विद्वय) धन्य हुए ।
(३) श्रि + व = स्व । स्वं पुनः आश्रितं भवति (धन स्वामी के अभिमुख संगत होता है) । अर्थ–धन,
'आसिञ्च स्वजठरे मध्व ऊर्मिम्'
ऋ. ३.४७.१; वाज.सं. ७.३८; वाज.सं. (का.) २८.१०; तै.सं. १.४.१९.१; मै.सं. १.३.२२: ३८.२; का.सं. ४.९; नि. ४.८
तू अपने पेट में सोम रस का संघात आसिञ्चित कर ।

संकल्पकुल्मला – नाना संकल्प विकल्प में चिपकी हुई
'इषुं संकल्पकुल्मलाम्'
अ. ३.२५.२

स्वक्, स्वञ्च् – (१) अपने लिए ।
'शक्तिकानना स्वचम्'
अ. २०.१३६.५
(२) उत्तम पूजा के योग्य
'रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः'
ऋ. ४.६.९

स्वक्त्य – गतिशील, आगे बढ़ने वाला
'स्वक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि'
अ. २.११.२

सक्मन् – यः सचति (जो सभी पदार्थों को सम्बद्ध करता है) । सच् + मनिन = सक्मन् । अर्थ परमेश्वर, अग्नि

सकम्य – सचति संयुनक्ति यस्मिन् तत् सक्म तत्रभवम् सक्म्यम्'
– दया
(१) अन्न, (२) समवाय, (३) संगठन
'आ नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः'
ऋ. ३.३८.७

स्रक् – माला
'स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु'
ऋ. ५.५३.४

स्रक्व – (१) सर्जन करने योग्य देह (२) विराट् जगत्
'स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्'
ऋ. ९.७३.१; ऐ.ब्रा. १.२०.१; कौ.ब्रा. ८.५
(३) सृज् + व = स्रक्व । सृजन करने वाला,
(४) देहावयव का घटक पदार्थ अन्न, फल आदि
'उप स्रक्वेषु बप्सतः'
ऋ. ८.७२.१५; साम. २.८३२
(१) प्राप्त उत्तम गृह–दया. (२) होंठ–ज.दे.।
(३) बना हुआ नगर
'उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप'
ऋ. ७.५५.२

सक्षणिः – (१) रचने वाला, (२) व्यापक
'उतस्य देवो भुवनस्य सक्षणिः'
ऋ. २.३१.४
(३) जीत लेने वाला

सक्षणी – द्वि.व.। एक साथ रहने वाले स्त्रीपुरुष
'प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी'
ऋ. ८.२२.१५

स्वक्षत्र – (१) जहां अपना ही बल है दूसरे के बल का भरोसा नहीं है । (२) स्वकीय क्षात्र तेज
'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे
स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्'
ऋ. ५.४८.१
हम सुख दायक, प्रियधाम, स्वकीय क्षात्र तेज, स्वकीय महान् यश के लिए उस नीति को समझें । दया.
हम सुखकारक प्रिय तथा जहां अपना ही बल है, दूसरे के बल का भरोसा नहीं उसके लिए जहां अपना ही यश है उस महान् विश्वे देव के स्थान के लिए याचना करते हैं ।–सा.
(३) स्वयं ज्योति–सा. । जैसे–'स्वक्षत्रं मनः'

स्वक्षत्रम् – स्वयं बलसम्पन्न
'स्वक्षंत्र ते धृषन्मनः'
ऋ. ५.३५.४

सका – सा – (वह) चिड़िया
'सका जघास ते विषम्'
ऋ. १.१९१.११

स्रक्ति – (१) सृज्यमाना सेना–दया. (२) मालाओं के समान लम्बी और राष्ट्र को घेरने वाली शत्रु सेना
'अव स्रक्तीर्वेश्या वृश्चदिन्द्रः'
ऋ. ७.१८.१७

सक्थि – (१) जंघा, (२) समवाय शक्ति, संघ शक्ति
'भसन्मे अम्ब सक्थि मे'
ऋ. १०.८६.७; अ. २०.१२६.७
'सक्थ्या देदिश्यते नारी'
अ. २०.१३६.४
(३) सच् (सेचन एवं सेवन करना) + क्थिन् = सक्थि, जंघा ।
सक्थिः सचते । आसक्तो अस्मिन् काय । सक्थि में ही यह काया आसक्त है ।

सक्षित् – एक ही स्थान पर रहने वाला
'वि यद् रोहन्ति सक्षितः'
ऋ. ६.४४.६

सक्षितौ – द्वि.व. । साथ रहनें वाले माता–पिता या द्यावा पृथिवी ।

सक्तु – (क) सच् + तुन् = सक्तु । जो सूक्ष्म होने के कारण सूक्त या संश्लिष्ट हो जाय एक दूसरे से सट जाय–वह सत्तू है और इसी से कठिनता से पाया जाता है (दुर्धावो भवति) ।
(ख) प्रदीप ने षच् (सेचनार्थक) + तन् से सक्तु की व्युत्पत्ति की है । (ग) कस् (गति, शासन) + तन् = सक्तु (वर्ण विपर्यय से) । कंसतेः वा विपरीतस्य' । सत्तू जल में घोलते ही विकसित हो जाता, बढ़ जाता है (विकसितो भवति) ।
'सक्तुमिव तितउना पुनन्तः
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०
जिस प्रकार चलनी से सत्तू पवित्र करते हैं उसी प्रकार प्रकार जिसे यज्ञ या सभा में ध्यानवान् या धीमान् पुरुष प्रज्ञा या मन से शुद्ध वचन बोलते हैं ।

सक्तुश्रीः – प्राप्त हुए अन्नादि पदार्थों (सक्तु) से मित्रवर्ग का आश्रय लेने वाला राजा (२) सत्तू की श्री वाला
'शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः'
वाज.सं. ८.५७

सकृत् – अ. । एकबार
'सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो'
सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि'
ऋ. २.१६.८
पुनः–
'सकृद्ध द्यौरजायत'
ऋ. ६.४८.२२

सकृत्सू – (१) एक ही बार बहुत अन्नादि उत्पन्न करने में समर्थ,
(२) एक ही बार समस्त ज्ञान प्रकट करने वाला
'सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीम्'
ऋ. १०.७४.४; वाज.सं. ३३.२८

स्वःकेशी – आदित्य नामक केशी । आदित्य, अग्नि और वायु का भी नाम है ।
'केशी विश्वं स्वर्दृशे'

ऋ. १०.१३६.१; नि. १२.२६
यह आदित्य केशी सब कुछ देखता है ।

संक्रोश – (१) एक दूसरे के प्रति बोला हुआ शब्द (२) लम्बा लम्बा आह्वान, दीर्घ शब्द
'संक्रोशैः प्राणान्'
वाज.सं. २५.२

सख्यम् – सखि + यत् = सख्य । मित्रता ।
'देवानां सख्यमुप सेदिमा वयम्'
ऋ. १.८९.२; वाज.सं. २५.१५; मै.सं. ४.१४.२; २१७.९; नि. १२.३९
हम देवों की मित्रता प्राप्त करें । 'देवानाम् सख्यम्' का अर्थ 'देवानाम् सख्यम यत्र' अर्थात् रमणीय या देवलोक भी किया गया है ।

सखा – समानख्यानः सखा । समानेषु शास्त्रेषु कृतश्रमाः लब्ध-ज्ञानाः च (समान ख्यान वाले अर्थात् जिन्होंने समान शास्त्रों में श्रमकिया हो और ज्ञान प्राप्त किया हो वे सखा है) । अर्थ है–
(१) मित्र
'अत्रा सखायः सख्यानि जानते
प्रियं सखायं परिषस्वजाना'
ऋ. ६.७५.३; वाज.सं. २९.४०; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं ३.१६.३: १८५.१४; का.सं.(अश्व.) ६.१; नि. ९.१८
प्रिय सखा सदृश पति का आलिंगन करती हुई । ऋत्विज् । वेदों में ऋत्विज् के अर्थ में भी सखि शब्द का प्रयोग किय गया है ।
'हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु
यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः'
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिः
ओहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे'
ऋ. १०.७१.८
समान बुद्धि वाले ऋत्विज् (सखायः) जो मन्त्रों के अर्थ का तत्व समझने वाले हैं (ब्राह्मणाः) वे मन से भी दूर रहने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थों को जानने में (तष्टेषु मनसो जवेषु) हृदय से या बुद्धि द्वारा (हृदा) जिस प्रकार (यत्) परस्पर यजन करते या संगति करते हैं (संयजन्ते) ऐसे ब्राह्मण मंत्र के अर्थ के व्याख्यान में निश्च (अत्र अह) उस अविद्वान् का अपनी विद्याओं या प्रवृत्ति से त्याग देते हैं (वेद्याभिः तं विजहुः) और उन में जो ब्रह्म ज्ञानी या निरुक्त शास्त्र के ज्ञाता हैं (ओह ब्राह्मणः) वे यथाकाम वेद के अर्थों में विचरण करते या प्रवृत्त होते हैं (विचरन्ति) ।
'ओह ब्राह्मणः' का अर्थ उह्यमान गुह्य विद्या का ज्ञाता है ।

सखायः – सखा रूप ऋत्विज् जो यज्ञ कराते हैं ।
'आ शेकुरित् सधमारं सखायः'
ऋ. ८.४.१३
इस मदान्वित् करने वाले यज्ञ को सखा रूप ऋत्विज् करते हैं ।

सख्या – मित्रों का सत्संग
'कदा भवन्ति सख्या गृहे ते'
ऋ. ४.३.४

सखित्व – मित्रता
'ईडे सखित्वं सुमतिं निकामः'
ऋ. ३.१.१५

सखित्वन – मित्रता
'सखित्वनाय वावशुः'
ऋ. ६.५१.१४

सखिवान् विष्णुः – (१) मित्रजनों से युक्त राजा, (२) शिष्य रूप मित्रों से युक्त आचार्य (३) उपासक रूप सुहृदों से युक्त परमेश्वर
'व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते'
ऋ. १.१५६.४; ऐ.ब्रा. १.३०.१८; कौ.ब्रा. ९.६

सखिविद् – मित्रों को प्राप्त कराने वाला
'सखिविदं सत्राजितम्'
वाज.सं. ११.८; तै.सं. ४.१.१.३; का.सं. १५.११; श.ब्रा. ६.३. १.२०.

सखीयत् – (१) मित्र का अभिलाषी आत्मा
'विभुर्विभावा सख आ सखीयते'
अ. १९.५२.२

सखीवन् – मित्र बनाने की इच्छा करता हुआ
'अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्'
ऋ. ३.३१.७

सगण – अपने सहकारी साथियों के सहित
'उरुक्षयाः सगणा मानुषासः'

अ. ७.७७.३

सगर्भ्य – सहोदर भाई

'अनु भ्राता सगर्भ्यः'

वाज.सं. ४.२०; ६.९; तै.सं. १.२.४.२; मै.सं. १.२.४:१३.६;१.२ .१५:२४.१५; ४.१३.४: २०३.९; का.सं. २.५; ३.५; १६.२१; ऐ.ब्रा. २.६.१२; श.ब्रा. ३.२.४.२०: ७.४.५; तै.ब्रा. ३.६.६.१; आश्व. श्रौ.सू. ३.३.१

स्वगा – (१) अपने हितैषी को प्राप्त होने वाला, (२) अनायास प्राप्त होने वाला

'स्वगेदं देवेभ्यो नमः'

वाज.सं. १८.५७; मै.सं. २.१२.३:१४७.४; का.सं. १८.१८

स्वगाकार – (१) स्वयं गान करने योग्य शंयुवाक नामक स्वस्ति वाचनकर्ता, (२) संवत्सर संवत्सरः स्वगाकारः

तै.ब्रा. २.१. ५

(३) राष्ट्र के समस्त ऐश्वर्य को सूर्यवत् दौरा लगाकर अपनाने वाला राजा

स्वगूर्ताः – (१) (ब.व.)। अर्थ (१) अपने बल से प्रेरित द्यावापृथिवी, (२) नाड़ियां और प्राणगण, (२) अपने सहयोगी बन्धु बान्धव मित्र जनों से उद्योगशील होकर

'द्यावा क्षामा सिन्धववश्च स्वगूर्ताः'

ऋ. १.१४०.१३.

(४) गुरी (उद्यमन अर्थ में) + क्ता = गूर्त (निपातन से)। स्वयंगामिनी नदी का विशेषण।

'उतेम वर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः'

ऋ. १०.९५.७; नि. १०.४७

और इस पुरूरवा को स्वयं गामिनी नदियों ने घेर लिया।

स्वगोपाः – (१) स्वयं अपने सामर्थ्य से रक्षित –गौ

'व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा'

ऋ. १०.३१.१०

संक्रन्दनः – शत्रुओं को ललकारने वाला

'संक्रन्दमोऽनिमिष एक वीरः'

ऋ. १०.१०३.१; अ. १९.१३.२; साम. २.११९९; वाज.सं. १७.३३; तै.सं. ४.६.४.१; मै.सं. २.१०.४:१३५.१०; का.सं. १८.५

संकर्षन्ती – खींचती हुई, मचमचाती हुई

'संकर्षन्ती करूकरम्'

अ. ११.९.८

संकसुक – (१) नाश करने वाला लोभी जीव

'आरात् संकसुकाश्चर'

अ. ८.१.१२

(२) उत्तम शासक, (३) अग्नि, (४) दुष्टों का सन्तापक

'समिन्धते संकसुकं स्वस्तये'

अ. १२.२.११

संक्रम – सब तरफ फैल जाने में समर्थ

'संक्रमोऽसि संक्रमाय त्वा'

वाज.सं. १५.९; पंच.ब्रा० १.१०.१२; वै.सू. २७.२७

सङ्का – (१) संघ बनाकर रहने वाले

'इषुधिः संकाः पृतनाश्च सर्वाः'

ऋ. ६.७५.५; वाज.सं. २९.४२; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३; १८६.२; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१४

(२) समं सह कामन्ति शब्दायन्त इति सङ्का। संभूव शब्द कारिणः (एकत्र हो शब्द करने वाला)।

सम् + कै + क = सङ्क। यास्क के मत से सच् + कृ + ड, अथवा सम् + कृ + ड = संका। जहां योद्धा बिखरे रहते हैं या पदार्थ बिखरे रहते हैं। सम् + कृ + ड = संक।

३) दुर्ग ने इसे संग्राम का विशेषण माना है।

(४) साथ ही शब्द करने वाला –सा.

(५) युद्ध–दया.

'इषुधिः सङ्का पृतनाश्च सर्वाः
पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः'

ऋ. ६.७५.५

यह तूणीर (इषुधिः) पीठ में बांधे जाकर (पृष्ठे निनद्धः) बाणों को प्रेरित करता हुआ (सङ्काः) सभी सेनाओं को जीतता हुआ (सर्वाः च पृतनाः)–सा.।

पीठ पर बंधा हुआ, बाणों को छोड़ता हुआ (सङ्काः) और सेनाओं को (पृतनाः) को जीतता हुआ–दया.।

संक्रोशमाना – बड़े प्रकट शब्दों से पुकारती हुई
ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः
ऋ. ४.१८.६

संख्याताः स्तोकाः – संख्या में परिमित जलबिन्दु या आप्तजन
संख्याता स्तोकाः पृथिवी सचन्ते
अ. १२.३.२८

सङ्गः– (१) संग्राम काल ।
अभीके चिदुलोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा ।
ऋ. १०.१३३.१; अ. २०.९५.२; साम. २.११५१; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.४:१८९.८; तै.ब्रा. २.५.८.२
सामने आए संग्राम काल में (अभीके सङ्गे) तथा युद्धों में (समत्सु) अभिपूजित लोक कर्त्ता या स्थान कर्त्ता इन्द्र (लोककृत्) वृत्र का वध करने वाला होगा (वृत्रहा उ) ।
(२) साथ, (३) मुकाबला (४) परस्पर मिलन

सङ्ग्राम – (१) संगमनात् वा संगरणात् वा संगतौ ग्रामौ इति वा (जहां योद्धा परस्पर संगत होते हैं या जहां शूरवीर ललकारते या स्पर्धा की ध्वनि करते हैं या इतरतेर पर विजय प्राप्त करने के लिए जहां मनुष्यों का ग्राम अर्थात् समूह जुटता है) । पृषोदरादिवत् सिद्ध ।
संगम-संग्राम इसमें योद्धा एकत्रित होते हैं ।
अथवा-सम् + गृ (शब्द करना) से संग्राम हुआ । संग्राम में कोलाहल होता है, अथवा 'संगत ग्राम' = संग्राम – इसमें दो ग्राम –दो देश या दो दल एकत्रित होते हैं ।

सग्धिः – (१) सहजग्धि – सग्धि । पुत्र पौत्रों के साथ भोजन ।
'इसमूर्जमन्या वक्षत्सग्धि समीतमन्या'
वाज.सं. २८.१६; मै.सं. ४.१३.८;२१०.४; का.सं. १९.१३;, तै.ब्रा. २.६.१०.३; ३.६.१३.१; नि.९.४.३
अन्न का निष्पादन करने वाली देवियाँ द्यौ और पृथिवी हैं (ऊर्जाहुती देव्यौ) । उन दोनों में एक (अन्या) अन्न रस तथा क्षीर आदि लाती है (अन्याइषम् ऊर्जम् आवक्षत्) और एक पुत्र पौत्रों के साथ भोजन (सग्धिम्) और बन्धु वर्गों के साथ दुग्धादि का पान लाती है (सपीतिम्).....।
(२) सहभोज, एक साथ मिल कर भोजन करना
सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे
वाज.सं. १८.९; तै.सं. ४.७.४.१; मै.सं. २.११.४:१४१.१७; का.सं. १८.९

स्वग्निः (स्वग्नयः) – (१) उत्तम गुणों से युक्त अग्नि को धारण करने वाली सूर्य की किरणें, (२) उत्तम अग्नि से युक्त पृथिवी आदि दिव्य पदार्थ वरण करने योग्य श्रेष्ठजन, (३) प्रतापी राजा स्वरूप अग्नि या नेताओं से युक्त विजिगीषु वीर पुरुष
स्वग्नयो हि वार्यं
देवासो दधिरे च नः
स्वग्नयो मनामहे ।
ऋ. १.२६.८

संगच्छमाने – द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी का विशेषण, (२) एक दूसरे से सदा मिली हुई
संगच्छमाने युवती समन्ते
ऋ. १.१८५.५

संगथ – (१) संग्राम
भवा वाजस्य संगथे
ऋ. १.९१.१६; ९,३१,४; वाज.सं. १२.११२; तै.सं. ३.२.५.३;४.२.७.४; मै.सं. २.७.१४:९६.७; का.सं. १६.१४; पंच.ब्रा. १.५.८;श.ब्रा. ७.३.१.४६; कौ.सू. ६८.१०
हे सोम, ऐश्वर्य और अन्नादि की प्राप्ति में (वाजस्य संगथे) सहायक हो (भव) ।
आ ये वामस्य संगथे रयीणाम्
ऋ. २.३८.१०; मै.सं. ४.१४.६: २२४.३; तै.ब्रा. २.८.६.३
(४) संगम
सगथे च नदीनाम्
ऋ. ८.६.२८; साम. १.१४३; वाज.सं. २६.१५

संगम – (१) एकत्र होने का अवसर (२) यज्ञ आदि
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति संगमे
ऋ. १०.१०७.४; अ.१८.४.२९
(३) दो वस्तुओं के मिलने का स्थान ।
इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति
ऋ. १०.१२३.१
इस वेन नामक मध्यम स्थानीय देव अर्थात् विद्युत् को (इमम्) अन्तरिक्ष, जलों तथा सूर्य के संगम स्थान में (अपां सूर्यस्य संगमे) मेधावी विप्र प्रज्ञापूर्ण स्तुतियों से (मतिभिः) शिशु के सदृश स्तुति करते हैं (शिशुं न रिहन्ति) ।

(३) अन्तरिक्ष । यहीं पर अप् तथा सूर्य का समागम स्थान है ।
(४) संग्राम
त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे
ऋ. १०.३८.३

संगमनः – (१) सब को एक साथ मिलाने वाला
रायो बुध्नः संगमनो वसूनाम्
ऋ. १.९६.६; १०.१३९.३
जो समस्त ऐश्वर्यों का आश्रय, समस्त वास करने वाले जीवों और राष्ट्रवासियों को एक साथ मिलाने वाला है ।
(२) सम्यक् प्रकार से पहुंचाने वाला (३) यम का विशेषण ।
यम प्राणियों को अपने कर्मानुसार स्वर्ग नरक पहुंचाता है ।
वैवस्वतं संगमनं जनानाम्
ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९; 3.13; मै.सं. ४.१४.१६: २४३.७: तै.आ. ६.१.१; नि. १०.२०.

संगमनी – स्त्री. । (१) प्राप्त कराने वाली
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्
ऋ. १०.१२५.३; अ. ४.३०.२

संगर – (१) प्रतिज्ञा ।
यद्रणं संगरो देवतासु
अ. ६.११९.२

संगव – (१) संगच्छन्ति गावो यस्मिन् सायंकाले (गौवों का दोहन काल) (२) किरणों के प्राप्त होने का सायं काल
उता यातं संगवे प्रातरह्नः
ऋ. ५.७६.३
(३) मध्याह्न और प्रातः काल के बीच का सूर्य
संगवः प्र स्तौति
अ. ९.६ (५) ४

संग्रहणी – द्वि.व. । विशेषण ।
उत्तम रीति से धारण किए हुए
संग्रहणी बभूवथुः
अ. १९.५८.३

संग्रहीता – कर आदि का संग्रह करने वाला तहसीलदार
संग्रहीतृभ्यश्च वो नमः
वाज.सं. १६.२६; तै.सं. ४.५.४.२; मै.सं. २.९.४: 12४.२; का.सं. १७.१३

स्वङ्गा – सु + अंगा । उत्तम (अंगों वाले) स्त्री पुरुष वर्ग (२) घोड़े
हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा
ऋ. ३.४३.४

संगीः – उत्तम वाणी, आज्ञा, प्रतिज्ञा
सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम्
ऋ. ९.८६.१६; अ. १८.४.६०; साम. १.५५७; २.५०२

स्वंगुरा – सुन्दर अंगुलियों वाली
किं सुबाहो स्वङ्गुरे
ऋ. १०.८६.८; अ. २०.१२६.८

स्वंगुरी – सु + अंगुरीः ।
(१) सुन्दर अङ्गुलियों वाला (२) सुन्दर साधनों वाला (३) उत्तम प्रकाश वान् किरणों से संयुक्त सूर्य, (४) कुशल शिल्पी
यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वंगुरिः
ऋ. ४.५४.४
(५) सुन्दर अंगों वाला (६) अवयव अवयव में दीप्तिवाली प्रकृति ।
या सुबाहुः स्वंगुरिः
ऋ. २.३२.७; अ. ७.४६.२; का.सं. १३.१६

संगृ – प्रतिज्ञा करना
अदास्यन्नग्न उत संगृणामि
अ. ६.११९.१

संगृभ्णाः – संगृह्णासि, परस्परम् अधरोत्तर भावेन संयोजितं करोषि (तू संग्रह या संगृहीत करता है) ।
संग्रह किया, धारण किया ।
यत् संगृभ्णा मघवन् काशिरित् ते
ऋ. ३.३०.५; नि. ६.१; ७.६
हे मघवन् जो तू ने द्यौ तथा पृथ्वी को धारण किया है यह स्पष्ट ही तेरी मुट्ठी की महानता का द्योतक है ।

संगृभीता – संग्रह करने वाला
स दक्षिणे संगृभीता कृतानि
ऋ. १.१००.९
वह दाहिने हाथ से युद्ध में प्राप्त ऐश्वर्यों को अच्छी प्रकार संग्रह करने वाला हो ।

संघात – शत्रु-समूह
त्वया वयं संघातं संघातं जेष्म
वाज.सं. १.१६; मै.सं. १.१.६:३.१४; ४:१.६: ८.१३; श.ब्रा. १.१.४.१८

संचरेण्य – सम् + चर + एण्य = संचरेण्य । अभिसंचारी अभितः संचरणशील ।

संचिकित्वान् – (१) सम्यक् प्रकार से द्युलोक एवं अन्तरिक्ष को जानने वाला–अग्नि–सा. । सर्वज्ञ परमात्मा–दया.
उभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान्
ऋ. ४.७.८
अग्नि, तू द्यौ और पृथिवी तथा अन्तरिक्ष का सम्यक् ज्ञाता है–सा. । हे परमात्मा, तू द्यौ और पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष का ज्ञाता है अतः सर्वज्ञ है–दया.।

संजग्मानः – (१) संगमन करता हुआ, साथ साथ चलता हुआ (२) संगत
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे
संजग्मानो अबिभ्युषा
मन्दू समानवर्चसाः
ऋ. १.६.७; अ.२०.४०.१; ७०.३; साम. २.२००; नि. ४.१२

संजभार – उपसंहरति (उप संहरण करता है) खींच लेता है । यहां पर लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग हुआ है ।
(२) खींच लिया ।
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.१; तै.ब्रा. २.८.७.१; नि. ४.११
सूर्य ने किए जाते हुए कर्मों के मध्य में अपने विस्तृत रश्मि जात को खींच लिया ।

संजय – जय लाभ करने में समर्थ
ओजस्वान् संजयो मणिः
अ. ८.५.१६

संजययामि – एक ही साथ सम्यक् प्रकार से जीतता हूं ।
अहं धनानि सं जयामिशश्वतः
ऋ १०.४८.१; ऐ.ब्रा. ५.२१.६
मैं इन्द्र शत्रुओं के प्रचुर धनों को (शश्वतः धनानि) एक ही साथ सम्यक् प्रकार से जीतता हूं (सं जयामि) ।

संजानानः – (१) अच्छी प्रकार जानने वाला ।
(२) सम्यक् ज्ञान से सम्पन्न
संजानानाः संमनसः सयोनयः
अ. ७.१९.१

संजग्मानः – संगति लाभ करता हुआ
संजग्मानो अबिभ्युषा
ऋ. १.६.७; अ. २०.४०.१; ७०.३; साम. २.२००; नि. ४.१२.

संजामाना – परस्पर प्रेमभाव से संत्संग करने वाली –प्रजा

संज्ञान – मेल मिलाप, उत्तम सम्मति, एकमति
संज्ञानं नः स्वेभिः
अ. ७.५२..१

संज्ञानम् – (१) जीवों का सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करना
संज्ञानं यत् परायणम्
ऋ. १०.१९.४
(२) समस्त प्रजा को ज्ञान देने वाला ।
संज्ञानमसि कामधरणम्
वाज.सं. १२.४६; तै.सं. ४.२.४.१; मै.सं. २..७.११: ८९.६; का.सं. १६.११; श.ब्रा. ७.१.१.८; तै.ब्रा. १.२.१.१७
(३) सम्यक् सत्य यथार्थ ज्ञान
संज्ञानमस्तु मेऽमुना
वाज.सं. २६.१; वाज.सं. (का.) २८.२
(४) ज्ञान की अच्छी प्रकार से प्राप्ति, (५) भली प्रकार काम चेष्टा को जगाना –दया.
संज्ञानाय स्मर कारीम्
वाज.सं. ३०.९; तै.ब्रा. ३.४.१.६

संजिगीवान् – अच्छी प्रकार विजय करने वाला
पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान्
ऋ. ३.१५.४

संजितः – विजय करने वाला
इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम्
ऋ. ५.४२.५

संजीव – भली प्रकार जीवनप्रद जीवन को और भी अधिक बढ़ाने में समर्थ
संजीवास्थ सं जीव्यासम्
अ. १९.६९.१

सच – सेवा करना, रखना, सचना सींचना
अग्निं सचन्ता विद्युतो न शुक्राः
ऋ. ३.१.१४

सचः – (१) आश्रित
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचां
ऋ. १०.२३.४; अ. २०.७३.५

(२) मनुष्यों का संघ
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ
अन्यैरेनान् कन्यानामभिः स्परत्
ऋ. १.१६.१.५
अन्य अन्य प्रकार के शत्रुपक्षों को दबाने के साधनों को भी (अन्या नामानि) करते हैं (कृण्वते) और प्रजापालक राजा की शक्ति या उत्तम राज्य व्यवस्थापक सभा (कन्या) नाना वश करने के उपायों से (नाना नामभिः) इन संघ बनाकर मिले हुए मनुष्यों को (सचान्) पाले पोसें, प्रसन्न करें और आगे बढ़ावें (स्मरंत्) ।

संचक्ष् – (१) अच्छी प्रकार उपदेश करना, अच्छी प्रकार देखना । ज्ञान करना, सम् + चक्ष् + क्विप्
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै
ऋ. १.१२७.११
हे बलवानों में सबसे अधिक बलवान् (शविष्ठ), तू अच्छी प्रकार से उपदेश करने, देखने, और ज्ञान करने के लिए (संचक्षे) इस प्रजा को (अस्यै) पालन और भोग करने के लिए हमें...

सचत – सेवध्वम् (सेवन करो) । 'सच्' धातु सेवन या सेचन अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

सचंते – सेवा करता है । 'सच' धातु सेवा करना या सेचना अर्थ में प्रयुक्त है ।

सचथ – सं. । अर्थ – (१) सेवा –ज.दे.श. (२) प्राप्त सम्बन्ध – दया. । जिससे सम्बन्ध हो गया हो ।
आ यो विवाय सचथाय दैव्यः
ऋ. १.१५६.५

सचन – (१) परस्पर आश्रित, (२) एक दूसरे के सब अंगों से पूर्ण पतिपत्नी, (३) सर्वैः सेनाङ्गै रथाङ्गैः समवेतः

सचथ्य – सचथे भवः– दया. । समवाय का उत्तम नेता
सचेमहि सचथ्यैः
ऋ. ५.५०.२

सचनस्यमाना – सम्पर्क में रखना चाहती हुई
माता बिभर्ति सचनस्यमाना
ऋ. १०.४.३

सचनाः – (१) चनसा अन्नादिसमृद्धिसंहितः (चना, अन्न आदि समृद्धि से युक्त)
अग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना
महोरायः सुचेतुना
ऋ. १.१२७.११
(२) सच् + ल्युट् + टाप् = सचना । अर्थ –आसक्ति, प्रेम ।

सचनावान् – सचना + वतुप् ।
आसक्ति और प्रेम से युक्त स्त्री पुरुष या गृहस्थ रूपी रथ
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे
ऋ. ८.२२.२

सचन्ताम् – सेवन्ताम् (सेवन करें) ।

सचन्ते – (१) प्राप्त करते हैं । 'सच्' धातु का 'प्राप्त करना' अर्थ में भी प्रयोग हुआ है ।
हविर्भिरेके स्वरितः सचन्ते
ऋ.खि. १०.१०६.१; नि. १.११
कुछ इस भूलोक से हवि आदि द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं ।
(२) सेवन्ते (सेवा करते हैं) 'सच धातु सेवार्थक भी है । हिन्दी में 'सचना' किसी वस्तु को यत्नपूर्वक रखने का नाम है ।
यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते
ऋ. १.५९.६; नि. ७.२३
जिस वैश्वानर अग्नि या विद्युत् को वर्षा चाहने वाले सेवते हैं ।

सचमानः – सुसम्बद्ध
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टाः
ऋ. ५.४२.८

सचस्व – (१) कार्यकर ।
सचस्व नः स्वस्तये
ऋ. १.१.९; वाज.सं. ३.२४; तै.सं. १.५.६.२; मै.सं. १.५.३: ६९.८; का.सं. ७.१.८; श.ब्रा. २.३.४.३०; तै.आ. ६.१२.१; नि. ३.२१.
(२) सेवस्व (सेवा कर) ।

सच्छन्दा – (१) छन्द, गति और क्रिया वाली वाणी
(२) विशेष साधननिष्ट
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः
वाज.सं. २३.३४

सचा – साथ ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा

ऋ. ८.९२.२९; अ. २०.६०.२; साम. २.१७५
यदिन्निन्द्रं वृषणं सचा सुते
सखायं कृणवामहै
ऋ. ८.६१.११
जिस कारण से यहां हम मनोरथ पूर्ण करने वाले तथा वर्षा बिरसाने वाले इन्द्र को सोमरस तैयार होने पर इस रस के साथ सखा बनाते हैं ।

सचानः – मिलता हुआ ।
हन्नृजीविन् विष्णुना सचानः
ऋ. ६.२०.२

सचाभुवा – (१) सदा एक दूसरे के साथ रहने वाले अश्विद्वय–स्त्री पुरुष ।
सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा
ऋ. १.३४.११; १५७.४; वाज.सं. ३४.४७
(२) द्वि.व. । 'सचाभूः' का द्वि.वचन 'सचाभुवा' है । अर्थ है–साथ साथ उत्पन्न (३) द्यावापृथिवी का विशेषण, (४) अनुकूल दिन का विशेषण ज.दे.श. ।

सचाभूः – (१) परस्पर साथमिल कर उत्पन्न होने वाला, (२) अन्तरात्मा के साथ सदा अनुभूत होने वाला नित्य सुखरूप, (३) सदा साथ विद्यमान रहने वाला ।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवम्
ऋ. १.१३१.३; अ. २०.७२.२; ७५.१
(४) समवाय बनाकर रहने वाला
आ विष्णोः सचाभुवः
ऋ. ८.३१.१०

सचावहै – सेवावहै (हम दोनों सेवा करते हैं) । 'सच्' (सेवानार्थक धातु) के लृट् उत्तम पुरुष द्वि.व. का रूप ।

सचिविद् – साथी को पहचानने वाला मित्र
यस्तित्याज सचिविदं सखायम्
ऋ. १०.७१.६; ऐ.आ. ३.२.४.३; तै.आ. १.३.१; २.१५.१.

सचेतसा द्यावापृथिवी – (१) समान चित्त वाले द्यौ और पृथिवी (२) समान चित्त वाले शास्य और शासक वर्ग
तमस्य द्यावा पृथिवी सचेतसा
विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावतम्
ऋ. १०.११३.१; ऐ.ब्रा. ५.१८.१६; कौ.ब्रा. २६.१२

सचेताः – (१) ज्ञानवान्, (२) तत् समान चित्त वाला
सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति
ऋ. ८.५८.१

मचेते – सन्तुष्ट करते हैं ।
'सचेते अनह्वाम्'
ऋ. २.४१.६; साम. २.२६२
दोनों जल बरसाने वाले अदिति के पुत्र अकुटिल यजमान को दान से तृप्त करते हैं ।

संजया – उत्तम जय करने वाली
उताहमस्मि संजया
ऋ. १०.१५९.३; आप.मं.पा. १.१६.३

संजुर्भुराणः – पालन करता हुआ
संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभम्
ऋ. ५.४४.५

स्वज – स्व + ज । स्वतः उत्पन्न, स्वयम्भू, (२) स्वयं अपने अमित सामर्थ्य से बना
उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये
स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै
अ. १२.३.५८
(३) सूर्य की एक जाति
उभयोः स्वजस्य च
अ. १०.४.१०
स्वज इवाभिष्ठितो दश
अ. ५.१४.१०
पुनः स्वम्भू के अर्थ में–
स्वजो रक्षिता
अ. ३.२७.४; मै.सं. २.१३.२१; १६७.३; आप.मं.पा. २.१७.१६

सजात – (१) एक वंश, पद, समाज या कुल में उत्पन्न (२) अपने गोत्र का (३) समान बलवान
सजातो यश्च निष्ट्यः
अ. ३.३.६

सजातवनिः – सजात अर्थात् अपने समान वीर्यवान् पुरुषों को वृत्ति देने वाला ।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि
संजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय
वाज.सं. १.१७

सजात्यम् – (१) समान + जाति + ष्यञ् = सजात्य । अर्थ–समान जाति का होना
आस्ति हि वः सजात्यं रिशादसः
ऋ. ८.२७.१०; नि. ६.१४
आप लोगों की समान जाति है ।

(२) पुत्र के समान
युष्ये इद् वो ष्मसि सजात्ये
ऋ. ८.१८.१९

स्वजा – (१) अपने ही से उत्पन्न या प्रकट होने वाली, उषा, (२) अपने सामर्थ्य से प्रकट होने वाली, अपने प्रभु को स्वयं चुनने वाली प्रजा
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्राम्
ऋ. १.१२१.२
महान् शक्तिवाला सूर्य (महिषः) जिस प्रकार अपने ही से उत्पन्न या प्रकट होने वाली वरण करने योग्य कन्या के समान (व्राम्) उषा को (स्वजाम्) प्रकाशित करता है। और उसके बाद स्वयं भी प्रकाशित होता है (अनुचक्षत)। इसी प्रकार पृथ्वी के विशाल राज्य का भोक्ता नृपति भी अपने सामर्थ्य या प्रभुत्व से प्रकट होने वाला अपने प्रभु को स्वयं चुनने वाली प्रजा को अपने अनुकूल देखें (अनुचक्षत)।
(३) पु.,ब.व.। मरुतों का विशेषण, स्वयं बल, ऐश्वर्य और आत्मसामर्थ्य से संसार में प्रकट एवं प्रसिद्ध मरुत् या सैनिक।
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवसः
ऋ. १.१६८.२

सजित्वरी – (१) एकत्र ही रोगों को जीतने वाली औषधि।
अश्वर इव सजित्वरीः
वीरुधः पारयिष्णवः
ऋ. १०.९७.३;
हे ओषधियो, उत्तम सैनिकों के साथ हो घोड़ियों के सदृश तुम एकत्र हो रोगों को जीतने वाली तथा पुरुषों को रोगों से पार लगाने वाली हो।
(२) जीतने वाली

सजित्वा-(सजित्वन्) – (१) समस्त शत्रुओं को जीतने वाला
सजित्वानं सदासहम्
ऋ. १.८.१; अ. २०.७०.१७; साम. १.१२९; तै.सं. ३.४.११.३; मै. सं. ४.१२.३:१८४.१३; का.सं. ८.१७; तै.ब्रा. ३.५.७.४.

सजित्वान् – जि + क्वनिप् = जित्वान्। सदा शत्रुओं पर विजय करने वाला।

सजित्वाना – द्वि.व.। (१) समान रूप से जितेन्द्रिय-इन्द्राग्नी (२) विजयशील वीरों से युक्त।
सजित्वाना पराजिता
ऋ. ३.१२.४; साम. २.१०५२
(३) प्राण, अपान, (४) आत्मा और अन्तःकरण, (५) परमात्मा और जीवात्मा, (६) राजा और सेनापति, (७) गुरु और शिष्य

सजूः – (१) जीवमात्र की सहायक समान रूप से सबको प्रेरणा देने वाली ईश्वरीय शक्ति।
सजूर्नाव स्ववशसं सचायोः
ऋ. १०.१०५.९
(२) सहजोषणा, सहजुषमाणः (साथ आनन्द लेता हुआ) (३) प्रसन्नता पूर्वक।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैः
दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून्
ऋ. ६.४७.२९; अ. ६.१२६.१; वाज.सं. २९.५५; तै.सं. ४.६.६.६; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१३
हे दुन्दुभि, इन्द्र तथा देवों के साथ प्रसन्नतापूर्वक दूर से दूर शत्रुओं को भगा दे।
(४) संयुक्त।
(५) साथ में प्रीतिपूर्वक रहने वाला
सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः
वाज.सं. १४.७; तै.सं. ४.३.४.३; मै.सं. २.८.१:१०७.९; १०,११,१२; का.सं. १७.१; श.ब्रा. ८.२.२.८; आश्व.गृ.सू. २.२.४; कौ.सू. ७४.१५.

स्वजेन्य – स्वयं उत्पन्न किया गया, स्व बाहुबल से विजित
अभीमह स्वजेन्यम्
भूमा पृष्ठेव रुरुहुः
ऋ. ५.७.५

सजोषसः, सजोषस् – सहप्रीयमाणः, समान प्रीतिः सजोषा (समान प्रेम रखने वाला)। बहुवचन में 'सजोषसः' रूप है। अर्थ समान प्रेम रखने वाले मरुद्गण –सा.।(२) सबके साथ मित्रवत् रहने वाले मनुष्य – दया.।
अधं स्मा नो अरमतिं सजोषसः
चक्षुरिव यन्त मनु नेषथा सुगम्
ऋ. ५.५४.६
और हे हममें समान स्नेह रखने वाले मरुत् (सजोषसः), आप इस लोक से उस लोक में जाते हुए (यन्तम्) पर्याप्त मति यजमान को (अरमतिम्) शोभनमार्ग बताओ (सुगम्

अनुनेषथाः) जैसे आंखें राह बतलाने में अनुग्रह करती हैं (चक्षुःइव)-सा. ।
अन्य अर्थ-और हे मनुष्यो, वेदाध्ययन के बाद, सबके मित्र बनें (सजोषसः) विद्या के लिए प्राप्त हुए हमारे उद्योगी पुत्रों को (यन्तम् अरमतिम्) चक्षु के समान सुमार्गदर्शक ज्ञान बताइए । -दया.

सञ्चर - (१) भृत्य, अनुचर
उक्ताः संचराः
वाज.सं. २४.१५;१७,१९

संचरण - (१) चलना, समान पद पर आचरण करना (२) साथ मिलकर धर्मानुष्ठान करना (३) भ्रमण, यात्रा, परदेश गमन
समुद्रं न संचरने सनिष्यवः
ऋ. १.५६.२; ऋ. ४.५५.६
जैसे उत्तम रीति से भोगने योग्य ऐश्वर्य को चाहने वाले धनाभिलाषी जन (सनिष्यवः) परदेश में जाने के लिए (संचरणे) समुद्र का आश्रय लेते हैं (समुद्रं न) ।

सञ्चरणी - (१) अच्छी प्रकार चलने योग्य मार्ग, (२) सुख से खाने योग्य
गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः
ऋ. ६.२४.४

स्वञ्चाः - (१) उत्तम रीति से पूजनीय
आजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वाञ्चाः
ऋ. ५.३७.१; नि. ५.७
(२) सु + अञ्च् + असुन् = सु अञ्चनः । अर्थ है-
सुगमन, सुन्दर गमन वाला । 'अञ्च्' धातु गमनार्थक है । (३) भली प्रकार ले जाने वाला

सञ्चरेण्यम् - संचारि, संचरणः शील, संचरण करने वाली । अभि + सम् + चर + एण्य = अभिसंचरेण्य ।

सञ्जित - विजय प्राप्त करने वाला पुरुष
ध्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम्
ऋ. ३.३०.२२;अ. २०.११.११;साम. १.३२९;का.सं. २१.१४; तै. ब्रा. २.४.४.३

सञ्चृत - (१) प्रकाश से युक्त, (२) बद्ध जीव
कृण्वन् त्सञ्चृतं विचृतमभिष्टये
ऋ. ९.८४.२

स्पट् - 'स्पश्' के प्र पु.ए.व. का रूप । अर्थ-(१) प्रकाशित करता हुआ
विश्वा इदुम्राः स्पडुदेति सूर्यः
ऋ. १०.३५.८
(२) सर्वद्रष्टा, सर्वाध्यक्ष
प्र वः स्पडक्रन् त्सुविताय
ऋ. ५.५९.१; कौ.ब्रा. २१.३
इन्द्रः स्पडुत वृत्रहा
ऋ. ८.९१.१५

सत् - (१) बलवान् पुरुष, (२) पदार्थ
सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूः
ऋ. ३.३१.८
(३) जो है, वर्तमान है, वह सत् है ।
असतः सदजायत
ऋ. १०.७२.३
(४) सन्त
नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा
ऋ. १०.६७.१०; अ. २०.९१.१०; मै.सं. ४.१२.१: १७.८.२
(५) दान करने वाला
अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते
ऋ. १०.११५.६
(६) व्यक्त संसार, (७) निरन्तर एक रस रहने वाला विद्यमान सत्
(८) व्यक्त महत् तत्व
असति सत् प्रतिष्ठितम्
अ. १७.१.१९
(९) राज्य की सदाचार व्यवस्था ।
सदुत्तरेण
वाज.सं. २५.२; तै.सं. ५.७.१२.१; मै.सं. ३.१५.२: १७८.३; का.शं.(अश्व.) १३.२
(१०) संसद् राजसभा
मुखं सदस्य शिर इत् सतेन
वाज.सं. १९.८८; मै.सं. ३.११.९; १५४.२; का.सं. ३८.३; तै. ब्रा. २.६.४.४

सत - (१) बेंत का बना पात्र, (२) संभाग करना, न्यायपूर्वक सब को उचित भाग देना ।
सतेन द्रोणकलशम्
वाज.सं. १९.२७
(३) तिरः सतः इति प्राप्तस्य
तिरः तीर्णः भवति । सतः संसृतं भवति ।
(अर्थात् तिर और सत् प्राप्त अर्थ के वाचक

हैं) ।
'तिर' का अर्थ तीर्ण' और 'सत' का अर्थ 'संसृत' है । जो एक होकर चलता है वह संसृत है ।
सम् + सृ + क्त = संसृत ।
अर्थ-प्राप्तात् दूरात् प्रदेशात् (दूर प्रदेश से) ।

सतः असतश्च योनिः - (१) व्यक्त जगत् और अव्यक्त मूलकारण का आश्रय स्थान आकाश, (२) सत् और असत् का आश्रय सामान्य प्रजा
सतश्च योनिमसतश्च वि वः
अ. ४.१.१;५.६.१ साम. १.३२१; वाज.सं. १३.३; तै.सं. ४.२.८.२; मै.सं. २.७.१५;९६.१२; का.सं. १६.१५, ३८.१४; श.ब्रा. ७.४.१.१४; तै.ब्रा. २.८.८.९; तै.आ. १०.१.१०; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३. शां.श्रौ.सू. ५.९.५

सतःराजा - (१) सत् अर्थात् व्यक्त संसार का शासक-परमेश्वर, (२) वरुण
सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा
ऋ. ७.८७.६

सत्तः - (१) आसन पर बैठा हुआ । विराजमान
सद् + क्त = सत्त ।
सत्तो होता न ऋत्वियः
ऋ. ३.४१.२; अ. २०.२३.२
स नः सत्तो मनुष्वदा
देवान् यक्षि विदुष्टरः
ऋ. १.१०५.१३
तू उच्च आसन पर विराज कर और उनके अज्ञान आदि दोनों को नष्ट करने में समर्थ और अधिक विद्वान् होकर (विदुष्टरः) मननशीलन शिष्यों और विद्वानों से युक्त होकर (मनुष्वत्) हम में से धन देने में समर्थ तथा ज्ञान के जिज्ञासु शिष्य जनों को सब प्रकार से ज्ञानों का लाभ करा ।
(२) स्थिर, गृहपति
हुवे देवानां जनिमानि सत्तः
ऋ. ७.४२.२

सत्पती - द्वि.व. । (१) सत् स्वरूप आत्मा के पालक प्राण अपान, (२) अश्विद्वय
माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती
अ. ७.७३.४; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४; शां.श्रौ.सू. ५.१०.२१.

सत्पति - (१) सज्जनों या सत् का पालक, (२) इन्द्र या परमात्मा का विशेषण ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते
ऋ. ८.६८.१; साम. १.३५४; २.११२१
हे बलवत्तम, सज्जनों के पालक इन्द्र, हम अनेकों कर्म करने वाले तथा दुःख के नाशक तेरी शरण में आते हैं ।

सत्य - (१) सत्य स्वरूप परमात्मा,
यच्चिद्धि सत्य सोमपाः
अनाशस्ता इव स्मसि ।
ऋ. १.२९१; अ. २०.७४.१
हे सत्यस्वरूप, चूंकि हम अकुशल हैं ।.....
(२) बलवान् ।
सैनं सश्चद् देवों देवं
सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः
ऋ. २.२२.१-३; अ. २०.९५.१; साम. १.४५७; २.८३६-८३८; तै.ब्रा. २.५.८.१०
(३) सत्यभाषी, (४) सज्जनों का हितैषी
सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान्
ऋ. १.१५२.२
(५) तत् यत् सस्यं त्रयी सा विद्या
श. ब्रा.
(६) सत्यं वा ऋतम्
श. ब्रा.
(७) यो वैधर्मः सत्यं वै तत् ।
सत्यं वदन्तमाहुः धर्मं वदतीति ।
श. ब्रा.
(८) एतत् खलु वै व्रतस्य सृपं यत् सत्यम् ।
श. ब्रा.
(९) एकं ह वै देवा व्रतंचरन्ति सत्यमेव
श. ब्रा.
तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन
वाज.सं. २०.१२; का.सं. ३८.४; श.ब्रा. १२.८.३.३०; तै.ब्रा. २.६.५.७.
(१०) सत् + यत् = सत्य । सच्चा, जो वस्तुतः वर्तमान है ।
(११) सत्सु तायते सत्प्रभवं भवति इति वा (जो सत् में ही विस्तारित किया जाता है या जो सत् से उत्पन्न होता है-वह सत्य है) ।
सत् का अर्थ है-'जो है ' या 'सज्जन ' । सत्य वही पदार्थ है जिसका अस्तित्व है । जो नहीं है जिसका अस्तित्व ही नहीं है वह है असत्य ।
सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य

ऋ. १०.११७.६; तै.ब्रा. २.८.८.३
(१२) सात्विक बल वीर्य
इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यम्
पुरोडाशेन सविता जजान ।
वाज.सं. १९.८५; मै.सं. ३.११.९:१५३.११; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.३

सत्यतर - (१) अधिक सत्याचरण शील (२) ईमानदार, (२) सत्य के बल से तरने वाला या सत्य के बल से दूसरों को तराने वाला ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति
ऋ. ३.४.१०
(३) सज्जनों का बहुत अधिक हितकारी-परमेश्वर, अग्नि ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्य
अग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व
ऋ. १.७६.५

सत्यतातिः - (१) सत्य + ताति । सत्य न्याय का विस्तार करने वाला ।
उभा शंसा सूदय सत्यताते
ऋ. ४.४.१४; तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५; १७४.६; का.सं. ६.११.
(२) यज्ञ को जानने वाला अग्नि ।
हे यज्ञ को जानने वाले अग्नि, तू निकट या दूर के या सामने तथा पीठ पीछे निन्दा करने वाले शत्रुओं की हत्या कर ।
(३) सत्य प्रचारक राजा-दया.
(४) यज्ञकर्ता-सा.

सत्यधर्मन (सत्यधर्मा) - (१) सत्य धर्म मे निष्ठ
वयं देवस्य धीमहि
सुमतिं सत्यधर्मणः
मै.सं. ४.१२.६: १९५.१३; शां.श्रौ.सू. ९.२८.३; शां.गृ.सू. १ .२२.७; नि. ११.११
(२) सत्य धर्म को पालन करने वाला
ऋतधीतस्य आ गत
सत्य धर्माणो अध्वरम्
ऋ. ५.५१.२
(३) सत्यधर्मों, व्रतों और नियमों का पालक
देव इव सविता सत्यधर्मा
ऋ. १०.३४.८; १३९.३; अ. १०.८.४२; वाज.सं. १२.६६; तै.सं. ४.२.५.५; मै.सं. २.७.१२:९१.८; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.१.२०

सत्यध्वृत - सत्य का विनाशक
सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम्
ऋ. १०.२७.१

सत्यगिर्वाहस् - (१) सत्य गिरा का प्रापक-दया. (२) सत्य वाणी को धारण करने वाला-परमात्मा
सत्यगिर्वाहसं भुजे
ऋ. १.१२७.८
सभी ऐश्वर्यों को भोगने और अपनी रक्षा के लिए सत्यवाणी को धारण करने वाले तुझे प्राप्त करते हैं ।

सत्यमत् - सत्य, ज्ञान और व्यक्त जगत् में रमण करने वाला इन्द्र परमेश्वर ।
यो भूत् सोमैः सत्यमद्वा
ऋ. ८.२.३७

सत्यमन्त्रः - (१) सत्य विचारों से युक्त यथार्थ विचारक
युवाना पितरा पुनः
सत्यमन्त्रा ऋजूयवः
ऋभषो विष्ट्यक्रत ।
ऋ. १.२०.४;
सत्य विचारों से युक्त ऋजु धर्ममार्ग पर चलने वाले, सत्यज्ञान प्रकाशित होने वाले तेजस्वी विद्वान् पुरुष, युवा गृहस्थ, स्वधर्म में परस्पर संगत माता पिता स्त्रीपुरुषों को एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं । (२) सत्य मननशील पुरुष, सत्यज्ञानी
सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम्
ऋ. ७.७६.४

सत्यमन्मा - (१) सत्य ज्ञान और सत्यचित्त वाला
देवो न यः सविता सत्यमन्मा
ऋ. १.७३.२; ९.९७.४८
(२) सत्य अर्थ का प्रकाशक सत्य, (३) यथार्थ ज्ञान का दाता (४) सज्जनों का हित चिन्तक

सत्ययज् - सज्जनों के उचित सत्य आचार एवं सत्य न्याय को देने वाला आचार्य -प्रभु
होतारं सत्ययजं रोदस्योः
उत्तानहस्तो नमसा विवासेत्
ऋ. ६.१६.४६

सत्ययोनिः - (१) मेघ का उत्पादक सूर्य (२) सत्य न्याय का आश्रय राजा

भुवः सम्राडिन्द्रः सत्ययोनिः
ऋ. ४.१९.२

सत्यराध – (१) सत्य ऐश्वर्य युक्त, (२) सत्य आराधना से युक्त
त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः
ऋ. १.१०१.८

सत्यराधाः(सत्यराधस्) – सत्यरूपी धन का स्वामी
इन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः
ऋ. १०.२९.७; अ. २०.९६.७
(२) सत्यन्यायरूप धन का धनी इन्द्र ।
स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः
ऋ. ४.२४.२
(३) सत्य पदार्थों में विद्यमान प्रकृति ।
(४) सत्य ज्ञान वेद का धनी, (५) प्रकृति और वेद को वश करने वाला भाग परमेश्वर ।
भग प्रणेतर्भग सत्यराधः
ऋ. ७.४१.३; अ. ३.१६.३; वाज.सं. ३४.३६; तै.ब्रा. २.५.५.२; ४ .९.८; आप.मं.पा. १.१४.३;

सत्यवाक् – (१) सत्यवक्ता, (२) सत्यवेद वाणी का ज्ञाता
तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम्
ऋ. १.१२६.९

सत्यशवसः – सत्यज्ञान और नित्य बल से युक्त
शशमानस्य वा नरः
स्वेदस्य सत्यशवसः ।
विदा कामस्य वेनतः ।
ऋ. १.८६.८; साम. २.९४४
हे नायकपुरुषो, हे सत्य ज्ञान और नित्य बल से युक्त पुरुषो, पसीना बहाने वाले परिश्रमी सत्य हीन का उपदेश करने वाले, नाना उत्तम कामना करने वाले पुरुष के उत्तम संकल्प को जानें ।

सत्यश्रवसी – सात्विक अन्न और सात्विक सत्य ज्ञान और यश से युक्त उषा ।
सत्य श्रवसि वाय्ये
सुजाते अश्वसूनृते
ऋ. ५.७९.१; साम. १.४२१; २.१०९०–१०९२

सत्यशुष्म – (१) सत्य और न्याय के बल से बलवान्, सच्चा बलवान् ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मः
ऋ. ३.३०.२१; वाज.सं. (का.) २८.१४
(२) सत्य स्वरूप बल वाला
प्र त्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्मम्
ऋ. १०.४४.३; अ. २०.९४.३
(३) अश्विनर बल वाला
सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि
ऋ. १.१५.१५
सत्य बल वाले, सज्जनों के हितकारी बल वाले परमेश्वर के लिए यह नमस्कार कहा जाता है ।
(४) सत्य के बल से युक्त
सत्य शुष्माय तवसे मतिं भरे
ऋ. १.५७.१; अ. २०.१५.१
(५) सत्य और न्याय ही जिस का बल है वह राजा ।
सत्य शुष्माय सुनवाम सोमम्
ऋ. १.१०३.६

सत्यसत्वा, सत्यसत्वन् – (१) सत्य पालक बलवान् पुरुषों का स्वामी (२) सत्य अन्तःकरण और बल वाला
स सत्यसत्वन् महते रणाय
ऋ. ६.३१.५

सत्यसव – (१) सत्य की आज्ञा देने वाला
(२) सत्यभाषी । (३) सत्यैश्वर्ययुक्त
सत्यसवं संवितारम्
ऋ. ५.८२.७; तै.सं. ३.४.११.२; मै.सं. ४.१२.६; १९६.१५
ये सवितु सत्यसवस्य विश्वे
ऋ. १०.३६.१३; मै.सं. ४.१४४.११:२३२.८; तै.ब्रां. २.८.६.४
(४) जिसकी आज्ञा सत्य हो–सविता, परमेश्वर
(५) जिसकी सृष्टि सत्य हो
अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः क विक्रतुम्
अ. ७.१४.१; साम. १.४६४; वाज.सं. ४.२५; मै.सं. १.२.५:१४.४; का.सं. २.६; कौ.ब्रा. २३.८; २७.२; श.ब्रा. ३.३.२.१२; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.७

सत्यसवाः – (१) सत्य को उत्पन्न करने वाली वाणी
तस्यास्ते सत्य सवसः प्रसवे
तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा
वाज.सं. ४.१८; मै.सं. १.२.४:१३.२; ३.७.५; ८१.१०; का.सं. २.५; २४.३; श.ब्रा. ३.२.४.१२

(२) सत्य आज्ञा वालला
देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवस
इन्द्रस्योत्तमं नाकं रुहेयम्
वाज.सं. ९.१०; श.ब्रा. ५.१.५.३

सत्यस्यसूनुः – सत्य का प्रेरक, उत्पादक या उपदेशक इन्द्र, परमेश्वर
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्
ऋ. ८.६९.४; अ. २०.२२.४; ९२.१; साम. १.१६८; २.८३९

सत्र, सत्रा – (१) उपासकों की रक्षा करने वाला यज्ञ, (२) ज्ञान यज्ञ ।
सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानाः
अ. १७.१.१४
(३) नित्य, सत्यार्थ प्रतिपादक
सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा
ऋ. १.७२.१; तै.सं. २.२.१२.२
जो अग्रणी या अग्नि समस्त जलों के समान जीवनप्रद अन्नों के समान सुखप्रद अमृत ज्ञानों को (विश्वा अमृतानि) और नित्य सत्यार्थ प्रतिपादक वेद मन्त्रों को अपने आत्मा में प्रकाशित करता हुआ सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का ईश्वर बनता है ।
(४) सत्य, वट्, श्रत, सत्रा आदि निपातन से सिद्ध सत्य के पर्यायवाची हैं ।
'सतां त्राणं यत्र तत् सत्रम्'
(यहां सज्जनों या सत् का त्राण रक्षा हो वह सत्र है) ।
(५) सतत, सदा-सा.
(६) सत्यज्ञान -सत्य -दया.
इन दिनों इसका प्रयोग वर्ष के अर्थ में भी किया जाता है ।
(७) जीवन, (८), यन्त्र,
तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ
वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७
आदित्य के अस्त हो जाने पर या जीव के सो जाने पर अन्न दान करने वाले या शरीर में रहने वाला सदा क्रिया शील वायु और आदित्य या प्राज्ञ आत्मा और तैजस प्राण जागते हैं या अन्न पचाते हैं ।
सत्र का आधुनिक अर्थ-(१) वह यज्ञ जो १३ से १०० दिनों तक होता रहे । यज्ञ,दान, पुण्य, घंर, धन, जंगल, तालाब, शरणार्थियों के रहने का स्थान ।

सत्ररुट् – परस्पर की रक्षा करने वाले संघों में सर्वोपरि विराजमान
सत्राडस्यभिमातिहा
वाज.सं. ५.२४; श.ब्रा. ३.५.४.१५

सत्रसद् – सत्र अर्थात् यज्ञ या सभा में बैठने वाला
तान् वौ अस्मै सत्रसदः कृणोमि
अ. १.३०.४

सत्रसद्य – एक प्रकार का यज्ञ
यावत् सत्रसद्येनेष्टा
अ. ९.६(४).६

सत्रसदौ – सत्तां त्राणम् सत्रम् तत्र सद् कृतावस्थानः जीवितदाता । (द्वि.व.) । सत्र + सद् + क्विप् = सत्रसद् । द्विवचन में सत्रसदौ ।
अर्थ-(१) जीवन दान देने वाले, (२) यज्ञ में रहने वाले वायु और आदित्य नामक देव
(३) आत्मा और तैजस प्राण
समापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्रजागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ।
वाज.सं. ३४.५५. नि. १२.३७
सूर्य के अस्त हो जाने या जीव के सो जाने पर जीवन दान देने वाले या यज्ञ में रहने वाले वायु और आदित्य या प्राज्ञ आत्मा और तैजस प्राण जागते या अन्न पचाते रहते हैं ।
(४) आदित्य मण्डल में स्थित अधिष्ठाता पुरुष, (४) चिन्मात्र में स्थित प्राज्ञ आत्मा (६) तैजस प्राण वायु- दुर्ग (७) सदा साथ रहने वाले-प्राण अपान वायु

सत्रस्य ऋद्धिः – परस्पर एकत्र हुए, राजा प्रजा जनों का समृद्धि रूप राजा
सत्रस्य ऋद्धिरसि
वाज.सं. ८.५२

सत्ता – सद् + तृच् । (१) बैठने वाला, (२) विराजने वाला
सत्ता नि योना कलशेषु सीदति
ऋ. ९.८६.६; साम. २.२३७
(३) विद्यमानता, अस्तित्व
द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः
ऋ. ३.१७.५; नि. ५.३
जिसका अस्तित्व दो रूप में है- अन्तरिक्ष में

विदयुत् रूप में और द्युलोक में सूर्य रूप में और जो सोम या अन्न से (स्वधया) सभी जीवों का कल्याणकारी है (शम्भुः)-सा. ।
जिस परमेश्वर की सत्ता सभी के भीतर और बाहर दोनों प्रकार से है (द्विता च सत्ता) तथा जो पृथ्वी द्वारा (स्वधया) सुख पहुंचाने वाला है (शम्भुः) ।

सत्या - (१) सत्य व्यवहार करने वाली सन्तानों के प्रति सदव्यवहार में कुशल स्त्री या कुमारी ।
यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः
ऋ. १.७९.१; तै.सं. ३.१.११.५

सत्या आशिर - सत्य आश्रय योग्य ज्ञानरस ।
सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि
ऋ. ९.७०.१

सत्रा - (१) सचमुच, साथ साथ
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः
ऋ. ४.२१.७
(२) सत्य व्यवहार से युक्त ईमानदार
सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे
ऋ. ४.१७.६
(३) एक ही साथ । अव्यय
सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि
ऋ. ८.९७.१३; अ. २०.५५.१; तै.ब्रा. २.५.८.९
(४) निश्चय से
सत्रा देव महाँ असि
ऋ. ८.१०१.१२; अ. २०.५८.४; साम. २.११३९; वाज.सं. ३३.४०
(५) सदा
सत्रा दधिरे शवांसि
ऋ. ८.२.३०

सत्राकरः - (१) सत्यकर्ता -दया. (२) सत्य सत्य न्याययुक्त आचरण करने वाला, (३) न्यायाधीश
सत्राकरो यजमानस्य शंसः
ऋ. १.१७८.४

सत्राहा - सत्ताहन् शब्द का प्रथमैकवचन में रूप ।
(१) सत्य न्याय से असत्य अन्याय चरण को नष्ट करने वाला, (२) इन्द्र (३) सत्य बल से शत्रुओं को परास्त करने वाला
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिद्रम्
ऋ. ४.१७.८; साम. १.३३५; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

सत्राङ् - (१) सत्र + अञ्च + क्विप् = सत्राञ्च ।
अर्थ -सत्यनिष्ठ ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजाते
ऋ. ७.१००.१;
(२) एक साथ संगत
प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत
ऋ. १०.७७.४
(३) सत्य से युक्त
इन्द्रं सत्राचा मनसा
ऋ. ८.२.३७

सत्राची - (१) सत्य की विवेचना करने वाली विवेकी बुद्धि
सत्राच्या मघवा सोमपीतये
धिया शविष्ठ आ गमत्
ऋ. ८.६१.१; अ. २०.११३.१
(२) सत्यमात्र को ग्रहण करने वाली बुद्धि, (३) सदा विद्यमान् धारण शक्ति, (४) सत्य से युक्त (५) एक साथ मिलकर प्राप्त करने योग्य
सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः
ऋ. ७.५६.१८

सत्राजित् - (१) निरन्तर सत्य के बल से सबको जीतने वाला अपने अधीन करने वाला (२) सत्यमय, सत्य गुण कर्म स्वभाव वाला इन्द्र परमेश्वर
सत्राजिते नृजित उर्वराजिते
ऋ. २.२१.१
(३) सदा विजयशील एक ही साथ सबको विजय करने में समर्थ
सत्राजिदगोह्यः
ऋ. ८.९८.४; अ. २०.६४.१; साम. १.३९३; २.५९७
(४) सत्य बल से सबको विजय करने वाला, (५) सत्य की उन्नति करने वाला
सत्राजितं धनाविदम्
वाज.सं. ११.८
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयः
ऋ. ८.३.१५; अ. २०.१०.१; ५९.१; साम. १.२५१; २.७१२; मै.सं. १.३.३९:४६.६; आप.श्रौ.सू.१३.२१.३
(६) समस्त सत् पदार्थों पर विजय प्राप्त करने वाला
सत्राजिदुग्र पौंस्यम्
साम. १.२३१

सत्रादावा (सत्रादावन्) - (१) समस्त अभिलाषा

योग्य फलों को एक साथ देने में समर्थ
सत्रादावन्नपा वृधि
ऋ. १.७.६; अ. २०.७०.१२; साम. २.९७१
(२) सत्र + दा + वतुप् = सत्रादावन्। सतत दानशील इन्द्र- सा. (३) सत्य ज्ञान प्रदाता ईश्वर-दया. (४) वृष्टि का दाता
स नो वृषन्नमुं चरुम्
सत्रादावन्नपा वृधिः
ऋ. १.७.६
हे वर्षाप्रद इन्द्र, या सुखप्रद या सत्य ज्ञान प्रदाता ईश्वर, तू हमारे लिए अन्तरिक्ष में इस दीख पड़ने वाले मेघ को या सत्य ज्ञान के इस ढक्कन को खोल।

सत्राषाट् (सत्रासाह्) - (१) बहुत से सत्रों अर्थात् यज्ञों का कर्ता इन्द्र, (२) सत्य व्यवहार से विजय करने वाला
शूरः सत्राषाडु जनुमेष षाढः
ऋ. ७.२०.३
(३) सबको सहन करने वाला इन्द्र
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदाम्
ऋ. ३.३४.८; अ. २०.११.८
(४) सत्य के बल से और सत्योद्वेग से शत्रुओं को पराजित करने वाला (५) एक ही साथ विद्यमान समस्त कष्टों और शत्रुओं को पराजित करने वाला
(६) सत्राणि सहयन्ते येन (जो सत्य का सहन करता है)- (७) ऐश्वर्य का विशेषण
आ नो अग्ने रयिं भर
सत्रासहं वरेण्यम्।
ऋ. १.७९.८; साम. २.८७५; मै.सं. ४.१२.४: १८९.११; का.सं. १०.१२
(८) सत्य से विजय शाली-इन्द्र, परमेश्वर
सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत
ऋ. २.२१.२
(९) सत्य के बल पर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला
सत्रासाहमभिमाति हनं स्तुहि
ऋ. ३.५१.३; मै.सं. ४.१२.३:१८४.२

सत्राह - सत्य के बल पर या शत्रुसंघ को भी नष्ट करने वाला
सत्राहमिन्द्र पौंस्यम्
ऋ. ५.३५.४

सत्राहा (सत्राहन्) - (१) सब दिन, (२) सत्य बल से शत्रुओं का नाश करने में समर्थ इन्द्र
यः सत्राहा विचर्षणिः
ऋ. ६.४६.३; साम. १.२८६; कौ.ब्रा. २५.६; ऐ.आ. ५.२.४.२; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.४; शां.श्रौ.सू. ११.१३.३१; १८.८.८
(३) सत्राहन् शब्द का प्रथमा ए.व. में रूप, (४) सत्य न्याय से असत्य अन्याय चरण को नष्ट करने वाला, (५) इन्द्र
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रम्
ऋ. ४.१७.८; साम. १.३३५; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

सत्व, सत्वन् - (१) सत्व से युक्त-जीव
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः
ऋ. ३.४९.२

सत्वनः - (१) बलवत् प्रहार, (३) प्रबल वीर
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रम्
ऋ. ५.३७४

सत्वा - (१) सत् पदार्थों का स्वामी
सत्य सत्वा पुरुयामः सहस्वान्
ऋ. ६.२२.१; अ. २०.३६.१
(२) वीर्यवान्, वीर
जयन्तु सत्वानो मम
अ. ६.६५.३
सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः
ऋ. १.६४.२
बलवान्, मेघ के समान,
ज्ञानजलों के वर्षक (द्रप्सिनः)भयानक या शान्तिदायक रूप वाले (घोर वर्पसः)...
(३) सत्वगुण से युक्त परमात्मा
तमु ष्टुहीन्द्र यो ह सत्वा
ऋ. १.१७३.५
बलवान् के अर्थ में
इनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः
ऋ. ७.२०.५

स्मत् - अ. । अच्छी प्रकार से, प्रशंसनीय रूप में
उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा
स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः
ऋ. १.१८६.६
(२) प्रशस्त, खूब,
अभि न इडा यूथस्य माता

स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु
ऋ. ५.४१.१९; नि. ११.४९
मेघ समूह की निर्मात्री (यूथस्य माता) रूपवती विद्युत् उर्वशी नाम से प्रसिद्ध जो माध्यमिका देवी इडा है (उर्वशी इडा) वह हमें (सा नः) जलों से (नदीभिः) खूब सन्तुष्ट करे (स्मत् अभिगृणातु) (३) शोभायुक्त । (विशेषण) । अंग्रेजी नाम Smutts की इससे समानता विचारणीय है ।

स्मत्पुरन्धिः – सर्वोत्तम बहुत ज्ञानों को धारण करने और बहुतों का भरण पोषण करने में समर्थ
स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि
ऋ. ८.३४.६; आश्व.श्रौ.सू. ६.१४.१८

स्वतवसः – ब.व.। अथवा एक वचन में स्वतवाः रूप है । अर्थ है । (१) अपने पराक्रम पर खड़े होने वाले स्वतः बलवान् वायु गण

स्रज् – फूल,
माला वृक्षादिव स्रजं कृत्वा
अ.८.६.२६

स्वतवाः –स्वयं बलरूप परमेश्वर
मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन
ऋ. ६.२२.६; अ. २०.३६.६

स्वतवान् – अपने बल से बलशाली–अग्नि, परमेश्वर
भुवस्तस्य स्वतवां पायुरग्ने
ऋ. ४.२.६

सती – (१) प्रकृति के परमाणुओं में घनीभाव उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ जो सत् या बल रूप से विद्यमान है, (२) सूर्य के रश्मि जल को अपने गर्भ में धारण करने से स्त्री रूप है ।
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः
पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः
ऋ.१.१६४.१६; अ. ९.९.१५; तै.आ. १.११.४; नि. ५१;१४.२०
(३) सत्य विद्या को जानने वाली स्त्री ।

सतीन – (१) उदक ।
अथो सतीनकंकतः
ऋ. १.१९१.१

सतीनकंकत – जल धार के समान कुटिल चाल से चलने वाला विषैला जीव
अथो सतीन कंकतः
ऋ. १.१९१.१

सतीनमन्युः – (१) जलवत् शान्तिदायक (२) ज्ञान से सम्पन्न
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिम्
ऋ. १०.११२.८

सतीनसत्वा –(१) यः सतीनं सादयति (जल को एकत्र करने वाला सूर्य लोक) दया. (२) मेघस्थ जलों से युक्त सूर्य का विद्युत् –ज.दे.श
स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोकाः
महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ।
ऋ. १.१००.१
वायुगण से युक्त सूर्य या विद्युत् (मरुत्वान्) वर्षण करने वाले मेघस्थ जलों से संयुक्त होकर (वृष्ण्येभिः समोका) जल वर्षाने वाला होता है (वृषा) और वह आकाश और पृथिवी पर अच्छी प्रकार प्रकाश करता है । वह जलों में व्यापक होकर (सतीनसत्वा) भरण पोषण करने वाले अन्न, वायु जल आदि पदार्थों में (भरेषु) प्रकाश और ताप रूप से प्राप्त करने योग्य होकर (हव्यः) हमारी जीवन रक्षा के लिए (ऊती) समर्थ होता है ।

सतोवीरः – (१) सत्यबल से सम्पन्न वीर,
सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः
ऋ. ६.७५.९; वाज.सं. २९.४६; तै.सं. ४.६.६.३; मै.सं. ३.१६.३: १८६.१४; का.सं. (आश्व.) ६.१
(२) विद्यमान सेना के बीच में विद्यमान अतिविस्तृत बलवान् वीर पुरुषों से युक्त

सत्योक्तिः – सत्यवचन
सामा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतः
ऋ. १०.३७.२

सत्यौजाः – सत्य बलवाला न्यायाधीश
तान सत्यौजाः प्र दहतु
अ. ४.३६.१

सदः – अतिथियों के बैठने के लिए शाला का भाग–बैठक–खाना
सदो देवानामसि देवि शाले
अ. ९.३.७

सद् – (१) शरण, आश्रय
त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवः

ऋ. ४.१.१
(२) संवत्सर, (३) शरीर

सद्योनिः – सभाभवन में न्यायासन पर विराजने वाला
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसम्
ऋ. ५.४३.१२; मै.सं. ४.१४.४:२१९.१२; तै.ब्रा. २.५.५.४

सदन – (१) घर, (२) रहने का स्थान
गिर इन्द्राय सदने वियस्तः
ऋ. १.५३.१; अ. २०.२१.१
सूर्य के प्रकाश में विविध ऐश्वर्य एवं ईश्वर की परिचर्या करने वाले पुरुष के घर में या एकत्र मिलकर बैठने के स्थान में (विवस्वतः सदने) परमेश्वर या ऐश्वर्य के लिए उत्तम वेदवाणी को धारण करें ।
सद् + ल्युट् = सदन (जिसमें रहा जाय) ।
ओको नाच्छा सदनं जानती गात्
ऋ. १.१०४.५
अपना घर समझती हुई (सदनं जानती) चलती जाती है (गात्) –सा.
राष्ट्र को अपना घर समझती हुई प्राप्त होती है ।
(३) (नः)–सहस्थानम्, एकत्र निवास भूमि (रहने के स्थान) ।
औरगु कृष्णा सदनान्यस्याः
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०
इस उषा को काली रात ने स्थान दिए ।
(४) उदक । सद् + युच् = सदनम् ।
आधुनिक अर्थ– गृह'

सदना सद् – सदन + आसद् = सदनासद् । आसन पर विराजने वाला ।
देवाय सदनासदे
ऋ. ९.९८.१०

सदन्तु – सीदन्तु , प्राप्नुवन्तु (प्राप्त करें, रहें, बैंठें) ।

सदन्दिः – निरन्तर चढ़े रहने वाला ज्वर ।
सदन्दिर्यश्च हायनः
अ. १९.३९.१०
सदन्दिमुत शारदम्
अ. ५.२२.१३

सदनी – सबको शरण देने वाली सर्वाश्रय, सर्वव्यापक
अपिप्राणी च सदनी च भूयाः
ऋ. १.१८६.११

सदम् – अ. । सदा
इयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत्
ऋ. १०.४.७
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिम्
जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ।
ऋ. २.१४.१
तेजस्वी इन्द्र कामना वान् है । इस वर्षा बरसाने वाले इन्द्र के लिए सदा अन्न रस का पान अर्पित करो क्योंकि वह इसे चाहता है ।
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्
वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७
सात सूर्य की रश्मियाँ या देह की इन्द्रियां सूर्य की उदक दान द्वारा प्रमादरहित ही सदा शरीर की रक्षा करती है ।

सदमित् – सदम् + इत् । सदा ही, सदैव ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्
अप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ।
ऋ. १.८९.१; वाजं.सं. २५.१४; का.सं. २६.११; नि, ४.१९
समध्वराय सदमिन्महेय
ऋ. ७.२.३

सदश्वः – उत्तम अश्वों का स्वामी
युष्मत् सदश्वो मरुतः सुवीरः
ऋ. ५.५८.४

सदः – बैठने की साज
पृष्ठे सदो न सोर्यमः
ऋ. ५.६१.२

सदस् – (१) संसार, (२) यज्ञ का उदर, (३) प्रजापति का उदर, (४) पृथ्वी, (४) इन्द्र (५) इन्द्र विषयक
उदर मेवास्य यज्ञस्य सदः
श. ब्रा.
प्रजापतेर्वा एतदुदर यत्सदः
तै. ब्रा.
तस्मात् सदसि ऋक्सामाभ्यां कुर्वन्ति
ऐन्द्रे हि सदः
श. ब्रा.
तस्यपृथ्वी सदः
तै.ब्रा.
(६) यज्ञ में बनाए जाने वाला बांस आदि का

गृह
सदो हविर्धानान्यवे तत् कल्पयन्ति
अ. ९.६(१).७
(७) सद् (रहना) + असुन् = सदस्। घर, गृह भवन
'दिवः सदांसि बृहती वितिष्ठसे'
हे रात्रि, दूर रहती हुई भी तू स्वर्ग लोक के भवनों में भी व्याप्त हो जाती है।
(८) आसन
स्योनमिन्द्र ते सदः
वाज.सं. २१.५७; मै.सं. ३.११.५; १४८.२; तै.ब्रा. २.६.१४.६

सदःसदः – (१) घर घर, (२) प्रत्येक यज्ञगृह।
'सदः सदो वरिवस्यात उद्भिदा' दोनों द्यौ और पृथिवी घर घर या सभी यज्ञ गृहों को उदभेदक धन से पूर्ण करें (उद्भिदा वरिवस्यातः)।
हमारे दोनों दिन रात अपने आविर्भाव से (उद्भिदा) हमारे प्रत्येक गृह को परिपूजित करे (सदः सदः वरिवस्यातः)।

सदस्पती – द्वि.व.। (१) इन्द्र और अग्नि का विशेषण (२) वायु, सूर्य, विद्युत्, अग्नि, विद्युत् मेघ, वीर्यवान्, अधिकारी पुरुष, वायु अग्नि का भी यह विशेषण है।
(२) सभापति, (३) गुणों के आश्रयभूत सदस् अर्थात् पदार्थों के पालक।
ता महान्ता सदस्वती
इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्
ऋ. १.२१.५
वे दोनों वीर्यवान् अधिकारी पुरुष इन्द्र और अग्नि महान् पद पराक्रम और वीर्य वाले राजसभा के पालक, सभापति के तुल्य होकर, दुष्ट राक्षस पुरुषों को झुका दें (उब्जतम्)।

सदसस्पतिः – (१) विद्वानों की एकत्र विचारार्थ बैठने की सभा का पालक, (न्याय सभा का या धर्म –सभा का नेता या सभापति, (३) ब्रह्माण्ड का पालक
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्
सनिं मेधामयासिषम्।
ऋ. १.१८६; ऋ. खि. १०.१५१.७; साम. १.१७१; वाज.सं. ३२.१३; तै .आ. १०.१.४; महा.ना.उप. २.८; आप. मं.पा. १.९.८; हि.गृ.सू. १.८.१६
अद्भुत आश्चर्यकारी, ऐश्वर्यवान्, राजवर्ग और वैश्य वर्ग के प्रिय लगने वाले, सब प्रजा के इच्छानुकूल, वेतन पुरस्कार आदि देने वाले विद्वान् की एकत्र विचारार्थ बैठने की सभा के पालक, न्यायसभा या धर्म सभा के नेता सभापति को मैं धारण वती उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त करूँ।
जीव के प्रिय लोकसमूह, ब्रह्माण्ड के पालक, सबके कर्म फलों के दाता परमेश्वर को मैं बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त होऊं।

सद् मनी – द्वि.व.। (१) द्यावापृथिवी का विशेषण (२) समस्त लोकों और जनों को आश्रय देने वाली द्यावापृथिवी (२) घर के समान सब को शरण में रखने वाले माता पिता
उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन
ऋ. १.१८५.६

सद्म मखस् – जिसमें प्राणी स्थित होते और जगत् प्राप्त होते हैं–परमेश्वर

सद्मबर्हिः – (१) जिसका स्थान उत्तम हो (२) उत्तम वेग या बल से बहने वाली नदी, (३) उत्तम आसन पर विराजने वाला विद्वान्
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः
ऋ. १.५२.४
जिसे राजसभा भवन में उत्तम आसन पर विराजमान पुरुष सब प्रकार से पूर्ण करते हैं।
अथवा.
उत्तम वेग और बल से बहने वाली नदियाँ जिस प्रकार समुद्र को सब तरह से पूर्ण करती हैं।

सद्यः – तत्क्षण, शीघ्र।
सद्यः काव्यानि बडधत्त विश्वा
ऋ. १.९६.१; मै.सं. ४.१०.६; १५७.१२
पुरातन के सदृश अग्नि ने सभी पितरों तथा देवों को दिए जाने वाले कव्य और हव्य को (विश्वा) सत्य ही (वट्) धारण किया (अधत्त) –सा.।
विद्वान् शीघ्र अनेक विज्ञानों को (विश्व काव्यानि) यथार्थ रूप से (वट्) धारण करता है (अधत्त)–दया.।

सद्य ऊतयः – (१) शीघ्र चलने वाले (२) शीघ्र रक्षा करने वाले मरुद्गण या व्यापारिवर्ग
वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः

ऋ. १०.७८.२
वायु के समान अपने अनुग्रह से या धन से स्तोताओं को युक्त करने वाले (स्वयुजः) तथा शीघ्र चलने वाले या रक्षा करने वाले-मरुद्गण।

सद्यश्चित् - (१) सद्योऽपि (सभी उपयुक्त काल में)
(२) आज भी, (३) सर्वदा
(४) सभी उपयुक्त अवसर पर
सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः
सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान।
ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.३०; नि. १०.२९
जो तार्क्ष्य सभी उपयुक्त अवसर पर (सद्यश्चित्) बल से (शवसा) पांच प्रकार के मनुष्यों के निमित्त जल विस्तीर्ण करते हैं (जल कृष्टीः अपः ततान)।
(५) शीघ्र ही, सहज ही
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ
ऋ. ७.१९.९; अ. २०.३७.९

सद्यस्क्री - एक प्रकार का सोमयज्ञ
सद्यः क्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः
अ. ११.७.१०

सदा - सर्वदा।
यूयं पात स्वस्तिभिः सदानः
ऋ. ७.१.२०
हे देवो, आप आशीर्वादों से सदा हमारी रक्षा करें।
अथवा,
आप सभी विद्वान् स्वस्तिवाचनों से सदा हमारी रक्षा करें।
ज.दे.श.

सदानः - स + दान। दानी के दिए दान से अलंकृत भिक्षु या ब्राह्मण
सहस्रदान उत वा सदानः
ऋ. ७.३३.१२

सदान्वा - वि.। सदा + न्वा। (१) सदा नो नो- नहीं नहीं करने वाली। दरिद्रता देवी या दुर्भिक्षाधिदेवता का विशेषण।
अरायि काणे विकटे
गिरिं गच्छ सदान्वे।
ऋ. १०.१५५.१; नि. ६.३०.
हे दुर्भिक्षाधिदेवेते, हे कुत्सितदर्शने, हे विकृताङ्गि, हे सदा नहीं नहीं करने वाली, तू पर्वत पर चली जा।
(२) दुर्भिक्षा देवी (३) नो नो शब्दकारिका, मा देहि इति कथयन्ती, सदा नोनुवा सदान्वा, नोनुवाका न्वा,
सदा + नु (यङन्त) + अच् + टाप् = सदान्वा।
(४) सदा कलह और शोर गुल या रोना आदि मचाने वाली आपत्ति
नश्यतेतः सदान्वाः
अ. २.१४.५,६

सदान्वा चातन - सदान्वा + चातन। (१) निरन्तर रुलाने और कष्ट देने वाली आपत्ति को दूर करने वाला बल
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वा चातनं मे दाः स्वाहा
अ. २.१८.५

सदान्वा क्षयण - निरन्तर रुलाने और कष्ट देने वाली आपत्तियों का नाशक
सदान्वा क्षयणमसि
अ. २.१८.५

सदापृणः - सदा प्रजा को तृप्त करने वाला
सदापृणो यजतो विद्विषो वधीत्
ऋ. ५.४४.१२

सदावा (सदावन्) - सदा रक्षा करने वाला -परमेश्वर
सदावन् भागमीमहे
ऋ. १.२८.३; तै.सं. ३.५.११.३; मै.सं. ४.१०.३: १४८.२; का.सं. १५.१२
हे सदा सब की रक्षा करने वाले भजन और सेवा कार्य योग्य। तुझ से हम याचना करें।

सदावृध - (१) सदा बढ़ाने वाला
ऊती सदावृधः सखा
ऋ. ४.३१.१; अ. २०.१२४.१; साम. १.१६९; २.३२; वाज.सं. २७.३९; ३६.४; तै.सं. ४.२.११.२; मै.सं. २.१३.९: १५९.४; ४.९.२७: १३९.११; का.सं. ३९.१२; तै.आ. ४.४२.३. आप.श्रौ.सू. १७.७.८.
(२) प्रजाओं को सदा बढ़ाने वाला - इन्द्र
रथादधि त्वा जरिता सदावृधः
ऋ. ५.३६.३
(३) नित्य वृद्धि शील
एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः
ऋ. ८.२४.१६; अ. २०.६४.४; साम. १.३८५; २.१०३४

सदावृध् – (१) सदा बढ़ने वाला प्रभु (२) सदाशक्ति का रूप बढ़ाने वाला
यश्चकार सदावृधम्
ऋ. ८.७०.३;अ. २०.९२.१८;साम. १.२४३; २.५०५
तमिद् वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम्
ऋ. ८.१३.१८

सदासः – (१) स + दासः । नौकरों से युक्त, (२) सदा + सः । सदा ऐश्वर्य भोक्ता या दानशील ।
धिया स्याम रथ्यः सदासाः
ऋ. ४.१६.२१; ५६.४

सदासा – सदा सेवन करने योग्य
धाता रयि विदस्यं सदासम्
ऋ. ७.३९.६

सदावृधा – प्रजाजनों या बालक को पुष्ट करने वाली अदिति, पृथ्वी, माता
अदितिः पात्वं हसः सदावृधा
ऋ. ८.१८.६

सदासहः – सदा शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ
सजित्वानं सदासहम्
ऋ. १.८.१; अ. २०.७०.१७; साम. १.१२९; तै.सं. ३.४.११.४;मै. सं. ४.१२.३:१८४.१३;का.सं. ८.१७; तै.ब्रा. ३.५.७.४
(२) दुष्टों का सदैव हानि हानिकारक, (३) दुःखों का सहन– हेतु ।

स्मदभीशू – द्वि.व. । शोभायुक्त अंगुलियों, धर्म मर्यादाओं– व्यवस्थाओं से युक्त मित्रावरुण या स्त्रीपुरुष
स्मदभीशू कशावन्ता
ऋ. ८.२५.२४

स्वदन्ति – स्वाद लेते हैं, आस्वादित करते हैं ।
स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या
ऋ. ७.२.२; वाज.सं. २९.२७; का.सं. ३७.४; ८.७
देवता सौमिक और हविमय दोनों हव्यों को आस्वादित करते हैं ।

स्वदावा – उत्तम अन्न या कर्मफल का दावा
यं ते स्वदावन् स्वदन्ति गूर्तयः
ऋ. ८.५०.५

स्मद्रातिषाक् – स्मत् + राति + साच् । उत्तम दान या कर आदि देने वाला
स्मद्रातिषाचो अग्नयः
ऋ. ८.२८.२

स्मदिष्टः – स्मत् + इष्ट । (१) उत्तम अभिप्राय वाला, (२) उत्तम आचारण वाला, (३) एक साथ समान इष्ट, (४) योगी या एक साथ उत्तम लक्ष्य रखकर कार्य करने वाला
परि स्पशो वरुणस्य स्पदिष्टाः
उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋ. ७.८७.३

स्मद्दिष्टि – (१) कल्याण मार्ग का उपदेश करने वाला, (२) शोभन वाणी और इच्छा वाला आत्मा
स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः
ऋ. ३.४५.५
(३) उत्तम दर्शन वाला
स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके
ऋ. ७.१८.२३
(४) उत्तम ज्ञान वाला
शांडो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्
ऋ. ६.६३.९

स्मदूध्नी –स्मत् + ऊध्नी । अच्छे बड़े स्तन मण्डल वाली गौ
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः
स्मदूध्नी पीपयन्त द्युभक्ताः ।
ऋ. १.७३.६
जिस प्रकार अच्छे बछड़ो को अति प्रेम से चाहती हुई (वावशानाः) अच्छे बड़े स्तनों वाली (स्मदूध्नीः) तेजोयुक्त स्वच्छ अन्न खाने वाली (द्युभक्ताः) गौएं (धेनवः) दूध का पान करती हैं (पीपयन्त) ।

सदृक्षः – एक समान । बहुवचन में सदृक्षासः
सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन
वाज.सं. १७.८४; तै.सं. ४.६.५.६; मै.सं. २.११.१: १४०.५; का.सं. १८.६

सदृङ् – सबको एक समान दीखने वाला अग्नि ।
सदृङ् च प्रतिसदृङ् च
वाज.सं. १७.८१; मै.सं. २.११.१: १४०.४; का.सं. १८.६.

समोकसा – एक ही स्थान पर घर बनाकर रहने वाले ।

सद्योअर्थः – (१) शीघ्र गामी पृथिव्यादि अर्थ –दया. (२) विद्युत् रूप में देशान्तर में जाने वाला पदार्थ अग्नि ।

सद्योवृध् – शीघ्र बढ़ने वाला या बढ़ाने वाला ।
सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः
ऋ. ३.३१.१३

सधनाजित् – समस्त धन ऐश्वर्य को जीतने वाला
गोजितं संधनाजितम्
अ. १७.१.१-५

सधनित्व – (१) ऐश्वर्यवान् पुरुषों से युक्त राज्य पद, (२) धन- सम्पन्न पुरुषों के समान उत्तम पद
देवो मर्तस्य सधनित्वमाप
ऋ. ४.१.९

सधनी – (१) समान धन से धनी
त्वया वयं सधन्यस्त्वोताः
ऋ. ४.४.१४; तै.सं. १.२.१४.५; मै.सं. ४.११.५; १७४.५; का.सं. ६.११.
(२) धन + इ (मतुप् अर्थ में) । समान प्रकार से धनी ।
हे अग्निदेव, तेरी कृपा से हम समान रूप से धनी हैं ।

सधमाः – एक समान स्थान या पद पर रहने वाला
आ योऽनयत् सधमा आर्यस्य
गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधानून्
ऋ. ७.१८.७

सधमात् – हर्षों में हर्षित होने वाला
इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः
ऋ. ४.२१.१; वाज.सं. २०.४७

सधमादः –सहमदनः (जहां एकत्र हो ऋत्विक् तथा यजमान मत्त या मुदित होते हैं) । यज्ञ के विशेषण के रूप में इसका प्रयोग हुआ है ।
(१) मदान्वित करने वाला यज्ञ
आ शेकुरित् सधमादं सखायः
ऋ. १०.८८.१७; नि. ७.३०
इस मदान्वि करने वाले यज्ञ को सखारूप ऋत्विज् करते हैं ।
(२) एक साथ मिलकर होने वाला हर्ष विनोद या उत्सव का अवसर
विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन
ऋ. १.५१.८
तेरे उन नाना प्रकार के समस्त कर्मों और अद्भुत व्यवहारों के एक साथ मिलकर होने वाले हर्ष दिला दे और उत्सवों के अवसरों पर मैं प्रसिद्धि चाहता हूँ ।

पुनः –
हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम्
ऋ. १०.९६.१२; अ. २०.३२.२
(३) मुक्तात्माओं का ब्रह्म के साथ परमानन्द का अनुभव करना
तृतीये नाके सधमादं मदेम
अ. ६.१२२.४
(४) साथ साथ अनुभव करने की समाहित दशा ।
हरी सखाया सधमाद आशू
ऋ. ३.३५.४; अ. २०.८६.१
पुनः –
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहि
ऋ. ७.३२.१

सधमाद्यः – (१) सत्संग से आनन्द प्राप्त करने वाला
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे
ऋ. ८.३.१; साम. १.२३९; २.७७१
(२) एक साथ मिलकर हर्ष मनाने का अवसर
कदा त उक्था सधमाद्यानि
ऋ. ४.३.४
(३) सबके साथ मिलकर प्रसन्न होने वाला
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे
ऋ. ८.५४.५

सधमाद्या – द्वि.व. । सधमाद्यौ । अर्थ साथ ही मत्त या प्रसन्न –इन्द्र के अश्व–सा.
(२) साथ रहकर आनन्द देने वाले । (३) साथ रहकर आनन्द देने वाले राजा के दो गुण– ज.दे.श. ।
इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये ।
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर
ऋ. ८.१३.२७
हे इन्द्र, इस कर्म में इन दोनों अश्वों की (त्या हरी) जिन्हें ऋजीष और धानरूपी धन मिलते हैं (प्रतद्वसू) और जो साथ ही मत्त या प्रसन्न रहते हैं (सहमाद्या) रथ में जोतते हुए (युजानः) सोमपान करने के लिए (सोमपीतये) ।
हे राजन्, साथ रहकर आनन्द देने वाले (सधमाद्या) और धनों को प्राप्त करने वाले (प्रतद्वसू) इन पालक तथा संहारक गुणों से अपने को युद्ध करता हुआ तू (हरी युजानः)

शान्ति रक्षण के लिए (सोमपीतये) ।

सधस्तुति – (१) एक समान एक साथ वर्णन करने योग्य

ये मे पञ्चशतं ददुः
अश्वानां सधस्तुति
ऋ. ५.१८.५; तै.ब्रा. २.७.५.२

(२) सत्यगुण वर्णन वाली स्तुति

(३) एक साथ मिलकर प्रार्थना, सामूहिक प्रार्थना

सधस्तुतिमजमीढासो अग्मन्
ऋ. ४.४४.६; अ. २०.१४३.६

आ त्वद्य सधस्तुतिम्
वावातुः सख्युरा गहि ।
ऋ. ८.१.१६

सधस्थ – (१) संघ

तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे
अ. ७.९७.३; वाज.सं. ८.१९; तै.सं. १.४.४४.२; मै.सं. १.३.३८: ४४.१२; का.सं. ४.१२; श.ब्रा. ४.४.४.११

(२) सूर्य की किरणों का एकत्र होने वाला केन्द्र,

(३) राजसभा

यदेदयुक्त हरितः सधस्थात्
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२; नि. ४.११

(४) एकत्र बैठने के लिए भवन

महत् सधस्थं महती बभूविथ
अ. १२.१.१८

एतं सधस्थाः परि वो ददामि
अ. ६.१२३.१; वाज.सं. १८.५९

(६) कारण रूप प्रकृति जिसमें समस्त प्राकृतिक जगत् एक समान होकर कारण रूप से एक साथ रहते हैं ।

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थम्
ऋ. १.१५४.१

(७) सह + स्था + क = सधस्थ । 'घञ' के अर्थ में 'क' का विधान हुआ है और सह का सध हो गया है । अर्थ–यज्ञ स्थान ।

उश्मसि त्वा सधस्थ आ
ऋ. ८.४५.२०

हे इन्द्र, हम यज्ञ में तुझे देखने या स्तवन करने की कामना करते हैं ।

(८) भूलोक, (९) रथ ।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थात्
ऋ. १.११५.४

जभी सूर्य रस हरने वाली रश्मियों या अश्वों को इस लोक से या रथ से हटाकर अन्य लोक में फैलाते हैं ।

(१०) समान स्थान ।

सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः
ऋ. ७.३९.४

विश्वे देव यज्ञों में समान स्थान पर आते हैं ।

(११) सहस्थान, एक स्थान, सहस्थिति एकत्र होने का स्थान, एकत्र होना ।

सधस्थात् – साथ रहने के कारण

हवामहे परमात् सधस्थात्
अ. ७.६३.१

सध्रक – एक साथ

प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक्
ऋ. २.१७.३

स्वधया – (१) स्वभावतः (२) आत्म–धारण करने की शक्ति

आनीदवातं स्वधया तदेकम्
ऋ. १०.१२९.२; तै.ब्रा. २.८.९.४

उस प्रलय काल की स्थिति में वह एक सत् ब्रह्म बिना वायु के (अवातम्) स्वभावतः (स्वधया) प्राण धारण कर रहा था (आनीत्)

स्वधयागभीतः – (१) स्वयं धारण किए गए कर्मबन्धन या कर्म फल से बद्धजीव

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः
ऋ. १.१६४.१६; अ. ९.१०.१६ ऐ.आ. २.१.८.११; नि. १४.२३

(२) अन्न जल में बने शरीर तथा अपने किए कर्मों के फल से बंधा जीव ।

यह जीव अन्न और जल से बने इस शरीर तथा अपने किए कर्मों के फल से बद्ध होकर ही नीचे अर्थात् उच्च योनियों में जाता है और उसी प्रकार उत्कृष्ट योनियों में जाता है ।

स्वधया शंभुः – सोम, अन्न या पृथ्वी से सबका कल्याण करने वाला परमेश्वर,

द्विता च सत्ता स्वधया च शंभुः
ऋ. ३.१७.५; नि. ५.३

जिसका अस्तित्व दो प्रकार से है–अन्तरिक्ष में

विद्युत और द्युलोक में सूर्य रूप में और जो सोम या अन्न से सबका कल्याणकारी है।-सा. जिस परमेश्वर की सत्ता बाह्य और भीतर दोनों है (द्विता सत्ता) और जो पृथिवी में सबका कल्याण कारी है-दया.

स्वध्वर - (१) सु + अध्वर = स्वध्वर। यज्ञ को शोभन बनाने वाला अग्नि- सा.

(२) हिंसारहित शुभ कर्म करने वाला विद्वान् उपदेशक-दया.।

प्रियं चेतिष्ठरतिं स्वध्वरम्

मैं प्रिय पर्याप्त बुद्धि वाले, अत्यन्त चेतनावान् एवं यज्ञ को शोभन बनाने वाले अग्नि का आमन्त्रण करता हूँ-सा.।

मैं हितकर, चेतानेवाले आर्य एवं हिंसा रहित शुभकर्म करने वाले उपदेशक को स्वीकार करता हूँ।

(३) राज्य को भली भाँति चलाने वाला-दया.।

स्वध्वरावा - सु + अध्वरावा। उत्तम अध्वर या अहिंसक व्यवहार वाला

उदुतिष्ठ स्वध्वरावा

वाज.सं. ११.४१

स्वधा - (१) स्वयं धारण किया हुआ कर्मबन्धन या कर्मफल

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः

ऋ. १.१६४.३८; अ. ९.१०.१६; ऐ.आ. २.१.८.११; नि. १४.२३

(२) श्राद्ध में मृतात्मा को दिया हुआ पिण्ड-सा.।

(३) कर्मों से प्राप्त आत्म शक्ति-ज.दे.श.।

मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते

ऋ. १०.१५.१४; अ. १८.२.३५

(४) अन्नमयी शरीर धाराण करने में समर्थ विराट् प्रकृति

ऊर्ज एहि स्वध एहि

अ. ८.१०.११

(५) अपना स्वार्थ

ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः

ऋ. ७.१०४.९; अ. ८.४.९

(६) प्रकृति

स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्

ऋ. १०.१२९.५; वाज.सं. ३३.७४.; तै.ब्रा. २.८.९.५

(७) स्वस्मिन् धीयत इति शरीर को धारण करने वाला, पोसने वाला- अन्न। स्व + धा।

पिबा सोममनुष्वधं मदाय

ऋ. ३.४७.१; वाज.सं. ७.३८; वाज.सं. (का.) २८.१०; तै.सं. १.४.१९.१; मै.सं. १.३.२२: ३८.१; का.सं. ४.८; नि. ४.८.

हे इन्द्र, तू अन्न खाने आदि आनन्द के लिए सोमरस पी।

(८) अन्न हवि या पुरोडाश आदि भी स्वधा है।

धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्ते

ऋ. १०.८८.१; नि. ७.२५

धारण पोषण या अविच्छेद के लिए सुखद अग्नि को अन्न, हवि या पुरोडाश से (स्वधया) बढ़ाते हैं।

(९) पृथ्वी। (१०) स्वभाव।

स्वधाकार - (१) स्वधारूप में दिया गया अन्न।

स्वधाकारेणन्नादेनं

अ. १५.१४.१४

(२) स्वधारूप अन्न का प्रदान करना (३) पितरों दिया पिण्ड दान

स्वधाकारेण पितृभ्यः

अ. १२.४.३२

स्वधाप्राणा - आत्मा धारण शक्तिरूप प्राण वाली वंशा

स्वधाप्राणा महीलुका

अ. १०.१०.६

स्वधापति - अन्न और धन धारण करने वाले बल का स्वामी-इन्द्र

अस्ति स्वधापते मदः

ऋ. ६.४४.१-३; साम. १.३५१

स्वधायी - (१) स्वधा को स्वीकार करने वाला पितृगण, (२) अन्न, जल या शरीर के पोषण योग्य वेतना स्वीकार करने वाला राष्ट्र और प्रजा का पालक पुरुष-दया.।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः

वाज.सं. १९.३६; का.सं. ३८.२; श.ब्रा. १२.८.१.७; तै.ब्रा. २.६.३.२; आप.श्रौ.सू. १.९.९; १९.८.१४

स्वधावती - (१) अन्न युक्त, (२) सूर्यचन्द्र की शक्ति से युक्त दिनरात

तिलमिश्राः स्वधावतीः

अ. १८.३.६९; ४.२६,४३

स्वधावन् – (१) अन्नादि ऐश्वर्य का स्वामी । अग्नि ।

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते

ऋ. १.३६.१२

हे अन्नादि ऐश्वर्य के स्वामी, तू हमें सर्व प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान कर ।

(२) अन्नमय । स्वधा का अर्थ अन्न है । यह शब्द पूषा का विशेषण है ।

विश्वा हि माया अवसि स्वधावः

ऋ. ६.५८.१; साम १.७५; तै.सं. ४.१.११.३; मै.सं. ४.१०३:१५०.५ ; का.सं. ४.१५; तै.आ. १.२.४; ४.५.७; नि. १२.१७

हे अन्नमय पूषन् , जितनी प्रज्ञाएं हैं सभी को तू ही देता या पालता है ।

स्वधावा – (१) अन्नादि समृद्धि, धनैश्वर्य और अपने शरीर को धारण पोषण अन्न और ऐश्वर्य का स्वामी इन्द्र राजा

अनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त

ऋ. ५.३२.१०

स्वधावः – देह को धारण करने की शक्ति से युक्त आत्मा

बहोरग्न उपलस्य स्वधावः

ऋ. १०.१४२.३

स्वधवान् – (१) शरीरों को धारण करने वाले समष्टि चैतन्य का स्वामी –सा. ।

(२) अन्न और बल का स्वामी इन्द्र

इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह

ऋ. ३.४१.८; अ. २०.२३.८

समस्त जगतों के धारण पालन और पोषण कारिणी शक्ति का स्वामी–परमेश्वर

त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्

ऋ. १०.३१.८

(३) स्व + धा + क्वसु । आत्मा को धारण करने वाली स्नेह मयी शक्ति का स्वामी

(४) अन्न, (५) स्वयं ब्रह्माण्ड की धारक शक्ति–समष्टि चैतन्य ।

देव स्वधावोऽमृतस्य नाम

ऋ. ३.२०.३; तै.सं. ३.१.११.६; मै.सं. २.१३.११; १६२.३

(६) जलमय मेघ, (७) अन्न समृद्धि का स्वामी

भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम्

ऋ. १.१७३.६

(८) स्वधा + वतुप् = स्वधावान्

बलवान् अन्नवान् परमात्मा का विशेषण ।

कदा ते मर्ता अमृतस्य धाम

इयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ।

ऋ. ६.२१.३

हे बलवान् , तुझ अमर के धाम में इच्छुक मनुष्य कभी हिंसा नहीं करते ।

(९) स्वधा अर्थात् अमृत को प्राप्त कर स्वयं सबका पोषक परमेश्वर

कविर्देवो न दभायत् स्वधावान्

अ. ४.१.७

(१०) ऐश्वर्य धारण करने वाली शक्ति का स्वामी (११) अन्न पति

यं ते स्वधावन् स्वदयन्ति धेनवः

ऋ. ८.४९.५६

स्वधावरी – द्वि.व.। (१) रोदसी का विशेषण, (२) जल और अन्न से युक्त द्यावा पृथिवी (३) स्त्री पुरुष (४) राजा प्रजा

महां उतासि यस्य ते

अनु स्वधावरी सहः

ऋ. ७.३१.७

सधिः – (१) समान रूप से स्थिति

अप्स्वग्ने सधिष्टव

ऋ. ८.४३.९; वाज.सं. १२.३६; तै.सं. ४.२.३.२; मै.सं. २.७.१०: ८८.६; ४.१०.४: १५३.६; का.सं. १६.१०; ऐ.ब्रा. ७.७.२; श.ब्रा. ६.८.२.४; १२.४.४.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.४; ३.१३.१२; मा.श्रौ.सू. ५.१.३.२५

(२) निवास स्थान, (३) स्थिति

स्वधिति – (१) स्वयं अपने को धारण करने की शक्ति (२) वज्र

स्वधितिस्ते पिता

वाज.सं. ३.६३; शां.गृ.सू. १.२८.१४; आप.मं.पा. २.७.३.

(३) स्वधा धारण करने वाला पितर

(४) अपने स्व को धारण करने वाली शस्त्रशक्ति

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीते

ऋ. ५.३२.१०

(५) स्वतः धारण करने वाली आत्म शक्ति

(६) चमकती धारवाली कुल्हाड़ी, (७) स्वयं अपने को या 'स्व' धन सम्पत्ति को धारण करने वाली प्रजा
प्र स्वधितीव रीयते
ऋ. ५.७.८
(८) शलाका
लोहितेन स्वधितिना
मिथुनं कर्णयोः कृधि
अ. ६.१४१.२; साम.मं.ब्रा. १.८.७;
(९) क्षुर (छुरा) ।
ओषधे त्रायस्व
स्वधिते मैनं हिंसीः
वाज.सं. ४.१; ५.४२; ६.१५; श.ब्रा. ३.१.२.७; ६.४.१०; ८.२.१२
ऐ ओषधि, यजमन की रक्षा कर । ऐ छूरा, इस कुश को या यजमान को हिंसित न कर ।
(१०) वज्र आदि शस्त्रास्त्र बल
यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिसमस्ति
ऋ. १.१६२.९; वाज.सं. २५.३२; तै.सं. ४.६.८.४

सध्रीः – (१) एक स्थान पर (२) सहवासिनी ।
सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयः
ऋ. २.१३.२

सध्रीची – (१) सहयोगी
संध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा
अ. १९.८.६
(२) साथ रहने वाली और साथ ही प्रकट होने वाली शक्ति
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानः
ऋ. १.१६४.३१; १०.१७७.३; अ. ९.१०.११; वाज.सं. ३७.१७; मै.सं ४.९.६:१२६.४; श.ब्रा. १४.१.४.१०; ऐ.आ. २.१.६.९; तै.आ. ४. ७.१; ५.६.५; नि. १४.३

सध्रीचीन – (१) समान रूप से ही स्थान पर एकत्र
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि
अ. ३.३०.५,७
(२) साथ चलने वाला, (३) सहज
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र
ऋ. १.३३.११; मै.सं. ४.१४.१२; २३५.८; तै.ब्रा. २.८.३.४
हे इन्द्र, सूर्य या वायु , तू अपने सहज...से उस मेघ को ....।

सप्रचीनाः – ब.व. । (१) साथ वर्तमान (२) पञ्चोक्षण का विशेषण (२) पांच प्राण साथ विराजमन हैं । उसी प्रकार (३) पांच वर्ष बरसाने वाले मेघ, अग्नि, वायु, विद्युत् और सूर्य प्रकाश भी सध्रीचीन हैं ।

सधुरा – (१) एक ही प्रकार का भार उठाते हुए, (२) समान रूप से एक ही केन्द्र में बद्ध
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः
अ. ३.३०.५

स्वधृतिः – स्व + धृति । अपनी पूर्णधृति –धारण शक्ति
'इह स्वधृतिः स्वाहा
वाज.सं. २२.१९

सन – न. । (१) संविभावग युक्त वस्तु, (२) ऐश्वर्य, (३) देने योग्य जल या अन्न ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते
ऋ. १.९५.१०
सूर्य समस्त देने योग्य जलों य अन्नों को परिपाक योग्य औषधि वनस्पतियों के बीच में धारण पोषण करता है ।
(४) धन आदि विभाग योग्य पदार्थ ।
किं सनेन वसव आप्येन
ऋ. २.२९.३

सनकः – (१) सनन्ति सेवन्ते पर पदर्थान् ये ते सनकाः (दूसरे के पदार्थ भोगने वाले) (२) अधर्म से औरों के पदर्थ भोगने वाले ।
अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः
ऋ. १.३३.४

सनकः – (१) सनातन मूल कारण (२) सनातन त्रिकाल
प्र सप्त होता सृनकादरोचत
ऋ. ३.२९.१४

सनकात् – सनतन से
सनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्यः
ऋ. १०.६९.१२

सनजाः – (१) सनातन प्रभु
पतिदिवः सनजा अप्रतीतः
ऋ. १०.१११.३
(२) दान देने के बाद दूसरे की स्त्री हो जाने वाली कन्या (३) सनातन परम पुरुष से उत्पन्न वेदवाणी ।
सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः

ऋ. ३.३९.२

सनजा – द्वि.व.। (१) चिरकाल से विद्यमान प्राण अपन, (२) आकश और भूमि, (३) राजा और प्रजा (४) स्त्री. ए.व.। या सनातनात् जायते (चिरकाल से उत्पन्न)।

द्विता विवव्रे सनजा सनीडे

ऋ. १.६२.७

मुख्य प्राण जिस प्रकार अन्नों द्वार एक आश्रय पर रहने वाले (सनीडे) चिरकाल से विद्यमान् (सनजा) प्राण और अपान दोनों को प्रकट करता है।

अथवा,

मुख्य स्थान पर स्थित सूर्य किरणों से समान आश्रय वाली सदा से विद्यमान् आकाश और भूमि दोनों को विशेष रूप से व्यावती हैं।

सनत् – (१) (अ.)। सदा, (२) क्रि.। भोग करें। (३) (सं)। सबको बढ़ाने वाला।

सनत्नी – (१) प्राणशक्ति।

एषा सनत्नी सनमेव जाता

अ. १०.८.३०

सनद्रयिः – (१) ऐश्वर्य को देने वाला उदार पुरुष

परि युक्षः सनद्रयिः

ऋ. ९.५२.१

सनद्वानः – ऐश्वर्य प्राप्त

सनद्वाजः परि स्रव

ऋ. ९.६२.२३; साम. २.४१२

सनयः – (१) पुराण, (२) वृद्ध

युवं च्यवानं सनयं यथा रथम्

पुनर्यावानं चरथय तक्षथुः

ऋ. १०.३९.४

हे अश्विनीद्वय, या राजा और राज पुरुषो, तुम दोनों ने वृद्ध च्यवन ऋषि को या वृद्ध उपदेशक को उसी प्रकार युवा बना दिया या बनाते हो जैसे शिल्पी जीर्णरथ को।

सनया – (१) पुरानी (लकड़ी)

कूचिज्जायते सनयासु नव्यः

ऋ. १०.४.५

(२) क्रि.। सनोति (विभाग करता है, प्राप्त करत है)।

सनवित्त – (१) सनात् वित्तः

(सनातन से जाना हुआ) (२) सनातन से वेद से जाना हुआ।

(३) सनतान वेगेन लब्ध –दया.

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा

ऋ. ७.४२.२

(४) अनादि काल से प्राप्त

इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र

ऋ. १०.११२.६; शां.श्रौ.सू. ९.१४.३

सनश्रुत – (१) सदा काल से विख्यात, (२) वेद द्वारा कीर्तितित

आ तिष्ठति मघवा सनश्रुतः

ऋ. १०.२३.३; अ. २०.७३.४

(३) सन अर्थात् सत्यासत्य विवेकी पुरुषों से शास्त्रज्ञान का श्रवण करने वाला, (४) इन्द्र, परमेश्वर

पुरोडाशं सनश्रुत

ऋ. ३.५२.४

(४) सनातनानि शस्त्राणि

श्रृणोति (सनातन शास्त्रों को सुनने वाला) दया. (६) अग्नि, (७) सनातन से प्रसिद्ध एवं श्रमण मनन किया गया–परमेश्वर।

अग्निं सुनूं सनश्रुतम्।

ऋ. ३.११.४

(८) सनातन काल से श्रवणयोग्य (९) सनातन ज्ञान या वेद का बहुश्रुत विद्वान् (१०) सन् अर्थात् दान के कारण प्रसिद्ध–इन्द्र।

गाथान्यं सनश्रुतम्

ऋ. ८.९२.२; सम. २.६४

(१२) तप और सनातन वेद में बहुश्रुत।

सन्तति – (१) वंश का विस्तार करने वाला

उग्रो वां ककुहो यथिः

श्रृण्वे यामेषु सन्तनिः

ऋ. ५.७३.७

सन्तनि – (१) उत्तम कर्य कुशल, (२) सम्यक् प्रकार बढ़ाने वाला

पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव

ऋ. ९.६९.२

सन्तपन्ति – सन्ताप देते हैं।

सं मा तपन्त्यभितः

सपत्नीरिव पर्शवः

ऋ. १.१०५.८; १०.३३.२; नि. ४.६

सपत्नियों की तरह मुझे ये विपत्तियाँ या सायण

के अनुसार कुएं के ईंट (पर्शवः) मुझे सन्तप्त कर रहे हैं ।

संतरम् – क्रि.वि.। खूब अच्छी तरह से
रुरुशतं चित् सन्तरं सं शिशाधि
ऋ.

सन्तरुत्र – दुःखों से भली प्रकार तारने वाला
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रम्
ऋ. ३.१.१९; मै.सं. ४.१४.१५:२४.२.३

सन्तवीतवत् – (१) सन्तनोति (करता है, सम्पादन करता है। चलता है)। 'ततीत्वत्' धातु निपातन से सिद्ध है और सम्' उपसर्ग है । सम् + तवीत्वत्। धातु छः प्रकार के होते हैं प्रकृत्यन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङ् लुगन्त, ण्यन्त तथा ण्यन्त सन्नन्त ।
(२) सायण ने इसका अर्थ प्रबद्ध बलवान् सन् (अत्यन्त बलवान्) किया है ।

सनस्थानः – संग्राम में अच्छी प्रकर स्थिर होकर युद्ध करने वाला ।
संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके
ऋ. १०.४२.४; अ. २०.८९.४

सन्तस्थाने – सम् + तस्थाने । अच्छी प्रकार स्थित द्यावापृथिवी ।
सन्तस्थाने अजरे इत ऊती
ऋ. १०.३१.७

सन्त्य – (१) विवेक, प्रीतिपूर्वक विभाग, दान और वर्तमन् व्यवहार में कुशल पुरुष
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य
ऋ. ५.५१.३
(२) सन् + ति = सन्ति, सन्ति + यत् = सन्त्य, सन्तौ सनने । क्रिया से विभागे भवः स सन्त्यः अग्निः ।

अर्थ – अग्नि, (३) दान करने या पदार्थों का संविभाग करने में कुशल पुरुष
गार्हपत्येन सन्त्य
ऋतुना यज्ञनीरसि
ऋ. १.१५.१२
हे दान करने और उत्तम विद्या ऐश्वर्य आदि पदार्थों को विभाग या प्रदान करने में कुशल पुरुष तू गृहपति के पालन करने योग्य ऋतु से ही यज्ञ को सम्पादक करने वाले प्रमुख के लिए उत्तम व्यवहारों को सम्पादन कर और उत्तम विद्वानों को सुसंगत कर ।
(४) सत्यासत्यविवेकी श्रेष्ठ पुरुष
अग्ने विप्राय सन्त्य
ऋ. ३.२१.३; मै.सं. ४.१३.५:२०४.१२; का.सं. १६.२१; तै.ब्रा. ३.६.७.२; ऐ.ब्रा. २.१२.१२.

सन्यस् – धनों का परस्पर संविभाग करने वाले जनों के बीच न्यायानुकूल व्यवस्था करना
नव्यं कृणोसि सन्यसे पुराजान्
ऋ. ३.३१.१९

संददस्वान् – प्रदान करता हुआ
संददस्वान् रयिमस्मासु दीदिहि
ऋ. २.२.६; कौ.ब्रा. १९.९

संदधन्वे – संधान करता है, अर्थात् अपने को आश्वस्त करता है ।
संशम्येन मनसा दधन्वे
ऋ. ३.३१.१; नि. ३.४
अपुत्र पिता सुखीमन से (शम्येन मनसा) अपने को आश्वस्त करता है (संदधन्वे) ।

संदंश – कैंची के आकार से शाला में लगायी लकड़ी
संदंशानं पलदानाम्
अ. ९.३.५

संद्रव – इकट्ठा होना ।

संद्रवन्ति – साथ दौड़ते हैं । 'द्रु' धातु दौड़ने के अर्थ में प्रयुक्त है । 'द्रु' से ही 'दौड़ना' शब्द निकला है ।
यत्रानरः सं च वि च द्रवन्ति
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ :१८७.३; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१९
जिस संग्राम में मनुष्य एक साथ हो पृथक् भागते हैं ।

संधनाजित् – (१) उत्तम विभूति और ऐश्वर्यों को वश में करने वाला
वसुजिति गोजिति संधनाजिति
अ. १३.१.३७
(२) समस्त धनों को विजय करने वाला
गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित्
अ. ५.२०.३

सन्नत – एक दूसरे के अनुकूल
अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदः

वाज.सं. २६.१

सनता – द्वि.व., वि. । अच्छे विनययुक्त स्त्री पुरुष ।
साध्वपांसि सनता न उक्षिते
ऋ. २.३.६

संनति – उत्तम भक्ति भाव
सूनृत संनतिः क्षेमः
अ. ११.७.१३

सन्नद्धा – सम् + नह् + क्त + टाप् = सन्नद्धा । सम्यक् प्रकर से बांधी हुई । 'इषु' का विशेषण ।
गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूत
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.२; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. २.५; ९.१९
इषु (बाण) स्नायु श्लेष्या या ज्या से (गोभिः) सन्नद्ध है ।

सन्नय – सत् । + नय = सन्नय । (१) उत्तम रीति वाला, (२) उत्तम मार्ग से प्रजा को ले जाने वाला
स सन्नयः स विनयः पुरोहितः
ऋ. २.२४.९

सन्नहन् – सन्नद्ध करता हुआ । नाभि शब्द सन्नहन से बना है (नाभिः सन्नहनात्) क्योंकि नाभि गर्भ को सन्नद्ध करता है ।

सन्यस् – सभी वासनाओं य बन्धनों को त्यागना
नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे
ऋ. ८.२४.२६

स्कन्द – व्यापन
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्याम्
अ. १८.४.२८; वाज.सं. १३.५; तै.सं. ३.१.८.३; ४.२.८.२; ९.५; मै.सं. २.५.१०:६१.१४; ३.२.६; २३.१५४.८.९: ११८.१०; क.सं. १३.९; १६.१५; ३५.८; श.ब्रा. ७.४.१.२०; तै.आ. ६.६.१.

स्कन्ध – स्कन्धावार छावनी
मरुतां स्कन्धाः
वाज.सं. २५.६; मै.सं. ३.१५.६:१७९.७

स्कन्धस् – स्कन्दिर (गति और शोषण अर्थ में) + घञ् (कर्म में = स्कन्ध (द् क ध् पृषोदरादिवत्) । स्कन्धो वृक्षस्य समास्कन्नो भवति । अयमपि इतरः स्कन्ध । एतस्मादेव, आस्कन्नं काये (स्कन्ध वृक्ष में समाश्रित हो रहता है) । कन्धा अर्थ में प्रयुक्त स्कन्ध भी स्कन्दि धातु से ही बना है । क्योंकि वह भी शरीर में आश्लिष्ट रहत है । वेद में स्कन्ध शब्द के अन्त में स् पाया जाता है ।
अर्थ – (१) वृक्ष की शाखा, (२) कन्धा,
स्कन्धांसीव कुलिशेन विवृक्णा
ऋ. १.३२.५; मै.सं. ४.१२.३; १८५.१०; तै.ब्रा. २.५.४.३; नि. ६. १७
जैसे कुठार से बिलकुल छिन्न भिन्न वृक्ष की शाखाएं हों ।

स्कन्ध्या – कन्धे के चारों ओर निकलने वाली गण्डमाला
संयन्ति स्कन्ध्या अभि
अ. ६.२५.३

स्कन्न – स्कद् + क्त । अर्थ– (१) स्खलित हुआ, (२) परिणत हुआ,
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४
(३) प्रवाहित
यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुः
ऋ. १०.१७.१३
(४) प्रदत्तः दिया हुआ

स्तन – (१) स्तन, (२) मधुर शब्दमय उपदेश
यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूः
ऋ. १.१६४.४९; अ. ७.११.१; वाज.सं. ३८.५; मै.सं. ४.९.७:१२७.७; ४.१४.३: २१९.८; ऐ.ब्रा. १.२२.२; १४.२.१.१५; ९.४.२८; तै.आ. ४.८.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.७.६; ४.७.४
(३) ष्टन वन शब्दे । भ्वादि । माता का स्तन ।

स्तनथुः – गर्जन
सिंहस्य स्तनथोर्यथा
ऋ. ५.२१.६

स्तनयन् – गर्जता हुआ मेघ
स्तनयते स्वाहा
वाज.सं. २२.२६; तै.सं. ७.५.११.१; का.सं. (अश्व.) ५.२

स्तनयदमाः – (१) गरजते मेघ के सथ रहने वाले मरुद्गण, (२) अपने गृहों को उत्तम शब्दों से गुंजाने वाले विद्वान् ।
स्तनयदमा रभसा उदोजसः
ऋ. ५.५४.३

स्तनयन् – (१) गर्जन करता हुआ (२) माता के

स्तनों को उभाड़ता हुआ गर्भस्थ शिशु
वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या
अ. १.१२.१

स्तनाभ्रज् – स्तनों के द्वारा बच्चों को पालने वाली गौ या माता ।

स्पन्दन – (१) गति, चलना, (२) गोन्द, (३) किञ्चित् चलन
ओजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम्
ऋ. ३.५३.१९

स्पन्दना – लात मारने वाली गौ
स्थालीं गौरिव स्पन्दना
अ. ८.६.१७

स्यन्दयध्यै – आगे बढ़ने के लिए
दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै
ऋ. ४.२२.७

स्यन्द्र – जल
सद्यो यः स्यन्द्रो विसितो धवीयान्
ऋ. ६.१२.५
(२) चलनशील जंगम (३) गौ आदि पशु, (४) व्यय होने वाला धन (५) अश्वादि सैन्य
धनं न स्यन्द्रं बहुलं यो अस्मै
ऋ. १०.४२.५; अ. २०.८९.५
(६) शनैः शनैः आगे बढ़ने वाला, (७) धीरता युक्त गति वाला
ते स्यन्द्रासो नो क्षणो
अति ष्कन्दन्ति शर्वरीः
ऋ. ५.५२.३

स्यन्द्रा – द्वि.व.वि.। अश्विद्वय या स्त्री पुरुष का विशेषण (२) आगे बढ़ने में समर्थ स्त्री पुरुष

स्यन्द्रासः – ब.व.। प्रेरित करने वाले मरुत्
प्र स्यन्द्रासो धुनीनाम्
ऋ. ५.८७.३

स्यन्दमना – प्रवाह से या नदी रूप में बहने वाला जल
स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा
वाज.सं. २२.२५; तै.सं. ७.४.१३.१; का.सं. (अश्व.) ४.२.

स्यन्न – स्युद् + क्त + प् = स्यन्न । वेगवान् ।
स्यन्न अश्वा इवध्वनो विमोचने
ऋ. ५.५३.७

स्वतवाः (स्वतवस्) – स्वयं बलवान्
मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः
ऋ. १.१५९.२
स्तुतियोग्य और सबको अपनाने वाले स्नेहों से (हवीमभिः) स्वयं बलवान् (स्वतवः) और प्रति पूज्य मानता हूँ (महि) ।

स्वन् – (१) ध्वनि
यदि क्रोशमनु ष्वणि
ऋ. ६.४६.१४
(२) शब्दमय वेद
अव्ये जीरवधिष्वणि
ऋ. ९.६६.९

स्वनः – (१) सु + अनः = स्वनः । अर्थ–उत्तम चेतना या प्राण शक्ति का स्वामी आत्मा
दिवि स्वनो यतते भूम्यो परि
ऋ. १०.७५.३
(३) स्वन् + अच् = स्वनः ।
अर्थ – शब्द
न यो वराय मरुतामिव स्वनः
ऋ. १.१४३.५

स्वनय – (१) स्वयं अपनी आज्ञा से चलने वाला, (२) अपनी स्वायत्तनीति से शासन करने वाला सेनापति या राजा
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ताः
वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः
ऋ. १.१२६.३
स्वयं सबको अपनी आज्ञा से चलाने वाले सेनापति या राजा से (स्वनयेन) दिए हुए राष्ट्र को वहन करने वाली शक्तियों से युक्त (वधूयन्तः) दशों प्रकार केउत्तम बन्धुओं से युक्त (वधूमन्तः) रथों के समान अतिवेग से जाने वाले (श्यावा) रमण करने के सधन (रथासः) मुझे प्राप्त हों ।

सनर – सन् + अरन् + सनर । संभज्यमान- परस्पर बांट लेने योग्य स्थावर धन ।
द्रविणोदाः सनरस्य प्र यांसत्
ऋ. १.९६.८
वह ऐश्वर्यों का दाता परस्पर बंटने योग्य स्थावर धन हमें दे ।

सना – (१) उत्तम भोगों को देने और भोगने वाली स्त्री ।
सना अत्र युवतयः सयोनीः

ऋ. ३.१.६
(२) सनातन से चले आए धर्म
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः
ऋ. १.१७४.८
नए विद्वान् तुझे वे अनेकानेक सनातन से चले आए प्रजापालनकारी धर्मों का उपदेश करें ।

सनाजू – (१) सनातन काल से चला आता हुआ जीव (२) जीव सनातन जूः वेगः यस्य सः ।
अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवः ।
नि नव्यसीष्वरासु धावते ।
ऋ. १.१४१.५
जो जीव सनातन काल से चला आया (समाजुवः) पूर्व की माताओं को प्राप्त होकर (पूर्वाः) जिस प्रकार बीज रूप में स्थित होकर अनुकूल स्थिति में जन्म को प्राप्त होता है (अनु अरुहत) उसी प्रकार अवरा और अव की माताओं में भी नियम पूर्वक जन्म को प्राप्त होता है (निधावते) ।

सनात् – (१) चिरन्त न ।
सनादेव शीर्यते सनाभिः
ऋ. १.१६४.१३; अ. ९.९.११
वह चिरन्तन अक्ष (सनात् एव) समान नाभि या सदा एक सी नाभि वाला होने के कारण कभी शीर्ण नहीं होता (न शीर्यते) (२) पुराण पुरुष
अनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि
ऋ. ८.२१.१३; अ. २०.११४.१; साम. १.३९९; २.७३९
(३) अव्यय । अर्थ सदा, सनातन काल से
सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि
ऋ. २.२७.१; वाज.सं. ३४.५४; का.सं. ११.१२; नि. १२.३६

सनाभिः – (१) समान नाभि से उत्पन्न, सगोत्र
सन्तभिर्यश्च निष्टयः
ऋ. १०.१३३.५; अ. ६.६.३
(२) समान जन्म वाला, (३) सम्बन्धी
(४) सदा एक सी नाभिवाला
सनादेव न शीर्यते सनाभिः
ऋ. १.१६४.१३; अ. ९.९.११
(५) एक गर्भ से उत्पन्न, ज्ञाति
(६) स्वजातीय
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिः
अ. १.३०.१
(६) समान बन्धुता में बंधा हुआ
रथानां न येऽरा. सनाभयः
ऋ. १०.७८.४

सनायु – (१) सनातनस्य कर्मणः कर्ता इव य आचरति सः (सनातम कर्मों के कर्ता के समान आचरण करने वाला –दया.) ।
(२) सनातन से चला आता हुआ अनादि सिद्ध वेद के ज्ञान और कर्मों को करने वाला
सनायु वो नमसा नव्यो अर्कैः
सनातन से चलते आए, अनादि सिद्ध वेद के ज्ञान और कर्मों को करने वाले नर स्तुति करने योग्य है ।

सन्ताय्यमान – अच्छी प्रकार से विस्मृत किया गया, फैलाता हुआ
मैत्रः शरसि संताय्यमाने
वाज.सं. ३९.५

संदान – न.। (१) बन्धन, उत्तम बंधन
संदानं वो बृहस्पतिः
अ. ६.१०३.१
(२) घोड़े के पग आदि में बांधने के लिए उत्तम बन्धन आगाड़ पछाड़ (३) दान आदि करने का धन वैभव और दण्ड बल
यद् वाजिनो दाम संदानमर्वतः
ऋ. १.१६२.८; वाज.सं. २५.३१; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.१०; का.सं. (आश्व.) ६.४.
(४) उत्तम दान करने का नियन (४) दण्ड–भय,
(६) शिरो वेष्टन, मुकुट

संधा – (१) समस्त अंगों को जोड़ने वाली शक्ति,
(२) संधा नाम की ईश्वरी शक्ति
तत् संधा समदधान्महो
अ. ११.८.१५

संधाता – (१) मिलाने वाला, जोड़ने वाला
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुः
ऋ. ८.१.१२; अ. १४.२.४७; साम. १.२४४; मै.सं. ४.९.१२: १३४.१; पंच.ब्रा. ९.१०.१; तै.आ. ४.२०.१; का.श्रौ.सू. २५.५.३०; आप.मं.पा. १.७.१.
(२) सन्धि करा देने वाला

सनि – ऐश्वर्य
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि
ऋ. १.१००.१३

उसी को सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं । और उसी को सब प्रकार के धन
(२) धनप्राप्ति
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु
अ. १९.३१.१४
(३) योग्य ज्ञान और उचित श्रमानुसार वेतन पुरस्कार देने वाला, (४) कर्म फलों का दाता-परमेश्वर । अंग्रेजी का सूर्यवाचक sun शब्द भी सन् धातु से बना हुआ है । sun भी ऐश्वर्य दाता है ।
(५) स्त्री । सन् (प्राप्त करना) + इ = सनि । अर्थ-लाभ, प्राप्ति ।
गर्तारुगिव सनये धनानाम्
ऋ. १.१२४.७; नि. ३.५
जैसे पति के कुल का धन पाने के लिए दक्षिणात्य स्त्री गर्तनामक अक्ष निर्वापन स्थान पर चढ़ती है ।

सनित्र - परम श्रेष्ठ दान
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व
ऋ. ९.९७.२९

सनित्व - दान देने योग्य
वाजो विप्रेभिः सनित्वः
ऋ. ८.८१.८

सनिता - षण् + तृन् = सनित् । 'सनोति ददाति अस्यै इति सनिता ग्रहीता' ।
इसके लिए भाग देते हैं अतः यह सनिता अर्थात् भाग का ग्रहण करने वाला है । अर्थ-(१) बहनोई, (२) धन का भागी पुत्र,
चकार गर्भं सनितुर्निधानम्
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६
पालते पोसते बहनोई के गर्भ धारण योग्य लड़की को बनावे ।
(३) बांटने वाला, विभाग करने वाला -परमेश्वर ।
विप्रेभिरस्तु सनिता
ऋ. १.२७.९; साम. २.७६७
वह विप्रों द्वारा धन ऐश्वर्य का प्रजाओं में विभाग करने वाला है ।

सनितिः - (१) प्राप्ति ।
नरस्तोकस्य सवितौ
ऋ. १.८.६; अ. २०.७१.२
(२) योग, संविभाग, (३) लाभ (४) विद्या की शिक्षा
जो पुत्र पौत्रादि सन्तानों को प्राप्त करने में गृहस्थ बनकर रहते हैं ।

सनितुः निधानम् - उपभोक्ता अर्थात् पति के लिए गर्भधारण करने योग्य कन्या
चकार गर्भं सनितुर्निधानम्
ऋ. ३.३१.२

सनिष्ठा - उत्तम विभाजक, दानशील
स नो वृषन् सनिष्ठया
ऋ. ८.९२.१५

सनिष्णतः - क्रि. । भोग करो, दान करो
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत
श्रवष्यन्तः सनिष्णतः ।
ऋ. १.३१.५; अ. २०.७५.३
वे एक से बढ़कर एक या पृथक् पृथक अपनी समस्त समृद्धि को भोग करें एवं अन्न तथा ऐश्वर्य की वृद्धि की कामना करते हुए दान भी करें ।

सनिष्यदा आपः - विशेष वेग से बहने वाली जल धाराएं
शं ते सनिष्यदा आपः
अ. १९.२.१

सनिष्यन् - (१) जाने वाला, (२) सेवन करने की इच्छा वाला, (३) ज्ञान देने का इच्छुक विद्वान्
अत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे
ऋ. ३.२.३

सनिष्यु - (१) विभक्त करने वाली, (२) सुख ऐश्वर्य चाहने वाली
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः
ऋ. १.५६.२; ४.५५.६
(३) उत्तम रीति से भोग से योग्य ऐश्वर्य को चाहने वाला ।
(४) प्राप्त करने का इच्छुक
स्वः सनिष्यवः पृथक्
ऋ. १.१३१.२; अ. २०.७२.११
(५) दान देने की कामना वाला (६) ऐश्वर्य वेतन आदि का इच्छुक
इन्द्रं सनिष्युरूतये
ऋ. ८.६.४४
(७) स्वयं भोगने की कामना वाला

(८) वृत्ति देने वाला
मेधसाता सनिष्यतः
ऋ. ७.९४.६; साम. २.१५२; तै.सं. १.७.८.२

सनिस्रस – (१) पराक्रमी, (२) विक्रम से शत्रु पर चढ़ाई करने में चतुर
सनिस्रसो नामासि
अ. ५.६.४

सनिस्रसाक्षः – योगी जिसके अक्ष अर्थात् इन्द्रियों के वेग शान्त हो गए हैं ।
नमः सनिस्रसाक्षेभ्यः
अ. २.८.५

सन्दित – (१) बल से खण्डित, (२) थका मांदा, श्रान्त,
रथीरश्वं न सन्दितम्
ऋ. १.२५.३
जिस प्रकार रथी बल से खंडित थके मांदे अश्व को पुचकारता है ।
(३) अच्छी प्रकार से शत्रुओं को काटने वाला,
(४) न्यायपूर्वक विभाग करने वाला
बृहज्जालेन संदिताः
अ. ८.८.४
संदिताय स्वाहा
वाज.सं. २२.७; तै.सं. ७.१.१९.१; मै.सं. ३.१२.३:१६०.१४, का.सं. (अश्व.) १.१०
(५) बाधा गया, काटा गया ।–सा.
(६) तेजस्विता में बढ़ने वाला शत्रुबल–ज.दे.श.

सन्धि – (१) सन्धि कराने वाला अधिकारी, (२) सन्धानक्रिया
सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व
वाज.सं. १५.६; मै.सं. २.८.८:११२.६
(३) जोड़, मेल, सुलह
सन्धाता सन्धि मघवा पुरूवसुः
ऋ. ८.१.१२; अ. १४.२.४७; साम. १.२४४; पंच.ब्रा. ९.१०.१; का. श्रौ. २५.५.३०
(४) पर स्त्री गमन, (५) पर राष्ट्र से सन्धि
सन्धये जारम्
वाज.सं. ३०.९; तै.ब्रा. ३.४.१.४

स्वनिनः – मेघ के समान बरसने वाले मरुद्गण
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः
ऋ. ३.२६.५; तै.ब्रा. २.७.१२.४

संदृश् – (१) निष्पक्षपात, (२) उत्तम शासक
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्
वाज.सं. ३६.१९

सनीड – (१) समान आश्रम वाला, (२) समीप ।
(३) समानः नीडः सनीडः । एक ही आश्रम में जुड़ा हुआ

सनीडाः पितरः – (१) एक ही आश्रय स्थान में रहने वाले पितर
तत् ते संगत्य पितरः सनीडाः
अ. १८.२.२६
(२) समान लोक में रहने वाले पितर

स्वनीक – (१) सु + अनीक । सुन्दरा मुख वाला, सुमधुरभाषी (२) अग्नि
अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैः
ऋ. ६.१५.१६; तै.सं. ३.५.११.२; मै.सं. ४.१०.४:१५२.४; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. १.२८.२६; को.ब्रा. ९.२.
(३) उत्तम सैन्य का स्वामी
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे
ऋ. २.१.८

संनी – तय हो जाना, निःशेष हो जाना
यथर्णं संनयन्ति
अ. ६.४६.३; अ. १९.५७.१

सनुतः – अ. । (१) सदा,
आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु
ऋ. ६.४७.१३; १०.७७.६; १३१.७; अ.७.९२.१, २०.१२५.७; वाज.सं. २०.५२; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.५: १९१.७; का.सं. ८.१६: नि. ६.७
इन्द्र शत्रुओं को सदा दूर ही रखें पृथक् या नष्ट करें ।
(२) अन्तर्हित । इस दशा में 'सनुतः' सनुतत् शब्द के द्वितीया बहुवचन का यह रूप है ।
(३) कार्य और दल से
सनुतर्धेहि तं ततः
ऋ. ८.९७.३
सदा के लिए अर्थ में
यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत
ऋ. २.२९.२
देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः
ऋ. ६.५१.२

सनुत् – एक वचन । अन्तर्हित

सनुत्यः – (१) निश्चित रूप से छिपा हुआ ।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने
ऋ. ६.५.४; का.सं. ३५.१४ ; ऐ.ब्रा. १.१९.७; को.ब्रा. ८.४; आश्व. श्रो.सू ४.६.३; आप.श्रौ.सू. १४.२९.३;
यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुः
ऋ. २.३०.९
(२) चिरस्थायी
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य
वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम्
ऋ. ६.६२.१०

सनुत्री – उत्तम फलदायक
सिधा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीः
ऋ. १०.७.४
(२) यथा योग्य भोजन, मान आदर का वितरण करने वाली कुल वधू
जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री
ऋ. १.१२३.२
ऐश्वर्य अन्न एवं संग्राम को विजय करती हुई (वाजं जयन्ती) तथा यथा योग्य भोजन, मान और आदर का वितरण करती हुई (सनुत्री) कुलवधू या उषा.....

संदृक् – (१) संद्रष्टा, सम्यक् प्रविभागेन द्रष्टा (सम्यक् प्रकार से सब कुछ देखने वाला आदित्य) (२) विश्वकर्मा ।
(३) सम् + दृश् + क्विप्
धाता विधाता परमोत संदृक्
ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६;तै.सं. ४.६.२.१; ५.७.४.३; का.सं . १८.१; नि. १०.२६

संदृक्षसे – सम्यक् दृश्यसे (अच्छी तरह दीख पड़ता है । यहाँ 'यक्' का अभाव है और बाहुलक से 'सप्' हुआ है । तथा श् का क् और पुनः क् स् का क्ष हो गया है ।

सन्दृशि – सम्यक् दर्शनाम् (सम्यक् दर्शन के लिए) । यहां निमित्त अर्थ में सप्तमी है ।

संदृष्टि – (१) सम्यक् दृष्टि, (२) अपने प्रकाश से स्पष्ट दिखलाने वाला गुण
संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः
ऋ. २.४.४
(३) सम्यक् दर्शन ।
भद्रायान्ते रणयन्त संदृष्टौ
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६: २०६.१२; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२
वे स्तुत्य अग्नि या परमात्मा के सम्यक् दर्शन के लिए (भद्रायां संदृष्टौ) अपने को रमाते हैं (रणयन्त) ।
(४) सम्यक् दर्शन, यथार्थ तत्व ज्ञान
रण्वः सन्दृष्टौ वितुमां इव क्षयः
ऋ. १.१४४.७; १०.६४.११
यथार्थ तत्व ज्ञान में (संदृष्टौ) रमण करने वाला (रण्वः) होकर अन्न से भरापूरा गृह के समान (पितुमान क्षयः इव) सुख से आश्रय योग्य है ।
पुनः –
भद्राणां ते रणयन्ति संदृष्टौ
ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६: २०६.१२, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.२
वे भद्र संदर्शन में रमण करते हैं । अर्थात् उन्हें अभद्र के दर्शन नहीं होते ।

सनेमं – सम्भजेमहि । (सम्भाग करें, परस्पर बांटे) ।

सनेमि – (१) पुरातन (२) शीघ्र
सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः
ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२: १६२.११; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.५.२२ नि. १२.४४
पुरातन रोगों को (सनेमि अमीवाः) हम से (अस्मद्) दूर करें (युयवन्) ।
अथक,
रोगों को (अमीवाः) हम से (अस्मत्) शीघ्र (सनेमि) दूर करें (युयवन्) ।
(३) पहले से संगृहीत
(४) सनातन पुरातन–दया. ।
अभ्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे
सनेम्यभ्यं मरुतो जुनन्ति
ऋ. १.१६९.३
हे इन्द्र, वह तेरी प्रसिद्ध वज्रनाम की शक्ति जब मेघ के पास जाती है । तो मरुत भी हमारे लिए चिरसंचित जल बरसाने लगते हैं–यास्क।
हे विद्वान् , हमें आत्म ज्ञान देने वाली विद्या प्राप्त हो जिससे मनुष्य सनातन अजन्मा परमेश्वर को जानते हैं ।–दया.
यास्क ने इसका अर्थ 'शीघ्र ' किया है । 'सनेमि अमीवाः युयवन्' का अर्थ उन्होंने यों दिया है– 'पुराने रोगों को हटावें या दोनों को शीघ्र

हटावे' ।

सनेरू – द्वि.व. । ग्रहण करने वाले
घर्मेव मधु जठरे सनेरू
ऋ. १०.१०६.८

संदेश्यः – (१) सब देश में सर्वत्र समान भाव से रहने वाला
यः संदेश्यो वरुणो यो विदेश्यः
अ. ४.१६.८
(२) जिसका देह रूप देश जीर्ण हो गया है,
(३) जो आत्म ज्ञान का उत्तम रूप से उपदेश करता है ।
नमः संदेश्येभ्यः
अ. २.८.५

संदेश्यैनस – बड़ों के प्रति किया गया ताना, मजाक आदि पाप
संदेश्यादभिनिष्कृतात्
अ. १०.१.१२

सनोजा – अनादि, अजन्मा
सनोजा अनपच्युतः
ऋ. १०.२६.८

संतोदिनौ – मरणकाल में समस्त शरीर में व्यथा उत्पन्न करने वाले मन और जीव
अथो संतोदिनावुत
अ. ७.९५.३

स्तनौ – (१) दोनों स्तन
स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः
ऋ. २.३९.६

सप – सपति स्पृशति सुखपतीति सपः ।
अर्थ है– शप, पुरुषेन्द्रिय
सपःसपतेः स्पृशति कर्मणः (सप स्पर्शार्थक सप धातु से बना है) ।
सप से स्त्री भग का स्पर्श किया जाता है ।
वस्तुतः स्पर्श से सुखातिशय लक्षित है ।

सपत्नः – (१) शत्रु ।
यः सपत्नो योऽसपत्नः
अ. १.१९.४
(२) बराबर प्रभुत्व आदि रखने वाला शत्रु
सपत्नो यः पृतन्यति
अ. ६.७५.१; तै.ब्रा. ३.३.११.३; आप.श्रौ.सू. ३.१४.२.

सपत्न कर्शनः – शत्रुओं को जीतने वाला
अथो सपत्नकर्शनः
अ. ८.५.१२

सपत्न सपण – परायों के पदार्थों पर अपना प्रभुत्व चाहने वाले दुष्टों का विनाशक परमेश्वर
सपत्न क्षपणमसि
अ. २.१८.२
(२) शत्रुओं का नाशक
सपत्न क्षयणो मणिः
अ. १.२९.४

सपत्नक्षित् – शत्रुओं का नाशक
अनिशिताऽसि सपत्नक्षित्
वाज.सं. १.२९

सपत्नघ्नी – शत्रुओं का नाश करने वाली
असपत्ना सपत्नघ्नी
ऋ. १०.१५९.५; आप.मं.पा. १.१६.५

सपत्नचातन – शत्रुनाशकारी बल
सपत्नक्षयणमसि सपत्न चातनं मे दाः स्वाहा
अ. २.१८.२

सपत्नदम्भन – (१) शत्रुओं को मारने वाला, शत्रु नाशक
व्यग्ने सपत्नदम्भनम्
वाज.सं. ३.१८; तै.सं. १.१.१०.२; ५.५.४; ३.५.६.१; मै.सं. १.५ .२:६७.१४ च का.सं. ६.९; श.ब्रा. २.३.४.२१.

सपत्नदम्भानमणि – शत्रुनाशक यन्त्र, ताबीज
सपत्नदम्भनं मणिम्
अ. १०.६.२९

सपत्नसाही – शत्रुओं का नाश करने वाली
सिंह्यसि सपत्नसाही
वाज.सं. ५.१०; का.सं. २.९; २५.६; श.ब्रा. ३.५.१.३३;३६

सपति – (१) सप् धातु स्पर्श अर्थ में आया है । 'षप्' समवाये अर्थात 'षप्' धातु समवाय, सम्बन्ध या स्पर्श अर्थों में आया है ।

सपत्नी – समानी पत्नी, सपत्नी, सौत ।
संमा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शतः
ऋ. १.१०५.८; १०,३३,२; नि. ४.६

स्नपनी – स्नान करने योग्य जल
आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्तु
अ. १४.१.३९; आप.मं.पा. १.१.७.

सपत्नी – समान रूप से पति पत्नी होकर रहने

वाले
वृष्णे सपत्नी शुचये सुबन्धू
ऋ. ३.१.१०

सपन्ता – द्वि.व. । प्राप्त करते हुए ।
ऋतमृतेन सपन्ता
ऋ. ५.६८.४; साम. २.८१.१६.

सपर्यतः – अभिनन्दित करते हैं । पूजा करते हैं ।
श्रवो नृम्णं च रोदती सपर्यतः
ऋ. १०.५०.१; वाज.सं. ३३.२३; नि. ११.९
जिस इन्द्र का यश, सैन्यबल को द्यौ और पृथिवी (रोदसी) अभिनन्दित करती है ।

सपर्य – सेवा करना ।

सपर्यन् – पूजयन् । 'सपर' धातु पूजनार्थक है । सपर् + शतृ = सपर्यन् (यक् प्रत्यय) ।
हे पुत्रोत्पादन समर्थ रेतस् को धारण करने वाले जामाता की पूजा करता हुआ (सपर्यन्) कन्या का पिता.....

सपर्युः – उत्तम सपर्या, सेवा या प्रतिष्ठा चाहने वाला
सपर्येम सपर्यवः
ऋ. २.६.३

सपर्यू – द्वि.च. । दो उत्तम सेवक या स्त्रीपुरुष ।
आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि
ऋ. ३.५०.२

सपर्येण्यः – पूजा, उपासना, सत्कार सेवा करने के योग्य
सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निः
ऋ. ६.१.६; मै.सं. ४.१३.६; २०६.१५; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.३

सप्तर्षि – (१) सात प्राण–दो कान (गौतम् और भरद्वाज) दो चक्षु (विश्वामित्र और जमदग्नि), दो नासिका (वसिष्ठ और कश्यप) और मुख (अत्रि)
तदासत ऋषयः सप्त साकम्
अ. १०.८.९

सप्तन (सप्त) – सप्लृ + क्त = सप्त । सप्त सप्ता संख्या (सप्त प्रवृद्ध या उपरिगत संख्या है) ।

अर्थ – (१) सात अंक, (२) सूर्य की सात किरणें जिन्हें सूर्य के अश्व भी कहे जाते हैं । (३) सप्त ऋषिः (४) सप्तस्तोत्र
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम्
ऋ. १.१६४.२; अ. ९.९.२.; १३.३.१८; तै.आ. ३.११.८; नि. ४.२७
एक चक्र वाले रथ रूपी सूर्य में सात किरण रूपी अश्व जुड़ते हैं । लैटिन में sept सप्त का वाचक है और फारसी में 'हप्ल' इसी सप्त का अपभ्रंश है ।

सप्तअर्धगर्भाः – (१) ज्ञान या सर्पण करने वाले या व्यापने वाले किरण जो अर्ध अर्थात् समृद्धतम जलांश को अपने भीतर ग्रहण करते हैं । (२) अपने से अधिक शक्तिमान परमेश्वर के बल ऐश्वर्य के भीतर धारण करने वाले सातो तत्व–महत् , अहंकार और पांच सूक्ष्मभूत
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः
विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि
ऋ. १.१६४.३६; अ. ९.१०.१७; नि. १४.२१

सप्तअश्वाः – (१) शब्दों का भोग करने वाला सात सर्पण शील प्राण, (२) सूर्य की सात किरणें ।
सप्तचक्रं सप्तवहन्त्यश्वः
ऋ. १.१६४.३; अ. ९.९.३

सप्त आदित्याः – (१) सात–ऋतु (२) सात सूर्य, (३) भूमि के सात रक्षक, (४) राजा के सात सचिव
देवा आदित्या ये सप्त
ऋ. ९.११४.३; तै.आ. १.७.५

सप्त आपः – (१) सर्पणशील, (२) शरण में प्राप्त प्रजाएं
अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुः ।
ऋ. ८.९६.१

सप्तऋषयः – ऋषि शब्द का अर्थ रश्मि भी है । निरुक्त में सप्त ऋषीन् ' का अर्थ सप्त ऋषीणानि ज्योतींषि (सात ज्योतियों को) किया है । ऋषी (गत्यर्थक) + कीनन् = ऋषीया । ज्योतिस् रस का आकर्षण करता है । रसाकर्षण भी एक प्रकार की गति ही है ।
अर्थ – (१) सूर्य की सात रश्मियां–आधिभौतिक अर्थ (२) शरीर की सात इन्द्रियाँ आध्यात्मिक अर्थ
सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७
सातर श्मियां सूर्य के शरीर में निहित हैं ।
अत्रासत ऋषयः सप्त साकम्

नि. १२.३८
(३) सात प्रसिद्ध ऋषि जिन्हें सप्तर्षि कहते हैं। ये ऋषि हैं- गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि।
(४) मन सहित ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि भी सप्त ऋषि है।
(५) शतपथ ब्राह्मण ने दो कान, दो आंख, दो नाक और जिह्वा को सप्तर्षि कहा है। गौतम कर्मेन्द्रिय है। ज्ञान को भली भांति धारण करने से भरद्वाज है, विश्वामित्र चक्षु, जम दग्नि, नेत्र हैं जिससे ज्योति चमकती है। दूसरी आंख प्राणसंचार का मार्ग नासिका है। अतः वसिष्ठ का अर्थ नाक है। प्राण के संचार का मार्ग नासिका है और दूसरी नासिका कश्यप है। मुख अत्रि है (अत्रि इति अत्रिः)।
(४) त्वक् चक्षुः श्रवण रसन घ्राण मनो बुद्धि लक्षणाः इति महीधरः।
महीधर के अनुसार सप्तर्षि है-त्वक्, चक्षु, श्रवण, रसना, घ्राण, मन और बुद्धि।
(५) विषयों को दिखलाने वाले पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि
(६) षडिन्द्रियाणि मनः सप्त भाजि-उवट
(७) सर्पणशील दूर तक वेग से जाने वाली दृष्टि या अस्त्रशस्त्र
(८) सात प्रकार के आयुध
(९) सात प्रकार के दर्शन
(१०)सात प्राणों की सात प्रकार की शक्तियाँ
सप्तानां सप्त ऋषयः
ऋ. ८.२८.५

सप्तऋषिवान् - सप्तऋषियों से युक्त विश्वकर्मा
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिः वन्तमृच्छन्तु
अ. १९.१८.७

सप्त ऋषीन् परः - सातों दर्शनकारी इन्द्रियों को अतिक्रमण कर उनसे भी परे- विश्वकर्मा प्रभु
यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः
ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; मै.सं. २.१०.३: १३४.४; नि. १०. २६

सप्तऋषीन् पर एकः - (१) सात या गति शील रश्मियों से परे एक आदित्य, (२) इन्द्रियों से परे क्षेत्रज्ञ आत्मा।
यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः

सप्तकारवः - (१) सात क्रियाशील प्राण, (२) सूर्य की सात किरण
दिव इत्था जीजवत् सप्त कारून्
ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३
काली कराली च मनो जवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा
स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी
निलायमाणा इति सप्तजिह्वा
मुण्डक

सप्तखानि - सात इन्द्रियाँ
कः सप्तखानि वि ततर्द शीर्षाणि
अ. १०.२.६

सप्त ग्राम्या पशवः - गाँव के सात पशु-गौ, बकरी, भेड़, हाथी, गधा, अश्व और ऊंट।
ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपाः
तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु
अ. ३.१०.६;
आप.श्रौ.सू. ६.५.७; साम.मं.ब्रा. २.२.१४; हि.गृ.सू. २.१७.२

सप्तगुः - (१) एक वैदिक ऋषि, (२) सात रश्मियों या सात प्राणों वाला आत्मा
प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधाम्
ऋ. १०.४७.६

सप्तगृध्राः - (१) सात गृध्र, (२) विषयों की आकांक्षा करने वाले इन्द्रियगण
सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम्
अ. ८.९.१८

सप्तचक्र - (१) सर्पणशील, विषयों तक गति करने वाले इन्द्रियों से युक्त देह, (२) अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र और मुहूर्तरूप काल के सात चक्र
सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः
ऋ. १.१६४.३; अ.९.९.३
(३) सात ऋतुरूपी चक्रों से युक्त (४) सात धातुओं के चक्र अर्थात् उत्पन्न होने और बदलते रहने की क्रिया से युक्त देह।
सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्
ऋ. २.४०.३; मै.सं. ४.१४.१: २१५.१; तै.ब्रा. २.८.१.५
(४) सूर्य के साथ ग्रह

(५) सात मूर्धन्य प्राणों का चक्र या समूह
प्रथमे अन्य उपरे विचक्षणम्
(६) मूल अधिष्ठान, नाभि, मणिपुर, आज्ञा, सोम, सहस्र दलवाला सात चक्र
(७) मन सहित छः इन्द्रिय रूप सात अरों से युक्त शरीर

सप्तचक्राः – (१) सात या सर्पणशील चक्र या (२) गतिशील कर्ता रूप जीव, (३) निरन्तर लौटकर आने वाली सात ऋतुएं
सप्त चक्रान् वहति काल एषः
अ. १९.५३.२

सप्तजाताः – (१) सात प्रकार के उत्पात (२) सामने की दिशा में जहाँ शत्रु हो उस दिशा को छोड़ शेष सात दिशाओं में सात महास्त्रों की योजना
सप्त जातान् न्यर्बुदे
उदाराणां समीक्षयन्
अ. ११.९.६

सप्तजामयः – (१) सात बन्धुजन, (२) समवाय या संघ बुनाकर रहने वाले
होतारः सप्तजामयः
ऋ. ९.१०.७

सप्ततन्तवः – (१) सात तन्तु, (२) देह के घटक साथ धातु, (३) सात सोम और पाक यज्ञ
(४) सात प्राणमय तन्तु–सात प्राण, (५) सात प्राकृतिक विकार – पंचभूत महान् और अहंकार ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्
ऋ. १.१६४.५; अ. ९.९.६

सप्तति – सत्तर
आ षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम्
ऋ. २.१८.५

सप्ततिश्चसप्त – (१) सतहत्तर नाड़ियाँ या तन्तु केन्द्र
अधीन्वत्र सप्ततिं च सप्त च
ऋ. १०.९३.१५

सप्ततन्तुः – (१) सात छन्दों या शीर्षण्य प्राणों से करने योग्य यज्ञ
पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्
ऋ. १०.५२.४; १२४.१
(२) सात प्राणों या
देह धारक सात धातुओं वाला शरीर

सप्तथः – (१) सर्वव्यापक (२) षट् विकारों से अतिरिक्त सातवाँ प्रभु
भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः
ऋ. १०.९९.२
(३) सातवां
(४) मुख्य प्राण

सप्तथी – (१) आगे बढ़ने वाली (२) छः मनसहित ज्ञानेन्द्रियों के बीच सातवीं वाणी (३) सरस्वती नदी
सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता
ऋ. ७.३६६

सप्तदश – (१) शुक्रग्रह से उत्पन्न सप्तदश स्तोम, (२) सप्तदश अंगों वाला राज्य और उस पर स्थित राजा (३) सप्त दश नामक आत्मा
शुक्रात् सप्तदशः
वाज.सं. १३.५६

सप्तदशाक्षर – (१) सोलह कलाएं तथा सत्रहवीं ब्रह्मकला (२) राजा के सोलह अमात्य और अपनी मति (३) प्रजापति की सत्रह शक्तियाँ
प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण
सप्तदशं स्तोममुदजयत्
वाज.सं. ९.३४; तै.सं. १.७.११.२; श.ब्रा. ५.२.२.१७

सप्तदानवः – (१) सात सर्पणशील दानव या मेघ–सा.
(२) सातज्ञान प्रदाता इन्द्रियाँ–ज.दे.श.
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्
ऋ. १०.१२०.६; अ. २०.१०७.९; नि. ११.२१.
जो परमात्मा इन्द्र बल से सात सर्पण शील दानवों या मेघों को मारता या विदीर्ण करता है । –सा. ।
जो परमात्मा बल से सात ज्ञान प्रदाता इन्द्रियों को (सप्तदानून्) पराभूत करता है (आदर्षते) ।

सप्तद्याव – सूर्य की सात किरणें
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारून्
ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३

सप्तदिशः – (१) सात दिशाएं, (२) सात आदेश करने वाले
सप्त दिशो नाना सूर्याः
ऋ. ९.११४.३; तै.आ. १.७.४

सप्तदीक्षाः – (१) सात दीक्षाएं–नियत कर्म या ज्ञान–साधन के सामर्थ्य
सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः

अ. ८.९.१७

सप्तद्युम्नानि – (१) फैलाने वाले धन और यश, (२) सात प्रकार के धन, (३) सात प्रकार के शारीरिक तेज

सप्तद्युम्नान्येषाम्

ऋ. ८.२८.५

सप्तदेवीः आपः – (१) सर्पणशील निरन्तर गति करने वाली तेजोमय प्रकाशमय, ज्ञानस्वभाव प्राप्त करने योग्य ज्ञान धाराएं ।

(२) सात ज्ञान धाराएं (३) सात शीर्षण्य प्राण

आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीः

अ. ७.११२.१; १४.२.४५

सप्तदोहाः – (१) सात उदर पूर्ति करने वाले अन्न, (२) सर्पणस्वभाव वाले गतिमान् अन्न प्रदाता जीवन के पूरक सूर्य, पर्जन्य पृथ्वी, अन्न वायु, आदि

(३) सात अन्न-अन्न, हुत और अहुत, दुग्ध, मन, वाणी, और प्राण । हुत अहुत दोनों देवों के लिए दुग्ध, पशु और मनुष्यों के लिए, मन, वाणी और प्राण आत्मा के लिए ।

सप्तधातु – (१) रक्त, मेदस, मांस, अस्थि, वसा, मज्जा और शुक्र-इन सातों से धारण करने योग्य सारस्वती -वाणी ।

(२) सात छन्दों से धारण करने योग्य वेदवाणी ।

त्रिषधस्था सप्तधातुः

ऋ. ६.६१.१२

सप्तधाम – (१) सृष्टि के सात मूल कारण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, विराट् परमाणु और प्रकृति ।

(२) राजा के पक्ष में स्वामी अमात्य, सुहृत्, दुर्ग राष्ट्र. कोष और बल

अतो देवा अवन्तु नः

यतो विष्णुर्विचक्रमे

पृथिव्याः सप्त धामभिः ।

ऋ. १.२२.१६;

सप्तधामानि – (१) सातों जगत के धारक सामर्थ्य, लोक, या प्राण

यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम्

ऋ. ९.१०२.२; साम. २.३६४.

सप्तधीतयः – (१) सात छन्दोमयी वेद की वाणियां

(२) सात प्रकृतियाँ

हिन्वन्ति सप्त धीतय

ऋ. ९.८.४; साम. २.५३१

सप्तधेनवः – (१) सात रस पान कराने वाली सात इन्द्रियाँ

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे

ऋ. ९.७०.१; साम. १.५६०; २.७७३

(२) सात छन्दोमयी वाणियाँ

सप्तनामा – (१) सप्तस्तुतिः सप्तपुत्र इत्येवमादीनि सप्तसंख्याकानि नामानि स्तुतयो यस्य भवन्ति (सात स्तुतियों वाला, सात पुत्रों वाला आदि जिनके सात नाम या स्तुतियाँ हैं वे सप्तनामा आदित्य हैं) ।

(२) सात रश्मियों के मेल से बनी हुई एक श्वेत रश्मि जो सूर्य को खींचती हैं-दया. (३) सात रश्मियाँ इसके लिए रसों को झुकाती हैं । (सप्तास्मै रश्मयो रसान् अभिसन्नामयन्ति) ।

(४) सप्तर्षि या सूर्य की सात किरणें मानों सूर्य की स्तुति करती हैं । सप्तन् + नम् (णिजन्त) + कनिन् = सप्तनामन् ।

(५) (एकः अश्वः) सात किरणों से युक्त सात नामों वाला सूर्यरूपी अश्व ।

एको अश्वो वहति सप्तनामा

ऋ. १.१६४.२; अ. ९.९.२; १३.३.१८; तै.आ. ३.११.९; नि. ४.२७

यही एक आदित्य सात किरणों के कारण सात नामों से चलते हैं ।

सात रश्मियों के मेल से बनी एक श्वेत रश्मि ही सूर्य को खींचती हैं । - दया.

(६) सातों नामों को धारण करने वाला सर्पणशील ऋतुओं को नमाने वाला संवत्सर

(७) समस्त सर्पणशील प्राणों का नमन करने वाला-आत्मा (८) परमेश्वर

सप्तनामाअश्वः – (१) सात यन्त्रों को झुकाने या अपने अधीन चलाने वाला, (२) सात प्राण रूप अश्वों के नामों वाला एक आत्मा (३) सात ग्रहों को धारण करने वाला व्यापक सूर्य, (४) पुत्रों के प्रति माता के समान अमृत रस पान करने के लिए झुकाने वाला सप्तनामा परमेश्वर (५) मलमास सहित सात ऋतुओं को नमाने वाला या परिणाम रूप से उत्पन्न करने वाला

प्रजापति

सप्तपद – (१) सातवां पद । (२) सखा होने के सात डेग (३) इष्, ऊर्ज, रायस्पोष, मायो भव्य, प्रजा, ऋतु और सख्यभाव–पारस्कर गृह्यसूत्र

मध्वः पीत्वा सचेवहि

त्रिः सप्त सख्युः पदे ।

ऋ. ८.६९.७; २०.९२.४

सप्तपदः सखा – (१) सात डेग चलकर बना मित्र, (२) सात शीर्षण्य प्राणों रूप ज्ञान साधनों द्वारा ज्ञान करने योग्य

युज्यो मे सप्तपदः सखास्मि

अ. ५.११.९

सप्तपदी – (१) सर्पणशील चरण वाली अन्तरिक्षस्थ गौ रूप मेघ (२) जनों से बसी भूमि

ऊर्जं सप्तपदीमरिः

ऋ. ८.७२.१६

सप्तपरावतः – (१) सात अधस्तन प्राण

सप्त विद्यात् परावतः

अ. १०.१०.२; गो.ब्रा. १.२.१६

सप्तपरिधयः – (१) आत्मा, चेतन की सात परिधियाँ (२) ब्रह्मा की सात परिधियां । ब्रह्माण्ड में जितने लोक हैं उनके ऊपर सात सात आवरण हैं । जैसे समुद्र, त्रसरेणु, मेघमण्डल अथवा वहां का वायु, वृष्टि जल । उसके ऊपर वायु, अत्यन्त सूक्ष्म धनञ्जय वायु और सूत्रात्मा वायु । (३) यज्ञ की सात परिधियाँ–ऐहिक आहवनीय की तीन, उत्तरवेदी की तीन और आदित्य

सप्तास्यासन् परिधयः

ऋ. १०.९०.१५; अ. १९.६.१५; वाज.सं. ३.१२.३

(४) सात परिधियाँ (५) सात छन्द (६) धारण सामर्थ्य (७) साथ शीर्षण्य प्राण (८) शरीर की सात धातुएं (९) घेरने वाले सात पदार्थ

सप्तप्रदिशः – (१) सातों लोक

वाजो नः सप्त प्रदिशः

वाज.सं. १८.३२; तै.सं. ४.७.१२.१; मै.सं. २.१२.१: १४४.६; का.सं. १८.१३

(२) सात प्रकृतियाँ (३) सात अमात्य,

सप्त प्रवत आ दिवम्

ऋ. ९.५४.२; सम. २.१०६

(४) अधीनस्थ नीचे की सात प्रकृतियाँ

सप्त प्रति प्रवत आशयानम्

ऋ. ४.१९.३

(५) सात उपरिचर प्राण

यो विद्यात् सप्त प्रवतः

अ. १०.१०.२; गो.ब्रा. १.२.१६

सप्त प्राणाः – (१) सात प्राण जो मूर्ध स्थान से रहते हैं ।

सप्त प्राणानष्टौ मन्यः

अ. २.१२.७

सप्तप्रियासः – (१) सात प्रकृति विकृति जो परमेश्वर के बल से सृष्टि उत्पन्न करते हैं । (२) पांच प्राण, मन और वाक–दया. ।

(४) सात प्रिय प्रकृति वाले अमात्य ।

सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे

अ. ४.१.१२

सप्तपुत्रः – (१) सर्पणशील रश्मिरूपी पुत्रों से युक्त आदित्य

अत्रापश्यं विश्पतिं सप्त पुत्रम्

ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; नि. ४.२१.

प्रजाओं के पालक के रूप सर्पणशील रश्मि रूप पुत्रों से युक्त आदित्य को देखा ।

(२) सर्पणशील पुम् अर्थात् जीवों और लोकों का त्राण करने वाला–परमेश्वर

(३) सर्पणशील लोकों का प्रजापति (४) सात रश्मियों से युक्त

(५) सात मरुद्गणों से युक्त (६) सात ग्रहों या लोकों से युक्त (७) सातों प्रकार के तत्वों से उत्पन्न प्रजापालक का सूर्य –दया.

(८) सप्तरश्मिरूप पुत्रों वाला सूर्य– आदित्य

(९) स्वामी दयान्द ने सप्तविधैः तत्वै जातम् लिखते हुए सूर्य की उत्पत्ति सात तत्वों से मानी है ।

(१०) अथवा सप्तम पुत्र होने से सूर्य 'सप्तपुत्र' कहलाता है । (११) सोम, मंगल आदि वारों में आदित्य सातवां वार है ।

(१२) अथवा सूर्य की रश्मियाँ सप्त अर्थात् सर्पणशील हैं, अतः यह सप्तपुत्र हैं ।

(१३) सर्पणशील पुम् अर्थात् जीवों और लोगों का त्राण करना, (१४) सर्पणशील लोकों का प्रजापति

(१५) सात मरुद्गणों, रश्मियों या लोकों से युक्त

सप्तपुत्रः विश्पतिः – (१) सात पुत्रों वाला प्रजा का

स्वामी, शिरोगत सात मूर्धन्य प्राणों को धारण करने वाला और शरीर के भीतर प्रविष्ट सब अंगों का पालन करने वाला आत्मा, (३) सबमें व्याप्त अग्नितत्व एवं सर्पणशील रश्मियों को पुत्रवत् उत्पन्न करने वाला प्रजा पालक सूर्य, (४) सप्त प्राणों का पिता प्रजापति परमेश्वर
अत्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; नि. ४.२१.

सप्तपुत्रासः – (१) सात ग्रहों के रूप में अखण्ड प्रकति के सात तत्व
सप्तभिः पुत्रैरदितिः
उपप्रैत् पूर्व्यं युगम्
ऋ. १०.७२.९; तै.आ. १.१३.३
(२) सात सर्पणशील प्राणगण
सप्त क्षरानी शिशवे मरुत्वते
पित्रे पुत्रासो अप्यवी वृतन्नृतानि
ऋ. १०.१३.५; अ. ७.५७.२

सप्तपुरः – (१) विस्तृत नगरियाँ –दया.
(२) विस्तृत मेघ–सा. ।
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त्
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
यतः तू सात वर्षों तक (सप्त शारदीः मेघ से पुरों को (पुरः) मनुष्यों की कल्याण–कामना से दीर्घ करता है (दर्त्)–सा.।
शरद् आदि छः ऋतुओं के अनुकूल (शारदीः) विस्तृत प्रयत्न साध्य नगरियों को (सप्तयत् पुरः) सुखप्रद (शर्म दर्त्) बनाइये–दया. ।

सप्तपृक्षासः – (१) देश से देशान्तर में भ्रमण करने वाले प्रेम–संपर्क के योग्य विद्वान् पुरुष (२) जल वर्षा करने वाले मेघ
सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति
ऋ. ३.४.७

सप्तमधूनि – (१) सातमधु, (२) सात शीर्षण्य प्राण
मधूनि सप्त ऋतवो ह सप्त
अ. ८.९.१८
(२) शासन कारिणी ब्रह्मशक्ति के सात मधु हैं– ब्राह्मण, राजा, धेनु, अनड्वा, व्रीहि, यव और मधु ।
यो वै कशायाः सप्त मधूनि
वेद मधुमान् भवति
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चा नड्वाँश्च
व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ।
अ. ९.१.२२

सप्तमर्यादाः – (१) वेद में निर्दिष्ट सात पाप जैसे स्तेय (चोरी), तल्यारोहण (पर स्त्रीगमन या गुरु पत्नी गमन), ब्रह्महत्या, भ्रूण हत्या, सुरापान, दुष्कृत पुनः पुनः करना तथा उसे छिपाना,
सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः
ऋ. १०.५.६; अ. ५.१.६; नि. ६.२७
(२) मर्य + अद = मर्याद् । मनुष्य को खा जाने वाला या नाश करने वाला पदार्थ (३) सात मर्यादाएं
पानमक्षाः स्त्रिये मृगया दण्डः
पारुष्यमन्य दूषणम् इति सप्त मर्यादाः ।
यद्वा,
स्तेयं गुरुतल्यारोहण ब्रह्महत्या सुरापानम् ।
दुष्कृत कर्मणः पुनः पुनः सेवनम् पातके अनतोद्यमिति– निरुक्त

सप्तमाता – (१) सर्पणशील अनेक जन्तुओं की माता पृथिवी, (२) सात पदार्थों का निर्माण करने वाली दक्षिणी
ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम्
ऋ. १०.१०७.४

सप्तमाता दक्षिणा – (१) सातों प्रकार के अन्नों वाली, (२) सात निर्मात्री पदार्थों वाली अथवा (३) सात धातुओं वाली दक्षिणा रूप पृथिवी ।
ते दुहते दक्षिणां सप्तमातरम्
अ. १८.४.२९

सप्तमातृसिन्धु – पृथिवी, अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत्, उदक, आकाश आदि सात सूक्ष्म तत्वों से उत्पन्न होने वाली नदी
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिः
ऋ. १.३४.८
हे सूर्य या वायु या चन्द्रमा, रथी सारथि के समान तुम दोनों सात सूक्ष्म तत्वों से उत्पन्न होने वाले नदियों के समान निरन्तर ।

सप्तमानुषः – (१) अग्नि, (२) जीवन रूप से मनुष्य के सात प्राणों में विद्यमान अग्नितत्व (३) सात मननशील विद्वानों के बीच स्वयं आठवां होकर रहने वाला तेजस्वी अग्रणी राजा
यो अग्निः सप्तमानुषः
ऋ. ८.३९.८

सप्तमेधाः – अन्नं मेधः । मेधाये त्यन्नायेत्येतत्–
श.ब्रा.
अर्थ– सात अन्न ।
अन्न, हुत, प्रहुत, मन, वाक् और प्राण ये सात मेध या अन्न हैं, क्योंकि इन्हें प्रजापति ने अपनी मेधा से उत्पन्न किया ।
सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन्
अ. १२.३.१६

सप्तयह्वीः – (१) सात बड़ी पूज्य माताएं माता, माता की बहन, बड़ी बहन, पिता की बड़ी बहन, भाई की स्त्री, पिता के बड़े और छोटे भाइयों की स्त्री ये मातृ तुल्य हैं ।
(२) सर्पणशील जलधारा (३) बड़ी बड़ी शक्तियाँ (४) राष्ट्र की सात प्रकृतियां–स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोश, राष्ट्र दुर्ग और सैन्य
(५) प्रकृति का विकार करने वाली सातों महती शक्तियाँ (६) सातों छन्दोमयी वाणियाँ
अवर्धयन् सुभगं सप्त यह्वीः
श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा
ऋ. ३.१.४

सप्तयह्वीः हरितः – (१) सात महती दिशाएं, (२) सात महती अन्धकार नाशक किरणें, (३) सात पुत्र वत् सात मनुष्य प्रजाएं–चार आश्रम और तीन वर्णों या चार वर्ण और तीन आश्रम सात प्रकृति हैं ।
(४) राजनीति की सात प्रकृतियां, (५) सात दिशाओं या द्वीपों के वासी प्रजागण
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः
ऋ. ४.१३.३

सप्तरत्न – सात प्रकार के रत्न
दमे दमे सप्त रत्ना दधाना
ऋ. ६.७४.१; अ. ७.२९.१; तै.सं. १.८.२२.१; मै.सं. ४.१०.१: १४२.६; ४.११.२: १६५.१०; का.स ४.१६; ११.१२; शां.श्रौ.सू. २.४.३

सप्तरत्ना – (१) गौ पशु आदि घर में रहने वाले पशु–सा.
(२) सात रमण करने योग्य शक्तियां
(३) सात प्रकार की उत्तम प्रकाश युक्त किरणें, (४) सात प्रकार की ज्वालाएं, (५) सात प्रकार के रमणीय रत्न–अन्न आदि, (६) ऐश्वर्य आदि सात रत्न
दमे दमे सप्त रत्ना दधानः
ऋ. ५.१.५; तै.सं. ४.१.३.४; मै.सं. २.७.३: ७७.१८; का.सं. १६.३

सप्तरश्मया – (१) सूर्य की सात रश्मियाँ (२) शरीर गत सातः प्राण
अमी ये सप्त रश्मयः
तत्रा मे नाभिरातता
ऋ. १.१०५.९
ये जो सात निरन्तर गति करने वाले दीपक या सूर्य किरणों के समान फैलने वाले और अश्व के रासों के समान देह को वश करने वाले सात प्राण हैं उनके आश्रय पर मेरी नाभि देह का केन्द्र स्थान व्याप्त है (नाभिः आतता) ।
सप्त सूर्यस्य रश्मयः
अ. ७.१०७.१
(३) सात लगामों से युक्त (४) ऋतु रूप सात रस्सों वाला काल, (५) शरीर के घटक सात धातुओं वाला, (६) शिरोभाग (७) ज्ञान मय परमेश्वर के सात छन्द
कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः
अ. १९.५३.१
(८) सात बन्धनों से बद्ध शरीर
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्
ऋ. १०.८.८
(९) रथ जिसमें सात चमकने वाले दीपक हों (१०) वश करने की सात रस्सियों वाला रथ (११) सात वश करने के साधन (१२) मूर्धागत सात प्राणों से युक्त सात रश्मियां (१३) सप्तलोकों का शासक परमेश्वर

सप्तर्तवः – (१) सात ऋतु, (२) सात शीर्षण्य प्राण
मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त
अ. ८.९.१८

सप्तर्षयः – (१) सात ऋषि–विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप (२) अध्यात्मा शिरो भाग में विद्यमान दो कान दोनों भरद्वाज, दोनों आंखें विश्वामित्र और जमदग्नि, दोनों नासिकाएं वसिष्ठ और कश्यप और वाक् अत्रि हैं ।
तथा सप्तऋषयो विदुः
अ. ४.११.९

सप्तरात्र – (१) सात दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ

षोडशी सप्तरात्रश्च
अ. ११.७.११

सप्तवध्रिः – (१) सातों प्राणों को शिथिल या दमन करने वाला–विद्वान्
प्र सप्तवध्रिराशसा
धारामग्ने रशायत
ऋ. ८.७३.९
(२) सातों को निर्बल कर अपने वश करने वाला जीव
ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये
ऋ. १०.३९.९
(३) योद्धा जिसके अश्व सर्पणशील हों, रथी पुरुष (४) सात घोड़ों अर्थात् इन्द्रियों का वशी, अविकलांग, स्वस्थ, नीरोग (५) सप्त प्राण वाला आत्मा
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिम्
अ. ४.२९.४
(६) हत सप्तेन्द्रिय, (७) सात ज्ञान मार्गों में बंधा हुआ, अर्थात् , आंख, कान, मुख, नाक इन सातों द्वारों को वश करने वाला ।
(८) सातों इन्द्रियों पर वश करने वाला विद्यार्थी(९) गर्भ में आने वाला बीज रूप जीव जिसके सातों प्राण निर्बल, प्रसुप्त रूप में रहते हैं (१०) सातों उच्छृंखल इन्द्रयों को दमन कर विनीत एवं शान्त होकर रहने वाला
सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्
ऋ. ५.७८.५
भीताय नाधमानाय
ऋषये सप्तवध्रये ।
ऋ. ५.७८.६

सप्तबह्वीः – (१) आत्मा को वहन करने वाली सात प्राण शक्तियाँ
शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः
अ. १३.२.६

सप्तवाणी – (१) सात मुख्य छन्द–गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती , पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती । इसी प्रकार सात प्रतिच्छन्द और सात विच्छन्द गिने जाते हैं ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदा क्षरेण मिमते सप्त वाणीः
अ. ९.१०.२
(२) चार वर्ण और सूर्य के तीन आश्रमों से युक्त सेवने वाली प्रजाएं, (३) पति के समीप जाकर विषय सेवन करती हुई स्त्री
एकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः
ऋ. ३.१.६

सप्तविप्राः – (१) उद्गाताओं के सिवा ९२ ऋत्विजों में सात होता का कार्य करने वाले, (२) सात या सर्पणशील निरन्तर गति करने वाले और शरीर को विविध प्रकार से पूर्ण करने वाले सात प्राण या देहस्थ सात धातु गण
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः
ऋ. ३.७.७
(३) सरणशील किरणें, (४) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले सात विद्वान् (५) सात विद्वान् मन्त्रद्रष्टा (६) सात मुखस्थ इन्द्रियां
उपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः
ऋ. ९.९२.२
(७) सात प्रकार के या फैलने वाले नगद व्यापी किरणें
अधा मातुरुषसः सप्त विप्राः
ऋ. ४.२.१५

सप्तविप्रासः – आत्मा की उपासना करने वाले सात प्राण, (२) परमात्मा के उपासक परम मेधावी ज्ञानमार्ग से परमात्मा के प्रति सर्पण शील
सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः
ऋ. ६.२२.२; अ. २०.३६.२
(३) देह में सात प्राणों के समान बुद्धिमान् पुरुष

सप्तविंशतिः गन्धर्वाः – (१) सत्ताईस गन्धर्व–प्राण, इन्द्रियाँ और स्थूल सूक्ष्म भूत, (२) शरीर धारक सत्ताईस तत्व (३) वायु, चन्द्रमा तथा भूमि के धारक २७ नक्षत्र, (४) महाराष्ट्र धारण करने वाली तीनों प्रजाओं के सत्ताईस सदस्य ।
गन्धर्वोः सप्तविंशतिः
वाज.सं. ९.७;तै.सं. १.७.७.२; मै.सं. १.११.१: १६२.१; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.४.८

सप्तविस्रसः – विविध दिशाओं से आने वाले सात शत्रु
अरसाः सप्त विस्रसः
अ. १९.३४.३

सप्तविस्रुहः – (१) सात प्रवाह (२) सात विकृतियाँ (३) सात प्रकार के विसरण शील जीव सर्ग,

(४) सात प्रकृति विकार, (५) सिर के सखावत् सात प्राण (६) सात छन्दोमयी वाणियाँ
वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः
ऋ. ६.७.६

सप्तबुध्न – सात मूल वाला
या सप्तबुध्नमर्णवम्
ऋ. ८.४०.५

सप्तवृष – सात प्राणों से युक्त आत्मा
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि
अ. ५.१६.७

सप्तशतं धामानि – सप्तशतं पुरुषस्य मर्मणां तेषु एता दधतीति– नि ९.२८ (१) शरीर के सात सौ मर्म स्थान, (२) ओषधियों के ७०० धाम, (३) शतधाम, सौ वर्ष हैं और साथ धाम सात देहगत प्राण हैं ।
मनै नु बभ्रूणामहं
शतं धामानि सप्त च
ऋ. १०.९७.१; वाज.सं. १२.७५; तै.सं. ४.२.६.१; मै.सं. २.७.१३: ९३.२; का.सं. १३.१६; १६.१३; श.ब्रा. ७.२.४.२६; नि. ९.२८

सप्त शतानि विंशतिश्च – सात सौ बीस रात दिन के जोड़े जो एक संवत्सर में बीतते हैं ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः
ऋ. १.१६४.११: अ. ९.९.१३
हे आदित्य, तेरे इस चक्र में मिथुनीभूत सात सौ बीस पुत्र हैं ।

सप्त शाकिनः – सात शक्तिशाली नायक गण ।
सप्त मे सप्त शाकिनः
एकमेका शता ददुः ।
ऋ. ५.५२.१७

सप्तशारदी – (१) वर्ष की सात ऋतुएं (२) शत्रुओं की हिंसाकारिणी पुरियाँ ।
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त्
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
(३) सात वर्षों तक –सा. (४) स्वा. दयानन्द ने शारदी का अर्थ भिन्न प्रकार से किया है । शरद् आदि छः ऋतुओं के अनुकूल (५) शरद् से वर्ष का बोध होने से सायण ने शारदी को वर्ष का वाचक माना है ।

सप्तशीर्षा – (१) सात विभागों में विभक्त वायु, (२) सात मुख्य अंगों से युक्त पूज्य (३) सात शीर्षण्य प्राणों से युक्त प्राण
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः
ऋ. ३.५.५.; आ.सं. ३.१३

सप्त शिवा – (१) सप्तविधा कल्याण कारिणी–दया. (२) सातों प्राणों या शिरों गत सातों इन्द्रियों में कल्याण युक्त रूप और शक्ति को धारण करने वाली
द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु
ऋ. १.१४१.२
जीवात्मा की तीन दशाओं में पहला जीवात्मा स्वरूप और दूसरा सातों प्राणों और शिरोगत सातों इन्द्रियों में कल्याण युक्त रूप और शक्ति को धारण करने वाली माताओं के बीच गर्भ रूप से रहता है ।

सप्तश्रियः – (१) व्यापक सम्पदाएं (२) सात प्रकार की शोभाएं
सप्तो अधि श्रियो धिरे
ऋ. ८.२८.५

सप्तशीर्ष्णीधीः – (१) सात मुख्य छन्दों से युक्त, वेदरूपी, ज्ञान शक्ति (२) शिरोगत सात प्राण, अपान आदि शिर वाली
इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः
ऋ. १०.६७.१; अ. २०.९१.१; वै.सू. ३३.२१

सप्तशुन्ध्युवः – (१) शुद्ध ज्ञान कराने वाली, (२) कुमार्ग पर न गिराने वाली रश्मियाँ इन्द्रियाँ
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः
ऋ. १.५०.९; अ. १३.२.२४; २०.४७.२१; आ.सं. ५.१३; ९.१९; ११.१; तै.ब्रा. २.४.५.४
(३) प्रवर्तक गति देने वाली या चलने वाली सात शक्तियाँ (४) जल को न गिरने देने वाली और पदार्थों को शोधन करने वाली सूर्य की साथ किरणें, (५) शरीर की सात प्राण वृत्तियां

सप्तसतीः – (१) बलवती सात वृत्तियाँ या प्रवृतियाँ (२) राष्ट्रपक्ष में 'सप्तसतीः' स्वामी, अमात्य, सुहृद्, राष्ट्र, दुर्ग, कोष और बल हैं ।
वीडौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्
ऋ. ३.३१.५

सप्त सप्त त्रेधा – (१) इक्कीस रूप वाले प्राण
प्र सप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः
ऋ. १०.७५.१

सप्तसप्तीः अंशवः – व्यापक परमेश्वर से उत्पन्न सूक्ष्म तत्व
त्रिः सप्त समिधः कृताः
ऋ. १०.९०.१५; अ. १९.६.१५; वाज.सं. ३१.१५; तै.आ. ३.१२.३.

सप्तसमिधः – (१) सात समिधाएं, (२) सात शीर्षण्य प्राण
सप्त होमाः समिधो ह सप्त
अ. ८.९.१८

सप्त संसदः – ब. व. । (१) साथ बैठने वाले सात सचिव (२) सात प्राणगण ।
रणन्ति सप्त संसदः
ऋ. ८.९२.२०; अ. २०.११०.२; साम. २. ७३
(३) सात संसत् हैं, जैसे अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, आपः और वरुण । इन्हीं के आश्रय पर समस्त लोक विराजते हैं ।
सप्त संसदो अष्टमी भूत साधनी
वाज.सं. २६.१; वाज.सं. (का.) २८.१
(४) राजा की सात राष्ट्र संस्थाएं (७) सात संसद्, (८) शरीर के सात धातुः ।

सप्तस्वसा – (१) सप्त स्वसारो यस्य सः (जिसे सात बहनें हो वह, सात बहनों वाला) (२) वरुण का विशेषण ।
यः सिन्धूनामुपोदये
सप्त स्वसा स मध्यमः
ऋ. ८.४१.२; नि. १०.५
जो वरुण नदियों में बाढ़ आने पर सात बहन वाले हो जाते हैं और जिनकी स्तुति सात स्वरों में मध्यम स्वर से की जाती है ।
(३) सात बहनें, (४) सात ज्वालाएं, (५) सोम आदि सात ग्रह ।
(६) सूर्य की शरणशील सात रश्मियाँ
सात स्वसा सात नदियों का द्योतक है । सात बहनों की परम्परा अतिप्राचीन है । (७) पांच प्राण, मन और बुद्धि इन सात मुखों में स्थित सरस्वती, (८) अन्तरिक्ष में विचरने वाली एवं उत्तम ज्ञान से पूर्ण वाणी, (९) वेद वाणी से सप्त स्वसा है ।
सप्तस्वसा सुजुष्टा
सरस्वती सोम्या भूत् ।
ऋ. ६.६१.१०; साम. २.८११; तै.ब्रा. २.४.६.१
(१०) स्वतः सरण करने वाली–ब्रह्मानन्द रस से भी भरी दो आंख, दो नाक, दो कान और एक रसना–सात ज्ञान धारक ऋषियों के बीच आठवीं भागनी के समान वाणी (११) सात छन्दों वाली वेद वाणी सरस्वती

सप्तस्वसारः – (१) सात अपने बल से चलने वाले कला पुञ्ज, (२) सात बहनों के समान सात शक्तियाँ मात्राएं जो शरीर में आत्मा के बल से चलती हैं, (३) परमेश्वर के विराट् रूप संसार के रथ में पञ्चभूत महत और अहंकार रूप जो सात अश्व हैं उनमें विद्यमान शक्तियाँ, (५) सात ग्रह, (६) सात ऋतु (मलमास के साथ), (७) संवत्सर के अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिनरात और मुहूर्त नामक काल के सात अवयव
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते
ऋ. १.१६४.३; अ. ९.९.३
(८) आत्मा के बल पर रमण करने वाले सात प्राण

सप्तसिन्धवः – (१) गतिशील महान्, शक्तियाँ, (२) भूत, महत् और अंहकार (३) ब्रह्माण्ड में सात वायुएं (४) शिरोगत सात प्राण ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवः
ऋ. १०.४३.३; अ. १२.१७.३
(४) सात नदियाँ, (६) सात ऊर्ध्व प्राण–इन्द्र, आत्मा, मन, दक्षिण, अक्षिगत प्राण वाक् और वीर्य, (७) सात गतिशील प्रवहण आदि लोक संचालक वेग
अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन
अ. ६.३.१.
(८) प्रवाहित होने वाले स्थूल सूक्ष्म जल–दया. । पृथिव्यां मध्ये स्थितानाम् एकोनपञ्चाशत् क्रोश् पर्यन्ते अन्तरिक्षे स्थूल सूक्ष्म लघुगुरुत्व रूपेण स्थितानामपां सप्तसिन्धु इति संज्ञा –दया. (ऋ.) ।
पृथिवीमारभ्य द्वादश क्रोश पर्यन्तं गुरुत्व लघुत्व भूतानां सप्तविधानाम् अपाम्
अवयवाः – दया. (यजुर्वेद) । (९) बड़े बड़े जलाशय, नदी, कूप, तडाग और समीप मध्य और दूर देश में रहने वाले तीन जलाशय मिलकर सप्त सिन्धु हैं ।

सप्त सूर्याः – (१) सूर्य के समान तेजस्वी सात प्राण, (२) सात भुवन
'यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम्'
अ. १३.३.१०; का.सं. ३७.९; तै.ब्रा. २.७.१५.३; तै.आ. १.७.१

सप्तहरितः – (१) सूर्य की सात किरणें (२)हरण करने वाली सात प्राण वृत्तियाँ
'वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः'
अ. १३.२.४
(३) सूर्य के सात अश्व–सा. (४) सप्तविधाः किरणाः दयां. (५) सात तत्व, (६) आत्मा के सात प्राण, (७) परमेश्वर पांच महाभूत और महान् अहंकार नाम सात विकार (८) राजा के राज्य के धारण करने वाले सात जन (९) सूर्य को धारण करने वाली सात किरणें
'सप्त त्वा हरितो रथे
वहन्ति देव सूर्य
शोचिष्केशं विचक्षण'
ऋ. १.५०.८; आ.सं. ५.१४; अ. १३.२.२३; २०.४७.२०; तै.सं. २.४.१४.४; का.सं. ९.१९
(१०) पंचभूत, महत्तत्व और अहंकार रूप सात शक्तियाँ जो सूर्य को धारण करती हैं ।

सप्तहस्तासः – (१) यज्ञ के सात हाथ सात छन्द ही हैं– गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती । (२) सायण के मत से सूर्य के साथ हाथ सात ऋतु हैं । वसन्तादि छः पृथक् पृथक् और सातवां मलमास
(३) शाब्दिकों के मत से शब्द ब्रह्म के सात हाथ हैं सात विपत्तियाँ
'चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादाः
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।'
ऋ. ४.५८.३; वाज.सं. १९.४७; मै.सं. १.६.२.: ८७.१७; का.सं. ४०.७; गो.ब्रा. १.२.१६; तै.आ. १०.१०.२; महा.ना.उप. १०.१; आप.श्रौ.सू. ५.१७.४; नि. १३.७

सप्तहा – सूर्य की सात किरणों को गति देने वाला
'अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः'
ऋ. १०.४९.२८

सप्तहोता, सप्तहोतृ – (१) सप्त अस्मै रश्मयः रसान् अभिसन्नमयन्ति (जिसके पास भूमि में स्थित रसों को सात रश्मियों पहंचाती हैं, अर्थात् दक्ष सूर्य) ।
(२) भूस्थान रसान् अस्मै प्रयच्छति (पृथ्वी के रसों को इसे देता है) ।
(३) अथवा–'एनं सप्त ऋषयः आह्वयन्ति (इन्हें सात ऋषि आह्वान करते या प्रणाम करते हैं) '।
(४)अथवा सात किरणों वाला –सूर्य, आदित्य
'अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा
सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ।'
ऋ. १०.६४.५; नि. ११.२३
(५) सायण के अनुसार, 'मलिम्लुचां हस्पतिसहिताः सप्तर्तवो यस्य होतारः भवन्ति तादृशः' ।
अर्थात् मलिम्लुच और अंहस्पति के साथ सात ऋतुएं जिसके होता हैं वह आदित्य ।
सात रश्मियां सूर्य के लिए रसों को झुकाती हैं अथवा सात ऋतुएं सूर्य का स्तवन करती हैं । अंहस्पति (मलमास) को मिलाकर सूर्य १३ मास या सात ऋतुओं के उत्पन्न करता है । जैसा यजुर्वेद २२–३१ में बताया गया है ।
(६) हूयते अर्चति कर्मणा इदं रूपम् ।–सा.
(७) अथवा जिसे सप्तर्षि स्तुति करते हैं वह सूर्य ।
(८) सिर में स्थित सात प्राण ही पुरुष रूप यज्ञ के सात होता हैं ।
(९) सूर्य की सात रश्मियां (१०) छः अमात्य और राजा ।
'सप्तहोतार ऋतुशो यजन्ति'
वाज.सं. २३.५८
(११) यज्ञ के सात होता (१२) प्रकाश देने वाली सूर्य ही सात रश्मियाँ (१२) सात या सर्पण शीलसंसार को धारण करने वाले प्रवहण आदि सात तत्व ।(१३) ज्ञान देने वाले सात छन्द (१४) शिरोगत सात ग्राहक द्वार
'अञ्जानः सप्त होतृभिः हविष्यते'
ऋ. ३.१०.४

सप्तहोत्राः – (१) सात आनन्द कारी दिशाएं, (२) सात प्राण
'द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः'
ऋ. १०.१७.११; अ. १८.४.२८; वाज.सं. १३.५; तै.सं. ३.१.८.३; ४. २.८.३; ९.6; मै.सं. २.५.१०: ६१.१५; का.सं. १३.९; १६.१५; ३५.८; श.ब्रा. ७.४.१.२०

(३) सबको अपने भीतर समा लेने वाली सात दिशाएं

सप्तहोत्राणि – (१) सातों प्रकार के ग्रहण करने योग्य और दान करने योग्य पदार्थ, (२) यज्ञ के सात होत्र आदि कर्म, (३) राष्ट्र की सात प्रकृतियाँ (४) देहगत सात प्राण (५) सर्पणशील प्राण

'सप्त होत्राणि मनसा वृणानाः'

ऋ. ३.४.५

सप्तहोमाः – (१) सात होम, (२) सात शीर्षण्य प्राण

'सप्त होमाः समिधो ह सप्तः'

अ. ८.९.१८

सप्त्य – सर्पण करने योग्य, प्राप्य

'तद्वरुणस्य सप्त्यम्'

ऋ. ८.४१.४

सप्रथ – (१) विशाल

'त्वं वर्मासि सप्रथः'

ऋ. ७.३१.६; अ. २०.१८.६

(२) वैदिक भारद्वाज नामक वैदिक ऋषि

'प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नाम'

ऋ. १०.१८१.१; आ.सं. २.५.; ऐ.ब्रा. १.२१.२

सप्रथस्तमः – (१) अति विस्तृत

'शर्मन् त्स्याम तव सप्रथस्तमे'

ऋ. १.९४.१३

(२) अति विस्तृत आकाश, काल, दिशा आदि पदार्थों के साथ उनके समान ही व्यापक परमेश्वर।

(३) अति विस्तार युक्त

'वयं मित्रस्यावसि
स्याम सप्रथमस्तमे'

ऋ. ५.६५.५

पुनः–

'जुषस्व स प्रथस्तमं
वचो देवप्सरस्तमम्।
हव्या जुह्वान आसनि'

ऋ. १.७५.१

हे अग्नि, या विद्वन्, तू मुख में (आसनि) उत्तम भोजन करने योग्य अन्नों को (हव्या) खाता हुआ (जुह्वानः) देवों या विद्वानों को बहुत अधिक प्रसन्न करने वाले या ग्राह्य (देवप्सरस्तमम्)। अति विस्तृत (सप्रथस्तमम्) ज्ञानयुक्त वाणी का सेवन कर।

अथवा,

मुख्य पद पर विराज कर ग्रहण करने योग्य अन्नों को और ऐश्वर्यों को स्वयं लेता और अन्यों को देता हुआ। विद्वानों के प्रिय उत्तम वचन का सेवन कर।

सप्रथाः – सर्वतः पृथुः सप्रथाः (जो सर्वतः विस्तीर्ण हो सर्वतः का 'स' हो गया है। सर्वतः + प्रथ् + असुन = सप्रथाः)।

अर्थ है–विस्तृत, चौड़ा 'यच्छा नः शर्म सप्रथाः' हे पृथ्वी, चौड़ा बन हमें कल्याण दे।

पुनः–

'त्वमग्ने सप्रथा असि
जुष्टो होता वरेण्यः।
त्वया यज्ञं वि तन्वते'

ऋ. ५.१३.४; साम. २.७५७; मै.सं. ४.१०२: १४६.२; का.सं. २.१४; कौ.ब्रा. २६.१०; तै.ब्रा. २.४.१.६; आप.श्रौ.सू. ६.३१.४

हे अग्नि, तू ही चारों और विस्तीर्ण है। तू आसेवित हो देवों का आह्वान् करने वाला तथा सर्वथा वारणीय है। तेरे ही द्वारा यजमान विविध प्रकार के यज्ञ को विस्तारित करते हैं।

(३) अति विस्तृत शक्ति से युक्त, (३) अति विस्तृत यश से युक्त

'सं त्वमग्नि वैश्वानरं
सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः'

वाज.सं. २२.३; मै.सं. ३.१२.१: १६०.१; श.ब्रा. १३.१.२.३.

सप्सरः – सप् + सर = सप्सर। गन्ता। वायु का विशेषण।

'ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वम्'

ऋ. १.१६८.९

सप्ता – द्वि.व.। दो अश्व

'सप्ती चिद् घा मदच्युता'

ऋ. ८.३३.१८

सप्ताक्षर – (१) प्राणगण के सात अक्षय बल, (२) प्राण के सात शीर्षण्य प्राण

'मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान्
पशूनुदजयंस्तानुज्जेषम्'

वाज.सं. ९.३२; तै.सं. १.७.११.१

सप्ताज्यानि – (१) सात आज्य, (२) सात शीर्षण्य प्राण

'सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः '
अ. ८.९.१८

सप्तापः – सप्त + आपः ।
(१) सूर्य की सात रश्मियाँ जो सूर्य में ही आप या व्याप्त रहती हैं, (२) शरीर की सात इन्द्रियाँ (३) सात जल धाराएं नदियाँ (४) सात प्राण गण
'सप्तापो देवीः सुरणां अमृक्ताः '
ऋ. १०.१०४.८

सप्तार्धगर्भा – सप्त + अर्ध + गर्भाः
(१) सात या सर्पण स्वभाव, गतिशील अर्धगर्भ अर्थात् परम उत्कृष्ट परमेश्वर की शक्ति को अपने भीतर धारण किए हुए प्रकृति के विकार भूत अहंकार महत् और पञ्चतन्मात्राएं, (२) सात प्राण
'सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः '
ऋ. १.१६४.३६; अ. ९.१०.१७; नि. १४.२१

सप्ताश्वः (१)वेगवान् अश्वों से युक्त, (२) सात किरणों से युक्त सूर्य, (३) सात प्राणों से युक्त आत्मा
'आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः '
ऋ. ५.४५.९

सप्तास्यः – सात मुख वाला इन्द्रियगण
'अप व्राजमूर्णुथः सप्तास्यम् '
ऋ. १०.४०.८
(२) सात छन्दों रूप सात अश्वों वाला–बृहस्पति ।
'सप्तास्यस्तु विजातो रवेण '
ऋ. ४.५०.४; अ. २०.८८.४; मै.सं. ४.१२.१: १७७.१५; का.सं. ११. १३; तै.ब्रा. २.८.२.७
(३) सर्पणशील मुखों वाला (४) सात मुखों वाला सूर्य
'सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः '
ऋ. ९.१११.१; साम. १.४६३; २.९४०

स्थपति – (१) गृहादि निर्माता, (२) तक्षक राज आदि (३) रोग कीटाणुओं के रहने निवास बनाने वाला जन्तु
'नमो रोहिताय स्तपतये '
वाज.सं. १६.१९; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३: १२२.१४; का.सं. १७.१२
'उतैषां स्थपतिर्हतः '
अ. २.३२.४; ५.२३.११

सपन् – एक स्थान में एकत्रित होता हुआ
'वि ये चृतन्त्यृता सपन्तः '
ऋ. १.६७.८
जो परस्पर एक स्थान पर संगत हो सत्य तथा विशेष रूप से या विविध प्रकार से खोलते हैं ।

स्रप – धा. । एक स्थान में एकत्रित होना ।

स्वपत् – अस्तम् उपगच्छत् (सोता हुआ या अस्त होता हुआ) ।

स्वप – (धा.) । सोना, अस्त होना ।

स्वपत्य – (१) सु + अपत्य । सुन्दर अपत्य अर्थात् सन्तान से युक्त ।
'कृधि पतिं स्वपत्य रायः '
ऋ. २.९.५
(२) उत्तम अविनाशी नीचे न गिरने वाला श्रेष्ठ यश, कर्म या उत्तम फल
(३) उत्तम सन्तान
'बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यते । '
ऋ. १.८३.६; अ. २०.२५.६
जिस प्रकार उत्तम अविनाशी नीचे न गिरने वाले श्रेष्ठ, यज्ञ कर्म या उत्तम फल को प्राप्त करने के लिए कुछ घास काट ली जाती है । या उत्तम सन्तान के लिए यह समस्त भूलोक और उसमें रहने वाले प्रजाजन त्यागे जाते हैं, अर्थात् उत्तम सन्नति के मा बाप अपना सर्वस्व त्यागते हैं ।
(४) उत्तम सन्तान या उत्तराधिकारी से युक्त
'क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः '
ऋ. २.४.८

स्वपतिः – (१) समस्त धनों के स्वामी (२) अपना स्वयं स्वामी–
'आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय '
ऋ. १०.४४.१; अ. २०.९४.१; वै.सू. ३३.२०
(३) अपना पति स्वयं वरण करने वाली
'अपत्तिः स्वपतिं स्त्रियम्

स्वपनः – स्वय + ल्युट् = स्वपन । और सोना ।
'अभूत्यै स्वपनम् '
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.१४

स्वपस् – सु + अपस् = स्वपस् । अर्थ है–सुन्दर कर्म ।

स्वपसः – सु + अपसः । सुन्दर कर्मों को सम्पन्न करने वाली तीन देवियाँ (१) सूर्य की किरण (भारती) तथा (३) मध्यमस्थानीय विद्युत् (सरस्वती) ।
'तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनम्
सरस्वती स्वपसः सदन्तुः ।'
ऋ. १०.११०.८; अ. ५.१२.८; वाज.सं. २९.३३; मै.सं. ४.१३.३: २०२..१०; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१३.
सुन्दर कर्मों को सम्पन्न करने वाली अग्नि, मध्यमस्थानी विद्युत् तथा सूर्य की किरण (भारती) हमारे यज्ञ में आस्थित हों ।

स्वपस्तमः – सु + अपस्तमः (१) उत्तम जलों का कर्मों को उत्पन्न करने वाला –सूर्य ।
'इन्द्रस्थ कर्ता स्वपस्तमो भूत्'
ऋ. ४.१७.४
(२) जिसका कर्म अत्यन्त शोभन हो, (३) अत्यधिक क्रिया सामर्थ्य से युक्त वज्र का विशेषण ।
'अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रम्
स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय'
ऋ. १.६१.६; अ. २०.३५.६

स्वपस्या – (१) उत्तम कर्म करने की इच्छा, (२) उत्तम परोपकार भावना
'निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः'
ऋ. १.१६१.११
(३) सु + अप + असुन् + यक् (स्वार्थ में) टाप् = स्वपस्या । वर्षा की क्रिया ।

स्वपस्य – (१) उत्तम कर्म करने वाला
'इन्द्राय स्वपस्याय वेहत्'
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.१२: १६८.१३

स्वपस्यत् – सु + अपस्यत् = स्वपस्यत् । सुन्दर कर्म करने की इच्छा करने वाला यजमान । अपस् का अर्थ कर्म है । उसी से अपस्यति नाम धातु हुआ है । अपस्यति का अर्थ है कर्म करना चाहता है ।

स्वपस्यते – स्वपस्यत् के चतुर्थी एकवचन का रूप है– 'स्वपस्यते' अर्थ है– (१) शुभकर्म करने की इच्छा करने वाले के लिए ।
(२) सुन्दर कर्म करें ज.दे.श.।

स्वपस्यमानः – (१) नाना उत्तम कर्मों को भरने वाला, (२) सूर्य या पुत्र का विशेषण
'सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः
सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः'
ऋ. १.६२.९

स्वप्नः – (१) शयन, सोना, (२) सु + अप्नः = स्वप्नः । उत्तम रूप वाला , (३) कर्मवान्, महान् परमेश्वर
'स्वप्नश्चनेदनृततस्य प्रयोता'
ऋ. ७.८६.६
(४) शयन, (५) आलस्य, (६) उत्तम कर्म का आचरण
'स्वप्नेनाभ्युप्या चमुरिं धुनिं च'
ऋ. २.१५.९; आश्व.श्रौ.सू. ९.८.४

स्वप्ननंशनः – स्वप्नान् नाशयति उदयेन इति (जो उदय लेकर स्वप्न नष्ट करता है)। (१) सूर्य (२) निद्रा नाशक आदित्य का विशेषण ।
(३) वृषाकीय आदित्य
'य एष स्वप्ननंशनः'
ऋ. १०.८६.२१; अ. २०.१२६.२१; नि. १२.२८
जो यह नींद नाशने वाला वृषा कपि या आदित्य हैं । (४) निन्द्रा से लुप्त हो जाने वाला जीवात्मा
'य एष स्वप्ननंशनः
अस्तमेषि पथा पुनः'
ऋ. १०.८६.२१
स्वप्न, निद्रा, प्रमाद या मृत्यु को दूर करने वाला ।

स्वप्नमुख – (१) स्वप्न से उत्पन्न होने वाला, (२) स्वप्न में सहायक कुविचार
'परा स्वप्नमुखाः शुचः'
अ. ७.१००.१

स्वप्नेदुःस्वप्नयम् – सोते समय का बुरा स्वप्न
'जाग्रद् दुष्वप्न्यं स्वप्ने दुष्वप्न्यम्'
अ. १६.६.९

स्वपाः – सु + अपस् = स्वपस् । अर्थ – (१) उत्तम ज्ञान या कर्म वाला बुद्धिमान् कुशल पुरुष, (२) स्व + पा = स्व पा– अर्थात् स्वयं अपने आत्मा का रक्षक, (३) सुकर्मा
'रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषु'
ऋ. १.१३०.६

स्वप्नाभिकरण – निद्रावृत्ति को अभिमुख करना
'स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन'

अ. ४.५.७

स्वभ्यक्त – सु + अभि + अक्त । अच्छी तरह से तैलादि लगाया हुआ ।

'य आक्ताक्षः स्वभ्यक्तः'

अ. २०.१२८.७; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.२

सपित्व – (१) समान व्यवहार और विज्ञान –दया. (२)समान पद, आदर, सत्कार (३) समान रूप से अन्नादि खाद्य फल ।

'येभिः सपित्वं पितरो न आसन्'

ऋ. १.१०९.७; ते.ब्रा. ३.६.११.१; आप.मं.पा. २.३.२

सप्ति – (१) सातों प्राणों का स्वामी आत्मा

'सप्ति मृजन्ति वेधसः'

ऋ. ९.२९.२; साम. २.१११६

(२) वेग से आगे बढ़ने वाला (३) समवाय बनाने में कुशल पुरुष (४) व्यापक परमात्मा (५) सात मूर्धागत प्राण– दो नाक, दो आंख दो कान और वाणी

(६) राष्ट्र में व्यापक (७) युद्ध में संर्पणशील

'अनु त्वा सप्ते प्रदिश सचन्ताम्'

वाज.सं. २९.२; तै.सं. ५.१.११.१; मै.सं. ३.१६.२; १८४.१; का.सं. (अश्व.) ६.२.

(८) शत्रु का पीछा करने वाला

(९) राष्ट्र के सातों अंगों का स्वामी, (१०) राष्ट्र में समवाय बना कर रहने में समर्थ

'सप्तिरसि वाज्यसि'

वाज.सं. २२.१९; तै.सं. १.७.८.१: ; ७.१.१२.१; मै.सं. ३.१२.४:१६१.९; का.सं. (आश्व) १.३, पंच–ब्रा. १.७.१; श.ब्रा. १३.१.६.१; तै.ब्रा. १.३.६.४; आप मं.पा. २.२१.२५

(११) अश्व, (१२) प्रकृति की सातों विकृतियों का स्वमी परमेश्वर–अग्नि

'सप्तिं न वाजयामसि'

ऋ. ८.४३.२५

वेगवान् के अर्थ में

'सहस्त्रिणं वाजमत्यं न सप्तिम्'

ऋ. ३.२२.१; का. सं. १६.११

(१४) सरण, सर्पर्ण शील, सरण करने वाली चलने वाली

स्वपिति – सोता है ।

'स्वपिति सस्ति इति द्वौ स्वपितिकर्माणौ ।'

(स्वप् और सस् ये दो धातु सोना युर्थ में प्रयुक्त हैं) ।

स्वपिवातः – सु + अपि + वात । (१) उत्तम रीति से शत्रुओं या प्रचण्ड वेगयुक्त आक्रमण से युक्त करने वाला

'सहस्त्रं ते स्वपिवात भेषजा'

ऋ. ७.४६.३; नि. १०.७

(२) स्वाप्त वचन, (३) वातावरण में आविष्ट, (४) वातावरण को धारण करने वाला (५) रुद्र का विशेषण ।

'सहस्त्रं ते स्वपिवात भेषजा
मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः'

ऋ. ७.४६.३

हे स्वाप्त वचन, या वातावरण में आविष्ट या वातावरण को धारण करने वाले रुद्र (स्वपिवात), तेरी सहस्रों ओषधियाँ (ते सहस्त्र भेषजाः) हमारे पुत्र पुत्री रूपी सन्तानों में (नः तोकेषु तनयेषु) हिंसा न करें (मा रीरिषुः) ।

(६) जिसकी आज्ञा अतिक्रमणीय न हो–यास्क

(७) यह शब्द रुद्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है । रुद्र विद्युदात्मा है । यह सब रोगों का कर्त्ता और हर्ता समझा जाता है ।

(८) स्वपि का अर्थ सोने वाला, वात का अर्थ वायु है । रुद्र में भी वायु विराजमान है, अर्थात् जिसमें वायु विराजमान है । वह रुद्र है । वातावरण में भी रोग के कीटाणु रहते हैं । अतः उस वातावरण का देवता भी विद्युतात्मा रुद्र है । रोग की उत्पत्ति अन्न तथा वायु से ही होती है ।

(९) रुद्र सूर्य का भी वाचक है अतः रुद्र रोगों का नाशक भी है । आज भी हम धूप को 'रौदा' कहते हैं । यह रौद्र का बिगड़ा रूप है ।

(१०) शिव की एक संज्ञा रुद्र है । अतः स्वपिवात' शिव का भी वाचक है ।

सपीति – (१) बन्धुवर्गों के साथ दुग्धादि का पान करना (२) सपानम् (पान के सहित) दुग्ध आदि पेय पदार्थों से युक्त ।

सप्तीवान् – उत्तम अश्वों का स्वामी ।

'सप्तीवन्ता सपर्यवः'

ऋ. ७.९४.१०

स्वपू – स्वपू धातु से सम्पन्न । अर्थ है–शयानः दया–। (१) अपने साथ सोने वाली (३) स्वभू

अपने उत्पन्न होने योग्य भूमि, (४)अपना शस्त्र
'अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त '
ऋ. ७.५६.३

सबन्धु – (१) सम्बन्ध से बन्धु हुआ है । जो सम्बन्ध कराता या बन्धन कराता है वह बन्धु है ।
'सदृशः बन्धुः सबन्धुः
(जो समान रूप से बन्धु है वह सबन्धु है) ।

सब्व – सप् + व। 'सप्' समवाय अर्थ में प्रयुक्त है ।
'समवायं संघं कृत्वा'
स्थितम् ।
(१) पक्वाशयगत मूल, (२) राजा विपरीत संघ या षडयन्त्र बनाकर बैठने वाला ।
'ऊवध्यं वातं सब्वं तदारात् '
वाज.सं. १९.८४; मै.सं. ३.११.९: १५३.१०; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.२.

स्तब्ध – (१) स्तम्भित, चुपचाप स्तम्भ के समान स्थित (२) पुरुष का विशेषण ।
'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः '
तै.आ. १०.१०.३; महा.ना.उप. १०.४; नि. २.३.
वह एक पुरुष वृक्ष की तरह द्युलोक में स्तब्ध खड़ा है ।

स्वब्दी – (१) गरजता मेघ या वृषभ
'इन्द्र स्वब्दीव वंसगः '
ऋ. ८.३३.२; अ. २०.५२.२; ५७.१५; साम. २.२१५
(२) उत्तम जल देने वाला मेघ

सभराः – (१) समान भार वाला, समान वस्तु को धारण करने वाला
'मिचश्च सम्मितश्च सभराः '
वाज.सं. १७.८१ ;तै.सं. १.८.१३.२;४.६.५.५;मै.सं. २.११.१ :१४०.४; का.सं. १८.६
(२) फल के भार से युक्त औषधियां या व्रीहि
(३) हरी भरी
'गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नः ।
नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्'
ऋ. १.१०१.३; वाज.सं. १२.६८; तै.सं. ४.२.५.६; मै.सं. २.७.१२:९१.१६; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.५
स्तुति द्वारा जिसकी हम याचना करते हैं (गिरा) वे ओषधिगण शीघ्र फलभार से युक्त हो जांय (श्रुष्टिः सभरा असन्) तथाप का अन्न (पक्वम्) हंसुआ या अंकुश से भी निकटतम आ जाय (सृण्यः इत् नेदीय एयात् ।) ।

सभरसः – (१) मरुतों का विशेषण । 'सभरस्' शब्द का बहुवचन (२) समान भरण पोषण करने वाले, (३) समान रूप से पालन पोषण करते हुए, (४) समान होकर बुद्धादि करते हुए
'यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः '
ऋ. ५.५४.१०

स्वभ्यस – स्वयं भयङ्कर दीखने वाला सैनिक
'स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः '
अ. ११.९.१७

सभा – जिसमें सभ्य जन बैठते हैं वह सभा है ।
'यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये'
वाज.सं. ३.४५; २०.१७; तै.सं. १.८.३.१; मै.सं. १.१०.२: १४१.१४; का.सं. ९.४; ३८.५ ; श.ब्रा. २.५.२.२५; १२.९.२.३; तै. ब्रा. २.६.६.२

सभागि – (धा.) । धन का बांटना
'यत् सभागयति दक्षिणाः '
अ. ९.६.५४

सभाचर – (१) धर्म सभा में कुशल पुरुष
'धर्माय सभाचरम् । '
वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२.

स्वभानुः – अपनी दीप्ति से चमकने वाला
'ये अञ्जिसु ये वाशीषु स्वभानवः '
ऋ. ५.५३.४

सभावती – स + भा + वतुप + ङीष् = सभावती ।
(१) समान कान्ति वाली स्त्री, (२) सभा में एक साथ बैठने वाली ज्ञानवती स्त्री
'सभावती विदथ्येव सं वाक्'
ऋ. १.१६७.३

सभावान् – (१) सभा का स्वामी
'दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् '
ऋ. ४.२.५; तै.सं. १.६.६.४; ३.१.११.१; मै.सं. १.४.३:५१.३; १.४.८:५६.९; का.सं. ५.६; ३२.६

सभास्थाणु – सभी के बीच में स्थित मुख्य पदाधिकारी
'आस्कन्दाय सभास्थाणुम्'
वाज.सं. ३०.१८

सम्भ्रियमाणः – प्रजाओं से पालन पोषण किया जाता हुआ राजा
'विष्णुः सम्भ्रियमाणः '

वाज.सं. ८.५७

स्कभित – स्थापित, धारित

स्कभीयान् – सब से अधिक संसार भर को थामने वाला इन्द्र, परमेश्वर

'चास्कम्भ चित् कम्भनेन स्कभीयान् '

ऋ. १०.१११.५

स्वभीशुः – सु + अभीशुः ।(१) सुप्रबद्ध नियमव्यवस्था से सम्पन्न, (२) देह के संचालक ज्ञानतन्तुओं की स्वामिनी

'स्वभीशुः कशावती'

ऋ. ८.६८.१८

संभूति – (१) मरुत् आदि विकार मयी सृष्टि, (२) आत्मा का कर्मानुसार पुनर्जन्म

'य उ सम्भूत्यां रताः'

वाज.सं. ४०.९; श.ब्रा. १४.७.२.१३; बृह. आ. उप. ४.४.१३; ईश. उप.१२

'सम्भूतिं च विनाशं च
यस्तद्वेदोभयं सह'

वाज.सं. ४०.११; ईश.उप. १४

(३) विकास-विनोबा भावे। उन्होंने 'असम्भूति' का अर्थ 'निरोधं एवं 'सम्भूति ' का विकास किया है । आत्म ज्ञान के लिए निरोध और विकास दोनों आवश्यक हैं ।

स्वभूति – (१) स्वयं ऐश्वर्यवान् वायु (२) जगत् रूप अपनी विभूति से युक्त ईश्वर

'एकया च दशभिश्च स्वभूते '

वाज.सं. २७.३३; मै.सं. ४.६.२: ७९.६; श.ब्रा. ४.४.१.१५; तै. आ. १.११.८; आश्व.श्रौ.सू. ५.१८.५; शा.श्रौ.सू. ८.३.१०

स्तभूयन् – स्थिर करने की इच्छा करता हुआ

'नि यस्त्यासु त्रित स्तभूयन्'

ऋ. १०.४६.६

स्तभूयमान – स्तम्भन करने और थाम लेने वाला

'स्तभूयमानं वहतो वहन्ति'

ऋ. ३.७.४

स्वभूत्योजस् – जिसकी भूति और पराक्रम स्वकीय हो- परमात्मा

'स्वभूत्यो जा अवसे धृषन्मनः'

ऋ. १.५२.१२

सबके संकल्प विकल्प करने वाले चित्तों को अपने ज्ञानविवेक और अद्भुत अज्ञेय रचना से घर्षण या पराजित करने वाले परमेश्वर (धृषन्मनः) तू स्वतः बिना के सहयोग से अपने प्रचुर ऐश्वर्य और पराक्रम से सम्पन्न होकर ।

सभृतिः – 'समान भृतिः सभृतिः' (एक समान भरण पोषण या वेतन पाने वाला भृत्य आदि जन) ।

'आयत् सद्म सभृतयः पृणान्ति'

ऋ. ६.६७.७

सभेय – (१) सभा में कुशल, दक्ष

'सादन्यं विदथ्यं सभेयम् '

१.९१.२०; वाज.सं ३४.२१; मै.सं. ४.१४.१: २१४ भ ३; तै.ब्रा. २.८.३.१

'सभेयोयुवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् '

वाज.सं. २२.२२; तै.स. ७.५.१८.१; मै.सं. ३.१२.६; १६२.९; श.ब्रा. १३.१.९.९; तै.ब्रा. ३.८.१३.३.

'यः सभेयो विथ्यः'

अ. २०.१२८.१; गो.ब्रा. २.६.१२; शां.श्रौ.सू. १२.२०.२.१

(२) सभा में उत्तम पद पर स्थित

'सभेयो विप्रो भरते मती धना '

ऋ. २.२४.१३

(३) सभा में प्रशंसनीय, उत्तम वक्ता

'सादन्यं विदथ्यं सभेयम्
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै'

ऋ. १.९१.२०; वाज.सं. ३४.२१; मै.सं. ४.१४.१: २१४.३

सम् – एक उपसर्ग । अर्थ- सम्यक् अच्छी तरह से ।

सम – (१) समस्थल

'पर्वतेषु समेषु च '

अ. ८.७.१७

(२) समम् इति परिग्रहार्थीयं सर्वनाम अनुदात्तम् (सम् शब्द परिग्रह शब्द वाला सर्वनाम है । और अनुदात्त है) ।

(३) सर्व, सभी ।

'नभन्तामन्यके समे'

ऋ. ८.३९.१;४०.११; ४१.१-१०; ४२.४-६, तै.सं. ३.२.११.३; नि. ५.२३; १०.५

और सभी शत्रु नष्ट हो जांय ।

(४) सह (साथ)

'साकं सत्रा समं सह'

'सर्प अर्थ में प्रयोग-

'उरुष्याणो अघायतः समस्मात्'
ऋ. ५.२४.३; वाज.सं. ३.२६; मै.सं. १.५.३;६९.१२; का.सं. ७.१; श.ब्रा. २.३.४.३१; आप.श्रौ.सू. ६.१७.८: नि. ५.२३.
हे अग्नि ! हमें (नः) सभी परोपकारियों से (समस्मात् अघायतः) हमारे निकट आकर बचा (उरुष्य) ।

समक्त - सम् + अञ्ज + क्त = समुक्त । अर्थ- विक्यातु
'ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ताः'
ऋ. १०.६२.१; ऐ.ब्रा. ५.१३.१२; को.ब्रा. २३.८
(२) भली प्रकार से सुशोभित
'व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तः'
अ. ७.७४.४

समकृण्वन् - रचना की ।

समग्र - सम् + अग्र = समग्र । (१) सब प्रकार से और सब कामों में सब पदार्थों के आगे, (२) सबके पूर्व विद्यमान (३) सबका कारण स्वरूप, (४) सब का अग्रणी नेता ।
'समग्रोऽसि समन्तः'
अ. ७.८१.४

समङ्काः - रोगों का उपलक्षण, सहयोगी लक्षण
'अङ्कान् समङ्कान् हविषा विधेम'
अ. १.१२.२

समजति - (१) संभजन करता है,
'समर्यो गा अजतियस्य वष्टि'
ऋ. १.३३.३
इन्द्र सम्पूर्ण जगत् का स्वामी है (अर्यः) जिसके राज्य में सभी जल चाहते हैं (यास्य वष्टि) अतः वह मेघों को विदीर्ण करता है (गा समजति) ।

समञ्जन् - (१) सम्मुख करता हुआ -सा.
(२) अभिव्यक्त करता हुआ
'उपावसृज त्मनया समञ्जने
देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि'
ऋ. १०.११०.१०; अ. ५.१२.१०; वाज.सं. २९.३५; मै.सं. ४.१३.३; २०२.१३; का.स. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१७
(३) सम् + अञ्ज + शतृ = समञ्जत् । प्र.ए.व. 'समञ्जन्' ।
'गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन्'
वाज.सं. २०.३७; मै.सं. ३.११.१: १३९.१५; का.सं. ३८.६; तै.ब्रा. २.६.८.१

समञ्जन - सम् + अञ्ज + ल्युट् । (१) एक दूसरे के प्रति निःसंकोच व्यवहार, (२) चित्त के भावों का सत्य रूप से प्रकाशन, (३) परस्पर मिलन
अनीकं नौ समञ्जन्'
अ. ७.३६.१

समञ्जन्ति - समश्नवन्ति (भोजन करते हैं -खाते हैं या प्राप्त करते हैं) ।
'कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः'
ऋ. ८.१.१२.
जिस अन्न को देवता लोग या आर्य जन (देवाः) खाते या प्राप्त करते हैं (समञ्जन्ति) ।
प्रकरण वश यहां 'अञ्ज्' धातु का अर्थ 'भोजन करना' किया गया है ।

समतस् - वश अधिकार
'अयमु ते समतसि'
ऋ. १.३०.४; अ. २०.४५.१; साम. १.१८३; २.९४९; वै.सू. ३९.९; ४१.१३; नि. १.१०
हे परमेश्वर या राजन्, यह समस्त लोक तो ही अधिकार में है ।

समद् - (१) सम् + अद् (भक्षण करना) + क्विप् = समद् । अर्थ है- (१) नाशक शत्रु सेना (२) सम् + मद = समद । अभिमानी शत्रु सेना
(३) दुर्ग ने अनेक शस्त्र संघात संङ्कटान् अनेक वीर पुरुष कीर्णान् संग्रामान् -ऐसा अर्थ किया है ।
(४) युद्ध ।
'अश्वान् समत्सु चोदय'
ऋ. ६.७५.१५; वाज.सं. २९.५०; तै.सं. १.७.८.१; ४.६.६.५;
घोड़ो को संग्रामों में प्रेरित कर ।
'यद्वर्मी याति समदामुपस्थे'
ऋ. ६.७५.१; वाज.सं. २९.३८; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१०; का.सं. (अश्व.).६.१

संमदन्ति - सुख पूर्वक रहती है ।
'तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति'
ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; तै.सं. ४.६.२.१; मै.सं. २.१०.२ :१३४.४; नि. १०.२६
उन जीवों के इष्ट गति शील या सात रश्मियाँ जल के साथ (इषा) सुखपूर्वक रहती है । (संमदन्ति) ।

समद्वा – (१) मद उत्तेजना या हर्ष से युक्त पुरुषों को प्राप्त करने वाला इन्द्र ।
'युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा'
ऋ. ७.२०.३
(२) उत्तम अन्न का भोक्ता
'स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा'
ऋ. ६.१८.२; का.सं. ८.१७

समध्यमः – जिसकी स्तुति सात स्वरों में मध्यम स्वर में ही की जाती है ।
'यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमः'
ऋ. ८.४१.२
जो वरुण नदियों की बाढ़ आने पर सात बहन वाले हो जाते तथा जिसकी स्तुति सात स्वरों में मध्यम स्वर से की जाती है ।

समन् – संग्राम ।

समन – (१) समान चित्त वाला
'जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुः'
अ. २.३६.१
(२) (न.) युद्ध ।
'ज्या इयं समने पारयन्ती'
ऋ. ६.७५.३; वाज.सं. २९.४०; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१५; का.सं.(अश्व.) ६.१; नि. ९.१८
धनुर्धारी को युद्ध में जिताने वाली यह क्या है ।

समनगा – समनम् अवधारिकं स्थानं गच्छन्ती–दया.
(१) संग्राम में जाने वाली सेना (२) स्वयंम्वर में जाने वाली कन्या

समनगा – समनं गच्छति इति समनगः (संग्राम में जाने वाला) ।
'समनगा अशुचज्जातवेदाः'
ऋ. ७.९.४

समनसा – समान चित्त वाले स्त्री पुरुष
आ जह्नावीं समनसोप वाजैः
'त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम्'
ऋ. १.११६.१९
एक दूसरे के समान चित्त वाले होकर अपने सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाले (भागं दधतीम्) शत्रुओं या हथियार छोड़ने वाले सेनापति की या वेतन भृति आदि देने वाले राजा की सेना को देखने भालने के लिए वेगवान् अश्वों और भक्तों के सहित (वाजैः) दिन में तीन बार आओ ।

समनसः – विश्वे देवाः– मन के सहित इन्द्रियगण या प्राण
'विश्वेदेवः समनसः सकेताः'
ऋ. ६.९.५

समन्त – (१) सम्मिलित
'घर्मा समनता त्रिवृतं व्यापतुः'
ऋ. १०.११४.१
(२) सब प्रकार से समस्त संसार को प्रलय काल में अन्त अर्थात् अपने भीतर प्रलीन करने वाला परमेश्वर ।
(३) सबसे पिछला या सबसे उत्पृष्ट
'समग्रः समन्तो भूयासम्
गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैधनेन'
अ. ७.८१.४
(४) सर्वाङ्ग सुदृढ़
'अग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम्'
ऋ. ५.१.११

समन्तम् – चारों तरफ
'इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि दद्मः'
अ. ६.९९.२

समन्तशितिरन्ध्रः– सारे शरीर पर श्वेत चिटकन वाला वस्त्र पहनने वाला
'शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः
समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः'
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.१३.१; मै.सं. ३.१३.३: १६९.३; का.सं. (अश्व.) ९.३.

समन्त शितिबाहु – समस्त बाहुओं पर श्वेत वस्त्र पहनने वाला
'शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः
समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः'
वाज.सं. २४.२; मै.सं. ३.१३.२; १६९.२

समना – (१) समानमनस्काः (समान मन वाली स्त्रियां)–एक ही पति के प्रति समान भाव से मन रखने वाली दो स्त्रियां (२) समान
'तमूषु समना गिरा'
ऋ. ८.४१.२; नि. १०.५
मैं उसी समान वाणी से स्तुति करता हूँ ।
(३) द्वि.व.। समान पति वाली दो स्त्रियां
'ते आचरन्ती समने व योषा'

ऋ. ६.७५.४; वाज.सं. २९.४१; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१६; का.सं.(अश्व.) ६.१; नि. ९.४०
जो धनुष की कोटियों समान पति वाली दो स्त्रियों की तरह (समनेव योषा) धनुष खींचने वाले की ओर आचरण करती रहती हैं (४) युद्ध भूमि ।
'चिश्चा कृणोति समनावगत्य'
ऋ. ६.७५.५; वाज.सं. २९.४२; तै.सं. ४.६.६२; मै.सं. ३.१६.३: १८६.१; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१४
युद्ध में जाकर (समना अवगत्य) चिश् चिश् शब्द करता है ।
(५) समन्ता मनन करने से या समान मन वाला होने से मन्त्री समन्त है । -दया. (६) सम्यक् प्रकार से मनन करने वाला ।
(७) समनानि = समन्त ।
यह शब्द नित्य बहुवचन और नपुंसक है ।

समन्त - सम् + अन्ता । शुभ परिणाम वाला
'उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः'
अ. ४.३४.५-७

समन्ते - द्वि.व. ।(१) द्यावापृथिवी का विशेषण ।
(२) सीमान्त भाग से मिले हुए
(३) उत्तम परिणाम या उद्देश्य को धारण करने वाले स्त्री पुरुष ।
'संगच्छमाने युवती समन्ते'
ऋ. १.१८५.५

समन्य - (१) संग्राम योग्य, (२) सभा भवन आदि के उपयुक्त

सम्पद् - (१) सम् + पद् + क्विप् । अच्छी प्रकार से समस्त पदार्थों का ज्ञान करने और प्राप्त करने वाला, (२) सम्पत्ति, (३) सम्पत्ति रूपा स्त्री
सम्परसि सम्पदे त्वा'
वाज.सं. १५.८; का.सं. ३९.६; आप.श्रौ.सू. १६.३१.१

सम्प्रति - (१) यास्क के अनुसार 'साम्प्रतम्' का ही विकृत रूप सम्प्रति है । अमरकोश में कहा है ।
'एतर्हि सम्प्रतीदानी मधुना साम्प्रतं तथा'
(२) निरुक्त में इसे लुप्तनाम करण कहा है । क्योंकि जिस सुप् प्रत्यय से यह बना है वह लुप्त हो जाता है ।
अर्थ - अधुना, अभी, इस समय ।

संप्रश्नः - (१) प्रश्न करने योग्य, (२) जिज्ञासा करने योग्य विश्वकर्मा प्रभु
'तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या'
ऋ. १०.८२.३; अ. २.१.३; वाज.सं. १७.२७; तै.सं. ४.६.२.२; मै.सं. २.१०.३; १३४.१०; का.सं. १८.१

संमद - सम् + मद् = संमद् । अर्थ है । मदयुक्त, सहृष्ट ।

समद - सम् + अद् अथवा सम् + मद् = समद् ।
(१) मदयुक्त
समदो वातेः, संमदोवा मदतेः । समद्यो संमद भक्षणार्थक अद् धातु से बना है ।
(२) मत्त सेना ।
'धन्वना तीव्राः समदो जयेम'
ऋ. ६.७५.२; वाज.सं. २९.३९; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१२; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१७
धनुष से अत्यन्त सेना जीतते हैं (तीव्रा समदः जयेम) (३) युद्ध
'संगे समत्सु वृत्रहा'
ऋ. १०.१३३.१; अ. २०.९५.२; साम. २.११५१; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.४:१८९.८; तै.ब्रा. २.५.८.२
संग्राम काल में तथा युद्धो में इन्द्र वृत्र का वध करने वाला है ।

समध्वर - सम् + अध्वर । (१) उत्तम हिंसा रहित यज्ञ करने वाला
'अस्मै भीमाय नमसा समध्वरे'
ऋ. १.५७.३; अ. २०.१५.३

समनम् - सम् + अनम् । (१) समष्टि प्राण शक्ति को धारण करने की क्रिया
'समनं वाव गच्छति
ऋ. १०.८६.१०; अ. २०.१२६.१०
(२) संग्राम, (३) नदियों का संगम
'ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः'
ऋ. २.१६.७
(३) समनम् संभजनात् सम्माननात् सम्मान (४) पति-संगमन
'अन्याः समनमायति'
अ. ६.६०.२

समनप् - सम् + अनप् । (१) अच्छी प्रकार बांधने वाला

'अरज्रौ दस्यून् समनब्दभीतये'
ऋ. २.१३.९

समनसा – द्वि.व. । समान चित्त वाले पति पत्नी
'अर्वाग् रथं समनसा नि यच्छतम्
ऋ. १.९२.१६; ७.७४.२; साम. २.१०४, १०८४
समान चित्त वाले वरवधू, तुम और हमारा अतिथ्य स्वीकार करो ।

सम्भरण – (१) अच्छी प्रकार पालन पोषण, (२) समूह
'आ नो भरं सम्भरणं वसूनाम्'
ऋ. ७.२५.२
(३) समस्त प्रजाओं का भरण पोषण करने वाला राजा
'सम्भरणस्त्रियो विंशः'
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.४; मै.सं. २.८.४:१०९.५; का.सं. १७.४; २०.१३; श.ब्रा. ८.४.१.१७.

सम्भरेते – (१) जलाते हैं, (२) खाते हैं ।
'नाना हनू विभृते संभरेते'
ऋ. १०.७९.१.
वैश्वानर अग्नि की हवन करने वाली ज्वालाएं नाना रूप में रहकर भी एकत्र हो हवि या लकड़ियों को जलाती हैं । –सा.
बच्चे के दोनों जबड़े दुग्ध पान करते हैं ।– दया.

संभल – संभलकः समादाता इति सायणः (१) उत्तम रीति से आदान करने वाला योग्य पात्र या उत्तम विद्वान् प्रवक्ता
(२) भला उत्तम विद्वान्
'आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेत्'
अ. २.३६.१

सम्भव – (१) उत्पत्तिः (२) कार्य जगत्
'अन्यदेवाहुः सम्भवात्'
वाज.सं. ४०.१०; ईश.उप.१३

सम्भ्रियमाण – नाना ऐश्वर्यों से पुष्ट किया जाता हुआ
'प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः'
वाज.सं. ३९.५; का.श्रौ.सू. २६.७.५०

सभृताश्व – संभृत + अश्व ।
अश्वों या इन्द्रियगण को अच्छी प्रकार–नष्ट करने वाला
'सम्भृतैः संभृताश्वः'
ऋ. ८.३४.१२

संमनाः – एकचित्त
'संजानानाः संमनसः सयोनयः'
अ. ७.१९.१

समपृच्यन्त – संयुक्त रहते हैं ।
'संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः'
ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६
ऋभुगण या वैश्य वर्षभर व्यापारिक कर्मों से (धीतिभिः) युक्त रहते हैं (समपृच्यन्त) ।

सममानः – अधिक मान पाता हुआ
'न यन्मित्रैः सममान एति'
अ. १२.३.४८

समया – अ. । (१) बीच में,
'समया विश्वमा रजः'
ऋ. ७.६६.१५
(२) निकट, समीप
'अक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते'
ऋ. १.१६६.९
(३) सदा
'असि सोमेन समया विपृक्तः'
ऋ. १.१६३.३; वाज.सं. २९.१४; तै.सं. ४.६.७.१; का.सं. ४०.६
(४) समय समय पर यथा समय, बीच बीच में
'वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः'
ऋ. १.५६.६
तू समय समय पर वृत्र को या बढ़ते हुए शत्रु को विविध उपायों से आघात कर ।

समरण – सम् + अरण । (१) उत्तम ज्ञान, (२) सत्संग, (३) सम्यक् प्रापण
'त्वेषमित्था समरणम् शिमीवतोः'
ऋ. १.१५५.२; आश्व.श्रौ.सू. ६.७.९; नि. ११.८
(४) समागम ।
हे इन्द्र और विष्णु, इष्ट प्रदान कर्म वाले या प्रहरणादि अर्थ वाले आप दोनों के (शिमीवतोः) इस प्रकार (इत्था) समागम को (समरणम्) ।

समर्य – (१) अन्य मनुष्यों का सत्संग
'वयं श्वो वोचेमहि समर्य'
ऋ. १.१६७.१०
(२) मरने मारने वालों के एकत्र होने का स्थान संग्राम
'यदा समर्यं व्यचेदृघावा'

ऋ. ४.२४.८
(३) मनुष्यों के एकत्र होने का स्थान
'इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ'
ऋ. ७.२३.१; अ. २०.१२.१; साम. १.३३०
(४) स + मर + यत्। मृत्यु को साथ होने वाला संग्राम।
'मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये'
ऋ. १०.२७.२४
इस मृत्यु के साथ होने वाले संग्राम में होने वाले इस आदित्य के ऐसे उपकार को मत भूत (मा स्म अपगूहः)।

समर्यजित् – संग्राम, जीतने वाला
'समर्यजिद् वाजो अस्माँ अविष्टु'
ऋ. १.११६.५
संग्रामों का विजेता पुरुष (समर्यजित्) बलवान् होकर हमारी रक्षा करें (अस्मान् अविष्टु)।

समर्यत् – युद्ध करने की इच्छा करता हुआ
'समर्यता मनसा सूर्यः कविः'
ऋ. ५.४४.७

समराणः – सम् + अराणः। सम्यक् प्राप्नुवन् (अच्छी तरह मिलता हुआ)।
''सं पृच्छसे समराणः शुभानैः'
ऋ. १.१६५.३; वाज.सं. ३३.२७; मै.सं. ४.११.३; १६८.११; का.सं. ९.१८
तू हमसे मिलता हुआ अच्छी प्रकार कुशल आदि प्रश्न किया करता है।
(२) ठीक रास्ते पर जाता हुआ

समवर्तत – समजायत (उत्पन्न हुआ)।
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'
ऋ. १०.१२१.१; अ. ४.२.७; वाज.सं. १३.४; २३.१;२५.१०
सृष्टि के पूर्व परमात्मा से हिरण्य गर्भ उत्पन्न हुआ।

समव्यत् – (१) समनात्सीत्, समवेष्टयत् (समेट दिया)।
'पुनः समव्यद वितत वयन्ती'
ऋ. २.३८.४; नि. ४.११
जैसे कोई स्त्री कपड़ा बुनती हुई सूर्यास्त होने पर पुनः उसे तान देती है, उसी प्रकार यह रात्रि अन्धकार समेटती है।

समवावशीताम् – सम् + अव + अवशीताम्। सम्यक रूप से स्तुत किये गए। अश्विनी कुमारों के सम्बन्ध में प्रयुक्त
'इहहे जाता समवावशीताम्'
ऋ. १.१८१.४; नि. १२.३
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों इसी प्रकार द्युस्थान में उषा और रात्रि के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए और सम्यक् प्रकार से स्तुत हुए।
(२) संस्तयेथ (पुरुष व्यव्यय आर्ष है)। स्तुत किए जाते हैं।

सनह – (१)आदर सत्कार से युक्त विद्वान् (२) महान् शक्ति वाला प्रभु
'अयं समह मा तनु
उह् याते जनाँ अनु
सोमपेयं सुखो रथः'
ऋ. १.१२०.११
हे आदर सत्कार से युक्त विद्वन् (समह) या महान् शक्ति वाला प्रभु, यह सुख दायक या वेग से जाने वाला या इन्द्रिय सुख युक्त रथ या शरीर है। यह अन्य जनों तक पहुंचाया जाता है...
(३) उत्तम पूज्य। स + मह (४) सम + अह। अवश्य
'क्रत्वः समह दीनता
प्रतीपं जगमा शुचे।'
ऋ. ७.८९.३
(४) पूजा सत्कार योग्य गण
'सुदेवः समहासति'
ऋ. ५.५३.१५
'भूरिभिः समह ऋषिभिः'
ऋ. ८.७०.२४
(६) एक ही साथ
'सिन्धौ समह संगमः'
अ. ६.२४.१

सम्पतिता – संयुक्त
'अश्वस्यास्त्रः सम्पतिता'
अ. ५.५.९

संपत्नी – उत्तम गृहपत्नी
'संपत्नी प्रति भूषेह देवान्'
अ. १४.२.२५

सम्पश्यमान – सम्यक् प्रकार से साक्षात्कार करता हुआ

'संपश्यमाना अमदन्नभिस्वम्'
ऋ. ३.३१.१०

सम्यञ्चा - सम्यञ्चौ । अच्छी प्रकार जीवन-निर्वाह करने वाले माता-पिता
'सम्यञ्चा बर्हिराशाते'
ऋ. ८.३१.६

सम्बाध - पीड़ा, विपत्ति
'पुरा सम्बाधादभ्या वृत्स्व नः'
ऋ. २.१६.८

सम्बन्धु - बन्धु जिससे बन्धन हो- सम्बन्ध हो ।
'बन्धुः बन्धनात्'

संभक्ता - सींची हुई
'मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षः'
अ. ८.७.१२

संभल - (१) उत्तम मधुर भाषण करने वाला, मधुरभाषी
'चारु संभलो वदतु वाचमेताम्'
अ. १४.१.३१
'तत् संभलस्य कम्बले'
अ. १४.२.६६

सम्मदन्ति - सम्मोदन्ते, सुखं निवसन्ति (आनन्द करते हैं) (२) सुख पूर्वक निवास करते हैं ।

स्कम्भ - (१) स्तम्भ -दया. (२) मण्डल-सा.
'आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'
ऋ. १०.५.६; अ. ५.१.६.
मर्यादा का उल्लंघन नहीं करने वाला, सूर्य मण्डल में स्थित , आदित्यान्तर नारायण के स्थान में जो अविनाशी स्थान है वहां निवास करता है ।
अथवा
जीवन के स्तम्भ (आयोः स्कम्भः) उत्तम शान्ति के धाम और जहां अनेक मार्गों की सृष्टि न हो ऐसे सर्वाधार परमेश्वर में तथा धारक शक्तियों में स्थित होता है ।
(३) ब्रह्म
'महस्कम्भस्य मिमानो अङ्गम्'
अ. १०.७.२
'स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः
अ. १०.७.२९
'स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम्'
अ. १०.७.३०

स्कम्भदेष्णः - (१) स्तम्भन दाता, (२) युद्धादि में अपने सैन्य और प्रजा के बीच में स्तम्भन, बल, दृढ़ता आदि गुणों और प्रबन्ध बल देने वाला (३) स्कम्भ नाम सर्वाधार परमेश्वर के ज्ञान का उप देश करने वाला
'प्रस्कम्भदेष्ण अनवभ्रराधसः'
ऋ. १.१६६.७

स्कम्भन - (१) खम्भे के समान आश्रयप्रद उपाय, साधन, (२) थामने का साधन
'अजरेभिः स्कम्भनेभिः समातृचे'
ऋ. १.१६०.४
'उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेन'
ऋ. ६.७२.२
'विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री'
ऋ. ३.३१.१२

स्कम्भनी - आश्रयभूत
'दिवः स्कम्भनीरसि'
वाज.सं. १.१९

स्कम्भसर्जनी - द्वि. व.। श्रेष्ठ राजा की आधारभूत दो राजसभाएं-राज नियम निर्मात्री (Legistative) और संचालिका (Executive)
वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थः'
वाज.सं. ४.३६; श.ब्रा. ३.३.४.२५

स्तम्ब - (१) झुण्ड
'स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिः'
अ. ८.६.१४

स्तम्बज - जंगली
'स्तम्बज उत तुण्डिकः'
अ. ८.६.४

स्थपति - कीटों के निवास स्थान का पालक या निर्माता
'उतैषां स्थपतिर्हतः'
अ. २.३२.४; अ. ५.२३.११

स्यम - वितर्क करना, अनुमान करना, कल्पना, करना
Seen धातु 'स्यम' का ही रूपान्तर है ।

समा - (१) प्रजा (२) पदार्थ
'शाश्वतीभ्यः समाभ्यः'
वाज.सं. ४०.८; तै.ब्रा. ३.३.११.४; ११.४; ईश.उप. ८.

(३) चान्द्र वर्ष
'समाः सवत्सरान् मासान्'
अ. ३.१०.९; ११.६.१७
(४) संवत्सर, वर्ष
'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो
हायनोऽस्त्री शरत्समाः -अमर कोष
'यत् त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः
वायुः सोमस्य रक्षिता
समानां मास आकृतिः'
ऋ. १०.८५.५
हे सोमदेव, जब मुझे ऋत्विक् या यजमान तीनों सवनों के समय ओषधि रूप में पीने लगते हैं (यत् त्वा प्रपिबन्तिः), तब तू और बढ़ने लगता है (ततः पुनः आ प्यासे)। तुझ सोम का वायु रक्षक होता है क्योंकि काष्ठमय पात्र में सोम नहीं सूखता तथा हे सोम (मासः) तू संवत्सरो का (समानाम्) आकर्ता अर्थात् व्यवच्छेदक है (आकृतिः)।
'वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजते'
(प्रतिवसन्त ऋतु में सोम से यज्ञ करें)।
आधुनिक अर्थ- वर्ष। पाणिनि ने इस का प्रयोग एक वचन में किया है पर प्रायः बहुवचन में ही इसका प्रयोग होता है।
(५) साथ

समान - (१) सबके प्रति या सबके लिए समान परमेश्वर या अग्नि
'तमिदर्भ हविष्या समानमित्'
ऋ. १०.९१.८
(२) सममेव मानं यस्य तत्
समानम्। समानं सम्माने मात्रं भवति।
(जिसका मान तुल्य है वह समान है)।
अथवा- 'सहमानेन वर्तत इति समानः'।
सह का स आदेश
अर्थ-आदित्य -सा.
(३) समान गुण कर्मों वाला पति-दया.
'तमिन्वे समाना समानम्
अभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः'
ऋ. ४.५.७
'समानो यज्ञेन कल्पनां स्वाहा'
वाज.सं. २२.३३
(४) समान नामक वायु

समान जन्मा - सदशजन्म या स्वभाववाला
'समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः'
अ. ८.९.२२; मै.सं. २.१३.१०: १६०.१६

समान दक्षः - समान रूप से दक्ष, बल शाली
'समानदक्षा अवसे हवन्ते'
ऋ. ७.२६.२; तै.सं. १.४.४६.२;

समान योजना - (१) समान गुण, वय, शरीर वाले पति पत्नी का विवाह।
'अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः
समाननेन योजनेना परावतः'
ऋ. १.९२.३; साम. २.११०७
(२) (वि.)। एक सा बना हुआ रथ, अश्विद्वय के रथ का विशेषण।
(३) समान नामक प्राण से युक्त रथ रूपी शरीर।
'समान योजनो हि वां
रथा दस्रावमर्त्यः'
ऋ. १.३०.१८
हे दुःखों के नाशक (दस्रा), तुम दोनों शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र के संचालकों तुम दोनों का रथ एक जैसा बना हुआ है (समान योजनः) और बिना मनुष्य के चलने वाला है (अमर्त्यः)। हे वेगवान् साधनों से जाने वालो (अश्विना), वह रथ अन्तरिक्ष और समुद्र में भी जाता है।
प्राणापान पक्ष में-हे कर्म श्रम की बाधा के नाशक प्राण अपान, हे अश्व अर्थात् व्यापक भोक्ता आत्मा को धारण करने वाले, तुम्हारा रथ रूप देह जब तक नामक प्राण से युक्त रहता है तब तक कभी नाश को प्राप्त नहीं होता।

समान लोकः - समान लोक प्राप्त करने वाला पति पत्नी
'समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः'
अ. ९.५.२८

समानबन्धू - समान बन्धनः समान बन्धुः (जिसका बन्धन समान हो वह समानबन्धु है)। द्विवचन में समानबन्धू। अर्थ- उषा और रात्रि का विशेषण। उषा और रात्रि के सूर्य समान रूप से बन्धु है। दे. 'अनूची'
'समानबन्धू अमृते अनूची'
जिन उषा और रात्रि के सूर्य समान रूप से बन्धु

हैं जो कभी मरने वाली नहीं है और जो एक दूसरे का अनुसरण करने वाली है ।

समानवर्चसा – (१) द्वि.व.वि.। समान दीप्ति या बल से युक्त इन्द्र और मरुत ।

(२) समान तेज वाले जीव और परमात्मा

'मन्दू समानवर्चसा'

ऋ. १.६.७; अ. २०.४०.१; ७०.३; साम. २.२००; नि. ४.१२

समाना – स्त्री.वि.। (१) समान गुणकर्मवाली कन्या, -दया.

(२) अनुरूप

'तमिन्नेव समाना समानम्
अभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः'

ऋ. ४.५.७

हे यजमान तू उसी (तत् इत्) सभी के लिए एकरूप (समानम्) आदित्य को उनके अनुरूप स्तुति से (समाना धीति) तथा पवित्र करने वाले कर्म या ज्ञान से पुनीती क्रत्वा) शीघ्र ही प्राप्त कर (न्वेव अभ्यश्याः)

उसी समान गुण कर्मों वाले पति के (तम् नु समानम्) समान गुण कर्मों वाली कन्या तू (समाना) कर्म से अपने आप को पवित्र करती हुई (धीती) प्राप्त कर (अभ्यश्याः) ।

समान्या – द्वि. व. । समान + यत् + टाप् = समान्या । अर्थ है-समान्या ।

(१) द्यावापृथिवी का पर्याय (२) तुल्य पृथ्वी और द्यौ-सा.

(३) समान वृष्टि करने वाले सूर्य और पृथ्वी-दया.

'समान्या वियुते दूरेअन्ते'

ऋ. ३.५४.७; ४.२५

(४) जिसका मान तुल्य हो वह समान है ।

या जो मान के साथ है वह समान है (सह मानेन वर्तते) ।

'समानं सम्मानमात्रं भवति'

सामान्या द्विता – समान रूप से आदर मान करने योग्य युगल भाव

'अध द्विता समान्या'

ऋ. ८.८३.८

समापः – (१) जल के पास मिले हुए तण्डुल

'एतैस्तण्डुलैर्भवता समापः'

अ. १२.३.२९

समाप्ति – सर्व कर्म की समाप्ति

'राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिः'

अ. ११.७.२२

समाम्यः – सबके प्रति समान भाव से रहने वाला

'यः समाम्यो वरुणो यो व्याम्यः'

अ.४.१६.८

समान – समान रूप से

'यैः समामे बाध्यते यैर्व्यामे'

अ. १८.४.७०

समाम्नाय – सम् + आ + म्ना + घञ् = समाम्नाय (युक् का आगम) । अर्थ-(१) समुदाय, (२) गो से देवपत्नी तक के वैदिक शब्दों का समाम्नाय (३) सम्यक् प्रकार से मर्यादा के साथ इसका व्यवहार किया जाता है अतः यह समाम्नाय है ।

आधुनिक अर्थ-जो परम्परा से आ रहा है या अभ्यास किया जाता है । परम्परा से शब्द समुदाय का संग्रह, परम्परा, आवृत्ति, अध्ययन, गणना, योग संग्रह जैसे-अक्षर समाम्नाय (४ जो समान्मात है वह समाम्नाय कहलाता है ।

समानो राजा – (१) समान भाव से सर्वत्र प्रकाशित होने वाला-सूर्य, (२) नाना पदार्थों में विद्यमान् प्रकाशमान अग्नि, (३) समस्त प्रजाओं से एक सा व्यवहार करने वाला राजा ।

'समानो राजा विभृतः पुरुत्रा'

ऋ. ३.५५.४

समाराणे – द्वि.व. वि. । (१) परस्पर सुसंगत होकर एक दूसरे को समान भाव से सम्प्रदान करते हुए (२) विपाशा और शुतुद्रि नदी, (३) स्त्री पुरुष

'समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने'

ऋ.३.३३.२

समाशिर् – सम् + आ + श्री + असुन् । सम्यक् अभितः श्रीयन्ते सेव्यन्ते सद्गुणैः ये ते समाशिरः'

(१) जो सम्यक प्रकार से पकाया जाय तथा सेवन किया जाय, (२) आश्रय या सेवन करने योग्य

'शतं वायः शुचीनां
सहस्रं वा समाशिराम्'

'एदु निम्नं न रीयते ।'
ऋ. १.३०.२
जिस प्रकार जल नीचे की ओर बह जाता है उसी प्रकार जो विद्वान् शुद्ध पवित्र करने वाले सहस्रों साधनों कर्मों और पदार्थों के प्रति और आश्रय या सेवन करने योग्य हजारों पदार्थों के प्रति झुकता ही है वह उनको प्राप्त कर उनका ज्ञान करता है ।

सम्पात मन्त्र – वेद मन्त्र का ही एक पर्याय । सम्पात क्रिया काण्ड का द्योतक है । यह मन्त्रों द्वारा किए कर्म काण्ड का संकेत है । कर्मकाण्ड के नाम से मन्त्रों का नाम सम्पात मन्त्र हुआ
'तान् वा एतान् सम्पातान्
विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्
तान् विश्वामित्रेण इष्टान् वामदेवो असृजत ।'
गो.ब्रा. ६.१
सम्पातों को विश्वामित्र ने प्रथम देखा और फिर उनको वामदेव ने देखा ।

संपादि – फलदायक
'मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति'
अ. ७.७०.२

सम्पारण – उत्तम रीति से पालन करने वाला
'इन्द्र सम्पारणं वसु'
ऋ. ३.४५.४

संभार – (१) शरीर रचना के योग्य पदार्थ उपादान
'ये संभारान् समभरन्'
अ. ११.८.१३
(२) यज्ञोपयोगी पदार्थ
'परूंषि यस्य संभाराः'
अ. ९.६ (१) १

सम्राजा – द्वि.व.। सम्राजौ । (संदीप्त दो जल बरसाने वाले) । 'आदित्य'
'ता सम्राजा घृतासुती'
ऋ. १.१३६.१; २.४१.६; साम. २.२६२
ये दोनों संदीप्त जल बसाने वाले

सम्राट् – (१) अच्छी प्रकार प्रकाश करने वाला–सूर्य
(२) समान भाव से सर्वत्र प्रकाश मान परमेश्वर ।
'सम्राजेनमः'
अ. १७.१.२२; २३.
(३) सम् + राज् + क्विप् = सम्राट ।
'सम्राजन्मध्वराणाम्'
ऋ. १.२७.१
अहिंसामय यज्ञों के सम्राट् स्वरूप अग्नि या परमेश्वर को । (४) जो सम्यक् प्रकार से राजता हो ।

समिति – राजसभा
'सा देवताता समितिर्बभूव'
ऋ. १.९५.८
वही देवसभा या सभा बन जाती है ।

समिथः – संग्राम ।
'अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनाम्'
ऋ. ३.१.१२; नि. ६.१७
महती शत्रु सेनाओं से संग्राम में दुर्ग के समान रोकने या धारण पोषण करने वाला ।
आधुनिक अर्थ–युद्ध, अग्नि

समिद्धः – संदीप्त अग्नि । सम् + इध् + क्त = समिद्ध । जिस अग्नि को इन्धन देकर संदीप्त किया जाता है ।
'समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे'
ऋ. १०.११०.१; अ. ५.१२.१; वाज.सं. २९.२५; मै.सं. ४.१३.३; २० १.८; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; मा.श्रौ.सू. ५.२.८; नि. ८.५.
हे अग्ने, आज तू संदीप्त होकर मनुष्य के घर में ।
'समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनाम्'
वाज.सं. २९.१; तै.सं. ५.१.११.१; मै.सं. ३.१६.२; १८३.१२; का.सं. (अश्व.) ६.२; श.ब्रा. १३.२.२.१४; तै.ब्रा. ३.९.४.८; आप.श्रौ.सू. २०.१७.३, मा.श्रौ.सू. ९.२.५; नि. ३.२०
हे अग्निदेव, तू समिद्ध होकर (समिद्धः) बुद्धियों या देवताओं के निवास स्थान को (मतीनां कृदरम्) घृतादि हवि को पहुंचाता हुआ (अञ्जन्) ।

समिद्धः मित्रः – (१) खूब प्रदीप्त अग्नि मित्र है, (२) ज्ञानी विद्वान् पुरुष मित्र है (३) अति दीप्त प्रकाश वान् परमेश्वर परम मित्र है–पालक । तत्वों का मापक और पालक है ।
'मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धः'
ऋ. ३.५.४

समिध् – स्त्री. । सम् + इध् + क्विप् = समिध् ।

(१) सम्यक् प्रकार से प्रज्वलित करने वाली या करती हुई, (२) इन्धन ।
'घृतस्य धाराः समिधो नसन्त'
ऋ. ४.५८.८; वाज.सं. १७.९६; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१; नि. ७.१७
(३) शूल रहित नीति -दया.
'अया ते अग्ने समिधा विधेम
प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय '
ऋ. ४.४.१५; तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५; १७४.७; कासं. ६.११.
हे शत्रुहन्ता राजन्, आपकी इस छल रहित नीति से हम जिन जिस प्रशंसनीय कार्यों को करें उन्हें आप स्वीकार करें ।
(४) सायण ने 'समिध्' का अर्थ इन्धन या आहुति ही किया है ।

समिधानः - (१) प्रदीप्त अग्नि, (२) ज्योतिर्मय सूर्य
'उषा उच्छन्ती समिधाने अग्नौ'
ऋ. १.१२४.१
(३) सम् + इध् + शानच् । प्रज्वलित करता हुआ
'त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठः'
ऋ. ७.९.६
हे भगवन् अग्ने, वसिष्ठ ने तुझे संदीप्त कर.. यास्क ।
हे अग्ने, तुझे वसिष्ठ प्रदीप्त करते हैं-सा. ।
हे हमारे नायक विद्वान् , विद्या ज्योति को प्रदीप्त करता हुआ धनाढ्य मनुष्य-...ज.दे.श. ।

संमिमिक्षिरे - कामना करते हैं ।
'श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२:१६७. १५; का.सं. ८.१७
मरुत् सेवन के लिए (श्रियसे) वृष्टि जल बरसाना चाहते हैं (सं संमिमिक्षिरे) .....सा. ।
सुख भोगने वाले सुख सेवनार्थ (श्रियसे) दीप्त पदार्थों से सुख सेवन की कामना करते हैं ।
(भानुभिः कं संमिमिक्षिरे)-दया. ।

समिष् - (१) सम् + इष् । उत्तम अन्न से सम्पन्न पृथ्वी
'इन्द्रस्य समिषो महीः'
ऋ. ८.५०.२; अ. २०.५१.४
(२) उत्तम अन्न-सम्पन्न इन्द्र

समिषण्य - सम् + इषण्य । (१) अच्छी प्रकार प्रदान कर प्रेरित कर, (२) सन्मार्ग पर भलीप्रकार चला
'समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य'
ऋ. ३.५०.३

समिष्ट यजुष - (१) यज्ञ में सुसंगत हो यज्ञ करना । (२) राष्ट्र में समस्त विद्वानों और शास्त्रों को परस्पर सुसंगत कर उन्हें योग्य वेतनादि देना ।
'समिष्ट यजुषा संस्थाम्'
वाज.सं. १९.२९

संपिणक् - संपिण्ढि, संचूर्णय, सम् + पिष् (सीसना) + श्नम् + हि = संपिणक् (हि का लोप, प का क) ।
अर्थ-(क) चूर्ण चूर्ण कर दे (२) छिन्न भिन्न कर,
'अहस्तमिन्द्र संपिण्डक् कुणारुम्'
ऋ. ३.३०.८; वाज.सं. १८.६९; नि. ६.१.
हे इन्द्र, मेघ को (कुणारुम्) बिना हाथ का कर (अहस्तम्) चूर्ण चूर्ण कर दे-सा. ।
हे निर्वाचित् राजन् , इन्द्र जैसे मेघ को उसी प्रकार तू दुष्ट जन को चूर चूर कर दे ।- दया.

संपिवते - संगच्छते (त्जाता है) ।
'यमः देवैः संपिवते'(सूर्य रश्मियों के साथ अस्त होता है) ।

संपिष्ट - (१) खूब पीसा हुआ, ठोका हुआ, दुरुस्त किया हुआ
'स संपिष्टो अपायति'
अ. ४.३.५; ६.६.२; १९.४९.१०
(२) सम्यक् प्रकार से पीटा हुआ (३) छिन्न भिन्न
'अपोषा अनसः सरत् संपिष्टादह बिभ्युषी ।'
ऋ. ४.३०.१०; नि. ११.४७
उषा मेघ को वायु से छिन्न भिन्न होते देख वायु से डर जाती है ।

संप्रिया - अत्यन्त प्रियतमा
'संप्रिया पत्याविराधयन्ती'
अ. २.३६.४

संमिता - उत्तम ज्ञान युक्त
'उतेव प्रभ्वीरुत संमितासः'
अ. १२.३.२७

सम्मिश्रासः - परस्पर अच्छी प्रकार सम्मिलित

'सम्मिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः'
ऋ. १.६४.१०

स्तम्बिनी – झुण्डों वाली
'प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः'
अ. ८.७.४

समीक – रण, संग्राम
'वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके'
ऋ. ७.२१.९
'तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके'
ऋ. ४.२४.३
'संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके'
ऋ. १०.४२.४; अ. २०.८९.४
'इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे'
ऋ. ८.३.५; अ. २०.११८.३; साम. १.२४९; २.९३७

समीची – (१) एक साथ आक्रमण करने वाली सेना, (२) समान भाव से प्राप्त होने वाली
'अपं वृतश्चातयति समीचीः'
ऋ. ४.१७.९
(३) उत्तम, (४) एक दूसरे के अनुरूप माता पिता
'मही दस्मस्य मातरा समीची'
ऋ. ३.१.७
(५) परस्पर संगत द्यौ और पृथिवी, (६) परस्पर संगत स्त्री पुरुष।
(६) द्वि.व.। द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष का विशेषण। अर्थ परस्पर मिलती हुई
'तन्तुं ततं संवयन्ती समीची'
ऋ. २.३.६
(८) एक साथ आदर की हुई आती हुई
'दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः'
ऋ. ३.२९.१३; का.सं. ३८.१३; तै.ब्रा. १.२.१.१०; आप.श्रौ.सू. ५.११.६

समीचीन – (१) सम्यक् दृष्टि वाला, (२) समदर्शी, (३) तत्वज्ञानी
'समीचीनास ऋभवः समस्वरन्'
ऋ. ८.३.७; अ. २०.९९.१

समीजमानः – सम् + ईजमानः। (१) सबसे संगत, (२) सबको उत्तम दान करता हुआ
'यूथेवाप्सु समीजमान ऊती'
ऋ. ६.२९.५

समीषन्ती – खूब जलाती हुई
'ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः'
अ. १२.५.५४

समुक्षित – सम् + उक्षित। अच्छी प्रकार से अभिषिक्त
'उत् तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्'
ऋ. ५.५६.५

समुद्र – (१) मेघ।
'अश्वमिवाधुक्षद् धुनिमन्तरिक्षम्
अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्'
ऋ. १०.१४९.१; नि. १०.३२
जैसे धूलि धूसरित घोड़े को सवार झाड़ता है उसी प्रकार अगम्य अहिंसित अन्तरिक्ष में टिके मेघ को सविता झाड़कर प्रवाहित करता है।
(२) आदित्य।
'महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे'
ऋ. ९.७३.३; तै.आ. १.११.१; नि. १२.३२
महान् विद्युत् नामी वरुण आदित्य को (समुद्रम्) मेघ जाल से तिरोहित कर देते हैं (तिरोदधे)।
(३) अन्तरिक्ष।
'एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश'
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. १०.४६
एक अद्वितीय वह वायु नित्य अन्तरिक्ष में रहता है।
(४) (क) सम् + उत् + द्रु + ड = समुद्र (द्रु के उ का लोप)। 'ड' प्रत्यय अपादान अर्थ में हुआ है। 'समुद् द्रवन्ति अस्मात् आपः' (इस से जल सम्यक् प्रकार से उद् द्रवित होते हैं ऊपर उठते हैं)। सूर्य की रश्मियाँ समुद्रीय जल को ऊपर वाष्प रूप में उठाती हैं अतः यह समुद्र है।
(ख) सम् + उद्र = समुद्र। समुदको भवति (समुद्र में उदक संहित होता है)।
(ग) सम् + उद् + रक् = समुद्र। संमोदन्ते अस्मिन् भूतानि (समुद्र में अनेकों जीव अथाह जन या प्रमुदित होते हैं)।
पृषोदरादिवत् सम् के म् का लोप।
(घ) सम् + उदक + र (मत्वर्थीय) = समुद्र। वर्षा ऋतु में समुद्र में जल एकत्र हो जाता है।
(ङ) सम् + उन्द् (क्लेदनार्थक) + रक् = समुद्र (उन्द् के न् का लोप)। समुन्नति इति वा (समुद्र से प्रसूत जल द्वारा सब कुछ संक्लिन्न हो जाता

है)। वर्षा से भुवन को समुद्र क्लिन्न करता है।
'स उत्तरस्या दधरं समुद्रम्
अपो दिव्य असृज द्रवष्या अभि, '
ऋ. १०.९८.५; नि. २.११
उस देवापि ऋषि ने ऊपर के समुद्र से नीचे के समुद्र में दिव्य वर्षा जल बर साए।
'मेघ' के अर्थ में प्रयोग के लिए देखें 'अधि'।
'तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति'
अ. १.१६४.४२; अ. ९.१०.२१; १३.१.४२; शां.श्रौ.सू. १८.२२.७; नि. ११.४१
उस गौरी वाक् या विद्युत से मेघ बरसते हैं। अन्तरिक्ष के अर्थ में प्रयोग-वेद में आया है। समुद्र अन्तरिक्ष का पर्याय वाची है।
निरुक्त में कहा है-
तत्र समुद्रमित्येतत् पार्थिवेन समुद्रेण सन्दिहयते (अन्तरिक्ष का वाचक 'समुद्र' पार्थिव समुद्र भी समझा जाता है)।
(५) हृदय।
आधुनिक अर्थ-मुहर, मुहर दिया हुआ जैसे-समुद्रो लेखः। समुद्र शिव का विशेषण है।
(६) समुद्र से व्यापार। (७) मुक्ता रत्न आदि की प्राप्ति. (८) मन
'समुद्रश्छन्दः
वाज.सं. १५.४; श.ब्रा. ८.५.२.४

समुद्रज्येष्ठाः - (१) समुद्रः ज्येष्ठो यासां ता आपः-दया.
(२) एक साथ ऊपर उठने वाले, उत्तम मे योगों में स्थित आपः अर्थात् जल
'समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्'
ऋ. ७.४९.१

समुद्रव्यचस् - (१) समुद्र या अन्तरिक्ष में जिसकी व्याप्ति हो-सर्वव्यापी ईश्वर, (२) नौकादि विजय गुणसाधनों में व्याप्त शूरवीर।
'इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्
समुद्रव्यचसं गिरः'
ऋ. १.११.१; साम. १.३४३; २.१७७; वाज.सं. १२.५६; १७.६१; तै.सं. ४.६.३.४; मै.सं. २.१०.५; १३७.९; का.सं. १८.३; ३६.१५; ३७.९; श.ब्रा. ८.७.३.७; तै.ब्रा. २.७.१५.५; १६.३
समुद्र के समान अति अति विस्तृत अथवा आकाश और अन्तरिक्ष में भी व्यापक...परमेश्वर को ही सब वेद वाणियां बढ़ाती हैं।
समुद्र में भी नौकादि से जाने वाले विजेता को ही सब स्तुतियां बढ़ाती हैं।

समुद्रवासाः - (१) महान् अन्तरिक्ष में व्यापक प्रभु, (२) समुद्र को वस्त्र के समान धारण करने वाला-अग्नि (३) समुद्र के गर्भ में विद्यमान बड़वानल (४) जगत् भर को समुद्रवत् आच्छादित करने वाला
'अग्निं समुद्रवाससम्'
ऋ. ८.१०२.४,५,६; साम. १.१८; तै.सं. ३.१.११.८; मै.सं. ४.११. २:१६६.१६; १६७.२.४; का.सं. ४०.१४

समुद्राः - ब.व.। (१) ब्रह्म शक्ति से निकलने वाले अंक्षय भण्डार (२) प्रकृति के अक्षय कोष (३) पांचों भूत रूप पांच अक्षय कोष
'तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति'
ऋ. १.१६४.४२; अ. ९.१०.२१; १३.१.४२; शां.श्रौ.सू. १८.२२.७; नि. ११.४१

समुद्रार्थाः (१) वे जल नदी से होकर समुद्र में जाने वाले हैं, (२) समुद्र अर्थात् आकाश से आने वाले जल
'समुद्रार्था याः शुचयः पावकाः'
ऋ. ७४९.२

समुद्रिय गल्गुलु - समुद्र के तट पर उत्पन्न होने वाला गूगूल
'यद वाप्यसि समुद्रियम्'
अ. १९.३८.२

समुद्रियं धाम - आत्मा से उत्पन्न होने वाला तेज
'तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियम्'
अ. ७.७.१

समुद्रिया अप्सासः - महान् आकाश या अन्तरिक्ष में विद्यमान व्यापक शक्तियाँ
'समुद्रिया अप्सरासो मनीषिणम्'
ऋ. ९.७८.३

समुद्री - समुद्र सम्बन्धी।
'दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः'
ऋ. १०.६५.१३; नि. १२.३०
सिन्धुनदी तथा समुद्र के जल (समुद्रियः आपः)।

समुद्रौ - (१) जलसमुद्र और आकाश समुद्र (२)

पूर्व और पश्चिम का समुद्र ।
'उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी'
अ. ४.१६.३

संभुज - (१) उत्तम रीति से भोग और पालन करना, (२) उत्तम रीति से भोजन करना
'त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजम्
त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ।'
ऋ. २.१.४

समुब्जिता - ढंकी हुई
'वरुणेन समुब्जिताम् '
अ. ९.३.१८

समुब्ध - (१) सम्पूर्ण अंगों से समुन्नत, सर्वांगपुरुष
'कुमारं माता युवतिः समुब्धम् '
ऋ. ५.२.१

समुष्पला - सम् + उत्तफला । (१) स्त्री पुरुष दोनों के सहवास की रक्षा वाली ,
(२) सम्यक् उत्पकला-सा. (३) पीत वर्ण की ओषधि जिसमें वशीकरण का गुण है ।
'संवननी समुष्पला'
अ. ६.१३९.३

समूह - (१) धान्य को उत्तम रीति से संग्रह करने वाली शक्ति, (२) क्षेत्रों से धान्य संग्रह करना
'उपोहश्च समूहश्च
क्षत्तारौ ते प्रजापते'
अ. ३.२४.७

समूढ - (१) भली प्रकार तर्क से जानने योग्य -सूक्ष्म रूप
'समूढमस्य पांसुरे'
ऋ. १.२२.१७; अ. ७.२६.४; साम. १.२२२; २.१०१९; वाज.सं. ५.१५; वाज.सं. (का.) ५.५.२;तै.सं. १.२.१३.१; मै.सं. १.२.९:१८.१८ ; ४.१.१२: १६.५; का.सं. २.१०; श.ब्रा. ३.५.३.१३; गि. १२.१९
इस जगत् को भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह कारण परमाणुओं से पूर्ण आकाश में स्थापित करता है ।
(२) अन्तर्हित ।

सम्पृक् - सम्पर्क करने वाला
'संपृच स्थ स मा भद्रेण पृंक्त '
वाज.सं. १९.११; वाज.सं.(का.) १०.१.६; श.ब्रा. १२.७.३.२२; तै.ब्रा. १.३.३.६; २.६.१.५; आप.श्रौ.सू. १८.७.१; मा.श्रौ.सू. ७.१.३

संपृच् - (१) सत्संग करने योग्य पुरुष (२) संयुक्त
'द्रुहोरिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्'
ऋ. २.३५.६

संपृञ्चानः - संयुक्त होता हुआ, संगत होकर
'संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः'
ऋ. १.९५.८
अन्तरिक्ष में किरणों और जलों से युक्त होकर सूर्य....

संभृतक्रतुः - (१) समस्त कर्मों और क्रिया करने कराने वाली शक्तियों को अपने में एकत्र धारण करने वाला परमेश्वर, (२) समस्त क्रतु अर्थात् कर्ताजीवों को अच्छी प्रकार भरण पोषण करने वाला
'जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतो
इन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नयः'
ऋ. १.५२.८
हे समस्त कर्मों और क्रिया करने कराने वाली शक्तियों को अपने में एकत्र धारण करने वाले परमेश्वर (संभृत क्रतो), जिस प्रकार सर्वसाधारण जनों के उपकार के लिए जलों को (मनुषे अपः) पृथ्वी पर डालता हुआ (गातुयन्) सूर्य या विद्युत् किरणों या वेगवान् आघातों से (हरिभिः)वृत्र या मेघ को आघात करता हैं (जघन्वान्) ।

संभृतश्री - (१) समस्त शोभाओं को धारण करने वाली, (२) एकत्र प्राप्त समस्त विकृत पदार्थों पञ्चभूतों का आश्रयभूत प्रकृतिरूप में ब्रह्म शक्ति, राष्ट्र शक्ति को धारण करने वाली महिमा ।
'अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीः'
अ. १९.४९.१

संमृजन्ति - सम् + मृज् के लट् प्र पु. बहुवचन का रूप । अर्थ है-अलंकृत करते हैं ।
'भोजायाश्वं संमृजन्त्याशुम्'
ऋ. १०.१०७.१०
राजा या दानी के लिए (भोजाय) शीघ्रगामी अश्व (आशुम् अश्वम्) अलंकृत करते हैं (संमृजन्ति) ।

समृतः - (१) सम् + ऋत । सर्वत्र व्याप्त -सूर्य ।
दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् '

ऋ. ४.१३.५
(२) एकत्र हुआ
'दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः'
ऋ. १.३१.६
जो मारने में कुशल छोटे छोटे वीर पुरुषों के द्वारा भी एकत्र होकर युद्ध में आए बहुत से शत्रुओं को भी मार देता है।

समृति – सम् + ऋति। (१) एक साथ मिल कर हुई संगति, (२) सम्मति
'सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषाम्'
ऋ. ७.६०.१०
(३) संयोग, (४) रण
'वीडु चिद् यस्य समृतौ'
ऋ. १.१२७.३; साम. २.११६५
(५) एकत्र होने का स्थान सभा आदि
'वित्वक्षणः समृतौ चक्रमारुजः'
ऋ. ५.३४.६
(६) सम्प्राप्ति (७) संगम, (८) समागम, (९) लेखा जोखा

समृते – परस्परं सत्य व्यवहार से सम्बद्ध– आकाश और पृथ्वी
'अन्तर्मही समृते धायसे धुः'
ऋ. ३.३८.३

समृध् – सबको सम्पन्न करने वाला
'धात्रे विधात्रे समृधे'
अ. ३.१०.१०; १९.३७.४

समृध्यताम् – समृद्ध हो, फूले फले, रिद्धि सिद्धि से युक्त हो। पति पत्नी को आशीर्वाद के रूप में कहा गया है।
'इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम्'
हे वधू, इस गृह में सन्तति में युक्त तेरा मंगल बढ़े।

सभे – 'सम' सर्वनाम का प्र.ब.व. में रूप। अर्थ है सभी
'नगन्तामन्यकेऽ्ख्गे५५७८
ऋ. ८.३९.१–४०.११; ४१.१-१०;४२.४–६; तै.सं. ३.२.११.३; नि. ५.२३; १०.५

समेति – एकत्र होता है। अपने अपने कार्य में लग जाता है।
'इतीदं विश्वं भुवनं समेति'
ऋ. १०.१७.१; अ. ३.३१.५; नि. १२.११.
सरण्यू और आदित्य का विवाह देखने समस्त भूतजात एकत्र होता है (समेति)–सा।
उषा के मध्यम भाग में ज्योति रूपिणी दुहिता का विवाह जब आदित्य से किया तो सभी भूतजात अपने अपने कर्म में लग गए।

समेद्धा – चमकाने और बढ़ाने वाला
'शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः
समेद्धारं शतं हिमाः'
ऋ. ६.४८.८; तै.आ. ४.७.५.

समोकसः – अपने बल, पराक्रम और ऐश्वर्य से एक समान या का उत्तम स्थान के रहने वाले
'विश्ववेदसो रयिभिः समोकराः'
ऋ. १.६४.१०

समोकसा – द्वि.व.। (१) समान पदाधिकार वाले (२) समान गृह वाले
'यद्वा वायुना भवथः समोकसा'
ऋ. ८.९.१२; अ. २०.१४१.२
(३) एक ही गृह में रहने वाले पति पत्नी
'समाने योना मिथुना समोकसा'
ऋ. १.१४४.४

समोकाः – सम् + ओकस्। अर्थ –(१) जिसमें सम्यक् निवास स्थान हो–दया. (२) संयुक्त

समोह – सम् + ओह। (१) संग्राम
'समोहे वा य आशत'
ऋ. १.८.६; अ. २०.७१.२
जो नेता पुरुष संग्राम में लगे रहते हैं।

संयत् – (१) अच्छी प्रकार से रक्षा (२) रात्रि
'संयच्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७:१११.१६; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.५

संयत् ऋतु – (१) संयम के लिए उपयोगी शरद ऋतु अजपञ्चौदन
'यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद'
अ. ९.५.३३

संयद्वसु – (१) समस्त ऐश्वर्य को एकत्र एक काल में धारण करने वाला परमेश्वर (२) वसुओं या वास शील प्रजाओं का संयमन करने वाला
'संयद्वसुरायद्वसुः
अ. १३.४.५४
'अयमुत्तरात् संयद्वसुः'
वाज.सं. १५.१८; तै.सं. ४.४.३.२; मै.सं.

२.८.१०:११५.२; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१९

संयती – द्वि.व. । (१) उत्तम मार्ग में यत्नशील स्त्री पुरुष(२) पश्चात्तापकारी स्त्री पुरुष, (३) परस्पर मिलने वाले आकाश पृथिवी, (४) युद्ध में संयत, सुसज्जित दोनों ओर की सेनाएं

'यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते'

ऋ. २.१२.८; अ. २०.३४.८

(५) बांधने वाली–बन्धनों में डालने वाली शक्ति

'संयतीसंयतीमेवाप्रियस्य
भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते'

अ. ९.४.३३

(६) समान रूप से सुव्यवस्थित, निमयबद्ध

संयद्वीर – संयमशील वीरों या पुत्रों से युक्त

'अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तम्'

अ. २.४.८

संयमः – अच्छी प्रकार बांधा हुआ

'यत् संयमो न वियमः'

अ. ४.३.७

संस्वज् – आलिंगन करना

'पितेव पुत्रान् अभि सं स्वजस्व नः'

अ. १२.३.१२.

स्मयमाना – ईषत् हास्य करती हुई विद्युत्, या कामनी

'शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्'

ऋ. १.७९.२; तै.सं. ३.१.११५; मै.सं. ४.१२.५; १९३.१०; का.सं. ११.१३

(२) मुस्कुराती हुई । स्मय + शानच् + टाप् = स्मयमाना । मुस्कुराती हुई । अंग्रेजी का smile धातु का 'स्मय' धातु से सम्बन्ध विचारणीय है ।

'अभि प्रवन्त समनेव योषाः
कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्'

ऋ. ४.५८.८; वाज.सं. १७.९६; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१; नि. ७.१७

स्वयं गातुः – स्वयं अपने बल से व्यापने वाला परमेश्वर

'स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम्'

ऋ. ४.१८.१०

स्वयतः – (१) अपने अप संयत, (२) उत्तम रीति से बंधा हुआ जितेनद्रिय (३) अश्वगण सवार

'प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन्'

ऋ. १.१६६.४

स्वयम् – स्वयं, खुद ।

'स्वयं तो अस्मदा निदो
वधैरजेत दुर्मतिम्'

ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२

वह इन्द्र स्वयं हमारे निन्दकों तथा दुष्ट बुद्धि वाले को वधों से जीते ।

स्वयंजाः – स्वयं उत्पन्न होने वाले जन

'खनित्रिमा उतवा याः स्वयंजाः'

ऋ. ७.४९.२

स्वयशस्तर – स्वजन, धन, कीर्ति को अधिक बढ़ाने वाला

'सुनीती स्वयशस्तरम्'

ऋ. ८.६०.११; साम. १.४३.

स्वयशाः – (१) स्वयं यशोरूप ईश्वरीय शक्ति

'सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः'

ऋ. १०.१०५.९

(२) धन और यश से सम्पन्न

'अदब्धासः स्वयशसः'

ऋ. ८.६७.१३

(३) अपनी प्रजाओं से कीर्ति कामना वाला पुरुष

(४) अपने यश से यशस्वी सूर्य

(५) जहां पर अपना ही यश है वह स्थान ।

'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे
स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्'

ऋ. ५.४८.१

(६) स्वयं यशस्वी (७) पराश्रयी न होकर यशस्वी है ।

(८) अपने ही वश में रहने वाला अग्नि का विशेषण

'जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे'

ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.८, २२७.४, तै.ब्रा. २.८.७.४, आप.श्रौ.सू. १६.७.४, नि. ८.१५

अपने ही स्थान में अपने वश में रहने वाला अग्नि फुटित इन्धनों या मनुष्यों के ऊपर सीधे होकर जाता है ।

स्वयं स्रस् – स्वयं जल बहाने वाली गण्डमाला

'विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः'

अ. ७.७६.२

सयावरी – (१) नित्यगमन करने वाली

'या इन्द्रेण सयावरीः'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; साम. १.४०९; मै.सं. ४.१४.१४: २३८.६
(२) साथ साथ रहने वाली किरणें
(३) स + यावरी । स्वयं प्रयाण करने वाली
'भुवद्वाणी सयावरी'
ऋ. ७.३१.८

सयावा – (१) साथ जाने वाला सहयोगी
'श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः
देवैरग्ने सयावभिः'
ऋ. १.४४.१३; साम. १.५०; वाज.सं. ३३.१५; तै.ब्रा. २.७.१२.५.
हे कानों से अच्छी तरह सुनने वाला अग्नि या विद्वान् , तू राज्य कार्यों को वहन करने वाले व्यवहारज्ञों (वह्निभिः) एवं सहयोगियों (सयावभिः) के साथ प्रजा के धर्म व्यवहारों को श्रमण कर । .
(२) एक साथ मार्ग में आगे बढ़ने वाला
'जातं विश्वं सयावभिः'
ऋ. १०.२२.११

संयास – मिलकर अंगों का एकत्र यत्न करना
'संयासाय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११; तैसं. १.४.३५.१; का.सं.(अश्व.) ५.६; तै.आ. ३.२०.१

स्वयावा – (१) अपने ही सामर्थ्य से संसार को चलाने वाला
'श्रुधि स्वयावन् सिन्धो पूर्वचित्तये'
ऋ. ८.२५.१२

सयुज्वा – सब के साथ स्पर्श करने वाला
'सूरो न सयुग्वभिः'
ऋ. ९.१११.१; साम. १.४६३; २.९४०

सयुजा – (१) एकत्र रहने वाले ईश्वर और जीव अथवा जीव और मन
'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'
ऋ. १.१६४.२०; अ. ९.९.२०; मुण्डक उप. ३.११; नि. १४.३०.

स्वयुक् – (१) स्वयं समाहित होकर योग करने वाला (२) आत्मा के सम, समाहित या स्थिर हुआ प्राण
'उदुस्त्रिया असृजत स्युग्भिः'
ऋ. १०.६७.८; अ. २०.९१.८

स्वयुक्ति – (१) अपनी युक्ति (२) तत्व शक्तियों को भोजन करने की शक्ति, (३) प्रेरक शक्ति
'ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः'
ऋ. १.५०.९; अ. १३.२.२४; २०.४७.२१; आ.सं. ५.१३; का.सं. ९.१९; तै.ब्रा. २.४.५.४.
सूर्य अपनी प्रेरक शक्तियों से ही उन सात किरणों के सहित सर्वत्र व्यापता है।

स्वयुग्व – (१) अपनी रश्मि (२) अपना समाहित प्राण, (३) अपना नियुक्त पुरुष
'सूरो न स्युग्वभिः'
ऋ. ९.१११.१; साम. १.४६३; २.९४०

स्वयुजः – (१) स्तोताओं को अपने अनुसार से युक्त करने वाले मरुतों का विशेषण
(२) धन से युक्त करने वाले व्यापारी गण
'वातासो न स्वयुजः सद्यौतयः'
ऋ. १०.७८.२
वायु के समान स्तोताओं को अपने अनुग्रह या धन से युक्त करने वाले (स्वयुजः)मरुद्गण...।

स्वयुक्ताः – वि.। अपने ही बल से प्रेरित मरुद्गण, (२) धनैश्वर्य, (३) आत्मा से प्रेरित प्राणगण
'अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुः'
ऋ. १.१६८.४

स्वयु – (१) स्वेच्छा चारी, (२) स्वयं प्रयाण करने वाला, (३) धन की कामना करने वाला, (४) धन का स्वामी, (५) स्वयम्भू आत्मा
'स्वयुरिन्द्र स्वराऽसि'
ऋ. ३.४५.५

सयूथ्यः – (१) एक श्रेणी का मित्र
'अनु सखा स यूथ्यः'
वाज.सं. ४.२०; ६.९; तै.सं. १.२.४.२; का.सं. २.५; ३.५; १६.२१; मै.सं. १.२.४:१३.६;१.२.१५: २४.१२; ४.१३.४:२०३.९; ऐ.ब्रा .२.६.१२; श.ब्रा. ३.२.४.२०; ७.४.५; तै.ब्रा. ३.६.६१; आश्व.श्रौ.सू. ३.३.१; साम.मं.ब्रा. २.२.९

सयोनीःयुवतयः – (१) एक ही गृह में रहने वाली युवतियाँ (२) अंग, आदि में समान बल युक्त स्त्रियाँ
'सन्त अत्र युवतयः सयोनीः'
ऋ. ३.१.६

सयोनी – द्वि. । समान बन्धु , (२) मिथुना का विशेषण

'जामी सयोनी मिथुना समोकसा'
ऋ. १.१५९.४
(२) एक समान गृह में रहने वाली आपः अर्थात् प्रकृति के परमाणु
'अपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः'
ऋ. १०.३०.१०

सयोषाः - (१) प्रेम के साथ -सा. । एक साथ सेवनीय (३) अग्नि का विशेषण-ज.दे.श।
'आयाह्यग्ने वसुभिः जो सयोषाः
हे अग्ने, तू वसुदेवताओं के साथ प्रेम के साथ आ-सा. । हे यज्ञाग्नि तू गृहस्थों से एक साथ सेवनीय है-आ. ज.दे.श।

सर - सृ + अच् । अर्थ-व्यापार, चेष्टा
'ऋतस्य सामन् सरमारपत्नी'
वाज.सं. २२.२; तै.सं. ४.१.२.१; ११.१; मै.सं. ३.१२.१:१५९.१४; का.सं.(अश्व.) १.२; तै.ब्रा. ३.८.३.४

सरजन् - प्रकाशित करने वाला
'महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः'
ऋ. १०.११५.३

सरट् - (१) वेग से आगे बढ़ने वाला वीर (२) युद्ध में विजय करने वाला सैनिक
'मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्यः'
ऋ. १.११२.२१
जिन उपायों से वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों को मधुमक्षिकाओं को मधु के समान उनको स्थिर रूप से बांधे रखने वाले प्रिय अन्न प्रदान करते हो...।

सरण्यन् - (१) सबके जाने योग्य उत्तम मार्ग के समान सबका चारा होता हुआ, (२) उत्तम ज्ञान को प्राप्त होता हुआ
'महान् महीर्भिरूतिभिः सरण्यन्'
ऋ. ३.१.१९; ३१.१८; मै.सं. ४.१४.५:२४२.२
(३) प्राप्त होता हुआ

सरण्युः - (१) विचरने वाला, (२) परिव्राजक
'सरत् सरण्युः कारवे जरण्युः'
ऋ. १०.६१.२३
(३) सरण शील, आगे बढ़ने का इच्छुक
'सरण्युभिरणो अर्णा सिसर्षि'
ऋ. ३.३२.५
(४) सृ + अन्युच
वेग से जाने वाली किरण
(२) सभी शास्त्रों में विज्ञानगति वाला विद्वान्
'सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र
वलं रवेण दरये दशग्वैः'
ऋ. १.६२.४

सरण्यूः - (१) सर्वव्यापक चित्ति शक्ति
'अजहादुद्वा मिथुना सरण्यूः'
ऋ. १०.१७.२; अ. १८.२.३३; नि. १२.१०
(२) सरणशील विकृति दशा को प्राप्त प्रकृति (३) सरण्यू सरपात (सरण्यू शब्द सरण से हुआ है)-दुर्ग ।(४) देवराज के मत से प्रभाव करने वाली उषा अपने को सूर्य के निकट ले जाती है । और यह सरण्यू कहलाती है ।
(५) जब प्रभाभूतों से चली जाती है तब छाया या रात्रि को सरण्यू कहते हैं । (६) वृषाकपायी सान्ध्य सूर्य प्रभा के बाद उषा के पूर्वतक का काल सरण्यू है ।
(७) सृ + अन्यत्र + ऊङ् = सरण्यू अथवा सृ + घ = सरः सर + नी + ऊक् = सरण्यू (सरणेन आत्मानं सूर्यं प्रति नयति) ।
(८) अर्द्ध रात्रि के पूर्व सरण्यू के दो रूप हैं -अन्धकार और निस्तब्धता ।
(९) यास्क ने 'जायाविवस्वतः' का अर्थ 'रात्रि रादित्यस्य' किया है । अतः सरण्यू शब्द छापा या रात्रि का वाचक है ।
(१०) नैरुक्त अन्धकार को माध्यम और निस्तब्धता को माध्यमिक वाक् कहते हैं ।
(११) त्वष्टा की पत्री जिसे त्वाष्ट्री कहते हैं-सरण्यू है-सा.
सरण्यू का विवाह विवस्वत से हुआ था पर विवस्वान् का तेज सहन नहीं कर सकने के कारण वह घोड़ी रूप धारण कर उत्तर कुरु में तपस्या करने लगी और अपने पिता के घर पर अपने रूप की एक सवर्णा कन्या को छोड़ दिया । विवस्वान् उसे ढूंढते ढूंढते उत्तर कुरु पहुंचे और अश्व का रूप धारण कर बड़वा रूपधारिणी सरण्यू में संभोग किया । सरण्यू ने वीर्य को नासिका में धारण किया जिससे नासत्य अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए । उधर सवर्णा से विवस्वान् ने संभोग कर आठवें मनु सार्वार्ण को उत्पन्न किया ।

(१२) अमृत स्वरूपा पूर्वकालीन सरण्यू जिसे ईश्वरीय नियम ने मनुष्यों से छिपा दिया ।
'अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः '
ऋ. १०.१७.२; अ. १८.२.३३; नि. १२.१०
इस प्रकार दो सरण्यू है-पूर्व कालीन और उत्तरकालीन सायण के अनुसार सरण्यू और सर्वर्णा
(१३) ऐतिहासिक अन्धकार और निस्तब्धता को ही यम और यमी मानते हैं । यम और यमी का अर्थ दिन रात करना भूल है ।
सरण्यू से यम यमी और अश्विद्वय उत्पन्न हुए हैं । ये अश्विद्वय ही अहोरात्र हैं । यम अन्धकार और यमी निस्तब्धता है । इसी को ऐतिहासिकों ने कथा का रूप दिया है और सरण्यू को त्वष्टा की पुत्री या त्वाष्ट्री कहा है ।

सरथ - (१) रथवान्, (२) देहवान्, (३) आत्मवान् (४) रथारोही, (५) महारथी, (६) शासक (७) रसयुक्त
'यासद् राया सरथं यं जुनासि '
ऋ. १.७१.६
तू जिस रथवान् देहवान् या आत्मावान् पुरुष या रसयुक्त पुरुष को सन्मार्ग पर चलाता है वह ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है ।

सरथम् - (१) एक समान रथ पर
'यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विनाः
ऋ. ८.९.१२; अ. २०.१४१.२
(२) रथ पर एक साथ होना,
'यासि कुत्सेन सरथमवस्युः '
ऋ. ४.१६.११
हे इन्दु, तू कुत्स की रक्षा करने के उत्सुक कुत्स के साथ एक रथ पर आरूढ़ है -सा. ।
हे राजन्, तू आत्म-संरक्षण चाहता हुआ (अवस्युः) वेदज्ञ ब्राह्मण के साथ (कुत्सेन) एक रथ पर आरूढ़ हो जाता है (सरथं यासि)-दया. ।

सरयस् - (१) सराणि सृतानि अयांसि पायानि येन-दया.
(२) पापयुक्त (३) कर्मफल को छोड़ देने वाला कर्मबन्धन से रहित पुरुष
'अरमयः सरपसस्तराय कम् '
ऋ. २.१३.१२

सरमा - (१) यागति मानं पदार्थं मिनाति सा सरमा-दया. । जो गति मान पदार्थ को नापती है । सर + मा
(२) वेग से ध्वनि करने वाली विद्युत्, (३) वेग से जाने वाले वीरपुरुषों की बनी सेना
'विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेः '
ऋ. ३.३१.६; वाज.सं. ३३.५९; मै.सं. ४.६.४:८३.१०; का.सं. २७.९; तै.ब्रा. २.५.८.१०; आप.श्रौ.सू. १२.१५.६
(४) एक देह से दूसरे देह में सरण करने वाली जीवरूप चेतना (५) वेग से जाने वाली चित्त वृत्ति (६) सृ (गत्यर्थक) + अम + टाप् = सरमा । यमाविद्याधर्मबोधं मिमीते । सर + मा + क = सरमा । अर्थ-माना
'विदत् सरमा तनयाय धासिम्
ऋ. १.६२.३
(५) इन्द्र की कुत्ती
(५) वेदवाणी-
'किमिच्छन्ती सरमा प्रेद मानट् '
ऋ. १०.१०८.१; नि. ११.२५
किस इच्छा से सरमा नाम की कुत्ती यहां आई ? यह वेद वाणी किस इच्छा से यहां आई ?
(६) माध्यमिका वाक् (अन्तरिक्ष की वाणी या ध्वनि) ।
'देवशुनी' शब्द के अर्थ पर पण्डितो में विवाद है । ऋग्वेद का १०-१०८ सूक्त सरमा पणिसूक्त कहलाता है । इसमें असुर पणियों तथा सरमा देव शुनियों का संवाद है । सायण ने सरमा का अर्थ देवों की कुत्ती ही माना है । आर्य समाजी व्याख्याता इसका अर्थ वेदवाणी बतलाते हैं । वेदवाणी देवों के पास ही रहती है अतः यह देवशुनी है ।
शुनी शब्द 'श्वि' (गत्यर्थक) धातु से सिद्ध है । स्वामिभक्त कुत्ते की तरह वेदवाणी भी देवों की रक्षा करती है । सरमा की दो सन्तातियां है जिनका वर्णन ऋ. १०.१४.१० में है ।
'अति द्रव सारमेयौ श्वानौ
चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा '
ऋ. १०.१४.१०
हे श्रेष्ठ मनुष्यों, तुम साधु मार्ग से चारों तरफ आंखें और चित्र विचित्र विद्या तथा कर्म इन

दोनों वेदवाणी जन्म साथियों को पितृयान की ओर साथ ले जाओ ।
वृ. आ. ४.४२ में भी कहा है-
विद्याकर्मणी समत्वारभेते मरने पर विद्या और कर्म मनुष्य के साथ जाते हैं ।
मनु ने भी वेदाध्यायन और कर्म को काम्य बताया है ।
'काम्यो हि वेदाधि गमः
कर्मयोगश्च क्षेमदः '
महाभारत के महाप्रास्थानिक पर्व में (३-१७) धर्म को श्वन् कहा है ।
अतः श्वन् साथी का वाचक हुआ ।
पाणि सूक्त में कृपण बनियों से गाय छीनने का आदेश है और यज्ञविरोधी सूदखोरों से गाय छीनने की बात है ।
(७) स + रमा = सरमा । साथ रमण करने वाली स्त्री (८) समान रूप से विद्वानों को आनन्दित करने वाली वाणी (९) एकत्र रमाने अर्थात् युद्धक्रीड़ा करने वाली सेना
'विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेः'
ऋ. ३.३१.६; वाज.सं. ३३.५९; मै.सं. ४.६.४; ८३.१०; का.सं. २७.९

सरयः - स + रय । धारा प्रवाह से जाने वाली
'देवीरापो मातरः सूदयित्न्वः'
ऋ. १०.६४.९

सरयुः - नदी, नहर
'मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिणी'
ऋ. ५.५३.९

सरराणः - रमण करता हुआ
'प्रजापतिः प्रजया संरराणः'
अ. २.३४.४

सरवः- (१) सुखदायक (२) रमण या आनन्द करने योग्य रथ (३) इन्द्रियों से सुख के युक्त शरीर

सरश्मि - (१) किरणों से युक्त (२) राष्ट्र को वश करने के लिए साधनों से युक्त
'तवायं भागः ऋत्वियः
सरश्मिः सूर्ये सचा'
ऋ. १.१३५.३
तेरा ऋतु अनुकूल भाग सेवन करने के योग्य अंश है जो सूर्य में विद्यमान किरणों के समान राष्ट्र को वश करने के साधनों सहित तुझे प्राप्त है ।

सरस् - (१) सृ + असुन् = सरस् । सरति इति । सरः (जो चलता है वह सरस् अर्थात् उदक है)। (२) सोमरस रखने का पात्र (३) पात्रस्थ सोमरस (४) तालाब
वेद में सोम पात्र के अर्थ में भी प्रयोग है ।
त्रिशत् सोमस्य काणुका सरांसि (सोमरस से पूर्ण तीस पात्र)
(५) मद्यपान पात्र को भी सरस् कहते हैं ।
चषकोऽ स्त्री पानपात्रं सरकोऽपि-अमरकोष
सरकः शीघ्र पानेक्षु शीघ्रको मध्यमा जने
(५) नैरुक्तों के अनुसार त्रिशतं सरांसि का अर्थ है अपर पक्ष के तीस अहोरात्र और पूर्वपक्ष के तीस ।
अंशु का अर्थ सोम भी है । चन्द्रमा की रश्मि सोम ही है ।
(६) उदक
'पयः सरः भेषजम् '
नि. १.१२
अतः चन्द्रमा की रश्मियों में जो उदक है वही सरस है । चन्द्रमा में १५ दिनों में जो उदक होता है उसे ही सूर्य या इन्द्र रश्मियों से पीता है ।

सरस्य - तालाबों के बनाये या प्रबन्ध में लगा पुरुष
'नमः कुल्याय च सरस्याय च नमः'
वाज.सं. १६.३७

सरस्वत् - सृ + असुन् = सरस, सरस् + वतुप् = सरस्वत् । अर्थ है-(१) उदकवान्, जलवाला, (२) माध्यमिक देव, अन्तरिक्ष का देव मेघ (३) शीतल समीर जिसमें जल का सम्पर्क रहता है ।
'ये ते सरस्व ऊर्मयो
मधुमन्तो घृतश्चुतः
तेभिर्नोऽविताभव'
ऋ. ७.९६.५
हे भगवन् सरस्वन्, जो तेरी उदक युक्त या उदक चलाने वाली ऊर्मियां हैं (ये ते मधुमन्तः घृतश्चुतः ऊर्मयः)उन ऊर्मियों अर्थात् मेघों से तू हमारा रक्षक बन (तेभिः न अविता भव), यही हमारी आशा है । (४) प्रशस्त ज्ञान का अगाध सागर
'सरस्वते शुकः पुरुषवाक '

वाज.सं. २४.३३; तै.सं. ५.५.१२.१; मै.सं. ३.१४.१४:१७५.७

सरस्वती – (१) सरस्वती नाम की नदी (२) शरीर की एक नाड़ी जिसे सुषुम्ना कहते हैं। क्योंकि इसमें प्रशस्त ज्ञान-सुख का उद्भव होता है। (३) विद्यादेवी, (४) वाणी (५) ऋग्वेद और सामवेद सरस्वती के दो स्रोत कहे गए हैं। ज्ञानमय वज्र (६) पुष्टिकर देवी, (८) आत्मा में बल उत्पन्न करने वाली

वाग्वै सरस्वती

श.ब्रा. ५.५.४.१६

'योषा वै सरस्वती पूषा वृषा'

श.ब्रा.

'ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ'

तै.ब्रा. १.४.४.९

'सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्र रूपम्'

कौ.ब्रा. १२.२

(९) समस्त रस प्रदान करने वाली पुष्टि की स्वमिनी स्त्री वा समिति

'आन्ने धनं सरस्वती'

अ. १९.३१.१०

(१०) स्त्री

'योषा वै सरस्वती'

श.ब्रा.

पुनः –

'सरस्वति या सरथं ययाथ'

ऋ. १०.१७.८; अ. १८.१.४३; ४.४७;

(११) सृ (गत्यर्थक) + असुन्, = सरस्। सरन्ति सर्वा विद्याः येन तत् सरस्।

सरस् + वतुप् + ङीष् = सरस्वती। माध्यमिका वाक् –सा.

'महो अर्णः सरस्वती

प्रचेतयति केतुना।

धियो विश्वा विराजति'

ऋ. १.३.१२; वाज.सं. २०.८६; नि. ११.२७

महान् माध्यमिका वाक् सरस्वती अपनी प्रज्ञा से जल राशि बरसाती है तथा समस्त यज्ञ या कर्म सम्बन्धी ज्ञानों को उत्पन्न करती है। वेदवाणी कर्म तथा ज्ञान योग से महान् शब्द सागर को बतलाती और सम्पूर्ण सत्यविद्याओं को प्रसारित करती है।

'सरस्वती स्वपसः सदन्तु

ऋ. १०.११०.८, वाज.सं. २९.३३, मै.सं. ४.१३.३: २०२.१०, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१३.

सुन्दर कर्मों को सम्पादित करने वाली तीन देवियाँ जिनमें मध्यमस्थानीय विद्युत् (सरस्वती) एक है हमारे यज्ञ में आस्थित हो। अथवा-

सरसः प्रशंसिता ज्ञानादयो गुणा

विद्यन्त यस्याः सा सरस्वती सर्वविद्या प्रापिका वाक्।

सरस्वती नदी के अर्थ में

'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'

ऋ. १०.७५.५; तै.आ. १०.१.१३; नि. ९.२६

'पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः

सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः'

ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७:२२६.१०; का.सं. ४.१६; नि. २.२४.

उस पार अवार को तोड़ने वाली (पारावतीघ्नीम्)। सरस्वती नदी का (सरस्वतीम्) सुप्रवृत्त कर्मों या स्तोत्रों से (सुवृक्तिभिः धीतिभिः) परिचारित करें (आविवासेम)।

सरस्वतीकृत – विद्वत्सभाद्वारा निश्चित

'सरस्वती कृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य'

वाज.सं. २०.३५

सरस्वान् – (१) रस सागर ईश्वर समुद्र के समान समस्त ज्ञान आदि कर्मों का विशाल स्वामी

'तं सरस्वन्तमवसे हवामहे'

अ. ७.४०.१; तै.सं. ३.१.११.३; मै.सं. ४.१०.१:१४२.१४; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. ६.११.८

(२) जलों से पूर्ण, (३) उत्तम ज्ञान और कर्म का भण्डार

'सरस्वन्तमवसे जोहवीमि'

ऋ. १.१६४.५२; का.सं. १९.१४

(४) आनन्द रस का सागर रूप परमात्मा

सर्ग – (१) जल, (२) सृष्टि, (३) सन्तति, (४) सूर्य, (५) परमेश्वर

'सर्गो न यो देवयतामसर्जि'

ऋ. १.१९०.२

(६) युद्ध
'वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः'
ऋ. ४.३.१२
(७) समिति, (८) संघ, (९) रचना, (१०) राज्य-संविधान
'शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम्'
ऋ. ७.१८.११

सर्गरतशः - (१) शुभ्रवर्ण का जल, (२) वेगवान् छोड़ा गया अश्व
'सर्गो न तक्ति एतशः'
ऋ. ९.१६.१

सर्गतक्त प्रसव - (१) जलों के द्वारा सुप्रसन्न -वेगयुक्त गमन (२) सृष्टि नियम से विकसित उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का कार्य (३) जलसंकोचक
'न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः'
ऋ. ३.३३.४

सर्ग प्रतक्तः - (१) यः सर्गम् उदकम् प्रतनक्ति संकोचयति सः (जो जल को संकुचित करता है)
(२) जल को अपने भीतर दबाव से रखने वाला जल समूह (३) सृष्टि से जाना गया परमेश्वर
'अत्यो न अज्मन्त्सर्गप्रतक्तः
सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते'
ऋ. १.६५.६
वेग से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में अश्व के समान छूटते ही शत्रु के पास पहुंचाने वाला अथवा जल को अपने भीतर दबाव में रखने वाला जल समूह के ही समान ईश्वर भी सृष्टि से जाना जाकर (सर्गप्रतक्तः) अगाध सागर के समान (सिन्धुः न) सर्जनशक्ति का अक्षय भण्डार हैं (क्षोदः)

सर्तवे - सृ + तवे । आगे बढ़ने के लिए

सर्प - (१) प्रगतिशील तत्व (२) सर्पणस्वभाव गतिमान् लोक, (३) राजाओं के प्रति जाने वाले प्रजाओं में फैले हुए गुप्त रूप से गतिशील चर, (४) सर्पस्वभाव वाला दुष्टपुरुष (५) सर्प
'इमे वै लौकाः सर्पाः ये वैसु
लोकेषु नाष्ट्रा, यो व्यध्वरो
या शिमिदा-तदेव एतत्सर्वं शमयति ।'
श.ब्रा. ७.४.१.२७
'नमोऽस्तुसर्पेभ्यः
ये के च पृथिवीमनु'
वाज.सं. १३.६; तै.सं. ४.२.८.३; मै.सं. २.७.१५;९७.१; का.सं. १६.१५.श.ब्रा. ७.४.१.२८;

सर्पदेवजन - (१) सर्व अर्थात् राष्ट्र में गुप्त चर कार्य करने वाला और 'देवजन' अर्थात् विजय प्राप्ति के लिए सैनिक
'सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदम्'
वाज.सं. ३०.८; तै.ब्रा. ३.४.१.५

सर्म - सृ धातु से सम्पन्न । अर्थ है- निकलना, भाग निकलना
'अपः सर्माय चोदयन्'
ऋ. १.८०.५
जल धाराओं के निकलने के लिए प्रेरित करता हुआ....

सर्वम् - सर्वम् ससृनम् (जो एक में संगत होता है वह सर्व है) अर्थ -सब कुछ ।
(२) सम्पूर्ण, समस्त. सृ + वन् = सर्व
'सर्वं तदस्तु ते घृतम्'
ऋ. ८.१०२.२१; अ. ७.१०१.१; १९.६४.३; वाज.सं. ११.७३; ७४; तै.सं. ४.१.१०.१;
हे अग्नि ! वह काष्ठ आदि सभी तेरे लिए घृत हो ।

सर्व - प्र. । (१) अग्नि । अग्नि के आठ नामों में एक सर्व भी है ।
'सर्वं प्रदक्षिणं कृणु'
अ. २.३६.६

सर्वक - सब का सब
'बहिर्बालिति सर्वकम्'
अ. १.३.६-९

सर्वकेशक - (१) रोग कीट जिसके समस्त शरीर में रोम हो, (२) सर्वाङ्ग सुन्दर केश बनाए हुआ कुमार
'कुमारः सर्वकेशकः'
अ. ४.३७.११

सर्वगणः - (१) समस्त भृत्य और बन्धुजनों सहित
'सर्व आपः सर्वगणो अशीय'
अ. १६.१(४) ६
(२) सर्वनामा-सभी नामों से सम्बोधित होने वाला
(३) अत्रि का विशेषण, अपने सभी गणों के

साथ अत्रि ऋषि ।

सर्वगणं स्वस्ति – (१) सर्वगण का अर्थ है सर्वनामा–सभी नामों से सम्बोधित होने वाला अत्रि के विशेषण के रूप में आया है जैसे 'सर्वगणम् अत्रिम्' सभी नामों से पुकारे जाने वाले अत्रि को)

समस्त प्रजावर्ग के कल्याण के निमित्त–

'ऋजीषे अत्रिमश्विनावतीतम्
उन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ।'

ऋ. १.११६.८; नि. ६.३६.

सूर्य और पृथ्वी ने पृथ्वी के नीचे की आग को वर्षा द्वारा ऊपर लाया, बीजों को समस्त प्रजावर्ग के कल्याण जमाया । सायण के अनुसार अश्विनी कुमारों ने गण के साथ अवाङ् मुख अत्रि ऋषि को अग्निगृह से निकाल कर कल्याण किया ।

सर्वजन्मा – सब प्रकार से उत्पन्न होने वाला संसार

'यो अस्य सर्वजन्मनः ईशे सर्वस्य चेष्ठतः'

अ. ११.४.२४

सर्वज्यानि – सर्वनाश

'सर्वज्यानिं जीयते'

अ. ११.३.५५

(२) सभी प्राणियों का नाश करने वाली

'सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती'

अ. १२.५.२२

सर्वताता – (१) सर्वत्र जगत् में

'शततमं वेश्यं सर्वताता'

ऋ. ४.२६.३

(२) सर्वहितकारी

'यक्षत् राजन् त्सर्वतातेव नु द्यौः'

ऋ. ६.१२.२

(३) सर्वोपास्य, सर्वप्रद प्रभु

'सर्वताता ये कृपणन्न रत्नम्'

ऋ. १०.७४.३

(४) सर्वासु कर्मततिषु, सर्वाः ततयः येषु यागादिषु' वर्ण की व्यापत्ति से 'तति' में उभयत्र आत्व हुआ है । 'सुपां सुलुक्' से ङि का 'डा' आदेश । अर्थ है– सभी कर्मों में

सर्वताति – (१) सब प्रकार का उत्तम ऐश्वर्य

'अस्मभ्यम् आसुव सर्वतातिम्'

(२) सभी कर्मों का विस्तार

'यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽ
नागस्त्वमदिते सर्वताता'

ऋ. १.९४.१५; नि. ११.२४

सबर्दुघा – (१) आनन्द सुख से पूर्ण करने वाली युवति

(२) जलों एवं रसों को दोहन करने वाली दिशा

'सवर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः'

ऋ. ३.५५.१६

(३) सर्वपोषक दूध देने वाली

(४) समस्त प्रजा को समान रूप से भरण पोषण करने वाली भूमिमाता

'शुचियत् ते रेक्ण आयजन्त
सर्वदुघा याः पय उन्नियाणाः'

ऋ. १.१२१.५; १०.६१.११

सर्वधाः – समस्त प्राणियों का धारक पोषक–सोम

'मदेषु सर्वधा असि'

ऋ. ९.१८.१–७; साम. १.४७५; ४४३; ४४४,४४५

सर्वपरु – समस्त पोरुओं वाला

'सर्वाङ्ग एव सर्वपरु'

अ. ११.३.३२

सर्वमेध – मिधृ मेधृ संगमेच (मिधृ और मेधृ धातु संगम अर्थ में प्रयुक्त हुआ है) ।

हिंसा और मेघ अर्थों में भी यह प्रयुक्त होता है ।

मेधृ + घञ् = मेघ

'संगच्छते अनेन सर्वं तत् गच्छन्ति
अत्र देवताः हविः ग्रहीतुं दक्षिणार्थं वा'

(मेघ से ही सब कुछ संगत है अथवा इस मेघ में सभी दक्षिणा लेने आते हैं या इस से पाप नष्ट करते हैं) ।

मेघ का अर्थ है यज्ञ अतः सर्वमेघ का अर्थ है– जिसमें सर्वस्व दे दे–समर्पण कर दें ।

'सर्वार्थं हुत्वाऽत्मानं सर्वमेव
भवति–स एष सर्वस्य विदुषः सर्वः सर्वहुत यज्ञः
सर्वभावाय सम्पदयते दर्शनात्'

(२) कुछ कहते हैं–'सर्वमेधो निरुढ–संज्ञः अप्रहीनः अस्ति ।

अर्थात् निरूढ नाम से ख्यात् सर्वमेधे अर्हगण साध्य है ।

(३) 'विश्वकर्मा ह यौवनः सर्वमेघे सर्वाणि भूतानि जुहावं चकार, स आत्मानमपि अन्ततो

जुहवाञ्चकार
(अर्थात् भुवन के पुत्र विश्वकर्मा नामक ऋषि ने सर्वमेध में सब कुछ बनकर स्वयं अपने को भी हवन कर दिया) ।

सर्वरथा - द्वि.व. । सभी रमणयोग्य देहों में विद्यमान प्राण-अपान वायु
'सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च'
ऋ. १०.१६०.१; अ. २०.९६.१;

सर्वविद् - राष्ट्र परराष्ट्र सब का ज्ञान करने वाली परिषद्
'सर्वविद् द्विपाञ्च सर्वं नो रक्ष'
अ. ६.१०७.४

सर्ववीराः - (१) पूर्ण वीर होकर (२) वीर पुत्र पौत्रों के साथ
'अभिष्याम वृजने सर्ववीराः'
ऋ. १.१०५.१९; का.सं. १२.१४
हम पूर्ण वीर हो संसार-संग्राम में आन्तर एवं बाह्य शत्रुओं को जीतें ।
वीर पुत्र पौत्रों के साथ हम संग्राम में शत्रुओं को पराजित करें ।

सर्वशासः - यः सर्वं राज्यं शासति सर्वशासक
'सुयन्तुभिः सर्वशासैः अभीशुभिः'
ऋ. ५.४४.४

सर्वशुद्धवालः - समस्त श्वेत बालों वाला
'शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः'
वाज.सं. २४.३; तैसं. ५.६.१३.१; मै.सं. ३.१३.४; १६९.५

सर्वसेन - (१) इन (सूर्य) से मुक्त जगत् का स्वामी, (२) सब तरफ धावा करने वाली सेनाओं का स्वामी
'निसर्वसेन इषुधीरसक्त'
ऋ. १.३३.३
हे समस्त सेनाओं का स्वामी, राजा जब बाणों से भरे तर्कशों को बांध लेता है....
(३) सभी प्रकार की सेनाओं से युक्त राजा, बहुत सेनाओं से युक्त

सर्वहायाः - जीवन के सौ वर्ष रहने वाला
'तवैव सन् सर्वहायाः इहास्तु'
अ. ८.२.७

सर्वहुत् यज्ञ - सर्वप्रद और सर्वोपास्य परमेश्वर
'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः
ऋचः सामानि जज्ञिरे'
ऋ. १०.९०.८,९; अ. १९.६.१३,१४; वाज.सं. ३१.६,७; तै.आ. ३.१२.४.

स्परणी - सिलाची, लाक्षा, लाख का दूसरा नाम
'स्परणी नाम वा असि'
अ. ५.५.३

स्वर्णरः - ब.व.। (१) मरुतों का विशेषण (२) सब के सुख, तेज या पराक्रम के मार्ग में आगे आने वाले-मरुत
'यन्मरुतः सभरसः स्वर्णसः'
ऋ. ५.५४.१०

स्पर्धमान - स्पर्धा करता हुआ, सामना या मुकाबला करता हुआ ।
'अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः'
ऋ. १.३३.५

स्मर - परस्पर स्त्री पुरुषों को एक दूसरे को स्मरण करने वाला सरज प्रेम
'अप्सरसामयं स्मैरः'
अ. ६.१३०.१.

स्मरकारी - (१) स्मरण, अनुचिन्तन, पुनः पन ध्यान मनन करने वाली क्रिया
(२) काम जगाने वाली इती
'संज्ञानाय स्मरकादीम्'
वाज.सं. ३०.९

स्पर् - पालना, पोसना, प्रसन्न करना, आगे बढ़ाना अग्रेजी का spur धातु इसी स्पर् से हुआ है ।

स्वगा - स्वतन्त्रता, यथेच्छापूर्वक
'स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये'
वाज.सं. २२.४; मै.सं. ३.१२.१:१६०.२; श.ब्रा. १३.१.२-३

स्वर् - (क) सु + ऋ + विच् = स्वर् (ख) सु + अरणः = स्वरणः (ग) सु + ईरण, (घ) सु + ऋ + ल्यु = स्वरणा
(१) सुख से जाने वाला स्वरण है ।
सुखेन, तमांसि ईरयति इति स्वर् (सुख से अन्धकार से दूर करता है)(घ) सु + ईर् + विच् = स्वर् (ईर् के ई का व्यत्यय से अ)।
(ङ) स्वृतो रसान्
अर्थ-(१) द्युलोक, (२) आदित्य
'हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रितुः कृपा स्वः'

अ. ७.१४.२; साम. १.४६४; वाज.सं. ४.२५; तै.सं. १.२.६.१; मै.सं. १.३.१५; १४.६; का.सं. २.६; श.ब्रा. ३.३.२.१२; आश्व.श्रौ.स. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.७

हिरण्यपाणि सविता अपने सामर्थ्य से द्युलोक स्वा या अपने सामर्थ्य से आदित्य नाम है ।

सुखेन अरणः (सुखपूर्वक चलाने वाला)।

सु + ऋ + विप् + स्वर । सुष्ठु तमांसि ईरयति (सम्यक् प्रकार से अंधेरा दूर करता है) । सु + ईर् = स्वर् (ई का व्यत्यय से अ) ।

सु + ऋतः = स्वृतः । सुष्ठु भौमान् आन्तरिक्षान् च रसान् आदातुं ऋतः गतः (पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष के रसों को लेने के लिए गया) ।

अथवा –

'ज्योतिषां ग्रह नक्षत्रादीनां

भासम् आदातुं सुष्ठुऋतः गतः '

ग्रहों की ज्योति लेने के लिए गया, दीप्ति से सर्वत्र व्याप्त (भासा सुऋतः = स्वर्) ।

(३) प्रकाश

स्वरङ्कृत – सु + अरम् + कृत । (१) सुन्दर पूर्ण किया हुआ यज्ञ (२) उत्तम रीति से सुशोभित (३) खूब क्रिया कुशल, (४) सुअभ्यस्त (५) प्रजापालक राजा या उत्तम राष्ट्र । (६) उत्तम रीति से सुसज्जित; सुशोभित

'तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन '

ऋ. १.१६२.५; वाज.सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२०; मै.सं. ३.१६.१; १८२.७

स्वरत् – स्वरतु (पाले पोसे, आगे बढ़ावें, प्रसन्न करें) ।

स्वरःतीर्थः – स्वयं प्रकाशवान् मार्ग पंच ज्ञानेन्द्रियों को प्रेरित करते हैं ।

'तीर्थे सिन्धोरधिस्वरे '

ऋ. ८.७२.७

स्तर्य – (१) बिछावन (२) नौकादियानेषु साधुः (नौका आदि यानों में कुशल)

स्वर – प्र. । (१) ध्वनि

(२) ब.व. । सात स्वर जैसे कुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय , चतुर्थ, मन्द और अतिमन्द्र (३) अथवा अ, आ आदि स्वर ।

(३) स्वृ (शब्द करना तथा उपताप अर्थों में) + अच् = स्वर

स्वरण – (१) शब्दार्थ सम्बन्ध का उद्देष्टा ।

(२) स्वरण । सुयशस्वी, (३) ज्ञानवान् (४) प्रकाश वान् (५) तेजस्वी

'सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते'

ऋ. १.१८.१

स्वरवः – समस्त सूर्य । ए.व. में 'स्वरु '

'यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे '

अ. ४.२४.४

स्वर्क – सु + अर्क । उत्तम ज्ञान वान्, (२) पूज्य, (३) मनन शील, (४) श्रेष्ठ

'संवत्सरीणा मरुतः स्वर्काः'

अ. ७.७७.३

(५) उत्तम अर्चनीय या परमेश्वर

'स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु'

अ. २०.२.४

(६) सुन्दर अन्न वाला, (७) सुन्दर अर्चा (स्तुति) वाला (८) सुन्दर अर्चि (दीप्ति) वाला 'वाजी ' का विशेषण ।

'देवाताता मितद्रवः स्वर्काः'

ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२; १६२.१०; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.५.२२; नि. १२.४४

इस यज्ञ में (देवताता) मित मार्ग वाले या शोभनगति वाले या सुन्दर अन्न, अर्चा या दीप्ति वाले वाजि नामक देवता या अश्व (९) सुन्दर गमन वाला, स्वञ्चन सूपूजितः, स्वर्चनः । अञ्च्धातु, गत्यर्थक और अर्च पूजार्थक है ।

(१०) अथवा–'अनुपरत विद्युत्संपातः' सुन्दर अर्चियों से युक्त

'आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै

रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः '

ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४

हे मरुतों ! तू अपनी विशिष्ट दीप्ति युक्त गतियों से (विद्युन्मद्भिः अर्कैः) गरजते हुए अकाल के नाशक अशन पतन मेघों के साथ आओ (ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः आयात) ।

अथवा

विद्युत् की तरह आयुध युक्त अश्व वाहन वाले रथों से आओ ।

स्वर्ग – स्वर् + ग । (१) सुख देने वाला पदार्थ (२) आनन्द मय मोक्ष, (३) सुखार्थ पुरुषार्थ

'स्वर्गाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.३४; तै.सं. ७.१.१७.१; २.२०.१; ४.२१.१; मै.सं. ३.१२.१५; १६४.१४;

स्वर्ग्य – स्वर्गसुख, परमसुख
'स्वर्ग्या शक्त्या'
वाज.सं. ११.२

स्वर्णर – स्वर् + नर, (१) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष
'स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णते'
ऋ. ५.१८.४
(२) सुख के मार्ग में और सुख से उद्देश्य तक ले जाने वाला अग्नि
(३) सुखप्रद आनन्दमय परम पुरुष, (४) अग्नि
'समिधानं सुप्रयासं स्वर्णरं'
ऋ. २.२.१
'स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान्'
ऋ. ४.२१.३; कौ.ब्रा. २२.१
(५) सुख प्रापक, (६) अति वेगवान्

स्वर्थ – (१) आकाश से गिरने योग्य जल
(२) अनर्थ साधनों से रहित, (३) उत्तम पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
(४) शत्रुओं का सन्ताप और शब्द करने वाला सेना नायक
'य ई जजान स्वर्यं सुवज्रम्'
ऋ. ४.१७.८
'अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनस
भारं दक्षं न पप्रचासि धर्णसिम्'
हे आत्मन्! तू हमें उत्तम ऐश्वर्य के समान उत्तम पुरुषार्थ और इन्द्रिय और मन को दमन करने वाले धैर्य विद्यादि को धारण करने वाले, क्रिया कुशल, सेवन करने योग्य ऐश्वर्य युक्त स्वरूप को प्रदान करता है (पप्रचासि) (३) गरजता हुआ मेघ, (४) शब्दकारी, (५) संन्ताप कारी
'अश्मानं चित् स्वर्यं पर्वतं गिरिम्'
ऋ. ५.५६.४
(६) ताप और प्रकाश की उत्पन्न करने वाला सूर्य (७) शब्दकारी विद्युत्

स्वदृश् – (१) सूर्य के समान द्रष्टा
'ईशान मस्य जगतः स्वर्दृशम्'
ऋ. ७.३२.२२; अ. २०.१२१.१; साम. १.२३३; ३०; वाज.सं. २७.३५; मै.सं. २.१३.९; १५८.१५; का.सं. ३९.१२;
(२) परम ज्ञान मय परमेश्वर या परम सुख का दर्शन
(३) स्वर् + दृश् + क्विप् = स्वर्दश्। सूर्य की किरण
'तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशे
वसु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम्'
ऋ. २.२४.४; नि. १०.१३
उसी मेघ को सूर्य की सभी रश्मियां पीती हैं और वर्षा काल में आकाश में उठते मेघ को मिलाकर बहुत जल देती हैं।
(४) सूर्य के समान दीख पड़ने वाला
(५) सर्वद्रष्टा इन्द्र (६) सुखकर दर्शन, (६) सुख दिखलाने वाला
'ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशम्'
ऋ. ७३२.२२; अ. २०.१२१.१; साम. १.२३३; २.३०; वाज.सं. २७.३५; मै.सं. २.१३.९; १५८.१५; का.सं. ३९.१२

स्वर्यन्तः – स्वर् गच्छन्तः। स्वर्ग को जाते हुए (स्वर + इ + शतृ जस् = स्वर्यन्तेः। (स्वर्यते) के प्र.ब.व का रूप।
'स्वर्यन्तो नापेक्षन्त
आ द्यां रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं विश्वतोधारं
सुविद्वांसो वितेनिरे'
अ. ४.१४.४; वाज.सं. १७.६८; तै.सं. ४.६.५.२; मै.सं. २.१०.६; का.सं. १८.४; श.ब्रा. ९.२.३.२७
यज्ञ तथा देवों का तत्व समझने वाले विद्वान् (सुविद्वान्) सर्वत्र अप्रतिहत गति वाले यज्ञ को करते हैं (ये विश्वतो धारं यज्ञं वितेनिरे), जो जब स्वर्ग जाते हैं (द्याम् आरोहन्ति) तब स्वर्ग जाते हुए (स्वर्यान्तः) द्यौ पृथिवी की अपेक्षा नहीं करते–इनकी ओर नहीं देखते (न अपेक्षन्ते)।

स्वर्यन्ता – द्वि.व.। सुखों को प्राप्त होते हुए मिथुन
'स्वर्यन्ता समूहसि'
ऋ. १.१३१.३; अ. २०.७२.२; ७५.१

स्वर्यम् – (१) नाशकारी, शब्द करने वाला
'उत्तक्षतं स्वर्यपर्वतेभ्यः'
ऋ. ७.१०४.४; अ. ८.४.४

सर्वत ज्योतिः – (१) निःश्रेयस् को देने वाला ज्ञान–प्रकाश (२) आदित्य के समान प्रकाश

वाला स्वर्ग लोक
'स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति'
ऋ. ६.४७.८; कौ.ब्रा. २५.७; तै.ब्रा. २.७.१३.३
निःश्रेयस के देने वाले ज्ञान प्रकाश को (सर्वत् ज्योतिः) तथा अभय रूपी कल्याण को (अभयं स्वस्ति) हमें पहुंचा।
अथवा,
आदित्य के समान ज्योति वाले स्वर्ग लोक को अभय कल्याण के लिए हमें पहुंचा –

स्वर्वती – (१) सुख साधनों से समृद्ध (२) पति को सुख देने वाली स्त्री
'अजातशत्रुमाजरा स्वर्वती'
ऋ. ५.३४.१
(३) प्रकाशयुक्त उषा या वेदवाणी
'उषा उवास मनवे स्वर्वती'
ऋ. १०.११.३; अ. १८.१.२०
(४) सुख देने वाली, सुखमयी
'सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती'
ऋ. १.१६८.७
'स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह
चित्रा अभीके अभवन्नभीष्टयः'
ऋ. १.११९.८
इस विद्वान् तपस्वी पुरुष से ही तुम दोनों को सुखदायिनी आश्चर्यजनक ज्ञान, उपाय और अभीष्ट सिद्धियाँ भी प्राप्त हों।

स्वः सातिः – (१) सुख और ऐश्वर्य की प्राप्ति, (३) सुख का संविभाग
'स्वर्षाता हवीमभिः'
ऋ. १.१३१.६; अ. २०.७२.३
स्तुति ग्रहण और उन ज्ञानों और कर्मों द्वारा सुख और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए

सरा – (१) बहने वाली (२) सिलाची, लाक्षानामक ओषधि
'सरा पतत्रिणी भूत्वा'
अ. ५.५.९

सर्वाङ्ग – समस्त अंगों से युक्त आत्मा
'सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः'
ऋ. १०.१६१.५; अ. ८.१.२०; २०.९६.१०

स्वराज्य – (१) स्वायत्त राज्य शासन
'वस्वीरनु स्वराज्यम्'
ऋ. १.८४.१०–१२; अ. २०.१०९.१–३; साम. १.४०९: २.३५६,३५७; मै.सं. ४.१२.४: १९०.१.३, ४.१४.१४: २३८.६, का.सं. ८.१७ का.सं. ८.१७
(२) अपना राज्य पद, (३) आत्मा के प्रकाश स्वरूप का साक्षा त्कार, (४) स्वतः प्रकाशक परमेश्वर का परमस्वरूप
'अर्चन्ननु स्वराज्यम्'
ऋ. १.८०.१–१६; साम. १.४१०; ४१२,४१३; नि. १२.३४.

स्वराट् – (१) स्वयं प्रकाश ब्रह्म
'विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात्'
अ. ८.९.९
(२) स्वयं राजते–परामात्मा
'इदं नमो वृषभाय स्वराजे'
ऋ. १.५१.१५
(३) अपनी दीप्ति से चमकने वाला
'यं नुनकिः पृतनासु स्वराजं
द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्'
ऋ. ३.४९.२

स्वरातिः – (१) समान रूप से दानशील
(२) निष्पक्षपात
'विश्वे साकं सरातयः'
ऋ. ८.२७.१४; वाज.सं. ३३.९४

संराधयन्तः – समान कार्य का साधन करते हुए
'संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः'
अ. ३.३०.५

स्वराटपर्जन्यः – (१) स्व प्रकाशस्वरूप सब रसों का दाता, (२) सर्वोत्पादक प्रभु। तृप्' धातु से पर्जन्य शब्द हुआ है। जन्य = तर्पयिता, परः जेता जनयिता वा, प्रार्जयिता वा रसानाम्
'इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे'
ऋ. ७.१०१.५; का.सं. २०.१५; तै.आ. १.३९.१

स्वर्गाः लोकाः – सुखमय लोक
'स्वर्गाःलोका अमृतेनविष्ठाः'
अ. १८.४.४

स्वर्भानुः – स्वर् + भानु। सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने वाला
'यत्वा सूर्य स्वर्भानुः तमसा विध्यदासुरः'
ऋ. ५.४०.५

स्वर्भानोः मायाः – (१) प्रताप से चमकने वाले शत्रु की मात्रा (२) सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित चन्द्रमादि पिण्ड की माया, (३) राहु की माया

(४) केवल सुख की प्रतीति करने वाले राग मोह की माया
'स्वर्भानोरप माया अघुक्षत्'
ऋ. ५.४०.८

स्वर्वान् - (१) सुखमय लोकों का स्वामी
'यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्'
ऋ. ६.२२.३; अ. २०.३६.३; नि. ६.३
(२) स्वर् + वतुप् = स्वर्वत्। बलवान् (३) आनन्दमय परमात्मा का विशेषण।
'यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्'
ऋ. ६.२२.३; अ. २०.३६.३; नि. ६.३
जो पुत्र दीर्घायु अजर और बलवान हो
जो परमात्मा अविनाशी, अजर एवं आनन्दमय है।

स्वर्षा - (१) स्वर् + सन्। सुख और ज्ञानोपदेश देने वाला
'अस्मा इदुत्युमुपमं स्वर्षाम्'
ऋ. १.६१.३; अ. २०.३५.३
(२) सुखों को देने वाला
(३) तेज या प्रकाश को देने वाला-सूर्य
'दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षाम्'
ऋ. १०.८.६; वाज.सं. १३.१५; १५.२३; तै.सं. ४.४.४.१; मै.सं. २.७.१५; ९८.३; का.सं. १६.१५
(४) शत्रुतापकारी अस्त्रों तथा प्रजा के सुखों का दाता
'हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः'
ऋ. ७.९७.७; मै.सं. ४.१४.४; २१९.१३; का.सं. १७.१८; तै.ब्रा. ५.५.५; ८.४.१.
(५) परम सुख का प्रदाता परमेश्वर
'इन्द्रः स्वर्षाः जनयन्नहानि'
ऋ. ३.३४.४; अ. २०.११.४; ११.४; तै.ब्रा. २.४.३.६

स्वर्षाता - सुख प्रदान करने वाला
'स्वर्षाता हवीमभिः'
ऋ. १.१३१.६; अ. २०.७२.३

संरिणीथः - सुसंगत करो।

सरिर - (१) सलिल, (२) महान् आकाश
'अश्वं जज्ञान सरिरस्य मध्ये'
वाज.सं. १३.४२; तै.सं. ४.२.१०.१; मै.सं. २.७.१७; १०२.२; का.सं. १६.१७; श.ब्रा. ७.५.२.१८
(३) वाग्
'सरिरं छन्दः'
वाज.सं. १५.४; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.४
(४) समस्त प्राणियो में एक साथ और एक समान चेष्टा करने वाला- वायु
'सरिराय त्वा वाताय स्वाहा'
वाज.सं. ३८.७; श.ब्रा. १४.२.२.३
(५) वायुस्थ या मध्यस्थ जल
'सरिराय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२५

सरिष्यन् - (१) दौड़ता या चलता हुआ (२) आक्रमण करने की इच्छा करता हुआ
'अरंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन्'
ऋ. २.११.७

सर्पिरासुतिः - (१) जनों से अभिषिक्त (२) श्रेष्ठ अन्नों का भोक्ता (३) घृत का भोक्ता अग्नि
'आ यस्ते सर्पिरासुते'
ऋ. ५.७.९
(४) घृत से सींचा जाकर बढ़ने वाला -अग्नि,
(५) घृत दुग्ध आदि सारवान् पदार्थों का आसेचन-सेवन करने वाला
'द्रवन्नः सर्पिरासुतिः'
ऋ. २.७.६; वाज.सं. ११.७०; तै.सं. ४.१.९.२; मै.सं. २.७.७:८३.१; ३.१.९:१२.४; का.सं. १६.७; श.ब्रा. ६.६.२.१४; आप.श्रौ.सू. १६.९.६; मा.श्रौ.सू. ६.१.३.
(६) सर्पिः + आसुतिः। घृत युक्त अन्न द्वारा सत्कार योग्य
'मित्रं न सर्पिरासुतिम्'
ऋ. ८.७४.२; साम. २.९१५

सर्पिरासुती - द्वि.व.। सर्पिः + आसुती। (१) घृत से आसेचन योग्य दो अग्नि (२) सर्पणशील सूर्यादि लोकों का उत्पादक प्रभु और प्राणों का संचालक जीव
'दिवि सम्राजा सर्पिरासुती'
ऋ. ८.२९.९

स्वरिः - स्तु + अरिः। (१) उत्तम प्रबल शत्रुवान्
(२) शक्तिशाली
'स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय'
ऋ. १.६१९; अ. २०.३५.९; तै.सं. २.४.१४.२; मै.सं. ४.१२.२:१८१.१२; का.सं. ८.१७
(३) उत्तम = शत्रुओं का पराजय करने वाला,
(४) उत्तम स्वामी।

स्वरिता – (१) उत्तम वचन बोलने वाला
'मन्द्रा सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः'
ऋ. १.१६६.११
स्वर्जित् – (१) सुखमय राष्ट्र या स्वर्ग का विजेता
'स्वर्जितं गोजितम्'
अ. १७.१.१
(२) सुख में सब को जीतने वाला
(३) सबसे अधिक सुखप्रद आनन्दमय इन्द्र परमेश्वर
'विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते'
ऋ. २.२१.१; कौ.ब्रा. २५.७.१; २६.१६; शां.श्रौ.सू. १८.१७.३
स्वर्विद् – (१) सुखमय सर्वोत्पादक परमेश्वर, (२) योगी
'स्वर्विदो रोहितस्य'
अ. १३.१.४८
(३) ज्ञान और प्रकाश को प्राप्त करने वाला
'भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदः'
अ. १७.४१.१
(४) सुखदायक
'त्यं सु मेषं महया स्वर्विदम्'
ऋ. १.५२.१; साम. १.३३७; ऐ.ब्रा. ५.१६.१७; कौ.ब्रा. २५.३; २६.९.
उस सुखकारक वर्षा देने वाले मेष या इन्द्र को अच्छी तरह पूज, अथवा
शत्रु का मुकाबला करने योग्य राजा को....
(५) सुख को प्राप्त करने और कराने वाला–परमेश्वर
'शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदम्'
ऋ. १०.१०७.४; अ. १८.४.२९
(६) स्वर् + विद् + क्विप् = स्वर्विद्। आदित्य को जानने वाला या आदित्य को प्राप्त होने वाला अग्नि
(७) सूर्य की तरह वर्तमान अग्नि
'हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि'
दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ'
ऋ. १०.८८.१; ऐ.ब्रा. ५.८.११; कौ.ब्रा. २३.३; नि. ७.२५
स्वर्ग को छूने वाले, सूर्य को जानने वाले या प्राप्त करने वाले या सूर्य की तरह वर्तमान अग्नि में प्रिय (जुष्टम्) पीने योग्य स्वच्छ हवि को (८) सूर्य की तरह दीख पड़ने वाला इन्द्र
(९) सुख पहुंचाने वाला –राजा
'ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्'
ऋ. ५.४४.१; वाज.सं. ७.१२; तै.सं. १.४.९.१; का.सं. ४.३; श.ब्रा. ४.२.१.९;
ज्येष्ठ का श्रेष्ठ कुशासन पर बैठने वाले एवं सूर्य के समान दीख पड़ने वाले इन्द्र को....
आयु से बद्ध, राजसिंहासन पर बैठने वाले एवं सुख पहुंचाने वाले राजा को....
सरी – (१) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी (२) शत्रुपर प्रयाण करने वाला
'अहेडमान उरुशंस सरी भव
वाजेवाजे सरी भव'
ऋ. १.१३८.३
सरीमन् – वेग से चलना
'वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि'
ऋ. ३.२९.११
सरीसृप – (१) गर्भाशय में गति करता हुआ वीर्य–कीटाणु
'निषत्स्वं यः सरीसृपम्'
ऋ. १०.१६२.३; अ. २०.९६.१३;
(२) सरकता या हिलता डोलता हुआ–गर्भ
(३) सर्प आदि रेंगने वाला जन्तु
'सरीसृपेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२९; तै.सं. १.८.१३.३; मै.सं. ३.१२.१० :१६३.१२; का.सं. १५.३
सरीसृपाणि – सदा गतिशील नक्षत्र
'सरीसृपाणि भुवने जवानि'
अ. १९.७.१
स्तरी – (१) गौ
'अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नीः'
ऋ. ४.१९.७
(२) छिपाने वाला
'कदा चन स्तरीरसि
नेन्द्र सश्चसि दाशुषे'
ऋ. ८.५१.७; साम. १.३००; वाज.सं. ३.३४; ८.२; तै.सं. १.४.२२.१ ; ५.६.४; मै.सं. १.३.२६; ३९.१
(३) नौका आदि यान (४) कवच।
'स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना'
ऋ. १.१२२.२
(५) धूमवत्, सर्वाच्छादक व्यापक प्रकृति

'स्तरीर्यत् सूत सद्यो अज्यमाना'
ऋ. १०.३१.१०
(६) सुरक्षिता, (७) शत्रुहिंसक (८) देश की रक्षा करने वाली सेना
'आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो न गावः'
ऋ. ७.२३.४, अ. २०.१२.४
(९) पृथ्वी
(१०) न प्रसवने वाली गौ, (११) मेघ का एक रूप, (१२) सर्वरक्षक ईश्वर का एक रूप।
'स्तरी त्वद् भवति सूत उ त्वद्'
ऋ. ७.१०१.३

स्तरीमा – स्तरीमन् के प्रथमा ए व. का रूप।
'अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि'
ऋ. १०.३५.९

स्वरी – गूंजने वाली वेदवाणी
'नाम स्वरीणां सदने गुहायत्'
अ. २०.१६.७

स्वर्दी – (१) उत्तम रीति से सुसम्पन्न (२) स्पर्धालु
'श्लोककृत् मित्रतूर्याय स्वर्धी'
अ. ५.२०.७

स्वर्मीढः – (१) संग्राम
'स्वर्मीढेषु यं नरः'
ऋ. ८.६८.५
(२) सुखं मिह्यते यस्मिन्
(३) सुखों और ऐश्वर्यों से सींच कर बढ़ाने वाला–संग्राम
'स्वर्मीढेषु आजिषु'
ऋ. १.१३०.८
सुखों और ऐश्वर्यों से खींचकर बढ़ाने वाले संग्रामों में.. ...

सरु – आकाश
'सरौ पर्णमिवादधत्'
अ. ५.२५.१

संरुध् – उन्नति के कार्य में आगे बढ़ने से रोकने वाला, विघ्नकारी , बाधक
'अजैषमुतं संरुधम्'
अ. ७.५०.५

स्वरु – (१) आदित्य
'स्वरु न पेशो विदथेषु अञ्जन्
चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत्'
ऋ. १.९२.५
जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य को उषा प्रकट कर देती है उसी प्रकार ज्ञान–सत्संगों में जहाँ अनेक विद्वान् एकत्र हों वहाँ अपने रूप के समान ही (पेशः) वाक् पटुता भी कन्या प्रकट करे। सूर्य की दुहिता उषा अन्धकार को जीतने वाले भानु का आश्रय लेती है उसी प्रकार कन्या, तेजस्वी ब्रह्मचारी पति का आश्रय ले।
(२) सूर्य के समान तेजस्वी, (३) विद्योपदेश से युक्त
'तेदेवासः स्वरवः तस्थिवांसः'
ऋ. ३.८.६; तै.ब्रा. २.४.७.११; आप.श्रौ.सू. ७.२८.२
(४) शत्रुओं को पीड़ा देने वाला (५)उत्तम उपदेश देने वाला
'शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः'
ऋ. ३.८.९
(६) यूप का कटा भाग, (७) ताप दायक, (८) शत्रुसन्तापक
'यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिसमस्ति'
ऋ. १.१६२.९; वाज.सं. २५.३२; तै.सं. ४.६.८.४; मै.सं. ३.१६.१; १८२.१४.
(९) शत्रु को सन्ताप देने वाला शब्द
ऋ. ८.४५.२; साम. २.६८९; वाज.सं. ३३.२४.

स्वर्यु – सुख की कामना करने वाला
'स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्राः'
ऋ. ३.३०.२; तै.सं. २.५.४.१

सरूपकृत् – त्वचा का समान रूप बना देने वाली सरुपा नामक ओषधि
'सरूपकृत् त्वमोषधे,'
अ. १.२४.३

सरूपङ्करणी – उत्तम रूप और समान त्वचा बना देने वाली सरूपा नामक ओषधि
'श्यामा सरूपङ्करणी'
अ. १.२४.४

सरूपाः – (१) समान रूप की गौएं
'एनीः श्येनीः सरूपाः विरूपाः'
अ. १८.४.३३

सरूपा – (१) कुष्ट रोग की एक ओषधि जो शरीर को समान रूप वाली बना देती है।
पित्ता, हल्दी, मार्ङ्गी, कर्षिकी, शालिपर्णी और लाशा (लाह) कृमिनाशक और व्रण नाशक है।

(२) समान रूप, गुण और कीर्तिवाली स्त्री
'सरूपा धात्रे'
वाज.सं. २४.५;९; मै.सं. ३.१३.६: १६९.१२; ३.१३.१०: १७०.९

स्वर्जेष् - (१) सुखेन जयशील (२) ज्ञान और सुख को प्राप्त करना
'स्वर्जिषे भरं आप्तस्य वक्मनि'
ऋ. १.१३२.२
ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिए (स्वर्जुषे) पूर्ण ज्ञानी और अन्यों का ज्ञान से भरने वाले विद्वान् के (आप्तस्य) आत्मा को पोषण करने वाले या अज्ञान को नाश करने वाले (भरे) प्रवचन या उपदेश में (वक्मनि) रहकर

संरोचते - संदीप्यते । सम्यक् प्रकार से रुचता या या चमकता है ।

स्वरोचिः - (१)अपने ही प्रकाश से प्रकाश मान-सूर्य या राजा (२) परमेश्वर
'श्रियो वसानः चरति स्वरोचिः'
ऋ. ३.३८.४; वाज.सं. ३३.२२; का.सं. ३७.९

स्वरोचिषः - स्वयं कान्तिमान-मरुत्
'येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः'
ऋ. ५.८७.५

सलक्ष्मा - (१) समान लक्षण वाली स्त्री
'सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति'
ऋ. १०.१०.२; १२.६; अ. १८.१.२,३४; वाज.सं. ६.२०; मै.सं. १.२.१७:२७.९; का.सं. ३.७; श.ब्रा. ३.८.३.३७

सललूक - सम् + यङ्लुन्त लभ् + क्त = सलुब्ध, सम्मूढ़, अप्रतिपक्ष, लाचार, पापी ।
'संलुब्ध' का ही 'सललूक' हो गया है
(ख) यङ्लुन्त सृ + ऊक् = सररूक = सललूक ।
'सललूकं संलुब्धं भवति पापकम्-इति नैरुक्ताः सररूके वा स्यात् सर्तेः अभ्यासात् ।
पापी सदा चंचलमति वाला होता है ।
(२) सम्यक् लुब्ध
(३) भागता हुआ अति लोभी पापी पुरुष
'आकीवतः सललूकं चकर्थ'
ऋ. ३.३०.१७; नि. ६.३

संलिखित - खूब अच्छी तरह शिला पर लिखा हुआ लेख
'अजैषं त्वा संलिखितम्'
अ. ७.५०.५

सलिल - न. (१) प्रधान कारण तत्व (२) महान् आकाश
'यद्देवा अदः सलिले'
सुसंरब्धा अतिष्ठत'
ऋ. १०.७२.६
(३) सल (गत्यर्थक) + इलच् = सलिल । जल
(४) सृष्टि के पूर्व जगत् का रूप-जल
(४) सद्भावेलीनम् सलिलम्
(६) सलिल चलता है,
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती'
ऋ. १.१६४.४१; अ. ९.१०.२१; अ. ९.१०.२१; तै.ब्रा. २.४.६.११; ऐ.आ. १.५.३.८; तै.आ. १.९.४; नि. ११.४०
माध्यमिका वाक् गौरी ने जल का निर्माण करती हुई यह सब कुछ बनाया ।
(७) अन्तरिक्ष
'समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्'
ऋ. ७.४९.१

सलिलसधस्थ - जल के समान शान्त परम शरण -प्रभु
'ओकः कृणुष्व सलिले सधस्थे'
अ. १८.३.८

सलिलानि - जगत् के कारण स्वरूप प्रकृति के सूक्ष्म आपः स्वरूप परमाणु
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती'

स्वल्पिका - बहुत थोड़ी
'यदल्पिका स्वल्पिका'
अ. २०.१३६.३

सवः - सु + अच् = सव । अर्थ है- । (१) प्रसव उत्पत्ति, जन्म (२) सोमयज्ञ-
'सूयन्ते सोमाः एषु'
(इन में सोम रस चुलाए जाते हैं) ।
(३) शिक्षणालय-
(४) ब्रह्म यज्ञ से वेदाध्ययन भी एक यज्ञ है
'यो मे सहस्रममिमीत सवान्'
ऋ. १.१२६.१; नि. ९.१०
जिस राजा ने सहस्रों सोम यज्ञ या शिक्षणालय मेरे लिए सम्पन्न किया ।
(५) जो उत्पन्न किया जाता है ।

'श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्तः'
ऋ. १.१६४.२६; अ. ७.७३.७; ९.१०.४; नि. ११.४३
सविता हमारे लिए सब सवों में उत्तम सव उत्पन्न करने वाला है
(६) कृषि यज्ञ । कृषि द्वारा अन्नों पार्जन भी सब ही है ।
(७) उदक ।
'सूयते अभिसूयते सोमादि
अनेन इति सवः उदकम्'
(इससे सोमादि तैयार किया जाता है) ।
सु + अप् (करण अर्थ में) = सव ।

सवन – (१) यज्ञ (२) राष्ट्र का स्थान
'विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्याः'
ऋ. १०.३९.४
हे अश्विद्वय ! तुम्हारे वे सभी कर्म (ता विश्वेत्) यज्ञों में (सवनेषु) प्रवचनीय हैं (प्रवाच्या)।
'स्थिराय वृष्णेः सवनाकृतेमा'
ऋ. ३.३०.२; वाज.सं. ३४.१९.
(३) सु + ल्युट् = सवन
'ये आजग्मुः सवनमिदं जुषाणाः'
जो देवता इस यज्ञ में प्रेम के साथ आवें ।

सवना – ब.व.। स्थान जहां सोम रस बनाया जाता है ।
'एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे
ऋ. १०.५०.६; नि. ५.२५.
हे इन्द्र, इन सभी स्थानों को शीघ्र ही निकट आकर निवर्तित कर (तु नुम् आकृषे) ।

सबन्धू – द्वि.व.। (१) समान रूप से एक दूसरे को प्रेम पाश में बांधने वाले पति पत्नी
'वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू'
ऋ. ३.१.१०

सवयसा – द्वि.व.। समान वय वाले स्त्रीपुरुष माता पिता या पति पत्नी
'युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः'
ऋ. १.१४४.३
समान वय वाले स्त्री पुरुष जब मिलते हैं तब यह शरीर उत्पन्न होता है ।

सवर्या सरण्यू – (१) त्वष्टा की पुत्री सरण्यू जब अपने पति विवस्वान् का तेज नहीं सह सकने के कारण उत्तरकुरु में तपस्या करने चली गई हो अपने पिता त्वष्टा के घर वह अपने ही रूप रंग की सर्वर्ण कन्या छोड़ गई जिसे सवर्णा सरण्यू कहते हैं,
(२) उत्तर कालीन सरण्यू । ईश्वरीय नियमों से पूर्वकालीन सरण्यू को मनुष्यों से छिपा कर तत्स्वरूपा सरण्यू बना त्वष्टा को प्रदान किया ।
'कृत्वी सवर्णामददुर्विस्वते'
ऋ. १०.१७.२; अ. १८.२.३३; नि. १२.१०

सबर्दुघा – स + वर् + दुघा = सवर्दुघा । वर्वति येन ज्ञानेन तद् वर्, समानं वर् दोग्धि प्रपूरयति यया सा सवद्रुघा'
वर्व (गत्यर्थक धातु) + क्विप् = वर्; दुह् = कम् = दुध (ह का घ)
(१) सब ज्ञान को पूर्ण करने वाली वेद वाणी
(२)सुख दायक अन्न शरीर का दोहन करने वाली गौ या भूमि
'आ सखायः सबर्दुघाम्'
ऋ. ६.४८.११
(३) उत्तम गौ रस देने वाली गौ
'तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम्'
ऋ. १.२०.३
वे दुग्धादि रस देने वाली गाय और अमृत मोक्ष ज्ञान से पूर्ण करने वाली वेदवाणी का उपदेश देते हैं ।

सबर्दुघे – (१) जल रस का दोहन करने वाले, (२) समान भर से एक दूसरे का वरण कर एक दूसरे की कामनाओं को पूर्ण करने वाले स्त्रीपुरुष
'सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू'
ऋ. ३.६.४
(२) द्वि.व. । द्यावापृथिवी, क्षीरवत् रसों का दोहन करती हुई
'सर्बदुघे धापयेते समीची'
ऋ. ३.५५.१२

सव्य – (१) वाम हस्त, (२) बायां
'यदस्य सव्यमक्षि
असौ स चन्द्रमाः
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्'
ऋ. १.१००.९

सव्यष्ठाः – रथ में बैठने वाला साथी
'इन्द्रः सव्यष्ठाः'
अ. ८.८.२३

संवत्सरः – (१) समस्त प्राणियों के निवास का

एक मात्र आश्रय
'संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती'
अ. १९.५८.१
(२) पंचयुगी के पांच वर्षों मे पहला संवत्सर है,
(३) अग्नि,
'अग्निर्वासंवत्सरः'
तै.ब्रा. १.४.१०.१
'संवत्सराय कृणुत बृहन्नमः'
अ. ६.५५.३; तै.सं. ५.७.२.४
(४) संवसन्ते अस्मिन् भूतानि (इसमें सभी प्राणी संवास करते हैं ।
अथवा,
ऋतुः संवत्सरो ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इति (ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त से युक्त संवत्सर है)
सम् + वस् + सर = संवत्सर (वस् के स् का त्) ।
अर्थ-एक वर्ष
'संवत्सरं शशयाना'
ऋ. ७.१०३.१; अ. ४.१५.१३; नि. ९.६
एक वर्ष तक सोते या तपस्या करते हुए (५) संवत्सर का अर्थ चार वर्ष भी है ।
'संवत्सराय पलिक्नीम्'
वाज.सं. ३.१५;तै.ब्रा. ३.४.१.११
(५) जिसके साथ समस्त प्राणी बसते हैं ।
(६) जिस सभी प्रेम से अभिवादन और स्तुति करते हैं-अग्नि, परमेश्वर
'संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि'
वाज.सं. २७.४५

संवत्सरस्य दंष्ट्रा - (१) संवत्सर के दाढ़-दिन और रात में आने वाले भयोत्पादक अवसर
'संवत्सरस्य ये दंष्ट्राः'
अ. ११.६.२२

संवत्सरस्य पत्नी - उत्तम रीति से वत्स बालकों को अन्नादि से पुष्ट करने वाले पति के गृह की पत्नी।
'संवत्सरस्य या पत्नी
सानो अस्तु सुमंगली'
अ. ३.१०.२

संवत्सरस्य प्रतिमा - यजमान गृहपति का दूसरा रूप या मूर्ति गृहपत्नी धर्मपत्नी
'संवत्सरस्य प्रतिमाम्'
अ. ३.१०.३; तै.सं. ५.७.२.१; का.सं. ४०.२; आप.श्रौ.सू. १७.९.३

संवत्सराः - सं + वत्सराः ।(१) अच्छी प्रकार प्रजाओं को बसाकर स्वयं उनमें रमण करने वाले प्रजा पालक नर पति (२) प्रभव आदि संवत्सर
'संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या'
अ. २.६.१; वाज.सं. २७.१; तै.सं. ४.१.७.१; मै.सं. २.१२.५; १४८.११; का.सं. १८.१६; श.ब्रा. ६.२.१.२६

संवत्सरीण - (१) एक वर्ष के लिए नियुक्त, (२) वर्ष वर्ष पर होने वाला ।
'संवत्सरीणा मरुतः स्वर्काः'
अ. ७.७७.३; तै.सं. ४.३.१३.४;

संवनन - (१) परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करने का उपाय
'हृदि संवननं कृतम्'
अ. ६.९.३
(२) सज्जन पुरुषों का सेवनीय
'विद्वेषणं संवननोभयङ्करम्'
ऋ. ८.१.२, अ. २०.८५.२; साम. २.७.११
(३) अच्छी प्रकार से सेवा या भक्ति करने योग्य
(४) समान रूप से द्रव्य भाग का दान
'एकश्रुष्टीन् संवननेन सर्वान्'
अ. ३.३०.७

संवनमी - (१) स्त्री पुरुषों का परस्पर वरण कराने वाली ओषधि, (२) वशीकरण वाली ओषधि
'संवननी समुष्पला'
अ. ६.१३९.३

संवयन्ती - (१) बनाती हुई, बुनती हुई
'तन्तुं तत संवयन्ती समीची'
ऋ. २.३.६
(२) अवरण करती हुई
'तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती'
वाज.सं. २०.४१

संवरण - (१) आच्छादित गूढ़ आवरण-पूर्ण स्थान
'यो नो महान् संवरणेषु वह्निः'
ऋ. ४.२१.६
(२) संवरण नामक वैदिक ऋषि, (३) मिलकर वरण किया गया राजा, (४) वरण करने वाला

प्रजाजन
'महारायः संवरणस्य ऋषे'
ऋ. ५.३३.१०
(५) न. । जल ।
'अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः । समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ।'
ऋ. ९.१०७.९
सोम सभी गात्रों से निकलकर उसी प्रकार स्रवता है जैसे जल सिमट कर समुद्र में आते हैं । दुही हुई गौओं से भी दूध गिरता रहता है जैसे जल चारों ओर से समुद्र को प्राप्त होते हैं ।
(६) पु. । रक्षास्थान, प्रकोट
'यदा महः संवरणाद् व्यस्थात्'
ऋ. ७.३.२; साम. २.५७; वाज.सं. १५.६२; तै.सं. ४.४.३.३; मै.सं. २.८.१४:११८.९; का.सं. १७.१०
(७) वरण करना
'शिवोः अग्ने संवरणे भवा नः'
अ. २.६.३; वाज.सं. २७.३; तै.सं. ४.१.७.१; मै.सं. २.१२.५: १४८.१५; का.सं. १८.१६

संवर्ग – (१) सबको अपने साथ मिलाए रखने वाला
'संवर्ग यत् मघवा सूर्यं जयत्'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५
(२) सम्यक् प्रकार से वृष्टि देने वाला (३) दुर्गुणों को हटाने वाला
'संवर्ग मन्मघवा सूर्यं जयत्'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५
जब सम्यक् प्रकार से पृष्टि देने वाले मेघ को (संवर्गम् सूर्यम्) इन्द्र जीतता है (जयत्)
अथवा
जिस तेज से धनपति परमेश्वर (यत् मघवा) सूर्य को (सूर्यम्) जीता हुआ है (जयत्) दुर्गुणों को हटाने वाले उस तेज का (संवर्गम्)....

संवर्तः – (१) सम्यक् दृष्टि से देख वाला, (२) सम्यक् व्यवहार वाला
'यथा संवर्ते अमदो यथा कृशे'
ऋ. ८.५४.२

संवसन – (१) एक साथ मिलकर बैठने का स्थान, (२) सत्संग
'पनस्युवः संवसनेष्व क्रयः'
ऋ. ९.८६.१७

संवसन् – एकत्र, एक गृह या देश में रहने वाला
'अमावस्ये संवसन्तों महित्वा'
अ. ७.७९.१; तै.सं. ३.५.११;

संवसाना – (१) एक साथ निवास करती हुई (२) एक स्थान पर एकत्र-स्वसारः बहनें या अपने शासन में पढ़ने वाली प्रजाएं ।
'द्विर्यं पञ्च जीजनत् संवसानाः'
ऋ. ४.६.८

संवसु – (१) एकत्र सेना या संस्था बनाकर संगठित होकर छावनी सेना दल या संस्था में रहने वाला
'संवसव इति वो नामधेयम्'
अ. ७.१०९.६
(२) प्रत्येक पदार्थ को अच्छी तरह से आच्छादित करने वाला अग्नि तत्व, (३) अच्छी प्रकार से रहने वाला (४) उत्तम रीति से ऐश्वर्य का स्वामी
'अग्निर्देवेषु संवसुः'
ऋ. ८.३९.७

स्तवत् – (१) स्तौति (स्तुति करता है) । लेट में तिप् के इ का लोप और अट् का आगम ।
(२) स्तुवन्ति (स्तुति करते हैं)
'य इन्द्राग्नी सुतेषु वां
स्तवत् तेष्वृतावृधा'
ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.
हे सत्य या यज्ञ को बढ़ाने वाले इन्द्र और अग्नि (ऋतावृधा इन्द्राग्नी) जो यजमान सोमरस चुलाकर तेरी स्तुति करते हैं (ते स्तवत्) ।

स्रवत् – बहती हुई नदी
'समुद्रं न स्रवताः आविशन्ति'
ऋ. ३.४६.४

स्रवन्ती – (१) शरीर अन्न रस और रुधिर को वहन करने वाली नाड़ी
'हिराभिः स्रवन्तीः'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७: १७९.१३
(२) चूने या झरने वाला जल
'स्रवन्तीभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२.५

सवृधः – ब.व. । ए.व. में रूप है – सवृध । (१) समान रूप से बरतने वाली आप प्रकृति के परमाणु ।
'अपो वन्दस्व सवृधः समयोनीः'

ऋ. १०.३०.१०

स्ववृजः – स्वयमेव अपने सामर्थ्य से सब बन्धनों को काटने वाला

'स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रुवान्'

ऋ. १०.३८.५; तै.ब्रा. १.२२८

सवाचसः – ब.व.। समान वचन वाले, एक वाणी बोलने वाली

'ये ते के च सभासदः
ते मे सन्तु सवाचसः'

अ. ७.१२.२.

सवात्य – (१) प्राण, (२) तीव्र वायु के समान तेजी से भागने वाला, हवा से बात करने वाला पुरुष या यान आदि

सबाधः – (१) शत्रुपीड़क उपायों में कुशल

'सबाधसश्च रातये'

ऋ. ५.१०.६

(२) नाना प्रकार के विघ्न बाधाओं से युक्त, (३) विद्या विलोडन, अनुशीलन, ऊहापोह से युक्त

'कथा सबाधः शशमानो अस्य'

ऋ. ४.२३.४

(४) ब.व.। एक साथ शत्रुओं को पीड़ित करने वाले सैनिक, (५) एक साथ मेघों को लाने वाले वायुगण

'समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः'

ऋ. १.६४.८

सबाध् – (१) लोकपीड़ाओं से दुःखी जन, (२) प्रतिपक्ष भावना का अभ्यासी

'इन्द्र सबाध इह सोमपीतये'

ऋ. १०.१०१.१२; अ. २०.१३७.२

सवासिनौ – सव + आसिनौ, 'स + वासना (१) एक ही सव अर्थात् व्रत में निष्ठ स्त्री पुरुष (२) समान रूप से वस्त्र धारण करने वाले

'सवासिनौ पिबतां मन्थमेतम्'

अ. २.२९.६

सवासिनौ देवौ – एक निवास स्थान आकाश में रहने वाले सूर्य और चन्द्र

'देवौ सवसिनाविव'

अ. ३.२९.६

सव्या – (१) बाई ओर, उत्तर दिशा

'न दक्षिणा विचिकिते न सव्या'

ऋ. २.२७.११; तै.सं. २.१.११.५; मै.सं. ४.१४.१४; २३८.१४; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

(२) वाम भाग में रहने वाली अर्धांगिनी, (३) ऐश्वर्य सम्पन्न शासन योग्य

'सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा'

ऋ. ८.४.८; साम. २.९५६

संवाक् – (१) संगत वाणी, (२) जयध्वनि

'एषा वः सा सत्या संवागभूत्'

वाज.सं. ९.१२; श.ब्रा. ५.१.५.१२

संबाध – पीड़ा

'स्वप्नं संबाध तन्द्रयः'

अ. १०.२.९

स्तवानः – (१) स्तुति का पात्र

'स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः'

ऋ. १.५१.९

स्तुति पात्र होकर (स्तवानः) राष्ट्र की अच्छी प्रकार उपचय वृद्धि करने वाले बल्मीक के समान गुप्त सुरंगों से युक्त दुर्गों को रचकर या उसके समान संचयशील प्रचुर कोशवान् होकर (वम्रः) तेजस्विता से बैठने वाले शत्रुबल को भी विविध उपायों से नाश कर (संदिहः विजघान)।

(२) स्तुति किया जाता हुआ

'यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः'

ऋ. १.३१.८; मैसं. ४.११.१:१६१.१

हे अग्नि परमेश्वर, स्तुत किया जाकर तू तुझे यशस्वी एवं कार्यकर्ता बना।

(३) सब के द्वारा स्तुत, प्रशंसा पत्र

'तिरस्तवान विश्पते'

ऋ. ३.४०.३; अ. २०.६.३

स्ववान् – सु + अव (रक्षा करना) = असुन्। स्ववान् इति पदपाठः। (१) धनवान्

(२) वहवः स्वे विध्यन्ते यस्य
सः स्वावान्
बहुत सहायकों से युक्त। स्व + वतुप् = स्ववत् –स्ववान्।

(३) परन्तु 'सुमृडीक' 'सुत्रामा' आदि शब्दों में सु के प्रयोग से 'स्ववान्' का प्रयोग भी उसी प्रकार 'सु + अवान्' हो सकता है।

(४) ह्विटनी (Whitney) ने Well saving well aiding अर्थ किया है। उनके अनुसार 'सु +

अव + असुव से स्ववान् बना है ।
'सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम्'
ऋ. ५.८.२
'ईडे अग्निं स्ववसे नमोभिः'
ऋ. ५.६०.१; अ. ७.५०.३; मै.सं. ४.१४.११; २३२.१३; तै.ब्रा. २.७.१२.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.२.
'स्वायुधं स्ववसं सुनीथं'
ऋ. १०.४७.२; मै.सं. ४.१४.८: २२७.११
'स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रः अस्मे'
ऋ. ६.४७.१३; १०.१३१.७; अ. ७.२९.१; २०.१२५.७; वाज.सं. २०.४२; तै.सं. १.७.१३.५; का.सं. ८.१६
(५) धनैश्वर्मयुक्त, (६) आत्म सामर्थ्य से युक्त, (७) आत्मवान्, जितेनन्द्रिय
'सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा'
ऋ. ३.५४.१२
'स इत् सुदानुः स्ववाँ ऋतावा'
ऋ. ६.६८.५
(८) स्व + वतुप् = स्ववत् । धनवान् या अपने अधिकार में रहने वाला ।

स्ववाः - सु + अवस् । देहों और जन्तुओं की आग्नेयादि अस्त्रों से रक्षा करने वाला-अग्नि

सविता - सविता सर्वस्य प्रसविता आदित्योऽपि सविता उच्यते । सु + तृच् = सवितृ ।
(१) जगत् प्रेरक, जगतत्स्रष्टा सूर्य, (२) इन्द्र या परमात्मा
सविता से सूर्य का ही बोध होता है ।
'देवोऽनयत् सविता सुपाणिः'
ऋ. ३.३३.६; नि. २.२६
'सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णात्'
ऋ. १०.१४९.१; नि. १०.३२
सविता ने वृष्ट्यादि साध्यों तथा वायवीय पाशों से पृथ्वी को स्थिर किया (२) त्वष्टा देव भी सविता ही है ।
'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः'
ऋ. ३.५५.१०: १०.१०.५; अ. १८.१.५; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. १३.४.२; नि. १०.३४
(३) उदय से पूर्व का आदित्य (४) प्रसविता, पिता, पालक (५) वैश्वानर अग्नि (प्रकृति अग्नि से भिन्न)
होतृजयः तु अनग्निः वैश्वानरीयो भवति । देव सवितः एतं त्वां वृणुते अग्निं होत्राय सह पित्रा वैश्वानरेण । इममेव अग्निं सवितारम् आह सर्वस्य प्रसवितारम् । मध्यमं वा उत्तमं वा पितरम् । यस्तु सूक्तं भजते तस्मै हमिः निरूप्यते । अयमेव सोऽग्निः वैश्वानरः ।
याज्ञिकपक्ष वाले पार्थिव अग्नि को ही वैश्वानर अग्नि मानते हैं । परन्तु आचार्य पक्ष वाले सूर्य को जिसके लिए सूक्त हैं वही वैश्वानर अग्नि है ।
(६) वायु, सर्वप्रेरक वायु । (प्रेरणार्थक) + तृच् = सवितृ
(७) राष्ट्र का समाहर्ता नामक अधिकारी
'घधाता रातिः सवितेदं जुषन्ताम्'
अ. ३.८.२; ७.१७.४; वाज.सं. ८.१७; तै.सं. १.४.४४.१; मै.सं. १.३.३८; ४४.४; का.सं. ४.१२; १३.९,१०; श.ब्रा. ४.४.४.९

संवित् - (१) मनोभावना, (२) पारमार्थिक प्राप्ति
'कस्चित् तत्र यजमानस्य संवित्'
ऋ. ८.५८.१
(३) उत्तम दृढ़ प्रतिज्ञा, (४) वेदादि का ज्ञान
'संविद्य मे ज्ञात्रं च मे'
वाज.सं. १८.७
(५) भोगादि सुख ।

संविद् - () मति
'अधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्'
ऋ. १०.१०.१४; अ. १८.१.१६; नि. ११.३४
(२) समान बल वाला पर राष्ट्र का राजा
'अर्यम्ण उत संविदः'
अ. ३.५.५

संविद्य - साथ रहने वाला
'तथा वशायाः संविद्यम्'
अ. १२.४.४

संविदानः - (१) सत् मन्त्रणा करता हुआ
'तैष्टे रोहितः संविदानः'
अ. १३.१.३५
(२) परस्पर मिलकर विचार करता हुआ
'विश्वे स्तद् देवैः सह संविदानः'
अ. १९.४०.१

संविदाना - (१) एकमत हुई प्रजा
'तास्त्वा सर्वा संविदानाः'
अ. ३.४.७
(२) पति से संमन्त्रणा करने वाली स्त्री

अपां नप्त्रा संविदानास एताः'
ऋ. १०.३०.१४

संविदाने - द्वि.व. । (१) परस्पर एकमत सभा और समिति
'प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने'
अ. ७.१२.१
(२) परस्पर संवाद करती हुई ।
'अप शत्रून् विध्यतां संविदाने'
ऋ. ६.७५.४; वाज.सं. २९.४१; तै.सं. ४.६.६. २.; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.४
परस्पर संवाद करती हुई सी ये धनुष की डोरियाँ शत्रुओं को विनष्ट करें ।

संविव्य - सब को अच्छी प्रकार से वशकर
'सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा'
ऋ. १.१७३.६

स्थविर - (१) युद्ध में स्थिर (२) पुराना अनुभवी
'बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः'
ऋ. १०.१०३.५; अ. १९.१३.५; साम. २.१२०३; वाज.सं. १७.३७; तै.सं. ४.६.४.२; मै.सं. २.१०.४; १३६.१; का.सं. १८.५
(३) नित्य कूटस्थ (४) सदा स्थिर, (५) अविनाश
'स्थविरः पयस्वान्'
अ. ९.४.३
(५) महान् या वृद्ध, (६) ज्ञान वयोवृद्ध
'ऋष्वा त इन्द्र रथविरस्य बाहू'
ऋ. ६.४७.८; तै.ब्रा. २.७.१३.४; नि. ७.६
हे इन्द्र या राजन् ! तुझ महान् वृद्ध या ज्ञान वयो वृद्ध के दर्शनीय हाथों की (ऋष्वा वाहू) सेवा करें या प्रचार करें ।
(७) चिरन्तन, स्थूल ।
'महत्तत् उल्वं स्थविरं तदासीत्'
ऋ. १०.५१.१; नि. ६.३५
हे अग्नि या विद्युत्, तेरा वह जरायु या आवरण बड़ा तथा चिरन्तन या स्थूल था (विद्युत् के पक्ष में है) ।

स्थविरागीः - स्थिर अनुभवयुक्त वाणी
'असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीः'
ऋ. १०.१८१.७

स्रवितवे - (१) संसार चलाने के लिए (२) अपने बढ़ने के लिए
'प्र सदमित् स्रवितवे दधन्युः'
ऋ. ४.३.१२

स्रवितवै - (१) बहने के लिए (२) सन्मार्ग पर चलने के लिए
'त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः'
ऋ. ७.२१.३

स्वविद्युतः - ब.व. । स्वयं विशेष दीप्ति युक्त
'स्वविद्युतः प्रस्पन्द्रासो धुनीनाम्'
ऋ. ५.८७.३

सवीमन् - (१) सृष्टजगत्
'अदीद्युतत् सवीमनि'
अ. ७.१४.(१५) २
(२) षु (प्रसव और ऐश्वर्य में) + इमनिच् = सवीमन् । अर्थ है- शासन
(३) जगत्, सृष्टि
'ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि
हिरण्य पाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः'
अ. ७.१४.२; साम. १.४६४; वाज.सं. ४.२५; तै.सं. १.२.६.१; मै.सं. १.२.५: १४.६; का.सं. २.६; श.ब्रा. ३.३.२.१२; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.७
जिस सविता की स्वयं सर्वताता की ज्योति सबसे ऊपर देदीप्यमान हो रही है और जिसके शासन में सब लोक लोकान्तर वर्तमान हैं, उसी तेजस्वी हाथ वाले सुकर्मा परमेश्वर ने अपनी कृपा से द्युलोक का निर्माण किया है ।
(अन्य अर्थ)
जिसने हिरण्यपाणि हो समस्त जगत् को निर्मित किया और जो सुकर्मा और अपने ही सामर्थ्य से आदित्य नामक है ।

पुनः -
'देवस्य वयं सवितुः सवीमनि
श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो
निवेशने प्रसवे चासि भूमनः'
ऋ. ६.७१.२
सभी पदार्थों को उत्पन्न करने वाले सविता के अभ्यनुज्ञान या शासन में तथा धन के दान में हम सदा समर्थ हों । हे सविता, जो तू इस समस्त मनुष्यादि द्विपदों तथा चतुष्पदों की स्थिति में (निवेशने) तथा सृष्टि में (प्रसवे)

कारणभूत हैं (भूमनः असि) ऐसे तुझ आदित्य के अंगभूत हैं ।
(४) अभ्यनुज्ञान, (५) प्रसव
अंग्रेजी का sway शब्द भी सवीमन् का शासन अर्थ में समानार्थक है

संवृक्त – (१) विघ्नों को दूर करने वाला (२) शत्रुओं का वारक
'संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.३; अ. २०.३४.३; मै.सं. ४.१४.५; २२२.१२
(३) दूर करने वाला, (४) अच्छी तरह शत्रुओं को परास्त करने वाला
(५) अन्धकार को दूर करने वाला

सवृत् – (१) समान बर्ताव करने वाली स्त्री
'सवृदसि सवृते त्वा'
वाज.सं. १५.९; का.सं. १७.७; ३७.१७; पंच.ब्रा. १.१०.९

संवृत – (१) विवाह के लिए वरा हुआ पुरुष, (२) विवाह के लिए वरा जाना
'उभा संवृतमिच्छतः
अ. ८.६.४

सवदेसा – द्वि.व. । समान ज्ञान और ऐश्वर्य वाले –अग्नि और वायु (अग्निषोमा) ।
(२) मंत्री और राजा
'अग्नीषोमाः सवेदसा सहूति वनंत गिरः ।
ऋ. १.९३.९; तै.सं. २.३.१४.१; मै.सं. ४.१०.१:१४४.१२; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा. ३.५.७.२; कौ.सू. ५.१.
समान ज्ञान और ऐश्वर्य वाले, एवं समान रूप से चरु को ग्रहण करने वाले अग्नि और वायु स्तुति वाणियों का सेवन करते हैं ।

सवेदाः – समान ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न
'ते ते यक्ष्मं सवेदसः'
अ. १२.२.१४

संवेविदानः – अच्छी प्रकार लाभ करता हुआ
'सं भस्मना वायुना वेविदानः'
ऋ. ५.१९.५

संवेशन – (१) सर्वश्रेष्ठ शय्या,
(२) सबको आश्रय देने वाला प्रभु
'संवेशने तन्वश्चारुरेधि'
ऋ. १०.५६.१; अ. १८.३.७

संवेशपतिः – (१) गृहस्वामी, (२) उत्तम दीप्ति से बसने वाले पृथ्वी आदि लोकों का पालक
'अग्नये संवेशपतये स्वाहा'
वाज.सं. २.२०

संवेशयन् – (१) आच्छादित करता हुआ (३) बसाता हुआ
'संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः '
अ. ३.८.१

संवेश्य – बसने योग्य राष्ट्र
'बृहद् राष्ट्र संवेश्यं दधातु'
अ. ३.८.१

स्तवे –स्तूयते (स्तुत किया जाता है) ।
'स्तवे वज्रवृचीषमः'
ऋ. १०.२२.२; नि. ६.२३
इस यज्ञ में हम लोगों से आज विख्यात इन्द्र स्तुत किए जाते हैं ।

सश्चत् – (१) विज्ञानवान् (२) विघ्न बाधा
'अति नः सश्चतो नय'
ऋ. १.४२.७
हमें विघ्न बाधाओं से पार कर । (३) सर्वत्र व्यापक प्रभु
'क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते '
ऋ. २.१६.४
(४) प्राप्त, शरणागत
'पर्षन् नो अति सश्चतो अरिष्टान्
ऋ. ७.९७.४; का.सं. १७.१८

सश्वत् – सनातन जगत्
'नि काव्या वेधसः शश्वतस्कः'
ऋ. १.७२.१; तै.सं. २.२.१२.१
जो पुरुष सनातन जगत् के विधाता, ज्ञानवान् परमेश्वर के विज्ञान और कर्म के प्रतिपादक वेदमन्त्रों को अथवा सृष्टि नियमों का अच्छी प्रकार अभ्यास करता है (नि.कः) ।

संशग्म्य – शग्म्य का अर्थ सायण ने सुख किया है और 'शग्म्येन सन्दधन्वे' अर्थ 'सुखपूर्वक संभोग किया'- ऐसा किया है अतः 'संशग्म्य' का अर्थ हुआ–सम्यक् सुख

संशर – अच्छी प्रकार बाणों का प्रयोग
'संशराय प्रच्छिदम् '
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.१४

स्थश् – स्था + शस् = स्थश् । बहुत से ठहरने

वाला-दया.
'स्थशो जन्मानि सविता व्याकः'
ऋ. २.३८.८

स्पश् - स्पश् (to spy)--गुप्तचर का कार्य करना। +क्विप् = स्पश्। (१) चर, जासूस, भेदिया।
'न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते
देवानां स्पश इह ये चरन्ति।'
ऋ. १०.१०.८; अ. १८.१.९
हे यमी, जो ये देवताओं के चर अर्थात् जासूस इस लोक में चलते हैं वे न कभी विराम लेते हैं, और न सोते हैं।
(२) ग्रहण करने योग्य पदार्थ
'स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्षु'
ऋ. ७.६१.३

स्वश्चन्द्रः - (१) अपने आह्लादकारक प्रकाश से युक्त-सुवर्ण
'चन्द्रमिति हिरण्यनाम'
(२) स्वयं स्वभाव से आह्लादकारक
'बृहत् स्वश्चन्द्रमभवद् यदुक्थ्यम्
अकृणवत भियसा रोहणं दिवः'
ऋ. १.५२.९
जो सांसारिक दुःखों से भय खाकर (भियसा) उस महान् स्वयं स्वभाव से आह्लादकारक (स्वश्चन्द्रम्) उत्तम ज्ञान-सम्पन्न (अभवत्) स्तुति योग्य ब्रह्म की स्तुति करते हैं (उक्थ्यम् अकृण्वत) तब वे आकाश के बीच उदय होने वाले (दिवः रोहणाम्) सूर्य के समान देदीप्यमान परमेश्वर को...।

स्वश्चनाः - स्वः + चनाः।
ज्ञान प्रकाश देने वाली
'विप्रः कविः काव्येन स्वर्चनाः'
ऋ. ९.८४.५

स्वश्व - सु + अश्व। सुन्दर अश्ववाला, सुन्दर, अश्वारोही
नकिः स्वश्व आनशे'
ऋ. १.८४.६; साम. २.३००
हे इन्द्र, तुझ से बढ़कर सुन्दर अश्वारोही कोई नहीं है।

स्वश्व्य - सु + अश्व + यत् = स्वश्व्य। अर्थ- उत्तम रीति से विद्या आदि में व्यापक (२) उत्तम अश्व के समान, (३) उत्तम तरंग बल
'सुवीर्यं मरुत या स्वश्व्यं
दधीत यो व आचके।'
ऋ. १.४०.२
जो तुझे विद्या आदि हिताकारी ऐश्वर्य के लिए चाहता है उसे तू उत्तम रीति से विद्या आदि में व्यापक उत्तम वीर्य अथवा उत्तम अश्व के समान बलवान् पुष्ट करने वाले ब्रह्म चर्य बल को धारण करो।
(४) सुन्दर अश्वों से युक्त

संशाय - क्रि। सम्यक् प्रकार से तेज कर।
'सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मम्'
ऋ. १०.१८०.२; अ. ७.८४.३; साम. २.१२२३; वाज.सं. १८.७१; तै.सं. १.६.१२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८३.१५; का.सं. ८.१६
हे इन्द्र, तू क्षरणशील तेज वज्र को (तिग्नं पविम्) सम्यक् प्रकार से तेजकर...

स्वश्वा - (१) सबको बांधने वाली शक्ति -आत्मा
'स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासाः'
ऋ. १०.७५.८

संशित - खूब तीक्ष्ण, तेज,
'संशितं मे ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्'
अ. ३.१९.१; वाज.सं. ११.८१; तै.सं. ४.१.१०.३; मै.सं. २.७.७: ८४.६; का.सं. १६.७; श.ब्रा. ६.६.३; तै.आ. २.५.२

संशिश्वरी - उत्तम शिशुओं वाली गौ
'वत्सं संशिश्वरीरिव'
ऋ. ८.६९.११; ९.६१.१४; अ. २०.९२.८; साम. २.६८६
(२) शिशु वाली माता
(३) बछड़े को देखकर रंभाती हुई गौ

संशिशानः, संशिशानाः - (१) मारता काटता हुआ
'तिग्मेषव आयुधा संशिशानाः'
ऋ. १०.८४.१; अ. ४.३१.१; तै.ब्रा. २.४.१.१०; नि. १०.३०
तीक्ष्ण बाणधारी योद्धा आयुधों से मारते काटते...
(२) संशिश्यमानाः (तीक्ष्ण आयुधों को तीक्ष्णतर करते हुए)

संशिष् - अपने से छोटे और निम्न पुरुषों के प्रति आज्ञा, समान पुरुषों के प्रति आज्ञा
'संशिषो विशिषश्च याः'

अ. ११.८.२७

संशूरणासः - सम् + शूर + युच् = सं शूरण (यु का अना अर्थ-(१) विक्रमशील (सूर्य के घोड़ो का विशेषण) (२) अत्यन्त वेगवान् सूर्य की रश्मियां, -दया.

एक वचन में रूप है- 'संशूरणः'।

संश्रेषी - परस्पर संघात करने वाला -राष्ट्र

'बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत्

अ. ८.५.१४

स्वष्ट्र - उत्तम अश्वादि साधनों से युक्त

'नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम्'

ऋ. १०.४२.५; अ. २०.८९.५

(२) सुन्दर अश्वों वाला

सस् - सोना

'सस्तु माता सस्तु पिता'

ऋ. ७.५५.५

ससः - (१) विद्युत्।

'संस न पक्वमविदच्छुचन्तम्'

ऋ. १०.७९.३; नि. ५.३

जैसे आठ महीनों तक सोती हुई विद्युत् को वर्षाऋतु में पक्व होकर चमकते हुए हम देखते हैं।

(२) षस् + अच् = सस। स्वप्नशील, जिसका स्वभाव स्वप्नशील है। माध्यमिक ज्योति या मेघ में छिपी विद्युत् का एक नाम।

स्वप्नम् एतत् माध्यमिक ज्योतिः अनित्यदर्शनम्

(३) निश्चल- सा. (४) सोता हुआ -दया.

'ससस्य चर्मन्नधिचारु पृश्नेः

अग्रे रूप आरुपितं जबारु।'

ऋ. ४.५.७

जिस आदित्य का दीप्तिमान मण्डल (चारु जबारु) सृष्टि के आदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथ्वी के निकट से (रुपः) निश्चल द्युलोक के ऊपर (ससस्य पृश्नेः अधि) चलने निमित्त (चर्मन्) आरूपित हुआ (आरुपितम्)-सा.

जिस सोते हुए पति के भी शरीर पर (ससस्य इत चर्मन् अधि) सुन्दर ऊर्ध्वरेतस्व स्थापित हो (चारु जबारु आरुपितम्) जैसे द्युलोक में आरोपकर्ता परमात्मा का (रुपः) आदित्य मण्डल आरोपित है (पृश्नेः अग्रे रुपः) उसी प्रकार वीर्य पति के शरीर में आरुपित है।

(४) ऊपर उठता हुआ सूर्य (६) शयन करता हुआ पति

ससत् - (१) सोने वाला

'नू चिद्धि रात्रं ससतामिवाविदन्'

ऋ. १.५३.१

(२) सोता हुआ

'अति वायो ससतो याहि शश्वतः'

ऋ. १.१३५.७

हे वायु के समान प्राणप्रद विद्वन्, तू सोने वाले आलसी पुरुषों से आगे बढ़ उनको अपने अधीन कर। और तू सनातन से या चिरकाल से एक ही दशा में रहने वाले पुरुषों से आगे बढ़ उनसे उन्नति कर।

(३) सस् + शतृ = ससत्।

'अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती'

ऋ. १.१२४.४, नि. ४.१६

(४) आलसी

सोते हुए आलसी लोगों के धन ऐश्वर्य के सुखों को जैसे लोग हर लेते हैं।

ससर्ज - सृजति (सृष्टि करता है)। लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग।

ससर्परी - (१) सर्वत्र व्यापने वाली उषा।

'ससर्परी रमतिं बाधमाना'

ऋ. ३.५३.१५

(२) सुख और ज्ञान प्राप्त कराने वाली, (३) सर्वत्र व्यापक या शिष्य परम्परा से एक दूसरे को प्राप्त होने वाली विद्या।

'ससर्परीरभरत् तूयमेभ्यः

अधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु:'

ऋ. ३.५३.१६

ससवान् - (१) धारण करने वाला

'ससवांसं स्वरपश्च देवीः'

ऋ. ३.३४.८; अ. २०.११.८

(२) अच्छी प्रकार विभक्त करता हुआ

'ससवान् सन् स्तूयसे जातवेदः'

ऋ. ३.२२.१; वाज.सं. १२.४७; तै.सं. ४.२.४.२; मै.सं. २.७.११: ८९.१०; का.सं. १६.११; श.ब्रा. ७.१.१.२२

(३) अन्न आदि से लदा हुआ पशु

'पशुर्न भूर्णिर्ववसे ससवान्'

ऋ. ७.८७.२
(४) उत्तम अन्न का स्वामी
'ससवान् स्तौलाभिर्धौतरीभिः'
ऋ. ६.४४.७
(४) शयन करने वाला
'ससवांसो वि श्रृण्विरे'
ऋ. ४.८.६; ८.५४.६; का.सं. १२.१५

सस्वः – (१) अन्तर्हित, छिपा हुआ (२) सस्वर, (३) परम सुखयुक्त, (४) तेजोमय, (५) वाङ्मय
'अवाचचक्षं पदमस्य सस्वः'
ऋ. ५.३०.२
(६) समानः स्वर् यस्य
एक समान तेज शब्द या ऐश्वर्यादि रखने वाला।
'सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमानाः'
ऋ. ७.५९.७

सस्वर्ताः – (१)अन्तर्हित, छिपा हुआ।
'यत् सस्वर्ता जिहीडिरे यदाविः
अव तदेन ईमहे तुराणाम्'
ऋ. ७.५८.५
जिस छिपे (यत् सस्वर्ता) और जिस प्रकट प्रकट पाप से लोग लज्जित होते हैं (जिहीडिरे) उस पाप को (तत् एनः) शीघ्रगामी मरुतों के (तुराणाम्) अनुग्रह से दूर करते हैं। अतः हम उनकी प्रार्थना करते हैं (ईमहे)।
स्वामी दयानन्द ने 'अव ईमहे' का ही अर्थ 'दूर करते हैं' किया है।

सस्वश्चित् – सस्वः + चित्। अर्थ है– गुप्त
'सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषाम्'
ऋ. ७.६०.१०

स्वसर – (१) दिन की समाप्ति
'अभिवत्सं न स्वसरेषु धेनवः'
ऋ. ८.८८.१; अ. २०.९.१; ४९.४; साम. १.२३६; २.३५, वाज.सं. २६.११; पंच.ब्रा. ११.४.३
(२) दिन, (३) अपने में व्यापक प्रभु
'अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः'
अ. ७.२२.२; साम. १.४५८; आप.श्रौ.सू. २१.९.१५. मा.श्रौ.सू. ७.२.३.
(४) स्वयं चलने वाला यान
(५) अपने अपने कार्य में प्रवृत्त कराने वाला दिन
'आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम्।'
ऋ. १.३४.७
जैसे आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में, वायु एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है, उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो, स्वयं गमन करने वाले रथों से दिन रात जाओ।
दिन के अर्थ में प्रयोग के लिए देखें –
'उस्रा इव स्वसराणि'
ऋ. १.४.८
(६) आश्रयस्थान
'प्र यद्वयो स्वसराणि अच्छा'
ऋ. २.१९.२
(७) देह रूप घट, (८) सोम रस का बर्तन, (९) स्वयं सरण करने योग्य इन्द्रिय
'प्रति स्वसरमुप यातु पीतये'
ऋ. ६.६८.१०; अ. ७.५८.१
(१०) गोशाला
'अग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः'
ऋ. २.२.२
(११) दिनों का पूर्व भाग
'अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनवः'
ऋ. ८.८८.१; अ. २०.९.१; ४९.४; साम. १.२३६; २.३५; वाज.सं. २६.११ पंच.ब्रा. ११.४.३.

स्वसरस्य पत्नी – (१) स्वयं आप से आप निकलने वाले सूत की रक्षित्री–तकली, (२) सुख संचारित करने या स्वयं अभिलाषायुक्त होकर प्राप्त होने वाले पुरुष की पत्नी, (३) स्वयं काल गति से चलने वाले या उत्तम प्रकार से अन्धकार को दूर करने वाले दिन की स्वामिनी उषा, (४) उत्तम शस्त्रप्रक्षेप्ता पुरुष या धनुष आदि शस्त्रास्त्रों की पालिका (५) अपने संचालक नायक की पत्नी
'अव स्यूमेव चिन्वती मघोनी
उषा याति स्वसरस्य पत्नी,'
ऋ. ३.६१.४

स्वस्तकौ – सु + अस्त + क। उत्तम गृह से सम्पन्न वर वधू
'क्रीड़न्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः
मोदमानौ स्वे गृहे'
ऋ. १०.८५.५२; अ. १४.१.२२; नि. १.१६.

स्वप्ना कासिका – भगिनी के समान कफ के साथ

स्वयं आ जाने वाली खांसी
'स्वस्रा कासिकया सह'
अ. ५.२२.१२

ससार - चली गई ।
'ससार सीं परावतः'
ऋ. ४.३०.११; नि. ११.४८
दूरवर्ती मेघ से (परावतः) उषा दूर चली गई (सीं संसार) ।

सस्थावाना - (१) समान बल से युद्धार्थ खड़े दो राष्ट्र (२) समान बल से स्थिर सूर्य, पृथ्वी आदि लोक
'सस्थावाना यवयसि
त्वमेक इच्छचीपत'
ऋ. ८.३७.४

सस्राणः - (१) सब पदार्थों के गुण दोषों को प्राप्त करता हुआ-दया. (२) गति करता हुआ, (३) व्यापता हुआ, (४) प्रजाओं और आश्रित जनों में प्रविष्ट (५) गर्भाशय में प्रवेश करता हुआ जीव
'प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ'
ऋ. १.१४९.२

स्वसारः -ब. व. । एक वचन में 'स्वसा'।
(१) बहनें (२) बहनों के समान परस्पर प्रेम करने वाली, (३) 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को प्राप्त करने वाली प्रजाएं,
(४) 'स्व' अर्थात् आत्मा की ओर जाने वाली 'प्रजाएं या चित्तवृत्तियां
स्वसारो या इदं ययुः'
ऋ. २.५.५
अपने पतिः पालक को स्वयं अपनी इच्छा से प्राप्त करने एवं स्वयं वरण करने वाली स्त्रियां, (६) धन प्राप्ति के लिए शत्रुओं पर आक्रमण करने वाली सेनाएं या भुजाएं
(७) परमेश्वर के आत्म सामर्थ्य से चलने वाली जगत् की महान् शक्तियाँ
'स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्राः'
ऋ. १०.१२०.९; अ. २०.१०७.१२

स्वसा - सु । अस् + ऋत् = स्वसृ । बहन मर्यादा पूर्वक रहती है ।
सु + नञ् + सृ = स्वस । वह सगोत्र से सम्बन्ध नहीं करती । वह अपने भाई आदिकों में स्थित रहती है और विवाहोपरान्त भी प्रेम रखती है ।
स्व + सद् + ऋञ् = स्वसृ । अर्थ-बहन .
स्व + सृ (सरण करना) । स्वयं सचारिणी या भगिणी ।

स्वसारा - स्वसृ का द्वि-व-रूप ।
'स्वसारौ' का वैदिक रूप है स्वसारा ।
'स्वसृ' की व्यत्पत्ति के लिए देखें 'स्वसा'।
सु + असा = स्वसा ।
सुखेन अस्यते क्षिण्यते परेभ्या अर्प्यते (जो सुख से दूसरों को अर्पित की जाती है) ।
अर्थ - (१) दो बहनें, (२) दो बहनों के तुल्य द्यौ और पृथिवी -सा.।
(३) स्वकीय परिधि में घूमने वाले सूर्य और पृथ्वी -दया.
'उत स्वसारा युवती भवन्ती'
ऋ. ३.५४.७
दो बहनों के समान युवतियों सी द्यौ और पृथ्वी -सा. । स्वकीय परिधियों में घूमने वाली सामने तथा पीछे होते सूर्य और पृथिवी -दया. ।
स्वेषु मित्रादि स्वजन वर्गेषु तदधीना या सीदति सा स्वजा (जो पिता आदि के अधीन हो रहती है वह स्वसा है) ।
स्व + सद् + ड्रन् = स्वसृ (डित् होने से सद के अद् का लोप) ।
अंग्रेजी का Sister शब्द 'स्वसृ' से ही बना है ।
(४) द्यावापृथिवी का विशेषण (५) स्वयं एक दूसरे को प्राप्त होने वाली
'स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थ'
ऋ. १.१८५.५

सस्निः - (१) जिसमें सोत हो - सा.
(२) सब-सुखों का ढोने वाला रथ, (३) शुद्ध, संग-दोष से रहित ।
'प्राता रथो नवो योजि सस्निः'
ऋ. ५.१८.१
(४) शुद्ध पवित्र आचार वाला
'बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा'
ऋ. २.२३.१०
(५) नित्य पवित्र सोम
'सस्निर्यो अनुमाद्यः'
ऋ. ९.२४.४; साम. २.३१५
(६) 'ष्णा' (शौच और वेष्टन अर्थ में) + किन्

= सस्नि (ष्णा का लिट् की तरह द्वित्व) ।
सस्नातः अद्भिः परिवेष्टितः
(स्नात, जल से परिवेष्टित) ।
मेघ । मेघ जल से परिस्रुत रहता है ।
'सस्निमविन्दच्चरणे नदीनाम्
अपावृणोददुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचत्
इन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् '
ऋ. १०.१३९.६
इन्द्र ने जलों के संचरण स्थान अर्थात् अन्तरिक्ष में (नदीनां चरणे) जल से परिस्रुत मेघ को पाया (सस्निम् अविन्दत्) और पाकर जिसमें विद्युत् होता है ऐसे मेघों को मेघों के निवास स्थान जलों के द्वारों को (अश्मा व्रजानाम् दुरः) उद्घाटित किया (अपावृणोत्) या पर्वतों के बीच बहती हुई नदियों के अमरण साधक जल को (अमृतानि) गोव्रज का धारण करने वाला विश्वावसु रूप में वर्तमान इन्द्र कहते हैं (गन्धर्वः इन्द्रः प्रवोचत्) तथा जल दान में दक्ष मेघ (दक्षम्) मेघों के बीच में सर्वतो भाव से जान जाता या पहचान लेता है (अहीनां परिजानात्) ।
आर्यसमाजी विद्वान् इन्द्र का अर्थ तत्ववेत्ता तथा 'अहीनां पक्षः' का अर्थ 'जल का बल ' करते हैं ।
(७) अति पवित्र और अन्यों को पवित्र करने वाला
'सस्निं वाजेषु दुष्टरम् '
ऋ. ५.३५.१
(८) निष्णात स्नातक
'तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरम् '
ऋ. १०.३८.४
(९) शुद्ध करने वाला सूर्य
'अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि '
ऋ. १०.१२०.२; अ. ५.२.२; २०.१०७.५; साम. २.८३४; ऐ.आ. १.३.४.७ .

स्वस्ति – सु + अस्ति = स्वस्ति । अर्थ –(१) कल्याण, (२) अविनाश । अस्ति पद अभिपूजित है ।
स्वस्ति इति अविनासि
नाभ अस्तिः अभिपूजितः
(३) जो सुन्दर या सुष्ठु हो
(४) अन्तरिक्ष का देवता –सा.
(५) अन्तरिक्षस्थ मेघ
'स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा '
ऋ. १०.६३.१६; ऐ.ब्रा. १.९.७; नि. ११.४६.
स्वस्ति ही प्रकृष्ट पथ या अन्तरिक्ष में श्रेष्ठ देवता है ।
(६) अविनाशी (७) स्पृहणीयः
(८) आदरणीय
'सचस्वा नः स्वस्तये
ऋ. १.१.९; वाज.सं. ३.२४,, तै.सं. १.५.६.२; मै.सं. १.५.३:६९.८.
हमारे कल्याण के लिए अनुकूल कार्यकर ।
(९) कल्याण कारिणी सम्पत्ति, (१०) नाशकारी गोली को दूर फेंकने में समर्थ गोला
'आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिम् '
ऋ. ६.२२.१०; अ. २०.३६.१०

स्वस्ति गव्यूतिः – निष्कण्टक मार्ग वाला ।
'स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् '
वाज.सं. ११.१५; तै.सं. ४.१.२.२; मै.सं. २.७.२:७५.८; ३.१.३: ४.१०; का.सं. १६.१; श.ब्रा. ६.३.२.८.

स्वस्तिगा – (१) सुख से चलने योग्य (२) कल्याण मय उद्देश्य को जाने वाला (३) कल्याणकारी सुख क्षयक भूमि वाला
'स्वस्तिगामनेहसम् '
ऋ. ६.५१.१६; ८.६९.१६; अ. २०.९२.१३; वाज.सं. ४.२९; तै.सं. १.२.९.१; तै.सं. १.२.९.१; मै.सं. १.२.५:१४.१; का.सं. २.६; श.ब्रा. ३.३.३.१५.
(४) कुशल, सुख एवं शान्ति दायक वाणी से युक्त
(५) कल्याण प्राप्त करने वाला

स्वास्तिवाट् – (१) सुख पूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाला (२) कल्याणमय कर्मफल प्राप्त करने वाला देह ।
'स्वस्तिवाहं रथमित् कृणुध्वम् '
ऋ. १०.१०१.७
(३) स्वस्ति + वह् + णिच् = स्वस्तिवाह् । आराम से ले चलने वाला रथ ।
(३) अविनाश वाहक, (४) अभिपूजित वाहन,
(५) सुखवाहक, दुर्ग

स्वास्तिवाहनम् – कल्याण दायक
'सुगं स्वस्ति वाहनम्'
अ. १४.२.८

सस्ति –सीति (सोता है) । सस् धातु शयनार्थक है । लट् प्र.पु. ए .व. का रूप है ।
स्वपिति सस्त इतिद्वौ स्वपिति कर्मणौ (सयवार्थक धातु दो हैं –सस् और स्वप्) ।
'स्वपि' का ही Sleep हुआ है ।

सस्नितमः – सर्वोत्तम शुद्ध करने वाला
'देवानामसि वह्नितमं सस्नितमम्
पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्'
वाज.सं. १.८; मै.सं. १.१.५;३.१; ४.१.५; ६.१२; का.सं. १.४; श.ब्रा. १.१.२.१२

सस्मिन् – उसमें । 'तस्मिन्'
'शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ'
ऋ. १.१७४.४

सस्निः – (१) अच्छी प्रकार वश किया हुआ, (२) अच्छी प्रकार से दृढ़ , (३) जितेन्द्रिय (४) ऐश्वर्य, (५) ऐश्वर्य को उत्तम रीति से प्राप्त करने में समर्थ, (६) शुद्धस्वरूप ।
'रथो न सस्निरभिवक्षि वाजम्'
ऋ. ३.१५.५

सस्नी – द्वि.व.। (१) इन्द्राग्नी,(२) निष्णात, शुद्ध, (३) अन्यों को भी पवित्र करने वाले
'सस्नी वाजेषु कर्मसु'
ऋ. ८.३८.१; साम. २.४२३

सस्रुषी – (१) निरन्तर बहने वाली जलधारा
'दिवा नक्तं च सस्रुषीः'
अ. ६.२३.१

स्वंसुः – सु + असुः = स्वसु, स्व + सु = स्वस (१) उत्तम प्राणवान्, (२) सुख जनक प्राणवत् प्रिय, (३) सुख से शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ, (४) 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को उत्पन्न करने में समर्थ, (५) स्वसृ शब्द के षष्ठी एक वचन में रूप स्वसुः । अर्थ है– स्वयं शरण में आई प्रजा का (६) सूर्य की बहन उषा का
'स्वसुर्यो जार उच्यते'
ऋ. ६.५५.४

स्वसुःजारः – (१) रात्रि या उषा को नष्ट करने वाला सूर्य (२) भगिनी के तुल्य प्रजा को सन्मार्ग मे चलाने वाला
'स्वसुर्जारः श्रृणोतु नः'
ऋ. ६.५५.५

सस्रुत् – समान रूप से प्रवाहित होती हुई जलधारा ।
'ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः'
ऋ. १.१४१.१

ससृजानः – (१) उत्पन्न, (२) स्वयं सृजन करता हुआ–अग्नि
'वि भा अकः ससृजानः पृथिव्याम्'
ऋ. ७.८.२
(३) छूटा हुआ, उन्मुक्त (४) तैयार होता हुआ
'अत्यासो न ससृजानास आजौ'
ऋ. ९.९७.२०

ससृमाणः – वेग से जाने वाला
'न्येतशं रीख्यत ससृमाणम्'
ऋ. ४.१७.१४

ससृवान् – (१) व्यापने वाला, व्यापक (२) आगे बढ़ने वाला
'ससृवांसमिव त्मना
अग्निमित्था तिरोहितम्'
ऋ. ३.९.५
(३) जाने वाला, ससरने वाला
'तिरः पवित्रं ससृवांस आशवः'
ऋ. ८.१.१५

स्वसृत् – स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाला
'स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणः'
ऋ. १.८७.४
वायु या वीर नायक अपने बल से आगे बढ़ने वाला (स्वसृत्), मेघ रूप अश्वों वाला या मृग के समान वेगवान् अश्वों वाला, जवान हृष्ट पुष्ट

स्वसृतः – ब.व.। ए.व. में 'स्वसृत्' (१) वायुओं का विशेषण । (२) अपने ही बल से चलने वाले वायु (३) अपने बल से आगे बढ़ने वाले सैनिक
'मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतः'
ऋ. १.६४.११
वीर्य बल के बर्द्धक पूजा के योग्य अपने बल पराक्रम से आगे बढ़ने वाले, स्थिर पदार्थों को भी कंपाने वाले वायु या वीर पुरुष

स्वसेतवः – (१) स्वयं बद्ध जल धाराएं (२) अपने

ही बांधों से बंधी, (३) स्वयं अपने आप को नियम मर्यादा में बांध रखने वाली,
(४) धन वेतनादि में या स्वजनों के सम्बन्धों से बद्ध
'त्वामापः परिस्रुतः
परियन्ति स्वसेतवः'
ऋ. ८.३९.१०

स्वसेतुः - (१) जगत् के पार उतारने के लिए स्वयं सेतु रूप
'अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः '
ऋ. १०.६१.१६

सस्रोतसः - ब.व.। (१) समान रूप से स्रोत अर्थात् प्रवाह रूपी नदियां , (२) समान ज्ञान प्रवाह वाली (३) एक समान मन रूप स्रोत से बहने वाली पांच प्रकार की वृत्तियाँ
'पञ्च नद्यः सरस्वतीम्
अपि यन्ति सस्रोतसः ।'
वाज.सं. ३४.११

स्वःदक्षः - (१) अपना कर्म, (२) स्वयं स्वस्वरूप कर्म कर्ता आत्मा (३) अपना कुशल बन्धु
'न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा '
ऋ. ७.८६.६

संसचावहै - संसेवाहे (परस्पर सेवा करते हैं) ।
(१) हम दोनों परस्पर एक दूसरे की सेवा करते हैं ।(२) हम दोनों भली प्रकार धर्म सेवन करें
'आ घृणे संसचावहै '
ऋ. ६.५५.१; नि. ५.९.
हे आगत दीप्त सूर्य !अथवा हे ज्ञान से प्रकाशित विद्वन् , आ हम दोनों एक दूसरे की सेवा या भलीप्रकार धर्म सेवन करें ।
कहा भी है ।
अग्नौ प्रास्ता हुतिः सम्यक् आदित्यमुप तिष्ठते ।
आदित्यात् जायते वृष्टिः
वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः । '

संसत् - (१) सभा, (२) सभा के समान सब का पालक सूर्य, अग्नि (३) सम्यक् प्रकार से गृह में स्थापित अग्नि, (४) सम्यक् प्रकार से स्थित सूर्य
'सदा एवः पितुमतीव संसद् '
ऋ. ४.१.८
सभा के अर्थ में -
'अस्याः सर्वस्याः संसदः '
अ. ७.१२.३
'असुन्वामिन्द्र संसदं
विषूचीं व्यनाशयत् '
ऋ. ८.१४.१५; अ. २०.२९.५

संसन्न - सम् + सद् + क्त । अच्छी प्रकार राज सभा में विराजमान ।
'वैश्वदेवः संसन्नः '
वाज.सं. ३९.५

संसमकम् - ठीक अनुपात में
'अङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु '
अ. ६.७२.१

संसर्प - (१) सत्संगति, (२) दूर जाने वाला गुप्तचर
'संसर्पेण श्रुवाय श्रुतं जिन्व '
वाज.सं. १५.७
(२) शत्रुओं में जाकर गुप्तरूप से भेद लेने वाला
'संसर्पाय स्वाहा '
वाज.सं. २२.३०; मै.सं. ३.१२.११; १६३.१६; का.सं. ३५.१०; तै.ब्रा. ३.१०.७.१

संसहस्रम् - सहस्रों अपरिचित ऐश्वर्यों और ज्ञानों को देने वाला
'इदं वचः शतसाःसंसहस्रम् '
ऋ. ७.८.६

संस्कन्ध - सेना का संयुक्त सेना बल
'संस्कन्धमोज ओजसा '
अ. १९.३४.५

संस्थ - (१) भली प्रकार हृदय में स्थित हो जाना, (२) रथ
'यस्य संस्थे न वृण्वते '
ऋ. १.५.४ अ. २०.६९.२; शां.श्रौ.सू. ९.१६.२
(३) उत्तम रूप से स्थित होने योग्य संसार,

संस्था - (१) यज्ञ-सम्बन्धी विधानों का समवाय (२) राष्ट्र में राजसभा आदि संस्था या व्यवस्था
'समिष्ठ यजुषा संस्थाम् '
वाज.सं. १९.२९

संस्पर्श -स्पर्श
'संस्पर्शेऽद्रुक्ष्णमस्तुते '
अ. ८.२.१६

संस्मयमाना - मुस्कुराती हुई
'संस्मयमाना युवितः पुरस्तात्
आविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती '

ऋ. १.१२३.१०

संस्रव – (१) अच्छी तरह एक साथ बहना, प्रवाह, (२) प्रवाह से चलने वाले ज्ञान, ऐश्वर्य बल का प्रवाह
'सत्यमुग्रस्य बृहतः
सं स्रवन्ति संस्रवाः'
ऋ. ९.११३.५

संस्रवभागः – उत्तम ऐस्वर्य का भागी
'संस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः'
वाज.सं. २.१८

संस्फान – अन्न को बढ़ाने वाला

संस्रावणाः – मिल कर कार्य करने वाले
'इहैव हवमायात
म इह संस्रावणाः'
अ. १.१५.२

संस्रावण – समस्त ऐश्वर्यों को भली प्रकार लाने वाला उपाय या यज्ञ
'इमं संस्रावणा उत'
अ. १९.१.२

संस्राव्य – (१) उत्तम रीति से प्राप्त करने वाला, (२) प्रेरणा और वशीकरण का उपाय, (३) योगाभ्यास
'संस्राव्येण हविषा जुहोमि'
अ. १.१५.१; २.२६.३; १९.१.१,२,३
(४) प्रजा के प्रत्येक जन से आई हुई हवि या कर

संस्राव्यं हविः – धन, ऐश्वर्य और सुख लाने वाला हवि या प्रयत्न।
'संस्राव्येण हविषा जुहोमि'
अ. १९.१.१,२,३

संसिचः – (१) दिव्य गुण वाले सूक्ष्म तत्व जो शरीर रचना के योग्य समस्त पदार्थों को एकत्र करते हैं (२) संसिच् नामक देवगण
'संसिचा नाम ते देवाः
ये संभारान् समभरन्'
अ. ११.८.१३

संस्तिरः – (१) सम्यक् अच्छादक – (२) अपने राज्य को भली भांति विस्तृत करने वाला
'स सं स्तिरो विष्टिरः सं गृभायति'
ऋ. १.१४०.७

संस्थित यज्ञ – (१) समाप्त हुआ जीवन रूप यज्ञ, (२) मृत शरीर
'हुतोऽयं संस्थितो यज्ञः'
अ. १८.४.१५

संस्तुप् – (१) वाक्, (२) विद्याओं का पठन
'संस्तुप् छन्दः'
वाज.सं. १५.५; मै.सं. २.८.७: ११२.२; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५२.५.

संसृजस्व – पति के साथ शरीर को एक कर दो, पति के साथ ऐकात्म्य स्थापित करो।
'एना पत्या तन्वं संसृजस्व'
ऋ. १०.८५.२७; नि. ३.२१
इस पति के साथ अपने शरीर को मिलाओ– ऐकात्म्य स्थापित करो।

संस्पृश् – (१) तीक्ष्ण कष्ट देने वाला चुभने वाला कष्ट दायी कारण
'दिवः संस्पृशस्पाहि'
वाज.सं. ३७.१३; श.ब्रा. १४.१.३.२९

संसृष्ट – (१) साथ मिलकर काम करने में समर्थ, (२) खूब सधा हुआ साथी
'क्रीड़िभ्यः संसृष्टान्'
वाज.सं. २४.१६

संसृष्टजित् – (१) परस्पर संघ बना कर लड़ने वालों को जीतने वाला
'संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्धी'
ऋ. १०.१०३.३; अ. १९.१३.४; साम. २.१२०.१; वाज.सं. १७.३५; तै.सं. ४.६.४.१; मै.सं. २.१०.४:१३५.१४; का.सं. १८.५.
(२) भली प्रकार परस्पर दलबद्ध सेनाओं को जीतने वाला

संस्कृत – सम् + कृत। सज्जित, संस्कारयुक्त, तत्पर
'रणाय संस्कृतः'
अ. २०.५३.३

संस्कृतत्र – (१) मांस पाचक पुरुष, (२) रचना संस्कार को प्राप्त संसार का पालक, (३) सब संचार का परिपाक करने वाला दण्डधर यम
'नं संस्कृतत्रमुपयन्ति ता अभि'
ऋ. ६.२८.४; अ. ४.२१.४; का.सं. १३.१६; तै.ब्रा. २.४.६.९
(४) शुद्ध संस्कृत ज्ञान की रक्षा करने वाला विद्वान्

स्वरङ्कृता – सु + अरंकृता। खूब आभूषित

'अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता'
अ. १०.१.२५

सह – (१) जल । (२) साथ, (३) धा.–पराजित करना

सह गोपाः – गोपाल के साथ चरती हुई गाएं
'अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः'
ऋ. १०.२७.८

सहच्छन्दाः – (१) एक साथ चाल चलने वाला, (२) एक साथ गुरु के अधीन वेदपाठ करने वाला
'सहस्तोमाः सहच्छन्दसः आवृतः'
ऋ. १०.१३०.७; वाज.सं. ३४.४९.

सहचार – साथ चलना
'वायुर्येषां सहचारं जुजोष'
अ. २.२६.१

सहजन्या – (१) एक अप्सरा का नाम, (२) जन समुदाय की संघ शक्ति,
(३) पृथिवी
'मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१६; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११४.१७; का .सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१७

सहजानुष – जिसका जन्म एक साथ हुआ हो–यमज बालक
'मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि'
ऋ. १.१०४.८
हे परमेश्वर, हमारे सहोदर, जन्म से एक साथ उत्पन्न, कच्चे पात्रों के समान रूप वाले, असमर्थ पालन करने योग्य बच्चों को मत विनष्ट कर ।

सहदानु – (१) जल का दाता । (२) उदक दाता मेघ (३) दानव या दुष्टों को संग देने वाला–
'सहदानुं पुरूहूत क्षियन्तम्'
ऋ. ३.३०.८; वाज.सं. १८.६९; श.ब्रा. ९.५.२.४; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.
हे इन्द्र ! तू उदक*दाता एव अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ को
हे निर्वाचित, राजन् (पुरूहूत इन्द्र) तू जैसे उदक दाता अन्तरिक्ष निवासी मेघ को सूर्य नष्ट करता है वैसे दुष्ट जनों के संसर्ग में रहने वाले (सहदानुम्) नष्ट कर...।
(३) दानेन सह वर्तमानः
(४) जल सहित
(५) व्रत खण्ड वाले कुकर्मों से युक्त,
(६) अपने बल से प्रजाओं का खण्डन या नाश करने वाला,
(७) अपने सहवासी का नाशक

सहदेवः – (१) देवों के साथ रहने वाला इन्द्र, (२) युद्धार्थी सैनिकों के साथ रहने वाला
'ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः
सहदेवो भयमानः सुराधाः'
ऋ. १.१००.१७

सहन्तमः – (१) सब को पराजित करने वाला, (२) सबसे बढ़कर पराजित करने वाला
'त्वमग्ने सहसा सहन्तमः'
ऋ. १.१२७.९

सहन्त्यः – (१) सहनशील ।
'नकिरस्य सहन्त्य
पर्येता कयस्यचित्'
ऋ. १.२७.८; साम. २.७६६
हे सहनशील ! इस ज्ञानवान्, युद्ध विद्याकुशल सेनापति का सामना करने वाला (पर्येता) कोई नहीं है (नकिः) ।
(२) शत्रुओं का पराजयकारी
'त्वमसि प्रशस्यः विदथेषु सहन्त्य'
ऋ. ८.११.२
(३) बलवान्
'शर्मयच्छ सहन्त्य'
ऋ. ६.१६.३३; तै.सं. ३.१.१०.३

सहपत्नी – सहधर्मचारिणी,
'पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु'
अ. १४.१.५८

सहप्रमाः – (१) एक साथ प्रयाण करने वाला
(२) एक साथ समान रूप से यथार्थ ज्ञान करने वाला
'सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्या'
ऋ. १०.१३०.७ वाज.सं. ३४.४९
(३) परिमाणों के सहित–सप्तर्षि या सप्त शीर्षण्य प्राण

सहभक्षाः – एक साथ भोजन करने वाले
'आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम'
अ. ६.४७.१; तै.सं. ३.१.९.१; मै.सं. १.३.३६; ४२.९; का.सं. ३०.६

सहभूति – विभूति सम्पन्न सेना नायक

'सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम्'
अ. ४.३१.६

सहमानः – 'सह' धातु का अर्थ पराजित करना है। सह + शानच् = सहमान। अर्थ है – (१) शत्रुओं को पराजित करने वाला
'अषाढाय सहमानाय वेधसे'
ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६.८;३.१.२.२; नि. १०.६
किसी से अभिभूत न होने वाले
(अषाढाय) शत्रुओं को पराजित करने वाले
(सहमानाय) देदीप्यमान् या दानशील विधाता
(वेधसे) रुद्र को हम स्तुतियां अर्पित करें।
(२) सबको सहन करने वाला
(३) सबको नष्ट करने वाला–इन्द्र, परमेश्वर
(४) शत्रुओं को निरन्तर दबाने वाला
'त्वमसि सहमानः'
अ. १९.३२.५

सहमाना – (१) रोग को रोकने में प्रबल
'सहमानेयं प्रथमा'
आ. २.२५.२
(२) बलवती, रोगनाशक, पाप नाशक ओषधि
(३) सहदेवी नामक ओषधि
'त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीम्'
अ. ८.२.६

सहमूरः – (१) मारने वाले शस्त्रास्त्रों को साधने वाला
'अनु दह सहमूरान् क्रव्यादः'
ऋ. १०.८७.१९; साम. १.८०;
(२) मूढ़ो का स्वामी
(३) सहमूल या विनाश के कारण सहित
'सहमूराननु दह क्रव्यादः'
अ. ५.२९.१; ८.३.१८

सहमूलम् – क्रि.वि.। मूल के सहित
'उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र'
ऋ. ३.३०.१७; नि. ६.३

सहर्षभा – (१) सह + ऋषभा।
ऋषभ अर्थात् सांढ़ के साथ गौ,
(२)सूर्य के साथ किरण,
(३) आत्मा के साथ
'सहर्षभाः सहवत्सा उदेत'
आ. सं. ४.१२

सहवत्सा – बछड़े के साथ गौ
'दानुः शये सहवत्सा न धेनुः'
ऋ. १.३२.९
बछड़े के सहित गौ के समान वह खण्डित वृत्र (दानुः) अन्तरिक्ष रूपी माता के नीचे ही पड़ा रहता है (शये)।
'सहर्षभाः सहवत्सा उदेत'
आ. सं. ४.१२

सहवसु – (१) बसने वाले प्राणियों और लोकों के साथ विद्यमान,
(२) बसाने वाले–जीवन देने वाले पदार्थों के साथ विद्यमान,
(३) धनाढ्य पुरुष
'यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे'
ऋ. २.१३.८

सहवाहः – ब.व.। (१) एक साथ चलने या ढोने वाला–अश्व या अश्वारोही (२) एक साथ मिलकर संसार यात्रा करने वाले, (३) एक साथ विश्व को धारण करने वाले सूर्यादि लोक
'बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति'
ऋ. ७.९७.६; का.सं. १७.१८

सहवाह् – ए.व.। सहवाढ्। (१) एक साथ मिलकर ढोने वाला, चलने वाला, एक साथ मिलकर लोकों का धारण करने वाला

सहवीरः – वीर पुत्रों से युक्त धन
'धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे'
ऋ. १०.४०.१३; आप.मं.पा. १.६.१२

सहशय्यः – स्त्री पुरुष का सहवास

सहशेय्य – (१) पति पत्नी का एक साथ शयन
'समाने योनौ सहशेय्याय'
ऋ. १०.१०.७; अ. १८.१.८

सहसंभला – पति के साथ सदा सुमधुर भाषण करने वाली
'स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै'
अ. १४.१.१९

सहस्तोमाः – ऋचा समूहों के सहित सप्तर्षि या सप्त शीर्षण्य प्राण
'सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः'
ऋ. १०.१३०.७; वाज.सं. ३४.४९;

सहस् – मार्गशीर्ष, अग्रहायण, अगहन का महीना
'उपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वा'
वाज.सं. ७.३०

सहसस्पुत्र – (१) इन्द्रियों और दुष्ट मानस भावों को दमन करने वाले विद्वान् पुरुष का पुत्र, (२) बल के द्वारा युवा पुरुषों का रक्षक
(३) ब्रह्मणस्पति या वेदज्ञान का प्रति पालक विद्वान्
'त्वामिद्धि सहस्पुत्र मर्त्य '
ऋ. १.४०.२
(४) अग्नि। अग्नि को संघर्ष कर अर्थात् बल से उत्पन्न किया जाता है।

सहसःमहुः – शक्ति के रूप में प्रकट होने वाला परमेश्वर या अग्नि।

सहसः सूनुः – (१) बल का पुत्र–सा. (२) बलस्वरूप परमेश्वर–दया
'स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे'
ऋ. १०.५०.६; नि. ५.२५
जिन स्थानों को हे बल के पुत्र या बलस्वरूप परमेश्वर, तू स्वयं धारण करता है।
(३) साहसी वीर का पुत्र –दया.
(४) अग्नि–सा.
'वसुं सूनुं सहसो जातवेदसम् '
ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; वाज.सं. १५.४७; मै.सं. २.१३.८:१५८.२; का.सं. २६.११; ३९.१५

सहस्य – सहस् + यत्। (१) बलशाली
'स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यः'
ऋ. २.२.११
(२) शक्तिमय पिण्ड–सूर्य
'तेना सहस्येना वयम् '
ऋ. ७.५५.७; अ. ४.५.१
(३) पौषमास
'सहस्याय त्वा '
वाज.सं. ७.३०, मै.सं. १.३.१६:३६.१०; का.सं. ४.७; श.ब्रा. ४ .३.१.१८
(४) बल से उत्पन्न
'विप्रं सहस्य धीमहि'
ऋ. १०.८७.२२; अ. ७.७१.१; ८.३.२२; वाज.सं. ११.२६; तै.सं. १. ५.६.४; ४.१.२.५; मै.सं. २.७.२: ७६.८; का.सं. १६.२; ३८.१२

सहसो यहुः– (१) बल का पुत्र अग्नि
'अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः'
ऋ. १.७९.४; साम. १.९९; २.९११; वाज.सं. १५.३५; तै.सं. ४.४.४.५; मै.सं. २.१३.८:१५७.९; ४.१२.५:१९१.८; का.सं. ३९.१५; आप.श्रौ.सू. १४.३३.६; मा.श्रौ.सू. ५.२.५.११.
हे बल का पुत्र अग्नि! (सहसो यहो) जातवेद जो तू गौओं से भुक्त अन्न का (गोमतः वाजस्य) स्वामी है (ईशानः) अतः हमें महान् धन दे (महिश्रवः अस्मे धेहि)।

सहस्रम् – सहस् (बल) + र = सहस्र। यह संख्या बलवान होती है। एक सहस्र, एक हजार।
'सहस्रं सवां अयुतञ्च साकम् '
ऋ. ४.२६.७; नि. ११.२
सहस्रों यज्ञ सोमरस और दक्षिण से युक्त करते हैं।

सहस्रः – (१) बलशाली आत्मा (२) शत्रु पराजय कारी बलवान् पुरुष
'किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्रम्
मासो जभार शरदश्च पूर्वीः'
ऋ. ४.१८.४
(३) बल का उत्पादक
'अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः'
अ. २०.१०४.२
(४) बलवान् सर्व शक्तिमान् परमेश्वर
'अयं सहस्रमा नो दृशे
कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि'
अ. ७.२२.१

सहस्रऋष्टि – हजारों भालों या घातक शस्त्रों से सुसज्जित
'सहस्र ऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः'
अ. १९.६६.१

सहस्र काण्ड – (१) सहस्रों प्रकार के विभागों से सम्पन्न ईश्वरीय ज्ञान
'तेन सहस्र काण्डेन
परि णः पाहि विश्वतः'
अ. २.७.३
(२) सहस्रों बाणों से युक्त कुश नामक घात
'त्वया सहस्रकाण्डेन'
अ. १९.३२.३

सहस्रकुणपा – हजारों लाशों वाली शत्रु सेना
'सहस्रकुणपा शेताम्'
अ. ११.१०.२५

सहस्रकेतु – (१) सहस्रों ध्वजाओं से युक्त रथ, (२)

सहस्रों ज्ञान तन्तुओं से युक्त शरीर

सहस्रचक्षाः – (१) अत्यन्त, प्रकाश वाला तेजस्वी सूर्य, (२) अनेक, चक्षुवाला–वरुण

सहस्रचक्षाः – (१) अनन्तप्रकाश वाला तेजस्वी सूर्य (२) अनेक चक्षुवाला वरुण ।

'आ चष्ट आसां पाथो नदीनाम्
वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः',

ऋ. ७.३४.१०; नि. ६.७

अनेक चक्षु वाले (सहस्रचक्षाः) उद्गूर्ण या ओजस्वी (उग्रः) वरुण इन नदियों का जल (आसां नदीनां पाथस्) देखता है (आचष्टे)–सा. ।

जैसे अनन्त प्रकाशवाले (सहस्र चक्षाः) सूर्य इन नदियों का जल खींचकर फिर उन्हीं में बरसाते हैं उसी प्रकार राजा ....।

(३) सहस्रों नेत्र वाला प्रभु, इन्द्र, (४) सूर्य (४) सहस्रों आज्ञावचन कहने वाला

सहस्रचेताः – सहस्रों विज्ञानों को जानने वाला ।

सहस्रजित् – सहस्रों को वश में करने वाला

'देवो देवैः सहस्रजित्'

ऋ. १.१८८.१

सहस्रणीतिः – (१) सहस्रों बलवान् नीतियों या नेत्रों वाला

'सहस्रणीतिर्वीतिः परायतीः'

ऋ. ९.७१.७

(२) हजारों को उत्तम मार्ग पर ले जाने वाला

'सहस्रणीथाः कवयः'

ऋ. १०.१५४.५; अ. १८.२.१८

सहस्रदक्षिणः – (१) हजारों को दक्षिण दिशा में बैठा कर उपदेश देने वाला आचार्य कर देने वाला शरीर

'स्तवे सहस्रदक्षिणे'

ऋ. १०.३३.५

(३) हजारों का दान देने वाला

'इहो सहस्रदक्षिणः'

अ. २०.१२७.१२; का.सं. ३५.३; ऐ.ब्रा. ८.११.५; शां.श्रौ.सू. ८.११.१५; १२.१५.१.३; ला.श्रौ.सू. ३.३.२; आप.श्रौ.सू. ९.१७.१; साम.मं.ब्रा. १.३.१३; पा.गृ.सू. १.८.१०; आप.मं.पा. १.९.१; हि.गृ.सू. १.२२.९.

'ये वा सहस्रदक्षिणाः'

अ. १८.२.१६

सहस्रदातु – सहस्रों की संख्या में दान देने वाला

'सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत्'

ऋ. ९.७२.९

सहस्रदानः – सहस्रों का दान देने वाला, परमैश्वर्य वाला स्वामी

'सहस्रदान उत वा सदानः'

ऋ. ७.३३.१२

सहस्रदाना – सहस्रों का देने वाला

'सहस्रदाना पुरुहूत रातिः'

ऋ. ३.३०.७

सहस्रद्वारः गृहः – (१) सहस्रों द्वार वाला घर (२) जगत् सहस्रों द्वारा वाला गृह है, (३) राष्ट्र जो सहस्र द्वार विशाल गृहवत् है ।

'सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते'

ऋ. ७.८८.५

सहस्रदावन् – सहस्रों ऐश्वर्यों एवं सुखों का दाता परमेश्वर

'इन्द्रः सहस्रदाव्नाम्'

ऋ. १.१७.५

सहस्रधारः – (१) सामर्थ्यवाला प्रखर मंत्र । 'सहस्' का अर्थ बल है और सहस्र का अर्थ बलवान् या बलदायक है ।

'तेन सहस्रधारेण
पावमान्यः पुनन्तु माम्'

ऋ.खि. ९.६७.४; साम. २.६५.२; तै.ब्रा. १.४.८.६

वैसे ही सामर्थ्य वाले प्रखर मंत्र से (सहस्र धारेण) पवमान देवता वाली ऋचाएं (पावमान्यः) हमें पवित्र करें ।

(२) सहस्रों धारा वाला सोम (३) सहस्रों वाणियों का राजा

'सहस्र धारो अत्यविः'

ऋ. ९.१३.१; साम. २.५३७

(४) दश सहस्र ऋचाओं से युक्त ऋग्वेद,

(५) सहस्रों धारक शक्तियों से युक्त व्यापक परम पावन प्रभु

'सहस्रधारे वितते पवित्र आ'

ऋ. ९.७३.७

(७) सहस्रों विद्याओं को धारण करने वाली,

(८) हजारों ज्ञान धाराओं का वर्षक

'सहस्रधारः पवते'

ऋ. ९.१०१.६; अ. २०.१३७.६; साम. २.२२४

सहस्रधारा – (१) सहस्रों धाराओं को बहाने वाली भूमि ।
'सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षम्'
ऋ. १०.७४.४; वाज.सं. ३३.२८
(२) सहस्र लोकों या समस्त विश्व को धारण करने वाली
'सहस्रधारां महिषो भगाय'
अ. ७.१५.१

सहस्रनाम्नी – सहस्रों नाम वाली, बलप्रद स्वरूप वाली
'ध्रुवाः सहस्रनाम्नीः'
अ. ८.७.८

सहस्रनिर्णिज् – बहुत प्रकार का बनाया रथ
'अतः सहस्रनिर्णिजा
रथेना यातमश्विना'
ऋ. ८.८.११;१४

सहस्रधारः नाकः – (१) सहस्रों लोकों को धारण करने वाला, (२) जगत् का धारक आकाश
'सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः'
ऋ. ९.७३.४; का.सं. ३८.१४; आप.श्रौ.सू. १६.१८.७

सहस्रपर्णः – (१) सहस्रों शीघ्र गामी बाणों, रथों विमानों वाला, (२) सहस्रों पर्णो वाला दर्भ ।
'सहस्रपर्ण उत्तिरः'
अ. १९.३२.१

सहस्रपर्णी – सहस्र पत्तों वाली ओषधि
'तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते'
अ. ६.१३९.१

सहस्र प्रधन – अनेक प्रकृष्ट धनों को दिलाने वाला युद्ध
'इन्द्र वाजेषु नोऽव
सहस्रप्रधनेषु च ।'
ऋ. १.७.४; अ. २०.७०.१०; साम. २.१४८; आ.सं. २.४; मै.सं. २. १३.६; १५५.५; का.सं. ३९.१२; तै.ब्रा. १.५.८.२.

सहस्रपात् – असंख्य पैरों वाला परमेश्वर
'सहस्राक्षः सहस्रपात्'
ऋ. १०.९०.१; अ. १९.६.१; वाज.सं. ३१.१; आ.सं. ४.३; श.ब्रा. १३.६.२.१२; तै.आ. ३.१२.१.

सहस्रपाथाः – (१) अनेक प्रकार के अन्नों वाला (२) अनेक किरणों के जल पीने वाला, (३) जिसे अमित अन्नादि हो (४) सहस्रों जल का पालक
'सहस्रपाथा अक्षरा समेति'
ऋ. ७.१.१४; तै.ब्रा. २.५.३.३

सहास्रपद – सहस्रपादों से युक्त-ब्रह्म
'अध द्युक्षं सचेवहि
सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम्'
अ. २०.९२.१३

सहस्रप्राणः – सहस्रगुणा जीवन शक्ति से युक्त
'सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः'
अ. १९.४६.७

सहस्रपृष्ठः – सहस्रों पीठों वाला, हजारों प्रकार के कार्य भारों को उठाने वाला
'सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके'
अ. ११.१.१९

सहस्रपोष – (१) असंख्य समृद्धियाँ
'सहस्रपोषं सुभगे रराण'
ऋ. २.३२.५; तै.सं. ३.३.११.५; ५.११; मै.सं. ४.१२.६; १९५.३; का.सं. १३.१६; सा.मं.ब्रा. १.५.४; आप.मं.पा. २.११.११
(२) सहस्रों प्रकार की औषधि
'एवा सहस्रपोषाय
कृणुतं लक्ष्माश्विना'
अ. ६.१४१.३

सहस्रपोष्य – सहस्रों को पोसने वाला धन
'कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः'
ऋ. ६.३५.१

सहस्रभर्णाः – सहस्रों का पालक पोषक
'अथो सहस्रभर्णसम्'
ऋ. ९.६०.२

सहस्रभृष्टिः – (१) जिसमें सहस्रों पीड़ा या दाह हो-खड्ग
'सहस्रभृष्टिरायत'
ऋ. १.८०.१२
(२) हजारों को भून डालने में समर्थ
'इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः
सहस्रभृष्टिः शततेजाः'
वाज.सं. १.२४; तै.सं. १.१.९.१; मै.सं. १.१.१०; ५.१२; का.सं. १.९; ३१.८;

(३) हजारों को एक ही बार में भून डालने वाला वज्र
'सहस्रभृष्टि ववृतच्छताश्रिम् '
ऋ. ६.१७.१०

सहस्रम्भर – सहस्रों का भरण पोषण करने में समर्थ अग्नि
'सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः '
ऋ. २.९.१; वाज.सं. ११.३६; तै.सं. ३.५.११.२; ४.१.३.३; मै.सं. २.७.३:७७.१४; का.सं. १६.३; ऐ.ब्रा. १.२८.३५; श.ब्रा. ६.४.२.७.

सहस्रमानवः – सहस्रों मननशील विद्वानों से उपासित
'अयं सहस्रमानवो दृशः
कवीनां मतिर्ज्योर्विधर्म '
सम १.४५८; आप.श्रौ.सू. २१.९.१५; मा.श्रौ.सू ७.२.३

सहस्रमूलः – सहस्रों ब्रह्माण्डों या समस्त जगत् का मूल आधार या कारण-परमेश्वर ।
'सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः '
अ. १३.३.१५

सहस्रभृष्टिवध – हजारों जनों और जीवों को आग में भून देने वाला-वध
'सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् '
ऋ. ५.३४.२

सहस्रमीढ़ – सहस्रों सुखों या ऐश्वर्यों को देने वाला संग्राम ।

सहस्रमुष्कः – सहस्रों को पुष्ट करने वाला-इन्द्र, परमेश्वर ।
'सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते '
ऋ. ६.४६.३

सहस्रवत् – सहस्रों शिष्यों वाला आचार्य ।
'एते वदन्ति शतवत् सहस्रवत् '
ऋ. १०.९४.२

सहस्रवल्शः– (१) सहस्रों अंकुरों या शास्त्र ज्ञानों से युक्त (२) सहस्रों शाखाओं वाला
'सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति '
ऋ. ७.३३.९
(३) सहस्र अंकुरों वाला पौधा
(४) सहस्रों शाखाओं में फूटने वाला आदि वृक्ष
'सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम '
ऋ. ३.८.११; वाज.सं. ५.४३; तै.सं. १.१.२.१; ३.५.१; १.६.३.३.३; मै.सं. १.१.२:२.१; १.२.१४: २३.९; ४.१.२: १३; का.सं. १.३; ३.२; २६.३; ३१.१; श.ब्रा. ३.६.४.१६; तै.ब्रा. ३.२.२.६; आप.श्रौ.सू. १.४.९; मा.श्रौ.सू. १.१.१.३९: ८.१.१३

सहस्रवाजा – सहस्रों बल, ज्ञान, अन्न या सेना से युक्त इच्छा शक्ति, प्रेरणा सेना या अन्न ।
'इषा सहस्रवाजया '
ऋ. ८.९२.१०; साम. १.२१५

सहस्रवाहुः – सहस्रों बाहु वाला, बलवान् बाहुबल
'अपिबत् क्रदुवः सुतम्
इन्द्रः सहस्रबाह्वे '
ऋ. ८.४५.२६; साम. १.१३१.

सहस्रवीर – सहस्रों बलवान् वीरों से युक्त
'सहस्रवीरमस्तृणन् '
ऋ. १.१८८.४

सहस्रवीर्य – सहस्रं सहस्वत् –नि.
(१) हजारों उपाय, (२) अपरिमिति सामर्थ्यप्रद विधियां,
(३) बलयुक्त सहनशील वीर्य रक्षा और ब्रह्मचर्य के उपाय
'इमं सहस्र वीर्येण मृत्योरुत पारयामसि '
अ. ८.१.१८
(४) अक्षयवीर्य प्राप्त कराने वाला-जङ्गिड़ यन्त्र
(५) ब्रह्मचर्य बल
(६) ओषधि को सहस्रगुण शक्तिवाला करना
'चक्रे सहस्रवीर्यं
सर्वस्मा ओषधे त्वा '
अ. ४.१७.१

सहस्रशीर्षा – हजारों शिरों वाला पुरुष,
'सहस्रशीर्ष पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् '
ऋ. १०.९०.१; आ.सं. ४.३; वाज.सं. ३१.१; श.ब्रा. १३.६.२.१२; तै.आ. ३.१२.१

सहस्रशृंग – सहस्र किरणों वाला सूर्य ।
'सहस्रशृंगो वृषभः
यः समुद्रादुदाचरत् '
ऋ. ७.५५.७; अ. ४.५.१
'सहस्रशृंगो वृषभस्तदोजाः '
ऋ. ५.१.८
'सहस्रशृंगो वृषभो जातवेदाः '
अ. १३.१.१२; का.सं. ३५.१८; आश्व.श्रौ.सू.

१.१२.३७; आप.श्रौ.सू. ९.३.१;

सहस्रशोकाः – (१) सहस्रों को सन्तापकारी; (२) सहस्रों दीप्तियों से युक्त
'सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः'
ऋ. १०.९६.४; अ. २०.३०.४
(३) सहस्रों दीप्तियों का स्वामी इन्द्र परमेश्वर

सहस्रस्तरीः – (१) सहस्रों के मूल्य के वस्त्र को धारण करने वाला (२) आच्छादन करने वाली या घेरने वाली सहस्रों प्रजाओं वाली सहस्रों प्रजाओं या सेनाओं को धारण करने वाला ।
'सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा'
ऋ. १०.६९.७

सहस्रसा – (१) अनेकों प्रकारों का ।
'सहस्रसा शतसा अस्य रंहिः'
ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.३१; नि. १०.२९
इस तार्क्ष्य की गति (अस्य रंहिः) अनेकों प्रकार की है (सहस्रासा शतसा) ।
(२) सहस्र + सन् + विट् = सहस्रसा ।
बहीः विद्याः सनोति
इति सहस्रसा (अनेक विद्याओं का ज्ञाता ।
'कृधी सहस्रसामृषिम्'
ऋ. १.१०.११
(३) सहस्रों को देने और विभाग करने वाला
'अग्ने सहस्रसा असि'
ऋ. १.१८८.३
(४) सहस्र सुखों का दाता
'सहस्रसामग्निवेशिं गृणीते'
ऋ. ५.३४.९

सहस्रसाः – सहस्र + षण् (दानार्थक) + क्विप् = सहस्रसा । अनुनासिक का आ ।
सहस्राणाम् उदकानाम्
दाता प्रदाता
(१) सहस्रों उदकों का दाता । दधिक्रा देव या मेघ का विशेषण ।
'सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा
पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि'
ऋ. ४.३८.१०
वह दधिक्रा देव या मेघ जो सहस्रों सैकड़ो उदकों का दाता है, जो गतिमान् एवं अरण कुशल है, हमारी इन स्तुतियों को मधुयुक्त या जल युक्त कर ।

सहस्रसातमः – सहस्र + सम् + विट् = सहस्रसा । सहस्रसा + तमप् = सहस्रसातमम ।
'अस्मे धेहि श्रवो बृहत्
द्युम्नं सहस्रसातमम्'
ऋ. १.९.८; अ. २०.७१.१४
(१) सहस्रों ऐश्वर्यों का दाता ।
'वाजी सहस्रसातमः'
ऋ. १.१७५.१; साम. २.७८२; मै.सं. ४.१२.५; १९१.१६

सहस्रसातमा – (१) सहस्रों प्रकार के पदार्थों को देने वाली
'इह सहस्र सातमाभव'
अ. ३.२८.४

सहस्रसावः – सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने का स्थान –संग्राम ।
'सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः'
ऋ. ३.५३.७; ७.१०३.१०

सहस्रस्थूण – (१) सहस्रों खम्भों वाला घर, सभा भवन, आश्रय स्थान, (२) सर्व प्रबल स्तम्भ से युक्त परमेश्वर
'सहस्रस्थूण आसाते'
ऋ. २.४१.५; साम. २.२६१
'सहस्रस्थूणं बिभृथः सहद्वौ'
ऋ. ५.६२.६

सहस्रसा ऋषिः – सहस्रों अपरिमित मंत्रों का ज्ञान देने वाला मन्त्र द्रष्टा ।
'पयः सहस्रसामृषिम्'
ऋ. ९.५४.१; साम. २.१०५; वाज.सं. ३.१६; तै.सं. १.५.५.१; मै.सं. १.५.१:६६.१; का.सं. ६.९; श.ब्रा. २.३.४.१५

सहस्रस्तुका – सहस्रों संघों को अपने भीतर मिलाए हुई राजसभा
'सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी'
अ. ७.४६.३

सहस्रसूक्त – पुरुष सूक्त जिस में पुरुष रूप परमेश्वर का वर्णन किया गया है ।
'पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा'
अ. १९.२२.१९

सहस्रहः – सहस्रों पुरुषों का नाश करने वाला
'अयं होमः सहस्रहः'
अ. ८.८.१७

सहस्रहस्त – हजारों हाथों या श्रमीजनों का स्वामी
'सहस्रहस्त सं किर'
अ. ३.२४.५

सहस्व – सह (पराजित करना) के लोट् म.पु. ए.व. का रूप। अर्थ है पराजित कर।
'अग्निरिव त्विषितः सहस्व'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२; नि. १.१७
हे मन्यु, अग्नि के समान ज्वलित हो शत्रुओं को पराजित कर।

सहस्वती – सब रोगों को आक्रमण को दबाने वाली ओषधि।
'त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीम्'
अ. ८.२.६

सहसा – बलवान्
'प्र वो देवं चित् सहसानमग्निम्'
ऋ. ७.७.१

सहसा जायमानः – बल से अर्थात् मन्थन द्वारा उत्पादित अग्नि, संघर्षण शक्ति से उत्पन्न।
'स प्रत्नथा सहसा जायमानः'
ऋ. १.९६.१; मै.सं. ४.१०.६: १५७.१२; ऐ.ब्रा. ५.१५.८; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२४;
वह अग्नि पुरातन के सदृश (प्रत्न था) बल से, संघर्षण से या मन्थन से उत्पन्न किया है।

सहसानः – (१) शत्रुओं पर विजय करता हुआ, (२) शत्रु-पराजय कारी पुरुष।
'मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ'
ऋ. १.१८९.८

सहसामा – सह + सामन्। सामवेद के साथ।
'विदुर्देवा सहसामानर्कम्'
ऋ. १०.११४.१

सहसावत् – अति बलवान्

सहसावान् – (१) बलवान् शक्तिशाली
'इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नः'
ऋ. ३.१.२२.

पुनः –
'माते अस्यां सहसावन् परिष्टौ'
ऋ. ७.१९.७; अ. २०.३७.७; तै.सं. १.६.१२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८३.२; आश्व. श्रौ.सू. २.१०.४

सहस्राक्षः – (१) सहस्र आंखों वाला
'सहस्राक्षो विचर्षणिः
अग्नी रक्षांसि सेधति'
ऋ. १.७९.१२
सहस्र आंखों वाला अग्नि या परमेश्वर राक्षसों या विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को दूर करे।
(२) रुद्र, (३) सहस्रों पर दृष्टि रखने वाला
'सहस्राक्षाय मीढुषे'
वाज.सं. १६.८; वाज.सं. (का.) १७.११.८; तै.सं. ४.५.१.३; मै.सं. २.९.२:१२१.१४; का.सं. १७.११;
'सहस्राक्षः सहस्रपात्'
ऋ. १०.९०.१; आ.सं. ४.३; अ. १९.६.१; वाज.सं. ३१.१; श.ब्रा. १३.६.२.१२; तै.आ. ३.१२.१.
(४) असंख्य आंखों वाला परमेश्वर, (५) हजारों का क्षय करने वाला काल
'सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः'
अ. १९.५३.१
(६) हजारों धुराओं से युक्त काल, (७) कालात्मक शक्ति में दिन रात पक्ष है और सारा वर्ष आदि अक्ष है।

सहस्राक्षरा – सहस्र + अक्षर + टाप् = सहस्राक्षरा
(१) सहस्र जलों वाली। माध्यमिका वाक् गौरी का विशेषण।
(२) बहूदका
'सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.४१; तै.ब्रा. २.४.६.११; तै.आ. १.९.४; नि. ११.४०.
उत्कृष्ट अन्तरिक्ष में बहूदका होकर....
(३) अपरिमित व्याप्तियुक्ता; बहु व्यापनशीला उदकवती,
सहस्र शब्द अपरिमित का बोधक है। अक्षर का अर्थ वेद में उदक है।
सहस्राणि उदकानि स्थाः सा सहस्राक्षरा (जिसमें अपरिमित उदक हो वह)।
(४) सहस्राक्षरा
– सहस्र या बलमयी, शक्तिमयी अक्षरा अर्थात् अविनाशिनी ब्रह्मशक्ति सहस्रों पृथक् रूपों में या विश्व के रूपों में प्रादुर्भूत होने वाली ब्रह्मशक्ति,
(५) नाना रूप होकर परम व्योम हृदय देश या मूलाधार में सहस्राक्षरा होकर विराजने वाली वाणी।
'सहस्राक्षरा भुवनस्य पंक्तिः'
अ. ९.१०.२१

'एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।'
गी.७.६

सहस्रामघ – सहस्रों धनों से सम्पन्न
'सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम्'
ऋ. ७.८८.१

सहस्रार्घः – (१) सहस्रों पुरुषों और राजाओं से सहस्रों प्रकार से सम्मान प्राप्त करने वाला (२) दर्भ
'सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वान्'
अ. १९.३३.१
(३) सहस्रगुणा मूल्य
'सहस्रार्घमिडो अत्र भागय'
ऋ. १०.१७.९; अ. १८.१.४३; ४.४७

सहस्राह्ण्य – हजारों दिन
'सहस्राह्ण्यं वितवावरस्य पक्षौ'
अ. १०.८.१८; १३.२.३८; ३.१४

सहस्राह्न्यम् – हजारों दिनों या युगों से

सहस्रिणी ऊती – सहस्रों पुरुषों से बनी या सहस्रों ऐश्वर्यों को देने वाली सेना रूपी रक्षा ।
'आ घा गमद् यदि श्रवत्
सहस्रिणीभिरूतिभिः'
ऋ. १.३०.८
यदि वह सुन ले तो सहस्रों पुरुषों से बनी या सहस्रों ऐश्वर्यों को देने वाली सेना रूपी रक्षा के साथ आ जांय ।

सहस्रियासः – ब.व.। मरुतों का विशेषण । अर्थ– (१) संख्या में सहस्रों, (२) बलवान् आत्मा वाले मरुत् या सैनिक
'सहस्रियासो अपां नोर्मयः'
ऋ. १.१६८.२

सहसी – बलवान्
'भद्रं ते अग्ने सहसिन्नीकम्'
ऋ. ४.१.१.१; तै.सं. ४.३.१३.१

सहस्रवान् – (१) सहनशील, बलवान्
'नूनं विदन् मापरं सहस्वः'
ऋ. १.१८९.४
(४) शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'अहमस्मि सहस्वान्'
अ. १९.३२.५

सहस्रिणी – (१) सहस्रों सुखों को देने वाली
'दधत् सहस्रिणीरिषः'
ऋ. १.१८८.२
(२) सहस्रों वेद मन्त्रों से युक्त वेदवाणी
'उपाक्षरा सहस्रिणी'
ऋ. ७.१५.९
(३) सैकड़ो हस्तों से भी, (४) हजारों वीर पुरुषों से बनी सेना ।
'सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये'
ऋ. १.१३५.३
(५) सहस्रों पुरुषों या ऐश्वर्यों को लाने वाली ।
'सहस्रिणीभिरूतिभिः'
ऋ. १.३०.८; १०.१३४.४; अ. २०.२६.२; साम. २.९५.

सहस्रिन् – सहस्रों सुखों को देने वाला पदार्थ या दानी पुरुष
'दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणः'
ऋ. २.२.७; तै.सं. २.२.१२.६; मै.सं. ४.१२.२: १८०.७

सहसूक्तवाकः – (१) उत्तम वेद के सूक्तों का अध्ययन करने वाले विद्वानों से युक्त यज्ञ
'एष ते यज्ञो यज्ञयते सहसूक्तवाकः सुवीरः'
अ. ७.९७.६; वाज.सं. ८.२१; तै.सं. १.४.४४.३; ६.६.२.२; मै.सं. १.३.३८: ४४.१६; का.सं. ४.१२; श.ब्रा. ४.४.४.१४.

सहस्कृत् – सब बलों का उत्पादक
'इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतम्'
ऋ. ८.९९.८

सहस्कृत – (१) बलवान् बनाया गया
'अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः'
ऋ. ८.३.४; अ. २०.१०४.२; साम. २.९५८; वाज.सं. ३३.८३
(२) बल और साधना से साक्षात् करने योग्य अग्नि
'प्रयस्वन्तः सहस्कृत'
ऋ. ६.१६.३७; साम. २.१०५५; मै.सं. ४.११.२: १६३.६; का.सं. ४०.१४

सहस्तोमः – (१) अपने दल के साथ रहने वाला, (२) एक साथ वेद स्तुतियों का प्रवचन करने वाला
'सहस्तोमाः सहच्छन्दस आवृतः'
ऋ. १०.१३०.७; वाज.सं. ३४.४९

सहयस् – सह + असुन् = सहस् । सहस् + मतुप् + ईयस् = सह्यस् (मतुप् का लोप) । अर्थ– अति बलवान्

सहावन् – सहस् + वनिप् = सहावन् (स् का वेद में आ) । अर्थ है –(१) बलवान्
(२) सोढा
'सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा'
ऋ. ३.४९.३
'एकः कृष्टीनामभवत् सहावा'
ऋ. ६.१८.२; का.सं. ८.१७

सहावान् – (१) शत्रुपराजयकारी बलवाला
'सहावाँ इन्द्र सानसिः'
ऋ. १.१७५.२; साम. २.७८३
(२) सुखदुःख शीत उष्णादि को भली भांति सहने वाला
'शूरग्राम सर्ववीरः सहावान्'
ऋ. ९.९०.३; साम. २.७५९
(३) शत्रु विजय कारी बल से सम्पन्न
'सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः'
ऋ. १०.१०३.५; अ. ८.५.२; १९.१३.५; साम. २.१२०.३; वाज.सं. १७.३७; तै.सं. ४.६.४.२; मै.सं. २.१०.४:१३६.२: का.सं. १८.५

सहासः – ब.व.। (१) मरुतों का विशेषण, (२) शत्रुविजयी तपस्वी वीर पुरुष
'अनु विश्वे मरुतो ये सहासः'
ऋ. ७.३४.२४

सहिष्ठः – बहुत बलशाली
'सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य'
ऋ. ६.१८.४

सहीयस् – (१) अति बलवान् (२) सहनशील
'त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नृन्'
ऋ. १.१७१.६

सहीयसी – अति सहनशील उषा
'सा व्युच्छ सहीयसी'
ऋ. ५.७९.२

सहीवान् – (१) शत्रुओं को अभिभूत करने वाला, (२) तेजस्वी ।

सहुरिः – पु. । (१) सहन शक्ति देने वाला (२) शत्रुओं का सहनशील मन्यु
'प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि'
ऋ. १०.८४.५; अ. ४.३१.५
हे सहनशक्ति देने वाले या शत्रुओं के सहनशील मन्यु, हम तेरे प्रिय नाम की दुहाई देते हैं ।

सह्यु – सहनशील
'न प्रतिष्ठितः पुरुमायस्य सह्योः'
ऋ. ६.१८.१२

सहूती – समान रूप से हवि ग्रहण करने वाले अग्नि और वायु (अग्नीषोम)

सहोजा – सहस् + जा । बल से प्रसिद्ध ।
'नू चित् सहोजा अमृतो नितुन्दते'
ऋ. १.५८.१; कौ.ब्रा. २२.२; आश्व.श्रौ.सू. ४.१३.७;
कभी न मरने वाला जीव जीवन के बाधक कारणों को पराजित करने वाले सहन शील बल को उत्पन्न करता है ।

सहोजित् – (१) सबके बलों का विजेता
'अभिवीरो अभिषत्वा सहोजित्'
ऋ. १०.१०३.५; अ. १९.१३.५; साम. २.१२०३; वाज.सं. १७.३७; तै .सं. ४.६.४.२; मै.सं. २.१०.४: १३६.३; का.सं. १८.५.
(२) अपने बल से शत्रुओं को जीतने वाला
'सहमानं सहोजितं स्वर्जितम्'
अ. १७.१.१.१–५

सहोत्र – सम्यक् प्रकार से प्रदत्त परमेश्वरीय बीज
'संहोत्रं स्म पुरा नारी'
ऋ. १०.८६.१०

सहोदाः – (१) शत्रु पराजय कारी बल देने वाला
'उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः'
ऋ. १.१७१.५
(२) सब को बल देने वाला, (३) अपने बल से सब की रक्षा करने वाला
(३) दुर्बलों को बल देने वाला
'सत्रासाहं वरेण्यं सहोदाम्'
ऋ. ३.३४.८; अ. २०.११.८

सहोभरिः – (१) यः बलं विभर्ति –दया.
(२) बल सैन्य द्वारा राष्ट्र का पालक
'अरिष्टंगातुः स होता सहोभरिः'
ऋ. ५.४४.३

सहोवृध् – (१) बल को बढ़ाने वाला (२) बल से बढ़ने वाला (३) अग्नि का विशेषण
'जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधम्'
ऋ. १.३६.२

(४) जो बल बढ़ाता या बल से बढ़ता है-दया. ।(५) शत्रुओं को परास्त करने वाले बल को बढ़ाने वाला
'हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् '
ऋ. ३.१०.९

स्वहोता – (१) स्वयं प्राण अपांन रूप, अश्विद्वय को आदान प्रदान करने वाला –आत्मा ।
(२) अध्वर्यु
'तमो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता'
अ. ७.७३.५

संस्थ – आश्रय
'संस्थे यदग्न ईयसे रथीणाम् '
ऋ. ५.३.८

संहनुः – (१) जबड़ो को पकड़ने वाला रोग, (२) मिले हुए होठों वाला जम्भ
'मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदत्'
अ. ८.१.१६
(३) खूब मजबूत
'तेन संहनु कृण्मसि'
अ. ५.२८.१३; १९.३७.४

संहानः – बिस्तर त्यागता हुआ
'संहानाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३:१६१.२

संहित – (१) सर्वत्र समान भाव से व्यापक, (२) सब के लिए हितकारी
'यच्च्यावयथ विथुरेव संहितम् '
ऋ. १.१६८.६
(३) मिले रंग की पोशाक पहनने वाला
'ऐन्द्राग्नः संहितः'
वाज.सं. २९.५८; तै.सं. ५.५.२२.१; का.सं. (अश्व.). ८.१
(४) समस्त पृथिवी जल आदि भूतों में अपनी किरणों से व्याप्त होकर उन्हें परस्पर मिलाने वाला, दिनरात को सन्ध्या द्वारा मिलाने वाला सूर्य, (५) समस्त विद्वान् पुरुषों शासकों और राज्यांगों को परस्पर मिलाने वाला राजा
'संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः'
वाज.सं. १८.३९; तै.सं. ३.४.७.१; मै.सं. २.१२.२: १४५.३; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.१२.

संहिता – (१) सम् + धा + क्त + टाप् = संहिता । जो अत्यन्त सन्निकट हो वह संहिता है (परः सन्निकर्षः संहिता) ।
(२) ऋग्वेद प्रातिशाख्य में 'पद प्रकृतिः संहिता' कहा गया है और पदों का सन्धि द्वारा एक हो जाना संहिता है, और उन की विकृति का नाम पद है ।
(३) कुछ विद्वान् संहिता उसे कहते हैं जिसकी प्रकृति पद है अर्थात् जब दो पदों के मिलने से विकृति संहिता का रूप धारण करती है ।
वेद की प्रति शाखा के पद ही प्रकृति हैं और उनकी सन्धि संहिता है (पद प्रकृतीनि सर्व चरणानां पार्षदानि) ।
(४) एक ही स्थान पर रहने वाली गौ, गौएं एकत्र हा करती हैं अतः वह संहिता है, (१) परमेश्वर से भलीप्रकार संगत हो जाने वाली चितिशक्ति ।
'संहिता विश्वनाम्नीः'
अ. ७.७५.२

संहितान्त – जिसके शिरोभाग खूब अच्छी प्रकार मिलाए गए हैं ।
'चतुष्टयं युज्यते संहितान्तम् '
अ. १०.२.३

सहीयसी – बल शालिनी ओषधि
'अपक्रीताः सहीयसी'
अ. ८.७.११

संहोत्राः – एक साथ मिलकर एक दूसरे को ग्रहण करने वाला सर्गमय यज्ञ ।
'संहोत्रं स्म पुरा नारी'
ऋ. १०.८६.१०; अ. २०.१२६.१०

स्था – (१) स्थावर ।
'यत् स्था जगच्च रेजते'
ऋ. १.८०.१४
जब स्थावर और जंगम सभी कांपते हैं ।
(२) स्था + विच् + स्था ।
'स पतत्रीत्वरं स्था जगद् यत्
श्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः'
ऋ. १०.८८.४; नि. ५.३
जिस जात देश अग्नि के पक्षी सरीसृप आदि एवं स्थावर जगत् को शीघ्र ही बना डाला ।

स्या – वह । त्यद् शब्द के स्त्रीलिंग प्रथम एकवचन में ।
'प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योः'

ऋ. १.१०४.५.
'वह स्तुति' -सा.
वह न्याय -प्राप्त राजा- दयाः ।
साकम् - (अ.) । एक ही साथ ।
'यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः
श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः'
ऋ. १०.९४.१
जब दृढ पर्वत और शीघ्र करने वाले ग्रावा एक साथ इन्द्र के लिए श्रवणीय घोष करते हैं तो हे ऋत्विजो, आप भी स्तुतिरूप वचन बोलें ।
साकं सत्रा समं सह' - अमरकोष
'सहस्रं सवां अयुतं च साकम्'
ऋ. ४.२६.७; नि. ११.२
सोम और दक्षिणा युक्त सहस्रों यज्ञ करते हैं ।
साकंजाः - (१) एक साथ उत्पन्न ऋतुएं ।
'साकंजानां सप्तथमाहुरेकजम्'
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९.
एक साथ उत्पन्न वसन्तादि ऋतुओं में से सातवें को (सप्तहथम्) एक अधिक मास से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं ।
(२) एक साथ उत्पन्न हुए प्राण ।
साकंजानां सप्तथः - (१) एक साथ उत्पन्न हुए प्राणों में सातवां एकज प्राण (२) मुखगत प्राण एकज है । कान, आंख, और नाक के प्राण जोड़-जोड़े हैं ।
(३) एक साथ उत्पन्न ऋतुओं में छः जोड़े हैं और सातवां मलमास होने से एकज है ।
साकं युजा - द्वि.व. । सदा साथ मिलकर रहने वाले अश्विद्वय, स्त्रीपुरुष ।
'साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा'
ऋ. १०.१०६.३
साक्षति - (१) आप्नोति (प्राप्त करता है) । 'साक्ष' नैरुक्त धातु है ।(२) अभिभवति (अभिभूत करता है) ऐसा अर्थ भी किया जाता है ।
'प्रतिमानानि भूरि प्रसाक्षते'
प्रचुर असुर बलों से अभिभूत करता या अनेकों असुरों के स्थानों को अधिकृत करता है ।
स्राक्त्यमणि - स्रक्ति या तिलक के वृक्ष की मणि । (ताबीज) । -सा., ग्रिफिथ ।
'ग्रक्त्योऽषि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि'
अ. २.११.२
(२) प्रत्यभि-चरण अर्थात् शत्रु के प्रति धावा करने वाला पुरुष ।
प्रति तम् अभि चर योऽस्मान्
द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
(३) सूरि । विद्वान् शरीर रक्षक (४) वीर्यवान्, सपत्नहा, महस्वाम्, वाजी, उग्र आदि ।
'ग्राक्त्येन मणिना
ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतनाः
वि मृधो हन्मि रक्षसः'
अ. ८.५.८
(५) वीरों को प्राप्त होने योग्य मणि -पदक ।
(६) समस्त सेना के बीच तिलक योग्य सेनापति-ज.दे.श. (७) माला आदि से सुशोभित करने योग्य ।
'अयं स्राक्त्यो मणिः
प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।'
अ. ८.५.४
स्वाङ्कृत - (१) अपने सामर्थ्य से बनाया गया-राजा (२) सारभूत ।
'स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य
इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः'
वाज.सं. ७.३,६; मै.सं. १.३.४:३१.८; श.ब्रा. ४.१.१.२२.
साची - (१) सुन्दर, (२) सदा सहाय योग्य, (३) सर्वाश्रय योग्य (४) सखा, (५) संघ शक्ति
'आ साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः'
ऋ. १.१४०.३
सुन्दर सदा सहाय योग्य (साच्यम्) रक्षण करने योग्य बालक को (कुपयम्) पिता को बढ़ाने वाले शिशु को लक्ष्य कर ।
अथवा,
सर्वाश्रय योग्य (साच्यम्) सबके बालक (कुपयम्) मेघ को बढ़ाने वाले सूर्य को (पितुः वर्धनम्) लक्ष्य कर ।
अथवा,
सखा या संघ शक्ति के
आश्रय (साच्यम्) राष्ट्र रक्षक को लक्ष्य कर ।
साढ - पराजित
'वाचा साढः परस्तराम्'

अ. ५.३०.९

साठा – शत्रु का पराजय करने वाला
'मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साढा'
ऋ. ७.५६.२३

स्थाणु – (१) परब्रह्म
'तां स्थाणावध्या सृजामि'
अ. १४.२४.८
(२) वृक्ष
'स्थाणुं पथिष्टामप
दुर्मतिं हतम् ।'
ऋ. १०.४०.१३; अ. १४.२.६; आप.मं.पा. १.६.१२.
(३) स्था + णु । जो सदा स्थिर रहे ।
(४) खूंटा । (५) छाया रहित स्थान–Whitney
'शुष्के स्थाणावपायति'
अ. १९.४९.१०

सात – (१) सन् + क्त = सात । दिया हुआ दान ।
'इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनः'
ऋ. २.२४.१०
(२) भोग किया हुआ सुखादि ।
'सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम्'
ऋ. १०.१०२.११

सातहा – (१) सात अर्थात् लाभ–लेनदेन में प्रतिबन्धक, (२) प्राप्त धन का नाशक ।
'अग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध'
अ. ३.१५.५
(३) प्रजापीड़क, (४) क्रीड़ा जुआ आदि में धन नष्ट करने वाला ।

स्वातत – सु + आङ् + तन् + क्त = स्वातत । सुन्दर रीति से खींचा हुआ या ताना हुआ ।
'इन्द्रो बुन्दं स्वाततम्'
ऋ. ८.७७.६; नि. ६.३४
इन्द्र ने भली भांति खींचे या ताने वज्र को जोड़ा ।

सात्मत्व – सम्पूर्ण सफलता प्राप्त करना ।
'यज्ञस्य सात्मत्वाय'
अ. ९.६.३८

साता – (१) देने वाला
'तोकस्य साता तनूनाम्'
ऋ. ९.६६.१८
(२) दानशील
'न यस्य सातुर्जनितोरवारि'
ऋ. ४.६.७

सात्रासाह – सदाविजयी
'सात्रासाहस्याहं मन्योः'
अ. ५.१३.६

स्थात् – स्थावर पदार्थ
'गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम्'
ऋ. १.७०.३
जो परमेश्वर या अग्नि स्थावर अचेतन पदार्थों के भीतर व्यापक और उनको वश में करने वाला है और जो विचरने वाले, जंगम पदार्थों के बीच व्यापक और उन को भी वश करने वाला है ।

स्थात्र – (१) स्थित कारण, (२) सूर्य का धारण सामर्थ्य (३) स्थाता आत्मा का धारण सामर्थ्य ।

स्थाता – (१) स्थिर रहने वाला, (२) युद्ध में स्थिर रहने वाला
'प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र'
ऋ. १.३३.५
हे अश्वहस्ती एवं वीर पुरुषों की सेनाओं के स्वामी (हरिवः), हे शत्रुओं के कंपाने वाले (उग्र), हे युद्ध भूमि में स्थिर रहने वाले, (स्थातः) जैसे आकाश में वायु मेघों को उड़ा देता है (दिवः प्रायत्) ।

स्नात्वा – (१) स्ना + त्वन् (अर्हअर्थ में) = स्नात्वा । अर्थ है – प्रस्नेय अर्थात् प्रकर्ष के साथ स्नान करने योग्य ।
(२) स्थावर
'स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत्'
ऋ. १.६८.१
जिस प्रकार सूर्य स्थावर एवं जंगम जगत् को प्रकाशित या व्यक्त करता है ।
(३) स्थिर नित्य आत्मा (४) सूर्य
'स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः'
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९

स्थातां गर्भः – स्थावर या अचेतन पदार्थों में व्यापक और उनको वश में करने वाला अग्नि या परमेश्वर ।

स्थातारा – द्वि.व. । 'स्थातृ' शब्द का प्र. द्वि.व. । एक स्थान पर रहने वाले स्त्री पुरुष–गृहस्थ ।

'वृष्णः स्थानारा मनसो जवीयान्'
ऋ. १.१८१.३

सातिः – (१) सेवन योग्य सम्पन्न
'उत सातीरहर्विदा'
ऋ. ८.५.९
(२) सुख, (३) लाभ, (४) प्राप्ति ।
'अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवः'
ऋ. १.१३८.४; नि. ४.२५
इसकी प्राप्ति के लिए सम्यक् प्रकार से हम लोगों के पास आ ।
अथवा,
इस सुख लाभ के लिए सम्यक् प्रकार से हम लोगों के पास आ या समीप वर्तमान रहिए ।

स्फाति – (१) प्रचुर वृद्धि
'तेषां नः स्फातिमा यज'
ऋ. १.१८८.९
'पशूनां सर्वेषां स्फातिम्'
अ. १९.३१.१
(२) समृद्धि, प्रतिष्ठा plenty
'इह स्फातिं समावह
अ. ३.२४.३,५
(३) शरीर की वृद्धि
'यश्च स्फातिं जिहीर्षति'
अ. २.२५.३

स्फातिमत्तमा – सबसे अधिक अन्न को समृद्ध करने वाली
'तासां या स्फातिमत्तमा'
अ. ३.२४.६

स्वाति – एक नक्षत्र
'हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु'
अ. १९.७.३

साद – (१) अवसाद, (२) पथभ्रष्ट (३) आलस्य में पैर रख देना
'यत् ते सादे महसा शूकृतस्य'
ऋ. १.१६२.१७; वाज.सं. २५.४०; तै.सं. ४.६.९.२; का.सं. (अश्व.) ६.५.
जब शीघ्र कारी या अधिक वश बिना विचारे शीघ्रता से कार्य कर डालने वाले (शूकृतस्य) तेरे अवसाद या पथभ्रष्ट होने या आलस्य में पड़ जाने पर (सादे).....
(४) कार्य-भ्रष्ट होना

सादन – (१) आसन, (२) पद ।
'द्युक्षं मित्रस्य सादनम्'
ऋ. १.१३६.२
(३) विराजने के योग्य स्थान
'आ नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्'
ऋ. २.२३.१; तै.सं. २.३.१४.३; का.सं. १०.१३
(४) आश्रय
'ताभ्यां यमस्य सादनम्'
अ. १८.२.५६
(५) घर
'तत्र यमः सादना ते कृणोतु'
अ. १८.३.५२
'पृथी यद् वां वैन्यः सादनेषु'
ऋ. ८.९.१०; अ. २०.१४०.५

सादनस्पृक् – (१) गृह आदि प्रदान करने वाला, (२) घर में आया हुआ
'मा नो निर्भाग् वसुनः सादनस्पृशः'
ऋ. ९.७२.८

सादन्य – (१) सदन + यत् = सादन्य । सदनं गृहम् अर्हति इति (घर बनाने योग्य सामग्री) । –दया.
(२) गृह बसा कर रहने वाला
'सादन्यं विदथ्यं सभेयम्
पितृश्रवणं यो ददाशस्मै'
ऋ. १.९१.२०; वाज.सं. ३४.२१; मै.सं. ४.१४.१: २१४.३;तै.ब्रा. २.८.३.१.
ऐश्वर्यवान् राजा (सोम) घर बनाने योग्य सामग्री या गृह बसा कर रहने वाला उत्तम गृहस्थ, ज्ञान, सत्संग, यज्ञ और संग्राम में कुशल तथा सभा में उत्तम वक्ता (सभेयम्) मा बाप के समान प्रजा की प्रार्थनाओं को सुनने वाला अधिकारी प्रदा करता है ।
(३) उत्तम गृहों, राज सभाओं या उत्तम पदों पर विराजने योग्य

स्वादनम् – अन्नों को स्वादु बनाने वाला–अग्नि ।
'प्र स्वादनं पितूनाम्'
ऋ. ५.७.६

स्वाद्मन् (स्वादमा) – (१) सुखपूर्वक भोजन
'स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि'
ऋ. १०.२९.६; अ. २.७६.६
(२) मधुरता, (३) उत्तम योजन
'स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्'

ऋ. २.२१.६; पा.गृ.सू. १.१८.६
(४) रसों का स्वाद लेने वाला
'प्रः स्वाद्मानो रसानाम् '
ऋ. १.१८७.५; का.सं. ४०.८

सादी – (१) घुड़सवार सैनिक
'असादा ये च सादिनः '
अ. ११.१०.२४

स्वादु – (१) आनन्द देने वाला (२) स्वयं अपने आत्मा द्वारा स्वीकारने और अनुभव करने योग्य
'स्वादो पितो मधो पितो'
ऋ. १.१८७.२; का.सं. ४०.८
(३) स्वादिष्ट ।
'स्वादोरित्था विषूवतः '
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; साम. १.४०९; २.३५५; मै.सं. ४.१४.१४; २३८.५; ऐ.ब्रा. ५.७.५; पंच.ब्रा. १३.४.१६; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.४; १२.१५; शां.श्रौ.सू. १८.१७.५; वै.सू. ३९.१९; ४१.६
(४) देहादि संघात से प्राप्तव्य सुखोपभोग (५) पुत्र
पुत्रो ह स्वादुः–श.ब्रा.
(६) पति या पत्नी
मिथुनं वै स्वादु–श.ब्रा.
(७) प्रजा
प्रजा स्वादु–श.ब्रा.
'स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा सम्'
ऋ. १०.१२०.३; अ. ५.२.३; २०.१०७.६; साम. २.८३५; तै.सं. ३.५.१०.१; सै.आ. १.३.४.१२; ५.१.६.२; मा.श्रौ.सू. ७.२.७.

स्वादुक्षद्मा – (१) स्वादु क्षद्म वाला (२) स्वादयुक्त पुष्टि कारक जल अन्न खाने वाला
'स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृत्'
ऋ. १.३१.१५
जो अपने घर या देह स्वादयुक्त अन्न जल खाता अपने को सुखी करता हुआ (स्योनकृत्).....।

स्वादुषंसद् – उत्तम सुखजनक अन्न ऐश्वेर्यादि भोग करने के लिए उत्तम पदों पर विराजने वाला ।
'स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः '
ऋ. ६.७५.९; वाज.सं. २९.४६; तै.सं. ४.६.६.३; मै.सं. ३.१६.३: १८६.१३; का.सं. (अश्व.) ६.१; आप.श्रौ.सू. २०.१६.११.

स्वादुषंसदः – ब.व.। (१) सुख से एक स्थान से खड़े (२) रसवान् उत्तम पदार्थों का सब मिलकर आनन्द प्राप्त करने वाले ।

स्वादुसंमुदः – (१) सुखकारी मिष्टान्न आदि पदार्थों में एक साथ आनन्द लेने वाले ।
'सखायः स्वादु संमुदः '
अ. ७.६०.४; आप.श्रौ.सू. ६.२७.३; हि.गृ.सू. १.२९.१

साध – (१) साधन, (२) साधन काल
'ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे'
ऋ. १०.३५.९

साधन् – (१) साधता हुआ
'राजा ससाद विदथानि साधन् '
ऋ. ३.१.१८
(२) साधते या मानते हैं–सा. (३) सिद्ध करते हुए–दया.
'आपश्च मित्रं धिषणा च साधन् '
ऋ. १.९६.१; मै.सं. ४.१०.६:१५७.१३
विद्युत रूप में वर्तमान अग्नि को मेघ में स्थित जल (आपः) और माध्यमिका वाक् (धिषणा) मित्र रूप से साधते या मानते हैं । – सा. ।
पदार्थ विद्या द्वारा (धिषणा) जल और वायु को (आपः च मित्रं च) सिद्ध करते हुए (साधन्)....दया. ।

साधन – साधन, साधना

साध्य – (१) प्रजा के पांच भेद–वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और साध्य (२) योग्य साधन शील पुरुषा
'साध्येभ्यः कुलङ्गान् '
वाज.सं. २४.२७; मै.सं. ३.१४.९: १७४.४
(३) साधना करने वाला (४) मुक्तिपथ का अभ्यासी साधक
'मयि देवा उभये साध्याश्च '
अ. ७.७९.२
(५) बनाने योग्य चर्म (६) वश करने योग्य उद्दण्ड पुरुष
'साध्येभ्यश्चर्मम्नम् '
वाज.सं. ३०.१५; वाज.सं. (का.) ३४.१५; मै.सं. ३.१४.९:१७४.४

साध्याः – (१) देव बनने वाले, (२) विश्व की रचना करने वाले प्राण रूप ऋषि साध्य कहे गए हैं, (३) द्युलोकवासी सप्तर्षि, (४) विश्वे

देव, (५) प्राण, (६) रश्मियां (७) विराट के साधक उपासक
'यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः'
ऋ. १.१६४.५०; १०.९०.१६; अ. ७.५.१; वाज.सं. ३१.१६; तै.सं. ३.५.११.५;मै.सं. ४.१०.३:१४९.१; का.सं. १५.१२;ऐ.ब्रा. १.१६. ३७; श.ब्रा. १.२.२.३; तै.आ. ३.१२.७; नि. १२.४१.
जिस विराट् रूपी नाक में (यत्र) पुरातन विराट् के उपास एवं साधक देव रहते हैं या विश्व की रचना करने वाले प्राण, द्युलोक वासी सप्तर्षि विश्वेदेव या रश्मियाँ रहती हैं ।
(८) साध् + ण्यत् = साध्य । 'साध्याः देवाः साधनात् ' (साध्य का अर्थ है देव) निरुक्तकार देव शब्द को रश्मि का पर्याय मानते हैं । रश्मियों में भी दीप्ति होती है ।
'विश्वेदेवाः ' रश्मियाँ ही हैं । रश्मियां रस का आहरण आदि व्यापार करती हैं (रसाहरणादिकं व्यापारं साध्नुवन्ति) ।
साध्यन्त आराध्यन्त इति देवाः (जिनकी साधना और आराधना की जाती है वे साध्य अर्थात् देव हैं) ।
(१०) ते हि सर्वमिदं साधयन्ति यत्
'अन्येव असाधितम् तन् ते
साधयन्ति इति साध्या उच्यन्ते'
(अर्थात् जो औरों के असाध्य कर्म हैं उन्हें भी जो कर पाते हैं, वे सांध्य अर्थात् देव हैं)-
(११) विश्व की सृष्टि करने वाले प्राण ही साध्य हैं । (प्राणाः वै सप्त ऋषयः साध्याः विश्वसृजः)
(१२) विश्वसृज् नामक द्वादश ऋषि ही साध्य हैं ऐसा ऐतिहासिक पक्ष वालों का मत है ।
'आदित्याः द्वादश प्रोक्ताः
विश्वे देवा दश स्मृताः ।
वसव श्चाष्ट संख्याताः
षट्त्रिंशत् सविता मताः
आभास्वराः चतुःयष्टिः
वालाः पञ्चासदूनकाः
महाराजिक नामानो
द्वेशते विंशतिस्तथा
साध्या द्वादश विख्याता
रुद्रा एकादशा स्मृताः '
कोश में इन साध्यों की गणना सङ्घचारी गणदेवता शब्द से की गई है ।
'यज्ञेन यज्ञमयजन् देवाः '
ऋ. १.१६४.५०; १०.९०.१६; अ. ७.५.१; वाज.सं. ३१.१६; तै.सं. ३.५. ११.५; मै.सं. ४.१०.३; १४८.१६; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. १.१६.३५; कौ.ब्रा. ८.२; श.ब्रा. १०.२.२.३, तै.आ. ३.१२.७; आश्व.श्रौ.सू. २.१६.७; नि. १२.४१.
आधुनिक अर्थ - करणीय, व्यवहार्य, सिद्ध करने योग्य, अनुमेय , पराजेय, आराम होने योग्य नन्द्य, एक प्रकार के द्युस्थानीय देवगण । देवता । Predicate of a preposition, Major term of a Syllogism..

साध्याः ऋषयः - योगाभ्यासी ऋषि गण
'साध्या ऋषयश्च ये '
ऋ. १०.९०.७; अ. १०.१०.३०; ३१; १९.६.११, वाज.सं. ३१.९; तै.आ. ३.१२.४

साध्वर्या - (१) उत्तम स्वामिनी होने योग्य वाली, (२) साधुरीति से ज्ञान करने योग्य, (३) उत्तम स्वामी वाली वेदवाणी
'साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा '
ऋ. १०.६८.३; अ. २०.१६.३

साधारण - (१) बहुतों में भी साधारण, (२) समान रूप से सबके प्रति निष्पक्ष होकर सबका भरण पोषण करने वाला इन्द्र, परमेश्वर
'इन्द्र साधारणस्त्वम् '
ऋ. ४.३२.१३; ८.६५.७

साधिपतिक - (१) अधिपति आत्मा या मन के सहित शरीर में विद्यमान प्राण (२) राष्ट्र में अपने अधिपति के सहित
'स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः '
वाज.सं. ३९.१; श.ब्रा. १४.३.२.२;

साधिष्ठ - (१) अत्यन्त साधा हुआ, उत्तम, (२) अधिष्ठान के सहित (३) साधु + इष्ट । सबसे उत्तम कार्य -साधक ।
'वि साधिष्ठेभिः पथिभिः रजो मम '
ऋ. १.५८.१
एक ही आश्रय आकाश में विद्यमान मार्गों सहित लोगों को बनाने वाले, विविध वसु अर्थात् जीवों के आश्रय लोगों के स्वामी परमेश्वर के अधीन रहता और विविध कर्मों को करता है ।

अथवा,
राजा अति उत्तम मार्गों से या व्यवस्थाओं से लोगों को बनाता है और चलाता है ।
'यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर'
ऋ. ५.३५.१

स्वाधी – सु + आधी । (१) सुन्दर आधी वाला, (२) उत्तम रीति से अग्नि विद्युत् की रक्षा करने में समर्थ पुरुष
(३) उत्तम रीति से प्रजा के पालन पोषण में कुशल पुरुष
'स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन्'
ऋ. १.१५१.१; तै.ब्रा. २.८.७.६
उत्तम रीति से अग्नि विद्युत् की रक्षा करने में कुशल पुरुष (स्वाध्यः) इसे प्राप्त करने के निमित्त (विदथे) विद्युत् को जलों में से भी उत्पन्न कर लेते हैं (अप्सु जीजयन्) ।
अथवा,
उत्तम रीति से प्रजा के पालन पोषण करने में समर्थ पुरुष (स्वाध्यः) संग्राम और ज्ञान लाभ के लिए (विदथे) प्रजाओं के बीच (अप्सु) प्रकट करते हैं (जीजनन्) ।
(४) सुप्रज्ञ नेता या यजमान
'इन्धान एवं जरते स्वाधीः'
ऋ. १०.४५.१; वाज.सं. १२.१८; तै.सं. १.३.१४.५;४.२.२.१; मै.सं. २.७.९; ८६.६; का.सं. १६.९; श.ब्रा. ६.७.४.३; नि. ४.२४
इस अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ सुप्रज्ञ नेता या यजमान (इन्धानः स्वाधीः) स्तुति करता है (जरते) ।
(५) सुष्ठु समन्तात् धीयते येन सः
उत्तम रीति से प्रजाओं का पालक पोषक तथा धारकअग्नि
(६) अग्रणी पुरुष
'भुवत् स्वाधी होता हव्यवाट्'
ऋ. १.६७.२,
(७) सुखपर्वक उत्तम रीति से जगत् को प्रकृति में अव्यय बीज का आधान करने वाला प्रभु
'स्वाधीर्देवाः सविता'
ऋ. ५.८२.८
(६) सुखों को अपने में धारण करने वाला स्वस्थ, नीरोग
'इन्धान एनं जरते स्वाधीः
ऋ. १०.४५.१

साधु – साध् + उण् = साधु । साधयिता स्तोमानाम् शत्रुसंघा तानां वा (स्तोमों या शत्रु संघातों का साधयिता) । अर्थ-(१) बाण का विशेषण, शत्रुओं का साधक बाण
'साधुर्बुन्दो हिरण्ययः'
ऋ. ८.७७.११; नि. ६.३३.
बाण सोने का बना और शत्रुओं का साधक है । (२) साधयिता, (३) साधक (४) उत्तम,(५) साधनकुशल
'या सानुनि पर्वतानामदाभ्यः
महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना'
ऋ. १.१५५.१

साधुकर्मा – उत्तम कर्म करने वाला
'महस्तस्थतुरर्वतेव साधुकर्मा'
ऋ. १०.८१.७; वाज.सं. ८.४५; १७.२३; तै.सं. ४.६.२.६; मै.सं. २.१०.२; १३३.१९; का.सं. १८.२; २१.१३; ३०.५; श.ब्रा. ४.६.४.५ .

साधुकृण्वन् – यः साधु करोति (जो सुन्दर कर्म करता है ।
'बृबदुक्थं हवामहे सृप्रक-
रस्तमूतये साधु कृण्वन्तमवसे'
ऋ. ८.३२.१०;
हम अदीर्घ बाहुवाले (सृप्र करस्तम्) एवं सुन्दर कर्म करने वाले (साधु कृण्वन्तम्) बृहदुक्थ को रक्षा के लिए बुलाते हैं ।

साधु देविनी – उत्तम रूप से प्रकाशमान ज्योतिष्मती प्रज्ञा
'अप्सरां साधु देविनीम्'
अ. ४.३८.१,२

साधुया – साधु, सच्चरित्र
'लोकं कृणोतु साधुया'
वाज.सं. २३.४३

सानसिः – सधा हुआ, वेगवान्,
'वारं वाजीव सानसिः'
ऋ. ९.१००.४
(२) ऐश्वर्य का विभाग करने वाला
'सहावाँ इन्द्र सानसिः'
ऋ. १.१७५.२; साम. २.७८३
(३) सबके सेवा करने योग्य, सबको सुख देने

वाला
'अवो देवस्य सानसि'
ऋ. ३.५९.६; वाज.सं. ११.६२.
(४) सन् + असि = सा नसि । अर्थ है -संभजनीय
(५) सनातन से चला आता हुआ सबके सेवन योग्य
'वोचेम ब्रह्म सानसि'
ऋ. १.७५.२
हम सनातन से चले आते, सब के सेवन योग्य वेदज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश दें ।
(६) सबको सब प्रकार से ऐश्वर्य पदाधिकार और भूमि आदि देने वाला
'सखाय इन्द्र सानसिम्'
ऋ. ८.२१.२; अ. २०.१४.२; ६२.२; साम. २.५९.
(६) सेवनीय, उपास्य, (८) न्याय पूर्वक ऐश्वर्य का विभाजक
'सखाय इन्द्र सानसिम्'
ऋ. ८.२१.२; अ. २०.१४.२; ६२.२; साम. २.५९.

सानसी - द्वि.व.। (१) सबके सेवनीय सब के शरणीय, (२) सब को दान देने वाले
'ता सानसी शवशाना हि भूतम्'
ऋ. ७.९३.२

सान्तपनः - (१) उत्तम तप करने वाला, (२) जिस विद्वान् ब्राह्मण के गर्भाधान से लेकर उपनयन समावर्तनादि तक संस्कार हो चुके हो और अग्निहोत्र ब्रह्मचर्यादि ठीक से पालन किए हो वह सान्तपन है ।
एष हवै सान्तपनो ऽग्निः यत् ब्राह्मणः । यस्य गर्भाधान पुरुवन सीमन्तोन्नमन जातकर्मनामकरण निष्क्रमणान्न प्राशनगोदान चूड़ाकरणोपनयनप्लावनाग्निहोत्र व्रत चर्यादीप्ति कृतानि भवन्ति स सान्तपनः । - गो.ब्रा.
'सान्तपना इदं हविः
मरुतस्तज्जुजुष्टन'
ऋ. ७.५९.९; अ. ७.७७.१; तै.सं. ४.१३.३; मै.सं. ४.१०.५; १५४.७; का.सं. २१.१३.
(२) उत्तम तपस्या शील, (३) सान्तपन अग्नि जो ब्राह्मण रूप है
एष वै सान्तपनो अग्निः यद् ब्राह्मणः
गो.ब्रा.
(४) शत्रुओं को तपाने वाला
'मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान्'
वाज.सं २४.१६; मै.सं. ३.१३.१४; १७१.६; आप.श्रौ.सू. २.१४.१०
(५) प्रजा के धर्म कर्म का संस्कार करने वाला
'सान्तपनश्च गृहमेधी च'
वाज.सं. १७.८५; आप.श्रौ.सू. १७.१६.१८

सान्ह - एक याग
'सान्हातिरात्रावुच्छिष्टे'
अ. ११.७.१२

स्थान - तत्र ऋग्वेदस्य अष्टौ स्थानानि भवन्ति (ऋग्वेद के आठ स्थान हैं) । ये हैं-शकाल, वाष्कल, एतरेय ब्राह्मण, एतरेयारण्यक, शांखायन, मण्डूक, कौषीतकि ब्राह्मण और कौषीतकि आरण्यक,

स्वानः - (१) उपदेश करता हुआ
'तमा नि षीद स्वानो नार्वा'
अ. १.१०४.१
ज्ञान का उपदेश करता हुआ (स्वानः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (अर्वा) जिस प्रकार अपने आसन पर विराजता है ।
(२) उपदेश पूर्ण वचन, आज्ञावचन
'उत स्वानासो दिविषन्त्वग्नेः'
ऋ. ५.२.१०; तै.सं. १.२.१४.७
(३) प्रजा का उपदेष्टा
'स्वान भ्राजाङ्घारे'
वाज.सं. ४.२७; तै.सं. १.२.७.१; श.ब्रा. ३.३.३.११.
(४) योगी, मुक्तपुरुष,
'इन्द्रे स्वावास इन्दवः'
ऋ. ८.३.६; अ. २०.११८.४; साम. २.९३८,

सानु - सन् + ञुण् = सानु,
अथवा 'षो (अन्त करना) + नु = सानु,
अर्थ है- पर्वत शिखर -
'यत् सानोः सानुमारुहद्'
ऋ. १.१०.२; माम. २.६९५
'गिरीणामुपसानुषु'
अ. १०.४.१४
'सानुभ्यः जम्भकम्'
वाज.सं. ३०.१६; तै.ब्रा. ३.४.१.१२
(२) सृ + ल्युट् = सरण,
समुच्छ्रितं भवति, । समु = सानु । यह ऊपर

की तरफ प्रेरित होता है -उठता है अतः सानु है ।

(३)समुच्छ्रितानि (समुच्छ्रित जंघे शिखर, ऊंचाई, चोटी, जंघा)

'विजयुषा ययथुः सान्वद्रेः '

ऋ. १.११७.१६

विजय करते हुए या विजय रथ से पहाड़ के शिखर पर जाओ या मेघ की ऊंचाई पर वृष्टि बरसाने जाओ ।

'इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्भिभिः '

ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७: २२६.४; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा. २.८.२.८; नि. २.२४.

यह सरस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से पहाड़ों की चोटी कमल खनने वाले की तरह काटते हैं ।

आधुनिक अर्थ-शिखर, पर्वत शिखर की समतल भूमि, अङ्कुर, जंगल, पथ, ढालुई भूमि, कोई स्थान बिन्दु, आंधी का झोंक, विद्वान् , सूर्य

'आ जङ्घन्ति सान्वेषाम् '

ऋ. ६.७५.१३; वाज.सं. २९.५०; तै.सं. ४.६.६.५; मै.सं. ३.१६.३ ; १८७.६; नि. ९.२०

इन घोड़ों के उठे जानु के ऊपर मारते हैं ।

सानुक - (१) साथी संगी के साथ (२) पर्वत शिखरों पर विचरने वाला-हिंसक पशु, डाकू

'अरातीवा मर्तः सानुको वृकः '

ऋ. २.२३.७

सानुषक् - सदा अनुकूलता

'अर्केषु सानुषक् असत् '

ऋ. १.१७६.५

साप्त - (१) मैत्री भाव का

'अश्याम तत् साप्तमाशुषाणाः '

(२) सप्त वर्गों से उत्पन्न सप्त वर्ग - ब्रह्मचारी गृहस्थ , वाणप्रस्थ, सन्यासी के विशिष्ट कर्म, यज्ञानुष्ठान, विद्वत् सत्कार, संगति करण और दान

'ते नो रत्नानि धत्त न
त्रिरा साप्तानि सुन्वते '

ऋ. १.२०.७; ऐ.ब्रा. ५.२१.१२;

वे विद्वान् पुरुष सवन ऐश्वर्य, राज्याभिषेक और यज्ञ उपासना करने वालों के लिए २१ प्रकार के सुख से स्मरण करने योग्य पदार्थों को उत्तम उपदेशयुक्त क्रियाओं द्वारा एक एक करके धारण करें या करायें ।

(३) सातों प्राणों या सातों विकारों का स्वामी-इन्द्र, जीव, परमेश्वर,

'आदित् साप्तस्य चर्किरन् '

ऋ. ८.५५.५

साप्यः - (१) संघ का हितैषी

'प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूत् '

ऋ. १०.४८.९

(२) सन्धिपूर्वक समवाय बनाकर रहने वाला

'प्रावन् नमीं साप्यं ससन्तम् '

ऋ. ६.२०.६

स्वापिः - सु + अपिः । उत्तम बन्धु

'आ स्वापे स्वापिभिः '

ऋ. ८.५३.५; साम. १.२८२; ऐ.ब्रा. ३.१६.१.२

स्वाभू - (१) सु + आभू । सुष्ठु समन्तात् परोकारे भवति यः

(जो सब तरह से परोपकार रत हो) ।

(२) अपना अपना व्यापार करने में कुशल पुरुष

'प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः '

ऋ. १.१५१.२

(३) सब ओर से सुख पूर्वक आप से आप अनायास उत्पन्न होने वाला

'अग्नी राये स्वाभुवम् '

ऋ. ५.६.३; साम. २.१०८८; का.सं. ३९.१३; तै.ब्रा. ३.११.६४; आप.श्रौ.सू. १६.३५.५

(४) उत्तम रूप से समृद्ध और सामर्थ्यवान्

'स्वाभुवो जरणामश्नवन्त '

ऋ. ७.३०.४

साम - स्य + मनिन् = साम ।

स्यन्ति खण्डयन्ति दुःखानि
येन तत् साम

जो दुःखों को खण्डित कर देता है ।

(२) षोड़शकल प्रजापति, (३) सर्वलोकमय आदित्य, (४) परमेश्वर , (५) सर्वोपास्य पुरुष, (६) ऋक् और सामवेद (७) प्राण, वाक् प्राण (८) स्वर्ग, (९) देवों का अन्न (ज्ञान), (१०) क्षत्रबल, साम्राज्य, (११) सत्, मनः, प्राण, (१२) विद्वानों का ब्रह्म, (१३) ज्ञानमय उपासना का

(सामवेद)
'अर्केण साम'
ऋ. १.१६४.२४; अ. ९.१०.२
अर्क से साम का मनन किया जाता है, अन्न से प्राण और मन प्राप्त किया जाता है। आदित्य से क्षात्रबल की उपमा है।
आदित्य से ब्रह्म की उपमा है, जीव का आत्मा से षोड़श कल प्रजापति का परिज्ञान किया जाता है। प्राण से वाणी उत्पन्न होती है, आत्मा से परम पद या परमात्मा प्राप्त होता है, ऋग्वेद से सामवेद होता है।
(१३) (सामन्) सबके लिए समान रूप से आदर योग्य, (१४) सबके प्रति समान व्यवहार करने वाला श्रेष्ठ पुरुष, (१५) जिसे सब आदर से मिलकर बनावे या करें, (१६) सब मिलकर चलें (१७) जो सब के बराबर है, (१८) जिसमें सब समान हो (१९) प्रजा और उसका अर्म, सहवर्ती राजा दोनों मिल कर जो संवाद करते हैं वह साम है।
'स्तुषे पज्राय साम्ने'
ऋ. ८.४.१७
'साम्ना समानयन् तत् साम्नः सामत्वम्'
तै.ब्रा. २.२.८.७
'समेत्य साम प्राजनतम् तत्-
साम्नः सामत्वम् -जौ उप.ब्रा.
तत् यत् संयन्ति तस्मात् साम'
जै.उप.ब्रा.
'स मा उ ह वा अस्मिन् छन्दांसि'
सम्यात् -
'तद् यदेष सर्वैः लोकौः'
समः तस्मात् एष एव सामः'
जै.उप.ब्रा.
'साम इति छन्दोगाः उपासते।
एतस्मिन् हि इदं सर्वं समानम्'
श. ब्रा.
'यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते
सः सामन् भवति। असामान्य इति ह निन्दन्ति
ऐ.ब्रा.
'तत् यत् सा च अमश्च तत्
साम अभवत्-जै.उप.ब्रा.'
यद्वै तत्सा च अमश्च सम वदति तत् साम अभवत्
गो.ब्रा. ३.२०

सामं घर्म - (१) समासु भवः सामः (संवत्सर में हुआ पदार्थ साम है (२) संवत्सर में आने वाला घर्म (ग्रीष्म)। दे. 'गिर्वणस्'
'घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिः'
ऋ. ८.८९.७; साम. २.७८१; का.सं. ८.१६; तै.सं. १.६.१२.२.
संवत्सर में आने वाले घर्म दिनों की तरह तपश्चरण करो।

सामतेजाः - सामवेद के समान तेजस्वी।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा
ऋक्संशितः सामतेजाः'
अ. १०.५.३०

सामंनस्यः - एकचित्त वाला
'सहृदयं सामंनस्यम्'
अ. ३.३०..१

सामना - (१) सम स्थलवाली (२) एक समान गति से जाने वाली, (३) साम वचनों से युक्त, (४) समान, मन, वाला, (५) सामयुक्त प्रतीति पूर्वक वचन कहने वाला
(६) समावस्था को प्राप्त प्रकृति
'नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिम्'
ऋ. ३.३०.९-

सामभृत् - सामवेद धारण करने वाला
'उक्थ भृतं सामभृतं बिभर्ति'
ऋ. ७.३३.१४,

सामविप्रः - (१) सामों में बुद्धिमान् सामों को जानने वाला विद्वान् ब्राह्मण, (२) साम उपाय द्वारा राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने में समर्थ
'यूयमृषिमवथ सामविप्रम्'
ऋ. ५.५४.१४

साम साम - प्राण ही सहायक है।
'षड्योगं सीरमनु सामसाम'
अ. ८.९.१६

साम्नः मेडिः - ऋचा के अक्षरों को परस्पर मिलाने वाला 'स्तोम' (२) साम सम्बन्धी स्वर-सम्मेलन रूप वाक्
'साम्नो मेडिश्च तन्मयि'
अ. ११.७.५

स्तामा - अहाता
'मा मे सख्युः स्तामानमपि'

अ. ५.१३.५

स्थामन् – (१) ठीक स्थान

'स्थाम्नि वृक्षावतिष्ठिपन् '

अ. ७.९६.१

'यदा स्थाम जिघांसति'

अ. १२.४.२९; ३०

(२) गढ़ा

'तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्नि '

अ. ४.७.५

स्थामविष्णुः – गतिशील

'अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः '

ऋ. १०.९४.११

स्राम – त्रुटि

'उत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः '

ऋ. १.११७.१९

हे स्त्री पुरुषो, आप बुद्धिमान् होकर (धिष्ण्या) सुसंगत करें (संरिणीथः) ।

(२) लंगड़ा

'स्रामो भविष्यसीत्येनमाह '

अ. ११.३.४५

(३) व्याधि

'उत मा स्रामाद् यवयन्त्विदवः '

ऋ. ८.४८.५

(४) जिसकी आंखों से सदा जल बहता हो ।

'द्राभ्यः स्रामम् '

वाज.सं. ३०.१०; तै.ब्रा. ३.४.१.६

सामानि – (१) 'सभी' धातु परिणाम अर्थ में आया है । सामानि का अर्थ है–परिणाम

'बृहतः परिसामानि '

अ. ८.९४.४

(२) अपनी शक्तियों सहित, मिश्रित, (३) परस्पर एक दूसरे के सहायक

'षडु सामानि षडहं वहन्ति'

अ. ८.९.१६

(४) देवाः सोमं साम्ना

'समानयन् । तत् साम्नः '

सामत्वम्' तै.ब्रा. २.२.८.७

स प्रजापतिः हैवं षोड़ेशधा आत्मानं विकृत्य सार्धं समैत् । तत् यत् सार्धं समैत् तत् साम्नः सामत्वम्

तै.ब्रा.

'तत्यत् संयन्ति तस्मात्'

साम जै.ब्रा.

'तद् यदेष सर्वैर्लोकैः समः

तस्मात् साम जै.ब्रा.

सा च अपश्चेति तत्साम् अभवत

जै.ब्रा.

'साम हि नष्ट्राणां रक्षसा मप हन्ता'

श. ब्रा.

क्षत्र वैः साम

श. ब्रा.

'सामहि सत्याशीः '

सामित्य – (१) समिति में प्रधान, समाज में प्रतिष्ठा–प्राप्त

'यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद'

अ. ८.१०.११

(२) साथ मिलना,

(३) सदस्यता,

(४) प्रतिनिधित्व

'स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु'

अ. १३.१.१३.

सामिधेनी – (१) यज्ञ में समिधा आधान की जो ऋचा है वह सामधेनी है, (२) सेना का विशेष अधिकारी

'वज्रो वै सामिधेन्य'

कौ.ब्रा.

'छन्दोभिः सामिधेनीः '

वाज.सं. १९.२०

सायक – (१) बाण, (२) अस्त्र शस्त्र

'वज्रं हिन्वन्ति सायकम् '

ऋ. १.८४.११; अ. २०.१०९.२; साम. २.३५६; मै.सं. ४.१२.४: १९०.३

स्त्यायति – लज्जते (लजाता है) । 'स्त्यै ' धातु अपत्रपण अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है ।

स्तायन् – गुप्त रूप से अपने को छिपाता हुआ

'य स्तायन्मन्यते चरम्'

स्तायुः – छल कर अर्थ ग्रहण करने वाला

'स्तायूनां पतये नमः '

वाज.सं. १६.२१; तै.सं. ४.५.३.१; मै.सं. २.९.३: का.सं. १७.१२

स्वायुज् – स्व + आ + युज् + क्विप् । (१) उत्तम रीति से हल में स्वयं आ जुतने वाला बैल, (२)

उत्तम पुरुषों के साथ योग चाहने वाला गमन योग्य सुभगा कन्या
'स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत'
ऋ. १.९२.२; साम. २.११०६

स्वायुधासः – अपने शस्त्र बल धारण करने वाले
'स्वायुधास इष्मिणः'
ऋ. ५.८७.५

सारः – दृढ भाग।

सारङ्ग – (१) चित्र वर्ण वाला या खाकी रंग का कीट
'क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्'
अ. २.३२.२; अ. ५.२३.९
(२) श्याम शरीर वाला या सान कर चलने वाला

सारघ – (१) सरघा अर्थात् मधुमक्षिका द्वारा संगृहीत मधु
'अश्विना सारघेण मा'
अ. ६.६९.२; ९.१.१९
(२) सारवान् अमृत जीव
'मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवः'
ऋ. ८.४.८; साम. २.९५६

सारघा – द्वि.व. एक वचन में 'सारघ'। (१) सार ग्रहण करने वाली मधुमक्षिकाएं (२) नीचे की ओर द्वार वाले छत्ते में सार ग्रहण करने वाली मधुमक्षिकाएं।
'सारघेव गवि नीचीनबारे'
ऋ. १०.१०६.१०

सारथिः – रथ हांकने वाला, रथ वाहक
'चन्द्रमाः सारथिः'
अ. ८.८.२३
'रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरः'
ऋ. वाज.सं. २९.४३; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३:१८६.३; का.सं. (अश्व.) ६.१.नि. ९.१६

सारमेय – (१) साराणां निर्माता –दया.
सारवान्, बलवान्, बल युक्त एवं बहुमूल्य पदार्थों का मान प्रतिमान करने वाला या उनसे जाने आने योग्य,
(२) सरमा से उत्पन्न
'यदर्जुन सारमेय
दतः पिशङ्ग यच्छसे'
ऋ. ७.५५.२

सारमेयौ श्वानौ – (१) सरमा नाम्नी कुत्ती से उत्पन्न दो श्वान्
(२) वेग से जाने वाली सूर्य की प्रभा या कान्ति ही सरमा है, उसी से उत्पन्न अति वेगवान् दिन रात 'सारमेयौ श्वानौ' हैं।
(३) जीव से उत्पन्न वेग युक्त प्राण और अपान
'अति द्रव सारमेयौ श्वानौ'
ऋ. १०.१४.१०; अ. १८.२.११; तै.आ. ६.३.१; आश्व.गृ.सू. ४.३.२१

सारस्वत – (१) सरस्वती वेदवाणी का अभ्यास करने वाला विद्वान् (२) विवाहित पति
'सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक्
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु'
ऋ. ३.४.८
(३) सरस्वत्या कुशलः –दया.
विज्ञान युक्त वाणी का विद्वान्

सारस्वतं वीर्यम् – सरस्वती वेद वाणी अर्थात् समस्त ज्ञानी विद्वानों का संयुक्त बल
'सारस्वतं वीर्यम्'
वाज.सं. १९.८; का.सं. ३७.१८; तै.ब्रा. २.६.१.५; आप.श्रौ.सू. १९.७.५

सरस्वती – (१) आज्ञा पहुंचाने के कार्य में लगायी जाने वाली स्त्री
'फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी
ताः सारस्वत्यः'
वाज.सं. २४.४;
(२) सरस्वती देवता की (३) सरस्वती नामक विद्वानों की प्रतिस्पर्द्धा वाली सभा
'सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोः'
वाज.सं. २४.१, मै.सं. ३.१३.२: १६८.११
(४) सरस्वती नामक सभा का विद्वान् पुरुष
'सारस्वती मेषी'
वाज.सं. २९.५८,५९; तै.सं. ५.५.२२.१; मै.सं. ३.१३.२:१६८.११; का.सं. (अश्व) ८.१,३

सारस्वतौ उत्सौ – सरस्वती अर्थात् वेदवाणी के दो निकास-उद्गम स्थान-मन और वाणी या अध्यापक और उपदेशक
'मनोवा सरस्वान् वाक् सरस्वती
एतौ सारस्वतौ उत्सौ'
श.ब्रा.
'सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम्'

वाज.सं. १३.३५; मै.सं. १.८.८: १२७.१६; श.ब्रा. ७.५.१.३१; तै.ब्रा. १.४.४.९; आश्व.श्रौ.सू. ३.१२.२३; आप.श्रौ.सू. ५.११.६; ९.९.१; मा.श्रौ.सू. ३.३.१

सार्ञ्जयः – नाना न्याययुक्त राज्य कार्यों को करने में समर्थ पुरुषों का राजा ।
'भरद्वाजान् सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट '
ऋ. ६.४७.२५

स्वार – (१) ताप, (२)गर्जन
'घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्'
ऋ. २.११.७;

स्थारश्मानः – (१) स्थिर किरणों के समान, (२) स्थिर स्वायत्त बागडोर वाले
'स्थारश्मानो हिरण्ययाः
स्वायुधास इष्मिणः'
ऋ. ५.८७.५

स्पार्ह – स्पृहणीय। स्पृह् (aspire) धातु से सम्पन्न।
'स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि'
ऋ ७ २.२३.९, नि. ३.११

स्पार्हराधाः – अभिलषणीय धनों का स्वामी
'मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः'
ऋ. ४.१६.१६

स्पार्हवीर – (१) वीर पुरुषों से अभिलाषा करने योग्य
(३) जिसमें अभिकांक्षित वीर हों ।
'यूयं रयिं मरुता स्पार्हवीरम् '
ऋ. ५.५४.१४

स्वार – (१) क्षात्र बल अर्थात् त्रिष्टुप् से उत्पन्न स्वर समूह –
(२) स्वयं राजमान राजागण
'त्रिष्टुभः स्वारम् '
वाज.सं. १३.५५; मै.सं. २.७.१९:१०४.४; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.८

सारा – (१) सबसे अधिक सारवाली, बलप्रदा, ओषधि
'सार ऋषभाणाम् '
अ. ४.४.४

स्वराज्यम् –स्वराज्य, अपना राज्य,
'अर्चन्ननु स्वराज्यम् '
ऋ. १.८०.१-१६; साम. १.४१०, ४१२,४१३; नि. १२.३४

इन्द्र वृत्त आदि असुरों को मारकर अपना आधिपत्य प्रकट करते तथा शास्त्रीय रीति से अपना राज्य चलाते हैं ।

स्यालः – कास्यात् सूर्यात लाजान् आवपति विवाह काले इति स्यालः (विवाह काल में जो रूप से लावा गिरता है वह स्याल अर्थात् साला है), यह निरुक्त कारों का मत है ।
स्य + अल् (आपवन अर्थ में) + अच् = स्याल (म का ल पृषोदरादिवत्,)
(२) साले के मुख से कन्या के मुख की कल्पना की जाती है । निदान वेत्ताओं के मत से स्यम (वितर्क अर्थ में) + अच् = स्याल (म का ल पृषोदरादिवत्)।
साले के मुख से ही कन्या के मुख की कल्पना की जाती है । अतः वह स्याल है।
(३) अथवा 'स्यालः आसन्नः संयोगेन इति नैदानाः यह साला सम्बन्ध से ही समीप होता है ।
(४) सद् + ण्यत् = स्याद् = स्थात् = स्याल
'अश्रावं हि भूरिदावत्तरा वाम्
विजामातुरुत वा घा स्यालात् '
ऋ. १.१०९.२; तै.सं. १.१.१४.१; का.सं. ४.१५; नि. ६.९
हे इन्द्राग्नी या अध्यापक तथा उपदेशक, मैंने सुना है कि तुम क्रीतापति दामाद और स्याले से भी बढ़कर दान देने वाले हो ।

सालावृक – (१) कुत्ते के समान स्वामिभक्ति और 'साल ' के प्रकोट पर रहने वाला अस्त्रधर वीर
'त्वमिन्द्र सालावृकान् सहस्रम् '
ऋ. १०.७३.३
(१) जंगली कुत्ता या भेड़िया
'सालावृकाणां हृदयान्येता'
ऋ. १०.९५.१५; श.ब्रा. ११.५.१.९
(३) कुक्कुर
'इन्द्रः सालावृकां इव '
अ. २.२७.५

स्थाली – (१) हांड़ी, कंटियां, दूध दूहने का बर्तन
'स्थालीं गौरिव स्पन्दना'
अ. ८.६.१७
(२) स्थाली नामक यज्ञपान
(३) स्थापन क्रिया

'स्थालीभि स्थालीराप्नोति'
वाज.सं. १९.२७

स्थालीपाक - हंडिया में पकाई रसोई
'स्थाली पाको विलीयते'
अ. २०.१३४.३; शां.श्रौ.सू. १२.२३.१

सावर्ण्य - चारों वर्णों से समान रूप से वरण करने योग्य
'सा वर्ण्यस्य दक्षिणा
वि सिन्धुरिव प प्रथे'
ऋ. १०.६२.९

सामवर्णि - समान रूप से वरण करने योग्य
'सावर्णेर्देवाः प्रतिरन्त्वायुः'
ऋ. १०.६२.११

स्तावाः - (१) दक्षिणा जो सुपात्र में दी जाकर यज्ञ और यज्ञ कर्त्ता की स्तुति का कारण है।
(२) स्तुति योग्य
'तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम'
वाज.सं. १८.४२; तै.सं. ३.४.७.१; मै.सं. २.१२.२: १४५.६; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.११

स्वावसु - (१) स्ववसु अपने देह या आत्मा के भीतर रहने वाला प्रभु (२) अपने धन को स्तोताओं को देने वाला
अग्नि-सा.
'ईडे अग्नि स्वावसुं नमोभिः'
ऋ. ५.६०.१; अ. ७.५०.३; मै.सं. ४.१४.११: २३२.१३; तै.ब्रा. २.७.१२.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.२

स्नाव - स्नायु
'स्नावभ्यः स्वाहा'
वाज सं. ३९.१०; तै.सं. ७.३.१६.२: ४.२१.१; ५.१२.२; का.सं. (अश्व.) ३.६; ४.१०; ५.३

सावित्र - (१) सन्तानोत्पादक धर्म से युक्त पुत्रोत्पादक पिता
(२) सविता का उपासक (३) परमेश्वर का उपासक
'सावित्रोऽसि चनोधा'
वाज.सं. ८.७; मै.सं. १.३.२७: ३९.१५; श.ब्रा. ४.४.१.६
(४) सविता पद के सम्बन्ध का पुरुष
'शितिरन्धोऽन्यन्तः शितिरन्ध्रः
समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः'
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.१३.१; मै.सं. ३.१३.३:१६९.३ का.सं. (अश्व.) ९.३
(५) सविता, सर्व प्रेरक के सविता के समान ज्ञानी, आचार्य पद के योग्य
'कृकवाकुः सावित्रः'
वाज.सं. २४.३५; तै.सं. ५.५.१८.१; मै.सं. ३.१४.१५:१७५.९; का.सं. (अश्व.) ७.८

सावित्री - (१) सूर्य की पुत्री सूर्या-सा.
(२) प्रकाश उत्पन्न करने वाली प्रभा
'येन सूर्या सावित्रीम्'
अ. ६.८२.८
(३) गायत्री मन्त्र भी सावित्री है।

सावित्र - सुनोतु, ददातु, उत्पन्न करें। सु (उत्पन्न करना) के लुङ् प्र.पु.ए.व.का रूप या लोट् म.पु. ए.व. में प्रयुक्त
'श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नः'
ऋ. १.१६४.२६; अ. ७.७३.७,९.१०.४; नि. ११.४३
सविताहमारे लिए सभी सवों में उत्तम सव (जल) उत्पन्न करें (साविषत्)।

स्वावसु - (१) स्वेषु यो वसति,
स्वान् वा वासयति सूर्यः
(२) अपनों में रहने और अपनों को बसाने वाला
'अस्माकं शर्म वन वत् स्वावसुः'
ऋ. ५.४४.७

स्थाविरी - स्थिरः
'प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरी रसृक्षत'
ऋ. ९.८६.४; साम. २.२३६

स्वावृक् - सुखप्रद
'स्वावृक् देवस्यामतं यदी गोः'
ऋ. १०.१२.३; अ. १८.१.३२

स्वावेशः - (१) सु + आवेशः। उत्तम रीति से समस्त विश्व में व्यापक -बृहस्पति
(२) सुखपूर्वक राष्ट्र में प्रविष्ट
'बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः'
ऋ. ७.९७.७; मै.सं. ४.१४.४; २२०.१; का.सं. १७.१८; तै.ब्रा. २.५.५.५
(३) उत्तम भावों और बर्तावों वाला, (४) स्व + आवेशः। अपने ही घर के समान बर्तने वाला
'अस्मान् त्स्वावेशो अनमी वो भवा नः'
ऋ. ७.५४.१; तै.सं. ३.४.१०.१; मै.सं. १.५.१३: ८२.१३.

स्वावेशा – सु + आवेश । अर्थ है ।
(१) सुखपूर्वक उपचरण करने योग्य या सुखपूर्वक उपचरणीय (२) स्वस्ति नामक अन्तरिक्षस्थ देवता का विशेषण, (३) देवगोपा को मेघ मानकर मेघ को स्वस्ति नामक देवता मानस्वस्ति को ही स्वावेशा कहा गया है, यह आर्यसमाजी व्याख्याकारों का मत है ।
(३) उत्तम निवासक –मेघ
'स्वावेशा भवतु देवगोपा'
ऋ. १०.६३.१६; नि. ११.४६
वह रक्षिका देवी (देवगोपा) सुख पूर्वक उपचरणीय है (स्वावेशा) । वह देवों की रक्षा करें (देवगोपा भवतु) ।
सुख प्रदाता या भूमि रक्षक या देव भावों का रक्षक या यज्ञकर्ता देव जनों से रक्षणीय (देवगोपा) मेघ हमारा उत्तम निवासक हो (स्वावेशा भवतु) ।

साशन – स + अशन । खाने वाला चेतन जीव
'साशनाशनेऽअभि'
ऋ. १०.९०.४; वाज.सं. ३१.४; तै.आ. ३.१२.२.

स्वाशित – सु + आशित । राष्ट्र को सुखपूर्वक प्राप्त
'स्वाशितः पुनरस्तं जगायात्'
ऋ. १०.२८.१

स्वाशीः – सुन्दर आशाजनक
'स्वाशिष भरमायाहि सोमिनः'
ऋ. १०.४४.५; अ. २०.९४.५

स्वाशु – (१)सु + आशु । उत्तम गतिवाला, तीव्रगामी
'स्वाशुरश्वः सुयामी'
अ. २०.१२८.(६) ११; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.६
'तीक्ष्णश्रृंगाः स्वाशवः'
अ. १९.५०.२

सासहानः – (१) सब शत्रुओं को पराजित करता हुआ
'सासहानो अवातिरः'
ऋ. १.१३१.४; अ. २०.७५.२
(२) पुनःपुनः दयन करने वाला
'सासहानं सहीयांसम्'
अ. १७.१.१; २.३;४;५

सासहान् – सह् + क्वसु । अर्थ है तिरस्कर्ता, पराजयकर्ता

सासहिः – (१) शत्रु को पराजित करने वाला, (२) सबसे बड़ा सहनशील सत्यस्वरूप
'निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः'
ऋ. २.२३.११
(३) यङन्त सह + कि = सासहि । अत्यन्त सहनशील ।

स्वासः – (१) सु + आस । सुन्दर मुख वाला ।
(२) स्व + आस । अपना मुख
'शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम्'
ऋ. ४.७.८

स्वासचः – स्व + आसचः । अपना सहयोगी
'सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचान्'
ऋ. १०.२३.४; अ. २०.७३.५.

स्वासद् – सु + आ + सद् + क्विप्
उत्तम स्थितिवाला
'स्वासदसि सूषा'
अ. १६.४(१).२

स्वासस्थ – सु + आसस्थ । उत्तम रीति से स्थित, बैठा, जमा हुआ
'स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नम्'
वाज.सं. २८.२१; तै.ब्रा. २.६.१०.६

स्वासस्था – सु + आस + स्था उत्तम आदर पूर्वक वाणी
'स्वासस्थां देवेभ्यः'
वाज.सं. २.२

स्वासस्थे – शुभ आसन पर विराजमान
'स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः'
ऋ. १०.१३.२; अ. १८.३.३९; ऐ.ब्रा. १.२९.७; तै.आ. ६.५.१.

सासह्वानः – (१) पराजय करने वाला
'सासह्वासं युधामित्रान्'
ऋ. ८.१६.१०; अ. २०.४६.१
(२) बरबार पराजित करने में समर्थ–राजा
'सासह्वाँश्चाभियुग्वा च च विक्षिपः स्वाहा'
वाज.सं. ३९.७

सास्रेधन्ती – विनाश करती हुई बला
'सास्रेधन्ती विनश्यतु'
ऋ. ८.२७.१८

साहदेव्य कुमारः – (१) देव, विद्वान् या वि जिगीषु सैनिकों को साथ रखने वाला नायक, (२)

विद्याभिलाषी या विद्वान् गुरुओं के सहित रहने वाले विद्यार्थियों में उत्तम (३) कुत्सित आचरण के लिए दण्ड देने वाला गुरु, (४) विद्यादाता गुरु के साथ रहने वाला
'बोधद्यन्मा हरिभ्याम्
कुमारः साहदेव्यः '
ऋ. ४.१५.७

साहन्त्य – सबको अपने वश में करने वाला नियामक
'येन सोम साहन्त्य'
अ. ६.७.२

साहस्र – (१) सहस्रों शिरों, बाहुओं, पादों, चक्षुओं एवं अनन्त सामर्थ्यों से युक्त
'साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् '
अ. ९.४.१
(२) सहस्रों फलों को देने वाला हवि
'साहस्रं शत धारमुत्सम् '
अ. १८.४.३५

साहस्रपोष – (१) सहस्रों प्रकार का पोषण कार्य
'साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु'
अ. ९.४.२

स्वाहय – (१) स्वाहा करने योग्य (२) स्वागत करने योग्य (३) उत्तम रीति से स्तुति अर्चा करने योग्य ।
'महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाहयेभ्यः '

साह्वान् – पराजित करने वाला ।
(२) सर्वविजयी
'येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान् '
ऋ. ६.६८.७

स्वाहा – सु + आहा । (१) सुख्याति, महान् कीर्ति, महिमा (२) स्वागत
'शमिताय स्वाहा'
अ. १९.४२.२
'स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः '
अ. ८.८.२४, कौ.सू. १६.१९
(३) हवन करने के समय देवता के नाम से 'स्वाहा' कहा गया है । स्वा–दयानन्द ने इसका अर्थ 'स्वागत' किया है । जैसे ' ऊं प्रजापतये स्वाहा ' का अर्थ उनके अनुसार 'यज्ञ के प्रजा पति का स्वागत है' –ऐसा हुआ ।
(४) वेदोक्त आज्ञा के अनुसार भी उन्होंने इसका अर्थ किया है । दे. 'अयास '
'प्रजानन् यज्ञमुप याहि विद्वान् स्वाहाः '
वाज.सं. ८.२०; वाज.सं.(का.) ९.३.६; तै.सं. १.४.४४.२; श.ब्रा. ४.४. ४.१२
हे ब्रह्मचारी, गृहस्थ धर्म को समझता हुआ वेदोक्त आज्ञा के अनुसार गृहस्थ–यज्ञ को कर । –दया.
हे अग्नि, तू यज्ञ कर्म का ज्ञाता है अतः यज्ञ में आ । तेरे लिए स्वाहा या स्वागत है।
(५) ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार 'स्वा वाक् आह' से ही स्वाहा हुआ है । लिखा भी है–
'तं स्वा वाक् अभ्यवदत् जुहु ईध '
इति तत् स्वाहाकारस्य जन्म ।'
अर्थात् स्वावाक् ने उसे 'जुहुधि' ऐसा कहा और इसी से स्वाहाकार का जन्म हुआ । स्वा + आह + घञ् + सु = स्वाहा ।
सत्यभाषण या सत्यवक्ता में वागिन्द्रिय अपनी हृदयस्थ वाणी कहती है ।
(६) 'स्वं प्राह ' से स्वाहा बना । 'स्वम् ' का अर्थ ' आत्मीयम् ' है । अतः इसका 'अर्थ आत्मीयं प्राह' (आत्मीय को कहा) ऐसा हुआ । 'स्व' शब्द पुल्लिंग में रहने से ज्ञाति और आत्मा का वाचक हुआ। तीनों लिंगों में रहने में आत्मीय (अपना) का वाचक और स्त्रीलिंग छोड़ अन्य लिंगों में धन का वाचक है। अपने पदार्थ को ही अपना समझना, दूसरे के पदार्थ को ग्रहण नहीं करना ।
(७) अथवा सुष्ठु प्रकार से हुत हवि से अग्नि में हव्य देता है (स्वाहुतं जुहोति) । अतः इस हवन क्रिया का द्योतक 'स्वाहा ' शब्द है ।
सु + आ + हु + ड + सु = स्वाहा । 'आ ' का अर्थ आहुत या गृहीत् है ।
(८) सुभाषित वचन भी स्वाहा है ।
(९) हव्य अर्पित करते समय 'तुभ्यम् इदम्' –ऐसा कहा जाता है । यह कहना सुन्दर है अतः 'सु + आह = स्वाह; स्वाह + टा = स्वाहा,
(१०) अथवा सु + आह + घञ् = 'स्वाह' और 'सुपां सुलोपः ' से सभी विभक्तियों के स्थान में 'आ ' आदेश ।
(११) प्रियवक्ता या कल्याण वक्ता भी इसका अर्थ है ।

स्वाहाकार – अग्नि में आहुति रूप से अर्पित
'स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्तिः'
अ. १५.१४.१६

स्वाहाकृत – (१) स्वयं अपनी शक्ति से इन्द्रियों में प्रविष्ट आत्मा (२) स्वाहा द्वारा, देवोंतक पहुंचाया यज्ञ
'स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञः'
अ. ७.७३.३
(३) उत्तम स्तुति से युक्त (४) उत्तम यश, कीर्त्ति से सम्पन्न, (५) सत्य वाणी से विश्वास योग्य
'स त्वमग्निं वैश्वानरं
सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः'
वाज.सं. २२.३; मै.सं. ३.१२.१: :१६०.१; श.ब्रा. १३.१.२.३
(५) उत्तम रीति से आहुति किया (५) उत्तम वचनों से प्रशंसित
'स्वाहाकृतस्य तृम्पतम्'
ऋ. ८.३५.२४

स्वाहाकृतं हविः – स्वाहाकार पूर्वक मंत्र द्वारा अर्पित हवि ।
'स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः'
ऋ. १०.११०.११; अ. ५.१२.११; वाज.सं. २९.३६; तै.सं. ३.१.४.४; मै.सं. ४.१३.५; २०५.६; का.सं. १६.२०; ऐ.ब्रा. २.१३.५; तै.ब्रा. ३.६.३.४; आप.श्रौ.सू. १४.३०.५; नि. ८.२१
देवता स्वाहाकार पूर्वक मंत्र द्वारा अर्पित हवि पीवें ।

स्वाहाकृति – (१) जो यज्ञ के लिए आहुत हो स्वाहा-स्वाहा कहकर संस्कृत हो वही स्वाहाकृति है ।
(२) स्वाहा-स्वाहा का अनुकीर्त्तन (३) प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा यै स्वाहा कृतयः –ऐ.ब्रा.
(४) उत्तम वचन बोलने वाला (५) स्वाहा करने वाली
'स्वाहाकृतीनां स्वाहा'
वाज.सं. २८.११

स्वाहाकृती – (१) स्वाहा कार और स्तुति
(२) उत्तम वचन भाषण हव्यादि
'स्वाहा कृतीषु रोचते'
ऋ. १.१८८.११

स्तिः – (१) संघ बनाकर रहने वाला
'उत त्रायस्व गृणत उत स्तीन्'
ऋ. १०.१४८.४
(२) संहत, मिलित
'उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन्'
ऋ. ७.१९.११

सिकत्य – (१) बालू का विज्ञान जानने वाला
'नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च'
वाज.सं. १६,४३; तै.सं. ४.५.८.२; का.सं. १७.१५

सिकता – (१) कस् (सिकस्ना) + क्त = कसिता = सिकता = बालू (२) सेचन द्रव्य, बालू, (३) बालू के समान रुक्ष पदार्थ
'पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च !
ऋ. ७.१०९.२

सिकतावली – (१) रजोधर्म की नाड़ी (२) उम्र में बड़ी स्त्री
'परि वः सिकतावती'
अ. १.१७.४

स्निक – (१) तेजस्वी ।
'ये त्वा देवो स्निकं मन्यमानाः
पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः'
ऋ. १.१९०.५
धनी होते हुये भी भोगप्रधान पापों से जीर्ण एवं पापरत जो तुझ कल्याण कारी एवं तेजस्वी को अपमानित करते हुए (ये पज्राः पापाः त्वा भद्रं स्निकं मन्यमानाः) अपने ही लिये जीते हैं और परोपकार में धन नहीं लगाते (उपजीवन्ति)

सिक्त – (१) सींचा हुआ । (सिञ्च् + क्त)
'कोशेन सिक्तमवतं न वंसगः'
ऋ. १.१३०.२
मेघ से सींचे जलाशय को प्यासा बैल जलपान करता है।

स्फिग्य – (१) प्रजोत्पादन योग्य अर्द्धांगिनी
(२) प्रतिकार योग्य प्रजाजन
'सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा'
ऋ. ८.४.८; साम. २.९५६

सिच् – (१) सेंक, (२) वस्त्र, (३) वीर्य
'सेचन द्वारा उत्पत्ति'
(४) राज्याभिषेक
(५) वस्त्र पाना
'पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे ते'
ऋ. ३.५३.२

(६) वस्त्र
'मातापुत्रं यथा सिचा '
ऋ. १०.१८.११; अ. १८.२.५०; ३.५०; तै.आ. ६.७.१.
(७) वस्त्र की कियारी
'ये अन्ता यावती सिचः '
अ. १४.२.५१
(८) सेनापङ्क्ति
'अमित्राणाममू सिचः '
अ. ११.९.१८; १०.२०
(९) वस्त्रांचल, आंचल
(१०) अभिषेक क्रिया

सिचौ – द्वि.व.। जल बरसाने वाले वायु और मेघ
'उद् यंयमीति सवितेव बाहू
उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् '
ऋ. १.९५.७
सूर्य जिस प्रकार वृष्टि करने वाले वायु और मेघ दोनों को अपने वश करता हुआ ऊपर उठाता और नियम में रखता है, उसी प्रकार जो नेता सेना नायक भयङ्कर होकर दोनों की शस्त्र वर्षणकारी सेनाओं को दो बाहुओं के समान युद्ध के लिए उद्यत करता है ।

सिञ्चत – उत्सिञ्चत (उत्सिक्त करो) ।

सित – (१) कष्टों, अज्ञानों, या दुःखों से घिरा हुआ,
(२) बंधा हुआ
(३) शुल्क, उज्ज्वल ।
'सितमिति वर्णनाम '
अवदातः सितो गौरः '
–अभिधान कोष

स्वित– (१) सुख से गुजरने वाला जीवन
'शरद् वर्षाः स्विते नो दधात '
अ. ६.५५.२
(२) उत्तम मार्ग
'स्विते मा धाः '
वाज.सं. ५.५; गो.ब्रा. २.२.३, श.ब्रा. ३.४.२.१४; आश्व.श्रौ.सू. ४.५.३; वै.सू. १३.१८

स्वित्– अव्यय । निश्चयार्थक । ही
'अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत् त इन्द्र
न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः '
ऋ. ६.१८.३

स्विद् – अ. । निश्चयार्थक, ही
'अरिरग्ने तव स्विदा '
ऋ. १.१५०.१; साम. १.९७; नि. ५.७
हे अग्ने, तेरा ही सेवक मैं...

सिध्मः – (१) सिध् (गत्यर्थक) + मक् = सिध्म ।
वेगवान् प्रहार
'अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्'
ऋ. १.३३.१३; मै.सं. ४.१४.१३:२३७.१३; तै.ब्रा. २.८.४.४
इस विद्युत् का सब तरफ जाने वाला वेगवान् प्रहार छिन्न भिन्न करने योग्य मेघों तक पहुंचता है ।
(२) शत्रुओं का साधयिता या साधक वज्र ।
'अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्'
ऋ. १.३३.१३.
इस इन्द्र का शत्रुओं का साधयिता या साधक वज्र (सिध्मः) शत्रुओं को लक्षित कर गया (शत्रून अभि अजिगात्) ।
(३) सधा हुआ – दया. (४) साधक –सा.
(५) तीव्र वेग से जाने वाला साधन
'सिध्मास्तारकाः '
वाज.सं. २४.१०; मै.सं. ३.१३.११: १७०.११; आप.श्रौ.सू. २०.१४ .६

सिध्मल – (१) त्वचा रोग का रोगी (२) सुख–साधक पदार्थों से युक्त पुरुष
'विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलम् '
वाज.सं. ३०.१७

सिध्र – (१) जाने वाला पथिक
'दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा'
ऋ. १.१७३.११
(२) सिध् (सिद्ध करना) साधना) + रक् = सिध्र । साधक ।
'सिध्रमद्य दिविस्पृशम् '
ऋ. १.१४२.८; २.४१.२०; तै.सं. ४.१.११.४; मै.सं. ४.१०.३:१५० .१४; आप.श्रौ.सू. १७.७.४; नि. ९.३८
स्वर्गादि के साधक (सिध्रम्) तथा देवों के लोक में, पहुंचाने वाले यज्ञ को (दिविस्पृशम्) ।

स्त्रिध्र – (१) दुःखजनक पाप,
'पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्त्रिधः '
'अवयाता सदमिद् दुर्मतीनाम्'
ऋ. १.१२९.११
हे इन्द्र, तू ही दुःख जनक पाप से बचा (स्त्रिधः) । तू दुष्ट जनों को सदा ही (सदमित्)

नीचे गिरा देने वाला है ।
(२) हिंसक ।
'तितिर्वांसो अति स्रिधः '
ऋ. १.३६.७
(३) निन्दित आचार विचार वाला
'अति निहो अति स्रिधः '
अ. २.६.५; वाज.सं. २७.६; तै.सं. ४.१.७.२; मै.सं. २.१.७.७; मै.सं. २.१२.५:१४९.४; का.सं. १८.१६

स्रिधत् – नष्ट हो । स्रिध् 'नष्ट होना अर्थ में आया है ।
'मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः '
ऋ. ७.३४.१७; नि. १०.४५
इस यज्ञ की कामना वाले यजमान का यज्ञ विनष्ट हो ।

स्विध्मा – सु + इध् + मविन् = स्विध्मन् । प्र.ए. में स्विध्मा । (१) उत्तम दीप्ति वाला सूर्य, (२) जिससे सुन्दर सुख का प्रकाश होता है–दया. । दे. 'वनधिति ' ।

सिनम् – (१) अन्न, (२) उत्तम राज्य प्रबन्ध ।
'यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत् '
ऋ. २.३०.२
(३) सिञ् (बन्धनार्थक) + म्नक् = सिन । सिनम् अन्नम् भवति सिन अन्न को कहते हैं, क्योंकि अन्न जीवो को बोधता है–धारण करता है (सिनाति भूतानि) ।
'इमा उ वां भृमयो मन्यमानाः
युवावते न तुज्या अभूवन्
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वाम्
येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः '
हे इन्द्र और वरुण, भ्रमणशील तथा स्तुति करती हुई (भृमयः मन्यमानाः) आप दोनों की (वाम् इमाः) यजमानों को अभिमत अर्थ देने में समर्थ न हुई (तुज्यः न अभूवन्) । इसी से कहता हूं कि आप दोनों का यह यश या ख्याति कहां है (व्यत् वाम् यशः क्व) जिससे तुम इन स्तुतियों से स्तुत होकर समान ख्यान यजमान को (सखिभ्यः) पहले अन्न देते थे (सिनम् भरथः स्म) ।
स्वा–दयानन्द का अर्थ–हे दीप्यमान प्रधानमन्त्री तथा निर्वाचित राजा, ये तुम्हें मानने वाली तुम्हारी भ्रमणशील प्रजाएं (उ इमाः मन्यमानाः भृमयः) यौवन वाले तथा प्रबल शत्रु के लिए (युवायते) हिंसनीय न हो (तुज्याः न अभूवन्) । तुम्हारा वह यश कहा है (वाम् त्यत् यशः क्व) जिस से मित्रों के लिए (सखिभ्यः) अन्न लाते थे (सिनं भरथः स्म्) ।
(४) परस्पर प्रेम बांधने वाला बल और अन्न ।
'येन स्मां सिनं भरथः सखिभ्यः '
ऋ. ३.६२.१; नि. ५.५.
(५) नाना व्यवस्थाओं में बांधने वाला परमेश्वर
(६) वृत्ति अर्थ या अन्न से बांधने वाला स्वामी ।
'रथं न तष्टेव तत्सिनाय '
ऋ. १.६१.४; अ. २०.३५.४
(७) हृदय का प्रेमी आनन्द मय, रसमय

सिन्धवः – (१) जल धाराएं, (२) नदियां, (३) बन्धन में बंधे जीवगण
'ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति '
ऋ. २.२८.४

सिनीवाली – सिनीवाली कुहू इति देवपत्न्य इति वैरुक्ताः अमावास्या इति याज्ञिकाः या पूर्वा अमावस्या सा सिनीवाली । या उत्तरा सा कुह इति विज्ञायते । (१) अर्थात् सिनी वाली कुहु है या (२) देवपत्नियां हैं यह नैरुक्तों का मत है (३) याज्ञिक इसे अमावस्या बताते हैं। पहली अमावास्या दृष्टेन्दु है और उसे 'सिनीवाली ' कहते हैं और जो दूसरी है वह कुहू कहलाती है (नष्टेन्दुकला) । (४) अमर कोष में भी कहा है –
'सा दृष्टेन्दु सिनीवाली
सा नष्टेनदुकला कुहूः '
चतुर्दशी का अन्तिम प्रहर और अमावस्या के आठ प्रहर–यही नव प्रहर, चन्द्रमा के क्षप का काल है। उनमें प्रथम दो प्रहरों में चन्द्रमा की सूक्ष्मता और अन्तिम दो प्रहरों में सम्पूर्णतः क्षय हो जाता है । इसी से अमावस्या का प्रथम प्रहर सिनीवाली और अन्तिम दो प्रहर कुहू तथा बीच के प्रहर 'दर्श ' कहलाते हैं । अतः अमावस्या के तीन भाग हैं –
प्रथम प्रहर–सिनीवाली
बीच के प्रहर – दर्श । अन्तिम दो प्रहर –कुहू
(६) प्रथम प्रहर में चन्द्रमा सूक्ष्मरूप से द्रष्टव्य

है उसे सायण ने दृष्ट चन्द्रा अमावस्या कहा है। (७) ऋतु गम्या पत्नी-दया. । दे. 'दिदिड्ढि
'सिनीवालि पृथुष्टुके '
ऋ. २.३२.६; अ. ७.४६.१; वाज.सं. ३४.१०; तै.सं. ३.१.११.३; मै .सं. ४.१२.६:१९५.४; का.सं. १३.१६; वै.सू. १.१४; साम.मं. ब्रा. २.६.२; नि. ११.३२
हे दृष्टचन्द्रा अमावस्या, हे विस्तीर्ण केश कलाप वाली या विस्तीर्ण जंघों वाली या विस्तीर्ण केश कलाप वाली या अत्यन्त पूजनीय (पृथुष्टुके) ऋतुगम्या स्त्री (सिनीवालि)-दया.
(८) सिनी का अर्थ अन्त है और 'वाल ' का अर्थ पर्व, गांठ, ग्रन्थि, गिरह ।
(सिनम् अन्नं भवति सिनाति भूतानि । वालं पर्व वृणौतेः तस्मिन् अन्नवती वालिनी वा । वालेन इव अस्याम् अणुत्वात् चन्द्रमसः सेवितव्यः भवति इति वा ।)
इस अमावास्या के प्रथम प्रहर में अणु के सदृश्य दृश्यमान चन्द्रमा रहते हैं अतः वह सिनीवाली है ।
(९) सिञ् (बन्धनार्थक) + नक् = स्निन्, सिन + ई = सिनी (न के अ का लोप) । अर्थ- अन्नवती । चन्द्रमा की रश्मियों से ही अन्न का गर्भ सम्भव होता है ।
वाल पर्व को या उत्सव तिथि को या सन्धि समय को कहते हैं । अमरकोष में-
तिथि भेदे क्षणे पर्वे और हैम कोष में-
'पर्व प्रस्तारोत्सवयोः
पन्यौ विषुवदादिषु
दर्श प्रतिपत्सिन्धौच
तिथिग्रन्थविशेषयोः '
ऐसा आया है ।
(१०) वृ + वनिप् = पर्वन् (बाहुलक से) । उस पर्व में यह अन्नवती होती है अतः यह सिनीवाली कहलायी ।
'वाले सिनी ' - इस समास में 'राजदन्त ' के समान 'सिनीवाली ' रूप हो गया । ङीष् प्रत्यय जोड़ा गया है ।
अथवा सिनी च असौ वाली च इति सिनी वाली (यह अन्न वाली भी है और बालवाली भी है) ।
(११) अथवा यह औपमिक नाम है- बाल अर्थात् केश के सदृश अति सूक्ष्म होने के कारण यह सेवितव्य है । चन्द्रमा अत्यन्त सूक्ष्म होता है ।
(१२) अथवा वालेन इव सीव्यते इति सिनी वाली (पृषोदरादिवत्) (१३) उत्सव में प्रशस्त अन्न बनाने वाली द्विजपत्नी । सिनी का अर्थ है - प्रशस्त अन्न वाली (प्रशस्त अन्नवती वाले उत्सवे या सा सिनीवाली) ।
(१४) अथवा इस पत्नी में बाल की तरह सूक्ष्म इडा नाड़ी सेवनीय होती है । जब पत्नी की इडा नाड़ी में प्राण संचार कर रहे हों उस समय गर्भाधान करने से अवश्य सन्तान होती है ।
(१५) एकमात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए जिससे संभोग किया जाता है उस देव-पत्नी को सिनीवाली कहते हैं ।
सेवनीया-सेवनी-सेनी-सिनी ।
(१६) ऋतुकालभवा नारी पञ्चमेऽह्नि यदा भवेत्
'सूर्यचन्द्रमसोर्योगे सेवनात् पुत्रसंभवः '
शिवस्वरोदय - २८६
'ऋत्वारम्भे रविः पुंसाम्
स्त्रीणां चैव सुधाकरः
उभयोः संगमे प्राप्ते
वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात्
शिवस्वरोदय-२९१ '
(१७) समस्त प्राणियों को अपने में बांधने वाली और सब को चेतना रूप से वरण करने वाली प्राणशक्ति
सिनीवाली अन्न के बल पर सब इन्द्रियों को बांधती हैं ।
'सिनीवाली नयत्वाग्रमेषाम् '
अ. २.२६.२
(१८) बन्धन में बान्धने वाली और पुरुष को वरण करने वाली स्त्री ।
'गर्भ धेहि सिनीवालि'
ऋ. १०.१८४.२; अ. ५.२५.३; श.ब्रा. १४.९.४.२०; बृह.आ.उप. ६.४.२०; साम.मं.ब्रा. १.४.७; गो.गृ.सू. २.५.९; आप.मं.पा. १.१२.२; पा.गृ.सू. १.१३.
(१९) अन्न प्रदान करने वाली स्त्री, गौ या पृथिवी
'सिनीवाल्युयावहत्'

अ. १९.३१.१०

सिन्धु – स्यन्दू (स्यन्द्) + उ = सिन्धु (स्य के य का सम्प्रसारण से इ और 'न्द' के द् का ध्)। स्यन्दति इति सिन्धुः। सिन्धुः स्रवणात् (स्रवणार्थक स्यन्द धातु से सिन्धु बना है)। विश्व कोश में भी लिखा है–

'शिन्धुः समुद्रे नद्याञ्च
नदे देशे भदानयोः'

अर्थ (२) नदी, स्रोत, सिन्धु नामक नदी, (३) शतन्दु (सजलज) – सा.। दे– 'अच्छ'

'प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषा
अवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः'

ऋ. ३.३३.५; नि. २.२५

मैं कुशिक का पुत्र (विश्वामित्र) बड़ी महत्वाकांक्षा से प्रेरित हो अपनी रक्षा का इच्छुक शतद्रु के समक्ष जोर देकर बुलाता हूँ।

'सुदेवो असि वरुण
यस्य ते सप्तसिन्धवः
अनुक्षरन्ति काकुदं
सूर्म्यं सुषिरामिव।'

ऋ. ८.६९.१२

हे वरुण, तू शोभन देव है जिस तेरे तालु से (यस्य काकुदम् अनु) सात नदियां या स्रोत या प्रथमा आदि सात विभक्तियां बहती हैं (सप्त सिन्धवः क्षरन्ति) जैसे सुन्दर छिद्र वाले लोहे की नली से होकर जल बहता है (सुषिराम् सूर्म्यम् इव)।

सूर्मि – (१) कल्याणोर्मि –यास्क (२) सुन्दर ऊर्मि वाला स्रोत

नगरोदक – निस्सरण मार्गदुर्ग (३) स्थूण अयस् (लोहा) जैसे सूर्मि स्थूणायः

(४) रश्मि–जाल–सा। उक्त ऋचा का अन्य अर्थ है–अज्ञान नाशक विद्वन् (वरुण), तू सुदेव है जिसके तालु में सात शब्द नदियों के रूप में स्थित विभक्तियां। जैसे सुछिद्र नाली में जल सुगमतया बड़े प्रवाह से बहता है (सुषिरां सूर्म्यम् इव अव क्षरन्ति) एवं निरन्तर धारा रूप में प्रवाहित हो रही है।

पतञ्जलि का अर्थ जो महाभाष्य में दिया गया है–

हे वरुण, तू सत्य देव है जिस के तालु में सात विभक्तियां हैं। सुछिद्र लौह प्रतिमा में जलती हुई आग चारों तरफ के छिद्रों से प्रकाशित होती हैं वैसे ही प्रकाशमान हो रही हैं।

(४) जल। जल स्यन्दमान है।

(५) राजा के विचलित होने से प्रजाएं भी विचलित हो जाती हैं अतः वे सिन्धु हैं।

'ता वो नामानि सिन्धवः'

अ. ३.१३.१; तै.सं. ५.६.१.२; मै.सं. २.१३.१:१५२.८; का.सं. ३९.२;

(६) सबको अपने साथ बांधने वाला, (७) सब के पापों को दूर करने वाला–सब को प्रेरित करने वाला प्रभु, (८) जिसमें समस्त प्राण आकर लय हो जाते हैं वह आत्मा।

'अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरः'

ऋ. १०.७५.४

(९) गतिशील पदार्थ, (१०) प्राण, (११) सबका बन्धक आदित्य

'तद् यद् एतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः'

जै.उप. १.२९.९

'प्राणो वै सिन्धुश्छन्दः'

श.ब्रा.

'जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायत्'

ऋ. १.१६४.२५; अ. ९.१०.३

(१२) स्यन्दन शील यज्ञ–सागर

(१३) सबका आश्रय भूत परमेश्वर

'सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणम्'

ऋ. ९.८६.४३; अ. १८.३.१८; साम. १.५६४; २.९६४

(१४) नदी नहर का निर्माण, विरोध एवं उदक द्वारा गमनागमन

'सिन्धुश्छन्दः'

वाज.सं. १५.४; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७:१११.१३; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.४.२.४

सिन्धुपती – द्वि.व.। (१) मित्रावरुण (२) वेग से जाने वाले अश्वों, समुद्र, प्रजाजनों, सैन्यों या प्राणों के पालक।

'सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्'

ऋ. ७.६४.२

सिन्धुपत्नी – निरन्तर प्रवाह को पालने वाली सदा बहार नदी

'सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः'

अ. ६.२४.३

सिन्धुमातरः – मेघों के समान जल बनाने वाले मरुत् या मानव
'ग्रावाणो न सूरयः सिन्धु मातरः'
ऋ. १०.७८.६

सिन्धुमातरा – (द्वि.व.) । (१) जिन की उत्पत्ति सिन्धु या आकाश से हुई हो, (२) सूर्य और चन्द्रमा, (३) अश्विद्वय । दे. 'मनोतरा'
(४) देह की सभी रक्तवाहिनी नाड़ियों या प्राणों को प्रवाहित करने वाले-उन्हें ठीक से संचालित करने वाले प्राण अपान
'या दस्रा सिन्धुमातरा'
ऋ. १.४६.२; साम. २.१०७९

सिन्धुमाता – (१) प्रवाह में बहते जलों को अपने भीतर लेने वाली (२) सिन्धुनदी
'सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता'
ऋ. ७.३६.६

सिन्धुराज्ञी – निरन्तर प्रवाह से शोभने वाली नदी
'सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः'
अ. ६.२४.३

सिन्धवाहसा – (१) प्रवाह से बहने वाली नदी के द्वारा अपनी नौका को ले जाने वाले केवट (२) सिन्धुवत् प्रवाह से ज्ञान प्रदाता गुरु
'सुषुम्ना सिन्धुवाहसा'
ऋ. ५.७५.२; साम. २.१०९४

सिन्धुसृत्य – शरीर की नाड़ियों को गति शील करने योग्य
'पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः'
अ. १०.२.११

सिन्धूनाम् अग्ने – (१) देह में बहने वाली

सिन्धूनाम् अग्ने – (१) देह में बहने वाली रक्त धाराओं के भी पूर्व विराजने वाला – आत्मा
'अग्ने सिन्धूनां पवमानो अर्षति'
ऋ. ९.८६.१२; साम. २.३८३

सिन्धूनां प्राणः – निरन्तर विषयों में बहने वाले इन्द्रियों का मुख्य प्राणरूप आत्मा
'प्राणः सिन्धूनाँ कलशां अचिक्रदत्'
अ. १८.४.५८

स्तिपा – (१) स्तिपाः स्तिपा पालकाः उपस्थिसान् पालयति इति वा (जल की रक्षा करता है या उपस्थित जल के पीने वालों का जो पालन करता है वह स्तिपा है)– यास्क
(२) सायण ने इसका, अर्थ–'पस्त्यपाः स्तिपाः'(गृह का पालन करने वाला) किया है। 'पस्त्य' का अर्थ गृह है । अमर कोष में भी कहा है ।
'निशान्त पस्त्य सदनं
भवनागार मन्दिरम्'
(३) अथवा – 'उपस्थितान् ज्योतिष्टोमादि यज्ञान् पालयति इति उपस्थितपाः (जो उपस्थित ज्योतिष्टोमादि यज्ञों का पालन करता है वह 'उपस्थित पाः') है । उपस्थितपाः से ही 'स्तिपाः' बन गया है ।
(४) समुद्र, (५) न्याय के लिए उपस्थितों का रक्षक
'यं त्वा पूर्वमीडितो वध्र्यश्वः
समीधे अग्ने स इदं जुषस्व
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा
दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे'
ऋ. १०.६९.४
हे अग्नि, स्तोता या सभी महर्षियों से स्तुत मेरे पिता वध्र्यश्व ने (ईडितः वध्र्यश्वः) जो पहले तुझे सम्यक् प्रकार से हवियों द्वारा दीप्त किया (पूर्व यं त्वो समीधे) वह तू मुझ से दीप्त किए जाकर इस स्तोत्र या हवि का आस्वादन कर (स इदं जुषस्व) और तू कूप के सदृश हमारा अंगरक्षक बन (नःस्तिपा उत तनूपाः) तथा प्रदेय धन या हवि की रक्षा कर (दात्रं रक्षस्व) जो तेरा अपना बन कर रखा हुआ है (यत् इद् ते अस्मे)।
अन्य अर्थ – हे राजन्, जिस तुझ को पूजित जितेन्द्रिय गुरु ने ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या से प्रकाशित किया है (पूर्वम् समीधे) वह तू इस राष्ट्र का सेवन कर (स इदं जुषस्व) और वह तू समुद्रादिक की तरह पालन करने वाले या न्याय के लिए उपस्थितों का रक्षक (स नः स्तिपाः) और हमारे शरीरों की रक्षा करने के लिए हो (उत तनूपाः) ।
(६) घरों का पालक ।
(७) द्वि.व.। ष्टयै (संघात अर्थ में) से 'स्ति' शब्द बना है । स्तीन पाति इति स्तिपाः ।
मित्रावरुण विशेषण
(८) संघों की रक्षा करने वाले

'ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितृणाम् '
ऋ. ७.६६.३

सिम – सर्वनाम । सिमशब्दः सर्व पर्यायः सिम शब्द सर्व का पर्याय है । अर्थ है–सब, सभी । दे– 'आत '
'आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२;तै.ब्रा. २.८.७.२;नि. ४.११
तुरत (आत्) रात्रि (रात्री) सभी के लिए (सिमस्मै) अन्धकार फैला देती है (वासः तनुते) ।
(२) सर्वसाधारण, सब कोई
'तमित् पृच्छन्ति
न सिमो वि पृच्छति'
ऋ. १.१४५.२
(३) प्रजाओं को प्रबन्ध व्यवस्थाओं द्वारा और शत्रुओं को वध, बन्धन, सन्धि आदि से बांधने वाला–परमेश्वर, इन्द्र, राजा । दे. 'गोजिता '
(४) सर्वश्रेष्ठ
'सिमा पुरू नृषूतो असि'
ऋ. ८.४.१,अ. २०.१२०.१, साम. .१.२७९, २.५८१

स्रिम – सृ + मन् । सरणशील, लफंगा, लु छिपकर भागने वाला
'ककुभाः करुमाः स्रिमाः
अ. ८.६.१०

सिमा – (१) विवाह बन्धन में बद्ध स्त्री, (२) बद्ध
'सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः'
वाज.सं. २३.३७

स्तिय – (१) अप्, (२) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु
'नेता सिन्धूनां वृषभस्तियानाम्'
ऋ. ७.५.२

स्तिया – स्त्यै (शब्द करना और संघात) + विच् = स्त्या = स्तिया (ऐ का अ) और इ का आगम) ।
अर्थ – (१) आप् जल स्तिया आपो भवन्ति स्त्यायनात् (हिम रूप में संहित होने से जल का नाम 'स्तिया ' पड़ा) ।
(२) संघीभूत –सा.
संघीभूत जल या और पदार्थ भी हो सकता है ।
'वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्याः
वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय
स्वादू रसो मधुपेयो वराय'
ऋ. ६.४४.२१
हे इन्द्र, तू द्युलोक का हवियों से या जल से सिञ्चन करने वाला है और पृथ्वी के मनोरंजनों को बरसाने वाला है । इसी प्रकार तू स्यन्दन शील नदियों का वर्षाद्वारा पूरयिता है तथा संघीभूत या जमे हुए जल को बरसाने वाला है ।
(दिवः वृषा असि, पृथिव्याः वृषभः, सिन्धूनां वृषा, स्तियानां वृषभः) हे कामाभि वर्षक इन्द्र, तुझ श्रेष्ठ बरसाने वाले के निमित्त (ते वराय वृष्णे) स्वादिष्ट रसपूर्ण मधु के सदृश मेघ यह सोमरस पुनः पुनः बढ़ता है (स्वादुरसः मधुपेयः इन्दुः पीपाय) ।
अन्य अर्थ– हे विद्वन्, तू सूर्य का वर्षक है, पृथ्वी का वर्षक है, नदी तथा समुद्रों का वर्षक है और जलों का वर्षक है । (स्तियानां वृषभः) ।
हे वृष्टि कर्ता, तुझ बलवान् और श्रेष्ठ के लिए (ते वृष्णे वराय) स्वादु और मधु समान पेय ऐश्वर्यरस सदा बढ़ता है ।
पृथिवी आदि की विद्या जानने वाला तथा उनका उपयोग करने वाले ऐश्वर्य शाली होता है ।
(३) संघ बनाकर रहने वाली सेना
ऋ. ६.४४.२१

स्थिर – (१) स्थिर, स्थायी रूप से विद्यमान
'य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः'
ऋ. १.१०१.४; नि. ५.१५
(२) स्थिर रखा हुआ
'स्थिरा चिदन्ना निरिणा त्योजसा'
ऋ. १.१२७.४
जैसे आग पर रखे अन्नों को अग्नि अपने तेज से उबाल डालता है ।
(३) कठोरचेता, (४) मेघ वृन्द
दे. 'द्यावापृथिवीः '
'शृणाति वीडु रुजति स्थिराणि'
ऋ. १०.८९.६
परमात्मा या इन्द्र का मन्यु
कठोर चेताओं मेघों को भग्न करता है ।

स्थिरति – स्थिर होता है । 'स्थिर ' धातु नैरुक्त है ।

स्थिर – नैरुक्त धातु । अर्थ है-स्थिर होना । जैसे-स्थिरति

स्थिरधन्वा – स्थिर + धनुष् + अनङ् = स्थिरधन्वन् । प्र. ए.व. में स्थिरधन्वा रूप है । अर्थ-स्थिर धनुष वाला (२) रुद्र का विशेषण, दे. 'आयुध'

'इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः'

ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.६.८; नि. १०.६.

स्थिरधन्वा रुद्र के लिए इन स्तुतियों को अर्पित कर ।

(२) दृढ़ धनुष वाला

स्थिरपीत – (१) पीतं मधुयस्य हृदये स्थितं भवति स स्थिरपीतः (जिसके हृदय में पिया हुआ मधु स्थिर रहे वह स्थिर पति है) ।

(२) चौदह विद्यास्थानों में कुशल एवं वेद रूपी वाणी के संख्य में स्थिरतापूर्वक वेदोक्तार्थरूपी अमृत का पान करने वाला विद्वान् । दे. 'अयुष्या'

'उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः
नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु'

ऋ. १०.७१.५; नि. १.२०

जो स्थिरपीत विद्वान् है उसे विद्वानों की सभा में भी कोई नहीं हरा सकता ।

सिरा – (१) नदी की धारा, (२) शरीर की सिरा

'त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु
महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम्'

ऋ. १.१२१.११

तू चारों तरफ फैले हुए (आशयानम्) और अपने को घेरने वाले वृत्र या मेघ को बड़े भारी अन्धकार नाशक प्रकाश या विद्युत् से नदी धाराओं में सुला देता है (सिरासु सिष्वपः) ।

स्थिराः – धर्म और लोक यात्रा में स्थिर चित्त

'स्थिरा चिज्जनीर्वहते सभागाः'

ऋ. १.१६७.७

सिरी – (१) हल आदि स्थूल साधन (२) नस नाड़ियों का बन्धन

'सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः'

ऋ. १०.७१.९

सिलाची – लाख, लाह, लाक्षा नामक ओषधि

'सिलाची नाम वा असि'

अ. ५.५.१

सिलाञ्जाला – सिल । अञ्ज + आला, कण कण परमाणु में व्यापक, जगत् के व्यक्त करने में समर्थ ब्रह्मशक्ति- ज.दे.श.

(२) सस्य विशेष की मञ्जरी-सा.

'सिलाञ्जालास्युत्तराः'

अ. ६.१६.४

सिलिक् मध्यमः – (१) शीर्षमध्यमः संलग्नमध्यमः । दया.(२) कृश पेट वाला, (३) अपने बीच मुखिया को रखने वाला, (४) योगी जिसका मध्यम भाग कृश होता गया हो ।

(४) मध्ये निविडः-सा. (६) संश्लिष्टोदर, निरुद्र -उवट

(७) कृशोदर-महीधर

सिलिकमध्यमासः – सिलिक मध्यमाः संसृत मध्यमाः शीर्षमध्यमाः (जिनके मध्यम भाग संसृत या संश्लिष्ट हो)।

निरुक्त 'शीर्षमध्यमाः से ही 'सिलिकमध्यमाः' का होना मानता है ।

अर्थ – (१) सायण ने सिलिक का अर्थ संश्लिष्ट अर्थात् एक से एक सटा हुआ माना है । यहां सिलिकमध्यमासः सूर्य के घोड़ों के विशषण के रूप में प्रयुक्त है ।

सूर्य के चार घोड़ों में मध्यम के तीन एक से एक सटे हैं- 'सिलिक' है-सा.

(२) चारों तरफ से मिलने वाली । दे-'अज्म'

(३) स्वा. दयानन्द ने इसे सूर्य की रश्मियों का विशेषण माना है । सूर्य की रश्मियों के मध्यम प्रदेश क्रमशः संसृत या सरके हुए होते हैं ।

(४) 'शीर्ष मध्यमाः' (जिनके मध्यम में शीर्ष सा सूर्य हो) से ही 'सिलिक मध्यमासः' हो गया है । आदित्य रश्मियों का मध्मय है या सभी प्राणियों में आदित्य अनुप्रविष्ट है । शीर्ष-शीर्षक-सिलिक अथवा सृत-सृतक, सिलिक ।

(५) आत्मा (Soul)। आत्मा सभी प्राणियों में अनुप्रविष्ट है ।

स्थिविमन्तः – स्थिर स्थिति वाले सात प्राण और वाक्

'नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन्'

ऋ. १०.२७.१५

सिवीमन् – समीमन् । अर्थ-(१) प्रसव, (२) अभ्यनुज्ञान ।दे. ' सवीमनि '

स्थिवी – (१) स्थिर पृथिवी, (२) स्थिर, स्थायी, जितेन्द्रिय पुरुष ,
'निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः '
ऋ. १०.६८.३; अ. २०.१६.३

सिषक्तु – सेवताम् (सेवा करे) । 'षच् ' (सेवन करना, सेचण करना अर्थ में पाणिनि ने प्रयुक्त किया है ।
निरुक्त ने 'सिषक्तु सचते' इति सेवमानस्य ('सिषक्तु' और 'सचते' का अर्थ 'सेवा करना ') किया है । यहां 'षच् ' धातु का द्वित्व वैदिक है ।
अर्थ- (१) सेवा करना, (२) सिक्त करे । दे. 'इडां
'सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः '
ऋ. ५.४१.२०; नि. ११.४९
हमारे अन्नों की पुष्टि के लिए जल दे ।
'यो रेवान् यो अमीवहा
वसुवित् पुष्टि वर्धनः
स नः सिषक्तु यस्तुरः । '
ऋ. १.१८.२; वाज.सं. ३.२.९; मै.सं. १.५.४:७०.१६; का.सं. ७.२ ; श.ब्रा. २.३.४.३५; आप.श्रौ.सू. ६.१७.१२;
हे ब्रह्मणस्पति, जो धनवान् है (यः रेवान्), जो तेरा रोग भगाने वाला है (अमीवहा) जो अपूर्व धन का भी लब्धा है (वसुवित्) और जो पुष्टि, स्वास्थ्य, या धन को बढ़ाने वाला है (पुष्टिवर्धनः) और जो किसी कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने वाला है (यः तुरः) वह हमें सेवे (स नः सिषक्तु) ।

सिष्वदत् – उत्तम स्वादयुक्त बनावे
'अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् '
ऋ. १.१८८.१०

सिषासत् – (१) सेवा करने की इच्छा करता हुआ
'सिषासन्तो वनामहे'
ऋ. ८.९५.६; ९.६१.११; आ. सं. १.८; साम. २.२८; २३५; वाज.सं. २६.१८

सिषासत् – (१) भजन सेवन की इच्छा वाला
'शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते '
ऋ. ८.३.११

सिषासन् – (१) प्राप्त, होता हुआ, (२) भजन या सेवन करता हुआ
'सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुम् '
ऋ. १.१४६.४
(३) विभाग करने की इच्छा करता हुआ, (९) ऐश्वर्येच्छुक
'याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतम्
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् । '
ऋ. १.११२.५
जिन ज्ञान रक्षा आदि उपायों से ज्ञानवान् और ऐश्वर्य के इच्छुक बुद्धिमान् पुरुष को या कण्व को आगे बढ़ाते हो उन उपायों से हमें भी प्राप्त होओ ।

सिषासन्ती – (१) समस्त ऐश्वर्यों का सेवन करती हुई कुलवधू या उषा
'सिषासन्ती द्योतना शश्वदागात् '
ऋ. १.१२३.४
(२) संभजन या सेवन करने की इच्छा करने वाली प्रजा

सिषासुः – (१) संभजनेच्छुक । (२) भजन करने वाला । भक्तगण, (३) शरणर्थी (४) ऐश्वर्य का इच्छुक ।
दे- 'अवस्यु '।

स्विष्ट – सु + इष्ट । (१) सुव्यवस्थित, सुचालित -यज्ञ
'स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् '
ऋ. १.१६२.५; वाज.सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६.१ :१८२.७; का.सं. (अश्व.) ६.४
(२) उत्तम आदर पद को प्राप्त
'स्विष्टा देवाः आज्य पाः '
वाज.सं. २१.५८; मै.सं. ३.११.५:१४८.६; तै.ब्रा. २.६.१४.६

स्विष्टकृत् – (१) क्षत्रं वै स्विष्ट कृत्
श.ब्रा. १२.८.३.१९
(२) सुव्यवस्थित राष्ट्र के संचालन की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाला सर्वाश्रय क्षत्रपति
(२) यज्ञ की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाला अग्नि
'होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतम् '
वाज.सं. २१.४७

'तपः स्विष्टकृत्'
श.ब्रा. ११.२.७.१८
'अयमेवावाङ्प्राणः स्विष्टकृत्'
श. ११.१.६.३०
'वास्तु स्विष्ट कृत्'
श.ब्रा. १.७.३.१८
'प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत्'
ऐ.ब्रा. २.१०
'यद्धै यज्ञस्या न्यूनातिरिक्तम्। तत् स्विष्टम्।'
श.ब्रा. ११.२.३.९
क्षत्रं वै स्विष्टकृत्। क्षत्रेणैव एनम् एतत् अभिषिञ्चति। सोमो वै वनस्पतिरग्निः स्विष्टकृत्। अग्नीषोमाभ्यामेवैनयेतत् परिगृह्याभिषिञ्चति। तस्मात् ये जैते विग्रः ये च न, त आहुः
'क्षत्रियो वाव क्षत्रियस्याभिषेक्ता।'
श.ब्रा.
(३) उत्तम यज्ञों या परिमित कार्यों का कर्त्ता
'देवो अग्निः स्विष्टकृत्'
वाज.सं. २१.५८;२८.२२;४५; मै.सं. ३.११.५; १४८.३; ४.१०.३; १५१. ६;४.१३.८: २११.३;का.सं. १९.१३; २०.१५;श.ब्रा. २.२.३.२५; तै.ब्रा. २.६.१०.६: १४.६: २०.५: ३.५.९.१;६.१३.१: १४.३; आश्व.श्रौ.सू. १.८.७; शां.श्रौ.सू. १.१३.३.

सिषाषुः – सबको आरोग्य देना चाहती हुई
'सिषासवः सिषासथ'
अ. ६.२१.३

सिष्विदानः – (१) सब से स्नेह करता हुआ, (२) सबको बन्धन से छुड़ाता हुआ
'यस्त इध्मं जभरत् सिष्विदानः'
ऋ. ४.२.६; तै.आ. ६.२.१.

स्विष्टि – उत्तम पुण्य कार्य
'स्विष्टि नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा'
अ. २.३५.१; तै.सं. ३.२.८.३; मै.सं. २.३.८:३६.१७

स्विषुः – उत्तम बाणों वाला
'तमुष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा'
ऋ. ५.४२.११

सिष्णुः – (१) प्रत्याहुत, घृत से सेचने योग्य, (२) यज्ञ द्वारा
जगत् में वर्षा द्वारा सेचण करने वाला-अग्नि
'इन्धानः सिष्णवा ददे'
ऋ. ८.१९.३१; साम. २.११७३
(३) आनन्द रस से हृदय को सेचन करने में समर्थ

सिसिचुः – सिञ्चन्ति (सींचते हैं) लट् अर्थ में लिट् का प्रयोग है। दे. 'अश्मास्य'

सिंह – निरुक्तकार ने लिखा है–
'सिंहोव्याघ्र इति पूजायाम्'
अर्थात् पुरुष व्याघ्र, पुरुष सिंह–ऐसा प्रयोग पुरुष की वीरता सूचित करने के लिए किया जाता है। अतएव सिंह और व्याघ्र शब्दों का प्रयोग पूजा अर्थ में होता है।

व्युत्पत्ति – (क) हिस् + कन् = सिंह (वर्णविपर्यय से)। अर्थ है हिंसा करने वाला मारने वाला।
(ख) सम् + हन् + कन् = संह = सिंह (उपसर्ग में इत्व)। यह इकट्ठा करके मारता है।
(ग) 'संहाय हन्ति इति सिंहः' (संगमन कर मारता है अतः सिंह है)।
सिंहः संहननात् हिंसेर्वा स्यात् विपरीतस्य संपूर्वस्य वा हन्तेः, संहाय हन्ति इति वा (अर्थात् सिंह शब्द अभिभव अर्थ वाले सह धातु से या 'हिंस्' धातु को विपरीत कर देने से या सम् पूर्वक हन् धातु से बना है)।
(२) शक्तिशाली, (३) अग्नि का विशेषण।
'उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्
प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते'
ऋ. १.९५.५; मै.सं. ४.१४.८: २२७.५; तै.ब्रा. २.८.७.५; नि. ८.१५
इस शक्तिशाली अग्नि की ओर सेवाभाव से बढ़े (सिंह प्रतीची प्रतिजोषयेते) या अन्तरिक्ष और पृथ्वी के निवासी उत्पन्न अग्नि से डर गए अतः सेवाभाव से उस शक्तिशाली अग्नि की ओर बढ़े।
(४) सिंह नामक पशु

सिंहप्रतीकः – सिंह के समान शूरवीर
'सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वाः'
अ. ४.२२.७

सिंह्य – (१) सिंह के तुल्य शत्रु (२) सिंह का दल –दया.
'सिंह्यं चित् पेत्वेना जघान'
ऋ. ७.१८.१७

सिंही – (१) शत्रुओं पर विजय करने वाली (२) सैनिक शिक्षा

'सिंह्यसि सपत्नसाही'
वाज.सं. ५.१०; का.सं. २.९; २५.६; श.ब्रा. ३.५.१.३३,३६

स्त्री – स्त्यै, ऐ शब्द संघातयोः स्यातयेर्डट्। स्त्यै + डट् + ङीष् = स्त्री। (१) संघात बनाकर रहने वाली प्रबल सेना
'स्त्रिया अशास्यं मनः'
ऋ. ८.३३.१७
(२) स्त्यै (लजाना) + ड्रट् + ङीष् = स्त्री (डित् प्रत्ययान्त होने से य का लोप हो जाता है और ए का लोप)।
(लज्जन्ते हि ताः नित्यं स्वैरेष्वपि पुंभ्यः)।
अर्थात् स्त्रियां पुरुषों से और स्वच्छन्दता से भी लजाती हैं। अथवा...स्यायेते संघी
भवतः शुक्रशोणिते अस्याम् इति स्त्री (स्त्री में शुक्र और शोणित संघीभूत होते हैं अतः यह स्त्री है)।
(३) सूर्य-रश्मि -सा.
दे. 'अन्ध'।
'स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः'
ऋ. १.१६४.१६; अ. ९.९.१५; तै.आ. १.११.४; नि. १४.२०.
मेरी ये रश्मिरूपी स्त्रियां हैं। वृष्टि जल देने के कारण उन्हें ही पुरुष कहते हैं-सा.।
जो सत्य विद्या को जानने वाली स्त्रियाँ हैं कवि लोग उन्हें पुरुष बतलाते हैं-दया.।

स्त्रीकृता – (१) स्त्रियों की बनी सेना, (२) स्त्रियों द्वारा की गई कृत्या
'स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता'
अ. १०.१.३

सीचापू – एक प्रकार का पक्षी
'रात्र्यै सीचापूः'
वाज.सं. २४.२५; मै.सं. ३.१४.६:१७३.९

सीता – (१) हल का अग्रभाग-फाल या फार, (२) प्रेमपाश में बद्ध शुभगुणों से युक्त
'सीते वन्दामहे त्वा.'
ऋ. ४.५७.६; अ. ३.१७.८; तै.आ. ६.६.२;कौ.सू. २०.१०
(३) कृषि से उत्पन्न कर.(४) शरीर मन और आत्मा इन तीनों को एक सूत्र में बांधने वाली प्राण शक्ति चेतना।
'इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु'
ऋ. ४.५७.७; अ. ३.१७.४; कौ.सू. १३७.१९
(५) जोती भूमि
'घृतेन सीता मधुना समज्यताम्'
वाज.सं. १२.७०; मै.सं. २.७.१२:९२.७ का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.१०.

सीदत् – (१) ताप से तप्त, तलता हुआ, भुंजाता हुआ, (२) बैठा हुआ
'उत्थापय सीदतो बुध्न एनान्'
अ. १२.३.३०

स्त्रीभाग – (१) स्त्री सेवी, (२) व्यभिचारी
'स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान्'
अ. ८.६.१९

सीम् – (१) सूर्य, (२) (अ.) चारों तरफ
'आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः'
ऋ. ३.७.३
(३) 'ही' के अर्थ में प्रयुक्त एक वैदिक अव्यय।
'यत् सीमुप श्रवद् गिरः'
ऋ. ६.४५.२३; अ. २०.७८.२; साम. २.१०.१७
(४) परिग्रहार्थीय, (५) सर्वतः, चारों ओर से।
दे. 'अन्' 'नयत्सीं' शिश्नथद्वृषा'
जल बरसाने वाला मध्यम वायु (वृषा) मेघ को सर्वतः (सीम्) हटा देता है।
पुनः, दे. 'व्यावः'
(६) दूर। दे. आशये'
'ससारं सीं परावतः'
दूरवर्ती मेघ से (परावतः) उषा दूर चली गई (सीं ससार)। (७) पद पूरण के लिए भी इस का प्रयोग होता है।
'प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ता
ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते
वयो न पप्तू रघुया परिज्मन्।'
ऋ. २.२८.४
विशेष प्रकार से रसों, रश्मियों या सम्पूर्ण जगत् का विधता आदित्य ने सर्वतः रश्मियों को रचा। वे रश्मियां पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष से जल ले वरुण के मण्डल को (सिन्धवः ऋतं वरुणस्य यन्ति)। ऐसा करने पर भी वे नहीं थकतीं और न इस कार्य को वे छोड़ती ही हैं। ये पक्षी के सदृश शीघ्र गति से उड़ती हुई सम्पूर्ण जगत्

की परिक्रमा करती हैं ।

सीमतः – सीमातः, मर्यादातः, सीम्नः (सीमा से, मर्यादा से) ।
परिग्रहार्थक सीम् से 'तसिल्' प्रत्यय करने से 'सीम्' में अ का उपबन्ध अनर्थक है । सीमन् का अर्थ सीमा है ।
निरुक्त में कहा है–
'अपि वा सीम् इत्येतत् अनर्थकम् उपबन्धम् ओददात् पंचमी कर्माणं सीम्नः सीमतः मर्यादातः ।
सीमा इति परिग्रहार्थीयः वा पदपूरणो वा । सीम्
(१) परिग्रहण अर्थ वाला है या (२) पद पूरणार्थक है ।
'सर्वतः' अर्थ में प्रयोग के लिए देखें 'व्यावः'।
'सुरुचः सीमतः व्यावः'
(सुन्दर किरणों को सर्वतः विस्मृत करता है) ।
(३) समस्त लोकों के बीच में
'वि सीमतः सुरुचो वेन आवः'
अ. ४.१.१;५.६.१; साम. १.३२१; वाज.सं. १३.३; तै.सं. ४.२.८.२ ; मै.सं. २.७.१५; ९६.११;का.सं. १६.१५; ३८.१४: श.ब्रा. ७.४.१.१४; तै.ब्रा. २.८.८.८; तै.आ. १०.१.१०; आप.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.५; नि. १.७.

सीमान् – सिर का ऊपरी भाग
'यः सीमानं विरुजन्ति'
अ. ९.८.१३

सीमन्त – सिर
'जिनतो वज्र त्वं सीमन्तम्'
अ. ६.१३४.३

सीमहि – बांधते हैं । दे. 'मृडीक'।
'गीभिर्वरुण सीमहि'
ऋ. १.२५.३
हे वायु, तुम सुख के लिए तेरे मन को स्तुतिवाणियों से बांधते हैं ।

सीमा – षिञ् (बन्धनार्थक) + मिन् = सीमन् । सिनोति बध्नाति देशौ एतावानेव अयम् इति एवं सा सीमा (इतना ही यह हैं–इस प्रकार यह दो देशों को बांधती है अतः यह सीमा है) ।
अर्थ – (१) सीमा, मर्यादा, विषीव्यति देशाविति (सीमा मर्यादा को कहते हैं क्योंकि यह दो देशों को विभक्त करती है) ।

स्तीमा – (१) आर्द्र, गीला या तरो ताजा रखने वाला जल या (२) रुधिर
'अप्सु स्तीमासु वृद्धासु'
अ. ११.८.३४

सीमिका, सीमिक – स्यम (गत्यर्थक) + किकन् + टाप् । सीमिकाः स्यमन्त्यो हि ताः नित्यमेव गच्छन्ति (वे सदा शब्द करती हुई चलती हैं) ।
अर्थ – (१) चीटियों का घर (२) एकप्रकार का वृक्ष, (३) चींटी
पंजाबी भाषा में चींटी को स्योंक कहते हैं ।

सीर – (१) शरीर ।
'सरें ह्येतत् सीरम्
इरामेव अस्मिन् एतद् दधाति'
श.ब्रा. ७.२.२.२
'इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतु'
तै.ब्रा. २.४.८.७
(२) सृ + ईरन् = सीरन् । आदित्य
'सीर आदित्यः सरणात्'
(३) हल । दे. 'इत्'
'युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वम्'
ऋ. १०.१०१.३;अ. ३.१७.२;वाज.सं. १२.६८;तै.सं. ४.२.५.५; मै.सं. २.७.१२:९१.१५; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.५
हे देवो, हलों को जोतो
(सीरा युनक्त), युगों अर्थात् जुआठों को विस्मृत करो (वितनु ध्वम्) ।
आधुनिक अर्थ– (१) हल, सूर्य, अर्क

सीरपतिः – हल का स्वामी
'इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः'
अ. ६.३०.१; का.सं. १३.१५; तै.ब्रा. २.४.८.७; आप.श्रौ.सू.६. ३०.२०;मा.श्रौ.सू. १.६.४.२४;साम. मं.ब्रा. २.१.१६; पा.गृ.सू. ३.१.६.

स्तीर्ण – (१) प्रकाश से आच्छादित (२) बिछाया हुआ
'स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ'
ऋ. ४.६.४;६.५२.१७

सीरा – (१) नाड़ी
'सीराः पतत्रिणीः स्थन'
ऋ. १०.९७.९; वाज.सं. १२.८३
(२) नदी, (३) रक्त धारा

'सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या '
ऋ. ४.१९.८

सीलमावती – उत्तम सेवनीय ऐश्वर्य की स्वामिनी–आत्मा
'ऊर्णावती युवतिः सीलमावती'
ऋ. १०.७५.८

सीव्यतु – सीए । अंग्रेजी में sew सीना अर्थ में आया है । दे. 'उक् ध्य '
'सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया '
ऋ. २.३२.४; अ. ७.४८.१; तै.सं. ३.३.११.५; मै.सं. ४.१२.६.१९५.१; का.सं. १३.१६; साम.मं.ब्रा. १.५.३; आप.मं.पा. २.११.१०; नि. ११.३१
राका अविच्छिन्न सूई से सन्तति रूपी वस्त्र को (अपः) सीए (सीव्यतु) ।

सीषती – बांधती हुई
'सानः कृतानि सीषती'
अ. ४.३८.३

सीषधाति – साधयतु (साधन करे) । यह लेट् का रूप है ।

सीस – नः । (१) सीसा, (२) सीसे की बनी सामग्री ।
'इदं सीसं भागधेयं त एहि'
अ. १२.२.१.
(३) सब बन्धनों को काटने वाला
'सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वम् '
अ. १२.२.१९
'सीसायाध्याह वरुणः '
अ. १.१६.२
'सीसञ्च मे त्रपु च मे'
वाज.सं. १८.१३; मै.सं. २.११.५:142.6; का.सं. १८.१०

स्त्रीसख – (१) अपनी स्त्री के साथ मित्र रूप में रहने वाला पति
'आनन्दाय स्त्रीसख्यम् '
वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२

सीसा – (१) प्रेम को बांधने वाली स्त्री (२) संधियों या वेतनों से बंधी
'रजता हरिणीः सीसा'
वाज.सं. २३.३७; तै.सं. ५.२.११.१; मै.सं. ३.१२.२१:१६७.७; का.सं. (अश्व.) १०.५.

स्त्रीहिती – (१) स्नेहकारिणी
'यः स्त्रीहितीषु पूर्व्यः
संजग्मा नासु कृष्टिषु ।
अरक्षद् दाशुषे गयम् ।'
ऋ. १.७४.२
जो ईश्वर स्नेह करने वाली (स्त्रीहितीषु) अतएव प्रेम भाव से संसक्त करने वाली (संजग्मानासु) प्रजागणों में (कृष्टिषु) सदा पूर्व उत्पन्न सुशिक्षित विद्वानों द्वारा अपने से आगे बढ़ने वालों के प्रति साक्षात् उपदेश करने योग्य है और जो अन्यों को विद्या आदि का दान करने वाले तथा अपने आप को ईश्वर के प्रति समर्पण करने वाले उपासक के धनैश्वर्य और प्राण जीवन की रक्षा करते हैं (गयम् अरक्षत्) ।

सु – अति सु इति अभिभूजितार्थे (अति और सु अभि पूजित अर्थ में आता है) ।
दे. 'अज ', 'अस्म', 'अंधः ' । अर्थ– (१) सुन्दर, (२) स्तुति । दे. 'दोहत् '
'अभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् '
ऋ. १.१६४.२६; अ. ७.७३.७;९.१०.४; नि. ११.४३
इसी से (तत्) यह स्तुति (उ सु) करता हूँ (प्रवोचम्) । (३) सम्यक् प्रकार से । दे. 'अज', साति
'अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवः '
ऋ. १.१३८.४; नि. ४.२५

स्नु – (१) अभिषिक्त (२) बहने वाला । snow शब्द से 'स्नु ' की समता विचारणीय है ।
ये पातयन्ते अज्मभि
'गिरीणां स्नुभिरेषाम् । '
ऋ. ८.४६.१८
(३) गमनशीन यान, (४) साधन
'अधि यदपां स्नुभिश्चराव'
ऋ. ७.८८.३

सुकम् – (१) अच्छी प्रकार
'तिष्ठते यता सुकम् '
ऋ. १.१९१.६; अ. १.१७.४
(२) सु + क । उत्तम सुख देने वाला कर्म, (३) शुक नामक वृक्ष जो पाण्डु रोग की एक ओषधि है– शिरीष, स्थौणेपक, तालीश, जम्बू, गन्धक, चक्रमर्दा, स्योनाक, अर्क, दाडिम, शिग्रु और क्षीरी, वृक्ष शुकवर्ण में आए हैं ।
शिरीष

'वर्ण्यः कुष्ठ कण्डुघ्नः
त्वग्दोष श्वास कासहा ।'
स्थोणेवक, कटुतिक्त पित्तप्रकोपशमन, बलपुष्टि कारक ।

सुकपर्दा – (१) उत्तम कर्म वाली
'सिनीवाली सुकपर्दा'
वाज.सं. ११.५६; तै.सं. ४.१.५.३; मै.सं. २.७.५:८०.९; का.सं. १६.५; श.ब्रा. ६.५.१.१०

स्तुक – (१) स्त्यै + डुक = स्तुके । अर्थ है–संघात । दे. 'पृथुष्टुका'
(२) यास्क ने 'स्तुक्' धातु को संघातार्थक माना है । परन्तु यह शब्द केशसमूह के लिए प्रयुक्त होता है ।
(३) जंघा में भी मांस का अधिक भाग होने से स्तुक नाम पड़ा है ।
अंग्रेजी का stock शब्द 'स्तुक' से ही बना है ।
(४) केशभार, (५) स्तुति, (६) काम ।

सुक्रतु – (१) सबसे उत्तम कृति, (२) प्रज्ञा, (३) संकल्प, काम
'आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते'
ऋ. १.३१.३
हे तेजस्विन्, तू विधि प्रजाओं और लोकों में व्यापक और उनको बसाने धारण करने वाले सूर्य की ज्योति के भी पूर्व सबसे उत्तम कृति, प्रज्ञा या संकल्प रूप में प्रकट होता है ।
(४) सुन्दर यज्ञों का कर्त्ता (५) सुन्दर कर्मों का कर्त्ता (६) इन्द्र ।
'त्वया दृढानि सुक्रतो रजांसि'
ऋ. ६.३०.३
हे इन्द्र, तू ने लोकों को दृढ़ किया ।
(७) सुन्दर प्रज्ञा वाला । दे. 'धियन्धा'

सुक्रतू – द्वि.व.। (१) एक काल और एक देश में समान रूप से क्रियाशील –अग्नि और सोम अथवा प्रकाश और वायु ।
'युवमेतानि दिवि रोचनानि
अग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्'
ऋ. १.९३.५; तै.सं. २.३.१४.२; मै.सं. ४.१०.१:१४४.१४; का.सं. ४.१६; ऐ.ब्रा. २.९.५; तै.ब्रा. ३.५.७.२; कौ.सू. ५.१
समान एक काल और देश में क्रियाशील होकर (सक्रतू) अग्नि और सोम, तुम दोनों (प्रकाश और वायु) आकाश या सूर्य के प्रकाश में (दिवि) नाना रुचिकर कार्यों को (रोचनानि) धारण करते हो (अधत्तम्) ।

सुक्षत्रं – (१) उत्तम क्षात्र बल, (२) उत्तम राज्य व्यवस्था
'रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः
सुवीर्यं नासत्या वहन्ता'
ऋ. १.११६.१९

सुक्षय – सुन्दर निवास स्थान, सु + क्षय । 'क्षि' धातु निवास करना अर्थ में आया है । क्षि + अच् = क्षय । रहने का स्थान ।
'अव वेति सुक्षयं सुते मधु'
ऋ. १०.२३.; अ. २०.७३.५

स्तुका – फुंसी
'आ छिनद्मिस्तुकामिन'
अ. ७.७४.२

स्तुकावीद,स्तुकाविन् – शिखा चोटी रखने वाला
'शर्धांसीव स्तुकाविनाम्'
ऋ. ८.७४.१३

सुकिंशुक – (१) उत्तम तोतो के चित्रों से सुसज्जित रथ ।
'सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपम्'
अ. १४.१६१
(२) सुष्ठु काशनम् दीपनम् (सुन्दर दीप्ति वाला) । दे. 'किंशुक,' 'अमृत'
(३) पलाश का बना । दे. 'अमृतस्य लोकः'
'सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपम्'
ऋ. १०.८५.२०
सुप्रकाश या पलाश के बने, मलरहित सेमरवृक्ष के बने, चित्र विचित्र....

सुक्षत – जिससे अच्छी प्रकार जड़ पकड़ती है–यक्ष्मा ।
'उभयोः सुक्षतस्य च'
अ. ७.७६.४

सुक्षिति – सु + क्षि (निवास करना) + क्ति न् = सुक्षिति (१) सुन्दर निवास स्थान । (२) उत्तम निवास भूमि (३) उत्तम राष्ट्र
'भये चित् सुक्षितिं दधे'
ऋ. १.४०.८
उत्तम निवास भूमि या राष्ट्र धारण करता है ।
(४) उत्तम भूमियों का स्वामी । दे. 'भरेषुजा'

(५) उत्तम भूमि में उत्पन्न (६) उत्तम निवास योग्य गृह या भूमि की स्वायिनी प्रजा ।
'स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः '
ऋ. ५.६.८

सुकीर्तिः – उत्तम कीर्तिवाला
'अस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः '
ऋ. १.६०.३

सुकुरीरा – उत्तम व्यवस्था वाली
'सुकुरीरा स्वौपशा '
वाज.सं. ११.५६; तै.सं. ४.१.५.३; का.सं. १६.५; श.ब्रा. ६.५.१.१०

सुकृत् – (१)उत्तम कर्त्ता, (२) आत्मा, (३) शुभ कर्म करने वाला
'येन गच्छथः सुकृतो दुरोणम् '
ऋ. १.११७.२
(४) पुत्र या पुत्री । दे 'जामि '
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्
अन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् '
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६
यदि ये माताएं कुल को बढ़ाने वाले पुत्र या पुत्री उत्पन्न करती हैं तो इन दोनों सुकृतों में एक पुत्र कुल का कर्ता होता है और दूसरी पुत्री पाली पोसी जाकर दूसरे को दी जाती है ।

सुकृतम् – न । सुन्दर कर्म करने वाला । धनुष् का विशेषण । दे. 'उभा '
'तुविक्षं ते सृकुतं सूमयं धनुः '
ऋ. ८.७७.११;नि. ६.३३
तेरा धनुष् बहुत बाणों को चलाने वाला (तुविक्षम्) सुन्दर कर्मों को करने वाला (सुकृतम्) तथा सुखकारक है (सूमयम्) ।

सुकृत – प्र.। (१) शुभ अन्नोत्पत्ति (२) उत्तम शिल्पी पुरुष (३) अन्यों का सुख उत्पन्न करना, (४) उत्तम धर्माचरण करने वाली
'असूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः '
ऋ. ३.३१.७
(५) सुन्दर किया हुआ । दे. 'अमिन '
'उरु पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् '
ऋ. ६.१९.१; वाज.सं. ७.३९; तै.सं. १.४.२१.१; मै.सं. १.३.२५; ३८.१३;का.सं. ४.८;कौ.ब्रा. २१.४; श.ब्रा. ४.३.३.१८; तै. ब्रा. ३.५.७.५.
अन्धकार-निवारक विस्मृत सूर्य कर्म कर्त्ता मनुष्यों से सृकृत् हो ।
(६) शोभन कर्मकृत्-सुन्दर कर्म करने वाला । दे. 'जोहवीमि '

सुकृत्तरः – और अधिक उपकार करने वाला
'इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः '
ऋ. १.१५६.५
शुभगुणों और व्यवहारों में प्रवेश करने वाला (विष्णुः) विद्यादि ऐश्वर्य से युक्त गुरु को प्राप्त होता है और उत्तम उपकार करने वाले के लिए और अधिक उपकार करने वाला होता है ।

सुकृत्या – (१) उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त । दे. 'इद्धाग्नि '
(२) उत्तम धर्मानुकूल क्रिया
'इद्धाग्नयः शम्या य सुकृत्यया '
ऋ. १.८३.४; अ. २०.२५.४
जो ज्ञानी पुरुष बाहर की यज्ञाग्नियों और भीतर की प्राणाग्नियों को प्रज्वलित कर उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त शान्तिदायक साधना से (सुकृत्यया शम्या) प्रथम वय को ब्रह्मचर्य पूर्वक धारण करते हैं ।

सुकृत्वन् – उत्तम कार्य कुशल
'अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि '
ऋ. ८.४६.२७

सुकृतां लोकः – पुण्यात्मा पुरुषों का लोक
'ताभ्यां पतेम सुक्रतामुलोकम् '
वाज.सं. १८.५२

सुकृतोः – पिता का सुखकारी पोषण आदि कर्म का करने वाला-पुत्र ।
'अन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् '
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६

सुकृत्वा – 'सुकृत्वन् ' के प्र.ए.व. का रूप । शुभ कर्म करने वाला
'मदे मदे ववक्षिथा सुकृत्वने '
ऋ. ८.१३.७

सुकृते – द्वि.। (१) द्यावापृथिवी का विशेषण, (२) सुन्दर निर्मित । दे. 'असश्चन्ती '
'घृतं दुहाते सुकृते शुचिक्रते '
ऋ. ६.७०.२
सुन्दर निर्मित सुन्दर कर्मों वाली द्यावापृथिवी संसार के लिए जल देती है ।

सुकेतुः – (१) सुन्दर प्रज्ञा वाला (२) विद्याओं द्वारा

ज्ञान कराने वाला
'सुकेतव उषसो रेवदूषुः'
ऋ. ३.७.१०

सुक्षेत्र – उत्तम क्षेत्र। दे. 'श्रोतु'

सुक्षेत्रता – (१) उत्तम क्षेत्र को होना, (२) उत्तम क्षेत्र को सफल करना
'सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम्'
अ. ७.२०.५

सुक्षेत्रिया – सुक्षेत्रा + डिपाच् = सुक्षेत्रिया। (२) वह नीति जिससे क्षेत्र मिले– दया.।
(२) सुन्दर क्षेत्र, (३) कर्मों के उत्तम बीज रूप संस्कार के वपन (बोने) के लिये उत्तम देह, (३) सन्तान वपन के लिए उत्तम स्त्री, (४) अन्न–वपन के लिए उत्तम भूमि पाने की इच्छा।
'सुक्षेत्रिया सुगातुया
वसूया च यजामहे'
ऋ. १.९७.२; अ. ४.३३.२; तै.आ. ६.११.१
सुक्षेत्र, सुन्दर मार्ग, भूमि, ज्ञान वाणी या व्यवहार प्राप्त करने की इच्छा से और प्राण, प्रजा और ऐश्वर्यों तथा उत्तम लोकों या निवास प्राप्त करने की इच्छा से तेरी उपासना करें।

सुख – (१) 'सुखं सुहितं खेभ्यः' (सुख इन्द्रियों के लिए सुष्ठु प्रकार से सुखकारक होता है)।
'ख' का अर्थ इन्द्रिय और आकाश दोनों हैं।
(२) स्कन्दस्वामी ने 'खेभ्यः' का अर्थ 'इन्द्रियों के निमित्त' न कर पंचमी में इन्द्रियों से किया है (अतिशयेन सुखं पुरुषस्य खेभ्यः)।
(३) निरुक्त में सुख के बीस नाम हैं, जैसे शिम्बाता, शतरा, शातयन्ता इत्यादि।
शिञ् (नाशानार्थक) + ब = शिम्ब (मुम् निपातन से); अत + घञ् = आत; शिम्ब + आत् = शिम्बात्।
दुःखों को कम करता हुआ जो प्रार्थिक होता है वह शिम्बात् अर्थात् सुख है। ह्रदमग्नानामिव शरीरं शीती भवति (तालाब में स्नान करने के बाद जैसे शरीर शीतल हो जाते हैं वैसे ही सुख से शरीर शीतल हो जाता है) – यह दुर्ग का मत है।
जल से भी बढ़कर शीतलता से सुख होता है। 'शातपन्ता' 'शान्तपापम्' से हुआ है (जहां पाप न हो वही हैं। निम्न लिखित ऋचा में शतरा और शातपपन्ता का प्रयोग है–
'मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता'
ऋ. १०.१०६.५
पुनः सुख का प्रयोग–
'अश्वो वोढा सुखं रथं
हसनामुपमन्त्रिणः
शेपो रोमण्वतौ भेदौ
वारिन्मण्डूक इच्छति
इन्द्रायेन्दो परि स्रव।'
ऋ. ९.११२.४
हे सोम, जैसे वहन समर्थ अश्व (वोढा अश्वः) लक्ष्यदेश की प्राप्ति के निमित्त कल्याणकारी रथ चाहता है (सुखं रथम्) नर्म सचिव (उपमन्त्रिणः) उपहास प्रधान वाणी चाहते हैं (हसन्तम्) उसी प्रकार पुरुषलिंग (शेपः) तरुणी के रोमवान् विदलीभूत प्रदेशों को अर्थात् उपस्थ को चाहता है (रोमण्वन्तौ भेदौ)। मण्डूक जल ही चाहता है (मण्डूकः वार इत्)। इसी प्रकार मैं तेरा रस चाहता हूँ। अतएव तू इन्द्र के लिए रस रूप में स्रवण कर (इन्द्राय परिस्रव)।
(२) सुखदायक
'सुपेशसं सखं रथम्'
ऋ. १.४९.२
(३) उत्तम हृदयाकाश
'अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे'
ऋ. ३.४१.९; अ. २०.२३.९

सुखरथः – (१) सुखकारी रथ को चलाने वाला, (२) सुखपूर्वक आकाश में वेग से जाने वाला विद्युत, (३) सुखपूर्वक इन्द्रियों में रमण करने वाला आत्मा।
'क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं
सुखरथमीयमानं हरिभ्याम्'
ऋ. ५.३०.१

सुखादि – (१) सुखादि + खादि। उत्तम रीति से ऐश्वर्यों का भोक्ता (२) सर्वजगत् का संहारक
'प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये
तवसे भन्ददिष्टये'
ऋ. ५.८७.१

सुखादी – (१) सुख + अद् + ई = सुखादि। सुखदायक या शोभन हवि का खाने वाला–मरुत् –सा.

(२) सुख भोगने वाले विद्वान् –दया.
दे. 'इष्मिन्'
'ते रश्मिभिस्त ऋक्विभः सुखादयः
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवः'
ऋ. १.८७.६
वे मरुत् लोगों के सुखदायक या शोभन हवि के खाने वाले (सुकादयः) सुन्दर स्तुतियों से युक्त (वाशीमन्तः) हवि या स्तुति के निकट जाने वाले या उनकी इच्छा वाले या प्रत्यक्ष रूप से सभी पदार्थों को देखने वाले (इष्मिणः) तथा भय-रहित हैं। वे रस हरने वाली सूर्य की रश्मियों के साथ (ऋक्वभिः रश्मिभिः) जल बरसाते हैं। –सा.
सुख भोगने वाले विद्वान् मनुष्य सुख सेवन के लिए (श्रियसे) प्रशस्त पदार्थों से (ऋक्वभिः) सुख की कामना करते हैं। वे वाग्मी वाशीमन्तः) क्रियाशील तत्वदर्शी निर्भय मानुषिक तेज प्राप्त करते हैं। (प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः)।

सुगः – सु + गम् + ड = सुग्। सुगम चलने योग्य मार्ग। दे. 'अलातृण'।
'सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः'
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२
हे इन्द्र, तूने मेघों के जल के बहने के लिए सुगम मार्ग बनाए। (२) सुखकारिणी
'न सुगं दुष्कृते भुवम्'
ऋ. १०.८६.५; अ. २०.१२६.५

सुगन्धिः – शोभनः शरीरगन्धः पुण्यगन्धो वा यस्य सः (उत्तम गन्ध का पुण्य गन्ध से युक्त)– त्र्यम्बक का विशेषण (२) ओषधि का विशेषण।
पुण्यकर्मणो गन्धः दूरात् एव याति (पुण्यकर्म की गन्ध दूर से ही जाती है)।
'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्'
ऋ. ७.५९.१२; वाज.सं. ३.६०; तै.सं. १.८.६.२; मै.सं. १.१०.४: १४४.१२; श.ब्रा. २.६.२.१२; वै.सू. ९.१९; नि. १४.३५
त्र्यम्बक का अर्थ सायण ने शिव किया है। अम्बा, अम्बिका तथा अम्बालिका नामक ओषधियों को भी त्र्यम्बक कहा गया है।

सुगभस्तिः – (१) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य (२) उत्तम बाहु वाला पुरुष
'मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठाम्'
ऋ. ५.४३.४

सुगव – (१) सुखप्रद, उत्तम भूमि, गौ आदि सम्पत्ति का स्वामी
'अस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः'
ऋ. १.११६.२५; का.सं. १७.१८

सुगव्य – (१) उत्तम गौओं से युक्त (२) पृथिवी से उत्पन्न अन्नादि समृद्धि से युक्त।
'सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यम्'
ऋ. १.१६२.२२; वाज.सं. २५.४५; आश्व.श्रौ.सू. १०.८.४
(३) उत्तम इन्द्रियगण
'सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः'
ऋ. ८.१२.३३

सुग्म्यः – (१) उत्तम सुखदायिनी भूमि में सर्वश्रेष्ठ, (२) पृथिवी को विजय और पालन करने में कुशल
'नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः'
ऋ. १.१७३.४

सुगा – (१) सुष्ठु गच्छति या सा –दया.
जो सुन्दर प्रकार से चलती है वह सुगा है।
(२) नहर आदि
'सुगा अपश्चकार वज्रबाहुः'
ऋ. १.१६५.८; मै.सं. ४.११.३:१६९.६; का.सं. ९.१८; तै.ब्रा. २.८.३.६.

सुगतुया – सु + गातु + याच् = सुगातुया।
(१) उत्तम मार्ग, भूमि, ज्ञानवाणी और व्यवहार प्राप्त करने की इच्छा।
दे. 'सुक्षेत्रिया'।
(२) जिस नीति से पृथिवी मिले–दया.।

सुगाधा – (१) सुख से अवगाहन करने योग्य जलधारा
(२) उत्तम वेदवाणी
'करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा'
ऋ. ७.९७.८

सुगार्हपत्य – उत्तम गृहपति के योग्य
'सुगार्हपत्याः समिषो दिदीहि'
ऋ. ५.४.२; तै.सं. ३.४.११.१; मै.सं. ४.१२.६:१९६.९; का.सं. २३.१२

सुगुः – (१) सुन्दर गौओं वाला, (२) सुन्दर ज्ञान

वाणियों से युक्त, (३) बलवान् इन्द्रियों से युक्त
'सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वः'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९
(४) सुन्दर धन वाला-दया.
गौ का अर्थ वैदिक साहित्य में धन भी किया गया है।

सुगू - द्वि.व.। उत्तम इन्द्रियों या गौओं से सम्पन्न पति पत्नी।
'सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथः'
अ. १४.२.४३

सुगृहौ - उत्तम गृह से युक्त वर वधू। दे. 'सुगू'

सुगोपाः - (१) उत्तम किरणों या भूमियों का पालक मेघ या सूर्य, (२) इन्द्रियों या वाणी का उत्तम, पालक, (३) उत्तम गोरक्षक, (४) इन्द्रियों का पालक आत्मा।
'प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा'
ऋ. ३.४५.३; साम. २.१०७०
(५) उत्तम रक्षक-परमेश्वर
'यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते'
ऋ. २.२३.५

सुगोपातमः - (१) उत्तम रक्षक
'स सुगोपातमो जनः'
ऋ. १.८६.१; अ. २०.१.२; वाज.सं. ८.३१; तै.सं. ४.२.११.२; ऐ. ब्रा. ६.१०.३; गो.ब्रा. २.२.२०; श.ब्रा. ४.५.२.१७
(२) सबसे उत्तम पृथ्वी का रक्षक

सुगोवृध् - सुख बढ़ाने वाला
'अदब्धाः सन्ति पायवः सुगोवृधः'
ऋ. ८.१८.२

सुघ्न - अच्छी प्रकार दण्ड देना
'सुघ्नाय दस्युं पर्वतः'
ऋ. ८.७०.११

सुचक्रम् - (१) शोभन चक्रः, (सुन्दर चक्का वाला रथ) (२)'अमृतस्य लोकः' का विशेषण। दे. 'अमृतस्य लोकः
'हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्'
ऋ. १०.८५.२०; अ. १४.१.६१; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८
पुनः, दे. 'आसस्त्राणासः'।

सुचरित - उत्तम चरित्र
'आ मा सुचरिते भज'
वाज.सं. ४.२८; तै.सं. १.१.१२.१; का.सं. १.१२; ३१.११; श.ब्रा. ३.३.३.१३; तै.ब्रा. ३.३.७.९; आप.श्रौ.सू. २.१४.१०

स्रुच् - स्रुचतेः चैतत् वेदी व्याह
(१) स्रुचश्चैतद्वेदीश्चाह
श.ब्रा. ९.२.३.१७
(२) योषा हि सुक्
श.ब्रा. १.४.४.४.
(३) युजौ युजौ एतै यज्ञस्यत्
सुचौ- श.ब्रा. १.८.३.२७
(४) बाहू वै स्रुचौ
श.ब्रा. ७.४.१.३६
(५) वाग् वै सुक्
श.ब्रा. ६.३.१.८
(६) गौर्वा स्रुचः
तै.ब्रा. ३.३.५.४
(७) इमे वै लोका स्रुचः
तै.ब्रा. ३.३.१.२
(८) यजमानः स्रुचः
जै.ब्रा. ३.३.६.३
सुच् का अर्थ है-योषा, बाहू, वाक्, गौ, लोक, यजमान।
दे. 'यतस्रुचा'
'अभिस्रुचः क्रमते दक्षिणावृतः'
ऋ. १.१४४.१
आचार्य के दाहिने बैठा शिष्य उसकी वाणियों को प्राप्त करे।
अथवा वर के दाहिने भाग में बैठी कन्या उसके तेज आदि गुणों को ग्रहण करती है।

सुच्छर्दिस्तमः - उत्तम रक्षा गृह से युक्त
'तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिस्तमे नरः'
ऋ. ७.६६.१३

सुचित्रा - अति अद्भुत् या रमणीय
'तां सवितः सत्यसवां सुचित्राम्'
अ. ७.१५.१

सुचेतुः - (१) विज्ञान-दया.। दे. 'क्रिविर्दती' 'सुचेतुना'। (२) सुन्दर बुद्धि वाला-सा (३) उत्तम ज्ञान विज्ञान। दे. 'विश्वायु पोषस्'

सुचेतुना - ब. व.। (१) सुन्दर बुद्धि वाले मरुद्गण-सा.।
(२) विज्ञान द्वारा-दया.। 'सुचेतु' शब्द के

तृतीया एक वचन का रूप ।
सायण ने इसे प्रथमा बहुवचन में मरुतों का विशेषण माना है । दे. 'सुचेतु '
'यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना'
अरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन'
ऋ. १.१६६.६
हे उग्रमरुतो, सुन्दर बुद्धि वाले (सुचेतुना) तथा सदा साथ रहने वाले (अरिष्टग्रामाः) आप (यूयम्) हमारी बुद्धि को (सुमतिम्) पूर्ण करें (पिपर्तन)-सा. ।
हे संघशक्ति से सम्पन्न उग्र विद्वज्जन (अरिष्ट यामाः उग्रमरुतः), आप हमारी शिक्षा को (सुमतिम्) विज्ञान से पूर्ण करें (सुचेतुना पिपर्तन) -दया.

सुजन्मनी - द्वि.व. । (१) सुन्दर जन्म वाले द्यावापृथिवी (२) पति पत्नी
'सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते'
ऋ. १.१६०.१; ऐ.ब्रा. ४.३२.४; कौ.ब्रा. २१.२

सुजनिः - उत्तम रीति से जन्तुओं और अन्नादि ओषधियों को उत्पन्न करने में समर्थ पृथिवी ।
'उरुक्षितिं सुजनिमाचकार'
ऋ. ७.१००.४; मै.सं. ४.१४.५:२२१.८; तै.ब्रा. २.४.३.५

सुजात - (१) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध (२) अग्नि, (३) परमेश्वर ।
'अग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे'
ऋ. २.१.१५
दे. 'सुशिश्वि '
(४) सुजननः पुत्रः (सुजात पुत्र), माता पिता से भी अधिक गुणी पुत्र ।
(५) सुजाततरः -यास्क (६) शोभनात् अपि शोभनतरः (अच्छा से भी अच्छा) ।
सु + जन + क्त = सुजात ।
'जनिष्टो अपोनर्यः सुजातः'
ऋ. १०.९५.१०; नि. ११.३६
जिनसे जल की ऊर्मियाँ सुजात पुत्र के समान शस्य रूपी सम्पत्ति को बढ़ाने वाली उत्पन्न होती हैं ।-सा.
अन्तरिक्षस्थ जलों से जल प्रपात की तरह रजवीर्य से उत्पन्न अधिक कर्मा, मनुष्यों के लिए हितकारी या मनुष्य की सन्तान तथा माता पिता से भी अधिक गुणी पुत्र उत्पन्न होता है ।
(७) उत्तम रीति से विद्या आदि में कुशल विद्वान् ।
'सं सुजातासः सूरय'
ऋ. ५.६.२; वाज.सं. १५.४२; साम. २.१०८९; मै.सं. २.१३.७:१५७.१

सुजातता - उत्तम उत्पत्ति जना
'संवर्तयति वर्तनिं सुजातता'
ऋ. १०.१७२.४; अ. १९.१२.१; साम. १.४५१

सुजाता - (१) शुभ कुल में उत्पन्न कन्या, (२) रात्रि
'वर्ये वन्दे सुभगे सुजाते'
अ. १९.४९.३

सुजिह्वः- (१) सुन्दर जिह्वा या ज्वाला वाला, (२) अग्नि । दे. 'अध्वर '
'मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व'
ऋ. १०.११०.२; अ. ५.१२.२; वाज.सं. २९.२६; मै.सं. ४.१३.३:२०१.१०; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.६.
हे सुन्दर ज्वाला वाले अग्नि, हवि को मधुरस से मिलाकर स्वादिष्ट बना ।

सुजूर्णिः - उत्तम वेग वाली
'या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिः'
ऋ. १०.९५.६
(२) उत्तम रीति से सब कार्य वेग से करने वाली-उषा (३) ब्रह्मचारिणी

सुज्यैष्ठ्य - उत्तम श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न
'सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः'
अ. १४.२.२४

सुत - (१) अभिसुत सोमरस, (२०) पुत्र, (३) प्रजाजन (४) सृष्ट जगत्-दया. । दे. 'ईत्था '
'तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्य
उच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान'
ऋ. ४.३२.६
अभिसुत सोम से प्रसन्न, मनोरथ बरसाने वाले इन्द्र ने उस वृत्र को वज्र उठाकर मारा -सा. ।
पुत्र तुल्य प्रजाजन को आनन्द देने वाला राजा चोर व्यभिचारी आदि को उत्तमतया धमका कर दण्डित करे । दया.

सुतक्रिः - (१) सुसम्पन्न, (२) सुप्रसन्न, (३) उत्तम ऐश्वर्य द्वारा क्रीत, (४) सोमरस से क्रीत, (५)

उत्तम वेतन पर बद्ध, (६) उत्तम ऐश्वर्यों से अन्यों और अन्यों के श्रमों को अपने लिए खरीदने में समर्थ, (७) इन्द्र, परमेश्वर ।
'दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे'
ऋ. ६.३१.४

सुतपा – सुत + पा । (१) अभिसुत किए सोमरस को पीने वाला (२) हुतशिष्ट सोमपीती यजमान । दे. 'त्वेष' ।
'इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति'
ऋ. १.१५५.२; नि. ११.८
हे इन्द्र और विष्णु, आप दोनों के (वाम्) समागम को हुत शिष्ट सोमपीती यजमान (सुतया) पूजित या वर्णन करता है (उरुष्यति) ।

सुतपावा – (१) उत्पन्न पदार्थों का रक्षक, (२) ज्ञान-निष्णात उपासकों का पालक परमेश्वर
'सुतपाव्ने सुता इमे'
ऋ. १.५.५; अ. २०.६९.३
(३) प्रजाजन को पुत्रवत्, पालन करने वाला, (४) ऐश्वर्य का रक्षक
'प्रेषोयन्धि सुतपावन् वाजान्'
ऋ. ६.२४.९

सुतम्भरः – (१) पुत्र को या प्रजा को भरण करने में समर्थ
'सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिः'
ऋ. ५.४४.१३

सुतरणा – (१) सुख से पार करने योग्य । सु + तृ ल्युट् + टाप् = सुतरणा ।
'सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून्'
ऋ. ४.१९.६

सुतरा – (१) उत्तम, (२) दुःखसागर से सुखपूर्वक तार देने वाली
'करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा'
ऋ. ७.९७.८

सुतराः अपः– (१) सुखप्रद जल, (२) खूब वेग से जाने वाला जल, (३) सुख से पार तराने वाले कर्म ।
'द्युम्नाय सुतरा अपः'
ऋ. ६.६०.११; साम. २.५००

सुतष्ट – (१) सुखजनक, (२)उत्तम रीति से सुविचारित
'इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टम्
मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्'
ऋ. २.३५.२; का.सं. १२.१५
(३) अच्छी तरह शिल्पियों से बनाया गया-रथ, (४) उत्तम रीति से अध्यापित ।
'अस्मत् सुतष्टो रथो न वाजी'
ऋ. ७.३४.१; मै.सं. ४.९.१४:१३४.११; तै.आ. ४.१७.१

सुतस्य अन्धसः धारा – अभिसुत भन्दनीय सोम रस की धारा से । दे. 'मन्दिन्'
'तरत् स मन्दी धावति
धारा सुतस्यान्धसः'
ऋ. ९.५८.१; साम. १.५००; २.४०७; नि. १३.६.
जो स्तोत्र से देवताओं को प्रसन्न करने वाला है वह तरता है (मन्दी स तरत्) तथा अभिसुत भक्षणीय सोम रस की धारा से (सुतस्य अन्धसः धारा) ऊर्ध्व गति प्राप्त करता है या उन्नति करता या उच्च गति प्राप्त करता है (धावति) ।

सुतस्यमन्दानः – (१) अभिसुत सोमरस से प्रसन्न, (२) पुत्र तुल्य प्रजाजन को आनन्द देने वाला-राजा, (३) सृष्ट जगत् से प्रसन्न । दे. 'इत्था,' 'सुत' ।

सुतसमोम – (१) सोमरस- चलाने वाला यजमान, (२) यज्ञ कर्ता, (३) शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न करने वाला ।
'तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ।'
ऋ. १.१४२.१
हे अग्ने, तू सोम वाले यजमान के हितार्थ यज्ञ का सम्पादन करता है (तन्तुं तनुष्व) ।
अथवा,
शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न कर उनको उत्तम पद पर अभिषिक्त करने वाले, अपना सर्वस्व ज्ञान और धन सौंपने वाले वृद्ध पिता के लिए ही पूर्व पुरुषों से सुरक्षित प्रजा तन्तु और शिष्य तन्तु को विस्तृत कर ।
(४) ओषधियों को उत्पन्न करने वाला सूर्य, (५) ऐश्वर्य प्राप्त पुरुष ।
'गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन्'
ऋ. १.१६७.६

स्तुत् – (१) स्तोता, (२) पदेष्टा ।
'स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च'
ऋ. ६.६३.८

दे. 'असंक्रा'
हे मधुपायी अश्विद्वय, तुम्हारे स्तोता भी हैं और सुन्दर स्तुतियाँ भी।
'स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति'
ऋ. ८.२.२९

स्तुत – स्तवन द्वारा उपस्थित साम भाग
'उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्'
अ. ११.७.५

स्तुतस्तोम – (१) स्तोमों या तीनों वेदों का ज्ञाता
'यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो
'गोसनिस्तस्य त इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि'
वाज.सं. ८.१२

सुतावत् – उत्तम ऐश्वर्य वाला
'सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः'
ऋ. ३.५८.९

सुतवान् – पुत्रों वाला
'वयं घ त्वा सुतावन्तः'
अ. २०.५२.१

स्रुता – बहती हुई जल धारा
'सोममपि स्रुताविदत्'
ऋ. ८.९१.१; जै.ब्रा. १.२२०

सुत्रात्रः – (१) उत्तम रीति से रक्षा करने वाला
'उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः'
ऋ. ६.६८.७

सुत्राता – सुन्दर पालक
'उत त्रायेथां सुत्रात्रा'
ऋ. ५.७०.३; साम. २.३३७

सुत्रामा – (१) उत्तम रीति से प्रजा का पालक करने वाला,
(२) इन्द्र
'इन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व'
वाज.सं. १०.३१; १९.१; तै.सं. १.८.२१.१; मै.सं. २.३.८:३५.१६; ३.११.७:१५०.२; का.सं. १२.९; ३७.१८; तै.ब्रा. १.८.५.४; २.६.१.१; श.ब्रा. ५.५.४.२०; १२.७.३.६
(३) सु + त्रा + मनिन् = सुत्रामन्। प्रथमा एक वचन में सुत्रामा,
सुन्दर रक्षक – इन्द्र
सुत्रामा गोत्रभिद् वज्री–अमरकोष। दे. 'अस्मे'।
'स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे'
ऋ. ६.४७.१३;१३१.७; अ. ७.९२.१; २०.१२५.७; वाज.सं. २०.५२; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.५; १९१.७; का.सं. ८.१६
'सरस्वस्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे'
वाज.सं. १०.३२

सुत्रावा – उत्तम रक्षक (सुत्रावन्)
'आ सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः'
अ. १९.४२.३

सुत्वा – (१) राष्ट्र को अपने शासन में रखने वाला,
(२) सोम यज्ञ करने वाला
'सुत्वा यज्वा च पूरुषः'
अ. २०.१२८.१; शां.श्रौ.सू. १२.२०.२.१

स्रुतिः – (१) जल धारा,
'विस्रुतयो यथा पथः'
साम. १.४५३; २.११२०; आश्व.श्रौ.सू. ६.२.६.
(२) ज्ञानमार्ग, (३) कर्म मार्ग (४) विविध गति –दया.
'तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्'
ऋ. २.१३.१२
(५) स्रु + क्तिन् = स्रुति। स्रवन्ति गच्छन्ति यस्मिन् (जिस पर चलते हैं)। अर्थ मार्ग। दे. 'परिपन्थी'
'गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः'
ऋ. ६.२४.४
'पूर्वीर्हिते स्रुतयः सन्ति यातवे'
ऋ. ९.७८.२
'द्वे स्रुती असृण्व पितृणाम्'
ऋ. १०.८८.१५; वाज.सं. १९.४७; मै.सं. २.३.८:३६.१४; का.सं. १७.१९;३८.२; श.ब्रा. १२.८.१.२१; १४.९.१.४; तै.ब्रा. १.४.२.३; २.६.३.५; शां.श्रौ.सू. १६.१३.१८; आप.श्रौ.सू. १९.३.५.

स्रुती – द्वि.व.। (१) दो मार्ग, (२) पितरों के दो मार्ग–उत्तरायण और दक्षिणायण। दे. 'स्तुति'।

सुतीर्थ – (१) सुन्दर उतरने की जगह, (२) घाट
'सुतीर्थमर्वतो यथा'
ऋ. ८.४७.११

सुतुक – (१) उत्तम पुत्रों वाला पिता या (२) उत्तम शिष्यों वाला आचार्य।
'मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश'
ऋ. १.१४९.५; साम. २.११२६.
(३) सु + तक (गति अर्थ में) + क = सुतुक

(बहुलक से अ का उ) ।
'तुक्' का अर्थ अपत्य भी है ।
शोभनाः तुकाः यस्य स सुतुकः ।
सुतकनः सुगमनः स्तोतृभिः सुखेन प्राप्तव्यः (सुन्दर गतिवाला, स्तोताओं से सहज ही प्राप्य) (४) शोभन प्रजाओं से युक्त (५) अग्नि का विशेषण (५) सुतुयुः सुतकवः सुयुजानि इति वा ।
'स आ वक्षि महि न आ च सत्सि
दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वैः
रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः '
ऋ. १०.३.७
हे अग्नि, वह तू हमारे यज्ञ में महान् देवों को बुलाता है (महि आवक्षि) तथा होता बनकर बैठता भी है (आसत्सि च) और एक दूसरे से मिश्रित होती युवतियों के सदृश द्यौ और पवित्री के मध्य में (युवत्योः दिवस्पृथिव्योः) सूर्य के रूप में चलने वाला (अरतिः) या दुर्ग के अनुसार सभी भूतों के मध्य तू अलमति या पर्याप्तमति है । पुनः तू सुन्दर गति वाला या स्तोताओं से सुप्राप्य है या सुन्दर प्रजाओं से युक्त है (सुतुकः) । वेगयुक्त अग्नि (रभस्वान्) अग्निः) सुन्दर गति या कुलवाले वेगवान् अश्वों के साथ (सुतुकेभिः रभस्वद्भिः अश्वैः) इस यज्ञ में आवे (इह आगम्याः) ।
अन्य अर्थ – हे प्राज्ञ विद्वान्, वह आप हमें महान् तेज प्राप्त कराइए (सःनः महि आवक्षि) और युवावस्थापन्न माता पिता के आर्यपुत्र आप हमारे समीप रहिए (युवत्योः दिवस्पृथिव्याः अरतिः आसत्सि) । हे प्राज्ञ, शोभनगति वाली इन्द्रियों से सुगतिमान् (सुतुकैः अश्वैः सुतुकः) और बलवान् इन्द्रियों से बलवान् आप (रभस्वद्भिः रभस्वान्) यहां आइए (इह आगम्याः) ।
(६) उत्तम पुत्र पौत्र से युक्त
'करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि '
ऋ. ६.२२.१०; अ. २०.३६.१०
(७) अति हिंसक, (८) आत्मा को निर्बल करने वाला काम क्रोधादि
'तस्मै शत्रून् सुतुकान् प्रातरत्नः '
ऋ. १०.४२.५; अ. २०.८९.५
(९) उत्तम सुख पूर्वक वृद्धि शील, (१०) खूब हिंसक, (११) उत्तम बालकों या पुत्रों वाला
'सुदास इन्द्र सुतकाँ अमित्रान् '
ऋ. ७.१८९

सुतुका – (१) उत्तम केश वाली स्त्रियाँ, (२) उत्तम सुख भोग देने वाली प्रजा (३) उत्तम देह पालक प्राणगण
'आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन् '
ऋ. १.१७८.२

स्रुत्य – (१) छोटे-छोटे नालों का अध्यक्ष
'नमः स्रुत्याय च पथ्याय च'
वाज.सं. १६.३७; तै.सं. ४.५.७.१; का.सं. १७.१५

सुतेकरः – यज्ञकार्य में कुशल
'न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः '
ऋ. १०.७१.९

सुतेगृभ – पुत्रवत् ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र में गर्भवत् सावधानी से पालन करने योग्य जन
'सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभम् '
ऋ. ५.४४.५

सुदक्ष – (१) उत्तम कार्य कुशल (२) शक्तियों और बैलों का वर्धक शुक्र ।
'त्वायेन्द्र सोमं सुषमा सुदक्ष'
ऋ. १.१०१.९
(३) उत्तम कर्म करने वाला सोम परमेश्वर
'त्वं दक्षैः सुदामो विश्ववेदाः '
ऋ. १.९१.२; मै.सं. ४.१४.१:२१४.६; तै.ब्रा. २.४.३.८.

सुरक्षा – द्वि.व.। (१) पापाचारों को भस्म करने वाले स्त्री पुरुष, (२) उत्तम ज्ञान और क्रम से युक्त, (३) उत्तम बलशाली
'अश्विना वायुना युवं सुदक्षा'
ऋ. ३.५८.७; ऐ.ब्रा. ४.११.१७; कौ.ब्रा. १८.५

सुदक्षिणः – (१) दाहिने हाथ से कर्म करने में कुशल, (२) उत्तम धन, दान, बल बुद्धि से सम्पन्न (३) परमेश्वर ।
'यः सुषव्यः सुदक्षिणः '
ऋ. ८.३३.५

सुदत्रः – सु + दा + ष्ट्रन् = सुदत्र (बाहुलक से दा दद् या आ का अ) । कल्याण दानः (सुन्दर सुख देने वाला) ।

'ता नो रासन् रातिषाचो वसूनि
आ रोदसी वरुणानी श्रृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु
त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः '
ऋ. ७.३४.२२
देवपत्नियां (ताः) जो हवि का दान करने वाली हैं (रातिषाचः) हमें अभीष्ट धनों को दे (नः वसूनि रासन्) तथा द्यौ और पृथ्वी या रुद्र की पत्नियां (रोदसी) तथा वरुण की पत्नी (वरुणानी) सम्मुख हो सुनें (आ श्रृणोतु) और उपद्रवों के कारण होने वाली या श्रेष्ठ वरणीय देवियों के साथ (वरूत्रीभिः) कल्याण देने वाला (सुदत्रः) विश्वकर्मा या प्रजापति (त्वष्टा) हमारे लिए (नः) सुन्दर शरणप्रद होवें (सुशरणः अस्तु) तथा धन दे (रायः वि दधातु) ।
अन्य अर्थ – जैसे सूर्य और पृथ्वी तथा समुद्र (रोदसी वरुणानी) हमें अनेक विधि उत्तमोत्तम पदार्थ देते हैं (रातिषाचः) वैसे कर रूपी दान को रोकने वाले राज पुरुष हमें उन पदार्थों को भली प्रकार दें (नः वसूनि आ रासत्) । इसी प्रकार कल्याण के लिए दान देने वाला राजा रक्षा करने वाली विद्याओं से (वरूत्रीभिः) हमारा आश्रयदाता हो (सुशरणः अस्तु) और हमें ऐश्वर्य प्रदान करे (रायः विदधातु) ।
(२) उत्तम ज्ञानदाता
'यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः '
अ. ७.१०.१
(३) उत्तम दानशील

सुदर्शतरः – (१) सूर्य से या दिन के प्रकाश से भी अच्छी प्रकार दर्शनीय (२) उज्ज्वल स्पष्ट मार्ग दर्शी– अग्नि या आचार्य ।दे. 'अप्रायुष् ' ।
नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरात्
'अप्रायुषे दिवातरात् '
अ. १.१२७.५

सुदंससा – (१) उत्तमरीति से दुःखनाशक द्यावापृथिवी ।
(२) उत्तम कार्य और ज्ञान से युक्त माता पिता या गुरु जन । दे. देवपुत्रे ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससा '
ऋ. १.१५९.१

सुदंसाः – (१) शोभन कर्म वाला, (२) समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाला
'अधारयद् रोदसी सुदंसाः '
ऋ. १.६२.७
(३) उत्तम कर्मों का या उत्तम रीति से समस्त संस्कार का कार्य करने वाला प्रभु
'जज्ञान सूर्यमुषसं सुदंसाः '
ऋ. ३.३२.८

सुद्रव – (१) उत्तम 'द्रु ' अर्थात् काष्ठ का बना या हुआ, (२) उत्तम स्थिर पुरुष
'नेमिं तष्टेव सुद्रवम् '
ऋ. ७.३२.२०

सुद्रविणस् – (१) उत्तमोत्तमधन को देने वाला, (२) अदिति या अग्नि का विशेषण । दे. 'अनागस्त्व '
'यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशः
अनागस्त्वमदिते सर्वताता '
ऋ. १.९४.१५; नि. ११.२४
हे उत्तमोत्तम धन को देने वाले,
अखण्डनीय अग्नि, जिस यजमान को सभी कर्मों को विस्तारों में तू पापराहित्य प्रदान करता है ।

सुदानु – (१) कल्याणदायक, कल्याण देने वाला, (२) मरुतों का विशेष। दे. 'सामि ', (३) उत्तम दानशील, धनाढ्य, (४) वीर्यदान में समर्थ पुरुष ।
'पुत्रियन्ति सुदानवः '
अ. १४.२.७२

सुदानू – (१) उत्तम रीति में जल देने वाले अन्तरिक्ष और द्यौ (२) विद्युत् और सूर्य, (३) उत्तम दानशील, (४) बाधक विघ्नों को नाश करने में चतुर

सुदामन्वान् – सुन्दर बन्धन से युक्त
'दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् '
ऋ. ६.२४.४

सुदा – उत्तम दाता
'न सुषा न सुदा उत '
ऋ. ८.७८.४

सुदामाः – (१) उत्तम नियमों में बांधने वाला
'दामन्वन्तो सुदामानः सुदामन् '
ऋ. ६.२४.४

सुदावन् – सुखों और उत्तम ऐश्वर्यों को देने वाला

परमेश्वर या राजा ।दे. 'आतिथ्य '

सुदास् - सु + दा + असुन् = सुदास् । प्रथमा ए.व. में सुदाः ।
(१) सुन्दर दान देने वाला यजमान, (२) सुदास, नामक एक राजा । दे. 'अस्मे ' 'शिप्री '
'शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे '
ऋ. ७.२५.३
हे सुन्दर मुख वाले, मुकुटधारी या उष्णीषी इन्द्र सुन्दर दान करने वाले यजमान के लिए या सुदास् राजा के लिए आप की सैकड़ो रक्षाएं हैं ।

सुदास - (१) एक वैदिक राजा, शोभन दानशील
'विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् '
अ. २०.३७.३
(३) सुदास नामक राजा, जिसे पैजवन कहा गया है ।
'अश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः '
ऋ. ३.५३.११
सुदास के अश्वमेधीय अश्व को धनादि के लिए छोड़े ।

सुसासस्तर - अतिशय सुष्ठु प्रदाता
'दिवो नपाता सुदासस्तराय '
ऋ. १.१८४.१
तुम दोनों में जो स्वामी है वह अधिक सुख देने वाले दूसके के लिए परस्पर की कामना या प्रेम को कभी नीचे न गिरने देने वाला ही रहे ।

सुदिन - उत्तम प्रकाश युक्त दिन
'अध यदेषां सुदिने न शरुः '
ऋ. १.१८६.९
दे. 'पराशर '।
'अधा सूरीम्यः सुदिना व्युच्छन् '
ऋ. ७.१८.२१
और विद्वानों के साथ होने से उत्तम दिन बिताते हैं ।
'अशस्तिमेषि सुदिने बाधमानः '
अ. १७.१.१७

सुदीति - (१) उत्तम दीप्ति से युक्त, (२) उत्तम रीति से दृढ़ पदार्थों को भी खण्डित करने में समर्थ वैश्वानर अग्नि ।
'सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे '
ऋ. ३.२.१३
'समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः '
ऋ. १.१५९.४
'सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे '
ऋ. ८.९७.१२; अ. २०.५४.३; साम. २.२८१
(३) उत्तम दाता । एवं रक्षक अग्नि या परमेश्वर का विशेषण ।
'अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तः '
ऋ. ३.१७.४; मै.सं. ४.१३.५;२०५.१३; का.स. १८.२१; तै.ब्रा. ३.६.९.१; आश्व.श्रौ.सू. ९.९.७
'नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः '
अ. २०.१०३.१

सूदीदितिः - सुन्दर दीप्ति युक्त अग्नि
'ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिम् '
ऋ. ८.१९.४
(२) विद्या विनय प्रकाशयुक्तः -दया. उत्तम ज्ञानप्रकाश से युक्त तेजस्वी (३) अग्नि
'अपां नपातं सुभगं सुदीदितिम् '
ऋ. ३.९.१; साम. १.६२; २.७.६४

सुदुघा - सु + दुह् + कप् (घ आदेश) + टाप् = सुदुघा । (१) बहुत दूध देने वाली गौ
(२) सुदोहा, सुष्ठुदोग्ध्री, सुदोहना
(३) माध्यमिका वाक् । दे. 'रोहत् '।
'उप ह्वये सुदुघां धेनुमेताम् '
ऋ. १.१६४.२६; अ. ७.७३.७; ९.१०.४; ऐ.ब्रा. १.२२.२; आश्व. श्रौ.सू. ४.७.४; नि. ११.४३
मैं सुन्दर प्रकार से दुही जाने वली इस गौ या माध्यमिका वाक् को बुलाता हूँ ।
(४) आनन्द रस पान करने वाली, ब्रह्ममयी, चिन्मयी, आनन्द धन कामधेनु

सुदुघां धेनु - (१) सुन्दर सुख पूर्वक दुहने योग्य सुशीला गौ,
(२) सुखों को दोहन करने वाली वाणी, आत्मा, परमेश्वर, भूमि
'उपह्वये सुदुघां धेनुमेताम् '
ऋ. १.१६४.२६

सुद्युत् - (१) सुन्दर प्रकाशवान् -अग्नि । दे. 'वेदिषद् '। (२) उत्तम कान्तिवान सूर्य दे. 'सुसंदृश् '।

सुद्रुः - वेग से दौड़ने वाला अश्व
'नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु '

ऋ. १०.२८.८

सुदृक् - (संदृक) - समान रूप से दर्शनीय। अग्नि का विशेषण। दे. 'चित्', 'सुप्रतीक'

सुदक्षम् - उत्तम बलकारी

'तस्मा इदन्धः सुषमा सुदक्षम्'

ऋ. ४.१६.१; अ. २०.७७.१

सुदृशी - (१) सुन्दर, पूजनीय रूप से दीखने वाली, (२) उत्तम रूप से सब पदार्थों को देखने वाली, (३) सुलोचना

'सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः'

ऋ. १.१२२.२

सूर्य के समान तेजस्वी और विद्वान् पुरुष की लक्ष्मी और हितकारी रमणीय उत्तम गुणों से और सुवर्ण के आभूषणों से सुन्दर दीखने वाली तथा उत्तम रीति से सब पदार्थों को देखने वाली-स्त्री हो।

सुदृशीकः - (१) उत्तम द्रष्टा, (२) उत्तम अध्यक्ष-अग्नि

'विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे'

ऋ. ५.४.२; तै.सं. ३.४.११.१; मै.सं. ४.१२.६; १९६.८; का.सं. २३.१.

सुदेवः - (१) कल्याण देव, कमनीय देव शोभन देव, सुश्रीक पति, । दे. 'अनावृत्'

'सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्'

ऋ. १०.९५.१४; श.ब्रा. ११.५.१.८; नि. ७.३.

तेरा शोभनपति तुझ से वियुक्त हो, अर्थात्, पुनः आने वाले न होकर आज ही पर्वत से गिर कर मर जाय।

पुनः दे. 'सिन्धु'

(२) उत्तम अर्थों का प्रकाशक (३) उत्तम तेजस्वी राजा (४) पुरुष लिंग

'सुदेवस्त्वा महानग्निर्विबाधते'

अ. २०.१३६.१२

(५) उत्तम दानी, (६) ज्ञान प्रकाशक, । दे. 'सुहव्य'।

(६) सर्वश्रेष्ठ देव, (८) उत्तम सुख या कल्याण का दाता, (९) आत्मा

'सुदेवो असि वरुण'

ऋ. ८.६९.१२; अ. २०.९२.९; मै.सं. ४.७.८; १०४.११; नि. ५.२७

सुद्योत्मन् - (१) सुष्टु प्रकाशः-दया (सुद्योत्मा) (२) सुद्योत्मा- उत्तम रीति से चमकने वाला- सुद्यः आत्मा या सुद्योत्मा, (३) प्रकाश स्वरूप आत्मा, (४) तेजस्वी पुरुष

'उत नः सुद्योत्मा जीराश्वः
होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः'

ऋ. १.१४१.१२

और वह उत्तमरीति से चमकने वाला प्रकाश स्वरूप आत्मा 'सुद्योत्मा' कर्मफल भोक्ता जीव ही (जीराश्वः) सब विद्याओं और ज्ञान ग्रहण करने वाला आह्लादक सुवर्ण या चन्द्र के समान प्रकाश स्वरूप अति हर्ष का सुना जाता है। राजा के पक्ष में-जीराश्व का अर्थ वेगवान् अश्वों वाला है।

(५) उत्तम रीति से प्रकाशित होने वाला अग्नि या विद्युत् (६) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर

'हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिम्'

ऋ. २.४.१; का.सं. ३९.१४; कौ.ब्रा. २२.९

सुधन्वन्, सुधन्वा - (१) एक वैदिक राजा। दे. 'ऋभु' (२) यथार्थ वादी

सुधा - (१) उत्तम भरण पोषण करने वाली अमृतरूप शक्ति

'सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्'

अ. १७.१.६-१९; २४

सुधातुः - (१) उत्तम धारण करने वाला यज्ञपति

'सुधातुं यज्ञपतिं दवेयुवम्'

वाज.सं. १.१२, श.ब्रा. १.१.३.७

(२) उत्तम भरण पोषण, (३) उत्तम गृह, (४) उत्तम सोना चान्दी का आभूषण, (५) उत्तम वेतन, वृत्ति

'उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु'

ऋ. ७.६०.११

सुधातुदक्षिणः - उत्तम सुवर्ण आदि धातु की दक्षिणा प्राप्त करने वाला

'ऋषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणम्'

वाज.सं. ७.४६; श.ब्रा. ४.३.४.१९

सुधित - (१) सुखपूर्वक धारण करने योग्य

'अश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा'

ऋ. २.२७.१०

(२) सुविचारित

'मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसम्'

ऋ. ७.३२.१३; अ. २०.५९.४

(३) सुख से धारण करने योग्य ।
'इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि'
ऋ. १.१४०.११
(४) अच्छी प्रकार नियत,
(५) उत्तम पुष्टि कारक
'अभि प्रयांसि सुधितानि वीतये '
ऋ. १.१३५.४
(६) उत्तम रीति से सुरक्षित
'अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतवे '
ऋ. ८.६९.१७; अ. २०.९२.१४

सुधिता – (१) अच्छी तरह से वर्तमान
'मिम्यश येषु सुधिता घृताची'
ऋ. १.१६७.३
(२) सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त –सा. ।
(३) सुसम्पादित –दया. (४) सुस्थापित ।
'यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती
रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा'
ऋ. १.१६६.६; नि. ६.३०
जब आप को (मरुतों को) काटने वाली हेति आयुध (क्रिविर्दती दिद्युत्) मेघ समूह को इस तरह से काटती है (रदति) तथा पशुओं को मारती है (पश्वः रिणाति) जैसे सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त बढ़ी हुई हिंसा भावना से पशुओं को काटता है (सुधिता बर्हणा इव) । –सा.
जिस विज्ञान में (यत्रा) तुम्हारे काटने वाले दांतों वाली विद्युत (वः क्रिविर्दती दिद्युत्) खोदने का काम करती है (रदति) तथा बहुत मात्रा में सुसम्पादित की हुई (बर्हणा सुधिता) पशुओं की तरह (पश्वः इव) ले जाती है (रिणाति)–दया. ।

सुधी – (१) सुन्दर कर्मों या बुद्धि वाली (२) शोभन कर्मा यजमान या विद्वान् । दे. 'अश्वयु' 'निरेक'
'इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके'
ऋ. १.५१.१४
इन्द्रा शोभन कर्मा यजमानों या विद्वानों के निर्धन होने पर सेवा करतें हैं । –सा.
राजा सन्देह स्थलों में (निरेके) विद्वानों का आश्रय लें ।–दया. ।

सुधुरः – (१) उत्तम रूप से रथ को धारण करने वाला–अश्व ।
'अश्वो न वाजी सुधुरो जिहानः'
ऋ. ३.३८.१
(२) सुख से धारण करने योग्य
'रोहितं मे पाकस्थाया
सुधुरं कक्ष्यप्राम् '
ऋ. ८.३.२२

सुधुरा – द्वि.व.। गृहस्थादि भार को उत्तम रीति से धारण करने वाले स्त्री पुरुष, (२) अच्छी प्रकार रथ में जुते दो अश्व ।
'हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा'
ऋ. ३.४३.४

सुधृष्ट – अच्छी प्रकार से ब्राह्माण्ड को धारण करने वाला–परमेश्वर ।
'नराशंसं सुधृष्टम्
अपश्यं स प्रथस्तमम् ।
दिवो न सद्मसद्मसम् '
ऋ. १.१८.९
मै सब मनुष्यों के प्रशंसा और स्तुति करने योग्य परमेश्वर को ही सबसे अधिक अच्छी प्रकार से ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला (सुधृष्टम्) और अति विस्तृत आकाश, काल, दिशा आदि पदार्थों के साथ, उनके समान ही व्यापक और सूर्यादि प्रकाशवान् लोकों के समान सबके आश्रय होकर तेज प्रकाश से युक्त महान् आकाश और सूर्य से भी महान् आश्रय के समान देखता हूं ।

सुधृष्टये – (१) उत्तम रीति से दृढ़, अच्छी प्रकार हृष्ट पुष्ट, सहनशील द्यावापृथिवी, (२) माता पिता
'सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी
पिता यत् सीमभि रुपैरवासयत् '
ऋ. १.१६०.२

सुनवाम – 'सु' धातु के लोट् उ.प्र. ब.व. का रूप । अभिषुनवाम (अभिसवन करें) । सो[illegible]स चुलावें ।

सुन्वत् मर्त्य – (१) उत्पन्न करने वाला, वैज्ञानिक पुरुष, (२) अभिषेक्ता प्रजाजन, (३) उपासक जन ।
'स सुन्वत इन्द्रः सूर्यम्
आ देवो रिणङ् मर्त्याय स्तवान् '
ऋ. २.१९.५

सुनाथ – उत्तम ऐश्वर्य वान्
'आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः'
अ. १२.३.२७

सुनामा– उत्तम गुणों से युक्त, सुगुण पुरुष
'दुर्णामा च सुनामा च'
अ. ८.६.४

सुनिरज – सु + निरज । अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप्त ।
दे. 'सुविवृत'

सुनिर्मथ् – (१) उत्तम मन्थन दण्ड (२) उत्तम शास्त्रालोडनरूप तप
'सुनिर्मथा निर्मथितः'
ऋ. ३.२९.१२

सुनिष्कः – (१) उत्तम सुवर्णादि के मोहरों से व्यवहार करने वाला, (२) सुख पूर्वक देह से निष्क्रमण करने में समर्थ जीव ।
'स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्काः'
ऋ. ७.५६.११

सुनीतयः – (१) प्रशस्त नीतियों से युक्त मरुद्गण या (२) वैश्य व्यापारी वर्ग, । दे. 'वातासः'।
'प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः'
ऋ. १०.७८.२
प्रकृष्ट ज्ञान वाले (प्रज्ञातारः), प्रशस्त नीतियों से युक्त (सुनीतयः) मुखियों या नेताओं के समान (ज्येष्ठाःन) मरुद्गण...।

सुनीथ – सुष्ठु स्तोतुं शक्नुवन् (१) सुन्दर स्तुति करने वाला– सा.(२) सुनीति पर चलने वाला विद्वान् ज.दे.श. । दे. 'क्राणः'।
'सुनीथासो वसूयवः
गोभिः क्राणा अनूषतः ।'
नि. ४.१९
हे इन्द्र, तुझे सुन्दर स्तुति करने वाले (सुनीथासः) धनार्थी (वसूयवः) तुझे अभिमुख करते हुए (त्वां क्राणाः) स्तोत्रों से (गोभिः) स्तुति करते हैं (अनूषत) । –सा.
सुनीति पर चलने वाले विद्वान् (सुनीथासः) सबके निवासक प्रभु की कामना करते हुए (वसूयवः) वेदों में प्रतिपादित कर्मों को करते हुए आप की स्तुति करते हैं (गोभिः अनूषत) ।
(३) उत्तम रीति से लाने में समर्थ ।
'यः सुनीथो ददाशुषे'
ऋ. २.८.२

सुनौः – नुदयति प्रेरयति इति नौः । नुद् + डौ = नौ । सु + नौः = सुनौ । सुन्दर नौका उत्तम मार्ग से प्रेरित करने वाली नौका
'सुनावमारुहेयम्'
वाज.सं. २१.७

सुपक्ष – (१) सुन्दर पक्षों वाली (२) शोभनरीति से सबका आश्रय दाता ।
'सुपक्षमाशुं पतयनामर्णवे'
अ. १३.२.२

सुपदी – (१) शोभन रूप वाली या उत्तम वेग से जाने वाली विद्युत्, (२) उत्तम पदों और संकेतों से युक्त ।
'अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणाम्'
ऋ. ३.३१.६; वाज.सं. ३३.५९; मै.सं. ४.६.४:८३.११; का.सं. २७. ११; तै.ब्रा. २.५.८.१०; आप.श्रौ.सू. १२.१५.६.

सुपप्तनी – द्वि.व.। सुख से गमन करने में समर्थ–स्त्री पुरुष ।
(२) अश्विद्वय
'देव देवत्रा मनसा निरूहथुः
सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसोमहः'
ऋ. १.१८२.५

स्तुप – (१) स्तूप
'विष्णो स्तुपोऽसि'
वाज.सं. २.२; तै.सं. १.१.१.१
(२) हिंसा का प्रयोग
'रेश्माणं स्तुपेन'
वाज.सं. २५.२

सुपर्णा – द्वि.व. । (१) दो पक्षी, (२) सर्वोत्तम ज्ञानी, सबसे बड़ा पालक परमेश्वर और उत्तम कर्म करने वाला, (३) यम नियमादि का पालक और अधीनस्थ प्राणों और देहादि संघात का पालक होने से जीव (४) दो प्रकार के किरण जिनमें एक ताप से जल ग्रहण करते हैं और दूसरे प्रकाश से प्रकाशित करते हैं ।
'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'
ऋ. १.१६४.२०

सुपर्ण – (१) वायु । वायु अर्थ में एक वचन में भी 'सुपर्ण' का प्रयोग हुआ है, (२) सुन्दर गति वाला वायु, । दे. 'आविवेश'

'एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश'
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. १०.४६.
अद्वितीय वह एक वायु अन्तरिक्ष में रहता है। (२) सुन्दर पंख। 'पर्ण' शब्द पंख का भी पर्याय है।
'सुपर्ण वस्ते मृगो अस्या दन्तः'
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ ; १८७.२; नि. ९.१९.
इषु (बाण) सुन्दर पंख को आच्छादित करता है (सुपर्ण वस्ते) और इसका दांत मृग के सिंह के समान होता है। (३) बड़ी गति का पक्षी, बाज
'संवत्सराय महतः सुपर्णान्'
वाज.सं. २४.२५; मै.सं. ३.१४.६:१७३.९
(४) पित्ता, हरिद्रा या दारु हरिद्रा। इसे सप्तपर्णी भी कहते हैं। यह गुल्म कृमि कुष्ठ का नाशक है।
'सुपर्णो जातः प्रथमः'
अ. १.२४.१

सुपर्णचित् – (१) सुखदायी किरणों वाला आदित्य। (२) उत्तम पालन करने वाले साधनों से युक्त, (३) उत्तम पुष्टि कारी पदार्थों का संग्रह करने वाला, (४) अग्नि, (५) गरुक्ष
'सुपर्णचिदसि
वाज.सं. २७.४५; श.ब्रा. ८.१.४.८

सुपर्णयातु – बाज के समान झपटने वाला
'सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुम्'
ऋ. ७.१०४.२२; अ. ८.४.२२

सुपर्णसुवन – (१) जिससे सुपर्ण अर्थात् परमात्मा प्रकट होता है। (२) पर्वत, (३) गरुड़ आदि पक्षियों का उत्पादक हिमवान् आदि पर्वत
'सुपर्ण सुवने गिरौ
जातं हिमवतस्परि'
अ. ५.४.२

सुपर्णाः – ब. व.। (१) उत्तम ब्रह्मज्ञानी-मुक्तपुरुष, (२) सूर्य रश्मियाँ, (३) इन्द्रियगण,
(४) पक्षियाँ
(५) सुन्दर पर्ण अर्थात् गति वाली सुपतन आदित्य रश्मियाँ
'शोभयन्तः पतन्ति इति सुपर्णाः'
(जो शोभते हुए गिरते हैं वे सुपर्ण हैं)। अथवा – शोभनम् अर्थम् उद्दिश्य पतन्ति (सुन्दर उद्देश्य से गिरती हैं)। अन्धकार का नाश करना ही रश्मियों का शोभन उद्देश्य हैं।) सूर्य की किरणें
'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।'
ऋ. १.१६४.२१; अ.९.९.२०; नि. ३.१२
जिस मण्डल में स्थित हो सूर्य की रश्मियाँ जल का भाग लेकर ज्ञानपूर्वक सतत सर्वत्र तपती रहती हैं या जिस शरीर में इन्द्रियाँ अपने अपने स्थान में अवस्थित हो विषय रस को मन में और मन आत्मा को समर्पित करता है अर्थात् जहाँ इन्द्रियाँ बुद्धि के समक्ष विषय विज्ञान लाकर सुख से चलती हैं।
पुनः, दे. 'आववृत्रन्'
'कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः
अपो वसाना दिवमुत्पतनति।'
ऋ. १.१६४.४७; अ. ६.२२.१; ९.१०.२२; १३.३.९; मै.सं. ४.१२.५; १९३.७; का.सं. ११.९,१३; नि. ७.२४.
ये रस हरने वाली तथा सुन्दर गति वाली सूर्य की किरणें सूर्य के दक्षिणायन पथ में लोकों का जल रखती हुई (अपो वसाना) सूर्य लोक में जली जाती हैं।
(२) वायु या प्राण वायु,प्राण को प्राण पखेरू भी कहते हैं। दे. 'आविवेश'।
(३) जीवात्मा भी सुपर्ण है (४) पंख। दे. 'गो'

सुपलाश – (१) शोभनपर्णोपेतः (सुन्दर पतियों से युक्त)। (२) दीप्तिमान्। दे. 'पलाश' (३) हरे पत्तों से युक्त
'वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्'
ऋ. १०.४३.४; अ. २०.१७४

सुपरिविष्टा – उत्तम रूप से अर्द्धांगिनी के रूप में दी गई कन्या।
'देवीरापः शुद्धा वोद्वम्
सुपरिविष्टा देवेषु'
वाज.सं. ६.१३; श.ब्रा. ३.८.२.३

सुपर्णी – सुपतनाः रात्रयः (रातें सुन्दर पतन वाली होती हैं अर्थात् रात्रि का आगमन प्राणियों के लिए सुखकारी हैं)। अर्थ-रात्रि,। दे. 'अवर'
'यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकम्

सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः ।'
ऋ. १०.८८.१९; नि. ७.३१
हे मातरिश्वा, जितनी ही रात्रि उषा का प्रतीक आच्छादित करती हैं या जितनी ही उषाएं रात्रियों में देखी जाती हैं ।

सुप्रजा – सुपुत्र, सुन्दर प्रजा

सुप्रजावनि – उत्तम प्रजाओं को वृन्ति देने वाली
'सिंह्यसि सुप्रजावनी रायस्योपवनिः स्वाहा
वाज.सं. ५.१२; श.ब्रा. ३.५.२.१२

सुप्रजास्त्व – उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करना ।
'रायस्योषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय'
वाज.सं. १३.१; तै.सं. ५.७.९.१; का.सं. ३५.१८; श.ब्रा. ७.४.१.२; तै.ब्रा. ३.७.१.९; तै.आ. ३.११.१२; शां.श्रौ.सू. ४.८.१ ; आप.श्रौ.सू. ६.५.७; ९.२.३; हि.गृ.सू. १.२०.२

सुप्रणीता – (१) उत्तम रीति से गृहस्थ कार्य में प्रवृत स्त्री, (२) सुविवाहिता
'यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीते'
अ. ७.२०.४; का.सं. १३.१६;

सुप्रणीतिः – (१) अग्नि, (२) उत्तम रीति से सब से बढ़कर नीतिमान्
'त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः'
ऋ. ४.२.१३
(३) जिसकी नीति प्रशस्त हो (४) सुन्दर शिक्षा वाला सुशिक्षित विद्वान्
'सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः'
ऋ. १.७३.१
उसी प्रकार विद्वान् और राजा भी आचार्यादि पालक जनों में सुशिक्षित उत्तम शासकों द्वारा स्वीकृत होकर बल तथा दीर्घायु धारण करें ।

सुप्रतिवक्षः– (१) प्रत्येक कार्य, प्रत्येक बल विद्या को उत्तम रीति से देखने वाला । (२) अग्नि
'सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्'
ऋ. ७.१.२; साम. २.७२४; का.सं. ३९.१५

सुप्रतिरा – सुप्रतिर (अच्छी तरह से बढ़ा)। प्रतिरा में दीर्घ छान्दस है । दे. 'असुनीति '।

सुप्रतिष्ठानः – उत्तम प्रतिष्ठा से युक्त
'सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानः'
वाज.सं. ८.८;तै.सं. १.४.२६.१; ६.५.७.३; मै.सं. १.३.२८.७; श.ब्रा. ४.४.१.१४; मा.श्रौ.सू. २.५.१.४४.

सुप्रतीकः – (१) सुन्दर प्रतीक (पूर्त्ति) वाला, (२) शोभन दर्शन (३) अग्नि का विशेषण । दे. 'चित्'
'यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि '
ऋ. १.९४.७
हे अग्नि, तू सर्वतः शोभन दर्शन एवं समान रूप रूप से दर्शनीय है (४) उत्तम रूपवान् – अग्नि
जो अग्नि उत्तम रुपवान्, सबको एक समान ही दीखने वाला (सुप्रीतकः सुदृङ्) है ।

सुप्रतीके – द्वि.व । विशेषण । (१) उत्तम ज्ञान चेतना देने वाली द्यावापृथिवी, (२) उत्तम मुख और ज्ञान प्रतीति वाले माता पिता ।
'दधाते ये अमृतं सुप्रतीके '
ऋ. १.१८५.६

सुप्रतूः – (१) उत्तम रीति से धन प्रदान करने वाला, (२) अग्नि का विशेषण ।
'त्वं हि सुप्रतूरसि'
ऋ. ८.२३.२९

सुप्रतूर्त्ती – द्वि.व.। विशेषण । (१) अति तूर्ण गति वाले द्यावापृथिवी या मातापिता (२) अति वेग वान् कार्य कुशल
'दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती'
ऋ. १.१८५.७; मै.सं. ४.१४.७:२२५.२; तै.ब्रा. २.८.४.८

सुप्रतूर्ति – (१) प्रकृष्ट शीघ्रता वाला, स्फूर्ति वाला, (२) सुखपूर्वक, उत्तम रीति से पार पहुंचा देने वाला, (३) क्रियावान्, (४) अग्नि, (५) परमेश्वर ।
'सुप्रतूर्तिमनेहसम् '
ऋ. १.४०.४; ३.९.१; साम. १.६२
(६) सुष्ठु प्रकृष्टा तूर्तिः त्वरिता प्राप्तिः यया सा (उत्तमता से शीघ्र प्राप्त करने वाली) ।
(७) सभी पदार्थों, ज्ञानों और सुखों को देने वाली ।
'तस्मा इडां सुवीरामा यजामहे
सुप्रतूर्तिमनेहसम्'
ऋ. १.४०.४
उस नायक के वीर्यवती (सुवीराम्), बहुत अच्छी प्रकार, सब ज्ञानों पदार्थों और सुखों को देने वाली गौ के समान कभी न मारने योग्य

निर्दोष निष्पाप कन्या के समान भूमि को हम प्रदान करें ।

सुप्रददिः - उत्तम दान देने वाला
'रेवान् सुप्रददिश्चयः'
अ. २०.१२८.९; क्षां.श्रौ.सू. १२.२१.२.४

सुप्रयाः - सु + प्र + या + असुन् = सुप्रयस् । प्र ए. व. में सुप्रयाः । 'या' धातु प्रापणार्थक है । अर्थ है- (१) सुप्रापणम्,
सुप्रगमनम् (सुखपूर्वक गमनीय) (२) जिस कुश पर देवतागण सुन्दर रीति से बिछाए जाने के कारण सुविधा से आ सके वह 'सुप्रपाः' है ।
(३) सुन्दर बैठने या आने योग्य आसन-सा.
(४) शुभागमनयुक्त-ज.दे.श. । दे. 'इयाते' ।
'प्र वावृजे सुप्रया बर्हिषाम्'
ऋ. ७.३९.२; वाज.सं. ३३.४४; नि. ५.२८
सुन्दर बैठने योग्य कुशासन बिछाया जाता है-सा. ।
सुन्दर आगमन युक्त वृद्धि प्रदान की जाती है - ज.दे.श.।

सुप्रपाण - (१) सुख से जल पान करने योग्य घाट
'सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती'
अ. १४.२.६
(२) पानी पीने के लिए उत्तम घाट
'शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः'
ऋ. ६.२८.७; अ. ४.२१.७;७.७५.१; मै.सं. ४.१.१:२.३;तै.ब्रा. २. ८.८.१२;आप.श्रौ.सू. १.२.८; मा.श्रौ.सू. १.१.१.२०
'सुप्रपाणा च वेशन्ता'
अ. २०.१२८.९; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.४; वै.सू. ३८.२

सुप्रमतिः - सु + प्र + मति । (१) उत्कृष्ट कोटि की बुद्धि, (२) उत्तम ज्ञानयुक्त
'अस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति'
ऋ. १.३३.१
वह हमारे उत्कृष्ट कोटि के ज्ञान को अच्छी प्रकार बढ़ावे (वावृधाति) ।

सुप्रयावा - उत्तम प्रयाण कारी
'यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः'
ऋ. ५.४४.१२;

सुप्रवन्धुर - वेगवान् पदार्थों और वीर पुरुषों के बीच में व्यवस्थित
'सुप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः'
ऋ. १.१८१.३

सुप्रवाचन (१) उत्तम रीति से प्रवचन करने योग्य -वेदज्ञान ।
'नव्यं तदुक्थं हितम्
देवासः सुप्रवाचनम्'
ऋ. १.१०५.१२
हे विद्वानो और जिज्ञासु शिष्यो, आप लोग उस परम स्तुत्य सद्यः प्राप्त अपने में धारित और सबके हितकारी लाभदायक वेदमन्त्रों में विद्यमान उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य सत्य वेदज्ञान को सब को प्रदान करो ।
(२) उत्तम रीति से आदर पूर्वक गुरुजनों से उपदेश किए जाने योग्य ।
सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यम्'
ऋ. २.१३.११
(३) उत्कृष्ट वचनोपदेश
'तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनम्'
ऋ. १०.३५.१२

सुप्रवोचम् - सुप्रब्रवीमि (सुन्दर बोलता हूँ) । लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग ।

सुप्सरस्तमः - उत्तम पूज्य रूप कान्ति वाला
'त्वां हि सुप्सरस्तमम्
नृषदनेषु हूमहे'
ऋ. ८.२६.२४; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

सुपाणिः - (१) उत्तम हाथों वाला (२) कर्मों को उत्तम रीति से करने वाला, सिद्धहस्त (३) पूजनीय व्यवहार और स्तुति वचनों वाला ।
'सुकृत् सुपाणिः स्ववां ऋतावा'
ऋ. ३.५४.१२
(४) शोभनहस्तः । पणं (पूजा अर्थ में) + इन् = पाणि । प्रगृह्य पाणी देवान् पूजयन्ति (हाथों को जोड़े देवों की पूजा करते हैं) ।
(५) सुन्दर बाहु या किरणों वाला, इन्द्र या सूर्य । दे. 'अपाहन्'
'देवोऽनयत् सवितासुपाणिः'
ऋ. ३.३३.६; नि. २.२६

सुपाणी - द्वि.व.। (१) उत्तम व्यवहारों से युक्त स्त्री पुरुष, (२) शुभ आभूषण आदि से उत्तम करवाले स्त्री पुरुष । दे. 'भद्रहस्ता' ।

सुपारः - (१) उत्तम रीति से पूर्ण करने वाला, पुष्ट

करने वाला, पालन करने वाला (२) उत्तम पालक
'सुपारासो वसवो बर्हणावत् '
ऋ. ३.३९.८
'सुपारः सुन्वतः सखा'
ऋ. १.४.१०; ८.३२.१३; अ. २०.६८.१०
(३) सारी कामनाओं का पूरक
(४) सबको सुख से पालन करने वाला
'सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित्'
ऋ. ८.१३.२; साम. २.९७

सुपारक्षत्रः – सुख से सर्वपालक बल और ऐश्वर्य से युक्त वरुण परमेश्वर
'सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा'
ऋ. ७.८७.६

सुपारा – प्रजाओं को उत्तमरीति से से पालन करने में समर्थ
'अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा'
ऋ. १.१५२.७; मै.सं. ४.१४.१२:२३४.४; तै.ब्रा. २.८.६.६.

सुपाराः – स्त्री.ब.व.। (१) सुख से पालन और पूर्ण करने योग्य स्त्रियाँ (२) नदियां, (३) सुन्दर पालन आदि कर्म करने वाली –दया. ।
'नि षू न मध्वं भवता सुपाराः'
ऋ. ३.३३.९

सुप्राङ् – (१) उत्तम प्रश्नशील विद्यार्थी, (२) उत्तम शोभा से युक्त, कान्तिमान् ।
'सुप्राङ् अजो मेम्यद् विश्वरूपः
इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः'
ऋ. १.१६२.२; वाज.सं. २५.२५; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१ :१८१.१०; का.सं. (अश्व.) ६.४.
(३) सु + प्र + अञ्च् + क्विप् = सुप्राञ्च । प्र.ए.का रूप सुप्राङ् ।
उत्तम रीति से आगे बढ़ने वाला, उन्नतिशील ।

सुप्रायण – (१) सुगमन–सुप्रगमन सुन्दर गमन युक्त ।
'होता यक्षदोजो न वीर्यम्
सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन्
सुप्रायणा अस्मिन्यज्ञे वि श्रयन्ताम्
ऋतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे
व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।'
वाज.सं. २८.५
होता इन गृह द्वारों को या इन अग्नि की ज्वालाओं को पूजे, बड़े–बड़े हिंसा करने वाले किवाड़ युक्त कुषित किवाड़ें जिनके संवृत होने पर धन या हवि निकल कर अन्यत्र नहीं जा सकती इस प्रकार के द्वार या अग्निशिखाएं दिशाओं के साथ उठें (आताभिः उज्जिहताम्) तथा विश्रयण करें, अर्थात् विवृत हों । ये द्वार ऋत्विजों के लिए सुगम हों (यक्षोभिः सुप्रायणाः) । यज्ञ को बढ़ाने वाली ये अग्नि शिखाएं या द्वार (ऋतावृधः) इस यज्ञ में विवृत हों अर्थात् खुल जांय (विश्रयन्ताम्) और आज्य के अपने भाग्य को पीयें (आज्यस्य व्यन्तु) । हे होता, तू भी इसकी पूजा कर (होतः यज) ।
अन्य अर्थ– ज्ञान–गृहीता इन इन्द्रियों को पूजे या सेवन करें, ये द्वार या इन्द्रियाँ दर्शनीय कुषित या किवाड़युक्त (कवष्यः) तथा जिनमें से कोष बाहर नहीं जा सकता (अकोष धावनीः) ये सत्य ज्ञान को बढ़ाने वाली (ऋतावृधः) सुगतियुक्त इन्द्रियाँ (सुप्रायणाः दुरः) इस शरीर यज्ञ में (अस्मिन् यज्ञे) आश्रित हों (विश्रयन्ताम्) । वे प्राप्तव्य ज्ञान को प्राप्त करें (आज्यस्य व्यन्तु) । हे ज्ञान–गृहीता (होतः), इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करें (यज) ।
(२) सु + प्र + अयन = सुप्रायणः । सुन्दर आने जाने लायक यज्ञ द्वार का विशेषण । दे. 'उर्विया'।
'देवेभ्यो भवत सुप्रायणा'
ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३: २०२.४; का.सं. १६.२०; नि. ८.१०

सुप्रायणतम – सु + प्र + अयनतम् । सुन्दर सुख से आसन या स्थिति करने योग्य ।
'अस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम्'
ऋ. ६.६३.३

सुप्रावर्ग – सु + प्रावर्ग । शत्रुओं को वर्जन करने वाला
'सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यम् '
ऋ. ८.२२.१८

सुप्राव्य = सु + प्र + अव्य (१) अच्छी प्रकार रक्षा करने योग्य (२) अच्छी प्रकार रक्षा करने में कुशल ।
'सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः'

ऋ. २.१३.९
(२) सुष्ठु चलितुम् अर्हः (खूब चल सकने योग्य) (३) उत्तम रीति से सुख पूर्वक कार्य संचालन करने वाला (४) शीघ्र ही स्थानान्तर में जाने में समर्थ ।
'सुप्राव्ये दूतं सद्यो अर्थम् '
ऋ. १.६०.१
सुखपर्वक कार्य संचालन करने वाले या खूब चल सकने योग्य स्थानान्तर जाने में समर्थ अग्नि विद्वान् या दूत को....।
(५) सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करने वाला राजा, (६) उत्तम रीति से प्राप्त करने या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य आचार्य, (७) सुष्ठु प्रवेश कराने योग्य ।
'त्रिः सुप्राप्ये त्रेधेव शिक्षतम् '
ऋ. १.३४.५
सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करने वाले राजा या उत्तम रीति से प्राप्त करने या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य आचार्य के अधीन रहकर पठन पाठन एव हस्तक्रिया से तीन बार अर्थात् बार बार ज्ञान का अभ्यास करो ।
(८) उत्तम रीति से पालने में कुशल ।
'सुप्राव्यः प्राशुषाडेष वीरः '
ऋ. ४.२५.६

सुप्रावी – (१) उत्तम रक्षक, उत्तम प्रजारक्षक पुरुष
'सुप्रावीरिद् वनवत् पृत्सु दुष्टरम् '
ऋ. २.२६.१
'सुवीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः '
ऋ. १.८३.२१; अ. २०.२५.१
उत्तम प्रजारक्षक पुरुष और रक्षा साधनों से रथ पर बैठे भूमि पर विचरण करें ।
(२) उत्तम रीति से वीर्य रक्षा करने वाला
प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी '
ऋ. ४.२५.५
'सुप्रावीरस्तु स क्षयः
प्र नु यामन् त्सुदानवः '
ऋ. ७.६६.५; साम. २.७०२

सुपित्र्य – उत्तम पिता के पुत्रवत् जीव ।
'वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य '
ऋ. १०.११५.६; कौ.ब्रा. २१.३

सुपिप्पलः – (१) उत्तम पालन सामर्थों और योग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न उत्तम बलवान् , (२) उत्तम फलों वाला वृक्ष
'हिरण्यपर्णो अश्विभ्यां सरस्वत्या सुपिप्पलः '
वाज.सं. २१.५६; मै.सं. ३.११.५;१४७.१५; तै.ब्रा. २.६.१४.५
(३) ज्ञानमय फलों से युक्त
'हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलः '
वाज.सं. २८.२०; तै.ब्रा. २.६.१०.६

सुपिप्पला – (१) सुन्दर फलयुक्त ओषधि
'सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः '
ऋ. ७.१०१.५; का.सं. २०.१५; तै.आ. १.२९.१
'तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः '
वाज.सं. ११.३८; मै.सं. २.७.४;७८.६; ३.१.५; ६.२०; का.सं. १६. ४; १९.५; श.ब्रा. ६.४.३.२

सुप्रिया – बहुत प्रिया –
– *'यथा तेऽसानि सुप्रिया '*
अ. ७.३८.२

सुपिश् – सुन्दर दृढ़ शरीर वाला
'पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः '
ऋ. १.६४.८
सभी **ऐश्वर्यों** के स्वामी (विश्ववेदसः) दृढ़ सुन्दर शरीर वाले होकर (सुपिशः) बलवान् शरीर वाले गजों के समान (पिशा इव) गम्भीर वेदी हों ।

सुपीवाः – खूब हृष्ट पुष्ट
'सुपीवासो अतृषिता अतृष्णजः '
ऋ. १०.९४.११

सुपुत्रा – (१) सुख पूर्वक पुरुषों का त्राण करने वाली प्रकृति
'सुपुत्र आदु सुस्नुषे '
ऋ. १०.८६.१३; अ. २०.१२६.१३; नि. १२.९
(२) उत्तम पुत्रों या जीवों वाली प्रकृति

सुप्रैला – सु + प्र + एता । (१) उत्तम साधन रथ आदि से जाने वाला, (२) उत्तम सदाचार से या सत्कर्म से आगे बढ़ने वाला
'सुप्रैतुः सूयवसो न पन्थाः '
ऋ. १.१९०.६

सुबन्धवः – (१) उत्तम सम्बन्धों से सम्बद्ध, (२) परस्पर प्रेम और विद्यासम्बन्ध से बंधे हुए, (३) शरीर में एकत्र, बंधे हुए प्राण

सुबन्धु – (१) उत्तम बन्धु, निज सम्बन्धी (२) प्रबन्ध

कर्ता
'देवानां पुष्टे चकृमासु बन्धुम्'
ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६. १:१८२.५
(३) यूप में बंधां यज्ञीय अश्व-सा.
(४) सबके साथ बन्धुवत् उत्तम व्यवहार करने वाला
'देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम्'
ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१: १८२.५
देवातओं के पोषण के लिए (प्रष्टे) हम यूप में बांधे इस यज्ञीय अश्व को (सुबन्धुम्) करते हैं (चकृम)।
देवजनों के परिपुष्ट उस राष्ट्र में (देवानाम् पुष्टे) सबके साथ बन्धुवत् उत्तम व्यवहार करने वाले मनुष्य हम राजा बनाते हैं।
(५) सुन्दर उपकार करने वाला (अश्व)।

सुभगः – (१) सुन्दर ऐश्वर्य वाला, (२) सुन्दर रश्मि एवं धन वाला– अश्विनी कमारों में एक का विशेषण। दे. 'अरेपस्, ''जिष्णु, ''सुभख, ''सूरि'
'जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः
दिवो अन्यः सुंभगः पुत्र ऊहे।'
ऋ. १.१८१.४; नि. १२.३
तुम दो अश्विनी कुमारों में एक जयशील तथा सुमहान् बल के प्रेरक हो और दूसरा द्युलोक का पुत्र आदित्य (दिवः पुत्रः) सुन्दर रश्मिरूप धनवाला (सुभगः) सदा वायु से वहन किया जाता है।

सुभगं करणी – सौभाग्य उत्पन्न करने वाली
'सुभगं करणी मम'
अ. ६.१३९.१

सुभगा – (१) पति द्वारा उत्तम रीति से सुख पूर्वक सेवन योग्य स्त्री (२) उत्तम सौभाग्य और ऐश्वर्यादि सुखों को देने वाली (३) सौभाग्य शालिनी
'विपाशामुर्वीं सुभगामगन्म'
ऋ. ३.३३.३
(३) सु + भग + टाप्। सुन्दर भाग्य वाली या ऐश्वर्य वती।
'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्'
ऋ. १०.१०.१०; अ. १८.१.११; नि. ४.२०
'इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्'
ऋ. १०.८६.११; अ. २०.१२६.११; नि. ११.३८.

सुभगासरस्वती – (१) सुख सौभाग्यमयी वेदवाणी
'पातु नो देवी सुभगा सरस्वती'
अ. ६.३.२

सुभद्र – सुकल्याण, सुन्दर, कल्याण करने वाला।

सुभद्रा – सुन्दर कल्याण देने वाली। दे. 'अध'
'अधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्'
ऋ. १०.१०.१४; अ. १८.१.१६; नि. ११.३४.
हे यमी! तू सुन्दर भोगादि सुख कर।

सुभद्रिका – (१) उत्तम सुख सम्पदा से युक्त (२) परम सुखमय ब्रह्म में रहने वाली ब्रह्मविद्या
'सुभद्रिकां काम्पील वासिनीम्'
वाज.सं. २३.१८; मै.सं. ३.१२.२०:१६६.१०

सुभर – (१) उत्तम रीति से ज्ञान को धारण करने वाला, (२) उत्तम रीति से युद्ध करने वाला, (३) उत्तम ऐश्वर्यों को धारण करने वाला
'युवोः दानाय सुभरा असश्चतः
रथमातस्थुः वचसं नमन्तवे'
ऋ. १.११२.२
उत्तम रीति से ज्ञान धारण करने वाले, विषय भोगादि से आसक्त न होने वाले (सुभरा असश्चतः) त्यागी पुरुष ज्ञान के लिए जैसे उत्तम प्रवक्ता के पास जाते हैं (मन्तवे न वचसम् आतस्थुः), उसी प्रकार उत्तम रीति से युद्ध करने वाले या उत्तम ऐश्वर्यों को धारण करने वाले कहीं भी आश्रय न पाते हुए प्रजाजन शत्रुओं के नाश के लिए और ऐश्वर्य के दान के लिए तुम दोनों विजयशील रथ पर स्थिरता प्राप्त करते हैं।
(४) अच्छी प्रकार भरण पोषण करने में समर्थ
'पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः'
ऋ. २.३.९; तैसं. ३.१.११.२; मै.सं. ४.१४.८:२२७.१; आश्व.श्रौ. सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. १३.४.२.

सुभरा – (१) उत्तम रीति से भरण पोषण करने वाली नीति। (२) सुपुष्ट, (३) समस्त गुणों को धारण करने वाली,
सु + भृ (भरण करना) + अच् + टाप् = सुभरा।
'विश्वायुर्विश्वा सुभरा अहर्दिवि'
ऋ. ९.८६.४१

समस्त मनुष्य वर्ग या सर्वायु परिणत वय, या अप्रतिहत बुद्धि यजमान (विश्वायुः) सुपुष्ट या उत्तम गुणों को धारण करने वाली स्तुतियों को दिन रात करता है (विश्वा सुभरा अहर्दिवि)।
(४) सुख प्राप्त कराने वाली

सुभसत्तरा – (१) अधिक कान्तिमती
'न मत् स्त्री सुभसत्तरा'
ऋ. १०.८६.६; अ. २०.१२६.६

स्तुभ् – (१) स्तुति करने योग्य विद्वान्
'अनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति'
ऋ. ३.५१.३; मै.सं. ४.१२.३; १८४.१
(२) ब्रह्मचर्य से वीर्य का स्तम्भन करने वाला ब्रह्मचारी, (३) उत्तम भूमि, (४) स्तुति शील बली हिंसा कारी सेना, (५) स्तुतिशील भक्त (६) स्तुति
'सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति'
ऋ. १.१९०.७; आश्व.श्रौ.सू. ३.७.९
(७) स्थिर कारक, (८) स्थिर ताप, (९) स्थायी प्रबन्ध

सुभागः – उत्तम धन सम्पन्न
'सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नान्'
ऋ. १०.७८.८

सुभागाः – सुख सौभाग्य से युक्त, सुख से सेवन योग्य, उत्तम भाग्य वान्
'स्थिरा चित् जनीर्वहते सुभागाः'
ऋ. १.१६७.७

स्तुभ्वा – अर्चक, अर्चना करने वाला। स्तुभ् + वनिप्।
'ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तः'
ऋ. १.६६.४

स्तुभिषक्तमः – सब प्रकार के मानस और शारीरिक पीड़ाओं का सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक परमेश्वर।
'स एव सुभिषक्तमः'
अ. २.९.५

सुभ्र – (१) उत्तम, बलकारक, (२) उत्तम पाकं आदि संस्कारों से संस्कृत अन्न या कर्मफल।
'स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति'
ऋ. २.३५.७; का.सं. ३५.३

सुभूः – (१) उत्तम वृष्टि, अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करने वाली भूमि, (२) उत्तम सामर्थ्यवान् प्रजापालक जन
'ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतासः'
ऋ. ४.१७.२
(३) सुन्दर भूमि वाला, उत्तम भूमिपति, (४) अति सामर्थ्यवान् पुरुष
'शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते'
ऋ. १.५२.१; साम. १.३७७
जिस इन्द्र के अधीन सैकड़ो उत्तम भूमिपति कांप जाते या एक साथ ही युद्ध यात्रा करते हैं।
(५) सर्वश्रेष्ठ, (६) सर्वपूज्य सत्ता वाला सर्वोत्पादक
'सुभूः स्वयम्भूः प्रथमः'
वाज.सं. २३.६३; श.ब्रा.१३.५.२.२३

सुभृत – उत्तम रीति से धारण पोषण करने वाला
'सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम्'
अ. ६.३९.१

सुवृत् – अच्छी प्रकार चलने वाला रथ।
'हिरण्ययेन सुवृता रथेन'
ऋ. ४.४४.५; अ. २०.१४३.५

सुभोजसौ – उत्तम पालन करने वाले द्यावापृथ्वी
'मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ युचेतसौ'
अ. ४.२६.१

सुभोजाः – उत्तम योग्य पदार्थों एवं रक्षा साधनों से सम्पन्न ऐश्वर्य
'नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व'
ऋ. ७.९२.३; वाज.सं. २७.२७; मै.सं. ४.१०.६:१५८.५; का.सं. १०.१२.

सुमखः – सुष्ठु, मंहनीयः, सुमहान् (सुमहान् बल)। दे. अरेपस् " जिष्णु '।
'जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः'
ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३
(तुम अश्विनीकुमारों, में एक जयशील तथा सुमहान बल के प्रेरक हो)।
'मख' शब्द का अर्थ 'महान्' है।
आधुनिक अर्थ – सुन्दर यज्ञ

सुमखस्य सूरिः – उत्तम गृहस्थ, यज्ञ करने वाला। दे. 'सुमख'

सुमखासः – ब.व.। ए.व. में 'सुमखः' (१) उत्तम सूर्य प्रकाश को धारण करने वाले वायु, (२) सुमहान बलवाले।
'वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः'

ऋ. १.८५.४

सुमंगल – शोभन मंगल करने वाला

'परिपाणः सुमंगलः'

अ. ८.५.१

सुमंगली – (१) उत्तम मंगल वाली उषा, या (२) स्त्री

'सुमंगलीर्बिभ्रती देववीतिम्'

इहाद्योषः श्रेष्ठतमाव्युच्छ'

ऋ. १.११३.१२

(३) उत्तम शुभ मंगत करने वाली नववधू

'सा नो अस्तु सुमंगली'

अ. ३.१०.२; १४.१.६०; साम.मं.ब्रा. २.२.१६; पा.गृ.सू. ३.२ .२; आप.मं.पा. २.२०.२७; हि.गृ.सू. २.१७.२;

सुमज्ञानिः – (१) सुष्ठु प्राप्तविद्यः–दया.

(२) स्वयं ही स्वभाव से ही ज्ञान प्राप्त करने में लग्न विष्णु या (३) विद्यार्थी

'सुमज्ञानये विष्णवे ददाशति'

ऋ. १.१५६.२; तै.ब्रा. २.४.३.९.

सुमत् – (१) उत्तम हर्ष दायक

'सीदतां बर्हिरा सुमत्'

ऋ. १.१४२.७

(२) अ.। अनायास

'सुमद् यूथं न पुरु शोभमानम्'

ऋ. ५.२.४

(३) स्वयम्।

'सुमत् स्वयमित्यर्थः'

दे. 'उपप्रागात्'

'उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म'

ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०;

मेरा मननीय कार्य स्वयं मेरे निकट आये–सा.। मेरा मन जिसका ध्यान करता है वह अभिलषित पदार्थ, जिस राष्ट्र यज्ञ में स्वयं प्राप्त होता है।

(४) सुमति–दया.

स्वा.दयानन्द ने 'सुमत्क्षराणाम्' का अर्थ सुमति का नाश किया है।

(५) सुन्दर ज्ञाता

सुमत्क्षर – (१) सु + मद् + क्षर। उत्तम रीति से रस, तृप्ति और आनन्द देने वाला,

(२) उत्तम हर्षजनक,

(३) हर्ष आनन्द की वर्षा करने वाला

(४) सुमति का नाशक –दया.

'यवस प्रथमानां सुमत्क्षराणाम्'

वाज.सं. २१.४३

सुमद्गुः – उत्तम रीति से सुप्रसन्न इन्द्रियों से युक्त आत्मा।

'असुरात्मा तन्वस्तत् सुमद्गु'ः

अ. ५.१.७

सुमति – (१) सुन्दर बुद्धि–सा (२) शिक्षा–दया.

दे. 'क्रिविर्दती' 'सुचेतुना'

'यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना

अरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन'

ऋ. १.१६६.६

हे उग्र मरुतो, सुन्दर बुद्धि वाले तथा सदा साथ रहने वाले आप हमारी बुद्धि को पूर्ण करें। –सा.

हे संघशक्ति से सम्पन्न विद्वानो, आप हमारी शिक्षा को विज्ञान से पूर्ण करें (सुचेतुना पिपर्तन)।–दया.।

दे. अथर्वन्।

'तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्'

ऋ. १०.१४.६; अ. ६.५५.३; १८.१.५८; वाज.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.६; ५.७.२.४; का.सं. १३.१५; मा.श्रौ.सू. १.६.४.२१; साम.मं.ब्रा. २.१.१२; पा.गृ.सू. ३.२.२; नि. ११.१९

'देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्'

ऋ. १.८९.२; वाज.सं. २५.१५; मै.सं. ४.१४:२ २१७.७; नि. १२.३९

देवों की कल्याणकारिणी सद्भावना हमारी ओर हो।

(६) अनुग्रहात्मिका बुद्धि। दे. 'कम्'

सुमतीवृध् – उत्तम स्तुति, मति और ज्ञान वृद्धि करने वाला।

'सुष्टुतिं सुमतीवृधः'

वाज.सं. २२.१२

सुमदंशुः – (१) अति वेग और उत्साह से जाने वाली (२) शोभन ज्वलन वाली –अग्नि शिखा –दया.। दे. 'द्युक्षा'।

'रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीः'

ऋ. १.१००.१६

सुमद्रथ – (१) उत्तम शोभायुक्त रथ सैन्य का स्वामी

'अग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः'

ऋ. ३.३.९
(२) उत्तम स्वरूप या रथ वाला
'हव्यवाट् स सुमद्रथः'
ऋ. ८.५६.५; का.सं. ३९.१५

सुमन् -. अ. । स्वयमेव । दे. 'अधायि'
'उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म'
ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ :१८२.४; का.सं. (अश्व) ६.४; नि. ६.२२.
यह इच्छा मेरे मन में स्वमेव आई ।

सुमनस्यमान - उत्तम कल्याणमय चित्त वाला
'धाता दधातु सुमनस्यमानः'
अ. ७.१९.१; मै.सं. २.१३.२२:१६८.२; २.१३.२३: १६९.४; का.सं. १३.१५,१६; ४०.१,१२; आप.श्रौ.सू. १४.२८.४; १७.१३.२

सुमन्तु - (१) उत्तम मनन करने योग्य ज्ञानी और मनन शील पुरुष ।
(२) शोभन विद्यायुक्त -दया. । दे. 'दुर्मन्मन्'
(३) सुख से मनन करने योग्य
'यमस्य यो मनवते सुमन्तु'
ऋ. १०.१२.६; अ. १८.१.३४
(४) उत्तम
'सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः'
ऋ. ५.४४.४

सुमनतुनामा - (१) उत्तम मननशील नाम से प्रसिद्ध-इन्द्र, परमेश्वर
'सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च'
ऋ. ६.१८.८

सुमन्मा - उत्तम रूप से मनन करने वाली चितिशक्ति ।
'सुमन्मा वस्वीरन्ती सूनरी'
साम. २.१००४; तै.ब्रा. २.१४४.

सुम्नम् - सुख । दे. 'आ' ।
'आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि'
ऋ. ८.६८.१; साम. १.३५४
हे इन्द्र, सुख के लिये तथा रक्षा के लिए तुझे आवर्तित करते हैं जैसे अशक्त पुरुष रथ में ।

सुम्नयी - प्रजा को सुख, धन या ऐश्वर्य देने वाली राजशक्ति
'पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि'
अ. १९.४७.४

सुम्नयुः - (१) सुख चाहने वाला
तं वः शर्धं मारुतं शुम्नयुर्गिरा'
ऋ. २.३०.११
(२) ज्ञानोपदेशयुक्त
'भरस्व सुम्नयुर्गिरः'
ऋ. १.७९.१०
(३) मन को प्रसन्न करने वाला
'यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः'
अ. ७.१०.१

सुम्नहू - (१) सुखों का प्रदाता (२) सुषुम्ना द्वारा भीतर सुख देने वाला -परमेश्वर ।
'सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत्'
वाज.सं. १७.६२; तै.सं. ४.६.३.४; ५.४.६.६; मै.सं. २.१०.५: १३७.१६; ३.३.८:४१.७; का.सं. १८.३;२१.८; श.ब्रा. ९.२.३.२०; मा.श्रौ.सू. ६.२.५

सुम्ना - (१) सुख कारिणी दशा (२) सुमना, (३) सुषुम्ना नाड़ी ।
'तेभिः सुम्नया धेहिं नो वसो'
अ. ७.५५.१

सुमन्यात् - सुख की कामना करता हुआ
'सुम्नायता मनसा तत् त्वेमहे'
ऋ. २.३२.२

सुम्नायन् - 'सुम्न' का अर्थ है 'सुख' । नाम धातु होने से अर्थ होगा-सुखी करता हुआ
'सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमां चर'
ऋ. १.११४.३; का.सं. ४०.११; आप.श्रौ.सू. १७.२२.१
तू हमारी प्रजाओं को सुखी करता हुआ ।

सुम्नावरी - (१) उत्तम सुखों को देने वाली उषा या (२) स्त्री । दे. 'सूनृता' ।

सुमाता - (१) सुन्दर माता वाला, (२) उत्तम निर्माता पुरुषों के अधीन
'शिशूला न क्रीडयः सुमातरः'
ऋ. १०.७८.६

सुमायाः - ब.व.। (१) सुन्दर माया अर्थात् प्रज्ञा वाले-मरुतों का विशेषण । दे. 'आपप्तत' ।
'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४
हे सुप्रज्ञ मरुतो (सुमायाः), अति महान् अर्थात् प्रचुर अन्न से (वर्षिष्ठया इषा) उपलक्षित पक्षियों

की तरह (वयो न) शीघ्र आओ ।
(२) मा + य + टाप् = माया । मीयन्ते परिच्छिद्यन्ते अनया पदार्था इति माया (इससे पदार्थ मापे या परिच्छिन्न किये जाते हैं अतः यह माया है) । निघण्टु ने 'माया' शब्द का अर्थ कर्म या प्रज्ञा माना है ।
'सुमायाः' का अर्थ हुआ–जिन के कर्म सुन्दर हों । मरुतों का विशेषण । दे. 'अश्वपर्ण', वर्षिष्ठा'
'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
हे सुकर्मा, अत्यन्त अन्न को देख जैसे पक्षी आते हैं वैसे ही तुम आओ ।

सुमारुतः – उत्तम वीरों का गण
'सुमारुतं न-पूर्वीरति क्षपः'
ऋ. १०.७७.२

सुमति – सु + मित । उत्तम रीति से बनाया गया ।
'मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी'
ऋ. १०.२९.६; अ. २०.७६.६

सुमित्रधः – उत्तम धारण पोषण करने वाला
'मित्रो न एहि सुमित्रधः'
वाज.सं. ४.२७.श.ब्रा. ३.३.३.१०

सुमति – बड़ा भारी परिमाण ।
'सुमिती मीयपानो वर्चो-धा यज्ञवाहसे'
ऋ. ३.८.३; मै.सं. ४.१३.१:१९९.५; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २.२ .८; तै.ब्रा. ३.६.१.१.;श.ब्रा. ५.२.४.१६

सुमखं सहः – सुमहत् बल, मख का अर्थ यज्ञ है । यज्ञ ही इन्द्र या परमात्मा का बल है । दे. 'नृम्ण' ।
'इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि'
ऋ. १०.५०.१; वाज.सं. ३२.२३; नि. ११.९

सुमृडतु – सुन्दर सुख पहुंचावे । दे. 'पुलुकाय'।

सुमृडीक – उत्तम सुखप्रद
'सुमृडीकां अभिष्टये'
ऋ. ८.६७.१; तै.सं. २.१.११.५; मै.सं. ४.१२.१:१७७.६

सुमेके – द्वि.व.। 'मेक' का अर्थ है अंग । बनावट । रात्रि दिन का विशेषण । अर्थ–सुन्दर अंगवाले रातदिन । दे. 'मेथेते'
'न मेथेते न तस्थतुः सुमेके'
ऋ. १.११३.३; साम. २.११०.१
(२) स्वामी दयानन्द ने अर्थ किया है–'नियमे निक्षिप्ते' (नियम में लगाए रात्रि और उषा) ।
(३) उत्तम कर्मों वाले, (४) हृष्ट पुष्टांग वाले वीर्यवान् (५) उत्तम सन्तान, उत्पन्न करने वाले माता पिता ।
'विश्वग्धेनू वि चरतः सुमेके'
ऋ. १.१४६.३
(६) सुन्दर रूप वाले, (७) सुसम्बद्ध द्यावापृथिवी (८) उत्तम रीति से वीर्य सेचन में समर्थ स्त्री पुरुष ।
'उर्वी गभीरे रजसी सुमेके'
ऋ. ४.४२.३; ५६.३; मै.सं. ४.१४.७:२२४.१०; तै.ब्रा. २.८.४.७

सुमेके रोदसी – (१) सुखप्रद मेघादि से युक्त सूर्य और भूमि (२) शुभवीर्य सेचन में समर्थ उत्तम सन्तानोत्पादक मातापिता
'उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके'
ऋ. ७.८७.३

सुयज्ञ – (१) सुन्दर यज्ञ करने वाला (२) सुन्दर उपास्य –इन्द्र, परमेश्वर
'इन्द्रः सुयज्ञ उषसःस्वर्जनत्'
ऋ. २.२१.४

सुयम – (१) सुख पूर्वक व्यवस्था करने योग्य
'क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यम्
अ. ७.८२.३
(२) उत्तम रीति से सुदृढ़
'सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व'
ऋ. ५.२८.३; अ. ७.७३.१०; वाज.सं. ३३.१२; मै.सं. ४.११.१:१५९. ६; का.सं. २.१५; तै.ब्रा. २.४.१.१; ५.२.४; आप.श्रौ.सू.३.१५.५
(३) सुखपूर्वक बांधने योग्य, सुदृढ़, (४) संयम सहित, दृढ़बद्ध
'सं जास्पत्यं सुयमस्तु देवाः'
ऋ. १०.८५.२३; आप.मं.पा. १.२.३

सुयमाः – (१) उत्तम नियमों में व्यवस्थित सूर्य की किरणें,
(२) सुख पूर्वक नियम में आने वाली प्रजा,
(३) शुभ रीति से विवाह करने वाली,
(४) उपरति करने में समर्थ स्त्री
'आ सीमारोहत् सुयमा भवन्तीः'
ऋ. ३.७३

(५) द्वि.व.। उत्तम रीति से वश में करने वाले।
'सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते '
ऋ. १०.४४.२; अ. २०.९४.२
(६) उत्तम नियम व्यवस्था में रहने वाली या रखने वाली।
'शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः '
अ. १४.२.१७

सुयमासः – ब.व. । (१) उत्तम रीति से वश किए घोड़े या इन्द्रिय।
'युवो रजांसि सुयमासो अश्वाः '
ऋ. १.१८०.१;

सुयभ्या – उत्तम मैथुन योग्य
'सुयम्या कन्या कल्याणी '
अ. २०.१२८.९; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.४

सुयवस – तृण आदि से युक्त देश
'प्रजावतीः सुयवसे रुशन्ती '
अ. ४.२१.७; ७.७५.१

सुयवसाद् – सु + यवस + अद् + क्विप् = सुयवसाद्। (१) सुन्दर तृण को खाने वाली गौ, (२) सुन्दर जलधारक मेघ।

सुयामा – उत्तम रीति से नियम व्यवस्था करने वाला
'सुयामन् चाक्षुष '
अ. १६.७.७.

सुयामी – सुख से नियम में रहने वाला

सुयाशुतरा – (१) उत्तम क्रियाशील या शीघ्र कार्य करने वाली स्त्री (२) सुख पूर्वक पति का संग करने वाली
'न सयाशुतरा भुवत् '
ऋ. १०.८६.६ अ. २०.१२६.६

सुयुक् – (१) अच्छी तरह से रथ में जोड़े घोड़े, (२) उत्तम रीति से नियुक्त विद्वान्
'सुयुग् वहन्ति प्रति वामृतेन '
ऋ. ३.५८.२

सुयुक्त – उत्तम पद पर नियुक्त
'सुयुक्तां उप दाशुषे '
ऋ. ८.६९.१३; अ. २०.९२.१०

सुयुज् – उत्तम योगी
'अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा '
अ. ५.२६.७; ८,१०,११

सुरणम् – न. । (१) जल, । (१) सुष्ठु रमणीय सुरमणीय, सुन्दर। दे. ' आहुवामहे '
'आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी '
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०
जिस मेघ में जलों को धारण करती (सुरणानि बिभ्रती) मरुतों के साथ (मरुत्सु सचा) मरुतों की निर्मात्री, रुद्र की पत्नी या वायु की पत्नी माध्यमिका देवी-विद्युत् (रोदसी) रहती है। (३) सुन्दर रण। दे. ' दक्षिणावत् '
आधुनिक अर्थ- 'ओल' नामक एक फल जो जमीन में बैठता है। सुरन।

सुरत्ना – सुन्दर, रत्न भूषण धारण करने वाली -स्त्री
'अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना '
अ. १२.२.३१

सुरभिः – गन्ध
'अध स्याम सुरभयो गृहेषु '
अ. १८.३.१७; का.सं. ४.१३

सुरभिष्टमः – सुरभिस्तमः (१) उत्तम प्रशंसनीय, (२) सबसे अधिक बल वाला , (३) सर्वोत्तर सुगन्ध युक्त वीर्यवान् वीर -परमेश्वर
'सुरभिष्टमं नरां नसन्त '
ऋ. १.१८६.७

स्फुरत् – स्फुरिष्यति, हिंसिस्यति (हिंसित करेगा)। निघंटु में 'स्फुर' या 'स्फुल्' धातु वधार्थक है।

सुरा – षुञ् + क्रन् + टाप् = सुरा। 'सुरा सुनोतेः' (सु' धातु से सुरा शब्द बना है)।
साहि पिष्टादिभिः अनेकैः द्रव्यैः अभिषूयते (सुरा पिष्ट गुड़, मधु आदि अनेक द्रव्यों से चुन कर बनाई जाती है)।
'हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्। ऊधर्न नग्ना जरन्ते। '
ऋ. ८.२.१२
वे पीकर (पीतासः) खूब हृदय से संप्रहार करते हैं (हृत्सु युध्यन्ते) जैसे सुरा पीकर कुत्सित मद से मत्त हों 'मैं बड़ा मैं बड़ा ' इस प्रकार परस्पर स्पर्धा करते हैं (सुरायां दुर्मदासो न) तथा वे यजमान तेरी उसी प्रकार स्तुति करते हैं (जरन्ते) जैसे नग्न पुरुष रात की कामना करते हैं (नग्ना ऊधः न)।
सायण का अर्थ-हे इन्द्र, तुझ से पीए गए सोम

तुझे मत्त करने के लिए इस प्रकार परस्पर तेरे भीतर युद्ध करते हैं । शराब मद पीने वाले को मत्त करता है तथा नग्न स्रोत मद से मत्त तेरी उसी प्रकार स्तुति करते हैं जैसे दूध से पूर्ण गाय के थन को ।

'नग्नाः' का अर्थ–'ग्नाः

छन्दांसि तानि न जहति इति नग्नाः '

निघण्टु में 'नग्नाः' 'वाक् ' अर्थ में पठित है । स्वामी दयानन्द इस का अर्थ 'वेद' करते हैं। वैदिक धर्म से भरपूर वेदवेत्ता लोग इन्द्र तथा जीवात्मा की स्तुति करते हैं। (२) शुद्ध जल

'सुरायां सिच्यमानायाम्

यत् तत्र मधु तन्मयि '

अ. ९.१.१८

(३) जलधारा (४) सुख से रमण करने की प्रवृत्ति–

रजोगुणी काम । दे. 'धृतिः सुरा' (५) उत्तम प्रवृत्ति

'सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः '

ऋ. ७.८६.६

सुराकार – सुरा चुलाने वाला पुरुष

'कीलालाय सुराकारम् '

वाज.सं. ३०.११

सुराधाः – (१) उत्तम धनों और उपायों को वेत्ता, (२) उत्तम धनों वाला । दे. 'पुष्टि' ।

(३) उत्तम ऐश्वर्य–सम्पन्न

'अभि प्रवः सुराधसम् '

ऋ. ८.४९.१; अ. २०.५१.१; साम. १.२३५; २.१६१; पंच.ब्रा. ११.९ .२; ऐ.आ. ५.२.४.२; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.३; ८.६.१६; वै.सू. ३१.१८, २४;३३.७; ४१.८

सुराधाः वक्षणाः – उत्तम रीति से जल बहाने वाली नदियाँ

'प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधाः

आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् '

ऋ. ३.३३.१२

सुराधानी – (१) सुरा रखने का पात्र सुराही, (२) उत्तम रीति से सुख ऐश्वर्य का भोग देने वाली राज्य लक्ष्मी को धारण करने वाली ।

'वेद्यै कुम्भी सुराधानी '

वाज.सं. १९.१६

सुराम – (१) उत्तम रीति से रमण करने योग्य, सुन्दर

'युवं सुराममश्विना '

ऋ. १०.१३१.४; अ. २०.१२५.४; वाज.सं. १०.३३; २०.७६; मै.सं. ३.११.४:१४५.१३; ४.१२.५:१९१.१. का.सं. १७.१९;३८.९; श.ब्रा.५.५.४.२५; तै.ब्रा. १.४.२१,८.६.१; आश्व.श्रौ.सू. ३.९.३; ८.३.३; वै.सू. ३०.११; आप.श्रौ.सू. १९.२.१९

(२) राज्य लक्ष्मी के साथ वर्तमान राष्ट्र (२) सु + राम । अति रमणीय राजपद

'यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः '

ऋ. १०.१३१.५; अ. २०.१२५.५; वाज.सं. १०.३४; २०.७७; मै.सं. ३.११.४:१४६.४; का.सं. १७.१९; ३८.९; श.ब्रा. ५.५.४.२६; तै.ब्रा. १.४.२.१; आप.श्रौ.सू. १९.२.१९

सुरामा – उत्तम राज्य लक्ष्मी को प्राप्त

'इमे सोमाः सुरामाणः '

वाज.सं. २१.४२; मै.सं. ३.११.४:१४५.१५; तै.ब्रा. २.६.११.१०

सुरावत् – आसव मदिरा बनाने वाला

'दृतिं सुरावतो गृहे '

ऋ. १.१९१.१०

सुराश्वः – (१) सुरा + अश्व । सुरारूपी अश्व पर आरूढ़–मदमत्त (२) सुरा सुख में रमण करने में योग्य स्त्री, भोग्य विषय (३) राज्य लक्ष्मी से बढ़ने वाला

सुराशुः – (१) सुरा = राज्य लक्ष्मी से समृद्ध, (२) मदकारी पदार्थों के सेवन से मदमत्त

'पीयन्ति ते सुराश्वः '

ऋ. ८.२१.१४; अ. २०.११४.२; साम. २.७४०

(३) सुरा पीकर मत्त

सुरोसोम – (१) राज्य लक्ष्मी और राष्ट्र का अंश, (२) स्त्री पुरुष

(३) अभिषेक क्रिया से अभिषिक्त पुरुष

(४) सुरा और सोम

'इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् '

वाज.सं. २१.५९; वाज.सं. (का.) २३.५८

सुरुक्मे – सु + रुच् + मक् = सुरुक्म । द्वि.व. । 'उषासानक्ते' का विशेषण (२) सुन्दर शोभायुक्त । दे. 'उषाके'

'दिव्ये पोषणे बृहती सुरुक्मे '

ऋ. ८.६.८

द्युलोक से उत्पन्न या द्युतियुक्त (दिव्ये) परस्पर

सम्मिश्र (योषणे) गुणों से महती या चिरकाल तक रहने से बड़ी (महती) तथा सुन्दर शोभायुक्त उषा और रात्रि (सुरुक्मे) ।

सुरुच् - सु + रुच् + क्विप् = सुरुच् । (१) सुन्दर रुचि वाला, (२) सब को रुचने वाला, सर्वप्रिय
'दिवो रुचः सुरुचो रोचमाना'
ऋ. ३.७.५
(२) तेजस्वी-दया.
(३) स्तुत्य, शुशोभन-सा. । दे. 'अनर्वन्त'
(४) सुन्दर रुचने वाला, (५) सूर्य की किरणों का विशेषण
'गाथान्यः सुरुचो यस्य देवाः
आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'
ऋ. १.१९०.१
जिस वैदिक ज्ञान के प्रदाता, तेजस्वी एवं बहुमान्य विद्वान् के उपदेशों को दाता गृहस्थ सदा सुनाते हैं-दया.।
जिस सुन्दर स्तुत्य बृहस्पति की स्तुतियां देवता और मनुष्य सुनाते हैं ।

सुरूप कृत्नु - (१) अपने प्रकाश से सभी पदार्थों को सुन्दर बनाने वाला (२) सुनाने अर्थात् उत्तमोतम पदार्थों का रचयिता
'सुरूपकृत्नुमूतये'
ऋ. १.४.१; अ. २०.५७.१; ६८.१; साम. १.१६०; २.४३७; ऐ.ब्रा. ३.३०.३; पंच.ब्रा. १३.१०.२; ऐ.आ. ५.२.५.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.१८.५; ७.४.३; ५.१५; शां.श्रौ.सू. ८.३.१३; ९.८.२; १२.४.५; वै.सू. २७.२५; ३३.१५; ३४.६; ३९.५; मा.श्रौ.सू. २.५.१.४८.
(३) उत्तम ज्ञान और रूपवान् लोकों और कर्मों का करने वाला इन्द्र ।

सुरेक्णाः - उत्तम धनवान्
'अद्य त्वा वन्वन् सुरेक्णाः'
ऋ. ६.१६.२६; का.सं. २६.११; तै.ब्रा. २.४.६.२

सुरेतः - उत्तम वीर्योत्पादक । दे. 'तुरण' ।

सुरेतसा - द्वि.व.। उत्तम वीर्यवान् माता पिता ।
'सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुः'
ऋ. १.१५९.२

सुलाभिका - (१) उत्तम सुख का लाभ कराने वाली
'उवे अम्ब सुलाभिके'
ऋ. १०.८६.७; अ. २०.१२६.७
(२) सुख पूर्वक अनेक लाभ कराने वाली-प्रकृति

सुवज्र - उत्तम वज्र या विद्युत्
'य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रम्'
ऋ. ४.१७.४

सुबद्धा - पति के साथ खूब अच्छी प्रकार ग्रन्थि-बद्धा कन्या
'सुबद्धा ममुत स्करम्'
ऋ. १०.८५.२५; अ. १४.१.१८; आप.मं.पा. १.४.५; ५.७.

सुबन्धु - उत्तम बन्धु, (२) परमेश्वर
'सुबन्धुं पति वेदनम्'
अ. १४.१.१७

सुवर्चाः - सुन्दर तेज से युक्त
'शुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः'
ऋ. १.९५.१; वाज.सं. ३३.५; तै.ब्रा. २.७.१२.२.

सुतवृतीमहि - (१) अच्छी तरह से वर्तमान रहें (२) अपनी ओर लाते हैं-सा. ।

सुबर्हिष् - (१) उत्तम बल और आश्रय वाला, (२) उत्तम वृद्धिशील (३) बल और उत्तम प्रजाजन वाला (४) उत्तम आसन वाला (५) परमेश्वर, अग्नि या राजा
'जना आहुः सुबर्हिषम्'
ऋ. १.७४.५
(६) उत्तम रीति से आकाश में व्याप्त -सूर्य (७) उत्तम प्रजा से युक्त (८) धनधान्य सम्पन्न
'सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्'
वाज.सं. २१.१५; मै.सं. ३.११.११:१५८.४; का.सं. ३८.१०; तै. ब्रा. २.६.१८.२

सुवस्त - उत्तम रीति से युक्त
'सुवस्त्रं सुषेचनम्'
ऋ. १०.१०१.६

सुवह्निः - सुख पूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने वाला
'स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम्'
अ. १३.२.७

सुव्रतः - (१) उत्तम रीति से व्रत, धर्माचरण और नियम-मर्यादाओं का पालन करने वाला गृहाश्रमी
'मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः'
ऋ. १.१२५.७

उत्तम रीति से व्रत धर्माचरण और मर्यादा पालन करने वाले ज़ार के समान दूसरे की स्त्री आदि पर लम्पटता न करे या बुद्धि बल और आयु का विनाश न करे ।
(२) उत्तम उद्योगी
'आ महे ददे सुव्रतो न वाजम् '
ऋ. १.१८०.६

सुव्रतानां माता – (१) उत्तम पुण्य कर्मों को उत्पन्न करने वाली ब्रह्म की ज्ञानमयी या भवतारिणी शक्ति ।
'महीमू षु मातरं सुव्रतानाम्'
अ. ७.६.२; वाज.सं. २१.५; तै.सं. १.५.११.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.१०; का.सं. ३०.४,५; ऐ.ब्रा. १.९.७; आश्व.श्रौ.सू. २.१. २९; ३.८.१; ४.३.२; शां.श्रौ.सू. २.२.१४

सुब्रह्मण्यम् – (१) उत्तम वेद ज्ञान, (२) उत्तम ब्रह्मवर्चस्
'सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु'
ऋ. १०.६२.४

सुब्रह्मा – (१) उत्तम वेदों का ज्ञाता (२) उत्तम धन-सम्पन्न राजा
'सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनाम् '
ऋ. ७.१६.२; साम. २.१००; वाज. सं. १५.३४; तै.सं. ४.४.४.४
(३) उत्तम पद तक पहुंचाने में समर्थ, (४) समस्त उत्तम पद और पदार्थों को धारण करने वाला
'स नो वक्षदनिमानः सुवह्मा'
ऋ. ६.२२.७; अ. २०.३६.७
'सुब्रह्मा ब्रह्मणःपुत्रः
अ. २०.१२८.७; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.२
(५) चारों वेदों का सम्यक् ज्ञाता
'सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तम् '
ऋ. १०.४७.३
(६) सुखपूर्वक समस्त जगत् को वहन करने वाला

स्रुव – स्रुवा ।
'उन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण'
ऋ. १.११६.२४

सुवाक् – (१) अच्छी वाणी बोलने वाला
'पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः'
ऋ. ३.७.१०
(२) उत्तम स्तुति, प्रशस्ति
'उप त्वा मदाः सुवाचो अगुः'
अ. २.५.२; साम. २.३०३; आश्व.श्रौ.सू. ६.३.१; शांश्रौ.सू. ९ .५.२.

सुवाचा – (१) सुवाचौ. प्रशस्तवचनी, सुस्तुतौ (सब प्रकार से स्तुत' किए गए) ।
'सुवाक्' शब्द के प्रथम द्विवचन का रूप ।
(२) सूर्य और अग्नि जो सुस्तुत या सुन्दर स्तुतियों से युक्त हैं–सा. ।
(३) अग्नि और वायु जो वाक् आदि इन्द्रियों को उत्तम बनाने वाले हैं–ज.दे.श.। दे. 'कारु'
'दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा'
ऋ. १०.११०.७; अ. ५.१२.७; वाज.सं. २९.३२; मै.सं. ४.१३.३:२०२.७; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१२
देवताओं के होता सूर्य और अग्नि (दैव्या होतारा) जो मनुष्य होताओं से श्रेष्ठ हैं (प्रथमा) और तो सुस्तुत या स्तुतियों से युक्त हैं–सा. ।
दिव्यगुण सम्पन्न सुखकारक अग्नि और वायु (दैव्य होतारा) जो मनुष्य जीवन के लिए मुख्य हैं (प्रथम) और वाणी आदि इन्द्रियों को उत्तम बनाने वाले हैं (सुवाचा)–ज.दे.श. ।

सुवाचसा – द्वि.व.। उत्तम वाणी बोलने वाले–स्त्रीपुरुष ।
'प्रथमा हि सुवाचसा'
ऋ. १.१८८.७

सुवानः – (१) सिलाखंडों से कूटपीट कर निकाला हुआ सोम–रस ।
(२) विद्वानों से उपदेश किया हुआ ।
'पिबा सोममिन्द्र युवानमद्रिभिः'
ऋ. १.१३०.२; आश्व.श्रौ.सू. ८.१.४
(३) उत्पन्न होने वाला
'इन्द्रे सुवानास इन्दवः'
ऋ. ८.३.६; अ. २०.११८.४; साम. २.९३८

सुवासाः – (१) उत्तम रीति से वास करने योग्य घर, (१) सुन्दर वस्त्रों से शोभित स्त्री
'जायेव पत्य उशती सुवासाः'
ऋ. १.१२४.७; ४.३.२; १०.७१.४; ९१.१३; नि. १.१९; ३.५
'युवा सुवासाः परिवीत आगात्'

ऋ. ३.१.८.४; मै.सं. ४.१३.१:१९९.१३; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २.२.२९; कौ.ब्रा. १०.२; तै.ब्रा. ३.६.१.३; आश्व.श्रौ.सू. ३.१.९; आश्व.गृ.सू. १.२०.९; पा.गृ.सू. २.२.९.

(३) कल्याण वासाः, सुन्दरवस्त्र महने हुई

सुवास्तु – (१) बसने के योग्य उत्तम स्थान, (२) नदी

सुवास्तुःनदीः ।

'अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतम्
त्रसदस्युर्वधूनाम् ।
मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ।'

ऋ. ८.१९.३६

'उत मे प्रियियोर्वयियोः
सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां
श्यावः प्रणेता भुवद् वसुर्दियानां पतिः'

ऋ. ८.१९.३७

अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का दान करने वाला (पौरुकुत्स्यः) पूजापूजित (मंहिष्ठः) श्रेष्ठ सज्जनों के रक्षक (अर्यः सत्पत्तिः) दस्युओं को भयभीत करने वाला (त्रसदस्युः) राजा ने मुझे पचास बहुएं दान दीं (मे पञ्ताशत् वधूनाम् अदात्) और नदी के तट पर रहने वाले (उत सुवास्त्वा अधि तुग्वनिः) सूर्यकिरणों के समान तेजस्वी (श्यावः) उत्तम नायक (प्रणेता)सम्पत्ति शाली (भुवद्वसु) दान के योग्य पदार्थों के स्वामी ने (दियानां पतिः) मुझे प्रचुर धन (मे प्रियियोः) अनेक वस्त्रं (वयियोः) और २१० गाएं (ति सृणां सप्ततीनाम्) दीं ।

(३) उत्तम भवनों वाली नगरी ।

सुबाहु – (१) सुन्दर भुजाओं वाली (२) संसार के जन्म मरण में पीड़ा देने वाली, (३)उत्तम रीति से जीवन को बांधने वाली प्रकृति ।

'किं सुबाहो स्वङ्गुरे '

ऋ. १०.८६.८; अ २०.१२६.८

सुवित – (१) उत्तम कर्मफल

'सुविता कल्पयावहै'

ऋ. १०.८६.२१; अ. २०.१२६.२१; नि. १२.२८–

(२) सुख से चलने योग्य, (३) सुविधा जनक

'इषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः'

ऋ ४.५५.४

(४) उत्तम रीति से प्राप्त

'पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरे'

ऋ. ७.१००.२

(४) उत्तम कार्य में लगाया गया, (६) उत्तम मार्ग पर जाने वाला

'ते न आ वक्षन् सुविताय वर्णम्'

ऋ. १.१०४.२

वे हम प्रजाजनों के हितार्थ उत्तम कार्य में लगाए गए या उत्तम मार्ग पर जाने वाले (सुविताय) को वेतन आदि प्राप्त करावे (वर्णम् आवक्षन्) ।

(७) सु + इ + क्त = सुवित (उ का उवक् छान्दस है) अथवा ' षूङ् ' (विमोचनार्थक) + ते = सूते = सुविते ।

सु इते, सूते, सुगते प्रजायामिति वा ।

प्रजनन अर्थ में भी 'सो' का प्रयोग हुआ है । अर्थ है –सुगत स्थान (जहां जाने वालों का सुन्दर गत होता है) ।

'सुगतं स्थानम् यत्र गगनां
शोभनं गतं भवति ।'

(८) जनयितव्य प्रजा (९) सुगति या सुखमय लोक सन्तान या सन्तान–दया. ।

सुगत स्थान के अर्थ में प्रयोग–

'आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि
तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय'

वाज.सं. ५.५.; का.सं. २.८.; श.ब्रा. ३.४.२.१०

हे अग्नि या जगदीश्वर, सब प्रकार से इन्द्रियों का स्वामी बनने के लिए (आपतये) शुद्धमन रखने के लिए (परिपतये) शरीर नाशक न होने के लिए (तनूनप्त्रे) वैदिक ज्ञान के लिए (शाक्वराय) शक्तिमान् बनने के लिए (ओजिष्ठाय) तुझे ग्रहण करता हूँ (त्वागृह्णामि) ।

'अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽ
नभिशस्त्यभिशस्तिपा
अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेपं
स्विते मा धा'

वाज.सं. ५.५.

तू तिरस्कार रहित है (अनाधृष्टम्,), भविष्य में भी तिरस्कार रहित है (अनाधृष्यः), तू सूर्यादि देवों का ओज है (देवानाम् ओजः), सब प्रकार से नाश रहित है (अनभिशस्तिः), सभी दुःखों से बचाने वाला है (अभिशस्तिपाः), धर्ममार्ग

पर ले जाने वाला है (अनभिशस्तेन्यम्) अतः तेरी कृपा से शीघ्र सत्य को प्राप्त करूँ (अञ्जसा सत्यम् उपगेषम्) । मुझे सुगति में या सुखमय लोक में धारण कर (मा सविते धाः), या सायण के अनुसार, मैं बहुत सन्तानों से युक्त होऊं ।
(१०) यथा शास्त्र किए जाने वाला यज्ञ भी सुवित है। दे. ' आगन्तन,' 'इन्द्रवन्तः' ।
'आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसः
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन'
ऋ. ५.५७.१; नि. ११.१५
हे रुद्रो, आप इन्द्र के साथ समान प्रेम पूर्वक सोने के कारण रथ पर आरूढ़ यथा शास्त्र किए जाने वाले यज्ञ में आओ ।

सुविता – सुप्रसूतकर्मा । दे. 'अस्तम् ' ।
'सुविता कल्पयावहै ।'
ऋ. १०.८६.२१; अ. २०.१२६.२१; नि. १२.२८
इन्द्राणी और मैं सुप्रसूत कर्मों को करता हूँ ।

सुविदत्र – (१) उत्तम दान शील, (२) उत्तम प्राप्त ऐश्वर्य का रक्षक, (३) उत्तम ज्ञान का रक्षक
'राजानं सुविदत्रमृञ्जते'
ऋ. २.१.८
(४) सुख प्राप्त कराने वाला
(४) प्रदान किया हुआ उत्तम ऐश्वर्य और दान
'बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या'
ऋ. २.२४.१०
(६) कल्याण विद्यः (कल्याण का ज्ञाता या कल्याण प्रद ज्ञान वाला) ।
सु + विद् + कत्रन् = सुविदत्र । कल्याण कारी विद्या से युक्त । (७) योगैश्वर्य युक्त- दया.
(८) सु + वि + दा + कत्रन् = सुविदत्र ।
(९) जिसे धर्म पूर्वक सन्मार्ग से प्राप्त किया जाय (१०) जिसका साधु भाव से अनेक प्रकार से दान दिया जाये वह धन ।
'ये तातृषुर्देवत्रा जेहमानाः
होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ्
सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः'
ऋ. १०.१५.९; अ. १८.३.४७; मै.सं. ४.१०.६:१५८.१; तै.ब्रा. २. ६.१६.२
देवों के प्रति (देवत्रा) जाते हुए (जेहमानाः) अर्थात् क्रमशः देवत्व प्राप्त करते हुए हवन मंत्र के ज्ञाता या यज्ञकर्ता या स्तुतिज्ञ (होत्राविदः) स्तोत्रों से (अर्कैः) स्तोमकर्ता जो पितर तृषित होते हैं (सोम तष्टासः ये तातृषुः) उन कल्याण वेत्ता पितरों के साथ (सुविदत्रेभिः पितृभिः) हे अग्नि, हमारे सम्मुख आकर यथावत् संस्कृत पितृदैवत्य कव्यों से (सत्यैः कव्यैः) तथा यज्ञगत हवियों से तृप्त हो (घर्मसद्भिः उपयाहि) यज्ञवासी मेधावी पितरों से साथ आ ।
अन्य अर्थ – जो देवभावों को प्राप्त करते हुए (ये देवत्रा जेहमानाः) यज्ञ कर्मों को जानने वाले (होत्राविदः) और प्रशंसित गुणों को धारण करने वाले गुरुजन (स्तोमतष्टासः) वेद मन्त्रों के द्वारा (अर्कैः) तर गए हैं (तातृषुः), हे राजन् (अग्ने) उन कल्याणकारी विद्याओं के ज्ञाता (सुविदत्रेभिः) सत्यवादी कवियों में प्रशस्त (सत्यैः कव्यैः) और तपस्वी गुरुजनों के साथ (घर्मसद्भिः पितृभिः) हमारे निकट आइए (अर्वाङ् आयाहि) ।
(११) उत्तमोत्तम शिक्षाओं का दाता ।
'आहं पितृन् सुविदत्रां अवित्सि'
ऋ. १०.१५.३; अ. १८.१.४५; वाज.सं. १९.५६; तै.सं. २.६.१२.३; मै.सं. ४.१०.६:१५६.१६; का.सं. २१.१४; ऐ.ब्रा. ३.३७.१५; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२; ५.२०.६

सुविदत्रियाः देवाः – सुविदत्रं धनं भवति । विद् (लाभार्थक) + अश्रन् = विदत्र । सुविदत्र = सुन्दर धन ।
अथवा सु + वि + दा + अत्रन् = सुविदत्र । अर्थ है- (१)सुन्दर ज्ञान या सुन्दर धन वाले देश। दे. गोपाः '
'अग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यःमृतात्मा'
ऋ. १०.१७.३; अ. १८.२.५४; तै.आ. ६.१.१; नि. ७.९.
हे मृतात्मा, वह आदित्य या
अग्रणी परमेश्वर, तुझे सुन्दर ज्ञान या सुन्दर धन वाले देवों के पास (सुविदत्रियेभ्यः देवेभ्यः) पहुंचाने अर्थात् मृतात्मा देव लोक में जायं ।
(२) योगैश्वर्य युक्त

सुविप्र – (१) यज्ञ के सात ऋत्विजों में ब्रह्मा नामक ऋत्विज, (२) उत्तम विद्वान् मेधावी
(३) सबकी न्यूनताओं को पूर्ण करने

वाला–सभापति ।
'ग्रावग्राभ उत शस्ता सुविप्रः '
ऋ. १.१६२.५; वाज.सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६. १:१८२.६; का.सं. (अश्व.) ६.४.

सुविवृत – सुष्ठुविकसित, सुखपूर्वक अच्छी प्रकार विकसित
'सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः '
ऋ. १.१०.७
हे ऐश्वर्यवान्, सुखपूर्वक अच्छी प्रकार विकसित एवं फैला हुआ और अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप्त ('सुनिरजम्) जल के समान अन्न, बल और ज्ञान तेरा ही शोधा हुआ प्रकाशित या प्रदान किया हुआ हैं ।

सुवीर – (१) वीरवान्, (२) पुत्रवान्, (३) अच्छावीर । दे. 'जरितृ, ' 'गो'

सुवीरता – उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न करना ।
'सुक्षेवतायै सुवीरतायै सुजातम् '
अ. ७.२०.५

सुवीर्य – (१) उत्तम बल से युक्त, (२) वीर पुरुषों से युक्त – ऐश्वर्य
'उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि '

सुबुधा – उत्तम ज्ञान सम्पन्न
'इन्द्राणी सुबुधा बुध्यमाना '
अ. १४.२.३१

सुवृक्ति – (१) उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोकर सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला । दे. 'प्रस्तुति
(२) उत्तम, (३) दुःखरहित
'मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति '
ऋ. १.१८४.५
(४) पापों और दुराचारों को अच्छी प्रकार छुड़ाने वाला– अग्नि, (५) रोगहारी, (६) तमोनाशक
(७) पापहारी परमेश्वर
'हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिम् '
ऋ. २.४.१; का.सं. ३९.१४; कौ.ब्रा. २२.९
(८) उत्तम शत्रुओं को पराजित करने वाली शक्ति, (९) उत्तम हृदयग्राही स्तुति
'एन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः '
ऋ. १.५२.१; साम. १.३७७; कौ.ब्रा. २६.९
इन्द्र को उत्तम हृदयग्राही स्तुतियों से रक्षा के लिए प्राप्त करूं ।
अथवा,
राजा को उत्तम शत्रुओं को पराजित करने वाली शक्तियों के साथ (सुवृक्तिभिः) अपनी रक्षा के लिए वरण करूं ।
(१०) उत्तम रीति से जाने वाला या शत्रु को रोकने वाला यान आदि वाहन ।
(११) शत्रुओं को अच्छी प्रकार दूर करने का बल ।
(१२) सु + वृज् + क्ति । अज्ञान को दूर करने वाला
'अग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम्
ऋ. १०.८०.७
(१३) सब विघ्नों का निवारक स्तुति
'भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति '
ऋ. १.६१.२; अ. २०.३५.२
(१४) उत्तम संविभाग
'कया नो अग्न वि वसः सुवृक्तिम् '
ऋ. ७.८.३
(१५) सु प्रवृक्ता– स्वर सौष्ठवादि युक्ता (जिसकी वृक्ति अर्थात् प्रवृत्ति सुन्दर हो) । विशेषण
'पारावतीघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः '
ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७:२२६.१०; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा.२.८.२.८; नि. २.२४.
उस पार अवार को तोड़ने वाली सरस्वती नदी को रक्षा के लिए सुप्रवृत्त कर्मों या स्तोत्रों से परिचारित करें (अग्निवासेम) ।
(१६) कायिक वाचिक या मानसिक शुद्धि । दे. 'गिर्वणस' ।
'घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिः
जुष्टं गिर्वणसे बृहत् '
ऋ. ८.८९.७; साम. २७८१; का.सं. ८.१६; तै.सं. १.६.१२.
हे स्तोताओ, तुम सुन्दर स्तुतियों से प्रिय तथा बृहत् धर्म के समान (जुष्टं बृहत् धर्मं न) सुष्ठु एवं सुप्रयुक्त सोमपान को इन्द्र के लिए गाओ (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) ।
अथवा
ए मनुष्यो, तुम कायिक, वाचिक तथा मानसिक शुद्धियों के द्वारा (सुवृक्तिभिः) तपश्चरण करो (तपत) और पूज्य देव के लिए प्यारे तथा महान्

साम गान के गाओ (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) ।

सुवृजना – उत्तम बल एवं आचार वाली प्रजा ।
'ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु'
ऋ. १०.१५.२; अ. १८.१.४६; वाज.सं. १९.६८

सुवृत् – (१) उत्तम रीति से सुख से चलने वाला रथ, (२) उत्तम रीति से चलने वाला सदाचार युक्त शरीर रूपरथ ।
'सुवृद् रथो वर्तते यन्नभिक्षाम् '
ऋ. १.१८३.२
(३) शोभन कर्म करने वाली, साधु कर्मकारिणी-गृहपत्नी या अमावास्या का विशेषण । दे. जोहवीमि ।
'कुहूमहं सुवृतं विद्मनापसम्
अस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि'
अ. ७.४७.१; नि. ११.३३
मैं शोभनकर्म करने वाली (अहं सुवृतम्) कर्म को जानने वाली सुन्दर आह्वान वाली अमावस्या को रस यज्ञ में बुलाता हूँ ।
अन्य अर्थ – मैं साधु कर्म कारिणी, अपने कर्तव्यों को जानने वाली, आदर पूर्वक बुलाने के योग्य (सहवाम्) गम्भीर पत्नी को (कुहम्) इस गृहस्थ यज्ञ में स्वीकार करता हूँ (अस्मिन् यज्ञे जोहवीमि) ।

सुवृत – सुन्दर वृत्ताकार । दे. 'अमृतस्य लोकः
'हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् '
ऋ. १०.८५.२०; अ. १४.१.६१; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८

सुवृध् – (१) उत्तम वृद्धि करने वाला
'त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते'
ऋ. २.२३.९; नि. ३.११
(२) सद्गुवर्धित, (३) अनुगृहीत (४) सम्यक् प्रकार से वर्द्धित, पाला पोसा
हे ब्रह्मणस्यते, हम मनुष्य तेरे द्वारा सम्यक् प्रकार से वर्द्धित हुए हैं ।

सुवेद – उत्तम रीति से सुखपूर्वक आदर पूजा या भक्ति द्वारा जानने और मनन करने योग्य अग्नि, परमेश्वर ।
'सुवेदं क्वचिदर्थिनम् '
ऋ. ४.७.६

सुवेदना – उत्तम ज्ञानप्रद वाणी
'सुवदेनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम्'
ऋ. १०.११२.८

सुवेदाः – उत्तम ज्ञान वाला, वैज्ञानिक पुरुष
'सुवेदा नो वसू करत्'
ऋ. ६.४८.१५

सुवेनीः – सुन्दर ज्ञानवान् ।
'वाज्यसि वाजिनेना सुवेनी'"
ऋ. १०.५६.३

सुश्रवाः – (१) उत्तम ज्ञान, यश एवं ऐश्वर्य से युक्त (२) उत्तम श्रवण युक्त विद्वान्
'तेना सुश्रवशं जनम्
प्रावाद्य दुहितर्दिवः'
ऋ. १.४९.२
हे सूर्य की कन्या उषा, तू उसी से आज शुभ अवसर पा उत्तम ज्ञान, यश ऐश्वर्य से युक्त प्रिय जन अर्थात् पति को निर्विघ्न रूप से प्राप्त हो ।

सुशका – सुख से सम्पन्न होने वाली
'अभूदु वः सुशका देवयज्या'
ऋ. १०.३०.१५

सुशमी – (१) उत्तम कर्मवान् सुकर्मा
'एते शमीभिः सुशमी अभूवन् '
ऋ. १०.२८.१२
(२) उत्तम शम का साधक
'सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनाम '
ऋ. ७.१६.२; साम. २.१००; वाज.सं. १५.३४; तै.सं. ४.४.४.४

सुशरणः – (१) उत्तम शरण देने वाला (२) सुशरण परमेश्वर
'प्र सू महे सु शरणाय मेधाम्'
ऋ. ५.४२.१३

सुशर्मा, सुशर्मिन् – (१) उत्तम घरों का स्वामी (२) दुष्टों का नाशक (३) सुख साधनों से युक्त
'सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्याम्'
ऋ. ३.१५.१; वाज.सं. ११.४९; तै.सं. ४.१.५.१; मै.सं. २.७.५;७९.१५ का.सं. १६.४; श.ब्रा. ६.४.४.२१.
(४) अच्छी प्रकार रोग कीटाणुओं का नाशक –अग्नि
(५) सुन्दर सुख या गृह से युक्त
'सुशर्माणं स्वधसं जरद्विषम्'
ऋ. ५.८.२

सुशर्माण – द्वि.व.। उत्तम सुख और शरण देने वाले अग्नि और सोम (अग्नि वायु) ।

'सुशर्माण स्ववसा हि भूतम् '
ऋ. ९३.७; तै.सं. २.३.१४.३; मै.सं. ४.१४.१८: २४८.९
हे अग्नि और सोम, तुम दोनों अपने सामर्थ्य से सुन्दर सुख और शरण देनें वाले होओ ।

सुशर्माणः – ब.व.। (१) सुन्दर सुख वाले बन्धुजन, सुखीबन्ध वर्ग (२) मरुद्गण, (३) व्यापारी वर्ग दे. 'वातासः'।
'सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते'
ऋ. १०.७८.२
यज्ञ के लिए प्रयत्नशील यजमान के लिए (ऋतं यते) मरुद्गण या व्यापारीवर्ग सुखी बन्धुजन की तरह (सुशर्माणः न) सौम्य होवें (सोमाः सन्तु) ।

सुशमि – न. । उत्तम कर्म को बतलाने वाला–वचन ।
'गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि'
ऋ. ५.८७.९; आश्व.गृ.सू. ३.५.७; शां.गृ.सू. ४.५.८

सुशंसः – (१) उत्तम कीर्तिवाला, (२) उत्तम उपदेष्टा
'प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि'
ऋ. २.२३.१०

सुशरतय – उत्तम उपदेष्टा लोग
'उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः'
ऋ. ५.४६.६

सुश्चन्द्र – (१) उत्तम आल्हाददायक
'अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रम् '
ऋ. ४.२.१९
(२) स्तु + चन्द्र = सुश्चन्द्र (सुट्)। आल्हादक, (३) उत्तम रूपवान्, (४) वरण करने योग्य दृश्य या अन्न ।
'सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् '
ऋ. २.३४.१३
(५) मनोहर उत्तम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर, (६) विद्वान् (७) राजा
'हव्या सुश्चन्द्र वीतये'
ऋ. १.७४.६
हे उत्तम रीति से सबको आह्लादित करने वाले परमेश्वर, तू ग्रहण करने योग्य ज्ञान का प्रकाश करने और उत्तम अन्नों की रक्षा और खाने के लिए (हव्या वीतये) प्राप्त कर ।

सुश्रवः – (१) उत्तम श्रवण और धारण शक्ति से युक्त ।
'यस्त्वाश्रृण्वत् सुश्रवः'
अ. ११.४.१९
(२) श्रुतवान् । 'श्रृ' धातु के छान्दस लिट् में क्वस प्रत्यय कर सुश्रवस् बना है । अर्थ है–सभा । दे. 'अपुष्पा'।

सुश्रवस्तमः – (१) उत्तम यशस्वी ज्ञानी (२) प्रजाओं के कष्टों को उत्तम रूप से सुनने वाला
'जहि यो नो अघायति
श्रृणुष्व सुश्रवस्तमः ।'
ऋ. १.१३१.७
(३) उत्तम यश कीर्ति बल आदि गुणों से युक्त –परमेश्वर
'भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे'
ऋ. १.९१.१७; का.सं. ३५.१३

सुश्रवस्या – (१) उत्तम यश या अन्न प्राप्त करने की इच्छा
'एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या'
ऋ. १.१७८.४

सुश्रवाः – (१) उत्तम यशों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से युक्त । दे. ' भरेषुजा '
(३) उत्तम कीर्तिमान्
'अबन्धुना सुश्रुवसोपजग्मुषः'
ऋ. १.५३.९; अ. २०.२१.९

सुशस्तिः – उत्तम ज्ञान का उपदेष्टा
'वारेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्ति'
ऋ. १०.१०४.१०

सुशंसी – उत्तम वाणी बोलने वाला
'यो नः सोम सुशंसिनः'
अ. ६.६.२

सुशिप्रः – सृप् + रक् = सृप्र (तैल, सर्पिष् जो ढरकता है) । इसी सृप्र का बाहुलक नियम से 'शिप्र' हो गया है ।
'सृप्रः सर्पणात् इदमपि इतरत् सृप्रम् एतस्मादेव सर्पिः वा तैलं वा । सुशिप्रम् एतेन व्याख्यातम् । निघण्टु में 'सुशिप्र' पुल्लिंग है पर नपुंसक में भी इसका प्रयोग हुआ है ।
अर्थ है– (१) सर्वत्र फैला हुआ –दया. ।
(२) शिप्र का अर्थ 'हनू' और नासिका भी है ।
'शिप्रोहनू नासिके वा '
'शस्ते शिप्रे यस्य स सुशिप्रः ।

दे. 'धेना'।
सुन्दर हनू या नासिका वाला-इन्द्र का विशेषण-सा.।
(३) क्षिप्रकारी-राजा का विशेषण। दे. 'तूर्णाश'
'हुवे सुशिप्रम मूतये'
ऋ. ८.३२.४
मैं सुन्दर हनू या नाक वाले इन्द्र को पुकारता हूँ-सा.।
क्षिप्रकारी राजा को रक्षार्थ पुकारता हूँ-ज.दे.श.।
दे. 'धेना'।
'आ त्वा सुशिप्र हेरयो वहन्तु'
ऋ. १.१०१.१०
हे सुन्दर हनू या नासिका वाले इन्द्र, तुझे अश्व लावें।
'विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्यम्
आ ते ता वज्रिन्नीमहे
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो
वाजे सुशिप्र गोमति'
ऋ. ८.२१.८
cypher और शिप्र शब्द की समानता विचारणीय है।
(४) उत्तम ज्ञानों वाला (५) उत्तम शक्तिशाली।
'युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः'
ऋ. २.१२६; अ. २०.३४.६

सुशिल्पे - (१) सुन्दर कान्ति युक्त रातदिन
'देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे'
ऋ. १०.७०.६
(२) द्वि.व.। उत्तम शिल्पों के उत्पादक कार्य साधन में चतुर स्त्रीपुरुष।
'उषासा वां सुहिरण्ये सुशिल्पे'
वाज.सं. २९.६; तै.सं. ५.१.११.२; मै.सं. ३.१६.२:१८४.९; का.सं. (आश्व.) ६.२.

सुशिश्व - (१) सुष्ठुवर्धकः -दया. (२) उत्तम रीति से पुष्टि पाने वाला-गर्भस्थ शिशु
'वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्वम्
ऋतस्य योना गर्भे सजातम्'
ऋ. १.६५.४

सुशिष्टिः - उत्तम शासन
'मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ'
ऋ. १.१७३.१०

सुशीम - उत्तम सुख का उत्पादक
'सुशीमं सोम सत्सरु'
अ. ३.१७.३

सुशुक्वनिः - उत्तम पवित्र आचारों से युक्त।
'दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिः'
वाज.सं. ११.४१; तै.सं. ४.१.४.१; का.सं. १६.४; श.ब्रा. ६.४. ३..९

सुश्रुण - श्रवण करने योग्य ज्ञान। दे. 'सुश्रुत्'

सुश्रुत् - उत्तम श्रवण शक्ति से युक्त
'अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुत्'
अ. ८.२.८
'वनुं वार ये सुश्रुणं सुश्रुतोधुः'
ऋ. १०.७४.१

सुश्रृत - सु + शृ + क्त। उत्तम रीति से परिपक्व।
'सुश्रृतं मन्ये तदृतं नवीयः'
अ. ७.७२.३

सुश्रुति - उत्तम श्रवण शक्ति
'सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टाम्'
अ. १६.२.५

सुशेवः - (१) उत्तम सुख देने वाला- मित्र, सूर्य
'यातयजनो गृणते सुशेवः'
ऋ. ३.५९.५; तै.ब्रा. २.८.७.६
(२) उत्तम सुख स्वरूप
'सखा सुशेवो अद्रयः'
ऋ. १.१८७.३; का.सं. ४०.८; ऐ.आ. ४.९.
(३) सुसुखतमः (अत्यन्त सुखदायक)। शेव का अर्थ सुख है सुन्दर सुख देने वाला। दे. 'अध'
'नहि ग्रभायारणः सुशेवः
अन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ'
ऋ. ७.४.८; नि. ३.३.
जिससे जल-सम्बन्ध न हो वह अन्य से उत्पन्न बालक अत्यन्त सुखदायक होता हुआ भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता। ऐसा मन से भी न सोंचे कि वह अपना होगा। दे. 'अमीवहन्'।
'सखा सुशेव एधि नः'
ऋ. १.९१.१५:७.५५.१; मै.सं. १.५.१३:८२.१२; कौ.सू. ४३.१३; पा.गृ.सू. ३.४.७; आप.मं.पा. २.१५.२१; नि. १०.१७.

सुशेवा - (१) सुख से सेवन करने योग्य
'अश्वावतीं प्र तर या सुशेवा'

अ. १८.२.३१.
(३) उत्तम रीति से सेवा करने योग्य परमेश्वर
'येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवा'
अ. १४.१.१९,५८

सुशेव्य – (१) सुख से सेवन योग्य, (२) सुखप्रद (३) प्रधानपुरुष

सुशोकः – सुन्दर दीप्ति वाला अग्नि
'अग्निः सुशोको विश्वानि अश्याः'
ऋ. १.७०.१
सुन्दर दीप्तिवाला अग्नि समस्त पदार्थों को व्यापाता है ।

सुश्रोतु – उत्तम श्रवण शीलपुरुष अर्थात् पिता, गुरु या उपदेशक । दे.' श्रोतु '।

सुषण – सु + सन् (१) सन् (१) सुख और शान्ति प्रदान करने वाला (२) सुख से सेवनीय । दे. 'विश्वसौभग'।

सुषणन – सु + सनन । उत्तम रीति से देने योग्य
'त्वे वसु सुषणनानि सन्तु'
ऋ. ७.१२.३; साम. २.६५६; तै.ब्रा. ३.५.२.३; ६.१३.

सुषद् – (१) सुखपूर्वक रहने योग्य (२) सुखपूर्वक जाने या गति करने वाला रथ
'सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् '
ऋ. ८.५८.३
(३) उत्तम बैठने योग्य सवारी
'हस्ती मृगाणां सुषदाम् '
अ. ३.२२.६
'सं वो गोष्ठेन सुषदा'
अ. ३.१४.१

सुषद – पु. । सुख से आश्रय करने योग्य ।
'पृथुर्भव सुषदस्त्वम् '
वाज.सं. ११.४४; तै.सं. ४.१.४.२; मै.सं. २.७.४;७९.२; का.सं. १६.४; श.ब्रा. ६.४.४.३.

सुषदा – (१) उत्तम प्रकार से रहने योग्य घर
'सुषदा योनौ स्वाहा वाट् '
वाज.सं. २.२०, तै.सं. १.१.१३.३ श.ब्रा. १.९.२.२०; तै.ब्रा. ३.३.९.९.
(३) पशुओं के सुखपूर्वक बैठने योग्य
'प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव'
अ. २.३६.४
सुषदा पश्चादेवास्य सवितु राधिपत्ये चक्षुर्मे दाः
वाज.सं. ३७.१२; मै.सं. ४.९.३:१२४.२; श.ब्रा. १४.१.३.२१; तै.आ. ४.५.३

सुषव्य – सु + सव्य । (१) बाएं हाथ से भी कर्म करने में समर्थ परमेश्वर (२) उत्तम रीति से पूजा करने योग्य (३) जगत् को उत्पन्न और संचालन करने में समर्थ ।
'यः सुषव्यः सुदक्षिणः'
ऋ. ८.३३.५

सुषहः – सुख से पराज्य करने योग्य
'अमित्रान् सुषहान् कृधि'
ऋ. ६.४६.६; अ. २०.८०.२

सुष्वयन्ती – सु + अय् + शतृ + ङीष् । = सुष्वयन्ती । 'वाछन्दसि' से प्रथमा द्विवचन में दीर्घ हो गया है ।
(१) सायण ने इसका अर्थ 'सुष्ठु अयन्त्यौ' (सुन्दर प्रकार से जाती हुई) किया है।
(२) यास्क ने 'सेष्मीयमाणे (परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई) या 'सुष्वापन्त्यौ ' (लोगों से सुष्ठु प्रकार से सुलाती हुई) किया है।
(३) मुस्कुराते हुए या शयनावस्था की तरह सौमन्य प्रदान करते हुए किया है।
(४) द्वि.व.। 'उषासानक्ता' का विशेषण, सुन्दर रीति से चलने वाली या परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई या लोगों को अच्छी तरह से सुलाती हुई उषा और रात्रि । दे. 'उपाके'।
'आ सुष्वयन्ती यजने उपाके
उषासानक्ता सदतां नि योनौ'
ऋ. १०.११०.६, अ. ५.१२.६; वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३:२०२.५; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.११.
सुन्दर रीति से चलने वाली या परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई या लोगों को अच्छी तरह से सुलाती हुई या मुस्कराती हुई सुष्वयन्ती यज्ञ की सम्पादयित्रियां या यज्ञ करने योग्य (यजते) एक दूसरे से संलग्न या सेवित (उपाके) उषा और रात्रि (उषा सानक्ते) यज्ञस्थान या सृष्टि या गृह में (योनौ) निरन्तर रहें (नि आ सदताम्) ।

सुषाः – न्याय पूर्वक विभाग करने वाला
'न सुषा न सुदा उत '

ऋ. ८.७८.४

सुषामण – (१) सुषम से सुषामण हुआ है । अर्थ है– अत्यन्त सुन्दर ।
(२) उक्षण गोत्रीय सुषामण नामक राजा–सा.

स्नुषा – सु + सद् + उ = सुषा = स्नुषा । (१) साधुसादिनी । (२) (पुत्रवधू) । वह कुल में साधु–तया स्थित होती है । विवाह में शिलारोपण करते समय कहा जाता है–
'अश्वमेवत्वं सुस्थिरा भव'
(३) साधुसानिनी । पुत्रवधू सम्यक् प्रकार से अन्नादि पदार्थों को बांटती है। अतएव गृहपत्नी को 'अघसद्' कहते हैं ।
(४) अथवा यह अपत्य को देने वाली है ।
'स्नुषेव श्वसुरादधि'
अ. ८.६.२४

सुषामन् – (१) उत्तम समभूमि युक्त (सुषामा) मार्ग, (२) सबके प्रति समान भाव से रहने वाला–सुखप्रद
'रथं युक्तमसनाम सुषामणि '
ऋ. ८.२५.२२

सुषारथिः – कल्याणसारथिः, सुन्दर सारथि वाला । दे. 'अभीशु'

सुष्ठामा – उत्तम रूप से स्थिर होने वाला ।
'सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते '
ऋ. १०.४४.२; अ. २०.९४.२
(२) सुख पूर्वक ठहरने वाला, (३) उत्तम बैठने के स्थान से युक्त

सुषिर – शुष् + इन् = शुषि । शुषिः अस्य अस्ति शुशिरः । आदि में दन्त्य सभी पाया जाता है । अर्थ – (१) नगरोदक निस्सरण मार्ग । जिसके भीतर छिद्र हो । (२) अन्तश्छिद्र जिसके भीतर छिद्र है जल निकलने की नलिका
'शुषिरं वंशादि वाद्ये
विवरेऽपि नपुंसकम्,
शुषिरं न स्त्रियां गर्ते
वद्धौ नन्धान्विते त्रिषु । दे. 'सिन्धु ।'
(३) एक धारा, एक स्रोत
'सूर्म्यं सुषिरामिव '
ऋ. ८.६९.१२; अ. २०.९२.९; मै.सं. ४.७.८:१०४.१२; नि. ५.२७
(४) छिद्रवती लोहे की नली

सुषिलीका – एक पक्षी जो बिल बनाकर रहती है ।
'ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतर जननाम् '
वाज.सं. २४.३६; मै.सं. ३.१४.१७:१७६.४

सुष्टिः – (१) उत्तम अभिषेक योग्य । दे. 'सौवश्व्य'
(२) उत्तम यत्नशील
'सौवश्व्ये सुष्टिमावदिन्दः '
ऋ. १.६१.१५ अ. २०.३५.१५
(३) ऐश्वर्य के लिए उद्योग करने वाला
'ब्रह्मण्यते सुष्टये वरिवो धात् '
ऋ. ४.२४.२
(४) उत्तम ऐश्वर्योत्पादक राष्ट्र
'यद् वा दिवि पार्ये सुष्टिमिन्द्र'
ऋ. ६.२३.२

सुष्टितर – (१) उत्तम दाता
'प्रयन्तासि सुष्टितराय वेदः '
ऋ. ७.१९.१; अ. २०.३७.१
(२) सुष्ठु अतिशयितम् ऐश्वर्यं यः सुनोति–दया.
(३) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष (४) ज्ञान के प्रति मार्ग में चलाने वाला–आचार्य ।

सुषुम्णः – (१) उत्तम सुखप्रद (२) सुख स्वप्न या निद्रा देने वाला चन्द्रमा
'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः '
वाज.सं. १८.४०.;तै.सं. ३.४.७.१; मै.सं. २.१२.२: १४५.४; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.९; नि. २.६

सुषुमान् – सु + सु + मान् । उत्तम ज्ञान सामर्थ्यों से सम्पन्न अग्नि ।
'रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि '
ऋ. १०.३.१; साम. २.८९६

सुषुपाण – (१) मदिरा पाना में खूब मत्त, (२) निरन्तर सोने वाला, (३) असावधान
'अबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र'
ऋ. ४.१९.३

सुषुप्वान् – सोता हुआ–बीज, (२) जीवात्मा, (३) गर्भगत बालक
'सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे
सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् '
ऋ. १.११७.५
(४) सुख से शयन करने वाला
'सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छत'
ऋ. १.१६१.१३

हे सुख से शयन करने वाले विद्यार्थियो, आप लोग उस परम ज्ञान के सम्बन्ध में सदा प्रश्न किया करो ।

सुष्टुतिः – (१) सुन्दर स्तुति ।
'स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च'
ऋ. ६.६३.८
दे. 'राका'
(२) स्तुति की समाप्ति । दे. 'तुञ्ज'

सुष्टुती – सुष्टुति' के तृतीया एक वचन का रूप ।
दे. 'उक्थ्य'
अर्थ– सुन्दर स्तुति से

सुष्टुभ् – सु + स्तुभ् + क्विप् = सुष्टुभ् (१) जो द्रव्य, गुण और क्रिया अच्छी तरह
'स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः'
ऋ. १.६२.४
(२) उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य
'मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः'
अ. २०.२.१.
(३) उत्तम रीति से स्तुति करने वाले मन्त्रों से युक्त (४) शत्रु को स्तम्भित करने वाला, (५) उत्कृष्ट रूप से स्तुति करने वाला
'स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन'
ऋ. ४.५०.५;अ. २०.८८.५;तै.सं. २.३.१४.४; मै.सं. ४.१२.१:१७८५; का.सं. १०.१३

सुषूः – (१) उत्तम जननी, माता (२) उत्तम रीति से ऐश्वर्य देने वाली या अभिषेक करने वाली प्रजा ।
'सुषूरसूत माता
क्राणा यदानशे भगम्'
ऋ. ५.७.८

सूषूदति – सदा दिया करता है, 'सूद' धातु वेद में दान अर्थ में आया है ।
'अग्नि र्हव्या सुषूदति'
ऋ. १.१०५.१४; १४२.११

सुषूमा – (१) उत्तम रीति से सुखपूर्वक सन्तान उत्पन्न करने वाली
'सुषूमा बहुसूवरी'
ऋ. २.३२.७; अ. ७.४६.२; तै.सं. ३.१.११.४; मै.सं. ४.१२.६: १९५.६; का.सं. १३.१६
(२) उत्तम उत्पादक अंगों वाली (३) राष्ट्र में जल तथा दूध का उत्तम प्रबन्ध करने वाली

सुषेचन – सुखपूर्वक सेचन करने वाला– दूध

स्तुषेय्य – (१) स्तुति करने योग्य
'स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वम्'
ऋ. १०.१२०.६
(२) स्तु + केय्य = स्तुषेय्य (ष् का आगम) । सायण के मत से 'स्तु + स्केय्य = 'स्तुषेय्य' हुआ है।
दे. 'आदर्षते'
मैं स्तुत्य बहुरूप वाले एवं अति दीप्ति या सर्वव्यापी इन्द्र या परमात्मा को...

सुषोमा – सु (सवनार्थक) + मनिन् = सुषोमन् ।
(१) एक नदी का नाम जिसे सिन्धु कहते हैं ।
'सुषोमा सिन्धु'
यदेषाम् अभिप्रसुवन्ति नद्य (इसे पाकर नदियां प्रवृद्ध होती है) । सिन्धु नदी में बहुत नदियां आकर मिलती हैं अतः इसका नाम 'सुषोमा' पड़ा ।
दे. 'आर्जीकीया'
'आर्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया'
ऋ. १०.७५.५; तै.आ. १०.१.१३; नि. ९.२६
(२) उत्तम प्रेरणा वाली या उत्तम वीर्य वाली नाड़ी या वह नाड़ी जो अंगों में शक्ति प्रदान करती है ।
(३) उत्तम ऐश्वर्य युक्त या उत्तम अन्न जल से समृद्ध भूमि, (४) सरल समभूमि वाला प्रदेश जिसमें सोमलता उत्पन्न होती है ।
'सुषोमायामधि प्रियः'
ऋ. ८.६४.११

सुसत्य – सुषद्, सच्चा आश्रय
'सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि'
अ. २०.१३५.४; शां.श्रौ.सू. १२.२३.४

सुसंकाशा – सुष्ठुशिक्षया सम्यक् शासिता कन्या–दया.
(सुन्दर शिक्षा से सम्यक् प्रकार से शासित कन्या) ।
उत्तम रीति से सुशिक्षिता ।
'सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा'
ऋ. १.१२३.११
दोनों कुलों को मिलाने वाली तू (योषा) उत्तम रीति से सुशिक्षित होकर (सुसंकाशा) माता द्वारा अच्छी प्रकार स्नान, अनुलेप, अलंकार,

उत्तम शिक्षा द्वारा सुशोधित और सुशोभित की जा कर (मातृमृष्टा इव) ...।

सुसन्नता - सु + सम् + नम् + क्त + टाप् । खूब उत्तम रीति से झुकाई हुई
'तां सुसन्नतां कृत्वा'
अ. ३.२५.२

सुसंमृष्ट - शुभ उत्तम प्रकार से शुद्ध एव विचारवान्
'सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः'
ऋ. ३.४३.६

सुसमुब्ध - (१) सुष्ठु सम्यक् ऋजुः -दया. (सूधा) (२) अच्छी प्रकार धन धान्य से सम्पन्न
'दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः'
ऋ. १.१५८.५
मुझे भृत्य राष्ट्र के नाशकारी शत्रुजन (दासाः) धनधान्य से परिपूर्ण मुझ राष्ट्र पति को नीचे गिराने का यत्न न करें ।
अथवा,
इस अति उत्तम विनीत विद्यार्थी को गुरु अपने अधीन रखे (यद् ईम् सुसुमब्धम् दासाः अव अधुः)

सुसंरब्ध - उत्तम रीति से बना एवं गति शील प्रकाशमान सूर्य आदि
'यद्देवाः अदः सलिले
सुसंरब्धा अतिष्ठत'
ऋ. १०.७२.६

सुसर्तू - शरीर की एक नाड़ी जिसके योग से आत्मा देह के समस्त रसों को अपने अपने स्थानों पर भेजता है।
'सुसर्त्वा रसया श्रवेत्या त्या '
ऋ. १०.७५.६

सुसंशाः - उत्तम रीति से शासन करने वाला
'सुसंशासः पितरो मृडता नः'
अ. १८.३.१६

सुसस्या - उत्तम धान्य से युक्त कृषि
'सुसस्याः कृषीस्कृधि'
वाज.सं. ४.१०; वाज.सं. (का.) ४.४.३; श.ब्रा. ३.२.१.३०

सुसंदृश - (१) उत्तम समान रूप से सुन्दर दीखने वाला, (२) सब पदार्थों को ज्ञान दृष्टि से देखने वाला
'अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः
सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः'
ऋ. १.१४३.३
'सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्जम्'
ऋ. ७.१०.३
'सुसंदृशं त्वा वयं
मघवन् वन्दिषीमहि'
ऋ. १.८२.३; ८२.३; वाज.सं. ३.५२; श.ब्रा. २.६.१.३८

सुसंसत् - उत्तम राजसभा का स्वामी
'सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः'
ऋ. ७.९.३

सुसंपिष्टम् - (१) अच्छी तरह से चूर्ण हुआ (२) मेघ का विशेषण । दे. 'आशये'
'एतदस्या अनः शये
सुसंपिष्टं विपाश्या'
ऋ. ४.३०.११; नि. ११.४८
यह उषा का आश्रय भूत मेघ वायु से संचूर्णित होकर तथा सभी बन्धनों से रहित हो सोया हुआ है ।
अथवा,
सायण के अनुसार यह इन्द्र संचूर्ण्य शकट विपाशा नदी के तट पर पड़ा हुआ है ।

सुसंस्कृता - द्वि.व.। सुसंस्कृतौ 'सुन्दर, सुडौल बाहु' ।
'उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृता'
ऋ. ८.७७.११; नि. ६.२२.
तेरे दोनों बाहु सुन्दर, सुडौल एवं रमणीय या रण के योग्य है ।

सुष्यदाः - सुख पूर्वक बहने वाला जल
'सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वम् '
अ. १९.४०.२

सुस्रक् - सुन्दर माला धारण करने वाला
'इन्द्रमावह सुस्रजम् '
अ. २०. १२८.१५; १५, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.२.

सुस्रस् - अच्छी प्रकार से बहने वाली गण्डमाला
'आ सुस्रसः सुस्रसः'
अ. ७.७६.१

सुस्वरु - उत्तम तेजस्वी, उत्तम उपदेष्टा
'वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः'
ऋ. ५.४४.५

सुषुम्ना - उत्तम सुख से युक्त

'सुषुम्ना सिन्धुवाहसा'
ऋ. ५.७५.२; साम २.१०९४

सुस्नुषाः – (१) सुख प्रस्रवण करने वाली (२) आत्मा में सुख बहाने वाली प्रकृति
'सुपुत्र आदु सुस्नुषे'
ऋ. १०.८६.१३; अ. २०.१२६.१३; नि. १२.९
(३) उत्तम सुखपूर्वक विराजने वाली सुखदायिनी

सुसूत – (१) उत्तम रीति से उत्पन्न होने योग्य पुत्र, (२) उत्तमरीति से उत्पन्न होने वाला अग्नि, (३) उत्तम रीति से ऐर्वर्ययुक्त और अभिषिक्त राजा
'उत्तानायामजनयत् सुसूतम्'
ऋ. २.१०.३

सुसूद् – दृढ़ नश्वर शरीर से युक्त पुरुष
'यान् राये मर्तान् सुषूदो अग्ने
ते स्याम मघवानो वयं च '
ऋ. १.७३.८
हे ज्ञानवान् राजन् परमेश्वर, जिन उत्तम दृढ़ नश्वर देहों से युक्त पुरुषों को (सुखदः मर्तान्) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (राये) एकत्र कर उनको संगठित करता है वे और हम तेरे अधीन रहकर ऐश्वर्यवान् हों (मघवानः स्याम)।

सुहनः – दुष्ट जनों की ताड़ना करना
'वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे '
ऋ. १०.१०५.७
(२) सुख से हनन करने योग्य
'अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि '
ऋ. ४.२२.९

सुहव – शुभरूप से पुकारने योग्य
'यत् ते नाम सुहवं
अ. ७.२०.४; का.सं. १३.१६

सुहव्य – (१) उत्तम स्तुति योग्य (२) आश्रयणीय, आश्रययोग्य, (३) दानी (४) परमेश्वर या अग्नि
'तमित् सुहव्यमंगिरः सुदेवं सहसो यहो'
ऋ. १.७४.५
हे समान देहों के अवयवों में रस या प्राण के समान समस्त ब्राह्माण्ड के अवयव में चेतनता या शक्तिरूप से व्यापक (अंगिराः) हे शक्ति के रूप में प्रकट होने वाले प्रभो ! (सहसः यहो) विद्वान् लोग तुम्हें ही उत्तम स्तुति योग्य, उत्तम दानी, ज्ञान प्रकाशक और सब का द्रष्टा तथा उत्तम ज्ञान बल और आश्रय वाला बतलाते हैं।

सुहवा – (१) सुन्दर आह्वान वाली अमावास्या (२) आदरपूर्वक बुलाए जाने वाली स्त्री दे. 'जोहवीमि' 'सुवृत्'
'अस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि'
अ. ७.४७.१
(३) उत्तम रीति से पति की आज्ञा में रहने वाली, (४) उत्तम ज्ञान से पूर्ण
'अश्वक्षमा सुहवा संभृतश्रीः'
अ. १९.४९.१
(५) शुभनाम और ख्याति वाली स्त्री
'ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छतं'
ऋ. ५.४६.७; अ. ७.४९.१; मै.सं. ४.३.१०:२१३.८; तै.ब्रा. ३.५. १२.१; नि. १२.४५
(६) द्वि.व.। सुखपूर्वक आहुत किए जाने वाले अग्नि और पर्जन्य। दे. 'इला'
'अस्मिन् हवे सुहवा सुष्टुतिं नः
ऋ. ६.५२.१६
हे सुखपूर्वक आहुत किए जाने वाले अग्नि और पर्जन्यि, इस यज्ञ में (हवे) हमारी सुन्दर स्तुति आप सुनें।
(७) ए.व.। स्त्री। सुह्वाना (सुन्दर आह्वान् वाल्, जिसका आह्वान् सुन्दर हो, आह्वान् प्रयोजन कारिणी)।
दे. 'राजा'
(८) सुन्दर आह्वानवाली राका, पूर्मिमा का विशेषण। दे. ' उक्थ्य '।
'राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे'
ऋ. २.३२.४
मैं सुन्दर आह्वान वाली पूर्णिमा को सुन्दर स्तुति से पुकारता हूँ।

सुहस्तः – (१) कल्याणहस्तः (जिसका हाथ अभ्यस्त हो, कुशल हो, (२) सुन्दर हाथों वाला (३) दुहने में जिसका हाथ सधा हो। दे. दोहत'
'सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् '
ऋ. १.१६४.२.६; अ. ७.७३.७; ९.१०.४; नि. ११.४३
और माध्यमिका वाक् रूपी धेनु को सुन्दर हाथ वाला (सुहस्तः) ग्वाला रूपी सविता (गोधुक्) दुहे।

सुहस्त्यः – सुन्दर हस्त क्रिया में कुशल

'अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यः'
ऋ. १.६४.१
जैसे बुद्धिमान् पुरुष मन से विचार कर और उत्तम हस्त क्रिया से कुशल पुरुष नाना कर्मों विद्वानों तथा हाथों द्वारा बनाने योग्य शिल्पों को (अपः) प्रकट करता है।

सुहस्ती – (१) सुन्दर हाथों वाला (२) ऋत्विक् का विशेषण। दे. गो'
'आ धावता सुहस्त्यः'
ऋ. ९.४६.४
ऐ सुन्दर हाथों वाले ऋत्विजो, आप शीघ्र आयें।

सुहार्त् – उत्तम हृदय वाला (good -hearted)
'यः सुहार्त तेन नः सह'
अ. २.७.५

सुहिरण्य – (१) सुन्दर हिरण्य या धन से युक्त –सा.। दे. 'असत्'।
'सुगुरसत् सुहिरण्य स्वश्वः'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९
(२) सुन्दर यश वाला–दया.

सुहिरण्ये – द्वि.व.। (१) उत्तम रीति से हितकर और रमणीय–स्त्रीपुरुष (२) दिन रात
'उषासा वां सुहिरण्ये सुशिल्पे'
वाज.सं २९.६; तै.सं. ५.१.११.२; मै.सं. ३.१६.२: १८४.९; का.सं. (अश्व.) ६.२

सुहुत – उत्तम आहुति
'अग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु'
अ. ६.७१.१, २; १०.९.२६

सुहुताद् – सुहुत + अद् + क्विम्।(१) उत्तम रीति से आहुति देने के बाद यज्ञ–शेष खाने वाला।
'आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि'
ऋ. ९.७१.४

सुहूः – उत्तम रीति से आहुति देने वाला
'अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यः'
वाज.सं. १.३०; श.ब्रा. १.३.१.१९

सुहूति – (१) उत्तम रीति से अपने को देह में अर्पण करने वाला आत्मा (२) संसार यज्ञ में अपने को अर्पण करने वाला परमात्मा
'एकया च दशभिश्चा सुहूते'
अ. ७.४२.१
(२) अपने को योग द्वारा इष्ट देव में समर्पण करने वाला।

सूः – (१) यः 'सूते' (जो जन्म देता है। उत्पादक
'पुरुत्रा यदभवत् सूरहैभ्यः'
ऋ. १.१४६.५
(२) स्त्री। उत्पन्न करने वाली माता (३) पृथिवी
'उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीत्'
ऋ. १.३२.९
अन्तरिक्ष रूपी माता ऊपर और जलरूपी पुत्र नीचे हो गया।
(४) पुत्र और भृत्यादि को आज्ञा करने का सामर्थ्य।
'ज्ञात्रं च मे सूश्च मे'
वाज.सं. १८.७

स्यूः – सीने वाली सूई
'विष्णोः स्यूरसि'
वाज.सं. ५.२१; तै.सं. १.२.१३.३; ६.२.९४; मै.सं. १.२.९:१०; ३.८.७; का.सं. २.१०; २५.८; श.ब्रा. ३.५.३.२५

सूकर – (१) उत्तम किरणों वाला या उत्तम शोधन करने वाला सूर्य
'सूकरस्य विजिहीते मृगाय'
अ. १२.१.४८
(२) प्राणरूप वायु, (३) प्रागायाम का उत्तम अभ्यासी
'सूकरस्त्वा खनन् नसा'
अ. २.२७.२; ५.१४.१.
(४) यः सुष्ठु करोति उत्तम कार्य करने वाला, (५) उत्तम रीति से वंश करने योग्य, (६) उत्तम युद्ध कर्ता
'त्वं सूकरस्य दर्दृहि'
ऋ. ७.५५.४
(७) सूअर

सूक्तभाज् – वह देवता जिसका वर्णन (सूक्तभाक) एक या अनेक सूक्तों में हो

सूक्तवाक् – उत्तम वाणी बोलने वाला
'ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः'
ऋ. ५.४९.५

सूक्तवाकः – (१) उत्तम सुवचनों का उपदेश
'सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि'
वाज.सं. २१.६१
(२) यज्ञ का सूक्त प्रयोक्ता

(३) उत्तम वचन का प्रयोग
'सूक्तवाकेनाशिषः '
वाज.सं. १९.२९
(४) सुखपूर्वक कहने योग्य वचन
'सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निम् '
ऋ. १०.८८.८

सूपस्थः उत्तम रीति से राष्ट्र में व्यवस्थित
'सूपस्था अद्य देवः '
वाज.सं. २१.६०

सूक्तोदि – जिसमें वेद सूक्त प्रमाण रूप में कहे जांय
'यज्ञस्यत्वा यज्ञपते सूक्तोकौ '
वाज.सं. ८.२५; तै.सं. १.४.४५.२; श.ब्रा. ४.४.५.२०.

सूची – षिव (सीना) + चट् + ङीष् = सूची (षिव् के इ का ऊ और टित् होने से ङीष्)। अर्थ–सुई । दे. 'उक्थ्य ' 'सीव्यतु
'सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया'
ऋ. २.३२.४; अ. ७.४८.१; तै.सं. ३.३.११.५; मै.सं. ४.१२.६; १९५.१; का.सं. १३.१६; नि. ११.३१.
राका हमारी सन्तति रूपी वस्त्र की (अपः) अविच्छिन्न सुई से (अविच्छिद्यमानया सूच्या) सीए (सीव्यतु) ।
(२) ज्ञान को सूचित करने वाली ऋचा, (३) ज्ञान और साधनों की सूचना देने वाली
(४) नाना देशों को मिलाकर सन्धियों से एक कर देने वाली वाणी
'सूचीभिः शम्यन्तु त्वा '
वाज.सं. २३.३३–३६;

सूचीक – सूई के समान कांटे से काटने वाला जीव
'सूचीका ये प्रकङ्कताः '
ऋ. १.१९१.७

सूचीमुख – सुई के समान तीक्ष्ण चोंच वाला त्रिषन्धि नामक बाण
'अयोमुखाः सूचीमुखाः '
अ. ११.१०.३

स्थूणम् – रथ का ढांचा । रथ के विशेषण के रूप में 'अयः स्थूण' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है–वह रथ जिसका ढांचा लोहे का निर्मित हो ।
'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टौ अयः स्थूण मुदिता सूर्यस्य '
ऋ. ५.६२.८
हे मित्र और वरुण, तुम दोनों उषा के उच्छेद होने पर तथा सूर्य के उदय होने पर तथा सूर्य के बने स्थूण वाले रथ पर सवार होओ (२) स्तम्भ, खम्भा ।

स्थूण – (१) मुख्य कीलक, प्रधान स्तम्भ
'हिरण्य निर्णिगयो अस्य स्थूणा '
ऋ. ५.६२.७
(२) स्थिर टेक, (३) व्यवस्था की प्रतिज्ञा
'एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु ते '
ऋ. १०.१८.१३; तै. आ. ६.७.१

स्थूणाध्रुना – मुख्य सम्भ, सर्वाश्रम
'वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा '
ऋ. ८.१७.१४; साम. १.२७५; शां.गृ.सू. ३.४.८.

सूत – (१) दूसरे से प्रेरित होने वाला (२) नाटक के पात्रों का प्रेरक पुरुष (३) क्षत्रियात् ब्राह्मण्यां जातम् इति दयानन्द ।
'क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी मात्र से उत्पन्न पुत्र) ।
'नृत्ताय सूतम् '
वाज.सं. ३०.६
(४) रथवाहक
'नमः सूतायाहन्त्यै '
वाज.सं. १६.१८

सूतवशा – (१) वशा गौ की एक जाति । वह भूभाग जिसमें अभी अभी स्वतन्त्र प्रजातन्त्र शासन उत्पन्न हुआ हो ।
'या च सूतवशा वशा '
अ. १२.४.४४

सूतवै – सुख पूर्वक पुरुष करने के लिए
'वि पर्वाणि जिहतां सूत वा उ '
अ. १.११.१

सूति – बाल प्रसव कार्य
'वषट् ते पूषन्नस्मिन सूतौ '
अ. १.११.१

सूत्रा – जन्म देने वाली नाड़ी सूत्री
'नदी सूत्री वर्वस्य पतय '
अ. ९.७.१४

सूतुम् – सन्तान के रूप में
'अनु सूतुं सवितवे '

अ. ६.१७.१-४

सूद - (१) दान देना । दे. सुसूदति '
'अग्निर्हव्या सुषूदति'
ऋ. १.१४२.११
(२) सं. । हिंसाकारी शस्त्र
'च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् '
ऋ. १०.६१.२
(३) धा. । बहाना, अधिक मात्रा में उत्पन्न करना, प्राप्त करना ।
'गावो न हव्या सुषूदिम'
ऋ. १.१८७.११
(४) प्रवाहित करना
'नराशंसः सुषूदति'
ऋ. ५.५.२
(५) जल

सूददोहाः - (१) जल प्रदान करने वाला कूप, (२) मेघ
'ता अस्य सूददोहसः
सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।'
ऋ. ८.६९.३; वाज.सं. १२.५५; तै.सं. ४.२.४.४; ५.५.६.३; मै.सं. २.८.१:१०६.५; ३..२.८: २८.१४; का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.७.३.२१; तै.ब्रा. ३.११.६.२.

सूद्या - झरने का जल
'सूद्याभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२५; तै.सं. ७.४.१३.१; का.सं. (अश्व.) ४.२.

सूदाः - सु + उदाः । (१) वर्षशील मेघ, (२) उत्तम करप्रद प्रजाएं
'अपीपयन्त धेनवो न सूदाः'
ऋ. ७.३६.३

सून् - सुतराम् ऊनयति ।
अनृतं यत् कर्म तत् सून् (मिथ्या को नष्ट करने वाला कर्म) ।

सूनर - (१) उत्तम पुरुषों या नायकों से युक्त, (२) जिससे सुन्दर नर हो । ऐश्वर्य का विशेषण ।
'यो वाधते ददाति सूनरं वसु'
ऋ. १.४०.४
जो विद्वान् पुरुष को उत्तम पुरुषों या नायकों से युक्त या उत्तम पुरुषों को उत्पन्न करने वाला-ऐश्वर्य होता है ।
'वि दाशुषे भजति सूनरं वसु'
ऋ. ५३४.७

सूनरी - (१) या सुष्ठु नयति (अच्छी तरह प्राप्त कराने वाली) (२) उत्तम कार्यों में प्रवृत्त करने वाली उषा का विशेषण ।
'आ घा योषेव सूनरी
उषा याति प्रभुञ्चती'
ऋ. १.४८.५
निश्चय ही (घा) उषा स्त्री के समान (योषा इव) उत्तम कार्यों में प्रवृत्त कराने वाली है ।
(सूनरी) वह उत्तम भोग प्रदान करती हुई (प्रभुञ्चती) अर्थात् पति और सन्ताओं को व्रत नियमादि का पालन कराती हुई प्राप्त होती है ।
(३) उत्तम शरीर रथ की नेत्री चिति शक्ति ।
'सुमन्मा वस्वी रन्ती सुनरी'
साम. २.१००४, जै.ब्रा. २.१४४
(४) उत्तम नायिका (५) विदुषी स्त्री (६) उषा
'ज्योतिष्कृणोति सूनरी'
ऋ. ७.८१.१

सूनाः - (१) स्नान करने के तीर्थ आदि स्थान, (२) भीतरी विचारों को बाहर प्रेरित करना 'सूना' है ।
'अङ्काः सूनाः पथि परिभूषन्त्यश्वम् '
ऋ. १.१६२.१३; वाज.सं. २५.३६; तै.सं. ४.६.९.१; मै.सं. ३.१६. १:१८२.५; का.सं. (अश्व.) ६.४.
(३) हिंसा-दया. ।
(४) हल की फाली, (५) अन्नोत्पादक क्रिया, (६) उत्पादक क्रिया
'मांसमेकः पिंशति सूनयामृतम् '
ऋ. १.१६१.१०
एक पुरुष हल की फाली से या अन्नोत्पादक क्रिया से प्राप्त मन को उत्तम लगने वाले अन्नादि को पैदा करता और रुचिर बनाता है ।
अथवा,
गुरु की प्रेरणा या उपदेश क्रिया से मनन योग्य ज्ञान को . ..।
अथवा,
उत्पाद क्रिया द्वारा प्राप्त मांस मय शरीर को रूपवान् बनाता है ।
(४) परब्रह्म की ओर प्रेरणा करने वाली तीव्र

बुद्धि ।
'असिं सूनां नवं चरुम् '
ऋ. १०.८६.१८; अ. २०.१२६.१८
(८) स्नान करने के तीर्थ स्थान (९) आभ्यन्तर विचार को बाहर प्रकट करना-'सून' है ।
(१०) इन्द्रियों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाली बुद्धि शक्ति

सूनु - (पु.) पुत्र । सू (उत्पन्न करना धातु से सम्पन्न) ।
'अवस्युरह्वे कुशिरुस्य सूनुः '
ऋ. ३.३३.५; नि. २.२५
मैं कुशिक पुत्र अपनी रक्षा का इच्छुक पुकारता हूं ।
अंग्रेजी का पुत्र वाचक son शब्द सून से ही बना है ।
(२) प्रेरक, उत्पादक परमात्मा
'तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः '
अ. ६.१.२.
'स नः पितेव सूनवे
अग्ने सूपायनो भव । '
ऋ. १.१.९; वाज.सं. ३.२४; तै.सं. १.५.६.२; मै.सं. १.५.३:६९.७; का.सं. ७.१,८; श.ब्रा. २.३.४.३०.
हे अग्ने ! या परमेश्वर ! तू हमारे पुत्र के लिए पिता की तरह उपहार या उपचार लाने वाला हो ।

सूनुमत - (१) पुत्र पौत्रों से युक्त , (२) उत्तम शासन से युक्त
'शिशीहि न सूनुमतः '
ऋ. ३.२४.५; तै.सं. २.२.१२.६; मै.सं. ४.१२.२: १८०.६; का.सं. ६.१०

सूनृत - (१) सुतराम् अनयति अनृतं यत् तत् सून् (जो कर्म मिथ्या को नष्ट कर डालता है वह सूनृत है) । सून् + ऋत = सूनृत् । मिथ्या को नष्ट तथा सत्य को सेवन करने वाली यथार्थ वाणी ।
'चोदयित्री सूनृतानाम् '
ऋ. १.३.११; वाज.सं. २०.८५; तै.सं. १.४.११.२
(२) अन्न
'प्र सूनृता दिशमान ऋतेन '
ऋ. ३.३१.२१

सूनृता - (१) उत्तम शुभ वाणी
'सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती '
ऋ. १.११३.१२
उत्तम सुखों को देने वाली, उत्तम शुभवाणियों का उच्चारण करती हुई स्त्री....
(२) उत्तम शब्दमयी वाणी (३) विराट् के चार विभाग है- ऊर्जा, स्वधा, सूनृता और इरावती । उन्हीं में एक सूनृता है ।
'सूनृत एहि '
अ. ८.१०.११; मै.सं. ४.२.५: २६.१४; ४.२.६: २७.११; शां.श्रौ.सू. २.१२.३, आप.श्रौ.सू. ४.१०.४
'वैश्वदेवीं सूनृतामारभध्वम् '
(सत्य वाणी बोलना आरम्भ करो) ।

सूनृता धेनुः - उत्तम सत्यमयी वाणी
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता '
ऋ. ८.१४.३; अ. २०.२७.३; साम. २.११८६.

सूनृताना नेत्री - उत्तम धन, ज्ञान, यश और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली उषा । दे. 'भास्वती'

सूनृतावत् - सत्यभाषी
'सूनृतावन्तः सुभगाः '
अ. ७.६०.६

सूनृतावती - (१) प्रशंसनीय बुद्धि से युक्त ।
'या वां कशा मधुमती
अश्विना सुनृतावती '
ऋ. १.२२.३; वाज.सं. ७.११; तै.सं. १.४.६.१; मै.सं. १.३.८:३३.२; का.सं. ४.२; श.ब्रा. ४.१.५.१७
हे नाना विद्याओं कों व्यापने वाले अध्यापक और शिष्य, तुम दोनों की जो मधुर ऋग्वेदादि ज्ञान यज्ञ उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण (कशा अर्थों का प्रकाश करने वाली वाणी है) ।
(२) अनृशंस्य कर्मों वाली,
(३) भक्तों की स्तुतियों से युक्त उषा
(४) उत्तम ज्ञान वाणी को बोलने वाली
(५) विवाह में नववधू
'रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति '
ऋ. १.९२.१४; साम. २.१०८२
भक्तों की स्तुति से युक्त उषा या मधुरालापिनी नववधू । तू हमें ऐश्वर्य सम्पन्न गृह सुख विविध प्रकार से प्रदान कर ।
(६) उत्तम वेद वाणी से युक्त
'अश्वावती गोमती सूनृतावती '
अ. ३.१२.२; शां.गृ.सू. ३.३.१; पा.गृ.सू. २.१७.९:

३.४.४, हि.गृ.सू. १.२७.३
(७) उत्तम ऋतज्ञान और धन की स्वामिनी
'चोदयित्री मघोनः सूनृतावती'
ऋ. ७.८१.६
(८) उषा या विशोका प्रज्ञा का विशेषण,
(९) उत्तम ऋत अर्थात् त्रिकाल बाधित ज्ञान से सम्पन्न ।
(१०) सूनृता अर्थात् वेदवाणी का दर्शन, मनन और निविध्यास करने वाली

सूपसर्पणा – (१) उत्तम रीति से उपसर्पण करने वाली, शरण में आने वाली ।
'सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा'
अ. १८.३.५०

स्तूप – स्त्यै (शब्द करना, संघात, एकचित्त होना) + य = स्तूप (धातु का स्तू) अर्थ– संघात
स्तूयः स्त्यायतेः संघातः । दे. 'अवस्'
अथवा
– स्त्यै + कूपन् = स्त्यूप = स्तूप ।
(२) तेजः समूह । दे. 'अबुध्न
'अबुध्ने राजा वरुणो वनस्य
ऊर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः'
ऋ. १.२४.७

सूखायन – सु + उप + अयन = सूपायन (१) सुन्दर उपचार या उपहार लाने वाला । दे. 'अस्ति' 'सूनः' ।
'अग्ने सूपायनो भव'
ऋ. १.१.९; वाज.सं. ३.२४; तै.सं. १.५.६.२; मै.सं. १.५.३:६९.७; का.सं. ७.१; ८; श.ब्रा. २.३.४.३०
हे अग्नि या परमात्मा, तू सुन्दर उपचार या उपहार लाने वाला हो ।
(२) सम्यक् प्रकार से उपचरणीय या उपगमनीय, (३) सुखदायक – दया. । दे. 'सचस्व' ।

सूभर्वः – सु + हृञ् + वन् = सूभर्वः अथवा सु + भर्व + घञ् = सूभर्व । निघण्टु में भर्व धातु भक्षणार्थक है ।
(१) सुन्दर –सा.
(२) धनापहारक या प्रजाभक्षक शत्रुराजा –ज.दे.श. । दे. 'आजि' ।
'तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रम्
गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'
ऋ. १०.१०२.५; नि. ९.२३
उस वृषभ से सुन्दर सौ गुना सहस्र अर्थात् एक लक्ष गाएं मैं मुद्गल ने संग्राम में जीता –सा. । उस सांढ के द्वारा सात्विकान्त भोजी जितेन्द्रिय निरभिमान या हर्ष शोक में समचित्त राजा (मुद्गलः) युद्ध में (प्रधने) धनापहारक या प्रजाभक्षक शत्रुराजा को (सूभर्वम्) तथा गाय आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थों को जीतता है ।
(३) शोभन भोग,
(४) धनापहारक
(५) प्रजाभक्षक दया.
(६) उत्तम सुखजनक फल या अन्न का भोक्ता ।
'ते सूभर्वा वृषभाः प्रेराविषुः'
ऋ. १०.९४.३
(७) सुख से मरण धारण करने योग्य

सूमय – (१) उत्तम सुख कारक
'तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः'
ऋ. ८.७७.११
(२) सुख + मयट् = सूमय (ख का लोप, उ का ऊ) । सुन्दर सुखों को करने वाला , धनुष का विशेषण । दे. 'उभा,' 'सुकृतम्' ।
तेरा धनुष बहुबाण वर्षी (तुविक्षुम्) सुन्दर कर्मों का करने वाला (सुकृतम्) तथा सुखकर है (सूमयम्) ।

स्यूम गभस्ति – (१) सुखकारी किरणों वाला सूर्य, (२) सुखकारी शासन व्यवस्था वाला राजा, (३) सुखकारी साधनों से युक्त आत्मा, । दे. 'दीर्घाप्सा'
(४) सुखकारी रश्मियों या रासों से युक्त (५) सुप्रबद्ध रथ
'स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैः'
ऋ. ७.७१.३

स्यूमगृभ् – एक दूसरे से सम्बद्ध दृढ़ सैन्य को वश में करने वाला
'स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च'
ऋ. ६.३६.२

स्यूमना – (१) एक दूसरे से सम्बद्ध और उत्तम ज्ञानों से ओतप्रोत वाणी, (२) सुखजनक वाणी
'स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः'
ऋ. १.११३.१७
वह्नि या ज्ञानों को धारण करने वाला विद्वान्

या विवाहने वाला पुरुष (वह्निः) एक दूसरे से सम्बद्ध उत्तम ज्ञानों से ओतप्रोत वेदवाणी या सुखजनक वाणी बोला करें ।

स्यूमन्यु – (१) शीघ्र गमनेच्छुक –दया. ।
(२) सुखकारक –ज.दे.श. । दे. 'स्यूमन्यू'

स्यूमन्यू – द्वि.व.। ए.व. में 'स्युमन्यु' । (१) शीघ्र गमनेच्छुक घोड़े (२) सुखकारक
'स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा'
ऋ. १.१७४.५

स्यूमरश्मि – (१) जिसकी रश्मियां या न्याय दीप्तियां संयुक्त हो ।–दया .
(२) किरणों से ओतप्रोत सूर्य,
(३) शासन मर्यादा को बांधने वाला शासक पुरुष, । दे. 'शादी' ।
(४) रश्मियों से युक्त तेजस्वी
'स्यूमरश्मावृजूनसि'
ऋ. ८.५२.२

स्यूमा – (१) सूत उत्पन्न करने वाली चरखे की तकली, (२) सन्तान रूप सूत्र उत्पन्न करने वाली स्त्री
'अव स्यूमेव चिन्वती मघोनी'
ऋ. ३.६१.४

सूयवस् – (१) उत्तम अन्नादि के साथ (सूयवाः) लेकर चलने वाला, पथिक (२) उत्तम अन्न आदि भोग्य पदार्थों का उपभोग करने वाला
'सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था'
ऋ. १.१९०.६
(३) उत्तम मन आदि अन्नों और ओषधियों से युक्त देश
'अभि सूयवसं नय'
ऋ. १.४२.८
हमें यवादि सम्पन्न देश में पहुंचा ।

सूयवस – (१) बल
'क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे'
ऋ. १०.१०६.१०

सूयवसाद् – (१) सु + यवस + अद् + क्विप् । सुन्दर यवस नामक तृण को खाने वाली गौ, दे. 'अघ्न्या'
'सूयवसाद् भगवती हि भूयाः'
ऋ. १.१६४.४०; अ. ७.७३.११; ९.१०.२०; ऐ.ब्रा. १.२२.१३; ५.२७.६; ७.३.३; कौ.ब्रा. ८.७; आश्व.श्रौ.सू. ३.११.४; ४.७.४; आप.श्रौ.सू. ९.५.४; नि. ११.४४
हे गौ या माध्यमिका वाक् ! तू सुन्दर यवस नामक घास खाने वाली होकर प्रभूत क्षीर वाली हो ।
(२) विट् वैयवः, राष्ट्रं यवः
तै.ब्रा. ३.९०.७८
उत्तम यव का भूसा खाने वाली गौ
(३) कभी जुदा न होने वाले पुण्यों का भोग करने वाली चितिशक्ति
(४) राष्ट्र की आय खाने वाली शासनशक्ति

सूयवसिनी – (१) उत्तम अन्न, और और से युक्त पृथ्वी
'सूयवसिनी मनुषे दशस्या'
ऋ. ७.९९.३; वाज.सं. ५.१६; श.ब्रा. ३.५.३.१४
(२) सु + यव + सनी = उत्तम अन्न वाली या अन्न देने वाली द्यावापृथिवी

सूयवस्यू – द्वि.व.। (१)उत्तम रीति से यवस् अर्थात् चारा चाहने वाली दो गौएं
(२) सुखदायक विवेक और शत्रुच्छेद चाहने वाली
'यस्य गावावरुषा सूयवस्यू'
ऋ. ६.२७.७

सूरः – शु (गत्यर्थक) + कन् = शूर = सूर । सूर भी इसी अर्थ में प्रयुक्त है ।
(ख) सूर (प्रेरणार्थक) + क्रन् = शूर । अर्थ है– (१) प्रेरक परमात्मा । दे. 'उत्' 'सूरश्चक्रं हिरण्ययम्'
प्रेरक परमात्मा आदित्य के लिए काल रूपी सुवर्णमय चक्के को जलाता है ।(२) सूर्य, (३) वीर सूर्य सदा चलता हुआ दीख पड़ता है। उसी प्रकार वीर भी शत्रुओं की ओर बढ़ जाता है ।
'सूरसूर्यार्यमादित्य
द्वादशात्मदिवाकरः'
–अमरकोष
शरण शब्द का भी आदित्य अर्थ में प्रयोग हुआ है। दे. 'अज्म' 'शूर
'सूर्य' अर्थ में प्रयोग –
'यमेन दत्तं त्रित एनमायुनक्
इन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।

गन्धर्वे अस्य रशनामगृभ्णात्
सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ।'
ऋ. १.१६३.२; वाज.सं. २९.१३; तै.सं. ४.६.७.१; का.सं. ४०.६;
सब लोक नियामक यम या अग्नि से दिए हुए इस अश्व को (यमेन दत्तम् एनम्) वायु ने (त्रितः) रथ में जोता (आ युनक्) तथा उस अश्व पर (एणम्) इन्द्र सवार हुए (प्रथम अध्यतिष्ठत्) । इस अश्व की रशना अर्थात् लगाम को (अस्य रशनाम्) गन्धर्व राज सोम ने पकड़ा (गन्धर्वः अगृभ्णात्) । इस लक्षण वाले अश्व को सूर्य से वसुओं ने बनाया (सूरात् अश्वं वसवो निरतष्ट) ।
(४) रोगी को तड़पाने वाला-ज्वर
(५) सबको प्रेरणा करने वाला परमात्मा, सूर्य ।
'सूरो रथस्य नप्त्यः'
ऋ. १.५०.९; अ. १३.२.२४; २०.४७.२१; का.सं. ९.१९

सूरचक्षसः, सूरचक्षस् - (१) सूर्याख्यानाः (सूर्य के समान) (२) ऋभुओं का विशेषण, (३) सूर्य-समान दर्शन वाले, (४) सूर्य समान दर्शन वाले-सा . (५) परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले
'सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः'
ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६
सुधन्वा के पुत्र (सौधन्वना)-सूर्य समान दर्शन वाले (सूरचक्षसः) ऋभु लोग (ऋभवः) संवत्सर के वसन्तादि ऋतुओं में (संवत्सरे) अग्निष्टोमादि अनुष्ठेय कर्मों से (धीतिभिः) संयुक्त हुए (समपृच्यन्त)-सा. ।
ये सूर्य समान यथार्थवादी या परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले (सौधन्वनाः सूर चक्षसः) आर्य व्यापारी लोग (ऋभवः) वर्षभर (संवत्सरे) व्यापारिक कर्मों में संयुक्त रहते हैं (धीतिभिः सम पृच्यन्त) ।
(६) सूर्य के प्रकाश से प्रेरित (७) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् को अपनी आंखों के समान मार्ग दर्शक बनाने वाले ।
'अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसः'
ऋ. १.८९.७; वाज.सं. २५.२०, का.सं. ३५.१; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१

स्थूर - स्थूल चूतड़
'आक्रमणं स्थूराभ्याम्'
वाज.सं. २५.३;६, तै.सं. ५.७.१५.१; मै.सं. ३.१५.३: १७८.९ ; ३.१५.६: १७९.९; का.सं. (अश्व.) १३.५

सूर्त - सु + ईर् (गत्यर्थक) + क्त = सूर्त (वेद में इट् का अभाव हैं । ई का पूर्व सवर्ण उ का दीर्घ) ।
अर्थ है- (१) सुगत, (२) जंगम-सा.
(३) सुसमीरित-यास्क
(४) सुविस्तीर्ण । दे. 'असूर्त' ।
'असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते
ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ।'
ऋ. १०.८२.४; वाज.सं. १७.२८; नि. ६.१५
जिसने सुविस्तृत निश्चित रूप से संस्थित अन्तरिक्ष में (सूर्ते निषत्ते रजसि) इन जीवों की रचना की ।

सूर्य - (क) सृ + क्यप् = सूर्य (निपातन से) (ख) सु (प्रेरणार्थक) + कयप् = सूर्य (ग) सु + ईर् + क्यप् = सूर्य । सुःधातु प्रेरणार्थक है । दुर्ग ने यहां इसे प्रसवार्थक माना है । (घ) सू (सवन करना) + ईर् + क्यप् = सूर्य ।
अर्थ - (१) सृष्टि कर्त्ता सूर्य
ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन्'
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७
(२) उदय कालीन सूर्य
(३) मेघ ।
'संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५
जब (यत्) इन्द्र (मघवा) सम्यक् प्रकार से वृष्टि देने वाले (संवर्गम्) मेघ को (सूर्यम्) जीतता है (जयत्) । - दुर्ग
दुर्ग ने ही यहां 'सूर्य' का अर्थ मेघ माना है । सूर्य भी वृष्टि देता है ।
'संवर्ग' का अर्थ आर्यसमाजी विद्वानों के अनुसार, 'दुर्गुणों को हटाने वाला तेज है। दे. 'संवर्ग' (४) उदयकालीन आदित्य सूर्य है ।
'सरति अन्तरिक्षे, सुवति प्रेरयति जनान् कर्मसु, सीर्यते प्रेर्यते त्रितेन वायुना इतिवा सूर्यः' ।
(अन्तरिक्ष में सरण करने से जनों को कर्मों में लगाने से या त्रित वायु से प्रेरित होने से यह सूर्य है ।)

(५) सबका प्रेरक उत्पादक सूर्य, प्रभु
'ज्योतिष्कृदसि सूर्य '
ऋ. १.५०.४; अ. १३.२.१९; २०.४७.१६; आ.सं. ५.९; वाज.सं. ३३.३६; तै.सं. १.४.३१.१; मै.सं. ४.१०.६: १५८.१२ का.सं. १०.१३; तै.आ. ३.१६.१
(६) दक्षिण नासिका का प्राण जिसे अमृत कहते हैं, दक्षिण प्राण
'सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके '
अ. ८.१.१.
'य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिवि '
ऋ. १०.६२.३

सूर्यत्वक् – (१) सूर्य के समान कान्ति वाली कन्या
'अपालामिन्द्र त्रिष्यूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् '
अ. १४.१.४१.
(२) सूर्य के समान किरणों वाला (३) शरीर भोक्ता आत्मा को त्वचा या देह के समान सुरक्षित रखने वाला
तेन नासत्या गतम् '
ऋ. १.४७.९; ८.२२.५

सूर्यत्वचः – ब.व.। 'सूर्यत्वक्' ए व.का रूप है। (१) सूर्य के समान
त्वचा वाले उज्ज्वल पुरुष ।
(२) मरुद्गण
'कवयः सूर्यत्वचः '
ऋ. ७.५९.११; मै.सं. ४.१०.३:१५०.६;

सूर्यत्वचाः (सूर्यत्वचस्) – सूर्य के समान उज्ज्वल मरुत्
'मरुतः सूर्यत्वचसः '
अ. १.२०.३; का.सं. २०.१५; तै.आ. १.४.३
(२) सूर्य के दीप्तिमान आवरण के समान उज्ज्वल आवरण वाला तेजस्वी
'सूर्यत्वचसस्थ राष्ट्रदाः '
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.१२

सूर्यतेजाः (सूर्यतेजस्) – सूर्य के समान तेजस्वी
'द्यौ संशितः सूर्यतेजाः '
अ. १०.५.२७

सूर्यपत्नी – द्वि.व.। सूर्य की पत्नी रूप । सायं प्रातः रूप दोनों उषाएं ।
'सूर्यपत्नी संचरतः प्रजानती '
अ. ८.९.१२

सूर्यरश्मि – (१) सविता, परमेश्वर जिसके सूर्य आदि रश्मिवत् हैं ।
'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् '
ऋ. १०.१३९.१; वाज.सं. १७.५८; तै.सं. ४.६.३.३; ५.४.६.३; शा.ब्रा. ९.२.३.१२.
(२) सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला चन्द्रमा
'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः '
वाज.सं. १८.४०; मै.सं. २.१२.२:१४५.४; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.९; नि. २.६.

सूर्यवर्चाः (सूर्यवर्चस्) – सूर्य के समान तेज वाला
'सूर्यवर्चसस्थ राष्ट्रदाः '
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.१३

सूर्यश्वित् – सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ।
'पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः '
ऋ. १०.९४.५; का.सं. ३५.१४

सूर्यस्य आवृत – सूर्य का व्रत
'सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते '
अ. १०.५.३७; वाज.सं. २.२६; २७; का.सं. ५.५; ३२.५; श.ब्रा. १.९.३.१७
'अष्टौमासान् यथादित्यः
तोयं हरति रश्मिभिः ।
तथा हरेत् करं राष्ट्रात्
नित्यमर्कव्रतं हितत् । '
– मनुस्मृति

सूर्यस्य जनिता – (१) सूर्य का उत्पादक परमेश्वर –इन्द्र ।
(२) सूर्य तुल्य व्यक्तित्व का उत्पादक ।
'क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य '
ऋ. ३.४९.४

सूर्यस्य दुहिता – (१) सूर्य की दुहिता–उषा, (२) प्रकाशक तेजस्वी पुरुष की वाणी
'आ सूर्यस्य दुहिता ततान
श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् '
ऋ. ३.५३.१५

सूर्यस्य सातिः – (१) सूर्य की प्राप्ति, (२) सूर्य के समान तेज की प्राप्ति (३) सूर्य अर्थात् दक्षिण नासागत प्राण की प्राप्ति ।
'तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ '
ऋ. ७.३०.२; कौ.ब्रा. २५.२

सूर्व्य – सु + उर्वी + यत् । उत्तम भूमियों का स्वामी

'नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च'
वाज.सं. १६.४५

स्थूर – (१) स्थूरः समाश्रित मात्रो महान् (स्थूल पर रथों में समस्त तन्मात्राएं समाश्रित होती हैं अतःवह स्थूर है)। (२) स्थूल, (३) सांसारिक स्थूल धन।
'धा रत्नं महिस्थूरं बृहन्तम्'
ऋ. ६.१९.१०
महान् स्थूल एवं बृहत् रमणीय धन हमें दे।
पुनः–
'स्थूरं राधः शताश्वं
कुरङ्गस्य दिविष्टिषु
राजस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु
तुर्वशेष्वमन्महि'
ऋ. ८.४.१९
दीप्त एवं महान् (त्वेषस्य) सुन्दर धनयुक्त कुरंग नामक राजा की मनुष्यों के लिए (तुर्वशेषु) दानरूपी स्वर्ग प्राप्त करने वाली वाली दान क्रियाओं में (रातिषु दिविष्टिषु) हम लोगों ने स्थूल सौ अश्वों से युक्त (शताश्वम्) धन (राधस्) पाया (अमन्महि)।
अन्य अर्थ – शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले तेजस्वी और सौभाग्यवान् राजा के (कुरङ्गस्य त्वेषस्य सुभगस्य राज्ञः) तेजस्विता तथा प्रसन्नता प्राप्त करने वाले दोनों में से (दिविष्टिषु रातिषु) प्रजाजनों में दिए गए प्रचुर पराक्रम धन को (तुर्वशेषु शताश्वं राधः) हम बड़ा दान समझते हैं (स्थूरं अमन्महि)।

स्फूर्जयन् – तडपता हुआ
'तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः'
ऋ. १०.८७.११; अ. ८.३.११

सूर्या – (१) उषा, (२) सूर्य की लड़की, कान्तिमती उत्तम ऐश्वर्यवाली सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री।
'आ यद्वां सूर्या रथम्'
ऋ. ५.७३.५
'आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकम्'
ऋ. १०.८५.२०; अ. १४.१.६१; नि. १२.८
(३) विद्वानों के हित की वाणी
'यःसूर्या वहति वन्धुरायुः'
ऋ. ४.४४.१; अ. २०.१४३.१
(४) संसार को उत्पन्न करने वाली जगदम्बा शक्ति
'सूर्यायै देवेभ्यः'
ऋ. १०.८५.४; अ. १४.२.४६
(५) उत्तम समान उत्पन्न करने में समर्थ नवयुवती वधू
'यदयात् सूर्या पतिम्'
ऋ. १०.८५.७

सूर्याः – ब.व.। (१) आदित्य के समान तेजस्वी, (२) ज्ञान के भण्डार आदित्य योगी
'कण्वा इव भृगवः सूर्या इव'
ऋ. ८.३.१६; अ. २०.१०.१; ५९.२; साम. २.७.१३; मै.सं. १.३.३९; ४६.७; आप.श्रौ.सू. १३.२१.३

सूर्यामासा – (१) सूर्य और चन्द्रमा, (२) दिन और रात
'सूर्यामासा मिथ उज्झरातः'
ऋ. १०.६८.१०
'सूर्यामासा दृशे कम्'
ऋ. ८.९४.२
'सूर्यामासयोरक्षितम्'
अ. ३.२९.५

सूर्यावसू – द्वि.व.। (१) अश्विद्वय, (२) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु जन, (३) विद्या-प्रकाशक गुरुओं के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने वाले ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी, (४) सूर्य और सूर्या के समान पतिपत्नीवत् बसने वाले वरवधू (५) सूर्यवत् तपस्या का अभ्यास करने वाले
'अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः'
ऋ. ७.६८.३

सूरिः– (१) सूर्य
'विश्लोक एति पथ्येव सूरिः'
अ. १८.३.३९
(२) विद्वान्
'अधा सूरिभ्यः सुदिना व्यच्छान्'
ऋ. ७.१८.२१
और उन विद्वानों के सुदिन आते हैं।
और उन विद्वानों के साथ मित्रता होने पर उत्तम दिन बिताते हैं। ('व्युच्छान्')।
(३) 'स्वृ' शब्द करना और उपगमन अर्थ में आया है।
शब्दनम् उपदेश तत्कर्त्ता सूरिः विद्वान् अभिज्ञ

इति सायणः ।
अथवा- उपतापकः शत्रूणां सूरिः
'सूरिरसि वर्चोधा असि'
अ. २.११.४
(४) प्रेरक ।
'जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः'
ऋ. १.१८१.४; नि. १२.३
तुम दो अश्विनी कुमारों में एक सुमहान् बल के प्रेरक हैं ।
(५) मेधावी विद्वान्, गुरुजन

सूर्भि - (१) सु + ऊर्मि । उत्तम धारा युक्त
'सूर्म्यं सुषिरामिव'
ऋ. ८.६९.१२; अ. २०.९२.९; मै.सं. ४.७.८; १०४.१२; नि. ५.२७.
(२) उत्तम क्रिया या वाणी
(३) उत्तम ज्वाला
'अजस्रया सूर्म्या यविष्ठ'
ऋ. ७.१.३; साम. २.७२५; वाज.सं. १७.७६; तै.सं. ४.६.५.४; मै. सं. २.१०.६; १३९.५; का.सं. १८.४; ३५.१; ३९.१५

स्थूरि - एक बैल या घोड़े वाली गाड़ी ।
'नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति'
ऋ. १०.१३१.३; अ. २०.१२५.३

स्थूरी - स्थिर पड़ी हुई गाड़ी
'नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति'
ऋ. १०.१३१.३

सूर्येप्रियः - सूर्य में चमकने वाला परमेश्वर ।
'प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवति'
ऋ. १०.४५.१०

सूर्योज्योतिः - भौतिक सूर्य परमात्म ज्योति की प्रतिनिधि है ।
'सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा'
साम. २.११८१; वाज.सं. ३.९; मै.सं. १.६.१०: १०२.१२; २.७.१६: ९९.६; का.सं. ६.५;४०.६; ऐ.ब्रा. ५.३१.४; कौ.ब्रा. २.८;१४.१; श.ब्रा. २.३.१.३०; ३३,३६

सूर्योवर्चेः - भौतिक सूर्य दीप्तिमान् है ।
'सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा
वाज.सं. ३.९; श.ब्रा. २.३.१.३१.

स्थूल गुदा - स्थूल गुदा
'अन्धाहीन् स्थूलगुदया'
वाज.सं. २५.७

स्थूलपृषती - बड़ी बड़ी छींट वाली पोशाक वाली स्त्री ।
'पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः'
वाज.सं. २४.२; मै.सं. ३.१३.३:१६९.४

स्थूलभ - स्थूल रूप
'वातेन स्थूलभं कृतम्'
अ. ६.७२.२

सूषणा- बालक को प्रसन्न करने वाली माता
'श्रथया सूषणे त्वम्'
अ. १.११.३

सूष्यन्ती - प्रसववती स्त्री
'योनिः सूष्यन्त्या इव'
ऋ. ५.७८.५

सूषा - सु + उषा (१) प्रभात के समान उत्तम प्रकाशवान् (२) पापों का दण्ड करने वाला
'स्वासदसि सूषा'
अ. १६.४.२
(३) सुख से बालक को प्रसव कराने वाली दाई
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि
(४) उत्तम उषा काल
'सूषा च मे सुदिनञ्च मे'
वाज.सं. १८.६

स्तृ - धा. । (१) फैलाना, बिछाना
'नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत'
अ. १२.३.३२
(२) विनाश करना, destroy
'तं वधै स्तृणवामहे'
अ. १०.५.४२
(३) नक्षत्र
'द्यौर्न स्तृभिश्चितयद् रोदसी अनु'
ऋ. २.२.५
(४) विस्तृत गृह (५) शरीर का आच्छादक उत्तम वस्त्र
'दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः'
ऋ. १.१६६.११

स्वृ - धा. । शब्द करना, उपताप अर्थ में भी प्रयुक्त ।

सृक - सृ (चलना, मरना) + क = सृक । अर्थ- (१) सरण शील, गतिशील चलने वाला

(३) वज्र का विशेषण । दे. 'कुचर'
'सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मम्'
ऋ. १०.१८०.२; अ. ७.८४.३; साम. २.१२२३; वाज.सं. १८.७१; तै.सं. १.६.१२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८३.१५ का.सं. ८.१६
हे इन्द्र, तू सरणशील (सृकम्) वज्र को (पविम्) सम्यक् प्रकार से तेजकर (संशाय) शत्रुओं को (२) वज्र, (३) किरण समूह । निघण्टु २-२० में वज्र का वाचक सृक कहा गया है ।

सृक्वण् - सान् समागच्छन् (१) नीचे जाता हुआ सूर्य -यास्क
(२) रस हरणशील भूलोक -दया.
'सृक्वाणं धर्ममभिवावशाना'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; नि. ११.४२
नीचे जाते हुए सूर्य को देख बार बार कामना करती हुई माध्यमिका वाक् - यास्क ।
पुनः चलने वाले रस-हरणशील भूलोक की कामना करती हुई माध्यमिका वाक् -दया. ।

सृकायी - खांडे को धारण करने वाला ।
'नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यः'
वाज.सं. १६.२१; तै.सं. ४.५.३.१; मै.सं. २.९.३; १२३.५; का.सं. १७.१२.

सृकाहस्तः - हाथ में भाला लिए हुआ ।
'सृकाहस्ता निषङ्गिणः'
वाज.सं. १६.६१

सृक्कार - सृक् + कार । खाने के समय सुरकने की ध्वनि
'म्रक्कारेण वषट्कारेण'
अ. ९.६.५

सृजन् - उगता हुआ
'सृजन् सूर्यो न रश्मिभिः'
ऋ. ८.४३.३२

सृजयः - वेग से विजय करने वाला
'शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः'
वाज.सं. २४.३३; मै.सं. ३.१४.१४:१७५.६

सृजामि - बनाता हूं । दे. 'आगहि', 'सोम्यं मधु' ।

सृञ्जय - (१) आगन्तुक शत्रुओं को विजित करना ।
'स सृञ्जयाय तुर्वशं परादात्'
ऋ. ६.२७.७
(२) शत्रु विजय का कार्य
'अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते'
ऋ. ४.१५.४
(३) प्राप्त शत्रुओं का विजेता
'भृगुं हिंसित्वा सृञ्जयाः'
अ. ५.१९.१

स्तृणन्ति - बिछाते हैं । 'स्तृ' धातु का बिछाना अर्थ भी है । दे. 'आनुषक्' ।
'स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्'
ऋ. ८.४५.१; साम. १.१३३; २.६८८; वाज.सं. ७.३२; मै.सं. ४.१२.६:१९४.९; का.सं. १३.१५; श.ब्रा. १.३.३.१०; तै.ब्रा. २.४.५.७; आप.श्रौ.सू. ११.१०.७; नि. ६.१४
जो क्रम से या निरन्तर (आनुषक्) कुशों को बिछाते हैं, अर्थात् यज्ञ करते हैं ।

सृणिः - (१) वेग से जाने वाली सेना । (२) आयुध संचालन में कुशल पुरुष
'वृक्षो न पक्वः सृपयो न जेता'
ऋ. ४.२०.५
सृ + नि = सृणिः । अंकुशः (३) अंकुश, हंसुआ । दे. 'इत्', 'समरा' ।
'नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्,'
ऋ. १०.१०१.३; वाज.सं. १२.६८; श.ब्रा. ७.२.२.५; नि. ५.२८
पका हुआ अन्न हंसुआ या अंकुश से भी निकट आ जाए ।

सृणी - (स्त्री.) द्वि.व.। सृ + नि = सृणि । अंकुशो भवति सरणात् (सृ धातु से सृणि बना है जिसका, अर्थ है-हंसुआ, अंकुश) । सृणि हस्ती के सिर पर जाती है) ।
(१) अंकुश
'सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू'
ऋ. १०.१०६.६; नि. १३.५
हे अश्विनी कुमारो, तुम अंकुश के समान एकत्र स्थापित करने वाले एवं नाश करने वाले हो ।
(२) दात्री (हुंसुआ) । धान्यादि काटने के लिए यह चलायी जाती है । दे. 'इत्'
(३) सन्मार्ग में ले जाने वाले दो नायक ।

सृत्वा - सरण या आक्रमण करने में सदा तैयार
'अत्यो न सृत्वा सनये धनानाम्'
ऋ. ९.९६.२०

सृध् - (१) देह या राष्ट्र का धन और सब शोषण

करने वाला
(२) कुत्सित आचरण वाला
'अति निहो अति सृधः'
अ. २.६.५; मै.सं. २.१२.५;१४९.४

स्पृध् – (१) स्पर्धा करने वाला
(२) शत्रु सेना
'विश्वा यदजयः स्पृधः'
ऋ. ८.१४.१३; अ. २०.२९.३; साम. १.२११; वाज.सं. १९.७१; श.ब्रा. १२.७.३.४
(२) स्पृध् + क्विप्
'स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः'
ऋ. १.११९.१०
परस्पर स्पर्धा करने वाले प्रतिस्पर्धी शत्रुओं के पार पहुंचा देने वाले (स्पृधा तरुतारम्) अति अधिक वेग से आक्रमण करने वाले (श्वेतम्) सैन्य वर्ग को प्रदान करो (दुवस्यथः)

सृप् – चलना
'गूढः पृथिव्या मोत् सृपत्'
अ. ६.१३४.२

सृप्र – सृप् (गत्यर्थक) + रक = सृप्र । अर्थ है–सर्पिष् (घृत या तैल) ।
'सृप्रः सर्पणात् इदमपि इतरत्
सृप्रम् एतस्मादेव सर्पिर्वा'
तैलं वा ।
(२) दीर्घ । दे. 'बृबदुक्थ'
(३) अति व्यापक, सर्वगामी
'पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वम्'
ऋ. ४.५०.२; अ. २०.८२.२

सृप्रकरत्न – सृप्रौ करस्नौ बाहू यस्य सः (जिसकी भुजाएं अदीर्घ हों) । दे. 'करना' 'बृबदुक्थ' ।
'बृबदुक्थं हवामहे
सृप्रकरस्नमूतये ।'
ऋ. ८.३२.१०; साम. १.२१७; नि. ६.४
तुम अदीर्घ बाहु वाले (सृप्रकरस्नम्) बृबदुक्थ को रक्षा के लिए बुलाते हैं ।

सृप्रदानु – (१) सर्पणशील चेतना या बल को देने वाला परमेश्वर या द्रविणोदा अग्नि । दे. 'ऊर्जः,' 'पुत्र' ।

सृप्रदानू – विस्तृत रूप से देने वाले मित्रावरुण
२) स्त्री पुरुष
सप्रदानू इषो वास्त्वधिक्षित
ऋ. ८.२५.५

सृप्रभोजाः – प्राप्त हुए शरणागत को पालन करने वाला परमेश्वर–इन्द्र ।
'अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसम्'
ऋ. ६.४८.१४

स्तृभि – स्तृ + क्विप् = स्तृ (तुक् का अभाव) । अर्थ – नक्षत्र वाची 'स्तृ' शब्द में 'भिस्' को अव्यय के रूप में वेद में जोड़ा गया है । वेद में ऐसे तृतीयान्त शब्द आए है । इसे विमतयन्त प्रतिरूपक अव्यय भी कहा जा सकता है ।
स्तृभिः तीर्णानि इव ज्ञायन्ते ख्यायन्ते (नक्षत्र गगनमण्डल में तिर्यक् गत की तरह दीख पड़ते हैं ।)
'ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः
विश्वषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे'
ऋ. ४.७.३
यज्ञवान्, विशिष्ट ज्ञानयुक्त (ऋतावानम् विचेतसम्) एवं सभी यज्ञों में स्पर्धाभाव उत्पन्न करने वाले अग्नि को (विश्वेषां अध्वराणाम् हस्कर्तारम्) पृथ्वी में घर घर में प्रज्वलित होने वाले उसी प्रकार हमें देखते हैं जैसे नक्षत्रों से देदीप्यमान अन्तरिक्ष, (स्तृभिः द्याम् इव पश्यन्तः) ।

सृमरः – पथ प्रदर्शक गवयपशु
'अरण्याय सृमरः'
वाज.सं. २४.३९; तै.सं. ५.५.१६.१; का.सं. (अश्व.) ७.६

सृबिन्द – आक्रमण कर प्रजा का धन हरण करने वाला ।
'यः सृबिन्दमनर्शनिम्'
ऋ. ८.३२.२

सृष्टा आपः – फेंके हुए जल । दे. 'कला' ।
'आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः'
फेंके हुए जल की तरह (सृष्टाः आपः न) नीचे (नीचीः) पहुंचा । दे. ('अधवन्त) ।

सृष्टा – (स्त्री.) । सृज् + क्त + टाप् । प्रेरित, सिरजी गई, रची गई । प्रेरित अर्थ में प्रयोग । दे. 'अप्'
'सेनेव सृष्टामं दधाति'
ऋ. १.६६.७; नि. १० २१
सेनापति के द्वारा प्रेरित सेना की तरह बल या भय देता हुआ–अग्नि ।

सृष्टा सेना – (१) चक्रव्यूहादि से रची सेना, (२) सेनापति की आज्ञा से प्रेरित हो छूट निकली सेना ।
'सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः '
ऋ. १.१४३.५

स्पृहयद्वर्णः – (१) दीप्ति के कारण मन लुभाने वाले रूप वाला अग्नि, (२) चाहने योग्य वर्ण रूप एवं उद्योग वाला
'मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निः
ऋ. २.१०.५; वाज.सं. ११.२४; तै.सं. ४.१.२.५; ५.१.३.३; मै.सं. २.७.२:७६.६; का.सं. १६.२; श.ब्रा. ६.३.३.२०

स्पृहयाय्य – चाहने योग्य
'वसूनि राजन् स्पृहयाय्यणि'
ऋ. ६.७.३; का.सं. ४.१६
'विश्वप्स्नस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् '
ऋ. ८.९७.१५

सेक् – सिच् + क्विप् = सेक्वा, (२) वीर्य सिञ्चन करने वाला पति । दे. 'ऋञ्जन '
'पिता यत्र दुहितु सेकमृञ्जन् '
ऋ. ३.३१.१; नि. ३.४.
विवाह करते समय (यत्र) अपुत्र पिता (पिता) लड़की के सेक्ता या पति को (दुहितुः सेकम्) अलङ्कृत करता हुआ (ऋञ्जन्) ।

सेक – (१) वीर्य-सेचन, (२) वर्षा, (३) वीर्य-सेचन करने वाला पति । दे. 'ऋञ्जन् '(4) ज्ञानवर्षण (५) आनन्द रस का प्रवाह
'गोर्नसेके मनुषो दशस्यन् '
ऋ. १.१८१.८
'वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्'
ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३

सेक्ता – (१) प्यालों को भरने वाला
'सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै'
ऋ. ३.३२.१५; अ. २०.८.३
(२) सिंचन करने वाला, बरसाने वाला । (४) वीर्य सेचक पति

स्तेग – (१) गर्जन करता हुआ मेघ, (२) सूर्य, (३) वेग से जाने वाला हिरण । अंग्रेजी का stag इसी शब्द का बिगड़ा रूप है ।
'स्तेगो न क्षामत्येति पृथिवीम् '
ऋ. १०.३१.९; अ. १८.१.३९
(४) समस्त प्रकृति के परमाणु आदि का संघात करने वाला परमेश्वर ।

सेता – सि + तृच् । बन्धन करने वाला ।
'यौ सेतृभिरजुभिः सिनीथः'
ऋ. ७.८४.२

स्वेद – (१) पसीना
'कीनास्वेद स्वदेमासिष्विदाना'
ऋ. १०.१०६.१०
(२) परिश्रमी । दे. 'सत्य शवसः'

स्वेदाञ्जी – (१) स्वेदों को प्रकट करने वाले प्राणों का आयमन रूप तप, (२) स्वेद चुलाने वाला श्रम
'स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानः '
ऋ. १०.६७.६; अ. २०.९१.६; मै.सं. ४.१४.५:२२२.६

सेदिः – (१) क्लान्ति, थकान
'सेदिरुग्रा व्यृद्धिः '
अ. ८.८.९
(२) अन्नादि के न मिलने के कारण उत्पन्न विपत्ति, दुर्भिक्ष आदि,
(३) प्रजा जन का नाश (४) रोगादि क्लेश, (४) भूख प्यास का कष्ट
'यत्र सेदिर्न विद्यते'
वाज.सं. २०.२६
(५) दुःख, विनाश
'तत्र सेदिर्न्युच्यतु
अ. २.१४.३

स्वेदुहव्य – (१) आप ही प्रकाशित दान आदान व्यवहार । (२) स्व + इदु + हव्य । अपने आह्लादक जल रूप दानों से युक्त मेघ (३) प्रकाशमान जलग्राहक किरण, (४) चमचमाता साधन शस्त्र ।
'अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैः '
ऋ. १.१७३.२

सेध – (१) निवारण करना, (२) नाश करना (३) ठीक राह पर लाना
'अग्नी रक्षांसि सेधति'
ऋ. १.७९.१२;१२; ७.१५.१०; १०
'विश्वेदग्निः प्रतिरक्षांसि सेधति'
ऋ. ८.२३.१३; साम. १.११४

सेधति – सेधतु (दूर रखें) । दे. 'सहस्राक्ष'।

सेनाजित् – सेना जीतने वाला

'तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१९; तै.सं. ४.४.३.२; मै.सं. २.८.१०:११५.३; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.२०

सेन्यः – (१) सेनासु साधुः सेनाभ्यो हितो वा (सेनाओं में सबसे श्रेष्ठ और उनका हितकारी)। (२) सेना द्वारा संग्राम करने में कुशल (३) इन अर्थात् स्वामी रूप आत्मा से युक्त इन्द्रियों में सबसे श्रेष्ठ आत्मा।
'असि हि वीर सेन्यः
ऋ. १.८१.२; अ. २०.५६.२; साम. २.३५३
(४) सेना सम्बन्धी
'यो अद्य सेन्यो वधः'
अ. १.२०.२; ६.९९.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.३.२२.

सेन्य वध – (१) सेना सम्बन्धी शस्त्रास्त्र
'यो अद्य सेन्यो वधः'
अ. १.२०.२

स्तेन – (क) स्त्यै (एकत्र होना, संघात) + इनच् = स्त्या इन = स्तेन–निरुक्त।
(ख) स्तेन (चुराना) + कन् = स्तेन – पाणिनि।
(ग) संस्त्यानम् अस्मिन् पापकम् इति नैरुक्ताः (चौर में पाप संहत होकर निवास करता है अतः उसका नाम स्तेन हुआ)। पाणिनि के अनुसार चुराने वाला स्तेन है।

स्तैनहृदय – चोर के समान भीरु हृदय वाला, चोर के हृदय के समान अप्रकट छिपे आचार विचार का पुरुष।
'ऋतये स्तेनहृदयम्'
वाज.सं. ३०.१३

सेना – (१) इ (गत्यर्थक) + नक् = इन। अर्थ है–ईश्वर,। प्रभु, इनेन सह इति सेना (प्रभु के साथ जो चलती है वह सेना है या एक मात्र जय के उद्देश्य से जो चलती है वह सेना है)।
'सेना सेश्वरः समानगतिः वा'
अथवा समान गतिः यस्याः सा सेना (सैनिकों की गति सदा समान– एक सी रहती है अतः वह सेना है)।
सेना। दे. 'अम'
'सेनेव सृष्टामं दधाति'
ऋ. १.६६.७; नि. १०.२१.
सेनापति के द्वारा प्रेरित सेना की तरह यह अग्नि भी भय या बल देता है।
'विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः'
ऋ. १.१८६.९

सेनाजू – वेग से सेना को चलाने वाला।
'सेनाजुवा न्यूहतू रथेन'
ऋ. १.११६.१
वेग से सेना के चलाने वाले रथ से सुरक्षित रूप से लाते हैं।

सेनानी – सेना नायक, सेनापति,। दे. 'त्विष्'
'सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि'
ऋ. १०.८४.२; अ.४.३१.२
हे सहनशील मन्यु, तू हमारे संग्राम में बुलाए जाने पर सेनापति बन।

स्तेयकृत् – (१) चोरी करने वाला
'रिपुस्तेनस्तेयकृद् दभ्रमेतु'
ऋ. ७.१०४.१० अ.८.४.१०

स्रेवयन् – उल्लंघन करता हुआ
'दुराध्यो आदितिं स्रेवयन्तः'
ऋ. ७.१८.८

सेहानः – पराजित करता हुआ
'विश्वाः सेहानः पृतना पुरुजयः'
ऋ. ८.३६.१–६

सेहाना – शत्रु पर विजय करने वाली
'सेहानाया उपाचरेत्'
ऋ. १०.१५९.२; आप.मं.पा. १.१६.२

स्रेहिती – (१) हिंसाकारिणी दुष्ट सेना
'अप स्रेहितीर्नृमणां अधत्त'
ऋ. ८.९६.१३; अ. २०.१३७.७; साम. १.३२३; का.सं. २८.४
(२) नाशकारिणी दुर्वासना (३) मोहमयी दुष्ट प्रवृत्ति

सेहु – (१) शुष्क
'सेहुः नाम विप्रकीर्णवयवः
अत्यन्तं निस्सारः तूलादिपदार्थः –सा।
'सेहोररसतरा'
अ. ७.७६.१

स्त्रैण – (१) कन्या का शरीर (२) स्त्री सम्बन्धी अंग–सा.।
'सुवामा स्त्रैणमिच्छतम्'
अ. ८.६.४

स्त्रैणसख्य – स्त्री आदि भोग्य पदार्थों का उद्देश्य कर की गई मैत्री।

'न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति'
ऋ. १०.९५.१५; श.ब्रा. ११.५.१.९.

स्वैतुः – स्व + एतु। (१) स्वयं आगे आने वाला, अग्रसर (२) धन प्राप्त कराने वाला।
'स्वैतवा ये वसवो न वीराः'
ऋ. ५.४१.९

सैन्धव गुल्गलु – नदी के तट पर उत्पन्न होने वाला गूगुल
'यद् गुल्गलु सैन्धवम्'
अ. १९.३८.२

सैर्य – नदियों या तालाबों के तटों पर उत्पन्न घासों के बीच पाये जाने वाला जीव।

सैलग – (१) दुष्टों को वश करने वाला
(२) दुष्ट पुरुषों का सन्तान या शिष्य
'पाम्मने सैलगम्'
वाज.सं. ३०.१८

स्त्रैषूय – कन्या के गर्भ में धारण करना
'स्त्रैषूयमन्यत्रदधत्'
अ. ६.११.३

स्तोक – (१) थोड़ी थोड़ी मात्रा में स्थित पदार्थ
'स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य'
ऋ. ३.२१.१; मै.सं. ४.१३.५;२०४.९; का.सं. १६.२१; ऐ.ब्रा. २.१२.८; तै.ब्रा. ३.६.७.१.
(२) बिन्दुओं के समान अल्पबल और अल्पज्ञानी शिष्यगण
घृतवन्त पावक ते
'स्तोकाः श्रीतन्ति मेदसः'
ऋ. ३.२१.२
(३) शत्रुहन्ता वीरजनों का स्तुति कर्ता अल्पशक्तिशाली पुरुष, (४) जलधाराओं के समान ज्ञान जल प्रवाहित करने वाला विद्वान्।
'श्रीतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि'
ऋ. ३.२१.५; मै.सं. ४.१३.५;२०५.१; का.सं. १६.२१; ऐ.ब्रा. २.१२.१६; तै.ब्रा. ३.६.७.२
(४) पदार्थ, Stock
'मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध'
अ. २.३५.२
(५) कण। दे. 'अध्रिगु'।
'तुभ्यं श्रीतन्त्यध्रिगो शचीवः
स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।'
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५; २०४.१४; का.सं. १६.२१; ऐ.ब्रा. २.१२.१४; तै.ब्रा. ३.६.७.२.
हे कर्मनिष्ठ अग्ने, तेरे लिए मेदा और घृत के कण टपक रहे हैं।
(६) गुणों का ग्राहक मनुष्य-दया.

स्तोका – श्रुतिद् (च्युत होना) + घञ् = स्कोता = स्तोका। आप्यन्ते विपर्यय हुआ है।

स्वोजाः – सु + ओजस्। उत्तम बलशाली
'अच्युता चिद् वीडिता स्वोजः'
ऋ. ६.२२.६; अ. २०.३६.६

सोतवे – सुञ् + तवेन् = सोतवे, रस निकालने के लिए।
'ऊर्ध्वो भवति सोतवे'
ऋ. १.२८.१

सोत्वः – (१) उत्पन्न होने वाला ऐश्वर्य या तैयार किया जाने वाला सोमरस।
'तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासः'
ऋ. १०.१६०.२; अ.२०.९६.२
(२) भविष्य में निष्पादित किया जाने वाला
'सुतासो ये च सोत्वाः'
सा. १०.२१२

सोता – (१) ज्ञानमार्ग में ले जाने वाला (२) अन्नवत् कूटपीट कर सार पदार्थ देने वाला।
'ग्रावेव सोता मधुषद् यमीडे'
ऋ. ४.३.३.
(३) संचालक
'सोतुर्बाहुभ्यं सुयतो नार्वा'
ऋ. ७.२२.१; अ. २०.११७.१; साम. १.३९८; २.२२७; तै.सं. २.४.१४.४; पंच.ब्रा. १२.१०.१

सोत्वासः – उत्पन्न होने वाले भावी पदार्थ। दे. 'सोत्व'।

स्तोता – (१) 'स्तु' धातु के मध्यम पुरुष बहुवचन का लोट् में रूप। दे 'उक्थ'।
'इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते'
ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१; साम. १.२८२; २.७१०
सोम रस तैयार होने पर संसार में (सुते) एकत्र होकर (सचा) मनोरथ बरसाने वाले इन्द्र की स्तुति करो (वृषणम् इन्द्र मित् स्तोता)।
(२) स्तु + तृच् = स्तोतृ। प्रथमा ए.व. का रूप स्तोता। स्तुति करने वाला। दे. 'आधी'।
'स्तोतारं ते शतक्रतो'
ऋ. १.१०५.८; १०.३३.३; नि. ४.६.

स्तोत्रियः – (१) प्रथम तीन ऋचाओं का पाठ, (२) विद्वान् (३) सत्या सत्य विवेकयुक्त विद्याओं के योग्य विद्यार्थी ।
'आ श्रावयेति स्तोत्रियाः '
वाज.सं. १९.२४

स्तोतुः – उत्पादक, स्रष्टा ।
'वि हि सोतोरसृक्षत
नेन्द्रं देवममंसत '
ऋ. १०.८६.१; अ. २०.१२६.१; वै.सू. ३२.१७; नि. १.४; १३.४

स्रोतस् – (१) प्रवाह, धारा, । दे. 'यामि '।
'उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजत् '
ऋ. १.५१.११

स्रोतस्याः – ब.व.। स्रोतों से उत्पन्न होने वाले जल ।
'अपां स्रोतस्यानाम् '
अ. १९.२.४.

स्रोत्या – (१) स्रोत से बहने वाली नदी
'यत्र यन्ति स्रोत्या स्तजितं ते '
अ. ६.९८.३; मै.सं. ४.१२.२:१८१.१०; तै.सं. २.४.१४.१; का.सं. ८.१७
(२० प्रवाह (३) विनय से चलने वाली स्त्री, (४) रजः स्राव से शुद्ध स्त्री
(५) स्रोतसि भवा–गति –दया.
'अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः '
ऋ. ३.३३.९

स्रोत्य – (१० सोता, (२) आन्तरिक लहर, (२) समुद्रगामिनी महानदी
'समुद्रस्येव स्रोत्याः '
अ. १.३२.३.

सोतोः – षु + तोसुन् (तमप् अर्थ में) = सोतोः प्रसोतुम् । (१) सर्वभूत के प्रसव के लिए (२) सभी जीवों को उत्पन्न करने के लिए । दे. 'मत्सखा '
'वि हि सोतोरसृक्षत '
ऋ. १०.८६.१; अ. २०.१२६.१; गो.ब्रा. २.६.१२; वै.सू. ३२.१४; १७; नि. १३.४
आदित्य जब प्रतिदिन जीवों की सृष्टि के लिए (सोतोः) किरणें बिखेरते हैं (व्यवस्था)...।
(३) रसग्रहण करने के लिए

सोन्त – ऋग्वेद कालीन एक देश ।

स्योन – (१) न. । सुख । पापी इसे नाश करते हैं अतः यह स्योन है । (अवस्यन्ति नाशयन्ति पापिन एतदिति स्योनम्) ।
'स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै '
अ. १४.१.१९
(३) सुखप्रद, (३) निर्भय
'त्वं चकर्थ मनवे स्योनान् '
ऋ. १०.७३.७ ·
दे. 'अमृतस्य लोक'
'स्योनं पत्ये वहतुं कृणुस्व '
ऋ. १०.८५.२०; साम.मं.ब्रा. १.३.११; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८.
हे सूर्ये पति के लिए सुखद विवाह कर ।
पुनः, दे. 'अनृक्षर '।

स्योनकृत् – सुखकारक, सुखी करने वाला । दे. 'स्वादु क्षद्मा '

स्योनशीः – स्योन + शी । (१) सुख रे शयन करने वाला, (२) सुख जनक उत्तम पुरुषार्थ में स्थित, (३) जो सुख से या विद्या धर्म या पुरुषार्थ में स्थित हो ।
'स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानः '
ऋ. १.७३.१
जो सुख से शयन करने वाले, अतिथि के समान समस्त सुख जनक उत्तम पुरुषार्थ में स्थित हो और सबको प्रसन्न करने वाला हो ।
(४) सुख से रहने वाला या प्राप्त होने वाला
'स्योनशीरतिथिराचिकेतत् '
ऋ. ७.४२.४

स्योना – अवस्यन्ति नाशयन्ति पापिन एतदिति स्योनम् (पापी इसे नाश करते हैं अतः यह स्योन है) ।
षो (अन्त करना) + न = स्योन । अथवा 'सेवितव्य' होने से यह स्योन है ।
सेव + न = स्यून (टि का यूट्) = स्योन ।
दे. 'स्योन'। स्योन + टाप् = स्योना । सुखकारी, सुख दायिनी, । दे. 'अनृक्षरा'
स्योना पृथिवी भव । हे पृथ्वी ! तू सुखदायिनी बन ।
'शिवा स्योना पतिलोके विराज '
अ. १४.१.६४

स्तोभति – स्तौति (स्तुति करता है) स्तुभ अर्चनार्थक

धातु है ।

सोभरि – (१) उत्तम रीति से पालक

'यथा वाजेषु सोभरिम्'

ऋ. ८.५.२६

(२) उत्तम रीति से प्रजा का पोषण करने वाला ।

'अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे
प्रेमध्वराय पूर्व्यम्'

ऋ. ८.१९.२; साम. २.१०३८

सोभरी – उत्तम रीति से पुष्ट करने वाला ।

'श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः'

अ. १८.३.१५

सोभरीयुः – उत्तम पालक पोषक को चाहने वाला ।

'यशमा सोभरीयवः'

ऋ. ८.२०.२

सोम – (१) षु + मन् = सोमन् । स्वयं उत्पन्न होने वाली लता ।

(२) सोमलता, (३) दुग्ध । दे. 'अनूप' ।

'अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः
सोमो दुग्धाभिरक्षाः'

ऋ. ९.१०७.९; साम. २.३४८; नि. ५.३.

सोम जल प्राप्त देश में गोओं के साथ रहता है । सोम सभी गात्रों से निकलकर झरता है । –सा. जब जल प्राय देश में गोस्वामी गौओं के साथ निवास करता है तो दोही हुई गोओं से भी दूध निकलता है ।

विभिन्न भाषाओं में सोम के नाम –

संस्कृत–सोमलता, सोम, कल्पलता; तिब्बती–सोम । फारसी–इमहूय

बिलोचिस्तानी–उमान । अंग्रेजी–एफिडा वलगेरिस । आजकल साटिया वलवरिडो को भी लोग सोमलता कहते हैं । लैटिन– कस्टेमा ब्रेवि सटिमा ।

पारसी 'सोम' की होम कहते हैं । कच्छ में 'सिगड़ी ओ' लैटिन में 'पेरिकलोआ अफिला एन् ओ असेमि मियाडो एफेड्रा' पंजाब में अप्सनिया चेना सोम के नाम से प्रचलित है। डा० एचीसन औरनकर जोसेफ वरुमुला इसी को सच्चा सोम मानते हैं । सुफिड्रा जोनस की और दो जातियां भी सोम नाम से प्रचलिति है । 'एफ्रेड्रा पैचिक्लाडा' को ही सच्चा सोम मानते हैं । डा० एचीसन के अनुसार हरिसद् घाटी में एफिड्रो पैचिस्का गहुंम हुम सोम ही है । यह उत्तम बलूचिस्तान के हासिद घाटी और इरान के पहाड़ी प्रदेशों में पाया जाता है । एफेड्रा की ही दूसरी जाति 'हुम–इ वदक' है । मैक्स मूलर के अनुसार वेद और अवेस्ता में सोम का उल्लेख है ।

वेद में सोम रस को दुग्ध और मधु के साथ बनाने की बात है । 'सोम्यं मधु' से यह सिद्धि है ।

धूर्तस्वामी के अनुसार सोमलता श्यामवर्ण की खट्टी, बिना पत्ते की दुग्धपूर्ण होती है । इससे उल्टी होने का भी (कै) वेद में जिक्र है ।

सोम रस –पान अमर बनाता है । चरक और सुश्रुत ने भी इसकी महिमा बताई है । सुश्रुत में इसकी आकृति भी दी गई है ।

हिमालय, आबू, सहयाद्रि, महेन्द्र, मलय, पर्वत देवगिरि, देवसह पारिपात्र विन्ध्य, देवसुन्द्र आदि पर्वतों पर वितसा नदी के उत्तर कश्मीर आदि स्थानों में सोम लभ्य है । परन्तु सुश्रुत के अनुसार इसे धर्मात्मा ही देख सकते हैं ।

'न तान् पश्यन्त्यधर्मिष्ठाः'
कृतघ्नाश्चापि मानवाः
भेषजद्वेषिण श्चापि ।
ब्राह्मण द्वेषिणस्तथा ।'

सु. २९.३१

आयुर्वेद में इसे 'जरा व्याधिनाशनम्' कहा है ।

'ब्रह्माद्यो ऽसृजन् पूर्वम्
अमृतं सोमसंज्ञितम्
जरामृत्यु विनाशाय'
सुश्रुत –२९

चौबीस प्रकार का सोम समान गुणवाला बनाया गया है ।

आकार–सर्व एव तु विज्ञेयाः

'सोमा पञ्चदशच्छदाः,
क्षीरकन्दलगवन्तः
पत्रैर्नानाविधैः स्मृताः ।'

सु. २९.२६

पुनः सुश्रुत में कश्मीर के क्षुद्रक मानस में इसका होना बताया है ।

'कश्मीरेषु सरोदिव्यम्
नाम्ना क्षुद्रकमानसम् ।'

सु. २९.३१
चरक ने भी इसे ऐसा ही बताया है । नौ हजार से बारह फीट की ऊंचाई पर सोम किसी पर्वत पर मिलता है ।
'हिमवत्यर्बुदे सह्ये
महेन्द्र मलये तथा
श्री पर्वते देवगिरौ
गिरौ देवसहे तथा
पारिपत्रये च विन्ध्ये च
देवसुन्दे ह्रदे तथा ।
उत्तरेण वितस्तायाः
प्रवृद्धः ये महीधराः ।'
सोम का आकार चन्द्रमा सा है, अतः यह सोम कहलाया ।
सोम के पन्द्रह पत्र चन्द्रमा के कृष्ण शुक्ल के अनुसार बढ़ते और सूखते हैं ।
'सर्वेषामेव सोमानां
पत्राणि दशपञ्च च'
तानि शुक्ले च कृष्णे च
जायन्ते निपतन्ति च ।
एकैकं जायते पत्रं
सोमस्या हरहस्तथा
शुक्लस्य पौर्णमास्यान्तु
भवेत्यञ्चदशच्छदः ।
शीर्षते पत्रमेकैकं
दिवसे दिवसे पुनः
कृष्णपक्षक्षये चापि
लता भवति केवलः ।
सुश्रुत'
इफेड्रा जेरार्डियाना (सोम) की बनी टिकिया विदेशों से आ रही है जिसे श्लेमानाश के लिए खिलाया जाता है ।
वेद में सोम के विविध नाम और विवरण-
(१) वीरुधां मतिः
'आर्जीकात् सोम मीढ्वः'
ऋ. ९.११३.२
इस के पत्ते होते हैं ।
'दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम'
ऋ. ९.९७.३३
(२) अंशु,
'सोम विश्वेभिरंशुभिः'
ऋ. १.९१.१७; ९.६७.२८; वाज.सं. १२.११४; का.सं. ३५.१३
इसे पीकर तैयार किया जाता है ।
'सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत'
ऋ. ८.१.१७
इसमें कांटे भी होते हैं ।
सोम अरुण वृक्ष की शाखा है ।
'वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतः'
ऋ. १०.९४.३
सोम का दुग्ध अरुण है .
'अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुम्'
ऋ. ७.९८.१
हरित वर्ण अंशु से रस निकाला जाता है ।
'परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे'
ऋ. ९.९२.१
(१) हरि । सोम का 'हरि' शब्द भी एक पर्याय है । हरि हरा, पीला एवं कुछ लाल वर्ण है । शथपथ ब्राह्मण में इसका रंग अरुण बतलाया गया है ।
श.ब्रा. ४.५.१०.१
गाय देकर सोम खरीदा जाता था और उस गाय का भी रंग लाल होना चाहिए ।
तै.सं. ६.१.६
श.ब्रा. ३.३.१.१४
(४) पूतिका तृण या पूत तृण भी सोम का प्रतिनिधि है ।
महाराष्ट्र में इसे 'मयाल' कहते है ।
इस लता के लाल और सफेद दो रंग होते हैं । इसका रस कुछ अरुण , ठहनियां अगूठे सी मोटी होती हैं ।
(५) फाल्गुनी लता भी अरुण पुष्प वाली होती है । इसके अभाव में अरुण दूर्वा विहित है ।
सोमरस मधुर, मदकारी और कुछ तिक्त होता है ।
इसमें कुछ दुर्गन्ध भी है ।
पर्वत, नदी एवं अनूप देशों में रस की उत्पत्ति होती है
'पवित्रे क्षोमो अक्षाः'
ऋ. ९.१८.१
'शर्मणावति सोमम्'
ऋ. ९.११३.१;

'आर्जीकात् सोम मीढ्वः'
ऋ. ९.११३.२
सोम की जल रूपी बहनें हैं ।
इसे जल का गर्भ कहा गया है ।
'अपां ह्येष गर्भः'
श.ब्रा. ४.४.५.२१
इसकी माता जल है ।
ऋग्वेद में सोम के १२० सूक्त हैं । आर्यों के आदि निवास में सोम प्रचुर मात्रा में मिलता रहा होगा ।
भंग शब्द सोम के विशेषण के रूप में आया है ।
'उपो षु जातमप्तुरम् गोभिर्भंगं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः'
ऋ. ९.६१.१३; साम. १.४८७; २.११२,६८५
ऋग्वेद में सोम का हवन लिखित है । अवेस्ता में 'हवोम' का हवन वर्णित है ।
ऋग्वेद में सोम का रंग पीला बताया गया है और उसमें दुग्धमिश्रित करने की विधि है ।
(६) सोम के अभाव में उशना (अशना) दूसरी प्रतिनिधि लता है,
सोम का आस्तरण मूज या शण कहलाता है ।
(७) जगदुत्पादक प्रभु को भी सोमकहा गया है । दे. 'आहनस्'
सोमरस स्वादिष्ट और मदिष्ट दोनों हैं ।
'स्वादिष्ठया मदिष्ठया
पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ।'
ऋ. ९.१.१; १००.५; साम. १.४६८; २.३९; वाज.सं. २६.२५; ऐ.ब्रा . ८.८.९; २०.३; पंच ब्रा. ८.४.५; नि. ११.३
वस्तुतः सोमरस वही पीता है जो यज्ञशील हो सत्य की उपासना करता है ।
'सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम्
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ।'
ऋ. १०.८५.३; अ. १४.१.३; नि. ११.४
दीर्घायुष्य के लिए विधिपूर्वक रस के सेवन की भी बात कही गई है ।
'अध्वाकल्पेन हृतमाभिषुतं
यमनियमाभ्याम् आत्मानं संयोज्य'। '
तीन मास तक सोमरस के सेवन से अणिमा लघिमा आदि सिद्धियां प्राप्त होती हैं ।
सुश्रुत में निम्नलिखित २५ प्रकार के सोम हैः –
(१) अंशुमान् (२) मुञ्जवान् (३)चन्द्रमा (४) रजतप्रभ, (५) रजतप्रभ, (६) दुर्वासोम, (७) कनीयान् (७) पर्वताक्ष, (८) कनकप्रभ (१०) प्रतानवान्, (११) करवीर (१२) अंशवान् (१३) स्वयं प्रभु, (१४) महासोम, (१५) गरुड़हृति, (१६) श्येनमाहृत, (१७) गायत्र, (१८) त्रैष्टुभ् (१९) पंक्ति, (२०) जागत (२१) शाङ्कर, (२२) अग्निष्टोम, (२३) दैवत (२४) सोम, (२५) उडुपति (नक्षत्रराट्) ।
अंशुमान् सोम की कोई घृत के समान होती है, मुञ्जवान् में कदली के समान कन्द होता है । चन्द्रमा सुवर्ण के समान होता और और जल में उपजता है ; गुरुड़ाहृत और श्वेताक्ष पाणु वर्ण होता है । और सांप की केंचुली के समान वृक्ष के अगले भाग पर लटके रहते हैं। सब प्रकार के सोम पन्द्रह पत्ते वाले होते होते हैं और इसमें दूध, कुन्द तथा लता होती है । पत्ते भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं ।
हिमालय, आबू, (अर्बुद) सह्य, महेन्द्र, मलय, श्रीपर्वत, देवगिरि, देवसह, पारिपात्र और विन्ध्याचल पर्वतों में पाया जाता है । देवसुन्द तालाब व्यास नदी के उत्तरवर्ती पर्वतों में और जहां पंजाब की पांचो नदियां सिन्धु में गिरती हैं चन्द्रमा नामक सोम पाया जाता है और उनके आस पास अंशुमान् और मुञ्जवान् सोम भी है । मानसरोवर में गायत्र, त्रैष्टुभ, पांक्त, जागत और शांकर सोम मिलते हैं ।
मुञ्जवान् पर्वत पर सोम पाए जाने की बात 'प्रायेया मा' ऋचा मे मिलती है। दे. 'अच्छान'
सोम का आधुनिक अर्थः
–...सोमस्वोषधीतद्रसेन्दुषु
वसुप्रभेदे सलिलो वानरे किन्नरेश्वरे'
– हेम ।
सोमलता, सोमरस, अमृत, देवताओं का मध्य, चन्द्रमा, प्रकाश किरण, कर्पूर, जल, वायु, कुबेर का एक नाम, शिव का एक नाम, यम का एक नाम, चावल की मांड़, आत्मा, परमात्मा ।
'सोमः पवते जनिता मतीनाम्

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य
जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः '
ऋ. ९.९६.५; साम. १.५२७; २.२९३; नि. १४.१२.
'ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनाम्
ऋषिर्विप्राणां महिमो मृगाणाम्
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानाम्
सोमः पवित्रमत्येति रेभन् '
ऋ. ९.९६.६; साम. २.२९४; तै.सं. ३.४.११.१; मै.सं. ४.१२.६; १९६.१२; का.सं. २३.१२; तै.आ. १०.१०.१;५०.१; नि. १४.१३
'तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निः
ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् '
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः
सोमं यन्ति मतयो वावशानाः । '
ऋ. ९.९७.३४; साम. १.५२५; २.२०९; नि. १४.१४
डा. सम्यानो ने अन्वेषण कर हिमालय में सोम का पता लगाया था । उनके अनुसार सोम नशीला नहीं है और शिकंजनी के समान यह स्वादु है ।
वस्तुतः सोम अत्यन्त रमणीय पदार्थ है ।
"अथैतं महान्त मात्मान मेतानि
सूक्तानि एताऋचोऽनुवदन्ति "
अथाध्यात्मं सोम आत्माऽव्ये-तस्मादेव, इन्द्रियाणां जनिता इत्यर्थः ।
'अपि वा सर्वाभिः विभूतिभिः
विभूत आत्मेत्यात्यगतिमाचष्टे । '
पुनः-
'विज्ञानोऽस्मि विशेषोऽस्मि
सोमोऽस्मि संकुलोऽस्म्यहम्
मैत्रेयी उपनिषद्
सोम संज्ञोऽयं भूतात्मा '
(८) श्री, (९) राजा, (१०) प्राण, (११) प्रजापति, (१२), गूढरूप अग्नि (१३) विष्णु, (१४) परमात्मा, (१५) वायु, (१६) सम्राट्, (१७) क्षत्रिय, (१८) वीर्य, (१९) यज्ञ, (२०) केवल आनन्दमय, (२१) परब्रह्म, (२२) ब्राह्मण, (२३) यजमान, (२४) क्षत्र, (२५) यश, (२६) रेतस्
श्री वै सोमः- श.ब्रा. ४.१.३.९
अथो राजा वै सोमः- श.ब्रा. १४.१.३.१२
यदाह गयोऽसि इति सोम वा एतदाह -गो.ब्रा. ५.१.५.२६
'सोमो हि प्रजापतिः
यदाह श्येनोऽसि इति सोमं वा एतदाह
एषह वा अग्निर्भूत्वा संश्यायति '
ऐ.ब्रा. ५.५.३२
'यो वै विष्णुः सोमः - सः श.ब्रा
'योऽयं वायुःवनते एषसोमः - श.ब्रा.
स यदाह सम्राट् असि इति सोमम् एतदाह ।
एष ह वै वायुर्भूत्वा अन्तरिक्ष लोकः सम्राजति
गो.ब्रा.
'एष वै यजमानो यत् सोम तै.ब्रा. '
क्षत्रं वै सोमः - श.ब्रा. ३.४.१.१०
(२७) चन्द्रमा, (२८) वेदज्ञान, (२९) वेद ।
वीर्य के अर्थ में-
'सोमेनादित्या बलिनः
सोमेन पृथिवी महीः
अप्यो नक्षत्राणामेषाम्
उपस्थे सोम आहितः । '
ऋ. १०.८५.२; अ. १४.१.२; आप.मं.पा. १.९.२
वेदानां दुह्यं भृग्वंगिरसः सोमपानं मन्यन्ते । सोमात्मको ह्ययं वेदः । तदप्येतत् ऋचोक्तं सोमं मन्यते पपिवान्-गो.ब्रा.
(३०) वीर्यवान् पुरुष
'सोमो वधूयुरभवत् '
ऋ. १०.८५.९; अ. १४.१.९

सोमक्रयणी - (१) शासन कार्य, (२) ऐश्वर्य तथा सोमादि ओषधियों के ग्रहण करने की क्रिया ।
'पूषा क्षोमक्रयण्याम् '
वाज.सं. ८.५४; तै.सं. ४.४.९.१; का.सं. ३४.१४.

सोमकामः - (१) संसार में कामना या संकल्प रूप से प्रेरक होकर सर्वत्र विद्यमान, (२) राष्ट्र की कामना वाला ।
'अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुः '
ऋ. १.१०४.९; अ. २०.८.२; ऐ.ब्रा. ६.११.१०; गो.ब्रा. २.२.२१; आश्व.श्रौ.सू. ५.५.१९
(३) ब्रह्मानन्द रस की कामना करने वाला, (४) सोम रस की कामना करने वाला -इन्द्र (५) राष्ट्र शासन का अभिलाषी ।
'यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिः '
अ. २०.३४.१७
(४) सोम की कामना वाला ।

'सोमकामं हिते मनः'
ऋ. ८.६१.२; अ. २०.११३.२; साम. २.५८४

सोमजा – बन्धन के दो प्रकार इन्द्रजा और सोमजा में एक । सोमजा वह बन्धन है जो अन्न के आधार पर वश किया जाता है ।
'इन्द्रजाः सोमजाः'
अ. ४.३.७

सोमजामयः – (१) लोकोत्पादक पंचमहाभूतगण, (२) जीवगण के उत्पादक बन्धुवत् पञ्चमहा भूतगण ।
'बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः'
ऋ. १०.९२.१०

सोमजुष्ट – सोम –विद्वान् पति और पत्नी द्वारा प्रेमपूर्वक स्वीकृत ।
'सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टम्'
अ. २.३६.२

स्तोम – (१) वीर्य, (२) वीर पुरुषों की उत्पन्न करने का कार्य
'वीर्यं वै स्तोमा–श.ब्रा.
वीरजननं वै स्तोमः–तै.ब्रा.'
(३) राजा का बल, (४)सेनाबल
'अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध'
अ. १९.४९.५

स्तोमतष्ट – स्तुति वचनों के द्वारा स्तुति करने वाला
'होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः'
ऋ. १०.१५.९; अ. १८.३.४७; मै.सं. ४.१०.६;१५७.१६; तै.ब्रा. २.६.१६.२

स्तोमतष्टा – स्तुतिमन्त्रों द्वारा सुअलंकृत
'अच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति'
ऋ. ३.३९.१

स्तोमतष्टासः – वेद के सूक्तों को खोलकर बतलाने वाले विद्वान्
'होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः'
ऋ. १०.१५.९; अ. १८.३.४७; मै.सं. ४.१०.६; १५७.१६; तै.ब्रा. २.६.१६.२

सोमधानः – (१) सोम से भरा हुआ, (२) जीवन शक्ति से पूर्ण
'यो अस्याः हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः'
अ. ९.१.६
(२) सोम उत्तम शिष्य वा शास्ता के धारण करने योग्य पात्र या आश्रम
'इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश'
ऋ. ९.७०.९; १०८.१६
(३) सोम या अन्न को रखने वाला पात्र
'हृदा इव कुक्षयः सोमधानाः'
ऋ. ३.३६.८

सोमधाना – द्वि.व.। अन्न और ऐश्वर्य को धारण करने वाले इन्द्रा विष्णू
'इन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना'
ऋ. ६.६९.२

सोमनेत्रः – (१) आचार्य के अधीन रहने, वाला विद्वान् शासक (२) सौम गुणवान् नेता वाला राजा पुरुष ।
'सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद् भ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३५; वाज.सं. (का.) ११.१.१.; श.ब्रा. ५.२.४.५.

सोमपर्व – (१) सोम की गांठ, (२) राजपद या राज्य का पालन करने वाला पुरुष ।
'विश्वेभिः सोमपर्वभिः'
ऋ. १.९.१; अ. २०.७१.७ साम. १.१८०: वाज.सं. ३३.२५
(३) जगत् का अवयव, (४) राष्ट्र का अंग, (५) सोमलता की गांठ ।

सोमया – उत्पन्न संसार का रक्षक
'यज्ञिद्धि सत्य सोमयाः'
ऋ. १.२९.१; अ. २०.७४.१; ऐ.ब्रा. ७.१६.९; आश्व.श्रौ.सू. ७.११.३९; शां.श्रौ.सू. १५.२२; वै.सू. ३२.८

सोमपातमः – (१) पदार्थों को किरणों से रक्षा करने वाला ।
'यः कुक्षिः सोमपातमः'
ऋ. १.८.७; अ. २०.७१.३
जो सूर्य के समान समस्त पदार्थों से रस भाग अपने भीतर से लेने में समर्थ है ।
(२) सोमेभिः सोमपातमम्
ऋ. ६.४२.२; ८.१२.२०; साम. २.७९१

सोमपावत् – (१) सोम पीने वाला–इन्द्र (सोमपावा) (२) ऐश्वर्य या ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र का रक्षक । ज.दे.श.।
'दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते'
ऋ. १.५५.७

(२) सोम रस का पान करने वाला इन्द्र, (३) सन्तानों का रक्षक (४) सज्जनों का रक्षक । दे. 'ऋजीष'
'शुष्मी राजा वृत्रहासोमपावा'
ऋ. ५.४०.४; अ. २०.१२.७; तै.सं. १.७.१३.४
(५) सोम रस के समान समस्त उत्पादक और प्रेरक बल का स्वयं धारक-इन्द्र (६) जगत् ऐश्वर्य पुत्र शिष्यादि का पालक
'वृत्रघ्नः सोमपाव्नः'
ऋ. ८.७८.७

सोमपीति - स्त्री. । (१) सोम रस का पान सा. (२) अग्नायी, (३) 'यज्ञिय'
(४) शान्ति-रक्षा-दया. । दे. 'सधमाद्या'

सोमपीथ - (१) सोमपान, (२) राष्ट्र का पालन कार्य
'अनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः'
ऋ. १०.१५.८; वाज.सं. १९.५१; अ. १८.३.४६
'विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथः'
वाज.सं. ८.५; वाज.सं. (का.) ८.१.३; मै.सं. ४.६.९: ९२.५; श.ब्रा. ४.३.५.१८; मा.श्रौ.सू. २.५.१.५
(३) राज्य, ऐश्वर्य या राजपद का पालन एवं भोग ।

सोमपुत्राः - (१) सौम्यगुण सम्पन्न चन्द्रवत् आह्लाद कारी पुत्र को उत्पन्न करने वाली स्त्री
'इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे'
अ. ३.१०.१३

सोमपुरोगवः - (१) सोम रस या ब्रह्म रस प्राप्ति में अग्रसर (२) राजा के आगे आगे चलने वाला, (३) ऐश्वर्य या राष्ट्र का नेता
'ब्रह्मा सोमपुरोगवः'
वाज.सं. २३.१४; श.ब्रा. १३.२.७.१०

सोमपूर्णकलश - कल (गत्यर्थक) + अशच् = कलश । अर्थ - सोम से पूर्ण कलश, (२) संसार को उत्पन्न करने वाले सामर्थ्य जीवन रस, जीवन रस, वीर्य एवं अमृत से पूर्ण ब्रह्माण्ड या गतिशील जगत् ।
'सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि'
अ. ९.४.६

सोमपृष्ठा - आत्मा और ब्रह्म को अपने पीठ पर धारण करने वाली आत्मा और ब्रह्म ज्ञान की पोषिका इडा । (२) बुद्धि रूपी कामधेनु ।
'घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठा'
ऋ.खि. ९.८६.१; अ. ७.२७.१

सोमपृष्ठ - (१) शान्ति आदि गुण वाले विद्वान् जिसके पृष्ठ रूप राजा हैं, (२) वेधाः (३) ज्ञान धारण करने वाला
'सोमपृष्ठाय वेधसे'
ऋ. ८.४३.११: अ. ३.२१.६; २०.१.३; तै.सं. १.३.३४.७; मै.सं. २.१३.१३:१६३.४; का.सं. ७.१६;४०.५; ऐ.ब्रा. ६.१०.५; गो.ब्रा. २.२.२०
(४) वीर्य प्रेरक परमैश्वर्यवान् परमेश्वर ।
(६) राष्ट्र या राजपद को पालन करने एवं उसको अपने ऊपर लेने वाला । (७) संसार का पालक, (८) सौम्य गुण का पोषक
'कीलालये सोमपृष्ठाय वेधसे'
ऋ. १०.९१.१४; वाज.सं. २०.७८; मै.सं. ३.११.४:१४६.१४; का.सं. ३८.९; तै.ब्रा. १.४.२.२; आप.श्रौ.सू. १९.३.२.

सोमपृष्ठासः अद्रयः - (१) जल वर्षणकारी मेघ, (२) जिनके पीठ पर सोमरस हो, ऐसे सोमरस चुलाने वाले अद्रि-पत्थर (३) अभिषिक्त नामक या राजा के अपने पीठ पर रखने वाले तदधीन सेनाजन, (४) सर्वोत्पादक प्रभु के भक्त, (५) वीर्य द्वारा पुष्ट ऊर्ध्वरिता जन
'दिवो मानं नोत्सद्मन्
सोमपृष्ठासो अद्रयः ।'
ऋ. ८.६३.२

सोमपेय - (१) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र का पालक या उपभोक्ता, (२) सोमपाल करने वाला -इन्द्र
'वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो'
ऋ. ३.५२.८
(३) सोमवान (४) ऐश्वर्य भोग का पालन करने योग्य पद
'अष्टाभिर्दशभिः सोमपेयम्'
ऋ. २.१८.४
(५) ऐश्वर्य का पान-दया.। दे. 'मृधस्'

सोमभृत् - (१) उत्पादक राष्ट्र का पालन पोषण करने वाला, (२) सोम की रक्षा करने वाला
'श्येनाय त्वा सोमभृते'
वाज.सं. ५.१;६.३२; तै.सं. १.२.१०.१; ६.२.१.३; मै.सं. १.२.६:१६.४; १.३.३; ३०.१७; ३.७.९: ८८.११; का.सं. २.८;३.१०; २६.८; श.ब्रा.

३.४.१.१२; ९.४.१०

सोमयोग – सोम आदि ओषधियों का साधन
'जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वा युनज्मि'
अ. १०.५.४

सोमरभस्तरः – प्रेरक बल से बलवाली
'वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्यः'
ऋ. १०.७६.५

सोमराज्ञी – (१) ओषधियों की एक संज्ञा (२) ओषधि जिसका राजा सोम है अथवा जिनमें सबसे अधिक गुणकारी सोमलता है।
'उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन्'
अ. ८.१.१७
(३) सोम के समान गुणों वाली ओषधि
'या ओषधीः सोमराज्ञीः'
ऋ. १०.९७.१८; १९; वाज.सं. १२.९२,९३; ऐ.ब्रा. ८.२७.५,६; साम.मं.ब्रा. २.८.३,४

सोमवत् पिता – सोमयुक्त पिता, सोमराजा, पालक पुरुष
'पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः'
अ. १८.४.७३

स्तोमवर्धनः – (१) प्रजा समूहों को उठाने वाला (२) स्तुति समूहों से हृदय में वृद्धि प्राप्त करने वाला
'त्वं हि स्तोमवर्धनः'
ऋ. ८.१४.११; अ. २०.२९.१

स्तोमवाहाः – (१) स्तुति समूहों को या वेद मन्त्रों को धारण करने वाला विद्वान्।
'सखाय स्तोमवाहसः'
ऋ. १.५.१; अ. २०.६८.११; साम. १.१६४; 2.90; जै.ब्रा. १.२२६

सोमशित – (१) न्यायाधीश से तीक्ष्ण किया हुआ, (२) दण्डनीय रूप से निर्धारित, (३) दण्डनीय पुरुष
'सोमशितं मघवन् सं शिशाधि'
ऋ. ७.१०४.१९; अ. ८.४.१९
(२) सोम, ऐश्वर्य का उत्तम शासक से तीव्र हुआ शत्रु

सोमशिताः – प्रेरक वीर्य से तीक्ष्ण प्राणगण।
'एह गमन्नृषयः सोमशिताः'
ऋ. १०.१०८.८

सोमसखा – (१) ईश्वर का सहवर्ती–पुरुष या विद्या
'स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि'
वाज.सं. ४.२०; तै.सं. १.२.४.२; मै.सं. १.२.४:१३.७; ३.७.६: ८२.११; १३; का.सं. २.५; २४.३; श.ब्रा. ३.२.४.२०
(२) सोम ही जिसका सखा हो–इन्द्र

सोम सत्ससं – (१) सोमबीज रूप अन्न के स्थापन के लिये जो हल चलाया जाता है–कृषि
(२) ब्रह्मास्वाद रस का आश्रयस्थान ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाने वाला
'सुशीमं सोमसत्सरु'
अ. ३.१७.३

सोमस्य तनूः – सोमस्वरूप, आल्हाद कारी चन्द्रमा का स्वरूप।
'सोमस्य तनूरसि'
वाज.सं. ५.१; तै.सं. १.२.११.१; ६.१.१.३; मै.सं. १.२.६:१६.३; ३.७.९: ८८.९; का.सं. २.८; २४.८; श.ब्रा. ३.४.१.१०;आप.श्रौ.सू. १०.६.६;आप.मं.पा. २.७.२०; हि.गृ.सू. १.१०.५

सोमस्यनीविः – (१) उत्पादक जल को एकत्र करने वाली पृथ्वी
'सोमस्य नीविरसि'
वाज.सं. ४.१०; का.सं. २.३; श.ब्रा. ३.२.१.१५; आ.श्रौ.सू. १०.६.६

सोमस्य भक्षः – उत्पन्न जगत् का या जीव संसार का प्राण
'सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रः'
अ. ९.४.५
'प्राणो वै भक्षः'
श.ब्रा. ४.२.१.२९

सोमस्यभ्राता – शरीर में उत्पन्न होने वाले वीर्य का पोषक वृष्ण्य या वृष ओषधि
'उत सोमस्य भ्रातसि'
अ. ४.४.५

सोमस्य वेना – (१) प्रेरक बल, वायु या विद्युत् की वेगवती गमन करने वाली शक्ति, (२) वीर्य की कान्ति या तेज।
'सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः'
अ. १.३४.२
रथ में प्रेरक बल वायु या विद्युत् की वेगवानी शक्ति विद्वान् गण बताते हैं।

शरीर में समस्त कान्ति और तेज को धारण करने के लिए विद्वान् उपदेश करते हैं ।

सोमस्यांशुः - (१) सोम का पुत्र बुध-सा (२) सबके प्रेरक बल का भण्डार, (३) शुक्लप्रतिपदा में दीखता हुआ चन्द्र

'सोमस्यांशो युधां पते '

अ. ७.८१.३

सोमसुत् - (१) सोम रस चुराने वाला (२) ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाला (३) ओषधिरस से पुष्ट करने वाला उपायज्ञ

'दुरोण आ विशितं सोमसुद्भिः '

ऋ. ४.२४.८

सोमसुत्वा - (१) सोमरस चुलाने वाला, (२) परमेश्वर का उपासक (३) ब्रह्मचर्य पालन करने वाला-ब्रहमचारी, (४) ऐश्वर्य वान् पुरुष । दे. 'उदर्क '

सोमसुद् - सोम अर्थात् अभिषेक योग्य विद्वान् पुरुषों का अभिषेक करने वाला ।

'एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपाः '

ऋ. ८.४६.२६

स्तोमपृष्ठा - (१) बल को अपनी पृष्ठ या पालन सामर्थ्य में धारण करने वाली राजशक्ति, (२) पृथ्वी के ऊपर पालक होकर या श्रीसमृद्ध होकर विद्यमान स्त्री ।

'स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद '

वाज.सं. १४.४;१५.३; तै.सं. ४.३.४.२; मै.सं. २.८.१:१०७.३; २.८.७:१११.११; का.सं. १७.१,६; श.ब्रा. ८.२.१.७.

सोममाद् - सोम, अन्न ऐश्वर्य या बल वीर्य से हर्षयुक्त इन्द्र

'सोममादो विदथे दुध्रवाचः '

ऋ. ७.२१.२

सोमराज्ञी - (१) सोमवल्ली के गुणों से प्रकाशित ओषधि

'या ओषधीः सोमराज्ञीः '

ऋ. १०.९७.१८.१९; वाज.सं. १२.९२; ९३; ऐ.ब्रा. ८.२७.५; ६; साम.मं.ब्रा. २.८.३; ४

सोम्यः - (१) सोम + यत् = स्तोम्य, सोम सम्यादिन् - (सोमरस बनाने वाला)।

(२) सोम रस-मिश्रित

'तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मधु

इन्द्रो वर्धते प्रथते विषायते '

ऋ. १०.९४.९

उन सैनिकों के साथ सोममिश्रित दूध पीकर राजा वृद्धि प्राप्त करते हैं-ज.दे.श.।

इन्द्र का अर्थ सायण ने इन्द्र ही किया है

(३) सोम बनाने वाला । दे. 'अच्छा'

'रमध्वं मे वचसे सोम्याय

ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः '

ऋ. ३.३३.५; नि. २.२५

ऐ नदियो, मुझ सोम बनाने के लिए अपनी तेज गति से मुहूर्त मात्र ठहर जाओ ।

(४) सोमपान करने योग्य-सा. (५) सोमपान करने वाला-सा. (६) योगैश्वर्य सम्पादक-दया. दे. 'अथर्वन् '

'अंगिरसो नः पितरो नवाग्वाः

अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः '

ऋ. १०.१४.६; अ. १८.१.५८; वाज.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.६; नि. ११.१९.

(७) ऐश्वर्य -सम्पादक (८) सौम्य स्वभाव वाला

'उपहूताः नः पितरः सोम्यासः '

ऋ. १०.१५.५; अ. १८.३.४५, वाज.सं. १९.५७; तै.सं. २.६.१२.३; मै.सं. ४.१०.६: १५६.१४; का.सं. २१.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२ .

(९) अपने राष्ट्र और पर राष्ट्र में रहने वाला प्रणिधि ।

(१०) सोमयज्ञ करने वाला-सा.

(११) सौम्य पुरुष-दया. ।

'आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां

भूमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्

ऋ. १.३१.१६; ला.श्रौ.सू. ३.२.७

हे अग्नि, तू सोम यज्ञ करने वालों का प्रापणीय पिता है, प्रकृष्ट मति वाला है, संसार का भ्रामक या कर्म-निर्वाहक है (भूमिः) सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष कराने वाला या दर्शन कारी है ।-सा.

हे परमेश्वर, तू सौम्य पुरुषों को तत्वदर्शी बनाने वाला (सोम्यानां मर्त्यानाम् ऋषिकृत्) एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नायक है (भूमिःअसि) ।

सोम्यंसदः - विद्वानों की सभा'

'अस्माददद्य सदसः सोम्यादा '

ऋ. १.१८२.८

स्तोमः – (१) स्तोमः स्तवनात् (सत्य विद्या के स्तवन के वेद को स्तोम कहा गया है) ।
(२) अग्नि होत्र आदि कर्म-सा. । दे. 'अजीजात्' ।
'स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निम्
अजीजनञ्छक्तिभी रोदिसि प्राम्'
ऋ. १०.८८.१०; नि. ७.२८
देवताओं ने द्युलोक में होत्रादि कर्मों द्वारा द्यौ और पृथ्वी के आपूरक आदित्य रूपी अग्नि को उत्पन्न किया ।
(३) प्रशस्त, स्तवनीय-दया. दे. 'अश्वयुः'
'वज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः'
ऋ. १.५१.१४
उपार्जन कर्मों में प्रशस्त द्वारस्थ स्तम्भ की तरह-दया. ।
जो इन्द्र युद्धों में स्तोम अर्थात् स्तोत्र की तरह निश्चल या प्रधान हो खड़े रहते हैं ।
(४) यज्ञ । दे. 'उरण'

स्तोमाः – (१) प्राणधारी जीव
'ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमाः'
अ. ८.९.६
सप्तस्तोमाः – श.ब्रा. ९.५.२.८
त्रिवृत पञ्चदशः सप्तदश एक
'विंश ऐते वै स्तोमानां वीर्यवत्तमाः श.ब्रा.'
प्राणाः वै स्तोमाः- श.ब्रा. ८.४.१.३
स्तोमाः वै परमाः स्वर्गलोकाः – ऐ.ब्रा. ४.१८
'तं पञ्च दशस्तोमं वोजो वलमित्याहुः'
प्राणो वै त्रिवृदात्मा पञ्चदशः – तै.ब्रा. १९.११.३
'चतुर्दश हि एव एतेषां करूकराणि
भवन्ति वीर्यं पञ्चदशम् – गो.ब्रा.'
प्रजापतिःसप्तदश गो.ब्रा.
सप्तदशो वै पुरुषो दश प्राणाः'
चत्वारि अंगानि आत्मा पञ्च-
सप्तदशम् – श.ब्रा.
तद् बै तोमेति द्वे अक्षरे, त्वगिति द्वे, असृग् इति द्वे, मेद इति द्वे, मज्जेति द्वे, मांसमिति द्वे, स्नावे ति द्वे, अस्थीनि द्वे, तर उ षोड़शकलाः ।
'अथ य एतदन्तरेण प्राणः सञ्चरति'
स एव सप्तदशः प्रजापतिः – श.ब्रा. १०.४.१.१७
सप्तदशएषस्तोमो भवति प्रतिष्ठायै'
प्रजात्यै । तै.ब्रा १२.६.१३
एक विंशोऽयं पुरुषं दशहस्ता
अंगला यो दशपाद्या आत्मा एकविंशः'
ऐ.ब्रा. १.१९.
एक विंशस्तोमम् । देवतल्प इत्याहुः'
तै.ब्रा. १०.१.१२
पञ्चदश स्तोम ओज और बल है, प्राण त्रिवृत है । आत्मा का नाम पञ्चदश है । इस मेरुपष्ठि या रीढ़ में १४ करूरक (मोहरें) हैं। उनका धारक बल पन्द्रहवां है । प्रजापति सप्तदश है । दश प्राण चार अंग ग्रीवा सिरऔर सत्रहवां स्तोम प्रतिष्ठा और प्रजोत्पत्ति का निमित्त है । एक विंश स्तोम भी यह पुरुष है । यही देवतल्प (इन्द्रियों की शय्या) है जिसमें दस प्राण सोते हैं ।

स्तोमपृष्ठाः – स्तोम ही जिसका पृष्ठ हो इष्टका-यज्ञ । दे. 'अप्सस्'
'स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद'
वाज.सं. १४.४;१५.३; तै.सं. ४.३.४.२; मै.सं. २.८.१:१०७.३; २.८.७:१११.११; का.सं. १७.१,६; श.ब्रा. ८.२.१.१७.

स्तोमवाहाः – स्तुतिवचनों और स्तुत्य पदाधिकार को धारण करने वाला
'श्रोताहवं गृणतः स्तोमवाहाः'
ऋ. ६.२३.४

सोम्यंमधु – सोममय मधुर रस

सोमा (सोमन्) – (१) अभिषव कर्ता, सोम रस चुलाने वाला । दे. 'उशिज' (२) सौम्य । दे. 'वातासः' 'सुशर्माणः'
'सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते'
ऋ. १०.७८.२
यज्ञ के लिए प्रयत्नशील यजमान के लिए मरुद्गण या व्यापारिकवर्ग सुखी बन्धु वर्ग के समान (सुशर्माणः न) सौम्य होवें (सोमा)। (३) यज्ञ कर्म करने वाला ।
'सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते'
ऋ. १.१८.१; साम. १.१३९; वाज.सं. ३.२८; तै.सं. १.५.६.४;८.४; मै.सं. १.५.४: ७०.१३; का.सं. ७.२,९; श.ब्रा. २.३.४.३५; तै.आ १०.१.११; नि. ६.१०
हे वेदों तथा वेदज्ञ विद्वानों को पालन करने वाले परमेश्वर , तू यज्ञ कर्म करने वाले अपने

उपासक को उत्तम पदार्थों का ज्ञाता एवं उपदेष्टा (स्वरणं) बना ।
(४) सु + मनिन् = सोमन । प्रथमा एक वचन में रूप है 'सोमा' । उद्योगी, सदा सृजनशील पुरुष-दया. ।
सोमरस बनाने वाला -सा. । दे. 'उशिज्' ।
हे ब्रह्मणस्पते, मुझ सोम कर्ता को सुयशस्वी, ज्ञानवान, या प्रकाशवान् बना-सा. ।
हे वेदपति परमेश्वर, मुझे उद्योगी पुरुष की तरह ऐश्वर्य-सम्पादक और तेजस्वी कीजिए ।

सोमादः - ब.व.। ए.व. में सोमाद् । सोम + अद् + क्विप् = सोमाद् । (१) सोमरस पीने वाले या खाने वाले ।
(२) पत्थर (मावा) जिनके द्वारा सोम रस चुलाया जाता है । (३)सोम रस पीने वाले सैनिक
'ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसते
अंशं दुहन्तो अध्यासते गवि'
ऋ. १०.९४.९
वे पत्थर इन्द्र के घोड़ों को चुभते हैं । -सा. । सोमरस पीने वाले सैनिक राजा की तरह बलवीर्य प्राप्त करते हैं (इन्द्रस्य हरी निंसते) ।
(४) प्रेरक आत्मा की शक्ति प्राप्त करने वाले दश प्राण ।

सोमानां पाता - सोमों - समस्त जगत् के जीवों का पालन कर्ता ।

सोमापूषणा - (१) सोम और पूषा, (२) उत्पादक पिता और पोषक माता, (३) नर मादा (४) देह में प्राण और अपान, (५) सूर्य और पृथिवी
'सोमापूषणा जनना रयीणाम्'
ऋ. २.४०.१; तै.सं. १.८.२२.५; मै.सं. ४.११.२:१६३.१४; का.सं. ८.१७; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.
'प्रजापतिरमृतम् - श.ब्रा.
स्वा वै म एषा इति तस्मात्
सोमो नाम- श.ब्रा.'
(वह पुत्रोत्पादक स्त्री और ऐश्वर्योत्पादक स्त्री और ऐश्वर्योत्पादक प्रजा मेरी ही है -ऐसा कहने वाला पुरुष प्रजापति राजा सोम है) ।
'सोमः राज्यम् आदत्त
राजा वै सोमः'
- श.ब्रा.
सोमो राजा राजपतिः- श.ब्रा.
'स यदाह सम्राट् इति सोमं वा'
एतदाह -गो.ब्रा.
क्षत्रं सोमः- ऐ.ब्रा.
प्राणः सोमः श.ब्रा.
रेतः सोम-कौ.ब्रा.
सोमो रेतोऽधात् - तै. ब्रा.
सोमो वै ब्राह्मणाः - तै.ब्रा.
इयं वै पूषा । इयं तीदं सर्वं पुष्यतिं तदिदं किञ्च ।
'इयं वै पृथिवी पूषा-'
श.ब्रा. २.५.४.७
प्रजाननं वै पूषा-श.ब्रा.
यशवः पूषा - ऐ.ब्रा.
इस प्रकार सोम और पूषा के अनेक अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थों में किए गए हैं ।

सोमरुद्रा - (१) सोम और रुद्र, (२) चन्द्रमा और रुद्र, (३) चन्द्रवत आह्लादक और वैद्य के समान देश से दुष्टों को भगाने वाला राजा, (४) औषधि और वैद्य
'सोमारुद्रा धारयेमसुर्यम्'
ऋ. ६.७४.१;मै.सं. ४.११.२: १६५.९;का.सं. ११.१२

सोमावती - (१) सोमवत् रसवीर्य विपाकवाली, (२) बल उत्पन्न होने वाली ओषधि ।
'अश्वावतीं सोमवतीम्'
ऋ. १०.९७.७; वाज.सं. १२.८१; तै.सं. ४.२.६.४; मै.,सं. २.७.१३; ९३.१५; का.सं. १६.१३; तै.ब्रा. २.८.४.८.

स्तोम्या - (१) स्तुत्या उषा, (२) गुणवती, (३) स्तुति कारी मन्त्र समूह को पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री ।
'अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे
अवीवृधध्वमुशतीरुषासः'
ऋ. १.१२४.१३
हे स्तुतियोग्य, गुणवती प्रभात बेलाओं के समान उत्तम गुणों से युक्त विदुषी स्त्रियां (स्तोम्याः), अपने आदरयुक्त पुरुषों का गुणानुवाद करो (अस्तोढम्) और मेरे महान् धन से, बल और ज्ञान से उत्तम गुणों और मन से कामना करती हुई वृद्धि को प्राप्त हो

(अवीवृधध्वम्) ।

सोम्यासःपितरः – सोम + यत् = सोम्य । ब.व.। में सोम्यासः (१) ऐश्वर्य सम्पन्न पितर (२) सौम्य सोमार्ह, सोम सम्पादक पितर जो मरने के बाद प्राणमात्र धारण करते हैं–सा. । दे. 'अवन्तु' ।

'उदीरतामवर उत्परासः
उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञाः
ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु'

ऋ. १०.१५.१;अ. १८.१.४४;वाज.सं. १९.४९;तै.सं. २.६.१२.४; मै.सं. ४.१०.६;१५७.५;नि. ११.१८

पितरों का मृत्यु के बाद अल्प लोकों में रहने की इस ऋचा में चर्चा है । थियोसोफी मत वाले इस सिद्धान्त को मानते हैं परन्तु आर्य समाजी विद्वान् यहां 'पितरः' का अर्थ विद्वान् ऐश्वर्य सम्पादक पुरुष समझते हैं ।

सोमिन् – सोम + इन् । सोम यज्ञ करने वाला ऋत्विज् । दे. 'अद्रि'

'श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः'

ऋ. १०.९४.१; नि. ९.९.

हे ऋत्विजो, आप इन्द्र के लिए स्तुति पूर्ण वचन बोलें ।

अथवा,

तुम राजा के लिए प्रशस्त वचनों वाले शब्दों को धारण करोगे तब तुम ऐश्वर्य सम्पन्न रहोगे ।

(२) यज्ञशील, (३) ऐश्वर्यवान् । दे. 'आशु'

सोमिनःब्राह्मणासः – (१) सोमयज्ञ करने वाले ब्राह्मण, (२) अपने अधीन ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने वाले ब्राह्मण

'ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत'

ऋ. ७.१०३.८

सोमीयज्ञ – (१) परमानन्द रूप वाले परमेश्वर की उपासना (२) सोम यज्ञ

'या यज्ञादिन्द्र सोमिनः'

ऋ. १०.५६.१;अ. १३.१.५९;ऐ.ब्रा. ३.११.१६;जै.ब्रा. ४.१६८; आप.श्रौ.सू. ६.२४.८; मा.श्रौ.सू. १.६.३.१०

स्तोषम् – स्तौमि (स्तुति करता हूँ) । लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग हुआ है । अट् का अभाव आर्ष है ।

स्तोषाम – स्तुयः (स्तुति करते हैं) लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग दे. 'धियन्धा' ।

सौकृत्य – उत्तम रीति से कार्य का किया जाना ।

'सौकृत्याय सखा हितः'

ऋ. १०.१३६.४

सौत्रमणी – एक यज्ञ ।

'स यो भ्रातृव्यवान् स्यात्
स सौत्रामण्या यजेत'

(शत्रुवाला राजा सौत्रामणी यज्ञ करता है) ।

यजुर्वेद के १९ से २१ अध्याय सौत्रामणी यज्ञ का उल्लेख करते हैं ।

सौत्रामणी यज्ञ – सूत्राणि यज्ञोपवीतादिनी मणिना ग्रन्थिना युवानि ध्रियन्ते यस्मिन् इति सौत्रामणी–दया. ।

(१) स्वाध्याय रूप यज्ञ में जो यज्ञोपवीत आदि सूत्र मणि ग्रन्थि आदि के सहित शिष्य द्वारा धारण कराया जाता है वही स्वा. दयानन्द के अनुसार सौत्रामणी यज्ञ है ।

(२) सुत्रामा उत्तम रीति से त्राण पालन करने वाले त्राण पालन करने वाले राजा के राष्ट्र पालन के निमित्त अभिषेक करने में भी यज्ञ का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध होता है ।

'तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते'

वाज.सं. १९.३१

सौधन्वनाः – (१) ऋभु जो सुधन्वा के पुत्र थे । –सा. (२) यथार्थवादी ज .दे.श.। दे. 'ऋभु'

'सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः
संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः'

ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६

सुधन्वा के पुत्र (सौधन्वनाः) सूर्यसमान दर्शन वाले (सूरचक्षसः) ऋभुलोग (ऋभवः) संवत्सर के वसन्तादि ऋतुओं से अग्निष्टोमादि अनुष्ठेय कर्मों से (धीतिभिः) संयुक्त हुए (समपृच्यन्त) –सा. ।

हे सूर्य समान यथार्थवादी या परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले (सौधन्वनाः सूरचक्षसः) आर्य व्यापारी लोग (ऋभवः) वर्ष भर (संवत्सरे) व्यापारिक कर्मों से संयुक्त रहते हैं (धीतिभिः समपृच्यन्त) ।

स्तौनः – चोर

'न ये स्तौना अयासो मह्ना

नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान्'
ऋ. ६.६६.५

सौपर्णं चक्षुः – गरुड़ या बाज के समान आंख
'सौपर्णं चक्षु रजस्रं ज्योतिः'
अ. १६.२.५

सौप्रजास्त्व – उत्तम प्रजाओं का उत्पादक सामर्थ्य
'आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजस्त्वम्'
अ. २.२९.३

सौभग – (१) ऐश्वर्य
'अग्निर्वव्ने सुवीर्यम्'
अग्निः कण्वाय सौभगम्'
ऋ. १.३६.१७
(२) सौभाग्य
'उच्च तिष्ठ महते सौभगाय'
अ. २.६.२; वाज.सं. २७.२; तै.सं. ४.१.७.१; मै.सं. २.१२.५: १४८.१३; का.सं. १८.१६

सौमनसः – ब.व.। (१) उत्तम हृदय वाले।
'सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु'
अ. ३.३०.७
(२) ए.व.। चित्त का उत्तम भाव
'यजा महे सौमनसाय देवान्'
ऋ. १.७६.२; आप.श्रौ.सू. २४.१२.१०
तू चित्त का उत्तम भाव बनाए रखने के लिए देवों या विद्वानों की पूजा या सत्संग कर (महे सौमनसाय देवान् यज)।
'इन्द्रावरुणा सौमनसमद्भुतम्'
ऋ ८.५९.७
(३) उत्तम चित्त वाला, (४) प्रसन्न, कृपालु, (४) शुभ संकल्प करने वाला
'येषु सौमनस्ते बहुः'
अ. ७.६०.३; वाज.सं. ३.४२; आप.श्रौ.सू. ६.२७.३; ला.श्रौ.सू. ३.३.१.
(४) सुन्दर संकल्प, (५) अध्यवसाय। दे. 'अथर्वन्'
'तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्
अपि भद्रे सौमनसे स्याम।'
ऋ. १०.१४.६; अ. ६.५५.३; १८.१.५८; वाज.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.६; नि. ११.१९ (६) सत्य मनोभाव-सा. (७) कृपा-दया. । दे. 'अस्मै'।

सौमापौष्णः – (१) सोम और पूषा देवता वाला, (२) राष्ट्र के ऐश्वर्य और प्रजा को पोषण कारी हरितवर्ण का खेतों में लगे अन्न, (३) औषधि रस का वेत्ता वैद्य और कृषि विभागाध्यक्ष।
'सौमापौष्ण श्यामो नाभ्याम्'
वाज.सं. २४.१

सौर्य – (१) सूर्य सम्बन्धी, (२) प्रकाशकारी विभाग का
'श्वेताः सौर्याः
वाज.सं. २४.१९; आप.श्रौ.सू. २०.१५.३

सौर्ययामौ – (१) सूर्य और यम (२) वायु और आकाश इन दो के गुणों को दिखाने वाले काले और सफेद पोशाक को पहनने वाले मुख्य अधिकारी
'सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्चपार्श्वयोः'
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२:१६८.१२

सौर्यवर्चस – सूर्य के समान कान्तिमान्
'तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्'
अ. ८.१० (५).६

सौरी – सूर्य के समान तेजस्वी प्ररुष की
'सौरी बलाका'
वाज.सं. २४.३३; तै.सं. ५.५.१६.१; मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६; का.सं. (अश्व.) ७.६.

स्तौता – महती, बड़ी, tall
'ससवान् स्तौलाभिर्धौतरीभिः'
ऋ. ६.४४.७.

सौव – (१) प्रजापति का स्वर या आकाश रूप श्रोत्र। आकाश की तन्मात्रा से ही श्रोत्र बना है।
'तस्य श्रोत्रं सौवम्'
वाज.सं. १३.५७, तै.सं. ४.३.२.२, मै.सं. २.७.१९:१०४.१९; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.५

सौवश्व्य – (१) उत्तम अश्व से प्राप्तव्य यश
'सौवश्व्यं यो वनवत् स्वश्वः'
ऋ. ६.३३.१
(२) उत्तम व्यापक किरणों वाला –सूर्य।
'प्रेतशं सूर्ये पस्पृधानम्'
सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः'
ऋ. १.६१.१५; अ. २०.३५.५
तेज में उत्तम व्यापक किरणों वाले सूर्य में स्पर्धा करने वाले, अश्ववत् निर्भीक एवं उत्तम अभियक योग्य (सुष्विम्)
पुरुष को ही राष्ट्र चक्र प्राप्त होता है।

(३) सुन्दर अश्वों से युक्त, (४) सुन्दर इन्द्रियों से युक्त (५) उत्तम रश्मियों से युक्त

सौव्रत्य – उत्तमोत्तम व्रत

'मित्रं सौव्रत्येन'

वाज.सं. ३९.९

सौश्रवसम् – न. । उत्तम अन्न, ज्ञान और कीर्ति युक्त ऐश्वर्य

'अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु'

ऋ. ६.१.१२; ७४.२; मै.सं. ४.११.२: १६५.१२; ४.१३.६: २०७.१४; का.सं. ११.१२; १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.५

(२) उत्तम कीर्ति

'त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति'

ऋ. १.१६२.१३; वाज.सं. २५.२६; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१:१८२.१; का.सं. (अश्व.) ६.४.

(३) उत्तम ज्ञानोपदेश का अवसर

'आ तं भज सौश्रवसेष्वग्ने'

ऋ. १०.४५.१०; वाज.सं. १२.२७; तै.सं. ४.२.२.३; मै.सं. २.७.९: ८७.३; का.सं. १६.९; आप.मं.पा. २.११.२९.

सौश्रवस् – (१) उत्तम यश, कीर्ति जनक संग्राम, (२) उत्तम अन्नप्रद वर्षा

'तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम'

ऋ. ७.९८.४; अ. २०.८७.४

ह

ह – (१) विनिग्रहार्थक अव्यय । अह इति च ह इति च विनिग्राहार्थीयौ पूर्वेण संप्रयुज्येते । अहं और ह विनिग्रहार्थक अव्यय हैं, जैसे– अयम् अह इदं करोतु अयम् इदम् (यही ऐसा करे यह ऐसा) ।

इदं ह करिष्यति इदं न करिष्यति (यही करेगा यह न करेगा) ।

(२) निश्चयार्थक अव्यय जिसका वैदिक साहित्य में प्रचुर प्रयोग मिलता है । दे. 'अवात ।

'तस्माद्धान्यन्न परः किं चरास'

ऋ. १०.१२९.२; तै.ब्रा. २.८.९.४

उस सत् ब्रह्म से दूसरा और कुछ नहीं था ।

'उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरम्'

ऋ. १.१५१.७

और (ह) तुम उसके निकट जाते हो (तम् उपगच्छथ) ।

'यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति'

ऋ. १.१५१.७; नि. ६.८.

और (ह) जो तुम्हें पञ्चयज्ञों से स्तुति या सत्कार करता हुआ (शशमानः) हवि आदि या योग्य पदार्थ देता है ।

'त्व हं त्यदिन्द्र कुत्समावः'

ऋ. ७.१९.२; अ. २०.३७.२

हतभ्राता – वह क्रिमि जिसका पोषक क्रिमि नष्ट कर दिया गया हो ।

'हतभ्राता हतस्वसा'

अ. २.३२.४; ५.२३.११

(२) कीटों के सहवर्ती कीटों को मारना

हतमाता – (१) कृमि जिसकी उत्पादक माता मार दी गई हो ।

'हतो हतमाता क्रिमिः'

अ. २.३२.४; ५.२३.११

(२) कीटाणुओं को प्रसव करने वाली रानी काट को मारना ।

हतवर्चा – निस्तेज

'अयज्ञियो हतवर्चा भवति'

अ. १२.२.३७

हतवर्चस् – हत मार्ग, जिसका वर्त्म अर्थात् मार्ग बन्द हो जाय । दे. 'अभ्राता' ।

'अमूर्या यन्ति योषितः
हिरा लोहितवाससः
अभ्रातर इव जामयः
तिष्ठन्तु हतवर्चसः'

अ. १.१७.१; नि. ३.४

बिना भाई की कन्या जिस प्रकार अपने पिता के कुल की ही पुत्र होने पर हो जाती है उसी प्रकार सभी रक्त बहाने वाली नाड़ियां रक्त बहाना बन्द कर दें ।

हतवृष्णीः – (१) ताड़ित हुए वर्षण शील (वृष्णि) मेघ से युक्त– जलधाराएं, (२) मारे गए बलवान् पुरुष या वृष्णि

'सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः'

ऋ. ४.१७.३

हतस्वसा – (१) कीट जिस वंश के मादा कीट नष्ट

कर दिए गए हों ।
'हतभ्राता हतस्वसा'
अ. २.३२.४; ५.२३.११
(२) कीटाणुओं को इस तरह से मारना कि इसकी भगिनी मादा कीट भी मारी जाय ।

हताघशंस – पाप की शिक्षा देने वाले दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाला ।
'हताघशंसावाभाष्टां वसु वार्याणि'
वाज.स. २८.१७; वाज.सं. (का.) ३०.१७; तै.ब्रा. २.६.१०.४

हत्नु – हन् क्त्नु = हत्नु । हतन कर्म
'मा नो वधाय हत्नवे'
जिहीडानस्य रीरधः
मा हृणानस्य मन्यये'
ऋ. १.२५.२

हत्वाय – हत्वा । हन् + क्त्वा = हत्वा (वेद में क्त्वा के बाद में 'य' का आगम होता) है । मारकर ।
'हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेदः'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२
हे सेनापति, तू शत्रुओं को मार (शत्रून् हत्वाय) धन को (वेदम्) बांट (विभजस्व) ।

हथः – 'हन्' धातु से सिद्ध । हत्या, हनन, मृत्यु । दे. 'अभिधेतन्'
'जीवान्नो अभिधेतन
आदित्यासः पुरा हथात्'
ऋ. ८.६७.५; नि. ६.२७.
आदित्यास, हमारे मरने के पूर्व हमारे प्राणों की रक्षा के लिए तुम दौड़ पड़ो ।

ह्रद – (१) छोटा तालाब । ताल, जलाशय
'सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम्'
ऋ. १०.४३.७; अ. २०.१७.७
'ह्रदान् कुक्षिभ्याम्'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७:१७९.१४
'ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः'
ऋ. १०.९५.६
'ह्रदा इव कुक्षयः सोमधानः'
ऋ. ३.३६.८
(२) ह्राद् (अव्यक्त शब्द करना अथवा ह्लाद् (शीतीभाव या सुखी होना) । अच् – ह्रद (ल् का र्) । अर्थ है ह्रद, तालाब । ह्रद शीतल होने से सुखदायक होता है । दे. 'अक्षण्वत्'. 'मण्डूकी ।
'आदध्नास उपकक्षास उ त्वे
ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ।'
ऋ. १०.७१.७; नि. १.९.
(३) गहरी झील, बड़ा और गहरा सरोवर, (४) गहरी गुफा, (५) किरण

हन् – (१) बढ़ना, (२) उठना
'उद्व ऊर्मिः शम्या हन्तु'
ऋ. ३.३३.१३; अ. १४.२.१६
(३) बजाना
'क एषां दुन्दुभिं हनत्'
अ. २०.१३२.९; शां.श्रौ.सू. १२.१८.१६
(४) प्रेरित कर, (५) मारा–सा.
(६) पहुंचाता हुआ–ज.दे.श. । दे. 'जरूथ'
'त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो
जरूथं हन् यक्षि राये पुरन्धिम्'
ऋ. ७.९.६; नि. ६.१७
हे अग्नि, वसिष्ठ ने बहुकर्मतम तुझे (पुरन्धिम्) संदीप्त कर (समिधानः) धन प्रति के लिए (राये) स्तोत्र के द्वारा (जरूथं हन्) धनवान् पूजित किया (यक्षि)– यास्क ।
हे अग्नि, तुझे वसिष्ठ प्रदीप्त करते हैं (वसिष्ठः समिधानः) । तू परुष भाषी राक्षस को मार (जरूथं हन्) धनवान् यजमान के लिए (राये) बुद्धिमान देवगण की पूजा कर (पुरन्धि यक्षि) ।–सा.
हे हमारे नायक विद्वान् , विद्या ज्योति प्रदीप्त करता हुआ धनाढ्य मनुष्य (अग्ने समिधानः वसिष्ठः) बहुत बुद्धिवाले आप के प्रति (त्वां पुरन्धिम्) आदर भाव को (जरूथम्) पहुंचाता हुआ (रहन्) धर्म धन की प्राप्ति के लिए (राये) आपकी संगति करता है (यक्षि) ।
(६) यः दण्डयते (जो दण्डित किया जाता है) । दण्डनीय ।
(७) दबकर रहने वाला । दे. 'अयोधनः'

हनव्या – ठुड्ढी, दाढ़ी में विद्यमान्
'वि ते हनव्यां शरणिम्'
अ. ६.४३.३

हन्त – हा का भाव

हन्त्व – मारने योग्य

'निषङ्गिणो रिपथो हन्वासः '
ऋ. ३.३०.१५

हन्मन् – हन् + मनिन = हन्मन् । हनन करने वाला हथियार
'आभोगं हन्मना हतम् '
ऋ. ७..९४.१२
'ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् '
ऋ. १.३३.११; मै.सं. ४.१४.१२: २३५.८; तै.ब्रा. २.८.३.४.
'तपिष्ठेन हन्मना हन्तनातम् '
ऋ. ७.५९.८; मै.सं. ४.१०.५;१५४.१०

हनिष्ठ – खूब दण्ड देने वाला
'इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा '
ऋ. ६.३७.५

हनीयाः – बहुत अधिक मारने वाला
'नमो हन्त्रे च हनीयसे च '
वाज.सं. १६.४०; तै.सं. ४.५.८.१; मै.सं. २.९.७:१२६.३; का.सं. १७.१५

हन्तुः – हन् + तुन् = हन्तु ।
हत्या मारा जाना । दे. 'अलातृण'
'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः '
पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार '
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.
हे इन्द्र या राजन् , आकाश में छाया, घुमड़ता पका हुआ मेघ बिजली की कड़क से हन होने के पूर्व ही मानों भयभीत हो इधर इधर उधर तितर-बितर हो गया ।

हन्तो नु – भला अब
'हन्तो नु किमाससे '
ऋ. ८.८०.५

हन, हनू – द्वि.व.। हन् (हनन् करना) + ऊ = हनु । द्विवचन में हनू । (२) हनन करने में समर्थ (२) हनन समर्थ वैश्वानर अग्नि की ज्वाला (३) दोनों जबड़े
'नाना हनू विभृते सं भरेते
असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः '
ऋ. १०.७९.१
हनन समर्थ वैश्वानर, अग्नि की ज्वालाएं नाना रूप में रह कर भी एकत्र हो हवि या लकड़ियों को जलाती हैं और एकत्र कर बिना चबाए खाती हुई (असिन्वती बप्सती) प्रचुर मात्रा में हवि और लकड़ी खाती है (भूरि अत्तः) –सा. ।
अथवा,
बचपन में ही सृष्टि कर्ता की ओर से धारण किये हुए बच्चे के दोनों जबड़े दुग्ध का आहरण करते हैं (संभरेते) और बिना चबाए खाते हुए प्रभूत दुग्ध का पान करते हैं, –दया.

हनू – जबड़ा । हन् + ऊङ् ।
'हनूभ्यां स्वाहा
तै.सं. ७.३.१६.१; का.सं. (अश्व.) ३.६; तै.ब्रा. ३.८.१७.४; आप.श्रौ.सू. २०.११.२

ह्यः – ह + यत् । बीता दिन, yesterday ।
'अद्या ममार स ह्यः समान '
ऋ. १०.५५.५; अ. ९.१०.९; साम. १.३२५; २.११.२; तै.आ. ४.२०.१ ; नि. १४.१८

हय – (१) अश्व, (२) गमन करने वाला , प्रेरक
'हयो न विद्वान् अयुजि स्वयं धुरि '
ऋ. ५.४६.१; कौ.ब्रा. २२.१

हया – अश्वा, घोड़ी, (२) अश्व के समान सर्वांग में बलवती
'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे '
ऋ. १०.९५.१; श.ब्रा. ११.५.१.६

हये – हे, सम्बोधनार्थन अव्यय
हये देवा यूयमिदापयः स्थ '
ऋ. २.२९.४

हर – पाप हरने वाला और गुणसुख लाने वाला, (२) तेज
'पृथिव्यामस्तु यद्धरः '
अ. १८.२.३६

हरयः – रस हरने वाली सूर्य की किरणें । दे. 'आववृत्रन् '
'कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः
अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति '
ऋ. १.१६४.४७; अ. ६.२२.१; ९.१०.२२; १३.३.९; मै.सं. ४.१२.५: १९३.७; का.सं. ११.९;१३;

हरयाण – (१) हरण शील वेगवान् अश्वों या यंत्रों से जाने योग्य
(२) दुःखों को हरने वाला प्रभु
(३) हृ + शानच् (लट् में) = हरमाण = हरयाण । हरयाणः यानः यस्य सहरयाणः (जिसका रथ हरण शील हो वह हरयाण है) ।
(४) एक दूसरे को आकर्षित करने वाले सूर्य

चन्द्रादि रथों का निवास स्थान अन्तरिक्ष।
(५) नित्य शत्रुओं का ऐश्वर्य आदि हरण करता हुआ यान या रथ ।
'ऋज्रमुक्षण्यायने रजतं हरयाणो
रथं युक्तमसनाम सुषामणि '
ऋ. ८.२५.२२
उक्षण गोत्रीय सुषामा के पुत्र वस नामक राजा के नित्य प्रति शत्रुओं का धन लाते हुए रहने पर (उक्षण्यायने हरयाणो सुषामणि) हमलोगों ऋतु नामी (ऋज्रम्) अश्वों से युक्त रथ को (युक्तं रथम्) प्राप्त किया (असनाम्) ।
अन्य अर्थ - बड़े बड़े लोकों के गमन स्थान (उक्षण्यायने) और एक दूसरे को हरण करने वाले आकर्षण कर्ता सूर्य चन्द्रादि रथों के निवास स्थान (सुषामणि) सबके मित्र और श्रेष्ठ जगदीश्वर के द्वारा युक्त किए हुए (युक्तम्) सुसज्जित् (ऋज्रम्) तथा रजतसमान चन्द्रतारका बलिरूपी रथ को (रजतं रथम्) हम प्रतिदिन रात के समय भजते हैं (असनाम) ।

हरस् - न. । (१) तेज
'अवयाता हरसो दैव्यस्य '
ऋ. ८.४८.२; अ. २.२.२.
(२) क्रोध
(३) हृ + असुन् = हरस् । हरण करने वाला । हरः हरतेः ज्योतिर्हर उच्यते लोका हरांसि उच्यन्ते ।
(४) ज्योति, (५) उदक, (६) लोक, जाति प्राणियों द्वारा हरी जाती है । या ज्योति अन्धकार का हरण करती है या अभ्यन्तर स्थित तैल को हरती है । इसी प्रकार प्राणियों द्वारा उदक जीवन रक्षा के लिए हरा जाता है, अतः वह हरस् है । पाप क्षीण होने पर प्राणी लोकों से हर लिए जाते हैं अतः लोकों को भी हरस् कहते हैं ।
(७) असृगहणी हर उच्यते (रुधिर और रात दिन भी हरस् है) । रुधिर क्षीणता से प्राप्त होता है । दिन अन्धकार को हरता है तथा रात्रि प्राणियों की थकावट को हरती है ।
ज्योति और रुधिर के ज्योति के अर्थ में प्रयोगः-
'प्रत्यग्ने हरसा हरः श्रृणीहि
विश्वतः प्रति । यातुधानस्य
रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् '
ऋ. १०.८७.२५; साम. १.९५
हे अग्नि, तू ज्योति से (हरसा) राक्षस का रुधिर नष्ट कर (यातुधानस्य हरः प्रतिश्रृणीहि) तथा उस रक्षस का बल (रत्रसः बलम्) सब प्रकार से नष्ट कर और उसके प्रभाव को भी विशेष प्रकार से भग्न कर (वीर्यं विरुज) ।
आधुनिक अर्थ-'हरना, हटाना, वञ्चित करना, आकर्षण करने वाला, हरण करने वाला, भाग बांटने वाला, गणित में अंश का भाग बतलाने वाला ।

हरस्वती - वेगवती सेना या तलवार
'स्वं तं मर्मतु दुच्छुना हरस्वती '
ऋ. २.२३.६

हरिः - (१) शत्रुओं का प्राण हार
'हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः '
ऋ. १०.९६.३; अ. २०.३०.३
(२) अश्व । हृ + इ = हरि । अश्व सवार ले चलता है । दे. ' हरिष्ठा'
(३) हरा सोमरस । दे. 'अश्मन्मयी '
'आ तू षिञ्च हरिभीं द्रोरुपस्थे '
ऋ. १०.१०१.१०; नि. ४.१९
हे अध्वर्यो, द्रोणकलश के ऊपर इस हरे सोमरस को ढाल ।
अथवा,
इस हरे रंग के सोम में लकड़ी के बने बर्तन से जल डाल ।
(४) हरित वर्ग । (हरा रस) । दे. 'अश्मन्मयी'
(५) सोमरस । सोमरस हरे रंग का होता है ।
'हरिः सोमो हरितवर्णः
अयमपि इतरो हरिः एतस्मादेव । '
अश्व केअर्थ में -
'ऋक्सामेव इन्द्रस्य हरी। '
(६) वानर, (७) आदित्य रश्मि । दे. 'आववृत्रन्'
(८) धारण तथा संहरण गुण-दया ।
आधुनिक अर्थ- हरा, हरापीला, कमिश, लाल और भूरा, विष्णु, शिव, ब्रह्म, यम, सूर्य, चन्द्रमा, मनुष्य, रश्मि, अग्नि, वायु, सिंह, अश्व, इन्द्र का अश्व, वानर, कोमल, मेढक, तोता , सर्प, पीतवर्ण, मयूर, भर्तृहरि ।

हरिक्निका - हरि + कणिका । (१) आत्मा की

सूक्ष्मकला, चितिकला, (२) प्राण हरण करने वाले कणों को छोड़ने वाली, (३) छर्रों को छोड़ने वाली, (४) मनोहर कन्या (५) हरि + कलिका । हरण । शील गर्भधारण समर्थकला (६) कामकला से युक्त कन्या (७) सबके हर्ता आत्मा की दीप्ति रूप चिति कला
'तासामेका हरिक्निका'
अ. २०.१२९.३

हरिकेश – (१) दीप्तिमान् केशों वाला
'हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसः'
अ. २०.३१.३
(२) रश्मि रूप केशों से युक्त सूर्य
'पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः'
ऋ. १०.९६.५; अ. २०.३०.५
(३) सुवर्ण समान हरित वर्ण की ज्वालाओं वाला-अग्नि ।
(४) नए नए कोमल हरेपीले पत्रों से युक्त वसन्त ऋतु ।
'अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिः'
वाज.सं. १५.१५; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११४.१३; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१६
(५) तेजोयुक्त किरणों वाला सूर्य
'अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्य'
ऋ. १०.३७.९
(६) नील केश वाला (७) क्लेशों का हरण करने वाला वैद्य ।
'नमो हरिकेशायोपवीतिने'
वाज.सं. १६.१७; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३:१२२.१०; का.सं. १७.१२
(८) तेजोमय किरणों वाला
(९) पीली रश्मि वाला वैश्वानर अग्नि (१०) तीव्र प्रकाशवान् किरणों से युक्त (११)प्रजा के क्लेशों को दूर करने वाला
'तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे'
ऋ. ३.२.१३
(१२) जिसके वायु आदि केशवत् हैं-सविता
'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्'
ऋ. १०.१३९.१; वाज.सं. १७.५८; तै.सं. ४.६.३.३; ५.४.६.३; श.ब्रा. ९.२.३.१२

हरिजात – (१) वेगवान् वीर पुरुषों में सर्वप्रसिद्ध
'असामि राधो हरिजातहर्यतम्'
ऋ. १०.९६.५ अ. २०.३०.५
(२) समस्त लोकों और किरणों का उत्पादक -इन्द्र

हरिणी – (१) मन को हरण करने वाली स्त्री
'रजता हरिणीः सीसा'
वाज.सं. २३.३७; तै.सं. ५.२.११.१; मै.सं. ३.१२.२१; १६७.७; का.सं. (अश्व.) १०.५.
(२) द्वि.व.। दीप्तियुक्त सूर्य और चन्द्र
'ध्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः'
ऋ. १०.९६.९; अ. २०.३१.४
(३) हरित या नीले रंग की गौ
'एनीर्धाना हरिणी श्येनीरस्य'
अ. १८.४.३४
(४) हरा मेढक, (५) ज्ञान ग्रहण कुशल
'पृश्निरेको हरित एक एषाम्'
ऋ. ७.१०३.६

हरित् – (१) रस हरने या खींचने वाली सूर्य रश्मि, (२) अश्व. । दे . 'आत्'
'यदेदयुक्त हरितः सधस्थात्'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२; नि. ४.११.
जभी सूर्य रस खींचने वाली रश्मियों या अश्वों को इस लोक से या रथ से हटाकर दूसरे लोक में फैलाते हैं ।

हरितः अश्वाः – (१) सूर्य की नील व श्याम वर्ण की किरणें, (२) सूर्य के हरित अश्व, (३) वेगवान् अश्वारोही, (४) विद्याओं से वेग से आगे बढ़ने के वाले विद्यार्थी
'भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य'
ऋ. १.११५.३; मै.सं. ४.१०.२: १४७.३; तै.ब्रा. २.८.७.१

हरिताःआस्नः – (१) सूक्ष्म प्राण, (२) हरणशील संहारकारी, तीव्र प्रलय कारी मुख, (३) विक्षेपप्रकारी शक्तियाँ ।
'आसन्' शब्द मुख का वाचक है ।
'अंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः'
अ. ६.४९.२

हरिभेषज – (१) नए नए ताजे रस वाले या पीलिया रोग का नाशक औषध (२) सब भक्तों एवं भ्रमात्मक ज्ञानों का नाशक-ज्ञानञ्जन या

अञ्जन ।
'अथो हरितभेषजम्'
अ. ४.९.३

हरितःवृषाः – (१) तेजस्वी पीतवर्ण या नील वर्ण का वर्षण करने वाला सूर्य, (२) कान्ति युक्त सबके मनों को हरने वाला बलवान् पुरुष ।
'जज्ञानो हरितो वृषा'
ऋ. ३.४४.४

हरितौ – (१) उज्ज्वल सूर्य और चन्द्रमा
'रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः'
अ. १५.२.५

हरित्य – शाक आदि हरे पदार्थों का व्यापारी ।
'नमः शुष्क्याय च हरित्याय च'
वाज.सं. १६.४५; तै.सं. ४.५.९.१; का.सं. १७.१५

हरितस्रक् – हरी पत्रमाला से ढका वृक्ष
'तस्या रुपेणेमे वृक्षा हरिता हरित स्राजः'
अ. १०.८.३१

हरिद्रुः – अश्वों के द्वारा वेग से जाने में समर्थ
'अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रवः'
ऋ. १०.९४.१२

हरिधायस् – (१) किरणों का धारण करने वाला आकाश, (२) वेगवान् अश्वों को धारण करने वाला ।
'द्यामिन्द्रो हरिधायसम्'
ऋ. ३.४४.३

हरिपाः – (१) वीरा सैनिकों का पति, (२) अश्वों का स्वामी
'तुरस्येये यो हरिपा अवर्धत'
ऋ. १०.९६.८; अ. २०.३१.३
(३) समस्त मनुष्यों और जीवों का पालक

हरिप्रियः – (१) ज्ञानशील पुरुषों का प्रिय इन्द्र (२) अश्वों का प्रिय
'मारे अस्मद् वि मुमुचः हरिप्रियार्वाङ् याहि'
ऋ. ३.४१.८; अ. २०.२३.८
(३) अश्वों का प्रेमी-इन्द्र

हरिभ्याम् ईयमानः – (१) घोड़ो से खींचा जाता हुआ-इन्द्र (२) गति करने वाले दो तत्वों से प्रकट होने वाली विद्युत्, (३) प्राण अपान से चलने वाला -आत्मा ।
'सुखरथमीयमानं हरिभ्याम्'
ऋ. ५.३०.१

हरिभरः – (१) हरि का पालक -इन्द्र (२) समस्त लोकों का पालक पोषक- इन्द्र, परमेश्वर
'सहस्रशोका अभवद् हरिंभरः'
ऋ. १०.९६.४; अ. २०.३०.४
(३) हरणशील वीर पुरुषों को प्रकट करने वाला

हरिमन्युसायकः – (१) शत्रुमद हरने वाला मन्युरूप बाण
'द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्यु सायकाः'
ऋ. १०.९६.३; अ. २०.३०.३
(२) दुष्टों को हरण करने वाले, क्रोधरूप सायक वाला सूर्य, परमेश्वर

हरिमा– (१) पीलिया रोग
'यो हरिमा जायान्यः'
अ. १९.४४.२
(२) शरीर के नख चक्षु आदि में व्याप्त वर्ण जिसे कमला रोग कहते हैं ।
'हृद्द्योतो हरिमा च ते'
अ. १.२२.१

हरिमाण – (१) हरण शील चोर, (२) शरीर को हरने वाला रोग
'हृद् रोगं मम सूर्य'
'हरिमाणं च नाशय'
ऋ. १.५०.११; तै.ब्रा. ३.७.६.२२; आप.श्रौ.सू. ४.१५.१.

हरियूपीया – (१) हरि + यूपीया । मनुष्यों को गुणों से मुग्ध करने वाली विद्या
(२) हरियू + पीया । मनुष्यों के स्वामी राजा की पालन करने वाली नीति
'वृचीवतो यद्धरियूपीयायाम्'
ऋ. ६.२७.५

हरियोग – अश्वों से चलाए जाने वाला रथ । दे. 'ऋभ्वस्'

हरिवत् – (१) भूमि निवासी प्रजा या मनुष्यों का स्वामी (२) इन्द्र
'हरिवते हर्यश्वाय धानाः'
ऋ. ३.५२.७
(३) हरणशील इन्द्रियों से युक्त आत्मा, (४) अश्ववाला इन्द्र
'सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे'
ऋ. १०.९६.७; अ. २०.३०.२.

हरिवन् – (१) अश्व से युक्त -सा. (२) प्रशान्त

इन्द्रियों वाला - दया. दे. । 'अस्कृधोयु'

हरिवत् शूम् - (१) दुःख हारक गुणों वाला बल, (२) अश्ववाला बल

'इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत'

ऋ. १०.९६.२; अ. २०.३०.२

हरिव्रत - (१) अश्वाः व्रतं शीलं यस्य सः -दया (२) वेगवान् अश्वों और विद्वानों को शरण करने वाला उनका पालक ।

(३) दुःखहारी शीलवान् परमेश्वर, (४) अग्नि

हरिवर्पाः - (१)कमनीय शोभा से युक्त-इन्द्र

'आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः'

ऋ. १०.९६.१; अ. २०.३०.१

(२) हरित वनस्पतियों से हरे रूप वाली वनस्पति

'पृथिवीं हरिवर्पसम्'

ऋ. ३.४४.३

(३) रमणीय रूप वाला, (४) अश्व के रूप वाला ।

हरिवान् - (१) हरणशील इन्द्रियों पर विजय करने वाला योगी (२) समस्त लोकों और शक्तियों को वश करने वाला, (३) सारथि जो अश्व को वश में रखता है ।

'य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपः'

ऋ. ७.३२.१२; अ. २०.५९.३

(४) मनुष्यों के स्वामी, (५) अश्वों या अश्वसैन्यों का स्वामी इन्द्र

हरिश्चन्द्र - (१) हरिश्चन्द्र (२) सब मनुष्यों को आह्लाद देने वाला

'हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः'

ऋ. ९.६६.२६; साम. २.६६१

हरिश्मशारु - (१) पीतवर्ण की श्मश्रुओं वाला

'हरिश्मशारुःहरिकेश आयसः'

ऋ. १०.९६.८; अ. २०.३१.३

(२) किरणों को श्मश्रुवत्, धारण करने वाला सूर्य

हरीशिप्रः - (१) ज्ञानमय दुःख हारी रूप वाला, (२) अश्वरूप वाला

'तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः'

ऋ. १०.९६.४; अ. २०.३०.४

हरिश्रीः - (१) वेगवती शक्तियों का आश्रय भूत इन्द्र-परमेश्वर

'अद्रिवो हरिश्रियम्'

अ. २०.६१.१

हरिषाच् - मनुष्यों का समवाय बनाने वाला

'अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रवः'

ऋ. १०.९४.१२

हरिष्ठा - (१) विष हरने वाली ओषधि (२) विष वैद्य (३) हरिष्ठा नामक ओषधि जिसकी गुठली को पानी में पिस कर मिलाने से विष उतरता है ।

'आरे अस्य योजनं हरिष्ठाः
मधु त्वा मधुला चकार'

ऋ. १.१९१.१०-१३

(३) अश्वारूढ़, घुड़सवार, । दे.अभिवात्'

'य नु नकिः पृतनासु स्वराजं
द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।'

ऋ. ३.४९.२

जिस युद्धों में चमकने वाले, अश्वारूप मनुष्यों के परम नेता को अस्त्र या शस्त्र दोनों से नहीं हरा सकता उस...।

हरी - (१) दो अश्व, (२) प्राण-अपान वायु, (३) दुःख और और अज्ञान को हरने वाले दो गुणों से युक्त रूप

'प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी'

ऋ. १०.९६.१; अ. २०.३०.१; ऐ.ब्रा. ४.१३.४; कौ.ब्रा. २५.७; तै.ब्रा. २.४.३.१०; ३.७.९.६; आश्व.श्रौ.सू. ६.२.६; आप.श्रौ.सू. १४.२.१३.

हरिणां स्थाता - (१) गतिमान् लोकों के बीच में संस्थापक इन्द्र-परमेश्वर (२) नाशवान पदार्थों के बीच में सदा स्थिर

'इन्द्र स्थातर्हरीणाम्'

ऋ. ८.२४.१७; अ. २०.६४.५; साम. २.१०३५

हर्म्य - (१) बड़ा महल, (२) अन्तः पुर, (३) ऊंचा पद harem शब्द से हर्म्य की समानता विचारणीय है ।

'प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्य'

ऋ. १.१२१.१

हर्म्येष्ठः - उच्च महलों में निवास करने वाला

'ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्राः'

ऋ. ७.५६.१६

हर्य - धा. । (१) चाहना, हहरना

'सोमं हर्य पुरुष्टुत'

ऋ. ३.४०.२; अ. २०.६.२; ७.४
(२) कामना करना
'धनोरधि प्रवता यासि हर्यन्'
ऋ. १०.४.३
'अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद् वचः'
ऋ. १.१४४.७; ऐ.ब्रा. १.३०.१२; कौ.ब्रा. ९.५; आश्व.श्रौ.सू. ४.१०.३.

हर्यक्ष – (१) सिंह का सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाला, (२) हरे रंग के कांच का बना चश्मा या यन्त्र ।
'सूर्याय हर्यक्षम्'
वाज.सं. ३०.२१; तै.ब्रा. ३.४.१.१७.

हर्यत् – (१) देवता, (२) चाहने वाला, लालसा करने वाला, ठहरने वाला । दे. 'जार'।
'इयक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति'
ऋ. १०.११.६; अ. १८.१.२३
क्योंकि (इ) यह यजमान देवताओं की पूजा करना चाहता है (यक्षति) तथा हृदय से (हृत्तः) अपने मनोरथों की पूर्ति चाहता है (इष्यति) । –सा. ।
चाहने वाले को दान दे (हर्यतः इ यक्षति) और हृदय से (हृत्तः) सर्व कर्म कर (इष्यति) ।

हर्यत – (१) स्पृहणीय, चाहने योग्य,
'प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्'
ऋ. १०.९६.१; अ. २०.३०.१
(२) क्रान्तिमान्
'दिवि न केतुरधिधायि हर्यतः'
ऋ. १०.९६.४; अ. २०.३०.४
'घृताचीर्यन्तु हर्यत'
ऋ. ८.४४.५; साम. २.८९२; वाज.सं. ३.४; मै.सं. १.६.१: ८५.१; का.सं. ७.१२; तै.ब्रा. १.२.१.१०; आप.श्रौ.सू. ५.६.३.
(४) प्रज्ञाकर्म । दे. 'अपिहर्यत क्रतु'

हर्यताहरी – द्वि.व.। (१) कान्तियुक्त हरण शील आत्मा और मन, (२) सूर्य और भूमि, (३) परस्पर प्रेम करने वाले स्त्री पुरुष ।
'आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः'
ऋ. ८.१२.२५–२७

हर्यते, हर्यति – हर्य धातु गति और कान्ति अर्थों में प्रयुक्त है । कामना अर्थ में भी इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है ।
'इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिः'
ऋ. ५.५७.१; नि. ११.१५
हे रुद्रो, यह हमारी स्तुति आप लोगों की कामना करती है ।

हर्यन् – चाहने वाला, प्यारा
'आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानाम्'
ऋ. १०.९६.१२; अ. २०.३२.२.

हर्यमाणः – व्यापता हुआ । यहां 'हर्य' धातु व्यापना अर्थ में प्रयुक्त है ।
'आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा'
ऋ. १०.९६.११; अ. २०.३२.१.

हर्यश्व – हरि + अश्व । तेज अश्वों वाला
'हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहम्'
ऋ. ८.२१.१०; अ. २०.१४.४; ६२.४
(२) तीव्र अश्वों का स्वामी, (३) सारथि ।
'रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः'
ऋ. २.१७.३
(४) पीत किरणों से युक्त सूर्य (५) आकर्षण शील आत्मवान् महान् गुरु ।
'मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः'
ऋ. ३.३१.३
(६) सोम का स्वामी इन्द्र–सा. (७) हरण तथा भरण गुणों से युक्त परमेश्वर. (८) बल और पराक्रम से युक्त
दे. 'ऋदूदर ।
'यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः'
ऋ. ८.४८.१०; तै.सं. २.२.१२.३; मै.सं. ४.११.३; १६४.९; का.सं. ९.१९
हे सोम का स्वामी इन्द्र या हे हरण तथा गुणों से युक्त परमेश्वर, मुझे सोम या हलका भोजन खाने या पीने पर कष्ट न पहुंचावे ।

हर्यश्व प्रसूत – (१) जिसे हरण शील किरण हो उससे जनित, (२) ईश्वर से प्रसूत, (३) सूर्य से जनित
'दिवे दिवे हर्यश्वप्रसूताः'
ऋ. ३.३०.१२

हर्योः ईशानः – (१) बलशाली अश्वों का स्वामी इन्द्र–सा.
(२) वायु समान अश्वों का स्वामी–राजा–दया.
'तोदो वातस्य हर्योरीशानः'
ऋ. ४.१६.११

हे इन्द्र या हे राजन्, बलशाली अश्वों का स्वामी तू...

हर्षत् – (१) अन्यों का प्रमोदकारी
'अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो
विश्वे जुषन्त पन्थाम् '
ऋ. १.१२७.६
और जिस प्रकार (अधस्म) हर्षित और सुप्रसन्न ज्वाला वाले (हृषीवतः) अन्यों को प्रमोदकारी अग्नि के मार्ग को (पन्थाम्) सब नायक जन (नरः) सेवन करते हैं (जुषन्ते), लोग अपने कल्याण के लिए (शुभे) मार्ग के समान उससे प्रेम करें ।

हर्ष्य – हर्षकारक ।
'स्वर्मीढे यन्मद इन्द्र हर्थाहन् '
ऋ. १.५६.५

हर्ष्या – द्वि.व.। हर्षित
'नरः सोमस्य हर्ष्या '
ऋ. ८.६८.१४

हर्षु – हर्ष । दे. 'हर्षुमन्तः ।

हर्षुमन्तः – हर्षयुक्त
'हर्षुमन्तः शूरसातौ '
ऋ. ८.१६.४

हलिक्ष्णः – सिंह के समान निर्भय चक्षुवाला
'उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे '
वाज.सं. २४.३१; मै.सं. २.१४.१२: १७४.११; का.सं. (अश्व). ७.२

हवः – ह्वञ् + अच् = हव । आह्वान्, प्रकार । हु + अच = हम । दे . 'अङ्गार' (२) उपदेश । दे. 'अभ्यर्द्धयज्वन् '
'श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध पाथ '
ऋ. ६.५०.५
हे मनुष्यो, उपदेश का श्रवण कर जो सब क्रियाएं करते हो ।
अथवा
तुम हमारा आह्वान सुनकर आते हो (३) स्तोत्र (हूयते एभिः) । स्तोत्रों से आह्वान किया जाता है ।
(४) यज्ञ

हवनश्रुत – हु + ल्युट् = हवन, श्रु (सुनना) + क्विप् = श्रुत् । आह्वान सुनने वाला, प्रकार सुमने वला, । दे. 'अभिधेतन'
'जीवान् नो अभि धेतन
आदित्यासः पुरा हथात्
कद्ध स्थ हवनश्रुतः '
ऋ. ८.६७.५; नि. ६.२७
हे आदित्यो, कहीं भी हो हमारी पुकार पर हमारे प्राणों को बचाने दौड़ पड़ी ।

हवन – हु + ल्युट् – हवन (१) पुकार, आह्वान, (२) हवनकर्म

हवनस्पद् – (१) ललकार पर वेग या शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला, (२) भक्त आह्वान पर करुणा से द्रविता होने वाला ।
'अन्यं न वाजं हवनस्यदं रथम् '
ऋ. १.५२.१; साम. १.३७७; ऐ.ब्रा. ५.१६.१७
वेगवान् अश्व के समान (अत्यं न), गमन करने योग्य मार्ग या वेग से जाने वाले एवं शत्रु के ललकार पर वेग से आक्रमण करने वाले रथारोही शत्रुहन्ता राजा को या भक्त की पुकार पर करुणा से द्रवने वाले परमेश्वर को ।

हवस् – (१) ग्राह्य रूप, (२) देने योग्य वेतन, (३) स्वीकार योग्य उपहार (४) भक्ष्य भोज्य । दे. 'धृषु '

हव्यजुष्टि – हव्य या अन्न आदि पदार्थों का सेवन ।
'आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिम् '
नमसा देवाववसा ववृत्याम् '
ऋ. १.१५२.७; तै.ब्रा. २.८.६.५.

हव्य – हु + यत् । (१) अग्नि में दिया पदार्थ । दे. 'अध्रिगु' ' अनिमिषा ' ।
'कविशस्तो बृहता भानुनागाः
हव्या जुषस्व मेधिर '
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५; २०४.१५; का.सं. १६.२१; तै.ब्रा. ३.६.७.१; ऐ.ब्रा. २.१२.१५
हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवान् अग्ने, तू बृहत् प्रकाश के साथ आ और हव्यों का भोग्य कर ।
'मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत '
(२) हवनीय, (३) हवि का भागी । दे. 'अस्मदानिद् '
'हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति '
ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२
जो हव्य का भागी नहीं है ।
(४) सुख– दया. । दे. 'भात्रुजीक ' (५) आह्वातव्य . दे. 'मेधिर ' ।

(६) अन्न उपजाने वाला खेत । दे. 'घृतप्रुष'
'घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्'
ऋ. २.३.२; मै.सं. ३.११.१:१४१.१

हव्यदाति – (१) हव्य का दान, (२) देने योग्य पदार्थ का दान
'ददाशुर्हव्यदातिभिः'
ऋ. ४.८.५; का.सं. १२.१५

हव्यवाट् – हव्य + वह् + क्विप् = हव्यवाट् । हव्य पहुंचाने वाला – अग्नि ।
दे. 'आदधिरे'
'अथा देवा दधिरे हव्यवाहम्'
इसीलिए इस हव्य ढोने वाले अग्नि को देवताओं ने रखा–सा. ।
आर्यलोग हव्यवाह् अग्नि को सदा धारण करते हैं ।

हव्यसूक्ति – आदान योग्य उत्तम स्तुति वचनों को स्वीकार करना ।
'स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्'
वाज.सं. २८.११; तै.ब्रा. २.६.७.६

हव्य सूदः – (१) घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों को प्रदान करने वाली गाएं या भूमि
(२) ग्राह्य ज्ञान को झाड़ती हुई
'बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः'
अ. २०.८८.५

हव्यसूद् – (१) दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों को देने वाली गौ, (२) अन्न उत्पादक भूमि
'आप्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः'
ऋ. १.९३.१२
हे अग्नि और जल या अग्नि और वायु (अग्नीषोमा), हमारे दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों को देने वाली गौओं को और अन्न उत्पादक भूमियों को (हव्यसूदः) खूब हृष्ट पुष्ट और जल से सिञ्चित करो (आप्यायताम्) ।

हव्यसूदन – हव्य, अन्न या ऐश्वर्य को क्षरित करने वाला–प्रदान करने वाला ।
'मृष्टोऽसि हव्यसूदन'
वाज.सं. ५.३२

हव्यात् – (१) ग्राह्य, (२) भक्ष्य, (३) हवि को खाने वाला–अग्नि
'अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः'
ऋ. ७.३४.१४

हविः – (१) हवन, (२) अन्न आदि पौष्टिक सात्विक, पदार्थ, (३) आत्मशक्ति, (४) मस्तिष्क, शक्ति,
(५) मन और वाणी की शक्ति
'जीवं वै देवानां हविश्मृममृतानाम्'
श.ब्रा. १.२.१.२०
'तस्य पुरुषस्य शिर एव हविर्धनम्'
कौ.ब्रा.९.३
हवि, आत्मा, जीव, शिर की ज्ञानशक्ति वाणी और मन है ।
'मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्'
अ. ६.४१.१

हविरद् – (१) अन्नों को खोलने वाला, (२) विषयों पंसेवी
'ताभिर्हविरदान् गन्धर्वान्'
अ. ४.३७.८,९.
(३) हवि का पवित्र अन्न खाने वाला
'ये सत्यासो हविरदो हविष्पाः'
ऋ. १०.१५.१०; अ. १८.३.४८

हविस् – (१) (अ). । हवनीय पदार्थ जो हवन किया जाता है ।
'यस्येदमप्यं हविः
प्रियं देवेषु गच्छति'
ऋ. १०.८६.१२; अ. २०.१२६.१२; तै.सं. १.७.१३.२; का.सं. ८.१७; नि. ११.३९.
(२) जल । दे. 'कुट'
'हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा'
ऋ. १.४६.४; नि. ५.२४.
जलों का शोषक (अपां जारः) पालक का तृप्त करने वाला (पपुरिः) सूर्य जल से (एविसा) सबको तृप्त करता या सबका पालन करता है (पिपर्ति)–दया. ।
सायण का अर्थ – सूर्य हमारे दिए हवि से देवों को तृप्त करता है ।
(३) दूध, दही
'छागस्य हविष आत्ताम्'
(बकरी के दूध दही खावें) ।

हविर्दः – (१) हवि देने वाला, (२) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को देने वाला
'कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे'
ऋ. ४.३.७

(३) भृति, जीविका, आदि उत्तम साधनों का दाता
'च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे'
ऋ. ७.६८.६
(४) यज्ञ कर्ता
'पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय
जनाय मित्रावरुणा हविर्दे'
ऋ. १.१५३.३

हविर्दा – (१) अन्न, बल, शक्ति तथा उनकी भोगशक्ति को देने वाला, (२) अन्न दाता
'प्रेमं वोचो हविर्दां देवतासु'
अ. ७.७८.२

हविर्धान – (१) यज्ञ का शकट जिसमें हवि के पदार्थ रखे जाते हैं ।
'सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति'
अ. ९.६.७
(२) यज्ञ का कुण्ड
'इन्द्रो हविर्धाने'
वाज.सं. ८.५६; तै.सं. ४.४.९.१
(३) हवि या अन्न का आधार या आश्रयस्थान ।
'अहुतमसि हविर्धानम्'
वाज.सं. १.९; तै.सं. १.१.४.१; मै.सं. १.१.५;३.१; ४.१.५; ६.१४; का.सं. १.४;३१.३; श.ब्रा. १.१.२.१२; तै.ब्रा. ३.२.४.५; आप.श्रौ.सू. १.१७.८; मा.श्रौ.सू. १.२.१.२७.
'हविर्धानमन्तरा सूर्यं च'
अ. ७.१०९.३; १४.२.३४
(४) हविः + धा + ल्युट् । सोम आदि हवनीय पदार्थ रखने का पात्र । इस शब्द का प्रयोग द्विवचन में किया गया है । एक मन्त्र में हविर्धान की स्तुति की गई है ।

हविर्धाने – द्वि.व.। द्यौ और पृथिवी क्योंकि वे दोनों हवि के निधान है । दे. 'यज्ञिय'।

हविर्भाज् – (१) हवि का भागी, (२) वह देवता जिसके लिए हवि दी जाती है ।

हविर्मथि – यज्ञविध्वंसक । दे. 'पराशर'
'इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरः
हविर्मथीनामध्याविवासनाम्'
ऋ. ७.१०४.२१; अ. ८.४.२१; नि. ६.३०
इन्द्र या राजा यज्ञविध्वंसक और धर्म कर्म का विवासन करने और आततायियों का सम्पूर्णतया दमन करने वाला (पराशर) हो ।

हविर्वाट् – (१) देवों को हवि पहुंचाने वाला अग्नि, (२) ग्राह्य ज्ञानों को प्राप्त करने वाला विद्वान् । (३) कर लेने वाला राजा
'अतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट्'
ऋ. १.७२.७

हविर्हविः – सब प्रकार का हवि या अन्न
'ब्रह्मब्रह्म ये जुनुसुर्हविर्हविः'
ऋ. ९.७७.३

हविष्कृत् – (१) यज्ञ में हवि बनाने वाला ।
'हविष्कृतमेव तत् ह्वयन्ति'
अ. ९.६.१३
(२) हवन करने वाला, (३) अन्न ज्ञान आदि का सम्पादन करने वाला
'ऋत्विजो ये हविष्कृतः'
अ. १९.४२.२; तै.ब्रा. २.४.७.११
(३) हवि को छिन्न भिन्न करने अथवा नाना पात्रों में रखे पदार्थों को क्रिया में प्रवृत्त कराने से अग्नि हविष्कृत् है ।
(४) अन्न चरू का सम्पादन तथा ज्ञानोपदेश करने वाला विद्वान् ।
'मधुजिह्वं हविष्कृतम्'
ऋ. १.१३.३; साम. २.६९९

हविष्कृतिः – (१) स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थ, (२) अन्नादि कर्मफलों का उत्पादक ।
'आदृध्नोति हविष्कृतिम्'
ऋ. १.१८.८

हविष्पति – (१) हवियों का स्वामी इन्द्र (२) ग्राह्य पदार्थों का स्वामी
'स सुत्रामा हविष्पतिः'
वाज.सं. २०.७०; मै.सं. ३.११.३:१४५.८; का.सं. ३८.९; तै.ब्रा. २.६.१३.२.

हविष्पा – (१) पवित्र अन्न का पान या पालन करने वाला
'ये सत्यासो हविरदो हविष्पाः'
अ. १८.३.४८

हविष्पः – (१) समस्त अन्नों, ज्ञानों, बलों और साधनों का स्वामी
'हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यम्'
ऋ. ९.८३.५; ऐ.ब्रा. १.२२.१२; कौ.ब्रा. ८.७; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.५

हविष्मान् – (१) हव्यपदार्थों का ग्रहीता या भक्त, (२) जल या हवि ग्रहण करने वाला –सूर्य (३) उत्तम ज्ञान और अन्न सम्पदा से युक्त
'अर्को यद् वो मरुतो हविष्मान्'
ऋ. १.१६७.६

हविष्य – (१) हवनीय पदार्थ, (२) उत्तम अन्न के समान श्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य
'यद्धविष्यं ऋतुशो देवयानम्'
ऋ. १.१६२.४; वाज.सं. २५.२७; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६.१ ; १८८.२, का.सं. (अश्व.)६.४

हवीमन् (हवीमा) – (१) स्तुतियों योग्य, (२) सबको अपनाने वाला स्नेह
'मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः'
ऋ. १.१५९.२
(३) स्तुति
'अर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः'
ऋ. १.१३१.६; अ. २०.७२.३
(४) हु + मनिन् = हवीमन् (ईट् का आगम) 'हु' धातु दान और आदान अर्थों में प्रयुक्त है। अर्थ है–ग्रहण करने योग्य उपासना आदि (४) आहुति, (६) भोजन योग्य पदार्थ।
'अग्निमग्निं हवीमभिः
सदा हवन्त विश्पतिम्।'
ऋ. १.१२.२, अ. २०.१०१.२; साम. २.१४१; तै.सं. ४.३.१३.८; मै.सं. ४.१०.१:१४३.११
आहुति और भोजन योग्य पदार्थों से जिस प्रकार आहवहीय या जाठराग्नि को लोग अन्न हवि प्रदान करते हैं उसी प्रकार बहुतों को प्रिय लगने वाले प्रजाजनों को पालक अग्नि के समान ज्ञानवान् और तेज स्त्री पुरुष को स्वीकार करने योग्य अन्न आदि पदार्थों से सदा आदर सत्कार करो।
(७) शासन
'अयुक्त यो नासत्या हवीमन्'
ऋ. ६.६३.४

हस् – हस् + क्विप्। हंसी
'हसो नरिष्टा नृत्तानि'
अ. ११.८.२४

हस – (१) आनन्द, विनोद, परिहास
'हसाय कारिम्'
वाज.सं. ३०.६; २० तै.ब्रा. ३.४.१.२.

हंस – (१) शत्रुओं का नाशक
हंसः शुचिषद्'
ऋ. ४.४०.५; वाज.सं. १०.२४;१२.१४; तै.सं. १.८.१५.२; .मै.सं. २.६.१२:७१.१४; ३.२.१: १६.१; ४.४.६: ५७.३; का.सं. १५.८; १६.८ ;ऐ.ब्रा. ४.२०.५; श.ब्रा. ५.४.३.२२; ६.७.३.११; तै.आ. १०.१० .२; ५०.१
(२) हन् + स = हंस। हंसाः हन्तेः ध्वन्ति अध्वानम्। हंस अध्व अर्थात् मार्ग का हनन करता है।
'हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते'
ऋ. १.१६३.१०; ३.८.९; वाज.सं. २९.२१; तै.सं. ४.६.७.४; का.सं. (अश्व.) नि. ४.१३

हसना – (१) परस्पर उपहास, विनोद, हास्य
'अश्वो वोढा सुखं रथम्
हसनामुपमन्त्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ
वारिन्मण्डूक इच्छति
इन्द्रायेन्दो परिस्रव।'
ऋ. ९.११२.४

हस्वर्ता – (१) प्रकाशक–अग्नि
(२) प्रत्येक लोक का प्रकाशक रूप परमेश्वर
'हस्कर्तारं दमेदमे'
ऋ. ४.७.३

हस्कार – 'हंसनम् हः तत् करोति यः स हस्कारः। अर्थ – (१) अति प्रकाश, (२) सूर्य
'हस्काराद् विद्युतस्परि
अतो जाता अवन्तु नः
ऋ. १.२३.१२
सूर्य से उत्पन्न और विद्युत् से उत्पन्न वायुगण हमारी रक्षा करें।

हस्कृतिः – (१) ब्राह्मदिन, (२) हर्ष का विलास
'तदर्क उत हस्कृतिः'
ऋ. ८.८९.६; साम. २.७८०

हस्त – (१) हनन करने में समर्थ
'स्वन भ्राजाङ्घरे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानो'
वाज.सं. ४.२७; तै.सं. १.२.७.१; श.ब्रा. ३.३.३.११.
(२) हस्त नामक नक्षत्र
'पुण्यं पूर्वा फाल्गुन्यौ चात्र
हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखे मे अस्तु'
अ. १९.२.३.

(३) हस्तो हन्तेः (हन् धातु से हस्त बना है) । हाथ, हाथ से हनन किया जाता है ।
'प्राशु हनने । हाथ हनन क्रिया में अति शीघ्रता करता है ।
दे. 'आत्मन्'
'यदिमा वाजयन्नहम्'
'ओषधीर्हस्त आदधे'
ऋ. १०.९७.११; वाज.सं. १२.८५; मै.सं. २.७.१३:९३.१७
जब इन ओषधियों की स्तुति करता हुआ इन्हें हाथ में रखता हूँ ।

हस्तग्रामः – (१) हाथ ग्रहण करने वाला पति ।
'हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवदेम्'
ऋ. १०.१८.८; अ. १८.३.२; तै.आ. ६.१.३

हस्तगृह्य – (१) हाथ पकड़ कर लाने की क्रिया
'अग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय'
ऋ. १०.१०९.२; अ. ५.१७.२

हस्तगृह्या – पाणि ग्रहण कर
'पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्या'
ऋ. १०.८५.२६; आश्व.गृ.सू. १.८.१; आप.मं.पा. १.२.८

हस्तच्युति, हस्तच्युती – हस्तच्युति का अर्थ है हस्त प्रच्युति, हस्तगति–झटका,
'हस्तच्युती' तृतीया 'एक वचन का रूप है । हस्तच्युत्या (हाथों से घर्षण द्वारा) । दे. 'अथर्यु'
'अग्निं नरो दीधितिभिररण्योः
हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्'
ऋ. ७.१.१;साम. १.७२; २.७२३; का.सं. ३४.१९; ३९.१५; कौ.ब्रा. २२.७; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१; मा.श्रौ.सू. ६.२.२; नि. ५.१०
'अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिः'
ऋ. ५.४५.७

हस्त्य – हाथ से तैयार किया हुआ । दे. 'जुषाण'।
'जुषाणो हस्त्यमभि वावशेवः'
ऋ. २.१४.९

हसामुद – हंसमुख, प्रसन्न
'इरावन्तो हसामुदाः'
अ. ७.६०.६; हि.गृ.सू. १.२९.१

हसामुदौ – (१) परस्पर हंसी विनोदयुक्त पतिपत्नी
'हसामुदौ महसा मोदमानौ'
अ. १४.२.४३

हस्तावनेजन – हस्त + अवनेजन हाथ धोने का जल ।
'ऋतं हस्तावनेजनम्'
अ. ११.३.१३.

हस्रा – हस् (हसना) + र् + टाप् = हस्रा । हंसने वाली । हंसमुख । दे. 'अप्स'
'उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः'
ऋ. १.१२४.७; नि. ३.५.
उषा हंसने वाली स्त्री के समान अपना रूप दिखाती है ।

हस्तिनी – हस्त क्रिया में कुशल स्त्री
'यथा हस्ती हस्तिन्याः'
अ. ६.७०.२

हस्तिय – हाथीवान्
'अर्मेभ्यो हस्तिपम्'
वाज.सं. ३०.११; तै.ब्रा. ३.४.१.१९

हस्तिन् (हस्ती) – (१) हाथी, (२) हस्त कर्म में कुशल पुरुष । दे. 'हस्तिनी'
'मृगा इव हस्तिनः खादथा वना'
ऋ. १.६४.७

ह्रस्व – ह्रस् + वन् = ह्रस्व । अल्पतम, ह्रसित, हल्का, छोटा (२) ह्रस्व स्वर जिसका उच्चारण हल्का होता है ।

ह्वरः – कुटिल कर्म
'अदेवानि ह्वरांसि च'
ऋ. ६.४८.१०; साम. २.९७४

ह्वर् – कुटिलता, क्रोध
'बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे'
ऋ. २.२३.६

ह्रादुनी – शब्द करने वाली, विद्युत
'ह्रादुनीभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२६; तै.सं. ७.४.१३.१; का.सं. (अश्व.) ४.२.

ह्रादुनि – ह्राद् + उनि = ह्रादुनि । अव्यक्त शब्द करने वाली विद्युत् । दे. 'मिह्'
'ह्रादुनीर्दूषीकाभिः'
वाज.सं. २५.९; मै.सं. ३.१५.८:१८०.२

ह्रादुनीवृतः – ब.व.। गर्जती विद्युत को उत्पन्न करने वाले मरुद्गण, (२) ह्लादकारी शब्दों से बरतने वाले
'अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः'

ऋ. ५.५४.३

ह्लार – ह्लाद + अच् = ह्लाद । 'ह्लाद्' धातु शीतीभाव तथा सुखकारक अर्थ में प्रयुक्त है । अर्थ है- प्रसन्नता

ह्लादिका – आह्लादित करने वाली
'ह्लादिके ह्लादिकावति'
ऋ. १०.१६.१४; अ. १८.३.६०
(२) चित्र में हर्ष उत्पन्न करने वाली लता

ह्लादिकावती –हर्षप्रद ओषधियों से युक्त भूमि । दे. 'ह्लादिका'
(२) आह्लाद देने वाली वाणियों से युक्त
'ह्लादिके ह्लादिकावति'
ऋ. १०.१६.१४; अ. १८.३.६०

हायन – (१) एक वर्ष का पुराना रोग
'सदन्दिर्यश्च हायनः'
अ. १९.३९.१०
(२) प्रतिवर्ष उगने वाली घास (३) वर्ष (४) दिन
'अयो इट इव हायनः'
अ. ६.१४.३
'आर्तवानुत हायनान्'
अ. ३.१०.९; ११.६.१७

हायनी – वर्षा
'ऋतवस्ते विहिता हायनीः'
अ. १२.१.३६

ह्वार – (१) गुप्तस्थान, (२) जिसमें पदार्थ कुटिल मार्ग से जाता है
'चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधु'
ऋ. २.२.४
(३) आह्वान का साधन भूत हवन, (४) गर्भ
'तस्मा एतं सुरुचं ह्वार मध्यम्'
अ. ४.१.२; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.६.
(५) कुटिलतां वारयन् (कुटिल मार्ग से आता हुआ गर्भगत जीव)– दया. ।
दे. 'अनाकृत' ।
'ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः'
ऋ. १.१४१.७
(६) ताप
'ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान्'
ऋ. १.१८०.३

हार्य – (१) कुटिल पुरुषों का नाशक अग्नि
'अत्यो न ह्वार्यः शिशुः'
ऋ. ६.२.८
(२) कुटिलगामी-सर्प
'उत्तस्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम्'
ऋ. ५.९.४

हारिद्रव – (१) हल्दी या तद्वत् ग्रन्थिवाली औषधि (२) रोगहारी द्रव पदार्थ, (३) हारिद्रव नामक पक्षी-सा.
'अथो हारिद्रवेषु ते'
ऋ. १.५०.१२; अ. १.२२४; तै.सं. ३.७.६.२३; आप.श्रौ.सू. ४.१५. १
(४) सुख हरने और मल बहाने वाला रोग-दया.
(५) दुःखी पीड़ा को हरने तथा स्वतः शरीर के मलों को बहाकर निकालने वाली ओषधि । दे. 'शुक'

हारिद्रवा – द्वि.व. । हारिद्रव नामक दो जल पक्षी
'हारिद्रवेव पतथो वनेदुप'
ऋ. ८.३५.७

हारियोजनः (१) जो घोड़ो आदि को जोड़ता है-सारथि ।
(२) प्रजा के दुःख हारक विद्वानों की नियुक्ति और प्रबल उपायों का आयोजन करने वाला राजा (३) वेगवान् सैनिकों का वियोक्ता, (४) आज्ञापक तथा प्रबल तुरंगों और अश्वरोही वीरों तथा आग्नेयादि अस्त्रों का संचालक ।
'एवा ते हरियोजना सुवृक्ति'
ऋ. १.६१.१६; अ. २०.३५.१६
(५) ज्ञानी पुरुषों को योग द्वारा साक्षात् करने योग्य
(६) समस्त सूर्यों को प्रेरणा करने वाला

हार्दि – (१) हृदय का प्रेम का अभिप्राय (२) हार्दम् अस्मिन् अस्ति (जिसमें मन लगा हुआ हो) ।
'आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्'
ऋ. २.२९.६; वाज.सं. ३३.५१; मै.सं. ४.१२.६:१९४.५
'हार्दि ते शोचयामसि'
अ. ६.८९.१
(३) हृदय
'मा नो हार्दिलिषा वधीः'
ऋ. ८.७९.८

हृदय का भाव अर्थ में-
'अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजति'
ऋ. ५.४४.९
हृदय अर्थ में
'इन्द्रस्य हार्दिमाविशान् मनीषया'
अ. १८.४.५८

हासति - स्पर्धते, हृष्यति (स्पर्धा करता या हर्षित होता है)। 'हाराहासी' का प्रयोग स्पर्धा अर्थ में अब भी किया जाता है

हास्महि - हा (त्यागना) धातु का रूप। अर्थ है हम परिव्यक्त न हों। दे 'मा'।
'मा हास्महि प्रजया मा तनूभिः'
ऋ. १०.१२८.५; अ. ५.३.७; तै.सं. ४.७.१४.२; आप.मं.पा. २.९.६.
हम पुत्रादि रूपी प्रजा से परिव्यक्त न हों और न अपने ही शरीरों से वियुक्त हों।

हासमाने - द्वि.व.। हास (हंसना) + शानच् + टाप् = हासमाना। द्वि. व., में 'हासमाने'।
हंसती हुई घोड़ियों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त। दे. 'जवेते'।
'अश्वे इव विषिते हासमाने'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
शुतुद्रि और विपाशा नदियां जल से पूर्ण हो जब पहाड़ से बहती हैं तो मालूम होता है जैसे वाजिशाला से छूटी (विषिते) दो घोड़ियां (अश्वे) हिनहिनाती आ रही हों (हासमाने)।

हास्तिन - हाथी का

हि - (१) प्रेरित करना, बढ़ाना, प्रार्थना करना अर्थों में प्रयुक्त धातु।
'अश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः'
ऋ. ७.७.१
(२) अ.। हेतु के अपदेश में प्रयुक्त अव्यय। जैसे
'इदं हि करिष्यति'
(यतः यह करेगा अतः)। यतः (क्योंकि)। दे. 'अश्रवम्'
'अश्रवं हि भूरिवत्तरा वाम्'
विजामातुरुत वा घा स्यालात्'
ऋ. १.१०९.२; तै.सं. १.१.१४.१; का.सं. ४.१५; नि. ६.९.
हे इन्द्राग्नी, या अध्यापक और उपदेशक, क्योंकि मैं ने सुना है कि क्रीता पति दायाद और स्याले से भी बढ़कर दानी हो ....
(३) प्रश्न पूछने पर 'हि' का प्रयोग।
कथं हि करिष्यति (कैसे करेगा)।
(४) असूया अर्थ में
'कथं हि व्या करिष्यति' (कैसे वह करेगा) अर्थात् उसमें करने की शक्ति नहीं है। (५) निश्चय अर्थ में
'अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसः'
ऋ. ८.२७.१०; नि. ६.१४
(तुम लोगों का सजात्य है)। दे. 'आप्य', 'कम्'।

हिकम् - (१) ही, निश्चय से।
'प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु'
ऋ. ८.११.१०; तै.आ. १०२.१ अ. ६.११०.१
(२) हि + कम्। क्योंकि।
कम् एक निरर्थक अव्यय है जो 'हि' के साथ मिल गया है।
'राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः'
ऋ. १.९८.१; वाज.सं. २६.७; तै.सं. १.५.११.३; मै.सं. ४.११.१: १६१.३; का.सं. ४.१६; नि. ७.२२
क्योंकि वैश्वानर अग्नि सम्मुख हो सेवनीय है और सभी जीवों का राजा है।

हिङ्करिक्रती - संसार की नाना घटनाओं को उत्पन्न करती हुई मधुकशा
'हिङ्करी क्रती बृहती वयोधाः'
अ. ९.१.८

हिङ्ग - धा.। चाहना, सूंघना, पुचकारना, सामगान करना।
'मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; नि. ११.४२

हिङ्कृत - 'हि' कर चुकने वाला विद्वान्
'हिङ्कृताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३:१६०.१२; श.ब्रा. १३.१.३.५.

हिङ्कार - (१) 'हि' रूप से साम के प्रारम्भ में उद्गावा आदि द्वारा किया गया सामगान।
'हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः'
अ. ११.७.५
(२) 'हि' शब्द करने वाला सामगायक विद्वान्, (३) राजा, (४) शुक्र
'शुक्रमेव हिङ्कारः'

जै.उप. १.३४.१
(६) प्राण
प्राणो वै हिङ्कारः
श.ब्रा. ४.२.२.११
(७) प्रजापति
'प्रजापतिः वै हिङ्कारः'
तै.ब्रा. ६.८.५
'हिंकाराय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३:१६०.१२; श.ब्रा. १३.१.३.५;का. श्रौ.सू. २०.३.३.

हित – (१) धारण किया हुआ कर्म धा + क्त'
'यद्धितं माव पादि तत्'
अ. ८.६.२०
(२) हि + क्त = हित। कल्याण कारक, मित्र, हित। दे. 'ईदृश्'
'क्षेत्रस्य पतिना वयम्
.हितेनेव जयामसि'
ऋ. ४.५७.१; तै.सं. १.१.१४.२; मै.सं. ४.११.१:१६०.३; का.सं. ४.१५; आप.मं.पा. २.१८.४७; नि. १०.१५
हम जैसे मित्र के साथ संयुक्त जय प्राप्त करते हैं वैसे कृषक के साहाय्य से जय प्राप्त करें।

हित प्रपसा – द्वि.व.। (१) उत्तम ज्ञान, अन्न देने वाले (२) उत्तम यत्न करने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष।
'मन्दू हितप्रयशा विक्षु यज्यू'
ऋ. १०.६१.१५

हितप्रयाः – (१) जिसने 'प्रयस्' अर्थात् अन्न प्राप्त किया हो।
'हितप्रयस आनुषक्'
ऋ. ८.२७.७
(२) अन्नादि धारण करने वाला।
'अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा'
ऋ. ८.६०.१७
(३) हित + प्रयास। खेत में बीज बोने वाला कृषक। (४) यज्ञ में हविष् रखने वाला भक्त।
'हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते'
ऋ. १०.११२.७
(५) प्राणों का नियमन करने वाला साधक, (६) ज्ञान प्राप्त करने वाला।
'हितप्रयस आशत्'
ऋ. ८.६.९.१८; अ. २०.९२.१५

हितमित्रः – (१) हितैषी मित्रों वाला परमेश्वर-राजा
(२) जीवों को मरने से बचने वाले तत्व-वायु-सूर्य मेघादि को धारण करने वाला-परमेश्वर
'उपक्षेति हितमित्रो न राजा'
ऋ. १.७३.३; ३.५५.२१
(३) जलाशयों को अपने भीतर धारण करने वाला-सूर्य
(४) हितकारी मित्रों में युक्त-राजा

हितावान् – (१) हितं विद्यते यस्य सः-दया. (२) हित चाहने वाला (३) बहुत धन संग्रह करने वाला वणिक्
'विपन्यामहे वि पणिर्हितावान्'
ऋ. १.१८०.७

हितिः – (१) हेतु, प्रयोजन, (२) प्रयोजन का निधान दे. 'अस्मेहितिः'
'कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्'
ऋ. १०.१०८.१; नि. ११.२५
हे सरमे, इर रात में हमारे यहां आने का क्या प्रयोजन था? -सा.।
हे वेदवाणी, हमारी ओर आने का क्या काम? यह आगमन क्यों हुआ?

हित्वी – त्यागकर। दे. 'शश्वान्'
'शश्वां अपो विकृतं हित्व्यागात्'
ऋ. २.३८.६

हिनः – सर्व प्रेरक आत्मा
'स हि न त्वमसि'
अ. ६.१६.२

हिन्वः – सब को बढ़ाने वाला
'सूनो हिन्वस्य हरिवः'
ऋ. ८.४०.९

हिन्वन्ति – बहिष्कुर्वन्ति व्याकुर्वन्ति (बहिष्कृत या व्याकृत करते हैं)। हराते हैं।
हिविधातु प्रीणनार्थक हैः परन्तु धातु के अनेकार्थक होने से यहाँ अर्थ बदल गया है।

हिन्वानः – वृद्धि पाता हुआ
'न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रम्'
ऋ. १.३३.८
वृद्धि को प्राप्त हुए वीर पुरुष भी (हिन्वानासः) राष्ट्र के तेजस्वी स्वामी पर या इन्द्र को नहीं

लांघते (इन्द्रं न तितिरु) ।

हिन्विरे – महिमा गाते हैं ।
'त्वमापः पर्वतासश्च हिन्विरे'
अ. २.१०६.२

हिनु – (क्रिया) ।. धातु के लोट् म.प्र. ए.व. का रूप । अर्थ है (१) आगे बढ़ा –सा ।
(२) प्रदान कर –दया.
'क्रत्वे दक्षाय नो हिनु '
ऋ. ९.३६.३; वाज.सं. ३४.८; तै.सं. ३.३.११.४; मै.सं. ३.१६;४; १८९.११, आश्व.श्रौ.सू. ४.१२.२; शां.श्रौ.सू. ९.२७.२; नि. ११.३०
संकल्प की सिद्धि के लिए आगे बढ़ा–सा.। हमारी सन्तान के लिए वृद्धि प्रद अन्न प्रदान कर – दया.

हिनुहि – प्राप्नुहि, प्रेरय, प्राप्त कर, प्रेरित कर ।
दे.–'ईरिरे'
'अग्नि तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे'
ऋ. १.१४३.४
उस अग्नि को स्तुतियों के द्वारा प्राप्त करो ।
'हि' धातु और गति और वृद्धि अर्थों में आया है । 'हिनिहि' लोट् म.पु. ए.व. का रूप है ।

हिनोत – (१) प्रहिणुत, प्रगमयत, प्रोत्सर्पय (ले चलो, प्रेरित करो) । दे. आसदे ।
'प्र नूनं जातवेदसम्
अश्वं हिनोत वाजिनम्
इदं नो बर्हिरासदे ।'
ऋ. १०.१८८.१; नि. ७.२०
समस्त जगत् को व्याप्त करने वाले गतिशील अग्नि या वेदवेत्ता विद्वान् को इस आस्तीर्ण कुशासन पर बैठने के लिए प्रेरित करो (प्रहिनोत) ।
(२) प्रवृत्त करो, (३) आओ । दे. 'ऊधस्'।
'हिनोता नो अध्वरं देवयज्या
हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।'
ऋ. १०.३०.११; नि. ६.२२
हे ऋत्विजो, देवयजन मार्ग में इस हमारे यज्ञ को प्रवृत करो तथा धनों की प्राप्ति के लिए ब्रह्म को प्रवृत्त करो ।–सा.
हे आप्त देवियों, देवपूजा के लिए हमारे यज्ञ में आओ तथा धनों के लाभ के लिए वेद को जानो (ब्रह्म हिनोत) । (४) जानो , समझो

हिनोति – (१) बढ़ाता है ।
'सोमो हिनोति मर्त्यम्'
ऋ. १.१८.४
सोमलता आदि ओषधि मनुष्य को बढ़ाता है।
(२) समर्थन करता है ।
'न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति'
ऋ. ७.१०४.१३; अ. ८.४.१३

हिम् – हन् + मक् ।
'हन्ति उष्णं दुर्गन्धिं वा तत् हिमम् (जो उष्ण या दुर्गन्ध को नष्ट करता है वह हिम है) ।
अर्थ – (१) हेमन्त ऋतु
'हिमस्य माता सुहवा वो अस्तु'
अ. १९.४९.५
(२) हिमं पुनः हन्ते र्वा
हिनोतेर्वा (हिम 'हन्' धातु या वृद्ध्यर्थक 'हि' धातु से बना है) ।
हि (गत्यर्थक और वृद्ध्यर्थक) + मन् = हिमन् ।
हिम ओषधियों को नष्ट करता और भयादि की वृद्धि करता है ।
अर्थ– हिम, वर्ष
'वर्ष' के अर्थ में हिम शब्द का प्रयोग वेदों में हुआ है । दे. 'अतिक्रामत्'।
'शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम'
अ. १२.२.२८; नि. ६.१२.
(३) शीतल जल । दे. 'अवनीत
'हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथाम्'
ऋ. १.१६.८; नि. ६.३६
हे अश्विनीद्वय, सूर्य और पृथिवी, तुम दोनों ने ग्रीष्मान्त में अत्यन्त बढी गर्मी को ठंडे जल से शान्त किया या अग्नि के समान दाहक गर्मी को दूर किया ।
(४) बर्फ

हिमस्य जरायुः – शीतल जल की जरायु अर्थात् शैवाल (सेवार) ।
'हिमस्य त्वा जरायुणा'
ऋ. खि.१०.१४२.१; अ. ६.१०६.३; वाज.सं. १७.५; तै.सं. ४.६.१.१ ; मै.सं. २.१०.१:१३१.७; का.सं. १७.१७; श.ब्रा. ९.१.२.६; मा.श्रौ.सू. ४.४.२०

हिम्या – हन् + मक् = हिम + यत् = टाप् = हिम्या । अर्थ है– (१)रात्रि, (२) शीतकाल

'युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससः'
ऋ. १.३४.१
तुम दोनों का यन्त्र उसी प्रकार अनुरूप हो जैसे रात्रि में अनुरूप वस्त्र शीत बेला के साथ अनुरूप होता है।

हियान – (१) बढ़ता हुआ, (२) बल और ऐश्वर्य में निरन्तर बढ़ता हुआ।
'संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः'
ऋ. २.४.४.
(३) प्रेरित होता हुआ
'आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानः'
ऋ. ८.४९.५
(४) प्रेरित हुआ अश्व
'अत्यो न हियानो अभिवाजमर्ष'
ऋ. ९.८६.३

हिरण्यकर्ण – (१) जिसके कानों में सोने का कुण्डल हो, (२) हित और रमणीय साधनों से और प्राणों से युक्त आत्मा।
दे. 'मणिग्रीव'।

हिरण्यकशिपु – (१) हिरण्य के वस्त्र से आच्छादित आरति
(२) कंजूसी
'हिरण्यकशिपुर्महीं'
अ. ५.७.१०

हिरण्यकार – सुवर्णकार
'वर्णाय हिरण्यकराम्'
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.१४

हिरण्यकोशः – (१) सुवर्ण के समान तेज का ज्योति से युक्त अग्नि, (२) सूर्य
हिरण्यकेशो रजसो विसारे'
ऋ. १.७९.१; तै.सं. ३.१.११.४; ऐ.ब्रा. ७.९.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७; आप.श्रौ.सू. १९.२७.१०
अन्धकार और राजस आवरण को दूर करने के कार्य में और विविध दिशाओं में और आक्रमण करने में सुवर्ण के समान तेज या ज्योति से युक्त- अग्नि या सूर्य के समान हों।

हिरण्यकेश्या – द्वि व.। (१) सुवर्ण के समान दीप्त तेज को केशवत् धारण करने वाले स्त्रीपुरुष, (२) हिरण्य केश वाले दो अश्व
'हरी हिरण्यकेश्या'
ऋ. ८.९३.२४

हिरण्यकेशी निऋतिः – सुवर्ण के कारण लाखों विपत्तियां डालने वाली पाप प्रवृत्ति
'तस्यै हिरण्य केश्यै
निऋत्यै अकरं नमः'
अ. ५.७.९

हिरण्यगर्भः – हिरण्यमयश्चासौ गर्भः हिरण्यमयः प्रचण्डः गर्भः यस्य स हिरण्यगर्भ (जिसके गर्भ में हिरण्मय गर्भ को वह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ है)।
हिरण्य का अर्थ सुवर्ण है परन्तु यहां दार्शनिक अर्थ है- सृष्टि का आरम्भ हिरण्यगर्भ से ही हुआ।
(१) सृष्टि के पहले परमात्मा से उत्पन्न हिरण्य गर्भ जो जन्म, लेते मात्र अद्वितीय स्थावर तथा जंगम जगत् का पति या ईश्वर हुआ और अन्तरिक्ष द्युलोक तथा पृथिवी का धारण किया। दे. 'क'।
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'
ऋ. १.१२१.१; अ. ४.२.७; वाज.सं. १३.४; २३.१; २५.१०; तै.सं. ४.१.८.३; ५.५.१.२.; मै.सं. २.७.१५; ९६.१३; २.१३.२३:१६८.५; ३.१२.१६:१६५.१; का.सं. १६.१५; २०.५; ४०.१; श.ब्रा. ७.४.१.१९; १३.५.२.२३; नि. १०.२३.
सृष्टि के पहले हिरण्य गर्भ परमात्मा से उत्पन्न हुआ। (२) जीवन ज्योतिर्मय गर्भ जिसका गर्भ अर्थात् जीवात्मा ज्योतिर्मय हैं वह प्राणवायु। (३) विज्ञानमय गर्भ। हिरण्यश्चासौ गर्भश्च (यह हिरण्यमय भी है और गर्भ भी है)। (४) दुर्ग के मत से प्रकृति ही हिरण्यगर्भ है। प्रकृति से ही सृष्टि हुई है। वस्तुतः सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति हिरण्यमय थी। हिरण्य द्रव्यमात्र का वाचक है।
(५) ब्रह्मा। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा भी वाचक है। आधुनिक अर्थ – विष्णु, सूक्ष्म शरीर जिसमें आत्मा रहता है।
(६) जगत् के उत्पन्न होने के पहले सुवर्ण आदि तेजस पदार्थों को भी अपने गर्भ में रखने वाला (७) परमेश्वर जिसके गर्भ से सूर्यादि ज्योति है।

हिरण्य गृह – (१) सुवर्णवत् तेजोमय सह को ग्रहण करने वाला सब देहोव का शासक-आत्मा

'अप्सु ते राजन् वरुण
नृ हो हिरण्ययो मिथः '
अ. ७.८३.१

हिरण्यचक्र – चमकीले चक्कों वाला दे. 'वराह '।

हिरण्यजिह्वः – सविता (२) सर्वहितकारी, सबको भली लगने वाली सूवर्णवत् कान्तियुक्त सत्य प्रकाश वाली को बोलने वाला ।
'हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे '
ऋ. ६.७१.३; वाज.सं. ३३.६९; तै.सं. १.४.२४.१; मै.सं. १.३.२७ :३९.१४; का.सं. ४.१०; तै.ब्रा. २.४.४.७

हिरण्यज्योतिः – सुवर्ण सम्पत्ति से युक्त
'हिरण्यज्योतिषं कृत्वा
यो ददाति शतौदनाम् '
अ. १०.९.६

हिरण्यवत् – धनी सेठ । दे. 'जरती '।
'कार्मारो अश्मभिर्द्युभुः
हिरण्यवन्तमिच्छति । '
ऋ. ९.११२.२
जैसे चमकते हीरों से (द्युभिः अश्मभिः) सोनार (कार्मारः) धनी सेठ को चाहता है ।

हिरण्यत्वङ् – (१) सुवर्ण या लौह के आवरण से युक्त-दृढ़ (२) जिसका ऊपरी वर्ण तेज और सुवर्ण हो ।
'हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः '
ऋ. ५.७७.३; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

हिरण्यत्वचसः – रमणीय त्वचा वाली सात, प्राणश्मियां ।
'हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त '
अ. १३.२.८

हिरण्यदः – सुवर्ण देने वाला
'हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते '
ऋ. १०.१०७.२

हिरण्यदन्तः – (१) स्वर्ण तुल्य दन्त के समान ज्वाला युक्त अग्नि, (२) चान्दी के तुल्य दांत वाला बालक, (३) लोहे के बने शस्त्र वाला
'हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् '
ऋ. ५.२.३

हिरण्यद्रायि – सुवर्ण के कारण पाप फैलाने वाली-अराति । अर्थात् कंजूसी कृपणता
'तस्यै हिरण्यद्रायेऽरात्या अकरं नमः '
अ. ५.७.१०

हिरण्ययपवि – सोने या लोहे की बनी चक्रधारा
'हिरण्यया वां पवयः पुषायन् '
ऋ. १.१८०.१

हिरण्यनिर्णिक् – सुवर्ण के समान क्रान्तिमान्
'हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा '
ऋ. ५.६२.७
(२) सुवर्ण के समान चमकने वाली, (३) हित और रमणीय ज्ञान से शिष्यों का ज्ञान सामर्थ्य बढ़ाने वाली
'हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः '
ऋ. १.१६७.३

हिरण्यप्रउग – (१) प्रकाशस्वरूप आत्मा द्वारा जानने योग्य अतिरमणीय आनन्दमय रस, (२) अग्नि रूप क्रान्ति, ताप मय स्वरूप (३) जिसमें ज्योति रूप अग्नि के मुख के समान स्थान हो ।
'रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः '
ऋ. १.३५.५; तै.ब्रा. २.८.६.२
प्रकाश स्वरूप आत्मा द्वारा जानने योग्य अति रमणीय आनन्दमय रस को धारण करते हुए...।
अथवा,
अग्नि रूप कान्ति का प्रयोग करने वाले तापमय स्वरूप को धारण करते हुए...।

हिरण्ययः कोशः – तेजः स्वरूप प्राणों का एकमात्र आश्रय जीवात्मा
'तस्यां हिरण्ययः कोशः
सर्वर्गो ज्योतिषावृतः '
अ. १०.२.३१; तै.आ. १.२७.३

हिरण्यपाणिः – (१) सबको प्रकाश देने वाला-सूर्यादि प्रकाश पिण्डों को भी अपने रखने वाला-परमेश्वर
'हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः '
अ. ७.१४.२; साम. १.४६४; वाज.सं. ४.२५; तै.सं. १.२.६.१; मै. सं. १.३.१५:१४.६; का.सं. २.६; श.ब्रा. ३.३.२.१२; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शा.श्रौ.सू. ५.९.७.
(२) सविता, (३) सुवर्ण रखने वाला
'हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् '
ऋ. ६.७१.४
(४) तेजस्वी हाथों वाला- परमात्मा

हिरण्यपावाः – (१) अपने आत्मा को हिरण्य के

समान पवित्र करने वाले योगी जन (२) हित और अति प्रिय आत्मा को शोधने वाले विद्वान्
'हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते'
ऋ. ९.८६.४३;अ. १८.३.१८;साम. १.५६४; २.९६४

हिरण्यः – सं. । (१) तेज से बना हुआ– तेजस सूर्य, (२) सुवर्णमय,
'विद्युत प्रकाशो हिरण्यो बिन्दुः'
अ. ९.१.२१
'सूरश्चक्रं हिरण्ययम्'
ऋ. ६.५६.३
प्रेरक परमात्मा ने आदित्य के लिए सुवर्णमय कालचक्र चलाया ।
ऋ. ६.५६.३

हिरण्मय पात्र – हिरण्मय ढक्कन
'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'
वाज.सं. ४०.१७; ईश.उप. १५

हिरण्यपेशसा – सुवर्ण का अलंकार धारण करने वाले स्त्री पुरुष
'उभा हिरण्य पेशसा'
ऋ. ८.३१.८; आप.मं.पा. १.११.१०

हिरण्यम् – (१) ह्रियते आयाम्यमानम् इति वा (सोना जब आभूषण बनाने के लिए गला कर एवं पीटपाटकर विस्तीर्ण किया जाता है तब सोनार द्वारा हरण किया जाता है) ।
(ख) ह्रियते जनात् जनम् । इति वा (एकजन से दूसरा जन सोना ले जाता है, अतः हिरण्य है) ।
(ग) ह + कन्यन् = हिरण्य (हर्यते = कन्यन् हिरच्) ।
(घ) हितं रमणीयं भवति इति वा (सुवर्ण की सभी इच्छा रखते हैं या वह अपनी प्रभा से दीप्त रहता है) ।
(ङ) हर्य (कामना करना) + कन्यन् = हिरण्य
(२) हित और रमणीय सत्वगुण का स्वामी,
(३) सर्व दुःख दाहक ' उष्ट्र' के तीन नामों में एक ।
'हिरण्यं इत्येके अब्रवीत्'
अ. २०.१३२.१४

हिरण्यमणि – (१) हित, रमणीय तेजः स्वरूप हिरण्य ।
दक्ष या बलवान् पुरुष ही हिरण्य बांधता है ।
'यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं
शतानीकाय सुमनस्यमानाः'
ऋ.खि. १०.१२८.९; अ. १.३५.१; वाज.सं. ३४.५२
शुभ संकल्प वाले दाक्षायणों ने शतानीक को हिरण्य बांधा ।

हिरण्ययःवेतसः – (१) सुवर्ण के रंग का चमकता हुआ दण्ड के समान विद्युत, दण्ड, (२) सर्व हितकारी तेजस्वी विद्वान् ।
'हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम्'
ऋ. ४.५८.५; वाज.सं. १७.९३; तै.सं. ४.२.९.६; का.सं. ४०.७;तै. आ. (आंध्र) १०.४०;आप.श्रौ.सू. १७.१८.१

हिरण्यनी नौः – (१) हिरण्य की नौका–सूर्य
'हिरण्ययी नौरचरत्'
अ. ५..४.४; ६.९५.२; १९.३९.७

हिरण्ययुः – () हिरण्य, हितरमणीय का इच्छुक
'कामो गव्युर्हिरण्ययु'
ऋ. ८.७८.९
(२) ऐश्वर्य का हित एवं रमणीय कार्य की कामना करने वाला
'त्वं हिरण्ययुर्वसो'
ऋ. ७.३१.३; साम. २.६८

हिरण्यरथाः – ब.व.। सुवर्ण रूपी रथ पर आरूढ़ रुद्र ।
बहुवचन में व्यवहृत रुद्रों का यह विशेषण है ।
दे. 'आगन्तन' इन्द्रवन्त'
'आरुद्रासः इन्द्रवन्तः सजोषसः
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन'
ऋ. ५.५७.१; नि. ११.१५
हे रुद्रो, इन्द्र के साथ प्रेम सहित हिरण्य रथ पर आरूढ़ हो यथाशास्त्र किए जाने वाले यज्ञ के लिए आओ ।

हिरण्यरूपम् – (१) सुवर्ण के समान रूप वाला । अयः स्थूण का विशेषण दे. 'उषस्'
'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टौ
अयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य'
ऋ. ५.६२.८
हे मित्र और वरुण, तुम दोनों उषा के उच्छेद काल में तथा सूर्य के उदय काल में अपने सुनहले लौह स्थूल वाले रथ पर चढ़ते हो ।
(२) अग्नि का विशेषण

'हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृक्
अपां नपात् सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात् परि योनेर्निषद्या
हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै'
ऋ. २.३५.१०;
हिरण्य के समान रूप वाला वह मध्यम स्थानी वैद्युताग्नि देवता, आदित्य का पुत्र (स अपान्नपात्) वर्षाऋतु में धर्मार्त एवं अन्नार्थी प्रजा-गण के लिए हिरण्य के सदृश प्रीति जनक (हिरण्य संदृश्) तथा वही (सेदु) हिरण्य के समान प्रार्थनीय (हिरण्यवर्णः) तेजोमयी अपनी योनि से अर्थात् आदित्य से (हिरण्ययात् योनेः)चारों और अभ्रजाल से अन्तरिक्ष में व्याप्त हो (परिनिषद्य) हिरण्य का दाता (हिरण्यदः) अर्थात् अपान्नपात् अन्न के हेतु यह उदक (अन्नम्) चारों ओर से देता है (आददाति) । अन्य अर्थ - अग्नि तेजः स्वरूप है । वह सर्वदर्शन वाला है। वह अग्नि सुवर्ण वर्ण वाला है । तेजोमय पदार्थ से बाहर परिस्थित होकर (हिरण्यात् योनेः परिनिषद्य) यह उत्तमोत्तम पदार्थों का दाता अग्नि (हिरण्यदाः) मनुष्य जाति को अन्न देता रहे (अस्मै अन्नं ददाति) ।

हिरण्य वक्षाः - (१) बहुमूल्य धन, सम्पत्ति एवं हिरण्य जिसके वक्ष पर हो वह पृथ्वी
'हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी'
अ. १२.१.६
'तस्यै हिरण्यवक्षसे'
अ. १२.१.२६

हिरण्यवत् - हिरण्य वाला-सेठ । दे. 'जरती'

हिरण्यबन्धना - हिरण्य में बांधी नौका -सूर्य
'हिरण्यबन्धना दिवि'
अ. ५.४.४; ६.९५.२; अ. १९.३९.७

हिरण्यवन्धुर - सुवर्ण लोह आदि धातु से सुन्दर कान्तियुक्त-रथ
'रथं हिरण्यवन्धुरम्'
ऋ. ४.६.४; ८.५.२८

हिरण्यपर्ण - (१) सुवर्ण के समान तेजोयुक्त पत्र वाला- महावृक्ष (२) सुवर्ण समान पंखों वाला
'हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलः'
वाज.सं. २८.२०; तै.ब्रा. २.६.१०.६

हिरण्यवर्ण - (१) स्वर्ण के समान पीतवर्ण वाली सिलाची, लाक्षा, लाह नामक ओषधि
'हिरण्यवर्णे सुभगे'
अ. ५.५.६,७
(२) सुवर्णवत् शुद्ध निष्कपट हित और रुचिकर वर्णों या अक्षों पदों का प्रयोग करने वाला तेजस्वी ।
'हिरण्यवर्णमरुषं सपेम'
ऋ. ५.४३.१२; मै.स.
(३) गार्हपत्य अग्नि का विशेषण (४) पितृयज्ञ और अतिथि यज्ञ रूपी पंखों वाला ।
(५) तप्त ज्वाला युक्त । दे. 'रजिष्ठ'
(६) सुवर्ण के वर्ण का या सुवर्ण का बनाया हुआ अमृतलोक या रथ का विशेषण ।
दे. 'अमृतस्य लोकः'
हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्'
ऋ. १०.८५.२०; अ. १४.१.६१; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८
(७) यज्ञयूप का विशेषण । यज्ञयूप उसी काष्ठ का होता है, जो पका हुआ हो पर्ण गया हो । उसका रंग हिरण्य का सा पीत होता है । अतः वह हिरण्य का सा पीत होता है । अतः वह हिरण्यवर्ण कहलाया था

हिरण्यवर्णाः - ब.व.। अमृत स्वरूप या शब्द और प्रकाश को हरण करने वाले मरमात्माओं के जल ।
'हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः'
अ. ३.१३.६; तै.सं. ५.६.१.४; मै.सं. २.१३.१:१५३.३; का.सं. ३५.३

हिरण्यवर्तनिः - (१) हित और प्रिय मार्ग का उपदेश देने वाली -सरस्वती,(२) सुवर्ण रथ पर चढ़ने वाली
'घोरा हिरण्यवर्तनिः'
ऋ. ६.६१.७

हिरण्यवर्तनी - (१) आत्मा को अपना प्रेरक और आश्रय बनाने वाले प्राण और अपान ।
'दस्रा हिरण्यवर्तनी'
ऋ. १.९२.१८; ५.७५.२; ८.५.११; ८.१; साम. २.१०८५; १०९४
(२) द्वि.व.। अश्विद्वय का विशेषण, (३) हित और रमणीय मार्ग पर चलने वाले स्त्री पुरुष, (४) सुवर्ण आदि धातुओं का व्यापार करने

वाले, (५) हितकारी मनोरम मार्ग से जाने वाले
'हिरण्यवर्तनी नरा'
वाज.सं. २०.७४; मै.सं.३.११.४:१४६.७; का.सं. ३८.९; तै.ब्रा. २.६.१३.३; शांश्रौ.सू. ७.१०.१०
(६) हित और प्रिय व्यवहार मार्ग में चलने वाले-सूर्य और पवन ।
दे. 'मयोभुवा'।

हिरण्यवाशी - (१) हित और रमणीय वेद वाणी से युक्त बृहस्पति (२) लोहा आदि के चमकते शस्त्रास्त्रों वाला
'हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्साः'

हिरण्यवाशीसत्तमः - (१) सबसे अधिक हित और प्रिय वाणी बोलने वाला-परमेश्वर, (२) सुन्दर सुवर्ण और लोहादि से बने शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न राजा (३) उत्तम वाणी से युक्त विद्वान्। दे. 'विश्वसौभगः'

हिरण्यबाहुः - (१) बाहु पर सुवर्णपदक धारण करने वाला वीर, (२) रुद्र, (३) सुवर्ण आदि धन के बल पर शासन करने वाला
'नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये'
वाज.सं. १६.१७; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३:१२२.९; का.सं. १७.१२; श.ब्रा. ९.१.१.१८

हिरण्यविः - हिरण्य + वि। हित रमणीय कान्ति से युक्त
'दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम्।
ऋ. ८.६५.१०

हिरण्यवेतस - (१) सुवर्ण रूप कोष सम्पत्ति का बना अति कमनीय आधाररूप स्तम्भ, (२) अति तेजस्वी कमनीय ब्रह्म, तत्व।
'हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम्'
ऋ. ४.५८.५; वाज.सं. १७.९३; तै.सं. ४.२.९.६; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१

हिरण्य शम्य - सुवर्ण एवं उच्च ज्योतियों को भी शान्त कर देने वाली- सूर्य का रथ या पिण्ड
'हिरण्य शम्यं यजतो बृहन्तम्'
ऋ. १.३५.४; मै.सं. ४.१४.६:२२३.१५; तै.ब्रा. २.८.६.१
सुवर्ण एवं उच्च ज्योतियों को भी शान्त कर देने वाली प्रखर किरणों से युक्त ...।

हिरण्य शिप्रा - (१) सुवर्णवत् चमकने वाले तेज से युक्त, (२) हितकारी और रमणीय एवं सुवर्ण के समान उज्ज्वल सुन्दर मुख या वाणी और ज्ञान वाले (३) सुवर्ण या लौह मय शिरस्त्राण शस्त्रास्त्र पहने।
'हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः'
ऋ. २.३४.३

हिरण्यश्रृंगः - (१) धातु के बने अति प्रदीप्त श्रृंग अर्थात् हिंसा साधन शस्त्रों वाला नर श्रेष्ठ।
(२) शतवार नामक मणि
'मणि हिरण्यश्रृंग ऋषभः
शतवारो अयं मणिः'
ऋ. १९.३६.५
(३) सुवर्ण की कलंगी जो घोड़े के सिर पर रखी जाती है।
(४) सोने की सींग वाला। (५) सुवर्णादि को सिर पर रखने वाला ऐश्वर्य वान् धनी पुरुष
(६) हितरमणीय शान्ति दायक स्वभाव का।
'हिरण्य श्रृंगोऽयो अस्य पादाः'
ऋ. १.१६३.९; वाज.सं. २९.२०; तै.सं. ४.६.७.४;

हिरण्यसंदृक् - (१) हिरण्य के समान प्रीति जनक का दीखने वाला दे 'हिरण्यरूप'
(२) सर्वदर्शन वाला

हिरण्यस्तूप - (१) हित और रमणीय प्रभु की स्तुति करने वाला
(२) सुवर्ण का स्तूप (हिरण्यमणः स्तूपः) (३) यज्ञस्तम्भ (४) अङ्गिरस का पुत्र तथा अर्चन का पिता-सा.। दे. 'अनस्'।
'हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा
अङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्'
ऋ. १०.१४९.५
हे सविता, जिस प्रकार अंगिरस का पुत्र तथा मेरे पिता हिरण्य स्तूप ने इस अन्न-निर्मित यज्ञ में तुझे आमन्त्रित किया।

हिरण्यस्रक् - सुवर्ण माला धारण करने वाला।
'हिरण्यस्रगयं मणिः'
अ. १०.६.४

हिरण्यहस्तः - (१) जिसके हाथ में हिरण्य अर्थात् धन हो, (२) सुवर्ण के समान कान्तिमान् हनन साधन (३) बल का स्वामी तेजस्वी पुरुष, (४) हित और रमणीय हाथ अर्थात् अवलम्ब वाला।

हिरण्याक्षः - (१) हितकारी रमणीय कृपादृष्टि से

युक्त, (२) मनोहर ज्योति रूप व्यापनशील किरणों वाला सूर्य

हिरण्याभीशु – उत्तम लोहा आदि धातु की बनी 'अभीशु-रोकथाम वाला रथ
'हिरण्याभीशुमश्विरना'
ऋ. ८.५.२८; २२.५

हिरणिन् – सुवर्णादि ऐश्वर्य का स्वामी
'त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः'
ऋ. ५.३३.८
'शांडो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्'
ऋ. ६.६३.९

हिरा – (१) नाड़ी
'हिरा होलितवाससः'
अ. १.१७.१
(१) नदी
'हिराभिः स्रवन्तीः'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७:१७९.१३

हिरिमशः – (१) उज्ज्वल तेज वाला
'वज्रं यश्चके सुहनाय दस्यवे
हिरीमशो हिरीमान्'
ऋ. १०.१०५.७

हिरिश्मश्रुः – (१) अति मनोहर लोमवत् तेजों वाला
'हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम्'
ऋ. १०.४६.५
(२) पीली किरण रूप मूंछ दाढ़ी वाला सूर्य
(३) चमकीले केश मूंछ दाढ़ी वाला।
'हिरिश्मश्रुः शुचिदन्'
ऋ. ५.७.७.

हिरिशिप्र – (१) हरणशील हनुवाला-अग्नि। दया.
(२) नाश करने या खा जाने वाले दाढ़ो से युक्त, (३) समस्त जगत् को प्रलय काल में परमाणु कर ग्रस जाने वाला, (४) अतिप्रकाशमान स्वरूप वाला।
'हरिशिप्रो वृधमानासु जर्भुरत्'
ऋ. २.२.५

हिरीमान् – (१) वेगवान् पदार्थों का स्वामी
'हिरीमशो हिरीमान्'
ऋ. १०.१०५.७

हिरुक् – अ.। छिपा हुआ
(२) हिरुक् इति अन्तर्हित नाम (हिरुक् अन्तर्हित नाम का वाचक है)। ठीक से, सूक्ष्म दृष्टि से, तत्वतः। दे. 'इत्'
'य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्'
ऋ. १.१६४.३२; अ. ९.१०.१०; नि. २.८.
जो इस जठर में अन्तर्हित गर्भ का तत्व समझता है। 'य ईं हिरुक् ददर्श' उसी का यह गर्भ है (तस्मात् नु इत्)।
(३) पृथक् छिपा हुआ, अदृश्य। सन्थाली भाषा में 'हिरुक्' का प्रयोग पृथक् होने के अर्थ में किया गया है।
(४) छिपकर, शान्त भाव से दबकर
'हिरुङ्नमन्तु शत्रवः'

हीड – प्राप्त करने योग्य यज्ञो हीडो वो अन्तरः
'आदित्य अस्ति मृडत'
ऋ. ८.१८.१९

हीड़ित – हीड (हींड़ना, छिन्न भिन्न करना) + क्त = हीड़ित। अर्थ है-
(१) छिन्नभिन्न, (२) जो छिन्नभिन्न करना है। दे. 'दोधत्'।
'इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः
सानुं वज्रेण हीडितः,'
ऋ. १.८०.५
(३) क्रुद्ध, क्रोधित
'मा ते भूम प्रसितौ हीडितस्य'
ऋ. ७.४६.१
'देवा वृश्चन्ति हीडिताः'
अ. १२.४.२८

ह्री – लज्जा
'ह्रियै शल्यकः'
वाज.सं. २४.३५; मै.सं. ३.१४.१६:१७६.२

हुत – सं. (१) हवन करने वाला
'वषड्हुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः'
अ. ७..९७.७
(२) हू + क्त = हुत। बुलाए जाने पर। दे 'त्विष्'।
'सेनानीर्नः सहुरे हुत एधि'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२
हे सहनशील (सहुरे), बुलाए जाने पर (हुतः) तू हमारा (नः) सेनापति बन (सेनानीः एधि)।

हुतभाग – (१) आहुति रूप में अग्नि में डाले गए पदार्थों को अपने भीतर ग्रहण करने वाला
'हुतभागा अहुतादश्च देवाः'

अ. १.३०.४
(२) वेतन या अंश को प्राप्त करने वाला
'ये देवानां हुतभागा इहस्थ'
अ. १८.३.२५-३५; ४.१६.२४.

हुर - (१) बलात्कार करने वाला कुटिल
'मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गाः'
ऋ. ४.३.१३

हुरश्चित - हुरः + चित्। (१) कुटिलता से धन बटोरने वाला चोर
'अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः'
ऋ. ९.९८.११
(२) उत्कोचक (३) हस्तात् पर पदार्थपहर्ता (दूसरे का पदार्थ झटक लेने वाला)। दे. 'परिपन्थी

हुवत् - बुलाता हुआ। दे. 'दूत' 'हवानां स्तोमः'

हुवन्नरा - हुवत् + नरौ = हुवन्नरौ = हुवन्नरा (सुपां सुलुक् से 'औ' का 'आ')।
अश्विनीद्वय को नरौ अर्थात् नेतारौ, कहा गया है। 'हुवत्' का अर्थ है। 'हुवत्' का अर्थ है 'आह्वयत्'। दे. 'वाहिष्ठ'।

हुवानाः - हूयमानाः (आहूत होते हुए)। दे. 'अहिर्बुध्न्य'

हुवानां स्तोमः - (१) स्तोताओं के स्तोमों में स्तोम विशेष। दे. 'दूत'।
'वाहिष्ठोवां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा युवाभ्यां भूत्वश्विना'
ऋ. ८.२६.१६
हे सबके नेताओ, हे अश्विद्वय, स्तोताओं के स्तोत्रों में जो स्तोम विशेष है वही आह्वाताओं में उत्तम दूत (वाहिष्ठः दूतः) तुम दोनों को बुलाता हुआ (वाम हुवत्) तुम्हें प्रियकर हो (युवाभ्या भूतु)।

हुवे - ह्वये (पुकारता हूँ)। 'बहुलं छन्दसि' से हेञ् का सम्प्रसारण, पूर्व रूपता और 'शप्' का लोप होकर 'हुवे' रूप हो गया है। दे. 'राका' 'अनानत्'

हुवेम - आह्वयामहे (हम पुकारते हैं)। दे. 'आध्र' 'अरिष्टनेमि'

हूडु (रूढु) - 'रूढु' सायण का पाठ है। रुह् + तून् = रूढ़ = हूडु। अर्थ है- ज्वर जो शरीर को कंपता हुआ चढ़ जाता है। कदाचित् यही हुड़हुड़ा ज्वर है।
'हूडुर्नामासि हरितस्य देव'
अ. १.२५.२,३

हृण - हरति इति हरिणः-दया.। अर्थ-हरिण। दे. 'हृणायन्।

हृणानः - (१) क्रोध करता हुआ हृणीङ् (क्रोध करना) + शानच् = हृणानः। दे. 'अहृणानः।
(२) लज्जा अनुभव करने वाला है। 'हत्नु'।

हृणायन् - 'हृण' का अर्थ है हरिण। अतः 'हृण' की ही 'हृणायन्' बना है। हृणाय + शतृ = हृणायत्।
अर्थ है - हरिण के समान चंचल होता हुआ।
'सुन्वद्भ्यो रंधया कं चिदव्रतम्
हृणायन्तं चिदव्रतम्'
ऋ. १.१३२.४
हरिण या पशु के समान चंचलता दिखाने वाले अविनयी व्रत-रहित शिष्य को भी दण्डित कर (रन्धय)।

हृणीङ् - धा.। क्रोध करना। दे. 'अहृणानः।

हृणीयमानः - (१) क्रोध या तिरस्कार करता हुआ।
'हृणीयमानो अप हि मदैयेः
ऋ. ५.२.८.

हृत् - हृदय,। दे. 'अप्वा'
'अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैः'
ऋ. १०.१०३.१२; अ. ३.२.५; साम. २.१२११; वाज.सं. १७.४४; नि. ९.३३.
अंग्रेजी का heart शब्द 'हृत्' का ही बिगड़ा रुप है।

हृत्तः - हृत् + तसिल् = हृत्त। अर्थ है-हृदय से। दे. 'जार' 'हर्यत'
'हृत्तः इष्यति'
हृदय से (हृत्तः) मनोरथों की पूर्ति चाहता है (इष्यति)-सा.। हृदय से सब कार्य कर।

हृत् द्योतन - हृत् + द्योतन। हृदय को चौंकाने वाला
'हृद्द्योतानो द्विषनां याहि शीभम्'
अ. ५.२०.१२

हृत्स्वस् - हृत्सु + अस्। जो हृदय में बाण फेंकता है। मर्मभेदी।
'आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्'
ऋ. १.८४.१६; अ. १८.१.६; तै.सं. ४.२.११.३; मै.सं. ३.१६.४ : १९०.५; नि. १४.२५

प्रजापति राजा, लक्ष्य भेदी, शत्रु के हृदय आदि मर्मस्थानों पर निशाना लगाने वाले, प्रजा को सुख शान्ति देने वाले (हृत्स्वसःमयो भून्) पुरुषों को राज्य कर्म में लगाए रखता है ।
(२) हृदयों में विद्यमान आत्मा

हृत्स्वसः – दे. 'हृत्स्वस् '। 'हृत्स्वस् 'के प्रथमा ब.व. का रूप ।
(१) मर्म भेदी, हृदय में बाण फेंकने वाला, (२) हृदयों में विद्यमान इन्द्रिय आदि एवं आत्मा
(१) हृ (हरना) + दा (दानार्थक) + इ (गत्यर्थक) = हृदय, । यह अशुद्ध रक्त का हरण करने वाला शुद्ध रक्त का दाता और गति वाला है । रक्त संचार का सिद्धान्त इसी शब्द में है । Harvey ने ही इस सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया ।
दे. 'अविदाम'
'बतो बतासि यम
नैवते मनो हृदयं चाविदाम '
ऋ. १०.१०.१३; अ. १८.१.१५; नि. ६.२८
हे यम, तू निर्बल है, तू सच मुच दयनीय है । हम तेरे मन और हृदय को जानते हैं ।

हृदयश्रिष् – हृदय में आश्रित लगी ।
'कृणोमि हृदयश्रिषम् '
अ. ६.९.२

हृदयामय – हृदय + आमय, । हृदय की पीड़ा या रोग ।
'विद्रधं हृदयामयम् '
अ. ६.१२७.३
'आस्थितं हृदयामयम् '
अ. ६.१४.१

हृदयाविध् – (१) हृदय को बिधनें वाला बाण, हृदय को बींधना
'कृणोतु हृदयाविधम् '
अ. ८.६.१८
'उतापवक्ता हृदयाविधश्चित् '
ऋ. १.२४.८; वाज.सं. ८.२३; तै.सं. १.४.४५.१; मै.सं. १.३.३९: ४५.४; का.सं. ४.१३; श.ब्रा. ४.४.५.५
(२) हृदय +आ +विध् +क्विप् = हृदयाविध् ।
और वह कटु वचन बोलने वाले का भी निराकरण करे ।

हृदय्य – (१) हृदय को सदा प्रसन्न करने वाला-खिलौना, (२) मनोरञ्जक, दिलचस्प
'नमो हृदय्याय च निवेष्याय च '
वाज.सं. १६.४४

हृदय्या – (१) हृदय सम्बन्धिनी, हृदयगत, मनोभाव
'श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या '
ऋ. १०.१५१.४; तै.ब्रा. २.८.८.७

हृदयौपश – हृदय +ओपश । हृदय भाग में विद्यमान बल या रुधिर संञ्चार के उपकरण ।
'जीमूतान् हृदयौपशाभ्याम् '
वाज.सं. २५.८; तै.सं. ५.७.१६.१; मै.सं. ३.१५.७:१७९.११; का.सं. (अश्व.). १३.६

हृदंसनिः – (१) हृदय को संभक्त करने वाला । सोम-रस का विशेषण । दे. 'गिर् '
'य इन्द्रस्य हृदंसनिः '
ऋ. ९.६१.१४; साम. २.६८६.
जो सोम इन्द्र के हृदय को संभक्त करने वाला है ।

हृद्य – हृद् + यत् = हृद्य । हृदय में विराजमान आत्मा
'बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः '
अ. १६.३.५.

हृदय समुद्र – (१) प्रजाओं के चित्तों को रमाने वाला समुद्र के समान गम्भीर राजा, (२) हृदयरूप समुद्र, (३) हृदय से जानने और अनुभव करने योग्य (४) श्रद्धा देव
'एता अर्षन्ति हृदयात् समुद्रात् '
ऋ. ४.५८.५; वाज.सं. १७.९३; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१

हृदिस्पृक्, हृदिस्पृश् – हृदय को स्पर्शी करने वाला, हृदयस्पर्शी
'अयं ते सोमो अग्रियः
हृदिस्पृगस्तु शन्तमः । '
ऋ. १.१६.७
'क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् '
ऋ. ४.१०.१; साम. १.४३४; २.११२७; वाज.सं. १५.४४; १७.७७; तै.सं. ४.४.४.७; मै.सं. १.१०.३:२.१३.८: १५७.१५; श.ब्रा. ९.२.३.४१.

हृद्द्योतः – हृद् + द्योत । हृदय का चमकना
'अनु सूर्यमुदयताम्

हृद्द्योतो हरिमा च ते'
अ. १.२२.१

हृषीवत् – (१) हर्षित सुप्रसन्न ज्वाला वाला–अग्नि ।
(२) स्वयं प्रसन्न । दे. 'हर्षत्'

हृषीवान् – हर्ष का अधिकारी
'श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः'
ऋ. २.३१.१

हेड – (१) क्रोध (२) अनादर
'मा हेडे भूम वरुणस्य वायोः'
ऋ. ७.६२.४
(३) अवज्ञा, उपेक्षा
'अव ते हेडो वरुण नमोभिः
अव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः'
ऋ. १.२४.१४; तै.सं. १.५.११.३; मै.सं. ४.१०.४: १५३.१०; ४.१४.१७:२४६.७; का.सं. ४०.११
हे सबों से वरणीय, दुःखवारक परमेश्वर, हम तेरे प्रति अवज्ञा या उपेक्षा द्वारा किए अपराध को नमस्कारों, हवि दान तथा उपासना द्वारा दूर करते हैं । दे. 'यजिष्ठ'।

हेडस् – क्रोध का पात्र
'तस्य वयं हेडसि मापि भूम'
अ. ७.२०.३

हेयः देवाः – उपद्रवकारी रोगों को शान्त करने वाले प्राची के देवता ।
'येऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि
हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः'
अ. ३.२६.१

हेत्व – प्रवृद्धो वेगवान् – दया. । वेगयुक्त ।
'प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिः'
ऋ. ७.४३.२

हेता – (१) नाशक, दुष्टों का नाशक
'आशुं जेतारं हेतारं रथीतमम्'
ऋ. ८.९९.७; अ. २०.१०५.३; साम. १.२८३.
(२) सारथि
'आदीमश्वं न हेतारः'
ऋ. ९.६२.६; साम. २.३६०

हेतिः – हन् + क्तिन् = हेति । निपातन से सिद्ध । हिंसा,
'ज्याया हेतिं परिबाधमानः'
ऋ. ६.७५.१४; वाज.सं. २९.५१; तै.सं. ४.६.६.५; मै.सं. ३.१६.३:१८७.४; नि. ९.१५
ज्या होने वाली हिंसा का निवारण करता हुआ (हस्तघ्नः) (२) आयुध विशेष, हनन करने के लिए अस्त्र

हेमन्त – हन् + झच् = हेमन्त । 'हन्तेर्मुद् हि च' से हन् का हि और मुद् का आगम तथा 'झच्' का 'अन्त' आदेश ।
'हेमन्तो हिमवान्'
हेमन्त हिम वाली ऋतु है (१) छः ऋतुओं में एक ऋतु जिसमें हिम गिरता है ।

हेमन्तजब्ध – शीत से पीड़ित
'हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये'
अ. १२.१.४६

हेम्या – (१) हेम्नि उदके भवा हेम्या रात्रिः–नि. १.१२
(२) सुवर्ण बढ़ाने वाली सम्पदा, (३) सुवर्ण से मढी कक्ष बन्धनी रस्सी या लगाम

हेम्यावत् – हेम्नि उदके भवा हेम्यारात्रिः नि. १–१२
(१) ध्रुव प्रदेश की रात्रि (२) जल से शीतल रात्रि से युक्त चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाला ।
(३) हेम अर्थात् सुवर्ण को बढ़ाने वाली सम्पदा से युक्त । (४) सुवर्ण से मढ़ी कक्ष बन्धनी रज्जु या लगाम से युक्त घोड़ा (५) सुवर्ण सम्पदा से युक्त पुरुष
'अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्'
ऋ. ४.२.८

हेषक्रतवः – ब.व.। उत्तम हर्ष ध्वनियों या उत्तम प्रज्ञा या कर्म वाले–मरुत्
'सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः'
ऋ. ३.२६.५; तै.ब्रा. २.७.१२.४

हेषस्वत् – गम्भीर गर्जनायुक्त वाणी बोलने वाला
'हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः'
ऋ. ६.३.३.

है – हे । सम्बोधनार्थक अव्यय
'तर्द है पतङ्ग है'
अ. ६.५०.२

हैमन्ती पंक्ति – (१) हेमन्त से उत्पन्न पंक्ति (पकना) । हेमन्त के बाद अन्न पकने लगता है । (२) पंचम ऋतु हेमन्त से मानों यज्ञ में पंक्ति छन्द की उत्पत्ति हुई ।

'पंक्ति हैमन्ती'
वाज.सं. १३.५८; तै.सं. ४.३.२.३; मै.सं. २.७.१९;१०४.१३; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.८.

हैमनौ मासौ – हिम ऋतु के दो मास
'हैमनौ मासौ गोमारौ'
अ. १५.१(४).१४

हैमवतीः आपः – हिमवाले पर्वतों से बहने वाली
'शंत आपो हैमवतीः'
अ. १९.२.१

हैरण्य – अभिरमणीय इन्द्रिय आदि से भोग्य विषय
'हैरण्यै रन्यं हरितो वहन्ति'
अ. १३.२.११

होत्र – (१) होता ।
'यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७; नि. २.१२.
'आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्
देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान्'
ऋ. १०.९८.५; नि. २.११
(२) होता का यज्ञ-सा.
(३) हवि का वृष्टि प्रद भाग -दया.
'अपाद्धोत्रा दूत पोत्रादमत्त'
ऋ. २.३७.४
जिस इन्द्र से होता के यज्ञ से लेकर सोमरस का पान किया-सा.
हितकारी हवि के वृष्टिप्रद भाग से पान करें ।
(४) दान कर्म, (५) हवन
'वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानाम्'
ऋ. १०.२.२; आप.श्रौ.सू. २४.१३.३.
(६) हु + तृच् = होतृ । हवन करने वाला-अग्नि, वैश्वानर अग्नि, (७) सृष्टि कर्त्ता
'यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टः'
ऋ. १०.८८.४
जो वैश्वानर अग्नि देवों में प्रथम होने के कारण देवों से आसेवित हुए-सा.
अन्य अर्थ
जो अनादि विद्वत्सेवी सृष्टि कर्ता है ।
'होतारं रत्नधातमम्'
ऋ. १.१.१; तै.सं. ४.३.१३.३; मै.सं. ४.१०.५;१५५.२; का.सं. २.१४.
(८) आदित्य या ग्रहोपग्रहों का आहर्ता आदित्य ।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः'
तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः'
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; नि. ४.२६.
स्वर्ग में चमकने वाले, आरोग्यार्थियों के सेवनीय पालक उस आहवनीय या ग्रहोंपग्रहों के आहर्ता अदित्य का मध्यम स्थानी वायु या मेघ मध्य वर्ती अशनि दूसरा भाई है ।
(९) यज्ञ कर्त्ता
'अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं
वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं
विप्रं न जातवेदसम्'
ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; वाज.सं. १५.४७; तै.सं. ४.४.४.८; मै.सं. २.१३.८; १५८.३; का.सं. २६.११; ३९.१५.
मैं यज्ञकर्ता दाता, निवासक, साहसी वीर के पुत्र, प्रजा के प्रत्येक सुख दुःख के जानने वाले (जात वेदसम्) और ब्राह्मण के समान वेदज्ञ क्षत्रिय को (विप्रं न जातवेदसम्) अग्रणी अर्थात् राजा मानता हूँ (अग्निं मन्ये) ।
सायण का अर्थ – मैं रोग-निष्पादक अत्यन्त दया शील, सभी के निवास हेतु, बल के पुत्र, प्राणियों के ज्ञाता, जातप्रज्ञ, जातबल तथा विप्र के सदृश जातविद्या या मेधावी अग्नि की स्तुति करता हूँ (अग्निं मन्ये) ।
(१०) ह्वातव्य आह्वानार्ह, (११) प्रदाता, (१२) ज्ञानगृहीता विद्वान्, (१३) परमेश्वर (१४) स्वयं जगत् को अपने में ले लेने वाला प्रलय कारी
(१५) सर्वदाता सूर्य
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः'
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; ऐ.आ. १.५.३.७; ५.३.२.१४; शां.श्रौ.सू. १८.२२.७; नि. ४.२६.

होता चेतनः – (१) विद्या प्राप्त करने वाला ज्ञानवान् पुरुष, (२) सब शरीर का बलदाता चेतन जीव
'होता जनिष्ट चेतनः
पिता पितृभ्य ऊतये'
ऋ. २.५.१; कौ.ब्रा. १९.८; २१.२; ऐ.आ. १.१.१.१६

होत्रा – सब सुखों और ज्ञानों को देने वाली वाणी
'त्वं होत्रा भारतीवर्धसे गिरा'
ऋ. २.१.११
'वनेम तत् होत्रया चितन्त्या'

ऋ. १.१२९.७
(२) शिष्य, परम्परा से प्राप्त करने योग्य विद्या मयीवाणी,
(३) ऋग्वेद
'शुचिर्देवेषु अप्रिता
होत्रा मरुत्सु भारती'
ऋ. १.१४२.९
'यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधया'
ऋ. ७.१०४.६; अ. ८.४.६

होत्राविद् – (१) यज्ञकर्म का ज्ञाता (२) यज्ञकर्ता
(३) स्तुतिज्ञ
(४) आहुति लेने वाला अग्नि, (५) वेदवाणी को जानने वाला
'होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम्'
ऋ. ५.८.३; तै.सं. ३.३.११.२; श.ब्रा. २.४.४.२; मा.श्रौ.सू. ५.१.२.१७.
(६) त्यागपूर्वक दिए अन्न पूर्वक ग्रहण करने योग्य या गुरु से उपदेश देने योग्य वेदवाणियों का ज्ञाता
'होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः'
ऋ. १०.१५.९; अ. १८.३.४७; मै.सं. ४.१०.६:१५७.१६; तै.ब्रा. २.६.१६.२

होत्रिय – (१) सबको अपने अधीन लेने में समर्थ,
(२) सबको अपनी रक्षा देने में समर्थ
'आपो न देवीमुपयन्ति होत्रियम्'
ऋ. १.८३.२; अ. २०.२५.२; ऐ.ब्रा. २.२०.९; कौ.ब्रा. १२.१; आश्व.श्रौ.सू. ५.१.१३

होतुः अवरो ब्राह्मणः – होताओं में निकृष्ट या अल्प बुद्धि वाला–ब्राह्मण
'तावद्दधात्युपयज्ञमायन्
ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन्'
ऋ. १०.८८.१९; नि. ७.३१
उतना ही ज्ञान होताओं में अल्प ज्ञान वाला ब्राह्मण यज्ञ में आकर बैठता हुआ धारण करता है।

होतृवूर्ये – द्वि.व.। (१) होतृणां स्वीकर्तव्ये–होताओं के स्वीकार योग्य
वृ + क्यप् = वूर्य। उत्पादक और प्रलय कारी होता परमेश्वर से वरण करने या संविभाग करने योग्य द्यौ और पृथिवी
'अरेजतां रोदसी होतृवूर्ये'
ऋ. १.३१.३
सब को अपने भीतर से प्रकट करने और उनको अपने भीतर ले लेने वाले उत्पादक और प्रलयकारी होता परमेश्वर से वरण करने या संविभाग करने योग्य द्यौ और पृथिवी दोनों उसी के संकल्प से गति करते हैं।
(२) होता का वरण करने वाले, ज्ञानादिक देने वाले विद्वानों का यज्ञों में वरण करने वाले–स्त्री पुरुष
'उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते'
ऋ. ६.७०.४

होतृषदन – (१) होता आदि ऋत्विजों के बैठने का स्थान–वेदि
(२) शासनाधिकार देने और विद्वानों के विराजने के स्थान–सभाभवन
'निः होता होतृषदने'
ऋ. २.९.१; वाज.सं. ११.३६; तै.सं. ३.५.११.२; ४.१.३.३; मै.सं. २.७.३:७७.१३; का.सं. १६.३; ऐ.ब्रा. १.२८.३२; कौ.ब्रा. ९.२; श.ब्रा. ६.४.२.७; आश्व.श्रौ.सू. २.१७.१०
(३) होता सबको देने वाले परमेश्वर का सदन
'होतृषदनं हरितं हिरण्ययम्'
अ. ७.९९.१

होम – (१) कारण पदार्थों का संयोग विभाग.
'कति होमासः कतिधा समिद्धः'
वाज.सं. २३.५७
(२) हवन करना

होषः – हु (हवन या स्तुति) से सिद्ध, (१) याग, (२) स्तोत्र, । जिसका अर्थ–'प्रसिद्ध याग वाले' या 'प्रसिद्ध स्तोत्र वाले' किया गया है। (३) दान, (४) होता
'प्रहोषे चिदररुषः'
ऋ. १.१५०.२